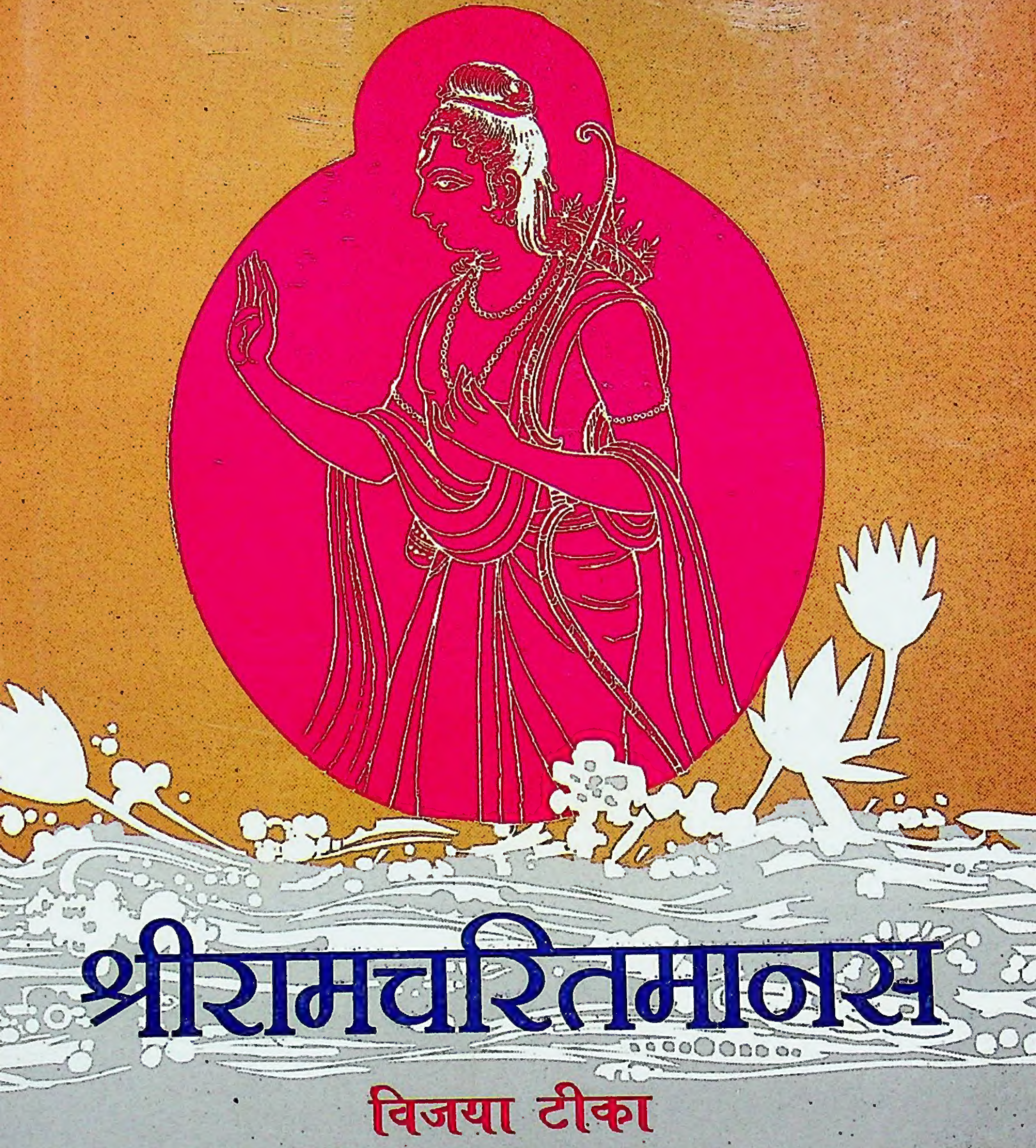

श्रीरामचरितमानस

विजया टीका

मानसराजहंस पं० विजयानन्द त्रिपाठी

॥ श्रीः ॥

विद्याभवन प्राच्यविद्या ग्रन्थमाला
१४७

श्रीरामचरितमानस

विजया हिन्दी टीका

(प्रथम भाग)

प्रथमसोपान : बालकाण्ड

टीकाकार
मानसराजहंस पं. श्री विजयानन्दजी त्रिपाठी

सम्पादक
डॉ. श्रीनाथ मिश्र 'रामायणी'
डॉ. सहजानन्द त्रिपाठी

चौखम्बा विद्याभवन
वाराणसी

प्रकाशक
चौखम्बा विद्याभवन
(भारतीय संस्कृति एवं साहित्य के प्रकाशक तथा वितरक)
चौक (बैंक ऑफ बड़ोदा भवन के पीछे)
पो. बा. नं. 1069, वाराणसी 221001
दूरभाष : 2420404

सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन
पुनर्मुद्रित संस्करण 2004 ई.
मूल्य : 1500.00 (1-3 भाग सम्पूर्ण)

अन्य प्राप्तिस्थान
चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान
38 यू. ए. बंगलो रोड, जवाहर नगर
पो. बा. नं. 2113
दिल्ली 110007
दूरभाष : 23856391

❖

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन
के. 37/117 गोपालमन्दिर लेन
पो. बा. नं. 1129, वाराणसी 221001
दूरभाष : 2335263, 2333431

श्री १०८ पूज्यपाद स्वामी करपात्रीजी की सम्मति

श्रीहरिः

वेदवेद्य परब्रह्म के दशरथात्मज रामरूप से प्रकट होने पर वेदों का भी श्रीमहामुनि प्राचेतस वाल्मीकि से रामायण के रूप में आविर्भाव हुआ। उसी रामायण का गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी से रामचरितमानस के रूप में प्राकट्य हुआ है। सामान्यतया वेदार्थ ही रामायणार्थ है। उसमें निर्गुण सगुण राम और उनकी मङ्गलमयी लीलाकथा का ही प्राधान्येन वर्णन है। प्रसङ्गानुसार सामाजिक नैतिक धार्मिक अनेक आवश्यक वस्तुओं का भी वर्णन है। भक्ति भुक्ति मुक्ति और अभीष्टसिद्धि सब कुछ मानस सेवन से प्राप्त होता है। अतएव विमुक्त विरत और विषयी सभी लोगों को अभीष्टसिद्धि का साधन रामायण है। आजकल के प्राणियों को हिन्दू सभ्यता संस्कृति की रक्षा तथा चतुर्वर्गप्राप्ति का सुलभ साधन मानस से ही प्राप्त हो सकता है।

मानस की व्याख्याएँ अनेक हैं। उनमें व्याख्याता महानुभाव अनेक रूप से प्रभु का गुणगान करते हैं। परन्तु श्री पण्डित विजयानन्दजी त्रिपाठी की यह व्याख्या ।। असाधारण महत्त्व रखती है। कारण पण्डितजी वेदादि शास्त्रों, पुराणों, इतिहासों, धर्मशास्त्रों, तन्त्रों और संस्कृत प्राकृत भाषाओं एवं उनके व्याकरणों से परिचित हैं। अतएव इस व्याख्या में पाण्डित्यपूर्ण शास्त्रीय मर्यादाओं के अनुसार विषयप्रदर्शन किया गया है। इतने पर भी विस्तार न कर सिद्धान्त एवं सूत्ररूप से ही प्रत्येक चतुष्पदी की व्याख्या की गयी है, जिसका अधिकाधिक विस्तार किया जा सकता है। त्रिपाठी के व्याख्यान में पाण्डित्य के अतिरिक्त सदाचार धर्माचरण तथा भक्ति ज्ञान निष्ठा का भी प्रभाव स्थान-स्थान पर स्पष्ट झलकता है। लोगों को इससे अधिकाधिक लाभ उठाना चाहिए।

—हरिहरानन्दसरस्वती करपात्रोपाह्वः

सर्वतन्त्रस्वतन्त्र कवितार्किकचक्रवर्ती

पण्डित श्रीमहादेव शास्त्री

अध्यक्ष : संस्कृत महाविद्यालय

हिन्दू विश्वविद्यालय, काशी की सम्मति

श्रीशितिकण्ठः शरणम्

अब्धिर्लङ्घित एव वानरभटैः किन्त्वस्य गम्भीरताम् ।
आपातालनिमग्नपीवरतनुर्जानाति मन्थाचल ॥—मुरारिः

दूसरे मानस के ऊपर ही तैरते रहे। उसके अन्तस्तल का अवगाहनकर निगूढ़ रत्नों का वहिर्नयन प्रकृत महानुभाव का ही कौशल है। राजहंस के अतिरिक्त मानस के अनुपम रहस्य की पारमार्थिक अभिज्ञान-पारगामिता कहाँ प्राप्त की जा सकती है। सम्मानभाजन श्रीत्रिपाठीजी ने मानस की सुकठिन ग्रन्थियों का अद्भुत भेदन, गुप्त रहस्यों का प्रसृमर प्रकाश, रसों का लावण्यपूर्ण अभिव्यञ्जन, भक्ति सुरझरिणी का अखण्ड पीयूष प्रवाह जिस अदूष्य वैदुष्य और कमनीय कौशल से निर्माणकर्मत्व में ला दिया है वह उन्हीं महापुरुष का स्तुत्य कृत्य है। ऐसा प्रत्यय होता है कि इस निर्मल, ललित, सरल, गम्भीर, विशद तथा सुश्लिष्ट भाष्य निर्माण की प्रवृत्ति संपत्ति भगवत्प्रेरणावश विजृम्भित हुई है।

श्रीभगवान् के चरणारविन्द में मेरा विनीत निवेदन है कि :

यावन्मूर्ध्नि हिमांशुकन्दलभृति श्रीजाह्नवीधूर्जटे-
लंक्ष्मीर्वक्षसि कौस्तुभस्तवकिते यावन्मुरद्वेषिणः ।
यावच्चित्तभुवस्त्रिलोकविजयप्रौढं धनुः कौसुमं
भूयात्तावदियं कृतिः कृतधियां कर्णावतंसोत्पलम् ॥— भोजराजः

—महादेव पाण्डेयः

१९—अस्सी, बनारस
दिनाङ्क श्रा. शु. ६. बु.
२०११ वि.

अनन्तश्री विभूषित जगद्गुरु शङ्कराचार्य
गोवर्द्धन पीठाधीश्वर
श्रीनिरञ्जन देव तीर्थ जी महाराज
की
शुभ सम्मति

श्री हरिः

मानसराजहंस श्री विजयानन्द त्रिपाठी काशीवासी श्री रामचरितमानस के मर्मज्ञ इने-गिने विद्वानों में भी अद्वितीय थे। सबसे बड़ी विशेषता उनमें यह थी कि वे मानस प्रवचन अथवा तत्सम्बन्धी लेखों में कभी भी शास्त्रीय मर्यादा का उल्लङ्घन नहीं होने देते थे। आज कल के मानसव्यास प्रायः इसके अपवाद देखे जाते हैं। पर श्री राजहंसजी के प्रवचन के समय ऐसा लगता था कि नाना पुराणनिगमागम सम्मत का साक्षात् अवतार हो रहा है।

सौभाग्य की बात है कि उनके अन्यतम प्रिय पट्टशिष्य श्री श्रीनाथजी व्यास के प्रयास से उनकी मानस टीका का द्वितीय संस्करण प्रकाशित होने जा रहा है। मेरी हार्दिक कामना है कि श्री श्रीनाथजी इस कार्य में पूर्ण सफल हों जिससे मानस की वास्तविक विशेषताएँ विद्वानों और मानस रस रसिकों को आप्यायित करने में समर्थ हों।

—निरञ्जन

अनन्तश्री स्वामी अखण्डानन्द सरस्वतीजी महाराज

का

आशीर्वचन

श्रीरामचरितमानस पर विद्वान् भक्त एवं महात्माओं के द्वारा अनेक टीका-टिप्पणियाँ लिखी गयी हैं। उनके बड़े-बड़े संग्रह भी हुए हैं। वे सब अपने-अपने सम्प्रदाय एवं शैली के अनुसार ठीक हैं। अपने-अपने दृष्टिकोण से सब सुसंगत हैं। मैंने अब तक जितनी टीकाएँ देखी हैं उनमें श्री विजयानन्द त्रिपाठीजी की विजया टीका सर्वोत्तम है। यह मैं निस्सन्देह कह सकता हूँ। इसका कारण यह है कि यह टीका सर्वथा वैदिक पद्धति के अनुसार सनातन धर्म के अनुरूप लिखी गयी है। जो वेद शास्त्र के अनुकूल होता है वही धर्म होता है। मनमानी पद्धति से धर्म का निर्णय नहीं हो सकता। गोस्वामीजी ने जिस भक्ति का निरूपण किया है वह वेद-वेदान्त के अनुकूल शास्त्रीय दृष्टिकोण से सम्पन्न है। त्रिपाठीजी ने इतनी उत्तम टीका लिखकर बहुत बड़ा लोककल्याण किया है। भगवान् करें इस टीका का जन-जन में प्रचार-प्रसार हो और जनता गोस्वामीजी के शास्त्रीय भक्ति भावना से सदाचार, अध्यात्म विद्या एवं भगवत्प्रसाद को प्राप्त करे।

टीका का पुनः प्रकाशन डॉ० श्रीनाथ मिश्र रामायणी के प्रयास से हो रहा है। यह कार्य प्रशंसनीय और लोककल्याण में सहायक है।

—अखण्डानन्द सरस्वती

अनुप्रवेश

भगवान् वेदव्यास ने कहा है :

वासुदेवकथाप्रश्नः पुरुषां स्त्रीन्पुनाति हि ।
वक्तारं पृच्छकं श्रोतृँस्तत्पादसलिलं यथा ॥

—श्रीमद्भागवत

लीला से अवतार धारण किये हुए भगवान् की कथा के विषय में जो प्रश्न किया जाता है वह प्रश्नकर्त्ता, वक्ता तथा श्रोताओं तीनों को पवित्र करता है। जैसे भगवान् पूर्णतम पुरुषोत्तम के चरणारविन्दों से निःसृत जलधारा श्री गङ्गाजी मन्दाकिनी रूप में स्वर्गलोक, भागीरथी रूप में मर्त्यलोक तथा भोगावती रूप में पाताललोक को पवित्र करती हैं।

श्री भगवान् के अवतार के नानाविध प्रयोजन शास्त्रों में निर्दिष्ट है। सबसे प्रसिद्ध प्रयोजन श्रीमद्भगवद्गीता में स्वयं श्रीमुख से बताया गया है। जब जब सनातन वैदिक वर्णाश्रम धर्म की ग्लानि तथा अधर्म का अभ्युत्थान होता है तब तब सनातन धर्म मार्गस्थ सज्जनों के परित्राणार्थं तथा दुष्टों के विनाशार्थ युग युग में भगवान् स्वयं अज अव्ययात्मा सर्वभूतों के ईश्वर होते हुए भी स्वीया प्रकृति का अधिष्ठानकर आत्ममाया से मानो जन्म सा लेते हैं।

कुछ भावुक भक्तों का कथन है कि जिनके भृकुटी विलास से अनन्तकोटि ब्रह्माण्डों का उत्पादन, पालन, प्रलय होता है उसका अपनी ही सृष्टि के अन्तर्गत स्वयं द्वारा ही उत्पादित हिरण्याक्ष, हिरण्यकशिपु, रावण, कुम्भकर्ण आदि के विनाशार्थ स्वयं को अवतार लेना पड़े—यह बात जँचती नहीं। जो प्रभु संकल्पमात्र से अनन्तकोटि ब्रह्माण्डमण्डलों का सर्जन, पालन, संहार कर सकते हैं वे संकल्पमात्र से ही हिरण्यकशिपु आदि का विनाश तथा प्रह्लाद आदि का परित्राण कर सकते हैं। इसलिए यह प्रयोजन अवतार के लिए बहुत ही छोटा लगता है। यह तो वही बात हो गयी जैसे चींटी को मारने के लिए ब्रह्मास्त्र का प्रयोग। इन भक्तों की दृष्टि में भगवान् के अवतार का अधिक उपयुक्त प्रयोजन वह है जिसे माता कुन्ती ने बताया है :

तथा च परमहंसानां मुनीनाममलात्मनाम् ।
भक्तियोगविधानार्थं कथं पश्येम हि स्त्रियः ॥

पूज्यचरण श्री स्वामी करपात्रीजी महाराज इस श्लोक की व्याख्या करते हुए कहते हैं कि परमहंसों को श्री परमहंस बनाने के लिए प्रभु अवतार धारण करते हैं। श्री गोस्वामीजी ने भी कहा :

राम प्रेम बिनु सोह न ग्यानू । करनधार बिनु जिमि जल जानू ॥
जोग कुजोग ग्यान अग्यानू । जहँ नहि राम प्रेम परधानू ॥

सद्-असत्, शाश्वत-नश्वर, तत्त्व-अतत्त्व का पूर्ण विवेक करनेवाले महापुरुष क्षीर-नीर-विवेकी हंस हैं। उसमें असत् अतत्त्व का पूर्ण परित्यागकर केवल मात्र सन्निष्ठ तत्त्वनिष्ठ मनीषी परमहंस हैं। वे भी अन्तःकरण में निर्गुण, निराकार, निर्विकल्प, ब्रह्मानन्द की पुञ्जीभूत राशि के रूप में भगवान् श्री राघवेन्द्र रामचन्द्र, श्री यादवेन्द्र कृष्णचन्द्र आदि की उपासना पारमार्थिक अद्वैत होते हुए भी भक्त्यर्थं द्वैत कल्पनाकर भजन करने से मुक्ति शताधिक भक्ति आने पर, श्री परमहंस कहलाते हैं।

ब्रह्मलोकपर्यन्त को तृणवत् समझ चुके हुए ब्रह्मनिष्ठों का चित्ताकर्षण करने के लिए श्री भगवान् को ऐसा कोई रस बनाना ही पड़ेगा जिसके अवलोकन से श्री भरद्वाज जैसे महर्षि को लगे कि 'ब्रह्मानन्द रासि जनु पाई।' सार्थक नामवाले विदेहराज को लगे : 'इन्हहि विलोकत अति अनुरागा। बरबस ब्रह्म सुखहि मनु त्यागा।' श्री कागभुशुण्डिजी जैसों का मन हो : 'भरि लोचन बिलोकि अवधेसा। तब सुनिहौं निर्गुन उपदेसा।' स्वयं भगवान् अपने दिव्य स्वरूप का प्रतिबिम्ब निहारकर नाच उठते हैं : नाचहि निज प्रतिबिम्ब निहारी।

परन्तु यह भी अत्यन्त उच्चकोटि के महापुरुषों के काम की बात है। भगवान् राम कृष्ण आदि की भक्ति में रत होनेवाले दुर्लभ हैं। अतः आज कलियुग के दम्भ, पाखण्ड-प्रधान काल में ऐसों की आशा कदाचित् मृगमरीचिकावत् ही हो।

परन्तु श्री भगवान् के अवतार का एक और बड़े महत्त्व का प्रयोजन शास्त्रों ने बताया है और वह आज भी सबके बड़े काम का है। परब्रह्मतत्त्व का शास्त्रीय तथा स्वानुभूति रूप विज्ञान विरले ही महापुरुषों के भाग्य में होता है। परन्तु भगवान् ने अवतार धारणकर जो लोकोत्तर लोकवत् लीलाएँ की हैं उनके कथन, श्रवण, गान, चिन्तन से आत्मकल्याण का मार्ग सामान्य जन भी प्रशस्त कर सकते हैं। गीताजी में श्री भगवान् ने स्वयं कहा है :

जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः।
त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नेति मामेति सोऽर्जुन॥

हे अर्जुन! मेरे जन्म, कर्म दोनों दिव्य हैं। इस बात को जो तत्त्वतः जान लेता है वह जन्म, कर्म के बन्धन से मुक्त हो जाता है। सांसारिक लोगों के जन्म, कर्म का वर्णन करने से बार-बार संसार में आना पड़ता है।

श्रीमद्भागवत में माता कुन्ती ने ही प्रभु के अवतार के अनेक कारणों का उल्लेख करते हुए अन्त में इसी कारण का निर्देश किया है :

भवेऽस्मिन् क्लिश्यमानानामविद्याकामकर्मभिः।
श्रवणस्मरणार्हाणि करिष्यन्निति केचन॥ १.८.३५॥

अविद्या : आत्मा के परमानन्दस्वरूप के अज्ञान, काम : उस अज्ञान से उत्पन्न देहाभिमान तथा : तज्जन्य कर्मों से इस संसार में क्लेश पा रहे जीवों को श्रवण स्मरण करने योग्य कर्म करने की इच्छा से ही आप शरीर धारण करते हैं।

श्रीरामचरितमानस में भी भगवान् के अवतार का प्रयोजन निर्दिष्ट किया है। जाम्बवानजी ने हनुमान्जी से कहा है :

कपिसेन संग सँघारि निसिचर रामु सीतहि आनिहैं।
त्रैलोक पावन सुजस सुर मुनि नारदादि बखानिहैं॥
जो सुनत गावत कहत समुझत परम पद नर पावई।
रघुबीर पद पाथोज मधुकर दास तुलसी गावई॥

इतना ही नहीं; जिनसे अनुपम मानव सृष्टि हुई उन श्री स्वायम्भुव मनु को वरदान देते हुए स्वयं प्रभु ने कहा :

इच्छामय नरबेष सँवारें। होइहउँ प्रगट निकेत तुम्हारें॥
अंसन्ह सहित देह धरि ताता। करिहउँ चरित भगत सुखदाता॥
जो सुनि सादर नर बड़भागी। भव तरिहहिं ममता मदत्यागी॥

आगे रावणवध तथा विभीषण के राज्याभिषेक के पश्चात् श्री भगवान् ने अपनी ही नहीं अपने साथ बानर भालुओं की शुभ कीर्ति का भी परम प्रीति से गान करनेवाले अपार संसार सिन्धु का पार अनायास पायेंगे ऐसा बताया है :

मोहि सहित सुभ कीरत्ति तुम्हारी परम प्रीति जो गाइहै।
संसार सिन्धु अपार पार प्रयास बिनु नर पाइहैं॥

कहने को आज संसार में नास्तिकों का बोलबाला है। पर विचार करने से विदित होगा कि 'जुग कलिजुग मलमूल' के प्रभाव से नर नारी सब वेद प्रतिकूल अधर्मरत भले ही हों परन्तु नास्तिक कोई नहीं हो सकता। सच्चा नास्तिक तो वही है जो अपने आपसे, स्वयं से, आत्मा से द्वेष करे जो कोई नहीं करता। यदि प्राणी ठीक जान ले कि वही आत्मा ही अनादि अवधपति श्रीराम हैं तो भला उनसे विरोध कौन कर सकता है? गोस्वामीजी ने स्वयं बताया है कि विषय, इन्द्रियाँ, उनके अधिष्ठाता देवगण, जीव ये सब एक से अधिक सचेत हैं और इन सबका परम प्रकाशक जो भी तत्त्व है : आत्मा : वही राम अनादि अवधपति हैं। इसलिए श्रीभरतजी कहते हैं :

अस को जीव जन्तु जग माहीं। जेहि रघुबीर प्रान प्रिय नाहीं॥

और तभी आदिकवि महर्षि श्री वाल्मीकिजी कहते हैं :

लोके नहि स विद्येत यो न राममनुव्रतः।

तभी महर्षि विश्वामित्रजी राजर्षि जनकजी से प्रभु का परिचय देते हुए कहते हैं :

ये प्रिय सबहि जहाँ लगि प्रानी।

तभी माता कौशल्या कहती हैं :

पूत परम प्रिय तुम सबही के। प्रान प्रान के जीवन जी के॥

और माता सुमित्रा कहती हैं :

गुरु पितु मातु बन्धु सुर साँई। सेइअहि सकल प्रान की नाँई॥
रामु प्रान प्रिय जीवन जी के। स्वारथ रहित सखा सबही के॥
पूजनीय प्रिय परम जहाँ ते। सब मानिअहि राम के नाते॥

अधिक कहाँतक कहा जाय, शास्त्र कहते हैं :

वेदे रामायणे चैव पुराणे भारते तथा। आदावन्ते च मध्ये च हरिः सर्वत्र गीयते ॥

वेदों में, रामायण में, पुराणों में, महाभारत में आदि, अन्त, मध्य में सर्वत्र भगवान् श्री हरि का ही गान हो रहा है। श्री रामचरितमानस भी यही कह रहा है :

एहि महँ आदि मध्य अवसाना। प्रभु प्रतिपाद्य राम भगवाना ॥

सो प्राण के भी प्राण, जीवन के भी जीवन का प्रतिपादन जिस ग्रन्थरत्न में हो उससे विरोध किस समझदार प्राणी को हो सकता है ?

यद्यपि हित अनहित पशु पक्षी भी जानता है और जीव के परम कल्याण का साधन कम से कम इस कलियुग में तो इस भगवद्गुणानुवाद से अधिक कुछ नहीं है ; तथापि जन्म जन्मान्तरों के पुण्यपुञ्जों के बिना श्री हरिकृपा नहीं प्राप्त हो सकती और अति हरिकृपा जिस पर हो वही इस मार्ग पर पाँव दे सकता है। साथ ही स्वयं भगवान् का यह भी कथन है :

पापवंत कर सहज सुभाऊ। भजनु मोर तेहि भाव न काऊ ॥

अतएव :

अति खल जे बिषई बक कागा। एहि सर निकट न जाहिं अभागा ॥

तथापि अकारण करुणा के वशीभूत होकर महात्माओं ने ऐसे लोगों को भी भगवान् की ओर अभिमुख करने के प्रयास में अपनी ओर से कोई कसर नहीं उठा रखी। इस नदी में अनेक पटु प्रश्न नाव है और विवेकयुक्त उत्तर कुशल केवट है। यदि जिज्ञासा के सद्भाव से कुछ प्रश्न या शंकाएँ मन में आयें तो उनका उत्तर अवश्य ही स्वयं ग्रन्थ में ही प्राप्त हो जायेगा। जो हरि विमुख हैं तथा श्रुति, स्मृति, पुराणोक्त सनातन वर्णाश्रम धर्म में जिनकी रति नहीं है, ऐसे विमूढ़ अवश्य मोह प्राप्त करते हैं। अन्यथा यह रस कभी विरस नहीं होता। इसका श्रवण जीवन्मुक्त महामुनि भी करते हैं और वे परमहंस से श्री परमहंस बनते हैं। भवसागर से पार पाने की इच्छावाले विरक्त जनों के लिए तो यह दृढ़ नाव ही है। यहाँ तक कि विषयी जनों को भी यह श्रवण सुखद और मनोभिराम लगता है। क्योंकि कथा है ही ऐसी। जिसके श्रवणेन्द्रिय हैं और शब्दों का अर्थ जो समझ सकता है वह सामान्य नाटक, उपन्यास, काव्यकी दृष्टि से भी इसमें रम जाता है। इससे जो ऊबे, उसने रस विशेष जाना ही नहीं। मानना पड़ता है कि श्री रघुपति कथा जिसे नहीं सुहाती वे जड़ जीव निजात्मघाती आत्महत्यारे ही हैं।

हमारे गुरुवर्य पूज्यपाद साहित्यरञ्जन मानसराजहंस पण्डितप्रवर श्री विजयानन्द त्रिपाठी जी महाराज ने संस्कृत, हिन्दी, फारसी, अंग्रेजी आदि अनेक भाषाओं तथा उनके साहित्यों का सुचारु अध्ययनकर फिर अपना समग्र जीवन इसी ग्रन्थरत्न में समर्पित कर दिया था। करीब ३५ वर्ष तक निरन्तर अपने ही निवास-स्थान : भदैनी, काशी : पर इसका नियमित प्रवचनकर न जाने कितने ही जिज्ञासु जनों की ज्ञान-पिपासा आपने शान्त की थी। काशी के साहित्य के मूर्धन्य विद्वान् पं० श्री महादेव शास्त्री भी अनेक वर्षों तक गुरुदेव की कथा में निरन्तर आते थे। काशी के संस्कृत के विद्वानों में श्रीरामचरित-मानस का प्रचार गुरुदेव के ही ओजस्वी एवं विद्वत्तापूर्ण प्रवचन के द्वारा हुआ। मानस

मूल, मानसप्रसङ्ग, मानस पंचरत्न, सत पंच चौपाई, समुझाई, मानस-व्याकरण आदि कई पुस्तकें भी आपकी मानससंघ : सतना, गीताप्रेस : गोरखपुर आदि से प्रकाशित हुईं। आपके ही सम्पादकत्व में प्रकाशित मासिक 'सन्मार्ग' में भी आपकी कई लेखमालाएँ छपीं। सम्वत् १९९३ विक्रम में लीडर प्रेस : प्रयाग से आपके द्वारा सम्पादित मानस के शुद्धतम पाठ का संस्करण भी प्रकाशित हुआ। मानस-पीयूष में भी आपके भाव यत्र-तत्र सङ्कलित हुए। परन्तु इस संग्रह से भी मर्मज्ञ मानस-प्रेमियों को सन्तोष न हुआ। उनके सतत आग्रह के फलस्वरूप आपने सम्पूर्ण मानस की संक्षिप्त टीका भी लिखी जो शास्त्रमर्मविद् मनीषियों की दृष्टि में मानस की सर्वाधिक प्रामाणिक टीका समझी गयी। संक्षिप्त परन्तु सकल ग्रन्थि-विमोचिका तथा विशद होने से तथा मूलग्रन्थकार के ही मतानुसार : नानापुराणनिगमागम-सम्मत कर्मकाण्ड : वर्णाश्रम धर्म उपासनाकाण्ड : भक्तिशास्त्र तथा ज्ञानकाण्ड : वेदान्त पर्यवसित आस्तिक षड्दर्शन मत का निचोड़ होने के कारण इस टीका का विद्वानों के बीच में वही स्थान माना गया जो स्थान श्रीमद्भागवत की श्रीधरी टीका का है।

इसका प्रथम संस्करण उनके जीवनकाल में ही छपना प्रारम्भ हो गया था। अयोध्याकाण्ड छप रहा था, उसी समय ३-४ दिनों के साधारण अस्वास्थ्य से ही ता० १६ मार्च १९५५ को प्रातःकाल ३ बजकर २० मिनट पर, मङ्गलवार को ७५ वर्ष की पार्थिव आयु भोगकर, आपने शिव सायुज्य प्राप्त किया। उसके बाद उनका एक स्वरचित पद्य भी प्राप्त हुआ जिसे उन्होंने शरीर शान्त होने के एक सप्ताह पूर्व ही लिखकर रख दिया :

बनेगी क्या ऐसी भी बात ?
भोलेनाथ स्वयं आवेंगे अन्नपूर्णा साथ ॥
तारक मन्त्र सुनाकर सिर पर फेरेंगे निज हाथ।
विजयानन्द महामंगल को दिन अब केवल सात ॥

इससे मालूम पड़ता है कि वे भगवान् शंकर के कितने बड़े कृपापात्र थे। उनका शरीर मङ्गलवार को ही शान्त हुआ था।

टीकाकार के शिव-सायुज्य प्राप्ति के साथ ही कुछ समस्याएँ उत्पन्न हुईं। परन्तु भूतभावन भगवान् शंकर की कृपा से सब बाधाएं शनैः शनैः हटती चली गयीं। पुस्तक ज्यों-ज्यों विद्वानों, मानस-प्रेमियों तथा साहित्य-रसिकों के हाथों में पहुँचती गयी त्यों-त्यों उसकी माँग बढ़ती गयी। इस टीका की सबसे बड़ी विशेषता यह रही : कीरति भनिति भूति भलि सोई। सुरसरि सम सब कहँ हित होई। इस परिभाषा पर खरी उतरी।

सो थोड़े ही समय में प्रथम संस्करण की तीन सहस्र प्रतियाँ समाप्त हो गयीं और पिछले अनेक वर्षों में यह टीका अलभ्य हो गयी थी। इस बीच कागज, छपाई आदि उत्तरोत्तर इतने महँगे होते गये कि द्वितीय संस्करण का अवसर अनेक वर्षों तक नहीं आ सका। श्रीराघवेन्द्र सरकार की कृपा से गतवर्ष जुलाई में कलकत्ता के प्रसिद्ध उद्योगपति श्री के. पी. गोयनका के यहाँ कथा कहने का अवसर मिला। कथा से गोयनका-परिवार बहुत ही प्रभावित हुआ। गोयनकाजी के ज्येष्ठ पुत्र श्री आर. पी. गोयनका ने मुझसे आग्रह किया कि आप कोई ग्रन्थ लिखें तो हम उसे छपवा दें। मैंने उनसे कहा कि हमारे गुरुदेव की टीका का

दूसरा संस्करण आप करवा दें। इस बात पर उन्होंने पिताजी से परामर्शकर सहर्ष स्वीकार किया। इस कार्य के द्वारा गोयनकाजी ने आस्तिक जगत् का बहुत बड़ा उपकार किया। गोयनकाजी को आशीर्वाद के सहित हम धन्यवाद देते हैं।

इस कार्य में गोस्वामी तुलसीदासजी के अखाड़े के वर्तमान महन्त पं. वीरभद्रजी का हमें पूरा सहयोग प्राप्त हुआ। अतः उनके भी हम आभारी हैं। महन्तजी काशी हिन्दूविश्व-विद्यालय में इंजनियरिंग कालेज में प्रोफेसर होते हुए भी अपनी आस्तिक परम्परा का पूर्ण निर्वाह कर रहे हैं। यह बड़े ही सन्तोष का विषय है।, हमारे चिकित्सा क्षेत्र के गुरु काशी के प्रसिद्ध चिकित्सक डॉ. गंगा सहायजी पाण्डेय का भी आशीर्वाद हमें इस कार्य में प्राप्त हुआ। अतः उनके चरणों में भी हमारा शत शत नमन है। बम्बई के प्रसिद्ध चिकित्सक स्वर्गीय गुरुदेव के प्रिय शिष्य पं. वासुदेवजी वि. व्यास वैद्य का सहयोग हमें प्रथम संस्करण में भी प्राप्त हुआ था और इस संस्करण में तो उनकी बड़ी प्रेरणा रही। हम उनके भी आभारी हैं। गुरुदेव के पुत्र डॉ. सहजानन्दजी त्रिपाठी ने बड़े ही उदारतापूर्वक ग्रन्थ के प्रकाशन की स्वीकृति हमें दी। अतः हम उनके भी हृदय से आभारी हैं। श्रीराम प्रसादजी पोद्दार : अध्यक्ष सेंचुरी मिल बम्बई ने भी इस कार्य में हमारा उत्साहवर्द्धन किया। अतः हम उन्हें भी आशीर्वाद के साथ-साथ धन्यवाद देते हैं। हमारे प्रधान शिष्य पं. रामनारायणजी शुक्ल शास्त्री व्यास का इस ग्रन्थ के प्रकाशन में बहुत बड़ा सहयोग रहा। अतः उन्हें भी हम आशीर्वाद सहित धन्यवाद देते हैं। हमारे गुरु भाई पं. देवकीनन्दनजी शास्त्री व्यास एवं पं. श्यामनारायणजी शास्त्री व्यास का भी हमें पूर्ण सहयोग मिला। उनके भी हम आभारी हैं। इस अवसर पर एक मित्र का नामोल्लेख परमावश्यक जान पड़ता है वह हैं हमारे गुरुभाई पं. मनोरञ्जनजी ज्योतिषी आयुर्वेदाचार्य (ए. बी. एम. एस.) एम ए. जिनका प्रथम संस्करण में बहुत बड़ा सहयोग रहा। द्वितीय संस्करण में भी ज्योतिषीजी ने वैसा ही सहयोग किया। उन्हें भी हम धन्यवाद देते हैं। हमारे शिष्य पं. लक्ष्मीकान्त मिश्र ने भी टीका के प्रकाशन में बहुत परिश्रम किया। अतः उन्हें भी धन्यवाद के साथ-साथ आशीर्वाद देते हैं।

अन्त में आनन्द कानन प्रेस के स्वामी श्री विश्वम्भरनाथजी द्विवेदी का हम आभार स्वीकार करते हैं जिन्होंने अपने व्यक्तिगत देखरेख में इस ग्रन्थ की शुद्ध तथा स्वच्छ छपाई करवाकर इसे इतने अल्प समय में पाठकों को सुलभ किया है। द्विवेदीजी को व्यक्तिगत योग्यता का भी हमें इस ग्रन्थ के प्रकाशन में बहुत बड़ा लाभ मिला है।

—डॉ. श्रीनाथ मिश्र रामायणी

ता. १९-१०-८० ई०

३/१८, शिवाला
वाराणसी (उ. प्र.).

समर्पण

प्रिय बाँकेराम !

मै जानता हूँ कि कितनी प्रसन्नता तुम्हें इस टीका के पूरी होने और प्रकाशित होने में होती । श्रीगोस्वामी जो के अखाड़े के महन्त होने से तुम शिष्य होने पर भी पूज्य थे और आज तो तुम मुक्त होकर साक्षात् विश्वनाथ हो गये हो !

अतः इस टीका को मैं तुम्हें ही समर्पण करता हूँ ।

त्वदीयं वस्तु गोविन्द तुभ्यमेव समर्पये ।

—विजयानन्द

वेदन उधारयो हिन्दू जगत सँभारयो
धर्म डूबत उबारयो फारयो उदर कली को है।
भाषा कविताई की बड़ाई तिहुँ लोक छाई
गई कुटिलाई वामपंथ परयो फीको है।।
दूरि भए दुरित दया की पैज पूरी भई
प्रगट जवाल भयो जवनन के जी को है।
दशो अवतारन महँ कीह्यो करनार जौन
तौन करिबे को अवतार तुलसी को है।।

—विजयानन्द त्रिपाठी

श्रीगुरवे नमः

प्रस्तावना

कविकुलचूड़ामणि भक्ताग्रगण्य महात्मा गोस्वामी तुलसीदासजी के रामचरितमानस से जो उपकार जनता का हो रहा है वह किसी से छिपा नहीं है। यह ऐसा अद्भुत ग्रन्थ है कि एक बच्चा भी उसे आनन्द से गान करता है और उसे समझने में अच्छे बुद्धिमान् की भी बुद्धि चक्कर खाने लगती है। एक से एक महात्माओं ने, विद्वानों ने उस पर टीकाएँ लिखी हैं। फिर भी अन्य महानुभावों को उस पर नयी टीका लिखने की आवश्यकता मालूम पड़ी। कविवर केशवदास की यह उक्ति कि बानी जगरानी की उदारता बखानौं कहा। कहि कहि हार्‌यौ नहि कहि काहू पै गई। पति बरन्यौ चारमुख पूत बरन्यौ पाँच मुख नाती बरन्यौ षट्मुख तदपि नई नई। मुझे तो श्रीगोस्वामीजी की ही वाणी पर पूर्णतः घटती-सी दिखायी पड़ती है।

मुझे बचपन से श्रीरामचरितमानस से प्रेम है। ढलती अवस्था मे जब अपने जीवन को सफल बनाने का विचार मन में उठा तो सिवा श्रीगोस्वामीजी के शरण ग्रहण करने के दूसरा उपाय दिखायी नहीं पड़ा। कोई तीस वर्ष से मैं अपने निवासस्थान पर ही मानस का प्रवचन करता हूँ। रिटायर्ड जज बाबू बैजनाथ प्रसादजी तथा कविकञ्जजी आदि श्रोताओं की ओर से बड़ा आग्रह हुआ कि मैं भी मानस पर टीका लिखूँ। मेरे प्रिय शिष्य महन्त बाँकेराम मिश्र : अखाड़ा गोस्वामी तुलसीदासजी काशी : तो इस तरह पीछे पड़े कि मुझे लिखना आरम्भ कर देना ही पड़ा।

अन्तर्यामी की कृपा से टीका पूरी हुई। परन्तु पाठक इसमें किसी चमत्कारिक अर्थ, अद्भुत-अद्भुत भाव या विचित्र कथानकों की आशा न करें। इसमें विशेषता इतनी ही है कि ग्रन्थ से ग्रन्थ के लगाने की चेष्टा की गयी है। जहाँ आवश्यकता जान पड़ी वहाँ अन्य ग्रन्थों से भी प्रमाण उद्धृत किये गये हैं। जहाँ तक हो सका पूज्यपाद ग्रन्थकार के आशय के अनुसरण का प्रयत्न किया गया है। अर्थ करने में वाक्यों की संगति पर विशेष ध्यान रक्खा गया है। इसमें भूल मुझसे चाहे जैसी हो गयी हो पर जानबूझकर पक्षपात तथा लोकरञ्जनादि कारणों से मैंने अर्थ का अनर्थ नहीं होने दिया है। जो जो विचार गुरुजनों और महात्माओं से मुझे प्राप्त हुए हैं या ग्रन्थ के मनन करने में जो नये-नये विचार मेरे मन में उठे हैं उन सबों को निर्भीकता से यथासाध्य प्रकट कर देना मैंने अपना कर्तव्य समझा है।

अपने गिरते हुए स्वास्थ्य को देखकर मुझे इस ग्रन्थ के पूरे होने की कोई आशा न थी। इसलिए बीच में मैंने कई छोटी-छोटी पुस्तकें लिखकर अपने विचारों और भावों को सर्वसाधारण के सामने रक्खा और कहना नहीं होगा कि जनता ने उसका स्वागत किया जिससे मेरा उत्साह बढ़ता गया। वस्तुतः कृपालु मित्रों और हितचिन्तकों के प्रोत्साहन से ही इस कार्य का सम्पादन हो सका। लौकिक दृष्टि से तो यही बात है। परन्तु मेरा हृदय

जानता है कि उस-अन्तर्यामी से मुझे किस भाँति प्रेरणा मिलती गयी है और कैसी परिस्थिति सम्पन्न होती गयी है, जिससे इसकी पूर्ति का कठिन कार्य सम्पन्न हुआ और छपना भी आरम्भ हो गया।

जब गोद में खेलता था तभी पिताजी ने : नमामि भक्तवत्सलम्। कृपालशीलकोमलम् कण्ठ कराया था। वे नित्य रामचरितमानस का पाठ करते थे। सुनते-सुनते मुझे बहुत कुछ कण्ठ हो गया। पं० अयोध्याधर द्विवेदी उपनाम पाठपण्डित पिताजी के यहाँ प्रायः आया-जाया करते थे। उनकी कथा मैं बड़े मनोयोग से सुनता था। बड़े होने पर मानस के अद्वितीय वक्ता पं० रामकुमारजी से मुझे सुन्दरकाण्ड और किष्किन्धाकाण्ड के विधिपूर्वक अध्ययन का सौभाग्य प्राप्त हुआ। उन्हीं को मैं इस विषय का गुरु मानता हूँ। क्योंकि ग्रन्थ लगाने की पद्धति मुझे उन्ही से प्राप्त हुई। वैसे तो कई प्रसङ्ग मैंने उनके पट्टशिष्य पं० देवीपलटजी से भी सुने। प्रख्यात रामायणी पं श्रीभूषणजी मेरे मित्र ही थे। उनसे भावों का आदान-प्रदान हुआ करता था और अयोध्याकाण्ड में मेरा प्रवेश तो उन्हीं की कृपा से हुआ। फिर भी इस टीका के लिखने में मुझे अनेक ऐसे स्थल मिले जिनकी संगति लगाने में मुझे महीनों रुकना पड़ा। कितनी बातें ऐसी मिलीं जिनका पता लगाने में बहुत कुछ खोज करनी पड़ी। कुछ बातें अकस्मात् श्रोताओं से भी मिलीं। अतः मैं इन सभी महापुरुषों का आभारी हूँ। ऐसे अवसर पर इनका सादर स्मरण करना मेरा परम कर्तव्य है।

श्रीगुरुदेव भगवान् शिवराम किङ्कर योगत्रयानन्दजी तथा विद्यागुरु श्री स्वामीजी घनश्यामानन्दजी महाराज : मुमुक्षु भवन को क्या धन्यवाद दूँ। मुझमें जो कुछ भलाई है वह इन्हीं चरणों के कृपालेश से है और जो बुराइयाँ हैं वे सब मेरी हैं।

जिस ग्रन्थ रत्न : श्रीरामचरितमानस की यह टीका लिखी गयी है वह वस्तुतः मनुष्य जाति के मूलपुरुष स्वायम्भूमनु की बड़े परिश्रम से कमायी हुई सम्पत्ति : मीरास है जिसे वे अपनी भावी सन्तान : मनुष्य जाति : के लिए छोड़ गये हैं। यह प्रकट रहने पर भी सर्वसाधारण के लिए गुप्त ही थी। पर श्री गोस्वामीजी ने उसे सबके लिए सुलभ कर दिया। फिर भी इसे बपौती सम्पत्ति की दृष्टि से देखनेवाले थोड़े ही हैं। अब भी कोई इससे यदि लाभ न उठाये तो उसका अभाग्य ही समझना चाहिए।

जो ब्रह्म अगुण अनन्त और अनादि है जिसका परमार्थवादी चिन्तन करते हैं, जिसका निरूपण वेद नेतिनेति कहकर करता है, जो निजानन्द निरुपाधि और अनूप है, जिसके अंश से अनेक शम्भु, विरंचि और विष्णु भगवान् उत्पन्न होते हैं वह प्रभु मन और वाणी से परे है और उसकी प्राप्ति ही मनुष्य जाति का परमध्येय है।

पर वेद कहता है कि ऐसा प्रभु भी सेवक के वश है और भक्त के लिए लीलाशरीर ग्रहण करता है। इसी वचन के बल पर भगवान् मनु ने सस्त्रीक अत्युग्र तपस्या करके उनको प्रत्यक्ष किया और विश्व के कल्याण के लिए उन्हें पुत्ररूप से प्राप्त होने का वर माँग लिया। जिससे उनका दर्शन संसार को सुलभ हो जाय और उनके रूप के ध्यान चरित्र के गान तथा नाम के स्मरण से उनकी सन्तति सदा लाभ उठाती रहे। उनके चरित्रगान से धर्ममार्ग की प्राप्ति हो। उनके नामस्मरण से ज्ञान की प्राप्ति हो। उनके ध्यान से वैराग्य की प्राप्ति हो और उनके पूजन से ऐश्वर्य की प्राप्ति हो।

इस भाँति श्री रामोपासना मनुष्यजाति की बपौती सम्पत्ति है। सो पूज्यपाद गोस्वामीजी ने मानस द्वारा उसे सबकी पहुँच के भीतर ला दिया। उनके समकालीन महात्मा नाभाजी ने अपनी प्रसिद्ध रचना : भक्तमाल में इसी बात को स्पष्ट करते हुए कहा है :

त्रेता काव्य प्रबन्ध कियो सतकोटि रमायन।
एक अक्षर उद्धरै ब्रह्महत्यादि परायन॥
अब भक्तन के हेतु बहुरि लीलावपुधारी।
रामभक्तिरसमग्न रहत निसिदिन व्रतधारी॥
संसार अपार के तरनहित सुगमरूप नौका लयो।
कलिकुटिल जीव निस्तारहित बालमीक तुलसी भयो॥

भाव यह कि जिस महर्षि वाल्मीकि ने त्रेता में रामायण रचकर उस काल के लोगों का उद्धार किया उसी ने कलियुग के कुटिलजीवों के निस्तार के लिए तुलसीदास रूप से अवतार धारण किया। वाल्मीकीय रामायण माधुर्यप्रधान ग्रन्थ है। उसमें श्रीरामचन्द्र के ईश्वरावतार होने का अति सूक्ष्मरूप से कहीं-कहीं वर्णन है; पर अब उसके कलियुग के कुटिलजीवों का कल्याण होना कठिन है। उनमें इतनी शक्ति नहीं कि सम्पूर्ण ग्रन्थ को उस दृष्टि से देख सकें। अतः उसी भगवान् वाल्मीकि ने तुलसीदास रूप में अवतीर्ण होकर श्रीरामचरितमानस नाम का ऐश्वर्यप्रधान ग्रन्थ प्रणयन करके पदे-पदे श्रीरामचन्द्र के ऐश्वर्य का ख्यापन कलि कुटिल जीव के गले उतारने के लिए किया जिसमें मानसपाठ काव्य के आनन्द के अतिरिक्त भजन रूप में परिणत हो सके।

सम्भव है वाल्मीकि महर्षि के अवतीर्ण होनेवाली बात कुछ लोगों के मन में न बैठे। फिर भी विचारशील महात्माओं ने इसे प्रमाण माना है और इसके लिए वे समुचित युक्ति देते हैं। अतः इसे उपेक्षणीय नहीं कहा जा सकता।

श्री गोस्वामीजी वैदिक मत प्रतिष्ठापनाचार्य थे। उनके रचित मानस की परिधि के भीतर नाना पुराण निगमागम तथा जितने वैदिक सम्प्रदाय द्वैत, अद्वैत, विशिष्टाद्वैत, द्वैताद्वैत और शुद्धाद्वैतादि हैं सभी आ जाते हैं और सबको उचित स्थान मिलता है। उन्होंने सर्वसाधारण के बोधगम्य होने के लिए प्राकृत भाषा को अपनाया, जिसका बहुत बड़ा अधिकार है। तत्सम रूप से उसमें शुद्ध संस्कृत प्रयोगों का तद्भव रूप से विकृत प्रयोगों का तथा देशोद्भव रूप से अनेक प्रचलित भाषाओं का समावेश है। मानस के मङ्गलाचरण के श्लोकों में भी प्राकृत के नियमों की छाप है। इस टीका में प्राकृतानभिज्ञ महाशयों के लिए जहाँ-तहाँ इन बातों के दिखाने का भी प्रयत्न किया गया है जिसमें किसी को अपने भ्रम का आरोप श्रीगोस्वामीजी पर करने का अवसर न मिले। वे स्वयं कहते हैं कि मेरी ग्राम्यगिरा कृष्णा गौ है। संस्कृत कपिला गौ है। परन्तु कृष्णा गौ का दूध अधिक विशद : सफेद होता है। उसका पाक भी लघु होता है और उसे पान करने का सबको अधिकार है। इसी भाँति ग्राम्यगिरा में भी कहा हुआ रामयश अधिक स्पष्ट है। सुख बोध्य है और उसे कथन श्रवण का सबको शास्त्रतः अधिकार है, यथा :

श्याम सुरभि पय विसद अति गुनद करहिं सब पान ।
गिरा ग्राम्य सिय रामजस गावहिं सुनहिं सुजान ॥

उन्होंने सब शास्त्रों का मन्थन करके उनका सार निकालकर ग्राम्यगिरा में ऐसा समन्वय किया है कि वह शैव वैष्णव शाक्त आदि सभी धर्मप्रेमियों के गले का हार हो रहा है। अतः इसकी टीका में यह प्रयत्न किया गया है कि श्री गोस्वामीजी का अभिप्राय कहीं से दबने न पावे। मुझे इस बात के लिखते हुए हर्ष होता है कि इस टीका को साक्षात् शङ्करस्वरूप श्री १०८ करपात्रीजी महाराज का आशीर्वाद प्राप्त है और पण्डिताग्रगण्य सर्वतन्त्रस्वतन्त्र कवितार्किकचक्रवर्ती श्री महादेव शास्त्रीजी प्रिन्सपल : अध्यक्ष : संस्कृत महाविद्यालय हिन्दू विश्वविद्यालय काशी ने इसका अनुमोदन किया है। अतः कम से कम मैं इतनी आशा अवश्य कर सकता हूँ कि यह टीका मानसप्रेमियों के लिए उपयोगी सिद्ध होगी और इतने से ही मेरे जीवन का साफल्य है।

एक बात और कहनी है : आज से सत्तर वर्ष पहिले तक लोग हिन्दी की वर्णमाला को संस्कृत की वर्णमाला से कुछ भिन्न सी मानते थे और लिखने में उन्हीं अक्षरों का प्रयोग करते थे जो हिन्दी के सुखोच्चार्य शब्द के लिखने के लिए पर्याप्त थे। श्री गोस्वामीजी ने भी उसी परिपाटी को अङ्गीकार किया था। पर अब प्रवाह दूसरा बह उठा है। संस्कृत शब्दों का शुद्ध रूप भाषा में लिखा तथा बोला जाता है। परन्तु प्राचीन भाषा की रक्षा के लिए मूल में शब्दों के वे ही रूप रक्खे गये हैं जिनमें ग्रन्थकार ने उनका प्रयोग किया है। केवल षकार को उन स्थलों से हटा दिया गया है जहाँ वह खकार का भी बोधक बन बैठा था। शब्द के रूप में भी कहीं-कहीं विकल्प से काम लिया गया है। उच्चारण सादृश्य से औ अऊ ऐ अइ ये ए में कोई भेद नहीं माना गया है। मैंने किसी एक का बहिष्कार न करके यथासाध्य प्राचीन प्रतियों के प्रयोग का ही अनुसरण किया है। समस्त पदों में बार-बार योजिका : हाइफन : का प्रयोग करके उन्हें गूँथने की चेष्टा मैंने नहीं की है। सामासिक संज्ञाओं के समस्यमान पद तो सटाकर रक्खे हैं और शेष समासों के पद स्वतन्त्र ही छोड़ दिये हैं। जैसे वे प्राचीन प्रतियों में मिलते हैं। ऐसे शब्द सटाकर लिखे बिना भी अविभक्तिक पदों के समान अपना अर्थ स्पष्ट ही प्रकट कर देते हैं। अर्थात् मूलपाठ मैंने अपने उस संस्करण के अनुसार रक्खा है जो संवत् १९९३ वि० में लीडर प्रेस प्रयाग से प्रकाशित हो चुका है।

इस टीका के छपने का पूरा श्रेय पं० श्रीनाथ मिश्रजी को है जिनके उत्साह और परिश्रम से ही यह टीका छप सकी। पं० मनोरञ्जन जोशीजी ने भी बहुत परिश्रम किया है। बाबू महेशनारारायण सिंह रिटायर्ड ओवरसियर : गया निवासी ने इसके सम्पादन में उत्साह के साथ बड़ी सहायता की है तथा श्रीमान् सेठ लक्ष्मीनारायण पोद्दारजी के उत्साह से यह कार्य अग्रसर हुआ है। अतः उपर्युक्त महाशयों को मैं धन्यवाद ही नहीं आशीर्वाद भी देता हूँ। अन्ततः मोतीलाल बनारसीदास फर्म को भी धन्यवाद है जिसने बड़े उत्साह से इसके मुद्रण के कार्य को अपने समर्थ हाथों में लिया है।

—विजयानन्द त्रिपाठी

॥ श्री : ॥

रामचरितमानस के भाष्यकार की जीवनी

शाण्डिल्य गोत्र सरयूपारी ब्राह्मण । पूज्यपाद पिताजी का नाम पं० रघुवीर त्रिपाठी । संवत् १९३८ विजयादशमी के दिन मुहल्ला मदैनी : मद्रवनी : काशी में हुआ । विजयादशमी को जन्म होने से माता-पिता ने विजयानन्द नाम रक्खा । जन्मस्थान ही स्थायी पता है ।

पिताजी के गोद में ही : नमामि भक्तवत्सलं, कृपालु शील कोमलं । को ही सर्वप्रथम मौखिक शिक्षा मिली । एफ. ए. तक अंग्रेजी पढ़ा । सामान्यज्ञान संस्कृत, हिन्दी, उर्दू, फारसी और बँगला का भी है । श्रीरामचरितमानस का व्यसन बाल्यकाल से ही है । इतने महान् प्राचीनतम तथा युक्तिसम्मत धर्म पर पत्र-पत्रिकाओं द्वारा किये हुए आक्षेपों को सहन न कर सकने के कारण लेख लिखना आरम्भ किया । उस समय प्रयागराज से अभ्युदय निकलता था । वह कृपा करके लेख छाप देता था । अन्य समाचारपत्रों की पालिसी के विरुद्ध मेरे लेख पड़ जाते थे । अतः वे नहीं छापते थे । पिछले दिनों में सूर्य तथा कल्याण में मेरे लेख छपते थे ।

धर्मविरोधी प्रचार से दुःखी होकर श्रीस्वामी करपात्रीजी ने मासिक सन्मार्ग निकालने की आज्ञा सेठ मूलचन्द चोपड़ा को दी और मुझे सम्पादन का भार दिया गया । कार्तिक शुक्ल १५ सं० १९९६ में उसका प्रथम अङ्क निकला । तब से ६ वर्ष तक मैंने उसका सम्पादन किया । अब परमेश्वर की कृपा से उसने साप्ताहिक तथा दैनिक का रूप धारण किया है । अस्वस्थता के कारण सम्पादन का कार्य बन्द करना पड़ा ।

१. संवत् १९६५ में मैंने पंक्तिपावन परिचय : सरयूपारी ब्राह्मणों का संक्षिप्त इतिवृत्त : लिखा जो पं० चन्द्रशेखर वाजपेयी द्वारा गौरीश प्रेस में छपा ।
२. इसके बाद कल्किविजय नाटक लिखा जो हितचिन्तक प्रेस में छपा । पुस्तक अप्राप्य है इसलिए सम्वत् नहीं दे सकता ।
३ तत्पश्चात् प्रबोधचन्द्रोदय का गद्यपद्यमय अनुवाद महाराज प्रभुनारायण सिंह काशी नरेश की आज्ञा से किया जो हितचिन्तक प्रेस में छपा ।
४. मन्दिर प्रवेशमीमांसा लिखा जो सूर्य प्रेस में छपा ।
५. शतपञ्चचौपाई लिखी जो सं० १९९३ में गीताप्रेस गोरखपुर से प्रकाशित हुई ।
६ काशीकेदारमाहात्म्य का भाषानुवाद किया जो सं० १९८८ में अच्युतग्रन्थमाला कार्यालय से प्रकाशित हुआ ।

सौभाग्य से मानसराजहंसजी की जीवनी स्वयं उनके हाथ की लिखी हुई उनके प्रधान शिष्य मानसरत्न पं० श्रीनाथमिश्र वैद्य से हमें प्राप्त हुई जिसे हम अक्षरशः छाप रहे हैं ।

प्रकाशक : प्रथम संस्करण

७. श्रीरामचरितमानस का सम्पादन किया जो सं० १९९३ में अच्युतग्रन्थमाला कार्यालय से प्रकाशित हुआ।

८. मानसप्रसंग लिखा जो मानससंघ सतना द्वारा सं० १९९८ में प्रकाशित हुआ।

९. समुझाई नामक पुस्तिका लिखी जो मानससंघ सतना द्वारा सं० १९९९ में प्रकाशित हुआ।

१०. मानसमूल लिखा जो सं० २००० में मानससंघ सतना द्वारा प्रकाशित हुआ।

११. मानसव्याकरण लिखा। वह भी मानससंघ द्वारा प्रकाशित हुआ।

१२. श्रीरामचरितमानस की टीका लिख रहा हूँ। जिसे देखकर श्री श्रीस्वामी करपात्रीजी महाराज बहुत प्रसन्न हुए और उसका विजयाटीका नामकरण कर दिया।

१३.१४. वीरसिंह नाटक और शतशत्रुञ्जय हनुमत्स्तोत्र अभी तक प्रकाशित नहीं हुए हैं।

१५. त्रिपुरारहस्य के ज्ञानकाण्ड का हिन्दी अनुवाद।

१६. भक्तिमुक्तावली। १७. अन्य लेख।

इस भाँति थोड़ी सी सेवा हिन्दी की भी मुझसे बन पड़ी। मेरी सेवाओं से प्रसन्न होकर श्रीभारतधर्म महामण्डल ने मुझे महोपदेशक, साहित्यभूषण तथा धर्मरत्न की पदवी प्रदान की।

ब्रह्मचारी सच्चिदानन्दजी : गीतानन्द ने मानसराजहंस की पदवी दी। अ० भा० धर्मसंघ का मैं आज तक प्रधान मन्त्री हूँ। यद्यपि अब मेरी कोई सेवा वार्धक्य के कारण नहीं हो सकती।

शान्ति

राजा साहिब मिनगा के यहाँ एक कारबारी थे। नाम उनका बाबू रामशरण दास था। दिल्ली के रहने वाले अग्रवाल वैश्य थे। उन्हें राजा साहिब ने श्री गो० तुलसीदासजी की रामलीला के इन्तजाम के लिए भेजा। इसी सिलसिले में उनसे मेरी मुलाकात हुई। बड़े ही सज्जन पुरुष थे। धीरे-धीरे उनसे प्रेम बढ़ गया।

एक दिन उन्होंने एकान्त में मुझे समझाया कि तुम अच्छे आदमी हो। परमेश्वर ने तुम्हें बुद्धि दी है। पढ़े-लिखे भी हो। तुमने इतना वैर क्यों कर रक्खा है? तुम्हें क्रोध आता है तो मालूम होता है कि तुम्हें भूतावेश हो गया है। तुम ब्राह्मण के बालक हो। क्षमा तुम्हारा धर्म है। तुम इतना क्रोध क्यों करते हो?

मैंने सब कच्चा चिट्ठा कह सुनाया कि मैंने किसी का कुछ बिगाड़ा नहीं। नाहक लोग मुझसे वैर रखते हैं। बाप का कुछ न कर सके इसलिए मुझे नीचा दिखाना चाहते हैं। मैंने प्रण कर लिया है कि दब कर न रहूँगा।

कहने लगे कि वह प्रण तो पूरा हो गया। इतने दिन बीत गये। तुम नहीं दबे। अब वैर को धो बहाओ। मैंने कहा कि तब मैं क्या करूँ? कहने लगे कि सबसे प्रेम करो। सबके काम में आओ। सबका भला चाहो, बल से दबाना न चाहो, प्रेम से दबाओ, वैर से वैर शान्त नहीं होता, आप से आप वैर मिट जायगा।

पिता की भाँति उन्होंने मुझे समझाया और पिता की भाँति ही मेरे ऊपर दृष्टि रखने लगे। मैंने उनके आज्ञानुसार चलना आरम्भ किया। साल के भीतर ही सब लोग मुझसे प्रेम करने लगे।

मैंने मुहल्ले के बच्चों की शिक्षा के लिए बाल-पाठशाला स्थापित की, पुस्तकालय खोला। मैं स्वयं अध्यापक का काम करने लगा। पं० यागेश्वर झा की सहायता ली। मेरे बालसखा बाबू बलदेवदासजी ने कोषाध्यक्ष का पद स्वीकार किया। मध्यमा तक की पढ़ाई होने लगी। मुहल्ले के बहुत से बच्चों ने शिक्षा पायी, कितने बाल-पाठशाला के विद्यार्थी आज प्रतिष्ठित पदों पर हैं। लगभग अठारह वर्ष तक यह पाठशाला चलती रही।

उसके बाद विद्यापीठ मुहल्ले में आ गया। तब पाठशाला चलाने की कोई आवश्यकता न प्रतीत हुई। अतः बाल-पाठशाला विद्यापीठ में मिला दी गयी।

उक्त बाबूसाहब के सत्सङ्ग से मुझे बड़ा लाभ हुआ। मेरी प्रवृत्ति सार्वजनिक कार्यों में हुई। परलोक के सुधारने की चिन्ता हुई। जो कोई भली बात मेरे में है वह सब उन्हीं के प्रसाद से है। अब उनका शरीर नहीं है। पर उनके गुण गान करने में मेरा मन अघाता नहीं।

श्रीभारतधर्म महामण्डल

मेरे मित्रों में कई एक आर्यसमाजी थे। धार्मिक चर्चा हुआ करती थी। उनके सिद्धान्तों पर विचार करने से मालूम हुआ कि वे हिन्दू धर्म को प्राटेस्टेण्टी ढाँचा में ढालना चाहते हैं और इस भाँति हिन्दू धर्म की विशेषता ही मिटा देना चाहते हैं। वे मूर्तिपूजा श्रद्धादि के आध्यात्मिक स्तर तक न पहुँचकर, विधर्मियों की भाँति उसका खण्डन करते हैं और उसे अवैदिक बतलाते हैं।

नई रोशनी वालों को ये सब बातें पसन्द थीं। उनके बूढ़े माँ-बाप को उनसे पिण्ड पाने की आशा टूट गयी और वे उनके विचारों से दुःखी होकर आँसू बहाते थे। उस समय आर्यसमाज का बड़े जोरों से प्रचार चलता था। जहाँ-तहाँ सनातनियों से शास्त्रार्थ भी होता था। उस समय भारतधर्म महामण्डल ही एक ऐसी संस्था थी जिसने आर्यसमाज के प्रचार के रोकने में बड़ा काम किया।

अतः आर्यसमाजी उसे बदनाम करते थे और उसके संस्थापक श्रीस्वामी ज्ञानानन्दजी को बुरा-भला कहते थे। उनकी बातें सुनते-सुनते मेरे चित्त में भी उस ओर से अश्रद्धा हो गयी। पर वही एक संस्था ऐसी थी जो आर्यसमाजियों की कटूक्ति से सन्तप्त हृदयों को शीतलता पहुँचाती थी।

दैवयोग से वह संस्था मेरे मकान के निकट गुरुधाम में आ गयी थी। अश्रद्धा होते हुए भी मैं स्वामी ज्ञानानन्दजी महाराज जिन्हें श्रीजी कहते थे मिला। उनके दर्शन से ही चित्त प्रभावित हुआ। प्रवचन सुनने पर तो श्रद्धा और बढ़ गयी। मैं नित्य जाने लगा और सत्सङ्ग से लाभ उठाने लगा। श्रीजी महाराज ने भी मुझ पर बड़ी कृपा की। सेवा करने के लिए आज्ञा भी होने लगी और मैं शिरोधार्य करके बड़े उत्साह से काम करने लगा। उस समय श्रीजी के शिष्य स्वामी दयानन्दजी की अवस्था थोड़ी थी। लज्जालु स्वभाव था, बहुत कम बोलते थे। श्रीजी के शिष्य विवेकानन्द और प्रेमानन्द सेवा में रहते थे।

मेरी सेवाओं से प्रसन्न होकर श्रीजी ने श्रीभारतधर्म महामण्डल की ओर से महोपदेशक की पदवी दी। कुछ दिनों बाद भारतधर्म महामण्डल का कार्यालय चेतगंज चला गया। स्वामीजी भी वहीं चले गये। दूर होने से मेरा आना-जाना बहुत कम हो गया।

इसी बीच में मैंने 'कल्किविजय' नाम का नाटक लिखा। स्वामीजी उसे सुनकर बड़े प्रसन्न हुए और मुझे साहित्य भूषण की पदवी प्रदान की। कुछ प्रपञ्च ऐसे आ पड़े कि भारतधर्म महामण्डल में मेरा आना-जाना बहुत कम हो गया। फिर भी स्वामीजी ने मेरा सम्बन्ध महामण्डल से टूटने नहीं दिया और वह आज भी चला आ रहा है। मेरा आना-जाना कम होने पर भी श्रीजी महाराज की कृपा में कोई कमी न हुई और वे बराबर ध्यान रखते थे कि मैं कैसी परिस्थिति में हूँ और क्या करता हूँ।

मैंने अ० भा० धर्मसंघ की सेवा स्वीकार की और छः वर्ष तक मासिक सन्मार्ग का सम्पादन किया। इससे श्रीजी महाराज बड़े प्रसन्न हुए : उन्हें धार्मिक कार्य को देखकर प्रसन्नता होती थी चाहे वह कार्य किसी संस्था द्वारा किया जाय। और मुझे श्रीभारतधर्म महामण्डल से धर्मरत्न की पदवी मिली।

ब्रह्मचारी श्रीसच्चिदानन्दजी

यद्यपि मैंने पितृ-चरण के गोद में ही नमामि भक्तवत्सलं, कृपालुसीलकोमलं इस अत्रिकृत स्तुति को अति अबोधावस्था में कण्ठ की पर बहुत थोड़ी सी हिन्दी पढ़ाकर ही पितृ चरणों ने मुझे फारसी और अंग्रेजी पढ़ने में लगा दिया। वे वृद्ध हो गये थे। रुग्ण रहते थे। समझते थे कि जमींदारी का काम बिना फारसी, अंग्रेजी के न चलेगा। अतः जितनी जल्दी मेरा प्रवेश इन भाषाओं में हो जाय उतना ही अच्छा। अतः एफ. ए. तक मेरी शिक्षा अँग्रेजी, फारसी में ही हुई।

उनके देहावसान के बाद मुझे ग्लानि हुई कि मैंने परलोक सुधारनेवाली विद्या संस्कृत नहीं पढ़ी। उस समय ब्रह्मचारी सच्चिदानन्दजी नगवा में रहते थे। अद्भुत विरक्त पुरुष थे। उनकी अपरिग्रहवृत्ति देखकर मैं चकित रह गया। तीखी तलवार की धार सी पैनी बुद्धि थी। संस्कृत और अंग्रेजी के प्रगाढ़ विद्वान् थे। महाराष्ट्र होने पर भी बँगला और हिन्दी मातृभाषा की भाँति बोलते थे।

मैंने उनसे प्रार्थना की कि गीता के श्लोकों की सङ्गति मुझे नहीं लगती। कहने लगे कि उसका पाठ किया करो। सङ्गति आप से आप लग जायगी।

महात्माओं के चरणों में प्रीति मुझे लड़कपन से थी और सौभाग्य मेरा ऐसा था कि जिसके पास मैं गया उसने मुझ पर कृपा की। परन्तु उस कृपा से लाभ उठाने में मैं सदा विफलमनोरथ ही रहा। कुछ दिन आने-जाने के बाद मुझे मालूम हुआ कि गीता के मनन करने वालों में ये महात्मा बेजोड़ हैं। लोकमान्य तिलक उनकी धाक मानते थे। मैंने प्रार्थना की कि कुछ मुझे बतलाइये। आज्ञा हुई कि पञ्चदशी पढ़ो। मैं पञ्चदशी लेकर उपस्थित हुआ। उनमें से केवल पहला प्रकरण पढ़ाया और कहा कि बस इतना बहुत है। इसी का मनन करो।

मनन तो मैं कुछ नहीं कर पाया पर उन महात्मा के प्रवचन का यह प्रभाव पड़ा कि मालूम हुआ कि आँखें खुल गयीं। आज तक मुझे उसी पहिले प्रकरण का विस्तार ही अन्य ग्रन्थों में दिखायी पड़ता है।

मेरा प्रेम बचपन से श्री रामचरितमानस में रहा। कभी-कभी उसकी चर्चा मैं ब्रह्मचारीजी से करता। एकदम अपरिचित ग्रन्थ में उनकी बुद्धि ऐसा चमत्कार कर देती कि मैं अवाक् रह जाता। कहना अत्युक्ति न होगा कि ग्रन्थ लगाने की कला मैंने उनसे ही सीखी। मानस में उनके प्रसाद से ऐसी-ऐसी बातें दृष्टिगोचर हुईं जो टीकाओं में नहीं पायी जातीं।

उन्हीं के प्रसाद से मुझे दृष्टि मिली, और वे ही मेरी सूझ पर प्रसन्न होकर मुझे मानसराजहंस कहने लगे। जब से उनका निवास ढुण्ढिराज गणेश पर हुआ तब से मेरा आना-जाना कम हो गया। पर उनकी कृपा सदा एक सी रही। एक साल हुआ उस महात्मा का काशीवास हो गया।

वाक्सिद्ध महात्मा

काशी सिद्धों की सराय कहलाती है। यहाँ एक से एक महात्मा आया-जाया करते हैं। अतः काशीवासियों को किसी महात्मा पर श्रद्धा बड़ी कठिनता से होती है। मैंने भी अनेक विरक्त, ज्ञानी और उपासक देखे। परन्तु वाक्सिद्ध महात्मा के दर्शन नहीं हुए।

अपने जीवन भर में मैंने केवल दो वाक्सिद्ध महात्मा देखे और दोनों अघोरपन्थ साधु थे। एक मेरे बचपन में थे। उनका नाम बाबा खराबदास था। गङ्गा उस पार रहते थे। उनका बाँस का किला बनता था। उसमें मुर्दे की खोपड़ियाँ लटकायी जाती थीं। किसी का नाम कलक्टर, किसी का नाम जण्ट, निदान वे सब बड़े-बड़े अफसरों का प्रातिनिध्य करती थीं। बाबाजी चले जा रहे हैं। सिर पर एक पत्थर रक्खे हुए हैं। उसके ऊपर चूल्हे पर खिचड़ी पक रही है। जहाँ वह पक के तैयार हुई वहीं बैठकर खा लिया। एक बार मेरे पड़ोस में बाबाजी की खिचड़ी पकने लगी। कोई सुरती लेकर आया। बाबाजी सुरती खाइयेगा। हुकुम हुआ छोड़ दो खिचड़ी में। कोई तेल लेकर आया, कोई गुड़ लेकर आया। सब उसी खिचड़ी में छोड़ा चला जा रहा है। खिचड़ी तैयार होने तक उसमें पचासों चीजें पड़ीं। बाबाजी सब खा गये। मेरी आँखों देखी बात है।

एक रईस से बाबाजी पाँच सौ रुपया लेने के लिए अड़ गये। रईस देना नहीं चाहता था। उसने एक पण्डितजी के हाथ सौ रुपये भेजे। पण्डितजी ने कहा कि आप महात्मा हैं जो देता है ले लीजिए। किसी को कष्ट देकर लेना आपको उचित नहीं।

कहने लगे उसका बड़ा अनिष्ट होने वाला है। मैं चाहता था कि उसे हटा दूँ। पर मालूम होता है कि वह होकर रहेगा। तुम रुपया ले जाओ। मुझे रुपया लेकर क्या करना है, जो मुझसे मांल-गाय करता है। वह तो उसी के कल्याण में व्यय होता। साल के भीतर उसके एकलौते बेटे की मृत्यु हो गयी। सुनी तो बहुत बातें जाती हैं पर यह तो स्वयं मेरी जानी हुई बात है।

दूसरे कुत्ता बाबा थे। वे रामनगर में किला के पिछवाड़े रहते थे। उन्होंने एक गूँगे को वाक्शक्ति दी और उसने इन्ट्रेन्स पास किया। राणा जगत्प्रकाश वीरजङ्ग जेनरल मिनिस्टर टेहरीराज मृत्युशय्या पर पड़े थे। डॉक्टरों ने जवाब दे दिया था। उनकी माता की करुणा पर द्रवीभूत होकर कुत्ता बाबा ने उनके घर आकर राणा साहिब को चङ्गा कर दिया। परमेश्वर की कृपा से इस बात की सचाई के प्रमाण में राणा साहिब मौजूद हैं।

मैं कभी-कभी उनके दर्शनों को जाता। बड़ा मान करते थे। मेरा नाम पण्डित रख छोड़ा था। एक बार मैं बैठा था। एक बंगालिन एक बोतल मद्य ले आयी। उनके एक भक्त ने मेरी आँख बचाकर उसे छिपा देना चाहा। बाबा जी बोले : चोरी किस बात की। जो बात है वह तो हुई है। बोतल मँगवाकर अपने सामने रखवा लिया।

मेरे मन में आया कि मैं इनका कैसे सत्कार करूँ। सो भाँग बनाकर उसमें केवड़ा जल आदि छोड़कर ले गया। बड़े नाराज हुए। तुम यह लेकर क्यों आये। हाथ जोड़। कि बड़ा अपराध हुआ। तब आप उसे गरम करके पी गये।

बाबाजी रघुवंशी क्षत्रिय थे। अघोरपन्थी होने पर भी वर्णमर्यादा का इतना ख्याल करते थे कि ब्राह्मण को चरण छूने नहीं देते थे।

गङ्गाजी पर बड़ी प्रीति थी। गङ्गा-गङ्गा किया करते थे। नहाते नहीं थे। कहते थे कि गङ्गा के नाम से काम है। गङ्गा से काम क्या है। सब लोग जय गङ्गा कहकर उन्हें प्रणाम करते थे।

योग में अभिरुचि

पं० षडानन जी ब्रह्मचारी मेरे मकान में रहते थे। बड़े तपस्वी और ब्रह्मनिष्ठ थे। वे दो बार चारो धाम की यात्रा पैदल कर चुके थे। उनके सत्सङ्ग से मुझे योग में रुचि हुई। उनसे मैंने नेती-धोती सीखी। उस समय उसी को बड़ा योग समझता था। कुछ दिनों तक नेती-धोती करता रहा। पर उससे सिवा कफ शुद्धि के और कोई विशेष लाभ नहीं हुआ। पण्डितजी ने मुझे कई आसन सिखाये। षण्मुखी प्राणायाम सिखाया। छायापुरुष का दर्शन कराया। अनाहतनाद सुनाया। इन सभी क्रियाओं में कुछ न कुछ चमत्कार था। परन्तु मेरा सन्तोष इनसे न हुआ।

खेचरी मुद्रा का बड़ा नाम सुना था। पर उसे सिखाने वाला कोई नहीं मिलता था। गुरुजी की कृपा से ब्रह्मचारी सदानन्दजी का दर्शन हुआ। इन्हें लोग पहाड़ी महात्मा कहते थे। ये प्रणवोपासना करते थे। इन्होंने मुझे खेचरी मुद्रा सिखायी। समाधि के लिए मेरी उत्कट इच्छा थी। पर इन महात्मा ने कहा कि जब आहार घटाकर नौ तोले दूध पर ला दो, तब समाधि हो सकेगी।

मुझसे यह कभी न हो सका। अतः खेचरी से सिवा ध्यान में सहायक होने के और कोई लाभ न हुआ। कालक्रम से मेरे पास एक मेरठ के जमींदार गृहस्थी से विरक्त होकर संन्यास लेने काशी आये। मुझसे पूछने लगे कि किससे संन्यास लूँ। मैंने कहा जल्दी न कीजिए। यहाँ बहुत से संन्यासी हैं। उनसे मिलिए जिस पर आपकी श्रद्धा हो औ र उनसे

दीक्षा ग्रहण कीजिये। एक सप्ताह मिलने-जुलने के बाद वे मुझसे कहने लगे कि काशी में तो कोई गुरु बनाने योग्य नहीं है। मुझे बुरा तो अवश्य लगा। पर मैं चुप हो गया।

कुरुक्षेत्र पर एक स्वामी नवीनानन्दजी उदासी रहते थे। लोग उन्हें लंगड़ा बाबा कहते थे। एक पैर से वे खञ्ज थे। उन्हें मैं प्रायः कचहरी में देखता था और मन ही मन कुढ़ता था कि ये ही लोग हिन्दू धर्म को बदनाम करते हैं।

एक दिन अकस्मात् वे मेरे यहाँ पधारे। कहने लगे कि तेरा बाप मेरा बड़ा ख्याल रखता था और तू कुछ ख्याल नहीं करता। मैंने बात टालने की नीयत से कहा कि मेरठ से एक व्यक्ति आये हैं। वे कहते हैं कि काशी में कोई साधु ऐसा नहीं है जो गुरु बनाया जा सके।

बोले कि बुलाओ उसको। मैंने उन्हें बुला दिया और कहा कि देखिये ये एक महात्मा हैं। वे कहने लगे कि महात्मा के खोज में ही मैं सब छोड़कर आया हूँ। स्वामीजी ने पूछा कि शब्द स्पर्श रूप रस गन्ध इनमें से क्या छोड़कर आया है? वे कोई उत्तर न दे सके। उन्होंने बात ही बात में उन्हें ऐसा लपेटा कि उनकी बुद्धि कुण्ठित हो गयी और मैं भी चकित हो गया।

स्वामीजी इतना कह कर चले गये कि कल मेरे यहाँ आना। वे गये, बड़े प्रभावित होकर लौटे। वे नित्य जाते और लौटकर स्वामीजी के गुण वर्णन करते। अन्त में मुझे भी श्रद्धा हुई। उनके साथ जाने लगा। तब उनके माहात्म्य का ज्ञान हुआ। जिसे दुष्ट समझता था उसे महासाधु पाया। रामायण की यह चौपाई याद आयी कि सदा अपन पौ रहहिं दुराये। सब विधि कुसल कुवेष बनाये।

स्वामीजीने हम लोगों पर बड़ी कृपा की और हम दोनों को प्राणोपासना की विधि बतलायी। काम क्रोध को गुरुदक्षिणा में माँगा। हम लोगों को नित्य जाकर प्राणोपासना का अनुभव कहना पड़ता था और शिक्षा लेनी पड़ती थी। हम दोनों के अनुभव में कभी मेल न खाया। सिवा इसके कि दोनों को साधन में परम सुख मिलता था।

जैसा-जैसा अनुभव प्राणोपासना में हुआ वह वर्णनातीत था और यदि वर्णन भी किया जाय तो कोई विश्वास न करेगा। नित्य नवीन आनन्द और प्रायेण अद्भुत चमत्कार का अनुभव होता था। इस भाँति छः महीने बीते। बड़ी-बड़ी आशा बँधने लगी। एक दिन मुझसे चूक हो गयी। मैं ब्रह्मचर्य न सँभाल सका। सारा करा धरा मिट्टी हो गया। जैसे कोई आसमान से जमीन पर आ पड़े। वही क्रिया थी। वही मैं था। पर वह आनन्द और चमत्कार न जाने कहाँ चला गया। बड़ी ग्लानि हुई। आत्महत्या के लिए जी चाहने लगा। स्वामीजी के सामने जाने में लज्जा लगने लगी। मन में निश्चय हो गया कि मैं इस क्रिया का पात्र नहीं हूँ और मैंने साधन परित्याग कर दिया। साहस करके मैं फिर भी स्वामीजी के यहाँ गया। पर साधन की चर्चा नहीं की और न उन महात्मा ने पूछा कि तुम्हारा साधन कैसा चल रहा है।

श्री गुरुचरणों की प्राप्ति

श्रीराजेन्द्र बाबू नाम के एक बंगाल के जमीदार थे। उनसे मेरा परिचय हो गया था।

एक दिन प्रसङ्गात् मैंने श्रीगोस्वामी तुलसीदासजी की प्रशंसा उनसे की। कहने लगे कि चलो तुम्हें गोस्वामीजी का दर्शन करावें। मैं भी चल पड़ा। वे मुझे सोनारपुरा के एक मकान में ले गये। भीतर जाने पर मैंने अपने को एक महात्मा के सम्मुख पाया। जैसे पुस्तकों के वन में कोई सिंह बैठा हो। बड़ी गम्भीर मुद्रा, करुणापूर्ण दृष्टि, उज्ज्वल तेजोमयमूर्ति का दर्शन करते ही मेरा सिर आप से आप चरणों में झुक गया और हृदय ने बोल दिया कि यही तेरे गुरु हैं।

उस पाणिपंकज का सिर से स्पर्श में जो सुख हुआ उससे पितृ चरणों के करकमल के स्पर्श का सुख याद आया। जो कि बीमारी की घोर वेदना के समय सर्वाबाधासु घोरासु मन्त्र का पाठ करते हुए सिर पर उनके हाथ फेरने से मुझे मिलता था।

तब से मैं बराबर श्रीचरणों के दर्शन के लिए जाने लगा। गुरुजी प्रायेण संस्कृत या बँगला में शास्त्रों का व्याख्यान भक्त मण्डली में करते थे। हिन्दी थोड़ी जानते थे। मैं भी बँगला और संस्कृत से अपरिचित नहीं था। फिर भी विषय की गहनता के कारण ठीक समझ नही पाता था।

पाँच-चार महीना बराबर सेवा में जाते मेरा प्रवेश कुछ उन उपदेशों में हो चला। सुनने की प्यास बढ़ती गयी। गुरुजी की कृपा को बढ़ते देखकर मैं फूला नहीं समाता था। मेरी सेवा भी स्वीकार होने लगी। एक दिन मुझे बुलाकर श्रीरामषडक्षर मंत्रराज की दीक्षा दी और ध्यान की विधि बतलायी। अपनी बनायी हुई पुस्तक आर्यशास्त्रप्रदीप तथा भूत और शक्ति पढ़ने को दिया।

मुझे भी श्रीचरणों के सामने संसार भूल सा जाता था। दर्शन से न तो नेत्र तृप्त होते थे। और न वचनों से श्रवण तृप्त होते थे।

कुछ दिनों के बाद श्रीचरणों ने मकान बदल दिया और राजघाट जाकर रहने लगे। दूर हो जाने से मेरा नित्य का जाना तो रुक गया पर प्रायेण आया-जाया करता था। उनके मध्यम पुत्र फणिभूषण सान्याल से मेरी मित्रता हो गयी। उनके बड़े लड़के विभूति-भूषण ठाकुरजी की पूजा और बाबा की सेवा में रहते थे। छोटे लड़के इन्दुभूषण उस समय पढ़ते थे। सतीश नाम के एक सेवक थे। उन्हें बाबा की सेवा से तृप्ति ही नहीं होती थी। बड़े रईस और प्रोफेसर सतीश की खुशामद करते थे कि जिसमें उन्हें बाबा का दर्शन मिल सके।

वैसा धर्म पर वज्र विश्वास, वैसा ज्ञान, वैसी उपासना, वैसी चतुरस्र विद्या, वैसी व्याख्यान शक्ति, वैसा चिकित्सा नैपुण्य, वैसी साधना कहीं दिखायी नहीं पड़ती और न वैसी उदारता या वैसी दया ही कहीं दृष्टिगोचर होती है जैसा कि मैंने श्रीचरणों में देखा। वह आनन्द और वह समाज अब देखने को कहाँ मिलनेवाला है। कई वर्ष मेरे बड़े सुख से बीते। अपने जीवन का सुखमय समय मैं तभी तक मानता हूँ जब तक गुरुजी काशी में आसीन थे। मैं तो यही कहूँगा कि मेरे दुर्भाग्य से उनका जाना कलकत्ते हुआ और फिर मैं दर्शन नहीं पा सका।

श्रीमुमुक्षभवन

मेरे मुहल्ले में एक प्रसिद्ध संत बाबा अमरदासजी रहते थे। एक दिन उन्होंने बुलवा भेजा और कहा कि तेरा नाम विजयी है, तू विजय कर।

राजा साहिब नागौद की श्रद्धा

श्रीमान् राजा यादवेन्द्र सिंह उचेहरा नागौद के राजा थे। परिहारों में यह प्रधान गद्दी है। राजा साहिब बड़े सच्चरित्र और सच्चे सनातनधर्मी थे। नयी सभ्यता उन्हें नहीं रुचती थी। वे कहा करते थे कि उसने अपने देश के पहिरावा का परित्याग किया। उसने अपने देश से इनकार कर दिया। और जिसने अपने देश से इनकार किया वह अपने बाप से इनकार कर चुका। अंगरेज के छू जाने पर गोमय लगाकर स्नान करते थे।

भला ऐसे विचार के नरेश से रेजिडण्ट की क्यों पटने लगी। बृटिश गवर्नमेंट ने मान लिया कि राजा साहिब का दिमाग सही नहीं है और उन्हें मासिक मिलने लगा। राज्य से अलग रहने लगे।

काशी में ठहरे हुए थे। बड़े आग्रह से मदैनी के ब्राह्मणों को निमंत्रण दिया। उसमें मैं भी गया था। देखा कि वहाँ पक्की की व्यवस्था थी अतः मैंने स्पष्ट कह दिया मैं भोजन नहीं करूँगा।

बात राजा साहिब तक पहुँची। बोले किसने ऐसी बात कही? लोगों ने कहा तिवारीजी ने। कहा कि जाकर उनसे कहो कि वे ब्राह्मण हैं। मैं क्षत्रिय हूँ। मेरे यहाँ क्यों न खावेंगे? मेरे में दोष बतला दें तब भले ही न खावें।

मैंने कहा कि रानी तो रसोई बनावेंगी नहीं और राजा साहिब तो परोसेंगे नहीं। इन रसोइयों के गुण कर्म स्वभाव का मुझे पता नहीं इसलिए मैं नहीं खा सकता। महाराज के यहाँ से जवाब आया कि रानी रसोई बनावेंगी और मैं परोसूँगा। वही बात हुई, रानी ने रसोई बनाई और स्वयं बूढ़े महाराज अपने छोटे-छोटे बच्चों के साथ परोसने उठे। उन्हें मेरे कहने का मलाल नहीं हुआ। उन्हें इस उत्तर से बड़ी खुशी हुई। थाल में ब्राह्मणों के पैर स्वयं धोये और भोजन परोसा। भोजन के समय उपनिषद् के उपाख्यान सुनाते रहे। मैं राजा साहिब की श्रद्धा देखकर अवाक् रह गया।

उनकी रानी साहिबा आज भी जब काशी आती हैं मदैनी के ब्राह्मणों को अपने हाथ से रसोई बनाकर खिलाती हैं। राजा साहिब को कोई संतान नहीं थी। एक लड़का गोद ले रक्खा था। वे लाल साहिब कहलाते थे। उनका विवाह शिवगढ़ में ठीक हुआ। राजा साहिब की ओर से निमंत्रण आया। उसी समय प्रयागराज में किसी बड़े नेता के भाषण का समाचार मिला। मित्रमण्डली में यही निर्णय हुआ कि व्याख्यान सुनकर राजा साहिब की बारात करनी चाहिए। हमलोग चल पड़े। प्रयागराज पहुँचने पर समाचार गलत सिद्ध हुआ।

बड़ी निराशा हुई। अब यह निश्चय हुआ कि बारात करते हुए चित्रकूट की यात्रा कर लेनी चाहिये। शङ्करगढ़ पहुँचे। अभी बारात नहीं आयी थी। दूकानें बंद थीं। सौदा बेचने की आज्ञा नहीं थी। दरबार से चिट्ठी लेकर आवे तब सामान मिले। दरबार जाकर

चिट्ठी लेने से उसी की खुशामद करना उचित मालूम पड़ा। अंत में उसने मुँह माँगे दाम पर सौदा दिया। छिपकर रसोई बनायी। अपराह्ण में बारात आयी।

पहली हाथी पर पुरोहितजी ठाकुरजी के साथ आसीन थे। दूसरी पर राजा साहिब थे। तीसरी पर लालसाहिब दूल्हा थे। राजा साहिब की श्रद्धा देखकर चित्त प्रसन्न हुआ।

जनवासे में बारात के पहुँचने पर राजा साहिब तक पहुँचने का यत्न करने लगा। जो कारबारी काशी में मेरे यहाँ आते-जाते थे उन्होंने पहिचाना तक नहीं। खैर जब रसद बँटने लगी तब अवसर मिला। राजा साहिब के पास गया पर उन्होंने भी नहीं पहिचाना। बड़ा अपमान बोध हुआ। मेरे साथ महन्त सीतारामदास संस्थापक पाठशाला—थे। उन्हें सूझ गयी। मेरा नाम बोल दिया। राजा साहिब उठकर खड़े हो गये। पूछने लगे कि आपने सर्वमुण्डन क्यों कराया है ? इसी से भ्रम हुआ। मैंने कहा प्रयागराज से होता आ रहा हूँ।

हम लोगों को चित्रकूट के लिए जल्दी थी। बिना विदा हुए ही सवेरे चित्रकूट को प्रयाण किया।

एक बार श्री गो० तुलसीदासजी के लीला में भरत मिलाप का दिन था। भेलूपुर के थानेदार बड़े कट्टर मुसलमान थे। कहला दिया कि तुम लोगों ने सुपरिण्टेण्डेण्ट साहिब से हुकुम नहीं लिया है। इसलिए लीला नहीं हो सकती। लीला का समय बहुत सन्निकट था। उस समय कुछ हो नहीं सकता था। थानेदार साहिब को राजी करना असाध्य व्यापार था।

जाकर राजा साहिब से सब बात कही। कहने लगे कि हम अपना धार्मिक कार्य करेंगे। सुपरिण्टेण्डेण्ट कौन होते हैं। आप लीला आरम्भ कराइये मैं आया।

लीला आरम्भ हुई। और इधर तहकीकात आरम्भ हुई कि कौन लीला कराता है। राजा साहिब ने कहा मेरी आज्ञा से लीला हो रही है। इसकी जिम्मेदारी मेरे ऊपर है। पुलिस सलाम करके चली गयी।

ज्ञानवापी का मुकदमा

मुसलमानों ने डिक्लेरेशन सूट गवर्नमेण्ट के ऊपर दाखिल किया कि अदालत घोषणा कर दे कि ज्ञानवापी के अहाते की सब जमीन मुसलमानों की है और उस पर हिन्दू लोग उनकी आज्ञा से पूजा-पाठ करते हैं। जो मसजिद उस अहाते के बीच में है वह विश्वनाथ मन्दिर को तोड़कर नहीं बनी है। बल्कि बादशाह अकबर के चलाये हुए दीनइलाही मजहब के मन्दिर को तोड़कर बनायी गयी है। उस स्थान पर विश्वनाथ का मन्दिर कभी था ही नहीं। वह कहीं पर विश्वेश्वरगंज में था। काशीखण्ड नाम की एक पुस्तक हिन्दुओं ने मुसलमानों से लड़ने के लिए पचास वर्ष से बना ली है।

सरकार की ओर से पैरवी के लिए तहसीलदार मुकर्रर हुए। वे बिचारे बहुत जगह घूमे, मुसलमानों से वैर हो जाने के भय से कोई यह कहने को तैयार नहीं होता था कि ज्ञानवापी हिन्दुओं की है।

लाचार होकर बेचारे तहसीलदार धर्मप्राण सेठ गौरीशङ्करजी के यहाँ आये। उस समय मैं भी वहाँ था। कहने लगे कि मैं कितने हिन्दुओं के यहाँ गया। कोई यह कहने को तैयार नहीं है कि ज्ञानवापी हिन्दुओं की है। सेठजी बड़े असमञ्जस में पड़े, मुझसे रहा न

गया । बोल बैठा कि आप किसी हिन्दू के पास गये नहीं, तहसीलदार साहिब घूम पड़े, कहने लगे कि क्या आप बयान देवेंगे ? मैंने कहा बड़ी खुशी से और दस इष्ट मित्रों के साथ ।

तब तो तहसीलदार साहिब ने रङ्ग बदला । कहने लगे कि आपके बयान से तो पूरा काम नहीं चलेगा । मुझे बड़े-बड़े आदमियों की आवश्यकता है ।

मैंने कहा कि बड़ा-बड़ा आदमी दूँगा । कहने लगे कि नाम बतलाइये, और जेब से पेंसिल और डायरी निकाला । मैंने कहा कि नाम लिखिये । महाराजा बनारस और महामना मालवीयजी ।

बोले कि इनके पास चलिये । मैंने कहा कि मैं कहीं न जाऊँगा । आप इन्हें तलब कराइये; न आवें तो वारण्ट से बोलाइये । ये लोग आकर कह देवेंगे कि ज्ञानवापी मुसलमानों की है तो हम लोग मान जायेंगे ।

तहसीलदार साहिब कहने लगे कि ऐसी बात तो किसी ने न कही । मैंने कहा कि इतना ही नहीं मैं प्राचीन पुस्तक काशीखण्ड की भी दूँगा ।

मुकदमा पेश हुआ । मेरा बयान हुआ, मैंने सवा सौ वर्ष पुरानी लिखी हुई काशीखण्ड की टीका पेश की और अपनी की हुई केदारमाहात्म्य की हिन्दी टीका पेश की । जिसमें ज्ञानवापी के अहाते के देवमूर्तियों का उल्लेख था । बयान समाप्त होने पर मौलवीसाहिब वकील जिरह करने उठे । कहने लगे कि काशीखण्ड में तो लिखा है कि आसमान धूएँ से बना है । मैं कहा ऐसा नहीं हो सकता ।

उन्होंने काशीखण्ड खोलकर सामने रक्खा । उसमें एक राजा की कथा थी कि उन्होंने ऐसा यज्ञ किया कि उसके धुएँ से आसमान भर गया, और आज तक काला है ।

मैंने कहा कि इसका यह अर्थ तो नहीं है कि आसमान धुएँ से बना है । मौलवी साहिब बोले कि आज तक काला है का क्या अभिप्राय है ?

मैंने कहा कि हजरत इब्राहीम ने जब अपने लड़के को हलाल किया तो छुरी को ऊपर फेंका, उससे टिड्डी की कमर कट गयी और वह छुरी जब नीचे गिरी तो मछली की कमर कट गयी और आजतक कटी है । ऐसा ही अभिप्राय आजतक काला है का भी समझ लीजिए । अदालत ने वकील साहिबा को रोका कि ऐसा सवाल न किया कीजिये । और बहुत सी बातें पूछने के बाद वकील साहिब ने पूछा कि आप दीनइलाही के बारे में जानते हैं । उस मजहब के मन्दिर जहाँ-तहाँ बने थे की नहीं ?

मैंने जवाब दिया कि मैं जानता हूँ । उसके मन्दिर क्या बनते, उसका तो बिस्मिल्ला ही गलत हो गया । वकील साहिब और अदालत दोनों साकांक्ष हुए । पूछने लगे कैसे ?

मैंने कहा बादशाह अकबर को पैगम्बर बनने का शौक था और पैगम्बर होने के लिए चिह्न विशेष की आवश्यकता होती है । बादशाह दीनइलाही के पैगम्बर बने । बिना नुक्ता की किताब बनी । वह डिठोरी के पेड़ में उसे चीरकर रक्खी गयी । डिठोरी के पेड़ का चीरा शीघ्र ही जुट जाता है । जुट जाने पर मालिन को सपना हुआ कि बादशाह पैगम्बर है । उन पर किताब नाजिल हुई है । वह डिठोरी के पेड़ में है, उसमें नुकते नहीं हैं ।

सो प्रजाओं की बड़ी भीड़ इकट्ठी हुई। पेड़ चीरा गया, किताव निकली। सब लोग आश्चर्य से देखने लगे कि किताव भर में कोई नुकता नहीं है। किसी मसखरे ने कहा बिस्मिला ही गलत है। बे : के नीचे आरम्भ में ही नुकता है। सो दीनइलाही हँसी खेल ही में समाप्त हो गया। उसका कोई रूप बनने ही नही पाया।

वकील साहिब ने फरमाया कि यह तो आपने नयी बात कही। आपको कैसे मालूम हुआ। मैंने कहा कि मैंने मोलवी अताहुसेन साहिब मौलवी नासिरअली साहिब तथा मौलवी बाकरहुसेन साहिब से पढ़ा है। उन लोगों से ये बातें मालूम हुईं।

इस भाँति द दिन तक मेरा बयान होता रहा। अदालत में यथेष्ट चहल-पहल थी। इसके बाद हिन्दू युनिवर्सिटी के प्रोफेसरों तथा महाराज बनारस के यहाँ के अफसरों के बयान हुए। कहना नहीं होगा कि उस मुकदमें में मुसलमान लोग हाईकोर्ट तक लड़े, पर हारते ही गये।

पुलिस-प्रकोप

मैं अपने पिछवारे के बगीचे में बैठा था। गली में से चिल्लाने की आवाज आयी। मैं किवाड़ खोलकर बाहर निकला। देखा कि मेरे पड़ोसी दुर्गादत्त वैद्य को चार दरयायी पुलिस बलपूर्वक घर से बाहर खैंच रहे हैं और वे चिल्ला रहे हैं। मैंने पूछा कि इन्होंने क्या किया है जो इन्हें इतनी निर्दयता से खैंचे लिये जाते हो? कहने लगे कि इन्होंने रण्डी रख ली है। मैंने कहा रण्डी रखना कब से जुर्म हुआ? उत्तर मिला कि मैं तो इन्हें ले जाता हूँ। देखें क्या कर लेते हो।

उस समय मिस्टर ग्रामली सुपरिण्टेण्डेण्ट थे। उन्होंने दरयायी पुलिस का मुहकमा खोला था। दरयायी पुलिसों को बड़ा प्यार करते थे। इसलिए उन सबों का मिजाज बहुत बढ़ा-चढ़ा था।

मैंने उन लोगों से और कुछ कहना बेकार समझा। पर एक आदमी को थाने में इत्तला के लिए भेज दिया। तब से दरयायी पुलिस भी वैद्यजी को पकड़े हुए पहुँच गयी। उसने भी रिपोर्ट लिखायी। इन्सपेक्टर इंचार्ज ने वैद्यजी को छोड़ दिया।

मैंने उनसे मिलकर कहा कि क्या इण्डियन पेनलकोड पुलिस के लिए नहीं है। उन्होंने अपनी लाचारी जाहिर की। कहने लगे कि सुपरिण्टेण्डेण्ट इनके सामने किसी की नहीं सुनता। तब मैंने वैद्यजी को शहर कोतवाल के पास भेजा, पर उन्होंने भी टालमटोल बतला दिया।

मुझमें वैद्यजी से सहन शक्ति बहुत कम थी। अत: अपने पास से रुपया खर्च करके वैद्यजी द्वारा उन पुलिसों पर दावा दायर करा दिया। तहकीकात के लिए पुलिस को हुकुम हुआ। कोतवाल साहिब तहकीकात के लिए आये। लेकिन क्रोध से भरे हुए। इंसपेक्टर इनचार्ज अलग जामे के बाहर थे। सारा पुलिस का मुहकमा खिलाफ हो गया लेकिन दस बारह गवाह पुलिस के खिलाफ गुजर ही गये।

अब क्या था। गवाहों को धमकाने में पुलिस ने कुछ उठा न रक्खा। स्वयं वैद्यजी का आसन डोल उठा। पैसा मेरा खर्च होता था, फिर भी वैद्यजी की यह दशा हुई कि मुकदमे

में जो इजहार देते थे मानो मुझ पर एहसान करते थे। मुझे भी जिद् हो गयी थी, सब कुछ सहता था, पर मुकद्दमे में ढिलाई नहीं पड़ने देता था। अब तो मेरे ऊपर चारो ओर से दबाव आने लगा। हितैषियों ने भी समझाया कि पुलिस से वैर लेना अच्छा नहीं, पर मैं न माना। अन्ततोगत्वा उन चारों की सजा हो गयी। एक की छः महीने की, और शेष की शायद चार-चार महीने की।

तब से मैं पुलिस के कोप का भाजन हो गया। पुलिस-विभाग में कितनी बड़ी सहानुभूति आपस में है इस बात का पता मुझे उसी समय लगा। कोतवाल से लेकर साधारण पुलिस तक दरयायी पुलिसों से जलते थे। पर चूंकि वे पुलिस थे अतः उनका सजा पा जाना किसी को सह्य न हुआ।

पुलिस मुझसे और मेरे साथियों से बदला लेने के ताक में थी। पुलिस जिससे बुरा मानती है, उसका चार्ज अपने स्थानापन्न को दे जाती है, और वे उसका ख्याल रखते हैं।

पं० जगमोहन शरण अवस्थी नाम के कोई आदमी बाबू गयाप्रसाद के क्षेत्र में नौकर थे। उनको किसी ने रात को मार डाला। प्रातःकाल वे मरे पाये गये। खूनी का पता पुलिस न लगा सकी। उसने यही अवसर मुझसे बदला लेने का उपयुक्त समझा, अब उसने मेरे विरुद्ध गवाह खड़ा करने के प्रयत्न में लगी। परन्तु इतने बड़े अनर्थ को अपने सिर लेने को कोई तैयार नहीं होता था।

धीरे-धीरे बात मेरे कानों तक पहुँची, मैं भी सावधान हुआ। पता लगने लगा कि आज अमुक पुरुष पर पुलिस जोर डाल रही थी तो कल दूसरे को बहका रही थी। खोज-खोजकर मेरे शत्रुओं से मिली, पर वे भी इतने बड़े अनर्थ में सहायक होने पर राजी नहीं था।

तब उसने एक विचित्र माया गढ़ी। पं० मथुराप्रसाद पांडे उर्फ बबुआ पाण्डे मेरे पिता के प्रेमियों में से थे। मेरे ऊपर पुत्र सा स्नेह करते थे और मैं भी उन्हें बहुत मानता था। एक दिन उन्होंने मुझे बुलवा भेजा। रात का समय था। मैं उनके पास गया। देखा कि बड़ी गम्भीर मुद्रा में बैठे हुए हैं। मुझे देखकर कहने लगे कि अवस्थी के खून के मामले में पुलिस ने तुम्हारे खिलाफ गवाह पैदा कर लिये। अब कल सवेरे तुम लोगों की चालान होगी। थानेदार मेरा प्रेमी है। तुम्हारा और मेरा सम्बन्ध जानकर मेरे पास आया था और कहता था कि तुम यदि सरकारी गवाह हो जाओ तो वह तुम्हें छोड़ सकता है।

मैंने कहा कि सरकारी गवाह होकर मुझे कहना क्या होगा? कहने लगे कि अपने साथियों पर इजहार देना होगा कि इन लोगों ने खून किया और मैं भी साथ-साथ देखता रहा।

मैंने कहा कि यह सरासर झूठ है। मैं ऐसा नहीं कह सकता। उनसे कहिये कि इसी समय मुझे ले जाकर फाँसी लटका दें। सुनकर पांडेजी एकदम चुप हो गये। मैंने पूछा कि अब मैं जाऊँ। कहा कि बहुत अच्छा। मैं घर लौट आया।

लौट तो आया पर मुझे यह होश नहीं कि मैं कौन हूँ। कहाँ जा रहा हूँ। विचारधारा एकदम रुक गयी। घर आकर सो रहा। कह नहीं सकता कि नींद लगी या बेहोशी हुई।

बड़े सबेरे उठा। अपना चित्त स्वस्थ पाया। पांडेजी के मुख से सुनने से सब बातें मेरे गले उतर गयी थीं। मन में आया कि स्नान करके अन्तिम पूजा तो ठाकुरजी का कर लूं। स्नान करके पूजा किया। चित्त प्रसन्न हो गया। आकर दरवाजे पर बैठ गया और गिरफ्तारी का आसरा देखने लगा।

सात बजा, आठ बजा, नौ बजा, दस बजा, कोई गिरफ्तार करने नहीं आया। ग्यारह बजा। घर से कड़ा खटखटाने की आवाज आई अर्थात् रसोई तैयार है। मैं सीढ़ी चढ़ने लगा कि एकाएक आँख खुल गयी। बात समझ में आ गयी कि यह सब पुलिस की माया थी। कोई गवाह कहीं नहीं मिला। सब बातें झूठी थीं। पांडेजी भी धोखा खा गये। पांडेजी के द्वारा पुलिस ने माया रची थी।

पांडेजी के साथियों से भेंट हुई जो उस समय वहाँ थे। कहने लगे कि उस समय तुम्हारी बात हम लोगों को नहीं रुची पर तुमने मर्द की सी बात कही।

उसके बाद भी पुलिस का प्रयत्न चलता था पर ढीला पड़ गया। मैंने वकीलों से राय ली। उन्होंने कहा कि पुलिस के इस प्राइवेट प्रयत्न की कोई दवा नहीं है। जब तक कोई बात सामने नहीं आती तब तक हम लोग क्या कह सकते हैं।

इस भाँति बहुत दिनों तक मैं पुलिस का कोपभाजन बना रहा। पर जब उन लोगों ने देख लिया कि वस्तुतः मैं उन लोगों का बुरा नहीं चाहता। केवल अन्याय न सहन कर सकने से ही मैंने विरोध किया था तो उन लोगों ने भी मेरा पीछा छोड़ दिया बल्कि प्रतिष्ठा की दृष्टि से देखने लगे।

●

सोचि सोचि भावगत भेद को मिलान करि,
मानस के सही अर्थ को न बतलावते।
तो कम पढ़े लिखे श्रेणीवाले श्रद्धालु जीव,
तुलसी के आशय को नहीं जान पावते॥
वंचक विपन्नमति दुराग्रही पक्षपाती,
आपस में तर्क करि रार ही बढ़ावते।
पावते न संशय की साँकल छुड़ाइ काटि
जो पै यह टीका श्री विजयानन्द न बनावते॥

—लक्ष्मीकान्त मिश्र
मानसरत्न डॉ० श्रीनाथ जी मिश्र के शिष्य

विषयानुक्रमणिका

मङ्गलाचरण : तत्सम : वाणी-विनायक, भवानी-शङ्कर, गुरु, कवीश्वर, कपीश्वर, सीता और राम की वन्दना, भाषाबद्ध-चिकीर्षा, पहिली : पृ० १ से

सुरवन्दना : गणनायक, दयालु, क्षीरशायी, उमारमण विनय, गुरुपद कञ्ज वन्दन, गुरुपद पद्म पराग वन्दन, उसके गुण तथा नख के गुणों का वर्णन, रज से विवेक विलोचन विमलीकरण। राम-चरित वर्णन चिकीर्षा, दूसरी : अर्धाली २ तक : पृ० ८ से।

समष्टिवन्दना : महीसुर चरण वन्दन, सुजन समाज वन्दन, तद्गुण कथन, सन्त वन्दन, तद्गुण कथन, रामचरण रति याचना। खलगण वन्दन, तद्दोष कथन, खलवन्दन, तद्दोष कथन, अपनी ओर से निहोरा। सन्त, असज्जन चरण वन्दन। संग्रह-त्यागार्थ भेद कथन : यही वैदिक रीति। गुणदोषमय विधि प्रपञ्च। सन्त की गुण-ग्राहकता। भले से भी चूक बुरे से भी चूक। वेष का अकिञ्चित्करत्व। कुसङ्ग सुमङ्ग से हानि-लाभ। तीन बार समष्टि वन्दना और तीन बार सुनने के लिए प्रार्थना। ग्राम्यगिरा में रामयश की उपादेयता। कवित्व की अन्यत्र उत्पत्ति और अन्यत्र शोभा। रामचरित्र गान से सरस्वती का श्रमापनोदन उनकी कृपा से सज्जन के पहिनने योग्य काव्य मुक्ताहार निर्माण। कवि की आर्ति विनय और दीनता। चरित का अपार होना। कवियों द्वारा निजगिरापावनकरण यश कथन। इसी बल पर रघुपति गुण गाथाचिकीर्षा, तीसरी : आर्षमार्गावलम्बन-पूर्वक रघुपति कथा चिकीर्षा, चौथी : अन्य युग के कवि व्यासादि का वन्दन। मनोरथ पूर्ति के लिए प्रार्थना : दो० १३ अ० १ तक। पृ० १६ से।

कविसमाज वन्दना : कलि के कवियों की वन्दना, सयाने प्राकृत कवियों की वन्दना, वरदान प्रार्थना, तीन बार कृपा भिक्षा, उसी आशा से हरियश चिकीर्षा, पाँचवीं। वाल्मीकि वेद ब्रह्मदेव वन्दन। बिबुध विप्र बुध ग्रह चरण वन्दन, मनोरथ पूर्ति के लिए प्रार्थना। सारद सुरसरिता वन्दन। राम के सर्वार्थकारी तथा शाबर मन्त्र जाल के रचयिता महेश भवानी वन्दन। तत्प्रसादप्राप्तिपूर्वक रामचरित वर्णन चिकीर्षा, छठी : फल-श्रुति। दो० १५ पृ० ५८ से।

अवध समाज वन्दना : अवधपुरी, सरयू, पुर नर नारि, कौसल्या, सब रानियों सहित दशरथ राउवन्दन, कृपा के लिए प्रार्थना। अवध भुआल वन्दन। परिजनसहित विदेह वन्दन, भरत वन्दन। लक्ष्मण वन्दन सानुकूलता के लिए प्रार्थना। रिपुसूदन, हनुमान्, कपिपति, रीछराज, निशाचरराज, अङ्गदादि कीश समाज चरण वन्दन। राम के निष्काम भक्तों की वन्दना। शुक सनकादि नारद, विज्ञानविशारद मुनि वन्दन, कृपा के लिए प्रार्थना। जनकसुता वन्दन, निर्मल मति के लिए प्रार्थना। रघुनायक चरणकमल वन्दन, सीताराम पद वन्दन। रामनाम वन्दन। प्रणवरूप नाम महामन्त्र। नाम की महिमा, प्रताप, प्रभाव, गुण-वर्णन। नाम और रूप दोनों ईश्वर की उपाधि।

उनमें नाम की श्रेष्ठता। निर्गुण सगुण का साक्षी नाम। नाम मणिदीप। चारों प्रकार के भक्त तथा पुष्टिभक्त को भी नाम ही का आधार। निर्गुण से नाम की श्रेष्ठता। सगुण से नाम की श्रेष्ठता कहते हुए अध्यात्म रामायण कथन। भक्तों का उदाहरण। नाम कल्पतरु, सब काल और सब देशों में नाम की कार्यकारिता। कलि में एकमात्र अवलम्ब। भाव कुभाव अनख और आलस्य से भी नाम के जप से मङ्गल। उस नाम तथा नामी रघुनाथ को प्रणाम करके राम गुण गाथा चिकीर्षा, सातवीं : दो० २७.१ पृ० ६६।

निज गुण दोष : कवि की रघुनाथजी से आर्त्ति विनय और दीनता। पुनः समष्टि वन्दना। रघुवर यश वर्णन चिकीर्षा, आठवीं : अथ पूर्व घाट प्रारम्भ। दो० २९ पृ० १०७ से

कथा परिचय : भरद्वाज याज्ञवल्क्य संवाद-कथन चिकीर्षा, नवीं : सज्जनों से सुनने की प्रार्थना। १. गुरुपरम्परा। गुरुमुख से कथित को भाषा में बाँधने की चिकीर्षा, दसवीं : बुद्धिविवेकानुसार हरिप्रेरणा से चिकीर्षा, ग्यारहवीं : स्वसन्देह भ्रमनिवारणार्थ रामकथा चिकीर्षा, बारहवीं : दैन्य, ज्ञान और भक्ति साध्य फलदायिनी रामकथा। राम-कथा-माहात्म्य। रामचरित पेटक का निचला ढकना चिन्तामणि और ऊपर का राकेशकर, उसीमें नक्षत्रों की भाँति २८ गुण-ग्राम अर्थात् स्तुतियाँ जो यथास्थान ग्रन्थ में दी गयी हैं। हेतुसहित भवानीशङ्कर संवाद विधि की विचित्र कथा के निर्माण की चिकीर्षा, तेरहवीं : कल्पभेद से कथा में भेद अतः संशय न करके सुनने की प्रार्थना। २. कथा का अमित विस्तार। गुरुपद धूलि शिरोधार्य करके दोष न देने के लिए पुनः समष्टि-वन्दना। शङ्कर को प्रणाम करके रामगुण-गाथा-चिकीर्षा, चौदहवीं : हरिपद शीश धर की कथा चिकीर्षा, पन्द्रहवीं : ग्रन्थारम्भ का देश और काल। ग्रन्थ का नाम। महेश की रचना का भी यही नाम। उसी कथा की चिकीर्षा, सोलहवीं : सज्जनों से सुनने के लिए प्रार्थना। ३.···· दो० : ३४.७ पृ० ११४ से।

मानससर प्रसङ्ग : मानसस्वरूप, विधि, प्रचार प्रसङ्ग-वर्णन-चिकीर्षा, सत्रहवीं : शम्भु-प्रसाद से सुमति का उल्लास। मनोहर निर्माण के लिए कवि चिकीर्षा, अठारहवीं : साधुघनकी राम सुयश वर्षा, उससे मानस का भर जाना : श्रवण, चार घाट, सात सोपान, सर का रूपक। अमराई, बाग, वन : मनन रखवारे, अधिकारी, यात्रा में कठिनाई, स्नान दुर्घट, सर निन्दा राम-कृपा से मज्जन। उससे बुद्धिनैर्मल्य। प्रेम प्रमोद प्रवाह का उमङ्ग : निदिध्यासन, सरयू का उद्गम, सरयू का रूपक, हिन्दी भाषी देश का विस्तार। ग्रन्थ प्रचार। षट् ऋतु-वर्णन। स्नान। भवानीशङ्कर स्मरणपूर्वक कथा चिकीर्षा, उन्नीसवीं : रघुपति पदपङ्करुह हृदय में रखकर और प्रसाद पाकर भरद्वाज याज्ञवल्क्य मिलन तथा संवाद कथन चिकीर्षा, बीसवीं : २ दो० ४३, क : पृ० १३९।

भरद्वाज याज्ञवल्क्यसंवाद : भरद्वाज का प्रयाग निवास, माघ मकर संक्रान्ति में सब का प्रतिवर्ष आगमन, भरद्वाज के आश्रम में ऋषि मुनियों का सत्सङ्ग। कल्पवास विधि। अथ दक्षिण घाट प्रारम्भ। एक बार याज्ञवल्क्य को रोकने के लिए भरद्वाज का आग्रह। शिष्य की शुश्रूषा

१. मोहहरण के लिए प्रार्थना २. राम-विषयक प्रश्न ३. दशरथकुमार राम या दूसरे ४. मोह भ्रमहारी कथा के लिए प्रार्थना। शिष्य की प्रशंसा। कथा की स्तुति। भवानी का भी इसी प्रकार का संशय। उमा-शम्भु-संवाद के समय और हेतु-कथन की प्रतिज्ञा : दो० ४६ : पृ० १६९।

क. उमा चरित : (२८ दोहों में) किसी त्रेता में सती के साथ शम्भु का अगस्त्यजी के आश्रम पर जाना। वहाँ सत्सङ्ग। लौटते समय सीता को खोजते हुए विरह-विकल रामचन्द्र का दर्शन। जय सच्चिदानन्द जगपावन कहकर शङ्कर का प्रणाम। सती का संशय। शङ्कर के उपदेश पर भी भ्रम की अनिवृत्ति। अतः परीक्षा के लिए अनुमति। परीक्षार्थ सती का सीतारूप धारण। रामजी की प्रणामपूर्वक वृषकेतु समाचार जिज्ञासा। सती का पश्चात्ताप। शङ्कर कथित प्रभाव का राम द्वारा दिग्दर्शन। सती का शङ्कर से बहाना। सती का त्याग। शङ्करजी की १०८७ वर्ष की समाधि। सती का शोक। देवताओं का विमानारूढ़ होकर दक्ष यज्ञ में जाना। शिवजी के समझाने पर भी सती का न रुकना। सती की विदाई। सती का अपमान। यज्ञ में शिवजी का भाग न देखकर सती का क्रोध। सती का योगाग्नि से देह त्याग। दक्षयज्ञ विध्वंस। सती का हिमगिरगृह जन्म। नारद का आगमन। उमा के तप के लिए हिमगिरि को उपदेश। तप के लिए उमा का प्रस्थान। वेदशिरामुनि के उपदेश से माता-पिता का शोकापनयन। उमा का ४४११ वर्ष : पाँच रुद्री तप। आकाशवाणी। उमा का हर्ष। दो० : ७४.३ : पृ० १७५ से।

ख. शम्भु-चरित : २८ दोहों में : सती-मरण से शिवजी को दुःख। शङ्कर का नेम-प्रेम। रामजी का प्रादुर्भाव। पार्वती-परिणय के लिए विनय। शिवजी की स्वीकृति। प्रेम-परीक्षा के लिए शङ्कर द्वारा सप्तऋषि का भेजा जाना। सप्तऋषि उमा संवाद। प्रेम देखकर प्रणाम। सप्त ऋषि प्रेरित हिमगिरि का पार्वती को घर लिवा जाना। सप्तऋषि द्वारा स्नेह कथा सुनकर शिवजी का मग्न होना। फिर समाधि में बैठना। तारकासुर से देवों का पराभव। ब्रह्मदेव के यहाँ पुकार। ब्रह्मदेव की सम्मति। देवताओं का कामदेव से अपना दुखड़ा रोना। काम की शिवजी पर चढ़ाई। क्रोधपूर्वक धनुष हाथ में लेने से ही जगत् में मर्यादाभङ्ग। विवेक राजा की हार। देव-लोक से कैलाश तक पहुँचने में दो घड़ी का समय। शिवजी का दर्शन। काम का सशङ्क होना और संसार का स्वास्थ्य लाभ। काम सेना का पराभव। काम दाह। रति को वरदान। देवताओं की स्तुति। ब्याह के लिए विनय। शिवजी की स्वीकृति। विधि की आज्ञा से सप्तऋषि का जाकर हिमगिरि के यहाँ से लग्नपत्री ले आना। शिवजी का शृङ्गार। बरात का प्रस्थान। तीनों प्रकार के इष्टदेवों का सम्मिलित होना। हिमगिरि के यहाँ तैयारी। बरात का आगमन। बालकों में भय। द्वार पूजा। मैना का विलाप। नारद का उपदेश। विषाद का त्याग। जेवनार। विवाह। विदाई। हिमगिरि का पहुँचाकर लौटना। सब की विदाई। शिवजी का कैलाश आना। 'विविध विधि भोग बिलास'। षडानन जन्म। तारकासुर संहार। उमा

शम्भु विवाह की फल श्रुति""दो० १०३ पृ० २३५ से ।

संगति वाक्य : गिरिजारमण के चरित की अपारता । कथा सुनकर शिष्य की कृत-कृत्यता । गुरु द्वारा शिष्य की प्रशंसा । रामभक्त का लक्षण । विश्वनाथ पद प्रेम । योग्य शिष्य की प्राप्ति से गुरु को अकथनीय सुख । राम की कृपा से कवि के हृदय में सरस्वती का नृत्य । ऐसे गिरापति प्रभु को प्रणाम । अथ पश्चिम घाट प्रारम्भ : कैलाश वर्णन । वट विटप के नीचे शिवजी का बैठना । शिवजी का ध्यान । पार्वतीजी : प्रथम प्रकार के भक्त का आना । शिवजी का अति आदर से वाम भाग में आसन देना । पार्वतीजी को पूर्व जन्म की स्मृति""दो० १०६.३.४ पृ० २९८ से

अथ शिव गीता : ३०५ से

उमा के प्रश्न : १. नानाविधि रघुनाथ कथा कहकर अज्ञान : आवरण हरण के लिए प्रार्थना २. मति भ्रम : विक्षेप हरण के लिए प्रार्थना । ३. राम नृपतनय हैं कि ब्रह्म हैं; इस बात को समझाकर कहने के लिए प्रार्थना । ४. जिस विधि से मोह मिटे वैसा ही करने के लिए प्रार्थना ५. अब भी संशय है; अतः कृपा करने के लिए प्रार्थना ६. राम गुण गाथा कहने के लिए प्रार्थना ७. रघुवर विशद यश वर्णन के लिए प्रार्थना ८. रघुपति कथा दया-पूर्वक कहने के लिए प्रार्थना । १. निर्गुण ब्रह्म के सगुणरूप धारण करने का कारण कहने के लिए प्रश्न २. रामावतार कहने के लिए प्रश्न ३. उदार बालचरित कहने के लिए प्रश्न ४. जानकी विवाह कथा के लिए प्रश्न ५. किस दूषण से राज्य छोड़ा ? ६. वन गये और रावण को कैसे मारा ? ७. राज पर बैठकर कौन कौन सी लीला की ? ८. प्रजा सहित निजधाम कैसे गये ? ९. मुनि ज्ञानी किस तत्त्व में मग्न रहते हैं ? १०. विभागसहित ज्ञान वैराग्य कथन के लिए प्रश्न ११. राम के अनेक रहस्य कथन के लिए प्रश्न और १२. जो कुछ पूछने से रह गया हो उन सबके लिए प्रश्न । शिवजी की प्रसन्नता । मानस में राम चरित और रामरूप का प्रादुर्भाव । ध्यान में दो दण्ड मग्न । तत्पश्चात् उत्तर " दो० १११ : पृ० ३०८ से ।

शम्भु के उत्तर : जगत् के अधिष्ठान बालरूप राम को प्रणाम । गिरिराजकुमारी की प्रशंसा । ३१६ से

प्रथम विनय का उत्तर : हरिकथा न सुननेवाले कान, सन्त के दर्शन न करने-वाली आँख, हरि गुरु चरणों में न झुकने-वाले सिर, हरि भक्ति रहित हृदय, रामगुणगान वर्जित जिह्वा और हरिचरित से न हर्षित होनेवाले हृदय की निन्दा । और पहिली प्रार्थना की स्वीकृति । ३२१ से

दूसरी का उत्तर : रामकथा कामधेनु । रामकथा संशय दूर करनेवाली । राम-कथा कलि विटप कुठारी दूसरी प्रार्थना की स्वीकृति । पृ० ३२१

: उमा की पहिली और दूसरी विनय का भरद्वाज की प्रथम प्रार्थना में अन्तर्भाव । भरद्वाज के दूसरे और तीसरे प्रश्न का उमा के तीसरे विनय में अन्तर्भाव । उमा के शेष प्रश्नों का भरद्वाज के चौथे प्रश्न में अन्तर्भाव ।

तीसरी का उत्तर : राम के नाम गुण चरित जन्म और कर्म अगणित और वेदविहित । यथा राम अनन्त तथा कथा और कीर्ति अनन्त, यथाश्रुति यथामति कथन तथा कथा और कीर्ति अनन्त यथाश्रुति यथामति कथन की प्रतिज्ञा । वेदप्रतिपाद्य मुनिगण ध्येय चरण रामजी में ब्रह्मबुद्धि न होना शिवजी को अप्रिय । ऐसी बुद्धिवाले की निन्दा । लाभ हानि न देखनेवाले की वेद विरुद्ध वाणी । निर्गुण सगुण विवेक रहितों के कल्पित वचन । माया से मूढ़ पुरुषों की बात सुनने योग्य नहीं । विचारपूर्वक संशय त्याग तथा राममजन का उपदेश । दो० ११५ पृ० ३२२

चौथी का उत्तर : निर्गुण सगुण में अभेद । निर्गुण का सगुण होना । निर्गुण सगुण में केवल स्थूल सूक्ष्म अवस्था कृत भेद । रामनाम से अज्ञान का नाश । राम सच्चिदानन्द । वहाँ मोह : निशा के लेश का मी अमाव । सहज प्रकाशरूप में विज्ञान प्रमात का भी अभाव । हर्ष, विषाद, ज्ञान, अज्ञान, जीवधर्म अस्मिता का भी अभाव । राम ब्रह्म, व्यापक, प्रसिद्ध, स्थूल, सूक्ष्म के नाथ को नमस्कार । अपने अज्ञान का राम पर आरोप । विषय, करण, सुर और जीव के प्रकाशक । उन्हीं की सत्यता से माया का सत्य सा भासना । सीप में रजत और मरु मरीचिका में जल की भाँति राम में माया का भासना । राम की कृपा से भ्रम का मिटना । जिसमें सर्वेन्द्रियगुणाभास है और जो सर्वेन्द्रियविवर्जित है वही दाशरथि राम है उसी के नाम के बल से काशी में मुक्ति । विवश होकर भी उसके नाम ग्रहण से पापों का नाश । सादर स्मरण करने से भव सन्तरण । राम परमात्मा । इसमें सन्देह करनेवाली वाणी अति अविहित । सन्देह को मन में स्थान देने ही से ज्ञान विरागादि का नाश । इस उत्तर से गिरिजा के मोह और संशय की निवृत्ति, सुख की प्राप्ति । फिर भी पहिले पूछे हुए प्रश्नों के उत्तर की प्रार्थना । राम ब्रह्म के नरदेह धारण का कारण समझा कर कहने की प्रार्थना शङ्कर का प्रसन्न होकर उमा की प्रशसा करना । दो० १२० : पृ० ३२८ से

पाँचवी[1] का उत्तर : रामचरित मानस गरुड़ भुशुण्डि संवाद सुनने के लिए आज्ञा । पृ० ३३९

छठी का उत्तर : रामावतार सुनने के लिए आज्ञा : अथ उत्तर घाट प्रारम्भ । पृ० ३३९

सातवीं का उत्तर : कथा कहने की प्रतिज्ञा । सुनने की आज्ञा । पृ० ३४०

आठवीं का उत्तर : हरि अवतार हेतु का निश्चित रूप से निरूपण न हो सकना । साधु का परित्राण तथा दुष्टों का नाश ही शास्त्रानुमोदित कारण । उसी के यश गान से भव सन्तरण । रामजन्म के अनेक हेतु । तीन जन्मों के वर्णन की प्रतिज्ञा : दो० १२१-२ पृ० ३४० से

प्रथम[2] प्रश्न का उत्तर अधिदैव

---

१. रघुपति कथा कहहु करि दाया ।

२. प्रथम सो कारन कहहु बिचारी ।
निर्गुन ब्रह्म सगुन वपुधारी ।

रामायण : एक कल्प में जय और विजय का विप्र शाप से हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु होना। वाराह और नृसिंह अवतार से उनका वध। उन्हीं का कुम्भकर्ण रावण होना। उनके वध के लिए एक बार विष्णु का रामावतार। उस अवतार में कश्यप अदिति का दशरथ कौसल्या होना। एक कल्प में जलन्धर का रावण होना। जलन्धर की स्त्री के शाप से रामावतार। एक कल्प में नारद के शाप से क्षीरशायी का रामावतार। गिरिजा का नारद मोह सुनकर चकित होना और कारण पूछना। दो० १२४ : क : पृ० ३४३ से।

नारद मोह प्रसङ्ग : नारद की समाधि। इन्द्र के भेजे हुए काम का विघ्नाचरण। हार मानकर मुनि का शरण ग्रहण। मुनि की क्षमा। इन्द्रसभा में काम द्वारा मुनि की प्रशंसा। शङ्कर के यहाँ जाकर नारद का मार चरित कहना। विष्णु से न कहने के लिए शङ्कर का उपदेश। नारद का विरुद्धाचरण। विष्णुमाया द्वारा मार्ग में नगर निर्माण और राजकुमारी का स्वयंवर। नारद मोह। नारद की स्तुति पर विष्णु का प्रादुर्भाव। परम हित करने की प्रतिज्ञा। नारद की कुरूप प्राप्ति। हरगण की काकूक्ति : मजाक उड़ाना। राजा के वेष में प्रभु का आगमन। राजकुमारी का वरण। प्रभु का उसे ले जाना। हरगण के कहने से नारद का जल में मुख देखना। नारद का क्रोध। हरगण को शाप। विष्णु से भेंट, उन्हें भी शाप। मायापनयन। अपराध क्षमापन। रुद्रगण का शापानुग्रह। उन्हीं को रावण कुम्भकर्ण होना। दो० १३९ : पृ० ३४८ से।

प्रतिकल्प प्रभु का अवतार। चरित्र का मुनियों द्वारा गान। अतः विविध अनुपम प्रसङ्ग। आश्चर्य का अनवकाश। कथा की अपारता। ब्रह्म के रामावतार का कारण। उसी चरित्र से सती रूप में उमा को मोह। उमा का संकोच से मुसकराना। कथा प्रारम्भ। दो० १४१ तक : पृ० ३७९

स्वायम्भूव मनु का इतिहास : स्वायम्भूव मनु और शतरूपा से नर सृष्टि। उनकी सन्तति। चिरकाल राज्यशासन पर भी विराग नहीं। अतः पुत्र को राज्य देकर दम्पती का नैमिषारण्य आगमन। २३००० वर्ष का तप। विधि हरि हर के प्रलोभन से भी चलायमान न होना। आकाशवाणी। शङ्कर मन मानस मराल : राम के दर्शन का वरदान। भगवान् का प्रादुर्भाव। शिख-नख वर्णन। वरदान। दम्पती के दूसरे वरदान में भेद। अमरावती निवास के लिए अनुशासन। अभिलाष पूर्ति की प्रतिज्ञा। दो० १५२ : पृ० ३८३ से

भानु प्रताप की कथा : केकय देश के सत्यकेतु राजा के दो पुत्र : १. भानुप्रताप और २. अरिमर्दन। ज्येष्ठ को राज्य देकर सत्यकेतु का वनवास। भानुप्रताप का दिग्विजय। धर्मचर्या में वेदाज्ञानुसरण। मृगयार्थ विन्ध्याचल वन में जाना। एक वाराह का बहुत दूर तक पीछा करना। मार्ग भूलकर भटकते हुए एक आश्रम में पहुँचना। वहाँ राजा के शत्रु का मुनिवेष में रहना। कपटमुनि के अनुरोध से आश्रम में ठहरना। उसपर राजा की श्रद्धा। उससे वरदान माँगना। वरदान लाभ। ब्राह्मणों से भय। उपास्य में साल भर के लिए नित्य नये एक लक्ष

ब्राह्मणों का वरण। कपटी मुनि का पुरोहित रूप से नित्य जेवनार बनाने की प्रतिज्ञा। राजा को सोते हुए घर पहुँचाने की प्रतिज्ञा। राजा का शयन। शूंकर बनकर मार्ग भुलवानेवाले कालकेतु निशाचर का आगमन। राजा को सोते हुए घर पहुँचाना। उठने पर राजा को आश्चर्य। चुपके से आखेटस्थल को प्रस्थान। दोपहर को घर लौटना। पुरोहित रूप में कालकेतु का आगमन। मायामय रसोई परोसने के समय कालकेतु द्वारा आकाशवाणी। कपटी मुनि को समाचार। उसकी लिखा पढ़ी। भानुप्रताप पर चढ़ाई। भानुप्रताप का सत्यानाश : दो० १७५ पृ० ४०७ से

रावणावतार प्रसङ्ग : काल पाकर उसी राजा का रावण अरिमर्दन का कुम्भकर्ण और धर्मरुचि मन्त्री का विभीषण होना। राजा के सुत सेवकों का भी घोर राक्षस होना। तीनों भाइयों का तप। शङ्कर और ब्रह्मदेव का वरदान। तीनों भाइयों का ब्याह। लंका पर धावा, विजय, यक्षों का पलायन। लङ्का को राजधानी बनाना। पुष्पक हरण। कैलाश उठाना। नित्य नयी अभिवृद्धि। कुम्भकर्ण, मेघनाद, कुमुख, अकम्पन, वज्रदंष्ट्र, धूम्रकेतु, अतिकाय का पौरुष वर्णन। रावण की सभा। द्विज भोजन, यज्ञ, होम, श्राद्ध में बाधा के लिए आज्ञा। इससे देवताओं में क्षीणता। मेघनाद को शिक्षा : वैर और बढ़ावा। समरधीर बलवान् देवताओं का बन्दी होना। रावण का अत्याचार। निशाचरों की अवर्णनीय अनीति। पृथ्वी की व्याकुलता। देवताओं की शरण लेना। सबका ब्रह्मलोक जाना। ब्रह्मदेव भी निरुपाय। अविनाशी के शरण ग्रहण का उपदेश। देवताओं की गोष्ठी। ब्रह्म स्तुति। आकाशवाणी। ब्रह्मदेव द्वारा देवताओं को वानर शरीर से हरिपद सेवन की शिक्षा। देवताओं की त्वरा : दो० : १८०-३ पृ० ४५३ से

दूसरे[1] प्रश्न का उत्तर अधिभूत रामायण

रामावतार प्रसङ्ग : अवधपुरी के राजा दशरथ रानी कौसल्यादि। राजा को पुत्रहीनता से ग्लानि। गुरु से विनय। पुत्रेष्टि याग। अग्नि का प्रकट होकर हवि देना। हवि विभाग। रानियों के गर्भ। जन्म समय। गर्भस्तुति। कृपालु का प्रादुर्भाव। माता की स्तुति। माता को समझाना। शिशु लीला के लिए माता की प्रार्थना। फलश्रुति। शिशु रुदन से पुत्रजन्म समाचार का प्रचार। गुरु वसिष्ठ के यहाँ बुलावा। नान्दी श्राद्ध। उत्सव। कैकयी सुमित्रा के भी पुत्र जन्म। अवधपुरी की शोभा। सूर्य भी स्थगित। महीने भर का दिन। भुशुण्डिसहित शिवजी का विचारना। राजा की उदारता : दो० १९५ पृ० ४५३ से

तीसरे[2] प्रश्न का उत्तर : शिशु चरित-प्रसङ्ग : नामकरण। राम लक्ष्मण भरत शत्रुघ्न की प्रीति। राम में गुणाधिक्य। नख-शिख वर्णन। रघुनाथचरित रति का माहात्म्य। राम को गोद खिलाना : दो० २०० पृ० ५११ से

बालचरित प्रसङ्ग : माता का पाक बनाना। विश्वरूप दर्शन। माता को विस्मय।

---

१. पुनि प्रभु कहहु राम अवतारा।

२. बाल चरित पुनि कहहु उदारा।

प्रबोधन । फिर माया न व्यापने के लिए विनय । चूड़ाकरण । अजिर विहार । खेलने में प्रेम । उपनयन । गुरु-कुल वास । विद्या प्राप्ति । वीथियों में विहार । रामजी की लोकप्रियता । आखेट । भाइयों के साथ भोजन । पुर-वासियों को सुखी करने का संयोजन । वेद पुराण श्रवण तथा भाइयों से अनु-कथन । प्रातःकाल माता पिता गुरु को प्रणाम । आज्ञा लेकर पुरकार्य करना । राजा को हर्ष । नानाविध अनूप चरित्र । दो० २०५ पृ० ५२३ से

चौथे[1] प्रश्न का उत्तर ऋषि आगमन प्रसङ्ग : यज्ञ में निशाचरों द्वारा विघ्न । विश्वामित्रजी का अयोध्याप्रस्थान । चक्रवर्ती द्वारा सत्कार । मुनि का अनुज-सहित रघुनाथ को माँगना । वसिष्ठजी के समझाने पर राजा का देना । ताड़का वध । विद्यादान । मख रखवारी । धनुष-यज्ञ देखने के लिए प्रस्थान । अहल्योद्धार । स्तुति । गङ्गाजी की कथा । दो. २११-२ पृ. ५३७ से ।

सोय स्वयम्बर : जनकपुर वर्णन । अमराई में निवास । जनकजी का आगमन । साथ ले जाकर सुन्दर सदन में ठहराना । दोनों भाइयों का नगर देखने जाना । रूप वर्णन । अष्ट सखी सम्वाद । धनुष-यज्ञ भूमि निरीक्षण । बालकों का प्रेम । लौटना । निशि कृत्य । प्रातः कृत्य । फूल लेने जाना । फुलवारी वर्णन । फूल चुनना । गौरी पूजन के लिए सखी सहित सीता का आगमन, स्नान, पूजा, राज-कुँवर के आने का सन्देश । सब की उत्कण्ठा । देखने के लिए जाना । राम-सीता का प्रथम साक्षात्कार । सीताजी का गिरिजा मन्दिर में फिर जाना । स्तुति । मनोरथ-प्रार्थना । गौरी का आशीर्वाद । सबका प्रस्थान । दोनों भाइयों का लौटना । गुरुजी से सम्पूर्ण इतिवृत्त-निवेदन । गुरुजी का आशीर्वाद । भोजनोपरान्त कथा । सन्ध्या-वन्दन । चन्द्र के व्याज से सिय-मुख-छवि वर्णन । विश्राम । अरुणोदय के व्याज से लक्ष्मण द्वारा प्रभुप्रताप-वर्णन । नित्यकृत्य । गुरु को प्रणाम । शतानन्द द्वारा जनक का बुलावा । मुनिवृन्दसहित कृपालु का जाना । भीड़ । राजा की सुव्यवस्था । कुँवरों का रङ्गभूमि-प्रवेश । भावानुसार अनेक रूप से कोशलराज-किशोर का दर्शन । शिख-नख-वर्णन । उच्च मञ्च पर आसन । राजाओं की बातचीत । सीताजी का प्रवेश । छवि-वर्णन । नर-नारियों की लालसा । वन्दियों द्वारा राजा जनक के प्रण की घोषणा । राजाओं का धनुष-भङ्ग के लिए उद्योग । राजा जनक के क्रोधयुक्त वचन । लक्ष्मण का क्रोध । विश्वामित्र की आज्ञा से रामजी का उठना । मुनियों से आज्ञा माँगना । पुर-नरनारी । रानी और सीताजी की भावनाएँ । लक्ष्मण द्वारा उत्साह-वर्धन । सबके हृद्‌गत भावों का धनुष में केन्द्रीभूत होना । राम द्वारा सबके भावों की परख । धनुष-भङ्ग । उत्सव । सबको हर्ष । जयमाल पहिनाना । क्रूर कपूत मूढ़ राजाओं का क्रोध । साधु राजाओं का उत्तर । सीता का प्रस्थान । लक्ष्मण का क्रोध । पुर-नरनारी की विकलता : दो. २६७-पृ. ५५५ से ।

---

१ कहहु जथा जानकी बिवाही ।

परशुराम आगमन प्रसङ्ग : परशुराम-आगमन। मुनि वेष में वीररस शान्तिरस की सन्धि। राजाओं में त्रास। वन्दना। राजाओं की भीड़ का कारण जनक से पूछना। धनुर्भङ्ग सुन और देखकर क्रोध। तोड़नेवाले के विषय में प्रश्न। राम का उत्तर। परशुराम-लक्ष्मण-सम्वाद। परशुराम द्वारा सात बार लक्ष्मण का तथा दो बार राम का कुल नव बार अपमान। राम के उत्तर से बुद्धि का परदा खुलना। नौ बार उत्कर्ष-सूचक जय-शब्द-उच्चारणपूर्वक स्तुति। परशुराम का प्रस्थान। राजाओं को भय। कायरों का पलायन : दो. २७५-८ तक पृ. ६८१ से।

विवाह प्रसङ्ग : मङ्गलाचरण। विश्वामित्रजी की आज्ञा से अवध दूत भेजना। जनकपुर में मण्डप-रचना। पुर-रचना। चक्रवर्ती के दरबार में जनक दूत। दूत के साथ महाराज का गुरुजी के पास जाना। बारात शीघ्र ले चलने की गुरुजी की आज्ञा। महाराज का महल में जाना। अयोध्या में उत्सव। बारात की तैयारी के बारह कार्य। बारह सगुन। मार्ग में बारात का सत्कार। अगवानी। जनवास। रामलखन का चक्रवर्तीजी से मिलन। अगवानी का सत्कार। नगर वासियों का मनोरथ। स्वयम्बर में आये हुए राजाओं का प्रस्थान। विवाह। दायज। जनक विनय। परस्पर-विनय। कोहबर। चारों जोड़ियों का जनवास को प्रस्थान। जेवनार। गवादि-दान। बिदाई। बारात को पहुँचाना। बारात का घर लौटना। अवध में उत्सव। परिछन। बरातियों की बिदाई। महाराज का रनिवास में जाना। वसिष्ठ-कौशिक की पूजा। विश्वामित्र की कथा। कङ्कन छूटना। विश्वामित्र की बिदाई। विश्वामित्र-कथा की पुनरावृत्ति। फल-स्तुति : दो. ३६१ तक : बालकाण्ड की समाप्ति। पृ. ७२३ से ९०७ तक।

दुर्गापुरस्थित श्रीराम जानकी मन्दिर

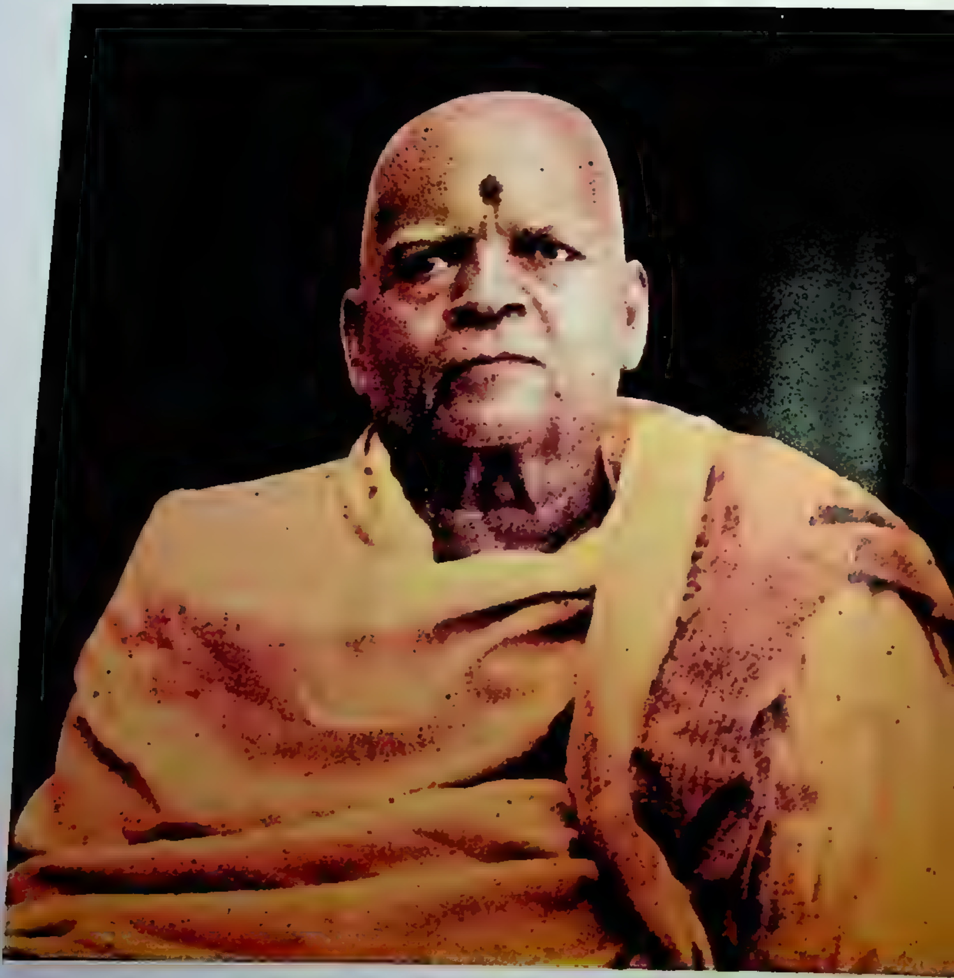

मानसराजहंस पं. श्रीविजयानन्द जी त्रिपाठी

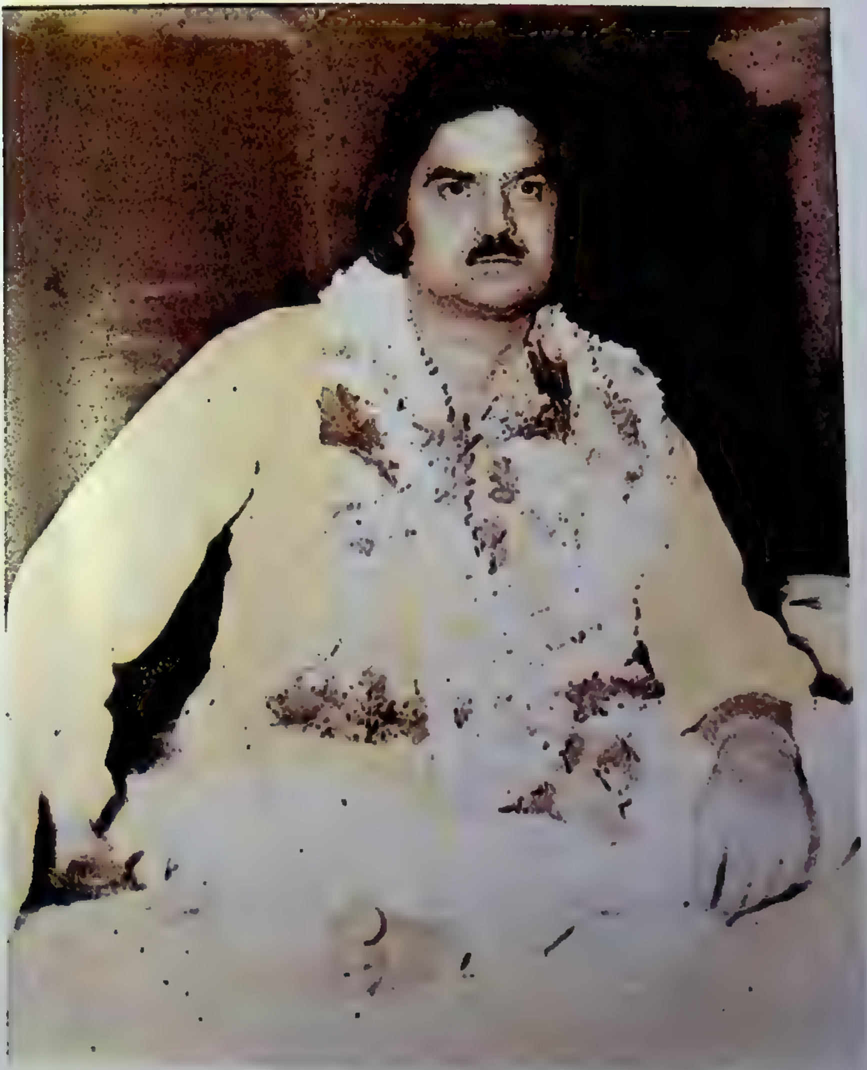

मानसराजहंस श्री विजयानन्द त्रिपाठी के प्रमुख शिष्य

डॉ. श्रीनाथ मिश्र रामायणी

श्री राम चरित मानस
विजया टीका

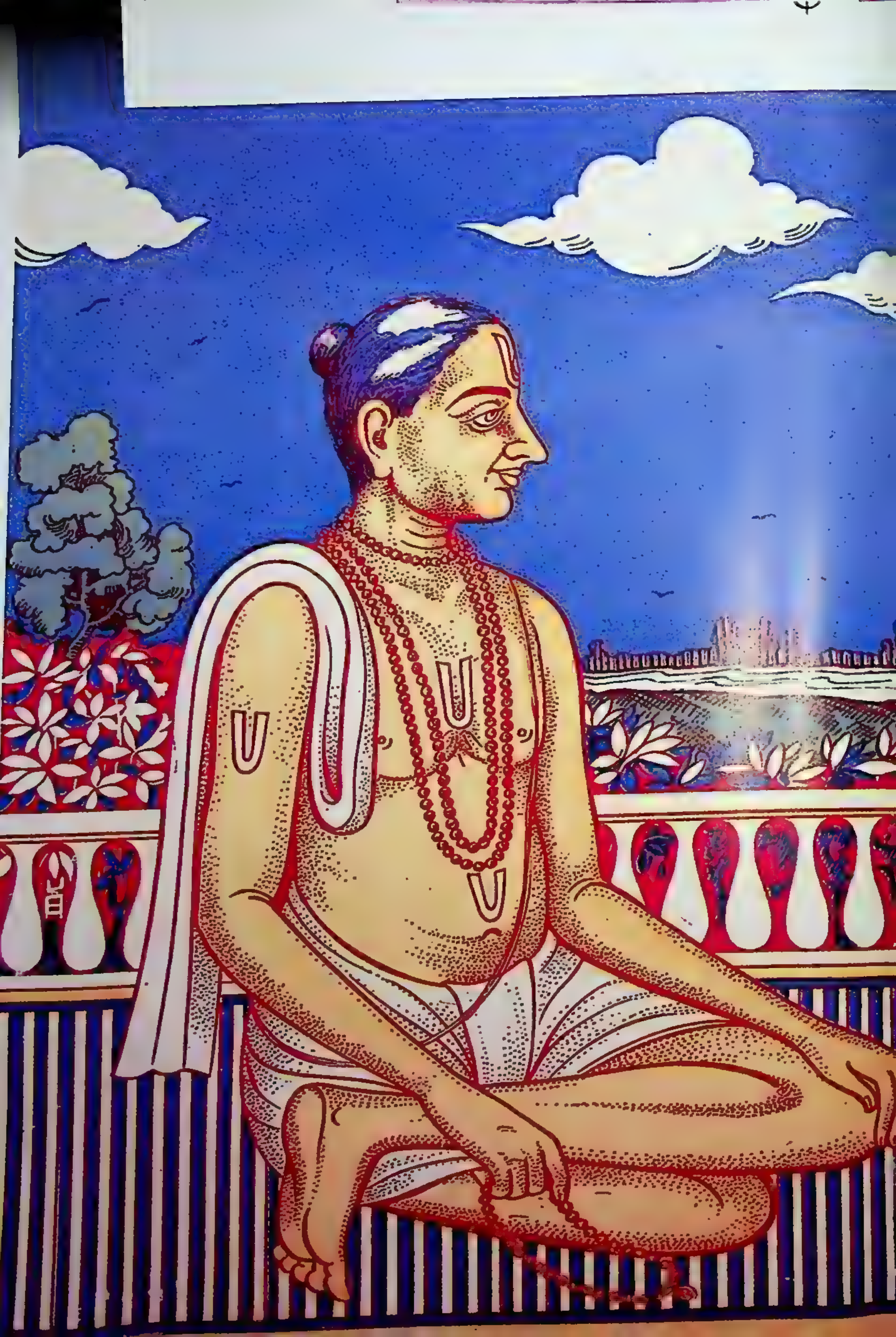

श्रीराम

श्रीगणेशाय नमः । श्रीगुरवे नमः

श्रीरामचरितमानस

बालकाण्ड : प्रथम सोपान

सटीक

मङ्गलाचरण

श्लो. वर्णानामर्थ[1] संघानां रसानां [1]छंदसामपि ।
[1]मंगलानां[1] च कर्तारौ [1]वंदे वाणीविनायकौ ॥१॥

जय गणेश गुरु गौरि हर, गिरा लखन श्रीराम ।
वन्दौं पद धरि धरणि शिर, पूरौ जनमनकाम ॥१॥
करत ग्रन्थ शुभ राखि उर, श्रीमारुति पदद्वंद ।
जाते जग नित होइ मुद, मंगल विजयानन्द ॥२॥
मातु तात श्री मङ्गला, सहित देव- रघुवीर ।
वन्दि चरन मागौं हिये, जागौ भगति गँभीर ॥३॥
तुलसीदास के चरन युग, वंदौ बारंबार ।
जाते मानस-मरम में, होइ दृष्टि संचार ॥४॥
रामगुलाम आदि लै, पंडित रामकुमार ।
मानस के आचार्यगन, जेते टीकाकार ॥५॥
सब के पद वन्दन करौं, करम वचन अरु काय ।
करुनाकरि जन जानिमोहि, सब मिलि होउ सहाय ॥६॥
अवगाहत रघुपति चरित सरित मिटहि दुखद्वंद ।
मानस की टीका करत यह गुनि विजयानंद ॥७॥

अर्थ : अक्षरों के, अर्थसमूहों के, रसों के और छन्दों के भी : तथा : मङ्गलों के करनेवाली वाणी : सरस्वती : और : उनके आश्रय : विनायक : गणेश : की मैं वन्दना करता हूँ ।

---

१. प्राकृत सूत्र है 'ङ, ञ, ण, नां व्यञ्जने' व्यञ्जन परे रहते 'ङ ञ ण और न' का अनुस्वार हो जाता है । इस नियम से सङ्घ, छन्द, मङ्गलानाञ्च और वन्दे का क्रम से संघ, छंद, मंगलानां च और वंदे रूप हो गया ।

व्याख्या : श्रीगोस्वामी जी ने मगण से ग्रन्थारम्भ किया। मगण में तीन गुरु होते हैं। यहाँ वर्, णा, नाम् ये तीनों गुरु हैं। इसका फल है श्री का विस्तार। यथा : मो भूमिः श्रियमातनोति।

ग्रन्थारम्भ 'व'कार से किया तथा ग्रन्थ की समाप्ति भी 'व' से की है। 'व' जलतत्त्व है। भाव यह कि यह रामचरित मानस प्रेमाम्बु से पूर्ण है।

विना चार कृपा के किसी का कल्याण नहीं होता। १. शास्त्रकृपा २. ईश्वरकृपा ३. गुरुकृपा और ४. आत्मकृपा। श्रीगोस्वामीजी क्रम से चारों श्लोकों में चारों कृपाओं को लक्ष्य करके वन्दना करते हैं। पहिले ही शास्त्रकृपा के लिए वाणी विनायक की वन्दना की है।

पद, पदार्थ, रस और छन्द से काव्य में काम पड़ता है। यथा : आखर अरथ अलंकृत नाना, छंद प्रबन्ध अनेक विधाना, भाव भेद रस भेद अपारा। और मङ्गल, काव्य का प्रयोजन है। अतः पहिले ही इनके कर्ताओं की वन्दना करते हैं। सरस्वती वाक् हैं और गणेश जी वाङ्मय हैं, यथा : 'त्वं वाङ्मयस्त्वं चिन्मयः' इति श्रुतिः। अतः दोनों में स्वभावसाम्य[1] है। दोनों रामोपासक हैं। गणेशजी नाम-प्रभाव से प्रथम पूज्य हुए और वाणी : सरस्वती : रामचरित सर में स्नान करने के लिए भक्त के स्मरण करने पर ब्रह्मलोक से दौड़ती हुई आती हैं। अतः दोनों रामभक्त हैं। दोनों मङ्गल के कर्ता हैं। यथा : मङ्गलं दिशतु नो विनायको मङ्गलं दिशतु नः सरस्वती। इति श्रुतिः। अतः दोनों की साथ ही वन्दना ग्रन्थ के आरम्भ में की गई। इनकी कृपा से ही शास्त्रकृपा होगी। वर्णों की संख्या में अनेक मत हैं, कोई छत्तीस, कोई बयालीस और कोई पचास वर्ण मानते हैं परन्तु मौलिक भेद नहीं है। यहाँ वर्णों से पद का अभिप्राय है। पदार्थ सात हैं। द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय और अभाव। रस नौ हैं : शृङ्गार, हास्य, करुणा, रौद्र, वीर, भयानक, वीभत्स, अद्भुत और शान्त। भक्तलोग तीन रस और मानते हैं : सख्य, वात्सल्य और दास्य। छन्द प्रबन्ध के अनेक विधान हैं। काव्य से चतुर्वर्ग की प्राप्ति होती है, वे ही मङ्गल हैं, यथा :

> एक लहैं तपपुंजन को फल, ज्यौं तुलसी अरु सूर गोसाईं।
> एक लहैं सुख संपति केसव, भूषन ज्यौं बलवीर बड़ाई॥
> एकन को जस ही से प्रयोजन, है रसखान रहीम की नाईं।
> दास कवित्तन की चरचा, बुधिवन्तन को सुख दै सबठाईं॥

काव्यनिर्णये

इस प्रथम श्लोक का अनुष्टुप् छन्द है। इसमें ८ अक्षरों का एक पाद होता है, चारों पादों में पाँचवाँ वर्ण लघु और छठा गुरु होता है, दूसरे और चौथे पाद में सातवाँ अक्षर लघु होता है।

---

१. गणपति सहस्रहोम पद्धति में गणपतिपरक निम्नलिखित मन्त्र ध्यान देने योग्य हैं : पञ्चाशन्मात्रिकालयाय स्वाहा। सप्तछन्दोनिश्रये नमः स्वाहा। सरस्वत्याश्रयाय नमः स्वाहा। गद्यपद्यसुधार्णवाय नमः स्वाहा। अष्टादशलिपिव्यष्टिसमष्टिज्ञानकोविदाय नमः स्वाहा। इत्यादि।

[1]श्लो. भवानीशंकरौ वंदे श्रद्धाविश्वासरूपिणौ ।
याभ्यां विना न पश्यंति सिद्धाः स्वान्तःस्थमीश्वरं[2] ॥२॥

अर्थ : भवानी और शङ्कर : दोनों : की वन्दना करता हूँ, जो श्रद्धा और विश्वास के रूप हैं जिनके विना सिद्ध लोग, अपने अन्तःकरण में स्थित ईश्वर को नहीं देखते ।

व्याख्या : श्रद्धा और विश्वास में नाममात्र का भेद है, वस्तु एक ही है । इसी भाँति भवानी और शङ्कर में नाम का भेद है, तत्त्व एक ही है । वे वाक् और अर्थ की भाँति मिले हुए हैं । यथा : वागर्थाविव सम्पृक्तौ । सिद्ध लोगों ने दुष्प्राप्य अणिमादिक सिद्धि प्राप्त कर ली, पर वे अपने अन्तःकरण में स्थित ईश्वर का दर्शन नहीं कर सके । इसका कारण श्रद्धा और विश्वास का अभाव है, श्रद्धारूपिणी भवानी है और विश्वासरूपी शङ्कर हैं । यथा : या देवी सर्वभूतेषु श्रद्धारूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमोनमः । अर्थ : जो देवी सब प्राणियों में श्रद्धारूप से विराजमान हैं, उन्हें बार बार नमस्कार है । श्रद्धा विना धर्म नहि होई । विनु महि गंध कि पावै कोई । कवनिउ सिद्धि कि विनु विस्वासा । विनु विस्वास भगति नहि तेहि विनु द्रवहिं न राम । इस प्रकार से श्रद्धा-विश्वास की अनिवार्य उपयोगिता श्री गोस्वामीजीने दिखलाई है । ईश्वर अन्तर्यामी सबके हृदय में निवास करते हैं, परन्तु जीव उन्हें अपने हृदय में ढूँढने का प्रयत्न नहीं करता, क्योंकि उसे इस विषय में श्रद्धा-विश्वास नहीं है । जब ढूँढता ही नहीं तब पावेगा कैसे ? सो कृपा करके जब भवानी और शङ्कर, जो कि हृत्कमल : अनाहत चक्र : के अधिष्ठाता हैं, श्रद्धा-विश्वास रूप में आविर्भूत हों तब ईश्वर का दर्शन सम्भव है । ईश्वर तभी दर्शन देंगे जब श्रद्धाविश्वासरूपी भवानीशङ्कर कृपा करें । अतः श्रीगोस्वामीजी उनकी वन्दना करते हैं, जिसमें उनकी कृपा से ईश्वरकृपा का लाभ हो सके । इस दूसरे श्लोक का भी अनुष्टुप् छन्द है ।

श्लो. वंदे बोधमयं नित्यं गुरुं शंकररूपिण ।
यमाश्रितो हि वक्रोपि चन्द्रः सर्वत्र वंद्यते ॥३॥

---

१. यहाँ 'शङ्करौ, वन्दे, पश्यन्ति', का तद्भवरूप 'शंकरौ, वंदे और पश्यंति' क्रम से हुआ । इसका नियम प्रथम श्लोक की व्याख्या में दिया हुआ है । इसी भाँति और स्थलों में समझ लेना चाहिए । प्रत्येक स्थान पर सूत्र देकर साधना असम्भव है । अतः यहीं निश्चय किया कि जो बात एक स्थल में दिखला दी गई, उसे बार बार दिखाने के लिए हम वाध्य नहीं हैं, पाठकों से आशा की जाती है कि एक बात को एक स्थल में समझ लेने पर दूसरे वैसे स्थलों पर भी उसी तरह लगा लेंगे ।

२. इस श्लोक में नई बात यह आई कि कोई व्यञ्जन परे नहीं है, फिर भी ईश्वरम् का ईश्वरं रूप हो गया । यहाँ सूत्र लगा 'मो विन्दुः' : प्रा. प्र. ४-१२ : अन्त्यस्य हलो मकारस्य विन्दुर्भवति । अन्त के हल् मकार का विन्दु हो जाता है ।

अर्थ : मैं ज्ञानमय, नित्य, शङ्कररूपी गुरुदेव की वन्दना करता हूँ, जिनका आश्रित होकर ही टेढ़ा चन्द्रमा भी सर्वत्र वन्दित होता है।

व्याख्या : मङ्गलाचरण करने और श्रद्धा विश्वास का आश्रयण करने पर भी गुरु के आश्रयण की आवश्यकता है। बिना गुरु का आश्रयण किये शिष्य पूजित नहीं होता और ग्रन्थकार को साधु समाज में भणित के सम्मान की अभिलाषा है। यथा : होइ प्रसन्न देहु वरदानू। साधु समाज भनित सनमानू। गुरु शङ्कररूप हैं, यथा : गुरुर्देवो महेश्वरः। उन्हीं के आश्रयण से अतिक्षीण और टेढ़े द्वितीया के चन्द्र की वन्दना जगत् करता है, अतः ग्रन्थकार श्रीशङ्कर : कल्याणकर : रूपी गुरुदेव की वन्दना करके, आश्रय ग्रहण करते हैं, जिसमें कुटिल और क्षीणसामर्थ्य होने पर भी, जगत् में सम्मानभाजन हो सकें। मनुष्य का गुरु मनुष्य नहीं हो सकता, नित्य बोधमय शङ्कर ही सबके गुरु हैं : पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात् : यो. सू.। तुम त्रिभुवनगुरु वेद बखाना। फिर जिस शरीर द्वारा शङ्कर भगवान् जीव का कल्याण करते हैं, उस शरीर की, शङ्कर की मूर्ति की भाँति वह जीव, पूजा क्यों न करे? इस तीसरे श्लोक का भी अनुष्टुप् छन्द है। इससे श्रीगोस्वामीजी ने गुरुकृपा चाही। श्रीगोस्वामीजी को आत्मकृपा प्राप्त है। यथा :

श्लो. सीतारामगुणग्राम - पुण्यारण्यविहारिणौ।
वंदे विशुद्धविज्ञानौ कवीश्वरकपीश्वरौ ॥४॥

अर्थ : सीता और राम के गुणगणरूपी पुण्यवन में विहार करनेवाले और विशुद्ध विज्ञानवाले कवीश्वर : वाल्मीकि : और कपीश्वर : हनुमानजी : की वन्दना करता हूँ।

व्याख्या : सीता और राम के गुणगणों को दुर्गम और दुष्पार होने से अरण्य कहा, दिव्य होने से पुण्यारण्य कहा। अरण्य : वन : के मर्मज्ञ के बिना वन्य पदार्थों के हेतु, नाम, गुण, पुण्य और प्रभाव का न पता चले और न यात्रा ही हो सके यथा : पुन्य जलाश्रय भूमि विभागा। खग मृग तरु तृन गिरि वन बागा। चारु विचित्र पवित्र बिसेषी। बूझत भरत दिव्य सब देखी। सुनि मनमुदित कहत रिषि राऊ। हेतु नाम गुन पुन्य प्रभाऊ। सो इस पुण्यारण्य के दो बड़े जानकार हैं। एक तो माधुर्य-प्रधान कवीश्वर : [1]वाल्मीकेर्मुनिसिंहस्य कवितावनचारिणः। शृण्वन् रामकथानादं को न याति परां गतिम्। बंदौं मुनिपदकंज रामायन जेहि निरमयेउ। सखर सकोमल मंजु दोषरहित दूषनसहित। और दूसरे ऐश्वर्यप्रधान कपीश्वर : [2]रामायणमहामाला-रत्नं वन्देऽनिलात्मजम्। महा नाटक निपुन कोटि कविकुलतिलक। अतः श्रीसीता-राम-गुणग्रामरूपी पुण्यारण्य की जानकारी के लिए दोनों की वन्दना करते हैं। कपि समाज को हनुमानजी प्राण के समान प्यारे हैं! यथा : मिले सकल अति भये सुखारी।

---

१. कविता वन में विचरण करनेवाले मुनिसिंह के रामकथानाद को सुनकर कौन परागति को नहीं प्राप्त होता।

२. रामायणमहामाला के रत्न हनुमानजी की मैं वन्दना करता हूँ।

तलफत मीन पाव जिमि वारी। इसलिए कपीश्वर कहा। सीताराम गुणग्राम के परिचय से ही सारा कल्याण सधता है। यथा : जग मंगल गुनग्राम राम्र के। दानि मुकुति धन धर्म धाम के। सद्गुरु ग्यान विराग जोग के। विवुध वैद भव भीम रोग के।

श्लो. उद्भवस्थितिसंहारकारिणीं क्लेशहारिणीं।
सर्वश्रेयस्करीं सीतां नतोऽहं रामवल्लभां ॥५॥

अर्थ : उत्पत्ति, स्थिति, संहार करनेवाली, क्लेशों को हरण करनेवाली तथा सम्पूर्ण कल्याणों की करनेवाली, राम की प्यारी सीताजी की मैं वन्दना करता हूँ।

व्याख्या : जिनके गुणग्राम से परिचय प्राप्ति के लिए कवीश्वर कपीश्वर की वन्दना की, अव उन्हीं गुणी श्रीसीताराम की वन्दना करते हैं। सीताजी आद्या शक्ति हैं। अतः उत्पत्ति, स्थिति और लय इन्हींका कार्य है। यथा : आदि शक्ति जेहि जग उपजाया। सो अवतरिहि मोरि यह माया। क्लेश पाँच हैं : अविद्यास्मितारागद्वेषाभिनिवेशाः क्लेशाः, यो. सू.। [1]अविद्या, [2]अस्मिता, [3]राग, [4]द्वेष और [5]अभिनिवेश। श्रीसीताजी इन पाँचों क्लेशों की हरण करनेवाली हैं। लौकिक और पार लौकिक सब कल्याणों की करनेवाली हैं। रामजी की प्यारी हैं। इनके वचनसहाय से ही भवसन्तरण सम्भव है। यथा :

कबहुक अम्ब अवसर पाइ।
मेरिऊ सुधि द्याइवी कछु, करुन कथा चलाइ।
जानकी जग जननि जन की, किये बचन सहाइ।
तरइ तुलसीदास भव तव, नाथ गुन गन गाइ॥ विनय

सीता नाम का उल्लेख करके हल की रेखा से उत्पन्न, अयोनिजा, वेदप्रतिपादित आह्लादिनी शक्ति कहा। वच्चे स्वभाव से ही पिता की अनुकूलता के लिए माँ को साधन वनाते हैं। इसलिए ग्रन्थकार सीताजी की वन्दना करते हैं।

श्लो. यन्मायावशवर्तिविश्वमखिलं ब्रह्मादिदेवासुराः
यत्सत्वादमृषैव भाति सकलं रज्जौ यथाहेर्भ्रमः।
यत्पादप्लव एक एव हि भवांभोधेस्तितीर्षावतां
वंदेऽहं तमशेषकारणपरं रामाख्यमीशं हरिं ॥६॥

अर्थ : जिसकी माया के वश में समस्त संसार, ब्रह्मादिक देवता और असुर हैं, जिसकी सत्ता से रस्सी में सर्प के भ्रम की भाँति सम्पूर्ण जगत् सच्चा ही प्रतीत होता है और जिसका चरण ही संसार समुद्र का पार चाहनेवालों के लिए एकमात्र नौका है। उस समस्त कारणों से परे राम नामवाले ईश हरि की मैं वन्दना करता हूँ।

---

१. अनित्य, अशुचि, दुःख और अनात्मा में नित्य, शुचि, सुख और आत्मा का भान होना अविद्या है। २. दृक्शक्ति और दर्शनशक्ति की एकात्मता अस्मिता है। ३. सुख का अनुस्मरण करते हुए सुख के साधनों में तृष्णा राग कहलाती है। ४. दुःख का अनुस्मरण करते हुए दुःख के साधनों के प्रति क्रोध को द्वेष कहते हैं। ५. मरण के भय को अभिनिवेश कहते हैं।

व्याख्या : इस श्लोक में ग्रन्थकार ने हरि के १. माया का प्रभाव २. सत्ता का प्रभाव ३. चरण का प्रभाव और ४. स्वरूपवर्णन क्रम से चारों चरणों में किया है। पहिले माया का प्रभाव कहते हैं :

१. ब्रह्मादि सुर और असुर भी उसके वशवर्त्ती हैं। यथा : हरिमाया बलवंत भवानी। जाहि न मोह कवन अस ज्ञानी। नारद भव विरंचि सनकादी। जे मुनि नायक आतमवादी। मोह न अंध कीन्ह केहि केही। को जगकाम नचाव न जेही। जो माया सब जगहि नचावा। जासु चरित लखि काहु न पावा। इस भाँति माया को अघटितघटनापटीयसी कहा। श्रीहरि के बल से वह सब कुछ करती है, उसे निज बल कुछ नहीं है। अतः माया के बल के वर्णन द्वारा श्रीहरि का ही वर्णन है। यथा : एक रचइ जग गुन बस जाके। प्रभु प्रेरित नहि निज बल ताके।

२. उस हरि की सत्ता ऐसी है कि सम्पूर्ण संसार उसकी सत्ता से सत्तावान है। जिस भाँति रस्सी की सत्ता से सर्प की सत्ता की प्रतीति होती है। मन्दान्धकार में पड़ी हुई रस्सी सर्प मालूम होती है। इसी भाँति श्रीहरि में संसार की प्रतीति हो रही है। श्रीहरि के स्वरूप में विकार नहीं आया और संसार की रचना हो गई। यथा : रजत सीप महु भास जिमि, यथा भानुकरवारि। जदपि मृषा तिहुँ काल सोइ भ्रम न सकै कोउ टारि। एहि विधि जग हरि आश्रित रहई। जदपि असत्य देत दुख अहई।

३. उस हरिका चरण ही संसार-सागर के पार जाना चाहनेवाले के लिए नौकारूप है, अन्य साधन फेन हैं। नौका की भाँति वे भी संसार-सागर के ऊपर दिखाई पड़ते हैं पर आश्रय योग्य नहीं हैं। यथा : महा मोह सरिता अपार महु संतत फिरत वह्यौ। श्रीरघुवीर चरन नौका तजि फिरि फिरि फेन गह्यौ।

४. अब उनका स्वरूप कहते हैं कि वे अशेष कारणों से परे हैं, अर्थात् कार्य-कारण की शृंखला वहाँ जाकर समाप्त हो जाती है। अर्थात् वह प्रभु, माया और उसके घेरा के बाहर हैं। यथा : फिरत सदा माया कर प्रेरा। कालकर्म सुभाव गुन घेरा। जिस घेरे के कारण जीव बँधा हुआ फिरता है। यहाँ श्रीग्रन्थकार, श्रीहरि के रामावतार की वन्दना करते हैं। क्योंकि वे ही श्रीग्रन्थकार के इष्टदेव हैं और उन्हीं का चरित वर्णन करता है।

इस छठे श्लोक का शार्दूलविक्रीडित छन्द है। इसमें १९ अक्षरों का एक पाद होता है। बारह अक्षर पर एक यति : विराम : होती है। इसमें एक मगण, एक सगण, एक जगण, एक सगण दो तगण और अन्त में एक गुरु होता है SSS, ।।S, ।S।, ।।S, SS।, SS।, S।

श्लो. नानापुराणनिगमागमसम्मतं यद्रामायणे निगदितं क्वचिदन्यतोऽपि।
स्वांतःसुखाय तुलसी रघुनाथगाथाभाषानिबंधमतिमंजुलमातनोति ॥७

अर्थ : जो नाना पुराण, वेद तथा तन्त्र : शास्त्र : से सम्मत है वही इस रामायण में कहा गया है और कहीं अन्यत्र से भी लिया गया है। अपने अन्तःकरण के सुख के लिए तुलसीदास श्रीरघुनाथ की कथा का भाषा में अति सुन्दर निबन्ध विस्तृत करता है।

व्याख्या : प्रायेण यही बात ग्रन्थकार ने 'रामायण' जो की आरती में कही है। यथा : गावत वेद पुराण अष्टदस। छवो शास्त्र सब ग्रंथन को रस। मुनिजन धन संतन को सर्वस। सार अंस सम्मत सबही की। 'क्वचिदन्यतोऽपि' से सब ग्रन्थ, काव्य, नाटकादि का रस तथा महात्माओं का अनुभव भी अभिप्रेत है। संस्कृत में मङ्गलाचरणपूर्वक संकल्प करते हैं, कि मैं भाषा में निबन्ध करता हूँ। भाषा से अभिप्राय प्राकृत भाषा का है। यथा : जे प्राकृत कवि परम सयाने। भाषा जिन हरि चरित बखाने। लौकिक : प्राकृत : भाषा में तत्समरूप से संस्कृत का भी ग्रहण है। यथा : तद्भवः[1] तत्समो देशीत्यनेकप्राकृतक्रमः। भाषा का लक्षण कहते हुए काव्य निर्णयकार लिखते हैं :

ब्रजभाषा भाषारुचिर, कहै सुमति सब कोय।
मिलै संस्कृत पारस्यौ, पै अति प्रगटी होय॥
ब्रजमागधी मिलै अमर, नागयमनभाषानि।
सहज पारिसीहू मिले षट्विधि कवित बखानि॥
तुलसी गंग दोऊ भये, सुकविन के सरदार।
इनके काव्यन में मिली भाषा विविध प्रकार॥

सरस्वतीकण्ठाभरण में कहा गया है 'नाल्पवुद्धेपु संस्कृतम्' अर्थात् संस्कृत अल्प बोधवालों के लिए नहीं है। रसिकों का मत है कि 'संस्कृतात् प्राकृतं श्रेष्ठं ततोऽपभ्रंशभाषणम्' संस्कृत से प्राकृत श्रेष्ठ है और उससे भी अपभ्रंश श्रेष्ठ है। अपभ्रंशस्तुयच्छुद्धं तत्तद्देशेषु भाषितम्। देशोद्भव वाणी अपभ्रंश कहलाती है। उसकी भी बहुतायत इस भाषा निबन्ध में है। इसीलिए लिखते हैं कि 'अतिमंजुलमातनोति' तुलसीदास अति सुन्दर विस्तृत करता है। प्रयोजन कहते हैं 'स्वान्तः सुखाय' सो सिद्ध हुआ यथा : पायो परम विश्राम राम समान प्रभु नाहीं कहूँ। इन सातों श्लोकों में क्रमशः सातों काण्डों की कथाओं के बीज हैं। प्रथम श्लोक से वर्ण, रस, छन्द और मङ्गल का उल्लेख करके, प्रभु का अक्षर ग्रहण, विश्वविजय, रङ्गभूमि में अखिल रसामृतमूर्ति का प्रदर्शन, विवाहविधि आदि मङ्गलों का होना सूचित किया। दूसरे श्लोक से श्रद्धा विश्वास का उल्लेख करते हुए, प्रजा के साथ चक्रवर्तीजी का रामजी पर श्रद्धा विश्वास और रामजी का श्रीचक्रवर्तीजी, वशिष्ठजी और भरतलाल आदि पर श्रद्धाविश्वास तथा श्रीभरतजी, लक्ष्मणजी आदि का श्रीरामजी पर श्रद्धाविश्वास सूचित किया। तीसरे श्लोक से शङ्कररूप गुरु का उल्लेख करते

---

१. तद्भव, तत्सम और देशी, इस भाँति अनेक प्राकृत क्रम हैं। तत्सम उसे कहते हैं जहाँ शुद्ध संस्कृत शब्द या वाक्य का प्रयोग हो। जो शब्द संस्कृत से निकला हो उसे तद्भव कहते हैं, यथा : सीता से सीया। अनेक देश की भाषा के शब्दों को देशोद्भव कहते हैं, यथा : नेव : लेव : तिरहुत की बोली है, धुवा : मृतक शरीर : बुंदेलखण्ड की बोली है, म्हाको : मेरा : जयपुर की बोली है, काठे : तीर : दक्षिणी भाषा है, राउर : मन्दिर : उदयपुर की बोली है, असा : ऐसा : दक्षिणी भाषा है, आउज : ताशा : अरब देश की भाषा है, इत्यादि।

हुए अगस्त्य जी से मन्त्रग्रहण तथा ब्रह्मकुल में निवास सूचित किया। चौथे श्लोक से कवीश्वर और कपीश्वर का उल्लेख करके कोटिकविकुलतिलक हनुमान जी और सुग्रीव जी से भेंट होना सूचित किया। पाँचवें श्लोक से सीता जी का उल्लेख करते हुए, उनकी सुधि का मिलना सूचित किया। छठें श्लोक से संसार सन्तरण का उल्लेख करते हुए विरोधी समाज : रावणादि : का संसार सन्तरण सूचित किया। सातवें श्लोक से नानापुराणनिगमागम का उल्लेख करते हुए, धर्म के चारों चरणों से युक्त रामराज्य तथा सिद्धान्त निरूपण सूचित किया।

इस सातवें श्लोक का वसन्ततिलका छन्द है। इसमें १४ अक्षरों का एक पाद होता है और उसमें एक तगण, एक भगण, दो जगण और अन्त में दो गुरु होते हैं। SSI, SII, ISI, ISI, SS

सुरवन्दना

सो. जेहि सुमिरत सिधि होइ गननायक करिबरबदन।
करौ अनुग्रह सोइ बुद्धिरासि सुभगुनसदन ॥१॥

अर्थ : जिनके स्मरण मात्र से सिद्धि होती है, जिनका मुख श्रेष्ठ हाथी का सा है, वे ही बुद्धि की राशि और शुभगुणों के घर गणनायक अनुग्रह करो।

व्याख्या : आगे चलकर वह रूपक मिलेगा, जिसमें रामचरित को सर माना है, छन्द सोरठा और दोहा को उस सरका कमल तथा चौपाइयों को पुरइन : कमल की लता : माना है। इस ग्रन्थ के लगाने का रहस्य इसी कमल और पुरइन की जानकारी में भरा पड़ा है। कौन सा कमल किस पुरइन से निकला है, इस बात के विना जाने किस छन्द, सोरठा और दोहा का किस चौपाई से सम्बन्ध है, इस बात का पता नहीं चलता और सम्बन्ध विना जाने अभ्रान्त अर्थ हो नहीं सकता। तालाव में की पुरइन कहीं तो वहीं पर फूल दे देती है और कहीं भीतर दूर जाकर फूल देती है, कहीं दूसरी-दूसरी पुरइनों से उलझती चली जाती है। अर्थ करनेवालों को इसकी जानकारी की बड़ी आवश्यकता है। स्थान स्थान पर यथाशक्ति इसे दिखाने का प्रयत्न किया जायगा।

यथा : इन चार सोरठों : कमलों : की पुरइन अयोध्या काण्ड से आई है। इसी वात को दिखलाने के लिए कवि ने इन सोरठाओं में 'वन्दौं' पद नहीं दिया, किसी में वन्द्य का नाम भी नहीं है। इन त्रुटियों की पूर्ति टीकाकारों को अन्दाज से करनी पड़ती है। इससे मतभेद भी होता है और अर्थ में संशय रह ही जाता है। अवधवासियों की उपासना का नियम है कि पञ्चदेव की उपासना करके उनसे रामभक्ति माँगते हैं। तदनुसार चित्रकूट प्रकरण में पुरवासी पञ्चदेव का पूजन करते हैं और विनय करते हैं। यथा : करि मज्जन पूजहिं नरनारी। गनप गौरि त्रिपुरारि तमारी। रमा रमन पद वंदि वहोरी। विनवहिं अंजुलि अंचल जोरी। श्रीगोस्वामीजी की भी अवध वासियोंवाली उपासना है। अतः ये भी पञ्चदेव की अञ्जलि जोड़कर वन्दना करते हैं। वन्दना यहाँ पर पुरइन से ली जायगी तथा जहाँ वन्द्य का नाम नहीं है, उनकी

पहिचान भी इसी पुरइन : चौपाई : से होगी। यह पुरइन अयोध्याकाण्ड से भीतर ही भीतर चली आई है और इसने चार फूल वालकाण्ड के आदि में दिये। उनमें से पहिला यह है।

गणनायक वहुत हैं, इसलिए करिवरवदन विशेषण देकर उनकी प्रधानता दिखलाई। ये ऐसे दयालु हैं कि विना करणी-करतूत के केवल स्मरणमात्र से कृपा करते हैं, इसीलिए 'अनुग्रह' पद दिया। श्रीग्रन्थकार को अपने वुद्धिवल का भरोसा नहीं है। यथा : निज वुधिवल भरोस मोहि नाहीं। सकल कला सव विद्या हीनू। इसलिए वुद्धिराशि शुभगुणसदन गणनायक के चरणों की वन्दना करके साञ्जलि होकर अनुग्रह के लिए विनय करते हैं, जिससे रघुपति की अथाह गुणगाथा के वर्णन की सिद्धि प्राप्त हो।

वुद्धिमान् को यदि शुभ गुण न हो तो वह वुद्धि अनर्थकारिणी होती है, अतः 'वुद्धि राशि शुभगुन सदन' कहकर 'मुद मंगल दाता' कहा, गणनायक कहकर प्रभुता द्योतित की और 'जेहि सुमिरत सिधि होय' कहकर 'वरदायक देव' वतलाया। सोरठा छन्द से ही वालकाण्ड प्रारम्भ करके सोरठा से ही समाप्ति की, क्योंकि इसमें मात्राओं का वृद्धिक्रम है।

यह सोरठा छन्द है। इसके प्रत्येक दल में २४ मात्राएँ होती हैं। पहिले और तीसरे चरणों में ११ मात्राएँ और दूसरे तथा चौथे चरणों में १३ मात्राएँ होती हैं। इसके सम चरणों में जगण ।ऽ। का निषेध है, और उनके आदि के त्रिकल के पश्चात् दो गुरु नहीं आते। 'णो नः' प्रा. प्र. १०.५। इस सूत्र से गणनायक के ण को न हो गया और गणनायक रूप सिद्ध हुआ।

सो. मूक होइ वाचाल, पंगु चढ़ै गिरिवरगहन।
जासु कृपा सो दयाल, द्रवौ सकल कलिमलदहन ॥२॥

अर्थ : जिनकी कृपा से गूंगा अच्छी तरह से वोलने लगता है और लंगड़ा दुर्गम पहाड़ पर चढ़ जाता है, वे कलियुग के सब पापों के जलानेवाले दयालु कृपा करें।

व्याख्या : यहाँ वन्द्य का नाम ही नहीं है। अतः गुणों से तथा पुरइन के वल से वन्द्य का ग्रहण करना है। मूकं करोति वाचालं पङ्गुं लंघयते गिरिम्। यत्कृपा तमहं वन्दे परमानंदमाधवम्। सो यहाँ : आदित्यानामहं विष्णु : विष्णु नामक आदित्य की वन्दना है। मनुष्य मूक और पङ्गु रूप ही उत्पन्न होता है। दिन-रात करनेवाले, छः ऋतु वनानेवाले, काल के नियामक सूर्य नारायण की कृपा से, समय पाकर मनुष्य वाचाल और गिरिलंघन में समर्थ होता है, परिशेष न्याय से भी आदित्य का ही होना प्राप्त है। विनय में इनका स्तवन 'दलन दोष दुख दुरितरुजाली' कहकर किया गया है। यह तमारि द्युलोक की अग्नि हैं, काल और कर्म के प्रवर्त्तक हैं, कलिमल के जलानेवाले हैं। ग्रन्थकार कलिमलग्रसित प्राणियों में अपनी प्रथम श्रेणी समझते हैं। यथा : जे जनमे कलिकाल कराला। करतव वायस वेष मराला। चलत कुपंथ वेद मग छाड़े। कपट कलेवर कलिमल भाँड़े। तिनमह प्रथम रेख जग मोरी। अतः कलिमलदहन : आदित्य : की वन्दना करके कृपा चाहते हैं।

सो. नीलसरोरुहस्याम तरुन अरुन वारिजनयन ।
करौ सो मम उर धाम सदा छीरसागर सयन ॥३॥

अर्थ : जो नील कमल के समान श्याम हैं, जिनके नेत्र खिले हुए लाल कमल के समान हैं, जो सदा क्षीरसागर में शयन करते हैं, वे मेरे हृदय में निवास करें।

व्याख्या : यह रमारमण[1] की वन्दना है। इन्हें हृदय में धाम करने के लिए कर सम्पुटित करके वन्दना और प्रार्थना करते हैं। ये सदा योगनिद्रा में रहते हैं, यदि आजायँ तो सदा हृदय में बने रहें। ये रमारमण, द्विभुज, चतुर्भुज, अष्टभुज, सहस्रभुज सब कुछ हैं। अतः द्विभुज, चतुर्भुज का झगड़ा छेड़ना व्यर्थ है। इनका रामरूप से सर्वात्मना अभेद है। यथा : पयपयोधि तजि अवध बिहाई। जहँ सिय राम लखन रहे आई। जयराम रमारमनं समनं। इत्यादि : द्वि चत्वारिषडष्टाऽऽसां दश द्वादश षोडश। अष्टादशामी कथिता हस्ताः शंखादिभिर्युताः। सहस्रान्तास्तथा तासां वर्ण-वाहनकल्पना। रामतापनीये। दो, चार, छ, आठ, दश, बारह, सोलह तथा अठारह हाथ शंखादि से युक्त कहे गये हैं। सहस्र भुजाएँ भी मानी गई हैं। इसी भाँति वर्ण और वाहन की कल्पना है। श्यामस्वरूप स्वभाव से ही सोहावन, मङ्गलमय तथा अतिपावन-पावन हैं, अरुण वारिज नयन, प्रणत भय मोचन हैं, यथा :

स्याम सरूप सुभाय सोहावन। मंगलमय अति पावन पावन[2] ॥
भुजप्रलंब कंजारुनलोचन। स्यामलगात प्रनत भय मोचन ॥

इस रूप और रामरूप में एकदम अभेद है। इसलिए ग्रन्थकार हृदय में बसाना चाहते हैं। 'शषोः सः' प्रा. प्र. २.४३ से शकार का सकार आदेश हुआ। श्याम शब्द का रूप स्याम हो गया।

सो. कुंद इंदु सम देह उमारमन करुनाअयन।
जाहि दीनपर नेह करौ कृपा मर्दन मयन ॥४॥

अर्थ : कुन्द और चन्द्र के समान शरीरवाले, उमा के पति, करुणा के घर जिनकी दीनजनों पर प्रीति रहती है, सो काम के मर्दन करनेवाले कृपा करो।

व्याख्या : यह अर्धनारीश्वर[3] शिवजी की वन्दना है, इसलिए कुंद इंदु सम देह कहा। कुंद की भाँति उज्ज्वल, मृदु और सुगन्धित उमा की देह और इन्दु की भाँति उज्ज्वल और अमृतस्रावी शङ्कर भगवान् की देह है। करुणा के तो मानो घर ही हैं, दीनजन को हाथ जोड़े देख नहीं सकते। यथा : औढरदानि द्रवत पुनि थोरे। सकत न देखि दीन कर जोरे। मदन के मर्दन करनेवाले हैं। इनकी कृपा होने से काम की बाधा न होगी। जगदम्बिका भी करुणाअयन तथा मर्दनमयन हैं, यथा :

---

१. 'एतन्नानावताराणां निधानं बीजमव्ययम्।' भागवते। ये ही नाना अवतारों के निधान अव्यय बीज हैं।

२. स्याम सरीर सुभायँ सुहावन। सोभा कोटि मनोज लजावन। यह पाठ भी मिलता है। इसके अनुरूप अर्थ कर लेना चाहिए।

३. अजा अनादि शक्ति अविनाशिनि। सदा संभु अरधंग निवासिनि।

करुणातरंगिनी कृपातरंगमालिके : क० रामा० ।
हमरे जान सदाशिव योगी । अज अनवद्य अकाम अभोगी ॥
जौ मैं शिव सेएउं अस जानी । प्रीति समेत करम मन बानी ॥
तौ हमार पन सुनहु मुनीसा । करिहैं सत्य कृपा निधि ईसा ॥

इस भाँति गौरीत्रिपुरारि की वन्दना हुई । पञ्चदेव की वन्दना करके गुरुदेव को वन्दना करते हैं :

सो. वंदौं गुरपद कंज, कृपासिंधु नररूप हर ।
महामोह तमपुंज, जासु वचन रविकरनिकर ॥५॥

अर्थ : मैं गुरु जी के चरण कमलों की वन्दना करता हूँ, जो कृपा समुद्र और नर रूप में हर हैं । महा मोहरूपी अन्धकार के समूह के लिए जिनके वचन सूर्य की किरणों के समान हैं ।

व्याख्या : इस सोरठा में 'वन्दौं' स्पष्ट कहा, अतः उस पुरइन का यह सोरठा : कमल नहीं हैं । यहाँ पुरइन सन्निकट है 'वन्दौं गुरुपदपदुम परागा' । बहुत लोग यहाँ 'हरि' पाठ मानते हैं, हरि और हर में कोई भेद नहीं है । कहा है 'उभयोः प्रकृति एका प्रत्ययभेदात्पृथग्वत् भाति । कलयति कश्चिन्मूढो हरिहरभेदं विना शास्त्रम्' दोनों की प्रकृति एक है । प्रत्यय भेद से अलग की भाँति मालूम होते हैं । कोई मूढ ही हरिहर में भेद विनाशास्त्र की सम्मति के मानता है । अथवा हरिहर भेदरूपी विनाश के अस्त्र को स्वीकार करता है । यहाँ तुकान्त के ध्यान से तथा प्रसङ्गार्थ के विचार से 'हर' पाठ माना गया है । गुरुजी नररूप में साक्षात् कृपासिन्धु हर हैं । यथा : वन्दे बोधमयं नित्यं गुरुं शङ्कररूपिणम् । शंकर भगवान् ने स्वयं कहा है 'सुनु गिरिराजकुमारि भ्रमतम रविकर वचन मम' यहाँ भी ठीक वही बात कह रहे हैं 'महामोह तमपुंज जासु वचन रविकर निकर' । इस विशेषण से गुरु शब्द का अर्थ भी कह दिया । यथा : गुकारस्त्वन्धकारस्तु रुकारस्तु निरोधकः । 'गु' शब्द का अर्थ है अन्धकार और 'रु' उसका रोकनेवाला है ।

यहाँ गुरु के लिए गुर शब्द आया है । यह अशुद्ध नहीं है । 'अन्मुकुटादिषु' प्राकृत प्रकाश का एक सूत्र है । इससे उकार का अकार हो गया ।

वंदौ गुर पद पदुम परागा । सुरुचि सुवास सरस अनुरागा ॥
अमिअ मूरिमय चूरनु चारू । समन सकल भव रुज परिवारू ॥१॥

अर्थ : गुरु चरण कमल की धूलि की वन्दना करता हूँ, जो स्वाद से सुन्दर, गन्ध से सुन्दर और अनुराग से सरस है । अमृतमय जड़ी : सञ्जीवनी बूटी : का सुन्दर चूर्ण है, संसार के रोगों के परिवार को दूर करनेवाला है ।

व्याख्या : पराग : पुष्प की धूलि : में तीन गुण होते हैं । १. सुरुचि २. सुवास और ३. सरसता । रुचि स्वाद को कहते हैं । यथा : सुचि सुरसरि रुचि निदरि सुधाहू । और वास गन्ध को कहते हैं । मकरन्द के कारण पराग में स्वाद, गन्ध और रस का प्रवेश होता है । चरण कमल की मकरन्द अनुराग है । यथा : पदकमल

परागा रस अनुरागा मम मन मधुप करें पाना। इसी कारण गुरुपदरज में सुरुचि सुवास और सरसता है।

अमिअ मूरि : अमृतमय बूटी : कहकर 'स्वाद' कहा। अमिअ मूरि चूर्ण से शारीरिक रोग के परिवार का नाश होता है और इस परागरूपी चूर्ण से भवरोग : मानस रोग : के परिवार का नाश कहते हैं। यह श्रीरामचरितमानस मानस चिकित्सा का अपूर्व ग्रन्थ है। यथा : भवभेषज रघुनाथ जस। इसलिए पहिले चूर्ण का ही निरूपण किया। निदान प्रकरण उत्तरकाण्ड में है। यथा : 'मोह सकल व्याधिन्ह कर मूला। तेहि ते पुनि उपजें बहु सूला।' से लेकर 'एक व्याधि बस नर मरहिं ए असाधि बहु व्याधि। पीडहिं संतत जीव कहुँ सो किमि लहै समाधि।' तक। समाधि अवस्था ही स्वस्थावस्था है। इस अमिअ मूरिमय चूर्णरूपी गुरुपद पद्मपराग के सेवन से स्वास्थ्य लाभ होता है। मानसरोग की शान्ति के लिए औषधि भी मानसिक ही होनी चाहिए। अतः यह पराग भी मानसिक ही है। इससे सम्पूर्ण भवरोग नष्ट होते हैं।

यह चौपाई छन्द है, इसी को पुरइन कहा है, छन्द, सोरठा, दोहा इसीके कमल हैं। इस चौपाई छन्द के प्रत्येक चरण में सोलह मात्राएँ होती हैं और अन्त में जगण ।ऽ। या तगण ऽऽ। नहीं आते। जैसे 'वंदौं गुरुपद पदुम परागा' में ऽऽ।।।।।।।।ऽऽ सोलह मात्राएँ आईं। यहाँ चूर्ण के लिए 'चूरनु' शब्द आया है। विप्रकर्षः प्रा० प्र० ३.५९ इस सूत्र से चूर्ण का चूरन रूप हुआ। 'उच्च स्वमोः' इस सूत्र से प्रथमा और द्वितीया के एकवचन में अन्त्य अकार को 'उ' आदेश होता है। सो चूर्ण का चूरनु हो गया। 'इदृष्यादिषु' प्रा० प्र० १.२८ तथा 'क ग च ज त द प य वां प्रायो लोपः' प्रा० प्र० २.२ इन सूत्रों से अमृत का अमिअ रूप हुआ।

सुकृत संभुतन विमल बिभूती। मंजुल मंगल मोद प्रसूती॥
जन मन मंजु मुकुर मल हरनी। किये तिलकु गुनगन बस करनी॥२॥

अर्थ : यह पुण्यरूपी शम्भु के शरीर के लिए निर्मल विभूति है और सुन्दर मङ्गल मोद की जननी है, जन के मन रूपी सुन्दर दर्पण के मल को हरण करनेवाली है और तिलक करने से गुणगण को वश करती है।

व्याख्या : सुकृत : पुण्य : को ईप्सित फलदाता होने से शम्भु कहा। यथा : बंदि पितर सुर सुकृत संभारे। जो कुछ पुन्य प्रभाव हमारे। तौ सिव धनुष मृनाल की नाईं। तोरहुँ राम गनेस गोसाईं। शम्भु का शृङ्गार विभूति है। यथा : सिवहिं संभुगन करहिं सिंगारा। जटा मुकुट अहि मौर संवारा। कुंडल कंकन पहिरे व्याला। तन विभूति पट केहरिछाला। इसी भाँति विना गुरुपदधूलि के सुकृत का शृङ्गार नहीं होता। या यों कहिए कि विना विभूतिलेप के शङ्कर नहीं तथा विना गुरुचरण रजलेप के सुकृत ही नहीं। विभूति से मङ्गल सुगन्धि निकलती है। यहाँ मोद शब्द श्लिष्ट है। इसका अर्थ आनन्द भी है, सुगन्ध भी है। भाव यह है कि गुरुपदरज से जब सुकृत शृंगारित होता है, तो सुगन्ध की भाँति चतुर्वर्ग का आनन्द दूर तक फैलता है। इस भाँति 'सुवास' कहकर अब 'सरस' कहेंगे।

प्राचीन काल में जब शीशे का प्रचार नहीं था तब लोहे का दर्पण बनता था। उसे ऐसा माँज देते थे कि उसमें मुँह दिखलाई पड़ता था। उसमें मुर्चा न लग जाय इसलिए सरस भस्म से उसे माँजा जाता था। यहाँ भक्त का मन सुन्दर दर्पण है। उसे अनुराग से सरस गुरुपदरज द्वारा निर्मल बनाया जाता है। सो मन मुकुर के निर्मल बनाने के लिए, गुरुचरण का सरस रज ही साधन है। वस्तु के रूप का दर्शन तो केवल नेत्रों से और उजेले में हो जाता है पर आत्मदर्शन के लिए निर्मल मुकुर की भी आवश्यकता पड़ती है। यथा : मुकुर मलिन अरु नैन विहीना। रामरूप देखहिं किमि दीना। अतः आत्माराम के दर्शन के लिए श्री ग्रन्थकार मन मुकुर को निर्मल कर रहे हैं।

इस सरस रज में और भी गुण हैं। यह केवल दोषापनयन ही नहीं गुणाधान भी करता है। तान्त्रिक लोग वशीकरण तिलक बनाते हैं, जिसे लगाने से देखनेवाले मोहित हो जाते हैं, इसी भाँति इस सरस रज का तिलक लगाने से गुणगण वश में आजाते हैं अथवा जिस भाँति राजतिलक होने से सेना तथा प्रजागण वश हो जाते हैं। यथा : जे गुरु चरन रेनु सिर धरहीं। ते जनु सकल विभव वस करहीं। भाव यह कि सच्चे गुरुभक्त के लिए अन्य किसी साधन की अपेक्षा नहीं है। गुरुभक्ति से ही सब कुछ हो जाता है। गुरुभक्ति से अब नेत्र चिकित्सा भी कहते हैं।

श्रीगुरपद नख मनिगन जोती। सुमिरत दिव्य दृष्टि हिय होती।
दलन मोह तम सो सुप्रकासू। वड़े भाग उर आवइ जासू ॥३॥

अर्थ : श्रीगुरु के चरणनखरूपी मणिगण की ज्योति के स्मरण से हृदय में दिव्य दृष्टि उत्पन्न होती है। वह सुन्दर प्रकाश : ज्योति : बड़े भाग्य से जिसके हृदय में आवे, उसके मोहान्धकार का नाश करनेवाला होता है।

व्याख्या : श्रीगुरुपदरज से मन मुकुर निर्मल हुआ, अब दर्शन के लिए नेत्र और प्रकाश की आवश्यकता है। गुरुभक्ति से यह आवश्यकता भी पूर्ण हो जायेगी। श्रीगुरु के पदनख ही मणिगण हैं। उनकी ज्योति : अर्थात् ठण्ढी रोशनी : के स्मरण से हृदय में दिव्य[1] दृष्टि होती है। मणिगण की ज्योति के देखने से नेत्र में ठण्ढक आती है और दृष्टि को लाभ पहुँचाता है, पर गुरुचरण नखरूपी मणिगण ऐसे हैं कि इनके स्मरण से दिव्य दृष्टि उत्पन्न होती है और मोहान्धकार का भी नाश हो जाता है। ठण्ढी रोशनी होने से ही सु-प्रकाश कहा, हृदय की दृष्टि होने से दिव्य दृष्टि कहा, उपाय की सरलता दिखाने के लिए 'सुमिरत' कहा। सूर्य, चन्द्र का प्रकाश तो अभागे को भी सुलभ है, पर मणिगण का प्रकाश तो किसी बड़े भाग्यवान् को ही प्राप्त

---

१. 'ऋतंभरा तत्र प्रज्ञा' यो० सू-१-४८। ऋतं सत्यं बिभर्ति कदाचिदपि न विपर्ययेणाच्छाद्यते सतंभरा प्रज्ञा। तस्मिन् सति भवति इत्यर्थः। तस्माच्च प्रज्ञालोकात् सर्वं यथावत्पश्यन्योगी प्रकृष्टं योगं प्राप्नोति। ऋतं भरा प्रज्ञा में सत्य ज्ञान होता है विपर्यय से कभी नहीं ढकता। यह गुरु चरणों में समाधि होने पर होती है। उस प्रज्ञालोक दिव्य दृष्टि से सब कुछ ठीक ठीक देखता हुआ प्रकृष्ट योगी हो जाता है।

होता है। इसी भाँति गुरु चरणनख का प्रकाश सबके हृदय में नहीं आता, किसी भाग्यवान् के हृदय में आता है। अर्थात् श्रीगुरुपदनख मणिगण का स्मरण अभागा नहीं कर सकता, किसी भाग्यवान् को ही उनके स्मरण-ध्यान की वुद्धि मन में आती है। दृष्टि होने पर भी यदि आँख न खुले तो दिखाई न पड़े, इसलिए कहते हैं :

उघरहिं विमल विलोचन हीके। मिटहिं दोष दुख भव रजनी के॥
सूझहिं रामचरित मनिमानिक। गुपुत प्रगट जहँ जो जेहिं खानिक॥४॥

अर्थ : हृदय के निर्मल नेत्र खुल जाते हैं और संसाररूपिणी रात्रि के दोष और दुःख मिट जाते हैं। रामचरित्ररूपी मणिमाणिक्य, गुप्त और प्रकट जहाँ और जिस खानि के हैं, दिखलाई पड़ने लगते हैं।

व्याख्या : सभी के हृदय में आँखें होती हैं, पर वे बन्द रहती हैं, विना गुरु कृपा खुलती नहीं। 'श्रीगुरु पदनख मनिगन जोती' जिस भाग्यवान् के हृदय में आती हैं उसीकी आँखें खुल जाती हैं। और रात्रि के दोष दुःख भी मिट जाते हैं। भाव यह कि रात्रि नहीं जाती, वह तो विना ज्ञानरवि के उदय हुए नहीं जा सकती। यथा : जासु ज्ञानरवि भवनिसि नासा। पर उससे जो दोष हैं और उन दोषों के कारण जो दुःख है, वह मिट जाता है। रात्रि को रज्जु में सर्प का भ्रम होता है, यह रात्रि का दोष है और उस भ्रम से भय उत्पन्न होता है, लोग गिर पड़ते हैं, चोट खा जाते हैं, यह दुःख है, सो गुरुपदनख मणिगण ज्योति के आजाने से दोनों मिट जाते हैं।

तब रामचरित्र मणिमाणिक्य सूझने लगते हैं। मणिमाणिक्य भी पहिले से ही हैं। मणि सर्पादि के शिर में हैं, माणिक्य पर्वत में हैं, दिखाई नहीं पड़ते। इसी भाँति रामचरित्र आचार्यों के पास हैं, वेद पुराणों में हैं, आवरण शक्ति से घिरे हुए हैं, दिव्य दृष्टि की अव्याहत गति होती है, हृदय की आँखें जब खुलें तब दिखाई पड़ें। रामचरित्र में कुछ चरित्र तो प्रकट हैं, कुछ गुप्त हैं। यथा : 'सोइ लरिकाई मोसन करन लगे पुनि राम' यह प्रकट चरित है और 'तेहि कौतुक कर मरम न काहू। जाना अनुज न मातु पिताहू' यह गुप्त चरित है। उसे : दिव्य दृष्टिवाले को : सब दिखाई पड़ने लगते हैं। अतः ऐसी शङ्का न करनी चाहिए कि जिस मरम को अनुज और मातु पिता ने न जाना उसे तुलसीदास ने कैसे जाना ? ग्रन्थकार का स्पष्ट उत्तर है कि गुरु के प्रसाद से जाना।

मणिमाणिक्य को खान होती हैं। सामान्य मनुष्य को तो काँच और मणि पहिचानना कठिन हो जाता है पर यह मणि या माणिक्य किस खानि का है ? यह सर्पमणि है, या सूकरमणि है ? यह पन्ना के खानि का हीरा है या दूसरे खानि का ? इन सबकी पहिचान तो जौहरी की ही आँखें कर सकती हैं। श्रीगुरुपद नखमणिज्योति से इसको भी पहिचान हो जाती है। यथा : पावन पर्वत वेद पुराना। राम कथा रुचिराकर नाना। मर्मी सज्जन सुमति कुदारी। ज्ञान विराग नयन उरगारी। श्रीरामचरित मानस में भी चार खानि की कथाएँ चार घाट से कही गई हैं। श्रीगुरुकृपा से ही उनकी पहिचान होती है, पर इसके लिए नेत्र के संस्कार की भी आवश्यकता पड़ती है। अतः कहते हैं :

दो. जथा सुअंजन अंजि दृग, साधक सिद्ध सुजान।
कौतुक देखहिं सैल वन, भूतल भूरि निधान ॥१॥

अर्थ : जिस प्रकार साधक और सुजान सिद्ध, उत्तम अञ्जन को नेत्रों में आँज कर पर्वत, वन और भूमि में बड़े बड़े खजानों का तमाशा देखते हैं।

व्याख्या : गुरुभक्ति से दिव्य दृष्टि मिली, मोहान्धकार दूर हुआ, हृदय की आँखें खुलीं, भव रजनी के दोष दुःख मिटे, गुप्त प्रकट रामचरित्र मणिमाणिक्य भी सूझने लगे। उनका हाल मालूम होने लगा। परन्तु उन चरित्रों के साक्षात्कार के लिए संस्कार विशेष की आवश्यकता पड़ती है। तान्त्रिक लोग सिद्धाञ्जन वनाते हैं, जिसके लगाने से व्यवधान दूर हो जाता है। निधानों का साक्षात् दर्शन होता है। सिद्धाञ्जन की आवश्यकता सिद्ध साधक दोनों को रहती है। इसी भाँति गुरु पद रज की भी दोनों को आवश्यकता है, इसके विना रामचरित का साक्षात्कार नहीं हो सकता। जिस भाँति निधान शैल, वन और भूतल में रहता है उसी भाँति रामचरित भी शैल, वन या भूतल से सम्बद्ध है। शैल, यथा : पावन पर्वत वेद पुराना। राम कथा रुचिराकर नाना। वन, यथा : सीतारामगुणग्रामपुण्यारण्यविहारिणौ। वन्दे विशुद्धविज्ञानौ कवीश्वरकपीश्वरौ। भूतल, यथा : अति अपार जे सरित वर जौ नृप सेतु कराहिं। चढ़ि पीपीलिकउ परम लघु विनु श्रम पारहि जाहिं। मुनिन प्रथम हरि कीरति गाई। तेहि मग चलत सुगम मोहि भाई। अथवा, धन्य भूमि वन पंथ पहारा। जहँ जहँ नाथ पाँव तुम धारा। शैल का चरित्र शैल का निधान है, वन का चरित्र वन का निधान है और भूतल का चरित्र भूतल का निधान है। भूतल पर वहुत चरित्र किया इसलिए 'भूतल भूरि निधान' कहा। यह शङ्का कोई न करे कि रामचरित्र तो भूतकाल का विषय है, उसका साक्षात्कार इस समय कैसे हो सकता है? योगियों[1] के लिए अतीत और अनागत सभी वर्तमान हैं। श्रीवाल्मीकि[2] जी ने समाधि में सव लीलाएँ स्वयं देखीं।

यह दोहा छन्द है। इसके प्रत्येक दल में २४ मात्राएँ होती हैं। यह सोरठा का उलटा है। प्रथम और तृतीय चरणों में १३ मात्राएँ होती हैं, उनके आदि में जगण ।ऽ। न होना चाहिए, नहीं तो वह सुन्दर नहीं रह जाता, उसकी चाण्डालिनी संज्ञा हो जाती है। दूसरे और चौथे चरण में ११ मात्राएँ रहती हैं यह दोहा छन्द का अति संक्षेप वर्णन है।

गुर पद रज मृदु मंजुल अंजन। नयन अमिअँ दृग दोष विभंजन॥
तेहि करि विमल विवेक विलोचन। वरनउँ रामचरित भव मोचन ॥१॥

---

१. अतीतानागतं स्वरूपतोऽस्त्यध्वभेदाद् धर्माणाम्। यो० सू० ४.१२। भूत—और भविष्य स्वरूप से वर्तमान हैं; धर्मों के अध्व : रास्ते : के भेद से।

२ ततः पश्यति धर्मात्मा तत्सर्वं योगमास्थितः। पुरा यत्तत्रनिर्वृत्तं पाणावामलकं यथा। जो जो पहिले हुआ था वह सब उस धर्मात्मा ने समाधि में स्थित होकर इस तरह देखा, जैसे हाथ में लिया हुआ आँवला।

अर्थ : गुरु के चरण की धूलि मृदु और सुन्दर अञ्जन है, आँखों के लिए अमृत और दृष्टि के दोषों को दूर करनेवाली है। उसी से विवेकरूपी नेत्रों को निर्मल करके, मैं संसार छुड़ानेवाले रामचरित का वर्णन करता हूँ।

व्याख्या : प्रायेण अञ्जन सुन्दर नहीं होता और आँखों में लगता है, पर गुरुपदरजरूपी अञ्जन सुन्दर भी है और आँखों में लगता नहीं, आँखों के लिए अमृत है, ठंढक पहुँचाता है, दृष्टि को सदा स्थिर रखता है, घटने नहीं देता! यदि दृष्टि में दोष हो तो उसे भी दूर करता है। दोषापनयन भी करता है, गुणाधान भी करता है।

जिसे हृदय की आँख कहा गया है, वह विवेक है। इस अञ्जन से विवेक रूपी नयन निर्मल होता है, अतः इसे लगाकर रामचरित का वर्णन करता हूँ। क्योंकि रामचरित भवमोचन है, संसार से छुड़ानेवाला है, इसे बहुत सँभालकर वर्णन करना चाहिए, थोड़ा सा भी अविवेक रह जाने से वर्णन करने में अर्थ का अनर्थ हो जायगा। यह अधिक अभेद रूपक है।

समष्टि वन्दना

वंदौं प्रथम महीसुर चरना। मोह जनित संसय सब हरना॥
सुजन समाज सकल गुनखानी। करौं प्रनाम सप्रेम सुबानी॥२॥

अर्थ : पहिले ब्राह्मण के चरणों की वन्दना करता हूँ, जो मोह से उत्पन्न सब संशयों के हरण करनेवाले हैं। सज्जनों का समाज सब गुणों की खान है, मैं प्रेम सहित, सुन्दर वाणी में उसको प्रणाम करता हूँ।

व्याख्या : सुर वन्दना के पश्चात् प्रथम महीसुर की वन्दना करते हैं। गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवो महेश्वरः। इसलिए गुरु की गणना देवताओं में है। गुरु के साथ ही ब्राह्मण की भी वन्दना होनी चाहिए। क्योंकि 'कवच अभेद विप्रगुरु पूजा' सो कवच में भेद करना उचित नहीं। मनुष्य कोटि में प्रथम महीसुर की वन्दना करते हैं, ऐसे ही भ्रातृवर्ग में प्रथम भरतलाल की वन्दना करेंगे। यथा : बंदौं प्रथम भरत के चरना। ब्राह्मण, रामभक्ति के प्रथम साधन हैं, इस भाँति भी प्रथम वन्दना करना प्राप्त है। यथा : प्रथमहि विप्रचरन अति प्रीती।

यहाँ यह संशय न करना चाहिए, कि 'महीसुर चरण' के साथ कमल का प्रयोग क्यों नहीं किया? क्योंकि अन्यत्र कमल का प्रयोग है। यथा : विप्रचरन पंकज अति प्रेमा। यहाँ न करने का कारण यह है कि प्रथम वन्दना से चरण की प्रधानता द्योतित हो चुकी और विशेषण के साथ कमल की सार्थकता भी नहीं है। विशेषण है 'मोह जनित संशय सब हरना' मोह हटने पर भी छाया रूप से कुछ संशय रह जाता है। यथा : अजहूँ कछु संशय मन मोरे। सो समग्रसंशय का हरण करना ब्राह्मणों का काम है। श्रुतिभगवती कहती है कि विद्या ब्राह्मणों के पास[1] गई और कहा कि मेरी रक्षा करो मैं तुमलोगों की निधि हूँ। अतः ब्राह्मण अपनी

१ विद्या ह वै ब्राह्मणमाजगाम गोपाय मां शेवधिष्टेऽहमस्मि।

विद्या द्वारा निःशेष संशय का हरण करेंगे। अब समष्टि की वन्दना करते हैं। इस लोक में दो प्रकार की सृष्टि है, एक दैवी और दूसरी आसुरी। दैवी सृष्टि सज्जनों की है और आसुरी सृष्टि खलों की है। सो पहिले सज्जन समाज की वन्दना करते हैं यही समाज सब गुणों की खान है। यथा : सुनु मुनि साधुन के गुन जेते। कहि न सकहिं सारद श्रुति तेते। यहीं से गुणसमूह निकलकर संसार में फैले हुए हैं, जैसे संसार में जितनी धातुएँ हैं, वे सब खान से ही आई हुई हैं। यथा : मति कीरति गति भूति भलाई। जब जेहीं जतन जहाँ जेहिं पाई। सो जानब सतसंग प्रभाऊ। लोकहुँ वेद न आन उपाऊ। अतः इस समाज को श्री ग्रन्थकार सप्रेम : मनसा : सुवाणी : वाचा : प्रणाम करते हैं : कर्मणा ।

साधु चरित सुभचरित कपासू। निरस बिसद गुनमय फल जासू ॥
जो सहि दुख परछिद्र दुरावा। बंदनीय जेहिं जग जस पावा ॥३॥

अर्थ : सज्जनों का शुभ चरित कपास के चरित के समान है, जिसका फल नीरस, उज्ज्वल और गुणमय होता है, जो दुःख सहकर दूसरे के दोषों को ढकता है और जो वन्दनीय है, जिससे संसार को यश मिला है।

व्याख्या : कपास का फल नीरस होता है, उज्ज्वल होता है और उसमें महीन महीन रेशों को छोड़कर और कुछ होता नहीं। मूल पाठ में 'गुण' शब्द श्लिष्ट दिया हुआ है, उसका अर्थ रेशा भी होता है। साधुचरित के पक्ष में उसका अर्थ गुण होगा और कपासचरित के पक्ष में उसका अर्थ रेशा : अंशु : लेना होगा। साधु-चरित का फल : तात्पर्य : भी नीरस . विषय रस रूखा : उज्ज्वल और गुण मय होता है, उसमें सिवा गुण के और कुछ होता ही नहीं। इसी से कपास से उपमित किया।

इसी भाँति छिद्र शब्द भी श्लिष्ट है। छिद्र का अर्थ छेद भी है और दोष भी है। कपास पक्ष में उसका अर्थ : इन्द्रियों का : छिद्र होगा और साधु पक्ष में 'दोष' अर्थ होगा। भावार्थ यह कि कपास से रूई निकाली जाती है, उसे ओटा जाता है, धुना जाता है। उसका सूत बनाकर कपड़ा बुना जाता है, जिससे प्राणियों के छिद्र ढके जाते हैं। इसी भाँति साधु नाना यातनाएँ सहकर भी दूसरे के दोषों पर परदा डालते हैं। यही उपमा और उपमेय में समान धर्म हैं। अतः वन्दनीय हैं, इनके कारण मिथ्या संसार ने यश पाया। 'संसार' का अर्थ यह हुआ कि 'सम्यक् रूप से सार है जिसमें'। यथा : प्रमुदित हृदय सराहत भलभवसागर। जहँ उपजहिं अस मानिक बिधिबड़ नागर। : जानकी मङ्गल :

मुद मंगल मय संत समाजू। जो जग जंगम तीरथ राजू ॥
राम भगति जहँ सुरसरि धारा। सरसइ[1] ब्रह्म बिचार प्रचारा ॥४॥

---

१. कगचजतदपयवां प्रायो लोपः : प्रा. प्र. २-२ : और सर्वत्र लवराम् : प्रा. प्र. ३-३ : इन दोनों सूत्रों से सरस्वती के 'व' और 'त' का लोप हुआ और सरस्वती का 'सरसइ' रूप सिद्ध हुआ।

अर्थ : सन्तों का समाज आनन्द मङ्गलमय है, जो संसार में चलता-फिरता तीर्थराज : प्रयाग : है। जहाँ राम भक्ति गङ्गा की धारा है और ब्रह्म विचार का प्रचार सरस्वती है।

व्याख्या : सज्जन, साधु और सन्त समानार्थक शब्द हैं। कुछ महात्मा लोग इन शब्दों के अर्थों में कुछ बारीक : सूक्ष्म : भेद निकालते हैं, पर यहाँ उनका समानार्थक रूप में ही व्यवहार हुआ है। मुद मन के हर्ष को कहते हैं और मङ्गल उसी का बाहरी रूप है। सो सन्तसमाज में सदा मुद मङ्गल बना रहता है। शोक मोह का वहाँ काम नहीं। गंग अवनि थल तीन बडेरे। ते किये साधु समाज घनेरे। तीर्थीकुर्वन्ति तीर्थानि। साधु समाज ही तीर्थ को तीर्थ बनाता है, इसलिए उसे चलता फिरता : जंगम : तीर्थराज कहा।

रामभक्ति को गङ्गा की धारा कहकर भक्ति की प्रधानता कही। मेल तो यमुना और सरस्वती का भी हुआ, पर सब मिलकर गंगा ही हो गई। और ब्रह्म विचार की भाँति सरस्वती गुप्त हैं, अतः ब्रह्म विचार प्रचार की उपमा सरस्वती से दी।

विधि निषेधमय कलिमल हरनी। करम कथा रवि नंदिनि बरनी ॥
हरिहर[1] कथा विराजति बेनी। सुनत सकल मुद मंगल देनी ॥५॥

अर्थ : करने योग्य : विधि : और न करने योग्य : निषेध : कर्मों की कथा, जो कलिमल की हरण करनेवाली है, उसे यमुना : सूर्यपुत्री : रूप से वर्णन किया गया है। हरि : विष्णु : और हर : शिव : की कथा वेणी रूप से शोभित है, जो सुनते ही आनन्द मङ्गल की देनेवाली है।

व्याख्या : विधि, निषेध में ही समस्त कर्मकाण्ड का पर्यवसान है। इसी से मनुष्य की शास्त्रीया प्रवृत्ति हो जाती है, स्वाभाविकी प्रवृत्ति रुक जाती है। कलिमल हरणी कहने का यही कारण है। सूर्य से ही सब कर्मों का आरम्भ होता है। उनकी पुत्री यमुनाजी हैं, अतः उन्हें कर्मकथा से उपमित किया। प्रयागराज में तीनों पृथक पृथक् भी हैं फिर मिली भी हैं, इसी भाँति सन्तसमाज में तीनों काण्ड ज्ञान, कर्म और भक्ति पृथक् पृथक् भी शोभित हैं और मिलकर भी शोभित होते हैं।

तीनों नदियाँ मिलकर त्रिवेणी होती है। हरिहरकथा में कर्म, उपासना, ज्ञान तीनों चलते हैं, अतः हरिहर कथा को 'वेणी' कहा। गङ्गा श्वेत और यमुना श्यामा हैं दोनों की मिलकर सौभाग्यवती स्त्री के काले केश : मोतियों की लर से युक्त : की सी शोभा हुई। सूत में मोती पिरोए हुए हैं, वह नहीं दिखलाई पड़ता, इसी भाँति सरस्वती गुप्त हैं। वेणी मुद मङ्गल देनी है, इसी भाँति हरिहर कथा भी श्रवण मात्र से मुद मङ्गल देनी है।

बट बिस्वासु अचल निज धरमा। तीरथ राज समाज सुकरमा ॥
सबहि सुलभ सब दिन सब देसा। सेवत सादर समन कलेसा ॥६॥

अर्थ : अपने धर्म में अचल विश्वास ही अक्षयवट है और सुकर्म तीर्थराज

---

१. यहाँ अधिक तद्रूप रूपक है।

का समाज है। यह सब दिन सब देशों में सबको सुलभ है, आदर सहित सेवन करने से दुःखों का नाश करनेवाला है।

व्याख्या : जिस भाँति प्रयागराज में अक्षयवट है, उसी भाँति जङ्गम प्रयागराज में अचल स्वधर्म विश्वास है। जिस भाँति दिव्य अक्षयवट का नाश प्रलय में नहीं होता, उसी भाँति प्रलय उपस्थित होने पर भी स्वधर्म से साधु समाज का विश्वास नहीं उठता। जिस भाँति वट पत्र पर बाल मुकुन्द का निवास है, उसी भाँति स्वधर्म में भगवान् का निवास है। उस प्रयागराज का बड़ा समाज है। त्रिवेणीं माधवं सोमं भारद्वाजञ्च वासुकीम्। वन्देऽक्षयवटं शेषं प्रयागं तीर्थनायकम्। माधव, सोमेश्वर, महादेव और शेष प्रधान देव हैं तथा भारद्वाज, वासुकी आदि गौण देव हैं। इसी भाँति जङ्गम प्रयाग के समाज में प्रधान कर्म और गौण कर्म दोनों हैं।

तीर्थराज तो केवल अधिकारियों[1] को सुलभ हैं, फिर सब दिन सुलभ भी नहीं हैं, जब संयोग हो तब यात्रा होवे, पर जङ्गम तीर्थराज तो सबको सुलभ हैं और सब दिन सुलभ हैं। वह प्रयागराज देश परित्याग नहीं कर सकते, केवल अपने प्रान्त में सुलभ हैं। यथा : जिमि सिंघल वासिन्ह भयउ विधि बस सुलभ प्रयाग। पर यह तो जङ्गम होने के कारण सब देशों में आते जाते रहते हैं। जङ्गम तीर्थराज का यदि आदर के साथ सेवन किया जाय तो सद्यः क्लेशों का हरण करते हैं।

अकथ अलौकिक तीरथ राऊ। देइ सद्य फल प्रकट प्रभाऊ ॥७॥

अर्थ : यह तीर्थराज अकथनीय और अलौकिक है, तत्काल फल देता है। इसका प्रभाव प्रकट है।

व्याख्या : उस तीर्थराज का माहात्म्य शेषजी ने कहा है, जिसे प्रयाग-माहात्म्य कहते हैं, पर इसका माहात्म्य तो वे भी नहीं कह सकते। यथा : कहि सक न सारद शेष नारद सुनत पदपंकज गहे। अस दीनबन्धु कृपाल अपने भगत गुन निजमुख कहे। यह तीर्थराज अलौकिक है, क्योंकि इसका प्रभाव प्रकट है, तत्काल फल देता है, वह प्रयागराज तो मरने के बाद फल देता है। यथा : काशी विधि बसि तनु तजै हठि तनु तजे प्रयाग।

दो. सुनि समुझहिं जन मुदित मन, मज्जहिं अति अनुराग।
लहहिं चारिफल अछत तनु, साधु समाज प्रयाग ॥२॥

अर्थ : जो मनुष्य प्रसन्न चित्त से सुनकर समझते हैं, वे ही अति अनुराग से मानो मज्जन करते हैं और उन्हीं को इसी शरीर से धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारों फलों की प्राप्ति होती है।

व्याख्या : इस जङ्गम तीर्थराज में प्रसन्न चित्त होकर सुनना और समझना ही आदर पूर्वक मज्जन करना है। इसी से अविवेक का नाश होता है और अविवेक ही आपत्तियों का घर है। अविवेकः परमापदां पदः, 'चारि पदारथ भरा भंडारू'

---

१. जिनके दोउ कर दोउ चरण मनहु सुसंयत होय। विद्या तप अरु इन्द्रियहु लहै तीर्थ फल सोय। : प्र० चं :

भण्डार तो भरा हुआ है, पर जीते जी नहीं मिलेगा, मिलता है मरने के बाद, सो यहाँ तो चार फल की प्राप्ति शरीर रहते ही हो जाती है।

मज्जन फलु पेखिअ ततकाला। काक होहिं पिक बकउ मराला ॥
सुनि आचरज करै जनि कोई। सतसंगति महिमा नहि गोई ॥१॥

अर्थ : स्नान करने का फल तत्काल देखने में आता है कि कौवा तो कोयल, और बगले हंस हो जाते हैं। यह सुनकर कोई आश्चर्य न करे। सत्सङ्गति की महिमा छिपी नहीं है।

व्याख्या : 'मुद मंगलमय संत समाजू' कहा था, सो 'सुनि समुझहिं जन मुदित मन मज्जहिं अति अनुराग' इस दोहे तक मुदमय कहा, अब मङ्गलमय कहते हैं। काक और बक अमङ्गल हैं, सो क्रमशः पिक और हंस होकर मङ्गलमय हो जाते हैं। काक की वाणी करकस होती है और पिक की वाणी मधुर होती है, रूप दोनों का एक सा होता है। इसी भाँति बक अविवेकी दाम्भिक होता है और हंस विवेकी होता है, क्षीर नीर का विवरण करता है, पर रूप दोनों का एक सा होता है। भाव यह कि मज्जन से भीतरी परिवर्तन बड़ा भारी होता है, बाहर का स्वरूप तो वैसा ही बना रहता है। भुसुण्डिजी काक से पिक हो गये यथा : मधुर वचन बोलेउ तब कागा और बक से हंस स्वयं ग्रन्थकार हो गये, यथा : हंस कियो बक ते बलिजाउँ। पहिले कहा था 'देइ सद्य फल प्रकट प्रभाऊ' सो उसी की सार्थकता 'पेखिअ तत्काला' कहकर दिखलाते हैं। भाव यह कि इतना बड़ा परिवर्तन होता है और समय नहीं लगता। यहाँ अनुगुणालङ्कार है।

सद्यः कायापलट बड़े आश्चर्य की बात है, परन्तु सत्संग के लिए आश्चर्य नहीं है। आश्चर्य तो उसमें होता है, जो जानी हुई बात नहीं है और सत्सङ्ग की महिमा तो सब जानते हैं कि यह सद्यः फलद होता है। अब इसी का उदाहरण देते हैं।

वालमीक नारद घटजोनी। निज निज मुखनि कही निज होनी ॥
जलचर थलचर नभचर नाना। जे जड़ चेतन जीव जहाना ॥२॥

अर्थ : वाल्मीकि, नारद और अगस्त्यमुनि ने अपना अपना इतिवृत्त, अपने ही मुँह से कहा। जल में रहनेवाले, भूमि पर रहनेवाले और आकाश में विचरनें-वाले, जो नाना प्रकार के जड़ चेतन जीव संसार में हैं।

व्याख्या : वाल्मीकि, नारद और अगस्त्य ने अपने मुख से अपनी कथा कही। इसलिए अविश्वास को स्थान नहीं है। वाल्मीकिजी व्याध की जीविका करते थे और ऐसे अपढ़ थे कि राम-राम जप करने में असमर्थ थे। महात्मा को उन्हें मरा मरा का उपदेश देना पड़ा, सो वेद के समान हो गये। नारद जी ब्राह्मण की एक वृद्धा सेविका के पुत्र थे। उन्हें उसी जन्म में ध्यान में भगवद्दर्शन हुआ और दूसरे जन्म में साक्षात् ब्रह्मदेव के पुत्र हुए। अगस्त्य जी घट से उत्पन्न थे, इनका इतना प्रभाव बढ़ा कि रुष्ट होकर समुद्र का पान कर गये। इनसे ही मन्त्र लाभ कर

राम जी ने रावण को मारा। सो इन महात्माओं का इतना प्रभाव सत्सङ्ग के माहात्म्य से ही हुआ। वाल्मीकि का कर्म खोटा था, अगस्त्य जी का जन्म खोटा था और नारद जी नितान्त असहाय थे। इनकी इतनी महिमा सत्सङ्ग के प्रताप से हुई। अतः तीन उदाहरण दिये गये।

भाव यह कि जलचर, थलचर, नभचर के कथन से जीवमात्र का ग्रहण हुआ। उसमें भी केवल चेतन नहीं, जड़जीव का भी कल्याण सत्सङ्ग से हुआ। ऊपर के उदाहरणों से प्रादेश मात्र दिखलाया गया है।

मति कीरति गति भूति भलाई। जब जेहि जतन जहाँ जेहिं पाई ॥
सो जानव सतसंग प्रभाऊ। लोकहुँ वेद न आन उपाऊ ॥३॥

अर्थ : उनमें से बुद्धि, कीर्ति, गति, ऐश्वर्य और कल्याण को जब कभी, जिस किसी उपाय से, जहाँ कहीं, जिस किसी ने पाया है, उसे सत्सङ्ग का ही प्रभाव जानो। लोक में और वेद में दूसरा उपाय ही नहीं है।

व्याख्या : मति, कीर्ति, गति, भूति और भलाई कहने से श्रेय और प्रेय दोनों ही आगये। श्रेय मोक्ष का साधन है और प्रेय अभ्युदय का साधन है। अर्थात् श्रेय और प्रेय की प्राप्तिका सिवा सत्सङ्ग के दूसरा उपाय ही नहीं है। 'जव' से काल, 'जेहि जतन' से उपाय, 'जहाँ' से 'देश' और 'जेहिं' से अधिकारी कहा। भावार्थ यह कि सभी देश, सभी काल में, सभी के लिए, सभी उपायों से सत्संग द्वारा ही सिद्धि की प्राप्ति सम्भव है। लोक में तो सत्सङ्ग प्रसिद्ध ही है, अज्ञातार्थज्ञापक शास्त्र भी कोई दूसरा उपाय नहीं वतलाता।

जलचर, थलचरादि के साथ यथाक्रम मति, कीरति, गति आदि को लगाकर भी कुछ लोग अर्थ करते हैं। यथा : जलचर को मति की प्राप्ति, यथा : प्रभुहि विलोकहिं टरहिं न टारे। मन हरखित सब भये सुखारे। थलचर को कीर्तिकी प्राप्ति यथा : मोहि सहित सुभ कीरति तुम्हारी परम प्रीति जे गाइहैं। इत्यादि।

नभचर को गति की प्राप्ति यथा : अविरल भगति माँगि वर गीध गयउ हरिधाम।

जड़जीव को भूति की प्राप्ति यथा : परसि चरन रज अचर सुखारी। भये परमपद के अधिकारी।

चेतन को भलाई की प्राप्ति, यथा : ते सब भये परमपद जोगू। भरत दरस मेटेउ भवरोगू।

विनु सतसंग विवेक न होई। रामकृपा विनु सुलभ न सोई ॥
सतसंगत मुद मंगल मूला। सोइ फल सिधि सब साधन फूला ॥४॥

अर्थ : विना सत्सङ्ग के विवेक नहीं होता और वह विना हरिकृपा के प्राप्त नहीं होता। सत्संगति मुद मङ्गल का मूल है, वही फल सिद्धि है और सब साधन फूल हैं।

व्याख्या : विवेक नेत्र है। यथा : तेहि करि विमल विवेक विलोचन। विना विवेक का प्राणी अन्धा है। सो विवेक विना सत्सङ्ग के होता ही नहीं। यद्यपि सत्सङ्ग सबको सुलभ सब दिन सब देशों में है, सन्त सन्निकट ही रहते हैं पहिचान में नहीं आते। सदा अपन पौ रहहिं दुराये। सब विधि कुसक कुवेष बनाये। राम कृपा हो तो सत्सङ्ग हो सकता है। इस भाँति रामकृपा को साधन और सत्सङ्ग को साध्य कहा। अर्थात् सत्सङ्ग का अमोघ फल है। फल सिद्धि कहने के कारण, मूल शब्द का अर्थ लक्षणा से बीज करना होगा। बीज से अङ्कुर, डार, पात, फूल, फल होता है और फल में फिर बीज होता है। भावार्थ यह कि बीज भी सत्सङ्ग और फल भी सत्सङ्ग, अन्य साधन डार, पात, फूल हैं। यथा : सात स्वर्ग अपवर्ग सुख धरिअ तुला इक अंग। तूल न ताहि सकल मिलि, जो सुख लव सतसंग। ऊपर कह भी आये हैं कि 'मुद मंगलमय संत समाजू'। सो इससे उपक्रम करके 'सतसंगति मुद मंगल मूला' से उपसंहार कर रहे हैं।

सठ सुधरहिं सतसंगति पाई। पारस परस कुधातु सोहाई ॥
विधि[1] वस सुजन कुसंगति परहीं। फनि मनि सम निज गुन अनुसरहीं ॥५॥

अर्थ : शठ भी सत्सङ्गति पाकर सुधर जाते हैं, पारस के छू जाने से लोहा सुन्दर धातु हो जाता है। यदि दैवयोग से सज्जन कुसङ्गति में पड़ जाते हैं, तो वे साँप की मणि के समान अपने गुणों का ही अनुसरण करते हैं।

व्याख्या : साधारण पुरुषों का लाभ कहकर शठ का भी लाभ कहते हैं। शठ कपटी होता है, हठी होता है, किसी की सुनता नहीं। यथा : कपट सार सूची सहस, बाँधि वचन पर वास। करि दुराव चहचातुरी, सो सठ तुलसीदास। सठ सन विनय कुटिल सन प्रीती। शठ लोहा है, पर सन्त पारस हैं, उनके स्पर्श मात्र से लोहा सोना हो जाता है, शठ का कायापलट हो जाता है, वह कुधातु से सुधातु हो जाता है, पर पारस नहीं हो सकता, क्योंकि सन्त पैदा होते हैं, वनाये नहीं जाते। यथा : पर उपकार वचन मन काया। संत सहज सुभाउ खगराया। भावार्थ यह कि सत्संग के लेश से शठ का व्यवहार ही दूसरा हो जाता है।

सुजन कुसंगति चाहते नहीं, उससे दूर भागते हैं, पर दैवयोग से कुसङ्ग में पड़ जाते हैं, पर उन पर कुसंग का प्रभाव कुछ भी नहीं पड़ता। मणि सर्प के सिर में रहती है, पर उसके अघ अवगुण का ग्रहण नहीं करती, वह विष हरण करती है और दुःख दरिद्र को दूर करती है। यथा : अहि अघ अवगुन नहि मनि गहई। हरइ गरल दुख दारिद दहई।

सत्संग के गुण कथन के बाद शठ के सुसंग में पड़ने और साधु के कुसंग में पड़ने की व्यवस्था कही। अव सन्त समाज के सरदार स्वयं सन्त की महिमा कहते हैं। सन्त समाज की महिमा तो कुछ कही, पर स्वयं सन्त की महिमा कहने में ग्रन्थकार अपने को सर्वथा असमर्थ पा रहे हैं। यथा :

---

१. यहाँ अवज्ञा अलङ्कार है।

विधि हरिहर कवि कोविद[1] बानी। कहत साधु महिमा सकुचानी ॥
सो मोसन कहि जात न कैसें। साक बनिक मनि गुन गन जैसें ॥६॥

अर्थ : ब्रह्मा, विष्णु, महादेव, कवि, पण्डित की वाणी साधुओं की महिमा कहने में सकुचाती हैं, वह मुझसे कैसे नहीं कही जाती, जैसे साग भाँजी बेचनेवाला मणियों के गुणगण नहीं कह सकता।

व्याख्या : इतने बड़े लोगों की वाणी जब साधु महिमा कहने में सङ्कुचित होती हैं, तब ग्रन्थकार कहते हैं कि मेरी क्या गिनती है ? स्वयं रामजी कहते हैं, कि 'सुनु मुनि साधुन के गुन जेते। कहि न सकहि सारद श्रुति तेते'। नहीं कह सकते, इसलिए कहने में सङ्कोच है। जयन्त ब्रह्मधाम, शिवपुर आदि सभी लोकों में व्याकुल होकर घूमा, पर किसी ने उसे बैठने को नहीं कहा, पिता ने भी नहीं रखा, पर नारद साधु हैं, उनसे नहीं देखा गया। यथा : धरि निज रूप गयउ पितु पाहीं। राम विमुख राखा तेहि नाहीं ''''''नारद देखा विकल जयंता। लागि दया कोमल चित संता। पठवा तुरत राम पहिं ताहीं। कहेसि पुकारि प्रणत हित पाही। रामविमुख पर भी दया करना सन्त का ही काम है।

साग भाँजीवाला शाक का ही गुण नहीं कह सकता, वह मणिगण के गुणों को क्या जाने, जिसे जानने में बड़े-बड़े जौहरी चक्कर में पड़ जाते हैं, सो ग्रन्थकार कहते हैं कि विधि हरिहर कवि कोविद जौहरी हैं, जब वे सन्त की महिमा नहीं कह सकते तो मैं तो ग्राम्य कवि हूँ, मैं कैसे कह सकता हूँ। यथा : बरनै तुलसीदास किमि अति मति मंद गँवार।

दो. बंदौं संत समान चित, हित अनहित नहिं कोइ।
अंजलिगत सुभ सुमन जिमि, सम सुगंध कर दोइ ॥३॥

अर्थ : मैं सन्त की वन्दना करता हूँ, जिसका चित्त समान है, न कोई उनका मित्र है न शत्रु हैं, जैसे अञ्जलि में आये हुए अच्छे फूल दोनों हाथों को बराबर सुगन्धित कर देते हैं।

व्याख्या : अब सन्त की स्तुति करके वन्दना करते हैं। चेतन जीव में उपमा नहीं मिलती, अतः जड़ की उपमा देते हैं। ऐसी सम दृष्टि अच्छे फूलों में ही सम्भव है। वह यह नहीं विचारता कि दक्षिण हाथ ने ही उसे तोड़ा है। अतः वह अनुग्रह का पात्र नहीं है और बायें हाथ ने उसे आश्रय प्रदान किया है। अतः विशेषरूप से उस पर अनुग्रह करना चाहिए। वह दोनों पर समान रूप से अनुग्रह करता है। दोनों को सुगन्धित कर देता है। इसी भाँति सन्त अपने अपकारी और उपकारी के ऊपर समान रूप से अनुग्रह करते हैं। यह सन्त का विशेष गुण है, इसकी नकल नहीं की जा सकती। यथा : उमा संत कइ इहै बड़ाई। मंद करत जो करै भलाई। ऐसे उपकारी सन्त की ग्रन्थकार वन्दना करते हैं।

---

१. कोर्वेदस्य विदो वेत्ता कोविदः कथितो बुधैः। श. चि. वेदवेत्ता को कोविद कहते हैं।

दो. संत सरल चित जगत हित जानि सुभाउ सनेहु ।
बाल विनय सुनि करि कृपा राम चरन रति देहु ॥ ३क ॥

अर्थ : सरल चित्त और जगत् के हितकारी सन्त जन, अच्छे भाव और स्नेह को जानकर और मुझ बालक के विनय को सुनकर कृपा करके श्रीराम जी के चरणों में प्रीति दीजिये ।

व्याख्या : सन्त का चित्त सरल होता है, जो बात उनके मन में होती है, वही बोलते हैं और वैसा ही करते हैं । यथा : मनस्येकं वचस्येकं कर्मण्येकं महात्मनाम् । और विश्व का कल्याण चाहना उनका सहज स्वभाव है । यथा : पर उपकार वचन मन काया । संत सहज सुभाउ खगराया । अतः जिस बात में जगत् का अनहित हो, उसे माँगने पर भी नहीं देंगे । ग्रन्थकार कहते हैं कि मेरा भाव सुन्दर है, जगत् हित के अनुकूल है और अपने लिए भी लाभप्रद है इसलिए मुझे सुरुचि है । मैं कोई ऐसी बात नहीं माँग रहा हूँ जिससे जगत् की या अपनी ही कोई हानि हो । अपने को बालक कहकर संन्त का, माँ बाप होना द्योतित किया । बालक किससे माँगे ? इसलिए कृपा करो । अथवा मैं बालक हूँ, यदि स्तुति करते न बने, तो भी कृपा करो और रामभक्ति दो ।

भाव यह कि भक्ति के आप भण्डारी हो । यथा : राम भगति अनुपम सुख मूला । मिलइ जो संत होहिं अनुकूला । यहाँ भक्ति से सिद्धा भक्ति अभिप्रेत है । साधन भक्ति तो शङ्कर भगवान् के अनुग्रह से प्राप्त हो जाती है । यथा : पुरी प्रभाउ अनुग्रह मोरे । राम भगत उपजिहि उर तोरे ।

बहुरि वंदि खल गन सति भायें । जे बिनु काज दाहिने (हु) बायें ॥
पर हित हानि लाभ जिन केरें । उजरे हरख विपाद बसेरें ॥१॥

अर्थ : अब मैं सच्चे भाव से खलगण की वन्दना करके, जो अकारण ही अनुकूल के प्रतिकूल रहते हैं, दूसरों के हित की हानि ही जिनका लाभ है और जिनको दूसरों के उजड़ने पर आनन्द और बसने पर शोक होता है ।

व्याख्या : पहिले सन्तसमाज की वन्दना करके तब सन्त-वन्दना की, इसी भाँति यहाँ भी पहिले खलगण की वन्दना करके तब खल की वन्दना करेंगे । इसीलिए पूर्वकालिकी क्रिया 'वंदि' दे रहे हैं, मुख्य क्रिया आठवीं अर्धाली में आवेगी; वंदौ खल जस सेष सरोपा । सच्चे भाव से वन्दना करना इसलिए कहते हैं कि किसी को आक्षेप की शंका न हो । 'दाहिने बायें' कहकर खलगण का स्वभाव कहते हैं कि अकारण वैर करने का उनका स्वभाव है । वे अपने हित का अनहित करते हैं । यथा : बैर अकारन सब काहू सो । जो कर हित अनहित ताहू सो । इनका स्वभाव साधु से ठीक उलटा है । वे 'जो सहि दुख पर छिद्र दुरावा' और ये 'परहित हानि लाभ जिन केरे' लाभ के लिए लोग दुःख उठाते ही हैं । साधु और खल दोनों अपने लाभ को लाभ नहीं मानते । दोनों के हर्ष, विषाद के कारण एकदम विपरीत हैं ।

हरिहर जस राकेस राहु से। पर अकाज भट सहसवाहु से ॥
जे पर दोष लखहिं सहसाँखी। पर हित घृत जिनके मनमाखी ॥२॥

अर्थ : हरिहर यशरूपी पूर्णचन्द्र के लिए जो राहु से हैं, दूसरे का काम बिगाड़ने के लिए सहस्रबाहु के समान योद्धा हैं। दूसरे के दोषों को सहस्र आँखों से देखते हैं और दूसरे की भलाई रूपी घी के विगाड़ने के लिए जिनका मन मक्खी के समान है।

व्याख्या : साधु समाज हरिहर कथा के लिए त्रिवेणी है और खलगण हरिहर-यशरूपी चन्द्र के लिए राहु हैं। कुछ देर के लिए विषयकथा, व्याख्यान या उत्पात से हरिहर कथा को निस्तेज करते हैं। यदि कथा थोड़ी देर के लिए रुकी तो खण्डग्रास, यदि बन्द हो गई तो सर्वग्रास हुआ। साधुसमाज मुद मंगलमय है और खलगण दूसरे के अपकार के लिए सहस्रावाहु से योद्धा हैं। उनके दो हाथों में हजार हाथों का बल और फुरती आजाती है। जिस भाँति शत्रु से युद्ध में कार्तवीर्य को सहस्र भुजाएँ हो जाती थीं। यथा : तस्य बाहु सहस्रन्तु युध्यतः किल भारत। योगाद्योगेश्वरस्येव प्रादुर्भवति मायया : हरिवंशे :। सहस्रावाहु के पक्ष में पर का अर्थ शत्रु करना होगा।

उनकी आँखों में सूक्ष्मवीक्षण यन्त्र की भाँति, दोषों को देखने के लिए मक्खियों के हजार आँखों की शक्ति आजाती है। सूक्ष्मवीक्षण यन्त्र द्वारा देखने से मालूम होता है कि मक्खियों को हाजारों आँखें हैं। उन्हें वे दोष, जो दूसरों को नहीं दिखाई पड़ते, दिख जाते हैं, क्योंकि उन्हें दोष हजारगुना वड़ा दिखता है; पर दूसरों का ही दोष दिखाई पड़ता है, अपना नहीं। और यह भी गुण है कि दूसरे के हितरूपी घृत के बिगाड़ने के लिए उनका मन भी मक्खी है। मक्खी घी में कूद कूदकर अपना प्राण दे देती हैं और उस घी को बिगाड़कर मानती हैं, इसी भाँति खल का जी चाहता है कि मैं अपना प्राण दे दूँ, पर दूसरों का हित किसी भाँति भी नष्ट हो जाय।

तेज कृसानु रोष महिषेसा। अघ अवगुन धन धनी धनेसा ॥
उदय केत समहित सवही के। कुंभकरन सम सोवत नीके ॥३॥

अर्थ : तेज में अग्नि और क्रोध में महिषासुर के समान हैं, पाप और दुर्गुण रूपी धन के तो कुबेर से धनी हैं। उनका उदय केतु के समान सभी के लिए है। वे कुम्भकर्ण के समान सोते रहें तभी अच्छे हैं।

व्याख्या : भाव या कुभाव से सन्निकट जानेवाले को जलाने का उनका स्वभाव है, इसलिए अग्नि कहा। महिषेश का अर्थ यमराज भी हो सकता है, परन्तु श्रीग्रन्थकार महिषासुर के अर्थ में प्रयोग करते हैं। यथा : महामोह महिषेस विसाला। राम कथा कालिका कराला। और यही अर्थ प्रसङ्गानुकूल है। यमराज तो धर्मात्माओं के लिए परम सौम्य मूर्ति हैं। महिषासुर का क्रोध प्रख्यात है, देवता लोग उसके भय से पृथ्वी पर मनुष्यों की भाँति घूमते थे। सो क्रोध में वे साक्षात् महिषासुर हैं और अघ, अवगुण के लिए तो अक्षय भण्डारवाले कुबेर हैं। संसार में जो अघ, अवगुण देखा जाता है, सो इन्हींकी कृपा का फल है। बिना कुबेरजी की कृपा के कोई धनी नहीं हो सकता।

केतु कालग्रह है, इसके उदय से देश का देश आपद्ग्रस्त हो उठता है। यथा : दुष्ट उदय जग आरति हेतू। यथा प्रसिद्ध अधम ग्रह केतू। इसी भाँति खलगण के उदय से संसार पर विपत्ति आती है। जब जब संसार पर विपत्ति आई है, तब तव दुष्ट के उदय से ही आई है। खल के पक्ष में 'उदय' का अर्थ बढ़ोत्तरी है।

'मोह निसा सब सोवनिहारा' पर सबकी निद्रा और कुम्भकर्ण की निद्रा में बड़ा अन्तर है। उनकी निद्रा दीर्घकालीन थी और उन्हें जगाना असाधारण व्यापार था और उनके जागने पर त्रैलोक्य सन्त्रस्त हो उठता था। यथा : करइ पान सोवैं षटमासा। जागत होइ तिहूपुर त्रासा। कुम्भकर्ण का जागना कोई नहीं चाहता था। इसलिए कहते हैं कि दुष्ट कुम्भकर्ण की भाँति यदि सोते रहें तभी अच्छा है।

'अन्मुकुटादिषु' इस सूत्र से केतु का केत रूप हो गया। हित शब्द 'लिए' के अर्थ में भी आता है, यथा : मोहि हित सहेउ बहुत संतापू।

पर अकाज लगि तनु परिहरहीं। जिमि हिमि उपल कृषी दलि गरहीं॥
वंदौं खल जस सेष सरोषा। सहस वदन वरनहिं पर दोषा ॥४॥

अर्थ : जो दूसरों का अकाज करने के लिए शरीर तक का त्याग कर देते हैं, जैसे ओले खेती का नाश करके स्वयं गल जाते हैं। मैं खलों की वन्दना करता हूँ, जो शेष की भाँति हजार मुख से परदोष का सरोष वर्णन करते हैं।

व्याख्या : दूसरे की हानि सा प्रिय उन्हें कोई पदार्थ नहीं है। 'देह प्रान सम प्रिय कछु नाहीं'। सो दूसरे की हानि के लिए वे उसका भी परित्याग कर सकते हैं। इनकी उपमा योग्य भी कोई चेतन पदार्थ नहीं है, अतः जड़ से ही उपमा दी है। ओला गल गलकर नष्ट हो जाता है, पर खेती का नाश तो पहिले ही कर डालता है।

पहिली चौपाई 'पर अकाज लगि तनु परिहरहीं। जिमि हिमि उपल कृषी दलि गरहीं।' में खलगण की मति का वर्णन किया। दूसरी 'हरिहर जस राकेस राहु से। पर अकाज भट सहसबाहु से।' से उनकी कीर्ति का वर्णन किया। तीसरी 'जे पर दोष लखहिं सहसाँखी। परहित घृत जिनके मन माखी।' से उनकी गति का वर्णन किया। चौथी 'तेज कृसानु रोष महिषेसा। अघ अवगुन धन धनी धनेसा।' तथा 'उदयकेतु सम हित सब ही के।' से उनकी भूति का वर्णन किया और पाँचवीं 'पर अकाज लगि तनु परिहरहीं।' से उनकी भलाई का वर्णन किया। यहाँ तक खलगण का वर्णन है। चक्र का वर्णन पूरा होने पर स्वयं खल की वन्दना करते हैं।

प्रलय काल में शेष सरोष होते हैं, तब सहस्रों मुखों से ज्वालमाला वमन करते हैं। यथा : प्रलय पावक महा ज्वालमाला वमन। ये प्रलय की ज्वाला की भाँति परदोष वर्णन करते हैं। खलगण का क्रोध महिषेश सा था, पर स्वयं खल का शेष सा प्रलयकारी क्रोध है।

पुनि प्रनवौं पृथुराज समाना। पर अघ सुनइ सहस दस काना॥
वहुरि सक्रसम विनवौं तेही। संतत सुरा नीक हित जेही ॥५॥

अर्थ : फिर मैं पृथुराज[1] के समान उनको मानकर प्रणाम करता हूँ, जो दस हजार कानों से पर अघ : दूसरों की बुराइयाँ : सुनते हैं। फिर इन्द्र के समान उनको मानकर विनय करता हूँ, जिन्हें सदा सुरानीक : देवसेना : या सुरा : मद्य : नीक हित है।

व्याख्या : खल को दूसरे की बुराई बड़ी प्रिय है। महाराज पृथु को भगवद्-गुणानुवाद बड़ा प्रिय था, इसलिए भगवान् से वरदान माँगा कि आप का यश सुनने के लिए मेरे कानों को दश हजार कानों का बल हो जाय। सो उनके कानों की शक्ति दशसहस्रगुणित हो गई। इन : खलों : को स्वभाव से ही वह सामर्थ्य प्राप्त है, ये दूसरों का पाप दश हजार कानों से सुना करते हैं। भाव यह कि सूक्ष्मातिसूक्ष्म पाप-चर्चा, इन्हें अनायास स्पष्ट दशसहस्रगुणित होकर प्रतिभात होती है। कितनी ही गुप्तचर्चा हो, ये सुन ही लेते हैं, और बड़े प्रेम से सुनते हैं।

यहाँ 'सुरानीक हित' शब्द श्लिष्ट है। इन्द्र के पक्ष में इसका अर्थ होगा 'देवताओं की सेना का हित होना' और खलपक्ष में अर्थ होगा 'मद्य : शराब : का नीकहित होना'। भावार्थ यह कि जिस भाँति देवसेना से इन्द्र के हृदय में उल्लास होता है, वैसा ही उल्लास खल को सुरा से होता है, जिस भाँति बिना देवसेना के इन्द्र निर्बल रहते हैं, उसी भाँति बिना सुरा के खल की तबीयत खराब हो जाती है।

वचन वज्र जेहि सदा पिआरा। सहसनयन परदोष निहारा ॥६॥

अर्थ : जिनको वचन रूपी वज्र सदा प्यारा लगता है और हजारों आँखों से पराया दोष देखते हैं।

व्याख्या : जैसा इन्द्र को अपने वज्र का भरोसा रहता है, उसी भाँति खल को अपने वाग्वज्र का भरोसा रहता है। इन्द्र को वज्र बड़ा प्यारा है, सदा धारण किए रहते हैं, उसी भाँति खल के होठों पर वाग्वज्र प्रतिक्षण बना रहता है। न इन्द्र का वज्र कोई सह सके और न खल के वचन सह सके। इन्द्र सहस्र नेत्रों से देवताओं का हित देखते हैं, खलगण परदोप को सहस्र नेत्रों से लखते हैं, पर स्वयं खल उसको प्रेम से निहारते हैं। तीनों लोक के बड़े इकट्ठे हुए तब खल की खलता तौली गई। १. स्वर्ग के बड़े, यथा : बहुरि सक्र सम बिनवौं तेहीं। २. पृथ्वी के बड़े, यथा : पुनि प्रणवौं पृथुराज समाना और ३. पाताल के बड़े, यथा : बंदौं खल जस सेष सरोसा।

दो. उदासीन अरिमीत हित, सुनत जरहि खलरीति।
जानु पानि जुग जोरि जनु, विनती करइ सप्रीति ॥४॥

अर्थ : खल की यह रीति है कि वे उदासीन, शत्रु और मित्र के हित को

---

१. राजा पृथु, राजा वेन के पुत्र थे, वेन अधर्मी राजा था, ऋषियों ने उसे मन्त्र से मारा और उसके दाहिने हाथ को मथा, जिससे पृथु की उत्पत्ति हुई। ये बड़े भगवद्भक्त थे, इन्होंने भगवान् से वरदान माँगा था कि आपके चरित सुनने के लिए मेरे कानों में दस हजार कानों की शक्ति आ जाय।

सुनते ही जल उठते हैं। अतः दोनों हाथ पाँव जोड़कर यह सेवक प्रीति के साथ विनती करता है।

व्याख्या : जिस भाँति सन्त समानचित्त होते हैं, उनका न कोई हित है न शत्रु है, वे शत्रु मित्र दोनों का कल्याण चाहते हैं, उसी भाँति खल भी उदासीन, शत्रु और मित्र सब पर समान दृष्टि रखते हैं। वे किसी का कल्याण सहन नहीं कर सकते। किसी के कल्याण की बात सुनते ही उनके कलेजे में आग लग जाती है। वे सन्तों के जोड़ीदार हैं। दोष के भी अत्यधिक उत्कर्ष से उसमें अलौकिकता आ जाती है। यथा : देखि खलन अधिकार सुप्रभु मेरी भूरि भलाई भनिहैं। इसी से उनकी उपमा शेष, महाराज पृथु और देवराज इन्द्र से दी गई है।

यद्यपि जानु का अर्थ घुटना है, परन्तु यहाँ जानु उपलक्षण है, पाँव के अर्थ में आया है। अत्यन्त विनय प्रार्थना में हाथ पाँव दोनों जोड़ना कहा जाता है, यथा : 'बहुत हाथ पाँव जोड़ा पर सुनवाई न हुई।' इसलिए गोसाँई जी भी दोनों हाथ पैर जोड़कर प्रीति के साथ विनती करते हैं। अर्थात् विनती करने में ये कपट को स्थान नहीं देते। 'बहुरि वंदि खलगन सति भाएँ' से उपक्रम करके 'विनती करौं सप्रीति' से उपसंहार कर रहे हैं। 'मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवंत', इस सिद्धान्त के अनुसार अपने को सेवक भी मान रहे हैं।

मैं अपनी दिसि कीन्ह निहोरा। तिन्ह निज ओर न लाउब भोरा॥
वायस पलिअहिं अति अनुरागा। होंहिं निरामिष कबहुँ कि कागा॥१॥

अर्थ : मैंने अपनी ओर से तो निहोरा कर दिया। वे अपनी ओर से चूक न करेंगे। वायस यदि अति अनुराग से पाले जाँय, तो भी क्या काग निरामिष हो सकता है।

व्याख्या : गोस्वामी जी कहते हैं कि निहोरा करना मेरा काम है, क्योंकि चराचर विश्व भगवान् का रूप है, खल भी कोई दूसरे नहीं हैं, अतः मैंने अपना कर्त्तव्य कर दिया, वे भी अपना कर्त्तव्य पालन करेंगे, खलता करने में न चूकेंगे। यह मैं जानता हूँ। मैंने विनय प्रार्थना उन्हें अपने स्वभाव से च्युत करने के लिए नहीं की है। स्वभाव किसी का हटाये नहीं हटता। वायस : कौवे : स्वभाव से ही अशुचिभक्षी होते हैं। उन्हें चाहे कितने ही आदर से पाला जाय, पर वे 'काक' ठहरे अपने कुत्सित स्वभाव को नहीं छोड़ सकते। वे निरामिषभोजी हो नहीं सकते : उन्हें दूध में आमिष की भावना होगी और अण्डे उन्हें फल मालूम होंगे। श्वाकाक इति कुत्सायाम्। यहाँ काक शब्द उनके कुत्सित स्वभावद्योतन के लिए आया है।

बंदौं संत असज्जन चरना। दुख प्रद उभय बीच कछु बरना॥
बिछुरत एक प्रान हरि लेई। मिलत एक दुख दारुन देई॥२॥

अर्थ : अब मैं : सज्जन और दुर्जन दोनों के चरणों की वन्दना करता हूँ। दोनों दुखदाई हैं, पर कुछ अन्तर कहा जाता है, एक बिछुड़ते ही प्राण ले लेते हैं और एक मिलते ही दारुण दुःख देते हैं।

व्याख्या : सन्त और खल की पृथक् पृथक् वन्दना की, क्योंकि एक का गुण-कर्म स्वभाव दूसरे से विपरीत है। सन्त के जोड़ होने से खल की वन्दना की। अब दोनों की साथ वन्दना करते हैं, क्योंकि 'दुखदाई' होने का गुण दोनों में समान है, संयोग वियोग मात्र का बीच है।

सन्त विछुड़ते समय मरणाधिक कष्ट देते हैं। यथा : जौ पै प्रिय विधि कीन्हा। तौ कस मरन न माँगे दीन्हा : असन्त मिलते ही दारुण दुःख देते हैं। उनसे मिलते ही अपयश लगता है और 'संभावित कहँ अपजस लाहू। मरन कोटि सम दारुन दाहू'। अतः इनसे भी प्राणान्त कष्ट होता है।

उपजहिं एक संग जग माहीं। जलज जोंक जिमि गुन विलगाहीं॥
सुधा सुरा सम साधु असाधू। जनक एक जग जलधि अगाधू॥३॥

अर्थ : दोनों : एक साथ संसार में पैदा होते हैं, पर कमल और जोंक की भाँति उनके गुण अलग अलग होते हैं। साधु अमृत और असाधु मदिरा के समान हैं। दोनों का पैदा करनेवाला संसाररूपी अगाध समुद्र एक ही है।

व्याख्या : साधु और असाधु होने में जन्म कारण नहीं है, जैसे जल में कमल भी पैदा होता है, जोंक भी पैदा होती है, पर दोनों के गुणों में वड़ा अन्तर है। कमल रक्तवर्धक है और जोंक रक्तशोषक है। कमल जल में रहकर भी निर्लेप रहता है, जोंक जल में लिप्त आर्द्र रहती है। कमल स्थिर है, जोंक की वक्रगति है। यथा : चलै जोंक जल वक्रगति जद्यपि सलिल समान। इसी भाँति साधु असाधु दोनों संसार में उत्पन्न होते हैं, पर साधु द्वारा क्षमा-दयादि गुणों की वृद्धि होती है और खलों द्वारा उनका ह्रास होता है। यथा : संत संग अपवर्ग कर, कामी भव कर पंथ। संत, संसार में रहकर भी उससे निर्लेप रहते हैं और खल उसी में डूबा रहता है। साधु स्थिरबुद्धि होते हैं तथा खल की कुटिल वुद्धि होती है। पृथ्वी में उत्पत्ति कहकर माता की एकता कही।

समुद्रमन्थन से सुधा सुरा दोनों की उत्पत्ति हुई। अतः समुद्र को जनक : पिता कहा। जग और जलधि : समुद्र : में, अगाध होना साधारण धर्म है। इसी संसार में ही साधु, असाधु की उत्पत्ति हुई : द्वौ भूतसर्गौ लोकेऽस्मिन् दैव आसुर एव च। पर साधु अमृत के समान लाभकारी हैं और खल मदिरा के समान अपावन हैं।

भल अनभल निज निज करतूती। लहत सुजस अपलोक विभूती॥
सुधा सुधाकर सुरसरि साधू। गरल अनल कलिमल सरि व्याधू॥४॥

अर्थ : भले और बुरे अपनी-अपनी करनी से यश और अपयश का ऐश्वर्य प्राप्त करते हैं। अमृत, चन्द्र, गङ्गा और साधु भले हैं। विष, अग्नि, कलिमल की नदी और व्याधा अनभल हैं।

व्याख्या : भल और अनभल होने का कारण अपनी करतूति है, जन्म नहीं है। भले के लिए सुयश ऐश्वर्य है और बुरे के लिए अपयश ऐश्वर्य है। यथा : सोइ रावन जग विदित प्रतापी। सुनेहि न श्रवन अलीक प्रलापी। साधु का वचन अमृत

सा, दर्शन चन्द्र सा और स्पर्श गङ्गा सा है। यथा : मुख देखत पातक हरैं परसत कर्म विलाहिं। वचन सुनत मन मोह गत पूरव भाग मिलाहिं। और खल ठीक इसके विपरीत है। 'व्याधा' के हिंसक होने से खल का उपलक्षण माना।

गुन अवगुस जानत सब कोई। जो जेहि भाव नीक तेहि सोई ॥५॥

अर्थ : इनके : गुण और अवगुण को सब कोई जानते हैं, पर जिसे जो भाता है वही उसे अच्छा लगता है।

व्याख्या : यह बात नहीं है कि असत्यवादी न जानता हो कि झूठ बोलना बुरा है, चोर यह न जानता हो कि चोरी करनी बुरी बात है; यह सब खूब जानता है, फिर भी उसे प्रकृति-वश झूठ बोलना, चोरी करना ही अच्छा लगता है। अतः बुरे या भले होने में अज्ञान कारण नहीं है, अपनी रुचि कारण है।

दो. भलो[1] भलाइहि पै लहै, लहै निचाइहि नीचु।
सुधा सराहिअ अमरता, गरल सराहिअ मीचु ॥५॥

अर्थ : भले भलाई से ही : शोभा को : प्राप्त होते हैं और नीच निचाई से : शोभा को : प्राप्त हैं, अमृत की अमरता सराही जाती है और विष की मारकता सराही जाती है।

व्याख्या : उत्कर्ष की ही शोभा है, अपकर्ष की नहीं। सन्तों में गुणोत्कर्ष है और खलों में दोषोत्कर्ष है। अतः सन्तों के गुणागार होने में शोभा है। यथा : गुनागार संसार दुःख रहित विगत संदेह। तजि मम चरन सरोज प्रिय जिनकहु देह न गेह। और खलों के दोषागार होने में शोभा है। यथा : दिगपालन मैं नीर भरावा। भूप सुजस खल मोहि सुनावा। लोकप जाके बंदी खाना, तथा : वेद पढ़ैं विधि संभु सभीत पुजावन रावन ते नित आवैं। दानव देव दयावने दीन दुखी नित दूरहिं ते सिर नावैं।

खल अघ अगुन साधु गुन गाहा। उभय अपार उदधि अवगाहा ॥
तेहि ते कछु गुन दोष वखाने। संग्रह त्याग न विनु पहिचाने ॥१॥

अर्थ : खलों के पाप और अवगुण की एवं सज्जनों के गुणों की गाथाएँ अपार और अथाह समुद्र हैं, इसी से मैंने कुछ गुणों और दोषों का वर्णन किया है, क्योंकि विना पहिचान के संग्रह या त्याग हो नहीं सकता।

व्याख्या : न तो खलों के पाप और अवगुण की गहराई का अन्त है, न साधु के गुणों की गहराई और विस्तार का अन्त है। इसलिए उनकी गाथाओं का भी अन्त नहीं है। जो कुछ लिखा गया है, वह प्रादेश मात्र है। तीन असुरों, तीन राजाओं, तीन देवताओं का दृष्टान्त दिया गया है यह दिखाने के लिए कि तीनों लोक के पराक्रमी इनके सामने नगण्य हैं। लिखने की आवश्यकता इसलिए पड़ी कि साधुओं तथा उनके गुणों के संग्रह का एवं खलों के तथा उनके पाप और अवगुणों के त्याग

---

१. यहाँ प्रतिवस्तूपमा अलङ्कार है।

का विधान है और यह विना उनके पहिचाने हो नहीं सकता। इसलिए थोड़ा-बहुत गुण-दोष कहना पड़ा। 'खघथधमांहः' प्रा. प्र. २.२७। इस सूत्र से 'थ का ह' हो गया, अतः गाथा का गाहा रूप हो गया।

भलेउ पोच सब विधि उपजाये। गनि गुन दोष वेद बिलगाये ॥
कहहिं वेद इतिहास पुराना। विधि प्रपंचु गुन अवगुन साना ॥२॥

अर्थ : विधाता ने भले बुरे सभी पैदा किये हैं, पर वेदों ने उनके गुण दोष गिनकर अलग कर दिये हैं। वेद, पुराण और इतिहास बतलाते हैं कि ब्रह्मा का प्रपञ्च गुण और अवगुण से सना हुआ है।

व्याख्या : भवसागर के कर्ता ब्रह्मा हैं। उस सागर में गुण दोष सब मिलकर एक हो गये हैं। किसी की सामर्थ्य नहीं कि उन्हें अलग कर सके। वेद का बड़ा भारी कार्य यह है कि उसने गुण दोष को गिनकर अलग कर दिया। अब उसी को लेकर चाहे जितने मत मतान्तर बनें, पर आरम्भ में इनको अलग अलग कर बतला देना वेद का ही काम था। यदि कहिये कि मनुष्य ने अपने पसन्द के अनुसार गुण दोष को अलग किया तो यह नहीं हो सकता। सबकी पसन्द अलग-अलग है। बुरे को बुराई पसन्द है इसलिए बुराई गुण नहीं हो सकती। हानि लाभ भी इसका ठीक मापक नहीं है। प्रायेण पुण्य से ही हानि और पाप से ही लाभ होते देखा जाता है, और न बहुमत ही ठीक मापक हो सकता है, क्योंकि बहुमत सदा मूर्खों का ही रहता है। अतः वेद के अतिरिक्त गुण दोष का विवेचक कोई हो नहीं सकता।

वेद से अङ्ग और उपाङ्ग के सहित ऋक्, यजु और साम का ग्रहण है। इतिहास और पुराण पाँचवाँ वेद है। गुण और दोष ऐसे सने हुए हैं, जैसे आटा और पानी। सने हुए आटे से आटा और पानी का शुद्ध स्वरूप पृथक् करना असाध्य व्यापार है। इसी भाँति गुण और दोष का शुद्ध स्वरूप, शास्त्रदृष्टि से दिखाई पड़ता है। गुण में सूक्ष्म रूप से अवगुण भी रहता है और अवगुण में भी सूक्ष्म रूप से गुण अवस्थान करता है। जैसे :

दुख सुख पाप पुन्य दिनराती। साधु असाधु सुजाति कुजाती ॥
दानव देव ऊँच अरु नीचू। अमिअ सुजीवनु माहुरु मीचू ॥३॥
माया ब्रह्म जीव जगदीसा। लच्छि अलच्छि रंक अवनीसा ॥
कासी मग सुरसरि कविनासा। मरुमारव महिदेव गवासा ॥४॥
सरग नरक अनुराग विरागा। निगम अगम गुनदोष विभागा ॥५॥

अर्थ : दुःख और सुख, पाप और पुण्य, दिन और रात, साधु और असाधु, सुजाति और कुजाति, दानव और देवता, ऊँच और नीच, अमृत और विष तथा सुजीवन और मृत्यु, माया और ब्रह्म, जीव और जगदीश, लक्ष्मी और दरिद्रा, रङ्क और राजा, काशी और मगध, देवनदी और कर्मनाशा, मारवाड़ और मालवा.

ब्राह्मण और गोभक्षक, स्वर्ग और नरक तथा प्रीति और वैराग्य : ये सने हुए हैं : परन्तु वेद और शास्त्र ने इनके गुणों और दोषों को विलगाया है।

व्याख्या : यहाँ सब कुछ सापेक्ष है, निरपेक्ष कुछ भी नहीं, दुःख में सुख सना है और सुख में दुःख सना है, दोनों में से एक का शुद्ध रूप दुर्घट है। इसी भाँति सभी द्वन्द्वों में समझ लेना चाहिए। दुःख सुख कहकर फल कहा, यथा : फल जुगल विधि कटु मधुर वेलि अकेलि जेहि आश्रित रहे। पाप[1] पुण्य कहकर बीज कहा, यथा : पाप पुन्य द्वै बीज हैं। वै. सं.। 'दिनराती' से काल कहा। दिन रात की व्यवस्था ब्रह्मदेव के दिन रात तक चली जाती है। यथा : सहस्रयुगपर्यन्तमहर्यद्ब्रह्मणो विदुः। रात्रि युगसहस्रान्तां तेऽहोरात्रविदो जनाः॥ एक सहस्र युग का ब्रह्मदेव का दिन होता है और उतनी ही बड़ी रात होती है। जो इसे जानता है, वह रात्रि और दिन का जानने वाला है। इसी बात को 'निसि अरु दिवस निमेष अपारा' कहकर द्योतित किया। साधु, असाधु, सुजाति कुजाती, दानव देव और ऊँच नीच से कर्त्ता भोक्ता कहा; यथा : बवै सो लवै निदान। वै. सं.। अमिअ मृत्यु तथा माहुर सुजीवन से पथ्य कुपथ्य कहा। यथा : विषय कुपथ्य पाइ अंकुरे। संजम यह न विषय कर आसा। माया ब्रह्म से मिथ्या और सत्य कहा। यथा : समुझि न परै झूठ का साँचा। जीव और जगदीश से अंश और अंशी कहा। यथा : ईश्वर अंश जीव अविनासी। लच्छि अलच्छि और रंक अवनीस से ऐश्वर्य-अनैश्वर्य कहा। 'काशी मग[2], सुरसरि कविनासा[2]। मरु मारव' से देश भेद कहा। महिदेव गवासा से दैवासुर सर्ग कहा। सरग नरक से भोग की परकाष्ठा कही, अनुराग विराग से आकर्षण विप्रकर्षण कहा। इन द्वन्द्वों में से निरपेक्ष कोई नहीं, देखने में एक दूसरे के विरोधी मालूम पड़ते हैं, पर सूक्ष्मरूपेण एक का गुण दूसरे में वर्तता है।

'अधो मनयाम् प्रा. प्र. ३.२' से लक्ष्मी के 'म' का लोप होकर लक्षी रूप हुआ। तब सूत्र लगा 'अक्ष्यादिषु च्छः प्रा. प्र. ६.३०' इससे क्ष का च्छ हो गया। तब लच्छी रूप सिद्ध हुआ।

दो. जड़ चेतन गुन दोष मय, विश्व कीन्ह करतार।
संत हंस गुन गहहिं पय, परिहरि वारि बिकार॥६॥

अर्थ : विधाता ने जड़ और चेतन तथा गुण और दोषमय संसार को बनाया। हंसरूपी संत, दूधरूपी गुण को ग्रहण करते हैं और जलरूपी दुर्गुण को छोड़ देते हैं। संशयान् हिनस्ति इति हंसः। जो संशयों का नाश करे उसे हंस कहते हैं।

व्याख्या : जड़ चेतन मिलकर बीस जोड़े हुए। जोड़ों में से एक में गुण का

---

१. तुलसी यह तन खेत है, मन वच कर्म किसान।
पाप पुण्य द्वै-बीज हैं, बवै सो लवै निदान॥

२. राजा त्रिशङ्कु जब स्वर्ग से गिराये जाने पर अधोमुख होकर अन्तरिक्ष में लटके, तो उनके मुख से जो लार गिरी। उससे कर्मनाशा नदी हुई और जहाँ तक उनके रथ का छाया पड़ी वह देश मगध कहलाया। वह २४ योजन लम्बा और १६ योजन चौड़ा है।

बाहुल्य है और दूसरे में दोष का बाहुल्य है। वेद ने तो गुण दोष का स्वरूप अलग-अलग दिखला दिया, पर गुण को अलग करके ग्रहण कर लेना विवेकी सन्तों का काम है। हंस मिले हुए नीर में से क्षीर को ग्रहण कर लेता है और जलांश को छोड़ देता है। ब्रह्म भी कहे सुने जाते हैं, इतने अंश में वे भी विधि प्रपञ्च के भीतर हैं। माया से परे कहकर ही उनका वर्णन होता है, बिना माया का उल्लेख किये ब्रह्म का वर्णन दुरूह व्यापार है। इसलिए प्रपञ्च की गणना में उन्हें भी गिना दिया, नहीं तो ब्रह्म सर्वथा निष्प्रपञ्च है।

अस विवेक जब देइ विधाता। तब तजि दोष गुनहि मनुराता ॥
काल सुभाउ करम बरिआई। भलेउ प्रकृति बस चुकइ भलाई ॥१॥

अर्थ : जब विधाता इस प्रकार का विवेक देते हैं, तब मन दोषों को छोड़कर गुणों में लग जाता है, काल स्वभाव और कर्मों की प्रबलता से, भले भी प्रकृति : स्वभाव : के वश होकर भलाई में चूक जाते हैं।

व्याख्या : गुण को पृथक् करके ग्रहण करने का विवेक क्रियासाध्य नहीं है, यह तो विधाता की देन है। ऐसे विवेकी का मन गुण में लग जाता है, दोष की ओर जाता ही नहीं। 'सतां हि सन्देहपदेषु वस्तुषु प्रमाणमन्तः करणप्रवृत्तयः'। अतः सन्त होना किसी के वश को बात नहीं है, पर उनके सङ्ग के लिए प्रयत्न मात्र किया जा सकता है। 'काल कर्म गुण स्वभाव सबके सीस तपत' इसलिए कहते हैं कि काल, स्वभाव और कर्म की यहाँ प्रबलता है। 'काल सदा दुरतिक्रम भारी।' 'स्वभावो दुरतिक्रमः।' 'कठिन कर्मगति जान विधाता।' अतः काल, स्वभाव और कर्म का अतिक्रमण करना अत्यन्त कठिन है। जीव काल, कर्म, स्वभाव, गुण से घिरा माया से प्रेरित होकर नाचा करता है। यथा : फिरत सदा माया कर प्रेरा। काल कर्म स्वभाव गुन घेरा। साधु लोग इनसे सदा सावधान रहते हैं, फिर भी कभी चूक हो ही जाती है। प्रकृतिं यान्ति भूतानि निग्रहः किं करिष्यति। प्राणिमात्र अपनी प्रकृति का ही अनुसरण करते हैं, निग्रह क्या करेगा। जान-बूझकर भले लोग चूक नहीं करते, पर चूक होने पर दोष दुःख होता है, कलङ्क लगता है।

सो सुधारि हरितन जिमि लेहीं। दलि दुख दोष बिमल जसु देहीं ॥
खलउ करहिं भल पाइ सुसंगू। मिटइ न मलिन सुभाव अभंगू ॥२॥

अर्थ : उसे हरि इस भाँति सुधार लेते हैं, जैसे शरीर को सुधार लिया जाता है और दुख दोष को मिटाकर निर्मल यश देते हैं, वैसे ही खल भी सुसङ्ग पाकर भलाई कर बैठते हैं, पर उनका मलिन स्वभाव नहीं जाता, क्योंकि वह मिट नहीं सकता।

व्याख्या : जैसे किसी के शरीर में धूलि लग जाती है तो वह उसे झाड़ देता है, इसी भाँति भले की चूक को भगवान् सुधार लेते हैं क्योंकि साधु उन्हीं की मूर्ति हैं और दुःख दोष का नाश करके निर्मल यश देते हैं। यथा : सो मैं सब विधि कीन्ह

१. यहाँ अतद्गुणालङ्कार है।

ढिठाई। प्रभु मानी सनेह सेवकाई। कृपा भलाई आपनी, नाथ कीन्ह भल मोर। दूषन भे भूषन सरिस, सुजसु चारु चहुँ ओर। जहाँ 'हरिजन' पाठ है, वहाँ ऐसा अर्थ करना चाहिए कि भगवान् के भक्त जिस भाँति उस चूक को सुधार लेते हैं इसी भाँति खल से भी चूक हो जाती है, सत्सङ्ग में पड़कर भलाई कर बैठते हैं, पर उनका स्वभाव नहीं मिटता। अतः कभी भलाई या बुराई कर बैठना साधु या खल का परिचायक नहीं है।

लखि सुबेष जग बंचक जेऊ। बेष प्रताप पूजिअहि तेऊ॥
उघरहिं अंत न होहि निबाहू। कालनेमि जिमि रावन राहू॥३॥

अर्थ : अच्छा वेष बनाये देखकर, वेष के प्रताप से, संसार के ठगनेवालों की भी पूजा होती है, परन्तु अन्त उनका खुल जाता है, वेष का निर्वाह उनका किया नहीं होता, जैसे कालनेमि, रावण और राहु का हुआ।

व्याख्या : तथैव साधु वेष साधुता का परिचायक नहीं है; न लिङ्गं धर्मकारणम्; न वेष द्वारा पूजित होना परिचायक है। खल भी साधु वेष धारण कर लेते हैं और उनकी पूजा भी होने लगती है। वेष तो वे बनाये रहते हैं पर तदनुकूल गुण, कर्म, स्वभाव का सँभार वे नहीं कर सकते। कालनेमि ऋषि बना, रावण संन्यासी बना, राहु देवता बना, क्रम से उनका सम्मान भी हनुमानजी, जानकीजी तथा देवताओं द्वारा हुआ, पर पीछे से भेद खुल गया।

यहाँ राहु की कथा मानस के बाहर की चिड़िया[1] है। यहाँ पूर्वरूपालङ्कार है।

कियेहु कुबेष साधु सनमानू। जिमि जग जामवंत हनुमानू॥
हानि कुसंग सुसंगति लाहू। लोकहुँ वेद बिदित सब काहू॥४॥

अर्थ : कुवेष किये रहने पर भी साधु का सम्मान होता है, जैसे संसार में जाम्बवान् और हनुमान् का सम्मान होता है। कुसङ्ग से हानि और सुसङ्ग से लाभ होता है, यह लोक और वेद में प्रकट है और सब लोग जानते हैं।

व्याख्या : असाधु वेष में भी साधु का सम्मान होता है। कितने महात्मा अव्यक्तलिङ्ग घूमा करते हैं, जिसमें कोई उनका मान न करे। क्योंकि : लोक मान्यता अनल सम कर तप कानन दाहू। पर वे भी छिप नहीं सकते। वन्दर वेष में हनुमान् और भालू वेष में जाम्बवान् का कौन सम्मान नहीं करता?

निचोड़ यह है कि कुसंग से हानि और सुसंग से लाभ होता है। १. मति, २. कीर्ति, ३. गति, ४. भूति और ५. भलाई, सुसङ्ग से मिलती है और कुसङ्ग से १. कुमति, २. अकीर्ति, ३. दुर्गति, ४. अनैश्वर्य और ५. बुराई मिलती है। इस

---

१. समुद्र मन्थन से अमृत निकला और मोहिनी मूर्ति धारणकर भगवान् ने दैत्यों से अमृत घट ले लिया और देवताओं को अमृत परोसने लगे तो राहु भी देवता का रूप धारण कर देवपंक्ति में बैठ गया। सूर्य चन्द्र के लखाने पर भगवान् ने राहु का सिर काट दिया, पर वह अमृत पी चुका था। इसलिए सिर और धड़ दोनों जीते रह गये। ब्रह्मदेव की आज्ञा से वे दोनों ग्रह हो गये और राहुकेतु कहलाये।

विषय में सबका ऐकमत्य है। सुसङ्ग और कुसङ्ग से इन पाँचों की प्राप्ति को उदाहरण देकर दिखलावेंगे।

'आल्विल्लोल्लाल वन्तेन्तामतुपः' प्रा० प्र० ४.२५। आलु, इल्ल, उल्ल, वन्त, इन्त इत्येते आदेशा मतुपः स्थाने भवन्ति। इससे जाम्बवान् का जामवन्त रूप सिद्ध हुआ।

गगन चढइ रज पवन प्रसंगा। कीचहि मिलइ नीच जल संगा ॥
साधु असाधु सदन सुकसारी। सुमिरहिं रामु देहिं गनि गारीं ॥५॥

अर्थ : वायु के सङ्ग से धूल आकाश में चढ़ जाती है और वही नीच जल के साथ कीचड़ में मिल जाती है। साधु के घर में तोता मैना राम स्मरण करते हैं और असाधु के घर में गिन-गिनकर गालियाँ देते हैं।

व्याख्या : सत्सङ्ग और कुसङ्ग से ३. सुगति दुर्गति का उदाहरण देते हैं। पवन की उच्चगति है अतः पवन को ऊँचा कहा। उसके सङ्ग से धूलि भी आकाश में चढ़ जाती है। जल की नीची गति है इसलिए उसे नीच कहा। उसी धूलि का जब जल से साथ होता है तो वह कीचड़ में मिल जाती है।

शुकसारी से १. सुमति कुमति का उदाहरण देते हैं। साधु के घर दिन रात भगवन्नामोच्चारण होता है, खल के घर गाली बकी जाती है, तो उसका प्रभाव शुक सारिका पर पड़ता है। नहीं तो पक्षी को भगवन्नामस्मरण या गालिप्रदान से ही क्या सम्बन्ध। गिनकर गाली देने का भाव यह कि जितनी गाली देने का अभ्यास उस खल को है, उतनी ही गालियों का उच्चारण उसी क्रम से उसके तोता-मैना किया करते हैं।

धूम कुसंगति कारिख होई। लिखिअ पुरान मंजु मसि सोई ॥
सोइ जल अनल अनिल संघाता। होइ जलद जगजीवन दाता ॥६॥

अर्थ : कुसङ्ग में पड़कर धूआँ कारिख हो जाता है, पर वही सुन्दर स्याही है, जिससे पुराण लिखा जाता हैं और वही धूआँ जल, अग्नि और वायु के संयोग से संसार को जीवन देनेवाला बादल होता है।

व्याख्या : सत्सङ्ग और कुसङ्ग से ४. ऐश्वर्य और अनैश्वर्य का उदाहरण देते हुए ग्रन्थकार लिखते हैं कि धूम कारिख होकर दुर्दशा को प्राप्त होता है और वही स्याही होकर पुराणों को लिपिबद्ध करके पूजनीय होता है।

कवि मूर्धन्य कालिदास भी लिखते हैं 'धूमज्योतिः सलिलमरुतां सन्निपातः क्व मेघः' धूआँ अग्नि, जल और वायु के संयोग से होता है। उससे संसार को जीवन दान मिलता है। यहाँ जीवन शब्द में श्लेष है। जीवन का अर्थ जल भी है। मेघ से जल मिलता है और तद्द्वारा जीवन रक्षा होती है।

दो. ग्रह भेषज जल पवन पट, पाइ कुजोग सुजोग।
होहिं कुवस्तु सुवस्तु जग, लखहि सुलक्खन लोग ॥७॥

समप्रकास[1] तम पाख दुहुँ, नाम भेद विधि कीन्ह ।
ससि पोषक सोषक समुझि, जग जस अपजस दीन्ह ।।७क।।
जड़ चेतन जग[2] जीवजत, सकल राममय जानि ।
वंदौं सबके पद कमल, सदा जोरि जुगपानि ।।७ख।।
देव दनुज नर नाग खग, प्रेत पितर गंधर्व ।
वंदौं किन्नर रजनिचर, कृपा करहु अब सर्व ।।७ग।।

अर्थ : ग्रह, औषधि, जल, पवन और वस्त्र ये सब कुयोग और सुयोग पाकर बुरे और भले हो जाते हैं। इसे लखनेवाले ही लखते हैं। महीने के दो पखवारों में उजेला और अँधेरा समान ही होता है। नाम में भेद विधाता ने कर दिया। एक को चन्द्रमा का घटानेवाला और दूसरे को बढ़ानेवाला समझकर संसार में एक को २. सुयश और दूसरे को अपयश दिया : क :। जगत् में जितने जड़ चेतन जीव हैं सबको राममय जानकर, मैं उन सबके चरण कमलों को सदा हाथ जोड़कर वन्दना करता हूँ : ख :। देवता, दैत्य, मनुष्य, सर्प, प्रेत, पितर, गन्धर्व, किन्नर और निशाचर सबकी वन्दना करता हूँ। सब लोग कृपा करो : ग :।

व्याख्या : एक ही वस्तु देश, काल, और प्रकृति के भेद से सुख और दुःख को पैदा करती है, उसमें निश्चयात्मिका प्रतिष्ठा नहीं है। प्रकृति और मात्रा के भेद से भी सुख दुःख होता है। पापग्रह, तीसरे और ग्यारहवें स्थान के योग से, शुभ फल देते हैं। शुभ ग्रह आठवें और बारहवें स्थान के योग से मन्द फल देते हैं। चन्द्र शुभग्रह है, पर क्षीण हो या पाप ग्रह से युक्त हो, तो अशुभ फल देता है। इसी भाँति बुध यदि पाप ग्रह से युक्त हो, तो अशुभ फल देता है। चीनी कफकारक है, पर घृत, मधु, अर्द्रक से युक्त हो तो कफनाशक हो जाती है। कर्मनाशा का जल अपावन है, पर उसी का योग यदि गङ्गाजल से हो जाय तो पावन है। गङ्गा का जल पावन है, पर वह मद्य के घट में रख देने से अपावन है। पश्चिम की वायु रोगहर है, पर वही यदि अनूप देश से होकर आवे तो रोगकारक हो जाय। कपड़ा यदि देवता को चढ़े तो पवित्र और मृतक से संयोग हो जाय तो अपवित्र। इस भाँति कुयोग सुयोग पाने से सुवस्तु कुवस्तु होती है और कुवस्तु सुवस्तु होती है, पर सब कोई यह बात नहीं समझ सकते। अच्छे लखनेवाले ही इस बात को लखते हैं। यह भलाई बुराई का उदाहरण है।

अमावास्या और प्रतिपद की रात्रि को रात भर अंधेरा रहता है और पूर्णमासी तथा कृष्णपक्ष के प्रतिपद को पूर्ण प्रकाश रहता है। इसी भाँति दोनों

---

१. उन्मीलितालङ्कार है।

२. रामं सत्यं परं ब्रह्म रामात् किञ्चिन्न भिद्यते। तस्माद्रामस्य रूपोऽयं सत्यं सत्यमिदं जगत्। सनत्कुमार संहिता। अर्थ : रामजी सत्य परं ब्रह्म हैं। राम से कुछ भी पृथक् नहीं। इसलिए यह जगत् रामरूप है यह सत्य है, सत्य है।

पक्षों में प्रकाश और अन्धकार बराबर ही रहता है, पर विधाता ने एक का नाम शुक्ल रक्खा और दूसरे का कृष्ण रक्खा। शुक्लपक्ष में चन्द्रमा बढ़ता है और। कृष्ण में घटता है। तदनुसार संसार में शुक्लपक्ष को पोषक शक्ति के योग से यश है, कृष्ण को शोषक शक्ति के योग से अपयश है। यह कीर्ति और अपकीर्ति का उदाहरण है।

'भल अनभल निज-निज करतूती। लहत सुजस अप लोक विभूती' का प्रसङ्ग समाप्त करके अब समष्टि की वन्दना करते हैं। समष्टि पर भगवत् दृष्टि रखते हुए, सेवक-सेव्य भाव बनाये रखना ही अनन्योपासना है। यथा : सो अनन्य अस जाकर मति न टरै हनुमंत। मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवंत। अतः श्री गोस्वामी जी कहते हैं कि जड़ चेतन जितने जीव हैं, सबको राममय जानकर, सबके चरण कमलों की वन्दना सदा दोनों हाथ जोड़कर करता हूँ : ख :। अतः इस समय मङ्गलाचरण के लिए देव, दनुज, नर, नाग, खग, प्रेत, गन्धर्व, किन्नर, रजनीचर आदि सबकी वन्दना करता हूँ कि सबलोग मुझपर कृपा करें : ग :।

'हानि कुसंग सुसंगति लाहू' इस पुरइन से यहाँ आकर दोहारूपी दो कमल निकले ७ और ७ क तथा 'आकर चारि लाख चौरासी। जाति जीव जल थल नभ वासी' इस पुरइन ने भी यहाँ दो कमल दिये ७ ख और ७ ग। इस भाँति यहाँ चार कमलों का एक गुच्छा बन गया।

आकर चारि लाख चौरासी। जाति जीव नभ जल थल बासी ॥
सीयराम मय सब जग जानी। करौं प्रनाम जोरि जुग पानी ॥१॥

अर्थ . चार खानि, चौरासी लाख योनि के जीव, धरती और आकाश में रहते हैं। सारे जगत् को सीताराम मय जानकर, मैं दोनों हाथ जोड़कर प्रणाम करता हूँ।

व्याख्या : शास्त्रकारों ने जीवों के प्रकारों की गणना की है। पहिले उनके चार बड़े-बड़े विभाग हैं १. स्वेदज २. उद्भिज्ज ३. अण्डज और ४. जरायुज। इनमें से, एक-एक में अनेक[1] लाख योनि जीव रहते हैं, उनमें से कितने जलमें रहते हैं, कितने धरती पर रहते हैं और कितने आकाश में विचरते हैं। 'जलचर थलचर नभचर नाना' कहकर जो बात कही थी, उसीका विस्तार यहाँ कहा।

पहिले 'राममय' कहा था; यथा : सकल राममय जानि। सो भगवती सीता को कोई पृथक् न समझ ले अतः तुरन्त 'सीयराममय' कहे देते हैं। तीन बार समष्टि-वन्दना से मनसा वाचा कर्मणा प्रणाम कहा। 'क ग च ज त द पवां प्रायेण लोपः' इस सूत्र से तकार का लोप होकर सीता का 'सीआ' रूप हो गया। 'दीर्घह्रस्वौ मिथौ

---

१. स्थावर तृण-वृक्षादि बीस लक्ष, जलके जीव नवलक्ष, पृथ्वी खोदकर रहनेवाले कूर्म आदि ग्यारह लक्ष, नभचर दशलक्ष, चौपाये तीस लक्ष, वन्दर चार लक्ष। इस प्रकार चौरासी लक्ष योनियाँ हैं। यथा : स्थावरं विंशतेर्लक्षं, जलजं नवलक्षकम्। कूर्मादि रुद्रलक्षञ्च, दशलक्षं च पक्षिणः। त्रिंशल्लक्षं पशूनाञ्च चतुर्लक्षञ्च वानरः। ततो मनुष्यतां प्राप्य ततः कर्माणि साधयेत्। शास्त्रसारे।

वृत्तौ' इस सूत्र से 'आ' का 'अ' हो गया और 'सोअ' रूप हुआ। 'अवर्णे यःश्रुतिः' इससे 'अ' का 'य' होकर 'सीय' रूप सिद्ध हुआ।

जानि कृपाकर किंकर मोहू। सबमिलि करहु छाँडि छल छोहू ॥
निज बुधिबल भरोस मोहि नाहीं। ताते विनय करौं सब पाहीं ॥२॥

अर्थ : मुझे भी कृपा की खानि राम जी का किंकर समझकर सब मिलकर छल छोड़कर छोह करो। मुझे अपनी वुद्धि बल का भरोसा नहीं है, इसलिए सबसे विनय कर रहा हूँ। जहाँ 'कृपा करि' पाठ है वहाँ यह अर्थ करना पड़ेगा कि मुझे भी कृपा करके किंकर जानकर सब कोई मिलकर छोह करो। कृपाकर सम्बोधन भी हो जायगा : हे कृपाकर !

व्याख्या : बड़े का छोटे पर प्रेम करने को छोह कहते हैं। यहाँ श्री गोस्वामीजी सम्पूर्ण जगत् से विनय करते हैं कि आप लोग साक्षात् भगवद्रूप हैं। मैं भी कृपा की खानि भगवान् का सेवक हूँ। ऐसा जानकर, स्वार्थ को मनमें स्थान न देकर, सब कोई मिलकर मुझपर छोह कीजिये अथवा मुझे भी अपना सेवक जानकर निश्छल रूप से सबलोग मिलकर छोह कीजिये। इसीलिए मैंने सबको मिलाकर वन्दना की है। इस वन्दना में खल का भी समावेश है। अतः छल छोड़कर छोह करने को कहते हैं। अथवा देव, पितर अपना-अपना भाग पाने के लिए राम-परायण नहीं होने देते। छल के सहित छोह करते हैं, ऐश्वर्यादि देते हैं। अतः श्रीग्रन्थकार छल छोड़कर छोह करने की प्रार्थना करते हैं। इन्द्रिय सुरन्ह न ग्यान सोहाई। विषय भोग पर प्रीति सदाई। आवत देखहिं विषय बयारी। तब हठि देहिं कपाट उघारी।

'आरति विनय दीनता मोरी। लघुता ललित सुबारिनखोरी' यहाँ ग्रन्थकार अपनी आर्ति विनय और दीनता कहते हैं। जिसे अपने बुद्धि, बल का भरोसा होता है, वह शास्त्रमर्यादा निर्वाह के लिए मङ्गलाचरण कर देता है, मुझे भरोसा नहीं है, इसलिए सबसे विनय करता हूँ।

'निज बुधिबल भरोस मोहि नाहीं' यही दीनता है। 'ताते विनय करौं सब पाहीं' यह आर्ति है। आगे ७ दोहों में विनय है।

करन चहौं रघुपति गुन गाहा। लघुमति मोरि चरित अवगाहा ॥
सूझ न एकउ अंग उपाऊ। मन मति रंक मनोरथ राऊ ॥३॥

अर्थ : मैं रघुपति के गुणों की गाथा की रचना करना चाहता हूँ, परन्तु मेरी वुद्धि छोटी है और चरित अथाह है। मुझे एक भी उपाय का अङ्ग नहीं सूझ रहा है, मेरे मन-वुद्धि कंगाल हैं और मनोरथ राजा : सा है।

व्याख्या : चरित सिन्धु में विना डूबे गुणों का पता नहीं चलता। क्योंकि गुणरूपी मोती युक्तिरूपी सीपी के पेट में है। यथा : युक्ति मंजु मनि सीप सोहाई। मुक्ताहल गुनगन चुनइ, राम बसौं हिय तासु। सीप समुद्र के तल में रहती है, मेरी लघु वुद्धि ऊपर ही ऊपर रह जाती है, अथाह चरित के तल तक नहीं पहुँचती।

रघुपति गुन गाथा की रचना का कोई अङ्ग नहीं सूझता : का भाव यह कि

काव्य रचना के चार अङ्ग हैं १. शास्त्र ज्ञान २. व्यवहार ज्ञान, ३. शुभसंस्कार और ४. सत्कवियों की शिक्षा।

ग्रन्थकार कहते हैं कि इनमें मेरा प्रवेश नहीं। कंगाल का मनोरथ राजा सा है। उस मनोरथ की पूर्ति का उपाय जैसे उस कंगाल को नहीं सूझता, उसी भाँति मैं भी असमञ्जस में पड़ा हूँ। मेरे मन, वुद्धि और मनोरथ में सामञ्जस्य का कोई मार्ग ही नहीं है।

अथवा मोती निकालने के लिए लोग अनेक उपाय करते हैं, सिक्कड़ पकड़ कर समुद्र तल में प्रवेश करते हैं। श्वास लेने के लिए नाक में नली लगाते हैं। जल जन्तु से वचने के लिए कवच पहनते हैं। वहाँ उन्हें सीपियाँ मिलती हैं, जिनमें से मोतियाँ निकलती हैं, परन्तु 'गुणरूपी मोतियों के निकालने के लिए मैं क्या करूँ' यह उपाय मुझे नहीं सूझता, जिस भाँति राजाओं के करने योग्य मनोरथ के साधन का कोई अङ्ग कंगाल को नहीं सूझता।

मति अति नीचि ऊँचि रुचि आछी। चहिय अमिअँ जग जुरँ न छाँछी ॥
छमिहहिं सज्जन मोरि ढिठाई। सुनिहहिं बाल वचन मनलाई ॥८॥

अर्थ : मेरी वुद्धि अति नीच है और रुचि ऊँची और अच्छी है। चाहिए अमृत और मट्ठा भी नहीं जुरता। अतः सज्जन मेरी ढिठाई को क्षमा करेंगे और वालक के वचनों को मन लगाकर सुनेंगे।

व्याख्या : स्वार्थरत मति को नीच कहते हैं। ग्रन्थकार कहते हैं कि मेरी मति अति नीच है और रुचि अत्यन्त ऊँची है। राम गुणगान की अभिरुचि है, जिस गुणगान को समाधिविस्मरण पूर्वक परम अधिकारी सादर सुना करते हैं। मेरी वही गति है जैसे किसी अभागे को ग्राम्य भोग छाँछी दुर्लभ हो और वह देवभोग अमृत चाहे, जो वड़े-वड़े भाग्यवानों को नहीं मिलता। 'मति अतिरंक मनोरथ राऊ' का स्पष्टीकरण यहाँ किया। रघुपति गुणगाथा को अमृत और प्राकृत जन गुणगान की उपमा छाँछ से दी।

यदि कहिये कि रंक को राजा की इच्छा, अति नीच को उच्च वनने की इच्छा ढिठाई है। पौरुष की अपेक्षा न करके इच्छा करना तामस है। इसपर कहते हैं कि सज्जन : माता-पिता : तो इस ढिठाई को क्षमा ही करेंगे। असमर्थ बालक की ऊँची रुचि की वाणी को माँ-बाप परम प्रसन्न होकर सुनते हैं।

जौं बालक कह तोतरि बाता। सुनहिं मुदित मन पितु अरु माता ॥
हँसिहहिं कूर[1] कुटिल कुविचारी। जे पर दूपन भूपन धारी ॥५॥

व्याख्या : श्रीग्रन्थकार कहते हैं कि बच्चों की भाँति मुझसे कहते न बनेगा,

१. 'सर्वत्र लवराम्' इस सूत्र से 'र' का लोप होकर क्रूर का कूर हो गया।

अर्थ : यदि वालक तोतली बातें कहता है तो उसके माँ बाप प्रसन्न मन से सुनते हैं और जो क्रूर हैं, खोटे हैं, वुरे विचारवाले हैं और जो दूसरों के दूपणो का ही भूषण धारण करते हैं वे हँसेंगे।

टूटे-फूटे शब्दों में हरियश कहूँगा। यह बच्चों की तोतली वाणी की भाँति, सज्जनों के लिए अत्यन्त मोदकारी होगी। वाक्पटुता से उतना मोद नहीं होता। बच्चों की तोतली वाणी सबको प्रिय लगती है। उसका उपहास, क्रूर, कुटिल और कुविचारी ही कर सकते हैं। उन्हें अपने में तो कोई गुण है नहीं, जो भूषण हो सके तो दूसरे के दूषण को अपना भूषण बनाते हैं। भाव यह कि दूसरों को बुरा कहकर आप अच्छे बनते हैं। दूषण का प्रिय होना उनकी क्रूरता है, उसे भूषण समझना कुटिलता है और उसे धारण करना कुविचार है। परन्तु संसार में क्रूर, कुटिल, कुविचारी की हो संख्या अधिक है। यथा : जहँ तहँ काक उलूक वक मानस सकृत मराल।

निज कवित्त केहि लाग न नीका। सरस होउ अथवा अति फीका ॥
जे पर भनित सुनत हरखाहीं। ते वरपुरुष बहुत जग नाहीं ॥६॥

अर्थ : चाहे रसीली हो चाहे अत्यन्त फीकी हो, अपनी कविता किसे अच्छी नहीं लगती। जो दूसरों की कविता सुनकर प्रसन्न होते हैं ऐसे श्रेष्ठ पुरुष संसार में बहुत नहीं हैं।

व्याख्या : अपनी रचना सबको अच्छी लगती है तो क्या क्रूर, कुटिल, कुविचारी अच्छी कविता करते हैं जो तुम्हारी कविता पर हँसेगे। इसपर कहते हैं कि उन्हें अपनी बनाई हुई रसोई की भाँति अपनी बनाई कविता अच्छी लगेगी ही चाहे वह सरस बने चाहे फीकी बने। परन्तु जो दूसरे के परिश्रम के साफल्य के लिए तथा उत्साह वर्धन के लिए उसकी बनाई हुई कविता सुनकर प्रसन्न होते है ऐसे पुरुष बहुत थोड़े हैं, इसीका उदाहरण देते हैं; यथा :

जग बहु नर सरि सर समभाई। जे निज बाढ़ि बढ़हिं जलपाई ॥
सज्जन सकृत सिंधु सम कोई। देखि पूरविधु बाढ़ै जोई ॥७॥

अर्थ : भाई; संसार में नदी और तालाब के समान मनुष्य बहुत हैं जो जल पाकर अपनी बढोत्तरी से बढ़ते हैं पर समुद्र के समान कोई विरला ही होता है जो चन्द्रमा को पूर्ण देखकर बढ़ता है।

व्याख्या : अपनी बढोत्तरी से बढ़नेवालों की उपमा नदी और तालाब से दे दी : नदी और तालाब असंख्य हैं : और समुद्र को दूसरे की बढोत्तरी से बढ़ने वाले के साथ उपमित किया, जिनकी संख्या चार कही जाती है। ओछे लोग ही संसार में अधिक हैं, उन्हें अपनी ही कामनाओं से छुट्टी नहीं; वे दूसरों की बढोत्तरी से नहीं बढ़ सकते। समुद्र पूर्णकाम है, वह दूसरे की बढोत्तरी से वढ़ सकता है। भावार्थ यह कि मेरी कविता से पूर्णकाम महात्माओं को प्रसन्नता होगी पर जिन्हें अपनी ही इच्छा की पूर्ति के लिए विकलता है, वे प्रसन्न नहीं हो सकते।

दो. भाग छोट अभिलाष बड़, करौं एक विश्वास।
पैहहिं सुख सुनि सुजन सब, खल करिहहिं उपहास ॥८॥

अर्थ : भाग्य छोटा और अभिलाष बड़ी है, परंन्तु एक भरोसा करता हूँ कि इसे सुनकर सब सज्जन सुख पायेंगे और खल उपहास करेंगे : हँसी उड़ावेंगे।

व्याख्या : ऋषियों सा भाग्य नहीं, मन मति रंक है और गुण ग्राहक भी थोड़े हैं, इसलिए कहा कि भाग्य छोटा है और अभिलाषा बड़ी है कि ऐसी कविता बने जिससे सबका हित हो। यथा : कीरति भनिति भूति भलि सोई। सुरसरि सम सब कहँ हित होई। यह असामञ्जस्य है, फिर भी एक विश्वास है, जिसके बल पर कविता करता हूँ। जितना विश्वास सज्जन के सुख पाने पर है, उतना ही विश्वास खल के परिहास करने पर है। भाव यह कि सुख सबको मिल जायगा। सज्जन मुदित मनसे सुनेंगे ही और खल भी उपहास करते हुए मुदित होंगे।

खल परिहास होइ हित मोरा। काक कहहिं कलकंठ कठोरा ॥
हँसहिं वक गादर चातकही। हँसहिं मलिन खल विमल वतकहीं ॥१॥

अर्थ : खलों की हँसी से मेरी भलाई होगी। कौवे मधुरकण्ठ : कोयल : को कठोर : कण्ठ : कहा करते हैं। बगुले हंसों को और चमगादड़ पपीहों को हँसा करते हैं, इसी भाँति मलिन खल निर्मल वार्ता की हँसी उड़ाते हैं।

व्याख्या : जिसका खल परिहास करते हैं, वह बात अच्छी होती है। सो खल के परिहास से संसार समझेगा कि तुलसीदास ने अच्छा कहा होगा तब ही खल मजाक उड़ा रहे है। क्योंकि संसार कोयल के कूक पर मुग्ध है, कोयल के कण्ठ को कठोर कहने की सामर्थ्य काक में ही है : इससे कूर का हँसना कहा। खल के परिहास से पाप भी कटता है, अतः इसमें हित है।

हंस और बक एक ही रूप के होते हैं, पर हंस विवेकी हैं और वक अविवेकी दगावाज है सो वक हंस को हँसता है कि यह सरस : आमिष को छोड़कर : मोती चुगता है। कहा गया है कि 'चरन चोंच लोचन रँग्यौ चलै मराली चाल। छीर नीर विवरन समय वक उघरत ततकाल।' इससे कुटिल का हँसना कहा।

भलो कहै विनु जाने ही विनु जाने अपवाद। तेनर गादुर जानि जिअ करिअ न हरख विषाद। और एक भरोसो एक बल एक आस विश्वास। एक राम घनस्याम हित चातक तुलसीदास। सो गादुर चातक को हँसता है कि यह तो स्वाती का बूँद पीते हैं और गादुर अपने मुख से अधः इन्द्रिय का कार्य करना अच्छा समझता है। हंस का विवेक और चातक का टेक श्लाघ्य है। यथा : चातक हंस सराहियत टेक विवेक विभूति। इन्हें : ऐसे टेक विवेकवाले को : मलिन खल हँसते हैं। इस भाँति कुविचारी का हँसना कहा।

कवित रसिक न राम पद नेहू। तिन कहँ सुखद हास रस एहू ॥
भाषा भनिति भोरि मति मोरी। हँसिवे जोग हँसे नहि खोरी ॥२॥

अर्थ : जो कवित्व के रसिक नहीं हैं और जिन्हें श्रीरामजी के चरण से स्नेह नहीं है उनके लिए यह सुख देनेवाला हास्य रस है। भाषा की कविता है और मेरी बुद्धि भोरी है। अतः हँसने योग्य है, हँसने में कोई दोष नहीं।

व्याख्या : खल न कवित्व के रसिक हो सकते हैं और न उन्हें रामजी के चरणों में स्नेह ही हो सकता है। खल किसी का वखान नहीं करते क्योंकि उन्हें रस नहीं

मिलता। वे तो हरिहर यश राकेश के लिए राहु समान हैं। उन्हें रामपद में नेह नहीं है। मेरी रचना उन्हें अटपटी मालूम पड़ेगी, वे हँस पड़ेंगे। उनके हृदय में हास्यरस का प्रादुर्भाव होगा। यथा : हँसी भरयौ चित हँसि उठे जो रचना सुनि दास। कवि पंडित ताको कहँ यह पूरन रसहास। का. नि. : उन्हें भी सुख मिलेगा। इस भाँति कुविचारी का हँसना कहा।

भाषा में अक्षरार्थ के प्रकाश की यथार्थ शक्ति नहीं और मेरी बुद्धि में कवित्त रचना की यथार्थ शक्ति नहीं। अतः निश्चय कविता बेढङ्गी होगी। बेढङ्गी वस्तु के देखने सुनने से हँसी आना स्वाभाविक है, हँसने में दोष नहीं है। अतः उनके हँसने पर मुझे दुःख मानने के लिए स्थान नहीं है। 'खल परिहास होइ हित मोरा' से उपक्रम करके 'हँसे नहि खोरो' से परिहास प्रकरण का उपसंहार करते हैं।

प्रभु पद प्रीति न सामुझि नीकी। तिन्हहिं कथा सुनि लागिहि फीकी॥
हरिहर पद रतिमति न कुतरकी। तिन्ह कहुँ मधुर कथा रघुवर की॥३॥

अर्थ : जिन्हें न तो प्रभु के चरणों में प्रीति है और न अच्छी समझ ही है उन्हें यह कथा सुनने पर फीकी लगेगी। जिन्हें हरिहर के चरण में प्रीति है और जिनकी बुद्धि कुतर्क करनेवाली नहीं है। उनके लिए रघुवर की कथा मीठी है।

व्याख्या : इस कथा के मीठी लगने का कारण एकमात्र प्रभुपद प्रीति है सो जिसे है नहीं और न अच्छी समझ ही है : अच्छी समझ होती तो समझते कि गुण गण के ज्ञान से व्यक्ति के स्वरूप का ज्ञान होता है : तब वे राम गुणगान में मन लगाते, वक्ता के गुण दोष पर दृष्टि न देते। ऐसे पुरुष को यह कथा फीकी लगेगी।

हरि और हर में भेद नहीं है, इसीलिए दोनों को मिलाकर कहते हैं। दोनों पदों के और दोनों स्वरूपों के भूषण और आयुधों के भाव एक ही हैं। गदा और विभूति पृथ्वीतत्त्व, कमल और गङ्गा जलतत्त्व, सुदर्शन और भालनेत्र अग्नितत्त्व, पाञ्चजन्य और सर्प वायुतत्त्व, नन्दक और डमरू आकाशतत्त्व। इनके धारण करने वाले हरिहर हैं। अतः जिसको हरिहर चरण में भक्ति है, कुतर्क उठाकर इनके चरित्र में न्यूनाधिक भाव का आरोप जो नहीं करते, उन्हें रघुवर की कथा मीठी लगेगी क्योंकि कथा भक्ति का साधन है। यथा : समुझि समुझि गुनग्राम राम के उर अनुराग बढ़ाउ। हरिहर पद के अर्थ में भी भेद नहीं। 'हरति दुःखानि इति हरिः' और 'हरति दुःखानि इति हरः।'

राम भगति भूषित जिय जानी। सुनिहहिं सुजन सराहि सुबानी॥
कवि न होउँ नहि बचन प्रबीनू। सकल कला सब बिद्या हीनू॥४॥

अर्थ : सज्जन लोग अपने जी में श्रीरामजी की भक्ति से भूषित समझकर : इस कथाको : सुन्दर वाणी से बड़ाई करते हुए सुनेंगे। मैं न कवि हूँ और न बोलने में चतुर हूँ। मैं सब कलाओं और विद्या से हीन हूँ।

व्याख्या : सज्जन ऐसे रामभक्ति के रसिक हैं कि कविता पर ध्यान न देकर रामभक्ति से भूषित जानकर प्रशंसा करते हुए इसे सुनेंगे।

शक्ति कवित्त बनाइबे की, जेहि जन्म नछत्र में दीन्ह विधातैं।
काव्य की रीति सिखै सुकवीन ते, देखै सुनै बहु लोग को वातैं॥
दास जू जामें एकत्र ए तीन, बनै कविता मन रोचक तातैं।
एक विमान चलै रथ जैसे, धुरंधर सूत कि चक्र निपातैं॥

'कवि न होउँ' से शक्ति की हीनता कही, 'नही वचन प्रवीनू' से लोक चातुरी का अभाव कहा 'सकल कला सब विद्या हीनू' से शिक्षा का अभाव कहा। कलाएँ[1] चौंसठ हैं। विद्या चौदह हैं। इन सबका ज्ञान होना कवि के लिए अनिवार्य है। सो मैं सबसे अनभिज्ञ हूँ।

आखर अरथ अलंकृति नाना। छंद प्रबंध अनेक विधाना॥
भाव भेद रस भेद अपारा। कवित दोषगुन विविध प्रकारा॥५॥

अर्थ : शब्द और अर्थ के अनेक अलङ्कार हैं, छन्द और प्रबन्ध के अनेक विधान हैं, भावों और रसों के अपार भेद हैं तथा कविता के नाना प्रकार के गुण और दोष हैं।

व्याख्या : शब्द और अर्थ कविता का शरीर है। अलङ्कार गहने हैं। रस आत्मा है। गुण शोभा है। दोष शरीरविकृति अर्थात् खञ्जत्व, काणत्वादि है। छन्द नृत्य है। शब्दालङ्कार के अनेक भेद हैं। अर्थालङ्कार के भेद उससे भी अधिक हैं। छन्दों के भेद और उसके प्रस्तार का बहुत विस्तार है। यहाँ काव्यादि प्रबन्ध के अनेक विधान हैं कोई पारावार नहीं है। कवित्वके माधुर्यादि गुण हैं, अश्लील आदि अनेक दोष हैं।

कवित विवेक एक नहि मोरे। सत्य कहौं लिखि कागर कोरे॥६॥

---

१. कला तीन सौ से अधिक हैं। उनमें से ६४ के नाम शिवतन्त्र में पाये जाते हैं : १. गीतम् २. वाद्यम् ३. नृत्यम् ४. नाट्यम् ५. आलेख्यम् ६. विशेषकच्छेद्यम् ७. तण्डुल-कुसुमवलिविकाराः ८. पुष्पशय्या ९. दशनवसनाङ्गरागाः १०. मणिभूमिकाकर्म ११. शयन-रचनम् १२. उदकवाद्यम् १३. उदकघातः १४. माल्यग्रथनविकल्पाः १५. चित्रा योगाः १६. शेखरापीडयोजनम् १७. नेपथ्ययोगाः १८. कर्णपत्रभङ्गाः १९. गन्धयुक्तिः २०. भूषणयोजना २१. इन्द्रजाला २२. कौचुमारयोगाः २३. हस्तलाघवम् २४. चित्रशाकपूपविकारक्रिया २५. पानकरसरागासवयोजनम् २६. सूचीवायकर्माणि २७. सूत्रक्रीडा २८. पहेलिका २९. प्रति-माला ३०. दुर्वचक्रयोगाः ३१. पुस्तकवाचनम् ३२. नाटिकाख्यायिकादर्शनम् ३३. काव्यसमस्या-पूरणम् ३४. पट्टिकावेत्रवाणविकल्पाः ३५. तर्कुकर्माणि ३६. तक्षणम् ३७. वास्तुविद्या ३८. रूप्यरत्नरीपक्षा ३९. धातुवादः ४०. मणिरागज्ञानम् ४१. आकरज्ञानम् ४२. वृक्षायुर्योगाः ४३. मेषकुक्कुटलावकयुद्धविधिः ४४ शुकसारिकाप्रलापनम् ४५. उत्सादनम् ४६. केशमार्जन-कौशलम् ४७. अक्षरमुष्टिकाकथनम् ४८. म्लेच्छितविकल्पाः ४९ देशभाषाज्ञानम् ५०. पुष्प-शकटिकानिमित्तज्ञानम् ५१. यन्त्रमात्रिका ५२ धारणमात्रिका ५३. सम्पाठ्यम् ५४. मानसी-काव्यक्रिया ५५ क्रियाविकल्पाः ५६ छलितकयोगाः ५७. अभिधानकोषछन्दोज्ञानम् ५८. वस्त्र-गोपनानि ५९. द्यूतविशेषः ६०. आकर्षक्रीडा ६१. बालक्रीडनकानि ६२. वैनायकीनां विद्यानां ज्ञानम् ६३. वैजयकीनां विद्यानां ज्ञानम् ६४. वैतालिकीनां विद्यानां ज्ञानम्।

अर्थ : काव्य का एक भी विवेक मुझे नहीं है। मैं कोरे कागज पर लिखकर कहे देता हूँ।

व्याख्या : जिसे काव्य के स्वरूप का दर्शन हुआ है वही कह सकता है कि 'कवित विवेक एक नहि मोरे'। कोरे कागज पर लिखना प्रमाण है, लिखे हुए पर लिखना प्रमाण नहीं है, सम्भव है कि हाथ बैंठाने के लिए लिखा गया हो। कहा जा सकता है कि ग्रन्थकार ने अपना कार्पण्य दिखलाया हो यथा : तापर मैं रघुबीर दोहाई। जानहुँ नहिं कछु भजन उपाई। परन्तु जब वस्तुस्थिति मानने से काम चल सकता है तो कार्पण्य का आड़ क्यों लिया जाय।

अर्थ : १. गाना २. बजाना ३. नाच ४ नाटक ५. लेख चित्र ६. हीरा मोती वेधना ७. चावल पुष्प का रंग निकालना ८. पुष्प शय्या विधान ९. दाँत, वस्त्र तथा अङ्ग का रँगना १०. मणि से भूमि रचना ११. सेज लगाना १२. जल का बजाना १३. जल का ताडन १४. माला गूँथने का विकल्प १५. चित्र योग १६. शिर परकी माला बनाना १७. नेपथ्य योग १८. कर्ण पत्र योग १९. इत्र आदि बनाना २०. गहना पहिनाना २१. इन्द्रजाल २२. बाना पटा आदि २३. हाथ की सफाई २४. अनेक प्रकार से भोजन बनाना २५. शर्बत, रस, राग और आसव बनाना २६. सीना, बुनना वगैरह २७. सूत का खेल २८. बुझौवल २९. प्रतिमाला ३०. दूर्व वक्र योग ३१. पुस्तक बाँचना ३२. नाटिकाख्यायिका दर्शन ३३. काव्य की समस्या की पूर्ति ३४. पट्टी, बेंत, वाण आदि बनाना ३५. तर्कु के कर्म ३६. बढ़ई के कर्म ३७. वास्तु विद्या ३८. रूपा रत्न की परीक्षा ३९. धातुवाद ४०. मणि राग का ज्ञान ४१. खान का ज्ञान ४२. वृक्ष के आयु का योग ४३. मेढ़ा, मुर्गा और बटेर के लड़ाने की विधि ४४. तोता मैना पढ़ाना ४५. निकालने की विधि ४६. बाल के मार्जन करने का कौशल ४७. अक्षरमुष्ठिका कथन ४८. म्लेच्छित विद्या ४९. देश भाषा ज्ञान ५०. पुष्प शकटिका निमित्तिक ज्ञान ५१. यन्त्र मात्रिका ५२. धारण मातृका ५३. सम्पाठ्यम् ५४. मानसी काव्य क्रिया ५५. क्रिया विकल्प ५६. छलितक योग ५७. अभिधान कोष और छन्द का ज्ञान ५८. वस्त्रकी रक्षा ५९. विशेष प्रकार का जूआ ६०. आकर्ष क्रीडा ६१. लड़कों के खिलौने ६२. वैनायकी के विद्या का ज्ञान ६३. वैजयकी विद्या का ज्ञान ६४. वैतालिकी के विद्या का ज्ञान।

ये सब विद्याएँ भारतवर्ष में थीं, धीरे धीरे लुप्त हो गईं। बहुतों के नाम मात्र ऊपर गिना दिये गये हैं, अब परिचय देनेवाला नहीं है। बहुत सी ऐसी हैं, जो सुनने में तुच्छ मालूम होती हैं पर वे कभी चामत्कारिक थीं; जैसे तोता मैना पढ़ाना। अभी थोड़े दिन की बात है कि पूज्यपाद प० रक्षपाल दूबे जीका तोता रामरक्षा का पाठ करता था। तोते को कैसे पढ़ाना जिसमें उसे रामरक्षा कण्ठ हो जाय, अब कोई नहीं जानता। इसी भाँति और विद्याओं के विषय में समझना चाहिए।

चौदह विद्या : ब्रह्मज्ञानं रसज्ञानं वेदाः स्वरधरन्तथा। व्याकृतिं ज्यौतिषञ्चैव धनुर्विद्या तथा मता। जलोत्तरणकं न्यायः कोकाश्वारोहणन्तथा। नटविद्या कृषिर्वैद्यं विद्या ह्येताश्चतुर्दश।

अर्थ : ब्रह्मज्ञान, रसायन, वेद, स्वरज्ञान, व्याकरण, ज्यौतिष, धनुर्वेद, तैरना, न्याय, कोक, घोड़े की सवारी, नटविद्या, खेती और वैद्यक ये चौदह विद्याएँ हैं।

दो. भनिति मोरि सब गुन रहित, बिस्व बिदित गुन एक।
सो बिचारि सुनिहहिं सुमति, जिन्ह के बिमल बिवेक ॥९॥

अर्थ : मेरी कविता सारे गुणों से रहित है, पर एक गुण : ऐसा है कि : संसार में विख्यात है, यह विचारकर इसे सुमति जिन्हें निर्मल विवेक है सुनेंगे।

व्याख्या : मुझे कविता का विवेक नहीं है, इसलिए मेरी कविता भी सब गुण रहित है, निर्मल विवेकी वे ही हैं जो दोषों पर दृष्टि न देकर गुण ग्रहण करते हैं और कविता में जो गुण है वह विश्वविदित है। अतः उस गुण के कारण वे अवश्य सुनेंगे। फलतः बुध समाज में मेरी कविता का आदर होगा।

एहि महँ रघुपति नाम उदारा। अति पावन पुरान श्रुति सारा ॥
मंगल भवन अमंगल हारी। उमा सहित जेहि जपत पुरारी ॥१॥

अर्थ : इसमें रघुपति का उदार नाम है, जो अति पवित्र पुराण और श्रुतियों का सार है। यह कल्याण का घर और अमङ्गल को दूर करनेवाला है और जिसे उमा सहित पुरारि : शिवजी : जपा करते हैं।

व्याख्या : अब उस विश्व विदित गुण को स्पष्ट करते हैं कि उसमें रघुपति का नाम है और वह १. उदार २. अतिपावन ३. पुराण श्रुतिसार ४. मङ्गल भवन और ५. अमङ्गल हारी है और ६. उसकी महिमा ऐसी है कि उसे उमाके सहित पुरारि : शिवजी : जपते हैं।

१. उदार यथा : नाम राम को कल्पतरु कलि कल्यान निवास।
२. अति पावन यथा : आभीर जवन किरात खल स्वपचादि अति अघरूप जे।
कहि नाम बारक तेऽपि पावन होहि राम नमामि ते ॥
३. पुराण श्रुतिसार यथा : बिधि हरि हर मय बेद प्रान सो।
अगुन अनूप सगुन निधान सो ॥
४. मंगल भवन यथा : नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ।
५. अमंगल हारी यथा : जिन्हकर नाम लेत जग माहीं।
सकल अमंगल मूल नसाहीं ॥
६. उमा सहित जेहि जपत पुरारी यथा : सहस नाम सम सुनि सिव बानी।
जपति सदा पिय संग भवानी ॥

भनिति बिचित्र सुकबि कृत जोऊ। राम नाम बिनु सोह न सोऊ ॥
बिधुबदनी सब भाँति सँवारी। सोह न बसन बिना बर नारी ॥२॥

अर्थ : कविता अनोखी हो और सुकवि की की हुई हो परन्तु राम नाम बिना उसकी भी शोभा नहीं है। स्त्री चन्द्रमुखी हो और सब प्रकार से शृङ्गारित हो तो भी उस श्रेष्ठ नारी की कपड़े बिना शोभा नहीं होती।

व्याख्या : 'जग ते अद्भुत सुख सदन शब्दरु अर्थ कवित्त' अतः सुन्दर कविता को सुन्दर स्त्री कहा। यदि कविता सुकवि कृत हो अर्थात् शब्दालङ्कार, अर्थालङ्कार

से युक्त हो और उसमें कवितोचित सब गुण हों तब वह सब प्रकार से शृङ्गारित कही जायगी। पर यदि उस कविता में राम नाम न हो तो उसकी शोभा उसी भाँति नहीं है जिस भाँति सब प्रकार से शृङ्गारित नायिका की शोभा कपड़ा न होने से नहीं होती।

आज तक साहित्यकारों ने कविता बनिता के शरीर, आत्मा, अलंकार, गुण और दोषों की कल्पना तो की पर किसी ने साड़ी आदि की कल्पना न की। श्री ग्रन्थकार का मत है कि भगवन्नाम की साड़ी बिना कविता बनिता नग्न है, आदर्शनीया है, उसका देखना पाप है, उसकी शोभा भी नहीं, भयानक मालूम पड़ती है। यथा : न नग्नां स्त्रियमीक्षेत पुरुषो वा कदाचन : कूर्म पुराणे।

सब गुन रहित कुकवि कृत बानी। राम नाम जस अंकित जानी॥
सादर कहहिं सुनहिं बुध ताही। मधुकर सरिस संत गुन ग्राही॥३॥

अर्थ : सब गुणों से रहित कुकवि की कविता को भी राम नाम के यश से अङ्कित जानकर पण्डित जन उसे आदर पूर्वक कहते सुनते हैं; क्योंकि सन्त जन भौरें की तरह गुणग्राही होते हैं।

व्याख्या : जो कविता बनिता सब गुण रहित महाकुरूपा है, कुकवि कृत होने से अलङ्कारादि से भी रहित है, पर रामनाम यश से अलङ्कृत है, साड़ी आदि पहिने हुए है, वही बुधजनों द्वारा दर्शनीया है। क्योंकि जिस भाँति भौंरा फूल में रस लेता है और किसी बात से उसका प्रयोजन नहीं उसी भाँति सन्त गुण ग्रहण कर लेते हैं, अन्य प्रपञ्च से प्रयोजन नहीं रखते। आदर के साथ राम यश युक्त बेढङ्गी कविता को भी कहा सुना करते हैं।

जदपि कवित रस एकौ नाहीं। नाम प्रताप प्रगट एहि माहीं॥
सोइ भरोस मोरे मन आवा। केहि न सुसंग बड़प्पनु पावा॥४॥

अर्थ : यद्यपि इसमें कविता का एक भी आनन्द नहीं है तथापि रामजी का प्रताप इसमें प्रकट है। यही भरोसा मेरे मन में आया कि किसने सत्संग से बड़प्पन : बड़ाई : नहीं पाया ?

व्याख्या : मेरी कविता में कवितोचित गुण नहीं सही पर रामनाम का प्रताप इसमें प्रकट है। जैसे शम्भु का प्रताप साबर मन्त्र में प्रकट है। यथा : अनमिल आखर अर्थ न जापू। प्रकट प्रभाव महेस प्रतापू। वह संस्कृत के मन्त्रों की भाँति कीलित नहीं है। मैं जो कविता करने चला सो 'रामनाम के प्रताप' के भरोसे कि रामनाम के सम्पर्क से मेरी कविता में भी महिमा आजावेगी।

धूमौ तजै[1] सहज करुआई। अगर प्रसंग सुगंध बसाई॥
भनिति भदेस वस्तु भलि बरनी। राम कथा जगमंगल करनी॥५॥

अर्थ : धूआँ भी अगर के साथ से सुगन्धित हो जाता है और अपने स्वाभाविक

---

१. यहाँ तद्गुणालङ्कार है।

कडुएपन को छोड़ देता है। मेरी कविता यद्यपि भद्दी है परन्तु इसमें अच्छी वस्तु का वर्णन किया गया है। क्योंकि : रामकथा जगत् का मङ्गल करनेवाली है।

व्याख्या : प्रश्न उठता है कि सुमङ्ग से बड़ाई भले ही मिल जाय पर कविता का दोष तो बना ही है। जो बात अच्छी है, उसीकी प्रशंसा प्राप्त है। पर जो अंश बुरा है वह अच्छा कैसे हो जायगा ? इसपर कहते हैं कि अगर के साथ से धूम में सुगन्ध आजाती है और धूम का कड़आपन मिट जाता है। इसी भाँति रामयशरूपी अगर के साथ होने से सुभाषा रूपी सुवास आ जावेगी और भद्दापनरूपी कटुता मिट जावेगी।

वर्णनीय वस्तु के भली होने से ग्राम्य गिरा का दोष अकिञ्चित्कर हो जाता है। भदेस शब्द का अर्थ महात्माओंने किया है कि 'भ्रष्ट है अङ्ग जिसका' उसे भदेस कहते हैं अर्थात् अपभ्रंश भाषा, परन्तु भदेस शब्द का प्रयोग ऐसे देशों के प्रति होते देखा जाता है, जहाँ के निवासी अत्यन्त ही गँवार हों। अत्यन्त गँवार को 'भदेसिया' कहते हैं।

राम कथा को जगमङ्गलकरणी कहकर उदार कहा। छः गुण नाम के 'उदारादि' ऊपर कह आये हैं, वे ही छः गुण चरित के भी कहेंगे। यथा :

छं. मंगल[1] करनी कलिमल हरनि, तुलसी कथा रघुनाथ की।
गति कूर कविता सरित की ज्यौं, सरित पावन पाथ की॥
प्रभु सुजस संगति भनिति भल, होइहि सुजन मन भावनी।
भव अंग भूति मसान की, सुमिरत सुहावनि पावनी॥

अर्थ : तुलसीदासजी कहते हैं कि राम की कथा कल्याण करनेवाली और कलियुग के पापों को दूर करनेवाली है। कविता सरिता की टेढ़ी गति, पवित्र जल वाली गङ्गा की गति के समान है। प्रभु के सुयश के साथ यह कविता भली और सुजन मन भावनी होगी। महादेव जी के अङ्ग के साथ मसान की राख भी स्मरण करने में सुहावनी और पवित्र है।

व्याख्या : कविता सरिता की गति टेढ़ी है। पर रामयशरूपी जल से भरी है। गङ्गा की भाँति सब लोग पवित्रता पर ध्यान देते हैं। काशी की गङ्गा की भाँति टेढ़ी गति की अधिक शोभा है। मुझसे कविता करते नहीं बना, उसकी गति टेढी हो गई, पर रामयश से भरी है, अतः सुजन मन भावनी है। इससे गुण दोष कहा। अब कहते हैं कि रामयश शङ्कर का शरीर है। मेरी कविता मसान की राख है। भयावनी और अपावनी है, सो शिवजी के शरीर के सम्बन्ध से सुहावनी और पावनी हो गई इससे अलङ्कृता कहा, क्योंकि विभूति शिवजी का अलङ्कार है। भावार्थ यह कि रामयश के साथ होने से मेरे शब्दों में चित्ताकर्षकता, अर्थ में माधुर्य आजायगा। दोष तुच्छ हो जाँयगे और सुहावनी पावनी होकर कविता अलंकृत भी हो जायगी। 'क्रूर' का ही प्राकृतरूप कूर है। गति के साहचर्य से इसका अर्थ टेढा माना गया।

---

१. यह हरिगितिका छन्द है। इस छन्द में २८ मात्रा का एक पाद होना है। सोलह पर यति होती है अन्त में लघु और गुरु होता है। किसी चौकल में जगण न पड़ना चाहिए।

'मंगल करणि' से 'मंगल भवन' कहा। कलिमलहरणि से 'अमंगलहारी' कहा। 'कथा रघुनाथ की' कहकर 'पुराण श्रुतिसार' कहा। 'पावनपाथ की' कहकर 'अति-पावन' कहा। 'सुजन मनभावनी' से 'उमा महेश प्रिय' कहा। सो जो कुछ छः गुण नाम में कहे थे वे शब्दान्तर से मेरी कविता सरिता में आगये।

दो. प्रिय लागिहि अति सबहिं मम, भनिति राम जस संग।
दारु विचारु कि करइ कोउ, बंदिअ मलय प्रसंग ॥१०॥
स्याम सुरभि पय बिसद अति गुनद करहिं सब पान।
गिरा ग्राम्य सियराम जस गावहिं सुनहिं सुजान ॥१०क॥

अर्थ : गाय काली है, पर दूध तो उसका अत्यन्त उज्ज्वल और अत्यन्त गुण-कारी है। उसे सब लोग पीते हैं। इसी भाँति गँवारी बोली में भी सीताराम का यश, सज्जन गाते हैं और सुनते हैं।

व्याख्या : जो शब्द, अर्थ, गुण, दोष, अलङ्कारादि कुछ नहीं समझते, उन्हें भी छन्दोबद्ध कविता सुनने में प्रिय लगती है। रामयश के साहचर्य से मेरी कविता सबको अति प्रिय लगेगी 'प्रिय लागिहि अति सबहि'। रामयश मलय-मारुत है, इसके साथ से सभी लकड़ियाँ चन्दन होकर वन्द्य हो जाती हैं। क्या कोई लकड़ी का विचार करता है। मन्यामहे मलयमेव यदाश्रयेण कंकोलनिम्बकुटजा अपि चन्दनाः स्युः। इसी भाँति मेरी छन्दोबद्ध कविता भी जगवल्लभ हो जायगी। मेरी कविता के दोषों की ओर कोई दृष्टिपात न करेगा, रामयश के साथ होने से ही सब को अत्यन्त प्रिय हो जायगी।

कृष्णा गौ का दूध कपिला के दूधसे अधिक श्वेत और अधिक गुणद होता है। यथा : कृष्णाया गोर्भवं दुग्धं वातहारिगुणाधिकम्। इति वैद्यरहस्ये। कपिला के दूध में कुछ पीलापन और पाक में गुरुता होती है और शूद्रों को उसके पीने का अधिकार नहीं है। कृष्णा गौ के दूध में सफेदी अधिक होती है और पाक में भी लघु होता है, उसके पीने के सभी अधिकारी हैं। संस्कृत, कपिला गौ सी श्रेष्ठ है और भाषा कृष्णा गौ सी कनिष्ठ है, सियराम यश उनका दूध है। सुजान कृष्णा गौ के दूध से ही काम लेते हैं जिसमें शूद्र को भी लाभ हो सके और समझने में भी आयास न हो। 'पान करना कहकर भाव का पान कहा। भाव ही, विभाव, अनुभाव तथा संचारी भाव से पुष्ट होकर रस होता है। अतः भाव में रस का भी अन्तर्भाव है।' इस भाँति 'आखर अरथ अलंकृत नाना। छन्द प्रबंध अनेक विधाना। भाव भेद रस भेद अपारा। कवित दोष गुन विविध प्रकारा। कवित विवेक एक नहिं मोरे।' इस बड़े दोष का मार्जन किया।

मनि[1] मानिक मुकुता छबि जैसी। अहि गिरि गज सिर सोह न तैसी॥
नृप किरीट तरुनी तनुपाई। लहहिं सकल सोभा अधिकाई ॥१॥

---

१. यहाँ पर्यायालङ्कार है।

अर्थ : मणि, मानिक और मोती की जैसी शोभा होनी चाहिए, वैसी साँप, पर्वत और हाथी के मस्तक पर नहीं होती। राजा, मुकुट और नवयौवना स्त्री का शरीर पाकर वे अधिक शोभा को प्राप्त होते हैं।

व्याख्या : अब कहते हैं कि संस्कृत के महाकवियों की भणिति मेरे भाषा वन्ध में आकर अधिक शोभित होंगी। अहि के सिर में मणि, गिरि में माणिक और गज के सिर में मुक्ता होती है। ये सब शुचि अमोल और सुन्दर हैं। पर जैसी इनकी शोभा है, वैसी उत्पत्तिस्थल में नहीं होती। सर्प के सिर पर मणि की क्या शोभा है ? पर्वत में माणिक और हाथी के सिर में मुक्ता की क्या शोभा है ? राजा के धारण करने पर मणि की, मुकुट में जटित होने पर माणिक की और सुन्दरी के शृङ्गार में मुक्ता की, स्वाभाविक शोभा से भी अधिक शोभा हो जाती है।

तैसेहि सुकवि कवित बुध कहहीं। उपजहिं अनत अनत छवि लहहीं ॥
भगति हेतु विधि भवन विहाई। सुमिरत सारद आवति धाई ॥२॥

अर्थ : इसी तरह सुकवि की कविता के लिए भी पण्डित कहते हैं कि पैदा दूसरे जगह होती है और शोभा दूसरे जगह पाती है। भक्ति के कारण सरस्वती देवी ब्रह्मदेव के घर को छोड़कर स्मरण करते ही दौड़ी हुई आती हैं।

व्याख्या : यहाँ तीन सुकवि हैं : १. शम्भु २. याज्ञवल्क्य और ३. भुसुण्डि। ये ही क्रमशः १. अहि २. गिरि और ३. गज से उपमित हैं। गरल कण्ठ होने से शम्भु को अहि से उपमित किया। वेद के सब तत्त्वों के धारण करने से याज्ञवल्क्य को गिरि से उपमित किया : यथा : करगत वेद तत्त्व सब तोरे। पावन पर्वत वेद पुराना। खाने के दाँत और, तथा दिखाने के दाँत और होने से भुसुण्डि जी को गज से उपमित किया। भुसुण्डि जी देखने में कटुभाषी : काग : हैं, पर हैं बड़े मधुर भाषी। यथा : मधुर वचन बोलेउ तब कागा। ये तीन सुकवि हैं। यथा : यत्पूर्वं प्रभुणा कृतं सुकविना श्री शम्भुना। इनकी कही हुई कथाएँ यथाक्रम मणि, माणिक और मुक्ता हैं।

जहाँ ये कथाएँ हुईं, वहाँ इनकी जैसी चाहिए वैसी शोभा नहीं हुई। कैलास पर्वत पर एकान्त में शम्भु ने गिरिजा से, देववाणी में कथा कही। सब मुनियों के विदा हो जाने पर प्रयागराज में याज्ञवल्क्य ने भारद्वाज से देववाणी में कथा कही। समाज में केवल भुसुण्डि की कथा हुई, सो भी पक्षीभाषा में और पक्षियों के मध्य में। इसलिए कहते हैं कि 'अहि, गिरि, गज सिर सोह न तैसी।' छविप्राप्ति के स्थान भी तीन हैं। १. नृप २. किरीट और ३. युवती। सो ज्ञान नृप है। यथा : सचिव विराग विवेक नरेसू। कर्म मुकुट है। यथा : मुकुट न मोहिं भूप गुन चारी। यहाँ अपन्हुति अलङ्कार द्वारा भूप के चारों गुण साम, दान भेद और दण्ड को मुकुट कहा। उपासना तरुणी है। यथा : भगति सुतिय कल करन विभूषन।

अतः उमा शम्भु संवाद की शोभा मानस के ज्ञानघाट पर हुई। भारद्वाज याज्ञवल्क्य संवाद की शोभा मानस के कर्मघाट पर हुई और गरुड़ भुशुण्डि संवाद की शोभा मानस के उपासनाघाट पर हुई। यथा : सुठि सुन्दर संवाद वर, विरचेउँ बुद्धि

विचारि। ते येहि पावन सुभग सर, घाट मनोहर चारि। इस भाँति तीन घाट कह कर अब चौथा कहते हैं :

सबके स्वाधिष्ठान चक्र में ब्रह्मदेव का वास है, वही ब्रह्मभवन है। परावाणी वहीं पर मूलाधार में रहती है। वहाँ से जब यह नाभिदेश को प्राप्त होती है, तब इसका नाम पश्यन्ती होता है और जब यह हृदय देश में अवस्थान करती है, तब इसका नाम मध्यमा पड़ता है और जब कण्ठ, ताल्वादि स्थान में आकर वर्णरूप से अभिव्यक्त होती है तब इसका नाम वैखरी पड़ता है। वैखरी वाक् को ही अर्थबोधन का सामर्थ्य है। इसी के द्वारा अपना मनोगत भाव दूसरे को बतलाया जाता है। परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी यथाक्रम वाणी की सूक्ष्मतर, सूक्ष्म सूक्ष्मतम, और स्थूल अवस्थाएँ हैं। सूक्ष्मतम अवस्था से स्थूल अवस्था में आना ही वाणी का ब्रह्मभवन से यहाँ पधारना है।

यही वाणी भगवती कविकुल की इष्ट देवता है, भक्ति के कारण यह सूक्ष्मतम अवस्था से सूक्ष्मतर में और उससे फिर सूक्ष्म में तथा उसे भी पारकर स्थूल अवस्था में बड़े वेग से आती है। यह उसकी भक्तवत्सलता है। इसी बात को महाकवि ग्रन्थकार ने 'भगति हेतु विधि भवन विहाई। सुमिरत सारद आवत धाई।' इस एक अर्धाली में कितनी पण्डिताई से कहा है।

रामचरित सर विनु अन्हवायें। सो श्रम जाइ न कोटि उपायें॥
कवि कोविद अस हृदय विचारी। गावहिं हरिजस कलिमल हारी॥३॥

अर्थ : रामचरित्र सर में विना नहलाये, वह श्रम करोड़ उपाय करने पर भी नहीं जाता, पण्डित कवि ऐसा हृदय में विचार करके कलिमल के हरण करनेवाले हरियश का गान करते हैं।

व्याख्या : भाव यह कि इस भाँति पधारने पर सरस्वती के श्रमापनोदन का उपाय तथा पूजन होना चाहिए और वह रामयशगान से ही होता है। रामयशगान में ही सरस्वती का साफल्य है, अन्य कोई उपाय सरस्वती के श्रमापनोदन का नहीं है : यथा : मज्जन कीन्ह पंथ श्रम गयऊ। सुचि जल पियत मुदित मन भयऊ। रामचरित में स्नान कराने से सरस्वती का पंथ-श्रम जाता रहता है और उनके स्वामी का गुणानुवाद ही उनका पूजन है। यथा : सुमिरि गिरापति प्रभु धनुपानी। कवियों में जो पण्डित हैं, वे इस बात को समझते हैं। 'मातृवत् परदारेषु परद्रव्येषु लोष्ठवत्। आत्मवत् सर्वभूतेषु यः पश्यति स पण्डितः। जो दूसरे की स्त्री को माता और दूसरे के द्रव्य को मिट्टी का ढेला और समस्त प्राणियों को अपने जैसा समझता है, उसे पण्डित कहते हैं। ऐसा पण्डित कवि भगवान् का गुणानुवाद छोड़कर, प्राकृतजनका गुणगान क्यों करने लगा ? लोभी कवि ही प्राकृत जन का गुणगान करते हैं, उन्हें पण्डित नहीं कहा जा सकता। पण्डित कवि हरियश का गान करके सरस्वती का श्रमापनोदन तथा पूजन करता है और उसके द्वारा कलिमल का नाश करके, जगत् का उपकार करता है।

कीन्हे प्राकृत जन गुनगाना । सिर धुनि गिरा लगत पछिताना ॥
हृदय सिंधु मति सीप समाना । स्वाति सारदा कहहिं सुजाना ॥४॥

अर्थ : सांसारिक पुरुषों का गुणगान करने से, सरस्वती सिर धुनकर पछताने लगती हैं। हृदय को सिन्धु और बुद्धि को सीप तथा सरस्वती को सुजान लोगों ने स्वाती नक्षत्र के समान वतलाया है।

व्याख्या : संसारी जीवों में ईश्वरत्व विना माने स्तुति बन नहीं सकता। अतः उनकी स्तुति मिथ्या है। इसलिए सरस्वती पछताती है कि इसके अधीन मैंने अपने को क्यों किया ? सरस्वती का पछताना स्पष्ट दिखाई देता है। स्तुतिकर्ता खिन्न हो जाता है और दीन हो जाता है, पर लोभवश रचना करता जाता है।

समुद्र की सीपी में मोती होती है। सरस्वती का आगमन स्वाती नक्षत्र का आगमन है। सो सब वर्षावाले नक्षत्रों के पीछे आती है, प्रायेण वरसती भी कम है। इसी भाँति रामसुयश की वर्षा होती है और सुकृती लोग उससे लाभ भी उठाते हैं।

जौ वरखै वर वारि विचारू। होहि कवित मुकुतामनि चारू ॥५॥

अर्थ : यदि विचाररूपी जल की वर्षा करें, तो कवितारूपी सुन्दर मुक्तामणि उत्पन्न हों।

व्याख्या : सरस्वतीरूपी स्वाती नक्षत्र यदि विचाररूपी जल की वर्षा करें और उसे बुद्धिरूपी सीपी ग्रहण कर सके तब कवितारूपी सुन्दर मोती उत्पन्न होती हैं। भाव यह कि सच्चिदानन्द रामके चिदंशका विवर्त ही वाणी है, उसीकी कृपा से कवि को प्रतिभा होती है जिसके द्वारा सुन्दर मोती कविता वनती है।

दो०. जुगुति वेधि पुनि पोहिअहि, रामचरित वर ताग ।
पहिरहिं सज्जन विमल उर, सोभा अति अनुराग ॥११॥

अर्थ : युक्ति से वेधकर उन्हें रामचरितरूपी सुन्दर तागे में पिरोना चाहिए। सज्जन लोग उसे अपने निर्मल हृदय में धारण करते हैं, अति अनुराग ही उसकी शोभा है।

व्याख्या : उन मोतियों को युक्तिरूपी सूक्ष्म वरमे से वेधे, जिसमें टूट न जाँय, अर्थ का अनर्थ न हो जाय और उसे क्रम से उतार चढ़ाव के साथ रामचरित के श्रेष्ठ तागे में पिरोए। यही तागा उन मोतियों के धारण में समर्थ है। तव वह माला सज्जनों के धाररण योग्य होती है और उनमें शोभारूपी अनुराग को बढ़ाती है। भावार्थ यह कि ग्रन्थकार की दीनघाट की कथा सीपीवाली मुक्ता है।

दैव, आर्ष और सिद्ध कविताएँ, मणि, माणिक और गजमुक्ताएँ हैं पर मानुष कविता तो सीपी की मोती है। ग्रन्थकार कहते हैं कि उसका भी मैं ठीक पात्र नहीं। उसमें तो मोती उत्पन्न करने की शक्तिवाली तथा समुद्रतल से उठकर स्वाती विन्दु ग्रहण की सामर्थ्यवाली सीपी जैसी बुद्धि की आवश्यकता है जिसमें कविताकी शक्ति हो और प्रतिभा हो। अतः अपना परिचय देते हैं :

जे जनमे कलिकाल कराला। करतव वायस वेष मराला ॥
चलत कुपंथ वेद मग छाँड़े। कपट कलेवर कलिमल भाँड़े ॥१॥

अर्थ : इस कराल कलियुग में जिन्होंने जन्म ग्रहण किया है जिनकी करनी कौए के समान और वेष हंस के समान है, वेद के मार्ग को छोड़े हुए कुमार्ग में चलते हैं, कपट की मूर्ति और कलियुग के दोषों के पात्र हैं।

व्याख्या : इस कराल कलिकाल में सज्जन बहुत कम जन्म ग्रहण करते हैं, अधम खल ही अति अधिक उत्पन्न होते हैं। यह काल ही विपरीत है, इसीलिए इसे कराल कहा। यथा : यत्र कामगिरो वेदा यत्र धर्मोऽर्थसाधनम्। यत्र स्वप्रतिभा मानं तस्मै श्रीकलये नमः। जहाँ आराम की बातें ही श्रुति हैं, जहाँ धर्म अर्थ का साधन होता है, जहाँ अपनी ही वुद्धि प्रमाण है, उस कलि को नमस्कार है। भगवान् ने स्वयं कहा है, 'ऐसे अधम मनुज खल कृतजुग त्रेता नाहिं। द्वापर कछुक वृंद वहु, होइहहिं कलिजुग माहि।' मैं उन 'वृन्द वहु' में से हूँ। 'करतव वायस' अर्थात् 'छली मलीन न कतहुँ प्रतीती' और वेष हंस का : साधु का : बनाए रहता हूँ। यथा : करि हंस को वेष वड़ो सव ते तजिदे वक वायस की करनी।

वेद मार्ग नहीं छोड़ते हुए जो कुपंथ में पैर डाल देते हैं, उनकी वेद मार्ग पर लौट आने की आशा है। और जिन्होंने वेद मार्ग छोड़ दिया, वे रास्ता ही भूल जाते हैं, फिर लौट नहीं सकते। कपट कलेवर का भाव यह कि उनका तिलक, मुद्रा, पूजा-पाठ सव कपट मात्र है। वस्तुतः उनमें राग-द्वेषादि कलिमल भरा पड़ा है।

वंचक भगत कहाइ रामके। किंकर कंचन कोह काम के ॥
तिनमहँ प्रथम रेख जग मोरी। धींग धरमध्वज धँधरच (धंधक) धोरी ॥२॥

अर्थ : ठग लोग राम के भक्त कहलाकर : भी : कञ्चन, क्रोध और काम के दास हैं, उन धींग, धर्मध्वज और पाखण्ड रचनेवालों के धुरियों में पहिली गिनती मेरी है।

व्याख्या : हैं तो [1]ठग, पर ऐसा मायाजाल फैलाते हैं कि लोग उन्हें रामभक्त कहने लगें। वे राम के दास नहीं हैं, लोभ, क्रोध और काम के दास हैं। हैं कौवे[2] पर धींगाधींगी से हंस बने हुए हैं। इसलिए उन्हें धींग कहा। वैदिक मार्ग का परित्याग करके कुपन्थ[3] पर पाँव दिये हैं। कपट से साधु वेष बना रक्खा है, पर कलिमल से

१. अपनायो तुलसी सो धींग धम धूसरो, यथा : ब्रह्मज्ञान बिनु नारि नर, करहिं न दूसरि वात। कौड़ी लागि लोभ वस करहिं बिप्र गुरु घात।

२. यथा : वारविलासिनी के घर में अधरासव पान किये सुखसे।
चाँदनी रात कटी मदनोत्सव में ललनागन संग बसे ॥
प्रातहिं दीक्षित हैं, सरवज्ञ हैं, पावक सेवक हैं मनसे।
तज्ञ हैं, तापस हैं, मुनि हैं, इन धूर्तन ने सब लोग झंसे ॥

३. गंगा तीर तरंग शीतल शिलापै है जमा आसन।
बैठे हैं कुश दंड हस्त बेणू के हैं धरे वासन ॥

पूर्ण हैं। अतः धर्मध्वज कहा। वस्तुतः काम, क्रोध, लोभ के गुलाम हैं, दुनिया को ठगने के लिए अपने को रामभक्त घोषित करते हैं। अतः धँधरच धोरी कहा।

ढंगरच : पाखण्डी : शब्द का धँधरच हो गया। 'धंधक' पाठ मानने से 'धर्म ध्वज के धन्धा' का धुरी अर्थ करना पड़ेगा।

श्रीगोस्वामीजी कहते हैं कि ऐसे लोगों में भी दोषोत्कर्ष के कारण मेरी प्रथम गणना है। धींग, धर्मध्वज तथा पाखण्डियों की धुरी हूँ।

जौं अपने अवगुन सब कहऊँ। बाढइ कथा पार नहिं लहऊँ॥
तातें मैं अति अलप वखाने। थोरे महुँ जानिहहिं सयाने॥३॥

अर्थ : जो अपने सब अवगुण कहने लगूँ तो कथा बढ़ जायगी। पार न पा सकूँगा। इसलिए मैंने वहुत कम वर्णन किया। वुद्धिमान् थोड़े में ही समझ लेंगे।

व्याख्या : वड़ा होने का कारण कहते हैं कि मेरे अवगुण असंख्य हैं। यथा :

तेऊ न मेरे अघ अवगुन गनिहैं।
जौं जमराज काज सब परिहरि इहै ख्याल उर अनिहैं।
चालहिं छूटि पुंज पापिन के, असमंजस जिअ जनिहैं॥
देखि खलक अधिकार प्रभू सों, मेरी भूरि भलाई भनिहैं।
हँसि करिहैं परतीति भगत की, भगत सिरोमनि मनिहैं॥
ज्यौं त्यौं तुलसीदास कोसलपति, अपनाएहि पर वनिहैं।

विनय प. ९५

'धींग धरमध्वज धँधरच धोरी' कहना अत्यल्प वर्णन है। सयाने इतने में ही समझ लेंगे कि कविता मुक्ता उपजाने योग्य शक्ति मुझमें हो नहीं सकती फिर भी मैं कविता करता हूँ : किसी भाँति तुकवन्दी करता हूँ। जो दूसरे मेरे लिए कहते सो मैं स्वयं कह रहा हूँ।

समुझि विविध विधि विनती मोरी। कोउ न कथा सुनि देइहि खोरी॥
एतेहु पर करिहहिं ते असंका। मोहिते अधिक जे जड़ मति रंका॥४॥

अर्थ : मेरी अनेक प्रकार की विनती को समझकर, कथा सुनकर कोई दोष न देगा। इतने पर भी वे ही आशङ्का करेंगे जो मुझसे भी अधिक मूर्ख और बुद्धिहीन हैं।

व्याख्या : 'करन चहौं रघुपति गुन गाहा' से 'सुनिहहिं बाल वचन मन लाई, तक एक विधि। 'पैहहिं सुख सुनि सुजन सब खल करिहहिं उपहास' तक दूसरी विधि। 'सुनिहहिं सुजन सराहि सुवानी' तक तीसरी विधि। 'सो विचारि सुनिहहिं

फेरै चंचल अंगुली पट्टु बढ़ी रुद्राक्ष माला महा।
दानों के संग खैंचते धगधनी के ढोंग वाले सदा॥
ठोढी मस्तक ओठ पीठ उरमें जानू गले गालमें।
जंघा कुक्षिक में किये तिलक हैं श्वेता खलीके घने॥
चोटी में तथा कमर में क्याही हिलैं कानमें।
दर्भों के अंखुए मनो तनु धरे हैं दम्भजी ध्यान में॥ प्र. चं.

सुजन जिनके विमल विवेक' तक चौथी विधि। 'गिरा ग्राम्य सियराम जस गावहिं सुनहिं सुजान' तक पाँचवीं विधि। 'थोरेमहु जानिहैं सयाने' तक छठी विधि। इस भाँति मैंने विविध विधि से विनती की। उसे समझकर यह कोई न कहे कि तुलसीदास की मोतियाँ : कविता : अच्छी नहीं है।

अब दोष देने की कौन सी बात है? दोष वहाँ दिया जाता है, जहाँ गुणाभिमान हो। बाल वचन आशङ्का योग्य नहीं होता, वहाँ तो पदे-पदे त्रुटि रहती है।

कवि न[1] होउँ नहि चतुर कहावों। मति अनुरूप राम गुन गावों॥
कहँ रघुपति के चरित अपारा। कहँ मति मोरि निरत संसारा॥५॥

अर्थ : न मैं कवि हूँ, न चतुर कहलाता हूँ, बुद्धि के अनुसार रामगुण गाता हूँ। कहाँ अपार अघुपति के चरित और कहाँ संसार के प्रपंच में सनी हुई मेरी बुद्धि।

व्याख्या : 'चतुर कहावों' से भाव यह कि न मेरा ऐसा आचरण है कि कोई चतुर कहे और न कोई मुझे चतुर कहता है। कवि होते तो दोष निकालना उचित था। चतुर कहलाते तो आशङ्का करना उचित था। फिर भी मैं राम गुण गाने चला हूँ जिसे कोई यथार्थ रूप में गा ही नहीं सकता।

'मति अनुरूप' को स्पष्ट करते हैं। कहँ रघुपति के चरित अपारा। कहँ मति मोर निरत संसारा। यहाँ दो बार कहँ कहँ कहकर महान् अन्तर दिखला रहे हैं। यथा : द्वौ क्वशब्दौ महदन्तरं सूचयतः। यथा : काम क्रोध मद लोभ रत गृहासक्त दुखरूप। ते किमि जानहिं रघुपतिहिं मूढ़ परे भवकूप। स्वयं कूप में पड़ा हुआ अपार का पार क्या पायेगा?

जेहि मारुत गिरि मेरु उड़ाहीं। कहहु तूल केहि लेखे माहीं॥
समुझत अमित राम प्रभुताई। करत कथा मन अति कदराई॥६॥

अर्थ : जो हवा मेरु पर्वत को उड़ाती है, कहो : उसके सामने : रूई को क्या गिनती है। श्रीरामजी की अपार प्रभुता समझकर कथा रचने में मेरा मन अति कातर हो रहा है।

व्याख्या : राम गुण को अपार कहकर अब अवर्णनीय भी कहते हैं। मेरु सा भारी कुछ नहीं और तूल सा हलका कुछ नहीं। मरुत उनचास हैं। मेरु पर्वत के उड़ाने में समर्थ हैं। पुराणों में कथा आई है किसी समय मारुत मेरु को उड़ाने के लिए तैयार हो गये थे, सो गरुड़ द्वारा रक्षा हुई। राम कथा को मरुत से और बड़े भारी कवि कहनेवालों की उक्ति को मेरु से उपमित किया। सो उनका भी कहना उखड़ जाता है जमता नहीं। मैं तो तूल : रूई : हूँ, मेरी क्या गिनती है? मुझसे कहते न बनेगा, इसमें सन्देह ही क्या है।

दो. सारद सेष महेस विधि, आगम निगम पुरान।
नेति नेति कहि जासु गुन, करहि निरंतर गान॥१२॥

---

१. यहाँ आक्षेप : द्वितीय : है।

अर्थ : सरस्वती, शेष, महादेव, ब्रह्मदेव, शास्त्र, वेद और पुराण। वे सब नेति नेति : यह नहीं यह नहीं : कहकर जिसका गुण सदा गाया करते हैं।

व्याख्या : ये सातों सारद शेषादि कुलाचल हैं। बड़े भारी हैं। इनके कहने का बड़ा वजन : गौरव : है। सो निरन्तर कहते हैं, परन्तु 'नेति-नेति' बोलकर कहते हैं। इदमित्थं रूप से कुछ नहीं कहते। सो जहाँ नेति कहा, वहाँ पहिले का कहा हुआ उड़ गया। अतः नेति नेति पूर्वक कहने से कोई बात जमने नहीं पाती।

सब जानत प्रभु प्रभुता सोई। तदपि कहे बिनु रहा न कोई ॥
तहाँ वेद अस कारन राखा। भजन प्रभाउ भाँति बहु भाखा ॥१॥

अर्थ : प्रभु की वही प्रभुता : सामर्थ्य : सब जानते हैं तो भी कोई कहे बिना न रहा। इससे वेद ने ऐसा कारण रक्खा कि भजन का प्रभाव अनेक प्रकार से कहा।

व्याख्या : सभी बड़ों की जानी बात है कि रामयश ऐसी हवा है जिसके सामने मेरु मन्दर से गौरवशाली भी नहीं टिकते, हम भी नहीं टिक सकेंगे। फिर भी यश वर्णन से कोई विरत नहीं हुआ। यथाशक्ति सबने वर्णन किया। इसका कारण है और वह यह है कि वे वेद के बल पर कहते हैं। वेद ने भजन का बड़ा प्रभाव कहा है। भाव यह है कि वे इसलिए गुण वर्णन नहीं करते कि रामजी के सब गुण कह डालें बल्कि वे गुण वर्णन करके भजन करते हैं।

एक[1] अनीह अरूप अनामा। अज सच्चिदानंद परधामा ॥
व्यापक विश्व रूप भगवाना। तेहि धरि देह चरित कृत नाना ॥२॥

अर्थ : जो एक है, कामना से रहित है, जिसका न रूप है, न नाम है, जिसका जन्म नहीं होता, सच्चिदानन्द परधाम है, व्यापक है, विश्व रूप है, भगवान् है उसी ने शरीर[2] धारण करके नाना प्रकार के चरित्र किये हैं।

व्याख्या : १. एक अर्थात् अद्वितीय। द्वितीय के द्वारा ही कथन होता है। २. क्रियारहित को कोई ज्ञान का विषयीभूत नहीं कर सकता। ३-४. अरूप अनामा। नाम और रूप, ये ही ईश्वर की उपाधियाँ हैं। यथा : नाम रूप दोउ ईस उपाधी। सो उपाधि रहित को कोई कैसे कहे। ५. अज अर्थात् अजन्मा हैं, प्रागभाव उनका

---

१. द्वितीयं विष्णुसंज्ञस्य योगिध्येयं महामते। अमूर्तं ब्रह्मणो रूपं यत्सदित्युच्यते बुधैः।
समस्ताः शक्तयश्चैता नृपमत्र प्रतिष्ठिताः। तद्विश्वरूप वैरूप्यं रूपमन्यद्धरेर्महत् ॥
२. समस्तशक्तिरूपाणि तत्करोति जनेश्वरः। देवतिर्यङ्मनुष्यादि चेष्टावन्ति स्वलीलया।
जगतामुपकाराय न सा कर्मनिमित्तजा। चेष्टा यस्याप्रमेयस्य व्यापिन्या व्याहतात्मिकाः। वि. पु.।

अर्थ : हे महामते। विष्णु नामक ब्रह्म का दूसरा अमूर्त रूप है, जिसका योगिजन ध्यान करते हैं और जिसे बुधजन सत् कहकर पुकारते हैं। राजन्! जिसमें ये सम्पूर्ण शक्तियाँ प्रतिष्ठित हैं वह विलक्षण विश्वरूप भगवान् का बड़ा भारी दूसरा रूप है। हे नरेश! भगवान् का वही रूप अपनी लीला से देव, तिर्यक् और मनुष्यादि की चेष्टा से युक्त सर्वशक्ति मय रूप धारण करता है। इन रूपों में अप्रमेय भगवान् की जो व्यापक एवं अव्याहत चेष्टा होती है, वह संसार के उपकार के लिए होती है, कर्म जन्य नहीं होती!

नहीं है। ६. सच्चिदानन्द कहकर सबका मूल कहा। ७. पर धाम। यथा : सबकर परम प्रकाशक जोई। राम अनादि अवध पति सोई। ८. व्यापक : जिसका ओर-छोर नहीं। ९. विश्वरूप रूप अर्थात् सर्वरूप और १०. भगवान्। यथा : प्रवृत्तिञ्च निवृत्तिञ्च कार्याकार्ये भयाभये। बन्धं मोक्षञ्च यो वेत्ति स वाच्यो भगवानिति। जो प्रवृत्ति, निवृत्ति, कार्य, अकार्य, भय, अभय, बन्ध और मोक्ष को जाने उसे भगवान् कहते हैं। जो उपर्युक्त दश लक्षणवाला है उसी अशरीर ने शरीर धारण करके नाना प्रकार के चरित किये।

सो केवल भगतन हित लागी। परम कृपाल प्रनत अनुरागी ॥
जेहि जन पर ममता अतिछोहू। जेहिं करुना करि कीन्ह न कोहू ॥३॥

अर्थ : सो भी केवल भक्तों के लिए। वे बड़े कृपालु और प्रणत पर अनुराग करनेवाले हैं। जिसकी भक्तों पर बड़ी ममता और छोह है और जिसने करुणा करके फिर कभी क्रोध नहीं किया।

व्याख्या : देह धारण करने का कारण कहते हैं कि केवल भक्तों के लिए भगवान् देह धारण करते हैं। यथा : तुम सारिखे संत प्रिय मोरे। धरहुँ देह नहीं आन निहोरे। देह धारण करने पर, जानने और वर्णन करने योग्य होते हैं। १. परम कृपाल २. प्रनत अनुरागी कहने का भाव यह है कि श्रीरामजी शरणागतवत्सल हैं। एक प्रणाम में प्रसन्न होते हैं। भक्त के लिए देह धारण करके सब कुछ करते हैं। यहाँ तक कि अपने यश की भी परवाह नहीं करते। यथा :

सत्य कहौं मेरो सहज सुभाउ।
सुनहु सखा कपिपति लंकापति, तुम्हसन कौन दुराउ।
सबविधि हीन दीन अति जड़ मति, जाको कतहुँ न ठाँउ ॥
आयो सरन भजौं न तजौं तेहि, यह जानत रिषि राउ।
जिन्हके हौं हित सब प्रकार चित, नाहिन और उपाउ ॥
तिनहि लागि धरि देह करौं सब, डरौं न सुजस नसाउ ॥ गी. ५.४५

३. जन पर ऐसी ममता और छोह है कि उसके लिए सब कुछ देय है। यथा : जन कहँ कछु अदेय नहि मोरे। अस विस्वास तजहुँ जनि भोरे। और ४. सतत करुणा है। एक बार जिस पर कृपा कर दी, फिर उस पर क्रोध होता ही नहीं। यथा : जेहि अघ बधेउ व्याध जिमि बाली। फिरि सुकंठ सोइ कीन्हि कुचाली। सोइ करतूति विभीषन केरी। सपनेहुँ सो न राम हिय हेरी।

गई बहोर गरीब नेवाजू। सरल सबल साहिब रघुराजू ॥
बुधवर नहि हरि जस अस जानी। करहिं पुनीत सकल निज बानी ॥४॥

अर्थ : गई हुई को पलटानेवाले, दीनबन्धु, सरल, बलवान्, स्वामी रघुराज हैं। यह समझकर पण्डित लोग उनका यश वर्णन करते हैं और अपनी वाणी को पवित्र और सफल करते हैं।

व्याख्या : श्रीरामजी गई बहोर हैं। यह नया नाम ग्रन्थकार ने श्रीराम जो

का रक्खा है। सब कुछ जाकर लौट सकता है, पर सतीत्व फिर नहीं लौटता, सो भी अहल्या को लौटा दिया। यथा : गौतम गये गृह गवनो सो लवाय के। ६. दीनवन्धु ७. सरल ८. सवल साहिव अर्थात् प्रभु और १०. रघुकुल के राजा हैं एवं जिस भाँति दश विशेषण निर्गुण रूप के दे चुके हैं उसी भाँति दश विशेषण सगुण के भी दे रहे हैं। बीसों विस्वे पूरे हुए।

पण्डित लोग यह जानकर कि 'ऐसउ प्रभु सेवक वस अहई। भगत हेतु लीला तनु गहई। हरियश वर्णन करते हैं, चाहे वर्णन किया हो सके चाहे न हो सके। आहार, निद्रा, भय और मैथुन तो पशु को भी सुलभ है। इसकी कथा से वाणी का साफल्य नहीं। वाणी का साफल्य हरियश वर्णन से है।

तेहिं बल मैं रघुपति गुन गाथा। कहिहउँ नाइ राम पद माथा ॥
मुनिन्ह प्रथम हरि कीरति गाई। तेहि मग चलत सुगम मोहि भाई ॥५॥

अर्थ : उसी वल से मैं श्रीराम जी के चरण कमलों में सिर नवाकर, रघुनाथ जी के गुणों की गाथा कहूँगा। हे भाई! मुनियों ने पहिले हरि की कीर्ति का गान किया है। उसी मार्ग पर चलना मुझे सुगम है।

व्याख्या : उसी वेदवचन के बल से जिसने भजन का प्रभाव कहा है और 'यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः। स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते।' इस न्याय से, मैं रघुनाथ के चरणों में सिर झुकाकर, अपराधक्षमापन पूर्वक रामगुण गाथा कहूँगा।

बाल्मीकि, व्यास आदि मुनियों ने हरि की कीर्ति का गान किया है। उसी मार्ग का अनुसरण करने में मुझे सुभोता है। उस मार्ग में जल भी है, थल भी है। जल, यथा : चरित सिंधु गिरिजा रमन, वेद न पावहिं पार। राम अमित गुन सागर थाह कि पावै कोइ। थल, यथा : लोक वेद मत मंजुल कूला। अतः थल में मुनियों के चरणपूत मार्ग का अनुसरण करूँगा।

दो. अति अपार जे सरित वर, जौ नृप सेतु कराहिं।
चढ़ि पिपीलिकउ परम लघु, विनु श्रम पारहि जाहिं ॥१३॥

अर्थ : अति अपार जो नदियाँ हैं, यदि उन पर राजा पुल बँधवा देता है तो उसपर चढ़कर बहुत छोटी चींटी भी बिना परिश्रम के पार चली जाती है।

व्याख्या : जल में मुनियों के बँधाये पुलपर चढ़कर पार होंगे। लोक, वेद का सामञ्जस्य ही पुल है। पुल बाँधने से दोनों कूलों में सामञ्जस्य स्थापन हो जायगा। रामचरित्र में लोकविधि और वेदविधि दोनों हैं। मुनि लोगों ने रामचरित्र लिखकर इस भाँति सामञ्जस्य स्थापन कर दिया है।

पिपोलिका पानी की रेखा नहीं डाँक सकती सो पुल पर से होकर अपार नदी बिना श्रम पार करती है। ग्रन्थकार अपने को चींटी मानते हैं, रामचरित्र में कुछ भी गति नहीं। मुनियों को राजा कहा, वे चरित गान करके पुल वाँध गये। उसी के

अवलम्ब से मैं भी गान करके बिना श्रम पार पाऊँगा। यहाँ तक सात दोहों में समष्टि विनय है।

एहि प्रकार बल मनहिं देखाई। करिहौं रघुपति कथा सुहाई॥
ब्यास आदि कवि पुंगव नाना। जिन्ह सादर हरि सुजस बखाना॥१॥

अर्थ : इस प्रकार का बल मन को दिखाकर मैं रघुपति की सुहावनी कथा बनाऊँगा। व्यास आदि जो अनेक श्रेष्ठ कवि हो गये हैं जिन्होंने आदर से हरिसुयश वर्णन किये हैं।

व्याख्या : पहिले कहा था 'करत कथा मन अति कदराई' और मन के कादर होने पर फिर कार्य नहीं हो सकता। इसलिए मन को ढाँढस बँधाते हैं कि पुल बँधा हुआ है, उसी पर चले जाओ। पुल पर से जानेवाले को जल की गम्भीरता और विस्तार की क्या चिन्ता है?

अब जिन के मार्ग का अनुसरण करना है, जिनके बँधाये पुलपर चढ़कर पार जाना है, उनकी वन्दना करते हैं। व्यासोच्छिष्टं जगत् त्रयम्, यह तीनों लोक व्यास का उच्छिष्ट है, इसलिए पहिले व्यास : द्वैपायन : को कहा। आदि से मार्कण्डेय, अग्निवेशादि का ग्रहण है, जिन्होंने आदर के सहित हरि के सुयश का बखान किया है। भाव यह है कि बौद्धों और जैनों में भी रामायण है, पर उन्होंने आदर के साथ बखान नहीं किया। अतः उनकी इसमें गिनती नहीं है।

चरन कमल बंदौं तिन्ह केरे। पूरहुँ सकल मनोरथ मेरे॥
कलि के कबिन्ह करौं परनामा। जिन्ह बरने रघुपति गुन ग्रामा॥२॥

अर्थ : मैं उन सबके चरण कमलों की वन्दना करता हूँ। सब मेरे मनोरथ को पूरा करो। मैं कलियुग के उन कवियों को प्रणाम करता हूं जिन्होंने रघुपति के गुण समूहों का वर्णन किया है।

व्याख्या : इसलिए उनके चरण कमलों की वन्दना करते हैं क्योंकि मनोरथ एकाधिक है। यथा : १. हरि यश कहौं २. साधु समाज में भणिति का सम्मान हो ३. परम विश्राम की प्राप्ति हो ४. रामचरण में रति हो इत्यादि।

ऊपर जिनकी वन्दना की है, वे मुनि लोग हैं। उन्होंने त्रेता, द्वापरादि में रामयश को संस्कृत वाणी में कहा है। कलियुग में ऋषि नहीं हैं, फिर भी कालिदास, भवभूति, जयदेवादि महाकवियों ने संस्कृत का ही आश्रय लेकर काव्य, नाटक तथा गीतों में हरियश कहा है, अतः वे भी प्रणम्य हैं।

जे प्राकृत कबि परम सयाने। भाषा जिन्ह हरि चरित बखाने॥
भये जे अहहिं जे होइहहिं आगे। प्रनवौं सबहि कपट सब त्यागे॥३॥

अर्थ : जो परम सयाने प्राकृत के कवि हैं, जिन्होंने भाषा में हरि चरित वर्णन किये हैं, जो पहिले हो चुके, जो आँखों के सामने मौजूद हैं और जो आगे भविष्य में होंगे उन सबको मैं कपट को छोड़कर प्रणाम करता हूँ।

व्याख्या : संस्कृत से देववाणी और प्राकृत से लोकभाषा का ग्रहण है। यथा :

संस्कृतं नाम दैवीवागन्वाख्याता महर्षिभिः। संस्कृत दैवी वाणी है, जिसे महर्षियों ने कहा है। प्रकृतिः संस्कृतम्। तत्र भवं तत आगतं वा प्राकृतम्। हेम। प्रकृति संस्कृत है, उससे जो उत्पन्न हो या आया हो उसे प्राकृत कहते हैं। उस प्राकृत के कवियों को परम सयाना कहा है। भाव यह कि संस्कृत के कवि सयाने, प्राकृत के कवि परम सयाने हैं, इनकी भणिति से विशेष लोकोपकार हुआ है। अधिकार का भी टण्टा नहीं रह गया। क्योंकि उन्होंने लोकभाषा में हरिचरित कहा है। यहाँ स्पष्ट है कि भाषा से प्राकृत भाषा अभिप्रेत है। प्राकृत में तत्सम रूप से शुद्ध संस्कृत प्रयोग, तद्भव रूपसे संस्कृत के अपभ्रंश रूप तथा देशोद्भव रूपसे देशी भाषा का ग्रहण है।

यहाँ 'आगे' शब्द का तीनों क्रियाओं के साथ सम्बन्ध है जो आगे : पहिले हुए, जो आगे : सामने : अहहिं और जो आगे : भविष्य में : होइहहिं। उन सबको सत्र कपट छोड़कर प्रणाम करता हूँ। संस्कृत के कवियों के साथ कपट की प्राप्ति ही नहीं थी। परन्तु भाषा के कवियों के साथ कपट की प्राप्ति है, क्योंकि सापत्न्यभाव की सम्भावना है इसलिए कहते हैं कि सब कपट छोड़कर प्रणाम करता हूँ। भूतकाल के प्राकृतकवि सेतुवन्धकार, चन्द वरदाई आदि, उस समय के कवि सूर, हितहरिवंश आदि और भविष्य के कवि वृजविलासीदास, काष्ठ जिह्व स्वामी : देव : आदि सभी को ग्रन्थकार प्रणाम करते हैं।

होहु प्रसन्न देहु वरदानू। साधुसमाज भनिति सनमानू ॥
जो प्रबंध बुध नहि आदरहीं। सो श्रम वादि बाल कवि करहीं ॥४॥

अर्थ : मुझ पर प्रसन्न होकर वरदान दो कि मेरी कविता साधु समाज में आदर पावे क्योंकि जिस प्रवन्ध का पण्डित लोग आदर नहीं करते, उसके लिए व्यर्थ परिश्रम बाल कवि करते हैं।

व्याख्या : कवियों से वरदान माँगते हैं। वरदान और किसी से नहीं माँगा। क्योंकि ये 'रघुवर चरित मानस मंजु मराल' हैं। ये रामगुण-मुक्ताफल चुगते हैं। इनसे मुक्ता मिलेगी। उसे रामचरितरूपी तागे में गूँथेंगे। तब उसका सन्तसमाज में आदर होगा।

यदि सन्तसमाज में या पण्डितसमाज में आदर न हुआ तो परिश्रम ही व्यर्थ गया। जिसने शास्त्र न पढ़ा हो उसे 'बाल' कहते हैं। मूर्ख कवि कटु शब्द है, इसलिए वाल कवि कहा।

कीरति भनिति भूति भलि सोई। सुरसरि सम सब कहँ हित होई ॥
राम सुकीरति भनिति भदेसा। असमंजस अस मोहि अँदेसा ॥५॥

अर्थ : कीर्ति, कविता और सम्पत्ति वही अच्छी है जो गङ्गाजी के समान सबका हित करे। रामजी की सुकीर्ति और कविता गँवारी : भद्दी : यह बड़ी ही अटपटी बात है, मुझे इसी का अन्देशा है।

व्याख्या : जिससे सबका हित न हो, न तो वह कीर्ति भली, न कविता भली और न भूति भली। इसीलिए श्रीग्रन्थकार ने प्रणव : तारक मन्त्र : का वर्णन न

करके रामतारक : रामनाम : का वर्णन किया। संस्कृत में ग्रन्थ न लिखकर भाषा में लिखा।

यही बड़ा भारी असामञ्जस्य है कि गुणसागर नागर श्रीरामजी की सुकीर्ति और गाई जाय ग्राम्य गिरा में, इसी बात का मुझे खटका है कि साधु समाज में मेरे भणित का सम्मान न होगा।

तुम्हरी कृपा सुलभ सोउ मोरे। सिअनि सुहावनि टाट पटोरे ॥६॥

अर्थ : तुम्हारी कृपा से मुझे वह : सामञ्जस्य : भी सुलभ है। टाट और रेशमी वस्त्र दोनों पर बेल बूटा होता है।

व्याख्या : संस्कृत कवियों ने रेशमो वस्त्र पर बेल बूटा काढ़ा है और प्राकृत कवियों ने टाटपर कारीगरी की है। आपकी कृपा से मैं भी बेल बूटे टाट पर बनाऊँगा। जिस भाँति रेशमी वस्त्रों में रेशमी बेल-बूटेवाले वस्त्रों का आदर होता है उसी भाँति टाटों में मेरे बेल-बूटेवाले टाट का आदर टाट के ग्राहक साधु लोग करेंगे। अतः आपकी कृपा से साधु समाज से कविता का सम्मान मेरे लिए सुलभ हो जायगा।

दो. सरल कवित कीरति विमल, सोइ आदरहिं सुजान।
सहज बयर बिसराइ रिपु, जो सुनि करहिं बखान ॥१४॥
सो न होइ बिनु विमल मति, मोहिं मति बल अति थोर।
करहु कृपा हरि जस कहौं, पुनि पुनि करउँ निहोर ॥१४॥क
कवि कोविद रघुवर चरित, मानस मंजु मराल।
बाल विनय सुनि सुरुचि लखि, मोपर होहु कृपाल ॥१४॥ख

अर्थ : उसी सरल कविता और निर्मल कीर्ति का सुजान आदर करते हैं, जिसे सुनकर शत्रु भी स्वाभाविक वैर छोड़कर प्रशंसा करने लगे।

यह बात बिना निर्मल बुद्धि हुए नहीं हो सकती और मुझे बुद्धि का बल बहुत ही थोड़ा है। मैं बार-बार निहोरा करता हूँ, आप लोग कृपा करो। मैं हरियश वर्णन करता हूँ।

पण्डित कवि लोग ही रामचरितमानस के सुन्दर हंस हैं, सो बालक की विनय सुनकर और सुरुचि देखकर मुझपर कृपा करो।

व्याख्या : जिस भाँति दोष कीर्ति को मलिन करता है, उसी भाँति क्लिष्टता कविता को मलिन करती है। कविता में जो अलौकिक आनन्द है उसे क्लिष्टता ढक देती है। अतः प्रसादगुणयुक्त कविता होनी चाहिए। ऐसी कविता और निर्मल यश में ही यह सामर्थ्य है कि सुनते ही शत्रु सहज वैर भूलकर बखान करने लग जाता है। नहीं तो सहज वैर प्राण रहते नहीं छूटता। कृत्रिमं नाशमभ्येति वैरं द्राक् कृत्रिमैर्गुणैः। प्राणदानं विना वैरं सहजं याति न क्षयम्। वैर अन्धा है, अपने वैरी

का गुण अपने को सूझता ही नहीं। यथा : वैर अंध प्रेमहि न प्रवोधू। इस कमल[1] की पुरइन है : साधुसमाज भनिति सनमानू।

निर्मल मति हो तो प्रसाद गुणयुक्त कविता बने। प्रकृति के अनुकूल बेल-बूटे बन जाँय, इसलिए 'मति वल' माँगते हैं। 'हरियश कहउँ' कहकर अपने को सहायता का पात्र कहा। इस कमल की भी उपर्युक्त पुरइन है।

कवि कोविद रामचरितमानस के हंस हैं और उनकी जिह्वा हंसिनी है। यथा : जस तुम्हार मानस विमल हंसिनि जीहा जासु। मुक्ता हल गुन-गन चुनइ, राम बसहु हिय तासु। इसलिए इनकी कृपासे, रामगुणगणरूपी मुक्ताफल चाहते हैं। 'होहु प्रसन्न देहु वरदानू' से उपक्रम करके, 'मोपर होहु कृपाल' से उपसंहार करते हैं। 'सुरुचि लखि' से आर्ति कही। 'बाल विनय सुनि' से विनय कहा। 'मोपर होउ कृपाल' से दीनता कही।

इस कमल की पुरइन है : कवि कोविद अस हृदय विचारी। गावहिं हरिजस कलिमल हारी।

सो. वंदौं मुनि पद कंजु, रामायन जेहिं निरमयेउ।
सखर सुकोमल मंजु, दोष रहित दूषन सहित ॥ग॥
वंदौं चारिउ वेद, भव वारिधि वोहित सरिस।
जिन्हहिं न सपनेहुँ खेद, वरनत रघुवर विसद जसु ॥घ॥
वंदौं विधिपद रेनु, भवसागर जेहि कीन्ह जहँ।
संत सुधा ससि धेनु, प्रगटे खल विष वारुनी ॥ङ॥

अर्थ : मैं उन मुनि के चरणकमलों की वन्दना करता हूँ, जिन्होंने रामायण बनाया, जो खर सहित होने पर भी सुकोमल है और दूषण सहित होने पर भी निर्दोष है।

मैं चारों वेदों की वन्दना करता हूँ, जो संसार-समुद्र के लिए जहाज हैं, जिन्हें रामजी का यश वर्णन करते हुए, सपने में भी खेद नहीं होता।

मैं ब्रह्मदेव की चरणधूलि को प्रणाम करता हूँ, जिन्होंने यह भवसागर बनाया। जहाँ सन्त, अमृत, चन्द्रमा और धेनु : दैवसर्ग : तथा खल, विष एवं मदिरा : आसुर-सर्ग : उत्पन्न हुई।

व्याख्या : इस कमल[2] की पुरइन है : व्यास आदि कवि पुंगव नाना। जिन सादर हरि चरित वखाना। 'आदि कवि' शब्द पुरइन में आ चुका है। इसलिए यहाँ नहीं देते। ब्रह्म का रामावतार हुआ, उसी समय ब्रह्मयश वेद का भी रामायणावतार हुआ। रामावतार महाराज दशरथ के घर में हुआ और रामायणावतार श्रीवाल्मीकि

१. कमल = दोहा। पुरइन = तत्सम्बन्धी चौपाई।
२. कमल = दोहा। पुरइन तत्सम्बन्धी चौपाई।

जो के हृदय में हुआ। यथा : वेद[1] प्राचेतसादासीत् साक्षात् रामायणात्मना। अतः रामायण शब्द से मुख्यतः वाल्मीकीय रामायण का ग्रहण है। रामायण शब्द का अर्थ : रामस्य अयनम् रामायणम्। सो राम जी को वाल्मीकि ने चौदह प्रकार के भक्तों के हृदय को ही, उनके रहने योग्य स्थान बतलाया। यथा : सुनहु राम अब कहहुँ निकेता। जहाँ बसहुँ सिय लखन समेता। इन्हीं चौदह प्रकार के भक्तों की कथाएँ मिलकर ही सब रामायणें निर्मित हैं। रामायण मञ्जु है। श्रीराम जी के रहने लायक है। सुकोमल है। इसमें 'खर' नाम के राक्षस का नाम आगया है। बस, इतनी ही खरता : तीक्ष्णता : है। दोष रहित है। दूषण नाम के राक्षस का नाम आगया है, इसीसे दूषण सहित कही गई है; नहीं तो इसमें खरता और दोष कहाँ? नमस्तस्मै कृता येन रम्या रामायणी कथा। सदूषणापि निर्दोषा सखरापि[2] सुकोमला। यहाँ रामायण चम्पू के इस श्लोक से अर्थ स्पष्ट हो जाता है। शब्दों के तोड़-फोड़ को स्थान नहीं रह जाता।

वेदावतार का उल्लेख करके अब स्वयं वेदों की वन्दना करते हैं। इन्हें जहाज से उपमित किया। समुद्र चार हैं। उनके लिए वेदरूपी जहाज भी चार हैं। जहाज बराबर समुद्र का आरपार किया करते हैं, उन्हें खेद नहीं होता। जहाज स्वयं जल में रहते हैं, परन्तु यात्री को पानी से बचाकर पार कर देते हैं। इस भाँति वेद यद्यपि त्रैगुण्यविषयक हैं पर अपने भक्तों को निस्त्रैगुण्य पद पर पहुँचा देते हैं। जहाँ एक ही बात को वेद ने दोहराया है, वहाँ टीकाकार लिखते हैं 'मन्त्राणामालस्याभावात्' अर्थात् वेदों को आलस्य नहीं है। यही बात ग्रन्थकार भी कहते हैं : जिनहि न सपनेहु खेद, बरनत रघुवर विसद जस। इस कमल की पुरइन है : गनि गुन दोष वेद बिलगाये।

भवसागर के कर्ता ब्रह्मदेव की वन्दना करते हैं। दुष्पार और दुरवगाह्य होने से भव : संसार : को सागर कहा। जिस भाँति समुद्र से अमृत, चन्द्रमा और कामधेनु उत्पन्न हुई और विष वारुणी : सुरा : भी उत्पन्न हुई। उसी भाँति संसार सागर में दैवसर्ग भी उत्पन्न हुआ और आसुरसर्ग भी उत्पन्न हुआ। सन्त कहकर दैवसर्ग को लक्षित किया और खल कहकर आसुरसर्ग को लक्षित किया। भवसागर के अन्तर्गत ही यह सागर : जलनिधि : है। अतः सबके उत्पन्न करनेवाले ब्रह्मदेव हैं। ये ही विश्व के सविता : पिता : हैं। इसीलिए पितामह कहलाते हैं। ये सर्वथा वन्दनीय हैं।

दो. विबुध विप्र बुध ग्रह चरन, बंदि कहौं कर जोरि।
होइ प्रसन्न पुरवहु सकल मंजु मनोरथ मोरि ॥ १४ च ॥

अर्थ : देवता, ब्राह्मण, पण्डित तथा ग्रहों के चरणों की वन्दना करके, हाथ जोड़कर कहता हूँ कि प्रसन्न होकर सब लोग मेरे सुन्दर मनोरथ को पूरा करो।

---

१. वेद वाल्मीकि जी से रामायण रूप में उत्पन्न हुआ।

२. यहाँ परिसंख्या अलङ्कार है। यथा : परिसंख्या एक थल वरजि दूजे थल ठहराय।
स्नेह हानि मन में नहीं रही दीप महँ आय ॥

व्याख्या : चार दिव्य साधन मनोरथ सिद्धि के हैं। १. देवता २. ब्राह्मण ३. पण्डित और ४. ग्रह। देवता सहाय करते हैं। यथा : होउ सहाय महेस भवानी। ब्राह्मण आशीर्वाद देते हैं। यथा : औरौ एक आसिषा मोरी। अप्रतिहत गति होइहि तोरी। पण्डित युक्ति बतलाते हैं। यथा : जुगुति विभीषन सकल सुनाई। ग्रह प्रभाव डालते हैं। यथा : जोग लगन ग्रह वार तिथि, सकल भये अनुकूल। ये चारों देवता हैं। दिव्य साधन हैं : विबुध देवता, ब्राह्मण देवता, पण्डित देवता। यथा : विद्वाँसो हि देवाः। और ग्रह देवता। विप्र वेद के पण्डित, बुध अन्य शास्त्र के पण्डित। मनोरथ शब्द पुँल्लिङ्ग है इसके विशेषण 'मोरि' का मुख्य रूप 'मोर' ही समझना चाहिए। 'जोरि' के जोड़ में 'मोरि' कर दिया।

इस कमल की पुरइन है : सूझ न एकौ अंग उपाऊ। मनमति रंक मनोरथ राऊ। मनोरथ राऊ है, इसलिए दिव्य साधनों से काम लेते हैं। यहाँ 'मंजु मनोरथ मोरि' से 'मनोरथ राऊ' कहा। इस भाँति यहाँ कमलों का गुच्छा हुआ।

पुनि वंदौं सारद सुर सरिता। जुगल पुनीत मनोहर चरिता ॥
मज्जन पान पाप हर एका। कहत सुनत एक हर अविवेका ॥१॥

अर्थ : फिर सरस्वतीजी और गङ्गाजी की वन्दना करता हूँ। दोनों पवित्र और मनोहर चरित्रवाली हैं। एक स्नान करने और पान करने से पाप दूर करती है और एक कहने सुनने से अविवेक हर लेती है।

व्याख्या : सारद, सुरसरिता की साथ वन्दना गुणसाम्य के कारण करते हैं। सद्यः पातकसंहन्त्री सुरसरिता का पाप हरण करना पुनीतता है और केवल मज्जन, पान द्वारा पाप हरण करना चरित की मनोहरता है एवं जाड्यान्धकारापहा सारदा का अविवेक हरण करना पुनीतता है और केवल कहने सुनने से अविवेक हरण चरित की मनोहरता है। जो पाप हो चुके हैं उसे श्रीगङ्गा हरण करेंगी और आगे भी पाप का लेप विवेक द्वारा सरस्वती भगवती नहीं होने देंगी। 'सरसइ ब्रह्म विचार प्रचारा' कहकर द्रवीभूता सरस्वती का उल्लेख किया था। यहाँ अधिष्ठात्री देवी की वन्दना करते हैं।

गुरु पितु मातु महेस भवानी। प्रनवौं दीन बंधु दिन दानी ॥
सेवक स्वामि सखा सिय पीके। हित निरुपधि सब विध तुलसी के ॥२॥

अर्थ : दीनबन्धु, सदा देनेवाले, महेश और भवानी गुरु, माता और पिता हैं वे सीतापति के सेवक, स्वामी और सखा हैं और तुलसी के सब प्रकार से सच्चे निश्छल हितकारी हैं।

व्याख्या : वेद की आज्ञा है : मातृदेवो भव, आचार्यदेवो भव। श्री ग्रन्थकार कहते हैं : मेरो मातुपितु गुरु शंकर भवानियैं। गुरु, आचार्य या मन्त्रदाता को कहते हैं। शङ्कर भगवान् त्रिभुवन के गुरु हैं और माता पिता हैं। यथा : तुम त्रिभुवन गुरु वेद बखाना। जगत मातु पितु संभुभवानी। अतः तीनों नाता इनसे जोड़ना प्राप्त है। दीनबन्धु हैं। यथा : सकत न देखि दीन करजोरे। दिनदानी। यथा : 'दीनदयाल दिबोइय भावै जाचक सदा सोहाहीं।

सीतापति के सेवक स्वामी और सखा हैं अर्थात् सर्वार्थकारी हैं। महात्माओं से सुना है कि जब भगवान् ने लिङ्गस्थापन किया और रामेश्वर नाम रक्खा तो मुनियों ने पूछा कि 'रामेश्वर' नाम का अर्थ क्या होगा ? तब रामजी ने कहा 'अर्थ' बड़ा सीधा है, यहाँ तत्पुरुष समास है : रामस्य ईश्वरः रामेश्वरः।' राम के ईश्वर रामेश्वर हैं। तब लिङ्ग से शब्द हुआ, कि बहुव्रीहि समास है। अर्थात् राम ईश्वरो यस्य। जिसके ईश्वर राम हैं, वह रामेश्वर हैं। ऋषि लोग बड़े विचार में पड़े कि क्या मानें ? तब इस निर्णय पर पहुँचे कि यहाँ 'कर्मधारय' समास है। रामश्चासौ ईश्वरः रामेश्वरः। जो राम है वही ईश्वर हैं। अथवा हनुमान् रूप से सेवक, रामेश्वर रूप से स्वामी और समर-सागर में जहाज होने से सखा। यथा : ए सब सखा सुनहु मुनि मेरे। भये समर सागर कहँ बेरे। और तुलसी के तो सब प्रकार से सच्चे हितकारी हैं। उपधि का अर्थ है छल या झूठ। अतः निरुपधि का अर्थ सच्चा या असली हुआ। यथा : मातु पिता स्वारथ रत ओऊ।

कलि बिलोकि जगहित हर गिरिजा। सावर मंत्र जाल जिन सिरिजा ॥
अनमिल आखर अरथ न जापू। प्रगट प्रभाउ महेस प्रतापू ॥३॥

अर्थ : जिन शिव पार्वती ने कलियुग को देखकर जगत् के हित के लिए शावर मन्त्र समूहों की रचना की। जिनके अक्षर बेमेल हैं, न कोई अर्थ है, न जप है पर महेश के प्रताप से उनका प्रभाव प्रत्यक्ष है।

व्याख्या : मन्त्रों की सिद्धि के लिए शास्त्रोक्त अधिकारी और साधन कलियुग में दुर्लभ हैं। अतः हितकर मनोरथों की सिद्धि के लिए शबर : भील : रूप से शावर मन्त्रों की जिन्होंने सृष्टि की। जिस देश में जो भाषा प्रचलित है उसी भाषा में शावर मन्त्र भी हैं। उन मन्त्रों के न शब्दों में मेल[1] है, न अर्थ ही कुछ होता है और न उन मन्त्रों के जप का ही कोई विधान है। 'हनङ् हनैया हनाङ् वचवा चुण्ड भया' इस शावर मन्त्र से भिड़ के काटे हुए को आराम होते देखा गया है। सम्भव है कि मेरे सुनने में कुछ चूक हुई हो, फिर भी वह मन्त्र कुछ ऐसा ही था। प्रत्यक्ष फल होता है। यह महेश का प्रताप है। मन्त्र दाता होने से गुरु[2] हैं।

सोउ महेस मोपर अनुकूला। करिहिं कथा मुद मंगल मूला ॥
सुमिरि सिवा सिव पाइ पसाऊ। बरनउँ राम चरित चित चाऊ ॥४॥

अर्थ : वे महेश भी मुझपर अनुकूल हैं। वे इस कथाको मुदमङ्गल का मूल कर देंगे। मैं शिव-पार्वती का स्मरण करके और प्रसाद पाकर आनन्दित चित्त से राम-चरित वर्णन करूँगा।

व्याख्या : माता-पिता अनुकूल होकर बिगड़ी बात बनाया करते हैं। मुझ

---

१. मेल से यहाँ अन्वय अभिप्रेत है और जप से जपविधि, मालासंस्कार, पञ्चशुद्धि आदि अभिप्रेत है।

२. गुरु पितु मातु महेस भवानी। प्रनवौं 'दीनबंधु दिन दानी। आदि पदों से जो स्तुति की है, उन सबों का एक-एक करके साफल्य दिखावेंगे।

'धीग धरम ध्वज धँधरक धोरी' की वर्णित कथा को मुद मङ्गलमूल करेंगे। शावर मन्त्र को जिस भाँति उन्होंने शक्ति दी उसी भाँति मेरी भनिति को भी शक्ति देकर मुद मङ्गलमूल करेंगे। एवं 'पितुमातु' कहने का साफल्य दिखाया। शिवपार्वती स्मरण मात्र से कृपा करते हैं। मुझपर कृपा हुई। पहिले मेरा मन कथा करने में हिचकता था। अव रामचरित वर्णन में वड़ा उत्साह है। यह शिवाशिव की कृपा है। इस भाँति 'दीनबन्धु' कहने का साफल्य दिखाया।

भनिति मोरि सिव कृपा विभाती। ससि समाज मिलि मनहु सुराती॥
जे एहि कथहि सनेह समेता। कहिहहिं सुनिहहिं समुझि सचेता॥५॥

अर्थ : मेरी कविता शिवजी को कृपा से ऐसी प्रकाशित होगी जैसे चन्द्रमा के समाज से मिलकर रात्रि सुन्दर होती है। जो लोग इस कथा को प्रेम के साथ कहेंगे, सुनेंगे और सावधान होकर समझेंगे।

व्याख्या : मेरी कविता तो रात है, उसमें प्रकाश कहाँ? शिव की कृपा शशि-समाज है। सो उसमें जा मिली तो वह सदा के लिए सुराति हो गई। भक्तिमय होकर पूर्णिमा की रात हो गई। इस भाँति 'दिनदानी' कहने का साफल्य दिखाया।

रामजी के सर्वार्थकारी शङ्कर भगवान् हैं। अतः इस कथा के कहने सुनने और समझनेवाले :

होइहहिं राम चरन अनुरागी। कलिमल रहित सुमंगल भागी॥६॥

अर्थ : वे : रामचरण के अनुरागी होंगे कलिमल से रहित होकर सुमंगल के भागी होगें।

व्याख्या : कहनेवाले को श्रीराम चरणानुराग देंगे। सुननेवाले का कलिमल हरण करेंगे और समझनेवाले को सुमङ्गलभागी करेंगे। अथवा प्रत्येक को तीनों गुणों से युक्त करेंगे। इस भाँति सर्वार्थकारित्व का साफल्य दिखाया।

दो. सपनेहुँ साँचेहु मोहि पर, जौ हर गौरि पसाउ।
तौ फुर होउ जो कहेउँ सब, भाषा भनिति प्रभाउ॥१५॥

अर्थ : जो मुझपर हरगौरी का स्वप्न में भी सचमुच प्रसाद हो तो मैंने जो भाषा कविता का प्रभाव बतलाया है, वह सब सत्य हो।

व्याख्या : स्पष्ट है कि स्वप्न में हरगौरी ने प्रसन्न होकर रामयशगान की आज्ञा दी। जो बात स्वप्न की देखी है, उसे ग्रन्थकार 'स्वप्न' शब्द देकर स्पष्ट कह देते हैं। यथा : रूप सकहि नहिं कहि स्रुति सेखा। सो जानइ सपनेहु जेहि देखा। यहाँ सपने में दर्शन हुआ था। विशेष बातें इस अर्धाली के व्याख्यान में कही जायेंगी। 'फुर होइ' कहकर ग्रन्थकार दिखलाते हैं कि यह ग्रन्थ भी महेश के प्रताप से सिद्ध शावर मन्त्रजाल हो गया। अतः शावर मन्त्र की परिपाटी ग्रहण करते हैं। शावर मन्त्रों में प्रायेण 'फुरो मन्त्र ईश्वरोवाच' रहता है, सो ग्रन्थकार ने भी 'सो फुर होउ जो कहेउँ सब, भाषा भनिति प्रभाउ' कहा। यह भी दिखलाया कि संस्कृत भणिति इस युगमें

काम नहीं देती, भाषा भणिति का प्रभाव हरगौरी प्रसाद से काम देगा। इससे 'हित निरुपधि सब विधि तुलसी के' का साफल्य दिखलाया।

सन्तों से रामचरण रति माँगी। समष्टि से बुद्धिबल माँगा। कविसमाज से 'साधु समाज भनिति सम्मान' माँगा। अब कहते हैं कि मेरी सब गुण रहित कविता की फलश्रुति शङ्कर के प्रताप से शावर मन्त्र की भाँति सत्य होगी।

अवधसमाज वंदना

वंदौ अवध[1]पुरी अति पावनि। सरजू[2]सरि कलि कलुष नसावनि॥
प्रनवौं पुरनर नारि बहोरी। ममता जिनपर प्रभुहि न थोरी॥१॥

अर्थ : मैं अति पवित्र अयोध्यापुरी और कलियुग के पापों की नाश करनेवाली सरयू नदी की वन्दना करता हूँ। फिर पुरी के नर-नारियों को प्रणाम करता हूँ, जिनपर प्रभु की थोड़ी ममता नहीं है।

व्याख्या : सातों मोक्षदा पुरी पावनी हैं। यथा : अयोध्या मथुरा माया काशी काञ्ची अवन्तिका। पुरी द्वारावती ज्ञेया सप्तैता मोक्षदायिकाः। इनमें से प्रथम होने से अयोध्या अति पावनी है। न योध्या अयोध्या और न वधः अवधः। इस भाँति समानार्थक होने से अयोध्या का नाम अवधपुरी है। यह स्वयं प्रभुकी जन्म भूमि है। जब जब श्रीरामावतार हुआ है तब तब अवधपुरी में हुआ है और जब होगा तब अयोध्या में ही होगा। अवधपुरी और श्रीरामजी में वही सम्बन्ध है जो दिन और प्रभाकर में है। यथा : अवध तहाँ जहँ राम निवासू। तहँइ दिवस जहँ भानु प्रकासू। अवधपुरी के साथ श्रीसरयूजी को प्रणाम करते हैं। यह अवधपुरी की उत्तर ओर बहती हैं। इनमें मज्जन करने से बिना प्रयास सामीप्य मुक्ति होती है। कलिकलुष के रहते मुक्ति नहीं होती, अतः कहते हैं : कलि कलुष नसावनि। स्वयं श्रीरामजी ने भी एक साथ

---

१. अवध की महिमा अपरंपार, गावत हैं श्रुति चार॥टेक॥
विस्मृत अवल समाधिन से जो ध्याई बारंबार॥
तातें नाम अयोध्या गायो यह रिग वेद प्रकार॥१॥
राजधानि पर बल कंचन नव आठ चक्र नव द्वार।
ताते नाम अयोध्या पावन अस यजु करत विचार॥२॥
अकार उकार धकार देवत्रय ध्याई जो लखिसार।
ताते नाम अयोध्या ऐसो साम करत निरधार॥३॥
जगमग कोस जहाँ अपराजित ब्रह्म देव आगार।
ताते नाम अयोध्या ऐसो कहत अथर्व उदार॥४॥

यह पुरी वाल्मीकि के मत से ४८ कोस लम्बी बारह कोस चौड़ी थी। : देवकृत रामसुधा।

२. यह मानस सरसे निकलकर अयोध्या होते हुए श्रीगंगाजी में जा मिली है।
यथाः कैलासपर्वते राम मनसा निर्मितं सरः।
तस्मात् सुस्राव सरसः सायोध्यामवगूहते॥
सरः प्रवृत्ता सरयूः पुण्यब्रह्मसरश्च्युता। बालमीकीये

ही वर्णन किया है। यथा : जनम भूमि मम पुरी सोहावनि। उत्तर दिसि वह सरयू पावनि।

संसार चाहता है कि मुझे रामजी 'अपना' समझें। यथा : राम कहै जेहि आपनो, तेहि भजु तुलसी दास। अथवा हम सम पुन्य पुंज जग थोरे। जिन्हहि राम जानत करि मोरे। इसलिए रामजी पर ममता करते हैं। यहाँ अवधवासियों पर स्वयं श्रीरामचन्द्र अधिक ममता करते हैं। अतः ग्रन्थकार इन्हें रामजी का प्रिय समझकर प्रणाम करते हैं। यथा : अतिप्रिय मोहि इहाँ के वासी।

सिय निंदक अघ ओघ नसाए। लोक बिसोक बनाइ बसाए ॥
बंदौं कौसल्या दिसि प्राची। कीरति जासु सकल जगमाची ॥२॥

सीताजी की निन्दा करनेवाले के पापों के समूहों को नाशकर और शोक रहित करके लोक में बसाया। मैं पूर्व दिशा के समान कौसल्या माता की वन्दना करता हूँ। जिसकी कीर्ति की संसार में धूम है।

व्याख्या : परनिन्दा सम अघ न गिरीसा। परनिन्दा के समान कोई पाप नहीं है। मनु भगवान् ने कहा है : परिवादात् खरो भवति श्वा वै भवति निन्दकः। सच्चा दोष कहनेवाला गधा होता है और झूठा दोष कहनेवाला कुत्ता होता है। जितने बड़े की जो निन्दा करेगा उतना ही बड़ा उसे पाप होगा। अतः जगज्जननी सीता की निन्दा करनेवाले को नरक में भी स्थान नहीं है। यह अपराध एक अवधवासी से ही हो पड़ा। श्रीरामजी की इतनी बड़ी ममता अवधवासियों पर है कि ऐसे अधम प्रजा-जन के भी पापसमूह का नाश किया और लोक में उसे विशोक करके बसाया। दण्ड भी नहीं दिया। सम्मान के साथ उसे बसाया कि यह मेरे मिथ्या अपवाद के दूरीकरण में सहायक हुआ।

प्राची : पूर्व : दिक् में ही पूर्णचन्द्र का उदय होता है। जब श्रीरामावतार हुआ या होगा तब कौसल्या से ही होगा। अतः कीर्ति प्राचीदिक् की ही है। जितने देवकार्य हैं पूर्वमुख होकर ही उनके करने का विधान है। इससे संसार में पूर्वदिक् की धूम है। इसी प्रकार संसार में कौसल्या की कीर्ति की धूम है। यथा : कौसल्या सुत सो गुन खानी। नाम राम धनुसायक पानी।

प्रगटेउ जहँ रघुपति ससि चारू। विश्व सुखद खल कमल तुसारू ॥
दसरथ राउ सहित सब रानी। सकल सुमंगल मूरति मानी ॥३॥

अर्थ : जहाँ सुन्दर चन्द्रमा के समान रघुपति प्रकट हुए, जो संसार का सुख देनेवाले और खलरूपी कमल के लिए पालारूप हैं। रानियों सहित राजा दशरथ को पुण्य और मङ्गल की मूर्ति समझकर :

व्याख्या : 'ससिचारू' से पूर्णचन्द्र का ग्रहण करते हैं। अथवा यह चन्द्र सदोष है। यथा : जन्म सिंधु पुनि बंधु विष, दिन मलीन सकलंक। सिय मुख समता पाव किमि, चंद बापुरो रंक। घटै बढ़ै विरहिन दुख दाई। ग्रसै राहु निज संधिहि पाई। कोक सोकप्रद पंकज द्रोही। अवगुन बहुत चंद्रमा तोही। पर श्रीरामचन्द्र

निर्दोष हैं, इसलिए 'चारु' कहा। रघुपति कहकर श्रीरामावतार कहा जो रघुकुल में हुआ। जो रामावतार भृगुकुल में हुआ अथवा जो यदुकुल में हुआ उनका यहाँ ग्रहण नहीं है।

अवतार के दो प्रधान कारण शङ्करजीने कहे हैं : असुर मारि थापहिं सुरन्ह' दैवी सम्पत्वालों की रक्षा और आसुर सम्पत्वालों का संहार सो 'विश्व सुखद खल कमल तुमारू' कहकर दोनों बातें कहीं। खल की कमल से उपमा इसलिए दी कि कमल अपने जनक जल से ही विमुख रहता है। ऊपर की ओर मुख किये रहता है। जिस भाँति तुषार से कमलवन का संहार हो जाता है उसी भाँति श्रीरामावतार से पृथ्वी का निशिचर हीन होना द्योतित किया।

अब माता-पिता की वन्दना करते हैं। सुकृतमूर्ति महाराज दशरथ और सुमङ्गलमूर्ति सब रानियाँ यथा : सुकृती तुम समान जग माहीं। भयउ न है कोउ होतेउ नाहीं। सब रानी से सात सौ रानियों का ग्रहण है। यथा : पागलपन दुलहिनन्हि सिखावत मुदित सासु सत साता। अमंगल पाप से होता है, पुण्य का मङ्गल से नित्य सम्बन्ध है, अतः रानियों को मङ्गलमूर्ति कहा।

करौं प्रनाम करम मन बानी। करहु कृपा सुत सेवक जानी ॥
जिन्हहिं बिरचि बड़ भयउ बिधाता। महिमा अवधि राम पितु माता ॥४॥

अर्थ : मैं मन, वचन और कर्म से प्रणाम करता हूँ। पुत्र का सेवक जानकर कृपा करो, जिनको रचकर ब्रह्मदेव भी बड़े हुए। राम के माता-पिता महिमा की सीमा हैं।

व्याख्या : इष्टदेव के माता-पिता हैं, इसलिए बड़ी सावधानी से प्रणाम करते हैं। सुत का सेवक भी माता-पिता को प्रिय होता है। अतः प्रार्थना करते हैं कि सुत का सेवक जानकर कृपा करो।

रामजी तो 'आपु प्रकट भये विधि न बनाए' पर इनके माता-पिता तो ब्रह्मदेव की सृष्टि में हैं। इस नाते ब्रह्मदेव बड़े हुए क्योंकि राम के पिता-माता महिमा की अवधि हैं। यथा : सुनहु महीपति मुकुट मनि तुम सम धन्य न कोउ। राम लखन जिनके तनय विस्वविभूषन दोउ। और उनके बनानेवाले ब्रह्मदेव हैं।

दो. बंदौं अवध भुआल, सत्य प्रेम जेहि रामपद।
बिछुरत दीनदयाल, प्रियतनु तृन इव परिहरेउ ॥१६॥

अर्थ : मैं अवध के राजा की वन्दना करता हूँ; जिनको रामजी के चरणों में सच्चा प्रेम था, जिन्होंने दीनदयाल के बिछुड़ते ही अपने प्रिय शरीर को तिनके के समान छोड़ दिया।

व्याख्या : सच्चा प्रेम उसी को है जो प्रेमपात्र का विरह न सह सके। चक्रवर्ती जी के सामने सबका प्रेम कच्चा दिखाई पड़ता है क्योंकि रामविरह में ये ही शरीर छोड़ने में समर्थ हुए और सब लोग इस सच्चे प्रेम के लिए तरसते ही रह गये। स्वयं माँ कह रही हैं : असविचारि नहीं करउँ हठ झूठ सनेह बढाइ। मेरा प्रेम

झूठा है क्योंकि मैं तुम्हारे विरह में मर नहीं सकती। अतः इस झूठे प्रेम को न बढ़ाऊँगी। भरतजी कहते हैं : संकर साखि रहेउँ एहि घाएँ। सुमन्त जी कहते हैं : रहिहि न अंतहु अधम सरीरू। जस न लहइ बिछुरत रघुबीरू। इत्यादि।

केवल छः दिन सुमन्तजी के बन पहुँचाने और लौटने में लगे। वह चक्रवर्तीजी को अपार मालूम पड़ता है। लौटने की आशा से शरीर धारण किये हुए थे। यथा : हा रघुनंदन प्रान पिरीते। तुम बिनु जिअत बहुत दिन बीते। अतः कहते हैं' प्रिय तन तृन इव परिहरेउ'। जैसे ममतारहित होकर कोई तृण तोड़ देते हैं, उसी भाँति शरीर छोड़ा। सत्य प्रेम में इनका साथी माताओं में भी कोई नहीं। इसलिए इनकी अलग वन्दना अकेले की।

प्रनवौं परिजन सहित बिदेहू। जाहि राम पद गूढ सनेहू ॥
जोग भोग महुँ राखेउ गोई। राम बिलोकत प्रगटेउ सोई ॥१॥

अर्थ : मैं कुटुम्ब सहित राजा विदेह को प्रणाम करता हूँ। जिनको रामजी के चरणों में छिपा प्रेम था। जिसे योग और भोग में छिपा रक्खा था, पर रामजी के देखते ही वह प्रकट हो गया।

व्याख्या : 'परिजन' शब्द से महारानी सुनयना आदि समस्त परिवार का ग्रहण हुआ। अवध भुआल के सत्यसनेह की प्रशंसा है और विदेहराज के गुप्त प्रेम की प्रशंसा है। कोई उन्हें योगी और कोई भोगी जानता था। सामान्य लोग तो भोगी ही जानते थे, परन्तु जानकार लोग जानते थे कि योगी हैं। इन्हें प्रेमी कोई नहीं जानता था। जिस भाँति डब्बे में रत्न छिपाकर रक्खा जाता है उसी भाँति महाराज जनक ने योग-भोग के डब्बे में प्रेमरत्न छिपा रक्खा था। यथा : रागऊ बिराग भोग जोगवत मन, जोगी जागवलिक प्रसाद सिद्धि लही है : 'गीतावली'। सो रामजी के देखते ही प्रकट हो गया। अपने स्वरूप को छिपा न सके। यथा : इन्हहि बिलोकत अति अनुरागा। बरबस ब्रह्म सुखहि मन त्यागा। श्रीरामजी के प्रेमी धन्य हैं और उनके परिजन भी धन्य हैं। अतः सबकी वन्दना करते हैं।

प्रनवौं प्रथम भरत के चरना। जासु नेम ब्रत जाइ न बरना ॥
राम चरन पंकज मन जासू। लुबुध मधुप इव तजै न पासू ॥२॥

अर्थ : मैं पहिले भरतजी के चरणों को प्रणाम करता हूँ, जिनका नियम और व्रत वर्णन नहीं किया जा सकता। जिनका मन भौंरे के समान लुब्ध होकर रामचरणरूपी कमल के पास से नहीं हटता।

व्याख्या : भाइयों की वन्दना में ग्रन्थकार प्रथम वन्दना भरतलाल की करते हैं, क्योंकि तीनों भाइयों में बड़े हैं। विश्व के भरण पोषण करनेवाले हैं। शुचि सुबन्धु हैं। धर्म की मर्यादा हैं। कुलके दीपक हैं। शठको भी रामसम्मुख करनेवाले हैं। यथा : बिस्व भरण पोषण कर जोई। ताकर नाम भरत अस होई। लखन तुम्हार सपथ पितु आना। सुचि सुबन्धु नहिं भरत समाना। समुझब कहब करब तुम जोई।

धर्म सार जग होइहिं सोई। जानेउ सदा भरत कुल दीशा। वार बार मोहि कहेउ महीपा। कलिकाल तुलसी से सठन्हि हठि राम सनमुख करत को।

जिसके नेम प्रेम का वर्णन हो नहीं सकता। यथा : सुनि व्रत नेम साधु सकुचाहीं। ऐसा नेम प्रेम है, जैसा भौंरे का कमल के साथ होता है। यथा : सिसुपन ते परिहरेउ न संगू। वोते अवधि जाउँ जौ जिअत न पावौ वीर।

यह शङ्का उचित नहीं है कि ग्रन्थकार ने भरत के चरण को कमल क्यों नहीं कहा? क्योंकि अन्य स्थान में कहा है : झलका झलकत पायन कैसे। पंकज कोष ओसकन जैसे। प्रथम वन्दना करके प्रधानता दे ही दी, तब चरण को कमल कहने की आवश्यकता न रही। यथा : वंदौं प्रथम महीसुर चरना। मोह जनित संसय सब हरना।

वंदौं लछिमन पद जलजाता। सीतल सुभग भगत सुखदाता।
रघुपति कीरति विमल पताका। दंड समान भयेउ जस जाका ॥३॥

अर्थ : मैं लक्ष्मणजी के चरणकमलों की वन्दना करता हूँ, जो शीतल, सुन्दर और भक्तों को सुख देनेवाले हैं और रघुपति की कीर्तिरूपी विमल पताका में जिनका यश दण्ड के समान हुआ।

व्याख्या : लक्ष्मणजी के चरणकमलों के गुण कहते हैं। वे चरण पाप, ताप, माया का हरण करते हैं : इसलिए शीतल हैं। ध्यान करनेवालों के चित्ताकर्षक होने से सुभग हैं। यथा : 'चारु चंपक वरन वसन भूषन धरन दिव्यतर भव्य लावण्य सिंधो' और कल्याण मङ्गल भवन होने से 'भक्त सुख दाता' हैं। यथा : उर्मिला रमन कल्यान मंगल भवन दास तुलसी दोष दवन हेतू।

रावणवधरूपी विमल कीर्ति की पताका जो श्रीरामचन्द्र की फहरा रही है, उसका आधार लक्ष्मणजी का यश है। मेघनाद वध होने पर लङ्का अजेय नहीं रह गई। मेघनाद वध लक्ष्मणजी ने किया। देवताओं को प्रत्यक्ष होकर स्तुति करने का साहस हुआ। यथा : जय अनंत जय जगदाधारा। तुम प्रभु सब देवन्हि निस्तारा। पताका दूर से ही दृष्टिगोचर होती है पर दण्ड तो निकट आने पर दिखाई पड़ता है। इसी भाँति श्रीरामजी की कीर्ति विख्यात है, परन्तु लङ्का के युद्ध के देखने पर लक्ष्मणजी की कीर्ति का पता चलता है।

सेष सहस्र सीस जग कारन। सो अवतरेउ भूमि भय टारन ॥
सदा सो सानुकूल रहु मोपर। कृपासिंधु सौमित्रि गुनाकर ॥४॥

अर्थ : जो जग के कारण, हजार सिरवाले शेषजी हैं। उन्होंने पृथ्वी का भार उतारने के लिए अवतार धारण किया। वे कृपासिन्धु, गुणों की खानि सुमित्रा के पुत्र सदा मुझपर अनुकूल रहें।

व्याख्या : वाल्मीकिजी ने लक्ष्मणजी को साक्षात् शेषावतार बतलाया। यथा : जो सहससीस अहीस महिधर लखन सचराचर धनी। अतः 'सेष सहस्रसीस' कहकर ग्रन्थकार स्तुति करते हैं। जाग्रत् अवस्था के विभु होने से जगकारण कहते हैं। जाग्रत्

के आधार पर ही जगत् की स्थिति है। यथा : लच्छन धाम राम प्रिय सकल जगत आधार। इनका अवतार भूभार-हरण के लिए हुआ था। यथा : जयति संग्राम सागर भयङ्कर तरन रामहित करन वरबाहु सेतू।

रामभक्त के लिए लक्ष्मणजी की सानुकूलता परमावश्यक है। लक्ष्मणजी ने ही ग्रन्थकार की ओर प्रभु का ध्यान आकृष्ट कराया। यथा : मारुति मत रुचि भरत की लखि लखन कही है। कलि कालहू नाथ नाम सो प्रतीति प्रीति एक किंकर की निबही है : विनय प.। कृपासिन्धु और गुणाकर कहकर सेवनीय कहा और सौमित्र कहकर भगवती सुमित्रा के गुणों का इनमें होना जनाया। यथा : सिय रघुवर सेवा सुचि ह्वैहो तौ जानिहौं सही सुत मोरे। कीजहु इहै विचार निरन्तर राम समीप सुकृत नहीं थोरे।

रिपु सूदन पद कमल नमामी। सूर सुसील भरत अनुगामी॥
महावीर विनवौं हनुमाना। राम जासु जस आपु बखाना॥५॥

अर्थ : मैं शत्रुघ्न के चरणकमलों को प्रमाण करता हूँ। वे शूर, सुशील और भरत जी के पीछे चलनेवाले हैं। महावीर हनुमान् जी की विनती करता हूँ। उनके यश का राम जी ने स्वयं बखान किया है।

व्याख्या : शत्रुघ्नजी ऐसे शूर हैं कि इनके स्मरण से शत्रु का नाश होता। यथा : जाके सुमिरन ते रिपु नासा। नाम सत्रुहन वेद प्रकासा। जयति जय सत्रुकरि-केसरी सत्रुतम तुहिनहर किरनकेतू। 'रिपु' शब्द से लौकिक रिपु तथा षड् रिपु काम-क्रोधादि का भी ग्रहण है। शत्रुघ्न जी सुशील ऐसे हैं कि बड़े भाइयों के समाने कभी बोले ही नहीं और भरत जी के अनुगामी हैं। अर्थात् रामसेवक के सेवक हैं। यथा : जयति सर्वांगसुन्दर सुमित्रासुवन भुवनविख्यात भरतानुगामी : विनय.। अर्थात् रामजी के दासानुदास हैं। अब भ्रातृकोटि में परिगणित भक्तों की वन्दना करते हैं।

वीर बहुत हुए, पर महावीर शब्द रूढ हनुमान् जी के लिए है। बड़े बड़े वीरों ने त्रैलोक्य विजय किया पर काम के वशवर्ती कभी न हुए हों ऐसे तो एक हनुमान्‌जी ही हैं। सब कोई रामयश का बखान करके अपने को कृतकृत्य मानते हैं पर हनुमान्‌जी के यश का तो स्वयं रामजी बखान करते हैं। यथा : सुनु कपि तोहि समान उपकारी। नहि कोउ सुर नर मुनि तनुधारी। सुनु सुत तोहि उरिन मैं नाही। देखेउँ करि विचार मनमाहीं। ऐसे महावीरजी के विनय करने से कामादि शत्रु भी नष्ट होंगे और रामजी की कृपा भी होगी।

सो. प्रनवौं पवन कुमार, खल वन पावक ग्यान घन।
जासु हृदय आगार, बसहिं राम सर चाप धर॥१७॥

अर्थ : मैं पवनकुमार हनुमान्‌जी को प्रणाम करता हूँ जो खलरूपी वन के लिए अग्नि हैं और जिन्हें घना ज्ञान है और जिनके हृदयरूपी घर में धनुष-बाण धारण किये श्रीरामजी निवास करते हैं।

व्याख्या : प्रनवौं से प्रणाम कहा। पवन से अग्नि की उत्पत्ति कही। यथा :

'वायोरग्निः ।' सो पवनकुमार भी अग्निरूप ही हैं। भेद यह है कि अग्नि जड़ है। उसे विचार नहीं है। सभी को अवसर पड़ने पर जलाता है। पर हनुमान्जी तो 'खलबन-पावक' हैं। अग्नि जड़ प्रकाश है। हनुमान् जी में चित्प्रकाश है। इसलिए ज्ञानघन कहा। अग्नि भगवान् की विभूति हैं। यथा : वसूनां पावकश्चास्मि। और हनुमान्जी के हृदय में स्वयं भगवान् बसते हैं। '[illegible] ाप धर' कहने का भाव यह कि : तब लगि हृदय बसत खल नाना। लोभ मोह मत्सर मद माना। जब लगि उर न बसत रघुनाथा। धरे चाप सायक कटि माथा।

'पवनकुमार' कहकर दिव्य जन्म बताया। 'खलवन पावक' कहकर दिव्य कर्म बताया। 'ज्ञानघन' कहकर दिव्य ज्ञान बताया और 'जासु हृदय आगार बसहिं राम सर चाप धर' कहकर साक्षात् रामायणरूप बतलाया। अथवा : 'पवनकुमार कहकर समुद्रोल्लंघन ध्वनित किया। 'खलवन पावक' कहकर लंकादहन ध्वनित किया। ज्ञानघन कहकर सीता प्रबोध, रावण प्रबोध ध्वनित किया। बसहिं राम सरचाप धर से 'राम प्राप्ति' ध्वनित की। इसी वन्दना में संक्षेप से हनुमतच्चरित कह डाला क्योंकि हनुमान्जी 'भानुकुलभानु कीरति पताका' हैं।

कपिपति रीछ निसाचर राजा। अंगदादि जें कीस समाजा ॥
वंदौं सबके चरन सोहाये। अधम सरीर राम जिन्ह पाये ॥१॥

अर्थ : वानरों के पति रीछ तथा राक्षसों के राजा और अङ्गद आदि जो बानर समाज है उन सबके सुन्दर चरणों की मैं वन्दना करता हूँ। जिन्होंने अधम शरीर से रामजी को प्राप्त किया।

व्याख्या : कपिपति अर्थात् सुग्रीवजी, रीछ राजा जाम्बवानजी, निशाचरराज विभीषणजी, अङ्गदादि अर्थात् द्विविद मयन्द, नील, नल, गद, विकटास्य, दधिमुख, केहरि, निशठ, शठ आदि वानरसमाज। इन सब महानुभावों के सुन्दर चरणों की वन्दना करते हैं, क्योंकि ये रामजी के सखा हैं। यथा : ये सब सखा सुनहु मुनि मेरे। भये समर सागर कहँ बेरे। हनुमान्जी को प्रथम वन्दना का कारण यह है कि ये सर्वाधिक बड़भागी और रामानुरागी हैं। यथा : हनूमान सम नहि बड़भागी। नहि कोउ रामचरन अनुरागी। इन सबों में बड़ी विशेषता है। नर शरीर से भी रामजी की प्राप्ति दुर्लभ है, सो इन लोगों ने अधम शरीर से रामजी की प्राप्ति की है। यथा : प्रात लेइ जो नाम हमारा। तेहि दिन ताहि न मिलै अहारा। अस मैं अधम सखा सुनु मोहू पर रघुवीर। कीन्हीं कृपा सुमिरि गुन भरे विलोचन नीर।

रघुपति चरन उपासक जेते। खगमृग सुर नर असुर समेते ॥
वंदौं पद सरोज सब केरे। जे विनु काम राम के चेरे ॥२॥

अर्थ : पशु, पक्षी, देवता, मनुष्य और असुर समेत जितने रघुनाथ के चरणों के उपासक हैं, जो बिना कामना के रामजी के दास हैं। मैं सबके चरण कमलों की वन्दना करता हूँ।

व्याख्या : भाव यह कि नर से व्यतिरिक्त शरीरों में भी उपासक पाये जाते

हैं। सो वन्दना उपासकों की हैं, शरीरों की नहीं। खग से गरुड़, भुसुण्डि, जटायु आदि का ग्रहण हैं। मृग से वानरों तथा रीछों की सेना के सैनिक आदि, सुर से गणेश सुरेश आदि, नरों से अयोध्या, मिथिला निवासी आदि, असुर माल्यवान आदि। भाव यह कि चाहे जिस योनिके हों, निष्काम भक्त अन्तरङ्ग हैं। यथा : सकल कामना हीन जे राम भगति रसलीन। अस सज्जन मम उर वस कैसे। लोभी हृदय वसहि धन जैसे।

सुक सनकादि भगत मुनि नारद। जे मुनिवर विग्यान विसारद ॥
प्रनवौं सवहि धरणि धरि सीसा। करहु कृपा जन जानि मुनीसा ॥३॥

अर्थ : शुकाचार्य, सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार, भक्तमुनि नारद तथा जितने विज्ञान-विशारद मुनि हैं, उन सबको मैं धरती पर मस्तक रखकर प्रणाम करता हूँ। हे मुनीश्वरो ! अपना जन जानकर कृपा करो।

व्याख्या : भाव यह है कि उपर्युक्त महानुभाव विज्ञान-विशारद अर्थात् ब्रह्मज्ञ होने पर भी भक्त हैं। यथा : अस विचारि पंडित मोहि भजहीं। पायेहु ज्ञान भगति नहिं तजहीं। ग्रन्थकार कहते हैं कि इनके चरणस्पर्श की भी मेरी योग्यता नहीं है। इससे धरती पर सिर रखकर प्रणाम करते हैं और अपने को इनका सेवक मानते हैं। अथवा बहुतों को युगपत् प्रणाम धरणी पर सिर रख करके ही किया जाता है, एक हो तो उसके चरणों पर सिर रखकर प्रणाम किया जाय।

जनक सुता जग जननि जानकी। अतिसय प्रिय करुना निधान की ॥
ताके जुग पद कमल मनावों। जासु कृपा निरमल मति पावों ॥४॥

अर्थ : जनक की बेटी, जगत् की माता और करुणानिधान की अत्यन्त प्यारी श्रीजानकीजी के दोनों चरण कमलों को मनाता हूँ। ध्यान करता हूँ : जिनकी कृपा से निर्मल मति की प्राप्ति हो।

व्याख्या : जनक सुता और जानकी ये दोनों शब्द एक अर्थ के बोधक मालूम पड़ते हैं, पर यह बात नहीं है। गायत्रीसहस्रनाम में पठित जानकी नाम सदा से ही गायत्री माता का है। अतः जानकी कहकर ब्राह्मणों की इष्ट देवता गायत्री देवी कहा। जनक सुता कहकर उनका दिव्य जन्म कहा। जगजननि कहकर उनका सावित्री होना कहा। यथा : आदिसक्ति जेहि जग उपजाया। सो अवतरिहि मोरि यह माया। 'अतिसय प्रिय करुना निधान की' कहकर उनका जगत्पिता : सविता : से अनादि सम्बन्ध सूचित किया। यथा : प्रभा जाइ कहँ भानु बिहाई। कहँ चन्द्रिका चन्द तजि जाई। उस महामाया के दोनों चरणों का ध्यान ग्रन्थकार करते हैं। बोलने में तो केवल चरणकमल कहने से काम चल जाता है, पर ध्यान करने में तो बड़ी सावधानी की आवश्यकता है। अतः 'जुग पद कमल मनावों' कहते हैं। ये ही बुद्धि की प्रेरणा करनेवाली देवी हैं। अतः निर्मल मतिप्राप्ति के लिए प्रार्थना करते हैं। अथवा श्रेय और प्रेय दोनों की प्राप्ति के लिए दोनों चरणों का ध्यान करते हैं। उपासना करने से यही देवी बुद्धिरूप में परिणत होकर मृत्युजाल से छुड़ा देती है। जब यह देवी प्रसन्न होती हैं तब सूर्य की भाँति चित्ताकाश में विचाररूपता को प्राप्त होती हैं।

सबके हृदय में निवास करनेवाली इस देवी को कृपा हो, यही सबसे अधिक परम साधन है।

पुनि मन बचन कर्म रघुनायक। चरन कमल बंदौं सब लायक ॥
राजिव नयन धरे धनु सायक। भगत बिपति भंजन सुख दायक ॥५॥

अर्थ : फिर मैं मन, वाणी और कर्म से सब लायक रघुनायक के चरणकमलों की वन्दना करता हूँ। जो कमलनयन धनुष बाण धारण किये हुए भक्तों की विपत्ति को दूर करनेवाले तथा सुख के देनेवाले हैं।

व्याख्या : रघुनायक पद से रघुकुल में अवतार कहा। सबलायक पद से सर्वशक्तिमान् कहा तथा चक्रवर्तीजी की अत्यन्त प्रीति कही। यथा : भये राम सब विधि सब लायक। राजिव नयन से सुन्दरता तथा कृपालुता कही। धरे धनु सायक पद से काल का भी नियन्ता ब्रह्म कहा। यथा : लव निमेष परमानु जुग बर्ष कल्प सर चंड। भजसि न मन तेहि राम कहँ काल जासु कोदंड। भगत बिपति भंजन पदसे दुष्कृतों का विनाश कहा और सुखदायक पद से साधुपरित्राण तथा धर्मसंस्थापन कहा।

इसी चौपाई में सातों काण्डों की कथाओं का बीज निहित है। यथा रघुनायक पद से जन्म, नामकरण, मुण्डन, यज्ञोपवीत तक की कथा इङ्गित की। सबलायक पद से मखरखवारी, अहल्योद्धार, पिनाकभङ्ग, सीता-परिणय, पिताजी के यौवराज्य देने तक की कथा द्योतित की। राजिवनयन से बनवास। यथा : राजिव लोचन राम चले तजि बाप को राज बटाऊ की नाईं। तथा मुनियों पर कृपा कही। धरे धनु सायक पद से निसिचर हीय करौं महि ऐसी प्रतिज्ञा करना कहा। भगत बिपति भंजन पद से सूर्पणखा-नासिकाछेदन से रावणवध तक द्योतित किया। सुख दायक पद से राज्य कहा अर्थात् राम राज बैठे त्रैलोका। हर्षित भये गये सब सोका। तक की कथा ध्वनित की।

इसी चौपाई में अवतार के सब कारण भी कहे। यथा : असुर मारि : भगत बिपति भंजन : थापहि सुरन्ह : सुख दायक : राखहि निज स्रुति सेतु : रघुनायक। जग बिस्तारहि बिसद जस : सब लायक : राम जन्म कर हेतु।

दो. गिरा अरथ जल बीचि सम, कहिअत भिन्न न भिन्न।
बंदौं सीताराम पद, जिन्हहि परम प्रिय खिन्न ॥१८॥

अर्थ : वाणी और अर्थ, जल लहर जैसे अलग-अलग कहे जाते हैं पर अलग-अलग नहीं हैं, वैसे ही सीताराम पद हैं उनकी मैं वन्दना करता हूँ, जिनको दुःखी अत्यन्त प्यारे हैं।

व्याख्या : सीताजी की उपमा गिरा से, रामजी की अर्थ से, फिर सीता जी की उपमा बीचि से और रामजी की जल से है एवं एक बार सीता को पहिले कहा दूसरी बार राम को पहिले कहा। अभेदार्थ दृढ़ करने के लिए। सीता राम हैं और

राम ही सीता हैं। [1]गिरा अर्थ से मानसिक अभेद कहा और जल वीचि से तात्त्विक अभेद कहा। सीताराम पद कहकर यह दिखलाया कि वह ब्रह्म पद एक है। उसीका राम नाम से पुँलिङ्ग में व्यवहार होता है और सीता नाम से स्त्रीलिङ्ग में व्यवहार होता है। इसलिए कहने मात्र में भेद है, भेद कुछ भी नहीं। अथवा यह दिखलाया कि चरण में भी भेद नहीं। जो चिह्न रामजी के दक्षिण पद में हैं वे ही चिह्न सीताजी के वाम पद में हैं और जो चिह्न सीताजी के दक्षिण पद में हैं वे ही चिह्न रामजी के वाम पद में हैं। जिन्हहिं परम प्रिय खिन्न कहकर रुचि में भी अभेद दिखलाया।

बंदौं नाम राम रघुवर को। हेतु कृसानु भानु हिमकर को ॥
विधि हरिहरमय वेद प्रान सो। अगुन अनूपम गुन निधान सो ॥१॥

अर्थ : मैं रघुवर के नाम की वन्दना करता हूँ, जो कृशानु : अग्नि : भानु : सूर्य : और हिमकर : चन्द्र : का कारण है और ब्रह्मा, विष्णु तथा महादेवमय वेद के प्राण सा है तथा निर्गुण, निरुपम और गुणनिधान सा है।

व्याख्या : जैसे राजा की सवारी सेना सामन्तों के पीछे रहती है। उसी न्याय से कवि ने सबकी वन्दना करके अन्त में श्रीसीतारामपद की वन्दना की है और उसके भी बाद नौ दोहों में नाम की वन्दना की है। नाम का इतना आदर इसलिए है कि वह नामी को अत्यन्त प्रिय है। लोक में भी देखा जाता है कि नामी नाम के पीछे अपना प्राण दे देता है। दूसरी बात यह है कि नाम में रूप सूक्ष्मरूप से अवस्थान करता है। रघुवर राम का उत्कर्ष यदुवर और भृगुवर राम से अधिक है। क्योंकि जिस नित्यानन्द चिदात्मामें योगी लोग रमण करते हैं उसीको तापनीय श्रुति ने रघुवर राम कहा है। यथा : रमन्ते योगिनो यस्मिन्नित्यानन्दे चिदात्मनि। इति रामपदेनासौ परब्रह्माभिधीयते। चिन्मयेऽस्मिन्[2] महाविष्णौ जाते दाशरथे हरौ। रघोः कुलेऽखिलं राति राजते यो महीस्थितः। स राम इति लोकेऽस्मिन् विद्वद्भिः प्रकटीकृतः। सो रघुवर के राम नाम में रघुवर का रूप से सूक्ष्मरूप अवस्थान करता है।

उसी राम नाम को यहाँ कृशानु, भानु और हिमकर का कारण बतलाया है,

---

१ एकस्यैवात्मनो भेदौ शब्दार्थवत्पृथक् स्थितौ। प्रकाशकः प्रकाश्यश्च कार्यकारणरूपता। वाक्यपदीये। अर्थ : परमार्थ दृष्टि से शब्द और अर्थ अभिन्न हैं। आत्मा ही शब्द और आत्मा ही अर्थ है। ब्रह्म प्रकाशक है और ब्रह्म ही प्रकाश्य है। व्यावहारिक दृष्टि से शब्द और अर्थ प्रकाशक प्रकाश्य रूप से कार्यकारणभाव में उपलब्ध होते हैं। इसीलिए कहा है कि : दाम्पत्यं नैव लोकेऽस्मिन् विद्यते नैव लभ्यते। अलौकिकं हि दाम्पत्यं विद्यते रामसीतयोः।

अर्थ : न ऐसा स्त्री पुरुषभाव न लोक में है और न पाया जाता है, रामसीता का दाम्पत्य अलौकिक है।

२. इस रघुकुल में चिन्मय, महाविष्णु हरि दशरथ के यहाँ जन्म लेकर भक्तों का सम्पूर्ण अभीष्ट प्रदान करते हुए पृथ्वी पर शोभायमान होते हैं। उन्हींको राम कहकर विद्वान् लोग अभिहित करते हैं।

परन्तु छान्दोग्यश्रुति[1] कहती है कि उनके कारण हैं, तेज, अप् और अग्नि। अग्नि का जो लाल रूप है वह तेज का रूप है। जो शुक्ल रूप है वह जल का है। जो काला रूप है वह पृथ्वी का है। अग्नि से अग्नित्व ही चला गया। तीन रूप ही सत्य हैं। इसी भाँति आदित्य का जो लाल रूप है वह तेज का है। जो शुक्ल है वह जल का है। जो काला है वह पृथ्वी का हैं। आदित्य से आदित्यत्व गया। तीन रूप ही सत्य ठहरे। चन्द्र का जो लाल रूप है वह तेज का है। जो शुक्ल है वह जल का है। जो काला है वह पृथ्वी का है। गया चन्द्र से चन्द्रत्व। तीन रूप ही सत्य हैं। अतः कहना पड़ेगा कि यहाँ कृशानु, भानु, हिमकर से लोक प्रसिद्ध तीनों ज्योतियाँ जिन्हें अग्नि, सूर्य और चन्द्र कहा जाता है, अभिप्रेत नहीं है।

मन्त्रशास्त्र कहता है कि चिन्मय ब्रह्म में जब सिसृक्षा होती है तो उसे परविन्दु कहते हैं। यही परविन्दु वैष्णवों का महाविष्णु, शैवों का पर शिव और शाक्तों का अनपायिनी परा वाक् है। यहीं पर विन्दु काल पाकर १. शोणविन्दु २. सितविन्दु तथा ३. मिश्रविन्दु रूप से प्रकट होता है। इन्हीं का पारिभाषिक नाम क्रम से १. कृशानु २. भानु और ३. हिमकर है। जब राम नाम महामन्त्र है तब उसकी व्याख्या में मन्त्रशास्त्र की परिभाषा न मानने का कोई कारण नहीं है।

राम शब्द के विश्लेषण से र, आ और म निकलते हैं और ये ही क्रम से रुद्र, ब्रह्मा और विष्णु हैं। अतः राम से त्रिदेव की उत्पत्ति कही गई। यथा : स्कन्दयामले : [2]रुद्र उवाच। रेफोऽग्निरहमेवोक्तो विष्णुः सोमो म उच्यते। आवयोर्मध्यगो ब्रह्मा रविराकार उच्यते। अतः स्पष्ट है कि यहाँ कृशानु भानु हिमकर से क्रमशः रुद्र, ब्रह्मा और विष्णु का ग्रहण है। इनका कारण रघुवर का राम नाम है। ऐसे महामहिम राम नाम की कवि वन्दना करते हैं।

अब राम नाम की व्युत्पत्ति दूसरे प्रकार से कहते हैं। राम नाम ब्रह्मा, विष्णु और महादेवमय है। रामपूर्वतापनीय के द्वितीय उपनिषत् में कहा है कि 'रेफारूढाः मूर्तयः स्युः शक्तयस्तिस्र एव च' इस पर टीकाकार लिखते हैं 'अकारद्वयं मकारश्चेति वर्णास्त्रयः समुदिताः रेफारूढा बीजं स्युः।......प्रथमोऽकारो विराडात्मकब्रह्मारूपः, द्वितीयोऽकारो हिरण्यगर्भात्मकविष्णुरूपः, मकारस्तु अव्याकृतात्मकसदाशिवरूपः...। शक्तय इति सृष्ट्यादिशक्तय इत्यर्थः...तदा रेफेण स्वभूरित्यादिप्रतिपादितं स्वप्रकाशं ब्रह्मोपस्थाप्यते। अर्थात् रकार को रेफ कहते हैं, उसके साथ ही तीन मूर्तियाँ और तीन शक्तियाँ हैं। दो अकार और एक मकार र्+अ+अ+म=राम। इसमें पहिला

---

१. यदग्ने रोहितं रूपं तेजसस्तद्रूपं यच्छुक्लं तदपां यत्कृष्णं तदन्नस्यापागादग्नेरग्नित्वं वाचारम्भणं विकारोनामधेयं त्रीणि रूपाणीत्येव सत्यम्। यदादित्यस्य रोहितं रूपं तेजसस्तद्रूपं यच्छुक्लं तदपां यत्कृष्णं तदन्नस्यापागादादित्यादादित्यत्वाम् वाचारम्भणं विकारो नामधेयम्। त्रीणिरूपाणीत्येव सत्यम्। यच्चन्द्रस्य रोहितं रूपं तेजसतद्रूपं यच्छुक्लं तदपां यत्कृष्णं तदन्नस्यापागाद् चन्द्राच्चन्द्रत्वम् वाचारम्भणं विकारो नामधेयं त्रीणिरूपाणीत्येव सत्यम्।

२. रुद्र ने कहा कि रेफरूप अग्नि मैं हूँ। विष्णुरूप सोममय कहा जाता है। हम दानों के बीच में ब्रह्मा सूर्य आकार कहलाते हैं।

अकार विराडात्मक ब्रह्मदेव रूप है। दूसरा अकार हिरण्यगर्भात्मक विष्णुरूप है। मकार अव्याकृतात्मक शिवरूप है। शक्तियों से यहाँ सृष्टि, स्थिति और संहार शक्ति से अभिप्राय है और रेफ से स्वप्रकाश ब्रह्म अभिप्रेत है। इस भाँति राम नाम विधि-हरिहरमय है। वेद के प्राण सा है।

वेद का प्राण प्रणव[1] है। क्योंकि भगवान् कहते हैं कि सब वेदों में प्रणव : ओंकार : मैं हूँ। प्रणव में अकार, उकार, मकार और अर्धमात्रा है। अकार विराडात्मक ब्रह्मदेव हैं। उकार हिरण्यगर्भात्मक विष्णुरुप है। मकार अव्याकृतात्मक शिवरूप है। अर्धमात्रा स्वप्रकाशात्मक ब्रह्मरूप है। अतः ऊपर से मिलान करने पर प्रणव और राम नाम एक ही वस्तु प्रमाणित[2] होती हैं। इसीलिए रामनाम को रामतारक कहते हैं। यथा : राम एव परं ब्रह्म राम एव परं तपः। राम एव परं तत्त्वं श्रीरामो ब्रह्मतारकम्। राम ही परब्रह्म है। राम ही परम तप हैं। राम ही परम तत्त्व हैं। श्रीराम ब्रह्म तारक : प्रणव हैं।

त्रिकालातीत स्वप्रकाश ब्रह्म के रेफरूप से अवस्थित होने से तथा दोनों अकार और मकार के क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु तथा शिवरूप से अवस्थित होने से राम नाम निर्गुण भी है और गुणनिधान भी है। एक बात में राम नाम प्रणव से भी अधिक है, वह यह कि प्रणव में केवल अमलात्मा परमहंस का ही अधिकार है किन्तु राम नाम में सबका[3] अधिकार है। अतः राम नाम अनुपम है।

महा मंत्र जोइ जपत महेसू। कासी मुकुति हेतु उपदेसू॥
महिमा जासु जान गनराऊ। प्रथम पूजिअत नाम प्रभाऊ॥२॥

अर्थ : जिस महामन्त्र को महेश जपते हैं। जो : काशी में मुक्ति के लिए उपदेश्य है। जिसकी महिमा को गणेशजी जानते हैं। नाम के प्रभाव से उनकी प्रथम पूजा होती है।

व्याख्या : महामंत्र : यह रामनाम महामन्त्र है। मननात् त्रायते भयत इति मन्त्रः। मनन करने पर जो भय से रक्षा करे उसे मन्त्र कहते हैं। यह रामनाम

---

१. वायुपुत्र महाबाहो किं तत्त्वं ब्रह्मवादिनाम्। पुराणेष्वष्टादशसु स्मृतिष्वष्टादशस्वपि। चतुर्वेदेषु शास्त्रेषु कथय त्वं महाबल। हनुमान् होवाच। भो योगीन्द्राश्च कवयो विष्णुभक्तास्तथैव च। शृणुध्वं मामकीं वाचं भवबन्धविनाशिनीम्। एतेषु चैव सर्वेषु तत्त्वं च ब्रह्मतारकम्। सनकादिकों ने पूछा कि हे वायु पुत्र महाबाहो! अठारह पुराण, अठारह स्मृति, चारों वेद और शास्त्रों में ब्रह्मवादियों का कौन सा तत्त्व है, हे महाबल! यह बताओ। तब हनुमान् जी ने कहा कि हे योगीन्द्र ऋषियो विष्णुभक्तो! भवबन्धविनाशिनी मेरी बाणी सुनो। इन सबों में तत्त्व ब्रह्म तारक श्रीराम नाम है।

२. प्रणवत्वात् सदा ध्येयो यतीनाञ्चविशेषतः। राम रहस्ये। प्रणव रूप होने से यतियों द्वारा विशेष रूप से ध्यान करने योग्य है।

३. मनुष्वेतेषु सर्वेषामधिकारोऽस्तिदेहिनाम्। राम मन्त्र में सभी देहधारियों का अधिकार है।

मनन करने से, हेतु सहित संसार से उपासक की रक्षा करता है इसलिए महामन्त्र है। अथवा जिस किसी भाँति जपे जाने से जापक का मङ्गलविधान करता है। इसलिए महामन्त्र है। यथा : भावकुभाव अनख आलसहूँ। राम जपत मंगल दिसि दसहूँ।

जोइ जपत महेसू : महाईश महादेव जिसका रात दिन जप करते हैं, उसके महामन्त्र होने में सन्देह को स्थान कहाँ है। यथा : तुम पुनि राम राम दिन राती। सादर जपहु अनंग अराती।

कासी मुकुति हेतु उपदेसू : इसकी तापनीय में कथा है। श्री वृषभध्वज ने काशी में एक सहस्र मन्वन्तर तक जप, होम, अर्चनादि करते हुए राम मन्त्र का जप किया। तब प्रसन्न होकर भगवान् राम ने शङ्करजी से कहा कि हे परमेश्वर ! जो तुम्हारा अभीष्ट हो, सो माँगो मैं दूँगा। तब ईश्वर ने सच्चिदानन्द आत्मा श्रीराम से कहा कि मणिकर्णिका में, मेरे क्षेत्र में या गङ्गा के तट पर जो शरीरधारी मरे उसकी मुक्ति हो यही वरदान माँगता हूँ दूसरा नहीं। तब श्रीरामजी बोले : हे देवेश ! तुम्हारे इस क्षेत्र में जहाँ कहीं जो कोई मरेगा चाहे वह कृमि हो, कीट हो तुरन्त मुक्त हो जायगा। तुम्हारे अविमुक्त क्षेत्र में सबकी मुक्ति के लिए मैं पाषाणादि प्रतिमाओं में सन्निहित रहूँगा। हे शिवजी ! जो इस क्षेत्र में इस मन्त्र से मेरी पूजा भक्ति के साथ करेगा उसके ब्रह्महत्यादि पापों को मैं छुड़ाऊँगा, तुम सोच न करो। तुमसे या ब्रह्मदेव से जो षडक्षर मन्त्र प्राप्त करेंगे वे जीते ही मन्त्रसिद्ध होंगे। जिस मरणशील प्राणी के दक्षिण कर्ण में तुम मेरे मन्त्र का उपदेश करोगे हे शिवजी ! वह मुक्त हो जायगा। यथा :

श्रीरामस्य मनुं काश्यां जजाप वृषभध्वजः।
मन्वन्तरसहस्रैस्तु जपहोमार्चनादिभिः ॥१॥
ततः प्रसन्नो भगवान् श्रीरामः प्राह शङ्करम्।
वृणीष्व यदभीष्टं तद्दास्यामि परमेश्वर ॥२॥

इति। स होवाच

मणिकर्ण्यां मम क्षेत्रे गङ्गायां वा तटे पुनः।
म्रियते देही तज्जन्तोर्मुक्तिर्नातो वरान्तरम् ॥३॥

अथ स होवाच श्रीरामः।

क्षेत्रेऽस्मिन् तव देवेश यत्र कुत्रादि वा मृताः।
कृमिकीटादयोप्याशु मुक्तास्सन्तु न चान्यथा ॥४॥
अविमुक्ते तव क्षेत्रे सर्वेषां मुक्तिसिद्धये।
अहं सन्निहितस्तत्र पाषाणप्रतिमादिषु ॥५॥
क्षेत्रेऽस्मिन् योऽर्चयेद् भक्त्या मन्त्रेणानेन मां शिव।
ब्रह्महत्यादिपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥६॥
मुमूर्षोर्दक्षिणे कर्णे यस्य कस्यापि वा स्वयम्।
उपदेक्ष्यसि मन्मन्त्रं स मुक्तो भविता शिव ॥ रा. उ.

सो काशी में मरणशील को प्रतिक्षण मन्त्र देते हुए विश्वनाथ दिन रात घूमा करते हैं, इस भाँति उनका जप अब भी निरन्तर चलता जाता है।

महिमा जासु जान गनराऊ : गणेशजी मातृमान् हैं, पितृमान् हैं, अपने माता-पिता को दिन रात नाम जप करते देखते हैं। उसी की बदौलत काशी में मुक्ति का सदावर्त शिवजी ने खोल रक्खा है। यह भी जानते हैं और स्वयं उनका अनुभूत विषय है कि ऐसे नामजापक मातापिता की प्रदक्षिणा करके वे लोक में प्रथम पूज्य हुए। उनके प्रथम पूज्य होने के मूल में भी राम नाम की महिमा है। अतः राम नाम की महिमा के यथार्थ जानकार गणराउ : गणेशजी हैं। उनके नाम स्मरण से सिद्धि होती है। यथा : जेहि सुमिरत सिधि होइ, गन नायक करिवरबदन। करहु अनुग्रह सोइ बुद्धिरासि सुभगुनसदन।

जान आदिकवि नाम प्रतापू। भयउ सुद्ध करि उलटा जापू ॥
सहस नाम सम सुनि सिव बानी। जपति सदा पिय संग भवानी ॥३॥

अर्थ : आदिकवि बाल्मीकि नाम का प्रताप जानते हैं। वे उलटा जप करके शुद्ध हो गये। सहस्र नामके बराबर : राम नाम है। ऐसी शिवजी की वाणी सुनकर भवानी सदा पतिके सङ्ग जप किया करती हैं।

व्याख्या : जान आदिकवि : पहले पहल संसार में छन्दोमयी वाक् की प्रवृत्ति इन्हीं[1] को हुई। इसी से आदिकवि कहलाते हैं। ग्रन्थकार कहते हैं कि नाम का प्रताप इन्हें मालूम है। महामंत्र जेहि जपत महेसू : कहकर रामनाम का गुण कहा। महिमा जासु जान गनराऊ : कहकर महिमा ज्ञान का प्रभाव कहा। अब प्रताप ज्ञान की महिमा कहते हैं। कवियों ने यशको उज्ज्वल और प्रताप को उष्ण माना है। यथा : जाके जस प्रताप के आगे। ससि मलीन रबि सीतल लागे। सो नाम में ऐसी दाहिका शक्ति है कि पापों को रूई की भाँति भस्म कर देती है। यथा : जासु नाम पावक अघ तूला। इसके जानकार आदिकवि हैं क्योंकि उनका अनुभूत विषय है।

वे राम नाम का उलटा जप करके व्याध से महर्षि हो गये। पूर्व के किये हुए सब पाप नष्ट होगये और ऐसे शुद्ध हो गये कि माया का लेश भी शेष नहीं रह गया। यथा : उलटा नाम जपत जग जाना। बाल्मीकि भए ब्रह्मसमाना। संसार राम राम जप करता है, उन्होंने मरा मरा जप किया। मरा मरा का धाराप्रवाह जप चलने से राम राम हो जाता है। फिर भी मरा मरा जपने का कोई कारण होना चाहिए।

श्रीगोस्वामीजी कहते हैं : तुलसी रा के कहत ही निसरत सकल विकार। पुनि आवन पावत नहीं देत मकार किवार। इस दोहे में राम नाम जप की विधि है। 'रा' कहते हुए श्वास को बाहर निकाले और 'म' कहते हुए भीतर खींच ले। इस भाँति प्रति श्वास निःश्वास में रामनाम का जप करे। मनुष्य का स्वभाव है

---

१. श्लोक एवास्त्वयं बद्धो नात्र कार्या विचारणा। मच्छन्दादेव ते ब्रह्मन् प्रवृत्तेयं सरस्वती। वा. रा.। ब्रह्मदेव ने बाल्मीकि से कहा। यह तुम्हारा बनाया हुआ श्लोक यशरूप हो, यहाँ सन्देह न करो। हे ब्रह्मन् मेरे संकल्प से ही यह सरस्वती प्रवृत्त हुई है।

कि कार्यारम्भ के लिए सावधान होते ही श्वास को भीतर खींचता है। अतः स्वभाव से ही मनुष्य को मकार के प्रथम उच्चारण में सुभीता पड़ता है। इनकी मूढता विचार करके इन्हें उलटा जप का उपदेश दिया। यह प्रत्यक्ष फलदायिनी योग की बड़ी भारी क्रिया है।

तात्पर्य यह है कि इस नाम का इतना बड़ा प्रताप है कि मन्त्र के उलट जाने पर भी फल में कोई व्यतिक्रम नहीं हुआ।

शिवजी ने पार्वतीजी से रामनाम को सहस्रनाम[१] के तुल्य बतलाया। क्योंकि शिवपार्वतीसंवाद के पहिले ही नारदजी भगवान् से वर माँग चुके हैं कि : राम सकल नामन्ह ते अधिका। होउ नाथ अघ खगगन बधिका। राकारजनी भगति तव, राम नाम सोइ सोम। अपर नाम उडगन विमल, बसहु भगत उर व्योम। भक्तिरूपी पूर्णिमा की रात्रि में रामनाम चन्द्रमा हो और शेष नाम तारागण होकर भक्त से हृदयकाश में वसें। सो अन्धकार का नाश एक चन्द्र से होता है, हजार तारागण से तो नहीं होता। इसीलिए रामनाम को सहस्रनाम के तुल्य वतलाया। उस शिक्षा को शिरोधार्य करके पति के साथ पार्वतीजी भी दिन रात नाम जपने लगीं।

हरषे हेतु हेरि हरही को। किय भूषनु तिय भूषन तीको ॥
नाम[२] प्रभाउ जान सिव नीको। कालकूट फल दीन्ह अमीको ॥४॥

अर्थ : शिवजी हृदय का प्रेम देखकर हर्षित हुए और स्त्रियों में भूषण जो स्त्री : पार्वतीजी : थीं उन्हें अपना भूषण बना लिया। शिवजी भली भाँति नाम के प्रभाव को जानते हैं। उन्हें कालकूट ने अमृत का फल दिया। हेतु=प्रेम। यथा : चले संग हिमवंत पहुचावन अति हेतु।

व्याख्या : पार्वतीजो का राम नाम पर हार्दिक प्रेम देखकर शङ्कर भगवान् प्रसन्न हो गये। रामजी पर प्रेम न देखकर असन्तुष्ट भी हुए थे; नाम पर सच्चा प्रेम देखकर ऐसे प्रसन्न हुए कि उन्हें सदा के लिए अपना भूषण बनाकर अर्धनारीश्वर रूप हो गये और विछोह की शङ्का को ही निर्मूल कर दिया। भावार्थ यह कि रामनाम के प्रेमी के ऊपर शङ्कर भगवान् का विशेष अनुग्रह होता है।

अब भली भाँति प्रभाव ज्ञान की महिमा कहते हैं कि इसके जानकार शिवजी हैं। दिन रात राम राम जपा करते हैं। जप करते करते करुणा के आवेश में कालकूट का ही पान कर डाला। श्री गोस्वामी जी कहते हैं : जरत सकल सुर वृंद, विषम गरल जेहि पान किय। तेहि न भजसि मन मंद, को कृपालु संकर सरिस।

समुद्रमन्थन के समय जो अच्छी वस्तुएँ निकलीं उन्हें देवताओं और असुरों ने बाँटा। जब कालकूट निकला तब सब जलने लगे। उसके झार से ही जले जाते थे

---

१. राम रामेति रामेति रमे रामे मनोरमे। सहस्रनाम तत्तुल्यं रामनाम वरानने ॥

अर्थ : हे मनोरमे ! हे वरानने ! राम राम राम जप करता हुआ मैं राम में रमण करता हूं। राम नाम उनके तथा सहस्र नाम के तुल्य है।

२. यहाँ व्याघातालङ्कार है।

उसे कौन ग्रहण करता ? तव शङ्करजी ने करुणा करके उसे ग्रहण कर लिया। पर कालकूट उनके ऊपर कोई प्रतिक्रिया न कर सका बल्कि उससे उनका शरीर अजर अमर हो गया। यथा : पीयो कालकूट भयो अजर अमर तनु : विनय। अमृत पान करके देवताओं का अमरत्व सापेक्ष ही रह गया और नाम के प्रताप से विष पीने पर भी शङ्कर भगवान् का अमरत्व निरपेक्ष है। ये महाकल्पान्त करनेवाले हैं। इनका अन्तक कौन हो सकता है ? यथा :

तांडवित नृत्यपर डमरू डिर्मडिम प्रवर, असुभ इव भाति कल्यानरासी।
महाकल्पांत ब्रह्माण्ड मण्डलदवन, भवन कैलास आसीन कासी॥ विनय.

यहाँ तक नाम का प्रभाव वर्णन किया। अव नाम के दोनों अक्षरों का वर्णन करेंगे।

दो. वरषा ऋतु रघुपति भगति, तुलसी सालि सुदास।
राम नाम वर बरन जुग, सावन भादव मास॥१९॥

अर्थ : रघुपति की भक्ति वर्षा ऋतु है और तुलसी : कहते हैं कि : सुदास धान हैं और राम नाम के दोनों अक्षर श्रावण और भाद्रपद महीने हैं।

व्याख्या : यद्यपि ऋतु छः होती हैं, पर स्थूल रूप से तीन ही ऋतु मानी जाती हैं। जाड़ा, गरमी और वरसात। बरसात के चार महीने, असाढ़, सावन, भादों और कुआर को चौमासा कहते हैं। यही चौमासा संसार का उपजीव्य है। पृथ्वी, जो शस्यश्यामला, सजला, सुफला है वह चौमासा की ही कृपा से है। इसी भाँति साधनों में जो सरसता है वह भक्ति की कृपा से है।

इस चौमासे का भी सार श्रावण और भाद्रपद मास है। इसी भाँति भक्ति का भी सार 'रा' और 'म' ये ही दो अक्षर हैं। जिस भाँति श्रावण और भाद्रपद की वर्षा में ही धान उपजता है क्योंकि धान के पौदों को बड़ी प्यास होती है। इन्हें बराबर पानी चाहिए और पानी पाकर ये रात दिन बढ़ते हैं। इसी भाँति सुदास को भजन की प्यास होती है। जब राम नाम की रटन चले तो उसका सब भाँति से कल्याण हो।

सुदास उसे कहते हैं जिसे केवल रामजी की ही आशा है। जिसे मनुष्य की भी आशा हो वह सुदास नहीं हो सकता। यथा : मोरदास कहाइ नर आसा। करै तौ कहहुँ कहाँ बिस्वासा।

आखर मधुर मनोहर दोऊ। बरन विलोचन जन जियँ जोऊ॥
सुमिरत सुलभ सुखद सब काहू। लोक लाहु पर लोक निवाहू॥१॥

अर्थ : दोनों अक्षर मधुर और मनोहर हैं। अक्षरों के दो नेत्र हैं, भक्त के मन को देखनेवाले है। स्मरण करने में सुलभ हैं और सबको सुख देते हैं। लोक में लाभप्रद हैं और परलोक का निर्वाह करते हैं।

व्याख्या : राम नाम के दोनों अक्षर मधुर हैं। कहने सुनने में अच्छे लगते

हैं। इनका उच्चारण वाल्मीकि रूपी कोकिल[1], कविता शाखा परसे किया करते हैं और देखने में अति सुन्दर हैं। यथा : राम नाम अंकित अति सुन्दर। ये दोनों अक्षर रेफ और मकार : अनुस्वार : अक्षरों की आँखें हैं। आँखें देखती हैं और ये दोनों अक्षर भक्तों के जी : मन : को देखा करते हैं कि भक्त का जी क्या चाहता है ?

रूप भी इनका नेत्र-सा है। रेफ भौंह की तरह टेढ़ा है और मकार : अनुस्वार : पुतली की भाँति गोल है। महात्माओं ने वर्णसमाम्नाय के आठों वर्गों को सरस्वती का अष्टाङ्ग माना है। चरणों के क्रम से रकार और मकार दोनों नेत्र स्थान पर पड़ता है। बीच में वायु बीज मकार नासिका है। इस भाँति भी इसे वर्ण विलोचन कहा जा सकता है।

ऐसा होने पर भी राम नाम का स्मरण सुलभ है। रूप के स्मरण की भाँति दुःसाध्य नहीं है। भगवान् की सुन्दर मनोहर मूर्ति के ध्यान के लिए जैसा सरस मन होना चाहिए वैसा मन होना दुर्लभ है और निर्गुण रूप तक मन की पहुँच नहीं है। यथा : सगुन ध्यान मन सरस नहिं निर्गुन मन ते दूरि। तुलसी सुमिरहु राम को नाम सजीवन मूरि।

सबको सुखद है, क्योंकि इसमें सबका अधिकार है। जिस वस्तु में जिसका अधिकार नहीं होता, वह वस्तु उसे सुखद नहीं होती। अतः कल्याण चाहनेवाले, वह वस्तु उसे नहीं देते। यथा : कुपथ भोग रुज व्याकुल रोगी। वैद न देइ सुनहु मुनि जोगी। इस भाँति भगवान् के नामों में प्रणव सबसे उत्तम है, पर उसमें संन्यासियों का अधिकार है ब्राह्मणों का भी अधिकार नहीं। अकेले उसकी उपासना से लाभ की अपेक्षा हानि की ही सम्भावना अधिक है। अतः केवल प्रणव की उपासना गृहस्थों के लिए वर्जित है। परन्तु रामतारक : प्रणव : की उपासना में सबका[2] अधिकार है। अतः यह सबके लिए सुखद है। इसके अतिरिक्त राम नाम से लोक परलोक दोनों

---

१. मधुर और मधुराक्षर राम नाम के उच्चारण से ही सिद्धि पानेवाले वाल्मीकि को कोकिल कहा। आह्लादकत्व माधुर्य है, राम शब्द की व्युत्पत्ति ही यही है कि जिसमें योगी लोग रमण करें। यथा : रमन्ते योगिनो यस्मिन्। इस भाँति रामनाम मधुर है। 'र' अन्तःस्थ है। 'आ' अवर्ण है। 'म' अन्तिम वर्ण है। इनका उच्चारण मधुर है। इसलिए मधुराक्षर कहा। यथा : कूजन्तं राम रामेति मधुरं मधुराक्षरम्। आरुह्य कविताशाखां वन्दे वाल्मीकि-कोकिलम् : वाल्मीकि टीका। कोकिल की प्रशंसा, उसके मधुर मनोहर कूजने से है। इसी भाँति वाल्मीकि की प्रशंसा उनके राम राम उच्चारण से है, जो कि उच्चारण में मधुर और अर्थ में मनोहर है।

२. मनुष्वेतेषु सर्वेषामधिकारोऽस्ति देहिनाम्।
मुमुक्षूणां विरक्तानां तथा चाश्रमवासिनाम्॥
प्रणवत्वात् सदा ध्येयो यतीनाञ्च विशेषतः।
राममन्त्रार्थविज्ञानी जीवन्मुक्तो न संशयः॥ रामरहस्ये

आञ्जनेय महाबल विप्राणां गृहस्थानां प्रणवाधिकारः कथं स्यादिति। स होवाचेति। येषामेव षडक्षराधिकारो वर्तते तेषां प्रणवाधिकारः स्यान्नान्येषाम्। रामरहस्ये

सुधरता है। 'तत्त्वमसि'[1] आदि महावाक्यों का उपयोग केवल मुक्ति में है। भुक्ति भोग से उनका कोई सम्बन्ध नहीं रहता। रामनाम भुक्ति मुक्ति दोनों देता है। लोक थोड़े दिन के लिए है, इसलिए 'लोक लाहु' कहा। परलोक तो अनन्त काल के लिए है। इसलिए 'परलोक निवाहू' कहा।

कहत सुनत सुमिरत सुठि नीके। राम लखन सम प्रिय तुलसी के॥
बरनत बरन प्रीति बिलगाती। ब्रह्म जीव सम सहज संघाती॥२॥

अर्थ : कहने, सुनने और स्मरण करने में बहुत अच्छे हैं। तुलसी को तो राम लक्ष्मण के समान प्रिय हैं। वर्णों को पृथक् वर्णन करते हुए प्रीति अलग अलग हो जाती है। परन्तु : ये दोनों अक्षर : ब्रह्म जीव की भाँति स्वभाव से ही साथी हैं।

व्याख्या : कहते सुनते अर्थात् चरचा करते हुए सुठि नीके हैं। स्मरण करते हुए भी सुठि नीके अर्थात् अत्यन्त अच्छे हैं। यथा : काल कर्म गुन सुभाउ सबके सीस तपत। राम नाम महिमा की चरचा चले चपत। राम सों प्रतीति प्रीति हृदय सुथिर थपत। पावन किये राम नाम तुलसी हूँ से अपत। इसलिए कहा : कहत सुनत सुमिरत सुठि नीके।

राम, लक्ष्मण दोनों भाइयों की जोड़ी ऐसी थी कि अमलात्मा परमहंसों का भी मन इनकी ओर खिंच जाता था। ज्ञानियों के शिरोमणि जनक जी इन दोनों भाइयों को देखकर मुग्ध हो गये। विश्वामित्रजी से पूछने लगे :

ब्रह्म जो निगम नेति कहि गावा। उभय वेष धरि सोइ कि आवा॥
सहज विराग रूप मन मोरा। थकित होत जिमि चंद चकोरा॥
इनहि विलोकत अति अनुरागा। बरबस ब्रह्म सुखहिं मन त्यागा॥
कह मुनि विहँसि कहेहु नृप नीका। वचन तुम्हार न होइ अलीका॥
ये प्रिय सबहिं जहाँ लगि प्रानी। मन मुसुकाहिं राम सुनि बानी॥

इसी भाँति रा और म की जोड़ी श्रीतुलसीदासजी को प्रिय है।

सुष्ठु शब्द का तद्भव रूप सुठि है। 'उपरि लोपः कगडतदपषसाम्' प्रा. प्र. ३.१। इस सूत्र से षकार का लोप हुआ। 'इत्पुरुषेरोः' प्रा. प्र. १.२३। इस सूत्र से उकार का इकार होकर सुठि शब्द सिद्ध हुआ।

अर्थ : राम मन्त्र में सभी देहधारियों का अधिकार है। मुमुक्षुओं का, विरक्तों का तथा आश्रमवासियों का। प्रणव होने से यह : राम नाम : विशेषतः संन्यासियों द्वारा ध्यान करने योग्य है। राम मन्त्र का अर्थ जाननेवाला जीवन्मुक्त है, इसमें संशय नहीं है।

उन लोगों ने पूछा : हे महाबल हनुमानजी ! गृहस्थ ब्राह्मणों का प्रणवाधिकार कैसे हो ? उन्होंने कहा कि श्रीरामजी ने कहा है कि जिनको षडक्षर का अधिकार है उन्हें ही प्रणव का अधिकार है।

१. तत्त्वमस्यादि वाक्यन्तु केवलं मुक्तिदं यतः। भुक्तिमुक्तिप्रदं चैतत्तस्मादप्यतिरिच्यते॥
अर्थ : तत्त्वमस्यादि महावाक्य केवल मुक्ति दायक हैं। राम मन्त्र भुक्ति और मुक्ति दोनों देता है। इसलिए बढ़कर है।

नाम के प्रत्येक अक्षरों का वर्णन कोई नहीं करता क्योंकि ऐसा करने से वे निरर्थक हो जाते हैं। पर राम नाम के दोनों अक्षरों का पृथक् वर्णन हो सकता है। क्योंकि स्वयं श्रुति प्रत्येक अक्षर का अर्थ बतलाती है। 'रा' तत्पदार्थ[१] का बोधक है और 'म' त्वम् पदार्थ है। जो तामसी माया को ग्रहण करके जगत् का उपादान कारण है और शुद्धसत्त्वा माया को ग्रहण करके निमित्त कारण है। उसी उभयरूपी ब्रह्म को[२] तत् कहते हैं। जब कामकर्मादिदूषित मलिनसत्त्वा माया को उपाधि रूप से ग्रहण करता है तब उसी परब्रह्म को 'त्वम्' पद से अभिहित करते हैं।

परन्तु स्वयं भगवती श्रुति इनके संयोजन का विधान करती है। यथा : तयोः संयोजनमसीत्यर्थे तत्त्वविदो विदुः। रा और म को क्रम से तत् और त्वं पदार्थ कहकर उनके संयोजन को 'असि' बतलाया है। अतः रा और म के पृथक् वर्णन से वाक्य भेद हो जाता है। वह महावाक्य का अर्थ नहीं देता। इसलिए कहते हैं : वरनत वरन प्रीति बिलगाती।

कारण देते हैं कि इन दोनों अक्षरों का ब्रह्म-जीव की भाँति स्वाभाविक साथ है। ब्रह्म सच्चिदानन्द है। मोह से परे है। जीव भी : अविनासी चेतन सहज सुख-रासी है। दोनों में भेद[३] माया ने कर रक्खा है। तत्त्वतः दोनों एक ही हैं। अतः दोनों सहज साथी हैं। इनका साथ छूट नहीं सकता। क्योंकि 'रा' उच्चारण के बाद स्वभाव से ही 'म' उच्चरित होता है। विवृत प्रयत्न के बाद स्पृष्ट प्रयत्न स्वाभाविक है। अर्थात् 'रा' के उच्चारण में मुँह खुलता है उसके बाद मुख वन्द करने में स्वभाव से ही 'म' उच्चारित हो जाता है। इसीलिए 'सहज सँघाती' कहा।

नर नारायन सरिस सुभ्राता। जग पालक बिसेषि जन त्राता ॥
भगति सुतिअ कल करन विभूषन। जगहित हेतु विमल विधु पूषन ॥३॥

अर्थ : ये दोनों वर्ण : नर नारायण के सदृश सुबन्धु हैं। जगत् के पालक हैं। पर विशेषरूप से भक्तों के रक्षक हैं। भक्तिरूपी सुतिय के कान के गहने हैं और जगत् के हित के लिए तो निर्मल सूर्य और चन्द्र हैं।

व्याख्या : जिस भाँति नर-नारायण सुभ्राता हैं, उसी भाँति 'रा' और 'म' भी सुभ्राता हैं। नारायण का प्रादुर्भाव पहिले हुआ अतः वे बड़े हैं। नर का प्रादुर्भाव उनके पीछे हुआ इसलिए वे छोटे हैं। 'नर' शब्द में 'नारायण' की अपेक्षा कम अक्षर होने से समास के नियमानुसार नर का नाम पहिले आया नारायण का पीछे। यहाँ

---

१. आद्यो रा तत्पदार्थः स्यात् मकारस्त्वं पदार्थवान्।
तयोः संयोजनमसीत्यर्थं ब्रह्मविदो विदुः ॥ रा ता

२. जगतो यदुपादानं मायामादाय तामसीम्।
निमित्तं शुद्धसत्त्वां तामुच्यते ब्रह्म तद् गिरा ॥
यदा मलिनसत्त्वां तां कामकर्मादिदूषिताम्।
आदत्ते तत्परं ब्रह्म त्वं पदेन तदोच्यते ॥ पं. द.

३. मुधा भेद जद्यपि कृत माया। बिनु हरि जाइ न कोटि उपाया।

प्रथम उच्चारित होने से 'रा' अग्रज है और पीछे से उच्चारित होने से 'म' अनुज है। परस्पर अत्यन्त प्रेम होने, साथ न छोड़ने, ध्येय के एक होने से जिस भाँति नर नारायण सुभ्राता हैं उसी भाँति 'रा' और 'म' में भी बड़ी प्रीति है। इनका सदा साथ बना रहता है। 'रा' के ठीक उच्चारण में रेचक[1] करना पड़ता है। तत्पश्चात् पूरक करने में 'म' का उच्चारण आप से आप होता है। ध्येय भी दोनों का एक है। जिस भाँति दोनों भाई अखिल संसार के कल्याण के लिए तप करते हैं और भक्तों की विशेषरूप से रक्षा करते हैं उसी भाँति ये दोनों अक्षर जप द्वारा प्रादुर्भूत होकर सम्पूर्ण संसार का कल्याण करते हैं और जापक की रक्षा तो विशेषरूप से करते हैं। यथा :

नौमि नारायनं नरं करुनायनं ध्यान पारायनं ज्ञानगम्यं ज्ञानमूलं।
अखिल संसार उपकार कारन सदय हृदय तपनिरत प्रनतानुकूलं ॥ विनय.

तथा : हरन अमंगल अघ अखिल, करन सकल कल्यान।
राम नाम नित कहत हर, गावत वेद पुरान ॥
यथा भूमि सब बीजमय, नखत निवास अकास।
राम नाम सबधर्ममय, जानत तुलसीदास ॥
राम नाम कलि काम तरु, सकल सुमंगल कंद।
सुमिरत करतल सिद्धि सब पग-पग परमानंद ॥ दोहावली.

पहिले 'जग पालक विसेषि जन त्राता' कहकर लौकिक लाभ कहा। अब पारलौकिक लाभ कहते हैं : ये दोनों अक्षर अव्यभिचारिणी भक्ति के कानों के कुण्डल हैं, अर्थात् सौभाग्य के चिह्न हैं। यथा : मंदोदरी सोच उर बसेऊ। जबते श्रवन पूर महि खसेऊ। इनका गिरना वैधव्य सूचक माना जाता है। सुतिय पतिव्रता स्त्री को कहते हैं। यथा : पति देवता सुतीय मँह मातु प्रथम तव रेख। बिना नाम के अक्षरों के पता ही नहीं लगता कि किसकी भक्ति है? इनके बिना भक्ति अनाथा रहती है। रेफ और मकार : अनुस्वार : के ऊपर नीचे रखने से कुण्डल का आकार बन जाता है। इसलिए भी इसे कुण्डल से उपमित करना प्राप्त है।

संसार के कल्याण करनेवालों में प्राधान्य विधु और पूषण का है। जिस भाँति चन्द्रनाड़ी इड़ा और सूर्यनाड़ी पिङ्गला से पिण्ड की स्थिति है उसी भाँति चन्द्र और सूर्य के कारण ब्रह्माण्ड की स्थिति है। 'विधुपूषन' जगत् के प्रकाशक होकर हित हैं और 'रा' और 'म' परात्मतत्त्व के प्रकाशक होकर हित हैं। यथा : विश्व सुखद जनु इन्दु तमारी।

स्वाद तोषसम सुगति सुधा के। कमठ सेष सम धर वसुधा के ॥
जनमन मंजु कंज मधुकर से। जीह जसोमति हरि हलधर से ॥४॥

अर्थ : सुगतिरूपी अमृत के स्वाद और तोष के समान हैं। पृथ्वी को धारण

१. प्राणायाम करते समय श्वास को बाहर निकालने को रेचक कहते हैं। श्वास को भीतर खींचना पूरक कहलाता है।

करने के लिए कच्छप और शेष के समान हैं। भक्तों के मनरूपी सुन्दर कमल के लिए भौंरे के समान हैं। जिह्वारूपी यशोदा के लिए कृष्ण और बलराम जी के समान हैं।

व्याख्या : लौकिक और पारलौकिक लाभ कहकर, अब सुगति : मुक्ति : के विषय में कहते हैं। 'ज्ञानमार्गं तु नामतः' नाम से ज्ञानमार्ग की प्राप्ति होती है और ज्ञान से ही मुक्ति है। मुक्ति को अमृत माना है। बल्कि यह कहना चाहिए कि वास्तविक अमृत तो मुक्ति ही है। जिस भाँति अमृत में स्वाद और तोष होता है उसी भाँति मुक्तिरूपी अमृत में रा और म है। ऊपर कहा जा चुका है कि रा तत्पद है और म त्वं पद है, दोनों का संयोग असि है। इस भाँति राम पदार्थ महावाक्य है। इसीके ज्ञान से मुक्ति होती है। बिना पाप के नाश के ज्ञान नहीं होता। सो राम नाम पापरूपी रूई के लिए अग्नि है। यथा : जासु नाम पावक अघ तूला। पाप ही पृथ्वी का भार है। यथा : अतिसय देखि धर्म कै ग्लानी। परम सभीत धरा अकुलानी। गिरि सर सिंधु भार नहिं मोही। जस मोहि गरूअ एक परद्रोही। अतः 'रा' और 'म' पाप का नाश करके पृथ्वी पर भार नहीं होने देते[1]। वे इस पृथ्वी को उसी भाँति ऊपर से धारण किये हुए हैं। जिस भाँति नीचे से शेष और कमठ धारण किये हुए हैं। रेफ और मकार : बिन्दु : को ऊपर नीचे रख देने से रेफ शेषाकार और बिन्दु कमठाकार हो जाता है।

अब साधन की सुकरता कहते हे। भक्त के हृदयकमल में, 'रा' और 'म' रस के लोभ से भौंरे की भाँति पहुँचकर गुनगुनाया करते हैं और भक्त की जिह्वा को भी विना उनके कल नहीं पड़ता। जैसे यशोदाजी को विना हरि : कृष्ण : और हलधर : वलदेव : के कल नहीं। भक्त का देह ही व्रज है। मुख ही नन्दगृह का आँगन है। जिह्वारूपी यशोदा वहाँ रा और म रूपी कृष्ण, वलदेव को सदा खेलाया करती है। इसी में उन्हें आनन्द है।

दो. एकु छत्र एकु मुकुट मनि, सब वरननि पर जोउ।
तुलसी रघुवर नाम के, बरन विराजत दोउ ॥२०॥

अर्थ : तुलसीदासजी कहते हैं : एक छत्र के समान और दूसरा मुकुट मणि के समान है। सब अक्षरों के ऊपर देख लो। ये ही रघुवर नाम के दोनों अक्षर विराज रहे हैं।

व्याख्या : अब पहिचान बतलाते हैं कि पुस्तकों में अक्षर पंक्तियों को देखो तो 'रा' रेफ के रुप से और 'म' अनुस्वार के रूप से सव वर्णों के ऊपर दिखलाई पड़ेगा। रेफ का आकार छत्र सा और विन्दु का आकार मुकुट मणि सा है। सो 'रघुवर' नाम के दोनों अक्षर विराजमान दिखाई पड़ेंगे। अर्थात् अक्षर-समाम्नाय की शोभा भी इन्हीं दोनों वर्णों से है। ये नाद विन्दु की भाँति सबके ऊपर शोभायमान हैं।

---

१. तेन तप्तं हुतं दत्तमेवाखिलं तेन सर्वं कृतं कर्मजालं।
येन श्रीरामनामामृतं पानकृतमनिशमनवद्यमवलोक्यकालम् ॥ विनय.

इस भाँति दोनों अक्षरों के वर्णन का उपक्रम 'राम नाम वर वरन जुग सावन भादों मास' से करके 'तुलसी रघुवर नाम के वरन विराजत दोउ' से उपसंहार करते हैं।

समुझत सरिस नाम अरु नामी। प्रीति परसपर प्रभु अनुगामी॥
नाम रूप दुइ ईस उपाधी। अकथ अनादि सुसामुझि साधी॥१॥

अर्थ : समझने में नाम और नामी एक से हैं। दोनों में परस्पर प्रभु और अनुगामी की भाँति प्रीति है। नाम और रूप ये दोनों परमेश्वर की उपाधियाँ हैं। अकथनीय हैं और अनादि हैं। ये बातें अच्छी समझ से ही साध्य हैं।

व्याख्या : 'सदृश'[1] शब्द का ही तद्भव रूप 'सरिस' है। 'समुझत सरिस' से नाम : शब्द : और नामी : अर्थ : में मानसिक अभेद कहा। नाम और नामी से नाम और रूप का ग्रहण है। नाम प्रभु है और रूप अनुगामी : सेवक : है। प्रभु की सेवक पर प्रीति और सेवक की प्रभु पर प्रीति है। नाम लेते ही रूप सम्मुख उपस्थित होता है और रूप के उपस्थित होने पर नाम की जिज्ञासा होती है। यही परस्पर प्रीति है। नाम स्वामी की भाँति सदा रूप पर दृष्टि रखता है और रूप सेवक की भाँति नाम के लिए प्राण देने को तैयार रहता है।

नाम और रूप दोनों ईश्वर की उपाधियाँ[2] हैं। 'उप' समीप को कहते हैं, आधान स्थापन को कहते हैं, अर्थात् जो समीप में स्थापन करने से अपने में माना जाय उसे उपाधि कहते हैं। जैसे रक्खे हुए फूलों की छाया पड़ने से, वे रंग दर्पण में माने जाते हैं।

इसी भाँति कर्मों की छाया पड़ने से जीवों में नाम रूप माने गये। पर ईश्वर की बात दूसरी है। ईश्वर का कर्म से सम्बन्ध नहीं। उसमें केवल भक्तों के भाव की छाया पड़ती है और भाव सत्ता रूप अविनाशी है। अतः ईश्वर के नामरूपादि नित्य हैं। ऐसी समझ आवे तब ईश्वर के नामरूप में ईश्वर का भाव सध सकेगा। इस भाँति नाम और रूप दोनों अनादि हैं और अकथ हैं, क्योंकि उनकी उपमा नहीं है। सुकथ वे ही पदार्थ हैं जिनकी उपमा होती है, अनुपम को कोई कैसे कहे? पूर्व परिचित पदार्थ से सादृश्य बतलाकर ही किसी वस्तु का वर्णन किया जा सकता है। भगवान् तो अनुपम हैं ही, उनकी उपाधियाँ भी अनुपम हैं। यथा : इनके नाम अनेक अनूपा। मैं नृप कहब स्वमति अनुरूपा। निरुपम न उपमा आन राम समान राम निगम कहै। जिमि कोटि सत खद्योत सम रवि कहत अति लघुता लहै।

---

१. कगचजतदपयवां प्रायेण लोपः : प्रा. प्र. : इस सूत्र से द् का लोप होकर सऋश रूप हुआ। तब 'अयुक्तस्यरिः' इस सूत्र से ऋ का 'रि' हो गया। 'सदृश' का 'सरिश' रूप हुआ। 'शषोः सः' इस सूत्र से 'श' का 'स' हुआ। इस भाँति 'सदृश' का 'सरिस' रूप सिद्ध हुआ।

२. उपाधिः कार्यानन्वयी व्यावर्तको वर्त्तमानश्च।

को बड़ छोट कहत अपराधू। सुनि गुन भेद समुझिहहिं साधू॥
देखिअहि रूप नाम आधीना। रूप ग्यान नहिं नाम विहीना॥२॥

अर्थ : कौन बड़ा है, कौन छोटा है ? इसके कहने में अपराध है। गुणों के भेद को सुनकर साधु समझ लेंगे। नाम के अधीन रूप देखा जाता है। नाम के बिना रूप का ज्ञान हो नहीं सकता।

व्याख्या : नाम और रूप जब दोनों ईश्वर की उपाधियाँ है, तब दोनों की कोटि समान है, किसे बड़ा कहें, किसे छोटा कहें ? किसी को छोटा बड़ा कहने में अपराध है, परगुण भेद देखकर साधन करनेवाले के समझने में रोक कैसे लगेगी ? वे तो जिसमें साधनसौकर्य हो, उसीका ग्रहण करेंगे।

नाम लेते ही रूप आँख के सामने खड़ा हो जाता है। इसलिए स्पष्ट देखा जाता है कि रूप नाम के अधीन है। रूप देखने पर भी नाम का पता नहीं चलता। अतः यह भी स्पष्ट है कि नाम रूप के अधीन नहीं है।

रूप विसेष नाम विनु जाने। करतल गत न परहिं पहिचाने॥
सुमिरिय नाम रूप विनु देखें। आवत हृदयँ सनेह विसेखें॥३॥

अर्थ : रूप विशेष बिना नाम के जाने, हाथ में आने पर भी पहिचाना नहीं जा सकता। रूप के बिना देखे ही यदि नाम का स्मरण किया जाय तो हृदय में अधिक प्रीति उत्पन्न होती है।

व्याख्या : नाम की प्रधानता के विषय में दूसरी बात यह है कि कोई वस्तु यदि हाथ में भी आजाय तो भी यदि नाम नहीं मालूम तो पहिचान में नहीं आती। किसी फल का यदि नाम न मालूम हो तो हाथ में लेकर चखने पर भी पहिचाना नहीं जाता और उसीको जिसने कभी नहीं चखा हो और नाम जानता हो तो वह दूर से ही देखकर पहिचान लेगा।

बहुत से लोगों ने अपने पिता, पितामह को नहीं देखा है। कितनों को अपनी माता के रूप का स्मरण नहीं है। पर उनके नाम के स्मरण से हृदय में विशेष स्नेह होता है। देवताओं की आराधना करनेवाले बिना रूप देखे ही नाम स्मरण करते हैं और प्रेम में विभोर होकर अपने को भूल जाते हैं।

नाम रूप गति अकथ कहानी। समुझत सुखद न परति बखानी॥
अगुन सगुन बिच नाम सुसाखी। उभय प्रबोधक चतुर दुभाखी॥४॥

अर्थ : नाम और रूप की गति की कथा अकथनीय है। समझने से सुखदायक है। पर वर्णन नहीं की जा सकती। निर्गुण और सगुण के बीच में नाम सुन्दर साक्षी है। दोनों का ज्ञान कराने के लिए चतुर दुभाषिया है।

व्याख्या : कहाँ तक नाम काम करता है, कहाँ तक रूप काम करता है, कहाँ तक इनका सम्बन्ध है, कहाँ तक भेद है, ये सब बातें अकथनीय हैं, पर विचारणीय अवश्य हैं। ऐसा सूक्ष्म विषय है कि उसके प्रकाश के लिए शब्द नहीं हैं पर विचार में बड़ा आनन्द है।

ब्रह्म के दो स्वरूप हैं : १. निर्गुण और २. सगुण। दोनों के बीच में साक्षी नाम है। नाम का अर्थ निर्गुण का बोध कराता है। यथा : रमन्ते योगिनो यस्मिन् नित्यानन्दे चिदात्मनि स रामः। और उसके अक्षर सगुण ब्रह्म का बोध कराते हैं। यथा : राजते यो मही स्थितः, राक्षसा येन मरणं यान्ति इत्यादि। जिस भाँति द्रविड़ बँगला नहीं समझते और बंगाली द्रविड़ भाषा नहीं समझते उसी भाँति निर्गुणवादी सगुणवादी की बोली नहीं समझते और न सगुणवादी निर्गुणवादी की बोली समझें। यदि चतुर दुभाषिया हो तो दोनों को समझा दे और स्वयं पृथक् रहे। इसी भाँति नाम दोनों : निर्गुणवादी और सगुणवादी को समझा देता है और स्वयं पृथक् रहता है। यथा : सगुन ध्यान मन सरस नहिं, निर्गुण मनते दूरि। तुलसी सुमिरहु राम को नाम सजीवन मूरि।

दो. राम नाम मनि दीप धरु, जीह देहरी द्वार।
तुलसी भीतर बाहरहु, जौं चाहसि उजिआर ॥२१॥

अर्थ : तुलसीदास जी कहते हैं कि यदि तू बाहर और भीतर उजाला चाहता है तो जीभरूपी द्वार की देहली पर राम नामरूपी मणि का दीप रख।

व्याख्या : निर्गुण से भीतर उजेला होता है बाहर नहीं, क्योंकि निर्गुण रूप सूक्ष्म बुद्धि से जाना जाना है और सगुण रूप से बाहर उजेला होता है क्योंकि वह नेत्रों से जाना जाता है। यथा : हिय निर्गुन नैननि सगुन रसना राम सुनाम। मनहु पुरट सम्पुट लसत तुलसी ललित ललाम। श्रीगोस्वामी जी कहते हैं कि यदि भीतर बाहर दोनों ओर उजेला चाहे तो राम नामरूपी मणिदीप देहली द्वार रूप जीभ पर रक्खे। द्वार की देहली पर दीप रखने से अर्थात् जीभ से राम नाम उच्चारण करने से भीतर बाहर दोनों ओर उजेला बना रहता है। बाहर हवा से न बुझे इसलिए मणिदीप कहा तथा नामोच्चारण भक्ति है। बरखा रितु रघुपति भगित तुलसी सालि सुदास। राम नाम वर वरनजुग सावन भादों मास। इसलिए भी मणिदीप कहा। यथा : मोह दरिद्र निकट नहिं आवा। लोभ वात नहि ताहि बुझावा।

नाम जीहँ जपि जागहिं जोगी। बिरति बिरंचि प्रपंच बियोगी ॥
ब्रह्म सुखहिं अनुभवहिं अनूपा। अकथ अनामय नाम न रूपा ॥१॥

अर्थ : वैराग्य से ब्रह्मा के प्रपञ्च के वियोगी योगीजन जीभ से नाम को जपकर जागते हैं। अनुपम ब्रह्म सुख का अनुभव करते हैं, जो अकथनीय, निर्दोष और बिना नाम रूप का है। 'ब्रह्म सुख' में कर्मधारय समास है, जो ब्रह्म है वही सुख है।

व्याख्या : परमार्थ की ओर से सब सो रहे हैं, यही मोहनिशा है और उसी में संसाररूपी स्वप्न देख रहे हैं : यथा : मोहनिसा सब सोवनिहारा। देखहिं स्वप्न अनेक प्रकारा। विषय विलास से विराग होना ही जागना है यथा : जानिय तबहिं जीवजग जागा। जब सब विषय विलास बिरागा। मोहनिशा में जागनेवाले योगी लोग हैं, जिन्हें ब्रह्मा के प्रपञ्च से वैराग्य के कारण दुःख संयोग से वियोग है यथा : तं

विद्याद्दुःखसंयोगवियोगं योगसंज्ञितम्। ऐसे विराग की रक्षा जीभ से रामनाम जप करने से होती है।

विधिप्रपञ्च दुःख से सना है। संसारी पुरुष दुःखसंसर्गशून्य सुख से अपरिचित है। यथा : कबिहिं अगम जिमि ब्रह्म सुख, अह मम मलिन जनेपु। परिछिन्न होने से सांसारिक सुखों के लिए नाम है। उनका स्वरूप है, उनमें दोष हैं, वे कथनीय हैं। परन्तु ब्रह्म सुख अनूप है, जगत् से विलक्षण है, अतः अकथ अनामय और अरूप है। इससे ज्ञानी[1] भक्त कहा।

जाना चहहिं गूढ गति जेऊ। नाम जीह जपि जानहिं तेऊ ॥
साधक नाम जपहिं लय लाए। होहिं सिद्ध अनिमादिक पाए ॥२॥

अर्थ : जा लोग गूढ गति जानना चाहते हैं, वे भी नाम को जीभ से जपकर जानते हैं, साधक लौ लगाकर नाम जप करते हैं और अनिमा आदि सिद्धियाँ पाकर सिद्ध हो जाते हैं।

व्याख्या : जगत् कैसे हुआ ? कहाँ से हुआ ? इसका आधार क्या है ? हम क्या हैं ? ईश्वर क्या है ? संसार से छुटकारा कैसे हो ? इत्यादि प्रश्न बड़े गूढ हैं। इन्हें जो जानना चाहते हैं वे ही गूढ गति के जिज्ञासु हैं। इनके लिए भी साधन जिह्वा से राम नाम का जप है। राम नाम की रटन लगने से आप से आप हृदय में प्रकाश हो जाता है। यथा : जौ लौं नहिं निज हृदि प्रकास अरु विषय आस मन माहीं। तौ लों कोटि उपाय करिअ संसय निर्मूल न जाहीं। स्वभाव से ही सबको ज्ञान रहता है, पर वह अज्ञान से ढँका रहता है। यथा : अज्ञानेनावृतं ज्ञानं तेन मुह्यन्ति जन्तवः। गी. इस अज्ञान का नाश भी नाम जप से होता है। नाम जप बिना सारे वेदान्तग्रन्थ पढ़ने पर भी ज्ञान न होगा। इससे जिज्ञासु भक्त कहा।

खण्ड सिद्धियाँ बहुत हैं। उनकी प्राप्ति तो नाम जप से होती ही है, अणिमादिक[2] महासिद्धियों की भी प्राप्ति होती है। अणिमादिक आठ सिद्धियाँ हैं : १. अणिमा २. महिमा ३. गरिमा ४. लघिमा ५. प्राप्ति ६. प्राकाम्य ७. ईशित्व और ८. वशित्व। इन्हें चाहनेवाले भक्त साधक कहलाते हैं। इन्हीं को गीता में अर्थार्थी कहा। इनका साधन भी नाम का जप ही है। कोई सिद्धि भी बिना संयम के नहीं होती। धारणा, ध्यान, समाधि तीनों का एकत्र होना संयम है। नाम जप में धारणा, ध्यान और समाधि होनी चाहिए। अर्थात् पूरी एकाग्रता होनी चाहिए तब सिद्धि होती है। इसीलिए 'लौ लाये' कहा।

जपहि नामु जन आरत भारी। मिटहिं कुसंकट होहिं सुखारी ॥
राम भगत जग चारि प्रकारा। सुकृती चारिउ अनघ उदारा ॥३॥

---

१. चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन।
आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ ॥ गी.

२. छोटा हो जाना २. बड़ा हो जाना ३. भारी हो जाना ४. हलका हो जाना ५. सब पदार्थों की प्राप्ति ६. इच्छा का अनभिघात ७. सामर्थ्य ८. भूत भौतिक वश्यता।

अर्थ : अत्यन्त आर्त भक्त नाम का जप करते हैं, बुरे संकट मिट जाते हैं और वे सुखी होते हैं। संसार में चार प्रकार के भक्त हैं। चारों पुण्यात्मा, पापहीन और उदार हैं।

व्याख्या : जो सङ्कट मिटने के लिए भजन करते हैं, वे आर्तभक्त हैं। इनका भी साधन नामोच्चारण है। नाम के जप से आर्त का कुसंकट दूर होता है। जैसे द्रौपदी को कुसंकट पड़ा था। यथा : नर नारि उघारि सभामहँ होत दियो पट सोच हर्‍यो मनको। इतना ही नहीं कि संकट दूर होकर रह जाय, उन्हें सुख भी मिलता है!

इस भाँति चार प्रकार के भक्त हुए। चारों रामनाम रूपी सुकृत से कार्यसिद्धि चाहते हैं। इसलिए सुकृती हैं। यथा : राम को सुमिरिवो सव विधिही को राज रे। राम को विसारिवो निषेध सिरताज रे। लौकिक साधनों में पाप का अनुवेध रहता ही है। सो ये लोग जपयज्ञ से सिद्धि चाहते हैं। जिसमें किसी प्रकार का पापसम्पर्क न होने पावे। अतः 'अनघ' कहा। और अपनी सिद्धि के लिए किसी से याचना नहीं करते। न किसी के स्वार्थ में बाधा पहुँचाते हैं। इसलिए उदार कहा।

चहूँ चतुर कहँ नाम अधारा। ग्यानी प्रभुहिं बिसेष पियारा ॥
चहुँजुग चहुँ श्रुति नाम प्रभाऊ। कलि बिसेषि नहिं आन उपाऊ ॥४॥

अर्थ : चारों चतुरों को नाम ही आधार है पर ज्ञानी प्रभु को बहुत प्यारा है। चारों युगों, चारों वेदों में नाम का प्रभाव है, परन्तु कलियुग में विशेष करके है। क्योंकि अन्य कोई उपाय ही नहीं है।

व्याख्या : यहाँ चारों को चतुर इसलिए कहा कि इन लोगों ने अन्य साधनों को छोड़कर नाम का आधार ग्रहण किया। श्रीग्रन्थकार कहते हैं कि अन्य साधनों का भरोसा नहीं है। यथा :

नाहिन आवत आन भरोसो।
एहि कलिकाल सकल साधनतरु है श्रम फरनि फरोसो।
तप तीरथ उपवास दानमख जो जेहि रुचै करोसो।
पाएहि पै जानिवो कर्म फल, भरि भरि वेद परोसो।
आगम विधि जप जाग करत नर, सरत न काज खरोसो।
सुख सपनेहु न योग सिधिसाधन रोगवियोग धरोसो॥
कामक्रोध मद लोभ मोहमिलि, ज्ञानविराग हरोसो।
विगरत मन सन्यास लेत, जल नावत आम घरोसो॥
वहुमत मुनि वहु पंथ पुराननि, जहाँ तहाँ झगरोसो।
गुरु कह्यौ राम भजन नीको, मोहि लगत राज डगरोसो॥
तुलसी विनु परतीति प्रीति, फिरि-फिरि पचिमरै मरोसो।
राम नाम वोहित भवसागर, चाहै तरन तरोसो॥ विनय.

इन चारों का नाम ही आधार है। इनमें भी प्रभु को ज्ञानी अधिक प्यारा है। क्योंकि ज्ञानी उनकी आत्मा है। यथा : ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम्।

चारों युगों में नाम का प्रभाव है। यथा : चहुँयुग तीन काल तिहुँ लोका। भये नाम जपि जीव विसोका। चारों श्रुतियों में है। यथा : इहै कह्यौ सुनु वेद चहूँ। श्रीरघुवीर चरन चिंतन तजि नाहिन ठौर कहूँ। कलि में विशेष है क्योंकि और उपाय नहीं है। यथा : एकहीं साधन सब रिधि सिधि साधि रे। ग्रसे कलिरोग जोग संजम समाधि रे। राम नाम छोड़ि जो भरोसो करै और रे। तुलसी परोसो त्यागि माँगे कूर कौर रे।

दो. सकल कामना हीन जे, राम भगति रस लीन।
नाम सुप्रेम पियूष ह्रद, तिन्हहु किये मन मीन ॥२२॥

अर्थ : जो सम्पूर्ण कामना से रहित रामभक्ति रस में लीन हैं उन्होंने भी नाम रूपी सुन्दर प्रेम के अमृतकुण्ड में अपने मनको मछली बना रक्खा है।

व्याख्या : जिन्हें उपर्युक्त कामनाओं में से एक भी नहीं है उन्हें भजन करने में ही आनन्द आता है। ऐसे पुष्ट भक्तिवाले तो नाम के विस्मरण से व्याकुल हो उठते हैं। नाम ही प्रेमामृत का कुण्ड है। उसी में उनका मन मछली की भाँति विश्राम मानता है। इन चार प्रकार के भक्तों का उल्लेख करते हुए भगवद्गीता में कहा गया है : चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन। आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ। श्रीमधुसूदन स्वामी का यह मत[1] है कि इस श्लोक में 'ज्ञानी च' पद है। सो 'चकार' से ऐसे ही निष्काम भक्तों का संग्रह है जिनका वर्णन इस दोहे में किया गया है।

अगुन सगुन दुइ ब्रह्म सरूपा। अकथ अगाध अनादि अनूपा ॥
मोरे मत बड़ नामु दुहूँते। किय जेहि जुग निज बस निज बूते ॥१॥

अर्थ : निर्गुण और सगुण ब्रह्म के दो स्वरूप हैं। दोनों : अकथ, अथाह, अनादि और अनुपम हैं। मेरी सम्मति में नाम दोनों से बड़ा है। जिसने अपने बल से दोनों को अपने वश में कर रक्खा है।

व्याख्या : पहिले राम शब्द की व्युत्पत्ति कही। फिर उसका महामन्त्र होना कहा। उसकी महिमा, प्रभाव और प्रताप कहा। गुण कहा, नामी से अधिक बतलाया। उसको एक मात्र सर्वसम्मत साधन बतलाया। अब निर्गुण सगुण दोनों स्वरूपों से भी बढ़कर कह रहे हैं।

निर्गुण स्वरूप, अकथ, अगाध, अनादि और अरूप है। यथा : अज अद्वैत अगुन हृदयेसा। अकल अनीह अनादि अरूपा। अनुभव गम्य अखंड अनूपा। मन-गोतीत अमल अविनासी। निर्विकार निरवधि सुखरासी। सो तैं तोह ताहि नहि भेदा। वारि वीचि इव गावहिं वेदा। इसी भाँति सगुण रूप भी अकथ, अगाध, अनादि और अनूप है। यथा : दिखरावा मातहि निज अद्भुत रूप अखंड। रोम रोम

---

१. चकारो यस्य कस्यापि निष्कामप्रेमभक्तस्य ज्ञानिन्यन्तर्भावार्थः। जिस किसी निष्काम प्रेम भक्त का ज्ञानी में अन्तर्भाव के लिए चकार है।

प्रति लागे कोटि कोटि ब्रह्मंड । यहाँ ग्रन्थकार अपनी सम्मति कहते हैं : नाम में इतना सामर्थ्य है कि नामी उसके वश में रहता है । नाम लेकर स्तुति करनेवाले के सम्मुख होता है । निन्दा करनेवाले के विमुख होता है । रात-दिन नामस्मरण करनेवाले के वशीभूत रहता है । नामी के दो स्वरूप हैं : निर्गुण और सगुण । और दोनों नाम के सामर्थ्य से उसके वश में हैं ।

प्रौढ़ि सुजन जनि जानहि जनकी । कहउँ प्रतीति प्रीति रुचि मनकी ॥
एकु दारु गत देखिअ एकू । पावक सम जुग ब्रह्म विवेकू ॥२॥

अर्थ : सज्जन लोग इसे जन : तुलसी : की प्रौढि : जबरदस्ती न समझें । मैं अपने मनका विश्वास, प्रीति और रुचि कहता हूँ । दोनों प्रकार के ब्रह्म का विवेक अग्नि के समान है । एक अग्नि तो लकड़ी के भीतर है और दूसरी बाहर दिखाई पड़ती है ।

व्याख्या : ग्रन्थकार कहते हैं कि नाम को सगुण ब्रह्म और निर्गुण ब्रह्म से बढ़कर कहने में मैं हठ से नहीं काम ले रहा हूँ । श्रुति के बल से मुझे प्रतीति हुई । गुरुओं के उपदेश से प्रीति हुई और प्रारब्ध से रुचि हुई । उसी को मैं कहता हूँ ।

जिस भाँति व्यक्त अग्नि से ही हम लोग परिचित हैं और वही हमलोगों के काम आती है उसी भाँति सगुण ब्रह्म से ही जगत् परिचित है और उसी से सब काम चलता है । जिस भाँति लकड़ी में भी अग्नि अव्यक्त है पर लकड़ी को नहीं जलाती बल्कि लकड़ी की आधारभूत वही अग्नि है । उसी भाँति निर्गुण ब्रह्म अव्यक्त है, निष्क्रिय है और सबका आधार है । जिस भाँति व्यक्त और अव्यक्त अग्नि तत्त्वतः एक ही है उसी भाँति निर्गुण और सगुण ब्रह्म भी तत्त्वतः एक ही है ।

उभय अगम जुग सुगम नामतें । कहेउँ नाम बड़ ब्रह्म राम तें ॥
व्यापकु एकु ब्रह्म अविनासी । सत चेतन घन आनँद रासी ॥३॥

अर्थ : दोनों दुर्गम हैं, पर नाम से दोनों सुगम हैं । ब्रह्म और राम दोनों से मैं नाम को बड़ा कहता हूँ । ब्रह्म एक, अविनाशी सत्, चेतन और घन आनन्द की राशि है ।

व्याख्या : निर्गुण ब्रह्म अति सुलभ होने से अगम है । जिस प्रकार अति सन्निहित वस्तु इन्द्रिय गोचर न होने से अदृश्य होती है उसी प्रकार निर्गुण ब्रह्म आत्मस्वरूप होने से ज्ञेय नहीं है । यथा : निर्गुन रूप सुलभ अति सगुन न जानै कोय । और सगुण ब्रह्म अपार होने से अगम है । अतः स्वरूपतः दोनों ही अगम हैं पर नामतः दोनों सुगम हैं । अतः ब्रह्म : निर्गुण और राम : सगुण दोनों से नाम बड़ा है ।

नाम के बल से निर्गुण ब्रह्म को सगुण बनाकर काम लिया जा सकता है । उसी की प्रक्रिया बतलाते हुए निर्गुण ब्रह्म का निरूपण करते हैं । पहिले उसे व्यापक कहा । पर व्यापक मानने से किसी दूसरे व्याप्यकी भावना उठती है, इसलिए एक कहा । माया का ग्रहण न हो जाय इसलिए अविनाशी ब्रह्म कहा । 'सत चेतन आनंद रासी' कहकर स्वरूप लक्षण बतलाया । घन कहकर द्वितीय का निषेध किया ।

अस प्रभु हृदयँ अछत अविकारी। सकल जीव जग दीन दुखारी॥
नाम निरूपन नाम जतनतें। सोउ प्रकटत जिमि मोल रतनतें॥४॥

अर्थ : ऐसे निर्विकार प्रभु के हृदय में रहते हुए भी, जगत् के सब जीव दीन और दुखी हैं। नाम निरूपण और नाम-यत्न से वह वैसे ही प्रकट होता है जैसे रत्न से उसका मूल्य प्रकट होता है।

व्याख्या : ऐसे निर्विकार सच्चिदानन्द घन प्रभु के हृदय में रहने पर अमङ्गल का नाश और परम मङ्गल होना चाहिए। यथा : सेवक सदन स्वामि आगमनू। मंगलमूल अमंगल दमनू। सो वे घरमें भी नहीं, हृदय में मौजूद हैं : ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति। गीता। फिर भी संसार के जितने जीव हैं, सबके सब दीन और दुखारी हैं, सुखी कोई भी नहीं। इसका कारण यही है कि वे व्यक्त रूप में आवें तो काम चले। अग्नि के अव्यक्त रूप में होने से काम नहीं चलता। व्यक्त रूप में अग्नि को लाकर ही संसार अपना काम चलाता है। जिस भाँति अग्नि को व्यक्त रूप में लाने का विधान है उसी भाँति प्रभु को भी व्यक्त रूप में लाने का विधान है। कल्याण चाहनेवाले जीव का यह काम है कि उसे व्यक्त रूप में लाने के लिए यत्नशील हो। यथा : सहेउ सुरन बहु काल विषादू। नरहरि प्रकट कीन्ह प्रहलादू।

अब प्रकट करने का उपाय कहते हैं : नाम निरूपण अर्थात् नाम को अर्थभावना से और नामयत्न अर्थात् नाम के जप से वही स्वान्तःस्थ पुरुष प्रकट होता है। यथा : अगजगमय सबरहित विरागी। प्रेमते प्रभु प्रकटै जिमि आगी। प्रकट होने के लिए पहिले अग्नि का उदाहरण दिया था पर प्रकट होने में वह उदाहरण ठीक नहीं बैठता। लकड़ी की अग्नि अविकृत रहकर स्थूलाग्नि नहीं प्रकट कर सकती। अतः 'मोल रतनते' का उदाहरण दे रहे हैं। रत्न स्वयं अविकृत रहता हुआ मोल : मूल्य : को प्रकट किया करता है। निर्गुण रत्न है और सगुण उसका मूल्य है। तात्पर्य यह कि रत्न से काम नहीं चलता। उसके मूल्य से काम चलता है। अतः निर्गुण को सगुण रूप में लाने का प्रयत्न होना चाहिए और वह प्रयत्न नाम-निरूपण और नाम-यत्न है। यथा : तज्जपस्तदर्थभावनम्। यो. सू.

दो.- निरगुन ते इहि भाँति बड़, नाम प्रभाउ अपार।
कहउँ नामु बड़ रामतें, निज विचार अनुसार॥२३॥

अर्थ : निर्गुण से इस भाँति नाम का अपार प्रभाव बड़ा है। अब अपने विचार के अनुसार नाम को राम : सगुण ब्रह्म से बड़ा कहता हूँ।

व्याख्या : बड़े होने का प्रकार कहते हैं। 'ब्रह्म' शब्द का अर्थ ही 'सबसे बड़ा' है। अतः निर्गुण ब्रह्म या सगुण ब्रह्म से बड़ा कुछ हो नहीं सकता। इसलिए जिस दृष्टि से बड़ा कहा उसे स्पष्ट कहते हैं। नाम के प्रभाव का कोई पारावार नहीं है, जिसके बल से निर्गुण ब्रह्म को सगुण होना पड़ता है। अतः निर्गुण से बड़ा है। अब

---

१. उसका जप और उसके अर्थ की भावना करनी चाहिए।

सगुण से बड़ा कहेंगे। यह कहे देते हैं कि निज विचार अनुसार मैं कहता हूँ। यहाँ ग्रन्थकार अपना अनुभव कह रहे हैं।

राम भगत हित नरतनु धारी। सहि संकट किय साधु सुखारी ॥
नामु सप्रेम जपत अनयासा। भगत होहिं मुद मंगल वासा ॥१॥

अर्थ : रामजी ने भक्तों के लिए मनुष्य शरीर धारणकर और संकट सहकर, साधुओं को सुखी किया, किन्तु प्रेम से नाम का जप करने से भक्त सहज में ही मुद और मंगल के घर हो जाते हैं।

व्याख्या : रामजी : सगुण ब्रह्म को सौ कोटि काम सा सुन्दर कहना, सौ कोटि दुर्गा सा अरिमर्दन कहना, कोटि शत मरुत सा बलवान् कहना, कोटि शत सूर्य सा तेजस्वी कहना, कोटि शत चन्द्र सा शीतल कहना वैसा ही है, जैसे कोई सूर्य के लिए कहे कि वे कोटि शत जुगनू के बराबर हैं। ऐसे प्रभु का नर शरीर धारण करना उसकी प्रतिष्ठा के विरुद्ध है और संकट सहना उसके स्वरूप के प्रतिकूल है। सो साधुओं को सुखी करने के लिए श्रीरामजी को सब कुछ करना पड़ा। यथा : जे चरन सिव अज पूज्य रज सुभ परसि रिसि पतनी तरी। नख निर्गता मुनि वंदिता त्रैलोक्य पावन सुर सरी। ध्वज कुलिस अंकुस कंज जुत वन फिरत कंटक किन लहे। पद कंज द्वंद मुकुंद राम रमेस नित्य भजामहे।

नाम का सप्रेम जप नामावतार है। जिस भाँति ब्रह्माण्ड में रामावतार होता है, उसी भाँति पिण्ड में नामावतार होता है। सगुण ब्रह्म ने नर शरीर धारण पूर्वक सङ्कट सहन करके, साधुओं को सुखी किया, पर पिण्ड के नामावतार द्वारा अनायास ही जापक भक्त मुद मङ्गल का निवास स्थान हो जाता है परन्तु जप प्रेम के साथ होना चाहिए। अर्थात् वह स्वयं जङ्गम तीर्थराज हो जाता है, दूसरों का दुःख हटाने लगता है। यथा : मुद मंगलमय संत समाजू। ज्यों जग जंगम तीरथ राजू।

राम एक तापस तिय तारी। नाम कोटि खल कुमति सुधारी ॥
रिषिहित राम सुकेतु सुता की। सहित सेन सुत कीन्हि विवाकी ॥२॥

अर्थ : रामजी ने एक तापसपत्नी : अहल्या[1] का उद्धार किया, पर नाम ने करोड़ों खलों की कुमति को सुधारा। रामजी ने ऋषि के हित के लिए सुकेतु की बेटी : ताटका को उसके बेटे और सेना सहित निःशेष कर दिया।

व्याख्या : भक्त को मुद मङ्गल का आवास बनाने के लिए पहिले उसकी मति का ही सुधार करना पड़ता है। अतः ग्रन्थकार यहाँ अपने क्रम के अनुसार चले।

---

१. अहल्या, गौतम ऋषि की स्त्री थी। इन्द्र, उसके सौन्दर्य पर मोहित होकर, गौतमजी के स्नानार्थ जाने पर, उनका रूप धर के आये और अहल्या का धर्म नष्ट किया। गौतमजी ने जब यह वृत्तान्त जाना तो दोनों को शाप दिया। इन्द्र को सहस्र भग हो गये, अहल्या पत्थर हो गई। अनुनय विनय करने पर गौतमजी ने शापानुग्रह भी किया। इन्द्र को सहस्र नेत्र हो गये, और अहल्या भगवान् रामचन्द्र के चरण रज के स्पर्श से शापविनिर्मुक्त हुई।

श्रीरामावतार के घटना क्रम का अनुसरण नहीं किया। ताटका वध के पहिले ही अहल्योद्धार की कथा कहने लगे।

यहाँ तापसतिय से अहल्या अभिप्रेत है। जिस भाँति ब्रह्माण्ड में अहल्या पत्थर हो गई थी और उसका उद्धार रामचन्द्र ने किया। यथा : गौतम गये घर गौनो सो लिवाय के।·········इसी भाँति मति जडीभूत होकर कुमति हो गई है, उसका उद्धार नामावतार द्वारा होगा। इस भाँति नाम ने करोड़ों का उद्धार किया अतः नाम में कार्यकारिता करोड़ों गुना अधिक है।

खल की बुद्धि सत्सङ्ग से भी नहीं सुधरती। यथा : मिटइ न मलिन सुभाउ अभंगू। नाम को ही उसके उद्धार का सामर्थ्य है।

ब्रह्माण्ड में ताटका थी। यह यक्षिणी सुन्द से ब्याही थी। जब अगस्त्य ऋषि के शाप से सुन्द मारा गया तो यह और इसका बेटा मारीच ऋषिजी को खाने दौड़े। अतः अगस्त्यजी ने इन्हें भी शाप दिया और ये राक्षस हो गये। वे ही सुबाहु मारीच थे। उनके पास सेना थी। ये विश्वामित्र ऋषि के यज्ञ में विघ्नाचरण करते थे। यथा : तहँ जप जोग जग्य मुनि करहीं। अति मारीच सुबाहुहिं डरहीं। अतः ऋषि के लिए श्रीरामजी ने उन सबोंका संहार कर डाला।

सहित दोष दुख दास दुरासा। दलइ नामु जिमि रबिनिसि नासा॥
भंजेउ राम आपु भव चापू। भवभय भंजन नाम प्रतापू॥३॥

अर्थ : दोष और दुःख के सहित दास की दुराशा का नाम इस भाँति विनाश करता है जैसे सूर्य रात का नाश करते हैं। स्वयं रामजी ने शिवजी के धनुष को तोड़ा, पर संसार के भय को नाम का प्रताप भञ्जन करता है।

व्याख्या : पिण्ड में ताटका स्थानीय दुराशा है। उसके दोष और दुःख ये ही दो पुत्र हैं। वे भक्त के शुभाचरण में बड़ी बाधा उपस्थित करते हैं। उनका नामावतार द्वारा अनायास ऐसा नाश होता है जैसे सूर्य रात का नाश करते हैं। सूर्य दूर ही रहते हैं और रात का नाश हो जाता है। यथा : उदय भानु बिनुश्रम तम नासा। श्रीरामजी को ताड़का-सुबाहु-वध के लिए वन में जाकर युद्ध करना पड़ा था।

'भव' शब्द का अर्थ संसार भी है और शङ्करजी भी हैं। भवचाप को स्वय रामजी को जनकपूर जाकर तोड़ना पड़ा। इधर भवभय नाम के प्रताप से टूट जाता है। नाम स्वयं कुछ नहीं करता। भवभय शङ्कर के धनुष की भाँति भारी और कठोर है। किसी साधन से नहीं जाता पर नाम के प्रताप से दूर हो जाता है।

दंडक बनु प्रभु कीह्न सुहावन। जनमन अमित नाम किये पावन॥
निसिचर निकर दले रघुनंदन। नामु सकल कलि कलुष निकंदन॥४॥

अर्थ : प्रभु राम ने [1]दण्डकवन को सुहावना बनाया। किन्तु नाम ने असंख्यात

---

१. दण्डकवन पूर्व काल में राजा दण्ड का समृद्ध राज्य विन्ध्याचल और नीलगिरि के बीच में था। इस अन्यायी राजा ने अपने गुरु शुक्राचार्य की सुन्दरी पुत्री अरजा के साथ बलात्कार किया। उसने पिता से राजा का अन्याय कह सुनाया। उनके शाप से सौ योजन

भक्तों के मनों को पवित्र किया। श्रीराम ने राक्षसों के समूह को मारा और नाम कलियुग के सारे मलों को दूर करनेवाला है।

अर्थ : ब्रह्माण्ड में जैसे दण्डकवन अपवित्र और भयानक हो गया था और उसे श्रीरामजी ने सुहावन वनाया। यथा : जब ते राम कीन्ह तँह वासा। सुखी भये मुनि वीती त्रासा। गिरिवन नदी ताल छविछाए। दिन दिन प्रति अति होंहि सुहाए। सो वन वरनि न सक अहिराजा। जहाँ प्रगट रघुवीर विराजा। उसी भाँति नाम के आगमन से असंख्यात भक्तों के मन पवित्र हो गये। उस दण्डक वन में खरदूषणादि ससैन्य रहते थे। उनका रामजी ने वध किया। उसी भाँति मन में कलिकलुष दम्भ, पाखण्डादि निवास करते हैं। नाम उनके मूल को उखाड़ फेंकता है।

दो. सवरी गीध सुसेवकनि, सुगति दीन्ह रघुनाथ।
नाम उधारे अमित खल, वेद विदित गुन गाथ ॥२४॥

अर्थ : रामजी ने शवरी, गीध आदि सुसेवकों को मुक्ति दी परन्तु नाम ने अगनित खलों का उद्धार किया। गुणगाथा वेद में विदित है।

व्याख्या : शवरी, गीध, अधम योनि होने पर भी सुसेवक थे। इसलिए रामजी ने उन्हें मुक्ति दी। पर नाम ने तो ऐसे खलों को मुक्ति दी जो मरते दम तक खल ही रहे। साधु कभी हुए ही नहीं। यथा : सुरमुनि सभय प्रभु देखि माया नाथ अस कौतुक करयौ। देखत परस्पर राम करि संग्राम रिपुदल लरि मरयौ। रामराम कहि तनु तर्जाहं पावहि पद निर्वान। करि उपाय रिपु मारेउ छन महँ कृपानिधान। नाम की गुणगाथा वेदों में कही गई है। अतः उसमें शङ्का को स्थान नहीं है।

राम सुकंठ बिभीषन दोऊ। राखे सरन जान सब कोऊ ॥
नाम गरीव अनेक नेवाजे। लोक वेद वर विरद विराजे ॥१॥

अर्थ : रामजी ने सुग्रीव और विभीषण दोनों को अपने शरण में रखा। यह सब कोई जानते हैं। पर नाम ने अनेक दीनों पर कृपा की है, जिसका विरद, लोक और वेद में विराज रहा है।

व्याख्या : श्रीरामजी का सुग्रीव और विभीषण इन दो ही को शरण में रखना प्रसिद्ध है। पर नाम ने तो कितने गरीबों पर कृपा की है जिनकी गिनती नहीं है। भाव यह है कि जो गरीब ऐसे भाग्यवान् थे जिनका जन्म रामावतार के समय हुआ था, उन्हीं पर दया करने का अवसर रामजी को मिला। पर नाम को तो सदा काम गरीबों से पड़ा हो करता है और नाम की कृपा से उनकी गरीबी जाती रहती है और वे सुखी हो जाते हैं। उनका नाम भी कोई नहीं जानता। पर 'गरीब नेवाज' विरद लोक और वेद में प्रसिद्ध है। यथा : विरद गरीब नेवाज राम को। गावत वेद पुरान संभु सुक प्रकट प्रभाव नाम को। गनिका कोल किरात आदि कवि

तक धूलि की वृष्टि हुई और वह राज्य नष्ट हो गया। मुनि के शाप से, सभी ऋषियों ने उस स्थान को पहिले ही छोड़ दिया था और वहाँ नहीं जाते थे। यह दण्ड राजा इक्ष्वाकु का कनिष्ठ पुत्र था।

इनते अधिक बाम को। वाजिमेध कब कियो अजामिल, गज गायो कव साम को। छली मलीन हीन सवहीं अंग, तुलसी सो छीन छाम को। नाम नरेस प्रताप प्रवल जग, जुगजुग चलत चामको।

राम भालु कपि कटकु बटोरा। सेतु हेतु श्रमु कीन्ह न थोरा॥
नाम लेत भवसिंधु सुखाहीं। करहु विचार सुजन मनमाहीं॥२॥

अर्थ : रामजी ने भालू और बन्दरों की सेना इकट्ठा की और पुल बाँधने में कम परिश्रम नहीं किया। पर नाम लेते ही संसार समुद्र सूख जाता है, हे सज्जनो! मन में विचार तो करो।

व्याख्या : श्रीराम जी वन में थे उस समय रावण ने सीता हरण किया। पास सेना नहीं और शत्रु राजा पर आक्रमण के लिए शास्त्रविधि के अनुसार सेना अवश्य चाहिए। अतः बन्दर भालुओं की सेना इकट्ठी की। यह असाधारण श्रम का कार्य था। सेना इकट्ठी होने पर भी समुद्र में सेतु बाँधना महा दुष्कर कार्य था। जिसे सिवा श्रीरामजी के संसार में कोई आज तक कर न सका। जिसे सुनकर रावण भी घबरा उठा। उस सेतु बाँधने के लिए श्रीरामजी को तीन दिन तक समुद्र के किनारे धरना देना पड़ा। यथा : विनय न मानत जलधि जड़ गये तीनि दिन बीति। इसलिए कहते हैं कि 'श्रमकीन्ह न थोरा।'

भवसिन्धु में लवणसिन्धु ऐसे न जाने कितने सिन्धु पड़े हैं, वह केवल नाम लेने से सूख जाता है। यहाँ ग्रन्थकार सुजन से कहते हैं कि आप विचार करके देखिये, सूख जाता है कि नहीं। बिना विचार किये यह बात समझ में न आवेगी कि भवसागर नाम लेने से कैसे सूख जाता है। पर विचार करने पर यह भावना दृढ़ हो जाती है कि निश्चय ही भवसागर सूख जाता है।

मिथ्या वस्तु के दूर करने के लिए सत्य वस्तु का नाम लेना ही यथेष्ट है। मिथ्या सर्प किसी अस्त्र शस्त्र से दूर नहीं किया जा सकता। पर केवल रज्जु के नाम से दूर हो जाता है। मृगजल का समुद्र किसी नौका या जहाज से पार नहीं किया जा सकता। परन्तु 'सूर्य की किरणों' के कथन से ही वह समुद्र कहीं रह नहीं जाता। इसी भाँति मिथ्या भवसागर में डूबता हुआ पुरुष, सत्य राम के नाम से ही बचाया जा सकता है। यथा : निजभ्रम ते रविकर संभव सागर अति भय उपजावै। अवगाहत वोहित्त नौका चढ़ि कबहूँ पार न पावै। सुभग सेज सोवत सपने, वारिधि बूड़त भय लागै। कोटिहु नाव न पार पाव सो, जबलगि आपुन जागै।

राम सकुल रन रावनु मारा। सीय सहित निज पुर पगुधारा॥
राजा रामु अवध रजधानी। गावत गुन सुर मुनिवर वानी॥३॥

अर्थ : रामजी ने युद्ध में कुटुम्ब सहित रावण को मारा और सीता सहित अपने नगर को लौटे। रामजी राजा हुए। अयोध्या उनकी राजधानी हुई। देवता मुनि श्रेष्ठ वाणी से उनके गुण गाते हैं।

व्याख्या : श्रीराम जी ने जटायु से कहा था। जी मैं राम तो कुल सहित,

कहिहि दसानन जाय, सो सत्य किया। कुल सहित संग्राम में रावण को मारा। सीता हरण हुआ था सो सीता मिलीं। रामजी उनके साथ अयोध्याजी पधारे। पुरवासी लोग पञ्चदेव की उपासना करके माँगते थे : राजा राम जानकी रानी। आनंद अवधि अवध रजधानी। सुवस बसहु पुनि सहित समाजा। भरतहिं राम करहिं जुवराजा। उनका भी मनोरथ पूर्ण हुआ।

सेवक सुमिरत नामु सप्रीती। बिनुश्रम प्रबल मोह दल जीती॥
फिरत सनेह मगनसुख अपनें। नाम प्रसाद सोच नहि सपनें॥४॥

अर्थ : सेवक प्रेमपूर्वक नाम स्मरण करता हुआ मोह की सेना को बिना परिश्रम जीत लेता है और प्रेम में मग्न होकर आत्मानन्द में विचरता है। नाम के प्रसाद से उसे सपने में भी चिन्ता नहीं रहती।

व्याख्या : विनय पत्रिका में ग्रन्थकार ने अध्यात्म प्रकरण को बहुत स्पष्ट करके दिखलाया है। यथा :

वपुष ब्रह्माण्डसु प्रवृत्ति लंका दुर्ग, रचित मन दनुज मय रूप धारी।
विविध कोसौध अतिरुचिर मंदिर निकर, सत्वगुण प्रमुख त्रय कटक कारी॥
कुनप अभिमान सागर भयंकर घोर, विपुल अवगाह दुस्तर अपारं।
नक्र रागादि संकुल मनोरथ सकल संग संकल्प वीची विकारं॥
मोह दस मौलि तद् भ्रात अहँकार, पाकारिजित काम विश्राम हारी।
लोभ अतिकाय मत्सर महोदर दुष्ट, क्रोध पापिष्ट विवुधांतकारी॥
द्वेष दुर्मुख दंभ खर अकंपन कपट, दर्प मनुजाद मद सूलपानी।
अमित वल परम दुर्जय निसाचर निकर, सहित षड्वर्ग सो यातुधानी॥
जीव भवदंघ्रिसेवक बिभीषन बसत, मध्य दुष्टाटवी ग्रसित चिंता।
नियम यम सकल सुर लोक लोकेस लंकेस बस नाथ अत्यंत भीता॥
ज्ञान अवधेस गृह गेहनी भक्ति सुभ, तत्र अवतार भूभार हर्ता।
भक्त संकष्ट अवलोकि पितु वाक्य कृत, गमन किय गहन वैदेहि भर्ता॥
कैवल्य साधन अखिल भालु मर्कट विपुल, ज्ञान सुग्रीव कृत जलधि सेतू।
प्रवल वैराग्य दारुन प्रभंजन तनय, विषय वन भवन-मिव धूमकेतू॥
दुष्ट दनुजेस निर्वंस कृत दासहित विश्व दुखहरन वोधैक रासी।
अनुज निज जानकी सहित हरि सर्वदा दास तुलसी हृदय कमल वासी॥

विनय प. ५८

दास को जीतने में श्रम नहीं पड़ता, वह नाम द्वारा ज्ञान मार्ग में अग्रसर होता चला जाता है। नामावतार से मोहादिक सब नाश को प्राप्त हो जाते हैं और दास को स्वाराज्य की प्राप्ति हो जाती है।

दो. ब्रह्म राम ते नामु वड़, वरदायक वरदानि।
राम चरित सत कोटि महँ, लिये महेस जिय जानि॥२५॥

अर्थ : वरदायक को भी वर देनेवाला नाम, ब्रह्म और राम दोनों से बड़ा है। सौ करोड़ रामचरित में से मन में जानकर महादेव जी ने इसी को ग्रहण किया।

व्याख्या : 'कहउँ नाम बड़ ब्रह्म रामते' ऐसा उपक्रम करके अब 'ब्रह्म रामते नाम बड़' कहकर उपसंहार करते हैं। वरदायक शङ्कर, ब्रह्मादि को वर देनेवाला राम नाम है। महापुरुषों ने नाम जपकर के ही सिद्धि प्राप्त की है।

श्रीग्रन्थकार कहते हैं कि रामचरित पूर्णचन्द्र की किरणें हैं। यथा : रामचरित राकेस कर सरिस सुखद सबकाहु। तमाम संसार में फैली हुई हैं अतः असंख्यात हैं। सौ करोड़ से असंख्यात का ही तात्पर्य है। भक्ति रूपी पूर्णिमा की रात्रि में चन्द्र 'रामनाम' है। यथा : राकारजनी भगति तव रामनाम सोइ सोम। इस बात को समझकर शङ्कर भगवान् ने रामनाम रूपी चन्द्र को ही ग्रहण कर लिया कि चन्द्रिका चन्द्र को छोड़कर कहाँ जायगी। यथा : कहँ चन्द्रिका चन्द्र तजि जाई।

महात्मा लोग ऐसा भी अर्थ करते हैं कि[1] ब्रह्मदेव ने पहिले शतकोटि संख्यक श्लोकों के रामायण की रचना की। स्वर्ग, मर्त्य और पाताल लोक निवासी उसपर अपना अपना स्वत्व जनाने लगे। झगड़ा बढ़ा तो शङ्कर जी के पास गये। उन्होंने तीनों के लिए विभाग कर दिया। पहिले तैंतीस, तैंतीस कोटि एक एक को दिया। बचा एक कोटि। उसमें तैंतीस तैंतीस लाख का भाग लगाया। बचा हजार। उसका भी तीन तीन सौ का भाग लगा। तब बचा सौ। उसमें भी तैंतीस तैंतीस का भाग लगा। बचा एक। एक अनुष्टुप में बत्तीस अक्षर होते हैं और अनुष्टुप में ही ग्रन्थ की संख्या की जाती है। सो उसमें से दस दस अक्षर तीनों को दे दिया। अब दो अक्षर बचे, वे थे रा और म और विभाग करना था तीन। अतः हो न सका। तब शङ्कर भगवान् ने उन दोनों अक्षरों रा और म को अपने पारिश्रमिक में ले लिया और ये ही दो अक्षर सम्पूर्ण रामायण के सार हैं।

नाम प्रसाद संभु अविनासी। साजु अमंगल मंगल रासी॥
सुक सनकादि सिद्ध मुनि जोगी। नाम प्रसाद ब्रह्मसुख भोगी॥१॥

अर्थ : नाम के प्रसाद से शिवजी अविनाशी हैं और अमंगल साज रखने पर भी मङ्गल की राशि हैं। शुकाचार्य, सनकादिक सिद्ध, मुनि और योगी लोग नाम के प्रसाद से ही ब्रह्मानन्द के भोगनेवाले हैं।

व्याख्या : राम और नाम की तुलना में ग्रन्थकार ने रामजी की ओर से भक्तों का नाम लेकर उदाहरण दिया। यथा : राम एक तापस तियतारी। राम सुकंठ विभीषन दोऊ। राखेउ सरन जान सब कोऊ। सबरी गीध सुसेवकनि सुगति दीह्न रघुनाथ : इत्यादि। पर नाम की ओर से किसी व्यक्ति विशेष का नाम लेकर

---

१. बाल्मीकिना च यत्प्रोक्तं रामोपाख्यानमुत्तमम्। ब्रह्मणा चोदितं तच्च शतकोटि प्रविस्तरम्। आहृतं नारदेनैव बाल्मीकये निवेदितम्। ब्रह्मदेव से प्रेरित होकर बाल्मीकि ने जो रामोपाख्यान कहा उसका शतकोटि विस्तार था। ब्रह्मदेव से प्राप्त करके उसे नारद जी ने बाल्मीकि से कहा।

उदाहरण न दिया। केवल बहुवचन का प्रयोग करते गये। यथा : भक्त होहिं मुद मंगल वासा। नाम कोटि खल कुमति सुधारी : इत्यादि। अतः नाम से जिनका कल्याण हुआ है, उन महानुभावों में से प्रधान व्यक्तियों का नाम लेकर उदाहरण : नजीर : देते हैं।

शिवजी नाम के प्रभाव से अविनाशी हैं। नाम के प्रभाव से अमरत्व की प्राप्ति होती है। इसकी प्रक्रिया भी ग्रन्थकार ने बतलाई। यथा : हनुमत् वचन : नाम पाहरू दिवस निसि ध्यान तुम्हार कपाट। लोचन निज पद जंत्रित प्रान जाहिं केहि बाट। नाम के प्रसाद से ही मुण्डमाल, कपाल, चिताभस्मधारी होने पर भी शिवजी मङ्गलमय हैं। यथा : नाम सप्रेम जपत अनयासा। भक्त होहिं मुदमंगल वासा। 'सेवक सुमिरत नाम सप्रीती। बिनुश्रम प्रबल मोहदल जीती। फिरत सनेह मगन सुख अपने। नाम प्रसाद सोच नहिं सपने।' पहिले कह आये हैं। उसीका उदाहरण दे रहे हैं : 'सुक सनकादि सिद्ध मुनि जोगी। नाम प्रसाद ब्रह्म सुख भोगी।' योगियों के लिए यही निर्णय है कि भगवन्नामानुकीर्तन किया करें। यथा : योगिनां नृपनिर्णीतं हरेर्नामानुकीर्तनम् : भागवते।

नारद जानेउ नाम प्रतापू। जगप्रिय हरि हरि हर प्रिय आपू ॥
नाम जपत प्रभु कीन्ह प्रसादू। भगत सिरोमनि भे प्रहलादू ॥२॥

अर्थ : नारदजी ने नाम का प्रताप जाना। संसार को हरि प्रिय हैं, हरि को हर प्रिय हैं और हर को आप : नारदजी : प्रिय हैं। नाम जपने से भगवान् प्रसन्न हुए। सो प्रह्लाद भक्तों के शिरोमणि हो गये।

व्याख्या : सम्पूर्ण संसार को हरि प्रिय हैं। यथा : ये प्रिय सबहिं जहाँ लगि प्रानी। हरि को हर प्रिय हैं। यथा : कोउ नहिं सिवसमान प्रिय मोरे। अस परतीति तजिअ जनि भोरे और हर को नारदजी प्रिय हैं। यथा : अति प्रिय जानि महेस सिखाये। यह प्रियतम होने का पद जो नारदजी को प्राप्त हुआ है, सो नाम के प्रताप की जानकारी से हुआ है।

नाम के जपने से प्रभु प्रसन्न होते हैं और जापक को भक्त शिरोमणि बना लेते हैं। [1]प्रह्लाद ने सिवा नाम जप के और कौन साधन किया? प्रह्लाद को जब पिता : हिरण्यकश्यप ने अग्नि में डाला तब प्रह्लाद ने पिता से कहा कि नाम

---

१. प्रह्लाद दैत्यराज हिरण्यकश्यप के पुत्र थे। बचपन से ही भगवद्भक्त थे। इनका पिता विष्णु का बैरी था। प्रह्लाद पढ़ने में मन न लगाकर भगवन्नाम कीर्तन करते थे। इस पर उनका पिता बड़ा क्रुद्ध हुआ। बहुत कुछ समझाया। नहीं मानने पर पर्वत से गिराया, जल में डुबाया, हाथी से रौंदवाया, अग्नि में जलाया पर प्रह्लाद का कुछ न हुआ। तब स्वयं खड्ग लेकर मारने को प्रस्तुत हुआ। पूछा तेरे राम कहाँ हैं। प्रह्लाद ने कहा 'सर्वत्र'। पूछा कि खम्भे में भी हैं? कहा 'हाँ'। हिरण्यकश्यप के गर्जन पर भगवान् उसी खम्भे से नृसिंह रूप में प्रकट हुए और उसका वध करके प्रह्लाद की रक्षा की।

जप का प्रभाव देखो। मेरे शरीर के पास आकर अग्नि भी जल की भाँति शीतल हुई जाती है। यथा : रामनाम जपतां कुतोभयम् सर्वतापशमनैकभेषजम्। पश्य तात मम गात्रसन्निधौ पावकोऽपि सलिलायतेऽधुना। भक्तों की गणना में प्रह्लाद का प्रथम नाम आता है। यथा : प्रह्लादनारदपराशरपुण्डरीकव्यासाम्बरीषशुकशौनकभीष्मकाद्याः। स्वयं भगवान् ने उन्हें भक्तशिरोमणि माना। यथा : भवन्ति पुरुषा लोके मद्भक्तास्त्वामनुव्रताः। भवान् मे खलु भक्तानां सर्वेषां प्रतिरूपधृक्: भागवते।

ध्रुव सगलानि जपेउ हरि नाऊँ। पायेउ अचल अनूपम ठाऊँ॥
सुमिरि पवनसुत पावन नामू। अपने बस करि राखेउ रामू॥३॥

अर्थ : ध्रुव[1] ने ग्लानि के साथ नाम को जपा, सो अचल अनुपम स्थान पाया। हनुमान्‌जी ने पवित्र नाम स्मरण करके रामजी को अपने वश में कर रक्खा।

व्याख्या : पिता और सपत्नि माता से अनादृत होकर ध्रुव ने ग्लानि के साथ जप किया अर्थात् ध्रुवजी अर्थार्थी भक्त थे और वे बिल्कुल बच्चे थे, सो ऐसा पद पाया जैसा कभी किसी ने पाया नहीं और जो कभी चलायमान नहीं होता। यह 'नाम अनेक गरीब नेवाजे। लोक वेद वर विरद विराजे' का उदाहरण है।

हनुमान्‌जी का मन पावन नाम का जप करते करते ऐसा पवित्र हो गया कि रामजी उनके वशमें हो गये। श्रीरामजी को मलिन मन पसन्द नहीं है। यथा : मोहि कपट छल छिद्र न भावा। ग्रन्थकार विनय पत्रिका में लिखते हैं कि साहिब कहीं न राम सो तोसे न वसीले। अर्थात् न तो कहीं राम सा स्वामी है और न हनुमान्‌जी सा कोई साधन है। क्योंकि रामजी हनुमान् के वश में हैं, हनुमान्‌जी के चाहने से ही रामप्राप्ति सुलभ है। ऐसा दूसरा साधन कोई नहीं है। यह 'जनमन अमित नाम किये पावन' का उदाहरण है।

अपतु अजामिलु गजु गनिकाऊ। भये मुकुत हरि नाम प्रभाऊ॥
कहउँ कहाँ लगि नाम बड़ाई। रामु न सकहिं नाम गुन गाई॥४॥

---

१. ध्रुव राजा उत्तानपाद का बेटा था। एक बार वह पिता की गोद में जा बैठा। उसकी विमाता सुरुचि ने यह कहकर कि तू जा भगवान् की आराधना करके मेरे पेट से उत्पन्न हो। तब राजा की गोद में बैठने का अधिकारी होगा। उसे गोद से उतार दिया। ध्रुव को बड़ी ग्लानि हुई। उसने जाकर यह कथा अपनी माता सुनीति को सुनाई। सुनीति ने कहा कि सुरुचि ने परुष वचन कहा। पर बात सत्य ही कही। ध्रुव उसी अवस्था में घर से निकले और नारदजी के उपदेश से। मथुरा में जाकर भगवन्नाम जप किया। उन्हें भगवद्दर्शन हुआ और ध्रुव पद मिला। जिसकी सप्तर्षि सदा प्रदक्षिणा किया करते हैं।

अर्थ : पतित अजामिल[१], गज[२], गणिका[३] भी हरिनाम के प्रभाव से मुक्त हो गये। मैं नाम की बड़ाई कहाँ तक कहूँ, नाम के गुणों को : स्वयं : राम भी नहीं गान कर सकते।

व्याख्या : अजामिल, गज, गणिका सभी साधनों से रहित थे। इसीलिए इन्हें अपत : अपत्र : कहा। ये केवल नाम के प्रभाव से मुक्त हुए। यह 'नाम उधारे अमित खल वेद विदित गुन गाथ' का उदाहरण है।

ग्रन्थकार कहते हैं कि नाममहिमा की सीमा नहीं है और कथन करने का अर्थ ही सीमित करना है। चाहे कितना ही बड़ा वक्ता हो, स्वयं राम ही क्यों न हों, जब किसी वस्तु का कथन करेंगे तो उसे सीमित करना पड़ेगा और राम नाम की महिमा असीम है, वह राम : सगुण ब्रह्म से भी बड़ी है और ब्रह्म : निर्गुण ब्रह्म से भी बड़ी है। इनमें से एक एक के गुण नहीं गाये जा सकते। तब नाम के गुण कैसे गाये जा सकते हैं ?

दो. नाम राम को कलपतरु, कलि कल्यान निवासु।
जो सुमिरत भयो भाँगते, तुलसी तुलसीदासु ॥२६॥

अर्थ : राम का नाम कल्पवृक्ष है। जो कलियुग में कल्याण का निवास स्थान है। जिसके स्मरण करने से तुलसीदास भाँगसे तुलसी हो गये।

व्याख्या : कलिनाम कामतरु राम को।
दलनिहार दारिद दुकाल दुख, दोष घोर घन धाम को ॥१॥
नाम लेत दाहिनो होत मन, वाम विधाता वाम को।
कहत मुनीस महेस महातम उलटे सूधो नाम को ॥२॥

---

१. यह : अजामिल कन्नौज का रहनेवाला एक ब्राह्मण था। पहिले सद्वृत्त था, पीछे से एक व्यभिचारिणी पर आसक्त होकर उसे घर लाया। उसके लिए उसने अपनी पाणिगृहीता भार्या का परित्याग किया। मद्य मांसादि का सेवन करने लगा। चोरी डकैती करने लगा। महापतित हो गया। मरने के समय जब उसे लेने यमदूत आये तब बहुत डरा। अपने छोटे लड़के नारायण को पुकारा। मरने के समय नामोच्चारण के माहात्म्य से विष्णु-दूत आगये और उसे छुड़ा लिया। उसकी आयु बढ़ गई और उसने शेष जीवन भगवद्भक्ति में बिताया।

२. क्षीरसागर में त्रिकूट नाम का एक पर्वत है। उसपर एक बहुत बड़ा सरोवर है। उसी में गज अपनी हथिनियों के साथ जलक्रीड़ा करता था, उसे ग्राह ने पकड़ लिया। दोनों में बड़ा युद्ध हुआ पर अन्त में गज थक गया। डूबने के समय भगवान् को पुकारा। भगवान् प्रकट हुए और ग्राह को मारकर गज का उद्धार किया। दोनों को मुक्ति दी। गज पूर्व जन्म में इन्द्रद्युम्न नाम का राजा था। ग्राह भी गन्धर्व था। शाप से इन योनियों को प्राप्त हुए थे।

३. इस गणिका का नाम जीवन्ती था। परशु नामी वैश्य की स्त्री थी। उसके मरने पर इसने वेश्या वृत्ति कर ली। उसने एक तोता पाल रक्खा था। उसे राम नाम पढ़ाती थी। सो नाम के प्रभाव से वह तर गई।

भलो लोक परलोक तासु, जाके बल ललित ललाम को ।
तुलसी जग जानियत नामते सोचन कूच मुकाम को ।।३।।

कलियुग में कोई दूसरा कल्पतरु नहीं है, कारण बताते हैं कि कलियुग में यही कल्याण का निवास है अथवा कल्याण का यही पता है। जिसे कल्याण की कामना हो, वह नामकल्पतरु की उपासना करे। उदाहरण में ग्रन्थकार अपने को देते हैं कि मैं भाँग की भाँति अग्राह्य था। सो आज नाम के प्रभाव से 'तुलसी माई' की भाँति मेरी पूजा होती है। भगवान् की प्रीति चाहनेवाले भी मेरी पूजा करके रामजी का अनुग्रह चाहते हैं।

चहुँजुग तीनि काल तिहुँ लोका। भये नाम जपि जीव बिसोका ।।
वेद पुरान संत मत एहू। सकल सुकृत फल राम सनेहू ।।१।।

अर्थ : चारों युगों में, तीनों कालों में और तीनों लोकों में नाम जपकर जीव शोक रहित हुए हैं। वेदपुराण और सन्तों का यही मत है कि सारे पुण्य-कर्मों का फल रामजी में प्रेम का होना है।

व्याख्या : चहुँ युग से एक ही चौकड़ी : चतुर्युग का ग्रहण होगा। इसलिए तीन काल कहा। तिहुँलोक से सब देश कहा। अर्थात् सभी देश और सभी काल में नाम जप सार्वभौम धर्म है। इसके करने से मनुष्य अभय पद को प्राप्त होता है।

'यस्य नाम[१] महद्यशः' यह वेदमत है और 'यस्य स्मृत्या[२] च नामोक्त्या तपोयज्ञक्रियादिषु। न्यूनं सम्पूर्णतां याति सद्यो वन्दे तमच्युतम् ।' यह पुराणमत है। 'तीर्थाटन साधन समुदाई। जोग बिराग ज्ञान निपुनाई। नाना कर्म धर्म व्रत दाना। संजम दम जप तप मख नाना। भूत दया द्विज गुरु सेवकाई। विद्या विनय विवेक बड़ाई। जहँ लगि साधन वेद बखानी। सब कर फल हरि भगति भवानी।' यह शिवमत है। अथवा 'भगवन्तं विभुं नित्यं पूर्णं बोधसुखात्मकम्। [३]यद् गृह्णाति द्रुतं चित्तं किमन्यदवशिष्यते।' यह सन्त मधुसूदन स्वामी का मत है।

सब साधनों की त्रुटि भगवत्स्मरण तथा नाम कीर्तन से दूर होती है। भगवद्भक्ति ही सब साधनों का फल है। इस बात को दिखलाकर अब यह दिखलाते हैं कि अन्य युगों में और भी साधन हैं। यथा :

ध्यानु प्रथम जुग मख बिधि दूजें। द्वापर परितोषत प्रभु पूजें ।।
कलि केवल मल मूल मलीना। पाप पयोनिधि जन मन मीना ।।२।।

अर्थ : प्रथम युग में ध्यान से, दूसरे में यज्ञ से, द्वापर में पूजन से भगवान्

---

१. जिसके नाम का बड़ा यश है।

२. जिसके स्मरण से, नाम लेने से, तप यज्ञादि क्रिया की न्यूनता तुरन्त पूरी हो जाती है, उस अच्युत भगवान् को मैं नमस्कार करता हूँ।

३. चित्त विगलित होने पर यदि विभु नित्य पूर्ण बोध सुखात्मक भगवान् का ग्रहण करे, तो शेष ही क्या रह जाता है?

प्रसन्न होते हैं, पर कलियुग केवल मल का मूल, मलिन और पाप का समुद्र है और जिसमें मनुष्य का मन मछली हो रहा है।

व्याख्या : प्रथम युग सत्ययुग में शुद्ध सत्त्वगुण वर्तता है। सबका मन प्रसन्न रहता है। निर्विकार चित्तैकसाध्य ध्यान सम्भव है। अतः सत्ययुग के लिए ध्यान से प्रभुका प्रसन्न होना बतलाया। त्रेता में सत्त्व बहुत रहता है, पर रजोगुण का अनुवेध आ जाता है। ध्यान की योग्यता नहीं रहती। सपत्नीक होकर यज्ञकर्म कर सकता है और भगवान् यज्ञ से प्रसन्न हो जाते हैं। द्वापर में सत्त्व बहुत थोड़ा रह जाता है। रजोगुण का बाहुल्य हो जाता है। कुछ तमोगुण का भी प्रवेश हो जाता है। इसलिए दीर्घकालिक यज्ञ असम्भव हो जाता है। इस युग में अल्पायास तथा अल्पकालसाध्य पूजन सम्भव है। अतः भगवान् पूजन से प्रसन्न होते हैं।

कलियुग में सत्त्व का नाम नहीं। तमोगुण का बाहुल्य रहता है। थोड़ा रजोगुण का अनुवेध रहता है। इसलिए कलियुग को मल का मूल और मलीन कहा। पापसमुद्र में मनुष्य का मन मछली की भाँति विहार करता है। पाप से बाहर निकाल दिया जाय तो छटपटाकर मर जाय। इसमें लोगों को अन्य धर्म में अधिकार ही नहीं है। यथा : रामेति वर्णद्वयमादरेण सदा जपन् मुक्तिमुपैति जन्तुः। कलौ युगे कल्मषमानसानामन्यत्रधर्मे खलु नाधिकारः। कलि से कलुषित मनवाले को नामस्मरण छोड़कर दूसरे धर्म में अधिकार नहीं है।

नाम कामतरु काल कराला। सुमिरत समन सकल जगजाला ॥
राम नाम कलि अभिमत दाता। हित परलोक लोक पितु माता ॥३॥

अर्थ : इस कराल काल में नाम कल्पवृक्ष है जो स्मरण करने से संसार के जाल का नाश कर देता है। राम का नाम कलियुग में मनचाहा देनेवाला है। परलोक में हित है और इस लोक में माता-पिता है।

व्याख्या : राम नाम को कल्पतरु कहकर जिस प्रसङ्ग को आरम्भ किया, 'नाम कामतरु काल कराला' कहकर उसका उपसंहार करते हैं। इस भयानक काल में ध्यान, यज्ञ, पूजा कुछ भी फलदायक नहीं हो सकता। केवल नाम ही कल्पवृक्ष है। विशेषता यह है कि इसके स्मरण से जगजाल कट जाता है जिसमें फँसकर पापपयोनिधि की मछली मारी जाती है। कल्पवृक्ष के जब निकट जाय, उसे पहिचाने; उसकी छाया में जाय तब शोकहरण करता है। माँगने पर अभिमत देता है। यथा : जाय निकट पहिचानि तरु, छाँह समति सब सोच। माँगत अभिमत पाव जग, राउ रंक भलपोच।

सो कामतरु भी कलि में अभिमतदाता नहीं है। अभिमत दाता है रामनाम। कामतरु लोक परलोक दोनों नहीं सँभालता। नाम सँभालता है। यथा : रोटी लूगा नीके राखै, आगेहू कै वेद भाखै : विनय।

नहिं कलि करम न भगति विवेकू। राम नाम अवलंबन एकू ॥
कालनेमि कलि कपट निधानू। नाम सुमति समरथ हनुमानू ॥४॥

अर्थ : कलियुग में न कर्म है, न भक्ति है, न ज्ञान है एक रामनाम का अवलम्ब है। कपट के निधान कलियुगरूपी कालनेमि के लिए राम का नाम सुमति वाला समर्थ हनुमान् है।

व्याख्या : कलियुग में तीनों काण्डों में से किसी की कुछ नहीं चलती। अतः इसका भरोसा नहीं कर सकते। केवल रामनाम का भरोसा है।

लंका में बड़े बड़े मायावी थे। पर कालनेमि के नीचे सब थे। जहाँ किसी का बल नहीं चलता था वहाँ कालनेमि का कपट काम करता था। यहाँ कलियुग कालनेमि है। इसने ध्यान, यज्ञ, पूजन, कर्म, ज्ञान और उपासनादि सभी साधनों को पराभूत कर दिया। पर इसकी मौत नामरूपी हनुमान् के हाथ से है। सुमति और समर्थ के आगे कपट चलता नहीं। नामरूपी हनुमान् सुमति भी हैं और समर्थ भी हैं। अतः केवल नाम पर कलियुग का बल नहीं चलता। वहाँ कलियुग मारा जाता है। इससे यह दिखलाया कि नाम कलियुग से अपनी रक्षा में समर्थ है।

दो. राम नाम नरकेसरी, कनककसिपु कलिकालु।
जापक जन प्रहलाद जिमि, पालिहि दलि सुरसालु ॥२७॥

अर्थ : राम नाम नृसिंह है। कलियुग हिरण्यकश्यप है। देवताओं को दुःख देने वाले को मारकर प्रह्लाद की भाँति जप करनेवालों की रक्षा करेगा।

व्याख्या : यहाँ यह दिखलाते हैं कि नाम अपनी रक्षा तो कर ही लेता है, अपने जापक की भी रक्षा करता है। इस रूपक में रामनाम तो नृसिंह है और कलिकाल हिरण्यकश्यप है, जापक जन प्रह्लाद हैं। परन्तु वे देवता कौन हैं जिन्हें कलिरूपी हिरण्यकश्यप दुःख देता था ? अतः बिना इस कमल की पुरइन खोजे काम चल नहीं सकता। इसकी पुरइन है 'सदगुन सुरगन अंब अदिति सी।' यहाँ सद्गुण ही सुरगण हैं जिन्हें कलिरूपी हिरण्यकश्यप दुःख देता है। पर 'सहेउ सुरन्ह बहु काल विषादू। नरहरि प्रकट कीन्ह प्रहलादू।' कलिकाल सद्गुणों का वैरी है, सद्गुण वाले महात्माओं को महादुःख देता है। यथा :

दीनदयाल दुरित दारिद दुख, दुनी दुसह तिहुँ ताप तई है।
देवदुवार पुकारत आरत, सबकी सब सुख हानि भई है ॥१॥
प्रभु के वचन वेद बुध सम्मत, मम मूरति महिदेव भई है।
तिनकी मति रिसि राग मोह मद, लोभ लालची लीलि लई है ॥२॥
राज समाज कुसाज कोटि कटु, कलपत कलुष कुचाल नई है।
नीति प्रतीति प्रीति परमिति पति, हेतु वाद हठि हेरि हई है ॥३॥
आश्रम वरन धरम विरहित जग, लोक वेद मरजाद गई है।
प्रजा पतित पाखण्ड पापरत, अपने अपने रंग रई है ॥४॥
सांति सत्य सुभरीति गई घटि, वढ़ी कुरीति कपट कलई है।
सीदत साधु साधुता सोचति, खल विलसत हुलसत खलई है ॥५॥
परमारथ स्वारथ साधन भए, अफल सकल नहिं सिद्धि सई है।
कामधेनु धरनी कलि गोमर, विवस विकल जामति न वई है ॥६॥

कलि करनी वरनिये कहाँलौं, करत फिरत विनु टहल टई है।
तापर दांत पोसि कर मीजत, को जानै चित कहा ठई है ॥७॥
त्यौं त्यौं नीच चढ़त सिर ऊपर, ज्यौं ज्यौं सील वस ढील दई है।
मूरख वरजि तरजिए तरजनी, कुम्हिलैहै कोंहड़ेकी जई है ॥८॥

विनय पं. १३९

पर जब रामनाम के जापक को दुःख देता है तो नाम द्वारा ही मारा जाता है।

भाय कुभाय अनख आलसहूँ। नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ॥
सुमिरि सो नाम राम गुन गाथा। करौं नाइ रघुनाथहि माथा ॥१॥

अर्थ : भाव से, कुभाव से क्रोध से या आलस्य से भी नाम जपने से दशों दिशाओं में मङ्गल होता है। उसी नाम का स्मरण करके रघुनायक जी को मस्तक नवाकर राम के गुणों की गाथा रचता हूँ।

व्याख्या : भाव से नाम जप : 'सादर सुमिरन जे नर करहीं। भव वारिधि गोपद इव तरहीं।' कुभाव से नाम जप : 'विवसहु जासु नाम नर कहहीं। जनम अनेक रचित अघ दहहीं।' अनख से नाम जप : 'उमा राम मृदु चित करुना कर। वैरभाव सुमिरत मोहि निसिचर। देहिं परम गति अस जियजानी। को कृपाल अस अहै भवानी।' आलस से नाम जप : 'राम राम कहि जे जमुहाहीं। तिनहि न पाप पुंज समुहाहीं।' ऐसे नाम का स्मरण और नामी को प्रणाम करके, ग्रन्थकार रामगुन गाथा की रचना का संकल्प करते हैं। 'वन्दौं नाम राम' से उपक्रम करके 'सुमिरि सो नाम राम' से प्रकरण का उपसंहार करते हैं। क्योंकि :

एकस्यैवात्मनो भेदौ शब्दार्थवत्पृथक् स्थितौ।
प्रकाशकः प्रकाश्यश्च कार्यकारणरूपता ॥

अर्थ : परमार्थ दृष्टि से शब्द और अर्थ अभिन्न हैं। आत्मा ही शब्द है और आत्मा ही अर्थ है। ब्रह्म ही प्रकाशक है और ब्रह्म ही प्रकाश्य रूप से, कार्यकारणभाव से उपलब्ध होते हैं। नव दोहों में नाम वन्दना की। नौ तक ही अङ्क हैं। इसी भाँति धर्म और लोक परलोक का सुख नाम तक ही है। इस बात को द्योतित किया। 'नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ' तक नाम प्रकरण समाप्त हुआ। अब 'करौं नाइ रघुनाथहि माथा' यहाँ से रूप वर्णन आरम्भ हुआ।

रामस्य नाम रूपञ्च लीलाधाम परात्परम्।
एतच्चतुष्टयं नित्यं सच्चिदानन्दविग्रहम् ॥ व. सं.

अर्थ : रामजी के नाम, रूप, लीला और परात्पर धाम ये चारों नित्य सच्चिदानन्द विग्रह हैं। सो नाम का वर्णन हो चुका। शेष तीनों का वर्णन भी क्रम से होगा।

निज गुण दोष

मोरि सुधारिहि सो सब भाँती। जासु कृपा नहिं कृपाँ अघाती॥
राम सुस्वामि कुसेवकु मोसो। निजदिसि देखि दयानिधि पोसो ॥२॥

अर्थ : जिनकी कृपा, कृपा : करने : से अघाती नहीं वे ही सब प्रकार से मेरी : बिगड़ी : सुधारेंगे। राम ऐसे अच्छे मालिक और सेवक मुझसा बुरा सो अपनी ओर देखकर दयानिधान ने पालन किया।

व्याख्या : सभी प्रभुओं में कृपा होती है, सेवक पर कृपा भी करते हैं, पर उनकी एक सीमा होती है, जहाँ पहुँचने पर उनकी कृपा समाप्त हो जाती है। आगे जाना नहीं चाहती। यथा : रावन कुंभकरन वर माँगत सिव विरंचि वाचा छल्यौ। परन्तु कृपानिधि की अपूर्व कृपा तो बिगड़ी हुई बात को बनाती है। यथा : बिगरी बनावै कृपानिधि की कृपा नई। बिगरी जन्म अनेक की सुधरै अबहीं आज। अघाती नहीं, कृपा करती ही चली जाती है। इसलिए अपूर्व कहा। भाव यह कि 'भनिति मोरि सबगुनरहित' है उसे कृपानिधि सुधार देंगे।

श्रीरामजी बड़े शीलनिधान हैं, इसलिए 'सुस्वामि' कहा। यथा : तुलसी कहूँ न राम ते साहिब सील निधान : और ग्रन्थकार कहते हैं कि मैं शठ सेवक हूँ। शठ सेवक किसी प्रकार पोषण योग्य नहीं है क्योंकि वह मालिक को सदा शूल की भाँति कष्टदायक है। यथा : सेवक सठ नृप कृपिन कुनारी। कपटी मित्र सूल सम चारी : फिर भी कृपालु ने अपनी ओर देखकर मेरा पालन किया। यथा : तबहुँ कृपाल हेरि निज ओरा। सबहिं भाँति भल मानेउ मोरा।

लोकहुँ वेद सुसाहिब रीती। विनय सुनत पहिचानत प्रीती ॥
गनी गरीब ग्राम नर नागर। पंडित मूढ मलीन उजागर ॥३॥

अर्थ : लोक और वेद में अच्छे स्वामी की यही रीति है कि विनय सुनते ही प्रीति को पहिचान लेते हैं। धनी और निर्धन, गँवार और नगर निवासी, पण्डित और मूढ़, मलीन और उज्ज्वल : उजागर।

व्याख्या : ऊपर सुस्वामी कह आये। अब उनकी रीति कहते हैं कि विनय सुनते ही प्रीति की पहिचान कर लेते हैं। यथा : प्रीति पहिचान, यह रीति दरबार की। सुस्वामी का यह लक्षण लोक और वेद में प्रसिद्ध है अर्थात् सर्वसम्मत है। विनय करनेवालों की पाँच जोड़ी हैं। १. अमीर-गरीब २. गँवार-चतुर ३. पण्डित-मूढ़ ४. मलीन और निर्मल

सुकवि कुकवि निज मति अनुहारी। नृपहि सराहत सब नर नारी ॥
साधु सुजान सुसील नृपाला। ईस असंभव परम कृपाला ॥४॥

अर्थ : सुकवि और कुकवि, सब स्त्री पुरुष अपनी बुद्धि के अनुसार राजा की प्रशंसा करते हैं। राजा, साधु, सुजान, सुशील, ईश्वर के अंश से उत्पन्न और परम कृपालु होता है।

व्याख्या : चार जोड़ी पहिले कह आये तथा ५. सुकवि और कुकवि, इन पाँचों जोड़ियों में स्त्री और पुरुष दोनों का ग्रहण है। इधर राजा में भी पाँच गुण होते हैं : १. साधु २. सुजान ३. सुशील ४. ईश-अंशभव और ५. परम कृपाल। यदि राजा में ये गुण न हों तो समझना चाहिए कि वह ईश-अंशभव नहीं है, असुर अंश से है।

सुनि सनमानहिं सबहिं सुबानी । भनिति भगति नति गति पहिचानी ॥
यह प्राकृत महिपाल सुभाऊ । जानि सिरोमनि कोसलराऊ ॥५॥

अर्थ : प्रशंसा : सुनकर राजा, सुवाणी, भनिति, भक्ति, नति और गति को पहिचानकर सबका सम्मान करता है। यह तो साधारण राजाओं का स्वभाव है। कोसल के राजा तो जानकारों के शिरोमणि हैं।

व्याख्या : विनय के गुणों के भी पाँच भेद हैं : १. सुवाणी २. भनिति ३. भगति ४. नति और ५. गति। राजा अपने पाँचों गुणों को काम में लाकर पाँचों प्रकार के प्रशंसकों के विनयों में पाँचों गुणों पर क्रमशः विचार करता हुआ यथोचित सबका सम्मान करता है। राजा साधु है। अमीर गरीब की अमीरी गरीबी नहीं देखता उनकी सुवाणी[1] देखता है। राजा सुजान है, गँवार चतुर के गँवारपन और चतुरता पर ध्यान न करके, उनकी भणिति : उक्ति : परखता है। राजा सुशील है। पण्डित मूढ़ की पण्डिताई और मूढ़तापर नहीं जाता। उनकी भक्ति लखता है। राजा ईश अंशभव है। मलीन उजागर के स्थूल मालिन्य के तारतम्य पर विचार नहीं करता। उनकी नति देखता है। राजा परम कृपाल है। सुकवि कुकवि सबकी कविता सुनता है। पर उनकी गति देखता है कि इसकी पहुँच कहाँ तक है।

---

१ : १. मधुर कोमल और मनोहर वाणी को सुवाणी कहते हैं। यथा : मृगविलोकि खग बोलि सुबानी। सेवहिं सकल राम प्रिय जानी। सुवाणी का आदर करता है। यथा : ऐसी बानी बोलिये मन का आपा खोय। औरन को शीतल करै, आपौ सीतल होय। चाहे उसे धनी ने कहा हो चाहे कंगाल ने। २. ग्राम नर की भणिति ग्राम्य भाषा में होती है और नागर की भणिति सुसंस्कृत होती है, पर राजा सुजान है, वह भाषा की परीक्षा नहीं करता, वह देखता है कि लोकहितैषिता किस भणिति में है। यथा : कीरति भनिति भूत भलिसोई। सुरसरि सम सबकर हित सोई। ३. पण्डित जो कहना चाहता है, उसे बड़ी पण्डिताई से सामने रखता है। मूढ़ के कहने में बनी बात बिगड़ जाती है। पर राजा सुशील है दोनों की सुनता है और देखता है कि भक्ति किसमें है। ४. मलिन पुरुष की उपस्थिति अस्पृहणीय होती है। उज्ज्वल पुरुष की उपस्थिति सभी चाहते हैं। पर राजा ईश-अंश-भव है, वह उसकी नति नम्रता का आदर करता है। ५. सुकवि की रचना परम मनोहर होती है। कुकवि की रचना आकर्षक नहीं होती। पर राजा परम कृपाल है, दोनों की सुनता है और देखता है कि किसकी कितनी गति है। जिससे उपमा देते न बने वही कुकवि है। यथा : सीयवरनि जो उपमा देई। कुकवि कहाइ अजस को लेई। किसी कवि ने ब्रह्म की उपमा अपनी पुरानी धोती से दे डाली। उसके कुकवि होने में क्या सन्देह है, पर उसकी गति देखिये। वह कहता है 'आदि-मध्यान्तरहितं दशाहीनं पुरातनं। अद्वितीयमहं वन्दे मद्धोतसदृशं हरिम्। मैं उस हरि की वन्दना करता हूँ, जो मेरी धोती के से हैं। क्योंकि मेरी धोती भी आदि, मध्य, अन्त रहित दशाहीन : बिना किनारे की : हरि पक्ष में जाग्रदादि अवस्थात्रय हीन : पुरातन और अद्वितीय हैं। पर राजा ने उस कवि का आदर किया।

ऐसा स्वभाव सामान्य राजाओं में भी पाया जाता है। कोसलाधिपति रामजी तो जानि शिरोमणि हैं। उनकी सारग्राहिता के लिए क्या कहा जाय ?

रीझत राम सनेह निसोतें। को जग मंद मलिन मति मोतें ॥६॥

अर्थ : रामजी तो शुद्ध स्नेह से रीझ जाते हैं, मुझ सा मन्द और मलिन बुद्धिवाला संसार में कौन है ?

व्याख्या : रामजी जानि शिरोमणि हैं। वे और कुछ नहीं देखते वे तो शुद्ध स्नेह पर रीझते हैं। यहाँ स्नेह शब्द श्लिष्ट है। स्नेह का अर्थ तेल भी है सो तैलधारावत् अविच्छिन्न प्रेम होना चाहिए। मैं मन्द और मलिन मतिवालों का सिरताज हूँ। मनुष्य शरीर पाकर भवसन्तरण का उपाय न किया। अवसर चूक गया इसलिए मन्दमति हूँ। यथा : अहह मन्द मन अवसर चूका। और मन में बोध नहीं आता। इसलिए मलिनमति हूँ। यथा : तदपि मलिन मन बोध न आवा। मुझमें पाँचों का अभाव है।

दो. सठ सेवक की प्रीति रुचि, रखिहहिं राम कृपालु।
उपल किये जलजान जेहिं, सचिव सुमति कपि भालु ॥२८॥ क
हौंहु कहावत सबु कहत, राम सहत उपहास।
साहिब सीतानाथ सो, सेवक तुलसीदास ॥२८॥

अर्थ : कृपालु रामजी शठ सेवक की प्रीति और रुचि रक्खेंगे, जिन्होंने पत्थर को जहाज और बन्दर भालु को बुद्धिमान् मन्त्री बनाया। मैं भी कहलाता हूँ और सब लोग कहते हैं और रामजी उपहास सहते हैं कि सीतानाथजी से स्वामी को तुलसीदास जैसा सेवक मिला है।

व्याख्या : ग्रन्थकार की प्रीति 'रघुपति गुणगाथा की रचना' में है। यथा : करन चहौं रघुपति गुनगाहा : और रुचि है कि उसका 'साधु समाज में सम्मान हो।' यथा : साधु समाज भनिति सनमानू : और ग्रन्थकार अपने को शठ सेवक मानते हैं। शूलरूप शठ सेवक से सभी दूर रहना चाहते हैं, उसकी प्रीति और रुचि कौन रखने लगा ? पर राम कृपालु रक्खेंगे, क्योंकि वे ऐसी कृपा करते आये हैं। उन्होंने ही पत्थर को जहाज : सन्तरण की सामग्री और बन्दर भालु को सुमति सचिव बनाया है।

ग्रन्थकार कहते हैं कि मेरी बुद्धि पत्थर सी है। जो स्वयं डूबता है और उसके साथ सम्बन्ध रखनेवाले को भी डुबाता है। मैं सेवक बनकर रघुनाथ की गुणगाथा करने चला, इससे मेरा उपहास तो होगा ही श्रीरामजी का भी उपहास होगा। मेरी मति कपिभालु सी है। यथा : प्रभु तरु तर कपि डार पर। मेरे भणित का सम्मान साधु समाज में कैसे होगा ? सो रामकृपाल मेरी प्रीति रक्खेंगे। उसे सच्ची भक्ति में परिणत कर देंगे और रचना को जहाज बना देंगे, जो स्वयं तरेगा और अपने आश्रित को भी तारेगा। मेरी रुचि को भी वे ही रक्खेंगे। मेरी रचना का साधुसमाज में सम्मान होगा। सुमति सचिव की भाँति मेरा मत ग्रहण किया जायगा।

मैंने कपट से ऐसा वेष बना रक्खा है। कण्ठी, छापा तिलक लगा रक्खा है कि मुझे लोग रामसेवक कहने लगें। मुझे ऐसा कहलाना प्रिय है, पर सेवक स्वामी के

स्वरूपानुकूल होता है। यथा : सेवक भयो पवनपूत साहिब अनुहरत। सो मेरे जैसे के सेवक कहे जाने से स्वामी रामजी का उपहास है। रामजी उपहास सह लेते हैं, मुझ पर अप्रसन्न नहीं होते।

अति बड़ि मोरि ढिठाई खोरी। सुनि अघ नरकहु नाक सँकोरी॥
समुझि सहम मोहिं अपडर अपने। सो सुधि राम कीन्हि नहिं सपने॥१॥

अर्थ : यह मेरी बहुत बड़ी ढिठाई और दोष है, इस पाप को सुनकर नरक ने भी नाक सिकोड़ा। यह समझकर मैं कल्पित डर से सहम गया था, पर रामजी ने इसका स्वप्न में भी ख्याल नहीं किया।

व्याख्या : १. प्रभु की स्वीकृति बिना मैं अपने मन से सेवक बन बैठा। यह ढिठाई की परा सीमा है और २. इससे रामजी का उपहास होता है। यह बड़ा भारी दोष अर्थात् रामापराध है। दोनों ही बड़े भारी पाप हैं जिनको सुनकर नरक ने नाक सिकोड़ा कि क्या ऐसे पापी को भी मुझे स्थान देना होगा? श्रीग्रन्थकार कहते हैं कि मैं तो ऐसा समझकर अपने कल्पित भय से डर गया। यथा : अपडर डरयों न सोच समूले : पर रामजी ने मेरी प्रीति रक्खी, उन महापापों का भी ख्याल नहीं किया।

सुनि अवलोकि सुचित चख[1] चाही। भगति भोरि मति स्वामि सराही॥
कहत नसाइ होइ हिअ नीकी। रीझत राम जानि जन जी-की॥२॥

अर्थ : सुनकर और सुचित की आँखों से देखकर : मेरी : भक्ति से भोरीमति की स्वामी ने प्रशंसा की। जो कहने में बिगड़ जाय पर हृदय से अच्छी हो तो रामजी जन के जी की जानकर रीझ जाते हैं।

व्याख्या : सुना कि तुलसीदास सेवक बना फिरता है। समझा भी कि इसके सेवक बनने से मेरी हँसी होती है फिर भी प्रभु ने मेरी रुचि रक्खी। कहा कि भक्ति से उसकी बुद्धि भोरी हो गई है। बिना स्वीकृति के ही भक्त बना फिरता है। मेरी भक्ति की सराहना करने से मेरी भक्ति भी सच्ची हो गई। अब साधु समाज में भणित का सम्मान भी होगा। 'होइहि अतिनीकी' पाठ मानने से यह अर्थ करना होगा कि जो कहते न बने वह भी अत्यन्त अच्छी हो जायगी। क्योंकि रामजी तो जन के जी की बात जानकर रीझ जाते हैं। यथा : को जिय की रघुवर बिन बूझै।

ग्रन्थकार कहते हैं कि मेरे जी में है कि 'रघुपति गुनगान करूँ।' यथा : करन चहौं रघुपति गुनगाहा : इतने पर ही रामजी रीझेंगे। मुझसे कहते नहीं बनेगा। इस बात पर ध्यान न देंगे। क्योंकि उनका ऐसा स्वभाव है कि जन के जी की जानकर रीझ जाते हैं। मैंने शठता की। अयोग्य होकर रामदास बनना चाहा सो सरकार में चूक का लेखा न होगा। मेरी सच्ची लगन देखी जायगी।

रहति न प्रभुचित चूक किये की। करत सुरति सय वार हियेकी॥
जेहि अघ वधेउ व्याध जिमि वाली। फिरि सुकंठ सोइ कीन्हि कुचाली॥३॥

---

१. चाही = से।

अर्थ : श्रीरामजी के चित्त में चूक किये की स्मृति नहीं रहती। हृदय की स्मृति सौ बार करते हैं। जिस पाप से वालि को व्याध की भाँति मारा वही कुचालि फिर सुग्रीव से हो पड़ी।

व्याख्या : जो पाप वालि से हुआ वही सुग्रीव से हुआ। अनुज अग्रज के भेद से पाप में भेद नहीं। अनुज वधू कन्या सम है; तो अग्रज वधू माता सम है। 'अनुज वधू भगिनी सुत नारी' में जो 'अनुज' शब्द का प्रयोग है सो प्रसङ्गानुकूल होने के कारण से है। यथा : बन्धु वधू रत कहि कियो वचन निरुत्तर वालि। तुलसी प्रभु सुग्रीव की चितइ न कछू कुचालि। जानबूझकर कि ऐसे कुचाल का प्रभु ऐसा दण्ड देते हैं। स्त्रीचरित्र में फँस गये। वालि की भाँति हृदय दूषित नहीं था, जिसने कि दण्ड रूप में सर्वस्व और स्त्री भी हरण की और सुग्रीव के वध के लिए सदा सचेष्ट रहता था।

सोइ करतूति बिभीषन केरी। सपनेहुँ सो न राम हियँ हेरी ॥
ते भरतहि भेटत सनमाने। राजसभाँ रघुबीर बखाने ॥४॥

अर्थ : वही करतूति विभीषण की है। पर इसे रामजी ने स्वप्न में भी हृदय से नहीं देखा : मन में नहीं लाये। भरतजी से मिलने के समय रामजी ने उनका सम्मान किया और सभा में उनका बखान किया।

व्याख्या : बिभीषण भी इसी भाँति मायाजाल में जा पड़े। मन्दोदरी परम सुन्दरी नारि ललामा थी, सो उसकी माया में आ जाना चूक है। हृदय में अभिलाषा न थी कि लङ्का और मन्दोदरी प्राप्त करें। रामजी ने इसका ख्याल ही नहीं किया। क्योंकि उनकी कृपा अघाती कृपा नहीं है।

इतना ही नहीं, भरत ऐसे भाई से मिलने के समय, सुग्रीव और विभीषण का सम्मान किया। यथा : राम सराहे उठि, भरत मिले राम समजानि : और राजसभा में सप्तद्वीप के राजा प्रजा, श्रीवशिष्ठजी तथा सुमन्त आदि के सम्मुख, उनका बखान किया।

दो. प्रभु तरुतर कपि डार पर, ते किये आपु समान।
तुलसी कहूँ न राम से, साहिब सील निधान ॥२९॥ क
राम निकाई रावरी, है सबही को नीक।
जौ यह साँची है सदा, तौ नीको तुलसीक ॥२९॥ ख
एहि विधि निजगुन दोष कहि, सबहि बहुरि सिरनाइ।
बरनउँ रघुबर बिसद जसु, सुनि कलि कलुष नसाइ ॥२९॥

अर्थ : प्रभु तो वृक्ष के नीचे और बन्दर डारपर, उन्हें अपने समान बना लिया। तुलसीदासजी कहते हैं कि राम के समान शीलनिधान स्वामी कहीं नहीं है। हे रामजी! आपकी भलाई सबको भली है। यदि यह बात सदा सत्य है तो तुलसीदास को भी भली है। इस प्रकार अपना गुण और दोष कहकर और

सबको सिर नवाकर रघुवर का निर्मल यश वर्णन करता हूँ। जिसके सुनने से कलि-मल नष्ट हो जाते हैं।

व्याख्या : सुग्रीव और विभीषण प्रसिद्ध थे अतः इनका नाम लेकर कहा, नहीं तो अपराध बहुतों से बन पड़ा, किसका किसका नाम लिया जाय। प्रभु पेड़ तले बैठे, बन्दर पूँछ लटकाकर प्रभु के ऊपरवाली डाली पर जाकर बैठे। अमर्याद की सीमा हो गई। रामापराध भी बन पड़ा। पर यह उनकी चूक थी। उन्होंने अपनी समझ में न ढिठाई की न अपराध किया। उन्हें अपने समान बनाया। यथा : मोहि सहित सुभ कीरति तुम्हारी, पर प्रीति जे गाइहैं। संसार सिंधु अपार पार, प्रयास बिनु नर पाइहैं।

यहाँ स्वरूप वर्णन[1] प्रकरण समाप्त होता है।

रामजी किसी के विरोधी नहीं हैं। यथा : अरिहुक अनभल कीन्ह न रामा। रामजी को सब प्रिय हैं। यथा : सब मम प्रिय सब मम उपजाये। सब पर प्रीति प्रतीति जिय, जानिय आपु समान। राम ही भले हैं। यथा : जग अनभल भल एक गोसाँई। कहहु होइ भल कासु भलाई। उनकी भलाई सबके लिए भली है। अतः तुलसी के लिए भी भली है। विनय में कहा है :

राम भलाई आपनी भल कियो न काको।
जुग जुग जानकीनाथ को जग जागत साको ॥१॥
ब्रह्मादिक विनती करी, कहि दुख वसुधा को।
रविकुल कैरव चन्द्रभो, आनन्द सुधा को ॥२॥
कौसिक गरत तुषार ज्यों, लखि तेज तिया को।
प्रभु अनुदिन हित को दियो, फल कोप कृपा को ॥३॥
हरचौ पाप आप जाइके, संताप सिला को।
सोच मगन काढ्यौ सही साहिब मिथिला को ॥४॥
रोष रासि भृगुपति धनी, अहमिति ममता को।
चितवत भाजन करिलियो, उपशम समता को ॥५॥
मुदित मानि आयसु चले, वन मातु पिता को।
धरम धुरंधर धीर धुर, गुनसील जिता को ॥६॥
गुह गरीब गत ज्ञातिहू, जेहि जिउ न भखा को।
पायो पावन प्रेम ते, सनमान सखा को ॥७॥
सद्गति सवरी, गीध की, सादर करता को।
सोच सींव सुग्रीव के, संकट हरता को ॥८॥
राखि बिभीषन को सकै अस काल गहा को।
आज विराजत राज है दसकंठ जहाँ को ॥९॥

---

१. पहिले नव दोहों में नाम वर्णन किया। फिर दो दोहों में स्वरूप वर्णन किया। इसके बाद क्रम से लीला और धाम वर्णन करेंगे।

वालिस वासी अवध को, बूझिये न खाको।
सो पाँवर पहुँचों तहाँ जहँ मुनि मन थाको ॥१०॥
गति न लहै रामनाम सों, विधिसो सिरिजा को।
सुमिरत कहत प्रचारि कै, वल्लभ गिरिजा को ॥११॥
अकनि अजामिल की कथा, सानंद न भाको।
नाम लेत कलि कालहू, हरि पुरहिं न गा को ॥१२॥
रामनाम महिमा करै काम भूरुह आको।
साखी वेद पुरान है, 'तुलसी तन ताको' ॥ २ : वि. प. १५२

इस विधि से अपना गुण दोष कहा। यह कवि की आर्ति है। सबको फिर से प्रणाम किया। यह दीनता और विनय है। इस भाँति तीसरी बार जल का हलकापन कहा : समष्टि और कवि समाज से पहिले कह आये हैं : आरति विनय दीनता मोरी। लघुता ललित सुवारि न खोरी। भाव यह है कि हलकापन की सराहना जलके आचमन के बाद की बात है। इस भाँति मानससर में अवगाहन के पहिले, तीन बार आचमन करने की बात कही।

'काल सदा दुरति क्रम भारी' सो उसका मल भी रघुवर यश के सुनने से नष्ट हो जाता है। अब समष्टि को फिर से प्रणाम करके श्रीग्रन्थकार रघुवर-विशद-यश वर्णन करते हैं।

कथापरिचय

जाग[1] वलिक जो कथा सुहाई। भरद्वाज मुनिबरहिं सुनाई ॥
कहिहौं सोइ संवाद बखानी। सुनहु सकल सज्जन सुख मानी ॥१॥
संभु कीह्न यह चरित सुहावा। बहुरि कृपा करि उमहि सुनावा ॥
सोइ सिव कागभुसुंडिहि दीह्ना। राम भगति अधिकारी चीह्ना ॥२॥

अर्थ : याज्ञवल्क्य ने जो सुहावनी कथा मुनिवर भरद्वाज जी को सुनाई थी उसी संवाद को मैं बखानकर कहूँगा। सब सज्जन सुखपूर्वक सुनो। १. यह सुहावना चरित शिवजी ने रचा और फिर कृपा करके उमा को सुनाया। उसी को शिवजी ने रामभक्ति का अधिकारी पहिचानकर, कागभुसुण्डि को दिया।

व्याख्या : चारों घाटों के वक्ताओं का वर्णन करते हुए कहते हैं कि योगी याज्ञवल्क्य ने भारद्वाज जी को कथा सुनाई। योगी याज्ञवल्क्य से ही यजुर्वेद की कृष्ण और शुक्ल शाखाएँ चलीं। इनका आख्यान वेदों में पाया जाता है। इन्हीं की स्मृति उत्तर भारत में मान्य है। इन्होंने राम वनवास के पहिले ही श्रीरामचरित अपने शिष्य जनकजी को सुना रक्खा था। यथा : यह सब जागवलिक कहि राखा। देवि न मुधा होइ मुनिभाखा। भारद्वाज जी भी वैदिक ऋषि हैं। सप्तर्षियों में एक हैं। इन्होंने वेदप्राण प्रणव को इन्द्र से प्राप्त किया था। वक्ता भी ऐसे महान् और श्रोता भी ऐसे

१. दाढादयो बहुलम् : प्रा. प्र. : इस सूत्र से याज्ञवल्क्य का जागवलिक रूप हुआ।

महान् । इन्हीं दोनों महात्माओं का संवाद तापनीय श्रुतियों[1] में है । वहीं रामकथा

---

१. श्रीरामपूर्वतापिन्यां चतुर्थोपनिषदि वेदोक्तरामचरितम् । अत्र रामोऽनन्तरूपस्तेजसावह्निनासमः ।
सत्वनुष्णगुर्विश्वश्चेदग्नीषोमात्मकं जगत् । उत्पन्नं सीतया भाति चन्द्रश्चन्द्रिकया यथा ॥
प्रकृत्या सहितः श्यामः पीतवासा जटाधरः । द्विभुजः कुण्डली रत्नमाली धीरो धनुर्धरः ॥
प्रसन्नवदनो जेता धृत्यष्टकविभूषितः । प्रकृत्या परमेश्वर्या जगद्योन्याऽङ्किताङ्कभृत् ॥
हेमाभया द्विभुजया सर्वालङ्कृतया चिता । श्लिष्टः कमलधारिण्या पुष्टः कोसलजात्मजः ॥
दक्षिणे लक्ष्मणेनाथ सधनुष्पाणिना पुनः । हेमाभेनाऽनुजेनैव तदा कोणत्रयं भवेत् ॥
तथैव तस्य मन्त्रस्य शेषोऽणुश्चस्वङेन्तया । एवं त्रिकोणरूपं स्यात् तं देवा ये समाययुः ॥
स्तुतिं चक्रुश्च जगतः पतिं कल्पतरौ स्थितम् । कामरूपाय रामाय नमो मायामयाय च ॥
नमो वेदादिरूपाय ॐकाराय नमोनमः । रमाधराय रामाय श्रीरामायात्ममूर्तये ॥
जानकी देहभूषाय रक्षोघ्नाय शुभाङ्गिने । भद्राय रघुवीराय दशास्यान्तकरूपिणे ॥
रामभद्र महेष्वास रघुवीर नृपोत्तम । भो दशास्यान्तकास्माकं रक्षां देहि श्रियं च ते ॥
त्वमैश्वर्यं कुर्वन्ति सम्प्रत्याश्वरिमारणम् । कुर्वितिरतुत्यदेवाद्यास्तेन सार्धं सुखं स्थिताः ॥
स्तुवन्त्येवं हि ऋषयस्तदा रावण आसुरः । रामपत्नीं वनस्थां यः स्वनिवृत्यर्थमाददे ॥
स रावण इति ख्यातो यद्वा रावाच्च रावणः । तद्व्याजेनेक्षितुं सीतां रामो लक्ष्मण एव च ॥
विचेरतुस्तदा भूमौ देवीं संदृश्य चासुरम् । हत्वा कवन्धं शवरीं गत्वा तस्याज्ञया तया ॥
पूजिता वीरपुत्रेण भक्तेन च कपीश्वरम् । आहूय शंसतां सर्वमाद्यन्तं रामलक्ष्मणौ ॥
स तु रामे शङ्कितः सन् प्रत्ययार्थं च दुन्दुभेः । विग्रहं दर्शयामास यो रामस्तमचिक्षिपत् ॥
सप्ततालान् विभिद्याशु मोदते राघवस्तदा । तेन हृष्टः कपीन्द्रोऽसौ सरामस्तस्य पत्तनम् ॥
जगामाऽगर्जदनुजो वालिनो वेगतो गृहात् । वाली तदा निर्जगाम तं वालिनमथाहवे ॥
निहत्य राघवो राज्ये सुग्रीवं स्थापयेत् ततः । हरीनाहूय सुग्रीवस्त्वाह चाशाविदोऽधुना ॥
आदाय मैथिलीमद्य ददताश्वाशु गच्छत । ततस्ततार हनुमानब्धिं लङ्कां समाययौ ॥
सीतांदृष्ट्वाऽसुरान् हत्वा पुरं दग्ध्वा तथा स्वयम् । स्वयमागत्य रामाय न्यवेदयत तत्त्वतः ॥
तदारामः क्रोधरूपी तानाहूयाथ वानरान् । तैः सार्धमादायास्त्रांश्च पुरीं लङ्कां समाययौ ॥
तां दृष्ट्वा तदधीशेन सार्धं युद्धमकारयत् । घटश्रोत्रसहस्राक्षजिद्भ्यां युक्तं तमाहवे ॥
हत्वा बिभीषणं तत्र स्थाप्याथ जनकात्मजाम् । आदायाङ्कस्थितां कृत्वा स्वपुरं तैर्जगाम ह ॥
ततः सिंहासनस्थः सन् द्विभुजो रघुनन्दनः । धनुर्धरः प्रसन्नात्मा सर्वाभरणभूषितः ॥
मुद्रां ज्ञानमयीं यामे वामे तेजः प्रकाशनम् । धृत्वा व्याख्याननिरतश्चिन्मयः परमेश्वरः ॥
उदग्दक्षिणयोः स्वस्य शत्रुघ्नभरतौ धृतः । हनुमन्तं च श्रोतारमग्रतः स्यात्त्रिकोणगम् ॥
भरताधस्तु सुग्रीवं शत्रुघ्नाधो बिभीषणम् । पश्चिमे लक्ष्मणं धृत्वा धृतच्छत्रं सचामरम् ॥
तदधस्तौ तालवृन्तकरौ त्र्यस्रं पुनर्भवेत् । एवं षट्कोणमादौ स्वदीर्घाङ्गै रेफसंयुतः ॥
द्वितीयं वासुदेवाद्यैराग्नेयादिषु संयुतम् । तृतीयं वायुसूनुं च सुग्रीवं भरतं तथा ॥
बिभीषणं लक्ष्मणं च अङ्गदं चारिमर्दनम् । जाम्बवन्तं च तैर्युक्तस्ततो धृष्टिर्जयन्तकः ॥
विजयश्च सुराष्ट्रश्च राष्ट्रवर्धन एव च । अकोपो धर्मपालश्च सुमन्त्रस्त्वेभिरावृतः ॥
ततः सहस्रदृग्वह्नि धर्मरक्षोवरुणानिलाः । इन्द्वीशधात्रनन्ताश्च दशभिस्त्वेभिरावृतः ॥
बहिस्तदायुधैः पूज्यो नीलादिभिरलंकृतः । वशिष्ठवामदेवादिमुनिभिः समुपासितः ॥

अति संक्षेप में वर्णित है। ग्रन्थकार अपने श्रोता सज्जन वृन्द से कह रहे हैं कि उसी संवाद को मैं बखानकर कहूँगा। आप लोग सुख मानकर सुनो। यथा : राम भगति भूषित जिय जानी। सुनिहहिं सुजन सराहि सुवानी। रचि महेस निज मानस राखा। पाइ सुसमउ सिवा सन भाखा। आर्त अधिकारी को सुनाया। इसलिए 'कृपाकरि' कहते हैं। उसी को शिवजी ने कागभुसुण्डि को दिया, सुनाया नहीं। सुनाया लोमश

अर्थ : इस जड़ात्मक प्रपञ्च में अनन्त रूप राम तेज से अग्नि रूप हैं। वही विश्वरूप शीतरश्मिरूप हैं। सीता के साथ चाँदनी से युक्त चन्द्रमा की भाँति सुशोभित हैं। उन्हीं से यह अग्निसोमात्मक जगत् उत्पन्न हुआ है। प्रकृति के सहित, श्यामवर्ण, पीतवस्त्र धारण किये हुए, जटा रक्खे हुए, द्विभुज कुण्डल पहिने, रत्नों की माला धारण किये, धीर, धनुर्धर, प्रसन्न वदन, जेता, धृति आदि आठ मन्त्रियों से युक्त, परमेश्वरी जगद्योनि प्रकृति सब आभूषणों को धारण किये, दो भुजावली हाथ में कमल लिये हुए, जिसके वामाङ्ग में वर्तमान हैं। इसी भाँति पृष्ठ कोसल्यानन्द वर्धन विराजते हैं। उनके दक्षिण ओर हेमवर्ण, धनुष हाथ में लिये छोटे भाई लक्ष्मण विराजमान हैं। इस भाँति त्रिकोण होता है। इसी भाँति उनका मन्त्र है जो लक्ष्मण सम्बन्धी मन्त्र बीज और नाम में चतुर्थी एक बचन की विभक्ति लगाने से बनता है। इस भाँति त्रिकोण रूप होता है। उस त्रिकोण के अधिष्ठाता भगवान् के पास इन्द्रादिक देवता गये। कल्पवृक्ष के नीचे स्थित भगवान् जगत्पति की स्तुति की। अपनी इच्छा से रूप धारण करनेवाले! आपको नमस्कार है। हे राम, हे माया के नाश करनेवाले! आपको नमस्कार है! हे वेदादिरूप! हे ॐ कार! आपको नमस्कार है। हे रमा के धारण करनेवाले राम! हे सीतारमण! हे आत्ममूर्ति! हे सीता रूप अलङ्कार के धारण करनेवाले! राक्षसों को नाश करनेवाले, शुभ अङ्गदाऽे, हे मङ्गलरूप, हे रघुवीर, हे दशकण्ठ के अन्तकरूप, हे रामभद्र, हे महा धनुर्धर, हे रघुवीर, हे नृपोत्तम, हे रावणान्तक, हमलोगों की रक्षा करो और ऐश्वर्य दो। ईश्वरी द्वारा रक्षा और श्री दिलाओ। इस समय शीघ्र शत्रु का वध करो। देवादिकों ने ऐसी स्तुति की और परमेश्वर के साथ ही सुख से स्थित हुए। वशिष्ठादिक ऋषियों ने इसी भाँति स्तुति की। तब असुर रावण वन में स्थित रामपत्नी को अपनी निवृत्ति के लिए हरण कर ले गया। इसी से उसका नाम रावण हुआ या संसार को रुलाता था इसलिए रावण कहलाया। उसी व्याज से सीता को खोजते हुए राम और लक्ष्मण पृथ्वी पर विचरने लगे। कवन्धासुर को देखा और वध किया। शबरी के पास गये और उसके कहने से जाकर भक्त हनुमान्‌जी से पूजित हुए। सुग्रीव को बुलाकर उन्हें सब वृत्तान्त सुनाया। वह रामजी के विषय में शङ्कित हुआ और उसने अपने विश्वास के लिए दुन्दुभी की अस्थि दिखलाई। जिसे रामजी ने फेंक दिया और सात तालों का भेदन करके राघव प्रसन्न हुए। इससे सुग्रीव भी प्रसन्न हुए और रामजी के साथ किष्किन्धापुरी गये। सुग्रीव ने गर्जन किया तब वाली वेग से घर के बाहर निकला। उस वाली को राघव ने संग्राम में मारा और सुग्रीव को राजा बनाया। दिशाओं के जाननेवाले वानरों को बुलाकर सुग्रीव ने कहा : जल्दी जल्दी तुमलोग मैथिली को खोज लाओ। तब हनुमान् समुद्र पार करके लङ्का गये। सीता को देखकर, राक्षसों को मारकर लङ्का जलाई। और स्वयं आकर रामजी को सब वृत्तान्त सुनाया। तब रामचन्द्र ने क्रुद्ध

ऋषि ने। यथा : मुनि मोहि कछुक काल तहँ राखा। रामचरित मानस तब भाखा। शङ्कर भगवान् की प्रेरणा से लोमश ऋषि ने सुनाया। इसीलिए शिवजी का 'देना' कहते हैं। यथा : रामचरित सर गुप्त सोहावा। संभु प्रसाद तात मैं पावा। शम्भु ने जो ऐसी कृपा भुसुण्डिजी पर की। उसका कारण कहते हैं कि उसे रामभक्ति का अधिकारी चीह्ना, इससे उसे दिया।

तेहि सन जागवलिक पुनि पावा। तिन्ह पुनि भरद्वाज प्रति गावा ॥
ते श्रोता वक्ता सम सीला। सब दरसी जानहिं हरिलीला ॥३॥

अर्थ : उससे याज्ञवल्क्य ने पाया और फिर उन्होंने भरद्वाजजी से कहा। वे श्रोता और वक्ता समान स्वभाववाले थे, सर्वदर्शी थे और हरि की लीला को जानते थे।

व्याख्या : यहाँ पर यह स्पष्ट नहीं होता कि याज्ञवल्क्यजी ने शिवजी से सुना या भुसुण्डिजी से सुना। परन्तु 'पावा' शब्द से तो यही झलकता है कि देनेवाले निःसन्देह शिवजी हैं पर उन्होंने उसी भाँति दिया जिस भाँति भुसुण्डिजी को दिया था। अर्थात् : भुसुण्डिजी के गुरु : महर्षि लोमश द्वारा भुसुण्डिजी को दिया और याज्ञवल्क्यजी को उनके गुरु द्वारा दिया। सुनावा, दिया और पावा इन क्रियाओं पर ध्यान देने से तो यही अर्थ निकलता है। ये तीनों वक्ता और श्रोता समान कक्षा के थे। सर्वदर्शी थे। हरिलीला के साक्षात्कार करनेवाले थे। जगत् के कल्याणार्थ श्रोता, वक्ता बने थे।

जानहिं तीनि काल निज ग्याना। करतलगत आमलक समाना ॥
औरो जे हरिभगत सुजाना। कहहिं सुनहिं समुझहिं विधि नाना ॥४॥

होकर उन बानरों को अपने पास बुलाया और उनके साथ अस्त्रों को लेकर लङ्का गये। उसे देखकर उसके स्वामी के साथ युद्ध किया। कुम्भकर्ण और मेघनाद के साथ उसे लड़ाई में मारा। वहाँ का राजा बिभीषण को बनाया। सीताजी को गोद में लेकर उनके साथ अयोध्या गये। तब द्विभुज रघुनन्दन सिंहासन पर बैठे। द्विभुज रघुनन्दन धनुष धारण किये हुए, सब अलङ्कारों को धारण किये हुए, प्रसन्न वदन दक्षिण हाथ में ज्ञानमयी मुद्रा धारण किये हुए और बाएँ हाथ से वामजानु मण्डल को दबाए हुए, चिन्मय परमेश्वर व्याख्यान में निरत हुए। बाएँ और दक्षिण ओर शत्रुघ्न और भरत स्थित हुए। श्रोता रूप से हनुमान् भी सन्मुख स्थित हुए। इस भाँति फिर त्रिकोण हुआ। भरत के नीचे सुग्रीव और शत्रुघ्न के नीचे बिभीषण तालवृन्त धारण किये हुए और पीछे लक्ष्मणजी छत्र और चामर धारण किये हुए स्थित हुए। इस भाँति दो त्रिकोणों के मिलने से षट्कोण हुआ। इस भाँति स्वकीय बीज, दीर्घ अक्षरों से युक्त हृदयादिकों से श्रीरामजी का पूजन होना चाहिए। दूसरा आवरण वासुदेव आदि हैं। तीसरे आवरण में हनुमान्, सुग्रीव, भरत, बिभीषण, लक्ष्मण, अङ्गद, शत्रुघ्न, जाम्बवान् हैं। इसके बाद विजय, सुराष्ट्र, राष्ट्रवर्धन, अकोप, धर्मपाल, और सुमन्त्र का आवरण है। इसके बाद इन्द्र, अग्नि, धर्म, निऋति, वायु, चन्द्र, धाता और शेष का आवरण है।

अर्थ : वे अपने ज्ञान से हाथ पर रक्खे हुए आँवले के समान तीनों कालों को जानते थे और भी जो सुजान हरिभक्त हैं, नाना विधान से कहते, सुनते और समझते हैं।

व्याख्या : जो आँवले का फल हाथ में होता है उसका ज्ञान निरावरण होता है। इसी भाँति उनके लिए भूत और भविष्य भी वर्तमान के तुल्य था। इसलिए 'निज ज्ञाना' कहते हैं, दूसरे को जानने की उन्हें आवश्यकता नहीं है। वे महात्मा भक्त हैं अतः 'आमलक समाना' कहा। ज्ञानी के लिए दूसरी उपमा देते हैं। उनके हाथ में विश्व को बेर के फल के समान कहते हैं। यथा : जिनहिं बिस्व कर बदरि समाना : क्योंकि भक्त को विश्व पथ्य है और ज्ञानी को अपथ्य है : धात्री फलं सदापथ्यं अपथ्यं बदरी फलम्।

इनके बाद कहने सुनने और समझने पर ही निर्भर रहकर कथा की परम्पराएँ चलीं क्योंकि चरित के साक्षात्कार करने की सामर्थ्य तो पूर्वोक्त तीनों वक्ताओं और श्रोताओं में ही थी। अतः सुजान हरिभक्त होने पर भी बुद्धिभेद से कथा के विधानों में भेद पड़ने लगा। इसीलिए 'कहहिं सुनहिं समुझहिं विधि नाना' कहा।

दो. मैं पुनि निज गुर सन सुनी, कथा सो सूकरखेत।
समुझी नहिं तसि बालपन, तब अति रहेउँ अचेत ॥३०॥ क
श्रोता बकता ग्यानिधि, कथा राम कै गूढ़।
किमि समुझौं मैं जीव जड़, कलि मल ग्रसित विमूढ़ ॥३०॥ ख

अर्थ : मैंने अपने गुरु से सूकर-क्षेत्र में यह कथा सुनी, परन्तु : जैसी कथा होती थी : वैसी अति बालकपन होने के कारण, समझ न पायो, तब बहुत अचेत था। श्रोता, वक्ता दोनों ज्ञाननिधि थे और राम की कथा गूढ है। मैं कलियुग के पापों से ग्रसा हुआ, महा मूढ़, जड़ जीव उसे कैसे समझ सकता था ?

व्याख्या : जो कथा ग्रन्थकार ने गुरुमुख से सुनी, वह सम्भवतः सोरों के घाट पर हुई थी, उस स्थल में वाराहावतार होने से उसे 'सूकर खेत' कहा जाता था। अति अचेत कहने का भाव ग्रन्थकार का यह है कि अचेत तो अब भी हूँ, पर उस समय अति अचेत था। जैसी कही गई वैसी नहीं समझा।

गुरुजी साधु समाज में कथा कहते थे। जिस भाँति वे ज्ञानी थे उसी भाँति श्रोता समाज भी महा ज्ञानी था। अतः उन लोगों के सुनने योग्य कथा हो रही थी। अन्य श्रोता लोग साधु थे। मैं कलिमल ग्रसित था। अन्य श्रोता लोग महा विद्वान् थे। मैं विमूढ़ था। अतः वे समझ पाते थे, मैं नहीं समझ पाता था।

तदपि कही गुर बारहिं बारा। समुझि परी कछु मति अनुसारा ॥
भाषा बद्ध करबि मैं सोई। मोरे मन प्रबोध जेहिं होई ॥१॥

अर्थ : फिर भी गुरुजी ने बार-बार कही तो अपनी बुद्धि के अनुसार कुछ समझ में आई। उसीको मैं भाषा में छन्दोबद्ध करूँगा जिससे मेरे मन में प्रबोध : तसल्ली हो।

व्याख्या : गुरुजी बड़े दयालु थे, मेरे समझने के लिए बार-बार कहा। यही समझाने का रास्ता है। बार-बार कहने से गूढ़ विषय भी मन में आजाता है। धीरे-धीरे संस्कार पड़ जाता है। यथा : अति दयालु गुरु स्वल्प न क्रोधा। पुनि पुनि मोहि सिखाव सुबोधा। तब कुछ कुछ बात समझ में आई।

जब तक अच्छी भाँति समझ में न आवे तब तक उसे छन्दोबद्ध नहीं किया जा सकता। ग्रन्थकार कहते हैं कि अपने प्रबोध के लिए मैं उसे भाषा में छन्दोबद्ध करूँगा। बहुत से गूढ़ विषय ऐसे हैं जिनके विषय में धारणा हो जाती है कि मैंने समझ लिया पर उसे जब छन्दोबद्ध करने लगे तो कितनी ही शङ्काएँ उत्पन्न हो जाती हैं। उन्हें समाधान करके अपनी भाषा में छन्दोबद्ध कर पावे तब उसके अभ्रान्त होने में सन्देह नहीं रह जाता। इसलिए ग्रन्थकार कहते हैं कि मैं अपने जी की तसल्ली के लिए भाषाबद्ध करता हूँ।

जस कछु बुधि बिबेक बल मोरे। तस कहिहौं हियँ हरिके प्रेरे ॥
निज संदेह मोह भ्रम हरनी। करौं कथा भव सरिता तरनी ॥२॥

अर्थ : जैसा कुछ मुझमें बुद्धि और विवेक का बल है मैं हिय में हरि की प्रेरणा से वैसा ही कहूँगा। मैं अपने सन्देह, मोह और भ्रम को हरनेवाली कथा रचता हूँ। वह संसारनदी के लिए नाव के समान है।

व्याख्या : पहले तो समझा ही कम है। यथा : समुझि परी कछु मति अनुसारा। फिर अपने बुद्धि बल का भरोसा नहीं। यथा : निजबुद्धि बल भरोस मोहि नाहीं। अतः जो चूक हो वह मेरी और जो गुण हो वह गुरुजी का। मैं अपने काबू में नहीं हरि की प्रेरणा से कहता हूँ। हरि का अर्थ बन्दर भी होता है। अतः कुछ महात्माओं का मत है कि मङ्गल मूर्ति हनुमान्‌जी की प्रेरणा से कहते हैं। ऐसा अर्थ करना चाहिए। यहाँ से लीलावर्णन प्रारम्भ हुआ।

श्रीग्रन्थकार कहते हैं कि अपने सन्देह, मोह, भ्रम के नाश के लिए मैं कथा की रचना करता हूँ। दूसरे के सन्देह, मोह, भ्रम के नाश करने का सामर्थ्य मुझमें नहीं है।

सन्देह, उभय कोटि अवलम्बी ज्ञान को कहते हैं। मोह अज्ञान को कहते हैं। भ्रम विपरीत ज्ञान को कहते हैं। यह कथा इन सबों को हरण करनेवाली है। यह कथा नौकारूप है। इसमें ऐसा दिव्य सामर्थ्य है कि इसके लिए भवसागर सरिता हो जाता है। रामनाम को राकेश कहकर आगे वर्णन करेंगे। अतः पहिले उसकी सोलह कलाओं का वर्णन करते हैं : निज संदेह मोह भ्रम हरनी। करौं कथा भव सरिता तरनी। रामनाम राकेश की पहिली कला है।

बुध बिश्राम सकल जन रंजनि। राम कथा कलि कलुष बिभंजनि ॥
राम कथा कलि पन्नग भरनी। पुनि बिबेक पावक कहुँ अरनी ॥३॥

अर्थ : राम कथा विद्वानों को विश्राम देनेवाली है। सब मनुष्यों के मन को प्रसन्न करनेवाली है। कलियुग के पाप को दूर करनेवाली है। राम कथा कलियुगरूपी

साँप के लिए भरणी : मन्त्र है। विवेक रूपी अग्नि : के मन्थन : के लिए अरणी : लकड़ी है।

व्याख्या : विद्वान् लोग अनेक शास्त्रों के अभ्यास से श्रमित रहते हैं। उनको रामकथा विश्राम देती है। सभी भक्तों को सुख देती है। विधि निषेध मय, कलिमल हरणी। कर्म-कथा की भाँति कलियुग के मलों का हरण करती है। यह दूसरी कला है।

भरणी, सर्प के विष उतारनेवाले मन्त्र को कहते हैं। किसी के मत से भरणी नामक चूहे जैसा एक जन्तुविशेष है जो सर्प का नाश करता है। किसी के मत से भरणी नक्षत्र का जल विषनाशक है। कोई भरणी का अर्थ मयूरी करते हैं। परन्तु रामकथा कहने की वस्तु है अतः इसकी उपमा मन्त्र से देना ही अधिक उपयुक्त है। इस कलियुग का बल नहीं चलता। इसके मन्थन से उसी भाँति ज्ञान का प्रादुर्भाव होता है। जिस भाँति यज्ञ में अरणि मन्थन से अग्नि उत्पन्न होता है। यह तीसरी कला है।

राम कथा कलि कामद गाई। सुजन सजीवन मूरि सुहाई॥
सोइ वसुधा तल सुधा तरंगिनि। भय भंजनि भ्रम भेक भुअंगिनि॥४॥

अर्थ : रामकथा कलि में कामधेनु है और सज्जनों के लिए तो सुन्दर सजीवन मूरि है। यही पृथ्वी तल पर अमृत की नदी है। भय को दूर करनेवाली और भ्रम-रूपी मेढक के लिए तो सर्पिणी ही है।

व्याख्या : कलियुग में न कामधेनु है, न कल्पवृक्ष है और न चिन्तामणि है। मनोवाञ्छित देनेवाले तीनों में एक नहीं है पर रामकथारूपी कामधेनु है। रामनाम-रूपी कल्पवृक्ष है। यथा : नाम राम को कल्पतरु : और रामचरितरूपी चिन्तामणि है। यथा : रामचरित चिन्तामनिचारू। सुजन लोग काम किरात के प्रहार से मृत-प्राय हो रहे हैं। यथा : मनुजाद किरात निपात किये। मृगलोग कुभोग सरेन हिये। उनके लिए रामकथा संजीवनी बूटी है। इसीसे वे आराम हो सकते हैं। यह चौथी कला है।

वसुधा तल में सुधा : अमृत : नहीं है, किसी युग में भी नहीं रही पर वसुधा तल में अमृत की नदी रामकथा है। यह सदा यहाँ बहा करती है। रामावतार के पहिले भी रामकथा थी। उसे[1] रामजानकी ने श्रवण किया था। वह उस रामावतार के पहिले रामावतार की कथा थी। इस भाँति रामकथा से वसुधा शून्य कभी नहीं

---

१. अन्यत्किञ्चित्प्रवक्ष्यामि श्रुत्वा मां नय काननम्।
रामायणानि बहुशः श्रुतानि बहुभिर्द्विजैः।
सीतां विना वनं रामो गतः किं कुत्रचिद्वद। अध्यात्मरामायणे।

अर्थ : श्रीजानकी जी ने कहा कि मैं और कुछ कहती हूँ; उसे सुनकर मुझे बन ले चलो। बहुत से रामायण ब्राह्मणों द्वारा अनेक बार सुने गये हैं, कहो तो क्या किसी में बिना सीता के राम बन गये हैं ?

रहती। यथा : कल्प कल्प प्रति प्रभु अवतरहीं। चारु चरित नाना विधि करहीं। तब तब कथा मुनीसन्हि गाई। परम पुनीत प्रबन्ध बनाई। यह रामकथा भय की नाश करनेवाली है। जन्ममरणादि प्रवाह ही यहाँ भय है उसे नाश करके अभय पद देती है। भ्रम विपरीत ज्ञान को कहते हैं, वह व्यर्थ मेढ़क की भाँति टर्र-टर्र करता है। उसके बकवाद में कोई सार नहीं। उस भ्रमरूपी मेढ़क को नाश करने के लिए यह सर्पिणी है। उसे निगल जाती है अर्थात् रामकथा का आहार ही भ्रमतम है। यह पाँचवी कला है।

असुर सेन सम नरक निकंदिनि। साधु बिबुध कुल हित गिरि नंदिनि॥
संत समाज पयोधि रमासी। बिस्व भारभर अचल छमासी॥५॥

अर्थ : यह रामकथा : असुर की सेना की भाँति नरक की नाश करनेवाली तथा साधुरूपी देवकुल के हित के लिए पार्वती है। सन्तसमाजरूपी क्षीरसिन्धु के लिए लक्ष्मी सी है और संसार का भार धारण करने के लिए तो अचल पृथ्वी सी है।

व्याख्या : जिस भाँति दुर्गा : पार्वती : असुरसेन नाश करनेवाली हैं उसी प्रकार रामकथा नरक का नाश करती है। यथा : महामोह महिषेस बिसाला। रामकथा कालिका कराला और जिस भाँति देवताओं के कुल का दुर्गा हित विधान करती हैं उसी भाँति रामकथा साधु समाज का हित विधान करती है। भावार्थ यह कि दुर्गा ऐसी प्रबला हैं कि जो असुर किसी के मारे नहीं मरते, उन्हें दुर्गा मारती हैं। इसी भाँति जो दुर्गति किसी के हटाये नहीं हटती उसे रामकथा हटाती है। साधु समाज का सदा कल्याण करती है। कुछ महात्मा लोग असुरसेन का अर्थ गया तीर्थ करते हैं। वहाँ यह अर्थ करना होगा कि जिस भाँति गया तीर्थ से नरक में पड़े प्राणियों का उद्धार होता है उसी भाँति रामकथा से भी होता है। यह छठी कला है।

लक्ष्मी क्षीरसिन्धु में ही उत्पन्न हुई और क्षीरसिन्धु की शोभा बढ़ाती हुई वहीं नारायण के साथ विराजमान हैं। अर्थात् क्षीरसिन्धु में ऐसी रति है कि उसे छोड़ती ही नहीं। वही उनका मैका है और वही निवास स्थान है। इसी भाँति रामकथा की भी उत्पत्ति साधु समाज में है और वहीं साधु समाज की शोभा बढ़ाती हुई सदा विद्यमान रहती है। यह सातवीं कला है। जिस भाँति पृथ्वी सबका आधार है उस भाँति रामकथा भी सबकी आधारभूता है। रामकथा के प्रतिपादित गुणों से ही विश्व की स्थिति बनी हुई है। यह आठवीं कला है।

जमगन मुह मसि जग जमुनासी। जीवन मुकुति हेतु जनु कासी॥
रामहिं प्रिय पावनि तुलसी सी। तुलसिदास हित हिय हुलसी सी॥६॥

अर्थ : यमगण के मुख में कालिख लगाने के लिए यह : रामकथा यमुना के समान है। जीवन्मुक्ति के लिए मानो काशी है। रामजी को पवित्र तुलसी की भाँति प्रिय है। तुलसीदास के लिए हुलसी के हृदय के समान है।

व्याख्या : जहाँ तक यमुना का प्रचार है वह स्थान यमराज के अधिकार के बाहर है। वहाँ यमगण का किया कुछ होता नहीं। वहाँ वे मुँह नहीं दिखाते मानों

उनके मुख में कालिख लगा हुआ है यथा : जमुना ज्यौं ज्यौं लागि बाढ़न ! ज्यौं ज्यौं जल मलीन त्यौं त्यौं जमगन मुख मलीन लहै आढन। उसी भाँति जहाँ जहाँ रामकथा का प्रचार है वहाँ वहाँ यमगण मुख नहीं दिखलाते क्योंकि वह स्थल यमराज के अधिकार के बाहर हो जाता है। यह नवीं कला है।

जिस भाँति विदेह मुक्ति का कारण काशी है : काशी के सेवन से शरीर त्यागने पर मुक्ति होती है : उसी भाँति रामकथा जीवन्मुक्ति का कारण है। रामकथा का सेवन करनेवाला जीता हुआ ही मुक्त हो जाता है। यह दसवीं कला है। जिस भाँति तुलसी रामजी की हृदयानन्दकारिणी[1] है : उसके विना भगवान् को पारिजात पुष्प और अन्य दिव्य गन्धों से भी तृप्ति नहीं होती। सब कर्म ही निष्फल हो जाता है : उसी भाँति[1] रामकथा भी भगवान् की हृदयानन्दकारिणी है। इसके विना षोडशोपचार पूजन से भी उनकी तृप्ति नहीं होती। यह ग्यारहवीं कला है। तुलसीदास के लिए तो साक्षात् माता के हृदय सी है, सहस्रों अपराधों को क्षमा करते हुए पालन करती हैं। हुलसी श्रीगोस्वामीजी की माता का नाम था। यथा : गोद लिये हुलसी फिरै तुलसी सो सुत होय।

यद्यपि हुलसी का अर्थ 'उल्लसित हुई' है और इससे अर्थ भी ठीक बैठ जाता है पर बहुत से लोगों का यह मत है कि 'हुलसी' तुलसीदासजी की माता का नाम था। ऐसा मानने से अर्थ भी अधिक स्पष्ट हो जाता है। तुलसीदासजी हुलसी माता के आँखों के तारे थे। वह सदा ही इनका हित चाहती थी। इसी भाँति राम कथा भी माता की भाँति सेवन करनेवालों के हित में निरत रहती है। उन्हें प्रकाश प्रदान करके उनका कल्याण करती है। यह बारहवीं कला है।

सिव प्रिय मेकल सैल सुतासी। सकल सिद्धि सुख संपति रासी ॥
सदगुन सुरगन अंब अदिति सी। रघुवर भगति प्रेम परमिति सी ॥७॥

अर्थ : शिवजी को नर्मदा के समान प्यारी है। सब सिद्धि, सुख और सम्पत्ति की राशि है। सद्गुण रूपी देवताओं के लिए यह माता अदिति के समान है। रघुवर की प्रेमभक्ति की तो मानों सीमा सी है।

व्याख्या : मेकल शैल से नर्मदाजी निकली हैं। इसीलिए उसकी सुता कहलाती

---

१. मातस्तुलसि गोविन्दहृदयानन्दकारिणि।
नारायणस्य पूजार्थं चिनोमि त्वां नमोऽस्तुते ॥
कुसुमैः पारिजाताद्यैः सुगन्धैरपि केशवः।
त्वया विना नैव तृप्तिं चिनोमि त्वामतः शुभे ॥
त्वया विना महाभागे समस्तं कर्म निष्फलम्। इत्यादि

तुलसी दल लेने के समय स्तुति की जाती है। हे तुलसी माता तुम गोविन्द की हृदयानन्दकारिणी हो। तुम्हारे विना गोविन्द को पारिजात के पुष्प और सुगन्धादि से तृप्ति नहीं होती। तुम्हारे विना सब कर्म निष्फल हो जाता है। इसीलिए मैं तुम्हारे पत्रों को चुनता हूँ। नारायण की पूजा इसी से करूँगा।

हैं। इनका लोप कभी नहीं होता। यह शङ्करजी को इतनी प्यारी हैं कि शिवजी इनमें असंख्य रूप से नर्मदेश्वर बने लुढ़कते फिरते हैं। इसी भाँति रामकथा भी शङ्कर भगवान् को अत्यन्त प्यारी है। यथा : रचि महेस निज मानस राखा। पाइ सुसमउ सिवा सन भाखा। जैसी नर्मदाजी की शोभा है वैसी ही रामकथा की भी शोभा है। जितनी सिद्धियाँ हैं अणिमा, महिमा आदिक और जितनी सम्पत्ति और सुख है उनकी रामकथा राशि है। इसके सेवन से सम्पूर्ण लौकिक सुख की भी प्राप्ति होती है। अतः सब भाँति प्रीति की आस्पद है। यह तेरहवीं कला है। जिस भाँति सब देवों की उत्पत्ति अदिति देवी से हुई है, उसी भाँति सभी सद्गुणों की उत्पत्ति रामकथा से हुई है। कोई गुण ऐसा नहीं है जिसे रामकथा ने उत्पन्न न किया हो। अतः इसके आश्रयण से सद्गुणों की प्राप्ति होती है। यह चौदहवीं कला है। सबकर फल हरिभगति भवानी। रामकथा भगवान् की प्रेमाभक्ति की परा सीमा सी है। यथा : ब्रह्म पयोनिधि मंदर, ज्ञान संत सुर आहि। कथा सुधा मथि काढ़हि भगति मधुरता जाहि। भक्तिरूपी माधुर्य कथा में हो है। अतः कृतकृत्यता रामकथा से ही होती है। यह पन्द्रहवीं कला है।

दो. राम कथा मंदाकिनी, चित्रकूट चित चारु।
तुलसी सुभग सनेह बन सिय रघुबीर बिहारु ॥३१॥

अर्थ : रामकथा मन्दाकिनी है। सुन्दर चित्त चित्रकूट है। तुलसीदासजी कहते हैं सुन्दर स्नेह ही वन है। जिसमें सीताजी और रामजी विहार करते हैं।

व्याख्या : मन्दाकिनी पुण्या नदी है। यथा : सुरसरिधार नाउँ मंदाकिनि। जो सब पातक पोतक डाकिनि। उसीको यहाँ रामकथा से उपमित किया है। उसका योग जब चित्रकूट से हो अर्थात् निर्मल चित्त का योग रामकथा से हो तब साधक के मन में स्नेह का बन लग जाता है। वही सीतानाथ का विहारस्थल है। यह सोलहवीं कला है।

रामचरित चिंतामनि चारू। संत सुमति तिअ सुभग सिंगारू ॥
जग मंगल गुन ग्राम राम के। दानि मुकुति धन धरम धाम के ॥१॥

अर्थ : रामचरित सुन्दर चिन्तामणि है। सन्तों की सुमति रूपी स्त्री का सुन्दर शृङ्गार है। रामजी के गुणों के समूह जगत् के लिए मङ्गलरूपी है। मुक्ति, धन, धर्म और धाम देनेवाला है।

व्याख्या : रामचरित को चिन्तामणि कहते हैं। क्योंकि चिन्तामणि से चिन्ता मिटती है। रामचरित सुन्दर चिन्तामणि है। यह मणि शृङ्गार के काम में भी आती है परन्तु सब के भाग्य में चिन्तामणि नहीं है कि उससे वह अपनी मतिरूपी स्त्री का शृङ्गार करे। केवल महा भाग्यवान् सन्त अपनी सुमतिरूपी स्त्री का उससे शृङ्गार करते हैं। अर्थात् सन्तों की स्त्री उनकी सुमति है। सदा उसी में रमण करते हैं। वह सुमति जब रामचरित धारण करती है तब शृङ्गारित होती है। पहिले मुक्तामाल

से स्वयं सन्तों का शृङ्गार कर चुके हैं। यथा : पहिरहिं सज्जन विमल उर सोभा अति अनुराग।

रामकथा के अन्तर्गत रामचरित है, उसके अन्तर्गत रामगुणग्राम हैं। इसलिए कथा का माहात्म्य कहकर चरित का माहात्म्य कहा। अब गुणग्राम का माहात्म्य कहते हैं। श्रीरामचरितमानस में स्तुति कही गई है। उन्हीं स्तुतियों में गुणग्राम हैं। गुणग्राम का कथन ही स्तुति है। स्तुति कोई दूसरा पदार्थ नहीं है। इस ग्रन्थ में स्तुतियों की संख्या अट्ठाईस हैं। यहाँ गुणग्राम के माहात्म्य के विभाग भी अट्ठाईस हैं। अतः स्पष्ट है कि क्रमशः ये माहात्म्य, अट्ठाइसों स्तुतियों के हैं। रामजी के अनन्त गुण हैं। उनमें से कुछ से कवि का परिचय है। किन गुणों के योग के कथन से क्या फल होता है, यही फलश्रुति है।

१. पहिली ब्रह्मदेवकृत स्तुति है। उसका माहात्म्य कहते हैं : 'जग मंगल गुन ग्राम राम के। ब्रह्मदेव की स्तुति पर ही श्रीरामअवतार हुआ। इससे संसार का मङ्गल हुआ। इसलिए ब्रह्मदेव की स्तुति को अथवा उसमें वर्णित गुणग्राम को जगमङ्गल कहना सर्वथा उचित है।

२. कोसल्या कृत स्तुति है। उसमें जो गुणग्राम हैं उसका माहात्म्य है : दानि मुकुति धन धरम धाम[1] के। श्रीकन्त के प्रकट होने से यह गुणग्राम धन धर्म का दानी है। यथा : सो ममहित लागी जन अनुरागी प्रकटभये श्रीकन्ता। मुक्ति तथा धाम का देना तो कण्ठरवसे कहा है। यथा : यह चरित जो गावहिं हरिपद पावहिं ते न परहिं भव कूपा।

सद् गुरु ग्यान विराग जोग के। विबुध बैद भव भीम रोग के॥
जननि जनक सियराम प्रेम के। बीज सकल व्रत धरम नेम के॥२॥

अर्थ : ज्ञान, विराग और योग के सद्गुरु हैं और संसाररूपी भयङ्कर रोग के लिए देववैद्य : अश्विनीकुमार हैं। ये सीताराम के प्रेम के माता पिता हैं और सारे व्रत, धर्म और नियमों के बीज हैं।

व्याख्या : ३. अहल्याकृत स्तुति के गुणग्राम का माहात्म्य है : 'सद्गुरु ज्ञान विराग जोग के।' 'धीरज मन कीन्हा प्रभु कहँ चीन्हा' से ज्ञान का, 'मुनि शाप जो दीन्हा अति भल कीन्हा' से वैराग्य का, और 'पद कमल परागा रस अनुरागा मम मन मधुप करै पाना' से योग का सद्गुरु कहा।

४. परशुरामकृत स्तुति के गुणग्राम का माहात्म्य है : 'विबुध वैद्य भव भीम रोग के'। भगवत् और भागवत का अपराध ही भव भीम रोग है। उसी का क्षमापन इस स्तुति से हुआ है। इसी से इसे भव भीम रोग के लिए अश्विनीकुमार बतलाया है। अश्विनीकुमार दो भाई हैं। साथ ही रहते हैं। यहाँ भी दोनों भाई

---

१. चारों फल में काम है धाम नहीं है। परन्तु यह माता कौसल्या की स्तुति हैं उनके लिए धाम ही काम है।

राम लक्ष्मण की स्तुति है। भवरोग सब रोगों से भयङ्कर है। इसलिए राम गुणग्राम रूपी देववैद्य की आवश्यकता पड़ी।

५. सुनयनाकृत स्तुति के गुणग्राम का माहात्म्य है : जननि सियराम प्रेम के 'सनेहसानी मृदुबानी' है। इसलिए सियराम प्रेम की जननी कहा। ६. जनककृत स्तुति के गुणग्राम का माहात्म्य है : जनक सियराम प्रेम के। बोले वचन प्रेम जनु जाये : इसलिए सियराम प्रेम का जनक कहा। यहाँ जनक शब्द देकर स्पष्ट जनक की स्तुति दरसायी है।

७. भरद्वाजकृत स्तुति के गुणग्राम का माहात्म्य है : बीज सकल व्रत धरम नेम के। इससे मुनिजी को तप, तीर्थ, त्याग, जप, योग, विराग का फल मिला। फल में बीज रहता है, इसलिए कहा : बीज सकल व्रत धर्म नेम के।

समन पाप संताप सोक के। प्रिय पालक परलोक लोक के ॥
सचिव सुभट भूपति विचारि के। कुंभज लोभ उदधि अपार के ॥३॥

अर्थ : पाप सन्ताप और शोक के नाश करनेवाले और इस लोक तथा परलोक के प्यारे पालक हैं। विचाररूपी राजा के मन्त्री और सुभट हैं और लोभरूपी अपार समुद्र के लिए कुम्भज : अगस्त्य ऋषि हैं।

व्याख्या : ८. वाल्मीकिकृत स्तुति के गुणग्राम का माहात्म्य है : समन पाप संताप सोक के। अतः जानत तुमहि होइ जाई कहकर पाप, सन्ताप और शोक का नाश कहा। ९. अत्रिकृत स्तुति के गुणग्राम का माहात्म्य है : प्रिय पालक परलोक लोक के। नरादरेण ते पदं। व्रजंति नात्र संसयं। त्वदीय भक्ति संयुता। कहकर लोक और परलोक का प्रिय पालक कहा। १०. सरभंगकृत स्तुति का माहात्म्य है : सचिव भूपति विचार के। अध्रुव साधनों को देकर ध्रुवपद लिया। यथा : जोग जग्य जप तप जत कीन्हा। प्रभु कहँ देइ भगति वर लीन्हा। इसलिए भूपति विचार का सचिव कहा। ११. सुतीक्ष्णकृत स्तुति के गुणग्राम का माहात्म्य है : सुभट भूपति विचार के। विचार में आगे बढ़ते चले जाते हैं। पहिले कहा : तदपि अनुजश्री सहित खरारी। बसतु मनसि मम कानन चारी। फिर विचार[1] करके आगे बढ़े बोले : सो कोसल पति राजिव नयना। करहु सो राम हृदय मम अयना। फिर विचारकर और आगे बढ़े कहा : अनुज जानकी सहित प्रभु चाप बान धर राम। मम हिय गगन इन्दु इव बसहु सदा यह काम। इस भाँति विचार में सुभट की भाँति आगे बढ़ते ही चले जाते हैं। इसलिए इस गुणग्राम का माहात्म्य ग्रन्थकार ने 'विचार का सुभट' बतलाया। १२. अगस्त्यकृत स्तुति का माहात्म्य है : कुंभज लोभ उदधि अपार के। इसमें जगत् की अनित्यता कही। इसलिए

१. विचार किया कि काननचारी तो थोड़े ही दिन रहेंगे। इसलिए कोसलपतिरूप से हृदय में वास माँगा। फिर विचार किया कि कोसलपतिरूप से भी दशसहस्र वर्ष तक ही रहेंगे। अतः सदा के लिए अपने हृदयाकाश में चन्द्र की भाँति विचरण करने के लिए वर माँगा। विचार में उत्तरोत्तर उत्कर्ष आता ही गया।

अपार लोभ उदधि के लिए इस गुणग्राम को कुम्भज : अगस्त्य बतलाया। इस भाँति स्पष्ट दिखला दिया कि यह अगस्त्यकृत स्तुति का फल है।

काम कोह कलिमल करिगन के। केहरि[1] सावक जन मन बन के ॥
अतिथि पूज्य प्रियतम पुरारि के। कामद घन दारिद दवारि के ॥४॥

अर्थ : भक्तों के मनरूपी वनमें, काम, क्रोध और कलियुग के पापरूपी हाथियों के लिए सिंह के बच्चे हैं। त्रिपुरारि के अतिथि से पूज्य और प्रियतम हैं। दरिद्ररूपी वन की अग्नि के लिए कामना की वर्षा करनेवाले मेघ हैं।

व्याख्या : १३. जटायुकृत स्तुति के गुणग्राम का माहात्म्य है : काम कोह कलिमल करिगन के। केहरि सावक जन मन वन के। इस स्तुति में 'कामादि खल दल गंजनं' स्पष्ट ही लिखा है। 'केहरि सावक' कहने का भाव यह कि सिंह के बच्चों को हाथी पर चोट करने का बड़ा चोप होता है। यथा : यथा मत्तगजगन निरखि, सिंह किसोरहि चोप। १४. हनुमत्कृत स्तुति के गुणग्राम का माहात्म्य है : अतिथि[2] पूज्य प्रियतम पुरारि के। यहाँ हनुमान्‌रूपी रुद्र को अतिथिरूप में भगवत्प्राप्ति हुई। अतः 'अतिथि पूज्य प्रियतम पुरारि के' कहा। १५. रावणसभा में विभीषणकृत स्तुति के गुणग्राम का माहात्म्य है : कामद घन दारिद दवारि के। क्योंकि इस स्तुति की भावना से प्रसन्न होकर भगवान् ने लङ्का दे दी। इसलिए यह स्तुति 'कामद घन' है। 'ब्रह्म अनामय अज भगवन्ता' से 'प्रनतारति भंजन रघुनाथा' तक विभीषणोक्त गुणग्राम हैं।

मंत्र महा मनि विषय ब्याल के। मेटत कठिन कुअंक भाल के ॥
हरन मोह तम दिनकर कर से। सेवक सालिपाल जलधर से ॥५॥

अर्थ : विषयरूपी सर्प के लिए महा मन्त्रमणि हैं। ललाट में लिखे बुरे लेखों के मेटनेवाले हैं। अन्धकार को दूर करने के लिए सूर्य के किरणरूप हैं। सेवकरूपी धानों को पालनेवाले मेघ के समान हैं।

व्याख्या : १६. रावणवध के समय जो देवताओं ने स्तुति की उसी के गुणग्राम का माहात्म्य है : मंत्र महा मनि विषय ब्याल के। विषय को सर्प कहा। उसे रुद्धवीर्य करने के लिए महा मन्त्र और महा मणि का प्रयोग होता है। मन्त्रजप और महामणि के स्पर्श से सर्प बेकार हो जाता है। कुछ लोगों की सम्मति है कि मन्त्र और मणि शब्द के बीच में महा शब्द के प्रयोग से महौषधि का ग्रहण है अथवा यह गुणग्राम महा मणिमन्त्र है। इसका जप सद्यः लाभकर है। संस्कारादि की आवश्यकता नहीं। अङ्गन्यास, करन्यास आदि का झमेला इसमें नहीं। इस

१. रूपक तद्‌रूप सम है।

२. अतिथि सभी भाँति पूज्य है। फिर यदि वह प्रियतम हो तो उसकी पूजा में बड़ा आनन्द मिलता है। किष्किन्धा काण्ड में हनुमत्कृत रामजी के जिन गुणगणों का उल्लेख है वे शिवजी को अतिथि की भाँति पूज्य और प्रिय हैं।

स्तुति के पाठमात्र से विषय व्याल के विष का नाश होता है। भक्ति के विसारने से देवता भी भव प्रवाह में पड़े हैं। इस उक्ति के कारण इसे विषयव्याल का महा मणिमन्त्र कहा।

१७. रावणविजय के समय की ब्रह्मदेव की स्तुति के गुणग्राम का माहात्म्य है : मेटत कठिन कुअंक भाल के। कुअङ्क का लिखना और मिटाना इन्हीं का काम है। यथा : जिनके भाग लिखी लिपि मेरी सुख की नहीं निसानी। तिन रंकन को नाक सवारत हौं आयो नकवानी : विनय। इस उक्ति से, ब्रह्मकृत स्तुति का माहात्म्य होना ध्वनित है। स्तुति में कहा गया है : येहिते विपरीत क्रिया करिये। दुख को सुख मानि सुखी चरिये। जब दुःख को भी सुख मान लिया गया तब कुअङ्क करेगा ही क्या ? वह मिटा मिटाया ही है। इसलिए कहा : मेटत कठिन कुअंक भाल के।

१८. इन्द्रकृत स्तुति के गुणग्राम का माहात्म्य है : हरन मोह तम दिनकर करसे। इसमें कहा गया है : गत मान प्रद दुख पुंज। इस उक्ति से 'हरन मोह तम दिनकर करसे' सिद्ध हुआ।

१९. शङ्करकृत स्तुति के गुणग्राम का माहात्म्य है : सेवक सालिपाल जलधर से। सम्पूर्ण स्तुति में सेवक की रक्षा के लिए ही प्रार्थना है। अतः 'सेवक सालिपाल जलधर से' कहना प्राप्त है।

अभिमत दानि देव तरु वर से। सेवत सुलभ सुखद हरि हर से ॥
सुकवि सरद नभ मन उडगन से। राम भगत जग जीवन धन से ॥६॥

अर्थ : वाञ्छित फल देने में कल्पवृक्ष से हैं। सेवा करने में हरिहर की भाँति सुलभ और सुख देनेवाले हैं। सुकवि के मनरूपी शरद् ऋतु के आकाश में तारागण के समान हैं। रामभक्तों के तो जीवनधन से हैं।

व्याख्या : २०. वेदस्तुति के गुणग्राम का माहात्म्य है। अभिमत दानि दव तरुवर से। इसमें प्रणतपाल कृपाल की शक्ति के साथ स्तुति है। इसलिए इसकी कल्पवृक्ष से उपमा दी है। कल्पवृक्ष कहने पर भी 'वर' शब्द के प्रयोग का यह अभिप्राय है कि कल्पवृक्ष मोक्ष नहीं दे सकता। परन्तु यह ऐसा कल्पवृक्ष है कि भुक्ति, मुक्ति दोनों देता है।

२१. राज्याभिषेक के समय की शङ्कर भगवान् की स्तुति के गुणग्राम का माहात्म्य है : सेवक सुलभ सुखद हरिहर से। इस स्तुति में प्रार्थना की गई है : महिपाल विलोकय दीन जनं। इसलिए इस स्तुति को 'सेवक सुलभ सुखद' कहा। 'हरिहर से' कहकर हरकृत स्तुति का होना द्योतित किया।

२२. पुरजनकृत स्तुति के गुणग्राम का माहात्म्य है : सुकवि सरद नभ मन उडगन से। शरत् काल के आकाश में ही तारों का स्पष्ट दर्शन होता है। आकाश के निर्मल होने से जो तारक पुञ्ज अन्य ऋतुओं में नहीं दिखाई पड़ते वे भी दिखाई देने लगते हैं। इस स्तुति में 'तुलसीदास के प्रभुहि उदारहिं' कहा गया है। इसलिए 'सुकवि सरद नभ मन उडगन से' कहना प्राप्त है।

२३. सनकादिककृत स्तुति के गुणग्राम का माहात्म्य है : रामभगत जन जीवन धन से। इस स्तुति में 'सेवत सुलभ सकल सुख दायक' कहा है। इसलिए यह रामभक्तों के लिए जीवनधन है।

सकल सुकृत फल भूरि भोग से। जगहित निरुपधि साधुलोग से॥
सेवक मन मानस मराल से। पावन गंग तरंग माल से॥७॥

अर्थ : सम्पूर्ण पुण्यों के फलस्वरूप भोग के समूह के समान है। जगत् के निश्छल हित के लिए साधुओं के समान है। सेवक के मनरूपी मानस सरोवर के लिए हंस के समान है। गङ्गाजी की तरंगों के समान पवित्र है।

व्याख्या : २४. नारदकृत स्तुति के गुणग्राम का माहात्म्य है : सकल सुकृत फल भूरि भोग से। सुकृत का फल सुख और दुष्कृत का फल दुःख है। तब सब सुकृत का फल भूरि भोग होना ही प्राप्त है। अर्थात् जो सुख भूरि भोग में है वही सुख इस गुणग्राम के कथन, श्रवण में है। स्तुति में 'सुख रूप भूपवर' कहा है। इसलिए माहात्म्य में कहा। सकल सुकृत फल भूरिभोग।

२५. भुसुण्डिकृत स्तुति के गुणग्राम का माहात्म्य है : जगहित निरुपधि[1] साधु लोग से। भाव यह कि सुर, नर, मुनि की यही रीति है कि स्वार्थ के लिए प्रेम करते हैं। हेतु रहित दोनों लोक के हितकारी या तो भगवान् हैं या भागवत हैं। इसलिए साधु लोग को निश्छल हित कहा। भुसुण्डिकृत स्तुति में शत कोटि दुर्गादि देवताओं से रामजी को उपमित किया है। दुर्गादि देवता सोपधि हित हैं पर रामजी निरुपधि हित हैं। इसीलिए स्तुति का माहात्म्य भी वैसा ही है।

२६. विप्रकृत स्तुति के गुणग्राम का माहात्म्य है : सेवक मन मानस मराल से। मराल सदा मानस सरोवर में निवास करते हैं। यथा : जहँ तहँ काक उलूक बक, मानस सकृत मराल। सो 'नतोहं सदा सर्वदा संभु तुभ्यं' स्तुति में कहा। अतः माहात्म्य में 'सेवक मन मानस मराल' कहते हैं।

२७. भुसुण्डिकृत दूसरी स्तुति के गुणग्राम का माहात्म्य है : पावन गंग तरंग माल से। इस स्तुति में दुस्तर तरने का प्रसङ्ग आया है। यथा : हरिं नरा भजंति येऽति दुस्तरं तरंति ते। इसलिए माहात्म्य में बतलाया : पावन गंग तरंग माल से।

दो. कुपथ कुतरक कुचालि कलि, कपट दंभ पाखंड।
दहन राम गुनग्राम जिमि, इन्धन अनल प्रचंड॥३२॥
रामचरित राकेस कर, सरिस सुखद सब काहु।
सज्जन कुमुद चकोर चित, हित बिसेषि बड़ लाहु॥३२॥ क

अर्थ : कुमार्ग, कुतर्क, कलि की कुचाल, कपट, दम्भ और पाखण्ड को जलाने के लिए श्रीरामजी के गुणों के समूह वैसे ही हैं जैसे इंधन के लिए प्रचण्ड अग्नि।

---

१. उपधि = छल।

रामजी का चरित पूर्णचन्द्र की किरणों के समान सबको समानरूप से सुख देने वाला है, पर सज्जनरूपी कुमुद और चकोरों के चित्त को विशेष हित देनेवाला है। बड़ा लाभकारी है। किरण के स्पर्श से कुमुद खिल उठते हैं। इसलिए उनका हित है और चकोर उसका पान करते हैं। अतः उन्हें बड़ा लाभ है।

व्याख्या : २८. वेदविरुद्ध मार्ग को कुपथ कहते हैं। मनमानी तर्कना को कुतर्क कहते हैं। गर्हित चाल को कुचाल कहते हैं। ठगपन को कपट, धर्म के दिखावे को दम्भ और वेदों के न मानने को पाखण्ड कहते हैं। इन सबको जलाने के लिए राम गुणग्राम प्रचण्ड अग्नि है। अर्थात् ये सब अनायास भस्म हो जाते हैं। राम के सभी गुणग्राम सभी फल दे सकते हैं, फिर भी पृथक्-पृथक् गुणग्राम माहात्म्योक्त फल को विशेष रूप से देते हैं। यह तुलसीदासकृत स्तुति के गुणग्राम का माहात्म्य है। गणिका, अजामिल, गीध आदि का सन्तरण कहने से कुपथ, कुतर्क आदि का नाश कहा।

इस भाँति अट्ठाइसों गुणग्रामों का माहात्म्य कहा। यही उन स्तुतियों की फलश्रुति है। गुणग्राम कहकर फिर चरित्र की महिमा कहने लगे। पहिले कहा था 'रामचरित चिन्तामनि चारू' उसके बाद अट्ठाइसों गुणग्रामों की फलश्रुति कही। अब 'रामचरित राकेस कर' कहकर गुणग्रामों को चरित से सम्पुटित कर रहे हैं।

'रामचरित राकेस कर' कहने से बहुत सी बातों का प्रसङ्ग आ पड़ा। राकेश कर के लिए रात चाहिए। राकेश का समाज चाहिए। राकेश की सोलहों कलाएँ चाहिए। रामयशरूपी मानससरोवर के वर्णन में दिन का वर्णन स्पष्ट न करके रात के वर्णन का विशेष कारण चाहिए।

मानसरोवर के जिन यात्रियों ने अपनी यात्रा पर पुस्तकें लिखी हैं, उन सबों ने चाँदनी रात में मानसरोवर की महा शोभा वर्णन की है, जबकि उसके स्वच्छ जल में प्रकाशित आकाश, चन्द्र, ग्रहमण्डल, तारामण्डल के साथ प्रतिबिम्बित होता है। श्रीग्रन्थकार ने मानसरोवर यात्रा निसन्देह की है। उस मार्ग की कठिनाइयों का वर्णन आगे करेंगे। यथा : ते अति दुर्गम सैल बिसाला। बन बहु बिषम मोह मद माना। नदी कुतर्क भयंकर नाना। इत्यादि। अब यहाँ चाँदनी के वर्णन का प्रसङ्ग आगया। इसी भाँति यथास्थान सम्पूर्ण समाज का वर्णन करते चले जायँगे। पाठकों के सुभीते के लिए यहाँ उसका दिग्दर्शन मात्र कराया जा रहा है।

जिस राकेश कर को यहाँ रामचरित कहा गया है वह राका : पूर्णमासी की रात : रामभक्ति है। राकेश स्वयं रामनाम है। रामजी के अन्य नाम तारागण हैं। ये सब भक्त के हृदयरूपी आकाश में बसते हैं। यथा : राका रजनी भगति तव, राम नाम सोइ सोम। अपर नाम उडगन सरिस, बसहु भगत उर व्योम। राकेश : पूर्णमासी के चन्द्र : तभी होते हैं, जब सोलह कलाओं से पूर्ण हों।

जिस भाँति चन्द्र की प्रत्येक कला कुमुद और चकोर के लिए विशेष हितकारिणी और लाभदायिनी है उसी भाँति नामचन्द्र की कलाएँ अर्थात् रामचरित के कथानक सज्जनरूपी कुमुद और चकोर के लिए विशेष हितकारिणी और लाभ-

दायिनी हैं। अमृता मानदा पूषा पुष्टिस्तुष्टी रतिर्धृतिः। शशिनी चन्द्रिका कान्ति-ज्योंत्स्ना श्री प्रीतिरङ्गदा। पूर्णा-पूर्णामृता चैव विज्ञेयाः शशिनः कला। ये ही चन्द्र की सोलह कलाओं के नाम हैं। इनका मिलान नामचन्द्र की सोलहों कलाओं से नीचे दिया जाता है।

चन्द्रकला	नाम चन्द्रकला
१. अमृता	निज संदेह मोह भ्रम हरनी। करौं कथा भव सरिता तरनी॥
२. मानदा	बुध विश्राम सकल जन रंजनि। रामकथा कलिकलुष विभंजनि॥
३. पूषा	राम कथा कलि पन्नग भरनी। पुनि विवेक पावक कहँ अरनी॥
४. पुष्टि	राम कथा कलि कामद गाई। सुजन सजीवन मूरि सुहाई॥
५. तुष्टि	सोइ वसुधा तल सुधा तरंगिनि। भव भेषज भ्रमभेक भुअंगिनि॥
६. रति	असुर सेन सम नरक निकंदनि! साधु विवुध कुल हित गिरिनंदिनि॥
७. धृति	संत समाज पयोधि रमासी।
८. शशिनि	विश्व भारभर अचल छमासी।
९. चन्द्रिका	जमगन मुह मसि जग जमुनासी।
१०. कान्ति	जीवन मुक्ति हेतु जिमि कासी।
११. ज्योत्स्ना	रामहि प्रिय पावन तुलसी सी।
१२. श्री	तुलसिदास हित हिय हुलसी सी।
१३. प्रीति	सिव प्रिय मेकल सैल सुतासी। सकल सिद्धि सुख संपति रासी।
१४. अङ्गदा	सदगुन सुरगन अंव अदिति सी।
१५. पूर्णा	रघुपति भगति प्रेम परमिति सी।
१६. पूर्णामृता	राम कथा मंदाकिनी, चित्रकूट चित चारु। तुलसी सुभग सनेह वन, सिय रघुवीर विहारु॥

इस भाँति रामनाम राकेश की सोलहों कलाओं की फलश्रुति श्रीग्रन्थकार ने कही। अव रह गई रामजी के दूसरे नामों की वात जो तारागण से उपमित हैं। जिस भाँति तारागणों से आकाश भरा पड़ा है उसी भाँति रामजी के नामों से राम-चरित मानस भरा पड़ा है। परमेश्वर के सभी नाम गौण हैं अर्थात् गुणसूचक हैं। उन सब नामों के अर्थ हैं। जिस भाँति आकाश में ताराओं के गुच्छे हैं जिन्हें नक्षत्र कहते हैं उनकी : अभिजित को मिलाकर : अट्ठाईस संख्या शास्त्रों में कही है। उसी भाँति रामचरितमानस में अट्ठाईस स्तुतियाँ अर्थात् गुणग्राम हैं जिनकी फलश्रुतियाँ ग्रन्थ में दी गई हैं। इतना ही नहीं उन नक्षत्रों में जितने तारे चमकते हैं जैसा उनका आकार है, इत्यादिक बातों का भी आभास उन स्तुतियों में पाया जाता है। यह उनकी व्याख्या के समय दिखाया जायगा। यहाँ पर इतना ही दिखाया जाता है कि किस स्तुति को कौनसा नक्षत्र माना गया है।

संख्या	स्तुति	नक्षत्र	फलश्रुति
१.	ब्रह्मकृत	अश्विनी	जग मंगल गुन ग्राम राम के।
२.	कौसल्याकृत	भरणी	दानि मुकुति धन धर्म धाम के॥

संख्या	स्तुति	नक्षत्र	फलश्रुति
३.	अहल्याकृत	कृत्तिका	सदगुरु ज्ञान बिराग जोग के।
४.	परशुरामकृत	रोहिणी	बिबुध बैद भव भीमरोग के॥
५.	सुनयनाकृत	मृगशिरा	जननि : सियराम प्रेम के :।
६.	जनककृत	आर्द्रा	जनक सियराम प्रेम के।
७.	भरद्वाजकृत	पुनर्वसु	बीज सकल ब्रत धर्म नेम के॥
८.	वाल्मीकिकृत	पुष्य	समन पाप संताप सोक के।
९.	अत्रिकृत	अश्लेषा	प्रियपालक परलोक लोक के॥
१०.	शरभङ्गकृत	मघा	सचिव : भूपति बिचार के :।
११.	सुतीक्ष्णकृत	पूर्वा फाल्गुनी	सुभट भूपति बिचार के॥
१२.	अगस्त्यकृत	उत्तरा फाल्गुनी	कुंभज लोभ उदधि अपार के।
१३.	जटायुकृत	हस्त	काम कोह कलिमल करिगन के। केहरि सावक जनमन बन के॥
१४.	हनुमत्कृत	चित्रा	अतिथि पूज्य प्रियतम पुरारि के।
१५.	विभीषणकृत	स्वाती	कामद घन दारिद दवारि के॥
१६.	वेदकृत	विशाखा	मंत्र महा मनि बिषय ब्याल के।
१७.	ब्रह्मदेवकृत	अनुराधा	मेटत कठिन कुअंक भाल के॥
१८.	इन्द्रकृत	ज्येष्ठा	हरन मोह तम दिनकर कर से।
१९.	शङ्करकृत	मूल	सेवक सालिपाल जलधर से॥
२०.	देवकृत	पूर्वाषाढ़	अभिमत दानि देव तरुवर से।
२१.	शङ्करकृत	उत्तराषाढ़	सेवत सुलभ सुखद हरिहर से॥
२२.	पुरवासीकृत	अभिजित	सुकवि सरद नभ मन उडगन से।
२३.	सनकादिकृत	श्रवण	रामभगत जन जीवन धन से॥
२४.	नारदकृत	धनिष्ठा	सकल सुकृत फल भूरि भोग से।
२५.	भुसुण्डिकृत	शत तारक	जगहित निरुपधि साधु लोग से॥
२६.	विप्रकृत	पूर्वा भाद्रपद	सेवक मन मानस मराल से।
२७.	भुसुण्डिकृत	उत्तराभाद्रपद	पावन गंग तरंग माल से॥
२८.	तुलसीदासकृत	रेवती	कपट कुतरक कुचालि कलि कपट दंभ पाखंड। दहन राम गुनग्राम जिमि इन्धन अनल प्रचंड॥

निर्गलितार्थ यह है कि जिस भाँति मानसरोवर पूर्णमासी की रात्रि को सोलह कलायुक्त चन्द्र, नक्षत्र, तारामण्डल से युक्त होकर अपार शोभा को धारण करता है उसी भाँति यह रामचरित सर भी भक्तिरूपी पूर्णमासी की रात्रि में सोलह कलायुक्त रामनाम गुणग्रामों तथा अपार नामों के साथ अपार शोभा को प्राप्त होता है। जिसका अनुभव भक्त का हृदय ही कर सकता है। यहाँ लीला वर्णन समाप्त हुआ।

कीन्ह प्रस्न जेहिं भाँति भवानी। जेहिं बिधि संकर कहा बखानी ॥
सो सब हेतु कहब मैं गाई। कथा प्रबंध बिचित्र बनाई ॥१॥

अर्थ : जिस भाँति भवानी ने प्रश्न किया और जिस विधि से शङ्करजी ने बखान किया वह सब कारण मैं विचित्र कथा प्रसङ्ग बनाकर विस्तार से कहूँगा।

व्याख्या : प्रश्न में भाँति है और उत्तर में विधि है और प्रश्न करने का कारण है। जिस भाँति सुश्रूषा, विनय और आर्तिपूर्वक भवानी ने प्रश्न किया और शङ्करजी ने जिस विधि से दो दण्ड तक ध्यान में रामचरित्र का साक्षात्कार करके इष्ट देवता के प्रणतिपूर्वक प्रस्ताव क्रम से उत्तर दिया और इस भाँति संवाद होने का जो कारण हुआ, इन सब बातों को विस्तार पूर्वक कहने का श्रीग्रन्थकार संकल्प करते हैं। साथ ही साथ यह भी कहते हैं कि कथाप्रबन्ध को विचित्र बनाकर कहूँगा। वस्तुतः ग्रन्थ में प्रबन्ध की विचित्रता है। चार कल्प के रामावतार की कथा एक साथ कही जा रही है। सूक्ष्म दृष्टि से विचार करने पर इस बात का पता चलता है। प्रधान कथा तो ब्रह्म के रामावतार की है, पर साथ ही साथ क्षीरशायी भगवान् और विष्णु भगवान् के रामावतार की कथाएँ हैं। जहाँ जहाँ भेद पड़ा है वहाँ कथा में भी भेद दिखला दिया है। ऐसी विचित्रता अन्य ग्रन्थों में नहीं पाई जाती।

जेहिं यह कथा सुनी नहि होई। जनि आचरज करै सुनि सोई ॥
कथा अलौकिक सुनहिं जे ग्यानी। नहि आचरज करहिं अस जानी ॥२॥

अर्थ : जिसने यह कथा न सुनी हो वह इसे सुनकर आश्चर्य न करे। जो अलौकिक कथा ज्ञानी सुनते हैं, वे यह जानकर आश्चर्य नहीं करते।

व्याख्या : इस ग्रन्थ में रहस्यादि : अलौकिक ऐसी कथाएँ हैं जिनसे सर्वसाधारण के परिचित न होने की भी सम्भावना है। अतः वे आश्चर्य न करें, क्योंकि ज्ञानी आश्चर्य नहीं करते। वे जानते हैं कि 'नहि सर्वः सर्वं वेत्ति' सबलोग सब बात नहीं जानते। अतर्क्या खलु ये भावा न तांस्तर्केण योजयेत्। जो बातें तर्क की विषय नहीं उनमें तर्क करना उचित नहीं है : अज्ञानी ही, अभिमान से उन सब बातों को मानने से इनकार करते हैं जो उनकी समझ के बाहर हैं।

नई बात के सुनने से आश्चर्य होना स्वाभाविक है। पर रामकथा के लिए यह नियम नहीं है। जिस भाँति गूलर के फल के कीड़े उस फल के बाहर की बात नहीं जानते और न उसमें उनका तर्क चलता है। उसी भाँति मनुष्य भी मर्त्यलोक के बाहर की बात नहीं जानते और तद्विषयक उनका तर्क वास्तविकता से बहुत दूर चला जाता है। यथा : उमरि तरु बिसाल तव माया। फल ब्रह्मांड अनेक निकाया। जीव चराचर जंतु समाना। भीतर बसहिं न जानहि आना।

रामकथा कै मिति जग नाहीं। असि प्रतीति तिन्हके मन माहीं ॥
नाना भाँति राम अवतारा। रामायन सत कोटि अपारा ॥३॥

अर्थ : रामजी की कथा की सीमा जगत् में नहीं है। उनके मनमें ऐसा विश्वास

रहता है। रामजी के नाना अवतार हुए हैं तथा रामायण सी करोड़ हैं और अपार हैं।

व्याख्या : रामजी के चरित्र का अन्त नहीं। कितने चरित्र ऐसे हुए जिनका पता न दशरथ, कौसल्या को लगा न भाइयों को लगा, दूसरों की कौन चलावे। अतः इनके चरित्र अपार हैं। यदि एक ही रामावतार हुआ होता तब तो यह भी प्रश्न उठ सकता था कि एक रामायण को कथा दूसरे से क्यों नहीं मिलती? यहाँ तो प्रत्येक कल्प में रामावतार होता है और उन अवतारों के चरित सर्वथा समान नहीं होते। अनन्त कोटि कल्प बीत गये। सबमें रामावतार हुआ। सबमें कुछ न कुछ भिन्नता थी। सबका वर्णन ऋषियों ने रामायण बनाकर किया। इसलिए असंख्य रामायण हैं।

कलप भेद हरि चरित सुहाए। भाँति अनेक मुनीसन्ह गाए॥
करिअ न संसय अस उर आनी। सुनिअ कथा सादर रति मानी॥४॥

अर्थ : रामजी के सुन्दर चरित कल्पभेद से अनेक भाँति मुनीश्वरों ने गान किया है। यह बात हृदय में लाकर संशय न कीजिये। कथा को आदरपूर्वक भक्ति से सुनिये।

व्याख्या : किसी कल्प की कथा वाल्मीकि ने कही, किसी को व्यास ने कही, किसी की मार्कण्डेय ने कही। अतः कथाओं में भेद पड़ना स्वाभाविक है। अठारह पुराण व्यासकृत हैं और सबमें श्रीरामकथाएँ हैं और सब भिन्न हैं। क्योंकि सब पुराणों में भिन्न कल्पों[१] की कथाएँ हैं। अतः कथाभेद के विषय में संशय करना बड़ी भारी भूल है। संशय करने से मूल प्रयोजन नष्ट हो जाता है। कथा के प्रति आदर या प्रेम नहीं रह जाता। अतः श्रोता का अकल्याण होता है।

दो. राम अनंत अनंत गुन, अमित कथा विस्तार।
सुनि आचरजु न मानिहहिं, जिनके विमल विचार॥३३॥

अर्थ : रामजी अनन्त हैं। उनके गुण अनन्त हैं। उनकी कथा का विस्तार अपार है। जिनके निर्मल विचार हैं वे सुनकर आश्चर्य न मानेंगे।

व्याख्या : रामजी देशतः अनन्त हैं। यथा : कहहु सो कहाँ जहाँ प्रभु नाहीं।

---

१. वराहकल्पवृत्तान्तमधिकृत्य पराशरः। श्वेतकल्पप्रसङ्गेन धर्मान् वायुरथाब्रवीत्॥
यत्राह नारदो धर्मान् बृहत् कल्पाश्रयाणि च। इत्यादि।

विष्णु पुराण में वाराह कल्प की, वायुपुराण में श्वेत कल्पकी, नारद पुराण में बृहत् कल्प की कथाएँ हैं। इत्यादि। ब्रह्मदेव के एक दिन को कल्प कहते हैं। वह एक सहस्र चतुर्युगियों का होता है। उसके बाद प्रलय हो जाता है। उतने दिनों तक प्रलय रहता है। फिर सृष्टि होती है। दूसरा कल्प आरम्भ होता है। एक ब्रह्मदेव का काल ३६००० कल्प का होता है। सब कल्पों में रामावतार होता है। इस भाँति अगणित ब्रह्मदेव हुए और होंगे। अतः राम कथा की मिति नहीं है।

कालतः अनन्त हैं। यथा : काल ब्याल कर भक्षक जोई। वस्तुतः अनन्त हैं। यथा : दिखरावा मातहि निज अद्भुत रूप अखंड। रोम रोम प्रति लागे कोटि कोटि ब्रह्मंड। गुण अनन्त हैं। यथा : जल सीकर महिरज गनि जाहीं। रघुपति गुन नहि बरनि सिराही। अमित कथा विस्तार है। यथा : श्रीराम रावन समर चरित अनेक कल्प जे गावहीं। सत सेष, सारद, निगम कवि तेउ तदपि पार न पावहीं।

अतः विचारशील आश्चर्य न करेंगे। नहि आचरज करहि अस जानी से उपक्रम और सुनि आचरज न मानिहैं जिनके विमल विचार से उपसंहार किया।

एहि विधि सब संसय करि दूरी। सिरधरि गुरपद पंकज धूरी ॥
पुनि सबहीं विनवौं करजोरी। करत कथा जेहि लाग न खोरी ॥१॥

अर्थ : इस भाँति सब सन्देहों को दूर करके और गुरुजी के चरण कमल की धूलि को सिर पर रखकर फिर हाथ जोड़कर सबकी विनती करता हूँ जिससे कथा की रचना में कोई दोष न लगे।

व्याख्या : करिय न संशय अस उरआनी से उपक्रम करके एहि विधि सब संसय करि दूरी से उपसंहार करते हैं। संशय दूर करने की विधि ऊपर लिख आये हैं। पदपंकजरज का बाह्य उपयोग तीन प्रकार से होता है। १. सिर पर रक्खा जाता है। २. हृदय में लगाया जाता है और ३. आँख में लगाया जाता है। यथा : रज सिर धरिहिय नयनन्हि लावहिं। रघुपति मिलन सरिस सुख पावहिं। सो ग्रन्थकार ने ग्रन्थारम्भ करते ही गुरुपदरज को नेत्रों में लगाकर विवेक विलोचन को निर्मल किया। यथा : तेहि करि विमल विवेक विलोचन। बरनौं रामचरित भवमोचन। तब समष्टि की वन्दना करने लगे। वन्दना समाप्त होने पर कथा आरम्भ करने के पहिले गुणगणों को वश में करने के लिए उस धूलि को सिर पर रक्खा : यथा सिर धरि गुर पद पंकज धूरी। अयोध्या काण्ड के आरम्भ में हृदय में लागावेंगे।

व्यष्टि जीव और समष्टि ईश्वर है। अतः तीसरी बार समष्टि की वन्दना करते हैं। एक बार कर चुके हैं : समुझि विविध-विधि विनती मोरी। कोउ न कथा सुनि देइय खोरी। अब फिर वैसी ही विनय कर रहे हैं। दूसरी बात यह कि ग्रन्थकार ने वुधिवल के लिए सबसे प्रार्थना की है। यथा : निज वुधिवल भरोस मोहि नाहीं। ताते विनय करौं सब पाहीं। अब यदि कथा में दोष रह जाय तो दोष देखनेवाला ही दोषी है। क्योंकि ग्रन्थकार ने तो कृपा के लिए विनय की थी। उन्होंने कृपा क्यों नहीं की ?

सादर सिवहि नाइ अब माथा। बरनौं बिसद रामगुन गाथा ॥
संवत सोरह सै इकतीसा। करौं कथा हरिपद धरि सीसा ॥२॥

अर्थ : अब मैं शिवजी को आदर सहित सिर नवाकर रामजी के विमल गुणों की गाथा का वर्णन करता हूँ। हरि के चरणों में सिर रखकर मैं संवत् १६३१ में कथा की रचना करता हूँ।

व्याख्या : व्यास में वन्दना करके अब समास में वन्दना करते हैं। समास में

वार की वन्दना है। यथा १. गुरु की २. समष्टि की ३. शिव की और ४. हरि की। कथा के प्रारम्भ में आचार्य की वन्दना आवश्यक है। अतः तीसरी वार शिवजी को प्रणाम किया। यहाँ से पूर्व घाट की कथा प्रारम्भ हुई।

पहिले चरणकमल की वन्दना की थी। अब प्रारम्भ करते समय हरिके चरणों पर सिर रक्खे देते हैं। रचना का काल कहते हैं कि विक्रमीय सम्वत् १६३१ में रचना प्रारम्भ की। जब उसके उल्लेख का अवसर आया तब लिख दिया। यहाँ से पूर्व दीन : घाट की रचना में हाथ लगाया। नाम, रूप और लीला का वर्णन पहिले कर आये। अब यहाँ.से धामवर्णन आरम्भ करते हैं।

नौमी भौमवार मधु मासा। अवधपुरीं यह चरित प्रकासा ॥
जेहि दिन राम जनम श्रुति गावहिं। तीरथ सकल तहाँ चलि आवहिं ॥३॥

अर्थ : चैत्रमास, नौमी, मङ्गलवार को अवधपुरी[१] में इस चरित्र का प्रकाश किया। जिस दिन रामजी का जन्म वेद कहते हैं सारे तीर्थ वहाँ चले आते हैं।

व्याख्या : तिथि, वार, मास कहकर देश कहते हैं। भाव यह कि रामजन्म का काल और देश तथा रामचरित मानस के जन्म का काल और देश एक ही है। 'जेहि दिन राम जन्म' कहकर शुक्ल पक्ष भी कह दिया। 'नौमी भौमवार' कहने का भाव यह कि ऐसा होने से सर्वसिद्धिप्रदयोग पड़ जाता है। यथा : शनिभौमगता रिक्ता सर्वसिद्धिप्रदायिनी। श्रीरामनवमी के दिन अयोध्या का माहात्म्य और भी अधिक हो जाता है क्योंकि उस दिन सभी काशी, प्रयागादि तीर्थ वहाँ आजाते हैं। देशकाल की उत्तमता कहकर, अब वातावरण कहते हैं।

असुर नाग खग नर मुनि देवा। आइ करहिं रघुनायक सेवा ॥
जनम महोत्सव रचहिं सुजाना। करहिं राम कल कीरति गाना ॥४॥

अर्थ : उस दिन : असुर, नाग, पक्षी, मुनि और देवता आकर रघुनायक की सेवा करते हैं। सुजान लोग रामजी के जन्म का महोत्सव करते हैं और उनकी सुन्दर कीर्ति का गान करते हैं।

व्याख्या : रामजी के सभी उपासक वहाँ रामनौमी को जुट जाते हैं। देवता असुर आदि अदृश्य रूप से आकर रामजी की सेवा करते हैं और सुजान : मनुष्य : तो जन्म महोत्सव मनाते हैं और सुन्दर-कीर्ति का गान करते हैं।

दो. मज्जहिं सज्जन वृन्द बहु, पावन सरजू नीर।
जपहिं राम धरि ध्यान उर, सुन्दर स्याम सरीर ॥३४॥

अर्थ : सज्जनों के झुण्ड के झुण्ड पवित्र सरयू नदी के जल में स्नान करते हैं और सुन्दर श्याम शरीर का हृदय में ध्यान करके रामजी का जप करते हैं।

व्याख्या : खल कदाचित् ही कोई सज्जनसङ्ग में पड़कर चला जाता हो नहीं

---

१. तिथिर्धन्या च नवमी यस्यां जातो हरिः स्वयम्। नवमी तिथि धन्य है, जिसमें स्वयं हरि का अवतार है। ऋतूनां कुसुमाकरः, ऋतुओं में वसन्त धन्य है।

तो प्रायेण नहीं जाते। सज्जन लोग पावन सरयू नीर में मज्जन करते हैं। जो मज्जन ते बिनहिं प्रयासा। मम समीप नर पावहिं वासा। मनसा वाचा कर्मणा रामोपासना वहाँ होती है। 'मज्जन' से कर्मणा, 'जपहिं' से वाचा, 'धरिध्यान उर' से मनसा कहा। जानकीजी की चरचा नहीं की क्योंकि उसदिन 'बालभाव' की उपासना की प्रधानता है।

दरस परस मज्जन अरु पाना। हरै पाप कह वेद पुराना ॥
नदी पुनीत अमित महिमा अति। कहि न सकै सारदा विमल मति ॥१॥

अर्थ : वेदपुराण कहते हैं कि दर्शन, स्पर्श, मज्जन और पान पाप हरण करता है। यह नदी पवित्र है। इसकी महिमा अत्यन्त असीम है। निर्मल बुद्धिवाली सरस्वती भी नहीं कह सकती।

व्याख्या : दूर से दर्शन करते ही पाप भागता है। निकट आने पर स्पर्श, प्रवेश करके मज्जन तत्पश्चात् आचमन। यही विधान है। इनमें से एक-एक पापनाशक हैं। यहाँ वेदपुराण का प्रमाण देते हैं क्योंकि वे ही अदृष्टार्थ ज्ञापक हैं।

नदी पुनीत और भी हैं। यथा : नदी पुनीत पुरान बखानी। अत्रिप्रिया निज तपबल आनी। सुरसरि धार नाम मंदाकिनि। जो सब पातक पोतक डाकिनि। पर अति अमित महिमा इसी की है। स्वर्ग लोक की वक्ता सारदा नहीं कह सकतीं। वाग्देवता ही नहीं कह सकतीं। अतः सर्वथा अकथनीय महिमा है।

राम धामदा पुरी सुहावनि। लोक समस्त विदित अति पावनि ॥
चारि खानि जग जीव अपारा। अवध तजे तनु नहिं संसारा ॥२॥

अर्थ : यह सुहावनी पुरी रामजी के धाम को देनेवाली है। सभी लोकों में प्रसिद्ध अति पवित्र है। जगत् में चार प्रकार के जीव हैं। जिनका पारावार नहीं पर अवध में शरीर छोड़ने से संसार फिर नहीं होता है।

व्याख्या : राम वचन। यथा : मम धामदा पुरी सुखरासी। सुखराशि होने से 'सोहावनि' कहा। लोक समस्त विदित अति पावनि। यथा : जद्यपि सब वैकुण्ठ बखाना। वेदपुरान विदित जग जाना। अवध सरिस प्रिय मोहि न सोऊ। यह प्रसंग जानै कोऊ कोऊ। अवधपुरी प्रति भुवन निनारी। अवध तहाँ जहँ राम निवासू। तहँइ दिवस जहँ भानु प्रकासू।

मोक्षदायिनी सातों पुरियों में प्रथम है। अतः 'अवध तजे तनु नहिं संसारा' कहते हैं।

सबविधि पुरी[1] मनोहर जानी। सकल सिद्धिप्रद मंगल खानी ॥
विमल कथा कर कीन्ह अरंभा। सुनत नसाहिं काम मद दंभा ॥३॥

---

१. रामस्य नाम रूपञ्च लीलाधाम परात्परम्। एतच्चतुष्टयं नित्यं सच्चिदानन्दविग्रहम् ॥

अर्थ : रामजी का नाम, रूप, लीला और परात्पर धाम चारों नित्य हैं। सच्चिदानन्द की मूर्ति हैं।

अर्थ : सब भाँति से पुरी को मनोहर, सब सिद्धियों की देनेवाली और मङ्गल की खानि जानकर निर्मल कथा का मैंने आरम्भ किया है। जिसके सुनने से काम, मद और दम्भ दूर हो जाते हैं।

व्याख्या : पुरी के मनोहर होने की सब विधि कह चुके हैं। मोक्ष की विधि कही कि पुरी में शरीर छोड़ने से होता है। सिद्धि की विधि कहते हैं कि माँगने से मिलती है। मङ्गल की विधि कहते हैं कि अवध पुरी में उसकी खानि है। भक्ति की विधि कहते हैं : कवनेउ जनम अवध बस जोई। रामपरायन सो परि होई। यहाँ तक धाम का वर्णन किया।

श्रीरामजी के नाम, रूप, लीला और धाम चारों सच्चिदानन्द रूप हैं। यहाँ धाम का वर्णन समाप्त करते हैं। शेष तीन का वर्णन पीछे हो चुका है।

अवधपुरी विमल है। यथा : लोक समस्त विदित अति पावनि। सरयू विमल हैं। यथा : नदी पुनीत अमित महिमा अति। समय विमल है। यथा : जेहि दिन रामजन्म श्रुति गावहिं। अतः ऐसे विमल संयोग में विमल कथा का प्रारम्भ किया। कथा की रचना पहिले ही करके उस दिन 'अथ' और 'इति' नहीं लिख दिया। कथा ऐसी निर्मल है कि तदनुसार आचरण तो दूर की बात है उसके श्रवण मात्र से काम, मद और दम्भ का नाश हो जाता है।

रामचरितमानस एहि नामा। सुनत श्रवन पाइअ विश्रामा ॥
मन करि विषय अनल बन जरई। होइ सुखी जौ येहि सर परई ॥४॥

अर्थ : इसका नाम रामचरितमानस है। जिसे कानों से सुनने से विश्राम मिलता है। मनरूपी हाथी विषयरूपी दावानल में जल रहा है। यदि इस सरोवर में आ पड़े तो सुखी हो जाता है।

व्याख्या : सुनत नसाहिं काम मद दंभा : कहकर दोषापनयन कहा। अब गुणाधान कहते हैं कि कानसे सुनते ही विश्राम मिल जाता है। उदाहरण देते हैं कि जैसे हाथी दावानल में फँस गया हो, महा विकल होकर इधर उधर दौड़ने पर भी शरण कहीं न मिलती हो, प्राणसंकट उपस्थित हो उस समय यदि सरोवर मिल जाय तो उसमें प्रवेश करके वह सुखी हो जाता है। इसी भाँति यह मन विषय वन के दावानल में जल रहा है। कहीं शरण नहीं है। वह यदि इस रामचरितमानस में जा पड़े तो सुखी हो जाता है। इसलिए इसका नाम 'रामचरितमानस' है।

रामचरितमानस मुनिभावन। विरचेउ संभु सुहावन पावन ॥
त्रिविध दोष दुख दारिद दावन। कलि कुचालि कुलि कलुष नसावन ॥५॥

अर्थ : मुनियों को प्रिय, पवित्र और सुहावने रामचरितमानस को शिवजी ने रचा। यह तीनों प्रकार के दोष, दुःख और दरिद्रता को नष्ट करनेवाला है। कलि के कुचाल और सब पापों का नाश करता है।

व्याख्या : यह रामचरित सर मुनियों को मनभावन है, खल को नहीं। उसे तो 'जातइ नीद जुड़ाई होई' और 'जौ बहोरि कोउ पूछन आवा। सर निंदा करि

ताहि बुझावा। सर में दोष नहीं, यह तो देवखात है। महादेवजी का बनाया है। अतः इसके सुहावन पावन होने में सन्देह को स्थान नहीं है।

दोष, दुःख और दारिद्रय को तीन प्रकार का माना। आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक। दोष होने से ही दुःख होता है। दोष कारण है, दुःख कार्य है। अभावरूप दारिद्रय सब दुःखों से बड़ा है। धनाभाव आधिभौतिक दारिद्रय है। पुण्याभाव आधिदैविक दारिद्रय है। ज्ञानाभाव आध्यात्मिक दारिद्रय है। यह रामचरितमानस वनाग्नि के समान इनका नाश करनेवाला है। यह 'सुहावन' पद की व्याख्या है।

कलि की कुचालि। यथा : भए लोग सब मोहबस, लोभ ग्रसे सुभ कर्म। और सब पापों का रामचरितमानस नाश करता है। यथा : करहिं पाप दुख पावहिं।

रचि महेस निज मानस राखा। पाइ सुसमउ सिवासन भाखा॥
ताते रामचरितमानस बर। धरेउ नाम हियँ हेरि हरषि हर॥६॥

अर्थ : इसे रचकर महादेवजी ने अपने मन में रक्खा और सुअवसर पाकर भवानी से कहा। इसीसे हर : शिवजी : ने सोच समझकर और प्रसन्न होकर इसका नाम श्रेष्ठ रामचरित्तमानस रक्खा।

व्याख्या : महादेवजी ने बनाया तो सही पर अपने मनमें ही रहने दिया। किसी से कहा नहीं। सुसमय पाकर अर्थात् जब उमा कथा सुनने के लिए आर्त हुईं, उन्हें कथा सुनने की उत्कट इच्छा हुई, तब उनसे कहा। सतीस्वरूप में नहीं कहा।

जब कथा कहनी पड़ी तो उसका कुछ नाम भी चाहिए। अतः विचारने पर यह बात मन में आई कि यह कथा मानससर सी सुहावन पावन है। मानससर में और इनमें गुणसाम्य भी यथेष्ट है। अतः नाम अच्छा मिल जाने से प्रसन्न होकर इसका नाम 'रामचरितमानस' रक्खा।

कहउँ कथा सोइ सुखद सुहाई। सादर सुनहु सुजन मन लाई॥७॥

अर्थ : उसी सुहाई और सुख देनेवाली कथा को मैं कहता हूँ। सज्जनो! आदर पूर्वक मन लगाकर इसे सुनो।

व्याख्या : हितं मनोहारि च दुर्लभं वचः। हित भी हो और मनका हरण करनेवाला भी हो, ऐसा वचन दुर्लभ है। सो यह पूरी की पूरी कथा हित और मनोहारी है। इसलिए 'सुखद सुहाई' कहते हैं। श्रीग्रन्थकार के : दीन : घाट के श्रोता सुजन हैं। क्योंकि उनको इसे सुनकर सुख होता है। यथा : पइहहिं सुख मुनि सुजन जन, खल करिहहिं उपहास। यथार्थ फल प्राप्ति के लिए सावधान करते हैं कि आदर के साथ मन लगाकर सुनो। यह कथा बहुत बड़े महान् लोगों का प्रसाद है। अतः आदर के साथ ग्रहण करो और यह बड़ी हितकारिणी है, इससे मन लगाओ।

१. मानससर प्रसङ्ग

दो. जस मानस जेहि विधि भयेउ, जगप्रचार जेंहि हेतु।
अब सोइ कहउँ प्रसंग सव, सुमिरि उमा वृषकेतु ॥३५॥

अर्थ : यह मानस जैसा है जिस विधि से हुआ और जिस कारण से जगत् में इसका प्रचार हुआ अव वही सब प्रसङ्ग उमा वृषकेतु को स्मरण करके कहता हूँ।

व्याख्या : १. मानस का मानचित्र खींचने, उसके बनने की विधि वर्णन करने और संसार में उसके प्रचार का कारण बतलाने का ग्रन्थकार संकल्प करते हैं। संकल्प भगवत्स्मरण पूर्वक होना चाहिए। इसलिए उमा वृषकेतु का स्मरण करते हैं। क्योंकि उमा प्रणवरूपा है। उमा का नाम प्रणव के अक्षरों से ही बना हुआ है : उ+म+अ=उमा। चतुष्पाद धर्म ही वृष है। ऐसा वृष है केतु : पताका जिसका, उस सत् रूप ब्रह्म को वृषकेतु कहते हैं। इस भाँति संकल्प के पहिले ॐतत्सत्[१] का 'उमा-वृषकेतु' के रूप में स्मरण करते हैं, जिसमें सबका अधिकार है। दूसरा कारण उमा-वृषकेतु के स्मरण का यह भी है कि उमा और वृषकेतु ही इस रामचरितमानस के प्रथम श्रोता और वक्ता हैं। उन्हीं से इसकी परम्परा चली है।

संभुप्रसाद सुमति हियँ हुलसी। रामचरितमानस कवि तुलसी॥
करइ मनोहर मति अनुहारी। सुजन सुचित सुनि लेहुँ सुधारी॥१॥

अर्थ : शिवजी की कृपा से हृदय में सुमति उल्लसित हुई और तुलसी रामचरितमानस का कवि हुआ। बुद्धि के अनुसार मनोहर बनाता है। सुजन जन सुन्दर चित्त से सुनकर सुधार लें।

व्याख्या : पहिले सुमति का बड़ा घाटा था, मति संसार में निरत थी। यथा : कहँ मति मोरि निरत संसारा। मति अति नीच ऊँचि रुचि आछी। निज वुधि वल भरोस नहि मोरे। इसलिए अपने को कवि नहीं मानते थे। यथा : कवि न होउँ नहि चतुर कहावों। कवित विवेक एक नहि मोरे। अब शङ्कर के प्रसाद से सुमति उल्लसित हुई है। अतः स्वयं अपने को कह रहे हैं : रामचरितमानस कवि तुलसी।

रामजी का नाम मनोहर है। यथा : आखर मधुर मनोहर दोऊ॥
रामजी का रूप मनोहर है। यथा : राजकुँअर तेहि अवसर आए।
मनहु मनोहरता तन छाए॥
रामजी की लीला मनोहर है। यथा : परम मनोहर चरित अपारा।
करत फिरत चारिउ सुकुमारा॥

---

१. ॐतत्सदिति निर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविधः स्मृतः। ब्राह्मणास्तेन वेदाश्च यज्ञाश्च विहिताः पुरा।
ओम्, तत्, सत्, यह तीन प्रकार का ब्रह्म का निर्देश है। पूर्व काल में इस तीन प्रकार के नाम से ही ब्राह्मण, वेद और यज्ञ का विधान किया गया है।

रामजी का धाम मनोहर है। यथा : सब विधि पुरी मनोहर जानी।
सकल सिद्धि प्रद मंगलखानी ॥

अतः इनकी कथा भी मनोहर होनी चाहिए सो मैं मति अनुसार मनोहर कर रहा हूँ : इसे सुजन प्रसन्न मन होकर सुनें और मनोहरता में जहाँ त्रुटि हो वहाँ सुधार लें। यथा : सो सुधारि हरि तन जिमि लेही। दलि दुख दोष विमल जस देहीं।

सुमति[१] भूमि थल हृदय अगाधू। वेद पुरान उदधि घन साधू ॥
वरषहिं राम सुजस वर वारी। मधुर मनोहर मंगल कारी ॥२॥

अर्थ : सुमति भूमिका है। हृदय गहरा स्थान है। वेद, पुराण समुद्र हैं। साधु बादल हैं। वे रामजी के सुयशरूपी मधुर मनोहर मङ्गलकारी जल की वर्षा करते हैं।

व्याख्या : तो सुमति भूमिका की प्राप्ति शम्भुप्रसाद से हो गई। उसी के कारण हृदय में भी गहराई आगई। अब वर्षा हो तो भरकर तालाब हो जाय। सो चार वेद बड़े बड़े चारों समुद्र हैं। अठारह पुराण छोटे समुद्र हैं। जल का परमेश्वरी भण्डार समुद्र है। पर वह खारा है, सबके लिए उपयोगी नहीं है। उसके अधिकारी मेघ हैं। उन्हीं में यह सामर्थ्य है कि उसमें से प्राणियों के उपयोगी अंश को ले लेवें। खारे जल को मीठा करके बरसें। इसी प्रकार वेद, पुराणों में सब कुछ भरा है। सो साधुओं में ही यह सामर्थ्य है कि उसमें से रामयश तथा भक्ति को पृथक् करके ले लेवें। और संसार में उसकी वर्षा कर दें। यथा : सुजस पुरान निगम आगमवद। जासु सुजस त्रैलोक उजागर : रामचरित अमृतवत् मीठा है। यथा : श्रवनामृत जेहि कथा सुहाई। नाथ तवानन ससि श्रवत कथा सुधा रघुवीर। श्रवन पुटनि मन पान करि नहि अघात मति धोर। भगवान् के नाम, रूप, लीला, धाम चारो मंगलमय हैं।

नाम मंगलमय है। यथा : भाव कुभाव अनख आलसहूँ।
राम जपत मंगल दिसि दसहूँ ॥

रूप मंगलमय है। यथा : मंगल भवन अमंगल हारी।
द्रवहु सो दसरथ अजिर विहारी ॥

लीला मंगलमय है। यथा : मंगल करनि कलिमल हरनि,
तुलसी कथा रघुनाथ की।

धाम मंगलमय है। यथा : सब विधि पुरी मनोहर जानी।
सकल सिद्धि प्रद मंगलखानी ॥

यहाँ सुयश वारि के तीन गुण कहे। १. मधुर २. मनोहर ३. मंगलकारी।

लीला सगुन जो कहहिं वखानी। सोइ स्वच्छता करै मल हानी ॥
प्रेम भगति जो वरनि न जाई। सोइ मधुरता सुसीतल ताई ॥३॥

---

१. आठ दोहों में 'मानस प्रसङ्ग' कहा गया है, इस पर 'भाव प्रकाशिका' नाम की वृहद् टीका प्रकाशित हो चुकी है। अतः यहाँ संक्षेप से टीका की जाती है।

अर्थ : सगुण लीला जो बखान करते हैं वही स्वच्छता मल की हानि करती हैं। प्रेम और भक्ति जिनका वर्णन नहीं किया जा सकता, वही मिठास तथा सुन्दर तरावट है।

व्याख्या : तीनों गुणों में से पहिले मनोहरता कहते हैं। जल की स्वच्छता ही मनोहरता है। साधु लोग सगुण लीला को बखानकर कहते हैं, वही स्वच्छता है। रामजी की लीला दो प्रकार की होती है, एक निर्गुण लीला, दूसरी सगुण लीला। निर्गुण लीला यथा : लव निमेष महँ भुवन निकाया। रचै जासु अनुसासन माया। सगुण लीला यथा : कपि सेन संग संहारि निसिचर रामसीतहिं आनि हैं। त्रैलोक पावन सुजस सुरमुनि नारदादि बखानि हैं।

उस सगुण लीला से मल की हानि होती है। सबकी उपकारिण नहीं होने से निर्गुण लीला बखानकर नहीं कहते। इसीलिए वर्षा के जल में गहराई नहीं के बराबर रहती है। बूँद बूँद बरसता है। क्योंकि गहराई तो निर्गुण महिमा में है। यथा : रघुपति महिमा अगुन अबाधा। बरनब सोइ बर बारि अगाधा। मानस सरोवर का जल बाहर का मल दूर करता है। पर यह जल भीतर का मल दूर करता है।

इस जल में प्रेम मधुरता है और भक्ति शीतलता है। जल के चार गुण कहे गये हैं : निर्मलता इक जानिये पुनि शीतलता मान। मधुर सुवासित चारगुन जल के प्रकट बखान। सो वर्षा के जल में सुगन्ध नहीं होती, तीन ही गुण होते हैं। यहाँ मधुरता के साथ शीतलता भी कहा। अब मङ्गलकारित्व कहेंगे।

सो जल सुकृत सालि हित होई। रामभगत जन जीवन सोई ॥
मेधा महिगत सो जल पावन। सकिलि श्रवन मग चलेउ सुहावन ॥४॥

अर्थ : वह जल सुकृतरूपी धान के लिए हितकारी है। वही रामजी के भक्तों का जीवन है। वह पवित्र और सोहावन जल मेधा : धारण शक्ति : रूपी पृथ्वी पर पड़कर और सिमिटकर कानरूपी मार्ग से : भीतर : चला।

व्याख्या : वह वर्षा का जल पुण्यरूपी धान को बड़ा लाभ पहुँचाता है। दूसरे जल से धान वैसा सुख नहीं मानता। अर्थात् रामयश की वर्षा में ही पुण्य की रात दिन बढोत्तरी होती है। यदि साधु द्वारा रामयश का श्रवण न हुआ तो कितना ही सुकृत हो, वह सूख जाता है। क्योंकि सुकृतरूपी धान के पौधों को रामयश की बड़ी प्यास होती है। यदि प्यास न हुई तो समझना चाहिए कि वह पुण्य शालि नहीं है कोई दूसरी घास है। वही जल रामभक्तों का जीवन है। यथा : राम उपासक जे जग माहीं। एहि सम प्रिय तिनके कछु नाहीं। सो सब करम धरम जरि जाऊ। जहँ न राम पद पंकज भाऊ।

उसी वर्षा के जल से धान भी होता है और उसी से जलाशय भी भर जाते हैं। जो जल ढालुएँ स्थल पर पड़ता है वह सिमिटकर नाली द्वारा जलाशय में पहुँचता है। उसी भाँति यह रामसुयश जल मेधा : धारण शक्ति : रूपी ढालुएँ स्थल पर पड़कर श्रवण मार्ग से सिमिटकर भीतर जाता है।

भरेउ सुमानस सुथल थिराना। सुखद सीत रुचि चारु चिराना ॥५॥

अर्थ : सुन्दर मानस भर उठा और सुन्दर स्थल पाकर थिराया। सुखद, शीत रुचिवाला सुन्दर और पुराना हुआ : पक गया।

व्याख्या : गुरुजी के उपदेश द्वारा पहिले ही से मानस सजल था। यथा : तदपि कही गुरु बारहिं बारा। समुझपरी कछु मति अनुसारा। अब साधुओं की रामयश वर्षा से भर उठा। पहिले मेधामहिगत होने से ढावर हो गया था। यथा : भूमि परत भा ढावर पानी। अब सुथल पाकर थिराया। पहिले नया पानी दुःखद और गरम था। अब सुखद हुआ, शीतरुचि हुआ : आश्विन में पुराना और कार्तिक में चिराना हुआ। इसी भाँति सुयश, नागपाश बन्धन, सीता विरह, रावण वधादि चरित्रों से ढावर हो गया था। फिर शिव, भुसुण्डि, याज्ञवल्क्यादि के उत्तरों से निर्मल हुआ। विरहाभास के निश्चय से सुखद, क्रोधाभास के निश्चय से शीतरुचि और बन्धनाभास के निश्चय से चिराना : पक्का हुआ। अथवा मनन, निदिध्यासन से उपर्युक्त गुणयुक्त हुआ।

दो. सुठि सुंदर संवाद बर, बिरचे बुद्धि बिचारि।
तेइ एहि पावन सुभग सर, घाट मनोहर चारि ॥३६॥

अर्थ : बुद्धि से विचारकर अत्यन्त सुन्दर श्रेष्ठ संवादों की रचना की। वे ही इस सुन्दर और पवित्र सरोवर में चार मनोहर घाट हैं।

व्याख्या : मानस तो पूर्ववक्ताओं का भी बना, पर घाट न बाँधने से दुर्गम रहा। यथा : यत् पूर्वं प्रभुणाकृतं सुकविना श्रीशम्भुना दुर्गमम्। अतः बुद्धि से विचारकर चार घाट बाँधा। जिसमें स्नान करनेवालों को सुभीता हो। सब प्रकार के अधिकारियों के लिए उपयोगी हो। पहिला पूर्व घाट स्वयं ग्रन्थकार का है, जिसके वे वक्ता हैं और उनका मन या सुजन श्रोता हैं। यह दीनघाट या गोघाट है। यथा : दूरि फराक रुचिर सो घाटा। जहँ जल पियहिं बाजि गज ठाटा। यहाँ लँगड़े लूले सभी पानी पी सकते हैं। इसका दीनघाट होना स्पष्ट है। ग्रन्थकार अपने लिए कहते हैं : अति बड़ि मोरि ढिठाई खोरी। सुनि अघ नरकहुँ नाक सकोरी। इत्यादि।

दूसरा घाट भारद्वाज और याज्ञवल्क्य संवाद दक्षिण ओर बँधा हैं। यह कर्म घाट है : मज्जहिं तहाँ बर्ण चारिउ नर। इसमें शङ्कर भवानी पूजन आदि कर्म कहकर तब कथा कहेंगे। तीसरा पश्चिम घाट भवानी शङ्कर सम्वाद है। इसे ज्ञान घाट कहते हैं। यहाँ 'झूठेहु सत्य जाहिं बिनु जाने' इत्यादि ज्ञान निरूपण करके तब कथा कही। इसे राजघाट भी कहते हैं। चौथा उत्तर घाट, पनिघट या उपासना घाट है। तहाँ न पुरुष करहिं असनाना। यहाँ न कर्म कहा, न ज्ञान कहा, न दीनता कही, पहिले ही कथा कहना प्रारम्भ कर दिया। तीन संवाद बालकाण्ड में दिखलाये और चौथा उत्तर में दिखलाकर, इसे पनिघट की भाँति अलग होना सूचित किया।

पहिले कहा था : जस मानस जेहिं बिधि भयउ। सो 'जेहिं बिधि भयउ' का ही वर्णन पहिले किया। अब 'जस मानस' का वर्णन करेंगे।

घाट	समय	देश	वक्ता	श्रोता	भाषा
पूर्व	रामनौमी	अयोध्या	गोस्वामीजी	सुजन, मन	प्राकृत
दक्षिण	फाल्गुन	प्रयागराज	याज्ञवल्क्य	भरद्वाज	संस्कृत
पश्चिम	अनियत	कैलास	शिवजी	उमा	संस्कृत
उत्तर	अनियत	नीलगिरि	भुसुण्डि	गरुड़	पक्षी भाषा

कहीं वक्ता श्रोता के यहाँ और कहीं श्रोता वक्ता के यहाँ। इसका नियम नहीं है। मणि, माणिक्य मुक्तामय होने से ये घाट मनोहर हैं।

सप्त प्रबंध सुभग सोपाना। ज्ञान नयन निरषत मन माना ॥
रघुपति महिमा अगुन अबाधा। वरनव सोइ वर वारि अगाधा ॥१॥

अर्थ : सातों प्रबन्ध सात सीढ़ियाँ : फलकों की पक्तियाँ हैं। जिनको ज्ञानरूपी नेत्र द्वारा देखने से मन प्रसन्न हो जाता है। मैं रामजी की निर्गुण और अगाध महिमा वर्णन करूँगा। वही जल की गहराई है।

व्याख्या : ये सातों प्रबन्ध रामभक्ति की सात सीढ़ियाँ अर्थात् सात मार्ग हैं। यथा : एहि महँ सुभग सप्त सोपाना। रघुपति भगति केर पंथाना। भक्ति को छोड़कर मुक्ति कहीं रह नहीं सकती। यथा : जिमि थल जल विनु रह न सकाई। कोटि भाँति कोउ करै उपाई। तथा मोक्ष सुख सुनु खगराई। रहि न सकै हरि भगति विहाई। सो ये सातों प्रबन्ध सातों पुरियों की भाँति मोक्ष प्रापक हैं। इन्हें यदि ज्ञान की आँखों से देखें तो मन सन्तुष्ट हो जाता है।

छप्पय : वालकाण्ड है अवध, अवध मथुरा मन भावन।
हरद्वार आरण्य, काशिका किष्किन्धा भन ॥
काञ्ची सुन्दर लसत लङ्क उज्जैन सुहावन।
उत्तर द्वारावती पुरी सातों मन भावन ॥
लसत जहाँ सोपान प्रति ऐसो रामचरित्र सर।
विजयानँद सेवत सुलभ सव सुखकर सब पापहर ॥

वालकाण्ड : अवध, अवधवासी, सरयू, रामनवमी आदि का माहात्म्य इसमें वर्णन है, इसलिए वालकाण्ड को अयोध्या कहा। अयोध्याकाण्ड : इसमें रामजी के वनवास का वर्णन है। श्रीकृष्णजी की विरह कथा की समता से इसे मथुरा कहा। आरण्यकाण्ड : माया के बाहुल्य से इसे मायापुरी : हरद्वार कहा। किष्किन्धाकाण्ड : राममन्त्र के जप से काशी में ही शिवजी को रामजी मिले, यहाँ हनुमान् जी को मिले, इसलिए किष्किन्धा को काशी कहा। सुन्दरकाण्ड : काञ्ची दो हैं : शिवकाञ्ची और विष्णुकाञ्ची। सुन्दरकाण्ड में भी दो भाग हैं, हनुमच्चरित और रामचरित, इसलिए इसे काञ्ची कहा। लंकाकाण्ड : लंका और उज्जैन दोनों के निरंश देश होने से तथा महाकालेश्वर : रुद्र की प्रधानता से लंका को उज्जैन : अवन्तिका कहा। उत्तर-काण्ड : इस काण्ड में रामजी ने राज्य किया। द्वारका में कृष्णजी ने किया। इसलिए उत्तर को द्वारका माना।

कुछ महात्माओं का यह मत है कि बालकाण्ड में श्रीसीताजी का रामजी से संयोग हुआ, यही सांख्यशास्त्र है। अयोध्याकाण्ड विराग है। आरण्यकाण्ड मीमांसा, किष्किन्धाकाण्ड योगशास्त्र, सुन्दरकाण्ड न्यायशास्त्र और उत्तरकाण्ड साम्राज्य शास्त्र हैं। ये बातें ज्ञाननयन से देखी जा सकती हैं, तब मन मान जाता है। बालकाण्ड में प्रकृति, पुरुष का संयोग वर्णन है, इसलिए इसे किसी भाँति सांख्यशास्त्र से सम्बद्ध कह सकते हैं। अयोध्या में वैराग्य का निरूपण स्पष्ट है। लङ्काकाण्ड को वेदान्त कहना भी अध्यात्मदृष्टि से बन जाता है। उत्तरकाण्ड को भी साम्राज्यशास्त्र कहने में आपत्ति नहीं है। परन्तु आरण्य को मीमांसा, किष्किन्धा को योग और सुन्दरकाण्ड को न्यायशास्त्र कहने का कोई आधार नहीं मिलता। अन्त और आदि का मिलना ही दबाव हैं। यथा : १. आए व्याहि राम घर जबते और जबते राम व्याहि घर आए। २. भरतचरित करि नेम जे सप्रेम गावहिं सुनहिं तथा पुरनर भरत प्रीति में गाई। ३. बैठे अनुज सहित रघुराया तथा आगे चले बहुरि रघुराया। ४. जामवन्त कह सुनु हनुमाना। जामवन्त के वचन सोहाए। ५. निज भवन गवनेउ सिंधु तथा सिंधु बचन सुनि राम। ६. प्रभु हनुमंतहि कहैउ बुझाइ। तथा विप्ररूप धरि पवनसुत आइगये जनु पोत। इन छवों को दबाव कहिये या फर्स कहिये। सब सीढ़ियाँ जल से पूरित हैं। मानसर का दर्शन नेत्र से होता है और रामचरितमानस का दर्शन ज्ञाननेत्र से होता है। रघुपति की गुणातीत महिमा का बाध नहीं होता। सत् का किसी अवस्था में बाध नहीं हो सकता। इस महिमा का थाह नहीं क्योंकि थाह तो गुणों से मिलता है। परन्तु इस महिमा में गुण नहीं। इसलिए अथाह है। यथा : अस रघुपति महिमा अवगाहा। तात कवहुँ कोउ पाव कि थाहा। गुणातीत सचराचर स्वामी। राम उमा सब अंतर जामी। थाह तो सगुण महिमा का भी नहीं है पर, राम काम सतकोटि सुभग तन। दुर्गा कोटि अमित अरिमर्दन। इत्यादि कहकर कुछ दिग्दर्शन कराया जा सकता है। पर निर्गुण महिमा में उतना भी अवकाश नहीं है। साधु मेघ ने जो राम सुयश वारि की वर्षा की थी उसमें गहराई बहुत कम थी। अब वह जल जब मानस में इकट्ठा हुआ तो बड़ी गहराई आगई। निर्गुण महिमा का आधिक्य बहुत बढ़ गया।

रामसीय जस सलिल सुधासम। उपमा बीचि विलास मनोरम॥
पुरइनि सघन चारु चौपाई। जुगुति मंजु मनि सीप सोहाई॥२॥

अर्थ : रामजी और सीताजी का यश ही अमृत के समान जल है। उपमा सुन्दर तरंगों का विलास : कार्य वर्ग है। सुन्दर चौपाइयाँ सघन पुरइन : कमल का पत्ता है। युक्तियाँ सुन्दर मणिवाली मनोहर सीपियाँ हैं।

व्याख्या : रामजी और सीताजी के यश का मेल है। वही मिठास है जो अमृत तुल्य है। पहिले कह आये हैं कि रामचरित मधुर है। अब 'सीययश' के साथ योग होने से वह माधुर्य अमृत तुल्य हो गया। यथा : गावहिं छवि अवलोकि सहेली। सिय जयमाल राम उर मेली। रामजी ने सीता का यश कहा। यथा : कंकन किंकिनि

नूपुर धुनि सुनि। कहत लखन मन राम हृदय गुनि। इत्यादि। सीताजी ने राम यश कहा। यथा : सोभा सीव सुभग दोउ बीरा। इत्यादि। कहीं 'बीचि' पाठ न होकर 'बीच' पाठ है। वहाँ अर्थ करना पड़ेगा कि बीच बीच में जो उपमा है वही जल का विलास है। यहाँ उपमा अलङ्कार मात्र का उपलक्षण है।

उस मानस में पुरइन सघन है। इसमें चारु चौपाइयाँ सघन हैं। वहाँ पुरइन के कारण जल नहीं दिखाई पड़ता, पुरइन हटाई जाय तो जल दिखाई पड़े। यथा : पुरइन सघन ओट जल, बेगि न पाइय मर्म। यहाँ चौपाई के शब्दों को अलग करे अर्थात् ध्यान दे तब राम सुयशरूपी जल दिखाई पड़े। युक्ति मणि सीप है। उसमें मुक्ता फल छिपा है। मुक्ता फल रामजी के गुणगण हैं। यथा : जस तुम्हार मानस विमल हंसिनि जीहा जासु। मुक्ता हल गुनगन चुनइ राम बसहु हिय तासु। युक्ति उपाय को कहते हैं। जो सिद्धि उपाय से होती है, वह पराक्रम से नहीं होती। श्रीरामचरितमानस में उपाय : युक्ति की उपमा मोतीवाली सीपी से दी गई है। जो उपाय काम में लाये गये हैं, उनसे जो गुणगण प्रकट होते हैं, वे ही मोती कहे गये हैं। यथा : रावणवध के लिए युक्ति सरस्वती जी ने की। नाम मंथरा मंदमती चेरी कै कै केरि। अजस पेटारी ताहि करि गई गिरा मति फेरि। यह भी सरस्वतीजी ने रामजी का रुख पाकर किया। यथा : तब कछु कीन्ह रामरुख जानी। इससे महाराज दशरथ के पूर्वजन्म के वरदान की पूर्ति हुई। यथा : मम जीवनमिति तुमहि अधीना। साधुओं के लिए प्रेमामृत प्रकट हुआ। यथा : प्रेम अमिअ मंदर विरह भरत पयोधि गँभीर। मथि प्रकटेउ सुर साधु हित कृपा सिंधु रघुवीर। और जगत् का कल्याण हुआ। इस भाँति सभी युक्तियों में गुणगण निहित हैं। ये युक्तियाँ सुन्दर हैं। इसलिए 'सोहाई' कहा। इसी भाँति वालि वध, जानकी परित्यागादि युक्तियों में गुणगण छिपे हुए हैं।

छंद सोरठा सुन्दर दोहा। सोइ बहुरंग कमलकुल सोहा॥
अरथ[1] अनूप सुभाव सुभासा। सोइ पराग मकरंद सुबासा॥३॥

अर्थ : छन्द सोरठा और सुन्दर दोहे हैं, वे बहुरंग के शोभित कमल के फूल हैं अनुपम अर्थ, सुन्दर भाव। और सुन्दर भाषा ही : क्रम से : पराग : फूलों की धूलि, मकरन्द : पुष्परस और सुगन्ध हैं।

व्याख्या : श्वेत, लाल, नील और पीत, चार रङ्ग के कमल होते हैं। सात्त्विक श्वेत, राजस लाल, तामस नील और गुणातीत : छन्द, सोरठा, दोहा : को पीत कहा है।

सात्त्विक यथा : लागे पखारन पाय पंकज प्रेम तन पुलकावली।
राजस यथा : हरित मनिन के पत्रफल पदुमराग के फूल।
तामस यथा : कोपे समर श्रीराम। चले विसिख निसित निकाम।
गुणातीत यथा : जयरामरूप अनूप निर्गुन सगुन गुन प्रेरक सही।

---

१. यहाँ यथासंख्यालङ्कार है।

कमल के कुल का हिसाब दलों की संख्या से है। यथा अष्टदल : कमल : नमामि भक्तवत्सलं। बोसदल : नमामीसमीसान निर्वानरूपं। सोलह दल : जयराम रमारमनं समनं। वत्तीस दल : परसत पदपावन सोक नसावन प्रगट भई तपपुंज सही। इत्यादि।

जैसे पुरइन से कमल निकलता है उसी भाँति चौपाई से छन्द, सोरठा, दोहा निकलते हैं। यथा : सो वर मिलिहि जाहि मनरांचा। यह पुरइन है। इससे कमल निकला 'मन जाहि रांच्यौ मिलिहि सो वरु सहज सुंदर सांवरो।

जैसे कमल में पराग स्पष्ट है। मकरन्द अन्तर्गत है। केवल भौंरे को ही प्राप्त होता है। सुवास दूर तक पहुँचता है। उसी भाँति अर्थ स्पष्ट रहता है। भाव अन्तर्गत रहता है। सुकृतपुंज को ही मिलता है। और सुभाषा का प्रसार दूर तक होता है। अर्थ और भाव दूर रहे, केवल पदावली के श्रवण मात्र से मन मोहित होता है। तया कवितया किंवा किंवा वनितया तया। पादनिक्षेपमात्रेण यया न हरते मनः।

क्या कविता क्या कामिनी दोनों एक समान।
चरन धरत ही मन हरैं तौ कीजिये बखान॥

आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक तीनों अर्थों की उपस्थिति ही अनूपत्ता है।

सुकृत पुंज मंजुल अलिमाला। ग्यान विराग विचार मराला॥
धुनि अवरेव कवित गुनजाती। मीन मनोहर ते बहुभाँती॥४॥

अर्थ : पुण्य के समूह ही सुन्दर भौंरों के झुण्ड हैं। ज्ञान, विराग और विचार हंस हैं। ध्वनि, अवरेव तथा कविता के गुण और जाति, चार भाँति की मनोहर मछलियाँ हैं।

व्याख्या : उस कमल के रस की प्राप्ति तो सुकृतपुञ्ज भौंरों को ही होती है। पराग और सुगन्ध के तो अधिकारी अनेक हैं। इसी भाँति भाव का आस्वादन तो सुकृतपुञ्ज ही करते हैं, अर्थ और भाषा के अधिकारी तो वहुत लोग हैं। ज्ञान राजहंस, विराग कलहंस और विचार हंस है। यथा : सखी संग लै कुँअरि तब चलि जनु राज मराल। बोलहिं जलकुक्कुट कलहंसा। क्षीर नीर विवरन गति हंसी। धुनि : वर्ण अर्थ ते अधिक कछु उपजावे जो बात। ध्वन्यात्मक सो कहत हैं, जिनकी मति अवदात। यथा : पुनि आउब एहि विरिआं काली। अर्थात् इस समय चलो।

अवरेव : अवर+इव=अवरेव। अवर के ऐसा होना अर्थात् उत्तम न होना। जहाँ व्यंग्यार्थ वाच्यार्थ से उत्तम नहीं होता उसे गुणीभूत व्यंग्य कहते हैं। उसे ही यहाँ अवरेव कहा है। काव्य के दो ही भेद हैं १. ध्वनि और २. गुणीभूत व्यंग्य। अतः अवरेव से यहाँ गुणीभूत व्यंग्य ही अभिप्रेत है।

कुछ लोग अवरेव की परिभाषा इस भाँति करते हैं : अन्त को अच्छर आदि धरि, मध्य को अन्त लगाय। या क्रम से जो कीजिये, सो अवरेव कहाय। यथा : राम कथा कलिपन्नग भरनी। यह कथन अवरेव से हुआ। जब अन्त का 'भरनी' शब्द आदि में रख दिया : भरनी राम कथा कलिपन्नग : तब ऐसा रूप

हो जाने से अर्थ स्पष्ट हो जाता है। वे इसी अवरेव को 'वामी' मछली कहते हैं। यह मुख और पूँछ मिलाकर चलती है। परन्तु इतने फटाटोप की क्या आवश्यकता है, यह तो सीधे-सीधे अन्वय है।

कोई इसे कपड़े के काट के आधार पर वक्रोक्ति कहते हैं। परन्तु ध्वनि के साहचर्य से इसे गुणीभूत व्यंग्य कहना ही अधिक उपयुक्त मालूम पड़ता है।

माधुर्य, ओज और प्रसाद ये कविता के तीन गुण हैं। केशव कवि ने कविता की चार जाति भी बतलाई हैं। १. कौशिकी २. भारती ३. आरभटी और ४. सात्तिकी। कहिये केसोदास जहँ करुना हाँस सिङ्गार। सरस करन सुभ भाव जहँ सो कौसिकी विचार। वरनिय जामहँ वीर रस भय अरु अद्भुत हास। कह केसव सुभ अर्थ जहँ सो भारती प्रकास। केसव जा कहँ वीररस अरु वीभत्सक जान। आरभटो प्रारंभ यह पद पद जमक बखान। अद्भुत रुद्र सुवीररस समरस करत बखान। सुनतहि समुझत भाव मन सो सात्तकी बखान। इन धुनि, अवरेव, गुण और जाति को चार भाँति की मछली वतलाया है। अन्यत्र भी मछली की चार जाति ही कही हैं। यथा : वुधि बल सील सत्य सब मीना। आचार्यों ने उन मछलियों का नाम गिनाया है : पहिना, वामी, सिधरी और चेल्हवा। इनमें ध्वनि स्थानीय पहिना है। यह मछली वड़ी होती है और शीघ्र पकड़ में नहीं आती। अवरेव वामी मछली है। मुख पूँछ का आकार एक सा होता है। व्यंग्य मुख्यार्थ से अधिक न होने से मेल खा जाता है : इसलिए अवरेव को वामी कहा। गुण सिधरी मछली है। छोटी होती है। गोल वाँधकर चलती है। इसी भाँति गुण में विशेष अक्षर के समूहों से काम लिया जाता है। जाति चेल्हवा मछली है। पृथक् रहती है और चमकती है। इसी भाँति जाति में रस की चमक है और धर्मविशेष के भिन्न होने से ही जाति संज्ञा है।

धुनि, अवरेव, गुण और जाति को मछली इसलिए कहा कि इनका सञ्चार सर से वाहर नहीं है और इनसे सर की शोभा है।

अरथ धरम कामादिक चारी। कहब ग्यान विग्यान विचारी ॥
नवरस जप तप जोग विरागा। ते सब जलचर चारु तड़ागा ॥५॥

अर्थ : अर्थ, धर्म, कामादिक चारों को और ज्ञान विज्ञान को विचारकर कहेंगे : तथा : नवरस जप, योग और वैराग्य ये सब सुन्दर तड़ाग के जलचर हैं।

व्याख्या : नौ रस अथ शृङ्गार अरु हास्य करुण अरु वीर। अद्भुत रुद्र विभत्स भय शान्ति कहँ कवि धीर। यहाँ ज्ञान से परोक्षज्ञान, विज्ञान से अपरोक्षज्ञान और वैराग्य से परम वैराग्य कहा। क्योंकि इसी रूपक में ऊपर ज्ञान, विराग और विचार को मराल कह आये हैं। इन जलचरों के फेर में नहीं पड़ना। ये चोट कर वैठते हैं। भक्ति और आनन्द के वाधक हैं।

कामादिक से मोक्ष का भी ग्रहण है। काम के वर्ग में मोक्ष को रखने का यह अभिप्राय है कि काम और मोक्ष साध्य हैं। अर्थ और धर्म साधन हैं। यहाँ भक्तिशास्त्र में मोक्ष से भी सावधान रहना पड़ता है। यह तो मगर है, निगल ही जायगा,

आत्मसात् कर लेगा। यथा : सगुन उपासक मोक्ष न लेहीं। तिन कहँ रामभगति निज देहीं। यहाँ अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष, ज्ञान, विज्ञान, नवरस, जप, तप, योग और विराग सभी का वर्णन है। परिचय सभी से रखना होगा, परन्तु इनके वश में आने से सदा सावधान रहना पड़ेगा। क्योंकि : रीझत राम सनेह निसोते[1]। यहाँ तो एक मात्र ध्येय राम को रिझाना है। वह भक्ति के अतिरिक्त दूसरे उपाय से सम्भव नहीं है।

सुकृती साधु नाम गुन गाना। ते विचित्र जल विहग समाना ॥
संत सभा चहुँदिसि अँवराई। श्रद्धा रितु वसंत सम गाई ॥६॥

अर्थ : सुकृती का गुणगान, साधु गुणगान और नाम गुणगान ये चित्र विचित्र जलपक्षी हैं। और सन्त सभा ही सरोवर के चारों ओर लगी हुई आम की वाटिका है और श्रद्धा को बसन्तऋतु करके वर्णन किया गया है।

व्याख्या : सुकृती गुणगान। यथा : सुकृती तुम समान जगमाहीं। भयउ न है कोउ होनेउ नाहीं। साधु गुणगान। यथा : सुजन समान सकल गुनखानी। करौं प्रनाम सप्रेम सुबानी। इत्यादि। नाम गुणगान। यथा : बंदौ नाम राम रघुवर को। हेतु कृसानु भानु हिमकर को। इत्यादि। ये विचित्र जलपक्षी चक्रवाक, वक, जल-कुक्कुट आदि हैं। इसी सरोवर में रहते हैं। कभी बाहर भी विचरण करते हैं। पर जल से दूर नहीं जाते।

तीन प्रकार का सम्बन्ध होता है। १. तद्‌गत २. तल्लीन और ३. तदाश्रय। सो पुरइन का जलाशय से तद्‌गत सम्बन्ध है। मछलियों का तल्लीन सम्बन्ध है। वृक्षों का तदाश्रय सम्बन्ध है। सन्तसभा मानस के चारों ओर की आम की वारी है। मानस को कभी नहीं छोड़ती। उससे मानस को शोभा है और मानस उसका आश्रय है। श्रद्धारूपी वसन्त में अमराई : आम वारी फलती फूलती है। यहाँ सदा वसन्त रहता है। जहाँ मानस तैयार हुआ वहाँ यह साज आपसे आप जुट जाता है। मछली, कछुआ, पुरइन को कोई बुलाने नहीं जाता।

भगति निरूपन विविध विधाना। छमा दया द्रुमलता विताना ॥
सम जम नियम फूल फल ग्याना। हरिपद रस वर वेद बखाना ॥७॥

अर्थ : भक्ति निरूपण के अनेक विधान, क्षमा दया पेड़ के लतामण्डप हैं। शम, यम और नियम फूल हैं। ज्ञान फल है और हरि का चरण ही श्रेष्ठ रस है। ऐसा वेदने वर्णन किया है।

व्याख्या : १. रामजी द्वारा, वाल्मीकि द्वारा, भुसुण्डि द्वारा अनेक विधान से भक्ति निरूपण है। २. असह्य बातको सामर्थ्य रहते सह लेना क्षमा है। ३. अनुकम्पा को दया कहते हैं। ये लताओं के मण्डप हैं। इन लताओं ने सन्तविटप को परिवेष्टित कर रक्खा है। ४. भीतर की वृत्तियों को रोकना शम है। ५. अहिंसा, सत्य, अस्तेय

---

१. अन्याभिलाषिता शून्यं ज्ञानकर्माद्यनावृतम्।
आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरुत्तमा। भक्तिरसामृतसिन्धु।

ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह पांच यम हैं। ६. शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वरप्रणिधान पाँच नियम हैं। ये फूल हैं, जिनसे लतामण्डप की शोभा है और ज्ञान फल है। यह सोपास्ति ज्ञान है, क्योंकि इसका श्रेष्ठ रस हरिपद है। यथा : रसो वै सः। 'पदरति रस' ऐसा पाठ मानने से अर्थ करना होगा कि हरिचरणों की प्रीत्ति ही रस है।

औरो कथा अनेक प्रसंगा। तेइ सुक पिक बहु वरन विहंगा ॥८॥

अर्थ : और भी अनेक प्रसङ्ग की कथाएँ हैं। वे ही तोते, कोकिल आदि अनेक रंग के पक्षी हैं।

व्याख्या : ये मानस रस के पक्षी नहीं हैं। बाहर से आते हैं। फलफूल खा पीकर चले जाते हैं। यथा : सुधि करि अंवरीष दुर्वासा। तनय ययातिहि यौवन दयऊ। इत्यादि। कुछ के वक्ता शुक : व्यासपुत्र हैं। कुछ के पिक वाल्मीकि हैं। यथा : वन्दे वाल्मीकिकोकिलम्। कुछ के वहुरंग विहंग व्यासादि हैं। व्यास आदि कविवर्य वखानो। कागभुसुंडि गरुड़ के ही की।

दो. पुलक वाटिका वागवन, सुख सुविहंग विहारु।
माली सुमन सनेह जल, सींचत लोचन चारु ॥३७॥

अर्थ : रोमाञ्च ही वाटिका, वाग और वन है। वहाँ सुखरूपी सुन्दर पक्षी बिहार करते हैं। सुन्दर मनरूपी माली स्नेहरूपी जल से सुन्दर नेत्रों द्वारा उसे सींचता है।

व्याख्या : भक्ति का पुलक वाटिका : फुलवारी है। जल की नित्य आवश्यकता पड़ती है। ज्ञान का पुलक वाग : फलदार वृक्ष का समूह। यथा : चला नाइ सिर वैठेउ वागा है। आठवें सातवें दिन जल चाहिए। कर्म का पुलक वन है, जल का मिलना दैवाधीन है। इनसे जो सुख है सो सुविहंग हैं। ये यहीं बसते हैं। यहाँ कुविहंग नहीं बसते। वहाँ देवता की ओर से माली हैं। वे ही सींचते हैं। यहाँ वशीकृत मन माली हैं। वह स्नेहजल से नेत्ररूपी घट द्वारा सींचा करता है।

जे गावहिं[1] यह चरित सँभारे। तेइ एहि ताल चतुर रखवारे॥
सदा सुनहिं सादर नर नारी। तेइ सुर वर मानस अधिकारी ॥१॥

अर्थ : जो लोग इस चरित्त को सँभालकर गाते हैं, वे ही इस तालाब के चतुर रखवाले हैं। जो नर नारी इसे सदा आदरपूर्वक सुनते हैं, वे ही मानस के अधिकारी श्रेष्ठ देवता हैं।

व्याख्या : इस चरित्त के गान करनेवाले व्यासों पर बड़ा भार : जिम्मेदारी है, क्योंकि वे ही रखवाले हैं। पनघट में पुरुष न जाने पावें और पुरुषों के घाटपर स्त्री स्नान न करें। कोई गन्दी वस्तु जल में न पड़ने पावे, यह काम रखवाले का है। इसी भाँती साधन भक्ति से ज्ञानप्राप्ति तथा साधन भक्ति से सिद्धि भक्ति प्राप्त करने के रास्ते भिन्न भिन्न हैं। अतः श्रोताओं को वरावर अपने अपने मार्ग से चलने

---

१. मुद्रालङ्कार है।

के लिए सचेत करना, चरित्रगान करनेवाले : व्यासों का काम है। तथा जैसा प्राचीन पाठ है उसमें उलट पलट न होने पावे, अर्थ का अनर्थ न होने पावे, इस बात पर स्वयं ध्यान रक्खें, और दूसरों को ऐसा करने से रोकें। इन सब बातों का सँभाल रखना भी उन्हीं का काम है। इसीलिए 'चतुर रखवाले' कहा।

'आदर के साथ जो नर नारी नियमपूर्वक नित्य सुनते हैं, वे उसी भाँति रामचरित के अधिकारी हैं जिस भाँति देवगण मानससरोवर के अधिकारी हैं। भाव यह कि यहाँ श्रोता का पद वक्ता से बड़ा है। वक्ता रखवाला है और श्रोता अधिकारी हैं। श्रोताओं की कुरुचि से वक्ता बिगड़ जाते हैं और श्रोताओं की सुरुचि से वक्ताओं में सुधार होते देखा गया है।

अति[1] खल जे विषई वक कागा। एहिं सर निकट न जाहिं अभागा ॥
संबुक भेक सेवार समाना। इहाँ न विषय कथा रस नाना ॥२॥

अर्थ : जो अत्यन्त खल और विषयी वक काग हैं, वे अभागे उस सर के निकट नहीं जाते। यहाँ घोंघे, मेढक और सेवार के समान विषय कथा तथा नाना रस नहीं हैं।

व्याख्या : दाम्भिक होने से वक अति खल हैं। वे ध्यान नाट्य करते हुए हिंसा करते हैं। काग विषयी हैं। यथा : वायस पलिअहि अति अनुरागा। कबहुँ निरामिष होहि कि कागा। इनसे विषय छूट नहीं सकता। वे इस सर : तालाब के निकट नहीं जाते। न जाने में अभाग कारण है। पापवंत कर सहज सुभाऊ। भजन मोर तेहि भाव न काऊ।

विषय कथा को घोंघा, मेढक कहा और नाना रस को सेवार कहा। सेवार में सूक्ष्म कीट होते हैं। वक, काग इनके भक्षक हैं। विषयियों को विषय कथा श्रवण में विषय का मानसिक आस्वादन होता है। इसलिए उन्हें विषयकथा प्रिय है। उसके सुनने के लिए वे लालायित रहते हैं। नाना रसनिरूपण में भी विषय रस का सूक्ष्म आस्वादन होता है, अतः वह भी प्रिय है। रामचरित में यदि नाना रस भी आये हैं, तो वे भी भक्ति से मिश्रित है। अतः विषयी जीवों के काम के नहीं। अतः वे रामकथा के निकट नहीं आते। उन्हें जन्म-मरणरूपी संसार में बहुत भटकना है। इसलिए उन्हें अभागा कहा।

तेहि कारन आवत हिअँ हारे। कामी काक बलाक विचारे ॥
आवत एहि सर अति कठिनाई। राम कृपा विनु आइ न जाई ॥३॥

अर्थ : इस कारण से हृदय से हारे हुए, यहाँ कामी काक और बेचारे बगले आते हैं। इस सर पर आने में बड़ी कठिनता है। बिना राम की कृपा के आते नहीं बनता।

व्याख्या : काक और बगले हियहारे आवत, अर्थात् विना मन के आते हैं,

---

१. रूपक अभेद न्यून।

क्योंकि वहाँ उनको चारा नहीं मिलता, अतः उन्हें 'वे चारे' कहा। इसी भाँति अति खल और विषयी जन रामचरित के निकट हिय हारे और वे चारे होकर आते हैं, यदि चारा चले तो न आवें।

आने में भी साधारण कठिनता नहीं है, बड़े-बड़े विघ्न हे, जिनका आगे वर्णन करेंगे। राम कृपा से विघ्न की बाधाएँ हटती हैं, तभी मनुष्य आने में समर्थ होता है। यथा : सकल विघ्न व्यापै नहिं तेही। राम सुकृपा विलोकहिं जेही।

कठिन कुसंग कुपंथ कराला। तिन्हके वचन बाघ हरि व्याला ॥
गृह कारज नाना जंजाला। तेइ अतिदुर्गम सैल विसाला ॥८३॥

अर्थ : कठिन कुसंग ही भयानक बुरा रास्ता है, उनके वचन व्याघ्र, सिंह और सर्प हैं। घर के काम और अनेक प्रकार की उलझनें, ये ही अत्यन्त दुर्गम बड़े-बड़े पर्वत हैं।

व्याख्या : सुत, दार, अगार, सखा, परिवार विलोकु महा कुसमाजहिं रे। कवित्त रा०। इन्हीं का संग कुसंग है, छूटता नहीं, इसीसे कठिन कहा। इसी की उपमा कराल पन्थ से दी, प्राण लेकर ही छोड़ता है। व्याल का अर्थ सर्प और दुष्ट हाथी भी है। कराल पन्थ में व्याघ्र, हरि और व्याल की वाधा रहती है : यहाँ पिता का वचन सिंह, भाई का वचन व्याघ्र और स्त्री-पुत्र के वचन सर्प या दुष्ट हाथी है।

गृहकार्य अर्थात् शास्त्रोक्त, घर का काज और जंजाल अर्थात् संसारी झमेला वड़ा भारी दुर्गम पहाड़ है। पहाड़ पर पगडंडी का रास्ता ऐसा भयानक होता है कि पैर रखते ही सारा शरीर डगमगाने लगता है। किसी भाँति एक पर्वत पार भी करे तो पार करने के पहिले ही दूसरा पहाड़ उससे भी ऊँचा दिखाई पड़ने लगता है। इसी भाँति गृहस्थी का कार्य किसी भाँति पूरा भी करे तो उसकी पूर्ति के पहिले ही, उससे कहीं अधिक आवश्यकीय कार्य का सूत्रपात हो जाता है।

वन वहु विषम मोह मद माना। नदी कुतर्क भयंकर नाना ॥५॥

अर्थ : मोह, मद, मान बड़े विषम : बीहड़ वन हैं और नाना कुतर्क भयंकर नदी है।

व्याख्या : पहाड़ पर जाने का रास्ता चक्करदार होता है। घूमता हुआ पहाड़ पर जाता है और कहीं जों नदी पहाड़ काटकर आयी है, उसका तीर पकड़ना पड़ता है। पहाड़ पर वन ही वन है। यहाँ मोह, मद और मान को वन कहा। इसमें पड़कर मनुष्य मार्गभ्रष्ट हो जाता है और अनेक प्रकार का भय, विषाद और सन्ताप सहता है। एक एक नदी ऐसी विकट मिलती है कि उसका पार होना असाध्य व्यापार मालूम होता है। कुतर्क को नदी कहा। एक कुतर्क का पार पाना कठिन है। यहाँ तो नाना कुतर्क हैं।

यहाँ ग्रन्थकार सम्भवतः निपनिया घाटी की चढ़ाई का उल्लेख कर रहे हैं। जिसे मानस के यात्री को पार करना ही पड़ता है। ऊपर दृष्टि दीजिये तो भयङ्कर पहाड़ों की चट्टानें साक्षात् यम की भाँति डराती हैं। और नीचे अन्धकूप की भाँति

हजारों फीट गहरी खाईं। यात्री के मुख से राम का नाम निकलना कठिन हो जाता है। सिर घूमने लगता है। दृष्टि, पाँव रास्ते पर ही जमे रहते हैं।

दो. जे श्रद्धा संबल रहित, नहिं संतन्ह कर साथ।
तिन्हकहँ मानस अगम अति, जिन्हहि न प्रिय रघुनाथ ॥३८॥

अर्थ : जिन्हें श्रद्धारूपी राहखर्च नहीं है, न सन्तों का साथ है और रघुनाथ प्रिय नहीं हैं उन्हें मानस अत्यन्त अगम है।

व्याख्या : यात्रा के लिए तीन बातें आवश्यकीय हैं। १. पहिले तो अपने पास राह खर्च होना चाहिए। २. रास्ता दिखानेवाला चाहिए। ३. यात्रा का लक्ष्य कोई प्रिय पदार्थ चाहिए। जब यह तीनों बात एकत्रित हों तभी यात्रा सम्भव है। मानस : मानसरोवर की यात्रा में कोई सामान रास्ते में नहीं मिलता। यहाँ तक कि कुछ दूर तक लकड़ी भी नहीं मिलती। इसलिए सामान साथ चाहिए। रास्ता किसी का देखा नहीं है। वहाँ की यात्रा साधु लोग ही करते हैं। उन्हीं को रास्ता मालूम हैं। उनका साथ मिले तभी यात्रा हो सकती है। पर, इतना संकट और खतरा तो वही उठा सकता है जिसे भगवान् प्रिय हों। उन्हीं की प्राप्ति के लिए यात्रा की जाती है।

इस भाँति रामचरितमानस की कथा तक पहुँचना बड़ा कठिन है। यहाँ श्रद्धा ही संबल है। जिसे श्रद्धा नहीं वह नहीं जा सकता। सन्त का साथ हो तो वे राम कथा तक पहुँचा दें, नहीं तो नहीं पहुँच सकता। जिसे रघुनाथ प्रिय नहीं हैं वह कथा में जाकर व्यर्थ समय का अपव्यय क्यों करेगा।

वस्तुतः बड़े ही अनुभव की बात ग्रन्थकार ने कही। भगवान् की अति उत्तम कथाएँ जहाँ तहाँ होती हैं, पर कुछ ही लोग वहाँ तक पहुँच पाते हैं। दूर दूर से लोग आ जाते हैं और सन्निकट के लोग नहीं पहुँच पाते हैं।

जौं करि कष्ट जाइ पुनि कोई। जातहि नींद जुड़ाई होई॥
जड़ता जाड़ विषम उर लागा। गएहुँ न मज्जन पाव अभागा ॥१॥

अर्थ : यदि कोई मनुष्य कष्ट उठाकर वहाँ तक पहुँच भी जाय तो वहाँ जाते ही उसे नींदरूप जूड़ी घेर लेती है। उसके हृदय में जड़तारूपी जाड़ा ऐसा लगता है कि पहुँचने पर भी अभागा स्नान नहीं कर पाता।

व्याख्या : विना श्रद्धा और सन्तों के साथ के और विना रघुनाथ की प्रीति के कोई ही पहुँचता है सो भी अतिकष्ट से पर, उसे कोई लाभ नहीं होता। क्योंकि उसे नींदरूपी जूड़ी : जडैया बोखार : आ जाती है। जिस भाँति जूड़ी आजाने से मानस में स्नान, आचमन नहीं हो सकता उसी भाँति नींद आजाने से कुछ कह सुन नहीं सकता। 'उरलागा' कहने का भाव यह है कि जाड़ा कलेजे में पैठ जाता है। किसी प्रकार हटता नहीं। पुरुषार्थ करने पर भी फलसिद्धि नहीं हुई। इसलिए अभागा कहा। मानस के यात्री श्रीशिवनन्दन सहायजी कैलासदर्शनकार लिखते हैं : सर्दी की प्रबलता बढ़ गई। मुझे बेहोशी आने लगी। विना यात्रा किये कोई 'जड़ता

जाड़ विपम उरलागा' नहीं लिख सकता। इसी भाँति, अभागों को रामकथा में पहुँचने पर नींद आ जाती है। कितना भी पार्श्ववर्ती लोग सावधान करते हैं, पर वह नींद टूटती ही नहीं।

करि न जाइ सर मज्जन पाना। फिरि आवै समेत अभिमाना॥
जौं बहोरि कोउ पूछन आवा। सरनिंदा करि ताहि बुझावा॥२॥

अर्थ : उससे उस सर में न तो स्नान किया जाता है और न जल ही पीया जाता है। वह अभिमान के साथ लौट आता है। यदि फिर कोई उससे पूछने आता है तो सरोवर की निन्दा करके उसे समझा-बुझा लेता है।

व्याख्या : रामचरित कहना मज्जन है और सुनना पान है। यथा : मज्जन पान पाप हर एका। कहत सुनत एक हर अविवेका। सो वह न तो रामचरित के विषय में कोई चरचा कर सकता है और न उसका श्रवण ही कर सकता है, जाना एकदम निष्फल हुआ। वह अभिमान लिये हुए लौट आता है। यदि कथाश्रवण किये होता तो अभिमान खोकर लौटता। यदि मज्जन पान किये होता तो उस सरोवर में निन्दाबुद्धि न होती। घरपर शोर हो जाता है कि अमुक व्यक्ति मानससर की यात्रा करके लौटा है। तीर्थ करके लौटे हुए लोगों के चरण स्पर्श करने आलिङ्गन करने में लोग पुण्य मानते हैं। लोग उत्कण्ठा से भी तीर्थ का वर्णन सुनने आते हैं, तो वह मानससर की निन्दा करके उन्हें इस भाँति समझा-बुझा देता है कि फिर वे मानससर का नाम न लें। यथा :

क. मानसर मानसर सोर चहुँओर सुन्यौ, पंडित बखानैं मानसर अतिनीको है।
देखो तो पखान सूनसान सो मसान जैसो, मारग अगम बेग विषम नदी को है॥
मनमें उचाट, बाट श्रमते शिथिल गात, तीरथ नहि जुलुम जवाल यह जीको है।
लीजिये न नाम काम कीजिये आपनों जाय, ऊँची है दुकान पकवान तहँ फीको है॥
पग पग मगबीच मीचही दिखाई देत, नाकदम आवै निशिदिन दुख झेलते।
गाजपरै ऐसे देश जहँ सुख लेश नहीं, जूड़ी चढै आँखिन तुषार गिरि देखते॥
शूल उठै सिर में प्रचण्ड हिय हूल उठै, कूलते कराल उठै बात अंग बेधते।
मानस तलैया से तलैया भली गांवहीं की, कूदि कै कलैया छोटे छैया जहाँ खेलते॥

सकल बिघ्न ब्यापहिं नहि तेही। राम सुकृपा बिलोकहिं जेही॥
सोइ सादर सर मज्जनु करई। महा घोर त्रयताप न जरई॥३॥

अर्थ : ये सम्पूर्ण विघ्न उसे नहीं व्यापते जिसे रामजी सुन्दर कृपा की दृष्टि से देखते हैं। वही आदरपूर्वक उस सरोवर में स्नान करता है और महा भयंकर तीनों प्रकार के तापों से नहीं जलता।

व्याख्या : अब अधिकारी कहते हैं। विघ्न तो होते ही हैं पर उसे नहीं व्यापते। आज भी मानससर की कठिनाई का वे ही सामना कर सकते हैं जिन पर रामजी की कृपा हो। 'पंछी पग ध्यान मुख राम राम' की कहावत मानस के मार्ग की कठिनाई की ही द्योतक है। इसी भाँति जिसपर रामजी की कृपा होती है वह

गृह कारज नाना जंजाल के रहते हुए भी रामकथा के श्रवण के लिए समय निकाल ही लेता है।

जिस पर रामकृपा होती है वही आदर के साथ मानससरोवर में स्नान करता है। अर्थात् आदरपूर्वक रामकथा का श्रवण करता है और महाघोर जो तीनों ताप हैं: १. आधिभौतिक २. आधिदैविक ३. आध्यात्मिक उनसे जलता नहीं। यथा: मनकरि विषय अनल वन जरई। होइ सुखी जौं एहि सर परई। कैलासदर्शनकार लिखते हैं कि मैं दूर तक मानससरोवर के जल में चला गया। जो आनन्द मानस-सरोवर के स्नान से मिला वह लेखनी द्वारा व्यक्त नहीं किया जा सकता। गोता लगाते ही मार्ग के सम्पूर्ण कष्ट विस्मृत हो गये। थकावट जाती रही।

सो जिस पर रामकृपा नहीं, उसका मन विषयरूपी दावानल में जला करेगा फिर भी वह मज्जन नहीं कर सकेगा। हरिकथा-श्रवण उसके भाग्य में नहीं है।

ते नर यह सर तजहिं न काऊ। जिन्हके रामचरन भल भाऊ॥
जो नहाइ चह एहिं सर भाई। सो सतसंग करौ मन लाई॥४॥

अर्थ: वे मनुष्य इस सरोवर को कभी नहीं छोड़ते, जिनके हृदय में रामजी के चरणों में भल: दृढ भाव है। जो इस सरोवर में स्नान करना चाहे वह जी लगाकर सत्सङ्ग करे।

व्याख्या: जितने सहृदय यात्री मानससरोवर के हैं वे सभी एक स्वर से वहाँ की अपार शोभा और अलौकिक छटा का वर्णन करते हैं और कहते हैं कि वहाँ से लौटने की इच्छा नहीं होती। विरक्त महात्मा तो वहाँ रह ही जाते हैं। इसी भाँति जिन्हें रामजी के चरणों में दृढ़ अनुराग है वे रामचरित्र में ही मन को बसा देते हैं। यथा: संत सभा चहुँ दिसि अँवराई।

'कहत सुनत हरखहिं पुलकाहीं। ते सुकृती मन मुदित नहाहीं। रामकथा कहने सुनने में हरखित और पुलकित होने की योग्यता विना सत् सङ्ग के नहीं होती और न विना सत्सङ्ग के रामचरित तक पहुँच ही हो सकती है। सो सत्सङ्ग भी जी लगाकर करे, बेगार टालने से काम नहीं चलेगा। सत्सङ्ग मानस सर तथा रामचरित सर दोनों के लिए उपयोगी है और सत्सङ्ग सबको सब देशमें सुलभ है।

अस मानस मानस चप चाहीं। भइ कवि बुद्धि विमल अवगाहीं॥
भयउ हृदयँ आनंद उछाहू। उमगेउ प्रेम प्रमोद प्रवाहू॥५॥

अर्थ: ऐसे मानस को मानस के नेत्रों से देखकर और उसमें स्नान करके कवि की बुद्धि निर्मल हो गई। हृदयमें आनन्द उत्साह भर गया और प्रेम व प्रमोद का प्रवाह उमड़ आया।

व्याख्या: पहिले कहा था: जस मानस जेहि विधि भयउ, जगप्रचार जेहि हेतु। सो पहिले 'जेहि विधि भयउ' का वर्णन किया तव 'जस मानस' का निरूपण किया। अब उपसंहार करते हुए कहते हैं: अस मानस। इसके बाद 'जग प्रचार जेहि हेतु' का वर्णन करेंगे।

जब मानस बन गया तो उसे मानस नेत्र से कवि ने देखा। यही वस्तुतः रामचरित सर का मानचित्र था। बुद्धि ने उसमें प्रवेश किया, उसमें डूबाडूब हुई। बुद्धि का मल दूर हुआ। इसी बात को कवि ने कहा कि स्नान करके बुद्धि निर्मल हुई।

पहिले मानस में जो जल था, वर्षा हुई तो उमग चला। यहाँ भी गुरुजी से सुना था सो मन में था, सन्तों से सुना तो उमग चला। भीतर भीतर सब मसाला तैयार था, कलम चलने की देर थी। सो आनन्द का उछाह होते ही जो प्रेम प्रमोद का प्रवाह उमगा तो नदी की भाँति कविता बह चली। लिखना कठिन हो गया। नदी में जल भरा रहता है। कविता नदी में रामयश भरा था। नदी में प्रवाह उमगता है। यहाँ प्रेम प्रमोद उमगा। रोके न रुका।

चली सुभग कविता सरिता सो। राम बिमल जस जल भरिता सो॥
सरजू नाम सुमंगल मूला। लोक बेद मत मंजुल कूला॥६॥

अर्थ : कविता सुन्दर नदी सी वह निकली। जिसमें रामजी का विमल यश रूपी जल भरा हुआ है। उसका नाम सरयू है जो सारे मङ्गलों का मूल है। लोकमत और वेदमत उसके दोनों सुन्दर किनारे हैं।

व्याख्या : मानस जो उमगा तो सरयू[1] नदी निकली और कवि के मानस के उमग में कवितारूपी सरयू निकली। दोनों सरयू सुमंगल मूल हैं। यथा : जा मज्जनते बिनहिं प्रयासा। मम समीप नर पावहिं बासा। तथा, जो सुनत गावत कहत समुझत परम पद नर पावई। लोकमत दक्षिण कूल है और वेदमत वाम कूल है। दोनों सुन्दर हैं।

नदी पुनीत सुमानस नंदिनि। कलिमल तृन तरु मूल निकंदिनि॥७॥

अर्थ : यह पवित्र नदी मानसर की कन्या है। कलियुग के पापरूपी तृण और वृक्ष के मूल को खोद बहानेवाली है।

व्याख्या : सरयू मानस से उत्पन्न है, इसलिए मानस नन्दिनी : बेटी कहा। बेटी कुछ अंश में माँ के सदृश होती है और कुछ अंश में नहीं होती। मानस तो साठ मील के भीतर ही भीतर चारों घाटों से परिवेष्टित है। पर सरयू यद्यपि चारों घाटों के जल से ही भरी है तथापि वह और नदियों से जाकर मिली है। उसका प्रचार कई प्रान्तों में हो गया है। मानस की गहराई २६४ फीट तक है। पर सरयू

———

१. कैलासपर्वते राम मनसा निर्मितं सरः। ब्रह्मणा नरशार्दूल तेनेदं मानसं सरः॥
तस्मात् सुस्राव सरसः सयोध्यामुपगूहते। सरःप्रवृता सरयू पुण्या ब्रह्मसरश्च्युता॥
वा. रा.

अर्थ : हे रामजी कैलास पर्वत में ब्रह्मदेव के मन से निर्माण किया हुआ सर है। इसी से उसका नाम मानस सर है। उसी से सरयू निकली है जो अयोध्या से जा मिली है। यह पुण्यनदी है क्योंकि मानससरोवर से निकली है।

की गहराई कदाचित् ही कहीं तीस फुट हो। अतः कविता द्वारा जिस कथा का प्रचार प्रान्तों में हुआ उसमें मूल की अपेक्षा बहुत कम गहराई होना स्वाभाविक है।

क्षुद्रपाप तृण और महापाप वृक्ष हैं इन्हें कवितारूप सरयू जल से धो बहाती है। क्योंकि सरयू नदी मानसनन्दिनी है। जल से भरी है। कवितारूपी सरयू सुमानस-नन्दिनी है। रामयश से भरी है।

दो. श्रोता त्रिविध समाज पुर, ग्राम नगर दुहु कूल।
संत सभा अनुपम अवध, सकल सुमंगल मूल ॥३९॥

अर्थ : तीनों प्रकार के श्रोताओं का समूह ही दोनों किनारों के पुर, ग्राम और नगर हैं और सब मङ्गलों की मूलभूता सन्तों की सभा ही अनुपम अयोध्या है।

व्याख्या : तीन प्रकार के श्रोता होते हैं। १. विमुक्त २. विरत और ३. विषयी। यथा : सुनहि विमुक्त, विरत अरु विषयी। लहहिं भगति, गति, संपति नई। विषयी जनों का समाज बड़ा भारी है। इसे नगर कहा। विरत बहुत कम हैं। यथा : धर्मसील कोटिन्ह महँ कोई। विषय विमुख विरागरत होई। अतः उनके समाज को ग्राम कहा। विमुक्त तो विरला ही कोई होता है। यथा : कोटि विरक्त मध्य श्रुति कहई। सम्यग ज्ञान सकृत कोउ लहई। सो इनका समाज बहुत ही विरल है, इसलिए इसे पुर कहा। जिस भाँति सरयू के दायें बायें पुर, ग्राम, नगर बसे हैं और वे सब पावन हैं। उसी भाँति कविता सरयू के वेदप्रधान तट तथा लोकप्रधान तट पर विमुक्त, विरत और विषयी श्रोताजन का समाज है और वह सब पावन है। सरयू के तट पर अवधपुरी है। पुरी राजधानी को कहते हैं, अवधपुरी रामजी की राजधानी है। यथा : आनँद अवधि अवध रजधानी। यह पुर, ग्राम, नगर, सभी से अधिक पावनि और मङ्गलकरणि है। इसलिए इसे अनुपम कहा। इसी भाँति कवितासरयू के श्रोतावर्ग में साधुसमाज है। यह रामानुरागी समाज तीनों विमुक्त, विरत और विषयी समाज से अधिक पावन और मङ्गलमूल है। धर्म निरत पंडित विज्ञानी। जीवन्मुक्त ब्रह्म पर प्रानी। सबते सो दुर्लभ सुर राया। राम भगति रत गत मद माया। अतः रामानुरागी : साधु समाज अनुपम है। इसे पाकर रामकथा की महिमा अत्यन्त बढ़ जाती है।

रामभगति सुरसरितहि जाई। मिली सुकीरति सरजु सुहाई॥
सानुज राम समर जसु पावन। मिलेउ महानदु सोन सोहावन ॥१॥

अर्थ : सुकीर्तिरूपी सरयू जाकर रामभक्तिरूपी गङ्गा से मिली। छोटे भाई के सहित रामजी का समरयश महानद सोन उसमें जा मिला।

व्याख्या : यहाँ स्वायम्भू मनु और शतरूपा का चरित्त रामभक्तिरूप है। आदि में भक्ति यथा : जनम गयउ हरि भगति बिनु। मध्य में भक्ति यथा ·थान भक्ति जनु धरे सरीरा। अन्त में भक्ति यथा : दंपति उरधरि भगति कृपाला। इसलिए इसे भक्तिरूपी गंगा कहा। इसी में उत्तर से आकर सुकीर्तिरूपी सरयू मिली अर्थात् यह कविता सरित् भक्तानुग्रहयश से परिपूर्ण थी। परन्तु लक्ष्मणजी के सहित रामजी

का पावन समरयश दक्षिण से इधर आया। मारीच, सुबाहु आदि से युद्ध सिद्धाश्रम में हुआ। यह गङ्गाजी से दक्षिण पड़ता है। यह समर मुनि जी के यज्ञ की रक्षा के लिए हुआ। इसलिए पावन कहा।

शोन का अर्थ ही लाल है। लालरङ्ग सभी रंगों में उग्र है अतः शोन को समरयश कहा। यह महानद दक्षिण से आकर भक्ति गङ्गा में ही लीन हुआ।

जुगविच भगति देवधुनि धारा। सोहति सहित सुविरति विचारा ॥
त्रिविध ताप त्रासक त्रिमुहानी। रामसरूप सिंधु समुहानी ॥२॥

अर्थ : दोनों के बीच में भक्तिरूपी गङ्गा की धारा, सुन्दर विराग और विचार के सहित शोभित है। ऐसी त्रिविध ताप को भय देनेवाली त्रिमुहानी, रामस्वरूप सिन्धु के सम्मुख चली।

व्याख्या : उत्तर से भक्तानुग्रह यश से परिपूर्ण सरयू आई और दक्षिण से सानुज समरयश में पूर्ण शोन महानद आया। दोनों भक्ति गङ्गा से जो विरति विचार के साथ शोभित थीं, मिल गये। यहाँ 'होइ न विषय विराग भवन वसत भा चौथपन। हृदय वहुत दुःख लाग, जनम गयउ हरि भगति विन' यह विचार है, और 'वरवस राज सुतहिं नृप दीन्हा। नारि समेत गमन वन कीन्हा।' यह विरति है। इसलिए 'सोभित सहित सुविरति विचारा।' कह रहे हैं। सरयू और सोन के गङ्गा में मिलने से तिमुहानी का रूप हो गया। यह तिमोहानी ऐसी है कि इसे देखकर तीनों ताप[1] डर जाते हैं। अव सवको लिये दिये गङ्गा समुद्र की ओर चलीं।

यहाँ रामस्वरूप ही सिन्धु है। भक्ति गङ्गा उपर्युक्त सरितों को अपने में मिलाये रामस्वरूप की ओर उन्मुख हुई। अर्थात् कवि की चित्तवृत्ति कल्याणवहा[2] हो गई।

गण्डकी नदी ही अवध की पूर्वी सीमा है। इसके वाद वोली बदल जाती है। इसलिए इस रूपक में उतने ही नदीनद परिगृहीत हैं। इनके निवासी उस भाषा को बोलते और समझते हैं जिसमें यह रामचरितमानस लिखा गया है। अर्थात् गङ्गा, यमुना, सरयू और सोन तक हिन्दी भाषी संसार हैं।

मानसमूल मिली सुरसरिही। सुनत सुजन मन पावन करही ॥
विचविच कथा विचित्र विभागा। जनु सर तीर तीर वनु वागा ॥३॥

अर्थ : जिसका मूल मानस है वह सरयू, गङ्गाजी में जा मिलीं। यह सुनते ही सुजन के मन को पवित्र कर देती है। बीच बीच में जो कथाओं के विचित्र विभाग हैं वे ही नदी के तीर के वन और वाग हैं।

---

१. आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक।

२. चित्त नदी दोनों ओर बहती है। जव पाप की ओर बहती है तो उसे पापवहा कहते हैं। जव कल्याण की ओर उसका प्रवाह हो जाता है तो उसे कल्याणवहा कहते हैं।

व्याख्या : जिस मानससर से सरयू निकली हैं वह तो तिब्बत के पास है। परन्तु इस मानस का स्थान तो मन है। वहीं से कविता सरिता उद्भूत होकर भक्ति में जा मिली और भक्तिमय हो गई। इस बात के सुनने मात्र से सुजन का मन उसी भाँति पवित्र होता है जिस भाँति उस मानससर से निकली हुई सरयू और गङ्गा के सङ्गम पर स्नान करने से शरीर पवित्र हो जाता है।

सरयू नदी के मानससर से निकलने के बाद और गङ्गा में मिलने से पहिले तटों पर अनेक बाग और वन मिलते हैं। बाग सुखदायक होता है। यथा : बाग तड़ाग विलोकि प्रभु हरखे बन्धु समेत। और वन दुःखदायक होता है। यथा : डरपहिं धीर गहन सुधि आये।

इसी भाँति इस कवितारूपी सरयू के किनारे किनारे भी विचित्र कथा विभाग है। जो बाग और वन स्थानीय हैं। सती मोह, नारद मोह, भानु प्रताप की कथाएँ वन हैं। इनमें सती, नारद और भानुप्रताप सभी रास्ता भूल गये और कष्ट उठाया। पार्वती जन्मकथा, तपस्याकथा बाग हैं। इनमें ही सुख हुआ।

उमा महेस विवाह बराती। ते जलचर अगनित बहु भाँती॥
रघुबर जनम अनंद बधाई। भँवर तरंग मनोहरताई॥४॥

अर्थ : शिव-पार्वती के विवाह के बराती ही अनेक प्रकार के असंख्य जलजीव हैं। रामचन्द्र के जन्म की आनन्द बधाई ही इस नदी के भँवर और तरंगों की मनोहरता है।

व्याख्या : जलचर बदल गये। मानस में : नरबस जपतप जोग बिरागा। ते सब जलचर : चारु तड़ागा थे। सरयूजी में उतनी गहराई नहीं है। इसलिए दूसरे प्रकार के जलचर वर्णन किये। यहाँ महादेवजी के बराती जलचर हैं। भाव यह कि महादेवजी की बरात इष्टदेवों की बारात है। 'यजन्ते सात्त्विका देवान् यक्षरक्षांसि राजसाः। प्रेतान् भूतगणांश्चैव यजन्ते तामसा जनाः। सात्त्विक लोगों के इष्ट देवता हैं। वे देवताओं को पूजते हैं। राजस लोगों के इष्ट यक्षराक्षस हैं। वे इनकी पूजा करते हैं। तामस लोगों के इष्ट भूत, प्रेत हैं। वे इनकी उपासना करते हैं। इन्हें जलचर इसलिए कहा कि महादेव के बराती देव, राक्षस, यक्ष, भूत, पिशाच सभी थे। पर वे रामयश में विचरण करनेवाले थे। जलचर के वश में पड़ा हुआ पुरुष बड़ी विपत्ति में पड़ता है। अतः इनके वश में पड़ने से रामभक्ति नहीं मिल सकेगी। जन्म-मरणरूप संसार के चक्र में ही पड़े रह जायँगे। महादेवजी की बारात में देवता यथा : हिय हरखे सुरसेन निहारी। हरिहिं देखि अति भये सुखारी। राक्षस भूत प्रेत आदि यथा : संग भूत प्रेत पिशाच जोगिनि विकटमुख रजनीचरा : सभी थे। भूतानि यान्ति भूतेज्या यान्ति मद्याजिनोऽपि माम्। भूतों को पूजनेवाले भूतों को प्राप्त होते हैं और भगवान् के पूजनेवाले भगवान् को प्राप्त होते हैं।

रामजी के जन्म में जो आनन्द हुआ वह तो कवितासरिता का भँवर है और जो बधाई हुई वह तरंग है। तरंग ऊपर ले जाता है और भँवर नीचे डुबाता है।

तरंग, यथा : वृंद वृंद मिलि चलीं लोगाई । सहज सिंगार किये उठि धाई ॥
कनक कलस मंगल भरि थारा । गावत पैठहिं भूप दुआरा ॥
करि आरती नेछावरि करहीं । वारबार सिसु चरनन्हि परहीं ॥
भँवर यथा : सुमन वृष्टि आकास ते होई । ब्रह्मानंद मगन सब लोई ॥
कागभुसुंडि संग हम दोऊ । मनुज रूप जानहि नहि कोऊ ॥
परमानंद प्रेम सुख फूले । वीथिन्ह फिरहिं मगन मन भूले ॥

दो. वालचरित चहुँ वंधु के, वनज विपुल वहु रंग ।
नृप रानी परिजन सुकृत, मधुकर वारि विहंग ॥४०॥

अर्थ : चारों भाइयों के जो वालचरित हैं वे ही रंग रंग के अनेक कमल हैं। राजा और रानी तथा कुटुम्वियों के पुण्य ही भ्रमर तथा जलपक्षी हैं।

व्याख्या : पहिले कह आये हैं कि कवियों ने सत्त्वगुण का श्वेत, रजोगुण का लाल, तमोगुण का नीला तथा गुणातीत का पीला रंग माना है। वाललीला में सभी प्रकार के चरित होते हैं, इसलिए 'वनज विपुल वहु रंग' कहा।

राजसिक चरित : कवहूँ ससि लागत आरि करैं, कबहूँ प्रतिबिम्ब निहारि डरैं।
सात्त्विक : कवहूँ करताल वजाइ के नाचत, मातु सबै मन मोद भरैं ॥
तामसिक : कबहूँ रिसियाइ रहैं हठि के, पुनि लेत सोई जेहि लागि अरैं।
गुणातीत : अवधेस के वालक चारि सदा, तुलसी मनमंदिर में विहरैं ॥

नृप और रानी के सुकृत को मधुकर कहा। मधुकर कमल का रस लेता है। उसे जूठा कर देता है। इसी भाँति राजा रानी बच्चों को चूमते चाटते है। कुटुम्वियों को जलपक्षी कहा। वे भी कमल के साथ कलोल करते हैं। परन्तु मधुकर की भाँति मकरन्द के अधिकारी नहीं हैं।

सीय स्वयंवर कथा सुहाई । सरित सुहावनि सो छवि छाई ॥
नदी नाव पटु प्रश्न अनेका । केवट कुसल उतर सविवेका ॥१॥

अर्थ : सीताजी के स्वयंवर की जो सुन्दर कथा है, वही इस सुहावनी नदी में लाई हुई छवि है। अनेक प्रकार के उत्तम प्रश्न ही इस नदी में नाव हैं और उनके विवेकमय उत्तर ही चतुर केवट हैं।

व्याख्या : सीयस्वयंवर कथा में राम-जानकी की छवि का वर्णन है। रामकथा सरिता में जो छवि वर्णन है वह प्रायेण इसी युगलमूर्ति का है। इसीलिए सरित सोहावनि सो छवि छाई : कहा।

रामछवि यथा : सखि इन कोटि काम छवि जीती। यह छवि सखी पटतरिअ जाही। देखि राम छवि कोउ एक कहहीं। वरनत छवि जहँ तहँ सब लोगू। थके नयन रघुपति छवि देखें। मुख छवि कहि न जात मोहि पाहीं। निरखि निरखि रघुवीर छवि। नखसिख मंजु महा छवि छाए।

सीताछवि यथा : छवि गृह दीप सिखा जनु बरई। सियमुख छवि विधु व्याज

बखानी। जगत जननि अतुलित छवि भारी। जौं छवि सुधा पयोनिधि होई। छवि गन मध्य महाछवि जैसी।

युगलमूर्ति छवि : भरिलोचन छवि लेहु निहारी। रामरूप अरु सिय छवि देखें। गावहि छवि अवलोकि सहेली। छवि सिंगार मनहु इकठौरी, आदि।

पण्डित की भाँति प्रश्न करने से संक्षेप में उत्तर मिलता है और मूढ़ की भाँति प्रश्न करने से उत्तरदाता को एक एक बात अलग करके समझानी पड़ती है। अतः मूढ़ न होते हुए भी मूढ़ की भाँति प्रश्न करना। जिससे उत्तर लोकोपकारी हो। प्रश्न की पटुता है यथा : चाहहु सुनै रामगुन गूढ़ा। कीन्हिहु प्रश्न मनहुँ अति मूढ़ा। प्रश्नकर्ता के मर्म को समझकर यथार्थ उत्तर देना। यथा : प्रथमहि कहि मैं सिवचरित बूझा मर्म तुम्हार। सुचि सेवक तुम्ह राम के रहित समस्त विकार। मैं जाना तुम्हार गुनसीला। कहौं सुनहु अब रघुपति लीला : उत्तर की पटुता है।

प्रश्न को नाव और केवट को उत्तर कहा। नाव का और केवट का साथ छूटने न पावे तभी पार मिलता है। सदा यह ध्यान रहे कि किस प्रश्न का उत्तर हो रहा है तभी बात समझ में आ सकती है नहीं तो पार न मिलेगा।

सुनि अनुकथन परस्पर होई। पथिक समाज सोह सरि सोई ॥
घोर धार भृगुनाथ रिसानी। घाट सुबद्ध राम बरबानी ॥२॥

अर्थ : कथा सुन लेने पर श्रोताओं में जो परस्पर अनुकथन होता है वही मानो उस नदी का पथिक समाज शोभित है। परशुरामजी का क्रोध घोर धारा है और रामजी की श्रेष्ठ वाणी सुदृढ़ पक्का घाट है।

व्याख्या : अनुकथन करनेवाले ही यात्री हैं। उन्हें पार जाना है जो कथा सुनकर पुनर्विचार नहीं करते उन्हें पार जाना नहीं है। नदी की सैर करने आये हैं।

सरयू की धारा ऐसी घोर है कि कोसों काटती चली जाती है। भृगुनाथ की रिसानी भी वैसी ही घोर है। कहते हैं : उलटौं महि जँह लहि तव राजू। रामजी की सुवाणी सुन्दर बँधा हुआ : पक्का घाट है। नव गोले गलाये गये हैं : नौ बार उत्तर दिया गया है। रिसानी की घोर धारा घूम गई। यथा : उघरे पटल परसुधर मति के।

सानुज राम विवाह उछाहू। सो सुभ उमग सुखद सबकाहू ॥
कहत सुनत हरषहिं पुलकाहीं। ते सुकृती मन मुदित नहाहीं ॥३॥

अर्थ : भाइयों सहित रामजी के विवाहके उछाह ही इस नदी की शुभ उमंग है, जो सबको सुख देनेवाली है। कहते सुनते जो लोग पुलकित और हर्षित होते हैं वे ही पुण्यात्मा प्रसन्न मन से स्नान करनेवाले हैं।

व्याख्या : जब नदी उमगती है, तो दूर के रहनेवालों के भी समीप पहुँच जाती है। इसी भाँति अनुजों के सहित रामजी के विवाह में जो उछाह हुआ। वह दूर दूर तक पहुँच गया। यथा : सकल भुवन भरि रहा उछाहू। जनक सुता रघुवीर विवाहू।·बहुत उछाह भवन अतिथोरा। मानहु उमगि चला चहुँओरा।

क. भले भूप कहत भले भदेस भूपनि सो, लोक लखि बोलिए पुनीत रीति मारखी ।
जगदम्बा जानकी जगत पितु राम भद्र, जानि जिय जोवो जोन लागै मुख कारखी ।।
देखे हैं अनेक व्याह सुने हैं पुरान वेद, बूझे हैं सुजान साधु नर नारि पारखी ।
ऐसे सम समधी समाज ना विराजमान, राम से न वर दुलही न सिय सारखी ।।
वानी विधि गौरी हर शेषहू गनेस कही, सही भरी लोमस भुसुण्डि बहु बारिखो ।
चारि दस भुवन निहारि नर नारि सब, नारद सों परदा न नारद सो पारिखो ।।
तिन कही जगमें जगमगत जोरी एक, दूजो को कहैया को सुनैया चख चारिखो ।
रमा रमारमन सुजान हनुमान कही, सीय-सी न तीय न पुरुष राम सारिखो ।।

इससे सुखद सब काहू कहा ।

कथा को कहते सुनते जो ऐसे आनन्द में आजाते हैं कि उन्हें रोमाञ्च हो उठता है, वे पुण्यात्मा लोग हैं । वे ही इस नदी में स्नान करनेवाले हैं । पापी को इसका स्नान दुर्लभ है । पापवंत कर सहज सुभाऊ । भजन मोर तेहि भाव न काऊ ।

रामतिलक हित मंगल साजा । परव जोग जनु जुरे समाजा ।।
काई कुमति केकई केरी । परी जासु फल विपति घनेरी ।।४।।

अर्थ : रामजी तिलक के लिए जो मंगल साज हुआ वही पर्व के दिन की भीड़भाड़ है । कैकेयी की कुमति काई है । जिसके फलरूप में घोर विपत्ति पड़ी ।

व्याख्या : रामतिलक पर्वयोग है । अयोध्या में पर्वयोग रामनवमी ही है । यथा : जेहि दिन राम जन्म श्रुति गावहिं । तीरथ सकल तहाँ चलि आवहिं । सो उस दिन समाज जुटा । यथा : एक समय सब सहित समाजा । राजसभा रघुराज विराजा । रामजी की छबीसवीं वर्ष गांठ थी । दूसरे दिन पुष्य में तिलक होनेवाला था । यथा : सफल रसाल पूगफल केरा । रोपहु बीथिन्ह पुर चहुँ फेरा । रचहु मंजु मनि चौके चारू । कहहु बनावन बेगि बजारू । कैकेयी की कुबुद्धि काई हो गई । स्वयं चक्रवर्ती जी फिसल पड़े । रामजी को वनवास दे दिया । राजा की मृत्यु हुई । साज अमङ्गल में परिणत हो गया । यथा : भयउ कोलाहल अवध अति सुनि नृप राउरसोर । विपुल विहगवन परेउ निसि मानहु कुलिस कठोर ।

दो. समन अमित उतपात सब, भरत चरित जपजाग ।
कलि अघ खल अवगुन कथन, ते जलमल बक काग ।।४१।।

अर्थ : असीम उत्पात की शान्ति के लिए, भरत का चरित्र ही जप यज्ञ है । कलियुग के पापों और दुष्टों के दोषों के जो वर्णन हैं, वे ही जलमल : काई के लिए बगले और कौवे हैं ।

व्याख्या : अवसि चलिअ वन राम पहँ, भरत मंत्र भल कीन्ह । सोक सिंधु बूडत सबहि तुम अवलंबन दीन्ह । सब लोगों ने भरत जी को राज्य स्वीकार करने के लिए कहा । परन्तु भरत जी ने स्वीकार नहीं किया । रामजी को वन से लौटा लाने के लिए वन जाना निश्चित किया । रामजीके विरह से व्याकुल प्रजा के लिए भरत जी का मन्त्र मानों डूबते हुए को सहारा हो गया । यथा : मन्त्र सबीज सुनत

जनु जागे। रामजी के समझाने बुझाने पर लौटे भी तो रामजी से राज्य की स्वीकृति कराके उनके प्रतीक रूप से पादुका लेकर लौटे। चरन पीठ करुनानिधान के। जनु जुग जामिक प्रजा प्रान के। इस भाँति भरतचरित से वे सब उत्पात उसी भाँति शान्त हुए जिस भाँति जपयज्ञ से सब आपत्तियाँ टल जाती हैं। भगवान् ने स्वयं कहा है : यज्ञानां जपयज्ञोस्मि। यज्ञों में जपयज्ञ मैं हूँ। बक काग जलमल : काई को खा जाते हैं। कुमति ही काई है। कलि के अघ और खल के अवगुण कहने से लोगों की कुमति दूर होती है। अतः कलिअघ, खल अवगुण कथन भी यहाँ उपयोगी है।

रामजी का प्रधान चरित्र अयोध्याकाण्ड तक ही है। निशाचररारि और रामराजसुख आदि का वर्णन चरित-सरित का ऋतुवर्णन मात्र है।

कीरति सरित छहूँ रितु रूरी। समय सुहावनि पावनि भूरी॥
हिम हिमसैलसुता सिव ब्याहू। सिसिर सुखद प्रभु जनम उछाहू॥१॥

अर्थ : यह कीर्तिरूपिणी नदी छः ऋतुओं में सुन्दर है। समय समय पर सुहावनी और अत्यन्त पवित्र है। पार्वती और शिवजी का व्याह हिम ऋतु है और प्रभु का जन्मोत्सव सुख देनेवाला शिशिर ऋतु है।

व्याख्या : नदियों की शोभा में ऋतुभेद से अन्तर पड़ता है परन्तु यह कीर्ति-सरित छः ऋतु में सुहावन है। दूसरी नदियाँ वर्षा काल में अपावन हो जाती हैं और यह सभी काल में अत्यन्त पवित्र है। जिस ऋतु में जैसी शोभा होनी चाहिए वैसी शोभा रहती है। ग्रन्थकार ने जिस प्रसङ्ग को जिस ऋतु से उपमित किया है उस ऋतु का धर्म भी कथा वर्णन में दरशाया है। ऋतुओं में पहले हिम ऋतु को ही माना क्योंकि वेदों में वर्ष का अन्त शरद में माना है। इसलिए शरद वर्ष का नामान्तर माना गया है और भगवान् ने मार्गशीर्ष मास को अपनी विभूति बतलाया है। हिम ऋतु में दो मास होते हैं। १. अगहन : मार्गशीर्ष और पूस : पौष। इसी भाँति इस प्रसङ्ग में दो चरित हैं। १. उमा चरित और २. शम्भु चरित। इसमें हिम : जाड़ा की प्रखरता रहती है। पार्वतीजी ने हिम की उपमा काम से, शिवजी की उपमा अग्नि से दी है। यथा : तात अनल कर सहज सुभाऊ। हिम तेहि निकट जाइ नहिं काऊ। गए समीप सो अवसि नसाई। अस मन्मथ महेस की नाई। सो इस प्रसङ्गमें कामका प्रकोप दिखलाकर संसार को उसके वश में दिखलाया पर शिवजी का सामना पड़ने पर वह सशंक हो गया। यथा : सिवहिं बिलोकि ससंकेउ मारू। भयेउ यथा थिति सब संसारू। पूस के अन्त में अग्नि भी मन्द पड़े। यथा : करहिं विविध विध भोग बिलासा। गनन्ह समेत बसहिं कैलासा। इत्यादि। अतः हिमशैल सुता-शिव व्याह को हिमऋतु कहा।

प्रभु जन्म उछाह को ग्रन्थकार ने शिशिर ऋतु रूप वर्णन किया है। शिशिर ऋतु में दो मास हैं, १. माघ और २. फाल्गुन। सो प्रभु जन्म हुआ माघ और उछाह फाल्गुन हुआ।

वसन्त पञ्चमी से ही फगुआ का महोत्सव प्रारम्भ हो जाता है। उसे श्रीपञ्चमी

कहते हैं। सरस्वती का जन्मदिन माना जाता है। उसे प्रभुजन्म दिन से उपमित किया। यथा : हरखित जहँ तहँ धाई दासी। आनंद मगन सकल पुरवासी। इत्यादि। प्रभु जन्मोत्सव में तो ग्रन्थकार ने पूरा फगुआ मना दिया है। गीले सूखे रङ्ग का भी वर्णन है। यथा : अगर धूप जनु बहु अँधियारी। उड़इ अबीर मनहु अरुनारी। मृग मद चंदन कुंकुम कीचा। मची सकल वीथिन्ह बिचवीचा। सन्ध्या को अभिसारिका बनाकर प्रभु के पास भेजा। बूढ़े शङ्कर को भी स्वाँग बदले हुए दिखलाया। विविध ताप होली जलै खेलिअ असफाग। इस पद को सार्थक कर दिया।

बरनव राम विवाह समाजू। सो मुद मंगलमय [1]रितुराजू॥
ग्रीषम दुसह राम बन गमनू। पंथकथा खर आतप पवनू॥२॥

अर्थ : रामजी के विवाह के समाज का वर्णन आनन्दमङ्गलमय ऋतुराज है। रामजी का वनगमन असह्य ग्रीष्म ऋतु है और मार्ग की कथा कड़ी धूप और लू है।

व्याख्या : ऋतुराज वसन्त के दो महीने होते हैं। १. मधु चैत्र और २. माधव वैशाख। सो राजादशरथ और जनक को ही ग्रन्थकार ने मधु और माधव माना है। यथा : मधुमाधव दशरथजनक मिलव राज ऋतुराज। बारात और अगवानी के समाज को ही वसन्त की सेना माना है : डेरा कीन्ह्यौ मनहु तव कटक हटकि मनजात।

ग्रन्थकार ने वसन्त ऋतु के त्यौहारों को भी झलका दिया है। यथा : देवी पूजा, परशुराम जयन्ती, गङ्गा सप्तमी आदि।

श्रीराम वनगमन को ग्रन्थकार ने ग्रीष्म रूप से उपमित किया है। ग्रीष्म के दो मास होते हैं : १. ज्येष्ठ २. आषाढ़। जिस भाँति गरमी संसार को असह्य हो जाती है। उसी भाँति रामगमन प्रजा को असह्य हो गया। यथा : बागन विटप बेलि कुम्हिलाहीं। सरित सरोवर देखि न जाहीं। सहि न सके रघुवर विरहागी। चले लोग सब व्याकुल भागी। इत्यादि। जो सरकार को इस अवस्था में देखता है वही दुःखी हो जाता है मानों उसे लू लग गई। आषाढ़ में पहिला पानी भी बरस जाता है, जिसे दँवगरा कहते हैं। सो पहिला संग्राम खरदूषण युद्ध भी हुआ। गुरुपूर्णिमा द्योतित करते हुए शङ्कर स्थापन भी करते हैं।

बरषा घोर निसाचर रारी। सुरकुल सालि सुमंगलकारी॥
राम राज सुख विनय बड़ाई। विसद सुखद सोइ सरद सुहाई॥३॥

अर्थ : राक्षसों के साथ घोर लड़ाई वर्षा ऋतु है। जो देवताओं के समूह रूपी धान के लिए सुन्दर कल्याण करनेवाली है। रामजी के राज्य में सुख, विनय और बड़ाई है। वही सुख देनेवाली सुन्दर निर्मल शरद ऋतु है।

व्याख्या : निशाचररारि को ग्रन्थकार ने घोर वर्षा कहा है। वर्षा के दो महीने होते हैं। १. श्रावण और २. भाद्रपद। सो बाईस दोहों में चारों फाटक की लड़ाई

---

१. अयुक्तस्य रिः इस सूत्र से ऋ का रि हुआ।

कुम्भकर्णवध और मेघनादवध दिखलाया गया। इस भाँति श्रावण की वर्षा समाप्त हुई। बाईस दोहों में रावण वध दिखलाया गया। यह भाद्रपद की वर्षा थी। इसमें वर्षा के नक्षत्र भी दिखलाये गये हैं। इन दृष्टियों को लेकर प्रसङ्गों के लगाने में बड़ा आनन्द आयेगा। मैंने प्रादेश मात्र दिखलाया है।

ग्रन्थकार ने रामराज्य को शरद माना है। शरद में दो मास होते हैं। १. आश्विन और कार्तिक। इस भाँति रामराज्य प्रकरण के भी दो विभाग हैं। एक राज्याभिषेक और दूसरा रामराज्य का सुख। इसमें भी व्याज से पितृपक्ष, देवपक्ष, दीपावली आदि का वर्णन किया गया है।

सती सिरोमनि सियगुन गाथा। सोइ गुन अमल अनूपम पाथा॥
भरत सुभाउ सुसीतलताई। सदा एक रस बरनि न जाई॥४॥

अर्थ: सतियों की शिरोमणि सीताजी के गुणों की गाथा ही उस निर्मल अनुपम जल का गुण है। भरतजी का स्वभाव ही सुन्दर शीतलता है। जो सदा एक रस रहती है। जिसका वर्णन नहीं हो सकता।

व्याख्या: सीताजी सती शिरोमणि हैं। इनके स्मरण से स्त्रियाँ पतिव्रत आचरण करती हैं। यथा: सुनु सीता तव नाम सुमिरि नारि पतिव्रत करहिं। इनके गुणों से दोनों कुल पवित्र हुए। इनकी उज्ज्वल कीर्ति से अनन्त ब्रह्माण्ड व्याप्त हैं। यथा: पुत्रि पवित्र किए कुल दोऊ। सुजस धवल जग कह सब कोऊ। जिति सुरसरि कीरति सरि तोरी। गवन कीन्ह विधि अंड कडोरी। इनके गुणों की गाथा ही इस निर्मल अनुपम जल के गुण हैं। इस जल के रामयश रूप होने से निर्मल तथा निरुपम कहा।

भरत का स्वभाव सदा एक रस है और सर्वथा अवर्णनीय है। यथा: भरतहि होइ न राजमद विधि हरिहर पद पाइ। कबहुँ कि काँजी सीकरनि छीर सिन्धु बिनसाइ। सुनहु लखन भल भरत सरीखा। विधि प्रपंच महँ सुना न दीखा। सुनि भूपाल भरत व्यवहारू। सोन सुगंध सुधाससि सारू। इत्यादि। वही इस जल की शीतलता कही। जो सदा एकरस रहती है और जल को ऐसा सुस्वादु बनाए रहती है कि उसका वर्णन नहीं हो सकता।

दो. अवलोकनि बोलनि मिलनि, प्रीति परस्पर हास।
भायप भलि चहुँ बंधु की, जल माधुरी सुबास॥४२॥

अर्थ: देखना, बोलना, मिलना, प्रीति और परस्पर हँसी तथा चारों भाइयों का उत्तम भाईपन, जल की मिठास और सुगन्ध है।

व्याख्या: जल अमृत सा मीठा है। चारों भाइयों के देखने, बोलने, मिलने, प्यार करने और हँसने में अमृत सी मिठास है। इसलिए जल की मिठास से उपमा दी।

अवलोकन बोलनि, यथा: महूँ सनेह संकोच बस सनमुख कह्यौं न बैन।
दरसन तृपित न आज लगि प्रेम पियासे नैन॥
राम करहि भ्रातन्ह पर प्रीती।
नाना भाँति सिखावहिं नीती॥

मिलनि प्रीति, यथा : मिलनि प्रीति किमि जाइ बखानी।
कविकुल अगम करम मनवानी ।।

इस जल में स्वभाववश सुगन्ध है। इस भाँति भाइयों के हास में बड़ा ही माधुर्य है। यथा : हृदय अनुग्रह इन्दु प्रकासा। सूचत किरिण मनोहर हासा।

जल में सुगन्ध स्वभाव से नहीं होता पर इसमें स्वाभाविक सुगन्ध है। जिससे दिगन्त व्याप्त है और वह सुगन्ध चारों भाइयों का भाईपन है। जिसे संसार जानता है। यथा : इनके प्रीति परस्पर पावनि। कहि न जाय मन भाव सुहावनि। इस भाँति जल के तीन गुण : निर्मलता, शीतलता और माधुर्य कहे। वस्तुतः जल में सोलह[1] गुण कहे गये हैं। शेष तेरह आगे कहे जावेंगे।

आरति विनय दीनता मोरी। लघुता ललित सुवारि न थोरी ।।
अदभुत सलिल सुनत गुनकारी। आस पियास मनोमलहारी ।।१।।

अर्थ : मेरी आर्ति विनय और दीनतारूपी सुन्दर हलकापन सुन्दर जल में कम नहीं है। बड़ा ही अद्भुत जल है, सुनते ही गुण करता है। और आशारूपी प्यास तथा मनोमल को दूर करता है।

व्याख्या : टिप्पणी में दिये हुए चौदहवें, बारहवें और सोलहवें गुणों को क्रम से ऊपर कह आये। प्रसङ्ग से सुगन्ध भी कहा जो रामयश सलिल के लिए स्वभाविक है। परन्तु लौकिक जल के लिए आगन्तुक है। अतः वैद्यक शास्त्र ने उसे जल के गुणों की गणना में स्वीकार नहीं किया है। अब तेरहवाँ गुण लघुता कहते हैं। रामयशरूपी सुवारि में लघुता कैसे कहें और जल में गुरुता : भारीपन बड़ा भारी दोष तथा लघुता बड़ा भारी गुण है। इसलिए ग्रन्थकार कहते हैं कि रामयश-रूपी जल में जो बड़ी लघुता है वह मेरे कारण है। लघुता का दोष उस यश में नहीं है। मेरी आर्ति, विनय और दीनता जो इस कविता सरिता में दिखलाई गई है बड़ी भारी लघुता है। अब नवाँ गुण 'गुप्त रसत्व[2]' कहते हैं कि इस जल का रसत्व भी गुप्त है। यह पीने से नहीं श्रवण मात्र से गुण करता है। अद्भुत जल है।

---

१. पानीयं श्रमनाशनं क्लमहरं मूर्च्छापिपासाहरम्।
तन्द्रार्च्छिदिविबन्धहृद्बलकरं निद्राहरं तर्पणम् ।।
हृद्यं गुप्तरसं ह्यजीर्णशमकं नित्यं हितं शीतलम्।
लघ्वच्छं रसकारणं निगदितं पीयूषवज्जीवनम् ।।

अर्थ : जल १. श्रमनाशक है २. ग्लानिहर है ३. मूर्च्छा और प्यास हरण करता है ४. तन्द्रा, वमन, कब्जीयत हरण करता है ५. बल देता है ६. निद्रा हरण करता है ७. तृप्ति देता है ८. हृदय को हित है ९. रस उसका गुप्त है १०. अजीर्ण दूर करता है ११. नित्य हित है १२. शीतल है १३. लघु है १४. स्वच्छ है १५. रस का कारण है और १६. जीवन के लिए अमृत सा है।

२. जल स्वाभाव से मधुर होता है पर मालूम नहीं होता। हरीतकी आदि भक्षण से माधुर्य का अनुभव होता है।

अब तीसरा गुण कहते हैं। लौकिक जल प्यास और मूर्च्छा दूर करता है। और यह अलौकिक जल आशारूपी प्यास और मनोमलरूपी मूर्च्छा को दूर करता है। प्यास तो बुझ जाती है। पर आशारूपी प्यास नहीं बुझती : हते भीष्मे हते द्रोणे हते कर्णे महाबले। आशा बलवती राजन् शल्यो जेत्स्यति पाण्डवान्। सञ्जय कहते हैं कि हे राजा धृतराष्ट्र! आशा बड़ी बलवान् है। भीष्म मारे गये। द्रोण मारे गये। महाबल कर्ण मारे गये : तुम्हारे पुत्रों ने : अब पाण्डवों को जीतने की आशा से शल्य को सेनापति बनाया है। सो यह अलौकिक जल उसे भी दूर करता है। मूर्च्छा तो दूर हो जाती है पर मनोमल नहीं दूर होता। वह भी इस जल से दूर हो जाता है।

राम सुपेमहि पोषत पानी। हरत सकल कलिकलुष गलानी॥
भौ श्रम सोषक तोषक तोषा। समन दुरित दुख दारिद दोषा॥२॥

अर्थ : यह जल रामजी के सुन्दर प्रेम को पोषण करता है और कलियुग के पापों की ग्लानि को हरण करता है। संसार की थकावट को सोख लेता है। तोष को भी तुष्ट करता है। पाप, दुःख और दरिद्रतारूप दोषों को नष्ट करता है।

व्याख्या : जल रस का कारण है। रस बनने से ही रक्त आदि बनकर अनित्य शरीर का पोषण होता है, पर यह अलौकिक जल तो रामजी के सुन्दर प्रेम को पोषण करता है जो नित्य सुख का कारण है। इस भाँति जल के पन्द्रहवें गुण 'रसकारणत्व' का निरूपण करके दूसरे गुण 'क्लमहरत्व' का निरूपण करते हैं।

जल ग्लानि को दूर करता है। ऐसी ग्लानियाँ कितनी बार हुईं और दूर हुईं परन्तु कलिकलुषग्लानि तो कभी नहीं गई। अलौकिक जल उसे भी हरण करता है। अब पहिला गुण कहते हैं : जल श्रम का नाश करता है। शरीर से काम लेने से थकावट आती है। वह जल से दूर होती है। यथा : मज्जन कीन्ह पंथश्रम गयऊ। परन्तु भवश्रम के नाश का तो कोई लौकिक उपाय नहीं है। वह तो इस अलौकिक जल से ही जाता है। यथा : देखेउँ करि सब कर्म गोसाईं। सुखी न भयेउँ अबहिं की नाईं। अब सातवाँ गुण 'तर्पण' कहते हैं जल से तोष होता है। यथा : स्वाद तोष सम सुगति सुधा के। परन्तु वह तोष जल के भरोसे कितनी देर ठहरेगा। उस तोष का भी तोषण करनेवाला यह अलौकिक जल है। यथा : अब कछु नाथ न चाहिअ मोरे। दीनदयाल अनुग्रह तोरे। अब दसवाँ गुण कहते हैं। जल अजीर्ण दोष को दूर करता है, पर दुःख-दरिद्र-दोषरूपी अजीर्ण का हटना तो कठिन है। वह भी इस अलौकिक जल से दूर होता है।

काम क्रोध मद मोह नसावन। विमल विवेक विराग बढ़ावन॥
सादर मज्जन पान किए तें। मिटहिं पाप परिताप हिए तें॥३॥

अर्थ : काम, क्रोध, मद और मोह को नष्ट करनेवाला है और निर्मल विवेक और वैराग्य को बढ़ानेवाला है। आदर सहित स्नान करने और पान करने से हृदय के सारे पाप और दुःख मिट जाते हैं।

व्याख्या : अब चौथा गुण कहते हैं। जल तन्द्रा, छर्दि : वमन विबन्ध कोष्ठ-

बद्धता का हरण करता है। तन्द्रा अज्ञानावस्था में ला देती है। छर्दि : वमन से बड़ा कष्ट होता है। अङ्ग अङ्ग में पीड़ा होती है। वायु की गति ऊर्ध्व हो जाती है। कोष्ठवद्धता अनेकानेक रोगों का कारण है। ये सव यत्किञ्चित् जल से दूर होते हैं। इनके लिए प्रभावशाली औषधियाँ दूसरी हैं, पर काम की भाँति अज्ञान लानेवाला, क्रोध की भाँति अनर्थ करनेवाला और मदमोह की भाँति सम्पूर्ण मानसिक व्याधियों का मूल तो दूसरा कुछ नहीं है। उनका भी निश्चित नाश इस अलौकिक जल से होता है।

अब पाचवाँ गुण कहते हैं। जल बल वढ़ाता है। भौतिक शरीर में शक्ति आती है। परन्तु वलकारिणी प्रभावशालिनी औषधियाँ दूसरी ही हैं। विवेक और विराग वल ही वास्तविक बल है। यथा : जव उर वल विराग अधिकाई। मोहि सो कहहु कृपाल ज्ञान प्रभाव कि योग वल। उसे तो यह अलौकिक जल बढ़ाता है।

अब आठवाँ गुण कहते हैं। जल हृदय के लिए हित है। कुछ शान्ति ला देता है। परन्तु पाप और परिताप को हृदय से हटाकर उसका सच्चा हित तो यह अलौकिक जल है। इस भाँति इस अलौकिक जल में जल के सोलहों गुण दिव्यातिदिव्य रूप में वर्तमान हैं।

जिन्ह येहिं वारि न मानस धोए। ते कायर कलिकाल विगोए ॥
तृषित निरखि रविकर भव वारी। फिरिहहिं मृग जिमि जीव दुखारी ॥४॥

अर्थ : जिन्होंने इस जल से अपना मानस नहीं धोया, उन कायरों को कलिकाल ने ठग लिया है। जैसे प्यासा हिरन सूर्य की किरणों की चमक में : मृग जल में जलवुद्धि से उसके पास जाना चाहता है और दुःख के सिवा उसे कुछ नहीं मिलता। इसी भाँति मनुष्य भी दुःखी होते फिरेंगे।

व्याख्या : अव तो विषम वन, दुर्लंघ्य पर्वत और भयानक नदियों को पार करके मानसरोवर नहीं जाना है। खुले मैदान मानसरोवर का जल सरयू में वह रहा है। अब तो ग्रन्थकार या किसी पण्डित के यहाँ भी नहीं जाना है। अपनी भाषा में रामयश बह रहा है। अव भी जिसने इस जल से अपने मन को न धोया अर्थात् इससे लाभ नहीं उठाया वह कायर है। उसे इतना भी साहस नहीं कि खुले मैदान बहते हुए परम पुनीत लाभदायक अलौकिक जल से मन को पवित्र करे। उसे निःसन्देह कलियुग ने ठग लिया। उसका जन्म व्यर्थ गया। मरकर न जाने किस योनि में जायगा। सिवा कलियुग के ठगने के अन्य कोई कारण उसके लाभ न उठाने का नहीं मालूम होता।

जिसने इस अलौकिक सुख से लाभ न उठाया वह सुख के लिए मृगतृष्णा के पीछे दौड़ेगा। विषय में सुख चाहेगा और विषय में सुख है नहीं। सुखाभास मात्र दिखाई पड़ता है। उसी के पीछे दौड़ेगा और अब मिला तब मिला इसी आशा में दौड़ते दौड़ते मर जायगा। मृग इसी भाँति मरीचिका के पीछे जलवुद्धि से दौड़ते दौड़ते मर जाता है।

दो. मति अनुहारि सुवारि गुन, गन गनि मन अन्हवाइ ।
सुमिरि भवानी संकरहि, कह कवि कथा सुहाइ ।।४३।।
अब रघुपति पद पंकरुह, हियँ धरि पाइ प्रसाद ।
कहौं जुगल मुनिवर्ज कर, मिलन सुभग संवाद ।।४३।। क

अर्थ : अपनी बुद्धि के अनुसार सुन्दर जल के गुणों को गिनकर मन में स्नान कराकर और महादेव पार्वती को स्मरण करके कवि : श्रीगोस्वामीजी : सुहावनी कथा कहता है ।

प्रसाद रूप में पाकर श्रीरामजी के चरण कमलों को हृदय में धरकर दोनों मुनिवरों का मिलन और सुन्दर संवाद वर्णन करता हूँ ।

व्याख्या : अब सरयू जी का स्नान कहते हैं । यथा : मज्जहिं सज्जनवृंद बहु पावन सरयू नीर । राम सुयश जल के गुणों का गिनना ही स्नान है । यहाँ भवानी शङ्कर को फिर स्मरण करते हैं । तीन बार प्रणाम करके ही बात समाप्त नहीं होती । कथा करते समय भी शङ्कर विस्मरण न हो क्योंकि उन्हींके प्रसाद से ग्रन्थकार कवि हुए । यथा : संभु प्रसाद सुमति हिय हुलसी । रामचरितमानस कवि तुलसी । वे सुकवि हैं कथा कर चुके हैं । यथा : यत्पूर्वं प्रभुणा कृतं सुकविना श्रीशम्भुना दुर्गमम् । ग्रन्थकार उन्हीं के प्रसाद से कविता कर रहे हैं । कह कवि कथा सोहाइ । उपक्रम उपसंहार का मिलान :

उपक्रम :	करइ मनोहर मति अनुहारी	उपसंहार :	मति अनुहारी सुवारिवर गुन गन गनि मन अन्हवाइ ... कहकवि कथा सोहाइ
...	बरखहिं रामसुयस बरबारी	...	सुवारि गुन
...	भइ कवि बुद्धि विमल अवगाही	...	गनि मन अन्हवाइ
...	कहौं कथा सोइ सुखद	...	कह कवि कथा सोहाइ

कवित्व तो प्रसाद में पहिले ही मिल चुका था । इस बार प्रसाद में भगवान् के चरण कमल मिले । शङ्कर भगवान् के मानस में चरण थे । यथा : जे पद सरोज मनोज अरि उर सर सदैव विराजहीं । भुसुण्डि के मानस में भी है । यथा : जो भुसुण्डि मन मानस हंसा । याज्ञवल्क्य के मानस में भी चरणकमल हैं । यथा : मुनिमन मानस हंस निरंतर । पर ग्रन्थकार के मानस में नहीं थे, अतः इन्होंने मानस के रूपक में छन्द, सोरठा, दोहा को कमल का स्थान दिया । यह त्रुटि समझकर शङ्कर भवानी ने रघुपति पद पङ्करुह को प्रसाद रूप में दिये । ग्रन्थकार ने तुरन्त हृदय में रख लिया । जो प्रसाद सिर पर रक्खा जाता है उसका विसर्जन किया जाता है । इसका विसर्जन ग्रन्थकार को इष्ट नहीं है । इससे हृदय में धारण किया ।

इसके बाद दो वस्तु का वर्णन आरम्भ करते हैं । १. याज्ञवल्क्य भरद्वाज मिलन और २. उनका संवाद । पहिले मिलन कहेंगे ।

भरद्वाज याज्ञवल्क्य संवाद

भरद्वाज मुनि वसहिं प्रयागा। तिन्हहिं राम पद अति अनुरागा॥
तापस सम दम दया निधाना। परमारथ पथ परम सुजाना॥१॥

अर्थ : भरद्वाज मुनि प्रयागराज में वसते थे। उन्हें रामजी के चरणों में बड़ा अनुराग था। वे तपस्वी शम, दम, दया के निधान थे और परमार्थ मार्ग में वड़े निपुण थे।

व्याख्या : [1]प्रयागराज में रहना कहकर भरद्वाज ऋषि की तीर्थ सेवा कही। वाल्मीकि जी के शिष्य हैं अतः रामपद अति अनुराग कहा। अथवा रामपद अति अनुराग पद से भरद्वाज जी को तीर्थराज का भी पावन करनेवाला महातीर्थ कहा। यथा :

सो सुकृती सुचिमंत सुसंत, सुजान सुसील सिरोमनि स्वै।
सुर तीरथ ताही मनावत आवत, पावन होत है तात नछ्वै॥
गुनगेह सनेह को भाजन सो, सवहीं सो उठाइ कहौं भुजद्वै।
सति भाय सदा छल छाड़ि सबै, तुलसी जो रहै रघुवीर को ह्वै॥ क.

जिन्होंने तपस्या करके इन्द्र से तीन सौ वर्ष की आयु वेदाध्ययन के लिए पाई और अन्त में वेदों के सारभूत ॐकार को प्राप्त किया, इसलिए तापस कहा। शम से अन्तःकरण का नियमन तथा दम से वाह्येन्द्रियों का दमन और दया से परम धर्म में निष्ठा कही और 'परमारथ पथ परम सुजाना' कहकर ज्ञान निष्ठा कही। इस भाँति कर्म, ज्ञान और उपासना तीनों काण्डों का नैपुण्य कहा।

माघ मकर गत रवि जव होई। तीरथ पतिहि आव सत्र[2] कोई॥
देव दनुज किंनर नर श्रेनी। सादर मज्जहिं सकल त्रिवेनी॥५॥

अर्थ : माघ के महीने में जव सूर्य मकर राशि में आते हैं, तव सव कोई तीर्थराज प्रयाग में आते हैं। देव दैत्य किन्नर और मनुष्यों के समूह सभी आदर पूर्वक त्रिवेणी[3] में स्नान करते हैं।

व्याख्या : प्रयागराज प्राजापत्य तीर्थ है और ब्रह्मनक्षत्र अभिजित् पर मकर में ही सूर्य आते हैं अतः मकर में प्रयागराज का अत्यधिक माहात्म्य है। सौर और चान्द्र दो प्रकार का मास प्रचलित है। संक्रान्ति से सौर और पूर्णिमा से चान्द्र मास

---

१. 'क्षेत्रं प्रजापतेः पुण्यं सर्वेषामपि दुर्लभम्। लभ्यते पुण्यसम्भारैः नान्यथार्थस्य राशिभिः।'
सबसे दुर्लभ यह ब्रह्मदेव का तीर्थ प्रयागराज है, इनकी प्राप्ति पुण्य राशि से होती है। धन की राशियों से नहीं होती।

२. भुवो लोकाच्च भूर्लोकान्नागलोकात् तथा लिखात्····स्नातुं माघे समायान्ति प्रयाग अरुणोदये : काशी खण्डे : ऊपर के सव लोकों से तथा पाताल तक से प्राणी प्रयाग में अरुणोदय स्नान के लिए चले आते हैं।

३. इयं वेणीहि निःश्रेणी ब्रह्मणो वर्त्म यास्यतः। यह वेणी ब्रह्म के मार्ग की सीढ़ी है।

का हिसाव चलता है। मकर की संक्रान्ति और माघ मास में कुछ दिनों का ही हेर फेर पड़ता है। अतः माघ और मकर एक ही समझा जाता है। कल्पवास करनेवाले, कोई संक्रान्ति भर और कोई माघ की पूर्णिमा तक, एक मास प्रयागराज में रहते हैं। यथा : पूर्णिमायां समारभ्य पूर्णिमायां समापयेत्। मकरे वा समारभ्य कुम्भे वाऽथ समापयेत्। ग्रन्थकार का कथन है कि केवल मनुष्य ही एक मास नित्य त्रिवेणी में स्नान नहीं करते, बल्कि देवता और असुर भी आदर के साथ स्नान करते हैं। लौकिक दृष्टि से न देखे जाने पर भी शास्त्रदृष्टि से यह बात देखी गई है। जो भीड़ प्रयागराज में दिखाई पड़ती है वह वास्तविक भीड़ की चौथाई मात्र है क्योंकि देव-दनुज-किन्नरों की भीड़ तो मनुष्यों के लिए अदृश्य है।

पूजहिं माधव[1] पद जल जाता। परसि अषयवटु हरषहिं गाता॥
भरद्वाज आश्रम अतिपावन। परम रम्य मुनिवर मन भावन॥३॥

अर्थ : माधव के चरणकमलों की पूजा करते हैं, और अक्षयवट का स्पर्श कर के पुलकित होते हैं। भरद्वाज का आश्रम अतिपावन, बड़ा ही रमणीय और मुनिवर मनभावन था।

व्याख्या : अब कल्पवास की विधि कहते हैं कि त्रिवेणी के स्नान के वाद वेणीमाधव का पूजन करते थे और अक्षयवट के स्पर्श से उनका शरीर पुलकित हो उठता था क्योंकि अक्षयवट का स्पर्श दुर्लभ है। उसका प्रलय में भी नाश नहीं होता और इसी के पत्ते पर बालमुकुन्द विराजमान होते हैं।

अतिपावन और मनभावन होने से ही भरद्वाज जी ने आश्रम वनाया था। रामकथा के चारों स्थान अतिपावन और मनभावन हैं। अथवा जंगम प्रयाग स्वरूप भरद्वाज मुनि के निवास से अतिपावन हुआ। अतः वही आश्रम अन्य मुनिवरों को भी मनभावन था। इसीलिए मुनिलोग वहीं एकत्रित होते थे। यथा :

तहाँ होइ मुनि रिषय समाजा। जाहिं जे मज्जन तीरथ राजा।
मज्जहिं प्रात समेत उछाहा। कहहिं परस्पर हरिगुन गाहा॥४॥

अर्थ : प्रयाग में जो स्नान करने जाते थे उन ऋषि मुनियों का जमाव वहीं होता था। प्रातःकाल सब उत्साह के साथ स्नान करते थे और एक दूसरे से भगवान् के गुणों की गाथा कहते थे।

व्याख्या : रामजी के चरणों में अति अनुराग होने के कारण भरद्वाज मुनि के प्रति सब ऋषि-मुनियों का बड़ा आदर था और उनका आश्रम भी अत्यन्त पावन और मनभावन था। अतः वहीं सबका जमाव होता था। जो स्नान करने जाते थे वे वहीं ठहरते थे। कल्पवास की संक्षेप विधि यही है कि माघ के विकट जाड़े में भी

---

१. यत्र लक्ष्मीपतिः साक्षात् वैकुण्ठादेत्य मानवान्। श्रीमाधवस्वरूपेणानयद्विष्णोः परं पदम्॥
यहाँ रमापति साक्षात् बैकुण्ठ से आकर मनुष्यों को माधव स्वरूप से विष्णुपद प्राप्त कराते हैं।

अर्धोदय स्नान उत्साह के साथ करना और शेष समय भजन में व्यतीत करना। भगवान् के गुणों का कथन श्रवण भगवान् की वाङ्मयी पूजा है। उसी में लगे रहते थे।

दो. ब्रह्म निरूपन धर्म विधि, बरनहिं तत्वविभाग।
कहहिं भगति भगवंत कै, संजुत ग्यान विराग ॥४४॥

अर्थ : ब्रह्मनिरूपण करते थे। धर्म की विधि और तत्त्व का विभाग वर्णन करते थे तथा ज्ञान और वैराग्य से संयुक्त ईश्वरभक्ति का कथन करते थे।

व्याख्या : ब्रह्मनिरूपण और तत्त्वविभाग के वर्णन से ज्ञानकाण्ड अथवा ब्रह्म-विचार कहा। धर्मविधि के निरूपण से विधिनिषेधमय कर्मकथा कही और ज्ञान-विराग युक्त भगवान् की भक्ति निरूपण से रामभक्ति कहा एवं स्थावर तीर्थराज में जंगम तीर्थराज की उपस्थिति कही। यथा : मुदमंगलमय संतसमाजू। जो जग जंगम तीरथराजू। राम भगत्ति जहँ सुरसरिधारा। सरसइ ब्रह्म विचार प्रचारा। विधि-निषेधमय कलिमलहरनी। कर्मकथा रविनंदिनि बरनी। आदि। तत्त्वविभाग का वर्णन पुरुष-प्रकृति के भेदज्ञान में बड़ा उपकारक होता है।

एहि प्रकार भरि माघ नहाहीं। पुनि सब निज निज आश्रम जाहीं ॥
प्रति संवत अति होई अनंदा। मकर मज्जि गवनहिं मुनिवृन्दा ॥१॥

अर्थ : इस प्रकार वे माघ भर स्नान करते और फिर सब अपने अपने आश्रमों को जाते थे। हर साल अत्यन्त आनन्द होता था। मुनि लोग मकरस्नान करके चले जाते थे।

व्याख्या : इस चौपाई से यह दिखलाया कि सौरमास और चान्द्रमास दोनों में प्रयाग का माहात्म्य है फिर भी यह झलकता है कि यद्यपि सब लोगों में चान्द्रमास प्रचलित है, सब लोग उपर्युक्त विधि से माघ भर स्नान करके अपने आश्रम को लौटते थे, पर मुनिवृन्द मकर भर स्नान करके तब जाते थे। कभी कभी मकर माघ की पूर्णिमा डाककर आगे तक चला जाता है, तब सब लोग तो पूर्णिमा स्नान कर चले जाते हैं परन्तु मुनिवृन्द मकर का स्नान पूरा करके तब जाते हैं।

एक बार भरि मकर नहाए। सब मुनीस आश्रमन्ह सिधाए ॥
जागबलिक मुनि परम विवेकी। भरद्वाज राखे पद टेकी ॥२॥

अर्थ : एक बार मकर भर स्नान करके सब मुनीश्वर अपने अपने आश्रमों को चले गये। परन्तु परम विवेकी याज्ञवल्क्य मुनि को भरद्वाज जी ने चरण पकड़-कर रोक रक्खा।

व्याख्या : समय निश्चित नहीं इसलिए एक बार कहा। माघ भी बीत गया और मकर भी बीत गया। भाव यह कि भरद्वाज-याज्ञवल्क्य संवाद फाल्गुन मास कुम्भ के सूर्य में हुआ। मुनि सभी विवेकी थे। पर याज्ञवल्क्य परम विवेकी थे। शुक्ल यजुर्वेद का प्रादुर्भाव इन्हीं से हुआ है। वृहदारण्यक उपनिषत् इन्हींका कहा

हुआ है। इन्हींकी स्मृति को आज भी उत्तर भारत अवनत मस्तक होकर मानता है। ये भी जाने को तैयार हुए, पर चरण पकड़कर भरद्वाज जी ने रोक रक्खा।

सादर चरन सरोज पखारे। अति पुनीत आसन बैठारे॥
करि पूजा मुनि सुजस बखानी। बोले अति पुनीत मृदुबानी॥३॥

अर्थ : आदर सहित उनके चरण कमल धोये, अति पुनीत आसन पर उन्हें बिठाया। पूजा करके मुनि के सुयश की प्रशंसा की और अति पुनीत मृदुवाणी बोले।

व्याख्या : यह चरण प्रक्षालन पूजा का अङ्ग है। इसलिए सादर प्रक्षालन कहते हैं। आसनों में अति पुनीत आसन व्यासासन है जिस पर वेद शास्त्र के व्याख्याता बिठाये जाते हैं। अति पुनीत होने से इसका पद सिंहासन से ऊँचा है। राजा भी व्यासासन से नीचे बैठते हैं। ऐसे व्यासासन पर बिठाया, गन्धमाल्यादि से पूजा की, स्तुति की। सकल लोक हितकारिणी कथा पूछी। इसलिए उस वाणी को अति पुनीत कहा। श्रवण सुखद होने से मृदु कहा।

नाथ एक संसउ[१] बड़ मोरें। करगत वेद तत्व सब तोरें॥
कहत सो मोहि लागति भय लाजा। जौं न कहौं बड़ होई अकाजा॥४॥

अर्थ : हे नाथ ! मेरे हृदय में एक बड़ा सन्देह है और वेदों का सब तत्त्व आपके हाथों में है। उसे कहते हुए मुझे डर और लज्जा मालूम होती है और बिना कहे भी बड़ी हानि है।

व्याख्या : उभयकोटि अवलम्बी ज्ञान को संशय कहते हैं। ईश्वर सम्बन्धी होने से उस संशय को बड़ा कह रहे हैं क्योंकि वह लौकिक उपायों से जा नहीं सकता। उसका उच्छेद वेदादि शास्त्रों से ही सम्भव है। वेदादि शास्त्र ही अज्ञातार्थ ज्ञापक हैं। सो उनका जो कुछ तत्त्व है वह आपके करगत है अर्थात् करामलकवत् आपको सम्यक् प्रकार से ज्ञात है।

उसे कहते हुए लज्जा और भय दोनों मालूम होते हैं। लज्जा इस बात की कि स्वयं वाल्मीकिजी का शिष्य होकर भी मुझे रामविषयक शङ्का है और भय इस बात का कि वेद-असम्मत वाणी सुनकर आप अप्रसन्न न हो जायँ। यथा : कहहिं सुनहिं अस अधम नर ग्रसे जे मोह पिसाच। पाखंडी हरिपद विमुख जानहिं झूठ न साँच। और यदि मैं नहीं पूछता तो बड़ी हानि है, रामविषयक सन्देह हृदय में बना ही रहेगा।

दो. संत कहहिं अस नीति प्रभु, श्रुति पुरान मुनि गाव।
होइ न विमल विवेक उर, गुर सन कियें दुराव॥४५॥

---

१. उच्चस्वमोः। इस सूत्र से 'सु' विभक्ति को 'उ' हुआ। इस भाँति 'संशय' का संशयु रूप हुआ। 'कगचजतदपयवां प्रायेण लोपः' इस सूत्र से 'य' का लोप होकर 'संशउ' रूप हुआ। तब 'शषोः सः' सूत्र से 'श' का 'स' होकर 'संसउ' रूप सिद्ध हुआ।

अर्थ : हे प्रभो ! सन्तजन ऐसी नीति कहते हैं और श्रुति, पुराण और मुनि भी यह गान करते हैं कि गुरु से छिपाव रखने से हृदय में निर्मल विवेक नहीं होता।

व्याख्या : जिस प्रकार का सन्तों में व्यवहार चलता है वही सन्तों की नीति है। यह नीति स्वयं परम आदरणीय है किं पुनः श्रुति पुराण और मुनिगण से भी अनुमोदित होने पर। अतः अवश्य आचरणीय है। वह नीति यह है कि : गुरु से छिपाव करने से निर्मल विवेक नहीं होता। महामोह तमपुञ्ज के नाश के लिए जिसके वचन सूर्य की किरणें हैं उन्हींसे छिपाव करने से मोहान्धकार का नाश कैसे होगा ! उनसे छिपाव करना तो मानो अन्धकार को हृदय में स्थान देना है। मुनि-समाज एक महीने तक यहाँ था और नित्य ब्रह्मनिरूपण, धर्मविधि, तत्त्वविभाग, भगवान् की भक्ति का निरूपण होता था परन्तु भय और लज्जा के कारण उन लोगों से अपना संशय प्रकट नहीं किया। आप गुरु हैं, आपसे छिपाव नहीं कर सकता।

अस बिचारि प्रगटौं निज मोहू। हरहु नाथ करि जन पर छोहू ॥
राम नाम कर अमित प्रभावा। संत पुरान उपनिषद गावा ॥१॥

अर्थ : ऐसा विचारकर मैं अपना मोह प्रकट करता हूँ। हे नाथ ! आप जन पर छोह करके हरण कीजिये। राम नाम का अपार प्रभाव है। सन्त, पुराण और उपनिषद् ने गान किया है।

व्याख्या : याज्ञवल्क्यजी को गुरु मानकर उनसे कहते हैं कि भय और सङ्कोच-वाली बात ऋषिमुनि समाज में नहीं प्रकट की। आपसे प्रकट करता हूँ। शिष्य और पुत्र समान रूप से ही वात्सल्य भाजन हैं। अतः छोह करके मेरा मोह, अज्ञान हरण कीजिये। मैं आपका जन अर्थात् भक्त हूँ। तीनों लोकों की सम्पत्ति भी ज्ञान प्रदान के तुल्य नहीं है। अतः गुरु का वात्सल्य : चाह ही शिष्य के मोह हरण का कारण होता है। अब संशय प्रकट करते हैं :

राम नाम के प्रभाव की इयत्ता नहीं है : इस बात को सन्त, पुराण और उपनिषत् वेद के शिरोभाग ने कहा है। सन्त ! यथा : सो प्रभु सब में रमि रह्यौ सर्व रूप सब ओर। ताते नाम सँभारि गहु सब नामन को मौर। पुराण। यथा : नाम्नोऽस्ति यावती शक्तिः पापनिर्दहणे हरेः। तावत्कर्तुं न शक्नोति पातकं पातकी जनः[1]। उपनिषत्। यथा : [2]यथा हि वटबीजस्थः प्राकृतो हि महान् द्रुमः। तथा हि रामबीजस्थं जगदेतच्चराचरम्।

संतत जपत संभु अविनासी। सिव भगवान ग्यान गुन रासी ॥
आकर चारि जीव जग अहहीं। कासीं मरत परम पद लहहीं ॥२॥

---

१. नाम में पाप जलाने की जितनी शक्ति है, उतने पाप पापी कर ही नहीं सकता।

२. जिस भाँति वट के बीज में इतना बड़ा वटवृक्ष सूक्ष्म भाव से अवस्थान करता है उसी भाँति राम बीज में चराचर विश्व अवस्थान करता है।

अर्थ : अविनाशी, ज्ञानगुणराशि भगवान् शिव सदा जपा करते हैं। संसार के जीवों की चार खानि हैं। सो सब काशी में मरकर परम पद को प्राप्त होते हैं।

व्याख्या : स्वयं षडैश्वर्यसम्पन्न, ज्ञानगुणसम्पन्न, अविनाशी, मङ्गलमय शिवजी जो कि सदा पूर्णकाम हैं नित्य जप किया करते हैं। यथा : तुम पुनि राम राम दिन राती। सादर जपहु अनंग अराती। यह नाममहिमा की परासीमा का उदाहरण है। सब प्रकार से आप्तकाम किसी क्रिया में प्रवृत्त नहीं होते। फिर भी शिवजी रात दिन जपा करते हैं। ऐसा प्रभाव इस नाम का है।

स्वेदज, उद्भिज्ज, अण्डज और पिण्डिज ये ही जीवों की चार खानि हैं, इनमें से जो काशी में शरीर त्यागता है उसे परम पद की प्राप्ति होती है। यथा : जो गति अगम महामुनि दुर्लभ कहत संत श्रुति सकल पुरान। सोइ गति मरन काल अपने पुर देत सदासिव सबहिं समान।

सोपि राम महिमा मुनिराया। सिव उपदेस करत करि दाया ॥
रामु कवन प्रभु पूछौं तोहीं। कहिय बुझाइ कृपानिधि मोहीं ॥३॥

अर्थ : हे मुनिराज ! सो यह भी रामजी की महिमा से होता है। शिवजी दया करके उपदेश देते हैं। हे प्रभो ! मैं आपसे पूछता हूँ कि वे राम कौन हैं ? हे कृपासागर मुझे समझाकर कहिये।

व्याख्या : सो काशी की यह महामहिमा राम नाम के प्रताप से ह। यहाँ प्राणोत्क्रमण के समय करुणा करके भगवान् शङ्कर तारक मन्त्र का उपदेश देते हैं। उस उपदेश के प्रभाव से उसे ज्ञान हो जाता है। ज्ञान होने से मुक्ति हो जाती है। अत्र हि जन्तोः प्राणेषूत्क्रममाणेषु रुद्रस्तारकं ब्रह्म व्याचष्टे। येनासौ अमृतीभूत्वा मोक्षी भवति। तस्मादविमुक्तमेव निषेवेत। अविमुक्तं न विमुञ्चेदिति।

जिसके नाम का ऐसा माहात्म्य है, वे राम कौन हैं ? यह बात मैं दूसरे से नहीं पूछ सकता था। इसलिए आपसे पूछता हूँ। केवल इङ्गित कर देने से काम न चलेगा। मुझे समझाकर कहिये। जिसके नाम की ऐसी महिमा है उस नामी को भी महामहिम होना चाहिए।

एक राम अवधेस कुमारा। तिन्ह कर चरित विदित संसारा ॥
नारि विरह दुख लहेउ अपारा। भयउ रोषु रन रावनु मारा ॥४॥

अर्थ : एक राम अवधनरेश के पुत्र हैं। उनका चरित सारे जगत् में विख्यात है। उन्होंने स्त्री के विरह में अपार दुःख पाया। जब क्रोध हुआ तो रावण को युद्ध में मार डाला।

व्याख्या : यदि कहिये कि तुम वाल्मीकिजी के शिष्य होकर राम को नहीं जानते ? उन्हींके चरित निरूपण के लिए वाल्मीकीय रामायण बनी। सम्पूर्ण संसार उनके चरित को जानता है। इस पर कहते हैं कि उन राम को तो मैं भी जानता हूँ। संसार जानता है। उनका चरित तो ऐसा नहीं है जिससे नाम का ऐसा माहात्म्य कहा जा सके। स्त्री का विरह बहुतों को होता है पर कोई तो उनकी

भाँति लता और तरु से पूछता नहीं फिरता। वे ऐसे कामासक्त थे कि उनके स्त्री विरह दुःख का पारावार नहीं था। क्रोधी भी ऐसे थे कि रावण ऐसे वेदज्ञ को मार डाला। यथा : रहा न कुल कोउ रोवनिहारा। ब्राह्मणकुल के संहार पर ध्यान न दिया। ऐसे कामी क्रोधी के नाम का ऐसा माहात्म्य कैसे हुआ? दूसरा कोई ऐसे नामवाला सुना नहीं जाता। यही भारी संशय है।

दो. प्रभु सोइ राम कि अपर कोउ, जाहि जपत त्रिपुरारि।
सत्य धाम सर्बग्य तुम्ह, कहहु विवेक विचारि ॥४६॥

अर्थ : हे प्रभो! वही राम हैं कि कोई दूसरे हैं जिनको त्रिपुरारि जपते हैं। आप सत्यधाम और सर्वज्ञ हैं। विचारकर कहिये।

व्याख्या : त्रिपुरारि पद से महा सामर्थ्यवान् तथा महाज्ञानी कहा। दानवों के तीनों पुरों का एक बाण से दाह करनेवाले अथवा तीनों पुर स्थूल सूक्ष्म और कारण का नाश करके मुक्ति देनेवाले शिवजी क्या इन्हीं सीताविरही रावणहन्ता राम के नाम का जप करते हैं या वे राम कोई और हैं। आप सत्य के आश्रय हैं। आपका कहा हुआ मिथ्या हो नहीं सकता। यथा : देवि न मुधा होइ मुनि भाषा। आपने जनक की सभा में शाकल्य ऋषि से कहा कि : मूर्धा ते व्यपतिष्यतीति। तं ह न मेने शाकल्यः तस्य ह मूर्धा निपतात। तेरा सिर गिरेगा, फिर शाकल्य ने न माना तो उसका सिर गिर गया। अतः मुझे विश्वास है आपके कहने से मेरा संशय जायगा। कोई सत्यवाक् भी हो और सर्वज्ञ न हो तब भी उसके कहने में भ्रम की शङ्का रहती है। आप तो सर्वज्ञ हैं। यथा : करगत वेदतत्व सब तोरे। अतः भ्रम को भी स्थान नहीं है। आप परम विवेकी हैं। विचारकर कहिये कि क्या ऐसे विषयासक्त पुरुष के नाम का ऐसा माहात्म्य सम्भव है?

जैसे मिटै मोर भ्रम भारी। कहहु सो कथा नाथ बिस्तारी ॥
जागबलिक बोले मुसुकाई। तुम्हहि विदित रघुपति प्रभुताई ॥१॥

अर्थ : जैसे मेरा भारी भ्रम मिट जाय हे नाथ! आप वैसी ही कथा विस्तार के साथ कहिये। याज्ञवल्क्य जी मुसकराकर बोले : तुम्हें रघुपति की प्रभुता मालूम है।

व्याख्या : विपरीत ज्ञान को भ्रम कहते हैं। भरद्वाजजी का कहना है कि मुझे भारी भ्रम हो गया है। एक महीने तक रात दिन मेरे यहाँ ब्रह्मनिरूपण, धर्मविधि, तत्त्वविभाग का वर्णन और ज्ञानविराग युक्त भक्ति का निरूपण बड़े बड़े महात्माओं द्वारा होता रहा पर मेरा भ्रम नहीं गया। इससे जाना कि मेरा भ्रम भारी है। यह विस्तारपूर्वक कथाश्रवण से जायगा। सो जिस कथा से जाय उसे विस्तार से कहिये। भाव यह कि वाल्मीकीय रामायण माधुर्यप्रधान ग्रन्थ है। उसके पढ़ने से मूढ़जनों को भारी संशय उठ खड़ा होता है। आप राम कथा को विस्तार से कहिये : जिसमें ऐश्वर्य को भी यथेष्ट स्थान मिले। तब वह संशय दूर हो। इसी प्रश्न का उत्तर सम्पूर्ण रामायण है।

जो रोगी रोग का निदान भी जानता हो तथा उसकी अचूक औषध भी जानता हो उसे वैद्य की क्या आवश्यकता है ? और उसे रोगी भी कैसे कहें ? भरद्वाजजी ने अपने कथन को स्वयं मोहमूलक और भ्रान्त बतलाया। और उसके मिटने का उपाय विस्तारयुक्त रामकथा भी बतला दी। इस पर याज्ञवल्क्य जी हँस पड़े। कहा : तुम रामजी की प्रभुता जानते हो। तुम्हारा प्रश्न विनोद मात्र है। तुमने कहा : नाथ एक संशय बड़ मोरे। सो तुम्हें संशय नहीं है।

राम भगत तुम मन क्रम बानी। चतुराई तुम्हारि मैं जानी॥
चाहहु सुनै रामगुन गूढ़ा। कीन्हिहु प्रश्न मनहु अति मूढ़ा॥२॥

अर्थ : तुम मनसा वाचा कर्मणा रामभक्त हो। मैंने तुम्हारी चतुराई जान ली। तुम रामजी के छिपे हुए गुणों को सुनना चाहते हो। इसलिए तुमने अत्यन्त मूढ़ की भाँति प्रश्न किया है।

व्याख्या : 'सत्यधाम' और 'सर्वज्ञ' विशेषणों से स्तुति की। उसका साफल्य दिखाते हुए ग्रन्थकार लिखते हैं कि याज्ञवल्क्यजी सब जान गये। प्रोत्साहन के लिए कह भी दिया कि तुम मन, कर्म और वाणी से रामभक्त हो। यह पूछना तुम्हारी चतुराई है। अवजानन्ति मां मूढा मानुषीं तनुमाश्रितम्। परं भावमजानन्तो मम लोकमहेश्वरम्। भ. गी.। मुझ मानुष शरीर धारण करनेवाले की मूढ़ लोग अवज्ञा करते हैं क्योंकि वे मेरे माहेश्वर परं भाव को नहीं जानते। ऐसा भगवान् ने कहा है। सो भरद्वाजजी ने अत्यन्त अवज्ञा करके पूछा है। इसलिए कहते हैं : मनहु अति मूढ़ा। प्रकट गुण वाल्मीकिजी से सुन चुके हो। बिना मूढ़ की भाँति प्रश्न किये उत्तर में गूढ गुण सुनने में नहीं आता।

तात सुनहु सादर समुझाई। कहहुँ राम कै कथा सुहाई॥
महा मोहु महिषेसु बिसाला। रामकथा कालिका कराला॥३॥

अर्थ : हे तात ! तुम आदरपूर्वक जी लगाकर सुनो। मैं रामजी की सुहावनी कथा कहता हूँ। महामोह विशाल महिषासुर है। और राम की कथा भयङ्कर कालिका है।

व्याख्या : कहहु सो कथा नाथ बिस्तारी का उत्तर दे रहे हैं। कथा सुनने के समय दूसरी बात मन में न सोचना ही आदर के साथ सुनना है। कोई बात मन में आने से छूट न जाय। इसलिए 'मन लाई' कहा। महिषासुर ने देवताओं को बड़ा कष्ट दिया। किसी के मारे नहीं मरता था। पर उसकी मौत काली के हाथ थी। महिषासुर बड़ा विशाल था। उसके सींग हिलाने से बादल फट पड़ते थे। पूँछ की फटकार से समुद्र उछलता था। खुर के प्रहार से पृथ्वी विदीर्ण होती थी। पर वह महामोह के सामने कुछ नहीं था। महामोह से तो त्रैलोक्य व्याप्त है। अतः उसके वध के लिए कराल कालिका की आवश्यकता है। महामोह की मौत रामकथा के हाथ है। यहाँ से दक्षिणघाट से भी कथा प्रारम्भ हुई।

राम कथा ससि किरन समाना । संत चकोर करहिं जेहि पाना ॥
ऐसेइ संसय कीन्ह भवानी । महादेव तब कहा बखानी ॥४॥

अर्थ : रामजी की कथा चन्द्रमा की किरणों के समान है। इसे सन्तरूपी चकोर पान करते हैं। ऐसा ही सन्देह भवानी ने भी किया था। तब महादेव जी ने बखानकर कहा था।

व्याख्या : रामकथा दुष्ट के लिए कराल है। पर सज्जन के लिए सौम्य है। जैसे चन्द्रमा की किरण होती है। चन्द्रमा की किरण को तो चकोर पान करते हैं। रामकथा का पान सज्जनरूपी चकोर करते हैं। जिस चन्द्रमा की रामकथा किरण है वह चन्द्र रामनाम है। यों तो यह चाँदनी सब को सुखद है पर चकोर के लिए विशेष लाभ है। यथा : रामचरित राकेसकर सरिस सुखद सब काहु। सज्जन कुमुद चकोर चित हित विशेष बड़ लाहु।

याज्ञवल्क्य जी अति संक्षेप में कथा माहात्म्य कहकर कहते हैं कि यही संशय तो नहीं पर ऐसा ही संशय उमा ने महादेव जी से किया था। यथा : जौ नृप तनय त ब्रह्म किमि नारि विरह मति भोरि। देखि चरित महिमा सुनत भ्रमति वुद्धि अति मोरि। इत्यादि। यह भारतवर्ष की प्राचीन प्रणाली है कि प्रश्नकर्ता के उत्तर में किसी दूसरे बड़े के सम्वाद को दिखलाते हुए उत्तर देते हैं। सो याज्ञवल्क्य जी उमा-महेश्वर सम्वाद कहेंगे। साथ ही भरद्वाज जी को उत्साहित करते हैं कि इस शङ्का को सामने लाते हुए तुम लज्जा और भय को चित्त में स्थान न दो। स्वयं साक्षात् भवानी ने ऐसी ही शङ्का की थी तब महादेव जी ने बखानकर कहा था।

दो. कहौं सो मति अनुहारि अब, उमा संभु संवाद।
भयउ समय जेहि हेतु जेहि, सुनु मुनि मिटिहि विषाद ॥४६॥

अर्थ : मैं अब अपनी बुद्धि के अनुसार उमा-शम्भु का संवाद जिस समय और जिस कारण से हुआ कहता हूँ। हे मुनि जी ! सुनने से विषाद मिट जायगा।

व्याख्या : उमा-शम्भु का संवाद है : इसलिए कहते हैं कि यथा बुद्धि कहूँगा। शिष्य के प्रोत्साहन के लिए प्ररोचन के वाक्य कहने चाहिए। अतः 'तुम्हहि विदित रघुपति प्रभुताई। रामभगत तुम मन क्रम वानी। आदि वाक्य कहे। अब भरोसा देते हैं कि : सुनु मुनि मिटिहि विषाद। विस्तार से कथा पूछी है। इसलिए कथा का समय और हेतु दोनों का वर्णन पहिले करेंगे। भरद्वाज जी ने तीन बार 'कहहु' कहकर प्रश्न किया। यथा : १. कहिअ वुझाइ कृपानिधि मोही। २. सत्य धाम सर्वज्ञ तुम कहहु विवेक विचारि। तथा ३. कहहु सो कथा नाथ विस्तारी। उत्तर में याज्ञवल्क्य जी भी तीन वार सुनहु कह रहे हैं। यथा : १. तात सुनउ सादर मन लाई। २. कहौं सो मति अनुहारि अव उमा संभु संवाद। भयउ समय जेहि हेतु जेहि सुनु मुनि मिटिहि विषाद और ३. कहहुँ सुनहु अव रघुपति लीला।

एक बार त्रेता जुग माहीं। संभु गए कुंभज रिषि पाहीं॥
संग सती जगजननि भवानी। पूजे रिषि अखिलेस्वर जानी॥१॥

अर्थ : एक बार त्रेता युग में शिवजी अगस्त्य ऋषि के पास गये। उनके साथ जगजननी सतीजी भी थीं। ऋषि ने उन्हें सारे जगत् का ईश्वर जानकर पूजा।

व्याख्या : पहिले कह आये हैं : भयउ समय जेहि हेतु जेहि। सो पहिले समय कहते हैं कि त्रेता युग की बात है। देवताओं का आना जाना अगस्त्यजी के यहाँ लगा ही रहता था। देवताओं के बैठने के लिए अगस्त्यजी के आश्रम में स्थान बने हुए थे। यथा : स तत्र ब्रह्मणः स्थानमग्नेः स्थानं तथैव च। विष्णोः स्थानं महेन्द्रस्य स्थानं चैव विवस्वतः। सोमस्थानं भवस्थानं स्थानं कौवेरमेव च। धातुर्विधातुः स्थानञ्च वायोः स्थानं तथैव च। स्थानञ्च पाशहस्तस्य वरुणस्य महात्मनः। स्थानं तथैव गायत्र्या वसूनां स्थानमेव च। स्थानञ्च नागराजस्य गरुडस्थानमेव च। कार्तिकेयस्य च स्थानं धर्मस्थानं च पश्यति। शिवजी भी जाया करते थे सो एक बार त्रेता युग में गये। भगवती सती भी साथ में थीं। भवानी कहकर उनका शिवजी से सम्बन्ध कहा और 'जग जननि' कहकर अनादि शक्ति कहा। अखिलेश्वर जानकर पूजा करने का भाव यह कि अन्य देवताओं के जाने पर जैसी पूजा होती थी उससे अधिक पूजा मुनिजी ने की। क्योंकि शिवजी विश्वनाथ हैं। ब्रह्मादि देवों के भी ईश्वर ठहरे। इसीलिए देवाधिदेव महादेव कहलाते हैं।

रामकथा मुनिवर्ज बखानी। सुनी महेस परम सुखु मानी॥
रिषि पूछी हरि भगति सुहाई। कही संभु अधिकारी पाई॥२॥

अर्थ : मुनिवर ने रामकथा वर्णन की और महेश्वर ने परम सुख मानकर सुनी। फिर कवि ने सुहाई हरि भक्ति पूछी और शिवजी ने अधिकारी पाकर कही।

व्याख्या : पूजनोपरान्त रामकथा सुनाना शिवजी को प्रिय है। इसलिए मर्मज्ञ मुनिजी ने रामकथा का बखान किया। सम्भवतः मुनिजी के आश्रम में भगवान् पधारे थे। उसी वृत्तान्त का वर्णन किया। पूजनोपरान्त प्रिय समाचार सुनाया। महेश्वर ने बड़े प्रेम से सुना। सती को रुचि नहीं थी। अतः आदर से नहीं सुना। यथा : तब कर अस विमोह मोहि नाहीं। रामकथा पर रुचि मन माहीं। मोह के बीज का वपन यहीं हुआ।

फिर ऋषिजी ने सुहाई हरिभक्ति अर्थात् फलरूपा, सिद्धा हरिभक्ति पूछी। यथा : सब कर फल हरि भगति सुहाई। साधनरूपा भक्ति के तो सभी अधिकारी हैं। यथा : पुरुष नपुंसक नारि वा जीव चराचर कोइ। सर्व भाव भज कपट तजि मोहि परम प्रिय सोइ। परन्तु सिद्धा भक्ति के जिसे अविरल, निर्भर आदि अनेक नाम से पुकारते हैं अधिकारी विरले हैं। यथा : नान्या स्पृहा रघुपते हृदयेऽस्मदीये। सत्यं वदामि च भवानखिलान्तरात्मा। भक्ति प्रयच्छ रघुपुंगव निर्भरां मे कामादिदोषरहितं कुरु मानसं च। सो कामादि दोषों से रहित स्पृहान्तर रहित पुरुष ही सुहाई भक्ति के अधिकारी हैं। मुनिजी उस भक्ति के अधिकारी थे। इसलिए शिवजो ने उनसे कहा।

कहत सुनत रघुपति गुन गाथा । कछु दिन तहाँ रहे गिरिनाथा ।।
मुनि सन विदा मांगि त्रिपुरारी । चले भवन सँग दच्छकुमारी ।।३।।

अर्थ : रघुपति के गुणों की गाथा कहते और सुनते गिरिनाथ कुछ दिनों तक वहीं रहे । मुनिजी से विदा माँगकर त्रिपुरारि दक्ष की कन्या के साथ घर चले ।

व्याख्या : यद्यपि कैलासनाथ हैं, फिर भी सत्सङ्ग के तथा हरिकथा के ऐसे रसिक हैं कि कुछ दिन वहाँ : दण्डकारण्य में ठहर गये । रघुपति के गुण ग्राम के कहनेवाले को अनिर्वाच्य विश्राम होता है और सुननेवाले को तृप्ति नहीं होती । यथा : एहि विधि कहत राम गुनग्रामा । पावा अनिर्वाच्य विश्रामा । रामचरित जे सुनत अघाहीं । रस विसेष जाना तिन्ह नाहीं । जिनका नयन पथ में आगमन क्षण भर के लिए दुर्लभ है वे कुछ दिन वहाँ रह गये ।

अतिथि की भाँति आये थे । अतः अतिथि की भाँति ही विदा माँगी । देवता की भाँति प्रादुर्भाव-तिरोभाव नहीं हुआ । विदा माँगने में कारण दक्षकुमारी मालूम होती हैं । नहीं तो गिरिनाथ तो ऐसे रामकथा के रसिक हैं कि भुसुण्डि के यहाँ मराल बनकर पूरी कथा सुनी थी । दक्षकुमारी को घर जाने की जल्दी थी । दक्षकुमारी शब्द का प्रयोग दक्ष के स्वभाव की छाया सूचित करता है ।

तेहि अवसर भंजन महि भारा । हरि रघुवंश लीन्ह अवतारा ।।
पिता वचन तजि राज उदासी । दंडक वन विचरत अविनासी ।।१४।।

अर्थ : इन्हीं दिनों पृथ्वी का भार उतारने के लिए हरि ने रघुकुल में अवतार लिया था । पिता के वचन से राजपाट छोड़कर उदासीन होकर दण्डक वन में विचरते थे ।

व्याख्या : तेहि अवसर का अन्वय 'विचरत' के साथ है । हरि का अवतार पृथ्वी का भार उतारने के लिए होता है । यथा : जब जब नाथ सुरन्ह दुख पावा । नाना तनु धरि तुमहि नसावा । मीन कमठ सूकर नरहरी । वामन परसुराम वपुधरी । रघुवंश में अवतार कहकर रामावतार सूचित किया । यहाँ कथा का प्रतीक मात्र कहते हैं । रघुवंस लीन्ह अवतारा : बालकाण्ड का प्रतीक है । पिता वचन तजि राज उदासी : अयोध्याकाण्ड का प्रतीक है । दण्डक वन विचरत : अरण्यकाण्ड का प्रतीक है । पिता वचन तजि राज उदासी से धर्म संस्थापन कहा । दंडक वन विचरहि अविनासी से दुष्कृतों का विनाश कहा । अविनाशी हैं : इसीलिए दण्डक वन में विचरते हैं । नहीं तो शापित दण्डक वन राक्षसों से भरा था । उसमें प्रवेश उनके नाश के लिए ही किया ।

दो. हृदय बिचारत जात हर, केहि विधि दरसनु होइ ।
गुप्त रूप अवतरेउ प्रभु, गएँ जान सबु कोइ ।।४८।।
संकर उर अति छोभु, सती न जानहिं मरमु सोइ ।
तुलसी दरसन लोभु, मन डरु लोचन लालची ।।४८।। क

अर्थ : महादेवजी अपने मन में विचारते जाते थे कि किस भाँति दर्शन हो : प्रभु गुप्त रूप से अवतीर्ण हुए हैं। जाने से सब कोई जान जायँगे।

महादेवजी के मन में बड़ा क्षोभ था : सती इस भेद को जानती न थी। तुलसीदासजी कहते हैं कि मन में तो डर है और आँखें दर्शन की लालची हैं।

व्याख्या : महादेवजी विचार कर रहे हैं कि मैं जा नहीं सकता। मेरे जाने से बात खुल जायगी। सब लोग जान जायँगे कि यह अवतार हैं। सरकार गुप्त रूप से प्रकट हुए हैं। यह जनाना नहीं चाहते कि मैं अवतार हूँ। इसीलिए रावणवध तक ऐश्वर्य गुप्त रक्खेंगे। तब दर्शन की कौन विधि है? मैं उनके पास जा नहीं सकता और बिना गये दर्शन कैसे हो?

जाने से स्वामी की इच्छा की प्रतिकूलता का डर था और न जाने से दर्शन कैसे होगा? सो दर्शन का लालच बढ़ा हुआ था। मन की विभिन्न गति हो रही थी। इसीलिए 'क्षोभ' कहते हैं। सतीजी ने यदि मन लगाकर कथा सुनी होती तो कुछ मर्म समझतीं। उन्होंने मन दिया ही नहीं। अतः इस मर्म से अनभिज्ञ थीं।

रावन मरनु मनुज कर जाँचा। प्रभु बिधि बचनु कीन्ह चह साँचा॥
जौं नहि जाउँ रहै पछतावा। करत बिचारु न बनत बनावा॥१॥

अर्थ : रावण ने अपनी मौत मनुष्य के हाथ माँगी है। प्रभु ब्रह्मदेव की बात सच्ची करना चाहते हैं। यदि नहीं जाता हूँ तो जी में पछतावा रहेगा। विचार करते थे पर कोई बात ठीक बैठती नहीं थी।

व्याख्या : मनुष्यशक्ति की इयत्ता को रावण जानता था। ऐसा मनुष्य उत्पन्न करना जो रावण को मार सके ब्रह्मदेव की शक्ति के बाहर की बात थी। उसने अपनी समझ में मनुष्य के हाथ अपना वध माँगकर ब्रह्मदेव के वचन को मिथ्या करना चाहा था। यथा : नर के कर आपन बध बाँची। हँसेउ जानि बिधिगिरा असाँची। पर प्रभु अपने भक्त : ब्रह्मदेव की वाणी सच्ची करना चाहते थे। इसीलिए नरावतार धारण किया। इस समय ध्वज, कुलिश, अङ्कुश और कञ्जादि चिह्नों से युक्त चरणों से वन के काँटों में घूम रहे हैं। यथा : ध्वज कुलिस अंकुस कंजजुत बन फिरत कंटक किन लहे। ऐसी भक्तानुग्रहकारिणी अवस्था यदि भक्तवत्सल प्रभु की अवस्था की झाँकी का दर्शन न किया तो पछतावा रह जायगा। इसी बात को मन में बैठाते थे पर कोई युक्ति ठीक नहीं बैठती थी।

एहि बिधि भए सोच बस ईसा। तेहीं समय जाइ दससीसा॥
लीन्ह नीच मारीचहि संगा। भयउ तुरत सोइ कपट कुरंगा॥२॥

अर्थ : इस प्रकार महादेवजी सोचवश हुए। उसी समय नीच रावण ने जाकर नीच मारीच को साथ में लिया। वह तुरत कपट का मृग हो गया।

व्याख्या : तेहीं समय का अन्वय यथार्थ में 'खोजत बिपिन फिरत' के साथ है। पर बीच के बिना कहे अर्थ न लगता। इसीलिए यहाँ पर 'तेहीं समय लिख दिया। इस भाँति महादेवजो सोच के वश हुए। अब 'राम सदा सेवक रुचि राखी'

इस बात को दिखाते हुए कहते हैं, दशशीश ने सीताहरण विचारा। दशशीश कहने से उसकी निर्भयता दिखलायी। यथा : है काके द्वै सीस ईसके जो हठि जन की सीम चरै। दशशीश भी नीच है, मारीच भी नीच है। दशशीश की नीचता। यथा : तब सो गयउ जहाँ मारीचा। नाई माथ स्वारथ रत नीचा। मारीच की नीचता। यथा : लछिमन कर प्रथमहिं लै नामा। पाछे सुमिरेसि मन महुँ रामा। मारीच कपट मृग बना। रावण ने सीता हरण किया।

करि छल मूढ़ हरी वैदेही। प्रभु प्रभाउ तस विदित न तेही ॥
मृग[1] बधि बंधु सहित हरि आए। आश्रमु देखि नयन जलु छाए ॥३॥

अर्थ : उस मूढ ने छल करके वैदेही का हरण किया। प्रभु का प्रभाव जैसा था वैसा उसने न जाना। हिरन को मारकर भाई सहित हरि लौटे। आश्रम को देखकर[2] आँखों में आँसू आगये।

व्याख्या : वैदेही बदल गई। माया की सीता हरण करके चला : इसलिए रावण को मूढ़ कहा। अथवा निशिचर की कालरात्रि को इतने परिश्रम से हरण करके ले जाकर लङ्का में स्थापित करने चला : इसलिए मूढ कहते हैं। उसको प्रभु का प्रभाव यथार्थ रूप से नहीं मालूम था। उसका चित्त सन्देह में था। यथा : सुररंजन भंजन महि भारा। जौ भगवंत लीन्ह अवतारा। तउ मैं जाइ वयर हठि करऊँ। प्रभु सर प्रान तजे भव तरऊँ। जौ नर रूप भूपसुत कोऊ। हरिहौं नारि जीति रन दोऊ। जब बल से जीतने का साहस नहीं हुआ तब मायापति को माया से जीतना चाहा।

मृगवध करके आ रहे हैं इसलिए 'हरि' कहना ही उपयुक्त है। आश्रम देखि जानकी हीना। भए विकल जस प्राकृत दीना। व्रजन्ति मूढधियः पराभवं भवन्ति मायाविषु ये न मायिनः। मायावी के साथ जो माया नहीं करता वह मूढ़ पराभव को प्राप्त होता है। अतः प्राकृत दीन की भाँति विकल होना : यह रामजी की माया है। माया की जानकी को ही वह असली जानकी समझता है। वह सीता हरण करने में स्वयं ठगा गया। इस बात का उसे भान नहीं था।

विरह विकल नर इव रघुराई। खोजत विपिन फिरत दोउ भाई ॥
कबहूँ जोग वियोग न जाकें। देखा प्रगट विरह दुखु ताकें ॥४॥

अर्थ : रघुराई मनुष्यों की भाँति व्याकुल हैं। दोनों भाई वन में सीता को

---

१. समासोक्ति।

२. आश्रम निरखि भूले द्रुमन फले न फूले, अलि खग मृग मानो कबहुँ न हे।
मुनि न मुनि वधूटी उजरी परन कुटी पंचवटी पहिचानि ठाढ़ेई रहे।
उठी न सलिल लिए प्रेम मुदित हिये, प्रिया न पुलकि प्रिय बचन कहे।
पल्लवसालन हेरी प्रानवल्लभा न टेरी विरह विथकि लखिलखन गहे। गो.

ढूँढ़ते हुए फिरने लगे। जिन्हें कभी संयोग वियोग नहीं होता उन्हें प्रत्यक्ष विरह के दुःख में देखा।

व्याख्या : अद्वितीय को योग वियोग कहाँ ? योग वियोग तो जीव को होता है। इसी को भ्रम का फंद कहा गया है। यथा : जोग वियोग भोग भल मंदा। हित अनहित मध्यम भ्रम फंदा। रामजी को प्रत्यक्ष विरह के दुःख में देखना माया है। माया अघटित घटना पटीयसी है। जो बात तीन काल में नहीं है : उसे प्रत्यक्ष करके दिखला दिया। जस काछिय तस चाहिय नाचा। सो ठीक मनुष्य का अनुकरण करके नर की भाँति रामजी विकल दिखाई पड़ रहे हैं और तमाम जंगल दोनों भाई ढूँढ़ रहे हैं।

दो. अति विचित्र रघुपति चरित, जानहिं परम सुजान।
जे मतिमंद विमोह बस, हृदय धरहिं कछु आन ॥८९॥

अर्थ : रघुपति का चरित्र बड़ा ही विचित्र है। इसे परम सुजान ही जानते हैं। जो मतिमन्द हैं वे विमोह बस मन में कुछ और बात समझते हैं।

व्याख्या : ब्रह्म का कौसलपुर भूप होना ही विचित्र बात है। यथा : कहहुँ विचित्र कथा विस्तारी। जेहि कारन अज अगुन अनूपा। ब्रह्म भयउ कोसलपुर भूपा। और उनका विरह-विकल होना तो अति विचित्र है। परम सुजान से अति उच्च अधिकारी कहा। परम सुजान शम्भु हैं। उन्हें देखकर अति हर्ष हुआ। आगे कहेंगे : उपजा हिअ अति हर्ष विसेखा। जो मतिमन्द हैं वे उन्हें सीधे मनुष्य समझेंगे। यथा : उमा राम गुन गूढ, पंडित मुनि पावहिं विरति। पावहिं मोह विमूढ़, जे हरि विमुख न धर्म रति। यथा अनेक वेष धरि नृत्य करै नट कोई। सोइ सोइ भाव दिखावै, आपुन होइ न सोइ। अस रघुपति लीला उरगारी। दनुज विमोहन जन सुखकारी।

संभु समय तेहि रामहिं देखा। उपजा हिअ अति हरषु विसेखा॥
भरि लोचन छविसिंधु निहारी। कुसमउ जानि न कीन्ह चिन्हारी ॥१॥

अर्थ : शिवजी ने उस समय रामजी को देखा तो उनके मन में अति विशेष हर्ष हुआ। छवि के समुद्र को शिवजी ने आँख भर देखा पर अवसर ठीक न समझकर जान पहचान नहीं की।

व्याख्या : विचार करते थे दर्शन के लिए पर बात बैठती नहीं थी। एकाएक दर्शन हो गया। देखा कि विरह-विकल सीता को खोज रहे हैं। प्रेमास्पद को दुःखी देखकर दुःखी होना चाहिए सो न हुआ। परम सुजान हैं। जानते हैं कि 'राम सहज-आनन्द-निधान' हैं। बात बन गई। दर्शन हो गया। इसलिए हर्ष और अद्भुत भाव प्रदर्शन देखकर अति विशेष हर्ष हुआ। सो शम्भु राम को देख रहे हैं। रामजी नहीं देखते हैं। अतः दर्शन का सुअवसर है।

जे हर हिय नयनन्हि कबहुँ निरखे नाहिं अघाय। सो अघायकर देखने का अवसर मिला। अन्य समय में वसन विभूषण से अङ्ग ढके रहते थे। पूरा सौन्दर्य देखने को नहीं मिलता था। इस समय वस्त्राभूषण से अनावृत शोभा देखने को

मिली। यथा : कागर कीर विभूषन चीर सरीर लस्यौ तजि नीर ज्यौं काई। प्रभु शोभा के सिन्धु हैं। नित्य शोभा की नई लहरें उठा करती हैं। सदा अपूर्व शोभा है। दर्शन तो कर लिया पर सामना न किया। ऐश्वर्य छिपाने का अभिनय हो रहा है। इस समय कुसमय है। सामना करना ठीक नहीं। जब रावण वध से ऐश्वर्य प्रकट हो जायगा उस समय सुअवसर होगा। यथा : देखि सुअवसर प्रभु पहँ आये संभु सुजान।

जय सच्चिदानंद जगपावन। अस कहि चले मनोजनसावन॥
चले जात सिव सती समेता। पुनि पुनि पुलकत कृपा निकेता॥२॥

अर्थ : जगत् के पवित्र करनेवाले सच्चिदानन्द की जय हो। ऐसा कहकर कामदेव के मारनेवाले कृपानिधान शिवजी चले। बार बार आनन्द से पुलकित होते हुए सती के साथ चले जाते थे।

व्याख्या : सच्चिदानन्द से ब्रह्म कहा। जगपावन से अवतार कहा। यथा : चरित पवित्र किये संसारा। 'जय' शब्द से अपनी प्रणति सूचित की। मनोजनसावन शिवजी हैं। यथा : तुम्हरे जान काम अब जारा। अब लगि संभु रहे सविकारा। हमरे जान सदा सिव जोगी। अज अनवद्य अकाम अभोगी। इनका प्रणाम विरही के लिए नहीं हो सकता। यही सती के संशय का बीज है। 'चले' कहने से पता चलता है कि दर्शन के समय ठहर गये थे।

कृपानिकेत हैं। दक्षकुमारी का मन नहीं लगा। इसलिए भवन चले थे। यहाँ भी थोड़ा ही ठहरे। पर स्वामी के स्मरण से बार बार सात्त्विक भाव हो रहा है। त्रैलोक्यसुन्दरी सती साथ रहती हुई भी विस्मृत हो रही हैं।

सतीं[1] सो दसा संभु कै देखी। उर उपजा संदेहु बिसेखी॥
संकर जगतबंद्य जगदीसा। सुर नर मुनि सब नावत सीसा॥३॥

अर्थ : सती ने महादेवजी की वह दशा देखी। उनके मन में विशेष सन्देह हुआ कि सारा जगत् तो शिवजी की वन्दना करता है। वे सारे जगत् के स्वामी हैं। इनको देवता, मनुष्य, मुनि सब सिर नवाते हैं।

व्याख्या : सती ने ऐसी दशा शम्भु की देखी नहीं थी। प्रकट रूप से शिवजी से सन्देह का प्रकाश न किया पर हृदय में सन्देह विशेष उपजा। शिवजी के आनन्द-विशेष से सती जी को सन्देहविशेष हुआ। जगत् के वन्द्य ने किसको वन्दना की? जगदीश ने किसको ईश माना? जिसको सुर नर मुनि सिर नवाते हैं उसने किसे सिर नवाया? ऐसे को तो शङ्कर से भी बड़ा होना चाहिए।

तिन्ह नृपसुतहि कीन्ह परनामा। कहि सच्चिदानंद परधामा॥
भए मगन छबि तासु बिलोकी। अजहुँ प्रीति उर रहति न रोकी॥४॥

---

१. जिस भाँति आज कल भूतकालिक सकर्मक क्रिया के कर्ता के पीछे 'ने' जोड़ते हैं वैसे ही पहिले अनुस्वार जोड़ते थे।

अर्थ : उन्होंने राजपुत्र को सच्चिदानन्द परधाम कहकर प्रणाम किया। उसकी छवि देखकर ऐसे मग्न हुए कि अब तक हृदय में प्रीति रोकने से नहीं रुक रही है।

व्याख्या : सती हैं, जिसकी छवि देखकर शिवजी मग्न हैं। उसकी छवि को किसी गिनती में नहीं ला रही हैं न उसकी महत्ता को गिन रही हैं। संशय को और स्पष्ट करते हुए कहती हैं कि केवल शीश ही नहीं नवाया : सच्चिदानन्द परधाम भी कहा। जगपावन और परधाम एक ही बात है। जो परधाम है वही जग को पवित्र कर सकता है। इसी भाँति मनुष्य को ब्रह्मलक्षण से स्तुति की।

अपरोक्ष में वन्दना और स्तुति की और उनके परोक्ष में ध्यान कर रहे हैं। प्रेम का प्रवाह उमड़ पड़ा है। उसके रोकने से बार बार सात्त्विक भाव हो रहा है।

दो. ब्रह्म जो व्यापक बिरज अज, अकल अनीह अभेद।
सो कि देह धरि होइ नर, जाहि न जानत बेद ॥५०॥

अर्थ : जो ब्रह्म सबमें व्याप्त मायारहित अजन्मा कलाहीन इच्छा और भेद रहित है और जिसे वेद नहीं जानते वह देह धारण करके क्या मनुष्य हो सकता है ?

व्याख्या : ब्रह्म व्यापक मायारहित अज अकल अनीह अभेद और अज्ञेय है। वह यदि शरीरधारी हो तो परिच्छिन्न मायावश जन्ममरणशील कलायुक्त सचेष्ट भेद-भिन्न और ज्ञेय हो जायगा। अर्थात् ब्रह्म ही न रह जायगा। जीवकोटि में आ पड़ेगा। यदि तुष्यतु दुर्जनन्यायेन मान भी लें कि वह शरीर धारण करता है तो उत्तम शरीर धारण न करके मरणशील मनुष्य का देह क्यों धारण करेगा ? भूलना नहीं चाहिए कि सम्पूर्ण ग्रन्थ इसी शङ्का के उत्तर में कहा गया है।

बिस्नु जो सुर हित नरतनु धारी। सोउ सर्बग्य यथा त्रिपुरारी ॥
खोजै सो कि अग्य इव नारी। ग्यानधाम श्रीपति असुरारी ॥१॥

अर्थ : विष्णु ने यदि देवताओं के लिए मनुष्य शरीर धारण किया है तो वे भी शिवजी के समान सर्वज्ञ हैं। वे ज्ञानधाम, श्रीपति, असुरारि क्या अज्ञानियों की भाँति स्त्री खोजेंगे ?

व्याख्या : विष्णु बराबर के हैं शिवजी को प्रिय भी हैं। वे मत्स्यकूर्मादि अवतार भी धारण करते हैं। उनके प्रति प्रणामादिक बन सकता है। परन्तु वे भी तो उसी भाँति सर्वज्ञ हैं जैसे त्रिपुरारि सर्वज्ञ हैं। वे ज्ञानधाम हैं। अज्ञ कैसे हो जायँगे ? वे श्रीपति हैं। मानुषी को क्यों खोजेंगे। वे असुरारि हैं। उनके निकट असुर स्त्रीहरण करने कैसे आवेगा ? अतः यह राजपुत्र विष्णु भी नहीं हैं।

संभुगिरा पुनि मृषा न होई। सिव सर्बग्य जान सबु कोई ॥
अस संसय मन भयउ अपारा। होइ न हृदय प्रबोध प्रचारा ॥२॥

अर्थ : फिर शङ्कर भगवान् की वाणी भी झूठी नहीं हो सकती। सब कोई जानते हैं कि शिवजी सर्वज्ञ हैं। ऐसा अपार संशय मन में हुआ। किसी भाँति ज्ञान का प्रसार नहीं होता था।

व्याख्या : उभय कोटि अवलम्बी ज्ञान को संशय कहते हैं। एक कोटि ऊपर कह चुके कि विचार करने से न तो ब्रह्म ठहरते हैं, न विष्णु ठहरते हैं। परन्तु दूसरी कोटि यह है कि जगत् विख्यात सर्वज्ञ की बाणी झूठी कैसे हो सकती है। यथा : वचन अन्यथा होइ न मोरा। इस व्यवस्था में मन कहीं ठहरता नहीं। अतः संशय का पार नहीं मिल रहा है। पहिले 'संदेह विशेष' कहा था अब 'अपार संशय' कह रहे हैं। अर्थात् संशय वृद्धिक्रम पर है।

जद्यपि प्रगट न कहेउँ भवानी। हर अंतरजामी सब जानी ॥
सुनहि सती तव नारि सुभाऊ। संसय अस न धरिय उर काऊ ॥३॥

अर्थ : यद्यपि भवानी ने प्रगट नहीं कहा। पर अन्तर्यामी हर ने सब जान लिया। कहा कि सती ! सुनो तुम्हारा स्वभाव स्त्री का है। ऐसा सन्देह मन में कभी नहीं लाना चाहिए। जहाँ 'तन काऊ' पाठ है वहाँ यह अर्थ करना चाहिए कि ऐसा तनिक भी संशय मन में नहीं धारण करना चाहिए।

व्याख्या : मन में तो सोचती ही थी, प्रकट न कहा। डर था कि अप्रसन्न हो जायेंगे कि मुझ पर इसे विश्वास नहीं है। जिसे मैं प्रणम्य समझता हूँ उसपर जीव होने का संशय करती है। पर हर अन्तर्यामी हैं, सब जान गये। समझा कि पूछने पर कहने से सामान्य बात हो जायगी। बिना पूछे कहेंगे तो विश्वास होगा कि जो मन की बात जान लेता है उसका कहना अन्यथा नहीं हो सकता और संशय जाता रहेगा।

'नापृष्टः कस्यचिद् ब्रूयात्' यह नियम ऐसे अवसर के लिए नहीं। ऐसे संशय का इनके हृदय में क्षण भर के लिए होना भी इन्हें अपने पद से गिरा सकता है। उस महाप्रभु के पररूप के देखने में देवता भी असमर्थ हैं। जब वह कृपासिन्धु लोकमङ्गल के लिए शरीर धारण करते हैं तभी उनके पूजने का मार्ग निरर्गल होता है। तो उनके अवतीर्ण होने पर संशय करना तो उस कृपाधारा से अपने को वञ्चित करना है जो लोकमङ्गल के लिए पृथ्वी पर बह रही है। 'यस्यावताररूपाणि समर्चन्ति दिवौकसः। अपश्यन्तः परं रूपं नमस्तस्मै महात्मने। वि० पु०। अतः बिना पूछे भी कहते हैं। 'नारिस्वभाव' से भाव यह कि तुममें जड़ता है। यथा : राजकुमारि विनय हम करहीं। तिय सुभाव कछु पूछत डरहीं। विचार होता तो संशय उत्पन्न होते ही तुमको उसके निरसन का यत्न करना चाहिए था। सो मन में छिपाये बैठी हो। संशय छोड़ने से छूटता है, उसके बनाये रखने का प्रयत्न न होना चाहिए।

जासु कथा कुंभज रिषि गाई। भगति जासु मैं मुनिहि सुनाई ॥
सोइ मम इष्टदेव रघुबीरा। सेवत जाहि सदा मुनि धीरा ॥४॥

अर्थ : जिनकी कथा का गान कुम्भज ऋषि ने किया और जिनकी भक्ति

मैंने मुनिजी को सुनाई वही रघुवीर मेरे इष्टदेव हैं जिनकी सेवा धीर मुनि सदा किया करते हैं।

व्याख्या : संकर जगत वंद्य जगदोसा। सुर नर मुनि सब नावति सीसा। का उत्तर देते हैं कि अभी-अभी उनकी कथा साक्षात् अगस्त्य जी ने गान की है और जिनकी भक्ति मैंने मुनिजी को सुनाई। यथा : रामकथा 'मुनिवर्ज बखानी। सुनी महेस परम सुख मानी। रिषि पूछी हरि भगति सोहाई। कही संभु अधिकारी पाई। अतः उनके माहात्म्य से तुम परिचित हो। उनका दर्शन भी आज हो गया। उन्हें स्त्रीविरही न मानो। वे ही मेरे इष्टदेव हैं। राजपुत्र नहीं हैं। धीर मुनि उनकी सेवा करते हैं।

छं. मुनि धीर जोगी सिद्ध संतत विमल मन जेहि ध्यावहीं।
कहि नेति निगम पुरान आगम जासु कीरति गावहीं॥
सोइ रामु व्यापक ब्रह्म भुवन निकाय पति मायाधनी।
अवतरेउ अपने भगत हित निजतंत्र नित रघुकुलमनी॥

अर्थ : मुनि, धीर, योगी और सिद्ध निरन्तर शुद्ध चित्त से जिनका ध्यान करते हैं। वेद पुराण और शास्त्र नेति-नेति कहकर जिनकी कीर्ति का गान करते हैं। उन्हीं ब्रह्म व्यापक भुवनसमूह के पति, माया के स्वामी रामजी ने अपने भक्तों के लिए अवतार लिया है। क्योंकि रघुकुलमणि नित्य स्वतन्त्र हैं।

व्याख्या : भये मगन छवि तासु विलोकी। अजहुँ प्रीति उर रहत न रोकी। के उत्तर में शिवजी कहते हैं : चारों मार्गवाले इन्हींका ध्यान करते हैं। १. मुनि से ज्ञानमार्गी कहा। २. धीर से उपासनामार्गी कहा। यथा : अस विचारि पंडित मोहि भजहीं। ३. योगी से योगमार्गी कहा। ४. सिद्ध से कर्ममार्गी कहा। 'ब्रह्म जो व्यापक' के उत्तर में कहते हैं : सोइ राम व्यापक ब्रह्म और विरज अज अकल अनीह अभेद के उत्तर में कहते हैं : भुवन निकाय पति मायाधनी तथा जाहि न जानत वेद के उत्तर में कहते हैं : कहि नेति निगम पुरान आगम जासु कीरति गावहीं। यथा : वेदे रामायणे चैव हरिः सर्वत्र गीयते। अब 'सो कि देह धरि होइ नर' के उत्तर में कहते हैं 'अवतरेउ अपने भगतहित निज तंत्र नित रघुकुल मनी।

यह अट्ठाइस दल का कमल है। हरिगीतिका छन्द है। इस छन्द का वर्णन पहिले हो चुका है।

सो. लाग न उर उपदेसु, जदपि कहेउ सिव बार बहु।
बोले बिहँसि महेसु, हरि माया बलु जानि जिय॥५१॥

अर्थ : यद्यपि शिवजी ने अनेक बार कहा तो भी सती जी के हृदय में उपदेश न लगा। महेश मन में हरिमाया का बल जानकर हँसकर बोले।

व्याख्या : शिवजी के वचन भ्रमतम के लिए सूर्य की किरणें हैं। सो हृदय में काम नहीं कर रहा है। बार बार प्रकाश डाल रहे हैं। भ्रमतम नहीं मिट रहा है।

समझ लिया कि इनके हृदय में हरिमाया काम कर रही है। तभी हमारे उपदेश का बल नहीं चल रहा है। हरिमाया के बल को पहचान लिया इसलिए हँसे। संशय[1] किसी तरह हटना ही चाहिए। अतः बोले :

जौ तुम्हरें मन अति संदेहू। तौ किन जाइ परीछा लेहू ॥
तब लगि बैठ अहौं बट छाहीं। जब लगि तुम ऐहहु मोहि पाहीं ॥१॥

अर्थ : यदि तुम्हारे मन में अति सन्देह है तो तुम जाकर परीक्षा क्यों नहीं लेती? जब तक तुम मेरे पास आओ तब तक मैं इसी बरगद की छाया में बैठा हूँ।

व्याख्या : मेरे कहने पर भी यदि तुम्हारा सन्देह न जाता हो अति सन्देह हो तब तो दूसरा उपाय नहीं है। जाकर परीक्षा ले लो कि मेरे कहे हुए लक्षण रामजी में घटते हैं या नहीं। अति सन्देह बिना परीक्षा के जाता नहीं। सन्देह मिटाना ही चाहिए। परीक्षा लेने में मैं सहायक नहीं होऊँगा। तुम जाओ परीक्षा लो। मैं वट की छाया में बैठकर तुम्हारी प्रतीक्षा करूँगा। परीक्षा लेकर यहीं चली आना। जल्दी न करना। विचारकर काम करना। तुम्हारे लौटने तक यहीं ठहरा रहूँगा।

जैसें जाइ मोह भ्रम भारी। करेहु सो जतनु बिबेक बिचारी ॥
चलीं सती सिव आयसु पाई। करहिं बिचारु करौं का भाई ॥२॥

अर्थ : जिस प्रकार तुम्हारा यह भारी मोह भ्रम दूर हो वही यत्न विवेक से विचारकर करना। शिवजी की आज्ञा पाकर सती चलीं और मन में सोचने लगीं कि 'भाई! क्या करूँ।'

व्याख्या : तुम्हें मोहान्धकार में भारी भ्रम हो गया है। उसे मिटाने के लिए परीक्षा करना। परन्तु मोहाविष्ट होने से परीक्षा लेने में अविवेक न हो जाय। बड़े की परीक्षा लेनी है। सो परीक्षा की ओर मत जाना। अपने भारी मोह भ्रम को मिटाने का यत्न करना

परीक्षा लेने की तो इच्छा थी ही। पर सती हैं बिना स्वामी की आज्ञा कैसे लें। सो आज्ञा पाते ही चल पड़ी। अब विचार करने लगीं कि क्या करूँ। 'भाई' सम्बोधन मन के लिए है। यथा : तरुपल्लव महँ रहा लुकाई। करै विचार करौं का भाई।

इहाँ संभु अस मन अनुमाना। दच्छ सुता कहुँ नहिं कल्याना ॥
मोरेहु कहें न संसय जाहीं। बिधि बिपरीत भलाई नाहीं ॥३॥

अर्थ : यहाँ शिवजी ने मन में यह अनुमान किया कि दक्ष की बेटी का कल्याण

---

१. जिन भक्तों पर अनुग्रह करके भगवान् ने नर शरीर धारण किया वे ही यदि उनकी अवज्ञा करें तो इससे बढ़कर कृतघ्नता और क्या होगी। फिर भी शिवजी को परीक्षा के लिए सती को भेजना मंजूर है। पर उनके हृदय में एक क्षण के लिए ऐसा संशय रहने देना मंजूर नहीं है।

नहीं है। मेरे समझाने से भी सन्देह नहीं दूर होता। तो विधि विपरीत हैं। भलाई नहीं है।

व्याख्या : कथा में यह देखना आवश्यक होता है कि[1] ग्रन्थकार कहाँ हैं? बात स्पष्ट है कि ग्रन्थकार सती के साथ नहीं गये। महादेव जी के साथ रह गये। इसलिए कहते हैं कि यहाँ शङ्करजी ने मन में अनुमान किया कि जिसका मेरे उपदेश पर भी संशय नहीं जाता उसका कल्याण नहीं होता। दक्षसुता का भी मेरे कहने पर संशय नहीं जाता। अतः दक्षसुता का कल्याण नहीं। मेरे उपदेश से संशय जाने की विधि है। जिस भाँति सूर्य की किरणों से अन्धकार के हटने की विधि है। मेरे कहने पर संशय का न जाना और सूर्य के किरण पड़ने पर भी अन्धकार का न हटना एक बात है। इसलिए यह बात विधि विपरीत है। अतः निश्चय भलाई होनेवाली नहीं है। अथवा ब्रह्मा बाएँ हो गये हैं। तभी हमारे कहने पर भी संशय नहीं जाता। नहीं तो हमारे संकल्प से संशय चला जाता है। यथा : चित्रं बटतरोर्मूले वृद्धाः शिष्या गुरुर्युवा। गुरोर्मौनेन व्याख्यानं शिष्याः संक्षीणसंशयाः। वट के पेड़ के नीचे विचित्र बात है कि शिष्य तो बूढ़े-बूढ़े हैं और गुरु जी युवा हैं। गुरुजी मौन होकर व्याख्यान दे रहे हैं और शिष्यों के सब संशय दूर हो जाते हैं। अतः 'भलाई नाहीं।'

होइहि सोइ जो राम रचि राखा। को करि तर्क बढ़ावै साखा॥
अस कहि लगे जपन हरि नामा। गई सती जहँ प्रभु सुखधामा॥४॥

अर्थ : जो कुछ रामजी ने रच रक्खा है वही होगा। तर्क करके शाखा कौन बढ़ावे। ऐसा कहकर हरिनाम जप करने लगे। और सती वहाँ गईं जहाँ सुख के धाम प्रभु थे।

व्याख्या : पहिले सूक्ष्म जगत् में जो मानचित्र रामजी बना देते हैं वैसा ही इस जगत् में स्थूल रूप से होता है। उसे अन्यथा कोई नहीं कर सकता। अतः पुरुषार्थ परमार्थ सुधारने में करना चाहिए। यथा : मयैवैते निहताः पूर्वमेव निमित्तमात्रं भव सव्यसाचिन्। भगवान् अर्जुन से कहते हैं कि इन कौरवों को मैं पहिले ही मार चुका हूँ। हे अर्जुन तू निमित्तमात्र हो जा। तर्क करने से, उसमें शाखा पर शाखा निकलती ही जाती है। इसलिए कहा है कि तर्कोऽप्रतिष्ठः। तर्क की कोई प्रतिष्ठा नहीं। अतः सती जाकर क्या क्या करेगी और उसका क्या क्या फल होगा : यह सोचना व्यर्थ है। सोच से कोई उपकार नहीं होता। ऐसा कहकर 'हरि नाम' का जप करने लगे। क्योंकि यही श्रेष्ठ पुरुषार्थ है। यथा : उमा राम सुभाव जेहि जाना। ताहि भजन तजि भाव न आना। चली सती सिव आयसु पाई से प्रसङ्ग छोड़ा था। अब फिर वहीं से उठाते हैं; गई सती जहँ प्रभु सुख धामा। प्रभु और सुखधाम कहकर सती का

---

१. ग्रन्थकार सदा भगवान् के साथ रहते हैं और यदि भक्त और भगवान् दोनों की कथा आ पड़े तो अपने समाज के साथ अर्थात् भक्त के साथ रहते हैं। अतः सम्पूर्ण ग्रन्थ में 'इहाँ' और 'उहाँ' का प्रयोग ध्यान देने योग्य है।

भ्रम दिखलाया। जिसे उन्होंने स्त्रीविरह में दुःखी समझ रक्खा है वह सुखधाम हैं। यथा : सो सुखधाम राम अस नामा। जिसे 'नृपसुत' समझ रक्खा है वह प्रभु हैं।

दो. पुनि पुनि हृदय बिचार करि, धरि सीताकर रूप ॥
आगे होइ चलि पंथ तेहिं, जेहिं आवत नरभूप ॥५२॥

अर्थ : बार बार मन में विचार करके और सीता का रूप धारण करके उस मार्ग में आगे होकर चलीं। जिस मार्ग से मनुष्यों के राजा आ रहे थे।

व्याख्या : जहाँ से चलीं वहीं से विचार प्रारम्भ हुआ। यथा : करौं का भाई। रास्ते भर विचार करती रहीं। स्वामी का आदेश है अतः बार बार विचार करके बात ठीक कर ली कि सच्ची परीक्षा तो तभी होगी जब मैं सीता का रूप धरूँ। यदि मनुष्य होंगे तो मेरी माया का पार न पा सकेंगे। अतः सीता का रूप धारण करके जिधर से रामजी आते रहे उधर ही चलीं। मानो सीता वन में भूलती भटकती चली आ रही हैं। अभी रामजी आश्रम से बहुत दूर नहीं हैं। खोजना प्रारम्भ हुआ है। अतः सीता के धोखे में आ जावेंगे। देखते ही खिल उठेंगे। तब मैं अन्तर्धान हो जाऊँगी। इस भाँति परीक्षा भी हो जायगी और उनकी कोई हानि भी न होगी।

लछिमन दीख उमा कृत बेषा। चकित भये भ्रम हृदयँ बिसेषा ॥
कहि न सकत कछु अति गंभीरा। प्रभु प्रभाउ जानत मति धीरा ॥१॥

अर्थ : उमा के बनावटी रूप को लक्ष्मणजी ने देखा। चकित हो उठे। हृदय में विशेष भ्रम हुआ। अति गम्भीर थे। कुछ कह नहीं सकते थे। वे मतिधीर प्रभु का प्रभाव जानते थे।

व्याख्या : उमा कहने का भाव यह कि यह तो शिवजी की शक्ति हैं। ओर्मा उमा। उ जो शिव उनकी लक्ष्मी हैं। लक्ष्मणजी चकित हैं कि यह तो शिवजी की शक्ति हैं। इन्होंने जानकी जी का वेष क्यों बनाया है? विशेष भ्रम हो रहा है कि मेरे समझने में कुछ चूक तो नहीं हो रही है। या कोई ऐसी माया हो रही है जो मैं समझ नहीं रहा हूँ।

श्रीराम जी के प्रभाव को मतिधीर लक्ष्मणजी जानते हैं कि इनसे कोइ बात छिप नहीं सकती। ये स्वयं जैसा उचित समझेंगे करेंगे। मेरे कुछ भी कहने का मतलब यह होगा कि मुझे सरकार की सर्वज्ञता में सन्देह है। अतः कुछ नहीं कह सकते। गम्भीर भाव से स्थित हैं।

सती कपटु जानेउ सुर स्वामी। सबदरसी सबअंतरजामी ॥
सुमिरत जाहि मिटै अग्याना। सोइ सरबग्य रामु भगवाना ॥२॥

अर्थ : सती के कपट को सुरस्वामी जान गये। क्योंकि सब कुछ देखनेवाले और सबके हृदय के प्रेरक हैं। जिनके स्मरण से अज्ञान मिट जाता है वही सर्वज्ञ भगवान् रामजी हैं।

व्याख्या : सती साक्षात् माया है। यथा : तुम्ह माया भगवान् सिव सकल

जगत् पितु मातु। इनके कपट को ब्रह्मादि नहीं जान सकते। परन्तु देवताओं के स्वामी रामजी जान गये कि सीता के वेष में सती हैं। वे सबदर्शी हैं। सब देख रहे हैं कि महादेव जी बरगद तले बैठे हैं और वहीं से ये आई हैं। वे अन्तर्यामी हैं। भली भाँति जानते हैं कि शङ्करजी का उपदेश इनके गले नहीं उतरा। इसलिए परीक्षा लेने के लिए सीता बनकर आई हैं।

ज्ञानमार्गं तु नामतः। जिनके नाम से ज्ञानमार्ग की प्राप्ति होती है। अज्ञान का हटना और ज्ञान का होना एक बात है। वही सर्वज्ञ भगवान् रामजी नामी हैं। उत्पत्ति प्रलयञ्चैव भूतानामगतिं गतिम्। वेत्ति विद्यामविद्याञ्च स वाच्यो भगवानिति। उत्पत्ति, प्रलय, प्राणियों की गति और अगति, विद्या और अविद्या को जानता हो उसे भगवान् कहते हैं। सो सर्वज्ञ भगवान् रामजी को क्या अज्ञात रह सकता है?

सती कीन्ह चह तहहुँ दुराऊ। देखहु नारि सुभाव प्रभाऊ॥
निजमायाबलु हृदय बखानी। बोले बिहँसि राम मृदु बानी॥३॥

अर्थ : सती ने वहाँ भी छिपाव करना चाहा। स्त्री के स्वभाव का प्रभाव देखो। अपनी माया के बल की प्रशंसा मनमें करके रामजी हँसकर कोमल वाणी बोले।

व्याख्या : भगवान् सर्वज्ञ से छिपाव चाहना चपलता है। यह स्त्रीस्वभाव है : जो बात छिप नहीं सकती उसे भी छिपाती रहती हैं। कवि कहते हैं कि यह स्वभाव का प्रभाव है। स्वभावो दुरतिक्रमः।

कथा के अनादर के समय से ही माया की प्रेरणा हुई। उसी के सामने शिवजी के उपदेश का बल न चला। बात यहाँ तक बढ़ी कि अब ये भी सीता बनकर आई हैं। अतः अघटितघटनापटीयसी की हृदय से प्रशंसा की। और मृदु वाणी हँसकर बोले। सती के सीता बनने पर हँसे हैं।

जोरि[1] पानि प्रभु कीन्ह प्रनामू। पिता समेत लीन्ह निज नामू॥
कहेउ बहोरि कहाँ वृषकेतू। बिपिन अकेलि फिरहु केहि हेतू॥४॥

अर्थ : प्रभु ने हाथ जोड़कर प्रणाम किया और पिता के सहित अपना नाम लिया। फिर कहा कि वृषकेतु कहाँ हैं। आप अकेली वन में क्यों फिर रही हैं?

व्याख्या : प्रभु ने सविधि प्रणाम किया मानों बहुत दिनों का परिचय है। फिर भी सन्देह न रहे : इसलिए पिता के समेत अपना नाम लिया। दाशरथी रामोऽहं त्वामभिवादये[2]। यथा : पितु समेत कहि-कहि निज नामा। लगे करन सब दण्ड प्रनामा। पिता के समेत अपना नाम लेकर बड़े को प्रणाम करना शास्त्रसम्मत है। जहाँ 'पिता समेत लीन्ह हरि नामू' पाठ है वहाँ यह अर्थ करना चाहिए कि सती को पिता समेत नाम लेकर प्रणाम किया। यथा सति! दाक्षायनि[3]! त्वामभि-

---

१. पिहितालङ्कार है।
२. मैं दशरथ का बेटा राम हूँ तुम्हें प्रणाम करता हूँ।
३. हे दक्ष की पुत्री सती मैं तुम्हें प्रणाम करता हूँ।

वादये। इस भाँति धर्मपत्नी को प्रणाम नहीं किया। भाव यह कि आप देवी हैं, सीता नहीं हैं; मैं पहिचानता हूँ। दूसरा यह कि मैं नृपसुत हूँ। अतः आप सर्वथा प्रणम्य हैं।

देवियों में भी सती हैं। वृषकेतु को छोड़कर आयी हैं। इसलिए पूछते हैं: कहाँ वृषकेतू। परीक्षा लेने के लिए अकेली आयी हैं। इसलिए कहते हैं: बिपिन अकेलि फिरहु केहि हेतू। अकेले स्त्री को वन में घूमना निन्द्य है। अतः इसका कारण पूछा। जिस सेवा के लिए आज्ञा हो मैं प्रस्तुत हूँ। कम से कम विष्णु तो अवश्य हैं। यह प्रमाण तो सती को मिल गया।

दो. राम बचन मृदु गूढ़ सुनि, उपजा अति संकोचु।
सती सभीत महेस पहिं, चलीं हृदयँ बड़ सोचु ॥५३॥

अर्थ : रामजी के कोमल और गूढ़ वचन सुनकर अति सङ्कोच उत्पन्न हुआ और सती डरती हुई महेश के पास चलीं और हृदय में बड़ा सोच उत्पन्न हुआ।

व्याख्या : रामजी के वचन मृदु थे परन्तु गूढ़ थे। उनमें छिपा हुआ अर्थ था। हाथ जोड़कर पितृनामोच्चारण पूर्वक प्रणाम। वृषकेतु के विषय में प्रश्न। जंगल में घूमने के विषय में प्रश्न, अत्यन्त स्वाभाविक थे। फिर भी सती के लिए उसमें बड़े बड़े अर्थ भरे थे। ऐसे वचन को सुनकर सती को अति सङ्कोच हुआ। उत्तर न दे सकीं। अपने रूप में हो गयीं। मुँह फेर लिया और शङ्कर भगवान् के पास चलीं। हृदय में बड़ा सोच हुआ उसे कहती हैं।

मैं संकर कर कहा न माना। निज अग्यानु राम पर आना ॥
जाइ उतरु अब देहौं काहा। उर उपजा अति दारुन दाहा ॥१॥

अर्थ : मैंने शङ्कर जी का कहा न माना और अपने अज्ञान को रामजी पर रक्खा। अब जाकर मैं क्या उत्तर दूँगी? हृदय में बड़ा दारुण दाह : जलन : उत्पन्न हुआ।

व्याख्या : मुझसे दो-दो चूकें हुईं और दोनों असाधारण। पहिले तो यह कि मैंने शङ्कर की आज्ञा नहीं मानी। यदि मानी होती तो इस दुर्गति में न फँसती। दूसरी यह कि अज्ञान मुझे था और मैंने रामजी को अज्ञानी माना। मेरी आँख बादल से ढकी थी और मैं समझती थी कि सूर्य बादल से ढक गये।

अब तो यही उत्तर देना शेष रहा कि मेरे सीता के रूप धारण करने पर भी उन्होंने पहिचान लिया। बड़ी भारी चूक से बड़ा भारी दाह हृदय में हुआ।

जाना राम सतीं दुखु पावा। निज प्रभाउ कछु प्रगटि जनावा ॥
सतीं दीख कौतुकु मग जाता। आगें रामु सहित श्री भ्राता ॥२॥

अर्थ : रामजी ने जान लिया कि सती दुःखी हो गयीं। अतः अपना कुछ प्रभाव प्रकट करके दिखलाया। सती ने मार्ग में जाते यह कौतुक : तमाशा देखा कि रामजी सीता और लक्ष्मण के सहित आगे हैं।

व्याख्या : दुःखी को और दुःखी कैसे करें और शिवजी के वचन को सत्य करके दिखलाना भी कर्त्तव्य है। अतः पहाड़ जैसे प्रभाव में से राई भर दिखला दिया। पहिले बातचीत में ही जना दिया था। अब प्रकट रूप में दिखावेंगे। यहाँ अल्प माया दिखलाते हैं। वहाँ कौतुक शब्द का प्रयोग होता है। यथा : माया नाथ अस कौतुक करयौ। देखत परस्पर राम करि संग्राम रिपुदल लरि मरयौ। दिखलाया कि सीता का वियोग नहीं हुआ है। साथ में हैं परन्तु तापस वेष है।

फिर चितवा पाछें प्रभु देखा। सहित बंधु सिय सुंदर वेषा ॥
जहँ[1] चितवहिं तहँ प्रभु आसीना। सेवहिं सिद्ध मुनीस प्रवीना ॥३॥

अर्थ : पीछे की ओर फिरकर देखा तो भाई और सीता जी के साथ प्रभु को सुन्दर वेष में पाया। जिधर देखती हैं उधर ही रामजी विराजमान हैं और प्रवीण सिद्ध और मुनीश उनकी सेवा कर रहे हैं।

व्याख्या : पीछे देखा तो उधर भी रामजी हैं। सोचा कि मैंने तो उनको ओर से मुँह फेर लिया था। इधर कहाँ से आगये। इधर भी सीता-लक्ष्मण साथ हैं परन्तु तीनों मूर्ति नृप वेष में हैं। जिसमें यह न समझें कि जिधर मुँह फेरती हूँ उधर ही आ खड़े होते हैं। माया का वेग बढ़ा। अब जहाँ देखती हैं वहीं प्रभु विराजमान हैं। सिद्ध मुनि सेवा कर रहे हैं। सोइ मम इष्ट देव रघुवीरा। सेवत जाहि सदा मुनिधीरा। की सत्यता दिखला रहे हैं। भाव यह कि निर्गुण रूप से तो वे व्यापक हैं ही सगुण रूप से भी व्यापक हैं।

देखे सिव विधि विस्नु अनेका। अमित प्रभाउ एक ते एका ॥
वंदत चरन करन प्रभु सेवा। विविध वेष देखे सब देवा ॥४॥

अर्थ : अनेक शिव ब्रह्मा और विष्णु देखे जो एक से एक बढ़कर असीम प्रभाव वाले थे प्रभु के चरणों की वन्दना सेवा करते थे। देवताओं को अनेक वेषों में देखा।

व्याख्या : माया का वेग और बढ़ा। अब देखती हैं कि सिद्ध मुनियों के स्थान पर त्रिदेव सेवा कर रहे हैं। भाव यह कि ये विष्णु नहीं हैं। उपजहिं जासु अंस ते नाना। संभु विरंचि विष्णु भगवाना। ऐसे देव हैं। मुनि धीर योगी सिद्ध संतत विमल मन जेहि ध्यावहीं। कहि नेति निगम पुराण आगम ज़ासु कीरति गावहीं। सो राम व्यापक ब्रह्म भुवन निकाय पति मायाधनी। अवतरेंउ अपने भगत हित निज तंत्र नित रघुकुल मनी। इस शिवजी के कहे हुए वाक्य की सत्यता दिखला रहे हैं। भुसुण्डि ने लोक लोक प्रति भिन्न विधाता। भिन्न विष्णु सिव मनु, दिसि त्राता। देखा था। यहाँ लोक न दिखाकर संक्षेप में अनेक त्रिदेव दिखाया। 'मासानां मासोत्तमे मासे' को भाँति सब का प्रभाव विचित्र था इसलिए 'एक से एका' कहा।

दो. सती विधात्री इंदिरा, देखी अमित अनूप।
जेहि जेहि वेष अजादि सुर, तेहि तेहि तन अनुरूप ॥५४॥

---

१. यहाँ विशेष द्वितीय है।

अर्थ : असंख्य अनुपम सती ब्रह्माणी और लक्ष्मी देवी। जिस जिस वेष में ब्रह्मादि देवता थे उसी उसी के अनुरूप वेप में वे भी थीं।

व्याख्या : यहाँ वेष से अभिप्राय रूप भूषण और वाहन से है। यथा : यस्य देवस्य यद्रूपं यथाभूषणवाहनम्। तस्य देवस्य तच्छक्तिरसुरान् योद्धुमाययौ। दु. स. श.। जिस देवता का जैसा रूप था जैसा भूषण और वाहन था उस देवता की वैसी ही शक्ति असुरों से युद्ध करने आई।

भुसुण्डिजी ने कोटिन्ह ब्रह्मा, शिव, सूर्य, चन्द्र और उडुगन देखे थे। सती ने भी वैसा ही देखा। सब शिव मूर्तियों के साथ उन्हीं के रूप वेष और वाहनवाली सती थीं। ब्रह्मदेव के साथ वैसी ही ब्रह्माणी थीं। विष्णु मूर्तियों के साथ लक्ष्मी थीं। असंख्य होने से अमित कहा। सभी देवता विविध वेष में थे। इसीलिए उनकी शक्तियाँ भी विविध वेष में थीं। एक की उपमा दूसरे से नहीं दी जा सकती थी। माया का वेग और बढ़ा।

देखे जहँ तहँ रघुपति जेते। सक्तिन्ह सहित सकल सुर तेते॥
जीव चराचर जे संसारा। देखे सकल अनेक प्रकारा॥१॥

अर्थ : जहाँ तहाँ जितने रघुपति देखे, शक्तियों के सहित उतने ही सारे देवताओं को भी देखा। संसार में जितने चराचर जीव हैं उन सबको अनेक प्रकार का देखा।

व्याख्या : पहिले कह चुके हैं कि : जहँ देखहिं तहँ प्रभु आसीना। सेवहिं सिद्ध मुनीस प्रवीना। सो वहाँ केवल सिद्ध मुनीश ही नहीं रहे, शक्तियों के साथ सारे देवता भी वहाँ वहाँ थे। प्रत्येक ब्रह्माण्ड के ब्रह्मा विष्णु और शिव दूसरे ही दूसरे होते हैं और उन ब्रह्माण्डों के जीव भी भिन्न भिन्न आकार प्रकार के होते हैं। सो पृथक् पृथक् ब्रह्माण्ड के त्रिदेवों के साथ साथ उन उन ब्रह्माण्डों के सारे जीव भी दिखलाई पड़े।

पूजहिं प्रभुहिं देव बहु बेखा। रामरूप दूसर नहिं देखा॥
अवलोके रघुपति बहुतेरे। सीता सहित न वेष घनेरे॥२॥

अर्थ : अनेक वेष धारण किये हुए देवता लोग रामजी की पूजा कर रहे हैं परन्तु रामजी का दूसरा वेष नहीं देखा। सीता सहित रामजी भी बहुत देखे पर उनके अनेक वेष नहीं थे।

व्याख्या : वे सारे ब्रह्मादि देवता जहाँ तहाँ रामजी की पूजा कर रहे हैं। उन उन ब्रह्माण्ड के देवताओं के रूप में तो भेद है। यथा : सब प्रपंच तहँ आनहि आना। पर राममूर्तियों के रूप में भेद नहीं है क्योंकि रामजी माया से परे हैं। सब राममूर्तियों के साथ सीता जी भी हैं। कहीं सीतारहित राम हैं ही नहीं। यहाँ सीताजी अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड के प्रधान प्रधान दृश्य ही देख रही हैं। सो भी उस वर्णन के अनुसार जो शिवजी ने पहिले किया था। यथा : सोइ मम इष्ट देव रघुवीरा। सेवत जाहि सदा मुनिधीरा।

सोइ रघुबर सोइ लछिमनु सीता । देखि सती अति भई सभीता ॥
हृदयकंप तन सुधि कछु नाहीं । नयन मूँदि बैठीं मगमाहीं ॥३॥

अर्थ : उन्हीं रामजी, उन्हीं लक्ष्मणजी और उन्हीं सीताजी को देखकर सती जी बहुत डर गईं। हृदय काँपने लगा और तन की सारी सुधबुध जाती रही। आँख मींचकर रास्ते में ही बैठ गईं।

व्याख्या : सती जी का ध्यान पहिले रामजी पर गया। सो जगद्व्यापी वैषम्य में एक ही साम्य दृष्टिगोचर हुआ। रामजी सर्वत्र एक ही देख पड़े। तब सीताजी पर दृष्टि डाली तो वे भी सर्वत्र एक सी ही देख पड़ीं अर्थात् मूल प्रकृति में भी कहीं भेद नहीं दिखाई पड़ा। तब लक्ष्मण जी पर ध्यान गया तो वे भी सर्वत्र एक से ही दिखाई पड़े। जाग्रत् के विभु में भी कहीं अन्तर नहीं प्रतिभात हुआ। अपनी माया उन्हें दिखाने चलीं थीं। उसने बिलकुल काम नहीं किया। अब जिसे माया दिखाने चली थीं उसकी ही माया का उन्हें स्वयं पार नहीं मिल रहा है। शिवजी की बातें आँख के सामने आ गईं। यह मैं क्या देख रही हूँ ? क्या हो रहा है ? अत्यन्त आश्चर्यमय दृश्य की बढ़ती हुई विषमता को देखकर अत्यन्त भय उत्पन्न हुआ। गूढ़ वचन सुनकर ही डर गई थीं। अब उनकी माया आँखों देखकर तो अत्यन्त डर गईं। चेत नहीं कि मैं कहाँ हूँ। रास्ते में हीं बैठ गईं। अब माया के देखने में भी असमर्थ हैं। इसलिए आँखें मींच लीं।

बहुरि बिलोकेउ नयन उघारी । कछु न दीख तहँ दच्छकुमारी ॥
पुनि पुनि नाइ रामपद सीसा । चली तहाँ जहँ रहे गिरीसा ॥४॥

अर्थ : फिर जब आँख खोलकर देखा तो दक्षकुमारी को कुछ भी दिखाई न पड़ा। बार बार रामजी के चरणों में सिर नवाकर जहाँ शङ्कर जी थे वहाँ चलीं।

व्याख्या : परीक्षा हो गई। जितना शङ्कर जी ने संशयापनोदन के लिए कहा था उतनी बातें स्पष्ट दिखला दी गईं। अत्यन्त भयभीत सती जी को देखकर करुणाकर भगवान् ने अपनी माया हटा ली। तो वहाँ कुछ भी नहीं। यथा : जब हरि-माया दूरि निवारी। नहिं तहँ राम न राजकुमारी।

'भगवान् स्वतन्त्र हैं, निश्चय उन्होंने ही अवतार धारण किया है।' यह विश्वास हृदय में हो गया। मुझसे बड़ा अपराध बन पड़ा जो मैंने उनकी परीक्षा ली। उन्हें नृपतनय माना। अतः अपराध क्षमापन के लिए बार बार प्रणाम करती हैं। अब वहाँ ठहरने का काम न रह गया। और माया हटने से विकलता भी दूर हुई। इसलिए उस वट विटप के पास चलीं। जहाँ बैठे हुए शिवजी उनको बाट जोह रहे थे।

दो. गईं समीप महेस तब, हँसि पूछी कुसलात ।
लीन्हि परीछा कवन बिधि, कहहु सत्य सब बात ॥५५॥

अर्थ : जब पास पहुँचीं तब शिवजी ने हँसकर कुशल पूछी कि तुमने किस तरह परीक्षा ली। सब बातें सत्य सत्य कहो।

व्याख्या : वहाँ रामजी ने हँसकर प्रणाम किया। यथा : बोले बिहँसि राम मृदुबानी। यहाँ शङ्करजी हँसकर कुशल पूछ रहे हैं। कैसा ही बड़ा कोई क्यों न हो चूक हो जाने से हँसी का पात्र हो जाता है। अकल्याण की आशंका से पहिले कुशल ही पूछी। यथा : दच्छसुता कर नहिं कल्याना। उसके बाद परीक्षा की विधि पूछी। परीक्षा की विधि से चूक होने का पहिले से ही भय था। यथा : जैसे मिटइ मोह भ्रम भारी। करेउ सो जतन विवेक विचारी। उत्तर देते न देखकर कहते हैं। कहो सत्य सब बात, चूक छिपाने का प्रयत्न न करो।

सती समुझि रघुबीर प्रभाऊ। भयबस सिव सन कीन्ह दुराऊ॥
कछु[1] न परीछा लीन्हि गुसाईं। कीन्ह प्रनामु तुम्हारिहि नाईं॥१॥

अर्थ : सती ने रामजी के प्रभाव को समझकर डर के मारे शिवजी से छिपाव किया और कहा : हे स्वामिन्! मैंने कुछ परीक्षा नहीं ली। आप की ही भाँति प्रणाम कर दिया।

व्याख्या : सती ने रामजी के अचिन्त्य प्रभाव को जब समझा शिवजी के उपदेश पर जब ध्यान दिया कि 'जैसे मिटै मोह भ्रम भारी। करेउ सो जतन विवेक विचारी। और अपने अविवेक को देखा तब भय के वश में हो गईं। अपने वश में न रह गईं। यथा : मैं बन दीख राम प्रभुताई। अति भय बिकल न तुम्हहिं सुनाई। इसीलिए सर्वज्ञ शिवजो से छिपाव किया। कह दिया : कछु न परीछा लीन्ह गोसाईं। इस पर पूछेंगे। अन्ततोगत्वा तुमने उनके सामने जाकर किया क्या? इसलिए साथ ही यह भी कह दिया कि कीन्ह प्रनाम तुम्हारिहि नाईं : बात सत्य ही कही, पर कुछ बीच की बात छिपा ली।

जो तुम्ह कहा सो मृषा न होई। मोरे मन प्रतीति अति सोई॥
तब संकर देखेउ धरि ध्याना। सती जो कीन्ह चरित सबु जाना॥२॥

अर्थ : जो आपने कहा वह झूठ नहीं हो सकता, मेरे मन में इस बात का अत्यन्त विश्वास है। तब शिवजी ने ध्यान धरके देखा तो सती ने जो जो चरित किये थे सो सब जान गये।

व्याख्या : इतना कहने पर भी शङ्का समाप्त नहीं होती। फिर शङ्का उठेगी कि तुम तो यहाँ से परीक्षा लेने गई थी। पर परीक्षा ली क्यों नहीं। इसलिए यह भी कह डाला कि आपकी बात झूठी नहीं हो सकती। इस बात पर मेरा पूरा विश्वास है। उस विश्वास के सामने तुच्छ संशय ठहर न सका। पर शङ्करजी को इस बात पर विश्वास नहीं हुआ। विश्वासो नैव कर्तव्यः स्त्रीषु राजकुलेषु च। स्त्रियों का और राजकुल का विश्वास नहीं करना चाहिए। भरत

---

१. छेकापन्हुति है।

जी कैकेयी से कहते हैं : भूप प्रतीति तोर किमि कीन्हीं। मरन काल विधि मति हरि लीन्हीं। सो शिवजी ने विश्वास नहीं किया। जो संशय मेरे इतने समझाने पर न मिटा वह एकाएक कैसे मिट गया। इसलिए ध्यान किया। शङ्करजी को सब बातों के जानने के लिए केवल वृत्ति के अन्तर्मुखीन करने की आवश्यकता थी। ऋतंभरा प्रज्ञा द्वारा सती के किये हुए सब चरित को जान लिया। सती ने यहाँ भी माया की। तुम जो कहा सो मृषा न होई। मोरे मन प्रतीति अति सोई। यह बात उन्होंने विलकुल ठीक कही। इस समय उनके मन में पूरी प्रतीति है कि शिवजी का कहा मिथ्या नहीं हो सकता। स्वयं आँख से देख चुकी हैं। पहले भी ऐसी ही प्रतीति थी। यथा : संभु गिरा पुनि मृषा न होई। सिव सरवज्ञ जान सबु कोई। पर यहाँ ऐसे अवसर पर कहा गया कि वह : कछु न परीछा लीन्ह गोसाईं का पोषक हो गया। सती ने छिपाना चाहा। इसलिए शिवजी को ध्यान करना पड़ा नहीं तो बिना ध्यान किये ही सती के मन की बात जान ली थी। यथा : हर अन्तर्यामी सब जाना।

बहुरि राममायहि सिरु नावा। प्रेरि सतिहि जेहिं झूँठ कहावा ॥
हरि इच्छा भावी बलवाना। हृदय विचारत संभु सुजाना ॥३॥

अर्थ : फिर उन्होंने रामजी की माया को प्रणाम किया। जिसने प्रेरणा करके सती से झूठ बोलवा दिया। सुजान महादेव जी मन में विचार करते हैं कि हरिइच्छा रूपिणी भवितव्यता बलवती है।

व्याख्या : शिवजी भलीभाँति जानते हैं कि सती झूठ बोलनेवाली नहीं चाहे जो हो। पर यह जानते हैं कि इस समय सती में हरिमाया काम कर रही है। यथा : लाग न उर उपदेस जदपि कहेउ सिव बार बहु। बोले बिहँसि महेस हरिमाया बल जानि जिय। उस समय भी हरिमाया को सिर नवाया था। अब फिर उसे सिर नवा रहे हैं। सती के प्रसङ्ग में हरिमाया को यत्न करना पड़ा था। नहीं तो सती किसी के वश में आनेवाली नहीं। श्रीरामजी सती को सीताजी के रूप में देखकर स्वयं अपनी माया के बल की प्रशंसा करने लगे। यथा : निज माया बल हृदय बखानी। बोले बिहँसि राम मृदु बानी। अब सती जी को झूठ बोलते जानकर शिवजी उसे नमस्कार कर रहे हैं। क्योंकि उस माहामाया के आगे किसी का वश नहीं चलता। यथा : सिव बिरंचि कहँ मोहइ को है बपुरा आन। अस जिअ जानि भजहिं मुनि, मायापति भगवान्। ज्ञानी भगत सिरोमनि, त्रिभुवन पति कर जान। ताहि मोह माया नर, पामर करहिं गुमान।

फिर भी सुजान शिवजी ने सती को दोष नहीं दिया। देखा कि यहाँ हरि-इच्छा रूपिणी भवितव्यता काम कर रही है। इसके आगे हमारे उपदेश ने भी काम नहीं किया। मोह मिटाने के यत्न ने भी नहीं काम किया। सामान्य भावी होती तो कभी मिट गई होती। यथा : भाविहु मेटि सकैं त्रिपुरारी। पर यह हरिइच्छा रूपी भावी मिटनेवाली नहीं है। यह कुछ करके रहेगी।

सती कीन्ह सीता कर वेषा । सिव उर भयउ विषाद विसेषा ॥
जौं अब करउँ सती सन प्रीती । मिटइ भगति पथु होइ अनीती ॥८॥

अर्थ : सती ने जो सीता का वेष किया । इस वात से शिवजी के हृदय में विशेष विषाद हुआ । यदि मैं सती से प्रीति करता हूँ तो भक्ति-मार्ग गिरता है और वड़ी अनीति होती है ।

व्याख्या : विषाद तो पहिले ही हुआ था । जव उनके उपदेश देने पर भी सती का संशय नहीं गया और उन्हें परीक्षा लेने की आज्ञा देनी पड़ी । यथा : दच्छसुता कर नहि कल्याना । मोरेउ कहे न संशय जाहीं । विधि विपरीत भलाई नाहीं । अब यह जानने पर कि सती ने सीता का वेष धारण किया विशेष विषाद हुआ । स्वामिनी का वेष धारण करनेवाली स्त्री पर पत्नीभाव नहीं रक्खा जा सकता । पत्नीभाव का त्याग ही वास्तविक त्याग है और स्वजन के लिए त्याग ही वध है । अतः विशेष विषाद हुआ ।

भक्ति के आचार्य होकर मर्यादा पालन न करने से भक्तिपथ ही मिट जायगा । ईश्वर हैं मर्यादापथ किसी प्रकार नष्ट न होने देंगे । यथा : जौं नहि दंड करौं खल तोरा । भ्रष्ट होय श्रुति मारग मोरा । यहाँ प्रीति शब्द से दाम्पत्यभाव अभिप्रेत है । नीतिविरोध रामजी को अच्छा नहीं लगता । यथा : नीति विरोध सोहाइ न मोहीं । पाषाण भी जब एक बार पूज्य के आकार से आकारित हो जाता है तो उस पर से पाषाण बुद्धि हटा ली जाती है । यह नीति है । अतः दाम्पत्यभाव न रखना ही प्राप्त हुआ ।

दो. परम पुनीत[1] न जाइ तजि, किये प्रेम बड़ पापु ।
प्रगटि न कहत महेसु कछु, हृदयँ अधिक संतापु ॥५६॥

अर्थ : बहुत ही पवित्र है इसलिए छोड़ा नहीं जा सकता और प्रेम करने में बड़ा पाप है । प्रकट रूप से महादेव जी कुछ नहीं कहते हैं । पर उनके हृदय में बड़ा दुःख है ।

व्याख्या : पापिनी स्त्री त्यागी जाती है । नहीं तो किसी अवस्था में स्त्री नहीं त्यागी जाती । भगवती श्रुति कहती है 'अर्धो वा एष आत्मनो यत्पत्नी' भगवान् वशिष्ठदेव कहते हैं : आत्मा हि दारा सर्वेषां दारसंग्रहवर्तिनाम् । वा. रा. । अर्थात् पत्नी

---

१. परीक्षा लेने में छल से काम लिया ही जाता है । वह छल दोषावह नहीं है । यथा : प्रथम गये जहँ रही भवानी । बोले मधुर वचन छलसानी । क्योंकि उसमें भाव दुष्ट नहीं रहता । यहाँ परीक्षा लेने में थोड़ा सा अविवेक हो गया । रामजी का अपमान हो गया । वह भी हरिमाया के वश होने के कारण । यथा : बहुरि राम मायहि सिर नावा । प्रेरि सतिहि जेहि झूठ कहावा । अतः शिवजी सती का 'अघ' नहीं मानते । याज्ञवल्क्य ने भी नहीं माना । इसलिए परम पुनीत कहते हैं । शिवजी विचारते हैं कि सती को पाप नहीं है । पर इनसे प्रेम करने में मुझे पाप है ।

अपनी आधी देह है। श्रुतिः। सभी गृहस्थों की स्त्री अपनी देह होती है। फिर सती ऐसी पवित्र स्त्री का त्याग कैसे किया जाय। प्रेम का त्याग ही त्याग है और प्रेम करने से सनातन सेतुभङ्ग का : भक्तिपथ के मिटाने का पाप होता है। सती को कष्टकर होने से शिवजी प्रकट कुछ नहीं कहते हैं। परन्तु हृदय में इष्ट वियोग जनित सन्ताप अधिक हो रहा है। अथवा त्यागने से सती को महान् दुःख होगा। इस बात का सन्ताप है।

तब संकर प्रभुपद सिरु नावा। सुमिरत रामु हृदय अस आवा ॥
एहिं तन सतिहि भेंट मोहि नाहीं। सिव संकल्पु कीन्ह मन माहीं ॥१॥

अर्थ : तब शिवजी ने रामजी के चरणों में सिर नवाया। और रामजी को स्मरण करते ही : यह बात : मन में आई कि इस शरीर से सती की मेरी भेंट नहीं होगी। ऐसा संकल्प शिवजी ने मन में किया।

व्याख्या : पहिले माया को सिर नवाया था। यथा : बहुरि राम मायहि सिर नावा। प्रेरि सतिहि जेहिं झूठ कहावा। अब अधिक सन्ताप होने से उस मायी को सिर नवाते हैं। यथा : राम प्रनाम महा महिमाखनि। सकल सुमंगल मनिजनी। शिवजी का यह शिद्धान्त है कि तर्क कोटि बढ़ने नहीं देते। उसे रोककर नाम स्मरण में लग जाते हैं। यथा : होइहि सोइ जो राम रचि राखा। को करि तर्क बढ़ावै साखा। अस कहि जपन लगे हरिनामा। इसी भाँति यहाँ भी तर्क करना वन्द करके प्रभु को प्रणाम किया और नाम जपने लगे। विचार करने में निश्चय पर नहीं पहुँच सके थे। सो नामस्मरण करते ही आप से आप निश्चयकारक बात मन में उठी।

जो शरीर एक बार परमाराध्य देवता के रूप में परिणत हो चुका उसे अङ्कारूढ तो नहीं करूँगा। ऐसा संकल्प मन में किया। 'शिव संकल्प' यहाँ श्लिष्टपद है। अर्थ होगा शिव ने संकल्प मन में किया। अथवा कल्याणकारी संकल्प मन में किया। यथा : तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु। संकल्प को कल्याणकारो इसीलिए कहा कि सदा की सङ्गिनी सती का सर्वथा त्याग भी नहीं हुआ और नीति तथा भक्तिपक्ष की रक्षा हो गई।

अस बिचारि संकरु मतिधीरा। चले भवन सुमिरत रघुबीरा ॥
चलत गगन भै गिरा सुहाई। जय महेस भलि भगति दृढ़ाई ॥२॥

अर्थ : ऐसा विचारकर मतिधीर शिवजी रघुबीर को स्मरण करते हुए घर चले। चलते समय सुन्दर आकाशवाणी हुई : महेश की जय हो, आपने भक्ति की अच्छी दृढ़ता की।

व्याख्या : ऐसा विचार करके अर्थात् ऐसा मानसिक संकल्प करके घर चले। पहिले ही मुनि से बिदा माँगकर घर चले थे। पर भवानी के कारण बीच में बरगद तले रुकना पड़ा। भवानी परीक्षा करके लौट आयीं। उनकी बातें सुनीं। ध्यान करके सब बात जान गये। विशेष विषाद हुआ। सती के त्याग का संकल्प करके

तव फिर घर चले। इतना बड़ा स्वार्थ त्याग किया। इसलिए मतिधीर कहते हैं। पहिले कहा था : चले भवन संग दच्छकुमारी। इस समय दक्षकुमारी का साथ नहीं कहते हैं। क्योंकि इस समय वे परित्यक्ता हैं। 'सुमिरत रघुवीरा' कहने का यह भाव है कि सतीविषयक विचार अव मन में नहीं है। इष्टदेव का स्मरण करते चले।

किसी भारी कार्य की उपस्थिति में अधिकारी देवता लोग आकाशवाणी द्वारा अपनी सम्मति व्यक्त करते हैं। यथा : भई वहोरि वरगिरा अकासा। विप्रहु साप विचारि न दीन्हा। नहिं अपराध भूप कछु कीन्हा। जग भय मगन गगन भइ वानी। लखन वाहुवल विपुल वखानी। मनभवानी होने से वाणी को सुहाई कहा। इस समय भक्ति पथ के मिटने का संयोग उपस्थित हो गया था। महामङ्गलमय मार्ग[1] का लोप हुआ चाहता था। महेश ने अपने सुख-दुःख का विचार न करके उस मार्ग को और भी दृढ़ बना दिया। इसलिए देवताओं ने जय जय कार किया।

अस पन तुम्ह बिनु करै को आना। राम भगत समरथ भगवाना ॥
सुनि नभ गिरा सती उर सोचा। पूछा सिवहिं समेत सँकोचा ॥३॥

अर्थ : तुम्हारे बिना ऐसी प्रतिज्ञा कौन कर सकता है। आप रामजी के भक्त समर्थ और भगवान् हैं। आकाशवाणी सुनकर सती के मन में सोच हुआ। शिवजी से संकोच के साथ पूछा।

व्याख्या : रामव्रतधारियों में शिवजी ही सर्वश्रेष्ठ हैं। दूसरे किसी में ऐसा सामर्थ्य नहीं कि निष्पाप सती ऐसी स्त्री का परित्याग कर सके। यथा : सिव सम को रघुपति व्रतधारी। बिनु अघ तजी सती अस नारी। शिवजी भगवान् हैं। समग्र ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री, ज्ञान और वैराग्य को भग कहते हैं। जिसमें ये छहों गुण हों वह भगवान् है। विना प्रवल वैराग्य और अप्रतिम ज्ञान के सर्वगुणसम्पन्ना निष्पापा प्रियतमा का त्याग अशक्य है। इसलिए 'रामभगत समरथ भगवाना' कहा।

सती से इसी समय वड़ी भारी चूक हुई है और इसी समय शङ्कर जी के प्रण करने का संवाद मिल रहा है। अतः सन्देह के लिए यथेष्ट स्थान है कि कोई प्रतिज्ञा सती के विरुद्ध हुई है। स्त्री को अधिकार है कि पति के किसी कार्य करने का कारण पूछे? क्योंकि विवाह के समय प्रतिज्ञा हो जाती है कि अर्थ, धर्म और काम में मैं इसका अतिक्रमण नहीं करूँगा। अतः पूछने में कोई संकोच की वात न थी परन्तु सापराध होने से संकोच हो रहा है।

कीन्ह कवन पन कहहु कृपाला। सत्यधाम प्रभु दीनदयाला ॥
जदपि सतीं पूछा बहु भाँती। तदपि न कहेउ त्रिपुर आराती ॥४॥

अर्थ : हे कृपालु! कहिये आपने कौन सी प्रतिज्ञा की है? हे प्रभो! आप

---

१. प्रतीकोपासना भक्तिपथ का प्राण है। मूर्तिपूजा ईश्वरोपासना की स्वाभाविकी वैज्ञानिक पद्धति है। सभ्यता प्रतीकोपासना के सिद्धान्त पर ही खड़ी है।

'प्रीति प्रतीत बढ़ी तुलसी तबते सब पाहन पूजन लागे।' कवि.

सत्यधाम और दीनदयाल हैं। यद्यपि सती ने बहुत भाँति पूछा पर त्रिपुरान्तक ने नहीं कहा।

व्याख्या : आकाशवाणी सुनकर सती जी उत्सुकता के अत्यन्त बढ़ जाने से दीन हो रही हैं। इसलिए दीनदयालु विशेषण दे रही हैं कि मैं दीन हूँ। आप दीन-दयाल हैं। मैं कृपा की भिखारिणी हूँ। आप कृपालु हैं। कृपा करके कहिये। आप सत्यधाम हैं मैं ऐसी नहीं हूँ। आप प्रभु हैं मैं अवला हूँ। मुझे संशय में न रखिये। अपनी शपथ दिलाई। अपने प्रेम की शपथ दिलाई। सभी उपाय सामर्थ्य भर किये पर शिवजी त्रिपुरान्तक हैं। अपने लक्ष्य पर बड़े दृढ़ हैं। एक सहस्र वर्ष तक त्रिपुर पर लक्ष्य बाँधे ही रह गये। उन्होंने नहीं ही कहा। यहाँ बात को खोलना और लक्ष्य से विचलित होना एक बात थी। बात को खोलना अनुनय विनय को अवसर प्रदान करना था। इसलिए नहीं कहा।

दो. सतीं हृदय अनुमान किय, सबु जानेउ सरबग्य।
कीन्ह कपटु मैं संभु सन, नारि सहज जड़ अग्य ॥५७॥ क

सो. जलु पय सरिस बिकाइ, देखहु प्रीति की रीति भलि।
बिलग होइ रस जाइ, कपटु खटाई परत पुनि ॥५७॥

अर्थ : सती ने अपने मन में अनुमान किया कि सर्वज्ञ ने सब जान लिया। मैंने शम्भु से कपट किया। स्त्री स्वभाव से ही जड़ और मूर्ख होती हैं।

प्रीति की अच्छी रीति देखिये कि पानी दूध के समान बिकता है। कपट खटाई के पड़ते ही दोनों अलग हो जाते हैं और रस नहीं रह जाता।

व्याख्या : शिवजी के कुछ उत्तर न देने से सती को मालूम हो गया कि सम्बन्ध नीरस हो गया। मेरे कपट को सर्वज्ञ शिवजी ने जान लिया। यह सती द्वारा अपने मन का अनुमान है।

कपट करौं अंतरजामिहु ते अघ व्यापकहि दुरावो : यह जड़ता और अज्ञता है। शिवजी धीर हैं मैं जड़ हूँ। यथा : सुख हरखहिं जड़ दुःख बिलखाहीं। दोउ सम धीर धरहिं मन माहीं। मैंने भय से विकल होकर कपट किया। सर्वज्ञ से बात छिपानी चाही। यह अज्ञता है।

उदाहरण से स्पष्ट करती हैं। जल और दूध के मिलने से जल दूध के भाव बिकता है। यह दूध की भलाई है। आग पर चढ़ने से पहिले पानी जलता है। दूध को नहीं जलने देता। यह पानी की भलाई है। पानी के जलने के समय दूध उफन कर आग में कूदता है। यह दूध की भलाई है। यह प्रीति की रीति है। कपट खटाई पड़ते ही दूध पानी अलग हो जाता है। न दूध में रस रह जाय न पानी में और दूध के सार भाग घी : स्नेह का तो कहीं पता नहीं चलता कि क्या हुआ ?

हृदय सोचु समुझत निज करनी। चिंता अमित जाइ नहिं बरनी ॥
कृपासिंधु सिव परम अगाधा। प्रगट न कहेउ मोर अपराधा ॥१॥

अर्थ : अपनी करणी को समझकर हृदय में सोच है और ऐसी चिन्ता है जिसका वर्णन नहीं हो सकता। शिवजी कृपासिन्धु हैं, बड़े गम्भीर हैं। मेरे अपराध को प्रकट रूप से नहीं कहा।

व्याख्या : सोच ही सोच चला। सती सभीत महेस पहँ चलीं हृदय बड़ सोच। सुनि नभगिरा सती उर सोचा। हृदय सोच समुझत निज करनी। परिणाम क्या होगा इसकी चिन्ता का वर्णन नहीं हो सकता। मानस से सरयू के मैदान में अवतीर्ण होते ही पहिले वन में मिला। वन में घनेरा भय, विषाद और परिताप होता है। भय : भयवस सिवसन कीन्ह दुराऊ। विषाद : सिव उर भयउ विषाद विसेखा। परिताप : पाछिल दुःख अस हृदय न व्यापा। जस यह भयउ महा परितापा।

शिवजी कृपासिन्धु हैं। दुःख की बात नहीं कहेंगे। परम अगाध हैं : छिछले से बिना कहे नहीं रहा जाता : गम्भीर हैं। प्रकट करने का स्वभाव नहीं है। मेरे अपराध को प्रकट रूप से नहीं कहा पर उत्तर न देकर जना दिया।

संकर रुख अवलोकि भवानी। प्रभु मोहि तजेउ हृदय अकुलानी ॥
निज अघ समुझि न कछु कहि जाई। तपै अवाँ इव उर अधिकाई ॥२॥

अर्थ : भवानी ने शङ्कर का रुख देखकर जान लिया कि प्रभु ने मुझे त्याग दिया। अतः मन में बहुत व्याकुल हुईं। अपना अपराध समझकर कुछ कहते नहीं बनता। आँवें की भाँति हृदय अधिक जलने लगा।

व्याख्या : सती हैं पति के रुख देखने का अभ्यास है। ठीक मनोगति समझ लेती हैं। शिवजी प्रभु हैं। उन्हें त्यागने का अधिकार है। उन्होंने मेरा त्याग किया। यह समझकर मन आकुल हो उठा। यथा : तनु धनु धामु धरनि पुर राजू। पति विहीन सब सोक समाजू। भोग रोग सम भूषन भारू। जम जातना सरिस संसारू। प्राननाथ तुम्ह बिनु जगमाहीं। मो कहुँ सुखद कतहुँ कोउ नाहीं। परन्तु कहते कुछ बनता नहीं। अपने से ऐसा पाप[1] ही हो पड़ा है कि जिसका जो दण्ड दिया जाय थोड़ा है। किस मुँह से क्षमा प्रार्थना करें। चिन्ता ज्वाल सरीरवन दावा लगि लगि जाय। प्रकट धुआँ नहिं देखिये उर अंतर धुधुवाय। उर अंतर धुधुवाय जरे जिमि काँच की भट्ठी। जरि गये लोहू माँस रह गयी हाड़ की ठट्ठी।

सतिहि ससोच जानि वृषकेतू। कही कथा सुन्दर सुख हेतू ॥
बरनत पंथ विविध इतिहासा। विस्वनाथ पहुँचे कैलासा ॥३॥

अर्थ : सती को शोकयुक्त जानकर वृषकेतु ने सुख के लिए सुन्दर कथाएँ कहीं। रास्ते में अनेक प्रकार के इतिहास कहते हुए विश्वनाथ कैलास पहुँच गये।

व्याख्या : वृषकेतु हैं। धर्म ही उनकी ध्वजा है। शरणागतपालन धर्म को

---

१. भगवती सती अपना ही पाप मानती हैं : १. रघुपति अपमान और २. पति के वचन पर असत्य का भ्रम।

स्मरण करते हुए परित्यक्ता सती के सुख के लिए : मनोरञ्जन के लिए : शोक हटाने के लिए : सुन्दर सुन्दर कथाएँ सुनायीं। प्रेम विशेष का त्याग है। सहानुभूति का त्याग नहीं है। अतः रास्ता काटने के लिए अनेक इतिहास वर्णन करते-करते कैलास पहुँच गये। यहीं उनका भवन है। यथा : पंथ कहत निज भगति अनूपा। पुनि आश्रम पहुँचे सुरभूपा। भाव यह है कि मैंने बोलना नहीं बन्द किया है। केवल प्रतिज्ञा नहीं बतलावेंगे।

तहँ पुनि संभु समुझि पन आपन। बैठे बट तर करि कमलासन ॥
संकर सहज सरूपु संभारा। लागि समाधि अखंड अपारा ॥४॥

अर्थ : वहाँ फिर अपने प्रण को समझ करके शिवजी वट के वृक्ष के नीचे पद्मासन लगाकर बैठ गये। शङ्कर ने अपने सहज स्वरूप को सँभाला तो अखण्ड और अपार समाधि लग गई।

व्याख्या : एहि तन सतिहि भेट अब नाहीं का अत्यन्त सरल उपाय समाधि लगा लेना है। यथा : सिव समाधि बैठे सब त्यागी। कैलास पर एक दिव्य वट वृक्ष है। वह सदा नवीन रहता है। यथा : तेहि गिरि पर बट बिटप बिसाला। नित नूतन सुंदर सब काला। त्रिविध समीर सुसीतल छाया। सिव बिश्राम बिटप श्रुति गाया। उसी के नीचे पद्मासन लगाकर बैठे। योग के चौरासी आसनों में पद्मासन और सिद्धासन अत्यन्त श्रेष्ठ हैं। रमणीय स्थान और आसन कहकर अब चित्तवृत्तिनिरोध पूर्वक द्रष्टृस्वरूपावस्थान कहते हैं। दूसरे की जो समाधि लगती है उसकी अवधि होती है। शङ्कर भगवान् की समाधि की अवधि नहीं। इसीलिए अखण्ड अपारा कहा। प्रकृति पुरुष के परस्पर अभ्यास के विच्छेद से ही सहज स्वरूप में समाधि होती है। यथा : तं विद्याद्दुःखसंयोगवियोगं योगसंज्ञितम्। यहाँ प्रकृति : सती से पुरुष : शिव के प्रेम का विच्छेद ही समाधि का कारण हुआ।

दो. सती बसहिं कैलास तब, अधिक सोचु मन माहिं।
मरमु न कोऊ जान कछु, जुग सम दिवस सिराहिं ॥५८॥

अर्थ : सती कैलास में रहने लगीं। मन में अधिक सोच था। भेद किसी को कुछ मालूम नहीं एक दिन युग के समान बीतता था।

व्याख्या : शिवजी जब समाधि में नहीं थे तो कैलास शिवउमानिवास कहा जाता था। अब वे समाधि में हैं। सती जी अकेले कैलास में रह रही हैं। कोई बाल-बच्चे भी नहीं हैं। शिवजी के समाधि में बैठने से सती के मन में त्याग की भावना पुष्ट हुई। अतः अधिक सोच मन माहि कहते हैं। यह घटना रास्ते में हुई। अतः गणों को कोई पता नहीं है। दुःख के दिन बड़ी कठिनता से कटते हैं। इसलिए कहते हैं : युग सम दिवस सिराहिं। अखण्ड अपार समाधि है न जाने कब खुलेगी। बिना खुले दुःख पार जाने का कोई रास्ता नहीं। कहने से भी दुःख घटता है पर कहें किससे ? उसका जानकार कोई नहीं। कैलास में वसकर भी सती महादुःखी हैं।

नित नव सोचु सती उर भारा । कब जैहौं दु:ख सागर पारा ॥
मैं जो कीन्ह रघुपति अपमाना । पुनि पति वचन मृषा करि जाना ॥१॥

अर्थ : सती के हृदय में नित्य नया और भारी सोच है कि कब दु:खसागर के पार जाऊँगी। मैंने जो रघुपति का अपमान किया और पति के वचन को झूठ समझा।

व्याख्या : सती भगवती दु:ख के समुद्र में पड़ गईं। उसका वार-पार नहीं सूझ रहा है और नित्य नये सोच की भारी तरंगें उठ रही हैं। न शरीर छूटता है न पार मिलता है। न कोई ठिकाना है कि कब पार मिलेगा। विना समाधि खुले दु:ख का पार मिल नहीं सकता। असौ चिन्ताज्वरस्तीव्रः प्रत्यहं नवतां व्रजेत्। काशी-खण्डे। यह तीव्र चिन्ता ज्वर नित्य नया होता जाता है।

उनसे भगवान् और भागवत, ईश्वर और उनके प्रतिनिधि पतिदेव दोनों का अपराध बन पड़ा। १. परमेश्वर भगवान् का अपमान किया और २. पतिदेव के वाक्य को झूठा माना।

सो फलु मोहि विधाता दीन्हा । जो कछु उचित रहा सोइ कीन्हा ॥
अब विधि अस बूझिअ नहिं तोहीं । संकर विमुख जिआवसि मोहीं ॥२॥

अर्थ : वह फल मुझे विधाता ने दिया और जो उचित था सो किया। पर हे विधाता अब तुझे यह उचित नहीं है कि शङ्कर से विमुख होकर मुझे जीवित रक्खे।

व्याख्या : सती कहती हैं कि कर्म शुभाशुभ का फल विधाता देते हैं। यथा : कर्म सुभासुभ देइ विधाता। सो ब्रह्मदेव ने मुझे फल दिया। उन्हें यही उचित जान पड़ा कि इन अपराधों का दण्ड पति-परित्याग है सो मैं फल पा चुकी। यहाँ तक तो विधि ठीक है। अब शङ्कर विमुख करके मुझे जिलाना विधि को उचित नहीं है। अर्थात् : हानि लाभ जीवन मरन जस अपजस विधि हाथ। जीवन मरण ब्रह्मदेव के हाथ में है। अपने हाथ में नहीं होता है। मरण स्वीकार है परन्तु शङ्करविमुख होकर जीना स्वीकार नहीं। अब कौन अपराध शेष है जिसके बदले ब्रह्मदेव मुझे शङ्कर से विमुख करके जिला रहे हैं।

कहि न जाय कछु हृदयँ गलानी । मन महुँ रामहि सुमिरि सयानी ॥
जौं प्रभु दीनदयालु कहावा । आरति हरन वेद जसु गावा ॥३॥

अर्थ : हृदय की ग्लानि कुछ कही नहीं जाती। सयानी ने मन में रामजी का स्मरण किया और कहा : हे प्रभो ! यदि आप दीनदयाल कहलाते हैं और यदि आर्तिहरण कहकर वेद ने यशगान किया है।

व्याख्या : हृदय में जैसी ग्लानि हुई उसका एक अंश भी कथन में नहीं आ सकता। आगे जो करेंगी उसी से अनुमान हो सकता है। सती जी सयानी हैं उपाय सोचा कि जिसका अपराध बन पड़ा हो उसी की शरण ग्रहण करनी चाहिए। अतः मन से रामजी का स्मरण किया और प्रार्थना की।

रामजी का लोक में दीनदयाल विरद प्रसिद्ध है और वेद भी आर्तिहरण कहकर यशगान करता है और मैं दीन हूँ और आर्त हूँ। भाव यह कि लोक वेद के बल पर खड़ी हो गयीं जिस भाँति मनु-शतरूपा खड़े हो गये थे। यथा : जौ अस वचन सत्य श्रुति भाखा। तौ हमार पूजिहि अभिलाखा।

तौ मैं विनय करउँ कर जोरी। छूटौ बेगि देह यह मोरी ॥
जौं मोरे सिव चरन सनेहू। मन क्रम वचन सत्य ब्रतु एहू ॥४॥

अर्थ : तो मैं हाथ जोड़कर विनय करती हूँ कि यह मेरा शरीर जल्दी छूट जाय। यदि मेरा स्नेह शिवजी के चरण कमलों में हो और मन वचन कर्म से यह व्रत सच्चा हो।

व्याख्या : यदि विरद आपका सत्य है और मेरी दीनता तथा आर्ति सच्ची है तो शरीर न छूटने का कोई कारण नहीं है। आर्ति और दीनता के छूटने के दो ही उपाय हैं। या तो शिवजी अपनी प्रतिज्ञा छोड़ें या सतीजी का देह छूटे। तीसरा उपाय तो है नहीं। सतीजी कहती हैं कि शिवजी की प्रतिज्ञा न छूटे। मेरी देह छूट जाय। दीनता और आर्ति का कारण शिवचरणस्नेह है। अतः कहती हैं कि यदि मेरा शिवजी के चरणों में सच्चा स्नेह हो तो आप अपने विरद को सत्य करिये।

दो. तौ सबदरसी सुनिअ प्रभु, करउ सो बेगि उपाइ।
होइ मरन जेहिं बिनहिं श्रम, दुसह बिपत्ति बिहाइ ॥५९॥

अर्थ : तो हे सर्वदर्शी प्रभो! सुनो, ऐसा उपाय करो कि मेरा मरण विना श्रम के ही सम्पन्न हो और न सहने योग्य विपत्ति छूटे।

व्याख्या : आप सर्वदर्शी हैं। मेरे हृदय को देख सकते हैं। प्रभु हैं। मनोरथ पूर्ण कर सकते हैं। ऐसा उपाय जल्द कीजिये जिसमें शीघ्रातिशीघ्र मरण हो। आत्मघात का दोष न हो। इसलिए उपाय से मरण चाहती हैं। मरण के समय दुःसह दुःख होता है। यथा : जन्मत मरत दुसह दुःख होई। इसलिए बिना श्रम मरण चाहती हैं। दुःसह विपत्ति से : शङ्कर के विमुख होने के कष्ट से घुल घुलकर मृत्यु तो हो ही जायगी। अतः अनायासेन मरणम् के लिए प्रार्थना है।

एहि बिधि दुखित प्रजेस कुमारी। अकथनीय दारुन दुखु भारी ॥
बीते संबत[1] सहस सतासी। तजी समाधि संभु अविनासी ॥१॥

अर्थ : इस भाँति प्रजापति की पुत्री नहीं कहने योग्य भारी कठिन दुःख से दुःखी थी। एक हजार सत्तासी : १०८७ : संवत बीतने पर अविनाशी शम्भु ने समाधि परित्याग किया।

व्याख्या : यद्यपि प्रजापति की बेटी हैं, फिर भी पति के वचन को मृषा मानने और रामजी के अपमान से पति-परित्यक्ता होकर दुःखी हैं। सती हैं। अतः पति परित्याग का भारी दारुण दुःख हो रहा है। जो कि किसी प्रकार से व्यक्त नहीं किया जा

१. संवत से मानुषी मान का वर्ष ही परिगृहीत है। यथा : संवत सोरह सै एकतीसा।

सकता है। पति ही स्त्री के लिए गति है। पिता की महिमा काम नहीं आती। अथवा ऐसा अपराध करने से प्रजेशकुमारी पर ऐसी आपत्ति आई, अन्यों की क्या गणना।

एक सहस्र सत्तासी वर्ष वियोग दु:ख सहते सहते आर्त होकर रामजी से प्रार्थना की। अन्तर्यामी रामजी की प्रेरणा से उसी समय समाधि खुल गई। १०८७ वर्ष देव-मान से लगभग तीन वर्ष के होते हैं।

राम नाम सिव सुमिरन लागे। जानेउ सती जगतपति जागे॥
जाइ संभु पद वंदनु कीन्हा। सनमुख संकर आसनु दीन्हा॥२॥

अर्थ : शिवजी रामनाम सुमिरने लगे। सतीने जाना कि विश्वनाथ जाग गये। जा करके शिवजी के चरणों को प्रणाम किया। शङ्कर ने : बैठने के लिए : सम्मुख आसन दिया।

व्याख्या : जबतक समाधि थी नामोच्चारण बन्द था। क्योंकि बिना चित्त की वृत्तियों के निरोध के समाधि होती नहीं। व्युत्थान होते ही नामस्मरण प्रारम्भ हुआ। यथा : तुम पुनि राम राम दिन राती। सादर जपहु अनंग अराती। सती दिन रात शङ्करजी में ही मनोयोग दिये रहती थीं। अतएव विश्वनाथ के जागने का पता पहिले उन्हीं को लगा।

उन्होंने जाकर चरण वन्दन किया। शिवजी ने वामभाग में आसन न देकर सन्मुख आसन बैठने के लिए दिया। भक्त की भाँति सत्कार किया, प्रिया की भाँति नहीं।

लगे कहन हरिकथा रसाला। दच्छ प्रजेस भये तेहि काला॥
देखा बिधि बिचारि सब लायक। दच्छहि कीन्ह प्रजापति नायक॥३॥

अर्थ : हरि की रसीली कथाएँ कहने लगे। उसी समय दक्षजी प्रजेश हुए। ब्रह्मदेव ने विचारकर देखा कि सब भाँति योग्य है तो दक्ष को प्रजापतियों का नायक बना दिया।

व्याख्या : भगवती के साथ परित्याग वाली बात न छिड़ने पाये अतः कथा छेड़ देते हैं। अथवा : शिवजी का स्वभाव है कि समय को व्यर्थ नहीं जाने देते। यथा : कतहुँ मुनिन्ह उपदेसहिं ज्ञाना। कतहुँ रामगुन करहिं बखाना। भगवान् की रसीली कथा कहते हैं जिनमें सती का मन लगे। उन्हीं दिनों में सती जी के पिता दक्ष का बड़ा अभ्युदय हुआ। ब्रह्मदेव ने विचारकर देखा कि दक्ष सब कार्यों में दक्ष हैं तो उन्हें प्रजापतियों का नायक बना दिया।

बड़ अधिकार दच्छ जब पावा। अति अभिमानु हृदय तब आवा॥
नहिं कोउ अस जनमा जग माहीं। प्रभुता पाइ जाहि मद नाहीं॥४॥

अर्थ : दक्ष ने जब बड़ा अधिकार पाया तब उनके मन में बड़ा भारी घमण्ड हो गया। संसार में ऐसा कोई जन्मा ही नहीं जिसे प्रभुता पाकर मद न हुआ हो।

व्याख्या : प्रजापति का पद इन्द्र बृहस्पति आदि से बड़ा है। सो दक्ष प्रजा-

पतियों के नायक बना दिये गये। ब्रह्मदेव के बाद फिर यही पद है। इससे ऊँचा दूसरा कोई पद नहीं। पद पाने के साथ ही बड़ा भारी घमण्ड भी हुआ। अति अभिमान का भाव यह कि शिवजी को अपमानित करने की वासना उनके मन में उठने लगी।

यहाँ पर यह शङ्का न करनी चाहिए कि स्वयं प्रजापति को अभिमान कैसे हुआ। श्री गोस्वामीजी कहते हैं कि जिस भाँति यह नियम है कि जो उत्पन्न होगा वह मरेगा। इसी भाँति यह भी नियम है कि प्रभुता पाने पर मद होता है। यथा : श्रीमद वक्र न कीन्ह केहि प्रभुता वधिर न काहि।

दो. दच्छ लिये मुनि बोलि सब; करन लगे बड़ जाग।
नेवते सादर सकल सुर, जे पावत मख भाग ॥६०॥

अर्थ : दक्ष ने सब मुनियों को बुला भेजा और बड़ा यज्ञ करने लगे और जो देवता यज्ञ में भाग पाते थे उन सबको आदर सहित निमन्त्रित किया।

व्याख्या : यह यज्ञ सात्त्विक भाव से नहीं किया गया। इसके करने का कारण दम्भ, दर्प और अभिमान था। यक्ष्ये दास्यामि मोदिष्ये इत्यज्ञानविमोहिताः। मैं यज्ञ करूँगा दान करूँगा आनन्द मनाऊँगा। इस अभिमान से आसुरी प्रकृतिवाले मोहित होते हैं। इतना बड़ा यज्ञ था कि सब मुनि बुलवा लिये गये। सादर निमन्त्रण नहीं गया, निम्न कोटि के समझे गये। देवताओं में भी जो यज्ञ में भाग पानेवाले थे वे ही आदर सहित निमन्त्रित किये गये। उनके भी आदर सहित निमन्त्रित करने में कारण था। वह यह कि कहीं ऐसा न हो कि शिवजी के निमन्त्रित न होने से ये लोग निमन्त्रण अस्वीकार कर दें। फिर यज्ञ ही कैसे होगा? यही साङ्ग सायुध सशक्ति निमन्त्रित करना ही सादर निमन्त्रण है।

किन्नर[1] नाग सिद्ध गंधर्वा। बधुन्ह समेत चले सुर सर्वा ॥
विष्णु विरंचि महेसु विहाई। चले सकल सुर जान बनाई ॥१॥

अर्थ : किन्नर, नाग, सिद्ध, गन्धर्व आदि सब देवता अपनी अपनी बहुओं के साथ चले। विष्णु विरञ्चि महेश को छोड़कर शेष सब देवता अपना अपना विमान सजाकर चले।

व्याख्या : यज्ञों में देवताओं का आवाहन होता है। तब देवता अदृश्य रूप से आते हैं। यहाँ तो भाई विरादरी की भाँति नेवते में जा रहे हैं। किन्नर, नाग, सिद्ध, गन्धर्व यह सब देवजाति के भेद हैं। दक्ष को सन्तुष्ट रखना सबको इष्ट है। अतः सस्त्रीक चले। शिवजी का यज्ञभाग बन्द करने के लिए ही यज्ञ हो रहा है। यह जानकर भी चले क्योंकि सब उनके अधीन थे। उनके अति अभिमान से चिढ़ते भी

---

१. किन्नरा नरविग्रहा अश्वमुखा देवयोनयः। नागाः वासुकिप्रभृतयो नराकाराः। सिद्धा विश्वावसुप्रभृतय हाहा-हूहूचित्ररथादयः। मनुष्य सा शरीर घोड़े सा मुख किन्नरों का होता है। वासुकी आदि सर्पों का भी मनुष्य का शरीर है। विश्वावसु आदि सिद्ध हैं। हाहा हूहू चित्ररथ आदि गन्धर्व हैं।

थे फिर भी महोत्सव में सम्मिलित होने के लिए बड़े सज धज से चले। दक्ष की दुरभिसन्धि समझकर त्रिदेव नहीं गये।

सतीं बिलोके ब्योम बिमाना। जात चले सुन्दर बिधि नाना ॥
सुर सुंदरी करहिं कल गाना। सुनत श्रवन छूटहिं मुनि ध्याना ॥२॥

अर्थ : सती ने देखा कि आकाश में अनेक प्रकार के सुन्दर विमान चले जा रहे हैं। देवताओं की स्त्रियाँ ऐसे मधुर गीत गा रही हैं जिनको सुनकर मुनियों का ध्यान छूट जाय।

व्याख्या : यद्यपि विमान बहुत ऊँचे से जा रहे हैं पर कैलासपर्वत इतना ऊँचा है कि वहाँ से विमानों पर गाये हुए गीत भी सुनाई पड़ते थे। वे गीत देवियों के गाये हुए इतने मधुर थे कि उनके सुनने से मुनियों के ध्यान भी छूट जाँय। दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः। वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते। जिसका दुःख में मन उद्विग्न न हो और जिसे सुख की इच्छा न हो जिसका राग, भय और क्रोध दूर हो गया हो ऐसे स्थितप्रज्ञको मुनि कहते हैं। ऐसे मुनि का भी ध्यान उस गान को सुनकर छूटता था। ऐसी चत्मकृत शक्ति देवियों के गान में थी। सतीजी का ध्यान उधर आकृष्ट हुआ तो देखती हैं कि अनेक विधि के सुन्दर विमान चले जा रहे हैं। शङ्कर भगवान् का ध्यान आकृष्ट न हुआ। अतः उनका देखना नहीं कहते।

पूछेउ तब सिव कहेउ बखानी। पिता जग्य सुनि कछु हरषानी ॥
जौं महेसु मोहि आयसु देहीं। कछु दिन जाइ रहौं मिसु एहीं ॥३॥

अर्थ : पूछा तो शिवजी ने बखानकर कहा। पिता का यज्ञ सुनकर कुछ हर्ष हुआ। यदि महेश मुझे आज्ञा दें तो इसी बहाने से मैं कुछ दिन जाकर रहूँ।

व्याख्या : शिवजी सर्वज्ञ हैं। सब जानते हैं। यह समझकर कारण पूछा। स्त्रियाँ चाहे कितनी ही दुःखी हों पर पिता के घर महोत्सव सुनकर कुछ हर्ष होता ही है। कम से कम एक हजार सत्तासी वर्ष तक न पिता ने पूछा और न ये स्वयं मैके गईं। किस मिस : बहाने : से जायँ ? सो अब मिस मिल गया। पर यदि महेश आज्ञा दें तो वहाँ जाकर जी बहलावें; पर आज्ञा मिलनी कठिन है : कहेंगे कि वहाँ से कोई पूछता भी है ?

पति परित्याग हृदय दुखु भारी। कहै न निज अपराध बिचारी ॥
बोलीं सती मनोहर बानी। भय संकोच प्रेमरस सानी ॥४॥

अर्थ : पति के परित्याग का मन में बड़ा भारी दुःख था। पर अपना अपराध समझकर कुछ नहीं कहती थीं। सती भय, सङ्कोच और प्रेम से सनी हुई मनोहर वाणी बोलीं।

व्याख्या : समाधि खुल गई। शङ्कर भगवान् के साथ हैं। अतः 'अकथनीय दारुण' न कहकर केवल 'दुखु भारी' कहते हैं। अपराध मैंने किया दुःख कौन सहेगा ? इसलिए शिवजी से कुछ कहती नहीं हैं। पर अब बोलीं। ऐसी मधुर वाणी बोलीं जो

भय सङ्कोच, प्रेमरस से सनी हुई थी। क्षमा मिलने के पहिले जाने की आज्ञा माँगने में भय। कोई वुलाने नहीं आया इस बात का संकोच। कुछ ही दिन के लिए आज्ञा चाहती हैं यह प्रेम।

दो. पिता भवन उत्सव परम, जौं प्रभु आयसु होइ।
तौ मैं जाउँ कृपायतन, सादर देखन सोइ ॥६१॥

अर्थ : पिता के घर वड़ा उत्सव है। हे प्रभो ! यदि आपकी आज्ञा हो तो हे कृपानिधान ! मैं आदर सहित उसे देखने जाऊँ।

व्याख्या : आज भी हिन्दू के घर यज्ञ से बड़ा कोई उत्सव नहीं माना जाता। यज्ञ में अनाहूत : बिना बुलाए जाने का विधान है। किं पुनः जव पिता के घर में हो। वहाँ जाना तो सभी तरह से प्राप्त है। यज्ञ दर्शन के लिए जाना सर्वथा उचित है। सो आदर के साथ अर्थात् तैयारी से जाना चाहती हैं। जाने का औचित्य वर्णन करके आज्ञा माँग रही हैं। हरिकथा फिर अधूरी ही रह गई। यथेष्ट आदर सती द्वारा न हो सका।

कहेहु नीक मोरेहुँ मन भावा। यह अनुचित नहि नेवत पठावा ॥
दच्छ सकल निज सुता बोलाई। हमरे बयर तुम्हौ विसराई ॥१॥

अर्थ : तुमने अच्छा कहा। मुझे भी पसन्द है। पर यह अनुचित है कि नेवता : नवेद नहीं भेजा। दक्ष ने अपनी सब पुत्रियाँ बुलाईं। पर मेरे बैर से तुम्हें भी भुला दिया।

व्याख्या : अर्थ स्वीकार है। पिता के यहाँ महोत्सव पड़ने पर जाना अवश्य चाहिए। पर तुम्हारे पिता का व्यवहार अनुचित हो रहा है। क्योंकि नेवता नहीं भेजा। जब 'नेवते सादर सकल सुर जे पावत मख भाग' तब मुझे नेवता क्यों नहीं आया ? मैं तो जा नहीं सकता। उनको कम से कम मखभाग पानेवाले देवता के नाते भेजना था। तुम्हें भी बुलावा नहीं आया। दक्ष ने अपनी सब बेटियों को वुलाया है। मैं तो उनसे वैर नहीं मानता पर वे मुझसे मानते हैं। उस बैर के कारण मुझे भुलाया। और मेरे कारण तुम्हें भी भुलाया। मुझे न वुलाते तुम्हीं को बुला लेते। मेरी स्त्री होने से तुम्हारा वहाँ जाना उन्हें पसन्द नहीं है।

ब्रह्मसभाँ हम सन दुखु माना। तेहि तें अजहु करहि अपमाना ॥
जौं बिनु बोले जाहु भवानी। रहै न सीलु सनेहु न कानी ॥२॥

अर्थ : ब्रह्मदेव की सभा में हमसे अप्रसन्न हुए थे। इसीसे वे अब तक अपमान करते हैं। हे भवानी ! यदि बिना वुलाये जाओगी तो शील, स्नेह और प्रतिष्ठा न रहेगी।

व्याख्या : शिवजी कहते हैं : बहुत दिन हुए, ब्रह्मदेव की सभा में मैं बैठा था। दक्षजी आये। सब देवता उनकी प्रतिष्ठा के लिए खड़े हो गये। मैं नहीं उठा। इसी पर अप्रसन्न होकर भरी सभा में मेरा घोर अपमान किया। यज्ञ में भाग न मिलने

का शाप दिया। मैं चुपकर रह गया। पर नन्दिकेश्वर से नहीं सहा गया। उसने उनके यज्ञ के विध्वंस होने का शाप दिया। वहाँ सभा थी। उनका पद इतना ऊँचा नहीं है कि मैं उठ खड़ा होता। फिर भी उन्हें जितना अपमान करते बना उतना किया। मैंने सह लिया। बात वहीं समाप्त हो गई। पर वे हृदय से वैर मान गये हैं। मेरे इतने सहने पर और इतना दिन बीतने पर भी यज्ञ में मुझे न बुलाकर मेरा अपमान कर रहे हैं। बल्कि मेरे अपमान के लिए ही यह यज्ञ किया जा रहा है। यदि तुम भवानी होकर बिना बुलाये चलीं गईं तो तुम्हारा शील, स्नेह और प्रतिष्ठा जो कुछ बना हुआ है वह नष्ट हो जायगा।

जदपि मित्र प्रभु पितु गुरु गेहा। जाइअ बिनु बोलेहु न संदेहा॥
तदपि बिरोध मान जहँ कोई। तहाँ गएँ कल्यान न होई॥३॥

अर्थ : यद्यपि इसमें सन्देह नहीं कि मित्र, स्वामी, पिता और गुरु के घर बिना बोलाये भी जाना चाहिए। फिर भी जहाँ कोई विरोध मानता हो वहाँ जाने से भलाई नहीं होती।

व्याख्या : चार स्थानों में नेवते की आवश्यकता नहीं। मित्र, प्रभु, पिता और गुरु के घर। पर यहाँ केवल नेवता देने की बात नहीं है। दक्ष हमारे कारण तुमसे भी विरोध मानते हैं। मित्र, स्वामी, पिता और गुरु भी यदि विरोधी हो जायँ तो उनके यहाँ कल्याण चाहनेवाले को न जाना चाहिए। यही गृहस्थी का नियम है। पत्नी पति की आज्ञा माँगकर ही कोई काम करे। पति को यदि निषेध करना हो तो उसे समझावे। बलपूर्वक निषेध न करे।

भाँति अनेक संभु समुझावा। भावी बस न ग्यानु उर आवा॥
कह प्रभु जाहु जो बिनहि बोलाएं। नहि भलि बात हमारे भाएं॥४॥

अर्थ : शिवजी ने अनेक भाँति से समझाया। पर होनहार के वश हृदय में ज्ञान न हुआ। प्रभु ने कहा कि यदि बिना बुलाये जाओगी तो हमारी समझ में बात ठीक न होगी।

व्याख्या : शिवजी का समझाना। यथा :

करि भरोस वात्सल्य को, करौ तहाँ जनि गौन।
दक्षघृणा करिहैं अधिक समुझि रहौ तुम मौन॥
तुम्हरे जैवे ते अधिक, बढि जैहै अभिमान।
ह्वै निशङ्क तब करहिगें, पग-पग पर अपमान॥
बिन बोले आगमन सुनि, जन करिहैं उपहास।
वैर और अधिकाइ है, नहीं प्रीति की आस॥
वहिष्कार मेरो चहत, सुरसमाज ते दक्ष।
औरन के अनुसरन हित, आप भये प्रत्यक्ष॥
करि नहि सकि हैं हानि कछु, किये कोटि अपकार।
संभव तव हिय हारि फिरि, चाहैं प्रीति उदार॥

हार हमारी समुझिहैं, देखि तुम्हें निज जीत।
अभिमानी के हृदय नहिं, उपजत प्रीति पुनीत ।।
अन्तहु सहि सकि हौ सती, नहिं मेरो अपमान।
अति अनर्थ सम्भावना, ते जनि करहु पयान ।।

इतना समझाने पर बात समझ में आ जानी चाहिए थी, पर सतीजी भवितव्यता के वश में थीं फिर शिवजी का समझाना व्यर्थ गया। बात मन में न बैठी। युक्ति पर युक्ति देती ही गईं। तब शिवजी ने निचोड़ कह दिया कि तुम्हारी समझ में भले ही जाना उचित हो पर मेरी समझ में भलाई नहीं होगी।

दो. कहि देखा हर जतन बहु, रहै न दच्छकुमारि।
दिए मुख्यगन संग तब, बिदा कीन्हि त्रिपुरारि ।।६३।।

अर्थ : जब शिवजी ने बहुत यत्न से कहकर देखा कि दक्ष की बेटी नहीं रुकती तब मुख्य गणों को सङ्ग में देकर त्रिपुरारि ने विदा किया।

व्याख्या : समझाने की जहाँ तक सीमा है वहाँ तक समझाया। यहाँ तक कहा कि अब तुम्हें फिर मेरा दर्शन न होगा। तुम्हें पूर्व जाना है। आज शनिवार है। नवमी तिथि है। सभी योग बुरे हैं। न जाओ। देख लिया कि बात गले नहीं उतरती। समझाने से अधिक अपने अधिकार को काम में नहीं लाते। ढोल गँवार सूद्र पसु नारी। ये सब ताड़न के अधिकारी : इस नीति को मन्थरा, सूर्पणखा, लङ्किनी और ताड़का को छोड़कर श्रीरामकथा में कहीं वर्तते नहीं देखा जाता। दक्ष कुमारी : कहने से तात्पर्य यह कि पिता का बड़ा पक्ष मन में है। क्रोध से भरी कहने लगीं कि यदि आपके चरणों में प्रेम है तो दूसरे जन्म में आपको पा जाऊँगी। यह कहकर अकेली चल पड़ीं। फिर भी अरक्षित नहीं भेजते। मुख्य गणों को साथ में कर दिया। प्रतिष्ठा के साथ विदा किया। त्रिपुरारि विदा कर रहे हैं, लौटेंगी नहीं।

पिता भवन जब गईं भवानी। दच्छ त्रास काहु न सनमानी ।।
सादर भलेहिं मिली एक माता। भगिनी मिली बहुत मुसुकाता ।।१।।

अर्थ : जब भवानी पिता के घर पहुँचीं तो दक्ष के डर से किसी ने उनका सम्मान नहीं किया। केवल एक माता आदर के साथ मिली। बहनें[1] भी मिलीं पर मुसुकराती हुई।

---

१. प्रसूतिं मानवीं दक्ष उपयेमेह्यजात्मजः। तस्यां ससर्ज दुहितॄः षोडशामललोचनाः ।।
त्रयोदशादाद्धर्माय तथैकामग्नये विभुः। पितृभ्य एकां युक्तेभ्यो भवायैकां भवच्छिदे ।।
भवस्य पत्नी तु सती भवं देवमनुव्रता। आत्मनः सदृशं पुत्रं न लेभे गुणशीलतः ।।
श्रीमद्भागवत

स्वायम्भू मनुने अपनी तीसरी पुत्री प्रसूति ब्रह्मा के पुत्र दक्ष को दी। दक्ष से प्रसूती को सोलह लड़कियाँ हुईं। उनमें से तेरह धर्म को, एक अग्नि को, एक पितरों को और एक शिवजी को दी। शिवजी की पत्नी का नाम 'सती' था। उन्हें कोई सन्तान नहीं हुई।

व्याख्या : वहाँ जाने पर दाक्षायणी : दक्ष की बेटी की दृष्टि से नहीं भवानी भव की स्त्री भवानी : की दृष्टि से देखी गई। भवानी के सम्मान की इच्छा सब को है। पर कोई करता नहीं। सब जानते हैं कि इनका आना दक्ष को इष्ट नहीं। इनका सम्मान करके दक्ष के कोप का भाजन कौन बने ? अतः शिवजी ने जो कहा था कि रहै न सील सनेह न कानी। सो कानि : प्रतिष्ठा : तो गई। माँ किसी अवस्था में भी वात्सल्य नहीं छोड़ सकती। अतः सादर मिलीं। बहन भी सब मिलीं। पर बहुत मुसुकुराती हुई। भाव यह कि आगई बिना बुलाए। जिस गौरव से मेरे पिता का अपमान किया था वह कहाँ रहा ! नेगजोग लेने के लिए भेज दिया। गहना नहीं। कपड़ा नहीं। बड़ा भारी नाम महादेव। नाम बड़ेरा दर्शन थोरा। इस भाँति प्रतिष्ठा नहीं हुई।

दच्छ न कछु पूछी कुसलाता। सतिहि बिलोकि जरे सब गाता ॥
सती जाइ देखेउ तब जागा। कतहुँ न दीख संभु कर भागा ॥२॥

अर्थ : दक्ष ने कुछ कुशल भी नहीं पूछी। सती को देखकर सारा शरीर जल उठा। तब सती ने जाकर यज्ञ देखा तो वहाँ शिवजी का भाग कहीं दिखाई न पड़ा।

व्याख्या : दक्ष ने भद्रता का भी पालन नहीं किया। कुशल भी नहीं पूछी। शील भी गया। सती को देखने से वात्सल्य का उदय तो दूर की बात है। यह भावना उठी कि इसी के पति ने मेरा अपमान किया था सो सारा शरीर जल उठा। स्नेह भी गया।

सती को भरोसा था कि मुझे देखते ही पिता सारी बातें भूल जायेंगे और जो कुछ बिगड़ी बात है सब बन जायगी। तुरन्त शिवजी को नेवता भेजा जायगा और सब व्यवहार प्रेममय हो जायगा। जब देखा कि पिता के स्नेह का लेश नहीं है तो यज्ञ देखने गईं कि कहीं ऐसा न हो कि शिवजी को यज्ञ में भाग न दिया हो सो सचमुच वहाँ शम्भु का भाग था ही नहीं।

तब चित्त चढ़ेउ जो संकर कहेऊ। प्रभु अपमानु समुझि उर दहेऊ ॥
पाछिल दुख न हृदय अस ब्यापा। जस यह भयउ महापरितापा ॥३॥

अर्थ : तब शिवजी ने जो कहा था वह बात याद आई। स्वामी का अपमान समझकर हृदय जल उठा। पहिला दुःख हृदय में वैसा नहीं व्यापा था जैसा कि यह महापरिताप हुआ।

व्याख्या : शिवजी के समझाने के समय कोई बात मन में नहीं बैठी। समझती थी कि मनोमालिन्य मिटाने का यही एक उपाय है कि मैं बिना बुलाये चली जाऊँ। अब यहाँ की व्यवस्था देखकर मोह का पर्दा हटा। शिवजी की बात प्रत्यक्ष ठीक दिखाई पड़ी। वस्तुतः यह यज्ञ ही शिवजी के अपमान के लिए रचा गया है। पति परित्याग का भारी दुःख था। परन्तु पति के अपमान का जो दुःख हुआ वह उससे कहीं बढ़ गया।

जद्यपि जग दारुन दुःख नाना । सब तें कठिन जाति अपमाना ।।
समुझि सो सतिहि भयउ अति क्रोधा । बहु विधि जननी कीन्ह प्रबोधा ।।४।।

अर्थ : यद्यपि जगत् में अनेक प्रकार के कठिन दुःख हैं पर स्वजाति से अपमानित होना सबसे कठिन है। यही सोचकर सती को अत्यन्त क्रोध हुआ। माता ने उन्हें बहुत तरह से समझाया बुझाया।

व्याख्या : महादेवजी को यज्ञ में भाग न देना इससे बढ़कर उनका क्या अपमान होगा ? इसका मतलब तो सीधे सीधे यही है कि देवजाति से महादेवजी का बहिष्कार हो गया। यह समझकर सती को अति क्रोध हुआ। अपने को सँभाल न सकीं। क्रोध के लक्षण व्यक्त हो चले। किसकी सामर्थ्य जो इस बीच में पड़े। पर माँ सती को दुःखी देखकर संग संग दौड़ी आई थीं सो आगे आईं। समझाने लगीं।

सवैया : पितुते अपमान बड़ो सनमान कह्यौ जिन वेद को भेद विचारयौ।
तेहि को झझकारन में अधिकार जो अंक में लै बहुभाँति दुलारयौ।
तुम नाहक ग्लानि सती उर आनि दुःखी अति होत न जात संभारयौ।
करिहै मनुहारि गये दिन चारि सोई जिन रोषते दोष निहारयौ।

दो. सिव अपमानु न जाइ सहि, हृदय न होइ प्रबोध।
सकल सभहि हठि हठकि तब, बोलीं वचन सक्रोध ।।६३।।

अर्थ : शिवजी का अपमान सहा नहीं गया और न मन समझाए समझता है। तब सारी सभा को हठ से रोककर क्रोध से वचन बोलीं।

व्याख्या : सती के क्रोध करने पर दक्ष तथा अन्य ठकुरसोहाती बोलनेवाले शिवजी की निन्दा करने लगे। उन्हें रोककर बोलीं। अथवा यज्ञ में सभासद होते हैं। उन्हीं के निरीक्षणावेक्षण में यज्ञ होता है। शिवजी के भाग न दिये जाने में वे भी अपराधी थे। उन्हें अपने काम से रोककर क्रोध से बोली। सिव अपमान न जाइ सहि। मनसा क्रोध। सकल सभहि हठि हटकि। कर्मणा क्रोध। और बोली वचन : वाचा क्रोध दिखलाया।

सुनहु सभासद सकल मुनिंदा। कही सुनी जिन संकर निंदा ।।
सो फलु तुरत लहब सब काहू। भली भाँति पछिताब पिताहू ।।१।।

अर्थ : हे सभासदो और सब मुनीश्वरो ! सुनो जिन लोगों ने यहाँ शिवजी की निन्दा कही या सुनी है उन सबको उसका तुरन्त फल मिलेगा। और पिता जी भी भली भाँति पछतायेंगे।

व्याख्या : उस यज्ञ में सब मुनि तथा यज्ञभाग पानेवाले सब देवता इकट्ठे थे। इसलिए सबको सम्बोधन करती हैं। सभा में प्रवेश नहीं करना चाहिए और यदि जाय तो यथार्थ कहे। चुप रह जानेवाला या अन्याय कहनेवाला समान पापी होता है। यथा : सभायां न प्रवेष्टव्यं वक्तव्यं वासमञ्जसम्। अब्रुवन् विब्रुवन् वापि

नरो भवति किल्विषी। अतः जिसने शङ्कर की निन्दा की वह पापी है और जिसने सुनकर प्रतिवाद न किया चुप रह गया वह भी समान पापी है।

अत्युग्र पुण्य पाप का फल यहीं मिल जाता है। चाहे तीन दिन भीतर मिले, तीन महीने भीतर मिले या तीन वर्ष के भीतर मिले। यथा : अत्युग्रपुण्यपापानामिहैव फलमश्नुते। त्रिभिर्वर्षैस्त्रिभिः पक्षैस्त्रिभिर्मासैस्त्रिभिर्दिनैः। अथवा मेरी आज्ञा से तुरन्त फल मिलेगा। इन सबके कारण पिताजी हैं। इनकी भारी दुर्गति होगी और इनका कोई पुरुषार्थ न चलेगा तब पछतायेंगे।

संत संभु श्रीपति अपवादा। सुनिय जहाँ तहँ असि मरिजादा॥
काटिअ तासु जीभ जो बसाई। श्रवन मूँदि न त चलिअ पराई॥२॥

अर्थ : सन्त, शम्भु और विष्णु भगवान् की निन्दा जहाँ सुनी जाय वहाँ ऐसी मर्यादा है कि वश चले तो उसकी जीभ काट ले और नहीं तो कान बन्द करके वहाँ से भाग चले।

व्याख्या : क्योंकि यहाँ अन्याय की पराकाष्ठा हो गई। साक्षात् शङ्कर की निन्दा की जा रही है। और मर्यादा यह है कि सन्त, शम्भु और विष्णु के निन्दक का जिह्वाछेदन करना चाहिए। और यदि अपना वश न चले तो कान बन्द करके वहाँ से भाग जाना चाहिए। जिसमें और निन्दा के शब्द कान में न पड़ें। इसमें दोनों का हित होता है। 'होहिं उलूक संत निंदारत। मोहनिसाप्रिय ज्ञान भानुगत। हरगुरु निंदक दादुर होई। जन्म सहस्र पाव तन सोई। निन्दक को दण्ड हो जाने से वह शुद्ध हो जाता है और दण्ड देनेवाला निन्दाश्रवण के पास से बच जाता है। यदि दण्ड देने में असमर्थ हो तो कान मूँदकर भाग जाने से इस महान् पातक से अपनी रक्षा कर ले। पर यहाँ इन लोगों में से न किसी ने निन्दक को दण्ड दिया और न कोई सभा छोड़कर बाहर गया। अतः यह सभा पापियों की हो गई।

जगदातमा महेसु पुरारी। जगत जनक सब के हितकारी॥
पिता मंदमति निंदत तेही। दच्छ सुक्र संभव यह देही॥३॥

अर्थ : जो जगत् की आत्मा है, जो महेश्वर है, त्रिपुरान्तक है, जगत् का पिता है और जगत् का हित करनेवाला है उसकी निन्दा मन्दमति पिता कर रहा है और इसी दक्ष के वीर्य से यह देह उत्पन्न हुआ है।

व्याख्या : जो अपनी ही आत्मा, अपने ही स्वामी, अपने ही रक्षक, अपने ही पिता और अपने ही हितकारी की निन्दा करे वह मन्दमति है और जो जगदात्मा, जगत् स्वामी जगद्रक्षक जगत् पिता और जगत् के हितकारी की निन्दा करे उसे क्या कहा जाय। ऐसे अत्याचारी के शुक्र से मेरा स्थूल शरीर बना है। यह रखने योग्य नहीं है।

तजिहौं तुरत देह तेहि हेतू। उर धरि चन्द्रमौलि बृषकेतू॥
अस कहि जोग अगिनि तनु जारा। भयउ सकल मख हाहाकारा॥४॥

अर्थ : इसलिए चन्द्रमौलि वृषकेतु को हृदय में रखकर मैं देह का परित्याग करूँगी। ऐसा कहकर योगाग्नि से शरीर को भस्म कर दिया और सारी यज्ञशाला में हाहाकार मच गया।

व्याख्या : अपने आश्रित : चन्द्र : को शिर पर धारण करनेवाले धर्म के एक मात्र शरण को हृदय में धारण करके तुरन्त देह को त्यागूँगी। मेरे लिए यही एक मात्र उपाय शिव विरोधी से सम्पर्क त्याग का है। ऐसा कहकर दक्ष की यज्ञशाला में उत्तर मुख बैठ गईं। चुप हो गईं। आँखें बन्द कर लीं। प्राणापान को समान करके उदान के सहित नाभि चक्र से उठाया। फिर धीरे से हृदय में स्थापित किया। फिर वहाँ से उठाकर कण्ठ में फिर भ्रूमध्य में स्थापित किया। फिर अपने शरीर में वायु और अग्नि की धारणा की। इस भाँति शिव जी के चरणों का ध्यान करती हुई सती ने समाधिज अग्नि से अपने शरीर को भस्म कर दिया। सम्पूर्ण यज्ञशाला में हाहाकार मच गया। दक्ष का भय भी लोगों को हाहाकार करने से रोक न सका।

दो. सती मरनु सुनि संभु गन, लगे करन मख खीस।
जग्य बिधंस बिलोकि भृगु, रक्षा कीन्हि मुनीस ॥६४॥

अर्थ : सती का मरना सुनकर रुद्रगण यज्ञ विध्वंस करने लगे। यज्ञ का विध्वंस देखकर मुनीश्वर भृगुजी ने उसकी रक्षा की।

व्याख्या : हाहाकार सुना। स्पष्ट शब्दों में लोगों के मुख से दक्ष की निन्दा सुनी कि इसके अत्याचार से सती ने शरीर त्याग दिया। तब शिवजी के पार्षद हथियार उठाये हुए दक्ष को मारने तथा यज्ञ विध्वंस के लिए उद्यत हुए। उनके वेग को देखकर यज्ञविध्वंसकों के नाशक यजुमन्त्रों से भृगुजी ने दक्षिणाग्नि में आहुति दी। उससे ऋभु नाम के हजारों देवता उत्पन्न हुए। उन्होंने रुद्रगणों को मार भगाया।

समाचार सब संकर पाए। बीरभद्रु करि कोपु पठाए॥
जग्य बिधंस जाइ तिन कीन्हा। सकल सुरन्ह बिधिवत फलु दीन्हा॥१॥

अर्थ : सब समाचार शिवजी को मिला। तब उन्होंने क्रोध करके वीरभद्र को भेजा। उन्होंने जाकर यज्ञविध्वंस किया और सारे देवताओं को विधिवत् फल दिया।

व्याख्या : नारदजी ने सब समाचार अर्थात् शिवजी की निन्दा होने पर सती का शरीर त्याग और भृगुजी के उत्पन्न किये हुए देवगणों से रुद्रगणों के पराभव का समाचार शिवजी को सुनाया। तब उन्होंने अत्यन्त क्रोध किया। उनकी जटा से वीरभद्र उत्पन्न हुए। उन्हें अपने गणों का अग्रणी बनाकर भेजा।

वीरभद्र जी ने जाकर यज्ञविध्वंस किया। इनके ऊपर यज्ञविघ्ननाशकारी मन्त्रो का बल न चला। वीरभद्रजी अत्यन्त क्रुद्ध थे फिर भी फल देने में अविधि न होने पाई। जो दाँत निकालकर हँसे थे उनका दाँत तोड़ा गया। जिन्होंने आँख से इशारा किया था उनकी आँख फोड़ी गई। जिन्होंने दाढ़ी हिलाकर अनुमोदन किया था उनकी दाढ़ी नोची गई। भाव यह कि भगवान् वीरभद्र के सामने देवताओं का पराक्रम कुछ न ठहरा। यहाँ 'सुरन्ह' शब्द उपलक्षण है। ऋषि भी इन्हीं के अन्तर्गत हैं।

भै जग विदित दच्छ गति सोई । जसि कछु संभु विमुख कै होई ॥
यह इतिहास सकल जग जानी । तातें मैं संक्षेप बखानी ॥२॥

अर्थ : दक्ष की जगत् प्रसिद्ध वही गति हुई जैसी कि शिव विमुख की होती है। यह इतिहास तमाम संसार जानता है। इसलिए मैंने संक्षेप में वर्णन किया।

व्याख्या : आज भी लोग शङ्कर की पूजा के बाद बकरे का-सा शब्द गाल बजाकर उच्चारण करते हैं जिसमें शङ्कर प्रसन्न हों। कारण यह कि देवताओं को विधिवत् दण्ड देने के बाद दक्ष का शिर काटकर दक्षिणाग्नि में ही होमा गया। जिसमें आहुति देकर भृगु ऋषि ने यज्ञविघ्न नाशक ऋभु देवों को उत्पन्न किया था। तत्पश्चात् ब्रह्मादिक की स्तुति से प्रसन्न होकर शिवजी ने बकरे का शिर दक्ष के शरीर में जोड़ दिया। दक्ष ने जीकर बकरे-सा ही शब्द किया। इस पर भगवान् प्रसन्न हो गये। यही जानकर संसार बकरे का सा शब्द करता है। यह दक्ष की जगत् विदित गति है। उस समय सन्त्रस्त देवताओं ने जो स्तुति की है वही रुद्री कहलाती है। महाभारत द्रोणपर्व में पौराणिक शतरुद्री है।

अतः यह इतिहास संसार जानता है। इस कारण से ग्रन्थकार ने संक्षेप में कहा। फिर भी दक्ष की दुर्दशा अपने मुख से स्पष्ट नहीं कही : जस कछु संभु विमुख कर होई। कहकर समाप्त कर दिया। यह ग्रन्थकार की सज्जनता है।

सतीं मरत हरि सन बर माँगा । जनम जनम सिव पद अनुरागा ॥
तेहि कारन हिमगिरि गृह जाई । जनमी पारबती तनु पाई ॥३॥

अर्थ : मरते समय सती ने हरि से वर माँगा कि जन्म-जन्म में शिवजी के चरणों में प्रेम हो। इस कारण हिमवान् के घर जाकर पार्वती शरीर धारणकर जन्म लिया।

व्याख्या : योगाग्नि प्रकट करने के समय हरि वरद होकर प्रकट हुए। पहिले जो प्रार्थना[1] की थी। उसे पूरा करके अब क्या चाहती हो ऐसा बोले। भगवती ने जन्म-जन्म में शिवचरणानुराग माँगा। यह सती का सतीत्व है।

शिवजी का ध्यान करते हुए योगाग्नि से शरीर छोड़नेवाले का पुनर्जन्म नहीं होता। यथा : तजि जोग पावक देह हरिपद लीन भइ जहँ नहिं फिरे। परन्तु हरि से पुनर्जन्म के लिए वर माँगा था। इसलिए हिमगिरि गृह में जनमीं। हिम ऋतु का आरम्भ सूचित करते हैं। यथा : हिम हिमसैलसुता सिव ब्याहू। गृह कहकर सूचित किया कि हिमगिरि से कोई भौतिक पहाड़ न समझ लें। यहाँ पर्वत के अधिष्ठातृ देवता से तात्पर्य है। त्रेता के आदि में चैत्रसुदी नवमी अर्धरात्रि को भगवती का जन्म हुआ।

---

१. तौ सब दरसी सुनहु प्रभु करहु सो वेगि उपाय।
होय मरन जेहि विनहि श्रम दुसह विपत्ति विहाय॥

जब तें उमा सैल गृह जाई। सकल सिद्धि संपत तहँ छाई ॥
जहँ तहँ मुनिन्ह सुआस्रमु कीन्हें। उचित वास हिम भूधर दीन्हें ॥४॥

अर्थ : जब से उमा ने हिमवान् के घर जाकर जन्म लिया तब से वहाँ सारी सिद्धियाँ और सम्पत्ति छा गई। मुनियों ने जहाँ तहाँ अच्छे अच्छे आश्रम बना लिये। हिमवान् ने उन्हें यथोचित स्थान दिये।

व्याख्या : यद्यपि तप से विरत करने के लिए माँ का उमा उच्चारण करना उमा नाम पड़ने का हेतु बतलाया जाता है पर भगवती का सदा से उमा नाम है। उमा में भी वे ही अक्षर हैं जो प्रणव में हैं। इसलिए उमा को देवी प्रणव कहा गया है।

जगदम्बा के अवतार ग्रहण करते ही हिमालय पर सिद्धि और सम्पत्ति छा गई। सिद्धि सम्पत्ति का छा जाना अवतार का सूचक है। यथा : जा दिन ते हरि गर्भहिं आये। सकल लोक सुख संपति छाये। सिद्धि प्राप्ति के लिए मुनियों का आगमन प्रारम्भ हुआ। हिमगिरि की ओर से भी यथायोग्य सत्कार होने लगा।

दो. सदा सुमन फल सहित सब, द्रुम नव नाना जाति।
प्रकटीं सुन्दर सैल पर, मनि आकर बहु भाँति ॥६५॥

अर्थ : पर्वत पर भाँति भाँति के नवीन वृक्ष सदा फल फूल सहित हुए और मणियों की अनेक प्रकार की खानें प्रकट हुईं।

व्याख्या : प्रकृति में परिवर्तन कहते हैं। अथवा मुनिगण आगये। उनके सत्कार के लिए : सदा सुमन फल सहित सब द्रुम नव नाना भाँति : प्रकटे। ऐसा कहकर सिद्धि का आना द्योतित किया। अब : मनि आकर बहु भाँति : का प्रकटना कहकर सम्पत्ति का छा जाना कहते हैं।

जिस भाँति सती की कथा वन है उसी भाँति गिरिजा की कथा बाग है। सब सुख ही सुख हुआ।

सरिता सब पुनीत जलु बहहीं। खग मृग मधुप सुखी सब रहहीं ॥
सहज बयरु सब जीवन्ह त्यागा। गिरि पर सकल करहिं अनुरागा ॥१॥

अर्थ : सारी नदियाँ पवित्र जल बहाने लगीं। पक्षी, पशु, भौंरे सब सुखी रहने लगे। जीवों ने स्वाभाविक वैर छोड़ दिया। पर्वत पर सब प्रेम करने लगे।

व्याख्या : नदी में निर्मल जल का प्रवाह महानुभाव की उपस्थिति का सूचक है। यथा : बह सरयू अति निर्मल नीरा। खग मृग एक दूसरे से भयभीत रहते हैं। यथा : सहवासी काचो गिलहिं पुरजन पाक प्रवीन। कालछेप केहि मिलि करहिं तुलसी खगमृग मीन। मधुप मधु छीने जाने के भय से दुर्गम स्थानों में छत्ते लगाते हैं। वहाँ भी बन्दरों की बाधा रहती है। यहाँ सुखी रहने लगे।

कुछ जीवों में सहज वैर है। यथा : काक उलूक में, अश्व महिष में, मूषक विलाव में, गज सिंह में। जगजननी के आगमन से उन जीवों का सहज वैर उस

पर्वत पर नहीं रह गया। यथा : अहिंसा प्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्यागः। अहिंसा की प्रतिष्ठा होने से उनके सन्निकट वैर छूट जाता है। वहाँ तो प्रेम करते थे। पर्वत के नीचे आने पर फिर वही हालत हो जाती थी। यथा : खगहा करि हर बाघ वराहा। देखि महिष वृष साज सराहा। वैर विहाइ चरैं इक संगा। जहँ तहँ मनहुँ सेन चतुरंगा।

सोह सैल गिरिजा गृह आएं। जिमि जन राम भगति के पाएं ॥
नितनूतन मंगल गृह तासू। ब्रह्मादिक गार्वाहं जसु जासू ॥२॥

अर्थ : घर में गिरिजा के आने से पर्वत की ऐसी शोभा हुई जैसी रामभक्ति पाकर मनुष्य की होती है। जिसका यश ब्रह्मा आदिक गान करते हैं उसके घर नित्य नये मङ्गल[1] हैं।

व्याख्या : रामभक्ति की प्राप्ति से जन की शोभा हो जाती है। महाप्रभावा भगवती भक्ति के प्रभाव से उसके निकट काम क्रोध लोभ मोहादि नहीं आते। उसका अविद्यान्धकार मिट जाता है। उसके लिए विष अमृत और शत्रु मित्र हो जाता है। वही वास्तव में सुखी होता है। उसे मानस रोग नहीं होते। सपने में भी उसे दुःख का लेश नहीं होता। यथा : राम भगति चिंतामनि सुन्दर। बसइ गरुड़ जाके उर अन्तर। खल कामादि निकट नहि जाहीं। बसइ भगति जाके उरमाहीं। गरल सुधा सम अरिहित होई। तेहि मनि विनु सुख पाव न कोई। इत्यादि। जिस भाँति हृदय में भक्ति की प्राप्ति से पूर्ण रूपेण सुखी होकर प्राणी शोभा को प्राप्त होते हैं उसी भाँति पर्वतराज भी भगवती गिरिजा के पादार्पण से सब प्रकार की सुख समृद्धि से युक्त होकर शोभा को प्राप्त हुए।

गिरिजा के आने से गिरिराज की ऐसा महिमा बढ़ी कि ब्रह्मादिक देव पर्वत-राज का यशोगान करने लगे। उनके भाग्य की सराहना करने लगे। और उनके घर नित्य नया मंगल होने लगा। नये मङ्गल के लिए सर्वमङ्गला, मङ्गलागौरी का लोग पूजन करते हैं। सो जहाँ वे स्वयं अवतीर्ण हैं वहाँ नित्य नया मङ्गल क्यों न हो।

नारद समाचार सब पाए। कौतुकहीं गिरि गेह सिधाए ॥
सैलराज बड़ आदर कीन्हा। पद पखारि वर आसनु दीन्हा ॥३॥

अर्थ : नारद ने सब समाचार पाया तो कौतुक के लिए हिमवान् के घर आये। पर्वतराज ने बड़ा आदर किया और पाँव धोकर श्रेष्ठ आसन दिया।

व्याख्या : ब्रह्मदेव के मुख से बारबार यशोगान सुना। इसलिए कहते हैं कि : नारद समाचार सब पाये। कौतुकी मुनि हैं। यथा : मुनि कौतुकी नगर तेहि गएऊ।

---

१. मङ्गलमभिप्रेतार्थसिद्धिः। मङ्गललक्षणम्।
प्रशस्ताचरणं नित्यमप्रशस्तस्य वर्जनम्। एतद्धि मङ्गलं प्रोक्तं ऋषिभिस्तत्त्वदर्शिभिः।
चाहे हुए अर्थ की सिद्धि को मङ्गल कहते हैं। नित्य अच्छे काम करना बुरा न करना, इसी को तत्त्वदर्शी ऋषियों ने मङ्गल बतलाया है।

ब्रह्मलोक से मृत्युलोक में कौतुक के लिए चले आये क्योंकि कौतुकियों को आलस्य नहीं होता। यथा : तो कौतुकिअन्ह आलस नाहीं। पर इनके कौतुक का सदा कल्याण लक्ष्य रहता है।

पर्वतराज साधुसेवी हैं। मुनियों का आदर अपने यहाँ उचित स्थान देकर किया करते हैं। नारद जी तो देव ऋषि हैं। इसलिए इनका बड़ा आदर किया। इनके पैर धोये और उत्तम आसन पर बिठाया।

नारि सहित मुनि पद सिरु नावा। चरन सलिल सबु भवनु सिंचावा॥
निज सौभाग्य बहुत गिरि बरना। सुता बोलि मेली मुनि चरना॥४॥

अर्थ : हिमवान् ने स्त्री के सहित मुनि के चरणों में शिर नवाया और उनके चरणोदक को सारे घर में छिड़कवाया। अपने भाग्य की बड़ी सराहना की और बेटी को बुलाकर मुनिजी के चरणों में डाल दिया।

व्याख्या : सस्त्रीक होकर शिर नवाना तथा चरणोदक से सम्पूर्ण घर को सिञ्चित करना गुरु के समान आदर करना है। यथा : गहे चरन सिय सहित बहोरी। बड़े के आगमन पर ही अपने सौभाग्य के वर्णन की विधि है। क्योंकि उसका पर्यवसान बड़े की स्तुति में होता है। बेटी के कल्याण के लिए उसे लेकर मुनिजी के चरणों में डाल दिया। अथवा उसके भविष्य के विषय में प्रश्न करना है : इसलिए चरणों में डाल दिया।

दो. त्रिकालग्य सर्वग्य तुम्ह, गति सर्वत्र तुम्हारि।
कहहु सुता के दोष गुन, मुनिवर हृदय विचारि॥६६॥

अर्थ : हिमवान् ने कहा : आप त्रिकालज्ञ हैं। आप की सर्वत्र गति है। हे मुनिवर ! हृदय से विचारकर बेटी के दोष और गुण कहिये।

व्याख्या : योगी लोग प्रज्ञालोक के प्रभाव से वस्तु विशेष का भूत भविष्य जान लेते हैं। इस भाँति त्रिकालज्ञ होते हुए भी सर्वज्ञ नहीं होते। नारद जी त्रिकालज्ञ भी हैं, सर्वज्ञ भी हैं और इनकी सर्वत्र गति है। अव्याहत गति हैं, सभी विषयों में सभी लोकों में गति है। कहीं रोक नहीं है। यथा : नारद को परदा न नारद सो पारखी। इससे गिरजा के योग्य वर की ओर इङ्गित हैं। यथा : कुंअरि सयानि विलोकि मातु पितु सोचहिं। गिरिजा जोगु मिलिहि वर अनुदिन लोचहिं। पा. मं.। केवल गुण और केवल दोष की जगत् में स्थिति भी नहीं है। इसलिए दोष गुण दोनों पूछते हैं। दोष लक्षित नहीं होता है। अतः जिज्ञासा में प्रधानता दोष को है। इसलिए दोष को ही पहिले कहा।

कह मुनि विहँसि गूढ़ मृदु बानी। सुता तुम्हारि सकल गुनखानी॥
सुंदर सहज सुसील सयानी। नाम उमा अंबिका भवानी॥१॥

अर्थ : मुनिजी हँसकर गूढ़ और मृदुबानी बोले। तुम्हारी बेटी सब गुणों की

खानि है। स्वभाव से ही सुन्दर सुशील और सयानी है। इसके नाम उमा, आम्बिका और भवानी हैं।

व्याख्या : माता-पिता के वात्सल्य पर हँस[1] पड़े और मृदुवानी बोले १. कि तुम्हारी बेटी सब गुणों की खानि है। यही गूढ़ वाणी है। तीनों गुण सत्त्व, रज और तम की खानि तो साक्षात् मूल प्रकृति हैं २. सहज सुन्दर अर्थात् शृंगारादि की अपेक्षा नहीं है। स्त्री यदि सुशील न हुई तो सुन्दरता अकिञ्चित्कर है। इसलिए ३. सुशील कहते हैं। इतना होने पर भी यदि मतिमन्द हो तो सब गुण फीके पड़ जाते हैं। इसलिए ४. सयानी कहते हैं और फिर वाक्य की गूढ़ता यह है कि नाम बतलाने लगते हैं। इतनी बड़ी कन्या का नाम माता-पिता से पूछना चाहिए न कि माता-पिता को उसका नाम बतलाना चाहिए। सो ५. वेदोक्त नाम, उमा : प्रणव : अम्बिका और भवानी बतलाकर उनका अनादि शक्ति होना द्योतित करते हैं।

सब लच्छन सम्पन्न कुमारी। होइहि संतत प्रियहि पिआरी॥
सदा अचल एहि कर अहिवाता। इहि तें जसु पैहहिं पितुमाता॥२॥

अर्थ : लड़की सब लक्षणों से युक्त है। यह अपने पति की सदा प्यारी होगी। इसका सोहाग सदा अचल रहेगा। इसके माता-पिता यश पावेंगे।

व्याख्या : सदा अचल अहिवात कहकर वर और कन्या दोनों को अमर कहा। सब लक्षण सम्पन्न कहकर भी छः लक्षण गिनाते हैं। पाँच गुण पहिले गिना आए हैं। एवं अब ग्यारह विशेषण देकर इनका रुद्राणी होना सूचित करते हैं। १. सदा पति की प्रियतमा होना। यथा : वरदायिनी त्रिपुरारि पिआरी। २. अहिवात का सदा अचल होना। ३. इनसे पिता माता को यश मिलना। पुत्र मेनाक से वैसा यश नहीं। यथा : ब्रह्मादि सुरनर नाग अति अनुराग भाग बखानहीं पा. मं.।

होइहि पूज्य सकल जग माहीं। एहि सेवत कछु दुर्लभ नाहीं॥
एहि कर नामु सुमिरि संसारा। त्रिय चढ़िहहिं पतिव्रत असिधारा॥३॥

अर्थ : यह सारे जगत् में पूज्य होगी। इसकी सेवा करने से कुछ भी दुर्लभ न होगा। संसार में इसका नाम स्मरण करके स्त्रियाँ पतिव्रत रूपी तलवार की धार पर चढ़ जायँगी।

व्याख्या : ४. बिना इनकी पूजा के कोई सुखी नहीं हो सकेगा। शैव वैष्णव आदि सभी इनकी पूजा करेंगे। यथा : देवि पूजि पद कमल तुम्हारे। सुर नर मुनि सब होहिं सुखारे। ५. इनकी सेवा करने से अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष चारों में से कोई दुर्लभ नहीं। चारों सुलभ हैं। यथा : सेवत तोहि सुलभ फल चारी। ६. इनके नाम स्मरण से पतिव्रत रूपी खड्गधार पर चढ़ने की सामर्थ्य होती है। अतः यह अनादि

---

१. जिसकी देह से उत्पन्न होकर भगवती कौशिकी ने अभी शुम्भ निशुम्भ का वध किया है, उसे ये सीधे-सीधे बेटी मान रहे हैं।

देवी हैं। पतिव्रताओं में प्रथम रेखा इन्हीं की है। यथा : पति देवता सुतीय महँ मातु प्रथम तव रेख।

सैल सुलच्छन सुता तुम्हारी। सुनहु जे अब अवगुन दुइ चारी ॥
अगुन अमान मातु पितु हीना। उदासीन सब संसय छीना ॥४॥

दो. जोगी जटिल अकाम मन, नगन अमंगल भेख।
अस स्वामी इह कहँ मिलिहि, परी हस्त असि रेख ॥४॥

अर्थ : हे गिरिराज ! तुम्हारी बेटी सुलच्छनी है। अब दो चार दोष हैं उन्हें भी सुनो। अगुन, अमान, मातृ-पितृ हीन, उदासीन, क्षीणसंशय, योगी, जटिल, कामरहित मनवाला, नंगा, अशुभ वेषवाला। ऐसा स्वामी इसको मिलेगा। ऐसी रेखा इसके हाथ में पड़ गई है।

व्याख्या : शैलराज ने दोषगुण पूछा था। पर नारदजी गुण दोष कहते हैं। जो कहीं दोष पहिले कह देते तो गुण सुनाने का अवसर ही न मिलता। सकल गुनखानी से उपक्रम सब लच्छन सम्पन्न कुमारी से अभ्यास और सुलच्छिनी से उपसंहार करते हैं। गुण बहुत हैं। दोष दो ही चार हैं और वे भी पतिविषयक हैं। पति विषयक अवगुण भी पत्नी में समझे जाते हैं। इसलिए उमा का अवगुण कहते हैं। यही मुनिजी का कौतुक है। उमा को तप के लिए भेजना चाहते हैं जिसमें उनका परम कल्याण हो। दोष न दिखावें तो माता-पिता तप के लिए आज्ञा देंगे नहीं। अतः पतिविषयक ऐसे विशेषण देंगे जो महादेव में जाकर गुण हो जाते हैं। सामान्य जीव के लिए तो महा अवगुण हैं। उन्हीं विशेषणों को जो संख्या में दस हैं दोष कहकर गिनाने हैं। यह गूढ़ वाणी है। १. अगुन : गुण से परे या निर्गुणी। २. अमान अपरिच्छिन्न या उपेक्षित। ३. मातृपितृहीन : स्वयंभू या अनाथ। ४. उदासीन : रागद्वेष रहित या उदासी। ५. क्षीणसंशय : ज्ञानी या नरपशु। ६. योगी : योगेश्वर या भिक्षुक। ७. जटिल : लौकिक-संस्कार से परे या विरक्त ! ८. नगन : मायावरण रहित या निर्लज्ज। ९. अकाममन : कामजयी या नपुंसक। १०. अमंगल वेष : शिवधाम या अघोरी : परी हस्त असरेख। अन्यथा हो ही नहीं सकता।

सुनि मुनि गिरा सत्य जिय जानी। दुख दंपतिहि उमा हरखानी ॥
नारदहू यह भेद न जाना। दसा एक समुझब बिलगाना ॥१॥

अर्थ : मुनि की बात सुनकर और उसे हृदय से सत्य जानकर दोनों प्राणियों को दुःख हुआ और उमा हर्षित हुईं। नारद ने भी इस मर्म को न जाना क्योंकि सबकी दशा एक सी थी। केवल समझने में भेद था।

व्याख्या : मुनि में विश्वास है कि मुनि की वाणी मिथ्या हो ही नहीं सकती। ऐसी गुणवती मेरी कन्या और उसे ऐसा निर्गुणी वर मिलेगा। इस बात का हिमवान् और मेना को दुःख हुआ। शङ्कर भगवान् में ये सब लक्षण घटते हैं। अतः वर रूप में उनकी प्राप्ति की आशा से उमा हर्षित हुईं।

मेना-हिमवन्त शोक से विह्वल, उमा प्रेम में विह्वल अतः बाह्य दशा सबकी एक सी हुई। नारद सों परदा न नारद सो पारखी। सो ऐसे पारखी भी यह न परख सके कि किसे शोकाश्रु है और किसे आनन्दाश्रु है। शोक और हर्ष दोनों के अनुभाव अश्रु और पुलक हैं। अनुभाव एक से होने से भेद का पता न चला।

सकल सखी गिरिजा गिरि मैना। पुलक सरीर भरे जल नैना॥
होइ न मृषा देवरिषि भाखा। उमा सो वचनु हृदय धरि राखा॥२॥

अर्थ : सारी सखियाँ, उमा हिमवान् और मेना के शरीर पुलकित हो गये। आँखों में आँसू भर आये। देवर्षि का कहा झूठ न होगा। यह बात उमा ने हृदय में रख ली।

व्याख्या : पिछली चौपाई में जो दो बातें कही थीं : १. दसा एक और २. समुझव बिलगाना। उनमें से दसा एक को स्पष्ट कर रहे हैं कि सभी सखियों के तथा गिरिजा, गिरि और मैना के शरीरों में पुलक हो उठा था और आँखों में आँसू छलछला उठे थे। अब 'समुझव बिलगाना' को स्पष्ट कर रहे हैं। उमा तो यह समझ रही हैं कि नारदजी समस्त देवताओं में ऋषि हैं। इनका कहा अन्यथा कैसे होगा। इसलिए उस वचन को गाँठ बाँध लिया।

उपजेउ सिव पद कमल सनेहू। मिलन कठिन मन भा संदेहू॥
जानि कुअवसरु प्रीति दुराई। सखी उछंग[1] बैठि पुनि जाई॥३॥

अर्थ : शिवजी के चरण कमलों में स्नेह उत्पन्न हुआ। पर मन में सन्देह हुआ कि मिलना कठिन है। कुअवसर जानकर प्रीति को छिपा लिया और जाकर सखी की गोद में बैठ गईं।

व्याख्या : नारद के वचन से शिवपद में प्रेम उपजा। इसीलिए नारद जी को गुरु माना। यथा : गुरु के वचन प्रतीत न जेही। सपनेहु सुलभ न सुख सिधि तेही। नारद वचन न मैं परिहारऊँ। इत्यादि। स्नेह तो बीज भाव से था ही। उसके उद्बोधन के कारण शिवजो का गूढ़ भाव से वर्णन हुआ। स्नेह बढ़ने से मिलने की इच्छा हुई। पर वह कठिन बात थी। क्योंकि त्याग कर चुके थे। नारदजी आशा दिलाते हैं कि : अस स्वामी एहि कहँ मिलिहि। पर अभी निश्चय कुछ नहीं। इससे सन्देह हुआ।

पिता-माता की अनुज्ञा नहीं हुई है। अतः प्रीति के प्रकट करने का उपयुक्त अवसर न था। नारद वचन से उद्बोधित प्रीति को छिपाया। सखी के उछङ्ग गोद से लेकर नारदजी के पैरों में डाला था। जबतक हाथ देखकर फल कहते थे तबतक वहीं बैठी थीं। जब कह चुके तो फिर सखी की गोद में चली गईं।

झूठि न होइ देवरिषि बानी। सोचहिं दंपति सखी सयानी॥
उर धरि धीर कहइ गिरिराऊ। कहहु नाथ का करिअ ऊपाऊ॥४॥

---

१. 'क्षत्सप्सां छः' इस सूत्र से 'त्स' का छ होकर 'उत्सङ्ग' का 'उछंग' रूप सिद्ध हुआ।

अर्थ : देव ऋषि की वाणी झूठी न होगी। यह बात दोनों प्राणी : मेना हिमवान् और चतुर सखियाँ सोचने लगीं। हृदय में धैर्य धारण कर हिमवान् ने कहा : हे नाथ ! कहिये, क्या उपाय किया जाय ?

व्याख्या : दम्पति और सखी सयानी भी यही समझती हैं कि देवऋषि का कथन अन्यथा नहीं हो सकता। पर उन्हें शोक है क्योंकि उनके समझने में उक्त विशेषणविशिष्ट वर के मिलने से उमा का जीवन ही नष्ट हो जायगा। शोक से धैर्य छूट गया है। कुछ कहते नहीं बनता। धैर्य धारणकर हिमवान् बोले : अब आप ही उपाय भी बतलावें जिससे यह कुयोग मिट जाय। हिमवान् के धैर्य की बड़ी प्रशंसा है। धैर्येण हिमावानिव।

दो. कह मुनीस हिमवंत सुनु, जो विधि लिखा लिलार।
देव दनुज नर नाग मुनि, कोउ न मेटनिहार ॥६८॥

अर्थ : मुनीश ने कहा : हे हिमवान् ! सुनो जो ब्रह्मदेव ने ललाट में लिख दिया है। उसे देव. दनुज, नर, नाग, मुनि कोई मिटाने वाला नहीं है।

व्याख्या : भाव यह कि ललाट का लेख और हाथ की रेखा एक ही बात है। ललाट का लेख छिपा रहता है पढ़ा नहीं जाता। अतः हस्तरेखा से ललाट के लेख का पता चलता है। त्वचा के हटने पर ललाट का लिखा पढ़ा जा सकता है। यथा : जरत बिलोकेउँ जबहिं कपाला। विधि के लिखे अंक निज भाला। नर के कर आपन बध बाँची। हंसेउँ जानि विधि गिरा असाँची। देव, दनुज, नर, नाग, मुनि तो विधि की सृष्टि में हैं उनका सामर्थ्य नहीं कि स्रष्टा के लेख को मिटा सकें। प्रारब्ध कर्म का उल्लेख ललाट पटल में कर दिया जाता है जिस भाँति कैदियों के गले की तख्ती में उनके अपराधादि का उल्लेख रहता है।

तदपि एक मैं कहेउँ उपाई। होइ करइ जौ दैउ सहाई ॥
जस वरु मैं बरनेउं तुम्ह पाहीं। मिलहि उमहिं तस संसय नाहीं ॥१॥

अर्थ : फिर भी मैं एक उपाय कहता हूँ। यदि प्रारब्ध साथ दे तो हो सकता है। जैसा वर मैंने तुमसे वर्णन किया है वैसा ही उमा को मिलेगा इसमें सन्देह नहीं है।

व्याख्या : यहाँ पर प्रारब्ध और पुरुषार्थ के वलाबल का वड़ा ही सुन्दर विचार किया गया है। जैसा प्रारब्ध है वैसा होकर रहेगा। इसमें सन्देह को स्थान नहीं है। फिर भी पुरुषार्थ को एक बारगी कोई स्थान न हो यह बात नहीं है। प्रारब्ध को हस्त रेखा ज्योतिष आदि शास्त्रों से निश्चय करके ऐसा उपाय : पुरुषार्थ करें जो प्रारब्ध के अनुकूल हो। प्रारब्ध उसका साथ दे सके। प्रारब्ध के प्रतिकूल पुरुषार्थ करना व्यर्थ है। पुरुषार्थ ऐसा होना चाहिए कि प्रारब्ध की घटना ज्यों की त्यों घटने दें पर सुख दुःख के तारतम्य में भेद पड़ जाय। अतः एक उपाय नारदजी बतलाते हैं पर उसका सिद्ध होना प्रारब्ध के साथ देने पर निर्भर करता है। अतः नारदजी कहते हैं कि वर तो उमा को वैसा ही मिलेगा। यह प्रारब्ध है मिट नहीं सकता और वैसा वर मिलने से उमा के दुःख का पारावार नहीं। अब पुरुषार्थ यह

करना है कि ऐसा वर खोजा जाय जिसमें ये सब बातें हों फिर भी उमा को दुःख न होकर परम सुखकारी हो।

जे जे वर के दोष बखाने। सब सिव पहिं मैं अनुमाने॥
जौ विवाहु संकर सन होई। दोषौ गुन सम कह सबु कोई॥२॥

अर्थ : मैंने वर के जो जो दोष कहे हैं मैं अनुमान करता हूँ कि वे सब शिवजी में हैं। यदि शिवजी से विवाह हो तो : उमा में जो दोष कहे जाते हैं उन्हें सब कोई गुण के समान कहेंगे।

व्याख्या : सामान्य जीव : वर के लिए जो दश दोष मैंने बतलाये हैं उन दशों का शिवजी में होना मैं अनुमान करता हूँ। शिवजी में दोष कहाँ ? वे भी गुण ही हैं लौकिक दृष्टि से दोष से दिखाई पड़ते हैं। इसलिए वे दोष शिवजी में हैं ऐसा न कह कर : सिवपँह मैं अनुमाने : कह रहे हैं। शिवजी अगुण, अमान, मातु पितु हीन, संसयछीन, योगी, जटिल, अकाममन, दिगम्बर और अमंगल वेष हैं। उनसे यदि उमा का विवाह हो तो वर के दोष गुण हो जायेंगे। इन दशों विशेषणों के भाव ही पलट जायँगे और संसार उन्हें गुण कहेगा।

जौं अहि सेज सयन हरि करहीं। बुध कछु तिन्ह कर दोषु न धरहीं॥
भानु कृसानु सर्व रस खाहीं। तिन्ह कहँ मंद कहत कोउ नाहीं॥३॥

अर्थ : यदि विष्णु सर्प की शैया पर शयन करते हैं तो भी पण्डित लोग उनमें दोष नहीं लगाते। सूर्य और अग्नि सभी रस का भक्षण करते हैं। उन्हें कोई बुरा नहीं कहता।

व्याख्या : दोष के गुण हो जाने के चार उदाहरण देते हैं। सँपेरा पेटारी में साँप रखता है। उसे सब बुरा कहते हैं। नारायण सर्प पर ही सोते हैं। नारायण के सोने से वह भी गुण हो गया। लोग स्तुति करते हैं शान्ताकारं भुजगशयनम्। यह तो परोक्ष का उदाहरण है। अब अपरोक्ष की बात सुनिये। सूर्य और अग्नि कौन-सा रस नहीं खाते सो उन्हें मन्द कहने की बात दूर गई स्तुति होती है : भास्वते सर्व-भक्षाय रौद्राय वपुषे नमः। ते नमः उक्ति विधेम। इत्यादि।

सुभ अरु असुभ सलिल सब बहई। सुरसरि कोउ अपुनीत न कहई॥
समरथ कहुँ नहिं दोषु गोसाईं। रवि पावक सुरसरि की नाईं॥४॥

अर्थ : पवित्र और अपवित्र सब प्रकार का जल बहता है पर कोई गंगा को अपवित्र नहीं कहता। समर्थ को दोष नहीं होता १. गोसाईं : हरि २. सूर्य ३. अग्नि और ४. गङ्गाजी की भाँति।

व्याख्या : गङ्गाजी में यमुना और सरस्वती का जल भी बहता है और कर्मनासा का भी जल बहता है पर अपुनीत कहना तो दूर रहा। वही अशुभ जल गङ्गा में मिलकर पुनीत हो जाता है। यथा : कर्मनास जल सुरसरि परई। तेहि को कहौ सीस नहिं धरई।

जहाँ दोष विकार उत्पन्न कर सकता है वहीं उसकी निन्दा है। जहाँ दोष अपनी क्रिया नहीं कर सकता वहाँ वह निन्दित भी नहीं है। समर्थ में दोष विकार उत्पन्न कर नहीं सकता। अतः वहाँ उसकी दोष में गणना भी नहीं होती।

गोसाईं अर्थात् विष्णु समर्थ हैं। सर्पशैया से उनका क्या बिगड़ा? सर्वभक्षक होने पर भी सूर्य और अग्नि के भास्वरतेज में क्या विकार हुआ? कर्मनाशा का जल पड़ने से गङ्गा में क्या अपवित्रता आई।

दो. जौं अस हिसिखा करहिं नर, जड़ विवेक अभिमान।
परहिं भरि नरक महुँ, जीव कि ईस समान ॥६९॥

अर्थ : जो जड़ मनुष्य ज्ञान के अभिमान से इनकी बराबरी : दाँज करते हैं वे कल्प भर के लिए नरक में पड़ते हैं : क्या जीव ईश्वर के समान है?

व्याख्या : मायावस्य जीव अभिमानी। ईस वस्य माया गुनखानी। परबस जीव स्वबस भगवंता। जीव अनेक एक श्रीकंता। ईश्वर के वश में माया है और माया के वश में जीव है। ईश्वर बेजोड़ है और अभिमानी जीव अनेक हैं। अतः जीव को विवेक : ज्ञान के अभिमान से ईश्वर की बराबरी : दाँज नहीं करनी चाहिए। जो ऐसा करता है वह जड़ है। अपना सामर्थ्य नहीं देखता। सम्पूर्ण विद्या स्नात होकर एक तृण की रचना नहीं कर सकता। उसकी जगत् की सृष्टि स्थिति और प्रलय करने वाले ईश्वर से कौन समता है? ईश्वर की समता की इच्छा होती है तो यह उसके बड़े भारी अकल्याण का कारण है। जगत् में जो दुर्दशा उसकी होती है सो तो होगी ही। मरने पर उसे पूरे कल्प भर नरक भोगना पड़ेगा। जो ज्ञानाभिमानी मूढ़ ईश्वर की बराबरी करके हलाहल विषपान करेगा वह अवश्य मरेगा। और आत्मघाती होकर घोरतर नरक में जायगा। अतः ईश्वर के लिए वह दोष नहीं है। जीव के लिए वह महादोष है।

सुरसरि जल कृत बारुनि जाना। कबहुँ न संत करहिं तेहि पाना ॥
सुरसरि मिले सो पावन जैसें। ईस अनी सहि अंतरु तैसें ॥१॥

अर्थ : मदिरा को गङ्गा जल से बनाई हुई जानकर भी सन्त जन कभी पान नहीं करते। फिर वही गङ्गा में मिलकर जैसे पवित्र हो जाती है। वैसा ही भेद ईश्वर और अनीश्वर में है।

व्याख्या : गङ्गा को मद्य में परिणत करने का सामर्थ्य किसी को नहीं है। इसी भाँति ईश्वर दोषी हो नहीं सकता। थोड़ा सा गङ्गा जल लेकर यदि मद्य बनाया जाय तो वह मद्य है गङ्गा जल नहीं है। कोई हठी भले ही कहे कि गङ्गा जल सदा गङ्गा जल ही रहेगा पर कोई सन्त उसे ग्रहण नहीं करेगा। इसी भाँति जीव ईश्वर अंश होने पर भी ईश्वर से पृथक् होने पर अनीश्वर हो जाता है। मायावश होकर दोषयुक्त हो जाता है। कोई विवेकाभिमानी भले ही कहें कि वह ईश्वर से व्यतिरिक्त और कुछ नहीं है। दोष से उसका संसर्ग हो नहीं सकता पर कोई सन्त इसे मानने को तैयार नहीं हो सकता। वही मद्य यदि गङ्गा में छोड़ दिया जाय तो वह गङ्गा

को दूषित नहीं कर सकेगा। गङ्गा में मिलकर स्वयं गङ्गा हो जायगा। वही जीव यदि मुक्त हो जाय या ईश्वर के शरण में चला जाय तो ईश्वर में लय होकर तारण तरण हो जाता है। भाव यह कि अंश में अल्पता के कारण दोष का प्रभाव पड़ जाता है। अंशी में महत्ता के कारण दोष का कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

संभु सहज समरथ भगवाना। एहि बिबाह सब बिधि कल्याना॥
दुराराध्य पै अहहिं महेसू। आसुतोष पुनि किएँ कलेसू॥२॥

अर्थ : शिवजी स्वभाव से ही समर्थ और भगवान् हैं। इसलिए इस विवाह में सब भाँति से कल्याण है। महादेवजी की आराधना बड़ी कठिन तो है पर कष्ट उठाने, पर प्रसन्न भी शीघ्र ही होते हैं।

व्याख्या : औरों में ऐश्वर्य और सामर्थ्य उपार्जित है। शिवजी में स्वभाव से ही है। अतः उनमें उपर्युक्त दोष भी गुण हैं। अकल्याण का भय न करो। इस विवाह में सभी विधियों से कल्याण ही कल्याण है। विवाह के लिए वर की स्वीकृति आवश्यक है और महेश दुराराध्य हैं पर क्लेश करने पर अवढर दानी भी हैं। शीघ्र प्रसन्न भी होते हैं। इसलिए उपाय बतलाते हैं।

जौं जपु करै कुमारि तुम्हारी। भाविउ मेटि सकहिं त्रिपुरारी॥
जद्यपि बर अनेक जग माहीं। एहि कहँ सिव तजि दूसर नाहीं॥१॥

अर्थ : यदि तुम्हारी बेटी तप करे तो शिवजी होनहार को भी मिटा सकते हैं। यद्यपि संसार में अनेक वर हैं पर इसे शिवजी को छोड़कर दूसरा वर नहीं है।

व्याख्या : प्रारब्ध और नियति भी महेश विमुख को होती है। नियति ईश्वर की शक्ति है। उसका रूप संकल्प है। ईश्वर सत्य संकल्प है पर नियति का स्वभाव है कि ईश्वरपरायण के सम्मुख कुण्ठिता हो जाती है। वह महेश अपनी नियति को भी हटाकर भक्त से साधन का सम्पादन कराके उसे फल से युक्त करता है। यही उसका बड़ा भारी स्वातन्त्र्य है।

अति सुकुमारि न तन जप जोगू। अत्यन्त सुकुमारी होने पर भी यदि तुम्हारी बेटी तप करे तो कार्य सिद्धि हो सकती है। त्रिपुरारि का सामर्थ्य कहते हैं कि वे भावी : विधि के अङ्क को जिसे देव-दनुज मुनि कोई मिटा नहीं सकता : भी मिटा सकते हैं। यथा : जिनके भाल लिखी लिपि मेरी सुख की नहीं निसानी। तिन रंकन को नाक सँवारत हौं आयों नकबानी : यह इसलिए कहा कि जिसमें यह शङ्का न उठे कि जब त्रिपुरारि में दोष भी गुण हो जाते हैं तब दोषयुक्त वर से विवाह होनेवाली भावी कैसे टलेगी ?

उपर्युक्त दोषवाले वर भी बहुत हैं पर इसके लिए शङ्कर ही हैं। क्योंकि इसमें ऐसे-ऐसे चमत्कृत गुण हैं कि दूसरा वर इसे मिल नहीं सकता।

बरदायक प्रनतारति भंजन। कृपासिंधु सेवक मन रंजन॥
इच्छित फल बिनु सिव अवराधें। लहिअ न कोटि जोग जप साधें॥४॥

अर्थ : शिवजी वरदायक हैं। प्रणत की आर्ति को हरण करनेवाले कृपा के समुद्र हैं। सेवक के मन को प्रसन्न करनेवाले हैं। बिना शिव की आराधना किये करोड़ों योग और जप के साधन से वाञ्छित फल नहीं मिलता।

व्याख्या : कारण कह रहे हैं। वरदायक, प्रणतार्तिभञ्जन, सेवक मनोरञ्जन तो शिव ही हैं और इस कन्या को रेखा पड़ी है : होइहि पूज्य सकल जगमाहीं : तो यदि इसका विवाह शिवजी से नहीं होता तो यह फल घटेगा कैसे ?

कन्या को रेखा पड़ी है कि : एहि सेवत कछु दुर्लभ नाहीं। और बिना शिव की आराधना वाञ्छित की प्राप्ति नहीं होती तो यह सामञ्जस्य तभी बैठेगा जब इसका विवाह शिव से हो।

दो. अस कहि नारद सुमिरि हरि गिरिजहि दीन्हि असीस।
होइहि यह कल्यान अब संसय तजहु गिरीस ॥७०॥

अर्थ : ऐसा कहकर और हरि का स्मरण करके नारदजी ने पार्वतीजी को आशीर्वाद दिया कि हे गिरीश ! संशय छोड़ो। अब यह कल्याण होगा अर्थात् यह विवाह होगा अब सन्देह छोड़ दो।

व्याख्या : अपने इष्ट का स्मरण किया। यथा : मोरे हित हरि सम नहिं कोऊ : दूसरा भाव हरि के स्मरण का यह कि आप पूर्व जन्म में इसे वर दे चुके हैं : जन्म-जन्म शिवपद अनुराग के लिए सो इसे शिवजी की दासी बनाइये। अब से भाव यह कि कल्याण के लिए प्रयत्न आरम्भ हो जायगा। और सिद्धि भी होगी क्योंकि प्रारब्ध अनुकूल है। शिवपद अनुराग का पूर्वजन्मार्जित वर है।

कहि अस ब्रह्मभवन मुनि गयऊ। आगिल चरित सुनहु जस भयऊ॥
पतिहि एकान्त पाइ कह मैना। नाथ न मैं समझे मुनि बैना ॥१॥

अर्थ : ऐसा कहकर मुनि तो ब्रह्मलोक चले गये। अब जो कुछ आगे हुआ उसे सुनो। पति को एकान्त में पाकर मेना ने कहा : नाथ ! मैंने मुनि की बातें नहीं समझीं।

व्याख्या : कौतुक करके मुनिजी तो जहाँ से आये थे वहाँ चले गये। नारद समाचार सब पाये से उपक्रम करके 'कहि अस ब्रह्म भवन मुनि गयऊ से नारद प्रसङ्ग का उपसंहार करते हैं। याज्ञवल्क्यजी भरद्वाज से कहते हैं कि इस कौतुक से क्या क्या हुआ इसे सुनो।

एकान्त में पति को पाकर जहाँ निःसङ्कोच होकर कहा-सुना जा सके मेना ने कहा। व्याह करना तो अपने हाथ ठहरा। जोगी, जटिल, अकाममन, नग्न अमङ्गलवेष से यदि हम कन्या का व्याह न करेंगे तो आपसे आप कैसे हो जायगा ? इसलिए कहती हैं कि मुनि की बात मेरी समझ में नहीं आती।

जौं घरु बरु कुलु होइ अनूपा। करिअ बिवाह सुता अनुरूपा॥
नत कन्या बरु रहउ कुआँरी। कंत उमा मम प्रानपिआरी ॥२॥

अर्थ : यदि घर, वर कुल अनुपम हो तो कन्या के अनुरूप विवाह करना चाहिए। नहीं तो चाहे कन्या बिना व्याही रह जाय : यह स्वीकार है : हे कान्त ! उमा मुझे प्राण समान प्यारी है।

व्याख्या : 'घर' से ऐश्वर्य, वर से गुण सम्पत्ति और कुल से मातृमान् पितृमान् होना अभिप्रेत है। यही तीनों बात कन्यापक्ष की ओर से देखी जाती हैं। सो मेरी कन्या के लिए ऐसा घर, वर कुल ठीक करना चाहिए जिसका जोड़ कहीं न हो। क्योंकि मेरी कन्या अनूप है। उसके अनुरूप व्याह होना चाहिए। धर्म शास्त्र की आज्ञा है कि चाहे बेटी कुँआरी रह जाय पर निर्गुणी वर को नहीं व्याहना चाहिए। निर्गुणी वर से उसे पदे पदे कष्ट होगा। आप सुख देनेवाले हो। इसे समझ लो कि उमा मुझे प्राणों से प्यारी है। उसे दुःखी मैं नहीं देख सकती। कन्या मुझे भार नहीं है। परमेश्वर ने सौ पुत्र दिये हैं। यही एक कन्या है इसलिए प्राणप्यारी है। जैसे सौ वैसे एक सौ एक मैं समझूँगी कि यह भी पुत्र ही है।

जौं न मिलिहि बरु गिरिजहि जोगू। गिरि जड़ सहज कहिहि सब लोगू॥
सोइ बिचार पति करेहु बिवाहू। जेहि न बहोरि होइ उर दाहू॥३॥

अर्थ : यदि पार्वती के योग्य वर न मिलेगा तो लोग कहेंगे कि पर्वत स्वभाव से ही जड़ हैं। हे नाथ ! विचार करके वही विवाह कीजिये। जिससे फिर पीछे कलेजे में जलन न हो।

व्याख्या : अपयश भी बड़ा भारी होगा : संभावित कहँ अपजस लाहू। मरन कोटि सम दारुन दाहू। लोग कहेंगे कि अन्ततोगत्वा पत्थर ही ठहरे। ऐसी कन्या को जोगी जटिल अमङ्गलवेष से व्याह दिया। नारद जी के वचन पर विचार करके अभी से ही 'जोगी जटिल अकाममन' वर ढूंढने चले, इससे यावज्जीवन कलेजा जलेगा। पछतावा होगा कि मैंने क्या किया ?

अस कहि परी चरन धरि सीसा। बोले सहित सनेह गिरीसा॥
बरु पावक प्रगटै ससि माहीं। नारद बचनु अन्यथा नाहीं॥४॥

अर्थ : ऐसा कहकर चरणों में सिर रखकर गिर पड़ी। तब पर्वतराज ने प्रेम से कहा : चाहे चन्द्रमा में अग्नि प्रकट हो। पर नारद का कथन अन्यथा हो नहीं सकता।

व्याख्या : मेना जानती थी कि पति का नारद के वचन पर कितना विश्वास है। ये शीघ्र नारदजी का वचन न छोड़ेंगे और 'जोगी जटिल अकाममन' वालों में कौन अच्छा है इस प्रयत्न में लगेंगे। वर खोजने का जो प्रशस्त मार्ग घर, वर, कुल की उत्तमता का अन्वेषण है वह बिल्कुल ही छूट जायगा। इसलिए चरणों पर गिरकर पति की कार्य पद्धति को बदलना चाहती है। हिमवान् ने कहा कि नारद की बात टल नहीं सकती। चाहे चाँद से आग निकल पड़े। यह असम्भव भी सम्भव हो पर नारदजी के बचन का अन्यथा होना असम्भव है। सोइ विचारि पति करेहु विवाहू का उत्तर है। सुनकर मैना सोच में पड़ गई। तब कहते हैं :

दो. प्रिया सोचु परिहरहु सबु, सुमिरहु श्रीभगवान ।
पारबतिहि निरमयउ जेहिं, सोइ करिहि कल्यान ॥७१॥

अर्थ : प्रिये ! तुम सब चिन्ता छोड़ दो। श्रीभगवान् का स्मरण करो जिन्होंने पार्वती को रचा है वे ही कल्याण करेंगे।

व्याख्या : चिन्ता कार्यविनाशिनी। सोच करने से सिद्धि नहीं होती चाहे कोई लाख बार सोचे। कल्याण का मार्ग श्रीभगवान् के स्मरण से खुलता है। जिसने पार्वती को रचा है वास्तविक माता-पिता वही है। वही कल्याण करेगा। जीव की गति सदा ईश्वर के अधीन है। पर्वतराज को नारदजी पर अटल विश्वास है। उन्होंने कह दिया है : होइहि यह कल्याण अब, संसय तजहु गिरीस। अतः गिरीश ने संशय छोड़ दिया है। गुरु के उपदेश पर अटल हैं।

अब जौ तुमहि सुता पर नेहू। तौ अस जाइ सिखावनु देहू ॥
करै सो तपु जेहिं मिलिहिं महेसू। आन उपाय न मिटहि कलेसू ॥१॥

अर्थ : अब जो तुम्हें : अपनी बेटी पर स्नेह हो तो उसे जाकर उपदेश दो कि ऐसा तप करे जिससे महेश्वर मिलें। दूसरे उपाय से कष्ट दूर न होगा।

व्याख्या : तुमने कहा है कि : उमा मम प्रान पियारी। तो जो प्रिय हो उसका सच्चा हित देखना चाहिए। हित के साधन में कष्ट होता ही है। उस कष्ट को उठाने के लिए अपने प्रिय को उपदेश देना ही सच्चा हित चाहना है। अतः यदि सच्चा प्रेम हो तो सोच छोड़ो। तबीयत कड़ी करके सिखावन दो कि महेश्वर की प्राप्ति के लिए तप करे। पति के लिए तप करने को तुम कह सकती हो। मैं नहीं कह सकता। जो तुमने कहा कि : करिय बिवाह सुता अनरूपा। सो हो नहीं सकता। नारदजी ने जो उपाय बतला दिया वही यथार्थ उपाय है। दूसरे उपाय से कष्ट मिटेगा नहीं।

नारद बचन सगर्भ सहेतू। सुंदर सब गुननिधि बृषकेतू ॥
अस बिचारि तुम्ह तजहु असंका। सबहि भाँति संकरु अकलंका ॥२॥

अर्थ : नारदजी का वचन साभिप्राय है। युक्तियुक्त है। वृषकेतु सुन्दर और गुणों के निधान हैं। ऐसा विचार करके तुम आशङ्का न करो। शिवजी सभी भाँति से निष्कलङ्क हैं।

व्याख्या : नारदजी ने जो कहा कि : एहि कहँ सिव तजि दूसर नाहीं : इसका अभिप्राय है। दोषयुक्त वर मिलने से यह सम्पूर्ण जगत् में पूज्य कैसे होगी ? इसकी सेवा से वाञ्छित फल कैसे मिलेगा ? पर यह भी ब्रह्मा का लेख है। यह भी टल नहीं सकता। शिवजी ही एक ऐसे हैं जिनमें उपर्युक्त दोष हैं वे उनकी महिमा को और भी बढ़ाते हैं। अतः इसका विवाह शिवजी से ही होगा। उमा को तप के लिए उनका उपदेश करना भी युक्तियुक्त है। यद्यपि यह विवाह बिना यत्न के भी होकर

रहेगा। पर बीच की विघ्नबाधाओं को दूर करने के लिए तप करना अत्यन्त उत्तम होगा।

कन्या वरयते रूपं माता वित्तं पिता श्रुतम्। बान्धवाः कुलमिच्छन्ति मिष्टान्नमितरे जनाः। कन्या रूप का वरण करती है : इसलिए कहते हैं कि वृषकेतु सुन्दर हैं। पिता श्रुत का वरण करता है : इसलिए कहते हैं : गुणनिधि वृषकेतू। माता वित्त का वरण करती है : इसलिए/कहते हैं कि शङ्कर हैं। दूसरों का कल्याण किया करते हैं, उन्हें वित्त का क्या घाटा है। यथा : सिव की दई सम्पदा देखत श्रीसारदा सिहानी। बान्धव कुल की इच्छा करते हैं। इसलिए कहते हैं : सबहि भाँति संकर अकलंका। इस भाँति घर वर कुल का अनूपत्व कहा।

सुनि पति बचन हरखि मन माहीं। गई तुरत उठि गिरिजा पाहीं॥
उमहि बिलोकि नयन भरे बारी। सहित सनेह गोद बैठारी॥३॥

अर्थ : पति का वचन सुनकर मन में हर्ष हुआ। तुरन्त उठकर गिरिजा के पास गईं। उमा को देखकर आँखों में आँसू भरे हुए प्रेम सहित गोद में बिठा लिया।

व्याख्या : पतिव्रता हैं। पति के वचन पर बड़ा विश्वास है। उनके कहते ही आशङ्का जाती रही : हर्षित हो उठीं। वहाँ से बड़ी मुस्तैदी से चलीं पर उमा को देखते ही वात्सल्य उमड़ आया। गोद में बिठा लिया। कठोर भूमि पर उनका बैठना सह्य नहीं। यथा : पलंग पीठ तजि गोद हिंडोरा। सिय न दीन्ह पद अवनि कठोरा।

बारहिं बार लेति उर लाई। गदगद कंठ न कछुँ कहि जाई॥
जगत मातु सर्वग्य भवानी। मातु सुखद बोलीं मृदु बानी॥४॥

अर्थ : बार बार हृदय से लगा लेती हैं। गला भर आने से कुछ कहते नहीं बनता। भवानी तो जगत् की माता हैं। सर्वज्ञ हैं। माता को सुख देनेवाली कोमल वाणी बोलीं।

व्याख्या : विरह का ध्यान करके बार बार हृदय से लगाती हैं। मन अलग करने को नहीं चाहता। तप के लिए कहना चाहती हैं : पर गला भर आता है। कैसे कहें ? भवानी जगत् की माता हैं। उनका वात्सल्य मेना पर भी है। सर्वज्ञ हैं। मेना का हृदय जानती हैं और स्वयं भवानी हैं। यथा : जनम कोटि लगि रगर हमारी। बरौं संभु न त रहौं कुमारी। सोचा कि माँ को कहने में कष्ट हो रहा है। इस समय जो मैं अपना सपना सुना दूँ तो माता को विश्वास भी बढ़ जाय और जो उसे कहना है सो मैं स्वयं करने के लिए सन्नद्ध हो जाऊँ।

दो. सुनहि मातु मैं दीख अस, सपन सुनावौं तोहि।
सुंदर गौर सुविप्रवर, अस उपदेसेउ मोहि॥७२॥

अर्थ : माँ मैं तुमसे कहती हूँ। सुनो ! मैंने ऐसा स्वप्न देखा है कि एक सुन्दर गौर वर्ण के श्रेष्ठ ब्राह्मण ने मुझे उपदेश दिया है।

व्याख्या : स्वप्नाध्यायी के अनुसार सुन्दर और सुविप्रवर का कहा हुआ सत्य होता है। इसे : स्वप्न को किसी से नहीं कहा। तुमसे कहती हूँ क्योंकि उत्तम पुरुष से ही स्वप्न सुनाने का विधान है। इससे यह मालूम होता है कि प्रातःकाल उठकर मेना पार्वतीजी के पास गई थीं। हिमालय से बातचीत रात को हुई थी। यथा : पतिहिं एकांत पाय कह मेना।

करहि जाइ तपु सैलकुमारी। नारद कहा सो सत्य विचारी॥
मातु पितहिं पुनि यह मत भावा। तपु सुखप्रद दुख दोष नसावा॥१॥

अर्थ : हे पार्वती ! नारदजी ने जो कहा है उसे सत्य समझकर जाकर तप करो। तेरे माता पिता को भी यही पसन्द है। तप सुख देनेवाला और दुःख को मिटानेवाला है।

व्याख्या : जाइ से वन जाना कहा। घर में तप नहीं होता। शैलकुमारी से तप की योग्यता कही। नारद कहा सो सत्य विचारी से हिमवान् की उक्ति : नारद वचन सगर्भ सहेतू की पुष्टि हुई। मातु पितहि पुनि यह मत भावा : इस उक्ति से : सुंदरगौर सुविप्रवर की सर्वज्ञता द्योतित हुई। अवगुण का परिहार : तप से होगा। तप सुखप्रद है। दुःख-दोषों का नाश करता है। अतः तप के लिए भेजने में आगा पीछा न होना चाहिए।

तप बल रचै प्रपंचु विधाता। तप बल विस्नु सकल जग त्राता॥
तप बल संभु करहिं संघारा। तपबल सेषु धरैं महि भारा॥२॥

अर्थ : तप के बल से ब्रह्मा संसार को रचते हैं। तपोबल से विष्णु समस्त संसार के रक्षक हैं। तप के बल से शम्भु संहार करते हैं। और तप के बल से शेषजी पृथ्वी का भार वहन करते हैं।

व्याख्या : विश्व की सृष्टि, स्थिति और संहार भौतिक बल से नहीं हो सकता। यह सब तपोबल से ही होता है। ब्रह्मपद, विष्णुपद और रुद्रपद की प्राप्ति भी तपोबल से होती है। पृथ्वी का भारवहन भौतिक बल से असाध्य है। तपोबल से ही पृथ्वी शेष द्वारा धृत है।

तप अधार सब सृष्टि भवानी। करहि जाइ तपु अस जिय जानी॥
सुनत वचन विसमित महतारी। सपन सुनायउ गिरिहि हँकारी॥३॥

अर्थ : हे भवानी ! सारी सृष्टि तप के ही सहारे है : ऐसा जी से जानकर तप करो। यह बात सुनकर माता को बड़ा आश्चर्य हुआ। हिमवान् को बुलाकर सपना सुनाया।

व्याख्या : जब सब सृष्टि ही तप के आधार पर है तब भवानी पद की प्राप्ति भी बिना तप कैसे सम्भव है, इसलिए तप करो। करहि जाइ तप सैलकुमारी से उपक्रम करके : करहि जाइ तप अस जिय जानी से उपसंहार दिखलाया।

जो बात हिमवान् से एकान्त में हुई उसकी सूचना स्वप्न दिखानेवाले देव ने

दी। यथा : मातु पितहिं पुनि यह मत भावा। इसलिए विस्मित हुईं। वाहर से स्वप्न सुनने के लिए हिमवान् वुलाये गये।

मातु पितहिं बहु विधि समुझाई। चलीं उमा तप हित हरखाई॥
प्रिय परिवार पिता अरु माता। भए विकल मुख आव न बाता॥४॥

अर्थ : माता पिता को बहुत भाँति से समझाकर उमा तप के लिए सानन्द चलीं। प्रिय परिवारवाले माता पिता सब विकल हो गए। मुख से बात न निकली।

व्याख्या : माता पिता को समझाना। यथा :

मेरे हित नहिं नेकहू, सोच करै तू माय।
मोहिं योग नीको लगै भोग न भूलि सोहाय॥
शिशुपन ते तापसन में मेरी प्रीति विशेखि।
जे तप में बाधा करैं, तिन्है सकौं नहिं देखि॥
षड्रिपुयुत प्रासाद ते, बन में बड़ो अनन्द।
जहाँ जाइ नर भजत हैं, ब्रह्म सच्चिदानन्द॥
भयो, होइहै, होत है, तपते ही कल्यान।
तव तप साधन में कहा मनको करत मलान॥
शैल छाड़ि कहुँ जात नहिं सखी हमारे संग।
अति उछाह तप हेतु मोहिं, व्यर्थ करौ जनि भंग॥
तुम्हरे दुःख कीन्हें सकल, तपवल जाइ नसाय।
सो साधन सब सिद्धिप्रद जो पितु मातु सोहाय॥
जानि बूझि कल्यान मग, तबहू विषम विषाद।
तात कबहुँ नहिं कीजिये यह प्रियप्रेम प्रमाद॥

उमा ने इस भाँति समझाया। फिर भी वात्सल्य के कारण कुटुम्बीजन तथा माता-पिता अत्यन्त विकल हुए। चलने में हर्ष कार्यसिद्धि द्योतक है।

दो. वेदसिरा मुनि आइ तब, सबहिं कहा समुझाइ।
पारवती महिमा सुनत, रहे प्रबोधहिं पाइ॥७३॥

अर्थ : वेदशिरा मुनि ने तब आकर सबको समझाकर कहा। पार्वतीजी की महिमा सुनकर सन्तुष्ट होकर रह गये।

व्याख्या : पार्वतीजी को पुत्री भाव से देखते रहे और उसी अज्ञान से दुःखी हो रहे थे। परहितैकव्रत मुनि ने उनका यथार्थ माहात्म्य समझाकर सबका अज्ञान दूर किया। मुनिजी ने कहा :

क. तनया तुम्हारी तुहिनाचल सँवारै विश्व,
धारै औ सँहारै, याकी महिमा कही ना जाय।
पूजि पद कंज मंजु याके सुर वृंद जग,
करत अनन्द विधि हरि सुरपद पाय॥

लीला तनु धारिनि सँघारिनि असुर संघ,
संतसुख कारिनी बिहारिनी सुछन्द माय।
करुना अपार गुनगन को न पारावार,
भारभूमि हरनि धरनि प्रकटी हैं आय॥
तनया तिहारी नहीं जननी जगत की सो,
कौन कांज अगम सुगम नहि ताको जौन।
योगी मुनि बृन्दन को दुर्लभ दरस जासु,
सकति अनादि सोई प्रकटी तिहारे भौन॥
जाते त्रयलोक की भलाई भूरि होनहार,
अंब जगदंब विजय आनन्द करेंगी तौन।
व्यर्थ ही विषाद तव ताके हित मोहवस,
मन में विचारो नेक तोसों बड़ भागी कौन॥

तव सबको ढाढ़स बँधा। घर रह गये। नहीं तो साथ चलने को तैयार थे। वेदशिराजी भृगुवंशी थे। भृगु के विधाता, विधाता के प्राण और प्राण के पुत्र वेदशिरा थे।

उरधरि उमा प्रानपति चरना। जाइ विपिन लागीं तप करना॥
अति सुकुमार न तनु तप जोगू। पति पद सुमिरि तजेउ सब भोगू॥१॥

अर्थ : प्राण पति के चरणों को हृदय में धारण करके उमा वन में जाकर तप करने लगीं। अत्यन्त सुकुमार शरीर तप के योग्य नहीं था। फिर भी पति के चरणों का स्मरण करके सब भोगों का त्याग किया।

व्याख्या : उपजेउ सिव पद कमल सनेहू : पहिले कह आये हैं। अब वन में जाकर उन्हीं चरणों को हृदय में धारणकर तप करने लगीं। प्राणपति कहकर दुष्कर तप की सुकरता दिखलाई। प्राणपति के लिए दुष्कर कुछ भी नहीं है। इसी से एकाग्रता भी सूचित की। नारदजी ने कहा था कि : आसुतोष पुनि किये कलेसू। अतः सब भोगों का त्याग किया। प्राणपति के स्मरण में जो सुख है उसके सामने जितने भोग हैं सब तुच्छ हैं। अतः अति सुकुमारी होने पर भी तप के लिए सन्नद्ध हो गईं। यथा : जननि जनक उपदेस महेसहि सेवहिं। अति उदार अनुराग भगति मन भेवहिं। पा. मं.।

नित नव चरन उपज अनुरागा। बिसरी देह तपहि मनु लागा॥
संवत् सहस मूल फल खाए। सागु खाइ सत वरष गँवाए॥२॥

अर्थ : चरणों में नित्य नया प्रेम उत्पन्न होने लगा। देह की सारी सुधि विसर गई और तप में ही मन लग गया। एक हजार वर्ष तक उन्होंने मूल फल खाये और सौ वर्ष साग पात खाकर बिताये।

व्याख्या : प्राणपति के चरणों को हृदय में धारण करने से उसमें नित्य नया अनुराग उत्पन्न होने लगा। अब तप में ही मन ने सुख माना। देहाध्यास जाता रहा।

पहिले अन्न खाती थीं फिर अन्न छोड़ दिया। एक सहस्र वर्ष तक फलमूलाहार किया। क्रम से तप की तीव्रता बढ़ती गई। फल मूल भी छोड़ा। शाक खाने लगीं। सौ वर्ष तक शाकाहार चला।

कछु दिन भोजनु बारि बतासा। किए कठिन कछु दिन उपवासा॥
बेलबाती[1] महि परै सुखाई। तीनि सहस संवत सोइ खाई॥३॥

अर्थ : कुछ दिनों तक जल और वायु भक्षण करके रहीं। फिर कुछ दिनों तक कठिन उपवास किया। बेल की पत्ती जो सूखकर पृथ्वी पर गिर जाती हैं उसे तीन हजार वर्ष तक खाया।

व्याख्या : यद्यपि वारि और वायुभक्षण का समय नहीं दिया फिर भी पूर्वक्रम से बोध होता है कि दस वर्ष तक वारि और वायु का आहार किया। कोई कोई बारि बतासा का अर्थ जल का बबूला करते हैं। यथा : जैसे बारि को बतासा तैसे तन को तमासा है। इसी भाँति एक वर्ष तक कठिन उपवास किया। कठिन उपवास में वारि बतासा का भी ग्रहण नहीं है। ग्यारह सौ वर्ष की एक रुद्री हुई। फिर ग्यारह वर्ष की दूसरी रुद्री हुई।

इतने पर भी कार्य सिद्धि नहीं हुई। अतः फिर से नया तप आरम्भ हुआ। तीन हजार वर्ष तक सूखी बेल की पत्तियाँ खाईं।

पुनि परिहरे सुखानेउ परना। उमहि नामु तब भयउ अपरना॥
देखि उमहि तप खीन सरीरा। ब्रह्मगिरा भै गगन गभीरा॥४॥

अर्थ : फिर सूखे पत्ते भी छोड़ दिये। तब उमा का नाम अपर्णा हुआ। तप से उमा का शरीर क्षीण देखकर आकाश में गम्भीर ब्रह्म वाणी हुई।

व्याख्या : सूखी पत्तियों का खाना भी छोड़ दिया। समय नहीं देते। अतः पूर्वोक्त रीति से मालूम पड़ता है कि तीन सौ वर्ष तक सूखी पत्ती भी नहीं खायी। तब उमा का नाम 'अपर्णा' हुआ। पर्ण कहते हैं पत्ती को। जो पत्ती भी छोड़ दे उसे अपर्णा कहते हैं। नाम अपरना भयउ परन जब परिहरे। नवल धवल कल कीरति सकल भुवन भरे। अतः यह दूसरा तप ३२०० वर्ष का हुआ। अर्थात् ग्यारह ग्यारह सौ वर्ष की तीन रुद्रियाँ हुईं। कुल पाँच हुईं। शरीर अत्यन्त क्षीण हो गया। प्राणावशेष रह गया। तब ब्रह्मवाणी हुई। रुद्राणी पद देना है अतः इसके देनेवाले ब्रह्म ही हैं ब्रह्मा नहीं। यथा : विधिहि विधिता, हरिहिं हरिता, हरहि हरता जो दई। सो जानकीपति मधुर मूरति मोदमय मंगल मई।

दो. भयउ मनोरथ सुफल तव, सुनु गिरिराजकुमारि।
परिहरु दुसह कलेस सब, अब मिलिहहिं त्रिपुरारि॥७४॥

अर्थ : हे गिरिराज की पुत्री ! तेरा मनोरथ सफल हुआ। तू अब सब दुःसह क्लेशों को छोड़ दे। अब तुझे त्रिपुरारि मिलेंगे।

---

१. 'पो वः' इस सूत्र से बेलपाती का रूप 'बेलबाती' हो गया।

व्याख्या : ब्रह्मवाणी ने पहिले मनोरथ की प्रशंसा की कि तेरा मनोरथ कल्प-वृक्ष है। अब उसमें फल लग गया। क्षीण शरीर होने से उसमें फूल लगा था। अब इस वाणी द्वारा फल लगा। परिहरु दुसह कलेस सब : कहने से घोर तप करना रोकते हैं। त्रिपुरारि हैं : निश्चय से नहीं हटते। उन्होंने त्याग किया है : ग्रहण कैसे करेंगे? यथा : मिलन कठिन मन भा संदेहू। इसपर कहते हैं : अब मिलिहहिं त्रिपुरारि। यही मनोरथ का सफल होना है। ब्रह्मवाणी इतनी ही सूत्र रूप में हुई।

अस तपु काहु न कीन्ह भवानी। भए अनेक धीर मुनि ग्यानी ॥
अब उर धरहु ब्रह्म बर बानी। सत्य सदा संतत सुचि जानी ॥१॥

अर्थ : हे भवानी ! अनेक धीर, मुनि और ज्ञानी हुए पर ऐसा तप किसी ने नहीं किया। अब तुम ब्रह्म की श्रेष्ठ वाणी को सदा सत्य और निरन्तर पवित्र समझकर अपने हृदय में रखो।

व्याख्या : ब्रह्मवाणी पर ब्रह्माजी की टीका हो रही है। कष्ट सहन, मनन और ज्ञान तीनों प्रकार का तप तुमने किया। ऐसा तप धीर, मुनि और ज्ञानी किसी ने नहीं किया। धैर्य। यथा : देखि उमहिं तपखीन सरीरा। मनन। यथा : नित नव चरन उपज अनुरागा। ज्ञान। यथा : मातु पितहिं बहु बिधि समुझाई। यह उमा की स्तुति है। ब्रह्मदेव ने कहा तप के लिए हठ न करो। सन्देह छोड़ो। ब्रह्मवाणी हो गई : अब मिलिहहिं त्रिपुरारि। सो सदा सत्य है वियोग भी नहीं होगा। तप छोड़ने को कहते हैं। इसमें अशुचि की आशङ्का न करो। ब्रह्मवाणी सन्तत शुचि है।

आवैं पिता बोलावन जबहीं। हठ परिहरि घर जाएहु तबहीं ॥
मिलहिं तुम्हहि जब सप्त रिषीसा। जानेहु तब प्रमान बागीसा ॥२॥

अर्थ : जब तुम्हारे पिता बुलाने आयें तब हठ छोड़कर घर चली जाना। जब तुमको सप्तर्षि मिलें तब वाणी का प्रमाण जानना कि ब्रह्मगिरा कार्य में परिणत हो रही है।

व्याख्या : पहिले पिता तुम्हें बुलाने आये थे पर तुमने हठपूर्वक जाने से इनकार किया। अब ऐसा न करना। पिता के बुलाने पर घर चली जाना। तुमसे मिलने सप्तऋषि आवेंगे तब समझ लेना कि अब कार्य सिद्धि होना ही चाहती है। पिता के आने तक तप की अवधि है। अभी तो दुःसह क्लेश मात्र त्याग के लिए आदेश है।

वागीशा वाणी या सरस्वती को कहते हैं। यथा : वागीशा यस्य वदने लक्ष्मी-र्यस्य च वक्षसि। वाणी का प्रमाण कार्य में परिणत होना है। यथा : जौं फुर होय तौं नाथ निज कीजे वचन प्रमान। अर्थात् सप्तर्षियों के आने पर वाणी कार्य में परिणत होगी। कश्यपोऽत्रिर्वशिष्ठश्च विश्वामित्रोऽथगौतमः। जमदग्निर्भरद्वाज एते सप्तर्षयस्तथा। का. प्र.।

सुनत गिरा विधि गगन बखानी । पुलक गात गिरिजा हरषानी ॥
उमा चरित सुंदर मैं गावा । सुनहु संभु कर चरित सुहावा ॥३॥

अर्थ : आकाश से कही हुई ब्रह्माजी की वाणी सुनते ही उमा के रोम खड़े हो गये । वे वहुत प्रसन्न हुईं । याज्ञवल्क्य जी भरद्वाज मुनि से कहते हैं कि मैंने उमा का सुन्दर चरित्र वर्णन किया । अव शम्भु का सुहावना चरित सुनो ।

व्याख्या : ब्रह्मदेव की टीका का उपसंहार करते हैं । आकाश में प्रत्यक्ष होकर ब्रह्मदेव बोल रहे थे । ब्रह्मदेव की वाणी से हर्ष हुआ । ब्रह्मवाणी में बात स्पष्ट नहीं हुई थी । अब हमें क्या करना चाहिए ? त्रिपुरारि कब मिलेंगे ? इत्यादि बातें ब्रह्माजी की वाणी से स्पष्ट हुईं । अतएव हर्ष हुआ । इति उमाचरितम् । अथ शम्भुचरितम् । सती शरीर से जड़ता, दक्ष की महाजड़ता, रुद्र के कोप से त्रैलोक्य को कम्प, हिमालय में सती का जन्म । ये सब जाड़े के लक्षण हैं । क्योंकि जड़ता को ही जाड़ा माना गया है । यथा : जड़ता जाड़ विषम उर लागा । अतः यह हिम[1] ऋतु का प्रथम मास अगहन है । रोमाञ्च से समाप्त हो रहा है । यथा : पुलक गात गिरिजा हरखानी । शम्भु चरित्र पौषमास है । सो आरम्भ हो रहा है । दोनों मिलकर हिमऋतु हुआ । यथा : हिम हिमसैलसुता सिव व्याहू । अट्ठाइस दोहा उमा[2] चरित और अट्ठाइस दोहा शम्भुचरित है ।

: ख : शम्भुचरित

जब तें सती जाइ तनु त्यागा । तब तें सिव मन भयउ विरागा ॥
जपहिं सदा रघुनायक नामा । जहँ तहँ सुनहिं राम गुन ग्रामा ॥४॥

अर्थ : जब से सती ने जाकर शरीर छोड़ा तब से शिवजी के मन में विराग हो गया । सदा रामनाम का जप करते हैं । जहाँ तहाँ रामजी का गुण ग्राम सुनते हैं ।

व्याख्या : सदा विरागरूप होने पर भी गृहस्थ को लोक संग्रह के लिए स्त्री रक्षा कर्त्तव्यरूप से प्राप्त रहती ही है । घर पर रहना ही पड़ता है । यदि बाहर जाय तो स्त्री को साथ रखना पड़ता है । रागाभास को स्वीकार करना पड़ता है । अब वह भी नहीं रह गया । अतः कहते हैं : तब ते सिव मन भयउ विरागा । पहिले सती से बातचीत करनी ही पड़ती थी । उतनी देर तक जप बन्द हो ही जाता था । अब सदा जप होता है । यथा : जपहिं सदा रघुनायक नामा । जहँ तहँ सुनहिं राम गुनग्रामा । तथा : तब कछु काल मराल तन धरि तहँ कीन्ह निवास । सादर सुनि रघुपति चरित पुनि आयों कैलास ।

---

१. यथा : हिम हिमसैलसुता सिव व्याहू । श्रीगोस्वामी जी ने उमा महेश्वर के विवाह की उपमा हिमऋतु से दी है ।

२. श्रीरामचरितमानस् में भगवान् के चरित के साथ साथ पाँच महाभागवत चरित हैं । १. उमा चरित २. शम्भु चरित ३. भरत चरित ४. हनुमान चरित और ५. भुसुण्डि चरित ।

दो. चिदानंद सुखधाम सिव, विगत मोह मद काम ।
विचरहिं महि धरि हृदयँ हरि, सकल लोक अभिराम ॥७५॥

अर्थ : चिदानन्द, सुख के धाम, मोह मद और काम से रहित, सारे लोक को आनन्द देनेवाले शिवजी हरि को हृदय में धरकर पृथ्वी पर विचरने लगे।

व्याख्या : चिदानन्द से स्वरूप कहा। अखिल लोक विश्राम दायक कहकर सर्वाश्रय कहा। विगत मोह मद कहकर ईश्वर कहा। ऐसे प्रभु महादेव जी पृथ्वी पर विचरण करते हैं। यथा : सुंदर गिरि वन सरित तड़ागा। कौतुक देखत फिरौं बिरागा। संसार से विराग है पर हरि से राग है। उन्हीं को हृदय में धारण करके पृथ्वी पर विचर रहे हैं। सकल लोक अभिराम : पद हरि का विशेषण भी हो सकता है।

कतहुँ मुनिन्ह उपदेसहिं ग्याना। कतहुँ राम गुन करहिं बखाना ॥
जदपि अकाम तदपि भगवाना। भगत बिरह दुख दुखित सुजाना ॥१॥

अर्थ : कहीं मुनियों को ज्ञान का उपदेश देते और कहीं रामजी के गुणों का वर्णन करते थे। यद्यपि अकाम हैं फिर भी सुजान हैं। भगवान् हैं, भक्त के विरह के दुःख से दुःखी हुए हैं।

व्याख्या : शिवजी ज्ञान और भक्ति दोनों के आचार्य हैं। निर्गुण और सगुण दोनों मत के उपदेष्टा हैं। जहाँ जैसा पात्र देखते हैं वहाँ वैसा उपदेश करते हैं। विचरहिं महि से शारीरक तप कहा। धरि हृदय हरि से मानस तप कहा। अब वाङ्मय तप कहते हैं कि योग्य पात्रों को यथोचित उपदेश घूम घूमकर दे रहे हैं। फिर भी दुःखी हैं स्त्री के विरह से नहीं क्योंकि अकाम हैं। कामी स्त्री के विरह से दुःखी होता है। भगवान् हैं अतः भक्त के विरह से दुःखी हैं। भगवान् का बड़ा प्यार भक्त पर होता है। यथा : यद्यपि सम नहिं राग न रोषू। गहहिं न पाप पुन्य गुन दोषू। तदपि करहिं सम विषम विहारा। भक्त अभक्त हृदय अनुसारा। सुजान हैं, जन के जी की जाननेवाले हैं। अतः दुःखी हैं।

एहि बिधि गयउ कालु बहु बीती। नित नै होइ राम पद प्रीती ॥
नेमु प्रेमु संकर कर देखा। अबिचल हृदयँ भगति कै रेखा ॥२॥

अर्थ : इस प्रकार बहुत समय बीत गया। रामजी के चरणों में नित्य नई प्रीति होने लगी। जब शिवजी के नेम और प्रेम को देखा कि भक्ति को रेखा : संस्कार हृदय में अविचल है।

व्याख्या : इस विधि से कई मन्वन्तर बीत गये। प्रीति तो वही है, जिसमें पुरानापन आने न पावे। रामजी ने शङ्कर का नेम देखा। यथा : जपहिं सदा रघुनायक नामा। इत्यादि। प्रेम देखा। यथा : विचरहिं महि धरि हृदय हरि। हृदय में ऐसी भक्ति की रेखा : छाप देखी जो भक्त विरह दुःख दुःखी होने पर भी

चलायमान नहीं होते बल्कि नित्य नई होती जाती है। इधर बहुत काल से शिवजी का व्रत चल रहा है। उधर ४४११ वर्ष से उमा का तप चल रहा है।

प्रगटे रामु कृतग्य कृपाला। रूप सील निधि तेज बिसाला ॥
बहु प्रकार संकरहि सराहा। तुम्ह बिनु अस ब्रतु को निरबाहा ॥३॥

अर्थ : तब कृतज्ञ कृपालु, रूपशील के भण्डार और महातेजस्वी रामजी प्रकट हुए। वहुत प्रकार से शिवजी की बड़ाई की कि तुम्हारे बिना ऐसा व्रत कौन निवाह सकता है।

व्याख्या : अविचल भक्ति देखकर प्रकटे : इसलिए कृतज्ञ कहा। भक्त विरह दुःख दुःखी देखकर प्रकटे : इसलिए कृपाल कहा। जैसा रूप हृदय में धारण करके विचर रहे थे वही रूप अक्षिगोचर हुआ। शङ्कर भगवान् रूपशीलनिधि महातेजस्वी रूप को हृदय में धारण करते हैं। अतः यहाँ वैसा ही वर्णन है।

इधर : नेम प्रेम संकर कर देखा : तब प्रकट हुए। उधर : देखि उमहि तप खीन सरीरा : तब : ब्रह्म गिरा भइ गगन गभीरा। इधर व्रत की प्रशंसा हो रही है कि : तुम विनु अस व्रत को निर्वाहा : उधर उमा के तप की प्रशंसा हो रही है : अस तप काहु न कीन्ह भवानी। भये अनेक धीर मुनि ज्ञानी। देवताओं ने शिवजी के प्रण की प्रशंसा की। रामजी उस प्रतिज्ञा के निर्वाह की प्रशंसा करते हैं।

बहुविधि राम सिवहि समुझावा। पारवती कर जन्मु सुनावा ॥
अति पुनीत गिरिजा कै करनी। बिस्तर सहित कृपानिधि बरनी ॥४॥

अथ : रामजी ने वहुत प्रकार से शिवजी को समझाया और पार्वती का जन्म सुनाया। कृपानिधि ने पार्वती की अति पवित्र करनी का विस्तार के सहित वर्णन किया।

व्याख्या : रामजी ने समझाया दूसरा जगद्गुरु को कौन समझाये। यथा :

क. जगत कुटुम्ब के कुटुम्बी आप ही हैं एक,
आपके सहारे सारे जीव वसुधा के हैं।
माय बिनु हाय को सुनैया कौन या जग में,
ताके बिनु तातहू के पौरुष विथा के हैं॥
पाय माय विश्व हरखाय सो उपाय कीजे,
तापित हृदय आज सकल प्रजा के हैं।
आप मन मोरैं, तौं निहोरैं केहि जाय,
माय बाप के भरोसे शिशु जीवत जहाँ के हैं ॥१॥

इत्यादि। तब हिमालय के घर पार्वती का जन्म कहा। कृपानिधि हैं : संक्षेप से कहने में सन्तोष नहीं। अतः विस्तार के सहित गिरिजा की अति पुनीत करनी का वर्णन किया। सती परम पुनीत थीं पर गिरिजा अति पुनीत हैं। इस भाँति दिव्य जन्म और दिव्य कर्म कहा।

दो. अब बिनती मम सुनहु सिव, जौं मो पर निज नेहु।
जाइ बिबाहहु सैलजहिं, यह मोहि माँगे देहु ॥७६॥

अर्थ : हे शिव ! अब मेरी विनती सुनो। यदि तुम्हारा मुझ पर स्नेह हो तो मुझे यही माँगन दो कि जाकर पार्वती के साथ व्याह कर लो।

व्याख्या : भगवान् आविर्भूत होकर वर देते हैं पर यहाँ स्वयं माँग रहे हैं। कहते हैं कि सबकी विनती तुम सुनते हो। मेरी न सुनने का कोई कारण नहीं। अथवा मैं विनती सुनता हूँ करता नहीं। सो आज तुमसे करता हूँ इसलिए सुनो। यदि मुझ पर स्नेह हो तो स्वीकार करो। न हो तो मत स्वीकार करो। मैं माँगता हूँ। मुझे दो। भाव यह है कि भगवान् उमा से वाक्यवद्ध हो चुके हैं कि : अब मिलिहहिं त्रिपुरारि। अतः माँगते हैं : जाइ विवाहहु सैलजहिं।

कह सिव जदपि उचित अस नाहीं। नाथ बचन पुनि मेटि न जाहीं ॥
सिर धरि आयसु करिअ तुम्हारा। परम धरमु यह नाथ हमारा ॥१॥

अर्थ : शिवजी ने कहा : यद्यपि ऐसा उचित नहीं है तो भी नाथ की बात टाली नहीं जा सकती। आपकी आज्ञा शिरोधार्य करके मानूँ हे नाथ ! यही मेरा परम धर्म है।

व्याख्या : यद्यपि स्वयं रामजी ने समझाया फिर भी शिवजी कहते हैं कि यह उचित नहीं है। यदि आपकी ओर से सम्मति ही दी गई होती तो मैं अस्वीकार करता। क्योंकि : वचन अन्यथा होइ न मोरा। परन्तु यहाँ सम्मति के साथ साथ आज्ञा भी दी जा रही है। उसे हटाने का मुझे सामर्थ्य नहीं। अपने प्रण पर स्थिर रहना धर्म है पर स्वामी की आज्ञा मानना परम धर्म है। धर्म के लिए परम धर्म नहीं मिटाया जा सकता। इसलिए मैं शिरोधार्य करता हूँ। दूसरे का वचन मेटा जा सकता है पर : प्रभु आज्ञा अपेल श्रुति गाई। अतः आपकी आज्ञा प्रमाण है।

मातु पिता गुर प्रभु कै बानी। बिनहिं बिचार करिअ सुभ जानी ॥
तुम्ह सब भाँति परम हितकारी। अग्या सिर पर नाथ तुम्हारी ॥२॥

अर्थ : माता-पिता, गुरु और स्वामी की बात को बिना किसी बिचार के शुभ जानकर करना चाहिए। आप तो सब तरह से मेरे परम हितकारी हैं। हे नाथ ! आपकी आज्ञा मेरे सिर पर है।

व्याख्या : गुरु पितु मातु स्वामिहित वानी। सुनि मन मुदित करिअ भलि जानी। उचित कि अनुचित किये विचारू। धरम जाइ सिर पातक भारू। गुर पितु मातु स्वामि सिख पालें। चलेहु कुमग पग परहिं न खाले। इनमें से एक-एक की वाणी प्रत्याख्यान योग्य नहीं है। आप तो माता-पिता, गुरु, प्रभु, हित सब कुछ हैं। आप : यह मोहि माँगे देहु : क्यों कहते हैं। आपकी आज्ञा मेरे सिर माथों पर है।

प्रभु तोषेउ सुनि संकर बचना। भगति बिबेक धर्म जुत रचना ॥
कह प्रभु हर तुम्हार पन रहेऊ। अब उर राखेहु जो हम कहेऊ ॥३॥

अर्थ : शिवजी की भक्ति, विवेक और धर्म युक्त वचनरचना सुनकर प्रभु संतुष्ट हुए। प्रभु ने कहा हे हर! तुम्हारा प्रण रह गया। अब मैंने जो कहा है उसे हृदय में रखना।

व्याख्या : शंकरजी के वचन की रचना भक्ति, विवेक और धर्मयुक्त थी। इससे प्रभु सन्तुष्ट हुए। प्रभु की सन्तुष्टि के लिए तीन उपाय हैं : भक्ति, विवेक और धर्म। शङ्करजी के वाक्य में तीनों का सँभार था।

धर्म, यथा : सिर धरि आयसु करिअ तुम्हारा। परमधर्म यह नाथ हमारा॥
विवेक, यथा : मातु पिता गुरु प्रभु कै बानी। बिनहिं बिचार करिअ सुभ जानी॥
भक्ति, यथा : तुम सब भाँति परम हितकारी। आज्ञा सिर पर नाथ तुम्हारी॥

शिवजी ने जो कहा था कि : उचित अस नाहीं। उसका उत्तर देते हुए रामजी कहते हैं : तुम्हार पन रहेऊ। तुम्हारा यही प्रण था कि : एहि तन सतिहि भेंट अब नाहीं। सो वह तन भस्म हो गया। अब तो पार्वती तन है। अब उर राखेउ जो हम कहेऊ। भाव यह है कि विवाह के लिए तुम्हें कुछ उद्यम नहीं करना होगा। कारण कार्य आप ही उपस्थित होगा। तुम्हारा एतावन्मात्र कर्त्तव्य है कि मेरे कहने का ध्यान रखना। अवसर आने पर उसे कार्य में परिणत करना।

अंतरधान भए अस भाखी। संकर सोइ मूरति उर राखी॥
तबहिं सप्तरिषि सिव पहिं आए। बोले प्रभु अति बचन सुहाए॥४॥

अर्थ : ऐसा कहकर : रामजी अन्तर्धान हो गये। शिवजी ने वही मूर्ति हृदय में रख ली। उसी समय सप्तर्षि शिवजी के पास आये। प्रभु ने उनसे अति सुन्दर वचन कहे।

व्याख्या : रामजी के प्रकरण का प्रकटे से उपक्रम और अन्तर्धान भए से उपसंहार किया। शिवजी ने वही रूपशीलनिधि तेज बिसाला : मूर्ति को हृदय में रख लिया। क्षण भर का वियोग असह्य हैं। या तो इन आँखों के सामने रहें या मानसिक दृष्टि के सामने रहें। तभी सप्तर्षियों ने आकर प्रणाम किया। शिवजी ने ऐसा वचन कहा जो सबका मनभाया हो। इसलिए उस वचन को 'अति सुहाए' कहा।

दो. पारबती पहिं जाइ तुम्ह, प्रेम परीछा लेहु।
गिरिहि प्रेरि पठएहु भवन, दूरि करेहु संदेहु॥७७॥

अर्थ : तुम पार्वती के पास जाकर प्रेम की परीक्षा लो। हिमाचल को प्रेरणा करके उनके घर भिजवाओ और उनके सन्देह को दूर कर देना।

व्याख्या : प्रभु लोग जन की प्रीति की परीक्षा करते हैं। यथा : सोइ प्रभु जनकर प्रीति परिच्छा। इससे प्रभु का अज्ञान नहीं समझना। उसका उद्देश्य नीति रक्षा है। यथा : यद्यपि प्रभु जानत सब बाता। राजनीति राखत सुरत्राता। यदि कोई प्रेम के लिए तपस्या करता हो तो उसके प्रेम की परीक्षा लेनी नीति है। परीक्षोत्तीर्ण होने का यश उसे मिलेगा। परीक्षक का मान हुआ कि वे अमुक की परीक्षा लेने के योग्य समझे गये। यहाँ कितना बड़ा मान सप्तर्षि को मिला कि वे पार्वतीजी

के प्रेम के परीक्षक नियत हुए। सती शरीर से स्वामी की परीक्षा लेना उचित समझा था अतः स्वीकार के पहिले शिवजी ने इनकी भी परीक्षा लेना उचित समझा। परीक्षा में उत्तीर्ण होना निश्चत ही है। अतः कहते हैं : गिरिहिं प्रेरि पठयेउ भवन। जिसमें ब्रह्मदेव की वाणी का सामञ्जस्य बैठ जाय और पार्वती को अपने इष्ट से : त्रिपुरारि से मिलने की दृढ़ आशा हो जाय। हिमालय और मेना के सन्देह को दूर करना : इस कथन का यह भाव है कि वे भी जान लें कि शिवजी को विवाह स्वीकार है। शिवजी के ये वचन सबके लिए अति मनभावने थे इसलिए अतिसुहाए कहा।

रिषिन्ह गौरि देखि तहँ कैसी। मूरतिमंत तपस्या जैसी ॥
बोले मुनि सुनु सैलकुमारी। करहु कवन कारन तपु भारी ॥१॥

अर्थ : ऋषियों ने वहाँ पार्वती को कैसा देखा। मानो : स्वयं तपस्या मूर्ति धारण किये हुए हो। मुनि बोले : हे शैलकुमारी ! किसलिए भारी तप कर रही हो ?

व्याख्या : सप्त ऋषि हैं। अपने मन्वन्तर के अधिकारी हैं। बड़े भारी तपस्वी हैं। उन्हें गौरी स्वयं तपस्या की अधिष्ठात्री देवी सी प्रतीत हुईं। तप के तेज का विस्तार हो रहा है। इसलिए गौरी नाम दिया। दुःसह क्लेश छोड़ दिया है क्योंकि ब्रह्मवाणी की ऐसी आज्ञा हो चुकी है, फिर भी तप चल रहा है।

परीक्षा लेने में ही सती से चूक हुई थी। अतः ग्रन्थकार इनके परीक्षा लेने की विधि बतलाते हैं। सप्तर्षियों ने अपना स्वरूप नहीं पलटा। केवल मन्वन्तर के सप्तऋषि होने के नाते पूछते हैं कि किस कारण भारी तप करती हो ? जिसमें उत्तर पाने पर शङ्कर भगवान् में वरोचित गुणों का अभाव दिखलावें और विष्णु में सभी वरोचित गुणों की स्थिति निरूपण करें। इतने से ही परीक्षा हो जावेगी कि शुद्ध प्रेम है कि उसमें कुछ स्वार्थ भी है।

केहि अवराधहु का तुम्ह चहहू। हम सन सत्य मरमु किन कहहू ॥
कहत वचन मनु अति सकुचाई। हँसिहहु सुनि हमारि जड़ताई ॥२॥

अर्थ : तुम किसकी आराधना करती हो और क्या चाहती हो ? तुम हमसे अपना सच्चा भेद क्यों नहीं कहती ? गौरी बोलीं : बात कहते मन बहुत संकुचाता है। हमारी मूर्खता सुनकर हँसोगे।

व्याख्या : तीन बातें क्रम से पूछीं। १. भारी तप का कारण क्या ? २. आराध्यदेव कौन है ? ३. ईप्सित क्या है ? चुप देखकर कहते हैं कि मन्वन्तर के हम सप्तर्षि हैं। तपस्वियों की देखभाल हमारे सुपुर्द है। हम वर भी दे सकते हैं। अतः हमसे मर्म कहना चाहिए।

ऋषियों का अभिप्राय समझते हुए गौरी बोलीं। हम सन सत्य मरम किन कहहू : पहिले इस तीसरे प्रश्न का उत्तर देती हैं कि : मनु अति सकुचाई : अपने विवाह की बात कहने में सङ्कोच और उस पर हँसने के भय से अति सङ्कोच। जड़ताई अर्थात् स्नेह : जाड्य है। यथा : सो सनेह जड़ता बस कहहू। मैं स्नेह से जड़ हूँ। मुझमें समझने की सामर्थ्य नहीं है।

मनुहठ परा न सुनै सिखावा। चहत बारि पर भीति उठावा ॥
नारद कहा सत्य सोइ जाना। बिनु पंखन हम चहहिं उड़ाना ॥३॥

अर्थ : मन हठ कर बैठा है। सिखावन सुनता ही नहीं। पानी के ऊपर दीवार खड़ी करना चाहता है। नारदजी ने जो कहा है उसे हमने सत्य जाना है। मैं विना पंख के उड़ना चाहती हूँ।

व्याख्या : मन मेरा हठी है। मेरी ही सीख नहीं सुनता, दूसरे की क्या सुनेगा। भाव यह कि यदि आप लोग मेरे सङ्कल्प में कुछ सुधार चाहते हों, कुछ शिक्षा देना चाहते हों तो न देने की कृपा करें। तृतीय प्रश्न का उत्तर समाप्त हुआ। दीवार को दृढ़ आधार की आवश्यकता होती है। जल एक ईंटे का भार नहीं सह सकता। उस पर दीवार नहीं उठ सकती। यह मैं स्वयं जानती हूँ। इस भाँति गृहिणी दीवार हैं। उसे पक्के गृहस्थ की आवश्यकता होती है। उदासीन को मित्रता बोझ है। उसे वह नहीं सह सकता। स्त्री को गले बाँधे फिरना उससे कथञ्चित् सम्भव नहीं। यह सब जानती हुई भी मैं असम्भव को सम्भव किया चाहती हूँ। यह प्रथम प्रश्न : करहु कवन कारन तप भारी। का उत्तर है।

अब दूसरे प्रश्न केहि अवराधहु का उत्तर देती हैं। आराधना में गुरु के वचन पर विश्वास चाहिए। अतः कहती हैं : नारद कहा सत्य सोइ जाना। आराधन के साधन विरति और विवेक हैं। जैसे उड़ने के साधन दोनों पंख होते हैं। यथा : श्रुति सम्मत हरि भगति पथ संजुत विरति विवेक। मुझमें दोनों नहीं : न विरति है, न विवेक है। आराधना करना चाहती हूँ। अथवा कार्यसिद्धि के दो साधन हैं। १. दैव २. पुरुषार्थ। सो दैव प्रतिकूल है। यथा : जस वर मैं वरन्यौ तुम पाहीं। मिलिहि उमहि तस संसय नाहीं। और पुरुषार्थ मुझमें है नहीं। यही मेरा बिना पंख के उड़ना चाहना है।

देखहु मुनि अविवेक हमारा। चाहिअ सदासिवहि भरतारा ॥४॥

अर्थ : हे मुनियो ! हमारा अविवेक देखो : मैं सदाशिवजी को पति चाहती हूँ।

व्याख्या : तीसरे प्रश्न का तुम चहहू का उत्तर देती हैं। चाहिअ सदासिवहि भरतारा। अब अपनी चाह में भी बड़ा भारी अविवेक दिखलाती हैं कि लोग इष्टदेव से सुगति चाहते हैं। मैं उन्हीं को भर्तार रूप से चाहती हूँ। ऋषियों के तीनों प्रश्नों का उत्तर पूरा हुआ।

दो. सुनत बचन विहँसे ऋषय, गिरि संभव तव देह।
नारद कर उपदेसु सुनि, कहहु बसेउ किसु गेह ॥७८॥

अर्थ : बात सुनते ही ऋषि लोग हँस पड़े और कहा : तुम्हारा देह ही पहाड़ से पैदा है। भला नारद का उपदेश सुनकर किसका घर बसा है ?

व्याख्या : पहिले ही कहा था : हँसिहहु मुनि हमार जड़ताई। सो ठीक उतरा। देवीजी हँसने से ही डरती थीं सो वे महात्मा विहँसे और बोले। 'मन हठ परा न सुनै

सिखावा। चहत वारि पर भीत उठावा। का उत्तर देते हैं : गिरि संभव तव देह। और : नारद कहा सत्य सोइ जाना : का उत्तर देते हुए कहते हैं कि जिसने नारद के उपदेश को सत्य करके जाना उसका घर उजड़ा। भाव यह कि आराधना के उपदेष्टा में दोष दिखाकर आराधना में विरुद्ध फलोत्पादकता दिखाते हैं। विवाह तो घर बसाने के लिए होता है। नारद के उपदेश से सदा बसा हुआ घर उजड़ा है। किसी घर के बसने का तो उदाहरण ही नहीं है।

दच्छ सुतन्ह उपदेसिन्हि जाई। तिनि फिरि भवनु न देखा आई॥
चित्रकेतु कर घरु उन घाला। कनककसिपु कर पुनि अस हाला॥१॥

अर्थ : दक्ष के पुत्रों को जाकर उपदेश दिया। उन्होंने लौटकर फिर घर नहीं देखा। चित्रकेतु का घर उन्हीं ने नष्ट किया और हिरण्यकश्यप का फिर ऐसा हाल हुआ।

व्याख्या : दक्ष के बेटे उपदेश लेने नहीं गये थे। नारद ने स्वयं जाकर उपदेश दिया। तुमने भी बुलाया न होगा। वे आप ही उपदेश देने पहुँच गये होंगे। दक्ष ने हर्यश्व नाम के पाँच सौ पुत्र उत्पन्न किये और उन्हें सृष्टि करने की आज्ञा दी। नारदजी ने उन्हें जाकर उपदेश किया कि पहिले तुम लोग जाकर भूमि के परिणाम का पता लगा लो तब सृष्टि करना। वे भूमि के परिमाण का पता लगाने चल पड़े। सो आज तक न लौटे। फिर दक्षजी ने एक सहस्र पुत्र उत्पन्न करके उन्हें भी सृष्टि करने की आज्ञा दी। नारदजी ने उन्हें भी वही उपदेश दिया और वे भी आज तक नहीं लौटे।

चित्रकेतु राजा को पुत्र न था। अंगिरा मुनि की कृपा से छोटी रानी को एक पुत्र हुआ। अन्य रानियों ने ईर्ष्यावश उसे विष देकर मार डाला। राजा व्याकुल हुआ। अंगिरा मुनि के समझाने पर भी व्याकुलता न गई। मुनिजी ने नारदजी का स्मरण किया। नारदजी ने भी आकर बहुत समझाया पर कोई फल न हुआ। तब नारदजी ने उस मृत पुत्र से कहा : उठ, तेरे पिता व्याकुल हैं। वह उठा और कहने लगा कि कौन किसकी माता और कौन पिता? यह सब भगवान् की माया का विलास है। अब मेरा वृत्तान्त सुनो। मैं पाञ्चाल देश का राजा हूँ। राज्य छोड़कर भजन करने गया। एक दिन भिक्षा माँग लाया। उसका पाक बनवाया। एक कण्डे में १६०० चीटियाँ थीं। वे जल मरी। मुझे पीछे पता लगा। वे ही राजा की १६०० रानियाँ हुईं। मुझे जिसने कण्डा दिया था वह छोटी रानी हुई। उस भिक्षा का शालग्राम को भोग लगाया था। इसीसे एक जन्म में सब बैर सध गया। ऐसा कहकर बालक मर गया। राजा रानी ने राजपाट छोड़ा और विरक्त हो गये। इस भाँति नारदजी के उपदेश से चित्रकेतु का घर गया।

हिरण्यकश्यप का हाल जगत् विख्यात है। इसलिए अस हाला कहते हैं। उसके पुत्र के लिए नृसिंहजी ने उसका पेट फाड़ डाला। बात यह हुई कि हिरण्यकश्यप तप करने गये। उसकी रानी को गर्भ था। नारदजी ने उसे राम तत्त्व का उपदेश दिया।

इससे रानी का तथा गर्भ का रामाकार मन हो गया। उसी रानी से जो लड़का जनमा, प्रह्लाद नाम हुआ। उसीके कारण हिरण्यकश्यप मारा गया।[1] यहाँ फिर शुक तथा बहु बरन विहंग बोल उठे।

नारद सिष जे सुनहिं नर नारी। अवसि होंहि तजि भवनु भिखारी ॥
मन कपटी तन सज्जन चीन्हा। आपु सरिस सबही चह कीन्हा ॥२॥

अर्थ : जो स्त्री पुरुष नारद का सिखावन सुनते हैं वे घरबार छोड़ अवश्य भिखारी हो जाते हैं। उनका मन कपटी है। शरीर पर सज्जन के चिह्न हैं। अपने समान सभी को बनाना चाहते हैं।

व्याख्या : नर ही नहीं नारी भी जो नारद का उपदेश सुने तो उसकी भी गृहस्थी छूटे। हिरण्यकश्यपु की स्त्री ने नारद का उपदेश सुना था जिससे वैरागी लड़का पैदा हुआ और अपनी माँ के वैधव्य का कारण हुआ। नारद के उपदेश से घर उजड़ता है। तुम घर बसाना चाहती हो। अतः उनके उपदेश का परित्याग करो।

ऐसे उपदेश का कारण यह है कि उसका मन कपटी है। बाहर से साधु वेष बनाए रहता है। उसे धन, धाम, जाया कुछ नहीं है। चाहता है कि सारा संसार ऐसा ही हो जाय। कैसी सुन्दर व्याजस्तुति है। नारद अपने सा ही सारे संसार को सुखी बनाना चाहते हैं पर संसार स्वयं सुखी होना चाहता नहीं।

तेहि के बचन मानि बिस्वासा। तुम्ह चाहहु पति सहज उदासा ॥
निर्गुन निलज कुबेष कपाली। अकुल अगेह दिगंबरु ब्याली ॥३॥

अर्थ : उनके वचन का विश्वास करके तुम ऐसा पति चाहती हो। जो १. सहज उदासी २. गुणहीन ३. निर्लज्ज ४. कुवेष ५. कपाल धारण करनेवाला ६. कुलहीन ७. गृहहीन ८. नङ्गा और ९. साँप धारण करनेवाला है।

व्याख्या : नारद के वचन का कोई विश्वास नहीं करता। यदि करते होते तो सब विरक्त हो गये होते। तुम उसी के धोखे में आकर सहज उदासीन पति चाहती हो। वर के लिए उदासीन होना बड़ा भारी दुर्गुण है। उदासीन का अर्थ है रागद्वेष रहित। वह स्त्री से प्रेम कैसे करेगा? यहाँ जो नौ विशेषण शिवजी के लिए दिये हैं इन सबके दो दो अर्थ हैं। पहिला शिवजी की स्तुति में लगेगा। दूसरा अर्थ प्रसङ्गानुकूल निन्दा में है।

१. उदासीन : समदर्शी या उपेक्षक २. निर्गुण : गुणातीत या सद्गुण रहित ३. निलज : आत्मदर्शी या बेहया ४. कुवेष : वैराग्य से या दरिद्रता से ५. कपाली : ब्रह्मदेव का शिरश्च्छेत्ता महापराक्रमी या अघोरी। ६. अकुल : स्वयम्भू या निगोडा ७. अगेह : सर्वाश्रय या निराश्रय ८. दिगम्बर : चिदाकाश रूप या नङ्गा ९. व्याली : विश्वम्भर या सँपेरा।

---

१. औरौ कथा अनेक प्रसंगा। ते सुक पिक बहु बरन विहंगा।

कहहु कवन सुखु अस वरु पाएँ। भल भूलिहु ठग के बौराएँ ॥
पंच कहें सिवँ सती बिबाही। पुनि अवडेरि मराइन्हि ताही ॥४॥

अर्थ : कहो ऐसा वर मिलने से क्या सुख होगा ? तुम ठग के बहकाने से खूब ही भूली। पञ्च के कहने से शिवने सती के साथ व्याह किया था। फिर उसे दुःख दे देकर मरवाही डाला।

व्याख्या : चाहिअ सदा सिवहिं भरतारा : का उत्तर देते हैं। पति का वरण तो सुख के लिए होता है। ऐसे नौ दोषों से युक्त वर से तो दुःख ही दुःख मिलेगा। नारद ठग हैं। सबका सांसारिक सुख छीनना चाहते हैं। इसके कहने में आकर तुम पागलपन कर रही हो। उनके पहले व्याह का हाल सुनो। पहिले तो वे व्याह ही नहीं करना चाहते थे। सबके कहने सुनने से किसी प्रकार व्याह भी किया। उसे ऐसा ऐसा दुःख दिया कि न उसे गहना न कपड़ा। भाँग धतूरा खिला खिलाकर : जो आप खाते हैं : पागल कर दिया। उसका त्याग भी किया। अन्त में वह पिता के यज्ञ में जाकर जल मरी।

दो. अब सुख सोवत सोचु नहिं, भीख माँगि भव खाहिं।
सहज एकाकिन्ह के भवन, कबहुँ कि नारि खटाहिं ॥७९॥

अर्थ : अब शिव सुख से सोते हैं। कोई चिन्ता नहीं है। भीख माँगकर खाते हैं। भला ऐसे जनम के निखट्टू के घर भी कभी स्त्री टिक सकती है।

व्याख्या : एक स्त्री का बोझा चलाये नहीं चलता था। जब से वह मर गई तब से सुख से सोते हैं। नहीं तो उनकी चिन्ता से नींद नहीं लगती थी। यदि कहो कि अब रोटी कौन बनाता है ? इसपर कहते हैं : भीख माँगि भव खाहिं। जहाँ कोई सास ननद नहीं, जेठानी देवरानी नहीं, वहाँ तुम्हारा मन कैसे लगेगा। देखने में तो निन्दा है पर गूढ प्रशंसा के ही वाक्य सप्तर्षियों ने कहे। सुख सोवत सोचु नहिं : कहने का भाव यह कि दुःख के अनुवेध से रहित सुख शिवजी को ही है। वह सुख ही नहीं जिसमें दुःख का मेल हो। अर्थात् यथार्थ सुखी वे ही हैं।

अजहूँ मानहु कहा हमारा। हम तुम्ह कहँ वर नीक बिचारा ॥
अति सुंदर सुचि सुखद सुसीला। गावहिं वेद जासु जस लीला ॥१॥

अर्थ : अब भी हमारा कहा मानो। हमने तुम्हारे लिए अच्छा वर विचारा है। अत्यन्त सुन्दर, पवित्र, सुखदाई और सुशील हैं। उनका यश और लीला वेद गान करते हैं।

व्याख्या : वरेषु ये गुणाः प्रोक्ता एकोऽपि न शिवे स्मृतः। वाहनञ्च बलीवर्दो वसनं चर्म एव च। शि. पु.। वर के जो गुण कहे गये हैं उनमें से एक भी शिवजी में नहीं है। बैल पर तो चढ़ते हैं और चमड़ा पहनते ओढ़ते हैं। एकउ हरहिं न बरगुन कोटिक दूषन। नर कपाल गज खाल ब्याल बिष भूषन। पा. मं.। नारद का कहना छोड़ो। जो हुआ सो हुआ। उन्होंने तुम्हारे लिए अच्छा वर नहीं विचारा था। हम

सातों ऋषियों ने मिलकर अच्छा वर विचारा है। वे अति सुन्दर हैं। पुरारि की भाँति पाँच मुँहवाले नहीं हैं। बड़े पवित्र हैं। श्मशान की राख नहीं लगाते। सुख देनेवाले हैं। पालन कर्ता हैं। संहार कर्ता नहीं हैं। सुशील हैं। सभा में बड़ों का अपमान नहीं करते। जैसा कि शिवजी ने अपने श्वसुर दक्ष का किया था। उनके यश और लीला का गान वेद करते हैं। उनके क्रूर कर्म की गाथा का वर्णन नहीं करते।

दूषन रहित सकल गुन रासी। श्रीपति पुर बैकुंठ निवासी ॥
अस बर तुम्हहि मिलाउब आनी। सुनत बिहँसि कह बचन भवानी ॥२॥

अर्थ : वे दोष रहित और सब गुणों की राशि हैं, श्रीपति हैं, वैकुण्ठ में बसते हैं। ऐसा वर तुम्हें लाकर मिलावेंगे। बात सुनते ही भवानी जोर से हँस पड़ी और बोलीं।

व्याख्या : उनमें कोई दोष नहीं है। शिवजी की भाँति सर्प विषादि धारण नहीं करते सब गुणों की राशि हैं। भाँग धतूरा नहीं खाते। श्रीपति हैं। भीख माँगि भव खाहिं वाली बात नहीं है। वैकुण्ठपुर निवासी हैं। मसानवासी नहीं। नव दोष शिवजी में कहे थे। अब नव गुण भगवान् में बतला रहे हैं। मिलान कीजिये : १. शिवजी कुवेष हैं। वे अति सुन्दर हैं। २. शिव कपाली हैं। वे शुचि हैं। ३. ये व्याली हैं। वे सुखद हैं। ४. ये दिगम्बर हैं। वे सुशील हैं। ५. ये निर्गुण हैं। उनकी यशलीला वेद गाते हैं। ६. ये अकुल हैं। वे दूषण रहित हैं। ७. ये अगेह हैं। वे वैकुण्ठ निवासी हैं। ८. ये उदासी हैं। वे श्रीपति हैं। ९. ये निर्लज्ज हैं। वे सकल गुणराशि हैं। सप्तर्षि कहते हैं कि हमारा कहना मानने का फल यह होगा कि ऐसा वर हम तुम्हें लाकर मिला देंगे। इतना दिन तुम्हें तप करते हुआ वे भागते फिरते हैं और इनके लिए तुम्हें कुछ करना नहीं। हम सब कर देंगे। यथा : मोरे जान कलेस करिय बिनु काजहिं। सुधा कि रोगिहि चाहहि रतन कि राजहिं। पा. मं.।

पहिले सप्तर्षि उमा की जड़ता पर हँसे थे। अब भवानी उनकी प्रतारणा पर हँस पड़ीं।

सत्य कहहु गिरि भव तनु एहा। हठ न छूट छूटै बरु देहा ॥
कनकौ पुनि पषान ते होई। जारेउ सहजु न परिहर सोई ॥३॥

अर्थ : आप लोगों ने सच कहा। मेरा शरीर पर्वत से उत्पन्न हुआ है। हठ नहीं छूटेगा। देह भले ही छूट जाय। सोना भी पत्थर से होता है। जलाने पर भी अपना स्वभाव नहीं छोड़ता।

व्याख्या : गिरिसंभव तवदेह का उत्तर देती हैं। सत्य कहहु गिरिभव तनु एहा। आप ऐसा उत्तम वर खोज बैठे हैं। ला मिलाने को भी तैयार हैं। विचारशील के लिए तो बड़ी बात है। पर मेरे विचार कहाँ ? मैं तो पहाड़ की बेटी हूँ। मुझमें जड़ता है। वे न मिलेंगे तो तप करते करते देह छोड़ दूँगी। पर वरूँगी उन्हीं को। अजहूँ मानहु कहा हमारा। का उत्तर देती हैं : हठ न छूट छूटै बरु देहा।

अब वंश स्वभाव कहती हैं। सोना भी पहाड़ से ही उत्पन्न होता है। उसे जला डालिये अपना स्वभाव नहीं छोड़ता। कनकहिं बान चढ़ै जिमिदाहे। तिमि प्रियतम पद प्रीति निवाहे। जितना तपाइयेगा उतनो ही चमक सोने की बढ़ेगी। वह अपना रंग कभी नहीं छोड़ेगा। उसी भाँति प्रियतम पद प्रीति निर्वाह में मेरा सोना सा स्वभाव होना स्वाभाविक है। मैं अपना हठ कैसे छोड़ूँ ?

नारद वचन न मैं परिहरऊँ। बसौ भवन उजरौ नहिं डरऊँ ।।
गुरु के वचन प्रतीति न जेही। सपनेहुँ सुगम न सुख सिधि तेही ।।४।।

अर्थ : मैं नारदजी के वचन को नहीं छोड़ूँगी, चाहे घर बसे या उजड़े, मुझे डर नहीं हैं। गुरु के वचन का जिसे विश्वास नहीं उसे सुख की सिद्धि सपने में भी सुगम नहीं होती।

व्याख्या : नारद सिख जे सुनहिं नर नारी। अवसि होहि तजि भवन भिखारी। नारद कर उपदेश सुनि कहहु बसेउ किसु गेह का उत्तर देती हैं कि नारद के वचन के सामने घर का उजड़ना क्या है ? तेहि के वचन मानि विस्वासा का उत्तर देती हैं : गुर के वचन प्रतीत न जेही। नारद को गुरु मानती हैं। उन्हीं के उपदेशानुसार तप आरम्भ किया है। उन्हीं से शिवपञ्चाक्षर की दीक्षा ली है। गुरु के वचन की प्रतीति सुख सिद्धि का असाधारण कारण है।

दो. महादेव अवगुन भवन, विस्नु सकल गुन धाम।
जेहि कर मनु रम जाहि सन, तेहि तेही सन काम ।।८०।।

अर्थ : महादेव अवगुणों के घर हैं। विष्णु सारे गुणों के धाम हैं। पर जिसका मन जिससे रमता है उसको उसी से काम है।

व्याख्या : परम श्रद्धास्पद के गुण दोष विवेचन पर शास्त्रार्थ इष्ट नहीं है और न विष्णु के विरुद्ध एक शब्द मुख से निकालना इष्ट है। अतः वाद विवाद का मार्ग बन्द करने के लिए तुष्यतु दुर्जनन्यायेन मान लेती हैं कि उनका कहना ठीक है। महादेव अवगुण के और विष्णु गुणों के धाम हैं पर : मीठ कहा कवि कहैं। जाहि जो भावइ। पा. मं.। जिसे जो पसन्द हो वही उसके लिए मीठा है। मुझे विष्णु से काम नहीं है।

जौ तुम्ह मिलतेहु प्रथम मुनीसा। सुनति सिख तुम्हार धरि सीसा ।।
अब मैं जन्मु संभु हित हारा। को दूषन करै बिचारा ।।१।।

अर्थ : हे मुनीश्वरो ! जो तुम पहले मिलते तो मैं तुम्हारा उपदेश सिर पर धरकर सुनती। अब तो मैंने अपना जन्म शम्भु के लिए हार दिया। अब गुण दोष का विचार कौन करे ?

व्याख्या : सम्मति देने या मानने का समय निकल गया। विचार का समय मन से वरण करने के पहिले था। अब तो शम्भु के लिए जन्म हार चुकी। आपके प्रति मेरा अनादर नहीं है पर अब मैं गुरु कर चुकी। गुरु के वचन के सामने और

सब वचन अमान्य हैं। यदि पहले आप आये होते तो मैं आप को ही गुरु बनाए होती आपकी ही आज्ञा मानती दूसरे की न मानती।

इष्टदेव का भी वरण हो चुका। अब गुण दोष विचार अनुचित है। बात बहुत आगे बढ़ गई।

जौ तुम्हरें हठ हृदय बिसेषी। रहि न जाय बिनु किए बरेषी॥
तौ कौतुकिअन्ह आलसु नाहीं। बरकन्या अनेक जग माहीं॥२॥

अर्थ : यदि तुम्हारे मन में बहुत हठ हो वर खोजे : वरईक्षण : बिना रहा न जाता हो तो कौतुकी लोगों को आलस्य तो होता ही नहीं और संसार में वर कन्या की कमी भी नहीं है।

व्याख्या : बात समाप्त हो गई। ऋषियों को चला जाना चाहता था पर वे ठहरे हुए हैं। कुछ कहना चाहते हैं। ऐसी परिस्थिति देखकर भगवती कहती हैं : मुझे तो आप लोगों की आवश्यकता नहीं है पर यदि आप लोगों को ही विशेष हठ हो वरदिखौआ किये बिना जी न मानता हो : भाव यह कि इस विषय में विशेष बात सुनना नहीं चाहतीं : तो आप लोग कौतुकी जान पड़ते हैं : बिना प्रार्थना किये वर भी विचार लिया। हठात् आकर वरण किये हुए वर की निन्दा करने लगे ! यहाँ आप के कौतुक की सामग्री नहीं है। जहाँ कौतुक चल सके वहाँ जाइये।

जनम कोटि लगि रगरि हमारी। बरौं संभु न त रहौं कुमारी॥
तजौं न नारद कर उपदेसू। आपु कहहिं सत बार महेसू॥३॥

अर्थ : करोड़ों जन्म तक हमारी यही रगड़ है कि या शम्भु को वरूँगी या कुँआरी रहूँगी। शिवजी स्वयं सौ बार कहें तो भी नारदजी के उपदेश को न छोड़ूँगी।

व्याख्या : अस वर तुम्हहि मिलाउब आनी का उत्तर देती हैं। इस जन्म की क्या कथा करोड़ों जन्म के लिए यही हठ है। शिवजी को वरूँ या क्वाँरी रहूँ। भाव यह कि उपदेश के लिए यहाँ कोई स्थान नहीं है। भली भूलिउ ठग के बौराएँ का उत्तर देती हैं कि भले तुम ठग समझो पर मेरा विश्वास अटल है। स्वयं महेश जो महा कल्याण के अधिकारी हैं सौबार आकर कहें तो भी मैं नारदजी का उपदेश नहीं छोड़ सकती। आप लोग तो केवल एक मन्वन्तर के अधिकारी ठहरे।

मैं पा परौं कहै जगदंबा। तुम्ह गृह गवनहु भयउ बिलंबा॥
देखि प्रेमु बोले मुनि ग्यानी। जय जय जगदंबिके भवानी॥४॥

अर्थ : जगदम्बा ने कहा : मैं आपके पाँव पड़ती हूँ आप जाँय बहुत देर हुई। प्रेम देखकर ज्ञानी मुनि बोले : जगदम्ब ! तेरी जय हो। भवानी तेरी जय हो।

व्याख्या : महेश के विरुद्ध एक बात भी सुनना नहीं चाहती। उन्हें न जाते देखकर बोलीं। देर हुई घर जाइये। भाव यह कि : आपको घर उजड़ने बसने की बड़ी चिन्ता रहती है सो आपका घर स्वयं सूना पड़ा है। उसे शीघ्र अशून्य कीजिये।

प्रेम की परीक्षा हो चुकी। दो बार प्रश्नोत्तर हुआ। अतः दो बार जय जयकार किया। शिवजी ने कहा था : दूर करेउ संदेहु। अतः जगदम्बिके भवानी कहते हैं। इसके पहिले शैलकुमारी कहकर सम्बोधन किया था।

दो. तुम माया भगवान सिव, सकल जगत पितु मातु ॥
नाइ चरन सिर मुनि चले, पुनि पुनि हरपत गातु ॥८१॥

अर्थ : तुम माया हो, शिवजी भगवान् हैं। समस्त जगत् के माता पिता हो। चरण में सिर नवाकर मुनि वार बार पुलकित होते चले।

व्याख्या : माया होने से तुम जगन्माता, भगवान् होने से शिवजी जगत्पिता हैं। दोनों का सम्बन्ध अनादि सिद्ध है। अर्थात् विवाह हुआ हवाया है। निश्चित है। आने के समय प्रणाम नहीं किया क्योंकि वरद वनकर आये थे। परीक्षा हो चुकने पर प्रणाम किया शिवजी की योग्या समझकर। जगदम्बा का निर्मल अचल प्रेम देखकर वार बार रोमाञ्च हो रहा है।

जाइ मुनिन्ह हिमवंतु पठाए। करि बिनती गिरिजहिं गृह ल्याये ॥
बहुरि सप्तरिषि सिव पहिं जाई। कथा उमा कै सकल सुनाई ॥१॥

अर्थ : मुनियों ने जाकर हिमवान् को भेजा। विनती करके पार्वती को घर ले आये। फिर सप्तर्षियों ने शिवजी के पास जाकर उमा की सब कथा सुनाई।

व्याख्या : शिवजी की आज्ञा थी कि : गिरिहि प्रेरि पठएउ भवन। इसलिए सप्तर्षियों ने जाकर हिमवान् को प्रेरणा की कि अपनी बेटी को घर ले आओ। उसका तप पूरा हुआ। महादेवजी ने विवाह स्वीकार कर लिया। तदनुसार हिमवान् गये और विनय करके घर ले आये। हिमवान् शिव पार्वती की महिमा के जानकार थे। अतः बेटी होने पर भी उनसे विनय की, घर चलने की आज्ञा नहीं दी। अथवा अति प्रेम होने से विनय किया कि किसी तरह से यह घर तो चलें। पार्वती जी ब्रह्मवाणी के अनुसार : यथा, आवैं पिता बुलावन जबहीं। हठ परिहरि गृह जायेहु तबहीं : घर चली गईं। फिर सप्तर्षियों ने जाकर शिवजी से उमा का तप तेज तथा अपना और उनका संवाद सब सुनाया।

भए मगन सिव सुनत सनेहा। हरषि सप्तरिषि गवने गेहा ॥
मनु थिरु करि तब संभु सुजाना। लगे करन रघुनायक ध्याना ॥२॥

अर्थ : प्रीति सुनकर शिवजी मगन हो गये। सातों मुनि हर्षित होकर घर गये। तब सुजान शिवजी मन को स्थिर करके रघुनायक का ध्यान करने लगे।

व्याख्या : शिवजी बड़े स्नेही हैं। स्नेह सुनकर बड़े मग्न हो गये। इस बात का आनन्द हुआ कि अब उमा को विश्वास हो गया होगा कि मैं स्वीकार करूँगा। उनकी विरह व्यथा कम हुई होगी अथवा प्राण पड़ जाने से आनन्दित हुए। भगवती 'इ' हैं, विना उनके शिव शव हैं। अतः पुनः शिवत्व प्राप्ति के निश्चय से आनन्दित हैं।

शिवजी की यह् दशा देखकर सप्तर्षि भी प्रसन्न हो गये। इस आनन्द का हेतु अपने को जानकर कृत्यकृत्य हुए। तव घर गये। भगवती की आज्ञा भी पालन करनी थी। तुम गृह् गवनउ भयेउ विलंबा।

स्नेह् में डूबे हुए चित्तको शिव जी ने शान्त किया और रघुनायक का ध्यान करने लगे। आनन्द की घटना उपस्थित होने पर महात्मा लोग भगवान् का ध्यान करते हैं। अथवा भक्त विरह् दुःख से दुःखी थे। इसलिए ध्यान नहीं करते थे। पृथ्वी में इधर उधर उपदेश करते फिरते थे। अव वह् दुःख मिट गया। अतः ध्यान करने लगे।

तारकु असुर भयउ तेहि काला। भुज प्रताप वल तेज विसाला॥
तेहि सब लोक लोकपति जीते। भए देव सुख संपति रीते॥३॥

अर्थ : उन्हीं दिनों तारकासुर हुआ। जिसकी भुजाओं का प्रताप वल और तेज बहुत बड़ा था। उसने सव लोक और लोकपालों को जीत लिया और देवता सुखसम्पत्ति से रहित हो गये।

व्याख्या : कालिकापुराण में कहा है कि विद्राव्य सकलान् देवान् दैत्यान् स्वान् तत्पदेषु च। स्वयं नियोजयामास देवयोनिषु चाप्यसौ। सव देवताओं को युद्ध में भगाकर अपने दैत्यों को उनके पदों पर देवयोनियों में भी उसने : तारकासुर ने नियुक्त किया। अर्थात् देवताओं पर भी उसके नियुक्त किये हुए दैत्य शासन करते थे। शङ्कर भगवान् उस समय ध्यान में वैठे थे। वल शब्द के पहिले प्रताप शब्द के प्रयोग का भाव यह कि उसकी भुजाओं के प्रताप के वल से उसके अनुचर लोकपालों को बाँधकर पशुओं की भाँति खींच लाये। इस भाँति प्रताप कहा।

अजर अमर सो जीति न जाई। हारे सुर करि विविध लराई॥
तब बिरंचि सन जाइ पुकारे। देखे विधि सब देव दुखारे॥४॥

अर्थ : वह अजर अमर था। जीता नहीं जाता था। अनेक प्रकार की लड़ाई करके देवता लोग हार गये। तव ब्रह्मदेव के यहाँ पुकार मचाई। ब्रह्मदेव ने देखा कि देवता दुःखी हैं।

व्याख्या : अब वल कहते हैं कि वह अजेय था और साथ ही न उसे बुढ़ापा आता था न मौत आती थी! तेज कहते हैं कि देवता अनेक प्रकार से लड़कर उस तेजस्वी से हार गये। लोकपालों के स्वामी ब्रह्मदेव हैं। निरुपाय होकर उनके शरण गये। ब्रह्मदेव ने उनकी पुकार सुनी और प्रत्यक्ष देखा कि देवता लोग श्रीहीन होकर दुःखी हैं।

दो. सब सन कहा बुझाय विधि, दनुज निधन तब होइ।
संभु शुक्र संभूत सुत, एहि जीतै रन सोइ॥८२॥

अर्थ : सबको समझाकर[1] विधि ने कहा कि दैत्य का मरना तो तब होगा जब शिवजी के शुक्र से पुत्र उत्पन्न हो। वही इसे रण में जीत सकेगा।

व्याख्या : दुःख दूर वे भी नहीं कर सके। पर उपाय बतलाया जिससे दुःख दूर हो सके। उपाय यह था कि शिवजी के वीर्य से यदि पुत्र उत्पन्न हो तो वह इसे जीत सकेगा! तारकासुर ने छः दिन के उत्पन्न हुए बालक से अपनी मृत्यु माँगी थी। शिवजी के सिवा दूसरे के वीर्य में इतना सामर्थ्य नहीं कि उससे उत्पन्न बालक छठी के भीतर तारकासुर का वध कर सके। शरीर सम्भूत पुत्र से काम न चलेगा। शुक्र सम्भूत होना चाहिए। नहीं तो शरीर सम्भूत तो वीरभद्रादिक थे ही।

मोर कहा सुनि करहु उपाई। होइहि ईस्वर करिहि सहाई ॥
सती जो तजी दच्छ मख देहा। जनमी जाइ हिमाचल गेहा ॥१॥

अर्थ : मेरी बात सुनकर उपाय करो। काम बन जायगा। ईश्वर सहायता करेगा। सती ने : जिसने दक्ष के यज्ञ में शरीर छोड़ा है हिमाचल के घर में जाकर जन्म लिया है।

व्याख्या : बात पीछे बतलायेंगे। अभी प्रोत्साहन देते हैं कि मेरे कथनानुसार उद्योग करने से कार्य सिद्धि होगी। आशीर्वाद भी देते हैं कि ईश्वर सहायता करेगा। क्योंकि मनुष्य का कर्म में अधिकार है। फल में नहीं। फल ईश्वर के हाथ है। यथा : सुभ अरु असुभ कर्म अनुहारी। ईस देह फल हृदय बिचारी। सो ईश्वर सहाय करेगा। तुम्हारा उद्यम सफल होगा।

दक्षमख भूलने की वस्तु नहीं है। उसी में सती ने शरीर त्याग किया था। वही जाकर हिमाचल के घर जनमी हैं। तमूर्ध्वरेतसं शम्भुं सैव प्रच्युतरेतसम्। कर्तुं समर्था नान्यास्ति काचिदप्यबलापरा। का. पु.। उन ऊर्ध्वरेता शम्भु के वीर्य को स्थान से प्रचलित करने में वही समर्थ हैं और किसी स्त्री में ऐसा सामर्थ्य नहीं है।

तेइ तपु कीन्ह संभु पति लागी। सिव समाधि बैठे सब त्यागी ॥
जदपि अहै असमंजस भारी। तदपि बात येक सुनहु हमारी ॥२॥

अर्थ : उसने शिवजी को पतिरूप से प्राप्त करने के लिए तप किया है। पर

---

१. षट दिन के सिसु हाथ वध तारक को वर दीन्ह
तेहि बल ते अति प्रबल ह्वै सकल सुरन्ह बस कीन्ह ॥१॥
वीर्यवन्त अस को जगत जाको अस सुत होय
जनमत ही जाके सदृश जग में होय न कोय ॥२॥
ऐसे तो प्रभु संभु ही समरथ परैं लखाय
सती तासु बनिता तजी देह दक्ष मख जाय ॥३॥
सबसन कहा बुझाइ विधि दनुज निधन तब होय
संभु शुक्र संभूत सुत एहि जीते रन सोय ॥४॥

शिवजी सब त्यागकर समाधि में बैठे हैं। यद्यपि असमञ्जस तो बड़ा भारी है। फिर भी हमारी एक बात सुनो

व्याख्या : पिछले जन्म में भी शम्भु को पति पाया। इस जन्म में भी उन्हीं के लिए तप किया। तप कीन्ह कहकर तप की सिद्धि भी बतलाई। विवाह होगा। अतः शुक्र सम्भूत सुत का योग है। पर कठिनाई यह है कि जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति तीनों अवस्था त्यागकर अथवा पहिले सती को त्यागा अब सब त्यागकर शिवजी इस समय तुरीय में स्थिर हैं। स्वरूप का विमर्श ही समाधि है। न जाने कब समाधि खुलेगी और विवाह समाधि खुलने पर ही सम्भव है। शिवजी की समाधि भङ्ग करना साधारण व्यापार नहीं है और इधर तुम लोगों को वेदना भी असह्य है। अतः भारी असमञ्जस है फिर भी उपाय कहते हैं।

पठवहु काम जाइ सिव पाहीं। करे छोभु संकर मनमाहीं॥
तब हम जाइ सिवहि सिर नाई। करवाउब विवाह बरिआई॥३॥

अर्थ : काम को भेजो शिवजी के पास जांय। शङ्करजी के मन में क्षोभ, हलचल पैदा करे। तब हम जाकर शिवजी को प्रणाम करके बलपूर्वक उनका व्याह करावेंगे।

व्याख्या : तप में तथा समाधि में निष्कारण विघ्न करना कामदेव का काम है; परन्तु वह शिवजी के सन्निकट नहीं जाता। उसे शिवजी के पास तुम लोग भेजो। वहाँ जाकर वह अपना सामर्थ्य दिखलावे। शङ्करजी के मन में क्षोभ उत्पन्न करे। क्योंकि समाधि निर्विकारचित्तैकसाध्य है। जहाँ मन क्षुब्ध हुआ तहाँ समाधि छूटी। समाधि से जागने पर विवाह करवाना कुछ कठिन नहीं है। मैं तुम लोगों के साथ चलकर सिर नवाकर बलपूर्वक विवाह करवाऊँगा। सप्तर्षि को भेजकर हिमाचल से कहला चुके हैं न क्यों करेंगे? विनय के बल से करवायेंगे।

इहि बिधि भलेहि देवहित होई। मति अति नीक कहै सबु कोई॥
प्रस्तुति सुरन्ह कीन्ह अति हेतू। प्रगटेउ विषम बान झखकेतू॥४॥

अर्थ : इस विधि से भले ही देवताओं का कल्याण होगा। सब कोई कहने लगे कि यह राय बहुत अच्छी है। देवताओं ने बड़े प्रेम से प्रकर्ष करके स्तुति की तो पञ्चबाण[1] मीनकेतु प्रकट हुए।

व्याख्या : काम की उत्पत्ति ही मनःक्षोभ के लिए है। अतः उसके समाधिभङ्ग करने पर कारण की खोज न होगी। समाधिभङ्ग के अन्य उपाय भी हैं। पर उनके करने से समाधिभङ्ग होने पर शिवजी कारण की खोज करेंगे। देवताओं पर बिना

---

१. बसी करन मोहन कहत, आकर्षण कवि लोग।
उच्चाटन मारन समुझि पंच बान ये योग॥
पुनः करना केतकि केवरा कदम आम के बौर।
ए पाँचों शर काम के केशवदास न और॥

विपत्ति आये न रहेगी। अतः भली प्रकार से हित न होगा। सबने इस उपाय का एक मत से अनुमोदन किया। देवता लोग आर्त थे। इसलिए प्रकर्ष रूप से कामदेव की स्तुति की। नहीं तो कामदेव बुलवा लिये जाते थे। यथा : कामहि बोलि कीन्ह सनमाना। प्रस्तुति से प्रसन्न होकर कामदेव प्रकट हुए। कामदेव, मनोज हैं। अतः उनका निवास मन में रहता है वहाँ प्रकट होते हैं। इसलिए स्तुति के लिए कहीं जाना न पड़ा। 'विषमवान झखकेतु' कहने का भाव यह है कि युद्ध के लिए तैयार होकर आये। यह स्तुति देवलोक में हुई। क्योंकि काम से वार्तालाप में ब्रह्मदेव सम्मिलित नहीं हैं।

दो. सुरन्ह कही निज विपति सब, सुनि मन कीन्ह विचार।
संभु विरोध न कुसल मोहिं, विहँसि कहेउ अस मार ॥८३॥

अर्थ : देवताओं ने अपनी सब विपत्ति कह सुनाई। सुनकर मन में विचार किया। और हँसकर कहा कि शम्भु के विरोध से मेरा कुशल नहीं है।

व्याख्या : कामदेव को देवताओं के पराभव पर भी विपत्ति नहीं आती। क्योंकि काम का मान तो असुरों में और भी अधिक है। अतः देवताओं ने अपनी विपत्ति कही। मोहदल के प्रथम वीर हैं अतः मृत्यु पर हँसते हैं। शूराणां मरणं तृणम्। अथवा देवताओं के विनय पर हँसे कि तुम्हारा कुशल तो है। मेरा नहीं है। मन में विचार करने पर यही बात निश्चय हुई कि शम्भु की समाधि भङ्ग करने पर उनके क्रोध से मेरी रक्षा हो नहीं सकती।

तदपि करब मैं काज तुम्हारा। श्रुति कह परम धर्म उपकारा ॥
परहित लागि तजै जो देही। संतत संत प्रसंसहिं तेही ॥१॥

अर्थ : फिर भी मैं तुम्हारा काम करूँगा। क्योंकि वेदों में परोपकार को ही परम धर्म बतलाया है। परउपकार के लिए जो देह छोड़ता है सन्त सदा उसकी प्रशंसा करते हैं।

व्याख्या : भले ही मेरा कुशल न हो पर सम्पूर्ण संसार का तो कुशल होगा। धर्म में वेद ही प्रमाण हैं। सो वेद परोपकार को परम धर्म बतलाते हैं। आत्म रक्षा धर्म है और परोपकार परम धर्म है। अतः तुम्हारा काम मैं करूँगा। आज तक मेरी गिनती षड्रिपु में रही। सन्त मेरी निन्दा करते रहे। अब परोपकार के लिए जब मैं देह छोड़ूँगा तो सन्त समाज में मेरी प्रशंसा सदा होगी। देह है तो एक दिन छूटे ही गा। तब ऐसे सुअवसर को मैं हाथ से क्यों जाने दूँ। कीर्तिर्यस्य स जीवति : जिसकी कीर्ति है वही जीता है।

अस कहि चलेउ सबहिं सिरु नाई। सुमन धनुक कर सहित सहाई ॥
चलत मार अस हृदय विचारा। सिव विरोध ध्रुव मरनु हमारा ॥२॥

अर्थ : ऐसा कहकर और सबको सिर नवाकर पुष्प का धनुष हाथ में ले,

सेना सहित चला। चलते समय कामदेव ने यह विचार कर लिया कि शिव के विरोध में मेरी मृत्यु निश्चित है।

व्याख्या : पञ्च परमेश्वर को प्रणाम किया। यथा : अस कहि नाइ सबन्हि कहँ माथा : उन्मादन नामका धनुष हाथ में लिया। यथा : ततः कामोपि कोदण्डमादाय कुसुमोद्भवम्। उन्मादनेतिविख्यातं कान्ताभ्रूतुल्यवल्लितम्। का. पु.। फूलों का बना हुआ धनुष जिसका नाम उन्मादन प्रसिद्ध है और जो स्त्री के भौंहों के तुल्य चलनेवाला था ले लिया। और अपनी सेना भी साथ ले ली।

चलते समय विचार किया कि सबके विरोध से तो बचे; शिव विरोध से न बचेंगे। उनका तेज मेरे विपरीत है। अतः मैं उनके निकट नहीं गया। यथा : तात अनल कर सहज सुभाऊ। हिम तेहि निकट जाइ नहिं काऊ। गये समीप सो अवसि नसाई। अस मनमथ महेस की नाई। तिस पर मुझे ब्रह्मशाप भी है। यथा : प्राप्तकालश्च सस्मार शापं ब्रह्मकृतं पुरा। शम्भुनेत्राग्निदग्धस्त्वं भविष्यसि न संशयः। का. पु.। अवसर आने पर जो शाप पहिले ब्रह्मा ने दिया था। उसे उसने स्मरण किया कि तू शम्भु की नेत्राग्नि से निःसंशय जल जायगा। अतः मेरे मरने में कोई सन्देह नहीं है।

तब आपन प्रभाव विस्तारा। निज बस कीन्ह सकल संसारा ॥
कोपेउ जबहिं बारिचरकेतू। छन महुँ मिटे सकल श्रुति सेतू ॥३॥

अर्थ : तब उसने अपना प्रभाव फैलाया। सारे संसार को अपने वश में कर लिया। जिस समय मकरध्वज ने कोप किया तो एक क्षण में वेद के सारे सेतु[1] मिट गये। सेतु = पुल।

व्याख्या : कामदेव ने निश्चय किया कि पूरा बल लगाना चाहिए। मरना तो है ही। संसार को अपनी प्रभुता दिखा दें। अथवा विश्वनाथ पर प्रहार करने के पहिले विश्व को वश्य करना चाहिए। राजा पर वार करने से पहिले उसके राज्य पर आक्रमण करना चाहिए। सो पहिले उसने विश्व को वश में किया।

काम का ऐसा प्रबल प्रभाव है कि उसके कोप मात्र से वेद की मर्यादाएँ टूट गईं। चढ़ाई में जिन पुलों से सहायता मिलती है वे पहले तोड़े जाते हैं। अतः पहिला काम यह किया कि श्रुतिसेतु को तोड़ डाला।

ब्रह्मचर्य ब्रत संजम नाना। धीरज धर्म ग्यान बिज्ञाना ॥
सदाचार जप जोग बिरागा। सभय बिबेक कटकु सब भागा ॥४॥

---

१. धर्म : सामान्य : वेद के सेतु हैं। भगवान् रामचन्द्र ने कहा है कि यह धर्मरूपी सेतु सबके लिए है। यथा : भूयो भूयो भाविनो भूमिपालाः नत्वा नत्वा याचते रामचन्द्रः। सामान्योऽयं धर्मसेतुर्नराणां काले काले पालनीयो भवद्भिः।

इन सेतुओं की संख्या तैंतीस है, जो सबके लिए सामान्य हैं। यथा : सत्य, दया, तप, शौच, तितिक्षा आदि। श्रीमद्भा. ७.११।

अथ : ब्रह्मचर्य, व्रत, नाना प्रकार के संयम, धैर्य, धर्म, ज्ञान, विज्ञान, सदाचार, जप, जोग और विरागादि विवेक की सारी सेना भाग खड़ी हुई।

व्याख्या : संसार को वश्य करने में काम की बाधक विवेक की सेना है। सो लड़ भी न सकी। डरकर भाग गई। सेना के प्रधान अधिकारियों के नाम गिनाते हैं। १. ब्रह्मचर्य अर्थात् अष्टविध मैथुन त्याग २. व्रत अर्थात् उपवासादि ३. संयम अर्थात् धारणा, ध्यान और समाधि तीनों का एकत्र होना। धारणा में भेद होने से संयम में भेद होता है। ४. धैर्य अर्थात् विषय के सन्निधान में भी इन्द्रिय निग्रह ५. धर्म अर्थात् वेद की आज्ञा ६. ज्ञान अर्थात् समदर्शन ७. विज्ञान अर्थात् ब्रह्म-लीनता ८. सदाचार अर्थात् जातिधर्म, कुलधर्म ९. जप अर्थात् मन्त्र का अभ्यास १०. योग अर्थात् चित्तवृत्ति निरोध और ११. वैराग्य अर्थात् देखे हुए और सुने हुए पदार्थों में तृष्णा न होना। इन ग्यारहों का नाम गिनाया। पर पूरी सेना भाग गई।

छं. भागेउ विवेक सहाइ सहित, सो सुभट संजुगमहि मुरे।
सद्ग्रन्थ पर्वत कंदरन्हि महुँ, जाइ तेहि अवसर दुरे॥
होनिहार का करतार को, रखवार जग खरभर परा।
दुइ माथ केहि रतिनाथ, जेहि कहुँ कोपिकर धनु सरु गहा॥

अर्थ : विवेक सेना सहित भाग गये। सुभट लोगों ने लड़ाई के मैदान में पीठ दिखाई और सद्ग्रन्थरूपी पर्वत कन्दरों में जा-जाकर छिपे। हे कर्तार ! क्या होनेवाला है ? कौन रक्षा करेगा ? जगत् में खलबली मच गई। ऐसा दो सिरवाला कौन है ? जिसके लिए कामदेव ने क्रोधपूर्वक हाथ में धनुष बाण उठाया है।

व्याख्या : सेना भी भाग गई। राजा विवेक भी भाग गये। प्रबल शत्रु से भागकर सैनिक पर्वत के कन्दरों में छिपते हैं। यथा : रावन आवत सुनेउ सकोहा। देवन तकेउ मेरु गिरि खोहा। सो राजा विवेक और उनकी सेना भागकर सद्ग्रन्थ-रूपी पर्वत के कन्दरों में जा छिपी। अर्थात् विवेक ब्रह्मचर्यादि केवल पोथी में रह गये। व्यवहारभूमि में उनका पता नहीं रह गया। विश्वनाथ समाधि में हैं। रक्षा कौन करे ? संसार भर में खलबली मची।

एक सिर तो काम काट ही लेंगे। अतः जिसे दो सिर हों वह काम को क्रोधित करे। यथा : केहि दुइ सिर केहि जम चह लीन्हा। ध्वनि यह कि आज पाँच सिरवाले से काम पड़ गया है।

धर्म सकल सरसीरुह वृंदा। होइ हिम तिनहि दहै सुखमंदा। धर्मकमल के लिए स्त्री हिम है और वही काम का परम बल है। यथा : तेहि के एक परम बल नारी। इस समय जगत् स्त्रीमय दिखाई पड़ रहा है। हिम की भारी वर्षा हुई। संसार हिममय हो गया। अतः धर्म सरसीरुह की दुर्दशा कहते हैं। भागेउ विवेक सहाय सहित। हिमसैलसुता-सिव व्याह प्रकरण हिमऋतु हो गया।

सभय विवेक कटकु सब भागा। इस पुरइन से भागेउ विवेक सहाय सहित। इत्यादि। अट्ठाईस दल का कमल निकला। यह भी हरिगीतिका छन्द है।

दो. जे सजीव जग अचर चर, नारि पुरुषु अस नाम ।
ते निज निज मरजाद तजि, भए सकल बस काम ॥८४॥

अर्थ : संसार में जितने चर अचर जीव थे[1] और जिनकी स्त्री पुरुष संज्ञा थी वे सब अपनी अपनी मर्यादा छोड़कर काम के वश हो गये ।

व्याख्या : प्रभाव विस्तार का साफल्य दिखाते हैं । पुँशक्ति और स्त्रीशक्ति से ही जगत् की उत्पत्ति स्थिति है । सभी पदार्थों में ये दोनों शक्तियाँ हैं । अतः स्थूल या सूक्ष्मरूप से काम सब में वर्तता है पर उस वर्तने की मर्यादा बँधी हुई है । उसका भङ्ग नहीं होता । यहाँ वेदमर्यादा तो भङ्ग हुई ही थी प्रकृति की मर्यादा भी भङ्ग हुई । जो न नारि हैं न पुरुष हैं । केवल उनके नाम के साथ स्त्रीलिङ्ग और पुँलिङ्ग के प्रत्यय लगे हुए हैं वे कामवश नहीं होते । आज वह मर्यादा भी टूट गई । वे भी कामवश हुए । उनमें भी मानो जीवन आगया क्योंकि काम जीवनी शक्ति है ।

सबके हृदय मदन अभिलाखा । लता निहारि नवहिं तरु साखा ॥
नदीं उमुगि अंबुधि कहुँ धाईं । संगम करहिं तलाव तलाईं ॥१॥

अर्थ : सबके हृदय में काम की चाह हुई । लता को देखकर वृक्षों की डालियाँ झुकने लगीं । नदियाँ उमड़कर समुद्र की ओर दौड़ीं और ताल तलैया आपस में मिलने लगीं ।

व्याख्या : जे सजीव जग के विषय में कहते हैं कि सबके हृदय में काम की चाह उत्पन्न हुई । अचर : नारि पुरुष अस नाम के विषय में कहते हैं कि लता में कुच केशादि कोई लक्षण नारी के नहीं हैं और न वृक्ष में कोई लक्षण पुरुष के हैं । केवल लता शब्द स्त्रीलिङ्ग है और तरु : वृक्ष शब्द पुँलिङ्ग है । इसी भाँति नदी तलाई आदि में स्त्रीलिङ्ग का व्यवहार है और समुद्र, ताल आदि में पुँलिङ्ग का व्यवहार है । सो इस व्यवहार के नाते ये मर्यादा त्यागकर एक दूसरे से मिलना चाहते हैं ।

वृक्षों का देखना शास्त्र से सिद्ध है । यथा : तस्मात्पश्यन्ति पादपाः । नियम यह है कि लता शाखा की ओर बढ़ती है । यथा : बढ़त बौंड़ लिमि लही सुसाखा । यहाँ मर्यादा त्यागकर शाख लता की ओर झुकने लगा । यहाँ अचर नर नामधारी का कामवश होना दिखाया ।

मर्यादा यही है कि वर्षा में उमगकर नदी समुद्र की ओर दौड़ती है । यहाँ विना वर्षा ही समुद्र की ओर दौड़ी । यहाँ नारी नामधारी अचर का कामवश होना दिखाया । तालाब और तलाई का जल उमगकर एक दूसरे में जाना दिखलाकर नारी नामधारी अचर और नर नामधारी अचर का परस्पर कामवश होना दिखाया । अचर से अभिप्राय निर्जीव पदार्थ से है । सो प्रकृति में काम की उमङ्ग आगयी ।

---

१. यहाँ से चार हरिगीतिका छन्दों में कामदहन प्रसङ्ग कहा गया है ।

जहँ असि दसा जड़न्ह कै वरनि । को कहि सकै सचेतन्ह करनी ।।
पसु पच्छी नभ जल थल चारी । भए काम वस समय विसारी ।।२।।

अर्थ : जब जड़ की यह दशा कही गई तब चेतन जीवों की करणी कौन वर्णन कर सकता है। आकाश और थल के रहनेवाले पशु और पक्षी समय भुलाकर कामवश हो गये।

व्याख्या : जड़ की दशा वर्णन करके दिग्दर्शन करा देते हैं। जड़ में काम देखा नहीं जाता। सो जब उनकी यह दशा है तो चेतन की क्या गति हुई होगी? मनुष्य कामवश हो प्रकृति के नियम को भङ्ग करता है। पशु पक्षी नियम भङ्ग नहीं करते। वे समय के नियम से बँधे रहते हैं। सबके जोड़ा खाने का पृथक् पृथक् समय है। वह नियम टूट गया।

मदन अंध व्याकुल सब लोगा । निसि दिनु नहिं अवलोकहिं कोका ।।
देव दनुज नर किंनर व्याला । प्रेत पिसाच भूत वेताला ।।३।।

अर्थ : सब लोग कामान्ध होकर व्याकुल हो गये। चकवा चकई को रात दिन का ज्ञान नहीं रहा। देव, दनुज, नर, किन्नर, सर्प, प्रेत, पिशाच, भूत और बेताल।

व्याख्या : देश, काल, पात्र कुछ नहीं देखते। इसलिए अन्ध कहा। दिवा पश्यति नोलूकः कामान्धो नैव पश्यति। उल्लू तो दिन में नहीं देखता कामान्ध देखता ही नहीं। इन्द्रिय निग्रह में नितान्त असमर्थ हो गये। इसलिए व्याकुल सब लोगा कहते हैं। चकवा चकई के रात दिन का विचार प्रसिद्ध है। यथा : संपत चकई भरत चक मुनि आयसु खेलवार। तेहि निसि आस्रमु पींजरा राखे भा भिनुसार। सो उन्हें यह ज्ञान नहीं रह गया कि यह दिन है या रात। यह दशा वे सम्पूर्ण जगत् की कह रहे हैं और पृथ्वी में सर्वत्र केवल दिन नहीं होता, कहीं रात्रि रहती है, कहीं दिन रहता है। जहाँ रात्रि थी वहाँ के चकवा चकई ने रात्रि नहीं देखी और जहाँ दिन था वहाँ के चकवा चकई दिन क्यों देखने लगे। दिन का निषेध तो केवल मनुष्य के लिए है।

१. देव अर्थात् अदिति के सन्तान स्वर्ग के निवासी २. दनुज अर्थात् दनु या दिति के सन्तान, पाताल निवासी ३. नर अर्थात् मनु के सन्तान, मर्त्यलोक निवासी ४. किन्नर अर्थात् गानवाद्य करनेवाले उपदेव ५. व्याल अर्थात् सुरसा तथा कद्रू के सन्तान सर्प, पाताल निवासो ६. प्रेत, पिशाच, भूत, बेताल अर्थात् वे मृतजीव जिनकी ऊर्ध्वगति नहीं हुई और अन्तरिक्ष में रहते हैं।

इन्हकै दसा न कहेउँ वखानी । सदा काम के चेरे जानी ।।
सिद्ध विरक्त महामुनि जोगी । तेपि काम वस भए वियोगी ।।४।।

अर्थ : मैंने इनकी दशा तो : यह जानकर : वर्णन नहीं की कि ये तो सदा कामदेव के दास हैं। जो सिद्ध, विरागी, महामुनि और योगी थे वे भी काम के वश होकर वियोगी हो गये।

व्याख्या : ये नव जाति काम के गुलाम हैं। पशु पक्षी ऐसे नहीं हैं। समय से नियन्त्रित हैं। अतः इन नवों की दशा भी कहते हैं पर बखान के नहीं। सिद्ध विरक्त महामुनि और योगी। ये चार इन्द्रियजयी हैं। स्त्री नहीं रखते। सो योगी ने अष्टाङ्ग योग छोड़ा, अष्टाङ्ग मैथुन में प्रवृत्त हुए। इसलिए वियोगी हो गये। स्त्री ढूँढ़ने लगे उसके लिए विलाप करने लगे।

छं. भये कामबस जोगीस तापस पामरन की को कहै।
देखहिं चराचर नारिमय जे ब्रह्ममय देखत रहै॥
अबला बिलोकहिं पुरुषमय जग पुरुष सब अबलामयं।
दुइ दंड भरि ब्रह्मंड भीतर कामकृत कौतुक अयं॥

अर्थ : जब योगी और तपस्वी भी काम के वश हो गये तब अधमों की कौन कहे? जो सब चराचर को ब्रह्ममय देखते थे वे सब स्त्रीमय देख रहे हैं। स्त्रियाँ पुरुषमय संसार को देखने लगीं और पुरुष स्त्रीमय देखने लगे। कामदेव ने दो घड़ी के लिए संसार में यह तमाशा कर दिया।

व्याख्या : पामर तो कामवश हैं ही। योगेश्वरों और तपस्वियों की तो सारी सिद्धि ही ब्रह्मचर्य पर खड़ी है। वे भी कामवश हो गये। ब्रह्ममय देखनेवाले ज्ञानियों को समदर्शन का अभ्यास है। उन्हें जब नारी का ध्यान आया तो ब्रह्म की भाँति चराचर में नारी ही देखने लगे। यह नहीं कि पुरुष ही नारीमय देखें। नारी भी संसार को पुरुषमय देखने लगीं। दो दण्ड ४८ मिनट का होता था। सो ४८ मिनट तक ब्रह्माण्ड में यह तमाशा रहा। काम के लिए विश्वविजय खेल है।

सो. धरी न काहू धीर, सबके मन मनसिज हरे।
जेहि राखे रघुबीर, ते उबरे तेहि काल महुँ॥८५॥

अर्थ : सबके मन कामदेव ने हर लिये। किसी के भी हृदय में धैर्य नहीं रहने दिया। जिनकी रघुवीर ने रक्षा की वे ही उस समय बच सके।

व्याख्या : सब पर काम का बल चल गया परन्तु जिनकी रघुवीर ने रक्षा की उन पर बल न चला। यथा : सीमकि चाँपि सकै कोउ तासू। बड़ रखवार रमा पति जासू : वे बच गये। यथा : जिन्हहि मोर बल निज बल ताही। दोउ कहँ काम क्रोध रिपु आही। गहसिसु वच्छ अनल अहि धाई। तहँ राखै जननी अरगाई। अंस विचारि पंडित मोहि भजहीं। पायेउ ज्ञान भगति नहिं तजहीं।

तेपि कामबस भए वियोगी। इस पुरइन का भए कामवस जोगीस तापस इत्यादि अट्ठाइस दलवाला कमल हरिगीतिका छन्द में है। लक्षण वा वर्णन पहिले हो चुका है।

उभय घरी अस कौतुक भयऊ। जौ लगि कामु संभु पहँ गयऊ॥
सिवहि बिलोकि ससंकेउ मारू। भयउ जथाथिति सबु संसारू॥१॥

अर्थ : दो घड़ी तक यह खेला हुआ। जब तक कामदेव शिवजी के पास गया। शिवजी को देखकर कामदेव डर गया और सारा संसार जैसा का तैसा हो गया।

व्याख्या : देवलोक से शिवजी के पास आने में कामदेव को ४८ मिनट लगे। घड़ी और दण्ड का मान एक ही है। इतनी देर तक पुरुष स्त्रीमय और स्त्री पुरुषमय संसार को देखती रहीं। शिवजी को देखकर काम डर गये। डर से सङ्कोच होता है सो फैला हुआ प्रभाव सिकुड़ गया। संसार यथास्थिति को प्राप्त हुआ। यहाँ शिवजी का प्रभाव दिखाते हैं कि जिस कामदेव के धनुष हाथ में उठाने से संसार में उथल पुथल मच गई वह मोह की सेना का सर्व प्रथम वीर शिवजी के दर्शन मात्र से भयभीत हो गया। उनसे युद्ध क्या करेगा ?

भए तुरत जग जीव सुखारे। जिमि मद उतरि गये मतवारे ॥
रुद्रहि देखि मदन भय माना। दुराधरष दुर्गम भगवाना ॥२॥

अर्थ : तुरन्त जग के सब जीव ऐसे सुखी हो गये जैसे मतवाला मद उतरने पर सुखी होता है। रुद्र को देखकर कामदेव डर गया। क्योंकि भगवान् दुराधर्ष और दुर्गम हैं।

व्याख्या : सब लोग काम से अन्धे होकर व्याकुल हो रहे थे सो सुखी हो गये। शराब के नशे की भाँति काम सबके सिर पर सवार हो गया था। उसके उतर जाने से लोग होश में आगये। रौद्ररूप के अधिष्ठाता के सामने काम की गति नहीं। सो सामना पड़ते ही डर गया। क्योंकि दुराधर्ष हैं। काम का बल उन पर चल नहीं सकता और न वह उनमें प्रवेश कर सकता था। भगवान् में ज्ञान वैराग्य की स्थिति सर्वदा बनी रहती है।

फिरत लाज कछु कहि नहिं जाई। मरनु ठानि मन रचेसि उपाई ॥
प्रगटेसि तुरत रुचिर रितुराजा। कुसमित नव तरु राज बिराजा ॥३॥

अर्थ : लौट चलने में लज्जा है। कुछ कहा नहीं जाता। मन में मरना निश्चय करके उसने उपाय रचा। तुरन्त सुन्दर वसन्त ऋतु को प्रकट किया। नये आम के वृक्षों में बौर लग गये। बड़ी शोभा हुई।

व्याख्या : मरकर भी कार्य साधने की प्रतिज्ञा करके चले हैं और देखते ही डर गये। मन में हुआ कि भाग जाँय पर लब्धप्रतिष्ठ वीर हैं। भागने में बड़ी लज्जा है। पुरुषार्थ चलता नहीं। क्या कहें, क्या न कहें। निश्चय किया कि कार्य न कर सकेंगे तो क्या हुआ मर तो जावेंगे। यशरूपी शरीर की रक्षा होगी। विरद बाँधि वर वीरु कहाई। चलेउ समर जिमि सुभट पराई। यह दशा तो नहीं होगी। अतः उपाय रचा। जहाँ : करि नहिं जाई : पाठ है वहाँ यह अर्थ करना चाहिए कि किये कुछ होता नहीं और लौट जाने से लज्जा है।

ब्रह्मदेव ने काम के मित्र रूप में ऋतुराज की सृष्टि की। अतः वसन्त का समय न होने पर भी कामदेव की प्रेरणा से वह प्रकट हो गया। तरुराज से यहाँ

आम के वृक्ष या पारिजात का तात्पर्य है। आगे चलकर कहेंगे भी : देखि रसाल विटपवर साखा। आम फूलते ही वायुमण्डल सुवासित हो जाता है।

वन उपवन वापिका तड़ागा। परम सुभग दस दिसा विभागा ॥
जहँ तहँ जनु उमगत अनुरागा। देखि मुएहुँ मन मनसिज जागा ॥४॥

अर्थ : परम सुन्दर वन, उपवन, बावली, सरोवर और दिशाओं के विभाग प्रकट हुए। जहाँ तहाँ मानो प्रेम उमगा पड़ता है जिसे देखकर मरे हुए मन में भी काम जाग जाय।

व्याख्या : सुन्दर वन उपवन विहार के योग्य, वापिका तड़ाग जल क्रीड़ा के योग्य प्रकट हुए। दशदिसा विभाग को परम सुभग कहकर यावत् दृष्टिगोचर वस्तु की मनोहरता कही।

उद्दीपन का वर्णन हो रहा है। उद्दीपन ऐसा तीव्र है कि तनु भाव को प्राप्त हुआ भी काम जाग उठे मानो प्रसुप्त मात्र था। सब ओर से मानो प्रेम उमग पड़ता है। यहाँ मुएहुँमन कली है। इसका विकास आगे के छन्द में होगा।

छं. जागै मनोभव मुएहुँ मन बन सुभगता न परै कही।
सीतल सुगंध सुमंद मारुत मदन अनल सखा सही ॥
विकसे सरन्हि बहु कंज गुंजत पुंज मंजुल मधुकरा।
कलहंस पिक सुक सरस रव करि गान नाचहिं अपछरा ॥

अर्थ : मरे हुए मन में भी काम जाग आवे। ऐसी वन की शोभा कही नहीं जा सकती। कामरूपी अग्नि का सच्चा मित्र, शीतल मन्द सुगन्ध युक्त पवन चलने लगा। सरोवर में अनेक भाँति के कमल खिल गये। जिनपर सुन्दर भौरों के झुण्ड गुंजार करने लगे। कलहंस कोकिल और तोते रसीली बोली बोलने लगे और अप्सराएँ गाकर नाचने लगीं।

व्याख्या : मन का बीज वासना है। निर्वासन मन मरा हुआ है। क्योंकि उसका बीज नष्ट हो चुका है। पर सुन्दरता में वह प्राणदा शक्ति है कि मरा हुआ मन भी थोड़ी देर के लिए जाग उठा। अग्नि का सखा वायु प्रख्यात है। पर वह सच्चा मित्र नहीं है। दीप को वह बुझा देता है। यथा : सबइ सहायक सबल के कोउ न अबल सहाय। बात बढ़ावत अगिन को दीपहिं देत बुझाय। परन्तु शीतल मन्द सुगन्धित वायु कामाग्नि का सच्चा सखा है। कैसी ही दुर्बल कामाग्नि हो, पर मलयमारुत उसे बढ़ा ही देगा। कभी बुझावेगा नहीं। इसीलिए कहते हैं : मदन अनल सखा सही। तालाबों में कमल का खिलना, भौरों का गूँजना, कलहंस, कोकिल और शुक का बोलना। यह सब उद्दीपन है। अब आलम्बन कहते हैं। करि गान नाचहिं अपछरा।

दो. सकल कला करि कोटि बिधि, हारेउ सेन समेत।
चली न अचल समाधि सिव, कोपेउ हृदयनिकेत ॥८६॥

अर्थ : अपनी सेना के साथ करोड़ों तरह से सब कला करके हार गया। पर शिवजी की अचल समाधि न डिगी। तब कामदेव कुपित हुआ।

व्याख्या : काम का सेनापति शृङ्गार है और हावभावादि सैनिक हैं। यथा : सेनाधिपो मे शृङ्गारो हावाभावाश्च सैनिकाः। भाव चार हैं : १. स्थायी २. सञ्चारी ३. अनुभाव और ४. विभाव। स्थायी के नव, सञ्चारी के तेंतीस, विभाव के दो और अनुभाव के अन्तर्गत हाव के ग्यारह भेद हैं। कलाएँ चौसठ हैं। यथा : बिव्वोकाद्यास्तथा हावाश्चतुःषष्ठि कलास्तथा। का. पु.। सो सब कलाएँ और सब हाव भाव अप्सराओं के नृत्य में दिखाए गये। काम के सैनिक मारगण जिनका काम धर्माचरण में विघ्न करना है। वे भी समाधि में विघ्न करके हार गये। पर समाधि चलायी न चली। क्रोध तो पहिले ही किया था। सो रुद्र के देखने में भय का सञ्चार हुआ। क्रोध अभिभूत हो गया। मरण ठानकर उपाय किया सो भी खाली गया। अतः काम पुनः कुपित हुआ।

देखि रसाल विटप वर साखा। तेहि पर चढेउ मदन मन माखा ॥
सुमन चाप निज सर संधाने। अति रिषि ताकि स्रवन लगि ताने ॥१॥

अर्थ : एक आम के वृक्ष की सुन्दर डाली देखकर कामदेव क्रोध करके उस पर चढ़ गया। उसने फूलों के धनुष पर अपने वाण चढ़ाये और क्रोध से ताककर उन्हें कान तक तान लिया।

व्याख्या : ऊँचे पर से निशाना भी खूब बैठता है और मारनेवाला भी सुरक्षित रहता है। इसलिए आम की शाखा पर चढ़ गया। वह शाखा भी बौर से सुशोभित थी। काम के मन में बड़ा आमर्ष हुआ। दूसरे का अहङ्कार न सहकर उसके नष्ट करने की इच्छा को आमर्ष कहते हैं।

संधाने कहकर पाँचों वाणों का चलाना द्योतित किया। यथा : हर्षणं रोचनाख्यञ्च मोहनं शोषणं तथा। मारणञ्चेति संज्ञाभिर्मुनिमोहकराण्यपि। का. पु.। हर्षण, रोचन, मोहन, शोषण और मारण। ये पाँचों वाण, उन्मादन नाम धनुष पर चढ़ाकर कान तक ताना जिसमें गहरी चोट हो।

छाँडे विषम बान उर लागे। छूटि समाधि संभु तब जागे ॥
भयउ ईस मन छोभु विसेखी। नयन उघारि सकल दिसि देखी ॥२॥

अर्थ : पाँच वाण मारे। वे शिवजी के हृदय में लगे। तब समाधि भङ्ग हुई और शिवजी जाग पड़े। शिवजी के मन में विशेष क्षोभ हुआ। तो आँख खोलकर सब ओर देखा।

व्याख्या : विषम वाण कहने से स्पष्ट पाँचों वाणों का प्रहार कहा। विषम का अर्थ भयङ्कर भी होता है सो भी ठीक है। काम के पाँचों वाण बड़े भयङ्कर हैं। यथा : त्वदाशुगानां यद्वीर्यं तद्वीर्यं न भविष्यति। वैष्णवानाञ्च रौद्राणां ब्रह्मास्त्राणाञ्च तादृशम्। इनका वीर्य वैष्णवास्त्र, रौद्रास्त्र और ब्रह्मासे भी अधिक है। ये पाँचों

शिवजी के हृदय में लगे। समाधि छूट गई। ब्रह्मदेव का वरदान काम को था कि विष्णु, शिव और मैं भी तुम्हारे अस्त्र के वशवर्ती रहूँगा। यथा : अहं विष्णुर्हरश्चापि तवास्त्रवशवर्त्तिनः। का. पु.। अतः शिवजी की समाधि भी खुली और विशेष क्षोभ भी हुआ। समाधि के समय आँखें बन्द थीं। अतः खोलकर सब ओर देखा कि किधर से वाण आया।

सौरभ पल्लव मदन विलोका। भयउ कोपु कंपेउ त्रयलोका ॥
तब सिव तीसर नयन उघारा। चितवत काम भयउ जरिछारा ॥३॥

अर्थ : आम के पत्तों में : छिपे हुए : काम को देखा। जो क्रोध हुआ ता तीनों लोक काँप उठे। तब शिवजी ने तीसरा नेत्र खोला। देखते ही काम जलकर भस्म हो गया।

व्याख्या : काम शिकारियों की भाँति पेड़ पर चढ़ा हुआ पत्तों में छिपा था। पर शिवजी ने देख लिया। चोट करनेवाले का पता चल गया। काम धर्माचरण में प्रख्यात विघ्नकारी है। समाधि इसी ने भङ्ग की। अतः उस पर क्रोध हुआ। रुद्र के कोप से ही प्रलय होता है। अतः उस प्रलयकारी कोप से तीनों लोक काँप उठे। तीसरा नेत्र शिवजी कृपा के कारण बन्द रखते हैं। यथा : देखन ते जरि जाहिं न लोक खोलत नैन कृपा उरधारे। मुद्राराक्षस। सो क्रोध होने से तीसरी आँख खुल गई। काम जल कर भस्म हो गया। शिव विरोध से काम की मृत्यु हुई।

हाहाकार भयउ जगभारी। डरपे सुर भए असुर सुखारी ॥
समुझि कामसुख सोचहि भोगी। भए अकंटक साधक जोगी ॥४॥

अर्थ : सारे जगत् में बड़ा हाहाकार मच गया। देव डर गए और दैत्य सुखी हुए। भोगी लोग कामसुख का स्मरण करके सोच करने लगे और साधक योगियों का कण्टक जाता रहा।

व्याख्या : सनातनी सृष्टि के लोप के भय से हाहाकार मच गया। क्योंकि ब्रह्मदेव ने काम को आज्ञा दी थी कि तुम इस सुन्दर फूल के पाँच वाणों से, पुरुष और स्त्रियों को मोहित करते हुए सनातनी सृष्टि करो। यथा : अनेन चारुरूपेण पुष्पवाणैश्च पञ्चभिः। मोहयन् पुरुषान् स्त्रींश्च कुरु सृष्टिं सनातनीम्। का. पु.। सो काम मारा गया। अब सृष्टि कैसे चलेगी ? काम के मारे जाने से देवताओं का भी काम बिगड़ा। शंभुशुक्र सम्भूत सुत का योग ही नहीं रह गया। अब तारकासुर से कैसे रक्षा होगी ? अतः देवता डरे और इसी कारण से असुर सुखी हुए कि अब तारकासुर का राज्य अचल हो गया। भोगियों को परिचित सुखों में से सर्वश्रेष्ठ सुख के नाश से सोच हुआ और योगियों को बड़े भारी योगविघ्नकारी के नाश से निर्भयता की प्राप्ति हुई।

छं. जोगी अकंटक भए पति गति सुनति रति मुरछित भई ।
रोदति वदति बहु भाँति करुना करति संकर पहिं गई ।।
अति प्रेम करि बिनती विविध विधि जोरि कर सनमुख रही ।
प्रभु आसुतोष कृपाल सिव अबला निरखि बोले सही ।।

अर्थ : योगी अकंटक हुए । पति की गति सुनते ही रति मूर्च्छित हो गई । वह रोती कलपती अनेक प्रकार करुणा करती शङ्कर के पास गई । बड़े ही प्रेम से अनेक प्रकार से विनती करके हाथ जोड़ सामने खड़ी हो गई । शीघ्र प्रसन्न होने वाले प्रभु कृपाल शिवजी स्त्री को देखकर अमोघ वचन बोले ।

व्याख्या : कामदेव ने विभाव प्रस्तुत कर दिया था । पर वहाँ अनुभाव ही नहीं हुआ । स्थायी भाव पुष्ट कैसे हो ? अतः रति का आगमन न हो सका था । उसने पति की गति सुनी । पहिले तो मूर्च्छित हो गई । पर संज्ञा प्राप्त करने पर रोती विलपती शिवजी के पास गई । रति उनके सामर्थ्य को जानती है । वे मार भी सकते हैं जिला भी सकते हैं । रति की असहायावस्था देखकर वे अमोघ वचन बोले । शिवजी प्रबल पर कोप करते हैं । अबल पर कृपा करते हैं ।

दो. अब तें रति तव नाथ कर, होइहि नामु अनंगु ।
बिनु वपु ब्यापिहिं सबहिं पुनि, सुनु निज मिलन प्रसंगु ।।८७।।

अर्थ : हे रति ! अब से तेरे पति का नाम अनंग होगा । यह बिना शरीर के ही सबको व्यापेगा । अब तू अपने मिलने का प्रसङ्ग सुन ।

व्याख्या : वैधव्य दोष से मुक्त किया । यद्यपि शरीर नहीं रहेगा । पर क्रियाकारिता रहेगी । तेरा पति काम जैसा पहिले सबको व्यापता था, वैसे ही व्यापेगा । क्रिया से कर्ता अनुमित होता है । बिना शरीर का होकर रहेगा । अतः अनङ्ग नाम होगा अर्थात् स्थूल शरीर का अभाव होगा । परन्तु अशरीरी से मिलन नहीं होता सो भी होगा । वह प्रसङ्ग अब सुनो ।

जब जदुबंस कृस्न अवतारा । होइहि हरन महा महि भारा ।।
कृस्न तनय होइहिं पति तोरा । वचन अन्यथा होइ न मोरा ।।१।।

अर्थ : जब यदुवंश में कृष्णावतार पृथ्वी के बड़े भारी भार के हरण के लिए होगा तब तुम्हारा पति कृष्णजी का बेटा होगा । मेरा वचन अन्यथा नहीं हो सकता ।

व्याख्या : कृषि शब्द का अर्थ है भूलोक और 'ण' का अर्थ है निर्वृत्ति अर्थात् आनन्द या मोक्ष । इन दोनों भावों के योग से सनातन विष्णु ही सात्वत कृष्ण हैं । यथा : कृषिर्भूवाचकः शब्दो णश्च निर्वृत्तिवाचकः । विष्णुस्तद्भावयोगाच्च कृष्णो भवति सात्वतः । विष्णु का ही अपर नाम कृष्ण है । उनके दश अवतार प्रसिद्ध हैं । सो जब उनका यदुवंश में पृथ्वी का भार हरण के लिए अवतार होगा तब तेरा

पति कृष्णजी का पुत्र होकर प्रद्युम्न नाम से जन्म ग्रहण करेगा। 'जब' कहने का भाव यह कि वह अवतार द्वापर के अन्त में होगा और इस समय त्रेता का आदि है। अतः तुम्हें दो युग का वियोग सहना पड़ेगा। उसके बाद प्रद्युम्न रूप से तुम्हें पति की प्राप्ति होगी।, अब इस वाक्य में कोई घटती बढ़ती नहीं हो सकती। तुम्हें पति की प्राप्ति अवश्य होगी। पर दो युगों के बाद। जो मैंने कह दिया वही होकर रहेगा। क्योंकि मेरा वचन अन्यथा होता नहीं। अमोघ है इसीलिए कवि ने भी कहा : अबला निरखि बोले सही।

रति गवनी सुनि संकर बानी। कथा अपर अब कहौं बखानी ॥
देवन्ह समाचार सब पाए। ब्रह्मादिक बैकुंठ सिधाए ॥२॥

अर्थ : शिवजी की बात सुनकर रति चली गई। अब दूसरी कथा वर्णन करता हूँ। जब समाचार देवताओं को मिला तब ब्रह्मा आदि देव वैकुण्ठ गये।

व्याख्या : रति ने समझ लिया कि अब अधिक कहना सुनना व्यर्थ है। जो कृपा होनी थी सो हो गई। सद्यः पति की प्राप्ति न होने से रति को हर्ष नहीं है और मिलने की ध्रुव आशा है। इसलिए विषाद भी नहीं। रोती गाती आई थी। शान्त होकर चली गई। रति की कथा समाप्त हुई। सुरन्ह कही निज विपति सब से प्रसङ्ग छोड़ा था। अब वहीं से फिर प्रसङ्ग उठाते हैं कि यह सब समाचार अर्थात् कामदाह और रति के वरदान का समाचार पाया। तो सब देव मिलकर ब्रह्मदेव के पास गये। वे सबको लिये दिये विष्णु के पास गये। बरियाई व्याह कराना है। विष्णु पर शिवजी की प्रीति है। विष्णु वल्लभ कहलाते हैं। इनको ले चलने से शिवजी पर अधिक दबाव पड़ेगा। इसलिए सब लोग वैकुण्ठ गये।

सब सुर बिस्नु बिरंचि समेता। गए जहाँ सिव कृपा निकेता ॥
पृथक पृथक तिन्ह कीन्ह प्रसंसा। भए प्रसन्न चन्द्र अवतंसा ॥३॥

अर्थ : विष्णु और ब्रह्मा सहित सब देवगण वहाँ गये जहाँ कृपा के घर शिवजी थे। उन लोगों ने अलग-अलग स्तुति की तो चन्द्रभूषण प्रसन्न हो गये।

व्याख्या : वहाँ से सब लोगों ने विष्णु को साथ लिया और अब ब्रह्मदेव और विष्णु को साथ लेकर जहाँ शिवजी थे वहाँ गये। कृपानिकेत : विशेषण देकर कार्य-सिद्धि दिखलायी : कृपानिकेत हैं। अवश्य देवताओं पर कृपा करेंगे। उन देवताओं ने आदरातिशय से अलग अलग स्तुति की। बड़ी भारी स्तुति करके भगवान् चन्द्रावतंस शिवजी को प्रसन्न कर लिया। चन्द्रावतंस हैं। अवश्य देवताओं का तापहरण करेंगे।

बोले कृपासिंधु बृषकेतू। कहहु अमर आए केहि हेतू ॥
कह बिधि तुम प्रभु अंतरजामी। तदपि भगति बस बिनवौं स्वामी ॥४॥

अर्थ : कृपासागर शिवजी कहने लगे : हे अमरगण ! कहो किसलिए आये। ब्रह्मदेव ने कहा : हे प्रभो ! आप अन्तर्यामी हैं फिर भी हे स्वामिन् ! मैं भक्तिवश विनती करता हूँ।

व्याख्या : वृषो हि भगवान् धर्मः। भगवान् धर्म ही वृष हैं। वह हैं केतु : ध्वजा जिसके ऐसे शिवजी को वृषकेतु कहते हैं, अर्थात् जिधर धर्म रहता है उधर ही शिवजी रहते हैं और कृपासिन्धु भी हैं। नित्य नईं नईं तरङ्गें कृपा की उठा करती हैं। देवताओं की स्तुति सुनकर बोले। अमर : सम्बोधन से अभयदान दे रहे हैं। जिस भाँति रघुनाथजी ने विभीषण को आते ही लङ्केश कहकर सम्बोधन किया था फिर आने का कारण पूछते हैं।

ब्रह्मदेव के कहने से ही सब कुछ हो रहा है। अतः वे ही प्रमुख वक्ता हैं, बोले कि आप प्रभु हैं, सब कुछ करने में समर्थ हैं और सबके अन्तर के प्रेरक भी हैं। आप ही की प्रेरणा से आया भी हूँ। फिर भी विनय करना भक्त का कर्तव्य है।

दो. सकल सुरन्ह के हृदय अस, संकर परम उछाहु।
निज नयनन्हि देखा चहैं, नाथ तुम्हार विवाहु ॥८८॥

अर्थ : हे कल्याण करनेवाले, हे नाथ ! सब देवताओं के मन में इस बात का बड़ा उत्साह है। सब चाहते हैं कि तुम्हारा विवाह अपनी आँखों से देखें।

व्याख्या : मैंने तो पहिला व्याह जो सती के साथ हुआ था सो देखा है। उस मन्वन्तर के देवता अब रहे नहीं। ये इस मन्वन्तर के देवता हैं। इन्होंने नहीं देखा है। केवल तुम्हारे व्याह की कथा सुनते आये हैं। अतः ये लोग आपका व्याह अपनी आँखों से देखना चाहते हैं। यह विनय की रीति है कि अन्य कारणों के रहते हुए भी अपनी प्रीति को ही आगे रक्खा।

यह उत्सव देखिअ भरि लोचन। सोइ कछु करहु मदन मद मोचन ॥
काम जारि रति कहुँ वर दीन्हा। कृपासिंधु यह अति भल कीन्हा ॥१॥

अर्थ : हे कामदेव का मद भङ्ग करनेवाले ! आप ऐसा कुछ कीजिये जिसमें हम लोग उस उत्सव को आँख भरकर देखें। हे कृपासिन्धु ! आपने कामदेव को भस्मकर रत्ति को जो वर दिया सो वहुत अच्छा किया।

व्याख्या : आप काम का मद भङ्ग करनेवाले हैं। आपको विवाह से कोई प्रयोजन नहीं है पर भक्तों की रुचि रखने के लिए विवाह की ओर अपनी प्रवृत्ति कीजिये और इसमें शीघ्रता हो, जिसमें देवता लोग आँख भरकर देख लें और अपने जन्म को सफल करें। नहीं तो कौन जाने तारकासुर द्वारा किस समय कौन गति इनकी हो। फिर ये उस उत्सव को न देख सकेंगे।

अपराधी को दण्ड देना भली वात है। यथा : जगजय मद निदरेसि हर, पायेसि फर तेउ। काम ने जैसा किया वैसा पाया पर रति को जो वरदान आपने दिया यह और भी अच्छा हुआ। सनातनी सृष्टि का लोप भी न हुआ और काम भस्म भी हो गया।

सासति करि पुनि करहिं पसाऊ। नाथ प्रभुन्ह कर सहज सुभाऊ ॥
पारवती तपु कीन्ह अपारा। करहु तासु अब अंगीकारा ॥२॥

अर्थ : हे नाथ ! यह प्रभुओं का सहज स्वभाव है कि पहिले दण्ड देते हैं और पीछे से कृपा करते हैं। पारवती ने अपार तप किया है। अब उसे अङ्गीकार कीजिये।

व्याख्या : यह कार्य आपके सदृश हुआ। बड़े लोग पहिले दण्ड देते हैं पीछे से कृपा करते हैं। यह उनका सहज स्वभाव होता है। वेदमार्ग की रक्षा के लिए दण्ड देते हैं। यथा : जौ नहिं दंड करौं खल तोरा। भ्रष्ट होय श्रुति मारग मोरा। पर जिसे दण्ड मिला उसे दुःख हुआ यह समझकर पीछे से कृपा करते हैं। वस्तुतस्तु उनका कोप किसी पर नहीं होता। कोप भी उनकी कृपा ही है। काम को भस्म किया यह सासत करने का उदाहरण है। उसकी स्त्री रति को वर दिया यह पुनि कीन्ह पसाऊ का उदाहरण है। इसी भाँति सती की साधारण ताड़ना नहीं हुई। अब उन्होंने पार्वती होकर अपार तप किया है। यथा : अस तप काहु न कीन्ह भवानी। भए अनेक धीर मुनि ज्ञानी। अब उन पर कृपा होनी चाहिए। उन्हें अङ्गीकार करना चाहिए। रुद्राणीपद के योग्य तपस्या हो चुकी।

सुनि विधि विनय समुझि प्रभु बानी। ऐसइ होउ कहा सुखमानी ॥
तब देवन्ह दुंदुभी बजाई। बरखि सुमन जयजय सुरसाई ॥३॥

अर्थ : ब्रह्मा की विनती सुनकर और प्रभु की वाणी समझकर शिवजी ने सुख मानकर कहा : एवमस्तु। तब देवताओं ने नगाड़े बजाए। फूलों की वर्षा की और कहने लगे : हे देवताओं के स्वामी ! तुम्हारी जय हो जय हो।

व्याख्या : ब्रह्मा विश्व के कर्ता हैं। उनके विनय का मूल्य है। तिस पर प्रभु ने जाते समय जो कहा था कि : हर ! तुम्हार पन रहेऊ। अब उर राखहु जो हम कहेऊ। उसे समझा कि इसी अवसर के लिए ऐसा आदेश हुआ था। वह परिस्थिति सामने आगई। अतः शिवजी ने स्वीकार कर लिया। एवमस्तु कहने की देर थी कि देवताओं ने जीत का नगाड़ा बजा दिया। कामदाह से डर गये थे। असुर लोग सुखी हो गये थे सो पासा पलट गया। जीत के मार्ग का भारी असमञ्जस दूर हुआ। अथवा व्याह की स्वीकृति का उत्सव मनाया जा रहा है, इसलिए पुष्प वर्षा हो रही है।

अवसर जानि सप्तरिषि आए। तुरतहि विधि गिरि भवन पठाए ॥
प्रथम गए जहँ रहीं भवानी। बोले मधुर वचन छलसांनी ॥४॥

अर्थ : अवसर जानकर सप्तर्षि आये। ब्रह्मदेव ने उन्हें तुरन्त हिमवन्त के घर भेज दिया। वे पहले वहाँ गए जहाँ भवानी थीं और छल से भरे हुए मीठे वचन बोले।

व्याख्या : सप्तर्षि भी अवसर देखते रहे। जगदम्बा ने कहा है : रहि न जाइ बिनु किए बरेखी। सो हम लोग ही बरेखी करेंगे। बड़ी अभिलाषा है कि इस महा-मङ्गल में हम भी किसी प्रकार से निमित्त बनें। अब अवसर आया है कि ब्राह्मण लग्नपत्री लिखाने के लिए भेजा जाय तो सप्तर्षि पहुँच गये। ब्रह्मदेव को स्वयं जल्दी

पड़ी थी परन्तु हिमवान् के यहाँ भेजा। क्या कहकर भेजा ? यह बात यहाँ नहीं लिखते। कार्य देखकर आपही पता लग जायगा।

भगवती के मुख से प्रेममय उत्तर सुनने के लिए उत्साह से भरे हुए पहले भवानी के पास पहुँचे। छल से सना हुआ मीठा वचन बोले। भावोपहत न होने से यहाँ छलयुक्त वचन भी प्रशस्त है। जगदम्बा के मुख से प्रीति और विश्वासयुक्त वचन सुनना चाहते हैं। अतएव अतिमूढ़ की भाँति बात बोलते हैं।

दो. कहा हमार न सुनेउ तब, नारद कें उपदेस।
अब भा झूठ तुम्हार पनु, जारेउ काम महेस ॥८९॥

अर्थ : नारद के उपदेश से तब तुमने हमारा कहना नहीं सुना। अब तुम्हारा प्रण झूठा हो गया। क्योंकि महेश ने काम को जला दिया।

व्याख्या : उस समय हमारी बात सुनने से. विवाह सार्थक होता। नारद के उपदेश से तुमने सहज उदासी पति चाहा। उस उदासी ने काम को ही भस्म कर दिया। विवाह ही निष्प्रयोजन हो गया। ब्राह्म विवाह में भी कन्यादान अथवा प्रतिग्रह में काम की ही प्रधानता है। मन्त्र पढ़ा जाता है। को दात् कस्मा अदात्, कामोदात् कामायादात् कामो दाता कामः प्रतिगृहीता कामैतत्ते। किसने दिया किसको दिया, काम को दिया। हे काम! यह सब तेरे लिए है। जब काम ही नहीं तब विवाह क्या ? पुत्रप्रयोजना भार्या। पुत्र के लिए ही स्त्री है। अतः जो तुमने प्रण किया था कि बरौं संभु न त रहौं कुमारी। वह प्रण झूठ पड़ गया। क्योंकि अब तो विवाह होना ही बन्द हो जाने का लक्षण है।

सुनि बोली मुसुकाइ भवानी। उचित कहेउ मुनिवर बिग्यानी ॥
तुम्हरे जान काम अब जारा। अब लगि संभु रहे सविकारा ॥१॥

अर्थ : यह सुनकर भवानी मुसकरा कर बोली : हे विज्ञानी मुनिश्वरो ! तुमने ठीक कहा। तुम्हारी समझ में शिवजी ने अब काम को जलाया है। अब तक शिवजी सविकार रहे।

व्याख्या : मुसकराहट मुनियों की अज्ञान भरी उक्ति पर अथवा इस बात पर कि पहिली परीक्षा से सन्तुष्ट न हुए अब फिर परीक्षा लेने आये। 'उचित कहेउ' का भाव यह कि मननशील और ब्रह्मलीन महात्माओं के ऐसे विचार ! व्यङ्गोक्ति से कहती हैं कि तुम लोग अनुचित बोल रहे हो। तुम लोग विज्ञानी मुनि होकर भी आज तक शिवजी को कामवश समझते थे ? शिवजी का स्वरूपज्ञान तुम लोगों को हुआ ही नहीं। मुनि विज्ञानी कैसे हुए ?

हमरे जान सदासिव जोगी। अज अनवद्य अकाम अभोगी ॥
जौं मैं सिव सेयेउँ असजानी। प्रीति समेत करम मन बानी ॥२॥

अर्थ : हमारी समझ में तो सदा शिव सदा योगी हैं। जन्म रहित, निन्दा

रहित, काम रहित और भोग रहित हैं। जो मैंने यह समझकर मन वचन अ ' : कम से शिव जी की सेवा प्रीति से की हो।

व्याख्या : 'हमरे जान' का भाव यह है कि तुम्हें मेरे स्वरूप का भी ज्ञान नहीं है। विवाह की इच्छा में यहाँ काम का प्रश्न हो नहीं है। लौकिक प्रीति में काम का प्रश्न उठता है। मैंने तो शिवजी को सदा योगी, अकाम और अभोगी समझकर उनके लिए तप किया है। काम के जलने से विवाह में क्या वाधा हुई ? मेरे लिए तो काम सदा ही दग्ध है। रागद्वेषयुक्त पुरुष का ही जन्म होता है। उसी की निन्दा होती है। वह सकाम होता है। भोगलिप्त होता है। शिवजी द्वन्द्व से परे हैं। अज, अनवद्य, अकाम और अभोगी हैं। यही जानकर मैंने उनकी सेवा प्रीति के साथ मनसा वाचा कर्मणा की है।

तौ हमार पन सुनहु मुनीसा। करिहहिं सत्य कृपानिधि ईसा ॥
तुम्ह जो कहेउ हर जारेउ मारा। सो अति बड़ अविवेक तुम्हारा ॥३॥

अर्थ : तो हे मुनीश्वरो ! सुनो, कृपासागर शिवजी मेरी प्रतिज्ञा को सत्य करेंगे और तुमने जो यह कहा कि शिवजी ने काम को भस्म कर दिया। सो यह तुम्हारा बड़ा भारी अविवेक है।

व्याख्या : तुमने क्या समझा कि मैंने शिवजी को सकाम और भागा समझ कर सेवा की थी ? मैं जिन गुणों पर लुब्ध थी वे ये हैं कि शिवजी, अजन्मा, निर्दोष, अकाम और अभोगी हैं। अब अपने प्रण को प्रमाण देती हूँ कि यदि वह वात सत्य है तो मेरे प्रण को कृपानिधान शङ्कर पूरा करेंगे। तुम्हारे झूठ कह देने से झूठ न हो जायगा। यदि नारद के मुख से निकला हुआ षडक्षर मन्त्र मनन करनेवाले का त्राण करनेवाला हो और यदि भक्तिपूर्वक मैंने जप किया हो तो हर कृपा करें। यथा : यदि नारदवक्त्रोत्थो मन्त्रोऽयं स्यात्षडक्षरः। यदि भक्त्या मया जप्तं हरस्तेन प्रसीदतु।

मैंने कामवासना से शङ्कर की उपासना की है : ऐसी धारणा तुम लोगों का बड़ा अविवेक है। पर शङ्कर में अभिमान का आरोप करना कि उन्होंने काम को जलाया : यह तुम्हारा और बड़ा अविवेक है। दीपक पतङ्गों को जलाने नहीं जाता : वे स्वयं दीपक में जा जाकर जलते हैं।

तात अनल कर सहज सुभाऊ। हिम तेहि निकट जाय नहि काऊ ॥
गए समीप सो अवसि नसाई। अस मनमथ महेस की नाई ॥४॥

अर्थ : अग्नि का सहज स्वभाव ही गरम है। पाला उसके निकट कभी नहीं जाता। और यदि पास जाय तो अवश्य नष्ट होगा। यही गति काम और महादेव जी की है।

व्याख्या : अग्नि का स्वभाव ही पाला के एकदम विपरीत है अर्थात् उष्ण है। पाला सबके निकट जाता है। आग के निकट नहीं जाता। जहाँ आग जलती

रहती है उसके दो चार हाथ दूर तक पाला नहीं गिरता। इसी भाँति शिवजी का स्वभाव ही निर्वासन : कामनाशन है। काम सबके निकट जाता है शिवजी के समीप नहीं फटकता। निकट जायगा तो जलेगा ही इसमें शिवजी का क्या अपराध है ?

दो. हिय हरषे मुनिवचन सुनि, देखि प्रीति विस्वास।
चले भवानी नाइ सिर, गये हिमाचल पास ॥९०॥

अर्थ : बात सुनकर और प्रीति विश्वास देखकर मुनि लोग हर्षित हुए। भवानी को सिर नवाकर हिमाचल के पास गये।

व्याख्या : मुनिजी भवानी के मुख से प्रीति और विश्वास के उद्‌गार सुनने के लिए ही आये थे। प्रीति देखी कि शिवजी ने काम को जलाया : यह दोषारोपण नहीं सह सकीं। तुरन्त बोलीं : यह अति बड़ अविवेक तुम्हारा। विश्वास देखा कि गुरु रूप से नारद पर और इष्टदेव रूप में शिवजी पर कैसा अटल विश्वास है। कहती हैं : तौ हमार प्रण सुनहु मुनीसा। करिहहिं सत्य कृपानिधि ईसा। प्रथम गये जहँ रही भवानी। से उपक्रम और : चले भवानी नाइ सिर। से उपसंहार किया। तुरतहि विधि गिरि भवन पठाए : का साफल्य है। गये हिमाचल पास।

सबु प्रसंगु गिरिपतिहि सुनावा। मदन दहन सुनि अति दुख पावा॥
बहुरि कहेउ रति कर बरदाना। सुनि हिमवंत बहुत सुखु माना॥१॥

अर्थ : हिमाचल को सारी बातें कह सुनाई। काम के भस्म होने की बात सुनकर बड़े दुःखी हुए। फिर रति के वरदान की बात कही। उसे सुनकर हिमवान् ने बहुत सुख माना।

व्याख्या : इस व्याह में ये ही अगुआ हैं। इन्होंने ही आकर शिवजी की स्वीकृति कही और गिरिजा को घर लाने के लिए कहा था। अब फिर इतने दिन के बाद आये हैं। अतः उसके बाद की वरपक्ष की सब घटनाएँ सुनाईं। काम के जलने का समाचार सुनकर हिमाचल बड़े दुःखी हुए। इतने दिन की बड़ी तपस्या लड़की की व्यर्थ गई। फिर रति का वरदान सुनकर बड़े प्रसन्न हुए कि कन्या की तपस्या सफल हुई। माता पिता की अब भी वही लौकिकी दृष्टि है।

हृदय बिचारि संभु प्रभुताई। सादर मुनिवर लिए बोलाई॥
सुदिनु सुनखतु सुघरी सोचाई। बेगि बेदबिधि लगन धराई॥२॥

अर्थ : शिवजी की प्रभुता को मन में सोचकर हिमाचल ने मुनियों को आदर सहित बुलवाया और शुभ दिन, शुभ नक्षत्र और शुभ घड़ी सोधवायी। जल्दी वेद की विधि से लग्न निश्चय कराया।

व्याख्या : पहिले यही भाव मन में आया कि वर वस्तुतः उदासीन हैं। पर जब उनकी प्रभुताई का विचार किया कि काम को मार भी सकते हैं, जिला भी सकते हैं तो सब शङ्का जाती रही। ऐसे समर्थ से जिसकी प्रभुता काम पर भी चले अवश्य व्याह करना चाहिए। अतः सादर ज्योतिर्विद् मुनि बुलाये गये। वैशाख

सुदी पञ्चमी गुरुवार, उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र, मेष लग्न, भरणी के आदि में सूर्य : यही लग्न मुनियों ने स्थिर किया। यथा : माधवे मासि पञ्चम्यां सिते पक्षे गुरोर्दिने। चन्द्रे चोत्तरफाल्गुन्यां भरण्यादौ स्थिते रवौ। का. पु.। चौथे दिन व्याह का निश्चय हुआ। दूर का लग्न ठीक नहीं।

पत्री सप्तरिषिन्ह सो दीन्ही। गहिपद विनय हिमाचल कीन्ही॥
जाइ विधिहि तिन्ह दीन्ही पाती। बाँचत प्रीति न हृदय समाती॥३॥

अर्थ : लग्नपत्रिका ऋषियों को दी और हिमाचल ने पाँव पकड़कर विनती की। वह पत्री उन्होंने जाकर ब्रह्मदेव को दी। पढ़ते समय हृदय में प्रेम समाता नहीं।

व्याख्या : वह लग्नपत्री सप्तर्षि को दी गई। उन्हीं के हाथ भेजना है। सप्तर्षि को आज्ञा कैसे दें। इसलिए चरण पकड़कर विनय की। विधि ने ही हिमालय के घर भेजा था। उन्हें छोड़कर समधी कौन बने? सो लग्नपत्री लाकर ब्रह्मदेव को सप्तर्षियों ने दी। शङ्कर के चरणों में अतिप्रेम है। अतः लग्नपत्री बाँचने में प्रेम का उद्गार हो आया।

लगन बाँचि अज सबहि सुनाई। हरषे मुनि सब सुर समुदाई॥
सुमन वृष्टि नभ बाजन बाजे। मंगल कलस दसहुँ दिसि साजे॥४॥

अर्थ : लग्न पढ़कर ब्रह्मा जी ने सबको सुनाया। सब मुनि और देवगण हर्षित हुए। आकाश से फूलों की वर्षा हुई। बाजे बजने लगे और दशों दिशाओं में मङ्गल कलश सजाये गये।

व्याख्या : सकल सुरन्ह के हृदय अस संकर परम उछाहु। निज नयनन्हि देखा चहहिं नाथ तुम्हार विवाहु। सब देवताओं के हृदय में शिवजी का विवाह देखने का बड़ा उत्साह था। इसलिए सबको लग्नपत्री बाँचकर सुनाई। लग्न निश्चित सुनकर देवसमाज में बड़ा हर्ष हुआ। शिवजी की विवाह के लिए स्वीकृति देते ही देवताओं ने दुन्दुभी बजायी थी। पुष्पवृष्टि की थी। यथा : तब देवन्ह दुंदुभी बजाई। बरखि सुमन जय जय सुरसाई। अब लग्नपत्री सुनकर फिर पुष्पवृष्टि हो रही है, बाजे बज रहे हैं। व्याह को चार ही दिन हैं। इसलिए दशों दिशाओं में दिक्पालों ने मङ्गलकलश स्थापित किए। दशों दिशाओं में परम उत्साह है।

दो. लगे सँवारन सकल सुर, बाहन विविध विमान।
होहिं सगुन मंगल सुभद, करहिं अपछरा गान॥९१॥

अर्थ : सब देवता अपने भाँति भाँति के वाहन और विमान साजने लगे और शुभ देनेवाले सगुन मंगल होने लगे, अप्सराएँ गाने लगीं।

व्याख्या : ब्रह्मदेव ने सब देवताओं के पास रुद्रगणों द्वारा नेवता भेजा। देवताओं ने अपना अपना वाहन और विमान साजा। अपना साज समाज ठीक किया। ठाट बाट से बारात करनी है, हृदय में उत्साह है। अप्सराएँ मङ्गल गान गाने लगीं। जो बरात के लिए बाहर निकलता है, उसे भले भले सगुन होते हैं।

यथा : विधि पठाए जहँ तहँ सब सिवगन धावन। सुनि हरखहिं सुर कहहिं निसान बजावन। रचहिं विमान बनाइ सगुन पावहिं भले। निजनिज साज समाज साजि सुरगन चले।

सिवहिं[1] संभु गन करहिं सिंगारा। जटा मुकुट अहि मौर सँवारा ॥
कुंडल कंकन पहिरे व्याला। तन बिभूति पट केहरि छाला ॥१॥

अर्थ : शिवजी का शृङ्गार उनके गण कर रहे हैं। जटा के मुकुट में साँपों का मौर सँवारा गया। साँप के ही कुण्डल और कंकन पहने। शरीर पर विभूति और कपड़े के स्थान पर व्याघ्राम्बर था।

व्याख्या : बारातियों का साज बाज कहकर दुलहे का शृङ्गार कहते हैं। शम्भुगण शिवजी का शृङ्गार करने लगे। दूसरे को उनके शृङ्गार की विधि का पता नहीं और न गणों को सांसारिक शृङ्गार की विधि का पता है। सो जटा मुकुटाकार लपेटी गई और सब शृङ्गारों के पहिले ही रङ्ग विरङ्गी साँपों का मौर पहना दिया गया। माला का भी काम साँपों से ही लिया गया। सँपेले कान में कुण्डल और हाथ में कंगन की जगह पहानाये गये क्योंकि गणों ने कान में कुण्डल हाथ में कंगन पहिने तथा मौर बाँधे दुलहों को देखा था। अङ्गराग की जगह विभूति लगाई गई। और जामा जोड़ा की जगह व्याघ्राम्बर से काम लिया गया। व्याह करने जा रहे हैं अतः नग्न रहना ठीक नहीं। यह शृङ्गार का कौतुक हो रहा है।

ससि ललाट सुंदर सिर गंगा। नयन तीन उपवीत भुजंगा ॥
गरल कंठ उर नर सिर माला। असिव वेष सिवधाम कृपाला ॥२॥

अर्थ : मस्तक पर चन्द्रमा। सिर में सुन्दर गङ्गाजी। तीन नेत्र और साँपों का जनेऊ। कण्ठ में विष और गले में नरमुण्डों की माला। वेष तो अमङ्गल है पर कृपालु कल्याण के धाम हैं।

व्याख्या : दो वस्तुएँ अनूठी भी थीं। एक ललाट पर चन्द्रमा और दूसरी शिरा पर गङ्गाजी। सो ये भी चण्डपुरुषार्थ के द्योतक हैं। दुलहे के शृङ्गार योग्य नहीं। इधर तीन आँखें और साँपों के यज्ञोपवीत से करालता बढ़ गई। गरल कण्ठ में था ही। जब शृङ्गार की पूर्ति के लिए मुण्डमाल पहना दिया गया तो भयानक अमङ्गल वेष हो गया और वड़े क्रूर जँचने लगे। पर अलौकिकता यह कि जिसका वेष ऐसा अमङ्गल, वे स्वयं मङ्गलमय हैं। जिसका शृङ्गार ऐसा कराल है वे स्वयं कृपाल हैं। लोक में ठीक इसके विपरीत है। सौम्य को सौम्य वेष और कराल को कराल वेष प्रिय लगता है। पर, यद्यप्यमङ्गलानीह सेवते शङ्करः सदा। तथापि मङ्गलन्तस्य

---

१. शिवजी तमोगुण के अधिष्ठाता होने पर भी त्रिगुणातीत हैं इसीलिए अशुभ भेष शिवधाम हैं। भस्म, गङ्गाजी, तृतीय नयन, सर्प और डमरू के व्याज से पाँचों तत्त्वों को धारण किए हुए हैं। चन्द्र और गरल के व्याज से सञ्जीवनी और मारण शक्ति जो सब शक्तियों की सार हैं : धारण किये हुए हैं।

स्मरणादेव जायते। शिव. पु०। यद्यपि शङ्कर अमङ्गलों का ही सेवन करते हैं परन्तु उनके स्मरण से मङ्गल होता है।

कर त्रिसूल[1] अरु डमरु बिराजा। चले बसहँ चढ़ि बाजहिं बाजा ॥
देखि सिवहिं सुरतिय मुसुकाहीं। वर लायक दुलहिनि जग नाहीं ॥३॥

अर्थ : हाथ में त्रिशूल और डमरू शोभायमान हुआ। बैल पर चढ़कर चले। बाजे बजने लगे। शिवजी को देखकर देवताओं की स्त्रियाँ मुसकराईं कि वर के योग्य संसार में दुलहिन नहीं है।

व्याख्या : भयानकता में यदि कोई कमी रह गई तो वह त्रिशूल से पूरी कर दी गई और आनन्द का समय है कदाचित् ताण्डव की आवश्यता पड़ जाय। अतः हाथ में डमरू भी दे दिया गया। यथा : तांडवित नृत्य पर डमरू डिमि डिमि प्रवर अशुभ इव भाँति कल्यान रासी। सवारी के लिए बैल खड़ा ही था उसी पर सवार हो गये। दुलहे की सवारी पहिले ही चली। बाजा पीछे बज रहा है। शची सारदा आदिमुसकराई कि वाह रे वर का शृङ्गार! इनके अनुरूप दुलहिन संसार में कहाँ मिलेगी? अनुपयुक्त रूप रचना से आह्लाद युक्त मनोविकार हुआ। 'मुसुकाहीं' से उत्तम हास कहा।

बिस्नु बिरंचि आदि सुरव्राता। चढ़ि चढ़ि बाहन चले बराता ॥
सुर समाज सब भाँति अनूपा। नहिं बरात दूलह अनुरूपा ॥४॥

अर्थ : विष्णु और ब्रह्मा आदि देवसमूह वाहनों पर चढ़ चढ़कर बारात में चले। समाज सब प्रकार से अनुपम था। फिर भी बारात दुलहे के अनुरूप नहीं थी।

व्याख्या : पहिले दुलहा, उसके पीछे बाजा और उसके भी पीछे विष्णु, ब्रह्मादि बराती चले। अनुरूप दुलहिन तो मिलने की नहीं, बारात भी अनुरूप नहीं। देवताओं का समाज अति सुन्दर था। बारात का नियम पालन के लिए देवताओं ने चारों ओर से शिवजी को घेर लिया। यह समाज सात्त्विकों के इष्टदेवों का है। यथा : यजन्ते सात्त्विका देवान्।

दो. बिस्नु कहा अस बिहँसि तब, बोलि सकल दिसिराज।
बिलग बिलग होइ चलहु सब, निज निज सहित समाज ॥९२॥

अर्थ : तब विष्णु ने सब दिक्पालों को बुलाया और हँसकर कहा कि सब लोग अलग अलग अपने अपने समाज के साथ चलो।

व्याख्या : विकृत वेषभूषा और वाक्य ही हास्यरस का आलम्बन है। सो दूल्हे के वेष-भूषा पर विष्णु बिहँसे। बिहँसना मध्यम हास है। दस दिक्पालों के

---

१ त्रिशूल : आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक शूलों का प्रतीक है। वृष धर्म का प्रतीक है। भुजङ्ग आनन्त्य का प्रतीक है। नरशिरमाल मनुष्य मात्र का प्रतीक है।

अधिकार में ही सब देवता हैं। विष्णु ने सब दिक्पालों को बुलाकर कहा कि अपना-अपना समाज लेकर अलग-अलग होकर चलो। जिसमें स्पष्ट प्रतीत हो कि यह अमुक दिक्पाल का समाज है। अपनी अपनी तैयारी और त्रुटि का अपने को ही जिम्मेदार रहना चाहिए। एक की त्रुटि के सब जिम्मेदार न समझे जायँ। आपलोग अपना-अपना वाहन विमानादि साजकर आये हैं। अतः सबकी अलग-अलग शोभा दिखाई पड़े। शिवजी स्वयं ईशान कोण के दिक्पाल हैं। इनकी शोभा अलग रहे।

बर अनुहारि बरात न भाई। हँसी करैहहु पर पुर जाई॥
बिस्नु बचन सुनि सुर मुसुकाने। निज निज सेन सहित बिलगाने॥१॥

अर्थ : यह बारात वर के मेल की नहीं हैं। पराए गाँव में चलकर हँसी कराओगे। विष्णु की बात सुनकर सब देवता मुस्कुराए और अपनी सेना लेकर अलग हो गये।

व्याख्या : बारात के अननुरूप वर को देखकर यहीं हँसी हो रही है। कन्या पक्ष के लोग हँसी के लिए वर पक्ष का छिद्रान्वेषण करते हैं। सो हमलोगों के बीच वर के चलने से सबकी हँसी होगी। विवाह के समय भी ये इसी रूप से चले तो इनकी हँसी कराने की इच्छा है। अतः इन्हें अलग चलने दो। परन्तु वर को छोड़कर बारात चल भी नहीं सकती। अतः सब कोई अपना अपना समाज अलग करके चलो जिसमें स्पष्ट प्रतीत हो कि कौन समाज किसका है। यथा : बिबुध बोलि हरि कहेउ निकट पुर आएउ। आपन आपन साज सबहिं बिलगाएउ।

यह वचन भी समयानुरूप ही है। जब सब लोग विलग विलग हो जायँगे तो शिवजी को अपना समाज बुलाना पड़ेगा। तब हँसी में जो कुछ कसर है सो भी पूरी कर देने की विष्णु भगवान् की इच्छा है। अतः देवता लोग मुस्कराए फिर विष्णु की आज्ञानुसार बारात सजी।

मनहीं मन महेसु मुसुकाहीं। हरि के बिंग बचन नहिं जाहीं॥
अति प्रिय बचन सुनत प्रिय केरे। भृंगिहि प्रेरि सकल गन टेरे॥२॥

अर्थ : शिवजी मन ही मन मुस्कराते हैं कि हरि का व्यङ्ग बोलना नहीं छूटता। प्रिय के अति प्यारे वचन सुनकर भृङ्गी को भेजकर सब गणों को बुलवा लिया।

व्याख्या : देवियाँ मुस्कराईं। विष्णु विहँसे। फिर सब देवता मुस्कराए। अब हास्यरस की पूर्ति में केवल वर के हँसने की देर थी। सो वह भी मन ही मन मुस्करा रहे हैं। हरि के वचन में व्यङ्ग रहता है। सो यहाँ भी इनके वचन में व्यञ्जना है। इनकी इच्छा है कि हमारे गण भी बारात में सम्मिलित हों। इस उत्साह से वञ्चित न रहें और बारात भी मेरे जैसी विचित्र दिखाई पड़े। शिवजी की आज्ञा भृङ्गीगण को हुई कि सब गणों को बुलाओ। अर्थात् पहिले केवल मुख्य गण साथ रहे। अब सबके लिए आज्ञा हुई।

सिव अनुसासनु सुनि सब आए । प्रभुपद जलज सीस तिन्ह नाए ॥
नाना बाहन नाना वेषा । विहँसे सिव समाज निज देखा ॥३॥

अर्थ : शिवजी की आज्ञा सुनकर सब आये । और उन्होंने प्रभु के चरण कमलों में सिर झुकाया । उनके नाना प्रकार के वाहन थे और नाना प्रकार का वेष था । शिवजी अपना समाज देखकर हँसे ।

व्याख्या : ये दूसरे का अनुशासन सुननेवाले नहीं । शिवजी का अनुशासन टालनेवाले भी नहीं । भृङ्गी द्वारा सब बुलाये गये । इसलिए सब आये । प्रभु के चरणों में प्रणाम करते हैं और किसी को नहीं । सेना का नियम है कि एक सा वाहन और एक सा वेष प्रयत्नपूर्वक रक्खा जाता है । परन्तु शङ्कर की सेना विलक्षण है । न एक सा वाहन और न एक सा वेष है । यहाँ सेना और समाज समानार्थक शब्द हैं । यथा : विलग विलग होइ चलहु सब, निज निज सहित समाज तथा : निज निज सेन सहित विलगाने । व्यङ्ग वचन सुनकर शिवजी तो मन हीं मन मुसकराए थे । अब अपना समाज देखा तो हँस पड़े ।

कोउ मुखहीन बिपुल मुख काहू । बिनु पद कर कोउ बहु पद बाहू ॥
बिपुल नयन कोउ नयन बिहीना । रिष्ट पुष्ट कोउ अति तनखीना ॥४॥

अर्थ : कोई बिना मुख का है और किसी को कई मुख हैं । कोई बिना हाथ पाँव का है और किसी को बहुत से हाथ पाँव हैं । किसी को वहुत सी आँखें हैं किसी को एक भी नहीं । कोई वड़ा मोटा है और कोई अत्यन्त दुबला पतला है ।

व्याख्या : अति आश्चर्यमय दृश्य है । कोई तो रुण्डरूप ही है और किसी को मुण्ड ही मुण्ड है । कोई बिना हाथ पैर के वर्तुलाकार है । कोई केंकड़े की भाँति बहुत हाथ पैरवाला है । इत्यादि । निदान शङ्कर के गण सब एक से एक विचित्र हैं । किसी के रूप और वाहन से दूसरे का मेल नहीं और वे असंख्यात हैं । इन्हीं में राजस के इष्टदेव यक्ष राक्षसों का अन्तर्भाव है । यक्ष राक्षस राजसिक लोगों के पूज्य हैं । यथा : यक्षरक्षांसि राजसाः ।

छं. तन[1] खीन कोउ अति पीन पावन कोउ अपावन गति धरें ।
भूषन कराल कपाल कर सब सद्य सोनित तन भरें ॥
खर स्वान सुअर सृगाल मुख गन वेष अगनित को गनै ।
बहु जिनिस प्रेत पिसाच जोगि जमात बरनत नहिं बनै ॥

---

१. यहाँ से बराबर रुद्रसंज्ञक छन्दों में भगवान् का विवाह वर्णित है । ये सब छन्द हरिगीतिका हैं । इसी भाँति आदित्य संख्यक छन्दों में श्रीआदित्यकुलतिलक श्रीरामचन्द्र का विवाह वर्णित है ।

सो. नाचहिं गावहिं गीत, परम तरंगी भूत सब।
देखत अति बिपरीत, बोलहिं बचन विचित्र विधि ॥९३॥

अर्थ : कोई बिल्कुल दुबला कोई खूब मोटा कोई पवित्र कोई अपवित्र दशा धारण किये हुए हैं। भयङ्कर गहना पहने हाथ में कपाल लिये और सब शरीर में टटका : ताजा : खून लपेटे हुए हैं। किसी का मुँह गधे का सा किसी का कुत्ते का सा किसी का सुअर का सा और किसी का गीदड़ का सा था। गणों के असंख्य वेष को कौन गिने। बहुत प्रकार के प्रेत पिशाच और जोगियों[1] की जमात है। जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता!

सब भूत प्रेत बड़े मौजी हैं। वे नाचते हैं और गीत गाते हैं। देखने में अत्यन्त बेढङ्गे हैं और उनके बोलने की विधि भी विचित्र है।

व्याख्या : तावदन्ये सामायाता भूतप्रेतपिशाचकाः। वक्रतुण्डास्तथाकेचित् विरूपाश्च तथा परे। विरुद्धवाहनाः केचित् दुरालापकरास्तथा। डमरूवादयन्तो वै गल्लनादास्तथापरे। शिवपुराणे। कमठ खपर मढ़ि खाल निसान बजावहिं। नर कपाल भरि सोनित पियहिं पियावहिं। पा. मं.।

प्रेत और भूत तामस लोगों के इष्ट देवता हैं। यथा : प्रेतान् भूतगणांश्चैव यजन्ते तामसा जनाः। अतः इस बारात में सात्त्विक राजस तामस तीनों प्रकृति के लोगों के इष्टदेव हैं। निदान यह बारात ही इष्टदेवों की है। इसीलिए कहा कि : उमा महेस विवाह बराती। ते जलचर अगनित बहुभाँती। ये रामयशसरित् : सरयू : के जलचर हैं। रामभक्तों को इनसे बचकर रहना चाहिए। जलचर मनुष्यों को निगल जाते हैं। इसी भाँति इष्टदेव भी उपासक को अपने में मिला लेते हैं। प्रेत भूत के उपासक प्रेत भूत हो जाते हैं। यक्ष राक्षस के उपासक यक्षराक्षस हो जाते हैं और देवताओं के उपासक देवता हो जाते हैं। और प्रभु कहते हैं कि मेरे उपासक मुझे प्राप्त होते हैं। यथा : देवान् देवयजो यान्ति मद्भक्ता यान्ति मामपि। अतः रामभक्तों को अन्य की उपासना में तन्मय न हो जाना चाहिए।

नाचहिं नाना रंग तरंग बढ़ावहिं। अज उलूक बृकनाद गीत गनगावहिं। पा. मं

देखत अति विपरीत का भाव यह है कि वस्तुतः विपरीत नहीं हैं शङ्कर के गण भी मङ्गलमय हैं।

जस[2] दूलहु तसि वनी बराता। कौतुक विविध होहिं मग जाता॥
इहाँ हिमाचल रचेउ विताना। अति विचित्र नहिं जाइ वखाना ॥१॥

अर्थ : जैसा दूल्हा था वैसी वरात बन गई। रास्ते में जाते-जाते अनेक भाँति के कौतुक होते जा रहे हैं। यहाँ हिमाचल ने ऐसी विचित्र मण्डप की रचना की कि जिसका वर्णन नहीं हो सकता।

---

१. एक विशेष प्रकार के रुद्र गण जिनकी गणना भूत वेताल के समकक्षों में है।
२. यहाँ समालङ्कार है।

व्याख्या : वर अनुहार बरात बनी ·हरि हंस कहा : पा. मं.। अब प्रधान बरात गणों की सेना हो गई। मार्ग में नाच गाना भी हो रहा है अतः कौतुक की क्या कमी है। श्रीग्रन्थकार इस समय हिमाचल की ओर हैं। अतः इहाँ हिमाचल रचेउ बिताना कह रहे हैं। माँ का साथ अत्यन्त सुखद समझकर ग्रन्थकार उसी समाज में हैं। बितान वर्णन अशक्य समझकर उसे अति बिचित्र कह रहे हैं। विचित्र वस्तु का वर्णन नहीं हो सकता। अति विचित्र तो सर्वथा वर्णनातीत है। यथा : रचना देखि विचित्र अति मन बिरंचि कर भूल : जैसा मण्डप जनकपुर में बना था वैसा ही समझना चाहिए।

सैल सकल जहँ लगि जग माहीं। लघु बिसाल नहिं बरनि सिराहीं ॥
बन सागर सब नदी तलावा। हिमगिरि सब कहुँ नेवत पठावा ॥२॥

अर्थ : जगत् में जितने पहाड़ थे। क्या बड़े क्या छोटे, जिनका वर्णन नहीं हो सकता : बन, समुद, नदियाँ और तालाव, सबको हिमाचल ने न्यौता : नवेद : भेजा।

व्याख्या : शैलराज का बरताव सब शैल, सागर, बन, नदी और तालाबों से है। शैल, सागर, नदी आदि के दो रूप होते हैं। स्थूल रूप तो वही है जैसा हम लोग देखते हैं। पर इसी के अन्तर्गत उनका दूसरा रूप है। जिस भाँति शंख घोंघा आदि के दो रूप होते हैं। एक तो ऊपरवाली खोपड़ी जड़रूप दूसरा भीतर का जन्तु चेतनरूप। यथा : कालिका पुराणे। नद्यश्च पर्वताः सर्वे द्विरूपास्तु स्वभावतः। तोयं नदीनां रूपन्तु शरीरमपरन्तथा। स्थावरं पर्वतानान्तु रूपं कायं तथा परम्। शुक्तीनामथ कम्बूनां यथैवान्तर्गता तनुः। वहिरस्थिस्वरूपन्तु सर्वदैव प्रवर्त्तते। एवं जलं स्थावरन्तु नदीपर्वतयोस्तदा। अन्तर्वसति कायस्तु सततं नोपपद्यते। नदीनां कामरूपित्वं पर्वतानान्तथैव च। जगत् स्थित्यै पुरा विष्णुः कल्पयामास यत्नतः। अतः नदी पर्वतादि का कामरूपत्व सिद्ध है। अतः उनके यहाँ नेवता जाना और उनके नर नारी रूप से आगमन में शङ्का को स्थान नहीं है।

कामरूप सुंदर तन धारी। सहित समाज सहित बर नारी ॥
गए सकल तुहिनाचल गेहा। गावहि मंगल सहित सनेहा ॥३॥

अर्थ : अपनी इच्छानुसार शरीर धारण करनेवाले सुन्दर शरीर धारण किये हुए समाज के सहित तथा श्रेष्ठ स्त्री के सहित हिमाचल के घर गये। स्नेह के साथ मङ्गल गान भी करते थे।

व्याख्या : कामरूप हैं। अतः सुन्दर तन धारण किया। विवाह में जा रहे हैं। और बिरादरी हैं। इसलिए सस्त्रीक और सबन्धु बान्धव गये। जिनके जिनके पास न्यौता : नवेद : गया वे सब आये। बड़ा प्रेम है। इसलिए स्त्रियाँ मङ्गलगान कर रही हैं।

प्रथमहि गिरि बहु गृह सँवराए। जथा जोगु जहँ तहँ सब छाए ॥
पुर सोभा अवलोकि सुहाई। लागइ लघु बिरंचि निपुनाई ॥४॥

अर्थ : हिमालय ने पहिले ही बहुत से घरों को सजा रक्खा था। सब यथायोग्य जहाँ तहाँ ठहर गये। उस पुर की सुन्दर शोभा देखकर ब्रह्मदेव की चतुराई भी थोड़ी मालूम हुई।

व्याख्या : शैलराज की सुव्यवस्था का वर्णन करते हैं। इकट्ठा ठहरने से कष्ट होगा। अतः सबको जहाँ तहाँ ठहराया। अनुकरण की वस्तु : नकली : असली से अच्छी बनी हुई हैं। नकली कमल असली कमल से सुन्दर बने हैं। इसलिए विरञ्चि की निपुणता थोड़ी मालूम होती है।

छं. लघु लागि विधि की निपुनता अवलोकि पुर सोभा सही।
वन बाग कूप तड़ाग सरिता सुभग सब सक को कही॥
मंगल विपुल तोरन पताका केतु गृह गृह सोहहीं।
वनिता पुरुष सुंदर चतुर छवि देखि मुनि मन मोहहीं॥
दो. जगदंबा जहं अवतरी, सो पुर बरनि कि जाइ।
रिद्धि सिद्धि संपत्ति सुख, नित नूतन अधिकाइ॥९४॥

अर्थ : पुर की सुन्दर सच्ची शोभा देखकर ब्रह्मा की रचना हलकी लगी। बन, बाग, कूएँ तालाब, नदियाँ सब सुन्दर हैं। उनका वर्णन कौन कर सकता है। घर घर बहुत से शुभ वन्दनवार और अनेक पताका ध्वजा शोभित हैं। सुन्दर और चतुर स्त्री पुरुषों की छवि देखकर मुनियों के मन मोहित होते हैं।

जिस पुर में जगदम्वा ने जन्म लिया क्या उस पुर की शोभा कही जा सकती है ? वहाँ नई नई ऋद्धि सिद्धि सम्पदा और सुख बढ़ता ही जाता है।

व्याख्या : जगदम्बा के अवतार से पुर की शोभा सही है। पुर की शोभा सुन्दर जलाशय, मङ्गलमयगृह और लोकद्वय साधन में चतुर निवासियों से होती है। यहाँ यह सब इस भाँति सम्पन्न है कि छवि देखकर मुनियों का मन मोहित हो गया जिनका मन विरञ्चि की निपुणता से विरक्त रहा।

जगदम्वा के अवतार योग्य जो देश है उसका वर्णन अशक्य है। ऋद्धि-सिद्धि संपत्ति होने पर भी सुख दुर्लभ होता है। अतः उसको पृथक् गणना की। सब कुछ होने पर भी जैसा का तैसा बना रहने से साधारण बात हो जाती है। अतः कहते हैं : नित नूतन अधिकाइ।

नगर निकट बरात सुनि आई। पुर खरभर सोभा अधिकाई॥
करि बनाव सब वाहन नाना। चले लेन सादर अगवाना॥१॥

अर्थ : बारात नगर के पास आई सुनकर सारे नगर में कोलाहल मच गया और बड़ी शोभा हुई। स्वयं सज धजकर और अनेक सवारियों को सजाकर आदर सहित अगवान : बारात को लेने चले।

व्याख्या : जस दूलह तस बनी बराता। कौतुक विविध होहिं मग जाता से

बारात का प्रसङ्ग छूटा था। अब फिर वहीं से उठाते हैं। बारात चली आ रही थी। इस बीच ग्रन्थकार हिमाचल के यहाँ का वर्णन करने लगे थे। अब बारात नगर के निकट आ पहुँची। लोग कहते हैं कि नेपाल में शिवजी का विवाह हुआ है। काष्ठ मण्डप जहाँ बना था उसी का नाम काठमाण्डू है। बारात आने के पहिले ही समाचार मिल जाता है। अतः सुनि आई कहते हैं। बारात के लिए अगवानी में भी बारात ही की सी तैयारी की जाती है। सो नेवता में आये हुए गिरि, सागर, तालाबादि जितने बड़े लोग थे और नगर के लोग अगवानी के लिए चले।

हिय हरखे सुर सेन निहारी। हरिहि देखि अति भए सुखारी ॥
सिव समाज जब देखन लागे। बिडरि चले बाहन सब भागे ॥२॥

अर्थ : देवसेना देखकर सब लोग प्रसन्न हुए। और विष्णु भगवान् को देखकर बहुत खुशी हुए। जब शिवजी का समाज देखने लगे तब हाथी घोड़े भड़के और भाग चले।

व्याख्या : विष्णु भगवान् के बताये हुए क्रम से बारात सजी थी। आगे आगे देवताओं की सेना चल रही थी। लोकपाल लोग अपनी अपनी सेना के साथ क्रम से चले आ रहे थे। अतः पहिले वे ही दिखाई पड़े। अगवान को हर्ष हुआ कि ऐसे ऐसे महान् लोग बारात में आये हैं। बारात में प्रधान उत्तरोत्तर पीछे रहते हैं। अतः लोकपालों के समाज के पीछे विष्णु का समाज था। उन्हें देखकर अत्यन्त सुखी हुए। सबके पीछे अपने समाज सहित स्वयं वर की सवारी थी। जो उस समाज को देखकर हाथी, घोड़े ऐसे भड़के कि सवारों के रोकने पर भी नहीं रुके। भाग निकले। अतः सवार का भागना न कहकर वाहन का भागना कहते हैं।

धरि धीरजु तहँ रहे सयाने। बालक सब लै जीव पराने ॥
गए भवन पूछहि पितु माता। कहहिं बचन भय कंपित गाता ॥३॥

अर्थ : धैर्य धारण करके सयाने लोग रह गये। लड़के तो अपना प्राण लेकर भागे, घर पहुँचे तो माता पिता पूछने लगे। वे भय से काँपते हुए बोले।

व्याख्या : पैदल भी भागे। केवल सयाने लोग जिन्हें शिवजी के समाज की व्यवस्था मालूम थी धैर्य धारण करके रह गये। भाव यह कि डर तो वे भी गये परन्तु उन्होंने धैर्य से काम लिया। बालक भागने में सबसे बढ़कर निकले। अतः लै जीव पराने कहते हैं। अर्थात् वस्त्राभूषण के गिर जाने की भी उन्हें सुध बुध न रह गई। यथा : चले भागि गज बाजि फिरहिं नहिं फेरत। बालक भभरि भुलान फिरहिं घर हेरत। पा. मं.। फिर जड़ता की जाड़ा आई। अतः कंपित गात कहते हैं। माँ बाप बच्चों की विकलता देखकर पूछते हैं कि इसे क्या हुआ? बारात देखने गया था। कोई दुर्घटना तो नहीं हुई?

कहिअ कहा कहि जाइ न बाता। जम कर धारि किधौं बरिआता ॥
बरु बौराह बसह असवारा। ब्याल कपाल बिभूषन छारा ॥४॥

अर्थ : क्या कहें ! कोई बात कही नहीं जाती। यह यमराज की सेना है कि बारात है। पगला वर बैल पर बैठा हुआ है। साँप, खोपड़ी और राख ही उसके गहने हैं।

व्याख्या : लड़के अपने माँ बाप के पूछने पर कहते हैं : भय के मारे हमारे मुख से बात नहीं निकल रही है। क्या कहें ? वह बारात नहीं है। यमराज की सेना है। यद्यपि यम की सेना देखी नहीं है। फिर भी भयङ्करता से अनुमान करते हैं कि ऐसी ही होगी जिसे देखकर लोग मर जाँय। लड़के वर को पागल बतलाते हैं। क्योंकि वह बैल पर सवार है। जिसे घोड़ा नहीं होता वह भी व्याह में घोड़ा मँगनी ले लेता है। जिसकी बारात में लक्ष्मीपति आवें उसे घोड़ा न मिले यह हो नहीं सकता। समर्थ रहते भी बैल पर चढ़कर व्याहने आया है। अतः निश्चय ही पागल है। और भी पागल के लक्षण हैं। यदि गहना मँगनी न मिला तो बिना गहने ही आता। साँप, खोपड़ी और राख कौन सा गहना है।

छं. तन छार ब्याल कपाल भूषन, नगन जटिल भयंकरा।
सँग भूत प्रेत पिसाच जोगिनि, बिकटमुख रजनीचरा ॥
जो जिअत रहिहि बरात देखत, पुन्य बड़ तेहि कर सही।
देखिहि सो उमा बिवाहु घरघर, बात असि लरिकन्ह कही ॥

दो. समुझि महेस समाज सब, जननि जनक मुसुकाहिं।
बाल बुझाए बिबिध बिधि, निडर होहु डरु नाहिं ॥९५॥

अर्थ : वर देह में राख लपेटे, साँप और खोपड़ी का गहना पहने, नंगा धडंगा, जटा बढ़ाए, भयङ्कर रूप है। उसके संग भूत, प्रेत, पिशाच और विकट मुखवाले[1] राक्षस हैं। जो बारात को देखते हुए जीता रहेगा उसका सचमुच बड़ा पुण्य होगा और वही उमा का विवाह देखेगा। यह बात लड़कों ने घर कह डाली।

महादेवजी के सब समाज को समझकर माँ बाप मुस्कराए और लड़कों को अनेक प्रकार से समझाया कि डरो मत, कोई डर की बात नहीं है।

व्याख्या : वर ने जोड़ा जामा नहीं पहन रक्खा है इसलिए नग्न बतला रहे हैं। विवाह के समय तो क्षौर करा लेना था। सो भी नहीं कराया, जटा रखाये हुए हैं। संक्षेपतः वर भी भयङ्कर है। उसका समाज भूत प्रेत पिशाच जोगिनी और विकराल मुँह के राक्षसों का है। बारात देखकर नगरवासी सब मर जायँगे। नहीं देख सके इसलिए हम लोग भाग आये हैं। जो विवाह देखेगा उसके सच्चे और बड़े पुण्यात्मा होने में सन्देह नहीं है। क्योंकि इस यम की सेना के बीच में पड़कर सकुशल रहना थोड़े पुण्य से साध्य नहीं है। यथा : कुशल करइ करतार कहहिं हम साँचिय। देखब कोटि विवाह जिअत जो बाँचिअ। पा. मं। जननी जनक सयाने हैं।

---

१ खर स्वान सुअर सृगाल मुख गन बेष अगनित को गनै।

शिव समाज का रहस्य जानते हैं। उनके झूठे भय पर मुसकराते हैं। समझाने पर भी वच्चों का भय दूर नहीं होता। अतः विविध भाँति समुझाए। यथा :

एहि विवाह मंगल परम मंगल उमा विवाह।
दृगपथ पाए भूतपति होइहि अधिक उछाह॥
भस्म गंग पावक उरग-श्वास डमरु के व्याज।
पंच भूत धर भूत पति अति अभूत सब साज॥
विष पियूषकर मिस धरत सकल शक्ति को सार।
व्याल विभूषन विश्व को विजयानन्द भरतार॥
मुंडमालधर जगत के जीवन को आधार।
वनि वृष सेवत धर्म हू जाके चरन उदार॥
व्यसनी निसिदिन आपने रूपहिं रहे सँवार।
विकट रूप धर एकहीं काम जरावनि हार॥
गन सब मङ्गलरूप अति सरल गलित अभिमान।
रहत दुराए अपनपौ ये विज्ञान निधान॥
याते निर्भय होइ तुम विचरौ करौ अनंद।
उमा शंभु के व्याह में नितनव बिजया नंद॥

लै अगवान बरातहिं आए। दिए सवहि जनवास सुहाए॥
मैना सुभ आरती सँवारी। संग सुमंगल गावहिं नारी॥१॥

अर्थ : अगवान बारात को लिवा आये। सबको सुन्दर जनवास दिये। मैंना ने मंगल आरती साजी और साथ में स्त्रियाँ सुन्दर मङ्गल गान करती थीं।

व्याख्या : सयाने जो धैर्य धरकर वहाँ रह गये थे वे बारात को साथ लिवाकर आये। उन भूत प्रेत पिशाच निशिचरों से किसी का कोई अनिष्ट नहीं हुआ। दृश्यमात्र भयावना था। भय की कोई बात न थी। वे लोग आदर के साथ बारात को लाए और सुन्दर जनवासे में ठहराया।

कंचन थार सोह वर पानी। परिछन चली हरहिं हरषानी॥
विकट वेष रुद्रहिं जब देखा। अवलहु उर भय भयउ विसेषा॥२॥

अर्थ : सुन्दर हाथों में सोने का थाल शोभायमान था। प्रसन्नता से वे हर को परछने चलीं। जब रुद्र का भयङ्कर वेष देखा तब स्त्रियों के भी हृदय में विशेष भय हुआ।

व्याख्या : सोने के थाल में आरती साजी गई। दुःखों के हरनेवाले को हर कहते हैं ऐसा सुना है। उनका परिछन करने चल रही हूँ। बड़ा उत्साह मन में है। बराती ऐसे हैं न जाने वर कैसा होगा। वरुण कुवेर धर्मराज इन्द्र एक एक को देखकर भ्रम होता है कि यही वर है। पीछे जब मालूम होता है कि ये तो उसके सेवक हैं। तब वर के देखने की उत्कण्ठा और भी वढ़ जाती है। ऐसे अवसर पर

सर्वत्र ही मङ्गलगान करती हुई स्त्रियाँ, परिछन करनेवाली के साथ चलती हैं। ऐसा नियम है।

विकट वेष तो नारदजी से सुना था। यथा : नगन अमङ्गल वेष। पर देखना दूसरी बात है। रुद्र हैं, रौद्ररस के अधिष्ठाता हैं। उसपर विकट वेष धारण किया है। उनके द्वार पर आते ही सब डर गये। पर अबला ठहरीं, ये विशेष डर गईं। लड़के तो पहिले से ही डरे थे।

भागि भवन पैंठी अति त्रासा। गए महेसु जहाँ जनवासा॥
मैना हृदयँ भयउ दुखु भारी। लीन्ही बोलि गिरीसकुमारी॥३॥

अर्थ : भागकर डर से घर में घुस गई। शिवजी जनवासे गये। मैना के हृदय में बड़ा दुःख हुआ। उन्होंने पार्वतीजी को बुलाया।

व्याख्या : परिछन के लिए द्वार पर आगई थीं। सो भीतर भाग गईं। परिछन नहीं हुआ। बिना परिछन के ही वर जनवासे गया। इसपर दुःख तो सबको हुआ। ऐसा भयानक वर देखने में नहीं आया था। सुना भी नहीं गया था। माँ होने से मैना को बड़ा भारी दुःख हुआ।

अधिक सनेह गोद बैठारी। स्याम सरोज नयन भरे बारी॥
जेहि बिधि तुम्हहि रूपु अस दीन्हा। तेहि जड़ बरु बाउर कस कीन्हा॥४॥

अर्थ : अधिक स्नेह से गोद में बिठाया और नीलकमल के समान नेत्रों में आँसू भरकर : बोलीं : जिस ब्रह्मा ने तुम्हें ऐसा रूप दिया। उस जड़ ने वर को पागल कैसे बनाया?

व्याख्या : लड़की पर इतना दुःख आ पड़ा। इससे प्रेम अधिक हो गया, आँखों में आँसू भर आया। लड़की को गोद में लेकर प्रेम प्रलाप प्रारम्भ किया। जो प्रश्न ब्रह्मदेव से करना चाहिए वह अपनी कन्या से करने लगीं। विधि को उपालम्भ देती हैं। अथवा इस व्याज से कन्या की अस्वीकृति चाह रही हैं।

छं. कस कीन्ह[1] बरु बौराह बिधि जेहिं तुम्हहि सुंदरता दई।
जो फलु चहिअ सुरतरुहिं सो बरबस बबूरहि लागई॥
तुम्ह सहित गिरि तें गिरौं पावक जरौं जलनिधि महुँ परौं।
घर जाउ अपजसु होउ जग जीवत बिबाहु न हौं करौं॥

दो. भईं बिकल अबला सकल, दुखित देखि गिरिनारि।
करि बिलापु रोदति बदति, सुता सनेहु सँभारि॥९६॥

अर्थ : जिसने तुम्हें सुन्दरता दी उस ब्रह्मा ने पगला वर कैसे बनाया? जो फल कल्पवृक्ष में लगना चाहिए वह जबरदस्ती से बबूल में लग रहा है। मैं

---

१. विषमालङ्कार।

तुम्हारे साथ पहाड़ पर से कूद पड़ूँगी । आग में जल जाऊँगी । समुद्र में डूब मरूँगी । घर जाय । अपयश हो । पर मैं जीते जी विवाह न होने दूँगी ।

हिमाचल की स्त्री को दु:खी देखकर सारी स्त्रियाँ व्याकुल हो गईं । और बेटी के प्रेम का संभाल करते हुए विलाप करके रो-गा रही हैं ।

व्याख्या : एक नया अवगुण दिखाई पड़ा जिसकी चरचा भी नारदजी ने नहीं की थी कि वर पागल है । विधि के लिलार में लिखने से सब होता है । अतः कहती हैं कि नाम उसका विधि है । वह अविधि क्यों करते हैं ? अपनी बेटी को अमृत फल, विष्णु को कल्पवृक्ष और शिवजी को ववूल कहती हैं । ववूल में काँटा ही काँटा होता है । इस वर में भी सर्प, विभूति, मुण्डमाल, व्याघ्राम्बर, जटा सब कण्टक ही कण्टक हैं । कल्पवृक्ष से सबका मनोरथ पूर्ण होता है । ववूल से मनोरथ भङ्ग होता है । यथा : आप नहीं कछु काम के डार पात फल फूल । औरन को रोकत फिरै रहिमन पेड़ ववूल ।

मेना कहती है कि तुझे साथ लेकर प्राण दूँगी । पर जीते जी ऐसे वर से व्याह न होने दूँगी । भाव यह कि यदि लोग बल पूर्वक व्याह कर देना चाहेंगे तो कन्या भी मरेगी मैं भी मरूँगी । ऐसे के साथ व्याह होने से मरना अच्छा । इस पर यदि कोई कहे कि घर नष्ट हो जायगा । और तुम्हें अपयश होगा । लोक, परलोक दोनों विगड़ेगा । तो दोनों का बिगड़ना मंजूर, पर व्याह मंजूर नहीं ।

कोई-कोई महात्मा ऐसा अर्थ करते हैं कि बारात 'घर जाउ' लौट जावे । इससे अपयश हो तो होने दो व्याह मंजूर नहीं । कोई ऐसा अर्थ करते हैं : देवदानव, यक्षराक्षस वराती घर लूट लेंगे । और अपयश होगा कि मेना के हठ से घर लुट गया । सो लूट मंजूर है पर व्याह मंजूर नहीं ।

पहिले से ही स्त्रियाँ दु:खी थीं । अव मैंना का दु:ख देखकर विकल हो गईं । स्त्रियाँ रोने के साथ कुछ कहती भी जाती हैं । अतः 'रोदति वदति' कहते हैं । यथा : रोदति वदति वहु भाँति करुना करत संकर पहँ गई । 'सुता सनेह सँभारि' बेटी के स्नेह को सँभाले हुए हैं । कोई त्रुटि नहीं होने पावे । यदि ऐसे वर से व्याह हो गया तो माँ के प्रेम : वात्सल्य में त्रुटि समझी जायगी ।

नारद कर मैं काह विगारा । भवनु मोर जिन्ह वसत उजारा ॥
अस उपदेसु उमहि जिन्ह दीन्हा । बौरे वरहि लागि तपु कीन्हा ॥१॥

अर्थ : मैंने नारद का क्या बिगाड़ा था ? जिसने मेरा वसता हुआ घर उजाड़ दिया । जिन्होंने उमा को ऐसा उपदेश दिया कि उसने पगले वर के लिए तप किया ।

व्याख्या : ऊपर जो रोदति वदति कहा है उसी का स्पष्टीकरण करते हैं । मैंना कहती हैं कि नारद के उपदेश से मेरा सर्वनाश हो रहा है । जो किसी का कोई कुछ बिगाड़ता है तो उसके बदले में वह उसके उजाड़ने की चिन्ता करता है । मैंने तो नारद का कुछ बिगाड़ा नहीं । मेरा घर बस रहा था । सप्तर्षियों ने विष्णु से व्याह लगाया था । पर इन्हीं के उपदेश से मेरी वेटी दृढ़ रह गई । यथा : नारद

वचन न मैं परिहरऊँ। बसै भवन उजरै नहिं डरऊँ। नारद का कहा हुआ तप जहर हो गया। फल यह हुआ कि पागल वर मिला। नारद वर के दोष से परिचित थे। इन्होंने जानबूझकर ऐसा उलटा उपदेश दिया। भला तप ऐसा वर न मिलने के लिए होना चाहिए था न कि ऐसे वर के मिलने के लिए।

साँचेहु उनकें मोह न माया। उदासीन धनु धामु न जाया ॥
पर घर घालक लाज न भीरा। बाँझकि जान प्रसव कै पीरा ॥२॥

अर्थ : सचमुच उन्हें न मोह है और न माया है। वे उदासीन ठहरे। उन्हें न धन है, न घर है, न स्त्री है। दूसरे का घर बिगाड़नेवाले हैं। न उन्हें लज्जा है न डर है। भला वन्ध्या प्रसव की पीड़ा क्या जानें।

व्याख्या : नारदजी का माहात्म्य सुन रक्खा था : काम कोह मद मान न मोहा। लोभ न छोभ न राग न द्रोहा। मोह का अर्थ अज्ञान भी है। प्रीति भी है। इसी भाँति माया का अर्थ प्रपञ्च भी है। दया भी है। यहाँ दूसरे अर्थ को लक्ष्य करके कहती हैं कि यह बात तो सच्ची है कि न इन्हें प्रेम है, न दया है। अज्ञान और प्रपञ्च न होने की बात जो जाने सो जाने। मैं तो नहीं देखती। जिसे धन, धाम और कुटुम्ब होता है उसे सब वेदना भी होती हैं। इन्हें कुछ नहीं उदासीन हैं। कोई शत्रु मित्र नहीं। हम लोग इतनी पूजा करते थे : इतना मान करते थे उसका कोई ख्याल नहीं किया।

सप्तर्षियों ने इन्हें ठीक पहिचाना था। उन महात्माओं ने स्पष्ट कह दिया था कि : नारद कर उपदेस सुनि कहहु बसेउ किसु गेह। सत्य केतु कर घर इन घाला। कनक कसिपु कर पुनि अस हाला। ये स्वभाव से ही परघरघालक हैं। हमारा घर भी ये ले बढ़े। लाज नहीं है कि ऐसा खोटा उपदेश मैं दे रहा हूँ। संसार मुझे क्या कहेगा। न डर है। हत्या के भरोसे खेत खाते हैं। इन्हें कोई कुटुम्ब नहीं। ये कुटुम्बी के दुःख को नहीं समझ पाते। वन्ध्या भले ही और सब पीड़ा जानती हो पर प्रसव की पीड़ा कभी उसे हुई ही नहीं। उसे वह नहीं जान सकती। निगोड़े क्या जानें कि बाल बच्चों का दुःख किस भाँति मर्म को काटता है।

जननिहि बिकल बिलोकि भवानी। बोली जुत बिबेक मृदुबानी ॥
अस बिचारि सोचहि मति माता। सो न टरै जो रचै बिधाता ॥३॥

अर्थ : माता को विकल देखकर भवानी विवेक से युक्त कोमल वाणी बोलीं : हे माता ! जो विधाता ने रच रक्खा है वह नहीं टल सकता। ऐसा सोचकर तुम सोच न करो।

व्याख्या : भवानी हैं भव की स्त्री। इनका शिवजी का नित्य सम्बन्ध है। सबको वर नापसन्द है पर इन्हें पसन्द है। देखा कि माँ विकल है तभी ऐसी वाणी का प्रयोग नारदजी के प्रति कर रही है। तप के लिए जाने के समय माँ को गद्गद कण्ठ देखकर सुखद मृदुवाणी बोली थीं। आज विकल देखकर : युत विवेक

मृदुवानी कह रही हैं। क्योंकि शोक का नाश ज्ञान ही से होता है। यथा : सोक निवारेउ सवहि कर निज विज्ञान प्रकास। इस समय महेश की प्रशंसा अपने मुख से अनुपयुक्त समझकर कहती हैं : सो न टरै जो रचै विधाता। अतः शोक करना व्यर्थ है। नारदजी ने पहिले ही कह दिया था। यह कोई नई वात नहीं है। नारदजी गुरु हैं। उन पर दोषारोपण नहीं सुन सकती। अतः कहती हैं।

करम लिखा जौं वाउर नाहू। तौ कत दोसु लगाइअ काहू ॥
तुम्ह सन मिटहिं कि विधि के अंका। मातु व्यर्थ जनि लेहु कलंका ॥४॥

अर्थ : जो मेरे प्रारब्ध में बावला ही पति लिखा है तो किसी को दोष क्यों लगाया जाय। क्या विधाता के अङ्क तुम्हारे मिटाये मिटेंगे ? हे माता वृथा कलंक न लो।

व्याख्या : नारदजी ने कहा था : अस स्वामी एहि कहँ मिलिहि परी हस्त अस रेख। तव नारदजी को दोष क्यों लगाती हो। उन्होंने यहाँ तक कह दिया था कि : कह मुनीस हिमवंत सुनु जो विधि लिखा लिलार। देव दनुज नर नाग मुनि कोउ न मेटनिहार। अव वह विधि का लिखा जिसे देव दनुज नर नाग मुनि कोई नहीं मिटा सकता वह तुम्हारे मिटाए कैसे मिटेगा ? तुम उसके लिए अपयश लेने को प्रस्तुत हो। यह तुम्हारी वृथा चेष्टा है।

छं. जनि लेहु मातु कलंकु करुना परिहरहु अवसर नहीं।
दुःखु सुखु जो लिखा लिलार हमरे जाब जहँ पाउब तहीं ॥
सुनि उमा वचन विनीत कोमल सकल अवला सोचहीं।
वहु भाँति विधिहि लगाइ दूषन नयन वारि विमोचहीं ॥
दो. तेहि अवसर नारद सहित, अरु रिषि सप्त समेत।
समाचार सुनि तुहिनगिरि, गवनें तुरत निकेत ॥९७॥

अर्थ : माँ ! तुम अपयश मत लो। विवाद को छोड़ो। मौका नहीं है। जो दुःख सुख मेरे कर्म में लिखा है उसे मैं जहाँ जाऊँगी वहीं पाऊँगी। उमा के विनीत और कोमल वचनों को सुनकर सव स्त्रियाँ सोचने लगीं। और वहुत भाँति से ब्रह्मा को दोष लगाकर आँसू गिराने लगीं।

उसी समय इस समाचार को सुनकर हिमाचल, नारद ऋषि और सप्तर्षि के सहित तुरन्त घर गये।

व्याख्या : उमा ने माँ को समझाया कि यह अवसर करुणा का नहीं है। करुणा का अवसर तो तभी था जव कि नारद से पहिले पहल समाचार सुना। अव वारात आने पर करुणा करना अनवसर की करुणा है। इसे छोड़ो। अपयश लेना भी व्यर्थ है। होनहार होकर रहेगा। जव भाग्य में पागल वर लिखा है तो अच्छा चंगा आदमी भी व्याह के वाद पागल हो सकता है। नहीं तो पागल भी अच्छा

हो सकता है। अपने प्रारब्धानुसार सुखी घर में भी दुःख मिलता है। और दुःखी घर में भी सुख मिलता है। अतः प्रारब्ध प्रधान है। अशोच्य का सोच नहीं करना चाहिए। उमा के कोमल वचनं का ऐसा प्रभाव पड़ा कि विचारधारा पलट गई। अब सब मिलकर ब्रह्मा को ही दोष दे रही हैं। और सोचती हैं कि ऐसी विनीत मृदुभाषिणी का व्याह पागल से होगा। अतः आँसू भी जारी है।

यह समाचार हिमाचल को मिला। बड़ा बेढङ्गा समाचार था। अतः तुरन्त घर गये। नारदजी को साथ लिया। बारात से सप्तर्षियों को बुलाकर साथ लिया। सप्तर्षियों ने बरेखी की है। और इस समय सप्तर्षियों पर श्रद्धा अधिक है। नारद शब्द का अर्थ ही अज्ञान नाशक है। अतः ये लोग सब मिलकर समझावें।

श्रीपति सुरपति विबुध बात यह सुनि सुनि।
हँसहिं कमल कर जोरि मोरिमुख पुनि पुनि॥ पा. मं.

तब नारद सबही समुझावा। पूरब कथाप्रसंगु सुनावा॥
मयना सत्य सुनहु मम बानी। जगदंबा तव सुता भवानी॥१॥

अर्थ : तब नारदजी ने सबको समझाया और पूर्व कथा का प्रसङ्ग सुनाया। उन्होंने कहा : मैना ! मेरी सत्य वाणी सुनो : तुम्हारी बेटो जगत् की माँ भवानी है।

व्याख्या : नारदजी ने सब स्त्रियों को समझाया[1]। भगवती के स्वरूप का ज्ञान कराया और पूर्व जन्म की कथा कही। नारदजी बोले : मैना मेरी सत्य वाणी सुनो। सत्य वाणी का भाव यह कि पहिले मैंने इन बातों को गुप्त रक्खा था। पहिले की कही हुई वाणी में कौतुक का पुट था। सत्य बात तो यह है जिसे तुम बेटी समझे बैठी हो वह संसार की माँ है और भव : शिवजी की स्त्री है। इसलिए इसका नाम भवानी है।

अजा अनादि सक्ति अबिनासिनि। सदा संभु अरधंग निवासिनि॥
जग संभव पालन लय कारिनि। निज इच्छा लीला बपु धारिनि॥२॥

अर्थ : यह कभी जन्म नहीं लेती। यह अनादि शक्ति है। इसका नाश नहीं होता यह सदा शम्भु के अर्द्धाङ्ग में निवास करती है। यह संसार की उत्पत्ति, पालन और लय करनेवाली है। और अपनी इच्छा से लीला के लिए शरीर धारण करती है।

---

१. कवित्त : बावरी तू बावरो बतावे शिव शङ्कर को किङ्कर ह्वै जाके देव सेवत सुरेश हैं।
महिमा बखानै नेति नेति करि मानै भेद वेदहू न जानै गुन गावत रमेश हैं॥
तनया तिहारी ताको जानती प्रताप पति भाव तिनही में ताते धरत हमेश हैं।
सबके सुपासी आपु रहत उदासी भुक्ति मुक्ति जँह दासी ऐसे मालिक महेश हैं॥
सवैया : भूति विभूषन देइ विभूति कियो तिहुँलोक विभूषन दीनों,
आपु हलाहल पान कियो तब पाइ पियूष भये सुर पीनो।
व्याल कपाल धरे गजखाल कंगालन देत पटंबर झीनो,
बैल चढ़ो गजराज चढ़ावत जाचक को सजिसाज नवीनो।

व्याख्या : अजा हैं। इसलिए अनादि शक्ति हैं। अनादि होकर भी शान्त नहीं है। अविनाशिनि है। इस भाँति चिच्छक्ति रूपा कहा। तुमलोग इन्हें पृथक् देख रहे हो पर इस समय भी यह शिवजी के अर्धाङ्ग में निवास करती हैं। इन्हीं के कारण जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और लय होती है। यथा :

रचत विरंचि हरि पालत हरत हर तेरे ही प्रसाद जग अगजगपालिके।
तोहि में विकास विश्व, तोहि में विलास सब, तोहि में समात मातु भूमिधरवालिके ॥
कवितावली उत्तरकाण्ड १७३

यह स्ववश विहारिणि हैं। इसलिए अपनी इच्छा से लीला के लिए शरीर धारण किया है। कर्मपरतन्त्र होकर इनका जन्म जीवों की भाँति नहीं हुआ है। जो हो रहा है यह भी इनकी लीला है। इनपर बेटी की बुद्धि करना महा अज्ञान है। इस भाँति स्वरूपज्ञान कराके तब पूर्वजन्म की कथा कहते हैं।

जनमी प्रथम दच्छ गृह जाई। नामु सती सुंदर तनु पाई ॥
तहँउ सती संकरहि विवाही। कथा प्रसिद्ध सकल जगमाहीं ॥३॥

अर्थ : पहिले यह दक्ष के घर जाकर पैदा हुई थीं। तब इनका नाम सती था और इन्होंने सुन्दर शरीर पाया था। वहाँ भी सती शङ्करजी को ही व्याही थीं। यह कथा सारे जगत् में प्रसिद्ध है।

व्याख्या : तुम्हारे यहाँ जन्म के पहिले दक्ष के घर जन्म लिया था। तब सती नाम था। उस समय भी सुन्दर शरीर था। शङ्कर पूर्व जन्म के भर्ता हैं। सब संसार में यह कथा प्रसिद्ध है। तुम्हारा तो सती का बहुत साथ था। तुम बेटी की भाँति उस समय भी प्रेम करती थी। अतः तुम सब कथा जानती हो।

एक बार आवति सिव संगा। देखेउ रघुकुल कमल पतंगा ॥
भयउ मोहु सिव कहा न कीन्हा। भ्रम बस वेषु सीय कर लीन्हा ॥४॥

अर्थ : एक बार शिवजी के साथ आते हुए इन्होंने रघुकुलकमल के सूर्य को देखा। इन्हें मोह हो गया। शिवजी का कहना न माना और भ्रम में पड़कर सीताजी का रूप बना लिया।

व्याख्या : उमा चरित वर्णन में यह कथा आठ दोहों में : अड़तालिस से पचपन : विस्तार से कही गई है। यहाँ एक अर्धाली में अति संक्षेप से दिखलाते हैं। पूर्व जन्म का अत्यन्त प्रेम दिखलाने के लिए तथा यह दिखलाने के लिए कि इनके जन्म का साफल्य ही शङ्कर से विवाह है। नारदजी यह कथा सुना रहे हैं :

छं. सिय वेष सतीं जो कीन्ह तेहि अपराध संकर परिहरीं।
हर विरहँ जाइ वहोरि पितु कें जग्य जोगानल जरीं ॥
अब जनमि तुम्हरे भवन निज पति लागि दारुन तपु किया।
अस जानि संसय तजहु गिरिजा सर्वदा संकरप्रिया ॥

दो. सुनि नारद के बचन तब, सब कर मिटा विषाद।
छन महुँ व्यापेउ सकल पुर, घर घर यह संवाद ॥९८॥

अर्थ : सती ने जो सीता का रूप धारण किया। इसी अपराध से शिवजी ने उन्हें त्याग दिया। शिवजी के वियोग से पिता के यज्ञ में जाकर योगाग्नि से भस्म हो गईं। अब तुम्हारे घर में जन्म लेकर अपने पति के लिए कठिन तप किया है। ऐसा जानकर सन्देह दूर करो। पार्वती सदा शङ्कर की प्यारी हैं।

नारद की बात सुनकर सबका विषाद मिट गया और क्षणभर में यह संवाद सारे नगर में घर घर फैल गया।

व्याख्या : छन्द के प्रथम दो चरणों में नव दोहों : पचपन से चौंसठ : का अति संक्षेप में वर्णन किया। यहाँ वह प्रसङ्ग देखने योग्य है। वही इसकी व्याख्या है।

भाव यह कि शिवजी तो इसके पति हैं ही। जिसके लिए इन्होंने इतना भारी तप किया। वे तुम्हें पागल समझ पड़ रहे हैं। यह तुम्हारा अज्ञान है। गिरिजा को ही सदा शङ्कर प्यारे नहीं हैं। शिवजी को भी गिरिजा सदा प्यारी हैं।

जिस रहस्य के खोलने में भगवती को सङ्कोच था उसे नारदजी ने खोल दिया। सप्तर्षि और स्वयं गिरिजा नारदजी की सत्योक्ति के साक्षी हैं। अतः सबका विषाद मिट गया। क्योंकि गिरिजा के दुःखी होने के भय से सब दुःखी हो रहे थे। उनको ही यह विवाह जब परम इष्ट है तब किसी को विषण्ण होने का कारण नहीं रह गया। गिरिजा के पहिले समझाने से विकलता घटी थी। अब विषाद मिटा। इस संवाद को नारदगीता भी कह सकते हैं।

तमाम नगर में आतङ्क फैल गया था। अतः इस संवाद के फैलने में देर न लगी।

तब मयना हिमवंतु अनंदे। पुनि पुनि पारवती पद बंदे ॥
नारि पुरुष सिसु युवा सयाने। नगर लोग सब अति हरषाने ॥१॥

अर्थ : तब मैना और हिमवान् आनन्दित हुए। बार बार पार्वती के चरणों की वन्दना की। स्त्री, पुरुष, बालक, युवा और वृद्ध नगर के सभी लोग प्रसन्न हुए।

व्याख्या : मैना अत्यन्त दुःखी हो गई थी। अतः आनन्दित होने में पहिले उन्हीं का उल्लेख किया। हिमवान् ने यद्यपि धैर्य नहीं छोड़ा था पर वर को देखकर वे भी विषण्ण थे। अब नारदजी का व्याख्यान और सप्तर्षि तथा स्वयं उमा की मौनरूपेण स्वीकृति देखकर समझ गये कि उमा साक्षात् जगदम्बा है। शिवजी जगत् पिता हैं। अतः अपना सौभाग्य मानकर आनन्दित हुए और बार बार पार्वती के चरणों की वन्दना जगदम्बा दृष्टि से की। जगदम्बा की ओर से वन्दना का निषेध भी नहीं हुआ। नगर में कोई ऐसा न रहा जो यह सुनकर अति हर्षित न हुआ हो। इससे हिमवान् की प्रजापालकता कही। हिमवान् को आनन्द और प्रजा को हर्ष कहकर आनन्द और हर्ष का सूक्ष्म भेद दिखलाया। हर्ष की परिपक्वावस्था ही आनन्द है।

लगे होन पुर मंगलगाना । सजे सबहिं हाटक घट नाना ॥
भाँति अनेक भई जेवनारा । सूपशास्त्र जस कछु व्यवहारा ॥२॥

अर्थ : नगर में मङ्गलगान होने लगा और सबने अनेक प्रकार के सुवर्ण घट सजाये। पाक शास्त्रानुसार जैसा व्यवहार है अनेक भाँति की ज्यौनार हुई।

व्याख्या : जब से बारात आई मङ्गलगान बन्द हो गया था। सुवर्ण के घट उठाकर लोगों ने घर के भीतर रख लिये थे। अब मङ्गलगान भी नगर में होने लगा। सुवर्ण के घट भी द्वार पर सजाये गये।

बारात के सत्कार के लिए ज्यौनार हुई। देवता लोग बारात में आये हैं। अतः पाकशास्त्र के अनुसार भोजन की तैयारी हुई। चर्व्य, चोष्य, लेह्य, पेय ये ही चार भाँति के भोजन हैं। यथा : चार भाँति भोजन विधिगाई। एक एक विधि बरनि न जाई। छरस रुचिर विंजन बहु जाती। एक एक रस अगनित भाँती।

सो जेवनार कि जाइ बखानी । बसहिं भवन जेहिं मातु भवानी ॥
सादर बोले सकल बराती । बिस्नु बिरंचि देव सब जाती ॥३॥

अर्थ : जिस घर में माता भवानी रहती हों वहाँ की ज्यौनार का क्या वर्णन किया जाय। आदर के साथ विष्णु, ब्रह्मा आदि सब जाति के देवता तथा सब बाराती बुलाये गये।

व्याख्या : माँ अन्नपूर्णा जहाँ निवास करती हैं वहाँ की जेवनार का वर्णन नहीं हो सकता। वस्तुतस्तु माँ का दिया हुआ ही भोजन भोजन है। वह अमृत से भी मधुर है। शैलराज के यहाँ न ज्यौनार की कमी है न स्थान का सङ्कोच है। अतः सब बराती एक साथ बुला लिये गये। संसार में सर्वत्र और सब वस्तुओं में प्रकृति के अनुसार चार जातियाँ हैं। इसी भाँति देवताओं में भी चार जातियाँ हैं। अतः विष्णु, विरञ्चि आदि सब जाति के देवता बुलाये गये। सकल बराती से तात्पर्य यह कि भूत, प्रेत, पिशाच, निशिचर आदि भी बुला लिये गये।

बिबिध पाँति बैठी जेवनारा । लगे परोसन निपुन सुआरा ॥
नारिबृंद सुर जेंवत जानी । लगीं देन गारी मृदु बानी ॥४॥

अर्थ : अनेक पंगतें : पंक्तियाँ : बैठीं। चतुर सूपकार ज्यौनार परोसने लगे। स्त्रियाँ देवताओं को भोजन करते हुए जानकर कोमल स्वर से गाली गान करने लगीं।

व्याख्या : भोजन करनेवालों की जाति के अनुसार अलग अलग पंक्तियाँ लगीं। ऐसे ऐसे स्थलों में ही परोसनेवालों की निपुणता देखी जाती है। अतः निपुण सूपकार : रसोइये : परोसने लगे। परोस जाने पर भोजन आरम्भ हुआ। तब स्त्रियों का सत्कार आरम्भ हुआ। मृदु स्वर में गाली गाने लगीं। यह देश की चाल है। उत्तर भारत में मङ्गल के समय में गालीगान होता है। अति आनन्द में मर्यादा भङ्ग को किसी सीमा तक स्थान दिया जाता है। श्रीगोस्वामीजी ने कहा है कि

अमिअ गारि गारयौ गरल गारि कीन्ह करतार । प्रेम बैर की जननि जुग जानहिं बुध न गँवार । जब क्रोध की गाली का बहिष्कार करने में सभ्य समाज नितान्त असमर्थ है तब प्रेम की गाली की ओर अधिक क्रूर दृष्टि रखने का कोई कारण नहीं है ।

छं. गारीं मधुर स्वर देहिं सुंदरि बिंग्य बचन सुनावहीं ।
भोजन करहिं सुर अति बिलंब बिनोद सुनि सचु पावहीं ॥
जेवँत जो बढ़ेउ अनंद सो मुख कोटिहूँ न परै कह्यो ।
अँचवाइ दीन्हे पान गवने बास जहँ जाको रह्यो ॥
दो. बहुरि मुनिन्ह हिमवंत कहुँ, लगन सुनाई आइ ।
समय बिलोकि बिबाह कर, पठए देव बोलाइ ॥९९॥

अर्थ : सुन्दरियाँ मधुर स्वर से गालियाँ देने लगीं । देव लोग भोजन में अत्यन्त देर लगा रहे हैं । और विनोद : मज़ाक : सुनकर सुख पा रहे हैं । ज़ेवनार के समय जो आनन्द बढ़ा वह करोड़ों मुखों से नहीं कहा जा सकता । सबको हाथ मुँह धुलाकर पान दिया गया । जहाँ जिसका डेरा था वहाँ सब लोग चले गये ।

फिर मुनियों ने आकर हिमाचल को लगन सुनाई । विवाह का समय जानकर देवताओं को बुलवा भेजा ।

व्याख्या : व्यङ्ग वचन ही गाली है । प्रेम का व्यङ्ग अत्यन्त प्रिय होता है । अतः देवता लोग भोजन में जान बूझकर देर कर रहे हैं । यज्ञभुक् देवता लोग आज भोजन करने बैठे हैं । स्तुति के स्थान पर गाली हो रही है । उनके लिए गाली नई वस्तु है । सो प्रेम की गाली सुन सुनकर आनन्द बढ़ रहा है । यथा : समय सुहावन गारि विराजा । हँसत राउ सुनि सहित समाजा । यह दृश्य देखकर लोग फूले नहीं समाते थे । अतः कहते हैं कि वर्णन नहीं हो सकता । भोजन के बाद हाथ मुँह धोना, और उसके बाद पान देना यही बारात का मुख्य सत्कार है ।

व्याह मेष लग्न में सूर्योदय के समय होनेवाला था । अतः रात को बारात व्याह के पहिले ही जिमाई गई । रामजी का व्याह रात्रि के समय था । अतः बारात का अपने घर जिमाना दूसरे दिन हुआ ।

प्रातःकाल के समय सप्तर्षि लोग लग्न सुनाने फिर आये । अर्थात् वर पक्ष से कहलाया गया कि बुलावा जल्दी भेजें । नहीं तो हिमवान् ने ही ऋषियों को बुलाकर लग्न स्थिर कराया था । उन्हें फिर से सुनाने की आवश्यकता क्या थी ?

बोलि सकल सुर सादर लीन्हे । सबहि जथोचित आसन दीन्हे ॥
बेदी बेद बिधान सँवारी । सुभग सुमंगल गावहिं नारी ॥१॥

अर्थ : सब देवताओं को आदर के सहित बुलवा लिया । और सबको यथायोग्य आसन दिये । वेदी वेद के विधान से बनाई गई । और स्त्रियाँ सुन्दर सुमङ्गल गान करने लगीं ।

व्याख्या : यज्ञ में वेद मन्त्र से जिन देवताओं का आवाहन होता है वे आज आदमी भेजकर बुलवाए जाते हैं। कन्या पक्ष का इतना मान हैं क्योंकि दान दाता के अधीन है। अतः कन्यादान : विवाह में कन्या पक्ष का प्राधान्य है। और सब वस्तुओं में लौकिक कारीगरी दिखलाई गई। पर वेदी वेदविधान से बनाई गई : जिससे अशुद्ध न होने पावे। विवाह के प्रत्येक कर्म के लिए वैदिक मन्त्र हैं। और साथ ही सबके लिए मङ्गल गान हैं। जो समय समय पर स्त्रियाँ गातीं हैं।

सिंहासनु अति दिव्य सुहावा। जाइ न बरनि बिरंचि बनावा ॥
बैठे सिव बिप्रन्ह सिरु नाई। हृदय सुमिरि निज प्रभु रघुराई ॥२॥

अर्थ : बड़े दिव्य सिंहासन पर जो ऐसा विचित्र बना था कि उसका वर्णन नहीं किया जा सकता ब्राह्मणों को प्रणाम करके, और हृदय में अपने प्रभु रघुनाथजी का स्मरण करके शिवजी बैठ गये।

व्याख्या : विष्टर के स्थान पर अति दिव्य सिंहासन दिया गया। जब मण्डप अति विचित्र बना है। यथा : अति विचित्र नहि जाइ बखाना : तब सिंहासन के लिए 'अति दिव्य सुहावा' 'जाइ न बरनि' कहना प्राप्त ही है। शिवजी ने पहिले विप्रों को प्रणाम किया। शिवजी भक्तिपथ के मुख्य आचार्य हैं और भक्तिपथ का प्रथम पाद विन्यास है। प्रथमहिं विप्रचरन अति प्रीति। तत्पश्चात् निज प्रभु रघुनाथजी का स्मरण करते हैं। जिनकी आज्ञा से इस विवाह में प्रवृत्त हुए हैं। अथवा यह विवाह कृत्य है अतः मङ्गल के लिए रघुनाथजी का स्मरण करते हैं। अथवा बार बार रघुनाथजी को सँभारने का स्वभाव है। यथा : मनमाधव को नेकु निहारिहि। सुनु सठ सदा रंक के धन ज्यों पुनि पुनि प्रभुहिं सँभारिहि।

बहुरि मुनीसन्ह उमा बोलाईं। करि सिंगार सखीं लेइ आईं ॥
देखत रूप सकल सुर मोहे। बरनै छबि अस जग कबि को है ॥३॥

अर्थ : फिर मुनियों ने उमा को बुलाया। शृङ्गार करके सखियाँ लिवा आईं। रूप को देखकर सब देवता मोह गये। संसार में ऐसा कवि कौन है। जो उस छवि का वर्णन कर सके।

व्याख्या : पद्धति के अनुसार समय पर उमा बुलाई गईं। अलङ्कृत कन्या के दान का विधान है। अतः शृङ्गार करके सखी ले आईं। अलौकिक सौन्दर्य है, लौकिक कवि की गति नहीं। वर्णन करने में समर्थ देवता लोग तो मोहित ही हो गये। शोभा के तरङ्ग के गहने की शक्ति किसी में नहीं थी। सांसारिक कवि किस आधार पर वर्णन करे। यथा : केहि छाया कवि मति अनुसरई।

जगदम्बिका जानि भव भामा। सुरन्ह मनहि मन कीन्ह प्रनामा ॥
सुंदरता मरजाद भवानी। जाइ न कोटिहु बदन बखानी ॥४॥

अर्थ : जगदम्बिका को भव : शिवजी : की स्त्री समझकर देवताओं ने मन

ही मन प्रणाम किया। भवानी सुन्दरता की सीमा हैं। करोड़ों मुखों से भी बखानी नहीं जा सकती।

व्याख्या : रूप देखने पर मोह हुआ। प्रबोध होने पर प्रणाम किया। कर्मणा वाचा प्रणाम का उपयुक्त अवसर नहीं है। फिर भी जगदम्बा हैं, भवानी हैं, इसलिए मानसिक प्रणाम कहा। इन्हीं तक सुन्दरता की इतिश्री है। अब इससे उत्कृष्ट सुन्दरता नहीं है अतः अवर्णनीया हैं। 'कोटि मुख से वर्णन' कहने का भाव यह कि दस सहस्र शेष भी नहीं कह सकते। समानता के पदार्थ रहें तभी वर्णन सम्भव होता है।

छं. कोटिहु बदन नहिं बनै बरनत जग जननि सोभा महा।
सकुचहिं कहत श्रुति सेष सारद मंद मति तुलसी कहा॥
छबिखानि मातु भवानि गवनी मध्य मंडप सिव जहाँ।
अवलोकि सकहिं न सकुचि पतिपद कमल मन मधुकर तहाँ॥

दो. मुनि अनुसासन गनपतिहि, पूजेउ संभु भवानि।
कोउ सुनि संसय करै जनि, सुर अनादि जिअ जानि॥१००॥

अर्थ : जगजननी की महाशोभा का वर्णन करोड़ों मुँखों से भी नहीं किया जा सकता। वेद, शेष, सरस्वती भी कहने में सङ्कोच करती हैं। मन्दमति तुलसी की गणना ही क्या है। छवि की खानि भवानी शिव के पास मण्डप में गईं। सङ्कोच के कारण देख नहीं सकतीं। पर मनरूपी भौंरा तो पतिपदकमल में ही था।

मुनियों की आज्ञा से शम्भु और भवानी ने गणपति का पूजन किया। उनको अनादि देव समझकर कोई इस बात को सुनकर संशय न करे।

व्याख्या : औरों की शोभा है पर जगजननी की महाशोभा है। अन्य शोभाएँ उस महाशोभा की अंश कलाएँ हैं। वेद इस लोक के वक्ता, शेष पाताल लोक के वक्ता, सारद स्वर्गलोक की वक्ता हैं। उन्हें भी वर्णन करने में सङ्कोच है। क्योंकि तीनों लोकों में ऐसी शोभा है नहीं। फिर तुलसी किस गणना में हैं। किं तत्र परमाणुर्वै यत्र मज्जति मन्दरः। जहाँ मन्दर डूबे जाते हैं वहाँ परमाणु की क्या गिनती हो सकती है। बरनै छवि से उपक्रम करके छविखानि से वर्णन का उपसंहार करते हैं। मन मधुकर चरणों में कब से लगा है प्राप्त होने पर देखने में सङ्कोच बाधक हो रहा है। भाव यह है कि शिवजी का सौन्दर्य कैसा था जिस पर त्रैलोक्यसुन्दरी उमा मुग्ध थीं। अंग-अंग पर उदितरूपमय पूषन। पा. मं.।

कर्मकाण्ड प्रारम्भ हुआ। शास्त्रमर्यादा पालन के लिए गणपतिपूजन हुआ। यथा : प्रथम पूजिअंत नाम प्रभाऊ। अतः मुनियों का अनुशासन शम्भु भवानी को मान्य है। गणपति पूजन किया। ये 'सुर' अनादि हैं। गणपति जन्म के पहिले भी गणपति पूजा होती थी। अथवा मन्त्रमयी मूर्ति तो सनातन है। इसलिए गणपति अनादि देव हैं। संशय करने से अकल्याण होगा। इसलिए निषेध करते हैं।

जसि विवाह कै विधि श्रुति गाई । महामुनिन्ह सो सब करवाई ॥
गहि गिरीस कुस कन्या पानी । भवहि समरपीं जानि भवानी ॥१॥

अर्थ : वेद ने विवाह की जैसी रीति बताई है वह सब महामुनियों ने करवाई। हिमाचल ने अपने हाथ में कुश लेकर कन्या के हाथ को : उसे : भवानी जानकर शिवजी को अर्पण किया।

व्याख्या : विवाह की जैसी वेदोक्त विधि है उसे ठीक ठीक वैसा ही महामुनियों ने सम्पन्न कराया। श्रीरामजी के विवाह में शाखोच्चार का उल्लेख किया। यथा : साखोच्चार दोउ कुलगुरु करैं। यहाँ नहीं करते। क्योंकि यहाँ शाखोच्चार हुआ ही नहीं। यथा : साखोच्चार समय सब सुर मुनि विहँसहिं। शङ्कर ब्रह्मा से उत्पन्न, ब्रह्मा विष्णु से उत्पन्न, विष्णु शङ्कर से उत्पन्न। जो पुत्र वही प्रपितामह। इसलिए मुनि लोग हँस रहे हैं। अथवा स्वयम्भू हैं इसलिए शाखोच्चार की आवश्यकता ही नहीं है।

कन्यादान में हिमालय ने अपने को निमित्तमात्र माना। नारदजी से सुन चुके हैं कि गिरिजा सर्वदा संकर प्रिया। अतः त्वदीयं वस्तु गोविन्द तुभ्यमेव समर्पये। इस बुद्धि से दान किया। लक्ष्मीरूपां कन्यां विष्णुरूपाय वराय ऐसा संकल्प न होकर भवानीं भवाय इस रूप से संकल्प हुआ।

पानि ग्रहन जब कीन्ह महेसा । हिय हरखे तब सकल सुरेसा ॥
वेद मंत्र मुनिवर उच्चरहीं । जय जय जय संकर सुर करहीं ॥२॥

अर्थ : जब शिवजी ने पाणिग्रहण किया तब सब लोकपाल हृदय से हर्षित हुए। मुनिवर्यों ने वेदघोष किया। देवताओं ने जय जय जय शङ्कर का जयकारा लगाया।

व्याख्या : पाणिग्रहण के पहिले तक डर रहा कि बात बिगड़ने न पावे। परम विरक्त का व्याह है। इन्हें राजी करने में क्या क्या नहीं करना पड़ा। सब कुछ ठीक होने पर मैना ही मचल पड़ीं कि चाहे प्राण जाय व्याह न होने दूँगी। लोकपाल लोगों को आर्तिवश विश्वास नहीं हो रहा है। अंधरे को आँख मिले तब जानें : वाली कहावत चरितार्थ हो रही है। अतः पाणिग्रहण होने पर ही विश्वास हुआ और तब हृदय से हर्षित हुए। अब डर नहीं रह गया।

पाणिग्रहण के समय उत्साह से भरकर मुनियों ने वेदध्वनि और देवताओं ने जयध्वनि की। आदि, मध्य, अन्त, सर्वकाल में शिवजी की जय है। अतः देवता लोग तीन बार जय शब्द का प्रयोग कर रहे हैं।

बाजहिं बाजा विविध विधाना । सुमन वृष्टि नभ भै विधि नाना ॥
हर गिरिजा कर भयउ बिवाहू । सकल भुवन भरि रहा उछाहू ॥३॥

अर्थ : अनेक प्रकार से बाजे बजने लगे। आकाश से नाना भाँति के फूलों की वर्षा हुई। शिव-पार्वती का व्याह हो गया। सारा संसार उछाह से भर गया।

व्याख्या : बाहर वाद्यध्वनि हो रही है। आकाश से सुमनवृष्टि हो रही है। वह भी नानाविधि से। फूलों की पंखुरियों की वृष्टि हुई। पूरे फूलों की वृष्टि हुई। कल्पवृक्ष के फूल बरसाये गये। मालाओं की वर्षा हुई। रंग-विरंगी फूलों की मालाएँ गिरीं। इत्यादि। शिव पार्वती के व्याह का प्रभाव देवलोक पर विशेषरूपेण पड़ा। अतः बार-बार पुष्पवर्षा हो रही है।

यह उत्साह इतना अधिक हुआ कि हिमालय संकीर्ण स्थल हो गया। उसमें उछाह समा नहीं सका, उमगकर सारे भुवन में भर गया। यथा : बहुत उछाह भवन अति थोरा। मानहु उमगि चला चहुँओरा।

दासी दास तुरग रथ नागा। धेनु वसन मनि वस्तु विभागा ॥
अन्न कनक भाजन भरि जाना। दाइज दीन्ह न जाइ वखाना ॥४॥

अर्थ : दासी, दास, घोड़े, रथ, हाथी, गौ, वस्त्र, मणि आदि वस्तुओं का विभाग, अन्न और सोने के बरतन गाड़ियों में भरकर दायज दिया जिसका वखान नहीं हो सकता।

व्याख्या : चतुरङ्गिणी सेना और वस्तु विभाग दिये। दासी-दास से पदाति कहा। तुरग रथ नाग से शेष तीनों अङ्ग कहे और भी तीन विभाग दिये : धेनु विभाग, वसन विभाग और मणि विभाग। अन्न सोने के बर्तनों में भरे हुए सो भी गाड़ियों में भर-भर कर दिये। हिमगिरि की सभी करणी अवर्णनीय है। ब्राह्म विवाह में धर्म, अर्थ, काम तीनों की सिद्धि होती है। पुत्रादि की उत्पत्ति से कुलधर्म की रक्षा होती है। अतः शिव पार्वती का ब्राह्म विवाह सम्पन्न हुआ।

छं. दाइज दियो बहुभाँति पुनि करजोरि हिम भूधर कह्यो।
का देउँ पूरन काम संकर चरन पंकज गहि रह्यो ॥
सिव कृपासागर ससुर कर संतोषु सब भाँतिहि कियो।
पुनि गहे पद पाथोज मैंना प्रेम परिपूरन हियो ॥

दो. नाथ उमा मम प्रानप्रिय, गृह किंकरी करेहु।
छमेहु सकल अपराध अब, ह्वै प्रसन्न वर देहु ॥१०१॥

अर्थ : बहुत प्रकार के दहेज देकर फिर हाथ जोड़कर हिमाचल ने कहा। हे शङ्कर! आप पूर्णकाम हैं। मैं आपको क्या दे सकता हूँ : यह कहकर पाँव पकड़ लिये। कृपासागर शिवजी ने ससुर को सभी प्रकार से सन्तुष्ट किया। फिर प्रेमपूर्ण हृदय से मैना ने चरणकमल पकड़ लिये और बोलीं : हे नाथ! उमा मुझे प्राणों के समान प्यारी है। इसे घर की दासी बनाना। इसके समस्त अपराधों को अब क्षमा करते रहना। यही वर प्रसन्न होकर मुझे दो।

व्याख्या : इतना देने पर भी चित्त में दीनता है कि मैंने कुछ दिया नहीं। पूर्ण काम को कोई क्या दे सकता है। कुछ न देनेवाला श्रद्धालु जिस भाँति चरण पकड़

लेता है कि मैं किसी लायक नहीं उसी भाँति चरण पकड़ लिये कि हम क्या दे सकते हैं ? हमारे यहाँ तो आपकी पूजा के लिए विल्वपत्र भी नहीं है। हिमालयपर विल्व वृक्ष नहीं होता। शिवजी का स्वभाव है : सकत न देखि दीन कर ज़ोरे : क्योंकि कृपासागर हैं। इस समय हिमवान् और मैना का भाव श्वसुर और सास का सा देखकर ठीक दामाद की भाँति वरताव करते हैं। इसीलिए : ससुर कर सन्तोष सब भाँतिहि कियो कहा। फिर मैना ने प्रेम परिपूर्ण हृदय से चरण पकड़ा। भाव यह कि मैना को भी पूर्ण श्रद्धा विश्वास और प्रेम श्रीचरणों में हो गया है।

गृहकिंकरी। कहने का भाव यह कि उमा सब गृहपरिचर्या करेगी। आपकी आज्ञा मानेगी। यथा : निजकर गृह परिचर्या करई। रामचंद्र आयसु अनुसरई। नारदजी के मुख से सुन चुकी हैं कि : सिय वेष सती जो कीन्ह तेहि अपराध संकर परिहरी। इसलिए वर माँगती हैं :

छमेहु सकल अपराध अब : पहिले की भाँति परित्याग न करना।

बहु विधि संभु सास समुझाई। गवनीं भवन चरन सिरुनाई ॥
जननीं उमा बोलि तब लीन्हीं। लै उछंग सुन्दर सिख दीन्हीं ॥१॥

अर्थ : शिवजी ने वहुत भाँति से सास को समझाया। तब चरणों में प्रणाम करके घर गईं। फिर माँ ने उमा को बुलाया और गोद में विठाकर सुन्दर शिक्षा दी।

व्याख्या : वहुत प्रकार से शिवजी ने सास को समझाया। ससुर का सन्तोष किया था क्योंकि उन्हें चिन्ता थी कि मैंने कुछ दिया नहीं। परन्तु सास को चिन्ता है कि एक बार त्याग कर चुके हैं। अपराध हो ही जाता है, कहीं फिर न त्यागें। अतः बहुत प्रकार से समझाना पड़ा। यथा :

दो. : मैं रिसात नहिं जो करै कोउ मेरो अपराध।
पै प्रिय विजयानद भगति पथमें परै न बाध ॥
दुखित हृदय निरुपाय ह्वै कियो सती को त्याग।
पै मो मन ते घटेउ नहिं कबहुँ नेक अनुराग ॥
सती अनादर ते कियों दक्ष महामख नाश।
तासु विरह दुःखदुःखित ह्वै तज्यो वास कैलास ॥
अब मोहि हित करि कठिन तप लियो उमा मोहि मोल।
तापै आयसु स्वामिकी जाको मोल न तोल ॥
प्रभु अनुशासन ते भयौ यह सम्बन्ध उदार।
होइहि नित कल्यान अब अभिमत फल दातार ॥

इस भाँति समझाकर सास को भी सन्तुष्ट किया। वे भी प्रणाम करके गईं।

अब बिदाई की तैयारी है। अधिक स्नेह के कारण उमा को लेकर गोद में बिठाया। तप के लिए विदा करते समय भी इसी भाँति गोद में भी बिठाया था। यथा : उमहि बिलोकि नयन भरे वारी। सहित सनेह गोद बैठारी। बहुमान पुरःसर शिक्षा देती हैं जिसमें विस्मरण न हो और ससुराल जाकर वैसा ही बरताव

करें। माँ बाप का नाम न धरा जाय। यह चाल बराबर आज तक चली आती है।

करेहु सदा संकर पद पूजा। नारि धरम पति देव न दूजा॥
बचन कहत भरे लोचन बारी। बहुरि लाइ उर लीन्हि कुमारी॥२॥

अर्थ : सदा शिवजी के चरणों की पूजा करना। नारियों का यही धर्म है। उनके लिए पति के सिवा दूसरा देवता नहीं है। बातें कहते कहते आँखों में आँसू भरकर कन्या को फिर छाती से लगा लिया।

व्याख्या : एकइ धर्म एक व्रत नेमा। काय वचन मन पतिपद प्रेमा। उसी स्त्रीधर्म की शिक्षा देती हैं। पति के दक्षिण अङ्गुष्ठ में सब तीर्थों का निवास है। पति ही एक मात्र देवता हैं। उन्हीं की पूजा से लोक परलोक दोनों बनता है। दूसरे धर्म, नियम, व्रत, उपवास का स्त्री को अधिकार नहीं। पति की आज्ञा से उसके कल्याण के लिए स्त्री नियम, व्रत, उपवास भी कर सकती है। सीताजी की विदाई के समय उन्हें शिक्षा दी गई थी कि : सास ससुर गुर पूजा करेहू। पति रुख लखि आयसु अनुसरेऊ। पर यहाँ ऐसी शिक्षा नहीं दी जा रही है क्योंकि यहाँ तो सास, ससुर और गुरु तीनों का अभाव है।

उमा प्राणों से प्यारी है। अतः बार बार हृदय में लगा रही हैं। आँखों में आँसू भरा हुआ है। पहिले गोद में लिया। अब हृदय से लगाती हैं।

कत बिधि सृजीं नारि जगमाहीं। पराधीन सपनेहुँ सुख नाहीं॥
भै अति प्रेम बिकल महतारी। धीरजु कीन्ह कुसमँ बिचारी॥३॥

अर्थ : कहने लगीं : ब्रह्मा ने संसार में स्त्रियों को क्यों बनाया ? पराधीन को स्वप्न में भी सुख नहीं है। माता प्रेम में अत्यन्त विकल हो गईं पर कुसमय जानकर धैर्य धारण किया।

व्याख्या : विधि प्रपञ्च, गुण और दोष मिलाकर बना है। इसमें सुख भी है और दुःख भी है पर स्त्रियों को तो स्वप्न में भी सुख नहीं है। मैना कहती हैं कि ब्रह्मा ने स्त्री को बनाया क्यों ? सपने में भी सुख न होने का कारण यह है कि उन्हें सदा पराधीन रहना पड़ता है। पिता रक्षति कौमारे भर्त्ता रक्षति यौवने। पुत्रास्तु स्थाविरे भावे न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति। कुमारावस्था में पिता रक्षा करता है। युवावस्था में भर्त्ता रक्षा करता है। बेटे वृद्धावस्था में रक्षा करते हैं। स्त्री में स्वतन्त्रता की योग्यता नहीं है। उनके शरीर का संगठन ऐसा है कि उन्हें सदा रक्षा की आवश्यकता रहती है। स्वतन्त्र रहने से वे बिगड़ जाती हैं। यथा : जिमि स्वतन्त्र ह्वै बिगरहिं नारी। उमा को विदा कर रही हैं। अतः स्त्रीजाति की परवशता पर आक्षेप करती हैं। माँ हैं : बेटी के विरह से अति विकल हो उठीं। मङ्गल के समय अति विकलता समयानुकूल नहीं है। इसलिए धैर्य धारण किया।

पुनि पुनि मिलति परति गहि चरना। परम प्रेमु कछु जाइ न बरना॥
सब नारिन मिलि भेंटि भवानी। जाइ जननि उर पुनि लपटानी॥४॥

अर्थ : बार बार भेंटने और उनके चरणों में पड़ने लगीं। परम प्रेम का कुछ वर्णन नहीं किया जा सकता। भवानी सब स्त्रियों से मिल भेंटकर फिर जाकर माँ को छाती से लिपट गईं।

व्याख्या : पुत्रीभाव से तो भेंटती हैं और जगदम्बा भाव से चरणों में गिरती हैं। अथवा परम प्रेम में कोई सुध बुध नहीं है। गले भी लगती हैं। पैर भी गिरती हैं। मिलि भेंटि शब्द का साथ ही प्रयोग होता है। अर्थ केवल आलिङ्गन करना है। अन्तिम बिदा माता से लेनी है। अतः तीसरी बार जाकर माँ से फिर लिपट गईं।

छं. जननिहि बहुरि मिलि चलीं उचित असीस सब काहू दई।
फिरि फिरि बिलोकत मातु तन तब सखी लै सिव पहँ गई॥
जाचक सकल संतोषि संकरु उमा सहित भवन चले।
सब अमर हरखे सुमन बरषि निसान नभ बाजे भले॥

दो. चले संग हिमवंतु तब, पहुँचावन अति हेतु।
बिबिध भाँति परितोषु करि, बिदा कीन्ह वृषकेतु॥१०२॥

अर्थ : फिर माता से मिलकर चलीं तब सबने उचित आशीर्वाद दिया। फिर फिरकर माता को देखती थीं। तब सखियाँ उन्हें शिवजी के पास ले गईं। महादेवजी सब मँगनों को सन्तुष्ट करके उमा के साथ घर चले। सब देवगण प्रसन्न होकर फूलों की वर्षा करने लगे और आकाश में खूब डंके बजे।

तब हिमाचल अत्यन्त प्रीति से पहुँचाने चले। शिवजी ने उन्हें बहुत भाँति से समझा बुझाकर बिदा किया।

व्याख्या : सौभाग्यवती भव : पुत्रवती भव। यही समयोचित आशीर्वाद है। सो सब लोगों ने दिया। माता पर बड़ा प्रेम है अतः घूम घूमकर देखती हैं। माँ बाप और मैके का इतना प्रेम होता है कि पतिपदकमल में मन मधुकर के रहने पर भी उनका विरह दुःखदायक हो रहा है। बिछोह की व्यथा का बढ़ना ठीक नहीं। अतः सखी शिवजी के पास लिवा ले गईं।

शिवजी : उमा सहित भवने चले। दायज की कोई वस्तु साथ नहीं है। सब याचकों को दे दी गई। बिदाई के समय फिर डंका बजा। तीसरी बार फिर पुष्पवृष्टि हुई। देवताओं का मनोरथ पूर्ण हुआ। अतः बड़ा उत्साह हुआ है।

सीमान्त तक पहुँचाने की विधि है। अतः हिमाचल शिवजी को पहुँचाने चले। शैलराज को अत्यन्त प्रेम है। अतः शिवजी ने बहुत परितोष दिया तब फिरे : प्रेम के कारण फिरते ही न थे।

तुरत भवन आए गिरि राई। सकल सैल सर लिये बोलाई॥
आदर दान बिनय बहु माना। सब कर बिदा कीन्ह भगवाना॥१॥

अर्थ : तब हिमाचल तुरन्त घर आये। सब पर्वतों और सरोवरों को बुलाया। आदर, दान, विनय और बहुत सम्मानपूर्वक हिमवान् ने सबको बिदा किया।

व्याख्या : लड़की की विदाई के बाद पहिला काम नेवतहरियों : मेहमानों को विदा करना है। सो सब बन, सागर, नदी और तालाब को जो नेवते में आये थे हिमवान् ने बुलाया और सबकी आदर, दान, विनय और सम्मान से विदाई की। कोई ऐसे भी होते हैं जो दान या विनय के पात्र नहीं हैं। पर आदर और सम्मान के सभी पात्र हैं। सम्मान दान सब दानों से बड़ा है। यथा : तुलसी कहत पुकारि के सुनहु सकल दे कान। हेमदान गजदान ते बड़ो दान सनमान। अथवा आने पर आदर, विदाई के समय दान और विनय फिर सम्मान से ग्रामसीमान्त तक पहुँचाना।

जबहिं संभु कैलासहि आए। सुर सब निज निज लोक सिधाए॥
जगत मातु पितु संभुभवानी। तेहिं सिंगारु न कहा बखानी॥२॥

अर्थ : जब शिवजी कैलास आये तब सब देवगण अपने अपने लोक को चले गये। शम्भु भवानी जगत् के माता पिता हैं। इसलिए उनके शृङ्गार का वर्णन मैं नहीं करता।

व्याख्या : देवगण महादेव के आज्ञाकारी हैं। आज्ञा माँग माँगकर अपने अपने लोकों को गये। अतः इधर : आदरदान विनय बहु माना नहीं करते। विवाह के बाद शृङ्गाररस प्राप्त ही है। शम्भुशुक्रसम्भूत सुत की इस समय जगत् को बड़ी आवश्यकता थी। अतः शृङ्गार रस का विधान बड़े विस्तार से हुआ। जिसे देखकर भगवान् नन्दिकेश्वर ने कामशास्त्र की रचना की। परन्तु ग्रन्थकार कहते हैं कि उसके वर्णन का मुझे अधिकार नहीं है। क्योंकि शम्भु भवानी जगत् के माता पिता हैं।

करहिं विविध विधि भोग विलासा। गनन्ह समेत बसहिं कैलासा॥
हर गिरिजा विहार नित नयऊ। एहि विधि विपुल काल चलि गयऊ॥३॥

अर्थ : विविध विधि से भोग-विलास करते हुए, अपने गणों के साथ कैलास में रहने लगे। हरगिरिजा का विहार नित्य नया हुआ और इस भाँति बहुत समय चला गया।

व्याख्या : प्रवृत्ति सदा शास्त्रीया होनी चाहिए। कामशास्त्र के अनुसार काम में प्रवृत्ति होने से यथार्थ सुख की उपलब्धि होती है और काम से चित्त भी समय पाकर उपरत हो जाता है। भोग-विलास की विधि जिसने कामशास्त्र नहीं देखा उसे क्या मालूम? पशु की भाँति सन्तति उत्पन्न कर लेना दूसरी बात है। भोग-विलास की विस्तृत विधि है : कामशास्त्र में उसका उल्लेख है। गृहस्थ हो गये इसलिए कहते हैं : बसैं कैलासा।

नितनवविहार पर महाकवि कालिदास ने 'कुमारसम्भव' काव्य लिख डाला परन्तु ग्रन्थकार ने इसे अनुचित समझकर दिग्दर्शन मात्र करा दिया। 'नित नयऊ' से भाव यह कि : सेवत विषय विवर्ध जिमि नित नित नूतन मार। इस प्रकार क्षण की भाँति बत्तीस वर्ष बीत गये।

तव जनमेउ षट वदन कुमारा। तारकु असुर समर जेहि मारा॥
आगम निगम प्रसिद्ध पुराना। षन्मुख जन्मु सकल जग जाना॥४॥

अर्थ : तब छः मुँहवाले पुत्र का जन्म हुआ। जिसने लड़ाई में तारकासुर को मारा। यह बात वेद शास्त्र और पुराण में प्रसिद्ध है। सारा संसार षडानन के जन्म का वृतान्त जानता है।

व्याख्या : तब शम्भुशुक्रसम्भूत सुत का जन्म हुआ। रजोमिश्रण से देवासुरों का संहारकर्ता पुत्र उपजा। जन्म के बाद ही तारकासुर का वध कहा अर्थात् छठी के पहिले ही मारा। अति प्रसिद्ध होने से जन्म को विस्तार से न कहा। पण्डित, मूर्ख सभी यह कथा जानते हैं। पाँच मुखवाले पिता और एक मुखवाली माता से छः मुँहवाला पुत्र उत्पन्न हुआ।

छं. जगु जान षन्मुख जन्मु कर्मु प्रताप पुरुषारथु महा।
तेहि हेतु मैं वृषकेतु सुन कर चरित संछेपहि कहा॥
यह उमा संभु विवाहु जे नर नारि कहहिं जे गावहीं।
कल्यान काज विवाह मंगल सर्वदा सुखु पावहीं॥

दो. चरित सिंधु गिरिजा रमन, वेद न पावहिं पारु।
बरनै तुलसीदासु किमि, अति मतिमंद गवाँरु॥१०३॥

अर्थ : षडानन : स्वामिकार्तिक के जन्म, कर्म, प्रताप और महापुरुषार्थ को सारा जगत् जानता है। इसलिए मैंने वृषकेतु के पुत्र का चरित्र संक्षेप में कहा है। इस उमाशम्भु विवाह को जो नर-नारी कहेंगे या गायेंगे वे कल्याण के कामों और विवाहोत्सवों में सदा सुख पायेंगे।

गिरिजारमण शिवजी का चरित समुद्र है। उसका पार वेद नहीं पा सकते। अति मतिमन्द और गँवार तुलसीदास कैसे वर्णन कर सकता है?

व्याख्या : केवल शम्भुशुक्रसम्भूत होना : जन्म। तारकासुरवध : कर्म। जन्म ग्रहण करते ही सुरसेनापति पद पर अभिषेक : प्रताप और उनकी शक्ति का किसी देवता से न उठना : महापुरुषार्थ है। वृषकेतु सुत कहकर पिता का सा महापराक्रम द्योतित किया। जिस बात को संसार जानता है उसे विस्तार से कहने में आनन्द नहीं होता। इसलिए संक्षेप में कहा। इस उमाशम्भु विवाह प्रसङ्ग में ग्यारह रुद्र संज्ञक छन्द इकट्ठे आये हैं। चार चौपाई समाप्त होते ही एक छन्द एक दोहा। यह क्रम पूरे प्रसङ्ग में हैं। फलश्रुति कहते हैं कि जो कल्याणकार्य विवाह मङ्गल में यह उमाशम्भु विवाह प्रसङ्ग गायेंगे या सुनेंगे वे सुख पायेंगे और जो सर्वदा सुनेंगे गायेंगे वे सर्वदा सुख पायेंगे। यह भवानीशङ्कर की वाङ्मयी पूजा का फल है। अतः वाङ्मयी पूजा भवानी शङ्कर की करके तब रामकथा आरम्भ होगी।

सीतारमण के चरित्र की भाँति गिरिजारमण का भी चरित्र अपार है। तुलसीदास जी कहते हैं जिसकी बुद्धि मन्द और असंस्कृत है उसके लिए तो विशेष-

रूपेण अपार है। अतः वर्णन करते न बना, इसमें सन्देह नहीं। जीवों के लिए वेद ही सब कुछ है। जब उसी को पार नहीं मिलता तो तुलसीदास की गिनती ही क्या है ?

संगति वाक्य

संभु चरित सुनि सरस सुहावा। भरद्वाज मुनि अति सुखु पावा॥
बहु लालसा कथा पर बाढ़ी। नयनन्हि नीरु रोमावली ठाढ़ी॥१॥

अर्थ : शम्भु के रसयुक्त और सुहावने चरित्र को सुनकर भरद्वाज जी ने बहुत सुख पाया। कथा पर लालसा बढ़ी। आँखों में जल भर आया। रोमावली खड़ी हो गई।

व्याख्या : शम्भुचरित को सरस कहा क्योंकि वह रसयुक्त है। रस नौ होते हैं। सो सभी शम्भुचरित में हैं। १. शृङ्गार, यथा : करि शृंगार सखी लै आई। सिवहिं संभुगन करहिं सिंगारा। करहिं विविध विधि भोग विलासा। २. हास्य, यथा : देखि सिवहिं सुरतिय मुसुकाहीं। वरलायक दुलहिन जग नाहीं। विहँसे सिव समाज निज देखा। इत्यादि। ३. करुण, यथा : रोदति वदति वहु भाँति करुना करत संकर पहँ गई। ४. वीर, यथा : दुइ माथ केहि रतिनाथ जेहि कहुँ कोपकरि धनु सर गहा। ५. अद्भुत, यथा : इहाँ हिमाचल रचेउ विताना। अति विचित्र नहिं जाइ वखाना। इत्यादि। ६. रुद्र, यथा : विकट वेष जब रुद्रहिं देखा। ७. भयानक, यथा : अवलन्ह उर भय भयउ विसेखा। भागि भवन पैठी अति त्रासा। ८. वीभत्स, यथा : सव सद्य सोनित तन भरे। ९. निर्वेद, यथा : संकर सहज सरूप संभारा। लागि समाधि अखंड अपारा। 'सुहावा' से उपक्रम। यथा : सुनहु संभुकर चरित सुहावा। और 'सुहावा' से ही उपसंहार। यथा : संभुचरित सुनि सरस सुहावा। उमाचरित से सुख पावा और शम्भुचरित से अति सुख पावा।

कथा पर लालसा तो पहिले से ही थी। अब शम्भुचरित के श्रवण से बहुत वढ़ी। नयननीर रोमावलि ठाढ़ी से सात्त्विक भावोदय दिखलाया।

प्रेम विवस मुख आव न वानी। दसा देखि हरषे मुनि ग्यानी॥
अहो धन्य तव जन्मु मुनीसा। तुम्हहि प्रान सम प्रिय गौरीसा॥२॥

अर्थ : प्रेम विवस होने से मुख से बोली तक न निकली। दशा देखकर ज्ञानी, मुनि वहुत प्रसन्न हुए। कहने लगे : हे मुनीश ! तुम्हारा जन्म धन्य है। तुमको शिवजी प्राण के समान प्यारे हैं।

व्याख्या : वहु लालसा कथा पर बाढ़ी : से मानसिक दशा कही। नयननीर रोमावलि ठाढ़ी : से शारीरिक दशा कही। अब बचन की दशा कहते हैं कि प्रेम के वश होने से मुख से वाणी नहीं निकल रही है। ज्ञानी मुनि याज्ञवल्क्य को शिष्य का अत्यन्त प्रेम शङ्कर के चरणों में देखकर बड़ा हर्ष हुआ कि मुझे रामचरित का परम अधिकारी श्रोता मिला।

भगवान् याज्ञवल्क्य ने भरद्वाज जी को पहिले मुनि करके सम्बोधन किया था। यथा : सुनु मुनि मिटिहि विषाद। अब प्रेम में विभोर देखकर मुनीश कहते हैं। जिसे गौरीश प्राणसम प्रिय हों, उसी का जन्म धन्य है। क्योंकि :

सिव पद कमल जिन्हहिं रति नाहीं। रामहि ते सपनेहुँ न [1]सोहाहीं ॥
बिनु छल बिस्वनाथ पद नेहू। राम भगत कर लच्छन [2]एहू ॥३॥

अर्थ : शिवजी के चरणकमलों में जिन्हें प्रीति नहीं है वे रामजी को स्वप्न में भी अच्छे नहीं लगते। रामभक्त का लक्षण ही यही है कि शिवजी के चरणों में छलरहित प्रीति हो।

व्याख्या : व्यतिरेक मुख से शङ्कर के प्रेमी का ही रामप्रिय होना कहते हैं। 'सपनेहु' कहने का भाव यह कि किसी अवस्था में भी रामजी को प्रिय नहीं है। क्योंकि : प्रिय सम प्रिय सनेह भाजन सखि, प्रीतिरीति जगजानी। भूपन भूति गरल परिहरि कै हर मूरति उर आनी। मज्जन पान कियो के सुरसरि कर्मनास जल छानी। पूंछ सो प्रेम विरोध सींग सो, एहि विचार हित हानी। कृष्ण गीतावली।

असाधारण धर्म का लक्षण कहते हैं। यहाँ भरद्वाजजी की परीक्षा ली गई कि लक्षित में लक्षण घटता है या नहीं। सो लक्षण घटा। विश्वनाथ के प्रेम में विभोर देखकर जान लिया कि रामभक्त हैं अतः कथा सुनने के अधिकारी हैं।

सिव सम को रघुपति व्रत धारी। बिनु अघ तजी सती असि नारी ॥
पनु करि रघुपति भगति देखाई। को सिव सम रामहि प्रिय भाई ॥४॥

अर्थ : शिवजी के समान रघुपति[3]व्रतधारी कौन है? जिन्होंने निष्पाप सती ऐसी स्त्री का त्याग किया। प्रण करके रघुपतिभक्ति दिखलायी। हे भाई! रामजी को शिवजी के समान कौन प्यारा है?

व्याख्या : प्रण करना और उसका निर्वाह करना ही व्रत है। यथा : अस व्रत

---

१. रामभक्तों के आदर्श शिवजी हैं। जिस भक्त को शिवजी प्रिय नहीं हैं वह अपने आदर्श से गिर गया। उसे भक्ति नहीं हो सकती। इसलिए आदर्शभ्रष्ट पुरुष रामजी को प्रिय नहीं हो सकता।

२. जिसे सच्चा प्रेम विश्वनाथ के चरण में नहीं है वह रामभक्त नहीं है। क्योंकि रामभक्त का लक्षण उसमें नहीं घटता।

३. रघुपति के चरणों में मनसा वाचा कर्मणा प्रेम करना और उसके सामने स्त्री, शरीर, पुत्र, धाम और धरणी को तृण समझना : यही रघुपति व्रत है, इसी व्रत को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिए शिवजी ने प्रण किया कि : एहि तन सती भेंट अब नाहीं। जैसे सत्यव्रत सत्य के ऊपर सब कुछ निछावर कर देते हैं। यथा : तनु तिय तनय धाम धनु धरनी। सत्यसंध कहँ तृन सम बरनी। इसी भाँति रघुपति व्रतधारी शिवजी ने सती-सी स्त्री का रघुपति भक्ति के लिए परित्याग किया और जगत् को दिखला दिया कि रामभक्ति इसे कहते हैं।

तुम बिनु करै को आना। तुम बिनु अस व्रत को निर्वाहा। यहाँ आक्षेपार्थ प्रश्न है अर्थात् शिव सम रघुपति व्रतधारी कोई नहीं। किसी पाप के लिए नहीं भक्ति की मर्यादा स्थापन के लिए जिसने सती-सी पवित्र स्त्री का त्याग किया। यथा : जौ अब करौं सती सन प्रीती। मिटै भगति पथ होइ अनीती। यदि कोई कहे कि सती ने मिथ्या कहा था अतः वे निष्पाप कैसे हुईं ? सो भी ठीक नहीं क्योंकि उस समय सती अपने काबू में नहीं थीं। यथा : बहुरि राम मायहि सिर नावा। प्रेरि सतिहि जेहि झूठ कहावा। स्वयं शिवजी उन्हें परम पवित्र समझते थे। यथा : परम पुनीत न जाइ तजि।

रामजी की भक्ति दिखाने के लिए भक्ति पथ को अक्षुण्ण रखने के लिए सती के त्याग का प्रण किया। त्रैलोक्यसुन्दरी सती प्रिय नहीं भक्ति पथ को बनाये रखना जिसे प्रिय है उसके ऐसा रामजी को कोई प्रिय नहीं हो सकता। अतः शिव के प्रेम से ही जीव रामजी को प्रिय हो सकता है। दूसरा उपाय नहीं।

दो. प्रथमहिं मैं कहि सिव चरित, बूझा मरमु तुम्हार।
सुचि सेवक तुम्ह राम के, रहित समस्त बिकार ॥१०४

अर्थ : मैंने पहिले शिवजी का ही चरित्र वर्णन करके तुम्हारा भेद[1] समझ लिया, तुम सब दोषों से रहित रामजी के पवित्र सेवक हो।

व्याख्या : याज्ञवल्क्य जी कहते हैं कि शिवचरित कहकर देख लिया कि तुम में प्रेम उपजता है कि नहीं। तुम प्रेम में विभोर हो गये ; रामभक्ति का असाधारण धर्म तुममें मिल गया। जैसा सोचा था कि : राम भक्त तुम मन क्रम बानी। सो परीक्षा करके देख लिया। तुम रामजी के शुचि सेवक हो। सपने में भी अपने सेवाधर्म से डिग नहीं सकते। और तुम्हारा प्रेम निश्छल है, किसी स्वार्थ से नहीं है।

मैं जाना तुम्हार गुन सीला। कहौं सुनहु अब रघुपति लीला ॥
सुनु मुनि आजु समागम तोरे। कहि न जाइ जस सुखु मन मोरे ॥१॥

अर्थ : मैंने तुम्हारा गुण और शील जान लिया, अब रघुपति की लीला कहता हूँ, हे मुनि सुनो। आज तुम्हारे मिलने से जो सुख मेरे मन में हुआ सो कहा नहीं जा सकता।

व्याख्या : श्रोता सुमति सुसील सुचि कथा रसिक हरिदास। पाइ उमा अति गोप्यमपि सज्जन करहिं प्रकास। ये ही श्रोता के गुणशील हैं सो तुम्हारे में हैं। सुमति, यथा : संभु चरित सुनि सरस सुहावा। भरद्वाज मुनि अति सुख पावा। सुसील, यथा : प्रेम बिबस मुख आव न बानी। शुचि, यथा : दसा देखि हरषे मुनि ग्यानी। कथा रसिक, यथा : बहु लालसा कथा पर बाढ़ी। हरिदास, यथा सुचि

१. जिसकी अपने आदर्श पर प्रीति है, वही सच्चा अधिकारी है। राम भक्तों के आदर्श शिवजी हैं, उस आदर्श के चरित्र में जब इतनी प्रीति भरद्वाज जी को है, तब यह निश्चित है कि वे रामभक्ति के सच्चे अधिकारी हैं।

सेवक तुम राम के रहित समस्त विकार। अब रघुपति लीला कहूँगा सुनो। आसुरी सम्पत्तिवालों को सुनाने से उनका अकल्याण होता है। यथा : अस रघुपति लीला उरगारी। दनुज विमोहनि जन सुखकारी। अतः कथा कहने के पहिले यह समझ लेना चाहिए कि इससे सुननेवाले की हानि तो नहीं होगी तब कथा कहनी चाहिए। सती पर बड़ी विपत्ति, कथा के अनादर से आई। यथा : रामकथा मुनिवर्ज बखानी। सुनी महेस परम सुख मानी। सती ने ध्यान नहीं दिया। कैलास पर भी कथा सुनने के समय विमान देखने लगीं।

उत्तम वक्ता मिलने से श्रोता को सुख तो होता ही है। पर योग्य श्रोता मि ने से वक्ता को भी बड़ा सुख मिलता है। किं पुनः रामभक्त के मिलने से। यथा : तुमहि न संसय मोह न माया। मो पर नाथ कीन्ह तुम दाया। अतः कहते हैं : कहि न जाइ जस सुखु मन मोरे।

राम चरित अति अमित मुनीसा। कहि न सकहिं सत कोटि अहीसा ॥
तदपि जथाश्रुत कहउँ बखानी। सुमिरि गिरापति प्रभु धनुपानी ॥२॥

अर्थ : हे मुनीश ! रामचरित अत्यन्त असीम है। उसे सौ करोड़ शेष भी नहीं कह सकते तो भी जैसा मैंने सुन रक्खा है वैसा वाणी के पत्ति धनुष्पाणि प्रभु को स्मरण करके कहता हूँ।

व्याख्या : दीनघाट के वक्ता श्री गोस्वामीजी कह चुके हैं : कहँ रघुपति के चरित अपारा। कहँ मति मोरि निरत संसारा। मुनिन्ह प्रथम हरि कीरति गाई। तेहि मग चलत सुगम मोहि भाई। अब कर्मघाट के वक्ता याज्ञवल्क्यजी भी प्रायः वही बात कह रहे हैं। उन्होंने कहा था : सारद शेष महेस विधि आगम निगम पुरान। नेति नेति कहि जासु गुन करहिं निरंतर गान। और यहाँ कहते हैं : कहि न सकहि सत कोटि अहीसा। बात एक ही है नेतिनेति करके कहना भी सीधे-सीधे नहीं कह सकना ही है। भेद यही है कि भगवान् याज्ञवल्क्य यथाश्रुत कहने में समर्थ हैं। यथा : ते श्रोता वक्ता समसीला। सबदरसी जानहिं हरि लीला। दीनघाट के वक्ता यथाश्रुत कहने में अपने को असमर्थ पाते हैं। यथा : किमि समझौं मैं जीव जड़ कलिमल ग्रसित विमूढ। तदपि कही गुर बारहिं बारा। समुझि परीं कछु मति अनुसारा। भाषाबद्ध करब मैं सोई। भगवान् याज्ञवल्क्य गिरापति धनुष्पाणि प्रभु को स्मरण करके कथा आरम्भ करते हैं। रामसच्चिदानन्द की तीन शक्तियाँ हैं। सत् शक्ति : महालक्ष्मी। चित् शक्ति : महासरस्वती और आनन्द शक्ति : महाकाली। इस भाँति रामजी गिरापति हैं। अखण्डदण्डायमान कालरूपधनुष उनके हाथ में है अर्थात् जो बुद्धि और बल की परम सीमा हैं यथा : काल जासु कोदंड। वे ही कृपा करके वाणी का नृत्य हृदय में करा देंगे। धनुष्पाणि हैं विघ्नसमूह को दूर कर देंगे। अब रामजी का गिरापतित्व कहते हैं। यथा :

सारद दारु नारिसम स्वामी। राम सूत्रधर अंतरजामी ॥
जेहि पर कृपा करहिं जनु जानी। कवि उर अजिर नचावहिं बानी ॥३॥

अर्थ : सरस्वती कठपुतली के समान हैं। स्वामी अन्तर्यामी रामजी सूत्रधार हैं। जिस पर वे भक्त जानकर कृपा करते हैं उस कवि के हृदयरूपी आँगन में सरस्वती का नृत्य करा देते हैं।

व्याख्या : उमा दारु जोषित की नाईं। सबहिं नचावत राम गोसाईं। सो सबहिं में सरस्वती का भी अन्तर्भाव है। ये भी उस अन्तर्यामी प्रभु के हाथ की कठपुतली हैं। जिस भाँति सूत्रधार आड़ में रहकर पुतली नचाया करता है उसी भाँति रामगुसाईं दिखाई नहीं पड़ते और सरस्वती को भक्त कवि के हृदयरूपी आँगन में नचाया करते हैं। साधारण पुरुष केवल सरस्वती की क्रिया देखते हैं। याज्ञवल्क्य ऐसे जानकार जानते हैं कि सूत्रधार दूसरा ही है। जिसकी यह करामत है।

कवि होना अपने हाथ की बात नहीं है। यथा : शक्ति कवित्त बनाइबे की जेहि जन्म नक्षत्र में देइ विधातो। देह भर में हृदय ही नाचघर है। वहीं सरस्वती का नाच होता है। प्रभु सबके उर के अन्तर वसते हैं। अतः वाणी भी वहीं सरकार के सामने नृत्य करती है। और वे ही सूत्रधार की भाँति उसे नचाते हैं।

प्रनवौं सोइ कृपालु रघुनाथा। बरनौं बिसद तासु गुन गाथा ॥
परम रम्य गिरिवरु कैलासू। सदा जहाँ सिव उमा निवासू ॥४॥

अर्थ : उन्हीं कृपालु रघुनाथजी को मैं प्रणाम करता हूँ। उन्हीं के निर्मल गुणों की गाथा वर्णन करता हूँ। गिरिश्रेष्ठ कैलास परमरमणीय है। वहाँ शिव-पार्वती सदा निवास करते हैं।

पहिले प्रभु का स्मरण किया। यथा : सुमिरि गिरापति प्रभु धनु पानी। अब उन्हीं रघुनाथजी का वन्दन करते हैं। जिससे वे सरस्वती को प्रेरित करें। और मेरे हृदय में उनका नृत्य हो। तब निर्मल यश कहा जा सकता है। भगवान् याज्ञवल्क्य कर्म : दक्षिण घाट के वक्ता हैं। अतः नचानेवाले की वन्दना करते हैं। अब पश्चिम घाट अर्थात् ज्ञानघाट की कथा प्रारम्भ होती है।

पहिले कथा के स्थान का वर्णन करते हैं। कैलास पर्वतों में श्रेष्ठ है और परमरम्य है। वहाँ शिव उमा का सदा निवास रहता है। यथा : जहँ वस संभु भवानि सो कासी सेइअत कस न। परन्तु राजा दिवोदास के समय में शिवजी के काशी छोड़ने की कथा सुनी जाती है। परन्तु कैलास में सदा निवास रहता है। अब उसका माहात्म्य कहते हैं।

दो. सिद्ध तपोधन जोगिजन, सुर किंनर मुनिबृंद।
बसहिं तहाँ सुकृती सकल, सेवहिं सिव सुखकंद ॥१०५॥

अर्थ : वहाँ सिद्ध, तपस्वी, योगी, देव, किन्नर, मुनिजन और सब पुण्यात्मा रहते हैं। और सुख के मेघरूप शिवजी की सेवा करते हैं।

व्याख्या : नर की वहाँ पहुँच नहीं है। नरयोनि पुण्य पाप दोनों के होने से

होती है, अतः वहाँ केवल पुण्यात्मा लोग शिवजी की सेवा के लिए बसते हैं। सांसारिकों का वहाँ जाना दुर्लभ है। बसने की तो कोई बात ही नहीं है।

हरिहर बिमुख धर्मरत नाहीं। ते नर तहँ सपनेहुँ नहिं जाहीं ॥
तेहि गिरि पर बट बिटप बिसाला। नित नूतन सुंदर सब काला ॥१॥

अर्थ : जो हरि और हर के विमुख हैं और जिन्हें धर्म में प्रीति नहीं है वे मनुष्य स्वप्न में भी वहाँ नहीं जा सकते। उस पर्वत पर वट का बड़ा भारी पेड़ है। जो नित्य नया और सब काल में सुन्दर रहता है।

व्याख्या : कैलास का मार्ग अत्यन्त दुर्गम है। और वहाँ सांसारिक प्रलोभन की कोई वस्तु भी नहीं है। अतः धर्म के चाहनेवाले अथवा हरिहर के चरण में प्रीति रखनेवाले ही प्राण की बाजी लगाकर वहाँ जा सकते हैं। दूसरे के मन में वहाँ जाने का संकल्प ही नहीं उठेगा। कैलास जाने का कोई स्वप्न भी नहीं देखता। यह बात स्पष्ट ही है। आसुरी प्रवृत्ति के लोगों को वहाँ जाने में अधिक सुविधा है। क्योंकि वे मद्यमांसादि के प्रयोग से उस भयानक शीत का सामना कर सकते हैं। पर उनका जाना न जाने के बराबर है। यही ठीक है कि वे नहीं जाते। क्योंकि उन्हें वहाँ सिवा हिम और पाषाण के कुछ दिखाई ही नहीं पड़ता। दिव्यप्रदेश के लिए दिव्यदृष्टि की आवश्यकता होती है। बिना सूर्य में संयम द्वारा दृष्टि प्राप्त किये कैलाश के दिव्यांश का, जिसका यहाँ वर्णन है दर्शन नहीं प्राप्त हो सकता।

यह पर्वत इतना ऊँचा है कि बादल भी इसके कटि भाग तक नहीं पहुँचते। उससे ऊपर उनकी गति नहीं है। ऐसे उच्च पर्वत के ऊपर एक वटवृक्ष है। वह सब समय में सुन्दर रहता है और कभी पुराना नहीं होता। इससे उस वृक्ष का दिव्य होना कहा। क्योंकि पाञ्चभौतिक वस्तु सदा षड्र्मि : अस्ति, जायते, वर्धते, विपरिणमते, अपक्षीयते, विनश्यति के वशीभूत रहते हैं।

त्रिबिध समीर सुसीतलि छाया। सिव बिस्राम बिटप श्रुतिगाया ॥
एक बार तेहि तर प्रभु गएऊ। तरु बिलोकि उर अति सुख भएऊ ॥२॥

अर्थ : वहाँ शीतल मन्द सुगन्ध पवन चला करता है और उसकी छाया सुन्दर शीतल है। वेद उस पेड़ को शिवजी के विश्राम का विटप बतलाते हैं। एक बार प्रभु उस वृक्ष के नीचे गये। उसे देखकर उनके हृदय में बहुत सुख हुआ।

व्याख्या : उस हिममण्डित देश में त्रिविध समीर कहाँ ? शिव विश्राम विटप का यह प्रभाव है कि उसके तले त्रिविध समीर भी बहता है और छाया में भी उत्कृष्ट शीत या उष्णता नहीं रहती। महल से बाहर आकर, वटविटप के तले शिवजी गये। वृक्ष की रमणीयता देखिये कि उसे देखकर शिवजी को अत्यन्त सुख हुआ। उसके नीचे बैठने से शिवजी को विश्राम मिलता है। भाव यह कि ज्ञानघाट की कथा कैलास के ऊपर वटवृक्षतले हुई।

निज कर डासि नागरिपु छाला। बैठे सहजहिं संभु कृपाला॥
कुंद इंदु दर गौर सरीरा। भुज प्रलंब परिधन मुनि चीरा॥३॥

अर्थ : अपने हाथ से व्याघ्राम्बर बिछाकर कृपालु शिवजी स्वाभाविक रीति से बैठ गये। शरीर कुंद के फूल, चन्द्रमा और शंख-सा गौर है। भुजाएँ लम्बी हैं, मुनिवस्त्र धारण किये हुए हैं।

व्याख्या : उस समय एकदम एकान्त था। कोई गण भी निकट नहीं था। स्वयं दासास्तपस्विनः। अतः अपने हाथ से ही व्याघ्राम्बर बिछाया। पहिले की भाँति पद्मासन लगाकर नहीं बैठे। यथा : बैठे बट तर करि कमलासन। बल्कि स्वाभाविक रीति से यथा सुख आसन से बैठे।

कुन्द से सुन्दरता, कोमलता, गन्ध और वर्ण कहा। इन्दु से प्रकाश तथा आह्लादकता कही। दर से दृढ़ता कही। प्रलम्बबाहु से विक्रम कहा। परिधन मुनीचीर से मुनिव्रत कहा।

तरुन[1] अरुन अंबुज सम चरना। नख दुति भगत हृदय तम हरना॥
भुजग भूति भूषन त्रिपुरारी। आननु सरद चंद छबिहारी॥४॥

दो. जटा मुकुट सुरसरित सिर, लोचन नलिन बिसाल।
नीलकण्ठ लावन्यनिधि, सोह बालबिधु भाल॥१०६॥

अर्थ : चरण लाल कमल के समान था और नखों की ज्योति भक्तों के हृदय का अन्धकार दूर करनेवाली थीं। साँप और भस्म के भूषणधारी, त्रिपुरासुर के शत्रु शिवजी का मुख शरत्काल के चन्द्रमा की छवि का हरण करनेवाला था।

शिर पर जटाओं का मुकुट और गङ्गाजी थीं। उनके बड़े-बड़े नेत्र कमल के समान थे। नीलकण्ठ लावण्य के भण्डार शिर पर द्वितीया का चन्द्र धारण किये हुए थे।

व्याख्या : तरुन अरुन अंबुज से मुनिमन मधुप का आश्रय कहा, अथवा ध्यान में सुखद कहा। उस कमलदल पर रत्नों की भाँति नखों की शोभा है। ध्याता के हृदयतम की निवृत्ति इन्हीं नखमणि की ज्योतियों से होती है।

भुजग भूति भूषन से वैराग्य कहा। त्रिपुरारी से सत्यसन्ध कहा। चन्द छविहारी से सौन्दर्य कहा। उनका चरित ही रसमय नहीं है मूर्ति भी रसमयी है। लावण्य निधि कहकर शृङ्गार, जटामुकुट कहकर हास्य, कृपालु कहकर करुणा, भुज प्रलंब कहकर वीर, नखद्युति भक्त हृदयतम हरना कहकर अद्भुत, त्रिपुरारि कहकर रौद्र, भूतिभूषण कहकर वीभत्स, भुजगभूषण कहकर भयानक, निज कर डासि नाग रिपु छाला। बैठे सहजहि संभु कृपाला कहकर शान्तरस द्योतित किया।

---

१. पूर्णोपमा।

अथवा जटामुकुट से तपस्वियों का राजा कहा। सुरसरित सिर से भक्तवत्सल, लोचन नलिन विशाल से सर्वद्रष्टा, नीलकण्ठ से आर्तिहर, लावण्यनिधि से छविधाम और बालविधु भाल से महिमाप्रद कहा।

अथ शिवगीता

श्रीरामचरितमानस भरद्वाज जी के इस प्रश्न पर खड़ा है कि : रामु कवन प्रभु पूछहुँ तोहीं। कहिअ बुझाइ कृपानिधि मोहीं। ऐसा ही प्रश्न भगवती हिमगिरिनन्दिनी ने शिवजी से किया था और शिवजी ने उसका समाधान किया था। उसी प्रसङ्ग को याज्ञवल्क्यजी ने उक्त प्रश्न के उत्तर में कह डाला। यही रामचरिमानस है। अपने संशय के उन्मूलन के लिए गिरिजा ने आठ प्रश्न किये। तत्पश्चात् बारह प्रश्न श्रीरामावतार के चरित्रवर्णन तथा भक्ति, ज्ञानादि विषयक किये एवं गिरिजा के बीसों प्रश्नों का उत्तर ही श्रीरामचरितमानस है। अन्त में भगवती ने यह भी विनय किया कि जो कुछ मुझसे पूछने में रह गया हो उसे भी छिपा नहीं रखिये। अर्थात् जानने योग्य जितनी बातें हैं वे सब गिरिजा ने पूछीं और शिवजी ने उत्तर दिया। परन्तु प्रथम चार प्रश्नों के उत्तर में ही गिरिजा का सब संशय जाता रहा और वे कृतकृत्य हो गईं। अतः मैं उतने ही अंश को शिवगीता कहता हूँ। अवतारवाद में जो कुछ कहना है उतने में सब कुछ कहा गया।

श्रीगोस्वामीजी ने कहा है कि : नदी नाव पटु प्रस्न अनेका। केवट कुसल उतर सविवेका। अतः यह ज़ानना परमावश्यक है कि किस प्रश्न का कौन सा उत्तर है। गिरिजा बीस प्रश्न बराबर करती गईं और शिवजी ने भी सबका उत्तर क्रम से इकट्ठा ही दिया। उनमें से पहिले आठ के पृथक्करण में बड़ी कठिनता पड़ती है। यद्यपि श्रीग्रन्थकार ने प्रश्नों को पृथक् करने के लिए हरहु मोर अज्ञाना, कहहु इत्यादि प्रार्थनासूचक लोट् लकार का आठ बार बराबर प्रयोग किया। तथैव उत्तर में सुनहु, तजु आदि क्रियाओं का भी आठ बार प्रयोग किया है फिर भी हम जैसे अल्पज्ञों को प्रश्न उत्तर के मिलान में बड़ी कठिनता पड़ती है। अतः उनका मिलान नीचे दिया जा रहा है।

प्रश्न	उत्तर
१. जौ मोपर प्रसन्न सुखरासी। जानिय सत्य मोहि निज दासी। तौ प्रभु हरहु मोर अज्ञाना। कहि रघुनाथ कथा विधि नाना। १०७.२	१. धन्य धन्य गिरि राजकुमारी गिरिजा सुनहु राम कै लीला। सुर हित दनुज विमोहन सीला १११. ५ से ११३ तक
२. जासु भवन सुर तरु तर होई। सहकि दरिद्र जनित दुखु सोई। ससि भूपन अस हृदय विचारी। हरहु नाथ मम मतिभ्रम भारी। १०७. ३.४	रास कथा सुन्दर करतारी सादर सुनु गिरिराजकुमारी ११३. १.२

प्रश्न	उत्तर
३. प्रभु जे मुनि परमारथ वादी। कहहु बुझाइ नाथ मोहि सोऊ। १०७. ५ से १०८. १ तक	रामनाम गुन चरित सुहाए अस निज हृदय विचारि तजु संशय ११३. ३ से ११५
४. अज्ञजानि रिसि उर जनि धरहू। जेहि विधि मोह मिटै सो करहू। १०८. २	भजु रामपद से बोले कृपा निधान ११५ से १२० क तक
५. मैं वन दीख राम प्रभुताई। हरहु कृपा विनवौं कर जोरे। १०८. ३ से ५ तक	सुनु सुभकथा भवानि, रामचरितमानस विमल कहा भुसुंडि वखानि सुना विहग नायक गरुड़ १२० क
६. प्रभु मोहि तव बहुभाँति प्रबोधा। कहहु पुनीत रामगुन गाथा। १०८. ६ से ८ तक	सो संवाद उदार, जेहि विधि भा आगे कहब। सुनहु राम अवतार चरित परम सुन्दर सुखद॥ १२० ख
७. वंदौं पद धरि धरनि सिरु, विनय करौं कर जोरि। बरनहुँ रघुबर विसद जस, श्रुति सिद्धांत निचोरि॥ १०९	हरिगुन नाम अपार, कथा रूप अगनित अमित। मैं निज मति अनुसार, कहौं उमा सादर सुनहु॥ १२०
८. जदपि जोषिता नहि अधिकारी। रघुपति कथा कहहु करि दाया॥ १०९. : १.३	सुनु गिरिजा हरि चरित सुहाए। विपुल विसद निगमागम गाए॥ १२०. १

यदि पाठक मिलान के अनुसार प्रश्न और उत्तर को मिला मिलाकर पढ़ेंगे तो उनको ग्रन्थ के समझने में बड़ा सुभीता होगा। और ग्रन्थकार की पण्डिताई पर चकित होना पड़ेगा कि जितनी बार कहहु कहकर प्रश्न है ठीक उतनी ही बार सुनहु कहकर उत्तर है। शिवजी ने पाँचों मुख से सुनहु सुनहु नहीं कहा है। प्रत्येक कहहु के उत्तर में सुनहु कहा गया है।

ग्रन्थकार में बीस बार ग्रन्थचिकीर्षा का कारण भी ये ही बीस प्रश्न मालूम पड़ते हैं।[1]

---

१. १. भाषाबद्धमिदश्चकार २. भाषाबद्ध करब मैं सोई ३. करिहौं नाइ रामपद माथा ४. करिहौं रघुपति कथा सुहाई ५. करहु कृपा हरि जस कहउँ ६. बरनउँ रामचरित चित चारू ७. सुमिरि सो नाम रामगुनगाथा करउँ ८. बरनउ रघुबर विमल जसु ९. कहिहौं सोइ संवाद बखानी ०. भाषाबद्ध करबि मैं सोई ११. तस कहिहौ हिय हरि के प्रेरे १२. कहउँ कथा भवसरिता तरनो १३. कहब मै गाई। कथा प्रसंग विचित्र बनाई १४. बरनौं विसद रामगुन गाथा १५. करौं कथा हरिपद धरि सीसा १६ कहौं कथा सोई सुखद सोहाई १७. अब सोइ कहौं प्रसंग सब १८. करइ मनोहर मति अनुहारी १९. कह कवि कथा सुहाइ २०. कहउँ जुगल मुनिवर्य कर मिलन सुभग संवाद।

बैठे सोह कामरिपु कैसें। धरे सरीरु सांत रसु जैसें ॥
पारवती भलि अवसरु जानी। गई संभु पहिं मातु भवानी ॥१॥

अर्थ : काम के शत्रु बैठे हुए कैसे शोभित हैं जैसे शान्तरस शरीर धारण किये हुए हों। माता भवानी पार्वती अच्छा अवसर जानकर शम्भु के पास गईं।

व्याख्या : शिवजी काम के शत्रु हैं। उन्हें कामना नहीं है। उनका भोग विलास भी कामाभास है। सो भी देवताओं के कल्याण के लिए है। काम के रहते शान्ति नहीं मिलती। यथा : काम अछत सुख सपनेहुँ नाहीं। काम का शत्रु ही वस्तुतः शान्त हो सकता है। अतः धरे सरीर संतरस कहा। जिस समय गुरु एकान्त में अव्यग्र भाव से बैठे रहें वही प्रश्न के लिए अच्छा अवसर है। यही देखकर भवानी शम्भु के पास गईं। भवानी पर्वत की बेटी हैं। पर्वत परोपकारी होते हैं। यथा : संत विटप सरिता गिरि धरनी। पर हित हेतु सबन की करनी। अतः ये भी परोपकारी हैं। दूसरी बात यह कि लोक की माँ अपने बच्चों के कल्याण के लिए प्रश्न करेंगी। इसलिए पास गईं।

जानि प्रिया आदरु अति कीन्हा। बामभाग आसनु हर दीन्हा ॥
बैठीं सिव समीप हरखाई। पूरुब जनम कथा चित आई ॥२॥

अर्थ : शिवजी ने प्रिया जानकर अत्यन्त आदर किया और वाम भाग में आसन दिया। शिवजी के पास हर्षित होकर बैठ गईं। पूर्वजन्म की कथा याद पड़ी।

व्याख्या : अभ्युत्थान देकर अत्यन्त आदर किया और अपने वाम भाग में बिठाया। नहीं तो परित्यक्त होने से जब सतीरूप में शिवजी के पास गई थीं तब न आदर ही हुआ था और न वाम भाग में आसन ही मिला था। यथा : जाइ सम्भु पद बन्दन कीन्हा। सनमुख संकर आसन दीन्हा। अत्यन्त आदर से पति प्रसन्नता जानकर हर्षित हुईं। शिवजी के पास बैठ गईं। याद पड़ा कि पूर्वजन्म में इसी वटवृक्ष के नीचे मुझे सम्मुख आसन मिला था। अभ्युत्थान और वामभाग में आसन की प्राप्ति ही पूर्व जन्म की कथा के स्मृतिपथारूढ़ होने के कारण हुए।

पूर्व जन्म में भी लोकशिक्षा के लिए लीला की थी और इस जन्म में लोकहित के लिए रघुनाथकथा विषयक प्रश्न करेंगी।

पति हिय हेतु अधिक अनुमानी। बिहँसि उमा बोलीं प्रिय बानी ॥
कथा जो सकल लोक हितकारी। सोइ पूछन चह सैलकुमारी ॥३॥

अर्थ : पति के हृदय में अधिक प्रेम का अनुमान करके उमा हँसकर प्रियवाणी बोलीं। जो कथा सकल लोकहित करनेवाली है उसे ही शैलकुमारी पूछना चाहती हैं।

व्याख्या : अति आदर से पति के हृद्गत प्रेम के आधिक्य का अनुमान हुआ।

पूर्वजन्म की कथा की स्मृति से हँस पड़ीं। प्रियवाणी बोलीं। प्रियवाणी वही है जो सुननेवालों को अच्छी लगे।

लोक माता हैं। इसलिए सकल लोक हितकारिणी कथा पूछना चाहती हैं। अपना मोह, संशय और भ्रम प्रकट करना उनकी लीला है। मुख्य प्रयोजन श्री रघुनाथ कथा श्रवण से है।

उमा के प्रश्न

विस्वनाथ मम नाथ पुरारी। त्रिभुवन महिमा विदित तुम्हारी ॥
चर अरु अचर नाग नर देवा। सकल करहिं पद पंकज सेवा ॥४॥

अर्थ : हे विश्वनाथ ! हे मेरे नाथ ! हे पुरारे ! तीनों भुवनों में तुम्हारी महिमा विदित है। चर, अचर नाग, नर और देवता सब तुम्हारे चरण कमलों की सेवा करते हैं।

व्याख्या : सामान्यतः शिवजी सभी के नाथ हैं। पर विशेषतः उमा कहती हैं कि मेरे नाथ हैं। तीनों पुर जो जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति स्थान हैं उनका नाश करके आप तुरीय पद के देनेवाले हैं। अतः पुरारि हैं। इस भाँति सम्बोधन करके मनोरथ सिद्धि की प्रवल आशा द्योतित की। अब शुश्रूषा के लिए स्तुति करती हैं। आप तीनों लोकों के कल्याणकारक हैं। इसीलिए सर्वत्र आपकी महिमा प्रसिद्ध है। इस बात को स्पष्ट करती हैं। आप विश्वात्मा हैं। अतः स्थावर जङ्गम सब आपकी सेवा करते हैं। आप विश्वनाथ हैं। इसलिए पाताल निवासी नाग, मर्त्यलोक निवासी मनुष्य और स्वर्गलोक निवासी देवता सब आपके चरणों की सेवा करते हैं। यथा : सेइय सिवचरन सरोज रेनु। कल्यान अखिल प्रद कामधेनु।

दो. प्रभु समरथ सर्वग्य सिव, सकल कला गुन धाम।
जोग ग्यान वैराग्य निधि, प्रनतकल्पतरु धाम ॥१०७॥

अर्थ : हे शिव ! आप प्रभु हैं, समर्थ हैं, सर्वज्ञ हैं। सभी कलाओं और गुणों के धाम हैं। योग, ज्ञान और वैराग्य के भण्डार हैं। आप का नाम प्रणतकल्पतरु है।

व्याख्या : प्रभु कहकर प्रभाव द्योतित किया। यथा : प्रभु विलोकि सर सकहिं न डारी। थकित भई रजनीचर धारी। समर्थ से सर्वशक्तिमत्ता कही। सर्वज्ञ कहकर ज्ञान की निरतिशयता कही। सकल कला गुणधाम से विद्यापति होना और योग ग्यान वैराग्य निधि से जगद्गुरु होना द्योतित किया। प्रणतकल्पतरु नाम कहकर शिवजी को प्रणत के लिए कल्पवृक्ष कहा।

जौं मोपर प्रसन्न सुखरासी। जानिय सत्य मोहि निज दासी ॥
तौ प्रभु हरहु मोर अज्ञाना। कहि रघुनाथ कथा विधि नाना ॥१॥

अर्थ : हे सुखराशि ! जो मुझ पर आप प्रसन्न हों और मुझे सचमुच निज दासी समझते हों तो हे प्रभो ! रघुनाथजी की नाना विधि की कथा कहकर मेरे अज्ञान का हरण कीजिये।

व्याख्या : राशि से ही अन्न जाकर संसार में फैलता है। आप सुख की राशि हैं। आनन्द के एक मात्र स्रोत हैं। अज्ञान ही दुःख का मूल है। इसी से ज्ञान आवृत ढका रहता है। इसके नाश से ही ज्ञान की प्राप्ति होती है। अतः इसके हरण में सुखराशिरूप आप ही समर्थ हैं। सो यदि आप मुझे सचमुच निज दासी जानते हों : मेरी माँ ने आपसे मेरे लिए कहा था : 'गृह किंकरी करेहुँ।' यदि आप मुझपर प्रसन्न हों तो मेरे अज्ञान को हरण करिये। महात्माओं की प्रसन्नता अमोघ होती है, व्यर्थ नहीं जाती। अज्ञानहरण का उपाय भी यही कहती हैं कि नानाविधि से श्रीरघुनाथजी की कथा कहकर अज्ञान हरण कीजिये।

जासु भवनु सुर तरु तर होई। सहिकि दरिद्र जनित दुखु सोई ॥
ससिभूषन अस हृदय बिचारी। हरहु नाथ मम मति भ्रम भारी ॥२॥

अर्थ : जिसका घर कल्पवृक्ष के नीचे हो क्या वही दरिद्र से उत्पन्न दुःख को सहे। हे चन्द्रभूषण ! हे नाथ ! ऐसा हृदय में विचारकर मेरे भारी मतिभ्रम को हरण कीजिये।

व्याख्या : आप अमितदानी कल्पवृक्ष हैं। यथा : प्रनत कल्पतरु नाम। आप जगद्गुरु हैं, संसार का अज्ञानं नष्ट करनेवाले हैं। और मैं आपकी छाया में रहनेवाली हूँ। मुझे मोहदरिद्र कैसे सताता है ? आप विचार करिये। इससे तो कल्पवृक्ष का अपयश होगा। आप शशिभूषण हैं : यमाश्रितो हि वक्रोपि चन्द्रः सर्वत्र वन्द्यते। आश्रित को जगत्वन्द्य बनानेवाले हैं। मेरे मतिभ्रम को दूर कीजिये। गुरु से पूछने पर ही ज्ञान होता है। अतः पहिले अज्ञान के दूर करने की प्रार्थना माया की आवरण शक्ति दूर करने के लिए की थी। और अब दूसरी प्रार्थना माया की विक्षेप-शक्ति भ्रम को दूर करने के लिए हो रही है। पहिले वस्तु का अज्ञान होता है। उसके बाद अन्यथा ज्ञान होता है। ये ही दोनों क्रमशः माया की आवरण शक्ति और विक्षेप शक्ति कहलाते हैं।

प्रभु जे मुनि परमारथ बादी। कहहिं राम कहुँ ब्रह्म अनादी ॥
सेष सारदा बेद पुराना। सकल करहिं रघुपति गुनगाना ॥३॥

अर्थ : हे प्रभो ! जो परमार्थवादी मुनि हैं वे रामजी को अनादि ब्रह्म बतलाते हैं। शेष, सारदा, वेद और पुराण सभी रघुपति का गुणगान करते हैं।

व्याख्या : जितने १. परमार्थवादी अर्थात् ब्रह्मवादी मुनि हैं उन सबका इस विषय में ऐकमत्य है कि रामजी अनादि ब्रह्म हैं। यथा : रामब्रह्म परमारथ रूपा। सुनहु राम तुम कहँ मुनि कहहीं। राम चराचर नायक अहहीं। भावार्थ यह कि अन्य विषयों में मतभेद रहता है। वह मुनि ही नहीं जिसका मत भिन्न न हो। नासौ मुनिर्यस्य मतं न भिन्नम्। परन्तु राम के विषय में मतभेद नहीं है। २. शेष पाताल के वक्ता, ३. शारदा स्वर्गलोक की वक्ता हैं। ४. वेद और ५. पुराण मर्त्यलोक के वक्ता एवं तीनों लोक के वक्ता भी रघुपति के गुणों का गान करते हैं। इनमें भी ऐक्यमत है।

तुम पुनि राम राम दिन राती। सादर जपहु अनंग अराती ॥
रामु सो अवध नृपति सुत सोई। की अज अगुन अलख गति कोई ॥४॥
दो. जौ नृप तनय त ब्रह्म किमि, नारि बिरहँ मति भोरि।
देखि चरित महिमा सुनत, भ्रमति बुद्धि अति मोरि ॥१०८॥

अर्थ : हे काम के शत्रु ! आप भी दिन रात आदर पूर्वक राम राम जपा करते हैं। आपकी तत्परता इतनी बढ़ी हुई है कि विस्मृत होती ही नहीं। क्या अयोध्या के राजा के पुत्र ही राम हैं? या कोई अज : जन्मरहित : निर्गुण और अलक्ष्यगतिके हैं?

जो राजा के पुत्र हैं सो ब्रह्म कैसे हैं। जिनकी मति स्त्री के विरह में भोरी हो गई थी। उनके चरित्र को देख और महिमा को सुनकर मेरी बुद्धि बड़े चक्कर : भ्रम : में पड़ गई है।

व्याख्या : भवानी कहती हैं कि ६. आप विश्व के नाथ होकर काम के दाहक होकर सब भाँति भीति रहित होकर भी अनवरत रामधुन लगाये रहते हैं। आपको उसी में विश्राम मिलता है। ऐसे राम वही राजकुमार हैं या कोई दूसरे हैं। जिन्हें लोग अजन्मा निर्गुण और अलख कहा करते हैं। देखि चरित यथा : विरह विकल नर इव रघुराई। खोजत विपिन फिरत दोउ भाई।''मैंने चरित भी देखा कि स्त्री के विरह में विकल हैं। प्रभाव भी देखा। उनकी महिमा भी आप से सुनी कि वे ही ब्रह्म हैं। अपने भक्तों के लिए अवतार लिया है। फिर भी इन सब बातों का सामञ्जस्य नहीं बैठता। इस भाँति १. परमार्थवादी २. शेष ३. शारदा ४. वेद ५. पुराण ६. स्वयं शिवजी के सिद्धान्त पर भगवती उमा ने सन्देह किया।

जौं अनीह व्यापक बिभु कोऊ। कहहु बुझाइ नाथ मोहि सोऊ ॥
अग्य जानि रिस उर जनि धरहू। जेहि बिधि मोह मिटै सोइ करहू ॥१॥

अर्थ : यदि कोई इच्छा रहित व्यापक ब्रह्म हों तो हे नाथ ! मुझे समझाकर कहिये। अनजान समझकर जी में क्रोध न कीजिये। जिस भाँति मेरा मोह मिटे वही कीजिये।

व्याख्या : 'कोई' अर्थात् इदम् रूप से अवर्णनीय, अनीह अर्थात् इच्छारहित वा निष्क्रिय, व्यापक अर्थात् सर्वत्र विद्यमान, विभु अर्थात् प्रभु। यहाँ ब्रह्म के तीन विशेषण देकर राम और ब्रह्म में भेद दिखलाती हैं। १. राम तो अवधनृपति के तनय हैं। २. स्त्री की इच्छा वाले हैं और ३. परिच्छिन्न हैं। वे ब्रह्म कैसे हो सकते हैं। यदि कहिये कि वे अवतीर्ण हुए हैं तो ब्रह्म में स्त्रीविरह से वैकल्य नहीं बन सकता। ये सब बातें मुझे समझाकर कहिये।

राम विषयिणी शङ्का करते हुए भगवती डर रही हैं कि शिवजी अप्रसन्न न हो जाँय, कि इसने इतना भोगा अब भी शङ्का नहीं गई, फिर वही बात पूछती है। इस पर कहती हैं कि मैं अज्ञ हूँ, मुझपर क्रोध न कीजिये। मैं बहुत दण्ड पा

चुकी। मैं वह विधि नहीं जानती, जिससे मोह मिट जाय। यदि कथा कहने के अतिरिक्त कोई विधि हो तो उसे ही काम में लाइये।

मैं वन दीख राम प्रभुताई। अति भय विकल न तुम्हहिं सुनाई ॥
तदपि मलिन मन बोधु न आवा। सो फलु भली भाँति हम पावा ॥२॥

अर्थ : मैंने वन में रामजी की प्रभुताई देखी। मैं अत्यन्त डर से व्याकुल थी, इसलिए आपसे नहीं सुनाया। फिर भी मेरे मलिन मन में ज्ञान न हुआ। उसका फल भी मैंने भली भाँति पाया।

व्याख्या : जो प्रभुता श्री रामजी की सती शरीर से देखी थी उसे अब स्पष्ट रूप से शिवजी से कह रही हैं। उस समय अतिभय से नहीं सुनाया था। इतना देखने पर तो बोध हो जाना ही चाहता था, फिर भी नहीं हुआ। इसका कारण मन का मालिन्य है। पहिले आवरण और विक्षेप कह चुकीं। अब मनोमल कहती हैं। अर्थात् अपने में माया की तीनों शक्तियाँ आवरण, विक्षेप और मल दिखलाया। अज्ञान का फल ही दुःख है। सो भली भाँति मैं पा चुकी। फिर भी दण्ड से अज्ञान पूरी तरह नष्ट नहीं हुआ।

अजहूँ कछु संसउ मन मोरें। करहु कृपा विनवौं कर जोरें ॥
प्रभु तब मोहि बहु भाँति प्रबोधा। नाथ सो समुझि करहु जनि क्रोधा ॥३॥

अर्थ : हे नाथ ! मेरे मन में अब भी कुछ संशय है। आप कृपा करिये। मैं हाथ जोड़कर विनती करती हूँ। हे प्रभो ! उस समय आपने मुझे बहुत तरह से समझाया था। उसे समझकर क्रोध न कीजिये।

व्याख्या : सती शरीर से जो दुःख उठाना पड़ा उससे कुछ फल न हुआ हो। यह बात नहीं है। बहुत कुछ अज्ञान और भ्रम दूर हुआ। पर उसका लेश यत्किञ्चित् संशयरूप में वर्तमान है। आपकी कृपा से वह भी मिटे। तब सीताजी के विरह में विकल रामजी को देखने पर मुझे आपने बहुत समझाया था। यथा : लाग न उर उपदेसु जदपि कहेउ सिव बार बहु। अतः क्रोध करने के लिए यथेष्ट कारण है।

तब कर अस विमोह मोहि नाहीं। राम कथा पर रुचि मन माँहीं ॥
कहहु पुनीत राम गुन गाथा। भुजगराज भूषन सुरनाथा ॥४॥

अर्थ : अब पहिले जैसा विमोह नहीं है। रामकथा पर मन में रुचि है। हे भुजगराजभूषण ! हे सुरनाथ ! रामजी के गुणों की पवित्र गाथा कहिये।

व्याख्या : परन्तु उस समय मुझे विमोह था। रामकथा पर रुचि नहीं थी। अगस्त्यजी ने रामकथा कही पर मैंने ध्यान नहीं दिया। यथा : रामकथा मुनिवर्य बखानी। सुनी महेस परम सुख मानी। अब भीतर से कथा सुनने की रुचि है। अतः शङ्का कर रही हूँ। आप भुजगराजभूषण हैं। भुजगराज स्वयं रामकथा के वक्ता हैं। यथा : सुकसनकादि सेष अरु सारद। बरनि पवनसुत कीरति नीकी। आप

सुरनाथ हैं। आपने अपने आश्रितों की रक्षा के लिए कृपा करके विषपान कर लिया था। यथा : जरत सकल सुर बृंद, विषम गरल जेहि पान किय। आप मुझपर कृपा करिये और पवित्र रामगुणगाथा कहिये।

दो. बंदौ पद धरि धरनि सिरु, बिनय करौं कर जोरि।
बरनहु रघुबर बिसद जसु, श्रुति सिद्धांत निचोरि ॥१०९॥

अर्थ : मैं पृथ्वी पर सिर रखकर आपके चरणों को प्रणाम करती हूँ। और हाथ जोड़कर विनती करती हूँ कि आप वेदों के सिद्धान्त को निचोड़कर रघुवर का निर्मल यश वर्णन कीजिये।

व्याख्या : अति लालसा कथा सुनने की है। अतः धरणी पर सिर रखकर वन्दन करती हैं और हाथ जोड़कर रघुवर विमलयश सुनने के लिए विनय करती हैं। सो रघुवर विमलयश तो वेद वर्णन करते हैं। यथा : जिनहि न सपनेहुँ खेद बरनत रघुबर बिसद जस। और वेद का अन्त नहीं है। यथा : 'अनन्ता वै वेदाः' भरद्वाज। अतः कहती हैं कि वेद में से उसके सिद्धान्त को निचोड़कर कहिये। अर्थात् उसका सार : भजनोपयोगी अंश रघुवरयश कहिये। यथा : श्रुति सिद्धांत इहै उरगारी। भजिअ राम सब काम बिसारी।

जदपि जोषिता नहिं अधिकारी। दासी मन क्रम बचन तुम्हारी ॥
गूढ़ौ तत्व न साधु दुरावहिं। आरत अधिकारी जहँ पावहिं ॥१॥

अर्थ : यद्यपि स्त्री अधिकारिणी नहीं हैं। पर मैं तो मन, कर्म, वचन से आपकी दासी हूँ। साधु लोग जब आर्त अधिकारी पाते हैं तो गूढ़ तत्त्व को नहीं छिपाते।

व्याख्या : स्त्रियों का वेद के सिद्धान्तों में अधिकार नहीं है। अर्थित्व तथा सामर्थ्य न होने पर अधिकार नहीं होता। केवल लौकिक सामर्थ्य भी अधिकार का कारण नहीं होता। शास्त्रीय अर्थ में शास्त्रीय सामर्थ्य की अपेक्षा होती है। अतः शास्त्रीय सामर्थ्य न होने से वेद में स्त्री का अधिकार नहीं है। पर भगवती कहती हैं कि मैं तो वेदस्वरूप आपकी मनसा वाचा कर्मणा दासी हूँ। अर्थात् सदा आपके अर्धाङ्ग में निवास करनेवाली हूँ। औरों को न हो पर मुझे शास्त्रीय सामर्थ्य कैसे नहीं है? दूसरी बात यह है कि आर्त होने से भी मैं अधिकारिणी हूँ। नियम यह है कि जिस पर जिसका सत्य स्नेह हो वह उसको मिलना चाहिए। यथा : यत् यत्कामयते तत्तल्लभते! अतः साधु लोग आर्त अधिकारी से गूढ़ तत्त्व को भी नहीं छिपाते हैं और मैं आर्त हूँ।

अति आरति पूछौं सुरराया। रघुपति कथा कहहु करि दाया ॥
प्रथम सो कारन कहहु बिचारी। निर्गुन ब्रह्म सगुन बपु धारी ॥२॥

अर्थ : हे देवताओं के राजा ! मैं अत्यन्त आर्त होकर पूछती हूँ। रघुवर की

कथा दया करके कहिये। पहिले उस कारण को विचारकर कहिये जिससे निर्गुण ब्रह्म ने सगुण शरीर धारण किया।

व्याख्या : मैं आर्त हूँ और आप सुरराय हैं। देवसर्ग के प्रभु हैं। और 'दया में बसत देव सकल धरम' : वि. प.। अतः दया करके रघुपतिकथा कहिये।

पहिले यह विचारकर कहिये कि निर्गुण ब्रह्म को सगुण शरीर धारण करने का कौन सा कारण आ पड़ा? पूर्णकाम को प्रयोजन नहीं हो सकता। सत्यसंकल्प को शरीरधारण की आवश्यकता नहीं हो सकती। इसलिए इसका कारण कहिये।

पुनि प्रभु कहहु राम अवतारा। बाल चरित पुनि कहहु उदारा॥
कहहु जथा जानकी बिबाही। राज तजा सो दूषन काही॥३॥

अर्थ : हे प्रभो! फिर आप राम का अवतार कहिये। फिर उदार बालचरित कहिये। फिर जैसे जानकी से ब्याह किया सो कहिये। किस दोष से राम का त्याग किया?

व्याख्या : प्रयोजन कहने के बाद, रामजी कैसे अवतीर्ण हुए? भाव यह कि सभी अवतारों के अवतीर्ण होने की विधि पृथक् पृथक् है। नृसिंह भगवान् खम्भे से अवतीर्ण हुए। बाराह ब्रह्मदेव की नासिका से उत्पन्न हुए। सो रामजी कैसे अवतीर्ण हुए और क्या क्या हुआ?

बालचरित को उदार कहा। क्योंकि इस चरित में दासों को अधिक आनन्द मिलता है। यथा : बालचरित हरि बहु बिधि कीन्हा। अति अनंद दासन्ह कहँ दीन्हा। भुसुण्डीजी पाँच ही वर्ष तक प्रभु के साथ रहते हैं। सो बालचरित कहिये।

'जानकी बिबाही' से भाव यह कि माता-पिता ने कन्या देखकर विवाह नहीं किया। अपने पुरुषार्थ से श्रीरामचन्द्र ने जानकी ब्याही। सो वह कथा कहिये। राज्य के लिए संसार में लोग क्या नहीं करते। सो राज्य में क्या दूषण था। जो उसे छोड़कर वन में घूमते फिरे।

बन बसि कीन्हे चरित अपारा। कहहु नाथ जिमि रावन मारा॥
राज बैठि कीन्हीं बहु लीला। सकल कहहु संकर सुख लीला॥४॥

अर्थ : हे नाथ! फिर उन्होंने वन में बसकर जो अपार चरित किये तथा जिस भाँति रावण को मारा सो कहिये। हे सुखशील शङ्कर! आप सो सब कहिये जो जो उन्होंने राज्य पर बैठकर बहुत सी लीलाएँ कीं।

व्याख्या : यहाँ वनवास का चरित और रावणवध दोनों एक साथ पूछती हैं। क्योंकि दोनों में एक ही क्रिया 'कहहु' प्रयुक्त है। अतः प्रश्न का पूर्वार्ध और उत्तरार्ध दो भाग हुआ। वनवास के चरित को अपार कहती हैं। क्योंकि वे स्वयं उस चरित का पार न पा सकीं। अतः पूछती हैं। 'जिमि रावन मारा' का भाव यह कि रावन के मारने की विधि पूछती हैं इसका मारना बड़ा कठिन था। दुर्गम स्थान में निवास, मेघनाद कुम्भकर्ण प्रभृति से रक्षित, स्वयं तपस्या वरदानादि से अजेय। सिर कटने पर भी न मरना आदि ऐसी अनेक अनेक बातें थीं। बिधि बिपरीत चरित सब करई।

जनकनन्दिनी भी त्रिजटा से इसके मरने की विधि पूछने लगीं : कि केहि विधि मरिहि विस्वदु:खदाता । सो उसके मरने की विधि बताइये ।

राजगद्दी पर बैठकर जितनी लीलाएँ कीं । सो सब कहिये । 'सुखशील' कहने का भाव यह कि रामराज्य से ऐसा सुख हुआ कि आजतक भारत उसे भूलता नहीं । जब बहुत सुख मिलता है तब लोग कहते हैं कि रामराज्य है । आप सुखशील हैं । ऐसे सुख की सब कथा कहिये ।

दो. बहुरि कहहु करुनायतन, कीन्ह जो अचरज राम ।
प्रजा सहित रघुवंसमनि, किमि गवने निज धाम ॥११०॥

अर्थ : हे कृपायतन ! रामजी ने जो आश्चर्य का काम किया : रघुवंशमणि प्रजा सहित अपने धाम को गये । सो कैसे ? यह भी कहिये ।

व्याख्या : प्रजा प्रेम की परकाष्ठा हो गई । सम्पूर्ण प्रजा को कैसे अपने साथ निज धाम ले गये ? 'कर्मवैचित्र्यात् सृष्टिवैचित्र्यम् ।' कर्म की विचित्रता से ही सृष्टि में वैचित्र्य है । सबका कर्म एक साथ ही कैसे समाप्त हुआ ? जो सबके सब मुक्त हो गये । जहाँ जाकर नहीं लौटते वही प्रभु का धाम है । यथा : यद् गत्वा न निवर्त्तन्ते तद्धाम परमं मम ।

पुनि प्रभु कहहु सो तत्त्व बखानी । जेहि विग्यान मगन मुनिज्ञानी ॥
भगति ग्यान विग्यान विरागा । पुनि सब बरनहु सहित विभागा ॥१॥

अर्थ : हे प्रभो ! फिर आप उस तत्त्व का वर्णन कीजिये जिस विज्ञान में ज्ञानी मुनि लोग मग्न रहते हैं । फिर भक्ति, ज्ञान, विज्ञान और वैराग्य सभी को विभागों के साथ कहिये ।

व्याख्या : उस तत्त्व के विषय में भवानी प्रश्न करती हैं जिसका नाम नहीं है और जिसके अनुभव में ज्ञानी मुनि मग्न रहते हैं । सगुण विषयक प्रश्न करके अब शुद्ध निर्गुणरूप पूछती हैं । सिद्धि विषयक बातें पूछकर अब साधन के विषय में पूछती हैं कि भक्ति, ज्ञान, विज्ञान और वैराग्य को विभाग के सहित वर्णन कीजिये । भाव यह कि चारों साधन पृथक् होने पर भी परस्पर उपकारी हैं । एक की प्रधानता में दूसरे गौण होकर रहते हैं । अतः विभाग के सहित सुनने के लिए प्रश्न किया ।

औरौ राम रहस्य अनेका । कहहु नाथ अति विमल विवेका ॥
जो प्रभु मैं पूछा नहि होई । सोउ दयाल राखहु जनि गोई ॥२॥

अर्थ : हे अति निर्मल ज्ञानवाले नाथ ! रामजी के और जो रहस्य हैं उन्हें वर्णन कीजिये । हे दयालु ! जो बात मैंने न पूछी हो उसे भी गोप्य न रखिये ।

व्याख्या : जितनी भाँति की माया हैं उन सबमें रहस्य होता है । उस रहस्य के जानने से वह माया समझ में आजाती हैं । सो सबसे प्रबल राम की माया है । यथा : सुनु खग प्रबल राम की माया । उस माया का रहस्य ही राम का रहस्य

है। उसके जानने से राम माया का पता चलता है। अतः उसके जानने की बड़ी आवश्यकता है जिसके सामने महेश के उपदेश का बल नहीं चलता। यथा : लाग न उर उपदेस जदपि कहेउ सिव बार बहु। बोले बिहँसि महेस हरिमाया बल जानि जिय। वह माया भी एक प्रकार की नहीं है। उमा का स्वयं अनुभूत विषय है। एक माया ने उन्हें मोहित किया था। और दूसरी ने अनेक ब्रह्माण्ड ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र सहित पलभर में रचे। यह दो प्रकार की माया तो उनकी स्वयं अनुभूत थी। अतः रहस्य भी कम से कम दो होने चाहिए। इसलिए रहस्य अनेका कहती हैं।

भवानी कहती हैं कि इतनी बातें तो मैं जानना चाहती हूँ। इनके अतिरिक्त जो जो बातें मेरे लिए उपकारी हों और मैं उन्हें पूछ न सकी हूँ उन्हें भी आप कहिये। इसीलिए 'नापृष्टः कस्यचिद् ब्रूयात्' पर ध्यान न देकर उन्हें गोप्य न रहने दीजिये। यह प्रश्न है।

तुम त्रिभुवन गुरु वेद बखाना। आन जीव पावँर का जाना ॥
प्रस्न उमा कै सहज सुहाई। छल विहीन सुनि सिव मन भाई ॥३॥

अर्थ : वेद ने बतलाया है कि आप तीनों लोकों के गुरु हैं। दूसरे पामर जीव क्या जानते हैं। उमा के स्वाभाविक सुन्दर और छलरहित प्रश्नों को सुनकर शिवजी प्रसन्न हुए।

व्याख्या : भवानी कहती हैं कि आप सब उत्तरों के देने में समर्थ हैं क्योंकि आप सर्वज्ञ हैं। वेद आपको त्रिभुवनगुरु कहता है। अन्य लोग तो जीव हैं। अल्पज्ञ हैं। स्वयं अज्ञान में पड़े हैं। दूसरे का अज्ञान क्या हटा सकते हैं।

इन प्रश्नों में बनावट का नाम नहीं है। स्वभाव से ही सुन्दर हैं। बात को स्पष्ट करने के लिए हैं। अतः छल विहीन कहा। क्योंकि बनावट ही छल है और छलयुक्त प्रश्न के उत्तर देने का विधान नहीं है।

हरहिय राम चरित सब आए। प्रेम पुलक लोचन जल छाए ॥
श्री रघुनाथ रूप उर आवा। परमानंद अमित सुख पावा ॥४॥

अर्थ : महादेवजी के हृदय में सब रामचरित्र आगये। प्रेम से रोमाञ्च हुआ। आँखें डबडबा आईं। श्रीरघुनाथ का रूप हृदय में आगया। अतः परम आनन्द और असीम सुख पाया।

व्याख्या : प्रश्न अच्छे लगे। अतः उत्तर रूप में सम्पूर्ण रामचरित हृदय में उदय हो उठा। सात्त्विक भाव हुआ। पहिले चरित्र का उदय हुआ। तब रूप का उदय हुआ। अर्थात् पहिले सात्त्विक भाव हुआ था। अब रूप के उदय से परमानन्द हुआ। परमानन्द में सुख की इयत्ता ही नहीं रह जाती। यही स्थायी भाव है।

दो. मगन ध्यान रस दंड जुग, पुनि मन बाहेर कीन्ह।
रघुपति चरित महेस तब, हरखित बरनै लीन्ह ॥१११॥

अर्थ : शिवजी दो घड़ी तक ध्यान के रस में मग्न रहे। फिर मन को बाहर किया। तब प्रसन्न होकर महेश रघुपतिचरित वर्णन करने लगे।

व्याख्या : ध्यानजनित सुख में दो दण्ड तक मग्न रहे। यथा : जाग न ध्यान जनित सुख पावा। मन अन्तर्मुख होकर सुख ले रहा था। बहिर्मुख होना नहीं चाहता था। पर महेश ने उसे दो दण्ड के बाद बहिर्मुख किया। ढाई दण्ड का एक घण्टा होता है। अतः अड़तालिस मिनट का दो दण्ड हुआ और तब रामचरित हर्षित होकर वर्णन करने लगे। समाधि के आनन्द से भी रामचरित कथन के आनन्द को अधिक माना। यथा : सुनि गुनगान समाधि बिसारी। सादर सुनहिं परम अधिकारी।

भावार्थ यह कि कथा कहने के पहिले ध्यानस्थ होकर कथा पर विचार करे। प्रभु का ध्यान करे तभी कथा कहने सुनने का आनन्द है।

शम्भु के उत्तर

झूठेउ सत्य जाहिं बिनु जानें। जिमि भुजंग बिनु रजु पहिचानें॥
जेहि जाने जग जाइ हेराई। जागे जथा सपन भ्रम जाई॥१॥

अर्थ : जिसके बिना जाने झूठ भी सच मालूम होता है। जैसे बिना पहिचाने रस्सी साँप जान पड़ती है। जिसके नाम से संसार खो जाता है। जैसे जागने पर स्वप्न का भ्रम जाता रहता है।

व्याख्या : झूठ और सत्य का विभाग बुद्धि के अधीन है। जिस पदार्थ को विषय करनेवाली बुद्धि का नाश नहीं होता वह पदार्थ सत्य है। और जिसको विषय करनेवाली बुद्धि नष्ट हो जाती है वह झूठ है। झूठविषयक बुद्धि तभी तक बनी रहती है जब तक सत्य का ज्ञान न हो। सत्य का ज्ञान होते ही झूठ विषयक बुद्धि का नाश हो जाता है। जैसे जब तक रज्जु का ज्ञान नहीं होता तब तक साँपविषयक बुद्धि बनी रहती है। रज्जु का ज्ञान होते ही साँपविषयक बुद्धि का नाश हो जाता है। अतः रज्जु सत्य है और उसमें भासित होनेवाला साँप झूठ है।

इसी न्याय से संसार का मिथ्यात्व सिद्ध करते हैं कि ब्रह्म के ज्ञान से संसार खो जाता है। अर्थात् संसार को विषय करनेवाली बुद्धि नष्ट हो जाती है। जैसे जागने से स्वप्न को विषय करनेवाली बुद्धि का नाश हो जाता है। इससे सिद्ध होता है कि ब्रह्म सत्य है और जगत् मिथ्या है। यहाँ हेराई[1] पद ध्यान देने योग्य

---

१. किमस्तं किं ध्वस्तं किमु विलुलितं किन्नु गलितम्,
विशीर्णं चाजीर्णं ननु सपदि गीर्णं किमथवा।
अमन्दे स्वच्छन्दे निरुपमनिजानन्दजलधौ,
मयि स्वान्ते शान्ते जगदिदमशेषं न कलये॥

अर्थ : क्या अस्त हो गया, क्या नष्ट हो गया, क्या मसल दिया गया या गल गया या छितरा गया या सड़ गल गया या किसी ने इसे निगल लिया ? अत्यन्त स्वच्छन्द निरुपम निजानन्द के समुद्र में मेरे अन्तःकरण के शान्त होने पर इस पूरे संसार का पता नहीं चलता।

है। जिसकी जो वस्तु खो जाती है उसके लिए उस वस्तु का अभाव हो जाता है। दूसरे के लिए भले ही उसका अस्तित्व बना रहे। जागनेवाले के लिए स्वप्न झूठा हो जाता है। सोनेवाले तो परिदृश्यमान दृश्य को उस समय सच्चा ही जानते हैं।

वंदौ बाल रूप सोई रामू। सब सिधि सुलभ जपत जिसु नामू ॥
मंगल भवन अमंगल हारी। द्रवौ सो दसरथ अजिर बिहारी ॥२॥

अर्थ : मैं उन्हीं बालरूप रामजी की वन्दना करता हूँ जिनका नाम जपने से सब सिद्धियाँ सुलभ हो जाती हैं। मङ्गल के घर अमङ्गल के हरनेवाले वे दशरथ के आँगन में खेलनेवाले कृपा करें।

व्याख्या : बालरूप राम और किशोररूप राम एकही हैं। फिर भी बालरूप के उपासक बालरूप को ही इष्ट मानते हैं। यथा : इष्ट देव मम बालक रामू। प्रसङ्ग यहाँ निर्गुण ब्रह्म का है। निर्गुण ब्रह्म में ही जगत् का भ्रम होता है। अतः बालक राम की उपासना से निर्गुण ब्रह्म की उपासना कही। निर्गुण सगुण में कोई वास्तविक भेद नहीं है। यथा : जो गुनरहित सगुन सो कैसे। जल हिम उपल बिलग नहिं जैसे। अवस्था भेद मात्र है। सगुण को किशोरावस्था मानिये तो निर्गुण बाल्यावस्था है। जगत् में रहते हुए भी प्रपञ्च से पृथक् होने से बालरूप में निर्गुण उपासना ही कही। बालरूप की वन्दना और नामजप से सब सिद्धि सुलभ हो जाती है। कहा भी है : विनाप्यर्थैः समर्थं हि दातुमर्थचतुष्टयम्। मङ्गलायतनं तन्मे बाल्ये यद्रामभाषितम्। बिना अर्थ के भी जो धर्मार्थ काम मोक्ष देने में समर्थ है। ऐसा रामजी का बाल्यावस्था का भाषण मेरे लिए मङ्गल का आयतन हो। दशरथ अजिर बिहारी कहने से आँगन में खेलना द्योतित किया। अभी बाहर जाने लायक नहीं हैं। अभी शक्ति और गुणों का विकास नहीं हुआ है। अतः प्रौढापेक्षाकृत यह अवस्था निर्गुण ही है। यद्यपि भगवद्विग्रह नित्य ही मंगल भवन अमंगल हारी है। तथापि भक्तों को बाल्यावस्था के चरित में अधिक आनन्द मिलता है। यथा : बाल चरित हरि बहुविधि कीन्हा। अति आनन्द दासन्ह कहँ दीन्हा।

करि प्रनाम रामहिं त्रिपुरारी। हरषि सुधासम गिरा उचारी ॥
धन्य धन्य गिरिराजकुमारी। तुम्ह समान नहि कोउ उपकारी ॥३॥

अर्थ : रामजी को प्रणाम करके और हर्षित होकर, त्रिपुरारि ने अमृत सी वाणी कही। हे गिरिराजकुमारी ! तुम धन्य हो, तुम्हारे समान कोई उपकारी नहीं है।

व्याख्या : त्रिपुरारि के प्रणाम से बालरूप की महामहिमा सूचित की। अति रुचिकर वाणी होने से सुधासम कहा। यहाँ से तीनों घाटों की कथा चली।

प्रथम विनय : तौ प्रभु हरहु मोर अज्ञाना। कहि रघुनाथ कथा विधिनाना। की पूर्ति में यहाँ से हाथ लगा। इस विनय में दो अभिलाषाएँ हैं : १. राम कथा सुनने की और २. अज्ञानहरण की। अतः दोनों अभिलाषाओं के लिए दो बार धन्य

धन्य कहा। ये दोनों अभिलाषाएँ लोक के परमोपकार के लिए हैं। यह समझकर शिवजी कहते हैं कि : तुम समान नहि कोउ उपकारी।

पूँछेहु रघुपति कथा प्रसंगा। सकल लोक जग पावनि गंगा ॥
तुम्ह रघुबीर चरन अनुरागी। कीन्हिहु प्रश्न जगत नित लागी ॥४॥

अर्थ : तुमने रामजी की कथा का प्रसङ्ग पूछा। जो सब लोक के पवित्र करने के लिए गङ्गा है। तुम तो रघुवीर के चरणों में अनुराग करनेवाली हो, जगत् के हित के लिए तुमने प्रश्न पूछे हैं।

व्याख्या : कहि रघुनाथ कथा विधि नाना। कहने से रघुपति कथा प्रसङ्ग पूछा। इसके उत्तर में संसार के लोगों को पवित्र करनेवाली गङ्गा बहेगी। गङ्गा को भगीरथ लाये थे। इसे उमा ला रही हैं। यह पुरारिरूपी पर्वत से निकलकर श्रीरामस्वरूपसिन्धु में जा मिलेगी। यह तीनों लोकों को पवित्र करनेवाली गङ्गा हैं। [1]यथा : पुरारिगिरिसम्भूता श्रीरामार्णवसङ्गता। अध्यात्मरामगङ्गेयं पुनाति भुवनत्रयम्।

जो हरहु मोर अज्ञाना कहा था। उस पर शंकर जी कहते हैं कि तुम रामचरण-अनुरागिणी हो। तुम्हें अज्ञान कहाँ? जिसको जिसका ज्ञान नहीं वह उसका अनुरागी कैसे हो सकता है। अतः तुम्हारा प्रश्न अपने लिए नहीं जगत् के हित के लिए है। निरूपण का बीज प्रश्न है। तुम्हारा प्रश्न ऐसा है कि इसके निरूपण में जो बातें कही जायँगी उनके जानने से जगत् का हित होगा।

दो. राम कृपा तें पारवति, सपनेहुँ तव मन माहिं।
सोक मोह संदेह भ्रम, मम बिचार कछु नाहिं ॥११२॥

अर्थ : हे पार्वती! मेरे विचार से स्वप्न में भी तुम्हारे हृदय में रामकृपा से शोक, मोह, सन्देह भ्रम कुछ नहीं है।

व्याख्या : पार्वती जी पर रामजी की कृपा देख चुके हैं कि रामजी ने स्वयं प्रकट होकर माँगा कि : जाइ बिवाहहु सैलजहिं यह मोहि माँगे देहु। उस पार्वती को शोक मोह, सन्देह, भ्रम क्या कभी हो सकता है? क्रोध मनोज लोभ मद माया। छूटै सकल राम की दाया। अतः कहते हैं : शोक मोह संदेह भ्रम मम विचार कछु नाहिं।

तदपि असंका कीन्हिहु सोई। कहत सुनत सबकर हित होई ॥
जिन्ह हरि कथा सुनी नहिं काना। स्रवन रंध्र अहि भवन समाना ॥१॥

अर्थ : फिर भी तुमने ऐसी आशङ्का की जिसके कहने-सुनने से सबका भला हो। जिन्होंने हरिकथा कान से नहीं सुनी, उनके कान के छिद्र साँप के बिल के समान हैं।

---

१. पुरारिरूपी पर्वत से निकलकर श्रीरामरूपी समुद्र में मिलनेवाली यह रामगङ्गा अध्यात्म है। यह तीनों लोकों को पवित्र करती है।

व्याख्या : तुम्हारी आशङ्का का अभिप्राय यह है कि चरित्र देखकर जब मुझे मोह हो गया तो वही चरित्र सुनकर जीवों को मोह होना कौन बड़ी बात है। अतः शङ्का के व्याज से वे बातें मुझसे कहलाना चाहती हो जिनसे संसार मोह से छूटकर कल्याण प्राप्त करे। जो विकलेन्द्रिय या विकृतमस्तिष्क हैं उन्हें सम्यक् ज्ञान किसी वस्तु का हो नहीं सकता। उनका कथन सर्वथा उपेक्षणीय है। ऐसे लोग छः प्रकार के होते हैं : इनसे शिवजी श्रोता को सावधान किये देते हैं।

प्रथम विनय : जौ मोपर प्रसन्न सुखरासी। जानिअ सत्य मोहि निज दासी। तौ प्रभु हरहु मोर अज्ञाना। कहि रघुनाथ कथा विधि नाना। का उत्तर हरिविमुख[1] निन्दा तथा प्रार्थना की स्वीकृति द्वारा शिवजी दे रहे हैं। यथा : कान के छिद्र का स्वरूप बिल-सा ही है। यदि उसमें सचमुच साँप रहने लगे तो उसके बिल होने में सन्देह क्या है। जो रामकथा नहीं सुनता वह कामकथा सुनेगा। कान है तो सुनना ही पड़ेगा। चाहे रामकथा सुने, चाहे कामकथा सुने। काम सर्प है। यथा : काम भुजंग डसत जब जाहीं। विषय निम्ब कटु लगत न त्राहीं। साँप बिल नहीं बनाता। जिस बिल में वह घुस जाता है वही उसकी हो जाती है। इसी भाँति कामकथा भी कानों द्वारा हृदय में घुस जाती है। अतः उसे सर्पबिल से उपमित किया। श्रवण का फल रामयश का श्रवण है। सो तो हुआ ही नहीं। अतः काम कथारूपी सर्प के निवास से उसके श्रवणरन्ध्र सर्प के बिल के समान भयङ्कर हो गये। उसके कलेजे पर साँप लोट रहा है। उसके कहने का कौन प्रमाण : यह पहिला हरिविमुख है।

नयनन्हि संत दरस नहिं देखा। लोचन मोर पंख कर लेखा॥
ते सिर कटु तुंबरि समतूला। जे न नमत हरि गुरु पद मूला॥२॥

अर्थ : जिन्होंने अपनी आँखों से सन्तों के दर्शन नहीं किये, उनकी आँखें मोरपंख की आँखों की गिनती में हैं। वे सिर कड़वी तुम्बी के समान और तुल्य हैं। जो हरि और गुरु के चरणों में नमित नहीं होते।

व्याख्या : सन्त का लक्षण है कि उनको भगवान् के चरणों को छोड़कर न शरीर प्यारा है और न घर प्यारा है। यथा : तजि मम चरन सरोज प्रिय जिन कहँ देह न गेह। सो राम प्रेम से ही सन्त का आदर है। जिसने रामकथा सुनी ही नहीं वह सन्त के दर्शन के लिए क्यों जायगा ? नेत्रों का फल भगवद्दर्शन है। यथा : होइहैं सुफल आज मम लोचन। देखि वदन पंकज भव मोचन। सो भगवद्दर्शन दुर्लभ है। परन्तु भगवान् की चलमूर्ति सन्तजन का दर्शन तो सुलभ है। यदि इसे भी न देखा तो वे आँखें मोरपंख की भाँति व्यर्थ हैं। केवल उनकी आकृति आँखों सी है। सुझाई कुछ नहीं पड़ता। सन्त के दर्शन से पाप दूर होता है। यथा : संत दरस

---

१. न निन्दा निन्द्यं निन्दितुं प्रवृत्ता किन्तु विधेयं स्तोतुम्। निन्दा विधेय की स्तुति के लिए की जाती है। निन्दायोग्य की निन्दा के लिए नहीं। यहाँ पर छः प्रकार की निन्दा हरि-कथाश्रवण की स्तुति के लिए की गई।

जिमि पातक टरई। सो उसे हुआ नहीं। वह पापी है जो चाहेगा बकेगा। ये दूसरे हरि विमुख हैं।

जिसने हरिकथा नहीं सुनी वह हरि को क्या जाने और जिसने हरि को न जाना वह गुरु को क्यों माने ? अतः हरिकथा श्रवण का ही यह फल है कि सम्राट् का सिर भी हरि और गुरु के चरणों पर झुकता है। सिर का फल यह है कि वह हरि और गुरु के चरणों पर झुके और यदि ऐसा न हुआ तो वह सिर कडुई तूँबी के समान आकार में है और गुण में भी उसी के तुल्य है। जैसे कडुई तूँबी लोकसाधन या परलोकसाधन में से किसी काम नहीं आती उसी भाँति उस सिर से भी लोक-परलोक कुछ नहीं सधता। यथा : खारी वेलि की खारी तुमड़िया सब तीरथ करि आई। पुण्य तीर्थ को जल भरि लीन्हीं तजत नहीं करुआई। ऐसा अविनीत जो चाहे कह सकता है। यह तीसरा हरिविमुख है।

जिन्ह हरि भगति हृदय नहिं आनी। जीवत सव समान तेइ प्रानी ॥
जो नहिं करै राम गुन गाना। जीह सो दादुर जीह समाना ॥३॥

अर्थ : जो अपने हृदय में हरिभक्ति नहीं ले आये वे प्राणी मुर्दे के समान जीते हैं। जो रामगुणगान नहीं करती वह जिह्वा मेंढक की जिह्वा के समान है।

व्याख्या : मुर्दे के समान जीने का भाव यह है कि शरीर की बनावट ज्यों की त्यों बनी है। पर अमङ्गलरूप है। निष्प्रयोजन है। हरिकथा श्रवण ही हरिभक्ति का कारण है। कथा श्रवण बिना हरिभक्ति हो नहीं सकती और हरिभक्ति बिना जीवन ही व्यर्थ है। वह जीवित ही मुर्दा है। पृथ्वी का भार मात्र है। नर शरीर भवसागर के सन्तरण का साधन है। इससे संसारसागर के पार जाने का यत्न होना चाहता था, सो इसने भक्ति को हृदय में स्थान ही नहीं दिया। माया में ही पड़ा रह गया। अतः नर शरीर निष्फल गया। ऐसा पुरुष सब कुछ कह सकता है। यह चौथा हरिविमुख है।

भगवान् के गुणानुवाद के गान से भवसागर की अगाधता चली जाती है। वह थाह हो जाता है। अतः जिह्वा का साफल्य रामगुणगान में है। यदि यह न हुआ तो वह व्यर्थ मेढक की जिह्वा[1] की भाँति टरटर किया करेगी। व्यर्थ का बकवाद करेगी। वाणी मनुष्य के लिए परमेश्वर की एक विशेष देन है। वही व्यर्थ चली गई तो वह मनुष्य नहीं रह गया। विचारपूर्वक कैसे बोलेगा ? यह पाँचवाँ हरिविमुख है।

कुलिस कठोर निठुर सोइ छाती। सुनि हरि चरित न जो हरखाती ॥
गिरिजा सुनहु राम कै लीला। सुरहित दनुज विमोहनसीला ॥४॥

---

१. मेंढकों को जिह्वा नहीं होती फिर भी वे टरटर किया करते हैं। इसी भाँति जो रामगुणगान नहीं करते उन्हें वाणी का वस्तुतः अभाव है। केवल टरटर करने से जिह्वा का साफल्य नहीं है।

दो. रामकथा सुरधेनु सम, सेवत सब सुखदानि ।
सत समाज सुरलोक सब, को न सुनै असजानि ॥११३॥

अर्थ : वह छाती वज्र के समान कठोर और निर्दय है जो हरिचरित को सुनकर प्रसन्न नहीं होती। हे गिरजे ! रामजी की लीला सुनो जो देवताओं का कल्याण करनेवाली और राक्षसों को मोहित करनेवाली है।

रामजी की कथा कामधेनु के समान है। सेवा करते ही सब सुखों को देनेवाली है। और सत्पुरुषों के सभी समाज देवताओं के लोक हैं जहाँ कामधेनु रहती है ऐसा जानकर कौन इसे न सुनेगा ?

व्याख्या : द्रवीभूत न होने से छाती को कुलिसकठोर कहा। निष्करुण होने से निठुर कहा। इसे हरिचरित सुनने में आनन्द नहीं आया। यह सद्गुणों से पराङ्मुख है। इसकी बातें सुनने योग्य नहीं हैं। यथा : हिय फाटहु फूटहु नयन जरहु सो तन केहि काम। द्रवै स्रवै पुलकै नहीं तुलसी सुमिरत राम। यह छठा हरि-विमुख है।

'गिरिजा सुनहु' कहकर शिवजी प्रथम विनय का उत्तर देते है। सुर से दैवी प्रकृति और असुर से आसुरी प्रकृति के लोग अभिप्रेत हैं। यथा : उमा रामगुन गूढ, पंडित मुनि पावहिं विरति। पावहिं मोह विमूढ जे हरि विमुख न धर्म रति। 'हरहु मोर अज्ञाना' कहकर विनय किया था। 'सुनहु राम कै लीला' कहकर उत्तर हो रहा है।

विनय[1] करते हुए गिरिजा ने कहा कि : जासु भवन सुरतरु तर होई। सहकि दरिद्र जनित दुःख सोई। इसी के उत्तर में शिवजी कहते हैं कि दरिद्रजनित दुःख सहने का कोई कारण नहीं। रामकथा रूपी सब सुखदानी कामधेनु का सेवन करो। रामकथारूपी कामधेनु : ग्यान विराग सकल सुखदेनी है। कामधेनु तो ज्ञान विराग का सुख नहीं दे सकती और दुर्लभ भी है क्योंकि स्वर्ग में रहती है पर रामकथा यहीं सन्त समाज में रहती है और सब सुख देती है। अज्ञान से ही लोग दुःख सह रहे हैं। नहीं तो रामकथारूपी कामधेनु के रहते दुःख की कौन सी बात है ?

रामकथा सुंदर कर तारी। संसय विहग उड़ावनहारी ॥
रामकथा कलि विटप कुठारी। सादर सुनु गिरिराजकुमारी ॥१॥

अर्थ : रामजी की कथा संशयरूपी पक्षी को उड़ानेवाली सुन्दर करतारी है। रामकथा कलिरूपी पेड़ के लिए कुल्हाड़ी है। हे गिरिराजसुते ! उसे आदर के साथ सुनो।

व्याख्या : दूसरे प्रश्न : ससिभूषन अस हृदय विचारी। हरहु नाथ मम मति भ्रम भारी। के उत्तर में कहते हैं : संसय विहग उड़ावनिहारी। चिड़िया उड़ाने का सबसे सुगम उपाय यही है कि बैठे बैठे ताली बजा दे। चिड़िया स्वयं उड़ जायँगी।

---

१. तौ प्रभु हरहु मोर अज्ञाना। कहि रघुनाथ कथा विधि नाना ॥

इसी भाँति कथा आरम्भ कर दे। संशय आप ही भाग जायगा। ताली दोनों हाथों के बजाने से बजती है। इसी भाँति रामकथा भी वक्ता श्रोता दोनों के उन्मुख होने से होती है।

वह संशयरूपी पक्षी जो कलिविटप पर बैठा रहता है करतारी सुनकर उड़ गया। पर पेड़ बना है तो फिर आकर बैठेगा। अतः कहते हैं कि कथा कुल्हाड़ी का भी काम देती है। कुछ दिनों तक चलती रहने से वह कलिविटप भी कट जायगा जिस पर संशय ने डेरा जमा रक्खा है। सादर सुनु से दूसरे विनय के उत्तर का उपसंहार किया।

राम नाम गुन चरित सुहाए। जनम करम अगनित श्रुति गाए ॥
जथा अनंत राम भगवाना। तथा कथा कीरति गुन नाना ॥२॥

अर्थ : राम जी के नाम गुण और चरित सब सुन्दर हैं। जन्म कर्म अगणित हैं। जिन्हें वेद ने गान किया है। जिस भाँति भगवान् रामजी अनन्त हैं उसी तरह उनकी कथा उनकी कीर्ति तथा उनके गुण अनन्त हैं।

व्याख्या : अब तीसरे विनय का : अर्थात् 'प्रभु जे मुनि परमारथ वादी। कहहिं राम कहँ ब्रह्म अनादी। कहहु बुझाइ नाथ मोहि सोऊ। का उत्तर देते हैं। १. परमार्थवादी २. शेष ३. सारदा ४. वेद ५. पुराण के और ६. अपने गुणगान करने का कारण कहते हैं। राम के सोहाए नाम और गुण अगणित हैं। यदि कोई भी पूरा कह पाता तो दूसरे न कहते। अतः सबको कहने का अवसर है। और वे यथासामर्थ्य कहते हैं। जन्म कर्म अगनित श्रुति गाये से दिव्य जन्म और दिव्य कर्म कहा। यथा : जन्म कर्म च मे दिव्यम् और उन जन्मकर्मों की गिनती नहीं है। यथा : अवतारा ह्यसंख्येया हरेः सत्त्वनिधेर्द्विजाः। भागवते।

'अनन्त राम भगवाना' कहकर उनके स्वरूप और ऐश्वर्य सबको अनन्त कहा। दिव्य जन्म कर्म को अगणित पहिले ही कह आये हैं। अतः उनकी कीर्ति अनन्त है। फलतः गुणगान भी अनन्त है। इसीलिए सब सतत गान किया करते हैं। अन्त नहीं मिलता।

तदपि जथाश्रुत जसिमति मोरी। कहिहौं देखि प्रीति अति तोरी ॥
उमा प्रस्न[1] तव सहज सुहाई। सुखद संत संमत मोहि भाई ॥३॥

अर्थ : फिर भी जैसा मैंने सुना है और जैसी मेरी बुद्धि है तुम्हारी अति प्रीति देखकर कहूँगा। हे उमा ! तुम्हारा प्रश्न स्वभाव से ही सोहावना है। सुखदायक और सन्तों से अनुमोदित है और मुझे भी अच्छा लगा।

व्याख्या : अनन्त वस्तु के कथन में यही होता है कि वह यथाश्रुत और

१. श्री रामचरितमानस में सर्वत्र प्रश्न शब्द को स्त्री लिङ्ग माना है। सम्भव है कि उस समय देश विदेश में उसका स्त्रीलिङ्ग में प्रयोग होता रहा हो। प्राकृत व्याकरण में तो 'लिङ्गमतन्त्रम्' यह सूत्र है। अतः शब्द के लिङ्ग के प्रयोग में स्वतन्त्रता है।

यथामति कहा जाता है। अतः मैं भी वैसा ही कहूँगा। मैंने तो रचना करके मन में ही रख छोड़ा था। तुम्हें अति प्रीति है। इससे कहता हूँ। यथा : यह न कहिअ सठहीं हठसीलहिं। जो मन लाइ न सुन हरिलीलहिं।

प्रश्न की प्रशंसा करते हैं। 'जौ नृप तनय त ब्रह्म किमि' यह बहुत सुन्दर प्रश्न है और इसमें स्वाभाविकता है। ऐसे मार्मिक प्रश्न के उत्तर में वक्ता को भी सुख होता है। सन्तों की भी यही सम्मति है कि प्रकृत जिज्ञासु की यथार्थ जिज्ञासा का उत्तर देना चाहिए। शुष्क तर्क की प्रतिष्ठा नहीं है। बलवान् तार्किक निर्बल को दबा लेता है। और जो उससे भी बड़ा तार्किक है वह उसके तर्क का भी खण्डन कर देता है। अतः शास्त्र की मर्यादा के भीतर भीतर तर्क होना चाहिए। तुम्हारा तर्क शास्त्र के भीतर है। शास्त्र के समझने के लिए है। अतः 'जौ नृप तनय त ब्रह्म किमि' यह तर्क मुझे अच्छा लगा।

एक बात नहि मोहि सुहानी। जदपि मोह बस कहेहु भवानी ॥
तुम्ह जो कहा राम कोउ आना। जेहि [1]श्रुति गाव धरहिं मुनि ध्याना ॥४॥

अर्थ : हे भवानी ! एक बात मुझे अच्छी नहीं लगी। यद्यपि तुमने मोह के वश होकर कही है। तुमने जो कहा कि वे राम कोई और हैं। जिन्हें वेद गाते हैं और जिनका मुनि लोग ध्यान करते हैं।

व्याख्या : आँखें तो बहुतों को हैं। पर सभी रत्न को पहिचान नहीं सकते। उन्हें शीशे में और रत्न में भेद नहीं मालूम पड़ता। उस भेद को तो केवल रात्निक : जौहरी की आँखें देखती हैं। अतः रत्न का ग्रहण, दो-एक रात्निकों को दिखाकर सत् तर्क द्वारा श्रद्धा करके ही संसार करता है। जो अभागा रात्निकों पर कुतर्क के बल से श्रद्धा नहीं करता वह सदा रत्न से वञ्चित रहता है। इसी भाँति राम ब्रह्म हैं या नहीं इसका निर्णय सामान्य पुरुष नहीं कर सकता। इस बात के जौहरी परमार्थ-वादी मुनि शेष शारदादि हैं। उनके वचन पर सत् तर्क द्वारा श्रद्धा करना ही प्राप्त है।

शिवजी का कहना है कि जब तुम स्वयं कहती हो कि 'प्रभु जे १. मुनि परमारथवादी। कहहिं राम कहुँ ब्रह्म अनादी। २. शेष ३. सारदा ४. वेद ५. पुराना। सकल करहिं रघुपति गुन गाना। ६. तुम पुनि राम राम दिन राती। सादर जपहु अनंग अराती।' तब तुमने कुतर्क का आश्रयण करके इनके वचनों में अश्रद्धा क्यों की ? ये लोग जब कहते हैं कि ये वही राम हैं जिनका वेद गान करता है और मुनि ध्यान धरते हैं तब तुम्हारे मन में 'राम कोउ आना' की भावना क्यों उठी ? यही मोह की छाया है कि जिसे विशेषज्ञ महानुभाव एक स्वर से कहें उस

---

१. वेद के तीन भाग हैं : १. मन्त्र २. ब्राह्मण और ३. उपनिषत्। उपनिषदों में १०८ प्रधान हैं उनमें से कई एक उपनिषत् श्रीरामपरक हैं। रामतापनीय में पूरी रामकथा सूत्र रूप से दी हुई है। जिसे पहिले उद्धृत कर दिया गया है।

विषय में भी संशय को बनाये रखना। यही बात मुझे भी अच्छी नहीं लगी। इस प्रकार की धारणा तो हरिविमुखों को होती है। जिनका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। अब उन्हीं छः हरिविमुखों की भर्त्सना पार्वती जी का भ्रम मिटाने के लिए शिवजी क्रम से करते हैं।

दो. कहहिं सुनहिं अस अधम नर, ग्रसे जे मोह पिसाच।
पाखंडी हरि पद विमुख, जानहिं झूठ न साँच ॥११४॥

अर्थ : जिनके ऊपर मोह पिशाच सवार है जो पाखण्डी है जो भगवच्चरणों से पराङ्मुख हैं जो झूठ-सच को नहीं जानते ऐसे ही अधम पुरुष ऐसी बातें कहते और सुनते हैं।

व्याख्या : पहिले प्रकार के हरिमुख के लिए कहते हैं कि ऐसे ही अधम लोग ऐसी बातें कहते हैं और सुनते हैं। वे अपने वश में नहीं। जैसा मोह पिशाच कराता है वैसा ही करते हैं। वे झूठी झूठी कल्पनाएँ किया करते हैं। हरिकथा तो कभी सुनी नहीं। वे मिथ्या संसार को ही सत्य माने बैठे हैं। ब्रह्म : सत्य उनके लिए कोई वस्तु ही नहीं है।

अब दूसरे प्रकार के हरिविमुख के विषय में कहते हैं जिसने आँखों से सन्त कभी देखे ही नहीं।

अग्य अकोविद अंध अभागी। काई विषय मुकुर मन लागी ॥
लंपट कपटी कुटिल विसेखी। सपनेहु संत सभा नहिं देखी ॥१॥

अर्थ : जो अज्ञानी, मूर्ख, अन्धे, भाग्यहीन हैं और जिनके मनरूपी दर्पण पर विषयरूपी काई : मल लगी हुई है। जो लम्पट, कपटी और विशेष रूप से कुटिल हैं और जिन्होंने स्वप्न में भी सन्त सभा नहीं देखी है।

व्याख्या : वेद असम्मत वाणी बोलनेवाले यदि विज्ञ भी हों तो उन्हें अज्ञ ही समझना चाहिए। जिसे इतना अभिमान है कि अपनी समझ के सामने ईश्वरीय वाणी को नहीं गिनता। अथवा ऐसा अविश्वासी है कि सनातन वेद पर विश्वास नहीं करता। अथवा मन से भी अचिन्त्य रचनावाले संसार को देखने पर भी उसके रचयिता की ओर जिसका ध्यान नहीं जाता। वह विज्ञ होने पर भी अज्ञ है। पण्डित होने पर भी मूर्ख है। आँख रहते अन्धा है। यह मन दर्पण है इसी में परमात्मा की छाया पड़ती है। जो दर्पण मलिन है उसमें नहीं पड़ती है। वह परमात्मा में विश्वास नहीं कर सकता। यदि ईश्वर में विश्वास हो तो यह बात भी समझ में आवे कि इस विश्व का रचनेवाला विश्व के कल्याण के लिए विना कुछ उपदेश दिये उसे उपेक्षित नहीं छोड़ सकता। अतः उसे वेदशास्त्र की आवश्यकता मालूम पड़ेगी। और जिसे ईश्वर पर विश्वास नहीं, वह वेद क्यों मानेगा ?

तब वह अभागी है। भवभञ्जनपदविमुख है। मुनिजन धनसर्वस्व शिवप्राण उसके भाग्य में नहीं हैं। वह सदा जन्म मरणरूपी संसार में पड़ा हुआ अधम

गति को प्राप्त होता चला जायगा। उसके मनरूपी दर्पण पर विषयरूपी काई : मल लगी हुई है। उसमें ईश्वर की छाया नहीं पड़ती। ऐसे विषय के गीध, कपटी और विशेषरूप से कुटिल होते हैं। उन्हें विषय : शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध : छोड़कर कुछ दिखाई नहीं पड़ता। यथा : नयन मलिन परनारि निरखि, मन मलिन विषय संग लागे। हृदय मलिन वासना मान मद जीव सहज सुख त्यागे। पर निंदा सुनि श्रवण मलिन भे वचन दोष पर गाये। सब प्रकार मल भारलाग निज नाथ चरन विसराये। कपटी अपनी अन्तरात्मा से कपट करता है। उसे सत्य ज्ञान हो ही नहीं सकता। यथा : कपट करौं अन्तर्जामिहु ते, अघ व्यापकहि दुरावों। कुटिल परम सरल वचन में भी पेंच देखता है। यथा : चलइ जोंक जल वक्रगति, यद्यपि सलिल समान। ऐसे लोगों को वेद पर विश्वास नहीं हो सकता। वे सन्तसभा का स्वप्न क्यों देखने जाँय ? जिस विषय का संस्कार होता है उसी का स्वप्न दिखाई पड़ता है। उन्हें सन्तसभा का संस्कार ही नहीं होता। इसलिए वे स्वप्न में भी नहीं देखते। उन्हें जगत् खलमय दिखाई पड़ता है। और जबतक यह विश्वास न हो कि परहितैकव्रत, दिव्यदर्शी महापुरुषों का होना सम्भव है तब तक वह आप्तवाक्य पर विश्वास नहीं कर सकता। सन्तसभा में प्रवेश करने का सामर्थ्य ही पापी को नहीं हो सकता। सन्त का दर्शन ही नहीं तो कल्याण कैसे हो। उसे लाभ-हानि का यथार्थ रूप कैसे दृष्टिगोचर हो।

कहहिं ते वेद असंमत वानी। जिन्हके सूझ लाभ नहि हानी॥
मुकुर मलिन अरु नयन विहीना। रामरूप देखहिं किमि दीना॥२॥

अर्थ : जिसे अपना लाभ और हानि नहीं सूझता। वे ही वेदों के विरुद्ध वाणी बोला करते हैं। एक तो मैला दर्पण दूसरे आँख का अभाव। भला वे विचारे राम का रूप कैसे देख सकते हैं ?

व्याख्या : हानि कि कछु एहिसम जग भाई। भजिअ न रामहि नर तनु पाई। और : लाभ कि कछु हरि भगति समाना। अर्थ और काम का लाभ वास्तविक लाभ नहीं है। सो जिन्हें लाभ और हानि नहीं सूझती, जो पारस : स्पर्शमणि, को काँच के टुकड़े के बदले में बेचते हैं, जो मनुष्यशरीर को उस विषयसुख के बदले में खोते हैं, जो श्वान शूकर योनि में भी सुलभ है वे ही वेद-असम्मत वाणी बोलते हैं। वेद तो कहता है कि [1]चिन्मय महाविष्णु हरि रघुकुल में दशरथ के यहाँ उत्पन्न हुए। देखिये राम तापनीय[2]। रामरहस्योपनिषत् कहता है कि राम ही परब्रह्म हैं। मुक्तिकोपनिषत्[3] में कहा है कि राम ! तुम परमात्मा सच्चिदानन्द-

---

१. चिन्मयेऽस्मिन् महाविष्णौ जाते दाशरथे हरौ।
रघोः कुलेऽखिलं राति राजते यो महीस्थितः।

२. राम एव परं ब्रह्म राम एव परं तपः। राम एव परं तत्त्वं श्रीरामो ब्रह्म नापरम्।

३. राम त्वं परमात्मासि सच्चिदानन्दविग्रहः। इदानीं त्वां रघुश्रेष्ठ प्रणमामि मुहुर्मुहुः।

विग्रह हो। हे रघुश्रेष्ठ ! तुमको बार बार प्रणाम। सामवेद[१] के उत्तरार्चिक अ. १५ खं २ सू. १ मं. ३ में संक्षेप से रामकथा भी वर्णित है। मन्त्ररामायण प्रसिद्ध ही है। पर वे कहेंगे कि राम कोई दूसरे हैं। अब तीसरे हरिविमुख के विषय में कहते हैं कि जिसने हरि और गुरु का समाश्रय नहीं किया उसे विवेक हो नहीं सकता। यथा : बिनु गुरु होइ कि ज्ञान। और विवेक ही नेत्र है जगदात्मा प्राणपतिराम हैं। सो आत्माराम के देखने के लिए दो सामग्रियों की आवश्यकता रहती है। १. मनमुकुर और २. विवेकनेत्र की। दोनों में से एक के भी न होने में राम सुझाई नहीं पड़ते। सो जिसे विवेक नहीं है और मन भी मलिन है उसे राम की छाया भी दिखाई नहीं पड़ती। उस अभागे को ईश्वर पर विश्वास नहीं हो सकता। न भक्ति हो सकती है। अतः वह वेदों की उपेक्षा अवश्य करेगा।

जिन्ह कें अगुन न सगुन बिबेका। जल्पहिं कल्पित बचन अनेका॥
हरिमाया बस जगत भ्रमाहीं। तिन्हहिं कहत कछु अघटित नाहीं॥३॥

अर्थ : जिन्हें न निर्गुण का ज्ञान है और न सगुण का वे मनगढ़न्त बातें बका करते हैं। जो हरि की माया के वश में होकर जगत् में चक्कर खाया करते हैं उनके लिए कुछ भी कहना असम्भव नहीं है।

व्याख्या : जिन्हें निर्गुण और सगुण का विवेक है वे समझते हैं कि निर्गुण और सगुण में वास्तविक भेद नहीं है। निर्गुण रूप से कोई लीला नहीं होती। अतः उसका ज्ञान सुगम है; सगुण रूप से लीला होती है। उसमें नाना प्रकार के चरित्र होते हैं जिसमें मुनि के मन में भी भ्रम हो जाता है। यथा : निर्गुण रूप सुगम अति, सगुन जान नहिं कोइ। सुगम अगम नाना चरित, सुनि मुनि मन भ्रम होइ। सगुण होने पर भी उनकी निर्गुणता बनी रहती है। यथा : अनेक वेष धरि, नृत्य करै नट कोइ। जोइ जोइ भाव दिखावै, आपुह होइ न सोइ। जिन्हें निर्गुण सगुण

१. भद्रोभद्रया सह सचमान आगात्, स्वसारं जारोऽभ्येति पश्चात्।
सुप्रकेतैर्द्युभिरग्निर्वितिष्ठन्नुशद्भिर्वर्णैरभिराममस्थात्।

भद्रः कल्याणकरो रामचन्द्रः भद्रया सीतया सचमानः सहितः यदा वनमागात् तदा जारः धर्मविरुद्धाचरणेन स्वायुषो जरयिता रावणः पश्चाद् रामासान्निध्ये स्वसारं स्वपित्रादि-ऋषिरक्तोत्पन्नत्वेन भगिनीतुल्यां सीताम् अभ्येति हरणार्थमायात् तदनन्तरं सु प्रकेतैः शोभनध्वजैः द्युभिः अलौकिकैरुशद्भिः कमनीयैर्वर्णै रथैः कुम्भकर्णादिभिश्च सह अग्निः क्रोधाग्निप्रज्वलितहृदयो रावणः वितिष्ठन् युद्धाय सन्नद्धः सन् रामम् अभिस्थात् रामस्य सान्निध्यं गतवान्।

अर्थ : कल्याणकर श्रीरामचन्द्र जब कल्याणकरी सीता के साथ बन गये तब धर्मविरुद्धाचरण से अपने आप को नष्ट करनेवाले रावण ने रामजी की अनुपस्थिति में स्वपित्रादि ऋषियों के रक्त से उत्पन्न भगिनी के समान सीता के समीप जाकर उन्हें हरण किया। तदन्तर क्रोधाग्नि से जलता हुआ वह विचित्र वर्णवाले रथों से सज्जित होकर कुम्भक ादिकों से युक्त रामजी के साथ युद्ध करने गया।

का विवेक नहीं है वे तथ्य को न जानकर बिना समझे अपने मन की कल्पना को ही सत्य समझकर पागल की तरह बका करते हैं।

अब चौथे प्रकार के हरिविमुख के विषय में कहते हैं। जिसने हरिभक्ति को हृदय में स्थान नहीं दिया।

हरि की माया बड़ी प्रबल है। जो ज्ञानी के भी चित्त का अपहरण करके बलपूर्वक मोहगर्त में डाल देती है। यथा : सुनु खग प्रबल राम की माया। जो ज्ञानिहु कर चित्त अपहरई। बरिआई बिमोह बस करई। जो हरिमाया के वश में पड़ गये जैसा नाच वह नचाती है, वैसा नाचते हैं। अब पाँचवें हरिविमुख के विषय में कहते हैं : जो राम गुणगान नहीं करता।

वातुल भूत बिबस मतवारे। ते नहिं बोलहिं बचन बिचारे॥
जिन्ह कृत महामोह मद पाना। तिन्ह कर कहा करिअ नहिं काना॥४॥

अर्थ : जिन्हें वायु का रोग हो गया हो : पागल हो गये हों, या सन्निपात हो गया हो : भूत लगा हो या नशे में हों। ऐसे लोग विचारकर वचन नहीं बोलते। जिसने महामोह रूपी मदिरा पी रक्खी हो। ऐसों के वचनों पर ध्यान न देना चाहिए।

व्याख्या : बिना विचारे बोलनेवाले तीन हैं : १. वातुल २. भूतविवश ३. मतवारे। जो विषयासक्त हो रामगुणगान नहीं करता उसकी बुद्धि मलिन हो जाती है। वह वातुल, भूतविवश या मतवाले की भाँति विचारहीन बातें बोलता है। अब छठे प्रकार के हरिविमुख के विषय में कहते हैं : जो हरिचरित सुनकर हर्षित नहीं होता उसने महामोहरूपी मद्य का पान किया है। मद्य पीनेवाले प्रत्यक्ष देखते हैं कि मद्यप की बुद्धि का लोप हो जाता है। स्वयं भी बुद्धिलोप का अनुभव करते हैं। उन्हें बुद्धिलोप की अवस्था अच्छी लगती है। वे उसी पर आसक्त हैं। इसलिए वे मद्य पीते हैं। इसी भाँति कुछ लोग ऐसे हैं जिन्हें धर्मविरुद्ध, शास्त्रविरुद्ध तथा ईश्वर के विरुद्ध बोलना अच्छा लगता है। जानते हैं कि यह बात बुरी है पर उन्हें व्यसन हो गया है। उसका त्याग नहीं कर सकते। जिस भाँति मद्यप मद्य के दोषों को जानता हुआ भी उसको त्याग नहीं सकता। बल्कि उसकी प्रशंसा करता है। मद्यप के कहने का कोई ख्याल नहीं करता। न कोई उसका कहना मानता है। मोहमयी मदिरा तो बड़ी प्रबल है, उसे पान करनेवाले की बात तो कभी सुननी नहीं चाहिए। उसका क्या ठिकना। वह सब कुछ कह सकता है। तुम तो परीक्षा तक ले चुकी हो। तुम्हें रामकथा पर रुचि है, तुमने ऐसी बात मुँह से निकाली कैसे? कहहिं सुनहिं अस अधम नर। से उपक्रम करके : तिन कर कहा करिअ नहिं काना। से उपसंहार करते हैं अर्थात् इन छहों की बातें उपेक्षणीय हैं। उनमें तुम्हारी गिनती नहीं होनी चाहिए।

सो. अस निज हृदय बिचारि, तजु संसय भजु रामपद।
सुनु गिरिराजकुमारि, भ्रम तम रबिकर बचन मम॥११५॥

अर्थ : ऐसा अपने मन में विचारकर सन्देह को छोड़ो। और रामजी के चरणों को भजो। हे पार्वती! सुनो मेरे वचन भ्रमरूपी अन्धकार को नाश करने के लिए सूर्य की किरणों के समान हैं।

व्याख्या : अधम नर वातुल, भूतविवश और मतवारे की भाँति श्रुतिसिद्ध विषयों पर शङ्का उठाते हैं। शास्त्रविरुद्ध बातें बोलते हैं। संसारसागर के पार जाना चाहने वाले को वेद पर विश्वास करना ही होगा। संशय और विपर्यय ये दोनों तत्परत्व के मुख्य प्रतिबन्धक हैं। इनका नाश विपरीत निश्चय से होता है। अतः इस विषय की शङ्का छोड़ो। रामजी को ब्रह्म समझकर भजो। मेरे वचन सुनने पर भ्रम नहीं रह सकता। मनन निदिध्यासन भी श्रवण के अन्तर्गत हैं। जिसने सुनकर मनन निदिध्यासन नहीं किया उसने वस्तुतः श्रवण ही नहीं किया। क्योंकि उसका सुनना न सुनने के बराबर है। अतः कहते हैं कि मेरे वचन को हृदय में स्थान देने से भ्रम रह नहीं सकता। जिस भाँति सूर्य की किरण के प्रवेश से अन्धकार नहीं रह जाता। यहाँ सुनु कहकर तीसरी विनती के उत्तर की समाप्ति कही गई। कहहु कहकर प्रश्न किया गया। अतः सुनहु कहकर उत्तर दिया जा रहा है।

सगुनहि अगुनहि नहि कछु भेदा। गावहिं मुनि पुरान बुध वेदा॥
अगुन अरूप अलख अज जोई। भगत प्रेम बस सगुन सो होई॥१॥

अर्थ : सगुण और निर्गुण में कुछ भेद नहीं है। मुनि, पुराण, वेद और पण्डित गाते हैं। जो निर्गुण, अरूप, अलख और अजन्मा है वही भक्तों के प्रेमवश सगुण हो जाता है।

व्याख्या : अग्य जानि रिसि जनि उर धरहू। जेहि विधि मोह मिटै सो करहू। इस चौथे विनय के उत्तर में कहते हैं कि मोह तो यही है कि : जौ नृपतनय त ब्रह्म-किमि। सो सगुन और निर्गुण में वास्तविक भेद कुछ नहीं, अवस्थाभेदमात्र है। इस बात को वेद और शास्त्र तथा शास्त्रज्ञ मुनि और पण्डित सभी कहते हैं। शास्त्र का अनुवाद वाँच लेने से कोई शास्त्र के मर्म को नहीं जान सकता। उसे तो गुरुपरम्परा से मननशील महात्मा लोग जानते हैं। अतः वेद-पुराण के साथ ही मुनि और बुध को भी प्रमाण दे रहे हैं।

अगुण, अरूप, अव्यक्त और अज जिस ब्रह्म को कहते हैं वह भक्त के प्रेम के वश हो जाता है। जैसा भक्त चाहता है वैसा ही वह बन जाता है। साधकानां हितार्थाय ब्रह्मणो रूपकल्पना इति। यो यो यां यां तनुं भक्तः श्रद्धयार्चितुमिच्छति। तस्य तस्याचलां श्रद्धां तामेव विदधाम्यहम्। भगवती श्रुति कहती है कि साधकों के हित के लिए ब्रह्म की रूपकल्पना है। भगवद्गीता कहती है कि जो भक्त जिस-जिस तनु की श्रद्धा से अर्चना करना चाहता है, उसकी उस श्रद्धा को मैं अचल कर देता हूँ। वह निर्गुण से सगुण, अरूप से रूपवान्, अव्यक्त से व्यक्त और अज से जन्मवाला हो जाता है।

जो गुन रहित सगुन सोइ कैसें । जलु हिम उपल बिलग नहिं जैसें ॥
जासु नाम भ्रम तिमिर पतंगा । तेहि किमि कहिअ बिमोह प्रसंगा ॥२॥

अर्थ : जो गुण से रहित है वह सगुण कैसे है ? जैसे जल और ओला भिन्न नहीं हैं । जिसका नाम भ्रमरूपी अन्धकार के लिए सूर्य के समान है । उसके लिए मोह का प्रसङ्ग भी कैसे कहा जा सकता है ?

व्याख्या : शास्त्र की मर्यादा कहकर अब उसी मर्यादा के भीतर तर्क भी दे देते हैं । प्रश्न यह है कि निर्गुण और सगुण दोनों परस्पर विरोधी पदार्थ हैं । एक में ही विरुद्धधर्माश्रयत्व कैसे सम्भव है ? उत्तर देते हैं कि दो पदार्थ नहीं हैं । अवस्था-भेद से स्वरूप में भेद मालूम पड़ता है । वास्तव में भेद कुछ नहीं । जैसे जल का स्वाभाविक गुण द्रवत्व है । परन्तु शीत के वश होकर द्रवत्व अभिभूत होकर उसमें दृढ़ता आ जाती है और वह पत्थर सा दृढ़ हो जाता है । जो बात उसमें नहीं थी वह आ जाती है । इस भाँति : जौ नृप तनय त ब्रह्म किमि । इस मोहांश को मिटाया ।

नाम और रूप माया के अंश हैं । इसलिए उन्हें उपाधि कहा यथा : नामरूप दुइ ईस उपाधी । स्वरूप तो उनका सच्चिदानन्द है । पर इस नाम उपाधि में जिसके सम्बन्ध से ऐसा सामर्थ्य आजाता है कि सूर्यकान्त मणि की भाँति पापरूपी रूई की राशि को भस्म करके ज्ञान का कारण होता है । यथा : जासु नाम पावक अघ तूला । नाम निरूपन नाम जतन ते । सोउ प्रकटत जिमि मोल रतन ते । वह बिरह विकल नहीं हो सकता । उसे विरहविकल समझनेवाले को ही मोह है । वह उसके स्वरूप को नहीं जान पाया । इस भाँति : नारि बिरह मति भोरि । इस मोहांश को मिटाया । अब शिवजी उन छहों आप्तों रात्तिकों की ओर से उत्तर देंगे जिनके सिद्धान्त का उमा ने अनादर किया था । पहिले परमार्थवादी की ओर से कहते हैं ।

राम सच्चिदानंद दिनेसा । नहिं तहँ मोह निसा लवलेसा ॥
सहज प्रकास रूप भगवाना । नहिं तहँ पुनि बिग्यान बिहाना ॥३॥

अर्थ : रामजी सच्चिदानन्द सूर्य हैं । वहाँ अज्ञान रात्रि के लव का लेश भी नहीं है । भगवान् स्वभाव ही से प्रकाश स्वरूप हैं । वहाँ विज्ञानरूपी प्रातःकाल भी नहीं होता ।

व्याख्या : अब रामजी का स्वरूप कहते हैं कि वे सच्चिदानन्द रूप हैं । उनमें षडैश्वर्य स्वभाव से सिद्ध हैं । वे मोहनिशानाशक हैं । अतः उन्हें सूर्य कहा । यथा : उदय भानु बिनु श्रम तम नासा । जहाँ उक्त सूर्य नहीं रहते वहाँ मोहनिशा रहती है ।

रामजी तो सहज प्रकाश रूप अर्थात् स्वयं प्रकाश हैं । अब जीवधर्म का उनमें अभाव दिखलाते हैं । यद्यपि विज्ञान मोक्षप्रद है । पर वह जीव को ही होता है । पहिले मोह रहा पीछे से विज्ञान हुआ । जहाँ रात पहिले रह चुकी है वहीं प्रातः

काल भी होता है। अतः विज्ञान भी जीवधर्म है। ब्रह्म में १. विज्ञानरूपी प्रातः काल भी सम्भव नहीं।

हरष विषाद ग्यान अग्याना। जीव धर्म अहमिति अभिमाना॥
राम ब्रह्म व्यापक जग जाना। परमानंद परेस पुराना॥४॥

अर्थ : २. हर्ष ३. शोक ४. ज्ञान ५. अज्ञान ६. अस्मिता और ७. गर्व जीव-धर्म हैं। ये सात ब्रह्म में नहीं हैं। रामजी तो व्यापक ब्रह्म हैं। परमानन्द स्वरूप हैं, सबके स्वामी और पुराण पुरुष हैं। यह संसार जानता है।

व्याख्या : बन्ध से लेकर मोक्ष तक द्वैत जीव कल्पित है। इससे उन्हें जीवधर्म कहा। रामजी जीव नहीं हैं। वे ब्रह्म हैं। उनमें जीवधर्म कहाँ? अब सात धर्म ब्रह्म के कहते हैं। १. संसार जानता है कि व्यापक हैं। यथा : राम ब्रह्म व्यापक जग जाना। २. परमानन्द। यथा : जो आनंद सिंधु सुख रासी। ३. परेश। यथा : तुम ब्रह्मादि जनक जग स्वामी। ४. पुराना। यथा : उपजहिं जासु अंस विधिनाना। संभु विरंचि विस्नु भगवाना।

दो. पुरुष प्रसिद्ध प्रकास निधि, प्रगट परावर नाथ।
रघुकुलमनि मम स्वामि सोइ, कहि सिवँ नायउ माथ॥११६॥

अर्थ : जो प्रसिद्ध पुरुष हैं स्पष्ट प्रकाश के निधि हैं। सूक्ष्म स्थूल के स्वामी हैं। वे ही रघुकुल मणि मेरे स्वामी हैं। ऐसा कहकर शिवजी ने उन्हें मस्तक झुकाया।

व्याख्या : ५. पुरुष प्रसिद्ध। यथा : जगदात्मा प्रानपति रामा। ६. प्रकाश निधि। यथा : जिमि घट कोटि एक रवि छाहीं। ७. प्रकट परावर नाथ : राम रजाय मेटि जग माहीं। देखा सुना कतहुँ कोउ नाहीं। उमा दारु जोषित की नाईं। सबहिं नचावत राम गोसाईं। वही राम रघुकुलमनि ब्रह्म हैं। वे ही मेरे स्वामी हैं। अतः उन्हीं को रात दिन सादर जपता हूँ। यथा : तुम पुनि राम राम दिन राती। सादर जपहुँ अनंग अराती। ऐसा कहकर सिर नवाया। अब शेषजी की ओर से कहते हैं :

निज भ्रम नहिं समुझहिं अग्यानी। प्रभु पर मोह धरहिं जड़ प्रानी॥
जथा गगन घन पटल निहारी। झाँपेउ भानु कहहिं कुविचारी॥१॥

अर्थ : अपने भ्रम को अज्ञानी नहीं समझते। अविवेकी प्राणी प्रभु पर मोह का आरोप करते हैं। जैसे आकाश में बादलों का पर्दा देखकर बुरे विचारवाले कहते हैं कि सूर्य ढक गया।

व्याख्या : अपने भ्रम को न समझनेवाले ही अज्ञानी हैं जो अपने भ्रम को समझता है वह ज्ञानी है। दर्पण के प्रतिविम्ब का ज्ञान जानकार के लिए प्रमा और अनजान के लिए भ्रमात्मक है। मन्दान्धकार में रज्जु का सर्प दिखाई पड़ना अज्ञान है। वह तो सभी को सर्परूप में ही दिखाई पड़ेगी। परन्तु जानकार को वहाँ

भ्रमप्रयुक्त क्रिया का अभाव है। अविवेकी प्राणी अपने भ्रम को न समझेंगे। वे रज्जु को ही दोष देंगे कि वह सर्परूप में क्यों परिणत हो गई।

जिसे सूर्य के परिमाण का ज्ञान है वह समझ सकता है कि बादल बिचारा सूर्य को क्या ढक सकता है। वह हमारी आँखों को निःसन्देह ढक सकता है। उसी को अविवेकी पुरुष सूर्य का ढका जाना समझते हैं। इसी भाँति अज्ञान अपने को होता है। अविवेकी पुरुष उसका आरोप रामजी पर करते हैं। इससे आवरण-शक्ति कहा।

चितव जो लोचन अंगुलि लाएँ। प्रगट जुगल ससि तेहि के भाएँ॥
उमा राम विषइक अस मोहा। नभ तम धूम धूरि जिमि सोहा॥२॥

अर्थ : जो अपनी आँखों में उँगली लगाकर देखता है उसके मत से दो चन्द्रमा स्पष्ट हैं। उमा ! रामजी के विषय में ऐसा ही मोह है। जैसे आकाश में अन्धकार, धूम और धूलि शोभित होती है।

व्याख्या : अब विक्षेप कहते हैं। आवरण से आत्मा का अज्ञान होता है। विक्षेप से द्वैत की प्रतीति होती है। अपनी आँख में उँगली द्वारा विक्षेप हुआ। चन्द्रमा के कोई विक्षेप नहीं हुआ। अच्छी तरह मालूम है कि एक है। पर चन्द्रमा दो दिखलाई पड़ने लगते हैं। जगत् का आभास कर्म दोषों से उत्पन्न है। उसकी निवृत्ति ज्ञानमात्र से नहीं हो सकती। चूक अपनी है चन्द्रमा की नहीं। इसी भाँति अपना द्वैत भाव राम में दिखाई पड़ता है। जबतक कार्य का लय नहीं होगा व्यवहार लय नहीं हो सकता। इसी भाँति स्वयं मलावृत होने से रामजी में मलिनता दिखाई पड़ने लगती है। हमें जब अन्धकार, धूम और धूलिका अनुभव होता है तब कहते हैं कि आकाश अन्धकार, धूम और धूलि से भर गया। तम से सूक्ष्म, धूम से स्थूल और धूलि से स्थूलतर मल कहा। यहाँ ब्रह्म की उपमा आकाश से दी गई। क्योंकि आकाश और चिदात्मा विलक्षण नहीं हैं। दोनों ही सूक्ष्म, निर्मल, अज, अनन्त, निराकार, असङ्ग और सबके भीतर बाहर व्याप्त है। चैतन्य-पूर्ण आत्मा ही आकाश है। उसमें किसी वस्तु का लेप नहीं हो सकता। जीव समझता है कि जैसी हमें सच्ची विकलता है वैसी ही रामजी को भी सच्ची विकलता है। यह निर्गुण निराकार में अध्यास का उदाहरण है। वह सबका प्रकाशक है। उसमें अज्ञानान्धकार कहाँ ?

विषय[1] करन सुर जीव समेता। सकल एक तें एक सचेता॥
सब कर परम प्रकासक जोई। राम अनादि अवधपति सोई॥३॥

अर्थ : विषय से इन्द्रियाँ, उनसे देवता और उनसे भी बढ़कर जीवात्मा सचेत है। इन सबका जो परम प्रकाशक है वही अनादि राम अयोध्याधिपति हैं।

व्याख्या : विषय। यथा : शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध। करण : पाँच

---

१. एकावली अलङ्कार है।

कर्मेन्द्रिय, पाँच ज्ञानेन्द्रिय और चार अन्तःकरण हैं। यथा : १. वाक् २. पाणि ३. पाद ४. पायु ५. उपस्थ : ये कर्मेन्द्रियाँ है। ६. श्रोत्र ७. त्वक् ८. चक्षु ९. जिह्वा १०. घ्राण ये पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं। ११. मन १२. बुद्धि १३. चित्त और १४. अहंकार ये चार अन्तःकरण हैं। इनके देवता क्रम से १. अग्नि २. इन्द्र ३. उपेन्द्र ४. प्रजापति ५. मृत्यु ६. दिशा ७. वायु ८. सूर्य ९. वरुण १०. अश्विनी कुमार ११. चन्द्र १२. ब्रह्मा १३. वासुदेव और १४. रुद्र हैं। इनमें विषय से अधिक सचेत इन्द्रियाँ हैं। इन्द्रियों से अधिक चेतन देवता हैं। इन्हीं के अनुग्रह से इन्द्रियाँ अपने विषय के ग्रहण करने में समर्थ होती हैं। देवताओं से भी अधिक सचेतन जीव है। जिसके होने से देवता भी अनुग्रह करने में समर्थ होते हैं।

परन्तु इन सबका परम प्रकाशक अन्तर्यामी है। जैसे राजा, सभासद, नर्तकी और तालधारी सभी को दीप प्रकाशित करता है। इसी भाँति अनादि अन्तर्यामी राम सबको प्रकाशित करता है। वही अयोध्याधिपति राम हैं। अत्र शारदा की ओर से कहते हैं :

जगत प्रकास्य प्रकासक रामू। मायाधीस ग्यान गुन धामू॥
जासु सत्यता तें जड़ माया। भास सत्य इव मोह सहाया॥४॥

अर्थ : जगत् प्रकाश्य है और रामजी प्रकाशक हैं। वे माया के स्वामी और ज्ञान तथा गुणों के धाम हैं। जिनकी सचाई से जड़ माया मोह की सहायता से सत्य की भाँति भासित होती है।

व्याख्या : इस भाँति जगत् और रामजी के प्रकाश्य प्रकाशक का सम्बन्ध है। वे ज्ञान गुणधाम मायाधीश हैं। माया अघटितघटनापटीयसी है। उसके अधीश बनकर सगुण हुए। मिथ्या माया जड़ है। उसमें प्रकाशन शक्ति नहीं है। परिच्छेद के अवभास को अनात्माभास कहते हैं। वही अविद्या, जड़शक्ति, शून्य या प्रकृति कहलाता है। ब्रह्म चेतन हैं। उसकी सत्यता से जड़ माया : संसार : मोह : अज्ञान की सहायता से सत्य भी मालूम होती है। भाव यह कि रामजी में जो विरह, विकलतादि तुमने देखा वह माया थी। सत्य नहीं था। जब रामजी में सारा संसार बिना हुए दिखाई पड़ता है तो उतना विरह विकलतादि का बिना हुए दिखाई पड़ना कौन सी बड़ी बात थी। तुम्हारे अज्ञान की सहायता से वह सब सत्य दिखाई पड़ा।

दो. रजत सीप महुँ भास जिमि, जथा भानु कर वारि।
जदपि मृषा तिहुँ काल सोइ, भ्रम न सकइ कोउ टारि॥११७॥

अर्थ : जैसे सीप में चाँदी और सूर्य की किरणों में जल भासित होता है। यद्यपि ये बातें तीनों काल में झूठी हैं पर उस भ्रम को कोई टाल नहीं सकता।

व्याख्या : सीप में रजत तीन काल में असत्य है। सीपों की सत्यता से उसमें सत्यता की प्रतीति होती है। सीपी का इदमंश रजत में प्रतीत होता है और सीपी का नील पृष्ठ त्रिकोणादि रूप तिरोहित रहता है। इसी भाँति परमात्मा में इस

मिथ्या जगत् की प्रतीति होती है। असंग आनन्दादि गुण तिरोहित हो जाते हैं और रजत की भाँति जगत् भासित होने लगता है। यह हुआ मन्द अन्धकार का भ्रम। अब प्रकाश का भ्रम कहते हैं। जेठ की दुपहरिया में जल का भ्रम होता है। वह जल तीन काल में असत्य है पर दिखलाई पड़ता है। ज्ञान से भ्रम की निवृत्ति मात्र होती है। संसार दर्शन की निवृत्ति नहीं होती, वह तो उसी भाँति भासित होता रहता है। भ्रम न सकै कोउ टारि का यही अभिप्राय है कि असत्य प्रतीति के बाद भी उसका दिखाई देना नहीं बन्द होता। उसी भ्रम को कोई टाल नहीं सकता। संसारभ्रम क्या टलेगा ?

एहि विधि जग हरि आश्रित रहई। जदपि असत्य देत दुख अहई ॥
जौं सपने सिर काटै कोई। बिनु जागें न दूरि दुख होई ॥१॥

अर्थ : इस भाँति जगत् हरि के सहारे रहता है। यद्यपि असत्य है पर दुःख दे रहा है। जैसे कोई सपने में सिर काटता हो तो बिना जागे दुःख नहीं दूर होता।

व्याख्या : ऊपर सीप में रजत और भानुकर में वारि के रहने की विधि कह आये कि उनकी भ्रान्तिमात्र होती है। इसी भाँति हरि में जगत् के होने की भ्रान्ति मात्रा है। वस्तुतः जगत् कुछ हुआ नहीं। भ्रान्तिमात्र है, मिथ्या है। फिर भी यह दुःख देता रहता है। उदाहरण देते हैं कि जैसे सपने में कोई सिर काटता हो। सिर तो वस्तुतः सुरक्षित है सिर का कटना बिल्कुल झूठ है। सपना देखनेवाला सिर के कटने की पीड़ा और मरने का दुःख ठीक ठीक अनुभव करता है। उसे उस दुःख से कोई छुटा नहीं सकता। बड़े बड़े वीर शस्त्रधारी कुटुम्बी : या मित्र उस दुःख से उसे बचा नहीं सकते। उसको दुःख से बचा देने का एकमात्र उपाय उसका जगाना है। जागने से ही उसका भ्रम मिट सकता है। स्वप्न के विकल्प में केवल मन ही द्रष्टा, दर्शन और दृश्यरूप होकर विचित्रता से भासता है। इसी प्रकार शुद्ध संवित् भी विचित्राकार से भासती है।

जासु कृपाँ अस भ्रम मिटि जाई। गिरिजा सोइ कृपाल रघुराई ॥
आदि अंत कोउ जासु न पावा। मति अनुमान निगम अस गावा ॥२॥

अर्थ : हे पार्वती ! जिसकी कृपा से ऐसा भ्रम मिट जाता है वही कृपाल रघुराई हैं। जिसका आदि और अन्त किसी को नहीं मिला। वेदों ने अपनी बुद्धि के अनुसार इस प्रकार गान किया है।

व्याख्या : अर्थात् भगवत् कृपा सुजान जीवों को जगाती है कि तू जाग अर्थात् हरिपद में अनुराग कर यथा : जानकीस की कृपा जगावती सुजान जीव जागु त्यागु मूढ़तानुरागु श्री हरे। यहाँ मूढ़ता का त्याग और हरिपद में अनुराग करना ही जागना है। इसीसे भ्रम मिट जाता है। और फिर संसार के दुःख से छूट जाता है। उनके चरणों में अनुराग भी उनकी कृपा से ही होता है। अतः भगवत्कृपा प्राप्ति के लिए ही सारे शास्त्रीय प्रयत्न हैं।

जिसकी कृपा से संसारभ्रम की निवृत्ति होती है और जिसकी सत्ता से ही मिथ्या जगत् सत्तावान् है वही कृपाल रघुराई हैं। इसके बाद वेद की ओर से कहते हैं : जो अनादि और अनन्त है। मनुष्य की बुद्धि में सादि और सान्त पदार्थ ही आ सकते हैं। अनादि और अनन्त की मनुष्य भावना नहीं कर सकता। जिसका आदि और अन्त हो उसी का वर्णन सम्भव है। अनादि और अनन्त का कोई वर्णन भी नहीं कर सकता। वेद भी उसका वर्णन यावद्बुद्धिबलोदय ही करता है। अब उस श्रुति का अनुवाद श्री गोस्वामी जी करते हैं :

बिनु[1] पद चलै सुनै बिनु काना। कर बिनु करम करै बिधि नाना ॥
आनन रहित सकल रस भोगी। बिनु बानी बकता बड़ जोगी ॥३॥
तन बिनु परस नयन बिनु देखा। ग्रहै घ्रान बिनु बास असेखा ॥
असि सब भाँति अलौकिक करनी। महिमा जासु जाइ नहिं बरनी ॥४॥

अर्थ : वह बिना पैर के चलता है। बिना कान के सुनता है। बिना हाथ के नाना प्रकार के कर्म करता है। बिना मुँह के वह सारे रसों का भोग करता है। वह महायोगी बिना वाणी के बड़ा भारी वक्ता है। वह शरीर के बिना छूता है। और बिना आँख के देखता और नाक के बिना सब गन्ध सूँघ लेता है। जिसकी करणी इस भाँति सब प्रकार से अलौकिक है उसकी महिमा वर्णन नहीं की जा सकती।

व्याख्या : अब निगम देखिये : श्वेताश्वतर उपनिषत् में कहा है। 'अपाणिपादो जवनो गृहीता पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः। स वेत्ति वेद्यं न च तस्यास्ति वेत्ता तमाहुरग्र्यं पुरुषं महान्तम्। परमात्मा अपाणिपाद होने पर भी सब कुछ ग्रहण करते हैं। सर्वत्र गमन करते हैं। भौतिक चक्षु न होने पर भी वे सब देखते हैं। भौतिक कर्ण न होने पर भी वे सब सुनते हैं। अमनस्क होने पर भी वे सर्वज्ञ हैं। उनका कोई द्रष्टा या ज्ञाता नहीं है। वे सबके कारण हैं। इसलिए उन्हें प्रथम पूर्ण महापुरुष कहा जाता है।

योगी लोग आज भी ऐसे बहुत से कार्य कर दिखलाते हैं जिन्हें साधारण पुरुष विश्वास नहीं कर सकते। जिसकी प्रकृति जिस वस्तु के विश्वास करने की नहीं होती वह उस वस्तु का विश्वास नहीं कर सकता। आँख में पट्टी बाँधकर पीठ के द्वारा पुस्तक पढ़ने का कौतुक जिसने देखा है वह बिना हाथ के ग्रहण करने पर, बिना पैर के चलने पर, बिना आँख के देखने पर, बिना कान के सुनने पर अविश्वास

---

१. एक स्थान से पैर उठाकर दूसरे स्थान में रखना ही चलना है। जहाँ पहिले पैर था वहाँ भी वह है; जहाँ रक्खा जायगा वहाँ भी वह है, अतः वह बैठे ही बैठे दौड़नेवाले के आगे निकल जाता है। तद्धावतोऽन्यानत्येति तिष्ठत्। वह श्रोत्र का भी श्रोत्र है, अतः बिना कान के सुनता है। उसके पाणि पाद सर्वत्र हैं। सर्वत्र शिर, मुख हैं। सर्वत्र कान हैं। सबको ढके हुए ठहरा है। यथा : सर्वतः पाणिपादं यत्सर्वतोऽक्षि शिरोमुखम्। सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति। सर्वत्र पाणिपाद है, इसीलिए उसे अपाणिपाद कहते हैं।

नहीं कर सकता। फिर जिन कामों को योगिवर्य कर सकते हैं उन्हें परमेश्वर जो नित्य योगी हैं जो सर्वदा ऐश्वर्यशाली हैं अवश्य कर सकते हैं। वे बिना पैर के चल सकते हैं। बिना हाथ के ग्रहण कर सकते हैं। बिना कान के सुन सकते हैं। बिना आँख के देख सकते हैं। इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं है। इसी से बड़योगी अर्थात् महायोगी कहा है। लौकिक करणी के वर्णन के लिए शब्द हैं। अलौकिक पदार्थ के वर्णन के लिए शब्द नहीं मिलते। इसलिए जिस महाप्रभु की करणी सब भाँति से अलौकिक है उसकी महिमा नहीं वर्णन की जा सकती। यहाँ विभावना प्रथम है।

दो. जेहि इमि गावहि वेद बुध, जाहि धरहि मुनि ध्यान।
सोइ दसरथ सुत भगत हित, कोसल पति भगवान ॥११८॥

अर्थ : जिसको वेद और पण्डित इस भाँति गाते हैं और मुनि जिसका ध्यान करते हैं वही दशरथ के पुत्र, भक्तों के हितकारी कोशलपति भगवान् हैं।

व्याख्या : जब शास्त्र और शास्त्रज्ञ दोनों जिनका इस प्रकार से गान करते हैं। मुनि लोग ध्यान में ऐसा ही अनुभव करते हैं। तब प्रश्न यह उठता है कि ऐसे के शरीर धारण करने की क्या आवश्यकता पड़ी। सब कुछ तो वे बिना इन्द्रियों के ही कर सकते हैं। इसके उत्तर में कहते हैं कि वे भक्तों के हित करनेवाले हैं। भक्त के हित के लिए दशरथसुत कोशलपति हुए। स्वयम्भू मनु ने वर माँगा : चाहहुँ तुमहि समान सुत प्रभुसन कौन दुराव। आपने कहा : आप सरिस खोजौं कहँ जाई। नृप तव तनय होव हम आई। अब पुराण की ओर से शिवजी कहते हैं :

कासी मरत जंतु अवलोकी। जासु नाम बल करौं विसोकी ॥
सोइ प्रभु मोर चराचर स्वामी। रघुवर सब उर अंतरजामी ॥१॥

अर्थ : काशी में मरते हुए प्राणी को देखकर जिसके नाम के बल से मैं उसे शोकरहित कर देता हूँ वही रघुवर अन्तर्यामी जड़चेतन के और मेरे स्वामी सबके हृदय में हैं।

व्याख्या : उसी दशरथसुत कोसलपति की महिमा कहते हैं। काशी में उन्हीं के नाम के प्रताप से शिवजी मोक्ष का सदावर्त्त चलाते हैं। यहाँ आये हुए प्राणियों को मरते हुए देखकर शिवजी उसे रामनाम का उपदेश करते हैं। यथा : सिव उपदेस करत करि दाया। और उसी नामोपदेश के प्रभाव से वह शोक से पार होकर मुक्त हो जाता है। शिवजी कहते हैं कि वही मेरा स्वामी है और चराचर का स्वामी है। उसका निवास हृद्देश में है। भाव यह है कि वह अत्यन्त सूक्ष्म होने से सबके अन्तर में विराजमान हैं। अब अपनी ओर से कहते हैं :

विवसहु जासु नाम नर कहहीं। जनम अनेक रचित अघ दहहीं ॥
सादर सुमिरन जे नर करहीं। भव वारिधि गोपद इव तरहीं ॥२॥

अर्थ : विवश होकर भी जिसका नाम यदि मनुष्य उच्चारण करते हैं तो

अनेक जन्मों के किये हुए पापों को जला डालते हैं। जो मनुष्य आदर के साथ स्मरण करते हैं वे संसार सागर को गोपद की भाँति तर जाते हैं।

व्याख्या : नाम में ऐसी पापदाहिका शक्ति है कि उसके उच्चारण होते ही पापराशि : अनेक जन्मकृत : रूई की भाँति जल जाती है। यथा : जासु नाम पावक अघ तूला : परन्तु पुण्य बच जाते हैं। जिनके भोगने में फिर पाप-पुण्य होते हैं। जिससे जन्म-मरण रूपी संसार बना रहता है। परन्तु सादर स्मरण करनेवाले के कर्ममात्र का दाह हो जाता है और ज्ञान उदय होता है। जिससे वे अनायास संसार-सागर से पार चले जाते हैं। कीचड़ में गौ के पैर पड़ने से जो गढ्ढा हो जाता है, उसमें कुछ जल रहता है। उसे ही यहाँ गोपद कहा है।

राम सो परमातमा भवानी। तहँ भ्रम अति अवहित तव बानी ॥
अस संसय आवत उर माहीं। ग्यान बिराग सकल गुन जाहीं ॥३॥

अर्थ : हे भवानी ! वही परमात्मा राम हैं। उनमें भ्रम है, यह कहना तुम्हारा अत्यन्त अनुचित है। ऐसा संशय मन में लाने से ज्ञान वैराग्य सब गुण चले जाते हैं।

व्याख्या : जिसके नाम का ऐसा प्रभाव है वह नामी परमात्मा है। यह सिद्ध हो चुका। तब वहाँ भ्रम का संशय करना अति अनुचित है। वहाँ यदि भ्रम दिखाई पड़े तो उसे अपना भ्रम समझना चाहिए। जिसे सूर्य तमोमय दिखाई पड़ें, उसे समझना चाहिए कि यह अपना भ्रम है। कुछ दोष मुझमें ऐसा आगया है जिससे ऐसा दिखाई पड़ रहा है। इस भाँति 'राम सो अवध नृपति सुत सोई' को छः बार दोहराया।

परमात्मा में भ्रम का संशय करना, ज्ञान विरागादि गुणों को निराश्रय करना है। जो उस परमात्मा में भ्रम होने का संशय करेगा जिसने कृपा करके हमारे लिए शरीर धारण किया तो इस दोषारोपण से उसी का अकल्याण होगा। भगवान् ने गीता में कहा है कि पापी मूढ़ मेरे शरण नहीं आते उन अधमों का ज्ञान माया से अपहृत हुआ है। वे आसुरभाव को प्राप्त हुए हैं। न मां दुष्कृतिनो मूढाः प्रपद्यन्ते नराधमाः। माययापहृतज्ञाना आसुरं भावमास्थिताः।

सुनि सिव के भ्रम भंजन बचना। मिटिगै सब कुतरक कै रचना ॥
भइ रघुपति पद प्रीति प्रतीती। दारुन असंभावना बीती ॥४॥

अर्थ : शिवजी के भ्रमनाशक वचनों को सुनकर सब कुतर्क की रचना मिट गई। रघुपति के चरणों में प्रीति हुई, विश्वास हुआ और कठिन अविश्वास जाता रहा।

व्याख्या : 'सुनि' से चतुर्थ विनय[1] के उत्तर की समाप्ति दिखलाते हैं। और शिवजी के इस कथन का कि 'भ्रमतम रविकर वचन मम' का साफल्य भी दिखलाते हैं। इसीलिए उनके वचन का भ्रमभञ्जन विशेषण देते हैं। वेद विरुद्ध तर्क को

---

१. अज्ञ जानि रिसि जनि उर धरहू। जेहि बिधि मोह मिटै सोइ करहू ॥

कुतर्क कहा। वही प्रतीति का बाधक होता है। और जो दारुण असम्भावना रही 'जो नृप-तनय त ब्रह्म किमि' वह भी समाप्त हो गई।

दो. पुनि पुनि प्रभु पद कमल गहि, जोरि पंकरुह पानि।
बोलीं गिरिजा बचन बर, मनहुँ प्रेमरस सानि ॥११९॥

अर्थ : बार बार प्रभु के चरण कमलों को पकड़कर गिरिजा मानो प्रेम रस से सानी हुई श्रेष्ठ वाणी बोलीं।

व्याख्या : बार बार चरणस्पर्श से शिष्या की शुश्रूषा दिखलाई। अथवा चरणग्रहण से कर्मणा प्रेम, 'वचन वर' बोलने से वाचा और 'प्रेमरस सानि' से मनसा प्रेम दिखलाया।

ससिकर सम सुनि गिरा तुम्हारी। मिटा मोह सरदातप भारी ॥
तुम्ह कृपाल सब संसउ हरेऊ। राम स्वरूप जानि मोहि परेऊ ॥१॥

अर्थ : चन्द्र की किरणों के समान आपके वचन सुनकर शरद-ऋतु की धूप के समान मेरे मोह का भारी ताप मिट गया। हे कृपालु! आपने सारे सन्देह हर लिये। मुझे रामजी का स्वरूप जान पड़ा।

व्याख्या : शिवजी ने स्वयं कहा था : सुनु गिरिराजकुमारि, भ्रमतम रविकर वचन मम। परन्तु भगवती ने शीतलता का अनुभव किया। इसलिए कहती हैं कि : ससिकर सम सुनि गिरा तुम्हारी। शशिकर में मृगतृष्णा का भ्रम भी नहीं होता। अन्धकार भी मिटता है और शरद् काल की : चित्रा[1] की : कड़ी धूप का ताप भी मिटता है। यथा : सरदातप निसि ससि अपहरई। संत दरस जिमि पातक टरई। सो उमा कहती हैं कि चन्द्र के किरण सी आपकी वाणी सुनकर मोहरूपी शरद् काल की कड़ी धूप का ताप मिट गया। विनती की थी कि : जेहि विधि मोह मिटै सोइ करहू। सो अब कह रही हैं कि : मिटा मोह। चौथी विनती के उत्तर में ही सब संशय मिट गया। अतः पाँचवें विनय : अजहूँ कछु संसउ मन मोरे। के उत्तर की आवश्यकता नहीं रह गई। चन्द्र के किरण सी वाणी से मोहरूपी शरदातप का मिटना कह आई हैं। अब उससे संशयरूपी अन्धकार का नाश भी कहती हैं। और उसके प्रकाश में रामजी के स्वरूप की जानकारी का होना भी कहती हैं। शिवजी ने कहा था : कि मुकुर मलिन अरु नयन बिहीना। रामरूप देखहिं किमि दीना। सो कहती हैं कि : तुम्ह कृपालु सब संसउ हरेऊ। रामसरूप जानि मोहि परेऊ। राम सच्चिदानंद दिनेसा। से राम सो परमात्मा भवानी तक रामजी के स्वरूप का निरूपण शिवजी ने किया है। उसी पर कहा : राम स्वरूप जानि मोहि परेऊ।

नाथ कृपा अब गएउ बिषादा। सुखी भइउँ प्रभु चरन प्रसादा ॥
अब मोहि आपनि किंकरि जानी। जदपि सहज जड़ नारि अयानी ॥२॥

---

१. जब सूर्य चित्रा नक्षत्र पर जाते हैं उस समय की धूप कड़ी कही जाती है।

अर्थ : हे नाथ ! आपकी कृपा से मेरा विषाद जाता रहा। आपके चरणों के प्रसाद से मैं सुखी हो गई। यद्यपि मैं स्वभाव से ही जड़ तथा अनजान स्त्री हूँ। फिर भी आप मुझे अपनी दासी जानकर :

व्याख्या : पहिले संशय के रहने से विषाद था। यथा : संसय सर्प ग्रसेउ मोहिं ताता। दुखद लहरि कुतर्क बहु व्राता। शिवजी के वचनों से संशय जाता रहा। उसी के साथ विषाद भी मिट गया। अतः कहती हैं : नाथ कृपा अब गयउ विषादा। और रामजी के स्वरूप का ज्ञान हुआ। अतः कहती हैं : सुखी भइउँ प्रभु चरन प्रसादा।

सती से शिवजी ने कहा था : सुनहि सती तव नारि सुभाऊ। संसय अस न धरिअ उर काऊ। सो सती का शरीर छूटकर पार्वती देह मिलने पर भी वही संशय उठा। इसलिए अपना जड़त्व तथा अज्ञान स्वीकार करती हैं। अथवा पार्वती शरीर होने से अपने में जड़त्व और अज्ञान मान रही हैं। यथा : सत्य कहहु गिरि भव तनु एहा। हठ न छूट छूटै वरु देहा। फिर भी अपने को शिवजी की दासी मानती हैं। अपना निवास शङ्कर रूप कल्पवृक्ष के नीचे बतलाती हैं। इस भाँति श्रवण में अपना अधिकार द्योतित करती हैं।

प्रथम जो मैं पूछा सोइ कहहू। जौं मोपर प्रसन्न प्रभु अहहू ॥
राम ब्रह्म चिनमय अविनासी। सर्ब रहित सब उर पुरवासी ॥३॥

अर्थ : हे प्रभो ! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो जो बात मैंने आपसे पहिले पूछी थी उसे कहिये। रामजी ब्रह्म, चिन्मय और अविनाशी हैं। सबसे रहित और सबके उररूपी पुर में निवास करते हैं।

व्याख्या : अब शेष तीन विनयों के उत्तर की भी आवश्यकता नहीं रह गई। अतः पहिले प्रश्न की ओर ध्यान दिलाती हैं। यथा : प्रथम सो कारन कहहु विचारी। निगुन ब्रह्म सगुन वपुधारी। और उसी बात को स्पष्ट करती हैं। ब्रह्म, चिन्मय, अविनाशी, सर्वरहित, सब उरपुर वासी। ये पाँचों विशेषण ऐसे हैं जिससे रामजी के नर तन धारण करने की कोई आवश्यकता नहीं प्रतीत होती। और प्रयोजन के बिना कार्य में प्रवृत्ति होती नहीं। केवल इसी बात का उत्तर चाहती हैं।

नाथ धरेउ नर तनु केहि हेतू। मोहि समुझाइ कहहु वृषकेतू ॥
उमा वचन सुनि परम विनीता। राम कथा पर प्रीति पुनीता ॥४॥

अर्थ : हे नाथ ! हे वृषकेतु ! यह समझाकर कहिये कि उन्होंने मनुष्य का शरीर किस कारण से धारण किया ? उमा के अत्यन्त विनीत वचन सुनकर और राम कथा पर पवित्र प्रेम देखकर :

व्याख्या : ब्रह्म, चिन्मय, अविनाशी, सर्वरहित और सर्वान्तर्यामी का नर शरीर धारण करना किसी भाँति उपयुक्त नहीं है। यदि शरीर धारण करना ही था तो देव शरीर धारण करते। नर देह तो भवपार उतरने के लिए है। यथा : नरतन

भववारिधि कहुँ बेरो। परमेश्वर तो नित्य मुक्त हैं। उन्हें तो भवपार उतरना नहीं है कि नर शरीर धारण करें। अतः समझाकर कहने के लिए प्रार्थना करती हैं।

उमा के वचन परम विनीत हैं। यथा : सुखी भइउँ प्रभुचरन प्रसादा। अब मोहि आपनि किंकरि जानी। जदपि सहज जड़ नारि अयानी। तथा रामकथा पर पुनीत प्रेम है। यथा : नाथ धरेउ नर तनु केहि हेतू। मोहिं समुझाइ कहहु वृषकेतु। वृषकेतु सम्बोधन का भाव यह है कि आप वृषकेतु हैं। वृषो हि भगवान् धर्मः। भगवान् धर्म ही वृष है। अतः आप धर्म की सूक्ष्म गति जानते हैं। नरतन धारण करने में भी धर्म ही कारण होगा। सो आप बतला सकते हैं। प्रीति पुनीत स्वार्थ-रहित प्रीति का ग्रहण है। यथा : प्रीति पुनीत भरत कै देखी। सकल सभा सुख लहेउ बिसेखी।

दो. हिय हरखे कामारि तब, संकर सहज सुजान।
बहु विधि उमहि प्रसंसि पुनि, बोले कृपा निधान ॥१२०॥

अर्थ : कामदेव के शत्रु, सुजान, कृपानिधान शिवजी मन में प्रसन्न हुए और उमा की अनेक विधि से प्रशंसा करके फिर बोले।

व्याख्या : शिवजी कामारि हैं। भक्ति देखकर ही हर्षित होते है। सहज सुजान हैं। अतः विनीत वचन से सुखी होते हैं। रामकथा पर प्रीति देखकर उन्होंने बहु विधि से प्रशंसा की। पहले कृपा करके संशय हरण कर लिया। फिर भी कृपा करके शेष विनयों का उत्तर देते हैं। किसी विनय की उपेक्षा नहीं होने देते अतः कृपानिधान कहा।

सो. सुनु सुभ कथा भवानि, रामचरितमानस विमल।
कहा भुसुंडि बखानि, सुना बिहग नायक गरुड़ ॥१२०॥क
सो संवाद उदार, जेहिं विधि भा आगें कहब।
सुनहु राम अवतार, चरित परम सुंदर अनघ ॥१२०॥ख
हरि गुन नाम अपार, कथा रूप अगनित अमित।
मैं निज मति अनुसार, कहौं उमा सादर सुनहु ॥१२०॥ग

अर्थ : हे भवानि ! रामचरितमानस की शुभ कथा सुनो : जिसे कागभुसुण्डि ने बखानकर कहा था और पक्षिराज गरुड़जी ने सुना था।

वह उदार संवाद जिस भाँति हुआ इसे मैं आगे कहूँगा। अभी तुम रामचन्द्रजी के अवतार का परम सुन्दर और पापरहित चरित सुनो।

हरि के गुण और नाम अपार हैं। कथा के रूप भी अगणित और असीम हैं। हे उमा ! मैं अपनी बुद्धि के अनुसार कहता हूँ। आदर पूर्वक सुनो।

व्याख्या : अजहूँ कछु संसउ मन मोरे। इस पाँचवें विषय का उत्तर पाँचवें सुनु शब्द से सूचित करते हैं। भाव यह कि प्रसङ्ग प्राप्त बचे बचाये संशय के

निरसन के लिए गरुड़ भुसुण्डि संवाद अन्त में कहेंगे। यहाँ से चारों घाट की कथाएँ प्रारम्भ हुईं।

कहहु पुनीत रामगुन गाथा। इस छठे विनय का उत्तर देते हैं। कहते हैं कि वह संवाद उदार है। अर्थात् सुन्दर है। यथा : उदार अंग विभूषणम्। भाव यह कि इस कथा का ऐमा माहात्म्य है कि यदि काक प्रेम से कथा कहने बैठे तो विहङ्ग-नायक साक्षात् प्रभु की विभूति गरुड़ सुनने के लिए आजावें। इस समय रामकथा कहेंगे। भुसुण्डि गरुड़ संवाद होने की विधि आगे चलकर कहेंगे। क्योंकि उक्त संवाद में ही उमा के चार प्रश्न नवें, दशवें, ग्यारहवें और बारहवें का उत्तर है। इस समय उन्हें कहने से उत्तर का क्रम भङ्ग हो जायगा।

बरनहु रघुवर विमल जस। इस सातवें विनय का उत्तर देते हैं कि हरि के असीम होने से उनके नाम और गुण भी अपार हैं। कल्प भेद हरि चरित सोहाए। भाँति अनेक मुनीसन्ह गाए। कल्प कल्प प्रति प्रभु अवतरहीं। चारु चरित नाना विधि करहीं। अतः कथारूप अगणित हैं। और उनमें से एक एक का रूप अमित है। ऐसी अवस्था में मति अनुसार ही कहा जा सकता है। अब सादर सुनने के लिए आज्ञा देते हैं। सादर न सुनने से कथन का प्रभाव नहीं पड़ता। यथा : एहि विधि अमित जुगुति मन गुनेऊँ। मुनि उपदेस न सादर सुनेऊँ। और कथा का अनादर होता है।

सुनु गिरिजा हरिचरित सुहाए। विपुल बिसद निगमागम गाए॥
हरि अवतार हेतु जेहि होई। इदमित्थं कहि जाइ न सोई॥१॥

अर्थ : हे पार्वती सुनो ! वेद और शास्त्रों ने भगवान् के सुन्दर, विस्तृत और निर्मल चरित का गान किया है। हरि का अवतार जिस कारण होता है वह कारण यह है और ऐसा ही है। इस रूप से नहीं कहा जा सकता।

व्याख्या : रघुपति कथा कहहु करि दाया। इस आठवें विनय का उत्तर देते हैं। सुहावा न कहकर बहुवचन सुहाए का प्रयोग करते हैं। अर्थात् एक कल्प की कथा कहेंगे। यह दिखलाने के लिए कि लीलाएँ सामान्यतः एक रूप की होती हुई भी विस्तार में प्रत्येक की विशेषता है।

प्रथम सो कारन कहहु विचारी। निर्गुन ब्रह्म सगुन वपुधारी। अथवा सर्व रूप सब रहित उदासी। नाथ धरेहु नर तनु केहि हेतू। मोहि समुझाइ कहहु वृषकेतू। ये दोनों प्रश्न एक ही हैं और एक ही मानकर उमा ने पूछा है। यथा : प्रथम जो मैं पूछा सोइ कहहू। उसी प्रथम प्रश्न का उत्तर आरम्भ होता है। इदमित्थम् का अभिप्राय यह है कि निश्चय करके एक कारण का नाम नहीं लिया जा सकता।

राम अतर्क्य बुद्धि मन बानी। मत हमार अस सुनहि सयानी॥
तदपि संत मुनि वेद पुराना। जस कछु कहहिं स्वमति अनुमाना॥२॥

अर्थ : हे भवानी ! सुनो मेरा मत तो यह है कि रामजी में बुद्धि मन और

वाणी से तर्क चल नहीं सकता। फिर भी सन्त, मुनि, वेद और पुराण जैसा कुछ अपनी बुद्धि की गति के अनुसार कहते हैं :

व्याख्या : राम में तर्क की गति नहीं है। यदि तर्क की गति होती तो उनके अवतार के विषय में इदमित्थम् कुछ कहा जा सकता था। बुद्धि, मन और वाणी द्वारा ही तर्क की प्रक्रिया होती है। सो बुद्धि, मन और वाणी की गति समीप : परिच्छिन्न पदार्थों में होती है। अनादि अनन्त पदार्थ बुद्धि में आ ही नहीं सकता। किं पुनः राम सर्वाश्चर्यमय देव में। यथा : सर्वाश्चर्यमयं देवमनन्तं विश्वतोमुखम्। वहाँ न चक्षु की पहुँच है न वाणी की पहुँच है न मन की पहुँच है। हमलोग नहीं जानते कि उसे कैसे बतलावें। वह जाने हुए और न जाने हुए से पृथक् हैं। यथा : न तत्र चक्षुर्गच्छति न वाग्गच्छति नो मनो न विद्मो न विजानीमो यथैतदनुशिष्यादन्यदेव तद्विदितादथो अविदितादधि। श्रुतिः। इसलिए शिवजी कहते हैं कि रामजी बुद्धि मन वाणी से अतर्क्य हैं। अतः उनके अवतार के विषय में भी तर्क नहीं चल सकता। यहाँ पर मुनि, वेद, पुराण तथा सन्तों का कथन भी उनकी बुद्धि की गति के अनुसार ही माना जायगा। इदमित्थं कहने की उन्हें भी योग्यता नहीं है। उमा ने अपने को जदपि सहज जड़ नारि अयानी कहा था। अतः शिवजी उनका प्रोत्साहन करते हुए सयानी कहकर सम्बोधन करते हैं।

तस मैं सुमुखि सुनावौं तोही। समुझि परै जस कारन मोही॥
जब जब होइ धरम कै हानी। बाढ़हिं अधम असुर अभिमानी॥३॥

अर्थ : हे सुमुखि ! जैसा कारण मेरी समझ में आता है वैसा मैं तुम्हें सुनाता हूँ। जब जब धर्म की हानि होती है और अधम अभिमानी असुर बढ़ते हैं।

व्याख्या : इदमित्थं तो नहीं कहा जा सकता। परन्तु वेद, पुराण, मुनि और सन्तों की इस विषय में जो सम्मति है वही मेरी भी सम्मति है। बहुत काल से धर्मानुष्ठान चलता रहता है। फिर काल पाकर धर्मानुष्ठान करनेवालों के अन्तःकरण में कामनाओं का विकास होने से अधर्म की उत्पत्ति होती है। ऐसे अधर्म से जब धर्म दबने लगता है और अधर्म की वृद्धि होने लगती है तब अधम अभिमानी असुर बढ़ते हैं। अधम अभिमानी कहने का भाव यह कि प्रभु के आश्रितों को पीड़ा देनेवालों यथा : मम भुजबल आश्रित तेही जानी। मारा चहसि अधम अभिमानी : का अभ्युदय होता है। सुमुखि सम्बोधन से उमा पर अपनी प्रीति दिखलाई।

करहिं अनीति जाइ नहिं बरनी। सीदहिं विप्र धेनु सुर धरनी॥
तब तब प्रभु धरि विविध सरीरा। हरहि कृपानिधि सज्जन पीरा॥४॥

अर्थ : ऐसी अनीति करते हैं जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता। ब्राह्मण, गाय, और पृथ्वी पीड़ित होती हैं, तब तब प्रभु विविध शरीर धारण करके कृपानिधि सज्जन की पीड़ा हरण करते हैं।

व्याख्या : यज्ञ यागादि ही मुख्य धर्म हैं। यथा : यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि

धर्माणि प्रथमान्यासन् । उनके मुख्य साधन हैं ब्राह्मण और गाय । ब्राह्मण में मन्त्र प्रतिष्ठित हैं और गाय में हवि प्रतिष्ठित है । सो अधम अभिमानी असुर इन्हीं को पीड़ा पहुँचाते हैं । और ऐसे अधर्मों का भार पृथ्वी सह नहीं सकती । अतः वह भी पीड़ित होती है । तब तब जगत् की स्थिति सुरक्षित रखने की इच्छावाले आदि कर्त्ता श्रीरामजी : संभु बिरञ्चि विष्णु भगवाना । उपजहिं जासु अंस ते नाना । भूलोक के ब्रह्म की अर्थात् ब्राह्मणत्व की रक्षा के लिए : क्योंकि ब्राह्मणत्व की रक्षा से ही वैदिक धर्म सुरक्षित होगा । कारण यह है कि वर्णाश्रम के भेद उसी के अधीन हैं । ज्ञान, ऐश्वर्य, शक्ति, बल, वीर्य और तेज आदि गुणों से सदा सम्पन्न भगवान् त्रिगुणात्मिका मूल प्रकृति वैष्णवी माया को वश में करके अपनी लीला से उत्पन्न हुए से और लोगों पर अनुग्रह करते हुए से दिखाई पड़ते हैं । यथा : मीन कमठ सूकर नरहरी । वामन परसुराम वपुधरी । जब जब नाथ सुरन्ह दुख पायो । नाना तनु धरि तुम्हहिं नसायो ।

दो. असुर मारि थापहिं सुरन्ह, राखहिं निज श्रुति सेतु ।
जग विस्तारहिं विसद जस, राम जनम कर हेतु ॥१२१॥

अर्थ : असुरों को मारकर देवताओं को स्थापन करते हैं । अपने वेदरूपी पुल की रक्षा करते हैं । निर्मल यश का जगत् में विस्तार करते हैं । यही रामजन्म के कारण हैं ।

व्याख्या : रामजी ही नाना अवतारों के निधान अव्यय बीज हैं । ये ही अवतीर्ण होकर असुरों को मारकर सुरों की थापना करते हैं । भाव यह कि असुर लोग देवताओं को बलपूर्वक उनके पद से हटा देते हैं । यथा : करजोरे सुर दिसिप विनीता । भ्रुकुटि विलोकत सकल सभीता । भगवान् ही उन्हें अपने स्थान पर पुनः स्थापन में समर्थ हैं अपने श्रुतिसेतु की रक्षा करते हैं । और इस भाँति निर्मल यश का विस्तार करते हैं । जिसे गा गाकर लोग भवसागर को पार करते हैं । यही रामजन्म का कारण है । गीता में भी भगवान् ने कहा है : यदा यदाहि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत । अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् । परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् । धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे ।

सोइ जस गाइ भगत भव तरहीं । कृपासिंधु जन हित तनु धरहीं ॥
राम जनम के हेतु अनेका । परम विचित्र एक तें एका ॥१॥

अर्थ : उसी यश का गान करके भक्त संसार को तर जाते हैं । कृपासिन्धु भक्तों के लिए शरीर धारण करते हैं । रामजन्म के अनेक कारण हैं और वे एक से एक विचित्र हैं !

व्याख्या : उस यश का गान भवसन्तरण का उपाय है । निष्कर्ष यह निकला कि भक्तों के लिए शरीर धारण करते हैं क्योंकि कृपासिन्धु हैं । करुणा की तरङ्गें उठा करती हैं । यथा : सहे सुरन्ह बहुकाल विषादा । नरहरि किये प्रगट प्रहलादा ।

सभी अवतारों का साधारण कारण कहकर अब रामावतार के कारण कहते हैं। रामावतार के कारण एक से नहीं होते। प्रति अवतार के लिए भिन्न कारण होते हैं। इसीलिए उन्हें एक से एक परम विचित्र कहा।

जनम एक दुइ कहौं बखानी। सावधान सुनु सुमति भवानी ॥
द्वारपाल हरि के प्रिय दोऊ। जय अरु विजय जान सब कोऊ ॥२॥

अर्थ : हे सुमति ! भवानि ! सावधान होकर सुनो, मैं एक दो जन्म का वर्णन करता हूँ। हरि के प्रिय दो[1] द्वारपाल हैं। जिनका नाम जय और विजय परम प्रसिद्ध है।

व्याख्या : भगवती ने अपने को 'जदपि सहज जड़ नारि अयानी' कहकर अत्यन्त कार्पण्य दिखलाया है। अतः सुमति भवानी कहकर उनके दैन्य का मार्जन शिवजी करते हैं। तीन जन्म न कहकर एक दुइ कहने का यह भाव है कि एक बार तो अपने सेवकों के हित के लिए शरीर धारण किया और दो बार शाप के कारण जन्म ग्रहण किया था। सर्व रूप सब रहित उदासी। नाथ धरेउ नरतन केहि हेतू। सो समुझाइ कहौं वृषकेतू : का उत्तर : सावधान सुनु सुमति भवानी : कहकर दे रहे हैं। सावधान का भाव : चञ्चल मन ही सब दुःखों का आदि कारण है। अतः श्रवण करने में मन स्थिर रखना चाहिए। अनादर से सुना हुआ नहीं सुनने के बराबर है। द्वारपाल बहुत हैं। पर हरि के प्रिय होने से जय और विजय को सभी जानते हैं।

विप्र साप तें दूनौं भाई। तामस असुर देह तिन्ह पाई ॥
कनक कसिपु अरु हाटकलोचन। जगत विदित सुरपति मद मोचन ॥३॥

अर्थ : ब्राह्मण के शाप से उन दोनों भाइयों ने तमाम असुर का देह पाया। वे ही हिरण्यकश्यप और हिरण्याक्ष हुए। वे इन्द्र के मद को दूर करनेवाले सारे विश्व में प्रसिद्ध हुए।

व्याख्या : सनक, सनन्दन, सनातन और सनत्कुमार की उपमा मूर्तिमान् चारों वेदों से दी गई है। यथा : रूप धरे जनु चारिउ वेदा। इसलिए उन्हें विप्र कहा गया। उनका शाप विप्रशाप है, उसे कोई अन्यथा नहीं कर सकता। यथा : किये अन्यथा होइ नहि विप्रशाप अतिघोर। सनकादिक को जय और विजय ने वैकुण्ठ में प्रवेश करने से रोका था। इसी पर रुष्ट होकर उन लोगों ने शाप दिया था। वैकुण्ठ के द्वारपाल होने से उनका सात्त्विक शरीर था। सनकादिक के शाप से उनका वैकुण्ठ से पतन हुआ। उन्हें तामस शरीर असुर का मिला।

वे ही हिरण्यकश्यप और हिरण्याक्ष नामी आदि दैत्य दिति के गर्भ से उत्पन्न हुए। देवराज इन्द्र वीर रस के अधिष्ठाता हैं। उन्हें युद्ध का अभिमान है। यथा : जे सुर समर धीर बलवाना। जिनके लरिबे कर अभिमाना। तो इन दोनों ने उनका युद्धाभिमान छुड़ा दिया। यह कथा लोक में प्रसिद्ध है :

---

१. वैकुण्ठ के पश्चिम द्वार पर इन्हीं का पहरा रहता है।

विजई समर वीर विख्याता। धरि वराह वपु एक निपाता॥
होइ नरहरि दूसर पुनि मारा। जन प्रहलाद सुजस विस्तारा॥४॥

अर्थ : वे विजय करनेवाले युद्ध में विख्यात वीर थे। वाराहावतार धारण करके भगवान् ने एक को मारा। नृसिंहावतार धारण करके दूसरे को मारा और भक्त प्रह्लाद का सुयश फैलाया।

व्याख्या : ये दोनों दैत्य समर में विख्यात वीर थे। इनकी हार कभी हुई ही नहीं, जीतते ही गये। सो भगवान् ने वाराहावतार धारण करके हिरण्याक्ष को मारा।

हिरण्यकश्यप के पुत्र प्रह्लाद भगवान् के भक्त थे। अतः हिरण्यकश्यप ने क्रुद्ध होकर प्रह्लाद को बड़ी बड़ी यन्त्रणाएँ दीं। पर प्रह्लाद ने हरिभजन नहीं छोड़ा। कवितावली में कहा है :

तानि कृपान कृपा न कहूँ, पितुकाल कराल विलोकि न भागे।
राम कहाँ? सब ठाँउ हैं खम्भ में? हाँ सुनि हाँक नृकेहरि जागे॥
वैरि विदारि भये विकराल कहें प्रहलादहिं के अनुरागे।
प्रीति प्रतीति बढ़ी तुलसी तबते सब पाहन पूजन लागे॥

नरहरि कहने से हिरण्यकश्यप का ब्रह्मसृष्ट प्राणी से अवध्य होना सूचित किया। उसने भक्त प्रह्लाद को रामनाम ग्रहण से रोकना चाहा। प्रह्लाद के लिए खम्भ में से नृसिंह भगवान् का प्रकट होना संसार जानता है। प्रह्लाद पुण्यश्लोक हो गये। प्रातःस्मरणीय हो गये। सभी प्रातःकाल उठकर 'प्रह्लाद नारद पराशर पुण्डरीक' इत्यादि पाठ करते हैं।

दो. भए निसाचर जाइ तेइ, महावीर वलवान।
कुंभकरन रावन सुभट, सुर विजई जग जान॥१२२॥

अर्थ : वे ही दोनों जाकर वलवान् और महावीर राक्षस हुए, उनका नाम कुम्भकर्ण और रावण हुआ। संसार जानता है कि ये सुरविजयी सुभट थे।

व्याख्या : असुर से निशाचर हुए। निशाचर की सङ्करी सृष्टि होती है। ये दोनों दैत्यकन्या[१] में विश्रवा मुनि से उत्पन्न हुए थे। पहिले जन्म में भी जगविदित हुए थे और इस जन्म में भी परम प्रसिद्ध हुए। इसी कल्प की कथा में सेतु बन्ध के बाद मन्दोदरी का समझाना कहा। यथा : महावीर दिति सुत संहारे।

मुकुत न भए हते भगवाना। तीनि जनम द्विज वचन प्रवाना॥
एक बार तिन्ह के हित लागी। धरेउ सरीर भगत अनुरागी॥१॥

अर्थ : भगवान् ने मारा पर मुक्त न हुए। ब्राह्मण के वचन का प्रमाण तीन जन्म के लिए था। एक बार उनके लिए भक्तानुरागी ने शरीर धारण किया।

व्याख्या : भगवान् के हाथों वध होने से मुक्ति होती है। पर जय और विजय

१. देखिये अध्यात्म उत्तर काण्ड प्रथम सर्ग। वाल्मी० काण्ड ७ सर्ग ९।

को मुक्ति न हुई। क्योंकि उनकी मुक्ति में सनकादिक का शाप बाधक था। सनकादिक ने शाप दिया था कि तीन वार युद्ध करके मरेंगे। तब वैकुण्ठ में गति होगी। पहिली बार हिरण्याक्ष और हिरण्यकश्यप होकर क्रम से वाराह और नृसिंह के हाथ मारे गये। दूसरी बार वे ही कुम्भकर्ण और रावण हुए। तब रामजी के हाथ मारे गये। फिर वे ही वक्रदंष्ट्र और शिशुपाल हुए। तब क्रम से बलराम और कृष्ण भगवान् के हाथ से मारे गये तब मुक्ति हुई। सो एक बार उनके लिए भगवान् ने भक्तानुरागी शरीर धारण किया। अर्थात् रामावतार हुआ। रामावतार भक्तानुरागी अवतार है। यथा : ध्वज कुलिस अंकुस कंजजुत वन फिरत कंटक किन लहे। भगवान् के चरण के चार चिह्नों का वर्णन बार बार रामचरितमानस में आता है। सो इन चार चिह्नों : ध्वज कुलिश अंकुश और कञ्ज : से युक्त जो चरण हैं उनके वन में फिरते हुए कण्टकविद्ध होने का योग किसे हुआ ? अर्थात् सिवा रामावतार के और किसी अवतार में ऐसा योग नहीं हुआ। क्योंकि रामावतार भक्तानुरागी अवतार है। ये भक्त पर इतना अनुराग करते हैं कि उनके लिए वन वन में फिरे। चरणों में काँटे लगे। यह देखकर ज्योतिषी चकित हुए। यथा : राजलखन सब अंग तुम्हारे। देखि सोच अति हृदय हमारे। मारग चलहु पयादेहि पाएँ। ज्योतिषु झूठ हमारेहि भाएँ।

कस्यप अदिति तहाँ पितु माता। दसरथ कौसल्या विख्याता ॥
एक कलप एहि विधि अवतारा। चरित पवित्र किए संसारा ॥२॥

अर्थ : वहाँ कश्यप और अदिति पिता माता हुए। दशरथ कौसल्या के नाम से प्रसिद्धि हुई। एक कल्प में इस प्रकार अवतार हुआ। और चरित्र से संसार को पवित्र किया।

व्याख्या : जय और विजय जिस कल्प में कुम्भकर्ण और रावण हुए थे उस कल्प में कश्यप और अदिति दशरथ कौसल्या हुए। भाव यह कि तीन काल में जब रामावतार होगा तब दशरथ और कौसल्या नामधारी ही पिता माता होंगे। अतः श्रीरामजी के पिता माता का नाम दशरथ कौसल्या विख्यात है।

श्रीरामावतार प्रत्येक कल्प में एक ही बार होता है। यथा : कल्प कल्प प्रति प्रभु अवतरहीं। सो एक ही कल्प में इस विधि से अवतार हुआ और चरित्र से संसार को पवित्र किया। यथा : जो सुनत गावत कहत समुझत परम पद नर पावई।

एक कलप सुर देखि दुखारे। समर जलंधर सन सब हारे ॥
संभु कीन्ह संग्राम अपारा। दनुज महाबल मरइ न मारा ॥३॥
परम सती असुराधिप नारी। तेहिं बल ताहि न जितहिं पुरारी ॥४॥

अर्थ : एक कल्प में जलन्धर से सब देवता युद्ध में हार गये। उन्हें दुःखी देखकर शिवजी ने अपार युद्ध किया। पर वह महाबली दैत्य मारे नहीं मरता था।

उस असुरराज की स्त्री बड़ी पतिव्रता थी। उस बल से शिवजी उसे जीत नहीं सकते थे।

व्याख्या : दूसरे कल्प की कथा कहते हैं। प्रत्येक जन्म के कारण भिन्न हैं। अतः कथा अमित है। जलन्धर से सब देवता लड़े और हार गये। जलन्धर असुरों का राजा था। बिना उसके मारे देवताओं का दुःख दूर नहीं हो सकता था। उन्हें दुःखी देखकर शिवजी स्वयं युद्ध के लिए खड़े हुए। जलन्धर उन्हें जीत तो न सका पर मारा भी नहीं गया। न मारे जाने का कारण कहते हैं कि परम सती के पति को शङ्कर भी नहीं मार सकते। और उसकी स्त्री वृन्दा परम सती थी। इसलिए वह मरता नहीं था। संग्राम जारी रहा। अतएव उस संग्राम को अपार कहा। जलन्धर भी पार पाने में असमर्थ था। अब बात वृन्दा के सतीत्व पर आ गई। उसका सतीत्व-टले तो जलन्धर मरे।

दो. छल करि टारेउ तासु व्रत, प्रभु सुर कारज कीन्ह।
जब तेहि जानेउ मरम तब, स्राप कोप करि दीन्ह ॥१२३॥

अर्थ : छल से उसका व्रत टाला और प्रभु ने देवताओं का काम किया। जब उसने यह मर्म जाना तब क्रोध करके शाप दिया।

व्याख्या : उस वृन्दा का व्रत टालना विष्णु के लिए भी साध्य नहीं था। अतः जलन्धर के रूप से उसका व्रत भङ्ग किया। जलन्धर भी उसी उद्योग में शङ्कर का रूप धारण करके उमा के पास गया था। तब तक वृन्दा का व्रत भङ्ग हो गया। समाचार पाकर क्रोध से युद्ध के लिए शिवजी के सम्मुख गया और मारा गया। यश के नाश को न डरे। भक्तों का कार्य किया। जब वृन्दा को अपने सतीत्व भङ्ग और जलन्धरवध का पता चला तो उसने क्रोध करके शाप दिया।

तासु स्राप हरि दीन्ह प्रवाना। कौतुक निधि कृपाल भगवाना ॥
तहाँ जलंधर रावन भएउ। रन हति राम परम पद दएऊ ॥१॥

अर्थ : भगवान् बड़े कौतुकी और कृपाल हैं। उसके शाप को स्वीकार किया। उस कल्प में जलन्धर रावण हुआ। जिसे युद्ध में मारकर रामजी ने परमपद दिया।

व्याख्या : भगवान् को शुभाशुभ कर्म का लेप नहीं है। यथा : कर्म सुभासुभ तुमहि न बाधा। उनके लिए शाप अप्रमाण था। पर स्वयं उसे प्रामाण्य प्रदान किया। इसके लिए दो कारण कहते हैं : १. एक तो भगवान् कौतुकनिधि हैं। शाप मान लेने से कौतुक के लिए अवसर मिलेगा और जलन्धर भी मुक्त हो जायगा। २. दूसरे कृपाल हैं। वृन्दा छली गई हैं। उस पर बड़ी कृपा है। उसका कोप व्यर्थ जाने से उसे और भी दुःख होगा। अतः उसके शाप का प्रमाण दिया।

उस कल्प में जलन्धर रावण हुआ। प्रति कल्प में रामावतार होता है, पर उसके पहिले रावणावतार भी होता है। यह बात दूसरी है कि रावण दूसरे ही दूसरे होते हैं। उस कल्प में कुम्भकर्ण और विभीषण के होने का पता नहीं चलता।

जलन्धर की रावणरूप में मुक्ति हुई। इसलिए परमपद दयऊ कहते हैं। जलन्धर रावन भयऊ : कहने से ही जलन्धर का वध द्योतित किया। रावन भयऊ कहकर यह दिखलाया कि जलन्धर जन्म में तो दुःख देता ही था। रावण जन्म में तो देवताओं को रुलाने लगा। रावण का अर्थ ही रुलानेवाला है।

एक जनम कर कारन एहा। जेहि लगि राम धरी नर देहा ॥
प्रति अवतार कथा प्रभु केरी। सुनु मुनि बरनी कबिन घनेरी ॥२॥

अर्थ : एक जन्म का यह कारण था जिससे रामजी ने नर देह धारण किया। हे मुनि ! प्रभु के प्रत्येक अवतार की बहुत सी कथाएँ मुनियों ने वर्णन की हैं।

व्याख्या : एक जन्म का कारण तो वृन्दा का शाप हुआ। उसके व्रत भङ्ग के समय दो वन्दर जलन्धर की कटी शरीर लेकर आये। जिसे जोड़कर महात्मा-वेषधारी विष्णु ने जिला दिया। उसे विश्वास हो गया कि यही मेरा पति है। युद्ध में मारा गया था। सो महात्मा के प्रसाद से जी उठा है। अतः उसी जिलाये हुए जलन्धर द्वारा उसका व्रत भङ्ग हुआ। पीछे से उसे मालूम हुआ कि यह सब विष्णु की माया थी। अतः उसने उन्हें मनुष्य हो जाने का और वन्दरों द्वारा सहायता प्राप्त करने का शाप दिया। इसी भाँति प्रति अवतार की विचित्र कथाएँ हैं। उन्हें मुनियों ने वर्णन किया है। यहाँ भरद्वाज को मुनि कहकर सम्बोधन किया। इससे पता चलता है कि इस कल्प की कथा कर्मघाट पर हुई।

नारद स्राप दीन्ह एक बारा। कलप एक तेहि लगि अवतारा ॥
गिरिजा चकित भईं सुनि बानी। नारद बिस्नु भगत पुनि ग्यानी ॥३॥

अर्थ : एक बार नारद मुनि ने शाप दिया। एक कल्प उसी के लिए अवतार हुआ। यह बात सुनकर गिरिजा बड़ी चकित हुईं। और बोलीं कि नारद तो विष्णु-भक्त और ज्ञानी हैं।

व्याख्या : जय विजय वाले कल्प में उनके उद्धार के लिए विष्णु ने अवतार ग्रहण किया था। पर दो अवतारों में शाप के कारण नर देह ग्रहण किया। इसीलिए सीधे-सीधे तीन कल्प न कहकर : जनम एक दुई कहौं बखानी : कहा। नारदजी का शाप देना सुनकर भवानी एकदम चकित हो गईं। शाप तो क्रोधी देते हैं। सो भगवान् को शाप भक्त कैसे देगा ? नारद[1] का अर्थ ही अज्ञान हरण करनेवाला है। उन्हें क्रोध कैसे हुआ ? वे भक्त हैं। उन्होंने अपने स्वामी को शाप कैसे दिया ?

कारन कवन श्राप मुनि दीन्हा। का अपराध रमापति कीन्हा ॥
यह प्रसंग मोहि कहहु पुरारी। मुनि मन मोह आचरज भारी ॥४॥

अर्थ : मुनि ने किस कारण से शाप दिया ? रमापति ने उनका क्या अपराध

---

१. नारं अज्ञानम् द्यति खण्डयतीति नारदः।

किया ? हे पुरारि ! यह प्रसंग मुझसे कहो। मुनि के मन में मोह हुआ यह भारी आश्चर्य की बात है।

व्याख्या : मुनि के शाप का कोई कारण हो नहीं सकता। रमापति का अपराध पूछती हैं। नारद में अपराध की कल्पना भी नहीं करतीं। इतनी श्रद्धा गुरु पर है। दो कल्पों की कथा सुनी, प्रसङ्ग नहीं पूछा। नारद को मोह सुनकर चकित हैं। मोह विना क्रोध कैसे हुआ ? बिना क्रोध श्राप कैसे दिया ? संक्षेप में कथा समाप्त करते देखकर पूरा प्रसङ्ग सुनने के लिए प्रार्थना करती हैं।

दो. बोले बिहँसि महेस तब, ग्यानी मूढ़ न कोइ।
जेहि जस रघुपति करहिं जब, सो तस तेहि छन होइ ॥१२४॥

सो. कहौं रामगुन गाथ, भरद्वाज सादर सुनहु।
भव भंजन रघुनाथ, भजु तुलसी तजि मान मद ॥१२४॥ क

अर्थ : शिवजी ने तब विहँसकर कहा : न कोई ज्ञानी है, न मूढ़ है। जब रघुपति जिसको जैसा कर देते हैं वह उस समय वैसा ही हो जाता है।

हे भरद्वाज ! मैं रामजी की गुणगाथा कहता हूँ। तुम आदर से सुनो। रघुनाथ भवभञ्जन हैं। तुलसीदासजी अपने को कहते हैं कि तू मान मद छोड़कर उनका भजन कर।

व्याख्या : उमा की इतनी आस्था ज्ञान और ज्ञानी पर देखकर शिवजी हँसे और कहा कि ज्ञान और मोह दोनों के प्रेरक रघुपति हैं। इसमें जीव का कोई चारा नहीं। यथा : नट मर्कट इव सबहिं नचावत। राम खगेस वेद अस गावत। मर्कट की ज्ञान चेष्टा या अज्ञान चेष्टा, उसकी की हुई नहीं है। वह सब नट की करामात है। यथा : पसु नाचत सुक पाठ प्रवीना। गुन गति नट पाठक आधीना।

याज्ञवल्क्यजी भरद्वाज को सावधान करते हैं कि सादर सुनहु। गोसाईं जी अपने मन को सावधान करते हैं कि तू मान मद छोड़कर भजन कर। भजन करने में भी तुम्हारा पुरुषार्थ नहीं है। उसकी कृपा से ही तुम भजन करते हो। अतः भजन का श्रेय तुम्हें कुछ नहीं। इसलिए मान मद छोड़ने को कहते हैं। भरद्वाज जी प्रेम में डूबाडूब हैं। यथा : प्रेम विवस मुख आव न बानी। अतः याज्ञवल्क्यजी बारम्बार उन्हें सावधान करते हैं कि कथा सुनने से ही भक्ति उपजती है। अतः कथा के प्रति अनवधानता न होने पावे।

२. नारद मोह प्रसङ्ग

हिमगिरि गुहा एक अति पावनि। बह समीप सुरसरी सुहावनि ॥
आश्रमु परम पुनीत सुहावा। देखि देवरिषि मन अति भावा ॥१॥

अर्थ : हिमालय में एक बड़ी पवित्र गुफा थी। उसके पास ही सुन्दर गङ्गाजी बहती थीं। उस परम पवित्र और सुन्दर आश्रम को देखकर नारदजी के मन को अत्यन्त अच्छा लगा।

व्याख्या : हिमालय में बहुत सी पवित्र गुफाएँ हैं। उनमें से एक अत्यन्त पवित्र थी। पर्वत में गुफा, सामने सुन्दर गङ्गा का प्रवाह, उस पार वन। यह दृश्य इतना मनोहर था कि ब्रह्मलोक निवासी नारदजी को बहुत प्रिय लगा। यह आश्रम परम पवित्र और रमणीय है। समाधि योग्य स्थान है।

निरखि सैल सरि बिपिन बिभागा। भयउ रमापति पद अनुरागा ॥
सुमिरत हरिहि श्राप गति बाधी। सहज बिमल मन लागि समाधी ॥२॥

अर्थ : पर्वत नदी और वन के विभाग को देखकर रमापति के चरणों में अनुराग हुआ। हरि को स्मरण करते ही शाप की गति रुक गई और स्वभाव से ही निर्मल मन था। समाधि लग गई।

व्याख्या : प्रकृति की शोभा देखकर उसके रचयिता के चरणों में अनुराग हुआ। शैल का विभाग जहाँ से समाप्त होता है वहाँ से सरिता का विभाग आरम्भ हो जाता है। उसे समाप्त होते न होते वनविभाग आरम्भ हो जाता है और फिर भी सब में सामञ्जस्य रहता है। प्रकृति की शान्त शोभा देखकर मन भी शान्त हो जाता है। वन की श्री देखकर श्रीपति के चरणों में अनुराग होता है। नारदजी वहीं ठहर कर हरि का स्मरण करने लगे अर्थात् भगवन्नाम जप और उसके अर्थ की भावना आरम्भ हुई। इसके प्रत्यक् चेतन का अधिगम हुआ और अन्तराय का अभाव हुआ। ततः प्रत्यक् चेतनाधिगमोऽन्तरायाभावश्च। यो. सू.। शाप की गति रुक गई। नारदजी को दक्ष का शाप था कि वे कहीं स्थिर न रहें सो स्थिर हो गये। मन स्वभाव से ही निर्मल था। भगवच्चरणों में अनुराग उठा ही था। समाधि लग गई। यथा : ईश्वर-प्रणिधानाद्वा। यो. सू.।

मुनि गति देखि सुरेस डराना। कामहि बोलि कीन्ह सनमाना ॥
सहित सहाय जाहु मम हेतू। चलेउ हरषि हिय जलचरकेतू ॥३॥

अर्थ : मुनि की गति देखकर इन्द्र डरे। कामदेव को बुलाकर सम्मान किया और कहा कि मेरे लिए तुम सेना के सहित जाओ। कामदेव हृदय में हर्षित होकर चले।

व्याख्या : भारी तपस्वियों से इन्द्र को भय रहता है। इतनी बड़ी समाधि लगी कि इन्द्र भयभीत हो उठे। विघ्नाचरण के लिए काम को बुलाया। कार्य लेना है इसलिए सम्मान किया। जहाँ प्राण लेना था वहाँ बड़ी स्तुति की। यथा : प्रस्तुति सुरन्ह कीन्ह अति हेतू। यहाँ उतना बड़ा काम नहीं है इसलिए केवल बुलाकर सम्मानित किया। देवराज हैं। कामदेव को आज्ञा देते हैं कि मेरी प्रीति के लिए जाओ और अपनी सेना : मारगण को साथ ले लो। अकेले काम न चलेगा। कामदेव भी बड़े वीर हैं। पराक्रम करने का अवसर मिलने से प्रसन्न हैं। सेना सहित चले। अतः पताका का वर्णन करते हैं।

सुनासीर मन महुँ असि त्रासा । चहत देवरिषि मम पुर वासा ॥
जे कामी लोलुप जग माहीं । कुटिल काक इव सबहिं डेराहीं ॥४॥

अर्थ : इन्द्र के मन में यह डर था कि देव ऋषि मेरे पुर में अपना वास चाहते हैं। जो लोग संसार में कामी और लोलुप हैं वे कुटिल कौवे की भाँति सबसे डरा करते हैं।

व्याख्या : प्रकट नहीं करते पर भीतर से बड़ा डर है कि देवऋषि मेरा आसन छीनना चाहते हैं। अमरावती में उनका वसना ही मेरे प्रभुत्व के लोप का कारण होगा। देवताओं के ऋषि हैं अतः उनका वैसा ही सन्मान करना पड़ेगा। उनकी आज्ञा के वशवर्ती होना पड़ेगा। जब दूसरे के आज्ञावशवर्ती हुए तब इन्द्र किस बात के रह जायँगे ? सुनासीर हैं। देवताओं के स्वामी हैं। फिर भी उन्हें तपस्वी से भय रहता है। यथा : तुम सम अधन भिखारि अगेहा । होत विरंचि सिवहिं संदेहा ।

इन्द्रपद वैषयिक सुख की पराकाष्ठा है। इसलिए कामी लोलुप और कुटिल कहा। काक की उपमा देते हैं। यथा : काक समान पाक रिपु रीती । छली मलीन न कतहुँ प्रतीती। छली यथा : सहित सहाय जाहु मम हेतू। मलीन। यथा : चहत देव ऋषि मम पुर वासा। न कतहुँ प्रतीती। यथा : मुनि गति देखि सुरेस डेराना।

दो. सूख हाड़ लै भाग सठ, स्वान निरखि मृगराज ।
छीनि लेइ जनि जानि जड़, तिमि सुरपतिहि न लाज ॥१२५॥

अर्थ : जैसे सिंह को देखकर शठ कुत्ता सूखा हड्डी लेकर भागे और यह समझे कि कहीं उस सूखे हाड़ को सिंह छीन न ले। वैसे ही इन्द्र को लज्जा नहीं है।

व्याख्या : नारदजी को मृगराज कहा। वे काम कोह कलिमल करिगन के कुम्भ को विदारण करके ब्रह्मानन्दरसास्वाद करनेवाले हैं। इन्द्रासन का सुख कितना भी हो तो ब्रह्मानन्द के सामने सूखी हड्डी है। रज और तम के संघर्षण पूर्वक अभिभूत होने से जब क्षणिक सत्त्व का उदय होता है तब उसी में ब्रह्मानन्द की झलक प्रतिफलित होती है। यही विषयानन्द है। उसकी ओर भला नारदजी आँख उठाकर क्यों देखने लगे। इन्द्र को श्वान से उपमित किया। उन्हें ब्रह्मानन्द दुर्लभ है। उनका सिंहासन सूखा हाड़ है। उसमें कुछ नहीं है। उसके द्वारा इन्द्र अपने ही पुण्य का फल भोगते हैं और अज्ञान से समझते हैं कि इन्द्रासन में सुख है। उसे कहीं नारद छीन न लें। यथा : अस्थि पुरान छुधित स्वान अति ज्यौं भरि मुख पकरै। निज तालूगत रुधिर पान करि मन सन्तोष धरै।

तेहि आश्रमहिं मदन जब गयऊ । निज माया बसंत निरमयऊ ॥
कुसुमित विविध विटप बहु रंगा । कूजहिं[1] कोकिल गुंजहिं भृंगा ॥१॥

अर्थ : जब उस आश्रम में कामदेव गये तब उन्होंने अपनी माया से वसन्त

१. दीपकावृत्ति : द्वितीय ।

का निर्माण किया। अनेक प्रकार के पेड़ों में रंग बिरंग के फूल खिल गये। उनपर कोयल कूजने और भौंरे गूँजने लगे।

व्याख्या : चलेउ हरखि हिय जलचरकेतू से कामदेव का प्रसङ्ग उठाया था। बीच में इन्द्र की लोलुपता कहने लगे। अब कामदेव के उस आश्रम में पहुँचने पर फिर वही कथा प्रारम्भ कर दी। वसन्त कामदेव के मित्र हैं। उद्दीपन में बड़े सिद्धहस्त हैं। काम उन्हें समय पड़ने पर माया से अपने पास बुला लेते हैं। भाव यह कि उस समय वसन्त ऋतु नहीं था। माया से हो गया।

वसन्त ऋतु के आजाने से प्रकृति में कामशक्ति बढ़ जाती है। पेड़ों में नये पत्ते आ जाते हैं। अच्छे अच्छे फूल खिलने लगते हैं। कोयल कूकने लगते हैं। फूलों की सरसता के कारण भौंरे गूँजने लगते हैं। ये सब उद्दीपन हैं।

चली सुहावनि त्रिविध बयारी। काम कृसानु बढ़ावनि हारी॥
रंभादिक सुर नारि नवीना। सकल असमसर कला प्रवीना॥२॥

अर्थ : काम की आग बढ़ानेवाली त्रिविध शीतल मन्द और सुगन्ध हवा चलने लगी। रम्भा आदिक नवयुवती स्वर्ग की अप्सराएँ जो काम की सब कलाओं में चतुर थीं।

व्याख्या : सीतल सुगंध सुमंद मारुत मदन अनल सखा सही। त्रिविध समीर को कामाग्नि का सच्चा मित्र कहा है। क्योंकि वह कामाग्नि को बढ़ाता है। अब आलम्बन कहते हैं कि अप्सराएँ प्रकट हुईं। सामान्य अप्सराएँ नहीं। ख्यातनामा रम्भादिक जो कामकला में बड़ी प्रवीण हैं और जिन्हें जरा आती ही नहीं। नित्य नवयौवना बनी रहती हैं।

करहिं गान बहु तान तरंगा। बहु बिधि क्रीड़हिं पानि पतंगा॥
देखि सहाय मदन हरषाना। कीन्हेसि पुनि प्रपंच बिधि नाना॥३॥

अर्थ : अनेक प्रकार की तानों के तरङ्ग उठाती हुई गान कर रही हैं। जलपक्षी अनेक प्रकार की क्रीड़ाएँ कर रहे हैं। सेना को देखकर कामदेव हर्षित हुए। फिर उन्होंने अनेक प्रकार का प्रपञ्च किया।

व्याख्या : अब ध्यानभङ्ग के लिए उन लोगों ने संगीत आरम्भ किया। अनेक प्रकार की तानें लेने लगीं। यथा : कलगान सुनि मुनि ध्यान त्यागहिं, काम कोकिल लाजहीं। जलपक्षियों का कलोल भी उद्दीपन है। कुछ लोगों ने पानि पतंगा का अर्थ पतङ्ग उड़ाना, हाथ नचाना अथवा गेंद खेलना भी किया है। फिर काम ने अनेक प्रपञ्च किया। जिन्हें कवि लिखना नहीं चाहते। वायु के झोंके से अप्सराओं के अञ्चल आदि का हट जाना इत्यादि प्रकार के प्रपञ्च काम ने किये।

काम कला कछु मुनिहि न ब्यापी। निज भय डरेउ मनोभव पापी॥
सीम कि चाँपि सकै कोउ तासू। बड़ रखवार रमापति जासू॥४॥

अर्थ : कामदेव की किसी कला ने मुनि पर काम न किया तब पापी कामदेव अपने ही डर से डरा। क्या कोई उसकी सीमा दबा सकता है जिसके बड़े भारी रक्षक रमापति हैं।

व्याख्या : जब काम की कल्पना का कोई प्रभाव मुनि पर नहीं पड़ा तब शाप के डर से भीत हुआ। बड़े हर्षित होकर चले थे कि देवऋषि को आज जीतना है सो कुछ भी किया न हुआ। जिसपर प्रभाव न चले उसी से काम को भय रहता है। जिस पर प्रभाव चल गया वह तो उसका चेरा हो हो जाता है। उससे डर क्या ?

रमापति के पद में अनुराग था। इसलिए रमापति रक्षा कर रहे थे। ऐसे समय किसका सामर्थ्य है कि उनकी मर्यादा को ठेस पहुँचा सके। अतः ब्रह्मास्त्र, रौद्रास्त्र, वैष्णवास्त्र से भी विशेष कराल कामास्त्र निष्फल हुआ।

दो. सहित सहाय सभीत अति, मानि हारि मन मयन।
गहेसि जाइ मुनि चरन तब, कहि सुठि आरत वयन ॥१२६॥

अर्थ : फिर अपने सहाय समेत कामदेव ने बहुत डरकर और मन से हार मानकर अत्यन्त आर्त वचन कहते हुए जाकर मुनिजी का चरण पकड़ लिया।

व्याख्या : काम भी डरे, अप्सराएँ भी डरीं, वसन्त भी डरे। नारदजी का बड़ा अपराध जहाँ तक हो सका किया। अब अधिक नहीं कर सकते। तब डरे कि अभी तक तो हमारी ओर से चोट होती थी मुनिजी सह रहे थे। अब उनकी पारी है। उनकी चोट हम नहीं सह सकेंगे। तब त्राहि त्राहि करता हुआ सेना के सहित मुनिजी के चरणों में गिरा। हारि मानि से मनसा भय। गहेसि जाइ मुनिवर चरन से कर्मणा और कहि आरत सुठि वयन से वाचा भय द्योतित किया।

भयउ न नारद मन कछु रोषा। कहि प्रिय वचन काम परितोषा ॥
नाइ चरन सिरु आयसु पाई। गयउ मदन तव सहित सहाई ॥१॥

अर्थ : नारदजी के मन में कुछ भी क्रोध न हुआ। उन्होंने प्रिय वचन कहकर काम को सन्तुष्ट किया। चरण में सिर झुकाकर और आज्ञा पाकर कामदेव सेना लेकर चले गये।

व्याख्या : जानते हुए भी कि विघ्नाचरण में काम ने कुछ उठा न रक्खा नारदजी को क्रोध नहीं हुआ। उमा संत कइ इहै बड़ाई। मंद करत जो करै भलाई। प्रिय वचन कहकर उसका सन्तोष किया कि ब्रह्माजी ने इसीलिए तुम्हारी सृष्टि की है। सनातन सृष्टि तुम्हारे आधार से चल रही है। तुमने अपना कर्त्तव्य पालन किया। मैं अप्रसन्न नहीं हूँ। इत्यादि। उसे अपने अपराध की गुरुता विचारकर शीघ्र सन्तोष नहीं होता था। सन्तुष्ट होने पर प्रणाम किया। और जाने की आज्ञा पाकर सेना के सहित चला गया।

मुनि सुसीलता आपनि करनी। सुरपति सभा जाइ सब बरनी ॥
सुनि सब कें मन अचरजु आवा। मुनिहि प्रसंसि हरिहि सिरु नावा ॥२॥

अर्थ : मुनि की सुशीलता और अपनी करणी सब जाकर इन्द्र की सभा में वर्णन की। सुनकर सबके मन में आश्चर्य हुआ। मन में मुनि की प्रशंसा करके हरि को प्रणाम किया।

व्याख्या : कामदेव के ऊपर मुनिजी की सज्जनता का बड़ा प्रभाव पड़ा। वह देवसभा में जाकर मुनि की सुशीलता का वर्णन करने लगा कि मेरे इतने अपराध करने पर भी उन्हें क्रोध न आया। मैंने कुछ उठा न रक्खा। नाना प्रकार का प्रपञ्च किया। पर मुनिजी बड़े क्षमाशील हैं। सब क्षमा कर दिया। मुनि की सुशीलता का वर्णन पहिले और अपनी करणी का वर्णन पीछे किया।

सुनकर सबने आश्चर्य किया। को जग काम नचाव न जेही। अर्थात् ऐसा कोई संसार में है नहीं जिसे काम न नचावे। मुनि पर उसका बल क्यों नहीं चला ? अपकारी पर क्रोध होना स्वाभाविक है। क्रोध काम से भी बलवान् है। मुनिजी ने उसे भी जीत लिया। अन्त में हरि को सिर नवाया जो इस प्रकार भक्तों की रक्षा करता है।

तब नारद गवने सिव पाहीं। जिता काम अहमिति मन माहीं॥
मार चरित संकरहि सुनाए। अतिप्रिय जानि महेस सिखाए॥३॥

अर्थ : तब नारद शिवजी के पास गये। मन में अहंकार हुआ कि मैंने काम को जीत लिया। उन्होंने कामदेव का चरित शिवजी को सुनाया। अत्यन्त प्रिय जानकर शिवजी ने सिखाया।

व्याख्या : शत्रु को मरना स्वीकार होता है। प्रणत होना नहीं। काम सभी का शत्रु है और विशेषतः तपस्वियों का। नारद जी सोचते हैं कि सब कला करके काम मुझसे हार गया। अन्त में मेरे सामने प्रणत हुआ। शिवजी की सदा से कामारि नाम से ख्याति है। उन्होंने काम को भस्म कर दिया। पर प्रणत न कर सके। मेरा प्रभाव शिवजी से अधिक हो गया। यह अहङ्कार तो मन में है। बाहर में प्रिय कामजयका समाचार सुनाने चले।

संसार को हरि प्रिय हैं। हरि को हर प्रिय हैं। और हर को नारद प्रिय हैं। यथा : जगप्रिय हरि हर हरप्रिय आपू। भगवान् के अनन्य भक्त होने से शिवजी को अतिप्रिय हैं। सो शिवजी के पास जाकर कामदेव का सब चरित सुनाया। शिवजी ने नारद में अभिमान देखा। अतिप्रिय में यदि दोष देखे तो उसे सिखावन देना उचित है। यथा : कुपथ निवारि सुपंथ चलावा। जिसमें वह किसी दुःख में न आ पड़े। अतः शिवजी ने नारदजी को सिखाया।

बार बार बिनवौं मुनि तोही। जिमि यह कथा सुनायहु मोही॥
तिमि जनि हरिहि सुनावहु कबहूँ। चलेहुँ प्रसंग दुराएहु तबहूँ॥४॥

अर्थ : हे मुने ! मैं तुमसे बारबार विनती करता हूँ कि जिस भाँति यह कथा मुझे सुनाई है उसी भाँति कहीं हरि को न सुनाना। यदि चरचा भी चले तो इस बात को छिपा ले जाना।

व्याख्या : सत्य कथा सुनाने में कोई रोक नहीं। परन्तु सुनाने का ढङ्ग ठीक नहीं है। इससे अभिमान टपकता है। नारदजी हरि के पास जावेंगे ही और यह कथा भी सुनावेंगे। यदि इन्होंने वहाँ भी इसी ढङ्ग से कहा तो इनकी कुशल नहीं। भगवान् गर्वप्रहारी हैं। अतः नारदजी को सिखाते हैं कि इस ढङ्ग से यह कथा हरि को कभी न सुनाना। अच्छा तो यह है कि इस कथा को सुनाना ही नहीं। क्या जाने वहाँ भी तुमसे कहने में बिगड़ जाय। यह भी सम्भव है कि वे स्वयं इस प्रसङ्ग को छेड़ें। फिर भी तुम इस बात को छिपा ही ले जाना।

दो. संभु दीन्ह उपदेस हित, नहिं नारदहिं सोहान।
भरद्वाज कौतुक सुनहु, हरि इच्छा बलवान ॥१२७॥

अर्थ : शिवजी ने तो भले के लिए उपदेश दिया। पर नारद को अच्छा न लगा। हे भरद्वाज ! कौतुक सुनो, हरि की इच्छा बलवती है।

व्याख्या : जिसके ऊपर आपत्ति आनेवाली होती है उसे हितोपदेश अच्छा नहीं लगता। शिवजी ने भले के लिए कहा पर नारद ने समझा कि इन्हें मेरी ख्याति अच्छी नहीं लगती। अकेले आप ही 'कामारि' बने रहना चाहते हैं। याज्ञवल्क्यजी भरद्वाज जी को सावधान करते हैं कि यह कौतुक सुनने योग्य है। शिवजी का वचन भ्रमतम के मिटाने के लिए सूर्य की किरण के सदृश है। सो उसी से नारदजी को भ्रम हो गया। इसी को हरि इच्छा कहते हैं। इसके सामने किसी का बल नहीं लगता। इसी भाँति सती को समझाया था पर उनके भी समझ में बात न आयी तब शिवजी ने विचार किया कि यहाँ हरि इच्छा रूपी बलवती भावी काम कर रही है। सामान्य भावी होती तो मैं मेट देता। यथा : हरि इच्छा भावी बलवाना। हृदय विचारत संभु सुजाना। सो यहाँ तो शिवजी के हितोपदेश से ही भ्रम हो रहा है। इसलिए योगी याज्ञवल्क्य कहते हैं कि हरिइच्छा बलवान।

राम कीन्ह चाहहिं सोइ होई। करै अन्यथा अस नहि कोई ॥
संभु वचन मुनि मन नहिं भाए। तब बिरंचि के लोक सिधाए ॥१॥

अर्थ : जो राम किया चाहते हैं वही होता है। उसे ऐसा कोई नहीं है जो अन्यथा कर सके। शिवजी के वचन मुनि के मन में अच्छे न लगे। तब ब्रह्मलोक चले गये।

व्याख्या : जब से नारदजी के मन में यह बात आई कि मैंने काम को जीता है। यह मेरी विजय है, यह मेरी महिमा है। तब से विजय देनेवाले भक्तवत्सल की कुछ दूसरी इच्छा हो गई। नारदजी अपनी जीत के ख्यापन के फेर में पड़ गये। शिवजी ने देखा कि यह किसी आपत्ति में पड़ा चाहते हैं, इसलिए हितोपदेश दिया। उसका नारदजी को उलटा अर्थ लगा। योगी याज्ञवल्क्य कहते हैं कि हरि इच्छा को शिवजी भी अन्यथा नहीं कर सकते। जिसे बात अच्छी नहीं लगती वह उठकर वहाँ से चला जाता है। सो नारदजी ब्रह्मलोक को चले गये। यह भी नहीं पूछा कि आप क्यों मुझे चरचा करने से रोकते हैं ?

एक बार करतल वर बीना। गावत हरिगुन गान प्रवीना॥
छीर सिंधु गवने मुनिनाथा। जहँ बस श्रीनिवास श्रुति माथा॥३॥

अर्थ : एक बार संगीत कला में निपुण मुनीश्वर नारदजी हाथ में श्रेष्ठ वीणा लिये हुए हरिगुण गाते-गाते क्षीरसागर गये। जहाँ वेदमस्तक श्रीनिवास बसते हैं।

व्याख्या : पहिले शिवजी के पास गये। वहाँ से ब्रह्मदेव के पास गये। अब विष्णु के पास जाते हैं। गान में ऐसे प्रवीण हैं कि वीणा पर गान करते हैं। इस समय जगत् में कोई ऐसा गायक नहीं है जो वीणा पर गान कर सके। तानपूरा पर ही गानेवाले कम हैं। नारदजी रास्ते-रास्ते हरिगुनगान करते चलते हैं।

छन्दांस्यनन्तस्य शिरो गृणन्ति। भागवते। उस सहस्रशीर्षा पुरुष का शिर वेद है इसलिए उन्हें श्रुतिमाथ कहा। उनका नित्य निवास क्षीरसागर में रहता है। नारदजी मुनिनाथ हैं। उनकी अव्याहत गति है। अतएव वहाँ गये नहीं तो क्षीरसागर महा अगम्य है।

हरखि मिलेउ उठि रमानिकेता। बैठे आसन रिषिहि समेता॥
बोले बिहँसि चराचर राया। बहुते दिनन्ह कीन्ह मुनि दाया॥४॥

अर्थ : रमानिकेत उठकर उनसे हर्षित होकर मिले और ऋषिजी के साथ आसन पर बैठे। चराचर के स्वामी भी विहँसे और कहा कि मुनिजी! बहुत दिनों पर आपने दया की।

व्याख्या : हर्षित होकर अभ्युत्थान देना और रमापति का आलिङ्गन करना तथा आधा आसन देना बड़ा भारी सत्कार है। कहा है कि उचित से अधिक सत्कार अनादर के तुल्य है। भाव यह है कि अब आप त्रिदेव के समकक्ष हो गये। काम को जीत लिया। अब ऐसा ही सत्कार होना उचित है।

स्मितपूर्वाभिभाषी हैं सो आज विहँसकर बोल रहे हैं। समझ रहे हैं कि अपनी महिमा सुनाने आगये। माया उनकी हँसी है। यथा : माया हास बाहु दिगपाला। भाव यह कि माया द्वारा भी अगवानी हो रही है। शिवजी का कहना सामने आया। वही प्रसङ्ग चलाया। पूछते हैं कि आपने बहुत दिनों पर दर्शन दिया? कितना स्वाभाविक प्रश्न है। परन्तु इसके गर्भ में यह बात है कि नारदजी को अपने समाधि की कथा तथा कामविजय के वर्णन के लिए अवसर मिले।

काम चरित नारद सब भाखे। जद्यपि प्रथम बरजि सिव राखे॥
अति प्रचंड रघुपति कै माया। जेहि न मोह अस को जग जाया॥४॥

अर्थ : यद्यपि शिवजी ने पहिले ही मना कर रक्खा था। फिर भी नारदजी ने सब कह डाला। रघुपति की माया अति प्रचण्ड है। ऐसा कौन जगत् में पैदा हुआ जिसे उसने न मोहित किया हो।

व्याख्या : शिवजी का सिखावन नारदजी के मन में अच्छा नहीं लगा था। यद्यपि वहाँ उसका स्पष्ट विरोध नहीं किया। पर अवसर आने पर उसके विरुद्ध कार्य

कर ही डाला। कह चले कि मैं समाधि में था। सो इन्द्र भयभीत हो गये। उनका भेजा हुआ कामदेव अप्सरादि के साथ आया। बड़ी बड़ी माया की। जब एक न चली तो शाप के भय से त्राहि त्राहि करके मेरे शरण आया। मुझपर काम का कोई प्रभाव न हुआ। न क्रोध ही आया। काम आश्चर्य में आगया। मेरी बड़ी विनती की। मैंने क्षमा कर दिया।

नारदजी के इस मोह पर उन्हें कोई कम न समझे। संसार में जो पैदा हुआ वह रामजी की माया से मोहित होता ही है। वह बड़ी प्रचण्ड है। उसके आगे किसी का बल नहीं चलता। यथा : सुनु खग प्रबल राम कै माया। जो ज्ञानिन्ह कर चित अपहरई। वरिआई विमोह मन करई।

दो. रूख वदन करि बचन मृदु, बोले श्रीभगवान।
तुम्हरे सुमिरन ते मिटहिं, मोह मार मद मान ॥१२८॥

अर्थ : श्रीभगवान् रूखा चेहरा करके कोमल वचन बोले कि तुम्हारे स्मरण से ही मोह काम और मान का नाश होता है।

व्याख्या : नारदजी को जिन गुणों का अभिमान था उन्हीं को लेकर प्रशंसा करते हैं। जिसकी कृपा से समाधि लगी, जिसकी रक्षा से कामास्त्र निष्फल हुआ, काम पर विजय पाया, उसकी चरचा तक नारदजी नहीं करते। अतः रूखा चेहरा करके बोले : आपका दर्जा वहुत ऊँचा है। काम का विजय आपके लिए बड़ी बात नहीं है। आपका स्मरण करके लोग मोह, काम और अभिमान को जीत लिया करते हैं। वीतराग में चित्त की धारणा करने से समाधि सिद्ध होती है।

सुनु मुनि मोह होइ मन ताकें। ग्यान बिराग हृदय नहिं जाकें ॥
ब्रह्मचरज व्रत रत मतिधीरा। तुम्हहि कि करइ मनोभव पीरा ॥१॥

अर्थ : हे मुनिजी ! सुनिये, जिसके हृदय में ज्ञान विराग नहीं होता उनके मन में मोह होता है। आप तो ब्रह्मचर्य व्रत में रत स्थितप्रज्ञ हैं। क्या आपको काम पीड़ा पहुँचा सकता है ?

व्याख्या : हमलोग तो गृहस्थ हैं। मुझे रमा हैं, शिवजी को उमा हैं, ब्रह्मदेव को सारदा हैं। अतः हमलोग राग और अज्ञान की सीमा के भीतर हैं। आप परिव्राजक हैं, ब्रह्मचर्य व्रत में रत हैं। मतिधीर हैं। दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः। वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते। दुःख में जिनका मन उद्विग्न न हो, सुख की जिसे इच्छा न हो, जिसे राग, भय और क्रोध न हो ऐसे स्थितप्रज्ञ को मुनि कहते हैं। आपके हृदय में ज्ञान वैराग्य है। आपको क्या काम पीड़ा पहुँचावेगा ?

नारद कहेउ सहित अभिमाना। कृपा तुम्हारि सकल भगवाना ॥
करुनानिधि मन दीख विचारी। उर अंकुरेउ गर्व तरु भारी ॥२॥

अर्थ : नारदजी ने अभिमान के साथ कहा : भगवन् ! यह सब आपकी कृपा

है। करुनानिधान ने मन में विचार कर देखा कि : इनके हृदय में भारी अभिमानवृक्ष का अङ्कुर तो हो आया।

व्याख्या : अभिमान के साथ कहने के कारण सच्ची बात भी विनयप्रदर्शन मात्र हो गई। यदि अभिमान के साथ न कहते तो उत्तर बिल्कुल ठीक था : सब कुछ भगवान् की कृपा से हुआ था। करुणानिधि हैं, अभिमान की बात सुनकर उनके कल्याण का विचार करने लगे कि इनकी छाती पर पीपल जम रहा है। यथा : अश्वत्थमेनं सुविरूढमूलम्। यह संसार ही बड़े दृढ़मूल वाला पीपल है। सो अभी अङ्कुर मात्र है।

वेगि सो मैं डारिहौं उखारी। पन हमार सेवक हितकारी॥
मुनि कर हित मम कौतुक होई। अवसि उपाय करबि मैं सोई॥३॥

अर्थ : मैं उसे तुरन्त उखाड़ डालूँगा। हमारा प्रण सेवक हितकारी है। मुनि को भलाई हो और मेरे लिए एक खेल मिल जाय। ऐसा ही उपाय मैं अवश्य करूँगा।

व्याख्या : उस अभिमान वृक्ष के उखाड़ने में जल्दी की आवश्यकता है। शतपत्र न होने पावे नहीं तो बड़ी बड़ी अड़चनें पैदा होंगी। मुझे अपना प्रण सच्चा करना है। सेवक हितकारी मेरा प्रण है, सेवक प्रियवादी प्रण नहीं है।

उपाय ऐसा हो जिसमें मुनि का कल्याण हो और मेरा कौतुक : खेल भी हो। एका क्रिया द्व्यर्थकरी हो। मैं ऐसा उपाय अवश्य करूँगा।

तब नारद हरिपद सिरु नाई। चले हृदय अहमिति अधिकाई॥
श्रीपति निज माया तब प्रेरी। सुनहु कठिन करनी तेहि करी॥४॥

अर्थ : तब नारदजी हरि के चरणों में सिर नवाकर चले। हृदय में अभिमान और बढ़ गया। श्रीपति ने अपनी माया को प्रेरित किया। अब उसकी कठिन करणी सुनो।

व्याख्या : केवल काम पर अपना विजय सुनाने आये थे। वह कार्य हो गया। अतः यथापूर्व हरिपद में सिर नवाकर चले। पर अभिमान और बढ़ गया। सोचने लगे : हरि ने ठीक कहा। त्रिदेव गृहस्थ हैं। ये काम को क्या जीतेंगे? अभिमान को और भी बढ़ता देखकर श्रीपति ने अपनी माया को प्रेरणा की। वह अघटित-घटनापटीयसी है। जो काम तीन काल में सम्भव न हो उसे कर दिलानेवाली है। यथा : लव निमेष महँ भुवन निकाया। रचै जासु अनुसासन माया। चित् के : ब्रह्म के अति दुर्घटस्वातन्त्र्य को माया कहते हैं। लोक में योगी, मन्त्रशास्त्री और ऐन्द्रजालिक थोड़ा सा आच्छादित स्वातन्त्र्य पाकर के युक्ति से दुर्घट घटना घटा देते हैं। तब श्रीपति की माया के लिए क्या कहना है। भासनकाल में भी स्वरूप से अतिवर्त्तन उसकी दुर्घटना है।

दो. बिरचेउ मग महुं नगर तेहि, सत जोजन बिस्तार।
श्रीनिवास पुर तें अधिक, रचना बिबिध प्रकार॥१२९॥

अर्थ : उसने मार्ग में सौ योजन विस्तृत एक नगर की रचना की जिसमें भाँति भाँति की रचनाएँ वैकुण्ठ से भी अधिक थीं।

व्याख्या : जिस रास्ते को पकड़कर नारदजी जा रहे थे उसी रास्ते पर पलक मारते चार सौ कोस का नगर रच दिया। लोकों में सबसे अधिक शोभा वैकुण्ठ की है। सो वहाँ से भी अधिक कारीगरी इस नगर के बनाने में दिखाई गई। जिसमें नारद का मन आकृष्ट हो और नगर देखने आवें। संसार में जितनी अद्भुत वस्तुएँ हैं सब नारदजी की देखी हुई हैं। सबसे सुन्दर वैकुण्ठ है। वह भी नारदजी का देखा हुआ है। अतः वैकुण्ठ से भी अधिक सुन्दर नगर माया ने क्षण भर में बनाया।

बसहिं नगर सुन्दर नर नारी। जनु बहु मनसिज रति तनुधारी॥
तेहि पुर बसइ सील निधि राजा। अगनित हय गय सेन समाजा॥१॥

अर्थ : उस नगर में सुन्दर नर नारी बसते थे। मानो काम और रति ने ही बहुत से शरीर धारण कर रक्खे हों। उस नगर में शीलनिधि नामी राजा रहता था। घोड़े हाथी और सेना की गिनती न थी।

व्याख्या : वैकुण्ठ सा सुन्दर नगर था। इतना ही नहीं वहाँ के निवासी भी वैकुण्ठवासियों की भाँति सुन्दर थे। नर काम से सुन्दर और नारियाँ रति सी सुन्दर थीं।

नगर अभी बना है। परन्तु शीलनिधि राजा उसमें कई पीढ़ी से बसते थे। घोड़े हाथी सेना सब अनेक देश के भिन्न कालों में आये हैं तथा भर्ती हुए हैं इत्यादि। टेहरी राज्य में एक शहर है। जिसका नाम श्रीनगर है। उसे लोग शीलनिधि राजा की राजधानी कहते हैं। प्राचीन श्रीनगर को तो गङ्गाजो बहा ले गईं। अब वहाँ सिवा रमापति के मन्दिर के और कुछ नहीं है। उसी के सन्निकट अब दूसरा श्रीनगर बसा है।

सत सुरेस सम बिभव बिलासा। रूप तेज बल नीति नेवासा॥
बिस्व मोहिनी तासु कुमारी। श्री बिमोह जिसु रूप निहारी॥२॥

अर्थ : उसके वैभव का विलास सौ इन्द्र के समान था। रूप, तेज, बल और नीति का वह निवास स्थान है। उसको विश्वमोहिनी नाम्नी कन्या थी। जिसका रूप[1] देखकर लक्ष्मी भी मोहित हो जाँय।

व्याख्या : विलास ऐसा कि उसके सामने इन्द्र का विलास कुछ नहीं। शीलनिधि राजा वस्तुतः शीलनिधि थे। रूप मोहक होता है। पर बिना तेज के उसकी महत्ता नहीं। दोनों होने पर भी बिना बल के सुभट समाज में आदर नहीं होता। यह सब होने पर भी बिना नीति के राज्य नहीं टिकता। यथा : राजकि रहै नीति बिनु जाने। राजा में सब था।

---

१. यह रूप की अलौकिकता है। नहीं तो लोकरीति यह है कि मोह न नारि नारि के रूपा। पन्नगारि यह रीति अनूपा।

शीलनिधि का व्याह हुए बहुत दिन हो गये थे। उन्हें उस व्याह से एक बेटी भी थी जो व्याहने योग्य हो गई थी। नगर ऐसा सुन्दर बना, निवासी ऐसे सुन्दर, विभव ऐसा, राजा ऐसे फिर कुमारी अलौकिक क्यों न हो? उसे अलौकिक सुन्दरता थी। उसे देखकर लक्ष्मी भी मोहतीं थी। लक्ष्मी को देखकर तो अभी नारदजी चले आ रहे हैं। यदि उनसे अधिक सुन्दरता न हो तो नारदजी मोहेंगे कैसे?

सोइ हरि माया सब गुनखानी। सोभा तासु कि जाइ बखानी॥
करै स्वयम्बर सो नृप बाला। आए तहँ अगनित महिपाला॥३॥

अर्थ : वही सब गुणों की खानि हरि की माया थी। क्या उसकी शोभा वर्णन की जा सकती थी? वह राजकन्या स्वयम्बर करती थी। वहाँ असंख्य राजा लोग आये थे।

व्याख्या : यह सब रचना रचकर वह हरि की माया स्वयं राजा की बेटी बनी। उसकी शोभा कौन कह सकता है। इतना ही नहीं नगर तो अभी बना है। पर उस कन्या का सौन्दर्य तथा स्वयम्बर का समाचार सुनकर देश देश के राजाओं के आये कई दिन हो गये थे। यह हरिमाया की कठिन करणी है। किसी भाँति बुद्धि नहीं काम करती। देश काल का कोई ही नियम ही नहीं रह गया। छोटे से सङ्कीर्ण स्थान में चार सौ कोस का नगर कैसे बना? सम्पूर्ण राजसमाज प्रजामण्डल सहित कहाँ से आगये? स्वयम्बर का समाचार सब देश देश में कब फैला? सब देशों के राजा कहाँ से चले आये? अघटितघटनापटीयसी माया की ऐसी करामात है कि सब असम्भव सम्भव हुआ।

मुनि कौतुकी नगर तेहि गयऊ। पुरबासिन्ह सब पूछत भयऊ॥
सुनि सब चरित भूप गृह आए। करि पूजा नृप मुनि बैठाए॥४॥

अर्थ : कौतुकी मुनि उस नगर में गये। नगर वासियों से सब पूछा। अब चरित सुनकर राजमन्दिर में गये। राजा ने पूजा करके मुनिजी को बिठाया।

व्याख्या : नारद जी के रास्ते में ही नगर पड़ा। बड़ा सुन्दर था। नारदजी ने इसे कभी नहीं देखा था। देश देश के राजा लोग भी नगर के बाहर उतरे हुए थे। जाने का काम कोई न था। पर यह सब समारोह देखकर कौतुकियों से नहीं रहा जाता। सो मुनिजी नगर में चले गये। पता लगाया कि इतना समारोह क्यों है?

स्वयम्बर की कथा सुनकर कौतुक और बढ़ा। राजा के यहाँ चले गये। राजा ने पहचान लिया कि नारदजी हैं। सो उसने पूजा सत्कार करके मुनिजी को बिठलाया।

दो. आनि देखाई नारदहिं, भूपति राजकुमारि।
कहहु नाथ गुन दोष सब, एहिके हृदय बिचारि॥१३०॥

अर्थ : राजा ने राजकुमारी को लाकर दिखाया। और कहा हे नाथ! आप मन में विचार करके इसके गुणदोष कहिये।

व्याख्या : सामुद्रिक शास्त्र द्वारा केवल अवयव संगठन, हस्तरेखा आदि देखकर फल कहा जाता है। स्वयम्बर सन्निकट है। अतः कन्या के विषय में चिन्ता है कि कैसे घर पड़ेगी इत्यादि।

देखि रूप मुनि बिरति बिसारी। बड़ी बार लगि रहे निहारी॥
लच्छन तासु बिलोकि भुलाने। हृदय हरख नहिं प्रगट बखाने॥१॥

अर्थ : रूप देखकर तो मुनिजी वैराग्य भूल गये। बड़ी देर तक देखते रह गये। उसके लक्षण देखकर तो अपने को भूल गये। हृदय में हर्ष हुआ। प्रकट कुछ न कहा।

व्याख्या : मोह न नारि नारि के रूपा। सो उसकी अलौकिक सुन्दरता देखकर लक्ष्मी मोहती थीं। नारदजी तो वैराग्य भूल गये। कभी उन्हें वैराग्य था। यह भी स्मरण न रहा : मोहित हो गये : आँखें उस अलौकिक शोभा में बँध गईं। राजा समझते हैं कि सामुद्रिक से लक्षण मिलान कर रहे हैं।

लक्षण देखकर अपने को ही भूल गये : ज्ञान भी गया : यह भी स्मरण न रहा कि मैं ब्रह्मचर्यरत मुनि हूँ : ऋजुता भी गई : प्रकट बखान नहीं करते। हृदय में हर्ष है कि लोग इसके गुणों से अपरिचित हैं, सो अपरिचित बने रहें : तभी ठीक है। यह तो त्रिदेव की योग्या है। इसके गुण जान जायेंगे तो त्रिदेव में से ही किसी को देंगे। इसलिए प्रकट नहीं कहा।

जो एहि बरै अमर सो होई। समर भूमि तेहि जीत न कोई॥
सेवहि सकल चराचर ताही। बरै सीलनिधि कन्या जाही॥२॥

अर्थ : जो इसे व्याहेगा वह अमर होगा। और संग्रामभूमि में कोई उसे जीत न सकेगा। शीलनिधि की कन्या जिसे वरेगी उसकी सेवा चराचर जगत् करेगा।

व्याख्या : इसका सीधा सीधा अर्थ है कि शीलनिधि की कन्या को अमर, अजेय और चराचर से सेव्य वर मिलेगा। जैसे उमा के लिए अगुण, अमान, उदासीनादि गुणयुक्त वर मिलना लिखा था। उसका यह अर्थ नहीं था कि उमा जिसे व्याहेंगी वह अगुण, अमान और उदासीन हो जायगा। पर मुनिजी इस समय माया के वस में हैं। यह अर्थ लगा रहे हैं कि यदि मेरा व्याह इससे हो जाय तो मैं अमर, अजेय और चराचर से सेव्य हो जाऊँगा। पर कठिनता यह है कि शीलनिधि की कन्या सुन्दर युवा राजकुमार छोड़कर मुझे क्यों वरने लगी। चराचर तो त्रिदेव की सेवा करते हैं अतः इससे व्याह करना और त्रिदेव के समान हो जाना एक बात है।

लच्छन सब बिचारि उर राखे। कछुक बनाइ भूप सन भाखे॥
सुता सुलच्छन कहि नृपपाहीं। नारद चले सोच मन माहीं॥३॥

अर्थ : सब लक्षणों को विचारकर मन में रख लिया। कुछ बातें बनाकर राजा से कह दीं। राजा से कहकर कि कन्या सुलक्षण है नारदजी चले गये। मन में सोचते हैं।

व्याख्या : कहने से बात बिगड़ती है। जब असली बात छिपायी तो कुछ कहने के लिए वात बनानी ही पड़ी। स्त्रीसंग्रह की इच्छा होते ही प्रपञ्च में फँसे। सुलक्षण कन्या के जो गुण हैं वे ही बतला दिये। अलौकिक बातें छिपा रक्खीं। जल्दी है इसलिए चल पड़े। नारदजी प्रभु की विमल कीर्तिगान करते चलते थे। यथा : गावत हरिगुन गान प्रवीना। सो आज वह गान भी बन्द हो गया। क्योंकि मन में सोच है। अब उसे कहते हैं।

करौं जाइ सोइ जतन विचारी। जेहि प्रकार मोहि बरै कुमारी ॥
जप तप कछु न होइ तेहि काला। हे विधि मिलै कवन विधि बाला ॥४॥

अर्थ : जाकर ऐसा यत्न विचारकर करें जिस प्रकार कुमारी मुझे वरे। जप तप उस समय हो नहीं सकता। हे विधाता ! कुमारी किस भाँति हाथ लगेगी।

व्याख्या : सोचते हैं कि मैं तो उसे वरने को तैयार हूँ। यत्न यह करना है कि वह कुमारी मुझे वरे। यत्न में तनिक सी चूक हो जाने से मामला हाथ से निकल जायगा। अतः विचार करके जिसमें निश्चय कार्य सिद्ध हो : ऐसा यत्न करना चाहिए।

यज्ञ कामधेनु है। और यज्ञों में जपयज्ञ उत्तम है। और तप के लिए संसार में कुछ अगम्य नहीं है। ये ही दोनों कार्यसिद्धि के महान् साधन हैं। पहिले मालूम होता तो जप तप करते। पर समय इतना कम है कि दोनों उपायों में से कोई भी सम्भव नहीं है : मुनि हैं, इसलिए जप तप पर ध्यान गया। ये ही तो उपाय उनके जाने हुए थे। अतः कहते हैं कि हे विधि ! हाय रे बाप : तब उसके मिलने की कौन विधि है ? पहिला 'विधि' शब्द उनके पिता ब्रह्मदेव का बोधक है। दूसरा उपाय का बोधक है।

दो. एहि अवसर चाहिअ परम, सोभा रूप बिसाल।
जो बिलोकि रीझै कुअँरि, तब मेलै जयमाल ॥१३१॥

अर्थ : इस अवसर पर परम शोभा और विशाल रूप चाहिए। जिसे देखकर कुमारी मोहित हो जाय तब जयमाल पहिनावेगी।

व्याख्या : कन्या वरयते रूपम्। कन्या तो कुछ नहीं देखती केवल रूप ही देखती है। सो स्वयंवर है। वरण करना कन्या के हाथ में है। वह रूपवान् को वरेगी। सो यहाँ बड़ी चमक दमक और बड़े सौन्दर्य की आवश्यकता है जिसे देखकर यह रीझ जाय। इसके जोड़ की या इससे अधिक शोभा और रूप की आवश्यकता है। वह मुझमें कहाँ से आवे ? पर आना ही चाहिए। नहीं तो वह जयमाल न पहनावेगी।

हरि सन माँगौं सुंदरताई। होइहि जात गहरु अति भाई ॥
मोरें हित हरि सम नहिं कोऊ। एहि अवसर सहाय सोइ होऊ ॥१॥

अर्थ : हरि से सुन्दरता माँगू। पर जाने में बहुत देर लग जायगी। मुझे तो हरि के समान दूसरा कोई हित नहीं है। इस अवसर पर वे ही मेरे सहायक हों।

व्याख्या : इस कन्या के जोड़ की सुन्दरता केवल हरि में है और रूप देने का सामर्थ्य भी है। जप तप नहीं हो सकता तो मँगनी माँगकर ही काम चलालें। पर वे ठहरे क्षीरसागर में। जब से वहाँ जावेंगे तब तक यहाँ स्वयम्बर समाप्त हो जायगा। दूसरा कोई हित उनके समान मेरा है नहीं। जो संकट के समय में काम आवे उसी को हित कहते हैं ! यथा : तोहि सम हितु न मोर संसारा। बहे जात कह भइसि अधारा। सो इस समय वे ही सहाय हों। अर्थात् मैं तो उन तक पहुँच नहीं सकता। पर वे तो आ सकते हैं। आकर सहायता करें।

बहुविधि विनय कीन्हि तेहि काला। प्रगटेउ प्रभु कौतुकी कृपाला ॥
प्रभु बिलोकि मुनि नयन जुड़ाने। होइहि काजु हिएँ हरषाने ॥२॥

अर्थ : उस समय बहुत विधि से बिनती की। कौतुकी और कृपाल प्रभु प्रकट हुए। प्रभु को देखकर मुनिजी के नेत्र शीतल हो गये। और वे मन में बड़े प्रसन्न हुए कि अब काम बन जायगा।

व्याख्या : आर्त पुरुष ही जानता है कि किन किन विधियों से विनय किया जाता है। भक्त भी कौतुकी। यथा : मुनि कौतुकी नगर तेहि गयऊ। भगवान् भी कौतुकी। यथा : प्रगटे प्रभु कौतुकी कृपाला। यहाँ 'कृपाला' कहने का भाव यह कि भगवान् को कौतुक के साथ साथ मुनि का हित भी इष्ट है। यथा : मुनि कर हित मम कौतुक होई।

प्रभु की शोभा और रूप कहते हैं। जो आँखें रूप और शोभा के लिए सन्तप्त थीं वे इस रूप और शोभा को देख ठण्ढी हो गईं। भगवान् का वचन है कि : 'मोर दरस अमोघ जग माहीं। अतः कार्य सिद्धि की आशा दृढ़ हो गई।

अति आरति कहि कथा सुनाई। करहु कृपा करि होहु सहाई ॥
आपन रूप देहु प्रभु मोही। आन भाँति नहिं पावौं ओही ॥३॥

अर्थ : अत्यन्त आर्त होकर कथा कह सुनायी। हे प्रभो ! कृपा करो और कृपा करके सहाय हो। हे प्रभो ! अपना रूप मुझे दो। और किसी भाँति मैं उसे नहीं पा सकता।

व्याख्या : जानते हैं कि दीनदयाल हैं, अतः अत्यन्त आर्त होकर सब वृत्तान्त सुनाया। मनमें अभिलाषा थी कि : एहि अवसर सहाय सो होऊ। अतः कहते हैं कि केवल कृपा से काम न चलेगा। कृपा करके : होहु सहाई।

प्रभु का दिव्य रूप है। अतः दिया जा सकता है। जिस भाँति एक दीपक से दूसरा दीपक जलाया जा सकता है। यथा : गीध देह तजि धरि हरिरूपा। उपाय का निर्णय स्वयं कर लिया। कहते हैं : आन भाँति नहि पावौं ओही। नाम नहीं लेते, मानो ब्याह हो गया है।

जेहि विधि नाथ होइ हित मोरा। करहु सो बेगि दास मैं तोरा ।।
निज माया बल देखि बिसाला। हिय हँसि बोले दीनदयाला ।।४।।

अर्थ : हे नाथ ! जिस विधि से मेरा हित हो वही जल्दी से कीजिये। मैं आप का दास हूँ। अपनी माया का विशाल बल देखकर दीनदयाल हँसकर बोले।

व्याख्या : मैंने तो यही विधि निश्चय की है कि बिना आपका रूप पाये मुझे वह मिल नहीं सकती। परन्तु आप नाथ हैं। यदि किसी दूसरे उपाय से मेरा हित हो सकता हो तो उसे ही शीघ्र कर डालिये। सम्बन्ध की भी याद दिलाते हैं कि मैं आपका दास हूँ।

प्रभु ने अपनी माया का विशाल बल देखा जिसने स्थितव्रत मुनि को आतुर कर दिया। तब प्रभु हृदय में हँसे कि इतने में ही ब्रह्मचर्य व्रत वे भूल गये। अथवा माया की करामात पर हँसे जिसके दर्शन मात्र से इतने बड़े महर्षि अपने स्वरूप को भूल गये हैं। मन में हँसे। प्रकट हँसने से मुनिजी को कष्ट होता। दीनदयाल हैं। नारदजी को दीन देखकर बड़ी दया हुई।

दो. जेहि बिधि होइहि परम हित, नारद सुनहु तुम्हार।
सोइ हम करब न आन कछु, बचन न मृषा हमार ।।१३२।।

अर्थ : हे नारद ! सुनो जिस विधि से तुम्हारा परम हित होगा वही हम करेंगे, दूसरा नहीं। हमारा वचन असत्य नहीं होता।

व्याख्या : भगवान् कहते हैं कि मैं तुम्हारा परम हित करूँगा। क्योंकि तुम मुझे परम हित मानते हो। यथा : मोरे हित हरिसम नहि कोऊ। तुम्हारी प्रार्थना हित के लिए है। अतः मेरा कर्त्तव्य है कि तुम्हारा परम हित करूँ। नारद ! सुनहु का भाव यह है कि मेरे शब्दों पर ध्यान दो। मैं क्या कह रहा हूँ। जो परम हित न होगा वह मैं नहीं करूँगा। मेरे वचन में उलट फेर नहीं होगा। इसलिए कहते हैं कि : वचन न मृषा हमार।

कुपथ[1] माँग रुज ब्याकुल रोगी। बैद न देइ सुनहु मुनि जोगी ।।
एहि बिधि हित तुम्हार मैं ठयऊ। कहि अस अंतरहित प्रभु भयऊ ।।१।।

अर्थ : रोग से व्याकुल होकर रोगी कुपथ्य माँगता है। हे योगी मुनि ! सुनो : वैद्य उसे नहीं देता। इसी विधि से मैंने तुम्हारा हित निश्चय किया है। ऐसा कहकर प्रभु अन्तर्धान हो गये।

व्याख्या : बात को और भी स्पष्ट करते हैं। शरीर के रोग और मानसिक रोग की एक सी गति है। जिस भाँति जितने शूल हैं वे सब वातप्रधान हैं। उसी भाँति विषय मनोरथ सभी कामप्रधान हैं। यथा : विषय मनोरथ दुर्गम नाना। ते सब सूल नाम को जाना। सो इस समय शूल उठा है। रोगी एकदम अस्वस्थ है।

---

१. अप्रस्तुतप्रशंसा अलङ्कार है।

कुपथ्य माँगता है। विषय की आशा करता है। यथा : संयम यह न विषय कौ आसा। भोगी होने की योगी की इच्छा अस्वस्थता है। चिकित्सक उसको कुपथ्य नहीं दे सकता। वह उसका परम हित है। उसके आर्तनाद पर यह कभी ध्यान नहीं देगा।

रोगी विषय को ही हित मानता है। पर चिकित्सक निश्चय किये हुए हैं कि इसे कुपथ्य कभी नहीं देंगे। और इस प्रकार इसका परम हित करेंगे। वह कहता है घबराओ मत। मैं तुम्हारा परम हित करता हूँ। इसी भाँति कहकर प्रभु अन्तर्धान हो गये। जिसमें अधिक वार्तालाप का अवसर न रहे।

माया विवस भए मुनि मूढ़ा। समुझी नहिं हरि गिरा निगूढ़ा॥
गवने तुरत तहाँ रिषि राई। जहाँ स्वयंवर भूमि बनाई॥२॥

अर्थ : माया विवश मुनि मूढ़ हो गये। हरि की स्पष्ट उक्ति को नहीं समझे। ऋषिराज तुरन्त वहाँ गये जहाँ कि स्वयम्बर भूमि रची हुई थी।

व्याख्या : स्पष्ट कहने पर भी जिसकी समझ में बात न आवे वह मूढ़ है। बड़े मनन करनेवाले आज मायावश मूढ़ हो गये हैं। गूढ़ मर्मों के समझानेवाले नारद आज हरि की स्पष्टोक्ति समझने में असमर्थ हैं। विरागियों के शिरोमणि बड़ी त्वरा में हैं कि कैसे स्वयम्बर भूमि में पहुँचूँ, कहीं ऐसा न हो कि मेरी अनुपस्थिति में ही जयमाल किसी दूसरे के गले में पड़ जाय। मुनिजी समझे हुए हैं कि मुझे हरि का रूप मिल गया।

निज निज आसन बैठे राजा। बहु बनाव करि सहित समाजा॥
मुनि मन हरष रूप अति मोरें। मोहि तजि आनहि बरिहि न भोरें॥३॥

अर्थ : सज-धजकर राजा लोग अपने समाज के साथ अपने अपने आसन[1] पर बैठे थे। मुनि के मन में बड़ा हर्ष था कि मुझमें बड़ी सुन्दरता है। मुझे छोड़कर दूसरे को भूलकर भी न वरेगी।

व्याख्या : यहाँ कार्यारम्भ हो गया था। राजा लोग सज-धजकर बैठे थे। शोभा के लिए अथवा रक्षा के लिए समाज भी साथ में था। मुनिजी को दो में एक भी नहीं। फिर भी बड़ा हर्ष मन में है कि मुझे बनाव और समाज नहीं है तो क्या? अत्यन्त रूप तो मुझ में ही है। थोड़ा बहुत रूप में उत्कर्षापकर्ष हो तो कन्या से चूक हो सकती है। मुझे तो हरि का रूप मिला हुआ है। उसके सामने ये राजा क्या हैं? वह मुझे छोड़कर अन्य को भूलकर भी वर नहीं सकती।

मुनि हित कारन कृपानिधाना। दीन्ह कुरूप न जाइ बखाना॥
सो चरित्र लखि काहु न पावा। नारद जानि सबहिं सिरु नावा॥४॥

---

१. रङ्गभूमि में राजाओं के लिए पहिले से ही आसन निश्चित था। कौन किसके दाहिने बैठेगा। कौन बाएँ बैठेगा। इस विषय की व्यवस्था साधारण व्यापार नहीं है। सो वहाँ सब व्यवस्था ठीक थी। राजा लोग अपने अपने आसन पर बैठ गये थे।

अर्थ : मुनि के हित के लिए कृपानिधान ने ऐसी कुरूपता दी कि जिसका वर्णन नहीं हो सकता। परन्तु वह चरित्र किसी ने न जान पाया। सबने नारद जानकर प्रणाम किया।

व्याख्या : कन्या के देखने के लिए जो स्वरूप उन्हें मिला था उसका दर्शन किसी को न हुआ। वह स्वरूप तो उनके हित के लिए मिला था। यदि उसे दूसरे देखते तो उनकी बड़ी अप्रतिष्ठा होती। अतः उसे कोई न देख पाया। न किसी ने यह बात लख पाई कि नारदजी अपने को विष्णुरूप देख रहे हैं। हमलोग नारद रूप देख रहे हैं। और कन्या कुरूप देख रही है। सबने उन्हें नारद जानकर प्रणाम किया। नारदजी समझते हैं कि सब मुझे विष्णु समझकर प्रणाम कर रहे हैं।

दो. रहे तहाँ दुइ रुद्रगण, ते जानहिं सब भेउ।
विप्र वेष देखत फिरहिं, परम कौतुकी तेउ ॥१३३॥

अर्थ : वहाँ दो रुद्रगण थे। वे सब भेद जानते थे। विप्ररूप से सब कुछ देखते फिरते थे। वे बड़े कौतुकी थे।

व्याख्या : नारदजी तो कौतुकी थे ही! पर रुद्रगण परम कौतुकी थे। उनको सब भेद मालूम था। वे भी अपने रूप में नहीं थे। अपने रूप में होते तो 'बिडरि चले बाहन सब भागे' वाली कहावत सार्थक होती। किसी का ध्यान आकर्षित न हो, और न कहीं रोक हो, इसलिए विप्रभेष में थे। वे उनके पीछे कैलाश से ही लगे हुए थे कि देखें इनकी क्या दशा होती है। परम कौतुकी होने से उन्हें आलस्य का नाम नहीं था। उस समाज भर में इस मर्म के जानकार केवल वे दोनों रुद्रगण ही थे।

जेहि समाज बैंठे मुनि जाई। हृदयरूप अहमिति अधिकाई ॥
तहँ बैंठे महेसगन दोऊ। विप्रवेष गति लखै न कोऊ ॥१॥

अर्थ : जिस समाज में मुनिजी जाकर बैठे मन में रूप का अहंकार अधिक हो रहा था। वहीं दोनों रुद्रगण भी बैठे थे। वे दोनों ब्राह्मण के वेष में थे। उनकी गति कोई लखता न था।

व्याख्या : पहिले जिसे काम के जीतने का अभिमान था आज उसी को अपने रूप के अधिक होने का अभिमान हो रहा है। मुनिजी किसी समाज में जाकर बैठ सकते हैं। नारद जानि सबहिं सिरु नावा। नारदजी अपने में विष्णुरूप की धारणा से सर्वत्र अपने को सम्मानार्ह समझते थे। जहाँ नारदजी बैठे वहीं जाकर दोनों रुद्रगण भी बैठे। वे दोनों ब्राह्मण वेष में थे। लोगों ने समझा कि नारदजी के शिष्य हैं। नारदजी ने समझा कि दर्शक हैं। ये कौन हैं? और किस प्रयोजन से यहाँ आये हैं? इस बात का पता किसी को नहीं।

करहिं कूटि नारदहिं सुनाई। नीकि दीन्हि हरि सुंदरताई ॥
रीझिहि राज कुँअरि छवि देखी। इन्हहि बरिहिं हरि जानि बिसेखी ॥२॥

अर्थ : नारदजी को सुना सुनाकर वे व्यङ्गय बोलते थे। हरि ने इन्हें अच्छी सुन्दरता दी है। यह छवि देखकर राजकुमारी लट्टू हो जायगी। और इन्हें विशेष हरि समझकर वरेगी।

व्याख्या : नारदजी को सुनाकर बोली कस रहे हैं। समझते हैं कि इनकी बुद्धि मारी गई है। ये समझ न सकेंगे। वे अपनी बड़ाई ही समझेंगे। नीकि दीन्हि हरि सुंदरताई। इत्यादि की ध्वनि यह है कि : हरि ने इन्हें अच्छा उल्लू बनाया। ये अपने को बड़ा सुन्दर मान रहे हैं। राजकुमारी इन्हें देखकर जल उठेगी समझेगी कि कोई विशेष बन्दर है। 'वरिहि' का अर्थ जल उठेगी और 'हरि' का अर्थ बन्दर भी है। इन शब्दों के प्रयोग से इस बचन को कूट कहा।

मुनिहि मोह मन हाथ पराएँ। हँसहिं संभुगन अति सचुपाएँ॥
जदपि सुनहिं मुनि अटपट बानी। समुझि न परइ बुद्धिभ्रम सानी॥३॥

अर्थ : मुनिजी को मोह हो गया। उनका मन दूसरों के हाथ में है और रुद्रगण को आनन्द हो रहा है। वे हँस रहे हैं। यद्यपि मुनिजी उनकी अटपटी वाणी सुनते हैं। पर बुद्धि भ्रम से सनी हुई है। समझ नहीं पड़ रहा है।

व्याख्या : मन के पराये हाथ में पड़ जाने से फिर उसे कुछ सुधि नहीं रहती। यथा : बिनु मन तन दुख सुख सुधि केही। उनके बात समझने पर रुद्रगण हँसी उड़ा रहे हैं कि ये मुनि हैं। इनकी मननशीलता देखो।

मुनिजी की मननशीलता में त्रुटि नहीं है। पर बुद्धि में भ्रम हो गया है। बुद्धि विषयासक्ति और अभिमान से दूषित हो गई है। अतः ध्वनि व्यंजना समझ नहीं रहे हैं। समझते हैं कि ये कोई जानकार हैं। प्रशंसा कर रहे है।

काहु न लखा सो चरित विसेखा। सो स्वरूप नृपकन्या देखा॥
मरकट वदन भयंकर देही। देखत हृदय क्रोध भा तेही॥४॥

अर्थ : उस विशेष चरित्र को किसी ने नहीं लखा। उस स्वरूप को केवल राजकन्या ने देखा। बन्दर सा मुख और भयङ्कर देह। देखते ही उसके हृदय में क्रोध हुआ।

व्याख्या : एक नारद मुनि के आज तीन रूप दिखाई पड़ रहे हैं। सब लोग तो इन्हें नारद देख रहे हैं। पर वे अपने को विष्णुरूप देख रहे हैं। नृपकन्या मर्कटरूप देख रही है। इस बात को किसी ने न लखा। राजकन्या देखती है कि यह बन्दर सा मुख और भयङ्कर देहवाला कौन है ? इसे मुझे वरण करने की धृष्टता हुई। इस बात से उसके हृदय में क्रोध हुआ। क्रोध करने का समय नहीं था। इससे चुप रह गई।

दो. सखी संग लै कुँअरि तब, चलि जनु राज मराल।
देखत फिरै महीप सब, कर सरोज जयमाल॥१३४॥

अर्थ : तब सखियों को लेकर राजकुमारी राजहंस की भाँति चली। सब राजाओं को देखती फिरती थी। उसके करकमल में कमल की जयमाला थी।

व्याख्या : स्वयम्बर में सखियों के साथ कन्या के आने की चाल है। यथा : संग सखी सुन्दर सकल सादर चलीं लवाइ। राजमराल से उपमा देकर उसकी शोभा और सुन्दर गति की प्रशंसा की। जयमाल हाथ में लिये हुए राजाओं को देखती फिरती है, कोई आँख तले आता नहीं। किसे पहिनावे ? अथवा किसी व्यक्ति विशेष को देख रही हैं। पर वह दिखाई नहीं पड़ रहा है। इसलिए किसी को पहिनाती नहीं। जयमाल हाथ की ही शोभा बढ़ा रही है।

जेहि दिसि बैठे नारद फूली। सो दिसि तेहि न विलोकी भूली ॥
पुनि पुनि मुनि उकसहि अकुलाहीं। देखि दसा हरगन मुसुकाहीं ॥१॥

अर्थ : जिस ओर नारद फूलकर बैठे थे। उस ओर उसने भूलकर भी नहीं देखा। बार बार मुनिजी उसकते और आकुल होते हैं। यह दशा देखकर हरगण मुसकरा रहे हैं।

व्याख्या : रङ्गभूमि में आते ही मुनिजी के अद्भुत रूप पर जो दृष्टि पड़ी तो उनकी धृष्टता पर राजकुमारी रुष्ट हो गई है। जानबूझकर उधर नहीं देखती। देखने में अपना अनादर समझती है। और मुनिजी फूले बैठे हैं कि मुझे छोड़कर वरती किसे है ? जब उसने उस ओर ही न देखा तब घबड़ाए। कहीं इधर देखना ही भूल गई तो अवश्य किसी दूसरे को वर लेगी। अतः आगे खिसकने लगे कि किसी भाँति उसकी दृष्टि पड़ जाय। फिर भी उसने नहीं ध्यान दिया तो अकुलाने लगे कि अब क्या करें।

धरि नृप तनु तहँ गएउ कृपाला। कुँअरि हरखि मेलेउ जयमाला ॥
दुलहिन लेगे लच्छि निवासा। नृप समाज सब भएउ निरासा ॥२॥

अर्थ : कृपालु : हरि : वहाँ राजा का शरीर धारण करके गये। राजकुमारी ने प्रसन्न होकर जयमाल पिन्हाई। लक्ष्मीनिवास दुलहिन लेकर चले गये। सारा राज समाज निराश हो गया।

व्याख्या : कृपालु हैं, कृपा करके ठीक समय पर पहुँच गये। द्विभुजमूर्त्ति होकर गये। जिसमें किसी को देवबुद्धि न हो और नारद भी पहिचान न पावें। कुँअरि इन्हीं को ढूँढ़ती थी। इसलिए प्रसन्न हो उठी और जयमाला पहिना दी। लक्ष्मीनिवास हैं। दुलहिन लेकर चले भी गये। और किसी का किया कुछ न हुआ। उनके प्रभाव से सब दब गये। इससे राजसमाज निराश हो गया। न जाने वह कौन था जो वर ले गया। राजा तो सब जाने हुए हैं। सबके लिए पहिले से आसन निश्चित है। इसके लिए कोई आसन भी नहीं था। खड़े खड़े आया और काम करके चला गया। युद्ध का भी अवसर नहीं है। अतः पूरी निराशा हुई।

मुनि अति विकल मोह मति नाठी। मनि गिरि गई छूटि जनु गाँठी ॥
तब हरगन बोले मुसुकाई। निज मुख मुकुर विलोकहु जाई ॥३॥

अर्थ : मुनिजी अति विकल थे। मोह ने उनकी बुद्धि नष्ट कर दी थी। मानों

गाँठ से छूटकर मणि कहीं गिर गई। तब महादेव के गणों ने मुसकराकर कहा कि दर्पण में जाकर अपना मुख देख लो।

व्याख्या : पूरा राजसमाज विकल हो उठा। पर मुनिजी अत्यन्त विकल हो उठे। क्योंकि उन्हें अपनी सफलता पर पूरी आस्था थी। गाँठ से छूटकर मणि के गिर जाने से अकिंचन को जैसी विकलता होती है वैसी विकलता हुई। हरगणों से अब रहा न गया। बोल बैठे 'दर्पण में अपना मुँह देख लो।' भाव यह कि तुम्हारा मुँह क्या राजकन्या के वरने योग्य है ?

अस कहि दोउ भागे भय भारी। वदन दीख मुनि वारि निहारी॥
वेष विलोकि क्रोध अति बाढ़ा। तिन्हहि सराप दीन्ह अति गाढ़ा॥४॥

अर्थ : ऐसा कहकर दोनों अत्यन्त डरकर भागे। मुनि ने पानी में झाँककर मुँह देखा। वेष देखकर अत्यन्त क्रोध बढ़ा। उनको बड़ा कठोर शाप दिया।

व्याख्या : कह तो दिया। पर पीछे से रुद्रगण अत्यन्त डरे। सोचने लगे कि हमारा सामना पड़ते ही उन्हें हमलोगों का दिल्लगी उड़ाना याद पड़ जायगा। तब शाप देंगे। सामना न पड़ने पर कदाचित् बच जायँ। जल में मुख देखना मना है। फिर भी आतुर होकर जल में ही देखा। भगवान् की लीला अत्यन्त अद्भुत है। जल में उन्हें वह रूप दिखाई पड़ा जो नृप कन्या ने देखा था। तब तो मुनिजी को बड़ा क्रोध हुआ। और पहिले उन रुद्रगणों को बड़ा कठोर शाप दिया।

दो. होहु निसाचर जाइ तुम्ह, कपटी पापी दोउ।
हँसेहु हमहिं सो लेहु फल, बहुरि हँसे मुनि कोउ॥१३५॥

अर्थ : तुम दोनों कपटी और पापी राक्षस होओ। मेरी हँसी की, उसका फल ले लो। अब फिर किसी मुनि की हँसी न करना।

व्याख्या : ब्राह्मण के पद से इतना घोर पतन हो कि निशाचर हो जाओ। तुम ब्राह्मण होने के योग्य नहीं हो। तुम निशाचर होने योग्य हो। तुमको मेरी दुर्दशा पर तनिक दया न आई। उलटा हँसते थे। अतः कर्म का फल मैं दूँगा जिसमें मुनियों पर हँसने की आदत छूट जाय।

पुनि जल दीख रूप निज पावा। तदपि हृदय संतोष न आवा॥
फरकत अधर कोप मन माहीं। सपदि चले कमलापति पाहीं॥१॥

अर्थ : फिर जल में देखा, तो अपना रूप मिल गया था। फिर भी हृदय में सन्तोष न हुआ, ओठ फड़क रहे थे और मन में क्रोध था। जल्दी जल्दी रमापति के पास चले।

व्याख्या : मैंने हरि से उनका रूप माँगा था। सो उन्होंने हमारा रूप भी विगाड़कर वन्दर का रूप कर दिया। अब मुझे इस रूप में जीना होगा। यह समझ क्रोध वहुत वढ़ा। उसी क्रोध में रुद्रगण को शाप भी दे डाला। मन में चिन्ता उठी

क्या मेरा सदा के लिए यह रूप हो गया ? क्या मुझे अपना रूप वापस मिलेगा ? अब तो जो बात हमारी बिगड़नी थी वह हरि बिगाड़ ही चुके। अब तो हमारा रूप वापस दे देना चाहता था। अतः फिर जल में देखा तो मालूम हुआ कि उनका रूप वापस मिल गया। सर्वनाशे समुत्पन्ने अर्धं त्यजति पण्डितः। इस न्याय से मुनिजी को सन्तोष होना चाहता था कि किसी भाँति बन्दर के मुख से तो प्राण बचा पर सन्तोष हुआ नहीं। राजकुमारी के न मिलने की चोट किसी तरह जाती नहीं। अतः शीघ्रता से कमलापति के पास चले। क्रोध की मात्रा में कमी भी नहीं हुई। अधर का फड़कना क्रोध का अनुभाव है।

देहौं साप कि मरिहौं जाई। जगत मोरि उपहास कराई ॥
बीचहिं पंथ मिले दनुजारी। संग रमा सोइ राजकुमारी ॥२॥

जाकर शाप दूँगा या प्राण दे दूँगा। जगत् में मेरी हँसी इन्होंने करायी। मार्ग में ही असुरों के शत्रु मिले और साथ में लक्ष्मी तथा वही राजकुमारी थी।

व्याख्या : कहा सुनी करके शाप दूँगा। यदि शाप न लगा तो प्राण दे दूँगा। संभावित कहँ अपजस लाहू। मरन कोटि सम दारुन दाहू।

दनुजारी कहने का भाव यह कि रुद्रगण के निशाचर होने का शाप हो चुका है। अतः उनके उद्धार के लिए अवतार ग्रहण करना है। रुद्रगण के मारने में समर्थ कौन है ? अतः मुनिजी की पहिली इच्छा को सार्थक करने के लिए बीच रास्ते में ही मिले। क्रोध बढ़ाने के लिए रमा और वही राजकुमारी साथ लिये हैं। दोनों को साथ लेने का यह भाव कि नारदजी जान जायँ कि उनका स्वरूप ही नहीं बिगाड़ा, बल्कि वेष बदलकर राजकन्या को भी वही ले गये। यह भी नहीं कि इन्हें स्त्री का घाटा हो, लक्ष्मीजी साथ हैं ही।

बोले मधुर वचन सुरसाईं। मुनि कहँ चले बिकल की नाईं ॥
सुनत वचन उपजा अति क्रोधा। माया बस न रहा मन बोधा ॥३॥

अर्थ : देवताओं के स्वामी ने मीठे वचन से कहा : मुनिजी ! व्याकुल पुरुषों की भाँति कहाँ चले ? वचन सुनते ही बड़ा क्रोध उत्पन्न हुआ। मायावश होने से ज्ञान नहीं रह गया।

व्याख्या : मुनि अपनी धुन में चले जा रहे थे तो आपने स्वयं बात छेड़ दी। सुरसाईं हैं : जानते हैं कि रुद्रगण निसाचर होकर सुरों को दुःख देंगे। उनकी रक्षा के लिए स्वामी स्वयं शाप पाने का उपाय कर रहे हैं। विकल की नाईं : कहने का यह भाव है कि आप मुनि हैं विकल तो हो नहीं सकते। यथा : ब्रह्मचर्यव्रत रत मति धीरा। तुम्हहिं कि करै मनो भव पीरा। यह विकलता का आभास होगा। अतः विकल की नाईं कहते हैं। पहिले कोप मन में था। अब उमड़ पड़ा। इसके पहिले ज्ञान विराग मन में रहा। यथा : सुनि मुनि मोह होइ मन ताके। ज्ञान विराग हृदय नहिं जाके। अब मायावश हो जाने से ज्ञान नहीं रह गया। परम हितकारी, परम गुरु, परमेश्वर पर आक्षेप करते हैं।

पर संपदा सकहु नहिं देखी। तुम्हरे इरषा कपट बिसेखी॥
मथत सिंधु रुद्रहिं बौराएहु। सुरन्ह प्रेरि बिषपान कराएहु॥४॥

अर्थ : तुम दूसरों की सम्पदा नहीं देख सकते। तुम्हें डाह और कपट अधिक है। सिन्धु मथने के समय महादेव को पागल तुमने बनाया। देवताओं को प्रेरणा करके उन्हें विष तुमने पिलवा दिया।

व्याख्या : तुम्हें सुन्दर स्त्री भी है। तुम अमर भी हो। अजेय भी हो। चराचर तुम्हारी सेवा भी करते हैं। यह सब सम्पदा तुम्हें प्राप्त है। पर ऐसी ही सम्पदा हमें भी प्राप्त हो जाय। यह तुम नहीं देख सकते। डाह से तुमने मेरे साथ कपट किया। डाह तो अन्य देवताओं में भी है। पर तुममें अधिक है।

तुम्हें रुद्र से डर रहा कि ये मुझे अपने मन का नहीं करने देंगे तो उन्हें विष दिलवा दिया। प्राण नहीं गया, पर पागल तो हो गये। यह सब तुम्हारी प्रेरणा से हुआ।

दो. असुर[१] सुरा बिष[२] संकरहिं, आपु रमा मनि चारु।
स्वारथ साधक कुटिल तुम्ह, सदा कपट ब्यवहारु॥१३६॥

अर्थ : असुरों के लिए शराब, शङ्कर के लिए विष और अपने लिए लक्ष्मी और कौस्तुभ। तुम बड़े स्वार्थसाधक और कुटिल हो। तुम्हारा सदा कुटिल व्यवहार चलता है।

व्याख्या : दूसरा भय असुरों से था। उन्हें सुरा दे दी। जब दोनों पागल हो गये तब रमा और कौस्तुभ मणि को स्वयं ले लिया। स्त्री और धन के पीछे तुम्हें विष दिलवाना, मद्य पिलवाना कोई बड़ी बात नहीं है! तुम्हारा स्वार्थ सिद्ध होना चाहिए। स्वभाव से ही कुटिल हो। अतः सदा कपट व्यवहार करते हो। मुझसे भी कपट करके स्त्री तथा तदनुगामिनी सम्पदा हरण कर ली।

परम स्वतंत्र न सिर पर कोई। भावै मनहि करहु तुम्ह सोई॥
भलेहि मंद मंदहि भल करहू। बिसमउ हरख न हिअँ कछु धरहू॥१॥

अर्थ : परम स्वतन्त्र हो। सिर पर कोई है नहीं। जो जी चाहता है वही करते हो। भले का बुरा और बुरे का भला करते हो। तुम्हारे हृदय में न विस्मय होता है न हर्ष होता है।

---

१ अथासीत् वारुणी देवी कन्या कमललोचना। असुरा जगृहुस्तां वै हरेरनुमतेन ते।
तब कमल लोचना कन्यावारुणी उत्पन्न हुई। उसे हरि की अनुमति से असुरों ने ग्रहण किया। भागवत॥

२. प्रीते हरौ भगवति प्रीयेहं सचराचरः। तस्मादिदं गरं भुञ्जे प्रजानां स्वस्तिरस्तु मे।
भगवान् हरि के प्रसन्न होने से मैं चराचर को प्रसन्न करता हूँ। इसलिए मैं यह विष खाता हूँ। मेरी प्रजाओं का कल्याण हो। भागवत।

व्याख्या : परवस जीव स्ववस भगवंता। तुम्हारे सिर पर यदि कोई होता तो तुम इस तरह अन्याय न कर सकते। तुम्हें उचित अनुचित का विचार करना पड़ता। स्वतन्त्र हो। उचित अच्छा लगा तो वही किया। अनुचित अच्छा लगा तो वही कर डाला।

मैं गुण गाता फिरता हूँ तो मुझे वन्दर का रूप दे दिया। और वे राक्षसी वृत्तिवाले जो मेरी दुर्दशा पर आनन्द मनाते थे उन्हें ब्राह्मण का शरीर दे दिया। मन्द करने का तुम्हें विस्मय नहीं। भला करने का हर्ष नहीं।

डहकि डहकि परिचेहु सब काहू। अति असंक मन सदा उछाहू॥
कर्म सुभासुभ तुम्हहि न बाधा। अब लगि तुम्हहि न काहू साधा॥२॥

अर्थ : सबको ठग ठगकर ढीठ हो गये हो। अति अशङ्क होने से तुम्हारे मन में सदा उत्साह रहता है। शुभाशुभ कर्म तुम्हें बाधा नहीं करता। अबतक तुमको किसी ने ठीक नहीं किया।

व्याख्या : कोई ठगाई से नहीं बचा। धर्म करते बलि को ठग लिया। ठग को तो दण्ड का डर रहता है। अतः वह सशङ्क रहता है। तुम सदा अशङ्क हो। क्योंकि तुम्हें दण्ड देनेवाला कोई नहीं। इसलिए सदा उछाह रहता है।

भले भवन अब बायन दीन्हा। पावहुगे फल आपन कीन्हा॥
बंचेहु मोहि जवनि धरि देहा। सोइ तनु धरहु श्राप मम एहा॥३॥

अर्थ : अब अच्छे घर बयना दिया है। अपने किये का फल पाओगे। जिस शरीर को धारण करके तुमने मुझे ठगा है वही शरीर धारण करो। यह मेरा शाप है।

व्याख्या : अच्छे घर बायन देने से उससे भी अच्छा बायन बदले में मिलता है। आज तक तुमने दरिद्रों के घर बायन दिया था। इससे बदले में बायन नहीं मिला। इसबार मुझे बायन दिया है। इसके बदले में बायन मिलेगा। अपने कर्म का फल पाओगे।

कपि आकृति तुम्ह कीन्हि हमारी। करिहहिं कीस सहाय तुम्हारी॥
मम अपकार कीन्ह तुम भारी। नारि विरह तुम होय दुखारी॥४॥

अर्थ : तुमने मेरी आकृति बन्दर की कर दी। तो बन्दर ही तुम्हारी सहायता करेंगे। तुमने मेरा बड़ा अपकार किया। तुम भी स्त्री के विरह में दुःखी होओगे।

व्याख्या : तुम्हारी ऐसी असहायावस्था हो जायगी कि बन्दरों के पास जाकर सहायता चाहोगे। बन्दर तुम्हें सहायता देंगे। तब तुम्हारा संकट से उद्धार होगा। यथा :

एष दत्वा च वित्तानि प्राप्य चानुतमं यशः।
लोकनाथः पुरा भूत्वा सुग्रीवं नाथमिच्छति॥

सीता यस्य स्नुषाचासीच्छरण्यो धर्मवत्सलः।
तस्य पुत्रः शरण्यश्च सुग्रीवं शरणं गतः॥
यस्य प्रसादे सततं प्रसीदेयुरिमाः प्रजाः।
स रामो वानरेन्द्रस्य प्रसादमभिकांक्षते॥
येन सर्वगुणोपेताः पृथिव्यां सर्वपार्थिवाः।
मानिताः सततं राज्ञा सदा दशरथेन वै॥
तस्यायं पूर्वजः पुत्रस्त्रिषु लोकेषु विश्रुतः।
सुग्रीवं वानरेन्द्रं तु रामः शरणमागतः॥
शोकाभिभूते रामे तु शोकार्ते शरणं गते।
कर्तुमर्हति सुग्रीवः प्रसादं सह यूथपैः॥

सीतहरण के बाद जब रामजी शवरी के आश्रम से पंपासर होते ऋष्यमूक पहुँचे वहाँ हनुमानजी से भेंट हुई। उस समय लक्ष्मणजी हनुमान् जी से कहते हैं इन्होंने धन दान देकर अनुत्तम यश प्राप्त किया है। पहिले लोकनाथ रह चुके हैं। सुग्रीव को नाथ बनाना चाहते हैं। जिसकी पुत्रवधू सीता थीं, जो शरण्य और धर्म-वत्सल थे। उस शरण्य के पुत्र सुग्रीव की शरण में आये हैं। जिसके प्रसाद से सदा प्रजा सुखी रहती थी वह रामचन्द्र वानरेन्द्र की कृपा चाहते हैं। जिस महाराज दशरथ ने सर्वगुणोपेत पृथ्वी के सब राजाओं को मान दिया था उनके ज्येष्ठपुत्र, जिनकी ख्याति तीनों लोकों में है वही राम वानरेन्द्र सुगीव की शरण में आये हैं। ऐसे शोकाभिभूत और शोकार्त राम के शरण आने पर सुग्रीव को चाहिए कि सेनापतियों के साथ उनपर कृपा करें। वा. रा. कि.। इस भाँति शाप का साफल्य दिखाया। तुम्हारे कारण मुझे स्त्रीविरह हुआ। तुम भी स्त्रीविरह में ऐसे ही दुःखी होगे।

दो. श्राप सीस धरि हरषि हिय, प्रभु बहु बिनती कीन्हि।
निज माया कै प्रबलता, करषि कृपानिधि लीन्हि॥१३७॥

अर्थ : प्रभु ने शाप को सिरपर धारण करके हृदय में हर्षित होकर बहुत विनती की और कृपानिधि ने अपनी माया की प्रबलता खींच ली।

व्याख्या : शाप को सिरपर चढ़ाया। कहा कि इस शाप से मैं प्रसन्न हूँ। पर आप अप्रसन्न न रहें। इसलिएं बहुत विनती की। दिखला दिया कि वस्तुतः विस्मय हर्ष नहीं है। दण्ड क्रिया नहीं करता प्रत्युत हर्ष का कारण होता है। माया नहीं खींची उसकी प्रबलता खींच ली। पूरी माया खींचं लेने से मोक्ष हो जाता। लीला ही समाप्त हो जाती।

श्रीकृष्णावतार में जैसी स्तुति नारद की भगवान् ने की है। उससे इस विनती का भी कुछ आभास मिल जायगा। अतः उस स्तुति का भी यहाँ उल्लेख किया जाता है :

यह स्तुति स्कन्द पुराण में इस प्रकार है :

अहं हि सर्वदा स्तौमि नारदं देवदर्शनम् ।
महेन्द्रगदितेनैव स्तोत्रेण शृणु तन्नृप ॥१॥
उत्सङ्गाद् ब्रह्मणो जातो यस्याहन्ता न विद्यते ।
अगुप्तश्रुतिचारित्रं नारदं तं नमाम्यहम् ॥२॥
अरतिः क्रोधचापल्ये भयं नैतानि यस्य च ।
अदीर्घसूत्रं तं धीरं नारदं प्रणमाम्यहम् ॥३॥
कामाद्वा यदि वा लोभाद् वाचं यो नान्यथा वदेत् ।
उपास्यं सर्वजन्तूनां नारदं तं नमाम्यहम् ॥४॥
अध्यात्मगतितत्त्वज्ञं ज्ञानशक्तिं जितेन्द्रियम् ।
ऋजुं यथार्थवक्तारं नारदं तं नमाम्यहम् ॥५॥
तेजसा यशसा बुद्ध्या नयेन विनयेन च ।
जन्मना तपसा वृद्धं नारदं प्रणमाम्यहम् ॥६॥
सुखशीलं सुसंवेषं सुभोजं भास्वरं शुचिम् ।
सुचक्षुषं सुवाक्यं च नारदं प्रणमाम्यहम् ॥७॥
कल्याणं कुरुते वाढं पापं यस्मिन्न विद्यते ।
न प्रीयते परार्थेन योऽसौ तं नौमि नारदम् ॥८॥
वेदस्मृतिपुराणोक्तं धर्मं यो नित्यमास्थितः ।
प्रियाप्रियविमुक्तं तं नारदं प्रणमाम्यहम् ॥९॥
अशनादिष्वलिप्तं च पण्डितं नालसं द्विजम् ।
वहुश्रुतं चित्रकथं नारदं प्रणमाम्यहम् ॥१०॥
नार्थे क्रोधे च कामे च भूतपूर्वोऽस्य विभ्रमः ।
येनैते नाशिता दोषा नारदं तं नमाम्यहम् ॥११॥
वीतसम्मोहदोषो यो दृढभक्तिश्च श्रेयसि ।
सुनयं सत्रपं तं च नारदं प्रणमाम्यहम् ॥१२॥
असक्तः सर्वसङ्गेषु यः सक्तात्मेव लक्ष्यते ।
अदीर्घसंशयो वाग्मी नारदं प्रणमाम्यहम् ॥१३॥
नासूयत्यागमं किञ्चित् तपः कृत्येन जीवति ।
अवध्यकालो वश्यात्मा तमहं नौमि नारदम् ॥१४॥
कृतश्रमं कृतप्रज्ञं न च तृप्तं समाधितः ।
नित्ययत्नाप्रमत्तं च नारदं तं नमाम्यहम् ॥१५॥
न हृष्यत्यर्थलाभेन योऽलाभेन व्यथत्यपि ।
स्थिरबुद्धिरसक्तात्मा तमहं नौमि नारदम् ॥१६॥
तं सर्वगुणसम्पन्नं दक्षं शुचिमकातरम् ।
कालज्ञं च नयज्ञं च शरणं यामि नारदम् ॥१७॥

इमं स्तवं नारदस्य नित्यं राजन् जपाम्यहम् ।
तेन मे परमां प्रीतिं करोति मुनिसत्तमः ।।१८।।
अन्योऽपि यः शुचिर्भूत्वा नित्यमेतां स्तुतिं जपेत् ।
अचिरात्तस्य देवर्षिः प्रसादं कुरुते परम् ।।१९।।
एतान् गुणान्नारदस्य त्वमप्याकर्ण्य पार्थिव ।
जप नित्यं स्तवं पुण्यं प्रीतस्ते भविता मुनिः ।।२०।।

भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र महाराज उग्रसेन से कह रहे हैं। मैं देवराज इन्द्र द्वारा किये गये स्तोत्र से दिव्यदृष्टिसम्पन्न श्रीनारदजी की सदा स्तुति करता हूँ। वह स्तोत्र श्रवण कीजिये। जो ब्रह्माजी की गोद से प्रकट हुए हैं। जिनके मन में अहङ्कार नहीं है। जिनका शास्त्रज्ञान और चरित्र किसी से छिपा नहीं है। उन देवर्षि नारद को मैं नमस्कार करता हूँ। जिनमें उद्वेग, क्रोध, चपलता और भय का सर्वथा अभाव है। जो धीर होते हुए भी दीर्घसूत्री : किसी काम में अधिक विलम्ब करनेवाले : नहीं हैं। उन नारदजी को मैं प्रणाम करता हूँ। जो कामना वश अथवा लोभ से झूठी बात मुँह से नहीं निकालते और समस्त प्राणी जिनकी उपासना करते हैं। उन नारदजी को मैं नमस्कार करता हूँ। जो अध्यात्मगति के तत्त्व को जाननेवाले ज्ञानशक्ति सम्पन्न तथा जितेन्द्रिय हैं। जिनमें सरलता भरी है तथा जो यथार्थ बात कहनेवाले हैं। उन नारदजी को मैं प्रणाम करता हूँ। जो तेज, यश, बुद्धि, नय, विनय, जन्म तथा तपस्या सभी दृष्टियों से बढ़े हुए हैं उन नारदजी को मैं नमस्कार करता हूँ। जिनका स्वभाव सुखमय, वेष सुन्दर तथा भोजन उत्तम है। जो प्रकाशमान, पवित्र, शुभदृष्टिसम्पन्न तथा सुन्दर वचन बोलनेवाले हैं। उन नारदजी को मैं प्रणाम करता हूँ। जो उत्साहपूर्वक सबका कल्याण करते हैं। जिनमें पाप का लेश भी नहीं है तथा जो परोपकार करने से कभी अघाते नहीं हैं। उन नारदजी को मैं नमस्कार करता हूँ। जो सदा वेद, स्मृति और पुराणों में बताये हुए धर्म का आश्रय लेते हैं तथा प्रिय और अप्रिय से रहित हैं। उन नारदजी को मैं प्रणाम करता हूँ। जो खानपान आदि भोगों में कभी लिप्त नहीं होते हैं। जो पण्डित, आलस्य रहित तथा बहुश्रुत ब्राह्मण हैं। जिनके मुख से अद्भुत बातें, विचित्र कथाएँ सुनने को मिलती हैं। उन नारदजी को मैं प्रणाम करता हूँ। जिन्हें अर्थ : धन : के लोभ, काम अथवा क्रोध के कारण भी पहले कभी भ्रम नहीं हुआ है। जिन्होंने इन : काम क्रोध लोभ : तीनों दोषों का नाश कर दिया है। उन नारद जी को मैं प्रणाम करता हूँ। जिनके अन्तःकरण से सम्मोह रूप दोष दूर हो गया है। जो कल्याणमय भगवान् और भागवत धर्म में दृढ़भक्ति रखते हैं। जिनकी नीति बहुत उत्तम है तथा जो सङ्कोची स्वभाव के हैं। उन नारद जी को मैं प्रणाम करता हूँ। जो समस्त सङ्गों से अनासक्त हैं तथापि सबमें आसक्त हुए से दिखाई देते हैं। मन में किसी संशय के लिए स्थान नहीं है। जो बड़े अच्छे वक्ता हैं। उन नारदजी को मैं नमस्कार करता हूँ। जो किसी भी शास्त्र में दोषदृष्टि नहीं करते। तपस्या का अनुष्ठान ही जिनका जीवन है। जिनका समय कभी भगवच्चिन्तन

विना व्यर्थ नहीं जाता और जो अपने मन को सदा वश में रखते हैं उन श्री नारद जी को मैं प्रणाम करता हूँ। जिन्होंने तप के लिए श्रम किया है। जिनकी बुद्धि पवित्र एवं वश में है। जो समाधि से कभी तृप्त नहीं होते। अपने प्रयत्न में सदा सावधान रहनेवाले उन नारद जी को मैं नमस्कार करता हूँ। जो अर्थलाभ होने से हर्ष नहीं मानते और लाभ न होने पर मन में क्लेश का अनुभव नहीं करते। जिनकी बुद्धि स्थिर तथा आत्मा अनासक्त है। उन नारद जी को मैं नमस्कार करता हूँ। जो सर्वगुण सम्पन्न, दक्ष, पवित्र, कातरतारहित कालज्ञ हैं उन देवर्षि नारद को मैं भजता हूँ। नारद जी के इस स्तोत्र का मैं नित्य जप करता हूँ। इससे वे मुनिश्रेष्ठ मुझ पर अधिक प्रेम रखते हैं। दूसरा कोई भी यदि पवित्र होकर प्रतिदिन इस स्तुति का पाठ करता है तो देवर्षि नारद बहुत शीघ्र उसपर अपना अतिशय कृपाप्रसाद प्रकट करते हैं। राजन्! आप भी नारद जी के इन गुणों को सुनकर प्रतिदिन इस स्तोत्र का जप करें। इससे वे मुनि आप पर बहुत प्रसन्न होंगे।

जब हरि माया दूरि निवारी। नहिं तहँ रमा न राजकुमारी॥
तब मुनि अति सभीत हरि चरना। गहे पाहि प्रनतारति हरना॥१॥

अर्थ : जब हरि ने माया दूर हटा दी तब वहाँ न लक्ष्मी रह गई न राजकुमारी रह गई। फिर तो मुनि ने अत्यन्त भयभीत होकर प्रभु का चरण पकड़ लिया। और कहा कि हे प्रणत के दुःख हरनेवाले! मेरी रक्षा करो।

व्याख्या : वहाँ रमा और राजकुमारी पहिले भी नहीं थी। पर माया के बल से मुनिजी उनको प्रभु के साथ देखते थे। अब मुनिजी के समझ में आया कि यह सब माया थी। मैंने क्या किया? भगवान् को दुर्वचन कहा : शाप दिया। अतः अति डर गये। चरण पकड़ लिया। 'पाहि पाहि' चिल्लाने लगे।

मृषा होउ मम श्राप कृपाला। मम इच्छा कह दीन दयाला॥
मैं दुर्वचन कहे बहु तेरे। कह मुनि पाप मिटिहिं किमि मेरे॥२॥

अर्थ : हे कृपाल मेरा शाप झूठा पड़ जाय। दीनदयाल ने कहा : यह मेरी इच्छा है। मुनि ने कहा कि मैंने बहुत से दुर्वचन आपको कहे। मेरे पाप कैसे मिटेंगे?

व्याख्या : मुनिजी चरण पकड़कर यही विनती करते हैं कि कृपा करके मेरे शाप को मिथ्या कर दीजिये। दीनदयाल कहते हैं कि वह शाप नहीं था मेरी इच्छा थी। सत्य संकल्प मिथ्या कैसे होगा? भला शाप तो आपकी इच्छा थी; पर मैंने दुर्वचन भी तो बहुत से कहे हैं। इस पाप से मेरी रक्षा कैसे होगी?

जपहु जाइ संकर सत नामा। होइहि हृदय तुरत विश्रामा॥
कोउ नहिं सिव समान प्रिय मोरे। असि परतीति तजहु जनि भोरे॥३॥

अर्थ : जाकर शङ्कर के शत नाम का जप करो। तुरन्त ही हृदय में शान्ति होगी। शिव के समान मुझे कोई प्रिय नहीं है। ऐसा विश्वास भूलकर भी नहीं छोड़ना।

व्याख्या : मुनिजी की शान्ति नष्ट हो गई। माया गई तो दुर्वचन का पश्चात्ताप रह गया। अतः विश्राम का उपाय कहते हैं। अशान्ति शङ्करशतनाम जप से दूर होगी। शङ्कर शतनाम स्तोत्र निम्नलिखित है :

अथ श्रीशिवाष्टोत्तरशतनाममहामन्त्रस्य आदिनारायणऋषिरनुष्टुप्छन्दः श्रीसदाशिवो देवता श्रीसदाशिवप्रीत्यर्थे जपे विनियोगः।

वज्रदंष्ट्रं त्रिनयनं कालकण्ठमरिन्दमम्।
सहस्रकरमत्युग्रं वन्दे देवमुमापतिम्॥
ॐ शिवो महेश्वरः शम्भुः पिनाकी शशिशेखरः।
वामदेवो विरूपाक्षः कपर्दी नीललोहितः॥
शङ्करः शूलपाणिश्च खट्वाङ्गी विष्णुबल्लभः।
शिपिविष्टोऽम्बिकानाथः श्रीकण्ठो भक्तवत्सलः॥
भवः शर्वस्त्रिलोकेशः शितिकण्ठः शिवाप्रियः।
उग्रः कपाली कामारिरन्धकासुरसूदनः॥
गङ्गाधरो ललाटाक्षः कालकालः कृपानिधिः।
भीमः परशुहस्तश्च मृगपाणिर्जटाधरः॥
कैलासवासी कवची कठोरस्त्रिपुरान्तकः।
वृषाङ्को वृषभारूढो भस्मोद्धूलितविग्रहः॥
सामप्रियः स्वरमयस्त्रयीमूर्तिरनीश्वरः।
सर्वज्ञः परमात्मा च सोमसूर्याग्निलोचनः॥
हविर्यज्ञमयः सोमः पंचवक्त्रः सदाशिवः।
विश्वेश्वरो वीरभद्रो गणनाथः प्रजापतिः॥
हिरण्यरेता दुर्धर्षो गिरीशो गिरिशोऽनघः।
भुजङ्गभूषणो भर्गो गिरिधन्वा गिरिप्रियः॥
अष्टमूर्तिरनेकात्मा सात्त्विकः शुद्धविग्रहः।
शाश्वतः खण्डपरशुरजः पाशविमोचकः॥
कृत्तिवासा पुरारातिर्भगवान् प्रमथाधिपः।
मृत्युञ्जयः सूक्ष्मतनुर्जगद्व्यापी जगद्गुरुः॥
व्योमकेशो महासेनो जनकश्चारुविक्रमः।
रुद्रो भूतपतिः स्थाणुरहिर्बुध्न्यो दिगम्बरः॥
मृडः पशुपतिर्देवो महादेवोऽव्ययः प्रभुः।
पूषदन्तभिदव्यग्रो दक्षाध्वरहरो हरः॥
भगनेत्रभिदव्यक्तः सहस्राक्षः सहस्रपात्।
अपवर्गप्रदोऽनन्तस्तारकः परमेश्वरः॥
इमानि दिव्यनामानि जप्यन्ते सर्वदा मया।
नामकल्पलतेयं मे सर्वाभीष्टप्रदायिनी॥

नामान्येतानि सुभगे शिवदानि न संशयः ।
वेदं सर्वस्वभूतात्ति नामान्येतानि वस्तुतः ॥
एतानि यानि नामानि तानि सर्वार्थदान्यतः ।
जप्यन्ते सादरं नित्यं मया नियमपूर्वकम् ॥
वेदेषु शिवनामानि श्रेष्ठान्यघहराणि च ।
सन्त्यनन्तानि सुभगे वेदेषु विविधेष्वपि ॥
तेभ्यो नामानि संगृह्य कुमाराय महेश्वरः ।
अष्टोत्तरसहस्रन्तु नाम्नानुपदिशत्पुरा ॥

इति श्री गौरीनारायणसम्वादे शिवाष्टोत्तरशतनाम सम्पूर्णम् ।

सुनु सुरेस रघुनाथ सुभाऊ । निज अपराध रिसाहिं न काऊ । जो अपराध भक्त कर करई । राम रोष पावक सो जरई । तुमने शिवजी के हितोपदेश का अनादर किया, उनकी स्पर्धा की, उसका फल यह हुआ है । यदि तुम्हें प्रतीति होती कि शिव के समान मुझे कोई प्यारा नहीं तो उनके हितोपदेश का अवहेलन न करते । और तुम्हारा मन भक्ति छोड़कर स्त्री का दास न बनता ।

जेहि पर कृपा न करहिं पुरारी । सो न पाव मुनि भगति हमारी ॥
अस उर धरि महि विचरहु जाई । अब न तुमहिं माया नियराई ॥४॥

अर्थ : जिसपर पुरारि कृपा नहीं करते वह हे मुनि ! मेरी भक्ति नहीं पाता । ऐसा मनमें धारण करके पृथ्वी पर विचरो । अब तुम्हारे निकट माया नहीं आवेगी ।

व्याख्या : मेरी भक्ति शिवजी की कृपा पर अवलम्बित है । ऐसा मन में रखकर पृथ्वी पर विचारो । डरो न कि कहीं फिर माया में फँस जायेंगे । शिक्षा यथेष्ट दे दी गई । तब वर दिया कि अब तुम्हारे निकट माया नहीं आयेगी । परन्तु यह न भूलना कि शिवजी से अधिक प्रिय मुझे कोई नहीं है ।

दो. बहु विधि मुनिहि प्रबोधि प्रभु, तब भये अंतरध्यान ।
सत्य लोक नारद चले, करत राम गुनगान ॥१३८॥

अर्थ : प्रभु बहुत प्रकार से मुनि को समझा बुझाकर तब अन्तर्धान हो गये । नारदजी रामगुण का गान करते सत्यलोक चले ।

व्याख्या : प्रभु हैं, सेवक पर ममता है और प्रीति है इसलिए अनेक विधि से समझाया । यथा :

मेरे ही बलते विजय सदा भक्त को होय ।
पै शिवकृपाकटाक्ष बिनु भक्त होय नहिं कोय ॥
पाइ मोर बल जो करै संकर ते अभिमान ।
अवसि तासु छीजै भगति होय महाहित हान ॥
याते तव अभिमान को दीन्ह्यौं मूल उखारि ।
निज कौतुक के हेतु ही शाप लीन्ह सिरधारि ॥

हानि ग्लानि जिय जनि करौ मानि मोर उपदेस।
प्रीति किये शिवपदकमल नहि कलेस को लेस॥

इस भाँति समझाकर अन्तर्धान हो गये। गुणगान बन्द था फिर आरम्भ हो गया। गुणगान करते सत्यलोक को चले। सत्यलोक ब्रह्मलोक के हीं अन्तर्गत है। परन्तु सबसे ऊँचा है जहाँ ब्रह्मदेव रहते हैं। पिताजी को सब समाचार सुनाने नारदजी वहाँ चले।

हरगन मुनिहि जात पथ देखी। बिगत मोह मन हरष बिसेखी॥
अति सभीत नारद पहँ आये। गहि पद आरत वचन सुनाये॥१॥

अर्थ : हरगणों ने मुनिजी को रास्ते में जाते देखा। लख लिया कि वे विगत-मोह हैं और बहुत हर्षित हैं। बहुत डरे हुए नारदजी के पास आये और उनके चरण पकड़कर आर्त वचन कहे।

व्याख्या : हरगण वहाँ से तो भागे। परन्तु शाप का प्रभाव उनपर पड़ने लगा। हरगण हैं : जान गये कि नारदजी ने शाप दे दिया। अतः अनुग्रह कराने का समय देख रहे हैं। नारदजी ने मोहवश क्रुद्ध होकर शाप दिया था। हरगणों ने देखा कि इस समय विगतमोह भी हैं और हर्षित भी हैं। वरदान पाया है कि : अब न तुम्हहिं माया नियराई। अतः अपराधक्षमापन का यही उपयुक्त समय है।

'अति सभीत' मनसा। 'गहि पद' कर्मणा। 'आरत वचन सुनाये' वाचा। अर्थात् मनसा वाचा कर्मणा नारदजी के शरण गये।

हरगन हम न विप्र मुनिराया। बड़ अपराध कीन्ह फल पाया॥
श्राप अनुग्रह करहु कृपाला। बोले नारद दीन दयाला॥२॥

अर्थ : हे मुनिराज! हम हरगण हैं, विप्र नहीं हैं। बड़ा अपराध किया है, फल भी पाया। हे कृपालु अब शापानुग्रह करिये। दीनदयाल नारदजी बोले :

व्याख्या : शरण आये हैं। अतः रुद्रगण छल कपट का त्याग करते हैं। कहे देते हैं कि हम हरगण हैं, ब्राह्मण नहीं हैं। अर्थात् हमने कपट से ब्राह्मण वेष धारण किया था। बड़ा अपराध किया। आप महात्मा हैं, साधु हैं। आपकी हमलोगों ने हँसी उड़ाई। उसका फल पाया। रोने की बारी आगई। हरगण पद प्राप्त करके राक्षस हुआ चाहते हैं। पतन के लक्षणों का अनुभव हो रहा है।

हम जानते हैं कि शाप नहीं हट सकता। जिसके शाप को भगवान् सिरपर धारण करते हैं उसका शाप हटाने के लिए सोचा भी नहीं जा सकता। परन्तु शापानुग्रह हो सकता है। अतः जो सम्भव हो वही हमारे लिए कीजिये। नारदजी दीनदयाल हैं। उन्हें उनकी दीनता पर दया आगई।

निसिचर जाइ होहु तुम्ह दोऊ। वैभव विपुल तेज बल होऊ॥
भुजबल विस्व जितब तुम जहिआ। धरिहहिं विस्नु मनुज तनु तहिआ॥३॥

तुम दोनों जाकर राक्षस होओ। तुमको बड़ा ऐश्वर्य, तेज और बल हो। तुम

जिस दिन अपनी भुजाओं के बल से संसार को जीत लोगे उसी दिन विष्णु मनुष्य का शरीर धारण करेंगे।

व्याख्या : शापानुसार राक्षस तुम लोगों को होना होगा। अब अनुग्रह यह है कि राक्षसयोनि से ही तुम्हारे दोनों लोक बनेंगे। इस लोक में तुम्हें बड़ा ऐश्वर्य, तेज और बल होगा। तुम लोग अपनी भुजा के बल से संसार को जीतोगे। यथा : भुजबल विस्व वस्य करि, राखेसि कोउ न स्वतंत्र। मंडलीक मनि रावन राज्य करै निज मंत्र। परलोक भी बनेगा। जिस दिन संसार जीत लोगे उसी दिन विष्णु नर रूप में अवतीर्ण होंगे। इस कल्प में रावण ने बहुत दिन तक राज्य नहीं किया।

समर मरन हरि हाथ तुम्हारा। होइहहु मुकुत न पुनि संसारा॥
चले जुगुल मुनिपद सिरु नाई। भये निसाचर कालहि पाई॥४॥

अर्थ : तुम्हारी मृत्यु विष्णु के हाथ से युद्ध में होगी। मुक्त हो जाओगे। फिर संसार में आना न होगा। दोनों मुनि के चरणों पर सिर नवाकर चले और काल पाकर राक्षस हुए।

व्याख्या : रणाङ्गण में सन्मुखमरण का बड़ा माहात्म्य है। यथा : द्वाविमौ पुरुषौ लोके सूर्यमण्डलभेदिनौ। परिव्राट् योगयुक्तश्च रणे चाभिमुखे हतः। अर्थ : ये दो पुरुष इस लोक में सूर्यमण्डल भेदनेवाले हैं : एक तो योगी परिव्राजक और दूसरा रण में सन्मुख मरनेवाला। उसमें भी हरि के हाथ से मरण होगा। तुम लोगों की निर्वाण मुक्ति होगी। जय विजय की भाँति तीन जन्म में नहीं।

दोनों कृतार्थ होकर चले, राक्षस होकर शापानुग्रह के अनुकूल ग्रहस्थिति में उनका जन्म हुआ।

दो. एक कलप एहिं हेतु प्रभु, लीन्ह मनुज अवतार।
सुर रंजन सज्जन सुखद, हरि भंजन भुवि भार॥१३९॥

अर्थ : एक कल्प में इस कारण प्रभु ने मनुष्य का अवतार धारण किया। हरि देवताओं को प्रसन्न करनेवाले सज्जनों को सुख देनेवाले तथा पृथ्वी का भार हरण करनेवाले हैं।

व्याख्या : तीसरे कल्प की कथा है। जिसमें भगवान् क्षीरशायी का रामावतार हुआ। यह नारदजी के शाप के कारण हुआ था। अतः मोर साप करि अंगीकारा। सहत राम नाना दुःख भारा। यह विचार करके नारदजी के अरण्य काण्ड के अन्त में मिलन की कथा इसी अवतार की है।

अवतार के तीन कारण देते हैं : १. सुररञ्जन २. सज्जन सुखद ३. और भंजन भुविभार भी हरि हैं।

एहि विधि जनम करम हरि केरे। सुंदर सुखद बिचित्र घनेरे॥
कलप कलप प्रति प्रभु अवतरहीं। चारु चरित नानाविध करहीं॥१॥

अर्थ : इस विधि से हरि के जन्म और कर्म सुन्दर सुख देनेवाले और बहुत विचित्र हैं। प्रत्येक कल्प में प्रभु अवतार लेते हैं। और अनेक प्रकार की सुन्दर लीलाएँ करते हैं।

व्याख्या : शापादि यद्यपि देखने में अवतार के कारण हैं। पर वस्तुतः उनकी इच्छा ही कारण है। शापादि भी उनकी इच्छा से ही होते हैं। यथा : मृषा होउ मम श्राप कृपाला। मम इच्छा कह दीनदयाला। तथा : निज इच्छा प्रभु अवतरइ सुर महि गो द्विज लागि। इसीलिए प्रभु के जन्म कर्म दिव्य कहे जाते हैं। वे सुन्दर, सुखद और बड़े विचित्र होते हैं।

प्रतिकल्पं भवेद्रामो रावणश्चापि राक्षसः। एवं रामसहस्राणि रावणानां सहस्रशः। भवितव्यानि भूतानि तथा देवी प्रवर्तते। अ. ६१-३९-४१। कालिकापुराण में कहा है कि प्रत्येक कल्प में राम होते हैं और रावण होता है। इस भाँति हजारों राम और हजारों रावण हो गये और होनेवाले है। उसी भाँति देवी भी प्रवृत्त होती हैं। दूसरे अवतार तो कल्प में कई बार होते हैं। पर रामावतार एक कल्प में एक ही बार होता है और प्रत्येक कल्प के चरित्रों में विधिभेद रहता है। चरित्र का ढाँचा प्रायः एक सा होता है।

तब तब कथा मुनीसन्ह गाई। परम पुनीत प्रबंध बनाई॥
विविध प्रसंग अनूप बखाने। करहिं न सुनि आचरजु सयाने॥२॥

अर्थ : तब तब मुनीश्वरों ने बहुत प्रबन्ध बनाकर कथा का गान किया है। अनेक प्रकार के अनोखे प्रसङ्गों का वर्णन किया है। जिसको सुनकर चतुर लोग आश्चर्य नहीं करते।

व्याख्या : कल्पभेद से चरित्र में भेद पड़ता है। प्रत्येक कल्प के चरित्र को मुनीश्वर गान करते हैं। अतः एक रामायण की कथा दूसरे से सर्वत्र मेल नहीं खाती। प्रसङ्गों में भेद पड़ता है। वाल्मीकीय में एक प्रकार की कथा है, अध्यात्म में दूसरे प्रकार की है। अद्भुत में तीसरे प्रकार की और आनन्दरामायण में चौथे प्रकार की। इससे समझदार लोग आश्चर्य नहीं करते।

हरि अनंत हरिकथा अनंता। कहहिं सुनहिं बहु बिधि सब संता॥
रामचंद्र के चरित सुहाए। कलप कोटि लगि ज़ाहिं न गाये॥३॥

अर्थ : हरि अनन्त हैं। हरि की कथा अनन्त है। सन्त लोग उसे बहुत प्रकार से कहा सुना करते हैं। श्रीरामचन्द्र के सुन्दर चरित्र करोड़ कल्पों में भी गाये नहीं जा सकते।

व्याख्या : उनकी स्थिति सदा सर्वत्र है। इसलिए अनन्त हैं। उनके अवतारों की संख्या नहीं हैं इसलिए भी अनन्त हैं एवं उनकी कथाएँ : रामायण : भी अनन्त हैं। अतः सब सन्त उसे अनेक प्रकार से कहते सुनते हैं।

एक एक अवतार के चरित्रों का पारावार नहीं है। यथा : श्रीराम रावन

समर चरित अनेक कल्प जे गावहीं। सत सेष सारद निगम कवितेउ तदपि पार न पावहीं। अतः कहते हैं कि कोटि कल्प तक गाये नहीं जा सकते।

यह प्रसंग मैं कहा भवानी। हरिमाया मोहहिं मुनि ग्यानी॥
प्रभु कौतुकी प्रनत हितकारी। सेवत सुलभ सकल दुख हारी॥४॥

अर्थ : हे भवानी ! मैंने यह प्रसङ्ग कहा कि ज्ञानी मुनि भी हरि की माया से मोहित होते हैं। प्रभु कौतुकी हैं। प्रणत का हित करनेवाले हैं। सेवा करने में सुलभ और सब दुखों के हरण करनेवाले हैं।

व्याख्या : शिवजी उमा से कहते हैं कि तुमने सन्देह किया था। यथा : गिरिजा चकित भईं सुनि बानी। नारद विष्णु भक्त पुनि ज्ञानी। कारन कौन श्राप मुनि दीन्हा। का अपराध रमापति कीन्हा। कि नारदजी को मोह हुआ। यह बड़ा आश्चर्य है। इसलिए मैंने यह प्रसङ्ग कहा कि : ज्ञानी मूढ न कोय : जेहि छन जस रघुवर करहिं। ज्ञानी मुनि भी हरिमाया से मोहित होते हैं। प्रसङ्ग में जो बातें दिखलाई गई हैं उन्हीं को संक्षेप से प्रभु के विशेषण में दिखलाते हैं : १. कौतुकी। यथा : मुनि कर हित मम कौतुक होई। २. प्रनत हितकारी। यथा : जेहि विधि होइहि परमहित नारद सुनहु तुम्हार। सोइ हम करब न आन कछु बचन न मृषा हमार। ३. सेवत सुलभ। यथा : बहु विधि विनय कीन्ह तेहि काला। प्रकटे प्रभु कौतुकी कृपाला। ४. सकल दुःखहारी। यथा : विगत मोह मन हरख विसेखी।

सो. सुर नर मुनि कोउ नाहिं, जेहि न मोह माया प्रबल।
अस विचारि मन माहिं, भजिअ महामाया पतिहि॥१४०॥

अर्थ : देवता, मनुष्य और मुनि ऐसा कोई नहीं है जिसे प्रबल माया न मोह ले। ऐसा मन में विचार करके महामाया के पति को भजना चाहिए।

व्याख्या : सुनु खग प्रबल राम की माया। जो ज्ञानिहु कर चित अपहरई। बरिआई विमोह बस करई। उस महामाया पर केवल उसके पति की आज्ञा चल सकती है : यथा : भृकुटि विलास नचावै जाही। अस प्रभु छाड़ि भजिय कहु काही। क्रोध मनोज लोभ मद माया। छूटहिं सकल राम की माया।

अपर हेतु सुनु सैलकुमारी। कहौं विचित्र कथा विस्तारी॥
जेहि कारन अज अगुन अरूपा। ब्रह्म भयउ कोसलपुर भूपा॥१॥

अर्थ : हे पार्वती ! भगवान् के अवतार का अन्य हेतु सुनो। मैं उनकी विचित्र कथा को विस्तार करके कहता हूँ जिस कारण से अज, अगुण, अरूप ब्रह्म कोसलपुर के भूप हुए।

व्याख्या : अब चौथे कल्प की कथा कहते हैं। तीन कल्पों में विष्णु का रामावतार कहकर अब ब्रह्म का रामावतार कहते हैं। इस अवतार को बल्लभ मत में भी षोडशकल अर्थात् पूर्णावताररूपेण स्वीकार किया है। विष्णु के अवतार का व्याज

प्रायेण कोई न कोई ब्रह्मशाप है, उसकी पूर्ति के लिए हरि का अवतार होता है और ब्रह्म के अवतार में केवल भक्तानुग्रह कारण है। इसी अवतार की कथा विस्तार से कहने को श्रीगोस्वामी जो का संकल्प है। भावार्थ यह कि तीन कल्पों के अवतारों का कारण संक्षेप से कह आये हैं। ब्रह्म के अवतार की कथा विस्तार से कहने का संकल्प है। शेष तीन कल्पों की कथाएँ भी वैसी ही हुई थीं। जहाँ कोई विशेषता आ पड़ी है उसका भी विस्तृत कथा में समावेश कर दिया गया है। वह स्पष्ट मालूम पड़ता है। इस ब्रह्मावतार की विशेषता यह है कि इसमें रघुवीर ने सब चरित्रों को अतिशय रूप में किया है। यथा : एक बार अतिशय सब चरित किये रघुवीर। इसी अवतार में उमा को मोह हुआ था।

अजन्मा, त्रिगुणातीत, स्थूल सूक्ष्म से परे जो ब्रह्म है सो कोसलाधीश हुआ, विष्णु भी उसी निर्गुण ब्रह्म के सगुण स्वरूप हैं। इनके रामावतार में तथा साक्षात् राम ब्रह्म के अवतार में कोई भेद नहीं है। फिर भी परत्वापरत्व का तारतम्य स्वीकार किया जाता है।

जो प्रभु विपिन फिरत तुम देखा। बंधु समेत धरे मुनि वेखा॥
जासु चरित अवलोकि भवानी। सती सरीर रहिहु बौरानी ॥२॥

अर्थ : जिस प्रभु को तुमने भाई के साथ मुनि के वेष में बन में फिरते हुए देखा है। जिसका चरित्त देखकर हे भवानि! तुम सती शरीर में बावली बन गयी थी।

व्याख्या : सती जन्म की याद दिलाते हैं कि उस जन्म में जो तुमने विरहावस्था में रामजी को देखा था वह साक्षात् ब्रह्म का अवतार का चरित बड़ा गहन था। इसी अवतार के चरित ने तुम्हें पागल कर दिया था। इससे उस अवतार का अधिक परत्व कहते हैं।

अजहु न छाया मिटति तुम्हारी। तासु चरित सुनु भ्रम रुजहारी॥
लीला कीन्हि जो तेहि अवतारा। सो सब कहिहौं मति अनुसारा ॥३॥

अर्थ : आज भी तुम्हारे ऊपर से वह छाया हटती नहीं है। उसी का चरित्र सुनो। जो भ्रम रूपी रोग को हरण करनेवाला है। उन्होंने अवतार ग्रहण करके जो लीलाएँ कीं मैं अपनी वुद्धि के अनुसार सब कहूँगा।

व्याख्या : यद्यपि सती शरीर : दक्षशुक्रसम्भव : अब नहीं रह गया। अब तुम्हारा पार्वतीतनु है। फिर भी उस जन्म के पागलपन की छाया : भ्रम : अब भी बना हुआ है। वह भ्रम उनके चरित्र सुनने से ही जायगा। अतः उस अवतार की तो सब लीला मति अनुसार कहेंगे। अर्थात् विष्णु के तीन अवतार की सब कथा नहीं कहेंगे। प्रसङ्गात् कहीं कहीं कहेंगे। लीला से पता चल जायगा कि किस कल्प की कथा हो रही है। यथा : आरण्यकाण्ड में नारद मिलन की कथा ब्रह्म के अवतार वाली नहीं है। स्पष्ट ही वह नारदकल्प की कथा है।

भरद्वाज सुनि संकर बानी। सकुचि सप्रेम उमा मुसुकानीं ॥
लगे बहुरि बरनै वृषकेतू। सो अवतार भयेउ जेहि हेतू ॥४॥

अर्थ : हे भारद्वाज ! शङ्कर की वाणी सुनकर उमा सङ्कुचित हुईं और मुसुकराईं। फिर वृषकेतु, जिस कारण से वह अवतार हुआ उसे वर्णन करने लगे।

व्याख्या : सती सरीर रहिहु बौरानी सुनने से सङ्कोच; सो सब कहिहौं मति अनुसारा सुनने से प्रेम। और अजहुँ न छाया मिटत तुम्हारी सुनने से मुसकराहट। एक जन्म के कर्मफल भोग पूरा हो जाने पर भी कर्मलेश रह जाता है जो दूसरे जन्म का कारण होता है। यह कर्मघाट की बात है। अतः इसे कर्मघाट के वक्ता के मुख से ही कहलाया।

इतना कहकर कर्मघाट के वक्ता योगी याज्ञवल्क्य फिर उमाशङ्कर संवाद आरम्भ करते हैं कि वृषकेतु ब्रह्म के रामावतार का कारण वर्णन करने लगे।

दो. सो मैं तुम सन कहौं सबु, सुनु मुनीस मनलाइ।
रामकथा कलि मल हरनि, मंगल करनि सुहाइ ॥१४१॥

अर्थ : वह सब मैं तुमसे कहता हूँ। हे मुनीश ! मन लगाकर सुनो। रामकथा कलि के मल की हरण करनेवाली, मङ्गल करनेवाली और सुन्दर है।

व्याख्या : वह सब कारण मैं तुमसे कहूँगा क्योंकि तुम मुनीश हो। अर्थात् दूसरे से नहीं कहता। इस कथा में मनको बहुत सावधान रखना। रामकथा में तनिक सी असावधानी करने से पार्वती आज आपत्ति में फँस गई। इसका अनादर नहीं होना चाहिए। क्योंकि इससे महाफलोदय होता है। कलिमल का नाश होकर मङ्गल की प्राप्ति होती है और यह कथा सुन्दर भी है।

स्वायम्भू मनु का इतिहास

स्वायम्भू मनु अरु सतरूपा। जिन्हते भै नर सृष्टि अनूपा ॥
दंपति धरम आचरण नीका। अजहुँ गाव श्रुति जिन्हकै लीका ॥१॥

अर्थ : स्वायम्भू मनु और शतरूपा जिनसे अनूप नर सृष्टि हुई दोनों प्राणियों का आचरण बहुत अच्छा था। आज भी वेद उनके प्रामाण्य का गान करता है।

व्याख्या : ब्रह्मदेव को स्वयम्भू कहते हैं। उनसे उत्पन्न होने के कारण आदि मन्वन्तर के मनु स्वायम्भू कहलाये। ब्रह्मदेव के ही अर्धभाग से स्वायम्भू मनु और दूसरे अर्धभाग से शतरूपा हुईं। अनेक रूप धारण करने से उनका नाम शतरूपा हुआ। इनके पहिले मानसी सृष्टि का प्रचार था। इन्होंने पहिले पहल मनुष्य की सृष्टि की। जिसकी उपमा नहीं है। यथा : नर तन सम नहिं कवनिउ देही। जीव चराचर जाचत जेही। नरक स्वर्ग अपवर्ग निसेनी। ग्यान विराग भगति सुभ देनी।

इनका धर्माचरण इतना उत्तम था कि महर्षियों ने इनसे धर्म पूछा। इनके बतलाये हुए धर्म का ही धर्मशास्त्र बना जिसे मनुस्मृति कहते हैं। इनके बाद पाँच

मन्वन्तर में पाँच मनु हुए। यह सातवाँ वैवस्वत मन्वन्तर चल रहा है। परन्तु स्वायम्भू मनु की ही मनुस्मृति आजतक परम प्रमाण मानी जाती है। वेद भी 'यन्मनुरवदत् तद्भेषजम्' जो मनु कहते हैं वही भवरोग के लिए औषध है कहकर मनु के प्रामाण्य का ख्यापन करता है। वेद अपौरुषेय है। उसमें व्यक्तिविशेष का नाम नहीं है। उसमें जो व्यक्तिविशेष के नाम आते भी हैं वे पदों के नाम हैं। प्रत्येक कल्प जो पहिले मनु होते हैं वे स्वायम्भू कहलाते हैं। और ऐसे ही ज्ञानी महात्मा होते हैं। उनमें से किस स्वायम्भू की चरचा की जाती है। इसे बतलाते हुए कहते हैं कि जिनके बेटे उत्तानपाद और प्रियव्रत हैं।

नृप उत्तानपाद सुत जासू। ध्रुव हरि भगत भयेउ सुत जासू ॥
लघुसुत नाम प्रियव्रत ताही। वेद पुरान प्रसंसहिं जाही ॥२॥

अर्थ : जिसके बेटे राजा उत्तानपाद थे जिसके पुत्र ध्रुव हरिभक्त हुए। उनके : मनु के छोटे बेटे का नाम प्रियव्रत था। जिसकी प्रशंसा वेद पुराण करते हैं।

व्याख्या : स्वायम्भू मनु के सन्तानों की योग्यता कहते हैं। राजा उत्तानपाद उनके पुत्र हुए। उत्तानपाद के पुत्र ध्रुव हुए। जिन्होंने वचपन में ही तप से नारायण को प्रसन्न किया। यथा : ध्रुव सगलानि जप्यौ हरि नाऊँ। पायेउ अचल अनूपम ठाऊँ। मनुजी के दूसरे बेटे प्रियव्रत थे। ये आत्माराम तथा महाभागवत थे। इनकी पुराणों में वड़ी प्रशंसा है। उत्तानपाद और प्रियव्रत दोनों भगवान् के अंश से उत्पन्न थे।

देवहूति पुनि तासु कुमारी। जो मुनि कर्दम कै प्रिय नारी ॥
आदिदेव प्रभु दीन दयाला। जठर धरेउ जेहि कपिल कृपाला ॥३॥

अर्थ : उनकी बेटी का नाम देवहूति था। जो कर्दम मुनि की प्रिय स्त्री थी। आदिदेव, दीनदयाल कृपाल प्रभु कपिल को जिसने गर्भ में धारण किया था।

व्याख्या : कर्दम प्रजापति ने बहुत वड़ी तपस्या करके भगवान् से अपने अनुरूप पत्नी माँगी। तब उन्हें देवहूति तपश्चर्या के फलरूप में प्राप्त हुईं। अतः 'प्रियनारी' कहा। इन्हीं देवहूति के उदर से कपिलावतार हुआ। भावार्थ यह कि पुण्यशील के वंश में ही अवतार होता है।

सांख्यसास्त्र जिन्ह प्रगट बखाना। तत्त्व विचार निपुन भगवाना ॥
तेहि मनु राज कीन्ह बहु काला। प्रभु आयसु सब विधि प्रतिपाला ॥४॥

अर्थ : जिन्होंने सांख्य शास्त्र को प्रकट करके वर्णन किया। भगवान् तत्त्व के विचार में बड़े निपुण थे। उस मनु ने वहुत समय तक राज किया। और प्रभु की आज्ञा का सब प्रकार से पालन किया :

व्याख्या : भगवान् कपिलदेव ने लुप्त हुए सांख्यशास्त्र का उपदेश अपनी माता देवहूति को दिया। यह सेश्वर सांख्य था। इसका वर्णन भागवत में है। कपिलदेवजी के शिष्य आसुरि हुए।

वहत्तर चतुर्युगी के लगभग एक मनु और उनके पुत्रों का राज्य रहता है। इसलिए कहते हैं कि स्वायम्भू मनु ने बहुत काल तक राज्य किया। प्रभु की आज्ञा ही धर्म है। चोदनालक्षणोऽर्थो धर्मः। वेद में जो वाक्य आज्ञारूप से कहे गये हैं। यथा : सत्यं वद, धर्मं चर, मातृदेवो भव। इत्यादि। सत्य बोलो। धर्म करो। माँ को देवता मानो। ये ही धर्म हैं। वेद ईश्वर का वाक्य है। अतः उसकी आज्ञा ईश्वर की आज्ञा है। सो उन आज्ञाओं का मनुजी ने सब भाँति से पालन किया। और आज्ञा पालन से बड़ी दूसरी सेवा नहीं है। यथा : आज्ञा समान सुसाहिब सेवा। अतः उनका राज्य करना भी भगवत्सेवा रूप था। 'सब विधि' कहकर मनुजी का श्रद्धातिरेक दिखलाया।

सो. होइ न विषय बिराग, भवन बसत भा चौथपनु।
हृदय बहुत दुख लाग, जनम गयउ हरि भगति बिनु ॥१४२॥

अर्थ : घर में बसते चौथापन आगया। और विषय से विराग होता नहीं। अतः हृदय में बड़ा दुःख हुआ कि बिना हरिभक्ति के जन्म बीत गया।

व्याख्या : वृद्धावस्था आगई। अर्थात् विषय भोग का सामर्थ्य घट चला फिर भी विषय से विराग नहीं हुआ। स्वयं मनुजी ने कहा है : न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति। हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते। कभी भी विषयोपभोग से काम की तृप्ति नहीं होती। हवि पाकर अग्नि की भाँति वह अधिक बढ़ता है। विषयविराग, बिना विषय में विरसता का ज्ञान हुए नहीं होता। कामी पुरुष को अत्यन्त घृणित अङ्ग में सुन्दरता का बोध होता है। उसमें और विष्ठा के कृमि में कौन अन्तर है? इस प्रकार का विचार करने से विषय विरसता का ज्ञान होता है। विषय वासना का चिरसंस्कार होने से, विरसता का ज्ञान होने पर भी एकाएक विषय नहीं छूटता। जबतक विषयों से हटकर मन हरिचरणों में न लगे तबतक भक्ति का उदय नहीं कहा जा सकता। इतना कर्मकाण्ड करते रहने पर भी बिना भक्ति के मनुजी ने कृतार्थता नहीं मानी। कहते हैं कि : जन्म गएउ हरि भक्ति बिनु। अर्थात् भक्ति से ही जन्म का साफल्य है।

बरबस राज सुतहिं तब दीन्हा। नारि समेत गवन बन कीन्हा ॥
तीरथवर नैमिष विख्याता। अति पुनीत साधक सिधि दाता ॥१॥

अर्थ : राजा ने पुत्र को राज्य आग्रह पूर्वक दिया और स्त्री सहित आप बन को गये। तीर्थों में श्रेष्ठ नैमिष प्रसिद्ध है। वह अत्यन्त पवित्र और साधकों को सिद्धि देनेवाला है।

व्याख्या : पुत्र भी ऐसे विषयविमुख कि राज्य लेने को तैयार नहीं। राजा के आग्रह से उन लोगों ने राज्य स्वीकार किया। महाराज मनु ने गृहस्थाश्रम त्याग करके वानप्रस्थाश्रम में प्रवेश किया। यथा : चौथेपन जाइय नृप कानन।

ब्रह्मदेव से ऋषियों ने तपस्या के लिए पवित्र भूमि पूछी। उन्होंने एक चक्र

दिया कि इसके साथ साथ चले जाओ। जहाँ इसकी नेमि विशीर्ण हो जाय वही स्थल योगयज्ञादि के लिए उपयुक्त है। सो जहाँ पर उसकी नेमि विशीर्ण हुई उसे नैमिष कहते हैं। शौनकादि ऋषियों ने यहीं एक सहस्र वर्ष का दीर्घ यज्ञ किया और यहीं सूतजी ने अठारह पुराण और महाभारत ऋषियों को सुनाया। सत्ययुग का तीर्थ पुष्कर है और त्रेता में नैमिष का अधिक माहात्म्य सुना जाता है। जहाँ चक्र की नेमि विशीर्ण हुई है उसे चक्रतीर्थ कहते हैं। वहीं पर समाधियाँ बनी हुई हैं। जिनमें से एक को लोग मनु-शतरूपा की और दूसरी को कश्यप-अदिति की बतलाते हैं। नैमिषारण्य आजकल नीमसार कहलाता है।

बसहिं तहाँ मुनि सिद्ध समाजा। तहँ हिय हरषि चलेउ मनु राजा॥
पंथ जात सोहहिं मतिधीरा। ग्यान भगति जनु धरें सरीरा॥२॥

अर्थ : वहाँ मुनि और सिद्धों का समाज वसता था। वहीं मनुराजा हर्षित-हृदय से चले। धीरमतिवाले राजा और रानी मार्ग में चलते हुए ऐसे शोभित हुए, जैसे ज्ञान और भक्ति शरीर धारण किये हों।

व्याख्या : सत्सङ्ग की सुलभता अथवा जङ्गम प्रयागराज की उपस्थिति भी दिखलाते हैं। जहाँ साधक को सिद्धि सुलभ हो वहीं मुनिसिद्धसमाज वसता था। महाराज मनु जन्म को सफल करने चले हैं। अतः बड़े हर्षित हैं। यात्रा में हर्ष कार्य-सिद्धि का द्योतक है। ममता का बन्धन तोड़ने में समर्थ हुए हैं। इसलिए भी हर्ष है। ज्ञान और भक्ति दोनों में ममत्वत्याग का विधान है। राजा-रानी में गृह कुटुम्ब की ममता नही है। इसलिए ज्ञान और भक्ति से उपमित किया।

पहुँचे जाइ धेनुमति तीरा। हरखि नहाने निरमल नीरा॥
आए मिलन सिद्ध मुनि ग्यानी। धरम धुरंधर नृपरिषि जानी॥३॥

अर्थ : गोमती के किनारे पहुँच गये और निर्मल जल में हर्षित होकर स्नान किया। ज्ञानी मुनि और सिद्ध लोग राजा को धर्मधुरन्धर और राजर्षि जानकर मिलने आये।

व्याख्या : नैमिषारण्य में गोमती नदी वहती हैं। ये आदिगङ्गा कहलाती हैं। महाराज ने हर्षपूर्वक यात्रा भी आरम्भ की और तीर्थ में पहुँचकर स्नान भी किया।

मुनिसमाज में राजा का आदर है। उनके आने पर सब लोग मिलने आये। यहाँ ऐश्वर्य का मान नहीं है; धर्म, भक्ति और ज्ञान का मान है।

जहँ तहँ तीरथ रहे सुहाए। मुनिन्ह सकल सादर करवाए॥
कृस सरीर मुनिपट परिधाना। सत समाज नित सुनहिं पुराना॥४॥

अर्थ : जहाँ जहाँ सुन्दर तीर्थ हैं मुनियों ने आदरपूर्वक सबकी यात्रा राजा-रानी को करवायी। शरीर दुर्बल हो गया है। वल्कल पहिने हुए सत् समाज में पुराणश्रवण करते हैं।

व्याख्या : नैमिषारण्य की प्रदक्षिणा चौरासी कोस की सुनी जाती है। वहाँ सभी तीर्थों का निवास है और श्रद्धालु यात्री सबकी यात्रा करते हैं। मुनि लोग उनके जानकार हैं। अतः राजा-रानी को सब तीर्थों में लिवा ले गये और आदर के साथ सब धर्मकृत्य पूरा करवाया।

मुनिधर्म का आचरण करने से शरीर कृश हो गया है। मुनिपटपरिधान से भूषण भोग और वस्त्र का त्याग कहा। हरिभक्ति का मूल कारण सत्सङ्ग और कथा-श्रवण द्योतित किया।

दो. द्वादस अच्छर मंत्र पुनि, जपहिं सहित अनुराग।
वासुदेव पद पंकरुह, दंपति मन अति लाग ॥१४३॥

अर्थ : मन्त्रों में श्रेष्ठ द्वादशाक्षर का जप अनुराग के साथ करते थे। वासुदेव के चरणकमलों में राजा-रानी का मन अत्यन्त लग गया।

व्याख्या : ॐ नमो भगवते वासुदेवाय यही द्वादशाक्षर मन्त्र है। इसी का जप मनुशतरूपा करते थे। यद्यपि द्वादशाक्षर अनेक मन्त्र हैं। परन्तु वासुदेव पद पंकरुह दंपति मन अति लाग। इस उक्ति से उपर्युक्त मन्त्र की ही पुष्टि होती है। यहाँ वासुदेव से वासुदेवस्य अपत्यं पुमान् वसुदेव का पुत्र अर्थ नहीं करना होगा। क्योंकि पुराणों में वासुदेव शब्द का अति उदार अर्थ पाया जाता। श्री विष्णुपुराण में कहा है :
सर्वाणि तत्र भूतानि वसन्ति परमात्मनि। भूतेषु च स सर्वात्मा वासुदेवस्ततः स्मृतः ॥
खाण्डिक्यजनकायाह पृष्टः केशिध्वजः पुरा। नामव्याख्यामनन्तस्य वासुदेवस्य तत्त्वतः ॥
भूतेषु वसते सोऽन्तर्वसन्त्यत्र च तानि यत्। धाता विधाता जगतां वासुदेवस्ततः प्रभुः ॥

उस परमात्मा में ही सब भूत बसते हैं और वे भी सबके आत्मा रूप से सकल भूतों में विराजमान हैं। इसलिए उन्हें वासुदेव कहते हैं। पूर्व काल में खाण्डिक्य जनक के पूछने पर केशिध्वज ने उनसे भगवान् अनन्त के वासुदेव नाम की यथार्थ व्याख्या इस प्रकार की थी। प्रभु समस्त भूतों में व्याप्त हैं और समस्त भूत भी उन्हीं में रहते हैं। तथा वे ही संसार के रचयिता और रक्षक हैं। इसलिए वे वासुदेव कहलाते हैं। अतः यही द्वादशाक्षर मन्त्र है। श्रीरामतापनीय में तो इसका इतना माहात्म्य कहा है कि इसे साक्षात् रामरूप ही बतलाया है। यथा : ॐ यो ह वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान् अद्वैतपरमानन्दात्मा य ॐ नमो भगवते वासुदेवाय भूर्भुवः स्वः तस्मै वै नमो नमः। अतः दूसरे द्वादशाक्षर की कल्पना में मैं कोई कारण नहीं देखता। स्वायम्भू मनु की तपस्या की कथा कालिकापुराण में मिलती है और उसमें भी वासुदेव के जाप का ही उल्लेख है। यथा : ओं नमो वासुदेवाय शुद्धज्ञानस्वरूपिणे। इति जप्यं प्रजपतो मनोः स्वायम्भुवस्य च। प्रससाद जगन्नाथः केशवो नचिरादथ। अर्थ : ओं नमो वासुदेवाय शुद्धज्ञानस्वरूपिणे इसे जपते हुए स्वयम्भू मनु पर जगन्नाथ केशव ने शीघ्र ही कृपा की। यहाँ शुद्धज्ञानस्वरूपिणे पद भगवते का अनुवाद है। यथा : ज्ञानशक्तिबलैश्वर्यं वीर्यतेजांस्यशेषतः। भगवच्छब्दवाच्यानि विना हेयैर्गुणा-

दिभिः । अर्थ : त्याग करने योग्य गुण आदि को छोड़कर ज्ञान, शक्ति, बल, ऐश्वर्य, वीर्य और तेज आदि सद्गुण भगवत् शब्द के वाच्य हैं ।

करहिं अहार साक फल कंदा । सुमिरहिं ब्रह्म सच्चिदानंदा ॥
पुनि हरि हेतु करन तप लागे । बारि अहार मूल फल त्यागे ॥१॥

अर्थ : शाक फल कन्द का आहार करते हैं और सच्चिदानन्द ब्रह्म का स्मरण करते हैं । फिर हरि के लिए तप करने लगे, फूल-फल छोड़कर केवल जल आहार रह गया ।

व्याख्या : अन्नाहार छोड़ दिया । वन्य शाक फल कन्द का आहार करने लगे। जिसका मन्त्र जपा जाता है उसी का ध्यान किया जाता है । उसी का स्मरण किया जाता है । उसी के लिए तपस्या होती है । यहाँ वासुदेव शब्द का अर्थ स्पष्ट हो गया : ब्रह्मसच्चिदानन्द को वासुदेव कहते हैं । वही राम हैं। यथा : राम सच्चिदानंद दिनेसा । यह मनुजी की दिनचर्या है । द्वादशाक्षर मन्त्र जप करते-करते वासुदेव के चरणों में मन अत्यन्त लग गया । अतः जप से विरत होने पर भी उन्हीं ब्रह्म सच्चिदानन्द का सुमिरन करते हैं । क्षुधा शान्त करने के लिए वन्य शाक फल कन्द खा लेते हैं ।

यहाँ तक तो जप होता रहा । अब तप भी आरम्भ हुआ । अनशन परम तप है । सो कन्द फल शाक भी छोड़ दिया । केवल जल का आधार रह गया । असाध्य साधन तो तप से ही होता है ।

उर अभिलाष निरंतर होई । देखिअ नयन परम प्रभु सोई ॥
अगुन अखंड अनंत अनादी । जेहि चिंतहिं परमारथवादी ॥२॥

अर्थ : बराबर मन में यही अभिलाषा होती थी कि उस प्रभु को आँख से देखें । जो निर्गुण, अखण्ड, अनन्त और अनादि हैं । परमार्थवादी जिनकी चिन्ता करते हैं ।

व्याख्या : प्रेम बढ़ने से भगवद्दर्शन के लिए प्राण समाकुल हो उठे। ध्यान में दर्शन से सन्तोष न हुआ । आँखों से देखना चाहते हैं । यथा : भरिलोचन विलोकि अवधेसा । तब सुनिहौं निरगुन उपदेसा । ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र प्रभु हैं । श्रीरामजी महाप्रभु हैं । महाप्रभु का स्वरूप कहते हैं ।

जो प्रकृतिपार होने से निर्गुण है । निरवयव होने से अखण्ड है । नाशरहित होने से अनन्त है । अज होने से अनादि है । ब्रह्मवादी जिसका चिन्तन करते हैं । एक क्षण भी बिना चिन्तन के व्यतीत नहीं होने देते ।

नेति नेति जेहि बेद निरूपा । निजानंद निरुपाधि अनूपा ॥
संभु बिरंचि बिष्णु भगवाना । उपजहिं जासु अंस तें नाना ॥३॥

अर्थ : जिसे वेद नेति-नेति कहकर निरूपण करता है। जो निजानन्द,

उपाधिरहित और उपमारहित है। जिसके अंश से अनेक ब्रह्मा, शम्भु और विष्णु भगवान् उत्पन्न होते हैं।

व्याख्या : नेति-नेति अर्थात् 'यह भी नहीं, यह भी नहीं' कहकर वेद भी निरूपण करता है। भावार्थ यह कि वेद कहता है कि स्थूल भी नहीं है, सूक्ष्म भी नहीं है। दोनों अवस्थाओं के निषेध से कोई अभावात्मक न समझ ले। इसलिए निजानन्द अर्थात् स्वरूपानन्द रूप कहा। उसे निजानन्द इसलिए कहते हैं कि उसमें अहंकार नहीं है। जितना-जितना अभ्यासयोग से अहंकार की विस्मृति होती है उतना ही सूक्ष्मदृष्टि से निजानन्द का अनुमान होता है। यथा : यावद्यावदहंकारो विस्मृतोऽभ्यासयोगतः। तावत्तावत् सूक्ष्मदृष्टेर्निजानन्दोऽनुमीयते। जाति, गुण, क्रिया और संज्ञा, यही चार प्रकार की उपाधियाँ हैं। उसमें ये चारों नहीं हैं। इसलिए वह निरुपाधि कहलाता है। उसके सदृश कुछ नहीं है। इसलिए वह अनूप है। ऐसा महाप्रभु नयन का विषय कैसे होगा ?

त्रिगुण के अधिष्ठाता त्रिदेव भगवान् हैं। उत्पत्ति-स्थिति-नाश में समर्थ हैं। ऐसे-ऐसे अनेक त्रिदेव उसके अंश : प्रतिविम्ब : से उत्पन्न होते हैं। ऊपर अखण्ड कह आये हैं। अतः वह निरंश है फिर भी अंश कहने से 'अंश इव अंश' ग्रहण करना पड़ेगा। जिस भाँति प्रतिविम्ब विम्ब का 'अंश इव अंश' है। यथा : लोक लोक प्रति भिन्न विधाता। भिन्न विष्णु सिव मनु दिसित्राता। इत्यादि। विधिहि विधिता हरिहिं हरिता, हरहिं हरता जिन्ह दई। सो जानकीपति मधुर मूरति मोदमय मंगलमई। वि. प.।

ऐसेउ प्रभु सेवक बस अहई। भगत हेतु लीला तनु गहई॥
जौं यह बचन सत्य श्रुति भाषा। तौ हमार पूजिहि अभिलाषा॥४॥

अर्थ : ऐसे प्रभु भी सेवक के वश में हैं और भक्त के लिए लीला से शरीर धारण करते हैं। यदि यह वचन वेद ने सत्य कहा हो तो मेरी अभिलाषा भी पूरी होगी।

व्याख्या : सभी सेवा के वशीभूत हैं। पर वे प्रभु लौकिक नियमों के अधीन नहीं हैं। क्योंकि वे जगत् से विलक्षण हैं। अतः समझा जा सकता है कि वे सेवा के वशीभूत न होंगे। पर ऐसी बात नहीं है। सेवा के वश्य वे भी हैं। स्वयं प्रयोजन न होने पर भी निर्विकार और असङ्ग होते हुए भी भक्तों के लिए लीलाशरीर धारण करते हैं।

मनुजी वेदमय हैं। अतः वेद के बल पर तप ठान दिया कि यदि वेद ने सत्य कहा है तो मेरी अभिलाषा की पूर्ति न होने का कारण नहीं है। इस भाँति सत्तर्क का आश्रयण करके सीधे-सीधे साधन में लग जाना चाहिए। सत्तर्क से उत्पन्न हुई श्रद्धा को पाकर मनुष्य फल का भागी होता है। श्रद्धा से पौरुष में लगा हुआ पुरुष सर्वथा मारा नहीं पड़ता। दृढ़ पौरुष से अवश्य फल होता है। वेदवचन यथा :

रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव तदस्य रूपं प्रतिचक्षणाय।

इन्द्रो मायाभिः पुररूप ईयते युक्ताह्यस्य हरयः शतादश ।

ऋ. मं. ६. अ. ४. सू ४७ मं. १८

सकल ऐश्वर्ययुक्त परमेश्वर माया से : राम कृष्णादि : अनेक रूप धारण करता है । परमेश्वर का वह रूप भक्तों के दर्शन के लिए है । रावणादि को दण्ड देने के लिए जैसा-जैसा रूप आवश्यक था, वैसा-वैसा धारण किया । क्योंकि भगवान् के रूप अनन्त हैं : मुख्यतः दश हैं । भक्तियुक्त होकर जिसने उसका जैसा ध्यान किया वैसा ही उस भक्तचिन्तामणि ने रूप धारण किया उसके देह की इच्छामात्र से परिकल्पित होने से उसकी देह भी पराचिति चेतन है । वह पराचिति ही अभिन्न होकर भिन्न सी भासती है ।

दो. एहि विधि बीते बरष षट, सहस बारि अहार ।
संवत सप्त सहस्र पुनि, रहे समीर अधार ॥१४४॥

अर्थ : इस प्रकार जल का आहार करते हुए छः हजार वर्ष बीत गये । फिर सात हजार वर्ष हवा के आधार पर रहे ।

व्याख्या : पहिला तप छः हजार वर्ष का किया । क्रम से तपस्या बढ़ाते गये । पहिले कुछ दिन शाक फल कन्द खाते रहे । फिर उसे कम करते-करते अपने को केवल जल पर उतार दिया । केवल जल पीकर रहना जब से आरम्भ किया तब से पहिला तप चला । धीरे-धीरे जल कम करने लगे । और अपने को वायु पर उतारने लगे । छः सहस्र वर्ष में एकदम जल छोड़ने में समर्थ हो गये । अतः पहिला तप पूरा हुआ । फिर धीरे-धीरे वायुपान भी कम करने लगे । सो एकदम निराधार हो जाने में सात सहस्र वर्ष लगे । तब दूसरा तप समाप्त हुआ ।

बरष सहस दस त्यागेउ सोऊ । ठाढ़े रहे एक पग दोऊ ॥
बिधि हरि हर तप देखि अपारा । मनु समीप आए बहुबारा ॥१॥

अर्थ : दश हजार वर्षों तक उसे भी छोड़ दिया । दोनों एक पैर से खड़े रहे । ब्रह्मा, विष्णु और शिव उनका अपार तप देखकर उनके पास बहुत बार आए ।

व्याख्या : फिर निराधार एक पग से खड़े हो गये । भाव यह कि इसके पहिले दोनों पग से खड़े थे । जैसी तपस्या मनुजी के लिए कही गई है वही शतरूपा के लिए भी समझनी चाहिए । दशसहस्र वर्ष तक निराधार रहना तीसरी तपस्या है । पहिले तपस्या पर ब्रह्मदेव आये । दूसरी में ब्रह्मा और विष्णु दोनों देव आये । तीसरी में ब्रह्मा विष्णु और शिव तीनों आये । अव्यक्त के अभिमान से आविष्ट होकर ईश्वर ही रुद्र, हरि और ब्रह्मदेव के रूप से तीन प्रकार के होकर दृश्यादृश्य के अवभासक हुए ।

माँगहु बर बहु भाँति लोभाए । परम धीर नहिं चलहिं चलाए ॥
अस्थि मात्र होइ रहे सरीरा । तदपि मनाग मनहिं नहिं पीरा ॥२॥

अर्थ : बहुत भाँति से ललचाया कि वर माँगो । परमधीर हिलाये नहीं

हिले। शरीर में केवल हड्डी रह गई। फिर भी उनके मन में तनिक भी पीड़ा नहीं थी।

व्याख्या : 'इन्द्र पद लो, ब्रह्मलोक लो, वैकुण्ठ लो, कैलास लो। गुण रहित ब्रह्म इन्द्रिय का विषय नहीं है। वह तो अनुभवगम्य है। यदि मिश्र ब्रह्म का दर्शन भी हो गया तो क्षण भर के लिए हो जायगा। हम लोग भी तो वही हैं। कुछ भी कामना यदि तुम्हें नहीं तो मोक्ष माँगो। हम तुम्हें देंगे। ऐसा त्रिदेवों ने कहा परन्तु मनुजी के निश्चय में परिवर्तन नहीं हुआ। यथा : लोचन चातक जिन्ह करि राखे। रहहिं दरस जलधर अभिलाखे। निदरहिं सरित सिंधु सरवारी। रूपविन्दु जल होहिं सुखारी। साधक को यही उचित है कि सर्वथा साध्य की ही मुख्य करके साधना करे।

तेईस सहस्र वर्ष की कठिन तपस्या से रक्तमांसादि सब सूख गये। सत्ययुग में अस्थिगत प्राण रहा। सब धातुओं के सूख जाने पर हड्डी-हड्डी रह गई। फिर भी प्राण नहीं गया। भक्ति के प्रभाव से मन भावना में लग गया। देह की ओर था ही नहीं। अतः तनिक भी दुःख का अनुभव नहीं हुआ। यथा : मन तहँ जहँ रघुवर वैदेही। विनु मन तन दुःख सुख सुधि केही।

प्रभु सर्वग्य दास निज जानी। गति अनन्य तापस नृपरानी॥
माँगु माँगु वर भै नभ बानी। परम गँभीर कृपामृतसानी॥३॥

अर्थ : सर्वज्ञ प्रभु ने जान लिया कि निज दास हैं। और मुझे छोड़कर इन्हें दूसरे की गति भी नहीं है। तब अत्यन्त गम्भीर कृपामृत से सनी हुई आकाशवाणी हुई : वर माँगो क्या चाहते हो।

व्याख्या : प्रभु ने जान लिया कि स्वार्थ का दास नहीं है। मेरा निजदास है। यथा : जे पामर भये दास आस के ते सबही चेरे। रघुपति कृपा आस जोती जिन ते सेवक हरिकेरे। अनन्यगतिक हैं त्रिदेव की भी अपेक्षा नहीं रखते। तब परम गम्भीर आकाशवाणी हुई। जिसके आधार का पता नहीं कि कहाँ से उठ रही है। यह वाणी वागिन्द्रिय से उच्चरित नहीं है। 'सर्वेन्द्रियगुणाभास सर्वेन्द्रियविवर्जित' की वाणी है। उनकी कृपा ही अमृत है। उसी से सनी है। आकाश से शब्द आ रहा है : माँगो, माँगो।

मृतक जिआवनि गिरा सुहाई। श्रवन रंध्र होइ उर जब आई॥
हृष्ट पुष्ट तन भए सुहाए। मानहुँ अबहिं भवन ते आए॥४॥

अर्थ : वह मरे हुए को जिलानेवाली वाणी जब कर्णछिद्र से होकर हृदय में आई तब शरीर ऐसा हृष्ट पुष्ट हो गया मानो घर से चले आ रहे हैं।

व्याख्या : अमृत से सनी वाणी है। इसलिए मृतक जिआवनि कहते हैं। इनकी श्रवणेन्द्रियों ने बाहर जाकर उन शब्दों को नहीं ग्रहण किया। वे शब्द ही कर्णमार्ग से हृदय में प्रविष्ट हुए। अमृत हृदय में पहुँचा। सूखे हुए धातु हरे हो गये। ऐसे हरे हुए और वृद्धि को प्राप्त हुए कि शरीर पुनः जैसा का तैसा हो गया।

दो. श्रवन सुधा सम वचन सुनि, पुलक प्रफुल्लित गात ।
बोले मनु करि दण्डवत, प्रेम न हृदय समात ॥१५४॥

अर्थ : कानों से अमृत सी वाणी सुनकर पुलक से शरीर प्रफुल्लित हो उठा। मनु दण्डवत करके बोले। प्रेम हृदय में समा नहीं रहा है।

व्याख्या : अभिलाष की पूर्ति से परम हर्ष है। अतः रोमाञ्च हो रहा है। कोई मूर्ति सामने न होने पर भी दण्डवत करते हैं। आकाश से वाणी आ रही है। और पृथ्वी पर दण्डवत हो रहा है। मनो रौ वा : इस सूत्र से ङीप् विकल्प से होता है। अतः शतरूपा भी मनु हैं। यहाँ पर मनु शतरूपा दोनों का दण्डवत और बोलना कहा गया।

सुनु सेवक सुरतरु सुरधेनू। विधि हरि हर वंदित पदरेनू ॥
सेवत सुलभ सकल सुखदायक। प्रनतपाल सचराचर नायक ॥१॥

अर्थ : सेवक के कल्पवृक्ष और कामधेनु सुनो। आपका पदरज विधि हरिहर द्वारा वन्दित है। आप सेवा करने में सुलभ तथा सब सुखों के देनेवाले हैं। प्रणतपाल हैं और चर अचर के स्वामी हैं।

व्याख्या : सुरतरु और सुरधेनु से पुँल्लिङ्ग और स्त्रीलिङ्ग दोनों कहा। यथा : त्वं स्त्री त्वं पुमान्। सुरतरु से अभिमतदानी कहा। यथा : अभिमत दानि देव तरुवर से : और सुरधेनु से सुखखानि कहा। यथा : रामकथा सुरधेनु सम, सेवत सब सुख खानि। विधि हरि हर उनके बल से ही अपना अपना कार्य सम्पादन कर सकते हैं। यथा : जाके बल विरंचि हरि ईसा। पालत सृजत हरत दससीसा। अतः प्रभु के चरणरज की सदा वन्दना करते हैं।

सुरतरु हैं। इसलिए सेवत सुलभ कहा। यथा : जाइ निकट पहिचान तरु, छाँह समन सब सोच। माँगे अभिमत पाव जग, राउ रंक भल पोच। और कामधेनु हैं। इसलिए सकल सुखदायक कहा। प्रणतपाल से करुणा और सचराचरनायक से प्रभुता कही।

जौ अनाथ हित हम पर नेहू। तौ प्रसन्न होइ यह वर देहू ॥
जो सरूप बस सिव मन माहीं। जेहि कारन मुनि जतन कराहीं ॥२॥

अर्थ : हे अनाथहित ! यदि हम लोगों पर स्नेह हो तो प्रसन्न होकर यह वर दो कि जो स्वरूप शिवजी के मन में वसता है और जिसके कारण मुनि लोग यत्न करते हैं।

व्याख्या : सनाथ के तो सभी हित होते हैं। अनाथ के हित केवल आप ही हैं। बड़ा तप किया इस कारण से नेह नहीं। बल्कि हम अनाथ हैं और आप अनाथ नाथ हैं। इसलिए नेह का नाता है। यदि यह बात सत्य है तो यह वर दो। भाव यह कि विकल्प स्वीकार नहीं है।

शिवजी उस रूप को अपने मन के भीतर छिपाये हुए हैं। यथा : जो हर

हृदय कमल महॅ गोए। और मुनि यत्न करते हैं। जिति पवन मन गो निरस करि मुनि ध्यान कबहुँक पावहीं। कभी ध्यान में एक झलक आजाती है।

जो भुसुंडि मन मानस हंसा। सगुन अगुन जेहि निगम प्रसंसा ॥
देखहिं हम सो रूप भरि लोचन। कृपा करहु प्रनतारति मोचन ॥३॥

अर्थ : जो भुसुण्डि के मनरूपी मानसरोवर के हंस हैं। जिनकी प्रशंसा वेद सगुण निर्गुण रूप कहकर करते हैं। हम उस रूप को आँख भरकर देखें। हे प्रणत की आर्ति के हरण करनेवाले कृपा करो।

व्याख्या : जिस रूप की प्रशंसा सगुण अगुण कहकर वेद करते हैं जिस रूप से भुसुण्डिजी के मनरूपी मानस में हंस की भाँति आप विचरते है। नयनविषय होकर नहीं विचरते। उस रूप को मैं जबतक इच्छा हो तबतक अपने नयन का विषय करना चाहता हूँ। अतः 'कृपा करहु' अर्थात् दर्शन दो। दर्शन के लिए यह तप यथेष्ट नहीं। अतः विनिमय में नहीं माँग सकते। कृपा का भरोसा है। यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैव आत्मा विवृणुते तनूँ स्वाम्। जिसके ऊपर वह अनुग्रह करता है उसीको प्राप्त होता है। उसी को परमात्मा अपने स्वरूप का दर्शन देता है : काठके।

दंपति वचन परम प्रिय लागे। मृदुल विनीत प्रेम रस पागे ॥
भगत बछल प्रभु कृपा निधाना। बिस्वबास प्रगटे भगवाना ॥४॥

अर्थ : कोमल विनययुक्त प्रेमरस से पगे हुए दोनों प्राणियों के वचन बड़े प्रिय लगे। भक्तवत्सल प्रभु, कृपानिधान और विश्वास, भगवान् प्रगट हुए।

व्याख्या : परम प्रिय लगनेवाले वचनों का लक्षण कहते हैं। मृदु विनीत और प्रेम में पगे वचन ही परम प्रिय लगते हैं। बोले मनु करि दंडवत, प्रेम न हृदय समात से उपक्रम करके दम्पति वचन परम प्रिय लागे से उपसंहार करते हैं। मनुजी के साथ ही साथ शतरूपाजी भी बोलती जाती हैं। दम्पति का हृदय इतना अभिन्न है कि वे ही शब्द दोनों मुखों से एक साथ निकल रहे हैं।

तीन विशेषण वचन के : मृदुल विनीत प्रेमरस पागे : और तीन ही विशेषण भगवान् के दिये गये हैं : भगतबछल प्रभु कृपानिधाना। १. भक्तवत्सल हैं प्रेमरस पागे वचन प्रिय लगे। प्रभु हैं। विनीत वचन पर प्रसन्न हुए। कृपानिधान हैं। मृदु वचन पर कृपा की। विश्ववास हैं। कहीं से आना जाना नहीं है : वहीं प्रकट हो गये। यथा : कहहु सो कहाँ जहाँ प्रभु नाहीं।

दो. नील सरोरुह नील मनि, नील नीरधर स्याम।
लाजहिं तनु सोभा निरखि, कोटि कोटि सत काम ॥१४६॥

अर्थ : नीलकमल, नीलमणि और नीले बादल के समान श्यामवर्ण हैं। शरीर की शोभा देखकर सौ करोड़ कामदेव भी लज्जित होते हैं : स्याम सुभग सरीर जनु मन काम पूरनि हारु।

अद्भुत श्यामता है। जिसकी उपमा के लिए कोई वस्तु नहीं है। नील सरोरुह से स्निग्धता कोमलता तथा सुगन्ध कही। नीलमणि से दृढता तथा चमक कही। नीरधर से दर्शक के नेत्रों में तरावट कही अथवा जल में सर्वोत्तम नीलिमा नीलकमल की, थल में नीलमणि की और नभ में नीरधर की है। सो इन तीनों नीलिमाओं की शोभा सलोने श्यामसुन्दर में कही गई। श्यामता 'न तत्र[1] चक्षुर्गच्छति' का प्रतीक है। यथा : श्याम रंग शुचि प्रगट लखावत दृगते पार रहैया। सुन्दरता में काम की ही ख्याति है। सो प्रभु के सौन्दर्य सूर्य के सामने काम जुगनू भी नहीं है। अतः कोटि कोटि सत काम का लज्जित होना कहा। पहिले पूरे स्वरूप की शोभा कहकर शिखनख वर्णन करते हैं। साकार के रूप देखने की उत्कट अभिलाषा है। अतः मुख पर ही पहिले दृष्टि पड़ी। अतः कवि भी पहिले मुख का वर्णन करते हैं।

सरद मयंक बदन छबि सीवा। चारु कपोल चिबुक दर ग्रीवा॥
अधर अरुन रद सुंदर नासा। बिधु कर निकर बिनिंदक हासा॥१॥

अर्थ : छवि की परमावधि मुख शरद् के चन्द्रमा के समान था। गाल और ठुड्डी सुन्दर, कण्ठ शंख सा, लाल होंठ, दाँत और नाक सुन्दर और हँसी चन्द्रमा की किरणों का तिरस्कार करनेवाली थी।

व्याख्या : शरद्मयङ्क को मुख मण्डल से उपमित करने पर भी कवि को सन्तोष न हुआ। तब उसे छवि की परमावधि बतलाया। चारु शब्द का सम्बन्ध कपोल और चिबुक दोनों के साथ है। दोनों सुन्दर हैं। होठों के लाल होने की शोभा है। सो होठ लाल हैं। नासिका सुन्दर है। इन सब अवयवों की सुन्दरता से ही मुख की सुन्दरता है। अतः प्रत्येक का विशेष वर्णन नहीं किया। इतना ही कहकर समाप्त किया कि इससे अधिक सुन्दरता है हो नहीं। जब मुख चन्द्रमा हुआ तो चन्द्रिका भी चाहिए। अतः कहते हैं कि हँसी चाँदनी को भी मात करनेवाली है! यहाँ हँसी मनुशतरूपा के ऊपर अनुग्रह की सूचक है। यथा : हृदय अनुग्रह इंदु प्रकासा। सूचत किरन मनोहर हाँसा।

नव अंबुज अंबक छबि नीकी। चितवनि ललित भावती जी की॥
भृकुटि मनोज चाप छबि हारी। तिलक ललाट पटल दुतिकारी॥२॥

अर्थ : नये कमल के समान आँखों की अच्छी शोभा थी। मनोहर चितवन जी को बहुत प्यारी लगती थी। भौंहें कामदेव के कमान की शोभा को हरण करने-वाली थीं और मस्तक पर चमकीला तिलक था।

व्याख्या : आँखें बड़ी ही सुन्दर थीं इससे नये कमल की उपमा दी। यथा : नयन सुखमा निरखि नागरि सफल जीवन लेखु। मनहु बिधु जुग जलज बिरचे ससि सुपूरन मेखु : गीतावली। पर कमल में चितवन नहीं अतः उसका अलग वर्णन करते हैं

१. 'वहाँ नेत्रों की पहुँच नहीं। ऐसा श्रुत कहती है।

कि वह कही नहीं जा सकती। जी को अच्छी लगती है। ऐसी चमत्कृत शोभा है कि कहीं पर निगाह ठहरती नहीं। इसलिए क्रम से वर्णन नहीं कर सकते।

टेढ़ी भौंह की उपमा काम के धनुष से दी। काम का धनुष इतना सुन्दर है कि उसका नाम उन्मादन है। उन्माद उत्पन्न कर देता है। इस भौंह के सामने उन्मादन कुछ भी नहीं। ललाटपटल पर होने से तिलक भी द्युतिकारी है। यथा : भृकुटि भाल विसाल राजत रुचिर कुंकुम रेखु। भ्रमर द्वै रवि किरनि ल्याये क़रन जनु उन्मेखु। गी०। यहाँ तक केवल मुख की शोभा कही। शोभा का निर्णय मुख से ही होता है।

कुंडल मकर मुकुट सिर भ्राजा। कुटिल केस जनु मधुप समाजा ॥
उर श्रीवत्स रुचिर बनमाला। पदिक हार भूषन मनिजाला ॥३॥

अर्थ : मकराकृति कुण्डल : कानों में और सिर पर मुकुट शोभायमान था। घुँघराले बाल मानो भौंरो का समूह, वक्षःस्थल पर श्रीवत्स, बनमाला, मोहनमाला, भूषण और मणिजाल विराजमान था।

व्याख्या : अब मकराकृत कुण्डल की शोभा कहते हैं। मनहु संबरारि मारि ललित मकर जुग विचारि दीन्हें ससि कहँ पुरारि भ्राजत दुहुँ ओरी। मकराकृति कुण्डल से कान छिपा हुआ है और मुकुट से सिर छिपा हुआ है। अतः कान और सिर का पृथक् वर्णन नहीं है। घुँघराली लटों की उपमा मधुपसमाज से दी गयी है। उसके बीच में मकराकृति कुण्डल और उसके ऊपर मुकुट की अलौकिक छटा है।

हृदय में श्रीवत्सलाञ्छन : रोम की भँवरी विशेष है। पैरतक लटकी हुई माला पहिने हैं। पादावलम्बिनी माला वनमालेति कथ्यते। मोहनमाला की शोभा अलग ही है और मणिभूषणों का तो जाल फैला हुआ है।

केहरि कंधर चारु जनेऊ। बाहु बिभूषन सुन्दर तेऊ ॥
करि कर सरिस सुभग भुजदंडा। कटि निषंग कर सर कोदंडा ॥४॥

अर्थ : सिंह सा कन्धा है। सुन्दर यज्ञोपवीत है और बाहु में विभूषण हैं। वे भी सुन्दर हैं। हाथी के शुण्ड सी सुन्दर भुजाएँ हैं। कटि में तरकस और हाथों में बाण और धनुष है।

व्याख्या : वीरों में कन्धे और भुजदण्ड की प्रशंसा है। इसलिए कहते हैं कि सिंह सा कन्धा है। परशुरामजी का 'वृषभकन्ध उर बाहु विसाला' कहकर वर्णन है। अतः उनसे भी विशेषता दिखलाते हुए केहरि कन्धर और करिकर सरिस सुभग भुजदंडा कहते हैं। कटि निषङ्ग कर सर कोदंडा। प्रभु की द्विभुजमूर्ति का वर्णन करते हैं। श्रुति भी अयमात्मा पुरुषविधः कहती है। अर्थात् परमात्मा की मूर्ति पुरुष सी है। उस अनाम और अरूप के दिव्य नाम और दिव्य मूर्तियाँ भी हैं। सो यहाँ द्विभुज मूर्ति का प्रकट होना दिखलाते हैं।

दो. तड़ित विनिंदक पीत पट, उदर रेख बर तीनि।
नाभि मनोहर लेति जनु, जमुन भँवर छवि छीनि ॥१४७॥

अर्थ : बिजली की निन्दा करनेवाला पीताम्बर पहने उदर में तीन रेखाएँ शोभित हैं और मनोहर नाभि मानो यमुनाजी के भँवर की छवि को छीन लेती है।

व्याख्या : पीतपट में अलौकिक चमक कही। यथा : पीत निर्मल चैल, मनहुँ मरकत सैल पृथुल दामिनि रही छाइतजि सहजहीं। उदर रेख वर तीन से उदर की क्षीणता कही। नाभि की यमुनाजलभँवर से उपमा देकर उसकी सुन्दरता, श्यामता और गम्भीरता कही। यही द्विभुज मूर्ति शम्भु उरवासी है। इसी के लिए मुनि लोग यत्न करते हैं। और यही भुशुण्डिमनमानसहंस है। इसी की सगुण-निर्गुण कहकर वेदों ने प्रशंसा की है। यथा : सगुणनिर्गुणस्वरूपं ब्रह्म त्रिपादवि। इसी के उदर में अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड हैं। इसी के भीतर ही सब कुछ है। यह[1] परिच्छिन्न दिखाई पड़ती हुई भी अपरिच्छिन्न है। सर्वाश्चर्यमय है। यही परमेश्वरी मूर्ति विश्व ब्रह्माण्ड की प्रतीक है। इसीलिए इसे सगुणनिर्गुण रूप अनूप रूप कहा जाता है।

पद राजीव बरनि नहिं जाहीं। मुनि मन मधुप बसहिं जिन्ह माहीं॥
बाम भाग सोभति अनुकूला। आदि सक्ति छबिनिधि जगमूला ॥१॥

अर्थ : कमल ऐसे चरणों का वर्णन नहीं किया जा सकता जिसमें मुनियों के मनरूपी भौंरे बसते हैं। उनके बाएँ भाग में सदा अनुकूल शोभा की निधि और जगत् की मूलभूता आदि शक्ति शोभित हैं।

---

१. स्वमायां वनमालाख्यां नानागुणमयीं दधत्।
वासश्छन्दोमयं पीतं ब्रह्मसूत्रं त्रिवृत् स्वरम्॥
बिभर्ति सांख्यं योगश्च देवो मकरकुण्डले।
मौलिं पदं पारमेष्ठ्यं सर्वलोकाभयङ्करम्॥ श्री मद्भा.
कण्ठं तु निर्गुणं प्रोक्तं माल्यते आद्ययाजया। गो.
कूटस्थं सत्स्वरूपञ्च किरीटं प्रवदन्ति माम्।
क्षरोत्तमं प्रस्फुरन्तं कुण्डलं युगलं स्मृतम्॥
ध्यायेन्मम प्रियो नित्यं स मोक्षमधिगच्छति।
लवनिमेष परमान जुग वर्ष कल्पसरचंड।
भजसि न मन तेहि राम कहँ काल जासु कोदंड॥

अर्थ : वनमाला के व्याज से नानागुणमयी माया को धारण करते हैं। पीताम्बर छन्दोमय है और यज्ञोपवीत प्रणवरूप है। मकरकुण्डल के व्याज से सांख्ययोग को धारण करते हैं। सिर सब लोकों को अभय करनेवाला ब्रह्मपद है। कण्ठ निर्गुण है जो आदि शक्तिरूपा माला से घिरा हुआ है। किरीट सत्स्वरूप कूटस्थ है। क्षर और अक्षर दोनों कुण्डल हैं। धनुष अखण्ड दण्डायमान कालरूप है और बाण परिच्छिन्न कालरूप है। इत्यादि।

व्याख्या : चरण की उपमा कमल से देकर भी उसे अवर्णनीय कहते हैं। क्योंकि जैसी लालिमा चरण में है वैसी कमल में नहीं होती। यथा : वसी मानहु चरन कमलनि अरुनता तजि तरनि : गी०। कमल में भौंरे लुब्ध होकर बसते हैं। यथा : कमलनि बसे निसि मधुकरा। पर ये पदकमल ऐसे हैं जिनके लिए मुनियों के मन भौंरे हो गये हैं। संसार छोड़ दिया पर इन्हें छोड़ना नहीं चाहते। जिस भाँति कमल के मकरन्द का पान भौंरे करते हैं उसी भाँति इन चरणकमलों का आनन्द मुनिलोग लेते हैं। भगवान् सर्वशक्तिमान् हैं। उनके वामभाग में आदिशक्ति योगमाया हैं। शक्ति और शक्तिमान् का अभेद है। मनुशतरूपा ने पुंरूप और स्त्रीरूप, दोनों रूपों से सम्बोधन किया था। यथा : सुनु सेवक सुरतरु सुरधेनू : अतः भगवान् भी दो रूप से प्रकट हुए। पुंरूप से छविसमुद्र हैं और स्त्रीरूप से छविनिधि हैं। स्त्रीरूप से पुंरूप के अनुकूल हैं और जगमूल भी हैं। यथा : पति अनुकूल सदा रह सीता। लव निमेष महँ भुवन निकाया। रचइ जासु अनुसासन माया : पुंरूप से ब्रह्म है तो स्त्रीरूप से मूलप्रकृति हैं।

जासु अंस उपजहिं गुनखानी। अगनित लच्छि उमा ब्रह्मानी ॥
भृकुटि विलास जासु जग होई। राम वाम दिसि सीता सोई ॥२॥

अर्थ : जिसके अंश से गुणों की खानि अगणित लक्ष्मी, पार्वती और ब्रह्माणी उत्पन्न होती हैं। जिसके भृकुटिविलास से संसार हो पड़ता है वही सीता रामजी के बाईं ओर हैं।

व्याख्या : प्रभु के अंश से त्रिदेव उपजते हैं। यथा : जासु अंस उपजै निधि नाना। संभु बिरंचि बिस्नु भगवाना। और भगवती के अंश से शक्तियाँ उत्पन्न होती हैं। छविनिधि से गुणखानियों की उत्पत्ति बतलायी। राम और सीता में ऐसा अभेद और अनुकूलता है कि युगलमूर्ति के भृकुटिविलास में भी अन्तर नहीं है। यथा : भृकुटिविलास जासु जग होई। राम वाम दिसि सीता सोई। और उमा राम की भृकुटि विलासा। होइ विस्व पुनि पावइ नासा। उसी सीताशक्ति द्वारा ही रामावतार होता है और भगवान् नयनविषय होते हैं। यथा : प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया : इसलिए कहा कि राम वाम दिसि सीता सोई।

छवि समुद्र हरि रूप विलोकी। एक टक रहे नयन पट रोकी ॥
चितवहिं सादर रूप अनूपा। तृप्ति न मानहिं मनु सतरूपा ॥३॥

अर्थ : छवि के समुद्र हरिरूप को देखकर पलक गिराना बन्द करके एकटक रह गये। मनु और शतरूपा अनुपम रूप को आदर के साथ देख रहे हैं और अघाते नहीं।

व्याख्या : समुद्र में नित्य नयी तरङ्गें उठा करती हैं। समुद्र को देखते जी नहीं ऊबता। सो हरि का रूप छविसमुद्र है। उसका पारावार नहीं है। उसमें भी रूप की तरङ्गें उठा करती हैं। देखनेवाला तृप्त नहीं होता। प्रभु को छविसमुद्र और अम्बा को छविनिधि कहकर तात्त्विक अभेद द्योतित किया। आँख भर देखने

में पलक का गिरना बाधक है। अतः उसका गिरना बन्द करके देखते हैं। फिर भी तृप्ति नहीं हो रही है।

हर्ष बिबस तन दसा भुलानी। परे दंड इव गहि पद पानी ॥
सिर परसे प्रभु निज करकंजा। तुरत उठाए करुना पुंजा ॥४॥

अर्थ : हर्ष के विवश हो जाने से शरीर की दशा भूल गई। चरण को हाथों से पकड़कर दण्डवत् किया। प्रभु ने अपने करकमल से उनके सिर का स्पर्श किया। और तुरन्त उठा लिया।

व्याख्या : हर्षातिरेक में शरीर की सुधि न रही। दण्ड की भाँति पृथ्वी पर गिरे; चरणों को पकड़ लिया। छोड़ते नहीं कि कहीं अन्तर्धान न हो जाँय। हृष्ट पुष्ट हैं, इसलिए दण्ड से उपमा दी। दुर्बल होते तो लकुट : छड़ी से उपमा दी जाती। यथा : परे लकुट इव चरनन लागी। सीतल सुभग छाँह जेहि करकी मेटति पाप ताप माया। निसिबासर तेहि कर सरोज की चाहत तुलसिदास छाया। वह अभय वरद हस्त जिसकी छाँह, पाप, ताप और माया को मिटाती है। करुणाकर प्रभु ने मनु शतरूपा के सिरपर रक्खा और उन्हें तुरन्त उठा लिया। वरदान देना चाहते हैं।

दो. बोले कृपा निधान पुनि, अति प्रसन्न मोहिं जानि।
माँगहुँ वर जोइ भाव मन, महादानि अनुमानि ॥१४८॥

अर्थ : कृपानिधान फिर बोले : मुझे बहुत प्रसन्न जानकर और महादानी अनुमानकर जो जी चाहे सो वर माँगो।

व्याख्या : कृपानिधान हैं। इनकी कृपा अघाती नहीं। पहिले आकाशवाणी द्वारा बोले थे। अब फिर बोले : मुझे अनुमान से जानो कि मैं महादानी हूँ। विधि हरि हर दानी हैं। तब अनुमान से सिद्ध है कि जिसके अंश दानी हैं तो वह अंशी महादानी क्यों न होगा? तिसपर कहते हैं कि मुझे अति प्रसन्न जानो। महादानी अति प्रसन्न हो तो क्या न दे डाले। यह सब कहने का कारण यह कि ब्रह्मा, विष्णु और शिव के वरदान देने के लिए प्रस्तुत होने पर भी इन्होंने नहीं माँगा था। इससे सिद्ध है कि मनु शतरूपा जो चाहते थे उसके मिलने की उनसे आशा न थी। इसीलिए उन्हें प्रोत्साहन देते हुए कहते हैं : जो चाहो वर माँगो। तुम्हारी आशा पूर्ण होगी।

सुनि प्रभु बचन जोरि जुग पानी। धरि धीरजु बोलीं[1] मृदुबानी ॥
नाथ देखि पद कमल तुम्हारे। अब पूरे सब काम हमारे ॥१॥

अर्थ : प्रभु के वचन सुनकर, दोनों हाथ जोड़कर और धैर्य धारण करके

---

१. बोली क्रिया के कर्त्ता मनु अरु सतरूपा हैं। तृषित न मानहिं मनु सतरूपा। क्रिया का सम्बन्ध शतरूपा के साथ है। इसलिए क्रिया का प्रयोग स्त्रीलिङ्ग में हुआ।

कोमल वाणी : मनु और शतरूपा : बोलीं। हे नाथ ! तुम्हारे चरणकमल के दर्शन से मेरी सब कामनाएँ पूरी हो गईं।

व्याख्या : प्रभु की वाणी ही ऐसी हुई कि सेवक के हर्ष और प्रेमोद्गार का पारावार न रह गया। अतः धैर्य धरना पड़ा। जोरि जुग पानी कर्मणा, धरि धीरज मनसा, बोले मृदुबानी वचसा प्रार्थना की।

प्रकृत भक्त बिना स्वामी का दर्शन पाये सदा अधिकारीवर्ग के दर्शन से ही सन्तुष्ट नहीं रह सकता। भक्त की सब कामनाएँ भगवान् के दर्शन से ही पूर्ण होती हैं। अतः मनु शतरूपा को दर्शन की बड़ी अभिलाषा थी। और आकाशवाणी होनेपर यही वरदान भी माँगा था। सो दर्शन मिला। अतः कहते हैं कि सब कामनाएँ पूर्ण हुईं।

एक लालसा बडि उर माहीं। सुगम अगम कहि जाति सो नाहीं ॥
तुम्हहि देत अति सुगम गोसाईं। अगम लाग मोहिं निज कृपनाईं ॥२॥

अर्थ : मन में एक बड़ी लालसा है। वह सुगम भी है, अगम भी है। पर कहते नहीं बनता। हे गोसाईं ! आपके लिए देने में बड़ा सुगम है। पर अपनी कृपणता से मुझे अगम मालूम हो रहा है।

व्याख्या : गृहस्थों की लालसा देखिये। जिसे भगवदंश उत्तानपाद और प्रियव्रत ऐसे पुत्र हुए। किसी से न प्राप्त होनेवाले पद को प्राप्त करनेवाले ध्रुव जैसे पौत्र हुए। साक्षात् भगवदवतार कपिलदेव जैसे जिसे नाती हुए। उसे अब प्रभु सा पुत्र प्राप्त करने की लालसा हुई। अतः इस लालसा को बड़ी बतलाया। रूप देखकर लालसा हुई। परन्तु भय और सङ्कोच से कहते नहीं बनता। यथा : सभय सकोच जात कहि नाहीं। अतः कहते हैं :

सर्वशक्तिमान् और महादानी होने से आपको सब कुछ सुगम है। मैं कृपण हूँ। फल की इच्छा रखनेवाला हूँ। मुझे अगम मालूम होता है। मैंने क्या किया है कि जिसके पुरस्कार में ऐसी आशा करूँ। यथा : मन ग्यान गुन गोतीत प्रभु मैं दीख जप तप क्या किये। इतना बड़ा वरदान किस मुख से माँगूँ। तपस्या के फल में दर्शन हो चुका।

जथा दरिद्र बिबुध तरु पाई। बहु संपति माँगत सँकुचाई ॥
तासु प्रभाउ जान नहि सोई। तथा हृदय मम संसय होई ॥३॥

अर्थ : जैसे कोई दरिद्र कल्पवृक्ष पाकर भी बहुत सम्पत्ति माँगने से सङ्कोच करता है। क्योंकि कल्पवृक्ष के प्रभाव को वह नहीं जानता। उसी प्रकार मेरे हृदय में संशय हो रहा है।

व्याख्या : दरिद्र ने कभी सम्पत्ति आँख से देखी नहीं। उसे कौड़ी दुर्लभ है। बहुत सम्पत्ति माँगने में सङ्कोच होना उसके लिए स्वाभाविक है। यहाँ अज्ञान दरिद्र है। अहंता ममता से मूढ पुरुष को ब्रह्मसुख अगम है। यथा : कबिहि अगम जिमि

ब्रह्म सुख अहमम मलिन जनेसु। वह समझे बैठा है कि ब्रह्मानन्द सुख नहीं मिल सकता। इसलिए वह उसके लिए यत्न भी नहीं करता। और न देवीदेवता की आराधना उसके लिए करता है। प्रभु कल्पवृक्ष हैं। उन्हें पाकर भी परमानन्द नहीं माँगता।

यदि दरिद्र को दैवात् कल्पवृक्ष मिल जाय तो उससे अधिक सम्पत्ति माँगने में सङ्कोच करता है कि कदाचित् कल्पवृक्ष न दे सके। दरिद्र का मन ऐसा छोटा हो जाता है कि वह बड़ा लालच भी नहीं कर सकता। यथा : लालच लघु तेरो लखि तुलसी तोहि हटत।

सो तुम्ह जानहु अंतरजामी। पुरवहु मोर मनोरथ स्वामी॥
सकुच विहाइ मांगु नृप मोही। मोरे नहिं अदेय कछु तोही॥४॥

अर्थ : हे अन्तर्यामी ! आप उसे जानते हो। हे स्वामी ! मेरे मनोरथ को पूरा करो। राजा ! तू सङ्कोच छोड़कर मुझसे माँग। तेरे लिए मुझे कुछ अदेय नहीं है।

व्याख्या : अतः माँगने में सङ्कोच है। कहते हैं कि आप अन्तर्यामी भी हैं। सब जानते हैं, मेरे मनोरथ को पूरा करिये। बिना अन्तर्यामी की प्रेरणा के यह बात मेरे मन में आई कैसे ? इसके बाद भगवान् का कथन है। वर माँगने पर भी ऐसा होता है कि वरदाता कह देते हैं : कि यह वर अदेय है दूसरा माँगो। पर तेरे ऐसे भक्तों के लिए यह बात नहीं है। यथा : कौन वस्तु असि प्रिय मोहि लागी। जो मुनिवर न सकहु तुम माँगी। तू दरिद्र नहीं है राजा है। तू बहुत सम्पत्ति माँग सकता है। मुझसे माँग। सङ्कोच न कर। जन कहँ कछु अदेय नहि मोरे। अस विस्वास तजहु नहि भोरे। अथवा यदि इच्छा है तो मुझे ही माँग ले।

दो. दानि सिरोमनि कृपानिधि, नाथ कहौं सति भाउ।
चाहौं तुम्हहि समान सुत, प्रभु सन कवन दुराउ॥१४९॥

अर्थ : हे दानियों के शिरोमणि ! हे कृपानिधान ! हे नाथ ! सत्य भाव से कहता हूँ। आप जैसा पुत्र चाहता हूँ। प्रभु से कौन सा छिपाव है।

व्याख्या : मोरे नहि अदेय कछु तोही कहा : इसलिए दानी शिरोमणि कहते हैं। सकुच विहाइ माँगु कहा : इसलिए कृपानिधि कहते हैं। यह सन्देह उठ सकता है कि जिसके सन्तान से सृष्टि भरी पड़ी है वह सुत क्यों माँगता है ? अतः कहते हैं सतिभाउ। मुझे प्रभु को देखकर लालसा हुई कि मुझे ऐसा पुत्र हो और आपसा दूसरा है नहीं। अतः आपसा पुत्र माँगना आपको ही पुत्ररूप से चाहना एक बात है। इसलिए माँगने में सङ्कोच था। वास्तविक इच्छा आप सा पुत्र पाने की है। चाहे जैसे सम्भव हो।

देखि प्रीति सुनि वचन अमोले। एवमस्तु करुनानिधि बोले॥
आपु सरिस खोजौं कहँ जाई। नृप तव तनय होब मैं आई॥१॥

अर्थ : प्रीति देखकर और अनमोल वचन सुनकर करुणानिधि ने कहा : ऐसा ही हो। मैं अपने समान दूसरा जाकर कहाँ खोजूँ। राजा ! मैं ही आकर तुम्हारा बेटा होऊँगा।

व्याख्या : प्रीति देखी। यथा : चितवहिं सादर रूप अनूपा। तृप्ति न मानहिं मनु सतरूपा : और अनमोल वचन सुना। यथा : चाहौं तुमहिं समान सुत। जिसकी कोई कीमत ही नहीं। अतः उस वचन के पीछे स्वयं बिक गये। कह दिया 'एवमस्तु'। कोई भुक्ति चाहता है, कोई मुक्ति चाहता है और कोई भक्ति चाहता है। मनुजी ने कुछ न चाहा। बालरूप से रामजी को गोद खिलाने और लालन-पालन का सुअवसर चाहा। ऐसी बात चाही जिससे जगत् का कल्याण हो। अपने परलोक का भार प्रभु पर छोड़ दिया। पुंनामनरकात् त्रायतीति पुत्रः। नरक से पिता की रक्षा करता है इसलिए पुत्र कहलाता है। जैसी दृढ़ प्रीति पुत्र में होती है वैसी दृढ़ प्रीति चाही। प्रभु से अपना सम्बन्ध सुरक्षित किया और साथ ही साथ अपनी भावी सन्तान मनुष्य जाति के लिए अमूल्य निधि सुलभ कर गये। इत्यादि। सभी भाँति से मङ्गलमयी कामनाओं से युक्त वचन था। इसलिए उसे अनमोल कहा है।

प्रभु करुणानिधि हैं। जगत्पिता होकर भी पुत्रत्व की स्वीकृति में न हिचके। एवमस्तु कह ही दिया। अब उसी बात को स्पष्ट करते हैं।

न तो प्रभु के समान कोई है और न कोई उनसे बढ़कर है और न कोई स्थल ऐसा है जहाँ वे न हों। यथा : जेहि समान अतिसय नहिं कोई। कहहु सो कहाँ जहाँ प्रभु नाहीं। इसलिए कहते हैं कि अपने समान कहाँ जाकर खोजें। जिसके समान चाहते हो, यदि उसी की प्राप्ति हो जाय तो मनोरथ की विशेषरूप से सिद्धि समझनी चाहिए। इसलिए हे राजन् ! मैं ही तुम्हारा पुत्र आकर होऊँगा अर्थात् इस समय जाता हूँ। भविष्य में आकर मनोरथ पूर्ण करूँगा।

सतरूपहिं बिलोकि कर जोरें। देबि माँगु बरु जो रुचि तोरें॥
जो बरु नाथ चतुर नृप माँगा। सोइ कृपालु मोहि अति प्रिय लागा॥२॥

अर्थ : शतरूपा को हाथ जोड़े हुए देखकर कहा : हे देवी ! जो वर तू चाहती है सो माँग। शतरूपा ने कहा हे कृपालु ! चतुर राजा ने जो वर माँगा वही मुझे भी अत्यन्त प्रिय लगा।

व्याख्या : राजा ने ऐसा वर माँगा जिससे शतरूपा का भी कल्याण हो। और दूसरे जन्म में भी शतरूपा से अपना सम्बन्ध बना रहे। भगवान् ने एवमस्तु कह भी दिया। फिर भी देखा शतरूपा हाथ जोड़े खड़ी है। अतः प्रभु ने कहा : तू भी माँग जो तेरी रुचि हो। भाव यह कि रुचि में सबके भेद होता ही है। अतः यदि तेरी इच्छा हो तो तू दूसरा जीचाहा वर माँग ले।

इस पर शतरूपा कहती है कि राजा चतुर हैं। उन्होंने ऐसा वर माँगा जो मुझे भी अतिप्रिय है।

प्रभु परंतु सुठि होति ढिठाई। जदपि भगत हित तुम्हहि सुहाई ॥
तुम्ह ब्रह्मादि जनक जग स्वामी। ब्रह्म सकल उर अंतरयामी ॥३॥

अर्थ : परन्तु हे प्रभो ! बड़ी ढिठाई हो रही है। यद्यपि हे भक्तवत्सल ! आपको अच्छा मालूम होता है। तुम ब्रह्मादि के भी पिता हो, जगत् के स्वामी हो। सबके हृदय में अन्तर्यामी : रूप से स्थित : ब्रह्म हो।

व्याख्या : शतरूपा के लिए राजा के साथ ही साथ न बोलने का कारण था। उसे कहती हैं कि वह तो मुझे बहुत ही प्रिय है और प्रभु को भी स्वीकार है। एवमस्तु बोल चुके। फिर भी इसमें साधारण ढिठाई नहीं है क्योंकि आप पिता के भी पिता हैं। ब्रह्मा आदि के उत्पन्न करनेवाले हैं। जगन्नाथ हैं। सबके अन्तर्यामी ब्रह्म हैं और आप पुत्र होंगे।

अस समुझत मन संसय होई। कहा जो प्रभु प्रवान पुनि सोई ॥
जे निज भगत नाथ तव अहहीं। जो सुख पावहिं जो गति लहहीं ॥४॥

दो. सोइ सुख सोइ गति सोइ भगति, सोइ निज चरन सनेहु।
सोइ बिबेक सोइ रहिनि प्रभु, हमहिं कृपा करि देहु ॥१५०॥

अर्थ : ऐसा समझने पर मनमें संशय हो रहा है। किन्तु प्रभु ने जो कहा वही प्रमाण है। हे नाथ ! जो आपके निज भक्त हैं वे जो सुख पाते हैं, जिस गति को प्राप्त होते हैं वही सुख, वही गति, वही भक्ति वही अपने चरणों का स्नेह, वही विवेक और वही रहन सहन मुझे कृपा करके दो।

व्याख्या : जगत् के पिता जगत् के स्वामी अन्तर्यामी पुत्र कैसे होंगे ! यही संशय है। परन्तु मेरा संशय प्रमाण नहीं आपका वचन प्रमाण है। जब आपने एवमस्तु कहा है तो आप पुत्र होंगे। परन्तु पुत्र होने पर वात्सल्य भाव होगा। सेवक-सेव्य भाव जाता रहेगा। पुत्र स्नेह से विवेक जाता रहेगा। भक्तों का सा रहनसहन न रह जायगा। अतः ये सब बातें न होने पावें। इसलिए जो सुख पावहिं इत्यादि शतरूपाजी माँगती हैं।

१. जो सुख पावहिं यथा : सोई सुख लवलेस, जिन बारक सपनेहुँ लहेउ।
ते नहिं गनहिं खगेस, ब्रह्म सुखहिं सज्जन सुमति।

२. जो गति लहही यथा : जिन्ह रघुनाथ चरन रति मानी।
तिन्हकी यह गति प्रगट भवानी ॥

३. सोइ भगति यथा : सबते सो दुर्लभ सुरराया।
राम भगति रत गत मद माया ॥

४. सोइ निज चरन सनेहु यथा : जो तजि देह को गेह को नेह सनेह सो राम को होइ सबेरो।

५. सोइ विवेक यथा : राम मातु दुख सुख सम जानी।
कहि गुन राम प्रबोधी रानी ॥

६. सोइ रहनि यथा :

कबहुँक हौं येहि रहनि रहौंगो।
श्री रघुनाथ कृपाल कृपाते संत सुभाव गहौंगो।।
यथा लाभ संतोष सदा काहू सों कछु न चहौंगो।
पर हित निरत निरंतर मन क्रम वचन नेम निबहौंगो।।
परुष वचन अति दुसह श्रवन सुनि तेहि पावक न दहौंगो।
विगत मान सम सीतल मन पर गुन नहि दोष कहौंगो।।
परिहरि देह जनित चिंता दुःख सुख सम बुद्धि सहौंगो।
तुलसिदास प्रभु येहि पथ रहि अविचल हरि भगति लहौंगो।।

यह गुन साधन ते नहि होई। तुम्हरी कृपा पाव कोई कोई। अतः कृपा करके देने को कहती हैं।

सुनि मृदु गूढ रुचिर वच रचना। कृपा सिंधु बोले मृदु वचना।।
जो कछु रुचि तुम्हरे मन माहीं। मैं सो दीन्ह सब संसय नाहीं ।।१।।

अर्थ : कोमल, गूढ और मनोहर वचन की रचना सुनकर कृपासिन्धु कोमल वचन बोले। तुम्हारे मनमें जो कुछ रुचि है मैंने सब दिया इसमें सन्देह नहीं है।

व्याख्या : शतरूपाजी की वचनरचना विनीत होने से मृदु गम्भीरार्थक होने से गूढ और श्रवणसुखद होने से रुचिर थी। गम्भीरार्थक इसलिए कहा कि पुत्र रूप से प्रभु की प्राप्ति से छः बातों में कमी पड़ने का भय है। सम्भव है कि १. भक्ति का दिव्य सुख पुत्र सम्बन्धी लौकिक सुख से ढक जाय। २. प्रभु को पुत्ररूप मानने की ढिठाई से परलोक बिगड़े।. ३. पुत्र प्रेम में पड़कर सेवक सेव्यभाव जाता रहे ४. पुत्र के चरण में स्नेह नहीं होता। सो कहीं चरण-स्नेह से हाथ न धोना पड़े। ५. जगत् पिता को पुत्र मानने में विवेक भी जाता रहे और ६. पुत्र के गौरव से अभिमान होने के कारण भक्तों के रहन सहन में भेद न पड़े। इसलिए छः बातें माँगती हैं।

प्रभु कृपासिन्धु हैं। शतरूपा वर माँगती चली जाती हैं। बस नहीं कहते, कोमल शब्दों से तोष देते हैं। कहते हैं कि यदि बोलने में कोई त्रुटि हो तो भी उसका विचार न करके तुम्हारे मनमें जो रुचि है मैं वह सब देता हूँ। तुम संशय न करो।

मातु विवेक अलौकिक तोरें। कबहुँ न मिटिहि अनुग्रह मोरें।।
वंदि चरन मनु कहेउ बहोरी। अवर एक विनती प्रभु मोरी ।।२।।

अर्थ : माँ ! तुम्हारा अलौकिक विवेक मेरे अनुग्रह से कभी नहीं मिटेगा। तब फिर मनु ने चरण वन्दन करके कहा : हे प्रभु मेरी एक और विनती है।

व्याख्या : माँ का नाता अभी से मान लिया। माँ कहकर सम्बोधन करते हैं और अलौकिक विवेक के लिए वर देते हैं। उसी से शेष पाँच भी सध जायगा। लौकिक विवेक शास्त्रजन्य ज्ञानविषयक है। पर अलौकिक की बात दूसरी है। ये ही

मनु शतरूपा दशरथ कौसल्या हुए। महाराज दशरथ ने लौकिक विवेक से काम लिया। यथा : तुलसी जान्यौ दसरथहिं धर्म न सत्य समान। राम तज्यौं जेहि लागि बिनु राम परिहरे प्रान। परन्तु माता कौसल्या का अलौकिक विवेक सुनिये। यथा :

वारौं सत्यवचन श्रुतिसम्मत जाते हौं बिछुरत चरन तुम्हारे।
बिनु प्रयास सब साधन को फल प्रभु पायो सो तो नाहि सँभारे।
हरि तजि धरम सील भयो चाहत नृपति नारि बस सरबस हारे।
रुचिर काँच मनि देखि मूढ ज्यौं करतल ते चिन्तामनि डारे।
मुनि लोचन चकोर ससि राघव सिव जीवन धन सोउ न बिचारे।

मनु महाराज ने देखा कि वहाँ वर माँगने में रोक नहीं है। सो कहीं यह वर मुझे मिल न जाय। इसलिए मनु ने फिर से चरणवन्दना अपना अभिप्राय स्पष्ट करने के लिए की।

सुत बिषैक तव पद रति होऊ। मोहि बड़ मूढ़ कहौं किन कोऊ॥
मनि बिनु फनि जिमि जलबिनु मीना। मम जीवन मिति तुम्हहि अधीना॥३॥

अर्थ : चाहे मुझे कोई बड़ा मूढ़ भले ही कहे पर मुझे आपके चरणों में प्रेम पुत्रविषयक ही हो। जैसे मणि बिना सर्प की और जल बिना मछली की गति होती है। वैसे ही मेरे जीवन की अवधि आपके दर्शन के अधीन रहे।

व्याख्या : इस बात की सम्भावना है कि जब आप स्वयं पुत्ररूप से अवतीर्ण होंगे और मुझे आपके चरणों में प्रीति पुत्र की ही भाँति होगी तो कोई यह कह सकता है कि यह कितना बड़ा अविवेकी है कि भगवान् को पहिचान नहीं सकता। बेटा ही मानता है। सो यह प्रवाद मुझे स्वीकार है। पर मुझे पुत्र की ही भावना रहे। यथा : कीजिअ सिसुलीला अति प्रियसीला यह सुख परम अनूपा।

मणि बिना सर्प जीता है। परन्तु व्याकुल और बेहाल रहता है। यथा : मनि बिनु फनि जियै व्याकुल बेहाल रे। परन्तु जल बिना मछली तो जी नहीं सकती। मनुजी दोनों की अवस्थाएँ अपने लिए माँग रहे हैं। अतः दशरथ शरीर से विश्वामित्र की यज्ञरक्षा के समय मणि बिना सर्प की स्थिति का अनुभव करेंगे। यथा : सुत हिय लाइ दुसह दुख मेटे। मृतक सरीर प्रान जनु भेटे। तथा : राम विरह करि मरन संवारा। मनुजी को न मोक्ष की कामना है, न यश की कामना है। वात्सल्य भाव से भजन करना चाहते हैं। विवेक से वात्सल्य बिगड़ जायगा। इसलिए विवेक नहीं चाहा।

अस बरु माँगि चरन गहि रहेऊ। एवमस्तु करुनानिधि कहेऊ॥
अब तुम्ह मम अनुसासन मानी। बसहु जाइ सुरपति रजधानी॥४॥

सो. तहँ करि भोग बिसाल, तात गएँ कछु काल पुनि।
होइहहु अवध भुआल, तब मैं होब तुम्हार सुत॥१५१॥

अर्थ : ऐसा वर माँगकर चरण पकड़े रह गये। करुणानिधि ने एवमस्तु कह दिया। और बोले कि अब तुम हमारी आज्ञा मानकर इन्द्र की राजधानी अमरावती में जाकर बसो। वहाँ विशाल भोग करके हे तात ! कुछ दिन बाद तुम अवध के राजा होगे। और तब मैं तुम्हारा बेटा होऊँगा।

व्याख्या : वर माँगने के बाद चरण पकड़े हुए रह जाने का भाव यह है कि इस वर को लेकर मानेंगे। सरकार करुणानिधि हैं। यह बात भी मान गये। यद्यपि यह बात उनकी प्रतिष्ठा के विरुद्ध थी। जिनके वे पुत्र हों वह पिता उनके विरह में प्राण दे। यह बात कथमपि उनके स्वरूप के अनुकूल न थी। पर भक्त इसी बात पर हठ कर बैठा है। उसे प्रेम के अत्यन्तोत्कर्ष में शरीर छोड़ने की अभिलाषा है। अतः उसकी ही बात रक्खी एवमस्तु कह दिया। यथा : तुलसी मंगल मरन तरु राम प्रेम पय सींचु।

ईश्वर हैं : कहते हैं कि अब तुम मेरा अनुशासन मानकर अमरावती में बसो। तुम ब्रह्मलोक वैकुण्ठ कैलास में बसने से इनकार कर चुके हो। अमरावती में बसना तुम्हारे लिए छोटी बात होगी। पर मेरे अनुशासन से बसो और भोगविमुख न रहकर भोगविलास करो। तुमने बड़ी तपस्या भी की है। कुछ काल वहीं रहो। अर्थात् पाँच मन्वन्तरों तक वहीं रहो। इन्द्र और देवता तब तक पाँच बार बदलेंगे। पर तुम वहीं रहोगे। सातवें वैवस्वत मन्वन्तर में तुम अवध के राजा होओगे। तब मैं तुम्हारा बेटा होऊँगा। सब बातें स्पष्ट किये देते हैं :

इच्छामय नर वेष सँवारे। होइहौं प्रगट निकेत तुम्हारे ॥
अंसन्ह सहित देह धरि ताता। करिहौं चरित भगत सुख दाता ॥१॥

अर्थ : संकल्पमय मनुष्य का शरीर धारण किये हुए मैं तुम्हारे घर में प्रगट होऊँगा। हे तात ! मैं अपने अंशों के साथ देह धारण करके भक्तों को सुख देनेवाला चरित्र करूँगा।

व्याख्या : बेटा होने में नर होना पड़ेगा। सो मेरा शरीर पाञ्चभौतिक न होगा। संकल्पमय शरीर को नर की आकृति में सँवारूँगा और तुम्हारे घर प्रकट हो जाऊँगा। उसे दिव्य जन्म कहा। मैं अंशों विराट, हिरण्यगर्भ और ईश्वर के साथ भक्तों को सुख देने के लिए देह धारण करूँगा। इससे कर्म का दिव्य होना कहा। न तो कर्मवश जन्म होगा न अहंकार के साथ कर्म अनुष्ठित होगा। जिस प्रकार भक्तों को सुख होगा वही चरित प्रभु करने को कह रहे हैं।

जेहि सुनि सादर नर बड़ भागी। भव तरिहहिं ममता मद त्यागी ॥
आदि सक्ति जेहि जग उपजाया। सोउ अवतरिहि मोरि यह माया ॥२॥

अर्थ : जिसे आदर के साथ सुनकर बड़भागी लोग ममता मद त्याग करके भवसागर के पार हो जायँगे। आदिशक्ति जिसने संसार को उत्पन्न किया है वह भी अवतार धारण करेगी। मेरी यह माया है।

व्याख्या : अवतार के तिरोहित होने पर भी वह चरित जगत् के लिए बड़ा उपयोगी होगा। उसे जो आदर के साथ सुनेंगे वे बड़े भाग्यवान् हैं। केवल सुनने से भवसागर पार हो जावेंगे[1]। अब मनु का ध्यान आदि शक्ति की ओर आकर्षित करते हैं। अङ्गुल्या निर्देश करके कहते हैं कि यह मेरी माया आदि शक्ति है। यह भी अवतार धारण करेगी। भाव यह कि मैं अज हूँ। अव्ययात्मा हूँ। भूतों का ईश्वर हूँ। फिर भी अपनी प्रकृति का आश्रयण करके अपनी माया से मैं उत्पन्न होऊँगा। यथा : अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोपि सन्। प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया। बिना इनके अवतरण हो नहीं सकता। सब शक्तियों की मूलभूता आदिशक्ति है। वही मेरी माया है। यही संसार को उत्पन्न करती है। यह भी अवतीर्ण होगी। अर्थात् पुत्र के लिए वर माँगा है तो पतोहू : पुत्रबधू भी देख लो।

पुरउब मैं अभिलाष तुम्हारा। सत्य सत्य पन सत्य हमारा॥
पुनि पुनि अस कहि कृपानिधाना। अंतरधान भए भगवाना॥३॥

अर्थ : मैं तुम्हारा अभिलाष पूरा करूँगा। मेरा प्रण सत्य है, सत्य है, सत्य है। कृपानिधान बारबार ऐसा कहकर अन्तर्धान हो गये।

व्याख्या : विनती की गई थी : पुरवहु मोर मनोरथं स्वामी। वरदान मिल रहा है : पुरउब मैं अभिलाष तुम्हारा। भाव यह है कि एक गुना अभिलाष की चौगुनी पूर्ति की जायगी। प्रभु के समान पुत्र माँगा था। सो स्वयं आप और अपने समान तीन और लेकर पुत्र होंगे। केवल जन्मोत्सव चाहा था। सो जन्मोत्सव कर्णवेध, उपवीत और विवाह द्वारा अभिलाषा की पूर्ति करेंगे। त्रिसत्यम् के अनुसार तीन बार सत्य कहा। अथवा तीन बार सत्य कहकर अपने प्रण का तीन काल में सत्य होना दिखलाया। अथवा वरदान देने के अतिरिक्त तीन प्रतिज्ञा की है : १. इच्छामय नरवेष सँवारे। होइहौं प्रगट निकेत तुम्हारे। २. अंसन्ह सहित देह धरि ताता। करिहौं चरित भगत सुखदाता। और ३. आदिसक्ति जेहि जग उपजाया। सो अवतरिहि मोर यह माया। सो मनु शतरूपा के आश्वासन के लिए कहते हैं कि तीनों प्रण मेरे सत्य होंगे।

कृपानिधान हैं। शतरूपा ने सन्देह किया था। यथा : अस समुझत मन संसय होई। अतः बारबार निश्चय कराते हैं। सब बातें समाप्त हो गयीं तो अन्तर्धान हो गये। न कहीं से आये थे न कहीं गये। विश्ववास भगवान् हैं। वहीं प्रकट हुए और वहीं लुप्त हो गये।

दंपति उर धरि भगत कृपाला। तेहिं आश्रम निवसे कछु काला॥
समय पाइ तनु तजि अनयासा। जाइ कीन्ह अमरावति बासा॥४॥

---

१. मनुष्य जाति के आदिम पुरुष अपनी भावी सन्तान के लिए यही अक्षय निधि छोड़ गये। अतः श्रीरामावतार मनुष्यमात्र की बपौती सम्पत्ति है।

अर्थ : वे दोनों प्राणी भक्त के ऊपर कृपा करनेवाले को हृदय में धारण करके उस आश्रम में कुछ काल रहे। समय पाकर अनायास शरीर त्यागकर जाकर अमरावती में बास किया।

व्याख्या : तप बन्द है। हृदय में प्रभु की मधुर मूर्ति है। नैमिषारण्य में ही वानप्रस्थ धर्म में बसने लगे। प्रारब्ध कर्म के समाप्त होने पर ही आयु समाप्त होती है। सो दोनों का शरीर साथ ही पूरा हुआ। हरिकृपा से अनायास मृत्यु हो गई। अनायास का मरण अल्पतप का फल नहीं है। प्रभु का अनुशासन था कि बसहु जाइ सुरपति रजधानी सो जाइ कीन्ह अमरावति बासा। इससे यह भी मालूम हुआ कि सुरपति रजधानी का नाम अमरावती है।

दो. यह इतिहास पुनीत अति, उमहि कही वृषकेतु।
भरद्वाज सुनु अपर पुनि, राम जनम कर हेतु ॥१५२॥

अर्थ : इस अति पवित्र इतिहास को वृषकेतु ने उमा से कहा था। हे भरद्वाज अब रामजन्म का दूसरा कारण सुनो।

व्याख्या : ब्रह्म के साक्षात्कार का विवरण होने से तथा वैराग्य विवेक संयुक्त भक्तिगङ्गा की धारारूप होने से अति पवित्र कहा। इस इतिहास का उपक्रम अभ्यास और उपसंहार भक्ति से है। और भक्ति को गङ्गारूप कह आये हैं। यथा : रामभगति जहँ सुरसरि धारा : इसलिए यह भक्ति गङ्गारूप है। उपक्रम यथा : हृदय बहुत दुख लाग जनम गयउ हरिभगति बिनु। अभ्यास यथा : पंथ जात सोहत मतिधीरा। ग्यानभक्ति जनु धरे सरीरा। उपसंहार यथा : दंपति धरिउ भगति कृपाला। गङ्गा जिस भाँति यमुना और सरस्वती के साथ शोभित हैं उसी भाँति यह भक्तिगङ्गा विरति और विचार के साथ शोभित हैं। विचार यथा : होइ न विषय विराग भवन बसत भा चौथपन। हृदय बहुत दुखलाग। विरति यथा : बरबस राज सुतहिं नृप दीन्हा। नारि समेत गवन बन कीन्हा। इस इतिहास को समाप्त करके याज्ञवल्क्य भरद्वाज से कहते हैं : अब रामजन्म का दूसरा कारण सुनो :

[1]भानुप्रताप की कथा

सुनु मुनि कथा पुनीत पुरानी। जो गिरिजा प्रति संभु बखानी ॥
बिस्व बिदित एक कैकय देसू। सत्यकेतु तहँ बसै नरेसू ॥१॥

---

१. अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ हिन्दुत्व में गौडजी ने निम्नलिखित रामायणों का उल्लेख किया है। जिनमें भानु प्रताप की कथा मिलती है। पर मुझे इन रामायणों के दर्शन का सौभाग्य नहीं हुआ है।

१. अगस्त्य रामायण। इसमें २४००० श्लोक हैं। इसका समय रैवतमन्वन्तर का पाँचवाँ सत्ययुग है।

२. मञ्जुलरामायण। इसको सुतीक्ष्ण कवि ने स्वारोचिषमन्वन्तर के १४ वें त्रेता में बनाया है।

अर्थ : हे मुनि पुरानी पवित्र कथा सुनो जिसे गिरिजा से शम्भु ने कहा था। कैकय देश संसार में प्रसिद्ध है। वहाँ सत्यकेतु नाम का राजा रहता था।

व्याख्या : स्वायम्भू मनु की कथा अति पुनीत थी और यह कथा पुनीत है। वह कथा अति पुरानी है और यह पुरानी है। यद्यपि सभी कथाएँ गिरिजा के प्रति शम्भु की बखानी हुई हैं। पर याज्ञवल्क्य जी इन दोनों कथाओं के लिए गिरिजाशम्भु की कही हुई बतलाते हैं। इसका यह आशय मालूम होता है कि इन दोनों कथाओं को भुसुण्डिजी ने नहीं कहा। और भुसुण्डिजी की कही हुई कथा की सूचि : मूल रामचरित जो उत्तरकाण्ड में वर्णित है : में इन कथाओं का उल्लेख भी नहीं है। यथा : पुनि नारद कर मोह अपारा। कहेसि बहुरि रावन अवतारा। अतः भुसुण्डिजी ने प्रधानतः उसी कल्प की कथा कही जिसमें नारदजी को मोह हुआ था। भगवान् क्षीरशायी राम हुए थे और रुद्रगण रावण और कुम्भकर्ण हुए थे और शम्भु ने प्रधानतः उस कल्प की कथा कही जिससे ब्रह्म कोसलपुर भूप हुए थे। कैकय देश कश्मीर के दक्षिणी प्रान्त में हैं। जिसे गकर कहते हैं।

धरम धुरंधर नीति निधाना। तेज प्रताप सील बलवाना॥
तेहि कें भये जुगल सुत बीरा। सब गुन धाम महा रनधीरा॥२॥

अर्थ : वह धर्म की धुरी का धारण करनेवाला, नीतिनिधान, तेजस्वी, प्रतापी और बलवान् था। उसे दो वीर पुत्र हुए। जो सब गुणों के आश्रय और बड़े रणधीर थे।

व्याख्या : धर्मात्मा राजा सत्यकेतु में सभी राजोचित गुण थे। उसे दो वीर पुत्र उत्पन्न हुए। भावार्थ यह कि वीर उत्पन्न होते हैं बनाये नहीं जाते। 'सकल गुणधाम' महारणधीर कहने से तात्पर्य यह कि वे पिता से भी गुणों में श्रेष्ठ थे और रणधीर भी अधिक थे। वीर से उनकी वीरगति की प्राप्ति तथा रणधीर कहने से उनका विश्वविजय करना सूचित किया।

राज धनी जो जेठ सुत आही। नाम प्रतापभानु अस ताही॥
अपर सुतहि अरिमर्दन नामा। भुजबल अतुल अचल संग्रामा॥३॥

अर्थ : राज्य का उत्तराधिकारी जो जेठा बेटा था उसका नाम भानुप्रताप था। दूसरे का नाम अरिमर्दन था। उसकी भुजाओं में अपरिमित : बेतोल बल था। और संग्राम में अटल था।

व्याख्या : भानुप्रताप के राजधनी होने का कारण उसका ज्येष्ठ होना था नहीं तो गुण में दोनों भाई समान थे। बल्कि अरिमर्दन अधिक बलवान् और योद्धा था। जेठ स्वामि सेवक लघु भाई का सिद्धान्त बहुत पुराना है। और राजाओं में इसका अधिक आदर है। क्योंकि राज्य बिना इस सिद्धान्त के माने चल नहीं सकता। राज्य यदि भाइयों में विभक्त कर दिया जाय तो खण्ड खण्ड होकर शीघ्र ही नष्ट हो जाता है।

भाइहि भाइहि परम समीती । सकल दोष छल बरजित प्रीती ॥
जेठें सुतहि राज नृप दीन्हा । हरिहित आपु गवन बन कीन्हा ॥४॥

अर्थ : भाई-भाई में बड़ी बनती थी और सब दोष और छल से रहित प्रीति थी । राजा जेठे पुत्र को राज्य देकर भगवान् के लिए वन चले गये ।

व्याख्या : दोनों भाइयों में बड़ा मेल था । जिससे मैत्री हो उसके दुःख में दुःखी न होना बड़ा भारी दोष है । और उसके सामने मीठी-मीठी बातें बनाना और उसके पीछे उसका बुरा ताकना, मन में कुटिलता रखना आदि छल है । इन भाइयों की प्रीति में न दोष था न कोई छल था । राजा नीतिनिधान था और धर्मधुरन्धर था इसलिए भगवान् के भजन के लिए स्वयं बन चला गया । यथा : संत कहहिं अस नीति दसानन । चौथे बन जाइय नृप कानन । तासु भजन कीजिय तहँ भर्त्ता । जो कर्त्ता पालक संहर्त्ता ।

दो. जब प्रताप रवि भयउ नृप, फिरी दोहाई देस ।
प्रजापाल अति बेद बिधि, कतहुँ नहीं अघलेस ॥१५३॥

अर्थ : जब भानुप्रताप राजा हुआ देश में दोहाई[१] फिरी । वह वेद की विधि से प्रजा का अत्यन्त पालन करनेवाला था । कहीं पाप का लेश नहीं रह गया ।

व्याख्या : कहावत है कि जिसका राज्य उसकी दोहाई । सो भानुप्रताप के राजा होने पर उसकी दोहाई कैकय देश में फिरी । राज्य परिवर्तन में दोहाई फिरने का नियम है । यथा : नगर फिरी रघुबीर दोहाई । बिना वेदविधि से प्रजापालन किये राज्य में पापाचार बना ही रहता है । वर्णाश्रम के अनुसार राज्य चलाना राजा का कर्त्तव्य है तभी देश सुखी हो सकता है । अन्य उपाय नहीं है । यथा : ब्रर्णाश्रम निज निज धरम, निरत बेद पथ लोग । चलहिं सदा पावहिं सुखहि, नहिं भयसोक न रोग ।

नृप हित कारक सचिव सयाना । नाम धरम रुचि सुक्र समाना ॥
सचिव समान बंधु बलबीरा । आपु प्रताप पुंज रनधीरा ॥१॥

अर्थ : राजा का हित करनेवाला सयाना मन्त्री था । उसका नाम था धर्मरुचि । नीति जानने में : शुक्र के समान था । मन्त्री सयाना, भाई बली और वीर, आप स्वयं मानो प्रताप का समूह और समर में धीर था ।

व्याख्या : सभी समाज अनोखा जुट गया था । मन्त्री बुद्धिमान् होना चाहिए । सो शुक्राचार्य के समान मन्त्री चतुर मिल गया था । भाई सहायक होना चाहिए ।

---

१. दोहाई का प्राकृत रूप 'दोहाइअं' है । संस्कृत रूप द्विधाकृतम् है । इसका वाच्यार्थ है 'दो टूक किया हुआ' । बात दो टूक तभी होती है जब स्पष्ट और निःसन्देह हो जाती है । अतः इसका लक्ष्यार्थ घोषणा है । राज्य परिवर्तन होने पर जिसका राज्य होता है उसकी ओर से राज्य में घोषणा की जाती है : उसी को दोहाई फिरना कहते हैं ।

यथा : होहिं कुठायँ सुबंधु सहाए : सो भाई बली और वीर मिला था। राजा को प्रतापी होना चाहिए सो भानुप्रताप तो मानो प्रताप का पुञ्ज ही था। और रण में तो बड़ा धीर था।

सेन संग चतुरंग अपारा। अमित सुभट सब समर जुझारा ॥
सेन बिलोकि राउ हरषाना। अरु बाजे गहगहे निसाना ॥२॥

अर्थ : साथ में अपार चतुरङ्गिणी सेना थी। युद्ध में जूझनेवाले असंख्य योद्धा थे। इस प्रकार अपनी सेना को देखकर राजा बहुत प्रसन्न हुआ और गहगहे डङ्के बजे।

व्याख्या : मन्त्री सहायक और राजा का हाल कहकर अब सेना की व्यवस्था कहते हैं। सेना संख्या में भी बहुत बड़ी और सैनिकों में उत्कृष्ट गुण थे अर्थात् वे योद्धा थे। सेना के चार अंग होते हैं : हाथी, घोड़ा, रथ और पैदल। सो चारों अंगों का कोई पारावार न था।

राजा ने सेना का निरीक्षण किया तो बड़ा प्रसन्न हुआ कि इस सेना का पार कोई शत्रु नहीं पा सकता। डङ्का बजने से उत्साहवर्धन हुआ। राजा की सलामी में डङ्के बजे। डङ्कों की तुमुल ध्वनि के लिए गहगह शब्द का प्रयोग होता है। यथा : गहगह गगन दुंदुभी बाजी।

बिजय हेतु कटकई बनाई। सुदिन साधि नृप चलेउ बजाई ॥
जहँ तहँ परीं अनेक लराईं। जीते सकल भूप बरिआईं ॥३॥

अर्थ : दिग्विजय के लिए छोटी सी सेना बनाकर अच्छा दिन ठीक करके राजा डङ्का देकर चला। जहाँ तहाँ अनेक लड़ाइयाँ पड़ीं। पर राजा ने सबको बल से जीत लिया।

व्याख्या : सारी सेना में से कुछ नगररक्षा के लिए छोड़ और कुछ की पृथक् सेना दिग्विजय के लिए सजाई। विजयमुहूर्त देखकर बाजे बजाकर चले। अधीनता स्वीकार न करने पर जहाँ तहाँ लड़ाइयाँ हुईं। सो सबको बल से जीता। सब राजाओं ने हार स्वीकार की। दिग्विजय पूरी हुई।

सप्त दीप भुज बल बस कीन्हें। लेइ लेइ दंड छाँडि नृप दीन्हें ॥
सकल अवनिमंडल तेहि काला। एक प्रताप भानु महिपाला ॥४॥

अर्थ : अपनी भुजाओं के बल से सातों द्वीपों को वश कर लिया। राजाओं से दण्ड ले लेकर छोड़ दिया। सम्पूर्ण पृथ्वीमण्डल में उस समय एक मात्र राजा भानुप्रताप थे।

व्याख्या : केवल जम्बूद्वीप के विजय से ही दिग्विजय माना जाता है। सो प्लक्ष आदि शेष द्वीपों पर भी विजय पाई। यथा : जम्बू और पलक्ष कुस क्रौंच कहत पुनि साक। शाल्मलि पुष्कर द्वीप ये भाखैं वेद सुवाक। तुलसी शब्दावली। भुजा

के बल से सबको विजय किया। सेना शोभा के लिए साथ थी। जीतने पर राज्य नहीं छीना। युद्ध में बन्दी कर लिया। दण्ड लेकर छोड़[1] दिया।

दो. स्ववस विस्व करि बाहु बल, निज पुर कीन्ह प्रवेसु।
अरथ धरम कामादि सुख, सेवै समय नरेसु ॥१५४॥

अर्थ : अपने बाहु के बल से संसार को वश करके अपने पुर में प्रवेश किया। राजा अर्थ धर्म और कामादि सुख का समय से सभी का सेवन किया करता था।

व्याख्या : एक बार बाहर निकला तो सातों द्वीपों को वश करके लौटा। यद्यपि काम से सुखमात्र का ग्रहण होता है। पर यहाँ कामादि पाठ होने से स्त्रीसुख अभिप्रेत है और आदि से इतर सुखों का ग्रहण है। राजा को धर्म, अर्थ और काम तीनों के पूजन की आज्ञा है। सम्पूर्ण जगत् के लिए कर्म का प्राधान्य है। पर राजा और वेश्या के लिए अर्थ का प्राधान्य है। अतः अर्थ पहिले कहा। तत्पश्चात् धर्म और अन्त में काम कहा। समयानुकूल ही इनके सेवन की मर्यादा है। राजा तदनुसार ही कार्य करता था।

भूप प्रताप भानु बल पाई। कामधेनु भै भूमि सोहाई ॥
सब दुःख बरजित प्रजा सुखारी। धरम सील सुन्दर नर नारी ॥१॥

अर्थ : राजा भानुप्रताप का बल पाकर पृथ्वी सुन्दर कामधेनु हो गई। प्रजा सब दुःखों से रहित होकर सुखी हो गई। स्त्री और पुरुष सुन्दर और धर्मात्मा थे।

व्याख्या : कालस्य कारणं राजा कालो वा राजकारणम्। इति ते संशयो माभूत राजा कालस्य कारणम्। भगवान् मनु कहते हैं कि काल का कारण राजा है या राजा का कारण काल है ? इस विषय में तुम्हें संशय नहीं होना चाहिए। राजा ही काल का कारण होता है। इसी बात को यहाँ दिखलाते हैं कि राजा भानुप्रताप का बल पाकर पृथ्वी सुन्दर कामधेनु हो गई। अर्थात् पृथ्वी को राजा से बल मिलता है। समय पलट जाता है। सो पृथ्वी कामधेनु होकर जो प्रजा चाहे वही देने लगी। यथा : लता विटप माँगे मधु च्यवहीं। मन भावतो धेनु पय स्रवहीं। ससि संपन्न सदा रह धरनी। इत्यादि। सोहाई कामधेनु कहने का यह भाव है कि कामधेनु तो विष माँगने से विष देती है पर सोहाई कामधेनु अनर्थ की याचना को नहीं पूरा करती।

पाप से ही दुःख होता है। जब राज्य में पाप का लेश नहीं रह गया तब सब दुःखों से रहित सुख की प्राप्ति प्रजा को हुई। नहीं तो सुख में कुछ न कुछ दुःख का अनुवेध अवश्य ही रहता। क्योंकि विधि प्रपञ्च ही द्वन्द्व से बना हुआ है। यथा राजा तथा प्रजा। राजा प्रजापाल अति वेदविधि था। तो नर नारी भी धर्मशील

---

१. राज्य छीनकर अपने राज्य में मिला लेना अच्छी नीति नहीं है। राज्य उतना ही बड़ा होना चाहिए जिसकी देख रेख स्वयं राजा कर सके।

और सुन्दर हो गये। कुरूपता भी पाप का ही परिणाम है। सो प्रजा के रूप में भी अन्तर पड़ा।

सचिव धरम रुचि हरिपद प्रीती। नृप हिय हेतु सिखव नित नीती॥
गुरु सुर संत पितर महि देवा। करै सदा नृप सबकै सेवा॥२॥

अर्थ : धर्मरुचि मन्त्री की हरि के चरणों में प्रीति थी। वह राजा के कल्याण के लिए नित्य नीति का उपदेश देता था। गुरु, देवता, सन्त, पितर और ब्राह्मणों की सेवा राजा सदा किया करता था।

व्याख्या : राजा का हाल कहकर मन्त्री का हाल कहते हैं। राजा कर्मयोगी था। मन्त्री भगवद्भक्त था। नीति में उसकी शुक्र भगवान् की सी गति थी। अतः राजा को सदा नीति की शिक्षा दिया करता था। जिससे राजा नीतिमार्ग से विचलित न हो। धर्माविरोधी अर्थ और धर्मार्थाविरोधी काम का सेवन नीति है। जिससे धर्म, अर्थ और काम किसी को पीड़ा न हो। गुरु, सुर, सन्त, पितर और ब्राह्मण की सेवा से ही सब कुछ मिलता है। इन पाँचों की सेवा राजा स्वयं करे। यही नीति है। मन्त्री की शिक्षा से राजा ने क्या क्या किया सो कहते हैं :

भूप धरम जे वेद बखानें। सकल करै सादर सुख मानें॥
दिन प्रति देइ विविध विधि नाना। सुनै सास्त्र बर बेद पुराना॥३॥

अर्थ : वेद ने राजा के लिए जो धर्म बतलाया है, वह सब राजा सुख मानकर करता था। नित्य अनेक प्रकार का दान देता था। सत् शास्त्र और वेद पुराण श्रवण करता था।

व्याख्या : स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः। अपने धर्म में मरना अच्छा है। क्योंकि परधर्म भय का देनेवाला है। राजा यदि संन्यास धर्म का पालन करने चले तो वह उसके लिए परधर्म है। उसका फल अत्यन्त बुरा है। भगवद्गीता में प्रधान्येन यही शिक्षा है। धर्माचरण प्रारम्भ में विष सा मालूम होता है। पर परिणाम में अमृततुल्य है। सो राजा बड़ी श्रद्धा भक्ति से स्वधर्माचरण करने में ही सुख मानता है।

अनेक प्रकार के दान हैं। सबके लिए विधि है, समय है, फल है। राजा को नित्य दान करना चाहिए। जिस देश जिस काल में जिस दान का विधान है तदनुसार दान देता था। राजा का कृपण होना बड़ा भारी दोष है। शास्त्र, पुराण और वेद के श्रवण का बड़ा फल है। यही सब प्रकार के कल्याणों का मूल है। इसलिए राजा नित्य इनका श्रवण करता था। यथा : वेद पुराण वसिष्ठ बखानहिं। सुनहि राम यद्यपि सब जानहिं। राजा की श्रद्धा धर्म पर देखकर प्रजा भी धर्मात्मा हो जाती है।

नाना वापी कूप तड़ागा। सुमन वाटिका सुंदर बागा॥
विप्र भवन सुर भवन सुहाए। सब तीरथन्ह विचित्र बनाए॥४॥

अर्थ : उसने बहुत सी बावली, कुएँ, तालाब, फुलवारी, सुन्दर फलवाले बाग बनवाये। ब्राह्मणों के लिए घर देवताओं के लिए सुन्दर मन्दिर तथा सब तीर्थों को विचित्र बनाया।

व्याख्या : पुण्य के दो विभाग हैं : १. इष्ट और २. पूर्त। सो पहिले पूर्त कहते हैं। सर्वसाधारण के जल के सुभीते के लिए वापी, कूप और तड़ाग फूल के लिए वाटिका फल के लिए बाग। वेद की रक्षा के लिए विप्रभवन, उपासना के लिए सुरभवन और तरने के लिए तीर्थों को ही बहुत ही सुन्दर बनाया। वापी-कूपतड़ागादि देवतायतनानि च। अन्नप्रदानमारामः पूर्तमित्यभिधीयते। अर्थ : बावली, कुवाँ, तालाब, देवमन्दिर, अन्न का सदाव्रत, बाग, इन सबों को पूर्त कहा जाता है।

दो. जहँ लगि कहे पुरान श्रुति, एक एक सब जाग।
बार सहस्र सहस्र नृप, किए सहित अनुराग ॥१५५॥

अर्थ : वेद और पुराणों ने जहाँ तक एक एक बार यज्ञ करने को कहा है। उन्हें सहस्र-सहस्र बार राजा ने अनुराग के साथ किया।

व्याख्या : पूर्त कहकर इष्ट कहते हैं। श्रौत और स्मार्त यज्ञों का विधान है। वे अनेक प्रकार के हैं। उनमें से कोई यज्ञ ऐसे हैं जिन्हें एक ही बार करने की आज्ञा है। जैसे राजसूय को कुल भर में एक ही पुरुष एक ही बार कर सकता है। उसे भी राजा ने अनुराग के साथ सहस्रों बार कर डाला। अन्य यज्ञ कितने किये कौन कह सकता है। एकाग्निकर्म हवनं त्रेतायां यच्च हूयते। अन्तर्वेद्यां च यद्दानमिष्टं तदभिधीयते। अर्थ : एकाग्नि कर्म हवन और त्रेताग्नि में जो हवन किया जाता है तथा अन्तर्वेदी में जो दान किया जाता है उसे इष्ट कहते हैं।

हृदय न कछु फल अनुसंधाना। भूप विवेकी परम सुजाना ॥
करै जे धरम करम मन बानी। वासुदेव अर्पित नृप ग्यानी ॥१॥

अर्थ : हृदय में फल की कोई भावना भी नहीं थी। राजा बड़ा विवेकी और जानकार था। ज्ञानी राजा कर्म, मन और वाणी से जो धर्म करता था सब वासुदेवार्पण करके ही करता था।

व्याख्या : फल की कामना से कर्म करनेवालों को शास्त्रों ने कृपण बतलाया है। यथा : कृपणाः फलहेतवः। गी.। राजा भानुप्रताप फल की कोई कामना नहीं रखता था क्योंकि विवेकी था। समझता था कि मेरा कर्म में ही अधिकार है फल में नहीं है। यथा : कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन। गी.। परम सुजान था। उस फल को वासुदेवार्पण करता था। वासुदेवार्पण करने से कोटि गुण अधिक फल होता है और न करने से श्रममात्र ही फल होता है। यथा : हरिहिं समर्पे विनु सत्कर्मा।

चढि वर वाजि बार एक राजा। मृगया कर सब साजि समाजा ॥
विंध्याचल गभीर वन गएऊ। मृग पुनीत बहु मारत भएऊ ॥२॥

अर्थ : एकबार वह राजा एक अच्छे घोड़े पर सवार होकर शिकार की सब तैयारी करके विन्ध्याचल के गम्भीर वन में गया। और उसने बहुत से मेध्य मृगों को मारा।

व्याख्या : राजा को मृगया का व्यसन था। शिकार के लिए तेज घोड़ा चाहिए। इसलिए शीघ्रगामी घोड़े पर सवार हुआ। शिकारी कुत्ते, बाजपक्षी आदि जो कुछ वस्तु मृगयोपयोगी थे उन्हें साथ लिया। व्यसन इतना चढ़ा बढ़ा था कि कैकेय देश से शिकार के लिए विन्ध्याचल चला आया। सो भी घोड़े पर। उसने वृथा हिंसा न की। केवल मेध्य पशुओं को मारा। मेध्य : पवित्र पशु उसे कहते हैं जिसके मांसचर्मादि ग्राह्य हों। यथा : पावन मृग मारहिं जिय जानी।

फिरत बिपिन नृप दीख बराहू। जनु बन दुरेउ ससिहि ग्रसि राहू ॥
बड बिधु नहिं समात मुख माहीं। मनहु क्रोध बस उगिलत नाहीं ॥३॥

अर्थ : वन में घूमते हुए राजा ने एक सुअर देखा। मानो वन में छिपने पर भी चन्द्रमा को राहु ग्रसे हो। चन्द्रमा वड़ा होने से उसके मुख में न समाता हो। और वह क्रोध के वश होकर उसे उगलता न हो।

व्याख्या : वन में घूमते घूमते उसे एक सूअर दिखाई पड़ा। अद्भुत सूअर था। मालूम होता था कि यह राहुग्रह है। इसके डर से चन्द्रमा आकाश छोड़कर वन में छिपे। पर यहाँ भी उसने पहुँच कर ग्रस लिया। परन्तु चन्द्रमा बड़े थे : और वह एक ही ग्रास करना चाहता था : उसके मुख में समाते नहीं थे। पर वह भी मारे क्रोध के उगलता नहीं था।

कोल कराल दसन छबि गाई। तनु बिसाल पीवर अधिकाई ॥
घुरुघुरात हय आरौं पाएँ। चकित बिलोकत कान उठाएँ ॥४॥

अर्थ : सूअर के कराल दाँतों की छवि कही गई। शरीर भी उसका चरबी की अधिकता से बड़ा भारी था। घोड़े की आहट पाकर वह घुरघुराता हुआ कान उठाकर आश्चर्य से देखता था।

व्याख्या : सूअर का मुख राहु के वर्ण सा काला था। उसके दोनों दाँत दोनों ओर चन्द्रमा की कला की भाँति उज्वल थे। मालूम होता था कि चन्द्रमा का मध्य भाग तो राहु के मुख में है। पर चन्द्रमा के बड़े होने से उनके दोनों किनारे बाहर निकले हुए हैं। उसके कराल दाँतों की बड़ी शोभा हो रही थी। उसका शरीर राहु की भाँति विशाल मालूम होता था। राजा घोड़े पर सवार चले आ रहे थे। ऐसी स्थिति में घोड़े की आहट पाकर सूअर कान उठाकर जिस भाँति चकित होकर देखते हैं उसी भाँति वह भी देखता था।

दो. नील महीधर सिखर सम, देखि बिसाल बराहु।
चपरि चलेउ हय सुटुकि नृप, हांकि न होइ निबाहु ॥१५६॥

अर्थ : नीलपर्वत शिखर के समान भारी वाराह : सुअर को देखकर राजा ने घोड़े को सिटुककर चलाया। क्योंकि हाँकने से निर्वाह नहीं होता था।

व्याख्या : सिंटुकने का अर्थ धीरे से कोड़ा लगाना है। ऐसा वाराह राजा ने देखा नहीं था। इसलिए उसके शिकार का अधिक चोप हुआ। यह जल्दी हाथ न आवेगा। हाँकने से जैसा घोड़ा चल रहा है इस वेग से काम न चलेगा। इसलिए घोड़े को धीरे से कोड़ा लगाया। घोड़ा बड़ी जातिवाला था। उसके लिए सिटुकना ही बहुत था।

आवत देखि अधिक रव बाजी। चलेउ वराह मरुत गति भाजी ॥
तुरत कीन्ह नृप सर संधाना। महि मिलि गएउ विलोकत वाना ॥१॥

अर्थ : अधिक : वेग से घोड़े को आते देखकर वह सूअर वायुवेग से भाग चला। राजा ने तुरन्त बाण सन्धान किया। सूअर बाण देखते ही पृथ्वी में चिपक गया।

व्याख्या : राजा ने देखा कि घोड़ा इतने वेग से नहीं चल सकता। भाले से इसका शिकार करना असम्भव है। तीर में ही इतनी शक्ति है कि इसके वेग का उल्लंघन कर सके। अतः उन्होंने बाण का सन्धान किया। वाराह ने देखा कि वाण से अधिक वेग मेरा नहीं हो सकता। इसलिए ऐसा जमीन में चिपका कि नील महीधरशिखरं सा उसका शरीर महीतल के समतल मालूम होने लगा। रव धातुगत्यर्थक है। अतः रव शब्द यहाँ गति का बोधक है।

तकि तकि तीर महीस चलावा। करि छल सुअर सरीर बचावा ॥
प्रगटत दुरत जाइ मृग भागा। रिस बस भूप चलेउ संग लागा ॥२॥

अर्थ : राजा ने ताक ताक कर तीर चलाया। पर सुअर चालाकी से शरीर बचाता ही गया। इस भाँति प्रकट होते और छिपते शिकार भागा जाता था। राजा भी क्रोध के वश उसका पीछा करता चला।

व्याख्या : पहिली चोट खाली गयी। अब राजा खूब निशाना बाँधकर तीर चलाने लगा। पर सूअर भी चालाकी से शरीर बचाता ही गया। सभी वार खाली गये। इतने वड़े रणपण्डित के सभी वारों का खाली जाना भी असाधारण बात थी।

वह शिकार कभी दिखाई पड़ता था। कभी दृष्टि से ओझल हो जाता था। एकदम ओझल हो जाय तो भी राजा निराश होकर लौट जाता। पर वह दिखाई भी पड़ता जाता था। सभी वारों के खाली जाने पर राजा को नैराश्य के स्थान पर क्रोध हुआ और उसने हठ करके पीछा किया। विचार से काम न लिया।

गएउ दूरि घन गहन बराहू। जहँ नाहिन गज बाजि निबाहू ॥
अति अकेल वन विपुल कलेसू। तदपि न मृग मग तजइ नरेसू ॥३॥

अर्थ : सूअर दूर जाकर घने जंगल में घुसा जहाँ हाथी घोड़े का निर्वाह

नहीं था। राजा बिल्कुल अकेला था और बन में बड़ा कष्ट था। फिर भी उसने शिकार का पीछा न छोड़ा।

व्याख्या : दो एक आदमी के साथ रहते भी राजा अकेला ही समझा जाता है। यहाँ तो उसके साथ कोई भी नहीं था। इसलिए अति अकेल कहते हैं। बन में पानी तक का ठिकाना नहीं। घने जंगल में सूअर का पीछा करना महा कष्टकर कार्य था : डरपहि धीर गहन सुधि आये : इसलिए कहते हैं कि बनबिपुल कलेसू। फिर भी राजा उसका पीछा करने से विरत न हुआ।

कोल बिलोकि भूप बड़ धीरा। भागि पैठ गिरिगुहा गभीरा॥
अगम देखि नृप अति पछिताई। फिरेउ महाबन परेउ भुलाई॥४॥

अर्थ : सूअर ने देखा कि राजा बड़ा धीर है। वह भागकर पर्वत की गहिरी गुफा में घुस गया। उसमें राजा का घुसना असम्भव था। सो अत्यन्त पछताकर लौटा। बड़ा भारी वन था। उसमें रास्ता भूल गया।

व्याख्या : सूअर ने देखा कि राजा बड़ा धीर है। यह प्राण न छोड़ेगा तो भागकर पर्वत के गहरे खोह में घुस गया। राजा ने देखा कि इस गहरी गुफा में मनुष्य की गति ही नहीं है। इसलिए पीछा करने से विरत होना पड़ा। बहुत पछताया कि सम्पूर्ण परिश्रम ही व्यर्थ पड़ गया। परन्तु लौटते समय उस महावन में मार्ग भूल गया। शिकारी राजा साधारण वन में रास्ता भूलनेवाला नहीं था। परन्तु महावन में बड़ी दूर चला गया था इसलिए राह भूला।

दो. खेद खिन्न छुद्धित तृषित, राजा बाजि समेत।
खोजत व्याकुल सरित सर, जल बिनु भयउ अचेत॥१५७॥

अर्थ : राजा खेद से खिन्न, भूखा, प्यासा घोड़े के साथ व्याकुल होकर नदी तालाब ढूँढ़ता था। और पानी बिना अचेत हो रहा था।

व्याख्या : खेदखिन्न से मन की गति कही। क्षुधित तृषित से प्राण की गति कही। घोड़े के भूखे प्यासे होने से स्वस्थ सवार भी बेकार हो जाता है। किं पुनः दोनों भूखे प्यासे हो गये थे। भूख तो सह्य है, परन्तु प्यास से तो प्राण आकुल हो उठता है। व्याकुल होकर खोजने से जानी हुई वस्तु नहीं मिलती। यहाँ तो महावन में सरित सर खोजना ठहरा। राजा की दयनीय अवस्था हो रही थी।

फिरत बिपिन आश्रम एक देखा। तहँ बस नृपति कपट मुनिबेषा॥
जासु देस नृप लीन्ह छुड़ाई। समर सेन तजि गयउ पराई॥१॥

अर्थ : वन में फिरते हुए एक आश्रम देखा। वहाँ एक राजा कपट से मुनिवेष में रहता था। उसके देश को राजा भानुप्रताप ने छीन लिया था। क्योंकि वह समर में सेना को छोड़कर भाग गया था।

व्याख्या : उस बड़े और घने जंगल में एक आश्रम दिखाई पड़ा। उसमें कपट से मुनि वेष में एक राजा रहता था। अर्थात् इस अवस्था में भीतर से वह राजा

ही था। कपट से मुनिवेष बनाए था। वह भानुप्रताप का शत्रु था। क्योंकि इन्होंने उसका राज्य छीन लिया था। और वह प्राणभय से लड़ाई के मैदान में फौज छोड़कर भाग गया था। कुछ लोगों का मत है कि उसका नाम समरसेन था। वह सेना को छोड़कर भाग गया था। सेन शब्द देहलीदीपकन्याय से दोनों ओर लगेगा। इस भाँति अन्वय होगा कि समर सेन तजि गयउ पराई। राजा भानुप्रताप ने किसी का राज्य नहीं लिया था। लै लै दण्ड छाड़ि नृप दीन्हें। पर इसके देशत्याग से इसका राज्य छीन लिया। यह इस भय से कि राजा बड़ा नीतिज्ञ है। मेरा पता लगाये बिना न छोड़ेगा। इतने घने वन में मुनि के वेष से छिपा वैठा था।

समय प्रतापभानु कर जानी। आपन अति असमय अनुमानी ॥
गयउ न गृह मन बहुत गलानी। मिला न राजहि नृप अभिमानी ॥२॥

अर्थ : भानुप्रतापका अनुकूल समय जानकर और अपना अत्यन्त प्रतिकूल समय अनुमान करके वह भागा था। घर भी नहीं गया। और वह अभिमानी राजा भानुप्रताप से मिला भी नहीं।

व्याख्या : एक ही समय किसी के लिए अच्छा और किसी के लिए बुरा होता है। दिग्विजय के समय जब राजा भानुप्रताप अपनी सेना के साथ इसके राज्य में गया तो यह सेना लेकर उसका सामना करने को आया। पर समराङ्गण में भानुप्रताप की सेना देखकर साहस छूट गया। जान लिया कि शत्रु के दिन अच्छे हैं। शत्रु के अच्छे दिन आने से ही अपने बुरे दिन का अनुमान होता है। सो सेना को समराङ्गण में छोड़कर भाग गया। इसी से उसका पता न चला। यदि न भागता और भानुप्रताप से जा मिलता तो इससे दण्ड लेकर राजा भानुप्रताप छोड़ देता। पर यह अभिमानी था। भानुप्रताप से नहीं मिला और ग्लानि के कारण घर भी नहीं गया।

रिस उर मारि रंक जिमि राजा। विपिन बसइ तापस कें साजा ॥
तासु समीप गवन नृप कीन्हा। यह प्रतापरवि तेहिं तब चीन्हा ॥३॥

अर्थ : मन में क्रोध मारकर वह राजा दरिद्र की भाँति तपस्वी का वेष बनाकर वन में बसता था। राजा भानुप्रताप उसी के पास गया। उसने पहिचान लिया कि यह भानुप्रताप है।

व्याख्या : तपस्वी के कोई गुण उसमें नहीं थे। भीतर राजस क्रोध भरा था। राजा होकर दरिद्र की भाँति रहता है। भानुप्रताप के भय से वन में तपस्वी का स्वाँग बनाये हुए काल की प्रतिज्ञा कर रहा था। भानुप्रताप उस आश्रम में पहुँचा। उसके पास गया। वह बूढ़ा हो गया था। दृष्टि घट गई थी। जब भानुप्रताप निकट गया तब उसने पहिचान लिया कि यह भानुप्रताप है। दूर से पहिचान पाता तो सम्भवतः वहाँ से भी भाग खड़ा होता। पर अब भागने का समय नहीं रह गया।

राउ तृषित नहिं सो पहिचाना। देखि सुवेष महामुनि जाना ॥
उतरि तुरग तें कीन्ह प्रनामा। परम चतुर न कहेउ निज नामा ॥४॥

अर्थ : राजा प्यासा था। उसे पहिचान न सका। सुन्दर वेष देखकर जाना कि यह कोई महामुनि है। घोड़े से उतरकर प्रणाम किया। फिर भी परम चतुर राजा ने अपना नाम न बतलाया।

व्याख्या : राजाओं के पास शत्रु, मित्र तथा मध्यस्थ सभी राजाओं के चित्र रहते हैं। अतः एक राजा दूसरे को बिना मुलाकात के ही पहिचान लेते हैं। भानुप्रताप यदि भूख प्यास से विकल न होता तो उसे पहिचान लेता। वह व्याकुल था समझा कि उतने घने जंगल में सिवा मुनि के और कौन रह सकता है। और वेष भी महामुनि का सा देखा।

घोड़े पर से ही प्रणाम करना अविनय है। नियम है कि अपना गोत्र कहकर बड़े को प्रणाम करना चाहिए। सो घोड़े से उतरकर प्रणाम तो किया पर धर्मरुचि की शिक्षा के प्रताप से नीति में बड़ा चतुर था। प्रणाम करते समय अपना नाम न लिया।

दो. भूपति तृषित विलोकि तेहिं, सरवरु दीन्ह देखाइ।
मज्जन पान समेत हय, कीन्ह नृपति हरषाइ ॥१५८॥

अर्थ : राजा को प्यासा देखकर उसने उसे तालाब दिखला दिया। राजा ने घोड़े सहित उसमें हर्षित होकर मज्जन और पान किया।

व्याख्या : भानुप्रताप को देखते ही वह समझ गया कि यह प्यासा है। अतः उनके कुछ कहने के पहिले ही उसने तालाब दिखला दिया। पीने का पानी दुर्लभ था। सो तालाब मिल गया। इससे हर्षित होकर राजा ने उसमें मज्जन किया और पानी भी पीया। तथा घोड़े को पानी पिलाया और नहलाया। कोई साथ नहीं है। अतः घोड़े की सेवा स्वयं करनी पड़ी।

गै श्रम सकल सुखी नृप भयऊ। निज आश्रम तापस लै गयऊ ॥
आसन दीन्ह अस्त रवि जानी। पुनि तापस बोलेउ मृदु बानी ॥१॥

अर्थ : सब थकावट मिट गई। राजा सुखी हुआ। तसस्वी अपने आश्रम में उसे ले गया। सूर्यास्त जानकर आसन दिया फिर तपस्वी जी कोमल वाणी बोले।

व्याख्या : राजा बिना जल के अचेत था। सो तालाब मिलने से मज्जन किया। पान किया। इसलिए कहते हैं कि थकावट मिटी और राजा सुखी हुआ। यथा : मज्जन कीन्ह पंथ श्रम गयऊ। सुचि जल पियत मुदित मन भयऊ। जबतक राजा स्नानादि करते थे तबतक तपस्वी जी वहीं थे। निश्चिन्त होने पर अपने आश्रम पर ले गये। यह राजा का सत्कार है। सूर्यास्त होने पर जब अंधेरा हो चला तब आसन दिया और कोमल बाणी बोले। तपस्वी जी को भय हुआ कि राजा चैतन्य हुआ है। कहीं मुझे पहिचान न ले। इसलिए सूर्यास्त के पहिले दूर ही दूर थे। बोले तक नहीं। राजा आसन पर बैठा नहीं। अभी घोड़े की रास पकड़े खड़ा है।

को तुम्ह कस वन फिरहु अकेलें। सुंदर जुवा जीव पर हेलें[1] ॥
चक्रवर्ति के लच्छन तोरें। देखत दया लागि अति मोरें ॥२॥

अर्थ : तुम कौन हो ? सुन्दर युवा होकर जानपर खेले हुए अकेले वन में क्यों घूम रहे हो। तुम में चक्रवर्ती के लक्षण हैं। तुम्हें देखकर मुझे बड़ी दया आई।

व्याख्या : जब राजा आ ही गया तो उससे बातचीत करनी ही चाहिए। न करना भी ठीक नहीं। अतः पूर्व परिचय छिपाता हुआ नाम पूछता है। इतने बड़े राजा का अकेले वन में घूमने के लिए कोई विशेष कारण होना चाहिए। वानप्रस्थ की अवस्था नहीं है। इसलिए पूछता है कि अभी तो तुम युवा हो। किस संकट में फँस गये हो कि अकेले जानपर खेलकर इस वन में आये। जिसके भय से इतना भयभीत था सो स्वयं आ पहुँचा। अतः उनके आने का अभिप्राय जानने के लिए तथा उनकी परिस्थिति जानने के लिए प्रश्न करता है।

यदि राजा को सन्देह उठे कि इसने कैसे जाना कि मैं बड़ा राजा हूँ तो उसके निराकरण के लिए कहता है कि तुममें तो चक्रवर्ती के लक्षण हैं मैंने सामुद्रिक विद्या से जाना। ऐसे वन में तो जिसे प्राण देना होता है वही आता है। अतः तुम्हारे किसी भारी संकट में फँसने की आशङ्का से मुझे अति दया लगी।

नाम प्रताप भानु अवनीसा। तासु[2] सचिव मैं सुनहु मुनीसा ॥
फिरत अहेरें परेउँ भुलाई। बड़े भाग देखेउँ पद आई ॥३॥

अर्थ : हे मुनीश ! सुनो। भानुप्रताप नाम का जो राजा है उसका मैं मन्त्री हूँ। शिकार के लिए घूमते हुए मैं राह भूल गया। मेरा बड़ा भाग्य था कि आकर चरणों के दर्शन किये।

व्याख्या : राजनीति के अनुसार राजा अपने को छिपाना चाहते हैं। पर लक्षण देखकर तपस्वी चक्रवर्ती कह रहा है। अब भेद कैसे छिपे ? इसलिए राजा ने अपने को भानुप्रताप का मन्त्री बतलाया। क्योंकि मन्त्री के भी लक्षण राजा से ही होते हैं। कदाचित् किसी मन्त्री से इनका परिचय हो। इसलिए नाम नहीं बतलाया। कहने लगा कि कोई विपत्ति कारण नहीं है। मृगया के लिए आया था। भाग्य यहाँ खींच लाया।

हम कहँ दुर्लभ दरस तुम्हारा। जानत हौं कछु भल होनिहारा ॥
कह मुनि तात भएउ अँधियारा। जोजन सत्तरि नगर तुम्हारा ॥४॥

अर्थ : हमको तो आपका दर्शन दुर्लभ है। जान पड़ता है कि होनहार कुछ अच्छा है। मुनि ने कहा कि बेटा ! अँधेरा हो गया। और तुम्हारा नगर यहाँ से सत्तर योजन है।

---

१. खघथधभां हः इस सूत्र से खेलें का हेलें हुआ।

२. यहाँ व्याजोक्ति अलङ्कार है।

व्याख्या : बड़े भाग्यशाली बात को स्पष्ट करता है कि नगरवासियों को ऐसे विरक्त का दर्शन कहाँ से हो ? और साधु का दर्शन अमोघ है। कभी व्यर्थ जाता नहीं।

कपटमुनि ने समझ लिया कि यह नहीं पहिचान सका। और मुझसे कुछ लाभ को भी आशा इसे बँध गई है। हो सके तो फन्दे में लाकर इससे पलटा चुकाना चाहिए। अतः ठहरने के लिए आग्रह करता है। कहता है कि तुम अपने नगर से बहुत दूर निकल आये। कैकय देश यहाँ से ७० योजन पर है।

दो. निसा घोर गंभीर बन, पंथ न सुनहु सुजान।
वसहु आज अस जानि तुम्ह, जाएहु होत विहान ॥१५९॥

अर्थ : घोर रात्रि है। जंगल घना है। रास्ता कोई नहीं। हे सुजान ! ऐसा जान के आज तुम यहीं ठहर जाओ। प्रातःकाल होते ही चले जाना।

व्याख्या : कपटमुनि ने देखा कि अभी यह विश्वास नहीं करता है। यहाँ से जाना चाहता है। अपना प्रयोजन कोई बतला नहीं सकते। अतः इसी के कल्याण का ओट पकड़ना चाहिए। अतः राजा को समझाता है कि घोर वन में दिन को चलना कठिन है। अँधेरी रात में कोई कैसे चलेगा। पगडंडी पकड़कर किसी भाँति चलना हो सकता है। पर यहाँ वह भी नहीं। कोई आता जाता नहीं। अतः रात को वन पार करना अशक्य है। अतः रात यहीं बिताओ।

दो. तुलसी जसि भवितव्यता, तैसइ मिलै सहाइ।
आपुन आवइ ताहि पहिं, ताहि तहाँ लैजाइ ॥१५९॥ क

अर्थ : तुलसीदासजी कहते हैं जैसा होनहार होता है वैसा सहाय मिल जाता है। वह स्वयं उसके पास आजाता है। और उसे : भवितव्यतावाले को : वहाँ : भवितव्यता के पास : पहुँचा देता है।

व्याख्या : भानुप्रताप का नाश होना है। यही भवितव्यता है। और वह कपटीमुनि के आश्रम पर राजा के पहुँचने पर ही सिद्ध होगी। और वह कैकय देश से सत्तर योजन पर घोर वन में है। राजा के वहाँ जाने की कोई सम्भावना नहीं है। राजा सदा की भाँति मृगया : शिकार : के लिए जाता है। वहाँ कालकेतु असुर राजा का परम वैरी सूअर बनकर : भवितव्यता का सहाय होकर : आता है। और राजा को ले जाकर कपटी मुनि तक पहुँचा देता है। जहाँ राजा स्वयं कपटी मुनि के कपट का शिकार हो जाता है।

भलेंहि नाथ आयसु धरि सीसा। बांधि तुरग तरु बैठ महीसा ॥
नृप बहु भाँति प्रसंसेउ ताही। चरन बंदि निज भाग्य सराही ॥१॥

अर्थ : आज्ञा सिर पर धारण करके राजा ने कहा : स्वामिन् ! बहुत अच्छा। और घोड़े को पेड़ से बाँधकर बैठ गया। राजा ने बहुत भाँति से उसकी प्रशंसा की। और उसके चरणों की वन्दना करके अपने भाग्य को सराहा।

व्याख्या : अभी तक राजा जाने को तैयार था। अपरिचित स्थान में ठहरना नहीं चाहता था। अतः घोड़े को कहीं बाँधा नहीं था। अब मुनिजी की आज्ञा ठहरने की हुई। तो उसे मानकर घोड़े को पेड़ में बाँध दिया। और स्वयं मुनिजी के दिये हुए आसन पर बैठ गया।

राजा ने देखा कि इस सूनसान जंगल में एकाकी रहनेवाला यह निश्चय ही कोई महात्मा है। केवल लक्षण देखकर मुझे चक्रवर्ती जान लिया। और अपरिचित होने पर भी मुझपर इतनी कृपा करता है। अतः उनकी बड़ी स्तुति की। प्रणाम किया। उनके दर्शन से अपने को भाग्यवान् माना। समझा कि इस रास्ता भूलने से मेरा हित ही हुआ।

पुनि बोलेउ मृदु गिरा सुहाई। जानि पिता प्रभु करौं ढिठाई॥
मोहि मुनीस सुत सेवक जानी। नाथ नाम निज कहहु बखानी॥२॥

अर्थ : फिर सुन्दर और कोमल वाणी बोला कि प्रभो! पिता जानकर मैं ढिठाई करता हूँ। हे मुनीश मुझे बेटा और सेवक जानकर हे नाथ! अपने नाम को बखानकर कहिये।

व्याख्या : राजा ऐसी वाणी बोला जो कोमल और सोहाई हो। किसी विरक्त से नाम ग्राम पूछना ढिठाई है। संसार से सम्बन्ध तोड़कर जो जंगल में बैठा है उससे व्यवहारस्थापन के लिए नाम ग्राम पूछने का किसी को क्या अधिकार है? और राजा पूछना चाहता है। अतः ऐसी कोमल वाणी से पूछता है कि अरुन्तुद न मालूम हो। पहिले सम्बन्ध कायम करता है कि मुनि होने से आप प्रभु हैं। राजा होने से मैं सेवक हूँ। आपने 'बेटा' कहा है। मैं आपको पिता मानता हूँ। यद्यपि आप मुनीश हैं। फिर भी मुझे सुत और सेवक होने से अधिकार है कि नाम : पता पूछूँ। क्योंकि अपने स्वामी और पिता के परिचय की किसे जिज्ञासा नहीं होती। ऐसी अवस्था में ढिठाई क्षम्य है।

तेहि न जान नृप नृपहि सो जाना। भूप सुहृद सो कपट सयाना॥
बैरी पुनि छत्री पुनि राजा। छल बल कीन्ह चहै निज काजा॥३॥

अर्थ : राजा ने उसे नहीं जाना। पर वह राजा को जान गया। राजा सुहृद था। पर वह कपट में सयाना था। एक तो वैरी तिस पर क्षत्रिय और उसमें भी राजा। छल के बल से अपना काम किया चाहता है।

व्याख्या : राजा भी सयाना था। परन्तु शुद्धहृदय था। और यह मुनि कपट में सयाना था। दूसरी बात यह थी कि राजा उसे पहिचान न सका। और उसने राजा को पहिचान लिया था। इस कारण से राजा उसकी माया में जा फँसा। एक तो वैरी बुरे होते ही हैं। उसमें भी क्षत्रिय बिना बदला लिये नहीं रह सकता। उसमें भी यदि राजा हो तो निश्चय बल से काम लेगा।

समुझि राज सुख दुखित अराती । अवाँ अनल इव सुलगै छाती ॥
सरल वचन नृप के सुनि काना । बयर सँभारि हृदय हरषाना ॥४॥

अर्थ : वह शत्रु राजसुख का स्मरण करके दुःखित था। उसकी छाती आवें की आग की भाँति सुलगती थी। राजा के सरल वचन कान से सुनकर वैर को सँभालकर हृदय में हर्षित हुआ।

व्याख्या : राजा के वैरी होने में विशेषता यह है कि उसे पदे पदे राजसुख याद पड़ेगा। कलेजे में आग धधका करेगी। वह बदला लेने में किसी पुण्य-पाप का विचार न करेगा।

राजा सुहृद था इसलिए सरल वचन बोला। यह कपट में सयाना था। इसलिए वैर को संभालकर हर्षित हुआ। वैर संभालने का भाव यह है कि उसका हर्ष राजा की सरलता के कारण नहीं है। बल्कि राजा का अपने प्रति विश्वास देखकर है। वैर संभाला बदला लेने के लिए। यह देखकर कि राजा बड़ा सरल मालूम पड़ता है, इसके सरल वचनों में चित्त न पिघले अतः वैर को संभाला कि इसी ने मेरा सर्वस्व हरण करके मुझे वनचारी बना रक्खा है। कान से सुनने का भाव यह है कि उसे हृदय में स्थान नहीं दिया।

दो. कपट बोरि बानी मृदुल, बोलेउ जुगुति समेत ।
नाम हमार भिखारि अब, निर्धन रहित निकेत ॥१६०॥

अर्थ : वह युक्ति से कोमल वाणी कपट से पगी हुई बोला : मेरा नाम तो अब भिखारी, निर्धन और गृहहीन है।

व्याख्या : वह कपटमुनि भी मृदु वाणी बोला। पर सोहाई नहीं थी। क्योंकि कपट से डूबाडूब थी और ऐसी युक्ति से बोला कि उससे स्पष्ट हृदय का उद्‌गार भी प्रकट हो। और राजा यह समझे कि मुनिजी अपने प्रभाव को छिपा रहे हैं। बड़े गलित अभिमान हैं। अब का भाव यह कि किसी समय राज्य था। कोष था, दुर्ग था। आज मैं भिखारी निर्धन और गृहहीन हूँ। पर राजा यह समझें कि अपने त्याग को गरीबी के रूप में छिपा रहे हैं।

कह नृप जे बिग्यान निधाना । तुम्ह सारिखे गलित अभिमाना ॥
सदा रहहिं अपनपौ दुराएँ । सब बिधि कुसल कुबेष बनाएँ ॥१॥

अर्थ : राजा ने कहा कि जो विज्ञान के निधान हैं और आपके सदृश गलित अभिमान हैं वे अपने को सदा छिपाये रहते हैं। यद्यपि सब प्रकार से कुशल : निपुण हैं पर कुवेष बनाये रहते हैं।

व्याख्या : किएहु कुबेष साधु सनमानू। जिमि जग जामवंत[1] हनुमानू।

---

१. आल्विल्लोल्लालवनोन्तामतुपः। आलु इल्ल, उल्ल, आल, वन्त, इन्त इत्येत आदेशा मतुपः स्थाने भवन्ति। मतुप् के स्थान में वन्त आदेश होता है। इससे जाम्बवन्त ऐसा रूप हुआ। सर्वत्र लवराम् इस सूत्र से वकार का लोप होकर जामवंत रूप सिद्ध हुआ।

जामवन्त और हनुमान् विज्ञान के निधान साक्षात् ब्रह्मदेव और शिव हैं। उन्हें अभिमान नहीं है। भालू बन्दर बने फिरते हैं। इसी भाँति आप भी विज्ञान के निधान और गलित अभिमान हैं। लोकमान्यता के भय से भिखारी, निर्धन और निकेतरहित बने हुए हैं।

तेहि ते कहहि संत श्रुति टेरे। परम अकिंचन प्रिय हरि केरे॥
तुम्ह सम अधन भिखारि अगेहा। होत विरंचि सिवहि संदेहा॥२॥

अर्थ : इसी से वेद और सन्त पुकारकर कहते हैं कि परम अकिंचन बड़े गरीब हरि को प्रिय हैं। तुम्हारे ऐसे निर्धन, भिखारी और गृहहीन से ब्रह्मा और विष्णु को सन्देह होता है।

व्याख्या : सन्त और श्रुति प्रमाण हैं। सो पुकारकर कहते हैं : जिनसे सब कोई सुनलें कि परम अकिंचन हरि को प्रिय हैं। परम अकिंचन वे ही हैं जिन्हें अपना कुछ नहीं है। इस जगत् में सब मानने की बात है। जिसे एक लँगोटी और तूंबा है और उसमें उसकी अहं और मम बुद्धि है तो वह अकिञ्चन नहीं है। और जिसे सब कुछ है पर किसी पर अहं मम बुद्धि नहीं है वही अकिञ्चन है। यथा : राम गरीब नेवाज हैं तै गही न गरीबी। गरीब होने से गरीबी नहीं होती। गरीबी ग्रहण की जाती है। गरीबी साधु का एक लक्षण है। विज्ञाननिधान होकर गलितअभिमान होना यही सच्ची गरीबी है। नहीं तो अति गरीब के पास भी कुछ न कुछ रहता ही है।

राजा कहते हैं कि आप ऐसे अधन, भिखारी और गृहहीन ही ब्रह्म रुद्र पद पाते हैं। अतः आप ऐसे महापुरुषों से उन्हें सन्देह रहता है। ज्ञानी देवता हैं। अतः उन्हें त्रास नहीं होता। सन्देह मात्र होता है। इन्द्र भोगी है। अतः उन्हें तो त्रास हो जाता है। यथा : सुनासीर मन महँ अति त्रासा। चहत देवरिसि मम पुरवासा।

जोसि सोसि तव चरन नमामी। मोपर कृपा करिअ अब स्वामी॥
सहज प्रीति भूपति कै देखी। आपु विषय विस्वास विसेखी॥३॥

अर्थ : आप जो हों सो हों मैं आपके चरणों को नमस्कार करता हूँ। हे स्वामिन्! मुझपर अब कृपा करिये। कपट मुनि राजा की स्वाभाविक प्रीति और अपने ऊपर विश्वास देखकर :

व्याख्या : भाव यह है कि मुनिजी नाम नहीं बतलाना चाहते तो हर्ज ही क्या है। मुझे तो इनको प्रणाम करने से मतलब है। अतः कहते हैं कि आप चाहे जो हों मैं आपके चरणों में प्रणाम करता हूँ। राजा समझता है कि ये कोई बड़े ऊँचे दर्जे के महात्मा हैं। तभी तो ऐसे घोर वन में रहते हैं। भाग्य से मेरी पहुँच इन तक हो गई है। नहीं तो इन तक कौन पहुँचता है? मैं भी फिर इन तक पहुँच पाऊँगा इसकी आशा ही क्या है? ये अपना नाम नहीं बतलाना चाहते तो ये मिलना कब चाहेंगे। अतः अवसर न चूकना चाहिए। अलभ्य लाभ तो इनसे ही

होगा। अतः राजा कृपा करने की प्रार्थना करते हैं। राजा ने स्वयं उनके पूछने पर अपना नाम नहीं बतलाया था। अतः मुनिजी के अपने नाम न बतलाने पर असन्तुष्ट होने का कोई कारण नहीं था। मुनिजी ने देखा कि यह स्वाभाविक साधुसेवी है। यथा : गुर सुर संत पितर महिदेवा। करइ सदा नृप सबकर सेवा। मुझपर विशेष विश्वास कर रहा है। ईश्वरकोटि में मान रहा है। अतः :

सब प्रकार राजहि अपनाई। बोलेउ अधिक सनेह जनाई ॥
सुनु सति भाउ कहौं महि पाला। इहां बसत बीते बहु काला ॥४॥

अर्थ : सब प्रकार से राजा को अपना बनाकर अधिक स्नेह प्रकट करता हुआ बोला : राजन् मैं सत्यभाव से कहता हूँ सुनो। यहाँ रहते मुझे बहुत दिन बीत गये।

व्याख्या : धूर्तों का पहिला काम यह होता है कि अपने ऊपर विश्वास दृढ़ करा लेते हैं। तब अपने कपटजाल के प्रसार में हाथ लगाते हैं। मन्थरा ने पहिले कैकेयी का विश्वास अपने ऊपर दृढ़ कर लिया। तब अपनी माया फैलायी। यथा : सजि प्रतीति बहु विधि गढि छोली। अवध साढ साती तब बोली। इसी भाँति कपटमुनि ने जब सब प्रकार से उसे अपना बना लिया। वह उसको ब्रह्मा रुद्र की कोटि में समझने लगा। बिना परिचय जाने अत्यन्त विश्वास करने लगा। तब अधिक स्नेह जनाता हुआ बोला। स्नेह तो उसने पहिले ही जनाया था। यथा : चक्रवर्ति के लच्छन तोरे। देखत दया लागि अति मोरे। पर अब अधिक जनाया। अपना परिचय देना प्रारम्भ किया।

बोला कि अब तुमसे न छिपाऊँगा। पुत्र या सेवक से छिपाना ठीक नहीं। सत्य भाव से कहता हूँ कि यहाँ रहते बहुत काल बीत गया। भाव यह कि तप से मेरा मन विरत होता ही नहीं। अब भी तप की ही इच्छा है। बहुत दिन एक स्थान में रहने से ख्याति हो ही जाती है। अतः कहता है :

दो. अब लगि मोहि न मिलेउ कोउ, मैं न जनावौं काहु ॥
लोक मान्यता अनल सम, कर तप कानन दाहु ॥१६१॥क
सो. तुलसी देखि सुवेखु, भूलहि मूढ़ न चतुर नर।
सुंदर केकिहि पेखु, वचनसुधा सम असन अहि ॥१६१॥

अर्थ : अबतक मुझे कोई मिला नहीं और मैं किसी को जनाता नहीं। क्योंकि लोकप्रतिष्ठा आग के समान तपस्या के वन को जला डालती है।

तुलसीदास जी कहते हैं कि सुन्दर वेष देखकर मूढ़ लट्टू होते हैं। चतुर लोग नहीं। सुन्दर मोर को देखो अमृत सी वाणी है पर साँप को खा जाता है।

व्याख्या : इतने दिन मुझे यहाँ रहते हुए पर पहिले मनुष्य तुम ही हो जो यहाँ तक आये। यह स्थान ही ऐसा मैंने चुना है कि यहाँ किसी की गति ही नहीं है। और मैं स्वयं लोगों से मिलना नहीं चाहता। अतः मुझको कोई जानता ही नहीं है। इसी से तप का सञ्चय मुझमें है। लोकप्रसिद्धि तपस्वी के लिए विष है।

वह तपस्या के वन को आग की भाँति जला देती है। यदि किसी तपस्वी की प्रसिद्धि हो तो समझना चाहिए कि उसके तपस्या के वन में आग लगी हुई है। लोकप्रसिद्धि उसी का उजेला है।

मुनि का वेष है। ऐसे घने जंगल में रहता है जहाँ मनुष्य की गन्ध नहीं। ऐसी वैराग्य युक्त वाणी बोलता है। ऐसे पुरुष के महामुनि न मानने का कोई कारण नहीं है। फिर भी श्रीग्रन्थकार सावधान करते हैं। ऐसी अवस्था में भी लट्टू हो जाना मूढ़ का काम है। ये सब साधु के लक्षण नहीं हैं। न लिङ्गं धर्मकारणम्। क्योंकि खल लोग इन सब बातों की नकल कर लेते हैं। मोर को देखो कैसा सम्पूर्ण शरीर में तिलक छापा लगाये है। कितना मनोहर है। अमृत सी वाणी बोलता है। उसे देखकर कौन समझेगा कि यह साँप खाता होगा। अतः वेषवाणी आदि बाहरी चिन्हों का कोई मूल्य नहीं है। सन्त में एक लक्षण ऐसा है कि उसकी नकल किसी के किये हो नहीं सकती। ग्रन्थकार ने स्वयं उसे लिख दिया है। यथा : उमा संत क इहै बड़ाई। मंद करत जो करै भलाई।

तातें गुपुत रहौं जग माहीं। हरि तजि किमपि प्रयोजन नाहीं ॥
प्रभु जानत सब बिनहि जनाए। कहहु कवन सिधि लोक रिझाए ॥१॥

अर्थ : इसी कारण मैं संसार में छिपा रहता हूँ। मुझे हरि को छोड़कर कोई प्रयोजन ही नहीं है। और प्रभु बिना जनाये ही सब जानते हैं। लोगों के रिझाने में भला बताओ क्या फलसिद्धि है?

व्याख्या : तपोवृद्धि के लिए गुप्त रहता हूँ। बिना प्रयोजन किसी कार्य को कोई नहीं करता। मुझे तो केवल हरि से प्रयोजन है। लोगों से कोई प्रयोजन नहीं। तो फिर मैं उनसे क्यों मिलूँ : प्रयोजनमनिर्दिश्य न मन्दोऽपि प्रवर्तते। तप आदिक जो किया जाता है सो सब हरि के लिए और वे बेजनाए ही सब जानते हैं। अतः उनको भी जनाने की आवश्यकता नहीं। सब विधि से गुप्त रहना ही ठीक है। इसीसे मैं नाम भी नहीं बतलाता था। अपना परिचय छिपाता था। परन्तु अब देखता हूँ कि :

तुम्ह सुचि सुमति परम प्रिय मोरें। प्रीति प्रतीत मोहि पर तोरें ॥
अब जौं तात दुरावौं तोही। दारुन दोष घटै अति मोही ॥२॥

अर्थ : तुम शुचि हो, सुमति हो : अतः मुझे परम प्रिय हो। और मुझपर तुम्हारी प्रीति प्रतीति है। अब यदि तुमसे छिपाव करूँ तो मुझे दारुण : कठिन दोष लगेगा।

व्याख्या : तुम शुचि हो, निष्कल्मष हो, तुम्हें वेदविदित मार्ग में सात्त्विकी श्रद्धा है। इसलिए तुम सुमति हो। यथा : मतिर्नाम वेदविहितमार्गेषु श्रद्धा। शाण्डिल्योपनिषदि। अतः मुझे अत्यन्त प्रिय हो। तिस पर तुम्हें मुझपर प्रेम है और विश्वास है। और तुम मुझसे आर्त होकर पूछते हो। नीति यह है कि गूढौ तत्त्व

न साधु दुरावहिं। आरत अधिकारी जहँ पावहिं। क्योंकि अधिकारी से छिपाने में दारुण दोष है। अतः अब मैं तुमसे नहीं छिपा सकता।

जिमि जिमि तापसु कथै उदासा। तिमि तिमि नृपहि उपज विस्वासा ॥
देखा स्ववस कर्म मन बानी। तब बोला तापस बक ध्यानी ॥३॥

अर्थ : जैसे जैसे : वह : तपस्वी उदासीनता कथन करता चला जाता है वैसे ही वैसे राजा को विश्वास उपजता चला जाता है। जब मनसा वाचा कर्मणा उसे : अपने वश में देख लिया तब वह वकध्यानी तपस्वी बोला।

व्याख्या : सद्गृहस्थ रहते तो हैं प्रवृत्तिमार्ग में पर निवृत्तिमार्ग की बड़ी प्रतिष्ठा उनके हृदय में रहती है। अतः वह तपस्वी जितनी उदासीनता अपनी जगत् से दिखलाता है उतना ही राजा का विश्वास जमता चला जाता है। तपस्वी बोलता जाता था और देखता जाता था कि राजा पर कैसा प्रभाव पड़ रहा है। जब देख लिया कि मनसा वाचा कर्मणा राजा वश में आगया तब वकध्यानी तपस्वी बोला। बगला नदी के किनारे एक पैर से खड़ा रहता है। इधर उधर कहीं नहीं देखता। उसका ध्यान केवल मछली पर रहता है। इसी भाँति विषय का ध्यान करता हुआ कर्मेन्द्रियों का संयम किये जो स्थित है ऐसे मिथ्याचारी को वकध्यानी कहते हैं। यथा : कर्मेन्द्रियाणि संयम्य य आस्ते मनसा स्मरन्। इन्द्रियार्थान् विमूढात्मा मिथ्याचारः स उच्यते।

नाम हमार एकतनु भाई। सुनि नृप बोलेउ पुनि सिरु नाई ॥
कहहु नाम कर अरथ बखानी। मोहि सेवक अति आपन जानी ॥४॥

अर्थ : हे भाई ! मेरा नाम एकतनु है। सुनकर राजा फिर प्रणाम कर बोले : मुझे अपना अत्यन्त सेवक जानकर नाम का अर्थ वर्णन करके कहिये।

व्याख्या : इतनी बड़ी भूमिका के बाद तो अपना नाम बताया। और चुप हो गया। नाम ऐसा बतलाया जिसमें जिज्ञासा के लिए कौतुक बढ़े। जो बातें कहना चाहता है उसे यदि बिना पूछे कहे तो जमेगी नहीं। इसलिए प्रश्न का बीज रखकर नाम बतला दिया। एकतनु सुनते ही राजा को जिज्ञासा हुई। फिर कुछ कहना चाहते हैं। इसलिए प्रणाम किया और प्रार्थना की कि मुझे आप अपना अत्यन्त सेवक जानिये और नाम का अर्थ बखानकर कहिये। भाविनी वृत्ति से अत्यन्त सेवक कहा। राजा अर्थ जानने के लिए आतुर है। समझता है कि अर्थ करने में ही बहुत कुछ परिचय प्राप्त हो जायगा। इसलिए कहता है कि मैं अति सेवक हूँ। आप को छोड़कर दूसरा स्वामी नहीं जानता।

दो. आदि सृष्टि उपजी जबहिं, तब उतपति भइ मोरि।
नामु एकतनु हेतु तेहिं, देह न धरी बहोरि ॥१६२॥

अर्थ : जब आदि सृष्टि हुई उसी समय मेरी उत्पत्ति हुई। मेरा नाम एकतनु इसलिए पड़ा कि फिर मैंने देह धारण नहीं किया।

व्याख्या : मेरी उत्पत्ति कल्प के आरम्भ में हुई। इन्द्र की, देवताओं की, सप्तऋषियों की सृष्टि तो पीछे से मन्वन्तर के आदि में होती हैं। तब से कितने अवतार भगवान् के हुए। कितनी बार उन्होंने अनेक शरीर धारण किये। पर मेरा वही शरीर चला आता है। मैंने दूसरा शरीर नहीं धारण किया। इसी से मेरा नाम एकतनु है।

जनि आचरजु करहु मन माहीं। सुत तप तें दुर्लभ कछु नाहीं ॥
तप बल तें जगसृजै विधाता। तप बल बिस्नु भए परित्राता ॥१॥

अर्थ : बेटा ! मनमें आश्चर्य न करो। तप से कुछ भी दुर्लभ नहीं है। तपबल से ब्रह्मदेव संसार की सृष्टि करते हैं। तप बल से विष्णु पालनेवाले हुए।

व्याख्या : राजा कुछ नहीं बोला। पर उसके मनमें बड़ा आश्चर्य हुआ। मानव शरीर इतना स्थायी नहीं हो सकता। कपट मुनि बराबर राजा के मनोगत भावों को उसके चेहरे से लक्ष्य करता जाता था। तुरन्त बोल उठा। मैं तुम्हारे मन की बात को समझ रहा हूँ। आश्चर्य न करो। तपबल से क्या नहीं हो सकता ? मेरे शरीर को स्थायी[1] तप ने बना रक्खा है। यह सब सृष्टि तप के आधार से है। यथा : तप अधार सब सृष्टि भवानी। प्रारम्भ में ब्रह्मदेव सृष्टि करने में असमर्थ थे। आकाशवाणी हुई : तप तप। तब उन्होंने बहुत बड़ा तप किया। तप द्वारा शक्ति-सञ्चय करके यह सृष्टि कर डाली। सृष्टि करने से भी बड़ा काम उसका पालन करना है। सब जगह से सब कुछ अतन्द्रित होकर सँभाले रहना। मन से भी नहीं सोचा जा सकता। यथा : यदि ह्यहं न वर्त्तेयं जातु कर्मण्यन्द्रितः। सङ्करस्य च कर्त्ता स्यामुपहन्यामिमाः प्रजाः। यदि एक क्षण भी आलस्य करें तो सृष्टि में गड़बड़ मच जाय और यह सब प्रजा नष्ट हो जाँय। सो भगवान् तपबल से ही सृष्टि का पालन करते हैं।

तप बल संभु करहिं संसारा। तपतें अगम न कछु संसारा ॥
भयउ नृपहिं सुनि अति अनुरागा। कथा पुरातन कहै सो लागा ॥२॥

अर्थ : तपबल से शम्भु संहार करते हैं। इस संसार में तप से कुछ भी अगम नहीं है। सुनकर राजा को अत्यन्त अनुराग हुआ। तब तो वह पुरानी कथाएँ कहने लगा।

व्याख्या : संहार का कार्य भी बड़ी जिम्मेदारी का है। पालन और संहार दोनों साथ साथ चलता है। बिना संहार के पालन और बिना पालन के संहार नहीं होता। सृष्टिक्रम से विपरीत संहारक्रम है। अतः अन्त में क्रमशः लय करते हुए सब कुछ ब्रह्म में लय कर देना संहार है। यह कार्य शम्भु सम्पादन करते हैं। न

---

१. अनभ्यासेन वेदानामाचारस्य च वर्जनात्। आलस्यादन्नदोषाच्च मृत्युर्विप्राञ्जिघांसति। मनुः

अर्थ : वेदों का अभ्यास न करने से, आचार का पालन न करने से, आलस्य से और अन्नदोष से मृत्यु ब्राह्मण को मारती है।

तो ब्रह्मा कुलाल की भाँति सब वस्तुओं की रचना करते हैं न विष्णु माँ की भाँति सबका पालन करते हैं और न शम्भु व्याघ्र की भाँति संहार करते हैं। यह सब कार्य उनके तपोबल से आप से आप होता रहता है। जितनी शक्तियाँ हैं, उन सबका समावेश, उत्पादन, पालन और संहार में हो जाता है। इसलिए कहते हैं कि तप से इस संसार में अगम कुछ भी नहीं है। तप करनेवाला होना चाहिए। इस संसार में कुछ भी असाध्य नहीं है। मैं भी उसी तप के बल से शरीर को स्थायी बनाये बैठा हूँ।

राजा को मुनिजी की इन बातों को सुनकर और भी श्रद्धा भक्ति बढ़ी। कपटी मुनि ने देख लिया कि उसकी यह बात भी बैठ गई। तब अपने दीर्घजीवी होने के प्रमाण में अपनी आँखों देखी की भाँति पुरानी पुरानी घटनाओं का वर्णन करने लगा।

करम धरम इतिहास अनेका। करै निरूपन बिरति बिवेका॥
उद्भव पालन प्रलय कहानी। कहेसि अमित आचरज बखानी॥३॥

अर्थ : कर्म, धर्म के अनेक इतिहास वैराग्य और विवेक का निरूपण करने लगा। उत्पत्ति पालन और प्रलय की कहानियों को बड़े बड़े आश्चर्य की बातों के साथ वर्णन किया।

व्याख्या : पुण्य श्रवण कीर्त्तन की कथा धर्म-इतिहास है। अन्य जीवों की कथा कर्म-इतिहास है। पुराणेतिहास के व्याज से कर्म, धर्म, वैराग्य और ज्ञान का निरूपण ही महात्माओं को इष्ट होता है। ठीक उसी भाँति वह भी निरूपण करने लगा। धार्मिक होना, वैराग्यवान् होना और ज्ञानी होना दूसरी बात है। और इनका निरूपण करना दूसरी बात है। अतः निरूपण करना पण्डिताई है। धर्मात्मा विरागी या ज्ञानी होने का लक्षण नहीं है। देखिये आज कपटी मुनि ने सदा शास्त्र वेद पुराण के श्रवण करनेवाले राजा भानुप्रताप को अपनी धूर्त्तता के चक्कर में डाल दिया।

उसने देख लिया कि राजा की श्रद्धा इतनी बढ़ी हुई है कि उसको सब बातें बैठती जायँगी। तब उसने कहानी प्रारम्भ की। झूठी झूठी बातें गढ़कर सृष्टि स्थिति प्रलय के समय की अत्यन्त आश्चर्यमय घटनाएँ सुनाने लगा।

सुनि महीप तापस बस भयऊ। आनन नाम कहन तब लयऊ॥
कह तापस नृप जानौं तोही। कीन्हेहु कपट लाग भल मोही॥४॥

अर्थ : यह सब सुनकर तो राजा उस तपस्वी के वश में हो गया। तब वह अपना नाम बतलाने लगा। तपस्वी बोला कि राजा! मैं तुम्हें जानता हूँ। किया तो तुमने कपट पर मुझे अच्छा लगा।

व्याख्या : कपटी मुनि ने जब देखा कि राजा मनसा वाचा कर्मणा उसके वश हो गया। तब अपना नाम एकतनु बतलाया। राजा उस समय तक उसके वश

में नहीं था। अपना नाम छिपाये ही रहा। पर कथा सुनने पर वश में आया। विचार ही निश्चय करके सब श्रेय का मूल है। और अविचार ही बड़ी भारी मृत्यु है। राजा ने इस समय विचार को तिलाञ्जलि दे रक्खी है। वह अपनी सिद्धि दिखलाता है कि बिना बतलाये ही मैं सब जानता हूँ। तुमने कपट किया सो भी जानता हूँ। पर वह कपट मुझे बुरा नहीं लगा। क्योंकि नीति शास्त्रानुमोदित था। यथा :

सो. सुनु महीस असि नीति, जँह तँह नाम न कहहिं नृप।
मोहि तोहि पर अति प्रीति, सोइ चतुरता बिचारि तव ॥१६३॥

अर्थ : राजा। सुन यह नीति है कि राजा अपना नाम जहाँ तहाँ न बतलावें। इसी तुम्हारी नीति निपुणता का विचार करके मुझे तेरे ऊपर बड़ी प्रीति हुई।

व्याख्या : राजाओं के लिए नीतिशास्त्र की विशेष आज्ञा है। राजाओं को प्रजा के दुःख सुख को अपनी आँखों देखने के लिए वेष बदल कर अकेले रात्रि में घूमना पड़ता है। और भी अवसर ऐसे आते हैं जब कि राजा अकेले पड़ जाते हैं। उनके गुप्त शत्रु बहुत होते हैं। अतः उन्हें अपरिचित स्थानादि में नाम छिपाने की आज्ञा है। राजा को नीतिज्ञ होना चाहिए। तुम्हारे नाम छिपाने से मुझे तुम्हारे नीतिनैपुण्य का परिचय मिला। इसीसे तुम पर मेरी अति प्रीति है।

नाम तुम्हार प्रताप दिनेसा। सत्यकेतु तव पिता नरेसा॥
गुरु प्रसाद सब जानिअ राजा। कहिय न आपन जानि अकाजा॥१॥

अर्थ : तुम्हारा नाम भानुप्रताप है। तुम्हारे बाप का नाम राजा सत्यकेतु है। राजन् गुरु के प्रसाद से सब कुछ जाना जाता है। पर अपनी सर्वज्ञता को बतलाता नहीं। क्योंकि इससे अपनी ही हानि है।

व्याख्या : जब राजा अपना नाम बतलाने लगा। तभी कपट मुनि ने यह कहकर रोक दिया कि मैं तुमको जानता हूँ। क्योंकि राजा के बतलाने से उसको अपनी सिद्धि दिखाने का अवसर न मिलता। अब अपनी सिद्धि दिखलाते हुए बतलाता है कि तुम्हारा नाम भानुप्रताप है। तुम्हारे बाप का नाम राजा सत्यकेतु है। राजा को आश्चर्य में देखकर कहता है कि यह ज्ञान गुरुप्रसाद से होता है। भावार्थ यह कि जब तुम्हें गुरु मिलेगा तब तुम भी इसी भाँति जान जाया करोगे। परन्तु ये बातें कही नहीं जाती। कहने से प्रसिद्धि होती है और उससे तपःक्षय होता है।

देखि तात तव सहज सुधाई। प्रीति प्रतीति नीति निपुनाई॥
उपजि परी ममता मन मोरें। कहौं कथा निज पूँछे तोरें॥२॥

अर्थ : बेटा! तुम्हारी स्वाभाविकी सिधाई, प्रीति, विश्वास, नीतिनैपुण्य देखकर मेरे मन में ममता हो आई। तुम्हारे पूछने पर अपनी कथा कह रहा हूँ।

व्याख्या : इतने सद्गुणों का योग कहीं नहीं देखा गया। एक ओर सहज सुधाई, प्रीति और प्रतीति और दूसरी ओर नीति निपुणता। सुधाई, प्रीति, प्रतीति से नीति का एक प्रकार से बैर ही है। सो विरोधी गुण तुम्हारे में सहज वैर छोड़कर निवास करते हैं।

सहज सुधाई। यथा : सरल वचन नृप के सुनि काना।
प्रीति। यथा : सहज प्रीति भूपति कै देखी।
प्रतीति। यथा : आपु विषय विश्वास विसेषी।
नीति निपुनाई। यथा : नाम प्रताप भानु अवनीसा।
तासु सचिव मैं सुनहु मुनीसा।

इस बात को देखकर मेरे मन में जो स्वभाव से ही विरागरूप है। ममता उत्पन्न हो पड़ी। गुणों में सामर्थ्य ही ऐसा है कि आतमाराम मुनियों के मन को खींच लेता है। फल यह हुआ कि तुम्हारे पूछने पर मैं अपनी कथा सुनाने लगा। स्वमाहात्म्यगोपन के सिद्धान्त से हटना पड़ा।

अब प्रसन्न मैं संसय नाहीं। मांगु जो भूपभाव मनमाहीं ॥
सुनि सुवचन भूपति हरषाना। गहि पद विनय कीन्ह विधि नाना ॥३॥

अर्थ : अब मैं प्रसन्न हूँ। इसमें संशय नहीं है। राजा जो तेरे मन को भाता हो सो माँग लो। सुन्दर वचन सुनके राजा प्रसन्न हुआ। चरण पकड़कर अनेक भाँति से विनय किया।

व्याख्या : किसी को भी सब विषय की प्राप्ति नहीं होती। तुम चक्रवर्ती राजा हो। फिर भी तुम्हें कोई अभाव अवश्य होगा। तुमने कहा भी था कि मोपर कृपा करिअ अब स्वामी। सो अब मैं तुम पर प्रसन्न हूँ। इसमें संशय नहीं है। भाव यह कि दिल खोलकर माँगो। इस भाँति भीतरी इच्छा जानना चाहता है। भीतरी इच्छा ही कमजोरी है। उसी की पूर्ति के लिए आदमी अन्धा हो जाता है। धूर्त लोग सदा उसके जानने की चेष्टा करते हैं। क्योंकि उसे जान लेने पर ठगने में बड़ा सुभीता होता है।

राजा ने कहा था : जानत हौं कछु भल होनिहारा। सो बात हुआ चाहती है। अतः मुनिजी के वरद होने पर हर्षित हुआ। मनोरथ सिद्धि के लिए आर्त है। चरण पकड़कर नाना विधि से विनय करने लगा। क्रमशः दोनों हर्षित हुए। राजा का हर्षित होना तो प्रसक्त ही है। यथा : सुनि सुवचन भूपति हरषाना। और मुनि जी तो पहिले से ही हर्षित हैं। यथा : सरल वचन नृपके सुनि काना। वैर संभारि हृदय हरषाना।

कृपा सिंधु मुनि दरसन तोरें। चारि पदारथ करतल मोरें ॥
प्रभुहि तथापि प्रसन्न बिलोकी। मांगि अगम वरु होउ असोकी ॥४॥

अर्थ : हे कृपासिन्धु मुनि आपके दर्शन से धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष ये चारों

पदार्थ मेरे हाथ में हैं। फिर भी प्रभु को प्रसन्न देखकर अगम : पहुँच के बाहर : वर माँगकर अशोक हुआ चाहता हूँ।

व्याख्या : राजा ने सोचा बिना सेवा शुश्रूषा के बिना जप तप के चन्द मिनटों के समागम में इतनो बड़ी कृपा कि मुँह माँगा वर देने को तैयार हो गये। अतः मुनिजी कृपासिन्धु हैं। कृपासिन्धु सुनते रहे। पर आँख से नहीं देखा था। इसलिए कृपासिन्धु के दर्शन से धर्मार्थ काम मोक्ष मानों अपने हाथ में आगया। अतः बोला :

आप प्रभु हैं, समर्थ हैं और प्रसन्न हैं। इसलिए ऐसा वर मागूंगा जहाँ तक किसी की गति आजतक न हुई हो। और शोक रहित हो जाऊँगा।

दो. जरा मरन दुख रहित तनु, समर जितै जनि कोउ।
एक छत्र रिपु हीन महि, राज कलप सत होउ ॥१६४॥

अर्थ : मैं अजर अमर हो जाऊँ शरीर में कोई दुःख न हो। युद्ध में कोई न जीते। शत्रुहीन पृथ्वी पर सौ कल्प तक एकछत्र राज्य हो।

व्याख्या : शीर्यते इति शरीरम्। सो शरीर जरामरण रहित हो। यह महा दुर्गम वर है। जो आज तक किसी को न मिला। शरीर का नाम ही रोगायतन है सो दुःखरहित हो। प्राणीमात्र से अजेय हो जाऊँ। इस भाँति अलौकिक पराक्रम माँगा। राजकल्पशत से अखण्ड ऐश्वर्य माँगा। मालूम हो गया कि भीतर प्रौढ़ देहाभिमान है। और राज्य की उत्कट वासना है। चाह ही दुःख वृक्ष का दृढ़शक्तिक बीज है। चाह शेष रह जाने पर जो सुख है वह भी दुःख रूप है। ज्ञानी राजा चाह के शेष रह जाने से बड़ी भारी विपत्ति में पड़ना चाहता है।

कह तापस नृप ऐसेइ होऊ। कारन एक कठिन सुनु सोऊ॥
कालौ तुअ पद नाइहि सीसा। एक विप्र कुल छाड़ि महीसा॥१॥

अर्थ : तपस्वी ने कहा : एवमस्तु : ऐसा ही होगा परन्तु : एक कठिन कारण है। उसे भी सुन लो। एक ब्राह्मणकुल को छोड़कर काल भी तुम्हारे चरणों में सिर झुकावेगा।

व्याख्या : तपस्वी ने वर तो दिया। पर साथ ही उसकी सिद्धि में एक कारण भी बतलाया। जिसे करना सहल नहीं था। कहने लगा कि मेरे वरदान से इतना होगा कि काल भी तुम्हारा कुछ न बिगाड़ सकेगा। औरों की गिनती ही क्या है। पर ब्राह्मणों पर वरदान का बल न चलेगा। अजर-अमर रोगरहित शरीर अजेयत्व शत्रु का अभाव सौ कल्प राज्य और कालविजय एक ही बात है। सबका अन्तर्भाव कालविजय में हो जाता है। सो उसके लिए तुम्हें यत्न नहीं करना है। मेरे तपबल से काल भी तुम्हें नमस्कार करेगा। परन्तु भय तुमको ब्राह्मण-कुल से है। कपटी मुनि ने देख लिया कि भानुप्रताप का राज्य बिना ब्रह्म शाप के जा नहीं सकता। अतः ब्राह्मणों से भय बतलाकर उसने ब्रह्मद्रोह का बीज बो दिया।

तप बल विप्र सदा वरिआरा। तिन्हके कोप न कोउ रखवारा ।।
जौ विप्रन वस करहु नरेसा। तौ तुव वस विधि विस्नु महेसा ।।२।।

अर्थ : तप के बल से विप्र सदा प्रबल रहते हैं। उनके क्रोध से कोई रक्षा करनेवाला नहीं है। राजन् ! यदि ब्राह्मणों को वश में कर लो तो तुम्हारे वश में ब्रह्मा, विष्णु और महादेव हो जावेंगे।

व्याख्या : मैं जो वर दे रहा हूँ। सो तप-बल से दे रहा हूँ। अतः मेरा वर भी तपोधन से ही कट सकता है। तप के बल से ब्राह्मण सदा बलवान् हैं। उनके कोप से मैं रक्षा नहीं कर सकता। तुमने जो अजेयत्व माँगा है सो तो तभी सम्भव है जब तुम ब्राह्मणों को वश कर लो। तब दूसरे का कौन कहे त्रिदेव तुम्हारे वश हो जायँगे। और सब मेरे वरदान से हो जायगा। तुम्हें अब केवल ब्राह्मणों से भय रह गया है। जैसे हो सके उन्हें वश में लाना तुम्हारा काम है।

चल न ब्रह्मकुल सुनु बरिआई। सत्य कहौं दोउ भुजा उठाई ।।
विप्र श्राप बिनु सुनु महिपाला। तोर नास नहिं कवनेउ काला ।।३।।

अर्थ : मैं दोनों भुजा उठाकर सत्य कहता हूं कि ब्राह्मणकुल से जबरदस्ती नहीं चल सकती। राजा ! सुनले। ब्राह्मण के शाप के बिना तेरा नाश किसी काल में हो नहीं सकता।

व्याख्या : शस्त्रबल से संसार वश में हो जाता है। परन्तु ब्राह्मण शस्त्रबल से वश नहीं हो सकते। विश्वामित्र और वसिष्ठ के विरोध से यह सिद्ध हो गया है कि क्षात्रबल से ब्रह्मबल बहुत अधिक है। अतः ब्रह्मकुल पर बल काम नहीं देता। बात शीघ्र मन में नहीं आनेवाली है। अतः कहता है कि मैं दोनों भुजा उठाकर सत्य कहता हूँ। दोनों भुजा उठाकर कहना घोषणा करना है। यथा : भुजा उठाइ साखि संकर दै, कसम खाइ तुलसी भनी। विनय। दोनों भुजा उठाकर कहना, सबको सवधान करने और अपने ऊपर दोष न आने देने के लिए है। इस बात पर इतना बल इसलिए देता है कि कहीं राजा समझ न ले कि यह मुझे ब्रह्मद्रोह के लिए उत्तेजित करता है। क्योंकि ब्रह्म द्रोह से वंश का ही नाश हो जाता है। यथा : वंश कि रह द्विज अनहित कीन्हें।

हरषेउ राउ वचन सुनि तासू। नाथ न होइ मोर अब नासू ।।
तव प्रसाद प्रभु कृपा निधाना। मो कहुँ सर्वकाल कल्याना ।।४।।

अर्थ : राजा उसका वचन सुनकर प्रसन्न हुआ : बोला : नाथ ! अब मेरा नाश न हो। आपकी कृपा से हे कृपानिधान प्रभु ! मेरा सदा कल्याण हो।

व्याख्या : बहुत से भय के कारण दूर हो गये। अब एक ब्रह्मकुल का कोप ही शेष रह गया। इसलिए राजा प्रसन्न हुआ। लाभात् लोभोपजायते। सौ कल्प से पेट नहीं भरा। अतः अब यह प्रार्थना कर रहा है कि मेरा कभी नाश न हो।

आप कृपानिधान भी हैं, समर्थ भी हैं और मुझपर आपकी कृपा भी है। तब मेरा सर्वकाल में कल्याण होना चाहिए।

दो. एवमस्तु कहि कपटमुनि, बोला कुटिल बहोरि।
मिलब हमार भुलाव निज, कहहु त हमहिं न खोरि ॥१६५॥

अर्थ : उस कुटिल कपटमुनि ने एवमस्तु कहकर फिर कहा कि मेरा मिलना और अपना रास्ता भूलना यदि कहोगे तो मुझे दोष न देना।

व्याख्या : धर्मरुचि[1] से कपट मुनि डर रहा है कि कहीं राजा लौटकर उससे न कह दे या पुरोहित को न बता दे। नहीं तो सब बनी बनाई बात ही बिगड़ जायगी। और फिर वन में भी छिपकर न बच पायेंगे। इसलिए वह कुटिल मुनि राजा को सावधान किये देता है कि यदि तुमने मेरा मिलना या अपना भूलना किसी से कहा तो तुम्हारी खैर : भला : नहीं है। राजा को साकांक्ष देखकर कहता है :

ताते मैं तोहि बरजौं राजा। कहें कथा तव परम अकाजा ॥
छठें श्रवन यह परत कहानी। नास तुम्हार सत्य मम बानी ॥१॥

अर्थ : इसी से राजन् मैं तुम्हें रोकता हूँ कि यह कथा कह देने से तुम्हारी बड़ी हानि होगी। इस कथा के छठें कान में पड़ते ही तुम्हारा नाश होगा। मेरी वाणी सत्य है।

व्याख्या : कपट मुनि ने ऊपर कहा है कि मेरा मिलना और अपना भुलाना कहोगे तो फिर मेरा दोष नहीं। उसी बात को स्पष्ट करता है कि मैंने जो इस कथा के कहने से रोका है वह इसलिए कि इससे तुम्हारी बड़ी हानि होगी। तुमने वरदान माँगा है अपने लाभ के लिए और इस कथा की चरचा करने से जब तुम्हारी हानि होगी तो हमें दोष दोगे कि मुनिजी ने कैसा वरदान दिया कि मेरी ऐसी हानि हो गई। अतः सावधान किये देता हूँ। इस विषय की बात मुख से निकालना नहीं।

तीसरे पुरुष की जानकारी ही बात का छठे कान में पड़ना है। यहाँ छठा कान इसलिए कह रहा है कि जिससे राजा समझे कि मुनिजी मन्त्रभेद का दोष कह रहे हैं। मन्त्र बड़े महत्व का है अतः इस मन्त्रभेद का दोष भी बड़ा भारी होना प्राप्त है। यथा : षट्कर्णो भिधते मन्त्रः। किस प्रकार की हानि होगी उसे भी बतलाये देता है कि नाश ही हो जायगा। सत्य मम बानी कहने का भाव यह है कि अनुनय विनय से इसमें परिवर्तन नहीं हो सकता।

यह प्रकटें अथवा द्विज सापा। नास तोर सुनु भानुप्रतापा ॥
आन उपाय निधन तव नाहीं। जौं हरिहर कोपहिं मनमाहीं ॥२॥

---

1. राजा का मन्त्री।

अर्थ : इस बात के प्रकट होने पर अथवा ब्राह्मण के शाप से तुम्हारा नाश होगा। दूसरे उपाय से तुम्हारी मृत्यु नहीं हो सकती। चाहे शिव विष्णु मन में कुपित हो जाँय।

व्याख्या : अब दोनों बातों को समेटकर भली भाँति सावधान करता है। मेरा तुमसे मिलना न प्रकट होने पावे पहिली बात, ब्राह्मण का शाप न होने पावे दूसरी बात। विप्रशाप तो काल पाकर फलेगा। पर इस कथा के तो प्रकट होते ही नाश हो जायगा। मेरे वरदान के प्रभाव से शङ्कर और विष्णु भी तेरा कुछ बिगाड़ न सकेंगे। मन ही मन भले ही जला करें।

सत्य नाथ पद गहि नृप भाखा। द्विज गुर कोप कहहु को राखा॥
राखै गुर जौ कोप बिधाता। गुर बिरोध नहिं कोउ जग त्राता॥३॥

अर्थ : चरण पकड़कर राजा ने कहा कि सत्य है नाथ! भला ब्राह्मण और गुरु के कोप से कौन रक्षा कर सकता है। विधाता के कोप से तो गुरु रक्षा करता है। गुरु के कोप से संसार में कोई रक्षा करनेवाला नहीं है।

व्याख्या : राजा ने कपटी मुनि को गुरु मान लिया। अर्थात् शिक्षा के लिए उसके शरण में गया। यथा : शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्। गुरुकोप का अर्थ कपटी मुनि का कोप है। सत्य नाथ कहने का वह भाव है कि वाजिब बात है। सभी वर्णों के गुरु ब्राह्मण हैं और आप तो विशेषतः हमारे गुरु हैं। गुरु ही प्रधान रक्षक हैं। भगवान् की साक्षात् अनुग्रह शक्ति गुरु हैं। यदि वे ही कुपित हो जायँ तो रक्षा फिर कौन करेगा? ब्रह्मदेव के कोप करने पर तो गुरु रक्षा करते हैं। यथा : जन्म हेतु सब कहँ पितु माता। कर्म सुभासुभ देइ बिधाता। दलि दुःख सजइ सकल कल्याना। अस असीस राउर जग जाना। सो गोसाइँ जेहि बिधि गति छेकी। सकै को टारि टेक जो टेकी।

जौं न चलब हम कहें तुम्हारें। होउ नास नहिं सोच हमारें॥
एकहि डर डरपत मन मोरा। प्रभु महिदेव श्राप अति घोरा॥४॥

अर्थ : यदि मैं आपके आदेशानुसार वर्ताव न करूँ तो भले ही नाश हो जाय मुझे इसका सोच नहीं है। एक ही डर से मैं बहुत डर रहा हूँ कि ब्राह्मणों का शाप बड़ा घोर होता है।

व्याख्या : राजा कहता है कि आपके कोप का मुझे डर नहीं है। क्योंकि मैं आपका आज्ञावशवर्ती हूँ। आपकी आज्ञा का उल्लंघनं करूँगा ही नहीं। यदि करूँ तो भले ही नाश हो। इसका सोच मुझे नहीं है। आप मेरे स्वामी मेरे पिता मेरे गुरु हैं। आपकी आज्ञा उल्लंघन करूँ तो नाश होना ही चाहिए।

ड़र दूसरी बात का है। ब्राह्मणों का शाप अति घोर होता है। रुष्ट होते ही नाश का शाप देते हैं। और वह अप्रतिक्रिय होता है। यथा : इन्द्रकुलिस मम सूल बिसाला। कालदण्ड़ हरिचक्र कराला। जो इन कर मारा नहिं मरई। विप्र रोष पावक सो जरई।

दो. होहिं विप्र बस कवन विधि, कहहु कृपा करि सोउ ।
तुम्ह तजि दीनदयाल निज, हितू न देखौं कोउ ॥१६६॥

अर्थ : अब कृपा करके यह बताइये कि किस विधि से ब्राह्मण वश हों। हे दीनदयाल ! तुम्हें छोड़कर संसार में अपना कोई हितू नहीं दिखाई पड़ता।

व्याख्या : द्विज द्रोह का वीज उग गया। गुर सुर संत पितर महि देवा। करइ सदा नृप सवकर सेवा। वही राजा जो इससे पूर्व ब्राह्मणों का सेवक था आज स्वामी को अपना वश्य करने की विधि पूछता है। पहिले के हितू लोग तुच्छ दिखाई पड़ने लगे। केवल वातों के बल से कपटी मुनि बड़ा भारी हितू वन वैठा। यथा : तोहि सम हित न मोर संसारा। भाव यह कि जव आप कहते हैं कि ब्राह्मणों को वश करना तुम्हारा काम है तो मैं करने को तैयार हूँ। आप गुरु हैं। उपाय बतावें।

सुनु नृप विविध जतन जगमाहीं। कष्ट साध्य पुनि होहिं कि नाहीं ॥
अहै एक अति सुगम उपाई। तहाँ परंतु एक कठिनाई ॥१॥

अर्थ : राजन् ! सुनो, संसार में अनेक प्रकार के उपाय हैं। पर वे कष्टसाध्य हैं और फिर भी फल का निश्चय नहीं। हो या न हो एक उपाय अत्यन्त सुगम है। वहाँ भी एक कठिनाई है।

व्याख्या : विधि यत्न उपाय ये सव समानार्थक शब्द हैं। संसार में यत्नों का घाटा नहीं है। पर उनके करने में बड़ी कठिनता है। फिर भी सफलता निश्चित नहीं। भाव यह कि मैं जो उपाय वतलानेवाला हूँ वह सुसाध्य भी है और निश्चित फलप्रसू है।

सरल पुरुष का तवतक पतन नहीं होता जवतक वह कुटिल न हो जाय। अत: पतन चाहनेवाले, हानि लाभ दिखलाकर उसे कुटिलता की ओर अग्रसर करते हैं। अत: इसने पहिले राजा को मन्त्री से भी वात छिपाना सिखाया। अब छल : माया : को स्थान देने के लिए विवश कर रहा है। बड़े भारी असाध्य लक्ष्य का लोभ दिखलाकर। और उसमें एकमात्र बाधक के लिए सरल उपाय वतलाकर। उसमें ऐसी कठिनता वतलाता है जो माया से ही साध्य हो।

मम आधीन जुगुति नृप सोई। मोर जाब तव नगर न होई ॥
आजु लगें अरु जबतें भएऊं। काहू के गृह ग्राम न गएऊं ॥२॥

अर्थ : वह युक्ति मेरे ही वश की है। और मेरा जाना तुम्हारे नगर से हो नहीं सकता। जब से मैं उत्पन्न हुआ तब से लेकर आज तक मैं किसी के गाँव या घर कभी गया नहीं।

व्याख्या : वह युक्ति मेरे लिए तो सुगम है। पर दूसरे के बूते की नहीं है। मैं ही उसे कर सकता हूँ। पर मैं तुम्हारे नगर में जा नहीं सकता। तुरन्त जाने के लिए तैयार होने से वह श्रद्धा राजा के हृदय में नहीं होती जो इनकार करने से हुई। क्योंकि श्रद्धा सदा दुर्लभ वस्तु में होती है।

किसी के नगर या गृह में जाना मेरे नियम के विरुद्ध है। सकाम पुरुष ही नगर या दूसरे के घर में जाया करते हैं। मुझे लोकरञ्जन में कोई सिद्धि दृष्टि नहीं आती। यथा : कहहु कवन सिधि लोक रिझाये। कपटो मुनि नगर या दूसरे के घर जाने में कोई ऐसी बाधा नहीं बतलाते जो दुरुल्लंघ्य हो। केवल लोकमान्यता और ख्याति से बचने के लिए अपने ही नियत किये हुए कुछ नियमों में से एक इसे बतला रहे हैं।

जौ न जाउँ तव होइ अकाजू। बना आइ असमंजस आजू॥
सुनि महीस बोलेउ मृदुबानी। नाथ निगम अस नीति बखानी॥३॥

अर्थ : यदि मैं नहीं जाता हूँ तो तुम्हारा काम बिगड़ता है। आज बड़ा असमंजस आ पड़ा। यह सुनकर राजा कोमल वाणी बोला कि नाथ! ऐसी नीति श्रुतिसम्मत है।

व्याख्या : आज भक्तवत्सलता के कारण प्रयोजन आ पड़ा। जाता हूँ तो नियम भङ्ग होता है। नहीं जाता हूँ तो भक्त का काम बिगड़ता है। मेरा नियम भङ्ग न हो। और भक्त का काम भी बन जाय। इन दोनों बातों का सामञ्जस्य नहीं बैठता। इतने दिनों में आज ही मैं असामञ्जस्य में फँसा। भाव यह कि अब राजा के विनय-मात्र की देर है। नियम भङ्ग होते देर न लगेगी। सो राजा विनय भी करने लगे। और श्रुतिसम्मत नीति की दोहाई देने लगे।

लोभ से अन्धा करके ही धूर्त्त संसार को ठगते हैं। आँख खोलकर यदि देखा जाय तो जनता को वही धूर्त्त वश करने में समर्थ होता है जो अपने दिये हुए प्रलोभन का विश्वास जनता को करा देने में समर्थ होता है। बड़े बड़े बुद्धिमान् ऐसे ही प्रलोभन से अन्धे होकर महाधूर्त्त को महात्मा मानकर मारे जाते हैं। स्वार्थ में अन्धा होकर राजा ने यह समझा कि केवल नीतिमत्ता तथा सरलतादि गुण को देखकर घण्टे भर में एक महाविरक्त को ऐसी प्रीति कैसे उत्पन्न हो सकती है कि वह महा दुर्लभ वर देकर अपने तप को क्षीण करे। और अपने जन्म भर के नियम को तोड़ दे।

बड़े[1] सनेह लघुन्ह पर करहीं। गिरि निज सिरनि सदा तृन धरहीं॥
जलधि अगाध मौलि बह फेनू। संतत धरनि धरत सिर रेनू॥४॥

अर्थ : बड़े लोग छोटों पर स्नेह करते हैं। पर्वत अपने सिर पर सदा तृण धारण किये रहता है। अगाध समुद्र के सिर पर फेन बहता है। पृथ्वी सदा सिर पर धूलि धारण करती है।

व्याख्या : सिर पर तृण धारण दासत्व स्वीकार के लिए किया जाता है। पूर्व काल में जब दासप्रथा थी तो लोग अपने को बेचते थे वे सिर पर तृण धारण करते थे। सो पर्वत ऐसा अशुभ वेष स्वीकार करते हैं। पर अपने आश्रित को सिर

---

१. यहाँ दृष्टान्तालङ्कार है।

चढ़ाये रहते हैं। भाव यह कि पर्वत की गणना परहितैकव्रत सन्तों में है। यथा : सन्त विटप सरिता गिरि धरनी। परहित हेतु सबन्ह की करनी। सो अपने आश्रितों के लिए दासता का चिह्न धारण करने में सङ्कोच नहीं करना चाहिए।

समुद्र अगाध है। अपार है। बड़े बड़े पुरुषार्थियों का पुरुषार्थ उसमें नहीं चलता। पर आश्रित होने के कारण फेन अवस्तु होने पर भी उसके सिर पर विचरण करता है। आप भी तपोनिधि हैं। आप की महिमा अगाध और अपार हैं। मैं आपका आश्रित हूँ। अवस्तु हूँ! मेरे हित को अपनी तपस्या के ऊपर स्थान दीजिये। मेरे कल्याण की ओर देखिये। अपनी महिमा पर दृष्टिपात न कीजिये। समुद्र सदा फेन को नहीं धारण करता। इसलिए सदा या सन्तत शब्द नहीं दिया।

पृथ्वी जैसा गुरु कौन होगा और रेणु सा लघु कौन है ? आश्रित होने के कारण से ही पृथ्वी उसे सदा सिर पर धारण करती है। इसी भाँति आप गुरु हैं। आप ही मुझ जैसे लघु की प्रतिष्ठा करने में समर्थ हैं। दोनों ओर से केवल बातों का जमा खर्च हो रहा है। कपटी मुनि केवल बातों के भरोसे भानुप्रताप का नाश करके अपना राज्य पुनः प्राप्त करना चाहता है। और राजा भानुप्रताप भी बातों के भरोसे उससे एक कल्प तक शत्रुहीन पृथ्वी को भोगना चाहता है। कहीं मुनिजी को यह ख्याल न हो कि इस युक्ति के बल पर मेरे सिर पर चढ़ना चाहता है। इसलिए चरण पकड़ता है।

दो. अस कहि गहे नरेस पद, स्वामी होहु कृपाल।
मोहि लागि दुख सहिअ प्रभु, सज्जन दीनदयाल ॥१६७॥

अर्थ : ऐसा कहकर राजा ने पैर पकड़ लिया। और कहा स्वामिन् कृपा कीजिए। आप सज्जन हैं, दीनदयाल हैं, मेरे लिए दुःख सहिए।

व्याख्या : आशा के दासों को गति दिखलाते हैं। सम्राट् होकर आशा की डोरी में पशुओं की भाँति बँधा हुआ दीन हो रहा है। यही स्वार्थान्धता उसके नाश का कारण होगी। उसने कपटी मुनि का चरण पकड़ लिया। सन्त सहहिं दुःख परहित लागी : यह सन्त का स्वभाव है। अतः आप मेरे लिए दुःख सहिये। आप दीनदयाल हैं, मैं दीन हूँ, मेरे ऊपर दया करिये।

जानि नृपहिं आपन आधीना। बोला तापस कपट प्रवीना ॥
सत्य कहौं भूपति सुनु तोहीं। जग नाहिन दुर्लभ कछु मोहीं ॥१॥

अर्थ : राजा को अपने अधीन जानकर कपटचतुर तपस्वी बोला राजन्! मैं तुझसे सत्य कहता हूँ। संसार में मुझे कुछ भी दुर्लभ नहीं है ?

व्याख्या : कपटमुनि जब राजा में अत्यन्त श्रद्धा देखता है तब अपनी महिमा सूचक एक बात कहता है। फिर उसके परिपाक के लिए समय देता है। यथा : सब प्रकार राजहिं अपनाईं। बोलेउ अधिक सनेह जनाई। सुनु सति भाउ कहौं महिपाला। इहाँ बसत बीते बहु काला। जब राजा में फिर श्रद्धा का उद्रेक

उठता है तब उससे अधिक महिमा सूचक बात कहता है। यथा : देखा स्ववस कर्म मन बानी। तब बोला तापस बकध्यानी। नाम हमार एकतनु भाई। अब उसी बात को जमाने के लिए बातें करता जाता है। फिर जब देखता है कि राजा की श्रद्धा बढ़ती ही जाती है। अब तो मेरे अधीन हो गया। जो चाहूँगा कराऊँगा। तब कपट में प्रवीण तपस्वी बतलाता है कि मुझे संसार में कुछ भी दुर्लभ नहीं है। यह बात मैं तुमसे कहता हूँ। दूसरे से अपना भेद नहीं खोलता। सत्य कहौं कहने का भाव यह है कि यह शङ्का छोड़ दो कि कदाचित् मेरा उपाय भी निष्फल हो। वह निष्फल हो नहीं सकता। मेरे लिए सब कुछ सुलभ है।

अवसि काज मैं करिहौं तोरा। मन तन वचन भगत तैं मोरा ॥
जोग जुगुति तप मंत्र प्रभाऊ। फलै तबहिं जब करिअ दुराऊ ॥२॥

अर्थ : मैं तुम्हारा काम अवश्य करूँगा। क्योंकि तुम मेरे मनसा, वाचा, कर्मणा भक्त हो। योग युक्ति, तप और मन्त्र का प्रभाव गुप्त रखने से ही फलता है।

व्याख्या : मेरी किसी से भेंट नहीं हुई। इससे मैंने किसी का काम किया नहीं। परन्तु तुम्हारा काम अवश्य करूँगा। जो मनसा वाचा कर्मणा भक्त होता है उसके वश में ईश्वर भी रहते हैं। अतः मेरा वश होना अनुचित भी नहीं है। अपने भक्त पर सभी कृपा करते हैं।

छिपाने पर बड़ा जोर देता है। जितने कपटी हैं वे बात छिपाने पर बल देते हैं। क्योंकि प्रकट होने पर उनकी माया चल नहीं सकती। अतः कहता है कि काम तो मैं करूँगा। पर बात को छिपाना तुम्हारा काम है। शास्त्र का प्रमाण देता है कि इस प्रकार छिपाना शास्त्रानुमोदित है। छः कानों में पड़ने से मन्त्रभेद हो जाता है। अपने मुख से पुण्यकर्म के कहने से वह नष्ट हो जाता है। यथा : छीजहिं निसिचर दिन अरु राती। निज मुख कहे सुकृत जेहि भाँती। इसलिए योग, युक्ति, तप और मन्त्र के प्रभाव को छिपाने का शास्त्र आदेश देता है।

जो नरेस मैं करौं रसोई। तुम्ह परुसहु मोहि जान न कोई ॥
अन्न सो जोइ जोइ भोजन करई। सोइ सोइ तब आयसु अनुसरई ॥३॥

अर्थ : राजन् यदि मैं रसोई करूँ और तुम परोसो मुझे कोई न जाने तो उस अन्न को जो भोजन करेगा सो तुम्हारी आज्ञा मानेगा।

व्याख्या : इसी युक्ति में कपट भरा है। पर अन्धभक्त राजा का उस ओर ध्यान नहीं हैं। राजा के भोजन में यदि कोई चूक हो जाय तो रसोईदार और परोसनेवाले की चूक समझी जाती है। उसके लिए राजा को कोई दोषी नहीं बतलाता। अतः कहता है कि तुम परोसो और मुझ रसोईदार को कोई न जाने। अर्थात् ऐसी अवस्था में जो चूक होगी उसका जिम्मेदार राजा को छोड़कर और कोई हो नहीं सकता। सभी समझेंगे कि यदि राजा की सम्मति न थी तो रसोईदार गुप्त क्यों रक्खा गया? इसलिए कहता है कि तुम परोसो मुझे कोई न जाने। तब फल यह होगा कि जो अन्न खाय वही वश हो जाय।

पुनि तिनके गृह जेवँ जोऊ। तव बस होइ भूप सुनु सोऊ ॥
जाइ उपाय रचहु नृप एहू। संवत भरि संकलप करेहू ॥४॥

अर्थ : फिर उनके घर जो भोजन करेगा राजन्! वह भी तेरे वश हो जायगा। अतः जाकर यही उपाय करो और वर्ष भर के लिए संकल्प छोड़ दो।

व्याख्या : उस अन्न में ऐसा वशीकरण रहेगा कि खानेवाले के घर पर जो कभी खावे वह भी तेरे वश हो जायगा। मेरे पता न लगने का जाकर उपाय करो। क्योंकि नियमानुसार कार्य होते न देखकर रसोईदार आदि को जानने का लोग यत्न करेंगे कि यह कौन नया रसोईदार आया है जिसके सामने हमारी पूछ नहीं है। मन्त्री आदि कर्मचारी भी चौंकेंगे। संवत् भर का संकल्प पहिले ही करा देता है। जिसमें राजा संकल्पभ्रष्ट भी हो और ब्राह्मण समझें कि यह संवत् भर ब्राह्मण भोजन की प्रतिज्ञा करके ब्राह्मणमात्र को पतित करना चाहता था।

दो. नित नूतन द्विज सहस सत, बरेहु सहित परिवार।
मैं तुम्हरे संकलप लगि, दिनहि करवि जेवनार ॥१६८॥

अर्थ : एक लाख नये ब्राह्मणों को परिवारसहित नित्य वरण करना और मैं तुम्हारे संकल्प के लिए नित्य जेवनार बनाऊँगा।

व्याख्या : एक लक्ष ब्राह्मणपरिवार एक दिन भोजन करें। दूसरे दिन नये लक्ष ब्राह्मणों का परिवार भोजन करे। इस भाँति सालभर में पृथ्वीमण्डल के सब ब्राह्मणपरिवार भोजन कर लेंगे। और मैं बराबर साल भर रसोई बनऊँगा। मैं रसोई बनाने का कष्ट उठाऊँ, तुम परोसने का कष्ट उठाओ। राजकर्मचारी नये नये ब्राह्मण परिवार को नित्य यहाँ पहुँचाने का प्रबन्ध करें। यहाँ दिन का अर्थ नित्य है। यथा : प्रनवौं दीनबन्धु दिन दानी। अथवा यह अर्थ है कि इतने लोगों का जेवनार मैं दिन में ही बना डालूँगा। रात न होने पावेगी।

एहि विधि भूप कष्ट अति थोरें। होइहहिं सकल विप्र बस तोरें ॥
करिहहिं विप्र होम मख सेवा। तेहि प्रसंग सहजेहिं बस देवा ॥१॥

अर्थ : राजन्! इस विधि से अत्यन्त थोड़े कष्ट में सब ब्राह्मण तुम्हारे वश हो जावेंगे। ब्राह्मण होम, यज्ञ और पूजा करेंगे। उस प्रसङ्ग से देवगण सहज में ही वश हो जावेंगे।

व्याख्या : इस असाध्य कार्य के लिए एक साल कोई चीज नहीं है। आजतक ब्राह्मणों को कोई वश न कर सका। राजाओं का नाम इसीलिए विशाम्पति है। वे वैश्यों के मालिक हैं ब्राह्मणों के नहीं। अब तुम ब्राह्मणों के मालिक हुआ चाहते हो। रसोई बनाने का कष्ट तो मुझे है। तुम्हें तो केवल परोसना है।

ब्राह्मणों की दी हुई आहुति, हवि और नैवेद्य देवता स्वीकार करते ही हैं। सो स्वीकार करते ही वे तुम्हारे वश हो जावेंगे। उनके लिए तुम्हें कुछ करना नहीं पड़ेगा। क्योंकि ब्राह्मण स्वयं देवता हैं। उनके अधीन मन्त्रनिकाय है और

देवताओं के अधीन संसार है। यथा : देवाधीनं जगत्सर्वं मन्त्राधीनाश्च देवताः। ते देवा ब्रह्मणाधीनास्तस्माद् ब्राह्मणदेवताः। विना देवलोक को जय किये ही सब देवता तुम्हारे वश में हो जावेंगे। तुमने आजतक सप्तद्वीप को ही वश किया है। देवलोक में तुम्हारा कुछ भी प्रभुत्व नहीं है। सो वहाँ भी तुम्हारा प्रभुत्व हो जायगा।

और एक तोहिं कहौं लखाऊ। मैं एहि वेष न आउब काऊ॥
तुम्हरे उपरोहित कहुँ राया। हरि आनव मैं करि निज माया॥३॥

अर्थ : और मैं तुम्हें एक पहिचान भी बताये देता हूँ कि मैं इस वेष से कभी न आऊँगा। राजा मैं तुम्हारे उपरोहित को अपनी माया द्वारा हर लाऊँगा।

व्याख्या : पहिचान बताने की आवश्यकता यह पड़ी है कि युक्ति के सफल करने के लिए मैं इस वेष से नहीं आऊँगा। अपने स्थान पर असुर को भेजने का मार्ग परिष्कृत करता है।

माया सबकी अलग अलग होती है। सबसे बड़ी राम की माया है। यथा : सुनु खग प्रबल राम की माया। उसके बाद त्रिदेव की माया है। यथा : विधि हरिहर माया बड़ि भारी। फिर देवकी माया यथा : कछुक देव माया मति सोई। ऋषि की माया यथा : विधि विस्मय दायक विभव मुनिवर तप बल कीन्ह। फिर असुर की माया यथा : जब कीन्ह तेहि पाखंड। भए प्रकट जंतु प्रचंड। फिर मनुष्य की माया। इहाँ न लार्गाहि राउरि माया। सो यहाँ आसुरी और मानुषी दोनों माया काम कर रही हैं। पुरोहित का हरण करना आदि स्पष्ट आसुरी माया है। उसे वह अपनी माया बतलाता है। जिसमें राजा समझे कि यह सब तपोवल से हो रहा है।

तप बल तेहि करि आपु समाना। रखिहौं इहाँ वरष परवाना[१]॥
मैं धरि तासु वेष सुनु राजा। सब विधि तोर संवारब काजा॥३॥

अर्थ : तप के बल से उसे अपने समान बनाकर यहाँ एक वर्ष तक रक्खूँगा। राजन् सुनो! मैं उसका वेष बनाकर, सब भाँति से तुम्हारे काम को सँवारूँगा।

व्याख्या : उपरोहित से भय है : क्योंकि उपरोहित ऐसे होते थे जिनका दबाव राजा पर होता था। राज्य की तथा राजा की रक्षा का भार पुरोहित पर होता था। पुरोहित का पद मन्त्री से भी बड़ा है। इसीलिए अथर्ववेदी[२] पुरोहित बनाने का आदेश है जो मन्त्रादि से भली भाँति रक्षा कर सकता हो। वही धर्माध्यक्ष है।

---

१. मोनुनासिको वो वा : इस सूत्र से परिमाण का परवान रूप हुआ। 'इ का अ' और ण के न होने के नियम पहले दिये जा चुके हैं।

२. शुक्रनीति में पुरोहित के कार्य और अधिकार का विशद वर्णन है। गीतावली में वसिष्टजी को अथर्वणी कहा है। यथा : आपु वसिष्ठ अथर्वणी महिमा जग जानी।

नियमानुसार वह ब्राह्मणभोजन की देखरेख करेगा। उसे रसोई देखने से तो राजा भी नहीं रोक सकता तब विना भेद खुले न रहेगा।

उपरोहित वनकर रहने से धर्मविभाग अपने हाथ में रहेगा। दूसरा कोई निरीक्षक न रह जायगा। एक दिन बात तो फूटेगी तब धरपकड़ होगी। तब अपने ऊपर विपत्ति न आवे पकड़े जाने पर भी राजा अपना पुरोहित समझकर मुझे छोड़ दे। इसलिए कहता है कि तुम्हारे पुरोहित को मैं अपने ऐसा बनाकर यहाँ साल भर रक्खूँगा। राजा के समझाने के लिए यह बात है कि जब मैं सालभर तुम्हारे नगर में रहूँगा तो इस बीच में देवता मुनि मेरे दर्शन को आवेंगे। वे मुझे यहाँ न पाकर निराश होकर लौटेंगे। इसलिए यहाँ मेरा प्रतिनिधित्व तुम्हारा पुरोहित करेगा।

मैं तुम्हारे पुरोहित के वेष से तुम्हारे नगर में रहूँगा। जिसमें किसी को विशेषतः धर्मरुचि मन्त्री को नवागत पुरुष समझकर सन्देह न हो।

गै निसि बहुत सयन अब कीजे। मोहि तोहि भूप भेंट दिन तीजे॥
मैं तप बल तोहि तुरंग समेता। पहुँचैहौं सोवतहि निकेता॥४॥

अर्थ : रात बहुत गई अब सोओ। मेरी भेंट तुमसे राजन्! तीसरे दिन होगी। मैं तप बल से तुम्हें घोड़े समेत सोते हुए ही घर पहुँचा दूँगा।

व्याख्या : कालकेतु के आने का समय जानकर कहता है कि बातचीत में रात अधिक बीत गई। अब सो जाओ। अपना मिलन राजा से तीसरे दिन बतलाता है। समय मिलने से कार्य में विघ्न होने का भय रहता है। यथा : अदानस्य प्रदानस्य कर्तव्यस्य च कर्मणः। क्षिप्रमेव प्रकर्त्तव्यं कालः पिबति तद्रसम्। लेना देना या जो काम करना हो उसमें जल्दी करनी चाहिए। नहीं तो उसके रस : आनन्द को काल पी जाता है। इसी नीति के बल पर उसे त्वरा है। दूसरे दिन राजा राजधानी में पहुँचेगा। एक लक्ष ब्राह्मणों के वरण की व्यवस्था करेगा। तब तक तीसरे दिन मिलने के लिए यह कह ही रहा है। राजा को सन्देह हो सकता है कि क्या कल प्रातःकाल भेंट न होगी। इसलिए स्वयं कहे देता है कि सोए ही सोए तुम अपने घर पहुँच जाओगे। घोड़ा भी पहुँच जायेगा। पश्य मे तपसो बलम्। देखो मेरे तप का बल।

दो. मैं आउब सोइ वेष धरि, पहिचानेहु तब मोंहि।
जब एकांत बुलाइ सब, कथा सुनावौं तोहि॥१६९॥

अर्थ : मैं वही वेष धरकर आऊँगा। तब मुझे पहिचान लेना जब मैं एकान्त में बुलाकर यह सब कथा तुम्हें सुनाऊँ।

व्याख्या : उपरोहित कब बदल गये। इसका अन्दाज लगना तुम्हें कठिन होगा। धोखे में कहीं तुम पुरोहित से भेद न खोल दो। इसलिए सावधान किये देता हूँ कि जब मैं पुरोहित का वेष धारण कर लूँगा तो तुम्हें एकान्त में बुलाकर यह

सब कथा सुनाऊँगा। तब तुम समझना कि मैं आगया। और मेरी सम्मति से काम करना।

सयन कीन्ह नृप आयसु मानी। आसन जाइ बैठ छल ग्यानी ॥
श्रमित भूप निद्रा अति आई। सो किमि सोव सोच अधिकाई ॥१॥

अर्थ : राजा ने आज्ञा मानकर शयन किया। कपटी मुनि जाकर अपने आसन पर बैठा। राजा थका था घोर नींद में सो गया। वह : कपट मुनि कैसे सोए। उसे तो चिन्ता बढ़ गई।

व्याख्या : राजा सोना नहीं चाहता था। स्वामी के पहिले सेवक कैसे सोए। पर आज्ञा सोने के लिए हुई। वह भी टाली नहीं जा सकती। इसलिए सोए। मुनि जी सोते नहीं रात को समाधि लगाते हैं। इसलिए जाकर आसन पर बैठे। राजा के शीघ्र निद्रा आने का कारण था। मुनि की कृपा से बीतचिन्त हो गये थे। और थके भी खूब थे। कपटी मुनि के निद्रा न आने का भी यथेष्ट कारण था। जिसके बल पर राजा को सोते हुए ही घर पहुँचाने की प्रतिज्ञा की है। वह यदि न आया तो क्या होगा? महा सर्प अपनी कुटी में सो रहा है। यदि किसी भाँति सावधान हो गया तो फिर रक्षा का कोई उपाय नहीं।

परिपक्व कर्म का भोग से क्षय हो जाने पर जब दूसरे कर्मों का परिपाक नहीं हुआ रहता तो इसी बीच में मन बुद्धि की गोद में सो जाता है। शरीर में प्राण का प्रचार बना रहता है। मोहात्मिका अविद्या आवृत कर लेती है तब जीव चिति परिच्छेदक उपाधि के लय से परिपूर्णता की सम्प्राप्ति से आनन्दित होती है। इसी को सोना कहते हैं।

कालकेतु निसिचर तहँ आवा। जेहि सूकर होइ नृपहि भुलावा ॥
परम मित्र तापस नृप केरा। जानै सों अति कपट घनेरा ॥२॥

अर्थ : कालकेतु नाम का राक्षस वहाँ आया। जिसने सूकर बनकर राजा को भुलवाया था। वह तपस्वी राजा का बड़ा मित्र था। अत्यन्त घनी माया जानता था।

व्याख्या : जिसकी प्रतीक्षा में कपट मुनि बैठे थे वह आ गया। सूकर बनकर राजा को मार्गभ्रष्ट इसी ने किया था। राजा के सामने कोई पुरुषार्थ चलता नहीं था। तो इतना ही किया कि रास्ता भुलवा दिया।

यह कपटी मुनि का बड़ा मित्र था। समानशीलव्यसनेषु मैत्री : समान शील और समान व्यसनवालों में मैत्री होती है। शत्रु के शत्रु से मैत्री होना स्वाभाविक है। मुनि कपटी और राक्षस मायावी दोनों राजा के शत्रु हैं अतः परम मित्रता होना प्राप्त ही था। यह कालकेतु बड़ी माया जानता था। इसी के माया के बल पर कपटी मुनि की सब सिद्धाई अवलम्बित थी। उपरोहित को हरण करके उसे अपने आश्रम में रखना। और पुरोहित का वेष धर के राजा से मिलना। नित्य एक लाख ब्राह्मण-

परिवारों के भोजन योग्य रसोई बनाना। सोते हुए राजा को घर पहुँचाना आदि जितनी बातें कपटी मुनि ने अपने तपबल से करने को कहा था वह सब कालकेतु की माया बल के भरोसे कहा था।

तेहि के सत सुत अरु दस भाई। खल अति अजय देव दुखदाई ॥
प्रथमहिं भूप समर सब मारे। विप्र संत सुर देखि दुखारे ॥३॥

अर्थ : उसके सौ बेटे और दस भाई थे। सबके सब बड़े खल थे। युद्ध में अत्यन्त अजेय थे। और देवताओं को दुःख देते थे। सो विप्र सन्त और देवों को दुःखी देखकर पहिले ही राजा ने उन सबों को लड़ाई में मार डाला था।

व्याख्या : मित्रता का कारण सुस्पष्ट करते हैं। शत्रु का शत्रु मित्र होता है। राजा भानुप्रताप दोनों का शत्रु था! कपटी मुनि का राज्य ले लिया था। और कालकेतु का निर्वंश कर दिया था। दोनों भानुप्रताप के भय से घोर वन में छिपे हुए दिन काटते थे। कपटी मुनि तपस्वी बने रहते थे। और कालकेतु सूकरादि अनेक रूप धारण करके किसी भाँति दिन काटता था। भानुप्रताप ने संग्राम में देवों से भी दुर्जेय कालकेतु के भाई और बेटों को मार डाला था। रिपु रिन रंचन राखब काऊ। सो ये दोनों शत्रु बचे हुए थे।

तेहि खल पाछिल बयरु सँभारा। तापस नृप मिलि मंत्र विचारा ॥
जेहि रिपुछय सोइ रचेन्हि उपाऊ। भावी बस न जान कछु राऊ ॥४॥

अर्थ : उस खल ने पिछला वैर सँभाला। तापस-नृप : कपटी मुनि : से मिलकर मन्त्र विचार किया। जैसे शत्रु का नाश हो वही उपाय रचा। होनहार के वश राजा को कुछ पता नहीं चला।

व्याख्या : अकेले होने से वैर ढीला पड़ गया था। एक साथी और मिल जाने से वैर को सँभाला। कपटी मुनि और कालकेतु दोनों ने मिलकर मन्त्रणा की। और उपाय रचा कि भानुप्रताप को मृगया का व्यसन है। दूर-दूर तक मृगया के लिए जाता है। कभी न कभी इस वन में भी आवेगा ही। तब कालकेतु सूकर बनकर उसको वन में भुलवाए। इस वन में यही जलाशय है और केवल कपटी मुनि का ही आश्रम है। अतः उसे यहाँ छोड़कर दूसरी जगह त्राण मिलनेवाला नहीं है। तब कपटी मुनि अपनी माया फैलाये और उसे ईप्सित वरदान देने के व्याज से उपर्युक्त कार्यवाही के लिए तैयार करे। तब कालकेतु आकाशवाणी करके ब्राह्मणों से शाप दिलावे। तब कपटी मुनि सब राजाओं के यहाँ पत्र भेजकर उन्हें उत्साहित करें कि शापित राजा के जीतने में सुभीता है। और वे सेना लेकर राजा पर धावा करें। जिसमें राजा का सर्वनाश हो और इस भाँति बदला चुका लें।

राजा बड़ा सावधान था! पर भावीवश उसे कुछ पता न लगा। भाव यह कि उसने कालकेतु और तपस्वी वेषधारी राजा के खोजवाने का यत्न बहुत किया था। परन्तु पता न लग सका। कालक्रम से बात पुरानी हो गई। और अब कोई उस ओर ध्यान नहीं देता था।

दो. रिपु तेजसी अकेल अपि, लघु करि गनिअ न ताहु।
अजहुँ देत दुख रबि ससिहि, सिर अविसेषित राहु ॥१७०॥

अर्थ : तेजस्वी शत्रु यदि अकेला भी हो तो उसे छोटा नहीं समझना चाहिए। राहु का शिरमात्र बचा हुआ है। फिर भी आजतक सूर्य और चन्द्रमा को दुःख देता है।

व्याख्या : तेजवंत लघु गनिअ न रानी : अकेला राजा सोया पड़ा है। फिर भी कपटी मुनि और कालकेतु उसके वध का साहस नहीं करते। राजा के छः अङ्ग हैं। उनमें से पाँच मन्त्री आदि से हीन राजा यहाँ अकेला है। इसीसे 'सिर अवसेषित राहु से' उपमा दी। सूर्य-चन्द्र स्थानीय कालकेतु और कपटीमुनि के ग्रास करने में अर्थात् निस्तेज करने में अकेले समर्थ हैं।

तापस नृप निज सखहि निहारी। हरषि मिलेउ उठि भयउ सुखारी ॥
मित्रहि कहि सब कथा सुनाई। जातुधान बोला सुख पाई ॥१॥

अर्थ : तपस्वी राजा अपने सखा को देखकर हर्षित होकर उठ के मिला और सुखी हुआ। तब मित्र ने सब कथा सुनायी। राक्षस सुख पाकर बोला।

व्याख्या : तपस्वीराजा शब्द का प्रयोग कपटी मुनि के लिए ही किया गया है। जहाँ मुनि बनकर कपट करता है वहाँ कपटी मुनि कहते हैं। और जहाँ राजा-सा व्यवहार करता है वहाँ तपस्वी राजा लिखते हैं। यह बैठा हुआ अपने मित्र कालकेतु की बाट जोह रहा था, लेटा तक नहीं। उसे देखकर आदर से उठा और प्रेम से आलिङ्गन करके सुखी हुआ कि अब काम बन जायगा।

भानुप्रताप का आना और जो जो बातें उससे हुईं सो सब कह सुनाया। क्योंकि आगे का काम सब उसी को करना है। एक बात कहने में छूट जाने से बात बिगड़ जाती है। कालकेतु के आने से कपटी मुनि सुखी हुए। और सब कथा सुनकर कालकेतु सुखी हुआ।

अब साधेउँ रिपु सुनहु नरेसा। जौं तुम्ह कीन्ह मोर उपदेसा ॥
परिहरि सोच रहहु तुम्ह सोई। बिधु औषध बिआधि बिधि खोई ॥२॥

अर्थ : सुनो राजा यदि तुम मेरे कहने के अनुसार चले तो अब शत्रु को मैं ठीक कर लूँगा। सोच छोड़कर अब तुम जाकर सोओ। बिना दवा के ही ब्रह्मा ने रोग नष्ट कर दिया।

व्याख्या : कपटी मुनि को बड़ा सोच था। निद्रा नहीं आती थी। यथा : सो किमि सोच सोच अधिकाई। इसलिए कहता है : परिहरि सोच रहहु तुम सोई। यह राजा नहीं है व्याधि है। हम लोगों को बड़ा कष्ट दिया। कहीं हम लोगों का प्रचार ही नहीं होने देता था। यथा : प्रजापाल अति वेदविधि कतहुँ नहीं अघलेस। जब इससे अधिक वीर्यवान् औषध मिले तब यह मारा जा सके। उसी औषध की खोज में हमलोग थे। सो विधि ने ऐसी विधि बैठा दी कि यह निश्चय ब्रह्मशाप से

नष्ट हो जायगा। तुमने मेरा कहना किया। अब शत्रु नहीं बच सकता : कालकेतु ने ही कपटी मुनि को उस विधि से बात करने की सलाह दी थी। जिस विधि से उसने राजा से बातें कीं।

कुल समेत रिपु मूल बहाई। चौथें दिवस मिलब मैं आई ॥
तापस नृपहि बहुत परितोषी। चला महाकपटी अतिरोषी ॥३॥

अर्थ : कुल के सहित शत्रु की जड़ को धो बहाकर चौथे दिन मैं आकर मिलूँगा। तपस्वी राजा को बहुत कुछ ढाढ़स बँधाकर महाकपटी और क्रोधी चला।

व्याख्या : कालकेतु अपने मित्र से बिदा होता है। जड़ के बह जाने पर मकान गिरते देर नहीं लगती। सो चौथे दिन ब्राह्मण शाप के द्वारा इसकी जड़ धो बहाऊँगा। फिर इसके राज्य की इमारत के गिरते देर न लगेगी। कोई भी निमित्त पाकर नष्ट हो जायगा। विप्र-गुरु-पूजा ही इसकी जड़ है। उसी को नष्ट कराकर चौथे दिन मैं आकर तुमसे मिलूँगा।

तपस्वी राजा को बड़ी चिन्ता थी कि क्या जाने काम किसी विघ्न के उपस्थित होने से न बने तो हमारी क्या दशा होगी ? इसलिए कालकेतु ने बहुत ढाढ़स बँधाया कि यह दाँव खाली नहीं जा सकता। और यदि खाली भी जाय तो भी तुमपर आँच न आवेगी राजा तुम्हें अपना पुरोहित समझेगा।

भानुप्रतापहि बाजि समेता। पहुँचाएसि छन माँझ निकेता ॥
नृपहि नारि पहिं सैन कराई। हयगृह बाँधेसि बाजि बनाई ॥४॥

अर्थ : भानुप्रताप को घोड़े के समेत एक क्षण में घर पहुँचाया। राजा को रानी के पास सुलाकर अश्वशाला में घोड़े को साजकर बाँध दिया।

व्याख्या : पहिला काम यही किया कि राजा को घर पहुँचाया। जिसमें राजा का विश्वास और दृढ़ हो। सत्तर योजन राजा को घोड़े के सहित क्षणभर में पहुँचाया और राजा की नींद नहीं खुली। यह आसुरी माया है। इतना कर सका परन्तु राजा को मार न सका। भारतवर्ष में एक विद्या थी बला-अतिबला, उसके जानकार को कोई सोते में मार नहीं सकता था। अथवा उस समय के असुर भी सोते हुए शत्रु को मारना अनुचित समझते थे।

भीतर महल में राजा को ले जाकर जहाँ सोते थे सुला दिया। पहरेदारों को या रानी को पता नहीं। घोड़े को घोड़सार में जाकर बाँधा जिससे राजा जब आवे घोड़े को कसा कसाया पावे।

दो. राजा के उपरोहितहि, हरि लै गयउ बहोरि।
लै राखेसि गिरि खोह महँ, माया करि मति भोरि ॥१७१॥

अर्थ : तब राजा के उपरोहित को हरण करके ले गया। उसे पहाड़ की कन्दरा में माया से उसकी बुद्धि भोरी करके रख दिया।

व्याख्या : दूसरा काम यह किया कि पुरोहित को हटाया। उसकी बुद्धि माया

द्वारा भोरी करके उसे पहाड़ की कन्दरा में रख दिया। मति भोरी कर दी कि कन्दरा में ही घूमा करे बाहर न निकल सके। उसे यही न मालूम हो कि मैं कौन हूँ और कहाँ पर हूँ। बुद्धि ठीक रहती तो सम्भव है कि पुरोहित कोई ऐसा उपाय करता जिससे शत्रु की कार्यसिद्धि में विघ्न उपस्थित हो।

आपु बिरचि उपरोहित रूपा। परेउ जाइ तेहि सेज अनूपा ॥
जागे नृप अनभएँ बिहाना। देखि भवन अति अचरजु माना ॥१॥

अर्थ : अपना रूप उपरोहित सा बनाकर उसकी अनुपम शय्या पर जाकर लेट गया। प्रातः काल का अनुभव करके राजा जगे। सो घर देखकर अत्यन्त आश्चर्य माना।

व्याख्या : कपटी मुनि अपने आश्रम में ही रहे। पुरोहित के स्थान को कालकेतु ने दखल किया। उपरोहित की जैसी शय्या थी वैसी राजा की नहीं थी। इसलिए अनूप कहा। इससे राजा का नीतिनैपुण्य और धर्मबुद्धि सूचित हुई। राजा के यहाँ पुरोहित का बड़ा सम्मान था। यह सब कार्य उसी रात में हुआ। अभी रात बाकी है। इसलिए पुरोहित की शय्या पर जा लेटा।

प्रातःकाल जागने का राजा को अभ्यास था। पहर भर रात रहते ही प्रातः-काल माना जाता है। यथा : पछिले पहर भूप नित जागा। कैसे यहाँ आ गये! सोये आश्रम में जागे महल में। इस बात का बड़ा आश्चर्य हुआ।

मुनि महिमा मन महुँ अनुमानी। उठेउ गवँहि जेहि जान न रानी ॥
कानन गयउ बाजि चढ़ि तेहीं। पुर नर नारि न जानेउ केहीं ॥२॥

अर्थ : मुनि की महिमा का मन से अनुमान करके धीरे से उठे जिससे रानी न जान पावे। उसी घोड़े पर सवार होकर बन गये। पुर के नर नारी कोई जान न सके।

व्याख्या : आश्चर्य होने पर यह अनुमान किया कि यह मुनिजी का तपबल है। उन्होंने कहा था कि : मैं तप बल तोहि वाजि समेता। पहुँचैहहु सोवतहिं निकेता। सो कर दिखाया। रानी जागेगी तो पूछेगी कि कब आये कैसे आये! छठे कान में कहानी पड़ना गुरुजी ने रोक दिया है। इसलिए धीरे से उठा जिसमें रानी की नींद न टूटे। गुपचुप घोड़सार में गया। देखा घोड़ा कसाकसाया तैयार है। उसपर सवार होकर बन में चला गया। विन्ध्याचल नहीं गया। क्योंकि जाने आने में कई दिन लगेंगे। पुर नर नारियों ने न जाना। राजाओं के गुप्त मार्ग होते थे। जिससे पुर के बाहर आया जाया करते थे और किसी को पता नहीं चलता था।

गएँ जाम[1] जुग भूपति आवा। घर घर उत्सव बाज बधावा ॥
उपरोहितहि देख जब राजा। चकित विलोकि सुमिरि सोइ काजा ॥३॥

---

१. यह युक्ति अलङ्कार है।

अर्थ : दोपहर बीतने पर राजा आया। घर घर उत्सव हुआ। बधावा बजने लगा। उपरोहित को जब राजा ने देखा तो उस कार्य को स्मरण करके चकित होकर देखनें लगा।

व्याख्या : दोपहर बीत जाने पर लौटा। जिससे लोग जानें कि दूर से लौट रहे हैं। राजा अकेला लौटा। मृगया का साज समाज साथ नहीं है। वे तो विन्ध्याचल में राजा की बाट जोह रहे हैं। खबर दी गई कि महाराज घर लौट गये। पुरोहित में भी लौट फेर होनेवाला था। अतः राजा चकित होकर देख रहा है कि वही हैं या तपस्वी जी उनके वेष में हैं।

जुग सम नृपहि गए दिन तीनी। कपटी मुनिपद रहि मत लीनी ॥
समय जानि उपरोहित आवा। नृपहि मतें सब कहि समझावा ॥४॥

अर्थ : राजा को तीन दिन युग के समान बीते। कपटी मुनि के चरणों में ही मन लगा था। समय जानकर पुरोहित आया और उसने राजा को एकान्त में सब समझाकर कह दिया।

व्याख्या : प्रतीक्षा का समय कठिन होता है। तिसपर ऐसी प्रतीक्षा जिसमें बड़े भारी लाभ की आशा हो। अतः तीन दिन राजा के लिए तीन युग हो गये। समाप्त ही नहीं होते थे। उत्कण्ठा अत्यन्त बढ़ी हुई है। और कपटी मुनि के लिए हृदय में बड़ी श्रद्धा है। उन्हीं के चरणों में मन लीन हो रहा है।

तीन दिन बीतने पर रात को पुरोहित जी आये और जब : एकान्त बोलाइ सब कथा सुनावौं तोहि। इस वचन की भी पूर्ति हुई। एकान्त में सब कथा समझा कर कही। यथा :

लागि तृषा वन भूलि परयौ, तब जाइ सरोवर तोहि दिखायों।
देखि दुःखी वरदान दियों, शतकल्पलौं कालते तोहिं बचायों॥
सोवत ही तोहिं वाजि समेत, तपोवल ते घर में पहुँचायों।
निर्भय विप्रनतें करिबे कहँ, तोहि महीप इहाँ लगि आयों॥

दो. नृप हरषेउ पहिचानि गुरु, भ्रम वस रहा न चेत।
वरे तुरत सत सहस वर, विप्र कुटुंब समेत ॥१७२॥

अर्थ : राजा गुरु को पहिचान कर हर्षित हुए। भ्रमवश चेत न रहा। तुरन्त एक लाख अच्छे वैदिक ब्राह्मणों को सकुटुम्ब वरण किया।

व्याख्या : और एक मैं कहौं लखाऊ। सो लखाद पाकर पहिचान लिया कि गुरुजी हैं। यह याद न रहा कि कालकेतु के सौ पुत्र और दस भाइयों को मैंने मारा है। उसका पता किसी तरह नहीं लग सका। वह महा मायावी है। बदला लेने की फिक्र में लगा होगा। कहीं यह सब उसकी माया तो नहीं है। नहीं तो एक आदमी इतने आदमियों के लिए रसोई कैसे बनावेगा ? सो यह कुछ न हुआ। एक लाख ब्राह्मणों को निमन्त्रण दे दिया गया।

उपरोहित जेवनार बनाई। छ रस चारि विधि जसि श्रुति गाई॥
मायामय तेहि कीन्ह रसोई। बिंजन बहु गनि सकै न कोई॥१॥

अर्थ : छः रस और चार विधि जैसा वेद ने कहा है वैसी जेवनार पुरोहित ने बनायी। उसने मायामय रसोई की। अनेक प्रकार के व्यञ्जन बनाए जो कोई गिन नहीं सकता।

व्याख्या : पुरोहितजी स्वयं जेवनार बनाने बैठे हैं। इसलिए वेद की विधि से रसोई बनी। छवों रस : मधुर, कटु, तिक्त, अम्ल, लवण और कषाय। तथा चारों विधि : चर्व्यं, चोष्य, लेह्य और पेय के अगणित प्रकार के व्यञ्जन बनाये। देखने में तो रसोई वेद विधि से बनी थी पर थी वह मायामय। इतनी थोड़ी देर में इतने व्यञ्जन बनाने का अभिप्राय यह कि राजा को मुनिजी के तप पर श्रद्धा और भी बढ़े।

बिबिध मृगन्ह कर आमिष राँधा। तेहि महु बिप्र मास खल साँधा॥
भोजन कहुँ सब बिप्र बोलाए। पग पखारि सादर बैठाए॥२॥

अर्थ : अनेक प्रकार के मृगों का मांस पकाया। और उस खल ने उसमें ब्राह्मण का मांस भी मिला दिया। भोजन के लिए ब्राह्मणों को बोलाया और पाँव धोकर आदर के साथ बिठाया।

व्याख्या : अब मायामयत्व कहते हैं। वस्तुतः यहाँ कोई रसोई नहीं थी। केवल वहाँ अनेक जन्तुओं के मांस थे। और उनमें ब्राह्मण का भी मांस मिला था। सब ब्राह्मणों को एक साथ उठा दिया जिससे सब मिलकर एक साथ शाप दें। राजा के यहाँ ब्राह्मणों का बड़ा आदर है। राजा बन्धु बान्धवों के सहित स्वयं उनके पादप्रक्षालन करने लगा।

परुसन जबहिं लाग महिपाला। भै अकास बानी तेहि काला॥
बिप्र बृंद उठि उठि गृह जाहू। है बड़ि हानि अन्न जनि खाहू॥३॥

अर्थ : जब राजा परोसने लगा उस काल आकाशवाणी हुई। ब्राह्मणो! उठ उठकर घर जाओ, अन्न मत खाओ, बड़ी हानि है।

व्याख्या : पहले निश्चय के अनुसार : तुम परुसेहु मोहि जान न कोई। राजा स्वयं परोसने लगा। मालूम हुआ कि बड़ी श्रद्धा है। नहीं तो राजा के परोसने का नियम नहीं है। देवताओं के भोजन कराने में हिमगिरि ने स्वयं नहीं परोसा। लगे परोसन निपुन सुआरा। रसोईदार का किसी को पता नहीं। अब राजा पूरी

---

१. राजा का परोसना यही है कि स्वयं महाराज ने भी परोसने में हाथ लगा दिया। सारा समाज परोस रहा था। भाव यह कि परोसने का काम पूरा होने पर राजा ने स्वयं परोसने में हाथ लगाया। उसी समय आकाशवाणी हुई। परिवार के सहित राजा परोसता था। यह बात इतने से ही सिद्ध है कि ब्राह्मणों ने परिवार सहित राजा को शाप दिया।

तरह रसोई का जिम्मेदार हो गया। अब निगमन यही होगा कि राजा को ऐसी ही रसोई इष्ट थी। इसी से न जाने किसको किसको बुलाकर रसोई बनवाई। पुराने रसोईदार भी सम्मिलित नहीं किये गये।

यह आकाशवाणी कालकेतु की की हुई थी। तेहि काला से कालकेतु ध्वनित है। गृह जाहू का भाव यह कि यहाँ तुम लोगों का पैर रखना भी उचित नहीं है। सबसे बड़ा धोखा है। खाते ही पतित हो जाओगे। कालकेतु ने यह आकाशवाणी शाप दिलाने के लिए की। यह सच्ची आकाशवाणी नहीं हो सकती। सच्ची आकाशवाणी होती तो राजा के निर्दोष होने का भी इशारा अवश्य होता। जिस भाँति लक्ष्मणजी के कोप पर आकाशवाणी ने इङ्गित किया था। यथा : अनुचित उचित काजु किछु होऊ। समुझि करिअ भल कह सब कोऊ। सहसा करि पाछे पछिताहीं। कहहिं वेद बुधते बुध नाहीं। परन्तु यहाँ अत्यन्त आवश्यक बात की ओर कुछ भी इशारा नहीं है। अतः यह देवकृत आकाशवाणी नहीं है। असुरकृत है। जिसके कारण राजा मारा गया।

भयउ रसोईं भूसुर मासू। सब द्विज उठे मानि बिस्वासू ॥
भूप बिकल मति मोह भुलानी। भावी बस न आव मुख बानी ॥४॥

अर्थ : रसोई ब्राह्मणों के मांस की हुई है। सब ब्राह्मण विश्वास मानकर उठ खड़े हुए। राजा विकल हो उठा। बुद्धि मोह से गड़बड़ा गई। होनहारवश मुख से शब्द न निकले।

व्याख्या : जिसे रसोई समझते हो वह ब्राह्मणों का मांस है। इस वाणी का बोलनेवाला कोई दिखाई नहीं पड़ता है। और शब्द सुनाई पड़ते हैं। अतः यह अवश्य ही आकाशवाणी है। यह कभी मिथ्या नहीं हो सकती। ट : विश्वास मानकर पत्तल पर से उठ गये।

जिस बात से राजा सदा डरता था वही आँख के सामने आगई। बात ऐसी गठ गई है कि इसकी सफाई नहीं। आकाशवाणी पर शङ्का को स्थान नहीं। यह हुआ क्या ? सोचकर राजा विकल हो गया। विकल होने से बुद्धि स्तब्ध हो गई। कुछ कह न सका। यही समय अपनी निरपराधता तथा ठगे जाने की बात को प्रकाश करने का था। होनहार बलवान् है। कालकेतु का अनुमान ही ठीक निकला कि इसके नाश में ब्रह्मदेव का हाथ है। यथा : बिनु औषधि बिधि खोई।

दो. बोले बिप्र सकोप तब, नहिं कछु कीन्ह बिचार।
जाइ निसाचर होहु नृप, मूढ़ सहित परिवार ॥१७३॥

अर्थ : सब ब्राह्मण क्रुद्ध होकर बोले। कुछ विचार न किया। शाप दिया : मूढ राजा तू परिवार सहित राक्षस हो।

व्याख्या : आकाशवाणी के बाद राजा के कुछ न बोलने से सब दोष उस पर आ पड़ा। ब्राह्मणों ने भी कुछ विचार न किया। बात विचारने योग्य थी कि

ऐसा धर्मात्मा राजा, एकाएक ऐसा अनर्थ क्यों करेगा ? फिर इसे ऐसा करने से लाभ क्या ? यह आकाशवाणी सच्ची है कि माया है ?

कहने लगे : ब्राह्मण के मांस की रसोई राक्षस के यहाँ होती है। यथा : खल मनुजाद द्विजामिष भोगी। सो तेरे यहाँ ऐसी रसोई बनो अतः तू राक्षस हो। 'मूढ़' कहने से भाव यह कि तेरा कोई लाभ नहीं और हमारा धर्म चला जाता। सहित परिवार का भाव यह कि परिवार के सहित तू पादप्रक्षालनादि ब्राह्मण भोजन के कृत्य में लगा था। तूने ही परिवार सहित रसोई इसीलिए बनाई और आप ही परोसने चला। श्रद्धा से नहीं हम लोगों के सर्वनाश के लिए जानबूझकर तूने सब किया। अतः सबके सब राक्षस हो जाओ।

छत्र बंधु तैं विप्र बोलाई। घालै लिए सहित समुदाई ॥
ईस्वर राखा धरम हमारा। जैहसि तैं समेत परिवारा ॥१॥

अर्थ : रे क्षत्रियाधम ! तूने ब्राह्मणों को बुलाकर उनको समाज सहित नष्ट करना चाहा था। ईश्वर ने हमारा धर्म रख लिया। तू परिवार के साथ नष्ट होगा।

व्याख्या : बिना बुलाये हुए के साथ भी कोई ऐसा व्यवहार नहीं करता। तूने बुलाकर ऐसा व्यवहार किया। समाजसहित तूने सब ब्राह्मणों को नष्ट करना चाहा। जिसमें सब पतित हो जायँ। कोई प्रायश्चित करनेवाला न रह जाय। आकाशवाणी द्वारा ईश्वर ने हमारा धर्म बचाया। तू परिवारसहित इस कर्म में सम्मिलित था। और परिवारसहित हम लोगों का नाश चाहा। इसलिए तू भी परिवारसहित नष्ट होगा।

संवत मध्य नास तव होऊ। जलदाता न रहिहि कुल कोऊ ॥
नृप सुनि साप विकल अति त्रासा। भइ बहोरिवर गिरा आकासा ॥२॥

अर्थ : सम्वत् के भीतर तेरा नाश हो। कुल में कोई जल देनेवाला न रहें। राजा शाप सुनकर अत्यन्त भय से व्याकुल हो गया तो फिर आकाश से श्रेष्ठ वाणी हुई।

व्याख्या : सम्वत् भर ब्राह्मणों को नष्ट करने का तेरा संकल्प था। सो सम्वत् के भीतर तेरा नाश हो जाय। तूने चाहा था कि कोई ब्राह्मण बच न जाय। अतः तेरे कुल में कोई न बचे। जलदाता भी कोई न रहे। अर्थात् दस पुस्त के भीतर जितने दायाद हैं सब नष्ट हो जायँ।

राजा पहिले ही विकल था। अब शाप सुनकर अत्यन्त विकल हुआ। तब श्रेष्ठ : सच्ची वाणी आकाश से हुई। भाव यह कि पहिली वाणी श्रेष्ठ न थी। क्योंकि कालकेतु की बोली हुई थी। अब यह श्रेष्ठ वाणी राजा के यश की रक्षा तथा शापानुग्रह के लिए हुई।

विप्रहु श्राप बिचारि न दीन्हा। नहिं अपराध भूप कछु कीन्हा ॥
चकित विप्र सब सुनि नभ बानी। भूप गयउ जहँ भोजन खानी ॥३॥

अर्थ : ब्राह्मणो ! तुम लोगों ने विचारकर शाप नहीं दिया। राजा ने कोई अपराध नहीं किया। सब ब्राह्मण आकाशवाणी सुनकर चकित हो गये। जहाँ भोजन की खानि थी वहाँ राजा गया।

व्याख्या : राजा की सफाई का उपाय अब सिवा आकाशवाणी के दूसरा था नहीं सो आकाशवाणी हुई। ब्राह्मणों की भर्त्सना की कि तुम लोगों ने विचार से काम नहीं लिया। निरपराध को शाप दे डाला। ब्राह्मण के मांस की रसोई होने में राजा का कोई अपराध नहीं है। बिना ठीक तरह, जाँच किये तुम लोगों ने कैसे निर्णय किया ?

यह आकाशवाणी कैसी ? राजा का अपराध नहीं है तो किसका है ? अतः सब ब्राह्मण चकित हुए। यश की रक्षा आकाशवाणी ने की। तब राजा इतने सावधान हुए कि रसोईघर में गये रसोईदार और रसोई की जाँच करने के लिए।

तहँ न असन नहिं विप्र सुआरा। फिरेउ राउ मन सोच अपारा ॥
सब प्रसंग महि सुरन्ह सुनाई। त्रसित परेउ अवनी अकुलाई ॥४॥

अर्थ : वहाँ न रसोई थी न रसोईदार ब्राह्मण था। तब राजा लौटा। मनमें अपार सोच हुआ। सब कथा ब्राह्मणों को सुनाकर पृथ्वी में आकुल होकर गिर गया।

व्याख्या : मुख्य अपराधी अपने अपराध के प्रमाण सहित अन्तर्धान हो गया। अब राजा के सोच का कोई पारावार न रह गया। वह सोचता है कि जिसके ऊपर इतनी आस्था थी वह घोर वैरी निकला। और वह कौन था जिसने इतनी बड़ी माया करके मेरा नाश किया ? मैं अत्यन्त लोभ से मारा गया। अब मेरा और मेरे कुटुम्ब का क्या होगा ? इत्यादि ऐसा सोच उठा कि उसका पारावार नहीं। अपना निरपराध होना सिद्ध करने के लिए सब बातें खोलकर कहनी पड़ीं। कहते कहते व्याकुलता इतनी बढ़ी कि पृथ्वी पर गिर गया।

दो. भूपति भावी मिटै नहि, जदपि न दूषन तोर।
किए अन्यथा होइ नहि, विप्र साप अति घोर ॥१७३॥

अर्थ : ब्राह्मण बोले : राजन् ! होनहार होकर ही रहता है। मिटता नहीं। यद्यपि तुम्हारा दोष नहीं। पर करने से अन्यथा नहीं हो सकता। ब्राह्मण का शाप अत्यन्त घोर होता है।

व्याख्या : ब्राह्मणों ने कहा ऐसी ही भावी थी। शाप निमित्त मात्र हुआ। हम लोग भी अब तुझे निर्दोष मानते हैं। पर इस शाप की प्रतिक्रिया नहीं है। हम भी इसे अन्यथा नहीं कर सकते। यहाँ शापानुग्रह की कथा नहीं कहते। रुद्रगणों पर जैसा नारदजी ने अनुग्रह किया था वैसा ही समझ लेना। यथा : वैभव विपुल तेज बल होऊ। समर मरन हरि हाथ तुम्हारा। होइहौ मुकुत न पुनि संसार ।

अस कहि सब महिदेव सिधाए। समाचार पुर लोगन्ह पाए ॥
सोचहि दूषन दैवहि देही। विचरत हंस काग किय जेहीं ॥१॥

अर्थ : ऐसा कहकर सब ब्राह्मण चले गये। पुरवासियों को समाचार मिला। लगे सोचने और दैव को दोष देने जिसने कि चलते फिरते हंस को काग बना दिया।

व्याख्या : यहाँ 'महिदेव' शब्द से ब्राह्मणों का महत्त्व सूचित किया कि पृथ्वी पर के देवता हैं। देवताओं की भाँति आवाहन से आये थे। अपवित्रता देखकर चले जा रहे हैं। जो बात उनके मुख से निकल गई वही होगी। अन्यथा नहीं हो सकता।

ऐसी विचित्र घटना विशेषतः राजघराने को छिप नहीं सकती। नगर में फैल गई। राजा बड़ा प्रजा पालक था। वेदविद् था। उसके राज्य में अधर्म का लेश नहीं था। अतः प्रजा अत्यन्त सुखी थी। इस दुर्घटना को सुनकर लोग सोच करते हैं। दुःखी होते हैं। बात किसी के समझ में नहीं आती है। इसमें न राजा का दोष दिखाई पड़ता है न ब्राह्मणों का दोष दिखाई पड़ता है। राजा से इस जन्म में कोई अनर्थ भी नहीं हुआ जिसका फल कहा जा सके। अतः दैव को दोष देते हैं कि उन्होंने नियम भङ्ग किया। जन्म से ही काग या हंस बनाने का विधान है। द्विज द्रोही बहु नरक भोग करि। जग जन्महि वायस सरीर धरि। यहाँ तो राजा जन्म से हंस था। और हंस की भाँति आचरण करता था परम धर्मात्मा था। इसे ब्राह्मण-द्रोह कहाँ से उत्पन्न हो गया? जो ब्राह्मणों को वश करने चला।

उपरोहित हि भवन पहुँचाई। असुर तापसहि खबरि जनाई ॥
तेहि खल जहँ तहँ पत्र पठाए। सजि सजि सेन भूप सब आए ॥२॥

अर्थ : असुर ने उपरोहित को पहुँचाकर तपस्वी : राजा : को समाचार दिया। उस खल ने जहाँ तहाँ चिट्ठियाँ भेजीं। सो राजा लोग सेना सजा सजाकर आये।

व्याख्या : अब कालकेतु ने पुरोहित को घर पहुँचा दिया। जिसमें पुरोहित की खोज में कहीं भानुप्रताप के आदमी कपटीमुनि के आश्रम तक खोजते खोजते न पहुँच जायँ और अब सालभर तक उसे गिरि खोह में रखने की कोई आवश्यकता नहीं रह गई। तत्पश्चात् अपनी प्रतिज्ञानुसार कुल सहित रिपु मूल बहाकर चौथे दिन कपटीमुनि से जा मिला और कृतकार्य होने का समाचार दिया।

वह कपटीमुनि राजा था ही सब राजा लोग उसे जानते थे। जिन जिन राजाओं से दण्ड ले लेकर भानुप्रताप ने छोड़ दिया था उन सबों को उसने चिट्ठियाँ भेजीं कि भानुप्रताप राजा ब्राह्मणों के शाप से दग्ध हो गया है। अब उसके नाश के निमित्त होकर जय और यश के भागी होने के लिए शीघ्रता करो। सो राजा लोगों ने सेना सहित चढ़ाई कर दी।

घेरेन्हि नगर निसान बजाई। विविध भाँति नित होइ लराई ॥
जूझे सकल सुभट करि करनी। बंधु समेत परेउ नृप धरनी ॥३॥

अर्थ : सब राजाओं ने डङ्का बजाकर नगर घेर लिया। अनेक प्रकार से युद्ध होने लगा। सभी सुभट : योद्धा पराक्रम दिखला दिखालकर जूझ गये और भाई सहित राजा भी खेत रहा।

व्याख्या : नगर घिर गया। बाहर की सहायता रुकी। चारों ओर से धावा हुआ। राजा ने सामना किया। नित्य अनेक प्रकार युद्ध होने लगे। भानुप्रताप के सुभटों ने पीठ नहीं दिखायी। खूब पराक्रम किया। परन्तु शापित होने के कारण मारे गये। राजा को अन्त में लड़ना चाहिए। इसी नीति का आश्रयण करके राजा अन्त में लड़ा और भाई सहित खेत रहा।

सत्यकेतु कुल कोउ नहि बांचा। विप्र श्राप किमि होइ असाँचा॥
रिपु जिति सब नृप नगर बसाई। निजपुर गवने जय जस पाई॥४॥

अर्थ : सत्यकेतु के कुल में कोई न बचा। ब्राह्मणों का शाप मिथ्या कैसे हो सकता है? सब राजा शत्रु को जीतकर नगर को बसाकर विजय और यश पाकर घर गये।

व्याख्या : ये राजा लोग जय और यश की आकांक्षा से आये थे। भानुप्रताप से पराजित होने से ये अपनी कीर्ति खो बैठे थे। भानुप्रताप पर विजय पाने से अपनी खोई हुई कीर्ति प्राप्त की। युद्ध में नगर उजड़ गया था। उसे बसाकर सब घर चले गये। राज्य कपटी मुनि के हाथ लगा। क्योंकि इसी ने सबको चिट्ठी भेज कर बुलवाया था। और उद्योग सब इसी का था।

दो. भरद्वाज सुनु जाहि जब, होइ विधाता वाम।
धूरि मेरुसम जनक जम, ताहि ब्याल सम दाम॥१७५॥

अर्थ : भरद्वाज! सुनो। जिसे सब ब्रह्मा बाएँ हो जाते हैं तो उसके लिए धूलि मेरु हो जाती है। पिता यम हो जाते हैं। रस्सी उसके लिए सर्प हो जाती है।

व्याख्या : अशुभ कर्म के उदय होने से ही विधाता बाएँ होते हैं। यथा : कठिन करम गति जान विधाता। जो सुभ असुभ सकल फल दाता। कपटी मुनि धूल के समान था। यथा : नाम हमार भिखारि अब निर्धन रहित निकेत। सो पर्वतराज सुमेरु सा हो गया। उसके बुलाने से सब राजा युद्ध करने चले आये। पितृस्थानीय विप्रवृन्द यम हो गये। ऐसा घोर शाप दे दिया। कालकेतु में कुछ नहीं रह गया था। उसकी आकृति मात्र राक्षस की थी। सूकर आदि बना वन में फिरता था। वह रज्जु था सो साँप हो गया।

३. रावणावतार प्रसङ्ग

काल पाइ मुनि सुनु सोइ राजा। भयउ निसाचर सहित समाजा॥
दस सिर ताहि बीस भुज दंडा। रावन नाम वीर बरिवंडा॥१॥

अर्थ : मुनि ! सुनो समय पाकर वही राजा समाज के सहित राक्षस हुआ। उसे दस सिर और बीस भुजाएँ थीं। उस बीर बलिवन्ध[1] का नाम रावण था।

व्याख्या : सभी कार्यों के लिए काल असाधारण कारण है। जब वैसी ग्रह-स्थिति आई तो वही राजा भानुप्रताप राक्षस होकर पैदा हुआ। और उसका सब समाज राक्षस हुआ। इस जन्म में उसे दस सिर हुए, बीस हाथ हुए। उसका नाम रावण पड़ा। यह बलवानों से भी वन्दित वीर हुआ। यह पुलस्त्य का नाती और विश्रवा मुनि का पुत्र था। माँ इसकी दैत्यकुल की थी। और दारुण वेला में इसके पिता को प्राप्त हुई थी। अतः उन्होंने इसकी माता से कह दिया कि तुझे राक्षस पुत्र उत्पन्न होंगे। ऋषि जी के अनुष्ठान में रहने के कारण रावण की माता के दस ऋतु व्यतीत हो गये। इसलिए विश्रवा जी ने दस पुत्र के स्थान पर एक पुत्र दस सिर और बीस भुजावाला दिया।

भूप अनुज अरिमर्दन नामा। भएउ सो कुंभकरन बलधामा ॥
सचिव जो रहा धरम रुचि जासू। भएउ बिमात्र बंधु लघु तासू ॥२॥

अर्थ : उसका छोटा भाई जिसका नाम अरिमर्दन था वह बलधाम कुम्भकर्ण हुआ। जो उसका धर्मरुचि नामी मन्त्री था वह उसका छोटा सौतेला भाई हुआ।

व्याख्या : अरिमर्दन का उस जन्म में भुजबल अतुल था। सो इस जन्म में भी बलधाम हुआ। इसके कान कुम्भ की भाँति थे। वाल्मीकीय और अध्यात्म में तीनों भाइयों की एक माता कही गई है। जिसका नाम कैकसी था। परन्तु यहाँ बिभीषण को सौतेला भाई कह रहे हैं। अतः कथा का यह भाग उन कल्पों की कथाओं से मेल नहीं खाता जिसका वर्णन वाल्मीकीय या अध्यात्म में है। यह कथा भाग महाभारतोक्त रामकथा से मेल खाता है। जिसमें रावण कुम्भकर्ण का जन्म पुष्पोत्कटा से विभीषण का जन्म मालिनी से और खर तथा सूर्पणखा का जन्म राका नाम राक्षसी से लिखा है जो कि कुवेर द्वारा पिता की सेवा में नियुक्त थीं। पिता इन सबके विश्रवा मुनि थे। जिस कल्प में ब्रह्म का रामावतार हुआ उस कल्प के रावण की माता का नाम पुष्पोत्कटा और बिभीषण की माता का नाम मालिनी था।

नाम बिभीषन जेहि जग जाना। बिस्नु भगत बिग्यान निधाना ॥
रहे जे सुत सेवक नृप केरे। भए निसाचर घोर घनेरे ॥३॥

अर्थ : उसका नाम विभीषण पड़ा। जिसे संसार जानता है कि विष्णुभक्त

---

१. दोलदंडदशनेषु डः। इस सूत्र से दकार का डकार वलिवंद्य का बरिवंड रूप सिद्ध हुआ। लकार के रेफ होने और यकार के लोप के नियम दिये जा चुके हैं।

और विज्ञान का निधान था। और राजा के जो बहुत से बेटे और सेवक थे वे भी घोर राक्षस हुए।

व्याख्या : विभीषण का नाम पुण्यश्लोकों में है। प्रातःकाल ही सब लोग महाभागवत होने से स्मरण करते हैं। विभीषण जी ज्ञानी भक्त थे। इसलिए विष्णु भक्त विज्ञान निधाना कहा। विभीषण के बाद सुत सेवक का नाम आने से कोई यह न समझे कि वे सब भक्त और ज्ञानी हुए होंगे। अतः कहते हैं कि वे सब घोर राक्षस हुए। सेवक की भी गणना परिवार में है। इन तीनों भाइयों से घोरता में सुत सेवक अधिक थे।

कामरूप खल जिनिस अनेका। कुटिल भयंकर विगत विवेका॥
कृपा रहित हिंसक सब पापी। वरनि न जाइ विस्व परितापी॥४॥

अर्थ : वे खल मनमाना रूप धारण करनेवाले अनेक प्रकार के कुटिल, भयंकर और विवेकरहित थे। वे सब निर्दयी, हिंसक और पापी थे। उन विश्वपरितापियों का वर्णन नहीं किया जा सकता।

व्याख्या : उन खलों में मनमाना रूप धारण करने की शक्ति थी। इसलिए विश्व को परिताप देना उन्हें सरल हो गया। कुटिल, विवेकरहित, निर्दय, हिंसक और पापी थे। अतः विश्व के परिताप देने में वे आनन्दबोध करते थे। कामरूप से माया कही। खल से स्वभाव कहा। जिनिसि से आकृति कही। कुटिल से मन की मलिनता कही। भयंकर से रूप कहा। विगत विवेक से कुमति कही। कृपा रहित हिंसक से कर्म कहा। पापी से पृथ्वी का भारभूत होना कहा।

विश्वपरितापी हैं। ऐसा परिताप पहुँचाते हैं कि उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। आगे चलकर कहेंगे सर्वंसहा भगवती वसुन्धरा नहीं सह सकी।

दो. उपजे[1] जदपि पुलस्त्य कुल, पावन अमल अनूप।
तदपि महीसुर सापवस, भये सकल अघरूप॥१७६॥

अर्थ : यद्यपि वे पुलस्त्य के कुल में उत्पन्न हुए। जो पावन, निर्मल और अनूप था फिर भी ब्राह्मणों के शाप से वे पापरूप ही पैदा हुए।

व्याख्या : पूर्वजन्म का कर्म बहुत ही अच्छा था। इसलिए पुलस्त्य ऋषि के वंश में उत्पन्न हुए। वह कुल दूसरे को पवित्र करनेवाला था। इसलिए पावन कहा। स्वयं पवित्र था इसलिए अमल कहा। उसी वंश में विश्रवा मुनि तथा कुबेर जी उन्पन्न हुए इसलिए अनूप कहा अथवा कलङ्क रहित चन्द्र के समान होने से अनूप कहा। यथा : रिषि पुलस्त जस विमल मयंका। जाति आयु और भोग तीनों अच्छा था। परन्तु ब्राह्मण का शाप अत्यन्त घोर था। अतः सब आसुर प्रकृति के हुए, पापरूप ही थे।

---

१ यहाँ विषम द्वितीय है।

कीन्ह विविध तप तीनिहुँ भाई । परम उग्र नहिं बरनि सो जाई ॥
गएउ निकट तप देखि बिधाता । माँगहु वर प्रसन्न मैं ताता ॥१॥

अर्थ : तीनों भाइयों ने अनेक प्रकार के तप किये । जो कि बड़े उग्र : तीव्र : थे । उनका वर्णन नहीं हो सकता । तप देखकर ब्रह्मदेव निकट गये । कहा कि तात मैं प्रसन्न हूँ, वर माँगो ।

व्याख्या : तीनों भाइयों के तप के प्रकार भिन्न थे । कुम्भकर्ण नित्य धर्म में स्थिर रहकर ग्रीष्मकाल में पञ्चाग्नि तापता था । और वीरासन से बैठे हुए वर्षा की धारा पावस में सहता था । और शिशिर ऋतु में जाकर जल में डूबा रहता था । इस भाँति दश सहस्र वर्ष तक तपस्या करता रहा । धर्मात्मा विभीषण पाँच सहस्र वर्ष तक एक पैर से खड़े रहे । और पाँच सहस्र वर्ष तक ऊपर सिर और बाहु उठाए हुए सूर्य का अनुवर्तन किया । रावण सहस्र वर्ष तक निराहार रहा । और एक सहस्र वर्ष की पूर्ति पर अपना एक सिर काटकर अग्नि में हवन करता था । इसलिए कहते हैं : कीन्ह विविध तप तीनिउ भाई । यह तो उनके शारीरतप का वर्णन हुआ । इसके साथ-साथ मानस और वाङ्मय तप कैसा हुआ । इसका कौन वर्णन कर सकता है ?

जब दश सहस्र वर्ष पूरे हुए । और रावण अपना अवशिष्ट एक सिर भी काटने

रावण की कुण्डली : जो दक्षिण भारत के एक महाविद्वान् वी. सूर्य नारायणराव के रायल हारोस्कोप नामक पुस्तक से उद्धृत की गई है ।

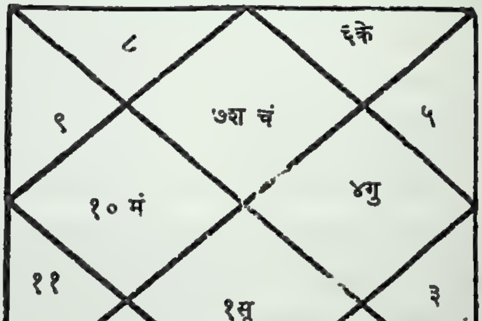

१. छठे मन्वन्तर : चाक्षुष : में समुद्र मन्थन हुआ । देवासुर संग्राम हुआ । उस समय दानवेन्द्र बलि राजा थे । रावण का कोई पता नहीं चलता । इससे स्पष्ट है कि रावण सातवें : वैवस्वत : मन्वन्तर में हुए । परशुरामावतार इसी मन्वन्तर के उन्नीसवीं चतुर्युगी में हुआ था । उन्होंने कार्त्तवीर्य सहस्रबाहु को मारा । और सहस्रबाहु तथा रावण में युद्ध हुआ था । यथा : एक बहोरि सहस भुज देखा । धाइ जनु जन्तु विसेषा । अतः कहा जा सकता है कि इस कल्प के रावण का प्रादुर्भाव उन्नीसवीं चतुर्युगी में हुआ । और चौबीसवीं चतुर्युगी में वह श्रीरामचन्द्र द्वारा मारा गया । अतः रावण का राज्यकाल पाँच चतुर्युगी तक होना सिद्ध होता है ।

चला तब ब्रह्मदेव निकट गये। बोले 'प्रीतोऽस्मि' : मैं प्रसन्न हूँ : और वर माँगने को कहा। प्रपौत्र है इसलिए 'तात' कहते हैं। ब्रह्मलोक में ब्रह्मदेव हैं। ऐसी भावना से उपासना किया था। इसलिए प्रकट नहीं हुए निकट गये।

करि विनती पद गहि दससीसा। बोलेउ वचन सुनहु जगदीसा ॥
हम काहू के मरहिं न मारे। वानर मनुज जाति दुइ वारे ॥२॥

अर्थ : विनती करके और चरण पकड़ के दशशीश ने कहा : हे जगदीश सुनो। हम किसी के मारे न मरें। वानर और मनुष्य छोड़कर।

व्याख्या : रावण की तपस्या भी बड़ी थी और ज्येष्ठ भी था। इस समय अवशिष्ट दसवें सिर को काटना चाहता था इससे ब्रह्मदेव पहिले इसी के पास गये। रावण इस समय स्वार्थरत है। अतः विनती भी की। चरण पकड़ लिया और अमरत्व माँगा। ब्रह्मदेव ने कहा अमरत्व नहीं मिल सकता। दूसरा वर माँगो। तब उसने वानर और मनुष्य को छोड़कर देव दानवादिकों से अपना अवध्यत्व माँगा। उसने समझ रक्खा था कि मनुष्य और वानर का शरीर ऐसा है कि ये सर्वथा मुझे मारने में असमर्थ होंगे।

एवमस्तु तुम बड़ तप कीन्हा। मैं ब्रह्मा मिलि तेहि वर दीन्हा ॥
पुनि प्रभु कुंभकरन पहिं गएऊ। तेहि विलोकि मन विसमय भएऊ ॥३॥

अर्थ : एवमस्तु ऐसा ही हो तुमने बड़ा तप किया यह वर मैं और ब्रह्मा ने मिलकर दिया। फिर प्रभु कुम्भकर्ण के पास गये। उसे देखकर बड़ा विस्मय हुआ।

व्याख्या : एवमस्तु कहने में शङ्कर जी आगे दिखाई पड़े। अतः यहाँ मैं ब्रह्मामिलि कहा। यह वर तपस्या के सामने कुछ बहुत बड़ा नहीं था। इसलिए तुम बड़ तप कीन्हा। यथा : रावन कुम्भकरन वर माँगत सिव विरंचि वाचा छल्यौ : दोनों देवों ने मिलकर वर दिया। क्योंकि उसने दोनों की पूजा की थी।

कुम्भकर्ण के पास ब्रह्मदेव गये, शिवजी नहीं गये। उसे देखकर आश्चर्य किया कि इसके कान कुम्भ जैसे और शरीर इतना बड़ा और भयङ्कर है। यह कैसा अद्भुत जीव है। यह तो विना वर के ही संसार का संहार कर देगा। देवताओं की प्रार्थना के अनुसार यह तो मोहन योग्य है।

जौं एहि खल नित करब अहारू। होइहिं सब उजारि संसारू ॥
सादर प्रेरि तासु मति फेरी। माँगेसि नींद मास षटकेरी ॥४॥

अर्थ : यदि यह खल नित्य भोजन करेगा तो संसार उजड़ जायगा। सरस्वती की प्रेरणा करके उसकी वुद्धि उलट दी। उसने छः महीने की नींद माँगी।

व्याख्या : ब्रह्मदेव ने सोचा कि खल बिना कारण भयकारी होते हैं। यहाँ तो वड़ा भारी कारण उपस्थित है। इसकी क्षुधा शान्ति के लिए अपरिमित आहार की आवश्यकता है। हिंसक है ही। सम्पूर्ण संसार का भक्षण कर जायगा। इसको वर देने से तो सृष्टि का संहार उपस्थित होगा। परन्तु इसने तो तप किया है। इसे वर

तो देना ही पड़ेगा। बड़े असमञ्जस में पड़े। इधर देवताओं ने विनती की थी कि वर के व्याज से इसका मोहन कीजिये तभी संसार चल सकेगा। अतः सरस्वती को प्रेरणा की कि देवताओं के मनोरथ को पूर्ण करो। सरस्वती ने बुद्धि फेर दी। यथा : गई गिरा मतिफेरि : छः महीना जागने के स्थान में छः महीने की नींद माँग ली।

दो. गए विभीषन पास पुनि, कहेहु पुत्र वर माँगु।
तेहिं माँगेउ भगवंत पद, कमल अमल अनुरागु ॥१७७॥

अर्थ : फिर विभीषण के पास गये। कहा कि बेटा! वर माँग। उसने भगवान् के चरण कमलों में निर्मल भक्ति माँगी।

व्याख्या : विभीषण पर स्नेह है कि यही पुत्र पद के योग्य है। कहा जो माँगेगा सो दूँगा। विभीषण को भगवान् के चरणों में प्रीति तो थी ही। उसने फलाभिसन्धि रहित निर्मल भक्ति माँगी। नाम धर्म रुचि हरिपद प्रीती, यह भानुप्रताप का मन्त्री पूर्व जन्म में था। उस जन्म में भी इसे भक्ति थी। भगवान् के भक्त का नाश नहीं होता। यथा : ताते नाश न होय भक्तकर। शाप होने पर भी भक्ति नहीं गई। उत्तरोत्तर बढ़ती ही गई।

तिन्हहि देइ वर ब्रह्म सिधाए। हरषित ते अपने गृह आए ॥
मय तनुजा मंदोदरि नामा। परम सुंदरी नारि ललामा ॥१॥

अर्थ : उन्हें वर देकर ब्रह्मदेव तो चले गये। वे हर्षित होकर अपने घर आये। मय : दानव : की बेटी जिसका नाम मन्दोदरी था। बड़ी सुन्दर स्त्रीरत्न थी।

व्याख्या : कुम्भकर्ण और विभीषण का माँगना केवल कहा था। ब्रह्मदेव का वर देना नहीं कहा था। सो यहाँ ब्रह्मदेव के जाने के प्रसङ्ग में कहते हैं कि उन्हें वर देकर ब्रह्माजी चले गये। वे प्रसन्न होकर घर आये। भाव यह कि तपस्या के लिए गोकर्ण के आश्रम में चले गये थे। तपस्या पूरी होने पर वहाँ से अपने घर श्लेष्मातक वन में गये। कुम्भकर्ण की मति फिरी हुई है। वह छः महीने की सुषुप्ति से ही हर्षित है।

मय दानव असुरों के विश्वकर्मा हैं। इन्हें एक बेटी थी। जिसका नाम इन्होंने मन्दोदरी रख छोड़ा था। बड़ी सुन्दर थी। स्त्रियों में रत्न थी। इसे देखकर लङ्का में हनुमानजी को जनकनन्दनी का भ्रम हो गया था। इससे बढ़कर स्त्रीरत्न होने का और प्रमाण क्या हो सकता है।

सोइ मय दीन्हि रावनहिं आनी। होइहि जातुधानपति जानी ॥
हरषित भयउ नारि भलि पाई। पुनि दोउ बंधु बिआहेसि जाई ॥२॥

अर्थ : उसे लाकर मय ने रावण को दिया। उसने जान लिया कि यही राक्षसों का राजा होगा। रावण अच्छी स्त्री पाकर प्रसन्न हुआ। फिर जाकर दोनों भाइयों का व्याह किया।

व्याख्या : मयदानव ने देख लिया कि रावण ही राक्षसों का राजा होनेवाला है। अतः उसे लाकर रावण को दिया। उसे परम सुन्दरी देखकर रावण ने हर्षित होकर स्वीकार कर लिया। फिर विरोचन की दौहित्री जिसका नाम वृत्रज्वाला था उससे कुम्भकर्ण का व्याह कराया और शैलूष नाम के गन्धर्वराज की सरमा नाम की धर्मज्ञा बेटी का व्याह विभीषण से कराया।

गिरि त्रिकूट एक सिंधु मझारी। विधि निर्मित दुर्गम अति भारी ॥
सोइ मय दानव बहुरि संवारा। कनक रचित मनि भवन अपारा ॥३॥

अर्थ : समुद्र के बीच में एक त्रिकूट पर्वत था। ब्रह्मा का बनाया हुआ वह अत्यन्त ही दुर्गम था। उसको मय दानव ने फिर से सँवारा। सोने और मणियों के अगणित मकान बनाये।

व्याख्या : समुद्र के बीच में होने से उस पर्वत को ब्रह्मदेव ने ही अत्यन्त दुर्गम बनाया था। यों ही वहाँ तक किसी की पहुँच होनी कठिन थी। तिस पर मय दानव ने उसे असुरों के लिए फिर से सँवारा। किलाबन्दी की। सोने और रत्नों के बहुत से मकान बनाये। जिसमें वह स्वर्ग से टक्कर ले सके।

भोगावति जसि अहि कुल वासा। अमरावति जसि सक्र निवासा ॥
तिन्ह तें अधिक रम्य अति बंका। जग विख्यात नाम तेहि लंका ॥४॥

अर्थ : भोगावती में जिस भाँति सर्पकुल का वास है और अमरावती जिस भाँति इन्द्र की राजधानी है। उससे भी अधिक मनोहर और बाँकी नगरी थी जिसका नाम लंका था।

व्याख्या : भोग प्रधान पुरियों में पहिला नाम भोगावती का है। जो पाताल में है। वहाँ सर्प रहते हैं। और इन्द्र की राजधानी अमरावती है। जिसमें इन्द्र रहते हैं। इन्द्रपद भोग की पराकाष्ठा है। इन दोनों पुरियों से अत्यन्त सुन्दर और बाँकी लङ्कापुरी थी।

दो. खांई सिंधु गभीर अति, चारिहिं दिसि फिरि आव।
कनक कोट मनि खचित दृढ़, बरनि न जाइ बनाव ॥१७८॥क
हरि प्रेरित जेहि कलप जोइ, जातुधान पति होइ।
सूर प्रतापी अतुल बल, दल समेत बस होइ ॥१७८॥

अर्थ : गहिरा समुद्र खाईं की भाँति उसके चारों ओर घूम आया था। सोने का कोट : किला मणियों से जड़ा हुआ था। उसकी बनावट कही नहीं जा सकती थी।

भगवान् की प्रेरणा से जिस कल्प में जो राक्षसों का राजा, शूर, प्रतापी और अतुल बल होता है वह दल सहित वहीं रहता है।

व्याख्या : दुर्ग के चारों ओर खाईं खुदवाई जाती है जिससे शत्रु की पहुँच क़िले तक न हो। इसके चारों ओर गम्भीर समुद्र ही खाईं की भाँति घेरे हुए था। क़िला सोने का था। मणि जड़े हुए थे। इससे दुर्ग की दृढ़ता कही। जो वस्तु दृढ़ होती है उसकी बनावट सुन्दर नहीं होती और जिसकी बनावट सुन्दर होती है वह दृढ़ नहीं होता। लंका में सुन्दरता और दृढ़ता दोनों थी। और ऐसी थी जिसका वर्णन न हो सके।

जिस भाँति प्रत्येक कल्प में रामावतार होता है उसी भाँति रावणावतार होता है। जिस भाँति रामजी अयोध्या में रहते हैं उसी भाँति रावण भी लङ्का को ही अपना निवासस्थान बनाते हैं। जय विजय, रावण कुम्भकर्ण होकर इसी में रहे। जलन्धर रावण होकर इसी में रहा। रुद्रगण रावण कुम्भकर्ण होकर इसी में रहे। भानुप्रताप, अरिमर्दन और धर्मरुचि भी रावण, कुम्भकर्ण और विभीषण होकर इसी में आकर बसे। इसलिए कहते हैं कि जो राक्षसराज शूर प्रतापी और अतुलित बल होते हैं वे यहीं सेना सहित बसते हैं। ऐसी हरि की इच्छा है। उसी से प्रेरित होकर प्रत्येक कल्प के राक्षसेश्वर लङ्का को ही अपनी राजधानी बनाते हैं।

रहे तहाँ निसिचर भट भारे। ते सब सुरन्ह समर संहारे॥
अब तहँ रहहिं सक्र के प्रेरे। रच्छक कोटि जच्छपति केरे॥१॥

अर्थ : पहले वहाँ बड़े योद्धा राक्षस रहते थे। उन सबों को देवताओं ने लड़ाई में मार डाला। अब वहाँ इन्द्र की प्रेरणा से कुबेरजी की ओर से एक करोड़ यक्ष रक्षक की भाँति रहते थे।

व्याख्या : रावण तो कल्प के किसी मन्वन्तर में होते हैं। शेष मन्वन्तरों में तो लङ्का दूसरों के ही अधिकार में रहती है। अतः पूर्व युग में लङ्का निशिचर भटों के अधिकार में थी। पर देवताओं ने रण में सबको मार डाला। बचे सो पाताल में प्रवेश कर गये। इसलिए संहारे कहते हैं। एक कल्प में चौदह मन्वन्तर और प्रत्येक मन्वन्तर में ७२ चतुर्युगियाँ होती हैं। सतयुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग को चतुर्युगी कहते हैं। कई चतुर्युगी तक रावण के राज्य करने का पता चलता है।

जिस समय रावण तपस्या करके घर लौटे और व्याह किया उस समय की कथा कहते हैं। उस समय वहाँ इन्द्र की आज्ञा से यक्ष लोग रहते थे। राक्षसों के मारे जाने पर लङ्का देवराज इन्द्र के अधिकार में आगई। उन्होंने अपनी ओर से कुबेर को दे रक्खी थी। कुबेरजी रावण के वैमात्र बड़े भाई यक्षों के राजा हैं।

दसमुख कतहुँ खबरि असि पाई। सेन साजि गढ़ घेरेसि जाई॥
देखि बिकट भट बड़ि कटकाई। जच्छ जीव लै गए पराई॥२॥

अर्थ : रावण को कहीं से यह पता लग गया। सेना साजकर लङ्कागढ़ को

घेर लिया। बड़ी भारी सेना और विकट वीरों को देखकर यक्षलोग प्राण लेकर भाग गये।

व्याख्या : सब राक्षसों ने मिलकर रावण को राजा माना। अब आश्रम में रावण का काम नहीं चल सकता था। वर पा लिया। त्रैलोक्य सुन्दरी स्त्री मिली। राक्षसों का आधिपत्य मिला। अब निवास स्थान चाहिए। उसी की चिन्ता थी। किसी ने कह[1] दिया कि आप के योग्य निवास स्थान लङ्का है। पहिले वह राक्षसों की ही थी। बल पूर्वक उसे देवताओं ने ले लिया। अब वह यक्षपति के अधिकार में है। राक्षसों की सेना सजाकर रावण ने लङ्का पर चढ़ाई कर दी और दुर्ग : किले को घेर लिया। यक्षों ने जो रावण की अपार सेना और उद्भट वीरों को देखा तो उनका साहस टूट गया। संख्या में एक करोड़ होने पर भी वे राक्षसी सेना के सामने कुछ भी नहीं थे। राक्षसी सेना में योद्धा भी ऐसे विकट थे जिनका सामना यक्षलोग कर नहीं सकते थे। अतः प्राण लेकर भाग गये। धन सम्पत्ति वहीं छूट गई। बिना रक्तपात के ही ऐसा नगर रावण के हाथ लगा।

फिरि सब नगर दसानन देखा। गयउ सोच सुख भयउ बिसेखा ॥
सुंदर सहज अगम अनुमानी। कीन्हि तहाँ रावन रजधानी ॥३॥

अर्थ : रावण ने घूमकर सब नगर देखा। चिन्ता मिट गई और विशेष सुख हुआ। स्वभाव से ही सुन्दर और अगम्य अनुमान करके रावण ने उसे राजधानी बनाया।

व्याख्या : रावण ने जानकारी तथा व्यवस्था के लिए घूमकर सारे नगर को अपनी आँखों से देखा। बड़ी चिन्ता थी कहाँ रहें? सो जाती रही। और विशेष सुख हुआ कि यह नगर तीन लोक में बेजोड़ है। निश्चय किया कि यही राजधानी बनाने योग्य स्थान है। सुन्दर इतना है और अगम्य है। खाईं के स्थान में समुद्र है। और पर्वत के ऊपर दुर्ग है। यहाँ शत्रु का बल चल नहीं सकता। ऐसा अनुमान रावण ने किया।

जेहि जस लोग बाँटि गृह दीन्हे। सुखी सकल रजनीचर कीन्हे ॥
एक बार कुबेर पर धावा। पुष्पक जान जीति लै आवा ॥४॥

अर्थ : जो जिस योग्य था उसे वैसा घर बाँट : विभाग में दिया। सभी राक्षसों को सुखी किया। एक बार कुबेर पर धावा बोल दिया। और पुष्पक विमान जीतकर ले आया।

व्याख्या : योग्यता के अनुसार घर दे देकर सबको सन्तुष्ट किया। घर भी हाथ आया। घर की सम्पत्ति भी हाथ लगी। इसलिए सब राक्षस सुखी हो गये।

---

१. सुमाली नामक असुर ने रावण से सब वृत्तान्त कहा। लङ्का पहिले उसके अधिकार में थी। यह रावण का नाना था। देवताओं के भय से पाताल चला गया था।

रावण संसार के लिए भले ही बुरा हो पर राक्षसों का बड़ा भारी पालक था। सबको जीविका का विधान किया। अब केवल दिव्ययान की त्रुटि थी। समुद्र के बीच में लङ्का थी। बाहर जाने आने के लिए यान की बड़ी आवश्यकता थी। जानता ही था कि बड़े भाई साहिब के पास पुष्पक है। उन्हीं पर चढ़ाई कर दी। उन्हें संग्राम में जीतकर पुष्पक विमान छीन लाया। वह विमान तप से अर्जित था। उसे बल से हरण कर लिया।

दो. कौतुक ही कैलास पुनि, लीन्हिसि जाइ उठाइ।
मनहुँ तौलि निज बाहु बल, चला बहुत सुख पाइ ॥१७९॥

अर्थ : फिर खेलवाड़ में ही जाकर कैलास उठा लिया। मानो अपने बाहु के बल को तौलकर बड़ा सुख पाकर चला।

व्याख्या : कुबेरजी की पुरी अलका है। पुष्पक के लिए रावण ने उसी पर चढ़ाई की थी। कुबेरजी से युद्ध करने में कुछ आयास नहीं पड़ा। अलकापुरी के पास ही कैलास पर्वत है। उसे रास्ते चलते कौतुक में ही उठा लिया। यथा : पुनि नभ सर मम करनिकर करकमलन पर वास। सोभित भयउ मराल इव संभु सहित कैलास : अपने बल को तौलने के लिए कैलास को बाट : बटखरा बनाया। बड़ा सुखी हुआ कि मेरे बाहुबल का तौल हो गया कैलास से भारी है। इसी पर साङ्ग सायुध सशक्ति साक्षात् शङ्कर भगवान् गणेश स्वामिकार्तिक नन्दिकेश्वर वीरभद्रादिगणों के साथ विराजमान हैं। मैंने पर्वत के साथ ही साथ सबको उठा लिया। अब मेरे बराबर कोई नहीं है।

सुख संपति सुत सेन सहाई। जय प्रताप बल बुद्धि बड़ाई ॥
नित नूतन सब बाढ़त जाई। जिमि प्रति लाभ लोभ अधिकाई ॥१॥

अर्थ : १. सुख, २. सम्पत्ति, ३. बेटे, ४. सेना, ५. सहायक, १. जय, २. प्रताप, ३. बल, ४. बुद्धि और ५. महिमा। ये सब नित्य बढ़ते जाते हैं। जैसे जितना लाभ होता जाता है उतना ही लोभ भी बढ़ता जाता है।

व्याख्या : १. अधमेणैधते पूर्वम् २. ततो भद्राणि पश्यति। ३. ततः सपत्नान् जयति समूलश्च विनश्यति। १. पहिले अधर्म से वृद्धि होती है। २. तब कल्याण दिखाई पड़ता है। ३. फिर शत्रुओं को जीतता है। अन्त में मूल के सहित नष्ट हो जाता है। रावण ने अधर्म पर पैर रक्खा है। पहिले घर में ही छीन छोर आरम्भ किया। बड़े भाई की लङ्का छीनी, पुष्पक विमान छीना। इष्टदेव का वासस्थान उखाड़ा। देखने में बढ़ोत्तरी होने लगी। अधर्मेणैधते का उदाहरण है। नित्य नया सुख, नित्य नया अर्थलाभ, नित्य नई कुटुम्बवृद्धि, नित्य नई मित्रप्राप्ति, नित्य नई जीत, नित्य नये प्रताप, नित्य नया सामर्थ्य, नित्य नया आविष्कार, नित्य नई प्रतिष्ठा बढ़ने लगी। बढ़ोत्तरी की उपमा देते हैं। जैसे लाभ के साथ साथ लोभ भी बढ़ता जाता है। लाभ के साथ लोभ के बढ़ने की उपमा देकर दोष का बढ़ना सूचित करते हैं।

अति बल कुंभकरन अस भ्राता। जेहि कहुँ नहिं प्रति भट जग जाता ॥
करै पान सोवै षट मासा। जागत होइ तिहूँ पुर त्रासा ॥२॥

अर्थ : अति बली कुम्भकर्ण-सा भाई था। जिसका जोड़ संसार में पैदा ही नहीं हुआ था। वह मद्यपान करके छः महीने सोता था। और उसके जागते ही तीनों लोक संत्रस्त हो उठते थे।

व्याख्या : पहिले ५. सहाय का वर्णन करते हैं। सच्चा सहाय भाई है। यथा : होहिं कुठाहर बंधु सहाए। यहाँ 'अस' शब्द भाईपन के उत्कर्ष का बोधक है। भाई के अन्याय को जानकर उसको मना भी करता है। पर उसके न मानने पर भी उसी के लिए प्राण देता है। ऐसा भाई। सो महाबल नहीं अतिबल, जिसका जोड़ संसार में पैदा ही नहीं हुआ। स्वयं ब्रह्मदेव अचम्भे में आगये। यथा : तेहि बिलोकि उर बिस्मय भयेऊ। उसको स्वाभाविक बल था। रावण भी प्रतिभट खोजता था और उसे नहीं मिला। पर उसका बल तपस्या से अर्जित था। कुम्भकर्ण मद्यपान करके छः महीने सोता था। अर्थात् छः महीने बेसुध पड़ा रहता था। जिस दिन जागता था त्रैलोक्य त्रस्त हो जाता था कि आज किस खण्ड का संहार होगा। कोटि घट तो मदिरा चाहिए। चिखना के स्थान में भैंसा चाहिए। यथा : रावन मांगेउ कोटि घट मद अरु महिस अनेक। तब उसके बाद कोटि-कोटि कपि धरि-धरि खाई। ऐसा भयानक सहायक भाई था।

जौं दिन प्रति अहार कर सोई। बिस्व बेगि सब चौपट होई ॥
समर धीर नहिं जाइ बखाना। तेहि सम अमित बीर बलवाना ॥३॥

अर्थ : यदि वह नित्य भोजन करता तो यह संसार शीघ्र ही नष्ट हो जाता। रणधीर इतना बड़ा था कि बखाना नहीं जाता और उसके ऐसे-ऐसे असंख्यात बलवान् वीर थे।

व्याख्या : ऊपर एक दिन का आहार कहा गया। इसी भाँति यदि वह नित्य खाता तो सम्पूर्ण संसार को खा जाता। ब्रह्मदेव चिन्तित हो गये। कहने लगे : जौ यह खल नित करब अहारू। होइहि कुल उजार संसारू। इसीलिए सरस्वती की प्रेरणा से उसने छः महीने की नींद माँगी। साल में दो बार भोजन करता था।

बड़े बलवान् भी यदि कापुरुष हों तो उनका बल व्यर्थ पड़ जाता है। पर कुम्भकर्ण अति बल होने के साथ ही साथ बड़ा शूर था। न उसके बल का वर्णन हो सके न शूरता का वर्णन हो सके। ४. अब सेना का वर्णन करते हैं। उससे ईषत् न्यून बहुत से वीर थे : सम ईषत् न्यून : कुछ कम के अर्थ में प्रयुक्त होता है। उनकी संख्या नहीं हो सकती है।

बारिद नाद जेठ सुत तासू। भट महुँ प्रथम लीक जग जासू ॥
जेहि न होइ रन सम्मुख कोई। सुरपुर नितहिं परावन होई ॥४॥

अर्थ : उसका बड़ा बेटा मेघनाद था। वीरों में जिसकी पहिली गिनती थी।

युद्ध में जिसके सन्मुख कोई होता न था। देवलोक में नित्य ही भगदड़ मची रहती थी।

व्याख्या : अब ३. सुत का वर्णन करते हैं। रावण के बेटों में मेघनाद सबसे जेठा था। उसने उत्पन्न होते ही मेघ की भाँति गर्जना की थी। इसीलिए उसका नाम मेघनाद हुआ। वीररस के अधिष्ठाता होने से भटों में पहली गिनती इन्द्र की थी। अब मेघनाद के सामने उनकी गिनती नहीं रह गई। जगत् में सर्वश्रेष्ठ वही गिना जाता था।

युद्ध में उसका सामना इन्द्रादि देव नहीं कर पाते थे। उसका धावा देवलोक में प्रायेण हुआ करता था। मेघनाद का आना सुनकर स्वर्ग में भगदड़ मची रहती थी। रावण ने राज्य की नींव डाली। कुम्भकर्ण ने त्रैलोक्य को संत्रस्त किया। मेघनाद की धाक स्वर्ग तक जम गई।

दो. कुमुख अकंपन कुलिसरद, धूमकेतु अतिकाय।
एक एक जग जीति सक, ऐसे सुभट निकाय ॥१८०॥

अर्थ : दुर्मुख, अकम्पन, वज्रदंष्ट्र, धूमकेतु और अतिकाय ये ऐसे योद्धा थे कि अकेले जगत् पर विजय पाने में समर्थ थे। ऐसे-ऐसे सुभट वहाँ वहुत थे।

व्याख्या : जगत् जय के वर्णन से १. सुख २. सम्पत्ति को पराकाष्ठा कहते हैं। स्थालीपुलाक न्याय से पाँच का नाम यहाँ गिनाया गया। नहीं तो लङ्का ऐसे सुभटों से भरी थी जो अकेले ही जगत् के जीतने में समर्थ थे। दुर्मुख का मुख विकट था। अकम्पन कभी युद्ध से काँपते ही नहीं थे। वज्रदंष्ट्र के दाँत वज्र के से थे। धूमकेतु अग्नि ही ठहरे। अतिकाय का आकार बड़ा भारी था। इस भाँति जिनिस अनेका का भी उदाहरण दिखलाया।

कामरूप जानहि सब माया[1]। सपनेहुँ जिन्हके धरम न दाया॥
दसमुख बैठ सभा एक बारा। देखि अमित आपन परिवारा॥१॥

अर्थ : सब इच्छानुरूप रूप धारण करनेवाले थे और माया जानते थे। सपने में भी उन्हें धर्म और दया नहीं थी। दशमुख : रावण ने एक बार सभा में बैठे। अपने परिवार को देखा कि असंख्य हैं।

व्याख्या : कामरूप होने से उन्हें परपीड़ा में बड़ी सहायता मिलती थी। कुहुक विद्या से अघटित घटना कर दिखाते थे। परवञ्चना में बड़े कुशल थे। दया

---

१. माया कुहक विद्या है। जिससे प्रकृति के मर्म को जानकर बड़े बड़े चमत्कारों का प्रादुर्भाव होता है। लङ्का काण्ड में उन चमत्कारों में से कुछ एक का उल्लेख है। आज कल भी उसी विद्या का दौरदौरा है। नहीं तो : तत्कर्म यन्न बन्धाय सा विद्या या विमुक्तये। आयासायापरं कर्म विद्यान्या शिल्पनैपुणम्। कर्म वही है, जिससे बन्धन न हो। विद्या वही है जिससे मुक्ति हो। अन्य कर्म तो आयास के लिए है और अन्य विद्या शिल्प की निपुणता मात्र है।

धर्म का तो उन्हें संस्कार भी नहीं था। अर्थात् जो अकेले संसार जीतने में असमर्थ थे वे भी परपीड़ा में कुशल थे। यहाँ तक 'अधर्मेणैधते' कहा। अब ततो भद्राणि पश्यति कहते हैं। रावण राक्षसों के राजा हो गये। लङ्का ऐसा गढ़ मिल गया। असंख्य राक्षसी प्रजा नगरी में बस गई। अतः राजसभा भी लगने लगी। विशेष घटना का उल्लेख करना है। अतः उस सभा की चरचा करते हुए कहते हैं कि एक बार राजसभा में दशमुख बैठे थे। दशमुख कहने का भाव यह था कि दशों दिशाओं को एक साथ देखने का सौभाग्य उन्हीं को प्राप्त था। देखा कि सभा अपने परिवार से ही भरी पड़ी है।

सुत समूह जन परिजन नाती। गनै को पार निसाचर जाती ॥
सेन बिलोकि सहज अभिमानी। बोला बचन क्रोध मद सानी ॥२॥

अर्थ : बेटों के समूह, स्वजन, अनुचर और पौत्रों के समूह हैं। राक्षस जाति की कौन गणना कर सकता है ? स्वभाव से ही वह अभिमानी था। सेना देखकर वह क्रोध और मद से सनी हुई वाणी बोला।

व्याख्या : बेटों का समूह उसी भाँति कुटुम्बी, सेवक और पौत्र भी असंख्य हैं। निशाचर जाति है। इनमें वृद्धि भी बड़े बेग से होती है। जब लङ्का में पहिले पहल आये थे तब राक्षसों की सेना साथ थी। उस समय पुत्रोत्पत्ति भी नहीं हुई थी। परन्तु आज पुत्र पौत्रों की ही गणना कठिन है। और सब के सब योद्धा हैं। अतः उनकी एक बड़ी भारी सेना हो गई है। उस सेना को जब देखा तो फूले न समाये। अभिमानी तो स्वभाव से ही थे। कुटुम्ब की वृद्धि देखकर और भी अभिमान बढ़ा। तब मद और क्रोध से भरी वाणी बोले। धन यौवन सौन्दर्य ते हर्ष युक्त जो क्षोभ होता है उसे मद कहते हैं।

सुनहु सकल रजनीचर जूथा। हमरे बैरी बिबुध बरूथा ॥
ते सनमुख नहिं करहिं लराई। देखि सबल रिपु जाहिं पराइ ॥२॥

अर्थ : सब राक्षसों के समूह सुनते जाओ। देवताओं के समूह हमारे वैरी हैं। वे सामने डटकर नहीं लड़ते। शत्रु को बलवान् देखकर भाग जाते हैं।

व्याख्या : देख लिया कि अपना परिवार ही लङ्का की रक्षा करने में समर्थ है। अतः सम्पूर्ण सेना को आज्ञा देता है। पहिले शत्रु को अभिहित करता है। मर्त्यलोक में नर हैं। उनकी गिनती ही क्या है। पाताल के असुर अपने ही वर्ग के हैं। ये देवता मेरे शत्रु हैं। मेरा बुरा चाहते हैं। पीठ पीछे बुराई करते हैं। लड़ाई में सामना नहीं करते। हमें बलवान् देखकर भाग जाते हैं। यथा : जच्छजीव लै गए पराई। अब उन्हें कहाँ खोजें ? जल्दी हाथ नहीं आते। और शत्रु का शेष रहना बुरा है। इन्हें निःशेष करना चाहिए।

तिन्ह कर मरन एक बिधि होई। कहौं बुझाइ सुनहु अब सोई ॥
द्विज भोजन मख होम सराधा। सब कै जाइ करहु तुम बाधा ॥४॥

अर्थ : उनके मर जाने की एक विधि है। समझाकर कहता हूँ। अब इसे सुनो। ब्रह्मभोज, यज्ञ, होम और श्राद्ध इन कर्मों में तुमलोग जाकर बाधा डालो।

व्याख्या : मर्त्यलोक और देवलोक में एक व्यापार चलता है। पूर्व काल में यज्ञ के सहित प्रजा की सृष्टि करके प्रजापति ने कहा कि इसी यज्ञ से तुमलोग बढ़ोगे। यह तुम्हारे लिए कामधेनु होगा। यज्ञ से तृप्त होकर देवता तुम लोगों को तृप्त करेंगे। इस भाँति एक दूसरे को तृप्त करते हुए परम कल्याण को प्राप्त होंगे। तब से यह व्यापार ब्रह्मभोज, यज्ञ, होम और श्राद्ध के रूप में चल पड़ा है। इन्हीं के द्वारा लोग देवताओं को तृप्त करते हैं। आहुति में दिये हुए अन्न से अमृत बनता है। वही आहार है। उसी से देवता पुष्ट होते हैं और मर्त्यलोक का कल्याण करते हैं। इसलिए तुमलोग इस व्यापार में बाधा डालकर इसे बन्द कर दो।

दो. छुधा छीन बलहीन सुर, सहजेहिं मिलिहहिं आइ।
तब मारिहौं कि छाड़िहौं, भली भाँति अपनाइ ॥१८१॥

अर्थ : भूख से क्षीण और बलहीन होकर देवता आप से आप आकर मिलेंगे। तब उन्हें भलीभाँति अपने वश में करके चाहे मार डालूँगा चाहे छोड़ दूँगा।

व्याख्या : ये शत्रु यज्ञभाग पाकर ही बलवान् होते हैं। यज्ञ न होने पायेगा तो इन्हें भोजन न मिलेगा। भूख से मरने लगेंगे। दुर्बल हो जायँगे। भाग भी न सकेंगे। आप से आप शरण में आवेंगे। जब भलीभाँति वश में आ जायँगे तब अपनी मर्जी की बात रहेगी। चाहे उन्हें मारें चाहे छोड़ दें। मर्त्यलोक में ब्राह्मण-भोजन, यज्ञ, श्राद्ध और होम बन्द कराने में तुमलोगों को बड़ी सरलता है। यज्ञ में अन्न को जलाकर ये देश के शत्रु देश का अहित करते हैं। केवल इतने ही मौखिक आन्दोलन से यज्ञभागादि बन्द हो जायँगे। न मानने पर बलप्रयोग भी मनुष्यों में अनायास ही किया जा सकता है।

मेघनाद कहुँ पुनि हँकरावा। दीन्ही सिख बलु बयरु बढ़ावा ॥
जे सुर समर धीर बलवाना। जिन्ह के लरिबे कर अभिमाना ॥१॥

अर्थ : फिर मेघनाद को बुलवाया। उसे शिक्षा दी, सेना दी, शत्रुता दी और बढ़ावा दिया। कहा कि जो देवता समर में धीर बलवान् हैं और जिन्हें लड़ने का अभिमान है।

व्याख्या : सेना को आज्ञा देने के बाद जेठे बेटे मेघनाद को बुलवाया। पहिले रसद बन्द किया। अब धावे का प्रबन्ध कर रहा है। कुम्भकर्ण सो रहे हैं। विभीषण साधु ही ठहरे। मेघनाद का भट मह प्रथम लीक है। अतः उसे बुलवाया और शिक्षा दी। यथा : मारेसि जनि सुत बाँधेसु ताहीं। बाँध लेने से ब्रह्मदेव छुड़ाने आवेंगे। वरदान मिलेगा। बन्धन से छूटने पर आज्ञाकारी होकर रहेगा। इत्यादि। सेना साथ कर दी। वैर दिया कि : ये देवता हमारे जाति के वैरी हैं। इन्हें यदि अवसर

मिले तो हम लोगों के वध में तनिक भी आगापीछा न करेंगे। बढ़ावा दिया कि देवताओं में है कौन जो तुम्हारा सामना कर सके। इत्यादि।

तत्पश्चात् मन्त्र बतलाया कि सबके पीछे पड़ने की आवश्यकता नहीं है। प्रधान मल्लनिर्बहण न्याय से जो प्रधान मल्ल को पछाड़ता है वही सब मल्लों का सरदार हो जाता है। देवताओं में जो वीररस के अधिष्ठाता हैं उन्हीं के जीतने से सब देवता जीते जावेंगे।

तिन्हहि जीति रन आनेसु बाँधी। उठि सुत पितु अनुसासन काँधी॥
एहि बिधि सबहीं आग्या दीन्हीं। आपुन चलेउ गदा कर लीन्हीं॥२॥

अर्थ : उनको रण में जीतकर बाँध लाओ। बेटे ने उठकर पिता की आज्ञा को कन्धे पर लिया : सँभाला। इस प्रकार से सबको आज्ञा देकर स्वयं गदा लेकर चला।

व्याख्या : मेघनाद सिरे का वीर था। उसने उठकर पिता की आज्ञा को सँभाला। भाव यह कि वीररस के अधिष्ठाता इन्द्र को ही बाँध लाया। लङ्का के कारागार में देवराज इन्द्र बन्द हुए। पहरे पर विभीषण थे। इन्द्र ने विभीषण से प्रार्थना की। विभीषण ने कहा कि जाने तो मैं नहीं दूँगा। पर उपाय बतलाता हूँ। बन्दी देवी की स्तुति करो। इन्द्र ने वही किया। और ब्रह्मदेव की सिपारिश से विनिर्मुक्त हुए।

यह लङ्कापति की आज्ञा विधि है। सबको काम में लगा दिया। चारों ओर एक साथ उपद्रव उठ खड़ा हुआ। आप स्वयं : रावण नाम : वीर बरिबंडा है। रणकण्डू मिटाने के लिए गदा लेकर चला। अस्त्रबल से नहीं भुजबल से सबको वश्य करना चाहता है।

चलत दसानन डोलत अवनी। गर्जत गर्भ स्रवहि सुर रवनी॥
रावन आवत सुनेउ सकोहा। देवन्ह तकेउ मेरुगिरि खोहा॥३॥

अर्थ : दशानन के चलते समय भूडोल आ जाता था। गर्जन करने पर देवताओं की स्त्रियों के गर्भ गिरते थे। रावण का क्रोध सहित आना सुनकर देवताओं ने मेरुगिरि के कन्दराओं की राह ली।

व्याख्या : रावण के पादप्रहार से पृथ्वी हिलने लगती थी। भार के सहने में असमर्थ थी। यथा : सेष कमठ सहि सकैं न भारा। पृथ्वी का यह हाल है। अब आकाश की दशा सुनिये। उसकी गर्जना सुनकर देवाङ्गनाओं के गर्भ गिरते हैं। इतना भयङ्कर गर्जन है और इतना बड़ा भय देवाङ्गनाओं को है कि रावण के गर्जन से उनका गर्भ गिरता था। देवताओं की यह स्थिति थी कि उसका क्रोधपूर्वक आगमन सुनते ही अपने अपने लोकों को छोड़कर प्राणभय से मेरु पर्वत के खोहों में जाकर छिपे। क्रुद्ध है। अतः अधीनता स्वीकार करने पर भी रक्षा नहीं है। मेरु सन्निकट है, अति विशाल है। उसमें दुर्गम खोह हैं। अतः देवताओं ने उसी का रास्ता लिया।

दिगपालन्ह के लोक सुहाए। सूने सकल दसानन पाए ॥
पुनि पुनि सिंहनाद करि भारी। देइ देवतन्ह गारि पचारी ॥४॥

अर्थ : दिग्पालों के सुन्दर सुन्दर लोकों को दशानन ने सूना पाया। बार बार सिंहनाद करके देवताओं को ललकारकर गालियाँ देने लगा।

व्याख्या : तब तक रावण वहाँ पहुँच गया। पर देवता लोग हट गये थे। इतने सुन्दर लोक हैं पर सूने पड़े हुए हैं। रावण जानता था कि ये सब भय से कहीं छिपे बैठे हैं। छिपे हुए भी शत्रु का गर्जन न सहकर प्रकट हो जाते हैं। अतः सिंहनाद करता है। फिर भी नहीं प्रकट होते तो कदाचित् गाली न सहकर सामने आ जाँय। इसलिए ललकारकर गाली देता है पर यहाँ कोई था ही नहीं। संसार देवताओं का आवाहन करता है। रावण उन्हें भगाता है। संसार उनकी स्तुति करता है। रावण गाली देता है। इसलिए कहा गया है कि राम की भाँति बरतना चाहिए रावण की भाँति नहीं।

रन मदमत्त फिरइ जग धावा। प्रति भट खोजत कतहुँ न पावा ॥
रवि ससि पवन वरुन धनधारी। अगिनि काल जम सब अधिकारी ॥५॥

अर्थ : रण के मद में मत्त होकर संसार में दौड़ता फिरता है। अपना जोड़ खोजता है। पर कहीं उसको सामना करनेवाला मिलता ही नहीं। सूर्य, चन्द्र, वायु, वरुण, कुबेर, अग्नि, काल और यम।

व्याख्या : जैसे कोई मद से मत्त हो जाता है वैसे ही रावण रणमद से मत्त हो गया है। उसका रणकण्डू शान्त करनेवाला कोई मिलता नहीं है। उसी के लिए संसार में फिरता है। काल के ध्वजभूत सूर्य, चन्द, जगत् प्राण वायु, पाशधारी वरुण, धनाध्यक्ष कुबेर, सर्वदाहक अग्नि, सबके संहार करनेवाले काल और संयम करनेवाले यम।

किन्नर सिद्ध मनुज सुर नागा। हठि सबहीं के पंथहि लागा ॥
ब्रह्म सृष्टि जहँ लगि तनुधारी। दसमुख बसवर्त्ती नरनारी ॥६॥
आयसु करहिं सकल भय भीता। नवहिं आइ नित चरन विनीता ॥७॥

अर्थ : किन्नर, सिद्ध, मनुज, सुर, नाग, हठ करके वह सबके पीछे पड़ा। ब्रह्मा की सृष्टि में जितने जीवधारी हैं क्या स्त्री क्या पुरुष सब दशमुख के वशवर्ती थे। सब डरकर उसकी आज्ञा मानते थे और नित्य विनीत होकर उसके चरणों में सिर नवाते थे।

व्याख्या : ततः सपत्नान् जयति का उदाहरण दिखलाते हैं कि सभी देवता उससे हार गये। परन्तु वह विश्वद्रोही था केवल जीत से सन्तुष्ट नहीं हुआ। किन्नर, सिद्ध : देवताओं की जाति विशेष : और पाताल लोक के नागों के पीछे पड़ा। सभी लोग उससे पीछा छुड़ाना चाहते थे। पर वह हठपूर्वक उनका पीछा नहीं छोड़ता था।

ब्रह्मा की सृष्टि में जितने शरीरधारी थे ब्रह्मा से स्तम्बपर्यन्त सो सब रावण के वश में थे। शरीरधारी कहने से भाव यह कि अनङ्ग देवता : कामदेव उसके वश में नहीं थे। उनके वश में तो वह स्वयं पड़ा रहता था। रावण की आज्ञा सभी डरकर मानते हैं प्रेम से नहीं। अत्याचारियों का आज्ञा-पालन सदा भय से ही होता है। देवता सब नित्य लङ्का में प्रणाम करने आते हैं। यथा : करजोरे सुर दिसिप विनीता। भृकुटि विलोकहि सकल सभीता।

दो. भुजबल बिस्व बस्य करि, राखेसि कोउ न सुतंत्र।
मंडलीक मनि रावन, राज करइ निज मंत्र ॥१८२॥ क

दो. देव जच्छ गंधर्ब नर, किंनर नाग कुमारि।
जीति बरीं निज बाहु बल, बहु सुंदर बर नारि ॥१८२॥

अर्थ : भुजा के बल से विश्व को वश करके उसने किसी को स्वतन्त्र नहीं छोड़ा। मण्डलेश्वरों का शिरोमणि रावण अपने मन्त्र से राज्य करता था। देवता, यक्ष, गन्धर्व, नर, किन्नर और नागकुमारियों को तथा अनेक सुन्दर स्त्रियों को अपने बाहुबल से जीतकर वरण कर लिया।

व्याख्या : आपुहि चला गदा कर लीन्हें से उपक्रम करके भुजबल बिस्व बस्य करि से उपसंहार करते हैं। ब्रह्म सृष्टि जहँ लगि तनु धारी। दसमुख बसवर्त्ती नर नारी। इस पुरइन का यह दोहा कमल है। यद्यपि बालि, सहस्रार्जुन आदि कई एक वीरों के विषय में सुना गया है कि वे रावण के वश्य नहीं हुए। फिर भी 'भुजबल बिस्व बस्य करि' कहा गया। क्योंकि सबके वश्य होने पर दो चार का वश न होना कुछ महत्त्व नहीं रखता। जब पात्र में के सब चावल पक गये तो पात्र के मुख पर लगे हुए दो चार चावलों के न पकने पर भी पाक का पूरा होना कहा जाता है। उस दो चार चावल का न पकना कोई महत्त्व नहीं रखता। सहस्रार्जुन, बालि या बलि का रावण के मार्ग में बाधक होने की कोई कथा नहीं पाई जाती। सार्वभौम राजा की भी किसी अवसर में पराजय हो जाती है। परन्तु यदि उसके शासन में उस पराजय से त्रुटि न आई हो तो उस पराजय की कोई गणना नहीं है। दो तीन स्थलों पर रावण का बल से पराजय सुना गया है। पर रावण में एक विशेषता थी। रावण में केवल शरीर बल ही न था। उसमें तपबल, योगबल, अस्त्रबल, शस्त्रबल, सैन्यबल, दुर्गबल, इष्टबल आदि अनेक बल थे। जिनका समुच्चय और कहीं पाया नहीं जाता। सहस्रार्जुन का परशुरामजी द्वारा वध हो चुका था। बालि से अग्निसाक्षिक मैत्री हो चुकी थी। अतः यह कहना सर्वथा उपयुक्त है कि रावण ने विश्व को वश्य कर लिया। परन्तु यह शङ्का समाधान उन रावणों के लिए है जो जय विजय जलन्धर या रुद्रगण के अवतार थे। जिस रावण का प्रकरण चल रहा है वह भानुप्रताप का अवतार था। उसके पराभव का कोई उल्लेख नहीं है। इसलिए सब मण्डलेश्वर उसके अधीन थे।

राजा को मन्त्री चाहिए इसलिए उसने मन्त्री रख लिये थे। नहीं तो रावण ने मन्त्रियों की सम्मति की कभी परवाह न की।

रावण की कामुकता कहते हैं कि स्त्री के वरण में कोई विचार नहीं है। केवल उनकी सुन्दरता व्याह के लिए यथेष्ट गुण समझा गया था। भुजवल से जीत कर वरण करने से राक्षस व्याह कहा।

जो रावण भानुप्रताप का अवतार था उसका पराजय कहीं नहीं हुआ। अतः उसके वध के लिए साक्षात् ब्रह्म का रामावतार हुआ। भानुप्रताप ने भी भुजबल से विश्व वश्य किया था। पर उसने दण्ड लेकर छोड़ दिया था। समय पाकर वे ही भानुप्रताप पर चढ़ आये और उसका नाश किया। अतः रावणावतार में उसने किसी को न छोड़ा। सबको अपने वश में रक्खा। यथा : दानव देव दयावने दीन दुखी नित दूरहि ते सिर नावैं।

इंद्रजीत सन जो कछु कहेऊ। सो सव जनु पहिलेहि करि रहेऊ ॥
प्रथमहि जिन कहुँ आयसु दीन्हा। तिन्हकर चरित सुनहु जो कीन्हा ॥१॥

अर्थ : इद्रजीत से उसने जो कहा था उसे उसने मानो पहिले ही कर रक्खा था। अब जिनको पहिले ही आज्ञा दी थी उनके किये हुए इतिवृत्त को सुनो।

व्याख्या : इन्द्रजीत नाम देने से ही मेघनाद का इन्द्र को जीतना द्योतित किया। इसके पहिले मेघनाद, वारिदनाद नाम का ही प्रयोग किया था। मेघनाद से रावण ने कहा था : जे सुर समर धीर वलवाना। जिनके लरिवे कर अभिमाना। तिन्हहि जीति रन आनेसु बाँधी। सो मेघनाद ने अति शीघ्र कर दिखाया। स्वयं इन्द्र को बाँध लाया।

रावण ने तीन विधि से कार्यारम्भ किया। देवताओं को रसद न मिलने पावे। इसलिए सेना को मृत्युलोक में भेजा। इन्द्रादि से युद्ध करने के लिए मेघनाद को भेजा। अन्य देवताओं की सहायता इन्द्र को न मिलने पावे। इसलिए उनके लोकों पर स्वयं रावण ने आक्रमण किया। सो मृत्युलोक में भेजे हुए निशाचरों की करणी कहते हैं :

देखत भीम रूप सब पापी। निसिचर निकर देव परितापी ॥
करहिं उपद्रव असुर निकाया। नाना रूप धरहिं करि माया ॥२॥

अर्थ : देवताओं को दुःख देनेवाले पापी राक्षस देखने में बड़े भयङ्कर रूप थे। असुरों के समूह ने उपद्रव मचा दिया। माया से उन सबों ने अनेक रूप धारण किया।

व्याख्या : 'देखत भीम रूप' से रूप भयानक कहा। 'पापीदेव परितापी' से हृदय भयानक कहा। और 'करहिं उपद्रव' से करणी भयानक कही। आसुरी सम्पत्ति का ज्वलन्त उदाहरण है। देवताओं की मरण-विधि में यत्नशील हैं। इससे देवपरितापी कहा। आसुरी सेना बड़ी भारी उतर आई थी। पर उसने एक

ओर से सबके संहार में हाथ नहीं लगाया। वे सब सम्पूर्ण देश में फैल गये; कामरूप तो थे ही। उन सबों ने अनेक रूप धारण किये। कोई पण्डितजी बन गये। कोई महात्माजी बन गये। कोई गोसाइँजी बन गये। सुधारक बने, कोई जनता के अगुआ बन गये। कोई देश हितैषी बने। कोई समाज हितैपी बने। अपने रूप में कोई न रहे। सब साधु रूप में हो गये और उपद्रव आरम्भ किया।

जेहि बिधि होइ धर्म निर्मूला। सो सब करहिं बेद प्रतिकूला॥
जेहि जेहि देस धेनु द्विज पावहिं। नगर गाउँ पुर आग लगावहिं॥३॥

अर्थ : जिस विधि से धर्म की जड़ उखड़ जाय। वे ही वेद विरुद्ध बातें करने लगे। जिस-जिस देश में गो ब्राह्मण को पाते थे उस नगर गाँव और पुर को फूँक देते थे।

व्याख्या : वेद ही धर्म का मूल है। उसके उखाड़ने की विधि वे जानते थे। पण्डितजी बनकर वे वेद का व्याख्यान करते थे। बतलाते थे कि वेद मनुष्यों का बनाया हुआ है। अब देश काल वैसा नहीं रह गया। नये वेद की आवश्यकता है। वेद को खींचखाँचकर मरोड़कर उसका अर्थ ही दूसरा करते थे। अर्थ करने की पद्धति ही बदल देते थे। कोई महात्माजी बनकर अपने माहात्म्य से लोगों को प्रभावित करके वेदमार्ग से च्युत करते थे। कोई गोसाईं बने हुए शिष्यों को अधर्म के रास्ते पर लगाते थे। कोई सुधारक बनकर सम्प्रदाय और परम्परा के मिटा देने में ही कल्याण का मार्ग दिखलाते थे। कोई अगुवा बनकर जनता को हरा बाग दिखाते हुए उसे विपत्ति के सागर में डुबाते थे। कोई देशहितैषी बनकर देश के देश को ईश्वर से विमुख करने में लगे थे। कोई समाजहितैषी बनकर एक जाति का दूसरे से वैर कराते थे। इस भाँति संसार में धूर्त्तता का राज्य हो गया। साधारणधर्म, वर्णधर्म और आश्रमधर्म, सतीधर्म, श्राद्ध, तर्पण, पूजन, भजन, यज्ञयागादि सभी धर्मों के प्रतिकूल आचरण स्वयं करते और लोगों से कराते थे।

जब जनता अधिक काबू में हो गई तब स्पष्ट अत्याचार करने लगे। यज्ञ में प्रधान साधन दो हैं। १. गौ और २. ब्राह्मण। उन दोनों से संसार का अकल्याण पहिले बतलाते थे। अब यह नियम कर दिया कि जिस पुर, ग्राम या नगर में गौ या ब्राह्मण पाये जाँय उसे एकदम फूँक दो। गौ ब्राह्मण के रहते धर्म कर्म बन्द नहीं हो सकता। अतः इनको आश्रय देना अपराध माना गया। क्यों गौ ब्राह्मण को आश्रय दिया? इस अपराध से पूरी बस्ती फूँक दी जाती थी। जिसमें यज्ञयागादि का कोई नाम लेनेवाला न रहे। और देवताओं को कुछ भोजन कहीं से मिलने न पावे।

सुभ आचरन कतहुँ नहि होई। देव बिप्र गुरु मान न कोई॥
नहि हरि भगति जज्ञ तप ग्याना। सपनेहुँ सुनिअ न बेद पुराना॥४॥

अर्थ : कहीं शुभ आचरण नहीं हो पाता था। देवता गुरु और ब्राह्मण को

कोई मानता न था। न कहीं हरिभक्ति, यज्ञ, तप और ज्ञान का पता था और वेद पुराण तो कोई सपने में भी नहीं सुनता था।

व्याख्या : ब्राह्मणों के दर्शन न करने से लोग पतित हो गये। शुभाचरण बन्द हो गया। पूज्य-पूजा व्यतिक्रम हो गया। देवता ब्राह्मण और गुरु की पूजा बन्द हो गई। उनकी पूजा आरम्भ हुई जो भवबन्धन को दृढ़ करनेवाले हैं। हरि-भक्ति, यज्ञ, तप और ज्ञान असभ्योचित कार्य माना जाने लगा। सभ्य वही माना जाता था जो भक्ति, यज्ञ, तप आदि को अन्धविश्वास माने। अतः ज्ञानकाण्ड, उपासना-काण्ड और कर्मकाण्ड तीनों का लोप हो गया। वेद पुराण तो इन्हीं तीनों काण्डों से ओत प्रोत हैं। अतः इनकी चरचा संसार से उठ गई।

छं. जप[1] जोग विरागा तप मख भागा श्रवन सुनैं दससीसा।
आपुन उठि धावै रहै न पावै धरि सब घालै खीसा॥
अस भ्रष्ट अचारा भा संसारा धर्म सुनिअ नहिं काना।
तेहि बहु विधि त्रासै देस निकासै जो कह वेद पुराना॥
दो. वरनि न जाइ अनीति, घोर निसाचर जो करहिं।
हिंसा पर अति प्रीति, तिन्ह के पापहि कवनि मिति॥१८३॥

अर्थ : जप, योग, विराग, तप और यज्ञभाग को यदि रावण कान से सुन पाता था तो स्वयं दौड़ पड़ता था। इन सबको रहने नहीं देता था। सबको नष्ट-भ्रष्ट कर डालता था। संसार में ऐसा भ्रष्टाचार फैला कि धर्म तो कान से सुनाई नहीं पड़ता था। जो वेद पुराण कहता था उसे बहुत विधि से भय देता था। और उसका देश निकाला करता था।

जो अनीति राक्षस लोग करते थे उसका वर्णन नहीं हो सकता। जिनको हिंसा पर अत्यन्त प्रीति है। उनके पापों की सीमा क्या है ?

व्याख्या : इमली इमली कहने से मुँह मीठा नहीं होता। मर्चा मर्चा कहने से तीता नहीं होता। अतः जप करना व्यर्थ समय व्यतीत करना समझा गया। गाँजे की दम लगाकर बेहोश होना और समाधि लगाना एक बात समझी गई। तप करके आँतों को सुखाना, व्यर्थ अपने को दुर्बल बनाना माना गया। विराग की गिनती नालायकी में हुई। यज्ञ खाद्यान्नदाह से सम्पन्न होता है। अतः अपराध माना गया। महाराज रावण की आज्ञा थी कि ये सब दुष्कर्म हैं। ये मेरे राज्य में न होने पावें। महाराज को इन सब बातों से बड़ी चिढ़ थी। जप, योग, विराग और मख देश छोड़कर भाग गये। यथा : भागेउ विवेक सहाय सहित सो सुभट संजुग महि मुरे। अथवा मखभागा का अर्थ यज्ञभाग कर दिया जाय। इन्हें रावण नहीं रहने देता था। अर्थात् इनका प्रचार उसे असह्य था। इन्हें देश से उठा दिया। देश का

---

१. यह चौपैया छन्द है। लक्षण के लिए १८५ वाँ दोहा देखिये।

देश स्वधा से विहीन हो गया। मुख से भी कोई मन्त्रोच्चारण नहीं करने पाता था। सब यथेच्छाचारी और विषय में लिप्त हो गये थे। केवल उड़ती खवर यदि रावण को लग जाय कि कहीं यज्ञादि होता है तो स्वयं दौड़ पड़ता था कि कहीं जाते जाते पूर्णाहुति न हो जाय या जिसको इस काम पर भेजें वह आलस्य न कर जायँ नहीं तो कुछ न कुछ देवताओं को भोजन मिल ही जायगा। इसलिए ऐसी मुस्तैदी वनी रहती थी कि उसे नष्ट करके ही मानता था। धर्म करना तो किसी से साध्य था ही नहीं। धर्म की चरचा तक कोई नहीं कर पाता था। और यदि किसी ने वेद पुराण की चरचा की तो उसको खूब डरा धमकाकर देशनिकाला का दण्ड दिया जाता था। इसलिए खूब डरा धमका देते थे कि जिसमें वह जिस देश में जाय वहाँ कहीं वेद पुराण की चरचा न करे।

रावण केवल निशाचरी सेना भेजकर ही सन्तुष्ट नहीं थे। स्वयं ऐसी मुस्तैदी दिखलाते थे जिससे सब सावधानी से काम करें। अतः कवि कहते हैं कि घोर निशाचर जो अनीति करते थे उनका वर्णन नहीं हो सकता। क्योंकि उस अनीति के सोचने में भी मानव वुद्धि असमर्थ है। मन वाणी और शरीर से सब भूतों में सर्वदा क्लेश उत्पन्न करना हिंसा है। यथा : हिंसा नाम मनोवाक्कायकर्मभिस्सर्वभूतेपु सर्वदा क्लेशजननम्। शा. उ.। ऐसी हिंसा पर जिसकी प्रीति है। जो दूसरे को दुख देने में ही आनान्द मानते हैं। उनके पाप का क्या ठिकाना। रावण की आज्ञा से भी अधिक अन्याय की आवश्यकता पड़े तो उसे ये लोग वड़ी प्रीति से सम्पादन करते थे। भाव यह कि यहाँ तक धर्म का पतन होता है। अतः धर्मात्मा धर्म का ह्रास देखकर अधीर न हों। धर्म का नाश हो नहीं सकता। उसके संभालने के लिए भगवान् को आना पड़ता है।

वाढ़े खल वहु चोर जुआरा। जे लंपट परधन परदारा॥
मानहिं मातु पिता नहिं देवा। साधुन्ह सन करवावहिं सेवा॥१॥

अर्थ : खल, चोर और जुआड़ियों की अभिवृद्धि हुई। जो पराई स्त्री और पराए धन के चाहनेवाले थे, माता पिता और देवता को नहीं मानते थे, साधुओं से सेवा कराते थे।

व्याख्या : निष्कारण दूसरे का अपकार करनेवाले खल हैं। उन्हीं के भेद का निरूपण करते हैं। चोरी और जूआ का साथ है। चोर ही पक्के जुआड़ी होते हैं। दूसरे के धन से उन्हें जूआ खेलना ठहरा। दूसरे के धन और स्त्री के लोभी घोर गत्ति को प्राप्त होते हैं। यथा : जे तार्काहि परधन परदारा। पावौं मैं तिनके गति घोरा। ऐसे लोगों की बढ़ोत्तरी हुई। चोरी और जुआ भी सभी काल में होता आया है। परन्तु कुराज में इनका प्रचार अधिक होता है।

वेद की आज्ञा है : मातृदेवो भव, पितृदेवो भव, आचार्यदेवो भव। माताओं को देवता मानो, पिता को देवता मानो, आचार्य को देवता मानो। सो देवताओं को ही वे नहीं मानते। मातापिता को क्या देवता मानेंगे? लोग अपने श्रेय के

लिए साधुसेवा करते हैं। यथा : सेवत साधु द्वैत भ्रम भागै : खल लोग साधुओं से अपनी सेवा कराते हैं। तात्पर्य यह कि रावण के राजा होने से प्रजा भी असुर हो गई।

जिन्हके यह आचरन भवानी। ते जानहु निसिचर सब प्रानी ॥
अतिसय देखि धर्म कै ग्लानी। परम सभीत धरा अकुलानी ॥२॥

अर्थ : जिनका ऐसा आरचण हो हे भवानी ! उन सब प्राणियों को राक्षस जानो। अत्यन्त धर्म की ग्लानि देखकर परम सभीत हो पृथ्वी विकल हो उठी।

व्याख्या : देवासुर विभाग आचरण से लखाई पड़ता है। खल, चोर, जुआड़ी, परधन परदार के लोलुप, माता पिता और देवता के न माननेवाले, साधुओं से सेवा करानेवाले आसुरसर्ग के जीव हैं। इनके बढ़ने से संसार की स्थिति डाँवाडोल हो जाती है। यथा : प्रभवत्युग्रकर्माणो क्षयाय जगतोऽहिताः। उग्रकर्माओं की बढ़ोत्तरी होती है। जगत् के क्षय के लिए ऐसे ही प्राणी निशिचर : राक्षस कहलाते हैं। लीला आदि में राक्षसों को सींघ, दाँत आदि पशु के चिन्ह उनके अपमान के लिए लगा देते हैं। यह आवश्यक नहीं है कि जो राक्षस हों वे विकट रूप ही हों।

धारण करने से धर्म कहा जाता है। धर्म ही प्रजा को धारण करता है। धारणात् धर्म इत्याहुर्धर्मो धारयति प्रजाः। रावण के राज्यकाल में धर्म की बड़ी भारी ग्लानि : अधःपतन हुई। यहाँ धर्म की ग्लानि कहकर ईश्वर के अवतीर्ण होने की परिस्थिति दिखलाते हैं। यथा : यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत। अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्। धर्म को निष्प्राण होते देखकर पृथ्वी अत्यन्त डर गई और व्याकुल हो उठी। जब शरीर में रोग अत्यधिक बढ़ जाता है तो शरीर के भीतरी यन्त्र काम नहीं करते। इसी भाँति पृथ्वी को रावणरूपी महारोग हो गया था। यथा : कृत दूरि महामहिभूरिरुजा। उसकी अभिवृद्धि से पृथ्वी की व्यवस्था चलानेवाला धर्म अति शिथिल पड़ गया। अतः अपना नाश उपस्थित होने से पृथ्वी मारे डर के व्याकुल हो गई और सोचने लगी।

गिरि सरि सिंधु भार नहिं मोही। जस मोहि गरुअ एक परद्रोही ॥
सकल धर्म देखै बिपरीता। कहि न सकै रावन भयभीता ॥३॥

अर्थ : मुझे पर्वत नदी और समुद्र का उतना बोझ नहीं है जितना बोझ मुझे एक परद्रोही का होता है। पृथ्वी सब धर्मों को विपरीत देखती है। पर रावण के भय से डरी हुई कुछ बोल भी नहीं सकती।

व्याख्या : गिरि में कितने पत्थर हैं। सरिसिन्धु में कितना पानी है कुछ ठिकाना नहीं। परद्रोही में कितना बोझ होगा ? पर यहाँ प्रश्न भौतिक बोझ का नहीं है। अपने प्रेमास्पद किसी को बोझ नहीं होते। अपने वर्ग में परम प्रीति होती है। गिरि सरि सिन्धु परोपकारी हैं। अतः वे पृथ्वी के वर्ग के हैं। यथा : संत विटप सरिता गिरि धरनी। परहित हेतु सबनि कै करनी। अतः उसे उनका बोझ

अखरता नहीं। परन्तु परद्रोही को पृथ्वी चाहती नहीं। उसके बोझ को वह सहन नहीं कर सकती और रावण के राज्य में उन्हीं की अभिवृद्धि थी। अतः पृथ्वी के लिए बोझा असह्य हो गया।

सब धर्म को विपरीत देखती है अर्थात् अधर्म का अभ्युत्थान हो गया। सबकी बुद्धि तामसी हो गई। लोग अधर्म को ही धर्म समझने लगे। शास्त्र कहता है कि व्यवस्थितार्यमर्यादः कृतवर्णाश्रमस्थितिः। त्रय्या हि रक्षितो लोकः प्रसीदति न सीदति। वर्णाश्रम की स्थिति में संसार सुखी होता है। कष्ट नहीं पाता। परन्तु तामसी बुद्धिवालों को वर्णाश्रम आँख का काँटा हो जाता है। शास्त्र कहता है कि न स्त्रीस्वातन्त्र्यमर्हति। परन्तु तामसी बुद्धिवालों को स्त्रीस्वातन्त्र्य सब कल्याण का मूल जँचता है। शास्त्र कहता है कि शौचात् स्वाङ्गजुगुप्सा परैरसंसर्गश्च। शौच का अभ्यास डालने से अपने शरीर से घृणा हो जाती है। वह दूसरे का संसर्ग नहीं करता। पर तामसी बुद्धिवाले छुआछूत उठा देने को ही धर्म समझते हैं। यथा : अधर्मं धर्ममिति या मन्यते तमसावृता। सर्वार्थान् विपरीतांश्च बुद्धिः सा पार्थ तामसी। पर सामर्थ्य किसकी जो इसके विरुद्ध आवाज उठाए। अतः पृथ्वी रावण के भय से सब कुछ देखती थी। बोल नहीं सकती थी तब :

धेनु रूप धरि हृदय बिचारी। गई तहाँ जहँ सुर मुनि झारी॥
निज संताप सुनाएसि रोई। काहू तें कछु काज न होई॥४॥

अर्थ : हृदय में विचारकर उसने गाय का रूप धारण किया। और जहाँ सुर मुनि का समूह था वहाँ गई। अपना दुःख रोकर सुनाया। पर किसी का किया कुछ हो न सका।

व्याख्या : गाय दीनता का प्रतीक है। अरिहु दन्त तृन दवत ताहि नहि मारि सकत कोई। शत्रु जब दाँत तले तृण दबा लेता है अर्थात् जब गौ होने का भाव दिखलाता है तब उसे भी कोई मारता नहीं। अतः दीनता का प्रतीक बनकर पृथ्वी वहाँ गई जहाँ देवताओं और मुनियों का समूह था। क्योंकि ये ही धर्म के रक्षक हैं। देवता और मुनियों का समूह उस समय मेरु पर्वत पर था। यथा : देवन तकेउ मेरु गिरि खोहा। रोकर दुःख सुनाना इस बात का द्योतक है कि दुःख असह्य है। परन्तु जो स्वयं छिपते फिरते हैं वे क्या कर सकते हैं और मुनि लोग तो भक्ष्य ही ठहरे। गौ गोहार के लिए भी देवता और मुनि तैयार नहीं हुए। देश की यह बड़ी पुरानी प्रथा है कि गो गोहार और तिरिया गोहार पर सब लोग रक्षा के लिए उठ खड़े होते हैं। परन्तु रावण के भय से किसी को साहस न हुआ।

छंद. सुर मुनि गंधर्बा मिलि करि सर्बा गे बिरंचि के लोक।
संग गो तनुधारी भूमि बिचारी परम बिकल भय सोक॥
ब्रह्मा सब जाना मन अनुमाना मोर कछू न बसाई।
जा करि तें दासी सो अबिनासी हमरेउ तोर सहाई॥

अर्थ : देवता, मुनि और गन्धर्व सब मिलकर ब्रह्मदेव के लोक गये। उनके साथ भय और शोक से परम विकल गाय का शरीर धारण किये हुए बेचारी पृथ्वी थी। ब्रह्मा ने सब जान लिया। मन में विचारा कि मेरा भी कोई चारा नहीं है। और पृथ्वी से कहा कि जिसकी तू दासी है वही अविनाशी मेरा और तेरा भी सहायक है।

व्याख्या : जब कोई बात देवताओं के वश के बाहर हो जाती है तब ब्रह्मदेव के शरण में जाते हैं। क्योंकि उन उन अधिकारों पर उनकी नियुक्ति ब्रह्मदेव द्वारा ही होती है और जब ऐसा समय आता है कि बलवान् शत्रु उनके अधिकार को छीनने लगता है तो वे स्वभावतः ब्रह्मदेव के शरण जाते हैं। अतः पृथ्वी का करुण क्रन्दन सुनकर देवता, मुनि और गन्धर्व लोग सब मिलकर ब्रह्मलोक गये। साथ में भय और शोक से परम विकल भूमि बेचारी भी गई। विकल होकर तो वह देवताओं के शरण गई। उनकी बेबसी से यह परम विकल हो गई। जहाँ वे लोग पुकार करने चले वहाँ वह भी गई। कुछ कहने की आवश्यकता ही नहीं पड़ी। ब्रह्मदेव सब बातें जान गये। पर करते क्या ? उन्हीं से वर पाकर वह सब कर रहा था। रावण स्वयं कहता था कि निज तप साहस विरंचि लियो मोल है। पृथ्वी से कहने लगे कि कोई भी विनाशी जीव तुम्हारी सहायता नहीं कर सकता। क्योंकि विनाशी को तो रावण मार ही डालेगा। तेरे पति अविनाशी हैं। यथा : समुद्रवसने देवि पर्वतस्तनमण्डले। विष्णुपत्नि नमस्तुभ्यं पादस्पर्शं क्षमस्व मे। अतः वे ही मेरे भी सहायक हैं।

सो. धरनि धरहि मन धीर, कह बिरंचि हरि पद सुमिरु।
जानत जन की पीर, प्रभु भंजिहि दारुन बिपति ॥१८४॥

अर्थ : ब्रह्मदेव ने कहा पृथ्वी ! तू धैर्य धारण कर और प्रभु के चरणों को स्मरण कर वे भक्तों की पीर को जानते हैं। वे दारुण विपत्ति का नाश करेंगे।

व्याख्या : ब्रह्मदेव ने कहा कि तेरा नाम धरणी है। तू धैर्य को न छोड़ और प्रभु का स्मरण कर। उनसे कुछ कहना सुनना भी नहीं है। वे अन्तर्यामी भी हैं। जन की पीडा को जानते हैं। केवल उनका स्मरण करना ही पर्याप्त है। वे ही दारुण विपत्ति का नाश करेंगे। भाव यह कि तुम तो उनकी पत्नी हो। तुम क्यों अधीर होती हो। स्त्री को पति ही शरण है। अतः तुम उनका स्मरण करो। इसी से तुम्हारा कल्याण है।

बैठे सुर सब करहिं बिचारा। कहँ पाइअ प्रभु करिअ पुकारा ॥
पुर बैकुंठ जान कह कोई। कोउ कह पयनिधि बस प्रभु सोई ॥१॥

अर्थ : बैठे हुए देवता लोग विचार करने लगे कि प्रभु को कहाँ पावें कि पुकार करें। कोई कहने लगा वैकुण्ठ चलना चाहिए। कोई कहने लगा उनका निवास क्षीरसागर में है।

व्याख्या : देवताओं को भी हरि का दर्शन दुर्लभ है। यथा : जे हरहिय

नयनन्हि कबहुँ निरखे नाहि अघाय। अतः विचार करने लगे कि ब्रह्मदेव तथा शिवजी ने तो रावण को वरदान दिया है। ये लोग उसकी रक्षा के लिए बचनबद्ध हैं। रावण भी इनसे निर्भय है। कहता है कि : साहिब महेस सदा संकत रमेस मोहि निज तप साहस विरंचि लियो मोल है। महेश तो मेरे स्वामी हैं। रमेश मुझसे शङ्कित रहते हैं और अपने तप के साहस से मैंने ब्रह्मदेव को तो मोल ले रक्खा है। भावार्थ यह कि रावण ब्रह्मदेव और महेश की ओर से निश्चिन्त है। यद्यपि विष्णु को शङ्कित वतलाता है। पर खतरा उसी से रहता है जो अपनी ओर से शङ्कित रहे। विष्णु वचनबद्ध नहीं हैं। उन्हीं से पुकार करनी चाहिए। अथवा त्रिदेव से रावण को भय नहीं है। अतः जिसके अंश से त्रिदेव की उत्पत्ति है उस प्रभु को पुकारना चाहिए। अब प्रश्न यह रहा कि उन्हें पावें कहाँ ? तो इसमें मतभेद हुआ। किसी ने वैकुण्ठ में चलने की राय दी और किसी ने क्षीरसमुद्र चलना विचारा।

जाके हृदय भगति जसि प्रीती। प्रभु तहँ प्रकट सदा तेहि रीती ॥
तेहि समाज गिरिजा मैं रहेऊँ। अवसर पाइ वचन एक कहेऊँ ॥२॥

अर्थ : जिसके हृदय में जैसी भक्ति और प्रीति रहती है प्रभु उसके लिए सदा वहाँ और उसी रीति से प्रकट होते हैं। हे गिरिजे ! मैं उस समाज में था। अवसर पाकर मैंने एक बात कही।

व्याख्या : मतभेद के कारण को स्पष्ट करते हुए शिवजी कहते हैं कि प्रभु की रीति है कि प्रभु को जहाँ जैसा मानकर भजता है। जहाँ पर उसकी जिस रूप में प्रीति करता है प्रभु उसको वहीं और उसी रूप में प्रकट होते हैं। अतः जिसने वैकुण्ठनाथ मानकर भजा है उसके लिए वे वैकुण्ठ में हैं और जिसने क्षीरसागर में मान रक्खा है और वहीं उसकी प्रीति है उसके लिए वे क्षीरसागर में भी हैं। इसीलिए देवताओं में मतभेद हुआ।

शिवजी कहते हैं गिरिजे ! उस समाज में मैं था। अर्थात् जहाँ सुरमुनिझारी मेरु पर्वत पर थे वहाँ मैं नहीं था। जहाँ ब्रह्मलोक में देवता गये और ब्रह्मदेव ने कहा कि मेरा भी कोई चारा नहीं वहाँ भी मैं नहीं था। पर जहाँ देवता लोग विचार करने वैठे उस समाज में मैं था। इससे यह है कि यह देवसभा रुद्रलोक में हुई। शिवजी बड़े सुशील हैं। अपना उत्कर्ष नहीं कहते। गिरिजा से रामकथा कहने के समय कहते हैं कि जैसा भुसुण्डि ने गरुड़ को सुनाया है वैसा ही मैं तुम्हें सुनाऊँगा। भुसुण्डि को प्रमाण मानकर उसकी कही हुई कथा सुनाते हैं। यद्यपि तथ्य यह है कि स्वयं भुसुण्डि को ही वह कथा शिवजी से मिली थी। उसके मुख्य कवि शिवजी हैं। पर भगवान् शङ्कर ऐसे सुशील हैं कि अपना मूल वक्ता होना छिपाकर भुसुण्डि को बड़ाई देते हैं। वस्तुस्थिति यह है कि पृथ्वी देवसमाज के पास गई। पर किसी का किया कुछ न हुआ तो देवता लोग पृथ्वी को साथ लेकर ब्रह्मलोक गये। जब ब्रह्मदेव ने भी कह दिया कि मेरो कछु न बसाई तो ब्रह्मदेव को आगे करके रुद्रलोक गये। वहीं विचार होने लगा कि : कहँ पाइअ हरि करिअ

पुकारा। शिवजी देवताओं को अपने यहाँ पुकार के लिए आना न कहकर केवल इतना ही कहते हैं कि : तेहि समाज गिरिजा मैं रहेऊँ। भावार्थ यह कि यह बात तुम्हारे जन्म के पहिले की है।

देवताओं में मतभेद होने पर शिवजी को अवसर मिला तो उन्होंने एक बात कही। बिना अवसर की बात शोभा नहीं देती।

हरि व्यापक सर्बत्र समाना। प्रेम तें प्रगट होहिं मैं जाना॥
देस काल दिसि बिदिसिहु माहीं। कहहु सो कहाँ जहाँ प्रभु नाहीं॥३॥

अर्थ : हरि सर्वत्र समान रूप से व्यापक हैं। प्रेम से प्रकट होते हैं। यह मेरी जानी हुई बात है। देश, काल, दिशा, विदिशाओं में वह स्थान कौन है जहाँ प्रभु नहीं हैं।

व्याख्या : हरि अखिल विश्व में व्यापक हैं। सर्वाधार हैं और सर्वत्र समानरूप से व्यापक हैं। सामान्य ही अव्यय रूप है। बात नहीं कि वैकुण्ठ में कुछ अधिक हों या क्षीरसागर में कुछ अधिक हों और यहाँ कुछ कम हों। वे तो सर्वत्र समान हैं परन्तु अव्यक्तरूप से हैं। उनसे काम लेने के लिए उन्हें व्यक्तरूप में लाना पड़ता है। वे प्रेम से ही व्यक्तरूप में आते हैं। जिन्हें वैकुण्ठ में प्रेम है उसके लिए वे वैकुण्ठ में प्रकट हैं। जिसे क्षीरसागर में प्रेम है उसके लिए वे क्षीरसागर में प्रकट हैं। और जिसे प्रेम नहीं है उसके लिए वे कहीं भी प्रकट नहीं हैं। कोई देश, कोई काल, कोई दिशा और कोई विदिशा, ऐसो नहीं है जहाँ प्रभु न हों। जब सर्वत्र समानरूप से प्रभु हैं तब यह प्रश्न ही नहीं बनता कि : कहँ पाइय हरि करिअ पुकारा।

अग जगमय सब रहित बिरागी। प्रेम तें प्रभु प्रगटइ जिमि आगी॥
मोर बचन सब के मन माना। साधु साधु करि ब्रह्म बखाना॥४॥

अर्थ : वह चराचरमय हैं। फिर भी सबसे अलग हैं। निरपेक्ष हैं। प्रेम से प्रभु आग की भाँति प्रकट होते हैं। मेरी बात सबके गले उतर गई। और ब्रह्मदेव तो 'वाह, वाह' कहकर प्रशंसा करने लगे!

व्याख्या : अगजगमय होने पर भी उससे अलग रहना यह प्रभु का ऐश्वर्य योग है। यथा : न च मत्स्थानि भूतानि पश्य मे योगमैश्वरम्। गी.। ये भूत मेरे में हैं। और मेरे में नहीं भी हैं। यह मेरा ऐश्वरयोग देखो। और विरागी हैं। यथा : न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः। गी.। यद्यपि सम नहिं राग न रोषू। गहहि न पाप पुन्य गुन दोषू। परन्तु प्रेम से प्रभु अग्नि[1] की भाँति प्रगट होते हैं। अग्नि यावत् रूपवान् द्रव्य

---

१. अग्नि का प्राकट्य चार प्रकार से होता है : १. आवेश २. प्रवेश १. स्फूर्ति और ४. आविर्भाव। इसी भाँति प्रभु का प्राकट्य भी चार प्रकार से होता है। वर्तन के पानी में जैसे अग्नि का आवेश होता है वैसे ही आवेशावतार कुछ दिन के लिए होता है। लोहे के गोले में अग्निप्रवेश की भाँति प्रवेशावतार होता है। बिजली की चमक की भाँति स्फूर्तिअवतार क्षणभर के लिए होता है। और पत्थर में टाँकी की चोट से साक्षात् अग्नि के प्राकट्य की भाँति प्रभु का आविर्भाव होता है। अतः अग्नि की उपमा दी।

में व्याप्त है। विना तेज के रूप होता ही नहीं। यथा : ज्यौं बिनु तेज न रूप गोसाईं। परन्तु अव्यक्तावस्था में है। उससे दाहन प्रकाशन आदि क्रिया नहीं होती। जब संघर्षण किया जाय तब अग्नि प्रकट होती है। यथा : अति संघर्षण करे जो कोई। अनल प्रकट चन्दन ते होई। इसी भाँति सर्वव्यापक होने पर भी प्रभु प्रेम करने से प्रकट होते हैं। यथा : ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम्। तदपि करइ सम विषम विहारा। भगत अभगत हृदय अनुसारा। भाव यह कि यहीं प्रेम करो तो यहीं प्रकट हों।

शिवजी की बात सबके गले उतर गई क्योंकि सामञ्जस्य बैठ गया। किसी के अनुभव का खण्डन नहीं हुआ। बल्कि उपपत्ति हो गई। कहीं न जाकर उसी स्थान में प्रेम प्रयत्न करना निश्चय हुआ। ब्रह्मदेव तो फड़क उठे 'वाह, वाह' करने लगे।

दो. सुनि बिरंचि मन हरष तन, पुलकि नयन बह नीर।
अस्तुति करत जोरि कर, सावधान मतिधीर ॥१८५॥

अर्थ : सुनकर ब्रह्मदेव के मन में हर्ष हुआ। शरीर पुलकित हो उठा। आँखों से आँसू बहने लगे। धीरमति सावधान होकर स्तुति करने लगे।

व्याख्या : शिवजी की वाणी सुनकर ब्रह्मदेव प्रेम में डूबाडूब हो गये। इसलिए मनसा वाचा कर्मणा प्रेम दिखलाया गया। फिर सावधान होकर बुद्धि स्थिर की और स्तुति करने लगे।। इसलिए 'सावधान मतिधीर' कहा गया।

छं. जय जय सुरनायक जनसुखदायक प्रनतपाल भगवंत।
गो द्विज हितकारी जय असुरारी सिंधुसुता प्रिय कंत ॥
पालन सुर धरनी अद्‌भुत करनी मरम न जानइ कोई।
जो सहज कृपाला दीनदयाला करउ अनुग्रह सोई ॥१॥

अर्थ : हे देवताओं के नेता! भक्तों के सुख देनेवाले! प्रणत के पालन करनेवाले! आपकी जय हो जय हो! हे ब्राह्मण ओर गाय के हित करनेवाले! असुरों के शत्रु! लक्ष्मी के पति! आपकी जय हो! आप देवता और पृथ्वी के पालन करनेवाले हैं। आपकी करणी अद्भुत है। आपका मर्म कोई नहीं जानता। जो सहज कृपाल और दीनों पर दया करनेवाले हैं सो अनुग्रह करें।

व्याख्या : दुःख में पड़े हुए देवता लोग आपके नेतृत्व के लिए पुकार करने आये हैं क्योंकि आप ही सुरनायक हैं। आप उनका नेतृत्व ग्रहण कीजिये। आपके भक्त दुःख में पड़े हैं। इन्हें सुख दीजिये। आप भगवान् हैं। षडैश्वर्यसम्पन्न हैं। जो आपको प्रणाम करता है उसका पालन करते हैं। सो देवसमूह आपको प्रणाम करता है उसका पालन कीजिये।

आप गाय और ब्राह्मण के हित करनेवाले हैं। सो इस समय दोनों अशरण हो रहे हैं उनका हित कीजिये। आप असुरों के अरि : शत्रु हैं। अथवा असुर आपके शत्रु हैं। उनकी इस समय बढ़ोत्तरी है। इसलिए उनका नाश करिये। आप समुद्र

की पुत्री लक्ष्मी के सुख का विस्तार करनेवाले हैं। सो इस समय लक्ष्मी सङ्कुचित होकर लङ्का में ही सीमित हो गई हैं। यथा : चाकि राख्यौ रासि सब जागर जहान भो। अतः रावण का वध करके संसार में लक्ष्मी का प्रसार कीजिये। आप देवता और पृथ्वी का पालन कीजिये। देवता क्षुधाक्षीण बलहीन हो रहे हैं। पृथ्वी पाप के भार से दबी चली जा रही है। सो देवताओं के आहार का मार्ग निरर्गल कीजिये। और पृथ्वी का भार उतारिये। आपकी अद्भुत करणी है। आप ही मनुष्यशरीर धारण करके रावणवध कर सकते हैं। नहीं तो मनुष्य शरीर से रावणवध नहीं हो सकता। आपका मर्म कोई नहीं जान सकता। जैसी परिस्थिति है तदनुकूल प्रार्थना करते हैं। ऐसी परिस्थिति होने देने में आपका क्या तात्पर्य है। इस मर्म को हम लोग नहीं जानते। आप स्वभाव से ही कृपा करनेवाले अर्थात् निष्कारण कृपा करनेवाले और दीन पर दया करनेवाले हैं। आप अनुग्रह करें। तीन बार जय कहकर आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक तीनों प्रकार की विजय कही।

छं.[१] जय जय अविनासी सब घट बासी व्यापक परमानंद।
अविगत[२] गोतीतं चरित पुनीतं माया रहित मुकुंद॥
जेहि लागि बिरागी अति अनुरागी विगतमोह मुनिवृंद।
निसि बासर ध्यावहिं गुन गन गावहिं जयति सच्चिदानंद॥२॥

अर्थ : हे नाशरहित घट घट में निवास करनेवाले व्यापक, परमानन्द, अव्यक्त, इन्द्रियों से परे पवित्र चरित्रवाले मायारहित और मुक्ति देनेवाले आप की जय हो। जिसके लिए विरागी अत्यन्त अनुरागी होते हैं और मुनिवृन्द मोहरहित होते हैं। रात दिन ध्यान करते हैं। गुणगण का गान करते हैं। ऐसे सच्चिदानन्द की जय हो।

व्याख्या : आप अविनाशी हैं। घटघटवासी विष्णु व्यापक हैं। अपनी दासी पृथ्वी पर कृपा कीजिये। यथा : जाकर तैं दासी सो अविनासी : आप परमानन्द हैं। संसार निरानन्द हो रहा है। उसे आनन्दित कीजिये। आप अविगत हैं अव्यक्त हैं। अथवा आप से विशेष गति किसी की नहीं है। क्योंकि इन्द्रियों से अतीत हैं परे हैं। यथा : न तत्र चक्षुर्गच्छति न वाग् गच्छति नो मनो न विद्मो न विजानीमः। फिर भी आपके चरित पुनीत हैं। यथा : एक कल्प एहि लगि अवतारा। चरित पवित्र किये संसारा। आपका दिव्य जन्म होता है। आपके कर्म भी दिव्य होते हैं। यथा : जन्म कर्म च मे दिव्यम् : अतः अपने पुनीत चरित से

१. यह चौपैया छन्द है। इसमें ३० मात्राएँ होती हैं। १०,८ और १२ पर विश्राम होता है। अन्त में एक सगण और एक गुरु : ॥ऽऽ : होता है।

२. 'इः स्वप्नादौ' इस सूत्र से यकार को 'इ' हुआ। 'विप्रकर्षः' इस सूत्र से युक्त वर्ण पृथक् हुए। 'अजादौ स्वरादसंयुक्तानां क ख थ प फां गघ दध वभाः' इससे 'क' को 'ग' होकर अव्यक्त का 'अविगत' रूप सिद्ध हुआ।

संसार को पवित्र कीजिये। आप स्वयं माया से रहित हैं। और दूसरों कीं भी माया-रहित करकें मुक्ति देते हैं। भाव यह कि इस समय संसार खलों की अभिवृद्धि से अपवित्र हो रहा है। उसे पवित्र कीजिये। जिसके लिए विरागी अत्यन्त अनुरागी होते हैं। और मुनि लोग विगत मोह होते हैं। यथा : करहिं जोग जोगी जेहि लागी। कोह मोह ममता मद त्यागी। रात दिन ध्यान करते हैं। आपके गुणगणों को गाया करते हैं। ऐसे सच्चिदानन्द भगवान् की जय हो। यहाँ भी उपर्युक्त अभिप्राय से तीन बार जय कहा गया।

छं. जेहि सृष्टि उपाई त्रिविध बनाई संग सहाय न दूजा।
सो करहु अघारी चिंत हमारी जानिय भगति न पूजा॥
जो भव भय भंजन मुनि मन रंजन खंडन बिपति बरूथा।
मन वच क्रम बानी छाड़ि सयानी सरन सकल सुरजूथा॥३॥

अर्थ : जिसने सृष्टि उत्पन्न की। तीन प्रकार की बनाई। साथ में दूसरा सहायक न था। वही पापों का शत्रु हमारी खबर ले। हमें भक्ति या पूजा का ज्ञान नहीं है। जो संसार के भय का नाश करनेवाला है और विपत्ति समूह का खण्डन करनेवाला है उसी के शरण में मनसा वाचा कर्मणा चतुराई की आदत छोड़कर सब देवताओं का समूह आया है।

व्याख्या : भगवान् क्षीरशायी ही सृष्टि के आदि कारण हैं। यद्यपि ब्रह्मदेव स्रष्टा कहे जाते हैं परन्तु उनका जन्म भी भगवान् के नाभिकमल से हुआ है। अतः 'जेहि सृष्टि उपाई' कहते हैं। देव तिर्यक् और नररूप से सृष्टि तीन प्रकार की है। इसलिए 'त्रिविध बनाई' कहते हैं। अपने संकल्प से ही सृष्टि करते हैं। यथा : स ईक्षत बहुस्यां प्रजायेय : इसलिए कहा कि संगसहाय न दूजा। यह जगत् कार्य है। इसका कर्त्ता सब कर्त्ताओं से विलक्षण है। क्रिया बुद्धिपूर्वक होती है। जड़ में वह नहीं देखी जाती। कार्य के गुणानुसार कर्त्ता अचिन्त्य शक्तिमान् हैं। उसकी स्वतन्त्रता पूर्ण है। वह किसी वस्तु की अपेक्षा न करके सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि करता है जिस भाँति स्वप्न में यह जीव सम्पूर्ण पदार्थों को चैतन्य देह से रचता है।

इस भाँति भगवान् में अचिन्त्य सामर्थ्य दिखलाया। अब कहते हैं कि इस समय संसार पापों से भर गया है। हमलोग चिन्तनीय दशा को प्राप्त हैं। आप पापों के शत्रु हैं। आप हमारी चिन्ता करें। आपकी ही चिन्ता से हमारा निस्तार है। क्योंकि क्षीरशायी भगवान् ही नाना अवतारों के अव्यय बीज हैं : हम स्वयं पुरुषार्थ में असमर्थ हैं। न भक्ति ही जानते हैं और न पूजा जानते हैं। संसार का भय बहुत बढ़ गया है। यथा : धर्म सुनिय नहि काना : और आप भवभयभंजन हैं। मुनि लोगों की पीड़ा का पारावार नहीं है। और आप मुनिमन रंजन हैं। संसार में विपत्ति का समूह टूट पड़ा है। और आप उसका खण्डन करनेवाले हैं। मन क्रम वचन छाड़ि चतुराई। भजत कृपा करिहैं रघुराई। यह नियम है। सो

मन क्रम वचन से चतुराई की बानी : आदत : छोड़कर सब देवताओं के समूह यथा : आदित्यगण, रुद्रगण तथा वसुगण इत्यादि : आपकी शरण आये हैं। आप कृपा करें : भाव यह कि भगवान् शरणागत के उद्धार में समर्थ हैं। दया के समुद्र, कृतज्ञ और सुव्यवस्थित हैं। श्रेय की प्राप्ति करा देते हैं। श्रेय के पीछे नहीं पड़ना चाहिए। निर्हेतुक उपासना ही सच्ची उपासना है। वह आर्त और अर्थार्थी को अपनी नियति से कर्मपाक की अपेक्षा न करके फल देते हैं। वह अनन्य शरण का योगक्षेम वहन-करते हैं। अपनी नियति को भी हटाकर उससे साधन का सम्पादन करा के शीघ्र ही उसे युक्त करते हैं। यही उनका बड़ा भारी स्वातन्त्र्य है कि प्रारब्ध और नियति भी उनसे विमुख को ही होती है।

छं. सारद श्रुति सेषा रिषय असेषा जा कहुँ कोउ नहि जाना।
जेहि दीन पिआरे बेद पुकारे द्रवहु सो श्री भगवाना॥
भव बारिधि मंदर सब बिधि सुंदर गुन मंदिर सुख पुंज।
मुनि सिद्ध सकल सुर परम भयातुर नमत नाथ पदकंज॥

अर्थ : सरस्वती, वेद, शेष और सम्पूर्ण ऋषि समुदाय जिसे कोई न जान सका। जिसे दीन प्यारे हैं ऐसा वेद ने पुकारकर कहा है। वही भगवान् दया करें। हे संसारसमुद्र के मन्दर ! सब प्रकार से सुन्दर ! मुनि, सिद्ध और सब देवता लोग परम भय से आतुर होकर नाथ के चरणकमल को नमस्कार करते हैं।

व्याख्या : शारद से स्वर्गलोक का वक्ता श्रुति तथा अशेष ऋषियों से मर्त्य-लोक का वक्ता तथा शेष से पाताल लोक का वक्ता कहा। ये लोग भी जिसे न जान सके। भाव यह है कि प्रभु साक्षात् ब्रह्म हैं। विज्ञाता हैं। वे किसी के भी ज्ञेय नहीं हो सकते। यथा : विज्ञातारं वा अरे केन विजानीयात्। विज्ञाता को कोई कैसे जाने : फिर भी वेद पुकारकर कहता है कि उन्हें दीन प्यारे हैं। यथा : अगुन अखंड अनंत अनादी। जेहि चिंतहिं परमारथावादी। नेति नेति जेहि निगम निरूपा। निजानंद निरुपाधि अनूपा। ऐसउ प्रभु सेवक बस अहई। भगत हेतु लीला तनु गहई। जौ अस बचन सत्य श्रुति भाषा। तौ हमार पूजिहि अभिलाषा : वही श्री भगवान् कृपा करें। भक्त के हेतु शरीर धारण करें।

सागर के मन्थन में मन्दर पर्वत ही समर्थ था। उसी द्वारा मन्थन से समुद्र में से १४ रत्न निकले थे। इसी भाँति भगवान् भवसागर के लिए मन्दर हैं। समुद्र के पार तो वानर लोग भी गये परन्तु उन्हें उसकी गहराई का पता नहीं। यथा : अब्धिर्लङ्घित एव वानरभटैः किन्त्वस्य गम्भीरताम् आपातालनिमग्नपीवरतनुर्जानाति मन्थाचलः। उसकी गहराई का पता तो मन्दराचल को है। इसी भाँति साधक प्रयत्न से संसारसागर के पार चले जाते हैं। पर उसके तल का पता श्री भगवान् को ही है। वे ही उसमें से अमृत का उद्भावन करके दैवी प्रकृतिवालों की पुष्टि कर सकते हैं। उन्हें विजययुक्त कर सकते हैं। मन्दर सब विधि सुन्दर

नहीं। पर प्रभु तो सब विधि सुन्दर हैं। गुण के मन्दिर और सुख के 'पुंज' हैं। अर्थात् निर्गुण होने पर भी सगुण हैं। जो संसार भय से भीत है उसके एकमात्र शरण हैं। इस समय मुनि, सिद्ध, सुर सब परम भयातुर हैं। अपने कल्याण के लिए प्रभुपदकंज को नमस्कार करते हैं।

दो. जानि सभय सुरभूमि सुनि, बचन समेत सनेह।
गगन गिरा गंभीर भइ, हरनि सोक संदेह ॥१८६॥

अर्थ : देवता और पृथ्वी को भयभीत जानकर और स्नेहयुक्त वाणी सुनकर सब सन्देहों को हरनेवाली गम्भीर आकाशवाणी हुई।

व्याख्या : ब्रह्मदेव ने प्रार्थना की थी : मुनि सिद्ध सकल सुर परम भयातुर। अतः सुरभूमि को सभय जाना। शिवजी ने कहा था प्रेम ते प्रगट होहिं मैं जाना। सो वचन समेत सनेह भी सुना। बोलनेवाला अदृश्य है। और शब्द सुनाई पड़ रहा है। इसलिए 'गगन गिरा गंभीर' कहते हैं। अथवा जो वाणी का भी वाणी : वाचोह वाक् है। उसकी गिरा आकाश द्वारा ही प्रकट होती है। कितने ऊपर से वाणी आ रही है। इसका थाह न होने से गम्भीर कहा अथवा वचन संक्षिप्त हैं पर अर्थ अति अधिक है। इसलिए गम्भीर कहा। पृथ्वी भय शोक से विकल थी। अतः शोक सन्देह की हरण करनेवाली वाणी हुई।

यह प्रभु का प्रथम गुणग्राम जगमङ्गल रूप है। यथा : जगमंगल गुनग्राम राम के। इसे अश्विनी नक्षत्र माना गया है। अश्विनी नक्षत्र में तीन तीन तारे चमकते हैं। इस स्तुति में भी तीन रूपों की चमक है। १. विष्णु २. क्षीरशायी और ३. ब्रह्म। अश्विनी नक्षत्र की आकृति अश्वमुख सी है। ब्रह्मविद्या के प्रधान उपदेष्टा भगवान् हयग्रीव हैं। उसी ब्रह्मविद्या का निरूपण इस स्तुति में है। इससे अश्वमुख माना। अथवा सामवेद के तुल्य होने से अश्वमुख माना। यह स्तुति ही जगमङ्गल के लिए ब्रह्मदेव ने की थी।

जनि डरपहु मुनि सिद्ध सुरेसा। तुम्हहि लागि धरिहौं नर बेसा ॥
अंसन्ह सहित मनुज अवतारा। लेहौं दिनकर बंस उदारा ॥१॥

अर्थ : हे मुनि, सिद्ध और अधिकारी देवता लोग, तुम लोग डरो मत। तुम्हारे लिए मैं नर का वेष धारण करूँगा। अंशों के सहित मनुष्य का अवतार उदार सूर्यवंश में ग्रहण करूँगा।

व्याख्या : ब्रह्मदेव ने स्तुति में कहा था : मुनि सिद्ध सकल सुर परम भयातुर नमत नाथ पदकंज। अतः आकाशवाणी होती है : जनि डरपहु मुनि सिद्ध सुरेसा। भानुप्रताप रावण हुआ था। यथा : काल पाइ मुनि सुनु सोइ राजा। भएउ निसाचर सहित समाजा। दस सिर ताहि बीस भुजदंडा। रावण नाम वीर बरिबंडा। उसी के अत्याचार से पीड़ित होकर देवता लोग शरण में आये हैं। क्योंकि रावण ने वर माँग लिया है कि : हम काहू के मरें न मारे। बानर मनुज जाति दुइ बारे।

और वानर मनुज में कोई ऐसा शक्तिशाली हो नहीं सकता। जो इस वीर बरिवंड के बध में समर्थ हो। अतः निरतिशय ऐश्वर्यसम्पन्न भगवान् ही यदि नर शरीर धारण करें तो इसका वध सम्भव है। परन्तु क्लेश कर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः यो. सू.। कर्म विपाक और आशय से जिसका सम्पर्क नहीं है ऐसा पुरुषविशेष ईश्वर है। वह मनुष्य क्यों होने लगा। अतः कहते हैं कि यद्यपि कर्म विपाक और आशय से मेरा लगाव नहीं है फिर भी तुम्हारे लिए मैं नरशरीर धारण करूँगा। ध्वनि यह निकलती है कि मैं तुम्हारे लिए नरशरीर धारण करूँगा। परन्तु तुम लोग भी अपने लिए वानर शरीर धारण करो। मैं : तुरीय का विभु अपने अंशों : जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति के विभुओं के सहित मनुष्य अवतार धारण करूँगा। अर्थात् जब अंशी का अवतार होगा तो साथ में अंश भी आवेंगे। राजा के साथ सारा समाज चलता है। यथा : निज इच्छा अवतरइ प्रभु सुर महि गो द्विज लागि। सगुन उपासक संग सब तब रहहिं मोच्छसुख त्यागि। उदार सूर्यवंश में अवतार ग्रहण करने का अभिप्राय यह कि बारह कलाओं में ही पूर्णता हो जायगी। क्योंकि सूर्य में बारह कलाएँ हैं। चन्द्रवंश में अवतार ग्रहण करने से सोलह कलाओं में पूर्णता होती है। क्योंकि चन्द्र में सोलह कलाएँ हैं। एक रुपये में आठ दुअन्नियाँ और चार चवन्नियाँ होती हैं। इसलिए आठ दुअन्नियाँ चार चवन्नियों से अधिक नहीं हैं। इसी भाँति बारह कलाओं का रामावतार और सोलह कलाओं का कृष्णावतार दोनों ही पूर्ण हैं। समान ही नहीं दोनों एक हैं।

स्पष्ट है कि यह आकाशवाणी उस कल्प की ही है। जिसमें स्वायम्भू मनु और शतरूपा की प्रार्थना से ब्रह्म का रामावतार हुआ था और भानुप्रताप का रावणावतार हुआ था।

तुरीय ब्रह्म के अंश, सुषुप्ति के प्रभु ईश्वर, स्वप्न के विभु हिरण्यगर्भ और जाग्रत् के विभु विराट् हैं। सो इनके साथ अवतीर्ण होने के लिए आश्वासन दिया जा रहा है। ब्रह्मदेव ने मनुष्य के हाथ से रावणवध का वरदान दिया है। अतः मैं मनुष्य शरीर धारण करूँगा। अब उस वंश को बतला रहे हैं। जिसमें अवतार ग्रहण करेंगे। सूर्यकुल उदार है। उसमें याचकों को विमुख नहीं फेरा जाता। उसी वंश में अवतीर्ण हूँगा। इससे अवतार का समय वैवस्वत मन्वन्तर सूचित किया।

कस्यप अदिति महा तप कीन्हा। तिन्ह कहुँ मैं पूरब त्रर दीन्हा॥
ते दसरथ कौसल्या रूपा। कौसलपुरी प्रगट नर भूपा॥२॥

अर्थ : कश्यप और अदिति ने बड़ा भारी तप किया था। उनको मैं पहिले ही वर दे चुका हूँ। वे ही दशरथ और कौसल्या के रूप से कोसलपुरी में मनुष्यों के राजा होकर प्रकट हुए हैं।

व्याख्या : जय और विजय के रावण होने के प्रकरण में कहा है : एकबार तिनके हित लागी। धरेउ सरीर भगत अनुरागी। कस्यप अदिति तहाँ पितु माता। दसरथ कौसल्या विख्याता। भाव यह कि जिस कल्प में जय और विजय रावण

कुम्भकर्ण हुए और उनके वध के लिए जो रामावतार हुआ उसके पिता माता दशरथ और कौसल्या, कश्यप अदिति के अवतार थे। वही बात आकाशवाणी कह रही है कि कश्यप अदिति ने बड़ा भारी तप किया था। उन्हें मैं पहिले ही पुत्र होने का वर दे चुका हूँ और वे दशरथ कौसल्या होकर कोसलपुरी में अवतीर्ण भी हो चुके हैं। भाव यह कि स्तुति के पहिले से ही कार्यारम्भ हो चला है।

तिन्हके गृह अवतरिहौं जाई। रघुकुल तिलक सो चारिउ भाई ॥
नारद वचन सत्य सब करिहौं। परम सक्ति समेत अवतरिहौं ॥३॥

अर्थ : सो हम चार भाई उनके घर में रघुकुलतिलक होकर अवतार ग्रहण करेंगे। नारद का वचन मैं सब सत्य करूँगा और परमशक्ति के सहित अवतार धारण करूँगा।

व्याख्या : उन्हीं नर भूप : दशरथ के घर में हम चार भाई होकर अवतार ग्रहण करेंगे। भाव यह कि देवता का आयुध वाहन आदि उनके स्वरूप से पृथक् नहीं होता। इस रामावतार में शेष भगवान् लक्ष्मण हुए। पाञ्चजन्य : शंख ने भरत का अवतार धारण किया और सुदर्शनचक्र ने शत्रुघ्न का अवतार धारण किया। इससे स्पष्ट है कि यह आकाशवाणी उस कल्प की है जिसमें जय विजय रावण कुम्भकर्ण हुए थे और वैकुण्ठनाथ का रामावतार हुआ था।

दो कल्पों की आकाशवाणियाँ कहकर अब उस कल्प की आकाशवाणी कहते हैं जिसमें नारदजी के शाप से भगवान् क्षीरशायी का रामावतार और रुद्रगणों का रावणावतार हुआ था। इस कल्प की आकाशवाणी में स्पष्ट उल्लेख है कि नारद का वचन सत्य करेंगे। भाव यह कि राजा का शरीर धारण करेंगे। स्त्रीविरह में व्याकुल होंगे। बन्दरों से सहायता माँगेंगे तथा समर में रावणकुम्भकर्णरूप रुद्रगणों को मुक्ति देंगे। परम शक्ति के साथ अवतार लेने की चरचा करने का यह कारण है कि स्त्री के विरह में विकल होने का शाप नारदजी ने दिया[१] है। इसलिए स्त्री बनने के लिए परम शक्ति के अवतीर्ण होने की नितान्त आवश्यकता है। अवतारी एक होने से जलन्धर कल्प की आकाशवाणी का पृथक् निर्देश नहीं है। उस कल्प की कथा का भी नारदकल्प की कथा में अन्तर्भाव है।

हरिहौं सकल भूमि गरुआई। निर्भय होहु देव समुदाई ॥
गगन ब्रह्म बानी सुनि काना। तुरत फिरे सुर हृदय जुड़ाना ॥४॥
तब ब्रह्मा धरनिहि समुझावा। अभय भई भरोस जिय आवा ॥५॥

अर्थ : मैं भूमि की सब गरुआई हरण करूँगा। देवता लोग निर्भय हो जाओ। ब्रह्म की की हुई आकाशवाणी कान से सुनकर देवता-लोग तुरन्त लौटे। हृदय

---

१. क्षीरशायी का ही रामावतार दो कल्पों में हुआ। अतः पृथक् पृथक् आकाशवाणी नहीं लिखी।

शीतल हो गया। तब ब्रह्मदेव ने पृथ्वी को समझाया वह भी निर्भय हुई। जी में भरोसा आगया।

व्याख्या : पृथ्वी ने कहा था। गिरि सर सिंधु भार नहिं मोही। जस मोहि गरुअ एक परद्रोही। अतः कहते हैं : हरिहौं सकल भूमि गरुआई। रावण ही नहीं निशिचरहीन पृथ्वी की जायगी। जनि डरपहु से उपक्रम और निर्भय होहु से उपसंहार किया। अब फिर ब्रह्म के रामावतार की कथा उठा लेते हैं। इसी भाँति ब्रह्म के रामावतार की कथा ग्रन्थकार कहेंगे। पर बीच में अन्य रामावतारों की कथाओं से जो भेद पड़ता जायगा उसे इसी भाँति दिखलाते चले जायेंगे। यही इस प्रबन्ध की विचित्रता है।

ब्रह्म की की हुई आकाशवाणी को सब देवताओं ने सुना। उनका कलेजा जल रहा था। क्योंकि रावण के अत्याचार से सबलोग बड़े दुःखी थे। आकाशवाणी सुनने के बाद देवता लोग ब्रह्मदेव के शिक्षानुसार कार्य करने के लिए तुरन्त लौट पड़े। ब्रह्मदेव ने जो शिक्षा दी वह आगे कही जायगी।

ब्रह्मदेव ने पृथ्वी को समझाया। यथा :

तेरी सुता ह्वैके आदिशक्ति उपजैगी नेह लावैगो विदेह औ पिलावैगी सुनयना छीर।
धनु मख व्याज साज व्याह का सजेंगे राम, आवैंगी अवध वन जानकी परैगी भीर॥
ताके हेतु रावन को सकुल विनास ह्वै है, नास ह्वैहै भार अब धरती धरै तू धीर।
विपति कहैया सुर संतन सहैया विजय आनँद करैया तेरी वेग ही हरैगो पोर॥

पृथ्वी ब्रह्मदेव के उपदेश से हरिपद का स्मरण करती थी। उसने बात नहीं समझी। जब ब्रह्मदेव ने समझाया कि आकाशवाणी हुई है। उसका तात्पर्य यह है। तब उसके मनमें भरोसा हुआ और निर्भय हो गई।

दो. निज लोकहि बिरंचि गे, देवन्ह इहै सिखाइ।
बानर तनु धरि धरनि महुँ, हरिपद सेवहु जाइ ॥१८७॥

अर्थ : ब्रह्मदेव देवताओं को यह सिखलाकर कि तुमलोग बानर का शरीर धारण करके पृथ्वी पर जाकर हरिपद की सेवा करो। अपने लोक में चले गये।

व्याख्या : आकाशवाणी के ऊपर ब्रह्मदेव की टीका हुई : जैसे उमा के तप के समय आकाशवाणी की टीका की थी। देवताओं को आदेश दिया कि तुमलोग भी बानर होकर अवतीर्ण होओ और प्रभु के आने की बाट जोहो। ऐसा कहकर ब्रह्माजी रुद्रलोक से ब्रह्मलोक चले गये। कुछ महात्माओं का मत है कि ब्रह्मस्तुति ब्रह्मसभा में ही हुई थी। निजलोकहि का अर्थ यह है कि ब्रह्मदेव 'अपने' तक को कहकर अन्तःपुर में चले अर्थात् मैं भी अवतीर्ण होऊँगा।

गए देव सब निज निज धामा। भूमि सहित मन कहुँ विश्रामा॥
जो कछु आयसु ब्रह्मा दीन्हा। हरखे देव बिलंब न कीन्हा ॥१॥

अर्थ : सब देवता अपने अपने स्थान को गये। पृथ्वी के सहित उनके मन को

विश्राम हुआ। जो कुछ आज्ञा ब्रह्मा ने दी थी : उसके करने में : देवगण हर्षित हुए और देर नहीं की।

व्याख्या : देवता लोग अपने अपने लोक को गये। पृथ्वी भी अपने लोक को गई। आये थे मनसे विकल पर गये मनमें विश्राम लिए हुए। अभी दुःख हटा नहीं पर शीघ्र हटेगा। इस दृढ़ आशा मे मनमें विश्राम है।

किस भाँति कौन कौन कहाँ वानर रूप से प्रकट हो। इस आज्ञा के पालन में देर न हुई। क्योंकि आज्ञा पालन में विषाद नहीं है। वानर बनने में हर्ष है। वानर बनकर भी यदि प्रभु की सेवा सुलभ हो तो अहो भाग्य है। यथा : जानि राम सेवा सरस समुझि करब अनुमान। पुरुखा ते सेवक भये हर ते भे हनुमान। प्रभु की रक्षा में निशाचरों से बदला लेंगे। वड़ा हर्ष का समय है इसलिए देर न की।

वनचर देह धरी छिति माहीं। अतुलित बल प्रताप तिन्ह पाहीं॥
गिरि तरु नख आयुध सब वीरा। हरि मारग चितवहिं मतिधीरा॥२॥

अर्थ : पृथ्वी में उन लोगों ने बन्दर का शरीर धारण किया। और उन्हें बेपरिमाण बल और प्रताप था। इन सब वीरों का हथियार पर्वत, नख और पेड़ था। वे मतिधीर हरि का रास्ता देख रहे थे।

व्याख्या : पृथ्वीलोक में लोकपालों ने बन्दर का देह धारण किया था। इसलिए कहते हैं कि : अतुलित बल प्रताप तिन पाहीं। नहीं तो बन्दर में इतना बल और प्रताप कहाँ? अथवा देवशरीर में जितना बल प्रताप था उतना उन्हें बानर शरीर में हुआ। यथा : रामकृपा अतुलित बल तिनहीं। तृन समान त्रैलोकहि गिनहीं।

बानरी देह होने से अपने अपने आयुधों से काम नहीं लेते। पर्वत, नख और वृक्ष ही उनके आयुध हो रहे थे। लङ्काविजय की बड़ी अभिलाषा है पर हरि के आगमन की प्रतीक्षा कर रहे थे। प्रभु आ जायँ तो काम चले।

गिरि कानन जहँ तहँ भरिपूरी। रहे निज निज अनीक रचि रूरी॥
यह सब रुचिर चरित मैं भाषा। अब सो सुनहु जो बीचहि राषा॥३॥

अर्थ : पर्वत और जङ्गलों में अपनी अपनी सुन्दर सेना रचकर जहाँ तहाँ भर रहे थे। यह सब सुन्दर चरित्र मैंने कहा। अब उसे सुनो जो बीच में छोड़ रक्खा है।

व्याख्या : तैंतीस कोटि देवता हैं। उनके गण कितने हैं जिनकी संख्या नहीं। सो सबके अवतीर्ण होने से पर्वत वन सब बानरमय हो गया। लोकपालावस्था में जो सेना जिसकी थी वही यहाँ भी है।

रावणावतार के चरित को रुचिर कहते हैं। पुनीत नहीं कह सकते। बहुत वड़े दर्जे के जीव शापित होकर रावण होते हैं। उन्हीं के कारण साक्षात् प्रभु का मृत्युलोक में नर शरीर द्वारा आगमन होता है। अतः रावण का भी चरित रुचिर है। वह जो स्वांग लेता है ऐसा पूरा निर्वाह करता है कि सिवा प्रभु के आने के

उपायान्तर नहीं रह जाता। पुनि प्रभु कहहु राम अवतारा : उमा के इस प्रश्न का उत्तर तथा काकभुसुण्डि का : प्रभु अवतार कथा पुनि गाई प्रसङ्ग का आरम्भ होता है। 'द्वै हौ अवधभुआल तब मैं होव तुम्हार सुत' यहाँ से प्रसङ्ग छूटा हुआ है। अतः अवधपुरी रघुकुल मनि राऊ से उसे फिर आरम्भ करते हैं।

रामावतार प्रसङ्ग : [1]दूसरे प्रश्न का उत्तर

अवधपुरी रघुकुल मनि राऊ। वेद विदित तेहि दसरथ नाऊ ॥
धर्म धुरंधर गुन निधि ग्यानी। हृदय भगति मति सारंगपानी ॥४॥

अर्थ : अवधपुरी में रघुकुल के मणिरूप राजा थे। उनका नाम [2]दशरथ वेद में विदित है। वे धर्मधुरन्धर गुणों के निधि तथा ज्ञानी थे। भगवान् शार्ङ्गपाणि : विष्णु की भक्ति और मति उनके हृदय में थी।

व्याख्या : अवधपुरी से उत्तम देश कहा। रघुकुल से उत्तम वंश कहा। उस कुल में भी मणि थे। मणि के चार गुण होते हैं : १. सुजाति २. शुचि ३. अमोल और ४. सब भाँति सुन्दर। सो रघुकुल से सुजाति कहा। धर्मधुरन्धर से शुचि कहा। गुणनिधि से अमोल कहा। और ज्ञानी, तथा : हृदय भगतिमति सारँग पानी से सब भाँति सुन्दर कहा। वेदविदित से अधिकारी कहा। वेद में व्यक्ति का नाम नहीं होता। पद का नाम होता है। जो उस पद के योग्य होगा सो दशरथ होगा। तीन कल्पों में से जिनमें जय विजय या रुद्रगण रावण कुम्भकर्ण हुए थे अथवा जलन्धर रावण हुआ था जिनमें भगवान् विष्णु का रामावतार हुआ था भगवान् कश्यप ने दशरथ पद को अलंकृत किया था। परन्तु जिस कल्प में भानुप्रताप रावण हुए थे और साक्षात् ब्रह्म ने अवतार धारण किया था भगवान् स्वायम्भू मनु दशरथ हुए। इसलिए कहते हैं कि दशरथ नाम वेद विदित है।

दो. कौसल्यादि नारि प्रिय, सब आचरन पुनीत।
पति अनुकूल प्रेम दृढ़, हरिपदकमल विनीत ॥१८८॥

अर्थ : उनकी प्रिय रानियाँ कौसल्या आदि सबका पवित्र आचरण था। वे पति के अनुकूल थीं। उनका हरि के चरणों में दृढ़ प्रेम था और वे विनीत थीं।

व्याख्या : कौसल्या पट्टाभिषिक्ता थीं। अतः उन्हें पहिले कहा। आदि से कैकेयी सुमित्रा का भी ग्रहण किया। 'प्रिय' से दक्षिण नायक कहा। सब रानियों का पुनीत आचरण कहा। यथा : तुम गुरु विप्र धेनु सुर सेवी। तसि पुनीत कौसल्या देवी। पति अनुकूल से पतिव्रत धर्म कहा। प्रेम दृढ़ हरिपद कमल से पति के कल्याण के लिए ईश्वराराधन कहा और विनीत से नम्रस्वभाव कहा।

---

१. पुनि कहहु राम अवतारा।

२. चिन्मयेऽस्मिन् महाविष्णौ जाते दशरथे हरौ। रा. ता.

एकवार भूपति मनमाहीं । भइ गलानि मोरे सुत नाहीं ॥
गुरुगृह गयेउ तुरत महिपाला । चरन लागि करि विनय विसाला ॥१॥

अर्थ : एकवार राजा के मनमें ग्लानि हुई कि मुझे पुत्र नहीं है। तुरन्त राजा गुरुजी के घर गये। चरणों में प्रणाम किया और वड़ी विनय करके :

व्याख्या : ख्याल तो वहुत वार हुआ। पर एकवार ग्लानि हुई कि मुझे सब कुछ है पर पुत्र नहीं है। भूपति कहने का भाव यह कि सम्पूर्ण राज्य का भार जिस पर है उसे बेटा नहीं कि वोझा उसपर छोड़ सकें। सबको वेटे हैं मुझे नहीं है। वेटे के लिए ही इतने विवाह किये पर किसी को पुत्र नहीं हुआ। पुत्री की बात नहीं कहते। क्योंकि शान्ता नाम की पुत्री सुनी जाती है। पुत्र न होने से ग्लानि हुई। अपुत्रस्य गृहं शून्यम्। अपुत्रस्य गतिर्नास्ति। पुत्रेणैवायं लोको जय्यः। नीतिशास्त्र कहता है जिसे पुत्र नहीं उसका घर सूना रहता है। धर्मशास्त्र कहता है कि जिसे पुत्र नहीं उसकी गति नहीं होती। स्वयं वेद कहते हैं कि पुत्र से ही यह लोक जीता जाता है। अतः ग्लानि होने का यथेष्ट कारण था।

महिपाल हैं। फिर भी गुरुजी को वुलाया नहीं। स्वयं उनके घर गये। परम विश्वास गुरुचरणों में है कि उन्हीं के पूजने से सव कुछ मिल सकता है। यथा : मोहि सम यहु अनुभयेउ न दूजे। सव पाएउ रजपायन पूजे। चरण लागि से पूजन कहा। और विनय विसाल से स्तुति कहते हैं।

निज दुख सुख सब गुरुहि सुनाएउ। कहि वसिष्ठ बहुविधि समुझाएउ ॥
धरहु धीर होइहहिं सुत चारी। त्रिभुवन विदित भगत भय हारी ॥२॥

अर्थ : अपना दुःख सुख गुरुजी को सुनाया। सुनकर वसिष्ठजी ने अनेक विधि से समझाया कि धैर्य धरो। चार बेटे होंगे। उनकी ख्याति तीनलोक में होगी। वे भक्तों का भय हरण करनेवाले होंगे।

व्याख्या : राजा हैं सव कार्य विधिपूर्वक करते हैं। पहिले प्रणाम किया तत्पश्चात् स्तुति की फिर दुःख सुख सुनाया कि इक्ष्वाकु से लेकर जो सन्ततिसूत्र मुझ तक चला आया उसका विच्छेद हुआ चाहता है। इतने व्याह किये। पर पुत्र किसी से न हुआ। सुख भी सुनाया कि चरणों की कृपा से और किसी बात का घाटा नहीं है। पुंनाम नरक से त्राण करनेवाला कोई नहीं है। कहि वसिष्ठ बहु विधि समुझावा। कहने से पता चला कि गुरुजी का नाम वसिष्ठ था। उन्होंने वहुत विधान से समझाया। यथा :

सवैया : सुनु राजन सृष्टि विरंचि रची, जबहीं तबहीं रचि यज्ञ संवारयौ।
बढ़िहैं एहिसेइ प्रजा सिगरी, बिगरी बनिहैं अस बैन उचारयौ ॥
सुरपूजित ह्वै सुख साज सजें, विजयानंद नीति इहै निरधारयौ।
तुम दिच्छित ह्वै सब इच्छित सिद्ध, करो हमने यह मन्त्र विचारयौ ॥१॥

ऋषि श्रृङ्ग तपोधन हैं एहिकाल, विशाल प्रभाव सगे तुम्हरे।
सब ईति की भोति मिटी जेहिके, पग देत अनंदित भे सिगरे॥
तेहि बोलिके यज्ञ को साजसजो, विजयानंद लाभ सही डगरे।
सबसिद्धि को एक ही साधन है. हरितोषण यज्ञ मते हमरे॥२॥
अतिभीत दशानन के भय ते, सब देव पुकार कियो हरिपाहीं।
सब ओर निशाचर छाइ रहे, अवतार बिना नहिं दुष्ट नसाहीं॥
एहि काल भुआल सुऔसर भूरि, करो तुम यत्न असम्भव नाहीं।
प्रकटैं सुत ह्वै तुम्हरे विजयानंद, दीनदयाल सोई महि माहीं॥३॥

स्वर्ग और मर्त्यलोक से जो यज्ञरूप व्यापार चलता है उसी से लाभ उठाओ। वसिष्ठजी ग्लानि करने का निषेध करते हैं। क्योंकि महाराज अधीर हो उठे थे। एक के लिए झंखते हो चार होंगे। यज्ञ से पुत्र होना कहकर दिव्य जन्म कहा। और त्रिभुवन विदित भगत भयहारी कहकर दिव्य कर्म कहा। इस भाँति स्पष्ट कह दिया कि तुम्हारे यहाँ अवतार होगा।

श्रृंगी रिषिहि वसिष्ठ बोलावा। पुत्र काम सुभ जग्य करावा॥
भगति सहित मुनि आहुति दीन्हें। प्रगटे अगिनि चरू कर लीन्हें॥३॥

अर्थ : वसिष्ठजी ने श्रृंगी ऋषि को बुलाया और पुत्रेष्टि यज्ञ कराया। भक्ति के सहित मुनिजी ने आहुति दी। हाथ में चरु लिये अग्निदेव प्रकट हुए।

व्याख्या : श्रृङ्गीऋषि, शान्ता के भर्ता महाराज के जामाता थे। जवान थे। तपबल बढ़ा हुआ था। आचार्य श्रृङ्गीऋषि हुए। वसिष्ठजी भी सम्मिलित थे। पर यज्ञ कराया श्रृङ्गीऋषि से। भक्ति से कर्म का उत्कर्ष कहते हैं। जो भक्ति के सहित पूर्णाहुति दी तो दिव्य चरु लिये हुए अग्निदेव स्वयं प्रकट हो गये। स्थूल चरु : हवि दिया गया। बदले में दिव्य चरु मिल रहा है। आराधना का मूल श्रद्धा और भक्ति है।

जो वसिष्ठ कछु हृदय विचारा। सकल काजु भा सिद्ध तुम्हारा॥
यह हवि बाँटि देहु नृप जाई। जथा जोग जेहि भाग बनाई॥४॥

अर्थ : राजा से कहा : जो कुछ वसिष्ठ ने हृदय में विचारा था वह सब कार्य तुम्हारा सिद्ध हुआ। राजन् ! इस हवि को ले जाकर जिसको जैसा उचित है वैसा भाग बनाकर बाँट दो।

व्याख्या : अग्निदेव राजा से कहते हैं कि वसिष्ठजी का विचार अमोघ है। उनके विचारानुसार सब कार्य सिद्ध हुआ अर्थात् त्रिभुवन विदिति भक्त भयहारी चार पुत्र होंगे। राजन् ! तुम जाकर उस दिव्य हवि को रानियों में बाँट दो। जो जितने के योग्य हो उसे उतना भाग बनाकर दो। किसको कितना दिया जायगा इसका वर्णन आगे चलकर करेंगे।

दो. तब अदृश्य भए पावक, सकल सर्भाहि समुझाइ ।
परमानंद मगन नृप, हरख न हृदय समाइ ॥१८९॥

अर्थ : तब सब सभा को समझाकर अग्निदेव अन्तर्धान हो गये । राजा परमानन्द में मग्न हैं । उनके हृदय में हर्ष समाता नहीं ।

व्याख्या : अग्निदेव ने केवल राजा को ही नहीं सम्पूर्ण सभा को समझाया कि :

दो. चरु विभाग विधि चित्त दै सुनौ कहौं मैं टेर ।
सावधान धारण करो यामें परे न फेर ॥१॥
ह्लो श्री कीरतिसी नृपहिं पटरानी हैं तीन ।
इनहीं में चरु बाँटिवे को विधि सुनहु प्रवीन ॥२॥
आधो चरु पहिले नृपति कौसल्या को देय ।
करै भाग द्वै शेष को एक कैकयी लेय ॥३॥
दूजो को द्वै भाग करि नृप प्रेरित दोउ रानि ।
देइ सुमित्रा को मुदित सर्वाहि भाँति सुखमानि ॥४॥
उलटफेर चरु में भये अनरथ होत महान ।
परशुराम कौशिक जनम जानत सकल जहान ॥५॥
सावधान ह्वै आप सब करवावहु यह काज ।
सकल जगत कल्याण को बीजारोपण आज ॥६॥

ऐसा समझाकर अग्निदेव अदृश्य हो गये । देवता के प्रत्यक्ष होकर हवि देने और मनोरथ सिद्धि का आश्वासन पाने से राजा के हृदय में हर्ष नहीं समा रहा है । यही परमानन्द है । ज्ञानी को ब्रह्मानन्द और भक्त को परमानन्द होता है ।

तर्बाहि राय प्रिय नारि बोलाईं । कौसल्यादि तहाँ चलि आईं ॥
अर्ध भाग कौसल्यहि दीन्हा । उभय भाग आधे कर कीन्हा ॥१॥

अर्थ : तब राजा ने प्रिय रानियों को बुलाया । कौसल्या आदि वहाँ चली आईं । आधा भाग कौसल्या को दिया । और आधे का दो भाग किया ।

व्याख्या : पत्नीशाला से यज्ञमण्डप में रानियों को बुलाया । कौसल्या, कैकेयी, सुमित्रा वहाँ आईं । वसिष्ठ और ऋषि शृङ्गि की अनुज्ञा से राजा ने पहिले चरु का आधा भाग कौसल्या को दिया और शेष आधे का दो भाग किया । क्योंकि कौसल्या सबसे बड़ी पट्टाभिषिक्ता महिषी थीं । अतः पहिले इन्हीं को दिया गया । फलतः पहिले इन्हीं को पुत्र हुआ । शेष आधे का दो भाग किया ।

कैकेई कहँ नृप सो दएऊ । रहेउ सो उभय भाग पुनि भएऊ ॥
कौसल्या कैकेई हाथ धरि । दीन्ह सुमित्रहि मन प्रसन्न करि ॥२॥

अर्थ : उसे राजा ने कैकेयी को दिया । जो बचा उसका दो भाग किया । और कौसल्या तथा कैकेयी के हाथ पर रखकर प्रसन्न मन से सुमित्रा को दिया ।

व्याख्या : यदि हवि को सोलह आने मान लिया जाय तो उसमें आठ आना कौसल्या को दिया। चार आना कैकेयी को दिया। और दो दो आना कौसल्या और कैकेयी के हाथ पर रखकर प्रसन्न मन से सुमित्रा को दिया। प्रसन्न मन से इसलिए कहा जिसमें कोई यह न समझे कि कौसल्या और कैकेयी के हाथ पर रखकर सुमित्रा को देने में राजा की कोई अनादर की दृष्टि सुमित्रा पर थी। बल्कि इसी भाँति विभाग करके इसी क्रम से देने को अग्नि भगवान् समझा गये थे।

पहिले कौसल्या को दिया। जिसमें पहिले पुत्रोत्पत्ति उन्हीं को हो। उसके पीछे कैकेयी को दिया जिसमें कौसल्या को पुत्र होने के बाद कैकेयी को पुत्र हो। कौसल्या और सुमित्रा के हाथ पर रखकर सुमित्रा को देने का भाव यह कि इनको पुत्रोत्पत्ति सबके पीछे हो और दो पुत्र हों। एक कौसल्या के पुत्र का अनुगामी हो। और दूसरा कैकेयी के पुत्र का अनुगामी हो। हवि के विभाग का भी भिन्न भिन्न रामायणों में भिन्न भिन्न प्रकार है। उसकी व्यवस्था कल्पभेद से समझ लेनी चाहिए।

एहि विधि गर्भ सहित सब नारी। भईं हृदय हर्षित सुख भारी॥
जादिन तें हरि गर्भहि आए। सकल लोक सुख संपति छाए॥३॥

अर्थ : इस विधि से सब नारियाँ गर्भवती हुईं। वे हृदय से हर्षित हुईं। और उन्हें बड़ा सुख हुआ। जिस दिन से हरि गर्भ में आये। सब लोकों में सुख सम्पत्ति छा गई।

व्याख्या : हवि भक्षण से गर्भ हुआ। यह दिव्य जन्म की विधि है। जो विधि साधारणतः गर्भ की शुक्रशोणित संयोग से है उस विधि से गर्भ धारण नहीं हुआ। रानियाँ गर्भ धारण से हर्षित हुईं। वन्ध्या होने का कलङ्क मिटा और भारी सुख हुआ। गर्भ में स्त्रियों को बड़ी पीड़ा होती है। पीली पड़ जाती हैं। परन्तु इस गर्भ से भारी सुख हुआ। शरीर आनन्द से भर उठा।

हवि प्राशनकाल ही गर्भधारण काल था। उसी दिन से सारे लोकों में सुख सम्पत्ति छा गई। हरि के गर्भ में आने का प्रभाव सम्पूर्ण लोकों पर पड़ा।

मंदिर महँ सब राजहिं रानी। सोभा सील तेज की खानी॥
सुख जुत कछुक काल चलि गयऊ। जेहि प्रभु प्रगट सो अवसर भएउ॥४॥

अर्थ : मंदिर : राजमहल में रानियाँ विराजती हैं। वे शोभा, शील और तेज की खानि हैं। सुख के सहित कुछ काल चला गया। वह अवसर आया जब कि प्रभु प्रकट होते हैं।

व्याख्या : पत्नीशाला से घर आईं। अपने अपने महलों में सुशोभित हैं। गर्भ के कारण शोभा, शील और तेज बहुत अधिक बढ़ गया।

पहिले कह आये हैं कि सुख भारी हुआ। अब कहते हैं वह सुख यावत् गर्भकाल बना रहा। इस भाँति कुछ समय बीता। वाल्मीकि का मत है कि बारह महीने पर रामजी का जन्म हुआ। यथा : ततश्च द्वादशे मासे चैत्रे नावमिके तिथौ। अध्यात्म का मत है कि : दशमे मासि कौसल्या सुषुवे पुत्रमद्भुतम्। इससे पता चलता

है कि कल्पभेद से गर्भवासकाल में भेद है। गोस्वामीजी को चार कल्प की कथा साथ कहनी है। अतः कछु काल कहने से सबका निर्वाह हो जाता है। रामावतार का समय नियत है। जब वैसी परिस्थिति तथा ग्रहस्थिति आवेगी तभी रामावतार की सम्भावना है। सो वैसा काल आगया। उसी को स्पष्ट करते हैं :

दो. जोग लगन ग्रह वार तिथि, सकल भए अनुकूल।
चर अरु अचर हरष जुत, रामजनम सुख मूल ॥१९०॥

अर्थ : योग, लग्न, ग्रह, वार, तिथि सब अनुकूल हुए। चर और अचर सब हर्षित हुए। क्योंकि रामजन्म सुख का मूल है।

व्याख्या : जब श्रीरामावतार होता है तो वेदसागर नामक योग पड़ता है। कर्क लग्न होता। कर्क के चन्द्र और गुरु, कन्या के राहु, तुला के शनैश्चर, मकर के मङ्गल, मीन के केतु और शुक्र, मेष के सूर्य और वृष के बुध होते हैं। वार मङ्गल, नक्षत्र पुनर्वसु। ऐसी अनुकूल परिस्थिति में हरि अवतीर्ण होते हैं। चर की कौन कहे अचर में भी आनन्द का उद्रेक हो उठता है; क्योंकि रामजन्म सुख का मूल है।

सकल भये अनुकूल का भाव यह है कि प्रकृति में महान् परिवर्त्तन होता है। पाँच ग्रह उच्च के होते हैं। पुनर्वसु नक्षत्र होने से यह पता लगता है कि नौमी को मीन के दशम अंश पर सूर्य रहे सो सूर्य एकाएक मेष के दशम अंश पर परम उच्च होने के लिए आगये। इस भाँति सभी अनुकूलता हो गई। ऐसी परम अद्भुत घटना रामावतार में ही होती है। परब्रह्म परमात्मा के सूर्य कुल में अवतीर्ण होने से सूर्य की स्थिति स्वभावतः परम उच्च हो जाती है[1]।

श्रीरामजन्मकुण्डलीयम्

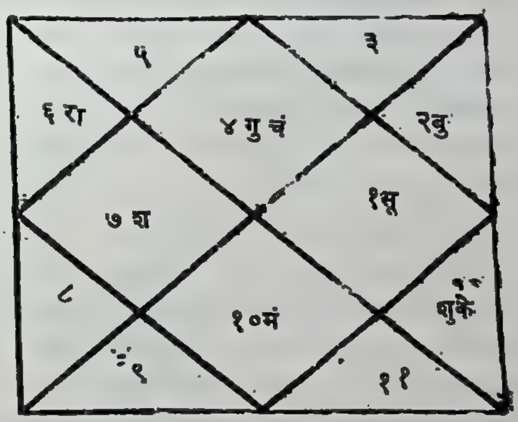

१. आध्यात्म रामायाण बतलाता है कि : अवताराः सुबहवो विष्णोर्लीलानुकारिणः। तेषां सहस्रसदृशो रामो ज्ञानमयः शिवः। अतः अवतारों की कुण्डलियों में भेद पड़ना स्वाभाविक है। श्रीरामावतार क्या है, यह रामायणों से ही नहीं मालूम होता जो कि उनके गुणानुवाद के लिए ही बने हैं; बल्कि वह अलौकिकी ग्रहस्थिति बतलाती है जिसका फलादेश महर्षि भृगु ने किया है। पाठकों की जानकारी के लिए हिन्दी अनुवाद सहित फलादेश निम्नलिखित है :

अथ वेदसागरस्तवः

(पूर्णं त्रिशत्क्षेपा च) कर्कटे चन्द्रवाक्पती। कन्यायां सिंहिकापुत्रस्तुलास्थो रविनन्दनः ॥
पाताले मेदिनीपुत्रो वृषस्थश्चन्द्रमासुतः। आकाशे मेषभे सूर्यः झषस्थौ केतुमार्गवो ॥'

नवमी तिथि मधु मास पुनीता । सुकल पच्छ अभिजित हरि प्रीता ॥
मध्य दिवस अति सीतन घामा । पावन काल लोक बिश्रामा ॥१॥

अर्थ : नवमी तिथि थी और पवित्र चैत्र मास। शुक्ल पक्ष था और भगवान् को प्रिय अभिजित्त मुहूर्त मध्याह्न का समय। अत्यन्त शीत भी नहीं। कड़ी धूप भी नहीं। संसार में विश्राम योग्य वह पवित्र समय था।

सर्वग्रहानुमानेन योगोऽयं वेदसागरः । वेदसागरके जातः पूर्वजन्मनि भार्गव ॥
पूर्णब्रह्म स्वयं कर्ता स्वप्रकाशो निरञ्जनः । निर्गुणो निर्विकल्पश्च निरीहः सच्चिदात्मकः ॥
गिराज्ञानश्च गोतीत इच्छाकारी स्वरूपधृक् । विना घ्राणं सदाघ्राणी विना नेत्रे च वीक्षकः ॥
अकर्णेन श्रुतं सर्वं गिराहीनश्च भाषितम् । करहीनं कृतं सर्वं कर्मादिकं शुभाशुभम् ॥
पदहीना गतिः सर्वा कुशला सकला क्रिया । स्वरूपे रूपहीनश्च समर्थः सर्वकर्मसु ॥
त्रैविद्यस्त्रिगुणः कालस्त्रिलोकी सचराचरः । महेन्द्रो देवताः सर्वा नागकिन्नरपन्नगाः ॥
सिद्धविद्याधरो यक्षा गन्धर्वाः सकला कवे । राक्षसाः दानवाः सर्वे मानवा वानराण्डजाः ॥
सागराश्च खगा वृक्षाः पशुकीटादयस्तथा । शैला नद्यः कलाः सर्वा मोहमायादिकाः क्रिय ॥
इच्छा माया त्रिवेदाश्च निर्मिता विविधाः क्रियाः । शरण्यः सर्वदा शान्तः अलक्ष्यो लक्षकः सदा ॥
जरामरणविहीनश्च महाकालस्य चान्तकः । सर्वं सर्वेण हीनोऽपि सचराचरदर्शकः ॥
पूर्वापरक्रिया ज्ञानी शृणु शुक्र न चान्यथा । प्रेरितः सर्वदेवैश्च कालान्तरगते कवे ॥
धरित्री ब्रह्मणो लोके जगाम दुःखपीडिता । शिवो ब्रह्मा सुराः सर्वे प्रार्थयाञ्चक्रतुर्मुहुः ॥
सुदुःखं वचनं श्रुत्वा देववाणी भवेत् कवे । धैर्यमाध्वं सुराः सर्वे प्रार्थना सफला भवेत् ॥
श्रुत्वा हृष्टाः सुराः सर्वे जगाम क्षितिमण्डले । नरवानररूपञ्च धृत्वा ब्रह्मेच्छया कवे ॥
यत्र तत्र सुराः सर्वे हरिदर्शनमानसाः । अधर्मनिरतान् लोकान् दृष्ट्वा कष्टेन पीडितान् ॥
तत इच्छाप्रभावेण गोब्राह्मणसुरार्थकम् । मायामानुषरूपेण जगदानन्दहेतवे ॥
आजगाम धरापृष्ठे कोशलाख्ये महापुरे । इक्ष्वाकुवंशे भो शुक्र भूत्वा मानुषरूपधृक् ॥
सरय्वा दक्षिणे भागे महापुण्ये च क्षेत्रके । मधुमासे च धवले नवम्यां भौमवासरे ॥
पुनर्वसौ च सौभाग्ये मातृगर्भात्समुद्भवः । मन्मथानां च कोटीनां सुन्दरः सागरोपमः ॥
श्यामाङ्गं मेघवर्णाभं मृगाक्षं कान्तिमत्परम् । भव्याङ्गं भव्यवर्णञ्च सर्वसौन्दर्यसागरम् ॥
सर्वाङ्गेषु मनोहरमतिबलं शान्तमूर्ति प्रशान्तम् । वन्दे लोकाभिरामं मुनिजनसहितं सेव्यमानं शरण्यम्॥
कोटिवाक्पतिश्रीमांश्च कोटिभास्कर भास्वरः । दयाकोटिसागरोऽसौ यशः शीलपराक्रमी ॥
सर्वसारः सदा शान्तः वेदसारो हि भार्गव । दशवर्षसहस्राणि भूतले स्थितिमानसौ ॥
चतुर्दशसमाः शुक्र अभ्रमच्च वने वने । राक्षसानां वधार्थाय दुष्टानां निग्रहाय च ॥
प्रादुर्भूतो जगन्नाथो मायामानुषवत्कवे । अयोध्यानगरे शुक्र बहुवत्सरसहस्रकम् ॥
नानामुनिगणैर्युक्तो विहरन् धर्मवत्सलः । सर्वे साकं स्वमायाभिरन्तर्धानमियात्कवे ॥
इच्छया लीलया युक्तः स्वीये लोके वसेत्सदा । माया क्रीडा पुनर्भयात् काले काले युगे युगे ॥
लोकानाञ्च हितार्थाय कालो चैव विशेषतः । पठनाच्छ्रवणात्पुण्यं कल्याणं सततं भवेत् ॥

व्याख्या : नवमी तिथि से नवरात्रि का अन्तिम दिन कहा : भगवान् ने स्वयं कहा है कि ऋतुओं में कुसुमाकर : वसन्त मैं हूँ। उनमें भी प्रथम मास का देवपक्ष अति पुनीत है। अभिजित मुहूर्त हरि को प्रिय है। इसी में जन्म ग्रहण करते हैं। उजेले की पराकाष्ठा दोपहर का समय। प्रातःकाल होता तो शीत अधिक होता। जाड़ा का शीत सह्य है। पर चैत्र का शीत असह्य होता है। और मध्याह्नोत्तर

निर्मयं नात्र सन्देहः सत्यं सत्यं न संशयः।

श्रीभृगुसंहितायां श्रीभृगुशुक्रसंवादे षट्त्रिंशतिक्षेपान्तरे वेदसागरफलं समाप्तम्।

वेदसागरस्तव का हिन्दी अनुवाद : कर्क के चन्द्र और गुरु, कन्या के राहु, तुला के शनि, मकर के मङ्गल, वृष के बुध, मेष के सूर्य, मीन के शुक्र और केतु : यह वेदसागर योग है। हे भार्गव, वेदसागर में उत्पन्न होनेवाला, पूर्व जन्म में पूर्ण ब्रह्म, स्वयं कर्ता, स्वप्रकाश, निरञ्जन, निर्गुण, निर्विकल्प, निरीह, सच्चिदात्मा, गिराज्ञानगोऽतीत, इच्छानुकूल स्वरूप धारण करनेवाला था। बिना घ्राण के सूँघता था। बिना नेत्र के देखता था। बिना कान के सुनता था और बिना वाणी के बोलता था। बिना हाथ के शुभाशुभ कर्म करता था। बिना पैर के चलता था। स्वरूप से रूपहीन होने पर भी सब कार्यों में समर्थ था। वही वेदत्रयी रूप था। त्रिगुण था, कालरूप भी वही था, चर और अचर तीनों लोक-रूप भी वही था। महेन्द्र, देवता, नाग, किन्नर, पन्नग, सिद्ध, विद्याधर, यक्ष, गन्धर्वरूप भी वही था। राक्षस, दानव, मनुष्य, बन्दर, अण्डज, सागर, पक्षी, वृक्ष, पशु, कीटादिक, पर्वत, नदी : सब उसकी कला है। मोहादिक क्रियाएँ हैं। उनसे इच्छा, माया, तीनों वेदों और क्रियाकलाप का बनाया।

वह सदा शान्त, शरण्य, अलक्ष्य होने पर भी सदा लक्षक है। वह जरा-मरण-विहीन है और महाकाल का भी काल है। सबसे हीन होने पर भी सब कुछ है। चराचर का दर्शक है। हे शुक्र जी ! सुनो वह पहिली पिछली क्रियाओं को जानता है। इसमें सन्देह नहीं। हे कवि ! पूर्व काल में सब देवताओं से प्रेरित होकर दुःखी पृथ्वी ब्रह्मलोक को गई। शिव ब्रह्माजी तथा सब देवताओं ने बार-बार प्रार्थना की। हे कवि ! आर्तवाणी सुनकर देववाणी हुई : हे देवताओ ! धैर्य धारण करो, तुम लोगों की प्रार्थना सफल हुई। यह सुनकर देवता लोग प्रसन्न होकर पृथ्वीमण्डल में गये। ब्रह्माजी की इच्छा से सबने वानर का रूप धारण किया और जहाँ तहाँ हरिदर्शन की लालसा से ठहरे।

संसार में अधर्म में लगे हुए लोगों को कष्ट से पीड़ित देखकर इच्छा के प्रभाव से गो-ब्राह्मण और देवता के लिए माया से मनुष्य रूप धारण करके जगत् के आनन्द के लिए पृथ्वी पर कोशलपुर में, हे शुक्र ! इक्ष्वाकुवंश में सरयू के दक्षिण भाग में अवतीर्ण हुए। चैत्र सुदी नवमी को मङ्गलवार, पुनर्वसु नक्षत्र में उत्पन्न हुए। कोटि काम-सी सुन्दरता, मेघ वर्ण, श्यामाङ्ग, मृगाक्ष, परम कान्तिमान्, भव्याङ्ग, भव्यवर्ण, सभी सुन्दरताओं के समुद्र उनके सभी अङ्गों में मनोहरता थी। अति बलवान् थे। शान्त, अति प्रसन्न, लोक को सुख देनेवाले मुनिजन के सहित सेव्यमान और शरण्य की मैं वन्दना करता हूँ। वे करोड़ों वाक्पति के समान श्रीमान् हैं। करोड़ों सूर्य के भी सूर्य हैं। करोड़ों दया के समुद्रों के समान हैं। बड़े यशस्वी शीलवान् और

गरमी बढ़ जाती है। मध्यह्न का समय पवित्र है। इसमें संसार विश्राम करता है। प्रभु अखिल लोकदायक विश्रामा हैं। अतः उनका जन्मकाल भी विश्रामदायक होना चाहिए।

सीतल मंद सुरभि बह बाऊ। हर्षित सुर संतन्ह मन चाऊ॥
वन कुसुमिति गिरिगन मनि[1] आरा। स्रवहिं सकल सरिताऽमृधारा॥२॥

अर्थ: शीतल मंद सुगंध वायु बह रहा था। देवता हर्षित थे। सन्तों के मनमें आनन्द था। वन फूल उठे। पर्वतों में मणि खानि प्रकट हुईं और सब नदियाँ अमृत की धारा बहने लगीं।

व्याख्या: प्रकृति में आनन्द की उमंग आगयी। जोग लग्न ग्रहवार तिथि सकल भये अनुकूल तथा गगन विमल से आकाश की अनुकूल परिस्थिति कही। सीतल मंद सुरभि बह बाऊ से वायु की अनुकूल परिस्थिति कही। अति सीत न घामा से तेज की अनुकूल परिस्थिति कही। स्रवहिं सकल सरितामृत धारा से

पराक्रमी हैं। हे भार्गव! वे सर्वसार, सदा शान्त और वेदसार हैं। दश सहस्र वर्ष तक पृथ्वी पर थे। हे शुक्र! चौदह वर्षों तक वन-वन में घूमते रहे। राक्षसों के वध और दुष्टों के निग्रह के लिए माया मानुष रूप से जगन्नाथ का प्रादुर्भाव ही हुआ था। अनेक सहस्र वर्षों तक वे धर्म-वत्सल मुनि लोगों के साथ विहार करते थे। हे कवि! तत्पश्चात् सबके साथ अपनी माया से अन्तर्धान हो गये। इच्छा से लीलायुक्त होकर अपने लोक में सदा बसते हैं। लीला माया से फिर काल पाकर युग-युग में लोक के हित के लिए विशेषतः कलियुग में फिर होवेंगे।

इसके पढ़ने से सुनने से सदा पुण्य और कल्याण होता है। निर्भयता प्राप्त होती है। यह सत्य है, सत्य है, इसमें संशय नहीं है।

इति श्री भृगुसंहिता में भृगुशुक्रसंवाद के छत्तीसवें क्षेपान्तर में वेदसागरफल समाप्त हुआ।

यह भी नहीं कह सकते कि सूर्य देव का रुकना या आगे बढ़ जाना नितान्त असम्भव है और इसका कोई उदाहरण नहीं दिया जा सकता। क्योंकि विभिन्न पुराणों में ऐसे अनेक उदाहरण हैं। स्वयं वाल्मीकीय रामायण में अनुसूयाजी के दश रात्रियों की एक रात्रि कर देने का वर्णन है। अत्रि जी भगवान् रामचन्द्र से कहते हैं:

देवकार्यनिमित्तञ्च यथा सन्त्वरमानया। दशरात्रं कृता रात्रिः सेयं मातेव तेऽनघ॥

हे अनघ रामचन्द्र! देवताओं के कार्य के लिए जिस अनसूया ने दस रात्रि की एक रात्रि बना दी, वही यह तुम्हारी माता के तुल्य है। सो क्या दस रात्रि की एक रात्रि बिना सूर्य के रुके हो गई और फिर ग्रहमण्डल में यथोचित स्थान पाने के लिए सूर्य की गति में कोई विशेषता न हुई? और यहाँ तो साक्षात् पूर्ण ब्रह्म परमात्मा का अवतार होनेवाला था।

१. 'आर' प्रत्यय हिन्दी में 'वाला' के अर्थ में प्रयुक्त होता है। यथा: सुख से सुखार, दुःख से दुखार। इसी भाँति 'मणि' से मनिआर अर्थात् मणिवाला होता है। यथा: मन हरषित सब भये सुखारी इत्यादि।

जल की अनुकूल परिस्थिति कही। एवं वन कुसुमित गिरिगन मनिआरा कहकर पृथ्वी की अनुकूल परिस्थिति बतलायी और हरखित सुर संतन मन चाऊ से देव सर्ग का आनन्दोद्रेक कहा। आसुर का नहीं। चर अरु अचर हर्ष युत से सृष्टि मात्र का सत्त्वोद्रेक कहा।

सो अवसर बिरंचि जब जाना। चले सकल सुर साजि बिमाना ॥
गगन बिमल संकुल सुर जूथा। गावहिं गुन गंधर्व बरूथा ॥३॥

अर्थ : उस अवसर को जब ब्रह्मदेव ने जाना तो सब देवता विमान साजकर चले। निर्मल आकाश देवसमूह से भर उठा। गन्धर्व गुण गान करने लगे।

व्याख्या : प्रकृति में इस प्रकार का अनुकूल परिवर्तन ही प्रभु के अवतीर्ण होने के काल का द्योतक है। इस बात को ब्रह्मदेव ने जाना। अतः गर्भस्तुति करने के लिए चले। साथ में सब देवगण अपना अपना विमान सजाकर चले। अयोध्या में निर्मल आकाश देवगणों से भर गया। गन्धर्वसमूह ने गुणगान प्रारम्भ कर दिया। अर्थात् सब गन्धर्वों ने मिलकर सुरताल के साथ एक स्वर से गुणगान किया।

बर्षहिं सुमन सुअंजलि साजी। गह गहि गगन दुंदुभि बाजी ॥
अस्तुति करहिं नाग मुनि देवा। बहुबिधि लावहिं निज निज सेवा ॥४॥

अर्थ : सब देवताओं ने अञ्जलि साजकर फूलों की वर्षा की। आकाश में गहगह नगाड़े बजने लगे। नाग मुनि और देवता स्तुति करने लगे और अनेक विधियों से अपनी सेवा भेंट करने लगे।

व्याख्या : अञ्जलि को फूलों से सजाकर सब देवताओं ने पुष्पाञ्जलि चढ़ाई। सो फूलों की वर्षा हो गई। आकाश में नगाड़े भी खूब बजे। पाताल लोक से आकर नाग लोग मनुष्य लोक से मुनि लोग : क्योंकि केवल वे ही लोग जान सके थे कि अवतार हुआ चाहता है : और स्वर्ग से आकर देवताओं ने स्तुति करना आरम्भ कर दिया और भी अनेक विधि आरती जयघोष आदि से पूजन करने लगे।

दो. सुर समूह बिनती करि, पहुँचे निज निज धाम ॥
जगनिवास प्रभु प्रगटे, अखिल लोक बिश्राम ॥१९१॥

अर्थ : देवताओं के समूह विनती करके अपने अपने धाम में पहुँचे। जगत् के आश्रय सम्पूर्ण लोक विश्राम रूप प्रभु प्रगट हुए।

व्याख्या : जबतक देवता लोग मार्ग में रहे तबतक नहीं प्रकट हुए। जब वे लोग अपने अपने लोकों को पहुँच गये अर्थात् उनके भी विश्राम पाने पर प्रगटे। जगनिवास का प्रकटना माया का पर्दा हटने पर ही सम्भव है। लोक विश्रामकाल में अखिल लोक विश्राम रूप प्रकट हुए। यहाँ पर जन्मे न कहकर प्रगटे अर्थात् आविर्भाव कहा। यथा : आविरासीत् तमोनुदः।

छं.[1] भए प्रगट कृपाला दीनदयाला कौसल्या हितकारी।
हरषित महतारी मुनि मनहारी अद्भुत रूप निहारी॥
लोचन अभिरामं तनु घनश्यामं निज आयुध भुजचारी।
भूषन वनमाला नयन विसाला सोभासिंधु खरारी॥१॥

अर्थ : कृपाल, दीनदयाल, कौसल्या के हितकारी प्रकट हुए। मुनि के मन का हरण करनेवाला अद्भुत रूप देखकर माँ हर्षित हुई। नयनानन्द श्याम मेघ के समान शरीर चार भुजाओं में अपना आयुध शंख, चक्र, गदा, पद्म धारण किये हुए आभूषण और वनमाला पहिने विशाल नेत्रवाले खर के शत्रु शोभा के समुद्र थे।

व्याख्या : दंपति उर धरि भगति कृपाला। निज आश्रम निवसे कछु काला। वही कृपाल, मनु शतरूपा से किये हुए प्रतिज्ञानुसार प्रकट हुए। ब्रह्मदेव ने स्तुति की थी। जेहि दीन पियारे वेद पुकारे द्रवहु सो श्री भगवान। सो उनकी प्रार्थनानुसार दीनों पर दया करके कौसल्या हितकारी, कौसल्या की कीर्ति दिगन्तव्यापिनी करने के लिए तथा वात्सल्य सुख प्रदान करने के लिए प्रकट हुए। यथा : सो प्रभु प्रेम भगति बस कौसल्या के गोद। तथा : कीरति जासु सकल जग माची।

जब गर्भ में आये तभी माँ हर्षित हुई थी। यथा : भई हृदय हर्षित सुख भारी। अब रूप देखकर हर्षित हुई। रूप देखकर विचार किया कि ऐसा रूप तो देखा नहीं गया। इसे देखकर तो मुनि का मन मोहित हो जायगा। जिस अद्भुत रूप को देखकर शतरूपा रूप में तृप्ति नहीं हुई थी उसीका दर्शन कौसल्या रूप में हो रहा है। यथा : चितवहिं सादर रूप अनूपा। तृप्ति न मानहिं मनु सतरूपा।

रूप की अद्भुतता कहते हैं। घनश्याम शरीर जिसे देखकर आँखें तृप्त हो जायँ। चार भुजाएँ जिनमें शंखचक्रादि धारण किये हुए हैं। गहना पहिने हैं। वनमाला गले में है। पैर तक लटकी हुई माला को वनमाला कहते हैं। यथा : पादावलम्बिनी माला वनमालेति कथ्यते। आयुध भूषण और माला सहित पुत्रोत्पत्ति न देखी गई और न कभी सुनी गई। ऐसे विशाल नेत्र भी कहीं देखे नहीं गये। शोभासिन्धु होने पर भी खरारि हैं। यहाँ खर राक्षस मात्र का उपलक्षण है। खरारि से धर्म संरक्षण कहा अथवा खरारि कहने से मायानाथ कहा। यथा : सुरमुनि सभय प्रभु देखि मायानाथ अस कौतुक करयौ। देखत परस्पर राम, करि संग्राम रिपुदल लरि मरयौ।

छं. कह दुइ कर जोरी अस्तुति तोरी केहि बिधि करौं अनंत।
माया गुन ग्यानातीत अमाना बेद पुरान भनंत॥
करुना सुख सागर सब गुन आगर जेहि गावहिं श्रुति संत।
सो मम हित लागी जन अनुरागी भयउ प्रगट श्रीकंत॥२॥

---

१. यह भी चौपैया छन्द है। लक्षण पहिले कहा जा चुका है।

अर्थ : दोनों हाथ जोड़कर कहा कि हे अनन्त, तुम्हारी स्तुति किस भाँति करूँ। तुम माया गुण और ज्ञान से परे हो, मानरहित हो ऐसा वेद पुराण ने कहा है। जिसे श्रुति : वेद और सन्तों ने करुणा और सुख का सागर और सब गुणों का आगर : विचक्षण कहकर गान किया, वही भक्तों पर अनुराग करनेवाले श्रीपति मेरे हित के लिए प्रकट हुए हैं।

व्याख्या : नित्य की ध्येय मूर्ति को सामने देखकर माता पहिचान गई। अतः प्रणाम और स्तुति करती है, माता कहती है हे अनन्त ! वर्णन तो परिच्छिन्न पदार्थ का होता है, तुम तो अपरिच्छिच्छन्न अनन्त हो तुम्हारी स्तुति कैसे करूँ ? क्योंकि वेद पुराण ने कहा है कि तुम मायागुण : सत्त्व रज तम : से परे निस्त्रैगुण्य हो, ज्ञान से परे हो क्योंकि ज्ञेय नहीं हो, मान से रहित हो, क्योंकि अप्रमेय : स्वयं सिद्ध : हो, इस भाँति आप निर्गुणरूप हो, पर वेद और सन्त आपको सगुण रूप से भी वर्णन करते हैं। बतलाते हैं कि आप करुणा और सुख के सागर हो। और सब गुणों के आगर हो। सो हे लक्ष्मीपति विष्णो ! भक्तों के अनुरागी ! मेरे हित के लिए प्रकट हुए हो। मुझे पुत्रवती वनाने के लिए मेरी कीर्ति को दिगन्तव्यापिनी करने के लिए मुझे सब प्रकार से सुखी करने के लिए प्रकट हुए हो। इस प्रकार माता ने भगवान् के अवतीर्ण होने का मुख्य कारण निरूपण किया।

छं. ब्रह्मांड निकाया निर्मित माया रोम रोम प्रति बेद कहै।
मम उर सो बासी यह उपहासी सुनंत धीर गति थिर न रहै ॥
उपजा जब ग्याना प्रभु मुसुकाना चरित बहुत बिधि कीन्ह चहै।
कहि कथा सुहाई मातु बुझाई जेहि प्रकार सुत प्रेम लहै ॥२॥

अर्थ : एक एक रोम में माया के निर्मित ब्रह्माण्डों के समूह लगे हुए हैं। ऐसा वेद कहते हैं। वह प्रभु मेरे उर में निवास करे। यह उपहासी की बात सुनने पर पण्डित की बुद्धि स्थिर नहीं रह सकती। जब ज्ञान उपजा तो प्रभु मुसकराए। बहुत प्रकार का चरित करना चाहते हैं। इसीलिए सुन्दर कथा कहकर माँ को समझाया जिससे वह पुत्रस्नेह को प्राप्त हो।

व्याख्या : यह स्तुति क्षीरशायी भगवान् की है। इन्हीं के रोम रोम में ब्रह्माण्डनिकाय है। वास्तविक भेद ब्रह्म, विष्णु या क्षीरशायी भगवान् में कुछ भी नहीं है। उपासकों के भेद से भेद प्रतीति होती है। माता सोचती है कि ऐसा प्रभु मेरे उदरगत कैसे हुआ। यह तो अघटितघटना है और उसके लिए उपहास की वात है। देखने की कौन कहे इसके सुनने से बड़े-बड़े पण्डितों की बुद्धि चञ्चल हो उठेगी। इस भाँति माता को ज्ञान हुआ। शतरूपा जन्म में इसने माँगा था 'सोइ गति सोइ मति सोइ भगति सोइ निज चरन सनेहु। सोइ विवेक सोइ रहनि प्रभु हमहि कृपा करि देहु। सो विवेक उपजा। इसीलिए माता को ही यह रूप दिखलाया, पिता को नहीं। क्योंकि उनका वरदान था : सुत विषयिक तवं पदरति

होऊ। मोंहि वह मूढ कहै किन कोऊ। प्रभु मुस्करा पड़े। इस मुसकराहट में माया की शक्ति भरी पड़ी है। यथा : माया हास बाहु दिगपाला : मुसकराए कि मुझे तो बहुत चरित करना है और जिससे माता का काम लेना है वह मेरे उदरवासी होने में ही सन्देह कर रही है। अतः पुत्रप्रेम की प्राप्ति के लिए माता को समझाया यथा :

रावण के वध ते मिटै, महि को भार अपार।
एहि हित विधि विनयौं लयो, मैं मानुष अवतार।।
आराध्यौ साध्यौ तपहि, तुम दसरथ इक संग।
निज सुत करि जाच्यौ हमहि, हिय लालसा अभंग।।
पिछले पुण्य प्रभाव ते, तुम देख्यौ यह रूप।
जो मेरो दर्शन करै, सो न परै भव कूप।।
एहि कारन तारन भवहि, भयो प्रगट मैं आय।
सफल करौं मन कामना, मोको गोद खेलाय।।

छं. माता पुनि बोली सो मति डोली तजहु तात यह रूप।
कीजै सिसु लीला अति प्रिय सीला यह सुख परम अनूप।।
सुनि वचन सुजाना रोदन ठाना होइ बालक सुर भूप।
यह चरित जे गावहि हरिपद पावहि ते न परहिं भवकूप ।।४।।

अर्थ : तब माता वोली। उसकी बुद्धि विचलित हो उठी। हे तात ! इस रूप को छोड़ दो अत्यन्त प्रिय शिशुलीला करो। यह सुख परम अनूप है। सुजान ने यह वचन सुनाकर रोना शुरू किया। सुरभूप बालक हो गये। इस चरित का जो गान करता है वह हरिपद पाता है। वह भवकूप में नहीं पड़ता है।

व्याख्या : प्रभु ने समझाया। तदनुसार माता समझ गई। वह ज्ञानवाली बुद्धि स्थिर न रह गई। इसलिए वह स्वयं प्रार्थना करती हैं कि यह चतुर्भुज रूप छोड़ दो और शिशुलीला करो। क्योंकि वह अत्यन्त आनन्ददायिनी है। भाव यह कि अन्य अवस्थाओं की लीला भी आनन्ददायिनी है पर शिशुलीला की बात ही दूसरी है। भगवान् के दर्शन का सुख माता इस समय अनुभव कर रही हैं। इस सुख की उपमा नहीं है। पर शिशुलीला के सुख को परम अनूप बतला रही हैं। और उसके लिए इस रूप को छोड़ने की प्रार्थना कर रही हैं।

सुजान हैं। जो स्वयं चाह रहे हैं वही प्रार्थना माँ कर रही है। अतः उसकी पूर्ति में बड़ी त्वरा से काम लिया। एवमस्तु भी नहीं कहा और तुरन्त बालक होकर रोना ही प्रारम्भ किर दिया। रोदन ठाना, चुप होते ही नहीं। इस चरित्र की फलश्रुति कहते हैं कि जो गान करता है वह हरिपद पाता है। अर्थात् उसे हरिधाम की प्राप्ति होती है। फिर भवकूप में नहीं पड़ता अर्थात् मुक्त हो जाता है।

यह दूसरा गुणग्राम कौसल्याकृत स्तुति भरणी नक्षत्र है। इसमें तीन तारे चमकते हैं। तीनों वेदोक्तियाँ ही तीन तारे हैं। यथा : १. वेद पुरान भनंता २. गावहिं श्रुति संता और ३. रोम-रोम प्रतिवेद कहै। इसकी फलश्रुति है : दानि मुकुति धन धर्म धाम के। सो खरारि कहकर प्रभु द्वारा धर्म स्थापन कहा। श्रीपति कहकर धनदाता कहा। हरिपद से धाम और न परै भव कूपा से मुक्ति कही।

दो. विप्र धेनु सुर संत हित, लीन्ह मनुज अवतार।
निज इच्छा निर्मित तनु, माया गुन गोपार ॥१९२॥

अर्थ : ब्राह्मण, गाय, देवता और सन्त के लिए अपने संकल्प का शरीर बनकर उसने मनुष्य का अवतार धारण किया। जो माया, गुण, और इन्द्रियों के परे है। अथवा वाणी से परे है।

व्याख्या : वह प्रभु मायागुण से परे है। यथा : प्रकृति पार प्रभु सब उरवासी : वाणी से परे है। यथा : मन समेत जेहि जान न बानी। उसने इच्छामात्र से शरीर का निर्माण किया। यथा : इच्छामय नरदेह संवारे। होइहौं प्रगट निकेत तुम्हारे। भाव यह कि उसका शरीर धारण जीव की भाँति कर्मपरतन्त्र नहीं। वह सर्वतन्त्रस्वतन्त्र है। उसने विप्र धेनु सुर संतहित मनुष्य का शरीर धारण किया। जिसने वेद के उद्धार के लिए मत्स्य शरीर धारण किया। संसार को सँभालने के लिए कूर्म शरीर धारण किया। पृथ्वी को ऊपर लाने के लिए वाराह शरीर धारण किया। दैत्य को मारने के लिए नृसिंह शरीर धारण किया। उसने विप्रधेनु सुरसंत के लिए मनुष्य शरीर धारण किया। उस समय इन्हीं चार पर घोर विपत्ति थी। विप्रधेनु पर विपत्ति। यथा : जेहि जेहि देस धेनु द्विज पावहिं। नगर ग्रामपुर आगि लगावहिं। सुरपर विपत्ति। यथा : छुधाछीन बलहीन सुर, सहजहिं मिलिहहिं आइ। तब मारिहौं कि छाँड़िहउ, भलीभाँति अपनाइ। तथा देइ देवतन्ह गारि प्रचारि : सन्त पर विपत्ति। यथा : साधुन्ह सन करवावहि सेवा तथा निसिचर निकर सकल मुनि खाए।

सुनि सिसु रुदन परम प्रिय बानी। संभ्रम चलि आई सब रानी।
हरषित जहँ तहँ धाईं दासी। आनँद मगन सकल पुरबासी ॥१॥

अर्थ : बच्चे के रोने की परमप्रिय वाणी सुनकर उत्कण्ठायुक्त हो सब रानियाँ चली आईं। दासियाँ आनन्दित होकर जहाँ तहाँ दौड़ चलीं। सब नगर निवासी आनन्द में मग्न हो गये।

व्याख्या : रुदन की वाणी प्रिय तो बच्चे की ही होती है। यह तो राम शिशु के रुदन की वाणी है। इसलिए परमप्रिय वाणी कहा। पहिले कह आये हैं। सुनि बचन सुजाना रोदन ठाना ह्वै बालक-सुरभूपा। अतः उस रुदन को सुनकर सब रानियाँ ससंभ्रम चली आईं। सब महलों तक वाणी पहुँची और फिर भी परम प्रिय है। परम उत्कण्ठा है अतः रानियाँ स्वयं चली आ रही हैं। दासी

भेजकर कोई समाचार नहीं पुछवा रही हैं। पहिले से प्रसव काल की वेदना का कोई समाचार नहीं लगा। एकाएक शिशुरुदन ही सुनाई पड़ा। मालूम हुआ कि पुत्रोत्पत्ति हुई।

बड़े बूढ़ों को समाचार देने के लिए दासियाँ जहाँ तहाँ आनन्दित हो दौड़ पड़ीं। ये आनन्द के तरंग में पड़ी हुई बहती चली जा रही हैं। समाचार पाकर पुरवासी आनन्द में डूबाडूब हो गये। ये लोग भँवर में पड़ गये। यथा : रघुवर नयन आनंद बधाई। भँवर तरंग मनोहरताई।

दसरथ पुत्रजन्म सुनि काना। मानहुँ ब्रह्मानंद समाना ॥
परम प्रेम मन पुलक सरीरा। चाहत उठन करत मति धीरा ॥२॥

अर्थ : दशरथजी पुत्र का जन्म कान से सुनते ही मानो ब्रह्मानन्द में मग्न हो गये। सम्पूर्ण शरीर में रोमाञ्च हो आया। वे उठना चाहते हैं और बुद्धि को स्थिर कर रहे हैं।

व्याख्या : दासी ने चक्रवर्तीजी को समाचार दिया। पुरवासी तो समाचार सुनकर आनन्द में मग्न हुए। चक्रवर्तीजी ब्रह्मानन्द में मानो मग्न हो गये। ये भारी भँवर में पड़ गये। आनन्दातिरेक से शरीर शिथिल हो गया। बुद्धि चञ्चल हो उठी। अतः लिखते हैं चाहत उठत करत मतिधीरा। सो उठते बना नहीं। अब आगे क्या करना इस निश्चय के लिए बुद्धि को स्थिर कर रहे हैं।

जाकर नाम सुनत सुभ होई। मोरें गृह आवा प्रभु सोई ॥
परमानंद पूरि मन राजा। कहा बुलाइ बजावहु बाजा ॥३॥

अर्थ : जिसका नाम सुनने से शुभ होता है। मेरे घर में वही प्रभु आया। राजा का मन परमानन्द से पूर्ण हो गया। बुलाकर कहा कि बाजे बजाओ।

व्याख्या : गुरुजी ने कहा था कि त्रिभुवन विदित भगत भयहारी बेटा होगा। गुरुजी का वाक्य अमोघ है। अतः उसी का परामर्श करते हैं कि जिसका नाम सुनने से शुभ होता है। यथा : मंगल भवन अमंगल हारी। उमा सहित जेहि जपत पुरारी। वह प्रभु मेरे घर आये। इससे बढ़कर महोत्सव का समय और क्या होगा? यह सोचकर राजा का मन परमानन्द से भर उठा। ज्ञानी को ब्रह्मानन्द होता और भक्त को परमानन्द होता है। राजा को क्रम से दोनों हुआ। पहिले ब्रह्मानन्द में डूबाडूब हो गये। जब अपने को सँभाला मतिधीर किया तो परमानन्द से पूर्ण हो उठे। सेवकों को बुलाकर चक्रवर्तीजी को आज्ञा देनी पड़ी कि बाजे बजाओ। पुत्रोत्सव सुनते ही प्रजामात्र में बाजा बजना चाहता था। सो आनन्द विभोर हैं। बाजा बजाने की सुधि ही नहीं हैं। इसलिए सावधान होते ही पहिली आज्ञा राजा की बाजा बजाने के लिए हुई।

गुरु बसिष्ठ कहँ गयउ हँकारा। आए द्विजन सहित नृपद्वारा ॥
अनुपम बालक देखेन्हि जाई। रूप रासि गुन कहि न सिराई ॥४॥

अर्थ : गुरु वसिष्ठ के यहाँ हँकार बुलावा गया। वे ब्राह्मणों के साथ राजद्वार आये। जाकर अद्भुत बालक को देखा। रूप की तो राशि है और गुण उसके वर्णन नहीं किये जा सकते।

व्याख्या : दूसरी आज्ञा चक्रवर्तीजी की हुई कि गुरुजी को बुलाओ। सो गुरुजी के पास हँकार गया। ऐसे समय में हँकार भेजा जाता है। राजा के यहाँ किसी आनन्द में सम्मिलित होने के लिए बुलाहट आती है। तो उसे आज भी हँकार कहते हैं। कर्मकाण्ड कराना है। इसलिए गुरुजी ब्राह्मणों के साथ राजद्वार में उपस्थित हुए। पहिला काम यह किया कि बालक को देखा। उस सद्यःप्रसूत की उपमा नहीं। रूप की तो राशि है। यद्यपि गुण देखने की अभी कौन चरचा है? पर सामुद्रिक शास्त्र में सब लक्षण दिये हुए हैं। जिनसे गुणों का पता केवल शरीर संगठन से चल जाता है। अतः शास्त्रदृष्टि से गुरुजी ने देख लिया कि अवर्णनीय गुण हैं। यथा :

या सिसु के गुन नाम बड़ाई।
को कहि सकै सुनौ नरपति श्रीपति समान प्रभुताई॥
जद्यपि बुधिवय रूपसील गुन समय चारु चारों भाई।
तदपि लोकलोचन चकोर ससि राम भगत सुखदाई॥ गी.।

दो. नंदीमुख सराध करि, जातकरम सब कीन्ह।
हाटक धेनु बसन मनि, नृप बिप्रन्ह कहँ दीन्ह॥१९३॥

अर्थ : राजा ने नान्दीमुख श्राद्ध करके सब जातकर्म किया और सुवर्ण, धेनु, वसन और मणियों से ब्राह्मणों का सत्कार किया।

व्याख्या : नान्दीमुख श्राद्ध तथा जातकर्म और दान नालच्छेदन के पहिले ही पहले होता है। क्योंकि उस समय प्रजातीर्थ उपस्थित होता है। उस समय के दान का बड़ा माहात्म्य है। नालच्छेदन के बाद वृद्धयशौच लग जाता है। फिर कोई कर्मकाण्ड नहीं हो सकता।

सिसिर सुखद प्रभु जनम उछाहू। सो यह उछाह[1] सिसिर ऋतु के प्रथम

---

१. आजु सुदिन सुभघरी सुहाई।
रूप सील गुन धाम राम नृप भवन प्रकट भए आई॥
सदन वेद धुनि करत मधुर सुनि बहु विधि बाज बधाई।
पुर बासिन्ह प्रिय नाथ हेतु निज-निज संपदा लुटाई॥
मनि तोरन बहु केलु पताकन्हि पुरी रुचिर करि छाई।
मागध सूत द्वार बंदीजन जहँ तहँ करत बड़ाई॥
सहज सिंगार किए बनिता चलीं मंगल विपुल बनाई।
गावहिं देहि असीस मुदित चिरजीवौ तनय सुखदाई॥
वीथिन्ह कुंकुम कीच अरगजा अगर अबीर उड़ाई।
नाचहिं पुर नर नारि प्रेम भरि देह दसा बिसराई॥ गीतावली

मास माघ सुदि पंचमी[१] से उपमित है। जिसे श्रीपञ्चमी या वसन्त पञ्चमी कहते हैं। पञ्चमी में पाँच कार्य हुए। १. रानी आई। २. दासी धाई। ३. दशरथजी को समाचार मिला। ४. वसिष्ठजी की बुलाहट हुई और ४. जातकर्म किया गया।

ध्वज पताक तोरन पुर छावा। कहि न जाइ जेहि भाँति बनावा॥
सुमन बृष्टि अकास तें होई। ब्रह्मानंद मगन सब लोई॥१॥

अर्थ : ध्वजा, पताका और वन्दरवार से नगर छा सा गया। कैसी सजावट हुई। सो कही नहीं जा सकती। आकाश से पुष्पवृष्टि हो चली। सब लोग ब्रह्मानन्द में मग्न हो गये।

व्याख्या : ध्वजा चतुष्कोण और पताका त्रिकोण होती है। यथा : कदलि

---

१. सहेली सुनु सोहिलोरे।
भूपति भवन सोहिलो सुनि बाजैं गहगहे निसान।
जहँ तहँ सजहि कलस धुज चामर तोरन केतु वितान॥
सींचि सुगंध रचे चौके गृह आँगन लगी बजार।
दल फल फूल दूब दधि रोचन घर घर मंगलचार॥
सुनि सानंद उठे दसस्यंदन सकल समाज समेत।
लिये बोलि गुरु सचिव भूमिसुर प्रमुदित चले निकेत॥
जात कर्म करि पूजि पितर सुर दिये महि देवन दान।
तेहि अवसर सुत तीन प्रगट भये मंगलमुद कल्यान॥
सजि आरती विचित्र थार कर जूथ जूथ वर नारि।
गावत चलीं बधावन लै लै निज निज कुल अनुहारि॥
असहो दुसहो मरहु मनहि मन बैरिन बढ़हु विषाद।
नृप सुत चारि चारु चिरजीवहु संकर गौरि प्रसाद॥
लै लै ढोव प्रजा प्रमुदित चले भाँति भाँति भरि भार।
करहिं गान करि आन राम की नाचहिं राजदुआर॥
गजरथ वाजि बाहनी बाहन सबनि सवारे साज।
जनु रति पति रितु पति कोसलपुर विहरत सहित समाज॥
घंटा घंटि पखाउज आउज झाझ बेनु डफ तार।
नूपुर धुनि मंजीर मनोहर कर कंकन झनकार॥
नृत्य करहि नट नटी नारि नर अपने अपने रंग।
मनहु मदन रति विविध वेषधरि नटत सुदेश सुढंग॥
कुंकुम अगर अरगजा छिरकहिं भरहि गुलाल अबीर।
नभ प्रसून झरि पुरी कोलाहल भई मनभावति भीर॥
वारहि मुकुता रतन राजमहिषी पुरसुमुखि समान।
बगरे नगर निछावरि मनिगन जनु जुवारि जव धान॥ गीतावली

तालवर ध्वजा पताका। तोरण वन्दवार को कहते हैं। इनसे नगर छाया हुआ मालूम पड़ने लगा। नगर की ऐसी सजावट हुई कि वर्णन नहीं की जा सकती। अब आकाश की सजावट कहते हैं कि वहाँ से फूल झर रहे हैं। ब्रह्म के आविर्भाव से सम्पूर्ण प्रजा में ब्रह्मानन्द का अविर्भाव हुआ। क्योंकि सबको प्रभु के चरणों में प्रीति थी। यथा : ब्रह्मानन्द मगन कपि सबके प्रभु पद प्रीति।

वृंद वृंद मिलि चली लोगाईं। सहज सिंगार किएँ उठि धाईं॥
कनक कलस मंगल भरि थारा। गावत पैठहिं भूप दुआरा॥२॥

अर्थ : स्त्रियाँ झुण्ड की झुण्ड मिलकर चलीं। सहज शृङ्गार किये हुए दौड़ पड़ीं। स्वर्णघट और थार में मङ्गलद्रव्य भर भरकर गाती हुई राजद्वार में प्रवेश करती हैं।

व्याख्या : स्त्रियाँ सखी सहेलियों के साथ चलीं। इसलिए वृन्द वृन्द मिलि कहते हैं। वेदो सीस तमोल मुख सीस सिलसिलेवार। दृग आँजे राजे खरीं साजे सहज सिंगार। बस इतना ही शृङ्गार किये बाजा सुनते ही दौड़ पड़ीं। कनक कलश सिर पर थार हाथ में। दधि दूर्वा रोचन फलफूला। नव तुलसीदल मंगल मूला। इत्यादि मंगल द्रव्य लिये वेग से चलीं। राजद्वार में प्रवेश के पूर्व ही मङ्गलगान[1]

---

१. आजु महामंगल कोसलपुर सुनि नृप के सुत चारि भये।
सदन सदन सोहिलो सोहावनो नभ अरु नगर निसान चये॥
सजि सजि जान अमर किन्नर मुनि जानि समय सुमगान ठये।
नाचहिं नभ अप्सरा मुदित मन पुनि पुनि बरखहि सुमन चये॥
अति सुख वेगि वोलि गुरु भूसुर भूपति भीतर भवन गये।
जातकरम करि कनक वसन मनि भूषित सुरभि समूह दये॥
दल फल फूल दूब दधि रोचन जुवतिन्ह भरि भरि थार लये।
गावत चलीं भीर भई बीथिन्ह बंदिन बांकुरे बिरद बए॥
कनक कलस चामर पताक ध्वज जहँ तहँ बंदनवार नये।
भरहिं अबीर अरगजा छिरकहिं सकललोक एक रंग रये॥
उमगि चल्यौ आनंद लोक तिहुँ देत सबनि मंदिर रितए।
तुलसीदास पुनि भरेइ देखियत, रामकृपा चितवनि चितए॥
गावैं विबुध विमल बर बानी।
भुवन कोटि कल्यान कंद जो जायो पूत कौसिला रानी॥
पाइ अघाइ असीसत निकसत जाचक जन भये दानी।
यौं प्रसन्न कैकई सुमित्रहिं होहु महेस भवानी॥
दिन दूसरे भूप भामिनी दोउ भईं सुमंगल खानी।
भयो सोहिलो सोहिलो मो जनु सृष्टि सोहिलो सानी॥ गीतावली

प्रारम्भ कर देती हैं। आज भी यही चाल है कि ऐसे अवसरों पर मङ्गलगान करती हुई स्त्रियाँ देहली का उल्लंघन करती हैं।

करि आरति नेछावरि करहीं। बार बार सिसु चरनन्हि परहीं ॥
मागध सूत बंदि गन गायक। पावन गुन गावहिं रघुनायक ॥३॥

अर्थ : आरती करके निछावर करती हैं। वार-बार शिशु के चरणों में पड़ती हैं। मागध, सूत, वन्दी और गायकलोग रघुनायक का पवित्र गुणगान करते हैं।

व्याख्या : चक्रवर्तीजी के यहाँ रोक नहीं है। प्रसूतिकागृह तक सब पहुँच जाती हैं। राजा में देवभाव है अतः आरती होती है। निछावरि होती है। बार-बार प्रणाम हो रहा है। सूताः पौराणिकाः प्रोक्ता मागधा वंशशंसिनः। वन्दिनस्त्वमलप्रज्ञाः प्रस्तावसदृशोक्तयः। सूत पौराणिक होते हैं। मागध वंशप्रशंसक होते हैं। निर्मल बुद्धि वाले वन्दी मौके को बात बोलनेवाले होते हैं। ये रघुनायक चक्रवर्तीजी के पवित्र गुणों का गान करते हैं। अथवा मुनियों के उपदेशानुसार भाविनी वृत्ति का आश्रयण करके रघुनायक श्रीरामजी के गुणों का गान करते हैं। राजा पृथु के सिंहासनासीन होने के समय मुनियों की आज्ञा से वन्दी आदिकों ने भाविनी वृत्ति का आश्रय करके ही गुणगान किया था।

सर्वस[1] दान दीन्ह सब काहू। जेहिं पावा राखा नहिं ताहू ॥
मृगमद चंदन कुंकुम कीचा। मची सकल बीथिन्ह बिच बिचा ॥४॥

अर्थ : सब ने सर्वस्व दान दे दिया। और जिसने पाया उसने भी रक्खा नहीं। कस्तूरी चन्दन और केसर की कीच सभी गलियों में फैल गई।

व्याख्या : सबने वर्वस्व दान दिया। जिसने पाया उसने भी नहीं रक्खा। इस भाँति सम्पत्ति का हेर-फेर अवध में हो गया। किसी समय सोमवती अमावस्या लगी। सब मुनियों की इच्छा हुई कि गोदान करें। मुनि सौ थे और एक ही के पास गौ थी। जिसके पास गाय थी उसने किसी को दान दिया। उसने भी दान कर दिया। इस भाँति वह गौ दान होती गई। अन्त में फिर वह उसी मुनि के पास पहुँच गई। जिसकी कि वह पहिले थी और गोदान का फल सबको हो गया। लालच किसी को नहीं और देने की इच्छा सबको। ऐसी अवस्था में सम्पत्ति घूमघामकर जहाँ की तहाँ आ जाती है।

कस्तूरी, केसर, चन्दन सब एक दूसरे पर फेंक रहे हैं। आनन्दातिशय में सभ्यता का बन्धन ढीला हो जाता है। अतः केसर कस्तूरी युक्त चन्दन को कोच गलियों में हो गई : शिशिर ऋतु के दूसरे महीने में फाल्गुन का उत्सव प्रारम्भ हुआ।

दो. गृह गृह बाज बधाव सुभ, प्रकटेउ सुखमाकंद।
हरखवंत सब जहँ तहँ, नगर नारिनर बृंद ॥१९४॥

---

१. यहाँ अत्युक्ति अलंकार है।

अर्थ : घर-घर आनन्द का बधावा बजा। क्योंकि परम शोभा के बादल आज प्रकट हुए हैं। नगर के नर और नारियों के समूह सब जहाँ तहाँ हर्षित थे।

व्याख्या : अब स्त्रियाँ राजद्वार से लौटीं हैं तो घर-घर मङ्गलाचार होने लगा। बधावा बजने लगा। शोर हो गया कि सुषमाकन्द प्रकट हुए हैं। वहाँ परम शोभा की वर्षा हो रही है। इससे नगर के सब नर-नारी जहाँ तहाँ हर्षित हैं।

कैकयसुता सुमित्रा दोऊ। सुंदर सुत जनमत[1] भै ओऊ॥
वोह सुख संपति समय समाजा। कहि न सकै सारद अहिराजा॥१॥

अर्थ : कैकयराज की बेटी और सुमित्रा ने दोनों से सुन्दर बेटों को जन्म दिया। उस सुख सम्पत्ति समय और समाज को सरस्वती और शेष भी नहीं कह सकते।

व्याख्या : ऊपर के दो दोहों में माघ मास का उत्सव कहा। अब दो दोहों में फाल्गुन का उत्सव कहते हैं। कुल चार दोहों में सिसिर सुखद प्रभु जनम उछाहू कहा। यहाँ दोऊ शब्द का प्रयोग सुन्दर सुत के साथ अन्वित होकर सुमित्रा को दो पुत्र होना भी द्योतित करता है। वह १. सुख यथा :

गावत नाचत मो मन भावत सुख सो अवध अधिकानी।
देत लेत पहिरत पहिरावत प्रजा प्रमोद अघानी॥
गान निसान कोलाहल कौतुक देखत दुनी सिहानी।
हरि विरंचि हर पुर शोभा कुल कौसलपुरी लोभानी॥
आनन्द अवनि राजरानी सब माँगहुँ कोख जुडानी।
आसिष दै दै सराहहिं सादर उमा रमा ब्रह्मानी॥
विभव विलास बाढि दसरथ की देखि न जिनहि सोहानी।
कीरति कुसल भूति जय रिधि सिधि तिन्हपर सबै कोहानी॥

२. सम्पत्ति। यथा : उमगि चल्यो आनन्द लोक तिहुँ देत सबहिं मंदिर रितये। तुलसिदास पुनि भरई देखिअत राम कृपा चितवनि चितए। ३. समय। यथा : सुमन वृष्टि अकास ते होई। ब्रह्मानंद मगन सब लोई। ४. समाज। यथा : घर घर बाज बधाव सुभ प्रकटेऊ सुखमा कन्द। शारदा स्वर्ग की वक्ता, अहिराज पाताल के वक्ता नहीं कह सकते। क्योंकि वहाँ यह सुख हुआ ही नहीं। मर्त्यलोक के वक्ता का नाम नहीं लिया। क्योंकि वे तो उस सुख का अनुभव कर ही रहे हैं।

अवधपुरी सोहै एहि भाँती। प्रभुहि मिलन आई जनुराती॥
देखि भानु जनु मन सकुचानी। तदपि बनी संध्या अनुमानी॥२॥

---

१. दिन दूसरे भूप भामिनि दोउ भई सुमंगल खानी। दशमी को सूर्योदय के पूर्व पुष्य नक्षत्र मीन लग्न में भरतजी का तथा अश्लेषा में दोपहर को लक्ष्मण और शत्रुघ्न का जन्म हुआ। तीनों भाइयों की सब ग्रहस्थिति वैसी ही है जैसी रामचन्द्र की थी। केवल नक्षत्र और लग्न में भेद है।

अर्थ : उस समय अवधपुरी इस भाँति शोभित हुई जैसे प्रभु से मिलने रात आई हो। सूर्य को देखकर मानो मन में संकुचित हुई फिर भी ऐसा जान पड़ता है कि सन्ध्या बन गई।

व्याख्या : अवधपुरी में मध्यान्ह को ही सन्ध्या की शोभा हो गई। इसी पर कवि उत्प्रेक्षा करते हैं कि मानो प्रभु से मिलने रात अभिसारिका होकर आई। अकस्मात् सूर्य दिखाई पड़ गये। रात को कभी बूढ़े सूर्य का सामना पड़ा ही नहीं था। अतः उन्हें देखकर वह संकुचित हो उठी। रंग फीका पड़ गया। सो सन्ध्या हो गई। सन्ध्या भी रात्रि ही है। पर रङ्ग फीका रहता है।

[1]अगर धूप जनु बहु अँधियारी। उड़इ अबीर मनहुँ अरुनारी॥
मंदिर मनि समूह जनु तारा। नृप गृह कलस सो इंदु उदारा॥३॥

अर्थ : अगर धूप के कारण मानो घनी अँधियारी हो उठी और जो अबीर उड़ रही थी वही मानो ललाई हुई। मन्दिरों : घरों की कलशियाँ मानों तारे थे। और राजा के घर का कलश तो सुन्दर चन्द्र था।

व्याख्या : सन्ध्या में अन्धकार रहता है और अस्तमित सूर्य की लालिमा भी रहती है। सो अगर धूप के धूम से मालूम होता था कि अन्धकार छा गया है। लोग आनन्द से अबीर उड़ा रहे हैं। उसने सूर्य की लालिमा का दृश्य आँख के सामने खड़ा कर दिया। उस अन्धकार में घरों की कलशियाँ तारों की भाँति चमक रही थीं। और राजा के महल का कलश तो निष्कलङ्क चन्द्र-सा शोभा दे रहा था।

भवन बेद धुनि अति मृदु बानी। जनु खग मुखर समय जनु सानी॥
कौतुक देखि पतंग भुलाना। एक मास तेइ जात न जाना॥४॥

अर्थ : अत्यन्त कोमल वाणी से वेदध्वनि घरों में हो रही थी। मानो समय के एक में मिल जाने पर चिड़ियाँ बोलती हों। यह कौतुक देखकर सूर्य भूल गये। एक महीना बीतने का उन्हें पता न लगा।

---

१. कुंकुम अरगजा छिरकहिं भरहिं गुलाल अबीर।
नभ प्रसून झरि पुरी कोलाहल भइ मन भावत भीर॥
बड़ी वयस विधि भयो दाहिनो सुर गुरु आसिरवाद।
दसरथ सुकृत सुधा सागर सब उमगे हैं तजि मरजाद॥
ब्राह्मण वेद बंदि विरदावलि जय धुनि मङ्गलगान।
निकसत पैठत लोग परसपर बोलत लगि लगि कान॥
जा सुख सिंधु सकृत सीकरते सिव विरंचि प्रभुताई।
सोइ सुख अवध उमगि रह्यो दस दिसि कौन जतन कहौं गाई॥
जो रघुबीर चरन चिंतक तिन की गति प्रगट दिखाई।
अविरल अमल अनूप भगति दृढ़ तुलसीदास तब पाई॥

व्याख्या : कवि सन्ध्या का रूपक बाँध रहे हैं। उस समय चिड़ियाँ बोलने लगती हैं। उसी को वेदध्वनि से उपमित कर रहे हैं। परन्तु वस्तुतः उस समय मध्याह्न था। उस उजेले में अगरधूप की अँधियारी जा मिली। मानो रात्रि मध्याह्न में सन गई। इस भाँति सन्ध्या होने पर पक्षियों के चहचहाहट की भाँति घर में वेदध्वनि सुनी जा रही है। सूर्य ने रात्रिसुन्दरी का नाम तो बहुत सुना था। परन्तु देखा न था। सन्ध्या के रूप में उसका साक्षात्कार होना ही कौतुक है। उसे देखकर सूर्य अपनी गति भूल गये। एकटक होकर रात्रिसुन्दरी की मधुर मूर्ति का दर्शन करने लगे। इनका नाम ही पतङ्ग है। अतः सौन्दर्य पर आसक्त होना स्वभावसिद्ध है। सभ्यता की होली जैसी कही जा सकती है कवि ने कही। जन्म के समय सूर्य नारायण मीन के दश अंश पर थे। सो एकाएक मेष के दश अंश पर हो गये। अत्यन्त अलौकिक ग्रहस्थिति हो गई और यह स्थिति एक मास तक बनी रही। सूर्य नारायण ठहरे रह गये। शेष ग्रहगण बराबर चलते रहे। एक मास में स्वाभाविक स्थिति पर पहुँचे। तब सूर्यनारायण भी चले। अतः कहते हैं :

दो. मास दिवस कर दिवस भा, मरम न जानै कोइ।
रथ समेत रबि थाकेउ, निसा कौन बिधि होइ ॥१९५॥

अर्थ : एक महीने का दिन हुआ। यह मर्म किसी ने नहीं जाना। रथ के सहित सूर्य ठहर गये। रात हो तो कैसे हो ?

व्याख्या : रथी तो सदा स्थिर ही रहता है। रथ का चलना ही उसका चलना है। इसलिए रथ समेत रवि थाकेउ कहा। मध्याह्न के समय रामजन्म हुआ। उसी समय रथ रुक गया। अतः एक मास तक मध्याह्न ही बना रहा। सूर्य हटते ही नहीं। इसलिए एक महीने तक दिन बना रहा। रात न हुई। पर इस मर्म को किसी ने न जाना। क्योंकि सब लोग ब्रह्मानन्द में मग्न थे। यथा : ब्रह्मानंद मगन कपि सबके प्रभु पद प्रीति। जात न जाने दिवस निसि गये मास षट बीति।

यह रहस्य काहू नहिं जाना। दिन मनि चले करत गुनगाना ॥
देखि महोत्सव सुर मुनि नागा। चले भवन बरनत निज भागा ॥१॥

अर्थ : इस मर्म को किसी ने नहीं जाना। सूर्य गुणगान करते चले। इस महोत्सव को देखकर देवता, मुनि और नाग अपना भाग्य वर्णन करते हुए घर चले।

व्याख्या : ब्रह्मानन्द में विभोर होने से किसी को क्षुधा पिपासादि की बाधा नहीं हुई। न इतने समय का बीतना ही किसी को अद्भुत हुआ। इससे आनन्दातिशय कहा। दिनमणि चले कहकर दिखलाया कि जो काल की गति इतने देर तक रुकी पड़ी थी वह फिर चल पड़ी थी जैसे घड़ी का चलना कुछ देर के लिए रुक जाय और वह फिर चल पड़े। ऐसा दृश्य देखने के बाद सूर्यनारायण रामप्रभाव का गान करते चले।

एक कल्प में एक ही रामावतार होता है। और वह वैवस्वत मन्वन्तर में होता है। तेरह मन्वन्तर खाली ही रह जाते हैं। इन्द्रादि देवों की आयु एक मन्वन्तर की ही होती है। अतः सुर मुनि नाग रामावतारोत्सव देखने में अपने भाग्य की सराहना करते हैं। तेरह मन्वन्तर के सुर मुनि नागों के भाग्य में यह सुख नहीं था।

औरौ एक कहौं निज चोरी। सुनु गिरिजा अति दृढ़ मति तोरी॥
काग भुसुंडि संग हम दोऊ। मनुज रूप जानै नहि कोऊ॥२॥

अर्थ : और एक मैं अपनी चोरी कहता हूँ गिरिजे! सुनो तुम्हारी मति अति दृढ़ है। काग भुसुंडी मेरे साथ था। हम दोनों मनुष्य रूप धारण किये हुए थे। कोई जानता नहीं था।

व्याख्या : होली में अबीर उड़ने और गीतवाद्य के अतिरिक्त चोरी भी होती है। लड़के लकड़ी चुराकर होली में डालते हैं। वह चोरी बुरी नहीं समझी जाती। सो यहाँ शङ्कर भगवान् अपनी चोरी कहते हैं। अति दृढ़ मति तोरी का भाव यह कि तुम्हारी मति बड़ी दृढ़ है। मेरी चोरी सुनकर भी विचलित न होगी। सप्तर्षियों ने मेरे बहुत से दोष दिखाये। पर तुम तनिक भी विचलित नहीं हुई। स्पष्ट कह दिया। महादेव अवगुन भवन बिस्नु सकल गुन धाम। जाकर मन रम जाहि सन तेहि तेही सन काम। अतः तुमसे अपनी चोरी कहता हूँ। गुप्त रूप से प्रभु अवतीर्ण हुए थे। अपने स्वरूप से जाने से बात खुल जाती। इसलिए मैंने और भुसुण्डि ने नर रूप धारण कर रक्खा था।

परमानंद प्रेम सुख फूले। बीथिन्ह फिरहिं मगन मन भूले॥
यह सुभ चरित जान पै सोई। कृपा राम कै जापर होई॥३॥

अर्थ : परमानन्द प्रेम सुख से फूले हुए गलियों में मग्न मन होकर भूले फिरते थे। यह शुभ चरित वही जानता है जिसपर राम की कृपा होती है।

व्याख्या : देवताओं के समाज से खिसक गये। अयोध्या की गलियों में काग भुसुण्डि मिल गये सो उन्हें साथ लिये परमानन्द में फूले फूले फिरते थे। राजद्वार मिलता ही नहीं था। अपना स्वरूप छिपाये हैं। यही चोरी है।

यह चोरी भी शुभचरित है। इस बात को वे ही जान सकते हैं जिन पर राम की कृपा होगी। नहीं तो काग को साथ लिये मार्गभ्रष्ट हुए गलियों में भूलने को कौन अच्छी बात कहेगा?

तेहि अवसर जो जेहि बिधि आवा। दीन्ह भूप जो जेहि मन भावा॥
गज रथ तुरग हेम गो हीरा। दीन्हे नृप नाना बिधि चीरा॥४॥

अर्थ : उस अवसर पर जो जिस प्रकार आया उसे राजा ने वैसा ही मन-चाहा पदार्थ दिया। हाथी, रथ, घोड़ा, सोना, गाय, हीरा, और नाना प्रकार के वस्त्र राजा ने दिये।

राजा और कूप का स्वभाव है कि : बिनु गुन बूँद न देहिं। निर्गुन को कुछ भी नहीं देते। पर चक्रवर्ती महादेव की भाँति अवढर दानी हैं। और उस समय की तो विशेषता हो गई कि जो जिसे पसन्द हो उसे राजा दे डालता था। राजा रत्नभुक् होते हैं। जो सबसे अच्छी वस्तु होती है उसी का राजा उपभोग करते हैं। वे अदेय होती हैं। पर यहाँ यह नियम नहीं रह गया। रानिन्हदिये बसन मनि भूषन राजा सहज भंडार। यह कोई पूछनेवाला नहीं कि इसे लेकर तुम क्या करोगे?

दो. मन संतोष सबन्हि के, जहँ तहँ देहिं असीस।
सकल नयन चिरजीवहु, तुलसिदास के ईस ॥१९५॥

अर्थ : सबके मन में सन्तोष है। सब जहाँ-तहाँ आशीर्वाद देते हैं कि तुलसीदास के प्रभु सभी पुत्र चिरञ्जीवी हों।

व्याख्या : त्रेता के याचकों की प्रशंसा है कि अपने अभाव की पूर्ति मात्र का ही प्रतिग्रह करते थे। सबका मन सन्तुष्ट हो गया। नहीं तो संसार भर की सम्पत्ति केवल एक पुरुष की इच्छा पूर्ति के लिए भी यथेष्ट नहीं है। जिस किसी भाँति प्राणी के मन में सन्तोष उत्पन्न करना ही ईश्वरपूजन है। सो महाराज चक्रवर्ती द्वारा पूजन हो रहा है। राजा के परोक्ष में जहाँ-तहाँ आशीर्वाद दे रहे हैं : नृप तनय चारि चिरजीवहु संकर गौरि प्रसाद। तुलसीदास के ईश चारों भाई हैं। यथा : अवधेस के बालक चारि सदा तुलसी मनमन्दिर में विहरैं।

५. शिशु चरित प्रसङ्ग : तीसरे प्रश्न का उत्तर :

कछुक दिवस¹ बीते एहि भाँति। जात न जानिअ दिन अरु राती ॥
नामकरन कर अवसरु जानी। भूप बोलि पठए मुनि ग्यानी ॥१॥

———

१. चैत चतुर्दसि चाँदनी अमल उदित निसिराज।
उडुगन अवलि प्रकासही, उमगत आनंद आज ॥
जागिय रामछठी सजनी रजनी रुचिर निहारि।
मङ्गल मोद मढ़ी मूरति नृप के बालक चारि ॥
मूरति मनोहर चारि विरचि विरंचि परमारथ मई।
अनुरूप भूपति जानि पूजन जोग विधि संकर दई ॥
तिन्हकी छठी मङ्गलमठी जग सरस जिन्हकी सरसई।
किए नींद भामिनि जागरन, अभिरामिनी जामिनि भई ॥
सेवक सजग भये समय, साधन सचिव सुजान।
मुनिवर सिखये लौकिको वैदिक विविध विधान ॥
वैदिक विधान अनेक लौकिक आचरत सुनि जानिकै।
बलिदान पूजा मूलिकामनि साधि राखि आनि कै ॥

अर्थ : कुछ दिन इस भाँति बीत गये। दिन और रात्रि का जाना मालूम नहीं होता था। नामकरण का अवसर जानकर राजा ने ज्ञानी मुनि को बुला भेजा।

व्याख्या : उमा का तीसरा प्रश्न है : बाल चरित पुनि कहहु उदारा। इसके उत्तर में दो प्रसङ्ग कहे जायँगे : १. शिशु चरित तथा २. बालचरित। यथा : पुनि सिसु चरित कहेसि मन लाई। बालचरित कहि विविधि मन महँ परम उछाह। सो पहिले शिशु चरित कहते हैं। उपर्युक्त उछाह में ही ग्यारह दिन बीत गये। चारों भाइयों का क्रम से जन्मोत्सव हुआ। वह उत्सव छठी तक चला गया। इसलिए ग्रन्थकार लिखते हैं कि परम उछाह में दिन बीत गये। कुछ मालूम न पड़ा। आनन्द में रात दिन के बीतने का पता नहीं चलता।

कर्मकाण्ड के लिए गुरुजी के यहाँ बुलावा गया। गुरुजी पुरोहित भी हैं, मन्त्री भी हैं। अतः पुरोहित का कार्य करने के लिए बुलावा गया। महाराज स्वयं नहीं गये। यदि वसिष्ठजी के बिना आये काम चल जाता तो चक्रवर्ती जी स्वयं जाते। मुनिजी ब्रह्मऋषि ज्ञानी हैं। चक्रवर्ती जी भी नृपऋषि ज्ञानी हैं।

करि पूजा[1] भूपति अस भाखा। धरिअ नाम जो मुनि गुनि राखा॥
इन्हके नाम अनेक अनूपा। मैं नृप कहब स्वमति अनुरूपा॥२॥

जे देव देवी सेइयत हित लागि चित सनमानि कै।
ते जंत्र मंत्र सिखाइ राखत सबनि सो पहिचान कै॥
ज्यौं आजु कालिहु परहु जागत होइगो नेवते दिए।
ते धन्य पुन्य पयोधि जे तेहि समय सुख जीवन जिए॥
निज लोक विसरे लोकपति घर की न चरचा चालही।
तुलसी तपत तिहुँ ताप जग जनु प्रभु छठी छाया लही॥

१. वरे विप्र चहुँ वेद के रवि कुल गुरु ज्ञानी।
आपु बसिष्ठ अथर्वणी महिमा जग जानी॥
लोक रीति विधि वेद की करि कह्यौ सुबानी।
सिसु समेत वेगि वोलिये कोसल्या रानी॥
चारु चौक बैठत भई भूप भामिनि सोहै।
गोद मोद पूरति लिये सुकृती जन जोहैं॥
लगे पढ़न रच्छा रिचा ऋषिराज विराजे।
गगन सुमन झरि जय जय बहु बाजन बाजे॥
बाल विलोकि अथर्वणी हँसि हरहि जनायो।
सुभ को सुभ, मोद मोद को 'राम' नाम सुनायो॥
भरत लखन रिपुदवनहू धरे नाम विचारी।
फलदायक फल चारि के दसरथ सुत चारी॥

अर्थ : पूजा करके राजा ने ऐसा कहा कि हे मुनिजी ! जो नाम आपने सोच रखा हो उसे रख दीजिये। मुनिजी ने कहा इनके नाम अनेक हैं और अनूप हैं, राजन् ! मैं अपनी बुद्धि के अनुसार कहूँगा।

व्याख्या : नामकरण की अङ्गभूत पूजा करके तथा मुनिजी की पूजा करके चक्रवर्ती जी नामकरण के लिए प्रार्थना करते हैं। मुनिजी के स्वभाव से महाराज परिचित हैं कि जो करना है उसे मुनिजी पहिले से विचार किये रहते हैं।

मुनिजी ने कहा कि यहाँ नाम रखने की बात ही नहीं है। चारों भाइयों के सहस्र नाम हैं और उन नामों में से कोई अधिक या कोई न्यून नहीं हैं। एक से एक अधिक हैं। इसलिए अनेक और अनुपम कहा। यथा : यद्यपि प्रभु के नाम अनेका। श्रुति कह अधिक एक ते एका। अब उन्हीं नामों में से एक-एक चारों के लिए चुनना है। अतः अपने पसन्द के अनुसार मैं कहूँगा।

जो आनन्द सिंधु सुखरासी। सीकर तें त्रैलोक सुपासी॥
सो सुख धाम राम अस नामा। अखिल लोकदायक बिश्रामा॥३॥

अर्थ : जो आनन्द के समुद्र और सुख की राशि हैं। बिन्दुमात्र से त्रैलोक्य को सुख देनेवाले हैं। इन्हीं सुखधाम का राम ऐसा नाम है। जो सम्पूर्ण लोक को विश्राम देनेवाला है।

व्याख्या : आनन्दसिन्धु कहकर परिपूर्णानन्द कहा। आनन्दमात्र का मूल निधान तथा देशतः कालतः वस्तुतः अपरिच्छिन्न कहा। आनन्द कहने से ही सत् और चित् का आपसे आप ही ग्रहण हो जाता है। सुखराशि से व्यावहारिक आनन्द का मूल स्रोत कहा। एष ह्येवानन्दयतीति श्रुतेः। यथा : जो सुख सुधा सिंधुसीकर ते सिव बिरंचि प्रभुताई। अतः स्वरूप से सिन्धु। चरित करने में राशि। यथा : नित नव चरित देख पुरवासी। पुनि पुनि कहहिं धन्य सुखरासी।

अखिल लोक विश्रामदायक होने से सुखधाम कहा। सुखसिन्धु सुखराशि और सुखधाम कहने से उत्पत्ति स्थिति और प्रलय का कारण द्योतित किया। यथा : आनन्दाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते। आनन्देन जातानि जीवन्ति आनन्दं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति। अथवा ज्ञानी के लिए आनन्दसिन्धु। कर्मठ के लिए सुखराशि : स्वर्गसुखरूप तथा भक्त के लिए सुखधाम कहा। ऐसे प्रभु का नाम राम रक्खा। क्योंकि रामपद का अर्थ है जिस अनन्त चिदात्मा नित्यानन्द में योगी रमण करते हैं वही परब्रह्म राम हैं। यथा : रमन्ते योगिनोऽनन्ते नित्यानन्दे चिदात्मनि। इति रामपदेनासौ परं ब्रह्माभिधीयते। रामतापनीये।

बिस्व[1] भरन पोषन कर जोई। ताकर नाम भरत अस होई॥
जाके सुमिरन तें रिपु नासा। नाम सत्रुहन बेद प्रकासा॥४॥

---

 १. यहाँ विधि अलङ्कार है।

अर्थ : जो जगत् का भरण पोषण करता है उसका नाम भरत है। जिसके स्मरण से शत्रु का नाश होता है उसका नाम शत्रुहन वेद में प्रकाशित है।

व्याख्या : जिस भाँति त्रैलोक्य सुपासी होने से रामनाम रक्खा गया। उसी भाँति जगत् के भरण पोषण करने से भरत नाम रक्खा गया। भरत पद का अर्थ ही है भरण करनेवाला। इसी भाँति शत्रुघ्न पद का अर्थ है शत्रु का नाश करनेवाला। जिस भाँति गणेश जी के स्मरण मात्र से विघ्न का नाश होता है। उसी भाँति जिसके स्मरण मात्र से शत्रु का नाश होता है उसका नाम शत्रुहन रक्खा।

दो. लच्छन धाम राम प्रिय, सकल जगत आधार।
गुरु वसिष्ठ तेहि राखा, लछिमन नाम उदार ॥१९७॥

अर्थ : जो लक्षण के धाम हैं। रामजी को प्रिय हैं और सम्पूर्ण जगत् के आधार हैं। गुरु वसिष्ठ ने उनका उदार नाम लक्ष्मण रक्खा।

व्याख्या : असाधारण धर्म ही लक्षण है। अतः जो विशेष धर्मों का निधान हो उसे लक्ष्मण कहते हैं। देवस्वामी जी कहते हैं : गौर अंग सब औ गर्भहिते, सीस चँदोला लक्ष्म गहे। ताते नाम कियो लक्ष्मण अस सिर पर धरती भार वहे। तीन शून्यते सहस्रशीर्षता या में कछु न प्रमान-चहे। रामप्रिय शब्द में तत्पुरुष और बहुव्रीही दोनों समास हैं। राम का प्रिय या राम हैं प्रिय जिसको। सकल जगत् आधार जाग्रत् के विभु होने से हैं अथवा भगवान् वाल्मीकि की उक्ति जो सहस सीस अहीस महिधर लखन सचराचर धनी के अनुसार शेषावतार होने से सकल जगत् आधार हैं। इनका उदार नाम लक्ष्मण है। भक्त सुखदाता तथा सकल जगत् आधार होने से उदार कहा।

धरे नाम गुरु हृदय बिचारी। वेद तत्व नृप तव सुत चारी॥
मुनि धन जन सरबस सिव प्राना। बाल केलि रस तेहिं सुखमाना ॥१॥

अर्थ : गुरुजी ने हृदय में विचार के नाम रक्खा। कहा : राजन् तुम्हारे चारों बेटे वेद के तत्त्व हैं जो मुनियों के धन भक्तों के सर्वस्व और शिवजी के प्राण हैं। वे बाललीला के आनन्द में सुख मान रहे हैं।

व्याख्या : वेद का तत्त्व प्रणव है। प्रणव में चार मात्रा होती हैं। अ, उ, म् और अर्धमात्रा। अकार जाग्रत् अवस्था के विभु विराट् रूप लक्ष्मण[1] हैं। उकार स्वप्नावस्था के विभु हिरण्यगर्भरूप शत्रुघ्न हैं। मकार सुषुप्ति के विभु ईश्वर रूप

---

१. अकाराक्षरसम्भूतः सौमित्रिर्विश्वभावनः। उकाराक्षरसम्भूतः शत्रुघ्नस्तैजसात्मकः। प्राज्ञात्मकस्तु भरतो मकाराक्षरसम्भवः। अर्धमात्रात्मको रामो ब्रह्मानन्दैकविग्रहः॥ रामोत्तरतापनीये : अकाराक्षर से उत्पन्न विश्वभावन लक्ष्मणजी हैं, उकाराक्षर से उत्पन्न तैजसात्मक शत्रुघ्न जी हैं। मकराक्षर से उत्पन्न प्राज्ञात्मक भरत जी हैं। ब्रह्मानन्दैकविग्रह राम अर्धमात्रात्मक हैं।

भरत हैं और अर्ध मात्रा तुरीय के विभु ब्रह्म साक्षात् राम हैं। इस भाँति प्रणवरूप होने से चारों भाई वेद के तत्त्व हैं। चक्रवर्ती जी ने कहा था : धरिय नाम जो मुनि गुनि राखा। सो हृदय से विचारकर मुनिजी ने नाम रख दिया। पहिले तुरीय के विभु साक्षात् ब्रह्म का नाम रक्खा। क्योंकि ये ही ज्येष्ठ थे। तत्पश्चात् क्रमानुरूप सुषुप्ति के विभु ईश्वर का नाम भरत रक्खा। अब तीसरे पुत्र का नाम रखना क्रमप्राप्त था। परन्तु गुरुजी ने क्रम भङ्ग करके चौथे पुत्र स्वप्न के विभु का नाम शत्रुघ्न रक्खा। क्योंकि सुषुप्ति से स्वप्न अलग नहीं किया जा सकता। तत्पश्चात् तीसरे पुत्र जाग्रत् के विभु ही जगत् के आधार हैं। यथा : सुंदरी सुंदर वरन्ह सह··· सब एक मंडप राजहीं। जनु जीव उर चारिउ अवस्था विभु न सहित विराजहीं। अतः कहते हैं : धरेउ नाम गुरु हृदय विचारी। तुरीय के विभु राम हैं। यथा : तुरीयमेव केवलं। ये ही मुनियों के धन हैं, ये ही भक्तों के सर्वस्व हैं, ये ही शिवजी के प्राण हैं। इनकी प्राप्ति महा दुर्लभ है। सो चक्रवर्ती जी के प्रभाव से आज बाल-लीला में सुख मान रहे हैं। सबके नयन विषय हो रहे हैं।

बारेहि तें निज हित पति जानी। लछिमन रामचरन रति मानी॥
भरत सत्रुहन दूनौ भाई। प्रभु सेवक जसि प्रीति बड़ाई॥२॥

अर्थ : वचपन से ही अपना हित और स्वामी जानकर लक्ष्मणजी ने रामचरण में प्रीति लगायी और भरत शत्रुहन दोनों भाइयों की स्वामी और सेवक की भाँति प्रीति की बड़ाई हुई।

व्याख्या : कौसल्याजी ने अपने पायस का अंश जो सुमित्राजी को दिया था उसी से लक्ष्मण हुए। अतः लक्ष्मणजी की स्वभाव से ही श्रीरामजी के चरणों में प्रीति हुई और कैकेयीजी ने जो अपने पायस का अंश सुमित्राजी को दिया था। उसी से शत्रुघ्न हुए। अतः स्वभाव से ही वे भरतजी के अनुगामी हुए। यथा : लक्ष्मणो रामचन्द्रेण शत्रुघ्नो भरतेन च। द्वंद्वीभूय चरन्तौ तौ पायसांशानुसारतः। अध्यात्मरामायणे। यहाँ भरत शत्रुहन दूनो भाई पायस के अंशानुसार ही कहा गया है। नहीं तो कैकेयी से भरत का जन्म हुआ और सुमित्रा को दो यमल : जोड़ुए लड़के हुए। क्योंकि उन्होंने कौसल्या और सुमित्रा दोनों से पायसांश प्राप्त किया था। यथा : कैकेयी चाथ भरतमसूत कमलेक्षणा। सुमित्रायां यमौ जातौ पूर्णेन्दु-सदृशाननौ।

दूसरी बात यह भी है कि तुरीय के विभु और जाग्रत् के विभु का सदा साथ है। क्योंकि तुरीय की प्राप्ति जब कभी होगी तो जाग्रत से ही होगी। सुषुप्ति स्वप्न से नहीं हो सकती। इसी भाँति सुषुप्ति और स्वप्न का साथ है। सुषुप्ति के अन्तर्गत ही स्वप्नावस्था है। अतः दोनों के विभुओं का भी साथ स्वाभाविक है। पायस का जो विभाग हुआ था सो इसी बात को लक्ष्य में रखकर हुआ था।

स्याम गौर सुंदर दोउ जोरी। निरखहि छबि जननी तृन तोरी॥
चारिउ सील रूप गुन धामा। तदपि अधिक सुख सागर रामा॥३॥

अर्थ : श्याम और गौर की दोनों जोड़ी सुन्दर थी। तिनका तोड़कर माताएँ छवि देखती थीं। चारों शील रूप और गुण के धाम थे। फिर भी रामजी अधिक सुखसागर थे।

व्याख्या : अव्यक्त रूप होने से राम और भरत, तुरीय और सुषुप्ति के विभु श्याम हैं। जाग्रत् और स्वप्न व्यक्त रूप हैं। अतः उनके विभु लक्ष्मण और शत्रुघ्न गौर हैं। राम और लक्ष्मण की जोड़ी और भरत तथा शत्रुघ्न की जोड़ी श्याम गौर की जोड़ियाँ हुईं। इनकी छवि माताएँ तृण तोड़कर देखती थीं। जिसमें अपनी डीठ बालकों को न लगे। चारों भाई शील रूप और गुणों के धाम थे। पर रामजी सबसे अधिक सुखसागर थे। यथा : या सिसु के गुन नाम बड़ाई। जद्यपि बुधि बल रूप, सील, गुन समय चारु चारयो भाई। तदपि लोक लोचन चकोर ससि राम भगत सुखदाई।

हृदय अनुग्रह इंदु प्रकासा। सूचत किरन मनहोर हासा॥
कबहुँ उछंग कबहुँ वर पलना। मातु दुलारै कहि प्रिय ललना॥४॥

अर्थ : हृदय में अनुग्रहरूपी चन्द्रमा का प्रकाश है। उसी की किरन मनोहर हासरूप से सूचित होती है। कभी गोद में कभी सुन्दर हिंडोले पर बैठकर माँ प्रिय ललन कहकर दुलार करती है।

व्याख्या : होठों पर मृदु हँसी के आने से मुख की शोभा और भी अधिक हो गयी। हृदय में अनुग्रह का चन्द्रोदय हुआ। अतः वह दृष्टिगोचर नहीं है। पर उसकी किरणें मनोहर हास के रूपमें अधर पल्लवों पर खेल रही हैं। कभी माँ गोद में लेकर खेलाती है और कभी पालने पर झुलाती है। पालने पर झुलाना ही बच्चों के लिए व्यायाम है। प्रिय ललन कहकर दुलारती है। कबहुँ उछंग। यथा : सुभग सेज सोभित कौसल्या रुचिर राम सिसु गोद लिये। बार बार विधु बदन विलोकति, लोचन चारु चकोर किये। कबहूँ पौंढ़ि पयपान करावति कबहूँ राखति लाय हिये। बाल केलि गावति हलरावति पुलकति प्रेम पियूष पिये। विधि महेस मुनि सुर सिहात सब देखत अंबुद ओट दिये। तुलसिदास ऐसो सुख रघुपति पै काहू तो पायो न बिये।

कबहूँ बर पलना। यथा : पालने रघुपतिहि झुलावै। लै लै नाम सप्रेम सरस स्वर कौसल्या कलकीरति गावै। केकिकंठ द्युति स्यामबरन बपु बालविभूषन विरचि बनाए। अलकैं कुटिल ललित लटकन भ्रू नीलनलिन दोउ नयन सुहाए। सिसु सुभाय सोहत जब करगहि बदन निकट पदपल्लव लाए। मनहुँ सुभग जुग भुजग जलज भरिलेत सुधा ससि सों सचुपाये। उपर अनूप विलोकि खेलौना किलकत पुनि पुनि पानि पसारत। मनहुँ उभय अंभोज अरुन सो विधुभय विनय करत अति आरत। तुलसिदास बहु बासविवस अलिगुंजत सुछबिन जात बखानी। मनहु सकल स्रुति रिचा मधुप ह्वै बिसद सुजस बरनत बरबानी।

मातु दुलारै कहि प्रिय ललना। यथा : ललन लोने लेरुआ बलि मैया। सुख

सोइये नीद वेरिआ भइ चारु चरित चारो भया। कहति मल्हाइ लाइ उर छिन छिन छगन छबीले छोटे छैया। मोदकंद कुल कुमुद चंद्र मेरे रामचंद्र रघुरैया। रघुवर वाल केलि संतन की सुभग सुखद सुरगैया। तुलसी दुहि पीवत सुख जीवत पय सप्रेम घनी घैया।

दो. व्यापक ब्रह्म निरंजन, निर्गुन विगत विनोद।
सो अज प्रेम भगति बस, कौसल्या के गोद ॥१९८॥

अर्थ : जो व्यापक, ब्रह्म, निरञ्जन, निर्गुण, लौकिक क्रीड़ा से रहित है। वही अजन्मा भक्ति प्रेम के वश होकर कौसल्या की गोद में है।

व्याख्या : यहाँ भक्ति की महामहिमा दिखला रहे हैं। पहिले कह चुके हैं। अगुन अरूप अलख अज जोई। भगत प्रेमबस सगुन सो होई। जो गुन रहित सगुन सो कैसे। जलहिम उपल विलग नहि जैसे। उसीकी सार्थकता दिखलाते हैं कि व्यापक ब्रह्म ही परिच्छिन्न से होकर निरञ्जन सञ्जी से होकर, निर्गुण सगुण से होकर अजन्मा जन्म लिये हुए की भाँति विगतविनोद विनोद करते हुए से आज कौसल्या की गोद में विराजमान हैं। जो जगत् के रक्षक हैं वे सर्वात्मा रक्ष्य होकर कौसल्या की गोद में आगये हैं और कौसल्या उनकी रक्षा में परमानन्द का अनुभव कर रही हैं।

काम कोटि छबि स्याम सरीरा। नील कंज बारिद गंभीरा ॥
अरुन चरन पंकज नख जोती। कमल दलन्हि बैठे जनु मोती ॥१॥

अर्थ : नील कमल और गम्भीर बादल के समान श्याम शरीर की शोभा करोड़ों काम की सी है। अरुण चरणकमल में नख की ज्योति ऐसी शोभा दे रही है, जैसे कमल के दलों पर मोती वैठे हों।

व्याख्या : प्रभु की श्यामता अद्भुत है। नील कमल रहने से भी पूरा नहीं पड़ता तो नील नीरधर कहते हैं। फिर भी सन्तोष नहीं होता तो नीलमणि कहते हैं। कहीं केकि कंठ दुति श्यामल भंगा बतलाते हैं। जब किसी भाँति काम नहीं चलता तो करोड़ों काम से उपमित करते हैं। संसार में शोभा की मर्याद काम माना जाता है। वह भी इस श्याम रङ्ग के सामने कुछ जँचता नहीं।

चरणकमल अरुण वर्ण हैं। श्रीगोस्वामी जी उस लालिमा के लिए कहते हैं: बसी मानहु चरन कमलन्हि अरुनता तजि तरनि। मानो सूर्य को छोड़कर लालिमा आकर इन्हीं चरणों में बसी है। जानुपानि विचरण में उन्हीं नखमणि चन्द्रिकाओं की ज्योति पृथ्वी से रुककर चरण तल में आ पड़ती है। उसकी ऐसी शोभा होती है जैसे कमल के दलों पर मोती वैठे हों।

रेख कुलिस ध्वज अंकुस सोहे। नूपुर धुनि सुनि मुनि मन मोहे ॥
कटि किंकिनी उदर त्रय रेखा। नाभि गँभीर जान जिहि देखा ॥२॥

अर्थ : वज्र ध्वजा और अंकुश की रेखाएँ शोभायमान हैं। नूपुर की धुनि सुनकर मुनियों का मन मोह जाता है। कमर में करधनी है। उदर में तीन रेखाएँ हैं। गंभीर नाभि की शोभा वही जानता है जिसने देखा हो।

व्याख्या : चरण चिन्ह अड़तालीस कहे गये हैं। उनमें से चार का ही वर्णन श्रीरामचरितमानस में आता है। यथा : ध्वज कुलिस अंकुस कंजजुत वन सहत कंटक किन लहे। परन्तु यहाँ तीन का ही वर्णन है। भाव यह कि अभी अत्यन्त शिशु हैं। अतः रेखाएँ अत्यन्त सूक्ष्म हैं। परन्तु उनमें से तीन तो इस समय भी स्पष्ट हैं। अभी कमल रेखा स्पष्ट नहीं हुई है। बड़े होने पर स्पष्ट होगी। श्रीगोस्वामी जी को अत्यन्त सन्निधान से समीक्षा का अवसर नहीं मिला। परन्तु ये चार रेखाएँ तो ऐसी हैं कि जहाँ पृथ्वी पर प्रभु के चरण चिह्न पड़ते हैं वहाँ इनकी छाप पड़ जाती है। अतः श्रीगोस्वामी जी चार का ही वर्णन करते हैं।

भुज बिसाल भूषन जुत भूरी। हियँ हरि नख अति सोभा रूरी ॥
उर मनिमाल पदिक की सोभा। विप्र चरन देखत मन लोभा ॥३॥

अर्थ : विशाल भुजाओं में बहुत से गहने थे और हृदय में बघनहा की बड़ी शोभा थी। उर पर मणि के पदिकहार की शोभा और विप्र के चरण का चिह्न देखकर मन लुभा जाता था।

व्याख्या : यद्यपि अभी खड़े नहीं हो सकते। फिर भी भुजाओं की विशालता लक्षित होती है और वे कङ्कण अङ्गदादि अनेक आभूषणों से सुशोभित हैं और हृदय में बघनहा की शोभा है। अनिष्ट निवारणार्थ बच्चे को बघनहा पिन्हाया जाता है विप्रचरण को छोटी सी छाप ऐसो मनोहारिणी है कि जिसके देखने से ही मन लुब्ध हो जाता है। यह वर्णन विष्णु भगवान् के रामावतार का है। क्योंकि विष्णु भगवान् ही ने भृगुमुनि के चरण चिन्ह को हृदय में धारण किया था। पदिकहार का वर्णन करते हुए देवस्वामी जी लिखते हैं : पदिकहार रघुवर कंठन में सात मनिन को झलक रहा। मोहनमाला जाहि कहत हैं अधिक छविन सो छलकि रहा। भावी राम चरित जनु सातों कांडन से हियहलकि रहा। स्ववरन सूत्रन से ग्रंथित लखि देवहु को मन ललकि रहा।

कंबु कंठ अति चिबुक सुहाई। आनन अमित मदन छबि छाई ॥
दुइ दुइ दसन अधर अरुनारे। नासा तिलक को बरनै पारे ॥४॥

अर्थ : शंख के ऐसा कण्ठ और ठुड्डी सुन्दर और मुखपर अगणित काम की शोभा छाई हुई थी। दो दो दंतुलियाँ और होठ लाल तथा नासिका पर के तिलक का कौन वर्णन कर सकता है।

व्याख्या : शंख के समान कण्ठ की ही शोभा है। चिबुक हो चूमा जाता है। सो अत्यन्त ही सोहावना है। शरीर में कोटि काम की छवि है। यथा : काम कोटि छवि स्याम शरीरा। अतः मुख पर अगणित काम छवि का छाना प्राप्त है।

दुइ दुइ से ऊपर नीचे की दो दो दँतुलियाँ कहा। आज भाल तिलक नहीं है। बच्चों को नासा तिलक ही दिया जाता है। यथा बाल गोपाल के उपासक आज भी नासा तिलक धारण करते हैं। उस नासा तिलक की बालगोविन्द को पाकर अपार शोभा हो गई। यथा : लटकन लसत ललाट लटूरी। दमकति द्वै द्वै दँतुरिया रूरो। मुनिमन हरत मंजु मसिबिंदा। ललित बदन बलि बाल मुकुंदा : गीतावली।

सुंदर श्रवन सुचारु कपोला। अति प्रिय मधुर तोतरे बोला ॥
चिक्कन कच कुंचित गभुआरे। बहु प्रकार रचि मातु सँवारे ॥५॥

अर्थ : सुन्दर कान और गाल तो अत्यन्त ही सुन्दर थे और मीठी तोतरी बोली अत्यन्त ही प्यारी मालूम होती थी। गर्भ के ही चिक्कन और घुँघराले बालों : अभी तक मुण्डन संस्कार नहीं हुआ है : को माँ ने बहुत प्रकार से सँवार रक्खा था।

व्याख्या : नीलमणिमय सीपी की भाँति समान श्रवण शोभायमान थे और दर्पण से कपोल की शोभा तो अत्यन्त ही अधिक थी। बच्चों की तोतली वाणी स्वभाव से ही मधुर और प्यारी होती है। सो राम गोविन्द की तोतली वाणी अत्यन्त मधुर और प्यारी थी। यथा :

सुभग चिबुक द्विज अधर नासिका श्रवन कपोल मोहि अति भाए।
भ्रूसुंदर करुनारस पूरन, लोचन मनहुँ जुगल जलजाए ॥१॥
भाल विसाल ललित लटकन वर, बालदसा के चिकुर सोहाए।
मनु दोउ गुरु सनि कुज आगे करि ससिहि मिलन तम के गन आए ॥२॥
भाल तिलक मसिबिंदु बिराजत, सोहत सीस लाल चौतनियाँ।
मन मोहनी तोतरी बोलनि, मुनिमन हरति हंसति किलकनियाँ ॥३॥

पीत झगुलिया तनु पहिराई। जानु पानि बिचरनि मोहि भाई ॥
रूप सकहिं नहिं कहि श्रुति सेखा। सो जानइ सपनेहुँ जिन्ह देखा ॥६॥

अर्थ : पीली झँगुली शरीर में पहिना दी गई और घुटने तथा हाथ के बल से चलने लगे। वह शोभा मुझे बहुत अच्छी लगी। रूप का वर्णन वेद और शेष नहीं कर सकते। उसे तो वे ही जान सकते हैं जिन्होंने स्वप्न में भी देख पाया है।

व्याख्या : श्याम शरीर पीली झँगुली में ऐसा खिला मानो छोटे से बादल ने बाल दामिनी को लपेट लिया। गीतावली में कहते हैं : पियरी झीनी झंगुली साँवरे सरीर खुली बालक दामिनी ओढी मानो वारे-वारिधर। जानु पानि विचरण के विषय में कहते हैं : राजमराल विराजत विहरत जे हर हृदय तड़ाग। ते नृप अजिर जानुकर धावत धरन चटक चल काग। परिजन सहित राय रानिन्ह कियो मज्जन प्रेम प्रयाग। तुलसी फल ताके चारयौ मनि मरकत पंकज राग।

इस वर्णन को सुनकर कोई यह न समझ ले कि मैंने ठीक ठीक रूप का वर्णन कर दिया। इसलिए कहते हैं कि श्रुति शेष नहीं वर्णन कर सकते सर्वथा अवर्णनीय है। शारदा को नहीं कहा क्योंकि कोई भी वर्णन करेगा तो वाणी की ही सहायता

से वर्णन करेगा। अवर्णनीय कहने से ही वाणी का ग्रहण हो गया। फिर भी अज्ञेय नहीं है। सपने में भी जिसने देखा है वह इस बात को जानता है कि वह महासौन्दर्य सर्वथा वाणी से परे है। श्रीगोस्वामी जी ने स्वप्न में इस प्रकार दर्शन किया था, इसलिए ऐसा कहते हैं। यहाँ गोस्वामीजी ने नेत्र का वर्णन नहीं किया। क्योंकि याद नहीं है। सपने की बात पूरी पूरी याद नहीं रहती। एकाध बात की भूल पड़ जाया करती है।

दो. सुख संदोह मोह पर, ग्यान गिरा गोतीत।
दंपति परम प्रेम बस, कर सिसु चरित पुनीत ॥१९९॥

अर्थ : जो सुख की राशि मोह से परे है और जिस तक बुद्धि वाणी और इन्द्रिय की पहुँच नहीं है। वही राजा रानी के परम प्रेम के वश होकर पवित्र शिशु लीला कर रहे हैं।

व्याख्या : व्यापक ब्रह्म निरंजन निर्गुन विगत विनोद। सो अज प्रेम भगति बस कौसल्या के गोद। तक प्रभुअवतार प्रसङ्ग कहा। अब इस १९९ वें दोहे में शिशुचरित कहा। दोनों में यह दिखाया कि अवतीर्ण होने या शिशुचरित करने से उनके स्वरूप में कोई अन्तर न पड़ा। जब बारह दिन के थे तो कौसल्या की गोद में थे। अब हाथ और घुटने के बल से चलने लगे तब माता और पिता दोनों को आनन्द दे रहे हैं। चक्रवर्तीजी भी गोद में लेकर बाहर निकलते हैं। सखी-सखी से कहती है : सवैया :

अवधेस के द्वारे सकारे गई, सुत गोद कै भूपति लै निकसे।
अवलोकि हौं सोच विमोचन को ठगिसी रही जो न ठगे धिकसे ॥
तुलसी मन रंजन रंजित अंजन नयन सुखंजन जातक से।
सजनी ससि में समसील उभै नवनील सरोरुह से बिकसे ॥

सखी महारानी से कहती है :

नेकु विलोकि धौं रघुबरनि।
चारि फल त्रिपुरारि तोको दिये कर नृप घरनि ॥१॥
बाल भूषन वसन तन सुंदर रुचिर रज भरनि।
परसपर खेलनि अजिर, उठि चलनि गिरि गिरि परनि ॥२॥
झुकनि झाँकनि छाँह सो, किलकनि नटनि हठि लरनि।
तोतरी बोलनि विलोकनि मोहनी मनहरनि ॥३॥
सखि वचन सुनि कौसिला लखि सुढर पासेढरनि।
लेति भरि भरि अंक सैंतति पैंत जनु दुहु करनि ॥४॥
चरित निरखत विबुध तुलसी ओट दै जलधरनि।
चहत सुर सुरपति भयो सुरपति भयो चहै तरनि ॥५॥

जो आनन्दसिन्धु है वह आज बिन्दु सा प्रतीत होता है। जो मोह से परे है वह अबोध बाललीला कर रहा है। जो बुद्धि, वाणी और इन्द्रिय से अतीत है

वह दशरथ कौसल्या की गोद में है। सो यह सब प्रेमा भक्ति की करामात है। जो गुनरहित सगुन सो कैसे। जल हिम उपल बिलग नहिं जैसे। अगुन अरूप अलख अज जोई। भगत प्रेम बस सगुन सो होई। का यह बड़ा मनोहर उदाहरण है।

एहि बिधि राम जगत पितु माता। कोसलपुर बासिन्ह सुखदाता ॥
जिन्ह रघुनाथ चरन रति मानी। तिन्ह की यह गति प्रकट भवानी ॥१॥

अर्थ : जगत् के माता पिता राम इस भाँति कोसलपुरवासियों को सुख देते थे जिन्होंने रघुनाथ के चरणों में प्रीति की। हे भवानी! उनकी यह प्रत्यक्ष गति है।

व्याख्या : जगत् के पिता भी राम और माता भी राम। वही उपादान कारण और वही निमित्त कारण भी हैं। जो आज माता पिता की गोद में खेल रहे हैं वे किसी के बेटे नहीं हैं। सम्पूर्ण जगत् के जनक जननी हैं। आज राजकुमार बने हुए कोसलनिवासी पुरजन को सुख दे रहे हैं। यथा : लोचननि को लहत फल छबि निरखि पुर नर नारि। बसत तुलसीदास उर अवधेस के सुत चारि।

शङ्कर भगवान् भवानी को सम्बोधन करके कहते हैं कि ज्ञानी की गति प्रकट नहीं होती। परन्तु जिनने रघुनाथ के चरणकमलों में प्रीति की है उनकी यह प्रकट गति है कि भवबन्धन को छोड़नेवाला उनकी गोद में है। जिसकी गोद में अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड हैं वह अपने भक्त की गोद में है। मयि ते तेषु चाप्यहम्। वे मेरे में हैं और उनमें मैं हूँ। गी.। यहाँ पर गोस्वामीजी भक्ति की महिमा दिखलाते हैं।

रघुपति बिमुख जतन कर कोरी। कवन सकै भव बन्धन छोरी ॥
जीव चराचर बस कै राखे। सो माया प्रभु सों भय भाखे ॥२॥

अर्थ : रघुपति विमुख होकर करोड़ यत्न करके भी कौन भव बन्धन को खोल सकता है? जिस माया ने चराचर जीव को वश कर रक्खा है वह प्रभु से भयग्रस्त होकर त्राहि त्राहि करती है।

व्याख्या : बँधा हुआ स्वयं अपने को छुड़ा नहीं सकता। जो छुड़ानेवाला है, यथा : तुलसिदास यह मोह श्रृंखला छूटिहि तुम्हरे छोरे। विनय.। उसी से जो विमुख हो गया उसके छूटने की कौन आशा है। सरकारी कैदी को कौन छुड़ावे। यथा : जौ खल भएसि रामकर द्रोही। ब्रह्म रुद्र सक राखि न तोही। वह तो उन्हीं के शरण में जाने से छूटेगा। चाहे जब जाय दूसरा उपाय नहीं है। भगवद्गीता में स्वयं कहते हैं : यह मेरी दैवी गुणमयी माया उल्लंघन करने योग्य नहीं है। जो मेरी शरण आते हैं वे ही इसे पार कर सकते हैं। यथा : दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया। मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते।

भगतिहि सानुकूल रघुराया। ताते तेहि डरपति अति माया। जो माया सब जगहि नचावा। जासु चरित लखि काहु न पावा। सो प्रभु भ्रूविलास खग

राजा। नाच नटी इव सहित समाजा। तथा : देखी माया सब बिधि गाढ़ी। अति सभीत जोरे कर ठाढ़ी। देखा जीव नचावै जाही। देखी भगति जो छोरै ताही। ऐसी प्रबल माया से आप से आप कोई भी नहीं छूट सकता। फिर रामविमुख के छूटने का क्या उपाय है ? अतः जो मायापति है जिससे माया डरती है उसी की शरण ग्रहण करनी चाहिए।

भृकुटि बिलास नचावै ताही। अस प्रभु छाड़ि भजिय कहु काही ॥
मन क्रम बचन छाड़ि चतुराई। भजत कृपा करिहहिं रघुराई ॥३॥

अर्थ : जो प्रभु उसे : माया को भौंह के इशारे पर नचाता है उसे छोड़कर किसका भजन किया जाय। मनसा वाचा कर्मणा चतुराई छोड़कर भजन करने से रघुराई कृपा करेंगे।

व्याख्या : जब यह निश्चय है कि अपने प्रयत्न से कोई भव बन्धन से मुक्त नहीं हो सकता तब किसी ऐसे समर्थ का आश्रयण करना होगा जो स्वयं मुक्त हो और उससे छुड़ा सके। इस पर गोस्वामीजी कहते हैं कि जिसके भौंह के इशारे पर माया नाचती है उसे छोड़कर किसका आश्रय ग्रहण किया जाय ? अर्थात् वही एक भजनीय है। उसी की कृपा से सब कुछ सम्भव है।

अब प्रश्न यह उठा कि उसकी कृपा कैसे हो ? तो कहते हैं भजन करने से प्रभु कृपा करते हैं। परन्तु उसमें भी एक समय : शर्त है और वह यह है कि मनसा वाचा कर्मणा चतुरता को छोड़कर भजन करे। भजन में कार्पण्य और दैन्य प्रयोजनीय हैं। चतुरता में तो बुद्धि का कौशल दिखाना पड़ता है। छल से भी काम लेना पड़ता है। अतः चतुरता भजन का बाधक है। यथा : सूधे मन सूधे वचन सूधी सब करतूति। तुलसी सूधी सकल विधि रघुवर प्रेम प्रसूति। दो.।

एहि बिधि सिसु बिनोद प्रभु कीन्हा। सकल नगरबासिन्ह सुख दीन्हा ॥
लै उछंग कबहुँक हलरावै। कबहुँ पालने घालि झुलावै ॥४॥

अर्थ : इस विधि से प्रभु ने शिशु लीला की और सब नगरवासियों को सुख दिया। कभी गोद में लेकर हिलाती डुलाती हैं। कभी पालने में डालकर झुलाती हैं।

व्याख्या : एहि विधि राम जगत पितु माता। कोसल पुरवासिन्ह सुख दाता से प्रसङ्ग छोड़ा था और अवसर प्राप्त भक्ति की महिमा कहने लगे थे। अब फिर वहीं से प्रसङ्ग उठाते हैं। एहि विधि सिसु विनोद प्रभु कीन्हा। सकल नगरबासिन्ह सुख दीन्हा। नारियाँ महारानी की गोद भरी देखकर कृत्यकृत्य हैं। नर लोग चक्रवर्ती जी की गोद में दर्शन पाकर सुखी हैं।

माँ दुलार करती है। पर स्वास्थ्य पर बहुत ध्यान है। गोद में लिये रहती हैं तो भी हिलाया करती हैं। पालने पर रखती हैं तो उसे झुलाया करती हैं। जिसमें बालोचित व्यायाम होता रहे। रातदिन बच्चे में लगी रहती हैं।

दो. प्रेम मगन कौसल्या, निसदिन जात न जान।
सुत सनेह बस माता, बाल चरित कर गान ॥२००॥

अर्थ : कौसल्या रानी प्रेम में मग्न थीं। उन्हें रात दिन के बीतने का पता नहीं। पुत्र के प्रेम के वश में बाल चरित्र का गान करती थीं।

व्याख्या : जो प्रेम में मग्न हो उसे काल की गति का पता नहीं रहता। कौसल्या माता की यही गति है। कहा था : कीजिय सिसुलीला अति प्रियसीला यह सुख परम अनूपा। सो उसी परम अनूम सुख में भूली हुई हैं। अभी प्रभु शिशुरूप ही हैं। पर माँ बालचरित का गान करती हैं। बच्चे के बड़े होने के लिए बड़ी उत्सुक हैं। यथा :

ह्वै हौ लाल कबहिं बड़े बलि मैया।
राम लखन भावते भरत रिपुदवन चारु चारयौ भैया ॥१॥
बाल बिभूषन वसन मनोहर अंगनि विरचि बनैहौं।
सोभा निरखि निछावरि करि उर लाइ बारने जैहौं ॥२॥
छगनमगन अँगना खेलिहौ मिलि ठुमुकु ठुमुकु कब धैहौं।
कल बल बचन तोतरे मंजुल कहि माँ मोहि बुलैहौं ॥३॥
पुरजन सचिव राउ रानी सब सेवक सखा सहेली।
लैहैं लोचन लाहु सुफल लखि ललित मनोरथ बेली ॥४॥
जा सुख की लालसा लटू सिव सुक सनकादि उदासी।
तुलसी तेहि सुख सिंधु कौसिला मगन पै प्रेम पियासी ॥५॥

६. बालचरित प्रसंग

एकबार जननी अन्हवाए। करि सिंगार पलनाँ पौढ़ाए ॥
निज कुल इष्टदेव भगवाना। पूजा हेतु कीन्ह असनाना ॥१॥

अर्थ : एकबार बच्चे को माँ ने नहलाया और शृङ्गार करके पालने पर पौंढा दिया। अपने कुल के इष्टदेव भगवान् की पूजा के लिए स्वयं स्नान किया।

व्याख्या : माता कौसल्या प्रति मास श्रीरामजी का शृङ्गार करके मालपूआ, लड्डू, गुझिया, गुलगुले आदि बनाकर बायन बाँटती थी। यथा : कौसल्या जननी तस्य मासि मासि प्रकुर्वती। वायनानि विचित्राणि समलङ्कृत्य राघवम्। अपूपान् मोदकान् कृत्वा कर्णशष्कुलिकांस्तथा। अध्या.। तदनुसार एक बार माँ ने नहलाकर शृङ्गार किया और पालने पर लिटा दिया। क्योंकि उसे और भी कार्य करने थे।

उनके कुल के इष्टदेव श्रीरङ्गजी थे। सो उनकी पूजा के लिए स्नान किया। यह स्नान, प्रातः स्नान के अतिरिक्त पूजनार्थ था। गृहस्थ के लिए मध्याह्न का विधान ही विशेष है।

करि पूजा नैवेद्य चढ़ावा । आपु गई जहँ पाक बनावा ॥
बहुरि मातु तहवाँ चलि आई । भोजन करत देखि सुत जाई ॥२॥

अर्थ : पूजा करके नैवेद्य चढ़ाया और स्वयं वहाँ गई जहाँ रसोई बनी हुई थी । फिर माँ वहाँ से चली आई देखा कि बच्चा खा रहा है ।

व्याख्या : यद्यपि नैवेद्य पूजन का प्रधान अङ्ग है । फिर भी यहाँ पर नैवेद्य के विषय में विशेष रूप से कहना है । इसलिए कहते हैं कि उस पूजा में नैवेद्य चढ़ाया । उसे वहीं छोड़कर जो मालपूआ, लड्डू, आदि बायन बन रहा था उसे देखने चली गई । वहाँ से लौटने पर माँ देखती है कि बच्चा नैवेद्य खा रहा है ।

गइ जननी सिसु पहिं भयभीता । देखा बाल तहाँ पुनि सूता ॥
बहुरि आइ देखा सुत सोई । हृदय कंप मन धीर न होई ॥३॥

अर्थ : डरी हुई बेटे के पास गई । देखा बच्चा वहाँ सोया हुआ है । फिर लौटकर उसी बच्चे को देखा । हृदय काँपने लगा । धैर्य न रह गया ।

व्याख्या : माँ डर गई कि मैं तो बच्चे को पालने पर लिटा आई हूँ । वह यहाँ कैसे आगया ? बच्चा स्वयं आ सकता नहीं । दूसरा कोई यहाँ था नहीं । क्या कोई आया है ? देखने के लिए जहाँ बच्चे को पालने पर लिटाया था वहाँ गई तो आश्चर्य का ठिकाना नहीं रह गया । बच्चा सोया हुआ है । तो क्या वह मेरा बच्चा नहीं था ? किसी ने भरत को लाकर तो वहाँ नहीं रख दिया । इसलिए फिर वहाँ गई तो उसी बच्चे को पाया । अपने ही बच्चे को दो स्थानों में एक साथ देख रही है । एक स्थान में जागता हुआ और दूसरे स्थान में सोया हुआ । कलेजा काँप उठा । मेरे बच्चे को लेकर यह क्या विचित्र घटना हो रही है । कोई समाधान मन में नहीं आता । पहिले ही भयभीत हो गई थी । अब हृत्कम्प होने लगा । कोई अनिष्ट प्रभाव बच्चे पर पड़ रहा है । इसलिए धैर्य नहीं होता ।

इहाँ उहाँ दुइ बालक देखा । मति भ्रम मोर कि आन बिसेखा ॥
देखि राम जननी अकुलानी । प्रभु हँसि दीन्ह मधुर मुसुकानी ॥४॥

अर्थ : यहाँ वहाँ दो बालक देखा । यह मेरी बुद्धि का भ्रम है कि कोई विशेष बात है । रामजी ने देखा कि माँ विकल हो गई तो मधुर मुस्कान से हँस दिया ।

व्याख्या : इहाँ ठाकुरवाडी में और उहाँ पालने पर लड़के दो दिखाई पड़े । तब अपनी ही मति पर शङ्का करती हैं कि मुझे मतिभ्रम तो नहीं हो गया ? मति-भ्रम कैसे कहें । कोई दूसरा पदार्थ तो मुझे दो नहीं दिखला रहा है । जितनी विशेष बातें होती हैं उनमें यह तो सबसे विलक्षण है । कहीं एक लड़के से दो नहीं हो जाते ।

प्रभु ऐसे प्रेमवश हैं कि माँ की आकुलता न सह सके । एकदम वात्सल्य में

माँ मग्न थीं। इसलिए विवेक को जाग्रत करने के लिए मुसकरा दिये। अपना स्वरूप दिखलावेंगे। यथा : मोहिं बिलोकि राम मुसुकाहीं। बिहसत तुरत गयेउँ मुख माहीं : कि दो रूप पर क्यों आश्चर्य करती हो मैं सर्वरूप हूँ।

दो. देखरावा मातहि निज, अद्भुत रूप अखंड।
रोम रोम प्रति लागे, कोटि कोटि ब्रह्मंड ॥२०१॥

अर्थ : माता को अपना अद्भुत अखण्ड रूप दिखलाया। प्रत्येक रोम में करोड़ों ब्रह्माण्ड लगे हुए हैं।

व्याख्या : इतना विशाल रूप दिखलाया तो सबको वह रूप दिखना चाहिए। परन्तु किसी ने नहीं देखा। केवल माँ ने देखा। जिसे दिखाना चाहा उसने देखा। उनका ऐसा रूप तो सदा ही रहता है। पर जीव उसे देख नहीं सकता। दिव्य नेत्र हों तो दिव्य रूप का दर्शन हो। अतः माँ को दिव्य चक्षु दिया। जिससे उसने अखण्ड रूप का दर्शन किया। सूतिका गृह में जिस अद्भुत रूप का दर्शन दिया था वह खण्ड रूप था। वहाँ स्तुति करने में माता ने कहा था ब्रह्माण्ड निकाया निर्मित माया रोम-रोम प्रति वेद कहै। उस माता के माने हुए रूप का दिखलाना भी आवश्यक था। इस बार ठाकुरवाडी में वही अखण्ड रूप दिखलाया। जिसके रोम-रोम में करोड़ों ब्रह्माण्ड लगे हुए हैं। जो मन में भी चिन्तन नहीं किया जा सकता। उस रूप को प्रत्यक्ष देखा। भाव यह कि उनके रूप में भेद नहीं है। वे वैसे ही : सुख संदोह मोह पर ज्ञान गिरा गोतीत हैं। परन्तु दृष्टि के तारतम्य से अनेक रूप से भासित होते हैं।

अगनित रवि ससि सिव चतुरानन। बहु गिरि सरित सिंधु महि कानन॥
काल कर्म गुन ग्यान सुभाऊ। सोउ देखा जो सुना न काऊ॥१॥

अर्थ : असंख्य सूर्य, चन्द्र, शिव, ब्रह्मा देखे। बहुत से पर्वत, नदियाँ, समुद्र, पृथ्वी और वन देखे। काल कर्म गुण और स्वभाव को देखा और जिसे कभी किसी ने सुना ही नहीं उसे देखा।

व्याख्या : ऐसा दर्शन न भुसुण्डि को हुआ और न उमा को हुआ था। उमा को दुःखी जानकर तो बहुत थोड़ी माया दिखाई। यथा : जाना राम सती दुःख पावा। निज प्रभाउ कछु प्रगटि जनावा। भुसुण्डिजी ने भीतर की सैर की। एक-एक ब्रह्माण्ड में सौ-सौ वर्ष रहे। इस भाँति सौ कल्प बीता। माँ भीतर बाहर सब युगपत् देख रही हैं। रवि, शशि, शिव, चतुरानन, पर्वत, नदी, समुद्र, वन कितने दिखाई पड़ते हैं। कुछ ठिकाना नहीं है। कारण यह है कि प्रत्येक ब्रह्माण्ड में ब्रह्मा, विष्णु, शिव, मनु और दिक्पाल दूसरे ही प्रकार के होते हैं। नर, गन्धर्व, वेताल, किन्नर, निशिचर, पशु और व्यालभूत सब कुछ सभी ब्रह्माण्ड में होते हैं। परन्तु दूसरे ब्रह्माण्ड के जीवों से मेल नहीं खाते। इतना ही नहीं पृथ्वी, समुद्र, नदी, पर्वत आदि सब प्रपञ्च ही दूसरे प्रकार के होते हैं। माँ को इस समय अनन्त

कोटि ब्रह्माण्ड के भीतर बाहर का सब दर्शन एक साथ हो रहा है। वह शिशु देखते-देखते अखण्डरूप हो गया।

काल : भूत भविष्य वर्तमान। कर्म : सञ्चित प्रारब्ध और क्रियमाण। गुण : सत्त्व, रज और तम। ज्ञान : शास्त्रजन्य और अनुभवजन्य। स्वभाव : प्रकृति। ये सब चक्षु के विषय नहीं हैं। इनका योगज प्रत्यक्ष होता है। योगज प्रत्यक्ष होना ही इनका देखा जाना है। सो माँ कौसल्या को इन सबका प्रत्यक्ष हुआ। वैषम्य सृष्टि और साम्य प्रलय है। जितने ब्रह्माण्ड हैं वे सब एक दूसरे से विलक्षण हैं। एक ब्रह्माण्ड का जीव उसी की व्यवस्था को थोड़ा बहुत जानता है। दूसरे के विषय में वह कुछ नहीं जानता। यथा : ऊमरि तरु विसाल तव माया। फल ब्रह्मांड अनेक निकाया। जीव चराचर जंतु समाना। भीतर बसहिं न जानहिं आना। अतः दूसरे ब्रह्माण्डों में ऐसी बातें हैं जिन्हें न हम लोगों ने देखा है न सुना है। उन सब अनन्त विशेषताओं का प्रत्यक्ष माँ कौसल्या को हुआ। अर्जुन को केवल इस ब्रह्माण्ड के विश्वरूप का दर्शन हुआ था। माँ कौसल्या के प्रत्यक्ष से उसकी तुलना ही नहीं।

देखी माया सब बिधि गाढ़ी। अति सभीत जोरें कर ठाढ़ी॥
देखा जीव नचावै जाही। देखी भगति जो छोरै ताही॥२॥

अर्थ : सब प्रकार से धनी माया को देखा कि वह अत्यन्त भयभीत हाथ जोड़े खड़ी है। जीव को देखा जिसे माया नचाती है और भक्ति को देखा जो उसे छुड़ाती है।

व्याख्या : जो ज्ञानी के भी चेत को हरण करती है और बल से खींचकर मोह के वश करती है। यथा : जो ज्ञानिहु कर चित अपहरई। बरिआई विमोह बस करई। उस माया को देखा कि प्रभु के सामने अत्यन्त डरी हुई हाथ जोड़े खड़ी है। आज्ञापालन के लिए खड़ी है। यथा : लव निमेष महँ भुवन निकाया। रचै जासु अनुसासन माया। जीवात्मा के स्वरूप का भी साक्षात्कार हुआ। नाचने नचाने का रहस्य भी देखा। परवस जीव स्ववस भगवंता। जीव अनेक एक श्रीकंता। श्री ग्रन्थकार कहते हैं : नाचत ही निसि दिवस मर्यौं। तबहीं ते न भयो जीव थिर जब तें हरि नाम धर्यौं। बहु वासना विविध कंचुकि भूषन लोभादि भर्यौं। चर अरु अचर गगन जल थल महँ कौन न स्वाँग कर्यौं।

मोक्षदायिनी भगवती भास्वती भक्ति का भी दर्शन पाया। यथा : भगति करत बिनु जतन प्रयासा। संसृति मूल अविद्या नासा। भगतिहि सानुकूल रघुराया। ताते तेहि डरपति अति माया।

तन पुलकित मुख बचन न आवा। नयन मूँदि चरननि्ह सिरु नावा॥
बिसमयवंति देखि महतारी। भए बहुरि सिसु रूप खरारी॥३॥

अर्थ : शरीर पुलकित हो गया। मुख से वचन न निकला। आँख मूँदकर

चरणों में सिर नवाया। माता को आश्चर्यचकित देखकर खरारि : खर के शत्रु : फिर शिशु रूप हो गये।

व्याख्या : ऐसे घोर अद्भुत रूप को देखकर भय से रोंगटे खड़े हो गये। अब देखने का सामर्थ्य नहीं है। इससे आँख बन्द कर लीं। पहचान लिया कि यह ऐश्वर रूप है। अतः चरनन सिर नावा। जो भी थोड़ा या बहुत इस रूप को देखता है उसी की यह दशा हो जाती है। भुसुण्डि जी कहते हैं : देखि चरित यह सो प्रभुताई। समुझत देह दसा बिसराई। धरनि परयौं मुख आव न बाता। त्राहि त्राहि आरत जन त्राता। उमा तो आँख बन्द करके रास्ते में ही बैठ गईं। यथा : नयन मूँदि बैठी मग मांही।

माँ को चतुर्भुज देखने से हर्ष हुआ था। यथा : हर्षित महतारी मुनि मन हारी अद्भुत रूप निहारी। परन्तु इस रूप को देखने से विस्मय हुआ। खरारि कहकर मायानाथ होना द्योतित किया। यथा : मायानाथ अस कौतुक करयौ। देखत परस्पर राम करि संग्राम रिपुदल लरि मरयौ। मायानाथ ने उस रूप को अलक्षित कर दिया और फिर शिशुरूप हो गये। दिखला दिया कि वेदप्रतिपादित अखण्ड रूप यही है, परन्तु भक्त लोगों के लिए सुखद तो नयनाभिराम घनश्याम राममूर्ति ही है।

अस्तुति[1] करि न जाइ भय माना। जगत पिता मैं सुत करि जाना॥
हरि जननी बहुबिधि समुझाई। यह जनि कतहुँ कहसि सुनु माई॥४॥

अर्थ : स्तुति करते भी नहीं बनता। वह डर गयीं की जगत्पिता को मैंने बेटा करके जाना। श्रीहरि ने माता को बहुत प्रकार से समझाया : माँ सुन! यह बात कहींपर न कहना।

व्याख्या : चतुर्भुज रूप से देखकर स्तुति की थी। यथा : कह दुहु कर जोरी अस्तुति तोरी केहि बिधि करउँ अनंता। इस बार स्तुति करते नहीं बनता। बड़ी भारी चूक हुई किस मुँह से स्तुति करूँ? जगत्-पिता का इतना बड़ा अपमान मुझसे हो पड़ा कि मैंने उन्हें बेटा मान लिया। तब श्रीहरि ने कौसल्या जी को बहुत भाँति से समझाया। यथा :

सुत विषयिक रति नृप वरयो तुमने भगति विवेक।
दिखरायों याते तुमहिं यह सरूप तजि टेक॥१॥
सुनै जो नृप यह बात सब सुत विषयिक रति जाय।
याते यह वृत्तान्त सब कतहुँ कहै जनि माय॥२॥
जौ लौं नहिं दशशीश बधं तौलौं मर्म दुराय।
रहिबो है एहि हेतु यह कतहुँ कहै जनि माय॥३॥

---

१. यहाँ विभावना अष्टम अलङ्कार है।

सुनु माई का भाव यह कि मैंने स्वयं माता मान रक्खा है। तब तू पुत्र मानने में क्यों डरती है ?

दो. बार बार कौसल्या, बिनय करै कर जोरि।
अब जनि कबहूँ ब्यापै, प्रभु मोहि माया तोरि ॥२०२॥

अर्थ : कौसल्या जी बार बार हाथ जोड़कर विनय करती हैं कि हे प्रभो ! मुझे आप की माया अब कभी न व्यापे।

व्याख्या : माँ हाथ जोड़कर बार-बार विनय करती हैं। जानती हैं कि भगवान् को प्रसन्न करने का यही उपाय है। नहीं तो मनुष्य में कौन सा सामर्थ्य है, जिससे उन्हें प्रसन्न कर ले। माता समझ गई कि यह दर्शन जो मुझे हुआ है वह इनकी माया के व्यापने से हुआ है। यथा : हरि सेवकहिं न व्याप अविद्या प्रभु प्रेरित व्यापै तेहि विद्या। अतः विद्यामाया के न व्यापने के लिए प्रार्थना है। इसके व्यापने से मनुष्य अथाह में पड़ जाता है। अर्जुन कहने लगे : दिशो न जाने न लभे च शर्म प्रसीद देवेश जगन्निवास। मुझे दिशाओं का पता नहीं। कहीं विश्राम नहीं मिल रहा है। हे विश्वेश ! जगन्निवास ! कृपा कीजिये। विश्राम तो पराविद्या भक्ति में ही है। यहाँ से शिशु-चरित समाप्त हुआ।

६. बालचरित प्रसङ्ग

बालचरित हरि बहु बिधि कीन्हा। अति अनंद दासन्ह कहँ दीन्हा ॥
कछुक काल बीते सब भाई। बड़े भए परिजन सुखदाई ॥१॥

अर्थ : श्रीहरि ने बहुत प्रकार से बालचरित किया और अपने दासों को बहुत आनन्द दिया। कुछ समय बीतने पर कुटुम्ब के लोगों को सुख देनेवाले चारों भाई बड़े हुए।

व्याख्या : श्रीहरि ने बालचरित अनेक विधि से किया। भाव यह कि अनेक लौकिक विधि और अलौकिक विधि से भी किया। प्रजा और परिजन के साथ लौकिक विधि से और भुसुण्डि आदि के साथ अलौकिक विधि से।

लौकिक विधि। यथा :

बाल बिनोद करत रघुराई। बिचरत अजिर जननि सुखदाई ॥
पति झीन झंगुली तन सोही। किलकनि चितवनि भावति मोहीं ॥
रूप रासि नृप अजिर बिहारी। नाचहिं निज प्रतिबिम्ब निहारी ॥
किलकत मोहि धरन जब धावहिं। चलौं भागि तब पूप देखावहिं ॥

तथा :

कबहूँ ससि माँगत आरि करैं, कबहूँ प्रतिबिम्ब निहारि डरैं।
कबहूँ करताल बजाइ के नाचत, मातु सबै मन मोद भरैं ॥
कबहूँ रिसिआइ कहैं हठि के, पुनि लेत सोई जेहि लागि अरैं।
अवधेस के बालक चारि सदा, तुलसी मन मंदिर में बिहरैं ॥

पदकंजनि मंजु बनी पनहीं, धनुही सर पंकजपानि लिये।
लरिका संग खेलत डोलत हैं, सरजू तट चौहट हाट हिये ॥
तुलसी अस बालक सों नहिं नेह, कहा जप जोग समाधि किये।
नर ते खर सूकर स्वान समान, कहौं जग में फल कौन जिये ॥
खेलत अवध खोरि, गोली भौंरा चकडोरि, मूरति मधुर बसै तुलसी के हियरे।

अलौकिक विधि :

जानु पानि धाए मोहिं धरना । स्यामल गात अरुन कर चरना ॥
तब मैं भागि चलेउँ उरगारी । राम गहन कहँ भुजा पसारी ॥
जिमि जिमि दूरि उड़ाउँ अकासा । तहँ भुज हरि देखैं निज पासा ॥
दो. ब्रह्मलोक लगि गयउँ मैं चितएउँ पाछ उड़ात।
जुग अंगुल कर बीच सब राम भुजहिं मोहि तात ॥

इत्यादि ९ दोहों तक।

यद्यपि रामचरित सदा सेवक सुखदायक है। पर बालचरित में दासों को अत्यन्त आनन्द आता है। भुसुण्डिजी तो पाँच वर्ष तक ही साथ रहते हैं। क्योंकि उनके इष्टदेव बालक राम हैं। बालक राम शिवजी के भी इष्टदेव हैं। यथा : बंदौं बाल रूप सोइ रामू।' अन्नप्राशन तक शिशु संज्ञा है। तब तक तो माता पिता को ही आनन्द मिलता रहा, अब चलने-फिरने बाहर निकलने लगे तब दासों को अत्यन्त आनन्द मिला। कुछ काल बीतने पर सब भाई बड़े हुए। भाव यह कि तीसरा साल लगा। चूड़ाकरण का समय आगया।

चूड़ाकरन कीन्ह गुरु जाई। बिप्रन्ह पुनि दछिना बहु पाई ॥
परम मनोहर चरित अपारा। करत फिरत चारिउ सुकुमारा ॥२॥

अर्थ : तब गुरुजी ने जाकर चूड़ाकरण संस्कार किया। ब्राह्मणों ने फिर बहुत दक्षिण पायी। अत्यन्त मनोहर अपार चरित चारों सुकुमार करते फिरते थे।

व्याख्या : जातकर्म पिता ने किया। मुण्डन संस्कार स्वयं गुरुजी कर रहे हैं। जिस भाँति जन्मोत्सव में : हाटक धेनु बसन मनि नृप विप्रन्ह कहँ दीन्ह। उसी भाँति मुण्डन संस्कार में दक्षिणा ब्राह्मणों को दी गयी। पुनि शब्द से यही भाव निकलता है। श्रीग्रन्थकार ब्राह्मण शब्द का प्रयोग बहुत कम करते हैं। विप्र शब्द का ही प्रयोग देखने में आता है। वेदपाठी भवेद्विप्रः अर्थात् तपःस्वाध्यायनिरत ब्राह्मणों को दक्षिणाएँ दी गई। वसिष्ठजी ने वेदविहीन ब्राह्मणों को शोच्य बतलाया है। यथा : सोचिय विप्र जो वेद विहीना। तजि निज धर्म विषय लवलीना। चारों सुकुमारों के चरित अपार हैं और फिर भी परम मनोहर हैं। यथा :

जैसे राम ललित तैसे लोने लषनलालु।
 तैसेई भरत सील सुखमा सनेहनिधि, तैसेई सुभगसंग सत्रुशाल।

तथा : छोटिऐ धनुहियाँ, पनहियाँ पगनि छोटी, छोटिऐ कछौटी कटि छोटिऐ तरकसी।
लसत झंगूली झीनी, दामिनि की छवि छीनी, सुंदर बदन सिर पगिया जरकसी ॥
वय अनुहरत विभूषन विचित्र अंग, जोहे जिय आवत सनेह की सरकसी।
मूरति की सूरति कहै न परै तुलसी पै, जानै सोई जाके उर कसकै करक सी ॥

मन क्रम बचन अगोचर जोई। दसरथ अजिर बिचर प्रभु सोई ॥
भोजन करत बोल जब राजा। नहिं आवत तजि बाल समाजा ॥३॥

अर्थ : जो मन कर्म और वचन तथा इन्द्रियों से परे हैं। वही प्रभु दशरथ के आँगन में विचरण कर रहे हैं। भोजन करते समय चक्रवर्तीजी बुलाते हैं। पर बालकों का समाज छोड़कर नहीं आते।

व्याख्या : भरद्वाज का प्रश्न है 'प्रभु सोई राम कि अपर कोउ'। उमा का प्रश्न है 'राम सो अवध नृपति सुत सोई। की अज अगुन अलखगति कोई'। इसलिए जहाँ जहाँ चरित में अतिशयता दिखलाते हैं वहाँ वहाँ यह भी दिखलाते चलते हैं कि अज अगुन अलखगति जो कोई है वही अवध नृपति सुत हुआ है। यहाँ भी मन क्रम वचन अगोचर कहकर उसी अज अगुन अलखगति का ही वर्णन कर रहे हैं। वही भक्ति प्रेम के वश कौसल्या की गोद में आया। दम्पति के परम प्रेम के वश में होकर पुनीत शिशुचरित किया। अब बालक होकर महाराज दशरथ के आँगन में विचर रहा है। भुसुण्डि के साथ जो चरित किया वही इसमें प्रमाण है।

भोजन करते समय चक्रवर्तीजी खिलाने के लिए बुलाते हैं। परन्तु बाल समाज छोड़कर जाते नहीं बनता। जिसने पिता के वचन से राज्य त्याग किया वह आज पिता के बुलाने से बाल समाज छोड़ने को तैयार नहीं। युवावस्था में जितना राज्य प्रिय है, उससे कहीं अधिक बाल्यावस्था में खेल और बाल समाज प्रिय है।

कौसल्या जब बोलन जाई। ठुमुक ठुमुक प्रभु चलहिं पराई ॥
निगम नेति सिव अंत न पावा। ताहि धरै जननी हठि धावा ॥४॥
धूसर धूरि भरें तनु आए। भूपति बिहँसि गोद बैठाए ॥५॥

अर्थ : कौसल्या जब बुलाने जाती हैं, तब प्रभु ठुमुक ठुमुक भाग चलते हैं। वेद जिसे नेति कहते हैं और शिवजी अन्त नहीं पाते माँ उसे पकड़ने के लिए दौड़ी। धूल से भरे हुए उसी रङ्ग में रँगे हुए आये। चक्रवर्तीजी ने हँसकर गोद में बिठा लिया।

व्याख्या : चक्रवर्तीजी कौसल्या के घर में भोजन कर रहे हैं। श्रीरामजी बाल समाज में मिलकर खेलने में मग्न हैं। महाराज को बड़ी अभिरुचि है कि रामजी भी साथ खाएँ। इष्टजनैः सह भुक्तं भुक्तम्। प्रेमी के साथ भोजन करना ही भोजन है। रामजी सा प्यारा उन्हें कौन है ? अतः रामजी को खिलाने के लिए

बार बार पुकारते हैं। वे खेल की धुन में सुनते ही नहीं। महाराज की अधिक रुचि देखकर कौसल्या जी स्वयं बुलाने गईं तो आप ठुमुक ठुमुक भाग चले। अभी भलीभाँति दौड़ नहीं सकते। इसलिए ठुमुक ठुमुक भागना कहते हैं। फिर भी माँ पकड़ने में समर्थ नहीं हो रही है। अतः हठ करके दौड़ी कि पकड़ कर ले ही चलेंगे। इस पर ग्रन्थिकार कहते हैं कि जिसे वेद वाणी से ग्रहण करने में असमर्थ हैं और साक्षात् शिवजी मन से ग्रहण करने में असमर्थ हैं उसे पकड़ने के लिए माँ ने हठ किया है। विना पकड़े न छोड़ूँगी। इसलिए पकड़ में आ गये। धूल से धूसर रंग हो गया है। शङ्कर रूप बने हैं। पकड़ाये हुए चले आ रहे हैं। यह दृश्य देखकर महाराज हँस पड़े। धूल भी नहीं झाड़ा और गोद में विठाकर मनोरथ पूर्ण किया।

दो. भोजन करत चपल चित, इत उत अवसरु पाइ।
भाजि चले किलकत मुख, दधि ओदन लपटाइ ॥२०३॥

अर्थ : भोजन करते हैं पर चित्त चञ्चल है। इधर उधर देख रहे हैं। अवसर मिलते ही भाग चले। मुँह में दही भात लगा हुआ है।

व्याख्या : महाराज खिलाते हैं और रामजी खा भी रहे हैं। परन्तु मन बालसमाज में लगा हुआ है। इसको ग्रन्थकार इतउत शब्द से द्योतित करते हैं। इत भोजन करते हैं पर चित्त उत लगा है। अतः चित्त चञ्चल है। अवसर की ताक में हैं कि कब माता पिता का ध्यान दूसरी ओर हो और कब भाग जायें। सो अवसर पाते ही भाग चले। बड़ी प्रसन्नता है। इससे किलकारी मारते हुए भागे। मुँह धोने की भी चिन्ता नहीं। दही और भात मुँह में लगा है। इससे और भी शोभा बढ़ गई है।

माँ को चतुर्भुज रूप से तथा विश्वरूप से दर्शन देकर सावधान करते जाते हैं। क्योंकि वह पूर्व जन्म में विवेक भी माँग चुकी है। परन्तु चक्रवर्तीजी का पुत्रस्नेह ही दृढ़ करते हैं। क्योंकि पूर्वजन्म में उन्होंने ऐसा ही वर माँगा था। यथा : सुत विषयिक तव पद रति होऊ। मोहि बड़ मूढ़ कहै किन कोऊ।

बालचरित अति सरल सुहाए। सारद सेष संभु श्रुति गाए ॥
जिन्ह कर मन इन सन नहिं राता। ते जन बंचित किए बिधाता ॥१॥

अर्थ : अत्यन्त सरल और सोहाए बालचरित का गान सरस्वती शेष शम्भु और वेदों ने किया है। जिनका मन इनसे अनुरक्त नहीं हुआ। विधाता ने उन्हें वञ्चित कर दिया है।

व्याख्या : यद्यपि बालचरित के अन्तर्गत ही शिशु चरित है। फिर भी जहाँ शिशु और बाल का भेद किया जाता है वहाँ यह विधान है कि : प्राक् चूड़ाकरणाद्बालः प्रागन्नप्राशनाच्छिशुः। कुमारकस्तु विज्ञेयो यावन्मौञ्जीनिबन्धनम्। अपरार्के। मुण्डन के पहिले बालक, अन्नप्राशन के पहिले शिशु, और यज्ञोपवीत के पहिले

कुमार जानना चाहिए। अन्नप्राशन का काल छः महीना और बारह महीना तक है।

यहाँ पर बालचरित को अति सरल और सुहावना कहा। भाव यह कि शिशुचरित सरल है और बाल चरित अति सरल है। शिशुचरित में तो ऐश्वर्य प्रदर्शन भी हुआ। माता को चतुर्भुज रूप और विश्वरूप का दर्शन दिया। परन्तु बालचरित में केवल माधुर्य दिखलाया। इसलिए अति सरल और सुहावना कहा। सरस्वती शेष शम्भु और श्रुति उसी ऋजु तथा सुन्दर चरित का गान करते हैं। जिनका मन ऐसे चरित में अनुरक्त न हुआ उसे ब्रह्मदेव ने वञ्चित कर दिया। अर्थात् मनुष्य का शरीर तो दिया परन्तु हृदय मनुष्य का नहीं दिया। मनुष्य की आकृति देकर उसे ठग लिया। वह वस्तुतः मनुष्य नहीं है पशु है।

भए कुमार जबहिं सब भ्राता। दीन्ह जनेऊ गुरु पितु माता॥
गुरु गृह गए पढ़न रघुराई। अलप काल विद्या सब पाई॥२॥

अर्थ : जब सब भाई कुमार हुए तो गुरु और माता पिता ने जनेऊ : यज्ञोपवीत दिया। रघुराई गुरुकुल में पढ़ने गये। थोड़े ही काल में सब विद्याएँ प्राप्त कर लीं।

व्याख्या : जब ग्यारहवाँ वर्ष लगा, कुमारावस्था पूर्ण हो चली : वर्षे त्वेकादशे नृपः। ग्यारहवें वर्ष में क्षत्रिय का यज्ञोपवीत करना चाहिए। इस वचन के अनुसार गुरु पिता और माता ने यज्ञोपवीत दिया। भाव यह कि पहिली वेदी में गुरु माता पिता तीनों का काम पड़ता है। इसके बाद गुरुकुल में भेज देने की शास्त्र की आज्ञा है। तदनुसार चक्रवर्ती के बालक भी गुरुकुल में भेज दिये जाते थे। तदनुसार चारों भाई गुरु के घर पढ़ने गये। दूसरी वेदी वहीं हुई।

बारह वर्ष एक वेद के पढ़ने में लगता है। इस भाँति तीनों वेदों के पढ़ने में छत्तीस वर्ष लगते हैं। उसी के बीच में उपवेदादि का भी अध्ययन हो जाता था। कुछ अत्यन्त मेधावी छत्तीस वर्ष से पहले ही पारंगत हो जाते थे। उन्हें विद्यास्नात कहते थे। जो मध्यम मेधावाले होते थे उन्हें पारंगत होने में पूरे छत्तीस वर्ष लगते थे। वे विद्याव्रत स्नात होते थे। और जो उतने दिनों में भी अध्ययन नहीं कर पाते थे वे व्रतस्नात होते थे। अर्थात् ब्रह्मचर्यव्रत बारह, चौबीस और छत्तीस वर्ष का होता था। जो एक वेद पढ़ना चाहते थे उनका बारह वर्ष का, दो वेद पढ़ना चाहनेवालों का चौबीस वर्ष का, तीनों वेद पढ़नेवालों का छत्तीस वर्ष का व्रत होता था। उतने दिनों तक उन्हें ब्रह्मचर्यव्रत के सब नियमों का पालन करना पड़ता था। परन्तु यह आवश्यक नहीं था कि उतने दिनों तक अवश्य ही ब्रह्मचर्य रक्खे। जो जितना शीघ्र विद्या समाप्त कर दे उसका उतना ही शीघ्र ब्रह्मचर्यव्रत समाप्त हो जाता था। ये चारों भाई अल्पकाल में विद्याएँ समाप्त करके विद्यास्नात हो गये।

अङ्ग और उपनिषदों के साथ सम्पूर्ण वेद रहस्य के साथ धनुर्वेद, धर्मशास्त्र, न्याय, आन्वीक्षिकी, षट्विधा राजनीति केवल गुरुमुख से श्रवण मात्र से ही चारों

भाइयों ने धारण कर ली। चौसठ दिनों में चौसठों कलाओं को ग्रहण कर लिया। इसीलिए कहते हैं कि अल्पकाल में ही सब विद्याएँ प्राप्त कर लीं।

जाकी सहज स्वास श्रुति चारी। सो हरि पढ़ यह कौतुक भारी ॥
विद्या बिनय निपुन गुन सीला। खेलहिं खेल सकल नृपलीला ॥३॥

अर्थ : जिसका सहज श्वास चारों वेद है वह हरि पढ़े यह बड़ा भारी कौतुक है। विद्या, विनय, गुण और शील में निपुण सब राजाओं की लीला के ही खेल खेलते थे।

व्याख्या : इतने अल्पकाल में विद्याएँ समाप्त कर लीं कि अभी उनके खेलने के दिन नहीं बीते। यह बड़े कौतुक की बात थी। पर ग्रन्थकार कहते हैं कि भारी कौतुक की बात तो यह थी कि जिसका निःश्वसित वेद है उस प्रभु को भी पढ़ना पड़ा। उनका पढ़ना एक शास्त्रमर्यादा रक्षण मात्र था। अतः शास्त्रमर्यादा रक्षण के लिए द्विजमात्र को ब्रह्मचर्यपूर्वक वेदाध्ययन करना चाहिए। जो ऐसा नहीं करते वे अपनी हानि के साथ साथ समाज की हानि करते हैं। संसार के लिए बुरा उदाहरण खड़ा करते हैं।

विद्या से विनय होता है, विनय होने से पात्रता आती है। वह सब गुण और शील का निधान होता है। यदि विद्या से विनय न हुआ, विवेक नहीं उपजा तो उसकी विद्या निष्फला हो जाती है। अतः विद्या विनय निपुन गुन सीला कहकर विद्या साफल्य कहा। अब नाट्यशास्त्र की निपुणता कहते हैं। शिवि हरिश्चन्द्र आदिक की लीलाओं का नाट्य करते हैं। अथवा व्रतस्नात होकर घर लौट आये। अभी खेलने की अवस्था है। अतः वही खेल खेलते हैं, जिसे राजाओं को खेलना चाहिए। यथा :

रामलषन इक ओर भरत रिपुदवनलाल इक ओर भये।
सरजु तीर सम सुखद भूमि थल, गनि गनि गोइयाँ बाँटि लये ॥
कंदुक केलि कुसल हय चढ़ि चढ़ि, मन कसि कसि, ठोंकि ठोंकि खये।
कर कमलनि विचित्र चौगानैं, खेलन लगे खेल रिझये ॥ इत्यादि
खेल खेलि सुखेलनिहारे।
उतरि उतरि चुचुकारि तुरंगन सादर जाइ जोहारे। इत्यादि।

करतल बान धनुष अति सोहा। देखत रूप चराचर मोहा ॥
जिन्ह[1] बीथिन्ह बिहरैं सब भाई। थकित होहिं सब लोग लुगाई ॥४॥

अर्थ : हाथ में बाण और धनुष बहुत ही शोभा देते हैं। रूप देखते ही चराचर मोहित हो जाते हैं। जिन गलियों में सब भाई विहार करते हैं, सभी स्त्रीं पुरुष ठिठक कर रह जाते हैं।

---

१ यहाँ असङ्गति अलङ्कार है।

व्याख्या : उपवेद की शिक्षा कहते हैं कि धनुर्वेदेऽतिनिष्ठितः सब शास्त्रों के तत्त्व को जानते हैं, पर धनुर्वेद में तो अत्यन्त परायण हैं। इतना प्रेम है कि विहार में भी धनुष बाण नहीं छूटता। भय से धनुषधारण नहीं है, विद्याप्रेम के कारण है। रूप देखकर अचर भी मोहित होते हैं। वह उन्मादकर रूप ही ऐसा है। अचरों का देखना शास्त्र तथा विज्ञान से सिद्ध है। यथा : तेन पश्यन्ति पादपाः तेन शृण्वन्ति पादपाः। इत्यादि महाभारते। इसलिए वृक्ष देखते हैं सुनते हैं इत्यादि।

चराचर का मोहित होना कहकर लोग लुगाई का थकित होना : एकटक रह जाना कहते हैं। यथा :

धरे धनु सर कर, कसे कटि तरकसी, पीरे पट ओढ़े चले चारु चालु।
अंग अंग भूषन जराय के जगमगत, हरत जन के जी को तिमिर जालु॥
खेलत चौहट हाट वीथी वाटिकन प्रभु सिव सप्रेम मानस मरालु।
सोभादान दे दे सनमानत जाचक जन करत लोक लोचन निहालु॥

गीता. १-४२

दो. कोसलपुर बासी नर, नारि बृद्ध अरु बाल।
प्रानहुँ तें प्रिय लागत, सब कहुँ रामकृपाल॥२०४॥

अर्थ : कोसलपुर के रहनेवाले स्त्री पुरुष बूढ़े और बालक सबको कृपाल रामजी प्राणों से भी प्यारे लगते हैं।

व्याख्या : सुख देने की परिधि बढ़ती ही जाती है। पहले कौसल्या की गोद में थे। तब दम्पति परम प्रेम बस कर सिसु चरित पुनीत कहा। अब बड़े भये परिजन सुखदाई तब कोसलपुर वासियों को सुख देना कहते हैं। प्रान प्रान के जीवन जीके। स्वारथ रहित सखा सबही के। इसलिए प्राण से भी प्रिय लगना स्वाभाविक है। इस भाँति शासन की योग्यता भी दिखलाई।

बंधु सखा संग लेहिं बुलाई। बन मृगया नित खेलहिं जाई॥
पावन मृग मारहिं जियँ जानी। दिन प्रति नृपहिं देखावहिं आनी॥१॥

अर्थ : भाइयों और सखाओं को साथ बुला लेते थे और वन में जाकर नित्य शिकार खेलते थे। मन में पवित्र जानकर मृगों को मारते थे और प्रतिदिन लाकर राजा को दिखाते थे।

व्याख्या : बचपन से ही सरदारगीरी थी। बन्धु सखा पर प्रेम है। शिकार जाते समय उन्हें बुलाकर साथ ले लेते थे, शिकार खेलने का शास्त्रों में निषेध है, पर राजाओं के लिए आज्ञा है। इससे उन्हें परिश्रम और शस्त्राभ्यास तथा सहनशक्ति बढ़ाने का अवसर मिलता है। शिकार में भी वृथा हिंसा निषिद्ध है। अतः मेध्य पशु का ही वध करते थे जिनके चर्म शृङ्गादि का धर्मकार्य में प्रयोजन पड़ता है। व्याघ्र आदि दुष्ट जन्तुओं का चर्म पवित्र माना गया है। अतः मन से निश्चय करके कि यह दुष्ट जन्तु है तब उसका वध करते थे। अध्यात्म रामायण में स्पष्ट लिखा हुआ है

कि दुष्ट मृगों को मारकर पिता को निवेदन करते थे। यथा : हत्वा दुष्टमृगान् सर्वान् पित्रे सर्वं न्यवेदयत्। मृग का अर्थ हिरन ही नहीं है। जिनका शिकार किया जाता है वे सभी जन्तु मृग हैं। महाराज भी बड़े शिकारी थे। अतः उनकी प्रसन्नता के लिए नित्य शिकार खेलते थे और मारे हुए पशुओं को लाकर चक्रवर्ती जी को दिखाते थे।

जे मृग राम बान के मारे। ते तनु तजि सुरलोक सिधारे ॥
अनुज सखा संग भोजन करहीं। मातु पिता अग्या अनुसरहीं ॥२॥

अर्थ : जो मृग रामजी के बाण से मारे जाते थे वे शरीर छोड़कर स्वर्ग सिधारते थे। भाई और सखाओं के साथ भोजन करते थे और माँ-बाप की आज्ञा में चलते थे।

व्याख्या : पशुयोनि से कोई शुभ कर्म हो नहीं सकता। अतः जायस्व म्रियस्व जन्मो मरो यही चक्र चला करता है। यज्ञ में वध होने से ही उनका कल्याण होता है। यहाँ स्वयं यज्ञपुरुष के हाथ से उनके शररूपी तीर्थ में प्राण त्यागकर सुरलोक को जाते हैं। पशुयोनि से उनकी मुक्ति हो जाती है। रघुबीर सर तीरथ सरीरन्हि त्यागि गति पइहैं सही।

इष्टजनैः सह भुक्तं भुक्तम्। सुख में अनुज और सखाओं का स्मरण करते थे। और आज्ञा-पालन में स्वयं प्रस्तुत रहते थे। अनुज और सखा को नहीं कहते थे कि जो आज्ञा मुझे हुई है उसे तुम जाकर कर दो। माता को पिता से अधिक मानते थे। इसलिए ग्रन्थकार माता का पहिले और पिता का नाम पीछे लेते हैं।

जेहि बिधि सुखी होहिं पुर लोगा। करहिं कृपानिधि सोइ संजोगा ॥
बेद पुरान सुनहिं मन लाई। आपु कहहिं अनुजन्ह समुझाई ॥३॥

अर्थ : जिस विधि से नगर के लोग सुखी हो सकें वैसा ही संयोग कृपानिधि जुटा देते थे। वेद पुराण मन लगाकर सुनते थे और भाइयों को समझाकर कहते थे।

व्याख्या : बन्धु सखा की प्रसन्नता कही। माता पिता की प्रसन्नता कही। अब पुरलोग की प्रसन्नता कहते हैं। सुख से ही संसार प्रसन्न होता है। अतः प्रसन्न करने के लिए लोग सुख का संयोग करते हैं। पर संयोग जुटा देना ईश्वर का काम है मनुष्य का नहीं। यथा : जौ बिधि बस अस बनै संजोगू। अस संजोग ईस जौ करई। श्रीरामजी पुरलोग के सुखी होने का संयोग जुटा देते थे। जिसमें कोई भी दुःखी न रहे।

चक्रवर्तीजी की सभा में नित्य वेद पुराणों की कथाएँ होती थीं। उन्हें रामजी मन लगाकर सुनते थे। भली भाँति वेद पुराण के जानने पर भी पुनः पुनः श्रवण में उपेक्षा नहीं करते थे। दिखलाते थे कि बार बार सुनने से संस्कार और दृढ़ होता चला जाता है। यथा : शास्त्र सुचिंतित पुनि पुनि पेखिअ। फिर छोटे भाइयों से उसकी व्याख्या करते थे। चतुर्भिश्च प्रकारैर्विद्योपयुक्ता भवति। आगमकालेन

स्वाध्यायकालेन प्रवचनकालेन व्यवहारकालेनेति। चार प्रकार से विद्या अभीष्ट फल-दान में समर्थ होती है। आगमकाल से स्वाध्यायकाल से प्रवचनकाल से और व्यवहारकाल से। सो दोनों कह चुके हैं। यथा : गुरु गृह गये पढ़न रघुराई। अल्प काल विद्या सब पाई। वेद पुरान सुनहिं मन लाई। अब प्रवचन कहते हैं : आप कहहिं अनुजहिं समुझाई। इसके आगे व्यवहार काल कहेंगे।

प्रातकाल उठि कै रघुनाथा। मातु पिता गुरु नावहिं माथा॥
आयसु माँगि करहिं पुर काजा। देखि चरित हरषै मन राजा॥४॥

अर्थ : रघुनाथ प्रातःकाल उठकर माता पिता और गुरु को मस्तक नवाते थे। आज्ञा माँगकर पुर का कार्य करते थे। चरित्र देखकर महाराज मन में प्रसन्न होते थे।

व्याख्या : शास्त्र में जो पढ़ा था उसे व्यवहार में चरितार्थ करते थे। वेद की आज्ञा है : मातृदेवो भव पितृदेवो भव आचार्यदेवो भव। माता को देवता मानो। पिता को देवता मानो। आचार्य को देवता मानो। अतः पहिले उठकर माता पिता और गुरु को नमस्कार करते थे। अथवा अन्तःपुर में पहिले माँ का ही दर्शन होता था। तत्पश्चात् यथावसर पिता का दर्शन होता था। गुरुजी का निवासस्थान पृथक् था। अतः इन्हें प्रणाम करने का अवसर माता-पिता के प्रणाम के बाद मिलता था।

पितु आयसु सब धर्म का टीका है। अतः आयसु : आज्ञा माँग-माँगकर पुर का कार्य करते थे। पिता के कार्य का भार स्वयं अपने ऊपर ले रक्खा था। सो भी अपने मन से नहीं, पिताजी से आज्ञा माँगकर करते थे। इससे श्रीरामजी का सब लायक होना दिखलाया। पिता की आज्ञा हो तभी कुछ करें यह बात नहीं। काम बिगड़ता देखकर या आवश्यकता देखकर उस कार्य के सँवारने के लिए आज्ञा माँगते थे।

दो. व्यापक अकल अनीह अज, निर्गुन नाम न रूप।
भगत हेतु नाना विधि, करत चरित्र अनूप॥२०५॥

अर्थ : जो व्यापक, कलारहित, इच्छारहित, जन्मरहित, गुणरहित, नाम-रूपरहित है वह भक्त के लिए अनेक प्रकार के अनूप चरित्र करता है।

व्याख्या : शिवजी बार बार उमा के कहे हुए : की अज अगुन अलख गति कोई : को ही दूसरे दूसरे शब्दों में दोहराकर उनका सगुण चरित करना दिखलाते हैं। सर्वव्यापक होने से उसमें कला नहीं है। वह सकल नहीं अकल है। द्वितीय के अभाव से इच्छारहित है। अतः जन्मरहित है। प्रकृतिपार होने से गुणरहित है। अमाय होने से नामरूपरहित है। वह भक्तों के लिए अनेक प्रकार के अनूप चरित कर रहा है। अनूप इसलिए कहा कि इसके गान करने से भक्त लोग भवसागर पार हो जायँगे। यथा : सोइ जस गाइ भगत भव तरहीं : रामजी का नाम रूप लीला धाम सब अनूप हैं।

७. ऋषि आगमन प्रसङ्ग : चौथे[1] प्रश्न का उत्तर :

यह सब चरित कहा मैं गाई। आगिलि कथा सुनहु मनलाई ॥
विस्वामित्र महामुनि ग्यानी। बसहि बिपिन सुभ आश्रम जानी ॥१॥

नाम अनूप, यथा : अगुन अनूपम गुननिधान सों।
रूप अनूप, यथा : चितवत सादर रूप अनूपा।
तृपित न मानहिं मनु सतरूपा ॥
धाम अनूप, यथा : भूपति भवन सुभाय सोहावा।
सुरपति सदन न पटतर आवा ॥
अब चरित्र अनूप कहते हैं।
यथा : भगति हित करत चरित्र अनूप।

सातों विशेषण चरित्र के विरोधी हैं। फिर भी भक्त के लिए चरित्र हो रहा है। भक्तहेतु जन्म, भक्तहेतु शिशुचरित और भक्त के हेतु ही नाना चरित हो रहा है।

अर्थ : यह सब चरित्र मैंने गाकर कहा। आगे की कथा मन लगाकर सुनो। विश्वामित्रजी महामुनि और ज्ञानी थे। शुभ आश्रम जानकर वन में बसते थे।

व्याख्या : यहाँ 'यह सब चरित कहा मैं गाई' कहकर बालचरित का उपसंहार कर रहे हैं। आगिल कथा से उमा के चौथे प्रश्न : कहहु यथा जानकी विआही का उत्तर आरम्भ करते हुए तदन्तर्गत ऋषि आगमन की कथा कहते हैं। यही आगिल कथा है। प्रश्न इतना ही था कि 'बालचरित पुनि कहहुँ उदारा' उसे नव दोहों में कहा। अब अगली कथा को मन लगाकर अर्थात् प्रेम से सुनने के लिए कह रहे हैं। क्योंकि सप्रेम सुनने का फल विशेष कहा है। यथा : सिय रघुवीर विवाह, जे सप्रेम गावहिं सुनहिं। तिनकर सदा उछाह, मंगलायतन राम जस।

दुःखों से जिसका मन उद्विग्न न हो और सुख की जिसे लालसा न हो, भय, राग और क्रोध जिसे न हो ऐसे स्थिरबुद्धि को मुनि कहते हैं। ऐसे मुनियों में विश्वामित्रजी श्रेष्ठ थे। अर्थात् महायोगी थे, महाज्ञानी थे, बसहिं विपिन से महा तपस्वी कहा। ऐसे महापुरुष भगवान् वामन की जन्मभूमि सिद्धाश्रम को शुभस्थान जानकर बसते थे। नहीं तो मगध शुभाश्रम योग्य नहीं समझा जाता।

जहँ जप जग्य जोग मुनि करहीं। अति मारीच सुबाहुहि डरहीं ॥
देखत जग्य निसाचर धावहिं। करहिं उपद्रव मुनि दुख पावहिं ॥२॥

अर्थ : वहाँ मुनि जप, योग, यज्ञ करते थे। परन्तु मारीच सुबाहु से बहुत डरते थे। यज्ञ को देखते ही राक्षस दौड़ पड़ते थे और उपद्रव मचा देते थे। जिससे मुनि लोगों को दुःख होता था।

व्याख्या : मण्डलीकपति रावण की आज्ञा असुरों को थी कि : द्विज भोजन मख होम सराधा। सब कर जाइ करंहु तुम बाधा। सो मारीच सुबाहु की नियुक्ति

---

१. कहहु जथा जानकी बिआही।

इस ओर थों। अतः मुनि लोग छिपकर जप, योग, यज्ञ करते थे। मारीच सुबाहु जान न लें। इसलिए डरते थे।

यज्ञधूम देखते ही वे दौड़ पड़ते थे कि कहीं पूरा न हो जाय। नहीं तो देवताओं को भोजन मिल जायगा। उपद्रव करते थे, यज्ञ की विधि पूरी नहीं होने देते थे। जिससे अविधि होकर बलि का भाग हो जाय : अविधिर्बलिभाग :। यज्ञ दिन में होता है। ये निशाचर ठहरे फिर भी जाग जागकर यज्ञ का पता लगाया करते थे।

गाधितनय मन चिंता व्यापी। हरि बिनु मरहिं न निसिचर पापी ॥
तब मुनिवर मन कीन्ह बिचारा। प्रभु अवतरेउ हरन महि भारा ॥३॥

अर्थ : गाधि के पुत्र के मनमें चिन्ता समाई कि बिना हरि के पापी निशिचर नहीं मरेगा। तब श्रेष्ठ मुनि ने मनमें विचार किया कि प्रभु ने पृथ्वी के भारहरण के लिए अवतार लिया है।

व्याख्या : चहत महामुनि जाग जयो। नीच निसाचर देत दुसह दुःख कृसतन ताप तयो। सापे पाप नये बिदरत खल, तब यह मंत्र ठयो। विप्र साधु सुर धेनु धरनि हित हरि अवतार लयो। गी.। यदि शाप देता हूँ तो पाप लगेगा। विनती करने को निशाचर क्या मानने लगे। अतः और कोई उपाय नहीं। बिना पापभोग के इनका आसुरी भोगायतन : शरीर नहीं छूटेगा। हरि इनके पापों को हरण करके इस योनि से मुक्ति दे सकते हैं और उनका अवतार भी पृथ्वी का भार हरण करने के लिए हो गया है।

एहू मिस देखौं पद जाई। करि बिनती आनौं दोउ भाई ॥
ग्यान बिराग सकल गुन अयना। सो प्रभु मैं देखब भरि नयना ॥४॥

अर्थ : इसी बहाने से चरण का दर्शन करूँ और विनती करके दोनों भाइयों को साथ ले आऊँ। ज्ञान विराग सकल गुणों के जो घर हैं उस प्रभु को मैं आँख भर के देखूँगा।

व्याख्या : गुप्त रूप अवतरेउ प्रभु गएँ जान सब कोइ। अतः मैं दर्शन के लिए नहीं गया। खलवध के लिए मुनि राजा के शरण जाते ही हैं। अतः इस बहाने से दर्शन करूँगा। दर्शन प्रधान और खलवध गौण हो गया। ज्ञान, विराग, समग्र ऐश्वर्य, धर्म, यश और श्री के जो निकेत हैं : जे हर हिय नयनन्हि कबहु निरखे नाहिं अघाय। उन्हें आँख भरकर देखूँगा।

दो. बहु बिधि करत मनोरथ, जात लागि नहिं बार।
करि मज्जन सरऊ जल, गये भूप दरबार[१] ॥२०६॥

———

१. घटनाक्रम पर विचार करने से यह मालूम होता है कि विश्वामित्रजी अयोध्या में भाद्रपद शुक्ल सप्तमीके लगभग आये। लगभग उन्नीस दिन तक अयोध्या में ठहरे रहे। योगवासिष्ठ होता रहा।

अर्थ : बहुत प्रकार से मनोरथ करते हुए जाते देर न लगी। सरयू में मज्जन करके राजद्वार पर गये।

व्याख्या : मुनिजी मनोरथ करते अयोध्या की ओर जा रहे हैं :

आजु सकल सुकृत फलु पाइहौं।
सुख की सींव अवधि आनंद की अवध बिलोकि हौं पाइहौं ।।१।।
सुतनि सहित दसरथहि देखिहौं, प्रेम पुलकि उर लाइहौं।
रामचन्द्र मुखचन्द्र सुधा छवि नयन चकोरनि प्याइहौं ।।२।।
सादर समाचार नृप बुझिहैं, हौं सब कथा सुनाइहौं।
तुलसी ह्वै कृतकृत्य आश्रमहिं, रामलषन लै आइहौं ।।३।।

इस भाँति मनोरथ करते करते समय न जान पड़ा अयोध्या पहुँच गये। विभीषणजी मनोरथ करते सौ योजन चले आये। समय मालूम न हुआ। यथा : एहि बिधि करत सप्रेम बिचारा। आए सपदि सिंधु एहि पारा : दरबार शब्द द्वार के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। यथा : गयउ सभा दरबार तब सुमिरि रामपद कंज। तथा : एक प्रबिसहिं एक निर्गमहि भीर भूप दरबार। पहिले मुनिजी ने सरयूस्नान किया तब राजद्वार पर गये।

मुनि आगमन सुना जब राजा। मिलन गयउ लै बिप्र समाजा ।।
करि दंडवत मुनिहि सनमानी। निज आसन बैठारेन्हि आनी ।।१।।

अर्थ : जब राजाने मुनि का आगमन सुना तो विप्र समाज लेकर मिलने गये। दण्डवत् करके मुनि का सम्मान करके अपने आसन पर ला बिठाया।

व्याख्या : महाराज सबके उपास्य होते हैं। पर मुनि पर इतनी श्रद्धा कि उनका आना सुनकर स्वयं मिलने गये और ब्राह्मण समाज साथ लेकर गये। क्योंकि विश्वामित्रजी के हृदय में ब्राह्मणों का बड़ा गौरव है। स्वयं बड़ा भारी तप करके क्षत्रिय से ब्राह्मण हुए थे। पहिले ही दण्डवत् प्रणाम किया। सन्मान के साथ कुशल प्रश्न पूछकर आगमन से अपना सौभाग्य वर्णन करके मुनिजी को आगे करके घर में लाये। अपनी गद्दी पर बिठाया। भाव यह कि राज्य आपका है। मैं सेवक हूँ।

चरन पखारि कीन्हि अति पूजा। मो सम आजु धन्य नहिं दूजा ।।
बिबिध भाँति भोजन करवावा। मुनिवर हृदय हरष अति पावा ।।२।।

अर्थ : पाँव धोकर अति पूजा की और कहा कि मेरे समान भाग्यवान् आज दूसरा नहीं है। अनेक विधान से भोजन कराया। श्रेष्ठ मुनिजी के हृदय में बड़ा हर्ष हुआ।

व्याख्या : विश्वामित्रजी का आना असाधारण व्यापार था। जिसने तप के लिए स्वयं अपना राज्य छोड़ा वह दूसरे राजा के यहाँ क्यों जाय ? दूसरे का अर्थी क्यों बने ? महाराज दशरथ को इतने दिन राज्य करते हुआ पर कभी

विश्वामित्र जी नहीं आये। राजा ने अपना बड़ा भाग्य माना। इतने राजा हैं किसी के पास न जाकर मेरे यहाँ आये। अतः पाँव धोकर बड़ी भारी पूजा की। पूजा का प्रधान अङ्ग नैवेद्य है। सो कहते हैं कि : विविध भाँति भोजन करवावा। भोजन में भाँति होती है। जितने प्रकार के व्यञ्जन बनते हैं, उनकी भाँति संज्ञा है। छप्पन प्रकार प्रसिद्ध हैं। अर्थात् राजोपचार से पूजन किया और राजोचित नैवेद्य भी अर्पण किया। अति पूजन पाने से मुनिजी को अति हर्ष हुआ। आशा हुई कि मनोरथ सिद्धि होगी।

पुनि चरननि मेले सुत चारी। राम देखि मुनि देह बिसारी ॥
भए मगन देखत मुख सोभा। जनु चकोर पूरन ससि लोभा ॥३॥

अर्थ : फिर चारों बेटों को चरणों में गिराया। रामजी को देखकर मुनिजी को देहाध्यास न रह गया। मुख की शोभा देखकर मग्न हो गये। जैसे चकोर पूर्ण चन्द्र पर लुब्ध हो जाता है।

व्याख्या : जब राजा ने देखा कि मुनिजी अति हर्षित हैं तब चारों बेटों को लाकर चरणों में डाला कि इस समय अनायासेन इनके कल्याण की सम्भावना है। मुनिजी चारों को देखकर बड़े प्रसन्न हुए। पर रामजी को देखकर तो उनको देहाध्यास ही नहीं रह गया। अर्थात् रामजी में दृढ़रति हो गई। उनके मुख की शोभा देखने में मगन हो गये। एकटक देखने लगे जैसे चकोर पूर्णचन्द्र को देखता है। चकोर पूर्णचन्द्र को देखते देखते आनन्द से लोटने लगता है। वैसी ही दशा मुनिजी के मन की हुई। देह की सुधि न रह गई। लोट-पोट हो गये.

तब मन हरषि बचन कह राऊ। मुनि अस कृपा न कीन्हेहु काऊ ॥
केहि कारन आगमन तुम्हारा। कहहु सो करत न लावौं बारा ॥४॥

अर्थ : तब मन में हर्षित होकर राजा ने कहा कि मुनि जी ! आपने ऐसी कृपा तो कभी नहीं की। आपके आगमन का क्या कारण है। उसे कहिये मैं उसके करने में देर न लगाऊँगा।

व्याख्या : पुत्र पर प्रेम देखकर महाराज मन में हर्षित हुए। जिसका आना जाना लगा रहता है उसके आने का कारण नहीं पूछा जाता। विश्वामित्रजी कभी के आनेवाले नहीं। अतः उनसे आगमन का कारण पूछते हैं। सेवा का अवसर मिलने का उत्साह है। अतः कहते हैं कि कहने में देर है। मेरे करने में देर न लगेगी।

असुर समूह सतावहिं मोही। मैं जाचन आयउँ नृप तोही ॥
अनुज समेत देहु रघुनाथा। निसिचर बध मैं होब सनाथा ॥५॥

अर्थ : मुनिजी ने कहा : राक्षसों के समूह मुझे सता रहे हैं। राजन् ! मैं अर्थी होकर आया हूँ। छोटे भाई के सहित रघुनाथ को मुझे दो। राक्षसों के वध से मैं सनाथ होऊँगा।

व्याख्या : दो-एक असुर नहीं हैं। उनका बड़ा भारी खेड़ा है। वे मुझे दुःख देते हैं। सतावैं मोही से उनका पौरुष और उग्रता कही। इस भाँति कार्य की गुरुता दिखलायी। मैं ब्राह्मण हूँ, तुम राजा हो, मैं तुमसे माँगने आया हूँ। यही विनती है। यथा : करि विनती आनों दोउ भाई। तुम्हारी सेना से काम न चलेगा। तुम रामजी को छोटे भाई के साथ दे दो। ये उनका वध करेंगे। मैं अनाथ हो रहा हूँ; इनके मिलने से मैं सनाथ हो जाऊँगा। यहाँ छोटे भाई से लक्ष्मण जी अभिप्रेत हैं। क्योंकि अनुज और अनुग रूप से ये ही प्रसिद्ध हैं। यथा : छत्रिजाति रघुकुल जनम रामानुग जगजान।

दो. देहु भूप मन हरषित, तजहु मोह अग्यान।
धर्म सुजस प्रभु तुम्ह कौं, इन्ह कहँ अति कल्यान ॥२०७॥

अर्थ : राजन्! प्रसन्न मन से दो, मोह और अज्ञान छोड़ दो। प्रभो! तुम्हें धर्म और सुयश होगा और इनका तो अत्यन्त कल्याण होगा।

व्याख्या : जहाँ लाभ ही लाभ है वहाँ हानि की शङ्का करना अज्ञान है। तुम यशोधन हो। सो तुम्हें यश और धर्म की प्राप्ति होगी और बच्चों का भी बड़ा कल्याण होगा। तुम स्नेह के वश व्यर्थ शङ्का मन में ला रहो हो। अतः ममता और अज्ञान छोड़कर हर्षित मन से दोनों बेटे मुझे दो। यथा गीतावली में :

राजन् रामलखन जो दीजै।
जस रावरो लाभ ढोटनहू मुनि सनाथ सब कीजै॥
डरपत हो साँचे सनेह बस सुत प्रभाव बिनु जाने।
बूझिय बामदेव अरु कुलगुरु तुम पुनि परम सयाने॥
रिपुरन दलि मखराखि कुसल अति अलप दिननि घर ऐहैं।
तुलसिदास रघुबंस तिलककी कविकुल कीरति गैहैं॥

सुनि राजा अति अप्रिय बानी। हृदय कंप मुख दुति कुमुलानी॥
चौथेपन पायउँ सुत चारी। बिप्र बचन नहिं कहेहु बिचारी॥१॥

अर्थ : अति अप्रिय वाणी सुनकर राजा का हृदय काँप उठा और चेहरे का तेज जाता रहा। बोले : वृद्धावस्था में चार बेटे हुए। विप्र! आप विचारकर बात नहीं बोले।

व्याख्या : बेटे का माँगना अप्रिय, तिसपर रघुनाथ का माँगना अत्यन्त अप्रिय था। रामजी को राक्षसों से युद्ध करने के लिए देना है। इससे हृदय में कम्प हुआ और वचनबद्ध हो चुके हैं। इससे मुख का तेज जाता रहा। कहने लगे, मेरी वृद्धावस्था, इस समय चार बेटे हुए हैं। इसलिए मुझे कितने प्रिय हैं। आप समझ सकते हैं। आप विप्र हैं, वेदपाठी हैं। आपको विचारकर बात बोलनी थी। सो आपने विचारकर नहीं कहा। कहीं बेटे भी माँगे जाते हैं। जो वृद्ध के एकमात्र आश्रय हैं। उन्हें देकर वृद्ध जी कैसे सकता है? अनुज समेत देहु रघुनाथा का उत्तर है।

माँगहु भूमि धेनु धन कोसा। सर्बस देउँ आजु सहरोसा ॥
देह प्रान तें प्रिय कछु नाहीं। सोउ मुनि देउँ निमिष एक माहीं ॥२॥

अर्थ : पृथ्वी, गौ, धन और कोष : खजाना माँगिये। मैं अपना सर्वस्व उत्साह के साथ दे दूँगा। देह और प्राण से बढ़कर कोई वस्तु प्यारी नहीं है। उसे भी हे मुनि ! एक पलक में दे सकता हूँ।

व्याख्या : ब्राह्मण जो माँगते हैं उसे माँगिये। ब्राह्मण अर्थी होकर आते हैं। अर्थ माँगते हैं। पृथ्वी, गौ, धन या कोष ये ही चार वस्तु ब्राह्मण माँगते हैं। आप उनमें बड़े हैं सर्वस्व माँग लीजिये। मैं उत्साह के साथ दूँगा। देहु भूप मन हर्षित का उत्तर। मैं कृपण हूँ। मोह और अज्ञान के वश भी नहीं हूँ। सर्वोपरि प्रिय संसार में देह और प्राण समझा जाता है। उसे पलभर में दे सकता हूँ। तजहु मोह अज्ञान का उत्तर। अर्थात् देह प्राण देने में मुझे कोई विचार नहीं है। मैं स्वयं उन राक्षसों से बड़े उत्साह के साथ युद्ध करूँगा।

सब सुत प्रिय मोहि प्रान की नाईं। राम देत नहिं बनइ गुसाईं ॥
कहँ निसिचर अति घोर कठोरा। कहँ सुन्दर सुत परम किसोरा ॥३॥

अर्थ : मुझे सभी बेटे प्राण के समान प्यारे हैं। पर राम को देते नहीं बनता। कहाँ अत्यन्त घोर कठोर राक्षस और कहाँ परम किशोर सुन्दर बेटे ?

व्याख्या : मैं प्राण देने को प्रस्तुत हूँ। प्राण के समान तीनों बेटे हैं। उन्हें भी दे सकता हूँ। पर हे गोसाईं ! राम को देते नहीं बनता। भला राम का और उन राक्षसों का कौनसा जोड़ है। निशिचर अत्यन्त घोर कठोर होते हैं। सर्वथा असह्य होते हैं। अथवा मारीच घोर है। यथा : मुनि न होइ यह निसिचर घोरा। और सुबाहु कठोर है। रामजी सुन्दर हैं और अभी सोलह वर्ष भी पूरा नहीं हुआ है। अतः मृत्यु के मुख में अपने हाथ से कैसे डाल दें ?

सुनि नृपगिरा प्रेमरस सानी। हृदय हरष माना मुनि ग्यानी ॥
तब बसिष्ठ बहुबिधि समुझावा। नृप संदेह नास कहँ पावा ॥४॥

अर्थ : प्रेमरससानी राजा की वाणी सुनकर मुनिजी को मनमें प्रसन्नता हुई। तब वसिष्ठजी ने बहुत प्रकार से समझाया और राजा का सन्देह दूर हुआ।

व्याख्या : राजा की वाणी प्रेम से सनी हुई थी। इसलिए मुनिजी भीतर से प्रसन्न हुए कि रामचरणों में ऐसा ही अनुराग होना चाहिए। परन्तु बाहर से अप्रसन्न हुए। वसिष्ठजीने देखा कि बात बिगड़ती है। इसलिए राजा को बहुत प्रकार से समझाया। यथा :

तेरो रघुकुल में जनम स्वयं धर्म को रूप।
रह्यौ छाइ यश लोक तिहुँ ऐसो भयो न भूप ॥१॥
सत्यसन्ध तुम जो कह्यौ करौ नृपति हरखाय।
जाते पूरब पुण्य अरु कीरति नाहि नसाय ॥२॥

रामलखन तन जगत् में ताकि सकै नहिं कोय।
समरथ विश्वामित्र सो जाको रक्षक होय ॥३॥
ये मूरति हैं धर्म के ये तप तेज निधान।
शास्त्र शस्त्र सबमें निपुण नहि कोउ इनहि समान ॥४॥
निशिचर वध में ये स्वयं हैं समर्थं रघुराय।
पै तव सुत कल्याण हित कीन्ह कृपा इत आय ॥५॥
और मर्म की बात इक तुमसन कहहुँ बुझाय।
याको प्रकट न कीजिये देव गुह्य रघुराय ॥६॥
नायक हैं चर अचर के राम-लखन हैं शेष।
चक्रसुदर्शन सत्रुहन, शंख भरत के भेष ॥७॥
तुम कश्यप, अरु कौसिला अदिति, कियो हरिहेत।
भूरि तपस्या पुत्र करि माँग्यौ कृपानिकेत ॥८॥
प्रकट्यो तव गृह आइ सो, शक्ति जनकगृह जाइ।
करत जतन सम्बन्ध हित दोउन के ऋषि राइ ॥९॥

तब राजा का सन्देह जाता रहा और देने को प्रस्तुत हो गये।

अति आदर दोउ तनय बोलाए। हृदय लाइ बहु भाँति सिखाए ॥
मेरे प्राननाथ सुत दोऊ। तुम्ह मुनि पिता आन नहिं कोऊ ॥५॥

दो. सौंपे भूप रिषिहिं सुत, बहु बिधि देइ असीस।
जननी भवन गये प्रभु, चले नाइ पदसीस ॥२०८॥ क

अर्थ : अत्यन्त आदर से दोनों बेटों को बुलाया। हृदय से लगाकर बहुत प्रकार की शिक्षा दी। मुनि जी बोले हे मुने ! ये दोनों बेटे मेरे प्राण के स्वामी हैं। आप इनके पिता हैं, और कोई नहीं है।

राजा ने बहुत प्रकार से आशीर्वाद देकर ऋषिजी को सौंप दिये। प्रभु माँ के घर गये और उन्हें सिर नवाकर चले।

व्याख्या : सन्देह नाश होने पर भी पुत्रबुद्धि बनी हुई है। यह वरदान का प्रभाव है। अत्यन्त प्रेम है। अत्यन्त आदर से दोनों बेटों : राम लक्ष्मण को बुलाया। कलेजे से लगा लिया। अति प्रिय के लिए वही स्थान है। शिक्षा दी कि मुनिजी की आज्ञा मानना। इनकी आज्ञा की कदापि अवहेलना न करना तथा शत्रु से संग्राम करने की सावधानी के विषय की अनेक शिक्षाएँ दी। तत्पश्चात् मुनिजी से कहा : मेरे प्राण के ये ही दोनों स्वामी हैं। इन्हीं को देखकर मैं जीता हूँ। अब आप इनके पिता हैं। पातीति पिता : रक्षा करने से पिता संज्ञा है। आन नहि कोऊ कहने का भाव यह है कि मैं नहीं हूँ आपही इनके सब कुछ हैं।

पिता होने के कारण पुत्रों के कल्याण के लिए बहुत प्रकार से आशीर्वाद दिया। ऋषिजी ने याचना की थी : अनुज समेत देहु रघुराया। सो चक्रवर्तीजी ने

सौंप दिया। विदा होने के लिए प्रभु माँ के घर गये। कुछ कहा नहीं केवल प्रणाम करके चल दिये। यह सोचकर कि असुर से युद्ध करना कहेंगे तो नहीं जाने देगी। पीछे से माँ ने कहा भी :

रिषि नृपसीस ठगौरी सी डारी।
कुलगुरु सचिव निपुन नेबनि अवरेव न समुझि सुधारी ।।१।।
सिरिस सुमन सुकुमार कुँवर दोउ सूर सरोष सुरारी।
पठए विनहि सहाय पयादेहि केलि बान धनुधारी ।।२।।
अति सनेह कातरि माता कहै, सुनु सखि वचन दुखारी।
बादि वीर जननी जीवन जग छत्रिजाति गतिभारी ।।३।।

सो. पुरुष सिंह दोउ वीर, हरषि चले[1] मुनि भय हरन।
कृपासिंधु मतिधीर, अखिल बिस्व कारन करन ।।२०८।।

अर्थ : दोनों वीर पुरुषों में सिंह थे। हर्षित होकर मुनि के भयहरण के लिए चले। क्योंकि कृपा के समुद्र हैं। मतिधीर हैं और सम्पूर्ण विश्व के कारण के भी असाधारण कारण हैं।

व्याख्या : पराक्रम तथा निर्भीकता सूचित करने के लिए पुरुषसिंह कहते हैं। रणप्रियता सूचित करने के लिए दोउवीर कहते हैं। असुरों से युद्ध करने का बड़ा उत्साह है। क्योंकि उनके वध से ही मुनि भय से विनिर्मुक्त हो सकेंगे। कृपासिन्धु हैं। जिसका वध करेंगे उसे भी परम पद देंगे। मतिधीर हैं सेना सेवक कोई साथ नहीं है फिर भी धर्मरथ पर सवार हैं। यथा : सखा धर्ममय असरथ जाके। जीत न कहँ न कतहुँ रिपु ताके। प्रभु के निज स्वरूप को स्मरण कराने के लिए ग्रन्थकार कहते हैं कि अखिल विश्व का कारण प्रकृति है। उसके भी ये अधिकरण हैं। आश्रय हैं। परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्। इनका अवतार ही है।

अरुन नयन उर बाहु बिसाला। नील जलद तनु स्याम तमाला ।।
कटि पट पीत कसे बर माथा। रुचिर चाप सायक दुहुँ हाथा ।।१।।

अर्थ : लाल नेत्र और विशाल वक्षःस्थल लम्बी भुजाएँ, नील, मेघ तथा तमाल तरु की भाँति श्याम शरीर कमर में पीताम्बर तथा अच्छा तरकस कसे हुए। और दोनों हाथों में धनुष और वाण लिए हुए।

व्याख्या : मुनियों पर संकट है। यह सुनकर क्रोध से नेत्रों में लालिमा आ

---

१. रामजी आश्विन कृष्ण द्वादशी को मुनिजी के साथ अयोध्या से चले। यद्यपि गोस्वामीजी सिवा दो-एक स्थलों के तिथि नहीं देते पर स्थान स्थान पर ऐसा इङ्गित कर देते हैं। जिसकी उपेक्षा न करने से प्रायः सभी घटनाओं की तिथि का पता चल जाता है यथा : बालकाण्ड में शरच्चन्द्र से सीताजी के मुख के मिलान पर ध्यान देने से बालकाण्ड की प्रायः सभी घटनाओं की तिथि का पता चल जाता है।

गई है। यथा : अरुन नयन भृकुटी कुटिल चितवत नृपन्ह सकोप तथा अरुन नयन सर चाप चढ़ाए। वक्षःस्थल और बाहु का विशाल होना वीरों का लक्षण है। नील मेघ तथा तमाल के वृक्ष सी सुन्दर श्यामलता कही साथ ही कोमलता शीतलता और दृढ़ता भी द्योतित की। श्याम शरीर में पीतपट की बड़ी शोभा होती है। कमर में तरकस और हाथ में धनुष बाण से युद्ध के लिए पूरी तैयारी सूचित होती है। इस भाँति सुन्दरता और वीरता का अद्भुत योग दृष्टिगोचर हो रहा है।

स्याम गौर सुंदर दोउ भाई। विस्वामित्र महानिधि पाई ॥
प्रभु ब्रह्मण्य देव मैं जाना। मोहि निति पिता तजेउ भगवाना ॥२॥

अर्थ : श्याम और गौर दोनों भाई सुन्दर हैं। विश्वामित्र ने बड़ी भारी निधि प्राप्त कर ली। मुनि जी सोचते हैं : मैं जान गया। प्रभु ब्रह्मण्यदेव हैं। मेरे निमित्त भगवान् ने पिता को छोड़ा।

व्याख्या : दोनों सुन्दर हैं। देखने से ही भाई भाई मालूम होते हैं। केवल वर्णभेद है। बड़े श्याम हैं छोटे गौर हैं। महाराज का सौंपना कह चुके हैं। यथा : सौंपे भूपति रिषिहि सुत। अब मुनिजी का पाना कहते हैं। महानिधि पाने से जैसा हर्ष लोगों को होता है वैसा विश्वामित्रजी को दोनों भाइयों के पाने से हुआ। क्योंकि ये ही मुनि धन जन सर्वस सिव प्रान हैं। वे सोचने लगे कि पिता को इनके पृथक् करने में इतना कष्ट हुआ। पर इन्हें हर्ष है। यथा : हरखि चले मुनि भय हरन। जो ब्राह्मण के लिए पिता के विरह को कुछ नहीं गिनता है वह ब्रह्मण्य है। इसमें सन्देह नहीं। ये देव हैं इन्होंने जब पिता को छोड़ना चाहा तब उन्हें देने की मति उत्पन्न हुई। नहीं तो महाराज दशरथ तो नहीं कर ही चुके थे। इनमें समस्त ऐश्वर्य है। धर्म है। श्री है। ज्ञान और वैराग्य है। ये भगवान् हैं।

चले जात मुनि दीन्हि देखाई। सुनि ताड़का क्रोध करि धाई ॥
एकहि बान प्रान हरि लीन्हा। दीन जानि तेहि निज पद दीन्हा ॥३॥

अर्थ : राह में जाते हुए मुनि ने ताड़का को दिखा दिया। सुनकर ताड़का क्रुद्ध हो दौड़ी। एक हो वाण से प्राण हरण कर लिया और दीन जानकर उसे अपना पद दिया।

व्याख्या : मुनि संग दोनों भाई चले। पथकथा लिखते हुए ग्रन्थकार गीतावली में लिखते हैं : पैठत सरनि सिलनि चढ़ि चितवत खग मृग बन रुचिराई। सादर सभय सप्रेम पुलकि मुनि पुनि पुनि लेत बुलाई। इस भाँति किशोरलीला करते चले जाते थे कि ताड़का आ पड़ी। मुनिजी ने दिखला दिया। इङ्गित से नहीं। स्पष्ट कहा कि यह ताड़का है इसे मारो। सो जो वाण पहिले से ही हाथ में था उसीसे ताड़का का वध हुआ। प्राण हरण तो किया पर उसके बदले में अपना पद दिया। वाण लगते ही नहीं मरी चोट खाकर दीन हो गई। तब दीनदयाल ने उसे मुक्त कर दिया।

सौंप दिया। विदा होने के लिए प्रभु माँ के घर गये। कुछ कहा नहीं केवल प्रणाम करके चल दिये। यह सोचकर कि असुर से युद्ध करना कहेंगे तो नहीं जाने देगी। पीछे से माँ ने कहा भी :

रिषि नृपसीस ठगौरी सी डारी।
कुलगुरु सचिव निपुन नेबनि अवरेव न समुझि सुधारी ॥१॥
सिरिस सुमन सुकुमार कुँवर दोउ सूर सरोष सुरारी।
पठए विनहि सहाय पयादेहि केलि बान धनुधारी ॥२॥
अति सनेह कातरि माता कहै, सुनु सखि वचन दुखारी।
वादि वीर जननी जीवन जग छत्रिजाति गतिभारी ॥३॥

सो. पुरुष सिंह दोउ वीर, हरषि चले[1] मुनि भय हरन।
कृपासिंधु मतिधीर, अखिल बिस्व कारन करन ॥२०८॥

अर्थ : दोनों वीर पुरुषों में सिंह थे। हर्षित होकर मुनि के भयहरण के लिए चले। क्योंकि कृपा के समुद्र हैं। मतिधीर हैं और सम्पूर्ण विश्व के कारण के भी असाधारण कारण हैं।

व्याख्या : पराक्रम तथा निर्भीकता सूचित करने के लिए पुरुषसिंह कहते हैं। रणप्रियता सूचित करने के लिए दोउवीर कहते हैं। असुरों से युद्ध करने का बड़ा उत्साह है। क्योंकि उनके वध से ही मुनि भय से विनिर्मुक्त हो सकेंगे। कृपासिन्धु हैं। जिसका वध करेंगे उसे भी परम पद देंगे। मतिधीर हैं सेना सेवक कोई साथ नहीं है फिर भी धर्मरथ पर सवार हैं। यथा : सखा धर्ममय असरथ जाके। जीत न कहँ न कतहुँ रिपु ताके। प्रभु के निज स्वरूप को स्मरण कराने के लिए ग्रन्थकार कहते हैं कि अखिल विश्व का कारण प्रकृति है। उसके भी ये अधिकरण हैं। आश्रय हैं। परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्। इनका अवतार ही है।

अरुन नयन उर बाहु बिसाला। नील जलद तनु स्याम तमाला ॥
कटि पट पीत कसे बर माथा। रुचिर चाप सायक दुहुँ हाथा ॥१॥

अर्थ : लाल नेत्र और विशाल वक्षःस्थल लम्बी भुजाएँ, नील, मेघ तथा तमाल तरु की भाँति श्याम शरीर कमर में पीताम्बर तथा अच्छा तरकस कसे हुए। और दोनों हाथों में धनुष और बाण लिए हुए।

व्याख्या : मुनियों पर संकट है। यह सुनकर क्रोध से नेत्रों में लालिमा आ

---

१. रामजी आश्विन कृष्ण द्वादशी को मुनिजी के साथ अयोध्या से चले। यद्यपि गोस्वामीजी सिवा दो-एक स्थलों के तिथि नहीं देते पर स्थान स्थान पर ऐसा इङ्गित कर देते हैं। जिसकी उपेक्षा न करने से प्रायः सभी घटनाओं की तिथि का पता चल जाता है यथा : बालकाण्ड में शरच्चन्द्र से सीताजी के मुख के मिलान पर ध्यान देने से बालकाण्ड की प्रायः सभी घटनाओं की तिथि का पता चल जाता है।

गई है। यथा : अरुन नयन भृकुटी कुटिल चितवत नृपन्ह सकोप तथा अरुन नयन सर चाप चढ़ाए। वक्षःस्थल और बाहु का विशाल होना वीरों का लक्षण है। नील मेघ तथा तमाल के वृक्ष सी सुन्दर श्यामलता कही साथ ही कोमलता शीतलता और दृढ़ता भी द्योतित की। श्याम शरीर में पीतपट की बड़ी शोभा होती है। कमर में तरकस और हाथ में धनुष बाण से युद्ध के लिए पूरी तैयारी सूचित होती है। इस भाँति सुन्दरता और वीरता का अद्भुत योग दृष्टिगोचर हो रहा है।

स्याम गौर सुंदर दोउ भाई। बिस्वामित्र महानिधि पाई ॥
प्रभु ब्रह्मण्य देव मैं जाना। मोहि निति पिता तजेउ भगवाना ॥२॥

अर्थ : श्याम और गौर दोनों भाई सुन्दर हैं। विश्वामित्र ने बड़ी भारी निधि प्राप्त कर ली। मुनि जी सोचते हैं : मैं जान गया। प्रभु ब्रह्मण्यदेव हैं। मेरे निमित्त भगवान् ने पिता को छोड़ा।

व्याख्या : दोनों सुन्दर हैं। देखने से ही भाई भाई मालूम होते हैं। केवल वर्णभेद है। बड़े श्याम हैं छोटे गौर हैं। महाराज का सौंपना कह चुके हैं। यथा : सौंपे भूपति रिषिहि सुत। अब मुनिजी का पाना कहते हैं। महानिधि पाने से जैसा हर्ष लोगों को होता है वैसा विश्वामित्रजी को दोनों भाइयों के पाने से हुआ। क्योंकि ये ही मुनि धन जन सर्वस सिव प्रान हैं। वे सोचने लगे कि पिता को इनके पृथक् करने में इतना कष्ट हुआ। पर इन्हें हर्ष है। यथा : हरखि चले मुनि भय हरन। जो ब्राह्मण के लिए पिता के विरह को कुछ नहीं गिनता है वह ब्रह्मण्य है। इसमें सन्देह नहीं। ये देव हैं इन्होंने जब पिता को छोड़ना चाहा तब उन्हें देने की मति उत्पन्न हुई। नहीं तो महाराज दशरथ तो नहीं कर ही चुके थे। इनमें समस्त ऐश्वर्य है। धर्म है। श्री है। ज्ञान और वैराग्य है। ये भगवान् हैं।

चले जात मुनि दीन्हि देखाई। सुनि ताड़का क्रोध करि धाई ॥
एकहि बान प्रान हरि लीन्हा। दीन जानि तेहि निज पद दीन्हा ॥३॥

अर्थ : राह में जाते हुए मुनि ने ताड़का को दिखा दिया। सुनकर ताड़का क्रुद्ध हो दौड़ी। एक ही बाण से प्राण हरण कर लिया और दीन जानकर उसे अपना पद दिया।

व्याख्या : मुनि संग दोनों भाई चले। पथकथा लिखते हुए ग्रन्थकार गीतावली में लिखते हैं : पैठत सरनि सिलनि चढ़ि चितवत खग मृग वन रुचिराई। सादर सभय सप्रेम पुलकि मुनि पुनि पुनि लेत बुलाई। इस भाँति किशोरलीला करते चले जाते थे कि ताड़का आ पड़ी। मुनिजी ने दिखला दिया। इङ्गित से नहीं। स्पष्ट कहा कि यह ताड़का है इसे मारो। सो जो बाण पहिले से ही हाथ में था उसीसे ताड़का का वध हुआ। प्राण हरण तो किया पर उसके बदले में अपना पद दिया। बाण लगते ही नहीं मरी चोट खाकर दीन हो गई। तब दीनदयाल ने उसे मुक्त कर दिया।

तब रिषि निज नाथहिं जिय चीन्हा। विद्यानिधि कहुँ विद्या दीन्हा॥
जातें लाग न छुधा पिपासा। आतुलित बल तन तेज प्रकासा॥४॥

अर्थ : तब ऋषि ने अपने स्वामी को हृदय से चीन्हा। विद्यानिधि को विद्या दी। जिससे न भूख लगे न प्यास लगे। बेतौल : बेपरिमाण : बल और तेज का प्रकाश शरीर में हो।

व्याख्या : सहस्र नागों के बल को धारण करनेवाली शापसंस्पृष्टा दारुणा ताड़का का एक बाण से वध तथा दिव्यदृष्टि से उसकी गति देखने से मुनिजी को अभ्रान्त ज्ञान हो गया कि ये ही मेरे स्वामी हैं। मार्ग के चरित्रों के देखने से कुछ भ्रान्ति हो गई थी। सो अब हृदय से पहिचान गये अर्थात् दृढ़ धारणा हो गई। तब विद्यानिधि को विद्या दी। शिष्यभाव से उपासना के लिए गुरुशिष्यसम्बन्ध के स्थापन के लिए अपनी विद्या को सफल करने के लिए मार्ग चलते हुए श्रमित न हों। क्षुधा पिपासा की बाधा न हो। इसलिए यह जानते हुए कि ये विद्या के समुद्र हैं। बला और अतिबला विद्या दी। बला अतिबला विद्या के जाननेवाले को क्षुधा पिपासा की बाधा नहीं होती। असीम बल होता है। शरीर में तेज प्रकाश होता है।

दो. आयुध सर्व समर्पि कै, प्रभु निज आश्रम[1] आनि।
कंदमूल फल भोजन, दीन्ह भगति हित जानि॥२०९॥

अर्थ : सब अस्त्र-शस्त्र समर्पण करके प्रभु को अपने आश्रम में लाकर भक्त-हितकारी जानकर कन्दमूल फल भोजन दिया।

व्याख्या : परितुष्ट होकर विश्वामित्रजी ने सम्पूर्ण अस्त्र दिये : दण्डचक्र, धर्मचक्र, कालचक्र, विष्णुचक्र, ऐन्द्रचक्र, वज्र, शैव, शूलवत, ब्रह्मशिरस्, ऐषीक, ब्राह्म, मोदकी, शिखरी, धर्मपाश, कालपाश, वारुणपाश, वारुणास्त्र, शुष्काशनि, आर्द्रशनि, पैनाक, नारायण, आग्नेय, : शिखर : वायव्य, हयशिरस क्रौञ्च, शक्तिद्वय, कङ्काल, कापाल, किङ्कणी, वैद्याधर, : नन्दन : गान्धर्व, प्रस्वापन, प्रशमन, असिरत्न, वर्षण, शोषण, सन्तापन, विलापन, मादन, मानव, मोहन, तामस, सौमन, संवर्त, मौसल, सत्य, मायामय, तेजःप्रभ, शिशिर, त्वाष्ट्र, शीतेषु और मानद : ये सब नाम वाल्मीकीय रामायण में गिनाये हैं। फिर सिद्धाश्रम में ले आये और कन्दमूल फल भोजन दिया। जान लिया कि ये भक्तहित हैं जो कुछ दूँगा सो स्वीकार करेंगे।

---

१. अयोध्या से चलकर डेढ़ योजन पर विश्राम किया। दूसरे दिन सरयूगङ्गासङ्गम : कामाश्रम : पर निवास किया। चतुर्दशी को ताडका वध किया अमावास्या को मुनिजी के आश्रम पर पहुँचे।

प्रात कहा मुनीसन रघुराई। निर्भय जग्य करहु तुम जाई ॥
होम करन[1] लागे मुनि झारी। आपु रहे मख की रखवारी ॥१॥

अर्थ : सबेरे रामजी ने मुनि से कहा : आपलोग जाकर निर्भय हो यज्ञ कीजिये। सब मुनिलोग होम करने लगे और स्वयं आप यज्ञ की रखवारी करने लगे।

व्याख्या : उस रात्रि को विश्राम करके प्रातःकाल दूसरे दिन रघुराई ने कहा : आपलोग निर्भय होकर यज्ञ करें। विश्वामित्रजी ने चक्रवर्तीजी से कहा था : असुर समूह सतावहिं मोही। मैं जाचन आयउँ नृप तोही। अनुज समेत देहु रघुनाथा। निसिचर वध मैं होव सनाथा। अतः कहते हैं कि अब निशिचर आप लोगों को न सता सकेंगे। मैं आप लोगों की रक्षा करूँगा। आपलोग जाकर यज्ञ करें। तदनुसार मुनिलोगों ने हवन करना आरम्भ कर दिया। सब छोटे बड़े मुनियों ने स्वाहा की ध्वनि की। स्वयं प्रभु पहरा देने लगे। कोई विघ्न न हुआ। ताड़का का वध करनेवाले की रक्षा में यज्ञ हो रहा है। इस भय से कोई राक्षस नहीं आये।

सुनि मारीच निसाचर कोही। लै सहाय धावा मुनिद्रोही ॥
बिनु फर बान राम तेहि मारा। सत जोजन गा सागर पारा ॥२॥

अर्थ : समाचार पाकर क्रोधी राक्षस मुनियों का द्रोही मारीच सेना लेकर दौड़ा। बिना फर का बाण : तुक्का रामजी ने उसे मारा। सौ योजन समुद्र के पार चला गया।

व्याख्या : मारीच : ताड़का का बेटा बड़ा क्रोधी था माँ का मारा जाना सह न सका। सेना इकट्ठी करके धावा किया। इधर यज्ञ हो रहा था। उधर मारीच सेना इकट्ठी कर रहा था। मुनिद्रोही है। सुना कि इस समय मुनि ससहाय हैं। ताड़काहन्ता स्वयं पहरा दे रहे हैं। अतः जब यथेष्ट सेना सङ्कलित कर चुका तब उसने एक क्षण का विलम्ब नहीं किया। दौड़ पड़ा। मध्याह्न के समय पहुँच गया। रामजी गाँसा सहित बाण से मारते तो मर जाता। उससे काम लेना था इसलिए तुक्के से मारा। मारीच सौ योजन समुद्र पार लङ्का में जाकर गिरा। यह सौ योजन समुद्र का नाप है : पृथ्वी में जितनी दूर गया उसका परिमाण यहाँ नहीं लिखा।

पावक सर सुबाहु पुनि मारा। अनुज निसाचर कटकु सँघारा ॥
मारि असुर द्विज निर्भयकारी। अस्तुति करहिं देवमुनि झारी ॥३॥

अर्थ : आग्नेयास्त्र से सुबाहु को मारा। छोटे भाई : लक्ष्मण ने आसुरी

---

१. आश्विन सुदि १ : प्रथम स्थापना : के दिन यज्ञारम्भ हुआ। छ अहोरात्र दोनों भाइयों ने रखवारी की। छठे दिन मध्यान्ह को निशिचर दल आया। सुबाहु मारा गया मारीच समुद्र पार फेंका गया। शेष सेना सब मारी गई।

सेना का संहार किया। ब्राह्मणों को निर्भय करनेवाले ने असुरों को मारा। सब देवताओं और मुनि स्तुति करने लगे।

व्याख्या : असुरों को यज्ञ से परम वैर है। वे प्राण रहते यज्ञ होने न देंगे और ब्राह्मणों को यज्ञ पर बड़ी भारी प्रीति है। विश्वामित्र महा मुनि ज्ञानी होने पर भी उनकी यज्ञ पर इतनी प्रीति है कि चक्रवर्तीजी के यहाँ जाकर रामजी को यज्ञरक्षा के लिए माँग लाये। ब्राह्मण तभी निर्भय रह सकते हैं जब उनके यज्ञ में बाधा न हो। सो असुरों के मारे जाने से सनाथ हो गये। आग्नेयास्त्र से रामजी ने सुबाहु को मारा। तब तक लक्ष्मणजी ने असुर सेना को विध्वंस कर दिया। देवता और मुनि लोग स्तुति करने लगे। उनका व्यापार फिर चलता हो गया। देवान् भावयतानेन ते देवा भावयन्तु वः। परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ। यज्ञ से मनुष्य देवताओं की भावना करें और देवता मनुष्यों की भावना करें। इस भाँति परस्पर भावना करते हुए तुम लोग परम कल्याण को प्राप्त होओ। यह ब्रह्मदेव का बतलाया हुआ मार्ग निरर्गल हुआ। मारीच को लङ्का में फेंककर प्रभु ने रावण के पास मानों समाचार भेज दिया कि अब यज्ञ नहीं रुक सकता। रोकनेवाले आवें।

तहँ पुनि कछुक दिवस रघुराया। रहे कीन्हि विप्रन्ह पर दाया॥
भगति हेतु बहु कथा पुराना। कहे विप्र यद्यपि प्रभु जाना॥४॥

अर्थ : वहाँ कुछ दिनों तक रामजी रहे। ब्राह्मणो पर दया की। भक्ति के लिए ब्राह्मणों ने बहुत सी पुराणों की कथाएँ रामजी को सुनाईं। यद्यपि प्रभु सब जानते ही थे।

व्याख्या : ब्राह्मणों को पूर्णरूपेण निर्भय करने के लिए उन पर दया करके प्रभु कई दिन वहाँ ठहर गये कि जो राक्षसों की सेना और आगी हो सो आ ले। पुरुष सिंह दोउ वीर, हरखि चले मुनि भय हरन। सो पूर्णरूपेण भय हरण किया। ब्राह्मण लोग कौन सी सेवा करें? अतः प्रभु को पुराण की कथाएँ सुनाईं, अज्ञानहरण के लिए नहीं, अपनी भक्ति के उद्रेक की शान्ति के लिए। भगवान् सब जानते हुए भी उनकी भक्ति से प्रेरित होकर सादर सुनते रहे। तीन दिनों तक सिद्धाश्रम में ही विश्राम किया। विजया दशमी को मुनिजी के साथ धनुषयज्ञ देखने चले। उस दिन पहिला विश्राम शोणतट पर हुआ।

तब मुनि सादर कहा बुझाई। चरित एक प्रभु देखिअ जाई॥
धनुषजग्य सुनि रघुकुलनाथा। हरखि चले मुनिवर के साथा॥५॥

अर्थ : तब मुनि ने आदर सहित समझाकर[1] कहा कि हे प्रभो! चलकर

---

१. उत्तर इहाँ ते देश मिथिला अनूप भूप विदित विदेह तासु तनया गुणों की खानि।
नृप मुनि कान धाये शलभ समान रण मांच्यौ घमासान पै पराने हारहिय मानि॥
रारि नित बढ़त विलोकि नृप कीन्ह्यो पन, तोरैं जो पिनाक ताहि जानकी बरैगी जानि।
सुनि सुनि आये हैं महीप दीप दीपन के रावरे पधारिबे ते भूप की बढ़ैगी कानि॥

एक चरित्र देखना चाहिए। धनुषयज्ञ की बात सुनकर रघुकुल के नाथ हर्षित होकर मुनिवर के साथ चले।

व्याख्या : जब राक्षसों के आने की प्रतीक्षा हो चुकी, अयोध्या लौटने का अवसर आया। तब मुनिजी ने रामजी को समझाकर कहा : हमलोग राजा जनक का यज्ञ देखने जायेंगे। वहाँ शिव का धनुष रक्खा हुआ है आप भी उसे देखेंगे। राजा जनक आपका सत्कार करेंगे। इत्यादि बातें बतलाकर धनुषयज्ञ देखने पर जोर दिया। प्रभु धनुषयज्ञ की बात सुनकर हर्षित हुए कि वहाँ वीरों के पराक्रम की परीक्षा होगी। अतः अयोध्या न चलकर मुनिवर के साथ मिथिला चले। पहिले हरखि चले मुनिभय हरन। अब धनुषयज्ञ सुनि : हरखि चले मुनिवर के साथा। पहिले प्रभु के साथ मुनिजी थे। अब मुनिजी के साथ प्रभु हैं।

आश्रम एक दीख मग माँही। खग मृग जीव जंतु तहँ नाही॥
पूछा मुनिहि सिला प्रभु देखी। सकल कथा मुनि कही बिसेखी॥६॥

अर्थ : मार्ग में एक आश्रम देखा। जहाँ पशु पक्षी जीव जन्तु कोई भी नहीं था। एक शिला पड़ी थी उसे देखकर प्रभु ने पूछा। मुनि ने विशेष रूप से सब कथा कही।

व्याख्या : फल फूल हीन वन में जन्तु नहीं रहते। परन्तु यह तो आश्रम है। फल फूलवाले वृक्ष लगे हैं। फिर भी जीव जन्तु क्यों नहीं हैं? और यह शिला कैसी पड़ी हुई है? उस शिला के देखने से ही उसमें कुछ विशेषता प्रतीत हुई। रामजी ने मुनिजी से पूछा कि यह किसका आश्रम है?

मुनिजी ने कहा कि पहिले यहाँ महर्षि गौतमजी तप करते थे। उन पर प्रसन्न होकर ब्रह्मदेव ने अपनी अहल्या नाम्नी लोकसुन्दरी कन्या उन्हें दी। उसके साथ वे यहीं रहा करते थे। इन्द्र उस पर मुग्ध थे। उसे पाने के लिए नित्य अवसर देखा करते थे। किसी समय गौतमजी घर से बाहर गये। इन्द्र ने उनका वेष धारण करके अहल्या का सतीत्व नष्ट किया। बाहर निकलते ही उधर से गौतमजी आगये। उन्होंने क्रोध करके पूछा कि मेरा रूप धारण करनेवाला अधम तू कौन है? सत्य कह। नहीं तो तुझे अभी भस्म करता हूँ। वह बोला मैं कामकिङ्कर इन्द्र हूँ। मैंने कुकर्म किया है। मुनि ने क्रोध करके शाप दिया कि तुझे सहस्र भग हो जावें। अहल्या को शाप दिया कि हे दुर्वृत्ते! तू मेरे आश्रम की इस शिला में रह। दिन रात निराहार रहकर परम तप में स्थित हो। लू वर्षा आदि को सहन करती हुई परमेश्वर राम का ध्यान कर। यह मेरा आश्रम नाना जन्तुओं से विहीन हो जायगा। इस भाँति अनेक सहस्र वर्ष बीतने पर रामजी भाई के साथ इधर आयेंगे। जब वे इस शिला पर पैर रक्खेंगे तब तू निष्पापा होकर रामकी पूजा परिक्रमा स्तुति करके शाप से छूट जायगी। और पहिले की भाँति यथेच्छरूप से मेरी शुश्रूषा करेगी।

दो. गौतम नारी श्राप बस, उपल देह धरि धीर।
चरन कमल रज चाहति, कृपा करहु रघुबीर॥२१०॥

अर्थ : गौतम की स्त्री शाप के वश होकर पत्थर का शरीर धारण किये हुए धैर्य धारण करके आपके चरण की धूलि चाहती है। सो हे मतिधीर ! कृपा कीजिये।

व्याख्या : शिला के ही आश्रित अहल्या थी इसलिए उपलदेह कहा। उसकी यथार्थ देह प्राणिमात्र के लिए अलक्षित थी। शाप से विनिर्मुक्त होने के लिए चरणरज चाहती है। सो आप रघुवीर हैं : मंगन लहहि न जिनके नाहीं; उस कुल में वीर हैं। इस पर कृपा करिये; इस सिला पर पैर रखिये। यह सहस्रों वर्ष से धैर्य धारण किये हुए चरणरज की आशा लगाये परम तप में स्थित है। मुनिजी की आज्ञा से प्रभु ने उस शिला का स्पर्श चरणों से किया।

छं. 'परसत पद पावन सोकनसावन प्रगट भई तपपुंज सही।
देखत रघुनायक जन सुखदायक सनमुख होइ कर जोर रही॥
अति प्रेम अधीरा पुलक सरीरा मुख नहिं आवै बचन कही।
अतिसय बड़भागी चरनन्हि लागी जुग नयनन्हि जलधार बही॥१॥

अर्थ : पवित्र करनेवाले और शोकनाश करनेवाले चरणों के छूते ही, सच्ची तपस्या की पुञ्ज प्रकट हुई। भक्तों के सुख देनेवाले रघुनायक को देखते हुए सामने हाथ जोड़कर खड़ी हो गई। अत्यन्त प्रेम से अधीर हो गई। रोंगटे खड़े हो गये। मुख से शब्द नहीं निकलता। अत्यन्त ही भाग्यवती है, चरणों में लग गई। दोनों आँखों से अश्रु की धारा बह निकली।

व्याख्या : अति दारुण विप्रशाप से पवित्र करनेवाला चरण है। इसलिए पावन कहा। ईप्सित फलदाता होने से शोकनसावन कहा। सद्यः कल्याणप्रद है। अतः उसके स्पर्श करते ही सब कल्मष दग्ध हो गये। शुद्ध तपोमूर्ति दृष्टिगोचर हो गई। सच्चा सुवर्ण उसी को कहते हैं जिसमें किसी अन्य धातु का संमिश्रण न हो। प्रभु के चरणस्पर्श से यावत् कल्मष उसके रहे सो दग्ध हो गये। निखरे हुए सोने की भाँति शुद्ध तपोमय मूर्ति शाप से विनिर्मुक्त होकर प्रकट हो गई।

उपल : पत्थर के अवयवों से ढके रहने के कारण पहिले न देख सकी थी। उससे जब छूटी तब भक्तों के सुखदायक रघुनायक को देखा। उसका हृदय साधु है। इससे सन्मुख हुई। दुष्ट हृदय परमेश्वर के सन्मुख नहीं हो सकता। यथा : जौ पै दुष्ट हृदय सोइ होई। मोरे सनमुख आव कि सोई। और कुछ कहते या करते न बना। अतः हाथ जोड़े खड़ी रह गई। परन्तु खड़ा भी रहा नहीं जाता। क्योंकि अति प्रेम से अधीर हो उठी। शरीर पुलकित हो उठा। स्तुति करना चाहती है। पर कण्ठ रुँधा हुआ है : मनसा वाचा कर्मणा प्रेम कहा। बड़ा भारी भाग्य उदय हुआ। चरणों में जा गिरी। हृदय विगलित हो उठा। आँसू की धारा वह चली। चरणों का सम्बन्ध होना ही अहोभाग्य है।

---

१. यह त्रिभङ्गी छन्द है। इसमें ३२ मात्राओं का एक पाद होता है। १०,८,८,६ मात्राओं पर विराम होता है। अन्त में एक गुरु आता है।

छं. धीरजु मन कीन्हा प्रभु कहुँ चीन्हा रघुपति कृपा भगति पाई ।
अति निर्मल बानी अस्तुति ठानी ग्यानगम्य जय रघुराई ॥
मैं नारि अपावन प्रभु जगपावन रावनरिपु जनसुखदाई ।
राजीव बिलोचन भव भय मोचन पाहि पाहि सरनहिं आई ॥

अर्थ : मन में धैर्य किया । प्रभु को पहिचाना । रघुपति की कृपा से उसे भक्ति मिली । अत्यन्त निर्मल वाणी से स्तुति आरम्भ कर दी कि हे ज्ञानगम्य रघुराई तुम्हारी जय हो । मैं अपावन स्त्री हूँ और प्रभु लोगों को पवित्र करनेवाले हैं । रावण के रिपु हैं और भक्तों के सुख देनेवाले हैं । हे राजीवविलोचन ! हे संसार के भय को दूर करनेवाले ! मैं शरण में आयी हूँ । मुझे बचाइये, मेरी रक्षा कीजिये ।

व्याख्या : जब अश्रुधारा कुछ बह गई तब धैर्य ला सकी । देखने से ही प्रेम हुआ । पर यह न जान सकी थी कि ये कौन हैं । पर अब धैर्य आ जाने से स्मृति लौटी । मुनि का वचन स्मरण हो उठा । तब प्रभु को चीन्हा । जानाति इच्छति यतते । जब मनुष्य जानता है, तब इच्छा करता है तत्पश्चात् प्रयत्न करता है । जब प्रभु को पहिचाना तो वह प्रेम भक्ति रूप में परिणत हुआ । अथवा गुरुजी ने कहा था : कृपा करहु रघुबीर : सो रघुनाथ ने कृपा की । उसने भक्ति पायी । भक्ति के पाते ही बात दूसरी हो गई । वाणी निर्मल हो गई । स्तुति करने लगी । कहा : हे रघुराई ! आप ज्ञानगम्य हैं । ततो मां तत्त्वतो ज्ञात्वा विशते तदनन्तरम् । जैसा हूँ, जितना हूँ सो भक्ति से ही मुझे तत्त्वतः जानकर मुझमें प्रवेश कर जाता है । आपकी जय हो । ज्ञानगम्य से ब्रह्म कहा और रघुराई से अवतार कहा ।

अपने पूर्ववृत्त का स्मरण करके कहती है कि मैं नारियों में अपावन हूँ और प्रभु जग को पावन करनेवाले हैं । मुझे पवित्र कीजिये । आप रावणरिपु जनसुखदायी हैं । परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् : आपका अवतार हुआ है । हे राजीवविलोचन ! आप दृष्टिमात्र से भवभय के हरण करनेवाले हैं । पतित के लिए एकमात्र उपाय आपका शरण है । सो मैं शरण आई हूँ । मेरी रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये । यहाँ वीप्सा अत्यन्त आरत होने के कारण से है । अथवा प्रथम पाहि कहकर पातित्य से त्राण पाने के लिए और दूसरा पाहि शरण में लेने के लिए कहा । यथा : मैं पतित तुम पतितपावन दोऊ बानक बने । दास तुलसी सरन आयो राखिये आपने ।

छं. मुनि श्राप[1] जो दीन्हा अति भल कीन्हा परम अनुग्रह मैं माना ।
देखेउँ भरि लोचन हरि भवमोचन इहइ लाभु संकर जाना ॥
बिनती प्रभु मोरी मैं मति भोरी नाथ न माँगौं बर आना ।
पद कमल परागा रस अनुरागा मम मन मधुप करै पाना ॥३॥

---

१. यहाँ अनुज्ञा अलङ्कार है ।

अर्थ : मुनिजी ने जो मुझे शाप दिया वह बहुत अच्छा किया। मैं उसे परम अनुग्रह रूप मानती हूँ। आँख भर के भवमोचन हरि का दर्शन किया। शिवजी ने भी इसे ही लाभ माना है। हे प्रभो ! मेरी बुद्धि मन्द है। मैं यही विनती करती हूँ। दूसरा वर नहीं चाहती : कि आपके चरण कमल के पराग के रस को मेरा मनरूपी भौंरा पान किया करे।

व्याख्या : भक्ति के आते ही ज्ञान हुआ। क्योंकि श्रीहरि जो हैं और जैसे हैं उसका तत्त्वज्ञान तो भक्ति के होने से ही होता है। यथा : भक्त्या मामभिजानाति यावान् यश्चास्मि तत्त्वतः। अब कहती हैं कि मुनिजी ने मुझे जो शाप दिया वह भला ही नहीं, अत्यन्त भला किया। जो भला करता है वह अनुग्रह करता है और जो अत्यन्त भला करता है वह परम अनुग्रह करता है ! अतः कहती हैं उस शाप से मेरा बड़ा भला हुआ अतः मैं उसे शाप नहीं मानती। परम अनुग्रह मानती हूँ। क्योंकि हरि भवमोचन को आँख भर के देखा। जन्म का फल पा लिया। यथा : नयनवंत रघुपतिहि बिलोकी। पाइ जनम फल होहिं बिसोकी। प्रभु को आँख भर देखने को ही शिवजी लाभ मानते हैं। और किसी लाभ को लाभ नहीं मानते। अतः इसके अत्यन्त उत्कृष्ट होने में सन्देह नहीं है।

हे प्रभो ! मेरी बुद्धि मन्द है। मैं फिर संसार में भूल जाऊँगी। इसलिए और कोई वर न माँगकर इस वर के लिए विनती करती हूँ कि आप के चरणकमल के पराग के रस का पान मेरा मन सदा भौंरारूप होकर करता रहे।

छं. जेहिं पद सुरसरिता परम पुनीता प्रगट भई सिव सीस धरी।
सोई पदपंकज जेहि पूजत अज मम सिर धरेउ कृपाल हरी॥
एहि भाँति सिधारी गौतम नारी बार बार हरि चरन परी।
जो अति मन भावा सो बरु पावा गै पतिलोक अनंद भरी॥४॥

अर्थ : जिन चरणों से परम पुनीत गङ्गाजी प्रकट हुई और उन्हें शिवजी ने सिर पर रक्खा और वही चरणकमल जिसका ब्रह्मा पूजन करते हैं हरि ने मेरे सिर पर रक्खा। इस भाँति बार बार हरि के चरण पर गिरकर गौतम जी की स्त्री चली गई। जो अत्यन्त मन को भाया था वही वर पाया और पति के लोक को आनन्द से भरी हुई गई।

व्याख्या : अपने भाग्य की सराहना करती है कि ये चरण शिवजी के सिर पर न पड़े। तब चरण से निकली हुई गङ्गाजी को सिर पर धारण करके सन्तोष किया। न ब्रह्मा के सिर पर पड़े। वे नित्य उन चरणों की पूजा करके सन्तोष धारण किये हुए हैं। वाह रे मेरा भाग्य ! कि वे चरण मेरे सिर पर पड़े यह विचारकर चरणों पर बार बार गिरती है कि ये चरण शिव ब्रह्मादि को भी दुर्लभ हैं। आज मुझे सुलभ हुए हैं। यद्यपि प्रभु ने मुख से नहीं कहा। गौतम की स्त्री होने से बड़ी मानते हैं। तथापि जो वर उसे अत्यन्त पसन्द था वह दे दिया और वह आनन्द

भरी पतिलोक को गई। भाव यह कि दोनों भाँति से प्रभु ने रक्षा की। भक्ति वर देकर शरण में रख लिया और उसे परम पवित्र करके पतिलोक भेज दिया। यथा : गौतम गये गृह गौनो सो लवायके। आनन्द भरी गई अर्थात् महर्षि गौतम से सत्कार पाकर भक्ति वर पाकर आनन्द भरी हुई गई।

दो. अस प्रभु दीनबंधु हरि, कारन रहित दयाल।
तुलसीदास सठ तेहि भजु, छाड़ि कपट जंजाल ॥२११॥

अर्थ : हरि ऐसे दीनबन्धु प्रभु हैं और बिना कारण के कृपा करनेवाले हैं। तुलसीदास जी अपने मन से कहते हैं कि रे शठ! तू कपट जंजाल को छोड़कर उसे भज।

व्याख्या : ऐसे समर्थ हैं, दीनदयाल हैं कि गये हुए सतीत्व को लौटा दिया। पत्थर से फिर नारी बना दी।

यथा : रामपद पदुम पराग परी।
रिषितिय तुरत त्यागि पाहनतनु छविमय देहधरी ॥१॥
प्रबल पाप पतिशाप दुसह दव दारुन जरनि जरी।
कृपासिंधु सिंचि विबुधबेलि ज्यौं फिर सुख फरनि फरी ॥२॥
निगम अगम मूरति महेस मति जुवति बराय बरी।
सोइ मूरति भई जानि नयनपथ, इकटक ते न टरी ॥३॥
बरनति हृदय सरूप सील गुन प्रेम प्रमोद भरी।
तुलसिदास अस केहि आरत की आरति प्रभु न हरी ॥४॥

तुलसीदासजी अपने मन को समझाते हैं कि तू शठ है हठी है। सो हठ मत कर ऐसे समर्थ और ऐसे दयालु को भज। जोग वियोग भोग भल मंदा। हित अनहित मध्य भ्रम फंदा। इन फंदों का एक बड़ा भारी जाल बना हुआ है जिसमें पड़ जाने से निकलना बहुत कठिन होता है। यह जाल जन्म से लेकर मरण तक फैला हुआ है। यथा : जनम मरन जहँ लगि जगजालू। इसी को यहाँ जंजाल कहा है। इसे छोड़कर भजन कर। यह छोड़ने से ही छूटता है। यथा : होइ न विषय विराग भवन बसत भा चौथपन। हृदय बहुत दुख लाग जनम गयउ हरिभगति बिनु। बरबस राज सुतहिं तब दीन्हा। नारि समेत गवन बन कीन्हा।

यह अहल्याकृत स्तुति कृत्तिका नक्षत्र है। इसमें छः क्रियाएँ हैं : १. प्रभु का दर्शन किया। २. शरण आई। ३. शाप को अनुग्रह माना। ४. वरदान माँगा। ५. कृतकृत्य हुई। ६. पतिलोक गई। ये ही छः चमकदार तारे हैं। पाप को छुरे की भाँति काटा। इसलिए छुरे का आकार माना। इसका फल है : सद्गुरु ज्ञानविराग योग के। ज्ञानगम्य जै रघुराई कहने से ज्ञान का। नाथ न वर मागौं आना से विराग का। पद कमल परागा रस अनुरागा मम मन मधुप करै पाना से योग। यथा : योगिनामपि सर्वेषां मद्गतेनान्तरात्मना। श्रद्धावान् भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः। का गुरु कहा।

चले राम लछिमन मुनि संगा । [1]गए जहाँ जग पावनि गंगा ॥
गाधिसूनु सब कथा सुनाई । जेहि प्रकार सुरसरि महि आई ॥१॥

अर्थ : राम और लक्ष्मण मुनिजी के साथ चले। जहाँ जगत् को पवित्र करने वाली गङ्गा थी वहाँ गये जिस प्रकार से गङ्गा पृथ्वी पर आई। वह सब कथा गाधि-राज के पुत्र : विश्वामित्र ने सुनाई।

व्याख्या : इसबार हरख कर न चले। क्योंकि मनमें पछतावा था कि ब्राह्मण की स्त्री को मुझे चरण से छूना पड़ा। यथा : दई सुगति सो न हेरि हरप हिय चरन छुए को पछिताव। गी.। पहिले जो चले थे तो हरख कर चले थे। यथा : पुरुष सिंह दोउ वीर हरखि चले मुनि भय हरण। तथा : धनुषयज्ञ सुनि रघुकुल नाथा। हरखि चले मुनिवर के साथा। सिद्धाश्रम से जनकपुर जाने में गङ्गापार उतरना पड़ता है।

गङ्गास्नान से पहिले गङ्गामाहात्म्यश्रवण की विधि है। सो विश्वामित्रजी ने गङ्गा जी को कथा सुनाई कि पहिले गङ्गा जी पृथ्वी पर नहीं थीं। राजा सगर के पुत्र पिता के अश्वमेधघोड़े का पता लगाते कपिलजी के आश्रम में पहुँचे। वहाँ घोड़े को देखा। कपिलजी को ही घोड़े का हरण करनेवाला समझकर मारने दौड़े। कपिल जी ने शाप दिया। वे वहीं भस्म हो गये। बात यह हुई थी कि राजा सगर ९९ अश्वमेध यज्ञ कर चुके थे। सौ अश्वमेध करने पर इन्द्रपद मिलता है। जब अन्तिम अश्वमेध के लिए घोड़ा छोड़ा तो इन्द्र ने उस घोड़े को हरण करके कपिलदेवजी के आश्रम में छोड़ दिया था। उन सगर के पुत्रों की जो कि ब्रह्मशाप से भस्म हुए थे सद्गति बिना गङ्गाजो के आये हो नहीं सकती थी। अतः राजा भगीरथ अपने पूर्व-पुरुषों की सद्गति के लिए बड़ी भारी तपस्या करके ब्रह्मलोक से गङ्गाजी को लाये और उनका उद्धार किया। इस भाँति गङ्गा पृथ्वीतल निवासियों के लिए सुलभ हो गईं। विश्वामित्र को यहाँ पर गाधिसूनु कहने का यह भाव है कि यह राजा गाधि के पुत्र हैं। स्वयं राजा रह चुके हैं। सब राजाओं का हाल जानते हैं। यह कथा वाल्मीकीय रामायण में विस्तार से कही गई है।

तब प्रभु रिषिन्ह समेत नहाये । विविध दान महिदेवन्हि पाये ॥
हरखि चले मुनिवृन्द सहाया । वेगि विदेहनगर निअराया ॥२॥

अर्थ : तब प्रभु ने ऋषियों के साथ स्नान किया। ब्राह्मणों ने अनेक प्रकार के दान पाये। मुनि वृन्द सहाय हर्षित होकर चले और शीघ्र ही विदेह राजा का नगर निकट आगया।

व्याख्या : माहात्म्य सुनने के बाद प्रभु ने ऋषियों के साथ गङ्गास्नान किया। पुण्यक्षेत्र में आने पर दान करना चाहिए। सो अनेक प्रकार का दान किया। पात्रे

---

१. एकादशी को गङ्गा तट पर पहुँचे। रात्रि जागरण गङ्गावतरण की कथा सुनने में हुआ। तीसरे दिन द्वादशी को विशाल नगरी के सन्निकट विश्राम किया।

दानम्। पात्र को दान देना चाहिए। अतः पृथ्वी के देवताओं : ब्राह्मणों को दान दिया। ब्राह्मणब्रुवः जो केवल ब्राह्मण कहलानेवाले हैं : का ग्रहण न हो इसलिए महिदेव कहा। दानसामग्री की उपस्थिति के विषय में शङ्का न हो इसलिए प्रभु कहा कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुं समर्थः प्रभुः। उन्हें सब सामर्थ्य है। कोई महात्मा यह भी कहते हैं कि मारीच सुबाहु वध के बाद उनकी बहुत सम्पति हाथ लगी। उसी को दान के लिए साथ लाये थे।

ये दोनों भाई मुनिवृन्द की सेना हैं। जिस भाँति राजाओं की जीत सैन्यबल से होती है। उसी भाँति मुनियों की जीत इन्हीं दोनों भाइयों द्वारा होती है। अतः 'मुनिवृन्द सहाया' कहा। सहाय शब्द सेना के अर्थ में बराबर प्रयुक्त होता है। यथा : लै सहाय धावा मुनि द्रोही। निदरे राम जानि असहाई। इत्यादि। मुनिपत्नी को पाद से स्पर्श करने के कारण अपने में पापस्पर्श माना। अतः गङ्गास्नान से उसकी शुद्धि मानकर हर्षित हैं। अतः फिर हर्षित होकर चलना लिखते हैं। वहाँ से जनकपुर सन्निकट था। इसलिए शीघ्र ही नगर का निकट आना कहते हैं। मन में कौतुक है कि विदेह : देहाध्यास रहित राजा कैसा राज करता है। उसके राज की व्यवस्था देखने लायक है। इसलिए वहाँ पहुँचने की जल्दी है।

सीय-स्वयंवर

पुररम्यता राम जब देखी। हरखे अनुज समेत बिसेखी॥
बापी कूप सरित सर नाना। सलिल सुधासम मनि सोपाना॥३॥

अर्थ : पुरकी रमणीयता जब रामजी ने देखी तो छोटे भाई के साथ बहुत प्रसन्न हुए। बावली, कुएँ, नदियाँ और तालावों की बहुतायत थी। जिनका जल अमृत सा था और मणियों की सीढ़ियाँ थीं।

व्याख्या : जनकपुर बड़ा रमणीय था। सभी को उसे देखने से हर्ष हुआ। परन्तु सबके देखने और रामलखन के देखने में अन्तर था। और लोग तो केवल रमणीयता ही देखते हैं। पर वे तो राजकुमार हैं। नगरनिर्माणविज्ञान के पण्डित हैं। रत्न को सभी लोग देखते हैं और उसकी रमणीयता पर मुग्ध भी होते हैं। परन्तु उसके वास्तविक गुण तो जौहरी ही देखते हैं। रामलक्ष्मण नगरव्यवस्थापन कला के जौहरी थे। अतः इन्हें विशेष हर्ष हुआ।

पहिली बात यह है कि नगर में जलाशयों की कमी न हो। सो वहाँ चारों प्रकार के जलाशयों की बहुतायत थीं। जलाशयों में अमृत सा स्वादु जल था और राजा की ओर से बड़ी सुरक्षा थी। सीढ़ियाँ स्फटिकादि मणियों की बनी थीं।

गुंजत मंजु मत्त रस भृंगा। कूजत कल बहुबरन बिहंगा॥
बरन बरन बिकसे बनजाता। त्रिबिध समीर सदा सुखदाता॥४॥

अर्थ : रस से मतवाले सुन्दर भौंरे गूँज रहे थे। अनेक प्रकार के सुन्दर पक्षी

कूज रहे थे। रंग रंग के कमल खिले हुए थे और शीतल मन्द सुगन्ध पवन चल रहा था।

व्याख्या : इन जलाशयों के चारों ओर फलफूलवाले वृक्ष थे जो कि स्वयं बड़े सरस थे। जहाँ फूलवाले वृक्ष होते हैं वहीं चिड़ियाँ भी रहती हैं। फलफूल के रस के लोभी भौंरे भी वहीं पहुँचते हैं। रसका आधिक्य दिखलाते हैं कि रस से मत्त होकर भौंरे गूँजते हैं और तृप्त होकर चिड़ियाँ कलरव कर रहीं हैं। उन जलाशयों में रंग रंग के श्वेत, श्याम, अरुण और पीतवर्ण के कमल खिले हुए हैं। शरद ऋतु है। अतः वायु में शीतलता है। कमलों और फूलों के गन्ध के भार से पवन की गति भी मन्थर है। अथवा जनकपुर में सदा त्रिविध समीर चला करती है। वहाँ कड़ी धूप पड़ती ही नहीं।

दो. सुमन वाटिका बाग वन, विपुल विहंग निवास।
फूलत फलत सुपल्लवत, सोहत पुर चहुँ पास ॥२१२॥

अर्थ : फुलवारी, बाग, और वन जहाँ बहुत सी चिड़ियाँ बसती हैं, पुर के चारों ओर फूलते फलते और पल्लवित होते शोभित हैं।

व्याख्या : अभी पुर के बाहर का वर्णन हो रहा है। पुर के चारों ओर वन हैं। जिनमें स्वभाव से पेड़ जमे हैं। उसके बाद बाग हैं। जिनमें फलवाले वृक्ष हैं। यथा : चलेउ नाइ सिर पैठेउ बागा। फल खाएसि तरु तोरन लागा। फुलवारी में फूल लगे हैं। अथवा सरित के तट पर वन हैं। सर के चारों ओर बाग हैं और वापी कूप फुलवारी में हैं। फुलवारी फूल रही है, बाग फल रहे हैं। वन पल्लवित हो रहे हैं। उनमें अबाधरूप से बहुत से पक्षी बसते हैं। इस फुलवारी, बाग और वन से पुर को बड़ी शोभा हो रही है।

वापी तड़ाग अनूप कूप मनोहरायता सोहहीं।
सोपान सुंदर नीर निर्मल देखि सुर मुनि मोहहीं ॥
बहु रंग कंज अनेक खग कूजहिं मधुप गुंजारहीं।
आराम रम्य पिकादि खगरव जनु पथिक हंकारहीं ॥

बनइ न बरनत नगर निकाई। जहाँ जाइ मन तहँ लोभाई ॥
चारु बजार विचित्र अँबारी। मनिमय विधि जनु स्वकर सँवारी ॥१॥

अर्थ : नगर की सुन्दरता कहते नहीं बनती। जहाँ जायँ वहीं मन लुभा जाता है। सुन्दर बाजार था। विचित्र कोठे थे। जिनमें मणियों का काम था। मानों ब्रह्मदेव ने उन्हें अपने हाथ से सँवारा है।

व्याख्या : नगर इतना मनोहर है कि जिधर मन जाता है वहीं लुब्ध होकर ठहर जाता है और बिना सब ओर गये मन वर्णन कर नहीं सकता। अतः कहते हैं कि वर्णन नहीं किया जा सकता। पूरा नगर सर्वाङ्ग सुन्दर है। नीचे के मंजिल की दूकानों की पंक्ति को बाजार कहते हैं और ऊपर के मंजिल के कमरों

को अँबारी कहा है। जिनमें कोठियाँ चलती हैं। सर्वोपरि मंजिल की अटारी संज्ञा है। वे अँबारी मणिमय हैं। स्थापत्यकला की पराकाष्ठा उनमें दिखलाई गई है। सन्धि : जोड़ का पता नहीं चलता मानो स्वयं ब्रह्मदेव की बनाई हुई हैं।

धनिक बनिकवर धनद समाना। बैठे सकल वस्तु लै नाना॥
चौहट सुंदर गली सुहाई। संतत रहहिं सुगंध सिंचाई॥२॥

अर्थ : धनवान् श्रेष्ठ सौदागर कुबेर के समान सब वस्तुओं को लिये बैठे हैं। चौराहा सुन्दर गलियाँ सोहावनी सदा सुगन्ध से सींची जाती थीं।

व्याख्या : बाजार और अँबारी दोनों में धनिक बनिक का बैठना कहते हैं। धनद समाना कहने से प्रभूत धनधान्य का संग्रह कहते हैं। नाना प्रकार की वस्तुएँ लिये बैठे हैं। कोई वस्तु ऐसी नहीं है जो उस बाजार और उन कोठियों में न मिलती हो।

राज्यव्यवस्था तथा ऐश्वर्य इतना बढ़ा चढ़ा है कि गलियों में पानी नहीं छिड़का जाता है। सुगन्ध सींची जाती है। जो स्थान सुगन्ध से सींचा जाता हो वहाँ की सफाई के लिए क्या कहना है। कितना ही नगर सुन्दर हो पर यदि वहाँ सफाई न हो तो वह सुन्दरता किसी काम की नहीं होती। जनकपुर की सुन्दरता अनूठी है और सफाई भी बहुत बढ़ी चढ़ी है।

मंगलमय मंदिर सब केरे। चित्रित जनु रतिनाथ चितेरे॥
पुर नर नारि सुभग सुचि संता। धरमसील ग्यानी गुनवंता॥३॥

अर्थ : सबके घर मङ्गलमय थे और उन पर इस भाँति चित्रकारी बनी थी मानो कामदेव ने स्वयं चित्रकार बनकर उन चित्रों को चित्रित किया है। पुर के नरनारी सुन्दर और शुद्ध सन्त धर्मशील ज्ञानी और गुणवान् थे।

व्याख्या : बन्दरवार केतु पताका चौक से युक्त होम के धूप से सुगन्धित मङ्गलमय सभी के घर थे। उन घरों में ऐसी सरस चित्रकारियाँ थीं कि वे मनुष्य की की हुई मालूम नहीं होती थीं। उन्हें देखने से मन में यह होता था कि इन्हें कामदेव ने स्वयं बनाया होगा। जब मकान ब्रह्मदेव के बनाये मालूम होते थे तो उसकी चित्रकारियाँ कामदेव की बनाई हुई मालूम होनी ही चाहिए।

नगर चाहे कैसा ही सुन्दर हो, उसकी व्यवस्था चाहे कितनी ही अच्छी हो पर यदि उसके निवासी अच्छे न हुए तो वह लङ्कापुरी हो जाती है। सो यहाँ के निवासी सुन्दर थे और पवित्र सन्त थे। अर्थात् भगवत्स्नेह से उनका हृदय सरस था। यथा : राम सनेह सरस मन जासू। साधुसभा बड़ आदर तासू। धर्मात्मा थे, ज्ञानी थे और सर्वगुणसम्पन्न थे। भाव यह कि कर्मकाण्ड उपासनाकाण्ड और ज्ञानकाण्ड का जनकपुर में घर घर प्रचार था। जनकपुर में निर्गुणी कोई नहीं था।

अति अनूप जहँ जनक निवासू। बिथकहिं बिबुध बिलोकि बिलासू॥
होत चकित चित कोट बिलोकी। सकल भुवन सोभा जनु रोकी॥४॥

अर्थ : जहाँ जनक का निवास था वह तो अत्यन्त अनूप था। वहाँ का विलास देखकर तो देवता स्तब्ध हो जाते थे। कोट देखकर चित्त चकित हो जाता था। मानो इसने सम्पूर्ण भुवन की शोभा को रोक रक्खा है।

व्याख्या : लोगों का निवास अनूप महाराज जनक का निवास अति अनूप। जो विलास वहाँ था वह स्वर्ग में भी नहीं था। न स्वर्ग उतना सुन्दर था और न वहाँ के विलास का सामना स्वर्ग का विलास कर सकता था और निवास की शोभा देखकर तो चित्त चकित हो जाता था। मानों सम्पूर्ण भुवनों की शोभा उसने रोक रक्खी है कि उससे कोई बढ़ने न पावे।

दो. धवल धाम मनि पुरट पट, सुघटित नाना भाँति।
सिय निवास सुंदर सदन, सोभा किमि कहि जाति ॥२१३॥

अर्थ : सुनहले मणि जटिल कपड़ों से अनेक प्रकार से मढ़ा हुआ उज्ज्वल धाम सीताजी का सुन्दर निवास स्थान था। उसकी शोभा कैसे कही जा सकती है ?

व्याख्या : सर्व साधारण इस विलास से अपरिचित हैं। बहुत बड़े ऐश्वर्य-शालियों के घर की दीवारें छत इत्यादि कपड़ों से मढ़ी रहती हैं। उसी भाँति सीताजी का उज्ज्वल निवासगृह जरी के काम पर जवाहिरात टँके हुए कपड़ों से मढ़ा हुआ था। अथवा उसमें जवाहिरात से टँके हुए जरी के काम के पर्दे पड़े हुए थे। रनिवास में भी सीताजी के निवासस्थान की शोभा अलौकिक थी। ग्रन्थकार कहते हैं कि जिस निवासस्थान में सीताजी रहती हैं उसकी शोभा कैसे कही जा सकती है। अर्थात् सर्वथा अवर्णनीय है।

सुभग द्वार सब कुलिस कपाटा। भूप भीर नट मागध भाटा ॥
बनी बिसाल बाजि गज साला। हय गज रथ संकुल सब काला ॥१॥

अर्थ : सुन्दर द्वार थे जिनमें वज्रकपाट लगे थे। राजाओं की भीड़ और नट मागध भाटों की भीड़ जहाँ लगी रहती थी। बड़ी-बड़ी अश्वशालाएँ और गज-शालाएँ बनी रहती थीं जो सदा हाथी, घोड़े और रथों से भरी रहती थीं।

व्याख्या : पुरद्वार तथा राजद्वार सब सुन्दर बने थे। साथ ही साथ बड़े दृढ़ थे। उनमें वज्र से किवाड़ लगे थे। उन द्वारों पर सदा राजाओं, नट, मागध और भाटों की भीड़ लगी रहती थी। एक प्रविसहिं एक निर्गमहि भीर भूप दरबार। कोई जा रहा है। कोई आ रहा है। इसी से भीड़ होती है। इससे जनकजी का वैभव विलास कहते हैं। यथा : पितु वैभव बिलास मैं दीठा। नृपमनिमुकुट मिलत पद पीठा। अब पुर के भीतर का वर्णन करते हैं कि हथिसार और घोड़सार बहुत बड़े बड़े बने थे। व्यवस्था ऐसी थी कि कभी वे हाथी घोड़े और रथ से खाली नहीं रहते थे। यदि हाथी घोड़े रथ किसी काम पर भी गये तो भी यथेष्ट संख्या में रथ, गज, वाजि बचे रहते थे। जिसमें वे शालाएँ भरी मालूम पड़ सकें।

इतना बड़ा संग्रह जनकपुर में था कि : तुरग लाख रथ सहस पचीसा।

सकल सँवारे नख अरु सीसा। मत्त सहस दस सिंधुर साजे। जिनहि देखि दिसि कुंजर लाजे। सब समाज एहि भाँति बनाई। जनक अवधपुर दीन्ह पठाई। इतने गजरथ तुरंग तो दायज में दिये गये।

सूर सचिव सेनप बहुतेरे। नृपगृह सरिस सदन सब केरे ॥
पुर बाहिर सर सरित समीपा। उतरे जहँ तहँ विपुल महीपा ॥२॥

अर्थ : योद्धा मन्त्री और बहुत से सेनापति थे। इनके मकान भी महाराज के महल से थे। पुर के बाहर तालाब और नदी के सन्निकट जहाँ तहाँ बहुत से राजा लोग उतरे थे।

व्याख्या : महाराज के यहाँ मन्त्रियों और वीरों का बड़ा मान था। उनके घर क्या थे राजमहल थे। यद्यपि रामजी मुनियों के सहित नगर के बाहर ही हैं। वहीं का वर्णन उपयुक्त है। पर बाहर के वर्णन के साथ भीतर का वर्णन भी किये देते हैं। आगे चलकर घटनाचक्र के वर्णन में पड़ जाने पर नगर के भीतरी दृश्य का वर्णन न कर सकेंगे। लङ्का आदि के वर्णन में भी ग्रन्थकार ने इसी रीति का अवलम्बन किया है।

राजा लोग आये हैं सीयस्वयंवर में पर वे नगर के भीतर ठहरने नहीं पाये हैं। वे लोग पुर के बाहर जलाशय देख देखकर अपने दलबल सहित उतरे हुए हैं।

देखि अनूप एक अँवराई। सब सुपास सब भाँति सुहाई ॥
कौसिक कहेउ मोर मनु माना। इहाँ [1]रहिअ रघुवीर सुजाना ॥३॥

अर्थ : एक आम की बारी बेजोड़ थी। सब प्रकार से सुन्दर थी और वहाँ सभी सुभीता था। उसे देखकर कौशिक : विश्वामित्र जी ने कहा कि मुझे यह पसन्द है। हे रघुवीर सुजाना ! यहीं रहना चाहिए।

व्याख्या : ठहरने के लिए स्थान देखते हैं। सर्वत्र राजा लोग टिके हैं। पर एक आम की बारी बेजोड़ है। वह खाली ही पड़ी है। जलाशय के सन्निकट है। ऊँचे स्थान पर है, घनी है, पवित्र है, सभी सुभीता है। राजा के यहाँ न जाकर रघुनाथजी से कहते हैं : आप सुजान हैं, यहाँ ही रहिये। आप रघुवीर हैं। सेना-रहित होने पर भी उन राजाओं से कम शङ्कनीय नहीं हैं जो बाहर उतरे हुए हैं। अतः बाहर उतरना ही ठीक है।

भलेहि नाथ कहि कृपा निकेता। उतरे तहँ मुनिवृंद समेता ॥
विश्वामित्र महामुनि आए। समाचार मिथिलापति पाए ॥४॥

अर्थ : बहुत अच्छा नाथ ! कहकर कृपा के धाम रामजी वहाँ मुनिलोगों के साथ उतरे। मिथिला के राजा ने समाचार पाया कि महामुनि विश्वामित्रजी आये हैं।

---

१. त्रयोदशी को जनकपुर पहुँचे। उसी दिन नगर देखने गये।

व्याख्या : रघुनाथजी की बड़ी कृपा मुनियों पर है। जैसा वे चाहते हैं, उसी को आप भी पसन्द करते हैं। उसी आम की बारी में डेरा पड़ा। प्रभु को मुनिवृंद के बीच में रहना प्रिय है। चक्रवर्तीजी का भी ऐसा ही स्वभाव है। बरात में समधी बनकर चले तो वहाँ भी साधु समाज संग महिदेवा हैं।

मिथिलेश की व्यवस्था की प्रशंसा है कि इधर विश्वामित्रजी आये और उधर महाराज को समाचार मिल गया। मुनि के आने से ही राजा लोग अस्थिर हो उठते थे। किं पुनः विश्वामित्रजी तो महामुनि थे। उनके नाम का यथार्थ अर्थ है विश्व के मित्र और हैं भी वे विश्व के मित्र। उनके बाहरी व्यवहार में कठोरता रहती है। परन्तु उनका लक्ष्य जगत् का उपकार होता है।

दो. संग सचिव सुचि भूरि भट, भूसुर बर गुर ग्याति।
चले मिलन मुनिनायकहि, मुदित राउ एहि भाँति ॥२१४॥

अर्थ : सङ्ग में पवित्र मन्त्री, बहुत से योद्धा, श्रेष्ठ ब्राह्मण, गुरु और जाति वाले हैं। मुनीश्वर से मिलने महाराज प्रसन्न होकर इस भाँति चले।

व्याख्या : सङ्ग में सचिव भी हैं, योद्धा भी हैं, पर वे शुचि हैं। शुचि उसे कहते हैं जो स्वप्न में भी अपने धर्म से विचलित न हो। यथा : अस बिचारि सुचि सेवक बोले। जे सपनेहुँ निज धर्म न डोले। सूर सचिव सेनप बहुतेरे का निवास राजगृह के निकट ही है। राजा के चलते ही सब साथ हो गये। ऐसे समय में जब कि देश देश के राजा नगर के बाहर उतरे हुए हैं महाराज का अरक्षित होकर नगर के बाहर जाना ठीक नहीं। नहीं तो जनकजी तो दशरथजी की भाँति भूसुर वर गुरु ज्ञाति के साथ मिलने चले थे। दूसरा भाव यह है कि विश्वामित्रजी राजर्षि से ब्रह्मर्षि हुए थे। अतः क्षात्र तेज भी उनमें है। अतः क्षत्रिय ब्राह्मण दोनों को साथ लेकर अगवानी की। राजकुमार भी साथ हैं। इसलिए दोनों प्रकार से अगवानी हुई। तीसरी बात यह कि दशरथजी को सभा से राजद्वार तक ही जाना था और जनकजी को नगर के बाहर तक जाना था।

कीन्ह प्रनामु चरन धरि माथा। दीन्हि असीस मुदित मुनि नाथा ॥
बिप्रबृंद सब सादर बंदे। जानि भाग्य बड़ राउ अनंदे ॥१॥

अर्थ : चरण पर माथा रखकर प्रणाम किया। मुनीश्वर ने प्रसन्न होकर आशीर्वाद दिया। आदर के साथ ब्राह्मणों के समूह की वन्दना की और अपना बड़ा भाग्य मानकर राजा आनन्दित हुए।

व्याख्या : महाराज ने चरण पर मस्तक रखकर प्रणाम किया और आशीर्वाद पाया। महाराज दशरथ ने दण्डवत् प्रणाम किया। फिर भी आशीर्वाद नहीं मिला। बात यह थी कि चक्रवर्तीजी से उन्हें राम लक्ष्मण को लेना था। अतः आशीर्वाद देकर उन्हें निर्भय नहीं किया। जनकजी को ही कृतार्थ करने के लिए राम लक्ष्मण को लाये थे। अतः इन्हें आशीर्वाद दिया। पूर्णाः सन्तु मनोरथाः। ब्राह्मणसमूह

मुनीश्वरजी के साथ था। उनकी भी आदर के साथ राजा ने वन्दना की। ब्राह्मणों की भीड़ से लोग अपना भाग्य मानते थे। यथा : भूसुरभीर देखि सब रानी। सादर उठी भाग्य बड़ जानी। अतः ब्राह्मण समूह के आगमन से राजा ने अपना भाग्य माना और आनन्दित हुए।

कुसल प्रश्न करि बारहिं बारा। विश्वामित्र नृपहि बैठारा॥
तेहि अवसर आये दोउ भाई। गए रहे देखन फुलवाई॥२॥

अर्थ : बार बार कुशल पूछकर विश्वामित्रजी ने राजा को बिठाया। उसी समय दोनों भाई आये। फुलवारी देखने गये थे।

व्याख्या : विश्वामित्रजी के व्यवहार का अन्तर जो कि दशरथजी और जनकजी के साथ उन्होंने किया, देखिये। महाराज दशरथ से न कुशल पूछी न बैठने के लिए कहा। संसार दाता के साथ विनम्र व्यवहार करता है, परन्तु विश्वामित्रजी सदा दाता के साथ कठोरतम व्यवहार करके उसकी श्रद्धा की परीक्षा लेते थे। उनका महाराज हरिश्चन्द्र के साथ का व्यवहार प्रसिद्ध है। महाराज दशरथ से राम और लक्ष्मण को लेना है। अतः उनके साथ व्यवहार करने में कठोरता से काम लेते हैं। प्रेम में घाटा नहीं है। यहाँ ऐसी कोई बात नहीं है। इसलिए एकबार के कुशलप्रश्न से सन्तोष नहीं है। इस समय जनकपुर द्वीप द्वीप के नरपतियों से घिरा है। संकट का सामना है। अतः केवल शिष्टाचार पालन के लिए ही कुशल प्रश्न नहीं है। मुनिजी अपनी सेना साथ लेकर आये हैं। यथा : हरखि चले मुनिवृंद सहाया। आवश्यकता हो तो सहायता करें। अतः बार बार कुशल पूछते हैं कि कुछ भी संकट हो तो बतलाओ। राजा सेवा में खड़ा रहना चाहता है। बैठना नहीं चाहता। पर मुनिजी ने बाँह पकड़ कर बिठा लिया। दूसरी बात यह है कि विदेहराज का विशेष आदर मुनियों के गुरु होने से है। यथा : जासु ज्ञान रवि भवनिसि नासा। बचन किरिन मुनिकमल विकासा।

प्रभु तो उतरते ही अपने काम में लग गये थे। पूजा के लिए फूल लाने की सेवा इन्हें मिली थी। मुनीश्वरजी जो काम जिससे लेते हैं वह उसके कल्याण के लिए लेते हैं। ये दोनों भाई फुलवाई देखने गये थे कि किस फुलवाई से पूजनोपयोगी पुष्पपत्रादि सुन्दर मिल सकेंगे। इधर जनकजी बैठते हैं और उधर से दोनों भाई फुलवाई देखकर लौट आते हैं।

स्याम गौर मृदु वयस किसोरा। लोचन सुखद विस्व चित चोरा॥
उठे सकल जब रघुपति आए। विश्वामित्र निकट बैठाए॥३॥

अर्थ : श्याम गौर सुकुमार किशोरावस्था नेत्रों को सुख देनेवाले और विश्व के चित्त के चुरानेवाले थे। रघुपति जब आये तो सब उठकर खड़े हो गये। विश्वामित्रजी ने निकट बिठला लिया।

व्याख्या : आते हुए की छवि कहते हैं। आगे आगे श्याम पीछे पीछे गौर। प्रौढावस्था के पूर्व की अवस्था है इसीलिए मृदु वयस किसोरा कहा। यही अवस्था

व्याख्या : रघुनाथजी की बड़ी कृपा मुनियों पर है। जैसा वे चाहते हैं, उसी को आप भी पसन्द करते हैं। उसी आम की बारी में डेरा पड़ा। प्रभु को मुनिवृंद के बीच में रहना प्रिय है। चक्रवर्तीजी का भी ऐसा ही स्वभाव है। बरात में समधी बनकर चले तो वहाँ भी साधु समाज संग महिदेवा हैं।

मिथिलेश की व्यवस्था की प्रशंसा है कि इधर विश्वामित्रजी आये और उधर महाराज को समाचार मिल गया। मुनि के आने से ही राजा लोग अस्थिर हो उठते थे। किं पुनः विश्वामित्रजी तो महामुनि थे। उनके नाम का यथार्थ अर्थ है विश्व के मित्र और हैं भी वे विश्व के मित्र। उनके बाहरी व्यवहार में कठोरता रहती है। परन्तु उनका लक्ष्य जगत् का उपकार होता है।

दो. संग सचिव सुचि भूरि भट, भूसुर वर गुर ग्याति।
चले मिलन मुनिनायकहि, मुदित राउ एहि भाँति ॥२१४॥

अर्थ : सङ्ग में पवित्र मन्त्री, बहुत से योद्धा, श्रेष्ठ ब्राह्मण, गुरु और जाति वाले हैं। मुनीश्वर से मिलने महाराज प्रसन्न होकर इस भाँति चले।

व्याख्या : सङ्ग में सचिव भी हैं, योद्धा भी हैं, पर वे शुचि हैं। शुचि उसे कहते हैं जो स्वप्न में भी अपने धर्म से विचलित न हो। यथा : अस बिचारि सुचि सेवक बोले। जे सपनेहुँ निज धर्म न डोले। सूर सचिव सेनप बहुतेरे का निवास राजगृह के निकट ही है। राजा के चलते ही सब साथ हो गये। ऐसे समय में जब कि देश देश के राजा नगर के बाहर उतरे हुए हैं महाराज का अरक्षित होकर नगर के बाहर जाना ठीक नहीं। नहीं तो जनकजी तो दशरथजी की भाँति भूसुर वर गुरु ज्ञाति के साथ मिलने चले थे। दूसरा भाव यह है कि विश्वामित्रजी राजर्षि से ब्रह्मर्षि हुए थे। अतः क्षात्र तेज भी उनमें है। अतः क्षत्रिय ब्राह्मण दोनों को साथ लेकर अगवानी की। राजकुमार भी साथ हैं। इसलिए दोनों प्रकार से अगवानी हुई। तीसरी बात यह कि दशरथजी को सभा से राजद्वार तक ही जाना था और जनकजी को नगर के बाहर तक जाना था।

कीन्ह प्रनामु चरन धरि माथा। दीन्ह असीस मुदित मुनि नाथा ॥
बिप्रबृंद सब सादर बंदे। जानि भाग्य बड़ राउ अनंदे ॥१॥

अर्थ : चरण पर माथा रखकर प्रणाम किया। मुनीश्वर ने प्रसन्न होकर आशीर्वाद दिया। आदर के साथ ब्राह्मणों के समूह की वन्दना की और अपना बड़ा भाग्य मानकर राजा आनन्दित हुए।

व्याख्या : महाराज ने चरण पर मस्तक रखकर प्रणाम किया और आशीर्वाद पाया। महाराज दशरथ ने दण्डवत् प्रणाम किया। फिर भी आशीर्वाद नहीं मिला। बात यह थी कि चक्रवर्तीजी से उन्हें राम लक्ष्मण को लेना था। अतः आशीर्वाद देकर उन्हें निर्भय नहीं किया। जनकजी को ही कृतार्थ करने के लिए राम लक्ष्मण को लाये थे। अतः इन्हें आशीर्वाद दिया। पूर्णाः सन्तु मनोरथाः। ब्राह्मणसमूह

मुनीश्वरजी के साथ था। उनकी भी आदर के साथ राजा ने वन्दना की। ब्राह्मणों की भीड़ से लोग अपना भाग्य मानते थे। यथा : भूसुरभीर देखि सब रानी। सादर उठी भाग्य बड़ जानी। अतः ब्राह्मण समूह के आगमन से राजा ने अपना भाग्य माना और आनन्दित हुए।

कुसल प्रश्न करि बारहिं बारा। विश्वामित्र नृपहि बैठारा ॥
तेहि अवसर आये दोउ भाई। गए रहे देखन फुलवाई ॥२॥

अर्थ : बार बार कुशल पूछकर विश्वामित्रजी ने राजा को बिठाया। उसी समय दोनों भाई आये। फुलवारी देखने गये थे।

व्याख्या : विश्वामित्रजी के व्यवहार का अन्तर जो कि दशरथजी और जनक-जी के साथ उन्होंने किया, देखिये। महाराज दशरथ से न कुशल पूछी न बैठने के लिए कहा। संसार दाता के साथ विनम्र व्यवहार करता है, परन्तु विश्वामित्रजी सदा दाता के साथ कठोरतम व्यवहार करके उसकी श्रद्धा की परीक्षा लेते थे। उनका महाराज हरिश्चन्द्र के साथ का व्यवहार प्रसिद्ध है। महाराज दशरथ से राम और लक्ष्मण को लेना है। अतः उनके साथ व्यवहार करने में कठोरता से काम लेते हैं। प्रेम में घाटा नहीं है। यहाँ ऐसी कोई बात नहीं है। इसलिए एकबार के कुशलप्रश्न से सन्तोष नहीं है। इस समय जनकपुर द्वीप द्वीप के नरपतियों से घिरा है। संकट का सामना है। अतः केवल शिष्टाचार पालन के लिए ही कुशल प्रश्न नहीं है। मुनिजी अपनी सेना साथ लेकर आये हैं। यथा : हरखि चले मुनिवृंद सहाया। आवश्यकता हो तो सहायता करें। अतः बार बार कुशल पूछते हैं कि कुछ भी संकट हो तो बतलाओ। राजा सेवा में खड़ा रहना चाहता है। बैठना नहीं चाहता। पर मुनिजी ने बाँह पकड़ कर बिठा लिया। दूसरी बात यह है कि विदेहराज का विशेष आदर मुनियों के गुरु होने से है। यथा : जासु ज्ञान रवि भवनिसि नासा। वचन किरिन मुनिकमल विकासा।

प्रभु तो उतरते ही अपने काम में लग गये थे। पूजा के लिए फूल लाने की सेवा इन्हें मिली थी। मुनीश्वरजी जो काम जिससे लेते हैं वह उसके कल्याण के लिए लेते हैं। ये दोनों भाई फुलवाई देखने गये थे कि किस फुलवाई से पूजनोपयोगी पुष्पपत्रादि सुन्दर मिल सकेंगे। इधर जनकजी बैठते हैं और उधर से दोनों भाई फुलवाई देखकर लौट आते हैं।

स्याम गौर मृदु वयस किसोरा। लोचन सुखद विस्व चित चोरा ॥
उठे सकल जब रघुपति आए। विश्वामित्र निकट बैठाए ॥३॥

अर्थ : श्याम गौर सुकुमार किशोरावस्था नेत्रों को सुख देनेवाले और विश्व के चित्त के चुरानेवाले थे। रघुपति जब आये तो सब उठकर खड़े हो गये। विश्वामित्रजी ने निकट बिठला लिया।

व्याख्या : आते हुए की छवि कहते हैं। आगे आगे श्याम पीछे पीछे गौर। प्रौढावस्था के पूर्व की अवस्था है इसीलिए मृदु वयस किसोरा कहा। यही अवस्था

अति सौन्दर्य की है। या यों कहिये कि मृदु वयस की सीमा किशोरावस्था है। वर्ण और वय कहकर रूप कहते हैं। लोचन को ऐसे सुखद जैसे भूखे को सुन्दर पदार्थ सुखद होता है। यथा : पियत नयन पुट रूप पियूखा। मुदित सुअसन पाइ जिमि भूखा। विश्वामित्र का और विश्वचितचोर का साथ है। ऐसा चित्त चुराते हैं कि जिसका चित्त चोरी गया उसे स्वयं पता नहीं कि कब चोरी गया। भाव यह कि प्रभु के देखते ही सबकी आँखें उनमें बँध गई और मन उधर ही खिंच गया। सबके प्राणों की ऊर्ध्व गति हो गई। अतः सबके सब उनके आने से उठकर खड़े हो गये। सुन्दरता का कथन करके ग्रन्थकार वर्णन करते हैं और तेजका उत्कर्ष लोगों के खड़े हो जाने से द्योतित करते हैं। प्रभु प्रश्रय : अदब से दूर बैठना चाहते हैं पर विश्वामित्रजी ने प्यार से पास बिठा लिया।

भये सब सुखी देखी दोउ भ्राता। वारि विलोचन पुलकित गाता॥
मूरति मधुर मनोहर देखी। भएउ विदेहु विदेहु बिसेखी॥४॥

अर्थ : दोनों भाइयों को देखकर सब सुखी हुए। नेत्रों में जल और शरीर में पुलक हुआ। मनोहर मधुर मूर्ति देखकर राजा विदेह तो विशेष रूप से विदेह हो गये।

व्याख्या : लोचन सुखद का साफल्य दिखाते हैं भए सब सुखी कहकर और विश्व चित चोरा का साफल्य दिखाते हैं सबकी आँखों में आँसू और रोंगटे खड़े होने का वर्णन करके। मृदु किशोर वयस हैं। सोलह वर्ष भी पूरे नहीं हुए हैं। अतः मधुर मूर्ति कहते हैं। यथा : मधुरमूर्तिरसौ रघुनन्दनः। विश्व चितचोर हैं। अतः मनोहर कहते हैं। राजा विदेह देहाध्यास रहित थे। तथापि निर्लेप रहकर लौकिक कार्य बड़ी सुन्दरता से करते थे। इस मधुर मनोहर मूर्ति के दर्शन से उस योग्य भी नहीं रह गये। इसलिए विदेह विसेखी कहा।

दो. प्रेम मगन मनु जानि नृपु, करि विवेकु धरि धीर।
बोलेउ मुनि पद नाइ सिरु, गदगद गिरा गभीर॥२१५॥

अर्थ : राजा ने मन को प्रेम में मग्न जाना। तो विवेक से धैर्य धारण किया। और मुनि के चरणों में सिर झुकाकर गद्गद और गम्भीर वाणी बोले।

व्याख्या : सदा साक्षी रूप होकर व्यवहार देखने का स्वभाव है। अतः बड़ा सावधान राजा है। चोरी जान गया। अतः उसके लिए ग्रन्थकार रामजी को विश्व चित चोर न कहकर मनोहर कहते हैं। सब लोग वारिविलोचन पुलकितगात हैं। प्रेम में मग्न हैं। अपनी दशा नहीं जानते। पर राजा सावधान हो गया। विवेक से धैर्य धारण किया। इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेषु वर्त्तन्त इति धारयन्। यह धारणा की कि इन्द्रियाँ अपने अर्थों में वर्त्त रही हैं। अभी प्रेम का रङ्ग हटा नहीं। गला भरा हुआ है। अतः गद्गद वाणी बोले फिर भी वाणी गम्भीर थी। बड़ों के सामने प्रणामपूर्वक बोलना चाहिए। अतः मुनि के चरणों में सिर नवाकर बोले।

कहहु नाथ सुंदर दोउ बालक । मुनिकुल तिलक कि नृपकुल पालक ॥
ब्रह्म जो निगम नेति कहि गावा । उभय वेष धरि की सोइ आवा ॥१॥

अर्थ : हे नाथ ! बतलाइये । ये दोनों सुन्दर बालक मुनिकुलतिलक हैं कि नृपकुलपालक हैं । जिस ब्रह्म को वेदों ने नेति करके गान किया है क्या वही दो वेष धारणा करके आये हैं ।

व्याख्या : जनकजी विश्वामित्रजी से पूछते हैं : ये दोनों बालक कौन हैं ? साक्षात् अश्विनीकुमार तो नहीं हैं ? कामदेव और वसन्त तो नहीं हैं ? या वेष बदले हरिहर तो नहीं हैं ? मुनिजी को चुप देखकर पूछते हैं कि ये मुनिकुलतिलक हैं कि नृपकुलपालक हैं । मुनि समाज में हैं । अतः ब्राह्मणकुमार का होना ही स्वभावसिद्ध है । परन्तु धनुर्धारी हैं । इससे नृपकुलपालक होने का सन्देह होता है । यदि ब्राह्मण हैं तो ब्रह्मकुल के तिलक हैं । यदि क्षत्रिय हैं तो नृपकुलपालक हैं । अथवा ब्राह्म तथा क्षात्र तेज से युक्त देखकर यह सन्देह हुआ कि सम्भव है विश्वामित्रजी के ही पुत्र हों । यथा : किधौं आपने सुकृत सुरतरु के सुफल रावरेहि पाये । गी. ।

फिर भी विश्वामित्रजी चुप हैं । अतः पूछते हैं कि जिस ब्रह्म को जाति गुण क्रिया से व्यावर्तन के लिए श्रुति नेति कहकर गान करती है अर्थात् निर्गुण ब्रह्म वही रूप धारण करके तो नहीं आया है ?

सहज बिराग रूप मन मोरा । थकित होत जिमि चंद चकोरा ॥
तातें प्रभु पूछौं सति भाऊ । कहहु नाथ जनि करहु दुराऊ ॥२॥

अर्थ : मेरा मन स्वभाव से ही वैराग्य रूप है । सो चन्द्रमा को देखकर जैसे चकोर स्थगित हो जाता है उसी भाँति इन्हें देखकर स्थगित होता है । इसलिए मैं सच्चे भाव से पूछता हूँ । आप बतलायें छिपाव न करें ।

व्याख्या : प्रश्न का कारण कहते हैं । कहिअ तात सो परम बिरागी । तृन सम सिद्धि तीन गुण त्यागी । सो तीनों गुणों का त्याग मेरे मनके लिए स्वाभाविक है । मेरा मन निस्त्रैगुण्य पथ में विचरण करनेवाला है । वह गुणों में लुब्ध होने वाला नहीं । सो चन्द्र चकोर की भाँति स्थगित होता है । अतः अवश्य निर्गुण ब्रह्म हैं । मैं सत्य भाव से पूछता हूँ । इस भाँति पूछकर मैं इनकी स्तुति नहीं कर रहा हूँ । ये तो दुराव किये हैं । नरवेष धारण किये हैं । पर आप दुराव न करिये । गूढौ तत्त्व न साधु दुरावहिं । आरत अधिकारी जहँ पावहिं । मेरा प्रश्न संशयनिरशन के लिए है ।

इन्हहि बिलोकत अति अनुरागा । बरबस ब्रह्मसुखहि मन त्यागा ॥
कह मुनि बिहसि कहेहु नृप नीका । बचन तुम्हार न होइ अलीका ॥३॥

अर्थ : इन्हें देखते हुए अति अनुरक्त होकर मन ने ब्रह्म सुख को आपसे आप छोड़ दिया । मुनिजी ने हँसकर कहा कि राजा ! तुमने अच्छा कहा । तुम्हारी बात अप्रमाण नहीं हो सकती ।

व्याख्या : विदेह राजा के मन में सदा ब्रह्मानन्द बना रहता था। सो राम लक्ष्मण को देखकर वह आपसे आप ब्रह्मानन्द को त्याग करके रूपदर्शन का आनन्द लेने लगा। मन ही देखनेवाला है। इन्द्रिय नहीं देखतीं। सो उसने जब इन दोनों भाइयों को देखा तो ब्रह्मानन्द सीठा मालूम होने लगा। वह आपसे आप ब्रह्मानन्द का परित्याग करके दर्शनानन्द में मग्न हो गया। यथा : ब्रह्मानन्द हृदय दरस सुख लोयननि अनुभए उभय सरस राम जाने हैं। तुलसी विदेह की सनेह की दसा सुमिरि मेरे मनमाने राउ निपट सयाने हैं। गी.। यही बात राजा जनक कह रहे हैं। सुनकर मुनिजी हँस पड़े कि इनकी चोरी तो पकड़ गई। जौहरी ने तो पहिचान लिया। पर ये सबको जनाना नहीं चाहते। अतः ऐसे शब्दों में उत्तर देते हैं जिसमें राजा ही समझें। पर सत्यभाव से उत्तर देते हैं कि तुम्हारी वाणी जिसके प्रकाश से मुनियों का हृत्कमल खिल उठता है अप्रमाण कैसे हो सकती है ?

ये प्रिय सबहि जहाँ लगि प्रानी। मन मुसुकाहिं रामु सुनि बानी ॥
रघुकुलमनि दसरथ के जाए। मम हित लागि नरेस पठाए ॥४॥

अर्थ : ये प्राणिमात्र को प्रिय हैं। वाणी सुनकर रामजी मनही मन मुसकरा रहे हैं। रघुकुल के मणि दशरथजी के पुत्र हैं। मेरे हित के लिए राजा ने इन्हें भेजा है।

व्याख्या : मुनिजी श्रुतिवाक्य से इङ्गित करते हैं। स उ प्राणस्य प्राणः। ब्रह्म प्राण का भी प्राण है। अतः जितने प्राणी हैं ये सबको प्रिय हैं। वचन तुम्हार न होइ अलीका कहकर जो बात कही थी उसीकी पुष्टि कर रहे हैं। रामजी पहचाने गये। इसलिए मुसकरा रहे हैं। परन्तु सब कोई न जान ले इसलिए मनमें मुसकरा रहे हैं।

संशयनिरशन के लिए मुनिजी ने दूसरे प्रश्न : ब्रह्म जो निगम नेति कहि गावा का उत्तर पहिले दिया। अब पहिले प्रश्न का : मुनिकुलतिलक कि नृपकुलपालक का उत्तर देते हैं कि रघुकुल में मणिरूप जो राजा दशरथ हैं उनके लड़के हैं। महाराज दशरथ की संग्रामशूरता की बड़ी ख्याति है। यथा : जीति को सक संग्राम दसरथ के रण बाँकुरे। अतः नृपकुलपालक हैं। ऐसा कहने पर जो सन्देह उठना चाहिए उसका निराकरण मुनिजी स्वयं करते हैं। मेरे हित के लिए महाराज ने भेजा है। ऐसे धर्मात्मा हैं। इसीलिए सेना-सेवक आदि साथ नहीं हैं। राजा ने इन्हें धनुषयज्ञ के लिए नहीं भेजा है।

दो. राम लखनु दोउ बंधुबर, रूप सील गुन धाम।
मख राखेउ सबु साखि जगु, जिते असुर संग्राम ॥२१६॥

अर्थ : राम लक्ष्मण ये दोनों भाई रूप शील और गुण के धाम हैं। इन्होंने असुरों को संग्राम में जीतकर यज्ञ की रक्षा की है। इसका संसार साक्षी है।

व्याख्या : राम को बड़ा भाई और लक्ष्मण को छोटा नाम लेने के क्रम से सूचित किया। बन्धुवर कहकर परस्पर प्रीति कही। ये रूप के ही धाम नहीं शील और बल

के भी धाम हैं। रूप तो प्रत्यक्ष ही है और मख राखेउ सब साखि जग से शीलधाम और जिते असुर संग्राम से बलधाम होना व्यक्त किया। विश्वामित्रजी राम लक्ष्मण को विवाह के लिए लाये हैं। अतः इस वर्णन से सब प्रकार की योग्यता दिखला रहे हैं। कन्या रूप का वरण करती है, माता वित्त चाहती है, पिता विद्या देखते हैं, बान्धव लोग अच्छा कुल पसन्द करते हैं और शेष लोग मिष्टान्न चाहते हैं। यथा : कन्या वरयते रूपं माता वित्तं पिता श्रुतम्। बान्धवाः कुलमिच्छन्ति मिष्टान्नमित्तरे जनाः। कन्या रूप का वरण करती है इसलिए रूपधाम कहा। माता वित्त चाहती है इसलिए मम हित लागि नरेस पठाये कहकर राजा का बेटा कहते हैं। पिता विद्या चाहता है इसलिए जिते असुर संग्राम कहकर धनुर्वेद की पारदर्शिता कहते हैं। बान्धव लोग कुल चाहते हैं इसलिए रघुकुल मनि कहा और शेष लोग मिष्टान्न चाहते हैं इसलिए दसरथ के जाये कहते हैं। यथा : राजन राउर नाम जस सब अभिमत दातार।

मुनि तव चरन देखि कह राऊ। कहि न सकौं निज पुन्य प्रभाऊ॥
सुंदर स्याम गौर दोउ भ्राता। आँनदहू के आनद दाता॥१॥

अर्थ : राजा ने कहा कि हे मुनिजी! आपका चरण देखकर मैं अपने पुण्य का प्रभाव नहीं कह सकता सुन्दर श्याम और गौर दोनों भाई आनन्द के भी आनन्द देने वाले हैं।

व्याख्या : पुन्य पुंज बिनु मिलहिं न संता। सत संगति संसृति कर अंता। पुण्य ही सब कल्याण का मूल है। अधिक पुण्य होने से ही सन्त की प्राप्ति होती है और सन्त की प्राप्ति होने से भगवत्प्राप्ति होती है। संसार का अन्त हो जाता है। अतः रामजी की प्राप्ति से विदेहराज कहते हैं कि इसका मूल आपके चरणों का दर्शन है। न जाने कितना बड़ा पुण्य मेरा था जिससे आपके दर्शन हुए। मुनिजी ने कहा था ए प्रिय सबहि जहाँ लगि प्रानी। उसी के उत्तर में महाराज अपने भाग्य की प्रशंसा करते हैं। राम लखन दोउ बंधुवर का उत्तर देते हुए कहते हैं कि भाइयों की श्याम और गौर जोड़ी बड़ी सुन्दर है। मुनिजी ने कहा था कि : ए प्रिय सबहिं जहाँ लगि प्रानीं। जनकजी उसी बात का अनुवाद करके लक्षित कराते हैं कि बात उन्होंने समझ ली। जनकजी कहते हैं आँनदहू के आनद दाता हैं। आनन्द को भी आनन्द देनेवाला तो सिवा ब्रह्म के और कुछ हो नहीं सकता। क्योंकि उसी आनन्दसिन्धु के सीकर से ही सब आनन्दित होता है। यथा : सीकर ते त्रैलोक्य सुपासी अथवा लौकिक आनन्द जिस आनन्द की झलक है वह बिम्बरूप आनन्द ये दोनों भाई हैं।

इन्हकै प्रीति परस्पर पावनि। कहि न जाय मन भाव सुहावनि॥
सुनहु नाथ कह मुदित बिदेहू। ब्रह्म जीव इव सहज सनेहू॥२॥

अर्थ : इनकी आपस की सुहावनी प्रीति ऐसी पवित्र और मनभावनी है कि कही नहीं जा सकती। विदेहराज ने प्रसन्न होकर कहा कि हे नाथ! सुनिये। इनका स्नेह ब्रह्मजीव की भाँति स्वाभाविक है।

व्याख्या : विदेहराज बड़े लखनेवाले हैं। दोनों भाइयों के आने और बैठने के ढङ्ग से उनकी आन्तरिक प्रीति की पहिचान कर रहे हैं कि इनकी प्रीति परस्पर में पवित्र है। अर्थात् स्वार्थ के लेश का स्पर्श नहीं है और सुहावनी देखनेवाले को अच्छी लगती है। अतः मनभावनी है। इसका उत्कर्ष अकथनीय है। ग्रन्थकार गीतावली में कहते हैं : उपमा राम लखन के प्रीति की क्यों दीजै खीरै नीरै। महाराज विदेह को उपमा मिल गई। अतः विश्वामित्रजी से मुदित होकर कहते हैं कि इनकी प्रीति ब्रह्म-जीव की प्रीति की भाँति है। ब्रह्म जीव का किसी भी अवस्था में परित्याग नहीं करता और न जीव का अवस्थान बिना ब्रह्म में क्षणभर भी सम्भव है। स्वार्थ का लेश नहीं इसलिए पवित्र भी है और सुहावनी भी है।

पुनि पुनि प्रभुहि चितव नरनाहू। पुलक गात उर अधिक उछाहू ॥
मुनिहि प्रसंसि नाइ पद सीसू। चलेउ लवाइ नगर अवनीसू ॥३॥

अर्थ : बार बार प्रभु को राजा देखते हैं। उनके शरीर में पुलक और मनमें अधिक उत्साह है। मुनिजी की प्रशंसा करके और चरण पर सिर नवा करके राजा उन्हें अपने नगर में लिवा चले।

व्याख्या : दर्शन से अघाते नहीं इसीलिए पुनि पुनि चितव कहा। दर्शन को शङ्कर का प्रसाद मानते हैं जैसा कि आगे कहेंगे। नयन विषय मो कहँ भयेउ सो समस्त सुख मूल। सबइ सुलभ जगजीव कहँ भए ईस अनुकूल। राजा के हृदय में बड़ा उछाह है इसलिए सात्त्विक भाव हो रहा है। फिर मुनिजी की राजा ने स्तुति की और चरणों में सिर नवाकर नगर में लिवा चले। यथा : नाइ सीस पगनि असीस पाइ प्रमुदित पाँवड़े अरघदेत आदर सो आने हैं। गीतावली।

सुंदर सदनु सुखद सब काला। तहाँ वासु लै दीन्ह भुआला ॥
करि पूजा सब विधि सेवकाई। गयउ राउ गृह बिदा कराई ॥४॥

अर्थ : सुंदर घर सब काल में सुख देनेवाला था। वहीं राजा ने निवासस्थान दिया। पूजा तथा सब विधि से सेवकाई करके राजा विदा माँगकर घर गये।

व्याख्या : सब सुपास सब भाँति सोहाई अमराई में डेरा किया था। इसलिए महाराज ने सुन्दर घर जो सब काल में सुखद हो वहाँ ले जाकर ठहराया। असन बसन वास के सुपास सब विधि पूजि प्रिय पाहुने सुभाय सनमाने हैं। गी.। इस भाँति पूजा की और पाद संवाहनादि द्वारा सब विधि सेवकाई की। ऋषिजी भी राजा को छोड़ना नहीं चाहते थे अतः विदा कराई लिखते हैं।

दो. रिषय संग रघुवंस मनि, करि भोजन विश्राम।
बैठे प्रभु भ्राता सहित, दिवसु रहा भरि जाम ॥२१७॥

अर्थ : ऋषियों के सहित रघुवंशमणि ने भोजन किया और उनके साथ ही विश्राम किया। तत्पश्चात् भाई के साथ बैठे। पहर दिन शेष रह गया।

व्याख्या : यहाँ ऋषय शब्द ऋषि का बहुवचन है। ओत्वं लुक्च विसर्गस्य इस सूत्र से विसर्गका लोप हुआ। ऋषि के संग चले थे। यथा : हरखि चले मुनि वृंद सहाया। ऋषि के संग स्नान किया। यथा : तव प्रभु ऋषिन्ह समेत नहाए। ऋषियों के संग ही उतरे। यथा : उतरे तहँ मुनिवृंद समेता। अतः भोजन विश्राम भी उन्हीं के साथ हुआ। मार्ग चलकर आये हैं अतः विश्राम करना लिखते हैं। इस भाँति दिन के तीन पहर वीत गये। चौथे पहर में भाई के साथ अवकाश मिलने पर वैठे।

लखन हृदय लालसा विसेखी। जाइ जनकपुर आइअ देखी ॥
प्रभु भयं वहुरि मुनिहि सकुचाहीं। प्रगट न कहहिं मनहिं मुसुकाहीं ॥१॥

अर्थ : लक्ष्मण के हृदय में विशेष लालसा थी कि चलकर जनकपुर देख आना चाहिए। प्रभु का भय था मुनिजी का संकोच करते थे। इससे प्रकट कुछ नहीं करते थे। मन ही मन मुसकरा रहे थे।

व्याख्या : श्रीराम और लक्ष्मणजी जनकजी के साथ जव रथपर जा रहे थे पुर की शोभा देखते जाते थे। उसी समय पुररम्यता देखकर भाई सहित हरखे थे। अव पैदल घूमकर देखना चाहते हैं। लालसा तो रामजी को भी है पर लक्ष्मण को विशेष है। ये उत्सुक हैं। प्रभु का भय है। मालिक से अधिक उत्सुकता सेवक को नहीं होनी चाहिए। सवते सेवक धर्म कठोरा। मुनिजी का सङ्कोच भी है, समझेंगे कि लड़का बड़ा बहिर्मुख है। प्रकट न कहहिं। भाव यह कि मन से तो चाहते ही हैं परन्तु कहने में सङ्कोच और भय वाधक है। परन्तु वार वार मनोविकास हो रहा है। मनोविकास ही वस्तुतः हास है। दन्तविकास हास नहीं है। अतः मनहिं मुसुकाहीं लिखा।

राम अनुज मन की गति जानी। भगत वछलता हिय हुलसानी ॥
परम विनीत[1] सकुचि मुसुकाई। वोले गुर अनुसासन पाई ॥२॥

अर्थ : रामजी ने छोटे भाई की मन की गति जान ली। भक्तवत्सलता हृदय में उल्लसित हुई। परम विनय के साथ सकुचाते हुए मुसकराकर गुरुजी की आज्ञा पाकर वोले।

व्याख्या : परम विनीत हैं हठात् कोई वात नहीं कहते। कहने में भी सङ्कोच है। यथा : कौसल्या वचन सखी के प्रति : कौसिक परम कृपालु परमहित समरथ सुखद सुचाली। बालक सुठि सुकुमार सकोची समुझि सोच मोहि आली। गीतावली। स्मित पूर्वाभिभाषी हैं। मुसुकराहट का अर्थ ही यही है कि कुछ कहना चाहते हैं। यहाँ भावसन्धि है : विनय सङ्कोच और वात्सल्य की। गुरुजी ने जान लिया कि कुछ कहना चाहते हैं, सङ्कोच से नहीं कहते। अतः आज्ञा दी क्या कहना चाहते हो कहो।

---

१. यहाँ समुच्चय अलङ्कार है।

नाथ लखनु पुरु देखन चहहीं । प्रभु सकोच डर प्रगट न कहहीं ॥
जौ राउर आयसु मैं पाउँ । नगरु देखाइ तुरत लै आउँ ॥३॥

अर्थ : नाथ ! लक्ष्मण जनकपुर देखना चाहते हैं परन्तु प्रभु के सङ्कोच और डर से प्रकट नहीं कहते । यदि मैं आपकी आज्ञा पाउँ तो नगर दिखलाकर शीघ्र ही ले आउँ ।

व्याख्या : लक्ष्मण के मनमें अधिक लालसा होने से उन्हीं का नाम लेते हैं । परन्तु प्रभु का सङ्कोच आर डर है । अपने डर का भी आरोप मुनिजी पर ही कर रहे हैं । अपनी प्रभुता का प्रकाश ऐसे समय अनुचित है । इसलिए कहते नहीं हैं । जो मैं आयसु पावौं से अपनी भो लालसा कह दी । दूसरे को आज्ञा हो तो वह चाहे देर करे पर मैं अनुचित विलम्ब न करूँगा । देखाइ लै आवों का भाव यह कि उतनी देर तक की जिम्मेदारी हमारी । यहाँ पर ठीक पिता पुत्र का सा बरताव हो रहा है। क्योंकि सौंपने के समय महाराज दशरथ ने कहा है : तुम मुनि पिता आन नहिं कोऊ । अतः रामजी वैसा ही बरताव कर रहे हैं ।

सुनि मुनीस कह वचन सप्रीती । कस न राम तुम्ह राखहु नीति ॥
धरम सेतु पालक तुम्ह ताता । प्रेम विवस सेवक सुखदाता ॥४॥

अर्थ : सुनकर मुनिराज ने प्रेमपूर्वक कहा कि रामजी ! तुम क्यों न नीति की रक्षा करो । तुम धर्म के पुल के रक्षक हो । प्रेम के विशेष वश होकर सेवकों को सुख देते हो ।

व्याख्या : विनय और सङ्कोच देखकर प्रीतियुक्त वाणी मुनिजी बोले कि तुम नीति की रक्षा न करोगे तो कौन करेगा ? धर्मार्थ काम में सामञ्जस्य स्थापन करने वाली प्रणाली ही नीति है । रामजी में वहुत वड़ा नीति का पक्षपात है । आगे चलकर स्वयं प्रजा से कहेंगे । जौं अनीति कछु भाखौं भाई । तौ मोहि वरजेहु भय विसराई । तुम धर्मसेतु के रक्षक हो अर्थात् जगदीश हो । यथा : श्रुति सेतु पालक राम तुम जगदीस माया जानकी । प्रेम विवस सेवक सुखदाता से अवतार का प्रयोजन कहा । तुम सारिखे संत प्रिय मोरे । धरौं देह नहि आन निहोरे । भावार्थ यह कि यह आज्ञा माँगना मुझे मान देना है ।

दो. जाइ देखि आवहु नगरु, सुख निधान दोउ भाइ ।
करहु सुफल सब के नयन, सुंदर वदन देखाइ ॥२१८॥

अर्थ : सुख निधान दोनों भाई जाकर नगर देख आओ और सुन्दर वदन दिखलाकर सबकी आँखों को सुफल करो ।

व्याख्या : तुम दोनों भाई सुख के निधान हो । सुख वितरण करना चाहते हो । नगर देखना दिखाना तो व्याजमात्र है । जनकपुरवासियों का पुण्योदय हुआ है । उनकी आँखें सुफल हुआ चाहती हैं । क्योंकि विषयदर्शन तो सब शरीरों की आँखों से.

होता है। मनुष्य शरीर पाकर भी यदि विषयदर्शन मात्र करते रहें तो मानुषी आँखों का साफल्य क्या हुआ। इनका साफल्य तो भगवान् या भागवत दर्शन है। इनपर तुम्हारी इतनी कृपा है कि स्वयं उनके नेत्रवान् होने का फल देने के लिए जाना चाहते हो अतः जाओ।

मुनि पद कमल बंदि दोउ भ्राता। चले लोक लोचन सुख दाता॥
बालक बृंद देखि अति सोभा। लगे संग लोचन मनु लोभा॥१॥

अर्थ : मुनिजी के चरणकमलों को वन्दना करके संसार के नेत्रों को सुख देने वाले दोनों भाई चले। बालक लोग अत्यन्त शोभा देखकर साथ लग गये। उनके नेत्र और मन लुब्ध हो गये।

व्याख्या : आज्ञा मिलने पर चलने के पहिले वन्दना की। दोनों भाइयों की शोभा ऐसी थी कि देखनेवाले के नेत्रों को सुख मिलता था। पहिले ही बालक मिले। सर्वत्र ही खेलते हुए पाये जाते हैं। बालकों का स्वभाव है कि तमाशा देखने के लिए साथ हो जाते हैं। उनका मन लगना चाहिए और फिर तो वे साथ छोड़ते नहीं। लोचन मन लोभा कहने का भाव कि ऐसा मन लगा कि आँखें हटाये नहीं हटतीं।

पीत बसन परिकर कटि भाथा। चारु चाप सर सोहत हाथा॥
तन अनुहरत सुचंदन खोरी। स्यामल गौर मनोहर जोरी॥२॥

अर्थ : कमर में पीताम्बर के साथ तरकस बँधा हुआ था और हाथों में सुन्दर धनुष और बाण शोभायमान था। शरीर के अनुकूल सुन्दर चन्दन की खौर लगाये साँवले और गोरे की जोड़ी थी।

व्याख्या : जब शोभा देखकर लड़कों के लोचन मन लोभाने की बात कही तो शोभा वर्णन प्राप्त हो गया। बालकों से घिरे हुए हैं, चरण नहीं दिखाई पड़ रहा है। इसलिए चरण का वर्णन नहीं किया। पीताम्बर का वर्णन करते हैं। कमर में तरकस शोभित हो रहा है। हाथ में धनुष बाण की शोभा है। यहाँ शोभा का भी वर्णन वैसा ही है जैसा कि बालक ग्रहण कर सकते हैं। रामजी साँवले हैं तो उनके शरीर में केसरचन्दन की खौर लगी है और लक्ष्मणजी गोरे हैं तो उनके शरीर में अगर चन्दन की खौर है। प्राचीनकाल में खौर लगाने की चाल थी। हम लोगों ने भी बचपन में खौर लगाया है। अब देखते देखते चाल उठ गई। शरीर में चन्दन लगाकर उसपर एक प्रकार का छापा फेरते थे जिससे शरीर में चन्दन की महीन महीन रेखाएँ बन जाती थीं। चन्दन लगाने का सुख भी मिलता था और शोभा भी बढ़ती थी। केसर मिलाने से चन्दन का रंग पीला और अगर मिलाने से उसका रंग श्याम हो जाता है। इसलिए श्यामशरीर से केसरयुक्त चन्दन का और गौर शरीर में अगरयुक्त चन्दन का खौर खिलता है। यहाँ तनु अनुहरत से यही अभिप्राय है।

केहरि कंधर बाहु बिसाला। उर अति रुचिर नागमनि माला ॥
सुभग सोन सरसीरुह लोचन। बदन[1] मयंक तापत्रय मोचन ॥३॥

अर्थ : सिंह का सा कन्धा था। भुजाएँ विशाल थीं। वक्षःस्थलपर अत्यन्त सुन्दर गजमुक्ता की मालाएँ शोभायमान थीं। सुन्दर लालकमल से नेत्र थे। मुख तो चन्द्रमा सा तीनों तापों को मिटानेवाला था।

व्याख्या : वीरों के ऊँचे कन्धे, चौड़ी छाती और लम्बी भुजाएँ होती हैं। इसलिए कन्धे की उपमा वृषभ या सिंह के कन्धे से देते हैं। यहाँ सिंह का सा कन्धा कहते हैं क्योंकि पहिले पुरुषसिंह कह आये हैं। यथा : पुरुष सिंह दोउ बीर। आजानुबाहु कहते हैं। भुजाएँ जानु का स्पर्श करती हैं। चौड़ी छाती पर ही गजमुक्ता की माला की शोभा है। लालकमल जैसी मनोरम आँखों की शोभा है और मुख चाँद सा है। चाँद तो केवल आतप : धूप के ताप को हरण करता है पर मुखचन्द तो आध्यात्मिक और आधिभौतिक ताप को भी हरण करता है।

कानन्हि कनक फूल छबि देहीं। चितवत चितहि चोरि जनु लेहीं ॥
चितवनि चारु भृकुटि बर बाँकी। तिलक रेख सोभा जनु चाँकी ॥४॥

अर्थ : कानों में सोने के फूल शोभा दे रहे हैं। देखते ही मानो चित्त को चुरा लेते हैं। चितवन सुन्दर है। सुन्दर भौंहें टेढ़ी हैं। तिलक की रेखाएँ बिजली की भाँति चमक रही हैं।

व्याख्या : कानों में पड़ जाने से सोने के फूलों की शोभा है। सोने के फूलों से कानों की शोभा नहीं है : यहाँ पर यह दिखलाया कि प्रभु के अङ्ग में पड़ जाने से आभूषणों को शोभा है। आभूषणों में इतना सामर्थ्य नहीं कि प्रभु को शोभा को बढ़ा सकें। देखते क्या हैं, मानों चित्त को चुराते हैं। आँखें ही सुन्दर नहीं हैं चितवन भी सुन्दर हैं। यथा : अनियारे दीरघ नयन, किती न तरुनि समान। वे चितवन कुछ और ही, जेहि बस होत सुजान। भृकुटी के टेढ़ी होने की ही शोभा है। सो कमान की भाँति भौहें हैं। तिलक की रेखा तो भाल में जाकर बिजली की भाँति चमक दे रही है। कोई कोई चाँकी का अर्थ बिजली न करके चक्रित अर्थ करते हैं। भाव यह कि तिलक नहीं है शोभा की मुहर है। सत्य के प्रमाण में मुहर लगाई जाती है। अर्थात् तिलक ने मुहर दे दी कि यही सच्ची शोभा है।

दो. रुचिर चौतनीं सुभग सिर, मेचक कुंचित केस।
नख सिख सुंदर बंधु दोउ, सोभा सकल सुदेस ॥२१९॥

अर्थ : सुन्दर सिरों में चौगोसिया टोपी, काले और घुँघुराले बाल शोभित हैं। नख से शिखा तक दोनों भाई सुन्दर हैं और जिस अङ्ग की जैसी शोभा होनी चाहिए वैसी थी।

---

१. यहाँ वाचक लुप्तोपमा है।

व्याख्या : चार कोनेवाली टोपी को चौगोसिया टोपी कहते हैं। अब उसकी चाल नहीं है। पहिले लड़के वैसी ही टोपी लगाते थे। नगर देखने चल रहे हैं। इसलिए टोपी लगाये हैं। बालों के काले और घुँघुराले होने की शोभा है। उसपर चौगोसिया टोपी बड़ी खिलती है। ग्रन्थकार स्वयं नखशिख शब्द का प्रयोग कर रहे हैं। नख से लेकर शिख तक शोभा है। क्योंकि शरीर के जिस देश : जिस अवयव की जैसी शोभा होनी चाहिए वैसी शोभा है। जैसे : नाक शुक तुण्ड सी दाँत दाडिम से वक्षःस्थल कपाट सा भुजाएँ हाथी के सूँड सी जँघा कदली खंभ सी और चरण कमल से इत्यादि।

देखन नगरु भूपसुत आए। समाचार पुरबासिन्ह पाए॥
धाए धाम काम सब त्यागी। मनहुँ रंक निधि लूटन लागी॥१॥

अर्थ : नगर देखने के लिए राजकुमार आये हैं। यह समाचार पुरवासियों ने पाया। घर और काम छोड़कर दौड़े। जैसे दरिद्र खजाना लूटने के लिए दौड़ें।

व्याख्या : राजा लोग तो बहुत आये हैं। पर शोभा का शोर तो राजकुमार के विषय में है। आने के पहिले ही समाचार फैल गया। भाव यह कि अभी प्रभु भाई के साथ विश्वामित्रजी के पास से चले हैं। इधर सम्पूर्ण नगर में यह उत्सुकता जनक समाचार फैल गया कि राजकुमार आगये। सब लोग धाम काम छोड़कर दौड़े कि कहीं चले न जायँ और हमें दर्शन न हो सके। धाम को अरक्षित छोड़कर मानों उससे अब काम ही नहीं लेना है। काम भी आधे में छोड़ा : बिगड़ जाने दो। इसलिए त्यागी कहा। सोचते हैं धाम काम में क्या रक्खा है। सच्चा लाभ तो दर्शन में है। इसकी उपमा दरिद्र के खजाना लूटने के लिए दौड़ने से दे रहे हैं। रङ्क के धाम काम का मूल्य ही क्या है। खजाना लुट रहा है। यह समाचार सुनकर जिस भाँति रंक धाम काम को विस्मरण करके अर्थ लोभ से दौड़ते हैं उसी भाँति प्रभु के दर्शन की लालसा इतनी बलवती है कि उसके सामने पुरवासियों में धाम काम की सुधि न रह गई।

निरखि सहज सुंदर दोउ भाई। होहिं सुखी लोचन फल पाई॥
जुबतीं भवन झरोखन्हि लागीं। निरखहिं राम रूप अनुरागीं॥२॥

अर्थ : सहज सुन्दर दोनों भाइयों को देखकर वे लोग लोचन का फल पाकर सुखी हो रहे हैं। युवतियाँ घर के झरोखों से लगी हुई रामजी के रूप में अनुरक्त होकर देख रही हैं।

व्याख्या : शृङ्गार से रामजी की शोभा में आधिक्य नहीं होता बल्कि शोभा ढक जाती है। इसलिए दोनों भाइयों को सहज सुन्दर कहा। संसार में शृङ्गार शोभा बढ़ाने के लिए किया जाता है। क्योंकि वहाँ सहज सुन्दरता नहीं है। यही सहज सुन्दरता नगरवासियों के लिए निधि थी। इसी शोभा की लूट में भाग पाने के लिए दौड़े थे। ऐसी ही शोभा की लूट से आँख होने का फल मिलता है। भावार्थ

यह कि प्रभु की शोभा देखकर कृतकृत्य हो रहे हैं। युवतियाँ परदानशीन हैं। झरोखे में से खुले नहीं देख सकतीं। पल्ले की आड़ से देख रही हैं। वे लोचनफल पाकर विरत नहीं हुईं। बल्कि अनुराग में पगी हुई देख रही हैं। परदा का नियम नया नहीं है। वाल्मीकी रामायण, महाभारत तथा स्वयं वेद में भी परदा करने का उल्लेख पाया जाता है। विषयान्तर के भय से यहाँ पर अधिक नहीं लिखा जा सकता।

कहहिं परसपर वचन सप्रीती। सखि इन्ह कोटि काम छवि जीती ॥
सुर नर असुर नाग मुनि माहीं। सोभा असि कहुँ सुनिअति नाहीं ॥३॥

अर्थ : वे आपस में प्रीति सहित वचन कहती हैं : हे सखि ! इन्होंने करोड़ों काम की छवि जीत ली है। सुर, नर, असुर, नाग और मुनियों में ऐसी शोभा कहीं सुनी नहीं जाती।

व्याख्या : यहाँ पर अष्टसखी सम्वाद कहेंगे। अपरा प्रकृति का मोहित होना ही अष्टसखी का सम्वाद है। राम ब्रह्म पर आठों प्रकृतियाँ मोहित हैं। भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च। अहंकार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा। भूमि, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि और अहङ्कार ये आठ अपरा प्रकृतियाँ हैं। ये ही आठ प्रकृतियाँ आठ सखी हैं। सखी सखी से हृदय की बात खोलकर आपस में कहती हैं। सप्रीति कहने का भाव यह कि एक ही भाव से भावित हैं। यह सखी अपना मोहित होना कहती है और अलौकिक सुन्दरता कहकर मोहित न होने को असम्भव बतला रही है। घर के बाहर नहीं निकलती इसलिए कहती है कि ऐसी शोभा सुर, नर, असुर, नाग और मुनियों में सुनी नहीं जाती। सूर्पनखा सम्पूर्ण जगत् में विचरण करती थी अतः उसने सुनियत नहीं कहा। उसने कहा : मम अनुरूप पुरुष जग माहीं। देखेउ खोजि लोक तिहुँ नाहीं। इससे यह भी प्रमाणित होता है कि मनुष्य लोग केवल पाँच जातियों में ही शोभा का अनुभव कर सकते हैं। सुर, नर, असुर, नाग और मुनि को छोड़कर उनके मुग्ध होने योग्य शोभा कहीं नहीं है।

विष्णु चारि भुज विधि मुख चारी। विकट भेष मुख पंच पुरारी ॥
अपर देउ अस कोउ न आही। यह छवि सखी पटतरिअ जाही ॥४॥

अर्थ : विष्णु को चार हाथ हैं। ब्रह्मदेव को चार मुख हैं। शिवजी को पाँच मुख हैं और वेष भी विकट है। दूसरा देवता कोई ऐसा है नहीं जिससे इस छवि का पटतर दिया जाय।

व्याख्या : अस्वाभाविक अङ्गवृद्धि से विष्णु और विधि की शोभा की हानि है। शिवजी को अङ्ग वृद्धि भी अधिक है और वेष भी विकट है। काम का जीतना पहिले ही कह चुकी हैं। भुसुण्डिजी भी कहते हैं : राम काम सत कोटि सुभग तन :

रह गये इन्द्रादि, सो कोई पटतर योग्य नहीं है। जब ये लोग ही कुछ न ठहरे तब नर, नाग, असुर की गिनती ही क्या ? अतः केवल देवों का उदाहरण दिया।

दो. वय किसोर सुषमा सदन, स्याम गौर सुख धाम।
अंग अंग पर वारिअहिं, कोटि कोटि सत काम ॥२२०॥

अर्थ : अवस्था किशोर परम शोभा के घर श्याम गौर शरीर सुख के धाम है। इनके अङ्ग अङ्ग पर करोड़ों काम निछावर हैं।

व्याख्या : इस किशोरावस्था में कुरूप भी सुन्दर मालूम पड़ते हैं। ये तो परमा शोभा के धाम हैं। इनकी शोभा के लिए क्या कहा जाय। एक एक अङ्ग पर करोड़ों काम निछावर हैं। अतः इनमें शोभा की परमिति बतला रही है।

कहहु सखी अस को तनुधारी। जो न मोह अस रूप निहारी ॥
कोउ सप्रेम बोली मृदु बानी। जो मैं सुना सो सुनहु सयानी ॥१॥

अर्थ : हे सखि ! कहो ऐसा कौन शरीरधारी है जो यह रूप देखकर मोहित न हो। तब कोई सखी मृदु वाणी प्रेम से बोली। जो मैंने सुना है उसे हे सयानी ! सुनो।

व्याख्या : यदि मैं मोहित हो गई तो इस रूप के देखने पर सभी शरीरधारी मोहित हो जावेंगे। अतः आक्षेपार्थक प्रश्न करती है। यह रूप से अङ्गुल्या निर्देश करके रूप की परमोत्कर्षता सूचित करती है। यह सखी अहङ्कार तत्त्व है।

अब दूसरी सखी कहती है। यह प्रेम से मृदुवाणी बोलती है। पहिली सखी भी प्रेम से बोली थी पर उसके बोलने में मृदुता की मात्रा कम थी, अहङ्कार का पुट था। इसके बोलने में प्रेम और मृदुता दोनों हैं। यह कहती है कि तुम सयानी हो। जिसके ऊपर इतनी आसक्ति है उसका परिचय भी जानना चाहिए। जो शब्द सुना है वही सुनाना चाहती है। यह आकाश तत्त्व है। सम्भवतः पति से सुना है। इसीलिए सुनानेवाले का नाम नहीं लेती।

ए दोऊ दशरथ के ढोटा। बाल मरालन्हि के कल जोटा ॥
मुनि कौसिक मख के रखवारे। जिन्ह रन अजिर निसाचर मारे ॥२॥

अर्थ : ये दोनों दशरथ के बेटे हैं। हंस के बच्चों की सुन्दर जोड़ी है। विश्वामित्र मुनि के यज्ञ की रक्षा करने वाले हैं। जिन्होंने रणाङ्गण में राक्षसों को मारा है।

व्याख्या : महाराज दशरथ का नाम जगत् में प्रख्यात है। इसलिए अयोध्याधिपति आदि विशेषण नहीं दे रही है। राजा दशरथ हंस हैं। उनके ये दोनों बेटे हंसकुमार हैं। इनकी जोड़ी बड़ी सुन्दर है। बाल मराल कहकर सौन्दर्य, विवेक और उत्तम गति द्योतित की। अब धर्म-कर्म कहती है। कौशिक मुनि का तपबल जगत् प्रसिद्ध है। राजर्षि से ब्रह्मर्षि पद लाभ किया है। उनमें अस्त्रबल द्योतित करने के

लिए विश्वामित्र न कहकर कौशिक : राजा कुश के वंश में उत्पन्न मुनि कहा। उनसे जिस यज्ञ की रक्षा न हो सकी उस यज्ञ की इन्होंने रक्षा की है। ऐसे पराक्रमी और धर्मात्मा हैं। यज्ञ के विघ्नकारी बलवान् राक्षस थे। उन्हें इन लोगों ने रणाङ्गण में मारा। इससे बल और शौर्य कहा।

स्याम गात कल कंज बिलोचन। जो मारीच सुभुज मद मोचन ॥
कौसल्या सुत सो सुख खानी। नामु रामु धनु सायक पानी ॥३॥

अर्थ : श्याम शरीर सुन्दर कमल सी आँखें जिन्होंने मारीच और सुबाहु के मद को तोड़ डाला है वे आनन्द की खानि कौसल्या के बेटे हैं। नाम इनका राम है। धनुष बाण हाथ में लिए हुए हैं।

व्याख्या : दोनों भाई भीड़ के बीच में हैं। उन्हें लखाने के लिए रूप कहकर हाल कहती हैं। सुन्दर साँवलो मूर्ति और कमल सी आँखें जिनकी हैं। उन्होंने मारीच और सुबाहु के मद को चूर्ण किया है। भाव यह कि रण अजिर में निशाचरों का संहार करनेवाले तो दोनों भाई हैं पर उनमें से जो दोनों प्रधान थे वे इन्हीं के हाथ से पराभव को प्राप्त हुए हैं। मारीच मारा नहीं गया। इसलिए मदमोचन कहती हैं।

पिता एक कहकर माता में भेद बतलाती हैं कि ये तो कौसल्या के बेटे हैं। इनका नाम राम है। धनुसायक पानी कहकर खलवध में निरत रहना द्योतित करती है। राम सुखरूप हैं। यथा : सीकर ते त्रैलोक्य सुपासी। कौसल्या सुखखानि हैं। यथा : प्रगट्यौ जहँ रघुपति ससि चारू। विस्व सुखद खल कमल तुसारू।

गौर किसोर बेषु बर काछें। कर सर चाप राम के पाछें ॥
लछिमनु नामु राम लघु भ्राता। सुनु सखि तासु सुमित्रा माता ॥४॥

अर्थ : गौर शरीर, सुन्दर वेष, कसे कसाये धनुषवाण हाथ में रामजी के जो पीछे हैं उनका नाम लक्ष्मण है। ये रामजी के छोटे भाई हैं। हे सखि ! सुन, इनकी माँ सुमित्रा है।

व्याख्या : वेषवर काछे का भाव यह कि रामजी की रक्षा के लिए कसे कसाये तैयार हैं। पीछे पीछे चले आ रहे हैं क्योंकि छोटे भाई हैं। इनका नाम लक्ष्मण है। ये भी दशरथ के पुत्र हैं। पर इनकी माता सुमित्रा है। जो मैं सुना सो सुनहु से उपक्रम करके सुनु सखि से उपसंहार कर रही है। क्योंकि परिचय दे चुकी।

दो. बिप्रकाज करि बंधु दोउ, मग मुनिबधू उधारि ॥
आए देखन चापमख, सुनि हरषीं सब नारि ॥२२१॥

अर्थ : ब्राह्मण का कार्य करके दोनों भाई रास्ते में मुनिवधू का उद्धार करते धनुषयज्ञ देखने आये हैं। यह सुनकर सब स्त्रियाँ प्रसन्न हो उठीं।

व्याख्या : परिचय देने के बाद जनकपुर आगमन का प्रयोजन कहती हैं।

पहिले दोनों भाइयों ने यज्ञ की रक्षा करके विश्वामित्रजी का कार्य किया। रास्ते चलते मुनि वधू का उद्धार किया। सतानन्दजी राजपुरोहित हैं। उन्हीं के माता पिता अहल्या और गौतम मुनि थे। अतः मुनिवधू के शापित होने की कथा जनकपुर वासियों में विशेष रूप से प्रख्यात थी। इसलिए नाम से परिचय न देकर मुनिवधू उधारि एतावन्मात्र कहने से अहिल्योद्धार सबने जान लिया। इससे परमप्रभुता और पावनता कही। धनुषयज्ञ देखने आये हैं। भाव यह कि ये भी धनुष की परीक्षा करेंगे। यह सुनकर सब स्त्रियों को हर्ष हुआ। सबके हृदय में श्रीजानकी जी के इनसे विवाह की सम्भावना जागरूक हुई। अतः सब हर्षित हुईं।

देखि राम छबि कोउ एक कहई। जोगु जानकिहि यह बरु अहई॥
जो सखि इन्हहिं देख नरनाहू। पन परिहरि हठि करै बिबाहू॥१॥

अर्थ : रामजी की छवि देखकर कोई एक सखी कह उठी कि यह वर जानकी जी के योग्य है। यदि सखि ! इन्हें राजा देखलें तो अपना प्रण छोड़कर हठ पूर्वक इनसे व्याह कर देंगे।

व्याख्या : तीसरी सखी बोलना ही चाहती है कि प्रभु सामने आ गये। अतः कहती है कि जानकी के योग्य यह वर है। राजा लोग तो बहुत आये पर जानकी के योग्य वर कोई नहीं। स्त्रियाँ वर की योग्यता अयोग्यता की समालोचना किया करती हैं। स्वयं रूप देखकर रूप देखने का फल कहती है। यह तेजस्तत्त्व है।

मालूम होता है कि राजा ने इन्हें देखा नहीं। योग्यता को दृढ़ करती है। यदि देख लें तो ऐसे योग्य वर के लिए प्रण छोड़ दें। प्रण और हठ में भेद दिखलाती है प्रण छोड़ना अनुचित है और अनुचित के पक्षपात को ही हठ कहते हैं।

कोउ कह ए भूपति पहिचाने। मुनि समेत सादर सनमाने॥
सखि परंतु पनु राउ न तजई। बिधि बस हठि अबिबेकहि भजई॥२॥

अर्थ : किसी ने कहा इन्हें राजा पहिचानते हैं। मुनिजी के साथ इनका आदर पूर्वक सम्मान किया है। परन्तु सखि ! राजा प्रण नहीं छोड़ता। होनहार के वश में पड़ा हुआ हठ करके अविवेक को अपनाये हुए है।

व्याख्या : चौथी बोली : देखने की बात नहीं जान पहिचान है। मुनि का तो आदर सम्मान प्राप्त ही था। इनका भी आदर सम्मान किया। नगर में लाकर टिकाया। यह सखी प्रेमवश प्रणरक्षा को अविवेक बतला रही है। इसका तर्क यह है कि जो कुछ प्रण हुआ है वह जानकी के योग्य वर मिलने के लिए ही हुआ है। जब योग्य वर मिल गया तब प्रण पर अड़े रहना अनुचित है। होनहार बलवान् है। ऐसा विवेकी राजा अविवेक से काम ले रहा है। अपने प्रण पर अड़ा हुआ है। यह उचित अनुचित का विचार अपने पसन्द के अनुसार करती है। तमोबहुल है। विवेक को अविवेक और अविवेक को विवेक समझती है। यह पृथ्वी तत्त्व है।

कोउ कह जौं भल अहइ बिधाता । सब कहँ सुनिअ उचित फल दाता ॥
तौ जानकिहि मिलिहि बरु एहू । नाहिन आलि इहाँ संदेहू ॥३॥

अर्थ : किसी ने कहा कि यदि विधाता भले हैं और सुना जाता है कि सबको उचित फल देनेवाले हैं तो जानकी को यही वर मिलेगा । हे आली ! इसमें सन्देह नहीं है ।

व्याख्या : पाँचवीं सखी बोली : राजा भले ही विधिवश अविवेक को भजें पर यदि ब्रह्मा भले हैं न्यायकारी हैं तब तो जानकी को यही वर मिलेगा । यदि यह वर न मिला तो ब्रह्मा बुरे । ब्रह्मदेव के भले बुरे की परख जानकी के योग्य वर मिलने न मिलने में कर रही है ।

राजा का तो भरोसा नहीं वह प्रण न छोड़ेगा । विधि का भरोसा है । वे विधि बैठा देंगे तो सबका मनोरथ पूर्ण होगा । इसे शुद्ध प्रेम कहते हैं । स्वयं मोहित हैं पर विवाह उनका जानकीजी से चाहती हैं ।

जौं बिधि बस अस बनै सँजोगू । तौ कृतकृत्य होइ सब लोगू ॥
सखि हमरें आरति अति तातें । कबहुँक ए आवहिं एहि नातें ॥४॥

अर्थ : यदि विधिवश ऐसा संयोग बैठ जाय तो सबलोग कृतकृत्य हो जायँ । हे सखि ! मुझे इसलिए अत्यन्त आर्ति है कि कभी ये इस नाते से आवेंगे ।

व्याख्या : मनोरथ पूर्ति न होने से ब्रह्मदेव को बुरा कहना विवाह हो जाने से सबको कृतकृत्य मानना अति आरत होने का लक्षण है । अतः कहती है कि विवाह के नाते से आना होगा तो हम लोगोंको भी दर्शन मिल जायगा । यह सखी दर्शन के लिए आर्त है : लोचन चातक जिन करि राखे । रहहिं दरस जलधर अभिलाखे । निदरहिं सरित सिंधुवर वारी । रूप बिंदुजल होहिं सुखारी । यह सखी जल तत्त्व है ।

दो. नाहिं त हम कहुँ सुनहु सखि, इन्ह कर दरसन दूरि ।
यह संघटु तब होइ जब, पुन्य पुराकृत भूरि ॥२२२॥

अर्थ : नहीं तो हे सखि ! हमको इनका दर्शन दुर्लभ है । यह संयोग तो तब बन सकता है जब पूर्व जन्म का बड़ा पुण्य हो ।

व्याख्या : इस बार तो ये धनुषयज्ञ देखने यहाँ आगये हैं । राजा के लड़के ठहरे । घर जाकर राज में फँस जावेंगे । यहाँ आने के लिए कोई कारण नहीं रह जायगा । यही लोग यहाँ आवें तो दर्शन मिल सकता है । हमारा जाना तो हो नहीं सकता । अतः यदि हम लोगों का पूर्वजन्म का अत्यन्त पुण्य होगा तो यह संयोग बन जायगा । ब्याह हो जाने पर आना जाना लगा रहेगा । हम लोगों को दर्शन मिला करेगा ।

बोली अपर कहेहु सखि नीका । येहि बिबाह अति हित सबहीं का ॥
कोउ कह संकर चाप कठोरा । ये स्यामल मृदु गात किसोरा ॥१॥

अर्थ : दूसरी ने कहा कि सखि ! तुमने अच्छा कहा। इस विवाह में सभी का अत्यन्त हित है। किसी ने कहा कि शङ्कर का धनुष कठोर है और ये साँवले कोमल शरीरवाले अभी बच्चे हैं।

व्याख्या : छठी सखी बोली। यह अपने से पहिले बोलनेवाली सखी का समर्थन करती है कि इस विवाह में सभी का अर्थात् राजा का, रानी का, पुरजन का, हमारा और स्वयं रामजी का अतिहित है। सबमें अतिहित का सञ्चार करती है। यह वायु तत्त्व है। अतिहित कहने का भाव यह है कि इसमें लाभ ही लाभ है। हानि का लेश भी नहीं है।

सातवीं कहती है कि किसी भाँति सामञ्जस्य ही नहीं बैठता। कमठ पीठ की भाँति यह धनुष कठोर है और ये रघुनन्दन मधुरमूर्ति हैं। ये कैसे इसे चढ़ा सकेंगे। जनकजी का प्रण अत्यन्त दारुण है। यह संशय करती है। मनस्तत्त्व है।

सबु असमंजस अहइ सयानी। येहि सुनि अपर कहइ मृदु बानी ॥
सखि इन्ह कह कोउ कोउ अस कहहीं। बड़ प्रभाउ देखत लघु अहहीं ॥२॥

अर्थ : हे सयानी ! सभी प्रकार तो असमञ्जस है। यह सुनकर दूसरी ने कोमल वचन कहे। सखी ! इनको तो कोई कोई ऐसा बतलाते हैं कि इनका प्रभाव बड़ा है। देखने में ही छोटे हैं।

व्याख्या : अपने कहने का निष्कर्ष कह रही है कि किसी प्रकार से भी बात बैठती नहीं मालूम होती। इस बात का खण्डन करती हुई आठवीं सखी बोली कि मृदुगात और किशोरावस्था होने से इन्हें थोड़ा न समझना। मैं स्वयं नहीं जानती परन्तु जानकारों का यह कहना है कि ये देखने में ही छोटे हैं। प्रभाव इनका बड़ा है। जानकार लोग बिरले ही होते हैं। इसलिए कोउ कोउ कहती है।

परसि जासु पद पंकज धूरी। तरी अहल्या कृत अघ भूरी ॥
सो कि रहिहि बिनु सिवधनु तोरें। यह प्रतीति परिहरिअ न भोरें ॥३॥

अर्थ : जिनके चरण कमलों के रज के स्पर्श से पत्थर बनी हुई अहल्या जिसने बड़ाभारी पाप किया था तर गई। यह क्या बिना शिवधनु तोड़े रहेंगे। ऐसा विश्वास भूलकर भी न छोड़ना।

व्याख्या : अहल्या का इतना बड़ा पाप था कि सद्यः पत्थर हो गई थी। वह जिसके चरणकमल की धूलि पड़ने से तर गई। यथा : रामपद पदुम परागपरी। रिषि पिय तुरत त्यागि पाहन तनु छविमय देह धरी। प्रबलपाप पतिसाप दुसह दव दारुन जरनि जरी। कृपासुधा सिंचि विबुध बेलि ज्यौं फिरि सुख फरनि फरी। पत्थर के बन्धन से छूट गई। जड़ता नष्ट हो गई। वह स्वयं धनुष की जड़ता अवश्य नष्ट करेंगे। धनुष की जड़ता ही गुरुता है। यथा : निज जड़ता लोगन पर डारी। होउ हरुअ रघुपतिहि निहारी। हमलोगों के हित की सिद्धि धनुष टूटने में है। सो विश्वास बिना कोई सिद्धि नहीं होती। यथा : कौनिउ सिद्धि न बिनु

विस्वासा। विश्वासत्याग से सिद्धि नहीं होती। युक्तियुक्त बात पर क्यों विश्वास नहीं करती ? इसलिए विश्वास को भूलकर भी नहीं छोड़ना।

जेहिं बिरंचि रचि सीय सँवारी। तेहिं स्यामल बरु रचेउ बिचारी॥
तासु बचन सुनि सब हरषानी। ऐसेइ होउ कहहिं मृदु बानी॥४॥

अर्थ : जिस ब्रह्मा ने सीता को रचकर सुन्दर बनाया है। उसी ने विचार कर साँवरे वर को भी रचा है। इसका वचन सुनकर सब प्रसन्न हो गईं। और सुखी होकर कहने लगीं कि ऐसा ही हो।

व्याख्या : सीताजी के जन्म के पहिले ही ब्रह्मा ने विचार किया कि लोक-सुन्दरी सीता को रचना है। तो उसके लिए वर पहिले ही रचना चाहिए। अतः इन्हें विचारकर पहिले से ही रच रक्खा है। तब सीताजी को ऐसी सुन्दरी बनाया है। यह निश्चय करती है। बुद्धि तत्त्व है। ऐसी आशा भरी बात आठवीं सखी की सुनकर सब सखियाँ आनन्दित हो उठीं। सबको सुख मिला अतः आशीर्वाद देती हैं कि ऐसा ही हो।

दो. हिय हरषहिं बरषहिं सुमन, सुमुखि सुलोचनि बृंद।
जाहिं जहाँ जहँ बंधु दोउ, तहँ तहँ परमानंद॥२२३॥

अर्थ : सुन्दर मुखवाली और सुन्दर आँखोंवाली युवतियाँ हृदय से हर्षित होती हैं। और फूलों की वर्षा करती हैं। जहाँ जहाँ दोनों भाई जाते हैं वहीं वहीं परम आनन्द होता है।

व्याख्या : सर्वत्र ही यही दशा है। जहाँ जहाँ दोनों भाई जाते हैं परमानन्द मच जाता है। सुमुखि सुलोचनि फूल बरसाती हैं। अपरा प्रकृति सर्वत्र ही एक सी है। अतः सर्वत्र ही एक सी क्रिया हो रही है। यह सरकार के ऊपर पहिली पुष्पवर्षा है। जो जनकपुर की सुमुखि सुलोचनिवृन्द द्वारा हो रही है। एकबार पहिले जन्म के उपलक्ष में देवताओं द्वारा हुई थी। पर वह अयोध्या में हुई थी। सरकार के ऊपर नहीं। यह पुष्पवर्षा स्वयं प्रभु के ऊपर हो रही है। यह सत्कार पुरवासियों द्वारा हो रहा है।

पुर पूरब दिसि गे दोउ भाई। जहँ धनुमख हित भूमि बनाई॥
अति बिस्तार चारु गच ढारी। बिमल बेदिका रुचिर सँवारी॥१॥

अर्थ : दोनों भाई पुर के पूरब की ओर गये। जहाँ धनुषयज्ञ के लिए भूमिका तैयार की गई थी। अत्यन्त विस्तृत सुन्दर गच ढाली गई थी। निर्मल सुन्दर वेदी सँवारी गई थी।

व्याख्या : धनुषयज्ञ में भगवान् भूतभावन की पूजा होती है। मेध्य पशुओं की बलि होती है। यथा : आरभ्यतां धनुर्यागश्चतुर्दश्यां यथाविधि। विशसन्तु पशून् मेध्यान् भूतराजाय मीढुषे। भा.। और शस्त्रकौशल तथा बल की परीक्षा

होती है। धनुषयज्ञ के एक दिन पहिले ही भूमिका देखने गये। प्रभु पश्चिम दिशा से आये हैं। पुर बाहिर सरसरित समीपा। उतरे जहँ तहँ विपुल महीपा। यह हाल पुर के पश्चिम दिशा का है। धनुषयज्ञ की भूमिका देखने की उत्कण्ठा है। वह पुर के पूर्व की ओर है। वहीं दोनों भाई गये।

गच के ढालने की विद्या पहिले थी। अब नहीं है। दक्षिण के मन्दिरों में ढाले हुए पत्थर लगे पाये जाते हैं। ग्रन्थकार ने काँच के गच का उल्लेख अन्यत्र किया है। अतः गंच का ढाला जाना सिद्ध है। उसपर सुन्दर विशुद्ध वेदिका बनायी गई थी। जिसपर धनुषयज्ञ होनेवाला था।

चहुँ दिसि कंचन मंच बिसाला। रचे जहाँ बैठहिं महिपाला॥
तेहि पाछे समीप चहु पासा। अपर मंच मंडली बिलासा॥२॥

अर्थ : चारों ओर सोने के बड़े बड़े मञ्च : कोच : बने थे। जिसपर राजा लोग बैठते हैं। उसके पीछे पास ही चारों ओर दूसरे मञ्चों की मण्डली लगी थी। जो मञ्च आदि का विधान धनुषयज्ञ में शास्त्रोक्त है। यथा : मञ्चाः क्रियन्तां विविधा मल्लरङ्गपरिश्रिताः। भा.।

व्याख्या : राजा लोग स्वर्णसिंहासन पर बैठनेवाले हैं। अतः उनके बैठने के लिए सोने के ही मञ्च बनाये गये थे। और वे सब बड़े वड़े बनाये गये थे। जिनमें राजा लोग समाज सहित बैठ सकें। उस मञ्चमण्डली के पीछे दूसरी मञ्चमण्डली थी। जो सोने की नहीं थी।

कछुक ऊँचि सब भाँति सुहाई। बैठहि नगर लोग जहँ जाई॥
तिन्हके निकट बिसाल सुहाए। धवल धाम बहु वरन बनाए॥३॥

अर्थ : कुछ ऊँची और सब भाँति सुन्दर थी जिसपर नगर के लोग जाकर बैठते थे। उसके निकट विशाल और सुन्दर अनेक रंग के उज्ज्वल गृह बनाये गये थे।

व्याख्या : यह दूसरी मञ्चमण्डली भी सब भाँति सुन्दर है और कुछ ऊँचे पर है। जिसमें आगे राजाओं के बैठने पर भी सामना न रुके। उस मञ्चमण्डली के निकट अर्थात् पीछे की ओर उज्ज्वल धाम बनाये गये थे जहाँ पुरुषों की पहुँच न हो सके। प्रत्येक वर्ण के लिए पृथक् रङ्ग से वे धाम रँगे थे। इसलिए बहुवरन कहते हैं।

जहँ बैंठे देखहिं सब नारी। जथा जोगु निज कुल अनुहारी॥
पुर बालक कहि कहि मृदु वचना। सादर प्रभुहि देखावहिं रचना॥४॥

अर्थ : जहाँ सब नारियाँ यथायोग्य अपने अपने कुल के अनुरूप स्थानों पर बैठी हुई धनुषयज्ञ देख सकें। पुर के बालक मृदु वचन कह कहकर आदर के साथ रचना दिखला रहे हैं।

व्याख्या : यहाँ पर बैठकर देखने की व्यवस्था है खड़े होकर नहीं। यथा : जहाँ बैठे महिपाला। बैठहिं नगर लोग जहँ जाई। जहँ बैठे देखहिं सब नारी। कुल की प्रतिष्ठानुसार स्त्रियाँ परदे में या परदे से बाहर बैठकर देख सकें। बालकवृंद देखि अति सोभा। लगे संग लोचन मन लोभा। सो वहीं से संग लगे हुए हैं। यहाँ ले आये। अब रचना दिखला रहे हैं। जब से भूमिका में हाथ लगा तब से ये बालक लोग रचना देख रहे हैं। अतः रचना इनकी भलीभाँति देखी हुई है। अब उसे प्रभु को दिखाते हैं। देखने योग्य स्थानों में लिवा ले जाते हैं। बात करने में सुख का अनुभव करते हैं।

दो. सब सिसु एहि मिस प्रेमवस, परसि मनोहर गात।
तन पुलकहिं अति हरषु हियँ, देखि देखि दोउ भ्रात ॥२२४॥

अर्थ : सब बच्चे इस बहाने से प्रेम के वश होकर शरीर का स्पर्श करके पुलकित होते हैं और दोनों भाइयों को देखकर मन में हर्षित होते हैं।

व्याख्या : सब बालक प्रेम के वश हैं। प्रभु का स्पर्श करना चाहते हैं। दिखाने का बहाना उन्हें मिल गया है। उसी बहाने से प्रभु के मङ्गलमय मनोहर शरीर का स्पर्श करते हैं। स्पर्श से इतना बड़ा आनन्द होता है कि उन्हें रोमाञ्च हो जाता है। यथा : ब्रह्मसंस्पर्शमत्यन्तं सुखमश्नुते। गी.। ब्रह्मसंस्पर्श में अत्यन्त सुख होता है। नेत्रों से दोनों भाइयों को देखने से मनमें हर्ष होता है। अब शब्द के अनुभव के लिए सादर रचना दिखलाते हैं।

सिसु सब राम प्रेमबस जाने। प्रीति समेत निकेत बखाने ॥
निज निज रुचि सब लेहिं बोलाई। सहित सनेह जाहिं दोउ भाई ॥१॥

अर्थ : रामजी ने सब बालकों को प्रेम वश जाना। अतः प्रीति के सहित घरों की प्रशंसा करने लगे। अपनी अपनी रुचि के अनुसार सब बुलाते हैं और स्नेह के सहित दोनों भाई चले जाते हैं।

व्याख्या : शिशुओं के स्पर्श से चिढ़ते नहीं। समझते हैं कि ये प्रेम के वश में हैं। वे मेरी वाणी भी सुनना चाहते हैं। अतः आप जिन जिन घरों को उन लोगों ने दिखाया उनकी प्रशंसा करने लगे। इन्द्रियों के तर्पण से बालकों को बड़ा आनन्द हो रहा है। अब वे अपनी अपनी रुचि के अनुसार वस्तु दिखलाने के लिए सहित सनेह बुलाते हैं और ये सहित सनेह चले जाते हैं। इससे सरकार का स्वभाव कहा कि इतने बड़े प्रभु होने पर भी भक्त के स्नेह सहित बुलाने पर स्नेह सहित चले आते हैं।

राम देखावहिं अनुजहि रचना। कहि मृदु मधुर मनोहर वचना ॥
लव[1] निमेष महुँ भुअन निकाया। रचै जासु अनुसासन माया ॥२॥

---

१. पलक के गिरने के समय को निमेष कहते हैं। उसका छठा भाग लव है अर्थात् छः लव का एक निमेष होता है।

अर्थ : कोमल मधुर और मनोहर वचन कहकर रामजी छोटे भाई को रचना दिखलाते हैं। जिसकी आज्ञा से माया निमेष : पलक पड़ने का समय के भी अंश में ब्रह्माण्ड समूहों को रच डालती है।

व्याख्या : सादर होने से मृदु सरस होने से मधुर और सुस्वर होने से मनोहर कहा। बालकों की प्रसन्नता के लिए स्वयं देखते हैं और छोटे भाई को दिखाते हैं। जानते हैं कि इन रचनाओं की प्रशंसा से और हमारे चकित होने से ये बालक प्रसन्न होंगे। यहाँ पर अति माधुर्य का वर्णन किया। अतः ऐश्वर्य भी साथ ही साथ ग्रन्थकार कहते हैं। क्योंकि ऐश्वर्य का ध्यान बिना रहे भक्ति जार लोगों की आसक्ति की भाँति हो जाती है। यथा : तद्विहीनं जाराणामिव। ना. सू.। विकासवाद का सिद्धान्त अत्यन्त सङ्कीर्ण है। सृष्टि क्रम से नहीं होती युगपत् होती है। स्वप्न की सृष्टि की भाँति रचना के लिए काल चाहिए। सो पलक मारने के पहिले ही माया अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड की रचना कर डालती है और माया में यह शक्ति प्रभु के द्वारा आती है। यथा : सुनु रावन ब्रह्माण्ड निकाया। पाइ जासु बल बिरचित माया।

भगति हेतु सोइ दीनदयाला। चितवत चकित धनुष मखसाला॥
कौतुक देखि चले गुरु पाहीं। जानि बिलंबु त्रास मन माहीं॥३॥

अर्थ : भक्ति के लिए वही दीनदयाल चकित होकर धनुष यज्ञशाला देख रहे हैं। कौतुक देखकर गुरुजी के पास चले। विलम्ब जान करके मनमें त्रास है।

व्याख्या : ऐसे प्रभु का चकित होकर धनुषमखशाला निरीक्षण करना केवल नाट्य है। भक्त और दीनों की प्रसन्नता के लिए यह नाट्य हो रहा है। यथा : अनेक वेष धरि नृत्य करै नट कोय। धनुषयज्ञशाला देखने का कौतुक था सो देख चुके। अब लौटते हैं। धनुषयज्ञशाला पहिले नहीं देखी थी। इसलिए उसके देखने के लिए कौतुक था। एक याम दिवस रहा तब डेरे से चले थे और सन्ध्या के पहिले लौट रहे हैं। फिर भी मनमें गुरुजी का त्रास है। नगर देखाइ तुरत लै आवौं कहा था। सो कुछ देर तो अवश्य हो गई।

जासु त्रास डर कहुँ डर होई। भजन प्रभाउ देखावत सोई॥
कहि बातें मृदु मधुर सुहाई। किए बिदा बालक बरिआई॥४॥

अर्थ : जिसके त्रास से डर को डर होता है वही भजन प्रभाव दिखा रहा है। मृदु मधुर और सोहाई बातें कहकर बालकों को जबरदस्ती विदा किया।

व्याख्या : प्रभु डर के भी डर हैं। यथा : भयानां भयं भीषणं भीषणानाम्। जिसके द्वारा लोगों को अभयपद प्राप्त होता है उसे डर कहाँ? यह डर भी नाट्य है। भजन का प्रभाव इससे दिखाते हैं कि भगवान् भक्त से भयभीत भी रहते हैं।

बालकों ने प्रेमवश हो प्रभु को बहुत दिक किया पर प्रभु प्रसन्न हैं। अब इनका साथ छोड़ना है। बिना छोड़े तीव्र गति नहीं हो सकती और ये सब साथ

छोड़ना नहीं चाहते। अतः जबरदस्ती उन्हें विदा करना पड़ा। फिर भी प्रभु ने मृदु मधुर और मनोहर बातें कहकर ही हटाया।

दो. सभय सप्रेम विनीत अति, सकुच सहित दोउ भाइ।
गुरुपद पंकज नाइ सिर, बैठे आयसु पाइ ॥२२५॥

अर्थ : दोनों भाई अत्यन्त विनीत हैं। भय प्रेम और सङ्कोच के साथ गुरु के चरणकमल में सिर नवाकर आज्ञा पाकर बैठे।

व्याख्या : विलम्ब से भय गुरु चरणों में प्रेम स्वाभाविक जो कहा था सो ठीक न कर सकने का सङ्कोच। इन भावों से भावित हो दोनों भाइयों ने गुरुजी के चरण कमलों की वन्दना की। वन्दना करके हाथ जोड़े खड़े हैं। जब गुरुजी ने आज्ञा दी तब बैठे। इसे विनय कहते हैं।

निसि प्रवेस मुनि आयसु दीन्हा। सबहीं सन्ध्या वंदनु कीन्हा॥
कहत कथा इतिहास पुरानी। रुचिर रजनि जुग जाम सिरानी॥१॥

अर्थ : रात्रि के प्रवेश होने पर मुनिजी ने आज्ञा दी। सभी लोगों ने सन्ध्या-वन्दन किया। पुरानी कथा और इतिहास कहते हुए सुन्दर रात्रि के दो पहर बीत गये।

व्याख्या : मुहूर्तोनं दिनं नक्तं प्रवदन्ति मनीषिणः। पण्डितों ने एक मुहूर्त दिन रहते ही रात बतलायी है। इससे यह सिद्ध हुआ कि एक मुहूर्त दिन रहते ही मुनिजी ने सबको सन्ध्यावन्दन की आज्ञा दी। क्योंकि वाराह पुराण में सायं सन्ध्यावन्दन का काल बताया है। सूर्यास्त से पहिले और ताराओं के प्रकट होने के पहिले तक। सूर्य के तेज की हानि न हो तब तक और प्रातःकाल सूर्य के आधे उदय के पहिले तक सन्ध्या होती है। यथा : अर्वागस्तमयात्सन्ध्या व्यक्तीभूता न तारका यावत्। तेजः परिहानिवशाद्भानोरर्धोदयं यावत्। प्रभुहि मिलन आई जनु राती। देखि भानु जनु मन सकुचानी। तदपि बनी संध्या अनुमानी। ब्रह्म जीव की सन्धि सन्ध्या है। गुरु की सेवा प्रधान है। उसी में सब लोग लगे हैं। अतः समय आते ही गुरुजी ने आज्ञा दी।

ऋषियों के साथ प्रभु भी एकभुक्त व्रत कर रहे हैं। सन्ध्यावन्दन के बाद पुण्यकथा होने लगी। अनधिकार चरचा नहीं की जाती। अर्द्धरात्रि के पहिले नहीं सोना चाहिए। अतः कथा वार्ता में आधी रात हो गई।

मुनिवर सयन कीन्ह तब जाई। लगे चरन चाँपन दोउ भाई॥
जिन्ह के चरन सरोरुह लागी। करत विविध जप जोग विरागी॥२॥

अर्थ : तब मुनीश्वर ने जाकर शयन किया। दोनों भाई प्रेम से गुरुजी का पाँव दबाने लगे जिनके चरणकमल के लिए विरक्त लोग अनेक प्रकार के जप और योग किया करते हैं।

व्याख्या : कथा से उठकर गुरुजी ने शयन किया। रास्ता चलकर आये हैं। अतः थकावट निवारण के लिए प्रभु गुरुजी के पाँव दबाने लगे। गुरुजी की सेवा बिना आज्ञा पाये भी करनी चाहिए।

प्रभु के चरणकमलों को तो शङ्करजी ने अपने हृदय में छिपाकर रक्खा है। जे हर हृदय कमल महँ गोए। अतः उनकी प्राप्ति के लिए विरक्त पुरुष जप और योग करते हैं। जो विरक्त नहीं है उसे प्रभु के चरणों की प्राप्ति की इच्छा ही नहीं होती। अतः उसका अधिकारी विरागी ही है। यथा : जेहि लागि विरागी अति अनुरागी। जप और योग ही उसका साधन है। नाम निरूपण नाम जतन ते। सो प्रगटत जनु मोल रतन ते। इसलिए जप करते हैं। उससे थकते हैं तब ध्यान करते हैं। ध्यान से थककर फिर जप करते हैं। इस प्रकार साधन करते हैं।

तेइ दोउ बंधु प्रेम जनु जीते। गुर पद कमल पलोटत प्रीते॥
बार बार मुनि अग्या दीन्ही। रघुबर जाइ सयन तब कीन्ही॥३॥

अर्थ : वे ही दोनों भाई मानो प्रेम से जीते गये। प्रेम से गुरुजी का पांव दबा रहे हैं। बार बार मुनिजी ने आज्ञा दी तब रघुवर ने जाकर शयन किया।

व्याख्या : ये अजित हैं। किसी से जीते नहीं जाते। पर प्रेम इन्हें मानो जीत लेता है। यथा : भगति अवसहि बस करी। गुरुजी के प्रेम के इतने वश्य हो गये हैं कि प्रीति से पाँव दबा रहे हैं।

एकबार के कहने पर सेवा से उपरत नहीं होना चाहिए। जिसे सेवा में प्रेम है वह उसे शीघ्र छोड़ना नहीं चाहता और बड़े लोग अधिक सेवा लेना नहीं चाहते। अतः मुनिजी के बार बार आज्ञा देने पर राम जी ने जाकर शयन किया। लक्ष्मण जी ने शयन नहीं किया। इसलिए रघुबर जाइ सयन तब कीन्हीं कहते हैं।

चापत चरन लखनु उर लाए। सभय सप्रेम परम सचु पाए॥
पुनि पुनि प्रभु कह सोवहु ताता। पौढ़े धरि उर पद जलजाता॥४॥

अर्थ : लक्ष्मणजी हृदय में लगाये हुए भय प्रेम और परम सुख से पैर दाब रहे हैं। बार बार प्रभु ने कहा कि भैया! सोओ। तब चरणकमल को हृदय में धारण करके लेट गये।

व्याख्या : लक्ष्मणजी को अत्यन्त प्रेम है। इसलिए चरण को हृदय में लगाये हुए दाब रहे हैं। दबाने में बेमौके दब न जाय इसलिए भय भी है। दबाने से प्रभु को सुख भी मिलेगा इसलिए प्रेम है। रात बहुत बीती। फिर भी शीघ्रता नहीं। निद्रा का आनन्द भी इस सेवा के आनन्द के सामने कुछ भी नहीं है। अतः परम सचु पाए लिखा।

सोने में अतिकाल हो रहा है। इसलिए प्रभु की आज्ञा बार बार सोने के लिए हुई। तब जिस चरणकमल को हृदय में लगाकर दाब रहे थे उसी को हृदय में रखकर पौढ़ गये। अर्थात् लेटे, सोये नहीं। प्रभु के घर के बाहर निकलने पर

लक्ष्मणजी नहीं सोते। रक्षा के लिए सदा जागरूक हैं। यथा : कछुक दूरि सजि बान सरासन। जागन लगे बैठि बीरासन। तेहि पाछे लछिमन बीरासन। कटि निषंग कर बान सरासन। अतः प्रभु की आज्ञा मानकर लेट गये। पर निद्रा के वशीभूत नहीं हुए।

दो. उठे लखनु निसि बिगत सुनि, अरुनसिखा धुनि कान।
गुरु तें पहिलेहि जगतपति, जागे रामु सुजान ॥२२६॥

अर्थ : रात बीतने पर मुर्गे का शब्द कान से सुनकर लक्ष्मणजी उठे और गुरुजी से पहिले जगत्पति रामसुजान जागे।

व्याख्या : मुर्गा के पहली बार बोलते ही लक्ष्मणजी उठ पड़े। पहर रात रहते ही मुर्गा बोलता है। तभी से दिन माना जाता है। इसीलिए रात्रि का नाम त्रियामा : तीन पहरवाली है। पहर भर रात रहते ही जागने का विधान है। यथा : पहिले पहर भूप नित जागा। उसी समय रामजी जागे। लक्ष्मणजी पौढ़े थे अतः उनके लिए उठे लिखा। रामजी सोये थे अतः उनके लिए जागे लिखा। शास्त्र का विधान है कि शिष्य गुरु से पीछे सोये और पहिले उठे। तदनुसार प्रभु भी गुरुजी के पीछे सोये और पीछे उठे।

सकल सौच करि जाइ नहाए। नित्य निबाहि मुनिहि सिर नाए ॥
समय जानि गुर आयसु पाई। लेन प्रसून चले दोउ भाई ॥१॥

अर्थ : सब शौच करके जाकर स्नान किया। नित्य कर्म का निर्वाह करके मुनिजी को प्रणाम किया। समय जानकर और मुनिजी की आज्ञा पाकर दोनों भाई फूल लेने चले।

व्याख्या : शौच दो प्रकार का होता है। एक बाह्य और दूसरा आभ्यन्तर। बाह्य शौच मिट्टी और जलादि से किया जाता है और आभ्यन्तर शौच ध्यान धारणादि से होता है। सो दोनों प्रकार के शौच के बाद बाहर जाकर अवगाह स्नान किया। गुरु सेवा प्रधान है। अतः नित्य कर्म का निर्वाह संक्षेप से किया। नित्यकर्म का परित्याग नहीं होना चाहिए और गुरुजी की सेवा में उपस्थित हो गये। गुरुजी को प्रणाम किया। यथा : प्रातकाल उठि के रघुनाथा। मातुपिता गुरु नावहिं माथा।

समय जानकर कि इस समय यदि फूल लेने जावेंगे तो गुरुजी के पूजा समय तक फूल ला सकेंगे। गुरुजी से आज्ञा माँगी। मिलने पर फूल लेने दोनों भाई चले। गुरुजी की पूजा में फूल अधिक लगता है। अतः दोनों भाई चले। रामजी को अकेले नहीं छोड़ते। अतः दोनों भाई चले।

भूप बाग वर देखेउ जाई। जहँ वसंत रितु रही लोभाई ॥
लागे विटप मनोहर नाना। वरन वरन वर वेलि विताना ॥२॥

अर्थ : राजा के श्रेष्ठ बाग को जाकर देखा जहाँ वसन्त ऋतु लुभाकर रह गई थी। मन के हरण करनेवाले अनेक प्रकार के पेड़ लगे थे। उनपर रंग विरंगी वेलियाँ चढ़ी थी। जिनका चंदोआ बन गया है।

व्याख्या : महाराज जनक के अनेक बाग हैं। उनमें से सर्वश्रेष्ठ बाग को जाकर देखा। बाग की श्रेष्ठता कहते हैं कि उसे देखकर मनुष्य का लुभा जाना तो कोई बड़ी बात नहीं है। वहाँ आकर वसन्त ऋतु लुब्ध होकर ठहर गया। वसन्त ऋतु संसार से चला गया। ग्रीष्म और पावस बीत गया। अब शरद का अधिकार है। पर उस बाग में आज भी वसन्त है। वसंतरितु रही लोभाई कहने से द्योतित होता है कि वसन्तु ऋतु का समय नहीं है।

नाना प्रकार के विटपों की पंक्ति खड़ी है। उनपर नाना रंग की लताएँ चढ़ी हुई हैं। जिस रंग के विटप पर जिस रंग की लता खिलती है वैसी ही लताएँ चढ़ी हुई हैं और एक विटप की लता ऊपर ही ऊपर दूसरे विटप की लता से उलझ गई हैं। इस भाँति लताओं के चँदोये बन गये हैं।

नव पल्लव फल सुमन सुहाए। निज संपति सुररूख लजाए॥
चातक कोकिल कीर चकोरा। कूजत विहग नटत कल मोरा॥३॥

अर्थ : ये नये पत्ते फलफूल से शोभायमान थे। अपनी सम्पत्ति से कल्पवृक्ष को लज्जित कर रहे थे। चातक, कोकिल, शुक और चकोर पक्षी कूज रहे थे और मोर नाच रहा था।

व्याख्या : नव पल्लव फल और फूल साथ नहीं होते पर यहाँ हैं। भाव यह कि एक ओर नये कोपल लग रहे हैं। दूसरी ओर फूल लग रहे हैं। तीसरी ओर फल लग रहे हैं। वारहमासी वृक्ष हैं। वृक्ष की सम्पत्ति है। पल्लव, फूल और फल। सो वे ऐसे सरस हैं कि कल्पवृक्ष लज्जित हो जाय। अथवा कल्पवृक्ष रूखे मालूम पड़ते हैं। इसलिए कवि ने सुररूख पद रक्खा। यह वेद वाद का बाग है। यामिमां पुष्पितां वाचं प्रवदन्त्यविपश्चितः। वेदवादरताः पार्थ नान्यदस्तीतिवादिनः। पराप्रकृति और पुरुष का साक्षात्कार यहीं हुआ।

वेलिवितान से चातक को मेघमण्डल का भ्रम हुआ। अतः वह कूजने लगा। नवपल्लव से कोकिल को वसन्त का भ्रम हो रहा है। अतः वह भी कूज रही है। नवफल से शुक को ग्रीष्म का भ्रम हुआ। अतः वह भी बोलता है और नवसुमन से मालूम होता है कि चाँदनी छिटकी हुई है। अतः चकोर भी चहकता है। ये चारों तालधारी की भाँति कूज रहे हैं। मोर लतावितान को मेघमण्डल मानकर नृत्य कर रहा है। बाग में चारों ओर मङ्गल मचा हुआ है। यथा : अलिगन गावत नाचत मोरा। जनु सुराज मंगल चहुँ ओरा।

मध्य बाग सरु सोह सुहावा। मनि सोपान विचित्र बनावा॥
विमल सलिलु सरसिज बहुरंगा। जलखग कूजत गुंजत भृंगा॥४॥

अर्थ : बाग के बीचोबीच सुन्दर सरोवर था। जिसमें विचित्र मणियों की सीढ़ियाँ बनी थीं। उसका जल निर्मल था। अनेक रंग के कमल खिले थे। जलपक्षी कूज रहे थे और भौंरे गुञ्जार कर रहे थे।

व्याख्या : यदि बाग के मध्य में सरोवर न हुआ तो बाग की शोभा नहीं। सो इसके बीचोबीच सरोवर था। सलिल सुधासम मनि सोपाना कहकर जनकपुर के सभी सरोवरों का वर्णन कर चुके हैं। इस सरोवर की विशेषता यह है कि यहाँ मणिसोपान की कारीगरी विचित्र है। जल निर्मल है। यहाँ अनेक रंग के कमल इस एक ही सरोवर में खिले हुए हैं। जलपक्षी कूजते हैं और भौंरे गूँज रहे हैं। भाव यह कि उद्दीपन विभाव की पराकाष्ठा है।

दो. बागु तड़ागु बिलोकि प्रभु, हरखे बंधु समेत।
परम रम्य आरामु येहु, जो रामहि सुख देत ॥२२७॥

अर्थ : बाग और तालाब देखकर प्रभु भाई के सहित हर्षित हुए। यह बाग परम रम्य है जो रामजी को सुख दे रहा है।

व्याख्या : पुररम्यता राम जब देखी। हरखे बंधु समेत बिसेखी। रम्य नगर को देखकर ही विशेष हर्षित हुए थे। अब उससे भी अधिक हर्ष है। क्योंकि यह परम रम्य है। पर्वतों में कैलास परम रम्य है। यथा : परम रम्य गिरिवर कैलासू। धरणी में सेतुबंध की भूमि। यथा : परम रम्य उत्तम यह धरनी। और बागों में राजा जनक का बाग परम रम्य है। रम्यता से हर्ष और परम रम्यता से सुख होता है।

चहु दिसि चितइ पूछि मालीगन। लगे लेन दल फूल मुदित मन ॥
तेहि अवसर सीता तहँ आई। गिरिजा पूजन जननि पठाई ॥१॥

अर्थ : चारों ओर देखकर मालियों से पूछकर पत्ते और फूल प्रसन्न चित्त होकर लेने लगे। उसी अवसर सीताजी भी वहाँ आईं। गिरिजा पूजन के लिए माँ ने भेजा था।

व्याख्या : रामहि सुख देत अतः चहुँ दिसि चितय कहते हैं। तथा फुलवारी किस ओर है? इसे देखने के लिए चारों ओर देखा तथा बड़े बाग में मालियों का पता शीघ्र नहीं लगता अतः चारों ओर देखा। सिंह हैं चारों ओर देखकर ही कार्यारम्भ करते हैं। सिंह ठवनि इत उत चितव धीर वीर बल पुंज तथा अचरों पर भी दया है। अतः चारों ओर देखा। बिना पूछे फुलवारी से फूल नहीं लेना चाहिए। इससे मालियों से पहिले पूछ लिया।

दल पहिले लिया और फूल पीछे। दलों का दोना बनाया। यथा : सुमन समेत वाम कर दोना तथा दोना में पहिले बिल्वदल तुलसीदलादि रख लिया। तब पुष्प रक्खा। दल फूल बड़े सुन्दर और सरस हैं। इसलिए लेने में प्रसन्नता है।

जब रामजी फूल चुनने में लगे थे उसी अवसर में सीताजी उस बाग में आईं। दूसरे ही दिन विवाह था। क्योंकि धनुषयज्ञ ही वस्तुतः विवाहोत्सव था।

यथा : टूटत ही धनु भयउ विवाहू । विवाह के पहिले सौभाग्य के लिए गिरिजापूजन करना है । इसलिए माँ ने भेजा था । नित्य नहीं आतीं । पूर्वेद्युरस्ति महती कुलदेवियात्रा यस्यां बहिर्नववधूर्गिरिजामुपेयात् । भा० १०. ५२. ४२ ।

ब्याह के एकदिन पहिले कुलदेवी की यात्रा होती है । जिसमें वधू बाहर गिरिजा पूजन के लिए जाती हैं ।

संग सखी सब सुभग सयानीं । गावहिं गीत मनोहर वानीं ॥
सर समीप गिरिजा गृह सोहा । वरनि न जाइ देखि मनु मोहा ॥२॥

अर्थ : संग में सब सुन्दर सयानी सखियाँ थी । मनोहर वाणी से गीत गा रही थीं । सरोवर के सन्निकट गिरिजाजी का मन्दिर शोभायमान था । जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता । देखने में मन मोहित हो जाता था ।

व्याख्या : आज सब सखियाँ संग में थीं । सभी सुन्दर और सयानी हैं । विवाहोपलक्ष्य में देवीपूजन के समय जो गीत गाया जाता था वह गा रही थीं । बाग में प्रविष्ट होते ही गीत आरम्भ हुआ । अभी तक तो भौंरे ही गीत गाते थे अब तो मनोहर वाणी से सखियों का गीत प्रारम्भ हुआ । सरोवर के समीप ही गिरिजा का मन्दिर था । महात्माओं से पता चलता है उसका नाम चिन्तामणि मन्दिर था । जहाँ सरोवर की सीढियों में विचित्र मणियों का काम था । वहाँ के गिरिजाजी के मन्दिर का वर्णनातीत होना ही प्राप्त है ।

मज्जनु करि सर सखिन्ह समेता । गई मुदित मन गौरिनिकेता ॥
पूजा कीन्हि अधिक अनुरागा । निज अनुरूप सुभग वरु माँगा ॥३॥

अर्थ : सखियों के सहित सरोवर में स्नान करके प्रसन्न मन से गौरी के मन्दिर में गई । अधिक अनुराग से पूजा की और अपने अनुरूप सुन्दर वर माँगा ।

व्याख्या : सखियों के समेत पूजन करना है । अतः सखियों के समेत स्नान भी लिखते हैं । अथवा जिस देवता का पूजन करना है तत्सम्बन्धी तीर्थ-कूप, कुण्ड, सरोवरादि में स्नान का विधान है । गौरी का पूजन करना है इस उत्साह से मन प्रसन्न है । पूजन में अनुराग सब कुछ है । किं पुनः स्त्रियों के पूजन में तो मन्त्रादिक का प्रयोग न होने से अनुराग ही सब कमी को पूरा करता है । वर लेना है इसलिए अधिक अनुराग से पूजन किया । यह पूजन ही सौभाग्य के लिए था । अतः अपने अनुरूप सुन्दर वर के लिए प्रार्थना की । अति अनुराग का प्रत्यक्ष फल होता है । यथा : भगतिसहित मुनि आहुति दीन्हे । प्रगटे अगिन चरू कर लीन्हे ।

एक सखी सिय संगु बिहाई । गई रही देखन फुलवाई ॥
तेहि दोउ बंधु विलोके जाई । प्रेम विवस सीता पहिं आई ॥४॥

अर्थ : एक सखी सीता का संग छोड़कर फुलवाई देखने गई थी । उसने जाकर दोनों भाइयों को देखा और प्रेम के विवश होकर सीताजी के पास आई ।

व्याख्या : सीताजी पूजन में लगीं। एक सखी के मनमें यह बात आई कि तब तक फुलवारी देख आऊँ सो वह फुलवारी देखने चली गई। उस स्थान से फुलवारी कुछ हटकर थी। फुलवारी में ही दोनों भाई फूल चुन रहे थे। बाग इतना बड़ा था कि सीताजी के आने और मंगल गान का कुछ भी पता दोनों भाइयों को न लगा। इस सखी ने वहाँ जाकर दोनों भाइयों को देखा। दोनों भाइयों ने इसे नहीं देखा फूल चुनने में लगे थे। रूप देखते ही प्रेम के विवश हो गई। इस छवि को सीताजी को भी दिखलाना चाहिए। इसलिए उस प्रेममग्नावस्था में ही सीताजी के पास आई। नारदजी का वचन सत्य होना था। इसलिए यह घटना हुई।

दो. तासु दसा देखी सखिन्ह, पुलक गात जलु नयन।
कहु कारनु निज हरष कर, पूछहिं सब मृदु बयन ॥२२८॥

अर्थ : उसकी दशा सखियों ने देखी कि शरीर में पुलक हैं और आँखों में आँसू है। सब मृदुवचन से पूछने लगीं कि अपने हर्ष का कारण बतला।

व्याख्या : सीताजी ने उसकी अवस्था नहीं देखी। वर माँगने में दत्तचित्त थीं। सखियों ने देखा। प्रेमविवश की दशा कहते हैं। पुलक गात जल नयन। यह सञ्चारी भाव है। यह दशा भयादि में भी होती हैं। पर सखियाँ सयानी हैं। लख लिया कि यह सञ्चारी भाव हर्ष का है। अतः हर्ष का कारण पूछती हैं। सबके पूछने का प्रयोजन सीताजी का ध्यान आकर्षण करने के लिए है। तथा अति उत्कण्ठा होने से है। प्रेम से प्रेरित हैं। अतः मृदुवाणी से पूछती हैं।

देखन बागु कुँअर दोउ आए। बय किसोर सब भाँति सुहाए॥
स्याम गौर किमि कहउ बखानी। गिरा अनयन नयन बिनु बानी ॥१॥

अर्थ : बाग देखने दो राजकुमार आये हैं। अभी किशोरावस्था है। सब भाँति सुन्दर हैं। साँवरे गोरे को कैसे बखान कर कहूँ। वाणी को आँख नहीं है और आँख को वाणी नहीं है।

व्याख्या : फूल के लिए आना नहीं कहती। राजकुमार हैं उन्हें फूल का क्या घाटा है। वे बाग देखने आये हैं। मनमें आया फूल भी तोड़ने लगे। अवस्था थोड़ी है। जवानी आया चाहती है। इसलिए वय किशोर कहती हैं। यथा : आषोडशाच्च कैशोरं, यौवनं स्यात्ततः परम्। केवल अवस्था ही नहीं सभी भाँति से मनोहर हैं। एक श्याम हैं और दूसरे गोरे हैं। मुझसे तो उनका बखान नहीं हो सकता। आँखों ने उन्हें देखा है। वे ही जानती हैं। पर उन्हें वाणी नहीं अतः नहीं कह सकतीं। क्योंकि कहनेवाली वाणी है। उसे आँखें नहीं, उसने देखा नहीं वह कैसे कहे। भाव यह कि सखी प्रेम से शिथिल है। उसकी ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय का सम्बन्ध भी शिथिल हो गया है। उसे स्पष्ट अनुभव हो रहा है कि आँखों ने देखा है। उनमें यदि प्रकाश करने की शक्ति होती तो सम्भव है कि उस शोभा को व्यक्त कर सकतीं। वाणी को साक्षात्कार की शक्ति नहीं। वह कुछ भी उस शोभा को नहीं कह सकती।

इस भाँति दोनों राजकुमारों की अलौकिक छवि को अवर्णनीय बतलाती है। यहाँ काव्यलिङ्ग अलङ्कार है। यथा : काव्यलिङ्ग जब युक्ति सौं अर्थ समर्थ न होय।

सुनि हरषीं सब सखी सयानी। सिय हिय अति उतकंठा जानी ॥
एक कहइ नृपसुत तेइ आली। सुने जे मुनि संग आए काली ॥२॥

अर्थ : यह सुनकर सब सयानी सखी प्रसन्न हो उठीं। जाना कि सीताजी के हृदय में अत्यन्त उत्कण्ठा है। एक ने कहा कि हे आली ! ये वे ही राजकुमार हैं जिनके विषय में सुना है कि मुनि के संग कल आये हैं।

व्याख्या : सयानी सखी हैं। तुरन्त समझ गईं कि कौन हैं। और यह भी लख लिया कि सीताजी के हृदय में अत्यन्त उत्कण्ठा हो गई है। अतः सब हर्षित हुईं। यदि सीताजी के हृदय में उत्कण्ठा उत्पन्न न होती तो देखने का योग न मिलता। प्रशंसा राजकुमारों के रूप की सुन चुकी हैं। पर राजमहल की रहनेवाली हैं अतः देख न सकीं। हृदय में उत्कण्ठा कल से ही देखने की है। अब सीताजी में अत्यन्त उत्कण्ठा लखकर कार्यसिद्धि की आशा से प्रसन्न हो उठीं। सीताजी के हृदय में अत्यन्त उत्कण्ठा होने का भी कारण है। इधर निज अनुरूप सुभग वर गिरिजाजी से माँग रही हैं। उधर अलौकिक सौन्दर्य वाले राजकुमार के आगमन का समाचार मिल रहा है। अतः यह घटनासंयोग निष्कारण नहीं है।

उस उत्कण्ठा को जानकर एक सखी बोल उठी कि ऐसे सुन्दर तो वे ही सुने जाते हैं जिनका कल आगमन मुनि के सङ्ग हुआ है। कल से ही नगर में उनके रूप का शोर है। उनके नगर देखने का समाचार सुनकर सारा नगर उलट पड़ा। यथा : देखन नगर भूपसुत आए। समाचार पुर बासिन्ह पाए। धाए धाम काम सब त्यागी। मनहु रंक निधि लूटन लागी।

जिन्ह निज रूप मोहनी डारी। कीन्हें स्वबस नगर नर नारी ॥
बरनत छवि जहँ तहँ सब लोगू। अवसि देखिअहिं देखन जोगू ॥३॥

अर्थ : जिन्होंने अपने रूप की मोहनी डालकर सब नर नारियों को अपने वश में कर लिया है। सब लोग जहाँ तहाँ छवि का वर्णन कर रहे हैं। देखने योग्य को अवश्य देखना चाहिए।

व्याख्या : वह सखी कहती है कि मेरी सखी विचारी का कोई दोष नहीं। उनके रूप में ही कुछ ऐसी मोहनी शक्ति है कि सब नरनारी उनके वश में हो गये हैं। यह विचारी मोहित हो गई तो क्या आश्चर्य है ? सांसारिक पुरुषों को विषय से खींचकर अपनी ओर लाने के लिए ही प्रभु ऐसा सुन्दर स्वरूप धारण करते हैं। सब लोग ऐसे उनके वश हो गये हैं कि जनकपुर में उनकी छवि के वर्णन के अतिरिक्त कोई चरचा ही नहीं है। लोकोत्तर पदार्थ दर्शनीय होता है। अतः उनकी लोकोत्तर छवि दर्शनीय है। जिसके दर्शन का माहात्म्य है। जिसे सब देखना चाहते हैं। उसके दर्शन में दोष की सम्भावना को स्थान नहीं है। अतः कहती हैं अवसि देखिये।

तासु बचन अति सियहि सोहाने। दरस लागि लोचन अकुलाने ॥
चली अग्र करि प्रिय सखि सोई। प्रीति पुरातन लखै न कोई ॥४॥

अर्थ : उसका वचन सीताजी को बहुत अच्छा लगा। दर्शन के लिए आँखें आकुल हो उठीं। उसी प्रिय सखी को आगे करके चलीं। पुरातन प्रीति को कोई नहीं लख रहा है।

व्याख्या : उस सखी के वचन सभी को अच्छे लगे। परन्तु सीताजी को अत्यन्त भले मालूम हुए। क्योंकि सीताजी को अत्यन्त उत्कण्ठा थी। सखी का निर्णयात्मक वचन सुनकर दर्शन के लिए आकुलता बढ़ी। इसलिए तुरन्त चल पड़ीं। उस प्रिय सखी को जो प्रिय समाचार लायी थी आगे कर लिया क्योंकि उसी का जाना हुआ है कि वे राजकुमार कहाँ हैं। इतनी आकुलता का कारण पुरातन प्रीति है।

दो. सुमिरि सीय नारद वचन, उपजी प्रीति पुनीत।
चकित विलोकति सकल दिसि, जनु सिसु मृगी सभीत ॥२२९॥

अर्थ : नारदजी के वचन का स्मरण करके पवित्र प्रीति उत्पन्न हुई। चकित होकर इस भाँति चारों ओर देखने लगीं। जैसे डरी हुई मृगी की बच्ची चारों ओर देखे।

व्याख्या : नारदजी ने पहिले ही कह रक्खा था कि जो तुम्हारा पति होगा। उसका प्रथम दर्शन तुम्हें गिरजा बाग में होगा। फलाभिसन्धिवर्जित प्रीति उपजी इसलिए पुनीत कहते हैं। फुलवारी तक पहुँच गईं। परन्तु कोई दिखाई नहीं पड़ा। अतः चकित होकर चारों ओर देखती हैं। चकित होकर चारों ओर देखने में जो नेत्र चञ्चल हुए उस चितवन की उपमा सभीत शिशुमृगी के चितवन से देते हैं। जो खटका पाकर सभीत दृष्टि से देखती है कि किधर से शब्द सुनाई पड़ा। इस राम जानकी मिलनप्रसङ्ग में आरम्भ से ही जो प्रक्रिया दोनों ओर से हो रही हैं। उसका कुछ मिलान भी पाठकों के विनोदार्थ देना अनुचित न होगा।

रामजी		सीताजी
सकल सौचकरि जाइ नहाए	१	मज्जनकरि सर
नित्य निबाहि मुनिहि सिरनाए	२	गई मुदित मन गौरिनिकेता
समय जानि	३	तेहि अवसर
गुरु आयसु पाई	४	जननि पठाई
लेन प्रसून चले	५	गिरिजा पूजन आई
संग भाई	६	संग सखी
लगे लेन दलफूल मुदित मन	७	गई मुदित मन गौरि निकेता
चहुदिसि चितय	८	चकित विलोकति सकलदिसि

कंकन किंकिनि नूपुर धुनि सुनि । कहत लखन सन रामु हृदय गुनि ॥
मानहुँ मदन दुंदुभी दीन्हीं । मनसा बिस्व बिजय कहँ कीन्ही ॥१॥

अर्थ : कङ्कण, करधनी[1] और नूपुर की झनकार सुनकर लक्ष्मणजी से रामजी ने हृदय में विचार कर कहा । मानों कामदेव ने नगाड़ा बजाया है । विश्वविजय की इच्छा की है ।

व्याख्या : लगे लेन दलफूल मुदितमन से प्रसङ्ग छूटा है । सो ऐसे दत्तचित्त हैं कि सखी आकर उन्हें देखकर लौट गई । परन्तु उन्हें पता नहीं है । एकाएक किंकिणि, कंकण और नूपुर की झनकार ऐसी कान में पड़ी कि अभूतपूर्व भाव का उदय हुआ । यद्यपि कंकण किंकिणि नूपुर ध्वनि के बीच में अवतार ही हुआ है । पर इस ध्वनि में विशेषता है । विचार करते हैं कि गति की रमणीयता से भूषणों की ध्वनि ऐसी सुहावनी है : नूपुर मधुर मुखर कवि बरनि । भूषण की ध्वनि मधुर होती है । पर इसका उद्दीपक प्रभाव ऐसा बलवान् है कि दुन्दुभि के घोर शब्द से उपमित करने योग्य है । मानो विश्वविजय की इच्छा करके कामदेव ने दुन्दुभिघोष किया है । नगर देखने के समय काम का पराजय हुआ है । यथा : सखि इन कोटिकाम छबि जीती । उस समय धनुर्धर भी थे । अतः पुष्पधन्वाने फुलवारी में फूल चुनते देखकर उपयुक्त समय जानकर विश्वविजय के लिए डंका दिया क्योंकि इनके विजय से ही विश्वविजय है । यथा : मोहि अतिसय प्रतीति मन केरी । जेहि सपनेहुँ परनारि न हेरी । सखा रूप में लक्ष्मणजी साथ हैं । उन्हीं से रामजी अपना मनोभाव व्यक्त कर रहे हैं । लक्ष्मणजी चुप हैं ।

अस कहि फिरि[2] चितए तेहि ओरा । सिय मुख ससि भए नयन चकोरा ॥
भए बिलोचन चारु अचंचल । मनहुँ सकुचि निमि तजे दिगंचल ॥२॥

अर्थ : ऐसा कहकर घूमकर उस ओर देखा तो सीताजी का मुख चन्द्र हुआ और रामजी के नेत्र चकोर हो गये । सुन्दर नेत्र स्थिर हो गये । मानो निमिने सङ्कोच से पलकें छोड़ दीं ।

व्याख्या : जिधर से ध्वनि आती थी उधर घूमकर देखा । रामजी को काम से वैर है । यथा : नील तामरस स्याम काम अरि । सो शत्रु से सावधान होने के लिए उधर लक्ष्य किया । पर वहाँ बात ही दूसरी हो गई । सीताजी जो दिखाई पड़ीं तो उनके मुखचन्द्र के लिए रामजी के नेत्र चकोर हो गये । यहाँ चन्द्रचकोर कहकर यह भी दिखलाया कि चकोर चन्द्र को देखते हैं । चन्द्र चकोर को नहीं देखता । भाव यह कि ये सीताजी को देख रहे हैं । सीताजी इन्हें नहीं देख रही हैं ।

---

१. पूर्व में अब भी ऐसी करधनी बनती है जिसमें शब्द हो ।
२. निदर्शन : द्वितीय ।

जिस भाँति सीताजी चकित विलोकति सकलदिसि थीं अतः उनके नेत्र चञ्चल थे, उसी भाँति इनके भी नेत्र घूमकर देखने में चञ्चल हो उठे थे। सो सिय मुखशशि के देखने में ऐसे स्थिर हो गये कि पलक पड़ती ही नहीं। निमि महाराज जनक के पूर्वज थे। वे ही पलक के अधिष्ठात्री देवता हैं। अब यहाँ पलक न पडने का कारण कहते हुए ग्रन्थकार उत्प्रेक्षा करते हैं कि मानो पलक के अनुग्राहक देवता निमि ने सङ्कोच से पलक का परित्याग ही कर दिया। फिर पलक पड़े कैसे ? जानकीजी के पूर्वज होने से उन्हें ऐसे अवसर में सङ्कोच होना प्राप्त है।

देखि सीय सोभा सुखु पावा। हृदय [1]सराहत वचनु न आवा॥
जनु विरंचि सब निज निपुनाई। बिरचि विस्व कहँ प्रगटि देखाई॥३॥

अर्थ : सीताजी की शोभा को देखकर सुख मिला, हृदय में प्रशंसा करते हैं। पर मुख से वचन न निकला मानो ब्रह्मदेव ने अपनी सारी पंडिताई को संसार में रचकर प्रकट करके दिखला दिया है।

व्याख्या : पहिले कह आये हैं : परमरम्य आराम यह जो रामहिं सुख देत। बाग ने सुख तो दिया पर इन्होंने लिया नहीं क्योंकि बिना आलम्बन के उद्दीपन सुखदायक नहीं होता। अब सीताजी के रूप में आलम्बन की प्राप्ति हुई अतः कहते हैं : देखि सीय शोभा सुख पावा। अब अनुभाव कहते हैं कि : मन से प्रशंसा करते हैं। लक्ष्मणजी से कहना चाहते हैं, पर कह नहीं सकते। चतुष्पाद विभूति में से एक पाद ही प्रकट है और तीन पाद अप्रकट है। सो मानो ब्रह्मदेव ने सीताजी को रचकर उनमें चतुष्पाद विभूति को प्रकट करके दिखला दिया। यथा : त्रिपादूर्ध्वमुदैत्पुरुष पादोस्येहा भवत्पुनः।

सुंदरता कहुँ सुंदर करई। छवि गृह दीप सिखा जनु वरई॥
सब उपमा कवि रहे जुठारी। केहि पटतरौं विदेहकुमारी॥४॥

अर्थ : सुन्दरता को भी सुन्दर कर रही है। मानो छवि गृह में दीप की शिखा जल रही है। सारी उपमाओं को कवियों ने जूठी कर दिया है और यह शोभा अनूठी है। विदेहकुमारी की उपमा किससे दूँ।

व्याख्या : जितनी सुन्दरताएँ हैं वे इस सुन्दरता की उपजीवी हैं। यथा : जासु अंस उपजहिं गुनखानी। अगनित लच्छि उमा ब्रह्मानी। अर्थात् इस सुन्दरता से ही सब सुन्दरियों ने सुन्दरता पाई है। यह कोई दिव्य तेज है। इसलिए दिव्य-शिखा कहते हैं। जिसमें न तेल है न बत्ती, न धूआँ है और यह सुन्दरता को और भी सुन्दर कर रहा है। जैसे छविगृह की उसी समय सच्ची शोभा होती है जब उसमें दीपशिखा जले। सखियों के मध्य में इनकी शोभा इस प्रकार है जैसे छविगृह

---

१. 'सराहत' शब्द श्लिष्ट है इसका अर्थ यह भी है कि कामशर से ऐसे घायल हो गये हैं कि चाहने पर भी बोल नहीं सकते।

में दीपशिखा जले। दीपशिखा स्वयं प्रकाशमान है और घर को भी प्रकाशित करता है। इसी भाँति सीताजी की दिव्य शोभा से सखीजन भी शोभायमान हैं। यथा : छविगन मध्य महा छवि जैसी।

वर्णन न हो सके तो उपमा द्वारा वर्णन करना चाहिए। इसपर कहते हैं कि कवियों ने सब उपमाएँ तो प्राकृत नारियों के अङ्गों पर दे डाली हैं। अतः सब उपमाएँ जूठी हैं और यह शोभा अनूठी है। अतः श्रीरामजी कहते हैं कि विदेहकुमारी की उपमा किससे दूँ।

दो. सिय सोभा हियँ बरनि प्रभु, आपनि दसा बिचारि।
बोले सुचि मन अनुज सन, बचन समय अनुहारि ॥२३०॥

अर्थ : मनमें सीताजी की शोभा वर्णन करके और अपनी दशा का विचार करके, पवित्र मनसे समयानुसार वचन लक्ष्मणजी से बोले।

व्याख्या : हृदय सराहत वचन न आवा से स्वगत का उपक्रम करके और सिय सोभा हिय बरनि प्रभु से उपसंहार किया। प्रभु हैं : अपनी दशा का विचार करते हैं कि ऐसी स्तब्धता हो गई कि मैं बोल न सका। विचार से ही स्तब्धता गई। शुचिमन देहलीदीपन्याय से दोनों ओर लगेगा। शुचि मन हैं इसलिए अनुज से कहा। अनुज भी शुचिमन हैं उधर देखते ही नहीं। रामजी शुचि मन हैं इसलिए इन्हें भी प्रीति पुनीत उपजी। काम से संग्राम उपस्थित है। भाई की सहायता चाहते हैं अतः बोले।

तात जनकतनया यह सोई। धनुषयज्ञ जेहि कारन होई॥
पूजन गौरि सखीं लै आई। करत प्रकासु फिरहिं फुलवाई ॥१॥

अर्थ : हे भैया ! यह वही जनक की बेटी है जिसके लिए धनुषयज्ञ हो रहा है। इसे सखियाँ गौरीजी के पूजन के लिए लाई हैं। फुलवारी में प्रकाश करती फिरती है।

व्याख्या : उधर सखी सखी से कहती हैं। एक कहै नृपसुत सोइ आली। सुने जो मुनि संग आए काली। यहाँ सब सयाने इकट्ठे हैं। अनुमान से ही पहिचान हो गयी। इधर प्रभु कहते हैं। तात जनकतनया यह सोई। धनुषयज्ञ जेहि कारन होई।' जनकजी को एकाधिक कन्याएँ हैं। पर यह तो वही है जिसके लिए धनुषयज्ञ हो रहा है। ऐसे अनुमान का आधार कहते हैं : पूजन गौरि सखी लै आई। कल धनुषयज्ञ है आज गौरी पूजन के लिए सखी ले आई हैं। गौरी का मन्दिर देख चुके हैं इससे अनुमान करते हैं। व्याह के पहिले गौरीपूजन सौभाग्य के लिए करने की विधि है। अतः यह सिद्ध हुआ कि इसी के लिए धनुषयज्ञ हो रहा है। यहाँ बाग में बरन बरन बर बेलि बितान के कारण अन्धेरा हो रहा है। सो वह प्रकाश करती हुई फुलवारी में घूम रही है। सियमुखशशि है तो प्रकाश भी चाहिए : छविगृह दीपसिखा जनु बरई। तमाम फुलवारी प्रकाशित हो उठी।

जासु बिलोकि अलौकिक सोभा । सहज पुनीत मोर मनु छोभा ॥
सो सब कारनु जानि बिधाता । फरकहि सुभद अंग सुनु भ्राता ॥२॥

अर्थ : जिसकी अलौकिक शोभा को देखकर मेरा मन जो स्वभाव से ही पवित्र है क्षुब्ध हो उठा है। वह सब कारण ब्रह्मदेव जानें पर भैया सुनो ! मंगलप्रद अंग मेरे फड़क रहे हैं।

व्याख्या : मेरा मन स्वभाव से ही पवित्र है क्षोभ जानता ही नहीं। लौकिक शोभा से इसमें क्षोभ हो नहीं सकता। यह अपूर्व बात हुई। इस अलौकिक शोभा से मेरे मन में क्षोभ हुआ। परन्तु अलौकिक शोभा से भी मेरे मन में क्षोभ नहीं होना चाहिए था। कोई विशेष कारण होना चाहिए : राम पुनीत विषय रसरूखे। उस कारण को ब्रह्मदेव ही जानें। यथा : कठिन कर्म गति जान विधाता। उसी की प्रेरणा से मेरे शुभ देनेवाले अङ्ग फड़क रहे हैं और सगुन प्रतीति भेंट प्रियकेरी : शुभद अङ्ग फड़कने का फल है कि इष्टवस्तु का लाभ हो। लक्ष्मणजी कुछ नहीं बोल रहे हैं। अतः कहते हैं : सुनु भ्राता। क्या जाने यह सुन रहा है कि किसी दूसरी ओर मन लगाया है।

रघुबंसिन्ह कर सहज सुभाऊ। मनु कुपंथ पगु धरें न काऊ ॥
मोहि अतिसय प्रतीति मन केरी। जेहिं सपनेहुँ परनारि न हेरी ॥३॥

अर्थ : रघुवंशियों का यह अकृत्रिम स्वभाव है कि वे कुपंथ पर मन और पैर नहीं रखते और मुझे तो अपने मन पर अत्यन्त विश्वास है कि वह स्वप्न में भी पराई स्त्री को नहीं देखता।

व्याख्या : यदि इससे विवाह न होना होता तो मेरे मन में क्षोभ न होता। पर-स्त्री पर मनःक्षोभ वंश स्वभाव के विरुद्ध है। रघुवंश मात्र का सहज स्वभाव है, सिखाने पढ़ाने से नहीं। वे न कुपंथ में मन दें, न पैर रक्खें। वंशस्वभावानुसार भी मेरे मन में क्षोभ नहीं होना चाहिए था। मैंने तो अपने मन की परीक्षा कर ली है। विश्वामित्रजी के आगमन के पूर्व विवाहबन्धन में डालने के लिए बहुत सी कन्याएँ मेरे पास[२] भेजी गईं। पर मेरे मन ने उन्हें देखा भी नहीं। वासना न होने से स्वप्न भी नहीं होता। अतः यह बात भी नहीं कि सूक्ष्म वासना रही हो। जिसका मुझे पता न हो।

जिन्ह कै लहहिं न रिपु रन पीठी। नहिं पावहि परतिय मनु डीठी ॥
मंगल लहहिं न जिन्ह कै नाहीं। ते नरबर थोरे जग माहीं ॥४॥

---

१. सतां हि सन्देहपदेषु वस्तुषु प्रमाणमन्तःकरणप्रवृत्तयः ।
सन्देहवाली बातों में भले लोगों के अन्तःकरण का झुकाव ही प्रमाण है।

२. योगवासिष्ठ देखिये।

अर्थ : रण में शत्रु जिनकी पीठ नहीं पाते और पर स्त्री जिनके मन और दृष्टि को नहीं पाती मंगन जिनसे 'नहीं' नहीं पाते। ऐसे नरश्रेष्ठ संसार में थोड़े हैं।

व्याख्या : जिनकी पीठ शत्रु नहीं पाते। मर जावेंगे पर पीठ न दिखावेंगे : वे युद्धवीर हैं। उन्हीं की गति परिव्राट् योगयुक्त की सी होती है। वे सूर्यमण्डल का भेद करते हैं। द्वाविमौ पुरुषौ लोके सूर्यमण्डलभेदिनौ। परिव्राट् योगयुक्तश्च रणे चाभिमुखे हतः। जिनके मन और दृष्टि को पराई स्त्री नहीं पाती। पराई स्त्री चाहें तो भी असमर्थ हैं : वे धर्मवीर हैं : जिनसे मंगन निषेधात्मक उत्तर नहीं पाते। वे माँगने पर अपने को भी दे सकते हैं : वे दानवीर हैं। ऐसे वीरतात्रय से युक्त पुरुष नरश्रेष्ठ संसार में थोड़े हैं। भाव यह कि मैं उन थोड़े लोगों में से हूँ जिन्होंने भय, काम और लोभ पर विजय प्राप्त की है।

दो. करत बतकही अनुज सन, मन सिय रूप लोभान।
मुख सरोज मकरंद छवि, करै मधुप इव पान ॥२३१॥

अर्थ : बात तो छोटे भाई से कर रहे थे। पर मन सीताजी के रूप पर लुब्ध था। मुखकमल की छवि मकरन्द है। उस मकरन्द को मन भौंरे की भाँति पान कर रहा था।

व्याख्या : बोले सुचिमन अनुजसन से उपक्रम और करत बतकही अनुजसन से उपसंहार। इतना विचार करने पर भी क्षोभ न हटा। मनमधुप छविमकरन्द पान कर रहा है और गुनगुनाता जाता है। मुखसरोज के छवि मकरन्द को भौंरे की भाँति मन पान करने लगा। मुखशशि के लिए नयन[1] चकोर हुए और मुखसरोज छवि के लिए मन मधुकर हुआ। भाव यह कि आँख और मन दोनों बँध गये। जिससे गहनों की शोभा हो उसे रूप कहते हैं और अङ्गों के यथोचित सन्निवेश को सुन्दरता कहते हैं। यहाँ उक्त विषया उत्प्रेक्षा है।

चितवति चकित चहूँ दिसि सीता। कहँ गये नृप किसोर मन चिंता ॥
जहँ बिलोकि मृग सावक नैनी। जनु तहँ बरिस कमल सित श्रेनी ॥१॥

अर्थ : सीता चारों ओर चकित होकर देखती हैं। मन में चिन्ता है कि नृपकिशोर कहाँ गये? वह मृग के बच्चे की सी आँखवाली जिस ओर देखती है उस ओर मानो श्वेतकमल की पंक्ति बरस पड़ती है।

व्याख्या : दोनों : रामजी और सीताजी की ओर घटनाएँ साथ साथ होती हैं। परन्तु कवि तो एक साथ नहीं लिख सकते। अतः एक ओर का वृत्तान्त थोड़ा कहकर फिर दूसरी ओर का वृत्तान्त कहने लगते हैं। चकित विलोकति सकलदिसि से प्रसङ्ग छोड़ा था। अब वहीं से प्रसङ्ग उठाते हैं। सीताजी चकित होकर देख रही हैं। कवि को अवसर मिला कि इस बीच में रामजी की ओर का वृत्तान्त कहें।

---

१. जैसे चकोरी चारु बैठी निज निज डार चंद की किरन पीवैं निमिषैं न लावतीं।

तब रामजी की ओर का वृत्तान्त आरम्भ किया। जब यहाँ तक कथा पहुँची कि सीताजी के मुखसरोज के छविमकरन्द को रामजी का मनभ्रमर पान करने लगा तब कवि को सीताजी ओर के वृत्तान्त कहने का अवसर मिला। अब जहाँ से छोड़ा था वहीं से कथा प्रारम्भ करते हैं : सीता चकित होकर देख रही हैं। कारण कहते हैं कि नृपकिशोर कहाँ गये। यही मन में चिन्ता है। इतनी देर में बाग के बाहर जा नहीं सकते तब गये कहाँ ?

जनु सिसुमृगी सभीत का अनुवाद करते हैं : मृग सावक नयनी। अब उस चितवन की शोभा कहते हैं कि जिधर देखती हैं उधर श्वेतकमलों की वर्षा हो जाती है। पुष्पधन्वा ने पहिले डंका दिया था। अब बाणवर्षा कर रहा है। क्योंकि काम का परम बल नारी है : एहि के एक परम बल नारी। यथा : धनुः पौष्पं मौर्वी मधुकरमयी चञ्चलदृशां दृशां कोणो बाणः सकलभुवनं व्याकुलयति। काम का धनुष फूल का है। प्रत्यञ्चा भ्रमरमयी है और चञ्चल नेत्रवालियों का कटाक्ष ही बाण हैं। जिनसे तमाम संसार को व्याकुल करता है। जानकीमङ्गल में ग्रन्थकार कहते हैं : रूपरासि जेहि ओर सुभाय निहारइ। नील कमल सरश्रेनि मयन जनु डारइ। सो यहाँ श्वेतकमल कहते हैं। क्योंकि स्नान करने के समय कज्जल धुल गया है। इन्हीं शरों से रामजी आहत हैं। हृदय सराहत वचन न आवा से यह भाव भी निकलता है।

लता ओट तब सखिन्ह लखाए। स्यामल गौर किसोर सुहाए ॥
देखि रूप लोचन ललचाने। हरषे जनु निज निधि पहिचाने ॥२॥

अर्थ : तब सखियों ने लता की ओट से सुन्दर श्यामल गौर किशोरों को लखाया। रूप देखकर आँखें ललचा उठीं और ऐसी प्रसन्न हुईं जैसी अपने खजाने को पहिचान लेने से प्रसन्नता होती है।

व्याख्या : सखियों ने देख लिया। अति उत्कण्ठा होने से श्री सीताजी ने न देखा। सखियों ने लख लिया कि उन्हीं को ढूँढ़ती हैं। अतः लता ओट में लखाया। खाली हाथ वीर बाण चलते देखकर ओट पकड़ते हैं। अतः काम के बाण चलते देखकर मानो लता ओट पकड़ लिया है : स्याम गौर किमि कहौं बखानी। बय किसोर सब भाँति सुहाए : सुना था सो आँखों देखा।

सुनकर दरस हेतु लोचन अकुलाने और देखकर देखि रूप लोचन ललचाने। ललचाने का भाव यह कि और भी मनोयोग से देखने के लिए ललचाये। श्रीरामजी दूसरे लोगों को भी निधि रूप ही दिखाई पड़ते थे। पर वे उनकी निधि नहीं। अतः वे लूटने चले थे। यथा : धाए धाम काम सब त्यागी। मनहु रंक निधि लूटन लागी। पर निज निधि को सीताजी ने पहिचाना। इसीलिए कहा था : प्रीति पुरातन लखै न कोई। आँखें प्रसन्न हो उठीं कि यही तो हमारी निधि है।

थके नयन रघुपति छबि देखे। पलकन्हिहू परिहरीं निमेखे ॥
अधिक सनेह देह भइ भोरी। सरद ससिहि जनु चितव चकोरी ॥३॥

अर्थ : रघुपति की छवि देखकर आँखें थक गईं और पलक ने भी निमेष को छोड़ दिया। अधिक स्नेह से देह भोरी हो गई। मानो शरद ऋतु के चन्द्रमा को चकोरी देखती हो।

व्याख्या : छवि का भार देर तक नेत्र न सँभाल सके। इसलिए थक गये। रघुपति से रामजी का ग्रहण है। वहाँ मनहु सकुचि निमि तजेउ दृगंचल और यहाँ पलकन्हहू परिहरीं निमेखें थका हुआ हिलता डोलता नहीं। अतः पलकों ने भी हिलना डोलना छोड़ दिया।

वहाँ हृदय सराहत वचन न आवा। यहाँ अधिक सनेह देह भई भोरी। वहाँ सिय मुखससि भे नयन चकोरा। यहाँ सरद ससिहि जिमि चितव चकोरी। इधर विकलता अधिक है। प्रमाण देते हैं। शरद शशि के दर्शन में चकोरी की देह भोरी हो जाती है। देह की सुधि नहीं रहती। परन्तु रामजी जब सीताजी को देखते हैं तब शरद ऋतु का शशि न कहकर केवल शशि शब्द का प्रयोग करते हैं। यथा : सियमुख ससि भये नयन चकोरा। अतः वहाँ देह का भोरा होना भी नहीं कहते।

लोचन[1] मग रामहिं उर आनीं। दीन्हें पलक कपाट सयानीं॥
जब सिय सखिन प्रेमवस जानी। कहि न सकहिं कछु मन सकुचानी॥४॥

अर्थ : आँखों के रास्ते से रामजी को हृदय में लाकर सयानी ने पलक रूपी कपाट बन्द कर लिये। जब सीताजी को सखियों ने प्रेमवश जाना तो कुछ कह नहीं सकीं। मन ही मन संकुचित हुईं।

व्याख्या : उधर लोचनमग से छविमकरन्द का पान हो रहा था। इधर लोचनमग से स्वयं रामजी को ही हृदय में लाकर पलककपाट बन्द कर लिया। प्रभु प्रेम के बन्दी हो गये। काम का विश्वविजय पूरा हो गया। यहाँ विहृत हाव है। संयोग समय लज्जादिक से अभिलाष की असन्तुष्टि को विहृतहाव कहते हैं।

जब भक्त प्रेमवश होता है तभी भगवान् उसके बन्दी होते हैं। अवसि देखिये देखन जोगू : दूसरी बात है और प्रेमवश हो जाना दूसरी बात है। सखी हैं उन्हें प्रेमविवश देखकर बोलने का अधिकार है। पर आँखें मूँदे हैं, क्या कहें, कहने में सङ्कोच है।

दो. लताभवन तें प्रगट भे, तेहि अवसर दोउ भाइ।
निकसे जनु जुग विमल विधु, जलद पटल विलगाइ॥२३२॥

अर्थ : उसी समय दोनों भाई लता भवन से प्रकट हुए। मानों दो चन्द्रमा बादलों के परदे को अलग करके निकल पड़े हों।

व्याख्या : यह रामजी का स्वभाव है। पहिले ओट में रहते हैं। अतिशय प्रेम देखकर हृदय में प्रकट होते हैं। तत्पश्चात् नयन विषय होते हैं। यथा : अतिसय प्रेम

---

१. यहाँ समासोक्ति है।

देखि रघुबीरा। प्रगटे हृदय हरन भवभीरा। मुनि मग माझ अचलह्वै बैसा। तब रघुबीर निकट चलि आये। लता भवन की ही उपमा जलद पटल से दी है। दोनों भाइयों की उपमा विमल विधु से दी। इनके प्रकट होने से भी फुलवारी में प्रकाश हो गया। तीन तीन चन्द्रोदय फुलवारी में हुए हैं। फुलवारी तेजोमय हो गई।

सोभा सीव सुभग दोउ बीरा। नील पीत जलजाभ सरीरा॥
मोरपंख सिर सोहत नीके। गुच्छ बीच बिच कुसुम कली के॥१॥

अर्थ : दोनों सुन्दर वीर शोभा की सीमा हैं। नीले और पीले कमल के रङ्ग का शरीर है। शिर पर मोर पंख भी खूब खिल रहा है। बीच बीच में फूलों की कलियों के गुच्छे हैं।

व्याख्या : सखी छविवर्णन करने लगी जनकनन्दिनी की सावधानी के लिए। दोनों सुन्दर वीरों के अवयव सन्निवेश के औचित्य को पराकाष्ठा है। इससे अधिक यथोचित अवयव सन्निवेश सम्भव नहीं है। वीरता और सौन्दर्य का अद्भुत सङ्गम है। श्याम कुँअर के शरीर का वर्ण नीलकमल सा और गौर के शरीर का वर्ण पीले कमल सा है।

आज मोरमुकुट भी है। कुसुमकली के गुच्छे भी बीच बीच में शोभित हैं। कृष्ण कन्हैया की झाँकी है। नगर देखने चले थे तब चारु चौतनी सुगम शिरों पर थी। इस समय फूल लेने आये हैं अतः स्वाभाविक वेष में हैं। चौतनी से भी अधिक शोभा है। यह विच्छित्तिहाव है। किञ्चित् शृङ्गार से मोहित करने को विच्छित्तिहाव कहते हैं। इसी झाँकी को कृष्णावतार में दिखलाकर व्रजवनिताओं को मोहित करेंगे।

भाल तिलक श्रमबिंदु सुहाए। श्रवन सुभग भूषन छवि छाए॥२॥
बिकट भृकुटि कच घूँघरवारे। नव सरोज लोचन रतनारे॥२॥

अर्थ : माथे पर तिलक और पसीने की बूँदे शोभित हैं। सुन्दर कानों में भूषण की छवि छाई हुई है। टेढी भौंहें हैं और घूँघरवाले बाल हैं। आँखें नये कमल की भाँति गुलाबी हैं।

व्याख्या : तिलक के साथ श्रमबिन्दु की बड़ी शोभा हुई। मोती की नाईं झलक रहे हैं। यथा : श्रमकन सहित स्याम तन जोही। लागिहि ताति बयारिन मोही। कोमलता का अन्त है फूल लेने में श्रम हुआ है। इससे पसीना आ गया है। अथवा सात्त्विक भाव हुआ है। कान ऐसे सुन्दर हैं कि भूषण की उनसे शोभा हो गई है। भृकुटी की टेढ़ी होने और बाल के घुघुँराले होने की ही प्रशंसा है। यथा : भृकुटि मनोज चाप छवि हारी। कुटिल केस जनु मधुप समाजा। आँख को गुलाबी नये कमल की भाँति कहने का भाव यह कि प्रथम कैशोर है। किशोरावस्था

का प्रारम्भ है। इस अवस्था में नेत्र के कोण में लालिमा आजाती है। यथा : वर्णस्योज्ज्वलता कापि नेत्रान्ते चारुणच्छविः। रोमावलिप्रकटता कैशोरे प्रथमे सति।

चारु चिबुक नासिका कपोला। हास बिलास लेत मनु मोला ॥
मुखछवि कहि न जाय मोहि पाही। जो बिलोकि वहु काम लजाहीं ॥३॥

अर्थ : ठुड्डी नाक और गाल सुन्दर है। हास विलास हँसने की माधुरी तो मानो मन को मोल ले रहा हो। मुख की छवि तो मुझसे कहते नहीं बनती जिसे देखकर बहुत से काम लज्जित होते हैं।

व्याख्या : ठुड्डी सुन्दर नासिका शुकतुण्ड सी। कपोल दर्पण सा जिसमें चलकुण्डल की झलक पड़ रही हो। दोनों भाइयों में हास विलास भी हो रहा है। यथा : अवलोकनि बोलनि प्रीति परसपर हास। प्रेमवश अनुग्रह हुआ। हँसते हुए लताभवन से निकले। यथा : हृदय अनुग्रह इंदु प्रकासा। सूचित किरन मनोहर हासा। इस हँसने ने तो मनकी चोरी नहीं की बल्कि मनको खरीद लिया। उनकी हँसी मनकी पूरी कीमत है। यह विलास नामक हाव है। संयोग समय कटाक्षादि अनेक क्रियाओं से मोहित करने को विलास हाव कहते हैं।

उर मनिमाल कंबुकल ग्रीवाँ। [1]काम कलभ कर भुजबल सीवाँ ॥
सुमन समेत बाम कर दोना। साँवर कुँअर सखी सुठि लोना ॥४॥

अर्थ : छाती पर मणियों की माला है। शंख की भाँति सुन्दर ग्रीवा है। कामरूपी हाथी के बच्चे की शुण्ड जैसी सुन्दर भुजाएँ बल की सीमा हैं। फूल के सहित बाएँ हाथों में दोना है। सखी ! साँवला कुँवर अत्यन्त ही सलोना है।

व्याख्या : स्रग्वी माला पहने हुए रहने का विधान है। इसलिए मणि की माला पहने हुए हैं। जिसकी शोभा वक्षःस्थल पर जाकर अधिक हो गई है। ग्रीवा की शोभा शंख की भाँति होने में है। भुजाएँ उतार चढ़ाववाली हाथी की शुण्ड सी हैं पर अभी किशोरावस्था है। अतः हाथी के बच्चे के शुण्ड सी कहा। शोभाधिक्य के कारण कहते हैं कि यदि काम ने हाथी के बच्चे का रूप धारण किया हो तब उसके शुण्ड की जैसी शोभा होगी वैसी ही भुजाओं की शोभा है। ऐसी उतार चढ़ाववाली भुजाओं में ही वल होता है। जिनमें पेशियाँ पृथक् पृथक् दिखाई पड़ती हों वे भुजाएँ बलसीमा नहीं होतीं।

फूल उतार चुके हैं। बायें हाथों में दोना लिये हुए अधिक सोहावने दृष्टिगोचर होते हैं। गौर कुमार भी सलोना हैं पर साँवला कुमार अधिक सलोना है। वालक लोगों ने भी शोभा देखी और लगे संग लोचन मन लोभा। उनके मन भी लुब्ध हुए पर सुन्दरता की इस बारीकी तक वे नहीं पहुँच सके कि दोनों कुँअरों में एक को भी सुठिलोना कह सकें।

---

१. यहाँ प्रौढोक्ति है।

सखि ! सम्बोधन का भाव यह कि एक सखी दूसरी से कह रही है। पर जनकनन्दिनी का ध्यान भङ्ग नहीं हुआ।

दो. केहरि कटि पट पीत धर, सुषमा सील निधान।
देखि भानुकूलभूषनहिं, बिसरा सखिन्ह अपान ॥२३३॥

अर्थ : सिंह की सी कमर पीताम्बर धारण किये परमा शोभा और शील के निधान भानुकुल भूषण को देखकर सखियाँ अपनपौ : अपने को ही भूल गईं।

व्याख्या : कटि के क्षीण होने की ही शोभा है। श्याम शरीर पर पीताम्बर अधिक खिलता है। अतः परमा शोभा है और स्वभाव में शील के निधान हैं। यह कहते कहते रुक गई चरणों की शोभा न कह सकी। अपने को ही भूल गई यही दशा सुननेवालियों की भी हुई।

अपान बिसरा से जड़ता सञ्चारीभाव कहा। जब इष्ट या अनिष्ट सुनने देखने से कोई बोध नहीं होता तो उसे जाड्य सञ्चारी कहते हैं। यथा : जाड्यमप्रतिपत्तिः स्यादिष्टानिष्टश्रुतीक्षणैः। अथवा फूल की कियारी में हैं। कटि के नीचे के भाग का दर्शन नहीं हुआ। इसलिए वर्णन भी नहीं किया।

धरि धीरजु एक आलि सयानी। सीता सन बोली गहि पानी ॥
बहुरि गौरि कर ध्यान करेहू। भूपकिसोर देखि किन लेहू ॥१॥

अर्थ : एक सयानी सखी ने धैर्य धारण करके सीताजी का हाथ पकड़कर कहा कि गौरीजी का ध्यान फिर कर लेना। राजकुमार को देख क्यों नहीं लेती।

व्याख्या : यह सखी सयानी है। इसलिए सबके पहिले धैर्य धारण में समर्थ हुई। सयानी कहने का दूसरा भाव यह कि सीताजी को प्रेमवश तो सबने जाना। ध्यान से हटाने के लिए राजकुमार का शोभा वर्णन भी करने लगीं पर ध्यान भङ्ग नहीं हुआ। क्या कहकर इनको जगावें यह किसी को न सूझा। इसे सूझ गया। इसने समझ लिया कि हाथ पकड़कर जगाने से हो जागेंगी और इनके ध्यान को गौरी का ध्यान बतलाकर जगाना चाहिए। राजकुमारों को यह गर्व न हो कि इनकी सखी मेरी सुन्दरता में मग्न हो गई है और इन्हें भी सङ्कोच न हो।

सकुचि सीय तब नैन उघारे। सनमुख दोउ रघुसिंह निहारे ॥
नख सिख देखि राम कै सोभा। सुमिरि पिता मनु जनु अति छोभा ॥२॥

अर्थ : सङ्कुचित होकर सीताजी ने तब आँखें खोलीं। सामने दोनों रघुकुल के सिंहों को देखा। नख से शिख तक रामजी की शोभा देखकर और पिता के प्रण को समझकर मनमें बड़ा क्षोभ हुआ।

व्याख्या : उपाय काम कर गया। सखी का उपालम्भ और उपहास भी कर्तव्य है। उपालम्भ करती है कि उपास्यदेव की भाँति राजकुमार का ध्यान करती हो। सुनकर सङ्कुचित होकर सीताजी ने नेत्र खोला। स्वच्छन्द क्रिया से

सङ्कोच हुआ। व्रीड़ा सञ्चारी भाव हुआ। नयन उघारा तो दो रघुसिंहों को देखा : मृगपति सरिस असंक। पूरब दिसि गिरि गुहा निवासी। परम प्रताप तेज बल रासी। मत्त नाग तम कुंभ विदारी। भाव यह कि सीताजी फुलवारी में प्रकाश करती फिरती थीं। पर तम मरा नहीं था। इनके हाथ से मारा पड़ा था।

सखियों ने शिख नख वर्णन किया। इन्होंने पूज्य बुद्धि से नख शिख देखा। बड़ी मधुर मूर्त्ति है। इनसे कमठ पृष्ठ कठोर धनुष कैसे टूटेगा और पिता का प्रण यही है कि जो धनुष चढ़ावेगा उसे जानकी की प्राप्ति होगी। अतः मनमें अत्यन्त क्षोभ हुआ। यथा : कमठपृष्ठकठोरमिदं धनुर्मधुरमूर्त्तिरसौ रघुनन्दनः। कथमधिज्य-मनेन विधीयतामहह तात प्रणस्तव दारुणः। ह. ना.।

परवस सखिन लखी जब सीता। भये गहरु सब कहहिं सभीता॥
पुनि आउब एहि बेरिआँ काली। अस कसि मन बिहँसी एक आली॥३॥

अर्थ : जब सखियों ने देखा कि सीताजी परवश हैं। तब सब भयभीत होकर कहने लगीं कि देर हो रही है। कल इस समय फिर आऊँगी। ऐसा कहकर एक सखी मनही मन हँसी।

व्याख्या : प्रेमवश जानने से सङ्कोच हुआ था। परन्तु परवश जानने से भय हुआ। सयानी सखी है। हृदय पढ़ रही है। इन्हें पिता का प्रण स्मरण करके क्षोभ हो रहा है। यह तो परवश हुई जा रही हैं। अपने अपराध से सभीत हैं। हम लोग इन्हें यहाँ क्यों लायीं। जब एक सखी की दशा हमलोगों ने आँख से देख ली थी तब इन्हें लाना सर्वथा अनुचित हुआ। यह शोभा ही उन्मादकारिणी है। भाव पलटने के लिए माता का स्मरण 'अब देर हो रही है' कहकर दिला रही है।

फिर इसी समय कल आवेंगे : कहकर उपहास करती है। व्यञ्जित करती हैं कि इस समय चलो। मनही मन हँसने का कारण यह कि प्रकट हँसने में सीताजी का अपमान होगा। अपनी उक्ति पर स्वयं ही हँस रही है। क्योंकि कल इस समय यहाँ आना असम्भव होगा। इस समय तो धनुषयज्ञ होता रहेगा। अतः ध्वनि यही है कि इस समय चलो। धैर्य धरो।

गूढ़ गिरा सुनि सिय सकुचानी। भए बिलंब मातु भय मानी॥
धरि बड़ि धीर राम उर आने। फिरी अपनपौ पितुबस जाने॥४॥

अर्थ : गूढार्थक वचन सुनकर सीताजी को सङ्कोच हुआ। माता को डरीं कि देर हो गई। बड़ा धैर्य धारण करके रामजी को हृदय में रक्खा और अपने को पिता के वश जानकर लौटीं।

व्याख्या : गूढ़ गिरा अर्थात् इसी समय धनुषयज्ञ में कल फिर इनका साक्षात्कार होगा। उस समय का देखना भी समुचित होगा। इस समय का इस भाँति देखते रहना समुचित नहीं। अति क्षोभ रहा। अतः बड़ा धैर्य धारण करना पड़ा। लोचन लुब्ध थे। अतः उधर से फिरने में बड़े धैर्य की आवश्यकता थी।

मनको समझाया कि मैं पिता के वश में हूँ। फिर भी रामजी को हृदय में रखकर लौटीं।

दो. देखन मिस मृग विहँग तरु, फिरइ बहोरि बहोरि।
निरखि निरखि रघुवीर छवि, बाढ़ै प्रीति न थोरि ॥२३४॥

अर्थ : मृग, पक्षी और पेड़ों के देखने के बहाने बार बार लौटकर देखती हैं। रघुवीर की छवि बार बार देखकर प्रीति थोड़ी नहीं बढ़ती थी।

व्याख्या : रामजी को देखने की इच्छा है। पर मृग कैसा सुन्दर है। चिड़ियाँ कैसा मधुर बोल रही हैं। वृक्ष कैसा फूला हुआ है। ऐसा कहकर चतुरता से बात छिपाती हैं। फिर फिरकर देखने से तृषा शान्त नहीं होती। उत्तरोत्तर बढ़ती ही जाती है। ऊपर जो मृग पक्षी और तरु के व्याज से लौट लौटकर रामजी को देखना कहा वह अवहित्था सञ्चारी है। यथा : अवहित्थाऽऽकारगुप्तिर्भवेद्भावेन केनचित्।

जानि कठिन सिवचाप विसूरति। चली राखि उर स्यामल मूरति ॥
प्रभु जब जात जानकी जानी। सुख सनेह सोभा गुन खानी ॥१॥

अर्थ : शिवजी के धनुष को कठिन जानकर चिन्ता करती हुई हृदय में साँवली मूर्ति को रखकर चलीं। प्रभु ने जब सुख स्नेह शोभा और गुणों की खानि जानकी को जाते हुए जाना।

व्याख्या : शिव चाप मेरुमन्दर का जोड़ : कठिनाई और गुरुता में था। तभी शिवजी की भुजाओं के तान के सहने में समर्थ था। शिवजी के मेरुको धनुष बनाने की कथा पुराणों में सुनी जाती है। यथा : रथक्षोणी यन्ता शतधृतिरगेन्द्रो धनुरिति। धनुष को ऐसी कठोरता को समझकर सीताजी चिन्तित हुई। खिदविसूरः। विसूरयि खिद्यते। खेद करने के अर्थ में विसूर का प्रयोग होता है। यहाँ चिन्ता सञ्चारी है। चिन्ता सहित आना कहा। यथा : कहँ गये नृपकिसोर मन चिंता। अब चिन्ता सहित जाना कहते हैं। यथा : विसूरत चली। पर साँवली मूर्ति को हृदय में रख लिया।

जब फिरी अपनपौ पितु बस जानी तब प्रभु ने जान लिया कि जनकनन्दिनी जा रही हैं। वह शोभा सुख की खानि हैं। यथा : देखि सीय सोभा सुख पावा। सनेह और गुण की खानि हैं। यथा : देखन मिस मृग विहँग तरु फिरै बहोरि बहोरि। निरखि निरखि रघुवीर छवि बाढ़ो प्रीति न थोरि।

परम प्रेममय मृदु मसि कीन्हीं। चारु चित्त भीती लिखि लीन्ही ॥
गई भवानी भवन बहोरी। बंदि चरन बोली कर जोरी ॥२॥

अर्थ : परम प्रेम को मृदु स्याही बनाया और चित्तरूपी भीत पर सुन्दर

चित्र लिख लिया। फिर गिरिजा के मन्दिर में गईं और चरणवन्दना करके हाथ जोड़कर बोलीं।

व्याख्या : जनकनन्दिनी जब जाने लगीं तो वियोग काल में चित्त के आश्वासन के लिए रामजी की मूर्ति को हृदय में रख लिया और प्रभु ने जब देखा कि ये जा रही हैं तो चित्तरूपी भीत पर परम प्रेम का रंग बनाकर जनकनन्दिनी का चित्र लिख लिया। यथा : चित्त भीत्ति सुप्रीति रंग सरूपता अवरेखु। दोनों ओर स्थायी भाव का उदय दिखलाया। उन्हें : सीताजी को पूजन करना था इसलिए उन्होंने मूर्ति हृदय में रक्खी। इन्हें : रामजी को ध्यान करना था इसलिए चित्र लिख लिया।

पहिले भी गौरी के मन्दिर में गई थीं। इसलिए बहोरि गई कहा। पूजा कर चुकी थीं। निज अनुरूप सुन्दर वर के लिए प्रार्थना कर चुकी थीं। अब निज अनुरूप सुभग वर देख आई हैं। उनकी मूर्ति हृदय में लेकर आई है कि यही वर चाहिए। अतः चरण वन्दना करके हाथ जोड़कर बोलीं :

जय जय गिरिवरराज किसोरी। जय महेस मुख चंद चकोरी॥
जय गजवदन षडानन माता। जगत जननि दामिनि दुतिगाता॥३॥

अर्थ : पर्वतराज की पुत्रि! तुम्हारी जय हो। जय हो। महेशमुखचन्द चकोरी की जय हो। गणेशजी और स्वामी कार्त्तिकेय की माँ! तुम्हारी जय हो। तुम जगत् की माँ हो। तुम्हारे शरीर में बिजली सी चमक है।

व्याख्या : अभी गिरिराज के घर अवतीर्ण नहीं हुई हैं। अभी तो सतीरूप से दाक्षायणी होकर विराजमान हैं। फिर भी गिरिराजकुमारी कहकर स्तुति हो रही है। इससे स्पष्ट है कि सती के समय भी उनकी गिरिराजकिशोरी रूप से पूजा होती थी। जिस भाँति गणेशजी सुर अनादि हैं उसी भाँति गिरिजा भी अनादि शक्ति हैं। लीला से दाक्षायणी पार्वती आदि रूप से अवतीर्ण हुआ करती हैं। दिव्य जन्म और दिव्य कर्म होने से दो बार जय कहती हैं। गिरिवरराज किसोरी से जन्म कहा। और महेस मुखचन्द चकोरी से अभूतपूर्व तपस्या कही।

प्रथम पूज्य गणेश तथा देवसेनानी स्वामिकार्तिकेय ऐसे पुत्रों की आप माता हैं। तथा सम्पूर्ण जगत् की माता हैं। इसलिए फिर उत्कर्षसूचक जय शब्द का प्रयोग करती हैं। दामिनिद्युतिगाता से तेज की प्रखरता कही। जिस भाँति दामिनी के दमकने से आँख बन्द हो जाती है उसी भाँति तुम्हारी मूर्ति के सामने आँख नहीं ठहरती।

नहिं तव आदि अंत अवसाना। अमित प्रभाऊ बेदु नहिं जाना॥
भव भव बिभव पराभव कारिनि। बिस्व बिमोहनि स्ववस बिहारिनि॥४॥

अर्थ : तुम्हारे आदि और अन्त की समाप्ति नहीं। असीम प्रभाव को वेद भी

नहीं जानता। तुम संसार की उत्पत्ति पालन और प्रलय करनेवाली हो। विश्व को मोहन करनेवाली और स्वतन्त्र विहार करनेवाली हो।

व्याख्या : आदि और अन्त अर्थात् आविर्भाव और तिरोभाव का अन्त नहीं है। अर्थात् आप के अनन्त अवतार हैं। वह जगन्मूर्ति नित्य है। उसी से यह संसार व्याप्त है। फिर भी उसकी उत्पत्ति अनेक प्रकार से सुनी जाती है। यथा : नित्यैव सा जगन्मूर्तिस्तया सर्वमिदं ततम्। तथापि तत्समुत्पत्तिर्बहुधा श्रूयतां मम। तुम्हारे असीम प्रभाव को वेद नहीं जानते। क्योंकि आप उनकी भी आधार-भूता हैं। यथा : शब्दात्मिका सुविमलर्ग्यजुषां निधानमुद्गीतरम्यपदपाठवतां च साम्नाम्। ब्रह्मदेव जो जगत् की रचना करते हैं विष्णु पालन करते हैं और रुद्र संहार करते हैं वह आप के प्रताप से करते हैं। यथा : रचत विरंचि हरि पालत हरत हर तेरे ही प्रसाद मातु अग जग पालिके। तोहिं विकास विश्व तोहि में विलास सब तोहि में समात मातु भूमिधर बालिके। आप अविद्यारूप होकर विश्व को मोहन करनेवाली हैं और स्वतन्त्र शक्तिरूपा होने से स्ववशविहारिणी हैं।

दो. पतिदेवता सुतीय महुँ, मातु प्रथम तव रेख।
महिमा अमित न सकहिं कहि, सहस सारदा सेख ॥२३५॥

अर्थ : पतिव्रता उत्तम स्त्रियों में माँ! आप की पहिली गिनती है। आप की अपार महिमा को सहस्रों शारदा और शेष वर्णन नहीं कर सकते।

व्याख्या : परम अपावनि नारि, पति सेवत सुभ गति लहहिं। जस गावहिं श्रुतिचार, अजहुँ तुलसिका हरिहिं प्रिय। परम अपावन स्त्री भी यदि पति की सेवा करती है तो उसका यश चारों वेद गाते हैं। आप तो माता उत्तम पतिव्रताओं में भी प्रथम गणनीया हो। आप की महिमा का गान वेद क्यों न करेंगे? परन्तु उसकी सीमा नहीं है। इसलिए अकथनीय है। वह शेष और शारदा द्वारा भी नहीं कही जा सकती। किसी को यह सन्देह न हो कि मर्त्यलोक के वक्ता वेद नहीं कह सकते तो कदाचित् स्वर्ग के वक्ता शारदा और पाताल के वक्ता शेष कह सकते हों। इसलिए कहती हैं कि वे भी नहीं कह सकते। वेद के लिए तो कह ही दिया है कि अमित प्रभाव वेद नहिं जाना।

सेवत तोहि सुलभ फल चारी। बरदायनी पुरारि पिआरी ॥
देवि पूजि पद कमल तुम्हारे। सुर नर मुनि सब होहिं सुखारे ॥१॥

अर्थ : हे वरदायिनि! हे पुरारि प्रिये तुम्हारी सेवा करने से धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष सुलभ हो जाते हैं। हे देवि! तुम्हारे चरणकमल की पूजा करके सुर नर मुनि सब सुखी होते हैं।

व्याख्या : जय जय जग जननि देवि सुरनर मुनि असुर सेवि भुक्ति-मुक्ति दायिनि भय हरनि कालिका। देवी मुक्ति और भुक्ति दोनों देती हैं। धर्मार्थ काम मोक्ष का मुक्ति-भुक्ति में अन्तर्भाव होने से चारों फलों का दिया जाना कहा। जगदम्बा

के पूजन के विना चारों फलों की प्राप्ति दुर्लभ है। यथा : यो न पूजयते नित्यं चण्डिकां भक्तवत्सलाम्। भस्मीकृत्यास्य पुण्यानि निर्दहेत् परमेश्वरी[1]। अतः वीर वैष्णव भी चण्डिका की पूजा करते हैं। निज अनुरूप सुभग वर माँगा है। इसलिए वरदायिनी कह रही हैं। देवि त्वमेव शशिमौलिकृतप्रतिष्ठा। हे देवि ! शशिमौलि ने भी तुम्हारी प्रतिष्ठा की है। इसलिए पुरारि पियारी कहती हैं।

उपास्य के गुण उपासक में जब आवें तभी समझना चाहिए कि ठीक उपासना हुई। यथा :

उपास्य के गुण		उपासक के गुण
गिरिराज किसोरी	१	विदेह कुमारी
महेसमुखचंद चकोरी	२	सरद ससिहि जिमि चितव चकोरी
गज बदन षडानन माता	३	दुइ सुत सुन्दर सीता जाएँ
जगत जननि	४	जगदम्बा जानहु जिय सीता
दामिनि दुति गाता	५	दुलहिन तडितवरन तन गोरी : गी.
भव भव विभव पराभव कारिनि	६	उद्भव स्थिति संहार कारिणी
		आदि सक्ति जेहि जग उपजाया
अमित प्रभाव वेद नहिं जाना	७	तव प्रभाव जग विदित न केही
पतिदेवता सुतीय मह	८	सुनु सीता तव नाम सुमिरि
मातु प्रथम तवरेख		नारि पतिव्रत चरहि
सेवत सुलभ फल चारी	९	सर्वश्रेयस्करीं सीताम्
वर दायिनि	१०	आसिष तव अमोघ विख्याता
पुरारि पियारी	११	राम वल्लभा

मोर मनोरथ जानहु नीके। बसहु सदा उर पुर सबही के ॥
कीन्हेउ प्रगट न कारन तेही। अस कहि चरन गहे वैदेही ॥२॥

अर्थ : मेरा मनोरथ भली भाँति जानती हो। क्योंकि सभी के हृदय रूपी पुर में तुम्हारा निवास है। इसी कारण से प्रगट नहीं कहा। ऐसा कहकर जानकीजी ने पैर पकड़ लिया।

व्याख्या : अनाहत चक्र : हृदय में शिव दुर्गा का निवास है और वहीं मन का निवास है। इसलिए तुम मेरे मनोरथ को भलीभाँति जानती हो। ध्यान करनेवाले और न करनेवाले सभी के हृदय में सदा वसती हो। नीके जानहु कहने का भाव यह कि मैंने मुखतः भी कह दिया है। यथा : निज अनुरूप सुभग वर माँगा : अथवा साँवली मूर्ति को हृदय में धारण करके चली हैं। अतः कहती हैं जहाँ तुम हो वहीं साँवली मूर्ति भी है। अब परिचय देने की आवश्यकता नहीं। वही मनोरथ है।

---

१. जो भक्त वत्सला चण्डिका की पूजा नित्य नहीं करते उसके पुण्यकर्मों को परमेश्वरी जलाकर भस्म कर देती है।

प्रगट करके कहना निष्प्रयोजन है। नहीं तो अवश्य प्रगट करती। ऐसा कहकर चरण पकड़ लिया कि आज लूँगी। वैदेही हैं। देह छोड़ने में कुछ आगा-पीछा नहीं है।

विनय[1] प्रेम बस भई भवानी। खसी माल मूरति मुसुकानी॥
सादर सिय प्रसादु सिर धरेऊ। बोली गौरि हरसु उर भरेऊ॥३॥

अर्थ : भवानी विनय प्रेम के वश हो गईं। माला गिरी और मूर्ति मुसकराई। आदर के साथ सीताजी ने प्रसाद शिरपर चढ़ाया। गौरी बोलीं उनके हृदय में हर्ष भर उठा।

व्याख्या : मोर मनोरथ जानहु नीके से असकहि तक विनय है। और चरण का पकड़ लेना प्रेम है। सो भवानी विनय और प्रेम के वश हो गईं। सबके लिए रास्ता बतलाया जा रहा है। यदि भवानी को वश करना है तो श्मशान में जागने से नहीं विनय और प्रेम से वे वश होती हैं। मूर्ति में आवेश हो गया। मूर्ति हिली। पूजन में जो माला पहिनायी थी वह प्रसाद रूप में मिली। माला यों भी वायु आदि द्वारा गिर जाती है। पर यह गिरना और भाँति का था। क्योंकि साथ ही साथ मूर्ति में मुसकराहट लक्षित हुई। आज भी मूर्ति मुसकराती है उदास होती है अप्रसन्न होती है उपासकों को स्पष्ट प्रतीत होता है। बात का उड़ा देना दूसरी बात है। परन्तु प्रत्यक्ष का अपलाप नहीं किया जा सकता। यह शङ्का न उठानी चाहिए कि देवता की मूर्ति का हँसना उत्पात है। मूर्ति का हँस पड़ना एक बात है और मुसकराहट मालूम पड़ना दूसरी बात है। कितनी मूर्तियाँ बनी ही ऐसी हैं कि उनमें सदा मुसकराहट मालूम पड़ती है। तिस पर यहाँ तो आवेश का वर्णन है। पहिले मूर्ति हिली तब मुसकराई अब बोल भी उठी।

सीताजी ने उस प्रसादरूप माला को सिरपर धारण किया। स्तुति करते समय यदि इष्टदेव के ऊपर से फूल गिर पड़े तो उपासक उसे उठाकर सिरपर चढ़ाते हैं और कार्यसिद्धि का सूचक मानते हैं। भगवती जनकनन्दनी के विनय और प्रेम से गौरी भगवती का हृदय हर्ष से भर उठा। बिना बोले नहीं रहा जाता। मूर्ति में और भी अधिक आवेश हुआ। अब मूर्ति द्वारा गौरी बोलीं। जनकनन्दिनी का विनय और प्रेम ही ऐसा है। आगे चलकर आप गङ्गाजी को भी बोलते पायेंगे। भई तब विमल बारि बर बानी।

सुनु सिअ सत्य असीस हमारी। पूजिहि मन कामना तुम्हारी॥
नारद बचन सदासुचि साचा। सो बरु मिलिहि जाहि मन राचा॥४॥

अर्थ : सीते ! मेरा सत्य अशीर्वाद सुनो। तुम्हारी मनःकामना पूरी होगी। नारद का वचन सदा पवित्र और सत्य है। वही वर मिलेगा जिससे मन लगा है।

---

१. यहाँ सूक्ष्मालङ्कार है।

व्याख्या : बड़ी होने के नाते आशीर्वाद देती हैं, वर नहीं देतीं। वैदेही ने चरण पकड़ लिया था। अतः आशीर्वाद देना ही चाहिए। सो कहती हैं : पूजिहि मन कामना तुम्हारी। आशीर्वाद मिथ्या भी पड़ जाता है। इसलिए कहती हैं मेरी असीस है, यह सत्य है। मिथ्या नहीं हो सकती। मैं अपनी अनुभूत बात कहती हूँ कि : बरु पावक प्रकटे ससि माही। नारद वचन अन्यथा नाहीं। सो नारदजी स्वयं तुमसे कह चुके हैं और तुम्हें स्मरण है। यथा : सुमिरि सीय नारद वचन उपजी प्रीति पुनीत। अब बात स्पष्ट हो गई कि नारदजी ने कहा था जिसे तुम्हारा चित्त चाहेगा वही वर मिलेगा। उसका तुम्हारा प्रथम साक्षात्कार गिरिजा-बाग में होगा। जो नारदजी ने कहा है वही होगा। मैं वरदान क्या दूँ? हाँ उसी की पुष्टि करती हुई मैं आशीर्वाद दे रही हूँ।

छं. मनु[1] जाहि राचेउ मिलिहि सो वर सहज सुंदर साँवरो।
करुना निधानु सुजानु सीलु सनेह जानत रावरो॥
येहि भाँति गौरि असीस सुनि सिअ सहित हिअ हरषी अली।
तुलसी भवानिहि पूजि पुनि पुनि मुदित मन मंदिर चली॥

अर्थ : जिसको मन चाहता है वही सहज सुन्दर साँवला वर मिलेगा। वह करुणानिधान है, सुजान है और आपके शील और स्नेह को जानता है। इस प्रकार की गौरी की असीस सुनकर सीताजी के सहित सब सखियाँ हर्षित हुईं। तुलसीदासजी कहते हैं कि बार बार भवानी की पूजा करके प्रसन्न मन घर को चलीं।

व्याख्या : अपना उरपुर में बसना और मनोरथ को भलीभाँति जानना व्यक्त करती हैं। मिलिहि सो वर सहज सुन्दर साँवरो। दोनों कुमारों में से साँवरे में तुम्हारा मन लगा है। वही वर तुम्हें मिलेगा। वह स्वभाव से ही सुन्दर है। उसके मण्डन की आवश्यकता नहीं। वह करुणानिधान है। अवश्य करुणा करेगा। यथा : सियहि विलोकि तकेउ धनु कैसे। चितव गरुड़ लघु व्यालहि जैसे। तुम्हारा शील स्नेह भी वह जानता है क्योंकि सुजान है। यथा : प्रभु जब जात जानकी जानी। सुख सनेह सोभा गुन खानी। अर्थात् वर में जो गुण चाहिए वे अत्यन्त उत्कर्ष रूप में उसमें वर्तमान हैं। गौरी के आशीर्वाद से सीताजी और सखियाँ सब हर्षित हो गईं। क्योंकि गौरी की वाणी अमोघ है। कृतकृत्य होकर कृतज्ञता प्रकाशन के लिए बार बार पूजा की और मुदितमन गौरी के मन्दिर में प्रार्थी होकर आई थीं। यथा : गई मुदितमन गौरि निकेता। सो कृतकार्य होकर मुदितमन मन्दिर चलीं।

दो. जानि गौरि अनुकूल, सिअ हिअ हर्षु न जाइ कहि।
मंजुल मंगल मूल, वाम अंग फरकन लगे॥२३६॥

---

१. यह हरिगीतिका छन्द है। इसके बाद जितने छन्द बालकाण्ड में पड़ेंगे सब हरिगीतिका ही हैं।

अर्थ : गौरी को अनुकूल जानकर सीताजी के हर्ष का वर्णन नहीं हो सकता। सुन्दर कल्याण के मूल वाम अंग फड़कने लगे।

व्याख्या : गौरी को अनुकूल जानकर सीताजी के हर्ष का पारावार नहीं है। सखी सीताजी के मनोरथपूर्ति की दृढ़ आशा से तथा भय के दूर हो जाने से हर्षित हैं। पर सीताजी को अपनी निधि की प्राप्ति के निश्चित आश्वासन से हर्ष है। अतः वह अवर्णनीय है। उसी भाव को पुष्ट करने के लिए मानो मंगलमूल वाम अङ्ग फड़कने का सगुन हुआ। सगुन प्रतीत भेंट प्रिय केरी।

हृदय सराहत सीय लोनाई। गुर समीप गवने दोउ भाई ॥
राम कहा सबु कौसिक पाहीं। सरल सुभाउ छुआ छल नाहीं ॥१॥

अर्थ : मन में सीताजी के लावण्य की प्रशंसा करते हुए दोनों भाई गुरुजी के समीप गये। रामजी ने सब कुछ विश्वामित्रजी से कह सुनाया। क्योंकि उनका स्वभाव सरल था। जिनमें छल का स्पर्श भी नहीं था।

व्याख्या : परम प्रेममय मृदु मसि कीन्ही। चारु चित्त भीती लिख लीन्हीं। से प्रसङ्ग छोड़ा था। अब वहीं से आरम्भ करते हैं। मानसिक चित्र में सीताजी का लावण्य देख देखकर प्रशंसा करते हैं। अतः यह वाक्यांश केवल रामजी के प्रति है। भगवती सखियों के साथ मन्दिर चलीं और प्रभु भाई के साथ गुरुजी के पास गये। यहाँ दोनों भाई के साथ जिस भाँति गवने क्रिया का अन्वय है उसी भाँति सराहत के साथ नहीं है। सराहना केवल रामजी कर रहे हैं। यथा : छत्रिणो गच्छन्ति। छाता किसी एक के ही हाथ में है पर कहा जाता है कि छातावाले जाते हैं। इसी भाँति सराहना केवल रामजी करते हैं पर गवने क्रिया के कर्त्ता होने से सराहत पूर्वकाल की क्रिया का सम्वन्ध दोनों भाई के साथ कर दिया गया है। गुरुजी से सीतामिलन अपने मनका क्षोभ चित्त में चित्र का अङ्कन कहा। किसी बात को छिपाया नहीं क्योंकि स्वभाव प्रभु का ऐसा सरल है कि छल का स्पर्श भी कहीं नहीं है। ऐसे सरल पुरुष ही सच्चे धर्मात्मा हो सकते हैं। यथा : सुत सुतवधू देवसरि वारी। छिपाना ही पाप का मूल है।

सुमन पाइ मुनि पूजा कीन्ही। पुनि असीस दुहुँ भाइन्ह दीन्ही ॥
सुफल मनोरथ होहुँ तुम्हारे। राम लखन सुनि भये सुखारे ॥२॥

अर्थ : फूल पाकर मुनिजी ने पूजन किया और फिर दोनों भाइयों को असीस दी कि तुम्हारे मनोरथ सफल हों। सुनकर राम लक्ष्मण सुखी हुए।

व्याख्या : सीताजी ने गौरी की पूजा स्वयं की। यथा : पूजा कीन्ह अधिक अनुरागा। यहाँ गुरुजी ने फूल पाकर महादेवजी की पूजा की। वहाँ पूजा के बाद गौरी भगवती की असीस मिली। यहाँ पूजा के बाद गुरुजी ने आशीर्वाद दिया। गुरुजी ने जब वृत्तान्त सुना तब कुछ न बोले पूजा कर ली तब आशीर्वाद दिया। क्योंकि शास्त्र कहता है कि सन्ध्या करने के बाद पूजन के पश्चात् अथवा भोजन के पश्चात् जो

ब्राह्मण के मुख से निकलता है वह सत्य होता है। इसलिए गुरुजी ने पूजन के बाद आशीर्वाद दिया है। दोनों भाइयों को आशीर्वाद दिया कि तुम लोगों के मनोरथ सुफल हों। इससे स्पष्ट है कि लक्ष्मणजी का भी कुछ मनोरथ था। जिस भाँति पत्नी-रूप में सीताजी के मिलने का मनोरथ रामजी को था उसी भाँति भावज रूप में सीता की प्राप्ति का मनोरथ लक्ष्मणजी को था। अतः गुरुजी दोनों भाइयों के मनोरथ की पूर्ति का आशीर्वाद देते हैं। वृत्तान्त सुनने पर भी गुरुजी के कुछ न कहने से दोनों भाई चिन्तित हो गये थे। सो अब आशीर्वाद पाकर सुखी हुए। यहाँ पर थोड़ी सी दोनों ओर की घटनाओं का मिलान विनोदार्थ किया जाता है।

रामजी की ओर की घटना		सीताजी की ओर की घटना
तात जनक तनया यह सोई	१	एक कहै नृप सुत सोइ आली
धनुषयज्ञ जेहि कारन होई		सुने जे मुनि संग आए काली
देखन बाग कुँअर दोउ आये	२	पूजन गौरि सखी लै आई
अस कहि फिर चितये तेहि ओरा	३	लता ओट तब सखिन्ह लखाए
सिय मुख ससि भये नयन चकोरा	४	सरद ससिहि जिमि चितव चकोरी
भए विलोचन चारु अचंचल	५	थके नयन रघुपति छवि देखी
मनहु सकुचि निमि तजेउ दृगंचल	६	पलकन हू परिहरे निमेखें
देखि सीय सोभा सुख पावा	७	देखि रूप लोचन ललचाने
हृदय सराहत वचन न आवा	८	अधिक सनेह देह भई भोरी
सिय सोभा हिय वरनि प्रभु	९	लोचन मग रामहि उर आनी
आपन दसा विचारि	१०	दीन्हे पलक कपाट सयानी
सहज पुनीत मोर मन छोभा	११	सुमिरि पिता पन मन अति छोभा
फरकहिं सुभद अंग सुनु भ्राता	१२	वाम अंग फरकन लगे
चारु चित्त भीती लिख लीन्ही	१३	चली राखि उर स्यामल मूरति
गुरु समीप गवने दोउ भाई	१४	गई भवानी भवन बहोरी
राम कहा सब कौसिक पाहीं	१५	मोर मनोरथ जानहु नीके
सुमन पाइ मुनि पूजा कीन्ही	१६	विनय प्रेम बस भई भवानी
पुनि असीस दोउ भाइन्ह दीन्ही	१७	सुनु सिय सत्य असीस हमारी
सुफल मनोरथ होउ तुम्हारे	१८	सो वर मिलिहि जाहि मन राचा
हृदय सराहत सीय लोनाई	१९	साँवर कुँवर सखी सुठि लोना
राम लखन सुनि भए सुखारे	२०	सिय हिय हरख न जाइ कहि

और भी मिलान किया जा सकता है पर प्रधान इतने ही हैं।

करि भोजनु मुनिवर विग्यानी। लगे कहन कछु कथा पुरानी॥
विगत दिवस गुर आयसु पाई। संध्या करन चले दोउ भाई॥३॥

अर्थ : श्रेष्ठ विज्ञानी मुनि भोजन करके कुछ पुरानी कथाएँ कहने लगे। दिन बीतने पर मुनिजी की आज्ञा पा करके सन्ध्या करने दोनों भाई चले।

व्याख्या : पूजन के बाद मुनियों में श्रेष्ठ विज्ञानी मुनि विश्वामित्रजी ने भोजन किया। भोजन के बाद कुछ विश्राम चाहिए। परन्तु विज्ञानी मुनि हैं प्रमाद नहीं होने देते। विश्राम के समय में पुरानी कथाएँ कहते हैं। पुरानी कथाओं के मिस से धर्मोपदेश का विधान है। जितने पुराण हैं उनमें किसी न किसी कल्प की कथा का आश्रयण करके धर्म कहा गया है। कथा सुनने में मन लगता है। आयास नहीं मालूम होता है और उपदेश हृदय में अङ्कित होता जाता है। अतः विश्वामित्रजी की कथा दिनमें भी विश्राम के समय होती है और रात को भी होती है। यथा : कहत कथा इतिहास पुरानी। रुचिर रजनि जुग जाम सिरानी।

विगत दिवस और निसि प्रवेस एकही बात है। सन्ध्या आते ही गुरुजी की आज्ञा सन्ध्या के लिए हो जाती है। अतः दोनों भाई सन्ध्या करने चले। परमात्मा के अवतार होने पर भी नित्यकर्म का त्याग नहीं करते। क्योंकि कृतकृत्य महापुरुष भी लोकसंग्रहार्थ नित्य नैमित्तिक कर्म का परित्याग नहीं करते। चले कहने का भाव यह कि डेरे पर ही सन्ध्या नहीं कर ली जलाशय पर गये।

प्राची दिसि ससि उगेउ[1] सुहावा। सिय मुख सरिस देखि सुख पावा॥
बहुरि बिचारु कीन्ह मन माहीं। सीय[2] बदन सम हिमकर नाहीं॥४॥

अर्थ : पूर्व दिशा में सुन्दर चन्द्रोदय हुआ। सीताजी के मुख के सदृश देखकर सुख पाया। फिर मन में विचार किया कि सीताजी के मुख के समान चन्द्र नहीं है।

व्याख्या : आज चतुर्दशी या पूर्णमासी है। सायं सन्ध्या समाप्त होते होते चन्द्रोदय हो गया। देखा तो सीताजी के मुख के समान प्रकाशकत्व और आह्लादकत्व है। इससे सुख मिला। यथा : देखि सीय सोभा सुख पावा। एकाएक तो चन्द्र सीताजी के मुख के समान ही प्रतीत हुआ पर विचार करने पर राय पलट गई। यही निश्चय किया कि चन्द्रमा सीताजी के मुख के पटतर योग्य नहीं है।

दो. जन्म सिंधु पुनि बंधु बिषु, दिन मलीन सकलंकु।
सिअ मुख समता पाव किमि, चंद्र बापुरो रंकु॥२३७॥

अर्थ : यह समुद्र से जन्मा है। भाई इसका विष है। दिनमें निष्प्रभ है और कलङ्कयुक्त है। यह गरीब विचारा सीता के मुख की बराबरी कैसे कर सकता है?

व्याख्या : रहिमन जाके बाप को जल पीवै नहि कोय। ताके सुत के हृदय में क्यों न कालिमा होय। चन्द्रमा की उत्पत्ति समुद्र से है जिसका जल कोई नहीं

---

१. यहाँ प्रतीप तृतीय है।

२. चन्द्र की शोभा शरत् में ही अधिक होती है। सायंकाल में प्राचीदिशि में उदय तो चतुर्दशी या पूर्णिमा को होता है। उसी के दूसरे दिन धनुषयज्ञ था। जिसका प्रतिपद में होना सम्भव नहीं था। अतः कहना पड़ेगा कि आश्विन शुक्ल चतुर्दशी को फुलवारी की लीला हुई और पूर्णिमा को धनुषभङ्ग हुआ।

पीता। इसका प्रिय भाई विष है। यथा : प्रभु कह गरल बंधु ससि केरा। अति प्रिय निज उर दीन्ह बसेरा। विष संजुत कर निकर पसारी। जारत विरहवंत नर नारी। इसमें प्रकाश भी रात को ही रहता है। दिन को तो एकदम फीका पड़ जाता है और इसमें कलङ्क है। बापुरो रंक अर्थात् बेचारा गरीब है। प्रकाश ही इसकी सम्पत्ति है। वह इसकी अपनी नहीं है। इसे सूर्य से प्रकाश मिलता है। अतः स्वयं सम्पत्तिहीन होने से रङ्क : गरीब कहा और क्षयरोगयुक्त है इसलिए बिचारा कहा। इधर सीताजी विदेहराज जनक की बेटी हैं। यथा :

रिषिराज आज राजा जनक समान को।
आपु येहि भाँति प्रीति सहित सराहिअत रागी औ विरागी बड़भागी ऐसो आनको।
गुरु हरपद नेहु गेह बसि भो विदेह अगुन सगुन प्रभु भजन सयान को।
कहनि रहनि एक विरति विवेक नीति वेद बुध संमत पथीन निरवान को।
गांठि बिनु गुन की कठिन जड़ चेतन की छोरी अनायास साधु सोधक अपान को।

सीताजी के भाई सर्वकामफलप्रद साक्षात् मङ्गल हैं अथवा लक्ष्मीनिधि हैं। सीता दिन को भी प्रकाश करती है। यथा : करत प्रकास फिरत फुलवाई। यह निष्कलङ्क है। यथा : जिमि विरंचि सब निज निपुनाई। विरचि विस्व कहँ प्रकट दिखाई। सीता के प्रकाश से दूसरे प्रकाशित होते हैं। यथा : सुन्दरता कहँ सुंदर करई। छविगृह दीप सिखा जनु बरई। अतः सीता के मुख की समता को चन्द्र कैसे पा सकता है?

घटै बढ़ै बिरहिन दुखदाई। ग्रसै राहु निज संधिहि पाई॥
कोक सोकप्रद पंकज द्रोही। अवगुन बहुत चंद्रमा तोही॥१॥

अर्थ : घटता बढ़ता है। विरहियों को दुःख देता है। अवसर मिल जाने पर इसे राहु ग्रसता है। कोक को शोक देता है। कमल से द्रोह करता है। चन्द्रमा! तुझ में बहुत अवगुण हैं।

व्याख्या : घटता है। बढ़ता है। सदा विषमावस्था इसकी बनी ही रहती है। विरहियों को दुःख देता है। यथा :

संतत दुःखद सखी रजनीकर।
अब बिनु मन तन दहत दया तजि राखत रवि ह्वै नयन वारिधर।
जद्यपि है दारुन बड़वानल राख्यो है जलधिगभीर धीर तर।
ताहू ते परम कठिन जान्यो ससि तज्यौ पिता तव भयउ व्योमचर।
सकल विकार कोष विरहिनि-रिपु काहे ते याहि सराहत सुरनर।

यह महामलीन मरे को मारता है। पूर्णिमा प्रतिपद की सन्धि में ही चन्द्रग्रहण होता है अर्थात् राहु चन्द्र को ग्रस लेता है। यह राहु का उच्छिष्ट है। पक्षी ने किसका क्या बिगाड़ा है। सो यह कोक को शोक देता है। कमल संसार को प्रिय है। पर यह उससे भी द्रोह करता है। अतः रामजी चन्द्रमा को सम्बोधन करके कहते हैं कि तुझमें बहुत अवगुण हैं।

वैदेही मुख पटतर दीन्हें । होइ दोष बड़ अनुचित कीन्हें ॥
सिअ मुख छवि विधुव्याज बखानी । गुर पहिं चले निसा बड़ि जानी ॥२॥

अर्थ : सीता के मुख की तुलना करने से बड़ा अनुचित करने का भारी दोष होगा। चन्द्रमा के व्याज से सीताजी की मुखछवि का वर्णन किया। अधिक रात गई जानकर गुरुजी के पास चले।

व्याख्या : सीताजी के मुख की तुलना चन्द्रमा से हो नहीं सकती। उसकी कलाओं का कृष्णपक्ष में देवता पान किया करते हैं। इसलिए घटता है और यहाँ तो सीताजी के कृपाकटाक्ष को देवता चाहा करते हैं। यथा : जाकी कृपा कटाक्ष सुर चाहत चितव न सोइ। चन्द्रमा तो विरही को दुःख देता है। मरे को मारता है। किंतु सीता को तो खिन्न परम प्रिय हैं। यथा : जिनहि परम प्रिय खिन्न। चन्द्रमा राहु का जूठा है। पर सीता की उपमा जूठे से नहीं दी जा सकती। यथा : सब उपमा कवि रहे जुठारी। केहि पटतरौं विदेह कुमारी। चन्द्रमा कोकसोकप्रद पंकजद्रोही है और सीता सर्वश्रेयस्करी हैं। अतः चन्द्र से सीता के मुख की समता करना बड़ा अनुचित है। जितना बड़ा अनुचित किया जाता है उतना ही बड़ा दोष होता है। इसलिए सियमुख की चन्द्र से समता करने में बड़ा दोष है। सीय वदन सम हिमकर नाही से उपक्रम करके पटतर दीन्हे होइ दोष कहके उपसंहार करते हैं। इसी उधेड़बुन में रात अधिक निकल गई। इसलिए गुरुजी के पास चले। संध्या करन चले से उपक्रम गुरु पहँ चले से उपसंहार।

करि मुनि चरन सरोज प्रनामा । आयसु पाइ कीन्ह विश्रामा ॥
विगत निसा रघुनायक जागे । बंधु बिलोकि कहन अस लागे ॥३॥

अर्थ : मुनिजी के चरण कमल में प्रणाम करके आज्ञा पाकर विश्राम किया। रात बीतने पर रघुनायक जगे। छोटे भाई को देखकर ऐसा कहने लगे।

व्याख्या : आज मुनि के चरणकमलों का पलोटना नहीं कहा और न लक्ष्मणजी रामजी के ही चरण दबाते हैं। क्योंकि आज उसकी आवश्यकता नहीं है। आज किसी को कहीं दूर जाना नहीं पड़ा। कल तो रास्ता चलकर आये थे। अतः पैर दबाने की आवश्यकता थी।

जाकर मुनिजी के चरणकमलों में प्रणाम किया। मुनिजी ने रात अधिक जानकर तुरन्त विश्राम करने की आज्ञा दी। रामजी सोये इसलिए उनका पिछले पहर जागना कहते हैं। लक्ष्मणजी नहीं सोये अतः उनका जागना भी नहीं कहते। रामजी जागे तो लक्ष्मण को प्रस्तुत देखकर कहने लगे। लक्ष्मणजी ही इस समय सखा हैं। अतः अपने मनोगत भावों से उन्हें परिचित कराते हैं। साथी को अन्धकार में रखने से अनिष्ट का भय रहता है।

उएउ अरुन अवलोकहु ताता । पंकज कोक लोक सुखदाता ॥
बोले लखन जोरि जुग पानी । प्रभु प्रभाव सूचक मृदु बानी ॥४॥

अर्थ : हे भाई ! देखो अरुण उदय हुआ। यह कमल और कोक लोगों को सुख देनेवाला है। लक्ष्मणजी दोनों हाथ जोड़कर प्रभु के प्रभाव की सूचना देने वाली वाणी बोले।

व्याख्या : अरुण का उदय होना भाई को दिखला रहे हैं : दुःख दाता को नहीं दिखलाया सुखदाता को दिखला रहे हैं। कोक सोकप्रद पंकज द्रोही अस्त हुआ। अब पंकज कोक लोक सुखदाता का उदय हुआ। भाव यह कि कल रात को सुखदाता के उदय को कितनी रात तक हम देखते रहे। यह सूर्य का अग्रगामी सारथी अरुण है। इसका उदय होना सूर्य के आगमन का सूचक है।

लक्ष्मणजी चन्द्र के व्याज से सियमुखछवि के बखान में नहीं बोले थे। पर अरुणोदय की चरचा चलते ही बोले। प्रभु को शृङ्गाररस में मग्न देखकर विना पूछे कहते हैं। अतः हाथ जोड़कर वीररस के उदय के लिए प्रभुप्रभावसूचक मृदुवाणी बोले। बात को समझ जाने के लिए चन्द्रोदय का वर्णन रामजी ने किया। अब समझ जाना सूचन के लिए अरुणोदय का वर्णन लक्ष्मणजी करेंगे।

दो. अरुनोदय सकुचे कुमुद, उडगन जोति मलीन।
जिमि तुम्हार आगमन सुनि, भये नृपति बलहीन ॥२३८॥

अर्थ : अरुण के उदय होने से कुमुद : कोई सङ्कुचित हुए और ताराओं की ज्योति मलीन हो गई। जैसे तुम्हारा आगमन सुनकर राजा लोग बलहीन हो गये।

व्याख्या : पंकज कोकलोक को सुख तो हुआ पर कुमुद सङ्कुचित हो गये और ताराओं की ज्योति धीमी पड़ गई। यथा : मानी महिप कुमुद सकुचाने। नृपन्ह केर नासा निसि नासी। वचन किरन अवली न प्रकासी। इसी भाँति आपका आगमन सुनकर राजा लोग बलहीन हो गये। आपका आना सूर्योदय होना है और आपके आगमन का समाचार अरुणोदय है। मानी महीप लोग तो कुमुद की भाँति सङ्कुचित हो गये और तारों की भाँति सभी राजाओं का तेज दब गया। तेज का दबना ही बलहीन होना है।

नृप सब नखत करहिं उजियारी। टारि न सकहिं चाप तम भारी ॥
कमल कोक मधुकर खग नाना। हरषे सकल निसा अवसाना ॥१॥

अर्थ : सब राजा लोग ताराओं की भाँति चमक तो रहे हैं परन्तु चापरूपी अन्धकार का नाश नहीं कर सकते। कमल, कोक, भौंरे और नाना प्रकार की चिड़ियाँ रात के बीतने पर हर्षित हो उठीं।

व्याख्या : राजा लोग ताराओं की भाँति अपने को प्रकाशित कर पाते हैं। पर भारी अन्धकार जो जगत् को आवृत किये हुए है उसे हिला भी नहीं सकते। यहाँ धनुष ही अन्धकार है। वह इनका हिलाया नहीं हिल सकता। अन्धकार अभाव रूप होने से हलका है और चाप द्रव्यमय होने से भारी है।

अरुणोदय से निशा का अवसान होता है। निशा : रात से कमल कोक मधुकर और खग सभी दुःखी थे। सब निशाभङ्ग चाहते थे। अतः अरुणोदय से प्रसन्न हुए। इतने तारों ने अन्धकार नाश के लिए रात भर जोर लगाया पर ये तनिक भी आह्लादित नहीं हुए। जानते थे कि इनकी हटाई रात न हटेगी। इसी भाँति राजा लोग बात बनाते हैं। धनुष नहीं हटा सकते। यथा : वचन नखत अवली न प्रकासी।

ऐसहि प्रभु सब भगत तुम्हारे। होइहहि टूटे धनुष सुखारे॥
उयेउ [1]भानु बिनु श्रम तम नासा। दुरे नखत जग तेजु प्रकासा॥२॥

अर्थ : हे प्रभो! इसी भाँति तुम्हारे सब भक्त धनुष के टूटने से सुखी होंगे। सूर्य उदय हुए कि अनायास ही अन्धकार का नाश हुआ। तारे छिपे और संसार में तेज का प्रकाश हो गया।

व्याख्या : लक्ष्मणजी कमल कोक मधुकर और खग से भक्तों को उपमित करते हैं। क्योंकि कमल कोकादि चार हैं और भक्त भी चार प्रकार के होते हैं : १. ज्ञानी २. जिज्ञासु ३. अर्थार्थी और ४. आर्त। इनमें ज्ञानी की उपमा कमल से है। क्योंकि वह साक्षात् सूर्य से प्रेम करता है। जिज्ञासु की उपमा कोक से है। क्योंकि उसे अपनी कोकी की खोज है। सूर्य के बिना उसकी प्राप्ति सम्भव नहीं। इसलिए सूर्य से प्रेम करता है। अर्थार्थी की उपमा मधुकर : भौंरे से है। उसे मधु चाहिए। सूर्य उदय हों कमल खिले तब उसे मधु मिले। इसलिए सूर्य से प्रेम करते हैं। आर्त की उपमा खग नाना से है। क्योंकि अपने पेट का भोजन बच्चे को खिलाकर भूखे पेट अपने घोंसले में बैठे आर्त हो रहे हैं। रात को सूझता नहीं कहाँ जाँय। जब सूर्य निकले तब वे चारे की खोज में चलें। इसलिए उन्हें सूर्य प्रिय है।

अवध में दो ही प्रकार के भक्त हैं। १. ज्ञानी और २. जिज्ञासु। यथा : मनहु कोक कोकी कमल दीन विहीन तमारि। पर लक्ष्मणजी शीतल सुभग भगत सुखदाता हैं। चारों की याद दिलाते हैं। ये चारों चापतमभारी के भग्न होने से सुखी होंगे।

सूर्य के उदय होते ही बिना श्रम के ही तम का नाश होगा। यथा : छुअत टूट पिनाक पुराना। नक्षत्र छिप जाँयगे। यथा : रावन बान महाभट भारे। देखि सरासन गँवहि सिधारे। जहँ तहँ कायर गँवहिं पराने। संसार में तेज भर उठेगा। यथा : कोदंड भंजेउ राम तुलसी जयति वचन उचारहीं। महि पातालं नाक जस व्यापा। राम वरी सिय भंजेउ चापा।

रवि निज उदय व्याज रघुराया। प्रभु प्रतापु सब नृपन्ह दिखाया॥
तब भुजबल महिमा उदघाटी। प्रकटी धनु विघटन परिपाटी॥३॥

अर्थ : हे रघुराया! सूर्य ने अपने उदय के बहाने से प्रभु का प्रताप सब

---

१. यहाँ हेतु अलङ्कार है।

राजाओं को दिखा दिया। आप के भुजबल की महिमा को उघाड़ने के लिए धनुष तोड़ने की प्रथा प्रकट हुई है।

व्याख्या : रामजी ने चन्द्रमा के व्याज से सियमुखछवि का वर्णन करके अपनी आसक्ति लक्ष्मणजी से प्रकट की। लक्ष्मणजी अरुणोदय के वर्णन के व्याज से कह रहे हैं कि आपके भुजबल की महिमा छिपी है। शिवजी का धनुष आप ही से टूटेगा। दूसरे से टूट सकता नहीं। यह धनुषभंग की प्रथा उसके उघाड़ने के लिए प्रचलित हुई है। भावार्थ यह कि आप ही धनुष तोड़ेंगे और विश्वव्यापिनी कीर्ति का लाभ करेंगे।

बंधु वचन सुनि प्रभु मुसुकाने। ह्वै सुचि सहज पुनीत नहाने ॥
नित्यक्रिया करि गुरुपहिं आए। चरन सरोज सुभग सिर नाए ॥४॥

अर्थ : भाई की बात सुनकर प्रभु मुसकराये। और स्वभाव से पवित्र होने पर भी शुचि होकर स्नान किया। नित्यकर्म करके गुरुजी के पास आये और चरण-कमलों में सुन्दर सिर झुकाया।

व्याख्या : रामजी भाई की बात सुनकर मुसकराये कि मेरे अभिप्राय को लक्ष्मणजी समझ गये। अब स्पष्ट कहे देते हैं कि धनुष आप तोड़ेंगे और आप का सुयश होगा। बाह्याभ्यन्तर शुचि होकर तब स्नान किया अर्थात् दन्तधावनादि से शुचि होकर स्नान किया। जो सहज शुचि हैं वह भी लोकसंग्रह के लिए यथाशास्त्र नित्य शुद्धि करते हैं। इसी भाँति लोगों को आचरण करना चाहिए।

सबसे पहिला काम शुचि होकर नित्यकर्म का लोप नहीं होने देना है। तत्पश्चात् गुरुदेव की वन्दना करने का विधान है। अतः गुरुजी के चरणकमलों में सिर नवाया कि अब मैं सावकाश हूँ। जो आज्ञा हो सो करूँ।

सतानंद तब जनक बोलाए। कौसिक मुनि पहिं तुरत पठाए ॥
जनक विनय तिन्ह आइ सुनाई। हरषे बोलि लिये दोउ भाई ॥५॥

अर्थ : तब जनक ने सतानन्द को बुलाया और तुरन्त विश्वामित्रजी के पास भेजा। उन्होंने आकर राजा जनक की विनती कह सुनाई। मुनिजी प्रसन्न हुए और दोनों भाइयों को बुला लिया।

व्याख्या : यह समाचार पाने के बाद कि दोनों भाई और गुरुजी नित्यकृत्य से खाली हो गये। राजा ने सतानन्दजी को भेजा। इस प्रतीक्षा में रहे कि ये लोग खाली हो जायँ तब धनुषयज्ञ आरम्भ हो। राजा लोग पहिले से ही आकर डँटे हुए हैं। जनकजी धनुषयज्ञ की प्रक्रिया रोके हुए हैं। अतः सतानन्दजी को तुरन्त भेजा। विश्वामित्रजी के आदर के लिए स्वयं पुरोहितजी बुलाने गये।

जनकजी का विनय सुनाया कि दोनों राजकुमारों के साथ मुनिराज पधारें। महाराज जनकजी की चतुरता पर प्रसन्न हुए कि दोनों भाइयों को निमन्त्रण भेजा है। अतः पास बुलाया। इस समय वहाँ नहीं थे। सुन्दर सदन के उस खण्ड में थे जो इन दोनों भाइयों के रहने के लिए नियत हुआ था।

दो. सतानंद पद वंदि प्रभु, बैठे गुर पहिं जाइ।
चलहु तात मुनि कहेउ तब, पठए जनक बोलाइ ॥२३९॥

अर्थ : सतानन्द के चरणों की वन्दना करके गुरुजी के पास बैठ गये। तब मुनिजी बोले : हे तात ! चलो राजा जनक ने बुला भेजा है।

व्याख्या : गुरुजी की वन्दना हो चुकी है। अतः सतानन्दपदवन्दना कहते हैं। पर उनके पास न बैठे। गुरुजी के पास जाकर बैठ गये। क्योंकि उन्होंने बुलाया था। ऋषि का रूप देखकर वन्दना की। मुनिजी कहते हैं कि राजा जनक का बुलावा आया है। भाव यह कि वस्त्र भूषण शस्त्रास्त्र धारण कर लो। राज समाज में चलना है और अब तुम्हारा चलना अनाहूत नहीं है।

सीय स्वयंबरु देखिअ जाई। ईसु काहि धौं देइ बड़ाई ॥
लषन कहा जस भाजन सोई। नाथ कृपा तव जापर होई ॥१॥

अर्थ : चलकर सीता का स्वयंवर देखना चाहिए। देखें महादेव किसे बड़ाई देते हैं। लक्ष्मण ने कहा नाथ ! यश तो उसी को मिलेगा जिस पर आपकी कृपा होगी।

व्याख्या : बुलाने का कारण कहते हैं : सीता का स्वयंवर देखने के लिए। अब चलकर यह देखना है कि महादेव किसे बड़ाई देते हैं। धनुषभङ्ग बिना महादेव की कृपा के कोई कर नहीं सकता। किसका सामर्थ्य है जो बिना उनकी कृपा धनुष-भङ्ग कर सके !

लक्ष्मणजी तुरन्त बोल उठे कि यशभाजन तो निश्चय हो चुका है। जिस पर आपकी कृपा है उसे आप आशीर्वाद दे चुके हैं : सुफल मनोरथ होउ तुम्हारे। अतः यशभाजन कौन होगा यह तो पहिले से ही निश्चित है !

हरषे मुनि सब सुनि बर बानी। दीन्हि असीस सबहिं सुखमानी ॥
पुनि मुनिवृन्द समेत कृपाला। देखन चले धनुपमखसाला ॥२॥

अर्थ : लक्ष्मणजी की वरवाणी सुनकर मुनिलोग प्रसन्न हो गये। सब ने सुख मानकर आशीर्वाद दिया। तब मुनिलोगों के सहित कृपाल धनुषयंज्ञशाला देखने चले।

व्याख्या : लक्ष्मणजी की वाणी को वरवाणी कहा। क्योंकि गुरुभक्ति तथा रामभक्ति से ओत-प्रोत थी। सब मुनि विश्वामित्रजी के भक्त थे। रामजी पर सबकी कृपा थी। सब चाहते थे कि रामजी धनुष तोड़ें। लक्ष्मणजी के मुख से गुरुजी की प्रशंसा सुनकर सब प्रसन्न हो उठे। आशीर्वाद देने लगे।

कृपाल धनुषयज्ञशाला देखने चले। स्वयंवर देखने नहीं चले। स्वयंवर तो इनका होगा देखनेवाले दूसरे होंगे। मुनिवृंद साथ में है। जनकपुर आते ही प्रधानता इनकी हो गई।

रंगभूमि आए दोउ भाई । असि सुधि सब पुरवासिन्ह पाई ॥
चले सकल गृह काज बिसारी । बालु जुवान जरठ नर नारी ॥३॥

अर्थ : सब पुरवासियों को समाचार मिला कि दोनों भाई रङ्गभूमि में आये। सब बाल, युवा, वृद्ध नरनारी घर का काम भुलाकर चले।

व्याख्या : नगर के नरनारी, बाल, युवा, वृद्ध सबको दोनों भाइयों के दर्शन का बड़ा चाव था। रामजी यहाँ से चले। इतने में ही नगर में समाचार फैल गया कि रंगभूमि में आये। इसी भाँति जब नगर देखने चले थे तब ऐसा ही समाचार फैला कि देखन नगर भूप सुत आये।

पहिले धाये धाम काम सब त्यागी। मनहु रंक निधि लूटन लागी। सो लूट चुके हैं अब रङ्क नहीं हैं। इसलिए धाये नहीं चले। दूसरी यह बात है कि जानते हैं कि रंगभूमि में देर तक ठहरना होगा। अतः त्वरा का कोई कारण नहीं था। समाचार सबने पाया था इसलिए सब चले। पहिले गृहकार्य त्यागकर चले थे। इस बार उसकी सुधि भी बिसरा दी। तीसरा भाव यह कि बाल और जरठ भी साथ में हैं। अतः दौड़ने का सुअवसर नहीं है। नारियाँ भी चली जा रही हैं।

देखी जनक भीर भै भारी । सुचि सेवक सब लिये हँकारी ॥
तुरत सकल लोगन्ह पहिं जाहू । आसन उचित देहु सब काहू ॥४॥

अर्थ : जनक ने देखा भीड़ तो भारी हुई तब शुचि सेवकों को बुलाया। कहा कि तुरन्त सब लोगों के पास जाकर सबको उचित आसन दो।

व्याख्या : भीड़ पहिले ही पहुँच गई। प्रभु तो मत्त मंजु कुंजरवर गामी हैं। अतः पीछे पहुँचेंगे भारी भीड़ देखकर जनकजी ने सोचा कि बिना व्यवस्था काम न चलेगा। अतः शुचि सेवकों को : जे सपनेहुँ निज धर्म न डोले बुलाया। कहा कि जल्दी करो सबको उचित आसन दो। देर करने से अनुचित आसन पर बैठ जायँगे। फिर उठाने में अपमान होगा। अतः व्यवस्था करके पहिले ही से योग्य आसन सबको दो। सत्कार से बिठाओ। यह महाराज जनक की शासनपटुता तथा प्रजापालकता है।

दो. कहि मृदु वचन विनीत तिन्ह, बैठारे नर नारि ।
उत्तम मध्यम नीच लघु, निज निज थल अनुहारि ॥२४०॥

अर्थ : उन्होंने मृदु और विनीत वचन कहकर उत्तम, मध्य, नीच और लघु नर-नारियों को उनके स्थल के अनुरूप बिठलाया !

व्याख्या : शुचि सेवक हैं। राजपुरुष होने का अभिमान नहीं है। अपने सेवक धर्म को जानते हैं। अतः सत्कार के साथ सबको मृदु तथा विनीत वचन कहकर यथायोग्य स्थानों पर बिठलाया। नगर के सब ओर के लोग चले आये। अतः सब सेवकों को भेजा। जो उत्तम, मध्यम नीच लघु से परिचित हों।

राजकुँअर तेहि औसर आए। मनहुँ मनोहरता तन छाए ॥
गुन सागर नागर वर वीरा। सुन्दर स्यामल गौर सरीरा ॥१॥

अर्थ : उसी अवसर पर राजकुमार आगये। मानो मनोहरता शरीर पर छाई हुई है। सुन्दर साँवले और गोरे शरीरवाले, गुण के समुद्र, नागर और श्रेष्ठ वीर हैं।

व्याख्या : जब भीड़ बैठ चुकी। उसी अवसर दोनों राजकुमार आये। मानो मनोहरता ने सम्पूर्ण शरीर में डेरा डाल दिया है। यथा : चित्रकूट रघुनन्दन छाए। छाए शब्द का प्रयोग डेरा डालने के अर्थ में अनेक स्थलों में प्रयुक्त है। सखी कह चुकी है : कहहु सखी अस को तनुधारी। जो न मोह यह रूप निहारी। दोनों राजकुमारों का वर्णन एक साथ करते हैं। इसलिए सुन्दर स्यामल गौर सरीरा कहा। बाहर की शोभा कहकर भीतरी शोभा भी कहते हैं। उनके गुणों का वारापार नहीं। इसलिए गुणसागर कहा। बहुत बड़े गुणी में भो भद्दापन देखा गया है। अतः उसके निवारण के लिए नागर कहा। सुन्दरता, गुणबाहुल्य और शौर्य ये तीनों एकत्र नहीं देखे जाते। यहाँ तीनों का योग है। इसलिए वरवीरा कहा।

राज समाज विराजत रूरे। उड़गन महु जिनु जुग विधु पूरें ॥
जिन्हकें रही भावना जैसी। प्रभु मूरति तिन्ह देखी तैसी ॥२॥

अर्थ : राजसमाज में अच्छे विराजमान हो रहे हैं। जैसे तारागणों में दो पूर्ण चन्द्र हों। जिसकी जैसी भावना रही प्रभु की मूर्ति उसने वैसी ही देखी।

व्याख्या : राजसमाज में ऐसे शोभित हुए जैसे तारागणों में दो पूर्णचन्द्र उदय हों। भाव यह कि प्रकाश से रङ्गभूमि भर उठी। राजा लोग इनके सामने ताराओं की भाँति हतप्रभ हो गये। उनके आश्रित से जान पड़ने लगे। क्योंकि चन्द्र ही तारापति हैं।

भक्त अभक्त के हृदयानुसार इनका विषम विहार होता है। अतः सबको इन्होंने उनके पृथक् भावनानुसार पृथक् रूप से दर्शन दिया। यथा : यद्यपि सम नहि राग न रोषू। गहहि न पाप पूँनु गुन दोषू। तदपि करहिं सम विषम विहारा। भगत अभगत हृदय अनुसारा। तथा अपने अखिल रसामृत मूर्ति होने का वैभव दिखलाया।

देखहिं[1] रूप महारनधीरा। मनहुँ वीर रस धरे सरीरा ॥
डरे कुटिल नृप प्रभुहि निहारी। मनहुँ भयानक मूरति भारी ॥३॥

अर्थ : महारणधीरों ने रूप देखा। मानो वीररस ने ही शरीर धारण कर रक्खा है। प्रभु को देखकर कुटिल राजा डर गये मानों भारी भयानक मूर्ति है।

---

१. यहाँ प्रथम उल्लेख है।

व्याख्या : उस समाज में बड़े-बड़े रणधीर नरशरीर धारण करके आये थे। यथा : देव दनुज धरि मनुज सरीरा। विपुल वीर आये रनधीरा : वे नरशरीर धारण किये बैठे थे। उन्हें मालूम हुआ कि मानो स्वयं वीररस ही नरशरीर में आगया। प्राकृत में द्विवचन नहीं होता। उसके लिए बहुवचन ही आता है। यथा : द्विवचनस्य बहुवचनम् : प्रा. प्र.। यहाँ दोनों राजकुमारों के लिए शरीरा बहु वचन का प्रयोग हुआ है। जश्शसोर्लोपः इस सूत्र से विसर्ग का लोप हुआ शरीर शब्द का पुंल्लिङ्गवत् व्यवहार हुआ है। लिङ्गमतन्त्रम्। प्राकृत में लिङ्ग का निर्णय नहीं है। प्रभु मूरति देखी तिन तैसी ऊपर कह आये हैं। इससे कोई यह न समझ ले कि प्रभु शब्द से रामजी का ही बोध होता है। लक्ष्मणजी भी प्रभु हैं। यथा : जय अनंत जय जगदाधारा। तुम प्रभु सब देवन्हि निस्तारा। इससे वीर रस कहा।

कुटिल राजा तो प्रभु को देखकर काँप उठे। उन्हें मालूम हुआ कि मानो भारी भयानक मूर्ति हैं। भयानकरस के अधिष्ठाता यम हैं। भावार्थ यह कि कुटिल राजाओं को तो साक्षात् यमस्वरूप ही दिखाई पड़े। इसलिए दुष्टहृदय पुरुष उनके सम्मुख नहीं होते। वे भयानां भयं भीषणं भीषणानाम् हैं। दुष्टहृदय को उनकी सत्ता स्वीकार करने में महाभय होता है। यथा : जौ पै दुष्ट हृदय सो होई। मोरे समुख आव कि सोई। इससे भयानक रस कहा।

रहे असुर छल छोनिप वेखा। तिन्ह प्रभु प्रगट काल सम देखा ॥
पुरबासिन्ह देखे दोउ भाई। नरभूषन लोचन सुखदाई ॥४॥

अर्थ : वहाँ असुर छल से राजा के वेष में थे। उन्होंने प्रभु को साक्षात् काल के समान देखा। पुरवासियों ने दोनों भाइयों को देखा कि मनुष्य जाति के भूषण नेत्रों को सुख देने वाले हैं।

व्याख्या : छली असुर राजा के वेष में थे। जिसमें उन्हें कोई पहिचान न सके। पर काल सबको पहिचानता है। वेष बदलने से कोई बच नहीं सकता। उन्होंने देखा कि प्रत्यक्ष काल आ गया। अब हम नहीं बच सकते। क्योंकि काल का दर्शन मुमूर्षु को ही होता है और कोई काल को नहीं देख सकता। यथा : मोहि बिलोकु तोर मैं काला। यहाँ कालरूप कहकर वीभत्स रस कहा।

पुरनरनारि सुभग सुठि संता। धर्मशील ज्ञानी गुनवंता। ये पुरवासी संत हैं। इन्हें नरभूषण दिखाई पड़े। नरभूषण कहने का कारण कहते हैं कि लोचनसुखदाई हैं। लोचनसुखद होने के लिए ही भूषण पहिना जाता है। धाए धाम काम सब त्यागी। मनहु रंक निधि लूटन लागी। बड़ा बहुमूल्य भूषण है। इसलिए दौड़े।

दो. नारि विलोकहिं हरषि हिय, निज निज रुचि अनुरूप।
जनु सोहत सिंगारु धरि, मूरति परम अनूप ॥२४१॥

अर्थ : स्त्रियाँ हर्षित होकर अपनी अपनी रुचि के अनुरूप देख रही हैं। मानो परम अनूपमूर्ति धारण करके शृङ्गार शोभायमान हो।

व्याख्या : रङ्गभूमि की प्रथम पंक्ति में राजा लोग हैं। दूसरी पंक्ति में पुरवासी हैं। तीसरी पंक्ति में स्त्रियाँ हैं। उसी क्रम से यहाँ वर्णन है। भिन्नरुचिर्हि लोकः। संसार में सबकी भिन्न रुचि होती है। इसी भाँति स्त्रियों की भी रुचि भिन्न है। परन्तु यह मूर्ति ऐसी अनूप है कि जिसकी जैसी रुचि है तदनुरूप रूप उसको दिखाई पड़ रहा है। अतः निरीक्षण में हर्ष कहते हैं। मानो शृङ्गाररस ही परम अनूप मूर्ति से विराजमान है।

विदुषन प्रभु विराटमय दीसा। बहु मुख कर पग लोचन सीसा ॥
जनक-जाति अवलोकहिं कैसे। सजन सगे प्रिय लागहिं जैसे ॥१॥

अर्थ : विद्वानों ने प्रभु को विराट् रूप में देखा कि बहुत से मुख, हाथ, पैर, आँखें और सिर हैं। जनकजी के भाई बिरादरी कैसे देखते हैं जैसे अपने सगे सम्बन्धी प्रिय लगते हैं।

व्याख्या : विद्वान् देवता रूप हैं। उन्हें सदा विराट् रूप के दर्शन की इच्छा रहती है। यथा : देवा अप्यस्य रूपस्य नित्यं दर्शनकांक्षिणः। उन्हें भगवान् का अनेक बाहु उदर मुख आँख सहित अनन्तरूप दिखाई पड़ा। उस विश्वेश्वर विश्वरूप का आदि मध्य और अन्त कुछ भी मालूम न हुआ। यथा : अनेक बाहूदरवक्त्रनेत्रं पश्यामि त्वां सर्वतोऽनन्तरूपम्। नान्तं न मध्यं न पुनस्तवादिं पश्यामि विश्वेश्वर विश्वरूप। इससे अद्भुतरस कहा।

स्वजन का सर्वत्र लवराम् इस प्राकृत व्याकरण के सूत्र से वकार का लोप होकर सजन रूप हो गया। सजन सगे का अर्थ हुआ सगे सम्बन्धी दामाद बहनोई आदि। अर्थात् जैसा नाता पड़नेवाला था वैसे प्रिय जनक के जाति लोगों को जान पड़े। इससे हास्यरस कहा।

सहित विदेह बिलोकहिं रानी। सिसु सम प्रीति न जाति बखानी ॥
जोगिन्ह परम तत्त्वमय भासा। सांत सुद्ध सम सहज प्रकासा ॥२॥

अर्थ : विदेह के साथ रानियाँ देखती हैं। उन्हें वैसी प्रीति हुई जैसी छोटे बच्चों पर होती है। उसका वर्णन नहीं हो सकता। योगियों को शान्त शुद्ध सम सहज प्रकाशरूप परम तत्त्वमय दिखलाई पड़े।

व्याख्या : बिलोकहिं रानी पद से रानियों का अनेक होना सिद्ध हुआ। चार रानियों का पता चलता है। यथा : चतसृभिस्तु भार्याभिर्यज्ञार्थं दीक्षितोऽभवत्। का. पु। और जिस समय सीताजी पृथ्वी से उत्पन्न हुई थीं उन्हीं के साथ दो पुत्र भी उत्पन्न हुए थे। यथा : द्वौ पुत्रौ तस्य सञ्जातौ यज्ञभूमौ मनोहरौ। एका च दुहिता साध्वी भूम्यन्तरगता शुभा। अतः रानियाँ शिशुप्रीति से अपरिचित नहीं थीं। सो रानियों के सहित राजा विदेह को राजकुमारों पर शिशु के समान प्रीति हुई। परन्तु उस प्रीति में ऐसा उत्कर्ष था कि जिसका वर्णन नहीं हो सकता। अर्थात् वात्सल्यरस की पराकाष्ठा की प्रतीति हुई।

योगियों का परम तत्त्व पचीसवाँ है। चौबीस तत्त्व सांख्यशास्त्र ने माने हैं। परन्तु योगशास्त्र पचीसवाँ तत्त्व ईश्वर तत्त्व को स्वीकार करता है। इसलिये उसे परम तत्त्व कहा। यह परम तत्त्व क्लेश : अविद्या अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश, कर्म : विहित, प्रतिविद्ध तथा मिश्रित, विपाक : कर्मफल, जाति, आयु और भोग और आशय : वासना से छुवाई नहीं रखता। यथा : क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः। पा. १-२४। अतः शान्त, शुद्ध, सम और सहज प्रकाशरूप कहा। सो योगियों ने परम तत्त्वमय देखा। इससे शान्तरस कहा।

हरिभगतन्ह देखे दोउ भ्राता। इष्टदेव इव सब सुखदाता॥
रामहि चितव भायँ जेहि सीया। सो सनेहु सुखु नहिं कथनीया॥३॥

अर्थ : हरिभक्तों ने दोनों भाइयों की सब सुख देनेवाले इष्टदेव की भाँति देखा और रामजी को जिस भाव से सीताजी देखती थीं वह स्नेह और सुख कथन योग्य नहीं था।

व्याख्या : सब सुखदाता इष्टदेव हैं। वही पति हैं। पुरुष हैं और सब जीव परा प्रकृति हैं। प्रकृतिं विद्धि मे पराम्। जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत्। सो हरिभक्तों ने दोनों भाइयों को इष्टदेव रूप देखा। महात्माओं का मत है कि यहाँ इव शब्द एव के अर्थ में आया है।

अब सीताजी के देखने में ग्रन्थकार प्रभु न कहकर रामहिं कहते हैं। क्योंकि प्रभु में लक्ष्मणजी का भी ग्रहण होता है। ऊपर का वर्णन दोनों भाइयों के विषय में है। केवल सीताजी के देखने में रामजी का अकेले उल्लेख है। क्योंकि सीताजी उन्हीं को देखती हैं। उनके देखने में जो स्नेह और सुख का भाव है वह कथन योग्य नहीं है। क्योंकि उनकी प्रीति अलौकिक है। यथा : मन विहँसे रघुवंसमनि प्रीति अलौकिक जान।

उर अनुभवति न कहि सक सोऊ। कवन प्रकार कहै कवि कोऊ॥
येहि विधि रहा जाहि जस भाऊ। तेहि तस देखेउ कौसलराऊ॥४॥

अर्थ : वह भी हृदय में अनुभव करती है कह नहीं सकतीं तो कोई कवि किस प्रकार से कहे। इस भाँति जिसका जैसा भाव था उसने कोसलराउ को वैसा देखा।

व्याख्या : लौकिक भावों के लिए शब्द हैं। क्योंकि वे व्यवहार में आते हैं। अलौकिक के लिए शब्द नहीं मिलते क्योंकि व्यवहार में उनका चलन नहीं। संसार दाम्पत्य प्रेम से परिचित है। अतः उसके लिए शब्द हैं। परन्तु राम-सीय में ऐकात्म्य भाव है। यथा : गिरा अर्थ जल वीचि सम कहिअत भिन्न न भिन्न। अतः इस प्रकार की प्रीति लोक में नहीं है। लोक में कोई इस प्रीति का अनुभव नहीं करता। अतः उसके लिए शब्द भी नहीं हैं। सीताजी उसका अनुभव करती हैं। वे भी नहीं कह सकतीं। क्योंकि शब्द की वहाँ तक गति नहीं।

सबने अपने अपने हृदयगत भावों का प्रतिबिम्ब प्रभु में देखा।

दो. राजत राज समाज महुँ, कोसलराज किसोर।
सुन्दर स्यामल गौर तनु, बिस्व बिलोचन चोर ॥२४२॥

अर्थ : विश्व विलोचन के चोर सुन्दर श्यामल और गौर शरीरवाले। कोसलराज के बेटे राजसभा में विराजित हो रहे हैं।

व्याख्या : राज समाज विराजत रूरे से प्रसङ्ग छोड़ा था। अब फिर वहीं से उठा रहे हैं। राजत राज समाज महँ कोसलराजकिसोर। दोनों कुमारों की शोभा है। अतः सुन्दर स्यामल गौर तन कहते हैं। कोसल राजकिसोर कहने का भाव यह कि राजसमाज को इनके कोसलराजकिसोर होने का ही परिचय मिला है। ये अद्भुत चोर हैं। बिना चोरी किये चुराते हैं। नगर देखने में सबका मन चुराया। यथा : चितवत चितहि चोर जिमि लेही और यहाँ राजसमाज में सबकी आँखें चुरा लीं। इसलिए श्रुति तस्कराणां पतये नमः कहती है। अर्थात् सबकी आँखें इनके रूप में बँध गईं। कोई दूसरी ओर देखता ही नहीं है।

सहज मनोहर मूरति दोऊ। कोटि [1]काम उपमा लघु सोऊ ॥
सरद चंद निंदक मुख नीके। नीरज नयन भावते जी के ॥१॥

अर्थ : दोनों मूर्तियाँ स्वभाव से ही सुन्दर थीं। कोटि काम की उपमा भी छोटी पड़ती है। सुन्दर मुख शरद के चन्द्रमा को लजानेवाले हैं। कमल ऐसी आँखें मन को अच्छी लगती हैं।

व्याख्या : आँखों के ही चोर नहीं मन के भी चोर हैं। कोटि काम की उपमा दी जा सकती है। फिर भी वह बहुत छोटी पड़ती है। भुसुण्डिजी कहते हैं : जिमि कोटि सत खद्योत सम रवि कहत अति लघुता लहै। जैसे करोड़ों खद्योतों की सूर्य से उपमा बहुत छोटी पड़ती है। रामजी सौन्दर्य के सूर्य हैं। उनके सामने काम खद्योत है। मुख शरत् काल के चन्द्र से भी सुन्दर हैं। अपेक्षाकृत सुन्दर न कहकर निन्दक कहा। यहाँ ललितालङ्कार हुआ। कमल सी आँखें हैं। अधिकता यह है कि वे मनभावनी हैं। क्योंकि उनमें चितवन है कमल में नहीं है।

चितवन चारु मार मन हरनी। भावत हृदय जात नहिं बरनी ॥
कल कपोल श्रुति कुंडल लोला। चिबुक अधर सुंदर मृदु बोला ॥२॥

अर्थ : सुन्दर चितवन काम के मन को हरण करनेवाली है। वह मन को अच्छी लगती है। वर्णन नहीं की जा सकती। सुन्दर कपोल हैं और कान के कुण्डल चञ्चल हैं। सुन्दर ठुड्ढी और होठ हैं। कोमल वाणी है।

व्याख्या : अब चितवन का वर्णन करते हैं। यह स्वयं काम के मन को हरण

---

१. यह पञ्चम प्रतीपालङ्कार है।

करती है दूसरों की गणना ही क्या है ? उसका वर्णन नहीं हो सकता। केवल इतना ही कह सकते हैं कि मन को अच्छी लगती है। महाकवि बिहारी अपने को प्राकृत जीव के चितवन वर्णन में असमर्थ पाते हैं। औरै कछू कहकर वर्णन करते हैं। यथा : अनियारे दीरघ नयन कितेन तरुणि समान। वै चितवन औरै कछू जेहि बस होत सुजान। यहाँ तो अखिलरसामृतसार की चितवन है। इसे कौन वर्णन कर सकता है ? दर्पण सा कपोल है। उसे लोल कुण्डल बार बार चूमता है। उस कुण्डल की झलक कपोलों में प्रतिबिम्बित हो रही है। चिबुक और अधर सुन्दर हैं। उनकी उपमा नहीं है इससे नहीं दी। उन्हीं होठों द्वारा मृदुवाणी उच्चरित होती है तो शोभा और वढ़ जाती है।

कुमुद बंधु कर निंदक हासा। भृकुटी विकट मनोहर नासा ॥
भाल विसाल तिलक छलकाँहीं। कच बिलोकि अलि अवलि लजाहीं ॥३॥

अर्थ : चाँदनी की निन्दा करनेवाली हँसी, टेढ़ी भौंहें, मनोहर नासिका, विशाल भाल पर झलक रहे हैं और बालों को देखकर भौंरों की श्रेणी लज्जित होती है।

व्याख्या : शरच्चन्द्रनिंदक मुख है। मुख पर प्रकाश हँसी से ही आता है। इसलिए हँसी को चाँदनी का निन्दक कहना प्राप्त है। काम के धनुष के समान टेढ़ी भौंहें हैं। भौंहें की शोभा टेढ़ी होने में है। भाल विसाल उच्च विचार का स्थान है। उस पर तिलक झलक रहा है। प्रभु के शरीर की द्युति से तिलक में चमक आ गई है। पहिले कह आये हैं तिलक रेख सोभा जनु चाकी। मेचक कुंचित केश हैं। इसलिए अलिअवलि का लजाना कहते हैं।

पीत चौतनी सिरन्हि सुहाई। कुसुम कली बिच बीच बनाई ॥
रेखा रुचिर कंबु कल ग्रीवाँ। जनु त्रिभुवन सोभा की सीवाँ ॥४॥

अर्थ : पीली चौगोसिया चार कोनेवाली : टोपियाँ सिर पर शोभित हैं। बीच बीच में फूलों की कलियाँ बनी हुई हैं। शङ्ख ऐसे सुन्दर गले में सुन्दर रेखाएँ हैं। मानो ये तीनों भुवनों की शोभा की सीमा हैं।

व्याख्या : बाजार में गये थे तब रुचिर चौतनी पहन रक्खी थी। आज़ राजसमाज में जाना था इसलिए कामदार टोपियाँ पहने हुए हैं। शङ्ख से सुन्दर कण्ठ में तीन रेखाएँ हैं। मानो उन्होंने त्रिभुवन की शोभा को मर्यादित कर रक्खा है। अर्थात् जितनी शोभा हैं वे इसके नीचे तक ही हैं। पद पाताल सीस अजधामा। पैर पाताल और सिर ब्रह्मलोक है। अतः त्रैलोक्य की शोभा गले के नीचे ही नीचे है। सातों पाताल, भूलोक, भुवर्लोक और स्वर्लोक उनके उरःस्थल तक हैं। इसके ऊपर महः जनः तपः और सत्यलोक ये चारों ब्रह्मलोक के भेद हैं। ग्रीवा महर्लोक है। मुख जनलोक है। ललाट तपलोक है और शीर्ष सत्यलोक है। यथा : उरःस्थलं ज्योतिरनीकमस्य ग्रीवा महर्वदनं वै जनोऽस्य। तपोररराटीं विदुरादिपुंसः सत्यं तु

शीर्षाणि सहस्रशीर्ष्णः। भा. २. १. २८। अतः उन उन लोकों की शोभा उन उन अङ्गों में है। महर्लोक के नीचे त्रिलोक है। अतः ग्रीवा की तीन रेखा को त्रिभुवन की शोभा की सीमा होना पूर्णतः उपयुक्त है।

दो. कुंजर मनि कंठा कलित, उरन तुलसिका माल।
वृषभ कंध केहरि ठवनि, बल निधि बाहु बिसाल॥२४३॥

अर्थ : गजमुक्ता का सुन्दर कण्ठा, छातियों पर तुलसी की माला, साँड़ सा कन्धा, सिंह सा ठाट, विशाल भुजाएँ बल के भण्डार हैं।

व्याख्या : आज नाग मणिमाला नहीं है। तुलसीका माल गले है। गजमुक्ता का कण्ठा है। वृषभकन्ध होना वीर का लक्षण है। केहरि ठवनि में वीर की शोभा है और बाहु बिसाल वीर के पराक्रम का बोधक है। उरन तुलसिका माल से शृंङ्गार की पूर्णता कही।

कटि तूनीर पीत पट बाँधे। कर सर धनुष बाम बर काँधे॥
पीत जग्य उपबीत सुहाए। नख सिख मंजु महाछबि छाए॥१॥

अर्थ : कमर में पीताम्बर और तरकस बाँधे हुए थे। हाथ में तीर और बायें कन्धे पर धनुष था। पीला यज्ञोपवीत शोभित था। नख से शिख तक महाछवि छाई हुई थी।

व्याख्या : प्रभु की मूर्ति इस समय अस्त्र शस्त्र से सुसज्जित है। तरकस पीताम्बर से बँधा हुआ है जिसमें संग्राम उपस्थित होने पर गिरे नहीं। तुरन्त चोट करने के लिए एक तीर तरकस से बाहर हाथ में है। बायें कन्धे पर धनुष है जिसमें लेते देर न लगे। अभी यज्ञ की रक्षा करके चले आ रहे हैं। भेंट में ब्राह्मणों से पीतयज्ञोपवीत मिला है। उसे पहने हैं। आज का पीतयज्ञोपवीत भी जीत का ही चिह्न है। शिखनख वर्णन करके अब नखशिख आलोचना करते हैं। मनहु मनोहरता छवि छाए से उपक्रम करके महा छवि छाए से उपसंहार करते हैं। सीताजी स्वयं महाछवि हैं। यथा : छविगन मध्य महा छवि जैसी और प्रभु महा छवि छाए हैं अर्थात् रमानिवास हैं।

देखि लोग सब भये सुखारे। एकटक लोचन चलत न तारे॥
हरषे जनक देखि दोउ भाई। मुनि पद कमल गहे तब जाई॥२॥

अर्थ : देखकर सब लोग सुखी हुए। आँखें एकटक रह गईं। पुतली भी नहीं हिलती थी। दोनों भाइयों को देखकर जनक जी हर्षित हुए। तब मुनिजी के चरण कमल की वन्दना की।

व्याख्या : सब लोग अपने घरों का काम छोड़ छोड़कर दर्शन के लिए आये हैं। यथा : चले सकल गृह काज बिसारी। सो देखकर सब सुखी हुए। सुख ले रहे हैं। एकटक देख रहे हैं। स्तब्ध से हो रहे हैं। इसलिए बिस्व बिलोचन चोर कहा था।

बुलाने पर तुरत चले आये। जनकजी का भाव इनके प्रति जैसा है सो कह चुके हैं। यथा : ब्रह्म जो निगम नेति कहि गावा। उभय वेष धरि सोइ कि आवा। अतः इन्हें देखकर हर्षित हुए। मुनिजी का चरण जाकर पकड़ा कि आप के अनुग्रह से इनका आना हुआ।

करि विनती निज कथा सुनाई। रंग अवनि सब मुनिहि देखाई ॥
जहँ जहँ जाहिं कुँअर वर दोऊ। तहँ तहँ चकित चितवत सब कोऊ ॥३॥

अर्थ : विनती करके सब कथा सुनाई। रंगभूमि सब मुनिजी को दिखाई। जहाँ-जहाँ दोनों कुमार जाते हैं वहाँ वहाँ सब लोग चकित होकर देखते हैं।

व्याख्या : दक्षयज्ञविध्वंस के बाद महादेवजी ने निमि के जेठे भाई देवरात को यह धनुष दिया था। तब से इसी कुल में यह धनुष चला आता है। सीताजी के अत्यन्त सुन्दरी होने से राजाओं में बड़ा क्षोभ हुआ। सीताजी के व्याह तथा रक्षा में बड़े जनसंहार का भय हुआ। अतः राजा ने सर्वोच्च वीर बलवान् को कन्या देना निश्चय किया। परीक्षा के लिए धनुषभंग का प्रण किया। ये सब बातें मुनिजी को कह सुनाई। तब जिस रंगभूमि का वर्णन हो चुका है उसे घुमाकर मुनिजी को दिखलाया। मुनिजी के साथ ही साथ दोनों भाई जा रहे हैं। अति शोभा देखकर लोग चकित हो रहे हैं। निकट से स्थिर होकर देखने का सौभाग्य अब हुआ है।

निज निज रुख रामहिं सबु देखा। कोउ न जान कछु मरमु बिसेखा ॥
भलि रचना मुनि नृप सन कहेऊ। राजा मुदित महासुख लहेऊ ॥४॥

अर्थ : अपने-अपने रुख के अनुसार सब ने रामजी को देखा। विशेष मर्म को किसी ने नहीं जाना। मुनिजी ने राजा से कहा कि रचना अच्छी है। राजा प्रसन्न हो उठे और उन्हें बड़ा सुख हुआ।

व्याख्या : रुख का अर्थ भावना है। यथा : जिन्हके रही भावना जैसी। हरि मूरति देखी तिन तैसी। इसी बात से उपक्रम करके देखने के प्रसङ्ग का निज निज रुख रामहिं सब देखा से उपसंहार करते हैं। आने के साथ ही सबका देखना लिख दिया। पर भली भाँति सबको दर्शन मुनिजी के साथ घूमकर सारी रंगभूमि देखने के समय हुआ। इसीलिए चकित होकर देखना भी कहते हैं। रणधीर लोग वीररस का रूप देखते हैं। कुटिल यम रूप देखते हैं। साधु इष्टदेव रूप देखते हैं। सबका देखना पृथक् पृथक् प्रकार का है। पर यह कोई नहीं जानता कि दूसरे, दूसरे प्रकार से देख रहे हैं। सब जानते हैं कि जैसा मैं देखता हूँ वैसा ही सब देखते हैं।

विश्वामित्र मुनि दूसरी सृष्टि रचनेवाले हैं। इनका भली रचना कहना सामान्य बात नहीं है। भूमिका में दोष होने से विघ्न होता है। भूमिका की रचना में बड़ी पण्डिताई है। मण्डपकुण्डशुद्धि आदि ग्रन्थ इसके लिए बने हैं। मुनिजी ने

भली रचना कहा तो यज्ञ के निर्विघ्न समाप्ति में सन्देह नहीं है। इसलिए राजा को इतनी प्रसन्नता और सुख हुआ।

दो. सब मंचन्ह तें मंच एक, सुन्दर बिसद बिसाल।
मुनि समेत दोऊ बंधु तहँ, बैठारे महिपाल ॥२४४॥

अर्थ : सब मञ्चों में एक मञ्च अधिक सुन्दर निर्मल और विशाल था। उसी पर राजा ने मुनि के साथ दोनों भाइयों को बिठाया।

व्याख्या : सुन्दर मञ्च की बनावट कही। विशद से चमक कही। विशाल से बड़ाई कही। राजा ने उस मञ्च को पहिले से ही खाली रक्खा था। सब राजाओं के लिए पहिले से ही मञ्च नियत हैं। विश्वामित्रजी के सर्वोत्तम मञ्च पर आसीन होने में किसी राजा को आपत्ति नहीं हो सकती थी।

प्रभुहि देखि सब नृप हिय हारे। जनु राकेस उदय भए तारे ॥
असि प्रतीत सब के मन मांहीं। राम चाप तोरब सक नाहीं ॥१॥

अर्थ : प्रभु को देखकर सब राजाओं ने हृदय से हार मानी जैसे पूर्ण चन्द्र के उदय से तारे हार मान जाते हैं। सबके मन में ऐसा ही विश्वास है कि रामजी धनुष को तोड़ेंगे। इसमें सन्देह नहीं है।

व्याख्या : पूर्ण चन्द्र और तारों की उपमा पहिले दे आये हैं। अकेला चन्द्रमा अन्धकार का नाश करता है। तारों का समूह नहीं कर सकता। यथा : एकश्चन्द्रस्तमो हन्ति न च तारागणैरपि। अतः राजाओं का हिम्मत हारना स्वाभाविक था। मनमें तो तेजोविशेष के देखते ही विश्वास हो गया कि निःसन्देह रामजी धनुष तोड़ेंगे। पर सब तो सरल नहीं हैं। कितने कपटी आसुरी प्रकृति के हैं। वे बाहर से इस बात को स्वीकार नहीं करते।

बिनु भंजेहुँ भव धनुपु बिसाला। मेलिहि सीय राम उर माला ॥
अस बिचारि गवनहु घर भाई। जसु प्रतापु बलु तेजु गँवाई ॥२॥

अर्थ : शिवजी का धनुष बिना तोड़े रामजी के गले में सीता माला डालेगी। हे भाई! ऐसा विचार करके, यश, प्रताप, बल और तेज को खोकर के घर जाते जाओ।

व्याख्या : रणधीर प्रायेण सरल होते हैं। उन्होंने जब मनहु बीररस धरे सरीर देखा तो बोल उठे : राम चाप तोरब सक नाहीं। मान लिया कि यदि धनुष न टूटे : भव धनुष कहकर दिव्य और विशाल कहकर कठिन और गुरु कहा : तो सीता तो जयमाल राम के ही गले में डालेगी। क्योंकि कन्या रूप को वरती है। और ये महारूपवान् हैं।

इसलिए चलो घर चलें। यहाँ कार्यसिद्धि होने की नहीं। बच्चों से पराभव हुआ। इसलिए यश, प्रताप, बल और तेज सब गया। सद्गुण की निर्मल ख्याति

यश है। यथा : साद्गुण्यैर्निर्मलैः ख्यातः कीर्तिमानिति कथ्यते। शत्रु का पौरुषोद्भूत तापक प्रताप है। यथा : प्रतापी पौरुषोद्भूतशत्रुतापि प्रसिद्धिभाक्। महत् प्राण से पूर्ण होना ही वल है। यथा : प्राणेन महता पूर्णो वलीयान् इति कथ्यते। अवज्ञा का सहन न करना ही तेज है। यथा : तेजो बुधैरवज्ञादेरसहिष्णुत्वमुच्यते। यह सब गया। आगे चलकर पुर नर-नारि कहेंगी। यथा : देखे नर नारि कहैं साग खाइ जाये माइ। वाहु पीनपावर न पीना खाइ पोखे हैं।

विहँसे अपर भूप सुनि वानी। जे अविवेक अंध अभिमानी ॥
तोरेहुँ धनुष व्याह अवगाहा। बिनु तोरे को कुँअरि विआहा ॥३॥

अर्थ : यह वाणी सुनकर दूसरे राजा जो अविवेक से अन्ध और अभिमानी थे हँस पड़े : कहने लगे धनुष तोड़ने पर भी व्याह तो अथाह में ही है। फिर बिना तोड़े कुमारी को कौन व्याह सकता है ?

व्याख्या : धनुष तोड़ने पर कहा जायगा कि इन्होंने जल्दी कर दी नहीं तो हम तोड़ डालते। सब लोग बिगड़ खड़े हो जायेंगे। युद्ध होने लगेगा। उस गोलमाल में सीता किसके हाथ लगेगी कौन कह सकता है। इसलिए कहता हूँ कि धनुष टूटने पर भी व्याह अथाह में ही है। विना तोड़े इतने राजाओं के रहते कौन व्याह कर सकता है। जनक अपना प्रण भङ्ग करके किसी के साथ व्याह नहीं कर सकते।

एक बार कालउ किन होऊ। सिय हित समर जितब हम सोऊ ॥
यह सुनि अवर महिप मुसुकाने। धरमसील हरिभगत सयाने ॥४॥

अर्थ : काल भी क्यों न हो। एक वार सीता के लिए हम उसे भी लड़ाई में जीतेंगे। यह सुनकर दूसरे राजा जो धर्मशील और सयाने हरिभक्त थे मुसकराये।

व्याख्या : असुर छल छोनिपवेष वोले। यह तो काल सम है। काल नहीं है। एकवार हम काल को भी समर में माया के द्वारा जीत लेंगे। एक ही बार जीतने से तो सीता की प्राप्ति हो जावेगी। माया हटने पर दोबारा जीतने की आवश्यकता न रह जायगी। छल माया एक वस्तु है। यथा : सोइ छल हनूमान सन कीन्हा।

उनके गाल बजाने पर मुसकराये। अविवेकी अन्ध अभिमानियों की भाँति हँसे नहीं। विवेक ही सच्ची आँख है। यथा : तेहि करि विमल विवेक विलोचन। जिसे एकदम विवेक नहीं है वही अन्ध अविवेकी है और उनमें भी जो अभिमानी हैं वे हंसे थे। उनकी वातों पर मुसकरानेवाले ठीक उनसे विपरीत हैं। वे अन्ध अविवेकी थे। ये धर्मशील हैं। यथा : धर्मसील कोटिक महँ कोई। विषय विमुख विरागरत होई। वे अन्ध अभिमानी हैं। ये सयाने हरिभक्त हैं। अतः उनके अविवेकमय अभिमानयुक्त डींग मारने पर मुसकराये।

दो. सीय विवाहव राम, गरबु दूरि करि नृपन्ह के।
जीति को सक संग्राम, दसरथ के रन बाँकुरे ॥२८५॥

अर्थ : सब राजाओं के अभिमान को दूर करके सीता को राम ब्याहेंगे। दशरथ के रण बाँकुरे को रण में कौन जीत सकता है ?

व्याख्या : अविवेक अन्ध अभिमानी के प्रति कहते हैं : नृपों का गर्व दूर करके सीता को राम व्याहेंगे। तुम नहीं व्याहोगे। क्योंकि राम सत्यसंकल्प प्रभु हैं। छल छोनिपों से कहते हैं कि जीति को सक संग्राम। उनसे माया नहीं चलेगी। वे दशरथ के रणबाँकुरे हैं। रणबाँकुरे माया का मर्दन करते हैं। यथा : हनुमंत अंगद नील नल अतिबल लरत रनबाँकुरे। मर्दहिं दसानन कोटि कोटिन्ह कपट भूभट अंकुरे। दशरथ के कहने का भाव यह कि पिता का गुण पुत्र में है। संसार दशरथ के विषय में जानता है : सुरपति बसहिं बाहुबल जाके। नरपति सकल रहहिं रुख ताके।

व्यर्थ मरहु जनि गालु बजाई। मन मोदकन्हि कि भूख बुताई ॥
सिख हमार सुनि परम पुनीता। जगदंबा जानहु जिय सीता ॥१॥

अर्थ : गाल बजाकर व्यर्थ प्राण मत दो। मन के लड्डुओं से भूख नहीं जाती। हमारी परम पवित्र शिक्षा सुनकर सीता को जगदम्बाजो जानो।

व्याख्या : बड़ हित हानि जानि बिनु जूझे। यदि कार्य में विपत्ति आती है तो बकवादी मारे जाते हैं। यदि कार्ये विपत्तिः स्यात् मुखरस्तत्र हन्यते। इस भाँति गाल बजाने से : सीटने से क्या लाभ है ? इससे सीता की प्राप्ति नहीं होगी और दोषी गिने जाकर मारे जाओगे। मन के लड्डू खाने से भूख नहीं जाती। कालहु सिय हित समर जितव। ऐसा कहना मन का लड्डू खाना है। तुम्हारा सामर्थ्य काल को रण में जीतने का है ? समझो क्या कह रहे हो ? हमारी शिक्षा परम पवित्र है उसे सुनो। राम की योग्या होने से सीता को जगदम्बा जानो। रहिमन नारि गरीब की अपनी कहै न कोय। हरिपतनी अपनी कहै कौन फजीहत होय।

जगत पिता रघुपतिहि बिचारी। भरि लोचन छबि लेहु निहारी ॥
सुंदर सुखद सकल गुन रासी। ए दोउ बंधु संभु उर बासी ॥२॥

अर्थ : रामजी को जगत् पिता विचार करके आँख भर छवि देख लो। सुन्दर सुख देनेवाले सब गुणों के राशि ये दोनों भाई महादेव के हृदय में बसनेवाले हैं।

व्याख्या : ये उपदेश देनेवाले सयाने भक्त हैं। ये भगवान् को सब सुखदाता इष्टदेव के रूप में देख रहे हैं। अतः कहते हैं कि विचार करो। ऐसी मूर्ति जगत्-पिता को छोड़कर और किसकी हो सकती है। बड़ा भारी सुयोग उपस्थित है। ये शम्भु के हृदय में रहनेवाले दोनों भाई नयन के विषय हो रहे हैं। कैसी सुन्दर सुखद और सर्वगुणसम्पन्न मूर्तियाँ हैं। इन्हें आँख भर देखो। फिर इनके दर्शन का कब सुयोग होगा इसे कौन कह सकता है ? राम जानकी का दर्शन जगत्पिता और जगदम्बा रूप से करके आनन्द लो।

सुधा समुद्र समीप बिहाई। मृगजल निरखि मरहु कत धाई ॥
करहु जाय जा कहुं जोइ भावा। हम तौ आजु जनम फलु पावा ॥३॥

अर्थ : अमृत के समुद्र को पास में छोड़कर मृगजल देखकर दौड़कर क्यों प्राण देते हो ? जिसे जो अच्छा लगे वह जाकर वैसा करे। हमें तो आज जन्म होने का फल मिल गया।

व्याख्या : ब्रह्म पियूष मधुर सीतल जो पै मन वह रस पावै। सो वही अमृत करतल हो रहा है। माया मृगजल है। उसकी प्राप्ति नहीं हो सकती। उसके पीछे दौड़ने में व्यर्थ का श्रम और परिणाम मृत्यु ही है। भाव यह है कि जगदम्बा की ओर मत दौड़ो। उन्हें दूर से प्रणाम करो। वह महामाया हैं। यथा : सो अवतरिहि मोरि यह माया। उनकी प्राप्ति के पीछे दौड़ते दौड़ते मर जाओगे। रामजी की प्राप्ति इस समय सोलह आना सुलभ है और सीताजी सर्वथा अप्राप्य हैं। उन लोगों के मन में शिक्षा जमती न देखकर कहते हैं कि मुझे जो कहना था कह चुका। अब यथेच्छसि तथा कुरु : जैसा जी में आवे वैसा करो। अन्धे को कूएँ में गिरते देखकर निषेध कर देना धर्म है। सो मैं पुकारकर किये देता हूँ। मैं तो कृतकृत्य हो गया। भगवत्प्राप्ति ही जन्म का फल है सो मुझे मिल गया। यथा : मम दर्शन फल परम अनूपा। जीव पाव निज सहज सरूपा।

अस कहि भले भूप अनुरागे। रूप अनूप बिलोकन लागे ॥
देखहिं सुर नभ चढ़े बिमाना। बरषहि सुमन करहिं कल गाना ॥४॥

अर्थ : ऐसा कहकर भले राजा प्रेम में पग गये। अनूप रूप की झाँकी लेने लगे। देवता लोग आसमान में विमान पर चढ़े हुए देख रहे हैं। पुष्पवृष्टि करते हैं और सुन्दर गान करते हैं।

व्याख्या : करहु जाइ जा कहँ जोइ भावा। कहकर बातचीत बन्द कर दी। एकाग्र होकर सगुण निर्गुणरूप रूपअनूप देखने लगे। यथा : चितवहिं सादर रूप अनूपा। तृप्ति न मानहि। उनकी तृप्ति नहीं हो रही है। इधर स्वयंवर देखने के लिए देवता लोग विमानों पर चढ़कर आकाश में आगये। शोभा देखकर हर्षित होकर प्रभु पर पुष्पवृष्टि की। पुष्पों से पूजा और कलगान द्वारा स्तुति करने लगे।

दो. जानि सुऔसर सीय तब, पठई जनक बोलाइ।
चतुर सखी सुंदर सकल, सादर चलीं लवाइ ॥२४६॥

अर्थ : सुअवसर जानकर जनकजी ने तब सीताजी को बुला भेजा और चतुर तथा सुन्दर सखियाँ उन्हें लिवा ले चलीं।

व्याख्या : राजा लोग तो सबेरे से ही डटे हुए हैं राजकुँअर भी आगये। उत्सुकता बढ़ी हुई है। अतः राजा ने देखा कि यही सुअवसर है धनुष टूटते ही जयमाल पड़नी चाहिए। अतः सीताजी को बुला भेजा। चतुरसखी जिनका स्वरूप भी सुन्दर है जो चित्तवृत्ति को समझें यथा अवसर कार्य करें। उचित शिक्षा कुँअरि को दे सकें। आदर के साथ जानकीजी को लिवा ले चलीं : ये वही थीं जो गिरिजापूजन के साथ थीं। यथा : संग सखी सब सुभग सयानी। अर्थात् पालकी पर

चढ़ाकर ले चलीं। यथा : राजा की रजाइ पाइ सचिव सहेली धाइ। सतानंद ल्याये सिय सिविका चढ़ाइके। गी.।

सिय सोभा नहिं जाइ बखानीं। जगदंबिका रूप गुन खानी ॥
उपमा सकल मोहि लघु लागीं। प्राकृत नारि अंग अनुरागीं ॥१॥

अर्थ : सीताजी की शोभा की प्रशंसा नहीं की जा सकती। क्योंकि वे जगदम्बिका हैं और रूप गुण की खानि हैं। मुझे सभी उपमाएँ हलकी जचीं। क्योंकि वे लौकिक स्त्रियों से मेल खाती हैं।

व्याख्या : न वर्णन किये जाने का दो कारण देते हैं। एक तो वे जगदम्बा हैं उनकी शोभा का बखान उन्हीं के बच्चों द्वारा अनुचित है। दूसरी बात यह कि वर्णन करना अशक्य है। जिन रूप गुणों से तुलना करनी है उन्हीं की ये खानि हैं। जिसका वर्णन सीधे सीधे नहीं हो सकता उसके लिए उपमाएँ दी जाती हैं। उपमाएँ प्रत्येक अंग की अलग अलग हैं। जैसे मुख की कमल या चन्द्र, नासिका शुकतुण्ड, ओष्ठ की बिम्बाफल इत्यादि। परन्तु ये सब उपमाएँ तो लौकिक स्त्रियों के अङ्गों से मेल खाती हैं। अतः उन्हीं से अङ्गों की समता की जाती है। इसलिए वे उपमाएँ यहाँ पर मुझे जँची नहीं।

सिय वरनिय तेइ उपमा देई। कुकवि कहाइ अजस को लेई ॥
जौं पटतरिअ तीय सम सीया। जग अस जुवति कहाँ कमनीया ॥२॥

अर्थ : सीताजी का वर्णन करके उपमा देकर कौन कुकवि कहलाकर अपयश ले। यदि सीता का स्त्री के साथ पटतर दिया जाय तो ऐसी सुन्दरी स्त्री संसार में हैं कहाँ ?

व्याख्या : जिसकी लौकिक शोभाएँ सब देखी हुई हैं वे स्वयं कहते हैं। जासु विलोकि अलौकिक सोभा। परम पुनीत मोर मन छोभा। उसकी शोभा का पटतर देने से लौकिक स्त्रियों के अङ्गों की उपमा देने से वर्णन करनेवाला कुकवि कहलायेगा और उसका दुर्यश होगा। यथा : वैदेही मुख पटतर दीन्हें। होइ दोष बड़ अनुचित कीन्हे। शम्भु के प्रसाद से तुलसी कवि हुआ है। कुकवि बनने क्यों जाय ? यदि प्रत्यङ्ग वर्णन न करके किसी सुन्दरी स्त्री से ही उपमा दी जाय तो ऐसी सुन्दरी स्त्री संसार में कहाँ है ?

गिरा मुखर तन अर्ध भवानी। रति अति दुखित अतनु पति जानी ॥
विष बारुनी बंधु प्रिय जेही। कहिअ रमासम किमि वैदेही ॥३॥

अर्थ : सरस्वती बहुत बोलती हैं। भवानी का शरीर ही आधा है। पति को शरीर रहित जानकर रति अति दुःखित ही रहती है। जिसे विष और वारुणी से भाई प्रिय हैं। उस रमा को वैदेही के समान कैसे कहा जाय ?

व्याख्या : यदि संसार में ऐसी सुन्दरी कोई नहीं है तो दिव्य स्त्रियों में

सरस्वती, भवानी, रति और रमा की बड़ी ख्याति है। उन्हीं में से किसी को उपमा दी जाय तो यह भी नहीं बनता। सरस्वती बोलती बहुत हैं। सम्पूर्ण शास्त्र उन्हीं के कहे हुए हैं और कहती ही जाती हैं। यथा : पति बरन्यौ चार मुख पूत बरन्यौ पाँच मुख नाती बरन्यौ षट मुख तदपि नई नई। और बकवादिनी स्त्री की शोभा नहीं। भवानी का शरीर ही आधा है। आधा शरीर उनके महादेव हैं। अर्धनारीश्वर मूर्ति प्रख्यात है। फिर आधी स्त्री की शोभा ही क्या? हाँ रति में ये दोष नहीं हैं। वे अल्पभाषिणी भी हैं और उन्हें अंग भी पूरे हैं। पर उन्हें मानसिक खेद है। उनके पति अनङ्ग हैं। उन्हें अङ्ग ही नहीं। अतः उसके मुख पर प्रसन्नता नहीं और जो प्रसन्न नहीं उसकी शोभा भी नहीं। अब रह गईं लक्ष्मी। वे सर्वगुणसम्पन्ना हैं। पर उनमें एक बड़ा दोष है। वे विष और मद्य की बहन हैं। भाई तो उन्हें और भी हैं। पर वे प्रिय नहीं। प्रिय हैं विष और मद्य। ये सदा उनके साथ रहते हैं। अतः मालूम होता है कि उनमें भाई का गुण मादकता है। कहा भी है कि कनक कनक ते सौगुनी मादकता अधिकात। वे खाये बौरात हैं ये पाये बौरात। तब रमा के ऐसी वैदेही को कैसे कहूँ?

जौं छवि सुधा पयोनिधि होई। परम रूपमय कच्छप सोई॥
सोभा रजु मंदरु सिंगारू। मथै पानि पंकज निज मारू॥४॥

अर्थ : यदि छविरूपी अमृत का समुद्र हो और परम रूपमय कच्छप वही हो और शोभा को रज्जु तथा शृङ्गार को मन्दर बनाकर अपने करकमलों से कामदेव मन्थन करें।

व्याख्या : लक्ष्मी की उत्पत्ति के जो साधन थे वे सदोष थे इससे लक्ष्मी में दोष आगया। अतः साधनों में उलटफेर करके दूसरी लक्ष्मी उत्पन्न करनी चाहिए। अब सामग्री कहते हैं। यह समुद्र न हो छविसुधा का समुद्र हो। कच्छपावतार विभवरूप न होकर परम रूप हो। परम रूप वासुदेव[1] व्यूह है। वासुकी नाग की रज्जु न होकर शोभा रज्जु हो। छोरी के स्थान पर मन्दर न होकर शृङ्गार हो, मन्थन करनेवाले देवासुर न होकर कामदेव हों।

दो. एहि बिधि उपजै लच्छि जब, सुंदरता सुख मूल।
तदपि सकोच समेत कबि, कहहिं सीय सम तूल॥२४७॥

अर्थ : इस विधि से यदि सुन्दरता और सुख की मूलभूता मूर्ति लक्ष्मी उत्पन्न हों तब भी सङ्कोच के साथ कवि लोग सीताजी के लगभग कहेंगे।

व्याख्या : लक्ष्मी को उत्पन्न करना और अपनी चाही हुई विधि से उत्पन्न करना किसी का साध्य नहीं है। फिर भी यदि मान लिया जाय कि इस भाँति जो

---

१. ब्रह्म चतुर्व्यूह रूप है : १. वासुदेव २. सङ्कर्षण ३. प्रद्युम्न और ४. अनिरुद्ध। इनमें वासुदेव व्यूह स्वयं अवतारी हैं। अन्य अवतार हैं।

लक्ष्मी उत्पन्न हों तो उनकी उपमा दी जा सकती है। उसपर कवि कहते हैं कि फिर भी कविसमाज सङ्कोच के साथ सीताजी के लगभग स्वीकार कर लेगा। सङ्कोच का कारण यह कि शोभा और शृङ्गाररस का मन्थन न हुआ। उनकी उपस्थिति मात्र थी। जहाँ इनका भी मन्थन हुआ है वहाँ कहने में सङ्कोच नहीं है। यथा : सुषमा सुरभि सिंगार छीर दुहि मदन अमियमय कियउ दहीरी। मथि माखन सिय राम सँवारेउ सकल भुवन छवि छांछ महीरी। गी.। समतूल का भाव यह कि रूप और गुण दोनों में समता हो।

चली संग ले सखी सयानी। गावत गीत मनोहर वानी॥
सोह नवल तनु सुंदर सारी। जगत जननि अतुलित छविभारी॥१॥

अर्थ : सयानी सखी : सीताजी को लेकर चलीं। मनोहर वाणी से गीत गा रही थीं। नये शरीर पर सुन्दर सारी की शोभा हो रही थी। जगत्-जननी की ऐसी भारी छवि थी कि किसकी तुलना नहीं हो सकती।

व्याख्या : चतुर सखी सुंदर सकल सादर चलीं लवाइ से प्रसङ्ग छोड़ा था। बीच में शोभा का वर्णन करने लगे। अब फिर वहीं से प्रसङ्ग प्रारम्भ करते हैं। फुलवारी में भगवती स्वयं जा रही थीं। इसलिए लिखा : संग सखी सब सुभग सयानी। गावहिं गीत मनोहर वानी। यहाँ सखियों के लिवा जाने से जाती हैं। अतः कहते हैं : चली संग लै सखी सयानी। मनोहर वाणी से उनका गीत गाना दोनों स्थलों में समान है। भेद इतना ही है कि फुलवारी में भवानी के गीत होते थे यहाँ स्वयंवर के गीत हो रहे हैं।

भूषन सकल सुदेस सुहाए। अंग अंग रचि सखिन्ह बनाए॥
रंगभूमि जब सिय पगु धारी। देखि रूप मोहे नर नारी॥२॥

अर्थ : सखियों ने प्रत्येक अङ्ग में सब अच्छे गहने अपने अपने स्थान पर रचकर सँवारा था। रङ्गभूमि में जब सीताजी ने पदार्पण किया तो रूप देखकर नर और नारियाँ मोहित हो गईं।

व्याख्या : आभरण बत्तीस कहे गये हैं। सो प्रत्येक के लिए नियत स्थान है। जिस अङ्ग के लिए जिस स्थान पर जो गहना पहनाया जाता है वहीं पर होना चाहिए। इनके पहिनाने में बड़ी पण्डिताई है। सब लोग गहना नहीं पहना सकते। इसलिए रचकर सँवारना कहते हैं। सखियों का कर्त्तव्य : १. मण्डन २. शिक्षा ३. उपालम्भ और ४. परिहास है। उपालम्भ और परिहास फुलवारी प्रसङ्ग में कह आये हैं। मण्डन इस समय कह रहे हैं। शिक्षा समय पाकर आगे कहेंगे।

इस प्रकार शृङ्गारित होकर जब रंगभूमि में पदार्पण किया तो रूप देखकर नरनारी मोह गये। नारी नारी के रूप पर मोहित नहीं होतीं। ऐसा साधारण नियम है। पर अलौकिक शोभा ऐसी है कि सहज पुनीत श्रीरामजी का मन क्षुब्ध हो गया तो नारियों का मोहना कौन आश्चर्य है। सभी नियमों में अपवाद होता

है। विश्वमोहिनी का रूप देखकर लक्ष्मी मोहती थीं। यथा : श्री विमोह जेहि रूप निहारी। प्राकृत नारियों की गिनती ही क्या है? वही विश्वमोहिनी तो सीताजी हैं। यथा : सो अवतरिहि मोर यह माया। रामजी के रंगभूमि में पधारने पर सब चकित हुए थे। सीताजी के पधारने पर मोहित हो गये।

हरषि सुरन्ह दुंदुभी बजाई। बरषि प्रसून अपछरा गाई॥
पानि सरोज सोह जयमाला। अवचट चितए सकल भुआला॥३॥

अर्थ : देवताओं ने हर्षित होकर डंका दिया। अप्सराओं ने पुष्पवृष्टि करके गान किया। हाथों में कमल की जयमाला है। सब राजाओं ने एकाएक उस ओर देखा।

व्याख्या : प्रभु के आने पर देवताओं ने फूल बरसाये थे। यथा : वरषहिं सुमन करहिं कल गाना। पर भगवती पर पुष्पवर्षा का साहस नहीं होता। अतः दुंदुभी बजाने लगे। पुष्पवर्षा अप्सराओं ने की। स्त्री पर पुष्पवर्षा का अधिकार स्त्रियों को ही है और उन्होंने ही गान किया। उन्हें शोभा के गान का स्त्री होने से अधिकार था। विजय का कारण प्रस्तुत हो जाने से डंका बजाया।

जयमाल पर राजा लोग दृष्टि लगाये हुए थे। जयमाल ही सीताजी के निश्चित रूप से पहिचानने का चिह्न था। यहाँ सरोज देहलीदीपकन्याय से दोनों ओर अर्थ देगा। अर्थात् करकमलों में कमल की जयमाला थी। राजाओं ने एकाएक देखा। पर सीताजी ने उन्हें नहीं देखा।

सीय चकित चित रामहि चाहा। भए मोहबस सब नरनाहा॥
मुनि समीप देखे दोउ भाई। लगे ललकि लोचन निधि पाई॥४॥

अर्थ : सीता ने चकित चित्त से राम को देखा : कि वे कहाँ हैं? और सब राजा मोह के वश हो गये। मुनिजी के पास दोनों भाइयों को देखा। उनके नेत्र निधि पाकर उसी ओर ललककर लग गये।

व्याख्या : सीताजी की आँखें उस समाज में रामजी को ढूँढ़ने लगीं। सब राजा मोहित हो गये। प्रत्येक ने समझा कि मुझको ही देख रही हैं। जो ज्ञानिन्ह-कर चित अपहरई। बरिआईं बिमोह बस करई : उसकी दृष्टि है। जिसपर पड़ती है वही मोहित हो जाता है। चारों ओर घूमकर निगाह मुनि के पास बैठे हुए दोनों भाइयों पर पड़ी। पर ठहरी अपनी निधि पर। यथा : हरखे जनु निजनिधि पहिचानी। पहिचाना पहिले ही था। अब प्रेम के साथ जाकर वहाँ लग गये।

दो. गुरजन लाज समाजु बड़, देखि सीय सकुचानि।
लागि बिलोकन सखिन्ह तन, रघुबीरहिं उर आनि॥२४८॥

अर्थ : गुरुजनों की लज्जा से तथा बड़ा जमावड़ा देखने से सीताजी सङ्कुचित हुईं और रामजी को हृदय में लाकर सखियों की ओर देखने लगीं।

व्याख्या : आँखें जाकर रामजी में तो लगीं। पर उसमें दो प्रकार की बाधाएँ उपस्थित हुईं। वहीं पर महाराजा जनक शतानन्द आदि गुरुजन थे। राजाओं और प्रजाओं की भीड़ उमड़ी हुई थी। इनके बीच में रामजी की ओर देखते रहने में सङ्कोच हुआ। अतः प्रभु को ही हृदय में रख लिया। यथा : चली राखि उर स्यामल मूरति। ये चित्र नहीं खैंचतीं सीधे सीधे मूर्ति ही हृदय में रख लेती हैं। मूर्ति को हृदय में रखने के बाद नयनकपाट सङ्कोच से बन्द नहीं किया। सखियों की ओर देखने लगीं।

राम रूपु अरु सिय छबि देखें। नर नारिन्ह परिहरीं निमेखें ॥
सोचहिं सकल कहत सकुचाहीं। बिधि सन बिनय करहिं मन मांहीं ॥१॥

अर्थ : रामजी का रूप और सीताजी की छवि देखकर स्त्री पुरुषों का पलक गिरना बन्द हो गया। सोचते सब हैं। पर कहते हुए सभी संकुचित होते हैं। मन ही मन ब्रह्मदेव से विनय करते हैं।

व्याख्या : जिससे गहने की भी शोभा हो जाय रूप उसका नाम है और जिससे अन्धकार दूर हो उसे छवि कहते हैं। यथा : छ्यति छिनत्ति तम इति छविः। एक बार तो सब मोह गये। अब सावधान होकर रामजी के रूप और सीताजी की छवि का मिलान करते हैं। परोक्ष में भी मिलान किया था। यथा : जोग जानकी यह बरु अहई। अब दोनों मूर्तियाँ सामने पाकर मिलान करते हैं। इसलिए एक टक लोचन चलत न तारे की दशा उपस्थित है।

सब के मन में एक ही भाव उठता है। पर कहता कोई किसी से नहीं। क्योंकि बात बड़ी ढिठाई की है। सब विधि से मन ही मन विनय करते हैं। क्योंकि उनका नाम ही विधि है। वे ही विधि बैठा सकते हैं। अथवा जौं भल अहइ बिधाता। सब कहँ सुनिअ उचित फल दाता। तो यही विनय है कि यहाँ भी उचित फल दें। जनक की बुद्धि के पलटने में विधि ही समर्थ हैं। ये शारदा को प्रेरणा करके बुद्धि पलटते हैं। यथा : सारद प्रेरि तासु मति फेरी।

हरु बिधि बेगि जनक जड़ताई। मति हमारि असि देहि सुहाई ॥
बिनु बिचार पनु तजि नरनाहू। सीय राम कर करहि बिबाहू ॥२॥

अर्थ : हे विधि ! जल्दी से जनक की जड़ता को हरण करो और हमारी ऐसी सुहावनी बुद्धि दो। राजा बिना सोचे समझे प्रण छोड़कर सीता और रामजी का व्याह कर दें।

व्याख्या : जनक की जड़ता को जल्दी हरो। देर न करो। देर करने में काम बिगड़ेगा। राजा जनक को सभी ज्ञानी मानते हैं। अतः उन्हें जड़ कहने में सङ्कोच है। पर रामजी को देखने पर भी अपने प्रण पर अड़े रहना स्पष्ट जड़ता है। अतः चाहे दुनिया न माने पर बात तो यह है कि इस विषय में जनक की बुद्धि में जड़ता है और हमारी बुद्धि सुहावनी है। अतः किसी से न कहकर ब्रह्मदेव से मन ही मन

विनय करते हैं कि जनक को सुहाई बुद्धि दें। जड़ता हरण कर लें। यहाँ विचार की कोई बात ही नहीं है। सीता और रामजी का व्याह होना ही चाहिए।

यहाँ विचार करना ही जड़ता है। प्रण निवाहना ही बुरा है। राजा विचारशील है। सत्य प्रतिज्ञ है। यह स्वभाव विधि के पलटने से पलट सकता है। नर नाथ है। उसे प्रजा की रुचि रखनी चाहिए।

जग भल कहिहि भाव सब काहू। हठ कीन्हें अंतहुँ उर दाहू ॥
एहि लालसा मगन सब लोगू। बरु साँवरो जानकी जोगू ॥३॥

अर्थ : संसार अच्छा कहेगा। क्योंकि सबको पसन्द है। हठ करने से अन्त में कलेजा जलेगा। इस लालसा में सब लोग मगन थे कि साँवला वर जानकीजी के योग्य है।

व्याख्या : अपयश तो ऐसे कार्य के करने से होता है जो लोगों को अप्रिय हो। राम जानकी का व्याह तो सबको प्रिय है। अतः अपयश की तो चरचा चलाना ही व्यर्थ है। बुद्धि का फल आग्रह रहित होना है। यथा : बुद्धेः फलमनाग्रहः। सो हठ करने से सीताजी का बेजोड़ व्याह हो जायगा। सीता को दुःख होगा। तब कोई उपाय न रहने से यावज्जीवन कलेजा जलेगा : लोग इस विवाह के लिए ऐसे लालायित हो गये हैं कि प्रतिज्ञापालन को हठ बतला रहे हैं। राम जानकी के विवाह की अभिलाषा में इतना आनन्द लोग अनुभव कर रहे हैं कि अभिलाषा ही में मग्न हैं। अब सखी के संवाद में जो बात निश्चित हुई थी कि : ज़ोग जानकी यह बरु अहई। वही निर्णय यहाँ भी हुआ कि : बर साँवरो जानकी जोगू।

तब बंदीजन जनक बोलाए। बिरदावली कहत चलि आए ॥
कह नृपु जाइ कहहु पन मोरा। चले भाट हिय हर्ष न थोरा ॥४॥

अर्थ : तब भाटों को राजा जनक ने बुलाया। वे विरुदावली कहते हुए आये। राजा ने कहा कि जाकर मेरा प्रण सुना दो। भाट चले उन्हें थोड़ा हर्ष नहीं हुआ।

व्याख्या : वन्दिनस्त्वमलप्रज्ञाः प्रस्तावसदृशोक्तयः। निर्मल बुद्धिवाले और प्रस्ताव के अनुकूल बोलनेवाले वन्दी कहलाते थे। राजा ने उन्हें बुलाया। वे प्रस्ताव सदृश बोलनेवाले थे। विरद बोलते चले : वज्ररेख गजदसन जनकपन वेद बिदित जग जान। राजा ने कहा कि सभा बहुत बड़ी है। चारों ओर जाकर तुम लोग हमारा प्रण सुना दो। वन्दी सुनाने चले। हृदय में बड़ा हर्ष हुआ कि हम राजा के प्रतिनिधि होकर बोलने जा रहे हैं।

दो. बोले बंदी बचन बर, सुनहु सकल महिपाल।
पन बिदेह कर कहहिं हम, भुजा उठाइ बिसाल ॥२४९॥

अर्थ : वन्दी श्रेष्ठ वचन बोले कि राजा तुम लोग सुनते जाओ। विदेहराज का प्रण हमलोग विशाल भुजा उठाकर कहते हैं।

व्याख्या : महाराज विदेह के वचन का अनुवाद होने से वचन वर कहा। महिपाल सम्बोधन का भाव यह है कि आप लोग वचन के गौरव को समझते हैं। प्रण विदेह का है हमारा नहीं। हम केवल अनुवादक हैं। प्रण के अटल होने से अपनी भुजा को विशाल कह रहे हैं। अथवा हरी भुजाएँ इस समय राजा जनक की भुजाओं का प्रातिनिध्य करती हैं। इसलिए विशाल हैं। भुजा उठाकर प्रण किया जाता है संसार को साक्षी करने के लिए। यथा : भुज उठाइ प्रन कीन्ह। हानि लाभ अनख उछाह बाँहुबल कहि। वन्दी बोले विरद अकस उपजाइ के। यही उनकी प्रस्ताव सदृश उक्ति है।

नृप भुजबल बिधु सिवधनु राहू। गरुअ कठोर बिदित सब काहू ॥
रावन बानु महाभट भारे। देखि सरासनु गवँहि सिधारे ॥१॥

अर्थ : राजाओं की भुजाओं का बल चन्द्रमा है। शिव का धनुष राहु है, भारी है, कठोर है। यह बात सभी जानते हैं। रावण और बाणासुर भारी महाभट हैं। सो धनुष को देखकर चुपके से चल दिये।

व्याख्या : वन्दी लोग पहिले ही अकसवाली बात बोले। पहिले भी राजा लोग आये थे पर उनका तोड़ा धनुष नहीं टूटा। क्रोध करके उन लोगों ने जनकपुर घेर लिया। पर महाराज जनक से पराजित हुए। उसी बात को लक्ष्य करते हुए वन्दीजन कह रहे हैं कि राजाओं के भुजबल रूपी चन्द्र को निस्तेज कर देने के लिए शिवधनुष राहु है। राहु छायामात्र होने के कारण मृदु और हलका है। पर यह भारी है, कठोर है। हम कोई नई बात नहीं कह रहे हैं। आप लोग सभी यह बात जानते हैं। अब अनखवाली बात बोलते हैं। महा भटों में भी भारी दो हैं : रावण और बाणासुर। वे लोग भी आये थे। पर धनुष को देखकर साहस छूट गया। धीरे से चल दिये। अतः समझबूझकर उठियेगा।

सोइ पुरारि कोदंडु कठोरा। राज समाज आजु जेइ तोरा ॥
त्रिभुवन जय समेत बैदेही। बिनहिं बिचार बरै हठि तेही ॥२॥

अर्थ : यह पुरारि का वही कठोर धनुष है। जिसने आज राजसमाज में इसको तोड़ा। त्रिभुवनजयलक्ष्मी के सहित वैदेही उसे बिना विचारे वरेंगी।

व्याख्या : शङ्कर भगवान् ने त्रिपुरदाह के समय मेरु पर्वत को धनुष बनाया था। यहाँ पुरारि धनुष का भाव यह कि यह मेरु का जोड़दार है : अब बल कहते हैं। शिव का यह वही धनुष है। इसे राजसमाज में आज तोड़ना है। यहाँ कल की बात नहीं। ऐसे राजसमाज में वह अपना बल प्रकट करे। अब हानि लाभ कहते हैं। उसे वैदेही तो वरण करेगी राउ या रङ्क का विचार न करेगी। त्रिभुवन जयलक्ष्मी भी उसको साथ ही साथ वरण करेगी। दिग्विजय ही बड़े परिश्रम से साध्य है। सो त्रिभुवनविजय बिना रक्तपात के मिलेगा और जानकी भी मिलेगी।

सुनि पन सकल भूप अभिलाषें। भटमानी अतिसय मन भाषें ॥
परिकर बाँधि उठे अकुलाई। चले इष्टदेवन्ह सिर नाई ॥३॥

अर्थ : प्रण सुनकर सब राजाओं को अभिलाषा हुई और वीरमानी राजाओं के मन में तो बड़ा क्रोध हुआ। कमर कस कसकर आकुल हो उठ खड़े हुए और अपने अपने इष्टदेवों को सिर नवाकर चले।

व्याख्या : वन्दीजन ने कहा था : सुनहु सकल महिपाल। सो सबने सुना। अब कहते हैं : सुनि पन सकल भूप अभिलाखे। ठीक है जानकी के लिए आये थे। सो त्रिभुवनजयलक्ष्मी भी प्राप्त होगी। भटमानी तो बड़े क्रुद्ध हो गये। नृप भुजबल विधु सिवधनु राहू। कैसे कहा ? अभी धनुष तोड़ता हूँ। व्याकुल होकर उठे कि कहीं कोई पहिले ही जाकर धनुष तोड़ न दे। नहीं तो जानकी और त्रिभुवनजय-लक्ष्मी उसी के हाथ लग जायगी। इष्टदेव को प्रणाम करके चलते हैं जिसमें कार्य-सिद्धि हो। क्योंकि सभी सुखों की आशा तो इष्टदेव से ही की जाती है। यथा : इष्टदेव इव सब सुखदाता।

तमकि ताकि तक सिव धनु धरहीं। उठै न कोटि भाँति बलु करहीं ॥
जिन्ह के कछु विचार मन मांहीं। चाप समीप महीप न जाँहीं ॥३॥

अर्थ : तमककर देखते हैं। लक्ष्य बाँधकर शिवधनु को पकड़ते हैं। कोटि भाँति से बल लगाते हैं। पर उठता नहीं। जिन राजाओं के मन में कुछ भी विचार है वे धनुष के सन्निकट नहीं जाते।

व्याख्या : अतिशय मन माखें हैं। अतः क्रोध से देखते हैं। पलक मारने में उठा लेने के लिए लक्ष्य बाँधकर झपटते हैं जिसमें हाथ खाली न जाँय और राजसमाज में चमत्कार दिखला दें। जब नहीं उठा तब करोड़ों उपाय से बल लगाते हैं। एक हाथ से, दोनों हाथ से, घुटना टेककर, छाती के बल से, सिर के बल से जैसे-जैसे बन पड़ता है उठा लेने में कोई बात नहीं रखते।

बड़े विचारवान् धर्मशील हरिभक्त सयाने तो अभिलाषा करनेवालों में हैं नहीं। जो अभिलाषा करते हैं उनमें भी जिनको कुछ विचार है वे पहिले ही परिकर बाँधकर अकुलाकर नहीं उठे समझने लगे थे कि यह काम सुकर नहीं है। और जब देख लिया कि किसी का हिलाया नहीं हिलता तो विचार करते हैं कि मुझमें ही कौन अलौकिक बल है जो उठा लूँगा। अतः दूर से देखते हैं। निकट जाते नहीं जिसमें धनुष उठानेवालों में न गिने जाँय। निर्बलता तो सिद्ध हो गई। मूर्खता सिद्ध न हो।

दो. तमकि धरहिं धनु मूढ नृप, उठै न चलहिं लजाइ।
मनहुँ पाइभट बाहुबल, अधिक अधिक गरुआइ ॥२५०॥

अर्थ : तमतमाकर मूढ़ राजा धनुष को पकड़ते हैं। जब नहीं उठता तो

लज्जित होकर चले जाते हैं। मानो वीरों के भुजबल को प्राप्त करके अधिक से अधिक भारी होता चला जाता है।

व्याख्या : जो सरल बात न समझ सके उसे मूढ़ करते हैं। यथा : माया विवस भये मुनि मूढ़ा। समझी नहिं हरिगिरा निगूढ़ा। उन्हें सीधी सो बात नहीं समझ में आई कि जिसे रावण बाणासुर छोड़कर चले गये उसे हम उठाने क्या जा रहे हैं? इसलिए उन्हें मूढ़ कहा। यहाँ धनुष की क्या करामात है। मानो जो उसे उठाने जाता है उसके बल को वह हरण कर रहा है। इससे और भी भारी होता जाता है। अर्थात् किसी के हिलाये हिलता ही नहीं।

भूप सहस दस एकहिं बारा। लगे उठावन टरै न टारा ॥
डगै न संभु सरासन कैसें। कामी वचन सती मन जैसें ॥१॥

अर्थ : दस हजार राजा एकही साथ उठाने लगे। पर वह टारे न टरा। शिवजी का धनुष उसी भाँति नहीं डिगता है जिस भाँति कामियों के वचन से सती का मन नहीं डिगता।

व्याख्या : अब उसी मूढ़ता का उदाहरण देते हैं। पहिले अन्ध अभिमानी कह आये हैं। इनका ज्ञान तामस है। जो तत्त्वार्थवाला नहीं है तथा अल्प है। ऐसे एकही कार्य को सब कुछ मानकर निष्कारण उसमें लग जाता है। उसे तामस ज्ञान कहते हैं। यथा : यत्तु कृत्स्नवदेकस्मिन् कार्ये सक्तमहैतुकम्। अतत्त्वार्थवदल्पञ्च तत्ताम-समुदाहृतम्। धनुष के उठने को ही सब कुछ समझ लिया। यह नहीं समझ रहे हैं कि इस भाँति उठ भी जायगा तो क्या फल होगा? ऐसे उठाने में तत्त्वार्थ कुछ नहीं व्यर्थ है। फिर भी दसहजार एक साथ हो उठाने में लग गये। जो आते जाते हैं वे धनुष में ही चिपटते चले जाते हैं। इससे धनुष की विशालता भी कही।

परन्तु शम्भुशरासन हिला भी नहीं। कामी ऐसा वचन बोलना जानते हैं जिससे सामान्य स्त्री का मन विचलित हो उठे। पर ऐसे वचन से सती के मनमें कोई अन्तर नहीं पड़ता। दश सहस्र कामियों के वचन से नाममात्र के लिए भी चलायमान नहीं होता। कामी अन्धे होते हैं : दिवा पश्यति नोलूकः कामान्धो नैव पश्यति। कामान्धों को ज्ञान नहीं कि इतने आदमियों के साथ बोलने से तो अभीष्ट सिद्धि और भी दूर चली जा रही है। इसी प्रकार इतने राजाओं के लग जाने से इसी बात की सिद्धि होती चली जा रही है कि धनुष का उठाना इन राजाओं की शक्ति के बाहर की बात है।

सब नृप भए जोग उपहासी। जैसे बिनु बिराग संन्यासी ॥
कीरति बिजय बीरता भारी। चले चाप कर बरबस हारी ॥२॥

अर्थ : सब राजा हँसी के योग्य हो गये। जैसे बिना वैराग्य का संन्यासी हो जाता है। भारी कीर्ति विजय और वीरता को व्यर्थ ही धनुष के हाथ हारकर चले।

व्याख्या : वैराग्य संन्यासी का लक्षण है। जिस संन्यासी में वैराग्य नहीं है उसमें और संन्यासी बने हुए भाँड़ में कोई भेद नहीं है। यथा : मूड़ मुड़ायो बादि ही भाँड़ भयो तजि गेह। जिस भाँति भाँड़ उपहासी का पात्र है उसी भाँति वैराग्य रहित संन्यासी भी है। क्षत्रिय की श्रेष्ठता बल से है। तिसपर राजा के लिए कहा गया है कि आठों लोकपालों का उनमें अंश रहता है। यथा : अष्टानां लोकपालानां वपुर्धारयते नृपः। सो दस सहस्र राजा लगे और शिव धनु न उठा। तो इससे यही सिद्ध हुआ कि इनमें ईशान का अंश है ही नहीं। ये भी राजा बने हुए भाँड़ की भाँति उपहास के ही पात्र हैं।

कीर्ति से यश कहा। विजय से बल और प्रताप कहा। वीरता से तेज कहा। अतः जिन्होंने यह कहा था अस विचारि गवनहु घर भाई। जस प्रताप बल तेज गँवाई। वही बात आ गई। पहिले चले गये होते तो यश; प्रताप, बल, तेज खोकर न जाते। अब हारकर जा रहे हैं और हारे भी किसी वीर से नहीं धनुष से हारकर जा रहे हैं। धनुष स्वयं इनसे लड़ने नहीं गया था। ये ही हठात् उससे लड़ने गये। सो अब हारकर लौटे जा रहे हैं।

श्रीहत भए हारि हिय राजा। बैठे निज निज जाइ समाजा॥
नृपन्ह बिलोकि जनक अकुलाने। बोले बचन रोष जनु साने॥३॥

अर्थ : हृदय से हार मानकर राजा लोग श्रीहीन हो गये। जा जाकर अपने समाज में बैठे। राजाओं को देखकर जनक आकुल हो उठे और ऐसा वचन बोले जिसमें क्रोध भरा हुआ सा मालूम पड़ता था।

व्याख्या : मन से तो पहिले ही हार माने हुए थे। यथा : प्रभुहिं देखि सब नृप हिय हारे। पर इस हार से श्रीहत हो गये। फिर भी घर नहीं गये। अपने समाज में जाकर बैठे। सोचते हैं कि धनुष तो टूटा नहीं और न किसी से टूटेगा। अब कन्या जिसे चाहेगी जयमाल पहनायेगी। चित्त की वृत्तियाँ विचित्र रूप की होती हैं। यथा : विचित्ररूपा खलु चित्तवृत्तयः। कौन जाने मैं ही पसन्द में आजाऊँ। इस भाँति आशा लगाये बैठे हैं। राजा जनक ने देखा कि सभी राजा हृदय से हार गये। अपने आसन पर जाकर बैठे हुए हैं। घर भी नहीं गये। इनके हृदय में कल्मष है। कहेंगे कि ऐसा प्रण करके जनक ने राजसमाज का अपमान किया और बहुत सम्भव है कि उपद्रव भी करें। कन्या का व्याह भी नहीं हुआ चाहता और भारी उपद्रव हुआ चाहता है। अतः जनकजी आकुल हुए। ज्ञानी को क्रोध नहीं होता क्रोधाभास होता है। अतः रोष जनु साने वचन बोले।

द्वीप द्वीप के भूपति नाना। आए सुनि हम जो पन ठाना॥
देव दनुज धरि मनुज सरीरा। बिपुल बीर आए रनधीरा॥४॥

अर्थ : द्वीप द्वीप के राजा लोग जो प्रण मैंने ठाना था उसे सुनकर आये। देवता और दानव मनुष्य शरीर धारण करके बहुत से रणधीर वीर आये।

व्याख्या : देव से स्वर्ग के वीर दनुज से पाताल के वीर और रणधीर से मर्त्यलोक के वीर अभिप्रेत हैं। सभी वीर मेरा प्रण सुनकर आये। भाव यह कि सबको मालूम था कि शङ्कर के धनुष तोड़ने का प्रण है और मैंने किसी को बुलाया भी नहीं। सुन सुनकर स्वयं आने की कृपा की है। अर्थात् जो आया है वह शङ्कर के धनुष तोड़ने की हिम्मत करके ही घर से आया है। मेरे सङ्कोच से किसी का आना नहीं हुआ है।

दो. कुँवरि मनोहर विजय बड़ि, कीरति अति कमनीय।
पावनिहार बिरंचि जनु, रचेउ न धनु दमनीय ॥२५१॥

अर्थ : मनको हरण करनेवाली कुँअरि बड़ी जीत और सुन्दर कीर्त्ति के पाने वाले को मानो ब्रह्मा ने रचा ही नहीं। अतः टूटनेवाला धनुष मानो बनाया ही नहीं।

व्याख्या : बिरंचि जनु रचेउ न। इस वाक्य का अन्वय पावनिहार के साथ होगा और देहलीदीपक न्याय से धनु दमनीय के साथ होगा। कोई यह न कहे कि कन्या मुझे पसन्द नहीं इसलिए धनुष नहीं तोड़ा। सो कुँअरि मनोहर है। इस धनुष को तोड़ना और रावण बाणासुर पर विजय पाना एक बात है। अतः ऐसी विजय कौन नहीं चाहता। विना रक्तपात के विजय प्राप्त करने से कमनीय कीर्ति है। कौन यशोधन इसे न चाहेगा ? मालूम होता है कि ब्रह्मदेव ने ऐसा भाग्यवान् किसी को बनाया नहीं इसीलिए धनु को दमनीय नहीं बनाया। नहीं तो कार्य द्रव्य सभी क्षणभङ्गुर होते हैं।

कहहु काहि यह लाभु न भावा। काहुँ न संकर चाप चढ़ावा ॥
रहौ चढ़ाउब तोरब भाई। तिल भरि भूमि न सकेउ छड़ाई ॥१॥

अर्थ : कहो किसे यह लाभ अच्छा नहीं लगता ? किसी ने तो शिवजी का धनुष नहीं चढ़ाया। चढ़ाना और तोड़ना तो जाने दो। कोई तिल भी जमीन न छुड़ा सका।

व्याख्या : महाराज जनक समझ रहे हैं कि ये अभिमानी पीछे से कहेंगे कि मुझे कन्या पसन्द नहीं थी। अतः जिसे यह लाभ अच्छा न लगता हो वह इस समाज में बोल दे। सब लोग उसका भी रूप देख लें कि किस मुँह से कह रहा है कि कन्या पसन्द नहीं। यदि पसन्द है तो शिवजी का धनुष चढ़ाना चाहिए। सो तो किसी का किया न हुआ। धनुष चढ़ाना और उसे तोड़ना तो दूर की बात है। कोई तिल भर भी जमीन नहीं छुड़ा सका। दस सहस्र राजाओं का उसे उठाने के लिए लगना उन्मत्त चेष्टा थी। अतः उसकी चर्चा भी महाराज नहीं करते। धनुष तोड़नेवाले को विना विचार वरण की प्रतिज्ञा थी। यदि कोई उठा भी लेता तो विचार किया जाता कि विवाह किया जाय या नहीं। इस अवस्था में तो विचार को भी स्थान नहीं है। चढ़ाना या तोड़ना तो उठाने के बाद बनता है। यहाँ तो

कोई हिला भी न सका। भाव यह कि इसका तोड़ना राजसभा के लिए असम्भव व्यापार है तब किस आशा से राजसमाज बैठा है।

अब जनि कोउ माखै भटमानी। वीर विहीन मही मैं जानी ॥
तजहु आस निज निज गृह जाहू। लिखा न विधि वैदेहि विवाहू ॥२॥

अर्थ : अब कोई वीरमानी क्रोध न दिखावे। मैंने जान लिया पृथ्वी वीरों से रिक्त : खाली हो गई। अब आशा छोड़िये और अपने अपने घर पधारिये। ब्रह्मदेव ने सीता का विवाह लिखा ही नहीं।

व्याख्या : पहिले वीरमानियों ने भाटों के कहने पर क्रोध किया था कि नृप भुज वल विधु सिव धनु राहू। इन सबों ने कैसे कहा ? अब कोई क्रोध करने का कष्ट न उठावें। मैं कहता हूँ मैंने जान लिया कि पृथ्वी बिना वीर की हो गई। ठीक यही बात हनुमन्नाटक में कही गई है। आद्वीपात् परतोप्यमी नृपतयः सर्वे समभ्यागताः। कन्यायाः कलधौतकोमलरुचेः कीर्तेश्च लाभः परः। नाकृष्टं न च टङ्कितं न नमितं नोत्थापितं स्थानतः। केनापीदमहो महद्धनुरिदं निर्वीरमुर्वीतलम्।

यह आशा छोड़िये कि जब धनुष किसी से न टूटा तो क्या कन्या क्वारी ही रह जायगी। किसी न किसी को उसे वरना ही पड़ेगा। इस पर कहते हैं कि यह नहीं होना है। आप लोग पधारें व्यर्थ क्यों बैठे हैं। विधि ने धनु दमनीय नहीं रचा। इसका अर्थ यही है कि ब्रह्मदेव ने कन्या का व्याह ही नहीं लिखा है होगा कैसे ? मेरी प्रतिज्ञा विधि की रेख से कम नहीं है।

सुकृत जाइ जौं पनु परिहरऊँ। कुँअरि कुँआरि रहउ का करऊँ ॥
जौं जनत्यौं विनु भट भुवि भाई। तौ पन करि होत्यौं न हँसाई ॥३॥

अर्थ : यदि प्रण त्याग करूँ तो धर्म जाता है। रह जाय कन्या क्वारी मेरा कोई वश नहीं है। यदि मैं जाने होता कि पृथ्वी बिना वीर की हो गई है तो प्रण करके मैं अपने को उपहास का पात्र न बनाता।

व्याख्या : सत्य मूल सब सुकृत सोहाये। प्रण त्याग से सत्य का त्याग होगा। अतः निर्मूल होकर सब पुण्य नष्ट हो जायँगे। मैं सुकृत नहीं छोड़ सकता। चाहे कन्या क्वारी रह जाय। सुकृत छोड़ना मेरे वश के बाहर की बात है : राजा जनकजी ही चक्रवर्ती जी के समकक्ष सत्यसन्ध हैं। मुझे धारणा थी कि पृथ्वी शून्य नहीं है कोई वीर होगा ही। धनुषभङ्ग प्रण वीर के लिए ही किया जाता है। पृथ्वी वीर विहीन है। इसलिए मैं उपहास का पात्र हो गया। नहीं तो सभी ने धनुष-भङ्ग सम्भव समझा था। इसीलिए आये भी थे। इसी भाँति मैंने भी सम्भव समझ कर प्रतिज्ञा की थी।

जनक वचन सुनि सब नर नारी। देखि जानकिहि भये दुखारी ॥
माखे लखनु कुटिल भै भौंहें। रदपट फरकत नयन रिसौहें ॥४॥

अर्थ : राजा जनक की बात सुनकर सब नर नारी जानकी को देखकर दुःखित हुए। पर लक्ष्मणजी को क्रोध हुआ। उनकी भौहें टेढ़ी हुईं। होठ फड़कने लगे। आँखों से क्रोध झलकने लगा।

व्याख्या : सब नर नारी धनुष न टूटने से दुःखी नहीं हुए थे। जनकजी की बात सुनकर दुःखी हो गये। वे सब समझते थे कि धनुष न टूटने से व्याह न रुकेगा केवल राजाओं का झंझट दूर हो जायगा। फिर जनकजी जिसे चाहेंगे उससे व्याह कर देंगे। पर अब उनकी बातें सुनकर जनकजी की ओर देखा और दुखी हुए कि ऐसी कन्या बिना व्याहे रह जायगी। भारतवर्ष में अन्धी कानी लँगड़ी लूली सभी कन्याओं का व्याह हो हो जाता है। लड़के भले ही क्वारे रह जाँय पर कन्या क्वारी नहीं रहने पाती। समाजसंगठन ही यहाँ का इस प्रकार का है।

अपमान जनित क्रोध को ही माँख कहते हैं। जनकजी के कहने पर किसी को माँख न हुआ। जनक वचन छुए विरवा लजारू केसे। वीर रहे सकल सकुचि सिर नाइके। वे वीरमानी जो भाटों के कहने पर बिगड़ उठे थे सकुचकर चुप रह गये। पर लक्ष्मण ने जिन पर भाटों के कहने का कोई प्रभाव नहीं पड़ा था जनकजी के वीर विहीन मही मैं जानी कहने पर अपमान माना। उनकी भौहें टेढ़ी हुई। होठ फड़कने लगे। आँखें लाल हो उठीं। रौद्ररस का आविर्भाव हुआ। अनुभाव प्रकट हुए। यथा : भृकुटि कुटिल अरु अरुन दृग अधर फरक अनुभाव। गर्व विकलता चपलता ये संचारी भाव। रदपट फरकत का भाव यह है कि कुछ कहा चाहते हैं।

दो. कहि न सकत रघुवीर डर, लगे वचन जनु बान।
नाइ राम पद कमल सिरु, बोले गिरा प्रमान ॥२५२॥

अर्थ : रामजी के डर से कह नहीं सकते। पर वचन बाण की भाँति लगे। रामजी के चरण कमलों में सिर झुकाकर प्रमाण बात बोले।

व्याख्या : जनकजी पर रामजी की बड़ी श्रद्धा है। अतः उनके विरुद्ध बोलने में रामजी का डर है। जनकजी का डर कुछ भी नहीं कि उनके राज्य में आकर उनके विरुद्ध कैसे बोलें। पहिले विकलता : सञ्चारी कहते हैं। जनक के वचन बाण की भाँति लगे। रामजी का अपमान लक्ष्मणजी सहन नहीं कर सकते। अब चपलता : सञ्चारी कहते हैं। रामजी के चरणकमलों में सिर नवाकर बोले। लक्ष्मणजी क्रोध में भी अप्रमाण बात नहीं बोलते। इसलिए गिरा प्रमाण कहा।

रघुबंसिन्ह महुँ जहँ कोउ होई। तेहि समाज अस कहै न कोई ॥
कही जनक जसि अनुचित बानी। बिद्यमान रघुकुल मनि जानी ॥१॥

अर्थ : रघुवंशियों में से जहाँ कोई होता है उस समाज में ऐसा अनुचित कोई नहीं कह सकता जैसा जनक ने कहा और वे जानते हैं कि यहाँ रघुकुल मणि विराजमान हैं फिर भी ऐसी बात बोल गये।

व्याख्या : रघुवंशी मात्र वीर हैं। उनकी पीठ शत्रु नहीं देख सकता। अतः उनके सामने वीर विहीन मही कहने का किसी को अधिकार नहीं। कहने पर रघुवंशी अपनी वीरता प्रकट करता है। इस अनुचित को नहीं सहता। जनकजी जानबूझकर कि इस समाज में रघुकुलमणि विद्यमान हैं ऐसी बात बोल गये। मुनिजी ने मेरे सामने परिचय दिया। रघुकुल मनि दसरथ के जाये।'''मख राखेउ सब साखि जग जिते असुर संग्राम। बिना जाने कोई साधारण व्यक्ति कुछ कह बैठे यह और बात है। राजा जनक ऐसे प्रमाणिक पुरुष रघुकुलमणि की उपस्थिति जानते हुए ऐसी बात इतने बड़े राजसमाज में कही। यह कदापि सहन योग्य नहीं है।

सुनहु भानु कुल पंकज भानू। कहौं सुभाउ न कछु अभिमानू ॥
जौं तुम्हारि अनुसासनि पावौं। कंदुक इव ब्रह्मांड उठावौं ॥२॥

अर्थ : सूर्यकुलरूपी कमल के सूर्य ! सुनो यह मेरी सत्योक्ति है गर्वोक्ति नहीं है। यदि आपकी आज्ञा पाऊँ तो गेंद की भाँति ब्रह्माण्ड उठा लूँ।

व्याख्या : भानुकुल पंकज भानू ! संबोधन का यह भाव है कि भानु के पराक्रम को कौन कह सकता है। कमल के पराक्रम के सामने ही यह धनुष कुछ नहीं है। जिस कमलकुल के आप भानु हैं उसी का मैं कमल हूँ। सब लोग कमल का पराक्रम देखें। भानु को पराक्रम दिखाने की आवश्यकता नहीं। यदि आपकी आज्ञा हो तो यह धनुष क्या है। इस ब्रह्माण्ड को गेंद की भाँति उठा लूँ। आज्ञा पाऊँ कहने का भाव यह कि आज्ञाकारी का किया हुआ आज्ञादाता का किया हुआ माना जाता है। इसलिए इस अवसर पर जब धनुष उठाने पर जानकी के वरण की समस्या है आपकी आज्ञा परमावश्यक है। यथा : मेरो अनुचित न कहत लरिकाई बस पन परिमित और भाँति सुनि गई है। नतरु प्रभु प्रताप उतरु चढ़ाय चाप देतो पै देखाइ बल फल पाप मई है। चढ़ाने का अर्थ उठाकर सिर पर रखना जैसे फूल चढ़ाना।

काँचे घट जिमि डारौं फोरी। सकउँ मेरु मूलक जिमि तोरी ॥
तव प्रताप महिमा भगवाना। का बापुरो पिनाकु पुराना ॥३॥

अर्थ : और उसे : कच्चे घड़े की भाँति फोड़ डालूँ। हे भगवन् ! आपके प्रताप की महिमा से मेरु को मूली की भाँति तोड़ सकता हूँ। यह विचारा पुराना पिनाक है क्या ?

व्याख्या : ब्रह्माण्ड के उठाने में परिश्रम नहीं है। इसलिए गेंद की उपमा देते हैं। ब्रह्माण्ड भुवन विराज जाके एक सिर जिमि रज बनी। गेंद फोड़ने की वस्तु नहीं है। अतः फोड़ने के लिए कच्ची मिट्टी के घट से उपमित करते हैं। कच्ची मिट्टी का घड़ा हाथ से दबाने से फूट जाता है। ब्रह्माण्ड भी कच्ची मिट्टी का बना है। दबाते ही फूटेगा। जनकजी ने दो बातें कहीं। रहेउ चढ़ाउब तोरब भाई।

उठाने के विषय में कहकर अब तोड़ने के विषय में कहते हैं कि मेरु पर्वत को मूली की भाँति तोड़ दूँ। अपने बल से नहीं। वह बल भी आपका दिया हुआ है। यथा : जेहि बल सीस धरत सहसानन। अंडकोस समेत गिरि कानन। इसलिए कहते हैं : आपके प्रताप की महिमा से यह विचारा सड़ा गला पुराना युगान्तर का धनुष क्या वस्तु है। भगवन् सम्बोधन से तात्पर्य है कि समग्र ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री और ज्ञान वैराग्य तो आप में हैं। अन्य जीव तो उसके लेशमात्र से अपना उपजीवन करते हैं।

नाथ जानि अस आयसु होऊ। कौतुक करौं विलोकिअ सोऊ॥
कमल नाल जिमि चाप चढ़ावौं। जोजन सत प्रमान लै धावौं॥४॥

अर्थ : हे नाथ ! ऐसा जानकरके आज्ञा हो। मैं कौतुक करता हूँ उसे भी देख लीजिये। कमल की नाल की भाँति धनुष को चढ़ाऊँ और सौ योजन लेकर दौड़ जाऊँ।

व्याख्या : यह मनमें समझ लीजिये कि लक्ष्मण मेरे प्रताप की महिमा द्वारा कार्य करता है। उठावेगा फोड़ेगा और तोड़ेगा आपका प्रताप। लक्ष्मण तो निमित्त-मात्र होगा। अब आज्ञा हो कि तीनों में कौन काम करू ? ब्रह्माण्ड को उठाऊँ कि फोड़ दूँ कि मेरु को तोड़ूँ ? मेरे लिए कौतुक है। उसे देख लीजिये। अब चढ़ाने के विषय में कहते हैं : इस सड़े गले पुराने धनुष में क्या रक्खा है। इसे तो कमलनाल की भाँति चढ़ा दूँ। भाव यह कि कमलनाल आप ही झुका पड़ता है। उसके चढ़ाने में कौन परिश्रम है। तिल भर धनुष हिलाने के लिए जनक लालायित हैं तो इसे लेकर सौ योजन दौड़ आऊँ। अब रह गया तोड़ना सो :

दो. तोरौं छत्रक दंड जिमि, तव प्रताप बल नाथ।
जौ न करौं प्रभु पद सपथ, कर न धरौं धनु भाथ॥२५३॥

अर्थ : हे नाथ ! आपके प्रताप के बल से गोबरछत्ते के डंठल की भाँति तोड़ डालूँ। यदि न करूँ तो प्रभु के चरण की शपथ करके कहता हूँ फिर हाथ से धनुष और तरकस न उठाऊँगा।

व्याख्या : गोबरछत्ता छूते ही टूटता है। सो यह धनुष छूते ही टूटेगा। यदि न कर सकूँ तो धनुष और तरकस फिर न धारण करूँगा। अतः वीरता का बाना छोड़ दूँगा। विश्वास दिलाने के लिए प्रभु चरण की शपथ लेते हैं। क्योंकि इसे तोड़ना नहीं है। ब्रह्माण्ड उठाने, फोड़ने, मेरु तोड़ने के विषय में शपथ नहीं लेते उसे कर दिखाने के लिए प्रस्तुत हैं। केवल आज्ञा की देर है। पर धनुष को छूना नहीं है। अतः अपने में ऐसा सामर्थ्य होने की शपथ लेते हैं। आपके लिए इसको तोड़ना क्या है। आप भानुकुलभानु हैं। अनायासेन चापरूपी अन्धकार दूर कीजिये। यथा : नृप सब नखत करहिं उजियारी। टारि न सकहिं चाप तम भारी। उदय भानु बिनु श्रम तम नासा। दुरे नखत जग तेज प्रकासा। जो पहिले कहा था वही समय उपस्थित है।

लषन सकोप वचन जे बोले। डगमगानि महि दिग्गज डोले ॥
सकल लोक सब भूप डेराने। सिय हिय हरखु जनक सकुचाने ॥१॥

अर्थ : ज्यों ही लक्ष्मणजी क्रोधयुक्त वचन बोले कि पृथ्वी डोल उठी। दिग्गज हिल गये। सभी लोक सब राजा डर गये। सीताजी के मनमें हर्ष हुआ और जनकजी संकुचित हो गये।

व्याख्या : सकोप वचन तो राजा जनक भी बोले। यथा : बोले वचन रोष जनु साने। पर उसका प्रभाव इतना ही हुआ कि नरनारि दुःखी हो गये। लक्ष्मणजी को क्रोध आगया। परन्तु लक्ष्मणजी का क्रोध आना दूसरी बात है। इनके सकोप वचन का प्रभाव सृष्टि के अधिकारियों पर पड़ता है। यथा : सभय लोक सब लोकपति चाहत भभरि भगान। जो कहा कि कंदुक इव ब्रह्माण्ड उठावों। कांचे घट जिमि डारौं फोरी तो पृथ्वी डगमग करने लगी। क्योंकि क्रोध में भी ये अप्रमाण नहीं बोलते। यथा : अति सरोष बोले लषन लखि सुनि सपथ प्रमान। यहाँ भी नाइ रामपद कमल सिर बोले गिरा प्रमान। दिग्गज हिल उठे कि इनके क्रोध करने पर हम पृथ्वी को न सँभाल सकेंगे। सब लोक लोकप डर उठे। क्योंकि केवल पृथ्वी को फोड़ने को नहीं ब्रह्माण्ड फोड़ने को कह रहे हैं। तब तो किसी की रक्षा नहीं है। अथवा पृथ्वी ही ऐसी डगमगाई कि दिग्गज स्थिर न रह सके। पृथ्वी ही सबकी आधार है। अतः सकल लोक और सब भूप भी डर गये। श्रीरामजी के प्रताप की महिमा का प्रत्यक्ष अनुभव करके सीताजी को हर्ष हुआ। अपने वचन के अनुचित प्रमाणित हो जाने से जनकजी सङ्कुचित हुए। लक्ष्मणजी के बोलते ही भूमि के डगमगाने से प्रमाण मिल गया।

गुर रघुपति सब मुनि मनमांहीं। मुदित भये पुनि पुनि पुलकांहीं ॥
सयनहिं रघुपति लषन निवारे। प्रेम समेत निकट बैठारे ॥२॥

अर्थ : गुरुजी, रामजी तथा सब मुनिलोग प्रसन्न हुए। बार बार पुलक हो रहा है। इङ्गित मात्र से रामजी ने लक्ष्मणजी को रोका और प्रेम के सहित निकट बैठाया।

व्याख्या : लक्ष्मणजी की अप्रतिम तेजस्विता, अमोघ वीर्य, अलौकिक विवेक तथा अवसरप्राप्त क्रोध देखकर गुरुजी : विश्वामित्र रामजी तथा मुनिगण मन ही मन आनन्दित हो उठे और लक्ष्मणजी की प्रगाढ़ भक्ति का विचार करके सबको बार बार पुलकावली उठ रही है। जनकजी के सङ्कोच को देखकर सबने अपना हर्ष छिपाया। अतः मनमाहि मुदित भये लिखते हैं। लक्ष्मणजी के इस बढ़े हुए क्रोध को रोकने के लिए रामजी का इङ्गित ही यथेष्ट है। अतः इङ्गित किया कि बैठ जाओ। यहाँ धनुष तोड़ना विवाह करना एक बात है। बिना बड़े की आज्ञा विवाह के लिए स्वयं अग्रसर होना ठीक नहीं। पिता के स्थान में मुनिजी हैं। वे कुछ नहीं कह रहे हैं। अतः बैठ जाओ। यह रोकना अप्रसन्नता का परिणाम नहीं

है। इसलिए प्रेम के सहित निकट बैठाया। भाव यह कि तुम्हारी इच्छा को मैं पूरी करूँगा।

विश्वामित्रु समय सुभ जानी। बोले अति सनेहमय बानी॥
उठहु राम भंजहु भवचापा। मेटहु तात जनक परितापा॥३॥

अर्थ : विश्वामित्र ने देखा कि शुभ समय आगया है। तब अति स्नेहमय वाणी बोले : रामजी उठो ! और शिव के धनुष को तोड़ो और राजा जनक का परिताप मिटाओ।

व्याख्या : गुरुजी विवाह का मुहूर्त्त देख रहे थे तब तक शुभमुहूर्त भी आ गया। तब अत्यन्त वात्सल्यसूचक वचन बोले। राम उठो ! इस समय रघुवीर सुजान नहीं कहा। उसमें इतना रस नहीं जितना केवल राम सम्बोधन में है। भवभय भंजन नाम प्रतापू। तुम्हारे नाम के प्रताप से भवभय भङ्ग होता है। अतः भवचाप को तुम भङ्ग करो। महात्मा हैं। सब लाभों से बड़ा लाभ जनक राजा ऐसे सन्त का परिताप मेटना देख रहे हैं एवं जनकजी की भी निर्दोषता द्योतित करते हैं कि अति परिताप से विकल होकर उन्होंने वीरविहीन मही कहा। किसी को अपमानित करने का उनका लक्ष्य नहीं था। मेरी आज्ञा के प्रतीक्षा में लक्ष्मणजी के इतना कहने पर भी नहीं उठते हो सो मैं आज्ञा देता हूँ। जनकजी के परिताप के मिटाने को लक्ष्य में रखकर धनुष तोड़ो। शिवजी का धनुष तोड़ने की आज्ञा देकर सारा प्रातिभाव्य : जिम्मेदारी मैं अपने ऊपर लेता हूँ।

सुनि गुर बचन चरन सिरु नावा। हरषु बिषादु न कछु उर आवा॥
ठाढ़े भए उठि सहज सुभाएँ। ठवनि जुवा मृगराजु लजाएँ॥४॥

अर्थ : गुरुजी का वचन सुनकर उनके चरणों में सिर नवाया। हर्ष विषाद कुछ मनमें न आया। सहज स्वभाव से उठकर खड़े हुए पर उस उठने के ढङ्ग को देखकर युवा सिंह लज्जित हो जाय।

व्याख्या : गुरुजी के वचन सुनकर चरणों में प्रणाम का भाव यह कि मुझे आज्ञा शिरोधार्य है। और लोगों के अन्य इष्टदेवता थे वे उन्हें प्रणाम करके चले। परन्तु रामजी के इष्ट गुरु थे अतः चलने के समय उन्होंने उनको प्रणाम किया। धीर हैं इसलिए हर्ष विषाद कुछ भी मनमें न आया। यथा : सुख हरखहिं जड़ दुःख बिलखाहीं। दोउ सम धीर धरहिं मनमांही। कृतकार्यता की आशा से हर्ष और कृतकार्य न होने के भय से विषाद के भाव उठते हैं सो कोई न उठे। स्वभाव से खड़े हो जाने में सिंह का सा ठाट दिखाई पड़ता है।

दो. उदित उदयगिरि मंच पर, रघुबर बालपतंग।
बिकसे संत सरोज सब, हरषे लोचन भृंग॥२५४॥

अर्थ : मञ्चरूपी उदयाचल पर रामचन्द्र रूपी बालसूर्य उदय हुए। सन्त-रूपी कमल खिल उठे और सब आँखें भौंरे सी हर्षित हो उठीं।

व्याख्या : रामजी मञ्च पर थे ही गुरुजी की आज्ञा पाकर खड़े हो गये। ऐसी शोभा जैसे उदयाचल पर बालसूर्य की होती है। सूर्य उदय होते ही जिस पर्वत पर दिखाई पड़ते हैं उसे उदयाचल कहते हैं। उस समय सूर्यनारायण अपने तेज को समेटे रहते हैं। क्रमशः उसका प्रचार तीव्र होता जाता है। श्रीरामजी के तेज का साक्षात्कार लोक में यहीं से हुआ और तब से तीव्र तीव्रतर हो गया। राज्य-सिंहासनारूढ़ होने पर पूर्ण प्रकाश हुआ। यथा : जबते रामप्रताप खगेसा। उदित भएउ अति प्रबल दिनेसा। भाव यह कि बालसूर्य होकर मञ्च पर आये और क्रमशः अपने तेज का प्रसार करते करते तरुणसूर्य होकर राजसिंहासन पर बैठे। सूर्य के उदय होने से कमल खिल उठते हैं। इसी भाँति सन्त अर्थात् प्रथम श्रेणीके ज्ञानीभक्त खिल उठे। भौंरे हर्षित होते हैं इसी भाँति पुरवासी तृतीय श्रेणी के अर्थार्थी भक्तों के लोचनभृङ्ग हर्षित हो उठे। सब शब्द का अन्वय देहलीदीपक न्याय से सन्त और लोचन भृंग दोनों के साथ होगा। पुरवासी जनकजी का वचन सुनके जानकीजी को देखकर दुःखी हुए थे। वे जानकीजी का व्याह चाहते हैं। अतः अर्थार्थी हैं।

नृपन्ह केरि आसा निसि नासी। वचन नखत अवली न प्रकासी ॥
मानी महिप कुमुद सकुचाने। कपटी भूप उलूक लुकाने ॥१॥

अर्थ : राजाओं की आशारूपी रात जाती रही। उनके वचन रूपी तारों की पंक्ति में भी चमक न रही। अभिमानी राजारूपी कुमुद सिकुड़ गये और कपटी राजारूपी उल्लू छिप गये।

व्याख्या : राजाओं की आशारूपी रात ने ही अंधेरा फैला रक्खा था। वह रात बालसूर्य के उदय होते ही नष्ट हो गई। प्रतीति तो सबके मनमें थी कि रामजी धनुष तोड़ेंगे। यथा : असि प्रतीति सबके मन मांहीं। राम चांप तोरव सक नांहीं। फिर भी आशा लगाये बैठे थे। आशा बड़ी बलवती होती है। भीष्म के मारे जाने पर, द्रोण के मारे जाने पर और महाबली कर्ण के मारे जाने पर महाभारत की लड़ाई में कौरव लोगों की आशा गई नहीं। शल्य को सेनापति बनाकर हर्ष मनाया कि ये पाण्डवों को जीतेंगे। यथा : हते भीष्मे हते द्रोणे हते कर्णे महाबले। आशा बलवती राजन् शल्यो जेतस्यति पाण्डवान्। अरुणोदय हो गया। रामजी के आगमन का समाचार पाया। इससे आशारात्रि क्षीण हो गई थी। पर मञ्च पर सूर्योदय होते ही आशा रात्रि जाती रही। सब राजा निराश हो गये। अरुणोदय होने पर भी कुछ तारे टिमटिमाते रहते हैं। इसी भाँति कुछ राजा शेखी बघारते थे। पर प्रभु के उठ खड़े होने पर उनकी जिह्वा भी स्तम्भित हो गई जिस भाँति सूर्योदय होते ही तारे प्रकाशहीन हो जाते हैं।

सबुइ सुमन विकसत रवि निकसत कुमुद विपिन बिलखाइ। इसी भाँति कुमुदरूपी अभिमानी राजा जो बंदियों की वाणी सुनकर बिगड़ उठे थे। यथा : भटमानी अतिसय मन माखे। सङ्कुचित हो गये कि हमारा उठाया जो न उठा उसे

एक लड़का उठाने को तैयार है। सूर्योदय होने पर उल्लुओं को सूझता नहीं इसलिए वे छिप जाते हैं। इसी भाँति कपटी राजाओं को भी कुछ सूझता ही नहीं कि अब हम क्या कहें। सबके निरस्त होने पर ये खड़े हुए हैं। कहने की जगह भी नहीं रह गई कि इन्होंने जल्दी कर दी नहीं तो मैं तोड़ता अतः वे छिप गये।

भये बिसोक कोक मुनि देवा। बरषहिं सुमन जनावहिं सेवा ॥
गुरु पद बंदि सहित अनुरागा। राम मुनिन्ह सन आयसु माँगा ॥२॥

अर्थ : मुनि और देवता रूपी चकवा शोकरहित हो गये। फूल बरसाते हैं और सेवा जनाते हैं। गुरुजी की चरण वन्दना करके अनुराग के सहित रामजी ने मुनियों से आज्ञा माँगी।

व्याख्या : सूर्य के उदय होने पर चकवा का शोक जाता रहता है। उसकी प्रिया का पता उसे लग जाता है। उसे इष्ट की जिज्ञासा रहती है। अतः जिज्ञासु भक्त को चकवा मानकर द्वितीय श्रेणी में माना है। इसी भाँति इष्टदेव के साक्षात्कार से मुनि और देवता शोकरहित हुए अथवा रावणहन्ता की पहिचान से शोकरहित हुए। इन्हें प्रभु के हाथ से अपनी विपत्ति दूर करानी है। इसलिए अपनी सेवा फूल की वर्षा करके जनाते हैं। यह दूसरी पुष्पवर्षा प्रभु पर देवता तथा मुनियों द्वारा हुई। सुनि गुरु वचन चरन सिरनावा से प्रसङ्ग छूटा था। उसी को मुनिपद बंदि कहकर उठाते हैं। अनुरागा से भाव यह कि किसी प्रकार की त्वरा या क्षोभ नहीं है। प्रेम के साथ गुरुजी के चरण की वन्दना की। अन्य राजाओं की भाँति अनुराग रहित वन्दना नहीं हुई। यथा : चले इष्टदेवन्ह सिर नाई। तत्पश्चात् रामजी ने मुनियों से आज्ञा माँगी। क्योंकि ब्रह्मकुल शङ्कररूप है और शङ्कर का ही धनुष है। अतः मालमालिक से भी एकबार पूछ लेना चाहिए। यथा : मूलं धर्मतरोर्विवेकजलधेः पूर्णेन्दुमानन्ददं। वैराग्याम्बुजभास्करं ह्यघघनध्वान्तापहं तापहं। मोहाम्भोधरपूगपाटनविधौ स्वःसंभवं शंकरं। वंदे ब्रह्मकुलं कलंकशमनं श्रीरामभूपप्रियम्। गुरुजी तो इस समय पितास्थानीय हैं। यथा : तुम मुनि पिता आन नहि कोऊ। विवाह की आज्ञा दे दी। धनुष तोड़ना और जानकी ब्याहना एक बात थी पर वह विवाह बिना धनुष तोड़े सम्भव नहीं था। इसलिए तोड़ने की आज्ञा दी। पर तोड़ने के पहिले जिसका धनुष है उसकी भी अनुमति लेनी परमावश्यक है। इसलिए ब्रह्मकुलरूपी शङ्कर से अनुमति चाही। गुरुजी ने फूल लाने की आज्ञा दे दी। फिर भी इस बात की आवश्यकता पड़ी कि माली से पहिले पूछ लिया जाय तब फूल तोड़ें। यथा : चहुँदिसि चितय पूछि मालीगन। लगे लेन दल फूल मुदित मन।

सहजहि चले सकल जग स्वामी। मत्त मंजु बर कुंजर गामी ॥
चलत राम सब पुर नरनारी। पुलक पूरि तन भये सुखारी ॥३॥

अर्थ : सम्पूर्ण जगत् के स्वामी स्वभाव से ही चले। सुन्दर मत्तहाथी की सी

उनकी चाल थी। राम के चलते ही सब पुर के नर नारी सुखी हो गये। उन्हें सम्पूर्ण शरीर में पुलक हो गया।

व्याख्या : छोटे छोटे खण्डों के राजा थे इसलिए आकुल होकर चले थे। रामजी सकल जग के स्वामी हैं। अतः इन्हें आकुलता नहीं है। स्वभाव से चल रहे हैं। जैसे सुन्दर मतवाला हाथी चले वैसी चाल इनकी स्वाभाविक है। जनकजी के वचन से विचारे पुर नरनारी दुःखी हो गये थे। यथा : जनक वचन सुनि सब नरनारी। देखि जानकिहि भये दुखारी। सो अब रामजी के चलते ही सुखी हो गये। इच्छा प्रबल है कि रामजी धनुष तोड़ें। ऐसे सुखी हुए कि उनका शरीर पुलक से भर उठा।

वंदि पितर सुर सुकृत सँभारे। जो कछु पुन्य प्रभाउ हमारे॥
तौ सिवधनु मृनाल की नाईं। तोरहुँ रामु गनेस गुसाईं॥४॥

अर्थ : उन्होंने देवता पितरों की वन्दना की और अपने पुण्य को सँभाला कि हमारे पुण्य का जो कुछ भी प्रभाव हो तो हे गणेश गोसाईं! शिवजी के धनुष को कमल की नाल की भाँति रामजी तोड़ डालें।

व्याख्या : दिव्य सहायता देवता और पितर की ही होती है। पितर शीघ्र प्रसन्न होते हैं इसलिए पहिले पितरों की वन्दना की और अपने सब पुण्यों को सँभाला। सँभालना स्मरण करने के अर्थ में अनेकशः प्रयुक्त है। यथा : बार बार रघुबीर सँभारी। सँभारि श्री रघुबीर धीर। अपने सब पुण्यों का फल गणेशजी से चाहते हैं। क्योंकि ये वरदायक देव हैं स्मरण मात्र से सिद्धि देते हैं। अभिलाषा यही कि शिवधनुष को रामजी पंकज नाल की भाँति तोड़ें। ये आर्त भक्त हैं : इनकी चौथी श्रेणी है। इनकी उपमा खग नाना से दी हुई है। यथा : कमल कोक मधुकर खग नाना। हरखे सकल निसा अवसाना।

दो. रामहिं प्रेम समेत लखि, सखिन्ह समीप बोलाइ।
सीतामातु सनेह बस, बचन कहै बिलखाइ॥२५५॥

अर्थ : रामजी को प्रेम के साथ देखकर सखियों को समीप बुलाकर सीताजी की माता ने प्रेमवश बिलखकर वचन कहा।

व्याख्या : रामजी पर रानियों के सहित जनकजी का प्रेम अवर्णनीय वात्सल्य से भरा हुआ है। यथा : सहित बिदेह बिलोकहिं रानी। सिसु सम प्रेम न जाइ बखानी। महाराज को चार रानियाँ थी। उनमें सीताजी की माता का और भी अधिक प्रेम था। रामजी को धनुषभङ्ग के लिए चलते देखकर वह प्रेम उमड़ पड़ा। हृदय की बात कहनी थी इसलिए सखियों को निकट बुलाया। इस समय महारानी प्रेमवश हैं। इसलिए बिलखकर वचन कहती हैं।

सखि सब कौतुक देखनिहारे। जेउ कहावत हितू हमारे॥
कोउ न बुझाइ कहै गुर पाहीं। ए बालक अस हठि भल नाहीं॥१॥

अर्थ : हे सखी ! जो हमारे हितकारी कहलाते हैं वे भी तमाशा देखनेवाले हैं। कोई गुरुजी को समझाकर नहीं कहता कि ये बालक हैं। ऐसा हठ ठीक नहीं।

व्याख्या : सखियों से कोई बात छिपाई नहीं जाती। इसलिए उनसे मनकी बात कहती हैं कि जो हमारे हितचिन्तक कहलाते हैं आज देखती हूँ कि वे भी तमाशा देख रहे हैं। हितकी भावना उनमें है ही नहीं। गुरुजी ने आज्ञा दे दी। उठउ राम भंजउ भव चापा। और राम उठ खड़े हुए। वे बालक हैं। उन्हें इतना विचार कहाँ कि यह धनुष मुझसे टूटेगा कि नहीं। गुरुजी को विचार करना चाहिए था। यदि गुरुजी ने न विचार किया और आज्ञा दे दी तो हमारे हितचिन्तकों को तो समझाना चाहिए था कि ऐसा हठ ठीक नहीं। बच्चे का उठाया धनुष क्या उठेगा ? लाभ कुछ होना नहीं है केवल मुनिजी का हठ है। यह हँसता हुआ आनन्दमय मुख कृतकार्य न होने से व्यर्थ म्लान हो जायगा और जिनसे धनुष न उठा उन लोगों में इनकी गिनती हो जायगी। इनको धनुष तोड़ने के लिए भेजना और यह घोषणा एकही बात है कि ये भी जानकी से विवाह करने के अयोग्य हैं।

सबसे प्राचीन श्रावणकुञ्ज अयोध्यावाली प्रति में गुरु पाठ है अन्य सभी प्रतियों में नृप पाठ है। विचार करने से गुरु पाठ सुसङ्गत प्रतीत होता है। नृप ने जब प्रण कर दिया तब उन्हें धनुषभङ्ग रोकने का क्या अधिकार है। विशेषतः लक्ष्मणजी द्वारा इस प्रकार फटकारे जाने पर वे किस मुँह से रोकते ? जनक राजा के लिए हठ का उपालम्भ करना ही हठ है। वे तो इतना होने पर भी विश्वामित्रजी से कहते हैं :

जोरिकर कमल निहोरि कहै कौसिक सौं
आयसु भयों रामको सो मेरे दुचितई है।
बान जातुधानपति भूप दीप सातहू के
लोकप विलोकत पिनाकभूमि लई हैं ॥१॥
जोतिलिंग कथा सुनि, जाके अंत पाए विनु
आए विधि हरि हारि सोई हाल भई है।
आपहु विचारिए निहारिए सभा की गति
वेद मरजाद मानौ हेतुवाद हई है ॥२॥
इन्हके जितीहें मन, सोभा अधिकानी तन
मुखन की सुखमा सुखद सरसई है।
रावरो भरोसो बल, कै है केऊ कियोछल
कैं धों कुल को प्रभाव कैं धों लरिकई है ॥३॥

राजा स्वयं गुरुजी की आज्ञा को उचित नहीं समझ रहे हैं। अतः न राजा का हठ है और न उन्हें उपालम्भ देना बन सकता है। फलतः नृप पाठ असंगत है।

रावन बान छुआ नहिं चापा। हारे सकल भूप करि दापा ॥
सो धनु राजकुँअर कर देहीं। बाल मराल कि मंदर लेहीं ॥२॥

अर्थ : रावण और बाणासुर ने धनुप को छूआ तक नहीं। सब राजा दर्प करके हार गये। उस धनुप को राजकुँवर के हाथ में देते हैं। हंस का बच्चा क्या पहाड़ उठावेगा।

व्याख्या : इस समय सुभट शिरोमणि दो हैं : रावण और बाणासुर। ये कैलास और मेरु उठानेवाले धनुप के जौहरी हैं। इन्होंने धनुष को छूआ तक नहीं। जान गये कि इसके छूने में अप्रतिष्ठा है और सभी राजा घमण्ड करके हार गये। अतः सिद्ध हो गया कि यह धनुप टूटने योग्य नहीं। ये तो प्रौढ़ भी नहीं अभी बच्चे हैं। बाल मरालन के कल जोटा। दर्शनीय हैं। भारी पराक्रम की आशा भी इनसे नहीं की जा सकती। जिस भाँति हंस के बच्चे से मन्दर : जो देवासुर से वहन न किया जा सका : के उठाने की आशा नहीं की जाती।

भूप सयानप सकल सिरानी। सखि विधि गति कहि जाति न जानी॥
बोली चतुर सखी मृदु बानी। तेजवंत लघु गनिअ न रानी॥३॥

अर्थ : राजा का सयानापन सब समाप्त हो गया। सखि! ब्रह्मा की गतिविधि न कही जाती है न जानी जाती है। चतुर सखी मृदु बानी बोली। हे रानी! तेजस्वी को छोटा नहीं गिनना चाहिए। जहाँ कछु पाठ है वहाँ अर्थ करना होगा कि कुछ जाना नहीं जाता।

व्याख्या : महाराज परम चतुर हैं। जहाँ मन्त्रियों की बुद्धि काम नहीं करती वहाँ महाराज अपनी बुद्धि से काम लेते हैं। परन्तु यहाँ तो उनका सयानापन सब धूल में मिल गया। ऐसी प्रतिज्ञा कर बैठे कि लड़की कुँआरी ही रहा चाहती है। ऐसी बात बोल बैठे कि बच्चे से सही नहीं गई और उसके बड़े भाई को धनुष तोड़ने जाना पड़ रहा है। ब्रह्मदेव की गतिविधि न कही जा सकती है और न जानी जाती है कि इतने बड़े विवेकी होकर इस समय इनका विवेक क्या हो गया है? इनको स्वयं गुरुजी से समझाकर कहना चाहिए था। पर यदि वे नहीं कहते हैं तो हितचिन्तकों को तो कहना चाहिए। जिस समय रानी के मन में यह भाव आया उसी समय महाराज के मनमें भी वही भाव उठा। उन्होंने गुरुजी से निवेदन किया। पूरा प्रसङ्ग गीतावली में देखने योग्य है कि महाराज के निवेदन पर गुरुजी ने क्या कहा। स्वयं रामजी ने क्या कहा संक्षेप में यहाँ दिये देता हूँ :

इस पर कहि साधु साधु गाधिसुवन सराहे राउ
महाराज जानि जिय ठीक भली दई है।
कहैं गाधिनंदन मुदित रघुनंदन सों
नृपगति अगह गिरा न जाति गही है॥
देखे सुने भूपति अनेक झूठे झूठे नाम
साँचे तिरहुतनाथ साखी देत मही है।
रागऊ विराग भोग जोग जोगवत मन
जोगी जागवलिक प्रसाद सिद्धि लही है॥

ताते न तरनि ते, न सीरे सुधाकरहू ते
सहज समाधि निरुपाधि निरवही है।
ऐसेऊ अगाध बोध रावरे सनेह बस
विकल विलोकत दुचितई सही है॥

इसपर रामजी ने कहा :

रिषिराज राजा आजु जनक समान को।
आपु एहि भाँति प्रीति सहित सराहिअत
रागो औ विरागी बड़ भागी ऐसो आन को॥
भूमि भोग करत अनुभवत जोग सुख
मुनिमन अगम अलख गति जान को।
गुरु हर पद नेह गेह बसि भो विदेह
अगुन सगुन प्रभु भजन सयान को॥
कहनि रहनि एक विरत विवेक नीति
वेद वुध संमत पथीन निर्वान को।
गाँठि विनु गुनकी कठिन जड़ चेतन की
छोरी अनायास साधु सोधक अपान को॥
सुनि रघुवीर की बचन रचना की रीति
भयो मिथिलेश मानो दीपक बिहान को।
मिट्यौ महा मोह जी को छूट्यौ पोच सोच सी को
जान्यो अवतार भयो पुरुष पुरान को॥

इतना संवाद होने पर तब रामजी गये।

कहँ कुंभज कहँ सिंधु अपारा। सोखेउ सुजसु सकल संसारा॥
रवि मंडल देखत लघु लागा। उदयँ तासु तिभुवन तम भागा॥४॥

अर्थ : कहाँ कुम्भ से उत्पन्न अगस्त्यजी और कहाँ अपार समुद्र। पर उन्होंने सोख लिया। सम्पूर्ण संसार में सुयश व्याप्त हुआ। सूर्य का मण्डल देखने में छोटा है पर उसके उदय से तीनों लोक का अन्धकार जाता रहता है।

व्याख्या : सखी का कार्य शिक्षा देना है। सो वह शोकापनोदन करती हुई बोलती है। बड़ी चतुर है। युक्ति युक्त बात उदाहरण देकर समझाती है कि आकार देखकर पराक्रम का निर्णय नहीं हो सकता। छोटे आकारवाला तेजस्वी हो तो वही बड़ा है। ये बालक तो हैं पर हैं तेजस्वी। उदाहरण देती हैं। अगस्त्य नाम न देकर कुम्भज कहती हैं। कुम्भ दिनरात कूप से जल निकाला करता है। पर पार नहीं पाता। उस कुम्भ से उत्पन्न छोटे आकार के मुनि समुद्र सोख गये। संसार में उनका यश व्याप्त है। कहँ कुंभज कहँ सिन्धु : भाव यह कि दोनों में कोई समता नहीं। एक अति अल्प और दूसरे का पारावार नहीं। कार्य सदा कारण से अल्प ही होता है। बात यह थी कि कुम्भज तेजस्वी थे। इसलिए अपार समुद्र को

सोख लिया। इतना बड़ा पराक्रम किया। ये भी नृपकुलोत्पन्न होकर तेजस्वी होने के कारण अदमनीय धनुष का दमन करेंगे।

दूसरा उदाहरण देती है। सूर्य हैं बहुत बड़े परन्तु देखने में छोटे लगते हैं। प्रताप इतना बड़ा है कि वे उदय हो जाते हैं। स्वयं कुछ भी नहीं करते। केवल उनके तेज से तीनों लोक का तम दूर होता है। इसी भाँति ये राजकुमार वस्तुतः बहुत बड़े हैं पर देखने में छोटे मालूम होते हैं। इनके तेज से चापतम का भङ्ग होगा। इन्हें कोई आयास न करना होगा।

दो. मंत्र परम लघु जासु बस, विधि हरिहर सुर सर्व।
महामत्त गजराज कहुँ, वस कर अंकुस सर्व ॥२५६॥

अर्थ : तीसरा उदाहरण देती हैं। मन्त्र बहुत छोटा है पर उसके वश में ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि सभी देवता हैं। महामत्त गजराज को छोटा सा अङ्कुश वश कर लेता है।

व्याख्या : बहुत छोटा सा मन्त्र एकाक्षर प्रणव है। कहा गया है यही अक्षर ब्रह्म है। यही अक्षर परब्रह्म है। इसी अक्षर को जानकर जो जो जैसी इच्छा करता है उसे उसी की प्राप्ति होती है। यथा : एतदेवाक्षरं ब्रह्म एतदेवाक्षरं परम्। एतदेवाक्षरं ज्ञात्वा यो यदिच्छति तस्य तत्। श्रुति कहती है कि यह सब प्रणवरूप है। भूत भविष्यत् वर्तमान सब उसी के उपव्याख्यान हैं जो तीनों कालों से अतीत है। वह भी प्रणवरूपी है। उस प्रणव की पहिली मात्रा के वाच्य विष्णु दूसरी के ब्रह्मा और तीसरी के शिव हैं। अर्धमात्रा में वाच्य साक्षात् ब्रह्म हैं। अतः सभी प्रणव के वश में हैं और ये साक्षात् प्रणवरूप हैं : ॐ यो ह वै श्री रामचन्द्रः स भगवान् अद्वैतपरमानन्द आत्मा यश्चोङ्कारः भूर्भुव स्वः तस्मै वै नमो नमः। इनके वश में विधिहरिहर हैं। ये शिवचाप का भङ्ग करेंगे।

चौथा उदाहरण देती है : महामत्त गजराज कितना दीर्घाकार और कितना शक्तिशाली है। उसके सामने छोटा सा जड़ अंकुश क्या है पर वह तेजस्वी है। महामत्त गजराज को जिस भाँति चाहता है उठाता बिठाता है इसी भाँति ये बहुत छोटे होने पर भी इस दमनीय चाप को वश करेंगे। जैसे चाहेंगे, उठावेंगे, चढ़ावेंगे, और तोड़ेंगे।

काम कुसुम धनु सायक[1] लीन्हे। सकल भुवन अपने वस कीन्हे॥
देवि तजिअ संसउ अस जानी। भंजव धनुषु राम सुनु रानी ॥१॥

अर्थ : काम ने फूल का धनुष हाथ में लिये हुए सारे संसार को अपने वश में कर रक्खा है। हे रानी ! ऐसा समझकर आप संशय का परित्याग कीजिये। रानी ! सुनो रामजी धनुष तोड़ेंगे।

———

१. यहाँ विभावना द्वितीय है।

व्याख्या : पट्टाभिषिक्ता महिषी को देवी कहते हैं। सीताजी को जनकजी ने इन्हीं को दिया था। अतः सीताजी की माँ यही कहलाती हैं। सखी इन्हीं की बातों का जवाब देती हैं। इसलिए देवि ! सम्बोधन देती हैं। पाँचवां उदाहरण देती हैं : फूल के धनुष में क्या रक्खा है पर उसी को लेकर काम ने संसार को मोहित कर रक्खा है। यथा : हे वरोरु ! है यद्यपि मेरा बाण सरासन फूलों का। सकल सुरासुर को कहता हूँ क्या बूता मज्ञहूलों का। कोई नहीं जगत् में ऐसा है समर्थ जो रह जावे मेरे आदेशों के बाहर फिर भी कुछ धीरज पावै। धन्वी तेजस्वी हैं। सबको वश किये हुए हैं। ये भी कुसुम की भाँति मृदु हैं पर तेजस्वी हैं। सबको वश किये हुए हैं। यथा : निज निज रूप मोहनी डारी। कीन्हें स्ववस सकल नर नारी। पाँच उदाहरणों का भाव यह कि पञ्च महाभूतों में तेजस्वी की ही प्रधानता है। धनुष पञ्चमहाभूत के बाहर की वस्तु नहीं है। अतः इसे निश्चय ही तेजस्वी के वशीभूत होना पड़ेगा। कहँ कुंभज कहँ सिंधु अपारा से रस कहा। रवि मण्डल से रूप कहा। मन्त्र से शब्द कहा। अंकुस से स्पर्श कहा। कुसुम धनु से गन्ध कहा।

पाँच उदाहरणों के साथ युक्तियुक्त तर्क उपस्थित करके शिक्षा देती है कि ऐसा जानकर कि तेजस्वी को लघु न समझना चाहिए। संशय को छोड़ दो। क्योंकि संशय महा दुःखद है। संशय सर्प है। इसके दंशन से भयानक लहर दुःख देनेवाली आती है। निश्चय से संशय दूर होता है। अतः निश्चय यह है कि : भंजब धनुष राम।

सखी वचन सुनि भै परतीती। मिटा विषादु बढ़ी अति प्रीती ॥
तब रामहि बिलोकि बैदेही। सभय हृदय बिनवति जेहि तेही ॥२॥

अर्थ : सखी का वचन सुनकर विश्वास हुआ। विषाद मिटा। प्रीति अत्यन्त बढ़ी। तब रामजी को देखकर वैदेही सभय हृदय से जिसी किसी से विनय कर रही है।

व्याख्या : सुत की प्रीति प्रतीति मीतकी। बेटे पर प्रीति होती है पर विश्वास तो मित्र का होता है। सखी के वचन से संशय जाता रहा। विश्वास हो गया। विषाद मिटा। अति प्रीति हुई। बिना सम्बन्ध के ही प्रीति थी। अब सम्बन्ध की आशा दृढ़ होने से अति प्रीति बढ़ी।

रामजी के चलते ही पुर नर नारि का हाल कहकर रानी का हाल कहा। अब वैदेही का हाल कहते हैं। घटना एक साथ ही हुई। पर युगपत् वर्णन नहीं हो सकता। अतः क्रम से वर्णन करते हैं। रामहिं बिलोकि अत्यन्त मधुरमूर्ति देखकर पहिले कह आये हैं : रामहि चितव भाव जेहि सीया। सो सनेह सुख नहिं कथनीया। अतिप्रिय के विषय में चित्त सदा पापशङ्की होता है। विघ्न का भय करता ही रहता है। अतः सभय हृदय कहते हैं। लक्ष्मणजी के वचन सुन चुकी हैं सुनने से हर्ष भी हुआ प्रभाव भी देख लिया कि पृथ्वी काँप उठी। उनके स्वामीरूप बड़े भाई धनुषभङ्ग के लिए उठे हैं। भय का कोई कारण नहीं है पर रामजी अति प्रिय हैं। अतः उनके

विषय में शङ्का हो रही है। आर्त हो गई हैं। अतः सभय हृदय से जिसी किसी से विनय कर रही हैं। भाव यह कि आर्त विचारकर काम नहीं करता। योग्य से भी विनय करता है, अयोग्य से भी विनय करता है। इसी भाँति जानकीजी समर्थ देवताओं से भी विनय करती हैं और जड़ धनुष : जो स्वयं टूटने को रक्खा है से भी विनय करती हैं।

मनही मन मनाव अकुलानी। होहु प्रसन्न महेस भवानी ॥
करहु सुफल आपनि सेवकाई। करि हित हरहु चाप गरुआई ॥३॥

अर्थ : व्याकुल हुई मन में ही मना रही हैं कि हे महेश भवानी ! प्रसन्न होओ। अपनी सेवा को सुफल करो और कृपा करके धनुष का भारीपन हरण कर लो।

व्याख्या : भगवती जानकीजी सदा गौरी गणपति और गिरीश की सेवा पूजा किया करती थीं। सो महेश भवानी से विनय करती हैं कि अपनी सेवकाई को सफल करो। रामचरणप्राप्ति के लिए सेवा की सफलता चाहती हैं। रामचरण प्राप्ति में चाप का भारीपन बाधक हो रहा है। सो उसके हरण के लिए प्रार्थना कर रही हैं। क्योंकि यह बात दैवीशक्ति से ही सम्भव है। भाव यह है कि मेरी सेवकाई उतनी नहीं है कि जिसके बदले में मैं यह वरदान माँग सकूँ। आप कृपा करके मनोरथ पूर्ण कीजिये।

गननायक वरदायक देवा। आजु लगे कीन्हिउ तुव सेवा ॥
बार बार विनती सुनि मोरी। करहु चाप गुरुता अति थोरी ॥४॥

अर्थ : हे गणनायक ! आप वरदायक देव हैं। मैंने आज तक तुम्हारी सेवा की है। बार बार विनती सुनकर धनुष के भारीपन को बहुत कम कर दीजिये।

व्याख्या : गणेशजी ऐसे वरदायक देवता हैं कि इनके स्मरण से सिद्धि होती है। यथा : जेहि सुमिरत सिधि होइ। इसी से इनकी प्रथम पूजा होती है। जानकीजी का कहना है कि आप तो स्मरण मात्र से सिद्धि देते हैं और मैंने आज तक पूजा की है। भाव यह कि नित्य की भाँति आज भी गणपति गौरी गिरीश की पूजा करके तब रङ्गभूमि में आई हैं। सेवक का मनोरथ सुस्वामी बिना कहे पूर्ण करते हैं और मैं तो बार बार विनती कर रही हूँ। नगरवासी तो मनाते हैं : तौ सिवधनु मृनाल की नाईं। तोरहु राम गनेस गोसाईं। पर भगवती जानकीजी चाप की गुरुता को ही थोड़ी कर देने की प्रार्थना करती हैं। कम से कम जितने में अपना मनोरथ सिद्ध हो जाय उतना ही माँगती हैं। जानती हैं कि उठा लेने से भी रामजी की प्राप्ति सम्भव है। जनकजी ने कहा था : रह्यौ चढाउब तोरब भाई। तिल भर भूमि न सकेउ छड़ाई। भाव यह कि यदि उठा भी लेते तो भी विचार के लिए अवसर था। अतः गुरुता अति थोरी कर देने के लिए गणेशजी से प्रार्थना है अथवा भारीपन हरण के लिए शिव पार्वतीजी से प्रार्थना। फिर भी जो कुछ शेष रह जाय उसे हरण के लिए गणेशजी से प्रार्थना करती हैं।

दो. देखि देखि रघुबीर तन, सुर मनाव धरि धीर।
भरे बिलोचन प्रेम जल, पुलकावली सरीर ॥२५७॥

अर्थ : रामजी की ओर बार-बार देखकर धैर्य धारण करके देवता मनाती हैं। प्रेम का जल आँखों में भरा है और शरीर में पुलकावली छायी हुई है।

व्याख्या : बार-बार रामजी की ओर देखती हैं। शोभा देखने से नेत्र तृप्त नहीं होते। धैर्य छूटा जा रहा है। इस समय देवता मनाने के लिए भी धैर्य धारण करना पड़ रहा है। विश्वास है कि बिना दैवबल के ऐसे कार्यों में सिद्धि नहीं होती। लौकिक बल से शिवजी का धनुष नहीं टूट सकता। अतः देवताओं से प्रार्थना कर रही हैं। प्रेम का ही अनुभाव है। अतः नेत्रों में प्रेमजल है और शरीर में पुलक हो रहा है।

नीके निरखि नयन भरि सोभा। पितु पनु सुमिरि बहुरि मन छोभा॥
अहह तात दारुन हठ ठानी। समुझत नहिं कछु लाभ न हानी ॥१॥

अर्थ : अच्छी भाँति से आँख भरकर शोभा देखकर और पिता का प्रण स्मरण करके फिर मन में क्षोभ हुआ। अहो! पिताजी ने दारुण हठ ठान लिया। कुछ हानि लाभ का विचार नहीं कर रहे हैं।

व्याख्या : जब से श्रीरामजी रङ्गभूमि में पधारे हैं तब से देख रही हैं : मुनि समीप देखे दोउ भाई। रहे ललकि लोचन निधि पाई। जब वहाँ से चले हैं सन्निकट चले आ रहे हैं। शोभा अधिक सुस्पष्ट होती जा रही है। अतः कहते हैं : तब रामहिं बिलोकि बैदेही। सभय हृदय बिनवत जेहि तेही। और भी निकट आ गये। तब : देखि देखि रघुबीर तन सुर मनाव धरि धीर। अब बहुत सन्निकट आगये तो : नीके निरखि नयन भरि सोभा। अब तक दूर दूर से ही साक्षात्कार हुआ। निकट आने पर भली भाँति शोभा देखने का अवसर मिला। अतः नयन भरि देखना कहा। यह मूर्ति आँख से ओझल न हो। यह भावना उठी। तब मुख्य बाधा का स्मरण आया और वह पिता का दारुण प्रण था। इससे चित्त में फिर क्षोभ हुआ। भाव यह कि : पुष्प वाटिका में रामजी की नख शिख शोभा देखने से पहिले भी क्षोभ हुआ था। यथा : नख सिख निरखि राम की सोभा। सुमिरि पिता पन मन अति छोभा। अब नयनभर देखने से फिर क्षोभ हुआ। पिता के दारुण हठ पर खिन्न हो रही हैं। दारुण हठ यही है कि जो ब्याहना चाहे उसे धनुष तोड़ना ही होगा। इन्हें समझना चाहिए था कि रामजी को धनुष तोड़ने के लिए जाने देने में लाभ कुछ नहीं। हानि यह होगी कि मधुर मूर्ति मलिन हो जायगी। इस अद्भुत शोभा में हानि पहुँचाना कितनी बड़ी हानि है। कुछ लाभ हानि न समझकर हठ पर ही अड़े रह जाना हो हठ की दारुणता है।

सचिव सभय सिख देइ न कोई। बुध समाज बड़ अनुचित होई॥
कहँ धनु कुलिसहु चाहि कठोरा। कहँ स्यामल मृदुगात किसोरा ॥२॥

अर्थ : सभी मन्त्री हैं। पर समझाता कोई नहीं। पण्डितों के समाज में बड़ा अनुचित हो रहा है। कहाँ वज्र से भी कठोर धनुष और कहाँ ये सुकुमार शरीरवाले श्यामल किशोर।

व्याख्या : उचित यह है कि जो जिस कार्य के योग्य हो उसी को उस कार्य में नियुक्त करे। नितान्त कोमल को शिवधनुष ऐसे कठोर वस्तु के भङ्ग करने के लिए नियुक्त करना घोर अनुचित है। केवल उसकी प्रतिष्ठा भङ्ग करना है। यहाँ पण्डितों के समाज में ऐसा अनुचित न होना चाहिए। सो यहाँ सभी मन्त्री उपस्थित हैं। कोई शिक्षा नहीं देता। चाहि का अर्थ से है। मलिक मुहम्मद जायसी ने भी अपने प्रसिद्ध पद्मावत में चाहि शब्द का से के अर्थ में प्रयोग किया है। उसी अनुचित को स्पष्ट करती हुई कहती हैं कि क्या यह वज्र से भी कठोर धनुष इस श्यामल मृदुगात किशोर से टूटने योग्य है जो इन्हें इस कार्य में नियुक्त किया जाता है? इसका अर्थ उनकी अप्रतिष्ठा छोड़कर और क्या हो सकता है?

विधि केहि भाँति धरौं उर धीरा। सिरिस सुमन कन वेधिय हीरा॥
सकल सभा कै मति भई भोरी। अब मोहि संभु चाप गति तोरी॥३॥

अर्थ : हे विधि! मैं किस भाँति हृदय में धैर्य धारण करूँ? क्या सिरिस के फूल के कण से हीरा वेधा जाता है। सम्पूर्ण सभा की बुद्धि भोरी हो गई। हे शिवजी के धनुष! मुझे तो अब तुम्हारी शरण है।

व्याख्या : अविधि से कार्य होते देखकर विधि का स्मरण करती हैं कि आप विधि बतलाइये कि मैं कैसे धैर्य धरूँ। मुझसे यह अनुचित सह्य नहीं है। लोग कहते हैं कि हीरा वही जो घन चोट ना टूटे। इसी से हीरे की वज्र संज्ञा है। सो यह धनुष हीरा है। जितने बड़े घोर कठोर रावण बाणादि सुभट हैं वे ही घन हैं। इनकी चोट से यह नहीं टूटा। उसके वेधने के लिए सिरिस के फूल के कण का : जो रूई के भी वेधने में असमर्थ है। प्रयोग करना कौन सी बुद्धिमानी है। इन रावण बाणादि के सामने तो ये श्यामल मृदुगात किशोर वस्तुतः सिरिस के फूल के कण ही हैं। सो आज इस सभा में सिरिससुमनकण से हीरा वेधने का प्रयत्न हो रहा है। अतः यही कहना पड़ता है कि सबकी बुद्धि भोरी हो गई। अब तो जो कुछ आशा है सो शम्भुचाप से है। मैं अब उसी के शरण जाती हूँ।

निज जड़ता लोगन पर डारी। होहु हरुअ रघुपतिहि निहारी॥
अति परिताप सीय मन माँहीं। लव निमेष जुग सय सम जाँहीं॥४॥

अर्थ : तुमने अपनी जड़ता लोगों पर डाल दी। अब रघुपति को देखकर हलके हो जाओ। सीताजी के मन में बड़ा परिताप है। निमेष का भी लव : अत्यन्त छोटा भाग : सौ युग के समान बीत रहा है।

व्याख्या : सीताजी अब धनुष से प्रार्थना करती हैं। जड़ता में ही गुरुता

है। जड़परमाणु जितने ही घनीभूत होते जाते हैं उतनी ही जड़ता की वृद्धि होती जाती है। सो अपनी जड़ता लोगों पर डाल दी है तभी तुम्हारे विषय में सबकी मति भोरी हो गई है। अतः तुम अब हलके हो जाओ। रघुपति को देख लो कि यह कितना बोझ उठा सकते हैं। उतने हलके हो जाओ। अथवा जब तुमने अपनी जड़ता लोगों पर डाल दी है तब चेतन होकर रघुपति को देखो और इतने हलके हो जाओ जिसमें ये तुम्हें उठा लें। मैं तुमसे टूटने के लिए प्रार्थना नहीं करती।

दो. प्रभुहि चितइ पुनि चितव महि, राजत लोचन लोल।
खेलत मनसिज मीन जुग, जनु विधु मंडल डोल ॥२५८॥

अर्थ : प्रभु को देखकर तब पृथ्वी को देखती हैं। चञ्चलनेत्र ऐसे शोभायमान हो रहे हैं जैसे चन्द्रमण्डल के डोल में दो कामदेव रूपी मछलियाँ तैर रही हों।

व्याख्या : डोल एक प्रकार का जलपात्र होता है। इसका गोल आकार होता है। मेरे लड़कपन तक डोल से पानी कूएँ से खैंचा जाता था। पर अब डोल नहीं दिखाई पड़ता। पर धनियों के यहाँ शीशे के डोल अब भी देखे जाते हैं। जिनमें सुनहली रूपहली छोटी छोटी मछलियाँ छोड़ दी जाती हैं। वे नीचे ऊपर तैरा करती हैं और उनकी बड़ी शोभा होती है।

भगवती जनकनन्दिनी प्रेम के कारण प्रभु को देखती हैं और फिर सङ्कोच से पृथ्वी की ओर अर्थात् नीचे देखने लगती हैं। इस भाँति जो नेत्र चञ्चल हो रहे हैं। उनकी शोभा कवि कहते हैं कि मानों चन्द्रमण्डल रूपी डोल में दो कामदेव की मछलियाँ तैर रही हों। कामदेव मीनकेतन हैं। आँखों की उपमा मीन से दी जाती है। सुन्दरता के उत्कर्ष के लिए जनकनन्दिनी की आँखों की उपमा मीन-केतन के मीन से दी गई और मुख की उपमा चन्द्ररूपी डोल से दी गई। कभी रामजी की ओर देखती हैं। कभी नीचे देखती हैं। तो नेत्र की गति वैसी ही हो रही है जो उन मछलियों की होती है। डोल स्थिर रहता है। मछलियाँ ही चलती हैं। इसी भाँति मुख स्थिर है केवल नेत्र चञ्चल हैं। हम लोगों का भाषाज्ञान बहुत सङ्कुचित है। अतः अर्थ करने में चूक हो जाती है। जहाँ के लोग डोल से अपरचित हैं। डोल का अर्थ हिंडोला करते हैं। पर पानी के डोल में ही मछली का खेलना बन सकता है हिंडोले पर तो उनका छटपटाना ही सम्भव है।

गिरा अलिनि मुख पंकज रोकी। प्रकट न लाज निसा अवलोकी॥
लोचन जलु रह लोचन कोना। जैसे परम कृपिन कर सोना ॥१॥

अर्थ : वाणीरूपी भौंरी को मुखकमल ने रोक रखा। लाज की रात्रि देखकर वह प्रकट नहीं होती। नेत्रों का जल नेत्रों के कोने में उसी भाँति रह गया जैसे परम कृपण का सोना हो।

व्याख्या : गुरुजन लाज समाज बड़। सो लज्जा की रात्रि में कमलपुट बन्द हो जाते हैं। उनके बन्द हो जाने से भौंरे भी उनमें बन्द हो जाते हैं। जब रात्रि

जाय, सवेरा हो, कमल खिलें तो वे उनमें से निकल सकें। लज्जा के कारण जनकनन्दिनी बोल नहीं सकती। वाणी भौंरी के रूप मुखकमल में बन्द है और मुखकमल लज्जारूपी रात्रि के कारण बन्द है। भाव यह कि वाणी मध्यमा अवस्था तक तो आती है पर लज्जावश वैखरी रूप में परिणित नहीं हो सकती। प्रेमाश्रु आँख के कोने में आगये हैं। पर उन्हें इतने प्रयत्न से रोक रक्खा है कि गिरने नहीं देतीं। जिस प्रबल प्रयत्न से परमकृपण अपने सोने को रोके रखता है कदाचित् त्याग नहीं करता। भाव यह कि परमकृपण को भी देने की इच्छा हो जाती है। सोना हाथ में ले भी लेता है। पर कृपणता उसकी यही है कि दे नहीं सकता। बड़े प्रयत्न से मनको रोक लेता है। इसी भाँति श्री जनकनन्दिनी की आँखों में प्रेम के आँसू डबडबा आये। यथा : भरे बिलोचन प्रेम जल पुलकावली सरीर। यहाँ तक कि आँखों के कोने तक आगये पर उन्हें जहाँ का तहाँ बड़े प्रयत्न से रोक रक्खा।

सकुची ब्याकुलता बड़ि जानी। धरि धीरज प्रतीत उर आनी॥
तन मन बचन मोर पनु साचा। रघुपति पद सरोज चितु राचा॥२॥

अर्थ : बड़ी व्याकुलता समझकर सङ्कुचित हुईं। धैर्य धारण करके मनमें विश्वास को स्थान दिया कि तन मन वचन से यदि मेरा प्रण सच्चा है और मेरा मन यदि रघुपति के चरण कमल में रच गया है।

व्याख्या : क्षोभ व्याकुलता में परिणत हुआ और व्याकुलता भी खूब बढ़ी। परन्तु जनकनन्दिनी ने अपने को उस व्याकुलता का द्रष्टा माना। इससे व्याकुलता रुकी सङ्कोच का उदय हुआ। धैर्यधारण की ओर चित्त की वृत्ति गई परन्तु किस विश्वास पर धैर्य धारण किया जाय। विश्वास के लिए मूलभित्ति चाहिए। सो श्रुति ही मूलभित्ति हुई। यद्यत्कामयते तत्तल्लभते : जिसकी कामना करे उसकी प्राप्ति होती है। पर कामना सच्ची होनी चाहिए। सो यह विश्वास हुआ कि मनसा वाचा कर्मणा मेरा प्रण सच्चा है। यहाँ रघुपतिपदसरोज में चित्त का रच जाना : लग जाना प्रेम प्रण है। वह चित्त अब दूसरे का नहीं हो सकता। यथा : स्याम सरोज दाम सब सुंदर। प्रभु भुज करि कर सम दसकंधर। सो भजकंठ कि तब असि घोरा। सुनु सठ अस प्रमान पन मोरा।

तौ भगवान सकल उर बासी। करिहिं मोहि रघुपति कै दासी॥
जेहि के जेहि पर सत्य सनेहू। सो तेहि मिलै न कछु संदेहू॥३॥

अर्थ : तो भगवान् सबके हृदय में रहते हैं मुझे रघुपति की दासी बनायेंगे। जिसका जिसपर सच्चा प्रेम होता है वह उसे मिलता है। इसमें कुछ भी सन्देह नहीं।

व्याख्या : ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति। ईश्वर सब प्राणियों के हृदय में रहता है और भाव कुभाव सब जानता है। यथा : सबके उर अन्तर बसहु जानहु भाव कुभाव। अतः भगवान् मुझे रघुपति की दासी बनावेंगे। क्योंकि वे ही

जान सकते हैं कि मेरे हृदय का भाव सच्चा है कि नहीं। भाव यह कि अपनी पुत्री के देने का मुख्य अधिकार पिता को है। वे तो अपनी प्रतिज्ञा से बद्ध हो रहे हैं। कहते हैं : कुँवरि कुँआरि रहौं का करहूँ। अतः जगत् पिता का भरोसा है कि वे मेरे मनोरथ को पूर्ण करेंगे। जिस भाँति मेरे पिता अपनी प्रतिज्ञा से बँधे हैं उसी भाँति जगत्पिता अपने वचन : वेद वाक्य से बँधे हैं। यहाँ अनुवाद रूप से श्रुति का ही उल्लेख है। जेहि के जेहि पर सत्य सनेहू। सो तेहि मिलै न कछु संदेहू।

प्रभु तन चितै प्रेम पनु ठाना। कृपानिधान राम सब जाना॥
सियहि बिलोकि तकेउ धनु कैसे। चितव गरुरु लघु व्यालहिं जैसे॥४॥

अर्थ : प्रभु की ओर देखकर प्रेम पन ठान दिया। कृपानिधान रामजी ने जान लिया। सीताजी की ओर देखकर धनुष को इस भाँति देखा जैसे गरुड़ छोटे सर्प को देखते हैं।

व्याख्या : जिसके विषय में प्रेमप्रण ठानना है वह सम्मुख है। अतः उसकी ओर देखकर ठानना स्वाभाविक है। करुणानिधान सुजान ने सब जान लिया। गिरिजा भगवती कह चुकी है कि : करुना निधान सुजान सील सनेह जानत रावरो। सीताजी ने रामजी की ओर देखकर प्रेम प्रण ठाना और रामजी ने उनकी ओर देख उस प्रेमप्रण को पूर्ण करना मनमें ठाना। अतः सीताजी की ओर देखकर धनुष की ओर देखा। भाव यह कि सीता की प्राप्ति में यह बाधक है। और नरेन्द्रों की भाँति तमकि ताकि तकि नहीं। यह तो इस भाँति देखते हैं जैसे गरुड़ छोटे सँपेले को देखे। गरुड़ के सामने बड़े बड़े भुजगेन्द्र कुछ नहीं हैं सँपेले की क्या गिनती है। वह सँपेले को अति तुच्छ गरुड़ के सामने दृष्टि से देखते हैं : का बापुरो पिनाक पुराना।

दो. लषन लखेउ रघुबंसमनि, ताकेउ हर कोदंड।
पुलकि गात बोले बचन, चरन चाँपि ब्रह्मंड॥२५९॥

अर्थ : लक्ष्मणजी ने लखा कि रघुवंशमणि ने शिवजी के धनुष की ओर देखा। उनके शरीर में पुलक हो गया। ब्रह्माण्ड को पैर से दबाकर बोले।

व्याख्या : जबसे रामजी चले लक्ष्मणजी की दृष्टि उन्हीं पर है। अतः उन्होंने ही लखा कि रामजी ने धनुष की ओर देखा। अब लिया ही चाहते हैं। लक्ष्मणजी को आनन्दातिशय से पुलक हो गया। शिवधनुष तोड़ने में जिस शक्ति का प्रयोग होगा उससे ब्रह्माण्ड में हलचल न हो। अतः पैर से ब्रह्माण्ड को दबा कर वचन बोले। भाव यह कि ऊपर से मैं दबाये हुए हूँ नीचे से तुमलोग सँभालना। दूसरी बात यह कि इस समय यदि सीधे अयोध्या से राजसमाज के साथ स्वयंवर के लिए रामजी पधारे होते तो बन्दी बलवर्धन के लिए विरद बोलते। लक्ष्मणजी विरद बोल नहीं सकते। अतः शेष कमठादि के सावधान करने के व्याज से बलवर्धक वाक्य बोले। यथा : अहि महिधर न लखन कह बलहि बढ़ावन। राम चहत सिव चापहि चपरि चढावन।

दिसिकुंजरहु कमठ अहि कोला। धरहु धरनि धरि धीर न डोला ॥
राम चहहिं संकर धनु तोरा। होहु सजग सुनि आयसु मोरा ॥१॥

अर्थ : हे दिग्गजगण ! कच्छप शेष और कूर्म धैर्य धारण करो जिसमें यह हिले नहीं। रामजी शङ्कर का धनुष तोड़ा चाहते हैं। मेरी आज्ञा को सुनकर सबलोग सावधान हो जाओ।

व्याख्या : पृथ्वी के चार सँभालनेवाले हैं : चारों दिशाओं से तो चारों दिग्गज सँभालते हैं। नीचे से वराह शेष और कच्छप सँभालते हैं। इनको लक्ष्मणजी सावधान करते हैं और आज्ञा देते हैं। लक्ष्मणजी जाग्रत के विभु होने से सकल जगत् के आधार हैं। अर्थात् ब्रह्माण्डमात्र के आधार हैं। शेषों की समष्टि हैं। अतः सभी व्यष्टियों पर इनकी आज्ञा चलती है। पृथ्वी को अपने स्थान से च्युति की सम्भावना है। भारी धक्का पहुँचेगा। दिग्गजादि के भी धैर्यच्युति की सम्भावना है। अतः धैर्य धारण करके पृथ्वी को संभालने के लिए सावधान करते हैं।

कारण कहते हैं कि रामजी प्रलयकारी देव साक्षात् रुद्र का धनुष तोड़ना चाहते हैं। सभी वस्तुओं में ऐसी शक्ति निहित रहती है जिससे उसका स्वरूप बना रहता है। उस वस्तु के विनाश में उससे अधिक शक्ति का प्रयोग होता है। शिवजी के धनुष में बड़ी बलवती शक्ति निहित है। धनुष के टूटने से जब वह छूटेगी तो ब्रह्माण्ड में उलट पलट कर देगी। राम चहहिं का भाव यह है कि ये उसे तोड़ही डालगे। यथा : राम कीन्ह चाहँ सो होई। करै अन्यथा अस नहि कोई। अकस्मात् उसके आघात से जगत् का अकल्याण सम्भावित है। पहिले से ही सावधान रहने से उसे सँभाल सकेंगे। इसलिए लक्ष्मणजी सावधान करते हुए आदेश देते हैं। अतिशक्तिशाली पदार्थ का प्रभाव अति क्षुद्र जन्तुओं पर नहीं पड़ सकता। उसका प्रभाव उन्हीं पर पड़ता है जो उसके स्पन्दन के अनुभूति के पात्र हों। जैसे हजारों बन्दूकों के एक साथ छूटने से जो शब्द होता है उसके स्पन्दन को हमारी श्रवणेन्द्रियाँ सम्यक् रूप से ग्रहण नहीं कर सकतीं। अतः हम लोगों को हलकी आवाज सुनाई पड़ती है। इसी भाँति शिवधनुष भङ्ग का प्रभाव पृथ्वी या ब्रह्माण्ड पर विशेष रूप से पड़ सकता था मनुष्यों पर उतना नहीं।

चाप समीप राम जब आए। नर नारिन्ह सुर सुकृत मनाए ॥
सब कर संसउ अरु अग्यानू। मंद महीपन्ह कर अभिमानू ॥२॥

अर्थ : रामजी जब धनुष के पास गये तब स्त्री पुरुषों ने देवता और पुण्यों को मनाया। सबका संशय अज्ञान और मूढ राजाओं का अभिमान।

व्याख्या : ज्यों ही रामजी चले त्योंही नर नारियों ने अपने अपने सुकृत : पुण्य को प्रयोग करने के लिए संभाला। यथा : वंदि पितर सुर सुकृत संभारे। अब जब रघुवरजी धनुष के निकट पहुँच गये तो उसका प्रयोग करते हैं। अपने देवता और पुण्य को मनाते हैं कि समय आगया सहाय होइये। क्योंकि उनके मन में

संशय है कि रामजी से सम्भवतः धनुष न टूटे और उत्कट इच्छा है कि रामजी तोड़ें। इसलिए अत्यन्त कष्ट से उपार्जित पुण्य और तीव्र उपासना से आराधित देवों से काम लेते हैं।

इस प्रकार १. सबको संशय है और २. रामजी के बलविषयक अज्ञान है। ३. मूढ राजाओं को अभिमान है कि जब हमसे धनुष न टूटा तो कोई इसे तोड़ नहीं सकता। देखें कौन तोड़ता है? इसलिए अपने अपने समाज में आसन लगाये बैठे हैं।

भृगुपति केरि गरव गरुआई। सुरमुनिवरन्ह केरि कदराई॥
सिय कर सोचु जनक पछितावा। रानिन्ह कर दारुन दुख दावा॥३॥

अर्थ : ४. परशुरामजी के गर्व का गौरव। ५. सुर और मुनिश्रेष्ठों का कादरपन। ६. सीताजी का सोच ७. जनकजी का पछतावा और ८. रानियों का दारुण दुःख दावानल : बनडाढ़ा।

व्याख्या : परशुरामजी को बड़ा भारी गर्व था कि जगत् में मैं ही एक अप्रतिम वीर हूँ। यह धनुष मेरे गुरुजी का है। इसमें यदि कुछ पराक्रम काम कर सकता है तो मेरा ही काम कर सकता है। दूसरों का किया कुछ नहीं हो सकता। सुर मुनि भयभीत हैं कि यदि रामजी से धनुष न टूटा तो सीताजी से व्याह ही न होगा। फिर रावणवध की कथा ही क्या है? सीताजी को सोच है : कहँ धनु कुलिसहु चाहि कठोरा। कहँ स्यामल मृदुगात किसोरा। विधि केहि भाँति धरौं उर धीरा। सिरिस सुमन कन वेधिहि हीरा। जनकजी को पछतावा है कि : जौ जनतेउ बिनु भट भुवि भाई। तौ पन करि करत्यौं न हँसाई। रानियों को दारुन दुःख है कि : सो धनु राजकुअँर कर देही। बाल मराल कि मंदर लेही। भूप सयानप सकल सिरानी। सखि विधि गति कछु जात न जानी।

संभुचाप बड़ बोहित पाई। चढ़े जाइ सबु संगु बनाई॥
राम बाहुबल सिंधुअपारू। चहत पार नहिं कोऊ कड़हारू॥४॥

अर्थ : शिवजी के धनुष को बड़े भारी जहाज रूप से पाकर सब सार्थ : कम्पनी बनाकर चढ़े। राम बाहुबलरूपी अपार समुद्र का पार चाहते हैं। पर कोई कर्णधार नहीं है।

व्याख्या : उपर्युक्त आठों भाव : संशय, अज्ञान, अभिमान, गर्व, गरुआई, कदराई, शोक, पछितावा और दारुण दुःखदावानल धनुष में ही केन्द्रित हैं। इसी बात को रूपकालङ्कार में कहा जाता है। मानो ये आठों भाव ही वणिक् समाज : कम्पनी है। सात से कम की कम्पनी नहीं होती। इन आठों का लक्ष्य एक है। ये सब अपार रामबाहुबल सिन्धु के पार जाना चाहते हैं। सिन्धु का तो कहीं न कहीं वारपार है ही। पर रामबाहुबल सिन्धु का पार नहीं है। जिसका पार ही नहीं है उसका पार कोई कैसे पा सकता है। पर ये असाध्य साधन में लगे हैं।

सिन्धुपार जाने के लिए जहाज चाहिए सो शिवधनुष को बड़ा जहाज समझकर चढ़ गये। समझा कि यह पार पहुँचा देगा। अर्थात् यह रामजी का तोड़ा न टूटेगा तो हमलोग पार पहुँच जायँगे : अर्थात् संशय अज्ञानादिक की स्थिति दृढ़तर हो जायगी। परन्तु सामान्य : पारवाले समुद्र के पार भी जहाज बिना कर्णधार के जा नहीं सकता। कर्णधार ही रक्षक है। यथा : कर्णधार तुम अवध जहाजू। सो यहाँ कर्णधार ही नहीं। इसके स्वामी तो शिवजी थे उनसे यह परित्यक्त ही है। महाराज जनक के यहाँ रक्खा था। वे भी इसका टूटना ही चाहते हैं। अतः यह चापरूपी जहाज विना कर्णधार का है। यह राम बाहुबल रूपी सिन्धु में डूबेगा। पर इस समय तो संशय अज्ञानादि वणिक् समाज का यही आधार है। भाव यह है। कि अलग-अलग लोगों में इन्हीं आठ भावों में से कोई न कोई काम कर रहा है। पर सबके भावों का आधार एकमात्र धनुष हो रहा है और उसका संघर्ष रामबाहुबल रूपी अपारसमुद्र से हुआ ही चाहता है। अतः जनता स्तब्ध होकर बड़ी उत्कण्ठा के साथ इस संघर्ष के परिणाम पर दृष्टि लगाये हैं।

दो. राम विलोके लोग सब, चित्र लिखे से देखि।
चितई सीय कृपायतन, जानी विकल विसेखि ॥२६०॥

अर्थ : रामजी ने लोगों को देखा मानो चित्र में लिखे हुए हैं। कृपा के भवन ने सीताजी को देखकर जाना कि विशेष विकल है।

व्याख्या : सबकी भावना एक ही विषय में केन्द्रित है। इसलिए सब चित्र में लिखे हुए की भाँति हिलते डोलते नहीं हैं। चित्र में लिखे हुए नर-नारि उसी अवस्था में सदा रहते हैं पलक नहीं मार सकते। यही दशा यहाँ सबकी हो रही है। कृपायतन हैं। अतः फिर सीताजी को देखा। यह दूसरी बार का देखना है। निकट आ गये हैं। जान लिया कि इन्हें विशेष विकलता है।

देखी विपुल विकल बैदेही। निमिष बिहात कलप सम तेही ॥
तृषित वारि बिनु जो तनु त्यागा। मुएँ करै का सुधा तड़ागा ॥१॥

अर्थ : वैदेही को बहुत ही विकल देखा। उन्हें एक निमिष कल्प के समान बीत रहा है। प्यासा बिना पानी के जो शरीर छोड़ दे तब मरने पर जल का तालाब क्या करेगा : यहाँ प्रकरणबल से अमृत का अर्थ जल ही करना होगा।

व्याख्या : जब रामजी चले तभी सीताजी विकल थीं। यथा : अति परिताप सीय मन माहीं। लव निमेष युग सय सम जाहीं और धनुष के समीप पहुँचते-पहुँचते परिताप ऐसा बढ़ा कि एक निमेष कल्प मालूम होने लगा। छ लव का एक निमेष होता है। अतः एक निमेष ६०० युग के बराबर मालूम होता था। चार युगों का एक महायुग होता है। अतः १५० महायुगों के तुल्य प्रतीत होता था। अब एक निमेष एक कल्प अर्थात् एक सहस्र महायुगों के समान मालूम होने लगा।

अर्थात् इतनी ही देर में परिताप की मात्रा पाँच गुना से अधिक बढ़ गई। दुःख की घड़ी वड़ी कठिनता से बीतती है।

लोचन चातंक जिन करि राखे। रहहिं दरस जलधर अभिलाखे। निदरहिं सरित सिंधु वरवारी। रूप बिंदुजल होहिं सुखारी। रूप बिन्दु की प्यासी चातकी यदि प्यास से मर ही गई तो पीछे से अमृत का तालाव क्या करेगा? अमृत का अर्थ जल है। यथा: पयः कीलालममृतं जीवनं भुवनं वनम्। आगे चलकर धनुष-भङ्ग होने पर कहेंगे भी: सीय सुखहिं वरनिय केहि भाँती। जिमि चातकी पाइ जल स्वाती।

का वरषा सब कृषी सुखाने। समय चुके पुनि का पछिताने ॥
अस जिय जानि जानकी देखी। प्रभु पुलके लखि प्रीति विसेखी ॥२॥

अर्थ: जब खेती सूख गई तब वर्षा होने ही से क्या? समय चूक जाने पर फिर पछताने से क्या लाभ। ऐसा मन में जानकर प्रभु ने जानकीजी को देखा और प्रीति विशेष देखकर रामजी को पुलक हो गया।

व्याख्या: भाव यह कि दशम दशा उपस्थित है। अब खेती सूखा ही चाहती है। यदि कुछ प्राण रहते भी वर्षा हो जाय तो फिर खेती के लहलहा उठने में देर नहीं। अतः अब देर न होनी चाहिए। इस समय चूकने से अर्थात् कुछ भी देर करने से सीताजी से हाथ धोना ही पड़ेगा। ऐसा विचार करके तीसरी वार भगवती जनकनन्दिनी की ओर देखा और इस प्रकार की अलौकिक प्रीति देखकर प्रभु को पुलक हो गया। प्रभु करुनानिधान सुजान शील सनेह के जाननेवाले हैं। तीन बार जानकीजी ने देखा था। यथा: १. नीके निरखि नयन भरि सोभा २. देखि देखि रघुवीर छवि सुर मनाव धरि धीर और ३. प्रभु तन चितय प्रेम पन ठाना। उधर भरे विलोचन प्रेमजल पुलकावली सरीर। इधर प्रभु पुलके लखि प्रीति विसेखी।

गुरहि प्रनाम मनहिं मन कीन्हा। अति लाघव उठाइ धनु लीन्हा ॥
दमकेउ दामिनि जिमि जब लयऊ। पुनि नभ धनु मंडल सम भयऊ ॥३॥

अर्थ: गुरुजी को मन ही मन प्रणाम किया और अत्यन्त फुरती से धनुष को उठा लिया। जिस समय उठाया तो बिजली सी चमक गई। फिर आकाश में धनुष मण्डलाकार हो गया।

व्याख्या: कौशल दिखाने के पूर्व उस गुरु को प्रणाम करना चाहिए जिससे कौशल की प्राप्ति हुई है और ऐसे समय मन से ही प्रणाम सम्भव है। प्रभु ने ऐसी फुरती धनुष के उठाने में की कि जो लोग चित्र लिखे से हो रहे थे वे भी नहीं देख पाये। अत्यन्त फुरती की प्रक्रिया में एक रेखा सी बन जाती है जैसे वनेठी के आग की रेखा वन जाती है उसी भाँति बिजली की रेखा सी बन गई। उठाते

किसी ने न देखा। यह देखा कि बिजली सा कुछ चमका। फिर सब किसी ने आकाश में धनुष को मण्डलाकार देखा।

लेत चढ़ावत खैंचत[1] गाढ़ें। काहु न लखा देख सबु ठाढ़ें॥
तेहि छन राम मध्य धनु तोरा। भरे भुवन धुनि घोर कठोरा॥४॥

अर्थ : लेते चढ़ाते और पटुता से खैंचते हुए किसी ने नहीं देखा। सब देखते हैं कि रामजी खड़े हैं। उसी समय उन्होंने बीच से धनुष को तोड़ दिया। सम्पूर्ण भुवन में घोर कठोर ध्वनि भर उठी।

व्याख्या : धनुष के उठाने का लाघव कहकर अब चढ़ाने और खैंचने का लाघव कहते हैं। किसी ने कुछ न देखा। सबको मालूम पड़ा कि रामजी खड़े ही हैं। रामजी का झुकना धनुष को उठाना उसपर प्रत्यञ्चा चढ़ाना और उसे पण्डिताई के साथ कसकर खैंचना जिसमें टूट जाय किसी को लखाई ही नहीं पड़ा। गाढ़ का अर्थ पण्डिताई से है। यथा : कबहु न मिले सुभट रनगाढे। बाँधे बिरद बीर रन गाढे। उसी समय रामजी ने बीच से धनुष को तोड़ दिया। बीच से तोड़ने का भाव यह कि कोई यह न कह सके कि धनुष के पतले भाग को तोड़ा बीच से न तोड़ सके। जितनी कठोर वस्तु होती है उसके टूटने में वैसी कठिन ध्वनि होती है। धनुष वज्र से भी कठिन था। इसलिए वज्रपात से भी घोर शब्द हुआ। सम्पूर्ण भुवन में भर गया। घोर से गम्भीर कहा और कठोर से असह्य कहा।

छं. भरे भुवन घोर कठोर रव रवि बाजि तजि मारगु चले।
चिक्करहिं दिग्गज डोल महि अहि कोल कूरुम कलमले॥
सुर असुर मुनि कर कान दीन्हें सकल बिकल बिचारहीं।
कोदंड खंडेउ राम तुलसी जयति बचन उचारहीं॥

अर्थ : घोर कठोर ध्वनि भुवन में भर गयी। सूर्य के घोड़े मार्ग छोड़कर चले। दिग्गज चिग्घाड़ने लगे। पृथ्वी डोल उठी। शेष बराह और कच्छप भी हिल गये। देवता असुर और मुनियों ने कान मूँदा। सब विकल होकर विचरते हैं कि रामजी ने धनुष तोड़ा। तुलसीदास जयजयकार कर रहे हैं।

व्याख्या : घोर कठोर ध्वनि से सारा भुवन व्याप्त हो गया। सूर्य के घोड़े भड़ककर दूसरी ओर चले। बल न चलने पर दिग्गज चिक्कार करने लगे। लक्ष्मणजी के सावधान करने पर भी पृथ्वी को स्थिर न रख सके। वह डोलने लगी। वही नहीं उसके आधारभूत वाराह शेष और कच्छप हिलने लगे। जो जो उस शब्द के स्पन्दन ग्रहण करने में समर्थ थे अर्थात् देवता असुर और मुनि उन्होंने अपने कानों को मूँद लिया। शब्द की कठोरता न सह सके विकल हो गये। विचारने

---

१. यहाँ कारक दीपक अलङ्कार है।

लगे कि निश्चय रामजी ने धनुष तोड़ा। गोस्वामीजी भी उस समय अपनी मानसिक उपस्थिति मानकर कहते हैं कि तुलसीदास जयजयकार करने लगा। इसी बात को श्री गोस्वामीजी ने बड़ी सुन्दरता से प्रकट किया है।

छप्पय : डिगति उर्वि अति गुर्वि सब्ब पब्बय समुद्र सर।
व्याल बधिर तेहि काल विकल दिगपाल चराचर॥
दिग्गयंद लरखरत परत दसकंठ मुक्ख भर।
सुरविमान हिम भानु यान संघटित परस्पर॥
चौंके विरंचि संकर सहित कोल कमठ अहि कलमल्यो।
ब्रह्मांड खंड कियो चंड ध्वनि जबहिं राम सिवधनु दल्यो॥

दो. संकर चापु जहाजु, सागरु रघुवर बाहुबल।
बूड़ सो सकल समाजु, चढ़ा जो प्रथमहिं मोहवस ॥२६१॥

अर्थ : शंकर चाप रूपी जहाज रघुवरबाहुवल सागर में सब समाज के सहित जो पहिले मोहवश उसपर चढ़ा था डूब गया।

व्याख्या : राम बाहुबल सिंधु अपारू। चहत पार नहिं कोउ कड़हारू से प्रसङ्ग छोड़ा था। अब उसी प्रसङ्ग का उपसंहार करते हैं : संकर चापु जहाजु सागरु रघुवर बाहुबल। रामचन्द्र का बाहुबल अपार समुद्र है इसका पारावार ही नहीं। कर्णधार से सनाथ जहाज भी यहाँ कृतकार्य नहीं हो सकता था। यह चाप तो कर्णधार रहित था। रामबाहुबलरूपी समुद्र के पहिले थपेड़े में ही टूट गया। जो समाज इसपर : कर्णधार रहित जहाज पर मोहवश चढ़ा था डूब मरा। सारी कम्पनी समुद्र तल में लीन हो गई। इस दोहा पर बड़े तर्क वितर्क उठते हैं। अतः जो पहिले मोहवश चढ़े थे और जहाज के टूटने पर डूब मरे उनकी तालिका जैसी ग्रन्थकार ने दी है उपस्थित करता हूँ : यथा : १. सबकर संसय अरु २. अज्ञानू ३. मंद महीपन्ह कर अभिमानू ४. भृगुपति केरि गर्व गरुआई ५. सुर मुनिवरन्ह केरि कदराई ६. सियकर सोच ७. जनक पछितावा और ८. रानिन कर दारुन दुःखदावा। संभु चाप बड़ वोहित पाई। चढ़े जाई सब संग बनाई। धनुष के टूटने से सब डूब गये। सबका संशय और अज्ञान भी जाता रहा। मंद राजाओं का अभिमान जाता रहा। परशुरामजी का अभिमान मारा पड़ा। सुर मुनिवरों की कदराई गई। सीताजी का सोच गया। जनक का पछितावा जाता रहा और रानियों का दुःख दावानल मिटा। इसी बात को जिसे मैंने रूखे सूखे शब्दों में कहा है। कितनी सुन्दरता और सरलता से कवि ने जहाज टूटने के रूपक में कह डाला।

प्रभु दोउ चापखंड महि डारे। देखि लोग सब भए सुखारे॥
कौसिकरूप पयोनिधि पावन। प्रेम वारि अवगाहु सुहावन ॥१॥

अर्थ : प्रभु ने दोनों टुकड़े धनुष के पृथ्वी पर डाल दिये। देखकर सब सुखी

हो गये। विश्वामित्रजी का स्वरूप पवित्र समुद्र था। जिसमें सुन्दर प्रेम रूपी जल अथाह भरा था।

व्याख्या : तोड़ते तो किसी ने लखा नहीं। रामजी ने दोनों टुकड़े भूमि पर डाल दिये कि सबलोग देख लें। दोनों टुकड़ों में कोई लगाव नहीं है। जनकजी का वचन सुनकर सब दुःखारी हुए थे। यथा : जनक वचन सुनि सब नरनारी। देखि जानकिहिं भये दुखारी। अब वे ही लोग सुखारे हुए।

कौशिक का रूप क्या है मानो स्वयं पावन समुद्र है। लौकिक समुद्र दिन-विशेष देशविशेष तथा कालविशेष छोड़कर सब देशकाल में अस्पृश्य है। यथा : अश्वत्थसागरौ सेव्यौ न स्पृष्टव्यौ कदाचन। भारते। विना मन्त्रं विना पर्वं क्षुरकर्म विना नरैः। कुशाग्रेणापि देवेशि न स्पृष्टव्यो महोदधिः। स्कान्दे। अश्वत्थ और समुद्र का पूजन करे पर उन्हें छूए नहीं। मन्त्र पर्व क्षौरकर्म विना हे देवि कुश के अग्र से भी समुद्र का स्पर्श न करे; परन्तु कुशिकनन्दन का रूप पवित्र समुद्र है। प्रेमरूपी जल से भरा हुआ पावन है।

रामरूप[1] राकेसु निहारी। बढ़त वीचि पुलकावलि भारी॥
बाजे नभ गहगहे निसाना। देववधू नाचहिं करि गाना॥२॥

अर्थ : रामरूप पूर्ण चन्द्र को देखकर उसमें तरङ्गरूपी भारी पुलकावली बढ़ रही है। आकाश से गहगह शब्द से डङ्के बजे। देववधू गान करके नाचने लगीं।

व्याख्या : विश्वामित्रजी प्रेम के समुद्र हैं। रामचन्द्र का दर्शन भी आजकल बराबर कर रहे हैं। परन्तु आज रामरूपी चन्द्र पूर्णकला से उदित हैं। मानो धनुषरूपी राहु को जिसने राजाओं के बलरूपी चन्द्र का ग्रास किया था समरभूमि में वध करके विजयलक्ष्मी से शोभा को प्राप्त किये हैं। यथा : लेहुरी लोचननि को लाहु। कुँवर सुंदर साँवरो सखि सुमुखि सादर चाहु। खंडि हर कोदंड ठाढ़े जानुलंबित बाहु। मुदितमन बरवदन शोभा उदित अधिक उछाहु। मनहु दूरि कलंक करि ससि समर सूद्यौ राहु। समुद्र का पूर्णचन्द्र को देखकर तरङ्गों द्वारा बढ़ना विख्यात है। इसी भाँति रामचन्द्र रूपी अपूर्व पूर्ण चन्द्र को देखकर प्रेमामृतपूर्ण समुद्ररूप विश्वामित्रजी के शरीर में वारबार पुलकरूपी तरङ्गें उठने लगीं।

भगवती जनकनन्दिनीजी के रङ्गभूमि प्रवेश के अवसर पर कहा है कि : हरखि सुरन्ह दुंदुभी बजाई। बरखि प्रसून अपछरा गाई। पर इस समय तो आनन्द उछाह और अधिक बढ़ गया है। अतः कहते हैं कि आकाश में गहगहे निशान बजे। फूलों की वर्षा हुई। देववधुओं ने गाना नाचना प्रारम्भ किया।

ब्रह्मादिक सुर सिद्ध मुनीसा। प्रभुहिं प्रसंसहिं देहिं असीसा॥
बरषहिं सुमन रंग बहु माला। गावहिं किंनर गीत रसाला॥३॥

---

१. इससे यह भी द्योतित किया कि धनुष भङ्ग शरत् पूर्णिमा के दिन हुआ।

अर्थ : ब्रह्मादिक देवता सिद्ध और मुनिश्वर लोग प्रभु की प्रशंसा करते हैं और आशीर्वाद देते हैं। अनेक रंग के फूलों की मालाएँ वरस रही हैं। और किन्नर लोग रसीले गीत गा रहे हैं।

व्याख्या : पहिले कह आये हैं : देखहिं सुरनभ चढ़े विमाना। वरषहिं सुमन करहिं कल गाना। परन्तु यह वर्णन प्रभु के रङ्गभूमि प्रवेश के समय का है। इस समय तो धनुषभङ्ग करके खड़े हैं। अतः विमान पर चढ़े हुए ब्रह्मादिक देवता प्रभु की स्तुति करते हैं। भविष्यत् विजय के लिए आशीर्वाद देते हैं। पहिले फूलों की वर्षा की थी पर इस समय तो महामङ्गल उपस्थित है। अतः अनेक रङ्ग के फूलों की मालाएँ अर्पण करके पूजन कर रहे हैं। किन्नर लोग समयानुकूल रसीले गीत गा रहे हैं। सुर मुनिवरन्ह केरि कदराई जाती रही। यह शिवधनुषरूपी जहाज पर राम बाहुबलसिन्धु के पार होने के लिए सवार हुई थी सो धनुषभंग होने से डूबी।

रही भुवन भरि जय जय वानी। धनुष भंग धुनि जात न जानी ॥
मुदित कहहिं जहँ तहँ नर नारी। भंजेउ राम संभुधनु भारी ॥४॥

अर्थ : भुवन में जयजयकार का शब्द ऐसा भर गया कि धनुषभंग की ध्वनि का पता न रह गया। प्रसन्न होकर जहाँ तहाँ नर-नारियाँ कह रही हैं कि रामजी ने शिवजी के धनुष को तोड़ा।

व्याख्या : नीचे तुलसीदासजी ने जयजयकार किया। यहाँ तुलसी शब्द भक्तमात्र का उपलक्षण है। ऊपर से देवताओं ने जयजयकार किया। सो भुवन में जयजय का शब्द भर उठा। पहिले धनुषभंग का घोर कठोर शब्द भुवन में भरा। पश्चात् जयजय शब्द की उत्साहभरी ध्वनि भुवन में भर गई। दोनों रव मिलकर एक हो गये। उनका विलग विलग ज्ञान न हो सका। शब्द होने के बाद कुछ देर तक उसकी ध्वनि रहती है। घोर कठोर शब्द की ध्वनि भी प्रबल होती है। धनुष-भङ्ग जानकर लोगों ने जो उत्साह के साथ जयकारा लगाया कि इस जयकारे में धनुषभङ्गवाली ध्वनि लीन हो गई।

कोदंड खंडेउ राम तुलसी जयति वचन उचारहीं से उपक्रम करके यहाँ उपसंहार करते हैं : भंजेउ राम संभु धनु भारी। जो देवताओं से विनय की थी कि तौ सिवधनु मृनाल की नाईं। तोरउ राम गनेस गोसाईं। उसी का साफल्य दिखाया कि रामजी ने भारी शम्भुधनु को तोड़ डाला।

दो. वंदी मागध सूतगन, विरद वदहिं मतिधीर।
करहिं निछावरि लोग सब, हय गय मनि धन चीर ॥२६२॥

अर्थ : वन्दी मागध तथा मतिधीर सूतलोग विरद बोल रहे थे। और लोग सब हाथी, घोड़ा, मणि, धन और कपड़े निछावर करते थे।

व्याख्या : वन्दी मागध सूतगण मतिधीर हैं। धनुषभङ्ग होते ही विरद बोले। वन्दियों ने ही विदेहराज का प्रण कहा था सो प्रण पूरा हुआ। अतः विरद बोलने

में भी ये ही अग्रगण्य हैं। देखि लोग सब भये सुखारे का साफल्य कहते हैं। निछावर करने लगे। नाता हो गया अतः निछावर प्रारम्भ हुई। हयगय जंगम सम्पत्ति के उपलक्षण हैं। मणिगण, चीर आदि स्थावर सम्पत्ति के उपलक्षण हैं।

झाँझि मृदंग संख सहनाई। भेरि ढोल दुंदुभी सुहाई ॥
बार्जाहं बहु बाजने सुहाए। जहँ तहँ जुवतिन्ह मंगल गाए ॥१॥

अर्थ : झाँझ, मृदङ्ग, शंख, शहनाई, भेरी, ढोल, सुहावने नगाड़े और बहुत से सुहावने बाजे बजने लगे और जहाँ तहाँ युवतियों ने मङ्गलगान प्रारम्भ कर दिया।

व्याख्या : झाँझ मृदङ्ग और ढोल हाथ से बजाये जाते हैं। शंख भेरी और शहनाई फूंक से बजती है। दुन्दुभी चोब : डंडे से बजती है। पहिले झाँझ और मृदङ्ग बजा। फिर विजयसूचक शंख ध्वनि हुई। शंख बजते ही बाहर खबर लगी। फाटक पर सहनाई बजी तब सेना में भेरी ढोल और दुन्दुभी बजाई गई। इतने ही नहीं और भी बाजे वीणा सारङ्गी आदि बजे। मुदित कहहिं जहँ तहँ नर-नारी। भंजेउ रामु संभु धनुभारी। सो नारियों ने जहाँ सुना वहीं मङ्गलगान आरम्भ कर दिया।

सखिन्ह सहित हरषी अति रानी। सूखत धान परा जनु पानी ॥
जनक लहेउ[1] सुखु सोचु बिहाई। पैरत थके थाह जनु पाई ॥२॥

अर्थ : सखियों के सहित सब रानियाँ ऐसी हर्षित हुईं जैसे सूखते हुए धान में पानी पड़ जाय। जनकजी का सोच जाता रहा और ऐसा सुख हुआ जैसे तैरते तैरते थके हुए को थाह मिल जाय।

व्याख्या : रानियों का दुःखरूपी दावानल भी तो उस समाज में था जो मोहवश शंकरचाप जहाज पर सवार हुआ था। अतः धनुष के टूटते ही वह भी डूबा। पहिले कह आये हैं कि रानियाँ बिना पानी के धान सी झुलसी जाती थीं सो वर्षा हो पड़ी। अतः कहते हैं : सूखत धान परा जनु पानी। सूखते हुए धान में पानी पड़ते ही वह इस भाँति लहलहा कर बढ़ता है कि देखते देखते बात दूसरी हो जाती है। सखिन्ह सहित कहने का भाव यह कि सखियाँ रानी के सुख से सुखी और उनके दुःख से दुःखी थीं। उनका भी भाव सीताजी के प्रति पुत्री सा ही था। अथवा सखी का कथन सत्य हुआ इससे वह भी बड़ी प्रसन्न हैं।

अब जनकपरिताप के डूबने का भी साफल्य दिखलाते हैं। क्योंकि वह परिताप भी उपर्युक्त समाज में था। गुरुजी ने आज्ञा दी थी : उठहु राम भंजहु भव चापू। मेटहु तात जनक परितापू। सो परिताप मिटा। इनकी दशा तैरते तैरते थक जाने-

---

१. पर्यायालङ्कार है।

वाले की सी थी। डूब ही रहे थे। सब पुरुषार्थ थक गया। कहने लगे : कुँअरि कुँवारि रहे का करहूँ। सो धनुषभङ्ग से वह शोक मिटा और परम सुखी हुए।

श्रीहत भए भूप धनु टूटे। जैसे दिवस दीप छबि छूटे ॥
सीय सुखहि बरनिअ केहि भाँती। जनु चातकी पाइ जलु स्वाती ॥३॥

अर्थ : धनुष टूटने से राजा श्रीहत हो गये। जैसे दिन में दीप की शोभा जाती रहती है। सीताजी के सुख को किस भाँति वर्णन किया जाय। जैसे चातकी को स्वाति का जल मिल गया हो।

व्याख्या : पहिले अरुणोदय कहा। यथा : अरुणोदय सकुचे कुमुद उड़गन जोति मलीन। तब सूर्योदय कहा। यथा : उदित उदयगिरि मंच पर रघुवर बाल पतंग। सूर्योदय होने पर दिन कह रहे हैं कि राजा ऐसे निस्तेज पड़ गये जैसे दिन में दीपक। भाव यह कि मन्द महीपन कर अभिमानू भी उस समाज में था। जो धनुष रूपी जहाज पर चढ़े थे। सो इस समय धनुष टूटते ही यह डूब गया। उसी के साफल्य रूप से राजाओं की श्रीहीनता वर्णन करके कहते हैं।

सीताजी की अवस्था रामजी ने देखी तो ऐसी हो रही थी जैसे प्यासा बिना पानी के मर रहा हो। यथा : तृपित वारि बिनु जो तनु त्यागा। अत्र जैसे चातकी को स्वाती की बूँद मिल जाय और प्यास मिटकर सुख हो। वैसा सुख श्रीजनक-नन्दिनी को हुआ। वर्षा के सब नक्षत्र बीत गये चातकी को जल न मिला। उसकी प्यास बढ़ती ही गई। वह मरणोन्मुख हो रही थी। तब से स्वाती की वर्षा हो गई। जिसकी वस्तुतः उसे प्यास थी। अतः सीताजी के सोच के डूबने का प्रसंग कहते हैं कि वह भी पूर्वोक्त सांयात्रिकों : पोत वणिकों में से था। यथा : सियकर सोच जनक पछितावा।

रामहि लषनु बिलोकत कैसे। ससिहि चकोर किसोरकु जैसे ॥
सतानंद तब आयसु दीन्हा। सीता गमनु राम पहिं कीन्हा ॥४॥

अर्थ : रामजी को लक्ष्मणजी इस भाँति देख रहे हैं जैसे चन्द्रमा को चकोर का बच्चा देख रहा हो। सतानन्दजी ने तब आज्ञा दी। सीताजी रामजी के पास चलीं।

व्याख्या : इस समय प्रभु धनुषभङ्ग करके खड़े हैं। अपार शोभा है। लक्ष्मण जी यद्यपि विश्वामित्रजी के पास बैठे हैं परन्तु दृष्टि रामजी पर ही है। सो इस समय प्रभु की ओर इस चाव से देख रहे हैं जैसे चन्द्र को चकोरकिशोर देखे।

वन्दी लोग महाराज जनक का प्रण कहते हुए बोल चुके हैं : सोइ पुरारि कोदण्ड कठोरा। राज समाज आज जेहि तोरा। त्रिभुवन जँय समेत बैदेही। बिनहिं बिचारि बरै हठ तेही। सो वह समय उपस्थित है। सरकार ने धनुष तोड़ा। अब बैदेही जाकर उनका वरण करे। विवाहकार्य में पुरोहित की आज्ञा ही प्रधान है। अतः सतानन्दजी की आज्ञा हुई कि सीताजी को रामजी के समीप ले जाओ।

दो. संग सखीं सुंदर चतुर, गावहिं मंगलचार।
गवनी बाल मराल गति, सुखमा अंग अपार ॥२६३॥

अर्थ : संग में सब सखियाँ चतुर और सुन्दर थीं। वे मङ्गलाचार गान कर रही थीं। सीताजी : बालहंस की गति से चलीं। अङ्ग की अपार परमा शोभा थी।

व्याख्या : रङ्गभूमि में प्रवेश के समय कहा : संग सखी सब सुभग सयानी। गावहिं गीत मनोहर बानी। इस समय वे ही सुन्दरी सखियाँ सीताजी को घेरे हुए मङ्गलाचार के गीत जो उस काल में ऐसे अवसर पर गाये जाते थे गाती हुई चलीं। श्रीजनकनन्दिनी की शोभा ही परमा शोभा है और वह भी अपार है। वे बालमराल की गति से चलीं। श्रीजनकनन्दिनी की हंसगति स्वाभाविकी है। यथा : हंसगवनि तुम नहिं बन जोगू। इस समय तो बहुत छोटी उम्र है। इसलिए गति की उपमा बालमराल से देते हैं। उधर सहजहिं चले सकल जग स्वामी। मत्त मंजु कुंजर वरगामी। इधर गवनी बाल मराल। उधर राम बाहुबल सिंधु अपारू। इधर सुषमा अंग अपार। सखियों की मराल गति रही। भगवती की बालमराल सी गति है।

सखिन मध्य सिय सोहति कैसें। छबिगन मध्य महाछबि जैसें॥
कर सरोज जयमाल सोहाई। बिस्व बिजय सोभा जेहिं छाई॥१॥

अर्थ : सखियों के बीच में सीताजी कैसी शोभायमान हैं जैसे छविगण के बीच में महाछवि की शोभा हो। करकमल में कमल का जयमाल शोभा दे रहा है। जिसके ऊपर विश्वविजय की शोभा छाई हुई है।

व्याख्या : सखियों ने सब ओर से सीताजी को घेर रखा है। इसलिए सखिन मध्य कहते हैं। संग सखी सुन्दर सकल कह आये हैं। वे सखियाँ ऐसी सुन्दर हैं मानों स्वयं छवि ने ही अनेकानेक रूप धारण कर रक्खे हैं। उनके बीच में श्रीजनक-नन्दिनी साक्षात् रूपधारी महाशोभा की भाँति सुशोभित हैं। जौ पटतरिय तीय सम सीया। जग अस जुवति कहाँ कमनीया। अतः महाछवि कहते हैं। महाछवि कहकर उनका आदिशक्ति छविनिधि जगमूला होना द्योतित किया। यहाँ सरोज शब्द देहलीदीपकन्याय से कर और जयमाल दोनों शब्दों से समन्वित होगा अर्थात् करसरोज और सरोज जयमाल। वसन्त ऋतु होता तो मधूक : महुआ के फूलों की माला होती। शरद् ऋतु है। अतः कमल का जयमाल बना था। जिनके गले में माला पड़नेवाली है उनके विषय में कवि ने कहा है कि : मनहु मनोहरता तन छाये। इसलिए माला के विषय में भी कह रहे हैं कि : बिस्व बिजय सोभा जेहि छाई। इससे जयमाल की शोभा कही और जयमालाओं में उपस्थित नृपगणों के विजय की शोभा रहती है। पर इस जयमाल में विश्वविजय की शोभा है। प्रतिज्ञा में घोषणा भी ऐसी ही की गई थी। यथा : त्रिभुवन जय समेत वैदेही। बिनहि बिचार बरै हठि तेही।

तन सकोच मन परम उछाहू। गूढ प्रेम लखि परै न काहू ॥
जाइ समीप राम छवि देखी। रहि जनु कुँवरि चित्र अवरेखी ॥२॥

अर्थ : शरीर में सङ्कोच है। मन में परम उत्साह है। छिपा हुआ प्रेम किसी को लखाई नहीं पड़ता। निकट जाकर जो रामजी की छवि देखी तो कुँवरि चित्र में लिखी सी हो गई।

व्याख्या : तन से तो सङ्कोच है। यथा : गुरुजन लाज समाज बड़ और अति प्रेम के कारण मन में परम उछाह है। इसीलिए उस प्रेम को गूढ़ कहते हैं। वह सङ्कोच में छिपा हुआ है और ऐसा छिपा है कि कोई लख नहीं सकता। बाहर देखने से केवल सङ्कोच ही सङ्कोच दिखाई पड़ता है। गूढ़ प्रेम का पता नहीं चलता। राजा विदेह को भी गूढ़प्रेम था। यथा : वंदौं परिजन सहित विदेहू। जाहि रामपद गूढ़ सनेहू। जोग भोग महँ राखेउ गोई। उन्हीं की बेटी हैं। अतः इन्हें भी गूढ़ प्रेम है। सङ्कोच में छिपाए हुए हैं। अभी तक रामजी की छवि को श्रीजनकनन्दिनी ने इतने निकट से नहीं देखा था। इस समय इतने निकट चली गई हैं कि माला पहिना सकें। अब जो रामजी की छवि देखी तो सूक्ष्मातिसूक्ष्म सुन्दरता पर दृष्टि पड़ी। जनकनन्दिनी स्तब्ध रह गई। इष्ट या अनिष्ट को देखकर क्रियाहीन हो जाने को ही स्तब्ध होना कहते हैं। उसी क्रियाहीनता को ही कवि कुँवरि को चित्र लिखित पुतली से उपमा देकर द्योतित करते हैं।

चतुर सखी लखि कहा बुझाई। पहिरावहु जयमाल सुहाई ॥
सुनत जुगल कर माल उठाई। प्रेम बिबस पहिराइ न जाई ॥३॥

अर्थ : चतुर सखी ने लखा। उसने समझाकर कहा कि सुन्दर जयमाल पहनाओ। सुनते ही सीताजी ने दोनों हाथों से माला उठायी। परन्तु ऐसी प्रेमवश हो गई हैं कि पहिराते नहीं बनता।

व्याख्या : वह सयानी सखी भी तो साथ थी जिसने पुष्पवाटिका में कहा था कि : बहुरि गौरि कर ध्यान करेहू। भूप किसोर देख किन लेहू। किसी ने सीताजी के गूढ़ प्रेम को नहीं लखा। केवल उसी ने लखा कि इन्हें प्रथम सात्त्विक भाव स्तम्भ हो गया। इसलिए सीताजी को समझाया : एहि अवसर के देर ते फेर समुझ में होय। वरन चहत नाहिन कुँअरि अस समुझिहि सब कोय। और कहती हैं जयमाला सुन्दर है। इसे पहना दो।

सुनते ही दोनों हाथों से माला को उठाया। मानों माला बड़ी भारी मालूम हो रही है। बड़ी कठिनता से उठाया तो : परन्तु प्रेमाधिक्य से अङ्ग शिथिल हैं। पहनाना चाहती हैं। पहनाते नहीं बनता। उधर : लेत चढ़ावत खैंचत गाढ़े। काहु न लखा देख सब ठाढ़े। इस लाघव में ही शोभा थी। इधर जयमाल पहनाने की मन्थरता में ही शोभा है। सब लोग देख लें पहनाने की शोभा।

सोहत जनु जुग जलज सनाला। ससिहि सभीत देत जयमाला ॥
गावहिं छवि अवलोकि सहेली। सिय जयमाल राम उर मेली ॥४॥

अर्थ : मानो मृणाल के सहित दो कमल चन्द्रमा को जयमाल देते हुए शोभित हैं। छवि देखकर सखी सहेलियाँ गान करने लगीं। सीताजी ने रामजी के गले में जयमाल डाल दी।

व्याख्या : ग्रन्थकार श्री रामजी के गले में सीताजी द्वारा जयमाल पहनाने की शोभा वर्णन करते हैं। श्रीसीताजी के दोनों हाथों की उपमा मृणालयुक्त कमलों से दी और रामचन्द्र की उपमा चन्द्र से दी। मानो मृणालयुक्त दो कमल चन्द्र को जयमाल पहिनाते हैं। चन्द्र के सामने कमल सङ्कुचित हो जाते हैं। शीतांशु के निकट जाने में कम्पित होते हैं। सो कमल संकुचित हो गये हैं। चाहने पर भी जयमाला छूटती नहीं और कम्प भी हो रहा है। इसीलिए सभीत देत जयमाला कहा।

यहाँ सीताजी को सात्त्विक भाव हो जाने से अङ्गों में जड़ता है। सखी की शिक्षा से जयमाल पहनाना चाहती हैं तो हाथ काँपता है और जयमाल पहनाते नहीं बनता। इसलिए पहनाने में देर हो रही है।

इस अकृत्रिम भावविकार से जयमाल पहनाने की शोभा अत्यन्त बढ़ गई। उस छवि को सखियों ने देखकर जयमाल पहनाने का गीत आरम्भ कर दिया। सीताजी ने रामजी के गले में जयमाला डाल दी। इस पुरइन से कली निकली जयमाल राम उर अब यह कमलरूप से आगे के दोहा में विकसित होगी।

दो. रघुवर उर जयमाल, देखि देव बरिसहिं सुमन।
सकुचे सकल भुआल, जनु बिलोकि रबि कुमुद गन ॥२६४॥

अर्थ : रामजी के उर में जयमाल देखकर देवता फूल बरसाने लगे। और सब राजा ऐसे संकुचित हुए जैसे सूर्य के देखने से कुमुद : कोइ संकुचित हो जाते हैं।

व्याख्या : कमल खिला : रघुवर उर जयमाल इत्यादि। देवता ऊपर से पुष्पवृष्टि कर रहे हैं। परन्तु करकमल नहीं खिले। पहनाने पर भी जयमाल हाथ से छूटा नहीं। चन्द्र के सामने खिले भी कैसे ? अतः अब कवि रामजी को रवि रूप से वर्णन करते हैं। जिसमें कमल का खिलना अर्थात् 'माला का हाथ से छूटना द्योतित हो। अरुणोदय से ही संकुचित कुमुदरूपी मानी राजा अब सूर्य को प्रभायुक्त देखकर अत्यन्त संकुचित हुए।

पुर अरु व्योम बाजने बाजे। खल भये मलिन साधु सब राजे ॥
सुर किन्नर नर नाग मुनीसा। जय जय जय कहि देहिं असीसा ॥१॥

अर्थ : पुर और आकाश में बाजे बजने लगे। खलगन मलिन हुए। साधु प्रसन्न हुए। देवता, किन्नर, नर, नाग और मुनीश्वर लोग जय जय जय कहकर आशीर्वाद देने लगे।

व्याख्या : पहिले धनुषभङ्ग पर बाजे बजे। अब जयमाल पड़ने पर बज रहे हैं। पृथ्वी पर मनुष्यों द्वारा और आकाश में देवताओं द्वारा बाजे बजाये जाते हैं। धनुषभङ्ग के समय व्योम : आकाश में पहले बाजा बजा। यथा : बाजे नभ गहगहे निसाना। जयमाल के समय पहिले पुर में बाजा बजा। पुर के लोग इस बार सावधान हैं। उस बार देवताओं ने बाजी मार ली थी। उदासीन अरि मीत हित सुनत जरहिं खल रीति। अतः वे मलिन हुए और सज्जन सकृत सिन्धु सम कोई होते हैं अतः वे शोभित हुए।

सुर किन्नर से स्वर्गवासी। नर से मृत्युलोकवासी। नाग से पातालवासी। तीनों लोकनिवासी जयजयकार कर रहे हैं। अतः जय जय जय तीन बार लिखा और मुनीश परमार्थी हैं वे आशीर्वाद देते हैं। अथवा सभी जय जय कहकर आशीर्वाद देते हैं।

नाचहिं गावहिं बिबुध बधूटीं। बार बार कुसुमांजलि छूटीं॥
जहँ तहँ बिप्र बेद धुनि करही। बंदी बिरदावलि उच्चरहीं॥२॥

अर्थ : देववधू नाच-गा रही हैं। बारबार पुष्पाञ्जलि छूट रही है। जहाँ तहाँ ब्राह्मण लोग वेदध्वनि कर रहे हैं। वन्दी लोग विरुदावली बोल रहे हैं।

व्याख्या : देववधूटीं कहकर फिर भी देववधुओं का ही गाना नाचना कहा। अप्सराओं का गान नृत्य नहीं कहा। मङ्गल-गान कुलवधू ही द्वारा होता है। वेश्या द्वारा आज भी नहीं होता और अप्सरा स्ववेश्या हैं। अतः मङ्गलगान उनके द्वारा नहीं लिखते। गान के ताल पर पुष्पाञ्जलि दी जा रही है। इसलिए कुसुमाञ्जलि छूटी लिखते हैं।

अभीतक वेदध्वनि नहीं हुई थी। यथार्थ गान्धर्व व्याह जयमाल पड़ना ही है। अतः ब्राह्मण लोग जो जहाँ थे वहीं से स्वस्तिवाचन के मन्त्र बोले। मन्त्रों के साथ स्वर लगता है। अतः वेदध्वनि कहा। राजाओं का व्याह है। इसलिए वन्दियों ने विरद कहा। उच्चस्वर से बोल रहे हैं। इसलिए उच्चरहीं कहा।

महि पातालु नाक जसु ब्यापा। राम बरी सिय भंजेउ चापा॥
करहिं आरती पुर नर नारी। देहिं निछावरि बित्त बिसारी॥३॥

अर्थ : पृथ्वी, पाताल और आकाश में यश व्याप्त हो गया कि रामजी ने धनुष तोड़ा और सीता का वरण किया। पुर के नर नारी आरती करते हैं और अपने वित्त को भूलकर निछावर करते हैं।

व्याख्या : इस धनुषयज्ञ में देवदनुज धरि मनुज सरीरा तथा द्वीप द्वीप के भूपति आये थे। अतः महि पाताल और आकाश में यश व्याप गया कि ये लोग गये तो थे पर सीता को व्याह न सके। क्योंकि इनका तोड़ा धनुष नहीं टूटा। फिर तोड़ा किसने? तो राम वरी सिय भंजेउ चापा। यह यश तीनों लोक में फैल गया। तव भुजबल महिमा उदघाटी। प्रगटी धनु विघटन परिपाटी। जो लक्ष्मणजी

ने कहा था उसी का साफल्य दिखलाते हैं। धनुष के विघटने से रामजी के भुजबल की महिमा तीनों लोक में प्रकट हो गई।

पहिले निछावर हुआ तब जयमाल पड़ा। अब आरती हो रही है। इस बार जयमाल पड़ने का निछावर है। अतः वित्त विसारी कह रहे हैं। पहिली निछावर में भी वित्तशाठ्य नहीं किया था। हय, गय, मनि, धन और चीर का निछावर हुआ था। पर इस निछावर में तो लोग यह भी भूल गये कि इतना निछावर करना हमारे वित्त के बाहर है या भीतर।

सोहत सीय राम कै जोरी। छवि शृङ्गार मनहुँ इक ठोरी ॥
सखी कहहिं प्रभुपद गहु सीता। करति न चरन परस अति भीता ॥४॥

अर्थ : सीताराम की जोड़ी ऐसी शोभायमान है मानो छवि और शृङ्गार दोनों एकत्र हो गये हैं। सखी कहती है कि सीते ! प्रभु के चरण पकड़ो। वह अत्यन्त डरी हुई है। चरणस्पर्श नहीं करती।

व्याख्या : इसके पहिले तक जोड़ी नहीं कह सकते थे। रामरूप अरु सिय छवि देखी कहा था। यहाँ जनकपुर है। इसलिए सीय राम की जोड़ी कहा। सीताजी की प्रधानता है। छवि से शृङ्गार की शोभा और शृङ्गार से छवि की शोभा होती है। दोनों के एकत्र होने से महाशोभा हुई। रामजी : जनु सोहत सृंगार धरि मूरति परम अनूप। सीताजी : छविगन मध्य महाछवि जैसी।

जयमाल डालने के बाद चरणग्रहण की प्रथा है। शिक्षा देना सखी का कार्य है। अतः सखी चरणग्रहण के लिए शिक्षा देती हैं। परन्तु सीताजी चरणस्पर्श में अति भयभीत हो रही हैं। विरह का बड़ा भारी भय है। यथा : चालत न भुजवल्ली विलोकन विरह भय बस जानकी। भय का कारण कहते हैं :

दो. गौतम तिय गति सुरति करि, नहिं परसत पग पानि।
मन बिहँसे रघुबंसमनि, प्रीति अलौकिक जानि ॥२६५॥

अर्थ : अहल्या का स्मरण करके चरण को हाथ से नहीं छूतीं। रघुवंशमणि अलौकिक प्रीति देखकर मनही मन हँसे।

व्याख्या : परसि जासु पद पंकज धूरी। तरी अहल्या कृत अघ भूरी। सुन चुकी हैं। अतः भारी डर है कि चरणस्पर्श में कहीं धूलि छू गई तो मुझे भी तुरन्त दिव्यलोक की प्राप्ति हो जायगी। फिर इन चरणों से विछोह हो जायगा। क्रिया अटपट हो रही है। अप्रसन्न होने का अवसर था। परन्तु राम सुजान जान जन जीकी। अतः अलौकिक प्रीति देखकर हँसे। मन ही में हँसे क्योंकि यहाँ व्यक्त रूप हँसने के लिए उपयुक्त समय नहीं था। लोग समझते कि सीताप्राप्ति से कृतकृत्य होकर हँस रहे हैं। ऐसी ही प्रीति की तीव्रता में अटपट क्रिया केवट की देखकर आगे भी हँसेंगे। यथा : सुनि केवट के बैन प्रेम लपेटे अटपटे। बिहँसे करुना अयन चिते जानकी लखन तन।

तब सिय देखि भूप अभिलाषे। क्रूर कपूत मूढ़ मन माषे ॥
उठि उठि पहिरि सनाह अभागे। जहँ तहँ गाल बजावन लागे ॥१॥

अर्थ : तब सीताजी को देखकर राजाओं को अभिलाषा हुई। क्रूर, कुपुत्र और मूढ़ के मन में अमर्ष हुआ। अभागों ने उठ उठकर कवच पहिने और जो जहाँ रहे वहीं से गाल बजाने : सीटने लगे।

व्याख्या : जब सीताजी रामजी के वाम भाग में विराजमान हो गईं आरती होने लगी। सीताजी ने चरणस्पर्श किया। अर्थात् स्वयंवर की प्रक्रिया जब समाप्त हो गई तब सीताजी को देखकर राजाओं को अभिलाषा हुई कि ऐसी मनोहर मूर्ति की प्राप्ति मुझे नहीं हुई। जनकजी के यह कहने से : कुँवरि कुँआरि रहौ का करऊँ। अभिलाषा दब गई थी सो जाग उठी। सीताजी की प्राप्ति किसी को न होगी इस बात पर जिन्हें सन्तोष था उन्हें दूसरे की प्राप्ति सह्य न हुई। उनमें से जो कूर : क्रूर : कपूत : कुपुत्र तथा मूढ़ थे जिन्हें मन ही मन आमर्ष हुआ वे जयमाल पहने सीताजी को वाम भाग में लिये जयजयकार के बीच में रामजी को देख न सके। इसीसे आमर्ष हुआ। औरे को अभिमानु लखि उर उपजे अभिमान। अभिमान को आमर्ष कहते हैं। बलवान् के सामने आमर्ष चल नहीं सकता। अतः क्रुद्ध होकर सामना करने का तो साहस नहीं है। अतः मन ही मन मसोस रहे हैं।

युद्ध तो करना नहीं। गड़बड़ पैदा करने के लिए युद्ध का दिखावा करते हैं। उठ उठकर जिरह बख्तर : वर्म धारण करने लगे। मानो लड़ाई करेंगे। अथवा उन्हें गाल बजाना : सीटना है। पर उसमें भी खतरा है। इसलिए जिरह बख्तर पहनकर तब गाल बजाने लगे। भवभञ्जन पद विमुख हैं। इसलिए ग्रन्थकार उन्हें अभागे कहते हैं। आगे कोई नहीं बढ़ता। जो जहाँ है वहीं से शान बघार रहा है। पहिले क्रूर बोले :

लेहु छँड़ाइ सीय कह कोऊ। धरि बाँधहु नृप बालक दोऊ ॥
तोरे धनुष चाँड़ नहिं सरई। जीवत हमहिं कुँवरि को वरई ॥२॥

अर्थ : कोई बोले छीन लो सीता को। दोनों राजपुत्रों को पकड़कर बाँध लो। केवल धनुष तोड़ने से चाट नहीं मिटेगी। हमारे जीते जी राजकुमारी को कौन वर सकता है ?

व्याख्या : आप पैर आगे नहीं रखते औरों को ललकारते हैं कि छीन लो राजकुमारी को। यदि कहो कि अब तो सम्बन्ध हो गया। दोनों भाई छीनने कैसे देंगे। इसपर कहते हैं कि राजा के दोनों बालकों को बाँध लो। भाव यह कि ये अभी बालक हैं। इनसे लड़ने की भी आवश्यकता नहीं है। पकड़कर बाँध लो। इस भाँति प्रोत्साहित कर रहे हैं। इन्हें बालक बालिका किसी पर दया नहीं है। इसी से इन्हें क्रूर कहा है। अब कपूत : कुपुत्र बोलते हैं।

धनुष टूट गया तो क्या हुआ। अभी बड़के धनुष हम तो जीते ही हैं। पहिले हमें मार लें तब कोई जनकनन्दिनी का वरण कर सकता है। सीता की चाट है इसलिए जाकर धनुष तोड़ दिया। इससे चाट नहीं पूरी होने पावेगी। ये कपूत हैं। इनका किया तो कुछ हो सकता नहीं। केवल बड़े भारी वीरों की सी बातें बोलकर वैर ले रहे हैं। अब मूढ़ बोले :

जौं विदेह कछु करै सहाई। जीतहु समर सहित दोउ भाई॥
साधु भूप बोले सुनि बानी। राजसमाजहि लाज लजानी॥३॥

अर्थ : यदि विदेह कुछ सहायता करें तो उन्हें भी दोनों भाइयों के सहित रण में जीत लो। इन बातों को सुनकर साधु राजा बोले कि राजसमाज को देखकर लज्जा को भी लज्जा आगई।

व्याख्या : कुमारी का पिता विदेह है। वह झगड़े में पड़नेवाला नहीं। पहिले ही कहता था : कुँवरि कुँआरि रहौ का करऊँ। वह किसी की सहायता न करेगा। पर यदि राजकुमारी को छीनी जाते और अपने जामाता दोनों भाइयों को बँधते देखकर कुछ चीं चपड़ करे तो उसे भी समरांगण में इन्हीं दोनों भाइयों के साथ जीत लो। ये मूढ़ हैं। इन्हें परिज्ञान नहीं कि विदेह किसे कहते हैं। जिसे देहाध्यास नहीं उससे बढ़कर योद्धा कौन हो सकता है? ऐसा स्वयम्बर रचने के लिए देहाध्यास था। सहायता के लिए नहीं है। शिवधनु भङ्ग करनेवालों को भाई और विदेहराज : जिसके राज्य में इस समय एकत्रित हैं के साथ जीतने का स्वप्न देखते हैं। ऐसों के मूढ़ होने में सन्देह क्या?

तब साधु राजा बोले। पहिले भी इन लोगों ने रोका था। यथा : सिख हमार सुनि परम पुनीता। जगदंबा जानहु जिय सीता। जगत पिता रघुपतिहि विचारी। भरि लोचन छवि लेहु निहारी। जब लोगों ने नहीं माना तब कहा था : करहु जाइ जाकहँ जो भावा। हम तौ आज जन्म फल पावा। साधु हैं अतः फिर रोकते हैं। अनीति उन्हें सह्य नहीं है। इससे बोले कि यह रूप दिखाना निर्लज्जता की पराकाष्ठा है। आज ऐसा वर्ताव देखकर लज्जा भी राजसमाज को छोड़ लज्जित हो चली गई। भाव यह कि तुम लोगों ने हया छोड़ दी। तुम लोगों के ऐसे आचरण से राजसमाज कलङ्कित हो रहा है।

बलु प्रतापु वीरता [1]बड़ाई। नाक पिनाकहि संग सिधाई॥
सोइ सूरता कि अब कहुँ पाई। असि बुधि तौ विधि मुँह मसि लाई॥४॥

अर्थ : बल प्रताप वीरता बड़ाई तो पिनाक : शिवधनुष के साथ ही आकाश में चली गई। वही वीरता है कि अब कहीं से मिली है। ऐसी ही बुद्धि है तभी ब्रह्मा ने मुख में कालिख पोत दी।

---

१. यहाँ सहोक्ति अलङ्कार है।

व्याख्या : यदि तुम्हें विचार होता तो धनुष के निकट न जाते। यथा : जिनके कछु विचार मन मांहीं। चाप समीप महीप न जांहीं। अब तो कीर्ति विजय और भारी वीरता सब कुछ धनुष के हाथ जबरदस्ती हार चुके। धनुष टूटते ही उन लोगों का प्रताप वीरता बड़ाई समाप्त हो गई। जो धनुष तोड़ने उठे थे। वही शूरता न है जिससे तिल भर धनुष को हटा न सके कि कोई नई शूरता इस बीच और मिल गई है? जिसके भरोसे बड़ी बड़ी बातें करते हो। तुम लोगों की बुद्धि मारी गई है। इसी से तुम्हारे मुँह में कालिख ब्रह्मा ने पोत दिया। यदि बुद्धि से काम लेते तो सबकी इज्जत बनी रह जाती। हमने पहिले ही कहा था : जगदंबा जानकी जगत पितु रामभद्र जानि जिय जिय जोहो। ज्यों न लागे मुह कारिखी : कवित्त। पर विधिवश वह बात तुमलोगों के मन में न भाई।

दो. देखहु रामहि नयन भरि, तजि इरषा मदु कोहु।
लखन रोषु पावकु प्रबल, जानि सलभ जनि होहु ॥२६६॥

अर्थ : ईर्ष्या, मद और क्रोध को छोड़कर रामजी को आँख भर देखो। लक्ष्मणजी के क्रोधरूपी प्रबल अग्नि में जानबूझकर पतङ्ग न बनो।

व्याख्या : हितं शतशोऽपि वक्तव्यम्। कल्याण की बात को सौ बार भी कहे। अतः कहते हैं कि सीता महामाया हैं। उनकी ओर न देखो रामजी की ओर देखो। इस शोभा को आँख भर देखकर जन्म सफल करो। क्रूर से कहते हैं कि तुम ईर्ष्या छोड़कर देखो। कपूत से कहते हैं कि तुम मद छोड़कर देखो। मूढ से कहते हैं कि क्रोध छोड़कर देखो तब प्रेम से देख सकोगे। तुम्हारे आँख भर देखने में ईर्ष्या मद और क्रोध बाधक हो रहे हैं। तुम्हारी बातों से लक्ष्मणजी को क्रोध आ रहा है। यदि यह क्रोधाग्नि तुमलोगों के प्रलाप से बढ़ती गई तो तुमलोगों के शलभ होने में देर न लगेगी। शलभ तो दीप का मर्म बिना जाने जलता है। तुम तो मनुष्य हो देख चुके हो कि लक्ष्मण के क्रोधयुक्त बोलने पर पृथ्वी डगमगाती है। दिग्गज डोलते हैं। तुम जानबूझकर शलभ होने क्यों जाते हो?

वैनतेय बलि जिमि चह कागू। जिमि सस चहहि नाग अरि भागू॥
जिमि चह कुसल अकारन कोही। सब संपदा चहै सिवद्रोही ॥१॥

अर्थ : जैसे कौआ गरुड़ की बलि चाहता हो। खरहा सिंह का अंश चाहता हो। अकारण क्रोधी कुशल चाहता हो। शिवद्रोही सम्पदा चाहता हो।

व्याख्या : यद्यपि गरुड़ और काग दोनों पक्षी हैं। पर गरुड़ की बलि काग को नहीं मिल सकती। बलि देनेवाला ही न चाहेगा कि काग को मिले। चाहे गरुड़ को भले ही उस बलि की परवाह न हो। इसी भाँति खरहा : खरगोश और सिंह दोनों चतुष्पाद हैं। पर खरहा का साहस नहीं कि : मत्त नाग तम पुंज विदारी : सिंह का भोग छू भी सके। सिंह के मारे शिकार को कोई पशु पक्षी स्पर्श नहीं कर

सकता। अतः न तो जनक छीनने देंगे और न राम के सामने तुम्हारा दिन है कि सीता को स्पर्श कर सको। यह लेहु छड़ाइ सीय कह कोऊ का उत्तर है।

क्रोधी भी लड़ पड़ता है और वीर भी लड़ता है। वीर के दोनों लोक बनते हैं। क्रोधी के बिगड़ जाते हैं। इसलिए कहते हैं कि क्रोधी का कुशल नहीं होता। किं पुनः निष्कारण क्रोध करनेवाले का कुशल तो हो नहीं सकता। जो बात तुम्हारी की हुई न हो सकी उसे उन्होंने कर दिखाया। इसमें उनका अपराध क्या है? निष्कारण क्रोध करते हो। इसमें तुम्हारी कुशल नहीं है। उन्होंने ब्रह्मकुल रूपी शङ्कर की आज्ञा लेकर तब धनुष तोड़ा है। जिसपर शिवजी की कृपा होगी वही धनुष तोड़ सकता है। उनपर शिवजी की कृपा है। इससे उन्हें सीता तथा त्रैलोक्य जयलक्ष्मी : सब सम्पदा प्राप्त हुई। तुमलोग शिवद्रोही हो। बिना शिव की आज्ञा धनुष तोड़ने चले। तुम्हें त्रैलोक्य जयलक्ष्मी जनकनन्दिनी नहीं प्राप्त हो सकती। यह धरि बाँधहु नृप बालक दोऊ का उत्तर है।

लोभी लोलुप कीरति चहइ। अकलंकता कि कामी लहई॥
हरि पद विमुख परम गति चाहा। तस तुम्हार लालचु नरनाहा॥२॥

अर्थ : लोभी लालची कीर्ति चाहता हो। निष्कलङ्कता क्या कामी को प्राप्त होती है। हरिपद विमुख परमगति चाहे। हे राजाओ! वैसा ही तुम्हारा लोभ है।

व्याख्या : गुनसागर नर जोऊ। अल्पलोभ भल कहै न कोऊ। थोड़े से लोभ होने से भी कीर्ति नष्ट हो जाती है। सो तुम्हें इतना बड़ा लोभ है कि जिस धनुष को तुम दसहजार मिलकर न हिला सके। उसके तोड़नेवाले के पुरस्कार की इच्छा रखते हो। तुम लोभ से लोलुप हो गये। तुम्हें सीतारूपी निर्मल कीर्ति कैसे मिलेगी? तुम कामवश हो। प्राण देकर कलङ्क धोना चाहते हो सो भी होना नहीं है। कामी को अवश्य कलङ्क लगेगा। तोड़े धनुष चाँउ नहि सरई। जीवत हमहि कुँवरि को वरई का उत्तर है।

भगवती ही परम गतिरूपा है। ये दोनों भाई भक्ति से जीते जाते हैं। यथा : ते दोउ बंधु प्रेम जनु जीते। गुरपद कमल पलोटत प्रीते। भक्ति से इन्हें जीतना ही परम गति की प्राप्ति है। सो इन्हें तुम विमुख होकर जीतना चाहते हो। यह होना नहीं है। यथा : राम विरोध कुसल जस होई। सो सब तुमहि सुनाइहि सोई। यह जौ विदेह कछु करइ सहाई। जीतौं समर सहित दोउ भाई का उत्तर है।

कोलाहल सुनि सीय सकानी। सखी लवाइ गईं जहँ रानी॥
राम [1]सुभाय चले गुरु पांहीं। सिय सनेहु वरनत मन मांहीं॥३॥

अर्थ : कोलाहल सुनकर सीताजी डर गईं। सखियाँ उन्हें जहाँ रानी थीं वहाँ ले गईं। रामजी सीताजी के स्नेह का मन ही मन वर्णन करते हुए स्वाभाविक गति से चले।

---

१. यहाँ स्वभावोक्ति है।

व्याख्या : राजाओं के वादविवाद से वहाँ बड़ा कोलाहल मचा। लेहु छड़ाई सीय कह कोऊ। इत्यादि सुनकर सीताजी डरीं। सखियाँ बड़ी चतुर हैं। देखा कि सब चोट सीताजी पर है तुरन्त उन्हें लेकर जहाँ रानियाँ थीं वहाँ चली गईं। स्वयंवर का सब कृत्य समाप्त हो गया। गुरुजी ने कहा था : उठहु राम भंजहु भव चापा। मेटहु तात जनक परितापा। उनकी आज्ञानुसार धनुष भी तोड़ा। जयमाल स्वीकार करके जनकजी के परिताप को भी मिटाया। दोनों आज्ञापालन के बाद फिर गुरुजी के यहाँ जैसे आये थे वैसे ही मत्तमञ्जुकुंजर की गति से चले। इस कोलाहल की ओर उनका ध्यान भी नहीं है। यथा : कै निंदौ कै आदरौ सिंहहि स्वान सियार। हर्ष विषाद न केहरिहि कुंजर गंजनिहार। वे मन ही मन सीताजी के स्नेह का वर्णन करते चले। गौरीजी कह चुकी हैं : करुणानिधान सुजान सील सनेह जानत रावरो उसी का साफल्य है।

रानिन्ह सहित सोचवस सीया। अब धौं बिधिहि काह करनीया ॥
भूप बचन सुनि इत उत तकहीं। लखनु राम डर बोलि न सकहीं ॥४॥

अर्थ : रानियों के साथ सीताजी सोच के वश हो गईं। अब ब्रह्मा न जाने क्या करना चाहते हैं। लक्ष्मणजी राजाओं के वचनों को सुनकर इधर उधर देखते हैं पर रामजी के डर से बोल नहीं सकते।

व्याख्या : यह जानकर कि राजा लोग बिगड़ गये हैं। भारी युद्ध हुआ ही चाहता है परिणाम क्या होगा। रानियाँ चिन्ता में पड़ गईं और सीताजी भी चिन्तित हो गईं। क्योंकि सब रामजी पर ही क्रुद्ध हैं और युद्धसिद्धिहि चञ्चला। युद्ध का परिणाम कुछ नहीं कहा जा सकता। किसी भाँति भगवान् भगवान् करके धनुष भी टूटा तो यह उपद्रव खड़ा हो गया। भविष्य विधि के हाथ है : कर्म शुभाशुभ देइ विधाता। इधर लक्ष्मणजी का क्या हाल है कि एक ओर से आवाज आई : लेहु छुड़ाइ सीय तो उधर देखा। तबतक दूसरी ओर से शब्द हुआ : धरि बाँधहु नृप बालक दोऊ तो उधर घूमे। तबतक तीसरी ओर से आवाज आई : जौं बिदेह कछु करै सहाई। जीतहु समर सहित दोउ भाई। इस भाँति विरोधियों के शब्द इधर उधर से आ रहे हैं। लक्ष्मणजी के देखते ही चुप हो जाते हैं। पर दूसरी ओर से आवाज उठती है। ऐसे बोलनेवालों का वध दण्ड है। पर बोल नहीं सकते क्योंकि प्रभु का डर है। उनका रुख देखते हैं तो उन्हें परवाह ही नहीं।

दो. अरुन नयन भृकुटि कुटिल, चितवत नृपन्ह सकोप।
मनहु मत्त गजगन निरखि, सिंहकिसोरहि चोप ॥२६७॥

अर्थ : लाल नेत्र और टेढ़ी भृकुटी से राजाओं को क्रोध से देखते हैं। जैसे मत्त हाथियों के झुण्ड को देखकर सिंह के बच्चे को चोप हो।

व्याख्या : रौद्ररस का अनुभाव कहते हैं। अरुण नयन और भृकुटी कुटिल है। राजाओं को क्रोध से देखते हैं। विभाव पहिले कह चुके हैं : भूप वचन सुनि इतउत

तंकहीं। मत्तगजयूथ सिंह के चोप की वस्तु है। परन्तु सिंह गम्भीर है। उसे अपने बल पर इतना विश्वास है कि मत्तगजयूथ को कुछ गिनता नहीं : ठवनि युवा मृगराज लजाये। सिंहकिशोर को भी चोप होता है। पर वह उतना गम्भीर नहीं है। तुरन्त पैतरा बदल कर खड़ा हो जाता है और अरुण नयन भृकुटि कुटिल करके मत्तगजयूथ की ओर देखता है। वैसी ही शोभा आज लक्ष्मणजी की राजाओं के सकोप दृष्टि से देखने में हो रही है। राजाओं को मत्तगज कहा। आकार में विशाल हैं। सिंहकिशोर आकार में स्वल्प है। पर मत्तगजयूथ को कुछ गिनता नहीं। उनपर चोट करने की बड़ी अभिलाषा है।

परशुराम आगमन प्रसङ्ग

खरभरु देखि बिकल पुर नारी। सब मिलि देहिं महीपन्ह गारी ॥
तेहि[1] अवसर सुनि सिवधनु भंगा। आए भृगुपति कमल पतंगा ॥१॥

अर्थ : गड़बड़ देखकर पुर की नारियाँ विकल हो गईं। सब मिलकर राजाओं को गालियाँ देती हैं। उसी अवसर पर शिवजी के धनुष का टूटना सुनकर भृगुकुल कमल के सूर्य परशुरामजी आये।

व्याख्या : उठि-उठि पहिरि सनाह अभागे। जहँ तहँ गाल बजावन लागे एक ओर। अस बुधि तो बिधि मुह मसिलाई कहनेवाले दूसरी ओर। लक्ष्मणजी अरुन नयन भृकुटी कुटिल। चितवत नृपन्ह सकोप तीसरी ओर। रंगभूमि में तमाम गड़बड़ मच गयी। सखियाँ जल्दी से सीताजी को रानियों के पास ले गईं। पुरवासी विकल हो उठे कि भारी अनिष्ट हुआ चाहता है। इस अनिष्ट के करनेवाले राजा लोग ठहरे। अतः सब नारियाँ मिलकर उन्हीं को गाली देने लगीं। राजाओं के पीछे पुरवासियों के बैठने के ऊँचे-ऊँचे मञ्च हैं और उनके पीछे धवलधाम में नारियों के बैठने की व्यवस्था है। अतः वे एक एक बात देख रही हैं। राजाओं का अन्याय देखकर विकल हैं। अतः उन्हें बुरा भला कह रही हैं कि इन अभागों का किया कुछ न हुआ। अब वे निर्लज्ज धनुष टूटने पर किस मुँह से लड़ने को कह रहे हैं। गड़बड़ी में जो कुछ त्रुटि रही सो इस गालीप्रदान से पूरी हो गई।

इसी गोलमाल के बीच में धनुषभङ्ग के शब्द से क्रुद्ध हुए भृगुकुलकमल के सूर्य परशुरामजी आये। यथा : यद्धभंज जनकात्मजाकृते राघवः पशुपतेर्महद्धनुः। तद्धनुर्गुणरवेण रोषितस्त्वाजगाम जमदग्निजो मुनिः। ह. ना.। जो समाज कि

---

१. यहाँ से २८५ दोहे तक अर्थात् १८ दोहों में परशुरामप्रसङ्ग है। यह भगवद्गीता का सार है। अठारह अध्याय गीता में भगवान् ने अर्जुन को स्वधर्म युद्ध से विचलित होकर परधर्म भिक्षावृत्ति ग्रहण करने से रोककर स्वधर्म पर आरूढ़ किया। उसी भाँति इन अठारह दोहों में परशुरामजी को परधर्म युद्ध से विरत करके स्वधर्म तपस्या पर आरूढ़ किया। यथा : कहि जय जय जय रघुकुल केतू। भृगुपति गये बनहि तप हेतू।

शंकर चाप जहाज पर चढ़ा था वह उसके टूटने से डूब गया। केवल भृगुपति केर गर्व गरुआई के डूबने का वर्णन शेष था। यहाँ उसीका वर्णन कर रहे हैं। परशुरामजी को गर्व था कि शिवजी के अस्त्रशस्त्र के धारण करने का सामर्थ्य एक मात्र मुझ में ही है। गणेशपुराण में परशुरामजी द्वारा शिवजी के सम्पूर्ण अस्त्रशस्त्र के धारण की कथा भी है। सो शङ्करजी के धनुष को तोड़नेवाला कौन पैदा हुआ? मानभंग का बड़ा दुःख होता है। अतः युद्ध करने आये। यथा : काल कराल नृपालन के धनु भंग सुने फरसा लिये धाये। भृगु ने स्वयं विष्णु भगवान् की छाती में लात मारा था। ये उस कुल के सूर्य हैं। अपमान करने में तनिक भी आगापीछा न करेंगे। पतंग कहकर उनका आकाशमार्ग से आना तथा तेजोऽतिशयता द्योतित की। दो पतंग एकत्रित हुए एक उदित उदय गिरि मंच पर रघुवर बाल पतंग और दूसरे भृगुकुल कमल पतंगा। भाव यह कि इस रंगभूमि में दो दो अवतारों का समागम हुआ। यथा : क्षत्रक्षयं कुर्वते। पौलस्त्यं जयते : परशुरामका और श्रीराम का।

देखि महीप सकल सकुचाने। बाज झपट जनु लवा लुकाने ॥
गौर सरीर भूति भल भ्राजा। भाल बिसाल त्रिपुंड बिराजा ॥२॥

अर्थ : देखकर सब राजा सङ्कुचित हो गये। जैसे बाज पक्षी के झपटने पर लवा छिप जाते हैं। गोरी देह में विभूति की भली शोभा थी। चौड़े ललाट पर त्रिपुण्ड शोभायमान था।

व्याख्या : जो जिरह बखतार पहन-पहन कर गाल बजा रहे थे। वे परशुरामजी के देखते ही पानी हो गये। जबान बन्द हो गई। ऐसे सिकुड़ गये जैसे बाज के झपटने पर लवा छिप जाता है। जो जहाँ थे वहीं छिपने लगे। लवा ढेले के आड़ में ऐसा छिप जाता है कि मालूम नहीं पड़ता। इसी भाँति शान्त राजाओं में जा छिपे। कहीं पूछें न कि यहाँ कौन कौन उपद्रव मचाता था? बाज झपट से आकाश मार्ग द्वारा सवेग उतरना कहा। लवा मन से भी बाज से युद्ध की बात नहीं सोच सकता। बाज की ओर देख भी नहीं सकता। राजा डरे कि हम सब लोगों को एकत्रित पाकर बाईसवीं बार निःक्षत्र करने आये हैं।

अब परशुरामजी का ध्यान कहते हैं : गौर वर्ण का शरीर है। गोरे शरीर पर विभूति खूब खिलती है। परम शैव हैं। सर्वाङ्ग में विभूति धारण कर रक्खी है। दूसरे रुद्र ही मालूम पड़ रहे हैं। इसी भाँति उच्च ललाट की शोभा त्रिपुण्ड से है। शिवजी परम वैष्णव हैं। अतः वे कालरूप विष्णु के प्रतीक को मस्तक पर धारण करते हैं। भूत भविष्य वर्तमान का द्योतक त्रिपुण्ड है। इसी भाँति विष्णु भी परम शैव हैं। वे शिवजी के प्रतीक त्रिशूल को ऊर्ध्वपुण्ड के रूप से धारण करते हैं। परशुरामजी साक्षात् शङ्कर भगवान् के शिष्य हैं। अतः त्रिपुण्ड धारण किये हैं।

सीस जटा ससिबदन सोहावा। रिसि बस कछुक अरुन होइ आवा ॥
भृकुटी कुटिल नयन रिसि राते। सहजहुँ चितवत मनहुँ रिसाते ॥३॥

अर्थ : सिर पर जटा थी। चन्द्रमा का सा मुख शोभित था। क्रोध के वश कुछ लालिमा आगई थी। भौंहें टेढ़ी और आँख क्रोध से लाल हो रही थीं। स्वभाव से देखते थे फिर भी यही मालूम होता था कि क्रोध कर रहे हैं।

व्याख्या : शीश जटा से तपस्वी ब्रह्मचारी मालूम होते थे। मुख की शोभा चन्द्रमा की सी थी। विशेषता यह थी कि क्रोध के कारण कुछ लालिमा आगई थी। भौंहें टेढ़ी हो रही थीं। क्रोध से आँखें चढ़ी हुई थीं। साधारण रीति से देखते थे तो भी जान पड़ता था कि क्रोध कर रहे हैं। भाव यह कि शोभा बड़ी ब्राह्म तेज बड़ा। फिर भी क्रोध के लक्षण प्रकट थे।

वृषभ कंध उर बाहु बिसाला। चारु जनेउ माल मृगछाला॥
कटि मुनिवसन तून दुइ बाँधे। धनु सर कर कुठार कल काँधे॥४॥

अर्थ : बैल का सा कन्धा, छाती और भुजाएँ विशाल थीं। सुन्दर यज्ञोपवीत रुद्राक्ष की माला मृगछाला धारण किये कटि में वल्कलवसन पहने दो तरकस बाँधे हाथ में धनुष लिये और कन्धे पर परशु धारण किये थे।

व्याख्या : अङ्ग प्रत्यङ्ग का संघठन वीरों का सा था। बैल का सा पुष्ट कन्धा था। वक्षःस्थल और भुजाएँ विशाल थीं। गले में सुन्दर यज्ञोपवीत और रुद्राक्ष की माला शोभायमान थी। मृगछाला लिये हुए थे। वल्कलवसन पहने हुए थे। यह सभी चिह्न तपस्वी ब्रह्मचारी के थे फिर भी युद्ध के लिए सुसज्जित होकर आये थे। दूर से प्रहार करने के लिए धनुष बाण और तरकस था। शत्रु के निकट आने पर प्रहार करने के लिए परशु भी धारण किये हुए थे।

दो. सांत बेष करनी कठिन, बरनि न जाइ सरूप।
धरि मुनितन जनु बीर रसु, आयउ जहँ सब भूप॥२६८॥

अर्थ : वेष शान्त परन्तु करणी कठिन थी। स्वरूप का वर्णन नहीं किया जा सकता। मानो वीर रस मुनि का शरीर धारण करके जहाँ राजा लोग थे वहाँ चला आया।

व्याख्या : वेष : पहिरावा तो शान्त था जैसा मुनियों का होना चाहिए वैसा था। परन्तु करणी कठिन थी। अचिन्त्य कार्य करनेवाली थी। यथा :

जिसने बार इकीस लहू की नदी बहाकर।
नृपति मांसमस्तिष्कपङ्कमय कूल बनाकर॥
किया तहाँ असनान दिया पितरों को पानी।
जिसके कठिन कुठार धार की विदित कहानी॥
बाल वृद्ध वनिता निधन में भी जो निर्दय महा।
कन्ध कूट नृप यूथ के कारन में अति पटु रहा॥ प्र. चं।

इसलिए कहते हैं कि स्वरूप का वर्णन नहीं हो सकता। क्योंकि उनमें मुनि के चिह्न भी हैं। वीर के चिह्न भी हैं। अतः अभूत उपमा देते हैं। धरि मुनि

तन जनु वीर रस आएउ जहँ सब भूप : कि इन्हीं में से किसी ने धनुष तोड़ा होगा। रामजी शृंगार में वीर रस की भाँति आये थे। यथा : देखहिं रूप महा रनधीरा। मनहु वीर रस धरे सरीरा। परशुरामजी मुनि वेष में वीर रस की भाँति आये।

रामजी :	परशुरामजी :
सरदचन्द निंदक मुख नीके।	सीस जटा ससि बदन सुहावा।
चितवन चारु मारमद हरनी।	सहजहु चितवत मनहु रिसाते।
वृषभ कंध केहरि ठवनि।	वृषभ कंध उर बाहु विसाला।
भाल विसाल तिलक झलकाहीं।	भाल विसाल त्रिपुंड विराजा।
कटि तूनीर पीत पट बाँधे।	कटि मुनि वसन तून दुइ बाँधे।
करसर धनुष बाम वर काँधे।	धनु सरकर कुठार कल काँधे।
प्रभुहिं देखि सब नृप हिय हारे।	देखि महीप सकल सकुचाने।

प्रादेश मात्र दिखलाया गया। दोनों स्वरूपों का यहाँ पूरा मिलान करना चाहिए।

देखत भृगुपति वेषु कराला। उठे सकल भय विकल भुआला ॥
पितु समेत कहि कहि निज नामा। लगे करन सब दंड प्रनामा ॥१॥

अर्थ : भृगुपति का कराल वेष देखकर डर से विकल होकर राजा लोग उठे। पिता के समेत अपना नाम कह कहकर सब दण्डवत् प्रणाम करने लगे।

व्याख्या : पहिले खरभर देखकर पुर नर नारी विकल हुए थे। गोलमाल मचानेवाले ये राजा ही थे। सो बाज झपट जिमि लवा लुकाने। लवा की भाँति छिप गये। इसलिए परशुरामजी को दूर से देखते ही सब गोलमाल शान्त हो गया। दूर से तो शान्त वेष में देखा था पर निकट आने पर कराल वेष प्रकट हुआ। भृकुटी कुटिल नयन रिसिराते। सहजहुँ चितवत मनहु रिसाते। कटि मुनि वसन तून दुइ बाँधे। कर सर धनु कुठार कल काँधे। तब राजा लोग डर से विकल हुए। जहाँ छिपे थे वहाँ से उठे। क्योंकि परशुरामजी से सभी राजा परिचित थे।

शास्त्रोक्त विधि से दण्डवत् प्रणाम प्रारम्भ हुआ। विधि यह है कि पिता के सहित अपना नाम लेकर बड़ों को प्रणाम करे। सो : अमुकस्य पुत्रोऽमुकवर्माहम् भो महर्षे त्वामभिवादये। ऐसा कहकर साष्टांग प्रणाम करने लगे। स्वयं विश्वामित्रजी के आने पर न ये सब उठे थे और न प्रणाम किया था। अतः यह प्रणाम श्रद्धातिरेक से नहीं हो रहा है मारे भय के हो रहा है। कहीं बे कायदे प्रणाम करने पर अप्रसन्न न हो जाँय इसलिए शास्त्र की विधि का पालन किया जा रहा है।

जेहि सुभाय चितवहिं हितु जानी। सो जानै जनु आइ खोटानी ॥
जनक बहोरि आइ सिर नावा। सीय बोलाइ प्रनाम करावा ॥२॥

अर्थ : जिसे अच्छे भाव से हित जानकर देखते हैं वह समझता है कि मेरी :

आयु क्षीण हुई। फिर जनक ने आकर सिर नवाया और सीताजी को बुलाकर प्रणाम करवाया।

व्याख्या : इतनी श्रद्धा से दण्डवत् प्रणाम हो रहा है पर परशुरामजी किसी की ओर आँख उठाकर देखते भी नहीं। आशीर्वाद न देने का एक कारण भी है कि अभी यह पता नहीं है कि धनुष किसने तोड़ा है। यदि धोखे से आशीर्वाद दे देंगे तो धनुषभंग के अपराध पर उसका वध कैसे करेंगे ? यथा : सुनहु राम जेहिं सिव धनु तोरा। सहस बाहु सम सो रिपु मोरा। राजा इतने भयभीत हैं कि प्रणाम करते चले जाते हैं। यदि किसी के पिता के नाम सुनने से या स्वयं उसके नाम सुनने से स्मरण आगया कि यह कुल तो ब्रह्मण्य है तो उसपर इतनी कृपा हुई कि उसकी ओर स्वाभाविक दृष्टि से देखा पर उसने समझा कि मैं मरा।

जनकजी उस जगह नहीं रहे। जहाँ थे वहाँ से आकर सब राजाओं के दण्डवत् के बाद सिर नवाया। न दण्डवत् किया न पिता का नाम लेकर अपने नाम का उच्चारण किया। जनकजी से परिचय विशेष है। इनका आदर भी मुनिसमाज में बहुत अधिक है। इनपर सामान्य नियम लागू नहीं है। पर इन्हें भी आशीर्वाद नहीं दिया। जनकजी बुद्धिमान् हैं। सीताजी को बुलाकर प्रणाम कराया। जगदम्बा के व्यक्तित्व का इतना प्रभाव पड़ा कि उन्हें आशीर्वाद दिया सौभाग्यवती भव।

आसिष दीन्हि सखी हरषानीं। निज समाज लै गईं सयानीं॥
बिस्वामित्रु मिले पुनि आई। पद सरोज मेले दोउ भाई॥३॥

अर्थ : आशीर्वाद दिया। सखियाँ हर्षित हुईं। बड़ी चतुर थीं अपने समाज में लिवा ले गईं। तब विश्वामित्रजी आकर मिले और चरणकमलों में दोनों भाइयों को डाल दिया।

व्याख्या : सखी चतुर हैं। जानती हैं कि यहाँ आशीर्वाद बहुत सस्ता नहीं है। जो आशीर्वाद दिया उसे कार्य में परिणत करना चाहेंगे। कम से कम स्वयं तो ऐसा आचरण नहीं करेंगे। जिसमें उनका आशीर्वाद मिथ्या पड़ जाय। जब समराङ्गण में आने पर रथ से उतरकर कार्त्तवीर्यार्जुन ने साष्टाङ्ग प्रणाम किया तो इन महात्मा ने यही आशीर्वाद दिया कि तुम्हें उत्तम लोक की प्राप्ति हो। अतः इनके आशीर्वाद का मूल्य है। अब इनसे रामजी को भय नहीं है क्योंकि सीताजी को सौभाग्यवती भव का आशीर्वाद दे चुके हैं। अतः सखियाँ हर्षित हुईं। अपने समाज में अर्थात् रानियों के पास ले गईं। राजसमाज अपना समाज नहीं है।

तत्पश्चात् विश्वामित्र जी आकर मिले। सम्बन्धी हैं इसलिए मिले। सबसे ऊँचे मञ्च पर बैठे थे उसपर से उतर कर आये। दोनों भाइयों को साथ लिवाते आये और उनको उसी भाँति मुनिचरणों में डाल दिया जिस भाँति महाराज दशरथ ने उनके चरणों में डाल दिया था। यथा : मुनि चरनन मेले सुत चारी। जनकजी ने अपनी पुत्री के लिए आशीर्वाद ले लिया तो विश्वामित्रजी ने अपने शिष्यों को आशीर्वादार्थं उन्हें उनके चरणों में डाला।

राम लषन दशरथ के ढोटा। दीन्हि असीस देखि भल जोटा ॥
रामहि चितइ रहे थकि लोचन। रूप अपार मार मद मोचन ॥४॥

अर्थ : राम लक्ष्मण दशरथ के बेटे हैं। अच्छी जोड़ी देखकर आशीर्वाद दिया। रामजी को देखते ही रह गये। आँखें थक गईं। रूप का पारावार नहीं था। कामदेव के अभिमान को दूर करनेवाला रूप था।

व्याख्या : जब मुनि ने कहा कि ये राम लक्ष्मण दशरथ के बेटे हैं तब आँख उठाकर देखा कि बड़ी अच्छी जोड़ी है। आशीर्वाद दिया : चिरञ्जीव। इतने समाज में तीनों को आशीर्वाद मिला। सीताजी को, रामजी को और लक्ष्मणजी को। इनपर धनुषभंग की आशङ्का भी नहीं हो सकती थी। इन सुकुमार मधुर मूर्तियों की शक्ति के बाहर की बात समझी। दोनों भाइयों में भी दृष्टि पीछे से रामजी पर स्थिर हो गई। ऐसा उदाहरण सभी जगह मिलेगा। रूप के भार के सहन में असमर्थ होकर आँखें थक गईं। रूप का पारावार ही नहीं मिलता था। ऐसा रूप था कि देखकर काम को अपनी सुन्दरता का अभिमान छूट जाय। थोड़ी देर के लिए परशुरामजी क्रोध भूल गये।

दो. बहुरि बिलोकि बिदेह सन, कहहु काह अति भीर।
पूँछत जानि अजान जिमि, ब्यापेउ कोपु सरीर ॥२६९॥

अर्थ : फिर देखकर विदेह से कहा कि कहो इतनी भीड़ क्यों है ? जानकर भी अनजान की भाँति पूछते हैं। उनके शरीर में क्रोध व्याप्त हो गया।

व्याख्या : फिर राजा जनक को देखा। उन्हीं के मुख से धनुषभङ्ग कहलाना चाहते हैं और उन्हीं से धनुषभङ्ग करनेवाले का नाम जानना चाहते हैं। अतः पूछते हैं इतनी भीड़ क्यों है ? भीड़ के लिए प्रश्न राजा के यहाँ नहीं बनता। क्योंकि वहाँ सदा ही भीड़ बनी रहती है। परन्तु अति अधिक भीड़ : जिसमें द्वीप द्वीप के राजा इकट्ठे हों के लिए कारण विशेष होना चाहिए। जान बूझकर अनजान की भाँति पूछने का यही कारण है। रामजी के दर्शन से क्रोध दब गया या वह प्रश्न करने में उमड़कर तमाम शरीर में व्याप्त हो गया।

समाचार कहि जनक सुनाए। जेहि कारन महीप सब आए ॥
सुनत बचन फिरि अनत निहारे। देखे चापखण्ड महि डारे ॥१॥

अर्थ : जिस कारण सब राजा लोग आये थे वह सब समाचार जनकजी ने कह सुनाया। वचन सुनते ही घूमकर दूसरी ओर देखा तो धनुष के दोनों खण्डों को पृथ्वी पर पड़ा हुआ पाया।

व्याख्या : नृप लखि कुँअरि सयानि बोलि गुरुपरिजन। करि मत रचेउ स्वयंवर सिवधनु धरि पन : जा. मं.। यही समाचार था। सो जनकजी ने सुना दिया कि पुत्री की विवाह की चिन्ता से धनुषयज्ञ रचा गया है। यहाँ विदेहन

कहकर जनक कहने का यह आशय है कि जनक का अर्थ पिता है। पिता अपनी पुत्री के विवाह के लिए उद्योग करता ही है। इस भाँति कहहु कहा अति भीर का उत्तर दिया कि राजाओं के एकत्र होने का यह कारण है। कुछ आपके विरोध में परामर्श के लिए नहीं एकत्रित हुए हैं।

परशुरामजी कञ्चनमञ्च के सामने आ खड़े हुए थे। यथा : आये जहँ सब भूप। इसलिए वेदी पीछे पड़ गई थी। जनकजी का वचन सुनकर जब घूमकर वेदी की ओर देखा। यथा : अति विस्तार चारु गच ढारी। विमल वेदिका रुचिर सँवारी। तो धनुष के दोनों खण्डों को पृथ्वी पर पड़ा हुआ देखा। पहिले धनुष लोहे की पेटिका में रक्खा था। यथा : तामादाय समञ्जूषामायसीं यत्र तद्धनुः। बा०। गुरुका धनुष सब प्रकार पूजनीय था। उसे टूटा हुआ और उसके टुकड़ों को पृथ्वी पर पड़ा हुआ देखना, रौद्ररस के उद्दीपन के लिए यथेष्ट कारण हुआ।

अति रिस बोले वचन कठोरा। कहु जड़ जनक धनुष कै तोरा ॥
वेगि देखाउ मूढ़ न त[१] आजू। उलटौं महि जहँ लहि तव राजू ॥२॥

अर्थ : अत्यन्त क्रोध से कठोर वचन बोले : रे जड़ जनक! बतला धनुष किसने तोड़ा? जिसने तोड़ा हो उसे जल्दी दिखला नहीं तो जहाँ तक तेरा राज्य पाऊँगा उतनी पृथ्वी उलट दूँगा।

व्याख्या : धनुष के तोड़ने पर 'रिस' और टुकड़ों को पृथ्वी पर फेंकने पर अतिरिस है। अतिरिस में कठोर वचन बोलना स्वाभाविक है। मुनियों के ज्ञानदाता जनक को मूढ़ कहना कठोर वचन है। पुरवासी स्नेहवश दोष लगाते थे। यथा : हरु विधि वेगि जनक जड़ताई। ये क्रोधवश दोष लगाते हैं। जनक जी को जड़ कह रहे हैं। शिवधनु को प्रण में रखना जड़ता है। अब अपराधी को जानना चाहते हैं। अतः पूछते हैं धनुष कै तोरा?

उत्तर देने में देर होते देखकर मूढ़ कहते हैं। माया में फँसकर जामाता को नहीं बतलाना चाहता। अतः कहते हैं जल्दी बतला। प्रजापालक राजा है : प्रजापालन से ही इसका नाम जनक पड़ा है। प्रजाओं के नाश के भय से बतला देगा। नहीं बतलाने से वह भी नहीं बच सकता जिसको नहीं बतलाना चाहता है। वह धनुष तोड़नेवाला तेरे राज्य के भीतर ही होगा। अतः जहाँ तक तेरा राज्य मिलेगा वहाँ तक की पृथ्वी उलट दूँगा। यह घोरधार भृगुनाथ रिसानी है। राज्य उलटने को तैयार हैं।

अति डर उतरु देत नृपु नाहीं। कुटिल भूप हरषे मन माहीं ॥
सुर मुनि नाग नगर नर नारी। सोचहिं सकल त्रास उर भारी ॥३॥

अर्थ : अत्यन्त डर से राजा उत्तर नहीं देते। कुटिल राजा मनही मन प्रसन्न

---

१. व्याज निन्दा अलङ्कार है।

हुए। देवता, मुनि, नाग, नगर के स्त्री पुरुष, सबके सब अत्यन्त त्रस्त होकर सोच कर रहे हैं।

व्याख्या : परशुरामजी अत्यन्त क्रोध से बोले। अतः अत्यन्त डर से राजा उत्तर नहीं देते। उत्तर देने में अनर्थ है। न देने से क्रोध उनके सिर बीते सो स्वीकार है। जामाता की किसी भाँति रक्षा हो। उधर कुटिल भूप मनही मन प्रसन्न हुए कि बड़ा काम हुआ जो हमसे धनुष नहीं टूटा। अब हुआ जनक का सत्यानाश। ये छोकड़े बड़े वीर बने फिरते थे। ये भारी भयानक हैं। संसार से उठ जायँ तभी ठीक हो। हर्ष व्यक्त करने से कहीं हमारे ही सिर न बीत जाय। अतः मनही मन प्रसन्न होते हैं। बाहर नहीं जनाते। भयभीत बने खड़े हैं।

सुर किन्नर नर नाग मुनीसा। जय जय जय कहि देहिं असीसा। ये लोग कल्याण चाहनेवाले थे। सबके सब रावण से दुःखी थे। यथा : किन्नर सिद्ध मनुज सुर नागा। हठि सबहीं के पंथहि लागा। रामजी के ही हाथ से रावणवध होनेवाला था। सो रामजी पर ही भारी विपत्ति आते देखकर सब त्रस्त होकर चिन्ता करते हैं। परशुरामजी पर किसी का बल नहीं चल सकता था। इनके क्रोध से उन लोगों को रामजी के प्रति भी शङ्का हो गई। राजा जनक को भी काल के गाल में देख रहे हैं।

मन पछिताति सीय महतारी। विधि अब सँवरी बात बिगारी॥
भृगुपति कर सुभाउ सुनि सीता। अर्ध निमेष कलप सम बीता॥४॥

अर्थ : सीता की माता मनमें पछता रही हैं कि ब्रह्मा ने तो अब सँवारी हुई बात ही बिगाड़ दी। भृगुपति का स्वभाव सुनकर सीताजी को तो आधा पलक कल्प के समान बीतने लगा।

व्याख्या : जनकजी पर संकट देखकर सीताजी की माता पछताती हैं कि धनुष टूटने से मेरी बात बन गई थी। सो सब बनी बनाई बात बिगड़ना चाहती है। महाराज परशुरामजी के प्रश्न का उत्तर न देकर उनके क्रोध के वेग को अपने ऊपर ले रहे हैं। इनके क्रोध से न महाराज की रक्षा है और न रामजी की। पहिले तो कन्या पर संकट था। धनुष नहीं टूटता था। धनुष टूटने से वह संकट टला। तब पुत्री और पति दोनों पर संकट आगया। सब बात ही बिगड़ गई। यदि महाराज धनुष तोड़नेवाले का नाम नहीं बतलाना चाहते तो इतने आदमियों में कोई न कोई बतला ही देगा और उसीको खोजते हुए ये क्रुद्ध होकर आये हैं। इनका स्वभाव बड़ा निर्दय है। जिसपर क्रोध करते हैं उनके वंश में किसी को नहीं छोड़ते। सब बात ब्रह्मा ने बिगाड़ी। नहीं तो इस समय इनके आने की कौन सी बात थी। कोई अनर्थ हुआ चाहता है।

सीताजी ने जब परशुरामजी का स्वभाव सुना तो इतने कष्ट में पड़ीं कि उनको आधा निमेष कल्प के समान बीतने लगा। पहिले लवनिमेष युग सय सम जाहीं।

फिर रामजी के धनुष के पास आने पर ऐसी विकलता हुई कि निमिष विहात कल्प सम तेही। इस समय उससे भी दूनी विकलता है। इसलिए कहते हैं कि अर्ध निमेष कल्प सम बीता।

दो. सभय बिलोके लोग सब, जानि जानकी भीर।
हृदय न हरषु बिषादु कछु, बोले श्रीरघुबीर ॥२७०॥

अर्थ : सब लोगों को भयभीत देखकर और जानकी पर कष्ट जानकर श्रीरघुवीर बोले। न उनके मनमें कोई हर्ष था न विषाद था।

व्याख्या : रामजी ने देखा कि सब जनकपुरवासी तथा सुर मुनि नाग सब भयभीत हैं। जानकीजी को जब एक निमिष कल्प सम हुआ तब धनुष को तोड़ डाला। अब देखते हैं तो आधा निमिष कल्प के समान बीत रहा है तो बोले। भाव यह कि महाराज यदि नहीं बतलाते तो मैं स्वयं अपने को उपस्थित करता हूँ। मनमें हर्ष विषाद नहीं कहने का यह भाव है कि रामजी का मन सदा निर्विकार है। धनुष भङ्ग का हर्ष नहीं है और न परशुराम के क्रोध पर विषाद है। प्रसन्नता या न् गताभिषेकतः तथा न मम्ले वनवासदुःखतः। मुखाम्बुजश्री रघुनन्दनस्य मे सदास्तु सा मञ्जुलमङ्गलप्रदा। इसीलिए श्री ग्रन्थकार ने रघुवीर पद दिया। उत्तर देने में न हिचकने का स्वभाव रघुवंश मात्र का है। यथा : बंस स्वभाव उत्तर तेहि दीन्हा। घाट सुबद्ध राम बर बानी।

नाथ संभुधनु भंजनिहारा। होइहि केउ एक दासु तुम्हारा ॥
आयसु काह कहिअ किन मोही। सुनि रिसाइ बोले मुनि कोही ॥१॥

अर्थ : हे नाथ! शिवजी का धनुष तोड़नेवाला तुम्हारा कोई एक दास होगा। क्या आज्ञा है? मुझसे क्यों नहीं कहा जाता? सुनकर क्रोधी मुनि चिढ़कर बोले।

व्याख्या : वर्णानां ब्राह्मणो गुरुः। अतः नाथ सम्बोधन करते हैं। प्रश्न है धनुष कै तोरा? उत्तर देते हैं : कोउ एक दास तुम्हारा। गर्व गरुआई सँभालते हैं। आपके दासों को छोड़कर और किसका सामर्थ्य है जो धनुष तोड़ सके। आप किसी प्रतिस्पर्धी की शङ्का न करें। विनीत भाव से स्पष्ट कह रहे हैं कि मैंने तोडा है। पर मैं आपका दास हूँ प्रतिस्पर्धी नहीं हूँ। धनुष तोड़नेवाले को पूछने से अभिप्राय यही है कि उसके लिए कोई आज्ञा होनेवाली है। सो वह आज्ञा मुझे दीजिये। अब बात और भी स्पष्ट कर दी कि मैंने तोड़ा और तोड़नेवाले के लिए जो कुछ कहना हो सो मुझसे कहिये। क्रोधी मनुष्य शीघ्र बात नहीं समझता। इन्होंने भी नहीं समझी। इतना ही समझा कि यह तोड़नेवाले की सिपारिश करता है। उसे दास बतला रहा है। यहाँ ध्वनि यह थी कि अब आपको कुछ करना नहीं है। आप आनन्द से तपस्या करिये। जिन कामों के लिए आपका अवतार है वह सब मैं अपने ऊपर

लिए लेता हूँ। आप अब केवल आज्ञा देते जाइये। मैं सब करूँगा। परम बुद्धिमान् होने पर भी क्रोध के कारण ध्वनि नहीं समझ सके। उलटे चिढ़ उठे और बोले।

सेवकु सो जो करै सेवकाई। अरि करनी करि करिअ लराई ॥
सुनहु राम जेहिं सिव धनु तोरा। सहसबाहु सम सो रिपु मोरा ॥२॥

अर्थ : सेवक वही है जो सेवक का काम करे। शत्रु का काम करके तो लड़ाई करनी चाहिए। सुनो राम जिसने शिवधनु तोड़ा है वह सहस्रबाहु की भाँति मेरा शत्रु है।

व्याख्या : आयसु काह कहहु किन मोही का उत्तर परशुरामजी देते हैं कि जो सेवा करता है उसे आज्ञा दी जाती है। और जो इष्ट का नाश करे वही तो शत्रु है। उसने लड़ाई ठानकर इष्ट नाश किया है। उससे लड़ाई ही करनी चाहिए। शिवधनुभङ्ग हमारे लिए बड़ा भारी अनिष्ट है। जिसने उसे तोड़ा वह पितृहन्ता के समान शत्रु है। उससे बड़ा हमारा शत्रु कोई हो नहीं सकता। उसे हम आज्ञा नहीं दे सकते। उसका हम वध करेंगे।

सो बिलगाउ बिहाइ समाजा। न त मारे जैहैं सब राजा ॥
सुनि मुनि बचन लखन मुसुकाने। बोले परसुधरहि अपमाने ॥३॥

अर्थ : उसे समाज से अलग करके खड़ा करो। नहीं तो सब राजे मारे जायँगे। मुनि का वचन सुनकर लक्ष्मणजी मुसकराये और परशुराम का अपमान करते हुए बोले।

व्याख्या : यदि आज्ञा ही चाहते हो तो यही आज्ञा है कि मेरे उस शत्रु को राजसमाज से अलग कर दो। मैं उससे युद्ध करूँ और यदि वह अलग न होना चाहता हो तो कुशल चाहनेवाले राजा उसे छोड़कर हट जायँ। यदि ऐसा नहीं होता तो मैं सब राजाओं को उसका साथी समझूँगा। सबको मार डालूँगा। उसी में वह भी मारा जायगा।

जनकजी के बीर बिहीन मही कहने से जिस लक्ष्मण ने रामजी का अपमान माना था उसी लक्ष्मण ने न त मारे जैहैं सब राजा इस वचन से भी रामजी का अपमान माना। उनके इस वचन पर मुसुकराये कि मुनि के ऐसे वचन! ये तो केवल मुनि का स्वाँग बनाये हैं। अतः परशुरामजी का अपमान करते हुए बोले।

बहु धनुहीं तोरी लरिकाईं। कबहुँ न असि रिस कीन्हि गोसाईं ॥
एहि धनु पर ममता केहि हेतू। सुनि रिसाइ कह भृगुकुल केतू ॥४॥

अर्थ : लड़कपन में तो बहुत सी धनुहियाँ तोड़ी हैं। परन्तु गोसांईं! आपने ऐसा क्रोध तो कभी नहीं किया। इस धनुष पर इतनी ममता होने का कारण क्या है? सुनकर भृगुकुल केतु : पताका चिढ़कर बोले।

व्याख्या : लड़कपन से ही हमलोगों को धनुष का व्यसन है। खेलवाड़ में

भी धनुहियों से काम लेते थे। कितनी धनुहियाँ उस खेलवाड़ में टूटीं। इसका क्या ठिकाना। उनके टूटने पर आप मनही मन अप्रसन्न हुए हों तो बात दूसरी है। पर ऐसा क्रोध तो कभी नहीं किया कि उनके टूटने पर लड़ने को तैयार हुए हों। श्रीरामजी ने नाथ कहा है। इसलिए ये भी गोसांईं सम्बोधन करते हैं और बड़ा मानकर ही प्रश्न कर हैं कि बड़ों का कर्त्तव्य है कि अनिष्टाचरण से छोटों को आरम्भ से ही निवृत्त करें। सो आपने कभी नहीं किया। अतः मालूम होता है कि इस धनुष में कुछ विशेषता थी। जिसके कारण आपकी इसपर ममता थी उस विशेषता को जानने के लिए प्रश्न करते हैं। भाव यह कि जैसे लड़कपन की धनुहियाँ आपकी नहीं थी उसी भाँति यह धनुष भी आपका नहीं था। यथा : रावरी पिनाक में सरीकता कहाँ रही। और इस धनुष में कुछ तत्त्व भी नहीं था। ऐसा उत्तर पाकर भृगुकुल केतु हैं : भृगु ने विष्णु भगवान् को लात मारी थी। उस कुल की पताका हैं। बिगड़ गये कि शिवधनु का धनुही से समता दे रहा है।

दो. रे नृप बालक कालवस, बोलत तोहि न सँभार।
धनुही सम तिपुरारि धनु, विदित सकल संसार ॥२७१॥

अर्थ : रे राजा के लड़के ! तू कालवश हो रहा है। सँभालकर नहीं बोलता। विश्वविख्यात त्रिपुरारि का धनुष धनुहो के समान है ?

व्याख्या : नृप बालक कहने का भाव यह कि लड़कपन की बातें करता है। मुझसे लड़कपन की बात करना काल के गाल में जाना है। जिनके सिरपर काल सवार होता है वे ही ऐसी बेसँभाल बातें मुझसे करते हैं। त्रिपुरारि का धनुष मेरुमन्दर का जोड़ीदार है। उसे तू धनुही के समान बतला रहा है। इस धनुष को तो सारा संसार जानता था। तेरी धनुहियों को कौन पूछता है। ऐसा ही उत्तर पाने के लिए ही लक्ष्मण जी ने बहु धनुही तोरो लरिकाई आदि कहा था। अब ऐसा उत्तर पा जाने पर उन्हें अवाक् करने में सुभीता होगा। यथा : वचन चय चातुरी परसुधर गर्वहर : वि. प.।

लखन कहा हँसि हमरे जाना। सुनहु देव सब धनुष समाना ॥
का छति लाभु जून धनु तोरे। देखा राम नएन के भोरे ॥१॥

अर्थ : लक्ष्मणजी ने हँस के कहा कि हमारी समझ में तो सब धनुष समान ही थे। पुराने धनुष के तोड़ने में न कोई लाभ था न हानि थी। रामजी ने तो उसे नये के धोखे से परखा था।

व्याख्या : पहिले न त मारे जैहैं सब राजा सुनकर मुसकराये थे। अब : रे नृप बालक कालवस बोलत तोहि न सँभार। धनुही सम त्रिपुरारि धनु विदित सकल संसार। इतना कहने पर तो हँस पड़े। बोले कि यह तो आप अपनी समझ की बात कहते हैं। हमारी समझ में तो जैसी वे धनुहियाँ थीं वैसा ही यह धनुष था। देव सम्बोधन का भाव यह कि आप महिदेव हैं। ब्राह्मण देवता हैं। आपका

यह काम नहीं है। अतः आपको कठिन जान पड़ा। हम क्षत्रिय हैं। हमारा काम है। हमें सहज सरल जान पड़ता है। अतः हमारे लिए दोनों समान ही हैं।

अनादि देव महादेव का धनुष न जाने किस युग का था। बहुत पुराना हो गया था। उसके तोड़ने में कोई हानि नहीं थी। टूटे ही के बराबर था। उसे तोड़ने में लाभ भी कुछ नहीं था। क्योंकि उस पुराने धनुष के तोड़ने में कोई वाहवाही नहीं थी। जिसके टूटने से हानि लाभ कुछ नहीं उसके लिए अप्रसन्न होने का कोई कारण नहीं है। रामजी ने नये के धोखे से उसे परखा था कि देखें इसमें कुछ दम है कि नहीं। लक्ष्मण जी ने इस भाँति स्पष्ट नाम भी बतला दिया।

छुवत टूट रघुपतिहिं न दोषू। मुनि बिनु काज करिअ कत रोषू॥
बोले चितइ परसु की ओरा। रे सठ सुनेहि सुभाउ न मोरा॥२॥

अर्थ : छूते ही तो टूट गया। रघुपति का कोई दोष नहीं है। मुनिजी ! व्यर्थ क्रोध क्यों करते हो। परशु की ओर देखकर बोले क्यों रे सठ ! तूने मेरा स्वभाव नहीं सुना है ?

व्याख्या : यदि कहो कि लाभ हानि हो चाहे न हो तुमने क्यों तोड़ा ? इस पर कहते हैं कि इतना पुराना था कि छूते ही टूट गया। रामजी का कुछ दोष नहीं। आप ही व्यर्थ क्रोध कर रहे हैं। रामजी का नाम बतलाने पर भी ऐसी बात बोले कि क्रोध की धारा रामजी की ओर न जाकर लक्ष्मण की ओर घूम गई। सब पुर नर नारी साक्षी हैं किसने रामजी को लेते चढ़ाते देखा है ? रामजी ने उठाया और वह पुराना धनुष आपसे आप टूट गया।

लक्ष्मणजी बोले और परशुधर का अपमान किया। अतः वे भी परशु की ओर देखकर बोलते हैं। परशु की ओर देखने का भाव लक्ष्मण को दिखाने से है कि इसे देखता है या नहीं ? केवल मेरी बात काटने के लिए ऐसे महद् धनुष को ऐसा तुच्छ बतलाता है और अपना अलौकिक बल ख्यापन कर रहा है। इसका उत्तर संग्राम ही है। तू शठ है। सहस्रों कपट की सूइयों को चतुराई से छिपाता है। यथा : कपट सार सूची सहस बाँधि बचन पर बास। करि दुराव चह चातुरी सो सठ तुलसीदास। मेरा स्वभाव प्रसिद्ध है। कपटी को तो मार ही डालता हूँ। कदाचित् तूने मेरा स्वभाव नहीं सुना है : वस्तुतस्तु बड़े दयालु हैं। डराने के लिए अपने को निष्ठुर बतला रहे हैं।

बालक बोलि बधौं नहिं तोहीं। केवल मुनि जड़ जानहिं मोहीं॥
बाल ब्रह्मचारी अति कोही। बिस्व बिदित छत्रीकुल द्रोही॥३॥

अर्थ : बालक समझकर तुझे नहीं मारता हूँ। अरे जड़ ! तूने मुझे निरा मुनि ही समझ रक्खा है। मैं बाल ब्रह्मचारी हूँ। अत्यन्त क्रोधी हूँ और संसार जानता है मैं क्षत्रियवंश का वैरी हूँ।

व्याख्या : तू आरम्भ से ही कपट की बात बोलता है। मैं पहिले ही उत्तर में मार देता। पर बालक समझकर छोड़ दिया। मुनि बिनु काज करिअ कत रोसू कहा। तो तूने मुझे केवल मुनि ही जान लिया। तू जड़ है। बेसमझ है। मेरा परशु नहीं देखता। मुनि तो ऐसा हूँ कि दारपरिग्रह ही नहीं किया। अतः अक्षत वीर्य हूँ। मैं निर्बल मुनियों की भाँति क्षमाशील नहीं हूँ। क्षत्रिय लोग शान्त दान्त मुनियों को तुच्छ समझते हैं। उनका अपमान करते हैं। वे बिचारे सह जाते हैं। परन्तु मैं अतिक्रोधी हूँ। असहनशील हूँ। इसलिए क्षत्रिय कुल से मेरा वैर जगद्विख्यात है। सब योग वध का ही है। केवल तेरे बचपन पर दया आती है। इस भाँति अपना प्रताप कहा। परशुरामजी सदा शिव शिव शिव शिव इस मन्त्र का जप शत्रु के नाश के लिए किया करते थे। यथा : शिव शिव शिव शिव मन्त्रंममुं जपमानमरिक्षयहेतुम्। रा. गी. गो.।

भुजबल भूमि भूप बिनु कीन्हीं। बिपुल बार महिदेवन्ह दीन्हीं ॥
सहसबाहु भुज छेदनिहारा। परसु बिलोकु महीपकुमारा ॥४॥

अर्थ : भुजा के बल से मैंने पृथ्वी को राजाओं से रहित कर दिया और अनेक बार ब्राह्मणों को दिया। सहस्रबाहु की भुजाओं को काटनेवाले इस परशु को हे राजकुमार ! तू देख।

व्याख्या : क्रोध भी मेरा अमोघ है। बिना सेना के केवल भुजबल से इक्कीस बार पृथ्वी बिना क्षत्रिय की कर दी और ब्राह्मणों को दे दी : परशुरामजी केवल युद्धवीर ही नहीं बड़े भारी दानवीर भी थे। दानी भी इनसा कोई हुआ नहीं। निःक्षत्र करके सप्तसमुद्र मुद्रित मही के दान करनेवाले ये ही थे। दान पाकर अपने षट्कर्म में बाधा पड़ते देखकर ब्राह्मणों ने क्षत्रियों को पृथ्वी लौटा दी। दोबारा फिर निःक्षत्र करके पृथ्वी ब्राह्मणों को दी। इस भाँति बीस बार हुआ। इक्कीसवीं बार महर्षि कश्यप ने इनसे दान में पृथ्वी लेकर आज्ञा दी कि तुम पृथ्वी छोड़ दो। परशुरामजी ने छोड़ दिया। समुद्र से अपने रहने के लिए स्थान माँगा। समुद्र ने हटकर महेन्द्राचल पर्वत को इनके रहने के लिए दिया। तब से इनका वहीं निवास है। चिरञ्जीवी हैं। उसी पर रहते हैं। अर्थात् दिन को कहीं रहें, रात को विश्राम उसी पर्वत पर करते हैं।

परशु की ओर देखकर बोलना प्रारम्भ किया था। अब स्पष्ट कहते हैं : इस परशु को देख ! है ऐसा परशु किसी के पास। इसी ने सहस्रार्जुन के हजारों बाहुओं का छेदन किया है। एक भुजा शेष न छोड़ी। तेरी इन भुजाओं में क्या है ? इस भाँति अपना रोष कहा।

दो. मातु पितहि जनि सोच बस, करसि महीसकिसोर।
गरभन्ह के अर्भक दलन, परसु मोर अति घोर ॥२७२॥

अर्थ : अरे राजा के लड़के ! तू अपने माता पिता को शोक के वश न कर। गर्भ के बच्चों को भी मारनेवाला मेरा परशु बड़ा घोर है।

व्याख्या : तू अपने माता पिता पर दया कर। राजा दशरथ बड़ा ब्रह्मण्य है। उसे वृद्धावस्था में पुत्रशोक न हो। अपनी घोरता का आरोप परशु पर करते हैं। मैं क्रोध करने पर गर्भ के बच्चों तक को नहीं छोड़ता। उसके कुल का ही पूर्णतः संहार कर देता हूँ। यदि तू न मानेगा तो मैं बालक होने का ख्याल न करूँगा।

विहँसि लखनु बोले मृदु बानी। अहो मुनीसु महा भटमानी[1]॥
पुनि पुनि मोहि देखाव कुठारू। चहत उड़ावन फूंकि पहारू॥१॥

अर्थ : लक्ष्मण जी विहँसकर मृदुवाणी बोले। अहो मुनीश्वर! अपने को बड़ा योद्धा मानते हो। बार बार परशु दिखलाते हो। फूँककर पहाड़ उड़ा देना चाहते हो।

व्याख्या : भगवान् रामचन्द्र या विश्वामित्र कोई लक्ष्मणजी को रोकता नहीं है। लक्ष्मणजी का उत्तर सबको प्रिय है। क्रम पर ध्यान दीजिये। परशुरामजी के न त मारे जैहें सब राजा कहने पर लक्ष्मणजी मुसुकराये। रे नृप बालक काल बस कहने पर हँसे। अब मातु पितहि जनि सोच बस करसि महीस किसोर कहने पर तो विहँस पड़े। वाणी मृदु है। पर भाव तीक्ष्ण है। कहते हैं कि आप मुनियों के ईश क्षात्र धर्म से एकबारगी अनभिज्ञ हैं। गर्भ के बालक को मारकर अपने को भट मानते हैं। गर्भन के अर्भक दलन परसु मोर अति घोर का उत्तर।

एक बार : बोले चितै परसु की ओरा। दूसरी बार : परसु बिलोकु महीप कुमारा कहा। सो बार बार मुझे परशु दिखाते हो मानो मैंने परशु देखा ही नहीं। मुझे भी गर्भ का अर्भक समझ रक्खा है। मैं पहाड़ हूँ। आँधी चलने पर भी मेरा कुछ नहीं होता। परशु दिखाना तो फूँक है। आँधी से सेना का तात्पर्य। यथा : जनु कज्जल की आँधी चली। सहस बाहु भुज छेदन हारा। परसु बिलोकु महीप कुमारा का यह उत्तर दिया कि मुझे परसु देखने से क्रोध होता है। इसे उन्हें दिखाओ जो दण्डवत् करते हैं।

इहाँ कुम्हड़ बतिया कोउ नाहीं। जे तरजनी देखि मर जाहीं॥
देखि कुठारु सरासन बाना। मैं कछु कहा सहित अभिमाना॥२॥

अर्थ : यहाँ कोई कोहड़े की बतिया नहीं है जो तर्जनी : उँगली देखकर मर जाती है। यह परशु धनुष और वाण देखकर मैंने कुछ अभिमान के साथ कहा है।

व्याख्या : भुजबल भूमि भूप बिनु कीन्हीं का उत्तर देते हैं। आपको भुजबल है तो यहाँ भी कोई कोंहड़े की बतिया नहीं है। कोंहड़े में बतिया लगते ही जो कोई उसे उँगली दिखा दे तो वह निश्चय सूख जाती है। यह देखी हुई बात है। भुजबल भूमि भूप बिनु कीन्हीं। यह कहना तर्जनी दिखलाना है। इतना सुनकर हम लोग सूखनेवाले नहीं है। यहाँ भी त्रिभुवन जय करके बैठे हैं। पराक्रम विशेष

---

१. व्याजस्तुति अलङ्कार है।

सुनने से उत्साह बढ़ता है। यथा : त्रिभुवन जय समेत वैदेही। विनहि विचार वरै हठि तेही।

तुम्हारा क्षत्रियकुलद्रोही होना विश्वविदित है तो मैंने भी अनजान से कुछ नहीं कहा। मैंने आते ही आपका कुल्हाड़ा धनुष बाण देख लिया। तब अभिमान की बात बोले कपट की नहीं। यदि यह सब उत्तेजक चिह्न न देखते तो अभिमान की बात न बोलते।

भृगुसुत समुझि [1]जनेउ बिलोकी। जो कछु कहहु सहउँ रिसि रोकी॥
सुर महिसुर हरिजन अरु गाई। हमरे कुल इन्ह पर न सुराई॥३॥

अर्थ : भृगुवंशी समझकर और यज्ञोपवीत देखकर जो कुछ आप कहते हैं क्रोध रोककर सह जाता हूँ। देवता, ब्राह्मण भगवद्भक्त और गाय पर मेरे कुल में बहादुरी नहीं है।

व्याख्या : बालक बोलि बधौं नहि तोही। केवल मुनि जड़ जानेहि मोही का उत्तर : भृगु के बाल बच्चे समझकर आपकी बातें सहता जाता हूँ। भृगुजी की लात विष्णु भगवान् ने सही। ये भी उसी कुल के हैं। इनकी बात सह लेनी चाहिए। कपास का यज्ञोपवीत देखकर : कुल्हाड़ा देखकर नहीं : क्रोध को रोक लेता हूँ। यथा : सापत ताडत परुष कहंता। विप्र पूज्य अस गावहिं संता। अर्थात् केवल मुनि के नाते सहता हूँ। तुम गर्भ के बच्चे मारनेवाले मुझे बालक समझकर क्या छोड़ोगे। हाँ मैं तुम्हें ब्राह्मण समझकर छोड़े देता हूँ।

रे सठ सुनहि सुभाव न मोरा का उत्तर देते हैं कि तुम्हारा स्वभाव जो हो पर मेरे कुल का स्वभाव है कि सुर महिसुरु हरिजन अरु गाई पर वीरता नहीं दिखाते। क्योंकि ये रक्ष्य हैं। यथा : सुरपति बसहि बाहुबल जाके।

बधे पापु अपकीरति हारे। मारतहू पा परिअ तुम्हारे॥
कोटि कुलिस सम बचन तुम्हारा। ब्यर्थ धरहु धनु बान कुठारा॥४॥

अर्थ : मारने से पाप और हारने से दुर्यश है। अतः मारते हुए भी आप के पैर ही पड़ना चाहिए। कठोर वज्र के समान आप के वचन हैं। धनुष बाण और कुठार तो व्यर्थ ही लिये फिरते हो।

व्याख्या : आप मारिये भी तो हम तो पाँवही पड़ेंगे। आप को मारें तो ब्रह्महत्या लगे। हारें तो दुर्यश हो कि तपस्वी से हार गये। भाव यह कि तुम्हें मारकर ब्रह्महत्या कौन ले। हमें तुम्हारे ब्राह्मणत्व का बड़ा आदर है तुम्हारे परधर्माश्रयत्व का नहीं। इन्द्र कुलिस मम सूल बिसाला। कालदंड हरिचक्र कराला। जो इनकर मारा नहि मरई। विप्र रोष पावक सो जरई। प्रभु महिदेव साप अति

---

१. कपास का यज्ञोपवीत ब्राह्मण के लिए है। यथा : कार्पासमुपवीतं स्यात् विप्रस्योर्ध्ववृतं त्रिवृत्। मनु।

घोरा। अतः तुम्हारा वचन ही संहार करने में समर्थ है। अस्त्रों की तो प्रतिक्रिया है। तुम्हारा वचन अप्रतिक्रिय है। अर्थात् तुम्हारी धर्मनिष्ठा में ही संहारशक्ति भरी पड़ी है। तुम्हारे लिए परधर्माश्रय करना : लोहा लादे फिरना व्यर्थ है।

दो. जो बिलोकि अनुचित कहेउँ, छमहु महामुनि धीर।
सुनि सरोष भृगुवंसमनि, बोले गिरा गंभीर ॥२७३॥

अर्थ : जिसे देखकर मैंने अनुचित कहा हे महामुनि ! आप धीर हैं क्षमा करिये। सुनकर भृगुवंशमणि क्रुद्ध होकर गम्भीर वाणी बोले।

व्याख्या : इसी लोहे को देखकर मैंने अनुचित कहा। मैं मानता हूँ कि शिव-धनु को धनुही सम कहना धनुभङ्ग को नये के धोखे से देखना : बताना अनुचित है। पर आपके अनुचित वेष के उत्तर में अनुचित कहा। मुझे महामुनि धीर से क्षमा माँगने में लज्जा नहीं। पर योद्धा मानी से तो अनुचित कहकर भी लोहा लेता हूँ। आप स्वधर्माभिमान करिये। परधर्माभिमान क्यों करते हैं ?

परशुरामजी भृगुवंश में मणि हैं। सुजाति, शुचि, अमोल और सुन्दर हैं। भृगुवंश होने से सुजाति हैं। निष्कपट होने से शुचि हैं। पितृभक्ति से अमोल हैं। निर्लोभ होने से सब भाँति सुन्दर हैं। लक्ष्मणजी को धमकाकर काबू में न ला सके। सब बातों का उत्तर मिल गया। युद्ध ही शेष है। अतः क्रोध के साथ गम्भीर वाणी बोले। शब्द भी गम्भीर अर्थ भी गम्भीर।

कौसिक सुनहु मंद यहु बालकु। कुटिल कालबस निज कुल घालकु ॥
भानु बंस राकेस कलंकू। निपट निरंकुश अबुध असंकू ॥१॥

अर्थ : कौशिक : विश्वामित्र ! सुनो यह बालक १. मन्द २. कुटिल ३. कालवश और ४. निजकुलघालक है । ५. सूर्यवंशरूपी पूर्णचन्द्र में यह कलङ्क है। ६. अत्यन्त निरङ्कुश ७. मूर्ख और ८. निःशङ्क है।

व्याख्या : परशुरामजी श्रीरामचन्द्र के अभिभावक विश्वामित्रजी से कहते हैं कि यह बालक : लक्ष्मण दोषयुक्त वाणी बोलता है। आठ बातें इसने कही हैं। जिनसे आठ दोष इसके स्पष्ट दिखाई पड़ते हैं। १. मैंने गर्भन के अर्भक दलन परसु मोर अतिघोर। अपने स्वभाव की घोरता ख्यापन के लिए कहा था। यह ऐसा मन्द है कि तात्पर्य नहीं समझा। कहता है कि : अहो मुनीस महा भटमानी। २. मैं तो दया करके इसे छोड़ता हूँ। इसलिए यह अपने को पहाड़ और मेरे पराक्रम को फूँक समझता है। ऐसा तो यह कुटिल है। ३. कालवश हो गया है मेरे कुठाराघात की उपमा कोंहड़े को तर्जनी दिखाने से देता है। ४. निजकुलघालक है। कहता है : देखि कुठारु सरासन बाना। मैं कछु कहा सहित अभिमाना। नहीं जानता कि ऐसे अभिमानी के वंश का मैं नाश कर देता हूँ। ५. यह कुलकलङ्क है। इसकी कटु वाणी से इसके प्रियजनों का संहार होगा। अतः यह अपयशभाजन भी होगा। यथा : कुल कलंक जेहि जनमेउ मोही। अपजस भाजन प्रियजन द्रोही। ६. ऐसा

निरङ्कुश है कि सुर, महिसुर, हरिजन और गाय। जो प्रातःस्मरणीय है उन्हें दोन समझता है। ७. ऐसा अवुध है कि मुझसे हारने में अपनी अपकीर्ति समझता है। कहता है : वधे पाप अपकीरति हारे। और ८. ऐसा अशङ्क है कि मेरे धनुष बाण और कुठार को व्यर्थं बतलाता है।

काल कवलु होइहि छन मांहों। कहौं पुकारि खोरि मोहि नांहीं ॥
तुम हटकहु जौ चहहु उबारा। कहि प्रतापु बलु रोष हमारा ॥२॥

अर्थ : क्षणभर में यह काल का ग्रास हो जायगा। मैं पुकारकर कहता हूँ अब मुझे दोष नहीं है। यदि इसका उबार : बचाना चाहते हो तो तुम मेरा प्रताप, रोष और बल कहकर इसे रोको।

व्याख्या : प्रताप यथा : विश्वविदित छत्रीकुलद्रोही। बल यथा : भुजबल भूमि भूप बिनु कीन्ही। रोष यथा : बालब्रह्मचारी अति कोही। परशुरामजी कहते हैं कि इतना बड़ा वीर बना है कि मेरे अस्त्रशस्त्र धारण करने पर क्रोध दिखलाता है। मेरे परशु के चलने की देर है। इसे कालकवल होते देर न लगेगी। पुकारकर कह देता हूँ कि कोई मुझे दोष न दे। क्षत्रियों के वध करने पर लोग मुझे दोष देते हैं। ऐसी ही करनी पर मैं उनका वध करता हूँ। तुम अभिभावक हो। यदि तुम भी चाहते हो कि कटुवादी का वध ही ठीक है तब बात दूसरी है। नहीं तो इसे रोको। जाने दो बेटा ! कहकर नहीं। हमारा प्रताप बल और रोष कहकर रोको। जिसमें यह मुझसे भयभीत होकर उत्तर देने से विरत हो।

लषन कहेउ मुनि सुजसु तुम्हारा। तुम्हहि अछत को बरनै पारा ॥
अपने मुँह तुम्ह आपनि करनी। बार अनेक भाँति बहु बरनी ॥३॥

अर्थ : लक्ष्मणजी ने कहा : हे मुने ! तुम्हारा सुयश तुम्हारे रहते दूसरा कौन कह सकता है। अपने मुख से तुमने अपनी करणी अनेक बार और अनेक प्रकार से वर्णन की।

व्याख्या : लक्ष्मणजी ने विश्वामित्रजी को रोकने का अवसर ही नहीं दिया। बीच ही में बोले कि जब से यहाँ आये हो तब से अपने सुयश का ही तो वर्णन कर रहे हो। दूसरे से ऐसा कैसे बनेगा ? और उसे लज्जा भी लगेगी क्योंकि ये सब बातें ब्राह्मण के लिए दुर्यश हैं। तुम्हें भले ही सुयश मालूम पड़ें। सुयश दूसरे के वर्णन से होता है अपने वर्णन से नहीं। अपने मुख से अपना सुयश कहना आत्म-वध है। सहसबाहु सम सो रिपु मोरा। सहसबाहु भुज छेदन हारा। इस भाँति अपनी करणी अनेक बार कथन की। विश्वविदित छत्री कुल द्रोही। भुजबल भूमि भूप बिनु कीन्ही। इसी रीति से अनेक भाँति से कहा। आप अपनी अब्राह्मणोचित करणी का साभिमान वर्णन कर रहे हैं।

नहिं संतोषु त पुनि कछु कहहू। जनि रिस रोकि दुसह दुख सहहू ॥
वीर वृत्ति तुम धीर अछोभा। गारी देत न पावहु सोभा ॥४॥

अर्थ : यदि इतने पर भी तृप्ति न हुई हो तो और कुछ कह डालिये। क्रोध रोककर असह्य वेदना मत सहिये। आप वीरवृत्ति वाले हैं। अविचल धीर हैं। गाली देने में आपकी शोभा नहीं है।

व्याख्या : इतने पर भी असन्तुष्ट हो तो और कुछ कह डालो। दूसरे से क्यों कहलाते हो। दूसरे से कहते न बनेगा। उसे आपकी भाँति प्रशंसादृष्टि न होगी। उसे दोष दिखाई पड़ेगा। यहाँ तक कहि प्रताप बल रोष हमारा का उत्तर हुआ। अब कहौं पुकारि खोरि मोहि नांहीं का उत्तर देते हैं। जनि रिसि रोकि दुसह दुख सहहू। अर्थात् चलाओ हाथ। तुम हटकउ जौ चहहु उवारा का उत्तर : मुझे तुम्हारी अप्रसन्नता का भय है। अस्त्रप्रहार का नहीं। खुशी से प्रहार करो।

कौसिक सुनहु मंद यह बालक। कुटिल कालवस निजकुलघालक। भानुवंस राकेस कलंकू का उत्तर : वीरव्रत अक्षुब्ध वीर की शोभा पराक्रम दिखलाने में है गाली देने में नहीं। जो आठ दोष आपने मुझमें कहे हैं वे मुझमें नहीं हैं। वे मेरे लिए गाली हैं।

दो. सूर समर करनी करहिं, कहि न जनावहिं आपु।
विद्यमान रन पाइ रिपु, कायर कथहिं प्रतापु ॥२७४॥

अर्थ : शूर रण में करणी करते हैं। वे कहकर जनाया नहीं करते। युद्ध में शत्रु को सामने पाकर कायर लगते हैं अपना प्रताप कथन करके।

व्याख्या : जब हम लोगों को सहस्रबाहु सम शत्रु मानते हो : अर्थात् ऐसा शत्रु जिसने पिता का वध किया हो। तो हम तुम्हारे सामने खड़े हैं। वीर की करणी करो। कहकर अपने को न जनाओ। ऐसे समय प्रताप का कथन तो कादर का लक्षण है। यह काल कवल होइहि छनमाही का उत्तर है।

तुम तौ काल हाँक जनु लावा। बार बार मोहि लागि बोलावा॥
सुनत लषन के वचन कठोरा। परसु सुधारि धरेउ कर घोरा॥१॥

अर्थ : तुम तो मानो काल को हाँककर लाये हो। बार बार मेरे लिए बुला रहे हो। लक्ष्मणजी के कठोर वचन सुनकर परशुरामजी ने घोर परशु को सुधार कर हाथ में लिया।

व्याख्या : वही उत्तर चल रहा है। संसार जानता है कि युद्ध की सिद्धि चञ्चल होती है। सदा एक पुरुष के हाथ में नहीं रहती। युद्ध में कौन मरेगा कौन मारेगा। यह कहा नहीं जा सकता। पर तुम्हारी तो धारणा ही विचित्र है। मानों काल तुम्हारा जिलाया हुआ पशु है। जिसे हाँककर लाये हो और मुझे निगल जाने के लिए बार बार बुला रहे हो। निश्चय किये बैठे हो कि युद्ध में तुम्हीं विजयी होओगे।

लक्ष्मणजी ने सीधे सीधे कादर कह दिया। किसकी सामर्थ्य जो परशुरामजी

को उनके मुखपर कादर कहे। अब कहने सुनने का अवसर नहीं रह गया। अतः कन्धे पर के उस घोर कुठार को सुधारकर हाथ में लिया वार करने के लिए। फिर भी चलाने की इच्छा नहीं हो रही है। चिरञ्जीव ऐसा आशीर्वाद दे चुके हैं। आशा है कि अब भी मान जाय।

अब जनि देइ दोसु मोहि लोगू। कटुवादी बालकु वध जोगू॥
बाल बिलोकि बहुत मैं बाँचा। अब यहु मरनिहार भा साँचा॥२॥

अर्थ : अब मुझे लोग दोष न दें। यह कटुवादी बालक वध के ही योग्य है। बालक देखकर मैंने बहुत बचाया। पर यह अब सचमुच मरने पर आगया है।

व्याख्या : मैं लोकापवाद से बचना चाहता हूँ। लोग दोष देंगे कि बच्चे को मार दिया। वीरव्रती को १६ वर्ष के नीचे और ७५ वर्ष से ऊपर मनुष्य पर शस्त्र चलाना निषिद्ध है। अतः इसके मारने में दोनों प्रकार के दोष मुझे लगेंगे। अपकीर्ति होगी। परन्तु कटुवादी हो तो बालक भी वध के योग्य है। कहा भी है : खीरा सिर से काटिये दीजै नमक भराय। रहिमन कडुए मुखन्ह को चहिअत इहै सजाय। पहिले निःक्षत्र करने पर लोगों ने दोष दिया था। क्षत्रियों के इसी स्वभाव पर मैंने निःक्षत्र किया था। सो अब कोई दोष न दे।

मैं तो उत्तर देते ही इसे मारता। सो इसने उत्तर दिया। बेसँभार बात बोला। अभिमान की बातें कहीं। अपमान किया। यहाँ तक मैं हत्या से बचाता रहा। अब कादर कहता है। यह बात सही नहीं जा सकती। अब यह सचमुच मरना ही चाहता है। पहिले जो इसे 'कालकवल होइहि' 'कालवश' इत्यादि कहा था सो इसे डराने के लिए। पर अब मुझे मारना ही पड़ा।

कौसिक कहा छमिअ अपराधू। बाल दोष गुन गनहिं न साधू॥
खर कुठार मैं अकरुन कोही। आगे अपराधी गुरुद्रोही॥३॥

अर्थ : विश्वामित्रजी ने कहा अपराध क्षमा कीजिये। बालक के दोष गुण को साधु नहीं गिनते। परशुरामजी बोले : मेरा कुठार तीखा है और मैं निष्करुण क्रोध करनेवाला हूँ और गुरुद्रोही अपराधी सामने है।

व्याख्या : फिर लक्ष्मणजी कुछ कह न बैठें, अतः विश्वामित्रजी ने कहा अपराध क्षमा कीजिये। बालक अव्यवस्थित चित्त के होते हैं। उनका गुण भी कुछ नहीं दोष भी कुछ नहीं। आप साधु हैं। खल के वचन सहने में समर्थ हैं। यथा : खल के वचन संत सह जैसे। यह तो बालक का वचन है। परशुरामजी ने इनसे कहा था कि : तुम हटकौ जो चहहु उबारा सो लक्ष्मण को नहीं रोकते। इन्हें ही समझाते हैं। लक्ष्मण धर्म पर हैं उन्हें कैसे रोकें ?

जब साधन और साधक दोनों ठीक हैं तब सिद्धि में देर क्या ? सो इसके वध का साधन कुठार खर धारवाला प्रस्तुत है और साधक मैं, जिसे क्रोध में करुणा होती ही नहीं : गर्भक के अर्भक दलन परसु मोर अति घोर। और सबसे बड़ा अपराधी

मेरे गुरु शिव का द्रोह करनेवाला सामने खड़ा है। फिर दण्डपात न होने का कोई कारण नहीं है। विद्यमान रन पाइ रिपु कायर कथहि प्रताप का उत्तर देकर जनि रिसि रोक दुसह दुख सहहू का उत्तर देते हैं कि—

उतर देत छाड़ौं बिनु मारें। केवल कौसिक सील तुम्हारें॥
न त एहि काटि कुठार कठोरें। गुरहि उरनि होतेउँ श्रम थोरें॥४॥

अर्थ : यह उत्तर देता है और इसको बिना मारे छोड़ता हूँ सो हे विश्वामित्रजी ! केवल तुम्हारे शील के कारण। नहीं तो इसे इस कठोर परशु से काटकर थोड़े ही परिश्रम से गुरुजी से उऋण हो जाता।

व्याख्या : मुझे उत्तर सुनना सह्य नहीं है। मैं इसे उत्तर देते ही मार डालता परन्तु मैंने नहीं मारा सो केवल तुम्हारे सङ्कोच से। आपका सङ्कोच इतना बड़ा है कि वध्य को छोड़ दिया।

मुनि सुयश तुम्हारा। तुमहि अछत को बरनै पारा। अपने मुख तुम आपन करनी। बार अनेक भाँति बहु बरनी। नहि संतोष तो पुनि कछु कहहू का उत्तर : जिस कठोर कुठार ने सहसबाहु की भुजाओं को छेदन किया उसको इसे काट देने में कौन सा श्रम था ? मैंने शिवजी से अस्त्रविद्या पायी है। वे ही मेरे गुरु हैं। उस विद्या का उनके शत्रु पर उपयोग करके उनसे उऋण भी हो जाते। श्रम भी अधिक न पड़ता और कुल विद्या का उपयोग भी नहीं करना पड़ता। भाव यह कि इसके मारने से केवल शान्ति ही नहीं बड़ा भारी लाभ भी था। तुम्हारे सङ्कोच से गुरु का ऋण रह गया। गुरु आप्तकाम और दुराधर्ष हैं। ऋण चुकाने का उपायान्तर नहीं है।

दो. गाधिसूनु कह हृदय हँसि, मुनिहि हरियरे सूझ।
अयमय खाँड न ऊखमय, अजहुँ न बूझ अबूझ॥२७५॥

अर्थ : विश्वामित्र ने हृदय में हँसकर कहा : मुनि को हरा ही हरा : कोमल सूझ रहा है। यह लोहे का खाँड है ईख का नहीं है। पर ये नासमझ अब भी नहीं समझ रहे हैं।

व्याख्या : बाहर हँसने से परशुरामजी को बुरा लगता। इसलिए मनमें ही हँसे कि ये तो बड़े नासमझ हैं सावन के अन्धे को सब हरा ही सूझता है।

सीधे सीधे जो इन्हें कादर कहकर ललकार रहा है वह कुछ है। इतना तो इन्हें समझना चाहिए था। राजकुमार हैं। इतने से ही इन्हें तुच्छ समझना अज्ञान है। लोहे का भी खाँड : खाँडा होता है इक्षुरस का भी खाँड होता है। सो ये लोहे के खाँड हैं। आँत फाड़कर निकल आवेंगे। इक्षुरसोद्भूत खाँड की भाँति मधुर भोज्य नहीं हैं। ये समझ रहे हैं कि मैं इनको विश्वामित्र के सङ्कोच से छोड़े देता हूँ। यह नहीं समझते कि ये उनको ब्राह्मण समझकर छोड़ रहे हैं। राजा जनक ने इनका रूप देखकर समझ लिया और वे इतनी बातचीत करने पर भी नहीं समझ रहे हैं।

कहेउ लषन मुनि सीलु तुम्हारा । को नहि जान विदित संसारा ॥
माता पितहि उरिन भए नीके । गुर रिनु रहा सोच बड़ जीके ॥१॥

अर्थ : लक्ष्मणजी ने कहा कि हे मुने ! तुम्हारा शील संसार में विदित है उसे कौन नहीं जानता । माता पिता से भली भाँति उऋण हो गये । गुरुजी का ऋण रहा । उसकी मनमें बड़ी चिन्ता है ।

व्याख्या : लक्ष्मणजी ने सोचा कि अबूझ इस भाँति नहीं समझते । इन्हें मैं समझाऊँगा । अतः बोल उठे : उतर देत छाड़उँ विनु मारे । केवल कौसिक सील तुम्हारे का उत्तर देते हुए कहते हैं कि तुम्हारा शील तो संसार में विदित है । शील से नहीं छोड़ रहे हो । तुम्हारे सामर्थ्य की वात नहीं है । इसलिए छोड़ रहे हो । नहीं तो गर्भ के बच्चे को मारनेवाले को शील कहाँ ? नतु एहि काटि कुठार कठोरे । गुरहि उरिन होतेउँ श्रम थोरे । का उत्तर देते हैं कि माता पिता से भलीभाँति उऋण हुए : भाव यह कि परशुराम पितु आज्ञा राखी । मारी मातु लोक सब साखी । इस भाँति से तो माता से उऋण हुए और नररक्त से तर्पण करके पिता से उऋण हुए । इसलिए कहते हैं कि उऋण भये नीके । अब गुरु से उऋण होने के लिए भी किसी को काटना मारना चाहिए । अतः बड़ा सोच है कि कैसे मारें ।

सो जनु हमरेहि माथे काढ़ा । दिन चलि गये व्याज बड़ बाढ़ा ॥
अब आनिअ व्यवहरिआ बोली । तुरत देउँ मैं थैली खोली ॥२॥

अर्थ : उसे मानो मेरे ही मत्थे काढ़ा था । बहुत दिन हो गये । इससे व्याज भी वहुत बढ़ा होगा । अब महाजन को बुलाओ तुरन्त मैं थैली खोले देता हूँ ।

व्याख्या : मानो आपने यही सोचकर ऋण काढ़ा था कि इसे लक्ष्मण भरेगा । सो माता पिता से तो आप शीघ्र ही उऋण हो गये । पर गुरुजी का ऋण लिये तो बहुत दिन हो गये और आजतक आपका पटाया न पटा । किसी शुभ कर्म से तो पटाओगे नहीं । मुझे मारकर थोड़े श्रम से ही उऋण होना चाहते हो । तो मैं बड़ा सुगम मार्ग बतलाये देता हूँ ।

श्रम थोरे का उत्तर देते हैं । अव व्योहरिया अर्थात् महाजन : गुरुजी को बुला लाओ । मैं थैली खोले देता हूँ । सूद मूल सब भर लें । भाव यह तुम क्या लड़ोगे । गुरुजी को बुलाओ । मैं उनका पेट भर दूँगा । गुरुजी को ओलाहना देने पर लक्ष्मणजी को क्रोध है । तुमने मुझे काट डालना बड़ा सरल व्यापार समझ रक्खा है ?

सुनि कटु वचन कुठार सुधारा । हाय हाय सब सभा पुकारा ॥
भृगुवर परसु देखावहु मोही । विप्र विचारि बचौं नृप द्रोही ॥३॥

अर्थ : कटु वचन सुनकर परशु को सुधारा । सभा की सभा हाय हाय

चिल्ला उठी। भृगुपति मुझे परशु दिखलाते हो। हे नृपद्रोही ! ब्राह्मण विचारकर हत्या से बच रहा हूँ।

व्याख्या : शस्त्र चलाने के पहिले उसे सुधारने का नियम है। यथा : दोउ कर कमल सुधारत बाना। उत्तर न देकर परशु सुधारते देखकर सारी सभा समझ गई कि अब चोट किया चाहते हैं। सबको निश्चय है कि इनकी चोट से तो लक्ष्मण नहीं बच सकते और सब लक्ष्मणजी का कल्याण चाहते थे। अतः हाय हाय चिल्लाये। इसपर लक्ष्मणजी का क्रोध बढ़ा। बोले : भृगुपति ! मुझे परशु दिखलाते हो। परशु का दिखलाना मुझे सह्य नहीं है। मैं तो ब्रह्महत्या के डर से बच रहा हूँ। नहीं तो नृपद्रोही का तो मैं शत्रु ही हूँ। निश्चय बिना मारे न छोड़ता।

मिले न कबहुँ सुभट रन गाढ़े। द्विज देवता घरहि के बाढ़े॥
अनुचित कहि सब लोग पुकारे। रघुपति सैनहिं लखन निवारे॥४॥

अर्थ : कभी अच्छे योद्धा से रण में काम नहीं पड़ा। ब्राह्मण देवता ! घर ही के बड़े हुए हो। सब लोग बोल उठे अनुचित है अनुचित है। रामजी ने इङ्गित से ही लक्ष्मण को रोक दिया।

व्याख्या : खर कुठार मैं अकरुन कोही का उत्तर देते हुए लक्ष्मणजी ने कहा। किसी गाढ़े सुभट से तुम्हें काम न पड़ा पड़ा होता तो ऐसा न बोलते। माँ का बध करके ही मिजाज चढ़ा हुआ है।

इतने बड़े वीर को घरहि के बाढ़े कहना अनुचित है। सभा में यथार्थ कहना चाहिए। चुप रहने या अनुचित बोलनेवाले को दोष लगता है। यथा : सभायां न प्रवेष्टव्यं वक्तव्यं वा समञ्जसम्। अब्रुवन् विब्रुवन् वापि नरो भवति किल्विषी। अतः जिस भाँति परशुरामजी के परशु सुधारने पर सभा ने हाहाकार किया था उसी भाँति इस वचन को भी सभा ने पुकारकर अनुचित कहा। सब लोगों की पुकार सुननेवाले : भगवान् ने इशारा किया। जिसमें परशुरामजी का ध्यान आकर्षित न हो। लक्ष्मणजी का इतना बढ़ा हुआ क्रोध रामजी के इङ्गितमात्र से रुक गया।

दो. लषन उतरि आहुति सरिस, भृगुबर कोप कृसानु।
बढ़त देखि जल सम बचन, बोले रघुकुलभानु॥२७६॥

अर्थ : लक्ष्मणजी का उत्तर आहुति के समान था। भृगुवर : परशुरामजी का क्रोध अग्नि के समान था। बढ़ता देखकर रघुकुलसूर्य जल के समान वचन बोले :

व्याख्या : भृगुवर की क्रोधाग्नि के लिए लक्ष्मणजी की एक एक बात आहुति का काम करती थी। आहुति पाकर अग्नि को बढ़ते हुए देखकर : रघुकुलभानु हैं : जलवर्षा से दावानल शान्त करेंगे। दोनों भाइयों के उत्तर का आशय एक ही है पर एक क्रोध को बढ़ाता है दूसरा शान्त करता है। रामजी ने देखा आग बढ़ रही है। इन्हें शान्त करना है इनसे युद्ध नहीं करना है। अतः क्रोध शान्त करनेवाली बात बोलें।

नाथ करहु बालक पर छोहू। सूध दूध मुख करिअ न कोहू ॥
जौं पै प्रभु प्रभाव कछु जाना। तो कि बराबरि करै अयाना ॥१॥

अर्थ : हे नाथ ! बालक पर छोह कीजिये। यह दुधमुहा बच्चा सा सीधा है। इस पर क्रोध न कीजिये। यदि यह आपका प्रभाव कुछ भी जानता तो क्या यह अनजान आपकी बराबरी करता ?

व्याख्या : रामजी बोले : पहिले भी नाथ कहा है फिर भी वही कहते हैं कि आपने उसे बालक तो माना पर उसपर छोह नहीं किया। अतः कहते हैं कि छोह करहु : कटुवादी बालक वध जोगू। इस भावना को मन में स्थान न दीजिये। लक्ष्मण दुधमुहा बच्चा सा सीधा है। जो आप कहते हैं उसी को दोहरा देता है : यह अनुचित का उत्तर है। आप करने न करने अन्यथा करने में समर्थ हैं। प्रभु हैं। आपके प्रभाव को उसने नहीं जाना मैं जानता हूँ। परशुरामजी ने विश्वामित्रजी से कहा था : तुम हटकहु जौ चहहु उबारा। कहि प्रताप बल रोष हमारा। इसलिए रामजी इनका प्रभाव कह रहे हैं जिसमें उन्हें सन्तोष हो। कहते हैं कि यदि वह आपका प्रभाव जानता होता तो जो आप कहते हैं वही पलटकर आपको न कहता। आपने उसे गुरुद्रोही कहा। उसने आपको नृपद्रोही कहा।

जौं लरिका कछु अचगरि करहीं। गुरु पितु मातु मोद मन भरहीं ॥
करिअ कृपा सिसु सेवक जानी। तुम सम सील धीर मुनि ग्यानी ॥२॥

अर्थ : यदि लड़के कुछ ढिठाई करते हैं तो गुरु पिता और माता का मन आनन्द से भर उठता है। इसे शिशु : बच्चा सेवक जानकर कृपा कीजिये। आप क्षमाशील, धीर, मुनि और ज्ञानी हैं।

व्याख्या : आप गुरु माता और पिता की भाँति पूज्य हैं। वर्णानां ब्राह्मणो गुरुः। सभी वर्णों के ब्राह्मण गुरु होते हैं। दस वर्ष का भी ब्राह्मणबालक क्षत्रियों द्वारा पिता की भाँति पूज्य माना जाता है। आपके गुरु पिता होने में क्या सन्देह है। गुरु और माता पिता को लड़कों की ढिठाई सहनी पड़ती है। वे अबोध बालक की ढिठाई देखकर आनन्द का अनुभव करते हैं कि भला इस लायक तो हुआ। अतः आपको भी प्रसन्न होना चाहिए कि बालक तेजस्वी है। क्षत्रियबालक है। इसलिए असहनशील है। ये सब बातें क्षत्रिय के लिए गुण हैं।

आप नाथ हैं। यह बालक सेवक है। बड़ा होने पर सेवा करेगा। अभी ढिठाई किया तो क्या हर्ज है ? जिन गुणों की ब्राह्मण में होने की आशा की जाती है उन्हीं का आरोप करके कहते हैं कि आप समशील हैं, धीर हैं और ज्ञानी मुनि हैं। आप एक बच्चे की ढिठाई पर रोष न करें। मिले न कबहुँ सुभट रन गाढ़े। द्विज देवता घरहि के बाढ़े। लक्ष्मणजी की इस उक्ति का सम्मार्जन करते हैं।

राम बचन सुनि कछुक जुड़ाने। कहि कछु लषन बहुरि मुसुकाने ॥
हँसत देखि नख सिख रिस ब्यापी। राम तोर भ्राता बड़ पापी ॥३॥

अर्थ : रामजी का वचन सुनकर कुछ ठंढे हुए। तब लक्ष्मणजी ने कुछ कहकर मुसकरा दिया। हँसते देखकर नख से लेकर शिख तक क्रोध भर उठा। बोले कि राम ! तेरा भाई बड़ा पापी है।

व्याख्या : लक्ष्मणजी ने ऐसी पण्डिताई से प्रश्नोत्तर प्रारम्भ किया कि परशुरामजी के लिए धनुष भङ्ग तो गौण हो गया और लक्ष्मण के उत्तर प्रत्युत्तर से अपने मान की रक्षा करना मुख्य विषय हो गया। रामजी के वचनों का प्रभाव परशुरामजी पर पड़ा। कुछ ठण्डे हुए। वीर नहीं कहा इसलिए पूरा सन्तोष नहीं हुआ। तब से लक्ष्मणजी ने फिर कुछ कहकर मुसकरा दिया। क्या कहा ? इस बात को कवि नहीं लिखते क्योंकि उसे परशुरामजी ने सुना नहीं। केवल इतना देखा कि कुछ कहकर मुसकरा रहा है। समझ लिया कि इसका कटाक्ष समसील धीर मुनि ज्ञानी पर है। इसलिए क्रोध नखशिख व्याप्त हो गया। बोले कि राम तुम्हारा भाई बड़ा पापी है। जिसका अन्तरात्मा दुष्ट हो वही बड़ा पापी होता है। जिसका अन्तरात्मा दुष्ट नहीं होता उससे यदि पाप भी होजाय तो उसे पश्चात्ताप होता है। बड़ा पापी अपराध करके प्रसन्न होता है।

गौर सरीर स्याम मन मांही। कालकूटमुख पयमुख नांहीं॥
सहज टेढ़ अनुहरै न तोही। नीचु मीच सम देख न मोही॥४॥

अर्थ : इसका शरीर गोरा है पर इसके मन में श्यामता है। यह कालकूट मुख : सर्प है पयमुख नहीं है। स्वभाव से ही टेढ़ा है तुम्हारे ऐसा नहीं है। यह नीच मुझे मृत्यु के समान नहीं देखता।

व्याख्या : बड़े पापी का लक्षण भीतर से काला होना है। सरस्वती कहती हैं कालकूट मुख है : शेष है पयमुख नहीं है। सो इसके मन का कालापन मुख से निकलता है। अतः कालकूट मुख है। इसी पर कहते हैं कि दूधमुख नहीं है। सूधा होता तो तुम्हारी बात कम से कम मान जाता। तुम अच्छी बात कहते हो। वह उस पर हँसता है। अयाना नहीं है कुटिल है। तुझे नहीं पड़ा। तू बड़ा अच्छा है। रामजी ने कहा था : जौं लरिका कछु अचगरि करहीं। गुरु पितु मातु मोद मन भरहीं। इस पर कहते हैं कि यह ढीठ नहीं है नीच है। क्योंकि मुझे मृत्यु के समान नहीं देखता। जो परशुरामजी को मृत्यु के समान देखे उसी पर प्रसन्न रहते थे। जो ऐसा न देखे उसे नीच मानते थे। ऐसी ऊँच नीच की विलक्षण परिभाषा पर लक्ष्मणजी फिर हँस पड़े।

दो. लषन कहेउ हँसि सुनहु मुनि, क्रोधु पाप कर मूल।
जेहि बस जन अनुचित करहिं, चरहिं विस्व प्रतिकूल॥२७७॥

अर्थ : लक्ष्मणजी ने हँसकर कहा कि हे मुने ! सुनो क्रोध पाप का मूल है। जिसके वश होकर लोग अनुचित करते हैं और विश्व के प्रतिकूल आचरण करते हैं।

व्याख्या : राम तोर भ्राता बड़ पापी का उत्तर देते हैं : पाप का मूल क्रोध है। सो हम तो हँसते हैं। क्रोध तो तुम करते हो। अतः तुम पाप के मूल हो। क्रुद्धः पापं न कुर्यात् कः क्रुद्धो हन्यात् गुरूनपि। क्रोधी कौन सा पाप नहीं करता। क्रोधी अपने गुरु को भी मारता है। इसी क्रोधवश तुम क्षत्रियकुल द्रोही हुए। गौर सरीर स्याम मनमांही। उन्हीं पर घटाते हैं कि इनका गौर शरीर है और मन में इतने काले हैं। विश्व के प्रतिकूल आचरण करते हैं। क्षत्रिय जाति से विश्व की रक्षा है। क्षतात् त्रायतीति क्षत्रः। जो आपत्ति से रक्षा करता है उसे क्षत्र कहते हैं। उस जाति का द्रोह करना विश्व के प्रतिकूल आचरण है।

मैं तुम्हार अनुचर मुनि राया। परिहरि कोपु करिअ अब दाया॥
टूट चाप नहिं जुरिहि रिसानें। बैठिअ होइहिं पाय पिरानें॥१॥

अर्थ : हे मुनिराज ! मैं तुम्हारा सेवक हूँ। क्रोध छोड़कर अब दया कीजिये। टूटा हुआ धनुष क्रोध करने से नहीं जुटेगा। बैठ जाइये पाँव दुखता होगा।

व्याख्या : मैं आपका सेवक हूँ। प्रभु ने करिअ कृपा सिसु सेवक जानी कह दिया और मैंने मान लिया। अब आप और मैं दोनों उन्हीं की बात पर रहें। मैं सेवक बना रहूँ और आप क्रोध छोड़कर कृपा करें। मैं निश्चय प्रभुका अनुसरण करता हूँ। सहज टेढ़ अनुहरै न तोहीं का उत्तर। उन्होंने आप से दया के लिए प्रार्थना की। मैं भी कर रहा हूँ। अब मेल की बात हो रही है। सेवक सेव्य भाव मुझमें और आप में स्थापित हो गया। अब आपकी सेवा की चिन्ता करूँगा। नीच मीच सम देख न मोही वाली बात गई।

अब मैं आपके मानसिक और शारीरिक दोनों प्रकार के सुख की व्यवस्था करूँगा। पहिली बात यह है कि आपको मानसिक सुख हो। अतः आप से प्रार्थना करता हूँ कि मन को शान्त कीजिये। जो होना था सो हो गया। अब टूटा हुआ धनुष क्रोध करने से नहीं जुटेगा। दूसरी बात यह है कि आपको शारीरिक सुख हो। अतः प्रार्थना है कि आप बैठ जाइये। बड़ी दूर से मार्ग चलकर आये हैं और जब से आये हैं तब से खड़े ही हैं। इतने भक्त आपके हैं पर किसी ने बैठने को नहीं कहा। मैं इन सबों से अधिक सेवा कर सकूँगा।

जौं अति प्रिय तौ करिअ उपाई। जोरिअ कोउ बड़ गुनी बोलाई॥
बोलत लषनहिं जनकु डेराहीं। मष्ट करहु अनुचित भल नाहीं॥२॥

अर्थ : यदि अति प्रिय है तो उपाय कीजिये। किसी बड़े गुणी को बुलवाकर जोड़वाइये। लक्ष्मण के बोलने पर जनक डरते थे। कहा कि : चुप रहो अनुचित कर रहे हो : अच्छी बात नहीं है।

व्याख्या : धनुष के प्रिय होने का कोई कारण तो नहीं है। क्योंकि वह यदि किसी काम का होता तो महादेवजी ही उसे क्यों छोड़ जाते ? फिर भी यदि वह आपको अत्यन्त प्रिय हो उसके बिना रहा न जाता हो तो भी क्रोध से काम न

चलेगा। उसके लिए उपाय करना चाहिए। किसी बड़े भारी गुणी को खोजकर उससे जोड़वाना चाहिए। धनुष का जोड़ना कठिन कार्य है। सामान्य गुणी से काम नहीं चलेगा।

अति डर उत्तर देत नृप नांहीं। से जनकजी का प्रसङ्ग छूटा हुआ है। अब फिर उनका प्रसङ्ग आया। वे जानते हैं कि परशुरामजी उत्तर देने से चिढ़ते हैं। यथा : उत्तर देत छाड़ौं बिनु मारे। अतः लक्ष्मणजी को रोक रहे हैं। सम्बन्धी हो गये। बड़े हैं। कहते हैं कि चुप रहो। इनका उत्तर देना उचित नहीं है। न इनके सामने निर्भय वाणी बोलना अच्छी बात है। जनकजी को यही अब भी निश्चय है कि परशुराम के प्रहार को लक्ष्मणजी न सह सकेंगे और परशुरामजी क्रोधी हैं वे निर्भय उत्तर नहीं सह सकेंगे। अतः कुछ अनर्थ न हो पड़े इस भय से लक्ष्मण के उत्तर देने पर जनकजी को भय हुआ। लक्ष्मणजी के जोरहु कोउ बड़ गुनी बोलाई। कहते ही मष्ट करहु कहा।

थरथर कांपहिं पुर नर नारी। छोट कुमार खोट अति भारी ॥
भृगुपति सुनि सुनि निर्भय बानी। रिस तन जरै होय बल हानी ॥३॥

अर्थ : पुर के नर नारी तो थर थर काँप रहे थे कि छोटा कुमार बड़ा भारी खोटा है और भृगुपति का शरीर निर्भय वाणी सुन सुनकर जला जाता था। बल की हानि होती थी।

व्याख्या : राजा को अति डर है। प्रजा थरथर काँपती है। सब लक्ष्मणजी के कल्याणेच्छु हैं। उनकी कल्याण कामना से ही उन्हें अत्यन्त खोटा कह रहे हैं कि यह छोटा कुमार इनका क्रोध शान्त ही नहीं होने देता। नहीं तो बड़े कुमार तो इन्हें बड़ी युक्ति से रास्ते पर लाये थे।

परशुरामजी को यह पसन्द है कि क्षत्रिय लोग सदा उनसे भयभीत रहें। अतः निर्भय वाणी सुनकर क्रोध से उनका शरीर जलता था। क्रोध अग्निकी भाँति पहिले अपने आश्रय को ही जलाता है। दूसरे पर तो पीछे काम करता है। यहाँ लक्ष्मण पर उस क्रोध का कोई प्रभाव नहीं पड़ रहा है। अतः वह उन्हीं परशुरामजी के शरीर को दग्ध कर रहा है। फलतः बल की हानि हो रही है।

बोले रामहिं देइ निहोरा। बचौं विचारि बंधु लघु तोरा ॥
मन मलीन तन सुन्दर कैसें। विष रस भरा कनक घटु जैसें ॥४॥

अर्थ : रामजी को निहोरा देकर बोले कि मैं तेरा छोटा भाई जानकर बरकाये जाता हूँ। इसका मन मलिन और तन कैसा सुन्दर है। जैसे विषरस से सोने का घड़ा भरा हुआ हो।

व्याख्या : रामजी का वचन सुनकर कुछ ठण्ठे हुए थे। अतः उन्हीं का निहोरा देकर कहते हैं। उनकी समझ में नहीं आ रहा है कि क्यों लक्ष्मण पर उनका हाथ नहीं छूटता है। अपने मन को स्वयं समझ नहीं रहे हैं। कभी मन में यह आता

है कि इसके बालकपन का प्रभाव मेरे मन पर पड़ रहा है। कभी समझते हैं कि कौशिक का शील मेरे मन पर प्रभाव डाल रहा है। अब यह बात चित्त पर चढ़ी है कि रामजी के बर्ताव ने हमारे हृदय को द्रवीभूत कर रक्खा है। अतः कहते हैं निहोरा देते हैं कि तेरे कारण इसे छोड़ देता हूँ।

दो. सुनि लछिमन बिहँसे बहुरि, नयन तरेरे राम।
गुर समीप गवने सकुचि, परिहरि बानी बाम ॥२७८॥

अर्थ : सुनकर लक्ष्मण फिर विहँसे। रामजी ने कड़ी निगाह से देखा तो टेढ़ा बोलना छोड़कर सङ्कुचित होकर गुरु के पास चले गये।

व्याख्या : पहिले मुसकराये थे फिर हँसे तब विहँसे। अब परशुरामजी की विष रस भरा कनक घट जैसे इस युक्ति पर फिर जोरों से हँस पड़े कि यह युक्ति तो इन्हीं पर घटती है। यथा : गौर सरीर भूति भल भ्राजा। भाल बिसाल त्रिपुंड बिराजा''' सीस जटा ससि बदन सोहावा। रिसि बस कछुक अरुन होइ आवा'''सहजहु चितवत मनहु रिसाते इत्यादि। पहिले सैनहिं रघुपति लखन निवारे पर इस समय कुछ अप्रसन्नता है इसलिए नयन तरेरे। लक्ष्मणजी निवृत्त ही नहीं हुए। संकुचित हो गये कि मुझसे इस बार कुछ चूक हुई। अतः यहाँ से हटकर गुरुजी के पास चले गये। भाव यह कि यहाँ रहने से सम्भव है कि फिर मुझे हँसी आजाय।

अति बिनीत मृदु सीतलि बानी। बोले राम जोरि जुग पानी॥
सुनहु नाथ तुम्ह सहज सुजाना। बालक बचनु करिअ नहि काना ॥१॥

अर्थ : रामजी दोनों हाथ जोड़कर १. अत्यन्त विनीत २. शीतल और ३. मृदु वाणी बोले : हे नाथ ! सुनो तुम सहज सुजान हो। बालक के वचन पर ध्यान मत दो।

व्याख्या : रामजी पहिले जल सम वचन बोले थे। अब हाथ जोड़कर अत्यन्त विनय युक्त कोमल और शीतल वाणी बोलते हैं। यथा : ऐसी वाणी बोलिये मनका आपा खोय। औरन को शीतल करे आपहु शीतल होय।

नाथ सम्बोधन करते हैं और कहते हैं कि आप सहज सुजान हैं और यह अयान है। सहज सुजान गुणग्राहक होते हैं। दोष पर दृष्टि नहीं देते। यथा : मैं गुन ग्राहक परम सुजाना। तब कटु रटनि करौं नहिं काना। यह लक्ष्मण अजान : अज्ञान है। इसके दोषों पर दृष्टि न दीजिये।

बररै बालकु एक सुभाऊ। इन्हहि न संत बिदूषहिं काऊ॥
तेहिं नांहीं कछु काज बिगारा। अपराधी मैं नाथ तुम्हारा ॥२॥

अर्थ : भिड़ और बालकों का स्वभाव एकसा होता है। सन्त इन्हें कभी नहीं छेड़ते। इसने कुछ काम भी नहीं बिगाड़ा है। हे नाथ ! आपका अपराधी तो मैं हूँ।

व्याख्या : दोष दृष्टि न देने का उदाहरण देते हैं। बर्रे : भिड़ भनभनाया करते हैं। परन्तु परहितैकव्रत सन्त उस ओर दृष्टि ही नहीं देते। जहाँ तनिक भी उसके भनभनाने पर दृष्टि दी तहाँ उसने काटा। यह बर्रे का स्वभाव है। स्वभावो दुरतिक्रमः। उसे मार डालिये मर जायगा। पर स्वभाव नहीं छोड़ सकता। क्षमाशील सन्त इस बात को समझते हैं और बर्रे को भनभनाने देते हैं। इसी भाँति इसे बकने दीजिये। आपकी महामहिमा पर इससे क्या प्रभाव पड़ सकता है। यह विनय है।

छुअत टूट रघुपतिहि न दोषू इत्यादि बातें जो लक्ष्मण ने कही हैं वे सब गलत हैं। मैं अपराधी हूँ। वह तो केवल बोलता है। काम नहीं बिगाड़ता। बोल गया : कमल नाल जिमि चाप चढ़ाऊँ। जोजन सत प्रमान लै धाऊँ। तोरउ छत्रक दंड जिमि पर किया कुछ नहीं। काम बिगाड़नेवाला तो मैं हूँ। यह कोमलता है।

कृपा कोपु बधु बँधव गोसाईं। मो पर करिअ दास की नाईं॥
कहिअ बेगि जेहि बिधि रिस जाई। मुनि नायक सोइ करौं उपाई॥३॥

अर्थ : कृपा, कोप, वध और वन्धन : जो कुछ करना हो मुझ पर दास की भाँति कीजिये। जिस विधि से आपका क्रोध जाय उसे शीघ्र ही बताइये। मैं तुरन्त वही उपाय करूँ।

व्याख्या : घोरधार भृगुनाथ रिसानी है। सो उस धारा को लक्ष्मणजी ने अपने ऊपर लिया। रामजी उसे अपने ऊपर ले रहे हैं। अपराधी की चार गति हैं : १. या तो वह क्षमा किया जाय। या २. उसको धिग् दण्ड। या ३. प्राण दण्ड या ४. स्वातन्त्र्यहरण दण्ड दिया जाय। इन दण्डों में से जो आप उचित समझें मुझे दास समझकर दें। शत्रु समझकर नहीं अथवा यदि कोई दूसरी विधि हो जिससे आपका क्रोध शान्त हो सके तो बतला दीजिये मैं वही उपाय करूँ। जितना बिलम्ब होता है उतना ही अधिक आपको कष्ट हो रहा है। अतः शीघ्र ही आज्ञा होनी चाहिए। ३. यह शीतलता है।

कह मुनि राम जाय रिस कैसे। अजहुँ अनुज तव चितव अनैसे॥
एहि के कंठ कुठार न दीन्हा। तौ मैं काह कोपु करि कीन्हा॥४॥

अर्थ : मुनि ने कहा : हे रामजी ! क्रोध जाय तो कैसे जाय ? अब भी तेरा भाई मेरी ओर टेढ़ी नजर करके देखता है। इसके कण्ठ में मैंने कुठार न दिया तो क्रोध करके ही क्या किया ?

व्याख्या : जेहि विधि रिसि जाई का उत्तर दे रहे हैं। अपराध स्वीकार कर लेने से रामजी पर क्रोध नहीं है। गुरुजी के पास से भी लक्ष्मणजी टेढ़ी दृष्टि से देख रहे हैं। उसी को लक्ष्य कराके कहते हैं कि तुम तो क्रोध को हटाना चाहते हो। पर तुम्हारा भाई उसे बढ़ाना चाहता है। तुम्हारी आज्ञा से चुप है। गुरुजी के पास चला गया है फिर भी वहाँ से टेढ़ी निगाह से देख रहा है।

मेरा क्रोध अमोघ है सो व्यर्थ जाना चाहता है। क्रोध का फल है क्रोध दिलानेवाले के कण्ठ पर कुठाराघात। बररै बालक एक सुभाऊ। इन्हहि न संत विदूषहिं काऊ का उत्तर देते हैं। तुम इसे विदूषित न करने को कहते हो पर इसे बिना मारे न छोड़ूँगा। तुम अपने ऊपर क्रोध की धार लेना चाहते हो सो नहीं होगा।

दो. गर्भ स्रवहिं अवनिप रवनि, सुनि कुठार गति घोर।
परसु अछत देखौं जिअत, वैरी भूप किसोर ॥२७९॥

अर्थ : मेरे फरसे का भयानक कृत्य सुनकर राजाओं की स्त्रियों का गर्भ गिर जाता है। उस फरसे के रहते हुए भी मैं इस वैरी राजपुत्र को जीता देख रहा हूँ!

व्याख्या : तेहि नाहीं कछु काज बिगारा का उत्तर देते हैं। बिगाड़ा हो चाहे न बिगाड़ा हो पर वैरी वही है। वही मुझे कुछ नहीं गिनता। कुठार के व्याज से अपनी प्रभुता कहते हैं। मेरे कुठार की करतूत सुनने से रानियों का गर्भ गिरता है। इतना बड़ा मेरा आतङ्क है और यह मुझे तुच्छ समझता है। अतः यही मेरा वैरी है। इसे जीता मैं नहीं देख सकता : यह बालक वचन करिअ नहि काना का उत्तर है।

बहइ न हाथु दहइ रिस छाती। भा कुठारु कुंठित नृपघाती ॥
भयउ बाम बिधि फिरेउ सुभाऊ। मोरे हृदयँ कृपा कसि काऊ ॥१॥

अर्थ : हाथ चलता नहीं है। क्रोध से छाती जल रही है। राजाओं का वध करनेवाला परशु कुण्ठित हो गया। ब्रह्मा वायें हो गये। इससे मेरे स्वभाव में परिवर्तन हो गया नहीं तो मेरे हृदय में कभी भी कृपा कैसी?

व्याख्या : ऋजवो हि ब्राह्मणाः। ब्राह्मण स्वभाव से सरल होते हैं। रामजी ने कहा था : सुनहु नाथ तुम सहज सुजाना। इस पर कहते हैं कि मैं सहज सुजानता से नहीं छोड़ रहा हूँ। क्योंकि छाती तो जल रही है। बात यह है कि मेरा हाथ ही नहीं चल रहा है। हाथ चलने का आरोप कुठार पर करके कहते हैं कि यह कुठार नृपघात में सदा तीखा रहा सो आज कुण्ठित हो रहा है।

वररै बालक एक स्वभाऊ। इन्हहि न संत विदूषहिं काऊ का उत्तर देते हुए कहते हैं कि मैं सन्त होने के कारण विदूषण नहीं करता। यह बात नहीं है। इसका तो वरै का सा स्वभाव बना ही है। मेरा स्वभाव पलट गया। वाम विधाता की करणी कठिन है। स्वभाव के पलटने में वे ही समर्थ हैं। मैं तो शत्रु पर दया करने को कादरता मानता हूँ। मुझे दया कहाँ से आगई? यथा : रिपु पर दया परम कदराई। लक्ष्मणजी ने देखा कि प्रभु की प्रार्थना का निरादर फिर किया।

आजु दया दुख दुसह सहावा। सुनि सौमित्रि बिहँस सिर नावा ॥
वाउ कृपा मूरति अनुकूला। बोलत वचन झरत जनु फूला ॥२॥

अर्थ : आज दया ने दुःसह दुःख सहाया। सुनते ही लक्ष्मणजी ने विहँसकर प्रणाम किया और कहा कृपामूर्ति अनुकूल वायु है। वचन बोल रहे हैं तो मानों फूल झर रहा है।

व्याख्या : परशुरामजी कहते हैं कि इस समय जो पीड़ा मुझे हो रही है इसका कारण दया है। दया के कारण दुःख तो सहना ही होता है। जिसने दया के लिए दुःख न उठाया वह दयालु ही कैसा ? परन्तु दया के कारण जैसा दुःसह दुःख आज मुझे हुआ वैसा कभी नहीं हुआ था। लक्ष्मणजी तेज के खानि सुमित्रा के बेटे हैं। वे इस विचित्र दया पर हँस पड़े और जाकर प्रणाम किया। बोले आपकी अनुकूल मूर्ति पुष्पित वृक्ष की भाँति है। कृपा की हवा वह रही है। जो वचन मुख से निकलते हैं तो मालूम होता है कि फूल झर रहा है। भाव यह कि जिसके हृदय में दया का उद्रेक है वह क्या ऐसी बात बोलेगा कि : परसु अछत देखौं जिअत वैरी भूप किसोर।

जौं पै कृपा जरहिं मुनि गाता। क्रोधु भए तनु राख विधाता॥
देखु जनकु हठि बालकु एहू। कीन्ह चहत जड़ जमपुर गेहू॥३॥

अर्थ : हे मुने ! यदि कृपा होने पर आपका शरीर जला जाता है तो क्रोध होने पर आपकी रक्षा विधाता ही करेंगे। परशुरानजी बोले देख जनक ! यह जड़ बालक हठ करके यमपुर में डेरा किया चाहता है। अर्थात् मरा चाहता है।

व्याख्या : परशुरामजी ने कहा है : आजु दया दुःख दुसह सहावा। वहइ न हाथ दहै रिसि छाती। उसी के उत्तर में लक्ष्मणजी कहते हैं कि संसार में यह नियम है कि क्रोध से शरीर जलता है और दया से द्रवीभूत होकर शीतल होता है। दया के समय जिस शरीर में दाह हो उसमें क्रोधावेश होने पर सचमुच आग लग जावेगी और शरीर ही भस्म हो जायगा। भाव यह है कि यह दया नहीं है कादरता है। अपनी बात बनाये रखने के लिए दया की ओट पकड़ रहे हो।

समाज भर में केवल जनकजी ही ऐसे थे जिन्होंने मष्ट करहु अनुचित भल नांहीं कहके लक्ष्मणजी को रोका था। अतः अब जनकजी से कहते हैं कि हम इसे यमपुर नहीं भेजना चाहते। पर यह जाने पर तुला हुआ है। मानता ही नहीं। तुम्हारा सम्बन्धी हो गया है। तुम इसे वचाओ। अब मैं इसे नहीं बचा सकता।

वेगि करहू किन आँखिन ओटा। देखत छोट खोट नृप ढोटा॥
विहँसे लखनु कहा मंन मांहीं। मूँदे आँख कतहुँ कोउ नाहीं॥४॥

अर्थ : इसे तुरन्त आँख से ओझल क्यों नहीं करते। देखने में छोटा परन्तु यह राजा का बेटा बड़ा खोटा है। लक्ष्मण विहँसे और मन में कहा आँख मूँदने पर तो कहीं कोई नहीं है।

व्याख्या : परशुरामजी अब कहते हैं कि क्या तुम भी इसकी मृत्यु चाहते हो।

नहीं तो इसे खींच खाँचकर हमारे सामने से हटाओ। हमें दया आगई है। हम इसे खोजकर नहीं मारेंगे।

लक्ष्मणजी जोर से हँस पड़े कि क्या अब बात इतने पर आगई कि हम आँख से ओझल हो जायँ। तब तो इनके अमोघ कहे जानेवाले क्रोध का इतना ही परिणाम रह गया कि ये अब आँख मींच लें और समझ लें कि कहीं कोई नहीं है।

दो. परसुराम तब राम प्रति, बोले उर अति क्रोधु।
संभु सरासनु तोरि सठ, करसि हमार प्रबोधु ॥२८०॥

अर्थ : परशुरामजी तब रामजी से बोले। उनके हृदय में बड़ा क्रोध था। शिवजी का धनुष तोड़कर, शठ ! तू मुझे समझा बुझा रहा है।

व्याख्या : रामचन्द्र को चुप देखकर कि लक्ष्मण को तनिक भी नहीं रोक रहे हैं। बड़ा क्रोध हुआ। अब रामजी से कहते हैं कि तू शठ है। महा बिगाड़ करके मीठा मीठी बातें बनाता है। यथा : मीठी बातें सठ करें करिके महा विगार। हमारी इतनी हानि करके समझाने चला है। यथा : तुम समसील धीर मुनि ज्ञानी। इन्हहिं न संत विदूषहिं काऊ। करहु कृपा सिसु सेवक जानी। और उसे नहीं समझाता।

यहाँ 'परशुराम' और 'राम' शब्द दोनों साथ देकर यह दिखलाया कि दोनों ही राम हैं। सदा परशु धारण किये रहने से एक का नाम परशुराम पड़ा और दूसरे ऐश्वर्यातिरेक से श्रीराम कहलाये। यथा : श्रीरामाय नमः उदरं पूजयामि। श्रीरामाय नमः हृदयं पूजयामि। श्रीरामावतार में ही उनके द्वारा दूसरे अवतार का पराभव हुआ है। ऐसी बात दूसरे अवतारों में नहीं देखी जाती। यह श्रीरामावतार की विशेषता है।

बंधु कहै कटु संमत तोरे। तूँ छल विनय करसि कर जोरे॥
करु परितोषु मोर संग्रामा। नाहि त छाडु कहाउब रामा॥१॥

अर्थ : तेरी सम्मति से तेरा भाई कडुआ बोलता है और तू हाथ जोड़कर छल से विनय करता है। युद्ध में मेरा परितोष कर या राम कहलाना छोड़।

व्याख्या : अब जाना यह सब तेरी राय से होता है। तू मुझे समझाता है भाई को नहीं रोकता। उसे कटु कहने के लिए छोड़ दिया है और स्वयं हाथ जोड़कर विनय करता है। ऐसा कहकर : अति विनीत मृदु सीतल बानी। बोले राम जोरि जुग पानी। पर परशुरामजी आक्षेप करते हैं।

कहहु वेगि जेहि विधि रिसि जाई का उत्तर देते हुए कहते हैं कि दास मानकर कृपा, कोप, वध, बन्धन करनेवाली बात ठीक नहीं। शत्रु की भाँति संग्राम में मेरा पेट भर दे। तू मेरा प्रतिस्पर्धी बना है। तूने शङ्कर का धनुष तोड़ा है और

नाम भी अपना मेरे सा रक्खे है। अब दो राम नहीं रह सकते। युद्ध कर या अपना नाम बदल।

छल तजि करहि समरु सिवद्रोही। बंधु सहित न त मारौ तोही॥
भृगुपति बकहिं कुठार उठायें। मन मुसुकाहिं रामु सिर नाये॥२॥

अर्थ : रे शिवद्रोही या तो छल छोड़कर युद्ध कर नहीं तो भाई के सहित तुझे मारूँगा। परशुरामजी कुठार उठाये बकते चले जाते हैं और रामजी सिर नवाये हुए मन ही मन मुसकरा रहे हैं।

व्याख्या : तेरा दास बनना छल है। वस्तुतः तू मेरा प्रतिस्पर्धी है। शिवद्रोही मेरा दास नहीं हो सकता। तू दास बनकर थोड़े ही दण्ड में बचना चाहता है। तूने धनुष तोड़ा है। यदि प्रतिस्पर्धी नहीं है तो अपना नाम बदल नहीं तो तुझे भी मारूँगा और तेरे भाई को भी। तुम दोनों भाइयों में बड़ी प्रीति है। छोटा तो कटु बोलकर मेरे क्रोध के परिणाम को अपने ऊपर लेना चाहता है और तू तेहि नाहीं कछु काज बिगारा। अपराधी मैं नाथ तुम्हारा। कहकर उसे बचाना चाहता है। सो न होगा। मैं दोनों भाइयों को मारूँगा।

गुनह लषन कर हम पर रोषू। कतहुँ सुधाइहुँ तें बड़ दोषू॥
टेढ़ जानि सब बंदै काहू। वक्र चन्द्रमहि ग्रसै न राहू॥३॥

अर्थ : अपराध तो लक्ष्मण का और क्रोध मेरे ऊपर कर रहे हैं। कहीं सीधेपन में भी बड़ा दोष होता है। टेढ़ा जानकर सब लोग वन्दना करते हैं और टेढ़े चन्द्रमा को राहु भी नहीं ग्रसता।

व्याख्या : रामजी स्वगत कहते हैं। यह कौतूहल देखो। अपराध लक्ष्मण का है। वह बिना उत्तर दिये नहीं मानता। तो आज विश्वविदित क्षत्रियकुल द्रोही भी उससे बगल झाँक रहे हैं और मैं सुधाई से काम लेता हूँ तो इन्हें छल का भ्रम हो रहा है। सचमुच यहाँ सुधाई दोषप्रद ही है। 'गुनह' शब्द का अर्थ अपराध है। यह पारसी शब्द है 'साहिब' 'गरीब' आदि शब्दों की भाँति हिन्दी में परिगृहीत है।

कोई हो चाहे वन्दनीय चाहे अवन्दनीय यदि वह टेढ़ा है तो सभी उसकी वन्दना करते हैं। दूइज के चन्द्रमा टेढ़े होते हैं तो उनकी सभी वन्दना करते हैं। यथा : दुइज न चन्दा देखिये उदित कहा भरि पाख। राहु भी उसे नहीं ग्रसता। पूर्णमासी के चन्द्रमा सीधे होते हैं। उनकी इतनी पूजा भी नहीं होती और उन्हें राहु भी ग्रसता है।

राम कहेउ रिस तजिअ मुनीसा। कर कुठारु आगे यह सीसा॥
जेहि रिस जाइ करिअ सोइ स्वामी। मोहि जानिअ आपन अनुगामी॥४॥

अर्थ : रामजी ने कहा : हे मुनीश ! क्रोध छोड़िये। आपके हाथ में परशु है और यह सिर आगे है। जिस प्रकार से आपका क्रोध जाय सो करिये। मुझे अपना अनुचर समझिये।

व्याख्या : वंधु कहै कटु संमत तोरे। तू छल विनय करसि कर जोरे का उत्तर देते हुए रामजी कहते हैं कि यदि इसी बात पर क्रोध है तो भी क्रोध छोड़िये। मेरी ओर से छल नहीं है सिर हाजिर है और आप कुठार उठाये ही हुए हैं चला दीजिये।

आप स्वामी हैं, सेवक का सिर स्वामी के लिए है। यदि काटने से क्रोध जाता हो तो काट दीजिये। पर मुझे अपना सेवक जानिये वैरी नहीं। मुझे सिर देना स्वीकार है। ब्राह्मण का वैरी होना स्वीकार नहीं है।

दो. प्रभु सेवकहि समरु कस, तजहु विप्रवर रोसु।
वेषु विलोकें कहेसि कछु, बालकहू नहिं दोसु ॥२८१॥

अर्थ : स्वामी और सेवक में युद्ध कैसा ? हे ब्राह्मणों में श्रेष्ठ ! क्रोध छोड़िये। बालक का भी दोष नहीं है। उसने भी वेष देखकर ही कुछ कहा।

व्याख्या : ब्राह्मण से जो मैं सेवक सेव्य भाव रखता हूँ उसे उस सम्बन्ध को न तोड़वाइये। करु परितोष मोर संग्रामा। छलं करि समर करहिं का उत्तर देते हुए रामजी कहते हैं। ब्राह्मणों ने क्षत्रियों को द्वारपाल नियुक्त कर रक्खा है। मैं सेवक होकर प्रभु से न लड़ूँगा। वंधु सहित न त मारों तोहीं का उत्तर देते हुए कहते हैं। आपका वेष अननुरूप है। ब्राह्मण का वेष ऐसा न होना चाहिए। न्यायाधीश को सैनिक का वेष नहीं धारण करना चाहिए। इसी भाँति सैनिक को न्यायाधीश का वेष अनुचित है। प्रभुवाला वेष आपने नहीं रक्खा। सेवक का वेष आपको पसन्द है। लक्ष्मण बालक है। सेवक के वेष में स्वामी को नहीं पहचानकर अनादर किया। अतः वह भी निर्दोष है। मैंने तो पहिचान लिया। मैं जानबूझकर दोषी नहीं हो सकता।

देखि कुठार बान धनुधारी। भै लरिकहि रिस वीरु विचारी ॥
नाम जान पै तुम्हहि न चीन्हा। वंस सुभायँ उतरु तेहिं दीन्हा ॥१॥

अर्थ : कुठार, वाण और धनुष धारण किये हुए देखकर लड़के ने विचार किया कि ये वीर हैं। इसलिए उसने क्रोध किया। नाम जाना पर आपको नहीं पहिचाना। वंश के स्वभाव से उसने उत्तर दिया।

व्याख्या : क्षत्रिय जाति भेंड़िये की भाँति एक दूसरे को खानेवाली होती है। कुठार, वाण, धनुष धारण क्षात्रधर्म का चिह्न है। अतः वीर विचार करके लड़के को क्रोध हुआ। आप मुनि हैं। इस बात को वह वीर वेष में नहीं पहिचान सका। उसने उत्तर दिया। उसपर उत्तर देने का ही दोष है। नाम जानना ही चीन्हना है। यथा : रूप विसेष नाम बिनु जाने। करतलगत न परत पहिचाने। यहाँ तुम्हहि न चीन्हा। कहने का भाव यह है कि वह यह न पहिचान सका कि क्षात्रवेष में आप साक्षात् ब्रह्ममूर्ति हैं। जिनके लहहिं न रिपु रन पीठीं। यह वंशस्वभाव है। तदनुसार उसने प्रतिस्पर्धी जानकर उत्तर दिया।

जौ तुम्ह औतेहु मुनि की नाईं। पद रज सिर सिसु [1]धरत गोसाईं ॥
छमहु चूक अनजानत केरी। चहिअ विप्र उर कृपा घनेरी ॥२॥

अर्थ : यदि तुम मुनि की भाँति आते तो यह लड़का चरणरज को सिरपर धारण करता। अनजान की चूक क्षमा कीजिये। ब्राह्मण के हृदय में बड़ी कृपा होनी चाहिए।

व्याख्या : आप मुनि की भाँति नहीं आये। यदि आते तो उत्तर देना तो दूर गया। वह आपके चरणरज को सिरपर धारण करता क्योंकि वह जानता है कि इसी में मेरा कल्याण और उसका कल्याण है। यथा : सब पायेउँ रज पावन पूजे।

बालक से बिना जाने चूक हुई। कुर्यादन्यं न वाकुर्यात् मैत्रो ब्राह्मण उच्यते। ब्राह्मण के हृदय में बड़ी कृपा चाहिए। जानबूझकर किये गये अपराध को भी क्षमा करना चाहिए। इसने तो बिना जाने चूक की है। यह बंधु सहित न त मारौं तोही का उत्तर है।

हमहि तुम्हहि सरवर कस नाथा। कहहु न कहाँ चरन कहँ माथा ॥
राम मात्र लघु नाम हमारा। परसु सहित बड़ नाम तुम्हारा ॥३॥

अर्थ : हे नाथ ! हमारी तुम्हारी कौन सी बराबरी है। कहो तो कहाँ चरण और कहाँ माथा। मेरा छोटा सा नाम केवल राम है और आपका नाम परशु के सहित होने से बड़ा है।

व्याख्या : युद्ध बराबरी से होता है। चरण कितना भी ऊँचे चढ़े सिरतक नहीं चढ़ सकता। जब वहाँ तक पहुँच ही नहीं तो युद्ध क्या करेगा ? पूज्य होने से परशुरामजी को मस्तक और सेवक होने से अपने को चरण कहा। करु परितोष मोर संग्रामा का यह उत्तर है।

नाही त छाड़ कहावउ रामा का उत्तर देते हुए कहते हैं कि मैं ही आपसे छोटा नहीं हूँ। मेरा नाम भी आपके नाम से बहुत छोटा है। राम कहने से आपका बोध नहीं होता। परशुराम कहने से होता है और मेरा बोध 'राम' मात्र से होता है। यदि आपका मेरा एक नाम होता तब नाम रखने या छोड़ने का प्रश्न उठ सकता था।

देव एक गुन धनुष हमारे। नवगुन परम पुनीत तुम्हारे ॥
सब प्रकार हम तुम सन हारे। छमहु विप्र अपराध हमारे ॥४॥

अर्थ : हे देवता ! मेरे पास तो एक गुण धनुष है पर तुम्हारे पास तो परम

---

१. यहाँ सम्भावना अलङ्कार है।

पुनीत [1]नव गुण हैं। सब प्रकार हम तुमसे हारे हुए हैं। हे विप्र ! हमारे अपराध को क्षमा करो।

व्याख्या : नाम में ही बड़े नहीं, आप गुण में भी बड़े हैं। मुझमें केवल एक गुण है। धनुर्वेद जानता हूँ। यथा : सर्वशास्त्रार्थतत्वज्ञो धनुर्वेदेऽतिनिष्ठितः। पर आपमें नव गुण हैं और वे परम पुनीत हैं। यथा : शमो दमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च। ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजम् : गी.। शम, दम, तप, शौच, क्षमा, ऋजुता : सिधाई, ज्ञान, विज्ञान और आस्तिक्य ये ब्राह्मण के स्वाभाविक कर्म हैं। स्वाभाविक कर्म कहकर गुण कहा। परन्तु धनुषवाला गुण, वीरता का : युद्धे चाप्यपलायनम् तो हमारा ही है।

दो. बार बार मुनि विप्रवर, कहा राम सन राम।
बोले भृगुपति सरुष हँसि, तहूँ बंधु सम वाम ॥२८२॥

अर्थ : जब बार बार मुनि और विप्रवर : श्री राम ने : परशुराम से कहा तो भृगुपति ने क्रोध की हँसी के साथ कहा कि तू भी भाई सा ही खोटा है।

व्याख्या : मुनि दो बार कहा। यथा : १. राम कहा रिसि तजिअ मुनीसा २. जौ तुम औतेउ मुनि की नाईं। तीनबार विप्रवर कहा। यथा : १. तजहु विप्रवर रोष। २. चहिअ विप्र उर कृपा घनेरी। ३. छमहु विप्र अपराध हमारे। तब तो परशुरामजी क्रोध से हँसे। क्रोध की हँसी बड़ी भयानक होती है। यथा : अट्टहासमशिवं शिवदूती चकार ह। परशुरामजी की इच्छा थी कि उन्हें सब कोई वीर मानकर डरें। 'मुनि' 'विप्र' सम्बोधन से वे अपना अपमान मानते थे। क्योंकि राजाओं ने वीर न होने से ब्राह्मणों का अपमान किया था। अतः रामजी से कहा कि तू भी छोटे भाई सा ही खोटा है। मुझे वीर नहीं मानता। एक गुण धनुष अपना मानता है। मेरे शस्त्र बाँधने को अनुचित बतलाता है। तेरे और तेरे भाई के कहने में वास्तविक भेद कुछ भी नहीं हैं। अतः तू भी वैसा ही खोटा है।

निपटहि द्विज करि जानेहि मोही। मैं जस विप्र सुनावौं तोही ॥
चाप स्रुवा सर आहुति जानू। कोप मोर अति घोर कृसानू ॥१॥

अर्थ : तूने मुझे निरा ब्राह्मण ही समझ रक्खा है ? मैं जैसा ब्राह्मण हूँ, तुझे सुनाता हूँ। धनुष को स्रुवा वाण को आहुति और मेरे क्रोध को धधकती हुई अग्नि जान।

व्याख्या : परशुरामजी छमहु विप्र अपराध हमारे का उत्तर देते हैं कि तुम्हारे समझने में बड़ी भूल हो रही है। तुमने समझ रक्खा है कि यह अध्ययना-

———

१. नवगुणों का सूचक निम्नश्लोक बहुत जगह कहते सुना गया है। पर यह पता मुझे नहीं लग सका कि यह श्लोक कहाँ का है। यथा : ऋजुस्तपस्वी सन्तुष्टः क्षमाशीलो जितेन्द्रियः। क्षान्तो दान्तो दयालुश्च ब्राह्मणो नवभिर्गुणैः।

ध्यापन, यजन याजन, दान प्रतिग्रह छोड़कर और क्या जाने ? ब्राह्मण के ये ही छः कर्म हैं। ब्राह्मण का युद्ध से क्या सम्बन्ध ? सो मैं वैसा ब्राह्मण नहीं हूँ। मैं तो युद्ध यज्ञ करनेवाला ब्राह्मण हूँ। श्रौत याग में पाँच सात प्रकार की सामग्री की आवश्यकता पड़ती है। १. स्रुवा जिससे आहुति दी जाती है। २. आहुति द्रव्य जिससे होम किया जाय। प्रधान आहुति घी या दुग्ध की है। इसके बिना काम नहीं चलता। ३. घोर अग्नि में होम किया जाता है। प्रज्वलित अग्नि में ही होम का विधान है। ४. समिधा : लकड़ी जिससे अग्नि जलाई जाती है। ५. पशु : जिसकी श्रौत याग में बलि देनी पड़ती है और ६. मन्त्र : जिसके उच्चारण के साथ आहुति दी जाती है और ७. शस्त्र बलि देने के लिए। सो युद्धयज्ञ में धनुष ही मेरा स्रुवा होता है। बाण की आहुतियाँ पड़ती हैं और मेरा क्रोध ही धधकती हुई आग है।

समिध सेन चतुरंग सुहाई। महा महीप भए पसु आई ॥
मैं यहि परसु काटि बलि दीन्हे। समर जग्य जप कोटिन्ह कीन्हे ॥२॥

अर्थ : चतुरङ्गिणी सेना ही समिधा हैं। बड़े बड़े राजा ही आकर पशु होते हैं। इसी परशु से काटकर मैं बलि देता हूँ। ऐसे युद्धयज्ञ तथा जप मैंने करोड़ों किये हैं।

व्याख्या : चतुरङ्गिणी सेना रूपी : रथ, हाथी, घोड़ा और पैदल : समिधा मेरी क्रोधाग्नि का आधार है। इसे जलाकर ही मेरा क्रोध शान्त होता है। बड़े बड़े राजा इस युद्धयज्ञ में आकर पशु हो जाते हैं। श्रौतयाग बिना पशु के होता नहीं। इसी भाँति मेरा युद्धयज्ञ बिना महाराजाओं की बलि दिये पूरा होता नहीं। मैं इसी परशु से काटकर उनकी बलि यज्ञपुरुष की प्रीति के लिए देता हूँ। मैं ऐसा यज्ञ करनेवाला ब्राह्मण हूँ। जितना ही अधिक संख्या में यज्ञ करे उतना ही ब्राह्मणत्व का उत्कर्ष होता है। सौ यज्ञ करने से यजमान शतक्रतु : इन्द्र का पद प्राप्त करता है। मैंने तो करोड़ों ऐसे यज्ञ मन्त्र जप के साथ किये हैं। दिव्यास्त्रों के प्रयोग में मन्त्र जप किया जाता है।

मोर प्रभाव बिदित नहिं तोरे। बोलसि निदरि बिप्र के भोरे ॥
भंजेउ चापु दापु बड़ बाढ़ा। अहमिति मनहुँ जीति जग ठाढ़ा ॥३॥

अर्थ : मेरा प्रभाव तुझे मालूम नहीं इसलिए ब्राह्मण के धोखे से तू मेरा अपमान करके बोलता है। धनुष तोड़ दिया है। इससे दर्प बहुत बढ़ गया है ऐसा अभिमान हो गया है मानो तुम जगत् जीतकर खड़े हो।

व्याख्या : ये जितने राजा यहाँ इकट्ठे हैं वे मेरे प्रभाव को जानते हैं। इसलिए ये आदर के साथ : परम भयभीत होकर मुझसे बोलते हैं। तू मेरे इस प्रभाव को जानता ही नहीं। समझता है कि ये ब्राह्मण हैं। यज्ञ जप करनेवाले ये क्या कर सकते हैं। इसलिए मेरा निरादर करके : निर्भय होकर मुझसे बोलता है। यह नहीं समझता कि जिसने करोड़ों युद्ध यज्ञ करके इक्कीस बार पृथ्वी को निःक्षत्र किया उसे एक यज्ञ करके मुझे बलि दे देने में कौन सा बड़ा परिश्रम है ?

देव एक गुन धनुष हमारे का उत्तर परशुरामजी देते हैं कि धनुष जो तोड़ दिया तो बड़ा भारी अभिमान हो गया कि धनुष का गुण तो हमारा ही है। उसमें कोई साझीदार नहीं है। मैं ही जगत् में एकमात्र धनुर्द्धर हूँ ऐसी भावना तुम्हें हो गई है। तुम्हें ऐसा अभिमान बढ़ा हुआ है मानो संसार जीतकर खड़े हो।

राम कहा मुनि कहहु विचारी। रिसि अति बड़ि लघु चूक हमारी ॥
[1]छुवतहि टूट पिनाक पुराना। मैं केहि हेतु करौं अभिमाना ॥४॥

अर्थ : रामजी ने कहा हे मुने ! विचारकर बोलो। आपका क्रोध बहुत बड़ा है और मेरी चूक बहुत छोटी है। पुराना धनुष छूते ही टूट गया मैं किसलिए अभिमान करूँ।

व्याख्या : मुनि हो मनन करनेवाले हो। आपको विचारकर बोलना चाहिए। आप विचार से काम नहीं ले रहे हैं। धनुष आपका गुण नहीं हो सकता क्योंकि वह आपका स्वधर्म नहीं है। वह मेरा स्वधर्म है इसलिए मेरा है। युद्ध में न भागना क्षात्रधर्म है। ब्राह्मण के लिए अनिवार्य नहीं है। यथा : युद्धे चाप्यपलायनम्। क्षात्रकर्म स्वभावजम्। हम स्वधर्म पर स्थित हैं उसे आप अभिमान बतला रहे हैं। धनुषभङ्ग लघु चूक है। क्योंकि बल के दिखलाने में ही क्षत्रिय की बड़ाई है। यह भंजेउ चाप दाप बड़ बाढ़ा का उत्तर है।

दो. जौ हम निदरहिं विप्र वदि, सत्य सुनहु भृगुनाथ।
तौ अस को जग सुभट जेहि, भयवस नावहिं माथ ॥२८३॥

अर्थ : हे भृगुवंशियों के स्वामी ! सत्य मानिये यदि हम ब्राह्मण जानकर निरादर करें तो संसार में ऐसा सुभट कौन है जिसे भयवश सिर झुकावें।

व्याख्या : ब्राह्मण जानकर ही मैं सिर झुकाता हूँ। यदि ब्राह्मण जानकर हम निरादर करें तो क्या सुभट जानकर डरेंगे ? हम सुभट से नहीं डरते ब्राह्मण से डरते हैं। यथा : इन्द्र कुलिस मम सूल विसाला। कालदंड हरि चक्र कराला। जो इनकर मारा नहि मरई। विप्र रोष पावक सो जरई। तथा : मुनि तापस जिनते दुख लहहीं। ते नरेस विनु पावक दहहीं। भाव यह है कि मुझे ब्रह्मबल से भय है। क्षत्रबल तो अपनी वस्तु है उससे क्यों डरें ?

देव दनुज भूपति भट नाना। समबल अधिक होहु बलवाना ॥
जौ रन हमहि प्रचारै कोऊ। लरहिं सुखेन काल किन होऊ ॥१॥

अर्थ : देवता, दनुज और नाना प्रकार के योद्धा चाहे बराबरीवाले हों चाहे अधिक बलवान् हों। यदि कोई हमें युद्ध में ललकारे तो हम सुख से लड़ेंगे। चाहे वह काल ही क्यों न हो।

---

१. यह सम तृतीय है।

व्याख्या : चाप स्रुवा सर आहुति जानू इत्यादि तीन अर्धालियों से युद्धयज्ञ का रूपक दिखलाया है। उसीका उत्तर श्रीरामजी तीन अर्धालियों में देते हैं। देव स्वर्गलोक के योद्धा, दनुज पाताललोक के योद्धा भट नाना मर्त्यलोक के योद्धा। इनमें से चाहे मेरे समान बलवाले हों चाहे अधिक बलवाले हों। यदि युद्ध में इनमें से कोई मुझे ललकारे तो वह काल ही क्यों न हो निश्चय उससे युद्ध करेंगे। निर्बल को बात नहीं कहता हूँ क्योंकि उसका तो मैं बल ही हूँ। यथा : निर्बल के बल राम। भाव यह कि मुझे ललकारिये मत। धर्म्याद्धि युद्धाच्छ्रेयोऽन्यत् क्षत्रियस्य न विद्यते। यदृच्छया चोपपन्नं स्वर्गद्वारमपावृतम्। सुखिनः क्षत्रियाः पार्थ लभन्ते युद्धमीदृशम्। अथचेत्त्वमिमं धर्म्यं संग्रामं न करिष्यसि। ततः स्वधर्मं कीर्तिञ्च हित्वा पापमवाप्स्यसि। अर्थ : युद्ध से बढ़कर दूसरा धर्म क्षत्रिय के लिए नहीं है। बिना प्रार्थना किये यह खुला दरवाजा स्वर्ग का हे अर्जुन ! भाग्यवान् क्षत्रिय को मिलता है। यदि तू इस धर्मयुद्ध को न करेगा तो स्वधर्म और कीर्ति से पतित होकर पापी हो जायगा। ललकारने से यदृच्छया चोपपन्नम् बिना प्रयत्न के ही युद्ध का अवसर प्राप्त हो जाता है। मैं सींघ बाँधकर लड़ने नहीं जाता परन्तु ललकारने पर न लड़ने से लोक परलोक दोनों बिगड़ता है और लड़ने से दोनों बनता है। यथा : हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम्। अतः दोनों हाथ में लड्डू है। युद्ध में मरने मारने को हिंसा समझनेवाले क्षत्रिय मूर्ख हैं।

छत्रिय तनु धरि समर सकाना। कुल कलंकु तेहि पाँवर जाना ॥
कहौं सुभाउ न कुलहि प्रसंसी। कालहु डरहिं न रन रघुवंसी ॥२॥

अर्थ : क्षत्रियशरीर धारण करके जो युद्ध में डरा उसे कुल का कलंक और पामर समझना चाहिए। मैं स्वभाव कहता हूँ। प्रशंसा नहीं करता। रघुवंशी युद्ध में काल से भी नहीं डरते।

व्याख्या : क्षत्रियशरीर के लिए युद्ध से बढ़कर कोई धर्म नहीं है। ऐसे धर्म को त्याग करनेवाला नीच है। कुल का कलङ्क है। संग्राम न करनेवाले को स्वधर्म का त्याग करना पड़ता है। कीर्ति नष्ट होती है। पाप होता है। इसलिए वह अपयशभाजन है। उसके प्रियजनों को उसके कारण लज्जित होना पड़ता है। इसलिए वह प्रियजनद्रोही है और अपयशभाजन प्रियजनद्रोही को ही कुलकलङ्क कहते हैं। यथा : कुलकलङ्क जेहि जनमेउ मोही। अपजस भाजन प्रियजन द्रोही। मैं जस विप्र सुनावौं तोहीं का उत्तर देते हैं : सुनाइयेगा क्या ? आप अपने वंश में केवल अपना हाल सुनावेंगे। यहाँ पूरे रघुवंश का स्वभाव सुन लीजिये। रघुवंश रण में काल से भी नहीं डरता। यह प्रशंसा नहीं है स्वभाव है। अर्थात् रक्त का गुण है। संकरता न आने से रक्त का गुण रहता ही है। आप उसे नीच समझते हैं जो आपको कालरूप नहीं देखता। पर जो काल से नहीं डरता वह आप से रण में क्यों डरेगा ?

विप्रवंस कै असि प्रभुताई। अभय होइ जौं तुम्हहिं डेराई ॥
सुनि मृदु बचन गूढ़ रघुपति के। उघरे पटल परसुधर मति के ॥३॥

अर्थ : ब्राह्मणवंश की ऐसी प्रभुता है कि जो तुम्हें : ब्राह्मणवंश को डरेगा वह निर्भय हो जायगा। रघुपति के कोमल पर गूढ़ वचन सुनकर भृगुपति की बुद्धि का पर्दा खुल गया।

व्याख्या : तहूँ वंधु सम वाम का उत्तर रामजी देते हैं कि निर्भय होने से आप वाम कह रहे हैं। सो यह : निर्भयता विप्रवंश को प्रभुता है मेरी नहीं। मैं ब्राह्ममणवंश को डरता हूँ इसलिए अभय हूँ। अभय वही हो सकता है जो विप्रवंश को डरे। अर्थात् मैं तुम्हारे अस्त्रबल से नहीं डरता। तुम्हारे ब्राह्मणत्द को डरता हूँ।

वचन तो मृदु है स्वीकार करते हैं कि मैं आप से डरता हूँ। पर गूढ़ है अर्थ छिपा है। परशुरामजी जान गये कि ये ब्रह्मण्यदेव हैं। इनकी भक्ति ब्राह्मणत्व पर सच्ची है। क्षात्रधर्म पर इतनी निष्ठा होने पर भी ब्राह्मणत्व पर इतनी आस्था देखकर पता चल गया कि अवत्तार हो गया। स्वयं सरकार आगये। आँख खुल गई। पूरे संवाद का अर्थ लग गया।

राम रमापति कर धनु लेहू। खैंचहु मिटै मोर संदेहू ॥
देत चापु आपुहि चलि गयेऊ। परसुराम मन विसमय भयेऊ ॥४॥

अर्थ : हे राम ! विष्णु का धनुष लो इसे चढ़ाओ जिसमें मेरा सन्देह मिट जाय। धनुष देते समय स्वयं ही चले गये। अर्थात् जो थे सो नहीं रह गये। परशुरामजी के मन में बड़ा आश्चर्य हुआ।

व्याख्या : परशुरामजी ने कहा : वैष्णव धनुष को विष्णु ही चढ़ा सकते हैं। वैष्णवतेजयुक्त होने से ही इस धनुप को मैं धारण करता था। आप इसे खींचिये। यदि प्रत्यञ्चा चढ़ गयी तो मेरा सन्देह मिट जायगा। अब मुझे आपके पहिचानने में इतना ही सन्देह है।

धनुष देते समय जो वैष्णवतेज[1] उनमें था वह चला गया। परशुरामजी निस्तेज से हो गये तब उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ। देवता के अस्त्रशस्त्र उनके स्वरूप से पृथक् नहीं होते। धनुष की चेतन सी क्रिया देखकर आश्चर्य हुआ।

दो. जाना राम प्रभाउ तब, पुलक प्रफुल्लित गात।
जोरि पानि बोले वचन, हृदय न प्रेमु अमात ॥२८४॥

---

१. त्रेतामुखे दाशरथिर्भूत्वा रामोऽहमव्ययः।
उत्पत्स्ये परया शक्त्या तदा द्रक्ष्यसि मां ततः।
मत्तेजः पुनरादास्ये त्वयि दत्तं मया पुरा। अध्यात्मे

भगवान् विष्णु ने परशुराम से कहा कि त्रेता में मैं दाशरथि होकर पराशक्ति के सहित अवतीर्ण हूँगा। तब जब मुझसे तुम्हारी भेंट होगी तो मैंने जो अपना तेज तुम्हें दिया है उसे लौटा लूँगा। वही उस समय हुआ। रामजी ने अपना तेज परशुरामजी से ले लिया।

अर्थ : तब उन्होंने रामप्रताप जाना। उनका शरीर पुलकित और प्रफुल्लित हो गया। हाथ जोड़कर वचन बोले। प्रेम हृदय में अँटता नहीं था।

व्याख्या : पहिले कहते थे मोर प्रभाउ विदित नहिं तोरे। उस समय रामजी के प्रभाव से अनभिज्ञ थे। अब जाना महात्मा हैं। इन्हें असूया नहीं। स्वरूपज्ञान होते ही प्रेम उमड़ा सो शरीर में भर गया और समाता नहीं है अङ्ग अङ्ग से पुलक और प्रफुल्लता के मिस से बाहर निकला पड़ता है। मनसा : प्रेम न हृदय अमात। कर्मणा : जोरि पानि। वाचा : बोले वचन।

जय रघुवंस बनज बन भानू। गहन दनुज कुल दहन कृसानू॥
जय सुर बिप्र धेनु हितकारी। जय मद मोह कोह भ्रमहारी॥१॥

अर्थ : हे रघुवंशकमलवन के सूर्य! राक्षसकुलरूपी वन के जलानेवाले अग्नि! आप की जय हो। हे सुर विप्र धेनु के हितकारी! आपकी जय हो। हे मद, मोह, क्रोध और भय को हरण करनेवाले! आपकी जय हो।

व्याख्या : जिस भाँति कमलवन सूर्योदय से विकसित हो उठता है। इसी भाँति आपके अवतीर्ण होने से रघुवंश प्रफुल्लित हो रहा है। अर्थात् आप अपने वंश के समुन्नतिकारी हैं। यथा : स जातो येन जातेन याति वंशः समुन्नतिम्। दनुजकुल इस समय वन की भाँति सघन और विस्तृत हो रहा है। उसके लिए आप अग्नि हैं। वन का नाश जिस भाँति अग्नि से होता है उस भाँति और किसी उपाय से नहीं होता। अग्नि में ही यह सामर्थ्य है कि वन के विस्तारानुसार अपनी शक्ति का आकार प्रकट कर सकता है। सुर विप्र धेनु का अहित इन राक्षसों से हो रहा है। यथा : करहिं अनीति जाइ नहि बरनी। सोदहिं बिप्र धेनु सुर धरनी। इनके हित के लिए ही आप दनुजवनकृसानु बन रहे हैं। मद मोह क्रोध और भ्रम आदि दोषों के बढ़ने से अधर्म का अभ्युत्थान हो रहा है। उनका आप हरण करनेवाले हैं। रघुवंशबनज बन भानु से रघुकुल में अवतार कहा। दनुज वन गहनकृसानु से अवतार का प्रयोजन विनाशाय च दुष्कृताम् कहा। रघुवंश की ही प्रशंसा दोनों प्रभुओं के मुख से सुनी। यथा : कालहु डरैं न रन रघुबंसी। बंस प्रभाउ उतर तेहि दीन्हा। सुर महिसुर हरिजन अरु गाई। हमरे कुल इन पर न सुराई। अतः भानू द्विवचन का प्रयोग किया। इसी भाँति दनुजवनदहन में लक्ष्मणजी के सहायक होने से। यथा : जयति संग्राम सागर भयंकर तरन वरबाहु सेतू। कृसानू द्विवचन का प्रयोग किया।

सुर महिसुर हरिजन अरुगाई। हमरे कुल इन पर न सुराई। सब प्रकार हम तुमसन हारे इत्यादि वाक्यों से अर्थ लग गया कि सुर विप्र धेनु हितकारी का आविर्भाव हो गया। तुम समसील धीर मुनि ग्यानी कहकर प्रशंसा करते हुए परशुरामजी को पुरुषार्थ का अभिमान न करने की शिक्षा दी। इसलिए मदहारी कहते हैं। कृपा कोप बध बँधब गोसाईं। मोपर करिय दास की नाईं कहकर विनय करते हुए परशुरामजी को परधर्म के बहुमानरूपी अज्ञान त्यागने की शिक्षा दी।

इसलिए मोहहारी कहते हैं। तजिअ विप्र वर रोष : रिस तजिअ मुनीसा। इत्यादि प्रार्थनाओं से क्रोध न करने की शिक्षा दी। इसलिए कोहहारी कहते हैं। सुनि मृदु गूढ़ बचन रघुपति के। उघरे पटल परसुधर मति के। इसलिए भ्रमहारी कहते हैं। चारों उत्तरों से क्रमशः चारों दोषों का हरण किया। १. इससे चरित कहा।

विनय सील करुना गुन सागर। जयति बचन रचना अति नागर ॥
सेवक सुखद सुभग सब अंगा। जय सरीर छवि कोटि अनंगा ॥२॥

अर्थ : विनयशील करुणा और गुणों के सागर वचनरचना में अति नागर आपकी जय हो। सेवक के सुख देनेवाले सब अङ्गों से सुन्दर और शरीर में करोड़ों कामदेव की शोभावाले आपकी जय हो।

व्याख्या : रामजी ने परशुरामजी के जनकजी से पूछने पर. यथा : बेगि बताव मूढ़ न त आजू : कहा। नाथ संभु धनु भंजनि हारा। होइहि कोउ एक दास तुम्हारा। ऐसे विनयपूर्वक उत्तर से जाना कि ये विनय के सागर हैं। इसी भाँति नाथ करिअ बालक पर छोहू कहने से जाना कि शीलसागर हैं। इतनी करुणा है कि ब्राह्मण के कोप करने पर अपराध स्वीकार किये लेते हैं। अपराधी मैं नाथ तुम्हारा। क्रोध से जल रहे हैं परशुरामजी। उनकी शान्ति के लिए अपराधी बनने को जो प्रस्तुत हो उसके करुणासागर होने में कौन सन्देह है ? प्रभु सेवकहि समर कस। बेष बिलोके कहेसि कछु। छमहु चूक। परसु अछत बड़ नाम तुम्हारा। नवगुण परम पुनीत तुम्हारे। ये वाक्यखण्ड कहनेवाले में अपरिमित गुण के होने की सूचना देते हैं। इसलिए जाना कि गुणसागर हैं। सुनि मृदु गूढ़ बचन रघुपति के। उघरे पटल परसुधर मति के। इस भाँति धनुषविषयक वादविवाद में मोहपटल को हटा देने से वचनरचना का पाण्डित्य स्पष्ट है। अतः वचनरचना में अति नागर हैं। परशुरामजी को संवाद के बीच में ही जिन जिन गुणों का परिचय मिला उन्हीं के आधार पर स्तुति कर रहे हैं। २. इससे गुण कहा।

सभय बिलोके लोग सब जानि जानकी भीरु। तब बिना पूछे हो बोले। अतः ज्ञात हुआ कि सेवक सुखद हैं और : सुभग सब अंगा। जय सरीर छवि कोटि अनंगा : का तो सब गुणों से पहिले ही परशुरामजी साक्षात्कार कर चुके हैं। यथा : रामहि चितइ रहे भरि लोचन। रूप अपार मार मद मोचन। ३. इससे रूप कहा।

करौं काह मुख एक प्रसंसा। जै महेस मन मानस हंसा ॥
अनुचित बहुत कहेउँ अग्याता। छमहु छमामंदिर दोउ भ्राता ॥३॥

अर्थ : एक मुख से मैं आपकी प्रशंसा क्या करूँ। हे महेश के मनमानस के हंस ! आपकी जय हो। बिना जाने मैंने बहुत अनुचित : शब्द कहे। आप दोनों भाई क्षमा के मन्दिर हैं। क्षमा करें।

व्याख्या : परशुरामजी परम शैव हैं। यथा : भाल बिसाल त्रिपुंड बिराजा। सो दोनों भाई राम लक्ष्मण को अपने इष्टदेव शिवजी के मनमानस के हंस बतला

रहे हैं। इतने से ही उनका हार्दिक भाव समझ लेना चाहिए। उनका कहना है कि मैं एक मुख से क्या प्रशंसा करूँ। यह द्योतित करता है कि अनेक मुखवाले शेष महेश भी प्रशंसा नहीं कर सकते। ४. इससे पराकाष्ठा का उत्कर्ष कहा।

मैंने अपने समझ में सब उचित कहा था। परन्तु अब मोह का परदा हट जाने से मालूम हुआ कि वे वचन अनुचित थे। आप लोगों के स्वरूप का ज्ञान मुझे नहीं था। अतः बहुत सी अपमानसूचक बातें मैंने मनुष्य जानकर आपको कही। आप दोनों भाई क्षमा के मन्दिर हो। बराबर मेरे अपराध को क्षमा करते ही गये। पर अब मैं क्षमाप्रार्थना करता हूँ। आपने मुझसे छमहु चूक अनजानत केरी कहा था। अब मैं वही प्रार्थना आप से करता हूँ। मेरे अनुचित कथन को क्षमा करो। दूसरा कोई वरदान नहीं चाहता। ५. इससे प्रार्थना की।

ये ही पाँच बातें इस चौथे गुणग्राम में हैं। चौथा गुणग्राम रोहिणी नक्षत्र में ये ही पाँच तारे चमकते हैं। आकार शकट सा है। इसमें धर्मरथ की सम्पूर्ण बातें संक्षेप में दिखलायी गई हैं। इसलिए शकटाकार कहा। इस चौथे गुणग्राम के विषय में कहा गया है : विबुध वैद भव भीम रोग के। सो भव भीम रोग भगवत् और भागवत अपराध है। सो दोनों का क्षमापन इस स्तुति से हुआ। इस गुणग्राम में दोनों भाइयों की एक साथ स्तुति हुई। इसलिए विबुध वैद्य : अश्विनी कुमार कहा। विबुध वैद्य भी दो भाई हैं और दोनों एक साथ रहते हैं।

कहि जय जय जय रघुकुलकेतू। भृगुपति गए बनहि तप हेतू ॥
अपभयँ कुटिल महीप डेराने। जहँ तहँ कायर गवँहिं पराने ॥४॥

अर्थ : रघुकुल की पताका की जय हो। जय हो। ऐसा कहकर भृगुपति तप ही के लिए वन गये। निर्मूल डर से राजा लोग डर गये और कादर चुपके से इधर उधर भाग गये।

व्याख्या : नव बार जय जय कहा। क्योंकि सात बार लक्ष्मण : भागवत का और दो बार रामजी : भगवत् का अपमान किया था। लक्ष्मण का अपमान। यथा : १. रे नृप बालक कालवस बोलत तोहि न सँभार। २. रे सठ सुनेहि सुभाउ न मोरा। ३. परसु सुधारि धरेउ कर घोरा : कटुवादी बालक बध जोगू। ४. न त एहि काटि कुठार कठोरे। ५. राम तोर भ्राता बड़ पापी। ६. विषरस भरा कनक घट जैसे। ७. एहि के कंठ कुठार न दीन्हा। तौ मैं कहा कोप करि कीन्हा। रामजी का अपमान यथा : १. संभु सरासन तोरि सठ करेसि हमार प्रबोध। २. बोले भृगुपति सरुख हँसि तहूँ बंधु सम बाम। इस भाँति नव बार के अपमान के परिमार्जन के लिए नव बार उत्कर्ष सूचक जयकार किया। रघुकुल केतु कहने का भाव यह है कि श्रुति सेतु रक्षक हैं। यथा : रघुकुल केतु सेतु श्रुति रक्षक। ऐसा कहकर परशुरामजी तप के लिए वन गये। अर्थात् समाज की चिन्ता छोड़ दी। जिसका समाज है वह स्वयं आगया। अब वह ब्राह्मणत्व की रक्षा कर लेगा। रघुवंश से उपक्रम करके इस प्रसङ्ग का रघुकुल केतु से उपसंहार करते हैं।

निर्मूल डर से राजा लोग डर गये कि परशुरामजी अपने काम का भार इन्हें देकर गये। यह पहिले से ही कह रहे थे : आयसु काह कहिअ किन मोहीं। सो कहीं ये भी निःक्षत्र करना ठान न लें। इनसे परशुराम जी दब गये तो हम लोगों की गिनती ही क्या है इसलिए कादर तो इस भाँति धीरे से निकल भागे कि उनका पता भी न लगा कि किधर गये।

८ : विवाह प्रसङ्ग

दो. देवन्ह दीन्ही दुंदुभी, प्रभु पर बरषहिं फूल।
हरषे पुर नर नारि सब, मिटी मोहमय सूल ॥२८५॥

अर्थ : देवताओं ने नगाड़े बजाये और प्रभु के ऊपर फूल बरसाये। पुर के नर नारि हर्षित हुए। मोहमय शूल मिट गया।

व्याख्या : देवताओं ने डंका दिया। भारी विजय हुई। सहस्रबाहु ने रावण को जीता और वह परशुरामजी द्वारा मारा गया। परशुरामजी पर रामजी ने विजय पाई। अतः सिद्ध हो गया कि रावणवध इनके लिए दुष्कर नहीं है। पराक्रम की पूजा हो रही है। देवता लोग पुष्पवृष्टि कर रहे हैं। थर थर काँपहिं पुर नर नारी। क्योंकि उन्हें मोह से शूल उठा हुआ था। यथा : मोह सकल व्याधिन कर मूला। तेहि ते पुनि उपजे बहु सूला। सो परशुरामजी के पराजय से रामजी के स्वरूप का बोध हुआ। मोहमय शूल मिटा और वे हर्षित हुए।

अति गहगहे बाजने बाजे। सबहिं मनोहर मंगल साजे॥
जूथ जूथ मिलि सुमुखि सुनयनीं। करहिं गान कल कोकिल बयनीं ॥१॥

अर्थ : बड़े आनन्द से बाजे बजे। सबने सुमंगल साज सजे। झुण्ड के झुण्ड इकट्ठी होकर सुमुखी सुनयनी और कोकिलवयनी सुन्दर सुन्दर गान करने लगीं।

व्याख्या : पहिले ही पुर अरु व्योम में बाजने बजे थे। राजाओं के गोलमाल से बन्द हो गये थे। तबतक परशुरामजी आगये। दूसरा काण्ड ही उपस्थित हो गया। इनके हटते ही और भी अधिक उत्साह से बाजे बजने लगे। सबलोग अपने घर गये और मनोहर मंगल साज जिसका वर्णन आगे होगा साजने लगे : जायसी ने भी गहगहे शब्द का प्रयोग आनन्द के अर्थ में किया है।

पहिले जहँ तहँ जुवतिन मंगल गाये। अब घर लौटकर आई तो झुण्ड की झुण्ड इकट्ठा होकर गान करने लगीं। रूप और स्वर दोनों की बहार है। यहाँ सुनयनी शब्द से स्वयं महतारी का भी गान में सम्मिलित होना द्योतित किया। कहाँ : मन पछिताति सीय महतारी। विधि अब सँवरी बात्त बिगारी। कहाँ गाने लग गईं।

सुख बिदेह कर बरनि न जाई। जन्मदरिद्र मनहुँ निधि पाई॥
बिगत त्रास भय सीय सुखारी। जनु बिधु उदयँ चकोर कुमारी ॥२॥

अर्थ : विदेह के सुख का वर्णन नहीं किया जा सकता। मानो जन्मदरिद्र को निधि मिल गई। भय से रहित होकर सीताजी सुखी हो गईं। जैसे चन्द्रोदय से चकोरकुमारी सुखी होती हैं।

व्याख्या : विदेह राजा ब्रह्मज्ञान में रत हैं। ब्रह्मानन्द की प्राप्ति उन्हें सदा है। परन्तु वह अकिञ्चनावस्था है। उस अवस्था में अपनी स्थिति छोड़कर और कुछ रहता ही नहीं। यह सिद्धि इन्हें जन्म से है। यथा : सहज विराग रूप मन मोरा। इसीलिए जन्म दरिद्र से उपमा दी। इन्हें सगुण ब्रह्म की प्राप्ति जामाता रूप से हुई। सो सुखकर लवलेस जिन वारक सपनेहु लहेहु। ते नहिं गनहि खगेस ब्रह्म सुखहिं सज्जन सुमति। इसलिए कहते हैं कि मानो जन्मदरिद्र को अपक्षयशून्य निधि मिल गई। सीताजी को परशुराम के आने से चन्द्रास्त का भान होने लगा था। यथा : भृगुपति कर सुभाउ सुनि सीता। अर्ध निमेष कल्प सम बीता। सो ऐसी सुखी हो गई जैसे चन्द्रोदय से चकोर कुमारी सुखी होती हैं। चकोरी का प्रेम चन्द्र में स्वाभाविक है। यहाँ रामजी के अभ्युदय की उपमा चन्द्रोदय से दी गई। चकोरकुमारी को चन्द्र के प्रति बड़ा चाव रहता है। क्योंकि वह उसके लिए अपूर्ववस्तु है। चकोरी को भी प्रीति है। पर उतना चाव नहीं। बहुत दिनों से चन्द्र को देखती आती है।

जनक कीन्ह कौसिकहि प्रनामा। प्रभु प्रसाद धनु भंजेउ रामा ॥
मोहि कृतकृत्य कीन्ह दुहुँ भाई। अब जो उचित सो कहिअ गोसाईं ॥३॥

अर्थ : जनक ने विश्वामित्रजी को प्रणाम किया और कहा कि आपके प्रसाद से रामजी ने धनुष को तोड़ दिया। दोनों भाइयों ने हमें कृतार्थ किया। अब जो करना उचित हो सो मुझे बतलाइये।

व्याख्या : धनुर्भङ्ग के बाद प्रणाम करने का समय ही नहीं मिला। भारी उपद्रव खड़ा हो गया। सो अब प्रणाम करने का अवकाश मिला। गुरुहि प्रनाम मनहि मन कीन्हा। अति लाघव उठाइ धनु लीन्हा। अतः कहते हैं : प्रभु प्रसाद धनु भंजेउ रामा। जनकजी कहते हैं कि आपही रामजी को लाये। आपने ही आशीर्वाद दिया : सुफल मनोरथ होहिं तुम्हारे। आपही ने आज्ञा दी : उठउ राम भंजउ भव चापा। मेटहु तात जनक परितापा। अतः आपके ही प्रसाद से सब हुआ। रघुपति कीरति विमल पताका। दंड समान भयउ जस जाका। सो धनुर्भङ्ग में परशुराम पराजय में सभी में लक्ष्मण का हाथ रहा। इससे कहते हैं : मोहिं कृतकृत्य कीन्ह दोउ भाई। मैं तो हार गया था। हताश हो गया था : कुँवरि कुँआरि रहौं का करऊँ। पर इन्होंने हमें कृतकृत्य किया। अब जो उचित हो सो बतलाइये। भाव यह कि विवाह विधि होगी या कन्या को साथ कर देना पड़ेगा। ऐसे अवसर पर दोनों विधान देखे जाते हैं। यथा : दुलहिनि लैगे लच्छि निवासा। नृप समाज सब भयउ निरासा।

कहइ मुनि सुनु नरनाथ प्रवीना। रहा विवाहु चाप आधीना॥
टूटतहीं धनु भयेउ विवाहू। सुर नर नाग विदित सब काहू॥४॥

अर्थ : मुनिजी ने कहा : हे प्रवीण राजा ! सुनो। विवाह तो धनुष के अधीन था। धनुष टूटते ही विवाह हो गया। देवता नर नाग सभी जानते हैं।

व्याख्या : राजा को प्रवीण विशेषण इसलिए दिया कि राजा लोक और वेद दोनों के व्यवहार में कुशल हैं और कहा कि विवाह तुम्हारे अधीन तो था नहीं। तुमने प्रण करके उसे धनुष के अधीन कर दिया था। तुम्हारे अधीन होता तो कुछ कहने सुनने का अवसर था। धनुष टूटना विवाह का होना एक बात है। विवाह में देवता साक्षी रक्खे जाते हैं। यहाँ तीनों लोक साक्षी हैं। देवता नर नाग सभी जानते हैं। अतः व्याह हो गया।

दो. तदपि जाइ तुम्ह करहु अब, जथा वंस व्यवहारु।
बूझि विप्र कुलवृद्ध गुर, वेद विदित आचारु॥२८६॥

अर्थ : फिर भी जाकर अपनी कुल रीति के अनुसार ब्राह्मण लोग कुल वृद्ध और गुरु से पूछकर वंशव्यवहार और वेदाचार करो।

व्याख्या : फिर भी लोकाचार और वेदाचार दोनों होने चाहिए। अतः वंशव्यवहार जातिधर्म तो कुलवृद्धों से पूछकर करिये और वेदव्यवहार के लिए ब्राह्मणों और कुलगुरु की अनुमति लीजिये। यथा : लोकवेद विधि मंजुल कूला। भाव यह कि आप प्रवीण हैं। लोक वेद दोनों में कुशल हैं। वरपक्ष को सम्मति जानने के लिए मुझसे पूछ रहे हैं तो मेरी सम्मति यह है कि परिस्थितिविशेष के कारण यद्यपि अब कोई व्यवहार अनिवार्य नहीं है तथापि लोकवेदमर्यादा के पालन की दृष्टि से सब कुछ जानते हुए भी बड़ों से पूछ पूछकर करिये।

दूत अवधपुर पठवहु जाई। आनहि नृप दसरथहि बोलाई॥
मुदित राउ कहि भलेहिं कृपाला। पठए दूत बोलि तेहि काला॥१॥

अर्थ : जाकर अयोध्या दूत भेजो। राजा दशरथ को बुला लावे। राजा ने आनन्दित होकर कहा : हे कृपाल ! बहुत अच्छा। उसी समय दूत को बुला करके भेज दिया।

व्याख्या : यहाँ से जाकर अयोध्यापुरी दूतों को भेजो। भाव यह कि एक राजा को दूसरे राजा के यहाँ दूत भेजना है सो प्रचलित नियमानुसार पत्रादि मुद्राङ्कित करके भेजना होगा। रङ्गभूमि का कार्य समाप्त हो गया। अब यहाँ से सभी को अपने अपने निवासस्थान पर चलना है। तुम जाकरके पहिला काम यही करो। वे दूत जाकर महाराज दशरथ को बुला लावें। विश्वामित्रजी अपनी विशेष सम्मति दे रहे हैं। क्योंकि अबतक पिता स्थानीय होकर वे ही आज्ञादि देते थे। यथा : उठहु राम भंजउ भव चापा इत्यादि। पर अब तो समधी बनना है।

यह काम महाराज दशरथ ही कर सकते हैं। विश्वामित्रजी के स्वरूप के प्रतिकूल है। वे नहीं कर सकते।

राजा जनक प्रसन्न हो गये। क्योंकि वे भी यही चाहते थे। सो जाकर नहीं उसी स्थान पर दूतों को बुलाकर भेजा। जिसमें दूत जाकर कहें कि विश्वामित्रजी की सम्मति के अनुसार महाराज ने मुझे भेजा है। वे वहाँ उस समय थे जब हम चले। भाव यह कि महाराज दशरथ के बुला भेजने में विदेहराज सङ्कुचित हो रहे हैं कि यह बड़ी ढिठाई है। आगे चलकर कहेंगे भी अपराध छमिओ बोलि पठये बहुत हौं ढीठ्यौ कई। महर्षि विश्वामित्र की सम्मति जान लेने पर बुलाया जाना ढिठाई न समझी जायगी। इसलिए उनके सामने ही दूत भेजे गये।

बहुरि महाजन सकल बोलाए। आए सबन्हि सादर सिर नाए ॥
हाट बाट मंदिर सुरवासा। नगर सँवारहु चारिहु पासा ॥२॥

अर्थ : फिर जनकजी ने सब महाजनों को बुलाया। सबने आकर राजा को आदर सहित सिर नवाया। राजा ने आज्ञा दी कि बाजार, मार्ग, मन्दिरों को तथा नगर को चारों ओर से सजाओ।

व्याख्या : तत्पश्चात् महाराज जनक ने नगर के सब रईसों को बुलवाया। महाराज दशरथ के स्वागत के लिए तैयारी होनी चाहिए। सब रईस उपस्थित हुए। श्रद्धा से सबने महाराज को प्रणाम किया। यह कथा रङ्गभूमि से चलकर घर पहुँचने के बाद की है। राजाओं के स्वागत में अथवा महोत्सव उपस्थित होने पर हाट बाट मन्दिर चारों ओर सजाये जाते हैं और यह काम नगर के रईसों का है। महाराज दशरथ चक्रवर्ती हैं। उनके स्वरूप के अनुकूल स्वागत होना चाहिए। अतः चारों ओर से नगर सजाने की आज्ञा दी गई। यहाँ मन्दिर से देवस्थान अभिप्रेत है। क्योंकि घरों का सजाना ही नगर का सजाना है।

हरषि चले निज निज गृह आये। पुनि परिचारक बोलि पठाए ॥
रचहु विचित्र वितान बनाई। सिर धरि वचन चले सचुपाई ॥३॥

अर्थ : रईस : महाजन लोग हर्षित होकर चले और अपने अपने घर आये। फिर राजा ने परिचारकों : कारपरदाजों को बुलावा भेजा : और आज्ञा दी। विचित्र मण्डप बनाकर सजाओ, राजाज्ञा शिरोधार्य करके वे भी सुखी होकर चले।

व्याख्या : राजाज्ञा मिलने पर उन रईसों को हर्ष हुआ कि हम लोगों को आज महाराज की सेवा का सौभाग्य प्राप्त हुआ। समधी के स्वागत की तैयारी करनी है। सो तदनुसार कार्य करने के लिए अपने अपने घर गये। नगर के सजने की व्यवस्था पहिले करके तब राजा ने अपने परिचारकों : कारपरदाजों को बुलवा भेजा। उनके आने पर आज्ञा हुई कि ऐसा मण्डप बनाकर साजो कि जो विचित्र हो। वे लोग राजाज्ञा पाकर सुखी हुए। वे लोग ऐसे सिद्धहस्त हैं कि इतनी ही आज्ञा उनके लिए यथेष्ट है। आज्ञा शिरोधार्य करके तुरन्त चल पड़े।

पठये बोलि गुनी तिन्ह नाना। जे बितान बिधि कुसल सुजाना ॥
बिधिहि बंदि तिन्ह कीन्ह अरंभा। बिरचे कनक कदलि के खंभा ॥४॥

अर्थ : उन्होंने अनेक प्रकार के गुणियों को बुला भेजा। जो मण्डप बनाने की विधि के जानकार थे और दक्ष थे। ब्रह्मदेव की वन्दना करके उन्होंने कार्यारम्भ किया। स्वर्ण के केले के खम्भे बनाये।

व्याख्या : उन परिचारकों ने अनेक प्रकार के शिल्पियों को बुलाया। वे जानते थे कि मण्डप की रचना में कितने प्रकार के शिल्पियों की आवश्यकता पड़ती है। उतने प्रकार के शिल्पी बुलाये गये। उन लोगों ने तुरन्त कार्यारम्भ कर दिया। पहिला काम यह किया कि विधि की वन्दना की क्योंकि रचना के मूलस्रोत वही हैं। दूसरे यह कि उन्हीं की रचना का उन्हें अनुकरण करना है। मण्डप के सोलहों स्तम्भों में केले के स्तम्भों के बाँधने का विधान है। कब तक व्याह होगा अभी इसका निश्चय नहीं है। केले के खम्भे तब तक सूख जायँगे। इसलिए सोने के खम्भे ही कदली स्तम्भों के आकार के बनाये गये। कारीगरी दो प्रकार की होती है। एक में अल्पमूल्य वस्तुओं को ऐसा सजाते हैं कि वह अत्यन्त भड़कीला दूर से ही मालूम पड़े। दूसरा प्रकार यह है कि बाहर से बिल्कुल सादा मालूम पड़े। निकट से विचार पूर्वक देखने पर अत्यन्त सूक्ष्म शिल्पकला का तथा उसके बहुमूल्यतर का परिचय मिल सके। इन शिल्पियों ने दूसरे प्रकार का अवलम्बन किया। ऐसे खम्भे बनाये जो देखने में केले के हों पर वस्तुतः सोने के हों।

दो. हरित मनिन्ह के पत्र फल, पद्मराग के फूल।
रचना देखि बिचित्र अति, मनु बिरंचि कर भूल ॥२८७॥

अर्थ : हरे मणियों के पत्ते और फल बनाये और पद्मराग मणियों के फूल बनाये। अति विचित्र रचना देखकर ब्रह्मदेव का मन भूल जाय।

व्याख्या : केले के खम्भे का रंग पीला फल और पत्ते का रंग हरा और फूल का रंग लाल होता है। अतः स्वर्ण के स्तम्भ पन्ने के पत्र फल और माणिक्य के फूल बनाये। विचित्र रचना के लिए राजा ने आज्ञा दी थी। इन लोगों ने अति-विचित्र बनाया। जिसे देखकर लोग भूल जायँ वह विचित्र है और जिसे देखकर स्वयं ब्रह्मदेव भूल जायँ वह अतिविचित्र है। मिथिला में आज भी मण्डप बड़ा सुन्दर बनता है। सोलह केले के स्तम्भों के स्थान में कृत्रिम खम्भे बनाये। गये केले में ही विरञ्चि का भूलना लिखा। क्योंकि उसके भीतर की भी रचना केले सी ही थी। सर्वात्मना केला ही मालूम होता था।

बेनु हरित मनिमय सब कीन्हें। सरल सपरब परहिं नहिं चीन्हे ॥
कनक[1] कलित अहिबेलि बनाई। लखि नहि परइ सपरन सोहाई ॥१॥

---

१. यहाँ 'निरुक्ति' अलङ्कार है।

यर्थ : हरे मणियों के बाँस बनाये जो सीधे और गाँठ से युक्त थे। पहिचाने नहीं जाते थे। पान की लता सोने की बनाई। जो खम्भों पत्तों से युक्त थी। पर पहिचानी नहीं जा सकती थी कि स्वाभाविक है या कृत्रिम।

व्याख्या : हरे मणि के बाँस बनाये गये और उन बाँसों से मण्डप बनाया गया। वे सीधे बनाये गये थे जिसमें मण्डप कहीं से टेढ़ा न बन जाय। अब उन्हें बाँधने की आवश्यकता पड़ी तो वे पान की वेलि से बाँधे गये। वे वल्लियाँ भी सोने की बनाया गईं जिनमें पत्ते भी लगे थे। सच्ची पान की लताओं से उनका भेद नहीं जाना जाता था।

तेहि के रचि पचि बंध बनाए। बिच बिच मुकुतादाम सुहाए ॥
मांनिक मरकत कुलिस पिरोजा। चीरि कोरि पचि रचे सरोजा ॥२॥

अर्थ : रचकर और पच्चीकारी करके उसी के बन्धन बनाये। बीच बीच में मोती की मालाएँ शोभायमान थीं। माणिक्य, नीलम, हीरा और फिरोजा को चीर करके छील करके और पच्चीकारी करके कमल बनाये।

व्याख्या : उसी पान की लता से रच करके और पच्चीकारी करके बन्धन बनाया। इस भाँति मण्डप तैयार हुआ। बीच बीच में फूल की मालाओं के स्थान में मोतियों की मालाएँ लटकायी गईं। अर्थात् मण्डप ठीक उसी भाँति मालूम होता था जैसा कि बाँस, लता आदि से सामान्यतः बनाया जाता है। पर वस्तुतः वह मणिमण्डप था।

लाल, नीले, श्वेत और पीत कमल उस उस वर्ण के मणियों से बनाये गये। परन्तु कमलों में हलका रंग फोका रंग तथा पीली ढोंढ़ी भी होती है। अतः रत्नों को चीरना छीलना और पच्ची करना पड़ा।

किए भृंग बहुरंग विहंगा। गुंजहिं कूजहिं पवन प्रसंगा ॥
सुर प्रतिमा खंभन गढ़ि काढ़ी। मंगल द्रव्य लिये सब ठाढ़ी ॥३॥

अर्थ : भौंरे और बहुत रंगों के पक्षी बनाये। जो हवा लगने पर गूँजते और कूजते थे। देवताओं की मूर्तियाँ खम्भों में गढ़कर निकाली गईं जो मंगलद्रव्य लिये खड़ी थीं।

व्याख्या : अब दूसरी प्रकार की कारीगरी की गई। कमलों पर गूँजने के लिए भौंरे बनाये गये। केलों के वृक्ष पर बैठकर कूजने के लिए कृत्रिम चिड़ियाँ बनायी गईं और वे ऐसी बनी कि जब हवा चले तो भौंरे गूँजने लगे और चिड़ियाँ कूजने लगीं।

खम्भे जिनके आधार पर मण्डप खड़ा था उनमें देवताओं की मूर्तियों की निकासी की गई थी। मानों वे मङ्गलद्रव्य लिये खड़ी हैं। मृगराजो वृषो नागः कलशो व्यजनन्तथा। वैजयन्ती तथा भेरी दीप इत्यष्टमङ्गलम्। सिंह, बैल, हाथी, घट, पंखा, झण्डी, भेरी और दीप ये आठ मङ्गल हैं।

चौकें भाँति अनेक पुराई। सिंधुर मनिमय सहज सोहाई ॥४॥

अर्थ : अनेक प्रकार के चौक पूरे गये। वे गजमुक्ताओं से बने थे और स्वभाव से ही सुन्दर थे।

व्याख्या : इस समय अनेक प्रकार के चौक पूरने की चाल दक्षिण में रह गई है। वे एक यन्त्र से जिसे रँगोली कहते हैं अनेक रंग भरकर अनेक प्रकार के वेलबूटेवाले चौक पूरते हैं। चौक पूरने में आटा या संगमरमर के चूर्ण से काम लिया जाता है पर यहाँ तो गजमुक्ता से काम लिया गया। चौक अनेक प्रकार से पूरे गये जो स्वभाव से ही सुन्दर थे। पर वह सुन्दरता और भी बढ़ गई जब उसमें गजमुक्ताओं से काम लिया गया।

दो. सौरभ पल्लव सुभग सुठि, किए नीलमनि कोरि।
हेम बौर मरकत घवरि, लसत पाटमय डोरि ॥२८८॥

अर्थ : नीलममणि को कोर : छोलकर उन्होंने आम के सुन्दर पल्लव बनाये। सोने का बौर बनाया। मरकत के घौद बनाये। जो रेशम की डोरी में शोभायमान हुए।

व्याख्या : बौर और घौद : टिकोरे के गुच्छों के सहित आम के सुन्दर पत्तों को रेशम की डोरी में गूँथा। वे पत्ते और घौद नीलम और मरकत मणि को छीलकर बनाये गये थे और बौर सोने का बनाया गया क्योंकि वह पीला होता है। पत्ते और घौद अति हरित होने से नील प्रतीत होते हैं। अतः नीलमणि के बनाये गये। साधारण डोरी में वे भारी होने से लटकाये नहीं जा सकते। अतः रेशम की डोरी में गूँथे गये।

रचे रुचिर वर वंदनिवारे। मनहु मनोभव फंद सँवारे॥
मंगल कलस अनेक बनाए। ध्वज[1]पताक पट चँवर सोहाए ॥१॥

अर्थ : इस भाँति सुन्दर वन्दनवार बनाये। मानो कामदेव ने फन्दे सजा रक्खे हैं। अनेक मङ्गल कलश बनाये गये। ध्वजा पताका कपड़े और चँवर से शोभायमान हुए।

व्याख्या : पूर्वोक्त रीति से बन्दनवार बनाकर उस मण्डप में बाँधे गये। इन वन्दनवारों की उपमा कामदेव के फन्दे से दी गई। भावार्थ यह कि वन्दनवार ऐसे सुन्दर थे कि मन मोहित हो जाता था। मण्डप में यथास्थान स्थापन के लिए मङ्गलघट सँवारे गये। ध्वजा लम्बी और पताका तिरकोनी होती है। इसीलिए ध्वजा को कदली और पताका को ताल के पत्ते से उपमित किया है। यथा : कदलि

---

१. किसी का मत यह है कि ध्वजा सात हाथ की और पताका पाँच हाथ की होती है।

तालवर ध्वजा पताका और चँवर यथास्थल लगाये गये। चँवर शोभा के लिए मण्डप में लगाने का विधान है। मण्डप के ऊपर कपड़ा मढ़ा गया।

दीप मनोहर मनि मय नाना। जाइ न बरनि विचित्र बिताना ॥
जेहि मंडप दुलहिनि बैदेही। सो बरनै अस मति कवि केही ॥२॥

अर्थ : मनोहर मणिमय दीप थे। उस विचित्र मण्डप का वर्णन नहीं हो सकता। जिस मण्डप में वैदेही दुलहिन हों उसके वर्णन करने को बुद्धि किस कवि को हो सकती है।

व्याख्या : मनोहर मणियों के अनेक दीप रक्खे गये। ठण्डी रोशनी के लिए : किसी समय भारतवर्ष में मणियों से दीपक का काम लिया जाता था। बंगाल के नवाब सिराजुद्दौला के समय तक ठण्डी रोशनी के जवाहिरात का पता चलता है। मणिदीपक की आवश्यकता इसलिए रहती है कि विवाह प्रायेण रात्रि के समय होता है। संक्षेपतः ऐसा मण्डप बना कि जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता। यही मण्डप की विचित्रता है कि मणिमय मण्डप तैयार किया गया। पर देखने में लताद्रुममय मालूम पड़ता था।

यह वर्णन अधिक नहीं है न अतिशयोक्ति है। इतना कहने पर भी कोई यह न समझे कि कवि पूरा वर्णन कर पाया। अतः कवि जवाब देते हैं कि बुद्धि के अनुसार मैं वर्णन करता हूँ। जिस मण्डप में साक्षात् महालक्ष्मी वैदेही दुलहिन हों उसे वर्णन करनेवाला कौन कवि है अर्थात् कोई नहीं। जो मैंने वर्णन किया है वह अत्यन्त अल्प है।

दूलहु रामु रूप गुन सागर। सो बितानु तिहुँ लोक उजागर ॥
जनक भवन कै सोभा जैसी। गृह गृह प्रति पुर देखिअ तैसी ॥३॥

अर्थ : और जिसमें रूपगुणसागर रामजी दुल्हा हों वह मण्डप तीनों लोक में प्रकाशित है। जनक के घर की जैसी शोभा थी वैसी शोभा नगर में घर घर दिखाई पड़ती थी।

व्याख्या : जिस मण्डप में रूपगुणसागर रामजी दूल्हा बनें वह मण्डप क्या साधारण हो सकता है? इसलिए आगे चलकर इस मण्डप की उपमा जीवउर से देंगे। भाव यह कि जिस भाँति जीव का उर त्रैलोक्य का प्रकाशक है। जीव को उर : हृदय न हो तो त्रैलोक्य अन्धकारमय हो जाय। इसी भाँति यह मण्डप त्रैलोक्य का प्रकाशक है। राजा के घर की शोभा कहकर अब पुरजन के घरों की शोभा कहते हैं।

अब महाजनों की करतूत कहते हैं कि उन्होंने सभी घरों को ऐसा सजाया कि राजा का घर जान पड़े। जब बारात आवे तो उसे सभी मकान राजगृह मालूम हों। अथवा मिथिला नगरवासी ही ऐसे समृद्ध थे और उनकी राजा पर इतनी

भक्ति थी कि उन्होंने ऐसे उत्सव के समय स्वयं उत्साह से पूर्ण होकर अपने घरों की राजगृह सी सजावट की।

जेहि तेरहुति तेहि[1] समय निहारी। तेहि लघु लगति भुवन दस चारी॥
जो संपदा नीच गृह सोहा[2]। सो बिलोकि सुरनायक मोहा॥४॥

अर्थ : जिसने तिरहुत को उस समय देखा उसे चौदह भुवन तुच्छ जान पड़े। जो सम्पदा नीच के गृह में शोभायमान थी उसे देखकर देवराज मोहित हो गये।

व्याख्या : तीरभुक्ति का तद्भवरूप तेरहुति है। इस समय के तिरहुत से उस समय के तिरहुत की कोई कल्पना नहीं हो सकती। उस समय तिरहुत के सामने चौदह भुवन की शोभा तुच्छ मालूम होती थी। भाव यह कि जहाँ वैदेही हैं वहीं वैकुण्ठ की शोभा उतर आवेगी। वैकुण्ठ का विभव ही ऐसा है कि वहाँ के निकृष्टतम निवासी के ऐश्वर्य पर भी देवराज इन्द्र मोहित होते हैं। इसी बात को निम्नलिखित दोहे में स्पष्ट करते हैं।

दो. बसै नगर जेहि लच्छि करि, कपट नारि बर बेषु।
तेहि पुर कै सोभा कहत, सकुचहिं सारद सेषु॥२८९॥

अर्थ : जिस नगर में साक्षात् लक्ष्मी माया से स्त्री का सुन्दर रूप धारण करके बसती हैं उस पुर की शोभा कहने में सरस्वती और शेष को सङ्कोच ही होगा। क्योंकि वैसी शोभा न तो ब्रह्मलोक में है और न भोगावती में है।

व्याख्या : जिस नगर में साक्षात् लक्ष्मी माया से स्त्री रूप होकर रहती हैं वहाँ वैकुण्ठ भी माया से नगररूप में अवतीर्ण होगा ही। वैकुण्ठ के निवासी भी माया से मनुष्यरूप में उस नगर के निवासी होंगे। यथा : पुर नर नारि सुभग सुचि संता। धर्म सील ग्यानी गुनवंता। अतः उसकी शोभा वर्णन में ब्रह्मलोक और पाताललोक के वक्ताओं में सङ्कोच होना प्राप्त ही है। यथा : सुनु मतिमंद लोक वैकुंठ। रत्नादिकों ने भी कदली वंशादि का कपट रूप धारण किया। साधारण वस्तुओं में किसी दुर्लभ वस्तु के आजाने से शोभा आजाती है। यहाँ दुर्लभ वस्तुओं को ही साधारण रूप दिया जा रहा है।

पहुँचे दूत राम पुर पावन। हरषे नगर बिलोकि सोहावन॥
भूप द्वार तिन खबरि जनाई। दसरथ नृप सुनि लिए बोलाई॥१॥

अर्थ : दूत रामजी की पवित्रपुरी में पहुँच गये[3]। शोभायमान नगर को

---

१. यहाँ उदात्तालङ्कार है।

२. यहाँ सम्बन्धातिशयोक्ति है।

३. आश्विन शुक्ल १५ को दूत मिथिला से अयोध्या को चले। चार रात्रि रास्ते में बीती। कार्तिक कृष्ण पञ्चमी को अयोध्या पहुँचे।

देखकर हर्षित हुए। राजद्वार पर उन्होंने समाचार दिया। महाराज दशरथ ने सुनकर उनको बुला लिया।

व्याख्या : पठए दूत अवध तेहि काला से प्रसङ्ग छोड़ा था। दूत लोग अवध जा रहे थे। इसी बीच में ग्रन्थकार ने बारात के स्वागत के लिए जनकपुर की तैयारी का वर्णन करना प्रारम्भ कर दिया। उधर तैयारी हो रही थी और इधर दूत लोग पवित्र रामपुर में पहुँच गये। यहीं से फिर उसी कथा को उठा लिया। पहुँचे दूत रामपुर पावन। ससुराल में जामाता की ही प्रधानता होती है। अतः दूत लोग अपने मन में यह बात लेकर चले थे कि हमें रामपुर जाना है। अतः पहुँचने पर कवि भी दशरथपुर न कहकर रामपुर पावन कहते हैं। अयोध्या मोक्षपुरी है इसलिए पावन कहा। तीन रात रास्ते में बसकर चौथे दिन अयोध्या पहुँचे। जनकपुर : तिरहुत का वर्णन ऊपर हो चुका है। ऐसे रमणीय नगर के रहनेवाले दूतों को भी अयोध्या पुरी ऐसी सोहावनी मालूम पड़ी कि वे आनन्दित हो उठे। इतने से ही अयोध्या की शोभा के उत्कर्ष को ग्रन्थकार ने दिखला दिया। वाराहक्षेत्र के निकट धामपुर ग्राम है। महात्माओं का मत है कि वहीं पहुँचकर दूतों ने अवध देखा।

दूत की गति राजद्वार तक है। इसके आगे बिना राजाज्ञा के प्रवेश नहीं हो सकता। अतः दूतों ने वहाँ से राजा के पास समाचार भेजा। महाराज उस समय राजसभा में थे। अतः तुरन्त बुला लिया।

करि प्रनाम तिन पाती दीन्ही। मुदित महीप आप उठि लीन्ही ॥
बारि बिलोचन बाँचत पाती। पुलक गात आई भरि छाती ॥२॥

अर्थ : उन्होंने प्रणाम करके चिट्ठी दी। राजा ने प्रसन्न होकर स्वयं उठकर ली। चिट्ठी बाँचते समय आँखों में आँसू आगये। रोमाञ्च हो गया। छाती भर आई।

व्याख्या : दूत का प्रणाम करना कर्तव्य है। शत्रु राजा को भी दूत प्रणाम करता है। यथा : बैठ सभा सिर नाय। अङ्गदजी ने भी रावण की सभा में जाकर प्रणाम किया। यहाँ तो मित्र राजा के यहाँ दूत गये हैं। जनकजी का इतना आदर महाराज दशरथ की दृष्टि में है कि उनकी पत्री का आदर अभ्युत्थान देकर करते हैं। पत्र का मिलना आधी भेंट माना गया है। इसलिए राजा का मुदित होना कहा। स्वयं चिट्ठी को लिया और मन्त्री से न बँचवाकर स्वयं बाँचने लगे।

अश्रु, स्वरभङ्ग और पुलक ये तीनों अनुभाव हर्ष और शोक दोनों के होते हैं। यथा : सकल सखी गिरिजा गिरि मयना। पुलक सरीर भरे जल नयना। नारदहू यह भेद न जाना। दसा एक समुझब बिलगाना। सो चिट्ठी पढ़ते समय महाराज में अश्रुपुलक और छाती का भर आना तीनों बातें दिखाई पड़ीं।

रामु लषनु उर कर बर चीठी। रहि गये कहत न खाटी मीठी ॥
पुनि धरि धीर पत्रिका बाँची। हरषी सभा बात सुनि साँची ॥३॥

अर्थ : राम लक्ष्मण हृदय में और वह चिट्ठी हाथ में खट्टी या मीठी कुछ कह न सके। फिर धैर्य धारण करके पत्रिका बाँची। सच्ची बात सुनकर सभा हर्षित हो उठी।

व्याख्या : अब तीसरा अनुभव कहते हैं। चिट्ठी बाँचने में महाराज स्तब्ध हो गये। राम लक्ष्मण के ध्यान से किसी दूसरी बात के लिए हृदय में स्थान नहीं रह गया। अतः चिट्ठी हाथ में लिये रह गये। सभा उत्सुक है कि चिट्ठी में भला समाचार है कि नहीं। महाराज कहना चाहते हैं। पर प्रेम से गला रुँधा जाता है। कुछ कह न सके। यहाँ मीठा खट्टा से अच्छे बुरे समाचार का अभिप्राय है। यथा : मीठ कहा कवि कहै जाहि जो भावै।

सभा असमञ्जस में पड़ गई। राजकुमार बाहर गये हैं। कोई समाचार उनका न मिला। इस चिट्ठी में कोई बात उनके सम्बन्ध की है क्या ? महाराज की दशा चिट्ठी पढ़ते पढ़ते कैसी हुई जाती है। इत्यादि चिन्ताओं से ग्रस्त हो गई। महाराज का पत्र पढ़ते समय धैर्य छूट गया था। अतः बाँच नहीं सकते थे। सभा की उत्सुकता तथा चिन्ता दूर करने के लिए धैर्य धारण करके स्वयं बाँचा। अतः विश्वस्त बात सुनकर सभा हर्षित हुई। यथा : तब ते आज साँच सुधि पाई। यह दैवी सम्पत्ति की कथा है। आसुरी सम्पत्ति यथा : बिहँसि बामकर लीन्ही रावन। सचिव बोलि सठ लाग बचावन।

खेलत रहे तहाँ सुधि पाई। आए भरतु सहित हित भाई ॥
पूछत अति सनेह सकुचाई। तात कहाँ ते[1] पाती आई ॥४॥

अर्थ : जहाँ खेलते रहे वहाँ समाचार पाकर सखा और भाई के सहित भरतजी आये। अत्यन्त स्नेह से सकुचाते हुए पूछने लगे कि तात ! चिट्ठी कहाँ से आई है ?

व्याख्या : भरत सत्रुहन दूनौ भाई। प्रभु सेवक जिमि प्रीति दृढाई। अतः यहाँ हित भाई से खेल के साथी तथा शत्रुहनजी अभिप्रेत हैं। ये लोग सरयू के तीर घोड़ों पर सवार होकर गेंद खेलते थे। यथा : सरयुतीर सम सुखद भूमिथल गनि गनि गोइयाँ बाँटि लये। कंदुककेलि कुसल हय चढ़ि चढ़ि मन कसि कसि ठोकि ठोकि खये। इत्यादि। पत्री आने की खबर बड़े जोरों से फैली। खेलते समय भरत शत्रुघ्न को समाचार मिला। खेल छोड़कर राजसभा में पहुँचे।

अत्यन्त स्नेह के कारण बिना पूछे रहा नहीं जाता और पूछने में सङ्कोच है। क्योंकि इससे कौतूहल प्रकट होता है। चारों भाई सङ्कोची हैं। अतः सकुचाते हुए प्रश्न किया। पहिला प्रश्न चिट्ठी कहाँ से आई है ?

दो. कुसल प्रानप्रिय बंधु दोउ, अहहिं कहहु केहि देस।
सुनि सनेह साने बचन, बाँची बहुरि नरेस ॥२९०॥

---

१. यहाँ चित्रालङ्कार है।

अर्थ : दोनों प्राणप्रिय भाई कुशल तो हैं ?' और किस देश में हैं ? स्नेह से सने हुए वचन को सुनकर फिर राजा ने पत्र पढ़ सुनाया ।

व्याख्या : दूसरा प्रश्न कुशलविषयक हुआ । तीसरा प्रश्न देशविषयक हुआ । समाचार की सचाई को दृढ़ करना चाहते हैं । कहाँ ते पाती आई : इस प्रश्न से पत्र प्रेषक को जानना चाहते हैं । कुशल पूछने से स्वयंवरविषयक समाचार जानना चाहते हैं । अहैं केहि देस इस प्रश्न से जानना चाहते हैं कि जनकपुर में ही हैं या वहाँ से चल पड़े हैं ? क्योंकि स्वयंवर के साथ ही विदाई होने की चाल है । स्नेह से सने भरतजी के वचन सुनकर महाराज ने पूरे वृत्तान्त से परिचित करने के लिए फिर से पत्र को पढ़ सुनाया । पत्र में तीनों प्रश्नों के पूरे उत्तर आगये थे ।

सुनि पाती पुलके दोउ भ्राता । अधिक सनेहु समात न गाता ॥
प्रीति पुनीत भरत कै देखी । सकल सभा सुख लहेउ बिसेखी ॥१॥

अर्थ : चिट्ठी सुनकर दोनों भाई पुलकित हो गये । अधिक स्नेह शरीर में समाता नहो था । भरतजी का पवित्र प्रेम देखकर सारी सभा को विशेष सुख हुआ ।

व्याख्या : प्रेम इतना अधिक है कि समाता नहीं है । इसलिए पुलक के मिस से बाहर प्रकट हुआ । चिट्ठी के बाँचने में महाराज को पुलक हुआ और उसके सुनने से भरतजी तथा शत्रुघ्नजी को पुलक आनन्दातिशय के कारण हुआ । मानों उस बढ़े हुए आनन्द के लिए शरीर में यथेष्ट स्थान नहीं है । अतः रोम रोम से बाहर निकला पड़ता है ।

राम लक्ष्मण का प्रेम तथा भरत शत्रुघ्न का प्रेम तो सभी को मालूम था । रामजो के साथ लक्ष्मणजी तथा भरतजी के साथ शत्रुघ्नजी छाया की भाँति रहते थे । अतः अभिन्नहृदय समझे जाते थे । परन्तु भरतजी की भी रामजी में इतनी प्रीति है इससे सभा अनभिज्ञ थी । आज भरतजी की रामजी में पवित्र निःस्वार्थ प्रीति देखकर सारी सभा को विशेष सुख हुआ । रामजी का समाचार सुनकर सुख हुआ और भरतजी की प्रीति देखकर विशेष सुख हुआ । प्रीति के अनुभाव पुलक के देखने को प्रीति का देखना कहते हैं । भाई भाई की प्रीति ऐसी पवित्र वस्तु है कि उसके देखनेवाले को सुख मिलता है ।

तब नृप दूत निकट बैठारे । मधुर मनोहर बचन उचारे ॥
भैआ कहहु कुसल दोउ बारे । तुम्ह नीकें निज नयन निहारे ॥२॥

अर्थ : तब राजा ने दूतों को पास विठाया और मीठे मनके हरण करनेवाले वचन बोले : भैया दोनों बच्चों की कुशल कहो । तुमने भलीभाँति अपनी आँखों से देखा है ।

व्याख्या : निकट बैठाना आदर प्रदान है । दूत चिट्ठी देकर दूर खड़े थे । बातचीत करने के लिए पास बुलाकर बैठा लिया और ऐसे वचन बोले जो सुनने में मधुर और समझने में मनोहर थे । महाराज ने चिट्ठी बाँचना समाप्त किया और

सभा सुनकर सुखी हुई। आनन्द का पहिला तरङ्ग समाप्त होते न होते दोनों भाई भरतजी आये। महाराज ने फिर से चिट्ठी बाँची। भरतजी की प्रीति देखकर दूसरा तरङ्ग आनन्द का उठा। इसके बाद राजा को दूतों से बात करने का अवसर मिला। प्रेम को प्रबोध नहीं होता। यथा : बैर अघ प्रेमहिं न प्रबोधू। अतः चिट्ठी द्वारा कुशल समाचार जानने पर भी दूतों से पूछते हैं।

'भैया' सम्बोधन कितना मधुर है। चिट्ठी में तो कुशल पढ़ लिया। पर जिसने भलीभाँति आँखों देखा है उसके मुख से महाराज कुशल सुनना चाहते हैं। अथवा प्रेमपात्र का समाचार सौ बार पूछने पर भी सन्तोष नहीं होता। महाराज के वचन मधुर और मनोहर थे। परन्तु मृदु नहीं थे। सभा बड़ी थी। मृदुस्वर में वार्तालाप होने से सब सभासद् न सुन सकते। अतः मृदु विशेषण नहीं दिया।

स्यामल गौर धरे धनु भाथा। वय किसोर कौसिक मुनि साथा ॥
पहिचानहु तुम्ह कहहु सुभाऊ। प्रेम विवश पुनि पुनि कह राऊ ॥३॥

अर्थ : साँवले और गोरे धनुष और तरकस धारण किये हैं। किशोरावस्था है। विश्वामित्र के साथ हैं। तुम पहिचानते हो तो उनका स्वभाव बतलाओ। इस बात को महाराज ने प्रेम विवश होने के कारण बार बार पूछा।

व्याख्या : श्यामल गौर से रूप कहा। धरे धनु भाथा से वेष कहा। वय किसोर से अवस्था कही और कौसिक मुनि साथा से अचूक पता बतलाया। विश्वामित्र मुनि को कौन नहीं जानता ? उनका दर्शन तुम लोगों ने अवश्य किया होगा। मेरे बच्चे उन्हीं के साथ हैं। भाव यह कि संग सुसेवक नांही : राजोचित ठाट बाट के साथ नहीं है।

तुम स्वभाव कहो तो हम ठीक जान लें कि तुमने देखा है। प्रेम के विवश हैं। उत्तर देने का समय ही नहीं देते। इसी प्रश्न को बार बार दोहराते हैं। राऊ कहने का भाव यह कि राजा का एकबार कहना बहुत है।

जा दिन ते मुनि गए लवाई। तब ते आजु साच सुधि पाई ॥
कहहु विदेह कवन विधि जाने। सुनि प्रिय वचन दूत मुसुकाने ॥४॥

अर्थ : जिस दिन से मुनिजी लिवा गये तब से आज ही सच्ची सुधि मिली है। यह बतलाओ कि महाराज ने उन्हें कैसे जाना ? प्रिय वचन सुनकर दूत मुसकराये।

व्याख्या : मुनि गये लवाई का भाव यह कि दूसरा लिवा गया होता तो सेना साथ जाती। सेवक साथ जाते। डाक बैठा दी जाती। क्षण क्षण का समाचार मिला करता। पर मुनिजी के रुष्ट होने के भय से कुछ नहीं किया गया। अतः जब से साथ गये विश्वस्त सूत्र से कोई समाचार नहीं मिला। इससे महाराज अपनी अत्यन्त उत्सुकता का कारण भी कह देते हैं। आज जो समाचार मिल रहा है वही विश्वस्त सूत्र से मिल रहा है। अतः कहते हैं साँच सुधि पाई।

अब फिर एक प्रश्न महाराज ने उठाया कि राजा विदेह ने मेरे बच्चों को कैसे जाना ? इतने राजा इकट्ठे थे उनमें इन बच्चों को जान लेने की तो कोई सम्भावना ही नहीं थी। ये वचन महाराज के मनोहर थे। अतः दूतों को प्रिय लगे। महाराज को प्रेम में विभोर देखकर दूत मुसकराये।

दो. सुनहु महीपति मुकुट मनि, तुम्ह सम धन्य न कोउ।
राम लषन जिनके तनय, बिस्व बिभूषन दोउ ॥२९१॥

अर्थ : हे राजाओं के मुकुटमणि ! सुनो। तुम्हारे समान धन्य कोई नहीं है। जिसके राम लक्ष्मण ऐसे विश्वविभूषण पुत्र हैं।

व्याख्या : महीपति मुकुटमणि से ऐश्वर्याधिक्य कहा। तुम सम धन्य न कोउ से पुण्याधिक्य कहा। उत्तम सन्तान होने से पिता के पुण्य का अनुमान करते हैं। कहते हैं कि ऐसे विश्वविभूषण पुत्रों की प्राप्ति से आप धन्य हैं। विश्वविभूषण को कौन नहीं जानेगा ? जो उन्हें देख लेगा वही परिचय प्राप्त करना चाहेगा। यथा : सुनहु नाथ सुंदर दोउ बालक। मुनि कुल तिलक कि नृप कुल पालक। प्रश्न है : भैया कहहु कुसल दोउ बारे। उत्तर है : सुनहु महीपति मुकुट मनि तुम सम धन्य न कोउ। पिता के धन्य कहने से ही पुत्र के कुशल का कथन हो गया। यह दूत का पाण्डित्य है कि स्तुति करने में कुशल कह गया। अब धन्य का कारण कहने में दूसरे प्रश्न का उत्तर देता है। राम लषन नाम कहकर पहिचान कहा। महाराज ने स्वभाव पूछा था। वह रूप और गुण दोनों कहता है : बिस्वबिभूषण दोउ। विश्वविभूषण तो वही है जिसमें सम्पूर्ण सद्गुण हों।

पूछन जोगु न तनय तुम्हारे। पुरुषसिंह तिहुँ पुर उजिआरे॥
जिन्ह के जस प्रताप के आगे। ससि मलीन रबि सीतल लागे ॥१॥

अर्थ : आपके पुत्र पूछने के योग्य नहीं हैं। वे पुरुषों में सिंह हैं। तीनों लोक के प्रकाश हैं। जिनके यश के सामने चन्द्रमा मलिन मालूम होते हैं और प्रताप के सामने सूर्य ठण्ढे मालूम पड़ते हैं।

व्याख्या : अब दूत पहिचानहु तौ कहहु सुभाऊ का उत्तर देता है। यद्यपि स्वभाव के विषय में विश्वविभूषण कहकर बहुत कुछ लक्षित करा दिया है। पर इसी बात को राजा ने पूछा है। अतः विस्तार रूप से कह रहे हैं : उनकी ख्याति उनके आने के पहले ही पहुँच जाती है। फिर उनके देखने पर पहिचान पूछने की आवश्यकता नहीं रह जाती। लोग आप ही पहिचान जाते हैं। यथा : एक कहइ नृपसुत तेइ आली। सुने जे मुनिसँग आये काली। जिन्ह निज रूप मोहनी डारी। कीन्हें स्ववस नगर नर नारी। पुरुषसिंह के परिचय देने की आवश्यकता नहीं है। उनका प्रताप उन्हें पहिचनवा देता है। आपके पुत्र पुरुषसिंह हैं। यथा : पुरुष सिंह दोउ बीर हरषि चले मुनि भय हरन। उनके प्रकाश से सूर्य के प्रकाश की भाँति तीनों लोक प्रकाशित हैं। गुण पहिले कहा था। अब पुरुषसिंह तथा तिहुँपुर उजियारे कहकर प्रताप शौर्य बल और तेज का वर्णन करते हैं।

कहहु विदेह कवन विधि जाने का उत्तर देते हैं। काल के ध्वजभूत परम प्रकाशमान रवि शशि का परिचय नहीं देना पड़ता। प्रताप में उष्णता और यश में उज्ज्वलता मानी जाती है। सो इनके यश के सामने शशि की उज्ज्वलता कुछ भी नहीं है और न इनके प्रताप के आगे सूर्य की उष्णता ही कोई वस्तु है।

तिन्ह कहिं कहिअ नाथ किमि चीन्हे। देखिअ रवि कि दीप कर लीन्हे ॥
सीय स्वयंवर भूप अनेका। सिमिटे सुभट एक ते एका ॥२॥

अर्थ : हे नाथ! उनके लिए आप कहते हैं कि राजा ने कैसे चीन्हा? क्या हाथ में दीपक लेकर सूर्य भी देखे जाते हैं? सीता के स्वयंवर में अनेक राजा और एक से एक योद्धा जुटे थे।

व्याख्या : अन्धकार में पड़ी हुई वस्तु के चीन्हने : पहिचानने में दीप की आवश्यकता होती है। स्वयंप्रकाश सूर्य के चीन्हने में नहीं। निस्तेज लोगों के लिए पूछना पड़ता है। तेजस्वी तो स्वयं अपने तेज से पहिचाने जाते हैं।

सीय स्वयंवर कहकर दुलहिन का नाम बतलाते हैं। तेज कहने के व्याज से दूत सारी कथा कह रहे हैं। भाव यह कि स्वयंवर रूप का नहीं था। बलपरीक्षा का था। देव दनुज धरि मनुज सरीरा। विपुल बीर आये रन धीरा। मनुज शरीर धारण करने से दूतों ने स्वयंवर में आये हुए लोगों का दो ही विभाग किया : १. अनेक भूप और २. एक से एक सुभट।

संभु सरासन काहु न टारा। हारे सकल वीर वरिआरा ॥
तीनि लोक मँह जे भट मानी। सब कै सकति संभु धनु भानी ॥३॥

अर्थ : शिवजी का धनुष किसी का हटाया न हटा। सब बलवान् हार गये। तीनों लोक में जितने भटमानी थे सबकी शक्ति को शिवजी के धनुष ने कुण्ठित कर दिया।

व्याख्या : अनेक भूपों के लिए कहते हैं कि : संभु सरासन काहु न टारा। और एक से एक सुभट के लिए कहते हैं कि : हारे सकल वीर वरिआरा। राजा तो दस हजार चिपट गये थे। इसलिए उन्हें अनेक कहते हैं। पर सुभट एक दूसरे को गिनने वाले नहीं। अतः उनके लिए एक ते एका कहते हैं। भावार्थ यह कि न राजाओं का किया कुछ हुआ और न सुभटों का किया कुछ हुआ। शिवजी के धनुष के आगे त्रैलोक्य के वीरों की शक्ति कुण्ठित हो गई।

सकै उठाइ [1]सरासुर मेरू। सोउ हिय हारि गयउ करि फेरू ॥
जेइ कौतुक सिवसैल उठावा। सो तेहि सभा पराभव पावा ॥४॥

अर्थ : वाणासुर सुमेरु पर्वत को भी उठा सकता है। वह भी हिम्मत हारकर

---

१. यहाँ विशेषोक्ति अलङ्कार है।

परिक्रमा करके चला गया और जिसने खेल में कैलास उठाया था उसकी भी उस सभा में हार हुई।

व्याख्या : बाणासुर सुमेरु पर्वत के उठाने का सामर्थ्य रखता है। पर शिवधनु को देखकर उसका साहस छूट गया। उसने पूज्य बुद्धि से धनुष की परिक्रमा की और चला गया। रावण ने तो खेल में कैलास पर्वत उठा लिया था। ग्रन्थकार ने कैलास न कहकर सिवसैल कहा। भाव यह कि कैलास पर स्वयं शिवजी भी सशक्ति, साङ्ग, सायुध विराजमान थे। फिर भी रावण ने खेल में उठा लिया। यथा : पुनि नभ सर मम कर निकर। कर कमलन्हि पर वास। सोभित भयउ मराल इव संभु सहित कैलास। तथा : कौतुकही कैलास पुनि, लीन्हेसि जाइ उठाइ। उसकी भी हार हुई।

दो. तहाँ राम रघुबंस मनि, सुनिअ महा महिपाल।
भंजेउ चाप प्रयास बिनु, जिमि गज पंकज नाल ॥२९२॥

अर्थ : हे महाराज ! सुनिये, वहाँ रघुवंशमणि राम ने बिना प्रयास के धनुष को तोड़ डाला। जैसे हाथी कमल के नाल को तोड़ डाले।

व्याख्या : उस सभा में सबके सामने रघुवंश की प्रतिष्ठा को स्थापित करते हुए रामजी ने अप्रयासेन धनुष को तोड़ा। अप्रयास को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि जिस भाँति गज को कमलनाल के तोड़ने में कोई परिश्रम नहीं उसी भाँति रामजी को भी कोई आयास नहीं हुआ। यथा : लेत चढ़ावत खैंचत गाढ़े। काहु न लखा देख सब ठाढ़े। महा महिपाल की भी शोभा मणि से होती है। इसलिए रामजी का विशेषण रघुवंसमनि दिया।

सुनि सरोष भृगुनायकु आए। बहुत भाँति तिन्ह आँखि देखाए ॥
देखि राम बलु निज धनु दीन्हा। करि बहु बिनय गवन बन कीन्हा ॥१॥

अर्थ : सुनकर रुष्ट होते हुए परशुरामजी आये और बहुत प्रकार से आँख दिखाया। रामजी के बल को देखकर अपना धनुष दे दिया और बहुत प्रकार से विनय करके वन चले गये।

व्याख्या : परशुरामजी को धनुषभङ्ग का समाचार पाकर बड़ा क्रोध हुआ। क्रोध से भरे हुए वहाँ आये और बहुत प्रकार से आँख दिखाया अर्थात् डराया धमकाया। १. शब्द से यथा : कहु जड़ जनक धनुष केइ तोरा। २. चितवन से यथा : सहजहु चितवत मनहुँ रिसाते। ३. वेष से यथा : कटि मुनि वसन तून दुइ बाँधे। करसर धनु कुठार कल काँधे। ४. इङ्गित से यथा : बोले चितइ परसु की ओरा। ५. शस्त्र सुधारकर यथा : सुनि कटु वचन कुठार सुधारा। तथा ६. शस्त्र उठाकर यथा : भृगुपति बकहिं कुठार उठाये। जब रामजी का दिव्य बल देखा। यथा : देत चाप आपुहि चलि गयऊ। तो अपना धनुष दे दिया। अर्थात् अपना कार्य रामजी को सौंप दिया। समझ लिया कि अब मेरी आवश्यकता संसार को नहीं है।

बहुत सी विनती करके अपराध क्षमा कराया : परशुरामजी का विनय करना असाधारण बात थी। और तपस्या के लिए वन चले गये। सदा के लिए क्षात्र स्वभाव का परित्याग कर दिया।

राजन रामु अतुल बल जैसें। तेज निधान लषनु पुनि तैसें ॥
कंपहिं भूप बिलोकत जाकें। जिमि गज हरि किसोर के ताकें ॥२॥

अर्थ : राजन् ! जिस भाँति रामजी अतुलबल हैं वैसे ही लक्ष्मणजी तेज निधान हैं। जिनके ताकने से राजा लोग ऐसे काँप उठते हैं जैसे हाथी सिंह के बच्चे के ताकने से काँप उठें।

व्याख्या : परशुरामजी के पराजय से यह बात सिद्ध हो गई कि रामजी के जोड़ का कोई बली नहीं है जिससे उनके बल की तुलना की जाय। वैसे ही लक्ष्मण के तेज की तुलना नहीं है। यहाँ राजा जनक के बीर विहीन मही मैं जानी। कहने पर बिगड़ खड़े हुए। प्रलय करने को तैयार हो गये। यथा : कंदुक इव ब्रह्मांड उठावौं। काँचे घट जिमि डारौं फोरी। सकौं मेरु मूलक इव तोरी। परशुरामजी का तेज इन्हीं के तेज के सामने दबा। यथा : वहइ न हाथ दहै रिसि छाती। भा कुठार कुंठित नृप घाती। इनकी भौंह चढ़ने पर राजमण्डल में कँपकँपी पड़ जाती है। जैसे सिंह के बच्चे के ताकने से हाथियों का यूथ कम्पायमान हो उठता है। यथा : कुँअर चढ़ाई भौंहें अब को बिलोकै सौंहें। गीतावली। तथा : अरुन नयन भृकुटि कुटिल चितवत नृपन्ह सकोप। मनहु मत्त गजगन निरखि, सिंह किसोरहिं चोप।

देव देखि तव बालक दोऊ। अब न आँखि तर आवत कोऊ ॥
दूत बचन रचना प्रिय लागी। प्रेम प्रताप बीर रस पागी ॥३॥

अर्थ : हे देव ! आपके दोनों बालकों को देखकर अब कोई आँख में जँचता नहीं। दूत के वचन की रचना प्रिय लगी। क्योंकि वह प्रेम, प्रताप और वीर रस से पगी थी।

व्याख्या : देव सम्बोधन से नरदेव अभिप्रेत हैं। दूत कहते हैं कि आपके दोनों बालकों के देखने के पहिले अपेक्षाकृत गुणरूप का उत्कर्ष दृष्टिगोचर होता था। पर जब से उनको देखा है तब से संसार में कोई दृष्टि में जँचता ही नहीं। सबके रूप और गुण तुच्छ मालूम पड़ते हैं। इनके देखने पर यह बात मन में ही नहीं आती कि इनसे बढ़कर के भी कोई हो सकता है।

महाराज दशरथ के प्रश्नों के उत्तर देने में जो वचन दूतों ने कहे उसकी रचना ऐसी सुन्दर थी कि सबको प्रिय लगी। प्रिय लगने का कारण कहते हैं कि वह रचना, प्रेम प्रताप और वीर रस से ओतप्रोत थी। प्रेम यथा : देव देखि तव बालक दोऊ। अब न आँख तर आवै कोऊ। प्रताप : जिन्हके जस प्रताप के आगे। ससि मलीन रवि सीतल लागे। वीर रस : राजन राम अतुल बल जैसे। तेज निधान लषन पुनि तैसे। कंपहिं भूप बिलोकत जाके। जिमि गज हरि किसोर के ताके।

सभा समेत राउ अनुरागे। दूतन्ह देन निछावरि लागे॥
कहि अनीति तें मूदहिं काना। धरमु विचारि सबहि सुखु माना॥४॥

अर्थ : सभा के समेत महाराज प्रेम में पग गये। दूतों को निछावर देने लगे। अनीति है ऐसा कहकर उन्होंने कान ढक लिये। धर्म विचारकर सबने सुख माना।

व्याख्या : रचना ऐसी प्रिय लगी कि सभा समेत स्वयं महाराज अनुराग में आगये। शुभ सन्देश सुनानेवाले को निछावर मिलने का नियम है। यथा : प्रथम जाइ जिन वचन सुनाये। भूपन वसन भूरि तिन पाये। सो सब निछावर देने लगे। जिस दूत को निछावर देने लगते हैं वही कान पर हाथ रखता है। अर्थात् निछावर लेना स्वीकार नहीं करता और कहता है कि यह अनीति है। भाव यह कि हम कन्यापक्ष के हैं। हम लेने के अनुकूल कोई युक्ति सुन नहीं सकते। बात अप्रसन्न होने की थी। क्योंकि ऐसे अवसर के निछावर अस्वीकार करने का अर्थ यह होता है कि यह उत्सव उसे प्रिय नहीं है। इसलिए जिन्हें अर्थ की आवश्यकता नहीं है वे भी लेने को आगे आजाते हैं। यथा : राम निछावर लेन को हठि होत भिखारी। निछावर के अस्वीकार करने का सामर्थ्य किसे है ? परन्तु इस अस्वीकार से सबको सुख हुआ। सब लोग दूतों की धार्मिकता तथा स्वामिभक्ति पर प्रसन्न हो गये।

दो. तब उठि भूप वसिष्ठ कहुँ, दीन्हि पत्रिका जाइ।
कथा सुनाई गुरहिं सब, सादर दूत बोलाइ॥२९३॥

अर्थ : तब राजा ने उठकर वसिष्ठजी को जाकर पत्रिका दी और आदर के साथ दूतों को बुलाकर सब कथा सुनाई।

व्याख्या : बारात ले चलनी है। गुरुजी से मुहूर्त पूछना है। अतः वसिष्ठजी को पत्रिका देने के लिए महाराज स्वयं उठकर उनके पास गये। गुरुजी के प्रसाद से ही यह मङ्गल सुलभ हुआ है। रामजी के जन्म के लिए भी इसी भाँति गये थे। यथा : गुरु गृह गयउ तुरत महिपाला। दूतों को भी सादर बुलवा लिया। क्योंकि दूतों के आदर से महाराज जनक का आदर है। गुरुजी से सब निवेदन करना है। कोई बात छूटने न पावे। यदि कोई बात गुरुजी ऐसी पूछें जो महाराज को न मालूम हो। इसलिए दूतों का वहाँ रहना आवश्यक था। सब कथा : यथा : दलि ताड़का मारि निसिचर मखराखि विप्रतिय तारी। दै विद्या लै गये जनकपुर है गुरु संग सुखारी। करि पिनाकपन सुता स्वयंवर सजि नृप कटक बटोर्‌यो। राज सभा रघुवर मृनाल ज्यौं संभु सरासन तोर्‌यौ।

सुनि बोले गुर अति सुखु पाई। पुन्य पुरुष कहुँ महि सुख छाई॥
जिमि सरिता सागर महु जांहीं। जद्यपि ताहि कामना नांहीं॥१॥

अर्थ : सुनकर मुनिजी बहुत सुख पाकर बोले कि पुण्यात्मा के लिए

पृथ्वी सुख से छाई हुई है। जैसे नदियाँ समुद्र में जाती हैं। यद्यपि समुद्र को चाह नहीं है।

व्याख्या : सब कथा सुनकर वसिष्ठजी को अत्यन्त सुख हुआ। जब वर्णनातीत सुख होता है तो उसे अति सुख कहते हैं। यथा : अति सुख लह्यो न जाय बखानी। शिष्य के परम कल्याण से गुरु को अति सुख होता है। मुनिजी ने कहा कि पुण्य ही सुख का कारण है। जिसका जितना पुण्य होता है वह उतना सुख पाता है। तुम पुण्यात्मा हो। तुम्हारे लिए पृथ्वी सुख से छाई हुई है। पृथ्वी यही है। पर यही पुण्यात्मा को सुखमय और पापात्मा को दुःखमय मालूम होती है। यथा : सुख चाहहिं मूढ़ न धर्मरता। समुद्र जल का निधान है। उसे अधिक जल की आवश्यकता नहीं है। पर नदियों के लिए दूसरा स्थान नहीं है। वे जा जाकर अपना जल दिनरात समुद्र में ही गिराया करती हैं। सैकड़ों कोस के मरुस्थल पड़े हैं। जहाँ जल की बड़ी ही कमी है। पर नदियाँ उधर उन्मुख ही नहीं होतीं।

तिमि सुख संपति बिनहि बोलाये। धरमसील पहिं जाहिं सुभाये॥
तुम्ह गुरु विप्र धेनु सुर सेवी। तसि पुनीत कौसल्या देवी॥२॥

अर्थ : उसी भाँति सुखसम्पत्ति बिना बुलाये ही धर्मशील के पास स्वभाव से ही जाती है। तुम गुरु, विप्र, गाय और देवताओं के सेवक हो और कौसल्या देवी भी वैसी ही पवित्र हैं।

व्याख्या : वैसे ही पुण्यात्मा सुख से पूर्ण रहते हैं। उन्हें सुख का घाटा नहीं रहता। फिर भी सुख सम्पत्ति को तो दूसरा स्थान ही नहीं है। उन्हें तो पुण्यात्मा के यहाँ जाना ठहरा। यही इनका स्वभाव है चाहे उसे कामना हो चाहे न हो। तुम तो लड़के कुशल से घर लौट आवें इतने में ही सन्तुष्ट थे। इससे अधिक चाहते भी नहीं थे। परन्तु बालकों ने इतना बड़ा यश प्राप्त किया। महाराज जनक से सम्बन्ध हुआ। यह सब सुख तो बिना बुलाये ही तुम्हारे पास आये। गुरु, विप्र, गाय और देवता का सेवक होना ही पुण्यात्मा का लक्षण है। सो सभी तुममें है। तुम्हारी पट्टाभिषिक्ता महिषी कौसल्या देवी भी वैसी ही पुण्यात्मा हैं। फिर तुमलोगों को ऐसा सुख क्यों न हो।

सुकृती तुम्ह समान जग मांहीं। भयउ न है कोउ होनेउ नांहीं॥
तुम्ह तें अधिक पुन्य बड़ काकें। राजन राम सरिस सुत जाकें॥३॥

अर्थ : राजन्! तुम्हारे ऐसा पुण्यात्मा जगत् में न तो कोई हुआ न है और न होनेवाला है। तुमसे अधिक पुण्य किसका है जिसको रामजी के सदृश पुत्र हैं।

व्याख्या : पुण्य पाप दोनों होने से ही मनुष्यजन्म मिलता है परन्तु तुममें तो पाप का लेश भी नहीं है। यथा : प्रभु आयसु बहु विधि प्रतिपाला। दंपति धरम आचरन नीका। अजहुँ गाव श्रुति जिन्हकै लीका। पंथ जात सोहहिं मति धीरा। ज्ञान भगति जनु धरे सरीरा। तुम्हारा जन्म तो वरदान से हुआ है नहीं तो तुम्हारे

ऐसा पुण्यात्मा इस जगत् में जन्म कैसे ग्रहण कर सकता है ? जिसको राम सा बेटा है उसके पुण्य का क्या ठिकाना ? यथा : जासु सनेह संकोच वस राम प्रकट भये आइ। जे हर हिय नयनन्हि कबहुँ निरखे नहीं अघाय। सुकर्म से ही सुकृती अपने को पावन परमपद पर चढ़ा ले जाता है।

वीर विनीत धरम व्रत धारी। गुन सागर वर बालक चारी ॥
तुम्ह कहँ सर्व काल कल्याना। सजहु बरात बजाइ निसाना ॥४॥

अर्थ : तुम्हारे चारों बालक वीर विनीत और धर्मव्रत के धारण करनेवाले हैं। तुम्हारा सब काल में कल्याण है। डंका देकर बरात साजो।

व्याख्या : तुम चार के सेवक हो १. गुरु के २. विप्र के ३. गाय के और ४. देवता के। इसलिए चार गुणों से युक्त तुम्हें चार पुत्र हैं। वे १. वीर हैं २. विनीत हैं ३. धर्मव्रतधारी हैं और ४. गुणसागर हैं। यथा : चारिउ रूप सील गुन धामा। तदपि अधिक सुख सागर रामा। जो वीर होते हैं वे उद्दण्ड होते हैं। विनयी नहीं होते। धर्मव्रतधारी नहीं होते। नर सहस्र महँ सुनहु पुरारी। कोउ एक होइ धर्म व्रतधारी। धर्मव्रतधारी होने पर भी गुणसागर होना महा दुर्लभ है। तुम्हारे बालकों में चारों गुण हैं।

तुम्हारी बात असाधारण है। तुम्हारे लिए शुभाशुभ मुहूर्त का विचार नहीं है। गुरुजी समझ गये कि राजा स्वयं यह सम्वाद देने आया है बारात ले चलने का मुहूर्त पूछने के लिए। अतः कहते हैं कि तुम्हें सर्वकाल में कल्याण है और आज्ञा देते हैं कि निर्भय होकर बारात साजो।

दो. चलहु वेगि सुनि गुर वचन, भलेहि नाथ सिरु नाइ।
भूपति गवने भवन तब, दूतन्ह वासु देवाइ ॥२९४॥

अर्थ : जल्दी करो। ऐसा गुरु का वचन सुनकर राजा ने कहा नाथ ! बहुत अच्छा और नमस्कार करके राजा घर गये। दूतों के ठहरने की व्यवस्था कर दी।

व्याख्या : गुरुजी ने शीघ्रता करने की आज्ञा दी। इधर से दूत भेजने में देर न हुई। यथा : पठए दूत बोलि तेहि काला। अतः तुम्हें भी बारात ले चलने में देर न करनी चाहिए। अथवा शुभ मुहूर्त भी सन्निकट है। इसलिए शीघ्रता करो। महाराज गुरुजी की आज्ञा को ही सब कुछ मानते हैं। अतः तुरन्त प्रणाम किया और घर चले बारात की तैयारी के लिए। दूतों के लिए ठहरने की व्यवस्था कराके तब घर गये। यह महाराज की सावधानी है।

राजा सबु रनिवास बोलाई। जनक पत्रिका बाँचि सुनाई ॥
सुनि संदेसु सकल हरषानीं। अपर कथा सब भूप बखानीं ॥१॥

अर्थ : राजा ने सब रानियों को बुलाया। जनकराज की चिट्ठी पढ़ सुनाई। सन्देश सुनकर सब हर्षित हुईं और सब कथा महाराज ने वर्णन की।

व्याख्या : स्त्रीद्विजावमान्य गच्छतो मरणम् । स्त्री और ब्राह्मण का अपमान करके जानेवाले का मरण होता है। अतः यात्रा के पहिले स्त्री और ब्राह्मण का सत्कार होना चाहिए। अतः स्त्रियों के सत्कार के लिए रनिवास में गये। वहाँ जाने पर सब रानियों को बुलवाया। पृथक् पृथक् सबके यहाँ जाने का समय नहीं है। सबके आजाने पर राजा जनक की चिट्ठी पढ़ सुनाई। बारात लेकर आने की प्रार्थना राजा जनक ने की है। रामजी ही शिवधनुभङ्ग में समर्थ हुए। अतः राजा जनक की ज्येष्ठ कन्या सीताजी ने उनका वरण किया है। चिट्ठी की वचनरचना बड़ी सुन्दर है, बड़ी प्रिय है। दूत वचन रचना प्रिय लागी। चिट्ठी के लिए क्या कहना है। रानी कौसल्या के महल में चिट्ठी की चौथी आवृत्ति हुई। रामजी कौसल्या रानी की भाँति ही सब माताओं से प्रेम करते हैं। यथा : कौसल्या सम सब महतारी। रामहिं सहज सुभाव पियारी। अतः सबका वात्सल्य समान रूप से रामजी पर है। उनके विवाहोत्सव का समाचार सुनकर सब प्रसन्न हुईं। अपर कथा जो दूत के मुख से सुनी थी : सब राजाओं का पराभव, बाणासुर और रावण की हार और परशुरामजी के पराजय आदि की कथा महाराज ने स्वयं वर्णन की।

प्रेम प्रफुल्लित राजहिं रानी। मनहु सिखिनि सुनि बारिद बानी॥
मुदित असीस देहिं गुर नारी। अति आनंद मगन महतारी॥२॥

अर्थ : प्रेम से फूली हुई रानियाँ ऐसी शोभित हैं जैसे बादल के शब्द सुनकर मोरनियाँ फूल उठती हैं। बड़ों की स्त्रियाँ प्रसन्न होकर आशीर्वाद दे रही हैं और माताएँ अत्यन्त आनन्द में मग्न हैं।

व्याख्या : प्रेम से पुलकित हो उठी हैं। इसलिए प्रफुल्लित कहा। रानियाँ स्वभाव से ही शोभायमान हैं। प्रफुल्लित होने से शोभा और भी बढ़ गई है। यह सात सौ रानियों का हाल ग्रन्थकार कहते हैं। गुरुनारी अर्थात् कुलमान्य जठेरी प्रसन्न होकर आशीर्वाद देती हैं। राम लक्ष्मण की कीर्ति और करणी का प्रकरण है। इसलिए महतारी से कौसल्या और सुमित्रा का ग्रहण है। कैकेयी भरतजी से अधिक रामजी को मानती हैं। यथा : भरत न मोहि प्रिय राम समाना। सदा कहहु यह सब जग जाना। इसलिए कैकेयी का भी ग्रहण है। ये तीनों तो आनन्द में डूबाडूब हैं। बोलने में असमर्थ हैं। अतः

लेहिं परसपर अति प्रिय पाती। हृदय लगाइ जुड़ावहिं छाती॥
राम लषन कै कीरति करनी। बारहिं बार भूपवर बरनी॥३॥

अर्थ : वे दूसरे से अत्यन्त प्यारी चिट्ठी को ले लेती हैं और उसे हृदय में लगाकर छाती शीतल करती हैं। राम लक्ष्मण की कीर्ति और करणी को बार बार राजाओं में श्रेष्ठ दशरथजी ने वर्णन किया।

व्याख्या : उस पत्री में अतिप्रिय का शुभ संवाद है। अतः वह पत्री अतिप्रिय है। चिट्ठी को आधा मिलन कहा गया है। अतः चिट्ठी को रामविरह सन्तप्त हृदय

में लगाकर उसे शीतल करती हैं। महाराज वह कथा जो चिट्ठी में नहीं है सो कह चुके हैं। फिर भी वह कीर्ति और उसका कारण करणी ऐसी अलौकिक है कि न वह एकबार में ठीक तरह से कही जा सके और न सुननेवाले के मन में बैठ सके। अथवा उसी कीर्ति और करणी के कहने में महाराज को आनन्द और सुनने में रानियों को आनन्द है। इसलिए बारम्बार कही।

मुनि प्रसाद कहि द्वार सिधाए। रानिन्ह तब महिदेव बोलाए॥
दिए दान आनंद समेता। चले विप्रवर आसिष देता॥४॥

अर्थ : यह सब मुनिजी की कृपा है ऐसा कहकर राजा महल से बाहर चले गये। तब रानियों ने ब्राह्मणों को बुलाया। आनन्दसहित अनेक दान दिये। वे श्रेष्ठ ब्राह्मण आशीर्वाद देते चले।

व्याख्या : महल में अधिक देर तक नहीं ठहरे। गुरुजी की आज्ञा हो चुकी है। यथा : चलहु वेगि सुनि गुरु वचन भलेहिं नाथ सिर नाय। मुनि के प्रसाद से ही यह सब हो रहा है। उन्होंने पहिले ही कहा था : धरहु धीर होइहैं सुत चारी। त्रिभुवन विदित भगत भय हारी। अतः यह कीर्ति और करणी उनकी है। सुत की नहीं है। मुनिजी का प्रसाद है। यही बात महाराज ने रानियों से अपने संवाद के उपसंहार में कही और बारात की व्यवस्था करने बाहर के खण्ड में चले आये।

आनन्द के समाचार की प्राप्ति पर दान देना चाहिए। इसलिए रानियों ने दान पात्र ब्राह्मणों को बुलाया और सात्त्विक दान दिया। अयोध्या ऐसा पुनीत देश है। पुत्रोद्वाह की उपस्थिति का काल है। विप्रवर से श्रोत्रिय ब्राह्मण अभिप्रेत हैं। यथा : वेदपाठी भवेद्विप्रः। आनन्द के सहित दान दे रही हैं। अतः यह दान सब प्रकार से सात्त्विक है। यथा : दातव्यमिति यद्दानं दीयतेऽनुपकारिणे। देशे काले च पात्रे च तद्दानं सात्त्विकं स्मृतम्। भगवद्गीता। दान से सन्तुष्ट होकर ब्राह्मण आशीर्वाद देते चले। परोक्ष में भी आशीर्वाद देते हैं। इसलिए आशिष देते चलना कहा।

दो. जाचक लिए हँकारि, दीन्ह निछावर कोटि विधि।
चिर जीवहु सुत चारि, चक्रवर्ति दसरत्थ के॥२९५॥

अर्थ : मँगतों को बुलवा लिया और करोड़ों प्रकार की निछावरें कीं। वे भी आशीर्वाद देते चले। चक्रवर्ती दशरथ के चारों पुत्र चिरञ्जीव हों।

व्याख्या : दान के अधिकारियों को दान दिया गया। दूसरी श्रेणी के पात्र दीन और अनाथ : याचक लोग हैं। इन्हें निछावर दिया जाता है। महाराज दशरथ के यहाँ दीन का आदर है। उन्हें बुलावा जाता है। अतः वे बुलाये गये। सात सौ रानियाँ हैं। अतः कोटि विधि से निछावर का होना कहते हैं। अथवा निछावर की कोटि : प्रकार विधि से हुई। यथा : पहिले ताटकावध की निछावर

हुई। तब मखसंरक्षण की निछावर। तब धनुषभङ्ग की निछावर। तब जयमाल ग्रहण की निछावर। तब परशुरामविजय की निछावर हुई।

कहत चले पहिरे पट्ट नाना। हरषि हनें गहगहे निसाना ॥
समाचार सब लोगन्ह पाए। लागे घर घर होन बधाए ॥१॥

अर्थ : ऐसा कहते हुए अनेक प्रकार के कपड़े पहने हुए चले और हर्षित होकर गहगहे डङ्के बजाये। सब लोगों को समाचार मिला तो घर घर बधाइयाँ बजने लगीं।

व्याख्या : याचक लोग अनेक प्रकार के कपड़े पहने हुए हैं जो उन्हें निछावर में मिले हैं। चिरजीवहु सुतचारि चक्रवर्ति दशरत्थ के ऐसा कहते हुए चले। दाता की प्रीति के लिए उन्होंने निछावर में मिले हुए वस्त्रालङ्कारों को तुरन्त धारण कर लिया। केवल कपड़े ही नहीं पाये। नाना भाँति से निछावर हुई है। राजोपचार तक की निछावर हुई। घोड़े, हाथी, डंका, निशान सभी कुछ निछावर में मिला है। अतः डङ्का देकर चले। हने गहगहे निसाना। यहाँ हने शब्द का सिवा जाचक शब्द के दूसरा कोई शब्द कर्त्तारूप में उपलब्ध नहीं होता और अर्थ भी बैठ जाता है। अतः याचकों ने डङ्के बजाये यही अर्थ करना होगा। जन्मकाल में याचक स्वयं आये। यथा : तेहि अवसर जो जेहि बिधि आवा। दीन्ह भूप जो जेहि मन भावा। इस बार उन्हें बुलाया गया।

याचकों के इस भाँति डङ्का बजाकर चलने पर सब लोगों को समाचार लग गया। अथवा रानियों का समाचार लिखकर तत्र पुर लोगों का समाचार लिखते हैं। राजा और प्रजा की सम्पत्ति एक है। अति घनिष्ठ प्रीति है। धर्मनियन्त्रित राजतन्त्र में ही ऐसी प्रीति सम्भव है। प्रजा इतनी आनन्दित हुई मानो उन्हीं के घर विवाहोत्सव है। घर घर बधाये बजने लगे।

भुवन चारि दस भरा[1] उछाहू। जनकसुता रघुबीर बिआहू ॥
सुनि सुभ कथा लोग अनुरागे। मग गृह गली सँवारन लागे ॥२॥

अर्थ : चौदहों भुवनों में उछाह भर गया कि जनक की बेटी और रघुवीर का व्याह है। यह शुभ कथा सुनकर लोगों में अनुराग बढ़ा। रास्ता, घर और गली सँवारने लगे :

व्याख्या : चौदह भुवन का अयोध्या से सम्बन्ध है। यथा : भुवन चारि दस भूधर भारी। सुकृत मेघ बरखहि सुखबारी। रिधि सिधि संपति नदी सुहाई। उमगि अवध अंबुधि कहँ धाई। अतः सभी जगह समाचार फैल गया और सभी महाराज दशरथ से प्रेम करते हैं। यथा : नृप सब रहहिं कृपा अभिलाषे। लोकप करहिं प्रीति रुचि राखे। अतः सबके हृदय में आनन्द उमगा। इस भाँति चौदह भुवन में उछाह भर गया। जनकजी की भी कीर्ति की ख्याति सारे संसार में है। अतः इस

---

१. यहाँ अधिक : द्वितीय अलङ्कार है।

विवाह से सबको हर्ष हुआ। श्रीरामजी की ख्याति वीररूप से त्रैलोक्य में हो चुकी है। अतः रघुवीर कहते हैं। पिता का नाम नहीं लेते। जगदम्बा जानकीजी के रूप की ख्याति भी त्रैलोक्य में है। पर जनक की पुत्री करके ही ख्याति है। अतः कहते हैं : जनक सुता रघुवीर बिवाहू।

विवाह की कथा है। इसलिए शुभ कथा कहते हैं। लोग तो अनुरक्त हुए हैं। पर इस सम्बन्ध के समाचार से अनुराग और बढ़ा। सबका घर सड़क और गली के बीच में है। अतः मग गृह गली का सँवारना उसी क्रम से लिखते हैं।

जद्यपि अवध सदैव सुहावनि। रामपुरी मंगलमय पावनि॥
तदपि प्रीति कै रीति सुहाई। मंगल रचना रची बनाई॥३॥

अर्थ : यद्यपि अयोध्यापुरी नित्य ही सोहावनी है। रामजी की पुरी मङ्गलमयी और पवित्र करनेवाली है। फिर भी प्रीति की रीति सुन्दर होती है। मङ्गल रचना सँवारकर रची गई है।

व्याख्या : यह संशय न हो कि अवध और समयों में असंस्कृत ही रहता था। अतः ग्रन्थकार कहते हैं कि अवध तो सदा देखने में सोहावन और सेवन करने में पावन है। यथा : पहुँचे दूत रामपुर पावन। हरखे नगर बिलोकि सोहावन। अवध का सम्बन्ध रामजी से वैसा ही है जैसा दिन का सम्त्रन्ध सूर्य से होता है। यथा : अवध तहाँ जहँ राम निवासू। तहँइ दिवस जहँ भानु प्रकासू। अतः अवध को रामपुरी कहा। अथवा राजा जनक के दूत रामपुरी की भावना से अवध में आये हैं। उसके वर्णन में भी अवध का रामपुरी कहकर वर्णन करते हैं। स्वयं रामजी मङ्गलभवन अमङ्गलहारी हैं। अतः उनकी पुरी मंगलमय पावनि है। रामजी के नाम रूप लीला धाम सब मङ्गलमय, पावन और सोहावन हैं। नाम मङ्गलमय यथा : मंगल भवन अमंगल हारी। उमा सहित जेहि जपत पुरारी। रूप मंगलममय यथा : मंगलभवन अमंगलहारी। द्रवहु सो दशरथ अजिर बिहारी। लीला मंगलमय यथा : जासु सकल मंगलमय कीरति। धाम मंगलमय यथा : रामपुरी मंगलमय पावनि। नाम पावन यथा : सुमिरि पवनसुत पावन नामू। रूप पावन यथा : मंगलमय अति पावन पावन। लीला पावन यथा : रघुवीर चरित पुनीत निसिदिन दास तुलसी गावइ। धाम पावन यथा : रामपुरी मंगलमय पावनि। नाम और लीला सोहावन यथा : राम नाम गुन चरित सोहाए। रूप सोहावन यथा : स्याम सरीर सुभाव सुहावन। धाम सोहावन यथा : हरखे नगर बिलोकि सोहावन। अतः रामपुरी में मङ्गलरचना की आवश्यकता नहीं है। गङ्गाजी के मार्जन की कौन आवश्यकता है। फिर भी प्रीति का यह आनन्द है कि प्रेमपात्र के मङ्गल उपस्थित होने पर मङ्गल रचना बनाई जाती है। जहाँ प्रीति की प्रीति पाठ है वहाँ पहिले प्रीति शब्द का अर्थ प्रेम और दूसरे प्रीति शब्द का अर्थ आनन्द है। वैर में भी पलटा लेने का आनन्द है। पर वह आनन्द सोहावना

नहीं है। प्रीति का आनन्द सोहावना है। उसमें मङ्गलरचना सँवारकर रची जाती है। उसी को स्पष्ट करते हुए कहते हैं :

ध्वज पताक पट चामर चारू। छावा परम विचित्र बजारू ॥
कनक कलस तोरन मनि जाला। हरद दूब दधि अच्छत माला ॥४॥

अर्थ : ध्वजा पताका, सुन्दर वस्त्र और चँवर से छाया हुआ बाजार परम विचित्र हो रहा था। सोने के कलश, मणिजाल का तोरण, हलदी, दूब, अक्षत और माला द्वारा।

व्याख्या : जन्मोत्सव के समय में कहा है : ध्वज पताक तोरन पुर छावा। कहि न जाइ जेहि भाँति बनावा। वैसा ही इस उत्सव के समय भी मनाया जा रहा है। पर जन्मोत्सव से विवाहोत्सव की रचना में विशेषता होती है। अतः कनक कलस तोरन मनि जाला। लिखकर विशेषता भी दिखलाते हैं। बाजार का साज कहकर घर का साज कहते हैं। बाजार की मङ्गलरचना दूसरे प्रकार की और घरकी दूसरे प्रकार की होती है। हलदी, दही, अक्षत, माला आदि प्रयोग घर की मङ्गलरचना में होता है।

दो. मंगलमय निज निज भवन, लोगन्ह रचे बनाइ।
वीथीं सींचीं चतुरसम, चौके चारु पुराइ ॥२९६॥

अर्थ : लोगों ने अपने घरों को सँवारकर मङ्गलमय बनाया। सुन्दर चौके पुराकर चतुरसम से गलियों को सींचा।

व्याख्या : यहाँ महाजनों को आज्ञा देनी नहीं पड़ी। आपसे आप लोगों ने अपना अपना घर मङ्गलमय बनाया। खूब सँवारकर रचना की। घर सँवारकर लोगों ने बाहर चौके पुराये। गलियाँ चतुरसम : चार प्रकार के सुगन्धित द्रव्य को एकत्रित करके चतुरसम बनाते हैं से सींची गईं।

जहँ तहँ जूथ जूथ मिलि भामिनि। सजि नव सप्त सकल दुति दामिनि ॥
बिधुबदनी मृगसावक लोचनि। निज सरूप रति मान बिमोचनि ॥१॥

अर्थ : जहाँ तहाँ झुण्ड की झुण्ड स्त्रियाँ मिलकर सोलह शृङ्गार करके गान करने लगीं। सबके अङ्ग की प्रभा बिजली सी, मुख चन्द्रमा सा, आँखें मृग के बच्चों सी थी। अपने रूप से रति के अभिमान को मिटानेवाली थीं।

व्याख्या : घरों का वर्णन करके अब घरवालियों का वर्णन करते हैं। कुरूपता भी पाप का फल है। अवध के नर नारी कृतार्थरूप हैं। यथा : उमा अवधवासी नर, नारि कृतारथरूप। अथवा : मनिगन पुर नर नारि सुजाती। सुचि अमोल सुन्दर सब भाँती। अतः स्त्रियों की सुन्दरता देखकर रति का अभिमान टूटता था। क्योंकि सभी चन्द्रवदनी और मृगनयनी थी। मुख की शोभा कहकर सर्वाङ्ग की शोभा कहते हैं कि उसमें बिजली सी चमक है। तिस पर सोलहों शृङ्गार कर रक्खे

हैं। यथा : प्रथम अंग सुचि एक विधि मज्जन दुतिय बखानि। अमल वसन पहिरन तृतिय जावक चारि सुजानि। १। पंचम केस सँवारियो षष्ठहि माँग सिंदूर। भाल खौरि सप्तम कहत अष्टचिबुक तिलपूर। २। मेहदी कर पद रचन नव दसम अरगजा अंग। ग्यारह भूषन नग जटित बारह पुष्प प्रसंग। ३। वासराग मुख तेरहो चौदह रँगिवो दाँत। अधर राग गनि पंचदस कज्जल षोडस भाँत। ४।

गावहि मंगल मंजुल बानी। सुनि कलरव कलकंठि लजानी ॥
भूप भवन किमि जाइ बखाना। विस्व विमोहन रचेउ विताना ॥२॥

अर्थ : मनोहर वाणी से मङ्गलगान करने लगीं। सुन्दर स्वर को सुनकर कोयल लज्जित हो उठी। राजा के घर का कैसे वर्णन किया जाय जहाँ संसार को मोहन करनेवाला मण्डप छाया गया था।

व्याख्या : मङ्गलगान करने लगीं। उनका स्वर इतना मनोहर है कि कोयल लज्जित हो जाँय। जनकपुर के वर्णन में कहते हैं : जूथ जूथ मिलि सुमुखि सुनयनी। करहि गान कल कोकिल वयनी और यहाँ कहते हैं : सुनि कलरव कलकंठ लजाहीं। यहाँ मामला बढ़ा हुआ है। सोलहों श्रृंगार कर रक्खे हैं। शरीर की द्युति भी दामिनी सी है। वहाँ एक अर्धाली में वर्णन है। यहाँ तीन अर्धाली में वर्णन करके तिगुना उत्सव कहा।

जब प्रजाओं के घर में इतनी सजावट और आमोद प्रमोद है तब राजा के घर का क्या वर्णन किया जा सकता है ? वहाँ विश्वविमोहन मण्डप साजा गया है। जनकपुर के मण्डप का तो वर्णन किया। पर यहाँ के मण्डप का वर्णन हो नहीं सकता। वहाँ का मण्डप देखकर ब्रह्मदेव भूल गये कि कदली के खम्भे आदि असली हैं कि बनावटी हैं। पर यहाँ तो विश्व विमोहन वितान रचा गया है। जिसे देखकर अपने शरीर का एकदम सँभाल नहीं रह जाता। मोह की परिभाषा ही यही है कि जहँ आपने शरीर को नेकु न रहै सँभार। यहाँ तो वितान के देखने से विमोह होता है।

मङ्गल द्रव्य मनोहर नाना। राजत बाजत विपुल निसाना ॥
कतहुँ विरद वंदी उच्चरहीं। कतहुँ वेदधुनि भूसुर करहीं ॥३॥

अर्थ : अनेक प्रकार के मनोहर मङ्गल द्रव्य शोभित थे। मङ्गल द्रव्याणि यथा : पूर्णकुम्भं द्विजं वेश्या शुल्कधान्यञ्च दर्पणम्। दध्याज्यं मधुलाजञ्च पुष्पं दूर्वाक्षतं सितम्। वृषं गजेन्द्रं तुरगं ज्वलदग्नि सुवर्णकम्। पर्णञ्च परिपक्वानि फलानि विविधानि च। मुक्तां प्रसूनं मालाञ्च सद्योमांसं च चन्दनम्। ददर्शैतानि वस्तूनि मङ्गलानि तुरो मुने। ब्रह्मवैवर्ते। अर्थ : पूर्णकुम्भ, ब्राह्मण, वेश्या, श्वेत धान्य, दर्पण, दही, घी, मधु, लावा, फूल, दूर्वा, श्वेत अक्षत, बैल, हाथी, घोड़ा, जलती हुई आग, सोना, पत्ते, पके फल, मोती, फूल की माला, ताजा मांस, चन्दन ये मङ्गल

द्रव्य हैं। बहुत से डङ्के बज रहे हैं। कहीं वन्दी विरदावली उच्चारण करते और कहीं ब्राह्मण वेदध्वनि कर रहे हैं।

व्याख्या : जब मण्डप का वर्णन हुआ तो मङ्गल द्रव्यों का भी वर्णन होना चाहिए। इसलिए कहते हैं कि अनेक प्रकार के मनोहर मङ्गल द्रव्य वहाँ थे। भाव यह कि ताजा मांस इत्यादि मंगल द्रव्य होने पर भी मनोहर नहीं हैं। अतः उनकी अनुपस्थिति वहाँ पर कह रहे हैं। राजद्वार है। अतः उत्सव के समय में अनेक डंकाओं का बजना वन्दियों का विरद कहना और ब्राह्मणों का वेदध्वनि करना सर्वथा प्राप्त है। ये सब विशेषताएँ भूपभवन में थीं। लौकिक वैदिक दोनों रीतियाँ हो रही हैं। वन्दी का विरद कहना लौकिक रीति है और ब्राह्मणों की वेदध्वनि वैदिक रीति है।

गावहिं सुन्दरि मंगल गीता। लै लै नामु रामु अरु सीता ॥
बहुत उछाह भवनु अति[1] थोरा। मानहु उमगि चला चहुँओरा ॥४॥

अर्थ : सुन्दरियाँ राम और सीता का नाम लेकर मङ्गलगीत गाने लगीं। उत्साह बहुत था। घर छोटा पड़ गया। मानो उमगकर चारों ओर बह चला।

व्याख्या : राजभवन में जो गीत हो रहा है उसमें राम और सीता का नाम जोड़कर गा रहीं हैं। वरपक्षवाले के घर वर की ही प्रधानता रहती है। अतः उनके यहाँ पहिले वर का नाम लेकर तब वधू का नाम गीत में जोड़ते हैं। भाव यह कि व्याह का गीत आरम्भ हो गया। दूत के मुख से सुन पाया है कि वधू का नाम सीता है। यथा : सीय स्वयंवर भूप अनेका। सिमिटे सुभट एक ते एका। यद्यपि दूत ने पुकारने का नाम सीता शब्द का तद्भव रूप सीय कहा। परन्तु उस समय प्राकृत का संस्कृत रूप जानने में कठिनता न थी। यद्यपि संसार सीताराम कहता है। पर अयोध्या के मङ्गलगान में तो 'राम सीता' ही गाया गया।

उछाह तो चारों ओर है। पर विशेष राजगृह में है। वहीं से आनन्द का सोता फूटा है। उसी की उपमा देते हैं कि जब किसी पात्र में बहुत सा जल भर दिया जाता है तो चारों ओर से बह चलता है। उसी भाँति राजमहल में उछाह इतना बढ़ा कि उसमें समा न सका तो चारों ओर से उमगकर बह चला। यथा : भुवन चारि दस भरा उछाहू। जनक सुता रघुवीर विवाहू।

दो. सोभा दसरथ भवन कै, को कवि करनै पार।
जहाँ सकल सुर सीस मनि, राम लीन्ह अवतार ॥२९७॥

अर्थ : महाराज दशरथ के महल की शोभा कौन कवि वर्णन कर सकता है। जहाँ सब देवताओं के शिरोमणि रामजी ने अवतार धारण किया था।

व्याख्या : जनकपुर की शोभा वर्णन करते हुए कहा है : बसइ नगर जेहि लच्छि करि कपट नारि वर वेष। तेहि पुर की शोभा कहत सकुचहिं सारद सेष।

---

१. यहाँ अधिक अलङ्कार है।

वहाँ जनकभवन की शोभा की विशेषता नहीं कही। कहते हैं : जनक भवन की सोभा जैसी। गृह गृह प्रति पुर देखिय तैसी। क्योंकि जनकभवन में जगदम्बा का अवतार नहीं हुआ था। वह तो यज्ञ के लिए जोते जानेवाली भूमि में हुआ था। जनकपुर की विशेषता यह थी कि वहाँ जगदम्बा कपट नारि वर वेष में वसती थीं। अतः वहाँ पूरे जनकपुर की शोभा कही। यहाँ अयोध्या में तो महाराज के महल में श्रीरामावतार हुआ था। अतः महाराज के महल की विशेषता थी। दशरथभवन की शोभा का वर्णन करते हुए कहते हैं कि कोई कवि वर्णन नहीं कर सकता। क्योंकि यहाँ सकलदेवशिरोमणि रामजी ने अवतार ग्रहण किया था। सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में वही स्थल इस योग्य था जहाँ पूर्ण ब्रह्म का आविर्भाव हो सके। जनकपुर की शोभा में शारदा और शेष को सङ्कोच है। पर यहाँ की शोभा के वर्णन में वे असमर्थ हैं। निर्गलितार्थ यह कि जनकपुर का उत्कर्ष जानकीजी के निवास से है और दशरथभवन की बड़ाई श्रीरामजी के वहाँ अवतार धारण करने से है।

भूप भरत पुनि लिये बोलाई। हय गय स्यंदन साजहु जाई॥
चलहु वेगि रघुवीर बराता। सुनत पुलक पूरे दोउ भ्राता॥१॥

अर्थ : फिर राजा ने भरतजी को बुला भेजा और कहा कि जाकर घोड़े हाथी और रथ सजाओ। शीघ्र ही रघुवर की बारात में चलो। सुनते ही दोनों भाई पुलक से पूर्ण हो गये।

व्याख्या : मुनि प्रसाद कहि द्वार सिधाए : से प्रसङ्ग छोड़ा था। भूप भरत पुनि लिये बोलाई से उसी प्रसङ्ग को उठाते हैं। दोनों भाइयों में इस समय भरतजी ही बड़े हैं। अतः बुलाहट उन्हीं को हुई। पर उनके साथ शत्रुघ्नजी भी आये। क्योंकि ये सदा भरतजी के साथ रहते हैं। यथा : भरत शत्रुहन दूनौ भाई। प्रभु सेवक जसि प्रीति बड़ाई। राजसभा में भरतजी की पुनीत प्रीति देखी जा चुकी है। यथा : प्रीति पुनीत भरत कै देखी। सकल सभा सुख लहहु विसेखी। अतः उन्हीं को बारात : व्रात सजाने की आज्ञा हुई। चतुरङ्गिणी सेना में से हय गज स्यंदन के ही साजने की आज्ञा हुई पदचर के लिए नहीं हुई। आज चक्रवर्तीजी राम न कहकर रघुवीर कहते हैं। क्योंकि धनुषभङ्ग से वीरता प्रमाणित हो चुकी। वीरों की बारात ऐसी ही होती है। जय पहिले ही जाकर किया। अब बारात पीछे से चल रही है। बिना दूलहे की बारात साजी जा रही है। भरत शत्रुघ्न को नगररक्षा के लिए आज्ञा न होकर वारात में चलने के लिए आज्ञा हुई। अतः अति हर्ष से पुलकायमान हो गये। भरतजी के लिए जो आज्ञा हुई वही शत्रुघ्नजी के लिए समझ लेनी चाहिए।

भरत सकल साहनी बोलाए। आयसु दीन्ह सकल उठि धाए॥
रचि रुचि जीन तुरग तिन साजे। बरन बरन वर वाजि विराजे॥२॥

अर्थ : भरतजी ने सब दारोगों को बुलाया और आज्ञा दी। वे प्रसन्न होकर दौड़ पड़े। उन्होंने रुचि से रचकर घोड़ों पर जीन सजाये। रङ्ग रङ्ग के सुन्दर घोड़े शोभित थे।

व्याख्या : भरतजी ने विभागों के अध्यक्षों को बुलवाया। चक्रवर्तीजी ने भरतजी को आज्ञा दी। उन्होंने बलाध्यक्षों को वही आज्ञा दोहराई। अतः पुनरुक्ति के भय से उसे नहीं लिखते। भरतजी के दरबार में बलाध्यक्ष लोग उपस्थित हुए। भरतजी ने चक्रवर्तीजी की आज्ञा केवल दोहरायी ही नहीं उसे विस्तार के साथ समझाया। आगे की प्रक्रिया से सब बातें स्पष्ट हो जावेंगी। यहाँ विस्तार से लिखने की आवश्यकता नहीं है। आज्ञा पाते ही वे आनन्द के साथ उठकर दौड़ पड़े। मुनिजी ने आज्ञा दी : चलहु वेगि सुनि मुनि वचन भलेहि नाथ सिर नाय। तदनुसार चक्रवर्तीजी आज्ञा देते हैं : चलहु वेगि रघुवीर बराता। आयसु पाइ मुदित उठि धाये। इससे अनुमित है कि भरतजी ने भी चलहु वेगि यही आज्ञा दी।

जिस रङ्ग के घोड़े पर जैसी जीन खिलेगी जैसा साज फवेगा। यही विचार कर अपनी अपनी रुचि के अनुसार रचकर साजा। सवारी के घोड़े रङ्ग विरङ्गे थे।

सुभग सकल सुठि चंचल करनी। अय इव जरत धरत पग धरनी ॥
नाना जाति न जाहिं बखाने। निदरि पवनु जनु चहत उड़ाने ॥३॥

अर्थ : सब घोड़े सुन्दर और अति चञ्चल करणीवाले थे। वे जलते हुए लोहे पर पैर रखने की भाँति पृथ्वी पर पैर रखते थे। वे अनेक जातियों के थे जिनका वर्णन नहीं हो सकता। मानो हवा का निरादर करके उड़ा चाहते हैं। जहाँ हुअ जिमि जरत पाठ है वहाँ अर्थ करना होगा कि मानो जलती हुई धरती पर पाँव रख रहे हैं। ऐसे चञ्चलकरणी हुए।

व्याख्या : सुभग कहकर रूप कहा चञ्चल कहने से गुण कहा। कहावत है कि लड़के और घोड़े चञ्चल ही अच्छे होते हैं। सो ऐसे चञ्चल हैं कि उनसे स्थिर रहा ही नहीं जाता। उनके लिए मानो पृथ्वी गरम लोहे की हो रही है। पृथ्वी पर पैर रक्खा कि तुरन्त उठाया। बराबर थिरकते ही रहते हैं। घोड़ों की जाति होती है। मानी हुई बात है कि जातिवाले घोड़े अच्छे होते हैं। बड़े यत्न से घोड़ों की जाति की रक्षा की जाती है। हीन जाति में जोड़ा नहीं खाने देते। नहीं तो नसल बिगड़ जाती है। आजकल लोग अपने नसल से अधिक घोड़ों और कुत्तों की नसल पर ध्यान देते हैं। घोड़ों में अनेक जातियाँ हैं। तदनुसार उनके रूप आकार और गुणों में भेद होता है। यथा : ताजी, तुरकी, अरबी, कच्छी, पयगू, बुटवल, रंगपुर दीनाजपुर के टाँघन आदि।

अब पराक्रम कहते हैं कि वे दूसरे घोड़े को अपने से आगे बढ़ने देना तो सहन कर सकते ही नहीं। हवा का भी आगे बढ़ना उन्हें सह्य नहीं है। उसका भी निरादर करके उड़ना चाहते हैं।

तिन सब छयल भये असवारा। भरत सरिस वय राजकुमारा ॥
सब सुंदर सब भूषनधारी। कर सर चाप तून कटि भारी ॥४॥

अर्थ : उन सब पर भरतजी के समान आयुवाले छैल छबीले राजकुमार

सवार हुए। सब सुन्दर थे। आभूषण धारण किये हुए थे। उनके हाथों में धनुष बाण था और कमर में भारी तरकस बँधा था।

व्याख्या : भरतजी को जो आज्ञा हुई : चलहु बेगि रघुवीर बराता। सो भरत के समवयस्क राजकुमार भरत शत्रुघ्न के साथ घोड़ों पर सवार हुए। घोड़े की सवारी नवयुवकों के ही योग्य है। क्षत्रिय महाराज की बारात है। दूल्हा भी घोड़े पर ही रहेगा। यह उम्र शौकीनी की है। इसलिए राजकुमारों को छैल छवीले कहते हैं। जिस भाँति कुछ दिन पहले बारातों में बाँके निकलते थे उसी भाँति यह छैल छबीला समाज था। जिस भाँति राजाओं की उपस्थिति श्रीचक्रवर्तीजी की सभा में थी उसी भाँति राजकुमार लोगों की उपस्थिति इस समय भरतजी की सभा में थी।

सभी राजकुमार सुन्दर थे। सुन्दर घोड़ों पर चढ़ने के लिए सुन्दर सवार चाहिए। घोड़े अलंकृत हैं। अतः सवार भी भूषणधारी होने चाहिए। घोड़े गुणवान् और पराक्रमी हैं। अतः सवार भी धनुर्धर और वीर होने चाहिए। घोड़े अल्प-वयस्क हैं। अतः सवार भी छैल छबीले चाहिए। सो सब समाज यहाँ ठीक जुट गया है।

दो. छरे छबीले छयल सब, सूर सुजान नवीन।
जुग पदचर असवार प्रति, जे असिकला प्रवीन ॥२९८॥

अर्थ : छरहरे बदनवाले सब छैल छबीले अपूर्व शूर सुजान और प्रत्येक सवार के साथ दो दो तलवार बहादुर : पार्श्वरक्षक पैदल थे।

व्याख्या : भारी शरीरवाले रथ या गज की सवारी के योग्य होते हैं। यहाँ नवीन शब्द का अर्थ अपूर्व है। क्योंकि छैल शब्द से ही अल्पवयस्कता का भाव आगया। अपूर्व शूर बिना हुए भूषणवसन और शस्त्रास्त्र की शोभा नहीं और सुजान बिना हुए राजकुमारों की सभी शोभा व्यर्थ है। अतः सूर सुजान नवीन कहते हैं। सभी सवारों के साथ दो दो पार्श्वरक्षक हैं। जो संग्राम में सवार के पैरों की और घोड़ों की रक्षा कर सकें और वे तलवार चलाने में निपुण थे। निकट में आये हुए शत्रु पर तलवार की ही चोट हो सकती है। आज कल जो बारात की प्रथा है वह सेना का ही अनुकरण है।

बाँधे विरद वीर रन गाढ़े। निकसि भये पुर बाहेर ठाढ़े॥
फेरहिं चतुर तुरग गति नाना। हरषहिं सुनि सुनि पनव निसाना ॥१॥

अर्थ : विरुदवाले वीर रण में दक्ष निकलकर पुर के बाहर खड़े हुए। वे चतुर घोड़ों को अनेक प्रकार की गतियों से फेर रहे हैं और मृदंग तथा बाजे नगाड़े का शब्द सुन सुनकर प्रसन्न हो रहे हैं।

व्याख्या : गद्यपद्यमयीराजस्तुतिर्विरुदमुच्यते। गद्य और पद्यमयी वाणी में राजा की स्तुति को विरुद कहते हैं। जो गुण जिसमें विशेष होता है या जो प्रण

जिसका होता है वही उसके विरुद में कहा जाता है। जो जिस विरुद को अपना लेता है प्राण जाने पर भी उसका परित्याग नहीं करता। यथा : विरद बाँधि वरबीर कहाई। चले समर जनु सुभट पराई। प्रख्यात पौरुष वीरों का भी विरुद होता है। रनगाढ़े का अर्थ है रणदक्ष। यथा : मिले न कबहुँ सुभट रन गाढ़े। लेत चढ़ावत खैंचत गाढ़े। ऐसे गुणवाले वीर राजकुमार बारात के लिए पुर के बाहर आकर खड़े हुए और बारात का इन्तजार करने लगे। यह पहिला कार्य हुआ।

खड़े होने की अवस्था में भी घोड़े अनेक चाल से फेरे जा रहे हैं। फेरनेवाले भी चतुर हैं। बाजे का शब्द सुनकर दोनों को हर्ष होता है। बाजे का शब्द सुनकर घुड़दौड़ के घोड़े काबू के बाहर हो जाते हैं। उनसे स्थिर रहा नहीं जाता।

रथ सारथिन्ह बिचित्र बनाए। ध्वज पताक मनि भूषन लाए ॥
चँवरु चारु किंकिन धुनि करहीं। भानु जानु सोभा अपहरहीं ॥२॥

अर्थ : ध्वजा, पताका, मणि और भूषण लगाकर सारथियों ने रथों की विचित्र सजावट की है। रथ पर चँवर चल रहे हैं और घण्टियाँ बज रही हैं। सूर्य के रथ की शोभा का अपहरण कर रहे हैं।

व्याख्या : सारथियों ने पहिले रथ का शृंगार किया। ध्वजा पताका तथा मणि और भूषणों से ऐसा अलंकृत किया कि रथों की अद्भुत शोभा हुई। रथों को युद्ध सामग्री से सुसज्जित करने की विधि है। परन्तु बारात में रथ जा रहे हैं। अतः मणिभूषणों से सजाये गये। यही रथ की विचित्रता है कि जब रथ चालू होता है तो चँवर चलने लगता है। क्षुद्र घण्टियाँ बजने लगती हैं। रथ ऐसा जगमगा रहा है कि सूर्य के रथ की शोभा को मात कर रहा है।

साँवकरन[1] अगनित हय होते। ते तिन्ह रथन्ह सारथिन्ह जोते ॥
सुन्दर सकल अलंकृत सोहे। जिन्हहिं बिलोकत मुनि मन मोहे ॥३॥

अर्थ : श्यामकर्ण घोड़ों की गिनती न थी। उन्हें सारथियों ने रथ में जोता। वे सुन्दर और अलङ्कार से युक्त होकर ऐसे शोभित हैं कि उन्हें देखकर मुनियों का मन मोहित हो जाय।

व्याख्या : श्यामकर्ण घोड़े श्वेत वर्ण के होते हैं। केवल उनका कान काला होता है। इसी से श्यामकर्ण कहलाते हैं। प्राचीन काल में भी ये कम थे। अब तो सम्भवतः पृथ्वी मण्डल में कदाचित् ही कहीं हों। महाराज दशरथ के यहाँ ऐसे असंख्य घोड़े थे। उनसे रथ का काम लिया जाता था। पीठ सवारी के लिए जैसा पहिले

---

१. मो नुनासिको वो वा इस सूत्र से म को सानुनासिक व आदेश हुआ। अधोमनयाम् इस सूत्र से श्या के यकार का लोप होकर श्याम शब्द का रूप साँव हुआ। और विप्रकर्ष करके कर्ण का करन रूप हो जाता है। इस भाँति श्यामकर्ण का तद्भव रूप साँवकरन सिद्ध हुआ।

कहा जा चुका है अनेक जाति के घोड़े थे। उन श्यामकर्ण घोड़ों को उन रथों में सारथियों ने जोता। वे सब स्वभाव से ही सुन्दर थे। तिस पर उन्हें अलङ्कार से शृङ्गारित किया गया। अतः वे ऐसे मनोहर दिखाई पड़ने लगे कि उनके देखने से विषयविमुख स्थितप्रज्ञ का भी मन मोहित हो जाय।

जे जल चलहिं थलहिं की नाईं। टापन बूड़ वेग अधिकाई ॥
अस्त्र सस्त्र सब साजु बनाई। रथी सारथिन्ह लिए बोलाई ॥४॥

अर्थ : जो थल की ही भाँति जल पर चलते थे। वेग की अधिकता से टाप नहीं डूबता था। सारथियों ने अस्त्र शस्त्र सब साज को सजाने के बाद रथियों को बुला लिया।

व्याख्या : अब श्यामकर्ण घोड़ों की विशेषता कहते हैं। उनकी गति जल पर भी है। उनमें इतना वेग होता है कि अपने टाप को जल में डूबने का अवसर नहीं देते। जिस हथियार को फेंककर प्रहार करते हैं उसे अस्त्र और जिसे हाथ में लिये हुए प्रहार करते हैं उसे शस्त्र कहते हैं। ढाल, तलवार, परशु, शक्ति, तरकस, धनुष आदि यथास्थान रथ में सजाये जाते हैं और भी युद्ध की सामग्री अग्नि आदि रथ पर रक्खी रहती हैं। इस भाँति पहिले रथ को साजा। फिर चार घोड़ों को अलंकृत करके उनमें जोड़े। तत्पश्चात् अस्त्र शस्त्र से सुसज्जित किया। रथ के ठीक हो जाने पर सारथियों ने अपने अपने रथियों को बुला लिया। बारात में युद्धरथ ही साजे गये। विहार रथ की आवश्यकता नहीं समझी गई।

दो. चढ़ि चढ़ि रथ बाहेर नगर, लागी जुरन बरात।
होत सगुन सुंदर सबहिं, जो जेहि कारज जात ॥२९९॥

अर्थ : रथ पर चढ़ चढ़कर नगर के बाहर बारात जुटने लगी और जो जिस कार्य के लिए जाता था उन सबको सुन्दर सगुन होते थे।

व्याख्या : दूसरा कार्य। रथी घुड़सवारों की भाँति इकट्ठे नहीं आये। आगे पीछे करके एक एक रथी आ रहे हैं। इस भाँति बारात जुटने लगी। राजकुमारों के आने पर बारात नहीं कहा। उनकी लड़कों में गिनती है। रथियों के आने पर बारात कहते हैं। क्योंकि ये महाराज के समवयस्क हैं। महाराज रथ पर चलेंगे। इसलिए सरदार लोग सब रथ पर सवार हो रहे हैं। पहिले घुड़सवार : निकसि भये पुर बाहेर ठाढ़े। तब रथों की पंक्ति साजी गई। यथा : चढ़ि रथ बाहेर नगर लागी जुरन बरात। बाहेर नगर जुटने का भाव यह है कि नगर के भीतर इतना विस्तृत स्थान नहीं है। जब से घुड़सवार चले तब से शकुन प्रारम्भ है। रथ के पीछे हाथियों की पंक्ति रहेगी।

कलित करिवरन्हि परी अँबारी। कहि न जाइ जेहि भाँति सँवारी ॥
चले मत्त गज घंट बिराजी। मनहुँ सुभग सावन घन राजी ॥१॥

अर्थ : अलंकृत हाथियों पर अम्बारियाँ पड़ी थीं। जिस भाँति सँवारी गई थीं उसका वर्णन नहीं हो सकता। घण्टाओं से सुशोभित मतवाले हाथी चले। जान पड़ता था कि सावन के सुन्दर बादलों की पंक्ति चल रही है।

व्याख्या : अम्बारियाँ अत्यन्त ऊँचे पर हैं। ऐसे क्रम से बारात जुट रही है जिसमें सबको दिखाई पड़ सके। सबसे आगे अश्वारोही हैं। उनके पीछे रथ हैं जो घोड़ों से ऊँचे हैं। अश्वारोहियों के पीछे होने पर भी अपने अपने रथों पर दिखाई पड़ रहे हैं। उनके भी पीछे हाथियों की पंक्ति है। जो रथ से भी ऊँचे हैं। उनकी पीठ पर अम्बारियाँ अत्यन्त ऊँचे पर होने से बराबर दृष्टिगोचर हो रही हैं। वे ऐसी साजी गई हैं कि उनका वर्णन नहीं हो सकता। गजारोहियों का कोई उल्लेख नहीं है। क्योंकि महाराज की सवारी रथ पर होनेवाली है। इसलिए सब सरदार रथों पर आगये हैं। हाथियों पर कोई नहीं है। उनपर केवल अम्बारियों की शोभा है। जब महाराज हाथी पर सवार होंगे तब सरदार लोग भी हाथी पर सवार हो सकेंगे।

कलित करिवरन्ह का ही वर्णन हो रहा है। मत्त गज स्वभाव से ही सुन्दर मालूम पड़ते हैं। तिस पर अलंकृत होने से और भी शोभा बढ़ गई। चलने के समय यदि घण्टा का शब्द न हुआ तो हाथी के चलते की शोभा नहीं होती। इसीलिए घंटविराजी कहते हैं। घण्टा शब्द स्त्रीलिंग है। उसका तद्भवरूप 'घंट' भी स्त्रीलिङ्ग है। इसलिए विराजी कहा। जिसको सैकड़ों हाथियों के एक साथ चलने के देखने का अवसर मिला है वे जानते हैं कि वस्तुतः दूर से ऐसा ही मालूम होता है कि सावन की काली घटा उमड़ी चली आ रही है। सावन की घटा सुन्दर होती है। अकाल की घटा सी भयानक नहीं होती। घण्टा के झूलने से जो चमक पैदा हो रही है वह मानो बिजली चमक रही है। रास्ते भर महाराज की सवारी रथ पर रहेगी। द्वाराचार के समय हाथियों से काम लिया जायगा। इसलिए साथ हैं। यह तीसरा कार्य हुआ : अँबारी मण्डपदार हौदे को कहते हैं।

वाहन अपर अनेक विधाना। सिविका सुभग सुखासन जाना ॥
तिन्ह चढ़ि चले विप्रवर वृंदा। जनु तनु धरे सकल श्रुति छंदा ॥२॥

अर्थ : और भी अनेक प्रकार की सवारियाँ थीं। पालकी सुखासन : झम्पान गाड़ी आदि। इन पर चढ़कर श्रेष्ठ ब्राह्मणों का समूह चला। मानो शरीर धारण किये हुए वेदों के छन्द हैं।

व्याख्या : भरतजी को महाराज की इतनी ही आज्ञा हुई थी कि : हयगय स्यंदन साजहु जाई। परन्तु चलहु बेगि रघुबीर बराता। इस कथन की ध्वनि को समझकर भरतजी ने सब व्यवस्था की। पालकी सुखासन[1] : झम्पान और यान[1] आदि के वहन करने में मनुष्य लगते हैं। ये ही ब्राह्मणों के स्वरूपानुकूल सवारियाँ

---

१. झम्पान में दो बाँस और यान में चार बाँस लगते हैं।

हैं। घोड़ा रथ हाथी की सवारी ब्राह्मणों के अनुकूल नहीं पड़ती। वेद के छन्द यथा : गायत्री, उष्णिक, अनुष्टुप्, बृहती, पंक्ति आदि। इनकी भाँति ब्राह्मण लोग श्रुतिछन्द हैं। स्वच्छन्द नहीं हैं। इनके चलने की शोभा कहते हैं। मानो ये मूर्तिमान् वेद के छन्द हैं। विवाह वैदिक संस्कार है। अतः वैदिकों की आवश्यकता है। यह चौथा कार्य हुआ।

मागध सूत वंदि गुनगायक। चले यान चढ़ि जो जेहि लायक ॥
बेसर ऊँट वृषभ बहु जाती। चले वस्तु भरि अगनित भाँती ॥३॥

अर्थ : मागध, सूत और बन्दी ये तीनों गुणगायक हैं। ये जो जिसके योग्य थे वैसे यानों पर चढ़ चढ़कर चले। ऊँट और अनेक जाति के बैल असंख्य प्रकार की वस्तुओं को लाद लादकर चले।

व्याख्या : वंशप्रशंसक, पौराणिक और भाट अपनी अपनी योग्यतानुसार सवारियों पर चले। स्तुति पाठ के लिए इनकी आवश्यकता है। राजाओं की तेजोवृद्धि के लिए तथा शिक्षा के लिए ये लोग बड़े उपकारक होते हैं : यह पाँचवाँ कार्य हुआ। बेसर, ऊँट, वृषभ आदि भारवाही पशु हैं। इन पर चढ़ना निषिद्ध है। इन पर नाना भाँति की वस्तुएँ लादकर रवाना की गयीं। रसद, बिस्तरा, विवाह की सामग्री आदि ले जाने के लिए इनकी आवश्यकता पड़ी। यह छठा कार्य हुआ।

कोटिन्ह काँवरि चले कहारा। विविध वस्तु को वरनै पारा ॥
चले सकल सेवक समुदाई। निज निज साजु समाजु बनाई ॥४॥

अर्थ : करोड़ों काँवर लेकर कहार चले। उनमें नाना प्रकार की वस्तुएँ थीं। उनका कौन वर्णन कर सकता है। सब सेवकों का समूह अपना अपना साज समाज बनाकर चला।

व्याख्या : करोड़ों कहार बहँगी : काँवर लेकर चले। इनमें विशेष विशेष व्यक्तियों के नित्यकर्मोपयोगी समान लदे थे। बरात के सामान भी बहँगियों : काँवर : में चले। अनेक प्रकार की छोटी मोटी वस्तुएँ लदी हैं। उनका क्या वर्णन किया जाय। यह सातवाँ कार्य हुआ।

मालिक लोग सवारी पर चले। असबाब काँवर पर चला। अब सेवक लोग पैदल चले। पानदान आदि साज तथा अपनी अपनी मण्डली नियत करके चले। यह आठवाँ कार्य हुआ।

दो. सबके उर निर्भर हरषु, पूरित पुलक सरीर।
कबहिं देखिबे नयन भरि, रामु लषनु दोउ बीर ॥३००॥

अर्थ : सबके हृदय में हर्ष उमड़ रहा है और शरीर में पुलक हो रहा है। कब आँख भरकर राम लक्ष्मण दोनों वीरों को देखेंगे। यह लालसा हो रही है।

व्याख्या : रामजी और लक्ष्मणजी ऐसे लोकप्रिय हैं कि मालिक से लेकर नौकर तक सबके हृदय में बड़ा भारी हर्ष हो रहा है और शरीर में पुलक है। इस आशा पर कि अब राम लक्ष्मण का दर्शन शीघ्र ही होगा और इतनी उत्कण्ठा है कि थोड़ा सा भी समय भारी हो रहा है और लालसा लगी है कि दोनों वीरों को कब आँख भरकर देखें। क्योंकि आँखें दर्शनों की प्यासी हो रही हैं।

गरजहिं गजघंटा धुनि घोरा। रथ रव बाजि हिंस चहुँ ओरा ॥
निदरि घनहि घुम्मरहिं निसाना। निज पराइ कछु सुनियँ न काना ॥१॥

अर्थ : हाथी चिग्घाड़ रहे हैं। घण्टाओं की घोर ध्वनि हो रही है। चारों ओर रथों का शब्द हो रहा है। घोड़े हिनहिना रहे हैं। बादलों का निरादर करते हुए डङ्के गम्भीर ध्वनि से बज रहे हैं। अपना पराया कुछ सुनाई नहीं पड़ रहा है।

व्याख्या : हाथी के चिग्घाड़ को गर्जन कहते हैं। ये निषाद स्वर में बोलते हैं। घण्टाओं के शब्द से नाद बढ़ता है। यथा : घण्टास्वनेन तन्नादानम्बिका चोपबृंहयत्। रथ के चलने से जो शब्द होता है उसे रव और घोड़ों के शब्द को हींसना कहते हैं। डङ्के घन के शब्द का अनुकरण करते हैं। अतः घुम्मरहिं कहा। ये शब्द एक साथ चारों ओर से हो रहे हैं। क्योंकि हाथी घोड़े रथ निशान आदि चारों ओर से चले आरहे हैं। नगर के बाहर क्रमबद्ध करके साजे जा रहे हैं। सब प्रकार के शब्द के मिलने से ऐसा तुमुलनाद हो रहा है कि अपने बोले शब्द अपने को ही सुनाई नहीं पड़ रहे हैं। दूसरे की कौन सुनता है : कवि अब यहीं से राजद्वार का दृश्य देखने लगे। अतः कहते हैं।

महा भीर भूपति के द्वारे। रज होइ जाइ पषान पंवारे ॥
चढ़ी अटारिन्ह देखहिं नारी। लिए आरती मंगल थारी ॥२॥

अर्थ : राजा के द्वार पर बड़ी भारी भीड़ है। पत्थर फेंका जाय तो पिसकर धूल हो जाय। स्त्रियाँ अटारियों पर चढ़ी हुई देख रही हैं। वे मङ्गल थालियों में आरती लिये हैं।

व्याख्या : भीड़ तो इस समय बाजार और गलियों में सभी स्थानों में है। पर राजद्वार में बड़ी भारी भीड़ है। पहिले के पड़े हुए रोड़े तो पिसकर धूल हो ही गये। यदि कोई अब पत्थर फेंक दे तो पैरों के तले रौंदे जाने से धूल हो जाय। नर लोग नीचे हैं। बारात जा रहे हैं। काम से जा रहे हैं। दृश्य देखने के लिए चले जा रहे हैं। पर नारियाँ अटारियों पर चढ़कर देख रही हैं। जब महाराज की सवारी निकलेगी उस समय आरती करने के लिए मङ्गलद्रव्य से सजायी हुई थालियाँ हाथों में ले रक्खी हैं : इससे महाराज की लोकप्रियता कही।

गावहिं गीत मनोहर नाना। अति आनंदु न जाइ बखाना ॥
तब सुमंत्र दुइ स्यंदन साजी। जोते रवि हय निंदक बाजी ॥३॥

अर्थ : नाना प्रकार के मनोहर गीत गा रही हैं। अत्यन्त आनन्द हो रहा है। जिसका बखान नहीं किया जा सकता। तब सुमन्त्र ने दो रथ सजाये। जिनमें सूर्य के रथ के घोड़ों के तिरस्कार करनेवाले घोड़ों को जोता।

व्याख्या : प्रत्येक अटारियों पर से पृथक् पृथक् गीत हो रहे हैं। नीचे शोर हो रहा है और ऊपर गीत हो रहे हैं। अत्यन्त आनन्द मचा हुआ है। अथवा बाहरी आनन्द का तो वर्णन किया परन्तु लोगों के हृदय में जो आनन्द है उसका वर्णन नहीं हो सकता। जब सब तैयारी हो चुकी तब सुमन्त्र ने दो रथ सजाये। महाराज और गुरुजी के लिए रथ सजाया जा रहा है। मन्त्री स्वयं उसे साज रहे हैं। दूसरे यह कि सुमन्त्रजी केवल मन्त्री ही नहीं थे। महाराज के सारथि भी थे। उन्होंने उन रथों में ऐसे घोड़े जोते जो सूर्य के रथ के घोड़ों को मात करनेवाले थे। और लोगों के सवारी के घोड़ों के वर्णन में कह आये हैं कि निदरि पवन जिमि चहत उड़ाने। टाप न बूड़ वेग अधिकाई। अतः महाराज के रथ के घोड़ों को रवि हय निंदक वाजी कहा। देवताओं के घोड़ों को हय कहते हैं। यथा : हयो भूत्वा देवान्वहत। इति श्रुतिः। यह नवाँ कार्य हुआ।

दोउ रथ रुचिर भूप पहिं आने। नहि सारद पहि जाहिं बखाने॥
राज समाज एक रथ साजा। दूसर तेज पुंज अति भ्राजा॥४॥

अर्थ : दोनों सुन्दर रथों को राजा के पास ले गये। जिनकी प्रशंसा सरस्वती से भी नहीं हो सकती। एक रथ राजसी ठाट से सजाया गया था और दूसरा तेज के पुञ्ज सा देदीप्यमान हो रहा था।

व्याख्या : अन्यत्र तो सारथियों ने रथियों को बुला लिया। यथा : रथी सारथिन्ह लीन्ह बोलाई : पर इन रथों को लेकर सुमन्त्रजी महाराज के पास गये। उन रथों में रवि हय निन्दक वाजी जुते हैं। अतः उन रथों के वर्णन के विषय में कहते हैं कि स्वर्ग की वक्ता सरस्वती भी नहीं कर सकतीं। पहिला रथ छत्र चामर, अस्त्र शस्त्र, ध्वजा पताका से सुशोभित था। उससे राज्यश्री झलक रही थी। दूसरा अग्निहोत्र के सामान, पुस्तकें, यज्ञपात्रादि से संयुक्त था। उससे ब्राह्मीश्री चमक रही थी।

दो. तेहि रथ रुचिर वसिष्ठ कहुँ, हरषि चढ़ाइ नरेसु।
आपु चढ़ेउ स्यंदन सुमिरि, हर गुरु गौरि गनेसु॥३०१॥

अर्थ : उस सुन्दर रथ पर हर्षित होकर महाराज ने वसिष्ठजी को चढ़ाया। तब आप शिव, गुरु, गौरी और गणेशजी का स्मरण करके रथ पर चढ़े।

व्याख्या : महाराज की गुरुभक्ति कहते हैं कि उस ब्राह्मीश्रीवाले रथ पर महाराज ने पहले वसिष्ठ जी को स्वयं सवार कराया। तब हरगुरु गौरी गणेश का स्मरण करके अपने रथ पर सवार हुए। श्रीग्रन्थकार का मत है कि मङ्गल के दिन कार्यारम्भ करने में गिरा गौरी गुरु गणेश और शिव का स्मरण मंगल के लिए

करे। यथा : गिरा गौरि गुरु गनप हर मंगल मंगल मूल। सुमिरत करतल सिद्ध सब होइ ईस अनुकूल। शकुनावली। अतः यह भी पता चलता है कि उस दिन मंगलवार था। स्मरण करने में गिरा छूट गई। श्रीरामजी के अभिषेक में गिरा ही विघ्नकारक हुईं। यह बात भी ध्यान देने योग्य है। यह दसवाँ कार्य हुआ।

सहित बसिष्ठ सोह नृप कैसे। सुर गुर संग पुरंदरु जैसे ॥
करि कुलरीति बेद बिधि राऊ। देखि सबहि सब भाँति बनाऊ ॥१॥

अर्थ : वसिष्ठ के साथ राजा कैसे शोभायमान हुए जैसे वृहस्पति के साथ इन्द्र शोभायमान हों। राजा वेदविधि और कुलरीति करके सबको और सब भाँति की सजावट को देखकर :

व्याख्या : ब्राह्मीश्री के साथ राज्यश्री की शोभा कहते हैं। वसिष्ठजी की उपमा सुरगुरु से और महाराज दशरथ की उपमा इन्द्र से दी गई है। उपमेय उपमा से कम नहीं है। न तो महाराज दशरथ इन्द्र से कम हैं। यथा : सुरपति बसहिं बाहुबल जाके। आगे होइ जेहि सुरपति लेई। अर्ध सिंहासन आसन देई। और न सुरगुरु से वसिष्ठजी कम हैं। यथा : सो गोसाइँ जेहि विधि गति छेंकी। सकै को टारि टेक जो टेकी। दलि दुख सजै सकल कल्याना। अस असीस राउर जग जाना। विवाह और श्मशान में ग्रामवचन को प्रमाण माना गया है। अतः महाराज ने कुलरीति के अनुसार तथा वेदविधि के अनुसार सब कार्य : रसम किया। यहाँ कुलप्रथा को रीति और वेद की आज्ञा को विधि कहा गया है। पुर के बाहर जाने पर रीति और विधि है। उन्हें करके रथ को चारों ओर घुमाकर एक बार सब साज सामान को अपनी आँख से देख लिया : यह चक्रवर्तीजी की सावधानता है।

सुमिरि राम गुर आयसु पाई। चले महीपति संख बजाई ॥
हरषे बिबुध बिलोकि बराता। बरषहिं सुमन सुमंगल दाता ॥२॥

अर्थ : रामजी का स्मरण करके और गुरुजी की आज्ञा पाकर पृथ्वीपत्ति शंख बजाकर चले। देवता बारात देखकर हर्षित हुए। वे मङ्गलदायक फूलों की वर्षा करने लगे।

व्याख्या : रामजी का साथ चलना ऐसे अवसर पर अनिवार्य था। परन्तु वे पहिले ही जनकपुर पहुँच चुके थे। फिर भी उनका स्मरण तो ऐसे अवसर पर स्वाभाविक है। महाराज सब कार्य गुरुजी की आज्ञा लेकर ही करते हैं। अतः इस यात्रा में भी गुरुजी की आज्ञा पाकर विजय यात्रा के लिए शंखध्वनि की। शंखध्वनि मङ्गलसूचक है। शङ्खध्वनि वीर लोग स्वयं करते हैं। यथा : पाञ्चजन्यं हृषीकेशो देवदत्तं धनञ्जयः। पौण्ड्रं दध्मौ महाशंखं भीमकर्मा वृकोदरः। अनन्तविजयं राजा कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः। इत्यादि। बारात ऐसी बनी कि देवता लोग प्रसन्न हो गये। विबुध हैं। विशेष रूप से पण्डित हैं। पुष्पवृष्टि के अवसर को समझते हैं। परशुराम-विजय के समय प्रभु पर पुष्पों की वर्षा जनकपुर में की थी। अब बारात चलने के

समय सम्पूर्ण बारात पर पुष्पवृष्टि कर रहे हैं। पुष्पों में भी सुमङ्गलदायक पुष्प पारिजात आदि की वर्षा हो रही है। सभी पुष्प मङ्गलदायक समझे जाते हैं। परन्तु पारिजात आदि सुमङ्गलदायक हैं। महाराज का चलना बारहवाँ कार्य हुआ।

भयेउ कुलाहलु हय गय गाजे। व्योम बरात बाजने बाजे॥
सुर नर नारि सुमंगल गाई। सरस राग बाजहिं सहनाई॥३॥

अर्थ : हाथी घोड़े गरजने लगे। कोलाहल मच गया। आकाश में और बारात में बाजे बजे। देवियों और नारियों ने मङ्गलगान किया और सरस राग से शहनाई बजी।

व्याख्या : महाराज के शङ्ख बजाकर चलते ही बारात चल पड़ी। अतः कोलाहल : शोर हुआ। हाथी घोड़े गरजने लगे। नीचे बारात में और ऊपर आकाश में बाजे बजे। भाव यह कि आकाश में देवताओं ने भी डङ्का दिया। दो बारात चली। नीचे मनुष्यों की और आकाश में देवताओं की बारात चली। अतः देवताओं की स्त्रियों ने तथा मनुष्यों की स्त्रियों ने सुमङ्गलगान प्रारम्भ किया। बारात में बाजे तो अनेक प्रकार के बजते हैं। परन्तु सरस राग तो शहनाई में ही बजते हैं।

घंट घंटि धुनि बरनि न जाहीं। सरो करहिं [1]पाइक फहराहीं॥
करहिं बिदूषक कौतुक नाना। हास कुसल कल गान सुजाना॥४॥

अर्थ : घण्टे और घण्टियों की ध्वनि कुछ कही नहीं जाती। कसरत करते हैं। पाइक लोग दौड़ धूप करते हैं। विदूषक : भाँड़ या मसखरे नाना प्रकार के कौतुक : तमाशा कर रहे हैं। वे हँसी करने में निपुण और सुन्दर गान के अच्छे जानकार हैं।

व्याख्या : हाथियों के बड़े घण्टे और घण्टी : झेला आदि की ऐसी ध्वनि हो रही है कि उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। बारात में पाइक होते हैं। उनके कमर में घण्टियाँ बँधी रहती हैं और हाथ में मुरछल रहता है। वे सन्देशहर का काम करते हैं। विवाह में कसरत करने और कूदने फाँदने का काम नट करते हैं : गोरखपुर की ओर आज भी सरो करना कसरत करने को कहते हैं। नट लोग कूद फाँदकर कसरत दिखलाते हैं। इस प्रकार से बारात में मनोरञ्जन भी होता चलता है।

विदूषक हैं। वे रास्ते चलते नकल कर रहे हैं। लोगों को हँसाना उनका काम है। इस विद्या में वे बड़े निपुण होते हैं। परन्तु वे गान में भी बड़े कुशल हैं।

---

१. पाइक पाठ मानने से ऐसा ही अर्थ करना पड़ता है जो सन्तोषजनक नहीं है। मेरी समझ में यहाँ पाउक पाठ होना चाहिए। जो पावक का अपभ्रंश है और स्रव का अपभ्रंश सरो है। अर्थात् फहराकर पावक स्रव करता है। यथा : पावकमय ससि स्रवत न आगी। भाव यह कि आतिशबाजी छूट रही है।

ध्यान देने योग्य बात है कि ग्रन्थकार बारात के प्रसङ्ग में भाँड़ तक का वर्णन करते हैं। परन्तु वेश्या का उल्लेख कहीं नहीं है। कामशास्त्र वेश्या में रस की उत्पत्ति ही नहीं मानता। अतः नीरस होने से तथा सुधार की दृष्टि से ग्रन्थकार ने उनका उल्लेख नहीं किया।

दो. तुरग नचावहिं कुँअर वर, अकनि मृदंग निसान।
नागर नट चितवहिं चकित, डगहिं न ताल बँधान ॥३०२॥

अर्थ : श्रेष्ठ राजकुमार डङ्के और मृदङ्ग के शब्द सुनकर घोड़ों को ऐसा नचा रहे हैं कि नगर के नर्तक चकित होकर देखते हैं। कहीं से ताल के बन्धान में चूक नहीं होती है।

व्याख्या : आकर्ण्य शब्द का तद्भवरूप अकनि है। सर्वत्र लवराम् इस सूत्र से रेफ का लोप होकर इःस्वप्नादौ इस सूत्र से यकार को इ आदेश हुआ। आकर्ण्य का अकनि रूप सिद्ध हुआ। इधर कुँवर लोग मृदङ्गादि के ताल के अनुसार घोड़ों को नचा रहे हैं। काल की क्रिया के नाप को ताल कहते हैं। यथा : तालः कालक्रियामानम्। घोड़े नाचने में पैरों से ठीक ताल देते हैं। अच्छे अच्छे नाचनेवाले इस दृश्य को आश्चर्य से देख रहे हैं कि इन घोड़ों से ताल बन्धान में चूक कहीं से नहीं हो रही है। वैसी बात तो अब नहीं है। फिर भी देहात की बारात में घोड़े नचाये जाते हैं। नाचनेवाले घोड़े बाजे का शब्द सुनते ही अस्थिर हो उठते हैं और अवश्य ही ताल का कुछ अनुसरण करते हैं।

बनै न बरनत बनी बराता। होहिं सगुन सुंदर सुभदाता ॥
चारा चाषु बाम दिसि लेई। मनहुँ सकल मंगल कहि देई ॥१॥

अर्थ : उस : सजी हुई बारात का वर्णन नहीं हो सकता। सुन्दर शुभ देनेवाले शकुन होते हैं। १. नीलकण्ठ बाईं ओर चारा ले रहा है। मानो सब मङ्गल कहे देता है।

व्याख्या : सजी हुई बारात वर्णनातीत थी। सुन्दर शकुन होते थे। भाव यह कि ऐसे शकुन भी हैं जो सुन्दर नहीं है। यथा : यात्रा के समय मुर्दा का मिलना अच्छा शकुन है। पर सुन्दर नहीं है। चोर और ठगों के भी शकुन हैं। जैसे गधे का रेंकना आदि पर वे ... मङ्गलदाता नहीं हैं। यहाँ बारह शकुन हुए और बारह कार्य बारात में हुए। कह आये हैं : होत सगुन सुन्दर सबहि जो जेहि कारज जात। इससे सिद्ध है कि क्रम से एक एक कार्य होने के समय एक एक शकुन हुए। कथा के वर्णनक्रम में विक्षेप न हो इस कारण से यहाँ सब शकुनों को इकट्ठा कह दिया।

बाँधे बिरद बीर रन गाढ़े। निकस भये पुर बाहर ठाढ़े। तो देखते हैं कि बाईं ओर नीलकण्ठ चारा चुग रहा है। इस तरह चारा चुगना मानो यह कहता है कि सब मङ्गल ही मङ्गल ही है। इन्हीं राजकुमारों के बीच में स्वयं रामजी घोड़े पर सवार होंगे। इसलिए सब मङ्गल कहा। यह पहला शकुन हुआ।

दाहिन काग सुखेत सुहावा। नकुल दरसु सब काहूँ पावा ॥
सानुकूल बह त्रिविध बयारी। सघट सबाल आव वर नारी ॥२॥

अर्थ : २. दाहिनी ओर सुन्दर खेत में काग शोभायमान था। ३. नेवले का दर्शन सब किसी ने पाया। ४. शीतल मन्द सुगन्ध पवन सामने से आ रहा था। ५. घड़ा और बालक लिये हुए सौभाग्यवती स्त्री आई।

व्याख्या : चढ़ि चढ़ि रथ बाहेर नगर लागी जुरन बरात। तो देखा कि दाहिनी ओर काग सुन्दर क्षेत्र में शोभित है। यह दूसरा शकुन हुआ। सुन्दर क्षेत्र में काग का दाहिने होना शुभ है और चले मत्त गज घंट विराजी। तब कहते हैं : नकुल : नेवले का दर्शन सबने पाया। यह तीसरा सगुन हुआ। भाव यह है कि मत्त गज पर इस समय कोई सवार नहीं है जो नकुल का दर्शन करे। रथी आदि ही समय पाकर उनपर सवार होंगे। इसलिए कहते हैं कि सब लोगों ने दर्शन पाया। कोई दर्शन न पावे तो शकुन ही व्यर्थ चला जाय।

सिविका सुभग सुखासन जाना। तेहि चढ़ि चले विप्रवर वृन्दा। तो सानुकूल बह त्रिविध बयारी। यह चौथा सगुन हुआ और मागध सूत वंदि गुनगायक चले जान चढ़ि जो जेहि लायक। तो सघट सबाल आव वर नारी। यह पाँचवाँ सगुन हुआ।

लोवा फिरि फिरि दरसु देखावा। सुरभी सनमुख सिसुहि पियावा ॥
मृगमाला फिरि दाहिनि आई। मंगल गन जनु दीन्हि देखाई ॥३॥

अर्थ : ६. लोमड़ी ने घूम घूमकर दर्शन दिया। ७. गाय ने सामने ही बछड़े को पिलाया। ८. हिरनों की टोली दाहिने आई। मानो मंगलगण को दिखला दिया।

व्याख्या : बेसर ऊँट वृषभ बहु जाती। चले वस्तु भरि अगनित भाँती। तो लोमड़ी ने घूम घूमकर दर्शन दिया। यह छठा सगुन हुआ। और कोटिन काँवर चले कँहारा तो देखते हैं कि गाय सामने बछड़े को पिला रही है। यह सातवाँ सगुन हुआ। चले सकल सेवक समुदाई। तो क्या देखते हैं कि मृगमाला घूमकर दाहिने ओर आगई। इसी जगह लिखा है : सबके उर निर्भर हरख पूरित पुलक सरीर। कबहिं देखि वे नैन भरि राम लखन दोउ वीर। सो कहते हैं : मंगल गन जनु दीन्ह देखाई। यह आठवाँ सगुन हुआ।

छेमकरी कह छेम विसेषी। स्यामा वाम सुतरु पर देखी ॥
सनमुख आयउ दधि अरु मीना। कर पुस्तक दुइ विप्र प्रवीना ॥४॥

अर्थ : ९. क्षेमकरी विशेष रूप से क्षेम कह रही है। १०. श्यामा को बाँई ओर अच्छे पेड़ पर देखा। ११. सामने दही और मछली आई। १२. हाथ में पुस्तक लिये दो प्रवीण ब्राह्मण आये।

व्याख्या : क्षेमकरी श्वेतमुख की चील्ह को कहते हैं। यात्रा के समय इसका दिखाई पड़ना शुभ है। यथा : कुंकुम रंग सुअंग जित्यौ मुखचंद सो चंद सो होड़ परी

है। बोलत बोल समृद्ध चुवै अवलोकत सोक विषाद हरी है। गौरी कि गंग विहंगिनी वेष कि मंजुलमूरति मोदभरी है। पेखि सप्रेम पयानसमय सब सोच विमोचन छेमकरी है। तब सुमंत दुइ स्यंदन साजी। जोते रवि हय निंदक बाजी। उस समय क्षेमकरी ने क्षेम कहा। यह नवाँ सगुन हुआ। दोउ रथ रुचिर भूपपहँ आने तो स्यामावाम सुरुतपर देखी। श्यामा भुजंगा को कहते हैं। यह दसवाँ सगुन हुआ। गुरु वसिष्ठजी को रथपर चढ़ाकर स्वयं चक्रवतीजो चढ़े तो सनमुख आयेउ दधि अरु मीना। यह ग्यारहवाँ सगुन हुआ। और चले महीपति संख बजाई तो हाथ में पुस्तक लिये दो प्रवीण ब्राह्मण आ पड़े। इस भाँति बारह कार्य बारात में हुए और हरएक में अलग-अलग सगुन हुए।

दो. मंगलमग कल्यानमय, [1]अभिमत फल दातार।
जनु सब साँचे होन हित, भए सगुन एक बार ॥३०३॥

अर्थ : मंगलमय कल्याणमय और ईप्सित फल के देनेवाले सब सगुन मानो सच्चे होने के लिए एक साथ ही हुए।

व्याख्या : चारा चाखु वाम दिसि लेई। मनहु सकल मंगल कह देई से मंगलगन जनु दीन्हि देखाई तक ये आठ सगुन मंगलमय हैं। मङ्गल शब्द गत्यात्मक मंग धातु से बना है। मंगल का अर्थ ही गतिशील है और कल्ये प्रातः अण्यते शब्दचते इति कल्याणम् इस व्युत्पत्ति से क्षेमकरी का कल्याण कहना प्राप्त है। शेष तीन १. स्यामावामसुतरु पर देखी। २. सनमुख आयेउ दधिअरुमीना। ३. कर पुस्तक दुइ विप्र प्रवीना। ये तीन अभिमत फलदातार शकुन स्वयं महाराज को हुए। सब शकुन इकट्ठे नहीं होते कभी कभी किसी को एकाध हो जाते हैं। यहाँ सब इकट्ठे हुए। मनुष्यों का कल्याण ही कितना होगा? अतः अन्त में ये झूठे पड़ जाते हैं। यहाँ जो शकुन होगा वह सच्चा निकलेगा। अतः सत्य होने के लिए उनमें होड़ सी मच गई। यहाँ शकुन से शुभ नहीं है। शुभ तो निश्चित है। शकुन शुभ के ज्ञापक हैं। इसी से शकुन की सत्यता है।

मंगल सगुन सुगम सब ताकें। सगुन ब्रह्म सुंदर सुत जाकें॥
राम सरिस वर दुलहिनि सीता। समधी दसरथु जनक पुनीता ॥१॥

अर्थ : सगुन ब्रह्म जिसके सुन्दर पुत्र हैं। सब मङ्गल सगुन उसे सुगम हैं। राम ऐसा वर सीता सी दुलहिन दशरथ और जनक से पवित्र समधी।

व्याख्या : प्रश्न यह होता है कि मङ्गल सगुन इस भाँति सुगम कैसे हो गये? कभी किसी को कार्यारम्भ में कोई एक सगुन हो जाता है। तो वह अपने को कृतकृत्य मानता है। यहाँ जो ही जिस कार्य को चलता है सगुन को सामने पाता है। इसलिए यह शङ्का उठती है। उत्तर में ग्रन्थकार कहते हैं कि जिसके सगुन ब्रह्म

---

१. यहाँ असिद्धास्पदा : उत्प्रेक्षा है।

सुन्दर सुत हैं। उसी को मंगल सगुन होना प्राप्त भी है। असगुन तो वहाँ होता है जहाँ सगुन से विरोध हो। यथा : श्रुति तौ सगुनै कहै, दिवाने तू असगुन क्यों गहै। देव स्वामी। सुन्दर कहने का भाव यह कि वहु मुख कर पद लोचन सीसा वाले सगुन ब्रह्म तो हैं पर सुन्दर नहीं है।

यहाँ सब बातें बेजोड़ हैं। राम सा वर। सीता सी दुलहिन। दशरथ जनक से पुनीत सम समधी। जब से ब्रह्मदेव ने सृष्टि रची तब से आज तक हुए ही नहीं। यथा : भले भूप कहत भले भदेस भूपन सो। लोक लखि बोलिये पुनीत नीति मारखी। जगदंबा जानकी जगत पितु राम भद्र जानि जिय जोवीं जो न लागै मुख कारिखी। देखे हैं अनेक व्याह सुने हैं पुराणवेद बूझे हैं सुजान साधु नर नारि पारखी। ऐसे सम समधी समाज न विराजमान राम सो न वर दुलहि न सिय सारखी।

सुनि असि व्याहु सगुन सब नाँचे। अब कीन्हे विरंचि हम साँचे ॥
येहि विधि कीन्ह बरात पयाना। हय गय गाजहिं हने निसाना ॥२॥

अर्थ : ऐसा व्याह सुनकर सगुन सब नाच उठे कि अब ब्रह्मदेव ने हमें सच्चा बनाया। इस भाँति बारात ने प्रयाण किया। हय और गज गरजने लगे और निशान बजने लगा।

व्याख्या : व्याह ऐसा और नाच नहीं। अतः सगुन सब नाचे। यह नाच आनन्द का है कि अब ब्रह्मदेव ने हमें सच्चा किया। नहीं तो हम झूठे ही सगुन बने रहे। बारात जुटने में बारह सगुन केवल दिखला दिये गये। इस भाँति ये सगुन सभी कामों में होते थे। नाचे कहने का अर्थ ही यह है कि बार बार हुए।

भयेउ कुलाहलु हय गय गाजे से प्रसङ्ग छोड़ा था। अब वहीं से फिर उठाते हैं। यथा : हय गय गाजहें हने निसाना। तीन चौपाई और एक दोहे में : सुमिरि राम गुर आयसु पाई से लेकर डगहि न ताल विधान तक बारात के प्रयाण की विधि कही।

आवत जानि भानुकुल केतू। सरितन्हि जनक बँधाए सेतू ॥
बीच बीच वर वास बनाए। सुरपुर सरिस संपदा छाए ॥३॥

अर्थ : सूर्यकुल के पताका को आते हुए जानकर जनक ने नदियों पर पुल बँधाये। बीच बीच में बारात के ठहरने के लिए श्रेष्ठ निवास स्थान बनवाये। जिनमें देवलोक की भाँति सम्पदा छाई हुई थी।

व्याख्या : सूर्यकुल के केतु चक्रवर्ती दशरथजी के चलने का अर्थ ही यही है कि बडा जनसमूह साथ है। राजा गच्छति : राजा जाते हैं का अर्थ यह नहीं है अकेले राजा छड़ी टेकते चले जा रहे हैं। उसका अर्थ ही यह है कि घोड़े सेना सामन्त सब साथ हैं। समाचार पाकर महाराज जनक ने नदियों में जो रास्ते में पड़ती हैं पुल बँधवा दिये जिनमें सेना के उतरने का झंझट न रहे। बारात चल पड़ने पर आगे

जाकर दूतों ने समाचार दिया। यद्यपि महाराज ने दूतों को वास दिलवा दिया था। पर वे बारात के साथ बाराती बनकर तो जायँगे नहीं। अतः बारात रवाना होते ही दूतों ने समाचार देने में बड़ी शीघ्रता की।

महाराज जनक ने अपनी सीमा से जनकपुर पहुँचने में बारात के पड़ाव के लिए डेरे खेमों की व्यवस्था की। उन पड़ाव के मुकामों पर देवलोक की सी सम्पदाएँ भरी हुई थीं। दूतों को पूरा पता लग गया कि कितनी बारात है और कौन कौन लोग कितने हैं। अतः तदनुसार डेरे खेमे और सामान आदि की ऐसी व्यवस्था की गई कि देवलोक जान पड़े।

असनु सयन बर बसन सुहाए। पावहिं सब निज निज मन भाए॥
नित नूतन सुख लखि अनुकूले। सकल बरातिन्ह मंदिर भूले॥४॥

अर्थ : सुन्दर भोजन, शयन, श्रेष्ठ कपड़े अपनी अपनी रुचि के अनुसार सभी को मिल रहा है। सभी बराती नित्य नये सुख देखकर प्रसन्न हुए। उन्हें अपना घर भूल गया।

व्याख्या : डेरों में सम्पदा के अतिरिक्त अशन, शयन, और वसन की भी व्यवस्था है। जिसमें बारातियों के बिस्तर और सामान के गट्ठर खुलने न पावें। वहाँ प्रतिष्ठा के अनुसार सत्कार नहीं है। रुचि के अनुसार सत्कार है। जिसे जो वस्तु चाहिए सो सब प्रस्तुत था।

जितना जनकपुर सन्निकट आता जाता है डेरों में सुख की सामग्री उतनी ही बढ़ती चली जा रही है। उतना ही सुख बढ़ता जा रहा है। अतः बाराती सन्तुष्ट हो गये। दूसरी जगह कितना भी सुख हो फिर भी यथार्थ आराम तो अपनी टूटी झोपड़ी में ही मिलता है। परन्तु यहाँ बात ही दूसरी है। बाराती इतने सुखी हुए कि अपना अपना घर भूल गये। इस भाँति चार दिन में बारात जनकपुर आई।

दो. आवत जानि बरात बर, सुनि गहगहे निसान।
सजि गज रथ पदचर तुरग, लेन चले अगवान॥३०४॥

अर्थ : उस श्रेष्ठ बारात को आते जानकर और डंके के घनघोर शब्द को सुनकर लोग हाथी घोड़े और रथ सजाकर अगवानी के लिए चले।

व्याख्या : डंके के घोर शब्द से दूर से ही बारात के आने की आहट लग गयी। चतुरङ्गिनी सेना साथ लेकर अगवानी की। राजाओं में अगवानी के लिए भी वैसी ही तैयारी होती है जैसी बारात की होती है। बल्कि यह देखा जाता है कि तैयारी किस ओर की अच्छी है। अगवानी की तैयारी स्वागत के उत्साह का द्योतक है।

कनक कलस भरि कोपर थारा। भाजनु ललित अनेक प्रकारा॥
भरे सुधासम सब पकवाने। नाना भाँति न जाहिं बखाने॥१॥

अर्थ : सोने के पूर्णघट, कोपर और थार तथा अनेक प्रकार के सुन्दर बरतनों में भरे हुए नाना भाँति के अमृत से पक्वान्न थे जिनका वर्णन नहीं हो सकता।

व्याख्या : सोने के पूर्ण कलश मङ्गल के लिए कोपर पूजन के लिए तथा थार और अनेक सुन्दर बरतन पक्वान्न से भरे हुए भोजन के लिए अर्थात् सबसे पहिले भोजन सामग्री, अर्घ पाद्य, गन्धमाल्यनैवेद्यादि सामने आया।

उपर्युक्त बर्तनों में अमृत से स्वादु पक्वान्न भरे हुए थे। छप्पन प्रकार प्रसिद्ध हैं। इसलिए नाना भाँति न जाइ बखाना कहा।

फल अनेक वर वस्तु सुहाई। हरषि भेंट हित भूप पठाई ॥
भूषन वसन महामनि नाना। खग मृग हय गय बहुविधि जाना ॥२॥

अर्थ : अनेक फल तथा श्रेष्ठ सुन्दर वस्तुओं को राजा ने हर्षित होकर भेंट के लिए भेजा। गहना, कपड़ा, नाना प्रकार के महामणि, चिड़िया, पशु, हाथी, घोड़े तथा अनेक भाँति के यान।

व्याख्या : भोजनोपरान्त फल की व्यवस्था है। इसलिए फल भेजे। चामरादि राजोपचार की सामग्री भेजी। भानुकुलकेतु के लिए भेंट भेजने में महाराज जनक को बड़ा हर्ष है। अगवानी में स्वयं समधी के जाने की चाल नहीं है। इसलिए महाराज जनक ने पदाधिकारियों द्वारा भेजवा दिया। बारात में पहिले ही खाने की चीजें चाहिए। अतः पहिले वे ही भेजी गईं। तत्पश्चात् सुन्दर श्रेष्ठ वस्तुएँ भेजी गईं। राजोपचार में चामरादि वस्तुएँ, अलङ्कार, कपड़े, नाना प्रकार के महामणि भेजे गये। खग, मृग, हाथी, घोड़े तथा अनेक यान भेंट के लिए सहर्ष महाराज जनक ने भेजे। मिथिला की चाल है कि आज भी बारात के द्वार लगने के पहिले कपड़ा जाता है।

मंगल सगुन सुगंध सुहाए। बहुत भाँति महिपाल पठाए ॥
दधि चिउरा उपहार अपारा। भरि भरि काँवरि चले कहारा ॥३॥

अर्थ : मंगल सगुन की वस्तुएँ सुहावने और अनेक प्रकार के सुगन्धित पदार्थ राजा ने भेजे। दधि चिउरा का अपार उपहार काँवर में भर भरकर कहार ले लेकर चले।

व्याख्या : दधि, दूर्वा, रोचन, फूल, फल, नव तुलसीदल आदि मंगल द्रव्य जो सगुन माने गये हैं और गन्ध माल्यादि सुगन्धित द्रव्य अनेक प्रकार के महाराज जनक ने भेजे। अयोध्या से चक्रवर्तीजी के साथ अगणित वस्तुएँ आई हैं। यथा : बेसर ऊँट वृषभ बहु भाँती। चले वस्तु भरि अगनित भाँती। उन वस्तुओं का उपयोग बारात की ओर से न होने पावे। सब वस्तुएँ ज्यों की त्यों अयोध्या लौट जाँय। इसलिए महाराज जनक ने बहुत भाँति की वस्तुएँ भेंट भेजी।

उधर से कोटिन काँवरि चले कँहारा। तो इधर से भी दधि चिउरा उपहार अपारा। भरि भरि काँवरि चले कँहारा। दधि चिउरा मंगल है और तिरहुत में

जैसा होता है वैसा कहीं होता भी नहीं। अवध के लोगों का प्रधान खाद्य दधि चिउरा है। इसके विना उनकी तृप्ति नहीं होती। परन्तु अवध में वैसा दधि चिउरा होता नहीं जैसा मिथिला में होता है। अन्य उपहार तो राजा के लिए हैं। पर दधि चिउरा तो सबके लिए है। अतः अन्य उपहारों का तो पार था। परन्तु दधि चिउरा के परिमाण का पार न था : बोरे में भर भरकर दही का टाल तो मिथिला में ही देखने में आता है और वह दही यहाँ के मक्खन से किसी अंश में कम नहीं होता।

अगवानन्ह जब दीखि बराता। उर आनंदु पुलक भरे गाता ॥
देखि बनाव सहित अगवाना। मुदित बरातिन्ह हने निसाना ॥४॥

अर्थ : अगवानी करनेवालों ने जब बारात देखी तो उनके हृदय आनन्द से और शरीर पुलक से भर उठे और अगवानियों को साज के साथ देखकर बरातियों ने प्रसन्न होकर डंके पर चोटें दीं।

व्याख्या : अगवानियों ने सुन तो पहिले से ही रक्खा था कि अयोध्या से बड़ी अपूर्व बारात आ रही है। पर बारात के दर्शन से उनके हृदय में ऐसा आनन्द हुआ कि सम्पूर्ण शरीर में पुलकावली हो उठी। ऐसी देवसेना सी बारात कभी दृष्टिगोचर नहीं हुई थी और अगवानियों का दर्शन बारातियों के लिए इष्टलाभ था। सबके उर निर्भर हरख। पूरति पुलक सरीर। कबहिं देखिबे नयन भर राम लखन दोउ बीर। सो अवसर अत्यन्त सन्निकट समझकर और अगवानियों का साज समाज देखकर बाराती खिल उठे और उत्साह में भरकर डंके बजाये।

दो. हरषि परसपर मिलन हित, कछुक चले बगमेल।
जनु आनंद समुद्र दुइ, मिलत विहाइ सुवेल ॥३०५॥

अर्थ : कुछ बगमेल आपस में मिलने के लिए दोनों ओर से हर्षित होकर चले। जैसे दो आनन्द के समुद्र अपनी अपनी मर्यादा को छोड़कर मिल रहे हों।

व्याख्या : बारात और अगवान दोनों समुद्र की भाँति उमड़े हुए हैं। समुद्र मर्यादा का उल्लंघन नहीं करते। पर जब लहरें सीमापर आकर टक्कर खाती हैं तो कुछ दूर तक थोड़ा पानी दौड़ता चला जाता है। अब दोनों समुद्र अत्यन्त सन्निकट आगये और दोनों का जल सीमा के बाहर दौड़ता हुआ एक दूसरे की ओर मिलने के लिए चला। इसी भाँति बारात और अगवान में से कुछ लोग मिलने के लिए आगे बढ़े और मिलने लगे। दोनों ओर आगे आगे अश्वारोही राजकुमार लोग थे। वे वाग मिलाये हुए मिलने के लिए आगे बढ़े। इसी को बगमेल कहा है : वस्तुस्थिति यह है कि बड़ी सेना के आगे आगे जो छोटी टोली वीरों की चलती है वही पहले चोट करती है और आक्रमण को रोकती है। उतने काल में ही प्रधान सेना को सँभलने का अवसर मिल जाता है। इसी वीरों की टोली को बगमेल कहते हैं। यही टोली श्रेणीबद्ध होकर घोड़े की वाग मिलाये सेना के आगे रहती है। यहाँ तो युद्ध नहीं है मेल है। इसलिए मिलने के लिए बगमेल होकर कुछ लोग आगे बढ़े और मिले।

यह रसम अब भी किसी न किसी रूप में प्रचलित है। आज भी बारात और अगवान का सामना होते ही दोनों ओर से घोड़े छूटते हैं और थोड़ी सी घुड़दौड़ बारात और अगवान के बीच में हो जाती है और तब हाथियों के साथ पूरी बारात तेजी से द्वार लगने के लिए बढ़ती है।

वरषि सुमन सुर सुंदरि गावहिं। मुदित देव दुंदुभी बजावहिं ॥
वस्तु सकल राखी नृप आगें। विनय कीन्ह तिन्ह अति अनुरागें ॥१॥

अर्थ : देवताओं की सुन्दरियाँ फूल वर्षा कर गान करने लगीं और देवता लोगों ने प्रसन्न होकर नगाड़े बजाये। उन लोगों ने सब वस्तुएँ चक्रवर्तीजी के सामने रक्खीं और अत्यन्त प्रेम से विनती की।

व्याख्या : बारात चलने के समय तो नरसुन्दरियों और सुरसुन्दरियों दोनों ने गान किया था। यथा : सुर नरनारि सुमंगल गाई। पर इस समय वहाँ नर-सुन्दरियों की गति नहीं है। इस फूल की वर्षा करके सुरसुन्दरियों के ही गान का उल्लेख है। देवताओं ने बारात के चलने के समय फूल बरसाये थे। इस समय डंका बजा रहे हैं। इससे सिद्ध है कि देवगण भी बारात के साथ ही साथ चले आरहे हैं। दोनों : मनुष्य और देवता की बारातें मिथिला पहुँच गईं। अगवान को देखकर जब मुदित बरातिन्ह हने निसाना। तो देवताओं की बारात में भी इसी का अनुकरण हुआ। यथा : मुदित देव दुंदुभी बजावहि।

दहेज को समधी के आगे रखने का विधान है। अतः अगवानियों ने राजा जनक की भेजी हुई सब वस्तुएँ महाराज दशरथ के आगे रक्खीं और स्वीकृति के लिए अति अनुराग से विनती की। बड़े लोग विनय प्रेम से ही वश होते हैं। यथा : विनय प्रेम वस भई भवानी।

प्रेम समेत राय सबु लीन्हा। भै बकसीस जाचकन्हि दीन्हा ॥
करि पूजा मान्यता बड़ाई। जनवासे कहुँ चले लेवाई ॥२॥

अर्थ : राजा ने प्रेम के सहित सब स्वीकार कर लिया। मंगतों को देने के लिए आज्ञा हुई और दे दी गईं। पूजा सम्मान और बड़ाई करके सबको जनवासे की ओर लिवा ले चले।

व्याख्या : अगवानियों ने अति अनुराग से विनती की। अतः महाराज दशरथ ने भी प्रेम से स्वीकार कर लिया। पर महाराज चक्रवर्तीजी के यहाँ याचकों का आदर है। आज्ञा हुई कि याचकों में वितरण कर दो। सो वितरण कर दिया गया। यथा : जांचक लिए हँकारि दीन्ह निछावरि कोटि विधि : पूजा की। यथा : वस्तु सकल राखी नृप आगे मान्यता की। यथा : विनय कीन्ह तिन अति अनुरागे। बड़ाई की अर्थात् स्तुति की है। अथवा : बारात भर की यथा योग्य पूजा, सम्मान और स्तुति करके जनवासे की ओर टिकाने के लिए ले चले।

वसन विचित्र पाँवड़े परहीं । देखी धनदु धन मद परिहरहीं ॥
अति सुंदर दीन्हेउ जनवासा । जहँ सब कहुँ सब भाँति सुपासा ॥३॥

अर्थ : अद्भुत वस्तुओं के पाँवड़े पड़ते थे । जिन्हें देखकर कुबेरजी का धनमद छूट जाय । अत्यन्त सुन्दर जनवासा दिया गया । जहाँ सबको सब प्रकार सुभीता था ।

व्याख्या : जिन वस्त्रों का दिखाई पड़ना दुर्लभ था वे पाँवड़े में डाले जा रहे हैं । इससे जनकराज का ऐश्वर्यातिशय कहा । महाराज दशरथ के विषय में कहा जाता है : दसरथ धनसुनि धनद लजाहीं और यहाँ महाराज जनक के विषय में कह रहे हैं : देखि धनद धनमद परिहरहीं । बीच बीच वर वास बनाए । सुरपुर सरसि सम्पदा छाए । वह वर्णन तो रास्ते के पड़ाव का है । यह जनवासा है । इसलिए कहते हैं : अतीव सुन्दर है और साथ ही साथ ऐसा बनाया गया है जिसमें सब किसी को : राजा से लेकर सेवक तक को सब प्रकार का सुभीता हो । क्योंकि यहाँ तो बारात को महीनों ठहरना है ।

जानी सिय बरात पुर आई । कछु निज महिमा प्रगटि जनाई ॥
हृदय सुमिरि सब सिद्धि बुलाई । भूप पहुनई करन पठाई ॥४॥

अर्थ : सीताजी ने जब जाना कि बारात नगर में आगई तो अपनी कुछ महिमा प्रकट करके दिखलायी । हृदय में स्मरण करके सब सिद्धियों को बुलाया और सीताजी ने राजा का आतिथ्य सत्कार करने के लिए भेज दिया ।

व्याख्या : जब तक बारात पुर में नहीं आई तब तक चुप रहीं । जब बारात आगई तब अपनी महिमा को सीताजी ने प्रकट किया । भगवती गंगाजी कहती हैं : लोकप होत विलोकत तोरे । तोहि सेवहिं सब सिधि कर जोरे । सो लोकप होहिं विलोकत तोरे । इस अंश को नहीं दिखलाया । तोहि सेवहिं सब सिधि कर जोरे । इस अंश को दिखलाया । उन्होंने अपनी महिमा को गुप्त कर रक्खा था । यथा : बसहिं नगर जेहि लच्छि करि कपट नारिवर वेष । प्रकट जनाने का कारण यह हुआ कि महाराज दशरथ इन्द्र के अतिथि रह चुके हैं । यथा : आगे ह्वै जेहि सुरपति लेई । अर्ध सिंहासन आसन देई । इन्हें मानुषी भोग जँचेगा नहीं । यहाँ भूषन वसन मणि आदि भेजे गये । सो सब याचकों को बाँट दिये । इसलिए सिद्धियों को बुलाया । किसी को बुलाने के लिए न भेजना पड़ा । केवल स्मरण करने से ही उपस्थित हो गईं । अणिमा महिमा चैव लघिमा गरिमा तथा । प्राप्तिः प्राकाम्य ईशत्वं वशित्वं चाष्टसिद्धयः । ये ही आठों सिद्धियों के नाम हैं । इन्हें सीताजी की आज्ञा हुई कि जाकर आतिथ्य सत्कार करो ।

दो. सिधि सब सिय आयसु अकनि, गईं जहाँ जनवास ।
 लिये संपदा सकल सुख, सुरपुर भोग विलास ॥३०६॥

यह रसम अब भी किसी न किसी रूप में प्रचलित है। आज भी बारात और अगवान का सामना होते ही दोनों ओर से घोड़े छूटते हैं और थोड़ी सी घुड़दौड़ बारात और अगवान के बीच में हो जाती है और तब हाथियों के साथ पूरी बारात तेजी से द्वार लगने के लिए बढ़ती है।

बरषि सुमन सुर सुंदरि गावहिं। मुदित देव दुंदुभी बजावहिं॥
वस्तु सकल राखी नृप आगें। विनय कीन्ह तिन्ह अति अनुरागें॥१॥

अर्थ : देवताओं की सुन्दरियाँ फूल वर्षा कर गान करने लगीं और देवता लोगों ने प्रसन्न होकर नगाड़े बजाये। उन लोगों ने सब वस्तुएँ चक्रवर्तीजी के सामने रक्खीं और अत्यन्त प्रेम से विनती की।

व्याख्या : बारात चलने के समय तो नरसुन्दरियों और सुरसुन्दरियों दोनों ने गान किया था। यथा : सुर नरनारि सुमंगल गाई। पर इस समय वहाँ नरसुन्दरियों की गति नहीं है। इस फूल की वर्षा करके सुरसुन्दरियों के ही गान का उल्लेख है। देवताओं ने बारात के चलने के समय फूल बरसाये थे। इस समय डंका बजा रहे हैं। इससे सिद्ध है कि देवगण भी बारात के साथ ही साथ चले आरहे हैं। दोनों : मनुष्य और देवता की बारातें मिथिला पहुँच गईं। अगवान को देखकर जब मुदित बरातिन्ह हने निसाना। तो देवताओं की बारात में भी इसी का अनुकरण हुआ। यथा : मुदित देव दुंदुभी बजावहि।

दहेज को समधी के आगे रखने का विधान है। अतः अगवानियों ने राजा जनक की भेजी हुई सब वस्तुएँ महाराज दशरथ के आगे रक्खीं और स्वीकृति के लिए अति अनुराग से विनती की। बड़े लोग विनय प्रेम से ही वश होते हैं। यथा : विनय प्रेम बस भई भवानी।

प्रेम समेत राय सबु लीन्हा। भै बकसीस जाचकन्हि दीन्हा॥
करि पूजा मान्यता बड़ाई। जनवासे कहुँ चले लेवाई॥२॥

अर्थ : राजा ने प्रेम के सहित सब स्वीकार कर लिया। मंगतों को देने के लिए आज्ञा हुई और दे दी गईं। पूजा सम्मान और बड़ाई करके सबको जनवासे की ओर लिवा ले चले।

व्याख्या : अगवानियों ने अति अनुराग से विनती की। अतः महाराज दशरथ ने भी प्रेम से स्वीकार कर लिया। पर महाराज चक्रवर्तीजी के यहाँ याचकों का आदर है। आज्ञा हुई कि याचकों में वितरण कर दो। सो वितरण कर दिया गया। यथा : जांचक लिए हँकारि दीन्ह निछावरि कोटि विधि : पूजा की। यथा : वस्तु सकल राखी नृप आगे मान्यता की। यथा : विनय कीन्ह तिन अति अनुरागे। बड़ाई की अर्थात् स्तुति की है। अथवा : बारात भर की यथा योग्य पूजा, सम्मान और स्तुति करके जनवासे की ओर टिकाने के लिए ले चले।

वसन विचित्र पाँवड़े परहीं । देखी धनदु धन मद परिहरहीं ॥
अति सुंदर दीन्हेउ जनवासा । जहँ सब कहुँ सब भाँति सुपासा ॥३॥

अर्थ : अद्भुत वस्तुओं के पाँवड़े पड़ते थे। जिन्हें देखकर कुबेरजी का धनमद छूट जाय। अत्यन्त सुन्दर जनवासा दिया गया। जहाँ सबको सब प्रकार सुभीता था।

व्याख्या : जिन वस्त्रों का दिखाई पड़ना दुर्लभ था वे पाँवड़े में डाले जा रहे हैं। इससे जनकराज का ऐश्वर्यातिशय कहा। महाराज दशरथ के विषय में कहा जाता है : दसरथ धनसुनि धनद लजाहीं और यहाँ महाराज जनक के विषय में कह रहे हैं : देखि धनद धनमद परिहरहीं। बीच बीच वर वास बनाए। सुरपुर सरसि सम्पदा छाए। वह वर्णन तो रास्ते के पड़ाव का है। यह जनवासा है। इसलिए कहते हैं : अतीव सुन्दर है और साथ ही साथ ऐसा बनाया गया है जिसमें सब किसी को : राजा से लेकर सेवक तक को सब प्रकार का सुभीता हो। क्योंकि यहाँ तो बारात को महीनों ठहरना है।

जानी सिय बरात पुर आई। कछु निज महिमा प्रगटि जनाई ॥
हृदय सुमिरि सब सिद्धि बुलाई। भूप पहुनई करन पठाई ॥४॥

अर्थ : सीताजी ने जब जाना कि बारात नगर में आगई तो अपनी कुछ महिमा प्रकट करके दिखलायी। हृदय में स्मरण करके सब सिद्धियों को बुलाया और सीताजी ने राजा का आतिथ्य सत्कार करने के लिए भेज दिया।

व्याख्या : जब तक बारात पुर में नहीं आई तब तक चुप रहीं। जब बारात आगई तब अपनी महिमा को सीताजी ने प्रकट किया। भगवती गंगाजी कहती हैं : लोकप होत विलोकत तोरे। तोहि सेवहिं सब सिधि कर जोरे। सो लोकप होहिं विलोकत तोरे। इस अंश को नहीं दिखलाया। तोहि सेवहिं सब सिधि कर जोरे। इस अंश को दिखलाया। उन्होंने अपनी महिमा को गुप्त कर रक्खा था। यथा : बसहिं नगर जेहि लच्छि करि कपट नारिवर वेष। प्रकट जनाने का कारण यह हुआ कि महाराज दशरथ इन्द्र के अतिथि रह चुके हैं। यथा : आगे ह्वै जेहि सुरपति लेई। अर्ध सिंहासन आसन देई। इन्हें मानुषी भोग जँचेगा नहीं। यहाँ भूषन वसन मणि आदि भेजे गये। सो सब याचकों को बाँट दिये। इसलिए सिद्धियों को बुलाया। किसी को बुलाने के लिए न भेजना पड़ा। केवल स्मरण करने से ही उपस्थित हो गईं। अणिमा महिमा चैव लघिमा गरिमा तथा। प्राप्तिः प्राकाम्य ईशत्वं वशित्वं चाष्टसिद्धयः। ये ही आठों सिद्धियों के नाम हैं। इन्हें सीताजी की आज्ञा हुई कि जाकर आतिथ्य सत्कार करो।

दो. सिधि सब सिय आयसु अकनि, गईं जहाँ जनवास।
लिये संपदा सकल सुख, सुरपुर भोग बिलास ॥३०६॥

अर्थ : सब सिद्धियाँ सीताजी की आज्ञा सुनकर जहाँ जनवास था वहाँ गईं। सुरपुर का भोग विलास सुख और सम्पत् लिये हुए थीं।

व्याख्या : आठों सिद्धियाँ आज्ञा पाकर जनवास में पहुँची। पहिले सुरपुर सरिस सम्पदा छाये। ऐसे वासस्थान में बारात को टिकाया था। परन्तु मानुषी सम्पदा का उत्कर्ष इतना हो है कि सुरपुर सम्पदा के सदृश हो जाय। फिर भी वह सुरपुर की सम्पदा नहीं हो सकती। बन्दर मनुष्य सा होता है फिर भी बन्दर और मनुष्य में महान् अन्तर है। एवं मानव भोग और स्वर्गीय भोग में महान् अन्तर है। सिद्धियों की करणी ऐसी है कि उनके उत्पन्न किये सुख सम्पदा के आगे स्वर्गीय सुख सम्पदा भी नहीं ठहरती। यथा : अस कहि रचेउ रुचिर गृह नाना। जेहि बिलोकि बिलषाहिं बिमाना। भोग बिभूति भूरि भरि राखे। देखत जिन्हहिं अमर अभिलाखे। दासी दास साजु सब लीन्हें। जोगवत रहहिं मनहि मनु दीन्हें।

निज निज बास बिलोकि बराती। सुर सुख सकल सुलभ सब भाँती॥
बिभव भेद कछु कोउ न जाना। सकल जनक कर करहिं बखाना॥१॥

अर्थ : बरातियों ने अपना अपना डेरा देखा कि सब प्रकार से देवताओं का सब सुख सुलभ है। बिभव भेद किसी ने कुछ समझ न पाया। सब जनक राजा की प्रशंसा कर रहे हैं।

व्याख्या : जनवासे में प्रत्येक बाराती के लिए पृथक् पृथक् स्थान निर्दिष्ट थे। सिद्धियों के आते ही बात दूसरी हो गई। अब बाराती अपना डेरा देखते हैं कि विमानों की भाँति सुन्दर सजे हुए हैं और देवताओं का भोग और विभूति सबको सब प्रकार से सुलभ है। भाव यह कि बारातियों को वैसा ही दिखाई पड़ रहा है जैसा कि उन्होंने बना रक्खा है।

विभव में भेद पड़ते किसी ने न लखा। मानुषी भोग दैवी भोग में परिवर्तित हो गया। सबने उस भोग और विभूति को राजा जनक की ही करतूत समझा और उनकी प्रशंसा करने लगे। वस्तुतः जिसकी करतूत थी उसे कौन समझता है। जब विभव भेद ही समझ में नहीं आया तो उसके कर्त्ता की ओर दृष्टि ही क्यों जाने लगी। इस भाँति सीताजी के द्वारा पिता को यश मिल रहा है।

सिय महिमा रघुनायक जानी। हरषे हृदय हेतु पहिचानी॥
पितु आगमन सुनत दोउ भाई। हृदय न अति आनंदु अमाई॥२॥

अर्थ : सीताजी की महिमा को रामजी ने जाना। प्रेम की पहिचान करके हृदय में हर्षित हुए। दोनों भाइयों ने पिता का आगमन सुना। अब अत्यन्त आनन्द हृदय में समा नहीं रहा है।

व्याख्या : महामाया के पति को छोड़कर महामाया की महिमा को कौन जाने। सब लोग भोग में पड़े हुए भी विभव भेद नहीं जान सके। रघुनायक अभी वहाँ गये भी नहीं हैं। विश्वामित्रजी के डेरे पर रहते हुए भी समझ गये कि सीताजी

ने करामात कर दी। सब मानिये राम के नाते। मेरे पिता होने से सत्कार हो रहा है। ऐसा जानकीजी का प्रेम जानकर मन ही मन प्रसन्न हुए। सीताजी की महिमा ही विभवभेद में कारण हुई।

बारात आने पर शोर मच गया कि महाराज अवधनरेश आगये। सुनकर दोनों भाइयों को अत्यन्त आनन्द हुआ। हृदय में यथेष्ट स्थान नहीं रह गया। अतः मुख से नेत्र से तथा रोम रोम से : पुलकद्वारा प्रकट होने लगा। पहिले पुर में बारात आने की जानकारी सीताजी को कही। यथा : जानी सिय बरात पुर आई। अब श्रीरामजी की जानकारी कहते हैं : पितु आगमन सुनत दोउ भाई।

सकुचन्ह कहि न सकत गुर पांहीं। पितु दरसन लालच मन मांहीं ॥
विस्वामित्र विनय बड़ि देखी। उपजा उर संतोष विसेखी ॥३॥

अर्थ : सङ्कोच के कारण गुरु से नहीं कह सकते। पिता के दर्शन का लालच मन में है। विश्वामित्र को इतना बड़ा विनय : अदब देखकर हृदय में विशेष सन्तोष उत्पन्न हुआ।

व्याख्या : दोनों भाई स्वभाव से सङ्कोची हैं। इनके सङ्कोची स्वभाव के कारण माताओं को सोच है कि ये कष्ट सहन कर लेंगे परन्तु मुनिजी से न कहेंगे। यथा : बालक सुठि सुकुमार सकोची समुझि सोच मोहि आली। इन्ही के लिए बारात लेकर पिता अयोध्या से आये हैं। इतने दिनों से पिता का विछोह है। पितृप्रेम हृदय में उमड़ रहा है। पिता के दर्शन का लालच है। नहीं तो राम लक्ष्मण को लालच कहाँ ? फिर भी मुनिजी से पितृ दर्शन के लिए कहने में सङ्कोच है। सङ्कोच तो नगर दर्शन के लिए कहने में भी था फिर भी मुनिजी से निवेदन किया। पर इस बार मारे सङ्कोच के निवेदन भी नहीं कर रहे हैं। क्योंकि पिताजी ने कह रक्खा है कि तुम मुनि पिता आन नहिं कोऊ। सो जब तक गुरुजी स्वयं पिताजी तक ले जाकर पहुँचा नहीं देते तब तक पिता और गुरु दोनों का नाता मुनिजी से ही है। पिता के दर्शन की उत्सुकता प्रकट करने में इसलिए सङ्कोच विशेष है।

विश्वामित्रजी सर्वज्ञ हैं। उन्होंने लालच और सङ्कोच दोनों जान लिया। इतना बड़ा मेरा सङ्कोच है कि पिता के दर्शन की लालच ये बच्चे दबाये बैठे हैं। प्रभु ब्रह्मण्य देव मैं जाना। मोहि निति पिता तजेउ भगवाना। इस त्याग से सन्तुष्ट तो पहिले हो से थे। अब प्रश्रय : अदब के कारण दर्शन को भी नहीं कह रहे हैं। इससे विशेष सन्तोष हुआ। यहाँ विश्वामित्रजी दोनों भाइयों की तथा स्वयं महाराज की भी परीक्षा ले रहे हैं। सो परीक्षा में तीनों व्यक्ति खरे उतरे। न तो राम लक्ष्मण ने उनसे पिता के पास जाने के लिए कुछ कहा और न महाराज दशरथ के यहाँ से राम लक्ष्मण के बुलाने के लिए कोई सन्देश आया।

हरखि बंधु दोउ हृदय लगाए। पुलक अंग अंबक जल छाए ॥
चले जहाँ दशरथु जनवासे। मनहु सरोवर तकेउ पिआसे ॥४॥

अर्थ : प्रसन्न होकर दोनों भाइयों को कलेजे से लगा लिया। शरीर में पुलकावली हो गई। आँखों में आँसू छलछला उठे। जहाँ जनवासे में महाराज दशरथ थे वहाँ के लिए चल पड़े। मानो प्यासा तालाब को लक्ष्य करके जा रहा हो।

व्याख्या : दोनों भाइयों के विनय से विश्वामित्रजी का हृदय उमग उठा। उन्हें कलेजे से लगा लिया। सात्त्विक भाव होने से पुलक भी हुआ। आँखों में आँसू भी आगये। न दोनों भाइयों ने कुछ कहा न गुरुजी ने ही कुछ कहा। सब सबके भावको समझ गये।

विश्वामित्रजी को भी महाराज के दर्शन की बड़ी लालसा है। जिसने अपने प्राण निकालकर दे दिये। यथा : मेरे प्राणनाथ सुत दोऊ। और आने पर यह भी न पूछा कि मेरे प्यारे बच्चे कहाँ हैं? ऐसे आज्ञापालक के दर्शन की प्यासी प्रेमपयोनिधि विश्वामित्रजी को होना प्राप्त ही है। अतः तीनों व्यक्तियों को चक्रवर्तीजी के दर्शन की प्यास है। यहाँ चक्रवर्तीजी सरोवर हैं और उनका रूप ही जल है। अतः प्यासे के सरोवर लक्ष्य करके जाने की भाँति गुरुजी तथा दोनों भाई चले। इतनी चहल पहल नगर में मची हुई है। पर इन तीनों व्यक्तियों ने कुछ न देखा। प्यासा कुछ नहीं देखता। उसका ध्यान केवल पानी पर रहता है।

दो. भूप विलोके जबहिं मुनि, आवत सुतन्ह समेत।
उठेउ हरषि सुखसिंधु महुँ, चले थाह सी लेत ॥२०७॥

अर्थ : जब महाराज दशरथ ने मुनिजी को देखा कि बेटों के साथ चले आरहे हैं तो आनन्दित होकर उठे और सुख के समुद्र में थाह लेते हुए से चले।

व्याख्या : महाराज की दृष्टि पड़ी कि विश्वामित्रजी रामजी तथा लक्ष्मण के साथ चले आरहे हैं। महाराज अगवानी के लिए उठ खड़े हुए। दरबार लगा हुआ था। महाराज के उठते ही सारी सभा उठ खड़ी हुई। महाराज के साथ चल पड़ी। सुख का समुद्र उमड़ चला। उस बीच में महाराज दशरथ चल रहे हैं। उसी चलने की दशा का वर्णन करते हैं। अगाध जल के तल में चलना महा कठिन है। पैर धरती पर पड़ते ही नहीं। समुद्र के तल में चलनेवाले अपने पैरों में भारी बोझ बाँधते हैं। जिसमें धरती पर पैर पड़े। यहाँ भी उसी भाँति मारे आनन्द के महाराज के पैर धरती पर नहीं पड़ रहे हैं। आनन्द सिन्धु में मग्न एक एक पैर सँभाल सँभालकर रख रहे हैं।

मुनिहि दंडवत कीन्ह महीसा। बार बार पद रज धरि सीसा ॥
कौसिक राउ लिए उर लाई। कहि असीस पूछी कुसलाई ॥१॥

अर्थ : महाराज ने मुनिजी को दण्डवत् प्रणाम किया। चरणरज को बार बार सिरपर धारण किया। विश्वामित्रजी ने राजा को हृदय से लगा लिया और आशीर्वाद देकर कुशल पूछा।

व्याख्या : महीश हैं। संसार उन्हें प्रणाम करता है। पर उन्होंने मुनिजी को दण्डवत् प्रणाम किया ! क्योंकि मुनिपद राजपद से कहीं बड़ा है। जब मुनि जी अयोध्या गये थे तब भी दण्डवत् किया था। परन्तु इसबार पुनः पुनः पदरज को सिरपर धारण कर रहे हैं। क्योंकि महात्माओं के चरणरज को सिरपर रखने से ही सब अभीष्टों की सिद्धि होती है। यथा : सब पायेउँ रस पायन पूजे। मुनिजी ने कहा था : धर्म सुयस प्रभु तुम कहँ इन कहँ अति कल्यान। सो अक्षरशः पूरा हुआ। महाराज को धर्म और सुयश की प्राप्ति हुई। धर्म यथा : निसिचर वध मैं होव सनाथा। सुयश यथा : ममहित लागि नरेस पठाये। और रामजी तथा लक्ष्मणजी का अत्यन्त कल्याण हुआ। यथा : गुरुप्रसाद सब बिद्या पाई। बिस्वविजय जस जानकि पाई।

जब विश्वामित्रजी अयोध्या गये थे उस समय के व्यवहार और इस समय के व्यवहार का अन्तर विचारणीय है। उस समय महाराज दशरथ के दण्डवत् प्रणाम पर न आशीर्वाद देते हैं, न कुशल पूछते हैं। हृदय लगाने की कथा ही क्या है ? आज प्रेम में विभोर होकर महाराज के दर्शन के प्यासे होकर आये हैं। दण्डवत् करते देखकर हृदय से लगा लेते हैं। आशीर्वाद देकर कुशल पूछते हैं। महाराज दशरथ के गुण ही ऐसे हैं जिनके कारण विश्वामित्र ऐसे मुनि भी उनके वश में हो गये।

पुनि दंडवत करत दोउ भाई। देखि नृपति उर सुखु न समाईं ॥
सुत हिय लाइ दुसह दुखु मेटे। मृतक सरीर प्रान जनु भेंटे ॥२॥

अर्थ : फिर दोनों भाइयों को दण्डवत् करते देखकर महाराज के हृदय में सुख नहीं समाता है। बेटों को हृदय में लगाकर दुःसह दुःख को मिटाया। जैसे मरे हुए शरीर में फिर से प्राण का सञ्चार हुआ हो।

व्याख्या : वहाँ : पितु आगमन सुनत दोउ भाई। हृदय न अति आनन्द अमाई। यहाँ देखि नृपति उर सुख न समाई। जिस राम और लक्ष्मण की कीर्ति और करणी को बार बार रनिवास में महाराज ने वर्णन किया था वे ही राम और लक्ष्मण ऐसी कीर्ति और करणी करके दण्डवत् कर रहे हैं। पर पूर्व जन्म में माँगा था : मनि बिनु फनि जिमि जल बिनु मीना। मम जीवन मित्ति तुमहि अधीना। सो पहिली दशा उपस्थित थी। बिना मणि के फणि : सर्प की भाँति महाराज रामजी की अनुपस्थिति में व्याकुल रहते थे। अवलम्ब इतना ही था कि उनके प्रतिनिधि रूप में मुनिजी साथ थे। महाराज ने लक्ष्मण को सुपुर्द करते समय कह दिया ही था : तुम मुनि पिता आन नहिं कोऊ। सो पुत्र को हृदय में लगाने के सुख से दुःख को मिटा रहे हैं। जैसे मृतक शरीर में पुनः प्राण का सञ्चार हो रहा हो।

पुनि वसिष्ठ पद सिर तिन्ह नाये। प्रेम मुदित मुनिवर उर लाये ॥
विप्र वृंद वंदे दोउ भाई। मन भावतीं असीसैं पाई ॥३॥

अर्थ : फिर उन्होंने वसिष्ठजी के चरणों में सिर झुकाया। प्रेम से प्रसन्न होकर मुनिश्रेष्ठ ने उन्हें हृदय से लगा लिया। दोनों भाइयों ने ब्राह्मणवृन्द की वन्दना की और वाञ्छित आशीर्वाद पाया।

व्याख्या : वसिष्ठजी को सिर नवाना दूसरी बार का प्रणाम है। पहिले दण्डवत् में पिता के हृदय लगाने से वह केवल उन्हीं के लिए प्रणाम समझा गया। इसलिए गुरुजी को पुनः प्रणाम किया। इष्टलाभ से वसिष्ठजी मुदित हैं। हृदय लगाना ही इष्टलाभ है। प्रेमातिशय से न चक्रवर्तीजी आशीर्वाद दे सके न वसिष्ठजी दे सके।

गुरुजी के प्रणाम के बाद श्रुतिछन्दरूप विप्रवृन्द को प्रणाम किया। एक आशीर्वाद नहीं पृथक् पृथक् आशीर्वाद विप्रवृन्द ने दिया। इसलिए कवि ने बहुवचन का प्रयोग किया है। किसी ने कहा : पूर्णाः सन्तु मनोरथाः। किसी ने धर्मसमृद्धिरस्तु। किसी ने शास्त्रसमृद्धिरस्तु। इत्यादि असीसें दीं। दोनों भाइयों का साथ ही प्रणाम है।

भरत सहानुज कीन्ह प्रनामा। लिए उठाइ लाइ उर रामा॥
हरषे लखन देखि दोउ भ्राता। मिले प्रेम परिपूरित गाता॥४॥

अर्थ : भरतजी ने छोटे भाई के साथ प्रणाम किया। रामजी ने उठाकर छाती से लगा लिया। दोनों भाइयों को देखकर लक्ष्मणजी हर्षित हुए और प्रेम से भरे हुए शरीर द्वारा उनसे मिले।

व्याख्या : उठा लिया कहने से भरतजी का दण्डवत् प्रणाम करना सूचित होता है। भरतजी ने शत्रुघ्न के साथ प्रणाम किया था। यहाँ चारों भाइयों का मिलना है। यह रामचरित सरयू की जल माधुरी है। यथा : अवलोकनि बोलनि मिलनि प्रीति परसपर हास। भायप भलि चहु बंधु की जलमाधुरी सुवास। अति उत्कण्ठा में नियमभङ्ग स्वाभाविक है। भरतजी ने शत्रुघ्न के साथ प्रणाम किया और रामजी ने हृदय से लगा लिया। यहाँ तक नियम ठीक रहा।

भरत शत्रुघ्न जब रामजी को दण्वडत् करते थे तभी उनको देखकर लक्ष्मणजी हर्षित हुए। रामजी से मिलकर भरतजी के अलग होते ही उनसे लिपट गये। प्रणाम न कर सके। इसी भाँति शत्रुघ्नजी को तुरन्त गले से लगा लिया। प्रणाम करने का अवसर भी लक्ष्मणजी ने न दिया।

दो. पुरजन परिजन जाति जन, जाचक मंत्री मीत।
मिले जथाविधि सबहि प्रभु, परम कृपाल बिनीत॥३०८॥

अर्थ : पुर के लोग, मुसाहिब लोग, जाति के लोग, मन्त्री लोग और मित्र, इन सबसे परम कृपालु और विनीत रामजी मिले।

व्याख्या : श्रीरामजी की यही विशेषता है। सबसे तो मिले ही। याचकों से भी मिले। यह भानुकुल केतु की वाग़ात है। इनके यहाँ मंगन को 'नहीं' नहीं

मिलता। पहिला दायज भी इन्हीं के हाथ लगा। अब इससे बढ़कर क्या होगा कि परम कृपालु विनीत रामजी इनसे मिल रहे हैं। एहि दरबार दीन को आदर रीति सदा चलि आई। अब सबसे मिलने की विधि कहते हैं। जो जिस योग्य था उससे वैसे मिले। किसी का चरण ग्रहण किया। किसी को प्रणाम किया। किसी का आलिङ्गन किया। किसी को करकमल से स्पर्श किया। किसी को स्मितावलोकन से अनुगृहीत किया। किसीसे कुशल प्रश्न किया।

रामहिं देखि बरात जुड़ानी। प्रीति कि रीति न जाति बखानी॥
नृप समीप सोहहिं सुत चारी। जनु धन धरमादिक तनुधारी॥१॥

अर्थ : रामजी को देखकर बारात शीतल हुई। प्रीति की रीति बखानते नहीं बनती। महाराज के पास चारों बेटे ऐसे शोभित हैं। मानो धन अर्थ धर्मादि चारों पुरुषार्थ शरीर धारण किये हुए हैं।

व्याख्या : बारात में सबको बड़ी उत्सुकता है कि राम और लक्ष्मण दोनों वीरों को कब देखेंगे? यथा : कबहिं देखिबे नयन भरि राम लखन दोउ बीर। सो आँख भर के देखा। इससे हृदय शीतल हुआ। जो हृदय सुरपुर भोग विलास से शीतल होनेवाला नहीं था वह रामजी के दर्शन से शीतल हुआ। शीतल वस्तु के स्पर्श से जुड़ाने : शीतल होने की विधि है। देखने से नहीं। पर प्रीति ही दूसरी है। उसमें देखने से शीतलता आती है। लोकरीति से विलक्षण होने से अवर्णनीय है। यथा : सब विधि सब पुरलोग सुखारी। रामचंद मुखचंद निहारी।

बारात की महफिल लगी हुई है। महाराज की गद्दी के दक्षिण पार्श्व में चारों राजकुमार शोभायमान हैं। रामजी के दाहिने भरतजी। उनके दाहिने लक्ष्मणजी और लक्ष्मण के दाहिने शत्रुघ्नजी शोभित हैं। छोटे भाई दक्षिण भुजा स्थानीय हैं। अतः उनका स्थान दक्षिण भुजा के सन्निकट है। यथा : राम वाम दिसि जानकी लखन दाहिनी ओर। ऐसी शोभा हो रही है मानो अर्थ धर्म काम और मोक्ष शरीर धारण करके बैठे हुए हैं। धन और धर्म साधन कोटि में और काम तथा मोक्ष सिद्धिकोटि में है। इसी से ऐसा क्रम रक्खा गया। कवि उस सभा में दूर सामने खड़े हैं। अतः अर्थ पर ही पहिले दृष्टि जाती है। उसी क्रम से उल्लेख है। यथा : शत्रुघ्न, लक्ष्मण, भरत और रामजी। राजाओं की पूरी शोभा चारों फलों से युक्त होने में है। यहाँ मोक्ष से अभिप्राय जीवन्मुक्ति से है।

सुतन्ह समेत दसरथहिं देखी। मुदित नगर नर नारि बिसेखी॥
सुमन बरहिं सुर हनहि निसाना। नाकनटी नाचहिं करि गाना॥२॥

अर्थ : बेटों के सहित चक्रवर्तीजी को देखकर बाराती मुदित हैं। पर जनकपुर के नर नारी विशेष मुदित हैं। फूलों की वर्षा करके देवता दुन्दुभी बजा रहे हैं और अप्सराएँ गान कर रही हैं।

व्याख्या : जनकपुर के नर नारी बेटों के साथ महाराज दशरथ को देखकर

विशेष आनन्दित हैं। क्योंकि बारातियों ने तो पहिले भी ऐसी झाँकी देखी है। परन्तु जनकपुर के लोगों के लिए यह पहिला अवसर है। अथवा महापुण्यवान महाराज दशरथ को देखकर मुदित थे। अब वे बेटों के सहित उन्हें देखकर विशेष मुदित हुए। ऐसे गुणवान चार कुमारों के होने से महाराज के महापुण्य का अनुमान करते हैं: यह जनकपुर निवासियों की मुदितता है।

मिलने के समय से ही देवताओं का डंका बज रहा है। पर कवि को लिखने का अवसर अब मिला है। महाराज दशरथ की सभा में वेश्या का नृत्य और गान नहीं हैं। विवाह चाहे सात सौ हों पर एक वेश्या का नृत्य न होने पावे: यह गोस्वामीजी का सुधार है। देवताओं के डङ्का बजाने के उल्लेख से यह पता चलता है कि अप्सराओं का गान और नृत्य आकाश मण्डल में हो रहा है। भूमण्डल में नहीं।

सतानंदु अरु बिप्र सचिव गन। मागध सूत बिदुष बंदीजन॥
सहित बरात राउ सनमाना। आयसु माँगि फिरे अगवाना॥३॥

अर्थ: शतानन्द, ब्राह्मण, मन्त्रीगण, मागध, सूत, पण्डित और वन्दीजनों ने बारात के सहित महाराज का सम्मान किया और आज्ञा माँगकर अगवानी करनेवाले लोग लौटे।

व्याख्या: बारात की अगवानी में तथा सत्कार में स्वयं समधी के न जाने की चाल है। अतः महाराज जनक स्वयं उपस्थित न थे। अगवानी में जो लोग गये थे और जो लोग बारात को जनवासे में लाये थे उनमें से पुरोहित शतानन्दजी, ब्राह्मण, मन्त्रीगण, मागध, सूत, पण्डित और वन्दीजनों ने बारात के सत्कार की व्यवस्था की। जब सब व्यवस्था हो चुकी तब अगवानियों ने वापस जाने की आज्ञा चाही और पाने पर लौट आये।

प्रथम बरात लगन ते आई। तातें पुर प्रमोद अधिकाई॥
ब्रह्मानंद लोगु सब लहहीं। बढ़उ दिवस निसि बिधि सन कहहीं॥४॥

अर्थ: पहिले बारात लग्न से आई। इससे नगर में आनन्द बढ़ गया। लोग ब्रह्मसुख प्राप्त कर रहे हैं। ब्रह्मदेव से कह रहे हैं कि दिन और रात बढ़े।

व्याख्या: गुरुजी की आज्ञा का यह प्रभाव है कि बिना लग्न देखे बारात चली परन्तु लग्न से पहुँची। अर्थात् अच्छे लग्न में जनकपुर में[1] प्रवेश किया। प्रथम बारात कहने का भाव यह कि विवाह के लिए राजद्वार पर लगने के लिए दूसरी बारात निकलेगी। पहिली बारात जो बिना दूल्हा के अयोध्या से आई है। उसने जनकपुर में शुभलग्न से प्रवेश किया। जनकपुर में ज्योतिष का बड़ा आदर है। लग्न पर बड़ा विश्वास है। लग्न से बारात के आने से भावी मंगल को सूचना मिली। प्रजा

———

१. धन तेरस को बारात जनकपुर पहुँची।

राजा में अनुरक्त है। उनके मंगल से अपना मंगल मानती है। अतः बारात के लग्न से आने में सबको अधिक आनन्द हुआ।

जन्मोत्सव के समय अयोध्यावासियों ने ब्रह्मानन्द का सुख लिया। यथा : ब्रह्मानन्द मगन सब लोगू। इस समय जनकपुरवासी भी वही सुख ले रहे हैं। जन्मोत्सव में : मास दिवस कर दिवस भा। एक दिन महीने भर का हो गया था। इसलिए अवधवासियों ने दिवस निसि के बढ़ने की प्रार्थना विधि से नहीं की थी। इस समय ऐसा नहीं हुआ। लोग इस आनन्द से अभी तृप्त नहीं हुए हैं। अतः विधि से दिन रात के बढ़ने के लिए प्रार्थना कर रहे हैं।

दो. राम सीय सोभा अवधि, सुकृत अवधि दोउ राज।
जहँ तहँ पुरजन कहहिं अस, मिलि नर नारि समाज ॥३०९॥

अर्थ : राम और सीता शोभा की सीमा हैं और पुण्य की सीमा दोनों राजा हैं। यही बात जहाँ तहाँ नगर निवासी नरनारि समाज में मिलकर कह रहे हैं।

व्याख्या : न तो राम और सीता सी सुन्दरता ही संसार में कहीं है और न महाराज दशरथ और जनक सा पुण्यात्मा कोई है। यही भाव जो नगरवासी बारात तथा जनवास देखकर लौटते हैं उनके हृदय में उठ रहा है। और यही चरचा वे परस्पर कर रहे हैं। पुरवासी घर लौटकर जो कुछ नरसमाज में कहते हैं और नारियाँ घर लौटकर नारीसमाज में जो कहती हैं उसका सारांश इतना ही है : राम सीय सोभा अवधि सुकृत अवधि दोउ राज।

जनक सुकृत मूरति बैदेही। दसरथ सुकृत रामु धरें देही ॥
इन सम काहु न सिव अवराधे। काहु न इन समान फल लाधे ॥१॥

अर्थ : राजा जनक के पुण्य की मूर्ति सीताजी हैं और राजा दशरथ के पुण्य ने रामजी का देह धारण कर रक्खा है। इनके समान तो किसी ने न शिवजी की आराधना की और न किसी ने इनके समान फल प्राप्त किया।

व्याख्या : पहिले केवल रामजी की छवि की चरचा नगर में थी। यथा : बरनत छवि जहँ तहँ सब लोगू। अब रामजी की छवि और दोनों राजाओं के पुण्य का वर्णन हो रहा है। मिथिला कर्मठ देश है। स्वयं जनकजी ज्ञानी होते हुए भी बड़े याज्ञिक थे। अतः सबका ध्यान उन कर्मों पर गया जिनका यह फल है। कोई कहता है कि राजा के किये हुए पुण्य की मूर्ति बैदेही हैं और राजा दशरथ के पुण्य की मूर्ति रामजी हैं। क्योंकि अति उग्र पुण्य पाप का यहीं फल मिल जाता है। यथा : अत्युग्रपुण्यपापानामिहैव फलमश्नुते।

कोई पुण्य का विवरण कर रहा है : इच्छित फल बिनु सिव अवराधे। लहिअ न कोटि जोग जप साधे। सो इन दोनों राजाओं ने शङ्कर की अतीव आराधना की है। तभी सब प्रकार से सम्पन्न हैं। यथा : स्यंदन गयंद बाजि राजि भले भले भट धन धाम निकर करनिहू न पूजे क्वै। बनिता विनीत पूत पावन

सोहावन औ विनय विवेक विद्या सुभग सरीर ज्वै। इहाँ ऐसो सुख परलोक सिवलोक ओक ताको फल तुलसी सों सुनो सावधान ह्वै। जाने बिनु जाने कै रिसाने केलि कबहुँक सिवहि चढ़ाये ह्वै हैं बेल के पतौवा द्वै।

इन्ह सम कोउ न भयउ जगमांहीं। हैं नहिं कतहूँ होनेउ नांहीं॥
हम सब सकल सुकृत कै रासी। भए जग जनमि जनकपुर वासी॥२॥

अर्थ : इनके समान संसार में न कोई हुआ, न है, न होगा। हम सब भी सकल पुण्य के राशि संसार में जन्म लेकर जनकपुरवासी होने से हुए।

व्याख्या : कोई कहता है कि तीन काल में इनके समान कोई नहीं हुआ। वसिष्ठजी का भी यही मत है। यथा : सुकृती तुम समान जगमांहीं। भयउ न है कोउ होनेउ नांही। महाराज जनक इन्हीं के समकक्ष हैं। यथा : सम समधी देखा हम आजू। अतः इनके समान भी न कोई था, न है, न होगा। कोई कहते हैं कि जनकजी की प्रजा होने से हम भी पुण्य की राशि हो गये। यथा राजा तथा प्रजा। राजा पुण्य की सीमा है हमलोग राशि हैं। पुण्य की सीमा होने का फल राजा को मिल रहा है और राशि होने का फल प्रजा को मिल रहा है। अथवा जनकपुर महा पुण्यतीर्थ है। इसके सेवन से हमलोग पुण्य की राशि हो गये। पुण्यराशि होनें का फल कहते हैं :

जिन्ह जानकी राम छवि देखी। को सुकृती हम सरिस बिसेखी॥
पुनि देखब रघुबीर बिबाहू। लेब भली बिधि लोचन लाहू॥३॥

अर्थ : जिन्होंने जानकी और राम की छवि देखी है। हमारे सदृश विशेष पुण्यात्मा कौन है। फिर रघुवीर का विवाह देखेंगे और भली प्रकार से लोचन का लाभ लेंगे।

व्याख्या : राम जानकी की छवि देखना सकल पुण्य की राशि हुए बिना सम्भव नहीं। यह विशेष सुकृत का फल है। क्योंकि पुण्य का फल तो स्वर्ग है। परन्तु यह दर्शन तो इतना दुर्लभ है कि सरभङ्ग मुनि ब्रह्मलोक जा रहे थे सो इस दर्शन के लिए रुक गये। यथा : जात रह्यों बिरंचि के धामा। सुनेउ श्रवन बन अइहैं रामा। चितवत पंथ रहेउँ दिन राती। अब प्रभु देखि जुड़ानी छाती।

इतना ही नहीं और देखना है। रघुवीर विवाह देखना है। जो ब्रह्मलोक की रानी शारदा को भी सुलभ नहीं। यथा : राजत राम जानकी जोरी। स्याम सरोज जलद सुंदर वर दुलहिन तडित वरन तन गोरी। व्याह समय सोहति वितानतर उपमा कहुँ न लहत मति मोरी। मनहु मदन मंजुल मंडप मँह छवि सिंगार शोभा इक ठौरी। मंगलमय दोउ अंग मनोहर ग्रथित चूंदरी पीत पिछोरी। कनक कलस कहँ देत भांवरी देखि प्रीति सारद भइ भोरी। इस प्रकार जहाँ चार आदमी इकट्ठे हैं वहीं ऐसी बातें हो रही हैं। अतः चार पुरुषों का संवाद कहा।

कहहिं परसपर कोकिलवयनी। येहि विवाह बड़ लाभु सुनयनी ॥
बड़े भाग विधि बात बनाई। नयन अतिथि होइहहिं दोउ भाई ॥४॥

अर्थ : कोकिलवयनी आपस में कहती हैं कि हे सुनयनी ! इस विवाह में बड़ा लाभ है। बड़े भाग से ब्रह्मदेव ने बात बनाई है। दोनों भाई आकर आँखों के मेहमान : अतिथि होंगे।

व्याख्या : कहने और सुननेवाली दोनों कोकिलवयनी और सुनयनी हैं। नरसमाज का हाल कहकर अब नारीसमाज का हाल कहते हैं। यद्यपि रामजी के नगरदर्शन के समय सभी घरों की स्त्रियों ने रामजी के रूप की प्रशंसा की। यथा : हिय हरखहिं बरखहिं सुमन सुमुखि सुलोचनि वृंद। जाहिं जहाँ जहँ बंधु दोउ तहँ तहँ परमानंद। तथापि संवाद अष्ट सखियों का ही लिखा गया। इसी भाँति यहाँ भी अष्ट सखियों का संवाद कहते हैं। इसी संवाद में सब नारियों के कथन का अन्तर्भाव है। १. जिस सखी ने कहा था कि : जेहि बिरंचि रचि सीय सँवारी। सोइ स्यामल वर रचेउ विचारी। वही कहती हैं : एहि विवाह बड़ लाभ सुनयनी। दूसरे विवाह में अनुरूप जोड़ी हो जाती। सबसे बड़ा लाभ है कि अनुरूप जोड़ी मिली। इससे दम्पति का लाभ, दोनों पक्ष का लाभ, सब लाभ ही लाभ है।

२. जिसने कहा था : संकर चाप कठोरा। ये स्यामल मृदु गात किसोरा। सब असमंजस अहै सयानी। वह कह रही है : बड़े भाग विधि बात बनाई। नयन अतिथि होइहैं दोउ भाई। अब ये दोनों भाई कभी कभी दर्शन देते रहेंगे। राजा के अतिथि होंगे और हमलोगों के नयनों के अतिथि होंगे।

दो. बारहिं बार सनेह बस, जनक बोलाउब सीय।
लेन आइहहिं बंधु दोउ, कोटि काम कमनीय ॥३१०॥

अर्थ : जनकजी बार बार स्नेहवश होकर सीताजी को बुलायेंगे। करोड़ों कामों से भी सुन्दर दोनों भाई लेने आवेंगे।

व्याख्या : ३. जिसने कहा था : नाहि त हम कहँ सुनहु सखि इनकर दरसन दूरि। यह संघट तब होइ जब पुन्य पुराकृत भूरि। वही कह रही है कि पुण्य पुराकृत उदय हुआ। इनका दर्शन अब दुर्लभ न होगा। जनकजी बड़े दुहितृ-वत्सल हैं। बेटी के लिए इतना बड़ा स्वयंवर रचा। बारात के सत्कार के लिए इतना कर रहे हैं। ये स्नेह के वश बारबार सीताजी को बुलावेंगे। तब विदा कराने के लिए बारम्बार दोनों भाइयों को आना पड़ेगा। बिना पति के विदा कराने आये स्त्रियों का सम्मान नहीं होता। अतः विदा कराने पति को जाना पड़ता है। अतः ये लोग बारबार आवेंगे और हमलोग दर्शन पावेंगे।

बिबिध भाँति होइहि पहुनाई। प्रिय न काहि अस सासुर माई ॥
तब तब राम लखनहिं निहारी। होइहहिं सब पुर लोग सुखारी ॥१॥

अर्थ : अनेक प्रकार से आतिथ्य सत्कार होगा। हे माई ! ऐसी ससुराल किसे प्रिय न होगी। तब तब राम लखन को देखकर सब पुर के लोग सुखी होंगे।

व्याख्या : ४. जिसने कहा था : कोउ कह ये भूपति पहिचाने। मुनि समेत सादर सनमाने। वही कहती है कि बिना सम्बन्ध ही इतना सत्कार हुआ था। अब तो घनिष्ठ सम्बन्ध हो गया। विविध प्रकार से सत्कार तो दामाद का सामान्य लोग करते हैं। महाराज जनक के सत्कार का कहना ही क्या है ? ऐसी ससुराल स्वभाव से रामजी को प्रिय होगी। अतः अवश्य आना जाना लगा रहेगा।

सखि जस राम लषन कर जोटा। तैसेइ भूप संग दुइ ढोटा ॥
स्याम गौर सब अंग सुहाए। ते सब कहहिं देखि जे आए ॥२॥

अर्थ : हे सखि ! जैसा राम लक्ष्मण का जोड़ा है वैसे ही राजा के संग दो लड़के हैं। श्याम गौर सब अङ्ग सुन्दर हैं। वे सब कहते हैं जो देख आये हैं।

व्याख्या : ५. जिसने कहा था : ए दोऊ दशरथ के ढोटा। बाल मरालन्ह के कल जोटा। वही कह रही है : सखि जस राम लखन कर जोटा। तैसई भूप संग दुइ ढोटा। पहिले भी इसने अपने पति से सुनकर कहा था। यथा : जो मैं सुना सो सुनहु सयानी। इस बार भी उन्हीं से सुनकर कहती है कि वे लोग बतलाते हैं जो देखकर आये हैं। पति की कही हुई बातों को सङ्कोच से स्त्रियाँ इसी प्रकार से कहती हैं। पति से उसने सुन रक्खा है। महाराज दशरथ के दो लड़के हैं जो ठीक राम लक्ष्मण से हैं। राम लक्ष्मण की भाँति वे दोनों भी श्याम गौर और सुन्दर हैं।

कहा एक मैं आजु निहारे। जनु बिरंचि निज हाथ सँवारे ॥
भरतु रामही की अनुहारी। सहसा लखि न सकहिं नर नारी ॥३॥

अर्थ : एक ने कहा मैंने तो आज ही देखा है। मानो ब्रह्मदेव ने अपने हाथ से सँवारा है। भरत तो रामजी जैसे हैं। एकाएक कोई पहचान नहीं सकता।

व्याख्या : ६. जिसने कहा था : कहहु सखी अस को तनुधारी। जो न मोह येह रूप निहारी। वह कहती है कि मैं तो आज अपनी आँखों से देखती चली आरही हूँ। पहली सखी की बात की पुष्टि करती है। भाव यह कि बनानेवाले सबके ब्रह्मा हैं। पर अपने हाथ से किसी को नहीं बनाते। स्वयं ऐसा यन्त्र बना दिया है कि आप से आप सृष्टि होती रहती है। उन्हें अपने हाथों कुछ नहीं करना पड़ता। पर इनके बनाने में तो मानो उन्होंने स्वयं परिश्रम किया है। यथा : जनु बिरंचि सब निज निपुनाई। बिरचि बिस्व कहँ प्रकटि देखाई। ७. नाम का भी पता लगा लाई है। कहती है कि भरत और राम में ऐसा सादृश्य है कि एकाएक यह पहिचानना कठिन हो जाता है कि कौन राम हैं और कौन भरत हैं। नर के लखने में धोखा हो। पर नारियों के लखने में धोखा नहीं होता। पर राम और भरत का सादृश्य ऐसा है कि नारी को भी धोखा हो सकता है।

लखनु सत्रुसूदनु एकरूपा । नख सिख ते सब अंग अनूपा ॥
मन भावहिं मुख वरनि न जांहीं । उपमा कहुँ त्रिभुवन कोउ नांहीं ॥३॥

अर्थ : लक्ष्मण और शत्रुघ्न एक रूप के हैं। नख से शिख तक सब अङ्ग अनूप हैं। मनमें अच्छे लगते हैं। मुख से कहे नहीं जा सकते। उपमा के लिए त्रिभुवन में कोई नहीं है।

व्याख्या : दो भाई एक रंग के और दो भाई दूसरे रंग के हैं। रामजी और भरतजी को कह चुकी। अब लक्ष्मणजी और शत्रुघ्नजी को कहती है। ये दोनों भी एक रूप के हैं। इनका भी भेद लखना कठिन है। सुन्दरता का वर्णन करती है कि मन को तो प्यारे लगते हैं। परन्तु मुख से कोई वर्णन करना चाहे तो कर नहीं सकता। क्योंकि नख से शिख तक सब अङ्ग अनूप हैं। एक वस्तु को दूसरे से मिलान करके ही वर्णन हो सकता है। वैसी दूसरी वस्तु संसार में नहीं जिसका पटतर दिया जा सके। ८. यह कहती है कि मनमें अच्छे लगते हैं मुख से वर्णन नहीं हो सकता। यहाँ पर इसी सखी के पूर्वकथन का अनुवर्तन करना पड़ेगा। यथा : विष्णु चारि भुज विधि मुख चारी। इत्यादि। इस भाँति उन्हीं आठों सखियों का संवाद है। जिन्हें अपरा प्रकृति रूप से वर्णन किया जा चुका है। भेद क्रम का है। यहाँ सबसे पिछली सखी पहिले बोली। उनकी पहिले के कही हुई बातें ऐसी सम्बद्ध हैं कि लाचार होकर मानना पड़ता है कि वे ही सखियाँ हैं।

छं. उपमा न कोउ कह दास तुलसी कतहुँ कवि कोविद कहैं।
बल विनय विद्या सील सोभा सिंधु इन्ह से एहैं अहैं ॥
पुर नारि सकल पसारि अंचल विधिहि वचन सुनावहीं।
व्याहिअहुँ चारिउ भाइ इहि पुर हम सुमंगल गावहीं ॥

अर्थ : तुलसीदासजी कहते हैं कि कविकोविदों का यह कथन है कि इनकी उपमा कहीं भी नहीं है। बल, विद्या, विनय, शील और शोभा के समुद्र में अपने ऐसे आप ही हैं। सब पुरनारियाँ आँचल पसारकर ब्रह्मदेव से माँगती हैं कि चारों भाइयों का व्याह इसी नगर में हो और हम मंगल गायें।

व्याख्या : सन्देह उठता है कि कुलवधू होकर इसने ऐसा कैसे कह दिया कि तीनों लोक में कोई नहीं है ? क्या इसने सूर्पणखा की भाँति तीनों लोक में विचरण किया है। यथा : मम अनुरूप पुरुष जग नाहीं। देख्यौं खोजि लोक तिहुँ मांहीं। अतः इसके कहने का क्या प्रमाण ? इसलिए श्री गोस्वामीजी कहते हैं कि पण्डित कवि लोग कहते हैं कि इनकी उपमा कहीं नहीं है। अतः पण्डित कवियों के कहने से उसका दुर्बल कथन भी पुष्ट हो गया। जिसे बल होता है। उसे विद्या नहीं। जिसे दोनों होता है उसे अभिमान हो जाता है। अतः उसमें विनय का अभाव होता है। जिसमें तीनों हों उसमें सदाचार का भी होना दुर्लभ है। चारों हुए तो अच्छा

रूप नहीं होता। यहाँ एक एक पाँचों गुणों के समुद्र है। समुद्र चार हैं और वे भी चार हैं। अतः इनके समान ये ही हैं। यथा : सागरः सागरोपमः। इस भाँति स्त्रियाँ विधि से प्रार्थना करती हैं। पुरुष करसम्पुट करके प्रार्थना करते हैं। पर स्त्रियाँ आँचल पसारकर माँगती हैं। आँचल पसारकर ब्रह्मदेव से चारों भाइयों का जनकपुर में ही व्याह होना माँगतीं हैं। इनके लिए कह आये हैं : कहहिं परसपर कोकिल बयनी। एहि बिबाह बड़ लाभ सुनयनी। इन्हीं कोकिलवयनी और सुनयनियों ने धनुषभङ्ग होने पर जयमाल पड़ने के समय गान किया था। यथा : जूथजूथ मिलि सुमुखि सुनयनीं। करहिं गान कल कोकिल बयनी। सो इन्हें चारों भाइयों के व्याह में मङ्गलगान करने की अभिलाषा है। इस पुर में व्याह हो तो हम मङ्गल गावें।

सो. कहहिं परस्पर नारि, बारि बिलोचन पुलक तन।
सखि सब करब पुरारि, पुन्य पयोनिधि भूप दोउ ॥३११॥

अर्थ : स्त्रियाँ आँखों में आँसू भरकर और पुलकित शरीर होकर आपस में कहती हैं कि सखि! सब पुरारि पूरा करेंगे। क्योंकि दोनों राजा पुण्य के समुद्र हैं।

व्याख्या : अति उत्कण्ठा के कारण इन स्त्रियों को सात्त्विक भाव हुआ। आँखों में आँसू आगया। शरीर पुलकित हो उठा। कहने लगीं कि सखी यह सब वही महादेव करेंगे जिनके ये दोनों राजा आराधना करनेवाले हैं। यथा : इन सम कोउ नहिं सिव अवराधे। कोउ नहि इन समान फल लाधे। और दूसरी बात यह भी है कि ये दोनों राजा केवल भक्त ही नहीं बड़े पुण्यात्मा हैं। इन्हें पुण्यपयोनिधि कहिये। सो इनके पुण्य का फल भी महादेव देंगे। यथा : क्व कर्म प्रध्वस्तं फलति पुरुषाराधनमृते। सुकृति अवध दोउ राज : यह कहना नरनारिसमाज का सिद्ध हुआ।

येहि बिधि सकल मनोरथ करहीं। आनंद उमगि उमगि उर भरहीं॥
जे नृप सीय स्वयंबर आए। देखि बंधु सब तिन्ह सुख पाए ॥१॥

अर्थ : इस विधि से सब मनोरथ कर रहे हैं। आनन्द को उमग उमगकर हृदय में भर रहे हैं। जो राजा सीताजी के स्वयंवर में आये थे। सब भाइयों को देखकर उन लोगों ने सुख पाया।

व्याख्या : ब्रह्मानंद लोग सब लहहीं। बढ़उ दिवस निसि बिधि सन कहहीं से उपक्रम करके : ब्याहिअहुँ चारिउ भाई इहि पुर हम सुमंगल गावहिं से उपसंहार किया। यह तो एक समाज का मनोरथ था। मनोरथ सभी पुरवासी कर रहे थे। सबके मनोरथ कहाँ तक लिखे जाँय। एक समाज का वृत्तान्त लिखकर दिखलाया कि मनोरथ की विधि सर्वत्र यही थी। मनोरथ से ही आनन्द उमग रहा है। उसे हृदय में भर रहे हैं। दूसरे विचार के लिए स्थान नहीं है।

जनकपुर वासियों की गतिविधि कहकर अब बाहरी लोग जो जनकपुर में आये हैं उनका हाल कहते हैं। पुर बाहिर सर सरित समीपा। उतरे जहँ तहँ विपुल महीपा। जो राजा बाहर से सीताजी के स्वयंवर में आये थे उनमें से कुटिल राजा तो पहिले ही चलते बने थे। यथा : अपभय कुटिल महीप डेराने। जहँ तहँ कायर गवँहि पराने। साधु राजा बारात देखने के लिए ठहर गये थे। उन्हें रामजी के दर्शन से सुख मिलता था। यथा : जगत पिता रघुपतिहिं बिचारी। भरि लोचन छबि लेहु निहारी। अब चारों भाइयों के दर्शन से तृप्त हो गये।

कहत राम जसु बिसद बिसाला। निज निज भवन गये महिपाला॥
गये बीति कछु दिन येहि भाँती। प्रमुदित पुरजन सकल बराती॥२॥

अर्थ : निर्मल और विशाल रामयश कहते हुए राजा लोग अपने अपने घर गये। कुछ दिन इस भाँति बीत गये। पुरजन और बाराती आनन्दित थे।

व्याख्या : बारात आजाने पर ठहरना ठीक नहीं। क्योंकि किसी ओर से निमन्त्रित नहीं हैं। इसलिए अपने अपने घर गये। साधु हैं : इसलिए रामजी के जगद्-व्यापी यश का वर्णन करते घर गये। रामयश के वर्णन का सामर्थ्य साधु को ही होता है। कुटिल के मुख से रामयश नहीं निकलता। यथा : वर्षहि राम सुयस बरबारी। मधुर मनोहर मंगलकारी। ये साधु राजा धनुष के पास भी नहीं गये थे। यथा : जिनके कछु बिचार मन मांहीं। चाप समीप महीप न जांहीं। अतः इनकी हार भी नहीं हुई थी। इन्हें रामयश वर्णन में उत्साह था और जो : कीरति विजय वीरता भारी। चले चापकर बरबस हारी। उनके मुख से रामयश नहीं निकल सका। वे चुपके से पहिले ही चले गये थे।

राजाओं का जाना कहकर अब फिर जनकपुर का हाल कहने लगे कि पुरवासी तो ब्याह देखने के मनोरथ से आनन्दित हैं। सभी बाराती लोग आतिथ्य सत्कार तथा रामजी के दर्शन से आनन्दित हैं। इस भाँति कुछ दिन बीत गये। भाव यह कि बारात पहुँचने के कुछ दिनों बाद ही लग्न दिन की सम्भावना थी। शरद् ऋतु में व्याह का लग्न नहीं होता। कार्तिक शुक्ल एकादशी हरिप्रबोधिनी है। हरि के शयनकाल में मंगलकार्य स्थगित रहते हैं। इस बीच में सांकाश्यापुरी से महाराज जनक के भाई राजा कुशकेतु भी आगये।

मंगल मूल लगन दिनु आवा। हिम रितु अगहन मासु सुहावा॥
ग्रह तिथि नखतु जोगु बर बारू। लगन सोधि बिधि कीन्ह बिचारू॥३॥

अर्थ : मंगल का मूल लग्न का दिन आगया। हिमऋतु और सुन्दर अगहन का महीना। ग्रह, तिथि, नक्षत्र, योग, श्रेष्ठ दिन और लग्न को शोध करके ब्रह्मदेव ने विचार किया।

व्याख्या : मंगल का मूल हिमऋतु : हेमन्त है। उसी में विवाह के लग्न देखे जाते हैं। उसमें भी अगहन का महीना शोभन है। पूस में तो खरवाँस : खरमास

लग जाता है। उसमें कोई मंगलकार्य नहीं होता। इसलिए सोहावा मास अगहन ही है। भगवान् भी कहते हैं : मासानां मार्गशीर्षोऽहम्। अतः इसी महीने में विवाह के लग्न देखे जाते हैं।

अतः अगहन के महीने के आजाने पर स्वयं ब्रह्मदेव ने विवाह का लग्न निश्चय किया। क्योंकि आचार्यों ने लग्न की ही प्रशंसा की है। यथा : लग्नमेव प्रशंसन्ति भृगुनारदकश्यपाः। ब्रह्मदेव ने लग्न के साथ ही साथ ग्रह, तिथि, नक्षत्र योग और वार का भी विचार किया।

पठै दीन्ह नारद सन सोई। गनी जनक के गनकन्ह जोई॥
सुनी सकल लोगन्ह यह बाता। कहहिं जोतिषी आहि बिधाता॥४॥

अर्थ : उसे नारद के हाथ भेज दिया। वही राजा जनक के ज्योतिषियों ने भी निश्चय किया था। लोगों ने भी यह बात सुनी। कहने लगे कि ज्योतिषी क्या हैं ब्रह्मा हैं।

व्याख्या : अगहन सुदी पञ्चमी को उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र में व्याह का लग्न ठीक करके लग्नपत्री नारदजी के हाथ भेज दी। यहाँ जनकजी के ज्योतिषियों ने भी विचार करके वही लग्न स्थिर कर रक्खा था। जब लग्नपत्री बाँची गई तो उसमें भी वही लग्न निकला। बात फैल गई। लोग कहने लगे कि हमारे यहाँ के ज्योतिषी विधाता हैं। क्योंकि उनका विचार ब्रह्मदेव के विचार से कम नहीं प्रमाणित हुआ : इस भाँति मिथिला के ज्योतिषियों की प्रशंसा हुई। नारदजी के लग्नपत्री लाने और ब्रह्मदेव के लग्न विचारने की बात ऐसे महत्त्व की थी कि इसकी चर्चा नगर भर में फैल गई। ब्रह्मदेव जानते थे कि वसिष्ठजी लग्न न देखेंगे। उनका मत है : तुम कहँ सर्वकाल कल्याना। अतः स्वयं उन्होंने देखा क्योंकि जगत् का मंगल इस विवाह पर निर्भर था। यथा : तेहि अवसर रावन नगर असगुन असुभ अपार। होहिं हानि भय मरन दुख सूचक बारहिं बार।

दो. धेनुधूरि बेला बिमल, सकल सुमंगल मूल।
बिप्रन कहेउ बिदेह सन, जानि सगुन अनुकूल॥३१२॥

अर्थ : निर्मल गोधूलि वेला को निर्मल कहते हैं। यह सब सुमङ्गल का मूल है। अनुकूल शकुन देखकर ब्राह्मणों ने राजा से कहा।

व्याख्या : गोधूलि वेला को निर्मल कहते हैं। यह सब सुमङ्गल का मूल है। इस समय भगवान् भूतनाथ अपने गणों के साथ जगत् में विचरण करते हैं। इसके सामने लग्न की भी कोई गिनती नहीं है। यथा : नास्यामृक्षं न तिथिकरणं नैव लग्नस्य चिन्ता। नो वा वारो न च लवविधिर्नो मुहूर्तस्य चर्चा। नो वायोगो न मृतिभवनं नैव जामित्रदोषः। गोधूलिः सा मुनिभिरुदिता सर्वकार्येषु शस्ता। मु. चि.। तिसपर ब्राह्मणों ने स्वरशास्त्र से शकुन भी देख लिया। स्वरशास्त्र से मेल खाने से ही ज्योतिष का फल मिलता है। यथा : स्वरहीनस्तु दैवज्ञो नाथहीनो यथा गृहः।

शकुन कार्यारम्भकाल का ही लिया जाता है। अतः यहाँ शकुन से स्वरशास्त्र का शकुन अभिप्रेत है। तब ब्राह्मणों ने राजा विदेह से कहा। भाव यह कि विलम्ब करने से गोधूलि न सधेगी।

उपरोहितहिं कहेउ नरनाहा। अब बिलंब कर कारनु काहा ॥
सतानंद तब सचिव बोलाए। मंगल सकल साजि सब लाए ॥१॥

अर्थ : उपरोहित सतानन्दजी से तब राजा ने कहा कि अब देर का कारण क्या है। तब सतानन्दजी ने मन्त्रियों को बुलाया। वे सब मङ्गल साजकर ले आये।

व्याख्या : ब्रह्मा जी का दिया हुआ लग्न है। ब्राह्मण लोग भी अनुकूल समय कहते हैं। विलम्ब करने से गोधूलि भी नहीं सधेगी। अतः विलम्ब करने का कोई कारण नहीं दिखाई पड़ता। पुरोहित पर पूरा राज्य का भार रहता है और विशेषतः धर्म का भार तो सभी उसी पर रहता है। इसलिए राजा ने उपरोहित से कहा। राजाज्ञा सर्वोपरि है। समय आने पर वह सब पर चली है। स्वयं वसिष्ठजी पर राजाज्ञा चलती देखी जायगी। यथा : तब नरनाह वसिष्ठ बोलाए। रामधाम सिख देन पठाए। अब देर का क्या कारण है? यह कहकर राजा कारण नहीं पूछते जल्दी करने को कहते हैं। पुरोहित की आज्ञा मन्त्री पर भी चलती है। अतः पुरोहितजी ने मन्त्रियों को बुलवाया। जो आज्ञा पुरोहितजी देनेवाले थे उसे मन्त्रियों ने पहिले से ही ठीक कर रक्खा था। उनके बुलाने पर सब मङ्गल साज जिसे लेकर बारात बुलाने के लिए जाना है साजकर ले आये। मङ्गल साज का विवरण करते हैं :

संख निसान पनव बहु बाजे। मंगल कलस सगुन सुभ साजे ॥
सुभग सुआसिनि गावहिं गीता। करहिं बेद धुनि बिप्र पुनीता ॥२॥

अर्थ : शंख, नगाड़े और मृदङ्ग बहुत से बजने लगे। मङ्गलघट शुभ शकुन सब साजे गये। सुन्दर सुहागिनियाँ गीत गाने लगीं और ब्राह्मण लोग वेदों की पवित्र ध्वनि करने लगे।

व्याख्या : सबके आगे शंख, नगाड़ा आदि बाजे बजते चले। उनके पीछे पल्लवादि से संयुक्त मङ्गल घट आदि लेकर गीत गाती हुई सुन्दर सुहागिनियाँ चलीं। उनके पीछे वेदध्वनि करते हुए ब्राह्मण लोग चले। उनके पीछे स्वागत करके बारात को बुलानेवाले सरदार लोग चले।

लेन चले सादर येहि भाँति। गये जहाँ जनवास बराती ॥
कोसलपति कर देखि समाजू। अति लघु लाग तिन्हहि सुरराजू ॥३॥

अर्थ : आदर के साथ इस भाँति लेने चले और जनवासे में बारातियों के पास गये। कोसलाधीश का साज समाज देखकर उन्हें इन्द्र भी अत्यन्त छोटे जान पड़े।

व्याख्या : इस भाँति पुरोहित मन्त्री आदि जनवासे में बारातियों के पास गये। भाव यह कि बारातियों का सत्कार पहिले और महाराज का पीछे। वहाँ कोसलाधीश का समाज देखा। स्वयं महाराज दशरथ को देखा। जबतक रामजी उनके पास नहीं थे तबतक तो महाराज समाजसहित इन्द्र से जान पड़ते थे। पर आज रामजी के आजाने से महाराज दशरथ के सामने इन्द्र और उनका समाज भी बहुत फीका जँचता है।

भयेउ समउ अब धारिअ पाऊ। यह सुनि परा निसानहि घाऊ ॥
गुरहिं पूछि करि कुल विधि राजा। चले संग मुनि साधु समाजा ॥४॥

अर्थ : उन्होंने निवेदन किया कि समय हो गया अब पधारा जाय। यह सुनते ही डङ्कों पर चोट पड़ी। गुरुजी से पूछा। कुलधर्मानुसार कुलविधि करके मुनि साधुसमाज के साथ महाराज चल पड़े।

व्याख्या : यहाँ भी शङ्ख निशान और पणव के शब्द सुनकर बारात की सब तैयारी ठीक है। उधर महाराज से प्रार्थना हुई कि समय हो गया। पधारना चाहिए। इधर डंके पर चोट पड़ी : इससे व्यवस्था की सुन्दरता कही। महाराज गुरुआज्ञा पुरःसरही सब कार्य करते हैं। अतः गुरुजी से पूछा। वरयात्रा के समय रामजी मिथिला में थे। अतः पूरी कुलविधि न हो सकी। कुछ छूट गई। अतः उसे इस समय गुरुजी से पूछकर पूरा कर रहे हैं। गुरुजी कुलविधि सब जानते हैं रघुवंश मात्र के पुरोहित हैं। कितने राजा रघुवंश में हो गये पर गुरुजी वही हैं। उन्होंने विधि बतलायी। महाराज उस कृत्य को पूरा करके मुनि साधु समाज के साथ चले। गुरु विप्र धेनु सुर सेवी हैं। अतः समधी बनकर चलने के समय में भी मुनि और साधु समाज साथ है।

दो. भाग्य विभव अवधेस कर, देखि देव ब्रह्मादि।
लगे सराहन सहस मुख, जानि जनम निज वादि ॥३१३॥

अर्थ : अवधेश का भाग्य और ऐश्वर्य देखकर ब्रह्मा आदि देवगण अपना जन्म व्यर्थ समझते हुए हजारों मुख से प्रशंसा करने लगे।

व्याख्या : न ऐसा विभव ब्रह्मलोक में है और न ऐसा भाग्य ब्रह्मदेव का है। श्रीरामजी की बारात है। अतः इसके ऐश्वर्य के सामने दूसरा ऐश्वर्य जँच नहीं सकता। अवधेश का यह भाग्य है कि जासु सनेह सकोच वस राम प्रगट भये आय। यह भाग्य किसी देवता का नहीं है। यथा : जिनहि विरचि बड़ भयउ विधाता। महिमा अवधि राम पितु माता। अतः सहस्रमुख से प्रशंसा करने लगे। अर्थात् प्रशंसा करने में थक नहीं रहे हैं। अपने जन्म को व्यर्थ मानते हैं। चक्रवर्तीजी के जन्म को सफल मानते हैं।

सुरन्ह सुमंगल अवसरु जाना। वरषहिं सुमन बजाइ निसाना ॥
सिव ब्रह्मादिक विबुध वरूथा। चढ़े विमानन्हि नाना जूथा ॥१॥

अर्थ : देवताओं ने सुमङ्गल का अवसर जाना। डङ्का बजाकर फूल बरस रहे हैं। शिव ब्रह्मादि देवगण झुण्ड के झुण्ड विमान पर चढ़े हुए हैं।

व्याख्या : देवताओं ने सुमङ्गल का अवसर अर्थात् बारात के चलने का समय जाना। इधर बारात में पहिले से ही डङ्का बज रहा था। सो महाराज के चलते ही उधर आकाश से देवताओं ने पुष्पवृष्टि की और डङ्का बजाया। जिनके भाग्य में आवश्यकता पड़ने पर जलवर्षा भी सुलभ नहीं है। उन्हें पुष्पवर्षा का असम्भव मालूम पड़ना ठीक ही है।

इधर महाराज गजारूढ़ हुए। उधर आकाश में शिव ब्रह्मादि त्रिदेव तथा लोकपालों का समाज तथा गण देवता : वसुगण रुद्रगण आदित्यगण विमानों पर चढ़े।

प्रेम पुलक तन हृदय उछाहू। चले विलोकन राम विआहू ॥
देखि जनकपुरु सुर अनुरागे। निज निज लोक सबहिं लघु लागे ॥२॥

अर्थ : प्रेम से शरीर में पुलक है और हृदय में उछाह है। रामजी का विवाह देखने चले। जनकपुर को देखकर देवताओं को अनुराग हुआ। अपने अपने लोक सबको छोटे जँचने लगे।

व्याख्या : हृदय में उछाह होने से सात्त्विक भाव हुआ। रोमाञ्च हो आया। रामजी का विवाह देखने आकाशमार्ग से चले। इस भाँति दो बारात चलीं। नीचे धरती पर मनुष्यों की। ऊपर आकाश में देवताओं की। बाराती रामजी का विवाह करने चले और देवता देखने चले।

राजा विदेह की महाजनों को आज्ञा हुई थी : नगर सँवारहु चारिहु पासा। सो उन लोगों ने नगर को ऐसा सजाया कि देवताओं को अपना अपना लोक हलका जँचने लगा। यथा : जेहि तेरहुत तेहि समय निहारी। तेहि लघु लगहि भुवन दसचारी।

चितवहिं चकित विचित्र बिताना। रचना सकल अलौकिक नाना ॥
नगर नारि नर रूप निधाना। सुघर सुधरम सुसील सुजाना ॥३॥

अर्थ : चकित होकर विचित्र मण्डप देखने लगे। नाना प्रकार की सब रचनाएँ अलौकिक थीं। नगर के स्त्री पुरुष रूप के निधान, सुघर, सुधर्म, सुशील और सुजान थे।

व्याख्या : देवता लोग आकाश में हैं। अतः इन्हें वितान भी दिखाई पड़ता है। ऐसा विचित्र वितान है कि उसे देखकर वे लोग भी चकित हैं। महाराज जनक की आज्ञा थी : रचहु विचित्र वितान बनाई। सो ऐसा विचित्र बनाया कि उसे देखकर ब्रह्मदेव का भ्रम भूल जाय। अतः देवता लोग चकित होकर उस विचित्र वितान को देख रहे हैं। नाना प्रकार की अलौकिक रचनाएँ हैं। कहना कठिन है कि ये सब नकली हैं या असली। नगरवासी सभी स्वरूपवान्, मनोहर, धर्मशील, सुशील और सुजान हैं। यह भी अपूर्वता है।

तिन्हहिं देखि सब सुर सुरनारी । भये नखत जनु विधि उँजियारी ॥
विधिहि भयउ आचरजु विसेखी । निज करनी कछु कतहुँ न देखी ॥४॥

अर्थ : उन्हें देखकर सब देव और देवियाँ चन्द्रमा के उँजेले में नक्षत्र की भाँति हो गई। ब्रह्मदेव को विशेष आश्चर्य हुआ। उन्हें अपनी करणी कहीं कुछ नहीं दिखाई पड़ी।

व्याख्या : देवता लोग ऊपर से देखते हैं तो जनकपुर उन तेजस्वियों के कारण चन्द्रविम्ब सा दिखाई पड़ा और ये लोग तारा की भाँति हृतप्रभ मालूम होने लगे। चन्द्र के उँजेले के सामने तारागण दब जाते हैं। रूप में, सुघरता में, धर्म में, सुजनता में, किसी में उनके जोड़ के नहीं हैं।

विधि प्रपञ्च गुन अवगुन साना है। शुद्ध गुण या शुद्ध दोष विधि प्रपञ्च में है नहीं और यहाँ कोई दोष कहीं से लखाई नहीं पड़ता है। इसलिए ब्रह्मदेव को बड़ा आश्चर्य हो रहा है कि मेरी करणी तो यहाँ कुछ दिखाई ही नहीं पड़ती है।

दो. सिव समुझाये देव सब, जनि आचरज भुलाहु।
हृदय विचारहु धीर धरि, सिय रघुवीर विआहु ॥३१४॥

अर्थ : शिवजी ने सब देवताओं को समझाया कि आश्चर्य में न भूल जाओ। हृदय में धीर धरके विचारो तो कि यह सीताजी और रघुवीर का विवाह है।

व्याख्या : ब्रह्मदेव ही गड़बड़ में पड़ गये। तब कौन समझावे। तब शिवजी ने समझाया कि आश्चर्य में ऐसे मग्न न हो कि मुख्य बात ही भूल जाय। धैर्य धारण करके विचार करो कि यह विवाह किसका है? परम पुरुष और आदिशक्ति का सम्मिलन है। वह सर्वाश्चर्यमय हैं तो यह अघटित घटना घटीयसी हैं। इनके विवाह में आश्चर्यमय बातों का न होना ही आश्चर्य है।

जिन्हकर नाम लेत जगमांहीं। सकल अमंगल मूल नसांहीं ॥
करतल होहिं पदारथ चारी। तेइ सिय रामु कहेउ कामारी ॥१॥

अर्थ : शिवजी ने कहा कि जिनका नाम लेते ही संसार में सब अमङ्गल का मूल नष्ट हो जाता है। चार पदार्थ हाथ में आजाते हैं। वही सीताराम हैं।

व्याख्या : नामी की महत्ता से ही नाम की महिमा है। अतः नाम की महत्ता कहकर नामी की महिमा सूचित करते हैं। अन्य स्थानों पर राम नाम की महिमा कहा है। यहाँ सीताराम नाम की महिमा कहते हैं कि सीताराम ऐसा उच्चारण करने से अमङ्गल मूल ही नष्ट हो जाता है। फिर अमङ्गल हो तो कैसे हो? सीताराम नाम केवल दोषापनयन ही नहीं करता गुणाधान भी करता है। इसके उच्चारण से धर्मार्थ काम मोक्ष हाथ तले आजाता है। इन्हीं नामों के नामी सीताराम हैं। उनके विवाह में दोष की उपस्थिति कैसे सम्भव है? तुम लोगों को यही सन्देह है कि दोषरहित पदार्थ ब्रह्मा की सृष्टि में कहाँ से आये? सो आये कहीं से नहीं। पदार्थ वे ही हैं। पर उनमें दोषापनयन और गुणाधान हो गया है।

एहि विधि संभु सुरन्ह समुझावा । पुनि आगे बरबसहु चलावा ॥
देवन्ह देखे दसरथु जाता । महामोद मन पुलकित गाता ॥२॥

अर्थ : इस भाँति शिवजी ने देवताओं को समझाया और फिर श्रेष्ठ बैल : नन्दी को आगे बढ़ाया। देवताओं ने दशरथ को जाते देखा। उनके मन में बड़ा आनन्द था और रोमाञ्च हो रहा था।

व्याख्या : शिवजी के समझाने की विधि कही। उनके समझाने से सबका सन्देह दूर हुआ। यथा : सुनु गिरिराज कुमारि भ्रम तम रविकर वचन सम। देव समाज में प्रथम महादेव सबके आगे हैं। समझाने के समय बैल को रोक दिया था। सबकी शंका का समाधान करके उसे आगे बढ़ाया।

समाधान हो जाने पर फिर बारात की ओर ध्यान गया। सब मुदित हैं पर चक्रवर्तीजी को महामोद और शरीर में पुलक है। सात्त्विक भाव में डूबाडूब हैं। रोमाञ्च हो रहा है।

साधु समाज संग महिदेवा । जनु तनु धरे करहिं सुख सेवा ॥
सोहत साथ सुभग सुत चारी । जनु अपवरग सकल तनुधारी ॥३॥

अर्थ : साधु मण्डली और ब्राह्मण साथ में हैं। मानो शरीर धारण करके सुख सेवा कर रहे हैं। चारों सुन्दर लड़के साथ में हैं। मानों मोक्ष के चारों प्रकार शरीर धारण किये हुए हैं।

व्याख्या : मुनि साधु समाज के साथ महाराज चले हैं। अतः मुनि साधु समाज से घिरे हुए चले जा रहे हैं। ग्रन्थकार कहते हैं कि मुनि साधु के व्याज से मानो सब सुख शरीरधारी होकर महाराज की सेवा कर रहे हैं। मुनि साधु का संग ही सत्संग है। कहेंगे : सात स्वर्ग अपवर्ग सुख धरिअ तुला इक अंग। तूल न ताहि सकल मिलि जो सुख लव सतसंग। अतः विप्र साधु समाज से घिरे हुए पुरुष के लिए यह कहना अत्युक्ति नहीं है कि सम्पूर्ण सुख उसकी सेवा कर रहे हैं।

इतना ही नहीं चारों सुन्दर बेटे भी साथ में शोभायमान हैं। ग्रन्थकार कहते हैं कि मानो सालोक्य, सामीप्य, सारूप तथा सार्ष्टि ये चारों मोक्ष शरीरधारी होकर साथ हैं। जब चाहें जिससे काम लें।

मरकत कनक वरन वर जोरी । देखि सुरन्ह भै प्रीति न थोरी ॥
पुनि रामहिं विलोकि हिय हरखे । नृपहिं सराहि सुमन तिन्ह बरखे ॥४॥

अर्थ : नीलमणि और सोने की श्रेष्ठ जोड़ी देखकर देवताओं की थोड़ी प्रीति नहीं हुई। फिर रामजी को देखकर हृदय से हर्षित हुए। राजा की प्रशंसा करके फूलों की वर्षा की।

व्याख्या : रामजी और भरतजी नीलमणि के समान श्याम लक्ष्मण और शत्रुघ्नजी स्वर्ण के समान गौर हैं। इन्हीं चारों भाइयों को 'मरकत कनक वरन

वर जोरी' कहते हैं। राम और भरतजी आगे हैं और लक्ष्मण शत्रुघ्न पीछे हैं। इन जोड़ियों को देखकर देवताओं को बड़ी प्रीति हुई।

फिर चित्त आकर रामजी पर ठहर गया। क्योंकि : चारिउ रूप सील गुन धामा। तदपि अधिक सुख सागर रामा। यही बात सर्वत्र पाई जाती है। परशुराम जी ने भी : दीन्ह असीस देखि भल जोटा। पर पीछे से : रामहिं चितइ रहे भरि लोचन। रूप अपार मार मद मोचन। इसी भाँति यहाँ भी देवता लोग रामजी को देखकर हर्षित हुए। राजा के पुण्य की प्रशंसा करके पुष्पवृष्टि करने लगे। बारात चलते समय वर्षा की थी। अब रामजी को देखकर पुनः पुष्पवृष्टि की।

दो. राम रूप नख सिख सुभग, बारहिं बार निहारि।
पुलक गात लोचन सजल, उमा समेत पुरारि ॥३१५॥

अर्थ : नख से शिख तक रामजी के सुन्दर रूप को बार बार देखकर उमा और पुरारि को पुलक हो उठा और आँखों में आँसू आगये।

व्याख्या : उमा के सहित शङ्करजी बार बार रामजी के सुन्दर रूप को देख रहे हैं। नख से शिख तक सुन्दरता की छटा है। ये रामजी के दर्शन से अघाते नहीं। इस समय तो व्याह विभूषण वसन बनाये दूल्हा के वेष में हैं। अतः इस समय की अनोखी शोभा है। जिसे देखकर उमा सहित शिवजी को पुलक हो उठा। और नेत्रों में आनन्दाश्रु आगये।

केकि कंठ दुति स्यामल अंगा। तड़ित विनिंदक बसन सुरंगा॥
ब्याह विभूषन विविध बनाए। मंगल सब सब भाँति सुहाए ॥१॥

अर्थ : मोर के कण्ठ की भाँति श्याम अङ्ग है। बिजली की निन्दा करनेवाले रंगीन कपड़े हैं। नाना भाँति के व्याह के गहने सजे हुए हैं जो मङ्गलमय सब भाँति से सुन्दर हैं।

व्याख्या : निकट से देखने पर रामजी की श्यामता की उपमा ग्रन्थकार नील सरोरुह नील मनि नील नीरधर आदि की श्यामता से देते हैं। परन्तु जब दूर से दर्शन मिलता है तो मोर के कण्ठ की श्यामता से देते हैं। बारात के मध्य में रामजी हैं। बड़ी भारी बारात है। कवि दूर से देखते हैं। इसलिए मोरकण्ठ की श्यामता से उपमा दे रहे हैं। रामजी लङ्का जीतकर विमान से अयोध्या जब जायेंगे तब भी यही उपमा देवेंगे। यथा : केकीकंठाभनीलं उरवरविलसद्विप्रपादाब्जचिह्नं। रामजी विमान पर आकाश में हैं। ग्रन्थकार नीचे से देख रहे हैं। अतः रामजी की श्यामता उन्हें मोर के कण्ठ की श्यामता सी ही दिखाई पड़ रही है। रंग विरंगे कपड़े बिजली की भाँति चमक रहे हैं। पहिले कुण्डल और कण्ठा का वर्णन मिलता है। क्योंकि वीरों का अधिक शृङ्गार नहीं होता। व्याह की बात दूसरी है। उसमें गरीब मँगनी लेकर गहने पहनते हैं। ये तो चक्रवर्ती के राजकुमार हैं। अतः इन्हें व्याह में पहने जानेवाले सभी गहने पहनाये गये। सब मङ्गलमय हैं। सुन्दर होने से इन्हें सोहाये कहा।

सरद विमल विधु वदन सुहावन। नयन नवल राजीव लजावन ॥
सकल अलौकिक सुन्दरताई। कहि न जाइ मन ही मन भाई ॥२॥

अर्थ : शरत्काल के निर्मल चन्द्र के ऐसा सुन्दर मुख है। नेत्र नये कमल को लजानेवाले हैं। सब सुन्दरता लोकोत्तर है। वर्णन करते नहीं बनता। मन ही मन अच्छी लगती है।

व्याख्या : शरत् पूर्णिमा के निष्कलङ्क चन्द्र के समान सुन्दर मुख है। नेत्रों के देखने से नये खिले हुए कमल लज्जित हो जाँय। दूर से जितना देखा जाना सम्भव है उतना ही वर्णन करते नहीं बनता। क्योंकि लोकोत्तर सुन्दरता है। उसकी उपमा इस लोक में है ही नहीं। क्या कहकर वर्णन किया जाय? अतः यही कहते हैं कि छवि मन को अच्छी लगती है और वह मन में ही रह गई। प्रकाश नहीं कर सके। अन्य स्थानों पर कुछ वर्णन भी किया। पर दूल्हे के वेष में जो सुन्दरता है वह तो सर्वथा वर्णनातीत है। केकि कंठ द्युति। तड़ित विनिन्दक वसन। सरद विमल विधु वदन। राजीव लजावन नयन। ये सब अलौकिक हैं।

बंधु मनोहर सोहहिं संगा। जात नचावत चपल तुरंगा ॥
राज कुँअर वर बाजि देखावहिं। वंस प्रसंसक विरद सुनावहिं ॥३॥

अर्थ : मन के हरण करनेवाले भाई साथ में शोभायमान हैं। चञ्चल घोड़ों को नचाते चले जाते हैं। राजकुमार श्रेष्ठ घोड़ों को दिखला रहे हैं। मागध लोग विरद बोल रहे हैं।

व्याख्या : आप तो मनोहर मूर्ति हैं ही और साथ में भाई हैं। वे भी मनोहर हैं। इस समय महाराज की सवारी हाथी पर है। हाथी के आगे चारों भाई घोड़ों पर हैं। घोड़ों को नचाते हुए चले जाते हैं। नहीं तो वे घोड़े बड़े चञ्चल हैं। हाथी का और उनका साथ निभ नहीं सकता। उनके लिए कह चुके हैं: अय इव जरत धरत पग धरनी। घोड़ों को नचाना ही उनका दिखलाना है। अद्भुत शोभा है। महाराज हाथीपर हैं। चवँर चल रहा है। सामने राजकुमार घोड़े नचाते चल रहे हैं। वंश प्रशंसक विरुद बोलते जा रहे हैं। यथा : मागधा वंशशंसिनः।

जेहि तुरंग पर रामु विराजे। गति विलोकि खगनायकु लाजे ॥
कहि न जाइ सब भाँति सुहावा। बाजि वेषु जनु काम बनावा ॥४॥

अर्थ : जिस घोड़े पर रामजी विराजमान थे उसकी गति देखकर गरुड़ को लज्जा होती थी। वह सब भाँति से सुन्दर था। उसकी सुन्दरता कहते नहीं बनती। मानो कामदेव ने ही घोड़े का वेष बना रक्खा है।

व्याख्या : यहाँ सभी घोड़ों की यह गतिविधि है कि हवा से बाजी लगाने वाले हैं। यथा : निदरि पवन [illegible]मि चहत उड़ाने। परन्तु जिस घोड़े पर रामजी सवार हैं। उसकी गति देखकर पक्षिराज गरुड़जी संकुचित होते हैं। और वह ऐसा सुन्दर

है कि कहते नहीं बनता। मालूम होता है कि स्वयं कामदेव ने ही घोड़े का वेष बना रक्खा है। खगनायक की गति स्तोभ : सामध्वनि के अनुसार होती है। यथा : सामध्वनिशरीरस्त्वं वाहनः परमेष्ठिनः। उसी भाँति इस घोड़े की गति भी स्तोभानुसार ही है। अन्य घोड़ों की गति के विषय में कह चुके हैं : नागर नट चितवहिं चकित डगइ न ताल बँधान। परन्तु रामजी का घोड़ा लौकिक गीत के ताल का अनुसरण नहीं करता। वह वैदिक गान के स्तोभ का अनुसरण करनेवाला है। नहीं तो महाराज के हाथी के साथ जब चल रहा है तब खगनायक की उपमा देने का कोई कारण नहीं है। खगनायक कहकर बल और गति दोनों कहा। सब भाँति सुहावा कहकर वय और गुण कहा। काम के सदृश कहकर रूप कहा।

छं. जनु बाजि बेषु बनाइ मनसिजु रामहित अति सोहई।
आपने बयबल रूप गुन गति सकल भुवन बिमोहई॥
जगमगत जीन जराव जोति सुमोति मनि मानिक लगे।
किंकिनि ललाम लगामु ललित बिलोकि सुर नर मुनि ठगे॥

अर्थ : मानो साक्षात् कामदेव रामजी के लिए घोड़े का वेष बनाकर अत्यन्त शोभायमान हो रहा है। अपने १. वय २. बल ३. रूप ४. गुण और ५. गति से सम्पूर्ण भुवन को मोहित कर रहा है। जड़ाऊ जीन जगमगा रही थी। जिसमें सुन्दर मोतियाँ मणि और माणिक्य टँके हुए थे। सुन्दर घुँघुरू और सुन्दर लगाम देखकर देवता मनुष्य और मुनि मोहित होते थे।

व्याख्या : घोड़े की सुन्दरता वर्णन करते हुए कहते हैं कि रामजी के लिए मानो कामदेव ने ही घोड़े का वेष धारण कर रक्खा है। कामदेव तो अपने पाँच बाणों : सम्मोहनोन्मादनौ च शोषणस्तापनस्तथा। स्तम्भनश्चेति कामस्य पञ्चबाणाः प्रकीर्तिताः से सम्पूर्ण भुवन को मोहित करता है और यह घोड़ा भी अपने पाँच गुणों : वय, बल, रूप, गुण और गति से सारे जगत् को मोहित कर रहा है। उसके ऊपर ऐसी सुन्दर जड़ाऊ जीन कसी हुई है जिसमें मणि माणिक्य मुक्ता लगे हुए हैं। घुँघुरू टँके हैं। लगाम ऐसी सुन्दर थी कि सुर नर मुनि आये थे तो बारात देखने इधर मन ही चोरी चला गया।

दो. प्रभु मनसहिं लयलीन मनु, चलत बाजि छबि पाव।
भूषित उड़गन तड़ित धनु, जनु बर बरहि नचाव॥३१६॥

अर्थ : प्रभु के मन से मन मिलाये हुए वह घोड़ा चलते हुए शोभा पाता था। यथा तारागण तथा बिजली से भूषित मेघ सुन्दर मोर को नचा रहा हो।

व्याख्या : यह घोड़े का अनूठापन है कि वह प्रभु के मनमें अपना मन मिलाकर चल रहा है। इसीलिए उसके चलने की छवि अनोखी है। प्रभु के मनमें मन मिलाने का ऐसा महत्त्व है कि एक पशु की इतनी बड़ी शोभा हो रही है। मेघ तो सदा मोर को नचाया करते हैं। पर जब मेघ आते हैं तो तारागण लापता हो

जाते हैं। बिजली भी निमेष मात्र से अधिक नहीं ठहरती। परन्तु रामघनश्याम तो आभूषणरूपी ताराओं से और वस्त्ररूपी बिजली से भूषित होकर आज मोररूपी घोड़े को नचा रहे हैं। अतः अभूत शोभा हो रही है।

जेहि वर बाजि रामु असवारा। तेहि सारदउ न बरनै पारा॥
संकरु राम रूप अनुरागे। नयन पंचदस अति प्रिय लागे॥१॥

अर्थ : जिस श्रेष्ठ घोड़े पर रामजी सवार हुए उसका वर्णन तो सरस्वतीजी भी नहीं कर सकतीं। शङ्कर भगवान् रामरूप के प्रेम में आगये उन्हें पन्द्रहों आँखें बड़ी प्यारी लगीं।

व्याख्या : देवता के वाहन भी उनके रूप से पृथक् नहीं होते। इसलिए कहते हैं कि उसे शारदा भी नहीं वर्णन कर सकती। जितने वर्णन करनेवाले हैं उनके हृदय में अवस्थान करके वस्तुतः शारदा ही वर्णन करतीं हैं। यथा : कवि उर अजिर नचावहि बानी। जब वही नहीं वर्णन कर सकतीं तब दूसरा कौन वर्णन कर सकता है। रामजी के सवार होने से घोड़े में इतना उत्कर्ष हो गया।

पुलक गात लोचन सजल उमा समेत पुरारि : से प्रसङ्ग छोड़ा था। सो फिर वहीं से उठाते हैं। शङ्कर भगवान् रामरूप के बड़े अनुरागी हैं। कभी दर्शन से अघाते नहीं। आज वरवेष में रामजी को देखकर उन्हें अपनी पन्द्रह आँखें बड़ी प्रिय लगीं। पाँचों सिरों की तीसरी आँखें खुली हुई हैं। जिनमें से एक के खुलने से प्रलय उपस्थित हो जाता है। यथा : तब सिव तीसर नयन उघारा। चितवत काम भयउ जरि छारा। परन्तु आज उन आँखों के खुलने से संसार में कोई विकार नहीं हो रहा है क्योंकि वे रामजी में लगीं हुई हैं। दूसरी बात यह है कि राममुखचन्द्र की अमृतस्रावी चन्द्रिका से संसार प्लावित हो रहा है। अतः पाँच पाँच संहारकारिणी दृष्टियों के पड़ने पर भी उसका कोई अनिष्ट नहीं हो रहा है। आँखें तो सबको प्रिय होती हैं परन्तु आज उनके कारण पन्द्रह द्वार से रामजी का दर्शन हो रहा है। अतः अति प्रिय लग रही हैं।

हरि हित सहित रामु जब जोहे। रमा समेत रमापति मोहे॥
निरखि राम छवि बिधि हरखाने। आठै नयन जानि पछिताने॥२॥

अर्थ : विष्णु ने जब प्रेमसहित रामजी को देखा तो रमापति रमा के सहित मोहित हो गये। रामजी की छवि देखकर ब्रह्मदेव प्रसन्न हो उठे। पर सिर में आठ ही आँख होने से पछताने लगे।

व्याख्या : हित के सहित देखना विष्णु का ही कहा और उन्हीं का मोहित होना भी कहते हैं। अपनी आत्मा सबको प्रिय है और सबको उसमें मोह होता है। नवा अरे पत्युःकामाय पतिः प्रियो भवति आत्मनस्तु कामाय पतिः प्रियो भवति। पति के लिए पति प्रिय नहीं होता। आत्मा के लिए पति प्रिय होता है। रामजी को बार बार हरि कहकर विष्णु से अभेद सम्पूर्ण ग्रन्थ में निरूपण किया है। अतः अपना रूप देखकर आप ही मोहित हो रहे हैं। अतः दो ही आँख के लिए पछताना नहीं कहेंगे।

छवि देखकर हर्षित होने की विधि है। इसलिए विरञ्चि न कहकर विधि कहा। सो विधि रामजी की छवि देखकर हर्षित तो हुए पर आँखों की संख्या कम होने से पछताये। यदि मुझे भी शिवजी की भाँति तीन तीन आँखें होतीं तो भी बारह आँखों से देखता। अथवा यदि आज मेरा पाँचवाँ सिर होता तो भी दस आँखों से देखता। अतः उन्हें पछताने का यथेष्ट कारण था।

सुर सेनप उर बहुत उछाहू। विधि ते डेवढ़ लोचन लाहू॥
रामहिं चितव सुरेस सुजाना। गौतम श्रापु परम हित माना॥३॥

अर्थ : देवताओं के सेनापति के हृदय में बड़ा उछाह था। क्योंकि उन्हें ब्रह्मदेव के नेत्रों से डेवढ़े नेत्रों का लाभ था। सुजान देवराज रामजी को देखते थे। उन्होंने गौतम ऋषि के शाप को परम हित माना।

व्याख्या : भगवान् स्वामी कार्त्तिकेयजी को अधिक उछाह था। क्योंकि इस समय उन्होंने ब्रह्मदेव से भी बाजी मार ली। उनका नम्बर ब्रह्मदेव के बाद है। आगे शिवजी की सवारी है। उसके बाद विष्णु की। उसके बाद ब्रह्मदेव की और उनके भी बाद षडानन : भगवान् कार्तिकेय की। परन्तु दर्शन लाभ में वे ब्रह्मा से डेवढ़े : निकले। ब्रह्मदेव को चार मुख हैं अतः आठ आँखें हुई। षडाननजी को छः मुख होने से बारह आँखें हुईं। आठ का डेवढ़ा बारह होता है। अतः प्रधानतम लाभ में अर्थात् रामजी के दर्शन में सुरसेनप ब्रह्मदेव से डेवढ़े बढ़ गये।

स्वामी कार्तिकेय के बाद देवराज थे। इन्हें सहस्र नेत्र थे। अतः सहस्र नेत्र से रामजी की शोभा देख रहे थे। जिसे सहस्र नेत्र हों वह रामजी के दर्शन के साथ ही साथ बहुत सी बातें देख सकता है परन्तु भगवान् इन्द्र केवल रामजी को अशेष नेत्रों से देख रहे थे। अतः ग्रन्थकार इन्हें सुजान कहते हैं। क्योंकि नेत्रों का साफल्य भगवद्दर्शन से है। यथा : होइहैं सुफल आजु मम लोचन। निरखि वदन पंकज भवमोचन। दूसरा भाव यह कि उन्होंने गौतम महर्षि के शाप को अपने लिए परम हित माना। इस गुणग्राहकता के लिए सुजान कहा।

देव सकल सुरपतिहि सिहाहीं। आजु पुरंदर सम कोउ नाहीं॥
मुदित देवगन रामहि देखी। नृपसमाज दुहु हरषु बिसेखी॥४॥

अर्थ : सब देवता देवराज से ईर्ष्या कर रहे हैं कि आज इन्द्र के समान कोई नहीं है। देवगण रामजी को देखकर आनन्दित हैं। दोनों राजसमाज में विशेष हर्ष है।

व्याख्या : इन्द्र देवराज हैं। सभी देवताओं से ऐश्वर्य में अधिक हैं। फिर भी देवता उनसे ईर्ष्या नहीं करते। उन्हें राजा मानते हैं। आज रामजी के दर्शन में ईर्ष्या करने लगे कि इस सुख में तो ये सबसे पाँच सौ गुना अधिक बढ़ गये। अतः कहते हैं कि आज इन्द्र के समान हमलोगों में कोई नहीं है। आज तो ये त्रिदेव से भी बढ़ गये।

पुनि रामहिं बिलोकि हिय हरखे : से उपक्रम करके मुदित देवगन रामहिं देखी से इस प्रसङ्ग का उपसंहार करते हैं। रामजी को व्याहने चल रहे हैं। इस कारण से अवध समाज में विशेष हर्ष है। इसी भाँति जामाता रूप से रामजी की प्राप्ति से मिथिला समाज में भी बड़ा हर्ष है।

छं. अति हरषु राजसमाजु दुहु दिसि, दुंदुभीं बाजहिं घनी।
वरषहिं सुमन सुर हरषि कहि, जय जयति जय रघुकुलमनी ॥
एहि भाँति जानि बरात आवत, बाजने बहु बाजहीं।
रानी सुआसिनि बोलि परिछन, हेतु मंगल साजहीं ॥

अर्थ : रामसमाज में अत्यन्त हर्ष है। दोनों ओर से दुन्दुभियाँ बड़े जोरों से बज रही हैं और देवता लोग हर्षित होकर रघुकुलमणि की जय हो, जय हो, जय हो कहकर फूल बरसा रहे हैं। इस भाँति बारात को आते हुए जानकर : कन्या पक्ष से बहुत से बाजे बजने लगे और रानियाँ सुहागिनी स्त्रियों को बुलाकर परिछन के लिए मङ्गल साज रही हैं।

व्याख्या : उत्साह के तारतम्यानुसार बाजाओं की तुमुलध्वनि में भी तारतम्य होता है। बड़ा उत्साह है। इसलिए दुन्दुभी बड़ी जोर से बजाई जा रही हैं। कन्या पक्ष के लोग जो बारात लेने गये थे वे भी बाजे गाजे के साथ बारात के सङ्ग चल रहे हैं। यथा : संख निसान पनव बहु बाजे। उन लोगों ने भी जोरों से दुन्दुभी बजाई। इस उत्साह को देखकर देवता लोग भी खिल उठे। लगे जय जयकार करके फूल बरसाने। रघुकुलमणि कहने से महाराज दशरथ तथा रामजी दोनों व्यक्तियों का बोध होता है। यथा : रघुकुलमणि दसरथ के जाये। तथा : विद्यमान रघुकुलमनि जानी। अतः नाम निर्देश न करके देवता लोग रघुकुलमणि की जय कह रहे हैं। जब बाजे के शब्द को सन्निकट आते सुना तो महाराज जनक के यहाँ भी अनेक प्रकार के बाजे बजने लगे। मङ्गल कार्य में सम्मिलित होने के लिए सोहागिनी स्त्रियाँ बुलाई जाती हैं। बाजे के शब्द से रानियों ने जाना कि बारात आया चाहती है। अतः सोहागिनियों को बुलाकर रानियाँ मङ्गल साज परिछन के लिए सजाने लगीं।

दो. सजि आरती अनेक विधि, मंगल सकल सँवारि।
चलीं मुदित परिछनि करन, गज गामिनि वर नारि ॥३१७॥

अर्थ : अनेक प्रकार की आरती साजकर और सब मङ्गल सँवारकर प्रसन्न होती हुई गजगामिनि श्रेष्ठ स्त्रियाँ चलीं।

व्याख्या : वर के आते ही परिछन की चाल मिथिला में है। सब स्त्रियाँ आरती सजा रक्खी हैं। किसी ने चौमुख दीप सजा रक्खा है। किसी ने हजार बत्ती की आरती साज रक्खी है। कोई आरती साजे हुए है। इसलिए विविध विधि कहा।

मङ्गल सकल से धान पान दधि आदि अभिप्रेत हैं। परिछन करने की बड़ी लालसा है। अतः प्रसन्न होकर चलीं। चाल की सुन्दरता द्योतित करने के लिए 'गजगामिनी' विशेषण दे रहे हैं।

विधुवदनीं सब सब मृगलोचनि। सब निज तन छवि रति मद मोचनि ॥
पहिरे बरन बरन बर चीरा। सकल बिभूषन सजे सरीरा ॥१॥

अर्थ : सभी चन्द्रवदनी थीं। सभी मृगनयनी थीं। सभी अपने शरीर की छवि से रति का मानमर्दन करनेवाली थीं। सबों ने रङ्ग बिरङ्गी साड़ियाँ पहन रक्खी थीं। और शरीर पर सब प्रकार के भूषणों को साज रक्खा था।

व्याख्या : अब परिछन के कार्य में सम्मिलित होनेवाली स्त्रियों की शोभा कहते हैं। जूथजूथ मिलि सुमुखि सुनयनी। करहिं गान कल कोकिल बयनी। यह वर्णन तो सामान्य स्त्रियों का था। यहाँ तो परिछन के लिए प्रधान प्रधान चलीं। अतः विधुवदनी सब सब मृगलोचनि। सब निज तन छवि रति मदमोचनि। कहकर नखशिख वर्णन करते हैं। रति अति दुखित अतन पति जानी। ये तो अति हर्षित हैं। अतः रति मदमोचनी हैं। स्त्रियों की शोभा रङ्ग बिरङ्गी साड़ियों में ही है। पलटन की वर्दी की भाँति एक रङ्ग की पोशाक में शोभा नहीं है। बत्तीसों आभरणों से सुशोभित हैं। घर से ही यह अभिलाषा मन में रखकर चली हैं कि रामजी का परिछन करना है।

सकल सुमंगल अंग बनाए। करहिं गान कलकंठ लजाए ॥
कंकन किंकिनि नूपुर बाजहिं। चाल बिलोकि काम गज लाजहिं ॥२॥

अर्थ : सभी सुमङ्गल अङ्गों में बनाये हुए हैं। ऐसा गान कर रही हैं कि कोकिल लज्जित हो जायँ, कंकण, किंकिणि और नूपुर बज रहे हैं। उनकी गति देखकर हस्ती रूपधारी काम लज्जित हो जाय।

व्याख्या : पहिले आभरण कहा था। अब शृङ्गार कह रहे हैं। सिर में सिन्दूर, पैर में जावक (महावर) हाथों में मेहंदी आदि सोलहों शृङ्गार किये हुए हैं। इस भाँति शरीर की शोभा, गहने की शोभा तथा शृङ्गार की शोभा कहकर अब सुस्वरता का वर्णन करते हैं। सामान्य स्त्रियों के लिए कल कोकिल बयनी कहा था। पर ये तो ऐसी प्रवीण थीं कि इनके गान के सामने कोयल को लजाना पड़ा। ये सब गज गामिनी हैं। अतः भूषणों की झनकार कहते हैं। फुलवारी में ऐसी झनकार हुई थी। यथा : कंकन किंकिनि नूपुर धुनि सुनि। यहाँ कंकण, करधनी और नूपुर का बजना कहते हैं। भाव यह कि दूर से ध्वनि सुनी जाती है। निकट से बजना कहते हैं। सामान्य स्त्रियों को गजगामिनी बर नारि कहा था। इन्हें कामगज लाजहिं कह रहे हैं।

बाजहिं बाजन बिबिध प्रकारा। नभ अरु नगर सुमंगल चारा ॥
सची सारदा रमा भवानी। जे सुरतिय सुचि सहज सयानी ॥३॥

अर्थ : अनेक प्रकार के बाजे वज रहे थे। आकाश और नगर में मङ्गलाचार हो रहा था। इन्द्राणी, सरस्वती, लक्ष्मी और भवानी जो देवाङ्गनाएँ शुचि और स्वभावतः सयानी थीं।

व्याख्या : विवाह की शोभा विविध प्रकार के बाजे से बढ़ती है। नहीं तो शंखध्वनि और शहनाई का कौन साथ है ? इस उत्सव पर सब वाद्यों को मिलकर एक तुमुल ध्वनि होनी चाहिए। ऐसा मङ्गलाचार में ही नहीं ऊपर आकाश में देवों द्वारा भी हो रहा था।

सुरेश्वरी इन्द्राणी आदि देवियों, त्रिदेवों की शक्तियाँ, शुचि कहकर अप्सराओं का व्यावर्तन कहा। ये सहज सयानी हैं। परिछन करने का अवसर इन्होंने हाथ से नहीं जाने दिया। बारात के समय पतियों के साथ थीं। बारात पहुँचते ही उनका साथ छोड़ा। अधिक आनन्द के लिए राजमहल में प्रवेश कर गईं।

कपट नारिबर वेष बनाई। मिलीं सकल रनवासहिं जाई ॥
करहिं गान कल मंगल बानी। हरष बिबस सब काहु न जानी ॥४॥

अर्थ : कपट से स्त्री का वेष बनाकर सब रनिवास में जाकर मिल गईं। सुन्दर मङ्गल वाणी से गान कर रही हैं। सब हर्ष के वश थीं। अतः किसी ने उन्हें जाना नहीं ।

व्याख्या : माया से देवियाँ नारी रूप हो गईं। सहज सयानी हैं अतः रनिवास में जाकर मिल गईं। मालूम होता था कि ये भी रानियाँ हैं। रामजी के परिछन का सौभाग्य लूटने के लिए चली आईं। उधर रानियाँ हर्ष में विभोर थीं। कोई यह पूछनेवाला नहीं कि ये रानियाँ कहाँ से नेवते में आई हैं। उनकी वाणी मङ्गलमय है, उससे गान कर रही हैं। रामजी का व्याह है इसमें इन्द्राणी, ब्रह्माणी, रुद्राणी आदि का गान होना ही चाहिए। अतः रानियों से मिलकर गान में सम्मिलित हो गईं।

छं. को जान केहि आनंद बस सब ब्रह्म बरु परिछन चलीं।
कलगान मधुर निसान बरषहिं सुमन सुर सोभा भलीं ॥
आनंद कंद बिलोकि दूलहु सकल हिय हरषित भईं।
अंभोज अंबक अंबु उमगि सुअंग पुलकावलि छईं ॥

अर्थ : कौन किसे जानता है। सब आनन्द में विभोर होकर ब्रह्मवर को परिछन करने चलीं। सुन्दर गान हो रहा है। मधुर निशान बज रहा है। देवता फूल बरसा रहे हैं। बड़ी अच्छी शोभा थी। आनन्दकन्द दूलह को देखकर सब हृदय से आनन्दित हो उठीं। कमल से नेत्रों में आँसू उमड़ आये और सुन्दर अंगों में रोमाञ्च हो गया।

व्याख्या : ब्रह्मवर के परिछन में ब्रह्मानन्द है। अतः अन्य विषयों का ज्ञान किसी को नहीं। सबका चित्त आनन्द से निमग्न है। अतः किसी ने नहीं जाना। बारात द्वार पर लग गई। मधुर गान सुनकर डंका का शब्द धीमा हो गया। अब वह भी मधुर बजने लगा। गान में विक्षेप न होकर सहायक हो इसलिए डंका बजानेवालों

ने पण्डिताई दिखाई। उधर देवताओं ने फूल बरसाये। कवि कहते हैं कि भली शोभा हुई। आनन्दित वारिवाह दूलह को देखकर सब हर्षित हो गई। उमगा आनन्दाश्रु और छागई पुलकावली।

दो. जो सुख भा सिय मातु मन, देखि राम वर भेषु।
सो न सकहिं कहि कलप सत, सहस सारदा सेषु ॥३१८॥

अर्थ : रामजी को दूल्हा के वेष में देखकर सीताजी की माता के मन में जो सुख हुआ उसे सहस्र सरस्वती और शेष नहीं कह सकते।

व्याख्या : पहिले कहा था : सहित विदेह विलोकहिं रानी। सिसु सम प्रीति न जाइ बखानी। वहाँ तो शिशु सम प्रीति की उपमा मिली। यहाँ नहीं मिलती। इसलिए कहते हैं कि रामजी को दूलह वेष में देखने का सुख जो सास को हुआ उसे शारदा शेष नहीं कह सकते। क्योंकि उन्हें इस सुख का अनुभव नहीं। मृत्युलोक का उदाहरण नहीं दिया। यहाँ तो सुनयना जी अनुभव कर ही रही हैं। भाव यह कि मर्त्यलोक में भी सुकृती को ब्रह्मलोक दुर्लभ सुख का अनुभव होता है।

नयन नीर हठि मंगल जानी। परिछन करहिं मुदित मन रानी ॥
वेद विहित अरु कुल व्यवहारू। कीन्ह भली विधि सब व्यवहारू ॥१॥

अर्थ : मङ्गल का अवसर जानकर रानियाँ आँसू रोककर प्रसन्न मन से परिछन कर रही हैं। वेदोक्त व्यवहार तथा कुल व्यवहार एवं सभी व्यवहार को भली प्रकार से किया।

व्याख्या : पहिले कह आये हैं कि कमल ऐसी आँखों में आँसू उमग आये। यथा : अंभोज अंबक अंबु उमगि सुअंग पुलकावलि छई। आँसू गिरा चाहते हैं। मङ्गल का अवसर जानकर उन्हें रोका। मङ्गल के समय आँसू गिराना अशुभ है। यद्यपि परिछन के लिए बहुत सी स्त्रियाँ चलीं। पर वे परिछन के गान में ही सम्मिलित रहीं। नियमानुसार परिछन सीताजी की माता कर रही हैं। इसलिए कहते हैं : परछन करहिं मुदित मनरानी। वेद विहित व्यवहार देवपूजन, वरपूजन आदि कुल व्यवहार आदि तथा सब व्यवहार अर्थात् देश व्यवहार जो और कहीं नहीं केवल मिथिला में ही प्रचलित हैं। ऐसे अवसर पर कन्या की माता का अञ्चल से पान द्वारा वर की नासिका को पकड़े हुए लिवा ले जाना आदि सभी व्यवहारों को भली भाँति किया।

पंच सवद धुनि मंगल गाना। पट पाँवड़े परहिं विधि नाना ॥
करि आरती अरघ तिन्ह दीन्हा। राम गवनु मंडप तब कीन्हा ॥२॥

अर्थ : पाँच प्रकार के बाजों के शब्दों की ध्वनि और मङ्गल गान हो रहे हैं। नाना प्रकार के कपड़ों के पाँवड़े पड़ रहे हैं। उन्होंने आरती करके अर्घ्य दिया। तब रामजी मण्डप में गये।

व्याख्या : तन्त्री तार सुझांझ पुनि जानु नगारा चार। पंचम फूँके ते बजै सब्द सुपांच प्रकार। सो पाँचों प्रकार के बाजे बजे। इसलिए ध्वनि कहा। बाजे के

शब्द ध्वन्यात्मक होते हैं। ये मङ्गलगान के साथ साथ बज रहे हैं। क्योंकि सीताजी की माता रामजी को लिवाये हुए मण्डप की ओर जा रही हैं। मंण्डप के पास पहुँचने पर आरती हुई। अर्घ्य दिया गया। तब रामजी ने मण्डप में प्रवेश किया। महाराज चक्रवर्तीजी बाहर ही रुके हैं।

दसरथ सहित समाज बिराजे। बिभव बिलोकि लोकपति लाजे ॥
समय समय सुर बरषहिं फूला। सांति पढ़हि महिसुर अनुकूला ॥३॥

अर्थ : महाराज दशरथ समाज के सहित विराजमान हुए। विभव देखकर लोकपाल लज्जित हो गये। समय समय पर देवता फूल बरसाते हैं और ब्राह्मण अनुकूल होकर शान्तिपाठ कर रहे हैं।

व्याख्या : श्रीरामजी मण्डप में चले गये। पर महाराज दशरथ बाहर ठहर गये। वहीं दरबार लग गया। पहिले कह आये हैं : कोसलपति कर देखि समाजू। अति लघु लोग तिनहि सुर राजू। उसी समाज के साथ आज महाराज जनक के द्वारपर दरबार लगा है। उस विभव को देखकर लोकपाल सङ्कुचित हो गये। क्योंकि यह वैभव उन्हें प्राप्त नहीं है। महाराज का ठहरना कहकर फिर कवि जल्दी से मण्डप में पहुँच गये और वहाँ की गतिविधि का वर्णन करने लगे। रामजी के मण्डप तक पहुँचने में ऐसे अनेक अवसर आये जब कि देवताओं ने पुष्पवृष्टि की और ब्राह्मणों ने प्रसन्न होकर शान्तिपाठ किया।

नभ अरु नगर कोलाहल होई। आपन पर कछु सुनै न कोई ॥
एहि बिधि राम मंडपहि आये। अरघु देइ आसन बैठाये ॥४॥

अर्थ : आकाश में और नगर में कोलाहल हो रहा है। अपना पराया कोई सुन नहीं पाता है। इस विधि से रामजी मण्डप में आये। अर्घ्य देकर आसन पर बिठाया।

व्याख्या : जहाँ जनसमुदाय उत्साह से भरा एकत्रित होता है वहाँ कोलाहल होता ही है। आकाश में तैंतीस कोटि देवता जय जयकार कर रहे हैं। नीचे घराती और बाराती दोनों समाज आनन्द से उमगे हुए एकत्रित हैं। अतः पृथ्वी से आकाश तक तुमुलध्वनि भर गई। अपना कहा हुआ अपने को ही नहीं सुनाई देता दूसरे की कौन सुनता है। इस विधि से अर्थात् बाहर तो महाकोलाहल हो रहा है और भीतर शब्द धुनि मंगल गान और शान्ति पाठ हो रहा है। रामजी के मण्डल में आने पर फिर अर्घ्य दिया गया और तब आसन पर बिठलाया।

छं. बैठारि आसन आरती करि, निरखि बरु सुखु पावहीं।
मनि बसन भूषन भूरि वारहिं, नारि मंगल गावहीं ॥
ब्रह्मादि सुरबर बिप्र भेष, बनाइ कौतुक देखहीं।
अवलोकि रघुकुल कमल रबि छबि, सुफल जीवन लेखहीं ॥

अर्थ : आसन पर विठाकर आरती करके दूल्हे को देखकर सुख पा रही हैं। मणि, वसन, भूषण का खूब निछावर हो रहा है। स्त्रियाँ मङ्गल गा रही हैं। ब्रह्मा आदि श्रेष्ठ देव ब्राह्मणों का वेष धारण किये हुए कौतुक देख रहे हैं। रघुकुलकमल के सूर्य की छवि को देखकर जीवन को सुफल कर रहे।

व्याख्या : पहिले अर्घ्य पीछे आसन तत्पश्चात् आरती हो रही है। अवकाश पाकर वर का आनन्द से दर्शन कर रही हैं। अब न्योछावर होने लगी। मणि, वसन, भूषण, निछावर करके दिया जाने लगा। मङ्गल गान होता चला जाता है। स्त्रियाँ रामजी को दूल्हे के वेष में देखकर सुख पा रही हैं। अभी तक वहाँ ब्राह्मणेतर का प्रवेश नहीं है। बाराती भी महाराज के साथ ही आवेंगे। देवता ब्राह्मण का वेष धारण करके ही पृथ्वी पर विचरते हैं। सो ब्रह्मादिक देवताओं ने कौतुक देखने के लिए ब्राह्मण का रूप धारण किया। शची, उमा, रमा और ब्रह्माणी तो चतुराई करके रानियों सा वेष बनाये हुए रानियों में मिलकर आनन्द ले रही हैं। अतः कौतुक देखने के लिए पीछे पीछे से देवों ने ब्राह्मणों का वेष धारण किया। अपने वेष में आते तो यह आनन्द न मिलता। स्वाभाविकता न रह जाती। देवताओं के जन्म का साफल्य भी श्रीरामजी के दर्शन में है। किंपुनः दूल्हे के वेष में दर्शन तो अतीव दुर्लभ है।

दो. नाऊ बारी भाट नट, राम निछावरि पाइ।
मुदित असीसहिं नाइ सिर, हरषु न हृदय समाइ ॥३१९॥

अर्थ : नाऊ बारी भाट और नट रामजी का निछावर पाकर मुदित होकर सिर नवाकर आशीर्वाद देते हैं। उनके हृदय में हर्ष नहीं समाता।

व्याख्या : इस निछावर के अधिकारी नाऊ बारी भाट और नट हैं। अतः निछावर पाकर प्रणाम भी करते हैं और आशीर्वाद भी देते हैं। केवल आशीर्वाद के ये अधिकारी नहीं हैं। अब भी यही प्रथा है। यहाँ तक कृत्य स्त्रियों द्वारा सम्पन्न हुआ। मिथिला में विधिकरी ही बहुत कुछ विवाहविधि करा लेती हैं।

मिले जनकु दसरथु अति प्रीती। करि वैदिक लौकिक सब रीती ॥
मिलत महा दोउ राज बिराजे। उपमा खोजि खोजि कवि लाजे ॥१॥

अर्थ : वैदिक और लौकिक सब रीतियों का सम्पादन करके महाराज जनक और दशरथ अत्यन्त प्रीति से मिले। उपमा खोज खोजकर कवियों को लज्जित होना पड़ा।

व्याख्या : मधुमाधव दशरथ जनक मिलव राज रितुराज। अति प्रीति में भेद नहीं रह जाता। चैत्र और वैशाख मिलकर एक हुए तो वसन्तऋतु हुआ। यथा : वरनव राम विवाह समाजू। सो मुद मंगलमय रितु राजू। मेल की दृढ़ता के लिए लौकिक और वैदिक रीति का सम्पादन किया। इसके पहिले मिलने की रीति नहीं है। इसी से महाराज जनक अगवानी आदि में सम्मिलित नहीं हुए थे।

वर्णन करने में कवि उपमा देते हैं। यहाँ मिलने के समय दोनों महाराजाओं की उपमा देने के लिए कवि प्रयत्न करने लगे तो उन्हें कहीं उपमा ही न मिली। अतः सङ्कुचित हो गये। मधुमाधव की उपमा तो मिलने मात्र के लिए दी गई। दोनों महाराजाओं की उपमा नहीं है। कवि लोग उपमा देने के लिए पूर्व के हुए विवाहों पर निगाह दौड़ाये तो सबसे अच्छा विवाह महादेवजी का हुआ था। यथा : सकल सुरन्ह के हृदय अस संकर परम उछाहु। जिन नयनन्हि देखा चहैं नाथ तुम्हार विवाहु। सो उसमें : पहिलेहि पँवरि सुसामध भा सुखदायक। इत विधि उत हिमवान सरिस सब लायक। पर हिमवान तो विधि के सृष्ट पदार्थ हैं। अतः ब्रह्मदेव के जोड़ के नहीं थे। दूसरा कोई विवाह ऐसा नहीं हुआ था। इसलिए उपमा नहीं मिली।

लही न कतहुँ हारि हियँ मानी। इन सम एइ उपमा उर आनी ॥
सामध देखि देव अनुरागे। सुमन बरषि जसु गावन लागे ॥२॥

अर्थ : जब कहीं उपमा न मिली तो हृदय से हार गये। तब इनके समान ये ही हैं। यह उपमा निश्चय की। समधियों का मिलना देखकर देवता प्रेम के वश हुए। वे फूलों की वर्षा करके यशगान करने लगे।

व्याख्या : कहीं ऐसे समान समधी ही नहीं मिले तो कवि लोग हृदय से तो तो हार गये। पर कवि ही ठहरे। बात बना ली। उनकी उनसे ही उपमा दे डाली और उसका नाम अनन्वयालङ्कार रख दिया। समधियों के मिलने की जो रसम है उसे सामध कहते हैं। कवि तो उपमा के फेर में पड़ गये। पर देववृन्द प्रेम में आगये। पुष्पों की वर्षा की : जो समधियों तक पहुँची और यशोगान करने लगे जो सब ने सुना।

जगु बिरंचि उपजावा जब तें। देखे सुने ब्याह बहु तब तें ॥
सकल भाँति सम साज समाजू। सम समधी देखे हम आजू ॥३॥

अर्थ : जब से ब्रह्मदेव ने संसार रचा तब से बहुत से ब्याह देखे और सुने। पर सब भाँति सब समाज और समान समधी तो आज ही देख पड़े।

व्याख्या : ब्रह्मदेव कल्प के आरम्भ में सृष्टि रचते हैं और कल्पान्त में उसका संहार हो जाता है। एक कल्प में चौदह मन्वन्तर होते हैं। सो इन्द्रादि देवताओं की आयु कल्पस्थायिनी नहीं होती। इस भाँति एक कल्प में चौदह इन्द्र क्रम से होते हैं। रामावतार वैवस्वत मन्वन्तर में होता है। यह विवाह भी इसी मन्वन्तर में सम्पन्न हुआ। सो इस मन्वन्तर के देवता कहते हैं कि इस मन्वन्तर के सब विवाह हमने देखे हैं। क्योंकि सभी विवाहों में इनका आवाहन होता है और पहले के छः मन्वन्तरों के प्रधान विवाहों की कथा सुन रक्खी है। पर सब समाज और समधी समान तो आज ही देखे। महादेवजी का विवाह सर्वोत्तम हुआ पर सब समाज समान नहीं था। यथा : सुरसमाज सब भाँति अनूपा। नहिं बरात दूलह अनुरूपा। देखि सिवहिं सुरतिय मुसुकाहीं। बर लायक दुलहिन जग नांहीं। तथा : जो जियत

रहिहि बरात देखत पुण्य बड़ तेहिकर सही। देखिहि जो उमा विवाह घर घर बात अस लरिकन कही। पर इस विवाह की बात ही और है। सब समाज समान है। यथा : इधर : देखि जनकपुर सुर अनुरागे। निज निज लोक सबहिं लघु लागे। उधर : दसरथ सहित समाज विराजे। विभव विलोकि लोकपति लाजे। वर दुलहिन भी समान : मथि माखन सिय राम संवारेउ सकल भुवन छवि छांछ महीरी। समधी भी समान : सखि सब करव पुरारि पुन्य पयोनिधि भूप दोउ।

देव गिरा सुनि सुंदर साँची। प्रीति अलौकिक दुहुँ दिसि माँची ॥
देत पाँवड़े अरघु सुहाये। सादर जनकु मंडपहिं ल्याये ॥४॥

अर्थ : देवताओं की सुन्दर और सच्ची बात सुनकर दोनों ओर अलौकिक आनन्द मच गया। सुन्दर पाँवड़े और अर्घ्य देते हुए आदर के सहित जनकजी मण्डप में ले आये।

व्याख्या : सदा साँची गिरा सुन्दर नहीं होती और सुन्दर गिरा साँची नहीं होती। पर यह वाणी सुन्दर और साँची दोनों थी। यहाँ साँची से अभिप्राय प्रामाणिक गिरा से है। जब देवताओं ने कह दिया तो साँची होने में सन्देह क्या? एक पक्ष दूसरे पक्ष की प्रशंसा सुनकर प्रसन्न है। अब जनकजी चक्रवर्तीजी को मण्डप में लिवा ले चले। सो पाँवड़े पड़ने लगे। एक एक पाँवड़े के बाद अर्घ्य दिया जाता है। इस आदर के साथ मण्डप में ले गये।

छं. मंडपु बिलोकि विचित्र रचना रुचिरता मुनि मन हरे।
निज पानि जनक सुजान सब कहुँ आनि सिंघासन धरे ॥
कुल इष्ट सरिस वसिष्ठ पूजे विनय करि आसिष लही।
कौसिकहि पूजत परम प्रीति कि रीति तौ न परै कही ॥

अर्थ : मण्डप की विचित्र रचना देखा कि इसकी सुन्दरता मुनियों के मनको हरण करनेवाली है। अपने हाथों सुजान जनकजी ने सब के लिए ला लाकर सिंहासन रक्खा। कुल इष्टदेव की भाँति वसिष्ठजी की पूजा की और विनय करके आशीर्वाद लिया। विश्वामित्रजी के पूजने में प्रीति की रीत्ति कुछ कही नहीं जाती।

व्याख्या : मण्डप की विचित्र रचना देखी कि इसकी सुन्दरता तो मुनियों के मन को हरण करनेवाली है। यथा : रचना देखि विचित्र अति मन विरंचिकर भूल। इससे महाराज जनक का ऐश्वर्य कहा और सिंहासनयोग्य अति पूज्यों के लिए अपने हाथ से लाकर सिंहासन रख रहे हैं। इससे जनकजी का सत्कार कहा। जैसे कुल के इष्टदेव की। पूजा बड़ी श्रद्धा और सावधानी से की जाती है। वैसे ही वसिष्ठजी की पूजा की। क्योंकि महाराज दशरथ के कुलगुरु हैं। यथा : तुम सुरतरु रघुवंस के देत अभिमत माँगे। पूजन के बाद ऐसी स्तुति की कि गुरुजी ने प्रसन्न होकर आशीर्वाद दिया। इससे राजा जनक का विनय कहा। तत्पश्चात् विश्वामित्र

जी की पूजा की जिनकी कृपा से यह दिन देखने में आया। बड़ा भारी उपकार विश्वामित्रजी का था। अतः परम प्रीति से पूजा की। प्रीति की रीति अलौकिक होती है। अतः कही नहीं जा सकती। भाव यह कि न तो इधर स्तुति के लिए शब्द मिलते हैं और न उधर आशीर्वाद के लिए कण्ठ खुलता है। इससे जनकजी की प्रीति कही। राजगुरु होने से वसिष्ठ तथा विश्वामित्रजी को भी सिंहासन दिया गया।

दो. बामदेव आदिक रिषय, पूजे मुदित महीस।
दिए दिव्य आसन सबहिं, सब सन लही असीस ॥३२०॥

अर्थ : वामदेवादि ऋषियों को आनन्दित होकर राजा ने पूजा। सबको दिव्य आसन दिया और सबसे आशीर्वाद पाया।

व्याख्या आसन का विधान कहते हैं। राजा तथा राजगुरुओं को सिंहासन, ऋषियों को दिव्यासन, बारातियों को उचित आसन, देवताओं को सुआसन दिया। ऋषियों की पूजा राजा ने प्रसन्न होकर की। ऋषियों के आगमन से राजा को हर्ष है। अतः वामदेवादि ऋषियों को दिव्यासन पर बिठाकर पूजा की। सबने आशीर्वाद दिया।

बहुरि कीन्ह कोसलपति पूजा। जानि ईस सम भाउ न दूजा ॥
कीन्ह जोरि कर बिनय बड़ाई। कहि निज भाग्य बिभव बहुताई ॥१॥

अर्थ : फिर कोसलपति की पूजा उन्हें शिवजी के समान जानकर की। कोई दूसरा भाव : उनके मनमें नहीं था। हाथ जोड़कर विनती और स्तुति की। अपने भाग्य के विभव की बहुतायत कही।

व्याख्या : कुल के इष्टदेव की भाँति वसिष्ठजी की पूजा की और अभीष्टदाता शङ्कर की भाँति दशरथजी की पूजा की। दूसरा भाव अर्थात् समधी का भाव मनमें आने नहीं दिया। राजा जनक ने महाराज दशरथ को साक्षात् शङ्कर रूप माना। क्योंकि शङ्करजी के लिए कहा गया है कि : इप्सित फल बिनु सिव अवराधे। लहिय न कोटि जोगजप साधे। और दशरथजी के लिए स्वयं वसिष्ठजी कहते हैं : राजन राउर नाम जस सब अभिमत दातार। अतः गुणग्राहक राजा जनक ने उन्हें शङ्कर के समान ही माना और आराधना भी उनकी शङ्कर के समान ही की। दूसरा भाव आने से फिर वैसी पूजा नहीं हो सकती थी। पूजन के बाद विनय और स्तुति का विधान है। सो वह भी उसी भाँति किया जैसा शिवजी का किया जाता है। उनके पधारने से अपने भाग्य के विभव की महिमा का वर्णन किया। ऐसे अवसरों पर अपने भाग्य की सराहना की जाती है।

पूजे भूपति सकल बराती। समधी सम सादर सब भाँती ॥
आसन उचित दिये सब काहू। कहहुँ कहा मुख एक उछाहू ॥२॥

अर्थ : समधी के समान सब भाँति से आदर के साथ राजा ने सब बारातियों

की पूजा की और सबको उचित आसन दिया। एक मुख से उस उत्साह का क्या वर्णन करूँ।

व्याख्या : समधी की पूजा शिवजी के समान की और सब बारातियों की पूजा समधी के समान की। यथा : दान मान विनती वर बानी। जिस आदर से जिस प्रकार से समधी की पूजा होती है उसी आदर भाव से सभी बारातियों की पूजा स्वयं की। क्योंकि समधी की पूजा प्रतिनिधि द्वारा नहीं होती। उत्तम मध्यम नीच और लघु को उचित आसन दिया। ऋषियों को दिव्यासन दिया था। अब बारातियों को उचित आसन दे रहे हैं। यह महाराज की श्रद्धा और सावधानी है। ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं कि इस उत्साह का वर्णन करने के लिए चतुर्मुख पञ्चमुख अथवा सहस्रमुख की आवश्यकता है। मैं एक मुखवाला उस उत्साह का क्या वर्णन करूँ। मेरे लिए सर्वथा वर्णनातीत है।

सकल बरात जनक सनमानी। दान मान विनती वर वानी ॥
विधि हरि हरु दिसिपति दिनराऊ। जे जानहि रघुबीर प्रभाऊ ॥३॥

अर्थ : सब बारात का जनकजी ने सम्मान, दान, मान, विनती औ श्रेष्ठ वाणी द्वारा किया। ब्रह्मा, विष्णु, शिव, दिक्पाल और सूर्य जो रघुवीर के प्रभाव को जाननेवाले थे।

व्याख्या : उपर्युक्त सादर सब भाँती : की व्याख्या करते हैं। समधी की भाँति उनको द्रव्य दिया। सम्मान किया। उनकी विनती की और श्रेष्ठ वाणी सत्कार सूचक बोले। अथवा ब्राह्मण को दान दिया। क्षत्रिय का सम्मान किया। वैश्य की विनती की और शूद्र से आदरसूचक वचन बोले।

अन्य देवता तो अपने अपने विमानों पर आकाश में ही रहे। परन्तु त्रिदेव दिक्पाल तथा सूर्य ने जो रामजी के प्रभाव के जाननेवाले गिने गिनाये देवता थे उन्होंने ऐसे अवसर पर अपनी उपस्थिति सर्वथा उचित समझी।

कपट विप्र वर वेष बनाए। कौतुक देखहिं अति सचु पाए ॥
पूजे जनक देव सम जाने। दिए सुआसन बिनु पहिचाने ॥४॥

अर्थ : माया से श्रेष्ठ ब्राह्मण का वेष बनाये हुए अत्यन्त सुख पाते हुए कौतुक देख रहे थे। उनको देवता के समान जानकर जनकजी ने पूजन किया और बिना पहिचाने ही उन्हें सुन्दर आसन दिया।

व्याख्या : ये ब्रह्मादिक देवता जब रामजी मण्डप में आये तभी से विप्र वेष बनाए कौतुक देख रहे हैं। यथा : ब्रह्मादि सुरवर विप्र वेष बनाइ कौतुक देखहीं। ये पहिले से ही आये हुए हैं। अतः बाराती नहीं हैं। फिर कौन हैं ? इस पहिचान की आवश्यकता थी। परन्तु राजा जनक ने बिना पहिचाने ही उन्हें देवता के समान जाना : दर्जा समझ लिया। यह राजा की सुजानता है। रामजी को भी इन्होंने बिना पहिचाने अन्दाज कर लिया। कहने लगे : ब्रह्म जो निगम नेति कहि गावा।

उभय वेष धरि सोइ कि आवा। इसी भाँति यहाँ भी कपट वेष में रहने पर भी देवताओं को देवता समान जानकर पूजन किया और सुआसन दिया।

छं. पहिचान को केहि जान सबहि अपान सुधि भोरी भई।
आनंद कंदु बिलोकि दूलहु उभय दिसि आनँदमई॥
सुर लखे राम सुजान पूजे मानसिक आसन दए।
अवलोकि सीलु सुभाउ प्रभु को बिबुध मन प्रमुदित भए॥

अर्थ : कौन किसे जाने पहिचाने। सबको अपनी ही सुधि भूली हुई थी। आनन्दकन्द दूल्हे को देखकर दोनों पक्ष आनन्दमय हो रहे थे। रामसुजान ने देवताओं को लखा। तो पूजा की और मानसिक आसन दिया। प्रभु के शील और स्वभाव को देखकर देवता हृदय से आनन्दित हो उठे।

व्याख्या : जनकजी ने विना पहिचाने दर्जा का अन्दाज कर लिया और विप्रवेषधारी देवगणों को सुआसन दिया। इस पर ग्रन्थकार कहते हैं कि इतनी बड़ी बारात में पहिचान पहिचान कर कौन जान सकता है? अन्दाज से ही काम चलाया जाता है। तिस पर यहाँ तो किसी को अपनी ही सुधि नहीं है। आनन्दकन्द दूल्हे को देखकर दोनों पक्षों में आनन्द मचा हुआ है। आनन्द का मेघ दोनों ओर आनन्द की वर्षा कर रहा है। सुजान रामजी ने देवताओं को लख लिया कि उधर से तो इनकी पूजा हुई। पर मेरी ओर से पूजा नहीं हुई और मैं ऐसी स्थिति में हूँ कि स्वयं कुछ कर नहीं सकता। अतः सबकी मानसिक पूजा की और मानसिक आसन दिया। देवताओं ने प्रभु की दी हुई पूजा और आसन को ग्रहण किया और प्रभु के ऐसे शील स्वभाव को देखकर कि स्वयं दूल्हा बने हैं सङ्कोचवश सत्कार नहीं कर सकते तो मानसिक सत्कार कर रहे हैं। देवता लोग मुदित हो गये।

दो. रामचंद्र मुख चंद्र छवि, लोचन चारु चकोर।
करत पान सादर सकल, प्रेम प्रमोदु न थोर॥३२१॥

अर्थ : रामचन्द्र के मुखचन्द्र की छवि को सुन्दर चकोररूपी लोचनों से आदर के साथ सब पान कर रहे हैं। किसी में प्रेम और प्रमोद थोड़ा नहीं है।

व्याख्या : सबको इष्ट भोग हो रहा है। अतः कहते हैं कि प्रेम प्रमोद थोड़ा नहीं है। मुख की उपमा चन्द्र से छवि की उपमा किरण से और सबके लोचनों की चकोर से दी गई। सब लोग स्वस्थ होकर बैठ गये। सब रामजी के मुख की शोभा देखकर मुग्ध हैं। चन्द्र का पृष्ठ भाग कोई देख नहीं सकता। इस भाँति रामजी सबको सम्मुख दिखाई पड़ रहे हैं। यथा : मुनि समाज मह बैठे सनमुख सबकी ओर। सरद चंद तन चितवत मानहु निकर चकोर।

समउ बिलोकि बसिष्ठ बुलाए। सादर सतानंद मुनि आए॥
बेगि कुँअरि अब आनहु जाई। चले मुदित मुनि आयसु पाई॥१॥

अर्थ : समय देखकर वसिष्ठजी ने आदरपूर्वक बुलाया। सुनकर सतानन्दजी आये। कहा कि : अब राजकुमारी को जल्द ले आइये। मुनिजी की आज्ञा पाकर प्रसन्न होकर चले।

व्याख्या : व्याह की लग्न गोधूलि निश्चित हुई है। गोधूलि सधना कठिन कार्य है। वारात लाने में बड़ी जल्दी करने से गोधूलि सधती है। इसी से ब्राह्मणों ने शीघ्रता की। यथा : धेनु धूरि बेला बिमल सकल सुमंगल मूल। बिप्रन्ह कहेउ बिदेह सन जानि सगुन अनूकूल। राजा ने भी शीघ्रता की। सतानन्दजी से कहा : अब बिलंब कर कारण काहा। यहाँ भी गोधूलि सन्निकट देखकर वसिष्ठजी शीघ्रता कर रहे हैं। सतानन्दजी को आदर के साथ बुलाकर कहते हैं कि राजकुमारी को जल्दी लाइये। सतानन्दजी चिरकारी मालूम होते हैं। गौतमजी के चिरकारी पुत्र की कथा महाभारत में है। वे भी कामों में देर लगाते थे। विचार करने लग जाते थे। उनके स्वभाव की जानकारी होने से ही बार बार उन्हें शीघ्रता के लिए कहा जाता है। यहाँ शीघ्रता करने के लिए वसिष्ठजी के कहने से यही ध्वनित होता है कि विचार करने में देर न लगाइये जल्दी कीजिए। इसीलिए कहा जाता है कि आज्ञा पाकर सतानन्दजी प्रसन्न होकर चले। भाव यह कि वसिष्ठजी ने आज्ञा दे दी। विचार करने की अब आवश्यकता न रह गई। अतः मुदित मन चले। नहीं तो स्वभावानुकूल इसपर भी कुछ विचार करके तब बुलाते। अथवा इस व्याह उछाह में जिस किसी कार्य को जिससे कहा जाता है वह उसे आनन्दित होकर करता है।

रानी सुनि उपरोहित बानी। प्रमुदित सखिन समेत सयानी॥
बिप्र बधू कुलवृद्ध बोलाई। करि कुल रीति सुमंगल गाई॥२॥

अर्थ : सयानी रानी पुरोहितजी की वाणी सुनकर सखियों सहित प्रसन्न हुई। ब्राह्मणों की स्त्रियों तथा कुल की वृद्धाओं को : बड़ी बूढ़ियों को बुलाकर मङ्गलगान किया।

व्याख्या : शतानन्दजी ने अन्तःपुर में जाकर आवाज दी। मङ्गल समय अत्यन्त निकट जानकर रानी सखियों के सहित हर्षित हुईं। रानी सयानी हैं। सब कार्यों में ब्राह्मणियों तथा कुल की बड़ी बूढ़ियों को सम्मिलित कर लेती हैं। उन्हें बुलवाया। उनके आदेशनुसार कुल की रीति : लौकिक व्यवहार सम्पादन करके मङ्गलगान किया। स्त्रियों में लौकिक व्यवहार का वैदिक व्यवहार से कम आदर नहीं है और न मङ्गलगान का वेदमन्त्र से कम आदर है। जो गीत जिस अवसर पर गान करना चाहिए उसमें से कोई छूट नहीं सकता। अतः अधिक शीघ्रता होने पर भी कुलरीति या मङ्गलगान में संक्षेप नहीं हुआ।

नारि बेष जे सुर बर बामा। सकल सुभाय सुंदरी स्यामा॥
तिन्हहिं देखि सुखु पावहिं नारी। बिनु पहिचानि प्रानहु तें प्यारी॥३॥

अर्थ : नारी के वेष में जो श्रेष्ठ देवों की शक्तियाँ थीं वे सब स्वभाव से ही सुन्दरी और श्यामा थीं। उन्हें देखकर नारियों को सुख होता था। बिना पहिचाने ही प्राणों से प्यारी लगती थीं।

व्याख्या : पहिले कह आये हैं : सची सारदा रमा भवानी। जे सुरतिय सुचि सहज सयानी। कपट नारिवर वेष बनाई। मिलीं सकल रनिवासहिं जाई। वे स्वभाव से ही सुन्दरी थीं। उन्हें बहुत श्रृङ्गार की आवश्यकता न थी और सदा षोडशवार्षिकी बनी रहती थीं और मधुरभाषिणी थीं। यथा : श्यामा भवति श्यामाङ्गी श्यामा षोडशवार्षिकी। अप्रसूता भवेच्छ्यामा श्यामा मधुरभाषिणी। उनके दर्शन से स्त्रियों को सुख मिलता था और सबको प्राणों से प्यारी मालूम पड़ती थीं। क्योंकि वे सबकी आत्मस्वरूपा थीं। यथा : स्त्रियः समस्ता सकला जगत्सु। और अपनी आत्मा सबको प्रिय है।

बार बार सनमानहिं रानी। उमा रमा सारद सम जानी ॥
सीय सँवारि समाज बनाई। मुदित मंडपहिं चलीं लेवाई ॥४॥

अर्थ : उमा रमा और शारदा के समान जानकर उनका सम्मान बारम्बार रानी करती हैं। सीताजी को सँवारकर और समाज बनाकर आनन्दित हो मण्डप में लिवा चलीं।

व्याख्या : रानी सुनयना महाराज जनकजी की प्रिया हैं। वैसी ही पहिचान इन्हें भी है। उधर : पूजे जनक देव सब जाने। इधर : बार बार सनमानहिं रानी। उमा रमा सारदा सब जानी। जो जैसी थीं उन्हें उन्हीं के समान समझा। पहिचानने में इतना ही भेद रह गया। अलंकृत कन्या का दान लिखा है। अतः भूषण वसन से सजाकर तथा सीताजी की सखियों को साथ लेकर अपना समाज बनाकर : घेरकर मण्डल में लिवा ले चलीं।

छं. चलि ल्याइ सीतहिं सखी सादर सजि सुमंगल भामिनी।
नवसप्त साजे सुंदरी, सब मत्त कुंजर गामिनी ॥
कल गान सुनि मुनि ध्यान त्यागहिं काम कोकिल लाजहीं।
मंजीर नूपुर कलित कंकन, ताल गति वर बाजहीं ॥

अर्थ : सुमङ्गल साजकर सुन्दर सखियाँ आदर के साथ सीताजी को ले चलीं। वे सुन्दरियाँ सोलहों श्रृङ्गार किये हुए थीं और मतवाले हाथी की सी चाल वाली थीं। उनका सुन्दर गान सुनकर मुनि लोगों का ध्यान छूटता था और कामरूपी कोकिल भी लज्जित होता था। करधनी नूपुर और सुन्दर कङ्कण गति के तालपर बज रहे थे।

व्याख्या : ऊपर की अर्धाली में : मुदित मंडपहिं चली लेवाई : कहा कर्त्ता न कहा। अतः सखी ने सादर कहकर कर्त्ता बतला दिया। आगे करके ले चलने को

सादर ले चलना कहते हैं। सखियों का सोलह शृङ्गार हुआ है। सोलह शृङ्गार का वर्णन पहिले हो चुका है। केवल सखियाँ ही नहीं भामिनी कहकर देवियों का भी साथ होना लक्षित किया। वहाँ चलीं मुदित परिछन करन गजगामिनी वर नारि कहा था। यहाँ मत्त कुंजर गामिनी कहते हैं। यहाँ देवियाँ गान कर रही हैं। अतः कलकंठ लजाहीं न कहकर काम कोकिल लाजहीं कहा। वहाँ केवल कंकन किंकिनि नूपुर बाजहिं कहा था। यहाँ तालगति वर बाजहीं कहते हैं। गान हो रहा है। अतः ताल की आवश्यकता है।

दो. सोहति वनिता बृंद महुँ, सहज सुहावनि सीय।
छबि ललना गन मध्य जनु, सुषमा तिय कमनीय ॥३२२॥

अर्थ : स्वभाव से ही शोभायमान सीताजी स्त्रीसमूह में ऐसी सुशोभित हैं जैसी छविरूपी स्त्रियों के बीच परमा शोभारूप स्त्री सुशोभित हो।

व्याख्या : वनितावृन्द ने सोलहों शृङ्गार कर रक्खा है। पर सीताजी तो स्वभाव से ही सुन्दरी हैं : सखिन्ह मध्य सिय सोहति कैसी। छबिगन मध्य महा छबि जैसी। कन्यादान के समय सोलहों शृङ्गार का विधान नहीं है। केवल अलंकृता कन्या होनी चाहिए। अतः वस्त्रालङ्कार से सुसज्जित किया। सोलहों शृङ्गार नहीं किया। इसलिए सहज सुहावनि कहते हैं।

सिय सुंदरता बरनि न जाई। लघु मति बहुत मनोहरताई ॥
आवत दीखि बरातिन्ह सीता। रूप रासि सब भाँति पुनीता ॥१॥

अर्थ : सीताजी की सुन्दरता वर्णन करते नहीं बनती। मेरी बुद्धि छोटी है और सौन्दर्य बहुत है। बारातियों ने रूप की राशि और सब भाँति से पवित्र सीताजी को आते हुए देखा।

व्याख्या : श्री ग्रन्थकार कहते हैं कि सीताजी का सौन्दर्य वर्णनातीत है। वह सौन्दर्य लघुमति में सामनेवाली वस्तु ही नहीं है। यथा : सीय बरनिय तेइ उपमा देई। कुकवि कहाइ अजस को लेई। अवर्णनीय को अवर्णनीय कह देने में ही कुशल है। वर्णन करते तो बनेगा ही नहीं। केवल अपयश होगा कि वर्णन करने तो चले सो तो बना नहीं उलटा बिगाड़ दिया। सीताजी अन्तःपुर से मण्डप में आरही हैं। अतः पहिले बारातियों की निगाह पड़ी। देखा कि सब भाँति पवित्र रूप की राशि चली आ रही हैं। रूप रासि सब भाँति पुनीता। कहकर रामजी के योग्या कहा। यथा : रूप रासि नृप अजिर बिहारी। राम पुनीत विषय रस रूखे। क्योंकि इधर रामजी भी रूपराशि सब भाँति पुनीत हैं।

सबहिं मनहिं मन किए प्रनामा। देखि राम भये पूरनकामा ॥
हरषे दसरथ सुतन समेता। कहि न जाइ उर आनँदु जेता ॥२॥

अर्थ : सबने मन ही मन प्रणाम किया। रामजी देखकर सफल मनोरथ हुए।

पुत्रों के सहित दशरथ जी प्रसन्न हो गये। उनके हृदय में जैसा आनन्द हुआ सो कहा नहीं जा सकता।

व्याख्या : सब बारातियों को पवित्र रूपराशि के देखने से जगदम्बिका की भावना हुई। अतः सबने मन ही मन प्रणाम किया। ऐसे अवसर पर प्रत्यक्ष प्रणाम करना रीति के विरुद्ध है। पार्वतीजी के व्याह में ऐसा ही हुआ। यथा : जगदम्बिका जानि भव वामा। सुरन्ह मनहि मन कीन्ह प्रनामा। विश्वामित्रजी ने जो आशीर्वाद दिया था : सुफल मनोरथ होहिं तुम्हारे। उसी का साफल्य दिखलाते हैं कि सीताजी को देखकर रामजी पूर्णकाम हुए। नहीं तो राम तो सदा पूर्णकाम हैं और सीताजी उन्हें सदा ही प्राप्त हैं। दिखलाया जा चुका है कि जब लौकिक दृष्टि में सीताहरण हुआ था उस समय भी रामजी से वास्तविक वियोग नहीं था। यथा : सती दीख कौतुक मग जाता। आगे राम सहित श्री भ्राता। पुनि चितवा पाछे प्रभु देखा। सहित बन्धु सिय सुंदर वेषा। अतः लौकिक व्यवहार दिखलाते हुए पूर्णकाम कहते हैं। पुत्र के योग्य पुत्रवधू देखकर चक्रवर्तीजी को हर्ष है और भाई के योग्य भ्रातृवधू देखकर भरतादि भाइयों को हर्ष है और इतना हर्ष है कि वे स्वयं उसके प्रकाश करने में असमर्थ हैं।

सुर प्रनामु करि बरिसहिं फूला। मुनि असीस धुनि मंगल मूला ॥
गान निसान कोलाहलु भारी। प्रेम प्रमोद मगन नर नारी ॥३॥

अर्थ : देवता लोग प्रणाम करके फूल बरसा रहे हैं। मुनियों के आशीर्वाद की मङ्गलमूल ध्वनि हो रही है। गान हो रहा है। डङ्के बज रहे हैं। भारी कोलाहल हो रहा है। नर नारी सब प्रेम और प्रमोद : इष्ट भोग में मग्न हो रहे हैं।

व्याख्या : समय समय सुर बर्षहिं फूला। अतः इस समय तो पुष्पवर्षा की बड़ी ही आश्यकता है और माँ के चरणों में पुष्पाञ्जलि दी जा सकती है। सो मातृभाव से प्रणाम करके देवता फूल बरसा रहे हैं। मुनि की असीसधुनि को मङ्गलमूल कहते हैं। यथा : मंगलमूल विप्र परितोषू। इस समय आनन्द प्राप्ति से आशीर्वाद है। प्रणाम के उत्तर में नहीं। इधर गान हो रहा हैं। उधर निशान बज रहा है। सब मिलकर भारी कोलाहल हो रहा है। नरनारी सब प्रेम और प्रमोद में मग्न हैं। क्योंकि उनकी लालसा पूर्ण हो रही है। यथा : येहि लालसा मगन सब लोगू। बर साँवरो जानकी जोगू।

येहि बिधि सीय मंडपहिं आई। प्रमुदित सांति पढ़हिं मुनिराई ॥
तेहि अवसर कर बिधि व्यवहारू। दुहु कुलगुरु सब कीन्ह अचारू ॥४॥

अर्थ : इस विधि से सीताजी मण्डप में आईं। मुनिराज प्रमुदित होकर शान्ति पाठ करने लगे। उस समय की वैदिक विधि और लौकिक व्यवहार और आचार दोनों ओर के कुल गुरुओं ने सम्पादन किये।

व्याख्या : दो अर्धालियों में ग्रन्थकार ने रामजी के मण्डप में आने का वर्णन

किया है। यथा : समय समय सुर बरषहिं फूला। सांति पढ़हिं महि सुर अनुकूला। नभ अरु नगर कोलाहल होई। आपन पर कछु सुनै न कोई। येहि विधि राम मण्डपहिं आये। अब दो ही अर्धालियों में सीताजी के मण्डप में आने का वर्णन करते हैं। कन्या के मण्डप में आते ही शान्ति पाठ का विधान हैं। अतः मुनीश्वर लोगों ने शान्तिपाठ प्रारम्भ किया और बड़े आनन्द से पाठ कर रहे हैं। उस अवसर पर जो वैदिक विधि और लोक व्यवहार आचार प्राप्त था सो दोनों ओर के कुलगुरुओं ने अर्थात् वसिष्ठजी तथा सतानन्दजी ने सम्पादन किया। शान्ति पाठ में मुनीश्वर लोग सम्मिलित थे। पर कर्मकाण्ड में पुरोहित ही अग्रगण्य हैं।

छं. आचारु करि गुर गौरि गनपति मुदित विप्र पुजावहीं।
सुर प्रगटि पूजा लेहिं देहिं असीस अति सुख पावहीं॥
मधुपर्क मंगल द्रव्य जो जेहि समय मुनि मन महुँ चहैं।
भरे कनक कोपर कलस सो तब लिये परिचारक रहैं॥१॥
कुल रीति प्रीति समेत रवि कहि देत सबु सादर किये।
येहि भाँति देव पुजाई सीतहिं सुभग सिंहासनु दिये॥
सिय राम अवलोकनि परसपर प्रेमु काहु न लखि परै।
मन बुद्धि वर वानी अगोचर प्रगट कवि कैसे करै॥

अर्थ : आचार करके ब्राह्मण लोग प्रसन्न होकर गुरु गौरी और गणपति की पूजा करा रहे हैं। देवता लोग प्रकट होकर पूजा ले रहे हैं। आशीर्वाद दे रहे हैं। उन्हें अत्यन्त सुख की प्राप्ति हो रही है। मधुपर्क आदि मङ्गल द्रव्य जो कुछ मुनिजी जिस समय मन से चाहते हैं उन्हें उन वस्तुओं को सोने के कोपर : पूजन पात्र या कलश में भरे हुए कार्यकर्ता लोग प्रस्तुत कर देते हैं। स्वयं सूर्यनारायण कुल की रीति बतला रहे हैं और उसे आदर के साथ किया जा रहा है। इस भाँति देवताओं की पूजा कराके सीताजी को सुन्दर सिंहासन दिया। सीताजी और रामजी का देखना और परस्पर का प्रेम किसी को लखाई नहीं पड़ता। जो बात मन बुद्धि और श्रेष्ठवाणी के अगोचर है उसे कवि कैसे प्रकट करे।

व्याख्या : सबसे पहिले पूजा गुरु की तब गौरी गणपति की : यह रघुकुल का नियम है। शिवजी के व्याह में कोई कुलगुरु नहीं रहा। अतः मुनि अनुसासन गनपतिहि पूजे संभु भवानि। यहाँ वसिष्ठ का पूजन होने के बाद विवाह कार्य आरम्भ हुआ। तब राम जानकी ने गौरी गणपति का पूजन किया। जिस बात को संक्षेप में : दुहु कुल गुरु सब कीन्ह अचारू कहा था। उसी का विस्तार कर रहे हैं। वरुणादि देवताओं का पूजन हुआ। पूजन करनेवाले राम जानकी और पूजा करानेवाले वसिष्ठादि महर्षि हैं। फिर उनके आवाहन पर देवता क्यों न प्रत्यक्ष हों? महाराज दशरथजी के पुत्रेष्ठीयाग में अग्निदेव सर्वजन प्रत्यक्ष हुए थे।

यथा : प्रगटे अगिन चरु कर लीन्हें। तब अदृस्य पावक भए सकल सभहिं समुझाइ। यहाँ भी पूजा लेने के लिए प्रकट हुए। देवता लोगों को राम जानकी के हाथों की पूजा ग्रहण करने में बड़ा आनन्द है। अतः आशीर्वाद देते हैं। परिचारकों की ऐसी पण्डिताई है कि वे जानते हैं कि इस कर्म के बाद यह कर्म होगा और उसमें अमुक द्रव्यों की आवश्यकता पड़ेगी। अतः उन द्रव्यों को यदि वे कठिन द्रव्य हैं तो कनक के कोपर में यदि द्रव है तो कनक कलश में भरे हुए प्रस्तुत हैं। अतः मुनिजी को कहने की आवश्यकता नहीं पड़ती। कहने के पहिले ही मन में चाहते ही उक्त द्रव्य को उपस्थित कर देते थे।

वहाँ माया से विप्ररूप बनाये सूर्यदेव भी थे। यथा : विधि हरि हर दिसि पति दिन राऊ। जे जानहिं रघुवीर प्रभाऊ। कपट विप्र वर वेष बनाये। कौतुक देखहिं अति सचु पाये। कपट विप्र के वेष में न होते तो रात का दिन हो जाता। वे अपने कुल की रीति बतलाते चलते थे। वे ही रघुकुल के मूलपुरुष थे और उनके कहे अनुसार सब बातें की गईं। यह सब हो चुकने के बाद सीताजी को सुन्दर सिंहासन पर बिठलाया। सीताजी का और रामजी का परस्पर देखना ऐसी पण्डिताई के साथ होता है कि उसे कोई देख नहीं सकता और न प्रेम लखाई पड़ता है। वह प्रेम मन, बुद्धि और वाणी से अगोचर है। यथा : तत्त्व प्रेम कर मम अरु तोरा। जानत प्रिया एक मन मोरा। सो मन सदा रहत तोहि पाहीं। दूसरा कोई जानता नहीं। कहे तो क्या कहे ?

दो. होम समय तनु धरि अनलु, अति सुख आहुति लेहिं।
विप्र वेष धरि वेद सब, कहि विवाह विधि देहिं ॥३२३॥

अर्थ : होम के समय शरीर धारण करके अग्नि अत्यन्त प्रेम से आहुति ग्रहण करते हैं। ब्राह्मण के वेष में वेद लोग विवाह की विधि कह देते हैं।

व्याख्या : नाम ही अनल है। न+अलम्=अनलम्। अर्थात् जहाँ बस नहीं होता। जो डालिये भस्म होता चला जाय। यही अग्नि यावद् गृहस्थाश्रम बराबर बनी रहेगी। इसी में अग्निहोत्र होगा। अतः शरीरधारी अग्नि भगवान् प्रकट हुए। उन्हें रामजानकी की दी हुई आहुति के ग्रहण में बड़ा सुख है। वेद लोग भी ब्राह्मण के वेष में उपस्थित हैं। वे विवाह की विधि बोलते जाते हैं। सर्वज्ञ वसिष्ठ मुनि यद्यपि सब कुछ जानते हैं फिर भी वेद लोग अपनी सेवा निवेदन कर रहे हैं। दूसरी बात यह है कि वसिष्ठजी भी तो विधि के जानकार वेद द्वारा ही हुए। अतः कर्म को अभ्रान्त करने के लिए स्वयं वेद विधि बतला रहे हैं।

जनक पाटमहिषी जग जानी। सीय मातु किमि जाइ बखानी ॥
सुजसु सुकृत सुख सुंदरताई। सब समेटि विधि रची बनाई ॥१॥

अर्थ : सीताजी की माता महाराज जनक की पटरानी को संसार जानता है। उनकी प्रशंसा कैसे की जा सकती है। सुयश, पुण्य और सब सुन्दरता को समेटकर ब्रह्मदेव ने उन्हें सँवारकर रचा है।

व्याख्या : जनकजी की चार रानियों में जो पट्टाभिषिक्ता महिषी थीं अर्थात् जिनके साथ महाराज जनक का राज्याभिषेक हुआ था वही सीताजी की माता थीं। उनका बखान कोई कैसे करे ? उन्हें संसार जानता है। जगजानी से सुयश कहा। जनक पाटमहिषी कहकर सुख कहा। सीय मातु कहकर उनका पुण्य कहा। किमि जाइ बखानी कहकर वर्णनातीत कहा। सब समेटि कहकर उनके शरीर का अलौकिक होना कहा। और विधि रची बनाई कहकर सौन्दर्यातिशय कहा।

समय जानि मुनिवरन्ह बुलाई। सुनत सुआसिनि सादर ल्याई ॥
जनक बाम दिसि सोह सुनयना। हिमगिरि संग बनी जनु मयना ॥२॥

अर्थ : समय जानकर मुनियों ने बुलाया। सुनते ही सुहागिनी स्त्रियाँ उन्हें आदर के साथ लिवा लाईं। जनकजी के वाम भाग में रानी सुनयना ऐसी शोभित हुईं जैसे हिमालय के साथ मयना की शोभा हुई थी।

व्याख्या : दोनों ओर के मुनियों ने सुहागिनियों से कहा कि अब महारानी के आने की आवश्यकता है। वे सब तुरन्त मण्डप में ले आईं। महोत्सव के समय परदा का विधान नहीं है। नहीं तो राजा की स्त्रियों को सूर्य नहीं देखते। असूर्यपश्या हि राजदाराः। सुहागिनी लोग पहिले से ही खड़ी थीं कि जब मुनि लोग कहें तब महारानी को ले आवें।

यहाँ पर ग्रन्थकार ने महारानी का नाम दे देना उचित समझा। इसलिए कहते हैं कि रानी सुनयना आकर महाराज जनक के वाम भाग में सुशोभित हुईं। दानचन्द्रिका का वचन है : कन्या पुत्र के विवाह में, गोदान में, व्रतबन्ध में, आशीर्वाद के समय तथा अभिषेक में पत्नी वाम भाग में रहे। पर कन्यादान में वृषोत्सर्ग में, यज्ञ में और सोम दर्शन में पत्नी को दक्षिण भाग में रक्खे और स्थानों में वाम भाग ही शुभ है। यथा : कन्यापुत्रविवाहे च गोदाने व्रतबन्धने। आशीर्वादेऽभिषेके च पत्नी उत्तरतो भवेत्। कन्यादाने वृषोत्सर्गे अध्वरे सोमदर्शने। पत्नीं दक्षिणतः कुर्यादन्यथा वामतः शुभा। कन्या का विवाह उपस्थित है। इसलिए महारानी वामभाग में सुशोभित हैं। क्योंकि केवल कन्यादान के समय दक्षिण भाग में रहने का विधान है। उस समय की उपमा कवि कहते हैं कि जैसे पार्वतीजी के विवाह के समय हिमालय के साथ मयना की शोभा हुई थी।

कनक कलस मनि कोपर रूरे। सुचि सुगंध मंगल जल पूरे ॥
निजकर मुदित राय अरु रानी। धरे राम के आगे आनी ॥३॥

अर्थ : सोने के कलश मणि के सुन्दर कोपर, पवित्र और सुगन्धित मङ्गल जल से भरे हुए प्रसन्न होकर राजा और रानी ने लाकर रामजी के आगे रक्खा।

व्याख्या : सोने का कलश पहिले से ही पवित्र और तीर्थ के जल से भरा हुआ रक्खा था। उसे राजा ने और मणि के कोपर जिनमें पैर धोये जायँगे उन्हें महारानी ने लाकर रामजी के आगे पादप्रक्षालन के लिए रक्खा। यहाँ कोपर

बहुवचन है। क्योंकि जिसमें एक पैर धोया गया उसी में दूसरा पैर नहीं धोया जायगा :

पढ़हि वेद मुनि मंगल वानी। गगन सुमन झरि अवसर जानी ॥
वर विलोकि दंपति अनुरागे। पाय पुनीत पखारन लागे ॥४॥

अर्थ : मुनि लोग मङ्गल वाणी से वेद पढ़ने लगे। आकाश से अवसर जानकर फूलों की झड़ी लग गई। वर को देखकर राजा और रानी को प्रेम उमग आया। पवित्र चरणों का प्रक्षालन करने लगे।

व्याख्या : राजा और रानी में बड़ी श्रद्धा है। अपने हाथ से कनक कलश और मणि कोपर ले आये। उसी समय मुनियों ने स्वस्त्ययन किया। मङ्गलवाणी से वेदमन्त्रों का उच्चारण किया। यही पुष्पवर्षा का ठीक अवसर है। यह समझकर देवों ने पुष्पवर्षा की झड़ी लगा दी। इस समय दोनों प्राणी दूल्हे के वेष में रामजी का दर्शन करके प्रेम से उमड़ पड़े। चरण कमल स्वयं पवित्र हैं प्रक्षालन की आवश्यकता नहीं। फिर भी विधि के पालन के लिए अपने को कृतार्थ करने के लिए पादप्रक्षालन करने लगे।

छं. लागे पखारन पाय पंकज प्रेम तनु पुलकावली।
नभ नगर गान निसान जय धुनि उमगि जनु चहुँ दिसि चली ॥
जे पदसरोज मनोज अरि उर सर सदैव बिराजहीं।
जे सकृत सुमिरत बिमलता मन सकलकलि मल भाजहीं ॥
जे परसि मुनिवनिता लही गति रही जो पातकमई।
मकरंदु जिनको संभु सिर सुचिता अवधि सुर बरनई ॥
करि मधुप मन मुनि जोगिजन जे सेइ अभिमत गति लहैं।
ते पद पखारत भाग्यभाजनु जनकु जय जय सब कहैं ॥
वर कुँअरि करतल जोरि साखोचारु दोउ कुलगुरु करैं।
भयो पानि गहनु बिलोकि विधि सुर मनुज मुनि आनँद भरैं ॥
सुख मूल दूलहु देखि दंपति पुलक तनु हुलसेउ हियो।
करि लोक वेद विधान कन्या दान नृप भूषन कियो ॥
हिमवंत जिमि गिरिजा महेसहिं हरिहि श्री सागर दई।
तिमि जनक रामहि सिय समरपी विस्व कल कीरति नई ॥
क्यों करै विनय विदेह कियो विदेह मूरति साँवरी।
करि होमु विधिवत गाँठि जोरी होन लागी भाँवरी ॥

अर्थ : चरण कमल धोने लगे। प्रेम से शरीर में पुलकावली हुई। आकाश में

और नगर में गान और नगाड़ा तथा जयकारे की ध्वनि उमगकर मानो चारों दिशाओं में चली। जो पद कमल काम के शत्रु शिवजी के मानससर में सदा विराजते हैं। जिनके एक बार के स्मरण से मन विमल हो जाता है और सब कलियुग के मल दूर होते हैं। जिन्हें स्पर्श करके मुनि की स्त्री : अहल्या ने गति प्राप्त की जो पापमयी थी। शिवजी के सिरपर धारण करने के कारण जिसके रस के लिए देवता वर्णन करते हैं कि पवित्रता की सीमा है और मुनिलोग मन को भौंरा बनाकर और योगी लोग जिन : चरणों की सेवा करके चाही हुई गति को प्राप्त होते हैं। उन चरणों को भाग्यवान् जनकजी धोते हैं और सब लोग जय जय करते हैं।

वर और दुलहिन की हथेलियों को मिलाकर दोनों कुलगुरु शाखोच्चार करते हैं। पाणिग्रहण हुआ देखकर ब्रह्मा देवता मनुष्य और मुनि आनन्द से भर उठते हैं। सुखमूल दूल्हे को देखकर राजा और रानी के शरीर में रोमाञ्च हुआ और हृदय में उल्लास हुआ। लोक वेद विधि करके राजाओं के भूषण जनकजी ने कन्यादान कर दिया।

हिमवान् ने जैसे पार्वती शङ्करजी को दी और समुद्र ने लक्ष्मी हरि को दी उसी भाँति जनकजी ने रामजी को सीता समर्पण कर दी। संसार में उनकी अपूर्व सुन्दर क़ीर्ति हुई। राजा विदेह कैसे विनय करें। साँवली मूर्ति ने तो उन्हें विदेह कर दिया। होम करके विधि के साथ ग्रन्थि बन्धन हुआ और भाँवरी होने लगी।

व्याख्या : महाराज जनक बड़े भाव से चरण धो रहे हैं। जैसे कोई हलके हाथ से फूले हुए कमल का प्रक्षालन करे और इस भाँति प्रक्षालन में ब्रह्मसंस्पर्शसुख का अनुभव कर रहे हैं। ब्रह्मसंस्पर्शमत्यन्तं सुखमश्नुते। राजा और रानी को सात्त्विक भाव हो गया। सम्पूर्ण शरीर में पुलकावली हो गई। उसी समय स्त्रियाँ गान करने लगीं। आकाश में देवियों ने गान किया। ऊपर देवताओं ने और नीचे मनुष्यों ने नगाड़े बजाये। सब लोगों ने जय जयकार किया। सब मिलकर ऐसी ध्वनि हुई कि अन्तराल में मानों यथेष्ट स्थान न रह गया। इसलिए उमगकर चारों ओर इस भाँति फैल रही है जिस भाँति किसी छोटे पात्र में बहुत सा जल डाल दिया जाय और वह चारों ओर से बह चले। जो चरणकमल कामारि शङ्करजी के मन रूपी सरोवर में सदा विराजमान रहता है। किसकी सामर्थ्य जो वहाँ तक पहुँच सके। वहाँ तक पहुँचने का सामर्थ्य मन से उत्पन्न मनोज : काम को भी नहीं है। क्योंकि शिवजी कामारि हैं और जिस चरणकमल को एक बार स्मरण करने से मन निर्मल हो जाता है। सम्पूर्ण कलि का कल्मष नष्ट हो जाता है। जो चरण ब्रह्मशाप से विनिर्मुक्ति देनेवाले हैं। जिनके स्पर्श से पातकमयी अहल्या का उद्धार हुआ। जिन चरणकमलों का मकरन्द : गंगा शिवजी के सिर पर विराजमान है। जिसे देवता लोग पवित्रता को परमावधि रूप से वर्णन करते हैं। भाव यह कि ब्रह्मशाप से दग्ध सगर के पुत्रों का उद्धार गौतमशाप से जड़ीभूत अहल्या का उद्धार जिन चरणकमलों से ही सम्भव हुआ और किसी उपाय से उनका उद्धार असम्भव था।

जिन चरणकमलों के लिए मुनि लोग अपने मन को भ्रमर बना देते हैं। सदा उसी का रस लिया करते हैं। योगी लोग जिनके सेवन से जैसी गति चाहते हैं उसीको प्राप्त होते हैं। उन्हीं चरणों को आज भाग्यवान् राजा जनक धो रहे हैं। इसीलिए सबने जयजयकार किया।

चरणप्रक्षालन के बाद कन्यादान का विधान हुआ। कन्यादान के समय कन्या की हथेली को वर की हथेली पर रखकर दाता दोनों को सँभाले रहता है। इसी भाँति श्रीरामजी की हथेली पर सीताजी की हथेली रखकर राजा जनक अपनी हथेली से दोनों को जोड़े हुए हैं। यही समय शाखोच्चार का है सो वसिष्ठ वर पक्ष की ओर से और सतानन्दजी कन्या पक्ष की ओर से वंशवर्णन कर रहे हैं। यथा : इत वसिष्ठ मुनि उतै सतानंद बंस बखान करत दुहु ओरी। इत अवधेस उतहिं मिथिलापति भरत अंक सुख सिंधु हिलोरी। इस रीति से पाणिग्रहण हुआ। देखकर ब्रह्मदेव, देवता, मनुष्य और मुनि अपने मन को आनन्द से भर रहे हैं। अथवा विधि शब्द को बिलोकि क्रिया का कर्म माना जाय तो यह अर्थ होगा कि कन्यादान की विधि देखकर देवता मनुष्य और मुनि मनमें आनन्द भर रहे हैं और महाराज जनक की गोद में जानकीजी हैं। अतः दम्पति केवल रामजी का ही दर्शन कर रहे हैं। उनके विषय में कवि कहते हैं कि सुखमूल दूल्हे को देखकर उन्हें पुलक हो रहा है। हृदय में उल्लास हो रहा। यह दूल्हा ही ऐसा है। जिसके जन्म से चराचर हर्षित हो उठे थे। क्योंकि वह सुखमूल है। यथा : चर अरु अचर हरख युत रामजनम सुखमूल। लोकविधान भी वेदविधान के साथ ही साथ चलता है। यथा : कन्या का भाई संकल्प के समय जल देता है। सो साक्षात् मङ्गल देव भाई का कृत्य करने के लिए आगये। यथा : सिय भ्राता के समय भौम तहँ आयउ। इस भाँति लोकविधान और वेदविधान दोनों करके नृपभूषण ने कन्यादान किया। अथवा सीताजी के साथ ही पृथ्वी से पुत्र की भी प्राप्ति जनकजी को हुई थी। भूमि से उत्पन्न होने के कारण उनकी भी भौम संज्ञा थी। यहाँ पर कवि उपमा देते हैं कि जैसे हिमालय ने पार्वती शिवजी को, क्षीरसागर ने लक्ष्मी विष्णु को दी थी उसी भाँति जनकजी ने भी जानकी रामजी को दी। भाव यह कि जानकीजी सदा से ही रामजी की शक्ति हैं। जनकजी ने अपने को इनके संयोग का निमित्त मात्र जाना।

राजा विदेह देहाध्यासन रहित होने पर भी उत्तम ज्ञानी होने के कारण सभी व्यवहार में बड़े पटु हैं। पर साँवली मूर्ति ने इस पटुता को भी समाप्त कर दिया। महाराज को व्यवहार ज्ञान भी नहीं रह गया। पूरे विदेह हो गये। क्योंकि कन्यादान के बाद वर से विनय करना चाहिए। पर जनकजी विनय करने में असमर्थ रहे। गला भर आया। विनय न कर सके। अथवा प्रेम में ऐसे मग्न थे कि विनय का ध्यान भी न रहा। लाजाहवन होने लगा। विधि के साथ गाँठ जोड़ी गई और अग्नि की परिक्रमा वर वधू करने लगे। यथा : राजत राम जानकी जोरी। स्याम सरोज जलद सुंदर वर दुलहिन तड़ित वरन तन गोरी। व्याह समय सोहत वितान नर

उपमा कहुँ न लहत मति भोरी। मनहुँ मदन मंजुल मण्डप ग्रह छवि सिंगार सोभा इक ठौरी। मंगलमय दोउ अंग मनोहर ग्रथित चूनरी पीत पिछौरी। कनक कलस कहँ देत भाँवरी निरखि रूप सारद भइ भोरी। मुदित जनक रनिवास रहस बस चतुर नारि चितवहिं तृन तोरी।

दो. जय धुनि वंदी वेद धुनि, मंगल गान निसान।
सुनि हरषहिं बरषहिं विबुध, सुरतरु सुमन सुजान ॥३२४॥

अर्थ : जय की ध्वनि वन्दीजन और वेद की ध्वनि मङ्गलगान और नगाड़े की ध्वनि हो रही है। देवगण हर्षित होकर कल्पवृक्ष के फूल बरसाते हैं।

व्याख्या : भाँवरी प्रारम्भ होते ही जयजयकार हुआ। वन्दियों ने विरद कहा। स्त्रियों ने मङ्गलगान किया। नगाड़े बज उठे। इस तुमुल ध्वनि को सुनकर देवतालोग हर्षित हुए। सुजान हैं : समय जानकर कल्पवृक्ष के फूलों की वर्षा की। यथा : गान निसान वेद धुनि सुनि सुर बरषत सुमन हरष कहै कोरी। नयनन को फल पाइ प्रेमबस सकल असीसत ईसनिहोरी। तुलसी जेहि आनंद मगन मन क्यों रसना बरनै सुख सोरी।

कुँअरु कुँअरि कल भाँवरि देहीं। नयन लाभु सब सादर लेहीं॥
'जाइ न बरनि मनोहर जोरी। जो उपमा कछु कहउँ सो थोरी ॥१॥

अर्थ : कुँवर और कुँवरि सुन्दर भाँवर फिर रहे हैं और सब लोग आदर के साथ नेत्रों का लाभ ले रहे हैं। मन हरण करनेवाली जोड़ी का वर्णन नहीं किया जा सकता। जो ही उपमा दी जाय वही थोड़ी पड़ती है।

व्याख्या : सुन्दर कुँअर और सुन्दरी कुँवरि की भाँवरी की भी बड़ी शोभा है। नेत्र होने का लाभ इस भाँवरी के दर्शन में ही है। सो सब लोग आदर के साथ ले रहे हैं। सब : कहने का भाव यह है कि विवाह बैठकर हो रहा था। मण्डप प्रधान प्रधान व्यक्तियों से घिरा था। अतः सब लोग नयन लाभ नहीं ले सकते थे। अब खड़े होकर परिक्रमा करने में पुरवासी नर नारी तथा रनिवास भी लेने लगीं। अतः सब शब्द से स्त्री और पुरुष दोनों परिगृहीत हैं। कोष्ठान्तर्गत अर्धालियाँ काशिराज की प्रति में नहीं हैं और न श्रावणकुञ्ज की प्रति में हैं। श्रावणकुञ्ज की प्रति के हाशिये पर लिखी हुई हैं। रचना सुन्दर होने पर भी सुसंगत नहीं हैं। मेरी समझ में ये क्षेपक हैं। पर साधारणतः परिगृहीत हैं। इसलिए इनका अर्थ कर दिया गया। इन अर्धालियों को मूल मानने से ऐसा अर्थ करना पड़ेगा। मानो कवि राम सीता की जोड़ी का वर्णन करने लगे और कहते हैं कि मुझसे वर्णन करते नहीं बनता। क्योंकि जो उपमाएँ हैं वे इन जोड़ियों से न्यून हैं।

राम सीय सुंदर परिछाहीं। जगमगाति मनि खंभन्ह माहीं॥'
मनहु मदन रति धरि बहु रूपा। देखत राम विआहु अनूपा ॥२॥

अथ : रामजी और सीताजी का सुन्दर प्रतिबिम्ब मणि के खम्भों में जगमगा रहा है। मानो कामदेव और रति अनेक रूप धारण करके रामजी के अनूप विवाह को देख रहे हैं।

व्याख्या : राम सीता के प्रतिबिम्ब के जगमगाने के लिए मणि के खम्भे मानने पड़े। पर गोस्वामीजी कनक के खम्भों की रचना का वर्णन पहिले कर आये हैं। यथा : बिरचे कनक कदलि के खम्भा। ऐसी त्रुटि गोस्वामीजी से होती कहीं देखी नहीं गई है। पर इस अर्धाली को मूल में मानने से ऐसा अर्थ करना पड़ेगा कि कवि मनोहर जोड़ी के वर्णन में अपने को असमर्थ पाकर उसके प्रतिबिम्ब का वर्णन करने लगे और उस प्रतिबिम्ब की उपमा देते हैं कि मानो अनेक रूप धारण करके काम और रति रामजी का अनूप विवाह देखते हैं। परन्तु वस्तुतः इसका सम्बन्ध : नयन लाभ सब सादर लेहीं से है। नगर नारि नर रूप निधाना। सुघर सुधरम सुसील सुजाना। तिन्हहि देखि सब सुर नर नारी। भये नखत जनु विधु उजियारी। ऐसे नगर नरनारियों की उपमा काम और रति से है। राम कामसतकोटि सुभग तन। रामजी तो शतकोटि काम से भी अधिक सुन्दर हैं और सीताजी पर शतकोटि रति बलिहारी जाती है। यथा : रति सतकोटि तासु बलिहारी। प्रतिबिम्ब भी बिम्ब के समान होते हैं। अतः विवाह के समय काम रति से उपमा देना उनकी शोभा को घटाना है। मैं इस अर्धाली को कवि कृत मानने को तैयार नहीं हूँ। यहाँ यही अर्थ करने में शोभा है कि सब नर नारी इस समय सरकार की शोभा देख रहे हैं। मानो इस अनूप शोभा को देखने के लिए काम और रति ने अनेक रूप धारण किये हैं।

दरस लालसा सकुच न थोरी। प्रगटत दुरत बहोरि बहोरी॥
भये मगन सब देखनिहारे। जनक समान अपान बिसारे॥३॥

अर्थ : उन्हें दर्शन की लालसा भी है और सङ्कोच भी थोड़ा नहीं है। इससे प्रकट होना और छिपना बार बार हो रहा है। सब देखनेवाले मग्न और जनक की भाँति अपनी सुधबुध भूल गये।

व्याख्या : यह अर्धाली प्रधानरूपेण नारी समाज के लिए ही कही गई है। क्योंकि दर्शन की लालसा और सङ्कोच से उन्हीं का प्रकट होना और छिपना बनता है। यथा : प्रकटहिं दुरहिं अटन्ह पर भामिनि। चारु चपल जनु दमकहिं दामिनि। और पिछली अर्धाली पुरुषों के लिए कही गई है। देखनहारियों का हाल कहकर देखनहारों का हाल कहते हैं। इन्हें कोई सङ्कोच नहीं था। इसलिए देखने में ऐसे मग्न हुए कि अपनी ही सुधि नहीं रह गई। प्रतिबिम्ब के पक्ष में यह अर्थ करना होगा कि जिस खम्भे के सामने होकर यह जोड़ी निकल जाती है उसमें प्रतिबिम्ब पड़कर लुप्त हो जाता है और फिर प्रतिबिम्ब दूसरे खम्भे पर पड़ जाता है। इस भाँति प्रकट होना और छिपना प्रतिबिम्ब पक्ष में भी बन जाता है।

प्रमुदित मुनिन्ह भाँवरी फेरी । नेगसहित सब रीति निवेरी ॥
राम सीय सिर सेंदुर देहीं । सोभा कहि न जात विधि केहीं ॥४॥

अर्थ : अतिप्रसन्न होकर मुनियों ने भाँवरी घुमाई और नेग सहित सब रीतियाँ पूरी कीं । रामजी सीताकी के सिर में सिन्दूर दे रहे हैं । वह शोभा किसी प्रकार से कही नहीं जा सकती ।

व्याख्या : चार अर्धालियाँ कहकर चार बार भाँवर फिरना कहा । पाँचवीं अर्धाली में भाँवरी की समाप्ति कहते हैं । यहाँ पर नेग होता है । मङ्गलकार्य में पदे पदे नेग होता है । उस दिन पारिश्रमिक : मेहनताना देने से काम नहीं चलता । नेगी को प्रसन्न करना पड़ता है । दर्जी कपड़ा लाया है । बढ़ई पादुका लाया है । भगिनी हवन के लिए अग्नि लाई है । पुरोहितजी ने कर्मकाण्ड कराया है । तो उनके परिश्रम के अनुसार द्रव्य देने से काम न चलेगा । उस दिन तो कपड़ा हाथ में हैं । पर बिना दर्जी की आज्ञा से पहना नहीं जा सकता । पादुका पास रक्खी है । पर बिना बढ़ई को राजी किये आप आरोहण नहीं कर सकते । भगिनी ने अग्नि दे दी पर उसे द्रव्यदान से प्रसन्न कर लीजिये तब हवन में हाथ लगाइये । पुरोहितजी कर्मकाण्ड करा चुके पर दक्षिणा से प्रसन्न कर लीजिये तब भाँवर फिरेगी । मङ्गलोत्सव में नीच ऊँच सभी का सत्कार करना पड़ता है । यह भारत की सभ्यता है । अतः कहते हैं कि रसम : रीति नेग के सहित पूरी की गई । मुनिलोगों का भी यथेष्ट सत्कार किया गया । अतः कहते हैं कि प्रमुदित मुनिन्ह भाँवरी फेरी ।

और शोभा तो किसी भाँति कही भी जा सकती है । पर श्रीरामजी सीताजी के सिर में सिन्दूर दे रहे हैं । इस सिन्दूरदान की शोभा तो सर्वथा वर्णनातीत है ।

अरुन[1] पराग जलजु भरि नीके । ससिहि भूष अहि लोभ अमी के ॥
बहुरि वसिष्ठ दीन्ह अनुसासन । बर दुलहिन बैठे एक आसन ॥५॥

अर्थ : मानो कमल में लाल पराग अच्छी तरह से भरकर अमृत के लोभ से सर्प चन्द्रमा को भूषित करता है । फिर वसिष्ठजी ने आज्ञा दी वर और दुलहिन एक आसन पर बैठें ।

व्याख्या : यहाँ उपमेय के न कहने से अतिशयोक्ति अलङ्कार हुआ और तद्रूप वर्णन करने से रूपक अलङ्कार हुआ । अरुण पराग सिन्दूर हुआ । सीताजी का मुख चन्द्रमा हुआ । अहि रामजी की भुजा हुई । भावार्थ यह कि हाथ में भली भाँति से सिन्दूर लेकर रामजी सीताजी के सिर में दे रहे हैं । जैसे सर्प कमल में अरुण पराग भरकर चन्द्रमा को भूषित करता हो । चन्द्रमा से सर्प को अमृतप्राप्ति का लोभ है । आशा करता है कि भूषित चन्द्र प्रसन्न होकर अमृत देगा । आगे चलकर चन्द्र द्वारा सर्प को अमृतदान भी दिखलावेंगे । यथा : लहकौरि गौरि

---

१. यहाँ अतिशयोक्ति : रूपक है ।

सिखाव रामहिं सीय सन सारद कहै। लहकौरि के रसम में भुज रूपी सर्प को अधरामृत के स्पर्श का अवसर मिलेगा।

छ. बैठे वरासन रामु जानकि मुदित मन दसरथु भये।
तनु पुलक पुनि पुनि देखि अपने सुकृत सुरतरु फल नये ॥
भरि भुवन रहा उछाहु राम बिआहु भा सबही कहा।
केहि भाँति बरनि सिरात रसना एकु यहु मंगल महा ॥
तब जनक पाइ वसिष्ठ आयसु ब्याह साज सँवारि कै।
मांडवी श्रुतिकीरति उरमिला कुँअरि लईं हँकारि कै ॥
कुसकेतु कन्या प्रथम जो गुन सील सुख सोभामई।
सब रीति प्रीति समेत करि सो ब्याहि नृप भरतहिं दई ॥
जानकी लघु भगिनी सकल सुंदरि सिरोमनि जानि कै।
सो तनय दीन्ही ब्याहि लषनहि सकल विधि सनमानि कै ॥
जेहि नाम श्रुतिकीरति सुलोचनि सुमुखि सब गुन आगरी।
सो दई रिपुसूदनहिं भूपति रूप सील उजागरी ॥
अनुरूप वर दुलहिन परसपर लखि सकुचि हिय हरषहीं।
सब मुदित सुन्दरता सराहहिं सुमन सुर गन बरषहीं ॥
सुंदरी सुंदर बरन्ह सह सब एक मंडप राजहीं।
जनु जीव उर चारिउ अवस्था बिभुन सहित बिराजहीं ॥

अर्थ : राम जानकी श्रेष्ठ आसन पर बैठे। राजा दशरथ के मन में मोद हुआ। अपने पुण्यरूप कल्पवृक्ष में नया फल देखकर बार बार रोमाञ्च होने लगा। भुवन में उछाह भर गया। सब कोई कहने लगे कि रामजी का व्याह हो गया। कैसे वर्णन करते बने। जिह्वा तो एक ही है और यह मङ्गल बड़ा भारी है। तब जनकजी ने वसिष्ठ मुनि की आज्ञा पाकर व्याह का साज सँवारकर माण्डवी श्रुतिकीर्ति और उर्मिला कुँअरि को बुला लिया। कुशकेतु राजा की बड़ी लड़की जो गुणशीलशोभामयी थी उसका व्याह सब रीतियों को प्रीति के समेत करके राजा ने भरतजी से कर दिया। जानकीजी की छोटी बहन को सब सुन्दरियों की शिरोमणि जानकर उस कन्या का व्याह लक्ष्मणजी के साथ सब प्रकार से सम्मान करके कर दिया। जिसका नाम श्रुतिकीर्ति था जो सुलोचनी, सुमुखी और सब गुणों में निपुण थी उस रूप शील उजागरी को राजा ने शत्रुघ्नजी को दिया। सब दूल्हे और दुलहिन एक दूसरे के अनुरूप थे। वे एक दूसरे को देखकर सङ्कुचित होते थे और हृदय में हर्षित होते थे। सबलोग मुदित होकर सुन्दरता की प्रशंसा

करते थे और देवता पुष्पों की वर्षा करते थे। सुन्दरियाँ सुन्दर वरों के साथ एक मण्डप में शोभा देती हैं। मानो जीव के उर में चारों अवस्थाएँ अपने अपने विभुओं के साथ विराजमान हैं।

व्याख्या : वरासन पर बैठने से विवाह की समाप्ति द्योतित होती है। सो वरासन पर राम जानकी को बैठे देखकर महाराज दशरथ को बड़ा मोद हुआ। इष्टदर्शन से जो आनन्द होता है उसे मोद कहते हैं। इस मोद से महाराज को बारबार रोमाञ्च हो रहा है। जनक सुकृत मूरति वैदेही। दसरथ सुकृत राम धरे देही। इन सम कोउ नहिं सिव अवराधे। कोउ नहिं इन समान फल लाधे। सो वैदेही दशरथजी को पुत्रवधू के रूप से प्राप्त हुईं। इसलिए अपने पुण्यरूपी कल्पवृक्ष में यह नया फल देखकर मुदित हो रहे हैं। दुष्ट राजाओं ने कहा था : तोरेउ धनुष व्याह अवगाहा। सो रामजी का व्याह हो गया। उन सबों का किया कुछ न हो सका। अथवा लोगों को बड़ी उत्सुकता थी। यथा : जौ विधिवस अस बनै संजोगू। तौ कृतकृत्य होहिं सब लोगू। कि रामजी का व्याह हो जाय सो हो गया। अतः सबलोग कहने लगे कि रामजी का व्याह हो गया। अथवा इस विवाह में साधारण विघ्न नहीं उपस्थित हुए। पहिले धनुषभङ्ग ही असाधारण व्यापार था। किसी भाँति वह टूटा तो सब राजा बिगड़ गये। यथा : लेहु छुड़ाइ सीय कह कोऊ। धरि बाँधहु नृप बालक दोऊ। सबसे महा विघ्न यह उपस्थित हुआ कि परशुरामजी आपड़े और धनुषभङ्ग करनेवाले को वध करने के लिए खोजने लगे। यथा : कहु जड़ जनक धनुष कै तोरा। वेगि देखाउ मूढ़ नत आजू। उलटौं महि जहँ लहि तव राजू। सो रामजी का व्याह निर्विघ्न समाप्त हो जाय इस बात की बड़ी लालसा थी। व्याह हो जाने पर उछाह बढ़ गया। सब कहने लगे कि रामजी का व्याह हो गया। यह महामङ्गल है जिसमें असंख्य नरनारी आनन्द मना रहे हैं। एक मङ्गलक्रिया के बाद ही दूसरा मङ्गल आरम्भ हो जाता है। एक मङ्गलाचार का वर्णन समाप्त होने ही नहीं पाता तब से दूसरा मङ्गल प्रारम्भ हो जाता है। अतः एक रसना नहीं कह सकती। एक रसना से एक रसास्वादन करते ही करते कितने रस छूट जाते हैं। इसलिए कवि कहते हैं कि यह महामङ्गल एक रसना से कहा नहीं जा सकता।

अब शेष तीनों भाइयों का व्याह वसिष्ठजी की आज्ञा से हो रहा है और वसिष्ठजी को महाराज जनक कुलदेव की दृष्टि से देखते हैं। यथा : कुल इष्ट सरिस वसिष्ठ पूजे। अतः वसिष्ठजी की सम्मति को महाराज जनक कुलदेव की आज्ञा में महाराज दशरथ की स्वीकृति की आवश्यकता नहीं है। सो वसिष्ठजी की आज्ञा हुई और राजा जनक ने तुरन्त व्याह साज को सँवारकर : क्योंकि पहिले से बात तय नहीं हुई थी : तीनों कुमारियों को बुलवा लिया।

राजा जनक दो भाई थे। सीरध्वज और कुशध्वज। सीरध्वज ही बड़े थे। ये ही मिथिला के राजा थे और जनक कहलाते थे। छोटे भाई कुशध्वज को जनकजी ने संकाश्यापुरी को जीतकर वहाँ का राजा बना दिया था। सीरध्वज को

दो कन्यायें थीं। सीता और उर्मिला एवं कुशध्वज को भी दो कन्यायें थीं माण्डवी और श्रुतिकीर्ति। धर्मशास्त्र की आज्ञा है कि सहोदर भाइयों का सहोदर बहिनों से व्याह नहीं हो सकता। यहाँ लक्ष्मणजी और शत्रुघ्नजी सहोदर भाई थे और माण्डवी और श्रुतिकीर्ति सहोदर बहनें थीं। इसी कारण से माण्डवी का व्याह भरतजी के साथ और श्रुतिकीर्ति का शत्रुघ्नजी के साथ हुआ।

भरतजी के चार गुण : बल, शील, गुण और भक्ति। यथा : भरत बाहु बल सीलगुन प्रभु पद प्रीति अपार। मन महुँ जात सराहत पुनि पुनि पवन कुमार। और भगवती माण्डवी में भी चार गुण दिखलाये गये हैं : गुण, शील, सुख और शोभा। अतः वर दुलहिन अनुरूप भी हैं। सब वैदिक और लौकिक रीति करके इसी प्रीति के साथ जिस भाँति जानकीजी का व्याह किया था उसी भाँति माण्डवी का व्याह भरतलाल के साथ हुआ।

लक्ष्मणजी तेज निधान हैं। यथा : राजन राम अतुल बल जैसे। तेज निधान लखन पुनि तैसे। भगवती उर्मिला सकल सुन्दरी शिरोमणि हैं। अतः यह वर दुलहिन भी अनुरूप हैं। कुशकेतु कन्या प्रथम कहने से श्रुतिकीर्ति का द्वितीय कन्या होना कहा। शेष रहीं उर्मिला वही जानकीजी की दूसरी बहन हैं।

भगवती श्रुतिकीर्ति के तीन गुण कहे गये : रूप, शील और निपुणता। यथा : सब गुन आगरी रूप शील उजागरी। इसी भाँति शत्रुघ्नजी के भी तीन गुण कहे गये हैं : शूर, सुशील, भरत अनुगामी। अतः यह वर दुलहिन भी अनुरूप हैं। व्याह हो जाने पर माण्डवी और भरतजी एक आसन पर विराजमान हुए। उर्मिला और लक्ष्मणजी एक ही आसन पर विराजमान हैं तथा भगवती श्रुतिकीर्ति और शत्रुघ्नजी एक आसन पर विराजमान हैं। इस भाँति बैठने में इनको गुरुजनों का सङ्कोच है और मनोवाञ्छित जोड़ी की प्राप्ति से मन में हर्ष है। इन जोड़ियों की ऐसी शोभा हुई कि सब लोग सुन्दरता की सराहना करने लगे। देवताओं की सराहना भी पुष्पवर्षा से अनुमित हुई।

इस समय चारों सुन्दरियाँ अपने अपने सुन्दर वरों के साथ एक ही मण्डप में शोभायमान हैं। इस शोभा की उपमा देते हुए कवि कहते हैं कि जैसे जीव के हृदय में चारों अवस्थाएँ अपने अपने विभु के साथ विराजमान हों। यहाँ जनकपुर है। अतः प्रधानता सुन्दरियों की है। उन्हीं की अपने अपने वरों के साथ सुशोभित होने की उपमा दी जा रही है।

अवस्थाएँ चार हैं : जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीय। इनके विभु क्रम से विराट्, हिरण्यगर्भ, ईश्वर और ब्रह्म हैं। यहाँ तुरीयावस्था सीताजी हैं और उनके विभु ब्रह्म राम हैं। यथा : तमेकमद्भुतं प्रभुं तुरीयमेव केवलम्। रामजी के सदृश भरतजी हैं। यथा : भरत राम ही की अनुहारी। सहसा लखि न सकहिं नर नारी। और तुरीय के सदृश ही सुषुप्ति हैं। अतः सुषुप्ति के विभु माण्डवीपति भरतजी हैं। तुरीय और सुषुप्ति अवस्था भी ऐसी मिलती जुलती हैं कि सहसा साधक को लखाई नहीं पड़तीं कि उसे सुषुप्ति हो गई या समाधि लग गई तथा सहसा ब्रह्म और ईश्वर में

भेद लखाई नहीं पड़ता। सुषुप्ति और स्वप्न का साथ है। इसी भाँति उनके विभुओं का भी साथ है। वहाँ स्वप्न के विभु की उपमा शत्रुघ्नजी के साथ ठीक बैठती है। क्योंकि उनका साथ भरतजी से है। यथा : भरत शत्रुहन दूनों भाई। प्रभु सेवक जिमि प्रीति बढ़ाई। और स्वप्न तथा जाग्रत् में अत्यन्त सादृश्य है। स्वप्न देखता हुआ पुरुष अपने को जागता हुआ ही उस समय मानता है। एवं उनके विभुओं में भी सादृश्य है। हिरण्यगर्भ और विराट् एक रूप हैं। इस भाँति शत्रुघ्न और लक्ष्मण में सादृश्य है। यथा : लखन सत्रुसूदन एक रूपा। नख सिख ते सब अंग अनूपा। अतः परिशेष न्याय से लक्ष्मणजी की उपमा जाग्रत के विभु से ठीक बैठती है। दूसरी बात यह है कि जाग्रत् और तुरीय का साथ है। तुरीय की प्राप्ति जाग्रत् से ही सम्भव है। सुषुप्ति या स्वप्न से कोई तुरीयावस्था को नहीं प्राप्त कर सकता। इसी भाँति इनके विभुओं का भी साथ हुआ। यथा भरत शत्रुहन दूनौ भाई। प्रभु सेवक जिमि प्रीति बड़ाई। अतः जाग्रत् के विभु की उपमा लक्ष्मणजी के साथ है। तुरीय और सुषुप्ति अव्यक्तावस्था हैं। अतः इनके विभुओं : राम और भरत का रङ्ग श्याम है और जाग्रत् तथा स्वप्न व्यक्तावस्था है। अतः इनके विभुओं लक्ष्मण और शत्रुघ्न का रंग गौर है। जाग्रत् का संस्कार ही स्वप्न है। अतः जाग्रत् अवस्था ही ज्येष्ठ है सो उसके विभु लक्ष्मणजी शत्रुघ्नजी से ज्येष्ठ हैं।

जीव का हृदय ही एक ऐसा स्थल है जहाँ सब कुछ सम्भव है। वहीं चारों अवस्थाएँ एकत्र रह सकती हैं। अतः जनकजी के मण्डप की उपमा जीव के हृदय से दी।

दो. मुदित अवधपति सकल सुत, बधुन्ह समेत निहारि।
जनु पाये महिपाल मनि, क्रियन्ह सहित फलचारि ॥३२५॥

अर्थ : सब बेटों को बहुओं के साथ देखकर अयोध्याधिपति मुदित हैं। मानों भूपालमणि ने क्रियाओं के सहित चारों फल प्राप्त कर लिये।

व्याख्या : एक बेटे को बहू के साथ देखना दुर्लभ था। क्योंकि रामजी विषयरस से रूखे थे। यथा : राम पुनीत विषय रस रूखे। लोलुप भूप भोग के भूखे। सो आज चारों बेटों को बहुओं के साथ देख रहे हैं। अतः मुदित हैं। पहिले ही कह आये हैं : नृप समीप सोहहिं सुत चारी। जनु धन धर्मादिक तनु धारी : अब वे ही वधुओं के सहित हैं। इसीलिए क्रियाओं के सहित चारों फलों की प्राप्ति कहते हैं। धर्म की क्रिया सुकृति है। अर्थ की क्रिया व्यापृति उद्योग है। काम की क्रिया रति और मोक्ष की क्रिया भक्ति है। फलरूप होने से मोक्ष और काम क्रम से रामजी और भरतजी की उपमाएँ हैं तथा साधनरूप होने से धर्म और अर्थ लक्ष्मण और शत्रुघ्न की उपमाएँ हैं।

जसि रघुवीर ब्याह विधि वरनी। सकल कुँअर ब्याहे तेहि करनी ॥
कहि न जाइ कछु दाइज भूरी। रहा कनक मनि मंडप पूरी ॥१॥

अर्थ : जैसी रामजी के व्याह की विधि वर्णन की गई है उसी विधि से सब राजकुमारों को व्याहा। दायज इतना दिया गया कि कहा नहीं जा सकता। सोने और मणियों से मण्डप भर उठा।

व्याख्या : महाराज ने भरतजी को आज्ञा दी : चलहु वेगि रघुवीर बराता। सो बारात रामजी के व्याह के लिए चली। स्त्रियों ने गीत भी सीताजी और रामजी का नाम लेकर गाया था। भरत शत्रुघ्न तो बारात में आये थे। किसी को पता भी नहीं कि इन लोगों का भी व्याह होगा। सो रामजी का व्याह हो गया। वसिष्ठजी की आज्ञा शेष तीनों कुँअरियों के व्याह देने के लिए हुई। जनकजी ने उसी करणी से तीनों का व्याह किया। श्रद्धा या दायज में कोई त्रुटि नहीं हुई। सुवर्ण और मणि से मण्डप भर उठा। यह महाराज जनक की अलौकिक श्रद्धा और ऐश्वर्य का परिचायक है।

कंबल वसन विचित्र पटोरे। भाँति भाँति बहु मोल न थोरे ॥
गज रथ तुरग दास अरु दासी। धेनु अलंकृत कामदुहा सी ॥२॥

अर्थ : अनेक प्रकार के बड़े मूल्यवान् और ढेर के ढेर ऊनी सूती और रेशमी कपड़े, हाथी, रथ दास, दासी, अलंकृत गायें कामधेनु-सी।

व्याख्या : यह सब दायज़ वर पूजन और कन्यादान में मिला है। महाराज जनक ने जिस भाँति यज्ञ में चाँदी निन्दित है : क्योंकि वह रुद्र के रोने से उत्पन्न हुई कही जाती है। सोरोदीत् उसी भाँति उसे समझकर चाँदी से काम न लिया। सब प्रकार के वस्त्र दिये। हाथी, घोड़े, रथ, दास. दासी और गायें दीं।

वस्तु अनेक करिअ किमि लेखा। कहि न जाइ जानहिं जिन्ह देखा ॥
लोकपाल अवलोकि सिहाने। लीन्ह अवधपति सबु सुखु माने ॥३॥

अर्थ : अनेक वस्तुएँ जिनका क्या लेखा किया जाय ? वे ही जान सकते हैं जिन्होंने देखा है। परन्तु कही नहीं जा सकती। जिन्हें देखकर लोकपाल सिहाते हैं। अयोध्यानाथ ने सबको सुखपूर्वक स्वीकार किया।

व्याख्या : राजोपचार से वरपूजन हुआ। ऊनी, सूती, और रेशमी वस्त्र, वस्त्रोपवस्त्र के लिए दिये। चतुरंगिणी सेना के लिए गजरथ तुरग दिये गये। पैदल नहीं दिये जा सकते। अतः दास दासी दिये गये। हवि के लिए गायें दी गईं : शास्त्रदृष्टि से गौ का कोई मूल्य नहीं है। छत्रचामरादि समस्त राजोपचार दिये गये। जिन्हें देखकर लोकपाल सिहाते हैं। अतः कवि कहते हैं कि मैंने वैसी वस्तुएँ देखी ही नहीं हैं। वर्णन क्या करूँ। मैं तो जानता ही नहीं। जिन्होंने देखा है वे ही जानते हैं। जो दायज वर को दिया जाता है वह सब उसके पिता की सम्पत्ति मानी जाती है। सो महाराज दशरथ ने जनकजी के प्रीत्यर्थ उन्हें आदर के साथ ग्रहण किया। परन्तु क्षत्रिय की प्रीति प्रतिग्रह में नहीं होती। अतः

दीन्ह जाचकन्हि जो जेहि भावा। उबरा सो जनवासेहिं आवा ॥
तब कर जोरि जनकु मृदु बानी। बोले सब बरात सनमानी ॥४॥

अर्थ : जो जिसे अच्छा लगा उसे वही दिया। इस भाँति याचकों को दे दिया। जो देने से बचा वह जनवास में आया। तब जनकजी हाथ जोड़कर सब बारात का सम्मान करते हुए बोले।

व्याख्या : फिर दायज मिलते ही महाराज दशरथ की आज्ञा से याचकगण विवाहमण्डप में बुलाये गये। आज्ञा हुई कि जिसे जो पसन्द हो चुन ले। दसरथ सहित समाजु विराजे। विभव विलोकि लोकपति लाजे। ऐसे महाराज को लौकिक दायज क्या जँचेगा। इसलिए राजा जनक ने ऐसा दायज दिया जिसे देखकर लोकपाल सिहरने लगे : स्वर्ग के दुःखों में डाह भी एक प्रधान दुःख है कि ऐसी वस्तुएँ मेरे पास नहीं हैं। सो ऐसी वस्तुएँ याचकों में बाँटी जा रही हैं। पहिले ही याचक बहुत पा चुके हैं। यथा : भइ बकसीस याचकन्हि दीन्हा। इसलिए सन्तुष्ट हैं। उनके लेने पर भी बहुत कुछ सामान बच गया। वही जनवास में आया। इससे महाराज दशरथकी निःस्पृहता दानशीलता और दीनबन्धुता कही।

चारों कुँअरों के व्याह के बाद याचकों के सन्तोष के बाद महाराज जनक ने पहिले बारात का सम्मान करना उचित समझा। अतः हाथ जोड़कर मृदुवाणी सब बारात का सम्मान करते हुए बोले। करजोरि कर्मणा सनमानी मनसा तथा मृदुवाणी बोले वाचा सत्कार किया।

छ. सनमानि सकल बरात आदर दान विनय बड़ाइकै।
प्रमुदित महामुनि वृंद बंदे पूजि प्रेम लड़ाइ कै ॥
सिरनाइ देव मनाइ सब सन कहत कर संपुट किए।
सुर साधु चाहत भाव सिंधुकि तोष जल अंजलि दिए ॥
करजोरि जनकु बहोरि बंधु समेत कोसल राय सों।
बोले मनोहर वयन सानि सनेह सील सुभाय सों ॥
सनबंध राजन रावरे हम बड़े अब सब विधि भये।
एहि राज साज समेत सेवकु जानवोबिनु गथ लये ॥
ए दारिका परिचारिका करि पालवी करुना नई।
अपराधु छमिओ बोलि पठए बहुत हौं ढीठ्यौ कई ॥
पुनि भानुकुल भूषन सकल सनमान निधि समधी किये।
कहि जात नहिं विनती परसपर प्रेम परिपूरन हिये ॥
वृंदारकागन सुमन वरषहिं राउ जनवासहिं चले।
दुन्दुभी जयधुनि वेद धुनि नभ नगर कौतूहल भले ॥

तब सखी मंगल गान करत मुनीस आयसु पाइ कै।
दूलह दुलहिनिन्ह सहित सुंदरि चलीं कोहबर ल्याइ कै ॥

अर्थ : आदरदान विनय और बड़ाई करके पूरी बारात का सम्मान किया। प्रमुदित होकर महामुनियों के समूह की पूजा प्रेम को उडेल करके की और वन्दना की। सिर नवाकर देवों को मनाया। हाथ जोड़े हुए सबसे कहने लगे कि देवता और साधु तो भाव चाहते हैं। नहीं तो क्या समुद्र का तोष जलाञ्जलि देने से होता है।

फिर जनकजी भाई सहित हाथ ज़ोड़कर कोसलपति से स्नेह शील और सुन्दर भाव से सनी हुई मनोहर वाणी बोले। हे राजन्! आपके सम्बन्ध से हम अब सब प्रकार से बड़े हुए। इस राजपाट के समेत हमें बिना राम का सेवक जानना। इन कन्याओं को टहलनी जानकर अपनी अपूर्व करुणा से पालन कीजियेगा। मेरे अपराध को क्षमा कीजियेगा। मैंने बड़ी ढिठाई की है जो आपको बुलवा भेजा है। फिर सूर्यकुल के भूषण महाराज दशरथ ने समधी को सभी सम्मान का भाजन बनाया। परस्पर की विनती कही नहीं जा सकती। प्रेम से हृदय परिपूर्ण था।

देवताओं ने पुष्पवृष्टि की। महाराज जनवासे चले। नगाड़े बजे। जय जयकार हुआ। वेदध्वनि हुई। आकाश में और नगर में बड़ा कौतूहल मचा। तब मुनिजी की आज्ञा पाकर सुन्दरी सखियाँ मङ्गलगान करती हुई दुलहिनों के सहित दुलहों को कोहवर : कौतुकागार में लिवा ले चलीं।

व्याख्या : इस समय सभी बारात दान की पात्र है। महाराज जनक का दिया हुआ सब लेवेंगे। दानों में सबसे बड़ा दान सम्मान है। यथा : तुलसी कहत पुकारि के सुनो सकल दै कान। हेम दान गज दान ते बड़ो दान सनमान। अतः महाराज जनक ने दान और सनमान दोनों से काम लिया। आदर के सहित दान भी किया। विनय और स्तुति भी की। आदर पहिले दान पीछे। दान के स्वीकार के लिए विनय किया। यहाँ रघुवंशियों का समाज जुटा हुआ है। जो सभी स्वयं दानी हैं यथा : दातुं मतुँ मद्विधा राजपुत्री। मंगन लहै न जिनके नहीं। अतः प्रतिग्रह की रुचि नहीं है। उसे स्वीकार करने के लिए विनय किया। स्वीकार कर लेने पर स्तुति की। सब बारात के सम्मान के बाद महामुनिवृन्द की वन्दना की और पूजा में तो प्रेम बह चला। महाराज बड़े प्रेमी हैं। प्रेम को योग भोग में छिपाये रहते हैं। इस समय छिपा न सके। सो प्रेम मानो प्रकट होकर बह चला। उत्तरोत्तर अन्तरङ्ग की पूजा कर रहे हैं। देवताओं की पूजा पहिले बिना जाने ही की थी। यथा : पूजे जनक देव सम जाने। दियो सुआसन बिन पहिचाने। अतः देवताओं को मनाया। अथवा पूजन में आवाहित देवताओं का बिसर्जन किया और फिर आने के लिए प्रार्थना की : पुनरागमनाय च। सो मनुष्य मुनि और देवता सबसे विनय हो रही है। उत्तम लोग मान चाहते हैं। मध्यम लोग धन और मान दोनों की इच्छा रखते हैं। केवल धन की इच्छा रखनेवाले तो निकृष्ट कोटि में हैं। यथा : उत्तमा मानमिच्छन्ति

धनं मानञ्च मध्यमाः । अधमा : धनमिच्छन्ति । लोगों को यह भावना न हो कि जनक राजा ने हम लोगों को मध्यम कोटि में गिन लिया । इसलिए कहते हैं कि मेरा दान समुद्र को जलाञ्जलि दान के तुल्य है । समुद्र से ही जल लेकर उन्हीं को जलाञ्जलि दी जाती है । इससे दान कुछ भी न हुआ केवल भक्ति का प्रदर्शन : सत्कार मात्र है । स्वल्प दान भी मान अंग है । उसकी दान में गिनती नहीं है ।

सबसे पीछे खास समधी से विनय करते हैं । महाराज दशरथ दोनों भाइयों के समधी हैं । राजा कुशध्वज सर्वात्मना अपने बड़े भाई महाराज सीरध्वज जनक की आज्ञा में हैं । जो करते हैं जनकजी करते हैं । माण्डवी श्रुतिकीर्ति का विवाह कर दिया । राजा कुशध्वज की सम्मति की भी आवश्यकता न समझी । कुशध्वज राजा कुछ नहीं बोलते । केवल समधी से विनय करने के समय हाथ जोड़ने में सम्मिलित हो गये । मनसा वाचा कर्मणा विनती की । सानि सनेह सील सुभाय सों । मनसा : बोले मनोहर वयन । वाचा : करजोरि । कर्मणा कहने लगे : प्रभु प्रसाद जस जाति सकल सुख पायेउँ । आपके प्रसाद से अब हम सब भाँति बड़े हुए । थे नहीं । बड़े के सम्बन्ध से साधारण पुरुष की सब भाँति प्रतिष्ठा बढ़ जाती है । फिर सब प्रजावर्ग को ओर से बोले कि सम्बन्ध से हम आपके बराबर नहीं हुए । क्योंकि समधो शब्द की व्युत्पत्ति है : समाना धीर्यस्य स समधी । केवल सेवकसेव्यभाव स्थापित हुआ । हमलोग प्रजावर्ग के साथ अक्रीतदास हो गये । यहाँ दशरथजी को कोसलराज कहा । जनकजी को मिथिलाधिपति नहीं कहा ; क्योंकि राजा जनक इस समय ऐसा बोल रहे हैं जैसे कोई साधारण पुरुष महाराज से बोले । अतः ये कुमारियाँ परिचारिका हुईं । अभी अत्यन्त छोटी हैं । बड़े लाड़ प्यार से पाली गई हैं । इन्हें अपनी अपूर्व करुणा से पालियेगा । जो पुत्री न हो उसपर पुत्रीवत् करुणा अपूर्व करुणा है ।

ब्राह्मविवाह में बुलाकर कन्यादान की विधि है । फिर भी महाराज जनक बुला भेजने को ढिठाई मान रहे हैं । समझते हैं : टूटत हो धनु भयउ विवाहू । बिना बुलाये भी काम चल सकता था । सो हमने बुलवा भेजा । यह बड़ी ढिठाई हुई । इसलिए क्षमा प्रार्थना करते हैं ।

महाराज दशरथ भानुकुलभूषण हैं । चिट्ठी का सम्मान करनेवाले हैं । जब कोई सम्बन्ध नहीं था उस समय राजा जनक की चिट्ठी को अभ्युत्थान पूर्वक लिया था । अब तो समधी का सम्बन्ध हो गया है । अतः उन्हें सम्मान की निधि बनाया । अर्थात् यह माना कि जिसे आप सम्मान दें वह सम्मान पावे । परस्पर विनय में यदि प्रेमपूर्णहृदय हो तो वचनअगोचर सुख होता है । यथा : मुनि रघुवीर परसपर नवहीं । वचन अगोचर सुख अनुभवहीं ।

आज तक यह रसम चली आती है कि पण्डित लोग व्याह के बाद अपने यजमान की ओर से परस्पर विनती और बड़ाई के श्लोक पढ़ते हैं । अब विवाह हो गया । समधी की विनती हो गई । महाराज जनवासे को चले । राजा चले कहने का भाव यही है कि अपने साज समाज के साथ चले । राजायं गच्छति : का ऐसा ही अर्थ किया जाता है । सो महाराज के चलते समय नगाड़े बजे । चारों ओर से जय

जयकार हुआ। मङ्गल के लिए ब्राह्मणों ने वेदध्वनि की। आकाश और नगर में महाराज की सवारी देखने की बड़ी उत्सुकता है।

महाराज के चले जाने के बाद वसिष्ठजी से सखियों ने कुँवरों को कौतुकागार में ले जाने की आज्ञा माँगी। महाराज के बाद वसिष्ठजी ठहर गये थे। क्योंकि चारों कुमार वहीं थे। वसिष्ठजी ने आज्ञा दे दी। चारों कुमारियों की सखियाँ अलग अलग हैं। वे कुमार कुमारियों को लेकर चलीं।

मण्डप में : सुंदरी सुंदर बरन्ह संग कहकर सुन्दरियों की प्रधानता कही थी। शोभित कुमारियाँ हैं। वर उनके साथ हैं। क्योंकि बारातियों के लिए वधुओं का दर्शन नई बात थी। यहाँ वरों की प्रधानता है क्योंकि वे मेहमान : पहुना हैं।

दो. पुनि पुनि रामहिं चितव सिय, सकुचति मनु सकुचै न।
हरत मनोहर मीन छवि, प्रेम पियासे नैन ॥३२६॥

अर्थ : बार बार रामजी को सीताजी देखती हैं और संकुचित होती हैं। पर मन नहीं सकुचता। प्रेम के प्यासे नेत्र मनोहर मीन की छवि को हरण करते हैं।

व्याख्या : धनुषयज्ञ के समय : प्रभुहि चितय पुनि चितव महि राजत लोचन लोल। खेलत मनसिज मीन जुग जनु बिधुमंडल डोल। प्रभु को स्पष्ट देख रही थीं। अतः मनसिज मीन जुग : का खेलना कहा। यहाँ तो स्पष्ट देख भी नहीं सकतीं और मन संकुचित नहीं होता। इसलिए मन छटपटा रहा है। आँखों को प्रेम की प्यास है। क्योंकि खेलने के लिए यथेष्ट स्थान चाहिए। यहाँ स्थान अत्यन्त संकुचित है।

स्याम सरीर सुभाय सुहावन। सोभा कोटि मनोज लजावन ॥
जावक जुत पद कमल सुहाए। मुनि मन मधुप रहत जिन्ह छाए ॥१॥

अर्थ : श्याम शरीर स्वभाव से ही सोहावना है। उसकी शोभा कोटिन कामदेव को लज्जित करनेवाली है। चरण कमल में महावर की शोभा है। जिन पर मुनियों के कमलरूपी भौंरे मँडराया करते हैं।

व्याख्या : प्रभु की श्याम शरीर की शोभा बिना शृङ्गार ही अपूर्व है। श्यामता भयावनी होती है। यथा : सहित प्रान कज्जल गिरि जैसे। परन्तु यह श्यामता ही विचित्र है। नील सरोरुह नीलमणि नील नीरधर : की शोभा है। कामदेव का भी श्यामवर्ण कहा गया है। पर इस श्यामता की शोभा के सामने वह कुछ भी नहीं है। राम स्याम सतकोटि सुभग तन। निरुपम न उपमा आन राम समान राम निगम कहै। जिमि कोटि सत खद्योत सम रवि कहत अति लघुताल है।

चरण कमल तो आप ही सुन्दर हैं : करि मधुप मुनि मन जोगि जन जेहि सेइ अभिमत गति लहैं। सो जावकयुत पदकमल को छोड़कर तो गति भी नहीं चाहते। उसी का आनन्द लिया करते हैं। नख शिख वर्णन हो रहा है। इससे पहिले चरणों का ही वर्णन किया। माधुर्य की पराकाष्ठा है। व्याह है। इसलिए ऐसे चरणों में भी महावर लगा है।

पीत पुनीत मनोहर धोती। हरत बाल रवि दामिनि जोती ॥
कल किंकिनि कटि सूत्रु मनोहर। बाहु बिसाल बिभूषन सुंदर ॥२॥

अर्थ : पीली पवित्र सुन्दर धोती थी जो कि प्रभातकाल के सूर्य और बिजली की प्रभा को हरण करती थी। कमर में सुन्दर करधनी और मनोहर करधन था। विशाल भुजाओं पर सुन्दर गहने थे।

व्याख्या : पीत रङ्ग हलदी का है। इससे उसे पुनीत कहा। अथवा पीत पुनीत धोती से पीताम्बर लक्षित किया जो पहनने में पवित्र और देखने में मनोहर है। बालरवि लाल होते हैं। पर उनकी ज्योति पीली होती है।

धोती के ऊपर किंकिणी है। कटिसूत्र धोती के भीतर है। पर यह कटिसूत्र व्याह में पहिनाया गया है इसलिए ऊपर है। विभूषण की शोभा विशाल बाहु पर ही है। अथवा विशाल बाहु वीरतासूचक और विभूषण मङ्गल सूचक है।

पीत जनेउ महाछबि देई। करमुद्रिका चोर चितु लेई ॥
सोहत ब्याह साज सब साजे। उर आयत उरभूषन राजे ॥३॥

अर्थ : पीला जनेव बड़ी शोभा दे रहा है। हाथ की अँगूठी तो चित्त को चुराए लेती है। व्याह का सब साज सजे हुए शोभा पा रहे हैं। चौड़ी छाती पर उर के सुन्दर आभूषण शोभायमान हैं।

व्याख्या : जनेव भी विवाह में मिला है। इसलिए कपड़ों के ऊपर पहने हुए हैं। हाथ में अँगूठी ऐसी है कि जिसने उसे देख लिया वह उसे भूल ही नहीं सकता। यथा : चकित चितव मुँदरी पहिचानी। माया से अस रची न जाई। व्याह के वस्त्रादि सब पहने हैं। मौर भी अभी नहीं उतरा है। आयत उर न हो तो मालाएँ एक में मिल जाती हैं। शोभा नहीं होती। आयत उर होने से सब मालाएँ पृथक् पृथक् शोभा देती हैं।

पिअर उपरना काँखासोंती। दुहुँ आँचरन्हि लगे मनि मोती ॥
नयन कमल कल कुंडल काना। बदनु सकल सौंदर्ज निधाना ॥४॥

अर्थ : पीले रंग के दुपट्टे की काँखासोती : पहिने हैं। जिसके दोनों अञ्चलों में मणि और मोतियाँ टँकी हैं। कमल ऐसे नेत्र हैं। कानों में सुन्दर कुण्डल हैं और सुन्दर मुख तो सुन्दरता का निधान ही है।

व्याख्या : युगपत् सव्यापसव्य ढंग से दुपट्टा धारण करने को काँखासोती

कहते हैं। दुपट्टे में जरी का काम है। अतः अञ्चलों में मणि टँके हैं और मोतियों की झालर है। अथवा यथास्थान मणि और मोतियाँ दोनों टँकी हुई हैं। नेत्र कमलों की भाँति विकसित हैं। कानों में सुन्दर कुण्डल झलक रहे हैं। केवल हाथ पैर और मुख ये तीन खुले हैं। शेष सब अंग भूषण वसन से ढके हैं। मुख की शोभा से ही सब शोभा है। अतः सकल सौन्दर्य निधान कहा।

सुंदर भृकुटि मनोहर नासा। भाल तिलकु रुचिरता निवासा॥
सोहत मौरु मनोहर माथे। मंगलमय मुकुता मनि गाँथे॥५॥

अर्थ : भौंहें सुन्दर और नाक मनोहर थी। माथे पर तिलक तो रुचिरता का निवास था। मस्तक पर मोती और रत्नों से गुथा हुआ मनोहर मौर शोभायमान था।

व्याख्या : विवाह का मङ्गलमय समय है। इसलिए कवि ने विकट भ्रुकुटि या भृकुटि मनोज चाप छवि हारी नहीं कहा और न नासिका की उपमा शुकतुण्ड ही से दी। केवल सुन्दर कह दिया। ऊर्ध्वपुण्ड्र का आकार घर का सा होता है। अतः उसे रुचिरता का निवासस्थान बतलाया।

विवाह का प्रधान चिन्ह मौर है। अतः उसे मङ्गलमय बतलाया। काम परे कछु और है काम सरे कछु और। तुलसी भाँवर के फिरे नदी सिरावत मौर। इसी समय तक मौर की शोभा है। क्योंकि कोहवर में जाकर मौर उतर जायगा।

छ. गाथें महामनि मौर मंजुल अंग सब चित चोरहीं।
पुर नारि सुर सुंदरी वरहिं विलोकि सब तिन तोरहीं॥
मनि वसन भूषन वारि आरति करहिं मंगल गावहीं।
सुर सुमन वरिसहिं सूत मागध वंदि सुजस सुनावहीं॥
कोहबरहिं आने कुँअर कुँअरि सुआसिनिन्ह सुख पाइ कै।
अति प्रीति लौकिक रीति लागीं करन मंगल गाइ कै॥
लहकौरि गौरि सिखाव रामहिं सीय सन सारद कहैं।
रनिवासु हास विलास रस वस जनम को फल सब लहैं॥
निज पानि मनि महुँ देखि पति मूरति सुरूप निधान की।
चालति न भुजवल्ली विलोकनि विरह भय वस जानकी॥
कौतुक विनोद प्रमोदु प्रेम न जाइ कहि जानहिं अलीं।
वर कुँवरि सुंदरि सकल सखी लेवाइ जनवासेहि चली॥
तेहि समय सुनिय असीस जहँ तहँ नगर नभ आनंदु महा।
चिर जिअहु जोरी चारु चार्यौ मुदित मन सबही कहा॥

जोगींद्र सिद्ध मुनीस देव बिलोकि प्रभु दुंदुभि हनी ।
चले हरषि बरषि प्रसून निज निज लोक जय जय जय भनी ।।

अर्थ : सुन्दर मौर में महामणि लगे हुए थे। सब अङ्ग चित्त को चुराते थे। पुर की स्त्रियाँ और सुरसुन्दरियाँ वर को देखकर तृण तोड़ रही थीं। मणि वस्त्र अलङ्कार निछावर करके मङ्गलगान करती थीं। आरती करती थीं। देवता लोग फूल बरसाते थे। सूत, मागध और वन्दी सुयश सुनाते थे।

सुहागिनें सुख पाकर कुँअर और कुँअरियों को कौतुकागार में ले गईं और अति प्रीति के साथ मङ्गल गान करके लौकिक रीति करने लगीं। लहकौरि में गौरी रामजी को सिखाती हैं और सीताजी से शारदा कहती हैं। रनिवास हास विलास के आनन्द वश में होकर सब जन्म के फल को ले रही हैं।

अपने हाथ की मणि में स्वरूपनिधान : रामजी की मूर्ति देखकर विरह के भय से जानकी बाहुलता से दृष्टि नहीं हटातीं। कौतूहल हँसी दिलग्गी आनन्द और प्रेम कहा नहीं जा सकता। उसे सखियाँ जानती हैं। वर और दुलहिन को सखियाँ लिवाकर जनवासे चलीं। उस समय नगर में और आकाश में जहाँ देखिये तहाँ आशीर्वाद सुना जा रहा है। महा आनन्द है। सबने प्रसन्न होकर कहा कि यह सुन्दर चारों जोड़ियाँ चिरञ्जीवी हों। योगीन्द्र सिद्ध मुनीन्द्र और देवताओं ने प्रभु को देखकर दुन्दुभी बजाई और अपने अपने लोक को जय जय जय कहकर और फूल की वर्षा करके हर्षित हो चले।

व्याख्या : अन्य भूषणों में मणि लगे हैं। पर मौर में तो महामणि गूँथे गये हैं। अवयव संस्थान ऐसा रमणीय है मानो चित्त को चुराये लेता है। पुर नरनारि और सुरसुन्दरियाँ प्रभु का दर्शन कर रही हैं। इसीलिए नखशिख वर्णन किया। दर्शन करते समय तृण तोड़ती हैं। जिसमें अपनी कुदृष्टि न लग जाय। शची शारदा रमा भवानी आदि सुरसुन्दरी वहाँ उपस्थित हैं। पहिले निछावर हुई। तब आरती हुई। आरती में मङ्गलगान हुआ। बाहर देवता लोग पुष्पवृष्टि कर रहे हैं और वन्दी मागध सूत सुयश सुना रहे हैं।

कोहवर में लानेवाली सुहागिनी स्त्रियाँ प्रभु का दर्शन पाकर सुखी हो रही हैं। विवाह का सब कार्य सुहागिनों द्वारा सम्पन्न होता है। कोहवर में लौकिक रीति होती है। वैदिक रीति तो मण्डप में हो चुकी। लौकिक रीतियाँ मङ्गलगान के साथ सम्पन्न की जाती हैं। लहकौरि का रसम कोहवर में होता है। उसमें वर दुलहिन दोनों को सिखानेवाली स्त्रियाँ होती हैं। वे वर के हाथ से दुलहिन के मुख में और दुलहिन के हाथ से वर के मुख में दही और मिष्टान्न का प्राशन कराती हैं। इसमें खासी हँसी होती है। गौरी की उपासना सीताजी की है। यथा : बोली गौरि हरख उर भरेऊ। वे रामजी को सिखला रही हैं कि वधू के मुख में दही और मिष्टान्न दें। इधर सरस्वती की उपासना रामजी की है। यथा : गुरु प्रसाद सब

विद्या पाई। सो सरस्वतीजी ऐसी ही बात सीताजी को सिखला रही हैं। इस रसम[1] को दहीगुड़ का रसम भी कहते हैं।

यहाँ भगवती को प्रभु के दर्शन का सुअवसर प्राप्त हुआ। प्रेमपियासे नयन हाथ की मणि में प्रभु का प्रतिविम्ब देखने लगे। अतः वे थिर हो गये। विरह के भय से जानकी ने उस मणि से दृष्टि नहीं हटाई। दहीगुड़ का कौतुक, देवपूजन : सील का बट्टा रखकर उसे इष्टदेव बता बताकर स्त्रियाँ वर से पूजन कराना चाहती हैं। विनोद बत्ती मिलाने : वर से दीप की दो बत्तियों को स्त्रियाँ मिलवाती हैं का प्रमोद। और मौर उतरवाने : यह रसम सास को करनी पड़ती है का प्रेम कहने में नीरस हो जाता है। उन्हें सखियाँ ही जानती हैं। इस भाँति कोहवर का कार्य समाप्त हुआ। अतः वरों और दुलहिनों को लिवाकर जनवासे की ओर चलीं।

मार्ग में चारों ओर से आशीर्वाद सुनाई पड़ रहा है। नगर और नभ के निवासी दर्शन प्राप्ति से महा आनन्द का अनुभव कर रहे हैं। योगीन्द्र सिद्ध मुनीश और देवता आकाश में हैं। इसके लिए दुन्दुभी बजाने का प्रयोग आया है। यद्यपि दुन्दुभी देवताओं ने ही बजायी। परन्तु छत्रिणो गच्छन्ति की भाँति बजाना क्रिया के कर्त्ता सब कहे गये। यथा : हृदय सराहत सीय लोनाई। गुर समीप गवने दोउ भाई। इस अर्धाली में सीय लोनाई। का हृदय में वर्णन रामचन्द्र के प्रति ही बनता है। फिर भी साथ होने से दोउ भाई को कर्त्ता कहा गया। देवता लोग जय जयकार करके और फूल बरसा के अपने अपने लोक गये। क्योंकि बारात अभी अधिक दिनों तक ठहरेगी। व्याह कृत्य समाप्त हुआ।

दो. सहित वधूटिन कुँअर सब, तब आए पितु पास।
सोभा मंगल मोद भरि, उमगेउ जनु जनवास ॥३२७॥

अर्थ : श्रेष्ठ कुँअर लोग बहुओं के साथ पिता के पास आये। जनवास में शोभा, मङ्गल, मोद भरकर उमड़ चला।

व्याख्या : पिता के पास राजकुमार आये इसलिए दुलहिनों को वधूटी कहा। इस समय जनवास छोटा पड़ गया। शोभा मङ्गल मोद के समाने के लिए यथेष्ट स्थान नहीं है। अतः मानों बाहर उमड़ चला। तब से भाव यह कि देवताओं के जाने के बाद। अर्थात् जनवासे तक देवताओं ने पहुँचाया।

---

१. करन लगे राम सिया गुर बानी।
हँसि हँसि गौरि सिखावत रामहिं सियहिं सिखावति हैं ब्रह्मानी।
गुड़ सों रस दधि से नहि उबिठै प्रेम अटूट निसानी।
मुदित होहिं गुन शक्ति देवता यह रहस्य पहिचानी। देवस्वामी

पुनि जेवनार भई बहु भाँती। पठए जनक बोलाइ बराती॥
परत पाँवड़े[1] बसन अनूपा। सुतन समेत गवन कियो भूपा॥१॥

अर्थ : फिर बहुत प्रकार से जेवनार हुई। राजा जनक ने बारातियों को बुला भेजा। बेटों के सहित महाराज दशरथ भी गये। अनूप वस्त्रों के पाँवड़े पड़ते थे।

व्याख्या : दूसरे दिन का कृत्य कहते हैं। पहिले दिन भी जेवनार बनी थी। गोधूलि की लग्न थी। इससे विवाह के पीछे जेवनार का विचार था। परन्तु वसिष्ठजी की आज्ञा से क्रमशः तीन ब्याह और हुए। तत्पश्चात् कोहवर की रसम। फिर जनवासे भेजना। अर्धरात्रि के बाद भोजन निषिद्ध है। अतः उस दिन जेवनार न हो सकी। उमा के ब्याह में लग्न पिछले पहर थी। इसलिए जेवनार पहिले हुई थी। यहाँ दूसरे दिन फिर से बहुत भाँति जेवनार बनी। कह चुके हैं : अपराध छमिबो बोलि पठयो बहुत हौं ढीठ्यौ कई। अतः बारातियों को बुला भेजा।

चक्रवर्तीजी जनकजी की विनय समझ गये। स्वयं पुत्रों के साथ चल पड़े। पहिले सोहाये बसन पाँवड़े पड़े थे : चलने के समय वस्त्र बिछाने को पाँवड़ा पड़ना कहते हैं। जिसमें धरतो पर पैर न पड़े। वस्त्र पर ही पैर पड़ते जायँ। आज अनुपम वस्त्र पाँवड़े पड़ रहे हैं। आतिथ्य सत्कार बढ़ता जा रहा है। जनवासे से ही पाँवड़े पड़ने लगे।

सादर सबके पाय पखारे। जथाजोगु पीठन बैठारे॥
धोये जनक अवधपति चरना। सीलु सनेहु जाइ नहिं बरना॥२॥

अर्थ : आदर के सहित सबके पाँव धोये गये और यथा योग्य पीढ़ों पर बिठलाया। जनकजी ने अयोध्याधिपति के पैर धोये। शील और स्नेह का वर्णन नहीं किया जा सकता।

व्याख्या : बारातियों में से किसी को अपने पाँव अपने हाथ से न धोने पड़े। घरातियों ने यथायोग्य सब बारातियों के पैर धोये। भोजन में पीढ़ों के व्यतिरिक्त अन्य आसन विहित नहीं है। अतः सबको पीढ़ा दिया गया और जो जिस योग्य था उसे वहाँ बिठाया। चक्रवर्तीजी के पैर स्वयं राजा जनक ने धोये। जनक का शील स्नेह और सुन्दर भाव केवल वचन में ही नहीं है। यथा : बोले मनोहर बैन सानि सनेह सील सुभाव सों। क्रिया में तो इतना शील स्नेह है जिसका वर्णन नहीं हो सकता।

बहुरि राम पद पंकज धोए। जे हर हृदय कमल महुँ गोए॥
तीनिउ भाइ राम सम जानी। धोये चरन जनक निज पानी॥३॥

---

१. पाँवड़ा : संस्कृत में पादपतनम् शब्द है। उसी का तद्भवरूप पाअवड़णं जिसे पाँवड़ा कहा गया है। वे कपड़े जो पैर रखने के लिए बिछाये जाते हैं।

अर्थ : फिर श्रीरामजी के चरणकमल धोये। जिन्हें शिवजी अपने हृदय कमल में छिपाये रहते हैं। तीनों भाइयों के पैर जनकजी ने रामजी के समान जानकर अपने हाथ से धोये।

व्याख्या : श्री रामजी के चरणकमल सदा शिवजी के हृदय में विराजमान रहते हैं। यथा : जे पद सरोज मनोज अरि उर सर सदैव बिराजहीं। उनमें महावर लगने से तो मुनियों के मन भौंरों के झुण्ड की भाँति उन पर गिरे पड़ते थे। जावक जुत पद कमल सुहाये मुनि मन मधुप रहत जिन्ह छाये। इसलिए शङ्करजी ने अपने हृत्कमल में छिपा रक्खा था उन्हें जनकजी ने अपने हाथ से धोया।

जनकजी के ज्ञान में बाध नहीं है। तीनों भाई रामजी के समान थे। यथा : राम लखन तुम्ह सत्रुहन सरिस सुअन सुचि जासु। अतः जनकजी का वर्ताव भी समान है। समान करणी से चारों भाइयों का व्याह किया। आज समान श्रद्धा से चारों भाइयों के पैर धो रहे हैं।

आसन उचित सबहि नृप दीन्हे। बोलि सूपकारी सब लीन्हे॥
सादर लगे परन पनवारे। कनक कील मनि पान सँवारे॥४॥

अर्थ : राजा जनक ने सबको उचित आसन दिया। सब रसोईदारों को बुलवाया। आदर के साथ पत्तल पड़ने लगे। मणि के पत्तों की पत्तलें बनी थीं और वे पत्ते सोने की कील से जोड़े गये थे।

व्याख्या : आसन भी राजा जनक ने स्वयं दिया। पहिले भी : निज पानि जनक सुजान सब कहि आनि सिंहासन धरे कहा था। बारात बड़ी है और एक साथ खिलाना है। अतः सब रसोईदार बुलाये गये और परोसने के काम में लगा दिये गये। ऐश्वर्य की पराकाष्ठा है। बड़ी बहुमूल्य कारीगरी है। अचिन्त्य ऐश्वर्य को साधारण रूप दिया जा रहा है। देखने में पत्तल हैं। परन्तु वस्तुतस्तु वे मणि के पात्र हैं। जिनमें बारातियों को परोसा जायगा।

दो. सूपोदन सुरभी सरपि, सुंदर स्वादु पुनीत।
छन महुँ सबके परुसिगे, चतुर सुआर विनीत॥३२८॥

अर्थ : सुन्दर स्वादिष्ट और पवित्र दाल भात और गाय का घी क्षण भर में चतुर और विनीत रसोईदार सबको परोस गये।

व्याख्या : रसोईदार बड़े सिद्धहस्त हैं। रसोई परोसने में बड़ी चतुराई से काम लेना पड़ता है। जिसमें स्पर्शास्पर्श के नियम में कोई बाधा न पड़े। सो रसोईदार क्षणभर में सबको परोस गये। परोसने में बड़ी त्वरा से काम लिया और किसी का अनादर न हो पाया। दाल भात और गाय का घी ही ऐसा भोजन है। जिससे कभी मन नहीं ऊबता। इसलिए सुन्दर स्वाद कहा और सात्त्विक भोजन है। इसलिए पुनीत कहा। पञ्चाग्निहोत्र में पहिले आये हुए पदार्थ से ही पाँच ग्रास पहिले लिया जाता है और उसमें भी गोघृत और ओदन ही प्रशस्त है। सो तुरन्त

परोसा गया। जिसमें जब से पञ्च ग्रास ग्रहण करें तब से शेष सामान परोस दिया जाय।

पंच कवलि करि जेवन लागे। गारि गान सुनि अति अनुरागे॥
भाँति अनेक परे पकवाने। सुधा सरिस नहिं जाहिं बखाने॥१॥

अर्थ : पञ्च प्राण के लिए पाँच आहुति देकर भोजन करने लगे। गाली का गाना सुनकर अत्यन्त अनुराग युक्त हुए। अनेक प्रकार के पक्वान्न परोसे जाने लगे। वे अमृत के सदृश थे। उनका बखान नहीं हो सकता।

व्याख्या : पद पाताल सीस अजधामा का ध्यान करके पाँच आहुति प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान इन पाँचों प्राणों को देना और तत्पश्चात् मौन होकर भोजन करने का विधान है। भोजन के प्रारम्भ में और अन्त में मन्त्रपूर्वक आचमन करना होता है। यह वैश्वानर विद्या है। तदनुसार भोजन प्रारम्भ हुआ। फीकी पै नीकी लगै कहिये समय विचारि। सबको मन हर्षित करै ज्यौं विवाह में गारि। वस्तु कोई भी बुरी नहीं है। उसका उचित रीति से उचित समय से उचित मात्रा में प्रयोग होना चाहिए। महात्माओं ने आनन्द में विभोर होकर उस समय के गालीगान की कल्पना की है। यथा : दसरथ गोर कौसिला गोरी तुम साँवर केहि घर से। इत्यादि। जिस गाली से प्रेम उत्पन्न हो वह गाली नहीं है। वह सर्वथा स्तुत्य है और जो बुरी लगे वह सर्वथा तिरस्करणीय है। भोजन आरम्भ होने के बाद पक्वान्न परोसे गये। वे प्रकार में अनेक थे। गुण में सुधा सदृश थे। स्वाद में अवर्णनीय थे।

परुसन लगे सुआर सुजाना। बिंजन बिबिध नाम को जाना॥
चारि भाँति भोजन बिधि गाई। एक एक बिधि बरनि न जाई॥२॥

अर्थ : सुजान रसोईदार परोसने लगे। अनेक प्रकार के व्यञ्जन बने थे। उनका नाम कौन जानता है। चार भाँति की भोजन विधि कही गई है। एक एक विधि का वर्णन नहीं हो सकता।

व्याख्या : रसोईदार बड़े सुजान हैं। अनेक प्रकार के व्यञ्जन जिनका नाम जानना कठिन है परोस रहे हैं और ऐसी व्यवस्था से कि किसी का किसी से मिश्रण नहीं होता और न कोई व्यञ्जन परोसने में छूटता है।

लेह्य, पेय, चव्य, चोष्य ये चार प्रकार पाक शास्त्र में कहे गये हैं। इसलिए विधि गाई कहा है। उनमें से एक एक की अनेक विधि हैं। जो वर्णनातीत हैं।

छ रस रुचिर बिंजन बहु जाती। एक एक रस अगनित भाँती॥
जेवत देहिं मधुर धुनि गारी। लै लै नाम पुरुष अरु नारी॥३॥

अर्थ : छवों रसों के सुन्दर व्यञ्जन बहुत भाँति के बने थे और एक एक रस के असंख्य प्रकार थे। खाते समय मधुर ध्वनि से पुरुष और नारियों का नाम ले लेकर गाली देती थीं।

व्याख्या : रस छः संख्या में रुचिर देखने में वहुत भाँति गुणों के तारतम्य से। फिर रसों के संमिश्रण से असंख्य प्रकार के पक्वान्न वने थे। प्रेम की गाली की ध्वनि भी मधुर होती है। क्रोध में प्रशंसा के शव्दों की भी ध्वनि कठोर होती है। अवध की स्त्रियों का नाम नहीं मालूम है। इसलिए पुरुषों का नाम साथ में जोड़कर गाली देती हैं। अथवा पुरुष और स्त्रियों का नाम ले लेकर गाली देती हैं। क्योंकि जिसका नाम गाली में छूट जायगा वही समझेगा कि मेरा सम्मान नहीं हुआ।

समय सुहावनि गारि विराजा। हँसत राउ सुनि सहित समाजा ॥
येहि विधि सबहीं भोजनु कीन्हा। आदर सहित आचमनु दीन्हा ॥४॥

अर्थ : सुहावन समय पर गाली शोभित हुई। महाराज समाज सहित सुनसुनकर हँस रहे हैं। इस विधि से सबने भोजन किया और आदर के सहित आचमन लिया।

व्याख्या : अति आनन्द के समय सभ्यता का बन्धन कुछ ढीला पड़ जाता है। उस समय सभी समाज में सभ्यता की मर्यादा का उल्लंघन स्वभाव से ही हो जाता है। उस समय का व्यङ्ग्य अतिप्रिय होता है। यथा : गारी मधुर सुर देहिं सुन्दरि व्यंग वचन सुनावहीं। भोजन करहि सुर अति विलंब विनोद सुनिसुख पावहीं। इसीलिए कहते हैं कि इस मङ्गल समय में गाली की भी शोभा हुई। क्योंकि इससे आनन्द की मात्रा बढ़ गई। प्रेम की गाली सुनकर अवध नरेश समाज के सहित हँस रहे हैं। इस विधि से सबने भोजन किया। परन्तु भोजन समाप्त होने पर सावधान हो गये। आदर के सहित आचमन लिया। आचमन का मन्त्र है। उसे मनमें उच्चारण करके आचमन लिया जाता है। गाली इत्यादि हँसी होती रही। परन्तु यथाशास्त्र भोजन विधि में अन्तर नहीं हुआ। यह पञ्चाग्निहोत्र है। इस भोजन का अग्निहोत्र के समान फल है।

दो. देइ पान पूजे जनक, दसरथ सहित समाज।
जनवासेहि गवने मुदित, सकल भूप सिरताज ॥३२९॥

अर्थ : पान देकर राजा जनक ने महाराज दशरथ का समाज के सहित पूजन किया। सव राजाओं के शिरोमणि प्रसन्न होकर जनवासे गये।

व्याख्या : पान स्वयं जनकजी ने दिया। तत्पश्चात् गन्धाक्षतादि से पूजन किया। अभी भोजन के समय के विनोद का रस बना है। अतः भूपशिरोमणि मुदित जनवासे गये। आये थे बेटों के सहित। यथा : सुनत समेत गवन कियो भूपा। परन्तु जाने के समय वेटे साथ नहीं है। कुँवर लोग ससुराल में ही रोक लिये गये।

नित नूतन मंगल पुर मांहीं। निमिष सरिस दिन जामिनि जांहीं ॥
बड़े भोर भूपतिमनि जागे। जाचक गुन गन गावन लागे ॥१॥

अर्थ : नित्य नया मङ्गल पुर में होने लगा। रात और दिन पल के समान बीतने लगे। बड़े सवेरे महाराज जागे। याचक लोग गुणगण का गान करने लगे।

व्याख्या : किसी दिन गोदान है। किसी दिन चतुर्थीकर्म है। किसी दिन पुजाई है। किसी दिन मनौती है। किसी दिन कथा है। मिथिला में नित्य मङ्गल है। जबतक चक्रवर्तीजी मिथिला में ठहरे तबतक नित्य मङ्गल होता रहा। जहाँ स्वयं रघुनाथजी दूल्हा होकर आये हैं। वहाँ नित्य नया मङ्गल होना आश्चर्य नहीं। यथा : सोह सैल गिरिजा गृह आये। जिमि जन राम भगति के पाये। निति नूतन मंगल गृह तासू। ब्रह्मादिक गावहिं जस जासू। किसी महात्मा का यह मत भी है : भरत सरिस वय राजकुमारा। जो बारात में आये थे उनके भी विवाह मिथिला में हुए। अतः नित नूतन मङ्गल लिखना सार्थक है। सुख के दिन रात बीतते मालूम नहीं पड़ते। इसलिए कहते हैं कि रात और दिन पलक के समान बीतते हैं।

विवाह कृत्य समाप्त होते ही कवि ने यह कह देना उचित समझा कि जब तक बारात टिकी रही नित्य नये मङ्गल जनकपुर में होते रहे। इसके बाद फिर वहीं से कथा उठायी जहाँ से छोड़ी थी। अर्थात् महाराज के जनवासे आने के बाद से कथा प्रारम्भ की।

यद्यपि बहुत रात जाने पर सोयें थे। फिर भी बड़े भोर जग गये। यथा : पहिले पहर भूप निज जागा। नीतिशास्त्र भी यह कहता है : चिरं केशेषु दन्तेषु चिरं मूत्रपुरीषयोः। अचिरं कुरु राजेन्द्र भोजने शयने रणे। दाँत और बालों की शुद्धि में तथा शौचादि में देर लगानी चाहिए। परन्तु हे राजेन्द्र ! भोजन शयन और रण में त्वरा से काम लेना चाहिए। उदार के घर पर याचकों की भीड़ रहती है। महाराज दशरथ के आगमन तथा उनकी उदारता की कीर्ति सुनकर याचक लोग जुट गये थे। उन्होंने गुणगान करना आरम्भ कर दिया।

देखि कुँअर वर वधुन समेता। किमि कहि जात मोदु मन जेता॥
प्रातक्रिया करि गे गुरु पांहीं। महाप्रमोदु प्रेमु मन मांहीं॥२॥

अर्थ : श्रेष्ठ कुँअरों को बहुओं के समेत देखकर कितना आनन्द हुआ। वह कैसे कहा जा सकता है। प्रातःकाल का नित्य कृत्य करके महाराज गुरुजी के पास गये। उनके मनमें महा प्रमोद और प्रेम था।

व्याख्या : अहोरा बहोरा के लिए फिर बहुएँ वरों के साथ थोड़ी देर के लिए जनवासे भेज दी गईं। पहिली बार : सहित वधूटिन्ह कुँवर वर पुनि आये पितु पास। इसी भाँति आज भी बड़े प्रातःकाल आये। वहाँ रातभर रतजगा होता रहा। सवेरा होते ही अहोरा बहोरा का रसम किया गया। माता लोग वहाँ न थीं। अतः महाराज के ही पास आईं। इष्ट दर्शन से महाराज को प्रातःकाल ही महामोद हुआ।

प्रातः क्रिया के विषय में पहिले कह आये हैं : सकल सौच करि जाइ

नहाए। नित्य निबाहि मुनिहिं सिरनाए। महाराज के नित्यकृत्य में काल व्यतिक्रम नहीं होने पाता था। जहाँ कोई नया काम करना हुआ महाराज गुरुजी की आज्ञा ले लेते थे। अतः गुरुजी के पास गये। पुत्रों और पुत्रवधुओं के देखने से महाप्रमोद और गुरुजी के चरणों में प्रेम था। इसलिए महा प्रमोद प्रेम मन-मांही कहा।

करि प्रनामु पूजा कर जोरी। बोले गिरा अमिअ जनु बोरी ॥
तुम्हरी कृपा सुनहु मुनिराजा। भयउँ आज मैं पूरनकाजा ॥३॥

अर्थ : प्रणाम करके पूजा की और हाथ जोड़कर ऐसी वाणी बोले मानों अमृत में डुबाई हुई है। हे मुनिराज ! सुनिये। आपकी कृपा से आज मेरा मनोरथ सफल हुआ।

व्याख्या : प्रणाम करके पुत्र विवाह के उपलक्ष्य में गुरुजी की पूजा की। मण्डप में जनकजी की ओर से गुरुजी की पूजा हुई थी। यहाँ महाराज की ओर से पूजा हो रही है। पूजनोपरान्त मधुर और तोषकारिणी वाणी गुरुजी से हाथ जोड़ कर बोले। आज मैं पूर्णकाम हुआ : कहने का यह भाव है कि जब मैं पूर्ण काम नहीं था तभी आज्ञा हुई थी। जिमि सरिता सागर महु जांही। यद्यपि ताहि कामना नांही। तिमि सुख संपति बिनहि बोलाए। धर्म सील पहिं जाहि सुभाए : आपके वचन अमोघ हैं। उन्होंने आज मुझे पूर्णकाम बना दिया : इस वाक्य में कितना माधुर्य और विनय है। इसलिए अमिअ जनु बोरी : कहा।

अब सब बिप्र बुलाइ गोसाईं। देहु धेनु सब भाँति बनाई ॥
सुनि गुर करि महिपाल बड़ाई। पुनि पठए मुनि बृंद बोलाई ॥४॥

अर्थ : हे गोस्वामिन् ! अब सब ब्राह्मणों को बुलाकर सब प्रकार से अलंकृत करके गायें दीजिये। सुनकर मुनिजी ने राजा की बड़ाई की और तब मुनिवृन्द को बुला भेजा।

व्याख्या : महाराज मैं दान दूँगा : ऐसा नहीं कहते। आप दीजिये : ऐसा कहते हैं। आप गोसाईं हैं : मालिक हैं। आपकी आज्ञा से ही दान हो सकता है। सब भाँति बनाई : से ताम्रपृष्ठ, रौप्यखुर, स्वर्णशृङ्ग, मुक्तापुच्छ, कांस्यदोहिनी आदि से युक्त करके दीजिये।

सुनकर मुनिजी ने महाराज की प्रशंसा की। धेनु ऋषियों को बड़ी प्रिय हैं। ऋषि लोग व्याह में आये हैं। उन्हें धेनु के सिवा और क्या दिया जा सकता है ? अतः महाराज की बुद्धिमत्ता और धर्मबुद्धि की प्रशंसा करते हैं। सौभरि[1] ऋषि ने महाराज रघु से कहा कि मेरा मूल्य इन धीवरों को चुका दो। महाराज रघु आधा राज्य देने को तैयार हुए। ऋषिजी बिगड़ गये कि क्या मेरा मूल्य तेरा आधा राज्य ही है। तब पूरा राज्य देने को तैयार हुए। पर ऋषिजी ने उसे

---

१. कहीं कहीं ऋषि का नाम दूसरा प्राप्त होता है।

भो कम समझा। तब गुरु वसिष्ठजी के पास जाकर सब समाचार कहा। गुरुजी ने कहा कि दूसरे वियान की सुन्दर गाय सुसज्जित करके दो। इसपर ऋषिजी प्रसन्न होकर नृत्य करने लगे कि वसिष्ठजी ने मेरा मूल्य इतना अधिक आँका इससे मैं धन्य हुआ। संक्षेपतः ऋषियों को गोधन बड़ा प्रिय है। अतः वसिष्ठजी ने राजा की बुद्धिमत्ता की और धर्मबुद्धि की प्रशंसा की।

दो. वामदेउ अरु देवरिषि, वालमीकि जाबालि।
आए मुनिवर निकर तब, कौसिकादि तपसालि ॥३३०॥

अर्थ : वामदेव, नारद, वाल्मीकि, जाबालि आदि मुनि समूह तथा विश्वामित्र आदि महातपस्वी आये।

व्याख्या : वामदेव, नारद, वाल्मीकि, जावाल आदि को मुनि कहा। क्योंकि ये लोग स्थितप्रज्ञ हैं। जिन्हें दुःख में उद्विग्नता और सुख की स्पृहा नहीं। जो राग भय और क्रोध से रहित हैं। ऐसे स्थितप्रज्ञ को मुनि कहते हैं। इन्हें किसी वस्तु की स्पृहा नहीं फिर भी गोदान लेने आये। विश्वामित्र आदि को तपसालि कहा। इनको कुछ भी दुर्लभ नहीं है। यथा : तप ते अगम न कछु संसारा। ये लोग भी आये। इनका आना वसिष्ठजी के बुलावे पर दाता को अनुगृहीत करने के लिए हुआ : गोदान के देने और लेने दोनों में पुण्य है।

दंड प्रनाम सबहि नृप कीन्हे। पूजि सप्रेम वरासन दीन्हे ॥
चारि लच्छ वर धेनु मँगाई। कामसुरभि सम सील सोहाई ॥१॥

अर्थ : राजा ने सबको दण्डवत् प्रणाम किया। प्रेम के साथ पूजन करके श्रेष्ठ आसन दिया। चार लाख श्रेष्ठ गौ जो कामधेनु सी सीधी और सुन्दर थीं मँगाईं।

व्याख्या : राजा की श्रद्धा कहते हैं। जो जो ऋषि आते जाते हैं उनमें से प्रत्येक को दण्डवत् प्रणाम करते हैं। सबकी प्रेम सहित पूजा करते हैं। तब श्रेष्ठ आसन पर गोदान के लिए बिठाते हैं। हिन्दुओं में परिगृहीता की पूजा होती है। क्योंकि उसने कृपा करके दान लेना स्वीकार किया है। प्रतिग्रह का बड़ा दोष हिन्दू शास्त्र में कहा गया है और साथ ही साथ दान का बड़ा माहात्म्य भी वर्णित है। इसी में शोभा भी है कि दाता देना चाहे और प्रतिगृहीता लेना न चाहे। क्योंकि दाता को तो पुण्य होता है और प्रतिगृहीता का पुण्यक्षय प्रतिग्रह से होता है। एक पुत्र के विवाह के उपलक्ष्य में एक लक्ष गोदान के विचार से चार लक्ष गौ मँगायी। अधिक संख्या में दान करने में गायों के लक्षणादि पर विचार नहीं किया जा सकता। पर महाराज के यहाँ सब बातों का विचार किया गया। कामसुरभि से उपमा देकर उन गायों को दुधार कहा गया। शील से सीधी होना और सुहाई से सुन्दर कहा।

सब विधि सकल अलंकृत कीन्ही। मुदित महिप महिदेवन दीन्ही ॥
करत विनय बहु विधि नरनाहू। लहेउँ आजु जग जीवन लाहू ॥२॥

अर्थ : सब प्रकार से सबको अलंकृत करके प्रसन्न होकर महाराज ने पृथ्वी के देवताओं को दिया। राजा ने बहुत प्रकार से विनय की कि आज मुझे संसार में शरीर धारण का लाभ हुआ।

व्याख्या : गाय को दान के पहिले अलंकृत करने की शास्त्रों में आज्ञा है। सो जैसा अलंकृत करने का विधान है उस विधान से चारों लाख गायें अलंकृत की गईं। दान देनेवालों को दान देने के समय अत्यन्त आनन्द होना चाहिए कि मेरा बड़ा भाग्य है जो दान कर रहा हूँ। यथा : रामहिं सुमिरत रनभिरत देत परत गुरु पाय। तुलसी जिन्हहिं न पुलक तन ते जग जीवत जाय। दोहावली ४२। अतः लिखते हैं कि महाराज को दान देने में बड़ी प्रसन्नता है। ब्राह्मणों की मनुष्यों में गणना नहीं हैं। ये पृथ्वी के देवता हैं। तप, श्रुति और योनि ब्राह्मणत्व में कारण है। ब्राह्मण वही है जो ब्राह्मणी से उत्पन्न हो। वेद का ज्ञाता और तपस्वी हो। जिनमें तपश्रुत नहीं है वे जाति ब्राह्मण हैं। ये मुनिगण ब्राह्मण के सब लक्षणों से सम्पन्न हैं। ये दान के सर्वोत्तम पात्र हैं। क्योंकि दान में पात्रनिर्णय बड़ा कठिन है। कहीं दान से नरक प्राप्ति भी सुनी गई है। अपात्र को दान देने से पुण्य के स्थान में पाप होता हैं। अतः बड़े भाग्य से सुपात्र दान के लिए मिलते हैं। क्योंकि सुपात्र अपने पुण्य के क्षय के भय से प्रतिग्रह से बचते हैं। महाराज दशरथ को ऐसे सुपात्र दान के लिए मिले जिनमें थोड़ा सा भी दान अक्षय हो जाता है। गोदान को पृथ्वीदान के समान कहा गया है। अतः दान और प्रतिगृहीता दोनों उत्तम कोटि के होने से महाराज कह रहे हैं कि आज मुझे शरीर धारण का फल मिला है। प्रतिग्रह स्वीकार किया। इसलिए विनय करते हैं।

पाइ असीस महीसु अनंदा। लिये बोलि पुनि जातक वृंदा ॥
कनक वसन मनि हय गय स्यंदन। दिये बूझि रुचि रविकुलनंदन ॥३॥

अर्थ : आशीर्वाद पाकर राजा आनन्दित हुए। तब जाचक वृन्द को बुलवाया। सोना, वस्त्र, मणि, घोड़ा, हाथी, रथ उनकी पसन्द पूछकर उनको : सूर्यकुल को आनन्द देनेवाले : राजा दशरथ ने दिये।

व्याख्या : प्रतिग्रह करने पर स्वस्ति कहने का विधान है। सो इतने बड़े बड़े महर्षियों ने जिनका वचन अमोघ है स्वस्ति कहकर आशीर्वाद दिया। इससे राजा को बड़ा आनन्द हुआ। राजा दान करने से अघाते नहीं हैं। तब निम्न कोटि के पात्र दीन और अनाथों को बुलाया। इन्हें भी दान दिया जाने लगा। योग्यतानुसार नहीं, रुचि के अनुसार। उनसे पूछ लिया जाता था कि तुम्हें क्या चाहिए ? देय का विवरण करते हैं : सोना, कपड़ा, मणि, घोड़ा, हाथी और रथ। इनमें जो जिसे पसन्द हो दिया जाय। रविकुलनंदन कहने का भाव यह कि : मंगन लहें न जिन के नाहीं। अथवा क्षत्रिय का जन्म दान के लिए है। यथा : दातुं मतुं मद्विधा राजपुत्रि। सो महाराज तो क्षत्रियों में श्रेष्ठ कुलनन्दन हैं।

चले पढ़त गावत गुन गाथा। जय जय जय दिनकर कुल नाथा॥
एहि विधि राम विआह उछाहू। सकै न वरनि सहस मुख जाहू॥४॥

अर्थ : महाराज का विरुद पढ़ते और गुणगाथा को गाते रघुकुलनाथ का जय जयकार मनाते चले। इस विधि से रामजी के व्याह में उछाह हुआ। इसका वर्णन तो वह भी नहीं कर सकते जिन्हें सहस्रमुख हैं।

व्याख्या : यह राम विवाह के उछाह का वर्णन नहीं है। केवल विधि का दिग्दर्शन है। इसका वर्णन सहस्रमुख से नहीं हो सकता। नित्य नया मङ्गल है। लाखों बातें एक साथ होती हैं और होती चली जा रही हैं। वैखरी वाणी से एक का भी वर्णन कठिन है। इसलिए कहते हैं कि सहस्र मुखवाले भी नहीं कह सकते।

दो. बार बार कौसिक चरन, सीसु नाइ कह राउ।
यह सबु सुख मुनिराज तव, कृपा कटाच्छ पसाउ॥३३१॥

अर्थ : बार बार विश्वामित्रजी के चरणों में महाराज सिर नवाकर कहते हैं कि हे मुनिराज! यह सब सुख आपके कृपाकटाक्ष के प्रसाद का फल है।

व्याख्या : महाराज तो पुत्र के देने से मुकुर गये थे। विश्वामित्रजी ने कहा था : धर्म सुजस प्रभु तुम कहँ इन्ह कहँ अति कल्याण। सो बलपूर्वक कल्याण कराया। आज उस कठोरता को राजा परम हित मान रहे हैं। उस समय तो कह बैठे थे : विप्र वचन नहिं कहेउ विचारी। सब सुत मोहि प्रिय प्रान की नाईं। राम देत नहिं बनै गोसाईं। पर विश्वामित्रजी अड़ गये। अन्त में राजा को देना पड़ा। इस प्रकार हठ करके राजा का परम कल्याण किया। अतः कौशिक के चरण में बार बार सिर नवाते हैं कि ऐसा बलपूर्वक कल्याण करनेवाला कौन है?

जनक सनेहु सीलु करतूती। नृप सब भाँति सराह विभूती॥
दिन उठि विदा अवधपति माँगा। राखहि जनकु सहित अनुरागा॥१॥

अर्थ : जनकजी के स्नेह, शील, करणी तथा विभूति की राजा सब भाँति से सराहना करते थे। अयोध्यानाथ नित्य उठकर विदा माँगते थे। परन्तु जनकजी उन्हें प्रेम से रख लेते थे।

व्याख्या : सब लोग तो जनकजी की प्रशंसा करते ही थे। स्वयं महाराज दशरथ जनकजी के १. स्नेह २. शील ३. करतूत और ४. विभव की सराहना सब भाँति से करने लगे।

१. जनकजी का स्नेह। यथा : राखहिं जनक सहित अनुरागा। इत्यादि।
२. जनकजी का शील। यथा : धोए जनक अवधपति चरना।
निज पानि जनक सुजान सब कह आनि सिंहासन धरे।
३. जनकजी की करतूत। यथा : कहि न जाय कछु दायज भूरी।
रहा कनक मनि मंडप पूरी।

४. जनकजी का विभव। यथा : जो संपदा नीच गृह सोहा।
सो बिलोकि सुर नायक मोहा।
बिधिहि भयेउ आचरज बिसेखी।
निज करनी कछु कतहुँ न देखी।
सब समाज सजि सिधि पल मांहीं।
जो सुख सुरपुर सपनेहु नांहीं।
लिए संपदा सकल सुख सुरपुर भोग बिलास। इत्यादि।
अतः कहते हैं। नृप सब भाँति सराह बिभूती।

बुलाने से आये हैं। विदा माँगकर जायँगे। सवेरे उठते ही विदा माँगना यह चक्रवर्तीजी का शील है। व्यर्थ का बोझा नहीं देना चाहते। अवधपति हैं। अतः अवध की चिन्ता है। परन्तु प्रेम का बन्धन बड़ा प्रबल होता है। यथा : बन्धनानि खलु सन्ति बहूनि प्रेमरज्जुकृतबन्धनमन्यत्। दारुभेदनिपुणोपि षडंघ्रिः निष्क्रियो भवति पङ्कजकोषे। जनकजी के प्रेम से बँधे हुए हैं और वे जाने देने को राजी नहीं होते।

नित नूतन आदरु अधिकाई। दिन प्रति सहस भाँति पहुनाई॥
नित नव नगर अनंद उछाहू। दसरथ गवनु सोहाइ न काहू॥२॥

अर्थ : नित्य नया आदर बढ़ता जाता है। नित्य सहस्रों प्रकार से आतिथ्य सत्कार होता है। नगर में नित्य नया आनन्द और उछाह है। दशरथजी का जाना किसी को सोहाता नहीं।

व्याख्या : अतिपरिचयादवज्ञा। सो यहाँ नहीं है। नित्य नया आदर है और मात्रा भी अधिक होती जाती है। जनकजी की तो बड़ाई हुई है। पर महाराज दशरथ भी ऐसे गुणी हैं कि जितना परिचय होता जाता है उतनी ही उनके प्रति श्रद्धा भी बढ़ती जाती है। अतः सत्कार सहस्रों भाँति अधिक होता जाता है : आजकल भी बारात के सत्कार में इतना तो कर ही देते हैं कि भोजन के पदार्थों की भाँति के कुछ न कुछ नित्य बढ़ा देते हैं और अन्तिम दिन की जेवनार जिसे बड़हार कहते हैं उसमें पूरी शक्ति लगा देते हैं।

नित नूतन मंगल पुर मांही से उपक्रम करके : नित नव नगर आनंद उछाहू से उपसंहार करते हैं। महाराज दशरथ का जाना राजा जनक को क्या किसी को भी नहीं सोहाता। चक्रवर्तीजी का स्वभाव ऐसा प्रजारञ्जक है कि सब प्रजा चक्रवर्तीजी से प्रेम करने लगी। अथवा रामजी के विरह के भय से दशरथजी का जाना नहीं अच्छा लगता।

बहुत दिवस बीते एहि भाँति। जनु सनेह रजु बँधे बराती॥
कौसिक सतानंद तब जाई। कहा बिदेह नृपहि समुझाई॥३॥

अर्थ : इस प्रकार से बहुत दिन बीत गये। मानो बाराती स्नेह की रस्सी

में बँध गये हैं। विश्वामित्रजी तथा सतानन्दजी ने जाकर विदेहराज को समझा-कर कहा।

व्याख्या : तीन महीने से ऊपर इस भाँति बीत गये। चक्रवर्तीजी के विदा माँगते और जनकजी को रोक रखते : इतने दिन बीते। बाराती भी नहीं ऊबते। वे भी प्रेम बन्धन में बँध गये हैं। तब विश्वामित्रजी तथा सतानन्दजी दोनों मुनि राजा जनक को समझाने गये। जिससे राजा को यह मालूम हो कि दोनों ओर के हितचिन्तकों की सम्मति विदाई के पक्ष में है। मालूम होता है कि पहिले सतानन्दजी को बुलाकर विदाई की आवश्यकता दिखलाकर राजी कर लिया गया। तब उन्हें साथ लेकर स्वयं विश्वामित्रजी गये और विदेहराज को समझाया। यथा :

दो. रहति बरात जितेक दिन, बीते मास तितेक।
दिन बीतेहू घटिहि नहिं, प्रीति विचारहु नेक॥
सहिवो ही है एक दिन, सुता विरह की पीर।
क्यों न सहै सो आजही, तुम सो पंडित धीर॥
प्रजा पालिवे ते अधिक, नृपहिं धर्म नहिं आन।
विदा करहु दशरथ नृपहिं, अस मन समुझि सुजान॥

अब दसरथ कहँ आयसु देहु। जद्यपि छाड़ि न सकहु सनेहू॥
भलेहिं नाथ कहि सचिव बोलाए। कहि जय जीव सीस तिन्ह नाए॥४॥

अर्थ : यद्यपि प्रेम छोड़े नहीं छूटता। फिर भी अब दशरथजी को आज्ञा दीजिये। राजा ने कहा अच्छी बात है। नाथ और मन्त्रियों को बुलवाया। उन्होंने जयजीव कहकर सिर झुकाया।

व्याख्या : विश्वामित्रजी ने कहा कि अब दशरथ को आज्ञा दो। सिवा उनके महाराज का नाम लेकर इस भाँति कौन कहे। भाव यह कि आप को अप्रसन्न करके चक्रवर्तीजी नहीं जायँगे। अब बहुत हो गया। उन्हें आज्ञा दीजिये और प्रेम बनाये रखिये। आग्रह किसी बात का न करना यही वुद्धि का फल है। विदेहराज ने बात मान ली। भारी व्यवस्था करनी है। इसलिए मन्त्रियों को वुलवाया। प्राचीन परिपाटी थी कि मन्त्री राजा का अभिनन्दन जयजीव कहकर करते थे। अर्थ यह है कि आप चिरञ्जीव हों और आप की जय हो। ऐसा कहकर उनलोगों ने प्रणाम किया।

दो. अवधनाथु चाहत चलन, भीतर करहु जनाउ।
भए प्रेमवस सचिव सुनि, विप्र सभासद राउ॥३३२॥

अर्थ : अयोध्यानाथ जाना चाहते हैं। सो भीतर समाचार पहुँचा दो। यह सुनकर मन्त्री, ब्राह्मण सभासद और राजा प्रेम के वश हो गये।

व्याख्या : महाराज जनक ने मन्त्रियों को आज्ञा दी कि भीतर रनिवास में

समाचार जाकर दो कि अयोध्यानाथ जाना चाहते हैं। मैं तो अब भी नहीं चाहता। पर वे अब अधिक नहीं रुक सकते। भाव यह कि विदाई की तैयारी के लिए अन्तःपुर में जाकर कहो। दसरथ गवन सोहाइ न काहू : का साफल्य दिखलाते हैं कि इतना सुनते ही मन्त्री, ब्राह्मण और सभासद प्रेमवश हो गये और कहते कहते राजा जनक प्रेम के वश हो गये। अथवा यहाँ राउ से राजा कुशध्वज का अभिप्राय है। वे भी राजा जनक की आज्ञा सुनकर प्रेमवश हो गये।

पुरवासी सुनि चलिहि बराता। बूझत बिकल परसपर बाता ॥
सत्य गवनु सुनि सब बिलखाने। मनहुँ साँझ सरसिज सकुचाने ॥१॥

अर्थ : बारात जायगी यह बात पुरवासियों ने सुनी। एक दूसरे से विकल हो पूछने लगे। जाने की बात ठीक है सुनकर सब बिलखने लगे। जैसे सायंकाल के समय कमल संकुचित हो जाते हैं।

व्याख्या : बारात आने पर सबको बड़ा हर्ष हुआ था। यथा : प्रथम बरात लगन ते आई। ताते पुर प्रमोद अधिकाई। ब्रह्मानंद लोग सब लहहीं। बढ़हु दिवस निसि विधिसन कहहीं। इसलिए बारात की विदाई में विषाद हुआ। बात फैल गई। अप्रिय समाचार को शीघ्र हृदय ग्रहण नहीं करता और उनकी समझ में अभी बारात का और ठहरना उचित था। अतः समाचार की सत्यता निश्चय करने के लिए एक दूसरे से पूछते हैं। विकल हैं। अतः परस्पर पूछते हैं। नहीं तो पूछनेवाले से पूछना नहीं बनता।

जिसे समाचार ज्ञात था उसने कहा बात सच्ची है। सुनते ही सबको शोक हुआ। पहिले कमल की भाँति विकसित थे। अब सङ्कुचित हो गये। दिनकर कुलभूषण का वियोग है। इसलिए सायंकाल के समय कमलवन के सकुचने से उपमा दिया।

जहँ जहँ आवत बसे बराती। तहँ तहँ सिद्ध चला बहु भाँती ॥
बिबिध भाँति मेवा पकवाना। भोजन साजु न जाइ बखाना ॥२॥

अर्थ : जहाँ जहाँ आते समय बाराती टिके थे तहाँ तहाँ बहुत प्रकार की रसद सामग्री चली। अनेक प्रकार के मेवा पक्वान्न और भोजन की सामग्री जिनका बखान नहीं हो सकता।

व्याख्या : बीच बीच बरवास बनाये। सुरपुर सरिस सम्पदा छाये। वहीं आते हुए बाराती टिके थे। उन्हीं निवास स्थानों पर कच्चा सामान भेजा जाने लगा। जिस क्रम से आये थे उसी क्रम से जावेंगे। मेवा जलपान के लिए पक्वान्न भोजन के लिए और भी भोजन का साज पीढ़ा, पत्तल, चटनी, अँचार आदि भेजे गये।

भरि भरि बसह अपार कँहारा। पठई जनक अनेक सुसारा ॥
तुरग लाख रथ सहस पचीसा। सकल सँवारे नख अरु सीसा ॥३॥

अर्थ : बैलों पर लाद करके और असंख्य कहारों को महाराज जनक ने सुन्दर मलाई, दही, छेना आदि लेकर भेजा। एक लाख घोड़े और पचीस सहस्र रथ सबको सिर से पैर तक सँवार कर भेजा।

व्याख्या : बेसर ऊँट पर नहीं भेजे गये। निन्दित वाहनों पर पक्वान्न नहीं भेजा। कँहारों पर बहँगी : काँवर द्वारा दधि चिउरा उपहार चला। सार का अर्थ है मलाई, दही, छेना आदि। कहीं सुसारा के स्थान पर सुआरा पाठ है। वहाँ यह अर्थ करना होगा कि सूपकारों को भी महाराज जनक ने भेजा कच्ची रसोई बनाने के लिए। रचिरुचि जोन तुरग तिन साजे। बरन बरन बर बाजि बिराजे। ऐसे एक लाख घोड़े। रथ सारथिन्ह बिचित्र बनाये। ऐसे पचीस सहस्र रथ। सिर से पैर तक सबका शृङ्गार हुआ। एक लाख घोड़े, रथ के घोड़ों को छोड़कर।

मत्त सहस दस सिंधुर साजे। जिन्हहि देखि दिसि कुंजर लाजे ॥
कनक बसन मनि भरि भरि जाना। महिषी धेनु बस्तु बिधि नाना ॥४॥

अर्थ : सजे हुए दसहजार मतवाले हाथी। जिन्हें देखकर दिग्गज लज्जित हो जायँ तथा सोना वस्त्र और मणि गाड़ियों में भर भरकर तथा भैंसे, गाय तथा अन्य नाना प्रकार की वस्तु।

व्याख्या : कलित करिबरन्ह परी अँबारी। कहि न जात जेहि भाँति सवारी। ऐसे दस सहस्र हाथी। जिन्हें देखकर दिग्गज लोग लज्जित हों। जनकपुर के निकट ही जङ्गल है। जिसमें हाथी होते हैं। अत: बड़े डील डौल के मतवाले हाथी चुन चुनकर भेजे गये। निसि कुंजर लाजे : कहने का भाव ही यही है कि यहाँ के हाथी अयोध्या के हाथियों से भारी हैं।

सोना वसन और मणि तो गाड़ियों पर लादे गये। दायज में भैंस गाय भी दी जाती हैं। इसकी गिनती नहीं लिखी। क्योंकि ये गिनकर भेजी ही नहीं गईं और भी अनेक प्रकार की वस्तुएँ जिनका नाम कवि नहीं गिना सके।

दो. दाइज अमित न सकिय कहि, दीन्हि बिदेह बहोरि।
जो अवलोकत लोकपति, लोक संपदा थोरि ॥३३३॥

अर्थ : फिर महाराज जनक ने अपरिमित दायज दिया। जो कहा नहीं जा सकता। जिसे देखकर लोकपति के लोकों की सम्पदा थोड़ी मालूम पड़ी।

व्याख्या : पहिले दायज दिया था। उसका परिमाण रहा यथा : रहा कनक मनि मंडप पूरी। पर इस समय जो दे रहे हैं उसका परिमाण नहीं है। पहिले जो दिया था उसे लोकपाल अवलोकि सिहाने कहा था। इस समय इतना दिया कि उनके लोकों की सम्पदा थोड़ी जँच रही है। पहिले दायज में उत्कर्ष का आधिक्य कहा। इस दायज में उत्कर्षाधिक्य तथा परिमाणाधिक्य कह रहे हैं।

सबु समाजु येहि भाँति बनाई। जनक अवधपुर दीन्ह पठाई ॥
चलिहि बरात सुनत सब रानी। बिकल मीन गन जनु लघु पानी ॥१॥

अर्थ : सब समाज इस भाँति से सजाकर जनकजी ने अवधपुर भेजवा दिया। बारात चलेगी। यह सुनकर सब रानियाँ ऐसी विकल हुई जैसे मछली थोड़े पानी में विकल हो।

व्याख्या : पहिले घोड़े तब हाथी और तब रथ। बीच में कनक बसन और मणि के यान। पीछे महिषी धेनु तथा बरतन सामान। इस भाँति से रक्षित करके महाराज जनक ने अवधपुर बारात चलने के पहिले ही भिजवा दिये। महाराज दशरथ के साथ भेजने से अवधपुर पहुँचना कठिन हो जायगा। रास्ते में ही महाराज दशरथ दे डालेंगे और दायज का अवधपुर पहुँचना परम आवश्यक है। यदि वहाँ तक न पहुँचा तो लोग क्या कहेंगे। इसलिए सीधे अवध भेज दिया। दूसरी बात यह है कि इन वस्तुओं के लिवा जाने की व्यवस्था का भार महाराज दशरथ पर न पड़े। अतः अपनी व्यवस्था से सब वस्तुएँ समधियाने भेजवा दीं।

महाराज जनक ने कहा था : अवधनाथ चाहत चलन भीतर करहु जनाउ। सो मन्त्रियों ने अन्तःपुर में खबर दी। समाचार सुनते ही रानियाँ विकल हो उठीं। केवल सीताजी की ही माता नहीं। चारों रानियाँ ऐसी विकल हुईं जैसे मछलियाँ थोड़े पानी में विकल हों। नीच कीच विच विकल जिमि मीनहि सलिल सकोच। जब समाचार सुनकर पुनवासो विकल हो गये तब माताओं का ऐसा विकल होना आश्चर्य की बात नहीं है।

पुनि पुनि सीय गोद करि लेहीं। देइ असीस सिखावनु देहीं॥
होयेहु संतत पिअहि पिआरी। चिर अहिवातु असीस हमारी॥२॥

अर्थ : बारबार सीताजी को गोद में ले लेती हैं और आशीर्वाद देकर शिक्षा दे रही हैं कि सदा पति की प्यारी हो। तुम्हारा सौभाग्य सदा बना रहे यह हमलोगों का आशीर्वाद है।

व्याख्या : पहिले आशीर्वाद देती हैं। दोनों आशीर्वाद सोहाग सम्बन्धी हैं। पति का बना रहना सोहाग है और पति का प्यार बना रहना भी सोहाग है। यथा : मानहु मुख देखरावनी दुलहिन करि अनुराग। सास सदन मन ललनहू सौतिन्ह दियो सोहाग। राजा लोग कई व्याह करते हैं। अतः यह असीस परमावश्यक है। तत्पश्चात् पति के बने रहने का आशीर्वाद देती हैं। भारतवर्ष में स्त्रियों के लिए इससे बढ़कर आशीर्वाद नहीं है। यथा : जहँ लगि नाथ नेह अरु नाते। पिय बिनु तियहि तरनिहु ते ताते।

सासु ससुर गुर सेवा करेहू। पति रुख लखि आयसु अनुसरेहू॥
अति सनेह बस सखी सयानी। नारि धरमु सिखवहिं मृदुबानी॥३॥

अर्थ : सास ससुर और गुरु की सेवा करना। पति का रुख देखकर आज्ञानुसार कार्य करना। अत्यन्त स्नेहवश सयानी सखियाँ मृदुवाणी से नारीधर्म की शिक्षा दे रही हैं।

व्याख्या : पहिला काम सास से पड़ेगा। सो उनकी सेवा करना। उसके बाद ससुर गुरुजन से काम तो कभी कदाचित् पड़ेगा। सो सबकी सेवा करना। आज्ञा मानना ही सच्ची सेवा है। यथा : आज्ञा सम न सुसाहिब सेवा। सो पति के लिए आज्ञा का वाट न जोहना। बड़ा परिवार है। वे सङ्कोच से आज्ञा न दे सकेंगे। उनका रुख देखकर काम करना। इसका साफल्य भी उत्तरकाण्ड में दिखलाया है। यथा : कौसल्यादि सास गृह माँहीं। सेवइ सबनहिं मान मद नांहीं। निजकर गृह परिचर्या करई। रामचन्द्र आयसु अनुसरई। इत्यादि : जेहि विधि कृपासिंधु सुख मानइ। सोइ कर श्री सेवा विधि जानइ।

माताओं ने जो शिक्षा सूत्ररूप में दी सखियाँ उसीकी व्याख्या करके समझाती हैं। सयानी हैं। व्याही हुई हैं। गार्हस्थ्य धर्म में चतुर हैं। व्याह होते ही स्त्रियों के कर्तव्य में बड़ा परिवर्तन हो जाता है। पिता माता की प्रधानता हटकर सास ससुर में आजाती है धर्म भी दूसरा हो जाता है। यथा : एकइ धर्म एक व्रत नेमा। काय वचन मन पति पद प्रेमा। अतः ससुराल जाकर कैसा वर्ताव करना चाहिए सो सयानी सखियाँ सिखाती हैं।

सादर सकल कुँअरि समुझाई। रानिन्ह बार बार उर लाई ॥
बहुरि बहुरि भेटहिं महतारी। कहहिं विरंचि रची कत नारी ॥४॥

अर्थ : जिस भाँति सीताजी को समझाया। उसी भाँति आदर के साथ राजकुमारी माण्डवी, उर्मिला और श्रुतिकीर्ति को भी समझाया और रानियों ने उन्हें बार बार हृदय से लगाया। माँ बार बार उनसे मिल रही हैं। कहती हैं कि ब्रह्मदेव ने स्त्रियों को क्यों बनाया ?

व्याख्या : सब कुँअरियों को पृथक् पृथक् समझाने का कारण था। क्योंकि सबके लिए पृथक् पृथक् उपदेश थे। बहिन होने के व्यतिरिक्त जेठानी देवरानी होने का भी नाता आपड़ा। जेठ देवर के बर्ताव का भी उपदेश दिया। अपनी सास और सौतेली सासों के साथ बर्ताव की भी शिक्षा दी। अति प्रेम से हृदय लगाकर शिक्षा देने का प्रभाव बड़ा भारी होता है। यथा :

अवध रानि की लालसा पूर करहु तुम जाय।
उनकी आज्ञा ते पृथक् भूलि धरेउ जनि पाय ॥१॥
बहिन बहिन की प्रीति जस तैसइ रहै उदार।
पै जेठानि देवरानि को सधै सकल व्यवहार ॥२॥
जेठमान पितु के सरिस सुत सम देवर मानि।
मातु सुता के सरिस ही त्यौ जेठानि देवरानि ॥३॥
अपने सासुन ते अधिक आन सास को मान।
जे प्रिय भूपति को अधिक अधिक तासु सनमान ॥४॥
विनय गहनि सबकी सहनि रहनि विगत अभिमान।
दासी हू को आदरेहु यह कुलवधू विधान ॥५॥

माता में अधिक प्रेम है। अतः वार वार भेटती हैं। कत विधि सृजी नारि जगमांही। पराधीन सपनेहु सुख नांही। ऐसा कहकर कन्या के विरह में ब्रह्मदेव को उपालम्भ देती हैं : पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति यौवने। पुत्रास्तु स्थाविरे भावे न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति। स्त्रियों में स्वातन्त्र्य की योग्यता ही नहीं है : कि ब्रह्मदेव ने उनको ऐसी क्यों वनाया ?

दो. तेहि अवसर भाइन्ह सहित, रामु भानुकुल केतु।
चले जनक मंदिर मुदित, विदा करावन हेतु ॥२३४॥

अर्थ : उसी अवसर पर सूर्यकुल के पताका श्रीरामजी भाइयों सहित जनकजी के महल : अन्तःपुर में प्रसन्न होकर विदा कराने चले।

व्याख्या : जिस समय माताएँ कन्याओं को समझा बुझा रही थीं उसी समय रामजी विदा कराने के लिए भाइयों के सहित चले। लौकिक लीला का अनुसरण दिखलाते हैं कि सब भाई मुदित हैं क्योंकि विदा कराने जा रहे हैं। मुनि कौशिक तथा सतानन्दजी ने जाकर कहा कि महाराज दशरथ ने मान लिया। तब चारों भाइयों के लिए आज्ञा हुई कि विदा कराने जाओ। अतः प्रसन्न होकर चले।

चारिउ भाइ सुभाय सुहाए। नगर नारि नर देखन धाए ॥
कोउ कह चलन चहतहहिं आजू। कीन्ह विदेह विदा कर साजू ॥१॥

अर्थ : चारों भाई स्वभाव से ही सुन्दर हैं। नगर के नर और नारी उन्हें देखने के लिए दौड़े। कोई कहता है कि आज ही जाना चाहते हैं। विदेह ने विदा की तैयारी कर दी है।

व्याख्या : चारों भाई स्वभाव से ही सुन्दर हैं। कहने का भाव यह है कि उनकी सुन्दरता को अधिक करने के लिए किसी बनावट की अपेक्षा नहीं है। उनके दर्शन के लिए नगर की नारियाँ और नर विदाई का समाचार पाकर दौड़ पड़े। प्रभु के चलते ही खबर तुरन्त फैल जाती है। यथा : देखन नगर भूप सुत आये। समाचार पुरवासिन्ह पाये। तथा : रंगभूमि आये दोउ भाई। अस सुधि सब पुरवासिन्ह पाई। विदा होनें का समाचार फैल गया। लोग दौड़े कि उनके पहुँचने के पहिले कहीं अन्तःपुर में न चले जाँय।

एकाएक जाने की बात ठहर गई। आज ही जानेवाले हैं। प्रमाण यह है कि राजा विदेह ने विदाई की व्यवस्था कर दी है। हाथी घोड़े आदि रवना हो गये। राजा विदेह ही तो ठहरा। उसने विदा का साज सज दिया। जिसने कहा था : यह विवाह बड़ लाभ सुनयनी। वह कहती है : चलन चहत हैं आजू। बड़ी हानि हुआ चाहती है।

लेहु नयन भरि रूप निहारी। प्रिय पाहुने भूप सुत चारी ॥
को जानै केहि सुकृत सयानी। नयन अतिथि कीन्हे विधि आनी ॥२॥

अर्थ : आँख भर के रूप देख लो। राजा के चारों कुमार प्रिय पाहुने हैं। हे सयानी ! किस पुण्य से ब्रह्मदेव ने लाकर इन्हें आँखों का मेहमान बनाया है।

व्याख्या : उन्हीं आठों सखियों का सम्वाद जो दो बार हो चुका है अब तीसरी बार हो रहा है। बोलने का क्रम वही नहीं है। परन्तु वाक्य सन्दर्भ से जान पड़ता है कि कौन सखी क्या कह रही है। यथा : एक सखी जिसने कहा था : यहि विवाह बड़ लाभ सुनयनी। वही कहती है : कोउ कह चलन चहत हैं आजू : इससे हानि कही।

दूसरी : बड़े भाग विधि बात बनाई : कीन्ह विदेह विदा कर साजू : अभाग्य।
तीसरी : नयन अतिथि होइहैं दोउ भाई : लेहु नयन भरि रूप निहारी : सौभाग्य।
चौथी : लेन आइहैं बंधु दोउ कोटि काम कमनीय : प्रिय पाहुने भूप सुत चारी : मनोरथ पूर्ति।

पाँचवी जिसने कहा था : विविध भाँति होइहि पहुनाई। प्रिय न काहि अस सासुर माई। वही कहती है कि याद तो नहीं पड़ता कि मैंने कोई ऐसा पुण्य किया हो कि इनके दर्शन मिलें। विधि है सञ्चित में से कोई पुण्य खोज निकाला हो। को जानै केहि सुकृत सयानी। नयन अतिथि कीन्हें विधि आनी। इससे पुण्योदय कहा।

छठीसखी जिसने कहा था : तब तब राम लखनहि निहारी। होइहि सब पुरलोग सुखारी। वही कहती है यथा :

मरनसीलु जिमि पाव पिऊखा। सुरतरु लहै जनम कर भूखा ॥
पाव नारकी हरिपदु जैसे। इन्हकर दरसनु हम कहुँ तैसे ॥३॥

अर्थ : मरनेवाला प्राणी जिस भाँति अमृत पावे और जन्म के भुक्खड़ को जैसे कल्पवृक्ष मिले। नारकी को जैसे विष्णुपद की प्राप्ति हो जाय। हमको तो इनका दर्शन उसी भाँति दुर्लभ है।

व्याख्या : वह कहती है कि दर्शन में महासुख है। इनका दर्शन प्राणद है। तुष्टि देनेवाला है और परम गति विधायक है। हमें तो ऐसा सुखद जान पड़ता है जैसे मरणशील को अमृत मिल जाय। जन्म के भूखे को कल्पवृक्ष मिल जाय। जो जो वह चाहे वह सब पदार्थ उसे सुलभ हो जाय। नरक वेदना भोगनेवाले को जैसे विष्णुपद : परमानन्द की प्राप्ति हो। भाव यह कि हमें तो इनके दर्शन में ही लोक और परलोक के सब सुख केन्द्रीभूत मालूम पड़ते हैं।

निरखि राम सोभा उर धरहू। निज मन फनि मूरति मनि करहू ॥
येहि विधि सबहि नयन फलु देता। गये कुँअर सब राज निकेता ॥४॥

अर्थ : रामजी की शोभा को देखकर हृदय में धारण करो। अपने मनरूपी सर्प के लिए मूर्ति को मणिरूप बनाओ। इस भाँति सबको नेत्रों का फल देते हुए सब कुँअर राजभवन में पहुँचे।

व्याख्या : सातवीं सखी जिसने कहा था : स्याम गौर सब अंग सुहाए। वह कहती है : निरख राम सोभा उर धरहू। इससे शोभा कही।
आठवीं : उपमा कहँ त्रिभुवन कोउ नाहीं। निजमन फनि मूरति मनि करहू। इससे प्रीति कही।

वहाँ कहा था : एहि विधि सकल मनोरथ करहीं। सो मनोरथ की पूर्ति हो गई। अतः कहते हैं : एहि विधि सर्बहि नयन फल देता। चले जनक मन्दिर मुदित विदा करावन हेतु से उपक्रम करके मार्ग की कथा का : गये कुँवर वर राजनिकेता से उपसंहार करते हैं।

दो. रूप सिंधु सब बंधु लखि, हरखि उठी रनिवासु।
करहिं निछावरि आरती, महा मुदित मन सासु ॥२३५॥

अर्थ : शोभा के सिन्धु चारों भाइयों को देखकर रनिवास हर्षित हो उठा और सास लोग परम प्रसन्न होकर निछावर और आरती करने लगीं।

व्याख्या : चारों भाई रूप के समुद्र हैं। चार कहने का भाव यह कि पृथ्वी में चार ही समुद्र हैं और सब जलाशय उन्हीं के उपजीवी हैं। इसी भाँति पृथ्वी तल में ये ही चार भाई सुन्दरता की सीमा हैं। और सबकी सुन्दरता सर, सरि, कूप, तड़ाग के समान है। सास हैं। परम सुन्दर जामाताओं को देखकर सब दुःख भूल गईं। हर्षित हो उठीं। ये लोग मुदित थे। पर सास तो महामुदित हो गईं। हर्षित तो सम्पूर्ण अन्तःपुर हो उठा। पर सास महा मुदित मन होकर निछावर और आरती करने लगी। करि आरती निछावरि करहीं : क्रम तो यह है। परन्तु परम आनन्द में क्रम का निर्वाह न हुआ। पहिले निछावर ही करने लगीं। आरती पीछे से की।

देखि राम छवि अति अनुरागीं। प्रेम विवस पुनि पुनि पद लागीं ॥
रहीं न लाज प्रीति उर छाई। सहज सनेहु बरनि किमि जाई ॥१॥

अर्थ : रामजी की छवि देखकर अत्यन्त अनुरक्त हुईं। प्रेम के विवश होकर बार बार चरणों में गिरीं। प्रीति हृदय में छा गई। इसलिए सङ्कोच छूट गया। स्वाभाविक स्नेह का कैसे वर्णन किया जाय।

व्याख्या : चारों भाइयों को देखकर अनुराग हुआ। पर रामजी को देखकर अत्यन्त अनुराग हुआ। क्योंकि प्रभु अधिक सुख सागर हैं। यथा : चारिउ रूप सील गुन धामा। तदपि अधिक सुख सागर रामा। अतः प्रेम के विवश हो गईं। बार बार चरणों में गिर रही हैं। दामाद से भी सास आरम्भ में कुछ सङ्कोच करती हैं। कोहवर में भी नहीं बोलीं। परन्तु आज प्रीति के बाहुल्य से सङ्कोच जाता रहा। एक भाव के उदारावस्था में आजाने से अन्य भाव प्रसुप्त अथवा विच्छिन्नावस्था को प्राप्त होते हैं। इस समय प्रीति का परम उत्कर्ष है। अतः सङ्कोचादि भाव तिरोहित हो गये। रामजी पर स्वाभाविक प्रेम है। जैसा माता

का अपने शिशु बालक पर होता है। यथा : सहित विदेह विलोकहिं रानी। सिसु सम प्रीति न जाइ बखानी।

भाइन्ह सहित उबटि अन्हवाए। छरस असन अति हेतु जेंवाए ॥
बोले राम सुअवसर जानी। सील सनेह सकुचमय बानी ॥२॥

अर्थ : भाइयों के सहित उबटन लगाकर नहलाया और अत्यन्त प्रेम से षट्रस भोजन कराया। रामजी अवसर पाकर शील स्नेह तथा सङ्कोचमय वाणी बोले।

व्याख्या : शिशु के समान प्रीति होने से अपने हाथों उबटन लगाया और उसके बाद स्नान कराया। नित्य क्रिया करके आये हैं। उबटन के बाद स्नान काम्य स्नान है। अतः इसके बाद अत्यन्त प्रेम से षट्रस भोजन का जिमाना कहते हैं। जब तक उबटन स्नान और भोजन होता रहा तब तक कुछ कहने का अवसर नहीं समझा। जब सब हो चुकने के बाद सास स्वस्थ होकर बैठीं खातिरी हो चुकी तब बड़े होने के कारण रामजी बोले। चक्रवर्तीजी ने विदा कराने के लिए भेजा था। सो विदा करने के लिए कहने में शील, स्नेह और सङ्कोच तीनों बाधक थे। अतः ऐसी वाणी बोले जिसमें तीनों बना रहे।

राउ अवधपुर चहत सिधाए। विदा होन हम इहाँ पठाए ॥
मातु मुदित मन आयसु देहू। बालक जानि करब नित नेहू ॥३॥

अर्थ : महाराज अयोध्यापुरी जाना चाहते हैं। विदा होने के लिए हमें यहाँ भेजा है। मातः ! प्रसन्न मन से आज्ञा दीजिये और बालक जानकर सदा प्रेम बनाये रहियेगा।

व्याख्या : शिशु सम प्रेम अपने ऊपर देखकर माँ ऐसा सम्बोधन करते हैं। जब आये थे तब विषाद में देखा था और जानते थे कि कन्या की विदाई में दुःख होता है। अतः कहते हैं प्रसन्न मन से आज्ञा दीजिए। विदा करने को नहीं कहते अपने विदा होने को कहते हैं। महाराज अयोध्या जाना चाहते हैं। हमारा भी साथ जाना आवश्यक है। आप माता हैं। ऐसा ही प्रेम बनाये रखियेगा। यथा : को रघुबीर सरिस संसारा। सील सनेह निबाहनि हारा। स्वयं अयोध्या जाने की इच्छा है। उसे नहीं कहते हैं। यह प्रभु का शील है। माता सम्बोधन करते हैं। यह प्रभु का स्नेह है। विदा करने को न कहकर अपने विदाई की आज्ञा माँगते हैं। यह प्रभु का सङ्कोच है।

मुदित मन आयसु देहू : इसमें मुदित मन कहने से कन्या की विदाई ध्वनित है। अतः

सुनत बचन बिलखेउ रनिवासू। बोलि न सकहिं प्रेमबस सासू ॥
हृदय लगाइ कुअँरि सब लीन्ही। पतिन्ह सौंपि बिनती अति कीन्ही ॥४॥

अर्थ : वचन सुनते ही रनिवास विलखने लगा। सास प्रेम के वश कुछ बोल न सकीं। सब कुँअरियों को हृदय से लगा लिया और उनके पतियों को सौंपकर अति विनती की।

व्याख्या : अत्यन्त प्यारी होने से हृदय से लगाया। अथवा अपनी प्रीति को व्यक्त किया कि यह मुझे प्राण सी प्यारी है। जिस कुँवरि के जो पति रहे उन्हें उसे सौंपा। महाराज ने कन्यादान मात्र किया। परन्तु देय वस्तु सौंपी नहीं गयी। अब महारानी उन्हें सौंप रही हैं। एक दूसरे को पहिचाने रहें इसलिए भी सौंपना आवश्यक था। सदा रक्षा के लिए अति विनय किया। कन्यादान ही ऐसा दान है जिसमें दाता का देय से सम्बन्धविच्छेद नहीं होता। पुत्रित्व बना रहता है। इसीलिए कन्यादान में न मम : मेरी नहीं है ऐसा नहीं कहते।

[1]छं. करि विनय सिय रामहि समरपी जोरि कर पुनि पुनि कहे।
बलि जाउँ तात सुजान तुम्ह कहुँ विदित गति सबकी अहे॥
परिवारु पुरजन मोहि राजहि प्रानप्रिय सिय जानवी।
तुलसी सुसील सनेह लखि निज किंकरी करि मानवी॥

अर्थ : विनती करके रामजी को सीता समर्पण की और हाथ जोड़कर बार बार कहा कि हे तात ! मैं बलि जाती हूँ। आप सुजान हैं। आपको सबकी गति विदित है। परिवार पुरजन मुझे और राजा को सीता प्राण के समान प्यारी है। यह जानकर और इसके शील और स्नेह को लखकर : तुलसीदासजी कहते हैं : इसे अपनी दासी की भाँति मानना।

व्याख्या : राम से ही कृत्य का प्रारम्भ और राम से ही समाप्ति चाहती हैं। कन्यादान का आरम्भ रामजी से ही हुआ। अतः सौंपने की समाप्ति भी उन्हीं में जाकर की। सौंपने में उलटा क्रम होने का यही कारण है। सीताजी में सबसे अधिक प्रीति है। इसलिए सौंपने के पहिले भी विनय किया और सौंपने के बाद भी विनती करती हैं। रामजी ने माता कहा था इसलिए तात कहती हैं। तुम ते कछु न छिपी करुनानिधि तुम हौ अन्तरजामी। अतः अन्तर्यामी कहती हैं। सुजान कहती हैं। सबकी गति को स्पष्ट करते हुए बतलाती हैं कि परिवार को पुरजन को मुझको राजा को सब बेटियाँ प्रिय हैं पर सीता प्राणप्रिय है। सब इसके सुख से सुखी और दुःख से दुःखी हैं। सम्पूर्ण राज्य का सुख इसी के सुखी रहने पर अवलम्बित है। माता है : पुत्री के स्नेह को पहिचानती है। अतः कहती है कि आप भी इस बात का ध्यान रखना कि इसका कितना प्रेम आप पर है और यह कैसी सुशील है। इसे निज दासी अर्थात् अनन्य गति समझकर मानना। यथा : तेहि ते पुनि मोहि प्रिय निज दासा। जेहि गति मोरि न दूसरि आसा।

---

१. यह हरिगीतिका छन्द है।

दो. तुम्ह परिपूरन काम, जान सिरोमनि भावप्रिय।
जन गुन गाहक राम, दोष दलन करुनायतन ॥३३६॥

अर्थ : आप परिपूर्णकाम हैं। सुजानों के शिरोमणि हैं और भाव आपको प्यारा है। हे रामजी ! आप भक्तों के गुणग्राहक हैं। दोष के नाश करनेवाले तथा करुणा के घर हैं।

व्याख्या : यदि कहिये कि ऐसी सुन्दरी का कौन आदर नहीं करेगा। इस पर कहती हैं कि आप परिपूर्णकाम हैं। यथा : सब प्रकार प्रभु पूरन कामा। सुजान शिरोमणि हैं। यथा : जानि सिरोमनि कोसल राऊ। आप भावप्रिय हैं। यथा : रीझत राम सनेह निसोते। आप जनगुनग्राहक हैं। यथा : देखि दोष कबहुँ न उर आने। सुनि गुन साधु समाज बखाने। दोषदलन हैं। यथा : कृपा भलाई आपनी नाथ कीन्ह भल मोर। दूषन भै भूषन सरिस सुजस चारु चहुँओर। और करुणायतन हैं। यथा : करुनामय रघुनाथ सुभाऊ। यह गुणग्राम पाँचवाँ मृगशिरा नक्षत्र है। इसमें तीन तारे चमकते हैं। आकार मृगमुख सा है। यह सुनयना-कृत स्तुति है। इसमें १. जानकीजी का समर्पण २. हाथ जोड़कर विनय और ३. चरण ग्रहण : ये ही तीन तारे चमकते हैं। प्रेम पंक जनु गिरा समानी : कहकर मृगमुखाकार कहा। क्योंकि बोल नहीं सकती। सनेहसानी होने से सियराम प्रेम की जननी कहा।

अस कहि रही चरन गहि रानी। प्रेम पंक जनु गिरा समानी॥
सुनि सनेहसानी वर बानी। बहुविधि राम सासु सनमानी ॥१॥

अर्थ : ऐसा कहकर रानी चरण पकड़े रह गई। मानो प्रेम के दलदल में वाणी समा गई। स्नेह से सनी हुई श्रेष्ठ वाणी सुनकर बहुत विधि से रामजी ने सास का सम्मान किया।

व्याख्या : चरण पकड़े रह जाने का भाव यह कि यही वर लूँगी। यथा : अस वर माँगि चरन गहि रहेऊ। आगे कुछ न कह सकीं। दलदल में जो डूब जाता है वह फिर नहीं निकल पाता। पानी में डूबे हुए को तो जल कई बार ऊपर फेंकता है। अतः रानी की वाणी को दलदल में डूबने की उपमा दी। फिर रानी के मुख से वाणी नहीं निकली।

रामहिं केवल प्रेम पियारा। जान लेहु जो जाननिहारा। सो स्नेह से सानी हुई वाणी सुनकर रामजी द्रवीभूत हो गये। सास से एवमस्तु नहीं कह सकते। अतः उनका सम्मान करना ही एवमस्तु कहना है। आप माता हैं। हम लोग आज्ञाकारी हैं। आपकी आज्ञा हम लोग नहीं हटा सकते। आप व्यर्थ की चिन्ता क्यों करती हैं इत्यादि वाक्यों से समझाना ही बहुत विधि से सम्मान करना है। चरण पकड़े रह गईं। अतः बहुत विधि से सम्मान करके उन्हें तुष्ट किया।

राम बिदा माँगत कर जोरी। कीन्ह प्रनाम बहोरि बहोरी ॥
पाइ असीस बहुरि सिरु नाई। भाइन्ह सहित चले रघुराई ॥२॥

अर्थ : रामजी ने हाथ जोड़कर बिदा माँगा और बारबार प्रणाम किया। आशीर्वाद पाने पर फिर प्रणाम करके भाइयों के सहित रामजी चले।

व्याख्या : सब भाइयों की ओर से रामजी ही बिदा माँगते हैं। बड़े विनय से हाथ जोड़कर बिदा माँगा। सास ने हाथ जोड़कर बातें कही थीं। यथा : जोरि कर पुनि पुनि कहै। सो रामजी भी हाथ जोड़कर ही बिदा माँगते हैं। सास प्रेम के वश होकर बार बार चरणों में गिरी थीं। यथा : प्रेम बिबस पुनि पुनि पद लागी। अतः सरकार भी बारबार प्रणाम करते हैं। अच्छा जाओ : इस भाँति कहकर तो सास बिदा करेंगी ही नहीं। अतः आशीर्वाद देना ही बिदा करना है। जबतक आशीर्वाद नहीं मिलता तबतक बिदाई की स्वीकृति नहीं हुई। जब आशीर्वाद मिला तो उसे बिदाई की स्वीकृति मानकर पुनः प्रणाम किया और भाइयों के साथ चले। तेहि अवसर भाइन्ह सहित राम भानुकुल केतु। चले जनक मन्दिर मुदित बिदा करावन हेतु। भाइयों के साथ आना कहा था। अब भाइयों के साथ जाना कह रहे हैं।

मंजु मधुर मूरति उर आनी। भईं सनेह सिथिल सब रानी ॥
पुनि धीरजु धरि कुँअरि हँकारी। बार बार भेटहिं महतारी ॥३॥

अर्थ : सुन्दर मधुर मूर्ति हृदय में लाकर सब रानी स्नेह से शिथिल हो गईं। फिर धैर्य धारण करके कुँअरियों को बुलाया और माँ बार बार मिलने लगीं।

व्याख्या : रघुनन्दन की मूर्ति ही ऐसी सुन्दर और मधुर है कि दर्शन करने वाले को कभी तृप्ति ही नहीं होती और उस मूर्ति के बिना कल नहीं पड़ता। अतः रघुनन्दन की मनोमयी मूर्ति को अपने हृत्कमल में स्थापन करके स्नेह से सब रानियाँ शिथिल हो गईं।

चारों भाइयों को जाते देखकर और बिदाई का यही अवसर जानकर धैर्य धारण किया। कुँअरियों को बुलाया और बार बार माताएँ भेंटने मिलने लगीं। बिदाई की भेंट और माता का स्नेह ही ऐसा होता है कि एक बार के मिलने से सन्तोष नहीं होता।

पहुँचावहि फिरि मिलहिं बहोरी। बढ़ी परसपर प्रीति न थोरी ॥
पुनि पुनि मिलत सखिन्ह बिलगाई। बाल बच्छ जिमि धेनु लवाई ॥४॥

अर्थ : पहुँचाती हैं और फिर लौटकर मिलती हैं। दोनों ओर परस्पर बड़ी प्रीति बढ़ी। बार बार मिलते हुए सखियों ने अलग किया। जिस भाँति नयी व्यायी हुई गाय के छोटे बच्चे को कोई अलग कर दे।

व्याख्या : माँ मिलकर बेटियों को पहुँचाने चलीं। कर्त्तव्य से प्रेरित होकर

पहुँचाने चलती हैं और स्नेह से लौटकर फिर मिलती हैं। इस भाँति माँ बेटी का प्रेम वियोग के समय और बढ़ने लगा। सखियों ने देखा कि इससे कोई लाभ नहीं है। केवल वियोग की व्यथा ही बढ़ रही है। अतः उन लोगों ने माँ बेटियों को अलग कर दिया। यहाँ पर कवि व्यायी गाय की छोटे बच्चे से अलग होने की उपमा देते हैं। अर्थात् दोनों बाँ बाँ करती परवश एक दूसरे से दूर चली जाती हैं। इससे दोनों ओर का रुदन कहा।

दो. प्रेमबिबस नर नारि सब, सखिन्ह सहित रनिवासु।
मानहुँ कीन्ह बिदेहपुर, करुना बिरहँ निवासु ॥३३७॥

अर्थ : सब स्त्री पुरुष और सखियों के सहित सब रनिवास प्रेम के विवश हो गये। मानो विदेह राजा के नगर में करुणा और विरह ने डेरा डाल दिया है।

व्याख्या : भावार्थ यह कि बड़ा रोना गाना मचा। मङ्गल के समय कवि रोने का शब्द नहीं कहना चाहते। इतना ही कहते हैं कि स्त्री पुरुष सखियाँ रानियाँ कोई अपने वश में नहीं हैं। सब प्रेम के वश हैं। यहाँ स्त्री पुरुष से प्रजा वर्ग से भी अभिप्राय है। इसलिए सम्पूर्ण नगर में करुणा विरह का डेरा डालना कह रहे हैं।

सुक सारिका जानकी ज्याए। कनक पिंजरन्हि राखि पढ़ाए॥
ब्याकुल कहहिं कहाँ बैदेही। सुनि धीरजु परिहरै न केही ॥१॥

अर्थ : जानकीजी ने तोता मैना पाले थे। सोने के पिंजड़ों में रखकर उन्हें पढ़ाया था। वे व्याकुल होकर कह रहे हैं कि वैदेही कहाँ है। यह सुनकर किसका धैर्य नहीं छूटता ?

व्याख्या : सुनकर मनुष्य की बोली का अनुकरण करनेवाले पक्षी भारतवर्ष में दो हैं : एक तोता, दूसरे मैना। यथा : साधु असाधु सदन सुकसारी। सुमिरहिं राम देहिं गनि गारी। ये पालकर पढ़ाये जाते हैं। कहने का भाव यह कि किसी समय भारत में तोता मैना के पढ़ाने में कुछ उठा नहीं रक्खा जाता था। जानकीजी ने भी तोता मैना पाल रक्खे थे। उनका आदर इतना था कि वे सोने के पिंजड़ों में रक्खे गये थे। स्वयं भगवती जनकनन्दिनी उन्हें खिलाती पिलाती और पढ़ाती थीं। इसका प्रभाव इतना पड़ा कि वे मानुषी भाषा में हृद्‌गत भावों के व्यक्त करने में समर्थ हो गये थे। वे जब जानकीजी की विदाई के समय व्याकुल होकर बोलने लगे कि वैदेही कहाँ हैं ? तो सुननेवालों का धैर्य और भी छूट गया।

भये बिकल खग मृग एहि भाँती। मनुज दसा कैसे कहि जाती॥
बंधु समेत जनकु तब आए। प्रेम उमगि लोचन जल छाए ॥२॥

अर्थ : जब पशु पक्षी इस प्रकार विकल हुए तो मनुष्य की दशा कैसे कही जाय। भाई के सहित तब जनकजी आये। प्रेम के उमड़ने से उनकी आँखें अश्रु से परिप्लुत थीं।

व्याख्या : जिस भाँति तोता मैना विकल थे उसी भाँति वहाँ के सब पशु पक्षी विकल थे। वे बोल नहीं सकते थे। परन्तु उनकी दशा देखने से विकलता स्पष्ट व्यक्त थी। कवि कहते हैं कि इस भाँति जानकी सबको प्यारी थीं। मनुष्य में तो चेतना का विकास अधिक है। अतः उनकी दशा अकथनीय हो गयी। इससे सम्पूर्ण जनकपुर के शोकाकुल हो उठने का वर्णन किया।

भाई कुशध्वज के साथ जनकजी : सीरध्वज आये। यहाँ पर कवि ने विदेह न कहकर जनक कहा। जनक शब्द का अर्थ ही पिता है। भाव यह कि पितृभाव से परिपूर्ण होकर आये। भीतर से प्रेम उमगा हुआ है। बाहर आँखों में आँसू भरा हुआ है। भीतर बाहर प्रेममय हो रहे हैं। परन्तु धैर्य धारण किये हुए थे। अपने धैर्य से सबको धैर्य प्रदान करते थे। बड़े भाई का कितना प्रश्रय : अदब था। कुशध्वज भी स्वयं संकाश्यापुरी के राजा हैं। परन्तु जनकजी के सामने मानो उनका अस्तित्व ही नहीं है। जो जनकजी कहें करें वही ठीक। ये किसी बात में कुछ बोलते ही नहीं। एक बार समधी से विनती करने में साथ थे। इस समय विदाई में बड़े भाई के साथ आये हैं। फिर भी कहना सुनना कुछ नहीं। ज्येष्ठोभ्राता पितुःसमः जेठा भाई बाप के तुल्य है। उसके रहते छोटा अपने को सब प्रातिभाव्यों से विनिर्मुक्त मानता था।

सीय बिलोकि धीरता भागी। रहे कहावत परम बिरागी ॥
लीन्हि राय उर लाइ जानकी। मिटी महा मरजाद ग्यान की ॥३॥

अर्थ : सीताजी को देखकर धैर्य भाग गया। 'जनकजी को सब लोग परम विरागी कहते थे। राजा ने जानकी को हृदय से लगा लिया। आज ज्ञान की महामर्यादा मिट गयी।

व्याख्या : महाराज विदेह धैर्य को छोड़ना नहीं चाहते थे। परन्तु सीताजी के देखते ही धैर्य उन्हें छोड़कर भाग गया। अर्थात् स्वयं महाराज विदेह रो पड़े। वे अपने को भी विरागी मानते थे। यथा : सहज बिराग रूप मन मोरा। और लोग भी उनको परम विरागी कहते थे। यथा : मुनि गन गुरु धुर धरी जनक से। ज्ञान अनल मन कसे कनक से। जे बिरंचि निरलेप उपाये। पद्म पत्र जिमि जग जल जाये। इसलिए कवि कहते हैं कि लोग कहते थे और ये स्वयं परम विरागी कहलाते थे। सो प्रेम ने ज्ञान पर विजय पायी। ज्ञान मान जहँ एकौ नाहीं। देख ब्रह्म समान सब मांहीं। यह ज्ञान की महामर्यादा है और जनक सा कोई ज्ञानी भी नहीं। यथा : जासु ज्ञान रवि भव निसि नासा। वचन किरिन मुनि कमल विकासा। उन्हें न कोई द्वेष्य है न प्रिय है। उन्होंने बेटी को कलेजे से लपटा लिया। अब ज्ञान की महामर्यादा कहाँ रही? भाव यह कि यह प्रेम की ज्ञान पर विजय है मोह की नहीं। यथा : तेहि कि मोहममता नियराई। यह सिय राम सनेह बड़ाई।

समुझावत सब सचिव सयाने। कीन्ह बिचारु अनवसरु जाने ॥
बारहिं बार सुता उर लाई। सजि सुंदर पालकी मँगाई ॥४॥

अर्थ : सयाने मन्त्री समझा रहे हैं। तब विचार किया कि यह प्रेमप्रकाश का अवसर नहीं है। सो बार बार बेटी को हृदय से लगाकर सजी हुई सुन्दर पालकी मँगायी।

व्याख्या : अब महाराज जनक को कौन समझावे ? तो सयाने मन्त्री समझाने लगे। यथा : कवित्त

महाराज ! मनहिं सँभारिये समय को देखि पेखि परिवार सबे धीरज धराइये।
वारी सुकुमारी ये कुमारी करुना की भीर धीर धरि भूपति सुतान समुझाइये।
ज्ञान को विधान मुनि करत बखान जस जाहिर जहान मान मन में न लाइये।
जोग करि थपति विचार के पहारन ते पाटि महिपाल प्रेम वारिधि बँधाइये।

दो. प्रेम विवस परिवार सबु, जानि सुलगन नरेस।
कुअँरि चढ़ाई पालकिन्ह, सुमिरे सिद्धि गनेस ॥३३८॥

अर्थ : सब परिवार प्रेम के विवश था। अच्छी लग्न जानकर राजा ने कुँअरियों को पालकियों पर चढ़ाया और सिद्धिदायक गणेश का स्मरण किया।

व्याख्या : पुरजन रानी और राजा का हाल कहकर अब परिवार का हाल कहते हैं कि सब परिवार प्रेम के वश में है। कोई अपने काबू में नहीं। यह काम परिवार का था कि राजकुमारियों को पालकी पर चढ़ावें। पर किसी का इस ओर ध्यान नहीं है। इस बात को राजा ने जानकर और यह समझकर कि अच्छी लग्न आगयी है। नरेश हैं : इस बात का ख्याल किया कि जितनी देर होगी उतनी ही पीड़ा सबकी बढ़ेगी राजकुमारियों को पालकियों पर चढ़ाया। सिद्धिदायक गणेश का स्मरण किया। यथा : जेहि सुमिरत सिधि होइ, गननायक करिबर बदन। करहु अनुग्रह सोइ बुद्धिरासि सुभ गुन सदन।

बहुविधि भूप सुता समुझाई। नारिधरमु कुलरीति सिखाई ॥
दासी दास दिये बहुतेरे। सुचि सेवक जे प्रिय सिय केरे ॥१॥

अर्थ : बहुत प्रकार से राजा ने बेटियों को समझाया। स्त्रीधर्म और कुलरीति सिखायी और दास दासी बहुत से शुचि सेवक जो सीताजी को प्रिय थे उन्हें दिये।

व्याख्या : राजा विदेह ने स्वयं पालकी पर चढ़ने के बाद बेटियों को समझाया। यथा :

दो. सखी जायँगी संग सब, तव प्रिय दासी दास।
सब सुपास सब भाँति जनि मनको करो उदास ॥१॥
मिथिला से पश्चिम अवध मिले जुले दोउ देश।
समाचार सब दिन सुलभ, प्रेम अवधि अवधेश ॥२॥
गुरु गृहवास पुनीत जस, तियहिं ससुर गृहवास।
गृह कारज निज कर करन, अगिन उपासन खास ॥३॥

इष्टदेव पतिदेव इक, सोई मन धन प्रान।
ताके नाते सकल प्रिय, सबही को सनमान ॥४॥

अवध जाइ तस आचरेउ, जस लखाइ तहँ रीति।
पालन पति कुल रीति को, यही सनातन नीति ॥५॥

इस भाँति नारिधर्म कुलरीति सिखाकर समझा बुझाकर विदा किया। जानकी जी प्रधान हैं। अतः उन्हीं का नाम लेते हैं। यहाँ जानकी शब्द उपलक्षण है उससे सब बेटियों का ग्रहण है। तुरंग रथ गज वाजि आदि पहिले भेज चुके हैं। अब बेटियों के साथ दासी दास और शुचि सेवक : जिन सपनेहु निज धर्म न डोले। जो उन लोगों को प्रिय थे उनके साथ भेज दिये। जे प्रिय सिय केरे में शुकसारिका भी आगई।

सीय चलत व्याकुल पुरवासी। होहिं सगुन सुभ मंगल रासी ॥
भूसुर सचिव समेत समाजा। संग चले पहुँचावन राजा ॥२॥

अर्थ : सीताजी के चलते पुरवासी व्याकुल हो उठे। शुभमङ्गल की राशि शकुन हो रहे हैं। ब्राह्मण मन्त्री और समाज समेत महाराज पहुँचाने चले।

व्याख्या : जब पालकियाँ चलीं साथ में शुचिसेवक दास दासियाँ चले तो देखकर पुरवासी विकल हो उठे। इतना प्रेम पुरवासियों का सीताजी पर है। वे जानते हैं कि जब से जानकी का जन्म हुआ तब से राजा का अभ्युदय होता ही चला जाता है। यथा : तब ते दिन दिन उदय जनक को जब ते जानकि जाई। इस विचार से भी अधिक प्रेम है।

बेटियों के आदर के लिए स्वयं महाराज जनक ब्राह्मण मन्त्रिमण्डल तथा समाज समेत पहुँचाने चले। जिस बनाव के साथ विश्वामित्रजी की अगवानी की थी। यथा : संग सचिव सुचि भूरि भट भूसुर वरगुरु ग्याति। उसी बनाव के साथ पहुँचाने भी जा रहे हैं। वधुओं का अयोध्या को प्रस्थान है। अतः मङ्गलमय कल्याणमय अभिमतफलदातार सगुन हो रहे हैं।

समय बिलोकि बाजने बाजे। रथ गज वाजि बरातिन्ह साजे ॥
दसरथ विप्र बोलि सब लीन्हे। दान मान परिपूरन कीन्हे ॥३॥

अर्थ : समय देखकर बाजे बजने लगे। बारातियों ने रथ हाथी घोड़े सजाये। महाराज दशरथ ने सब ब्राह्मणों को बुलाया और दान मान से उन्हें परिपूर्ण कर दिया।

व्याख्या : पालकी के साथ राजा जनक को पहुँचाने जाते देखकर बारात की ओर से बाजा बजा। बारातियों ने साथ जाने के लिए हाथी घोड़े और रथ सजाये। यही समय है डोला के साथ बारात के हो जाने का। इधर महाराज दशरथ ने सारे मैथिल ब्राह्मणों को बुलाया और दान तथा सम्मान से उन्हें परिपूर्ण किया।

दान के साथ सम्मान परम आवश्यक है। क्योंकि असत्कृत और अवज्ञात दान तामस हो जाता है। यथा : असत्कृतमवज्ञातं तत्तामसमुदाहृतम्। गी.।

चरन सरोज धूरि धरि सीसा। मुदित महीपति पाइ असीसा॥
सुमिरि गजाननु कीन्ह पयाना। मंगलमूल सगुन भये नाना॥४॥

अर्थ : ब्राह्मणों के चरणकमलों की धूलि सिर पर रक्खी और आशीर्वाद पाकर प्रसन्न हो गये। तब गजानन का स्मरण करके प्रयाण किया : रवाना हुए। नाना प्रकार के मङ्गलमूल सगुन हुए।

व्याख्या : ब्राह्मणों के चरणों की धूलि विपत्तिरूपी घने अन्धकार के लिए सहस्र सूर्यों के समान है। चाहे हुए पदार्थ के देने के लिए तो साक्षात् कामधेनु हैं। अपार संसार समुद्र का तो मानो सेतु ही है। ऐसी ब्राह्मण चरणों की धूलि मुझे पवित्र करे : विपद्घनध्वान्तसहस्रभानवः समीहितार्थार्पणकामधेनवः। अपारसंसार-समुद्रसेतवः पुनन्तु मां ब्राह्मणपादरेणवः। इस मन्त्र से ब्राह्मण पाद धूरि धारण की जाती है। महाराज ने विधान के साथ ब्राह्मणों की चरण धूलि सिर पर चढ़ायी और आशीर्वाद पाकर प्रसन्न हुए। तब भगवान् गजानन का स्मरण करके प्रयाण किया। क्योंकि गजानन विघ्नहर्त्ता मङ्गलकर्त्ता तथा प्रथम पूज्य हैं। प्रयाण करते ही नाना मङ्गल मूल शकुन हुए। यथा : जासु सकल मंगलमय कीती। तासु पयान सगुन यह नीती।

दो. सुर प्रसून बरषहिं हरखि, करहिं अपछरा गान।
चले अवध पति अवधपुर, मुदित बजाइ निसान॥३३९॥

अर्थ : देवता हर्षित होकर पुष्पवृष्टि करने लगे। अप्सराएँ गान करने लगीं। अयोध्याधिपति अयोध्या को डङ्का देकर चले।

व्याख्या : बारात आने पर : सुमन बरखि सुर हनहिं निसाना। नाक नटी नाचहिं करि गाना : कहा था। अब बारात चलते समय हर्षित होकर देवताओं का फूल बरसाना और अप्सराओं का गान कहते हैं। महाराज अयोध्याधिपति जनकपुर चलते समय शंख बजाकर चले थे। यथा : चले महीपति संख बजाई। अपने पुर चलते समय डङ्का देकर जाते हैं।

नृप करि बिनय महाजन फेरे। सादर सकल माँगने टेरे॥
भूषन बसन बाजि गज दीन्हे। प्रेम पोषि ठाढ़े सब कीन्हे॥१॥

अर्थ : महाराज ने विनय करके महाजनों को लौटाया और आदर के साथ सब मंगनों को बुलवाया। उन्हें अलङ्कार, वस्त्र, घोड़े और हाथी दिये और प्रेम से परिपुष्ट करके : अपने पैरों पर खड़ा कर दिया।

व्याख्या : महाजन का अर्थ जनसमुदाय भी है और प्रतिष्ठित पुरुष भी है। यहाँ पर जनसमुदाय के अर्थ में ही महाजन शब्द प्रयुक्त हुआ मालूम पड़ता है।

क्योंकि पहले कह आये हैं कि : दसरथ गवन सोहाय न काहू। महाराज दशरथ से सब प्रीति करने लग गये थे। उनका प्रस्थान सुनकर जनसमुदाय इकट्ठा हो गया। प्रतिष्ठित जन का महाराज जनक के समाज के साथ रहना ही अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है। सो महाराज दशरथ ने सबसे विनय करके उनको लौटाया। परम उदार के यहाँ ही याचक का सत्कार सम्भव है। नहीं तो याचक का सत्कार कौन करता है? यथा : दीनदयाल दिवोइअ भावै जाचक सदा सोहाहीं। सो महाराज दशरथ ने सत्कार के साथ याचकों को बुलवाया। महाराज पहिले ब्राह्मणों को दान देते हैं तत्पश्चात् याचकों का सत्कार करते हैं। अतः उन्हें कपड़े, गहने, घोड़े, हाथी दिये और प्रेम से उन्हें पुष्ट किया। जिस वस्तु का उन्हें अभाव था उसकी पूर्ति की। उन्हें इस योग्य बना दिया कि वे अपने पैरों पर खड़े हो सकें। स्वयं अपना काम चला लें। याचकवृत्ति छोड़ दें।

बार बार बिरदावलि भाखी। फिरे सकल रामहिं उर राखी॥
बहुरि बहुरि कोसलपति कहहीं। जनक प्रेमबस फिरै न चहहीं॥२॥

अर्थ : बार बार स्तुतियाँ करते हुए रामजी को हृदय में रखकर सब फिरे। बार बार कोसलपति कह रहे हैं। पर प्रेमवश महाराज जनक लौटना नहीं चाहते।

व्याख्या : गद्यपद्यमयीराजस्तुतिर्विरुदमुच्यते। गद्यपद्यमयी वाणी में राजा की स्तुति को विरुद कहते हैं। सो याचकों ने कृतज्ञता प्रकाश के लिए की। बार बार गद्यपद्यमयी वाणी में राजा की स्तुति करके और रामजी को हृदय में रखकर सब लौटे। याचक लोग दीन हैं। रामजी दीनबन्धु हैं। यथा : जेहि दीन पियारे वेद पुकारे द्रवौ सो श्री भगवाना। वे उन्हें प्यारे हैं। अथवा उनके वे प्यारे हैं। अतः उनके हृदय में रह गये। मंगनों के दोनों लोकों का अभाव पूरा हुआ। भूषन बसन बाजि गज से इस लोक का अभाव और रामजी के हृदय में रखने से परलोक का अभाव पूरा हुआ।

महाराज दशरथ का एक बार कहना यथेष्ट है। पर यहाँ एक बार कहते ही मान लेने से श्रद्धा में न्यूनता सूचित होती है। एक बार कहने से सेवा वही छोड़ सकता है जो अनिच्छापूर्वक सेवा करता हो। यथा : बार बार मुनि आज्ञा दीन्ही। रघुबर जाइ सयन तब कीन्ही। जनकजी प्रेम के वश में हैं। आज्ञा नहीं मानते चले ही जा रहे हैं। नियम का निर्वाह नहीं है। उनका जी फिरने को नहीं चाहता।

पुनि कह भूपति बचन सुहाए। फिरिअ महीस दूरि बड़ि आये॥
राउ बहोरि उतरि भये ठाढ़े। प्रेम प्रबाह बिलोचन बाढ़े॥३॥

अर्थ : फिर राजा दशरथ ने सुहावने वचन कहे : राजन्! आप बहुत दूर आगये अब लौट जाइये। फिर महाराज दशरथ सवारी से उतरकर खड़े हो गये। प्रेम का स्रोत नेत्रों में बढ़ आया।

व्याख्या : राजा जनक को लौटते न देखकर चक्रवर्तीजी ने ऐसे वचन कहे

जिसमें लौट जांय। भाव यह कि ग्राम की सीमा तक ही पहुँचाने का नियम है। आप तो बहुत दूर चले आये। यह कहने पर भी जब जनकजी न लौटे तो चक्रवर्तीजी सवारी से नीचे उतर पड़े। उनसे इतना आदर सह्य न हुआ। उतरने का भाव यह कि आप लौटिये तो हम आगे बढ़ें। बारात रुक गई। सब लोग सवारी से नीचे उतर पड़े। चक्रवर्तीजी के आँखों में आँसू आगया। मानो प्रेम ही उठकर आँख तक आगया।

तब विदेह बोले कर जोरी। वचन सनेह सुधा जनु बोरी॥
करौं कवन विधि विनय बनाई। महाराज मोहि दीन्हि बड़ाई॥४॥

अर्थ : तब विदेह ने हाथ जोड़कर मानो स्नेहामृत से डुबाये हुए वचन बोले। मैं बनाकर किस विधि से विनय करूँ। महाराज ने मुझे बड़ाई दी।

व्याख्या : चक्रवर्तीजी के खड़े हो जाने से यह निश्चय हो गया कि अब अधिक दूर तक पहुँचाना सम्भव नहीं। अतः विदाई का समय है। उस समय कन्यापक्ष से विनय प्राप्त है। अतः जनकजी ऐसा वचन बोले जिससे स्नेह टपका पड़ता था। जनकजी ने कहा : विनय सँवारकर किया जाता है। पर मुझे विनय के लिए शब्द नहीं मिलते जिससे विनय को सँवारूँ। इतना ही कह सकता हूँ कि महाराज ने मुझसे यह सम्बन्ध नहीं किया मुझे बड़ाई दी है। जिसने बड़ाई दी उससे किस भाँति विनय करें। विनय करने में भेद को स्थान देना पड़ता है।

दो. कोसलपति समधी सजन, सनमाने सब भाँति।
मिलनि परसपर विनय अति, प्रीति न हृदय समाति॥३४०॥

अर्थ : कोसलेश ने अपने सजन समधी का सब भाँति से सनमान किया। परस्पर मिले। एक ने दूसरे से अत्यन्त विनय किया। क्योंकि प्रीति हृदय में समाती नहीं थी।

व्याख्या : सजन शब्द स्वजन या सज्जन शब्द का तद्भव रूप है। आज भी इसका प्रयोग समधी या उनके बराबरी भाई या प्रेमी के लिए होता है। सो कोशलपति ने अपने समधी सजन के भाव से मनसा वाचा कर्मणा सम्मान किया। परस्पर मिलना शरीर से अति विनय वाणी से और अति प्रेम हृदय से हुआ।

मुनि मंडलिहि जनक सिरु नावा। आसिरबाद सबहिं सन पावा॥
सादर पुनि भेंटे जामाता। रूप सील गुननिधि सब भ्राता॥१॥

अर्थ : मुनिमण्डली को जनकजी ने सिर नवाया। सबसे आशीर्वाद पाया। आदर के सहित दामादों से मिले। सब भाई रूप शील और गुण के निधान थे।

व्याख्या : मुनिमण्डली सदा चक्रवर्तीजी के साथ रहती थी। यथा : साधु समाज संग महिदेवा। राजा जनक ने चक्रवर्तीजी से मिलने के बाद मुनिमण्डली को प्रणाम किया। प्रत्येक मुनि ने उनको आशीर्वाद दिया। इसके बाद आदर के सहित

चारों जामाताओं से मिले। कवि जानकी का भाग्य कहते हैं कि चारों भाई रूप शील और गुण के निधान थे : चारिउ रूप सील गुन धामा। कहउ तात केहि भाँति कोउ करै बड़ाई तासु। रामलखन तुम सत्रुहन सरिस सुअन सुचि जासु।

जोरि पंकरुह पानि सुहाए। बोले बचन प्रेम जनु जाए॥
राम करौं केहि भाँति प्रसंसा। मुनि महेस मन मानस हंसा॥२॥

अर्थ: सुन्दर करकमलों को जोड़कर ऐसे वचन बोले मानो वे प्रेम से उत्पन्न हैं। हे राम! तुम्हारी प्रशंसा किस प्रकार से करूँ। तुम मुनि और महेश के मनमानस के हंस हो।

व्याख्या : चक्रवर्तीजी से विनय करना प्राप्त था। इसलिए : करहुँ कवन विधि विनय बड़ाई कहा था। रामजी जामाता हैं। इनकी प्रशंसा करना प्राप्त है। पर न तो चक्रवर्तीजी के विनय की विधि मिल सकी और न राम की प्रशंसा करने की विधि मिल रही है। कारण कहते हैं कि सबसे बड़े दो हैं : गुरु याज्ञवल्क्य और इष्टदेव महेशजी। सो उन दोनों के ही मनमानस के तुम हंस हो। तुम्हारी बड़ाई कैसे करें। यथा : जय महेस मनमानस हंसा। तथा : मुनिमन मानस हंस निरंतर। हंस कहने का भाव यह है कि प्रधान निवासी हो। दूसरे पक्षी तो अन्यत्र भी मिलते हैं। पर मराल तो मानस में ही मिलते हैं। यथा : जहँ तहँ काक उलूक बक मानस सकृत मराल।

करहिं जोग जोगी जेहि लागी। कोहु मोहु ममता मद त्यागी॥
व्यापकु ब्रह्म अलखु अविनासी। चिदानंदु निरगुन गुनरासी॥३॥

अर्थ : जिसके लिए क्रोध मोह ममता और मद त्याग करके योगी लोग योग करते हैं। जो व्यापक ब्रह्म, अलख, अविनाशी, चिदानन्द, निर्गुण और गुणराशि हैं।

व्याख्या : चित्तवृत्ति के निरोध को ही योग कहते हैं। उसका फल द्रष्टा के स्वरूप में अवस्थान है। यथा : योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः। तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्। अतः द्रष्टा के स्वरूप में अवस्थान के लिए ही योगी योग करते हैं और द्रष्टा रामजी हैं। यथा : नान्योऽतोऽस्ति द्रष्टा नान्योऽतोऽस्ति श्रोता नान्योऽतोऽस्ति विज्ञाता। उनसे अन्य न कोई द्रष्टा है न श्रोता है न विज्ञाता है। योग करने में क्रोध, मोह, ममता और मद का त्याग करना पड़ता है। क्योंकि इनके रहते चित्तवृत्ति का निरोध नहीं हो सकता। क्रोध से द्वेष, मोह से अविद्या, ममता से राग और मद से अस्मिता कहा। इस भाँति पञ्चपर्वा अविद्या के चार पर्व कहे। अभिनिवेश नहीं कहा। क्योंकि अभिनिवेश का न होना तो फल कोटि में है। जिसे अभिनिवेश नहीं उसे योग की आवश्यकता ही क्या है।

अब रामजी का स्वरूप कहते हैं। व्यापक कहने से ही व्यापक व्याप्य और व्याप्ति की त्रिपुटी आँख के सामने आ खड़ी होती है। जगत् व्याप्य है। रामजी

व्यापक हैं। सन्देह उठता है कि व्यापक की इयत्ता भी कम से कम व्याप्त के परिमाण इतनी होगी। इसलिए ब्रह्म कहा। अत्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम्। वह जगत् से भी बड़ा है। ब्रह्म का अर्थ ही बड़ा है। वह विज्ञाता है। ज्ञेय नहीं है। इसलिए अलख है। क्योंकि विज्ञाता को कोई कैसे जाने : विज्ञातारं वा अरे केन विजानीयात्। इसी बात को गोस्वामीजी ने दोहावली में कहा है : अलख अलख सब कोउ कहै अलखहिं लखा न कोइ। अलख लखा तिन सब लखा लखा अलख नहिं होइ। अब उनका स्वरूप कहते हैं। अविनाशी कहकर सत् कहा। तत्पश्चात् चिदानन्द कहते हैं। यथा : राम सच्चिदानंद दिनेसा। निर्गुण कहकर निर्विशेष कहा और गुणराशि कहकर जगन्मय कहा। यथा : निर्गुण सगुण विषम समरूपं। तथा : विस्वरूप रघुबंसमनि करहु वचन विस्वासु। लोक कल्पना वेद कर अंग अंग प्रति जासु।

मन समेत जेहि जान न बानी। तरकि न सकहिं सकल अनुमानी॥
महिमा निगमु नेति कहि कहहीं। जो तिहुँ काल एकरस रहहीं॥४॥

अर्थ : मन के साथ जिसे वाणी नहीं जानती और सभी अनुमान करनेवाले जिसपर तर्क नहीं कर सकते। जिसकी महिमा को निगम नेति कहकर निरूपण करता है और जो तीनों काल में एकरस रहता है।

व्याख्या : गो गोचर जहँ लगि मन जाई। सो सब माया जानेहु भाई। जहाँ तक मन की दौड़ है वहाँ तक तो माया है। अतः मन उसे नहीं जान सकता। जिस बात को मन चिन्तन करता है उसी को वाणी भी कहती है। अतः जहाँ मन की पहुँच नहीं है वहाँ वाणी की पहुँच भी नहीं हो सकती। इसीलिए : मन समेत जेहि जान न बानी कहा। अनुमान करनेवाले तर्क नहीं कर सकते : कहने का भाव यह कि वह बुद्धि का विषय भी नहीं है। क्योंकि परिच्छिन्न पदार्थ ही बुद्धिगम्य हो सकता है। अनादि अनन्त में बुद्धि काम नहीं करती। यथा : न तत्र चक्षुर्गच्छति न वाग्गच्छति नो मनो न विद्मो न विजानीमः। जिसे वेद भी नेति कहकर कहता है इदमित्थम् रूप से कुछ नहीं कहता। यथा : अदृष्टमव्यवहार्यम-ग्राह्यमलक्षणमचिन्त्यमव्यपदेश्यमेकात्मप्रत्ययसारं प्रपञ्चोपशमं शान्तं शिवमद्वैतं मन्यन्ते स आत्मा स विज्ञेयः। अथवा नेति नेति : न स्थूल न सूक्ष्म कहकर बतलाता है। एक रस से वस्तुतः परिच्छेदशून्य कहा। तिहुकाल एक रस से कालतः परिच्छेदशून्य कहा और अहई से देशतः परिच्छेदशून्य कहा।

दो. नयन विषय मोकहुँ भयेउ, सो समस्त सुख मूल।
सबइ लाभु जग जीव कहँ, भये ईसु अनुकूल॥३४१॥

अर्थ : वही सब सुखों का मूल मेरे नयन का विषय हुआ है। शिवजी की अनुकूलता से जीव को सब कुछ सुलभ हो जाता है।

व्याख्या : वह विषयी नयन का विषय हुआ। यह अघटित घटना उस अघटित घटना पटीयसी माया की करामात है। यथा : सो अवतरिहि मोरि यह

माया। तथा : मायामानुषरूपिणौ रघुवरौ। वह सुखमूल है। विषयानन्द का भी मूलभूत वही ब्रह्मानन्द है। माया प्रेरक शिव की कृपा से जीव को सब कुछ सुलभ हो जाता है। यथा : इन सम काहु न सिव अवराधे। काहु न इन समान फल लाधे। भावार्थ यह कि शिवजी की कृपा से मुझे तुम्हारा दर्शन मिला। नहीं तो ब्रह्मदर्शन और किसी प्रकार से सम्भव नहीं। यथा : कोउ नहिं सिव समान प्रिय मोरे। असि परतीति तजहु जनि भोरे।

सबहिं भाँति मोहिं दीन्हि बड़ाई। निज जन जानि लीन्ह अपनाई॥
होइ सहस दस सारद सेखा। करहिं कलप कोटिक भरि लेखा॥१॥

अर्थ : सब प्रकार से मुझे बड़ाई दी। अपना भक्त जानकर अपना कर लिया। यदि दस सहस्र सारद शेष हों और करोड़ कल्प तक लेखा करें।

व्याख्या : जनकजी ने चक्रवर्तीजी से कहा : महाराज मोहि दीन्ह बड़ाई। क्योंकि चक्रवर्तीजी से बराबर का सम्बन्ध हुआ। परन्तु रामजी के साथ तो बड़े का सम्बन्ध स्थापित हुआ। इसलिए उनसे कहते हैं : सबहि भाँति मोहि दीन्ह बड़ाई। मुझे अपना बड़ा बना लिया। तुम सदा दासों को बड़ाई देते हो। यथा : संतत दासन्ह देहु बड़ाई। सो मुझे भी भक्त जानकर इस सम्बन्ध से अपना कर लिया। श्वसुर दामाद का सम्बन्ध दृढ़ स्थापित हो गया।

सारदा ऊर्ध्वस्थित लोक की वक्ता और शेष अधःस्थित लोक के वक्ता हैं। स्वर्ग में महासुख है। पाताल बिलस्वर्ग है। इसमें वहाँ से भी अधिक भोग है। मर्त्यलोक में ऐसा सुख कहाँ? अतः सुख की दृष्टि से स्वर्ग और पाताल में भाग्यवानों का निवास है। अतः वहीं के वक्ताओं को कहा। सो सारद और शेष एक ही एक हैं। यदि उनकी संख्या दस सहस्र हो अथवा ऊर्जित सुख के जानकार अत्युत्तम कोटि के वक्ताओं की संख्या भी अत्यधिक हो और वे कोटि कल्प लेखा करें। सारदा और शेष की आयु तीन लाख साठ हजार कल्प है। सो इनकी इतनी आयु बढ़े कि कोटि कल्प की हो जाय और वे यावज्जीवन लेखा करते ही रहें अर्थात् अत्यधिक समय तक लेखा करते रहें।

मोर भाग्य राउर गुन गाथा। कहि न सिराहिं सुनहु रघुनाथा॥
मैं कछु कहहुँ एक बल मोरे। तुम्ह रीझहु सनेह सुठि थोरे॥२॥

अर्थ : मेरे भाग्य की और आप के गुणों की गाथा कहने से समाप्त नहीं हो सकती। मैं कुछ कहता हूँ मुझे एक बल है कि तुम अत्यन्त थोड़े से प्रेम पर रीझ जाते हो।

व्याख्या : फिर भी मेरे भाग्य की लेखा नहीं कर सकते और न आपकी गुणगाथा की लेखा हो सके। क्योंकि आपकी कृपा से ही मेरा भाग्य ऐसा हुआ। भाव यह कि सरकार की स्वरूपज्ञान होने से अपने भाग्य की बड़ाई की कल्पना कर रहे हैं। जलसीकर महिरज गनि जाहीं। रघुपति गुन नहिं बरनि सिराहीं।

जिसने सगुण मूर्तिरूपी दूरवीक्षण यन्त्र से सरकार के स्वरूप का दर्शन किया है वही उनके गुणगण के आनन्त्य को समझ सकता है। राजा जनक कहते हैं कि योगादि यत्न का भरोसा नहीं। यथा : मुनि त्यागत योग भरोस सदा। बहुत थोड़े से स्नेह पर तुम्हारे रीझनेवाले स्वभाव का भरोसा है। इसीलिए मैं कुछ कहता हूँ। नहीं तो तुम्हारी महिमा को कहना ही उसे परिच्छिन्न करना है।

बार बार माँगउँ कर जोरे। मनु परिहरइ चरन जनि भोरे॥
सुनि वर वचन प्रेम जनु पोषे। पूरनकाम राम परितोषे॥३॥

अर्थ : बार बार हाथ जोड़कर वर माँगता हूँ कि मेरा मन चरणों को भूलकर भी न छोड़े। प्रेम से पोषे हुए वर वचनों को सुनकर पूर्णकाम राम सन्तुष्ट हुए।

व्याख्या : मन परिहरै चरन जनि भोरे। यह बात क्रियासाध्य नहीं है। यह तो कृपासाध्य है। क्योंकि प्रेरयिता मन के तो तुम्हीं हो। यथा : केनेषितं पतति प्रेषितं मनः। श्रोत्रस्य श्रोत्रं मनसो मनो यत् वाचो ह वाच सउ प्राणस्य प्राणः। तुम्हीं प्राण के प्राण हो। यथा : प्राण प्राण के जीवन जीके। तुम्हारी ही प्रेरणा से मन मनन करता है। अतः यही वर हाथ जोड़कर बार बार माँगता हूँ कि मन को ऐसी प्रेरणा कीजिये कि वह आपके चरणों को न छोड़े। पहिले प्रेम जनु जाये वचन कहा था। अब प्रेम जनु पोषे कहते हैं। पूर्णकाम का परितोष केवल प्रेम से होता है। सो सरकार परितुष्ट हुए। इससे वरदान देना कहा।

यह छठा गुणग्राम आर्द्रा नक्षत्र है। इसमें एक तारा चमकता है। आकार मणि सा है। यह जनककृत स्तुति है। फल है : जनक सिय राम प्रेम के। इसमें एक तारा ईश की अनुकूलता चमक रही है। यही चिन्तामणि है। इसी से सब सुलभ हुआ। बोले वचन प्रेम जनु जाये कहकर इस स्तुति का सियराम प्रेम का जनक होना सूचित कर दिया।

करि वरविनय ससुर सनमाने। पितु कौसिक वसिष्ठ सम जाने॥
विनती बहुरि भरत सन कीन्ही। मिलि सप्रेम मुनि आसिष दीन्ही॥४॥

अर्थ : श्रेष्ठ विनय करके श्वसुर का सम्मान किया। उन्हें पिता दशरथ तथा गुरु कौशिक और वसिष्ठ के समान जाना। फिर भरतजी से राजा ने बहुत विनती की और प्रेम से मिलकर आशीर्वाद दिया।

व्याख्या : एवमस्तु नहीं कहा। बड़े के वरदान माँगने पर सरकार एवमस्तु नहीं कहते। विनय और सम्मान से अपना परितोष व्यक्त कर देते हैं। यहाँ ससुर सनमाने कहने का भाव यह कि जैसे दामाद श्वसुर का सम्मान करता है उसी भाँति सम्मान और विनय किया। सीताजी के पिता होने से पितासम महाविद्या सीताजी के दान देने से कौसिकसम। जिसका सहज विराग रूप मन हो उसके राज्य ग्रहण अथवा दारा ग्रहण का कोई कारण नहीं है। जामाता रूप में रामजी की प्राप्ति की आशा से राज्य ग्रहण किया। जिस भाँति वसिष्ठजी ने यजमान रूप

से रामजी की प्राप्ति की आशा से पौरोहित्य स्वीकार किया था इसलिए : वसिष्ठ सम जाना। अथवा उनकी कन्या को ग्रहण किया है इस सम्बन्ध से वे गुरु हैं। इसलिए : कौसिक वसिष्ठ सम जाना।

फिर कुशध्वज के बड़े जामाता होने से भरतजी की बड़ी विनती की। भगवती माण्डवी सीताजी से छोटी तथा उर्मिला से बड़ी थीं। इधर भरतजी रामजी से छोटे तथा लक्ष्मणजी से बड़े थे। इसलिए रामजी के बाद भरतजी से मिले और आशीर्वाद दिया। सुषुप्ति से जगत् का आरम्भ है और भरतजी सुषुप्ति के विभु हैं। अतः व्यवहार से काम लिया। रामजी में ब्रह्मभाव होने से उन्हें आशीर्वाद नहीं दिया था : इन्हें दिया।

दो. मिले लखन रिपुसूदनहि, दीन्हि असीस महीस।
भए परसपर प्रेम वस, फिरि फिरि नावहिं सीस ॥३४२॥

अर्थ : लक्ष्मण और शत्रुघ्नजी से मिले और राजा ने आशीर्वाद दिया। परस्पर प्रेमवश हो गये। घूम घूमकर सिर नवा रहे हैं।

व्याख्या : लक्ष्मणजी और शत्रुघ्नजी से प्रेम से मिलकर राजा ने आशीर्वाद दिये। जाग्रत् और स्वप्न में स्पष्ट जगत् का भान होने से उनके विभुओं के साथ केवल व्यवहार से काम लिया। जनकजी प्रेमवश उन्हें देखते हैं और वे प्रेमवश घूम घूमकर उन्हें प्रणाम करते हैं। अथवा फिरि फिरि का अर्थ बार बार है। प्रेमवश उन्हें बार बार प्रणाम करते हैं।

बार बार करि विनय बड़ाई। रघुपति चले संग सब भाई ॥
जनक गहे कौसिक पद जाई। चरन रेनु सिर नयनन्हि लाई ॥१॥

अर्थ : बार बार विनय और बड़ाई करके रामजी सब भाइयों के साथ चले। जनकजी ने जाकर विश्वामित्र का चरण पकड़ा और चरण की धूलि को सिर और आँखों में लगाया।

व्याख्या : बार बार जनकजी ने हाथ जोड़े थे। यथा : बार बार माँगउ करजोरे। अतः बारबार विनय और स्तुति करके रामजी सब भाइयों के साथ चले। भाव यह कि चक्रवर्तीजी के सवारी से उतरने पर रामजी भाइयों के सहित सवारी पर से उतरकर वहाँ आगये थे। अब भाइयों सहित सवारी पर सवार होने के लिए चले। सास से विदा होने पर भाइन्ह सहित चले रघुराई लिखा था। अब श्वसुर से विदा होने पर भी वही लिखते हैं : रघुपति चले संग सब भाई।

महाराज के ठहर जाने पर मुनिमण्डली वहाँ आगई। चारों भाई रामजी आदि आगये। पर विश्वामित्रजी नहीं आये। जानते थे कि जनक कृतज्ञता प्रकाश करेंगे। पर यह वे नहीं चाहते थे। कोप प्रकाश करते हुए कृपा करने का उनका स्वभाव है। जिसमें कोई यह न कहे कि विश्वामित्रजी की कृपा से कल्याण हुआ। देखने में विश्व के अमित्र पर वास्तव में विश्व के मित्र थे। पर कृतज्ञ हृदय अपने

कल्याण करनेवाले को खोज लेता है। जनकजी ने जाकर उनके चरण पकड़ लिये। जामाताओं की प्राप्ति इन्हीं चरणों के कारण हुई। अतः चरणरेणु को माथे पर रक्खा और समस्त सुख मूल रामजी उनके नयन विषय भी उसी चरणरेणु के प्रसाद से हुए थे। इसलिए उसे आँखों में लगाया।

सुनु मुनीस बर दरसन तोरे। अगमु न कछु प्रतीति मन मोरे॥
जो सुख सुजस लोकपति चहहीं। करत मनोरथ सकुचत अहहीं॥२॥

अर्थ : हे मुनीश्वर ! सुनिये। आपके दर्शन से कुछ भी दुर्लभ नहीं है। यह मेरा विश्वास है। जिस सुख और सुयश को लोकपाल चाहते हैं और मनोरथ करते समय उन्हें सङ्कोच होता है।

व्याख्या : जब से विश्वामित्रजी का आगमन हुआ है। तभी से सब कार्य सिद्धि हो रही है। जनकराज को इसका अनुभव है। पहले भी कहा था : यह सब सुख मुनिराज तव कृपा कटाक्ष प्रभाउ। आज भी कह रहे हैं : नयन विषय मोकहँ भयउ सो समस्त सुखमूल। इसलिए कहते हैं कि आपके दर्शन देने पर कुछ भी दुर्लभ नहीं रह जाता। ब्रह्मदर्शन भी सुलभ हुआ और दुर्लभ सुख सुयश भी सुलभ हुआ। सुख यथा : इनहि बिलोकत अति अनुरागा। बरबस ब्रह्म सुखहि मन त्यागा। सुयश यथा : सो पद पखारत भाग्य भाजन जनक जय जय सब कहैं। यह सुख और यश लोकपति को प्राप्त नहीं। उन्हें इस सुख और सुयश का मनोरथ करने में सङ्कोच होता है कि मेरा इतना भाग्य कहाँ कि यह सुख और सुयश मुझे प्राप्त हो। प्रकाश भी नहीं करते कि लोग हँसेंगे कि किस करणी पर यह ऐसा मनोरथ करते हैं।

सो सुख सुजस सुलभ मोहि स्वामी। सब सिधि तव दरसन अनुगामी॥
कीन्ह बिनय पुनि पुनि सिरु नाई। फिरे महीसु आसिषा पाई॥३॥

अर्थ : हे स्वामी ! जो सुख और सुयश मुझे सुलभ हुआ। ये सब सिद्धि आपके दर्शन की अनुगामिनी हैं। बार बार सिर नवाकर विनय किया और आशीर्वाद पाकर राजा लौटे।

व्याख्या : इस सुख, सुयश और ब्रह्मदर्शन रूपी सिद्धियों के लिए : जिनके प्राप्त्यर्थ लोकपाल तरसते हैं मुझे कुछ करना न पड़ा। आपके दर्शन के पीछे पीछे चली आईं। इस प्रकार से बार बार चरणों में सिर नवाकर विनय किया। तब मुनिजी ने अनेक आशीर्वाद दिये। यहाँ आशिषा बहुवचन है। उन्हें पाकर राजा जनक लौट गये।

चली बरात निसान बजाई। मुदित छोट बड़ सब समुदाई॥
रामहि निरखि ग्राम नर नारी। पाइ नयन फलु होहिं सुखारी॥४॥

अर्थ : डङ्का देकर बारात चली। छोटे बड़े सब समाज का समाज मुदित था। रामजी को देखकर नर नारी नेत्रों का फल पाकर सुखी होते थे।

व्याख्या : चक्रवर्तीजी के रुक जाने से सारी बारात रुक गई। डङ्का वजना बन्द हो गया। महाराज जनक के लौटने पर ही चक्रवर्तीजी सवार हुए। बारात चल पड़ी। डङ्का बजने लगा। जनकजी के विनय पर सारी बारात प्रसन्न है। अथवा सबको घर चलने की खुशी है। बारात आगे बढ़ी। नगर छूट गया। ग्राम मिले। विश्वामित्रजी ने कहा था : करहु सफल सबके नयन सुंदर वदन देखाय। सो नगरवासियों के तो नयन सुफल हो चुके। अब ग्रामवासियों के हो रहे हैं।

दो. बीच बीच वर वास करि, मग लोगन्ह सुख देत।
अवध समीप पुनीत दिन, पहुँची आइ जनेत ॥३४३॥

अर्थ : बीच बीच में सुन्दर पड़ाव करती हुई और रास्ते के लोगों को सुख देती हुई बारात अयोध्या के समीप पुनीत दिन में जा पहुँची।

व्याख्या : बीच बीच वरवास बनाए। सुरपुर सरिस संपदा छाए। उन सुन्दर पड़ावों पर टिकती हुई मार्ग के निवासियों को नयनफल रूपी सुख देती हुई अवध के समीप पहुँची। अयोध्या से चलकर बारात शुभ लग्न में जनकपुर पहुँची थी। यथा : प्रथम बरात लगन ते आई। ताते पुर प्रमोद अधिकाई। और अब जनकपुर लौटकर अयोध्या के समीप भी शुभ दिन को पहुँची।

हने निसान पनव वर बाजे। भेरि संख धुनि हय गय गाजे ॥
झाँझि बिरव डिंडिमी सुहाई। सरस राग बाजहिं सहनाई ॥१॥

अर्थ : डङ्के पर चोट पड़ी। श्रेष्ठ ढोल बजने लगे। भेरी और शंख की ध्वनि हुई। घोड़े हाथी गरजने लगे। झाँझ, वीरव, सुन्दर डिंडिमी और शहनाई सरस राग से बजने लगे।

व्याख्या : नगर के सन्निकट आते ही बारात का उत्साह बढ़ा। अतः सब बाजे बज उठे। इस समय बाजा बजना नगरवासियों को सचेत करना है कि बारात आगई। हने निसान : निसान के लिए चोट पड़ना लिखते हैं। यथा : परा निसानन्हि घाऊ। डङ्के पर बलपूर्वक प्रहार किया जाता है। तभी वह बजता है और ध्वनि भी उसकी बड़ी गम्भीर और दूर तक पहुँचानेवाली होती है। सो निशान पणव भेरी और शंख वजे। ये चार बाजे बारात के आगे बज रहे थे। बारात के नगर निकट आने से सब बाजों का बजना कहते हैं। नहीं तो रास्ते भर केवल डङ्का बज रहा था। यथा : चले बजाइ निसान। शङ्ख के शब्द से बजानेवाले की पहिचान होती है। यथा : शंखान् दध्मुः पृथक् पृथक्। शंख तो स्वयं राजा तथा प्रधान वीरलोग समय विशेष पर बजाते हैं। किन्तु और बाजे बजनिये बजाते हैं। महाराज तथा सरदार लोग हाथी पर हैं। अतः शङ्ख का बजना हाथी घोड़ों के आगे ही लिखते हैं। बाजे के शब्द सुनकर हाथी गरजे, घोड़े हिनहिनाने लगे। घोड़े, हाथी और रथ के बाद झाँझ, विरव और डिंडिमी का शब्द कहते हैं। डिंडिमी और विरव कौन सा बाजा है इसे अब लोग नहीं जानते। सम्भवतः डिंडिमी

डमरू और विरव नरसिंहा को कहते हैं। क्योंकि नरसिंहा में विशेष रव होता है। ये तीन बाजे ब्राह्मणों और वन्दीजन के आगे बज रहे हैं। शहनाई नववधुओं के डोला के आगे बज रही है। चलते समय बाजों के नाम और क्रम नहीं कहे। क्योंकि पुर और व्योम दोनों जगह बज रहे थे। व्योम के बाजाओं का नाम नहीं मालूम। अतः पुर के बाजाओं के भी नाम नहीं दिये।

पुर जन आवत अकनि बराता। मुदित सकल पुलकावलि गाता ॥
निज निज सुंदर सदन सँवारे। हाट बाट चौहट पुर द्वारे ॥२॥

अर्थ : पुरजन बारात का आना सुनकर ऐसे प्रसन्न हुए कि उन लोगों को पुलक होने लगा। उन्होंने अपने अपने सुन्दर घरों को सजा डाला। तत्पश्चात् बाज़ार, मार्ग, चौराहों और पुरद्वार को सजाया।

व्याख्या : बाजा सुनकर तथा शंखध्वनियों को पहिचान कर बारात का आना जान लिया। सब प्रसन्न हो उठे। इससे प्रजा का राजा पर अनुराग कहा। सात्त्विक भाव से पुलकावली हो उठी। अथवा भीतर मोद है। बाहर पुलकावली है। यथा : देखन हेतु राम वैदेही। कहहु लालसा होइ न केही। पहिले सबों ने अपना अपना घर साजा। तब बाज़ार साजा गया। तब सड़क। तब चौमुहानियाँ सजायी गईं और तब पुरद्वार सजाया जाने लगा। यह स्वाभाविक क्रम है। दिखौवा उत्साह के पहिले फाटक ही सजाया जाता है और सजावट बाजार तक ही रह जाती है। घर तक पहुँचती ही नहीं।

गली सकल अरगजा सिंचाई। जहँ तहँ चौकें चारु पुराई ॥
बना बजारु न जाइ बखाना। तोरन केतु पताक बिताना ॥३॥

अर्थ : सब गलियों में अरगजा का छिड़काव हुआ। सब घरों में चौके पूरे गये। बाजार ऐसा सज़ाया गया कि उसका बखान नहीं हो सकता। तोरण बाँधे गये। ध्वजा, पताका लगाये गये। मण्डप सजाया गया।

व्याख्या : अयोध्या में गलियाँ सदा सुगन्ध से सींची जाती थीं। यथा : संतत रहहिं सुगंध सिंचाई। सो आज अरगजा से सींची गईं। इस भाँति रास्ते सँवारे गये। मकान के दरवाजों पर चौक पूरे गये। अतः जहँ तहँ लिखते हैं। इस भाँति घर सजाये गये। बाजार में ध्वजा पताकाएँ लगायी गईं। वह सब सजावट कही नहीं जाती। क्योंकि ऐसे वितान बनाये कि बारात उसके नीचे से जाय। जाड़ा बिताकर बारात आ रही है। धूप से बचाव के लिए तथा बहुओं की अगवानी के लिए बाजार और चौराहों में वितान तने हुए हैं।

सफल पूगफल कदलि रसाला। रोपे बकुल कदंब तमाला ॥
लगे सुभग तरु परसत धरनी। मनिमय आलबाल कल करनी ॥४॥

अर्थ : फल सहित सुपारी, केला, आम, मौलसरी, कदम्ब और तमाल के

पेड़ लगाये गये। वे लगे हुए सुन्दर वृक्ष धरती को छू रहे थे। उनके थाले मणिमय सुन्दर कारीगरी से बनाये गये थे।

व्याख्या : पूगफल, रसाल, वकुल, तमाल ये रोपे नहीं जा सकते। अतः सिद्ध है कि ये सब भी जनकपुर में कदली खम्भ की भाँति बनावटी थे। फल भारन नमि विटप सब रहे भूमि नियराइ। कारीगरी की महीनकारी कहते हैं कि वृक्षों में फल लगाये गये और पेड़ों को ऐसा बनाया मानो वे फल के बोझ से झुके पड़ते हैं। जब आलवाल की वनावट मणिमय थी तब वृक्षों के मणिमय होने में सन्देह ही क्या है ? देहलीदीपकन्याय से मणिमय शब्द का प्रयोग है। उसका अन्वय सुभगतरु के साथ तथा आलबाल के साथ भी होगा।

दो. विविध भाँति मंगल कलस, गृह गृह रचे सँवारि।
सुर ब्रह्मादि सिहाहिं सब, रघुवर पुरी निहारि ॥३४४॥

अर्थ : अनेक प्रकार के मङ्गल कलश घर घर सँवारकर रचे थे। रामजी की पुरी देखकर ब्रह्मादि देवता सिहाने लगे।

व्याख्या : घर घर मङ्गल कलश भी रचे गये। जनकपुर में तो मन विरंचि कर भूल। पर यहाँ तो सिहाने लगे। सुरराज तो सदा से सिहाते थे। यथा : अवधराज सुरराज सिहाहीं। दसरथ धन सुनि धनद लजाहीं। आज ब्रह्मदेव भी सिहाने लगे कि ऐसी रचना मेरे लोक में भी नहीं है। जनकपुर में देवताओं को शिवजी ने समझाया था : जनि आचरज भुलाहु। हृदय विचारहु धीर धरि सिय रघुवीर विआहु। यह अयोध्या तो रामजी की पुरी है। यथा : पहुँचे दूत रामपुर पावन। हरखे नगर विलोकि सुहावन। यहाँ का क्या कहना है ?

इसी से भरद्वाज मुनि ने भरतजी के सत्कार में : विधि विस्मयदायक विभव मुनिवर तपबल कीन्ह। वे समझते थे कि इतना सुख तो भरत के घर ही था। उतना विना हुए भरत की मेहमानदारी कैसे होगी। अस कहि रचे रुचिर गृह नाना। जो विलोकि बिलखाहिं विमाना। भोग विभूति भूति भरि राखे। देखत जिन्हहि अमर अभिलाषे। परन्तु इससे भरत को अभिलाषा नहीं हो सकती।

भूप भवन तेहि अवसर सोहा। रचना देखि मदन मन मोहा ॥
मंगल सगुन मनोहरताई। रिधि सिधि सुख संपदा सुहाई ॥१॥

अर्थ : राजगृह भी उस समय ऐसा शोभित हुआ कि उसकी रचना देखकर कामदेव का मन मोहित होता था। मङ्गल, सगुन, सुन्दरता, ऋद्धि सिद्धि, सुख और सुहाई सम्पदा :

व्याख्या : नृप भवन में सबसे बड़ी तैयारी है। कामदेव मोह गये कि यहीं रह जाऊँ। जनकपुर में : वसंत ऋतु रह्यो लोभाई। यहाँ स्वयं काम मोहित होकर ठहरे हुए हैं। काम को देखकर सब मोहित होते हैं। काम किसी को देखकर मोहित नहीं होता। परन्तु : भूप भवन किमि जाइ बखाना। विस्व विमोहन रचेउ विताना।

सो यहाँ विश्व तो मोहित होता ही था। काम भी मोहित हुए। १. मङ्गल। यथा : हने निसान पनव वर बाजे। सरस राग बार्जाहं सहनाई। २. सगुन। यथा : मुदित सकल पुलकावलि गाता। मन का प्रसन्न होना सगुन है। यथा : होंहि सगुन सुंदर सकल मन प्रसन्न सब केर। ३. मनोहरताई। यथा : निज निज सुंदर सदन सँवारे। हाट बाट चौहट पुरद्वारे। ४. ऋद्धि। यथा : गली सकल अरगजा सिंचाई। ५. सिद्धि। यथा : सुर ब्रह्मादि सिहाहिं सब रघुबरपुरी निहारि। ६. सुख। ७. संपदा आगे कहेंगे।

जनु उछाह सब सहज सुहाए। तनु धरि धरि दसरथ गृह आए॥
देखन हेतु राम बैदेही। कहहु लालसा होहि न केही॥२॥

अर्थ : मानों सहज सुन्दर उत्साह शरीर धारण करके दशरथजी के घर आये हैं। रामजी और वैदेहीजी को देखने के लिए कहो किसे लालसा नहीं होती।

व्याख्या : उछाहों को शरीर नहीं है। यदि वे शरीर धारण करें तो ये ही सात शरीर धारण कर सकते हैं। बरनब राम बिबाह उछाहू। सो सुभ उमग सुखद सब काहू। लोगों को तो उमंग उठा ही था। उछाहों को भी उठा। मानों सब शरीर धारण करके दशरथ के घर आगये। आने का कारण कहते हैं कि उछाहों को भी राम वैदेही के दर्शन की लालसा हुई। रामजी की शोभा देखी थी। सीताजी की सुनी थी। सो युगलमूर्ति की शोभा देखने आये। जब सभी को दर्शन की लालसा है तो उछाहों को भी क्यों न हो।

जूथ जूथ मिलि चलीं सुआसिनि। निज छबि निदरहिं मदन बिलासिनि॥
सकल सुमंगल सजे आरती। गावहिं जनु बहु बेष भारती॥३॥

अर्थ : झुण्ड की झुण्ड सुहागिनी स्त्रियाँ मिलकर चलीं। अपनी छवि से काम की स्त्री रति का निरादर करती थीं। सब सुमङ्गल आरती सजे हुए थीं और मङ्गलगान करती थीं। जैसे अनेक रूप में सरस्वती हों।

व्याख्या : जनकपुर की स्त्रियाँ निज सरूप रति मान बिमोचनि थीं। उनसे रति का मान टूटता था। इनकी शोभा से रति का निरादर हो रहा है। वे करहिं गान कलकंठ लजाहीं और ये तो ऐसा गान करती हैं मानो भगवती सरस्वती साक्षात् अनेक वेषों को धारण करके गान करती हों। इससे रूप और सङ्गीत नैपुण्य का अत्यन्त उत्कर्ष कहा। श्रीरामजानकी के लिए आरती सजे हुए हैं।

भूपति भवन कोलाहलु होई। जाइ न बरनि समउ सुख सोई॥
कौसल्यादि राम महतारी। प्रेम बिबस तनु दसा बिसारी॥४॥

अर्थ : राजगृह में कोलाहल हो रहा है। उस समय का सुख वर्णन नहीं हो सकता। कौसल्या आदि रामजी की माताएँ प्रेम के वश में होकर शरीर की सुध बुध भूली हुई हैं।

व्याख्या : नदी के उमंग के समय बड़ा शब्द होता है। यहाँ उछाह की नदी बढ़ाव पर है। इसलिए कोलाहल हो रहा है। इस समय का सुख वर्णन नहीं किया जा सकता। इसलिए : सोइ सुभ उमंग सुखद सब काहू कहा।

कौसल्यादि राम महतारी : कहने का भाव है कि सब माताएँ रामजी के लिए कौसल्याजी के समान ही हैं। किसी को विमाता होने की भावना भी नहीं है। यथा : कौसल्या सम सब महतारी। रामहिं सहज सुभाव पियारी। उन लोगों को ऐसा प्रेम उमगा है कि हर्ष के वश शरीर की दशा भूली हुई हैं।

दो. दिए दान विप्रन्ह विपुल, पूजि गनेस पुरारि।
प्रमुदित परम दरिद्र जनु, पाइ पदारथ चारि ॥३४५॥

अर्थ : गणेशजी और महादेवजी की पूजा करके उन्होंने ब्राह्मणों को बहुत दान दिया और ऐसी प्रसन्न हैं जैसे परम दरिद्र चारों पदार्थों को पाकर प्रसन्न हों।

व्याख्या : इस कुल में दान देने से कोई अघाता नहीं। वहाँ विवाह के समय गौरी गणपति की पूजा हुई। यथा : आचार करि गुरु गौरि गनपति मुदित विप्र पुजावहीं। यहाँ बारात के आने का समाचार पाकर गणेश पुरारि की पूजा हो रही है। व्याह निश्चय का समाचार पाकर : रानिन्ह सब महिदेव बोलाये। दिये दान आनंद समेता। व्याह हो जाने और बारात लौटने के समाचार पर : दिये दान विप्रन विपुल। लोग मुदित हैं। माताएँ प्रमुदित हैं। चारों भाइयों के व्याह का समाचार लग चुका है। परम दरिद्र कहने का भाव यह कि इस बात की आशा ही नहीं थी कि रामजी के अनुरूप बहू मिल सकेगी। सो सुना है कि चारों बेटों के अनुरूप बहुएँ मिली हैं। यथा : अनुरूप वर दुलहिन परसपर लखि मुदित हिय हरखहीं। अतः मोद प्रमोद की सीमा नहीं है। इसीलिए कवि ने परम दरिद्र के चार पदार्थ की प्राप्ति के प्रमोद से उपमा दी है।

मोद प्रमोद विवस सब माता। चलहिं न चरन सिथिल भये गाता ॥
राम दरस हित अति अनुरागीं। परिछन साजु सजन सब लागीं ॥१॥

अर्थ : सब माताएँ मोद प्रमोद के विवश हैं। शरीर शिथिल हो गया है। पैर चलते नहीं। रामजी के दर्शन के लिए अति अनुराग है। सब परिछन का सामान साजने लगीं।

व्याख्या : इष्टदर्शन को मोद और इष्टभोग को प्रमोद कहते हैं। पहिले कहा था : प्रेम विवस तनु दसा विसारी। स्मरण आने पर बहुत दान दिया। फिर भी मोद प्रमोद विवश हैं। अतः शरीर शिथिल हो गया। चलना चाहती है। पैर काम नहीं देते। पहिले ज्ञानेन्द्रियों का अपाटव कहा था। अब कर्मेन्द्रियों का अपाटव कह रहे हैं। फिर भी रामजी के दर्शन के लिए अत्यन्त अनुराग है। शरीर और मन की ऐसी अवस्था में भी स्वयं परिछन का साज सजने लगीं। सास का परिछन हो चुका है।

माता का परिछन बाकी है। बारात विदा करते समय भी परिछन नहीं कर सकी थीं। रामजी थे ही नहीं। शेष तीनों बेटों के व्याह का कोई पता ही नहीं था।

विविध विधान बाजने बाजे। मंगल मुदित सुमित्रा साजे ॥
हरद दूब दधि पल्लव फूला। पान पूगफल मंगल मूला ॥२॥

अर्थ : अनेक प्रकार के बाजे बजे। सुमित्राजी ने प्रसन्न होकर मङ्गल साजा। हल्दी, दूर्वा, दधि, पल्लव, फूल, पान, सुपारी मङ्गलमूल द्रव्य।

व्याख्या : इधर घरपर भी बाजे बजने लगे। किसी की आज्ञा की आवश्यकता नहीं। बजनिया आपही समय देखकर बाजे बजाने लगे। प्रसन्न होकर महारानी सुमित्रा मङ्गल साज सजने लगीं। यहाँ चौदह मङ्गल द्रव्य गिनाये गये हैं। इसमें से पहिले सप्तक का मङ्गलमूल कहा। महारानी सुमित्रा मङ्गल साज में बड़ी सावधान हैं। पहिले भी : चौके चारु सुमित्रा पूरी।

अक्षत अंकुर रोचन लाजा। मंजुल मंजरि तुलसि बिराजा ॥
छुहे पुरट घट सहज सुहाए। मदन सकुचि जनु नीड़ बनाए ॥३॥

अर्थ : अक्षत, अँखुए, गोरोचन, लावा, सुन्दर मञ्जरी और तुलसी शोभित हुई। सोने के घड़े रँगे हुए ऐसी शोभा दे रहे थे मानो कामरूपी पक्षी ने संकुचित होकर घोंसले बनाये हों।

व्याख्या : दूसरे द्रव्य सप्तक को शोभायमान कहते हैं। सोने के घड़े स्वभाव से ही सुन्दर हैं। तिसपर वे रंग दिये गये हैं : उनकी शोभा ऐसी हो रही है मानो कामदेव रूपी पक्षी का घोंसला है। रचना देखकर कामदेव के मन का मोहना कहा है। परन्तु उसके रहने के लिए स्थान नहीं है। वह अपमान सहकर भी रहना चाहता है। बारात में मानो वह रामजी के घोड़े के वेष में था। यथा : जनु बाजि वेष बनाइ मनसिज राम हित अति सोहई। फिर परिछन में गति रूप से था। यथा : चाल विलोकि कामगज लाजहिं। विवाह के समय मानो नर रूप हो गया। यथा : मनहु मदन रति धरि बहुरूपा। देखहिं राम विवाह अनूपा। अब यहाँ स्थिर उत्सव होगा। अतः बसना चाहता है। सो मानो छुहे पुरट घट ही उसके घोंसले हैं। वह सङ्कोच से अपने रूप से नहीं रहना चाहता और अन्तःपुर में रहना ठहरा। इसलिए मानो उसने पक्षी का रूप धारण कर लिया। इसलिए घोंसले की आवश्यकता पड़ गई। घोंसला : नीड़ कहने से ही काम का पक्षी रूप धारण करना लक्षित होता है।

सगुन सुगंध न जाहिं बखानी। मंगल सकल सजहिं सब रानी ॥
रची आरती बहुत विधाना। मुदित करहिं कल मंगल गाना ॥४॥

अर्थ : और सगुन सुगन्धित द्रव्य जिनका वर्णन नहीं हो सकता। सब रानियाँ मङ्गल सजने लगी। बहुत विधान से आरती की रचना करती थीं और प्रसन्न होकर मङ्गल गान करती थीं।

व्याख्या : अब चौदहवाँ मङ्गल द्रव्य कहते हैं। सगुंन सुगन्ध अर्थात् कस्तूरी चन्दन आदि। सुगन्धित तैल भी होते हैं। पर वे शुभ नहीं है। इस प्रकार महारानी सुमित्रा ने मङ्गल साज सजा। इन्हें मङ्गल साज करते देखकर महारानी कौसल्या तथा महारानी कैकेयी भी मङ्गल साज साजने लगी। आरती के साजने के बहुत विधान हैं। सो सब विधान कर रही हैं और प्रसन्नता से सुन्दर गान भी करती जाती हैं।

दो. कनक थार भरि मंगलन्हि, कमल करन्हि लिएँ मात।
चलीं मुदित परिछनि करन, पुलक पल्लवित गात ॥३४६॥

अर्थ : मङ्गल द्रव्यों से सोने के थालों को भरकर माताओं ने करकमलों में लिया और प्रसन्न होकर परिछन करने चलीं। उनके शरीर में पुलकावली छा गई थी।

व्याख्या : कमल ऐसे सुन्दर कोमल हाथों में सोने के भारी थार स्वर्णकलश सहित मङ्गल द्रव्य से भरे लिये हुए माताएँ चलीं। उन्हें आनन्द के वेग में वे थार भारी नहीं मालूम पड़ते। थकती नहीं हैं। मुदित हैं। इस भाँति परिछन करने चलीं। पुत्रों का पुत्रवधुओं के सहित परिछन करना है। इस आनन्द के कारण पुलकावली से शरीर पल्लवित हो रहा है।

धूप धूम नभु मेचक भयऊ। सावन घन घमंडु जनु ठयऊ॥
सुरतरु सुमन माल सुर बरषहिं। मनहुँ बलाक अवलि मनु करषहिं ॥१॥

अर्थ : धूप के धूएँ से आकाश काला पड़ गया। मानो सावन के मेघों की घटा घिर आई। कल्पवृक्ष के फूलों की माला की वर्षा देवताओं ने की। मानो बकपंक्ति मन को खैंचे लेती है।

व्याख्या : मानस उमगा तो कविता नदी चली। राम विवाह में वही नदी उमगी। परन्तु जबतक ऊपर से आमद न हो तबतक उस उमग की शोभा पूरी नहीं। रामचरित्र मात्र में जहाँ जहाँ उमंग है वह इसी उमंग का अंश है। अब ऊपर की आमद कहते हैं। जन्मकाल में धूप धूम से अँधियारी छा गई थी। इस समय धूपधूम के बादल छा गये। सो भी सावन के। सावन के बादल बड़े सोहावने होते हैं। प्रवेश के समय बादल घिर आये थे। उसमें जाकर जो धूप धूम मिला तो घनघमण्ड सा प्रतीत होने लगा।

इस समय देवता सुरतरु सुमन नहीं बरसाते। सुरतरु सुमन की मालाओं की वर्षा कर रहे हैं। वे मालाएँ जब आकाश से छूटीं तो बकपंक्ति सी मालूम होने लगीं। बादल की श्यामता में श्वेत बकपंक्तियों की बड़ी शोभा होती है। वैसी ही शोभा सुरतरु सुमन के मालाओं की हुई।

मंजुल मनिमय बंदनिवारे। मनहुँ पाकरिपु चाप सँवारे॥
प्रगटहिं दुरहिं अटन्ह पग भामिनि। चारु चपल जनु दमकहिं दामिनि ॥२॥

अर्थ : सुन्दर मणियों के वन्दनवार मानो इन्द्रधनुष सँवारे गये हैं। अटारियों पर सुन्दर और चपल स्त्रियाँ प्रकट होती हैं और छिप जाती हैं। मानो बिजली चमक रही है।

व्याख्या : इस समय की उपमा कवि पावस से दे रहे हैं। बादल कहा। बकपंक्ति कहा। अब इन्द्रधनुष कह रहे हैं कि मणिमय वन्दनवार जो नगर में बाँधे गये हैं वे इन्द्रधनुष की शोभा दे रहे हैं। द्वार के ऊपर छोटे छोटे वन्दनवार नहीं हैं। सतमहले के ऊपर बड़े भारी भारी मणि के वन्दनवार बाँधे गये हैं।

अटारियों के ऊपर भामिनीगण बारात की शोभा देखने के लिए चढ़ गई हैं। सो प्रकट हो जाती हैं। परिचित को देखकर शीघ्रता से छिप जाती हैं। भामिनी हैं। उनका वर्ण ही चमकीला है। उनकी चपलता की दामिनी के दमकने से उपमा दी। सावन का मेघ है। बिजली चारों ओर चमक रही है।

दुंदुभि धुनि घन गरजनि घोरा। जाचक चातक दादुर मोरा॥
सुर सुगंध सुचि बरषहिं बारी। सुखी सकल ससि पुर नर नारी॥३॥

अर्थ : दुन्दुभी की ध्वनि मेघ का घोर गर्जन है। याचक पपीहा मेढक और मोर हैं। देवता शुद्ध सुगन्धित जल बरसा रहे हैं। पुर के नर नारी धान की भाँति सुखी हैं।

व्याख्या : डङ्का का घोर शब्द हो रहा है। वही मानो मेघ का घोर गर्जन है। याचक लोग चातक दादुर और मोर हैं। उत्तम मध्यम निकृष्ट तीन प्रकार के याचक हैं। उत्तम तो चातक से हैं। जो रामजी की निछावर लेते हैं। सो भी जो महाराज या महारानियों के हाथ से मिले। धरती पर जो गिरा उसे नहीं लेते। यथा : राम निछावर लेन को हठि होत भिखारी। बहुरि देत तेहि देखिये मानहु धनधारी। दूसरे मध्य कोटि के दादुर हैं। इनकी जीविका ही याचना है। ये धरती पर गिरा भी लेते हैं। यथा : वगरे नगर निछावर मनिगन ज्यौ जुवार जवधान। तीसरे निकृष्ट मनमलिन याचक हैं। यथा : मुख मीठे मानसमलिन कोकिल मोर चकोर। सुजस धवल चातक नवल रह्यो भुवनभरि तोर। इस समय तीनों प्रसन्न होकर बोल रहे हैं। पावस में इन तीनों का बोलना वर्णन किया जाता है। सचमुच जल भी बरस रहा है। इसे पुरजन रूपी धान सुख मान रहे हैं।

समय जानि गुर आयसु दीन्हा। पुर प्रवेसु रघुकुलमनि कीन्हा॥
सुमिरि संभु गिरिजा गनराजा। मुदित महीपति सहित समाजा॥४॥

अर्थ : समय जानकर मुनिजी ने आज्ञा दी। तब रघुकुलमणि ने शिव पार्वती और गणेश का स्मरण करके समाज सहित प्रसन्न होकर पुर में प्रवेश किया।

व्याख्या : भाव यह कि बारात ठहर गई थी। तैयारी के साथ पुर में प्रवेश करना है। अतः उसके लिए समय चाहिए। तब से शुभ लग्न भी आगई। वसिष्ठजी

ने शुभ समय जानकर प्रवेश की आज्ञा दी। व्याह के बाद दस दिन के भीतर वधूप्रवेश के लिए मुहूर्त नहीं देखा जाता। यहाँ तो कितने दिन बारात जनकपुर में ही ठहरी रही। अतः वधूप्रवेश के लिए मुहूर्त की आवश्यकता पड़ी। समयानुकूल महाराज दशरथ ने पुत्र कलत्र सहित शिवजी का स्मरण किया और गुरुजी की आज्ञा पाकर हर्षित हो पुर में प्रवेश किया।

दो. होहिं सगुन बरषहिं सुमन, सुर दुंदुभी बजाइ।
विबुध वधू नाचहिं मुदित, मंजुल मंगल गाइ ॥३४७॥

अर्थ : सगुन हो रहा है। देवता दुन्दुभी बजाकर पुष्पवृष्टि कर रहे हैं। देवताओं की बहुएँ प्रसन्न होकर सुमङ्गल गान करके नृत्य कर रही हैं।

व्याख्या : फिर सगुन सब नाचे। यथा : सुनि असि व्याह सगुन सब नाचे। अब कीन्हे विरंचि हम साँचे। महाराज के चाहते ही आकाश से सुमनवृष्टि और देववधुओं का नाचना गाना कहते हैं। देवता लोग दुन्दुभी बजाकर सुमनवृष्टि करते हैं। पुर में वधू प्रवेश है। वहाँ सुरतरुसुमनमाल की वर्षा हो रही है। जयमाल के समय : नाचहिं गावहिं विबुध वधूटी। अब वधूप्रवेश का समय है तो विबुध वधू कहते हैं। वे वधूटियों से बड़ी हैं।

मागध सूत बंदि नट नागर। गावहिं जसु तिहुँ लोक उजागर ॥
जय धुनि विमल वेद वर वानी। दस दिसि सुनिय सुमंगल सानी ॥१॥

अर्थ : तीनों लोक में प्रकाशित यश का गान मागध सूत वन्दी और नागर नट कर रहे हैं। जयध्वनि और वेद की निर्मल वाणी मङ्गल से सनी हुई दशों दिशाओं में सुनाई देती है।

व्याख्या : क्षत्रिय यशोधन होते हैं। महाराज दशरथ का यश तीनों लोक में प्रकाशित है। अतः वे क्षत्रियों में बड़े धनी हैं। उनका यशोगान मागध सूत वन्दी और नागरनट कर रहे हैं। पर इन लोगों के गान में बड़ा भेद है। मागध वंशप्रशंसक हैं। वंश की प्रशंसा करना ही इनका गान है। सूत पौराणिक हैं। वे पुराण की गाथा से राजाओं के पूर्व पुरुषों के चरित कहते हैं। उनका पुराण के वचनों का पठन ही गान है। वन्दीजन प्रस्ताव के सदृश उक्ति करनेवाले प्रशस्ति का पाठ करते हैं। उनका प्रशस्ति पाठन ही गान है। पर नागरनट का गान ही सङ्गीत शास्त्र के अनुसार होता है। सङ्गीत में गान, वाद्य और नृत्य तीनों का अन्तर्भाव है। इसलिए उनका नृत्यसमाज रहता है। वे जो कुछ गान करते हैं वह सुर, लय, ताल, मूर्छना से युक्त होता है। अतः इन सबका गान एक साथ नहीं हो सकता। ये सब लोग अलग अलग गान कर रहे हैं। कौन कहाँ गान कर रहा है यह आगे कहा जायगा। यहाँ बारात का कोलाहल वर्णन के लिए जितने प्रकार के शब्द होते थे सबको एक साथ गिना दिया।

प्रजावर्ग की ओर से महाराज के प्रवेश के समय जय जयकार हुआ। जिस

क्रम से बारात चलीं थी उस क्रम से नगर में प्रवेश नहीं हो रहा है। प्रवेश में ब्राह्मणसमाज के आगे आगे वेदध्वनि करता जा रहा है। जो ब्राह्मण बारात में नहीं गये थे। उन्होंने घर पर जहाँ थे वहीं से स्वस्त्ययन आरम्भ कर दिया। ऊपर से देवताओं ने जय जयकार तथा देवर्षियों ने आशीर्वादात्मक मन्त्र पढ़े। इसलिए कहते हैं कि सुमङ्गल सानी वेद वाणी और जय ध्वनि दशों दिशाओं से सुनाई पड़ रही है।

विपुल बाजने बाजन लागे। नभ सुर नगर लोग अनुरागे ॥
बने बराती बरनि न जाहीं। महा मुदित मन सुख न समाहीं ॥२॥

अर्थ : बहुत से बाजे बजने लगे। आकाश में देवता और नगर में लोग प्रेम में मग्न हो गये। बाराती ऐसे बने ठने हैं कि वर्णन नहीं हो सकता। वे ऐसे प्रसन्न हैं कि सुख समा नहीं रहा है।

व्याख्या : अन्तःपुर के द्वार पर अलग बाजे बज रहे हैं। बारात में अलग बाजे बज रहे हैं। प्रजाओं की ओर से भी बाजों की व्यवस्था है। ऊपर से देवताओं ने बाजे बजाये। क्योंकि आकाश में देवताओं को अनुराग है और नगर में लोगों को अनुराग है।

नियम यह है कि बाराती बारात में तो बन ठनकर जाते हैं। पर घर लौटते समय सामान्य वेष में ही रहते हैं। परन्तु यहाँ तो महाराज के साथ नगर प्रवेश करना है। अतः सब लोग बने ठने हैं। छरे छबीले छैल लोग हैं। उनका वर्णन नहीं हो सकता। श्रीरामजी की बारात करके लौट रहे हैं। अतः बड़े प्रसन्न हैं। सुख समा नहीं रहा है। रघुवंशियों की बारात है। अतः इनके आगे मागध वंशप्रशंसक वंश की प्रशंसा करते चल रहे हैं।

पुरबासिन तब राय जोहारे। देखत रामहि भये सुखारे ॥
करहिं निछावरि मनिगन चीरा। बारि बिलोचन पुलक सरीरा ॥३॥

अर्थ : पुरवासियों ने तब महाराज का जोहार किया। रामजी को देखकर सुखी हुए। मणिगण और कपड़े निछावर कर रहे हैं। उनके आँखों में आँसू और शरीर में पुलक है।

व्याख्या : राजाओं को जो दोनों हाथ उठाकर प्रणाम किया जाता है उसे जोहार कहते हैं। बारात के पीछे महाराज की सवारी है। दोनों ओर से पुरवासी जोहार कर रहे हैं। इनके आगे सूत लोग सूर्यवंश की कीर्ति जो पुराणों में है उसका गान करते चलते हैं। सब लोग सुखी तो रामजी को देखकर हुए। यथा : सब विधि सब पुर लोग सुखारी। रामचंद मुखचंद निहारी। अर्थात् महाराज की सवारी के पीछे चारों भाइयों की सवारी है। इनके आगे वन्दी प्रस्ताव सदृश उक्ति करनेवाले समयानुकूल विरद बोलते चल रहे हैं। रामजी व्याह करके घर लौट रहे हैं। इसलिए लोग मणि और वस्त्र निछावर कर रहे हैं और निछावर करते समय प्रेम के कारण उनकी आँखों में जल और शरीर में पुलक हो रहा है।

आरति करहि मुदित पुर नारी। हरखहिं निरखि कुँअर वर चारी ॥
सिविका सुभग ओहार उघारी। देखि दुलहिनिन्ह होहि सुखारी ॥८॥

अर्थ : पुरनारियाँ हर्षित होकर आरती करती हैं और चारों श्रेष्ठ कुँअरों को देखकर हर्षित होती हैं। सुन्दर पालकियों के ओहार : अवधार को हटाकर दुलहिनों को देख देख सुखी होती हैं।

व्याख्या : पहिले से ही पुरनारियाँ आरती सजे खड़ी हैं। सो चारों दूल्हों को देखते ही आरती करती हैं और दर्शन करके प्रसन्न होती हैं। दूल्हे के रूप में चारों सरकारों की विचित्र झाँकी है। नर निछावर करते हैं। स्त्रियाँ आरती करती हैं। चारों भाइयों को इस वेष में देखकर हर्षित होती हैं। बहुत दिनों पर आज दर्शन हुआ है।

चारों भाइयों की सवारी के पीछे बहुओं के डोले हैं। इनके आगे सरस राग से शहनाई बज रही है। साथ ही साथ नागर नटों का गान हो रहा है। स्त्रियाँ अपने विशेष अधिकार से काम ले रही हैं। ओहार हटाकर नववधुओं को देखती हैं। डोला के क्रम से निर्णय करके वधुओं का मिलान उनके वरों से करती हैं और उनके अनुरूप पाकर सुखी होती हैं।

दो. येहि विधि सबही देत सुख, आए राजदुआर।
मुदित मातु परिछन करहिं, बधुन्ह समेत कुमार ॥३४८॥

अर्थ : इस भाँति सबको सुख देते राजद्वार आये। माताएँ मुदित होकर बहुओं के साथ कुमारों का परिछन करती हैं।

व्याख्या : धीरे धीरे बारात अवध में घूमती हुई राजद्वार आई। परिछन के पहिले ही वर दुलहिन एक पालकी में कर दिये गये। सखियों का डोला तथा दासियाँ साथ हैं। उन सबों ने तुरन्त व्यवस्था कर दी। अब माताएँ वधुओं के साथ कुमारों का परिछन कर रही हैं।

करहिं आरती बारहिं बारा। प्रेमु प्रमोदु कहै को पारा ॥
भूषन मनि पट नाना जाती। करहिं निछावरि अगनित भाँती ॥१॥

अर्थ : बार बार आरती करती हैं। प्रेम और प्रमोद को कौन कह सकता ह ? नाना जाति के और अगणित भाँति के गहने कपड़े और मणियों की निछावरि करती हैं।

व्याख्या : बहुत विधान की आरती माताओं ने पहिले से ही रच रक्खी है। उन सब विधानों की आरती क्रम से हो रही है। यथा : रची आरती बहुत विधाना। इष्टदर्शन से प्रेम इष्टप्राप्ति से मोद और इष्टभोग से प्रमोद होता है। यहाँ प्रेम और प्रमोद के कहने से मोद का आपही आप अन्तर्भाव हो गया। इस प्रेम मोद और प्रमोद को कौन कह सकता है ? कवि की ललकार है : जो कहने में समर्थ हो वह सामने आवे।

नगरवासियों ने मणिगण और चीर निछावर किया था। यहाँ तो माता लोग नेछावर के लिए खड़ी हुई हैं। अतः नाना जाति के भूषण, वसन और मणिगन निछावर करती हैं। जाति के अन्तर्गत अगणित भाँति होती है। सो निछावर के समय यह भी ध्यान दिया जा रहा है कि कोई भाँति छूटती तो नहीं है।

वधुन समेत देखि सुत चारी। परमानंद मगन महतारी ॥
पुनि पुनि सीय राम छवि देखी। मुदित सफल जग जीवन लेखी ॥२॥

अर्थ : बहुओं के सहित चारों बेटों को देखकर माता लोग परम आनन्द में मग्न हैं। बार बार सीताजी और रामजी की छवि देखकर संसार में अपने जीवन को सफल माना।

व्याख्या : नगर नरनारी तो देखि दुलहिनिन्हि होहिं सुखारी। वर के अनुरूप अनुमान करके : यहाँ तो माता लोग प्रत्यक्ष चारों जोड़ियों का दर्शन कर रही हैं और चारों को अपना पुत्र पुत्रवधू मान रही हैं। अतः माताएँ परमानन्द में मग्न हैं। छवि अधिक होने से श्रीसीतारामजी का बार बार निरीक्षण करती हैं। जग जीवन का साफल्य रामजी और सीताजी का दर्शन है। अथवा जौ विधि जनम देइ करि छोहू। होहु राम सिय पूत पतोहू। अतः रामसिय को पूत पतोहू देखकर जन्म को सफल माना।

सखी सीय मुख पुनि पुनि चाही। गान करहिं निज सुकृत सराही ॥
बरषहिं सुमन छनहिं छन देवा। नाचहिं गावहिं लावहिं सेवा ॥३॥

अर्थ : सखियाँ सीताजी का मुख बार बार देखकर गान करती हैं और अपने पुण्य की प्रशंसा करती हैं। देवता लोग क्षण क्षण पर पुष्पवृष्टि करते हैं। नाचते हैं गाते हैं और अपनी अपनी सेवा का प्रयोग करते हैं।

व्याख्या : सासों का प्रेम देखकर सखी बार बार सीताजी का मुख देखती हैं। अथवा प्रत्येक आरती और निछावर के समय सीताजी का मुख देखती हैं : वे सीताजी की सखी हैं। उनके मनमें सीताजी की प्रधानता है। उन्हीं के नाते से सब है : कि इनके हृदय में कैसा प्रभाव पड़ रहा है। तो मुखमण्डल की शोभा अपूर्व देखी। अतः फिर फिर देखती हैं और अपने पुण्य की प्रशंसा करती हैं कि किसी जनकपुरवासी ने सीयराम के साथ परिछन की शोभा नहीं देखी। मिथिला भाषा में उन्होंने गाना प्रारम्भ कर दिया। देखा कि इधर गीत बन्द हो गये। सब प्रेम प्रमोद में विभोर हैं। आरती साजने के समय मङ्गलगान किया। आरती के समय कुछ नहीं। अतः इस समय आरती और निछावर के अवसर पर अवध में मिथिला भाषा के गीत हो रहे हैं।

आनन्द की पराकाष्ठा हो गई। देवताओं में लास्य तो पहिले से ही हो रहा था। अब ताण्डव भी हो रहा है। सिवा सेवा के पूर्णकाम का हित कोई कैसे कर सकता है। अथवा यौं कहिए कि बिना सेवा के अपने जन्म के साफल्य का उपाय क्या है ? सो आकाश में देववाणी में गान हो रहा है।

देखि मनोहर चारिउ जोरी। सारद उपमा सकल ढँढोरी ॥
देत न बनहि निपट लघु लागी। एकटक रहीं रूप अनुरागी ॥४॥

अर्थ : चारों मनोहर जोड़ियों को देखकर शारदा ने सब उपमाएँ ढूँढ़ डाली। परन्तु देते नहीं वनता। क्योंकि अत्यन्त तुच्छ जचीं। सो वह भी रूप में अनुरक्त होकर एकटक सी देखती हो रह गईं।

व्याख्या : महाराज दशरथ के पास सब चारों भाई बैठे थे तो कवियों ने उपमा खोज निकाली थी। यथा : नृप समीप सोहहिं सुत चारी। जनु धन धर्मादिक तनु धारी। पर यहाँ अन्तःपुर में तो कवियों की पहुँच नहीं है। उन्होंने चारों जोड़ियों का दर्शन ही नहीं पाया उपमा कहाँ से दें। पर कोई चिन्ता की वात नहीं थी। कविकुल की आराध्य देवता शारदा वहाँ थीं। उन्होंने वड़ा प्रयत्न किया। सब उपमाओं को ढूँढ़ डाला। उनसे कोई उपमा छिपी नहीं है। हीनोपमा भी दी ही जाती है। पर उन्हें सभी उपमाएँ ऐसी तुच्छ जँची कि देने योग्य कोई न ठहरी। वे भी रूप देखते मुग्ध हो गईं। एकटक दर्शन करती ही रह गईं।

दो. निगम नीति कुल रीति करि, अरघ पाँवड़े देत।
वधुन्ह सहित सुत परिछि सब, चलीं लिवाइ निकेत ॥३४९॥

अर्थ : वेद की नीति और कुल की रीति करके अर्घ और पाँवड़े देते हुए वहुओं को बेटे के सहित घर ले चलीं।

व्याख्या : यह प्रभु के चरित की कविता नदी लौकिक और वैदिक कूलों के बीच से बहती है। यथा : लोक वेद विधि मंजुल कूला। अतः सब कार्यों में वैदिक और लौकिक रीति करके ही कोई कार्य होता है। सो लोक वेद का निर्वाह करके तब वधुओं को बेटों के साथ घर में लिवा ले चलीं। वधूप्रवेश के समय वधू को आगे करके और वर को पीछे करके लिवा जाने को रीति है। इसलिये कवि वधुओं का लिवा जाना कहते है। वर तो उनके साथ हैं।

चारि सिंघासन सहज सुहाए। जनु मनोज निज हाथ बनाए ॥
तिन्ह पर कुँअरि कुँअर बैठारे। सादर पाय पुनीत पखारे ॥१॥

अर्थ : चार सिंहासन जो बड़े सुन्दर बने हुए थे। मानो कामदेव ने उन्हें अपने हाथ से रचा है। उनपर कुँअर और कुँअरियों को बिठाया और आदर से पाँव धोये।

व्याख्या : सिंहासनों को सहज सोहाए कहा। क्योंकि उनकी बनावट ही इतनी सुन्दर थी कि उन्हें यदि साजा भी न जाय तो भी सुन्दर मालूम हों। उनका शिल्प मानुषी और दैवी शिल्प से भी उत्कृष्ट है। अतः उसे कहते हैं कि मानो कामदेव ने अपने हाथों बनाया है।

अब वरवधू का पञ्चोपचार पूजन कहते हैं। पहिले आसन के लिए चार

सिंहासन रक्खे गये थे। एक पर रामजानकी को बिठाया। दूसरे पर भरत माण्डवी को। तीसरे पर लक्ष्मण उर्मिला को और चौथे पर शत्रुघ्न श्रुतिकीर्ति को। आसन के बाद पाद्य का विधान है। इसलिए आदर के साथ पुनीत चरणों को धोया।

धूप दीप नैवेद वेद विधि। पूजे वर दुलहिनि मंगलनिधि ॥
बारहि बार आरती करहीं। व्यजन चारु चामर सिर ढरहीं ॥२॥

अर्थ : धूप दीप नैवेद्य द्वारा मङ्गलनिधि वर दुलहिन का पूजन किया गया। बारबार आरती करती हैं। पंखा चल रहा है और सुन्दर चँवर ढुर रहे हैं।

व्याख्या : तीसरा धूप, चौथा दीप, पाँचवाँ नैवेद्य इस भाँति पञ्चोपचार हुआ। मङ्गल के निधि : भण्डार ये वरदुलहिन हैं। इनकी पूजा पञ्चोपचार से वैदिक मन्त्रों द्वारा की गयी। ये मङ्गलनिधि हैं। अतः इनके विवाह में मङ्गलमय, कल्याणमय, अभिमतफलदातार सगुन हुए। यथा : मङ्गलमय कल्याणमय अभिमतफलदातार। जनु सब साँचे होन हित भये सगुन एक बार। अति उत्साह के कारण बार बार आरती करती हैं। पंखा झला जा रहा है। यह कहकर ग्रन्थकार ने दिखला दिया कि बारात तीन चार महीने जनकपुर में रह गई। शरद्पूर्णिमा के लगभग धनुषभंग हुआ। कार्तिक में बारात गई और लौटने के दिन पंखा का काम पड़ा। राजोपचार से पूजा हो रही है। इसलिए चमर ढुर रहा है।

वस्तु अनेक निछावरि होहीं। भरी प्रमोद मातु सब सोहीं ॥
पावा परम तत्व जनु जोगी। अमृत लहेउ जनु संतत रोगी ॥३॥

अर्थ : अनेक वस्तुएँ निछावर हो रही हैं। आनन्द से भरी माताएँ शोभित हो रही हैं। जैसे १. योगी को परम तत्त्व की प्राप्ति हो गई हो। २. और जन्म के रोगी को जैसे अमृत मिल गया हो।

व्याख्या : यह पूजाङ्ग निछावर है। प्रमोद से भरी माताएँ शोभित हैं। सात सौ रानियाँ घेरे खड़ी हैं। प्रत्येक की निछावर अलग हो रही है। अनेक वस्तुएँ निछावर हो रही हैं। रानियों के प्रमोद की उपमाएँ ग्रन्थकार ने दी हैं। क्योंकि उन्हें छः बात की खुशी हुई है। १. पहिली बड़ी भारी खुशी तो यह है कि रामजी की प्राप्ति हुई। महाराज दशरथ ने ऋषिजी को यज्ञ की रखवारी के लिए दे दिया था। जिस पर माता कहती हैं : रिषि नृप सीस ठगौरी सी डारी। सिरस सुमन सुकुमार कुँअर दोउ सूर सरोष सुरारी। पठए बिनहि सहाय पयादेहि केलि बान धनुधारी। ऐसे दुष्कर कार्य के लिए महाराज ने ऋषिजी के साथ भेज दिया था। इनकी प्राप्ति महा कठिन थी। इनकी प्राप्ति परम तत्त्व की प्राप्ति के समान दुर्लभ थी और थे भी ये साक्षात् परम तत्त्व ही। यथा : योगिन परम तत्त्वमय भासा। सो दोनों भाइयों ने मख रखवारी की। छवों बातों को आगे चलकर गिनाया है। यहाँ केवल खुशियों का वर्णन है। पर बिना उन छवों बातों के जाने यह न मालूम होगा कि किस बात पर कैसी खुशी हुई। अतः उनका उल्लेख किये देता हूँ। १. मख

रखवारी करि दोउ भाई। २. गुरु प्रसाद सब विद्या पाई। ३. मुनि तिय तरी लगत पग धूरी। कीरति रही भुवन भरिपूरी। ४. कमठ पीठ पवि कूट कठोरा। नृप समाज महँ सिवधनु तोरा। ५. बिस्व बिजय जसु जानकि पाई। ६. आए भवन ब्याहि सब भाई। सो पहिली बात की खुशी का वर्णन तो ऊपर किया जा चुका है। २. दूसरी बात है : गुरु प्रसाद सब विद्या पाई। यथा : जाते लाग न छुधा पियासा। अतुलित बल तन तेज प्रकासा। बेटों के सिरिस सुमन की भाँति सुकुमार होने से माता सदा डरा करती थीं। सो उनके इस विद्या की प्राप्ति से वह भय जाता रहा। इसलिए ऐसी प्रसन्नता हुई : अमृत लहेउ जनु संतत रोगी।

जनम रंकु जनु पारस पावा। अंधेहि लोचन लाभु सुहावा॥
मूक बदन जनु सारद छाई। मानहु समर सूर जय पाई॥४॥

अर्थ : ३. जन्म के दरिद्र को जैसे पारस मिला हो। ४. अन्धे को सुन्दर नेत्रों का लाभ हुआ हो। ५. गूँगे के मुख में जैसे सरस्वती बस गई हों। ६. जैसे समर में शूर को जयलाभ हुआ हो।

व्याख्या : ३. मुनि तिय तरी लगत पग धूरी। कीरति रही भुवन भरि पूरी। पुत्र के चरणरेणु की ऐसी कीर्ति फैली कि भुवन भर उठा। इस बात से ऐसी प्रसन्नता हुई जैसे जन्मरङ्क को पारस मिलने से होती है। यशोधन हैं। कीर्ति की बड़ी कामना है। सो पुत्र के चरणरज से मिलती रहेगी। इसीलिए ऐसी प्रसन्नता हुई। ४. कमठपीठ पवि कूट कठोरा। नृप समाज महँ सिवधनु तोरा। इस बात से ऐसी प्रसन्नता हुई जैसे अन्धे को आँख मिले। रानी सोचती हैं कि मैं तो जन्म की अन्धी थी : मुझे नहीं मालूम कि इतना सामर्थ्य है। मैं तो सिरिस सुमन सा सुकुमार ही समझती थी। अतः धनु तोड़ना सुनने से ऐसी प्रसन्नता हुई। ५. बिस्व बिजय जस जानकी पाई। माताएँ मूक सी थीं। घर सकुशल लौटना कठिन समझती थीं। यथा : जे कहिहैं आये राम लखन घर करि मुनि मख रखवारी। ते तुलसी प्रिय मोहि लागिहैं ज्यौं सुभाय सुत चारी। बादि बीर जननी जीवन जग छत्रि जाति गति भारी। सो विश्व विजय पाया। जानकी पाई। अतः ऐसी खुशी हुई कि जैसे मूक के मुख में सरस्वती के डेरा लेने से होती है : जानकीजी महाविद्या हैं। ६. मानहु समर सूर जय पाई। शूर जय के लिए सुखेन प्राण समर्पण करता है। सब भाई व्याह के घर आये। यह बात प्राण से भी अधिक प्यारी है। इसलिए शूर के समर में जय पाने के समान प्रसन्नता हुई।

दो. इहि सुख तें सत कोटि गुन, पावहिं मातु अनंदु।
भाइन सहित बिआहि घर, आये रघुकुलचंदु॥३५०॥ क

अर्थ : इस प्रकार के सुखों से सौगुना आनन्द माताएँ पा रही हैं। भाइयों के सहित व्याह करके रघुकुलचन्द घर आये हैं।

 व्याख्या : छः सुख गिनाकर केवल सुख का प्रकार कहा। उत्कर्ष न कहा।

अतः कहते हैं कि रामजी के व्याह के घर आने से इन सुखों से कोटि गुन अधिक सुख हुआ। व्याहकर भाइयों सहित घर आने के सुख में शेष पाँचों प्रकार के सुखों का अन्तर्भाव है।

दो. लोक रीति जननी करहिं, वर दुलहिन सकुचाहिं।
मोद विनोद विलोकि बड़, राम मनहि मुसुकाहिं ॥३५०॥ ख

अर्थ : माताएँ लोकरीति कर रही हैं। वर दुलहिन सकुचते हैं। इस पर मोद विनोद बहुत बढ़ रहा है। रामजी मन में मुसकराते हैं।

व्याख्या : दधि मिष्टान्न प्राशनादि लोकरीति माताएँ कर रही हैं। यह पहिले भी कोहवर में हो चुका है। पर यहाँ माँ द्वारा हो रहा है। अतः वर दुलहिन को सङ्कोच हो रहा है। इनके सङ्कोच पर मोद है तथा ऐसे अवसर पर स्त्रियाँ विनोद भी करती हैं। इस मोद विनोद पर रामजी मन ही मन मुसकरा रहे है। यथा : मन मुसुकाहिं भानुकुल भानू। राम सहज आनंद निधानू। रामजी पर इस मोद प्रमोद विनोदादि का कोई प्रभाव नहीं है। वे अपने सहज आनन्द में ही निमग्न हैं। उसी आनन्द में मनही मन मुसकरा रहे हैं। यह सब कौतुक भी देख रहे हैं।

देव पितर पूजे विधि नीकी। पूजी सकल वासना जी की ॥
सबहि वंदि माँगहि वरदाना। भाइन्ह सहित राम कल्याना ॥१॥

अर्थ : देवता और पितरों की पूजा भलीभाँति से की। जी की सब वासनाएँ पूरी हुईं। सबकी वन्दना करके वरदान माँगते हैं कि भाइयों के सहित रामजी का कल्याण हो।

व्याख्या : देवलोक और पितृलोक का इस लोक से बड़ा घना सम्बन्ध है। देवता और पितर पूजित होकर इष्टभोग दिया करते हैं। यथा : इष्टान् भोगान् हि वो देवा दास्यन्ते यज्ञभाविताः। तैर्दत्ता न प्रदायैभ्यो यो भुंक्ते स्तेन एव सः। उनके दिये हुए भोगों को तो भोगे और उन्हें न दे। ऐसे पुरुष को शास्त्रों में चोर बतलाया है। अतः मङ्गल का समय उपस्थित होने पर देवता और पितरों की विशेष रूप से पूजा की जाती है। इस समय सबके जी की सब वासनाएँ पूर्ण हुई हैं। इसलिए भलीभाँति से देवताओं और पितरों की पूजा की। पूजनोपरान्त यही वरदान माँगती हैं कि भाइयों के सहित रामजी का कल्याण हो। यही एक मात्र सबका ध्येय है। भक्तों का समाज है। सब ओर से ममता खिचकर श्रीरामजी के चरणों में बँधी हुई है। अंशों के सहित उन्हीं का कल्याण मनाते हैं।

अंतरहित सुर आसिष देहीं। मुदित मातु अंचल भरि लेहीं ॥
भूपति बोलि बराती लीन्हे। जान बसन मनि भूषन दीन्हे ॥२॥

अर्थ : अन्तर्धान रहकर देवता लोग आशीर्वाद देते हैं। प्रसन्न होकर माताएँ अञ्चल भरकर लेती हैं। महाराज ने बारातियों को बुलाया। उन्हें सवारी, कपड़े, मणि और आभूषण दिये।

व्याख्या : आवाहन करने से देवता लोग आते हैं। पर स्थूलदृष्टि से उनका दर्शन नहीं होता। वे पूजा पाकर आशीर्वाद देते हैं। पर स्थूल श्रोत्र उन्हें सुन नहीं सकते। यही साधारण नियम है। उनका प्रत्यक्ष हो जाना और उनके आशीर्वाद का सुनाई पड़ना उनके बड़े भारी अनुग्रह का द्योतक है। विवाह के समय दोनों बातें हुई थीं। यथा : सुर प्रगटि पूजा लेहिं देहिं असीस अति सुख पावहीं। अब तो व्याह हो गया है। समाप्ति का पूजन हो रहा है। अतः दृष्टिगोचर तो नहीं हो रहे हैं। पर आशीर्वाद श्रवणगोचर हो रहा है। अथवा स्वयं राम जानकी के हाथ का पूजन ग्रहण करने के लिए प्रत्यक्ष होकर आशीर्वाद दिया। माताओं के पूजन में अन्तर्हित रहते हुए आशीर्वाद देते हैं। स्त्रियाँ अञ्चल पसारकर माँगती हैं और पुरुष अञ्जलि बाँधकर माँगते हैं। सो माताएँ भाइयों सहित रामजी का कल्याण माँगती हैं। देवता लोग तथास्तु कहते हैं जो सुनाई पड़ता है। माता लोग उसे मिला हुआ मानकर अञ्चल में इस भाँति प्रेम से ले रही हैं जिस भाँति उन्हें कोई भौतिक वस्तु मिली हो।

पहिला कार्य महाराज ने यह उचित समझा कि बारातियों की विदाई की जाय। अतः उन्हें बुलवाया। जिस भाँति बारात में सबसे पहिले सजधजकर छरे छवीले छैल लोग आये थे उसी भाँति यहाँ भी वे ही पहिले आये। उन्हें महाराज की ओर से रथ बखसा गया। अर्थात् उन्हें रथी का पद मिला। बारात के क्रम के अनुसार ही उनके बाद रथी लोग आये। उन्हें वस्त्र अर्थात् सिरोपाव देकर आदर किया गया। उसके बाद वैदिक ब्राह्मण तथा वन्दीजन आये। उन्हें मणि भूषण दिये गये। अथवा सबको सब दिया गया।

आयसु पाइ राखि उर रामहिं। मुदित गए सब निज निज धामहि ॥
पुर नर नारि सकल पहिराए। घर घर बाजन लगे बधाए ॥३॥

अर्थ : आज्ञा पाकर और रामजी को हृदय में रखकर प्रसन्न हो सब अपने अपने घर गये। पुर नर नारि सभी को पहिरावन मिला। घर घर बधाये बजने लगे।

व्याख्या : आज्ञा पाकर आये थे। आज्ञा पाकर जा रहे हैं। महीनों बाद घर जा रहे हैं। इसलिए मुदित हैं। अथवा विदाई पाकर मुदित हैं। फिर भी रामजी सबको इतने प्रिय हैं कि इन्हें छोड़ते नहीं बनता। अतः उन्हें हृदय में रखकर जा रहे हैं। वाहरी वारातियों के विदा करने के वाद महाराज की आज्ञा हुई कि सभी प्रजा को पहिरावा मिलना चाहिए। अतः पुर नरनारियों के यहाँ पहिरावा भेजा गया। महाराज के यहाँ से पहिरावा आया है। इस उत्सव में घर घर बधाये बजने लगे।

जाचक जन जाचहि जोइ जोई। प्रमुदित राउ देहिं सोइ सोई ॥
सेवक सकल बजनिआ नाना। पूरन किये दान सनमाना ॥४॥

अर्थ : याचक लोग जो जो माँगते हैं। प्रसन्न होकर राजा वही वही वस्तु

दे रहे हैं। सब सेवकों और नाना प्रकार के बाजे बजानेवालों को दान और सम्मान से सन्तुष्ट कर दिया।

व्याख्या : इस घर से याचकों की भी विदाई होती है। और लोगों की विदाई तो महाराज ने अपनी रुचि से की। पर याचकों से उनकी चाही हुई वस्तु उनसे पूछ पूछ कर दी जा रही है। राजा शङ्कररूप है। इसे याचक सदा अच्छे लगते हैं। उन्हें ईप्सित पदार्थ देते हैं। अब सेवक और बाजा बजानेवालों की पारी आयी। उन्हें इनाम दिया गया। उनका सत्कार किया गया। नाना शब्द में विदूषक का नागर नट आदि का भी ग्रहण है। सबको सन्तुष्ट किया गया। व्याह ही एक ऐसा अवसर है जिसमें सभी गृहस्थ यथाशक्ति सबको सन्तुष्ट करने की चेष्टा करता है और सभी लोग उससे सत्कार पाने की आशा करते हैं।

दो. देहिं असीस जोहारि सब, गावहिं गुन गन गाथ।
तब गुरु भूसुर सहित गृह, गवनु कीन्ह नरनाथ ॥३५१॥

अर्थ : सब जोहार करके आशीर्वाद देने और गुणगाथा गाने लगे। तब गुरु और ब्राह्मणों के साथ नरनाथ दशरथजी घर गये।

व्याख्या : सेवक और बजनियाँ आदि जोहार करके आशीर्वाद देते हैं। महाराज की गाथा का सभी गान कर रहे हैं। क्योंकि सबको सन्तुष्ट किया है। जितने लोग बारात में आये थे उन सबको सत्कार करके घर भेजकर तब आप घर चले। घर जाने में भी गुरुजी तथा ब्राह्मणों को साथ लेकर अन्तःपुर में प्रवेश करते हैं। इनसे परदा नहीं है। नरनाथ हैं : मनुष्य मात्र के कल्याण पर दृष्टि है।

जो बसिष्ठ अनुसासन दीन्ही। लोक बेद बिधि सादर कीन्ही ॥
भूसुर भीर देखि सब रानी। सादर उठीं भाग्य बड़ जानी ॥१॥

अर्थ : जो वसिष्ठजी ने लोकविधि और वेदविधि के लिए आज्ञा दी उसे आदर के साथ किया। ब्राह्मणों की भीड़ देखकर रानियाँ बड़ा भाग्य जानकर आदर के साथ उठीं।

व्याख्या : मुनि का अनुशासन सर्वथा ग्राह्य है। मुनि के अनुशासन से ही शिवजी ने गणपति का : पुत्रका पूजन किया। वह अनुशासन अविचारणीय है। तदनुसार लोकविधि मण्डपग्रन्थिनिर्मोकादि तथा वेदविधि देवपितृविसर्जनादि श्रद्धा के साथ किया। क्योंकि बिना श्रद्धा से जो कुछ किया जाता है वह सब असत् हो जाता है। यथा : अश्रद्धया हुतं दत्तं तपस्तप्तं कृतञ्च यत्। असदित्युच्यते पार्थ न च तत्प्रेत्य नो इह।

विप्रसङ्कीर्ण मन्दिर बड़े भाग्य से होता है। सो रानियों ने आँगन में ब्राह्मणों की भीड़ देखी। सो आदर के साथ उठीं। अपना बड़ा भाग्य माना। महाराज वैदिक लौकिक कृत्य कर रहे हैं तबसे ब्राह्मणों का सत्कार होना चाहिए।

पाय पखारि सकल अन्हवाये । पूजि भली विधि भूप जेवाये ॥
आदर दान प्रेम परिपोषे । देत असीस चले मन तोषे ॥२॥

अर्थ : सबको पाँव धोकर नहलाया। राजा ने भलीभाँति पूजन करके भोजन करवाया। आदर दान और प्रेम से परिपुष्ट होनेपर मन से सन्तुष्ट होकर आशीर्वाद देते चले।

व्याख्या : महारानियों ने पाद प्रक्षालन पूर्वक सबको स्नान कराया। तब तक महाराज कृत्य से खाली हो गये। पूजन उन्होंने विधान से किया। तत्पश्चात् सबको भोजन कराया। आदर पूर्वक दक्षिणा दी। ताम्बूल दिया। प्रेम से परिक्रमा की। चरणस्पर्श किये। ब्राह्मण सब प्रकार से पूजित होकर सन्तुष्ट हुए और आशीर्वाद देते चले। परोक्ष में रास्ते चलते आशीर्वाद देते जा रहे हैं।

बहु विधि कीन्ह गाधिसुत पूजा । नाथ मोहि सम धन्य न दूजा ॥
कीन्ह प्रसंसा भूपति भूरी । रानिन्ह सहित लीन्हि पग धूरी ॥३॥

अर्थ : बहुत प्रकार से विश्वामित्रजी की पूजा की। कहा कि नाथ ! मेरे समान कोई धन्य नहीं है। राजा ने बड़ी प्रशंसा की और रानियों के सहित चरणों की धूलि ली।

व्याख्या : जब सब ब्राह्मणों की पूजा की, उस समय गाधि के पुत्र विश्वामित्र की पूजा नहीं की। क्योंकि इनकी पूजा बहुत विधान से करनी थी। उस समय पूजा करने से पंक्तिभेद हो जाता। गाधिसुत करने से विश्वामित्रजी का अलौकिक पुरुषार्थ द्योतन किया जो अपनी तपस्या के बल द्वारा क्षत्रिय से ब्राह्मण हो गये। पूजनोपरान्त स्तुति की और कहा कि मेरे समान धन्य कोई नहीं। किसके बेटे के ब्याह में आप बारात गये थे ? मुझपर आपकी इतनी कृपा है। अतः मेरा बड़ा पुण्य है। पुण्यात्मा को ही धन्य कहते हैं। यथा : सुकृती पुण्यवान् धन्यः। इसी रीति से महाराज ने उनकी बड़ी प्रशंसा की। सुनकर महारानियों को भी बड़ी श्रद्धा हुई और उन लोगों ने भी महाराज के साथ ही उनकी चरणधूलि को सिर पर रक्खा।

भीतर भवन दीन्ह बर बासू । मनु जोगवत रह नृपु रनिवासू ॥
पूजे गुरु पद कमल बहोरी । कीन्हि बिनय उर प्रीति न थोरी ॥४॥

अर्थ : उनको अन्तःपुर के भीतर ही श्रेष्ठ निवास स्थान दिया। राजा स्वयं रनिवास के साथ उनका मन देखा करते थे। फिर राजा ने गुरु : वसिष्ठजी के चरणकमलों की पूजा की। उनके हृदय में बड़ी प्रीति थी। तदनुसार विनती की।

व्याख्या : विश्वामित्रजी को अन्तःपुर में ही निवास देने का यह भाव कि जिसमें महाराज को महारानियों के साथ स्वयं सेवा करने का सुयोग मिल सके। जो सेवा कराता है वही सेवा करना जानता है। संसार राजा की सेवा के लिए

उत्सुक रहता है। अतः राजा जानता है कि सेवा कैसे की जाती है। अत्यन्त आदर के लिए स्वयं भी सेवा करना चाहते हैं। रानियों की भी सेवा करने की अतिश्रद्धा है। विश्वामित्रजी को आज्ञा देने की आवश्यकता नहीं पड़ती। उनका रुख देखकर ही महाराज तथा महारानियाँ सब काम कर देती हैं। अयोध्या की सभ्यता इतनी बढ़ी चढ़ी है कि वहाँ अधिकांश कार्य रुख देखकर ही हुआ करता है। अङ्गों की पूजा पहिले और प्रधान की पूजा अन्त में होती है। इसी क्रम से गुरु वसिष्ठजी की पूजा सबके पीछे हुई। महाराज की गुरुचरणों में बड़ी प्रीति है। अतः पूजनोपरान्त विनय किया।

दो. वधुन समेत कुमार सब, रानिन्ह सहित महीस।
पुनि पुनि वंदत गुरु चरन, देत असीस मुनीस ॥३५२॥

अर्थ : बहुओं के साथ सब कुमार और रानियों के सहित राजा बार बार गुरुचरणों की वन्दना करते हैं और मुनीश्वर आशीर्वाद देते हैं।

व्याख्या : वधुओं को मैके से शिक्षा मिली है : सास ससुर गुर सेवा करेहू पति रुख लखि आयसु अनुसरेहू। सो वे सास ससुर पति सबको गुरुजी के पादाक्रान्त देखती हैं। अतः वधुओं की भी बड़ी श्रद्धा है। सब लोग बार बार श्रद्धातिरेक से गुरुचरणों की वन्दना कर रहे हैं और गुरुजी सबको आशीर्वाद देते हैं। गुरु और पुरोहित घर के प्राणी हो जाते हैं। उनसे न कोई सङ्कोच रहता है न परदा रहता है और न कोई बात छिपी रहती है। यहाँ गुरुजी बीच में आसीन है। महाराज दशरथ, रानियों, बेटों और पतोहुओं को लिये हुए सपरिवार पूजन कर रहे हैं। सब प्रेम से बारबार प्रणाम कर रहे हैं और वृद्ध वसिष्ठ सबके बीच में बैठे आशीर्वाद दे रहे हैं।

विनय कीन्हि उर अति अनुरागे। सुत संपदा राखि नृप आगे॥
नेग माँगि मुनि नायक लीन्हा। आसिरबादु बहुत बिधि दीन्हा ॥१॥

अर्थ : अत्यन्त प्रेम से पुत्र और सम्पदा सामने रखकर विनय किया। मुनि-नायक ने नेग माँगकर लिया और बहुत विधि से आशीर्वाद दिया।

व्याख्या : महादानी राजा हैं गुरु की विदाई क्या करें। सो सारी सम्पदा सामने रक्खी और बेटों को भी रख दिया। जिनके लिए कहा था कि : सब सुत मोहि प्रिय प्रान की नांई। राम देत नहिं बनै गोसांई। उन्हें भी सामने रखकर विनय करते हैं कि आप स्वीकार कर लीजिये। मुनिजी लेना भी नहीं चाहते और प्रेम का अनादर करना भी नहीं चाहते। अतः अपना नेग माँगा कि हमारा नेग इतना होता है। सो मुहमाँगा नेग पाने पर जिस भाँति तुष्ट होकर पुरोहित आशीर्वाद दिया करते हैं उसी भाँति बहुत प्रकार से आशीर्वाद दिया।

उर धरि रामहि सीय समेता। हरषि कीन्ह गुर गवनु निकेता॥
बिप्रबधू सब भूप बोलाईं। चैल चारु भूषन पहिराईं ॥२॥

अर्थ : हृदय में सीताजी के सहित रामजी को रखकर हर्षित हो गुरुजी घर गये। राजा ने विप्रवधुओं को बुलाया। सुन्दर कपड़े और गहने पहिनाये।

व्याख्या : सर्वोत्तम वस्तु गुरुजी ने चुन ली। रामजी को सीता सहित देखकर युगलमानसी मूर्ति को हृदय में रख लिया और हर्षित होकर घर गये। अब विवाहपद्धति के अनुसार विप्रवधू और सुआसिनों का सत्कार शेष है। सो राजा ने उन्हें भी बुलवाया। पुर नर नारियों को पहिले ही पहिरावा मिल चुका है। विप्रवधुओं को नहीं मिला है। इनका विशेष सत्कार होगा। इसलिए सबके साथ इनका सत्कार नहीं हुआ था। अतः उन्हें कपड़े और गहने पहिनाये।

बहुरि बुलाइ सुआसनि लीन्हीं। रुचि विचारि पहिरावनि दीन्ही ॥
नेगी नेग जोग सब लेहीं। रुचि अनुरूप भूपमनि देहीं ॥३॥

अर्थ : फिर सुहागिनों को बुला लिया। रुचि का विचारकर पहिरावा दिया। नेगी लोग नेग जोग ले रहे हैं। जिसको जो रुचि है उसे वही भूपमणि दे रहे हैं।

व्याख्या : विप्रवधुओं के सम्मान के बाद सुहागिनी स्त्रियों का सम्मान आरम्भ हुआ। वे सौभाग्यवती हैं। लज्जा से अपनी अभिरुचि व्यक्त न करेंगी। अतः स्वयं उनकी रुचि का विचार उनके वेषभूषा से करके उनको पहिरावा दिया। नेगियों को नेग जोग देना शेष है। वे तो झगड़ कर लेते हैं। उन्हें माँगने में सङ्कोच नहीं है। अतः स्पष्ट रुचि जानकर देते हैं। भूपमणि हैं : देने से अघाते नहीं।

प्रिय पाहुने पूज्य जे जाने। भूपति भली भाँति सनमाने ॥
देव देखि रघुबीर विवाहू। बरषि प्रसून प्रसंसि उछाहू ॥४॥

अर्थ : जिन प्रिय पाहुनों को पूज्य समझा राजा ने उनका भलीभाँति से सम्मान किया। देवताओं ने रघुवीर का विवाह देखकर पुष्पों की वृष्टि करके और उछाह का वर्णन करके :

व्याख्या : प्रिय पाहुने दो प्रकार के होते हैं। एक पूज्य यथा : बहनोई, दामाद इत्यादि और दूसरे पूजक : जैसे साले इत्यादि। इनमें से पूजकों का तो केवल सम्मान किया जाता है। क्योंकि वे दिया हुआ कुछ ग्रहण न करेंगे। परन्तु पूज्यों का वस्त्रालङ्कारादि से भलीभाँति सम्मान किया जाता है। तदनुसार उनका वैसा ही सम्मान किया गया।

देवविसर्जन हो गया था। यथा : जो वसिष्ठ अनुसासन दीन्ही। लोक वेद विधि सादर कीन्ही। अतः अब ठहरने की आवश्यकता न रह गई। व्याहकार्य भी समाप्त हो गया। अतः चलने के समय फिर पुष्पवृष्टि की और उछाह की प्रशंसा की। जिसे देखकर वे क्षण क्षण पर पुष्पवर्षा करते थे और स्वयं उस रस में लीन होकर नाचने गाने लगे थे। यथा : बरखहिं सुमन छनहि छन देवा। नाचहिं गावहिं लावहिं सेवा।

दो. चले निसान बजाइ सुर, निज निज पुर सुख पाइ।
कहत परसपर राम जसु, प्रेमु न हृदय समाइ ॥३५३॥

अर्थ : देवता लोग डङ्का बजाकर और सुख पाकर अपने अपने लोकों को चले। आपस में रामजी का यश कहते जाते थे। प्रेम हृदय में नहीं समाता था।

व्याख्या : विवाह हो जाने से निर्भय हैं। जानते हैं कि जानकीहरण से रावणवध होगा। विवाह होने से विधि बैठ जायगी। अतः सुख पाकर अथवा इस विवाह के देखने से लोचन का फल पाकर सुखी हुए और डङ्का बजाकर चले। सबके लोक दूर दूर और पृथक् दिशाओं में हैं। अतः उन उन दिशाओं में चले। ईशानकोण की ओर शिव चले। इन्द्र पूर्व की ओर चले। अग्नि अग्निकोण की ओर, धर्म दक्षिण की ओर, निर्ऋति नैर्ऋत्य कोण की ओर, वरुण पश्चिम की ओर, वायु वायव्यकोण की ओर और कुबेरजी उत्तर की ओर चले। इस भाँति देवता लोग अपने अपने निवासस्थान को चले। अपने अपने समाज में रामजी के सुबाहुवध, धनुषभङ्ग, परशुरामपराजय आदि यश का वर्णन करते जाते थे। क्योंकि हर्ष उनके हृदय में समाता न था। जिसमें इतना पराक्रम है उसी के हाथ से रावणवध सम्भव है।

सब बिधि सबहिं समदि नर नाहू। रहा हृदय भरिपूरि उछाहू ॥
जहँ रनिवास तहाँ पगु धारे। सहित बधूटिन कुँअर निहारे ॥१॥

अर्थ : सब भाँति सबका सत्कार करके महाराज के हृदय में उछाह उमड़ा हुआ था। जहाँ रनिवास था वहाँ पधारे तो बहुओं के साथ कुँअरों को देखा।

व्याख्या : नरनाथ हैं। उन्हें सत्कार करने में भी बड़ा हर्ष का अनुभव होता था। सबका यथोचित सत्कार किया। अतः सबके सत्कार को पृथक् विधि कवि ने लिखी। देवता लोग प्रिय पाहुने पूज्य के सत्कार के समय गये। क्योंकि उन्हीं की अन्तिम विदाई थी।

सब बारातियों को घर भेजकर तब अन्तःपुर में गये : अभी तक धर्मकृत्य में साथ देने के लिए रानियाँ मण्डप में आई थीं। वहाँ पर जाकर चार सिंहासनों पर बहुओं के साथ बैठे हुए कुँअरों को देखा। चमर चल रहा है। पंखे झले जा रहे हैं। रानियाँ घेरे हुए हैं। आमोद प्रमोद हो रहा है इत्यादि।

लिये गोद करि मोद समेता। को कहि सकै भयेउ सुखु जेता ॥
बधू सप्रेम गोद बैठारी। बार बार हिय हरखि दुलारी ॥२॥

अर्थ : आनन्द से गोद में ले लिया। जैसा सुख हुआ सो कहा नहीं जा सकता। बहुओं को प्रेम से गोद में बिठलाया। बार बार हृदय में हर्षित होकर उनका दुलार किया।

व्याख्या : कई बार वधुओं के साथ कुँअरों को देख चुके हैं। पर अवसर न होने से गोद में नहीं लिया था। सो पहिले कुँअरों को गोद में बिठाकर अवर्णनीय

सुख का अनुभव किया। फिर बहुओं को गोद में लिया। अभी सबकी सब अल्प-वयस्का हैं। पिता के गोद में बैठने का समय बीता नहीं है। अतः गोद में बैठाकर दुलार करते हैं। मानो पितृवियोगजनित पीड़ा का मार्जन कर रहे हैं। जनकजी की विनती का पूरा ध्यान है। यथा : ये दारिका परिचारिका करि पालबी करुना नई।

देखि समाज मुदित रनिवासू। सबके उर अनंदु कियो बासू॥
कहेउ भूप जिमि भयेउ बिबाहू। सुनि सुनि हरषु होत सब काहू॥३॥

अर्थ : वह दृश्य देखकर रनिवास प्रसन्न था। सबके हृदय में आनन्द ने निवास किया। महाराज ने कह सुनाया कि किस भाँति विवाह हुआ। सुन सुनकर सबके हृदय में हर्ष होता था।

व्याख्या : कौटुम्बिक सुख की पराकाष्ठा है। आनन्द से पूर्ण पति बैठे हुए हैं। चारों बेटों और बहुओं का लाड़ प्यार हो रहा है। वे ब्याहकर अभी आये हैं। पतिसुख पुत्रसुख, पुत्रवधूसुख, राज्यसुख, कीर्तिसुख, सभी सुख प्राप्त हैं। हृदय में सब रानियों को स्थायी सुख हुआ। इसलिए कवि कहते हैं : सबके उर अनंद कियो बासू।

रानियों ने विवाह नहीं देखा। प्रिय समाचार महाराज के मुख से सुनने के लिए उत्सुक हैं। जिस विवाहसम्बन्धी पत्र को छाती से लगाकर छाती ठण्ढी करती थीं उस विवाह के वर्णन के सुनने में भी उन्हें बड़ा सुख था। महाराज ने सब वर्णन किया। समधियाने का समाचार सुनकर सब हर्षित हो रही हैं।

जनक राज गुन सीलु बड़ाई। प्रीति रीति संपदा सुहाई॥
बहुबिधि भूप भाट जिमि बरनी। रानी सब प्रमुदित सुनि करनी॥४॥

अर्थ : राजा जनक का गुण, शील, बड़ाई, प्रीति की रीति और सुन्दर सम्पदा का वर्णन राजा ने अनेक प्रकार से बंदीजनों की भाँति किया। करणी सुनकर सब रानियाँ प्रमुदित हुईं।

व्याख्या : राजा लोग मितभाषी होते हैं। उनके एक एक शब्दों का मूल्य होता है। जिसकी प्रशंसा का एक शब्द उनके मुख से निकल गया उसका महाभाग्य माना जाता था। सो महाराज दशरथ जनकराज के : १. गुण २. शील ३. बड़ाई ४. प्रीति की रीति और ५. सुन्दर सम्पदा से ऐसे प्रभावित हैं कि उनके वर्णन में अघाते नहीं हैं।

१. गुण। यथा : सनमानि सकल बरात आदर दान बिनय बड़ाइ कै।
प्रमुदित महामुनिवृन्द बंदे पूजि प्रेम लड़ाइ कै।
कुल इष्ट सरिस बसिष्ठ पूजे बिनय करि आसिस लही।
कौसिकहिं पूजत परम प्रीति कि रीति पै न परै कही।
बहुरि कीन्ह कोसलपति पूजा। जानि ईस सम भाव न दूजा॥
पूजे भूपति सकल बराती। समधी सम सादर सब भाँती॥

इत्यादि।

२. शील। यथा : सिर नाइ देव मनाइ सब सन कहत कर संपुट किये।
सुर साधु चाहत भाव सिंधु कि तोष जल अंजलि दिये।

३. बड़ाई। यथा : ये दारिका परिचारिका करि पालवी करुना नई।
अपराध छमिवो वोलि पठयों वहुत हौं ढीठ्यौ कई। इत्यादि।

जनक जी की बड़ाई है। नहीं तो लड़केवाले बारात लेकर आते ही हैं। इसमें विशेषता क्या है। पर यह जनकराज की बड़ाई है कि वुला भेजने को भी वे अपनी ढिठाई समझ रहे हैं।

४. प्रीति की रीति। यथा : बार बार कोसलपति कहहीं।
जनक प्रेमवस फिरन न चहहीं॥
दिन प्रति विदा अवधपति माँगा।
राखहिं जनक सहित अनुरागा॥
दिन प्रति सहस भाँति पहुनाई। इत्यादि।

५. सुहाई सम्पदा। यथा : जेहि अवलोक लोकपति लोक संपदा थोरि।
जो संपदा नीचगृह सोहा।
सो विलोकि सुरनायक मोहा। इत्यादि।

अथवा बहुओं की प्रसन्नता के लिए सविस्तार वर्णन करना महाराज ने उचित समझा। स्त्रियाँ करणी से प्रसन्न होती हैं। व्याह में करणी प्रभूत दायज देने को कहा जाता है। अतः राजा के दायज देने का हाल सुनकर रानियाँ बड़ी प्रसन्न हैं। मिले हुए दायज में कुछ अंश बाँटा जाता है। उसके बहुतायत से उन्हें बाँटने में बड़ा आनन्द होता है।

दो. सुतन समेत नहाइ नृप, बोलि विप्र गुरु ज्ञाति।
भोजन कीन्ह अनेक विधि, घरी पंच गइ राति॥३५४॥

अर्थ : पुत्रों के सहित स्नान करके राजा ने ब्राह्मण बड़े बूढ़े जातिवालों को वुलाकर अनेक विधि से भोजन किया। रात की पाँच घड़ियाँ वीत गईं।

व्याख्या : यह महाराज का काम्यस्नान श्रमापनोदन के लिए है। इष्टजनैः सह भुक्तं भुक्तम्। भोजन तो वही है जो इष्ट मित्र के साथ किया जाय। ब्राह्मण भोजन तो पहिले ही हो चुका है। इस समय तो अन्तरङ्ग मण्डली जुटी हुई है। ब्राह्मण भी जो अन्तरङ्ग हैं तथा भाई विरादरियों में प्रतिष्ठित बड़े बूढ़े हैं उन्हें बुला करके महाराज ने भोजन किया। छः रस, चार विधि, छप्पन प्रकार का भोजन वना था। भोजन करते कराते दो घण्टा रात बीत गई।

मंगलगान करहिं वर भामिनि। भै सुखमूल मनोहर जामिनि॥
अँचै पान सब काहू पाए। स्रक् सुगंध भूषित छवि छाए॥१॥

अर्थ : सुन्दर स्त्रियाँ मङ्गलगान कर रही हैं। सुन्दर रात्रि सुख की मूल हुई।

हाथ मुँह धोकर सबने पान पाये। माला और सुगन्ध से भूषित होकर सुशोभित हुए।

व्याख्या : भोजन में स्पर्श, रूप, रस और गन्ध का अनुभव होता है। केवल शब्द का नहीं होता। अतः सुन्दर स्त्रियाँ मङ्गलगान करने लगीं। पञ्चेन्द्रिय तर्पण के सुख का अनुभव सबने किया। समधियाना नहीं है। इसलिए गालीगान नहीं हो रहा है। चैत्र की चाँदनी बड़ी मनोहर होती है। अतः वह रात्रि स्वभाव से सुन्दर होते हुए भी सुख की मूल हुई। यथा : जब ते राम ब्याहि घर आये। नित नव मंगल मोद बधाये।

स्रक् सुगन्ध का विधान केवल गृहस्थ को है। इससे मालूम हुआ कि इस जेवनार में केवल गृहस्थ ही सम्मिलित हुए। विरक्त को रात्रिभोजन का विधान नहीं है।

रामहि देखि रजायसु पाई। निज निज भवन चले सिर नाई॥
प्रेम प्रमोद विनोद बड़ाई। समउ समाज मनोहरताई॥२॥

अर्थ : रामजी को देखकर और राजा की आज्ञा पाकर सब अपने अपने घर प्रणाम करके चले। प्रेम, प्रमोद, विनोद, बड़ाई, समय, समाज की मनोहरता :

व्याख्या : चलते समय सबने रामजी का दर्शन किया : ध्यान बने रहने के लिए। फिर महाराज से आज्ञा माँग माँगकर घर गये। १. प्रेम २. प्रमोद ३. विनोद ४. बड़ाई ५. समय ६. समाज मनोहरताई। यथा :

प्रेम : सुतन्ह समेत नहाइ नृप बोलि विप्र गुरु ज्ञाति।
प्रमोद : भोजन कीन्ह अनेक विधि।
विनोद : मंगलगान करहिं सब भामिनि।
बड़ाई : अँचइ पान सब्र काहू पाये। राजा के यहाँ से पान मिलना बड़ाई है।
समय : भइ सुखमूल मनोहर जामिनि।
समाज मनोहरता : स्रग सुगंध भूषित छवि छाये।
इन छः बातों का वर्णन :

कहि न सकहिं सब सारद सेसू। वेद विरंचि महेस गनेसू॥
सो मैं कहौं कवन विधि बरनी। भूमिनागु सिर धरइ कि धरनी॥३॥

अर्थ : सौ शारदा, शेष, वेद, ब्रह्मदेव, महेश और गणेश नहीं कह सकते। उसे मैं किस विधि से वर्णन करूँ, केचुआ क्या सिर पर पृथ्वी उठा सकता है।

व्याख्या : ये ही छः बड़े वर्णन करनेवाले हैं। वे भी इन छः विषयों का वर्णन नहीं कर सकते :

१. शारदा : यह बड़ी प्रेमी हैं। यथा : भगत हेतु विधि भवन विहाई। सुमिरत सारद आवत धाई। सो भी इस प्रेम का वर्णन नहीं कर सकतीं।

२. शेष : ये पाताललोक के वक्ता हैं। वहाँ भोग अत्यधिक है। सो इस इष्टभोग : प्रमोद का वर्णन नहीं कर सकते।

३. वेद : ये रघुपतियशवर्णन में नहीं थकते। यथा : जिनहि न सपनेहु खेद बरनत रघुवर विसद जस। सो विनोद का वर्णन नहीं कर सकते।

४. विरंचि : सबसे बड़े हैं। नाम ही पितामह है। सो बड़ाई का वर्णन नहीं कर सकते।

५. महेश : ये काल के भी काल हैं। सो इस काल का वर्णन नहीं कर सकते।

६. गणेश : ये मङ्गलमूर्ति हैं। सो इस समाज की मनोहरता का वर्णन नहीं कर सकते।

मैं असमर्थ और अकेला इनका वर्णन कैसे कर सकता हूँ। पृथ्वी को शेष ही धारण कर सकते हैं। दिव्य नाग तक्षक वासुकी आदि की भी धारण करने की सामर्थ्य नहीं। लौकिक नाग तो धरणी में ही बिलों में पड़े रहते हैं। वे क्या धारण कर सकेंगे। केचुए का तो नाम मात्र ही भूमिनाग है। उसकी सामर्थ्य लौकिक नागों के सामने भी कुछ नहीं है। उसके धरणी के उठाने की कथा ही क्या है। सो यह षड्गुणवती पृथ्वी ऐसी है कि उसे शेष भी नहीं धारण कर सकते। भावार्थ यह कि जिसे शारदादि वर्णन नहीं कर सकते उसे मैं जिसकी गणना प्राकृत कवियों के सामने कुछ नहीं है क्या वर्णन कर सकता हूँ।

नृप सब भाँति सबहिं सनमानी। कहि मृदु वचन बोलाई रानी॥
बधू लरकिनि पर घर आईं। राखेहु नयन पलक की नाईं॥४॥

अर्थ : राजा ने इस भाँति का सम्मान करके कोमल वचनों से रानियों को बुलाया। बहू अभी बच्ची हैं। पराये घर आई हैं। इन्हें इस भाँति रखना जिस भाँति पलक नयन की रक्षा करता है।

व्याख्या : राजा सें विधि का पालन होता है। भाव का पालन तो प्रेमपूर्वक कहने से ही होता है। इसलिए मृदु वचन से रानियों को बुलाया और समझाया कि बहुएँ अभी बच्ची हैं। अपना घर नहीं पहचान सकतीं। अभी इसे पराया घर समझ रही हैं। सो इनकी रखवारी इस भाँति करना जैसे पलकें आँखों की करती हैं। कोई कष्ट किसी प्रकार का न होने पावे। पलक को नेत्र के कहने की प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ती। उसे स्वयं सावधान होकर सर्वदा आँखों का पालन करना पड़ता है। थोड़े दिन की बात है। बड़ी होने पर घर पहिचान लेंगी। तब इतनी सावधानता की आवश्यकता न होगी। इनके साथ ऐसा व्यवहार हो जैसा माता का बेटी के साथ होता है। जनकजी की विनती स्मरण है। अतः महाराज सहेजते हैं। मैं इनकी देखरेख नहीं कर सकता। रानियों ने भी वैसा ही व्यवहार किया।

वनगमन के समय कौसल्याजी कहेंगी : नयन पुतरि करि प्रीति बढ़ाई। राखेउं प्रान जानकिहि लाई।

दो. लरिका श्रमित उनींद बस, सयन करावहु जाइ।
अस कहि गे बिश्रामगृह, रामचरन चितु लाइ॥३५५॥

अर्थ : लड़के थके हैं। उनींदे हो रहे हैं। इन्हें ले जाकर सुलाओ। ऐसा कहकर और रामजी के चरणों में चित्त लगाकर शयनगृह में गये।

व्याख्या : लड़के हैं इसलिए थक गये हैं। उनींदवश हो रहे हैं। यथा : उठीं सखी हँसि मिसकरि कहि मृदु बैन। सिय रघुबर के भये उनींदे नैन। लरिका शब्द में वधू लरिकनी का भी अन्तर्भाव है। यद्यपि आज रतजगा है पर तुम लोग जाकर सुला दो। महाराज के यहाँ सब कार्यों के लिए पृथक् पृथक् गृह हैं। महारानियों को सहेजकर चक्रवर्तीजी रामजी के चरण में चित्त लगाकर शयनगृह गये। जितने लोग गये सबने रामजी को हृदय में रक्खा। यथा :

जनकपुर के याचक : बार बार बिरदावलि भाखी।
फिरे सकल रामहि उर राखी॥
बाराती : आयसु पाइ राखि उर रामहि।
मुदित गये सब निज निज धामहि॥
गुरुजी : उर धरि रामहि सीय समेता।
हरषि कीन्ह गुरु गवन निकेता॥
देवता : कहत परसपर राम जस हरख न हृदय समाइ।
विप्र गुरु ज्ञाति : रामहि देखि रजायसु पाई।
निज निज भवन गये सुख पाइ॥
स्वयं महाराज : गे बिश्राम गृह राम चरन चित लाइ।

भूप बचन सुनि सहज सुहाए। जरित कनक मनि पलँग डसाए॥
सुभग सुरभि पय फेन समाना। कोमल कलित सुपेती नाना॥१॥

अर्थ : राजा के स्वभाव से ही सुन्दर वचन सुनकर स्वर्ण और मणि जड़े हुए पलङ्ग बिछाये। सुन्दर दूध के फेन के समान कोमल अनेक प्रकार के तोशक बिछाये गये।

व्याख्या : उनींदे बालकों को शयन कराने की आज्ञा स्वभाव से ही सुन्दर है। महाराजों की पलङ्ग भी ठोस सोने की नहीं होती पलङ्ग के लिए हलका सोना अत्यन्त आवश्यक है। अतः वे ठोस सोने की नहीं थीं। स्वर्ण और मणि उनमें जड़े हुए थे। ऐसी पलङ्गे बिछायी गईं। उन पर तोशक बिछाई गईं जो कि गोदुग्ध के फेन सी श्वेत और कोमल थीं : भैंस के दुग्ध का फेन उतना कोमल नहीं होता। इसलिए निमिश भैंस के दूध के फेन का ही बनता है। अति कोमल होने से गाय के दूध के

फेन का नहीं बन सकता। अत्यन्त कोमल होने से एक एक पलङ्ग पर कई तोशकें बिछायी गईं : महारानियाँ स्वयं काम में लग गईं।

उपवरहन वर बरनि न जांहीं। स्रग सुगंध मनिमंदिर मांहीं॥
रतनदीप सुठि चारु चँदोवा। कहत न बनइ जान जेहिं जोवा॥२॥

अर्थ : अच्छे अच्छे तकिये जिनका वर्णन नहीं हो सकता। मणि के मन्दिर में फूल की मालाओं की सुगन्ध थी। रत्न के दीप और सुन्दर चँदोए कहते नहीं बनते। वे ही जानते हैं जिन्होंने देखा है।

व्याख्या : बरनि न जांही कहकर तकियों का बहुत्व सूचित किया। प्राचीन रीति थी कि पतले पतले पचासों तकिये रक्खे जाते थे। जिसमें सोनेवाला अपने सुभीते के अनुसार उनकी ऊँचाई निचाई घटा बढ़ा सके। मणि जटित मन्दिर स्वभाव से शीतल थे। उनमें रत्न के दीप रक्खे गये। जिनमें ऐसी ठण्ढी रोशनी निकलती थी जिसमें सोने में आँख न चमके। फूल की मालाओं से काम लिया गया। जिसमें भीनी भीनी सुगन्धि कमरे में भरी रहे।

जीवजन्तु का प्रवेश न हो सके इसलिए पलङ्गों के ऊपर चँदोए थे। जिनमें परदे लटक रहे थे। आजकल उसे मसहरी कहते हैं। वे सबके सब ऐसे सुन्दर थे जिनका वर्णन नहीं हो सकता था देखते ही बनता था।

सेज रुचिर रचि राम उठाए। प्रेम समेत पलँग पौढ़ाए॥
आज्ञा पुनि पुनि भाइन्ह दीन्ही। निज निज सेज सयन तिन्ह कीन्ही॥३॥

अर्थ : सुन्दर सेज रचकर रामजी को उठाया और प्रेम समेत पलङ्गपर पौढ़ाया। रामजी ने बार बार आज्ञा भाइयों को दी। तब वे लोग भी अपने पलंगों पर जाकर सोये।

व्याख्या : रामजी के सामने महाराज ने आज्ञा नहीं दी थी। माँ के बिठाये जानकीजी के साथ सिंहासन पर बैठे थे। माँकी आज्ञा हो तो उठें। इसलिए माँ ने वहाँ से उठाया और प्रेम के साथ लिवा लाईं और पलंग पर लिटा दिया। रामजी के साथ सब भाई चले आये परन्तु विनय के कारण सो नहीं रहे हैं। जब रामजी ने बार बार आज्ञा दी तब वे लोग भी अपने पलङ्गों पर गये और सोये।

देखि स्याम मृदु मंजुल गाता। कहहिं सप्रेम बचन सब माता॥
मारग जात भयावनि भारी। केहि बिधि तात ताड़िका मारी॥४॥

अर्थ : सुन्दर श्याम कोमलगात देखकर सब माताएँ प्रेम से कहती हैं कि रास्ते में जाते हुए भारी भयावनी ताड़का को बेटा तुमने कैसे मारा ?

व्याख्या : रामजी के रूप में अलौकिक सुन्दरता है। अद्भुत श्यामता है और अतीव कोमलता है। इसे देखकर माताओं को ताड़का का भयानक रूप अत्यन्त उग्रता और अलौकिक पराक्रम जो सुन रक्खा था उसी की याद आई।

मनमें कोई विधि ही नहीं बैठती जिससे इस कोमल शरीर द्वारा उसका वध हो सके। अतः स्वयं रामजी से ही विधि पूछती हैं। माता का वात्सल्य इनके अद्भुत पुरुषार्थ की महिमा को हृदय में स्थान नहीं देने देता।

दो. घोर निसाचर विकट भट, समर गनहिं नहिं काहु।
मारे सहित सहाय किमि, खल मारीच सुबाहु ॥३५६॥

अर्थ : भयानक रांक्षस, बड़े विकट योद्धा, युद्ध में किसी को गिननेवाले नहीं ऐसे मारीच और सुबाहु खल को सेना सहित कैसे मारा ?

व्याख्या : घोर निशाचर कहकर सुबाहु मारीच को अत्युत्कट मायावी कहा। विकट भट कहकर उनका महाबल और युद्धकौशल कहा। समर गनै नहि काहु कहकर उनका महापराक्रम कहा। खल कहकर उनका युद्ध में समरधर्मोल्लंघन कहा। सहित सहाय कहकर उनका सेना सहित होना ख्यापन किया। स्वयं असहाय रहते हुए ऐसों को सेना सहित कैसे मारा ? क्रम से घटनाओं के विषय में माताएँ प्रश्न करती हैं। इस व्याज से स्तुति भी कर रही हैं।

मुनि प्रसाद वलि तात तुम्हारी। ईस अनेक करवरें टारी॥
मख रखवारी करि दुहु भाई। गुरु प्रसाद सब विद्या पाई ॥१॥

अर्थ : मैं बलिहारी जाती हूँ। मुनि के प्रसाद से हे तात ! महादेव ने तुम्हारे अनेक अनिष्टयोग दूर किये। दोनों भाइयों ने यज्ञ की रक्षा की। गुरु के प्रसाद से सब विद्या पाई।

व्याख्या : रामजी के मुख से कोई उत्तर न पाकर स्वयं ही शङ्काओं का समाधान करती हैं। मुनि जी की कृपा से महादेवजी ने ये अरिष्ट योग हटाये। कोई भारी अरिष्ट योग था जो इन राक्षसों का सामना पड़ गया। महादेवजी संहारकर्त्ता हैं। उन्हीं के प्रभाव से ये मारे गये। समाचार सविस्तार पा चुकी हैं। उन्हीं का सामञ्जस्य बिठाती है। इस भाँति दोनों भाइयों ने मिलकर मुनि के यज्ञ की रखवारी कर ली। भावार्थ यह कि तुमने मारीच सुबाहु को मारा और लक्ष्मण ने सारी निसाचरी सेना मारी। गुरु प्रसाद से बला अतिबला तथा सम्पूर्ण अस्त्र-विद्या की भी प्राप्ति हुई।

मुनितिय तरी लगत पग धूरी। कीरति रही भुवन भरि पूरी॥
कमठ पीठि पवि कूट कठोरा। नृप समाज महुँ सिव धनु तोरा ॥२॥

अर्थ : चरण की धूलि लगने से मुनि की स्त्री तर गई। इसकी कीर्ति सारे भुवन में व्याप्त हो गई। कछुए की पीठ, वज्र और निहाई से भी कठिन शिवजी के धनुष को राजसमाज में तोड़ डाला।

व्याख्या : तप ते अगम न कछु संसारा। सो तप से अहल्या न तर सकी। चरणधूलि से घोर ब्रह्मशाप मिट गया। अहल्या तर गई। जितनी ही अद्भुत बात

होती हैं उतनी ही शीघ्र और दूर तक वह फैल जाती हैं। अतः यश भुवन में छा गया। दूसरी कीर्ति भी बड़ी भारी हुई। शिवजी की भुजा का तान सहनेवाले धनुष के सामने कमठपीठ, वज्र और निहाई की कठोरता क्या है ? जिसे देखकर रावण बाणासुर धीरे से खिसक गये। उसे राजसमाज के बीच तोड़ डाला। नृप समाज कहने का भाव यह कि द्वीप द्वीप के राजा आये थे। अतः यह कीर्ति द्वीप द्वीप में अनायास फैल गई।

विस्व विजय जसु जानकि पाई। आए भवन ब्याहि सब भाई॥
सकल अमानुस करमु तुम्हारे। केवल कौसिक कृपा सुधारे॥३॥

अर्थ : विश्वविजय का यश और जानकी प्राप्त की और सब भाई ब्याह कर घर आये। ये सब तुम्हारे अमानुष कर्म केवल विश्वामित्रजी की कृपा से बन गये।

व्याख्या : जनकजी ने कहा था : कुँअरि मनोहरि विजय बड़ि। सो दोनों की प्राप्ति हुई। चिट्ठी एक ब्याह के लिए आई सो चारों भाई ब्याह करके आये। ये छवों कर्म तुम्हारे अमानुष हैं। ये छवों भग : ऐश्वर्य : हैं भगवान् में रहते हैं। १. शरीर की परवाह न करके यज्ञरक्षा की यह वैराग्य है २. विद्या प्राप्ति की यह ज्ञान है ३. अहल्यासन्तरण यह धर्म है। ४. ईश्वर के धनुष का तोड़ना यह ऐश्वर्य है ५. जानकी की प्राप्ति यह यश है ६. ब्याह कर श्री को घर में लाये : यह श्री है। सो यह सब बातें जो तुमसे हुईं वह केवल विश्वामित्रजी की कृपा से ही सम्भव हुईं। उन्होंने पहिले ही कहा था इन कर अति कल्यान सोई हुआ।

आजु सुफल जग जनम हमारे। देखि तात बिधुबदन तुम्हारे॥
जे दिन गए तुमहि बिनु देखें। ते बिरंचि जनि पारहि लेखे॥४॥

अर्थ : हे तात ! आज तुम्हारा मुखचन्द्र देखने से हमारा जन्म सुफल हुआ। जितने दिन तुम्हारे बिना देखे बीते हैं ब्रह्मदेव उन्हें लेखे में न डालें।

व्याख्या : इन विपत्तियों को पार करके सब भाँति से तुम्हें कृतकार्य हुए देखकर हमारा जन्म सफल हुआ। लेखे में डालने से फिर उससे काम पड़ता है। अतः जो दिन तुम्हें बिना देखे बीते हैं उन दिनों के कष्ट को ब्रह्मदेव फिर न दिखावें। यथा :

रिषि नृप सीस ठगौरी सी डारी।
कुलगुर सचिव निपुन नेवनि अवरेव न समुझि सुधारी॥
सिरिस सुमन सुकुमार कुँअर दोउ सूर सरोष सुरारी।
पठए बिनहि सहाय पयादेहि केलि बान धनुधारी॥
अतिसनेह कातरि माता कहैं, सुनि सखि बचन दुखारी।
बादि बीर जननी जीवन जग छत्रि जाति गति भारी॥
जो कहिहैं फिरे राम लषन घर करि मुनि मख रखवारी।
सो तुलसी प्रिय मोहि लागि हैं ज्यों सुभाय सुत चारी॥

जबते ले मुनि संग सिधाये।
रामलषन के समाचार सखि तबते कछुअ न पाये॥
विनु पानही गमन फल भोजन भूमि सयन तरु छांहीं।
सरसरिता जलपान, सिसुन के संग सुसेवक नांहीं॥

दो. राम प्रतोषीं मातु सब, कहि विनीत वर वैन।
सुमिरि संभु गुर विप्रपद, किए नीदवस नैन ॥३५७॥

अर्थ : रामजी ने विनीत मृदु वचन कहकर सब माताओं को परितुष्ट किया और शम्भु गुरु और ब्राह्मण के चरणों का स्मरण करके आँखों को नींद के वश कर दिया।

व्याख्या : ऐसे समय में लोग अपने पराक्रम का वर्णन करते हैं। रामजी ने विनीत मृदु वचन कहकर माता का परितोष किया। विनीत और मृदु वचन से ही परितोष होता है। यथा : माता, पिता, गुरु तीन ही देवता हैं। इन्हीं की कृपा से सब कल्याण है। आपके चरणों के तथा गुरुचरणों के प्रभाव से सब हुआ इत्यादि। शिवजी ही गुरु और ब्राह्मण रूप हैं। शिवजी ही सुषुप्ति के प्रभु हैं। अतः सुषुप्ति के प्रारम्भ में इन्हीं का स्मरण किया।

नींदउ वदन सोह सुठि लोना। मनहुँ साँझ सरसीरुह सोना॥
घर घर करहिं जागरन नारी। देहिं परसपर मंगल गारी ॥१॥

अर्थ : अत्यन्त लावण्यमय मुख नींद में भी शोभा देता था जैसे लाल कमल सन्ध्या को भी शोभा देता है। घर घर स्त्रियाँ जागरण करती थीं और एक दूसरे को मङ्गल गालियाँ देती थीं।

व्याख्या : अद्भुत लावण्य है जो सोने में भी वैसा ही बना रहता है जैसा जागने में। यथा : साँवर कुँवर सखी सुठिलोना। जिस भाँति लाल कमल की शोभा सन्ध्या के समय भी बनी रहती है। सन्ध्या के समय कमल सकुच जाते हैं। अस्त होते हुए सूर्य की लाल किरणों से उनका रंग फीका पड़ जाता है। पर लाल कमल का रंग फीका नहीं पड़ता।

महाराज के अन्तःपुर में रतजगा है। अतः नगर भर में स्त्रियाँ जागरण करती हैं। रतजगा के दिन स्त्रियाँ ही रात को गाना बजाना करके जागती हैं। मर्द लोग नहीं जागते। इसीलिए स्त्रियों का ही जागरण लिखते हैं। वे उस समय एक दूसरे को मङ्गल गाली भी देती हैं। वैर की गाली अमङ्गल रूप है। उत्साह में प्रेम की गाली मङ्गलरूप मानी जाती है। यथा : सुधा सनेही गारि। अर्थात् घर घर उत्सव इस भाँति मनाया जाता है मानो स्वयं उन घरों में ब्याह पड़ा हो। इससे प्रजावर्ग की अद्भुत सहानुभूति कही।

पुरी [1]विराजति राजति रजनी। रानी कहहिं बिलोकहु सजनी ।।
सुंदरि बधुन्ह सासु लइ सोई। फनिकन्ह जनु सिरमनि उर गोई ।।२।।

अर्थ : रानी कहती हैं कि सखी! देखो पुरी विराजमान है। रात शोभा पा रही है। सुन्दर बहुओं को सास गोद में लेकर सोईं। जैसे सर्प सिर की मणि हृदय में छिपाये हो।

व्याख्या : रानियाँ रात को अटारी पर से पुर की शोभा देखती हैं और सखी को दिखलाती हैं। महाराज कुमारों का व्याह करके लौटे हैं। इस आनन्द में रोशनी हुई है। अतः कहती हैं कि पुरी विराजमान है गान और दीपमाला से तथा चाँदनी रात से शोभित है। राम बिना सब सूना था।

इधर सुन्दर बहुओं को लेकर सास लोग सोईं। वे रतजगा में सम्मिलित नहीं हुईं। महाराज की आज्ञा से वधुओं को छोड़ना नहीं चाहतीं। कवि उपमा देते हैं कि जैसे सर्प अपने सिर की मणि अपने कलेजे के तले दाबकर सोया हो। किसकी सामर्थ्य कि निकट जा सके। इसी भाँति रानियाँ बेटी की भाँति वधुओं को कलेजे से लगाकर सोई हैं। जिनमें उन्हें माँ का स्मरण न हो। सर्प की मणि उनके सिर में रहती हैं। वह उसीसे उत्पन्न होती है और उसे बहुत प्यारी है। इसीलिए सिरमनि उर गोई : से उपमा देते हैं।

प्रात पुनीत काल प्रभु जागे। अरुनचूड वर बोलन लागे ।।
वंदि मागधिन्ह गुन गन गाए। पुरजन द्वार जोहारन आए ।।३।।

अर्थ : प्रभात के पुण्यकाल के समय में प्रभु जग गये। मुर्गे बोलने लगे। वन्दी मागधों ने गुणगण का गान किया। पुर के लोग जोहार करने आये।

व्याख्या : प्रभात में भी उषाकाल अति पवित्र है उसी समय प्रभु जाग गये। चारों भाइयों का जागने में, सोने में, भोजन में, खेलने में कभी साथ नहीं छूटता। यथा : सिसुपन ते परिहरेउ न संगू। प्रभु के जागने के बाद मुर्गे बोलने लगे। राजाओं के जागने के लिए वन्दी मागध गुणगान करते हैं। वे मुर्गा बोलने के बाद गुणगान करने लगे और भली भाँति सबेरा होने पर पुरजन राजद्वार पर जोहार करने के लिए आये।

वंदि बिप्र सुर गुरु पितु माता। पाइ असीस मुदित सब भ्राता ।।
जननिन्ह सादर बदन निहारे। भूपति संग द्वार पगु धारे ।।४।।

अर्थ : ब्राह्मण, देवता, गुरु, पिता और माता की वन्दना कर और आशीर्वाद पाकर सब भाई प्रसन्न हुए। माँ ने आदर के साथ मुख देखा और राजा के साथ दरवाज़े पर पधारे।

---

१. दीपकावृत्ति : तृतीय : है।

व्याख्या : प्रातःकाल उठकर ब्राह्मण, देवता, गुरु, पिता और माता पाँचों की वन्दना करनी चाहिए। इनमें से कौन पहिले मिलेगा कौन पीछे मिलेगा इसका ठीक नहीं हैं। इसीलिए यहाँ क्रम नहीं दिया। परन्तु चारों भाई इन पाँचों को वन्दना प्रातःकाल करते थे। इतने दिन माता की वन्दना नहीं हो सकी थी। आशीर्वाद माता से नहीं मिला था। आज पाँचों से आशीर्वाद मिला है। इससे सब भाई बड़े प्रसन्न हैं। माताओं ने भी आदर के साथ पुत्रमुखावलोकन प्रातःकाल ही किया। ऐसा संयोग महीनों से इधर नहीं हुआ था। महाराज जब द्वारा पर जाने लगे तो चारों भाई साथ गये। रात्रि तीन प्रहर की मानी जाती है। इसलिए सोने के समय तीन का स्मरण किया। यथा : वंदि संभु गुरु विप्र पद किये नीद बस नैन। दिन पाँच प्रहर का माना जाता है। इसलिए जागकर पाँचकी वन्दना की।

दो. कीन्ह सौच सब सहज सुचि, सरित पुनीत नहाइ।
प्रात क्रिया करि तात पहि, आये चारिउ भाइ ॥३५८॥

अर्थ : स्वभाव से ही पवित्र चारों भाइयों ने शौच से निवृत्त होकर पवित्र नदी में स्नान किया और प्रातःकाल का नित्य कृत्य करके पिता के पास चारों भाई गये।

व्याख्या : चारों भाई स्वभाव से ही शुचि अर्थात् पवित्र हैं। क्योंकि उनका संकल्पमय शरीर है भौतिक नहीं है। यथा : इच्छामय नर देह सँवारे। होइहौं प्रगट निकेत तुम्हारे। फिर भी मर्यादा पालन के लिए जल मृत्तिकादि से शौच करते हैं। तत्पश्चात् पुण्य नदी सरयू में अवगाह : स्नान किया। सन्ध्या वन्दनादि नित्य कृत्य किया। तब चारों भाई पिता के पास गये। यह संसार को उपदेश है कि देवतादि का स्मरण करके सोना और जागकर माता, पिता, गुरु, देवता ब्राह्मणादि की वन्दना करना फिर शौचादि क्रिया से निवृत्त होकर घर के बाहर जाकर अवगाह : स्नान तथा सन्ध्यावन्दनादि करके तब व्यवहार में प्रवृत्त होना चाहिए। श्रीरामजी के आचरण का अनुकरण ही सब कल्याणों का मूल है।

भूप बिलोकि लिये उर लाई। बैठे हरषि रजायसु पाई ॥
देखि राम सब सभा जुड़ानी। लोचन लाभ अवधि अनुमानी ॥१॥

अर्थ : राजा ने देखकर हृदय से लगा लिया। राजाज्ञा पाकर प्रसन्न होकर बैठे। श्रीरामजी को देखकर सम्पूर्ण सभा का हृदय शीतल हो उठा। सबने यही अनुमान किया कि यही आँखों के लाभ की परा सोमा है।

व्याख्या : महाराज ने आँखों से प्रियदर्शन पुत्रों की शोभा देखी। देखकर हर्षित हुए। प्रेम उमगा तो हृदय से लगाया। पर ये लोग प्रश्रय : अदब से खड़े रहे। जब महाराज की आज्ञा हुई तब अपने अपने आसनों पर विराजमान हुए। राज सभा में सबके आसन नियत रहते हैं। वहीं उसे बैठना पड़ता है। प्रातःकाल

जब उठे थे तब प्रणाम करने पर आशीर्वाद पाकर हर्ष हुआ। इस समय महाराज के हृदय लगाकर सत्कार करने से हर्षित हैं। जब चारों भाई गये उस समय महाराज सभा में आगये थे। सभा लगी हुई थी। राज्यभार महाराज पर है। अतः वे शीघ्रता से सब कृत्यों से निवृत्त होकर सभा में आगये थे। कई महीनों पर आज राजसभा लगी है।

महाराज को तो रामजी को देखकर हर्ष हुआ ही सम्पूर्ण सभा का हृदय शीतल हो गया। भाव यह कि रामजी की अनुपस्थिति में सभासद भी विरहव्यथा का अनुभव करते थे। आज वह व्यथा दूर हुई। पहिले भी रामजी का समाचार सुनकर सभा हर्षित हुई थी। यथा : हरषी सभा बात सुनि साँची। आज दर्शन से तो अत्यन्त तृप्ति हुई। अनुमान किया कि इतना ही नेत्रों के मिलने का परम फल है। यं लब्ध्वा नापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः।

पुनि वसिष्ठ मुनि कौसिक आए। सुभग आसनन्हि मुनि बैठाए॥
सुतन्ह समेत पूजि पद लागे। निरखि राम दोउ गुर अनुरागे॥२॥

अर्थ : तब वसिष्ठ और विश्वामित्रजी आये। सुन्दर आसनों पर मुनियों को बिठाया। बेटों के सहित पूजन किया। पैर पर गिरे। रामजी को देखकर दोनों गुरु अनुराग में आगये।

व्याख्या : तब वसिष्ठजी और विश्वामित्रजी आये। दोनों महात्मा साथ ही आये। बड़ा प्रेम है। आने के समय वसिष्ठजी उन्हें साथ लेते आये। महाराज ने दोनों महात्माओं को सिंहासन दिया। उस समय सभाभवन में तीन सिंहासन लगे थे। तीनों पर चँवर हो रहा था। महाराज ने पुत्रों के सहित पूजा की। रानियाँ ऊपर बैठी हैं। भरी सभा होने से नहीं आईं। रामजी को देखकर दोनों गुरु अनुराग में आगये। जनकपुर में सखी ने ठीक कहा था कि : कहहु सखी अस को तनुधारी। जो न मोह यह रूप निहारी। कवि तो कहते हैं कि : ठगि सी रही जो न ठगे धिक से।

कहहिं वसिष्ठ धरम इतिहासा। सुनहिं महीस सहित रनिवासा॥
मुनि मन अगम गाधिसुत करनी। मुदितवसिष्ठ बिपुल बिधि बरनी॥३॥

अर्थ : वसिष्ठजी धर्म के इतिहास कहते हैं और राजा रनिवास के साथ सुनते हैं। गाधि के पुत्र की करणी मुनियों को भी मन से अगम थी। उसे आनन्दित होकर अनेक विधि से वर्णन किया।

व्याख्या : इतने दिनों पर राजसभा लगी है फिर भी कोई व्यवहार : मुकदमा नहीं है। यहाँ व्यवस्था ऐसी थी कि सभा नित्य लगती थी पर व्यवहार : मुकदमा एक भी नहीं। कारागार बने हैं पर कैदी एक भी नहीं। जब तक ऐसी व्यवस्था न हो तब तक राज्य की व्यवस्था ठीक नहीं। कारण यह था कि : राज्ञि धर्मिणि धर्मिष्ठाः पापे पापाः समे समाः। राजानमनुवर्तन्ते यथा राजा तथा प्रजाः। राजा के धर्मात्मा होने से प्रजा आप से आप धर्मिष्ठ हो जाती है। राजा के पाप होने से सब

रहती है। राजा के पापी होने से पापी होती है। प्रजा राजा को ही आदर्श मानकर चलती है। जैसा राजा होता है वैसी ही प्रजा होती है। प्रजा का आदर्श राजा है। सो यहाँ कोई व्यवहार देखना न रहा। वसिष्ठजी धर्मेतिहास सुनाते थे। रनिवास के सहित महाराज सुनते थे। सारी प्रजा ने वही रास्ता पकड़ रक्खा था। सब धर्मेतिहास सुनते हैं। उसी का संस्कार दृढ़ रहता है। पापाचरण होता ही नहीं। मुक़दमा क्यों होगा। राज्य व्यवस्था चलाने का प्रधान कार्य धर्मेतिहास श्रवण है। वही हो रहा है। स्वयं ब्रह्मर्षि वसिष्ठजी वक्ता हैं। पुत्र दारा सभासद के सहित राजर्षि दशरथ श्रोता हैं। सभा में धर्मेतिहास हो रहा है। आज विश्वामित्रजी का इतिहास वसिष्ठ जी वर्णन करने लगे। 'गाधिसुत' कहने का भाव यह कि विश्वामित्रजी राजा गाधि के पुत्र थे। सो ऐसी तपस्या की कि उसके बल से क्षत्रिय से ब्राह्मण हो गये। जैसी तपस्या उन्होंने की उसे मुनि लोग मन से भी नहीं सोच सकते। महात्मा दूसरे के पुण्य में बड़े आनन्दित होते हैं। अतः इनकी करणी वर्णन करने में मुनिजी को मोद है। जिसके सौ पुत्रों को विश्वामित्रजी ने शाप देकर मारा था और तप बल के सामने सौ ब्रह्महत्या उनकी कुछ न कर सकी उस विश्वामित्र की अद्भुत तपस्या के वर्णन में : अपने शिष्यसमाज के सामने वसिष्ठजी को बड़ा हर्ष हो रहा है। यह मुदित का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है। वसिष्ठजी की कितनी महत्ता विश्वामित्रजी के महत्ता-वर्णन से बढ़ गई। इसका सहृदय व्यक्ति ही अनुमान कर सकता है।

बोले बामदेव सब साँची। कीरति कलित लोक तिहुँ माँची ॥
सुनि आनंदु भयउ सब काहू। राम लखन उर अधिक उछाहू ॥४॥

अर्थ : वामदेवजी ने कहा कि यह सब सच्ची बात है। इनकी सुन्दर कीर्ति तीनों लोक में व्याप्त है। सुनकर सबको आनन्द हुआ। पर राम लक्ष्मण के हृदय में बड़ा उछाह हुआ।

व्याख्या : वसिष्ठजी के वर्णन के उपरान्त महर्षि वामदेव ने उसका अनुमोदन किया। कहा कि यह सब सत्य घटना है। इसमें अर्थवाद नहीं है। बात को मन में बिठाने के लिए उसे बड़े आरोप से कहा जाता है। ऐसे आरोप को असत्य नहीं माना जाता। क्योंकि उससे सत्य संस्कार ही मन में बैठता है। सो इनकी अद्भुत तपस्या के वर्णन में अर्थवाद का किसी को भ्रम न हो इसलिए वामदेवजी ने अनुमोदन करते हुए कहा कि इसमें कुछ भी अत्युक्ति नहीं है। यथार्थ घटना का वर्णन वसिष्ठजी ने किया है। सभा में सब सज्जन लोग हैं। सभी सुनकर मुदित हुए। राम लक्ष्मण के तो ये गुरु ही ठहरे। अतः गुरुजी की पुण्य कीर्ति सुनकर उनके हृदय में अत्यन्त उछाह हुआ।

दो. मंगल मोद उछाहु नित, जाहि दिवस एहि भाँति।
उमगी अवध अनंद भरि, अधिक अधिक अधिकाति ॥३५९॥

अर्थ : नित्य मङ्गलमोद और उछाह है। इस भाँति दिन बीत रहा है। आनन्द भरकर अयोध्या उमग पड़ी। सो दिन दिन अधिक होती जा रही है।

व्याख्या : नित नव मंगल कोसलपुरी। हरषित रहहिं लोग सब कूरो। मङ्गल होने से मोद है और मोद से नित्य नया उत्साह है। इस भाँति दिन बीत रहे हैं। यथा : यथा धर्मसीलन्ह के दिन सुख संजुत जाहिं। अवध में आनन्द भरा हुआ है। सभी अवधवास चाहते हैं। अवध में चले आरहे हैं एवं अवध का विस्तार दिन दिन बढ़ रहा है।

सुदिन सोधि कल कंकन छोरे। मंगल मोद विनोद न थोरे॥
नित नव सुख सुर देखि सिहाहीं। अवध जनम जाचहि विधि पाही॥१॥

अर्थ : अच्छा दिन देखकर सुन्दर कंगन छोरे गये। मङ्गल मोद और विनोद थोड़ा नहीं हुआ। नित्य नया सुख देखकर देवगण सिहाते हैं और अवध में जन्म पाने के लिए ब्रह्मा से प्रार्थना करते हैं।

व्याख्या : अभी तक कंगन नहीं छूटा है। उसके लिए सुदिन देखा गया। मङ्गलगान से मोद और कंगन के जूआ में हार जीत होती है। उसमें बड़ा विनोद होता है। यथा : जुआ खेलावन कौतुक कीन्ह सयानिन्ह। जीत हार मिस देहिं गारि दोउ रानिन्ह। मनुष्य लोग तो अवध में जाकर बस भी जाते हैं। देवता तो इस तरह बस नहीं सकते। उनके सुरलोक में वही प्राचीन सुख है। वहाँ सुख में नवीनता नहीं। सुरस्त्रीगण पार्वतीजी के शाप से वन्ध्या हैं। अतः गृहस्थों के सुख में नवीनता नहीं है। इसलिए अवध का सुख देखकर सिहाते हैं। ब्रह्मदेव से माँगते हैं कि आपने जन्म वन्दर भालू में दे दिया। अभी दश सहस्र वर्ष राज्य करेंगे। इस बीच में यदि अवध में जन्म मिल जाता तो यह नित्य नवीन सुख हम भी भोग लेते।

विस्वामित्र चलन नित चहहीं। राम सप्रेम विनय बस रहहीं॥
दिन दिन सय गुन भूपति भाऊ। देखि सराह महामुनिराऊ॥२॥

अर्थ : विश्वामित्रजी नित्य ही जाना चाहते हैं। पर रामजी के स्नेह और विनय के वश होकर रह जाते हैं। दिन पर दिन राजा का सौगुना भाव देखकर महामुनियों के राजा विश्वामित्रजी प्रशंसा करने लगे।

व्याख्या : जिस तप के प्रभाव से ये दिन देखने को आये उसे छोड़ना नहीं चाहते। रामजी का दर्शन उसी तप का फल है। अतः तपःसाधन के लिए जाना चाहते हैं। नित्य छुट्टी माँगते हैं। पर रामजी का स्नेह और विनय ऐसा है कि रह जाते हैं। राजा का भाव वृद्धिक्रम पर है जिस भाँति जनकजी का था। यथा : नित नव सहस भाँति पहुनाई। विश्वामित्रजी समझते हैं कि यह क्रम कितना कठिन है। संसार में तो ठीक इसके विपरीत दिखाई पड़ता है। यथा : चार दिना को पाहुनो काढ़ खियावै सोन। तुलसी नित को कठिन है देवो लीटी नोन। अतः महाराज दशरथ के भावभक्ति की विश्वामित्रजी प्रशंसा करते हैं।

माँगत विदा राउ अनुरागे। सुतन्ह समेत ठाढ़ भे आगे॥
नाथ सकल संपदा तुम्हारी। मैं सेवक समेत सुत नारी॥३॥

अर्थ : विदा माँगते समय चक्रवर्तीजी अनुराग में आगये। बेटों के सहित आगे खड़े हो गये और कहा कि नाथ यह सब सम्पदा तुम्हारी है। मैं तो स्त्री पुत्र समेत आपका सेवक हूँ।

व्याख्या : देख लिया कि रामजी नहीं छुट्टी देंगे। अतः महाराज से विदा माँगते हैं। महाराज विदाई देते समय बेटों को लेकर आगे खड़े हो गये। भाव यह कि अभी कुछ कृत्य शेष है।

बारात में विश्वामित्रजी ने राजा को हृदय से लगाकर अपना छोह दिखलाया था। यथा : कौसिक राउ लिये उर लाई। कहि असीस पूछी कुसलाई। अतः राजा को उनके प्रति अनुराग हो गया था। सो विदाई के समय उमड़ पड़ा। परम कृतज्ञ राजा हैं। पहिले ही कहा था : माँगहु भूमि धेनु धन कोसा। सर्वस देहुँ आज सहरोसा। देह प्रानते प्रिय कछु नाहीं। सो मुनि दउँ निमिष एक माहीं। रास्ता रोककर खड़े हो गये कि सब सम्पदा तुम्हारी है। मैं पुत्रदारादि के सहित सेवक हूँ। सो इसका जैसा जब आवश्यक हो उपयोग कीजियेगा।

करब सदा लरिकन्ह पर छोहू। दरसनु देत रहब मुनि मोहू॥
अस कहि राउ सहित सुत रानी। परेउ चरन मुख आव न बानी॥४॥

अर्थ : सदा बच्चों पर छोह रखियेगा। मुझे भी दर्शन देते रहियेगा। ऐसा कहकर कुमारों और रानियों के सहित चरणों में गिरे। उनके मुख से वाणी नहीं निकलती थी।

व्याख्या : लड़कों पर सदा छोह बनाये रखने की प्रार्थना करते हैं। आपके छोह से ही इनका कल्याण हुआ और होता रहेगा। मेरा सब कल्याण इन्हीं में केन्द्रीभूत है। मुझे कभी कभी दर्शन दे दीजियेगा। मैं आप तक न पहुँच सकूँगा। राजकार्य से अवकाश कम रहता है। सपरिवार चरणों में पड़े। सभी प्रेम से मुग्ध हैं। सबका कण्ठ गद्‌गद हो रहा है।

दीन्हि असीस बिप्र बहु भाँती। चले न प्रीति रीति कहि जाती॥
राम सप्रेम संग सब भाई। आयसु पाइ फिरे पहुँचाई॥५॥

अर्थ : ब्राह्मण देवता ने बहुत भाँति से आशीर्वाद दिया और चले। प्रीति की रीति कही नहीं जाती। रामजी प्रेम के साथ सब भाइयों को संग लिये हुए पहुँचाने चले और आज्ञा पाकर लौट आये।

व्याख्या : जब पहिले पहल आये थे राजा के दण्डवत् पर आशीर्वाद नहीं दिया था। अब उस घाटे को पूरा कर रहे हैं। अनेक भाँति से आशीर्वाद दे रहे हैं। अनेक भाँति आशीर्वाद तो ब्राह्मण ही देते हैं।

स्वामीजी को ॐनमो नारायणाय कहिये तो नारायण कह देते हैं। बाबाजी को दण्डवत् कीजिये तो जय रामजी की कहेंगे : प्रीति की रीति अनुभव की वस्तु है कहने की नहीं। सो बिछुरने में बड़ा ही कष्ट होता है। यथा : बिछुरत एक प्रान हरि

लेहीं। यहाँ मङ्गल के समय कवि ने इतना ही कहा। मुनिजी को पहुँचाने भाइयों के साथ स्वयं सरकार चले। मुनिजी से सद्यः उपकार चारों भाइयों का हुआ है। अतः प्रेम के साथ पहुँचाने जाते हैं। फिरने के लिए मुनिजी की आज्ञा हुई तब लौटे।

दो. रामरूप भूपति भगति, व्याहु उछाहु अनंद।
जात सराहत मनहि मन, मुदित गाधिकुल चंद ॥३६०॥

अर्थ : रामजी के रूप महाराज की भक्ति और व्याह के उछाह और आनन्द की प्रशंसा गाधिकुलचन्द विश्वामित्रजी प्रसन्न होकर मन ही मन करते जाते थे।

व्याख्या : अकेले ही मुनिजी चले। गाधिकुलचन्द हैं। राजा रह चुके हैं। अनेक व्याह उछाह और आनन्द देखा है। पर ऐसा योग तो नहीं देखा : राम सरिस वर दुलहिन सीता। समधी दसरथ जनक पुनीता। न ऐसी भक्ति किसी राजा में देखी। यथा : दिन दिन सौगुन भूपति भाऊ और न ऐसा उछाह और आनन्द देखा। यथा : उमगी अवध अनंद भरि अधिक अधिक अधिकाति। अतः मन ही मन सराहते जाते हैं। दूसरा भाव मन में उदय नहीं हो रहा है। ब्राह्मण हैं। इसलिए चन्द्र से उपमा दो। चन्द्र ब्राह्मणों के राजा हैं। यथा : सोमोऽस्माकं ब्राह्मणानां राजा।

वामदेव रघुकुल गुर ज्ञानी। बहुरि गाधि सुत कथा बखानी ॥
सुनि मुनि सुजसु मनहिं मन राऊ। बरनत आपन पुन्य प्रभाऊ ॥१॥

अर्थ : ज्ञानी वामदेव रघुकुल के गुरु ने बार बार गाधिसुत की कथा बखान कर कही। मुनिजी का सुयश सुनकर मन ही मन राजा अपने पुण्य का वर्णन करने लगे।

व्याख्या : विश्वामित्रजी के चरित्र का वर्णन जो उनके सामने कहा गया था उसी का वर्णन फिर वामदेव और वसिष्ठजी ने किया। इस बार वामदेवजी ने वर्णन किया और वसिष्ठजी ने अनुमोदन किया। मुहदेखी न समझा जाय। इसलिए उनके सामने प्रशंसा पूरी तरह से नहीं कर पाये थे। अतः अब उनके परोक्ष में सब कथा बखान कर कही। इस समय सभा की सभा चारों भाइयों के साथ विश्वामित्रजी को पहुँचाने गई है। इसलिए मुनि का सुयश सुनकर राजा मन ही मन अपने पुण्य के प्रभाव का वर्णन करने लगे। किसी के आगमन में अपने पुण्य के प्रभाव वर्णन से आनेवाले की ही महत्ता द्योतित होती है।

बहुरे लोग रजायसु भयऊ। सुतन्ह समेत नृपति गृह गएऊ ॥
जहँ तहँ राम व्याह सबु गावा। सुजस पुनीत लोक तिहुँ छावा ॥२॥

अर्थ : राजाज्ञा हुई लोग लौट गये। बेटों के साथ महाराज घर गये। जहाँ तहाँ रामजी के व्याह का सब गान कर रहे थे। पवित्र सुयश तीनों लोकों में छा गया।

व्याख्या : सब लोग विश्वामित्र को पहुँचाकर सभा में आ रहे थे। पर राजाज्ञा लौट जाने के लिए हुई और स्वयं महाराज बेटों के साथ अन्तःपुर में चले गये। भाव यह कि सभा समाप्त हो गई।

रामजी का विवाह ऐसे धूम धाम से और ऐसे आनन्द से हुआ कि तीनों-लोकों में इसकी चरचा फैल गई। इस सुयश के गान से तीनों लोक पवित्र हुए और इस समय भी उसके गान से लोग पवित्र होते हैं। अतः उस सुयश को पुनीत कहा गया।

आये व्याहि राम घर जबतें। बसे अनंद अवध सब तबतें ॥
प्रभु विवाह जस भयउ उछाहू। सकहिं न वरनि गिरा अहिनाहू ॥३॥

अर्थ : जब से राम व्याह करके घर आये तब से सब आनन्द अवध में बस गये। प्रभु के विवाह में जैसा उछाह हुआ उसे सरस्वती और शेष नहीं कह सकते।

व्याख्या : पहिले आनन्द सबके हृदय में बसे थे। यथा : सबके उर अनंद कियो बासू। अब तो अवध में बस गये। अथवा सब आनन्द एक जगह नहीं ठहर सकते थे। कभी जनकपुर में जगदम्बा के पास चले जाते थे। कभी अवध में लौट आते थे। अब तो जगदम्बा यहीं आकर रहने लगीं। अतः सब आनन्द यहीं : अवध में बस गये।

प्रभु के विवाह में जैसा उछाह हुआ वैसा न कभी स्वर्ग में हुआ न पाताल में हुआ। उस समय मर्त्यलोक ही सबसे ऊपर हो गया था। इसीलिए कहते हैं कि सरस्वती शेष नहीं कह सकते। अथवा वाणी की अधिष्ठात्री देवता सरस्वती हैं और दो सहस्र जिह्वावाले शेष हैं। उनके सामर्थ्य के बाहर की बात है कि उसका वर्णन कर सकें।

कविकुल जीवनु पावन जानी। राम सीय जसु मंगल खानी ॥
तेहि ते मैं कछु कहा बखानी। करन पुनीत हेतु निज बानी ॥४॥

अर्थ : राम सीता के यश को कविकुल का जीवन और पवित्र तथा मङ्गल-खानि जानकर अपनी वाणी को पवित्र करने के लिए मैंने थोड़ा सा बखान कर कहा।

व्याख्या : रामयश का वर्णन करने के लिए ही ब्रह्मदेव की प्रेरणा से पद्य का प्रादुर्भाव वाल्मीकिजी के हृदय से हुआ। वे आदिकवि हुए। शेष सभी कवि उन्हीं का अनुसरण करते हैं। अतः राम सीय यश ही सब कवियों का जीवन है। जेहि सुनत गावत कहत समुझत परम पद नर पावई। अतः पावन है। यथा : एकैकमक्षरं पुंसां महापातकनाशनम्। एक अच्छर उद्धरे ब्रह्महत्यादि परायन। भक्त माला और मंगल करनि कलिमल हरनि तुलसी कथा रघुनाथ की। अतः मंगलखानी कहा। इसे पूरा तो कोई भी नहीं कह सकता। अतः सभी कुछ ही कह पाते हैं। इसलिए मैंने भी कुछ बखानकर कहा है। हमारी वाणी परअपवादादि दोषों से दूषित है। अतः उसके पवित्र करने के लिए थोड़ा सा कहा।

छँ. निज गिरा पावनि करन कारन राम जसु तुलसी कह्यौ।
रघुबीर चरित अपार बारिधि पार कवि कवन लह्यौ॥
उपवीत ब्याह उछाह मंगल सुनि जे सादर गावहीं।
बैदेहि राम प्रसाद ते जन सर्बदा सुखु पावहीं॥

अर्थ : अपनी वाणी को पवित्र करने के लिए तुलसीदास ने रामयश कहा है। रामचरित्र अपार समुद्र है। इसका पार किस कवि ने पाया। जनेउ और व्याह का उछाह मङ्गल है। इसे सुनकर जो आदर के साथ गावेंगे वे वैदेही और रामजी की कृपा से सदा सुख पावेंगे।

व्याख्या : वाणी ही व्यवहार का मूल है। इसकी पवित्रता पर सबकी पवित्रता निर्भर है। सो परापवाद और विवाद आदि से दूषित हो गई है। यथा : पर अपवाद विवाद विदूषित बानिहि। उसे पवित्र करने के लिए तुलसीदास : श्रीग्रन्थकार ने रामयश कहा है। उसे कह डालने के विचार से नहीं कहा है नहीं तो रामचरित तो अपार समुद्र है। इसका पार किसी कवि ने नहीं पाया। समुद्रावगाहन अपनी पवित्रता के लिए किया जाता है पार पाने के लिए नहीं। इसलिए सभी वक्ताओं ने इसे अपनी मति के अनुसार ही वर्णन किया है। सबने यथार्थ वर्णन में अपनी असमर्थता प्रकट की है।

शिवजी ने कहा : गिरिजा सुनहु बिसद यह कथा। मैं सब कही मोरमति जथा। रामचरित सतकोटि अपारा। श्रुति सारदा न बरनै पारा। राम अनंत अनंत गुनानी। जन्म कर्म अनंत नामानी। इत्यादि। भुसुण्डिजी कहते हैं : नाथ जथामति भाषेउँ राखेउँ नहिं कछु गोइ। चरित सिंधु रघुनायक थाह कि पावै कोइ। याज्ञवल्क्यजी कहते हैं : रघुपतिकृपा यथामति गावा। मैं यह पावन चरित सोहावा।

अतः यह ठीक है कि किसी कवि ने पार न पाया। तब ग्रन्थकर्ता कहते हैं कि मैं किस गिनती में हूँ मुझे भी पार नहीं मिला।

जन्म मङ्गलगान का फल कह चुके हैं। यथा : यह चरित जे गावहिं हरिपद पावहिं ते न परहिं भव कूपा। अब अवशिष्ट यज्ञोपवीत और विवाह के उछाहवाला मङ्गल गुरुमुख से सुनकर जो लोग आदर के साथ गावेंगे उन पर वैदेही और रामजी की कृपा होगी। वे सदा सुख पावेंगे। जन्म मङ्गल में केवल रामयश रहा। अतः उसका पार लौकिक फल है। विवाह मङ्गल में दोनों सरकार : रामजानकी का यश है। अतः इसके गान करनेवाले सदा सुख पावेंगे।

सो. सिय रघुबीर बिबाहु, जे सप्रेम गावहिं सुनहिं।
तिनकहुँ सदा उछाहु, मंगलायतन राम जसु॥३६१॥

अर्थ : सीता रामजी का व्याह जो लोग प्रेम से गाते और सुनते हैं उनको सदा ही उछाह बना रहता है। क्योंकि रामयश मङ्गल का घर है।

व्याख्या : अब केवल विवाह प्रकरण की फलश्रुति कहते हैं। आदर से प्रेम बड़ा है। अतः जो प्रेम से सुनेगा उसके फल में भी उत्कर्ष है। उसको सदा उछाह रहेगा। सुख से आधिक्य में उछाह होता है। कारण कहते हैं कि रामजी का यश मङ्गल का घर है। यहीं मङ्गल निवास करता है। रामजी के नाम में कल्याण का निवास है। नाम राम को कल्पतरु कलि कल्यान निवास और। उनके चरित में मङ्गल का निवास है : यथा : मंगलायतन रामजसु।

यह काण्ड सोरठा से प्रारम्भ करके सोरठा से समाप्त होता है। सोरठा में वृद्धिक्रम है। इस काण्ड की फलश्रुति भी वृद्धिपरक है।

हरिः ॐ तत्सत्

इति श्रीरामचरितमानसे सकलकलिकलुषविध्वंसने प्रथमः सोपानः समाप्तः

अर्थ : यह सकल कलि कलुष के नाश करनेवाले श्रीरामचरितमानस की पहिली सीढ़ी समाप्त हुई।

व्याख्या : श्रीरामचरितमानस कलियुग के दोषों को दूर करनेवाला है। कलियुग सब मलों का मूल है। यथा : जुग कलिजुग मल मूल। इसे नाश करने में मुनि भावन पावन रामचरित्र ही समर्थ है। यथा : कलि कुचालि कुलि कलुष नसावन। इस सर में यह चमत्कार है कि सब सीढ़ियों से जल मिलता है।

साम्बसदाशिव साम्बसदाशिव साम्बसदाशिव साम्बशिव

रामचरित तुलसी कथित प्रथित प्रथम सोपान।
औरन को आधार यह जानत सकल सुजान॥१॥
गुण रत्नाङ्क शशाङ्क शिवरात्रि सदाशिव ध्याइ।
विजयाख्या टीका रची विजयानंद सुख पाइ॥२॥
जननि जनक गुरु की कृपा टीका लिखी सुछंद।
पढ़त सुनत कल्याण मुद पावे विजयानन्द॥३॥
शर नभ नभचख रामसिय ब्याह दिवस अनुकूल।
करि सुधार फिर से लिखी टीका मंगलमूल॥४॥
जय हनुमान ज्ञान गुनसागर। जय कपीस त्रयलोक उजागर॥

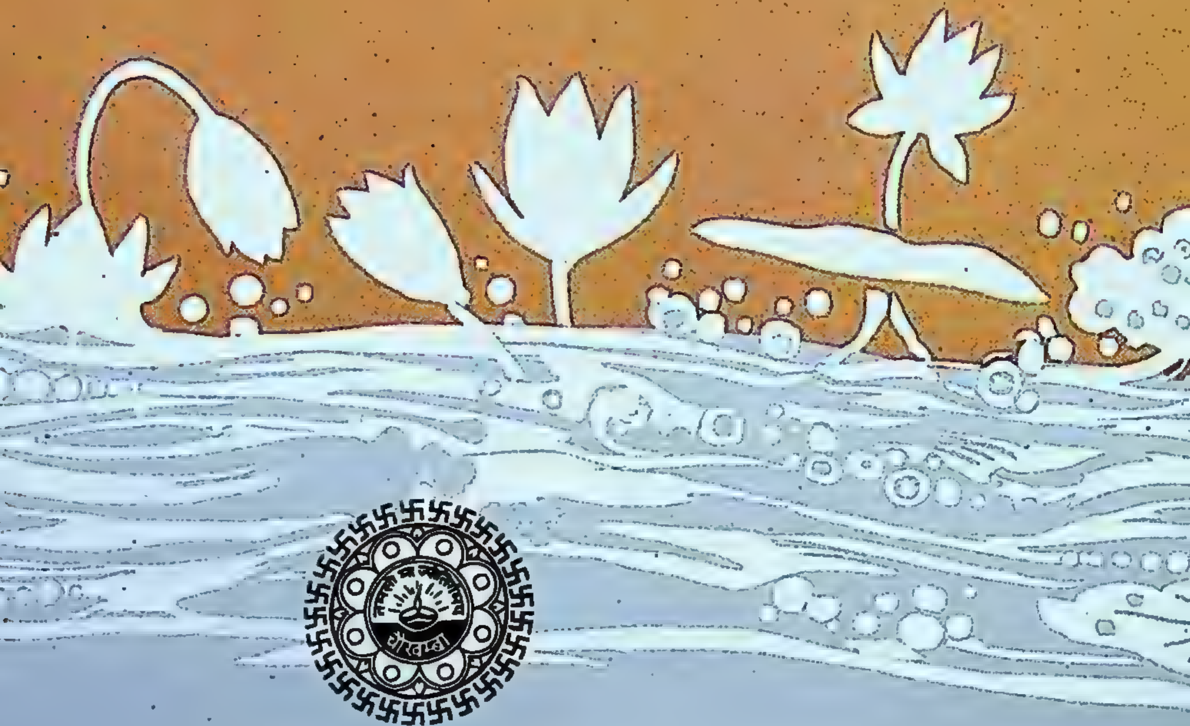

चौखम्बा विद्याभवन
वाराणसी

श्रीरामचरितमानस

विजया टीका

मानसराजहंस पं० विजयानन्द त्रिपाठी

॥ श्रीः ॥

विद्याभवन प्राच्यविद्या ग्रन्थमाला

१४७

श्रीरामचरितमानस

विजया हिन्दी टीका

(द्वितीय भाग)

द्वितीयसोपान : अयोध्याकाण्ड

तृतीयसोपान : अरण्यकाण्ड

टीकाकार

मानसराजहंस पं. श्री विजयानन्दजी त्रिपाठी

सम्पादक

डॉ. श्रीनाथ मिश्र 'रामायणी'

डॉ. सहजानन्द त्रिपाठी

चौखम्बा विद्याभवन

वाराणसी

प्रकाशक
चौखम्बा विद्याभवन
(भारतीय संस्कृति एवं साहित्य के प्रकाशक तथा वितरक)
चौक (बैंक ऑफ बड़ोदा भवन के पीछे)
पो. बा. नं. 1069, वाराणसी 221001
दूरभाष : 2420404

सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन
पुनर्मुद्रित संस्करण 2004 ई.
मूल्य : 1500.00 (1-3 भाग सम्पूर्ण)

अन्य प्राप्तिस्थान
चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान
38 यू. ए. बंगलो रोड, जवाहर नगर
पो. बा. नं. 2113
दिल्ली 110007
दूरभाष : 23856391

❖

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन
के. 37/117 गोपालमन्दिर लेन
पो. बा. नं. 1129, वाराणसी 221001
दूरभाष : 2335263, 2333431

विषयानुक्रमणिका

मङ्गलाचरण : शङ्करवन्दना, रघुनन्दन की मुखश्री की कल्याणप्रदता। रामवन्दना : संस्कृत : गुरुपद रज से मनमुकुर को विमल करके रघुवर : यशवर्णन। पृष्ठ १ से।

रामाभिषेक प्रसङ्ग : उमा के पाँचवें प्रश्न का उत्तर : ब्याह[1] के बाद से अयोध्या में सुख-सम्पत्ति की वृद्धि। सबको रामाभिषेक का अभिलाष। राजसभा। मुकुर में बाल की सफेदी देखकर राजा को रामाभिषेक का अभिलाष। गुरु के पास जाना। सम्मति पाकर सेवक सचिव से सलाह। तैयारी। राम सीय को सगुन, भरत आगमन सूचक। महल में खबर। उछाह। रामजी को गुरु की शिक्षा। अकेले अपने अभिषेक पर राम का सप्रेम पछतावा। लक्ष्मण का सम्मान। प्रजा का उछाह। देवताओं का विघ्नाचरण। मन्थरा का कपट। महारानी कैकेयी की कुमति। कोप भवन। बालसखाओं का राम के पास जाना। नगर में रामाभिषेक का अभिलाष। कैकेयी को दाह। कुसङ्ग से नाश : दो. २३ तक। पृ० ५ से।

नृपवचन राजरस भङ्ग प्रसङ्ग : महाराज का कैकेयी के महल में जाना। वरदान। राजा को शोक। कैकेयी का हठ। कैकेयी त्याग। प्रातःकाल। सुमन्त का आगमन। सुमन्त का जाकर राम को लिवा लाना। राम कैकेयी संवाद। राजा का मूर्च्छा त्याग। रामचन्द्र का राजा को समझाने का प्रयत्न। माता के पास गमन : दो. ४५.५ तक। पृ० ६२ से।

प्रजा विरह विषाद प्रसंग : नगर में समाचार का फैलना। सबकी विकलता। कैकेयी को गाली। अनेक प्रकार का अनुमान। प्रजा को दुःसह संताप। सखियों का कैकेयी को समझाने का प्रयत्न। कौसल्या रामचन्द्र संवाद। सीता का आना। सीता राम संवाद। माता का आशीर्वाद। प्रस्थान : दो. ६९ तक। पृ० ११२ से।

राम लक्ष्मण संवाद प्रसङ्ग : लक्ष्मण का आगमन। विनती। लक्ष्मण की माता से विदाई। राम का साथ : दो. ७६. १ तक। पृ० १६१ से।

वनगमन केवट अनुराग प्रसङ्ग : तीनों मूर्तियों की महाराज से विदाई। बसिष्ठ के द्वार पर ठहरना। सबको समझाना। प्रस्थान। राजा का सुमन्त को भेजना। सुमन्त का विनती करके रामजी को रथ पर चढ़ाना। प्रजा का साथ चलना। तमसा तीर निवास। प्रजा को सोये हुए छोड़कर रामजी का चला जाना। शृङ्गवेरपुर पहुँचना। गङ्गा स्नान। गुह का आगमन। सिसुपा वृक्ष तले निवास। गुह का विषाद। पृ० १७५।

श्रीलक्ष्मण गीता : सुख दुःख के कारण अपने कर्म। अन्य कोई नहीं। भ्रम फन्द जग जाल व्यवहार सब मोहमूलक। मोह निशा में सोना जागना स्वप्न परम परमार्थ का वर्णन। रामजी परमार्थ

---

१. राज तजा सो दूषन कहा।

रूप। अवतार का कारण। सिय रघुबीर चरणरति के लिए उपदेश। जटाधारण सुमन्त विदाई। रामजी के नाव माँगने पर केवट का न लाना। पैर धोने के लिए अनुरोध। पाद-प्रक्षालन : दो. १०१ तक। पृ० २०५ से।

सुरसरि उतरि प्रयागनिवास प्रसङ्ग : गङ्गा पार जाना। केवट की विदाई। गङ्गा स्नान। पार्थिव पूजन। सीता द्वारा गङ्गा की मनौती। विटप तर वास। प्रयागराज का वर्णन। स्नान। भरद्वाज के आश्रम में निवास। मार्ग-प्रदर्शन के लिए भरद्वाज का चार शिष्य देना : दो. १०८.५ तक। पृ० २३२ से।

पन्थ कथा प्रसंग : यमुना पहुँचने पर मुनि-शिष्यों की विदाई। यमुना स्नान। तीर-वासियों का प्रेम। एक कवि तापस का आगमन। निषादराज की विदाई। पथिकों का प्रेम। मार्ग का भाग्य। मेघद्वारा छाया। पुष्पवृष्टि। ग्रामवासियों का प्रेम। वट तर विश्राम। सीता और ग्रामवधुओं का संवाद। ग्रामवासियों द्वारा विधि की निन्दा। स्नेह से विकलता। राम सीता लक्ष्मण पथिक का वर्णन। वट तर निवास। स्नान करके पुनः प्रस्थान : दो. १२३.४ तक। पृ० २४७ से।

वाल्मीकि मिलन प्रसंग : आश्रम वर्णन। वाल्मीकि मिलन। अपनी कथा कहकर रहने के लिए स्थान पूछना। वाल्मीकि कृत स्तुति तथा चौदह प्रकार के भक्तों के हृदय में निवास करने की प्रार्थना। समय सुखदायक स्थान चित्रकूट बतलाना : दो. १३२ तक। पृ० २७५ से।

चित्रकूट निवास प्रसंग : गिरिजा के छठे प्रश्न के पूर्वार्ध का उत्तर : चित्रकूट[1] में निवासयोग्य स्थान का निर्णय। विश्वकर्मा के साथ देवताओं का किरात वेष में पर्णशाला-निर्माण। दिक्पालों का अपनी विपत्ति सुनाना। मुनियों का आकर मिलना। किरातों का आकर मिलना। वन-वर्णन। चित्रकूट की महिमा। आपस का प्रेम। चित्रकूट विहार। दो. १४१.३ तक। पृ० २९४ से।

सचिवागमन प्रसंग : निषादराज के लौटने पर सुमन्त से भेंट। चार सेवक साथ करके उन्हें लौटाना। सुमन्त का शोक। तमसातीर चारों सेवकों की विदाई। सुमन्त का अँधियारे अवध प्रवेश। नगर में नारि-नर की व्याकुलता। महाराज से भेंट। सन्देश सुनकर महाराज की विकलता : दो. १५२.४ तक। पृ० ३११ से।

नृप मरण प्रसंग : रानियों का विलाप। कौसल्या का धैर्य बँधाने का प्रयत्न। महाराज का प्रेमोन्माद। अन्ध तापस की कथा। महाराज का सुरधाम गमन। विलाप। कैकेयी को गाली। वसिष्ठ द्वारा शोकापनोदन। नृप तन का तेल नाव में रखना। भरत के यहाँ दूत : दो. १५७ तक। पृ० ३३३ से।

भरतागमन प्रसंग : भरत का ननिहाल से प्रस्थान। अवध प्रवेश में असगुन। नगर में उदासी। कैकेयी से बातचीत। भरत का शोक। मन्थरा कूबर भङ्ग : दो. १६२.८ तक। पृ० ३४० से।

प्रेम वर्णन प्रसंग : कौसल्या से भेंट। भरत

---

१. बनबासि कीन्हे चरित उदार।

का शपथ लेना। कौसल्या की सान्त्वना : दो. १६८.८ तक। पृ० ३५२ से।
भरत चरित : १५७ दोहों में।
नृप क्रिया प्रसंग : वसिष्ठ वामदेव का उपदेश। रानियों को सती होने से रोकना। दाह-क्रिया। दशरात्र विधान। विशुद्ध होने पर दान। वर्णनातीत क्रिया। दो. १७०.१ तक। पृ० ३६३ से।
राज्यभिषेक प्रस्ताव : सुदिन देखकर वसिष्ठजी का सभा एकत्र करना। शोच्यों का वर्णन। कोसलराज अशोच्य। राज्याभिषेक का गुरु द्वारा प्रस्ताव। सचिव और माता का अनुमोदन। भरत का उत्तर। रामजी के पास चलने की अनुमति माँगना। सर्वसम्मति : दो. १८४ तक। पृ० ३६६ से।
पुरवासी सहित चित्रकूट प्रस्थान प्रसंग : चलने की तैयारी। सईतीर निवास। निषादराज की युद्ध की तैयारी। भेद लेने के लिए भरत के पास जाना। भरत से भेंट। गङ्गा-स्नान। डेरा करना। सिंसुपा वृक्ष का दर्शन। भरत का शोक। निषादराज का समझना। पुरवासियों का प्रेम। गङ्गा पार करना। भरत का पैदल प्रयाण। प्रयाग स्नान। भक्ति माँगना। भरद्वाज भेंट। भरत की प्रशंसा। भरत का उत्तर, सत्कार ग्रहण। विदाई। रास्ता चलने में भरत का प्रेम। इन्द्र को मोह। बृहस्पति का उपदेश। दूसरे दिन यमुनातीर निवास। ग्रामवासी नर-नारियों की बातचीत। भरत का प्रेम। बीच में निवास। शैल दर्शन। प्रेम में शिथिलता। दिन भर में दो कोस चलना। मार्ग में निवास : दो. २२५.२ तक। पृ० ४०४ से।
लक्ष्मण क्रोधप्रसंग : सीताजी का स्वप्न। शान्ति विधान। भरतागमन-समाचार। राम को सङ्कोच। राम को सोच। देखकर लक्ष्मण का भरत पर क्रोध। आकाशवाणी। रामसीता द्वारा सम्मान : दो. २३२.३ तक। पृ० ५०० से।
रामजी से भेंट : मन्दाकिनीस्नान। सबका वहीं ठहरना। दोनों भाइयों का गुह के साथ आगे बढ़ना। भरत का सोच। आरण्य-राज-समाज वर्णन। वटवृक्ष दर्शन। प्रणाम करते हुए चलना। भरत का प्रेम। आश्रम दर्शन। प्रभु दर्शन। दण्डवत् प्रणाम। भाइयों की भेंट। शत्रुघ्न को सीता के पास छोड़कर गुरुजी के पास जाना। सबसे भेंट। गिने गिनाये लोगों के साथ आश्रम लौटना। सीताजी की सबसे भेंट। नृप सुरपुर गमन समाचार। विलाप। निरम्बु व्रत। नृप क्रिया। शुद्ध होने पर दो दिन बाद गुरुजी से विनय घर लौटने के लिए। गुरुजी का अनुरोध। लोगों का राम वन भ्रमण। कोल किरातों का सत्कार। सीता की सास-सेवा। कैकेयी का पश्चात्ताप। भरत का सोच : दो. २५२.४ तक। पृ० ५१९ से।
प्रथम सभा : पुनि रघुपति बहु विधि समुझाये : प्रकरण : गुरुजी के यहाँ भरत की बुलाहट। मुनि भरत संवाद। समाज-सहित रामनिकट आगमन। रामचन्द्र से उपाय पूछना। रामचन्द्र का गुरु आज्ञा-पालन ही उपाय बतलाना। गुरु द्वारा भरत के स्नेह का विचार न रखने का उपालम्भ। रामचन्द्र का सब बोझा भरत पर छोड़ देना। भरत द्वारा निज दुःख निवेदन। गुरुजी का समझाना। रामचन्द्र द्वारा सान्त्वना। भरत की बात मानने की प्रतिज्ञा। देवताओं में खलबली। भरत का रामाज्ञापालन का

निश्चय। रामजी का सङ्कोच से चुप रह जाना। जनकदूत आगमन। मुनि दूत संवाद। दूत की विदाई : दो. २७१.८ तक। पृ० ५६५ से।

जनकागमन प्रसङ्ग : रामजी को सङ्कोच। इन्द्र को सोच। कैकेयी की ग्लानि। प्रजा को मोद। दूसरे दिन पञ्चदेवोपासन। प्रार्थना। जनकागमन सुनकर रामजी का समाजसहित लेने जाना। शैल दर्शन होते ही जनक द्वारा रथ त्याग। सबका मिलन। रामजी का लिवा चलना। दोनों राज समाज की विकलता। मुनियों का समझाना। रामघाट स्नान। सबका निर्जल रह जाना। दूसरे दिन वसिष्ठ शतानन्द और विश्वामित्र का समझाना। जनकजी का दूसरी जगह ठहरना। सत्कार। जनकराज रनिवास का कोसलराज रनिवास से भेंट। चलते समय सीता को साथ लाना। जनक से भेंट। सीता की विदाई। जनक सुनैना संवाद : दो. २८९.२ तक। पृ० ६०८ से।

दूसरी सभा : रघुपति प्रबोध प्रसङ्ग : गुरुजी से रामजी की प्रार्थना। गुरुजी का जनक के पास जाना। जनक का समाज के सहित भरत के पास जाना। जनक भरत संवाद। सबका रामजी के पास आना। देवताओं की भरत के मत को फेरने के लिए सरस्वती से विनय। सरस्वती का अस्वीकार। देवताओं की माया से भय भ्रम आर्त्ति और उपचार का प्रादुर्भाव। जनक का राम से आज्ञा माँगना। रामचन्द्रका जनकजी की आज्ञा मानने का शपथ लेना। जनकजी का समासहित सङ्कोच। भरतजी द्वारा सरस्वती का स्मरण। भरत का खड़ा होकर आज्ञा माँगना। रामजी का हाथ पकड़कर निकट बैठाना। भरत की प्रशंसा। प्रजा की द्विविध मनोगति। रामचन्द्र का कथन। भरत को सन्तोष। मुनिथल तीरथ वन दर्शन की आज्ञा। भरत कूप। वन अटन : दो. ३१२ तक। पृ० ६४७ से।

तीसरी सभा : भरत की विदाई के लिए प्रार्थना। रामचन्द्र का उपदेश। भरत का प्रबोध। पादुका प्रदान। भाइयों का मिलन। विदाई। प्रस्थान। राम सीता लक्ष्मण को प्रिय परिजन का वियोग। देवताओं का दुःख निवेदन। राम का भरोसा देना। राम लक्ष्मण सीता का पर्णकुटी में निवास : दो. ३२१ तक। पृ० ६९६ से।

पादुका सहित अवध प्रत्यागमन प्रसंग : सब समाज राम विरह से दुःखी। यमुना पार होना। उस दिन उपवास। गङ्गा पार करके निवास। निषादराज का सत्कार। सई उतरि गोमतीस्नान। चौथे दिन अवध प्रवेश। जनकजी का चार दिन अवध में रहकर सब व्यवस्था करना। लोगों का राम-दर्शन के लिए नेम उपवास : दो. ३२२ तक। पृ० ७१५ से।

भरत रहनि प्रसंग : सचिव सेवक का अपने अपने कार्य में लग जाना। ब्राह्मणों से आज्ञा देते रहने के लिए भरतजी की प्रार्थना। पुरजन, परिजन प्रजा का समाधान करके स्ववश बसाना। गुरुजी से सनियम रहने के लिए आज्ञा चाहना। राजसिंहासन पर पादुका स्थापन। आज्ञा माँगकर कार्य करना। नन्दिग्राम निवास। भरत की तपस्या। भरतचरित की फलश्रुति। दो. ३२६ तक। पृ० ७'७ से।

३. अरण्यकाण्ड

मङ्गलाचरण : अष्टमूर्ति शङ्कररूप ब्रह्मकुल की वन्दना । सीता लक्ष्मण संयुक्त बटोही राम की वन्दना : संस्कृत : पृ० ७३० से ।

सुरपतिसुत करनी प्रसंग : रामजी के गुणों की गूढ़ता । सीता का पुष्प शृङ्गार । बल परीक्षा के लिए जयन्त का वायस वेष धारण । सीता पर चोंच चलाना । ब्रह्मास्त्र प्रयोग । जयन्त का पलायन । नारद का उपदेश । जयन्त की शरणागति । प्रभु का छोह । अति-सुधासरिस चरित : दो. २.१ तक । पृ० ७३२ से ।

प्रभु अत्रि भेंट प्रसंग : मुनियों से विदा । अत्रि के आश्रम में आगमन सत्कार । पूजा स्तुति । स्तुति की फल-श्रुति । अनसूया सीता मिलन । दिव्य वसन भूषण उपहार । नारि धर्म उपदेश । दूसरे वन में जाने के लिए अत्रि की अनुमति । अयोध्याकाण्ड के रामचरित की फलश्रुति । विदाई : सो. ६.१ तक । पृ० ७४१ से ।

विराध वध प्रसंग : राम लक्ष्मण के बीच में सीता की शोभा । प्रकृति की अनुकूलता । विराध वध में प्रभु की पण्डिताई । विराध की गति : सो. १.७ तक । पृ० ७५९ से ।

शरभंग देहत्याग प्रसंग : शरभङ्ग के यहाँ आगमन । शरभङ्ग का कथन । शर रचना करके मुनि का बैठना । हृदय में वास के लिए वरदान । योगाग्नि से शरीर त्याग । शरभङ्ग की गति । मही को निशिचर हीन करने की प्रतिज्ञा । सब मुनियों के आश्रमों में जाकर सुख देना : दो. ९ तक । पृ० ७६१ से ।

सुतीक्ष्ण प्रीति प्रसंग : प्रभु का आगमन सुनकर मुनि का अतिशय प्रेम । समाधि । प्रभु का जगाना । मुनि से भेंट । आश्रम में लाकर पूजा । स्तुति । प्रभु की रुचि अनुसार वरदान । मुनि की रुचि अनुसार वरदान । मुनि के साथ प्रभु का आगस्त्याश्रम के लिए प्रस्थान : दो. ५.४ तक । पृ० ७६६ से ।

प्रभुअगस्त्य सत्संग : पंथ में भक्ति-कथन । सुतीक्ष्ण का जाकर गुरु को संवाद देना । अगस्त्य जी का दौड़ना । अगस्त्य जी से भेंट । कुशल प्रश्न पूजा । मुनिसमूह में शोभा । मुनिद्रोही वध का मन्त्र पूछना । मुनि की स्तुति । वरदान माँगना : दो. १२ : १३ तक । पृ० ७८१ से ।

दण्डक वन की पावनता : पञ्चवटी की मनोहरता का वर्णन । मुनि के लिए शापहरणपूर्वक दण्डक वन को पवित्र करने की प्रार्थना । वहीं वास करने की अनु-मति । मुनि की आज्ञा पाकर रामजी का दण्डक वन प्रवेश : दो. १२ : १८ । पृ० ७८८ से ।

गीध मैत्री प्रसंग : गीधराज से भेंट । प्रीति की वृद्धि : दो. १३ । पृ० ७८९ से ।

पञ्चवटी निवास मुनि त्रास भञ्जन प्रसंग : गोदावरी के निकट पर्ण गृह बनाकर वास । मुनियों का वीतत्रास होना । वन वर्णन । प्रकृति के सौन्दर्य की अभिवृद्धि : दो. ७.४ । पृ० ७८९ से ।

लक्ष्मणोपदेश प्रसंग : रामगीता : लक्ष्मण जी के तीन प्रश्न : राम के द्वारा मायानिरूपण ज्ञाननिरूपण परमवैराग्य निरूपण ईश्वरजीव भेद-निरूपण । ज्ञान-दीप का बीज । भक्ति से भगवान् का शीघ्र द्रवीभूत होना । भक्ति की सुकरता । स्वतन्त्रता । ज्ञान विज्ञान

उसके अधीन सत्सङ्ग से अनुपम सुखमूल भक्ति की प्राप्ति : भक्तिचिन्तामणि बीज : पृ० ७९१ से ।

भक्तियोग : साधना : विप्र चरण प्रीति तथा स्वधर्माचरण । उससे विषय विराग । तब भगवद्धर्म में अनुराग । श्रवणादिक भक्ति की दृढ़ता । भगवत् लीला में रति । सन्त चरण में प्रेम । मन क्रम वचन से भजन । लक्ष्मण को सुख प्राप्ति । प्रणाम । विराग, ज्ञान, गुण और नीति विषयक उपदेशों में समय बिताना : दो. १०.२ तक । पृ० ८१५ से ।

सूर्पणखा विरूपकरण प्रसंग : सूर्पणखा का पञ्चवटी में आगमन । दोनों भाइयों पर मोहित होना । प्रेम प्रस्ताव । प्रभु का उसे लक्ष्मण के पास भेजना । लक्ष्मण का उसे समझाकर फिर प्रभु के पास लौटाना । रामजी का फिर उसे लक्ष्मण के पास भेजना । लक्ष्मण द्वारा तिरस्कार । सूर्पनखा का प्रभु के पास आकर भयङ्कर रूप प्रकट करना । रामजी के इङ्गित पर लक्ष्मण द्वारा श्रवण नासिका छेदन : ११.१ । पृ० ८२९ से ।

खरदूषणवध प्रसंग : सूर्पणखा द्वारा खरदूषण को धिक्कार । खरदूषण का ससैन्य प्रस्थान । लक्ष्मण का सीता को राम की आज्ञा से गिरि कन्दरा में ले जाना । राम की युद्ध के लिए तैयारी । बगमेल आगमन । खरदूषण का दूत भेजना । रामजी का उत्तर । धावा । धनुपटङ्कार । युद्ध में तीन धावा । प्रभु की पण्डिताई । सबका वध । देवों द्वारा पुष्पवर्षा । स्तुति । लक्ष्मण का सीता को लाना । प्रभु का सुर मुनि सुखदायक चरित : दो. १४.४ । पृ० ८३५ से ।

दसानन समाचार प्रसंग : खरदूषण का शव देखकर सूर्पणखा का रावण के यहाँ जाना । विलाप करते हुए सभा में गिर पड़ना । दशानन के पूछने पर निज दोष गोपन पूर्वक सब वृत्तान्त कहना । रावण का सान्त्वना देना । रावण का रात्रि में विचार । दृढ़ मन्त्र । एकाकी रथ पर चढ़कर मारीच के पास जाना दो. १६.७ । पृ० ८५० से ।

रामजी की युक्ति : लक्ष्मण का कन्द मूल फल लेने वन जाना । रामजी का सीताजी से अपना विचार प्रकट करना । अपना प्रतिबिम्ब वहाँ रखकर सीताजी का अग्नि प्रवेश : दो. १७.५ । पृ० ८५७ से ।

दशकन्धर मारीच बतकही प्रसंग : दशकन्धर का मारीच के यहाँ जाना । प्रणाम करना । पूजा करके मारीच का वृत्तान्त पूछना । रावण का कहना तथा कपटमृग बनकर सीताहरण में सहायक होने के लिए अनुरोध । मारीच का समझाना । रावण का क्रोध । मारीच निश्चय । रावण के साथ चलना । मारीच का मनोरथ । राम वन के निकट मारीच का हेममृग रूप धारण : दो. २०.१ । पृ० ८५९ से ।

मायासीता हरण प्रसंग : सीता का मृग देखना । रामचन्द्र से मृगछाला के सीता की प्रार्थना । लक्ष्मण का पहरा । रामचन्द्र का मृग वध के लिए प्रस्थान । पीछा करना । मृग का कपट । मृग वध । रामचन्द्र के स्वर से मृग का लक्ष्मण को पुकारना । मारीच की गति । प्रभु का लौटना । आर्त्तगिरा सुनकर लक्ष्मण को जाने के लिए सीता का आदेश । लक्ष्मण का समझाना । सीता का क्रोध । लक्ष्मणजी का प्रस्थान । दशानन का यति के वेष में आगमन ।

राजनीति भय प्रीति दिखलाना। सीता का सन्देह। रावण का निजरूप प्रकाश-पूर्वक अपना नाम स्थापन। सीताहरण। सीता विलाप। जटायु रावण युद्ध। जटायु का पक्षच्छेदन। रावण का पुनः सीता को ले चलना। सीता का हरिना-मोच्चारण पूर्वक बन्दरों में पट गिराना। रावण का सीता को अशोकवन में रखना। सीता का रामछवि हृदय धारण पूर्वक नाम रटना: दो. २३ तक। पृ० ८६६ से।

रघुवीरविरहवर्णन प्रसंग: लक्ष्मण को आते देखकर राम की बाह्य चिन्ता। आश्रम पर जाना। विलाप। लक्ष्मण का समझाना। सीता की खोज में लतातरु पाती से पूछते चलना। सीताजी का नखशिख वर्णन: दो. २३.१७। पृ० ८८० से।

गीधक्रिया प्रसङ्ग: गीध को पड़ा हुआ देखकर उसके सिर पर हाथ रखना। गीध का सब वृत्तान्त सुनना। राम जटायु संवाद। गीध की गति। गीध कृत राम की हरिरूप से स्तुति। अविरल भक्ति माँगकर हरिधाम प्रस्थान। रामचन्द्र द्वारा गीध क्रिया: दो. २६.३ तक। पृ० ८८४ से।

कबन्ध वध तथा शबरी गति प्रसङ्ग: सीता को खोजते हुए चलना। वन-वर्णन। कबन्ध वध। गन्धर्वरूप कबन्ध द्वारा स्वात्मकथा निवेदन। रामचन्द्र द्वारा ब्राह्मणमहिमा कथन। भागवद्धर्म-उपदेश। स्वकीय गतिप्राप्ति। शबरी के यहाँ रामजी का जाना। शबरी का सत्कार पूजा स्तुति: नवधा भक्ति जिसमें सबका अधिकार है: का उपदेश। जनकसुता की सुधि पूछना। शबरी की भविष्यद् वाणी। शबरी का योगाग्नि से देह त्याग। मुक्ति: दो. ३० तक। पृ० ८९२ से।

सरोवर तीर गमन प्रसंग: विरही की भाँति विषाद करने चलना। कामसेना के व्याज से वसन्त वर्णन। सरोवर वर्णन। मज्जन। तरु छाया में परम प्रसन्न होकर बैठना: दो. ४०.२ तक। पृ० ९०५ से।

प्रभुनारद संवाद: देव मुनियों का आगमन और स्तुति। नारदजी का आना। नारद का स्वागत। नारद की विनती। राम नाम का सब नामों से अधिक श्रेष्ठ होने का वरदान। विवाह न होने देने का कारण पूछना। रामजी का उत्तर। भक्त शिशु बालक। ज्ञानी प्रौढ़ तनय। अतः भक्त की विशेष रखवारी। मोह की सेना में नारी का अति दारुण दुःखद होना। नारि में छवो ऋतु। नारी निविडान्धकारमयी रात्रि। बुद्धि बल शील सत्य मछलियों के लिए नारी वंशी। अवगुनमूल शूल प्रद सब दुःख खानि प्रमदा। अतः निवारण करना। नारदजी का सन्त लक्षण पूछना। प्रभु का उत्तर। नारद का ब्रह्मलोक प्रस्थान। फलश्रुति। ग्रन्थकता का मन को उपदेश: दो. ४० तक। पृ० ९१६ से।

तुम्हरोहि भरोस महेश हमें तुमही मम जीवन के रखवारे।
तजि देह सकौं न सकौं तज तोहिं तुही विजयानंद प्रान पियारे॥
मन में न धरो कछु हानि गलानि करें हम सोइ जोइ निरधारे।
यह प्रेम को नेम न टारे टरे हम भक्तन के अरु भक्त हमारे॥

—विजयानन्द त्रिपाठी

दुर्गापुरस्थित श्रीराम जानकी मन्दिर

मानसराजहंस पं. श्रीविजयानन्द जी त्रिपाठी

मानसराजहंस श्री विजयानन्द त्रिपाठी के प्रमुख शिष्य

डॉ. श्रीनाथ मिश्र रामायणी

श्री राम चरित मानस
विजया टीका

श्री गोस्वामी तुलसीदासजी

श्रीराम

श्रीगणेशाय नमः । श्रीगुरवे नमः

श्रीरामचरितमानस

अयोध्याकाण्ड : द्वितीय सोपान

सटीक

मङ्गलाचरण

श्लो. यस्यांके[1] च विभाति भूधरसुता देवापगा मस्तके
भाले बालविधुर्गले च गरलं यस्योरसि व्यालराट् ।
सोयं भूतिविभूषणः सुरवरः सर्वाधिपः सर्वदा
शर्वः सर्वगतः शिवः शशिनिभः श्रीशंकरः पातु मां ॥१॥

अर्थ : जिनकी गोद में पार्वतीजी, मस्तक पर गङ्गाजी, ललाट पर बालचन्द्र, गले में विष और जिनके वक्षस्थल पर सर्पराज विराजमान हैं। वे यही भूतिविभूषण, देवताओं में श्रेष्ठ, सदा सबके स्वामी, संहारकर्ता, सबमें व्याप्त, चन्द्रमा के समान प्रकाशित श्रीशङ्कर शिवजी मेरी रक्षा करें।

व्याख्या : पार्वतीजी स्वयं प्रकाशमान हैं। पर शङ्करजी के अङ्क में विशेष रूप से प्रकाशमान हुईं। अतः विभाति कहा। यही क्रिया अन्य कर्ताओं के साथ लगेगी। गङ्गाजी भी प्रकाशमान हैं। पर शङ्कर भगवान् के सिर पर विशेष रूप से प्रकाशित होती हैं। उमा गङ्गा दोनों शिवजी की शक्तियाँ हैं। महेस मुखचंद चकोरी होकर उत्कर्ष को प्राप्त हैं। यही बात बालविधु की भी है : यमाश्रितो हि वक्रोऽपि चन्द्रः सर्वत्र वन्द्यते। विष भी सुन्दर प्रकाशवाला हो जाता है। अमृत का फल देने लगता है : कालकूट फल दीन्ह अमीके। व्यालराट् भी अधिक उत्कर्ष को प्राप्त होते हैं। गरुड़ से भी निर्भय हो जाते हैं। आभूषण की भाँति सुशोभित होते हैं। यथा :

---

१. यह शार्दूलविक्रीडित छन्द है। इसमें १९ अक्षरों का एक पाद होता है। बारह अक्षरों पर यति होती है। इसमें एक मगण, १ सगण, १ जगण, १ सगण, दो तगण और अन्त में एक गुरु होता है।

भुजगभूति भूषन त्रिपुरारी। सोयम् से प्रसिद्धि कही। विभूति का भी महान् उत्कर्ष हो जाता है। वह श्मशान की अमङ्गल अपावन विभूति महामङ्गलमय और पवित्र हो जाती है। यथा : भव अंग भूति मसान की सुमिरत सुहावनि पावनी। शिवजी देवाधिदेव महादेव हैं। इसलिए सुरवर कहा। ईश्वर हैं। इसलिए सदा सर्वाधिप कहा। अखण्ड ऐश्वर्य द्योतित किया। संहारकर्ता भी ये ही हैं। इसलिए शर्व कहा। ब्रह्मरूप होने से सर्वगत कहा। प्रलयकाल में भूतमात्र इन्हीं में शयन करते हैं। इसीलिए शिव कहा। परम आह्लादकारिणी मूर्ति है। इसलिए शशिनिभ कहा : अथवा ज्योतिर्मय होने से शशिनिभ कहा। ऐसे श्रीयुक्त शङ्कर से कवि अपनी रक्षा चाहते हैं। यहाँ श्री का अर्थ उमा है। क्योंकि वही शङ्कर की लक्ष्मी हैं। ओर्मा उमा। उ शङ्कर को कहते हैं। उनकी लक्ष्मी का नाम उमा है।

इसी वर्णन द्वारा शिवजी के अखिल रसामृतमूर्ति होने का वर्णन किया। विभाति भूधरसुता से शृङ्गार कहा। देवापगा मस्तके से हास्य कहा। कैसी ही प्रिय स्त्री हो पर उसे कोई सिर पर चढ़ाये नहीं फिरता। भाले बालविधुः से अद्भुत रस कहा। चन्द्रमा आकाश में रहते हैं किसी के सिरपर नहीं रहते। गले च गरलं से करुण रस कहा। यथा : जरत सकल सुरवृंद विषम गरल जेहि पान किय। उरसि व्यालराट् से भयानक रस कहा। भूतिविभूषणः से बीभत्स रस कहा : श्मशान की विभूति बीभत्स है। सर्वाधिपः से वीर रस कहा क्योंकि वीरभोग्या वसुन्धरा है। शर्व से रौद्र रस और सर्वगत से शान्त रस कहा।

इसी वर्णन से शिवजी में विरुद्धधर्माश्रयत्व भी दिखलाया। स्थावर विष गले में जंगम विष : सर्पराट् छाती पर और अमृतांशु : चन्द्रमा मस्तक पर। इस भाँति विष और अमृत दोनों का आश्रय कहा। एक स्त्री गोद में एक सिर पर है और आप भूतिविभूषण हैं। यह भी सर्वथा विरुद्ध है। जो शर्व : संहारक है। वही सर्वाधिप : सबका पालक है। ये दोनों धर्म भी अत्यन्त विरुद्ध हैं। इनके आश्रय शङ्कर भगवान् हैं।

श्लो. प्रसन्नता[1] या न गताभिषेकतस्तथा न मम्ले[2] वनवासदुःखतः।
मुखांबुजश्री रघुनन्दनस्य मे सदास्तु सा मंजुलमङ्गलप्रदा ॥२॥

अर्थ : जो राज्याभिषेक से प्रसन्नता को न प्राप्त हुई और वनवास के दुःख से मलिन न हुई वह श्रीरघुनन्दन के मुखकमल की श्री : शोभा सदा मेरे लिए सुन्दर मङ्गल की देनेवाली हो।

---

१ यह वंशस्थ छन्द है। इसमें १२ अक्षरों का एक पाद होता है। इसमें क्रम से जगण, तगण, जगण और रगण होते हैं।

२. सुप् लुक् सुपां तिङां वा विपर्ययश्चात्र बहुलं स्युः। प्राकृत में तिङ् का विपर्यय हो जाता है। अतः मम्लौ न लिखकर मम्ले लिखा यह ग्रन्थ ही, प्राकृत में लिखा गया है। यथा : प्राकृत कवि परम सयाने। भाषा जिन हरि चरित बखाने।

व्याख्या : मानुष-आनन्द की पराकाष्ठा राज्यप्राप्ति मानी जाती है। लोक में प्रसिद्ध है : हरखे सकल पाइ जनु राजू और दुख की पराकाष्ठा वन में भेजा जाना है। वन के स्मरण से धीरों की धैर्यच्युति होती है। यथा : डरपहिं धीर गहन सुधि आएँ। सो जिसे राज्याभिषेक के समाचार से कोई हर्ष नहीं हुआ। यथा : जनमे एक संग सब भाई। भोजन सयन केलि लरिकाई। करन बेध उपबीत बिवाहू। संग संग सब भयउ उछाहू। बिमल बंस यह अनुचित एकू। बन्धु बिहाइ बड़ेहिं अभिषेकू। प्रभु सप्रेम पछितानि सुहाई। हरउ भगत मन कै कुटिलाई। इसी भाँति वनवास के समाचार से विषाद नहीं हुआ। यथा : मुखु प्रसन्न चित चौगुन चाऊ। मिटा सोचु जनि राखइ राऊ। हृद्गत भावों की प्रकाशक मुखश्री है। यह सुख समाचार से खिल उठती है। और दुःख के समाचार से म्लान हो जाती है। पर रघुनन्दन के मुखकमल की श्री इतने बड़े सुख दुःख के समाचार पर न तो प्रसन्नता को प्राप्त हुई और न मलिन हुई। उसका दोनों अवस्थाओं में एकरस रहना आभ्यन्तर आनन्द का सूचक है। यथा : मन मुसुकाइ भानुकुल भानू। राम सहज आनन्द निधानू। उस श्री का ध्यान विघ्न-विध्वंसक है। इसलिए कवि कहते हैं कि वह श्री मुझे सदा सुन्दर मङ्गल की देनेवाली हों। क्योंकि सरकार की मुखाम्बुजश्री से ही सब सश्रीक हैं।

श्लो. [1]नीलाम्बुजश्यामलकोमलांगं सीतासमारोपितवामभागम्।
पाणौ महासायकचारुचापं नमामि रामं रघुवंशनाथम् ॥३॥

अर्थ : नील कमल की भाँति जिसके अङ्ग श्यामल और कोमल हैं। सीताजी जिसके वाम भाग में सुशोभित हैं। दोनों हाथों में जिसके बड़े : प्रभावशाली बाण और सुन्दर धनुष है। उन रघुवंशनाथ रामजी को मैं नमस्कार करता हूँ।

व्याख्या : शृङ्गाररस का वर्ण ही श्याम है। श्याम और कोमल होने से ही श्रीअङ्गों की उपमा नील कमल से दी गई। सीतासमारोपितवामभागं से श्रीसीताजी को अङ्कारूढ़ कहा। इससे शृङ्गार वर्णन किया। यथा : राज भवन सुख बिलसत सिय सँग राम। बिपिन चल्यौ तजि राज सुविधि बड़ बाम। महासायकचारुचापं से वीररस कहा। यहाँ महासायक से अभिप्राय चण्डशर से है। यथा : लव निमेष परमान जुग वर्ष कल्प सर चंड। भजसि न मन तेहि राम कहँ काल जासु कोदंड। सीतासमारोपितवामभागं से आधेय की आधार से अल्पता कही। माया ब्रह्म के एक देश में रहती है। श्याम वर्ण से प्रभु का इन्द्रियातीत होना द्योतित किया। यथा : स्याम वर्ण सुचि प्रकट लखावत दृग ते पार रहैया। सीता समारोपितवामभागं से माया का अधिष्ठान होना भी द्योतित किया। महासायकचारुचापं से महाकाल-

१. यह इन्द्रवज्रा छन्द है। इसमें ग्यारह अक्षरों का एक पाद होता है। इसमें क्रम से दो तगण, एक जगण और अन्त में दो गुरु होते हैं।

काल होना भी कहा। रंघ धातु से रघु शब्द बना है। रघु का अर्थ है जीव। अतः रघुवंशनाथं कहकर साक्षात् ब्रह्म रूप कहा।

अयोध्याकाण्ड

सप्त मोक्षपुरी रूपी सातों काण्डों में अयोध्याकाण्ड मथुरापुरी है। श्रीकृष्ण-चन्द्र आनन्दकन्द जिस भाँति मथुरा गये और समस्त गोपीग्वाल को विरहावस्था का अनुभव करना पड़ा। इसी भाँति सरकार भी इस काण्ड में श्रीअयोध्याजी से चित्रकूट पधारे और समस्त अयोध्यावासियों को विरहज्वाल से सन्तप्त होना पड़ा। यथा : सहि न सके रघुवर विरहागी। चले लोग सब व्याकुल भागी। इसलिए इस काण्ड को मथुरापुरी कहा गया। यथा :

बालकाण्ड है[1] अवध, अवध मथुरा मन भावन।
हरद्वार आरण्य काशिका किष्किन्धा मन॥
कांची सुन्दर लसत लंक उज्जैन सुहावन।
उत्तर द्वारावती पुरी सातों अति पावन॥
लसत जहाँ सोपान प्रति ऐसो राम चरित्र सर।
विजयानद सेवत सुलभ सब सुखकर सब पापहर॥

अन्त के श्लोकानुसार यह काण्ड पापहर है। सातों काण्डों की संक्षेप में फलश्रुति ग्रन्थ के अन्त में दी गई है। यथा : १. पुण्यं २. पापहरं ३. सदा शिवकरं ४. वैराग्यभक्तिप्रदं। ५. मायामोहमलापहं ६. सुविमलं ७. प्रेमाम्वुपूरं शुभम्। अयोध्या के अन्त में भी कहा है : पापपुंज कुंजर मृगराजू। समन सोक संताप समाजू।

दो. श्रीगुरु चरन सरोज रज, निज मनु मुकुरु सुधारि।
बरनउँ रघुबर बिमल जसु, जो दायकु फल चारि॥

अर्थ : श्रीगुरुजी के चरणकमलों की धूलि से अपने मनरूपी दर्पणको सुधारकर श्रीरघुवर के विमल यश का वर्णन करता हूँ जो चारों फलों को देनेवाला है। रघुवर शब्द से यहाँ रामजी और भरतजी का ग्रहण है। दोनों के चरित्र पृथक् पृथक् १५६ दोहों में वर्णित हैं।

व्याख्या : गुरु पद मंजुल रज अंजन। नयन अमिय दृग दोष विभंजन। तेहि करि विमल विवेक बिलोचन। बरनौं रामचरित भव मोचन। लिखने से मालूम होता है कि बालकाण्ड लिखने के आरम्भ में विवेकरूपी नेत्र को सुधारा। अब मनमुकुर को सुधारते हैं। बालकाण्ड में रामचरित कहना था। इसमें भरत-चरित कहना है और भरत महामहिमा सुनु रानी। जानहि राम न सकहिं वखानीं। उस महामहिमा के वर्णन में जहाँ रुख देखकर काम किया जाता है समझने के

---

१. बालकाण्ड को अवध कहने का यथेष्ट कारण स्पष्ट है। क्योंकि श्री रामावतार तथा बाललीला अवध में ही हुई।

लिए मनमुकुर के अत्यन्त शुद्ध करने की आवश्यकता है। बिना शुद्ध हुए उसमें ठीक-ठीक सूक्ष्मभाव प्रतिफलित न होगा। अतः यहाँ मनमुकुर सुधारा जा रहा है। जिस भाँति दर्पण धूलि से सुधारा जाता है, उसी भाँति मनरूपी दर्पण गुरुपदधूलि से सुधारा जाता है। पूर्वकाल में लोहे के दर्पण बनते थे और उसमें मुख का प्रतिविम्ब उसी भाँति पड़ता था जिस भाँति तलवार में पड़ता है। इसलिए उसे धूलि से बराबर रगड़ना पड़ता था। दर्पण का उपयोग प्रतिविम्ब दर्शन में ही होता है। जितना ही मनमुकुर शुद्ध होगा, उतना ही दूसरों के मनोगत भाव ठीक-ठीक उसमें प्रतिफलित होंगे। इस कमल की पुरइन है : जन मन मंजु मुकुरमल हरनी। मुकुर के वर्णन से ही यह काण्ड प्रारम्भ होता है। यथा : राँय सुभाँय मुकुरु कर लीन्हा। अतः कवि ने भी मनमुकुर को सुधारना आवश्यक समझा।

धर्म, ज्ञान, योग और जप चारों फलों की सिद्धि के लिए किये जाते हैं। सो इनका साधन कलिकाल में अत्यन्त कठिन है। अतः रघुवर यश ही इस काल में चारों फल (धर्मार्थकाम और मोक्ष) दे सकता है। यथा : कठिन कालमल कोस धर्म न ज्ञान न जोग जप। परिहरि सकल भरोस रामहिं भजहिं ते चतुर नर।

९. रामाभिषेक प्रसङ्ग

जब तें राम ब्याहि घर आए। नित नव मंगल मोद बधाए ॥
भुवन चारिदस भूधर भारी। सुकृत मेघ बरषहिं सुख बारी ॥१॥

अर्थ : जब से रामजी विवाह करके घर आये, तब से नित्य नये मङ्गल और मोद के बधावे होने लगे। चौदह भुवनरूपी भारी पर्वतों पर पुण्य मेघ सुख के जल को बरसाने लगे।

व्याख्या : यह अर्धाली बालकाण्ड के दाब की है। आए ब्याहि रामु घर जब तें। बसे अनंद अवध सब तब तें से लेकर जब तें राम ब्याहि घर आए। नित नव मंगल मोद बधाए तक पहिली सीढ़ी : सोपान का दाब[1] है। सुरपुर को आनन्द मङ्गल ने छोड़ दिया है। वहाँ की व्यवस्था यह है : सुरपुर नितहिं परावन होई। मङ्गल उपस्थित होने से मोद होता है और मोद होने से बधावा बजता है। प्रभु बिआहु जस भयउ उछाहू। सकहिं न बरनि गिरा अहिनाहू। सो वह उछाह वहीं समाप्त नहीं हो गया। नित्य अवध में हो रहा है।

जा दिन ते हरि गर्भहिं आए। सकल लोक सुख संपति छाए। भगवान् के गर्भ में आने से ही सुख सम्पत्ति बरसानेवाले मेघ सब लोकों में छा गये थे। पर वर्षा अब हो रही है। मेघ जल बरसाते हैं। पर सुकृतमेघ सुखरूपी जल को बरसाते हैं।

---

१. इस दाब के अन्तर्गत बारह पंक्तियाँ हैं। इससे दिखलाया कि ब्याह करके घर आने पर बारह वर्ष बड़े आनन्द से बीते। यथा : राज भवन सुख बेलसत, सिय संग राम। —बरवै रा.

सुकृत मेघ से अवधवासियों का धर्म-मेघ समाधि कहा। सञ्चित समुद्र से जल लेकर बरसाने आये हैं। अतः मेघ से उपमा दी। पर्वत पर सदा पानी बरसा करता है इसलिए चौदहों भुवन की पर्वतों से उपमा दी। जल बहुत गिरा। इससे नदी में बाढ़ आगयी। गङ्गाजी ने समुद्र को भरा। पर उनकी साथी दो और बड़ी नदियाँ हैं यमुना और सरस्वती। यहाँ भी तीन नदी कहेंगे : ऋद्धि, सिद्धि और सम्पत्ति।

रिधि सिधि संपति नदी सुहाई। उमगि अवध अंबुधि कहुँ आई ॥
मनिगन पुर नर नारि सुजाती। सुचि अमोल सुंदर सब भाँती ॥

अर्थ : ऋद्धि, सिद्धि और सम्पत्ति रूपी नदियाँ उमगकर अवधरूपी समुद्र की ओर दौड़ीं। नगर के स्त्री-पुरुष ही मणिगण हैं। जो सुजाति, पवित्र, अमूल्य और सब भाँति से सुन्दर हैं।

व्याख्या : ऋद्धि, सिद्धि और सम्पत्तिरूपी नदी पहिले से ही अवध समुद्र में गिरती थीं। पर अब चौदह भुवनरूपी पर्वतों पर पुण्यमेघ की अधिक वर्षा होने पर उनमें बाढ़ आगयी और वे बड़े वेग से अवधसमुद्र की ओर दौड़ीं। अवध में घाटा कोई नहीं था। समुद्र में स्वयं अगाध जल भरा है। उसे जल की कमी नहीं है। पर नदी को दूसरी गति नहीं है। यथा : जिमि सरिता सागर महँ जाहीं। जद्यपि ताहि कामना नाहीं।

समुद्र में तो मणिगण रहते हैं। उसका नाम ही रत्नाकर है। सो अवधसमुद्र में पुरनरनारि ही मणिगण हैं। मणि में जाति होती है। पवित्रता होती है। बहुमूल्यता तथा सुन्दरता होती है। सो अवध नर-नारी भी सुजाति, शुचि, अमोल और सब भाँति से सुन्दर हैं। वे देवताओं से भी भले हैं। क्योंकि देवता लोग सदा स्वार्थी होते हैं। यथा : आए देव सदा स्वारथी। मणि यद्यपि जल में है। पर जल का उसमें प्रवेश नहीं। इस भाँति पुरजन सुख-सम्पत्ति में डूबे हुए हैं। फिर भी निर्लेप हैं।

कहि न जाइ कछु नगर बिभूती। जनु एतनिअँ बिरंचि करतूती ॥
सब बिधि सब पुरलोग[1] सुखारी। रामचंद मुख चंदु निहारी ॥३॥

अर्थ : नगर का वैभव कुछ कहते नहीं बनता। मानो ब्रह्मदेव की करतूति ही इतनी है। श्रीरामजी के मुखचन्द्र को देखकर सब विधि से सब पुर लोग सुखी हैं।

व्याख्या : नगर का वैभव कवि से कहते नहीं बनता और देवताओं से देखते नहीं बनता। यथा : देखि न सकहिं पराइ बिभूती। दो ही स्थान ऐसे हैं जहाँ की विभूति नहीं कही जा सकती। एक अयोध्या की और दूसरी लङ्का की। यथा : गिरि पर चढ़ि लंका तेहि देखी। कहि न जाइ अति दुर्ग बिसेखी। अति उतंग जलनिधि चहुँ पासा। कनककोट कर परम प्रकासा। लङ्का विधि निर्मित दुर्गम अति भारी है और अयोध्या जनु एतनिअ बिरंचि करतूती है।

---

१. यह संसर्गजा रति है। यथा : सम्बन्धः कुलरूपादि सामग्रीगौरवं भवेद्।

अयोध्या में अर्थ काम इतना है पर उससे लोग सब विधि सुखारी नहीं। रामचन्द्र के मुखचन्द्र को देखकर सब विधि से सुखारी हैं। दूर से दर्शन करते हैं। इस भाँति चन्द्र दर्शन भी दूर से ही होता है। सीताजी अन्तःपुर में हैं। अतः उनके लिए नहीं कहते। लङ्का के लोग भी सुखी हैं। यथा : सुखी सकल रजनीचर कीन्हे। पर सब विधि सुखी नहीं। क्योंकि वहाँ देखने के लिए रामचन्द्र मुखचन्द्र नहीं है।

मुदित मातु सब सखी सहेली। फलित बिलोकि मनोरथ बेली ॥
राम रूपु गुन सीलु सुभाऊ। प्रमुदित होइ देखि सुनि राऊ ॥४॥

अर्थ : माताएँ और सब सखी सहेली अपनी मनोरथ की वेलि को फलती देखकर प्रसन्न हैं। रामजी के रूप, गुण, शील और स्वभाव को देखकर और सुनकर राजा आनन्दित होते हैं।

व्याख्या : पहिले पुरजन का हाल कहकर अब अन्तःपुर की चर्चा करते हैं। वहाँ माताएँ और सखी सहेलियाँ अपना मनोरथ की वेलि को फलती देखकर प्रसन्न हैं। यहाँ मनोरथ वेलि से सीताजी अभिप्रेत हैं। यथा : पुरजन सचिव राउ रानी सब सेवक सखा सहेली। लेहैं लोचन लाहु सुफल लखि ललित मनोरथ वेली। माता सखी सहेली आदि सीताजी को निकट से देखती हैं। अतः मनोरथ वेली से उपमित किया। अब अन्त में महाराज का हाल कहते हैं।

राजा चारचक्षु होते हैं। उन्हें अपनी आँखों का भरोसा नहीं होता। क्योंकि उनके सामने तो सब भले हो रहते हैं। अतः उन्हें चारों से सच्ची बातों का पता चलता है। यथा : चारैः पश्यन्ति राजानः। अतः रामजी का रूप, गुण, शील और स्वभाव स्वयं देखकर और चारों से सुनकर परम प्रसन्न होते हैं। स्वयं देखकर यथा : आयसु मांगि करहिं पुर काजा। देखि चरित हरखै मन राजा। और सुनकर गुरुजी से कहते हैं कि : सेवक सचिव सकल पुरबासी। जे हमरे अरि मित्र उदासी। सबहि राम प्रिय जेहि बिधि मोही। प्रभु असीस जनु तनु धरि सोही। रामजी का रूप, गुण, शील, और स्वभाव सभी लोकोत्तर हैं।

१. रूप : रूप सकहिं नहिं कहि श्रुति सेखा। सो जानहिं सपनेहु जिन देखा ॥
२. शील : को रघुवीर सरिस संसारा। सील सनेह निवाहन हारा ॥
३. गुण : जल सीकर महि रज गनि जाहीं। रघुपति गुन नहिं वरनि सिराहीं ॥
४. स्वभाव : अस सुभाउ कहुँ सुनउँ न देखउँ। केहि खगेस रघुपति सम लेखउँ ॥

दो. सबके उर अभिलाषु अस, कहहि मनाइ महेसु।
आपु अछत जुबराज पदु, रामहि देउ नरेसु ॥१॥

अर्थ : सबके हृदय में ऐसा अभिलाष है। महेश को मनाकर कहते हैं कि अपने रहते ही युवराजपद रामजी को राजा दें।

व्याख्या : सबके हृदय में कहने का भाव यह कि पुरजन परिजन के हृदय में मन्त्रियों के हृदय मे तथा महारानियों के हृदय में अभिलाषा है। पुरजन के हृदय

में अभिलाष यथा : कनक सिंहासन सीय समेता। बैठहिं रामु होइ चित चेता। मन्त्रियों के हृदय में यथा : मन्त्री मुदित सुनत प्रिय बानी। अभिमत बिरव परेउ जनु पानी। महारानियों के हृदय में यथा : राम तिलकु जौं साँचेहु काली। देउँ भागु मन भावत आली। रामजी को युवराज पद मिले यही अभिलाषा है। पर वृद्ध महाराज के गुणों पर भी जनता ऐसी मुग्ध है कि उनका वियोग सह्य नहीं है। नियमानुसार राजगद्दी देकर स्वयं वन न जांय। स्वयं राजा बने रहें। रामजी को युवराज पद देकर राज्यभार उन्हें दे दें। और आप द्रष्टा रहें।

एक समय सब सहित समाजा। राजसभा रघुराजु बिराजा॥
नृप सब रहहिं कृपा अभिलाषें। लोकप करहिं प्रीति रुख राखें॥१॥

अर्थ : एक समय समाज के सहित राजसभा में रघुराज : दशरथजी विराजमान हुए। राजा लोग उनकी कृपा की अभिलाषा करते हैं और लोकपाल रुख रखते हुए प्रीति करते हैं।

व्याख्या : सात्त्विक को अपना भरा पूरा समाज़ देखकर मृत्यु का स्मरण होता हैं और तामसिक को परपीड़ा का उत्साह होता है। दो ही सभा का वर्णन इस ग्रन्थ में आता है। अयोध्या की सभा तथा लङ्का की सभा का। लङ्का की सभा यथा :

दसमुख बैठ सभा एक बारा। देखि अमित आपन परिवारा॥
सुत समूह जन परिजन नाती। गनै को पार निसाचर जाती॥
सेन बिलोकि सहज अभिमानी। बोला बचन क्रोध मद सानी॥
सुनहु सकल रजनीचर जूथा। हमरे बैरी बिबुध बरूथा॥
ते सनमुख नहिं करहिं लराई। देखि सबल रिपु जाहिं पराई॥
तिन्हकर मरन एक बिधि होई। कहहुँ बुझाई सुनहु अब सोई॥
द्विज भोजन मख होम सराधा। सबकर जाइ करहु तुम बाधा॥
छुधाछीन बलहीन सुर सहजेहिं मिलिहहिं आइ।
तब मारिहौं कि छाड़िहौं भलीभाँति अपनाइ॥ इत्यादि।

यह तो आसुरी सम्पत्तिवाले की सभा है। यहाँ करजोरे सुर दिसिप बिनीता। भृकुटि बिलोकत सकल सभीता।

अयोध्या की सभा दैवीसम्पत्तिवाले महाराज दशरथ की सभा है। सभा तो नित्य होती है। पर एकबार सभा में सब समाज सहित महाराज दशरथ विराजमान हुए। रामजी के विवाह के बारह वर्ष बाद की बात है। उनके वर्षगाँठ की सभा है। इस सभा में सब राज़ा कृपा की अभिलाषा करते हुए उपस्थित हैं। लोकपाल लोग महाराज पर प्रीति करते हैं। फिर भी रुख उन्हीं का रखते हैं। क्योंकि राजा दशरथ इन्द्र के मित्र हैं। यथा : ससुर सुरेस सखा रघुराऊ। आगे होइ जेहि सुरपति लेई। अरध सिंहासन आसन देई। यहाँ निम्नकोटि में सब राज़ाओं की उपस्थिति

कही। और उच्चकोटि में देवों की प्रीति कही। फिर भी चक्रवर्तीजी का ही देवता लोग रुख रखते हैं। यह कहकर महाराज दशरथ की साहिबी : प्रताप दिखलाया।

तिभुवन तीनि काल जग मांही। भूरि भाग दसरथ सम नांहीं ॥
मंगल मूल रामु सुत जासू। जो कछु कहिअ थोर सबु तासू ॥२॥

अर्थ : तीनों भुवन में और तीनों काल में दशरथजी के समान भाग्यवान् कोई नहीं। मङ्गल के मूल रामजी जिसके पुत्र हैं। उसके लिए जो कुछ कहा जाय सब थोड़ा है।

व्याख्या : तिभुवन तीनि काल से सम्पूर्ण देश और काल कहा। त्रिभुवन में मर्त्यलोक पाताललोक और स्वर्गलोक तीनों आजाते हैं और तीन काल में भूत भविष्यत् और वर्तमान आजाते हैं। इसीलिए जगमांहीं कहते हैं : गच्छतीति जगत्। जो परिवर्तनशील है उसे जगत् कहते हैं। अर्थात् जहाँतक परिवर्तन का साम्राज्य है। दशरथजी सा भाग्यशाली कोई नहीं। क्योंकि भाग अभाग तो रामजी के सम्मुख विमुख होने पर निर्भर है।

पिता के पुण्य की परख तो पुत्र से होती है। पुं नाम नरक का है। उससे जो पिता को तारे वही पुत्र है। इसीलिए वसिष्ठजी ने कहा 'भयउ न है नहिं अब होनिहारा। भूप भरत जस पिता तुम्हारा। कहहु तात केहि भाँति कोउ करै बड़ाई तासु। राम लखन तुम सत्रुहन सरिस सुअन सुचि जासु। जनकपुर के दूत ने कहा : तुम्ह तें अधिक पुन्य बड़ काकें। राजन राम सरिस सुत जाकें। रामजी मंगलभवन अमंगल हारी हैं। अतः महाराज दशरथ की प्रशंसा करने में सभी असमर्थ हैं।

राँय सुभायँ मुकुर कर लीन्हा। बदनु बिलोकि मुकुटु सम कीन्हा ॥
स्रवन समीप भये सित केसा। मनहुँ जरठपनु अस उपदेसा ॥३॥

अर्थ : राजा ने स्वभाव से ही दर्पण हाथ में लिया और मुख देखकर मुकुट को ठीक किया। कान के पास के केश श्वेत हो चले। मानो बुढ़ाई यह उपदेश दे रही है।

व्याख्या : सबकें उर अभिलाष अस कहहिं मनाइ महेसु का साफल्य दिखलाते हैं। मुकुरावलोकन मङ्गल है। महेश की प्रेरणा इस प्रकार होती है। दरबार ठाट-बाट से लगा हुआ है। महाराज को इच्छा हुई कि दर्पण में देखकर मुकुट को ठीक कर लें। बिना मुख देखे मुकुट ठीक नहीं किया जा सकता और मुकुट का सँभाल राजा के जिम्मे है। इसलिए हाथ में दर्पण लिया और मुकुट को ठीक किया। पगड़ी देनेवाले भी इस बात को समझते हैं कि कुछ देर के बाद पगड़ी ठीक करने की आवश्यकता पड़ ही जाती है। खुले सिर रहनेवालों को इसका अनुभव नहीं है। इसलिए शङ्का उठाते हैं। संसार में सब कुछ क्षण परिणामी है और व्यवहार स्थिरप्राय है। शरीर में परिवर्तन हो रहा है। राजा को पता नहीं। कान के समीप के श्वेत केश के देखने से जाना कि जरा आयी। इसी बात को कवि दिखलाते हैं।

दर्पण हाथ में लिया मुकुट ठीक करने के लिए और ठीक कर भी लिया। पर निगाह पड़ गयी कि कान के समीप के बाल श्वेत हो चले। ध्यान आया कि बुढ़ाई आगयो। और बुढ़ाई मृत्यु की दूतिका है। बालों का श्वेत होना अथवा मृत्यु द्वारा केश का पकड़ा जाना एक बात है। अतः उचित जान पड़ा कि अपने बाद की व्यवस्था पहिले ही करनी चाहिए। इसी बात को आलङ्कारिक भाषा में कवि कहते हैं कि मानो कान में लगकर बुढ़ाई ने उपदेश दिया कि :

नृप जुवराजु राम कहुँ देहू। जीवन जनम लाहु किन लेहू ॥४॥

दो. यह बिचारु उर आनि नृप, सुदिनु सुअवसरु पाइ।
प्रेम पुलकि तन मुदित मन, गुरहि सुनायेउ जाइ ॥२॥

अर्थ : राजा! युवराज पद रामजी को देकर जीवन और जन्म का लाभ क्यों नहीं ले लेते? ऐसा विचार मनमें लाकर और सुदिन तथा सुअवसर पाकर प्रेम से पुलकित तन और प्रसन्नमन होकर गुरुजी को जाकर सुनाया।

व्याख्या : मानो वृद्धावस्था उपदेश दे रही है कि प्रजा का भार धुरन्धर पुत्र को सौंपो। अब तुम सिंहासन पर बैठकर दर्पण क्या देख रहे हो। मृत्यु सन्निकट है। श्रीरामजी की अवस्था अब सिंहासनारूढ़ होकर मुकुट धारण करने की है। राजा के जीवन और जन्म का लाभ प्रजा की रक्षा में है। सो धुरन्धर पुत्र को सौंपकर ही प्राप्त हो सकता है। अथवा जन्म का लाभ सिंहासनारूढ़ पुत्रमुखदर्शन से है। यथा : राम बाम दिसि सोहति रमा रूप गुन खानि। देखि मातु सब हरखीं जनम सफल निज जानि। और जीवन का लाभ रामप्रीत्यर्थे त्याग से है। यथा : जीवन लाहु लखन भल पावा। सब तजि राम चरन मन लावा।

सुदिन अर्थात् शुभ मुहूर्त। गुरुजी से कहने के लिए सुदिन चाहिए सो वह दिन भी शुभ था और सुअवसर वही है जब गुरुजी एकाग्र आसीन हों। पुलकि से तन मुदित से मन और गुरहि सुनायो जाय से वचन द्वारा प्रेम प्रकाश कहा। महाराज सब काम गुरुजी से पूछकर करते हैं। रघुवंश में गुरु ही शरण हैं। महाराज को जब पुत्र की इच्छा हुई गुरुजी के ही पास गये। यथा : एकबार भूपति मन माँहीं। भै गलानि मोरे सुत नाहीं। गुरु गृह गये तुरत महिपाला। पुत्र का ब्याह करना है तो : तब उठि भूप बसिष्ठ कहुँ दीन्हि पत्रिका जाइ। अब पुत्र को राज्य देना है तो : प्रेम पुलकि तन मुदित मन गुरहि सुनायेउ जाइ।

कहइ भुआलु सुनिअ मुनिनायक। भये रामु सब बिधि सब लायक॥
सेवक सचिव सकल पुरबासी। जे[1] हमरे अरि मित्र उदासी ॥१॥

अर्थ : राजा ने कहा हे मुनिराज! सुनिये। रामजी सब विधि से सब लायक : योग्य हो गये। सेवक, मन्त्री, सब प्रजा और जो हमारे शत्रु, मित्र और उदासीन हैं।

१. यहाँ तुल्ययोगिताः प्रथम अलङ्कार है।

व्याख्या : भूपाल शब्द के पकार का लोप होकर उसका तद्भव रूप भुआल बना। भाव यह कि महाराज पृथ्वी के पालन करनेवाले हैं। उन्हें पृथ्वीपालन की चिन्ता है। अतः मुनिनायक के सामने अपना विचारा हुआ प्रस्ताव रखते हैं कि बेटे तो चारों लायक हैं। पर रामजी सब विधि से सब लायक हैं। धुरन्धर हैं। सब राज कार्य सँभाल लेंगे। सब लायक शब्द से सर्वशक्तिमत्ता द्योतित होती है। यथा : पुनि मन बचन कर्म रघुनायक। चरन कमल बंदौं सब लायक।

रामजी की सर्वप्रियता कहते हैं। क्योंकि यही राजा के सब लायक होने का अव्यभिचरित लक्षण है। सेवक सचिव सकल पुरवासी से अपने राज्य भर के लोगों का ग्रहण करते हैं और अरि मित्र उदासी कहकर जीवमात्र का ग्रहण करते हैं। यथा : जीव जन्तु अस को जग मांहीं। जेहि रघुनाथ प्रान प्रिय नांहीं।

सबहि रामु प्रिय जेहि बिधि मोही। प्रभु असीस जनु तनु धरि सोही ॥
बिप्र सहित परिवार गोसाईं। करहिं छोहु सब रौरिहि नाईं ॥२॥

अर्थ : सबको रामजी वैसे ही प्यारे हैं जैसे मुझे प्यारे हैं। मानो प्रभु का आशीर्वाद शरीरधारी होकर शोभायमान है। सपरिवार ब्राह्मण लोग हे गोस्वामिन् उनपर वैसा ही छोह करते हैं जैसा कि आप करते हैं।

व्याख्या : राजा को रामजी वैसे ही प्रिय हैं जैसे मछलो को जल प्रिय होता है। यथा : मनि बिनु फनि जिमि जल बिनु मीना। मम जीवन मिति तुमहि अधीना। इसी भाँति सबको प्रिय हैं। यथा : अवधि अंबु प्रिय परिजन मीना। तुम करुनाकर धरम धुरीना। अस विचारि सोइ करहु उपाई। सबहि जिअत जेहि भेंटहु आई। वसिष्ठजी ने आशीर्वाद दिया था : धरहु धीर होइ हहि सुत चारी। त्रिभुवन विदित भगत भय हारी। सो महाराज कहते हैं कि मानो आपका वही आशीर्वाद शरीर धारण करके रामरूप से प्रकट हुआ है।

अब रामजी की ब्रह्मण्यता कहते हैं। उनकी भक्ति से ब्राह्मण ऐसे प्रसन्न हैं कि आपकी भाँति छोह करते हैं। सहित परिवार कहने का भाव यह कि दस वर्ष का ब्राह्मण बालक भी ६० वर्ष के बूढ़े क्षत्रिय से पितृवत् पूज्य है। सो रामजी ब्राह्मणपरिवार पर भक्ति रखते हैं। अतः वे सपरिवार छोह करते हैं। यथा : जौ हम निदरहिं बिप्र वदि सत्य सुनहु भृगुनाथ। तौ अस को जग सुभट जेहि भय बस नावहिं माथ।

जे गुर चरन रेनु सिर धरहीं। ते जनु सकल बिभव बस करहीं ॥
मोहि सम यहु अनुभयेउ न दूजें। सबु पायेउँ रज पावनि पूजें ॥३॥

अर्थ : जो लोग गुरु चरणों की धूलि को सिर पर धारण करते हैं वे मानो सम्पूर्ण ऐश्वर्य को वश कर लेते हैं। इस बात का अनुभव मेरे समान किसी दूसरे ने नहीं किया। मुझे तो सब कुछ पवित्र धूलि के पूजन से ही प्राप्त हुआ।

व्याख्या : गुणों के होने से ही पात्रता आती है और पात्रता आने से

ऐश्वर्य को प्राप्ति होती है। यथा : पात्रत्वाद्धनमाप्नोति धनाद्धर्मस्ततः सुखम्। गुरुचरणरेणु को सिर पर धारण करने से सम्पूर्ण गुणगण वशीभूत हो जाते हैं। यथा : कियें तिलक गुनगन बस करनी। और सम्पूर्ण गुणगण के वशीभूत होने से सम्पूर्ण ऐश्वर्य की पात्रता हो जाती है और पात्रता होने से ही धनप्राप्ति होती है। यहाँ : जन मन मंजु मुकुर मल हरनी इस पद का साफल्य : श्रीगुरु चरन सरोज रज निज मन मुकुर सुधारि से दिखलाकर : कियें तिलकगुनगन बस करनी : इस पद का साफल्य महाराज दशरथ के उदाहरण से कवि दिखला रहे हैं।

महाराज कहते हैं कि इस बात का अनुभव जैसा मुझे हुआ वैसा किसी दूसरे को हुआ ही नहीं। क्योंकि मैंने सिवा गुरु चरण रेणु के सिर पर धारण करने के और किया ही क्या ? बहुत दिनों तक जो तीर्थ में जाकर तपस्या करता है उसे आज्ञाकारो धर्मात्मा और बुद्धिमान् पुत्र होता है। मैंने तो केवल श्रीचरणों में अपने अपुत्री होने के कष्ट का निवेदन मात्र कर दिया। तुरन्त आशीर्वाद मिला कि धैर्य धरो। त्रिभुवन विदित भगत भयहारी पुत्र होवेंगे। सो अक्षरशः सत्य हुआ। मुझे तो सब कुछ गुरुचरणों से ही मिला।

अब अभिलाषु एकु मन मोरें। पूजिहि नाथ अनुग्रह तोरें॥
मुनि प्रसन्न लखि सहज सनेहू। कहेउ नरेस रजायसु देहू॥४॥

अर्थ : अब एक अभिलाषा मेरे मनमें है। वह भी हे नाथ ! आपके अनुग्रह से ही पूरी होगी। स्वाभाविक प्रेम देखकर मुनिजी प्रसन्न हो गये। बोले राजन् ! आज्ञा दीजिये।

व्याख्या : जितनी अभिलाषाएँ थीं सभी श्रीचरणों के अनुग्रह से पूरी हुई। सब कुछ था। केवल पुत्र का घाटा था। सो श्रीचरणों के अनुग्रह से सब लायक पुत्र हुआ। अब एक अभिलाषा शेष है। जिन चरणों से सबकी पूर्ति हुई उन्हीं के अनुग्रह से इसकी भी पूर्ति होगी। उसी को निवेदन करने के लिए आया हूँ।

स्वाभाविकी गुरुभक्ति देखकर मुनिजी प्रसन्न हो गये। भक्ति से स्थितप्रज्ञ महात्मा प्रसन्न हो जाते हैं। अतः अत्यन्त आदर से बोले। क्या चाहते हो न कहकर कहते हैं कि राजाज्ञा क्या है ? अथवा मुनिजी त्रिकालज्ञ हैं जानते हैं कि इस अभिलाषा की पूर्ति इस समय होनी नहीं है। अतः अनुग्रहवाली बात छोड़कर कहते हैं कि राजन् ! आज्ञा दीजिये।

दो. राजन राउर नामु जसु, सब अभिमत दातार।
फल अनुगामी महिपमनि, मन अभिलाषु तुम्हार॥३॥

अर्थ : राजन् ! तुम्हारा नाम और यश सब मनोरथों को देनेवाला है। हे राजाओं में मणि ! तुम्हारे मनकी अभिलाषा तो फल की अनुगामिनी है।

व्याख्या : यहाँ अभिलाषु पाठ है। प्रथमा और द्वितीया के एकवचन में ही उकार आता है। अतः यहाँ षष्ठी मानकर अभिलाष का सम्बन्ध फल के साथ नहीं

हो सकता । अर्थात् यह अर्थ नहीं हो सकता कि मनोभिलाष का फल तुम्हारा अनुगामी है । यह अर्थ होगा कि तुम्हारे मनकी अभिलाषा फल की अनुगामिनी है । फल पहिले होता है । अभिलाषा तो उसके पीछे होती है । भाव यह कि सबके प्रिय होने से सबके हृदय पर तो रामजी का राज्य हो ही गया । तदनन्तर आपको अभिलाषा हुई । जिसकी पूर्ति न होनी हो वह अभिलाषा आपको हो ही नहीं सकती ।

राजन् ! तुम्हारे नाम और यश के कीर्तन से लोगों के मनोरथ की पूर्ति होती है । तुम्हारा मनोरथ तो पूरा हो ही गया है । यथा : दशरथ नाम सुकामतरु फलइ सकल कल्यान । धरनि धाम धन धरम सुत सदगुन रूप निधान । जिसका मन ईश्वर में लगा है । उसके मनोरथ होने के पहिले हो फल हुआ रहता है । यथा : ईश्वरार्पितवुद्धीनां स्फुरन्त्यग्रे मनोरथाः । काशी खण्ड ।

सब बिधि गुरु प्रसन्न जिय जानी । बोलेउ राउ रहसि मृदुबानी ॥
नाथ रामु करिअहिं जुबराजू । कहिअ कृपा करि करिअ समाजू ॥१॥

अर्थ : अपने मनमें सब भाँति गुरुजी को प्रसन्न जानकर राजा आनन्दित होकर मृदुवाणी बोले कि हे नाथ ! रामजी को युवराज कीजिये । कृपा करके कहिये कि तैयारी की जाय ।

व्याख्या : गुरुजी की अमोघ कृपा देखकर राजा प्रसन्न हो उठे । इतनी कृपा है कि आज मेरे नाम और यश को सब अभिमत दातार बना दिया । वसिष्ठजी की वाणी कभी व्यर्थ हो नहीं सकती । अतः यही अवसर निवेदन करने का है । गुरुजी ने कहा है : रजायसु देहू । अतः विधि रूप से ही निवेदन करते हैं कि आप रामजी को युवराज बनाइये । यदि कहा जाय कि युवराज पद देना तो राजा के अधिकार में है । यदि इच्छा है तो दे दो । इस पर कहते हैं कि आप कृपा करके तैयारी करने की आज्ञा दे दीजिये । राजा के मुख से सरस्वती बोल गयी । रामजी को राजतिलक वसिष्ठजो ही करेंगे । इस समय केवल तैयारी ही होगी ।

मोहि अछत यहु होइ उछाहू । लहहिं लोग सब लोचन लाहू ॥
प्रभु प्रसाद सिव सबइ निबाहीं । एह लालसा एक मन मांहीं ॥२॥

अर्थ : मेरे रहते ही यह उछाह हो और सब लोग नेत्रों का फल पावें । प्रभु की कृपा से शिवजी ने सब निबाह दिया । अब मन में केवल एक लालसा रह गयी है ।

व्याख्या : राम राज्याभिषेक तो एक दिन होना ही है । पर मेरे रहते यह उछाह हो । यह उछाह भी मैं देख लूँ । लोगों को भी इसकी उत्कट इच्छा है । सबकें उर अभिलाषु अस कहहिं मनाइ महेसु । आपु अछत जुबराजपदु रामहि देउ नरेसु । सो ये लोग भी नेत्रवान् होने के सुख का अनुभव करें । जनकपुरवासी तो राम जानकी का विवाह देखकर लोचन लाभ पा चुके । अब अवधवासी राम जानकी

का अभिषेक देखकर लोचन लाभ लें। यथा : कनक सिंघासन सीय समेता। बैठहिं रामु होइ चित चेता।

प्रसाद आपका और निर्वाहक शङ्कर हैं। आपका प्रसाद अमोघ है। शिवजी तदनुसार कार्य कर रहे हैं। इस भाँति मेरी सब कुछ निवह गयी। अब यही एक लालसा मन में रह गयी। अर्थात् इसकी पूर्ति हो जाने पर मैं आप्तकाम हो जाऊँगा। कामना शेष रहने से ही मनुष्य मरना नहीं चाहता और यदि मर भी जाता है तो वही कामना उसे फिर संसार में खींच लाती है। उसके पुनर्जन्म का कारण होती है।

पुनि न सोच तनु रहउ कि जाऊ। जेहि न होइ पाछें पछिताऊ॥
सुनि मुनि दसरथ बचन सुहाए। मंगल मोद मूल मन भाए॥३॥

अर्थ : फिर परवाह नहीं, चाहे शरीर रहे चाहे जाय। जिसमें पीछे से पछतावा न हो। दशथरजी के मङ्गल मोद मूल और सुहाये वचन सुनकर मुनिजी को अच्छे लगे।

व्याख्या : फिर मैं कृतकृत्य हो जाऊँ। फिर चाहे शरीर रहे चाहे जाय। इसकी चिन्ता न रह जायगी। नहीं तो शरीरावसान के समय पछितावा रहेगा कि अपने सामने मैंने प्रजारक्षा का भार रामजी को नहीं सौंपा। शरीर अनित्य है। इसका कुछ ठिकाना नहीं। तिसपर मृत्यु की दूतिका जरा ने केश पकड़ रखा है। अतः यह कर्त्तव्य भी पूरा होना ही चाहिए।

दशरथजी के वचन सोहाये रहे। इसलिए मुनिजी के मन भाये। मङ्गल यथा : नाथ रामु करिअहि जुबराजू। मोद। यथा : मोहिं अछत यह होहु उछाहू। दोनों का मूल है श्रीरामजी का अभिषेक। वसिष्ठजी स्वयं मानते हैं : सब कहँ सुखद राम अभिषेकू। मंगल मोद मूल मग एकू। अतः मनोनुकूल होने से वसिष्ठजी को अच्छे लगे।

सुनु नृप जासु बिमुख पछिताहीं। जासु भजन बिनु जरनि न जाहीं॥
भयउ तुम्हार तनय सोइ स्वामी। रामु पुनीत प्रेम अनुगामी॥४॥

अर्थ : मुनिजी बोले : सुनो राजा ! पछताते तो वे हैं जो उनके विमुख होते हैं। जिसके भजन बिना जी की जलन नहीं जाती, वही स्वामी पुनीत राम तुम्हारे पुत्र हुए हैं। क्योंकि वे पुनीत प्रेम के अनुगामी हैं।

व्याख्या : जेहि न होइ पाछें पछिताऊ का उत्तर देते हुए वसिष्ठजी कहते हैं कि तुम्हें पछितावा कैसे होगा। पछतावा तो उनको होता है जो रामविमुख हैं। यथा : सो परत्र दुख पावै सिर धुनि धुनि पछिताइ। कालहि कर्महि ईस्वरहि मिथ्या दोष लगाइ। पछितावा होने से जलन होती है। वह जलन तो बिना रामभजन के जाती नहीं। यथा : देखे बिनु रघुनाथ पद जिय की जरनि न जाइ। अथवा : सब दुख मिटहिं राम पग पेखी। सो राम, पुनीत राम, प्रेमानुगामी राम

तुम्हारे प्रेम से तुम्हारे पुत्ररूप से अवतीर्ण हुए हैं। तुम्हारे लिए पछितावा की कौन सी बात है ? वह राम स्वामी हैं। उनपर किसी का अधिकार नहीं है। तुम अपना कर्त्तव्य करो। चराचर नायक के लिए यौवराज्यपद क्या है ? सोच : पछितावा को अपने मन से निकालो।

दो. बेगि[1] बिलंबु न करिअ नृप, साजिअ सबुइ समाजु।
सुदिनु सुमंगलु तबहिं जब, रामु होहिं जुबराजु ॥४॥

अर्थ : राजा ! जल्दी/करो, देर न लगाओ, सब समाज सजाओ। जब रामजी युवराज हो जाँय तभी सुदिन और सुमङ्गल है।

व्याख्या : समाज का अर्थ समान है। यथा : अरुंधती अरु अगिनि समाऊ। रथ चढ़ि चले प्रथम मुनिराऊ। राजा ने कहा था : कहिय कृपा करि करिय समाजू। सो मुनिजी कह रहे हैं : साजिअ सबुइ समाजु। परन्तु जल्दी करो। देर न होने पावे। कर्त्तव्य कर्म में बड़ी जल्दी होनी चाहिए। नहीं तो काल उसका रस पी जाता है। यथा : आदानस्य प्रदानस्य कर्त्तव्यस्य च कर्मणः। क्षिप्रमेव प्रकर्तव्यं कालः पिबति तद्रसः। इसमें सुदिन मत देखो : तदेव लग्नं सुदिनं तदेव, ताराबलं चन्द्रबलं तदेव। विद्याबलं दैवबलं तदेव लक्ष्मीपतेरंघ्रियुगं स्मरामि। राम जिस दिन राज्य पर बैठेंगे वही सुदिन हो जायगा। वही सुमङ्गल होगा। वसिष्ठजी मुहूर्त नहीं देते। जानते हैं कि अभी अभिषेकवाला सुदिन दूर है। रामजी के वन से लौटने पर कहेंगे : आज सुघरी सुदिन समुदाई। सब द्विज देहु हरषि अनुसासन। रामचंद्र बैठहि सिंघासन।

मुदित महीपति मंदिर आए। सेवक सचिव सुमंत्रु बोलाए॥
कहि जय जीव सीस तिन्ह नाए। भूप सुमंगल बचन सुनाए॥१॥

अर्थ : राजा प्रसन्न होकर घर आये। सेवक : कामदार सचिव और सुमन्त्र को बुलवाया। उन लोगों ने जयजीव कहकर अभिवादन किया। राजा ने उन्हें सुमङ्गल वचन सुनाया।

व्याख्या : गुरुजी के पास जिस कार्य के लिए गये थे उसकी सिद्धि हो गयी। गुरुजी ने कह दिया कि जल्दी करो। देर न होने पावे। इसलिए महाराज तुरन्त उठ पड़े और आनन्दित होकर घर आये। गुरुजी को भी साथ लेते आये। सेवकों को और मन्त्रियों को बुलवाया। विभाग विशेष के मन्त्री को सुमन्त्र कहते हैं। रेफ के गिर जाने से उसका तद्भवरूप सुमन्त हुआ। महाराज के यहाँ जो सुमन्त्र पद पर थे वे उनके सखा भी थे और सारथि भी थे। इन पर महाराज की बड़ी आस्था थी। इनको अन्तःपुर में भी रोक नहीं थी। इसलिए इनके नाम का पृथक् निर्देश है। ये भी बुलाये गये। मन्त्रणा के लिए सभा बैठी। सेवक : कारबारी और

---

१. यहाँ विवृतोक्ति अलङ्कार है।

मन्त्रियों ने जयजीव कहकर राजा का अभिवादन किया। जयजीव का अर्थ है कि आप की जय हो और आप चिरजीवी हों। महाराज ने ऐसा वचन सुनाया कि जिससे संसार का कल्याण हो। इसलिए उस वचन को सुमङ्गल कहा।

जौं पाँचहि मत लागइ नीका। करहु हरखि हिय रामहि टीका ॥
मंत्री मुदित सुनत प्रिय बानी। अभिमत बिरव परेउ जनु पानी ॥२॥

अर्थ : यदि पञ्चों को यह राय पसन्द हो तो प्रसन्न मन होकर रामजी को राजतिलक करो। प्रिय वाणी सुनकर मन्त्री ऐसे प्रसन्न हुए जैसे मनोरथ के पौधे में पानी पड़ा हो।

व्याख्या : महाराज के भीतर रामजी के अभिषेक की उत्कट इच्छा है। फिर भी राजनीति के अनुसार सब निर्णय पञ्चों पर छोड़ते हैं और कहते हैं कि मेरा किया हुआ प्रस्ताव समझकर सङ्कोच से स्वीकार न करना। यदि तुम लोग को यह राय पसन्द हो और हर्षित हृदय से करना चाहते हो तो रामजी को राजतिलक करो। यह महाराज दशरथ की नीतिपटुता है कि पहिले चारों द्वारा यह निश्चय करके कि रामजी प्रजामात्र को प्रिय हैं और सब इनका यौवराज्यपद पर अभिषेक चाहते हैं तब जाकर गुरुजो से सम्मति ली। फिर मन्त्रियों से सम्मति ले रहे हैं।

मन्त्री लोग स्वयं यही चाहते थे। परन्तु महाराज दशरथ का शासन निर्दोष था। अतः स्वयं प्रस्ताव करना उचित नहीं समझा था। अतः उन्हें महाराज की यह वाणी अति प्रिय मालूम हुई और उनका मनोरथरूपी पौधा लहलहा उठा। जैसे उसमें पानी पड़ा हो। पानी पड़ने से बड़े-बड़े पेड़ भी प्रसन्न दिखाई पड़ते हैं। पर पौधों की प्रसन्नता अधिक व्यक्त होती है। इसीलिए महाराज की वाणी की उपमा पानी पड़ने से और मन्त्रियों के अभिमत की उपमा पौधों : बिरवा से दी।

बिनती सचिव करहिं कर जोरी। जिअहु जगतपति बरिस करोरी ॥
जग मंगल भल काजु बिचारा। बेगिअ नाथ न लाइअ बारा ॥३॥

अर्थ : मन्त्री हाथ जोड़कर विनय करते हैं कि हे जगत्पति! आपकी आयु करोड़ों वर्ष की हो। आपने जगत् का मङ्गल करनेवाला अच्छा कार्य विचारा। सो हे नाथ! शीघ्रता कीजिये। इसमें देर न हो।

व्याख्या : राजा के युवराज विषयक प्रस्ताव करने से यह प्रकट होता है कि उन्हें अब अपने जीवन से निराशा है। अथवा नीति के अनुसार चौथेपन में भगवत् भजन के लिए वन जाना चाहते हैं। अतः मन्त्री हाथ जोड़कर विनती करते हैं कि आप जगत्पति रहकर करोड़ों वर्ष जीवें। आपका जीवन और शासन दोनों हम लोगों को प्रिय है। आप राजा बने रहें और राज्य भार रामजी को युवराज बनाकर सौंप दें। यह कार्य जगत् के मङ्गल के लिए है। आपने बहुत अच्छा विचार किया है। पर शीघ्र ही इसे कार्य में परिणत कीजिये। क्योंकि श्रेयांसि बहु विघ्नानि। ऐसे श्रेष्ठ कार्य में बहुत-से विघ्न खड़े हो जाते हैं।

नृपहि मोदु सुनि सचिव सुभाखा। बढ़त बौंड़ जनु लही सुसाखा ॥४॥

दो. कहेउ भूप मुनिराज कर, जोइ जोइ आयसु होइ।
राम राज अभिषेक हित, बेगि करहु सोइ सोइ ॥५॥

अर्थ : मन्त्री के सुन्दर वचन सुनकर राजा को आनन्द हुआ। जैसे बढ़ती हुई लता को सुन्दर शाखा मिल जाय। राजा ने कहा कि मुनिराज की जो-जो आज्ञा हो रामजी के राज्याभिषेक के लिए जल्दी-जल्दी वैसा ही करो।

व्याख्या : लता जब बढ़ती है तब निराधार ऊपर की ओर चलती है। जब उसे आधार नहीं मिलता तो लौट आती है। यदि उसे सुन्दर शाखा मिल जाय तो वह आनन्द से उसमें लिपट जाती है और उसके अधिक ऊपर जाने का मार्ग निरर्गल हो जाता है। उसी भाँति मन्त्रियों की सुभाषा रूपी शाखा पाकर राजा की आनन्द रूपी लता स्वच्छन्द होकर और बढ़ी।

महाराज ने मन्त्रियों से कहा कि मुझे शीघ्रता के लिए कहते हो तो मेरी आज्ञा हो गयी। अब तुम लोग शीघ्रता करो। यह कर्मकाण्ड का विषय है। इसमें कौन-कौन सी सामग्री अपेक्षित हैं? कौन-कौन सी क्रिया अपेक्षित हैं? यह सब मुनिराज से जानकर तदनुकूल कार्य सम्पादन करो।

हरषि मुनीस कहेउ मृदु बानी। आनहु सकल सुतीरथ पानी ॥
औषध मूल फूल फल पाना। कहे नाम गनि मंगल नाना ॥१॥

अर्थ : हर्षित होकर मुनिजी ने मृदु वाणी से कहा कि सभी सुन्दर तीर्थों का जल मँगाओ। फिर उन्होंने, औषध, मूल, फूल, फल, पान, और अनेक मङ्गल वस्तुओं के नाम गिनाये।

व्याख्या : मुनिजी को रामजी के अभिषेक के लिए आज्ञा देने में हर्ष है। अथवा राजा की गुरुभक्ति पर हर्ष है। महाराज की आज्ञा पाते ही मन्त्री लोग मुनिराज वसिष्ठजी के पास गये। गुरुजी ने मृदु वाणी से आज्ञा देना आरम्भ किया। तीर्थ अनेक प्रकार के होते हैं। कोई तीर्थ देव सम्बन्धी हैं यथा : प्रयागादि। कोई ऋषि सम्बन्धी हैं यथा : नैमिषादि। कोई आसुर तीर्थ हैं यथा : गया आदि। अतः मुनिजी सुतीर्थ का जल लाने को कहते हैं। आसुर तीर्थ के जल का निषेध करते हैं। तीर्थ का जल बहुत दूर से मँगाना है। इसलिए पहिली आज्ञा उसी के लिए हुई।

मङ्गल कार्य में द्रव्य की तालिका लिखने के समय हल्दी के पहिले लिखने की चाल है। अतः मुनिजी ने औषधि को ही पहिले गिनाया। राज्याभिषेक के लिए १०८ औषधियों और मूलों की आवश्यकता पड़ती है। अतः उनके नाम मुनिराज ने गिनाये। जिसमें कोई छूट न जाय और जिन-जिन फूल, फल और पत्तों की आवश्यकता पड़ती है उन्हें भी गिनाया। जिसमें अभिषेक सर्वाङ्ग सम्पन्न हो।

चामर चरम बसन बहु भाँती। रोम पाट पट अगनित जाती ॥
मनिगन मंगल बस्तु अनेका। जो जग जोगु भूप अभिषेका ॥२॥

अर्थ : चँवर, चर्म, बहुत प्रकार के रोम, रेशम और सूत के असंख्य जाति के कपड़े, मणि : जवाहिरात और अनेक मङ्गल वस्तु जो संसार में राज्याभिषेक के योग्य हैं बतलाये।

व्याख्या : मङ्गल वस्तु कहते हैं। चँवर जो राजाओं के ऊपर चलता है। चर्म से यहाँ व्याघ्रचर्म मृगचर्म ढाल आदि अभिप्रेत हैं। कपड़ों की असंख्य जातियाँ हैं। फिर भी उनके तीन विभाग हैं। १. रूई के कपड़े को ही साधारणतः कपड़ा कहते कहते हैं। २. दुशाला कम्बल आदि रोमपट हैं और ३. रेशम के कपड़े को पाट पट कहते हैं। इनके भेद को मुनिजी नहीं गिनाते। इन्हें मन्त्री लोग भलीभाँति जानते हैं। अतः केवल अगनित जाती कह दिया। मणिगणों से तो भण्डार भरा है। उन्हें कहीं बाहर से नहीं लाना है। अतः उन्हें पीछे गिना रहे हैं। परिशिष्ट में कहते हैं। और भी जो-जो वस्तुएँ संसार में राज्याभिषेक के योग्य समझी जाती हैं उन्हें ले आओ।

बेद बिहित कहि सकल बिधाना। कहेउ रचहु पुर बिबिध बिताना ॥
सफल रसाल पूगफल केरा। रोपहु बीथिन्ह पुर चहुँ फेरा ॥३॥

अर्थ : वेद में कहे हुए सब विधानों को बताकर कहा कि नगर में बहुत से मण्डप बनाओ। फलों समेत आम सुपारी और केले के पेड़ नगर की गलियों में चारों ओर लगाओ।

व्याख्या : सातों द्वीप सातों समुद्र पहाड़ों के चित्र से वह स्थान चित्रित किया जाता है। जहाँ पर सिंहासन रक्खा जाता है। उसपर व्याघ्रचर्म बिछाया जाता है। स्वर्णकलश तीर्थ के जलों से भरे जाते हैं। ये सब विधान जैसे ब्राह्मणोक्त इन्द्राभिषेक में हैं किये जाँय। दीये जलाये जायँ। बाजे बजें। दर्पणादि मङ्गल वस्तु साजे जाँय। वेदपाठ के लिए ब्राह्मण बुलाये जाँय। इत्यादि वेदविधान है। इस भाँति मुनिजी की पहिली आज्ञा वेदविधान के विषय में हुई। दूसरी आज्ञा पुर के साजने के लिए हुई कि पुर में अनेक मण्डप साजे जायँ। तीसरी आज्ञा गलियों में रास्तों में वैसे ही सफल आम सुपारी और केले के पेड़ों के रोपने की हुई। जो देखने में स्वाभाविक हों। पर मणिगण के बने हुए हों। यथा : हरित मनिन्ह के पत्र फल पदुमराग के फूल। नहीं तो सफल आम तथा सुपारी के पेड़ रोपे नहीं जा सकते।

रचहु मंजु मनि चौकइ चारू। कहहु बनावन बेगि बजारू ॥
पूजहु गनपति गुर कुलदेवा। सब बिधि करहु भूमिसुर सेवा ॥४॥

अर्थ : मनोहर मणियों के सुन्दर चौके पुरवाओ और बाजार को जल्दी सजाने के लिए कहो। गणेशजी गुरु और कुलदेव की पूजा करो और सब विधि से ब्राह्मणों की सेवा करो।

व्याख्या : चौथी आज्ञा हुई कि गजमुक्ताओं के चौके पुरवाओ। पाँचवीं आज्ञा हुई कि शीघ्रता से बाजार साजो। समय बहुत कम है और कार्य सब विधानपूर्वक होना चाहिए। अतः मुनिराज की पृथक् आज्ञा हो रही है। छठी आज्ञा हुई कि गणेश जी, गुरु और कुलदेव की पूजा करो। गणेशजी सभी मङ्गल कार्य में प्रथम पूजे जाते हैं। स्वयं आप ही गुरु हैं। पर विधान में होने से गुरु की पूजा कहने में सङ्कोच नहीं करते। इष्टसिद्धि के लिए कुलदेव की पूजा के लिए आज्ञा देते हैं। भूमिसुर प्रत्यक्ष देवता हैं। अतः उनकी सेवा सब विधि से करने को कहते हैं। इनकी पूजा के लिए सातवीं आज्ञा हुई।

दो. ध्वज पताक तोरन कलस, सजहु तुरग रथ नाग।
सिर धरि मुनिबर बचन सबु, निज निज काजहि लाग ॥६॥

अर्थ : ध्वजा, पताका, वन्दनवार, कलश, घोड़े, रथ और हाथी सजाओ। मुनिराज की आज्ञा को सिर पर रखकर सब कोई अपने-अपने काम में लग गये।

व्याख्या : ध्वजा पताका और तोरण से सदा पुरी सुशोभित रहती है। पर अब ऐसा साजो कि धूप रुक जाय। घोड़े हाथी रथ सवारी निकलने के लिए साजे जाँय। यह मुनिजी की आठवीं आज्ञा है। महाराज के आठ मन्त्री हैं। धृष्टिर्जयन्तो विजयः सुराष्ट्रो राष्ट्रवर्धनः। अकोपो धर्मपालश्च सुमन्त्रश्चाष्टमोऽर्थवित्। आठों के लिए आठ आज्ञा हुई।

१. धृष्टि को वेदविधान तथा सामग्री इकट्ठा करने के लिए पहिली आज्ञा हुई।
२. जयन्त को वितान रचने को दूसरी आज्ञा हुई।
३. विजय को सफल रसाल पूगफल केरा को चारों ओर पुर से रोपने की तीसरी आज्ञा हुई।
४. सुराष्ट्र को गजमणि के चौकों की व्यवस्था के लिए चौथी आज्ञा हुई।
५. राष्ट्रवर्धन को बाजार सजाने की पाँचवीं आज्ञा हुई।
६. अकोप को देवगुरु पूजन की छठी आज्ञा हुई।
७. धर्मपाल को सब विधि से भूमिसुर की सेवा करने की सातवीं आज्ञा हुई। और :
८. सुमन्त्र को घोड़े हाथी के साजने की आठवीं आज्ञा हुई।

सब मन्त्रियों ने मुनिराज की आज्ञा सिर पर धारण की और अपने अपने कार्य में लग गये।

जो मुनीस जेहि आयेसु दीन्हा। सो तेहिं काजु प्रथम जनु कीन्हा॥
बिप्र साधु सुर पूजत राजा। करत राम हित मंगल काजा ॥१॥

अर्थ : मुनिराज ने जिसको जिस काम के लिए आज्ञा दी थी वह काम मानो वह पहिले ही कर चुका था। राजा ब्राह्मण साधु और देवता का पूजन करते हैं और रामजी के लिए मङ्गलकार्य करते हैं।

व्याख्या : कहेउ भूप मुनिराज कर जोइ जोइ आयसु होइ। रामराज अभिषेक हित बेगि करहु सोइ सोइ। सो मन्त्रियों की शीघ्रता दिखलाते हैं। उन्होंने ऐसे लाघव से कार्य किया कि मानों वे कार्य पहिले से ही बने बनाये थे। अर्थात् बड़ी ही शीघ्रता से कार्य का सम्पादन किया।

पूजा का कार्य महाराज ने स्वयं किया और मङ्गलकार्य सम्पादन में भी हाथ बँटाया। पूजन में पहिले नाम विप्र का दिया गया। अर्थात् ब्राह्मण के पूजन पर अधिक ध्यान दिया गया। क्योंकि गुरुजी का आदेश था : सब बिधि करहु भूमिसुर सेवा। इस पूजन में एक लक्ष ब्राह्मणों को अशन दान देना था। अतः सब व्यवस्था मन्त्रियों ने की। साधुपूजा और देवपूजा भी हुई। राजा स्वभाव से ही गुरु विप्रधेनु सुरसेवी थे। इस समय तो महामङ्गल उपस्थित था। अतः बड़ी पूजा हुई।

सुनत राम अभिषेक सुहावा। बाज गहागह अवध बधावा ॥
राम सीय तन सगुन जनाए। फरकहिं मंगल अंग सुहाए ॥२॥

अर्थ : रामजी के अभिषेक की सुहावनी खबर सुनते ही अवध में बधावे के बाजों की धूम मच गयी। रामजी के और सीताजी के शरीर में शकुन प्रकट हुए। उनके सुन्दर अङ्ग फड़कने लगे।

व्याख्या : जब सब लोग अपने-अपने कार्य सम्पादन में लगे और दौड़ धूप आरम्भ हुई तब नगरवासियों को पता चला कि रामजी का अभिषेक होने जा रहा है। सुनते ही अयोध्या में तमाम बधाइयाँ बजने लगीं : गहागह शब्द का प्रयोग जायसी ने भी आनन्द के अर्थ में किया है। पुरवासियों को बड़ा हर्ष हुआ। इस दिन के लिए महेश को मानते थे। यह बधाई महाराज के प्रसन्न करने के लिए नहीं बजी। बल्कि अपने अभिलाष की पूर्ति की खुशी में बजाई जाने लगीं।

शुभाशुभ सूचक शकुन भविष्यत् सूचक यन्त्रों की भाँति अकस्मात् अनागत घटना की सूचना देते हैं। जिस भाँति भूकम्प आने के पहिले ही चुम्बकाकर्षण शिथिल हो जाता है। चुम्बक सूई का आकर्षण नहीं करता। इस भाँति शुभाशुभ घटना के होने के पहिले ही कुछ शास्त्रकथित लक्षण हैं जो अवश्य प्रकट होते हैं। उन्हीं को शकुन कहते हैं। सो सीताजी और रामजी के शरीर में शकुन प्रकट हुए। अर्थात् मङ्गल अङ्ग फड़कने लगे। दक्षिण वाम नहीं लिखते। क्योंकि रामजी के दक्षिण अङ्ग का फड़कना शुभ था और जानकीजी के वाम अङ्ग का फड़कना मङ्गलसूचक था। सुहाए अङ्ग कहने का भाव यह कि नेत्र और बाहु फड़के।

पुलकि सप्रेम परसपर कहहीं। भरत आगमनु सूचक अहहीं ॥
भए बहुत दिन अतिअवसेरी। सगुन प्रतीति भेंट प्रिय केरी ॥३॥

अर्थ : एक दूसरे से पुलकायमान होकर कहते हैं कि ये शकुन : भरत के

आगमन की सूचना दे रहे हैं। बहुत दिन हुए अत्यन्त चिन्ता है। शकुन से प्रिय के मिलन का विश्वास होता है।

व्याख्या : रामजानकी का स्वभाव एक है। रुचि एक है। दोनों को भरत प्रिय हैं। उनके स्मरण आने से पुलक होता है। अतः दम्पति ने यही निश्चय किया कि ये शकुन भरतजी के आने की सूचना दे रहे हैं।

कारण देते हैं कि भरतजी को ननिहाल गये बहुत दिन हुए। इसलिए अधिक चिन्ता है। इस शकुन से, यह विश्वास होता है कि प्रिय की प्राप्ति : भेंट होगी। शुभ शकुन प्रिय के भेंट का सूचक है। यथा : सगुन बिचारि धरीं उर धीरा। अब मिलिहहिं कृपालु रघुबीरा। तथा : सो सबु कारन जान बिधाता। फरकहिं सुभग अंग सुनु भ्राता। भरत के मिलन को उत्कण्ठा हृदय में हुई और उसी समय शकुन हुए। शकुन का प्रयोजन ही प्रियमिलन है। पुलकि से तन, सप्रेम से मन और परसपर कहही से वचन से भरतजी पर प्रेम कहा। अवसेए शब्द का प्रयोग चिन्ता करने याद आने के अर्थ में मारवाड़ी आज भी करते हैं।

भरत सरिस प्रिय को जग माहीं। इहइ सगुन फलु दूसर नाहीं ॥
रामहि बंधु सोचु दिन राती। अंडन्हि कमठ हृदउ जेहि भाँती ॥४॥

अर्थ : जगत् में भरत के समान कौन प्यारा है। अतः यही शकुन का फल है। दूसरा नहीं। रामजी को दिन रात भाई की चिन्ता है। जैसे दिन रात कछुए को अपने अण्डे की चिन्ता होती है।

व्याख्या : दम्पति की विचारधारा एक है। उन्हें भरत जी के समान संसार मे दूसरा कोई प्यारा नहीं है। यथा : जग जप राम राम जप जेही। अतः यह निश्चय किया कि इस शकुन का फल भरत से भेंट होना है। दूसरा नहीं कहने से दूसरे फल की व्यावृत्ति करते हैं। यद्यपि इस समय इस शकुन का होना अभिषेक सम्वाद सूचक कहा जा सकता है। परन्तु जिन्हें शकुन हो रहा है उन्हें तो भरत प्रिय हैं। अभिषेक प्रिय नहीं। अभिषेक का प्रस्ताव तो भरतजी के शीघ्र मिलन का कारण हुआ। अतः जो फल निश्चय किया गया वही ठीक है।

कछुए अण्डे बालू में देते हैं पर रहते हैं जल में। रात में सूनसान होते ही उन्हें सेने के लिए रेती में चले जाते हैं। अतः कछुए जल में विचरते रहते हैं। पर उनकी चित्तवृत्ति अण्डे में ही लगी रहती है। यह गति रामजी की है। ये अवध में हैं और इस समय भरतजी कैकय देश में हैं। पर मनोवृत्ति दिन रात भरतजी में लगी है।

दो. एहि अवसर मंगलु परम, सुनि रहसेउ रनिवासु।
सोभत लखि बिधु बढ़त जनु, बारिधि बीचि बिलासु ॥७॥

अर्थ : इस अवसर पर परम मङ्गल सुनकर रनिवास आनन्दित हो उठा। जिस भाँति चन्द्रमा की बढ़ोतरी से समुद्र में उत्तालतरङ्गों की शोभा होती है।

व्याख्या : रनिवास की उपमा समुद्र से दी गयी। क्योंकि महाराज का रनिवास बहुत बड़ा था। सात सौ रानियाँ थीं। यथा : पालागन दुलहिनिन्ह सिखावत मुदित सासु सत साता। यहाँ चन्द्र की बढ़ोतरी रामजी का अभिषेक है। समुद्र से ही चन्द्र की उत्पत्ति है। अतः रामजी की उपमा चन्द्र से दी गयी। इनके अभिषेक से रनिवास में आनन्द का उद्रेक हुआ। उसकी उपमा बीचि विलास से दी गयी। यथा : राकाससि रघुपतिपुरी सिंधु देखि हरखान। बढ़त कोलाहल करत जनु नारि तरंग समान। यहाँ हरषेउ शब्द में रकार और सकार उलट गये हैं। अतः हरषेउ का रहसेउ हो गया।

प्रथम जाइ जिन्ह बचन सुनाए। भूषन बसन भूरि तिन्ह पाए ॥
प्रेम पुलकि तन मन अनुरागीं। मंगल कलस सजन सब लागीं ॥१॥

अर्थ : जिन्होंने पहिले जाकर यह शुभ सम्वाद सुनाया उन्होंने बहुत से गहने कपड़े पाये। प्रेम से शरीर में पुलक हो गया। मन में प्रेम छा गया। सब मङ्गल कलश साजने लगीं।

व्याख्या : नगर में समाचार फैलने के बाद रनिवास को समाचार मिला। शुभ समाचार देनेवाले को पुरस्कार मिलने की परिपाटी है। क्योंकि शुभ समाचार देनेवाला प्रिय होता है। यथा : जो कहिहैं आये राम लखन घर करि मुनि मख रखवारी। सो तुलसी प्रिय मोहि लागिहैं ज्यों सुभाय सुत चारी। समाचार देनेवाले को रानियों ने भूषण उतार कर दे दिये। कपड़े पीछे से मँगाये गये। इसलिए भूषण पहिले कहा। उसके बाद वसन कहा। पीछे से समाचार देनेवाले को भी पुरस्कार मिला। पर थोड़ा अधिक तो पहिले समाचार देनेवाले ने ही पाया।

शुभ समाचार सुनने से ऐसा आनन्द हुआ कि शरीर पुलक से और मन प्रेम से भर उठा। अतः अन्त पुर के द्वारपर मङ्गलसूचक कलश स्थापन के लिए सब रानियाँ मङ्गलघट साजने लगीं। यथा : छुहे पुरट घट सहज सुहाए। मदन सकुचि जनु नीड़ बनाये।

चौकइँ चारु सुमित्रा पूरी। मनिमय बिबिध भाँति अतिरूरी ॥
आनँद मगन राम महतारी। दिये दान बहु बिप्र हँकारी ॥२॥

अर्थ : सुमित्राजी ने सुन्दर चौक पूर डाले। जो मणिमय अनेक प्रकार के और सुन्दर थे। रामजी की माता तो आनन्द में मग्न हो गयी। बहुत से ब्राह्मणों को बुलाकर बहुत दान दे डाला।

व्याख्या : सात सौ रानियों का हाल कहकर अब सुमित्राजी का वर्णन करते हैं। इन्हें अधिक आनन्द था और चौका पूरने में भी बड़ी पटु थीं। सबने मङ्गल घट साजे। इन्होंने चौका भी पूरा। महारानी हैं : मणिगणों का चौक पूर रही हैं। अनेक प्रकार का चौका पूरना जानती हैं। वे चौके एक से एक सुन्दर हैं।

रामजी की माता कौसल्या देवी के आनन्द का कुछ ठिकाना नहीं। वे तो मग्न हैं। न कलश साजा। न चौका पूरा। सब भूल गयीं। बहुत से ब्राह्मणों को बुलाया और उन्होंने बहुत सा दान दिया। ये ब्राह्मणों के सन्तोष को ही परम मङ्गल मानती हैं। यथा : तुम्ह गुरु बिप्र साधु सुर सेवो। तस पुनीत कौसल्या देवी।

पूजी ग्रामदेवि सुर नागा। कहेउ बहोरि देन बलि भागा ॥
जेहिं बिधि होइ रामु कल्यानू। देहु दया करि सो बरदानू ॥३॥
गावहिं मंगल कोकिल बयनी। बिधुबदनी मृगसावकनयनी ॥४॥

अर्थ : फिर ग्राम के देवी देवता और नागों : डिहवारों की पूजा की और बलि भाग देने के लिए मनौती मानी। जिस विधि से रामजी का कल्याण हो कृपा करके वह वरदान दो। चन्द्रवदनी मृग के बच्चों सी आँखवाली कोकिलवयनी मङ्गल गाने लगीं।

व्याख्या : यहाँ गुरुदेव को आज्ञा नहीं भेजनी पड़ी। स्वयं अन्तःकरण की प्रेरणा से पूजन में प्रवृत्त हुईं। पहिले पूजन करके ब्राह्मणों को दान दिया। तत्पश्चात् देवी देवताओं का पूजन प्रारम्भ हुआ। ग्रामदेवी और ग्रामदेव का पूजन किया। फिर से पूजन बलिदान के लिए मनौती मानी। यहाँ पर नाग से उन हाथियों का ग्रहण है। जो मिट्टी के बने होते हैं। ग्राम के बाहर रक्खे जाते हैं और मनोरथ सिद्धि होने पर मङ्गल उपस्थित होने पर उनकी पूजा होती है। वे डिहवार कहलाते हैं। राजा कुलदेव की पूजा कर रहे हैं। महारानी ग्रामदेव और देवियों के पूजन में लगी हैं।

पूजनोपरान्त रामजी के कल्याण के लिए वरदान माँगती हैं। अभिषेक पर आग्रह नहीं है। जिस भाँति रामजी का कल्याण हो सो करो। चाहे अभिषेक से हो अथवा अन्य विधान से हो। जीव अल्पज्ञ नहीं जान सकता कि वास्तविक कल्याण किस बात में है। यह महारानी कौसल्या का अलौकिक विवेक है। यथा : मातु बिबेक अलौकिक तोरे। कबहुँ न मिटिहि अनुग्रह मोरे। प्रार्थना करती हैं कि दया करके वरदान दो। पूजा के बदले में नहीं।

इधर महारानी पूजन में लगीं हैं। उधर अन्तःपुर में मङ्गलगान होने लगा। गान करनेवाली सुस्वर हों तभी श्रवणेन्द्रिय की तृप्ति होती है। अतः कोकिलबयनी कहते हैं और यदि वे सुन्दरी हों तो चक्षुरिन्द्रिय के तर्पण से आनन्द और भी बढ़ जाता है इसलिए विधुबदनी मृगसावकनयनी कहा।

दो. राम राज अभिषेकु सुनि, हिय हरषे नर नारि।
लगे सुमंगल सजन सब, बिधि अनुकूल बिचारि ॥८॥

अर्थ : रामजी का राज्याभिषेक सुनकर सब नर नारी हर्षित हुए और विधि को अनुकूल समझकर सब सुमङ्गल सजने लगे। सबके हृदय में रामजी के

अभिषेक की अभिलाषा थी। अतः अभिलाषा पूर्ति के समय हृदय में हर्ष होना स्वाभाविक है।

व्याख्या : हर्ष होने पर सुमङ्गल साज सजना भी स्वाभाविक है। आनन्द के उद्रेक में कुछ क्रियाएँ भी तद्रूप होनी ही चाहिए। अतः घरों में तोरण पताका लगाना बाजार के साजने में हाथ बँटाना ये काम नर करने लगे। मङ्गलघट सजाना चौक पूरना और मङ्गलगान करना इन कामों में नारियाँ लग गयीं। सबने यही समझा कि विधि अनुकूल है। पर बात ऐसी नहीं थी : विधि की वामगति थी।

तब नरनाहँ बसिष्ठु बोलाए। राम धाम सिख देन पठाए ॥
गुर आगमनु सुनत रघुनाथा। द्वार आइ पद नायेउ माथा ॥१॥

अर्थ : तब राजा ने वसिष्ठजी को बुलाया। रामजी के महल में शिक्षा देने के लिए भेजा। गुरुजी का आगमन सुनते ही रामजी ने द्वार पर आकर चरणों में सिर नवाया।

व्याख्या : रामजी का राज्याभिषेक सर्वसम्मति से स्वीकृत हो गया। तदनुसार तैयारी भी आरम्भ हो गयी। पर यह समाचार रामजी को भी देना है। अतः यही निश्चय हुआ कि स्वयं गुरुजी जाकर यह समाचार दें और ऐसे अवसर पर जो जो बातें रामजी के लिए करणीय हों उन बातों की शिक्षा दें। गुरुजी पुरोहित भी हैं। अतः पौरोहित्य का काम आ पड़ने पर बुलाये जाते हैं। यथा : गुरु बसिष्ठ कहँ गयउ हँकारा। भूप बोलि पठए मुनि ग्यानी। सो गुरुजी को बुलाकर राजा ने शिक्षा के लिए रामजी के महल में भेजा।

गुरुजी के आने का समाचार पाते ही रघुनाथजी बाहर निकल आये। तब से वसिष्ठजी द्वार तक आगये। रामजी ने चरणों पर सिर रखकर प्रणाम किया। गुरुजी का पधारना एक असाधारण घटना थी। अतः उन्हें आते देखकर सेवकों ने दौड़कर रामजी को समाचार दिया। जिसमें उन्हें अगवानी का सुअवसर मिल सके।

सादर अरघ देइ घर आनें। सोरह भाँति पूजि सनमाने ॥
गहे चरन सिय सहित बहोरी। बोले रामु कमल कर जोरी ॥२॥

अर्थ : आदर के साथ अर्घ्य देकर घर लाये। षोडशोपचार से पूजन करके सम्मान किया। तत्पश्चात् सीताजी के सहित पाँव छूये और करकमल जोड़कर बोले।

व्याख्या : पहिली पूजा अर्घ्यदान है। सो द्वार पर ही अर्घ्य दिया। तत्पश्चात् महल में ले आये। श्रद्धातिशय से षोडशोपचार से पूजन किया। नहीं तो ऐसे अवसर पर पञ्चोपचार से ही पूजन किया जाता है। तुलसी कहत पुकार के सुनो सकल दै कान। हेमदान गजदान ते बड़ो दान सनमान।

घर में पूजन हो रहा है। इसलिए पूजन की समाप्ति के समय सीताजी के सहित वन्दना की। क्योंकि स्त्री के सहित पूजन का विधान है। तत्पश्चात् रामजी दोनों हाथ जोड़कर बोले। भाव यह कि गुरुजी के आगमन पर पहिला कार्य यह है कि उनकी पूजा की जाय। तब दूसरी बात हो।

सेवक सदन स्वामि आगमनू। मंगल मूल अमंगल दमनू ॥
तदपि उचित जनु बोलि सप्रीती। पठइअ काज नाथ असि नीती ॥३॥

अर्थ : सेवक के घर स्वामी का आगमन तो सब मङ्गलों का मूल है और अमङ्गल का नाश करनेवाला है। तथापि उचित नीति यह है कि काम के लिए सेवक को बुला भेजना चाहिए।

व्याख्या : रामजी ने कहा कि मैं सेवक हूँ। आप स्वामी हैं। सेवक का तो धर्म ही है कि स्वामी के घर उपस्थित रहे। यदि स्वामी सेवक के घर जाय तो उसका बड़ा भाग्य समझना चाहिए। स्वामी के चरण पड़ने से ही सेवक का मङ्गल होता है। और उसके अमङ्गल का नाश होता है। अतः आपका पधारना मेरे लिए तो बड़े सौभाग्य की बात है। परन्तु निष्कारण तो कोई कार्य होता ही नहीं। अतः जिस कार्य के लिए आप ने आने का कष्ट उठाया उसके लिए मुझे ही बुला भेजना उचित था। नीति भी यही है कि काम पड़ने पर स्वामी सेवक को बुला भेजे। यदि सेवक को सम्मान देना ही हो तो प्रीति के साथ बुलवा ले। भावार्थ यह कि आपने आने का कष्ट क्यों उठाया। मुझे ही बुलवा भेजते। आपका आना मेरे लिए तो सौभाग्य का विषय है। पर आपको कष्ट हुआ।

प्रभुता तजि प्रभु कीन्ह सनेहू। भयउ पुनीत आजु यहु गेहू ॥
आयसु होइ सो करउँ गोसाईं। सेवकु लहइ स्वामि सेवकाई ॥४॥

अर्थ : प्रभु ने प्रभुता छोड़कर मुझ पर स्नेह किया। आज यह घर पवित्र हुआ। जो आज्ञा हो सो मैं करूँ। सेवक को स्वामी की सेवा का लाभ हो।

व्याख्या : इस सामान्य नियम के अतिक्रमण में अनीति की गन्ध नहीं है। केवल अपनी प्रभुता पर ध्यान न देकर सेवक पर स्नेह करना है। ब्याह हुए बारह वर्ष हुआ। इस बीच में गुरुजी का घर पर आगमन नहीं हुआ। इसलिए कहते हैं कि आज यह घर पवित्र हुआ।

आज्ञा होने से पहिले ही पूछना सेवकाई के लिए उत्सुकता है। आज्ञा सम न सुसाहिब सेवा। सेवक के लिए स्वामी की सेवा का अवसर मिलना बड़े भाग्य का विषय है। तपस्वी लोग जल्दी किसी से सेवा नहीं लेते। उनके यहाँ : स्वयं दासास्तपस्विनः प्रचलित है : तपस्वी स्वयं दास हैं। अपना काम स्वयं कर लेते हैं। दूसरे से काम नहीं लेते। यदि काम लें तो उसका सौभाग्य है। अतः सेवकाई के लाभ के लिए रामजी की प्रार्थना गुरुचरणों में है।

दो. सुनि सनेह साने बचन, मुनि रघुबरहिं प्रसंस ।
राम कस न तुम्ह कहहु अस, हंस बंस अवतंस ॥९॥

अर्थ : स्नेह से सने हुए वचनों को सुनकर मुनिजी ने रामजी की प्रशंसा की कि राम तुम ऐसा क्यों न कहो। तुम सूर्यवंश के शिरोभूषण हो।

व्याख्या : श्रीरामजो के स्नेह सने हुए वचन सुनकर मुनिजी प्रसन्न हो गये और उनकी प्रशंसा करते हुए कहने लगे कि तुम सूर्यकुल के शिरोभूषण हो। अतः जो वचन तुमने कहे। वह तुम्हारे स्वरूप के अनुकूल हैं। सूर्यवंश में स्वभाव से ही गुरुभक्ति देखी जाती है। महाराज दशरथ कहते हैं : मोहि सम यहु अनुभयउ न दूजें। सबु पायउँ रज पावनि पूजें। भरतजी कहेंगे : दलि दुख सजइ सकल कल्याना। अस असीस राउरि जग जाना।

बरनि राम गुन सीलु सुभाऊ। बोले प्रेम पुलकि मुनिराऊ ॥
भूप सजेउ अभिषेक समाजू। चाहत देन तुम्हहि जुबराजू ॥१॥

अर्थ : रामजी के गुण शील और स्वभाव का वर्णन करके प्रेम से पुलकित होकर मुनिराज ने कहा कि महाराज ने अभिषेक की तैयारी कर ली है और तुम्हें युवराज पद देना चाहते हैं।

व्याख्या : रामजी के गुणों का वर्णन किया कि तुम सब विधि से सब लायक हो। शील स्वभाव का वर्णन किया कि तुम सबको प्राणप्रिय हो। सब विप्रमण्डली तुम्हारे ऊपर छोह करती हैं। इस कुल में ऐसे ही युवराज की आवश्यकता है। इस भाँति प्रशंसा करके मुख्य समाचार कहने के समय मुनिराज प्रेम से पुलकित हो उठे। कहने लगे : राजा अब राज्यभार को वहन करना नहीं चाहते। अतः राज्याभिषेक की सब तैयारी कर ली है और तुम्हें युवराज बनाना चाहते हैं। तुम्हीं चारों भाइयों में ज्येष्ठ हो। ज्येष्ठ गुणों से युक्त हो। अतः राजा का तुम्हारे विषय में ऐसा ही निर्णय उपयुक्त है।

राम करहु सब संजम आजू। जौं बिधि कुसल निबाहइ काजू ॥
गुरु सिख देइ राय पहिं गयेऊ। राम हृदयँ अस बिसमउ भयेऊ ॥२॥

अर्थ : रामजी आज तुम सब संयम करो। यदि विधाता कुशल पूर्वक सब काम निबाह दें। गुरुजी तो रामजी को शिक्षा देकर चले गये। पर रामजी के हृदय में इस प्रकार से आश्चर्य हुआ।

व्याख्या : राज्याभिषेक के एक दिन पूर्व जिसका अभिषेक होता है। उसे संयम से रहने का विधान है। वह ब्रह्मचर्य से रहे शय्या का त्याग करे इत्यादि। गुरुजी ने उन सब संयमों के अनुष्ठान का रामजी को उपदेश दिया। आज संयम से रहो कहने का तात्पर्य ही यह है कि कल तुम्हारा अभिषेक होनेवाला है। परन्तु विधि की ओर से सकुशल कार्य के सम्पन्न होने में सन्देह है। यह बात भी गुरुजी ने

स्पष्ट कह दी। देवताओं का रहस्य है। अतः महाराज को केवल इङ्गित से जनाया। यथा : सुदिनु सुमंगलु तबहिं जब राम होहिं युबराज। पर रामजी से क्या परदा है। अतः स्पष्ट कहते हैं। और भी जो बातें रक्षा सम्बन्धी ऐसे अवसर पर उपयुक्त होती हैं। उनकी भी शिक्षा देकर गुरुजी चले गये। पर रामजी को यह समाचार सुनकर आश्चर्य हुआ। उन्होंने कभी इस बात की ओर ध्यान भी नहीं दिया था कि जेठे होने के कारण राज्य के वे ही अधिकारी हैं। लोकसीमा के उल्लंघन करनेवाली वस्तु से जो चित्त में विकार उत्पन्न होता है उसे विस्मय कहते हैं। यथा : विविधेषु पदार्थेषु लोकसीमातिवर्तिषु। विस्फारश्चेतसो यस्तु स विस्मय उदाहृतः।

जनमे एक संग सब भाई। भोजन सयन केलि लरिकाई ॥
करनवेध उपबीत बिआहा। संग संग सब भये उछाहा ॥३॥

अर्थ : सब भाई एक साथ ही पैदा हुए। एक साथ ही लड़कपन से खाते सोते खेलते आये। कर्णवेध जनेव और ब्याह का उत्सव सब एक ही साथ हुआ।

व्याख्या : विस्मय का कारण कहते हैं कि सब भाइयों का जन्म भी साथ ही साथ हुआ। एक के जन्म से दूसरे के जन्म में कुछ घण्टों का हो भेद पड़ा। भोजन भी सबका साथ होता रहा। यथा : अनुज सखा सँग भोजन करहीं। सोते भी साथ ही साथ रहे। यथा : आज्ञा पुनि पुनि भाइन्ह दीन्हीं। निज निज सेज सयन तिन्ह कीन्हीं। लड़कपन में खेल भी साथ ही साथ होता रहा। यथा : जिन्ह बीथिन्ह बिहरैं सब भाई। थकित होहिं सब लोग लुगाई। तत्पश्चात् जितने संस्कार और उत्सव हुए। यथा : कर्णवेध उपवीत और विवाह सो सब साथ ही साथ हुए। सब कामों में तो भाइयों का साथ रहा। अब क्या अभिषेक में उनका साथ न होगा? अभिषेक केवल मेरा ही होगा? यही विस्मय है।

बिमल बंस यहु अनुचित एकू। बंधु बिहाइ बड़ेहि अभिषेकू ॥
प्रभु सप्रेम पछितानि सुहाई। हरउ भगत मन कै कुटिलाई ॥४॥

अर्थ : इस निर्मल वंश में यही एक अनुचित बात है कि भाइयों को छोड़कर बड़े का ही अभिषेक होता है। प्रभु का प्रेम के सहित सुन्दर पछतावा भक्त के मन की कुटिलता का हरण करे।

व्याख्या : पिताजी की इच्छा है। गुरुजी आकर कह गये और रघुकुल की रीति भी यही है। अतः स्वीकार करने के सिवा उपायान्तर नहीं है। अतः प्रभु प्रेम के साथ पछता रहे हैं। इस ध्यान की श्रीआचार्यपाद फलश्रुति कहते हैं कि इस पछताने से भक्तों के मन की कुटिलता नष्ट हो। स्वार्थान्धता ही सब कुटिलताओं का कारण है। अपने इष्टदेव के स्वार्थ निरपेक्ष विचार में स्थित होने के ध्यान से भक्त के हृदय में भी स्वार्थ निरपेक्ष विचार करने का सामर्थ्य उत्पन्न हो। इसलिए कवि प्रार्थना करते हैं कि : हरउ भगत मन कै कुटिलाई। इस पछतावे से रामोपासकों को शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए। प्रभु की सरलता का अनुगमन सेवक का धर्म है। प्रभु

के सभी उपासकों में भाई भाई का नाता है। अपना उत्कर्ष होने पर औरों के लिए दुःखी न होना भी भक्तों के लिए कुटिलता है। अतः कवि प्रार्थना करते हैं कि प्रभु के इस प्रकार का पछतावा भक्त के मन की कुटिलता हरण करे।

दो. तेहि अवसर आए लखन, मगन प्रेम आनंद।
सनमाने प्रिय बचन कहि, रघुकुल कैरव चंद ॥१०॥

अर्थ : उसी अवसर पर लक्ष्मणजी प्रेमानन्द में मग्न हुए आये और रघुकुल-रूपी कुमुद के चन्द्रमा रामजी ने उनका सम्मान प्रिय वचन कहकर किया।

व्याख्या : उसी पछताने के अवसर पर प्रेमानन्द में मग्न लक्ष्मणजी आये। आचार्यपाद दो के लिए मग्न शब्द का प्रयोग करते हैं एक लक्ष्मणजी के लिए और दूसरा कौसल्याजी के लिए। यथा : आनंद मगन राम महतारी। भाइयों के साथ अभिषेक न होने का रामजी को पछितावा है और उनका अभिषेक सुनकर भाई लक्ष्मण को आनन्द है। लक्ष्मणजी की ऐसी दशा देखकर रघुकुलकैरवचन्द ने उनका सम्मान प्रिय वचन द्वारा किया। यथा : कर्त्ता भोक्ता त्वमेव हि। कि कर्त्ता भोक्ता तो लक्ष्मण ! तुम हो होगे। अभिषेक भले हो मेरा हो ले। जिस राज्य के कर्तृत्व भोक्तृत्व की मेरी प्राप्ति पर तुम्हें इतनी प्रसन्नता है। वह कर्तृत्व भोक्तृत्व तुम्हारा ही हो।

बाजहिं बाजन बिबिध बिधाना। पुर प्रमोदु नहि जाइ बखाना ॥
भरत आगमनु सकल मनावहिं। आवहुँ बेगि नयन फलु पावहिं ॥१॥

अर्थ : अनेक प्रकार के बाजे बज रहे हैं। पुर का आनन्द बखाना नहीं जाता। सब भरतजी का आना मना रहे हैं कि जल्द आवें और नेत्रों का फल पावें।

व्याख्या : राम राज अभिषेकु सुनि, हिम हरषे नर नारि। लगे सुमंगल संजन सब बिधि अनुकूल बिचारि। यहाँ से प्रसंग छूटा है। उसी को फिर से उठाते हैं कि अनेक प्रकार के बाजे बजने लगे। पहिले यमघण्टवाद्य राज्याभिषेकवाद्य आदि अनेक प्रकार के बाजे थे। जिनका नाम शास्त्रों में सुना जाता है। अब उनका चलन नहीं है। इष्टभोगजन्य हर्ष को प्रमोद कहते हैं। सो इस समय पुर में ऐसा प्रमोद है कि वर्णन नहीं किया जा सकता। भरतजी पर सभी प्रजा का प्रेम है। सबकी इच्छा है कि भरतजी इस उत्सव में अवश्य सम्मिलित हों। परन्तु वे कैकय देश में हैं। इतनी जल्दी बुलाये नहीं जा सकते। अतः उनके आने के लिए देवताओं से प्रार्थना करते हैं कि यदि वे आजायँ तो उन्हें भी नेत्रों के सफल करने का अवसर मिल जाय।

हाट बाट घर गली अथाई। कहहिं परसपर लोग लोगाई ॥
कालि लगन भलि केतिक बारा। पूजिहि बिधि अभिलाषु हमारा ॥२॥

अर्थ : बाजार में, घरों में, गलियों में और बैठकों में नर और नारियाँ आपस

में चरचा कर रहे हैं कि कल लग्न किस समय है जब कि विधि हमारा अभिलाष पूरा करेंगे।

व्याख्या : जहाँ देखिये तहाँ नगर में यही चरचा है। लोग बाजारों में काम काज करते हुए, रास्ता चलते हुए, घरों में बैठे हुए, बैठकों में बात करते हुए, गलियों में आते जाते हुए, एक दूसरे से यही पूछते हैं कि कल अभिषेक के लिए लग्न कौन सी स्थिर हुई है जब कि हम लोगों की अभिलाषा पूर्ण होगी। सबको रामजी के राजतिलक देखने की उत्कट चाह है और समय के जानने की बड़ी उत्सुकता है। पर लग्न का पता किसी को नहीं है। कारण यह कि लग्न गुरुजी ने बतलाया ही नहीं था। यही कह दिया था : सुदिन सुमंगलु तबहिं जब राम होहिं युबराज।

कनक सिंघासन सीय समेता। बैठहिं रामु होइ चित चेता ॥
सकल कहहिं कब होइहि काली। बिघन बनावहिं देव कुचाली ॥३॥

अर्थ : सोने के सिंहासन पर सीताजी के सहित रामजी बैठें तो सबका मनोवाञ्छित सिद्ध हो। सब कह रहे हैं कि कल कब होगा और कुचाली देवता लोग विघ्न की व्यवस्था कर रहे थे।

व्याख्या : लोगों में उत्सुकता बढ़ी हुई है। अभिषेक के अवसर पर राजा रानी के साथ सोने के सिंहासन पर बैठते हैं और उसी पर राजतिलक होता है। उसी दृश्य को आँखों से देखने के लिए लोग आतुर हैं। जितना प्रेम लोगों को रामजी पर है उतनाही सीता पर है। पर उनका दर्शन दुर्लभ है। उत्सव के समय परदा का विधान नहीं है। अतः उस समय युगलमूर्ति के दर्शन का सौभाग्य सभी को होगा। उसी दर्शन के लिए लोग लालायित हैं। तीव्र उत्कण्ठा होने से समय बीतना कठिन हो रहा है। यह खबर सबको है कि कल राजतिलक है। अतः कल के आने के लिए जो समय अपेक्षित है उसका कटना कठिन हो रहा है।

लोगों में तो रामजी के राजतिलक के लिए इतनी उत्सुकता है। पर कुचाली देवता लोग विघ्न की व्यवस्था कर रहे हैं। इस फेर में पड़े हुए हैं कि कैसे राजतिलक रुके। इसीलिए कवि ने रुष्ट होकर उन्हें कुचाली कहा। अपनी स्वार्थ-सिद्धि के लिए सबके आनन्द के मार्ग में रोड़ा अटकाने की चिन्ता में हैं।

तिन्हहि सुहाइ न अवध बधावा। चोरहि चंदिनि राति न भावा ॥
सारद बोलि बिनय सुर करहीं। बारहि बार पाय लै परहीं ॥४॥

अर्थ : उन्हें अवध का बधावा नहीं अच्छा लगता। जैसे चोर को चाँदनी रात भली नहीं लगती। सरस्वती को बुलाकर देवता विनय कर रहे हैं। बार-बार पैरों पर गिर रहे हैं।

व्याख्या : अयोध्या में सबको आनन्द है। वहाँ के लोग बधावा बजा रहे हैं। उन्हें बधावा सोहाता है। पर देवता लोग रामजी का राजतिलक इस समय नहीं चाहते। अतः उन्हें बधावा अच्छा नहीं लगता। सब बिधि सब पुरलोग

सुखारी। रामचंद मुखचंदु निहारी। अतः पुर के लोग उस चन्द्र की बढ़ोत्तरी चाहते हैं। राजतिलक उस बढ़ोत्तरी की सीमा है। अतः बधावा उसी बढ़ोत्तरी की द्योतक चाँदनी है। वह सबको सुखद हो रही है। पर कुचाली देवताओं को नहीं सोहाती जिस भाँति चाँदनी सबको सोहाती है। पर चोर को नहीं सोहाती। यहाँ देवताओं की उपमा चोर से दी गयी है। चोर स्वयं निर्धन हैं। लोगों के धन को हरण करके स्वयं धनी होना चाहते हैं। इसी भाँति देवता राजतिलक में विघ्न उपस्थित करके सबके आनन्द का अपहरण कर स्वयं आनन्दित होना चाहते हैं। उनके यहाँ आनन्द का अभाव है। उन्हें रावण के भय से न भूख लगती न नींद आती है। यथा : जाके डर सुर असुर डराहीं। निसि न नींद दिन अन्न न खाहीं। दुखियों को स्वभाव से ही दूसरों का बधावा नहीं सोहाता। सो अवध के बधावा से देवताओं के नाकों दम है। वहाँ नित्य नवमंगल मोद बधावा होता रहता है और इस समय तो : बाज गहागह अवध बधावा। भारी बधावा बज रहा है। यदि चन्द्र हटें तो चाँदनी जाय। यदि रामजी अयोध्या में न रहे तो बधावा बन्द हो।

अतः विघ्न की रचना की चिन्ता में हैं। पर बुद्धि काम नहीं देती। अवध में कोई ऐसा नहीं जिसे रामजी का तिलक न सोहाता हो। फिर विघ्न हो तो कैसे हो? अतः विघ्न के लिए सरस्वती का आवाहन करके अपने कार्य के लिए उनके चरणों पर गिर रहे हैं। पर वे राजी नहीं होतीं। अतः बार-बार चरणों पर गिरते हैं।

दो. बिपति हमारि बिलोकि बड़ि, मातु करिअ सोइ आजु।
राम जाहिं बन राजु तजि, होइ सकल सुर काजु ॥११॥

अर्थ : हमारी बड़ी भारी विपत्ति को देखकर माता! आप वही करिये। जिसमें रामजी राज्य छोड़कर वन में जाँय और सब देवताओं का कार्य सिद्ध हो।

व्याख्या : देवता लोग सरस्वतीजी से कहते हैं कि आप हमारी माता हैं। आप अपने बच्चों की भारी विपत्ति को देखिये। १. हम लोग उजड़ गये। यथा : वेद विरुद्ध महीसुर साधु ससोक कियो सुरलोक उजारयो। २. हम लोगों को भोजन का ठिकाना नहीं। यथा : द्विज भोजन मख होम सराधा। सबके जाइ करहु तुम बाधा। छुधा छीन बलहीन सुर, सहजेहिं मिलिहहिं आइ। ३. दिन रात हम लोग सभीत रहते हैं। यथा : सुरपुर नितहि परावन होई। ४. इज्जत लूटी जाती है। यथा : देव जच्छ गंधर्व नर किन्नर नाग कुमारि। जीति बरीं निज बाहुबल बहु सुन्दर वर नारि। ५. तिस पर हम लोगों को नित्य हाजिरी बजानी पड़ती है। यथा : कर जोरे सुर दिसिप बिनीता। भृकुटि बिलोकत सकल सभीता। ६. हम लोग बन्दर भालू बनकर वनों में रामजी के आने की बाट जोह रहे हैं। यथा : गिरि तरु नख आयुध धर धीरा। हरि मारग चितवहिं मति धीरा। अब इससे बड़ी विपत्ति और क्या होगी। आप माता हैं। अपने बच्चों के लिए माता क्या नहीं करती? सो आज ऐसा उपाय कीजिये कि रामजी राज्य छोड़कर वन

चले जाँय। आज़ कहने का भाव यह कि कल तो काम ही बिगड़ जायगा। जहाँ राज्य पर बैठे तहाँ राजकाज में लग जावेंगे तो हमारा काम पिछड़ जायगा। आपके सब बच्चों का कल्याण रामजी के वन जाने में है।

सुनि सुर बिनय ठाढ़ि पछिताती। भइउँ सरोज बिपिन हिम राती ॥
देखि देव पुनि कहहिं निहोरी। मातु तोहि नहि थोरिउ खोरी ॥१॥

अर्थ : देवताओं का विनय सुनकर खड़ी होकर पछताती हैं कि मैं कमल के वन के लिए पाले की रात्रि बन रही हूँ। देखकर देवता लोग फिर निहोरा करके कहते हैं कि माता ! तुझे थोड़ा सा भी दोष नहीं है।

व्याख्या : देवताओं का विनय सुना। बात गले उतर गयी। पर पछतावा है कि कमल वन की भाँति फूले हुए इस अवध नगर के संहार के लिए मैं पाले की रात कैसे बनूँ। भाव यह कि रामजी के विरुद्ध सुनते ही चली नहीं गयीं। खड़े होकर पछताने लगीं कि मुझे बड़ा अपयश होगा। दोष लगेगा कि हरा भरा बाग सरस्वती ने उजाड़ दिया।

सरस्वती ब्रह्मलोक से देवताओं के आवाहन से देवलोक में आयीं हैं। अभी बैठी भी नहीं। खड़े ही खड़े देवताओं का विनय सुनकर पछता रही हैं। इस प्रसङ्ग में दो का पछतावा कहा : रामजी का और सरस्वतीजी का। रामजी के पछतावे से ही सरस्वतीजी तथा वृहस्पतिजी ने उनका रुख लख लिया। यथा : तब कछु कीन्ह राम रुख जानी। फिर भी विघ्नाचरण में पछतावा है। आज और कल के बीच में रात्रि है। सरस्वती पछताती हैं कि मुझे हिमरात्रि बनना पड़ेगा। जिसमें कमलकुल का संहार हो जाय। अतः कहती हैं : भइउँ सरोज बिपिन हिम राती।

सरस्वतीजी को असामञ्जस्य में देखकर वृहस्पतिजी ने निहोरा करके कहा कि आप इस कार्य में दोष देख रही हैं। सो इसमें आपका थोड़ा भी दोष नहीं है। कारण देते हैं :

बिसमय हरष रहित रघुराऊ। तुम्ह जानहु सब रामु प्रभाऊ ॥
जीव करम बस सुख दुख भागी। जाइअ अवध देव हित लागी ॥२॥

अर्थ : रामजी तो विस्मय हर्ष से रहित हैं। आप तो उनके प्रभाव को जानती हैं। जीव कर्म के वश सुख दुःख भोगा करते हैं। अतः देवताओं के भले के लिए आप अवध जाँय।

व्याख्या : और लोग रामजी के प्रभाव को नहीं जानते। पर आप तो जानती हैं कि रामजी क्या हैं। परवस जीव स्ववस भगवंता। रामजी स्वतन्त्र हैं। उन्हें कर्म शुभाशुभ की बाधा नहीं। सुख दुःख रूपी द्वन्द्व की उन तक पहुँच नहीं। दुःख सुख तो अभिमानी को होता है। अतः रामजी के लिए चिन्ता का कोई कारण नहीं है। आप जो कुछ करेंगी वह देवताओं के हित के लिए करेंगी। यदि देवहित करने में कुछ जीवों को दुःख हो तो वह नगण्य है। क्योंकि उनके

प्रारब्ध में जो सुख दुःख है उसकी मात्रा के घटाने बढ़ाने में कोई समर्थ नहीं है। उतना उन्हें मिलकर ही रहेगा। अतः आपके दोष का तो यहाँ प्रसङ्ग ही नहीं है। आप देवताओं के कल्याण के लिए अवध पधारें : यहाँ हर्ष के विरोध में आने से विस्मय का अर्थ शोक करना पड़ेगा।

बार बार गहि चरन सँकोची। चली बिचारि बिबिध [1]मति पोची ॥
ऊँच निवासु नीचि करतूती। देखि न सकहिं पराइ बिभूती ॥३॥

अर्थ : देवताओं ने बार बार चरण पकड़कर सङ्कोच में डाला। तब वह देवताओं की बुद्धि भली नहीं ऐसा विचार करके चली। इनका निवास तो ऊँचा है। पर करतूति इनकी नीच है। ये दूसरे का ऐश्वर्य नहीं देख सकते।

व्याख्या : जो जो बातें देवताओं ने कहीं उनकी असमीचीनता को जानते हुए भी सरस्वती पुत्रों के सङ्कोच में आगयी। और भी स्वार्थ के विचार उसके मन में आये। जिनका वर्णन आगे किया जायगा। अतः देवताओं के कार्य के लिए चल पड़ी।

देवताओं का निवास ऊँचा है। स्वर्ग में रहते हैं। यह लोक तो भूलोक है। इसके ऊपर अन्तरिक्षलोक है। उसके भी ऊपर स्वर्गलोक है। देवता लोग वहाँ रहते हैं। इसलिए ऊँच निवास कहती हैं। पर इनकी करणी नीच है। स्वार्थ से भरी होती है। यथा : आये देव सदा स्वारथी। जब रामावतार हो गया तो ईश्वर सत्य सङ्कल्प है। आज नहीं तो कल रावणवध करेंगे ही। कितने चतुर्युगियों से उसके अत्याचार को सह रहे हैं। थोड़ा और सह लेते। थोड़ा धैर्य रखते। जो अवतीर्ण जिस कार्य के लिए हुआ है उसको भी तो उस कार्य की चिन्ता है। वह देवताओं को उचित से अधिक कष्ट पाते कभी न देख सकेगा। अवधवासियों के रंग में भंग डालने का कोई कारण नहीं है। कवि कहते हैं कि बात यह है कि अवधराज सुरराज सिहाहीं। दसरथ धन सुनि धनद लजाहीं। सो देवता लोग इस विभूति को न देख सके। उनके हृदय में अवध का आनन्द देखकर डाह पैदा हुआ कि हम तो स्वर्ग में रहकर इतना दुःख पावें और ये मर्त्यलोक में रहकर इतना आनन्द लें।

आगिल काजु बिचारि बहोरी। करिहहिं चाह कुसल कबि मोरी ॥
हरषि हृदय दसरथ पुर आई। जनु ग्रहदसा दुसह दुखदाई ॥४॥

अर्थ : फिर भविष्य के कार्य को विचारा कि कुशल कवि मेरी चाह करेंगे। हर्षित हृदय से दशरथपुर में दुसह दुखदायी ग्रहदशा की भाँति आयी।

———

१. राजापुर की प्रति में विबिध पाठ है। ऐसा मानने से : पोची विविध मत विचार चलीं। इस प्रकार अन्वय करना होगा। अर्थात् अपने स्वार्थ का भी विचार किया : करिहहिं चाह कुसल कवि मोरी : अतः पोची कहते हैं।

व्याख्या : इस सरस्वती ने अपने भविष्य के स्वार्थ को विचारा कि रामचरित वर्णन करनेवाले कुशल कवि मेरी चाह करेंगे। रामचरित वर्णन के लिए मेरा स्मरण वन्दन करेंगे। यथा : कपिसेन संग संहारि निसिचर राम सीतहिं आनि हैं। त्रैलोक पावन सुजस सुर मुनि नारदादि बखानि हैं। अतः हर्षित हृदय से अवध में आयी। उसका पछतावा नाम मात्र के लिए था। सरस्वती का आना मङ्गलकारक है। सो अवधवासियों के लिए तो इस समय दुखदायी ग्रहदशा साढ़े साती से भी बढ़ी हुई बनकर आयी।

सब बिधि सब पुरलोग सुखारी। रामचंद मुखचंदु निहारी। अतः प्रभु की ग्रहदशा ही सबकी ग्रहदशा है। सो बुध की महादशा में केतु के साथ शुक्र की अन्तर्दशा रूप से आयी। श्रीरामजी का जन्म वृहस्पति की महादशा में हुआ। चारवर्ष तक वही दशा रही। तत्पश्चात् शनैश्चर की महादशा उन्नीस वर्ष के लिए आयी। चौबीसवें वर्ष में बुध की महादशा लगी। सत्ताईसवें में शुक्र की अन्तर्दशा आगयी। शुक्र केतु के साथ थे। इसलिए यह दुःखदायिनी दशा थी। इसने पदच्युत करके ही माना।

दो. नामु मंथरा मंदमति, चेरी कैकै केरि।
अजस पेटारी ताहि करि, गई गिरा मति फेरि ॥१२॥

अर्थ : राजा कैकय की एक मन्दमति दासी मन्थरा नामी थी। उसी को अयश की पेटारी बनाकर सरस्वती उसकी बुद्धि को उलटकर चली गईं।

व्याख्या : यह अवध की नहीं थी। कैकय देश से आयी थी। अयोध्यावासियों पर सरस्वती की कला नहीं चली। यह स्वभाव से मन्दमति थी। अतः इसपर कला चल गयी। इसकी बुद्धि पलटा खा गयी। सरस्वती को कोई दोष न दे। इसलिए उसे अयश की पेटारी बनाया। वह बेचारी भी यह नहीं चाहती थी। अतः उसकी बुद्धि का पलटना कह रहे हैं। वह मन्दमति से तीव्र बुद्धि हो गयी। पर साधु बुद्धि के स्थान पर दुष्ट बुद्धि हो गयी। उसकी बुद्धि पलटकर सरस्वती चली गयीं। समझ लिया कि अब यह राजतिलक न होने देगी। सरस्वती बुद्धि की अधिष्ठात्री देवी हैं। बुद्धि को फिरा देना इनका काम है। यथा : सारद प्रेरि तासु मति फेरी। माँगेउ नींद मास षट केरी।

दीख मंथरा नगरु बनावा। मंजुल मंगल बाज बधावा ॥
पूछेसि लोगन्ह काह उछाहू। राम तिलकु सुनि भा उर दाहू ॥१॥

अर्थ : मन्थरा ने देखा कि नगर सजा हुआ है और सुन्दर मङ्गल के बधावे बज रहे हैं। लोगों से पूछा कि क्या उत्सव है। रामजी का तिलक सुनकर जी जल उठा।

व्याख्या : सुनत राम अभिषेक सुहावा। बाज गहागह अवध बधावा ॥

एहि अवसर मंगलु परम सुनि रहसउ रनिवास।
सोभत लखि बिधु बढ़त जनु बारिधि बीचि बिलासु ॥
प्रथम जाइ जिन बचन सुनाए। भूषन बसन भूरि तिन्ह पाए ॥

उसी अवसर का यह प्रसङ्ग है। परन्तु वहाँ उल्लेख करने से दूसरी कथा प्रारम्भ हो जाती। वसिष्ठजी का रामजी को शिक्षा देने तथा देवताओं का सरस्वतीजी से विनय करने और सरस्वती के मन्थरा की बुद्धि पलटने का प्रसङ्ग छूट जाता। अतः वहाँ उल्लेख नहीं किया। कैकेयीजी के महल में पहिले पहल खबर सुनानेवाली का हाल लिखते हैं। बात यह हुई कि अति शीघ्रता के कारण महाराज को जाकर रनिवास में इस शुभ समाचार के प्रकाश करने का अवसर ही नहीं मिला। रनिवास में समाचार पहुँचने के पहिले ही नगर में समाचार फैल गया। सभी महल की दासियों ने इस भाँति लोगों से पूछकर रामजी के तिलक का समाचार पाया था। पर उनको सुनकर हर्ष हुआ। दौड़ी हुई महारानिग्रों के यहाँ शुभ समाचार देने गयीं। इसी भाँति मन्थरा ने भी लोगों से नगर का साज समाज और बधावा बजते देखकर पूछा। पर रामजी का अभिषेक सुनकर इसे हर्ष न हुआ। इसका जी जल उठा। क्योंकि इसकी बुद्धि को सरस्वतीजी ने फेर दिया था। इसे वह घटना याद आयी जब कि रामजी ने लड़कपन में इसकी टाँग पकड़कर खेंची थी। इस बात का उल्लेख अग्निपुराण में मिलता है। उसी वैर से इसने कैकेयी को उलटा समझाया।

करै बिचारु कुबुद्धि कुजाती। होइ अकाजु कवन बिधि राती ॥
देखि लागि मधु कुटिल किराती। जिमि गँव तकै लेउँ केहि भाँती ॥२॥

अर्थ : वह कुबुद्धि और नीच जाति विचार करने लगी कि किस उपाय से आज रात को ही यह काम बिगड़ जाय। जैसे मधुकोष : शहद का छत्ता देखकर कुटिल किराती यह मौका देखने लगता है कि इसी रात को यह शहद कैसे ले लें।

व्याख्या : सरस्वती ने बुद्धि फेर दी है। इसलिए कुबुद्धि कहा। राजा कैकय की चेरी है : कैकेयी के डोला के साथ आयी है। इसलिए कुजाति कहा। इस नीच बुद्धि और नीच जाति को अयोध्या का यह आनन्द देखकर जलन पैदा हुई। यह तरकीब सोचने लगी कि इस आनन्द का अपहरण मैं आज ही रात को कैसे कर लूँ। क्योंकि कल तो यह आनन्द रामजी के हाथ लग ही जायगा। रात बीत जाने पर फिर मेरा किया कुछ नहीं हो सकता।

जिस भाँति मधु का छत्ता देखकर कुटिल किराती के मन में यह बात उठती है कि आज रात को ही इस मधु के छत्ते को किस उपाय से अपहरण कर लूँ। क्योंकि रात के समय मधुमक्षिकाओं को दिखाई नहीं पड़ता। वे विश्राम करती हैं। यही समय मधु लेने का है। सवेरा होते ही मक्षिकाओं को सूझने लगेगा। वे

जाग उठेंगी : मधुकोष का अपहरण करनेवाले के शरीर में मक्षिकाएँ चिपट जाती हैं और उसका प्राण बचना कठिन व्यापार हो उठता है। अतः वह रात को ही मधुकोष का अपहरण करती है। इस रूपक में अवधवासियों की उपमा मधु मक्षिकाओं से है। उनके आनन्द की उपमा मधुकोष से और मन्थरा की उपमा कुटिल किराती से दी गयी है। कठिनता यह आपड़ी है कि उजेली रात है। यथा : सोहत जन बिधु बढ़त लखि वारिधि बीचि विलासु। मक्षिकाएँ एकदम निद्रित नहीं हैं। यथा : सकल कहहिं कब होइहि काली। अतः मौका तजबीज रही है। मन में विधि बैठा रही है कि मैं तो चेरी छोड़कर रानी होने की नहीं हूँ। मेरा सम्पर्क कैयेयी से है। यह यदि मेरे कहने से भरत को राज्य और राम को वनवास माँगे तो राज्य मिलने पर भरत और कैकेयी दोनों कृतज्ञ होंगे। मैं उनकी आँख की पुतली बनकर रहूँगी। इस भाँति राज्य पर मेरी ही आज्ञा चलेगी। अब कैकेयी मेरा कहना कैसे माने ? इत्यादिक विचार में लगना ही यहाँ गँव ताकना है।

सबेरा होते ही अभिषेकोत्सव प्रारम्भ हो जायगा। फिर कौन किसकी सुनता है। अतः विधि कोई ऐसी होनी चाहिए जिससे रात में ही काम बिगड़ जाय।

भरत मातु पहिं गइ बिलखानी। का अनमनि हसि कह हँसि रानी ॥
ऊतरु देइ न लेइ उसासू। नारि चरित करि ढारइ आँसू ॥३॥

अर्थ : रोना चेहरा बनाकर भरतजी की माता के पास गयो। रानी ने हँसकर पूछा कि तू अनमनी क्यों हो रही है। उत्तर नहीं देती। लम्बी लम्बी साँस लेती है और स्त्रीचरित्र करके आँसू गिराती है।

व्याख्या : विचार करके मनमें तरकीब बैठा ली। रोना चेहरा बना लिया। जिसमें रानी कारण पूछें और उसे कहने का अवसर मिले। बिना पूछे कहने से बात न बैठेगी। तब भरत की माता के पास गयी। कहने का भाव यह है कि भरतजी की माता हैं। कम से कम उनकी अनुपस्थिति में पुत्र के हितकी रक्षा के लिए अवश्य तैयार हो जायगी। रानी उसका रोना चेहरा देखकर हँस पड़ी। मन्द बुद्धि से सभी हँसी करते हैं। अतः उपाय ओखा पड़ा। अब बातको गहरी बनाने के लिए रानी के पूछने पर उत्तर नहीं देती। हृदय में शोक न रहने पर भी पूरा शोक का रूपक खड़ा कर देना नारिचरित्र है। सो उसने स्त्रीचरित्र का आश्रयण किया। लम्बी लम्बी श्वास लेने लगी। आँसू गिराने लगी। जिसमें रानी समझें कि कोई गम्भीर समस्या है।

हँसि कह रानि गालु बड़ तोरें। दीन्हि लखन सिख अस मन मोरें ॥
तबहुँ न बोल चेरि बड़ि पापिनि। छाड़इ स्वास कारि जनु सापिनि ॥४॥

अर्थ : रानी ने हँसकर कहा कि तू बड़ी मुहजोर है। मेरे मन में तो यह बात

आती है कि लक्ष्मण ने तुझे डाँटा है। फिर भी नहीं बोलती। बड़ी पापिनी चेरी है। काली सर्पिणी की भाँति श्वास लेने लगी।

व्याख्या : फिर भी बात न जमी। रानी ने यही समझा कि कोई अदनी सी बात है। यह मन्दमति तो है ही। मुँहजोर भी है। लक्ष्मण ने डाँटा फटकारा होगा। रामजी डाँटेंगे ही नहीं। दूसरे की किसकी ताकत है कि मेरी दासी को डाँट सके। पर मन्थरा साधारण पापिनी नहीं है। कपट को हृदय में विठाना जानती है। अतः महारानी की उत्सुकता बढ़ाने के लिए फिर न बोली। उच्छ्वास और आँसू बहाने से काम चलते न देखकर काली सर्पिणी की फूत्कार की भाँति श्वास लेने लगी। इस मुद्रा ने काम कर दिया। रानी की बुद्धि में क्षोभ हुआ। वह डर गयी कि कोई भारी विपत्ति आयी है इससे यह ऐसा श्वास ले रही है और वह विपत्ति मेरे पर आयी है। इसलिए यह कहने का साहस नहीं कर रही है।

दो. सभय रानि कह कहसि किन, कुसल रामु महिपालु।
लखनु भरतु रिपुदवनु सुनि, भा कुबरी उर सालु ॥१३॥

अर्थ : भयभीत होकर रानी ने कहा कि कहती क्यों नहीं ? रामजी, महाराज, भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न कुशल तो हैं। यह सुनकर कुबरी के कलेजे में साल पड़ गयी।

व्याख्या : पति पुत्र से बढ़कर स्त्री के लिए कोई नहीं है। अतः उन पर आँच आना ही स्त्री के लिए सच्ची विपत्ति है। दो बार पूछने पर नहीं बोली। अतः रानी कहती है कि तू बतलाती क्यों नहीं ? कुशल पूछने में जो सबसे प्रिय होता है। उसी का कुशल स्वभाव से ही मनुष्य पहिले पूछता है। सो रानी ने सबसे पहिले रामजी की कुशल पूछी। महाराज की कुशल उसके बाद पूछती हैं। लक्ष्मण भरत और शत्रुघ्न की कुशल तो उसके भी बाद पूछती हैं। यह सुनकर कुबरी के कलेजे में मानो साल पड़ गया। जिसके कलेजे में साल पड़ जाता है उससे साँस लेते नहीं बनता है और वह टेढ़ा हो जाता है। उससे सीधे खड़े होते नहीं बनता। कुबरी तो भरत की माँ जानकर आयी थी। पर रानी तो रामजी की माँ की भाँति बोली। उसने पहिले रामजी की कुशल पूछी। भरत की कुशल तो लक्ष्मण के भी बाद पूछती हैं। यह लक्षण तो काम बनने का नहीं है। मन्थरा कुबरी तो थी ही। यह कलेजे में साल पड़नेवाली वाणी सुनकर और भी टेढ़ी हो गयी।

कत सिख देइ हमहि कोउ माई। गालु करब केहि कर बलु पाई ॥
रामहि छाड़ि कुसल केहि आजू। जिन्हहि जनेसु देइ जुबराजू ॥१॥

अर्थ : माई ! मुझे कोई क्या सीख देगा ? मैं किसके बल पर मुहँजोरी कर सकती हूँ ? राम को छोड़कर आज किसकी कुशल है। जिसे राजा युवराज पद दे रहे हैं।

व्याख्या : मैंने किसी का क्या बिगाड़ा है और मै किस गिनती में हूँ कि

मुझे कोई सीख देगा। सीख का भय तो उसे रहता है। जो किसी गिनती में हो। भाव यह कि सीख का भय तुम्हें है। मुझे नहीं है। यह : दीन्ह लखन सिख अस मन मोरें का उत्तर है। अब गाल बड़ तोरे का उत्तर देती है कि जिस बल से मैं मुहजोरी करती रही वही बल आज जाता रहा। मुझे तो तुम्हारा बल था। सो तुम्हारा ही बल नहीं रह गया।

रामजी की कुशल पहिले पूछी थी। उसपर कहती हैं कि उन्हें छोड़कर आज कुशल किसकी है। भाव यह कि भरत की कुशल नहीं है। क्योंकि राजा तो युवराजपद रामजी को दे रहे हैं : स्पष्ट कहने में भय है। इसलिए लक्षणा व्यञ्जना से काम लेती है। जो युवराज हो उसी की कुशल है। महाराज जनेश हैं। जिसे चाहें उसे युवराज बनावें। उन्हें रोकनेवाला कौन है। सो रामको चाहते हैं भरत को नहीं।

भयेउ कौसिलहि बिधि अति दाहिन। देखत गरब रहत उर नाहिन॥
देखहु कस न जाइ सब सोभा। जो अवलोकि मोर मनु छोभा॥२॥

अर्थ : विधाता कौसल्या के अत्यन्त अनुकूल हो गये हैं। जिनको देखकर हृदय से अभिमान दूर हो जाता है। आप जाकर सब शोभा देखिये। जिसे देखकर मेरा मन चञ्चल हो उठा है।

व्याख्या : विधाता तो पहिले से ही कौसल्या के दाहिने हैं। सब सौत : सपत्नियाँ उनकी सेवा करती हैं। अब तो अत्यन्त दाहिने हुए हैं। तुम्हें भी सेवा करनी पड़ेगी। राजमाता कौसल्या होगी। तुम्हारे भाग्य से राजमाता होने का सुख उठा चाहता है। आज कौसल्या के देखने से सपत्नियों को हृदय में सोहाग का गर्व न रह जायगा।

मेरे मन में क्षोभ नहीं होता। इससे उछल्ले लोग समझते हैं कि यह मतिमन्द है। सो आज की शोभा देखकर मेरे मन में क्षोभ हो गया। तुम्हारी चेरी होने से मुझे क्षोभ हुआ कि स्वामिनी का अभिमान टूटा तो मेरा भी टूट गया। यह का अनमनी हँसि का उत्तर है।

पूतु बिदेस न सोचु तुम्हारें। जानति हहु बस नाहु हमारें॥
नींद बहुत प्रिय सेज तुराई। लखहु न भूप कपट चतुराई॥३॥

अर्थ : बेटा विदेश में है। तुम्हें उसकी चिन्ता नहीं है। समझती हो कि पति मेरे वश में हैं। तुम्हें तो नींद और तोशक तकिया बड़ा प्रिय है। राजा की कपटचतुरता तो तुम्हें सूझती नहीं।

व्याख्या : आज तुम्हारा बेटा घर होता तो अपने लिए कुछ करता। जिसका बेटा घर में है उसे तो अपने बेटे की चिन्ता है। तुम जानती हो कि महाराज तुम्हारे वश में हैं। पर वे तुम्हारे वश में नहीं हैं। तुम्हें अपने बेटे की चिन्ता होनी चाहिए थी जो परदेश में है। पर हमें चिन्ता है। तुम्हें नहीं है। तुम तो निश्चिन्त

होकर सोना जानती हो। तुम्हें नींद प्रिय है और तोशक तकिया प्रिय हैं। तुम राजा की प्यारी हो। तुम्हारे बेटे के लिए यह सामान होना चाहता था। पर राजा को प्यारी तो कौसल्या हैं। तुम पर प्यार तो केवल दिखाने के लिए है। तुम उस कपटचतुराई को लख नहीं सकती।

सुनि प्रिय बचन मलिन मनु जानी। झुकी[1] रानि अब रहु अरगानी ॥
पुनि अस कबहुँ कहसि घरफोरी। तब धरि जीभ कढ़ावौं तोरी ॥४॥

अर्थ : प्रिय वचन सुनकर और उसे मलिन मन जानकर रानी बिगड़ उठी कि बस अब चुप रह। रे घरफोरी! अब यदि फिर तूने ऐसी बात कही तो पकड़कर तेरी जिह्वा खिंचवा लूँगी।

व्याख्या : सारग्राहिणी वुद्धि भगवती कैकेयी की थी। तुरन्त समझ गयी कि यह रामजी के राजतिलक का प्रिय समाचार दे रही है। पर इसका मन मलिन है। अतः ऐसी प्रिय घटना को इस दृष्टि से देख रही है। ईर्ष्या द्वेषयुक्त नीचबुद्धि तथा मनोमालिन्य पर क्रोध किया। ऐसे दुष्ट वचन को सुनना भी नहीं चाहती। अतः आज्ञा देती हैं कि चुप रह। भविष्य के लिए सचेत किये देती हैं कि मेरे वचन कौसल्या के प्रति ईर्ष्या द्वेष उत्पन्न करनेवाले हैं। पति के प्रति दुर्भाव उत्पन्न करनेवाले हैं। इसलिए तू घरफोरी है। घर फोड़नेवाली बातें बोलती है। इस बार मैं क्षमा करती हूँ। फिर यदि तूने ऐसे वचन मुख से निकाले तो घर फोड़नेवाले के लिए यही दण्ड है कि उसकी जीभ खिंचवा ली जाय : ऐसे अधम मनुज खल कृत जुग त्रेता माँहि।

दो. काने खोरे कूबरे, कुटिल कुचाली जानि।
तिय बिसेषि पुनि चेरि कहि, भरत मातु मुसुकानि ॥१४॥

अर्थ : यह जानकर कि काने लँगड़े और कुबड़े कुटिल और कुचाली होते हैं। तिस पर स्त्री और फिर दासी ऐसा कहकर भरत की माँ ने मुसकरा दिया।

व्याख्या : घर फोड़नेवाला वचन कहने का कारण यही है कि कुलक्षण तुझमें मौजूद है। काने लँगड़े और कुबड़े कुटिल और कुचाली होते हैं। यहाँ प्रसङ्ग कुबड़े का है। स्त्री यदि कुबड़ी हुई तो अधिक अवगुण उसमें चमक उठते हैं। तिस पर चेरी में दुष्कुलप्रसूता होने से उनका अत्यन्त उत्कर्ष हो जाता है। चेरी दुष्कुल प्रसूता के अर्थ में आया है। यथा : कुलवंति निकारहिं नारि सती। गृह आनहिं चेरि निवेरि गती। तुझमें ये कुलक्षण मौजूद हैं। अतः तू ऐसी बात बोली। रामजी का अभिषेक सुनकर प्रसन्न थीं। केवल मन्थरा की अनुचित उक्ति पर क्रोध दिखलाया। बात समाप्त होते ही प्रसन्नता झलक उठी।

---

१. झुकी अर्थात् क्रोध किया। यथा : लखन सुजान झुकि झारै कीरथान।

प्रियबादिनि सिख दीन्हिउँ तोही । सपनेहु तो पर कोपु न मोही ॥
सुदिनु सुमंगल दायकु सोई । तोर कहा फुर जेहि दिन होई ॥१॥

अर्थ : हे प्रिय : बात कहनेवाली मैंने तुझे सीख दी है। तुझ पर मुझे स्वप्न में भी क्रोध नहीं है। सुमङ्गलदायक सुदिन वही है जिस दिन तेरा कहना सच होगा।

व्याख्या : तूने प्रिय वचन : रामजी के तिलक का समाचार सुनाया। तुझे पुरस्कार देना था। सो मैंने तुझे डाँट बतलायी। तुझे शिक्षा देने के लिए इतना ही बहुत है। मैं तुझपर अप्रसन्न नहीं हूँ : वह नैहर से साथ आयी है। इसलिए उसपर बड़ा प्रेम है उसे समझा रही हैं : तूने जो कहा कि : रामहि छाड़ि कुसल केहि आजू. सो ठीक नहीं। राम के अभिषेक से ही सबका कुशल है। अतः उनके अभिषेक का दिन सबके लिए सुमङ्गलदायक सुदिन है। तूने जो समाचार सुनाया वह जिस दिन सच्चा होगा उसे मैं मङ्गलमय मानूँगी। रामहि छाड़ि कुसल केहि आजू का उत्तर।

जेठ स्वामि सेवक लघु भाई । येह दिनकर कुल रीति सुहाई ॥
राम तिलकु जौं साचेहुँ काली । देउँ मागु मन भावत आली ॥२॥

अर्थ : जेठा भाई स्वामी और छोटा भाई सेवक होता है। यह सूर्यकुल की सुन्दर रीति है। यदि सचमुच कल ही रामजी को राजतिलक होना है तो हे आली ! तू मनचाही बात माँग ले। मैं देती हूँ।

व्याख्या : जो तूने महाराज पर आक्षेप किया है : जेहि जनेस देइ जुबराजू। सो उनका दोष कुछ भी नहीं है। इस कुल की यही रीति है। राम जेठे हैं। इसलिए उनका राजतिलक हो रहा है। यदि भरत जेठे होते तो उन्हीं का होता। राज्य में विभाग नहीं होता। वह जेठे भाई को मिलता है। छोटे सेवक हैं। गुजारा के हकदार हैं। यही सुन्दर रीति है। यदि राज्य में भाई भाग पावें तो राज्य छिन्न भिन्न हो जाय। श्रीरामजी के तिलक के लिए मैं कई बार महाराज से कह चुकी हूँ। यथा : भामिनि भयउ तोर मन भावा। घर घर नगर अनंद बधावा। पर कल ही तिलक है। यह मैं नहीं जानती। मुझे तो विश्वास कम पड़ता है। क्योंकि मुझे इसका कुछ भी पता नहीं है। यदि सचमुच कल ही अभिषेक है तो तूने पहिले पहल शुभ समाचार सुनाया है। तू मनचाही हुई बात माँग ले मैं दूँगी। अन्य रानियों ने पहिले पहल इस शुभ समाचार सुनानेवाले को भूषण वसन दिये। पर कैकेयी का स्वभाव महाराज के स्वभाव से मेल खाता है। यह उसी भाँति मनचाहा हुआ पदार्थ देने को प्रस्तुत हैं जिस भाँति चक्रवर्तीजी देते हैं। यथा : दिये बूझि रुचि रघुकुलनंदन।

कौसल्या सम सब महतारी । रामहि सहज सुभाय पिआरी ॥
मो पर करहिं सनेहु बिसेषी । मै कर प्रीति परीछा देखी ॥३॥

अर्थ : रामजी को सब माताएँ कौसल्या के समान सहज स्वभाव से ही पियारी हैं। मुझ पर तो विशेष प्रीति करते हैं। मैंने प्रीति की परीक्षा करके देख ली।

व्याख्या : भगवती कैकेयी कहती हैं कि जो तूने कहा : भयउ कौसिलहिं बिधि अति दाहिन सो तेरी भूल है। रामजी में विशेषता है। उन्हें सब माताएँ कौसल्या की भाँति प्यारी हैं। अतः सब माताओं को विधि समान रूप से दाहिने हैं। कौसल्या को अति दाहिन नहीं मुझे अति दाहिन हैं। क्योंकि रामजी की मुझ पर अधिक प्रीति है। मैंने उनकी प्रीति की परीक्षा करके देख ली है : माता बेटों की प्रीति की परीक्षा बड़ी छोटी छोटी बातों में कर लेती हैं। इस परीक्षा के लिए किसी बड़ी भारी घटना की आवश्यकता नहीं होती।

जौं बिधि जनमु देइ करि छोहू। होहुँ राम सिय पूत पुतोहू ॥
प्रान तें अधिक रामु प्रिय मोरें। तिन्हके तिलक छोभु कस तोरें ॥४॥

अर्थ : यदि ब्रह्मदेव छोह करके जन्म दें तो राम जानकी बेटा पतोहू हों! रामजी मुझे प्राणों से अधिक प्रिय हैं। उनके तिलक में तुझे क्षोभ क्यों है?

व्याख्या : कुबरी ने जो यह कहा था : पूतु बिदेस न सोचु तुम्हारें। इसपर कहती हैं कि क्या राम पर मुझे भरत से कम प्रीति है? राम का वर्ताव ऐसा है कि मैं विधि से मनाती हूँ कि यदि आप छोह करके जन्म दें तो राम जानकी बेटे पतोहू हों। अर्थात् मैं भरत माण्डवी से अधिक राम जानकी से सन्तुष्ट हूँ। मुझे रामजी प्राण से अधिक प्रिय हैं। जिस भाँति दशरथजी ने कहा था : सब सुत प्रीय प्रान की नाईं। राम देत नहि बनै गोसाईं। उसी भाँति भगवती कैकेयी भी कहती हैं कि रामजी मुझे प्राण से भी अधिक प्यारे हैं। उनके राजतिलक का समय तो उत्साह का है। तुझे क्षोभ क्यों है? जो अवलोकि मोर मन छोभा का उत्तर है।

दो. भरत सपथ तोहि सत्य कहु, परिहरि कपट दुराउ।
हरष समय बिसमउ करसि, कारन मोहि सुनाउ ॥१५॥

अर्थ : तुझे भरत की शपथ कपट के छिपाव को छोड़कर सच कह! हर्ष के समय तू विषाद करती है। इसका कारण मुझे बतला।

व्याख्या : भरत पर अत्यन्त प्रेम देखकर मन्थरा को भरत का ही शपथ देती हैं कि तू सच सच बतला दे। तेरी बातों से मुझे मालूम हो रहा है कि तू कपट से कुछ बातें छिपा रही है। इस हर्ष के समय में तुझे विषाद कहाँ से हो आया? इसका कारण होना चाहिए। जो कारण तूने दिया उसमें कोई तत्त्व नहीं है। इसलिए सच्ची बात मुझे बतला दे।

एकहि बार आस सब पूजी। अब कछु कहब जीभ करि दूजी ॥
फोरै जोगु कपारु अभागा। भलेउ कहत दुख रौरेहि लागा ॥१॥

अर्थ : एक ही बार में सब आशा पूरी हो गयी। अब क्या दूसरी जीभ लेकर कुछ कहूँगी। मेरा अभागा कपाल फोड़ने लायक है। जो भला कहते हुए आपको बुरा लग गया।

व्याख्या : मन्थरा कहती है कि बात तो मुझे वही कहनी है। जो पहले कह चुकी हूँ और फिर वैसी बात कहने से आप जीभ खिंचवा लेंगी। अब तो मैं उसी दशा में वैसी बात कह सकती हूँ जब कि मुझे दूसरी जीभ कहीं से मिल जाय। जिसमें आप के खिंचवा लेने पर भी एक जीभ बची रहे। मैं तो यह आशा करके चली थी कि भरत नहीं हैं तो उनकी माँ तो हैं। उन्हें चलकर सब बातें समझाऊँ। सो आप उलटे मुझपर अप्रसन्न हो गयीं। अतः सारी आशा पर पानी फिर गया। आप जीभ खिंचवाने लगीं।

मेरा कपाल फोड़ने लायक है। जीभ खिंचवाने लायक नहीं है। क्योंकि जीभ तो ठीक बात कहती है। उसका अपराध नहीं है। फोड़ने लायक मेरा कपाल है, जिसमें लिखा है कि मैं भले की बात कहूँ तो सुननेवाले को बुरा लगे। मैं भला कहती हूँ और आपको बुरा लग रहा है। तो मेरी किसमत का ही दोष है : इस भाँति अपनी नेकनीयती दिखलाती है।

कहहिं झूठि फुरि बात बनाई। ते प्रिय तुम्हहिं करुइ मैं माई ॥
हमहुँ कहबि अब ठकुरसोहाती। नाहि त मौन रहब दिनु राती ॥२॥

अर्थ : माता ! जो झूठी बातों को सच्ची बनाकर कहें वे ही तुम्हारे प्यारे हैं और मैं कड़वी हूँ। अब मैं भी ठकुरसोहाती कहा करूँगी। नहीं तो दिन रात मौन रहूँगी।

व्याख्या : मैं सच्ची कहती हूँ तो घरफोरी समझी जाती हूँ। जो झूठी झूठी बातों को सच्ची बना बनाकर कहती हैं तुम्हारी हाँ में हाँ मिलाती हैं : राम बहुत अच्छे हैं। सीता बड़ी अच्छी हैं। महाराज तुम्हें ही मानते हैं। इत्यादि बातें कहें वे ही तुम्हें प्रिय हैं। मैं सच्ची बातें कहती हूँ इसलिए मैं अप्रिय हूँ।

अभी तक तो मैं ठकुरसोहाती नहीं कहती थी। पर अब कहनी पड़ी। यदि खरा कहने का स्वभाव छोड़ते न बनेगा तो दिन रात मौन रहूँगी। अब समझ लिया कि इस दरबार में सच्चे का गुजर नहीं है और ठिकाना मुझे दूसरा है नहीं। अतः सिवा इस भाँति आचरण किये अन्य उपाय नहीं है : कैकेयी के प्रिय : विप्र वधू कुल मान्य जठेरी : पर ठकुरसोहाती कहने का दोष लगाती है। जिससे उन लोगों की कही सुनी बातों से रानी का चित्त हटकर उसी की बातों पर विश्वास करें।

करि कुरूप बिधि परबस कीन्हा। बवा सो लुनिअ लहिअ जो दीन्हा ॥
कोउ नृप होउ हमहि का हानी। चेरि छाड़ि अब होब कि रानी ॥३॥

अर्थ : कुरूप बनाकर ब्रह्मा ने मुझे परतन्त्र कर दिया। जो बोया है वही

काटना है। जो दिया है वही मिलना है। कोई भी राजा हो मेरी क्या हानि है। मैं तो चेरी छोड़कर अब क्या रानी होऊँगी।

व्याख्या : काने खोरे कूबरे कुटिल कुचाली जानि का उत्तर देती है कि ब्रह्मा ने कुरूप बना दिया। तभी न गुलामी करती हूँ। भाव यह कि यदि ब्रह्मा रूपवती बनाये होते तो मैं भी रानी हुई होती। दासी क्यों होती ? करै जो कर्म पाव फल सोई। मैंने खोटे कर्म किये हैं। उन्हीं का परिणाम भोग रही हूँ। जो जैसा बोता है उसे वैसा ही फल मिलता है। जो देता है वही पाता है। न जाने कौन पाप किया जो दासी हुई। अब ठकुरसोहती झूठी बातें कहकर अपना परलोक नहीं बिगाड़ूँगी। तिस पर मेरा कोई हानि लाभ नहीं है। चाहे कोई राजा हो। इस समय भी चेरी हूँ। दूसरा राजा होगा तब भी चेरी ही रहूँगी। मेरा कोई स्वार्थ नहीं है। अब कहने का भाव यह कि इस अवस्था में मुझे तो रानी होना नहीं है : भाव यह कि हानि तो उसे है जो रानी से चेरी हुआ चाहती है। यह प्रान ते अधिक राम प्रिय मोरे का उत्तर है।

जारइ जोगु सुभाउ हमारा। अनभल देखि न जाइ तुम्हारा ॥
ता तें कछुक बात अनुसारी। छमिअ देबि बड़ चूक हमारी ॥४॥

अर्थ : मेरा स्वभाव जलाने लायक है। मुझसे तुम्हारा बुरा देखा नहीं जाता। इसी से थोड़ी सी बात चलायी थी। सो मेरी बड़ी भारी चूक को देवी ! क्षमा करो।

व्याख्या : जिसका भला चाहा उसे अपना भला पसन्द नहीं है। लोग बुद्धि से काम लेते हैं। मेरा स्वभाव पड़ गया है कि मैं ऐसे अवसर पर बुद्धि से काम नहीं ले सकती। अतः मेरा स्वभाव जलाने लायक है। मुझसे तुम्हारा अनभल देखते नहीं बनता। इसीलिए रोती हूँ, बिलखती हूँ। नहीं तो मेरा क्या बिगड़ता है। जन्म से तुम्हारा भला देखती आयीं हूँ। सो स्वभाव पड़ गया : भाव यह कि तुम्हारी सखियाँ तुम्हारा अनभल देख सकती हैं। इसलिए तुम्हारी सी बातें बोलती हैं।

जो थोड़ा कहा सो कहा। अब विशेष कहने में भय है। मैं कहने कहाँ पायी। थोड़ी सी बात कहने में तो जीभ निकाली जाने लगी। जो कहा वही चूक हुई। अब क्षमा कर दो। ऐसी चूक फिर न होगी।

दो. गूढ़ कपट प्रिय बचन सुनि, तीय अधरबुधि रानि।
सुर माया बस बैरिनिहि, सुहृद जानि पतिआनि ॥१६॥

अर्थ : गूढ़ कपट भरे हुए मीठे वचन सुनकर स्त्रियों की बुद्धि तो होठों पर ही होती है। रानी देवमाया के वश हो रही थी। अतः वैरिन को मित्र मानकर विश्वास कर गयीं।

व्याख्या : गूढ़ वाणी यथा : कोउ नृप होउ हमहि का हानी। चेरि छाड़ि

अब होब कि रानी। कपट युक्त वाणी यथा : कछुक बात अनुसारी। छमिअ देबि बड़ चूक हमारी। प्रिय वाणी यथा : अनभल देखि न जाइ तुम्हारा। ऐसी वाणी सुनकर रानी अपने निश्चय से हट गयी। स्त्रियों की बातें तो बुद्धिमानो की होती हैं। परन्तु धोखा जल्दी खा जाती हैं। महाराज भी कपट चतुर हैं। मीठी बातें करके तुम्हें ठगा करते हैं। इत्यादि बातें विश्वास के योग्य नहीं थीं। पर कैकेयी ने धोखा खाया। तिसपर रानी देवमाया से मोहित हो रही थी। राम विमुख करनेवाली वैरिन मन्थरा को हितेच्छु समझकर विश्वास कर गयी। मन्थरा की बुद्धि शारदा ने फेरी और कैकेयी की बुद्धि को ब्रह्मा ने फेरा। यथा : बिधि बाम की करनी कठिन जेहि मातु कीन्ही बावरी। इसलिए रानी को सुरमाया बस बतला रहे हैं।

सादर पुनि पुनि पूँछति ओही। सबरीं गान मृगी जनु मोही॥
तसि मति फिरी अहई जसि भावी। रहसी चेरि घात जनु फाबी॥१॥

अर्थ : आदर के साथ बार बार उससे पूछती है। मानों शबरी के गाने पर मृगी मोहित हो गयी हो। जैसा होनहार है वैसी ही बुद्धि फिरी हुई है। चेरी : मन्थरा हर्षित हुई। मानो दाँव ठीक बैठ गया।

व्याख्या : पहिले भी पूछा था परन्तु अनादर से। यथा : का अनमनि हसि कह हँसि रानी। अब आदर के साथ पूछती हैं। बार बार पूछने का भाव यह कि मन्थरा उत्तर नहीं देती है : छमिअ देबि बड़ चूक हमारी कहकर चुप हो गयी। रानी ने पूछा : कारन मोहि सुनाउ। पर इस बात का उसने कुछ उत्तर नहीं दिया। अब रानी आदर के सहित बार बार पूछती हैं। वह फिर भी चुप है। कारण यह कि उसे तो घरफोड़नेवाली बात कहनी है। अति आग्रह से बिना पूछे ही कह देने से फिर बात उखड़ जायगी। इसलिए चुप है। रानी की समझ में यह नहीं आरहा है कि रामजी के अभिषेक में मेरा अनभल क्या है ? इसलिए बार बार पूछती है। मन्थरा ने कह दिया : रामहि छाड़ि कुसल केहि आजू। पूतु बिदेस न सोचु तुम्हारें। फिर भी यह बात मन में ठीक बैठती नहीं। अथवा वचन तो मृदु हैं। पर उसमें कपट छिपा हुआ है।

शबर एक जङ्गली जाति है। उस जाति की स्त्री ऐसा गाना जानती हैं कि सुनकर मृगी मोहित हो जाती है और उसके निकट चली आती है। यहाँ शबरी मन्थरा है। वह : जिमि गवँ तकै लेउँ केहि भाँती। इस भावना को : कोउ नृप होउ हमहिं का हानी कहकर छिपाती है। और अनभल देखि न जाइ तुम्हारा कहकर हितैपिता प्रकट करती है। यही उसका गाना है। इस पर रानी मृगी की भाँति मोहित है। उसके कपट को नहीं समझ रही है। मृगी की भाँति उसके सन्निकट चली आरही है। उसकी माया में फँसा चाहती है।

देवता बुद्धि बिगाड़ देते हैं। सो ब्रह्मदेव बुद्धि के अधिष्ठात्री देवता हैं। भवितव्यता के अनुसार उन्होंने रानी की बुद्धि को पलट दिया है। वैरिन को सुहृद समझकर विश्वास कर रही है और उसके चुप रहने पर बार बार पूछती है।

समझती है कि मेरे भय से नहीं बोल रही है। रानी की यह दशा देखकर मन्थरा प्रसन्न हो गयी कि मेरा घात तो बैठ गया। ऐसी ही परिस्थिति को वह उत्पन्न कर देना चाहती थी।

तुम्ह पूँछहु मैं कहत डेराऊँ। धरेहु मोर घरफोरी नाउँ॥
सजि प्रतीति बहुबिधि गढ़ि छोली। अवध साढ़साती तब बोली॥२॥

अर्थ : तुम तो पूछती हो। पर मुझे कहते डर लगता है। मेरा नाम तुमने घरफोरी रख छोड़ा है। विश्वास जमाकर और बहुत कुछ गढ़कर और छोलकर तब अयोध्या की साढ़ेसाती : दशा मानो बोली।

व्याख्या : भाव यह कि मैं बात वही कहूँगी। उसी का स्पष्टीकरण करूँगी। जो पहिले कहा था। और तुम उस बात को घर का फोड़ना मानती हो। इसी से मैं कहने में डरती हूँ। चरचा छेड़ते ही तो मेरा नाम घरफोरी रख दिया। मैं किस हिम्मत से मनोगत भाव को स्पष्ट करूँ।

पहिले उसने कैकेयी के मन में अपना विश्वास जमाया और तब बहुत प्रकार से गढ़ा और छोला। अपनी चित्तवृत्ति के अनुकूल रानी को मनोवृत्ति को बनाना गढ़ना है और उदार भावनाओं को उनके मन से दूर करना ही छोलना है। इन कार्यों को भली भाँति समाप्त करके तब वह मुख्य विषय पर आयी। कवि उसकी उपमा अयोध्या की साढ़ेसाती शनैश्चरी दशा से देते हैं। यह दशा दुःसह दुःखदायिनी होती है। यथा : समय साढसाती सरिस, नृपहिं प्रजहिं प्रतिकूल। रा. प्र.। पहिले सरस्वती को : हरखि हृदय कोसल पुर आई। जनु ग्रहदसा दुसह दुखदाई कहा था। अब मन्दमति मन्थरा के बोलने की उपमा अवध की साढ़ेसाती दशा के बोलने से दे रहे हैं। मन्थरा की त्रिभङ्गी मूर्ति है और साढ़ेसाती भी तीन अढ़ैया की होती है।

प्रिय सिय रामु कहा तुम्ह रानी। रामहि तुम्ह प्रिय सो फुरि बानी॥
रहा प्रथम अब ते दिन बीते। समउ फिरें रिपु होहिं पिरीते॥३॥

अर्थ : रानी! तुमने पहिले कहा था कि सीता और राम तुम्हें प्रिय हैं और तुम राम को प्रिय हो। यह बात सच्ची है। परन्तु पहिले यह बात थी। अब वे दिन बदल गये। समय के पलटा खाने से अपने प्यारे भी शत्रु हो जाते हैं।

व्याख्या : रानी की बड़ी आस्था है कि सीता और राम मुझे प्यारे हैं और मैं उन्हें प्रिय हूँ। मैंने परीक्षा करके देख लिया है। दूसरे के कहने से मैं इसके विपरीत नहीं मान सकती। इसलिए मन्थरा उस बात को अङ्गीकार करती है कि यह बात ठीक है। परन्तु यह तो भूतकाल की बात है। तब तुम्हारा समय : जमाना था। अब तो तुम्हारे वे दिन नहीं रह गये। तुम्हारी तो जड़ उखड़ा चाहती है। शासनाधिकार महाराज के हाथ से निकलकर राम के हाथ में जाना चाहती है। जिस राम को प्राणों से प्रिय मान रही हो वे ही तुम्हारे शत्रु हो जायँगे। जब तुम्हारा समय

था तब तुम्हारे प्रेमपात्र बनने में ही कुशल था। अतः वे प्रिय बने हुए थे। पर अब तो उनकी आज्ञा चलेगी। महाराज की न चलेगी। तब वे तुम्हारी परवाह क्यों करने लगे। तुम्हें अपनी आज्ञा में हस्तक्षेप करते देखकर तुम्हारे शत्रु हो जावेंगे। राम पर ही यह बात नहीं है। समय के पलटने पर अपने प्रिय ही शत्रु हो जाते हैं। यही संसार का नियम है। जबतक महाराज के हाथ में शासन है तबतक तुम्हारा समय है। महाराज के हाथ से शासनाधिकार के निकलते ही तुम्हारा समय पलटा खा जायगा।

भानु कमल कुल पोषनि हारा। बिनु जर जारि करइ सोइ छारा ॥
जरि तुम्हारि चह सवति उखारी। रुँधहु करि उपाय बर बारी ॥४॥

अर्थ : सूर्य कमलकुल को पोषण करनेवाला है। पर बिना जड़ का हो जाने से उसी को जलाकर छार कर देता है। तुम्हारी जड़ को तुम्हारी सौत उखाड़ना चाहती है। उसे उपाय के श्रेष्ठ बाड़ लगाकर रूँधो।

व्याख्या : जड़ बनी रहने से ही सूर्य कमलकुल के पोषक हैं। जड़ उखड़ने पर वही शोषक हो जाते हैं। इसी भाँति जबतक तुम्हारी जड़ बनी हुई है महाराज का शासन चल रहा है तबतक बराबर रामजी तुम्हारा प्रिय आचरण करते रहेंगे। जिस दिन महाराज का शासनकाल समाप्त हुआ तुम्हारी जड़ उखड़ जायगी। उसी दिन से वही रामजी शोषक हो जावेंगे। रामजी भी सूर्यकुल के हैं। क्या अपने कुल की परम्परा छोड़ देंगे ?

रामजी का युवराज होना और तुम्हारा जड़ उखड़ना एक बात है। अपने बेटे के हाथ शासनाधिकार दिलाकर तुम्हारी सौत : कौसल्या तुम्हारी जड़ उखाड़ा चाहती है। अतः अपनी जड़ की रक्षा करो। उसे उपाय की बाड़ लगाकर रूँधो। ऐसा उपाय करो कि तुम्हारी जड़ तक सौत की पहुँच न हो। अब विचारणीय यह है कि कैसा उपाय किया जाय कि तुम्हारा अधिकार अक्षुण्ण बना रहे और तुम्हारी सौत का प्रयत्न निष्फल हो।

दो. तुम्हहि न सोचु सोहाग बल, निज बस जानहु राउ।
मन मलीन मुहु मीठ नृपु, राउर सरल सुभाउ ॥१७॥

अर्थ : तुम्हें सोहाग के बल से सोच नही है। तुम जानती हो कि राजा मेरे वश में हैं। पर राजा मुँह के मीठे और मन के मलिन हैं और आपका स्वभाव सरल है।

व्याख्या : तुम धोखे में हो। तुम्हारे मन में सोहाग का बल है। इसीसे तुम्हें चिन्ता नहीं है : सोहाग पति के प्रिय होने को कहते हैं। तुम जानती हो कि महाराज मेरे वश में हैं। पर राजा किसी के मित्र नहीं होते : राजा मित्रं केन दृष्टं श्रुतं वा। वे तुम्हारे वश में नहीं हैं। पर जिसे सोहागबल नहीं है उसे चिन्ता है। यदि कहो

कि महाराज का व्यवहार इतना मधुर है। उसपर कहती हैं कि महाराज मिठबोल्ले हैं। मीठीमीठी बातें करते हैं। पर मन उनका मलिन है। आप नहीं लख सकतीं। क्योंकि आपका स्वभाव सरल है। आपमें गम्भीरता नहीं है : पहिला काम मन्थरा ने यह किया कि राजा पर से कैकेयी की आस्था के हटाने का प्रयत्न किया। क्योंकि यदि ऐसा न हुआ तो उसके सारे प्रयत्न ही विफल हो जावेंगे। सरल स्वभाव कह कर रानी की प्रशंसा करती है जिसमें विश्वास कर जाय। नहीं तो राजा को मलिन मन नहीं मानेगी।

चतुर गँभीर राम महतारी। बीचु पाइ निज बात सँवारी ॥
पठये भरतु भूप ननिऔरें। राम मातु मत जानब रौरें ॥१॥

अर्थ : रामजी की माता चतुर और गम्भीर हैं। मौका पाकर अपनी बात सँवार ली। राजा ने जो भरत को ननिहाल भेज दिया है उसे आप जान रखिये कि रामजी की माता की सलाह से भेजा है।

व्याख्या : रामजी की माता चतुर और गम्भीर हैं। उनकी बातों का मर्म मिलना कठिन है। वे राम की महतारी हैं। जब उन्होंने देखा कि महाराज की इच्छा है कि राज्यभार किसी पुत्र को सौंप दें तो उन्होंने अपना काम सँवार लिया। रामजी के राजतिलक की तैयारी होने लगी। तुम तो सरल हो। न तुम्हारे में चतुराई है न गम्भीरता है। तुम्हें अपने बेटे की चिन्ता नहीं है। आज भरत होते तो यह कुछ भी क्या होने पाता। इस बात को महाराज समझते हैं। इसलिए भरत को ननिहाल भेज दिया। यह रामजी की माता का मन्त्र है कि भरत को ननिहाल भेज दो। तब रामजी के तिलक में कोई कण्टक न रह जायेगा।

सेवहिं सकल सवति मोहि नीकें। गरबित भरत मातुबल पी कें ॥
सालु तुम्हार कौंसिलहि माई। कपट चतुर नहि होइ जनाई ॥२॥

अर्थ : सब सौत तो मेरी भलीभाँति सेवा करती हैं। पर भरत की माता पति के बल से अभिमान करती है। इस बात का तुम्हारी ओर से कौसल्या को बड़ा दुःख है। पर कपट में चतुर हैं। इसलिए प्रकट नहीं होने देतीं।

व्याख्या : पट्टाभिषिक्ता महिषी होने के कारण सब सौतें कौसल्याजी की सेवा टहल करती हैं। एक तुम हाजिरी नहीं बजाती। तुम्हें पति की प्यारी होने का बल है। इसलिए तुम उन्हें नहीं गिनती। इस बात का कौसल्या को साल है : जिसे साल पड़ जाती है उसे ऐसा कष्ट होता है कि श्वास नहीं लिया जाता। यदि कहो कि उनका व्यवहार तो बड़े प्रेम का है। इसपर कहती हैं कि कौसल्या कपट में चतुर हैं। तुम्हारे समान सीधी बेवकूफ नहीं हैं। अपने साल को प्रकट नहीं होने देतीं। अतः उनको तुमसे बुरा मानने के लिए यथेष्ट कारण है। उनका बेटा राजा हो तब यह साल मिटे।

राजहि तुम्ह पर प्रेमु बिसेखी । सवति सुभाउ सकइ नहि देखी ॥
रचि प्रपंचु भूपहि अपनाई । राम तिलक हित लगन धराई ॥३॥

अर्थ : राजा का तुम पर अधिक प्रेम है। सौत का स्वभाव है। इसे वे देख नहीं सकतीं। अतः प्रपञ्च रचकर राजा को अपने हाथ में कर लिया और रामजी के तिलक के लिए लग्न निश्चय करा लिया।

व्याख्या : राजा का प्रेम तो सब पर है। केवल तुम्हारे पर ही नहीं है। हाँ तुम्हारे ऊपर अधिक प्रेम है। वह प्रेमाधिक्य सौत से देखा नहीं जाता। यह स्त्रीजाति का स्वभाव है। कौसल्या को मैं दोष नहीं देती। कौसल्या स्त्री चरित्र में पण्डित हैं। राजा उनके हाथ में नहीं थे। पर माया रचकर राजा को हाथ में कर लिया। अतः रामजी के राजतिलक के लिए लग्न निश्चय करा लिया। तुम्हें पता भी नहीं।

यहु कुल उचित राम कहुँ टीका । सबहि सुहाइ मोहि सुठि नीका ॥
आगिल बात समुझि डरु मोही । देउ दैउ फिरि सो फलु ओही ॥४॥

अर्थ : इस कुल में रामजी को टीका होना उचित है। सबको अच्छा लग रहा है और मेरे लिए तो बहुत अच्छा है। अगली बात समझकर मुझे डर हो रहा है। पर दैव वह फल लौटकर उन्हीं को दे।

व्याख्या : यदि कहो कि यह सब बात सही। पर जो हो रहा है वह तो उचित ही हो रहा है। जेठ स्वामि सेवक लघु भाई। यह दिनकर कुल रीति सोहाई। और सबको प्रिय हैं। इसपर कहती है कि मुझे तो बहुत ही अच्छा है : जिसमें यह न समझें कि रामतिलक से इसे दुःख है। तुम्हारा जिसपर प्रेम है। उसी को राजतिलक मिल रहा है। इसलिए मेरे सर्वथा अनुकूल है। पर भविष्य देखकर मुझे डर हो रहा है। टीका होने के बाद तुम्हारी क्या दशा होगी। उसे मैं सोचती हूँ। भगवान् करे कि यह दशा उसी की हो जिसने यह माया रची है : ऐसा कहकर कैकेयी को उसके ऊपर बड़ी भारी विपत्ति आने का डर दिखा रही है।

दो. रचि पचि कोटिक कुटिलपन, कीन्हेसि कपट प्रबोधु ।
कहिसि कथा सतु सवति कै, जेहि बिधि बाढ़ बिरोधु ॥१८॥

अर्थ : करोड़ों कुटिलताओं को रचकर और पच्चीकारी करके कपट का ज्ञान कराया और सौ सौतों की कथा कही। जिस भाँति विरोध बढ़े।

व्याख्या : बहुत सी नयी झूठी झूठी कुटिलता की बातें गढ़ीं। कुछ सच्ची बातों में झूठ की पच्चीकारी की। उस कपट से अपरिचित रानी को कपट कराया। यथा :

कहा उचित लै कीजिये जौ अपनो संहार।
बढ़त नहाए गंगहू ज्वर को वेग अपार ॥१॥

परमारथ मुखते कहत हिय स्वारथ भरिपूर।
ऐसे के मुंह दीजिये भरिभरि मूठी धूर ।।२।।
चहत राज निजपूत हित कहत ताहि कुल धर्म।
किमि समुझै तुमसे सुहृद कुटिल सौत को मर्म ।।३।।
पति करते निज सौत को जो होवै अपकार।
तौ याते बढ़ि आन नहिं आनँद एहि संसार ।।४।।
कौशल्या सोई चहत करन आज खिलवार।
नृपके करते ही तुम्हें बोरन को मझधार ।।५।।
कपट चाल कोटिन चलत लखिन सकहु तुम एक।
निज आँखिन्ह तिनको लखो अजहूँ सकहु तुम छेक ।।६।।
मुख मीठी केतिक कहैं, करैं वह्नि सी प्रीति।
कठिन वैर हिय में धरैं, सदा सौत की रीति ।।७।।
स्वार्थमुत्सृज्य यो दम्भी सत्यं ब्रूते सुमन्दधीः।
स स्वार्थाद् भ्रश्यते नूनं युधिष्ठिर इवापरः ।।

जो दम्भी मतिमन्द स्वार्थ छोड़कर सच बोलता है वह निश्चय स्वार्थ से हाथ धोता है। पं. त.। तब सौ[1] सौतों की कथा ऐसी विधि से कही जिसमें विरोध बढ़े। कोटि शब्द का अर्थ प्रकार भी होता है। अतः यह अर्थ भी किया जा सकता है कि अनेक प्रकार के कुटिलपन की बातें गढ़ी। ऐसा अर्थ करने से कोटिक शब्द में अर्थवाद न मानना पड़ेगा।

भावी बस प्रतीति उर आई। पूंछ रानि पुनि सपथ देवाई ।।
का पूंछहु तुम्ह अबहु न जाना। निज हित अनहित पसु पहिचाना ।।१।।

अर्थ: होनहार के वश होने से मन में विश्वास हो गया। रानी शपथ दिलाकर फिर पूछने लगी। मन्थरा ने कहा: क्या पूछती हो। तुमने अब भी नहीं समझा। अपना हित अनहित तो पशु भी पहचानते हैं।

व्याख्या: बात मन में बैठने लायक नहीं थी। महाराज दशरथ को मलिन मन और रानी कौसल्या को कपट चतुर कौन मानेगा? पर होनहार बुरा था। रानी के मन में विश्वास हो गया। वह फिर शपथ देकर पूछने लगी कि वह आगिल काज कौन है। जिसे समझकर तुझे डर लग रहा है। मन्थरा बोली कि ऐसी बात पूछी जाती है जो समझ में न आती हो। यह बात तो अत्यन्त स्पष्ट है। अपना हित कौन है और अनहित कौन है। इतनी बात तो पशु भी प्रमाण द्वारा जान लेता

---

१. राजा चित्रकेतु को एक रानी से एक लड़का हुआ। सौ रानियों में से और किसी को नहीं हुआ। सो शेष रानियों ने सौतिया डाह के कारण उस लड़के को विष देकर मार डाला। क्योंकि समय पाकर वही राजा होता और उसी की माँ राजमाता होती। मन्थरा सौतिया डाह को पुराण से सिद्ध कर रही है।

है। हाथ में हरी घास लिये हुए पुचकारते हुए सज्जन की ओर पशु दौड़े आते हैं और दण्ड हाथ में लिये डाँटते हुए क्रोधी को देखकर भाग खड़े होते हैं। प्रमाण से ही बात जानी जाती है। यहाँ स्पष्ट बात है कि यदि उन लोगों को हृदय में कपट नहीं है और रामजी के तिलक से आपके अनिष्ट की भावना नहीं है। तो आप से अभिषेक की बात छिपायी क्यों गयी। छोटी छोटी बात महाराज आप से कह दिया करते हैं और इतनी बड़ी बात जिसमें राज्य शासन में उलट फेर हो उसे आपसे नहीं कहा।

भयेउ पाख दिन सजत समाजू। तुम्ह पाई सुधि मोहि सन आजू॥
खाइअ पहिरिअ राज तुम्हारें। सत्य कहें नहिं दोषु हमारें॥२॥

अर्थ : पन्द्रह दिन समाज सजते हो गया और तुमने आज समाचार मुझसे पाया। तुम्हारे राज्य में खाती हूँ और पहनती हूँ। सत्य कहने से मुझे दोष नहीं है।

व्याख्या : समाज सजने में इतनी तत्परता से काम लिया गया है कि देखने से यही मालूम होता है कि इतनी तैयारी के करने में पन्द्रह दिन लगे होंगे। अतः मन्थरा को कहने का मौका मिल गया कि पन्द्रह दिन से तैयारी हो रही है और तुम्हें पता नहीं है। महाराज ने तुमसे चरचा तक नहीं की। उचित तो यह था कि मैं तुमसे सुनती कि रामजी को तिलक होनेवाला है। सो तुम चौदह दिन की तैयारी के बाद मुझसे रामजी के तिलक का समाचार आज सुन रही हो : मन्थरा वस्तु स्थिति पर पर्दा डाल रही है। आज ही प्रस्ताव हुआ है। आज ही तैयारी हुई है। इस बात का परिज्ञान होने से महाराज दशरथ और रानी कौसल्या निर्दोष सिद्ध हो जावेंगी। इसलिए उसने पन्द्रह दिन से तैयारी होने की बात गढ़ ली।

अब कहती है कि तुमसे जो किसी ने चरचा नहीं की इसका कारण है। राज्य की गुप्त बात के प्रकाश करने में दोष है। किसी को क्या पड़ी है कि इस बात की तुम से चरचा करके महाराज तथा रानी कौसल्या का कोपभाजन बने। पर मैं तो तुम्हारे राज में खाती पहनती हूँ। मैं दूसरे को क्या जानूँ। अतः मुझे सच्ची बात कह देने में दोष नहीं है।

जौं असत्य कछु कहब बनाई। तौ बिधि देइहि हमहि सजाई॥
रामहि तिलकु कालि जौ भयेऊ। तुम्ह कहुँ बिपति बीजु बिधि बयऊ॥३॥

अर्थ : जो मैं कुछ झूठ बनाकर कहूँगी तो मुझे विधाता दण्ड देंगे। यदि कल रामजी को तिलक हुआ तो तुम्हारे लिए ब्रह्मा ने विपत्ति का बीज बो दिया।

व्याख्या : पन्द्रह दिन से समाज सजने की बात बिल्कुल झूठ है और उसी पर इसके : मन्थरा का सब मायाजाल की रचना खड़ी है। अतः उसे शपथ लेकर दृढ़ कर रही है। कहती है कि मुझे परलोक का भय है। यदि मैं आपसे कुछ झूठ बनाकर कहूँगी तो मुझे परमात्मा के यहाँ से दण्ड मिलेगा। अतः मैं सत्य कहती हूँ और लोग राजा का खाते पीते हैं वे कभी सच : सत्य न कहेंगे।

मन्थरा ने पहले से ही मन में वह विधि ठीक कर रक्खी है। जिससे रात में ही बात बिगड़ जाय। अतः कहती है कि कल जो किसी भाँति रामजी को राजतिलक हो गया तो यह समझो कि ब्रह्मा ने तुम्हारे लिए विपत्ति का बीज बो दिया। ब्रह्मा का बोया बीज कभी निष्फल नहीं जा सकता। बीज जिस समय बोया जाता है उस समय तो वह मिट्टी से ढक जाता है पर काल पाकर वह फल देता है। इसी भाँति राजतिलक के समय तुम्हें विपत्ति का पता न लगेगा। फल तो उसके बाद होगा।

रेख खँचाइ कहउँ बलु भाखी। भामिनि भइहु दूध कइ माखी॥
जौं सुत सहित करहु सेवकाई। तौ घर रहहु न आन उपाई॥४॥

अर्थ: मैं रेखा खींचकर बलपूर्वक कहती हूँ कि सुन्दरि! तुम दूध की मक्खी हो गयी। यदि बेटे के साथ सेवकाई करोगी तो घर में रहने पाओगी। नहीं तो दूसरा उपाय घर रहने का न रह जायगा।

व्याख्या: अपने कथन की सचाई के प्रभाव के लिए रेखा खींची जाती है। यथा: पूँछेउँ गुनिन्ह रेख तिन्ह खाँची। भरत भुआल होहिं यह साँची। और फल के निश्चय के लिए बल का कथन किया जाता है। यथा: चला प्रभंजन सुत बल भाखी। सो मन्थरा रेखा खींचकर और बल कथन पूर्वक कहती है कि तुम दूध की मक्खी हुआ चाहती हो। राजकाज में हस्तक्षेप करने का तुम्हारा स्वभाव है। महाराज के शासनकाल में तो तुम्हारा हस्तक्षेप चल जाता है। पर राम के राज सुखरूपी दूध में जहाँ तुमने छेड़छाड़ की तहाँ मक्खी की भाँति निकालकर बाहर फेंक दी जाओगी। तुम्हारी बात नहीं मानी जायगी। रानी होकर दासी की भाँति बेटे के सहित सेवा करनी होगी। न करोगी तो घर में रहने न पाओगी।

दो. कद्रूँ बिनतहि दीन्ह दुखु, तुम्हहि कौसिलाँ देब।
भरतु बंदि गृह सेइहहिं, लखनु रामु के नेव[१]॥१९॥

अर्थ: कद्रू ने विनता को दुःख दिया। तुम्हें कौसल्या देंगी। भरत बन्दीगृह में रक्खे जावेंगे और लक्ष्मण तो रामजी के हिस्से हैं।

व्याख्या: कद्रू: नाग की माता और विनता: गरुड़ की माता ये दोनों सौत थीं। विनता ने कहा कि सूर्य के घोड़े की पूँछ श्वेत होती है। कद्रू ने कहा कि बाजी लगाओ। निश्चय पूँछ काली होती है। बाजी लगी कि जो हारे वह दासी होकर रहे। कद्रू ने अपने पुत्रों को आज्ञा दी कि जाकर सूर्य के घोड़े की पूँछ में लिपट जायँ। वही हुआ। पूँछ काली दिखाई पड़ी। विनता को कद्रू की दासी बनकर बहुत दिन रहना पड़ा। जब गरुड़ को देखकर सर्प भागे तब वे दासत्व से विनिर्मुक्त हुईं।

---

१. नेम का तद्भव रूप नेव है। प्राकृत के नियमानुसार 'म' का 'व' हो जाता है। नेम का अर्थ भाग: हिस्सा है। मोनुनासिको वोवा।

इतना बड़ा दुःख विनता को कद्रू ने केवल सौत होने के कारण से दिया। तुम्हें भी कौसल्या दासी बनाकर रक्खेगी। भरत बन्दीगृह में बन्द होंगे। राजविद्रोह का सन्देह उनपर किया जायगा। लक्ष्मण तो राम के अंग : हिस्से में ही ठहरे। यही होना है। इसी बात को मैं डरती हूँ। मोनुनासिको वोवा।

कैकय सुता सुनत कटु बानी। कहि न सकइ कछु सहमि सुखानी ॥
तन पसेउ कदली जिमि काँपी। कुबरीं दसन जीभ तब चाँपी ॥१॥

अर्थ : राजा केकय की बेटी कड़ुई वाणी सुनकर कुछ कह न सकी। डरकर सूख गयीं। शरीर में पसीना आगया। केले की भाँति काँपने लगी। तब कूबरी ने दाँतों तले जीभ दबायी।

व्याख्या : रानी कैकेयी राजा की बेटी है। भरतजी का कारागार में बन्द होना सुनकर सहम गयीं। हार्दिक आतङ्क का सद्यः फल होता है। भय से सूख सी गयीं। कहि न सकइ कछु से वचन की दशा कही। सहमि सुखानी से मन की दशा कही। तन पसेउ कदली जिमि काँपी से तन की दशा कही। कैकेयी को काँपते देखकर समझी कि मूर्च्छित हुआ चाहती है। तब उसने दाँत तले जीभ दबायी। इस मुद्रा से निषेध करती है कि क्या कर रही हो? इससे तो सब बात बिगड़ जायगी। मन्थरा डरी कि यदि कहीं यह मूर्च्छित हुई तो सब भेद खुल जायगा और फिर तो मैं नहीं बच सकती।

कहि कहि कोटिक कपट कहानी। धीरजु धरेहु प्रबोधिसि रानी ॥
फिरा करमु प्रिय लागि कुचाली। बकिहि सराहइ मानि मराली ॥२॥

अर्थ : भाँति भाँति की कपट कहानियाँ कहकर उसने रानी को समझाया कि धीरज धरो। भाग्य ने पलटा खाया। कुचाल अच्छा लगा। बगली को हंसिनी मानकर सराहने लगी।

व्याख्या : मन्थरा जानती है कि रानी कैकेयी कपट करने पर शीघ्र राजी न होगी। काने खोरे कूबरे कुटिल कुचाली जानि कहकर पहिले ही इसने मुझ पर कुटिल कुचाली होने की आशङ्का की थी। कुटिल कुचाल को यह बुरा समझती है। पर इसे इसी रास्ते पर उतारना है। अतः समझाती है कि उपाय[1] से सब सधेगा : अभी उपाय नहीं कहा। एक एक भूमिका ठीक करके एक एक बात कहती है। कपट करने पर राजी हो तो उपाय कहें। नहीं तो मैं फाँसी पड़ जाऊँगी। जब यही जोभ खिंचवाती थी तो दूसरे कौन सी दुर्दशा करेंगे क्या ठिकाना? अतः धीरज

---

१. यथा : विपति माँझ धीरज धरै, दृढ़ ह्वै करै उपाय।
पुरुषारथ ताको निरखि, दैवहु जाय डराय ॥१॥
उलटि परै परपञ्च सब, बिगरी हू बनि जाय।
धीरज धरि उर सजग ह्वै, जौ कोउ करै उपाय ॥२॥

देती है। यहाँ पुराण का उदाहरण नहीं मिला तो कहानियाँ कहने लगी जिनमें कपट से काम सधा हो। ये कहानियाँ यदि इसके गले उतर जायँ तो पता चल जायगा कि अब यह कपट करने पर राजी हो गयी। अतः कपट की अनेकानेक कहानियाँ सुनायी।

कैकेयी भी कहानी सुनकर बकी को मराली मान गयी। ऐसी निष्कपट को कपट अच्छा लगा। भाग्य फिर गया। कपट से चिढ़नेवाली कपट पर रीझने लगी। बड़े ध्यान से कहानी सुनने लगी। जब कपट अच्छा लगने लगे तो समझना चाहिए कि भाग्य फिरा है। कूबरी अति खल थी। सो उसे क्षीर नीर को विवेक करनेवाली हंसी मान लिया। लगी कुबरी की प्रशंसा करने।

सुनु मंथरा बात फुरि तोरी। दहिन आँखि नित फरकइ मोरी ॥
दिन प्रति देखहुँ राति कुसपनें। कहउँ न तोहि मोह बस अपनें ॥३॥

अर्थ : मन्थरा सुन! तेरी बात सच है। मेरी दाहिनी आँख नित्य फड़क रही है। प्रतिदिन रात को मैं बुरे बुरे सपने देखती हूँ और अपनी बेवकूफी से तुझे नहीं बतलाती।

व्याख्या : स्त्री का दाहिना अङ्ग फड़कना अपशकुन है। सो उसके फल को कुबरी की मन्त्रणा के अनुकूल समझने लगी। राम जानकी ने अपने सगुन का ठीक अर्थ लगाया। यह अपने अपशकुन को ठीक नहीं पढ़ सकी। कहने लगी कि मन्थरा! तेरी बात ठीक है मेरी नहीं। सचमुच राम के तिलक से मुझ पर विपत्ति का पहाड़ टूट पड़ेगा।

होनहार खराब होने ही से मैं बुरे सपने देखती थी। तुझसे कहे होती तो तू तभी से कोई न कोई उपाय सोचती। मेरी मूर्खता कि मैंने तुझसे नहीं कहा। तू मेरी ऐसा हित चाहनेवाली बुद्धिमती है मुझे तुझसे कहना चाहिए था। सो दूसरों से कहा तुझसे नहीं। बुरे सपने का फल अनिष्ट समाचार श्रवण है। यथा : लखन सपन यह नीक न होई। कठिन कुचाह सुनाइहि कोई।

काह कहौं सखि सूध सुभाऊ। दाहिन बाम न जानउँ काऊ ॥४॥

दो. अपने चलत न आजु लगि, अनभल काहु क कीन्ह।
केहि अघ एकहि बार मोहि, दैअँ दुसह दुखु दीन्ह ॥२०॥

जरौ शील शुभ गति सुजस, जौ बिगरै निज काज।
राज सँभारेहि पै बनै, कीरति सुकृत समाज ॥३॥
कियो घोर संग्राम मधु, कैटभ जीति न जाय।
रिपुवध मान्यौ धर्म हरि, शील संकोच विहाय ॥४॥
अगणित लोगन की बनी, बिगरी किये उपाय।
यातें करहु उपाय तुम, सब विधि हृदय दृढाय ॥५॥

अर्थ : क्या कहूँ सखी ! मेरा स्वभाव सीधा है। हित अनहित कुछ समझ में नहीं आता। अपने चलते तो आजतक मैंने किसी का बुरा नहीं किया। नहीं जानती कि किस पाप से दैव ने एक बारगी मुझे दुःसह दुःख दिया।

व्याख्या : जो जो बातें मन्थरा ने कही हैं। वे सब गले उतर गयीं। उसे अब सखी का पद मिला। उसने कहा था : राउर सरल सुभाउ। हित अनहित पंछी पसु जाना। उसे ठीक समझते हुए अपने को सूधी मान लिया। यह भी मान गयी कि मैं हित अनहित नहीं पहिचानती। चेरी के कहने से संसार दूसरा दिखाई पड़ने लगा। जो मित्र थे वे शत्रु दिखाई देने लगे और परम शत्रु चेरी हितचिन्तक मालूम होने लगी।

रानी कहती है कि मुझे शत्रु मित्र की पहिचान नहीं थी। यह बात ठीक है। पर जहाँ तक मेरा बस चला मैंने किसी का बुरा नहीं किया। और अपकार करना ही बड़ा भारी पाप है। तब किस पाप से मैं दासी हो रही हूँ और बेटा बन्दी हो रहा है। मैंने सौत भाव नहीं रक्खा। निर्दोष को दण्ड मिल रहा है। पहिले से कभी कुछ दण्ड मिला होता तो सहने की शक्ति भी होती। एक बारगी इतना बड़ा दण्ड तो सर्वथा असह्य है।

नैहर जनमु भरब बरु जाई। जिअत न करबि सवति सेवकाई ॥
अरि बस दैउ जिआवत जाही। मरनु नीक तेहि जीवन चाही ॥१॥

अर्थ : नैहर : मैके में जाकर बल्कि जिन्दगी बिता दूँगी। परन्तु जीते जी सौत की गुलामी न करूँगी। जिसे दैव शत्रु के वश में रखकर जिलाता है उसके जीने से मरना अच्छा।

व्याख्या : नैहर में अपना कोई हक नहीं होता। इसलिए नैहर में जीवन यापन करने को स्त्रियाँ बड़े हेय दृष्टि से देखती हैं। रानी कहती है कि मुझे मैके जाकर जीवन यापन करना स्वीकार है। पर सौत की दासी बनकर यहाँ मैं नहीं रह सकती। मन्थरा ने समझा दिया है कि : जौ सुत सहित करहु सेवकाई। तौ घर रहहु न आन उपाई। इसी पर रानी कह रही है कि मैं घर न रहूँगी। नैहर चली जाऊँगी और वहीं जीवन का शेष काल व्यतीत कर दूँगी।

सौत शत्रु होती हैं। तुम्हारा कहना ठीक है। शत्रु के वश में रहकर कौन जीना चाहेगा। पर दैव पर किसी का चारा नहीं है। यदि दैववश किसी को जीना पड़े तो उससे मरना अच्छा। परवश होकर जीना अच्छा नहीं। पदे पदे अपमान सहना पड़ता है। फिर शत्रु के वश में रहकर जीना कौन चाहेगा ?

दीन बचन कह बहुबिधि रानी। सुनि कुबरीं तिय माया ठानी ॥
अस कस कहहु मानि मन ऊना। सुखु सोहागु तुम्ह कहुँ दिन दूना ॥२॥

अर्थ : बहुत प्रकार से रानी दीन वचन कहने लगी। सुनकर कुबरी ने

त्रियाचरित्र फैलाया। बोली : जी को छोटा करके ऐसा क्या कह रही हो। तुम्हें सुख सोहाग नित्य दूना है।

व्याख्या : रानी होकर दीन वचन कह रही है। पति का भरोसा टूट गया। पुत्र का कुशल नहीं दिखायी पड़ रहा है। रानी अपार चिन्ता में पड़ी है कि क्या करूँ। कहाँ जाऊँ। मेरा कोई नहीं है। सब लोग कौशल्या की ओर मिले हुए हैं। एक मन्थरा ही मेरी शुभचिन्तक है। उस बिचारी का किया क्या होगा ? मन्थरा ने समझ लिया कि अब यह दीन हो गयी। अब यह सब कुछ करेगी। पहिले उसने रानी को अथाह में डाल दिया। अब सहारा देने के लिए त्रियाचरित्र फैलाया। कहने लगी कि ऐसी बातें न करो। अपने जी को छोटा क्यों करती हो ? तुम्हारा सुख और सोहाग नित्य दूना होता जायगा। अभी तो तुम्हारे पति राजा हैं। जब पुत्र युवराज होगा तब सुख सोहाग दूना हो जायगा।

अथाह में पड़ा हुआ जीव तिनके का सहारा पकड़ता है और उसे छोड़ना नहीं चाहता। इसलिए अब वह रानी को सहारा पकड़ा रही है। नैहर जनम भरब बरु जाई का उत्तर देती है : अस कस कहहु मानि मन ऊना। और जिअत न करबि सवति सेवकाई का उत्तर : सुखु सोहाग तुम कहुँ दिन दूना कहकर देती है।

जेहिं राउर अति अनभल ताका। सोइ पाइहि येहु फलु परिपाका ॥
जबतें कुमत सुना मैं स्वामिनि। भूख न बासर नींद न जामिनि ॥३॥

अर्थ : जिसने आपका बुरा ताका है। उसी को यह पका हुआ फल मिलेगा। जब से मैंने हे स्वामिनि ! यह कुबुद्धि सुनी तब से मुझे न दिन को भूख लगती है और न रात को नींद लगती है।

व्याख्या : अब : अरि बस दैउ जिआवहिं जाही का उत्तर देती है कि तुम्हारे अनभल ताकनेवाले की ही : उसके कर्मफल रूप में : यह दशा होगी। उसकी पेंच उलटी पड़ जायगी। मैं उस-उद्योग में लगी हूँ। मुझे बड़ी चिन्ता है। जब से मैंने ये सब बातें सुनी तब से मारे चिन्ता के न दिन को भूख लगती है और न रात को नींद लगती है। ऐसा कहकर फिर उसी भावना को दृढ़ कर रही है : पन्द्रह दिन तो समाज सजते हुआ। अयोध्या भर में यह बात प्रख्यात है। कई दिन तो मुझे सुने हुआ। तुमसे बात छिपायी गयी। पर मेरे कान में भनक पड़ गयी तभी से मैं सचेष्ट हूँ। लाचार होकर आज कहना ही पड़ा।

पूछेउँ गुनिन्ह रेख तिन्ह खाँची। भरत भुआल होहिं यहु साँची ॥
भामिनि करहु त कहउँ उपाऊ। हइ तुम्हरीं सेवा बस राऊ ॥४॥

अर्थ : मैंने गुनी सज्ञानियों से पूछा तो उन्होंने रेखा खींच दी कि भरत राजा होंगे। यह बात निश्चय है। हे भामिनि ! यदि तुम करो तो मैं उपाय बतलाऊँ। राजा तुम्हारी सेवा के वश में हैं।

व्याख्या : मैंने सुनकर यद्यपि उसी समय तुमसे नहीं कहा। पर हाथ पर हाथ रखकर बैठी नहीं रही। गुनी सज्ञानियों के यहाँ गयी। उन्होंने विचार किया। तुम्हारा होनहार भला है। उन्होंने रेखा खींचकर कहा कि भरत राजा होंगे। यह बात सत्य है। अब उद्योग मात्र की देरी है। भरत के युवराज होने की ओर कैकेयी का ध्यान भी नहीं था। जब मन्थरा ने देख लिया कि अब कैकेयी को भरत का युवराज होना इष्ट है। तब कहती है : तुम मेरी बात सुन लोगी पर करोगी नहीं। मुझसे व्यर्थ क्यों पूछती हो ? यदि मैंने कह भी दिया और तुमने न किया तो मेरी कुशल नहीं है। अतः वचन दो तो कहूँ। कारण यह कि मेरा वचन तुम्हारे सेवाधर्म के प्रतिकूल पड़ेगा। तुम सेवाधर्म में स्थित हो। पर राजा तुम्हारी सेवा के वश में हैं। तुम्हारे ही किये सब होगा।

दो. परउँ कूप तुअ बचन पर, सकौं पूत पति त्यागि।
कहसि मोर दुखु देखि बड़, कस न करब हित लागि ॥२१॥

अर्थ : मैं तेरे कहने पर कूएँ में कूद सकती हूँ। पति पुत्र का त्याग कर सकती हूँ। तू मेरा बड़ा भारी दुःख देखकर कह रही है। मैं कल्याण के लिए क्यों न करूँगी ?

व्याख्या : भाव यह कि तुम्हारे कहने पर मैं लोक परलोक किसी का विचार न करूँगी। कूप में कूदने से परलोक का नाश कहा। पूत पति त्याग से इस लोक का नाश कहा। जो विपत्ति मेरे पर आया चाहती है उसके सामने लोक परलोक कुछ नहीं है। प्राण भी कुछ नहीं है। तू मेरी परमहित है। तेरा कहा अवश्य करूँगी : रानी कैकेयी ने मन्थरा को वचन दे दिया। महाराज दशरथ की योग्या है। कभी वचन न छोड़ेगी।

कुबरीं करि कबुली कैकेई। कपट छुरी उर पाहन टेई ॥
लखइ न रानि निकट दुखु कैसे। चरइ हरित तिन बलिपसु जैसे ॥१॥

अर्थ : कुबरी ने कैकेयी से कबूल कराके कपटरूपी छूरी को हृदयरूपी पत्थर पर घिसकर शान दिया। रानी अपने पास आये हुए दुःख को इस भाँति नहीं लख रही है। जैसे बलिदान का पशु हरी घास चरता है।

व्याख्या : कुबरी को बड़ा भारी डर था कि मेरे कहने पर यदि यह नट गयी तो मेरी दुर्दशा का अन्त नहीं है। अतः उसने पहिले ही कैकेयी से कबूल करा लिया कि तेरे कहने पर कूएँ में कूद पड़ूँगी। पति पुत्र को भी छोड़ दूँगी। तब कपट की छूरी को अपने पत्थर जैसे कलेजे पर रगड़कर शान दिया। अर्थात् उसकी धार तीखी बनायी। जिसमें खूब काट कर सके। क्योंकि अब वार किया ही चाहती है। यदि पत्थर सा कलेजा न हो तो कपट की छूरी ठीक काट नहीं करती : अपने ऊपर विश्वास करनेवाले पर नहीं चल सकती।

उसने रानी को बलिदान का पशु बनाया। बलिदान के पशु के आगे हरी हरी घास रख देते हैं। वह प्रसन्न होकर चरता है। उसे पता नहीं कि उस पर प्राणघातक चोट होनेवाली है। वह घास रखनेवाले को हितैषी समझता है। उसके चोट करने की तैयारी : छूरी के पत्थर पर रगड़कर शान देने को नहीं देखता। इसी भाँति रानी कुबरी की दी हुई आशा पर भूली हुई है कि मेरा सुख सोहाग अब दूना हुआ चाहता है। यह नहीं समझती है कि कुबरी अपने स्वार्थ के लिए उसका सर्वनाश किया चाहती है। रानी के न लखने के लिए उसने आड़ खड़ा कर दिया है : कोउ नृप होउ हमहि का हानी। चेरि छाड़ि अब होब कि रानी। रानी समझती है कि वस्तुतः इसे लाभ हानि नहीं है। यह मेरे हित के लिए सब कर रही है। उसके सूक्ष्म स्वार्थ पर रानी की दृष्टि नहीं जा रही है।

सुनत बात मृदु अंत कठोरी। देति मनहुँ मधु माहुर घोरी॥
कहइ चेरि सुधि अहइ कि नाहीं। स्वामिनि कहिहु कथा मोहि पाहीं ॥२॥

अर्थ : बात तो मुलायम कहती है पर परिणाम उसका कठोर है। जैसे शहद में विष घोलकर दे रही हो। चेरी बोली कि तुम्हें याद हो या न हो तुमने मुझसे एक कथा कही थी।

व्याख्या : अब दूसरी उपमा देते हैं। पहिली से काम नहीं चलता। छूरी के आघात से तो उसी समय घोर वेदना होती है। परन्तु कुबरी का आघात तो वैसा नहीं है। वह तो अच्छा मालूम होता है। अतः कहते हैं वह शहद में विष मिलाकर दे रही है। जो तत्काल तो मीठा मालूम होता है पर परिणाम में प्राण घातक है। देखने में तो यह मालूम हो रहा है कि इससे सुख सोहाग दूना होगा। पर वस्तुतः इसी से दोनों जायगा। पति और पुत्र दोनों का त्याग होगा और आप भी कुएँ में गिरेगी। यथा : अवनि जमहि जाँचति कैकेई। महि न बीच बिधि मीच न देई। कपट की छूरी खून नहीं बहाती। वह मधुमिश्रित माहुर की भाँति परिणाम में प्राणघातक होती है।

चेरी कहती है कि तुम्हारा भूलना स्वभाव है। तुम्हें भले ही स्मरण न हो। पर मुझे याद है। तुमने मुझे एक बात सुनायी थी। दण्डकारण्य में वैजयन्त नगर के राजा तिमिध्वज जहाँ रहते थे वहाँ शम्बरासुर और इन्द्र का युद्ध हुआ था। उस युद्ध में महाराज के साथ तुम भी गयी थी। वहाँ तुमने महाराज के मूच्छित होने पर रथ की रक्षा करके महाराज के प्राण बचाये थे।

दुइ बरदान भूप सन थाती। मागहु आजु जुड़ावहु छाती॥
सुतहि राजु रामहि बनबासू। देहु लेहु सब सवति हुलासू ॥३॥

अर्थ : तुम्हारे दो वरदान राजा के पास धरोहर रखे हुए हैं। आज उन्हीं को माँगकर छाती ठण्ढी करो। बेटे को राज्य और राम को वनवास दो और सौत के सब आनन्द को तुम ले लो।

व्याख्या : उस समय रथ की रक्षा और अपनी रक्षा के पलटे में राजा ने तुमसे दो वरदान माँगने के लिए कहा। पर तुमने उस समय नहीं माँगा। उसे थाती के रूप में राजा के पास ही छोड़ दिया। कहा कि जिस समय मुझे आवश्यकता होगी माँग लूँगी। वह थाती तुम्हारी राजा के पास रक्खी हुई है। तुम्हें कुछ करना नहीं है। अपनी थाती माँगनी है। आज उसी को माँगकर अपनी छाती ठण्ढी करो। एक वरदान में बेटे के लिए राज्य माँगो। दूसरे में राम के लिए वनवास माँगो। बस जिस आनन्द को तुम्हारी सौत चाहती है वह तुम्हारा हो जाय और तुम्हारी सौत सदा के लिए निरानन्द हो जाय। राम को वन्दी करने में सम्पूर्ण प्रजा बिगड़ जायगी और उनके यहाँ रहने से भरत का राज्य सुस्थिर न होगा। राम धर्मात्मा होने पर भी राज्य के लिए लड़ सकते हैं। यथा—क्षत्रियाणामयं धर्मो यत्प्रजापरिपालनम्। वधश्च धर्मयुद्धेन स्वराज्यपरिपन्थिनाम्। वि. पु.। क्षत्रियों का धर्म है कि प्रजा का पालन करें और धर्मयुद्ध से अपना राज्य छीनना चाहनेवालों का वध करें। इसलिए उनका वनवास माँगो। जो करना हो आज कर लो। कल कुछ न कर सकोगी।

भूपति राम सपथ जब करई। तब मागेहु जेहि बचन न टरई॥
होइ अकाजु आजु निसि बीतें। बचनु मोर प्रिय मानेहु जी तें॥४॥

अर्थ : राजा जब राम की शपथ कर लें तब वरदान माँगना। जिससे वचन टल न सके। आज की रात बीत जाने से काम बिगड़ जायगा। मेरी बातों को हृदय से प्रिय समझना।

व्याख्या : पहिले यह उपाय होना चाहिए कि देने का निश्चय कराने के लिए राजा रामजी की शपथ लें। तब माँगना। फिर राजा बात से न हटेंगे और न मन्त्री हटा सकेंगे। नहीं तो तुम्हारे माँगने और राजा के देने को गिनती गुरुजी और मन्त्री नर्म में कर लेंगे। आज रात को काम बना तो बना। सबेरा होते ही फिर कौन किसकी सुनता है। मेरी बातों को भीतर से प्रिय मानना। बड़े बड़े प्रलोभन और बड़ा बड़ा भय दिखाया जावेगा। पर मेरी बातों को ही प्रिय समझना। उन प्रलोभनों में न आना : होइ अकाज कौन बिधि राती की जो उसे चिन्ता थी सो विधि उसने बैठा दी।

दो. बड़ कुघातु करि पातकिनि, कहेसि कोपगृह जाहु।
काजु सँवारेहु सजग सबु, सहसा जनि पतिआहु॥२२॥

अर्थ : उस पापिनी ने बड़ा कुघात : विश्वासघात करके कहा कि अब कोपभवन में चली जाओ। सब काम को सावधान होकर सँवारना। एकाएक किसी बात पर विश्वास न करना।

व्याख्या : जो कपट की छूरी उसने पत्थर से हृदय पर तीखी की थी उससे वार कर दिया। कपट की छूरी का वार है इसलिए मधुमाहुर सा मीठा लगा।

जिस ताक में वह थी सो पूरा हुआ। अब रानी को कोपगृह[1] जाने को सलाह दे रही है। जिसमें राजा को शीघ्र ही पता लग जाय और तुरन्त मनाने के लिए आवें और बात फूटे नहीं। नहीं तो राजा किस महल में जायँगे इसका क्या ठीक है। फिर सावधान किये देती है कि बड़ी होशियारी से काम लेना। विश्वास में ही पड़कर बड़े बड़े मारे गये हैं। महाराज का भी विश्वास न करना। डरती है कि राजा का इसका जहाँ सामना पड़ा कि इसने विश्वास किया। अतः न विश्वास करने के लिए सहेजती है। रानी का इसके ऊपर इतना बड़ा विश्वास है और यह उन्हीं के साथ घात करती है। अतः विश्वासघातिनी है। इसलिए कवि ने पापिनी कहा।

कुबरिहि रानि प्रान प्रिय जानी। बार बार बड़ि बुद्धि बखानी ॥
तोहि सम हितू न मोर संसारा। बहे जात कइ भइसि अधारा ॥१॥

अर्थ : कुबरी को रानी ने प्राणप्रिय जानकर बार बार उसकी बुद्धि की बड़ी प्रशंसा की। कहा : कि संसार में तुझसा मेरा कोई हित नहीं है। बहे जाते हुए के लिए तू आधार हो गयी।

व्याख्या : अब कुबरी रानी को प्राणप्रिय हो गयी। रानी उसकी बुद्धि पर लट्टू है। बार बार उसकी अतीव बुद्धिमत्ता की प्रशंसा करती है। सब लोग नाहक इसे मतिमन्द कहते हैं। ऐसी पैनी बुद्धि तो किसी को नहीं है। उससे कहती हैं कि पति पूत कोई तेरे सा मेरा हित नहीं है। मैं तो प्रवाह में बही जाती थी। जैसा लोग कहते और समझाते थे वैसा ही मैं भी समझती थी। राम का तिलक सुनकर मैं तो तुझे मनभावती वस्तु देने को प्रस्तुत थी। पर तूने उसकी लालच नहीं की। मुझ बहती हुई को तू ही आधार मिली। अब तुझे पाकर प्रवाह का विरोध करके बच सकती हूँ।

जौं बिधि पुरव मनोरथु काली। करौं तोहि चषपूतरि आली ॥
बहु बिधि चेरिहि आदरु देई। कोपभवन[1] गवनी कैकेई ॥२॥

अर्थ : यदि ब्रह्मा मेरा मनोरथ पूरा कर दें तो कल तुझे आँख की पुतली बनाऊँगी। बहुत प्रकार से चेरी को आदर देकर कैकेयी कोपभवन में गयी।

व्याख्या : जो कुछ होना है आज रात को होगा। यदि मेरा मनोरथ पूर्ण हुआ महाराज ने धरोहर की भाँति रक्खे हुए वरदानों को मुझे दिया। भरत युवराज हुए

---

१. राजाओं के यहाँ कोपगृह होता था। क्रोध आने पर उस गृह में चले जाने का विधान था। जिसके हाथों में बड़ा अधिकार होता है उसके क्रुद्ध होने से बड़े अनर्थ की सम्भावना होती है। उसके एकान्त में रहने में ही कुशल है। वहाँ उसे अपने चित्त के समाधान करने का अवसर मिलता है और वे ही लोग उसके पास जाने का साहस करते हैं जो उस क्रोध का परिमार्जन कर सकें।

और राम वन गये तो तुझे आँख की पुतली बनाऊँगी। तेरे ही द्वारा देखूँगी। वस्तुतस्तु राज की बागडोर तेरे हाथ में रहेगी : जैसा मन्थरा ने सोचा था वैसा ही हुआ। अब मधु मिलने की आशा दृढ़ हुई। देखि लागि मधु कुटिल किराती। जिमि गवँ तकै लेउँ केहि भाँती। चेरी को बहुत प्रकार से आदर दिया। अर्थात् आज से तू मेरी सखी है। मन्त्री है। ऐसा कहकर जिन वस्त्र आभरण के धारण करने का दासियों को अधिकार नहीं है। जिन वस्त्र भूषणों को सरदार या मन्त्री की स्त्रियाँ धारण कर सकती हैं। वे वस्त्र आभूषण मन्थरा को देकर उसे मन्त्री पद देकर तब कैकेयी कोपभवन गयी।

विपति बीजु बरषा रितु चेरी। भुँइ भइ कुमति कैकई केरी॥
पाइ कपट जलु अंकुर जामा। बर दोउ दल दुख फल परिनामा॥३॥

अर्थ : विपत्ति बीज हुई। चेरी वर्षाऋतु हुई। कैकेयी की कुमति पृथ्वी हुई। कपट का जल पाकर अँखुआ निकला। दोनों वर पत्ते हुए और परिणाम में दुःख यही फल हुआ।

व्याख्या : तसि मति फिरी अहइ जसि भावी। वही भावी विपत्ति बीज हुई। जिस भाँति बीज पृथ्वी के भीतर पड़ा रहता है। उसे कोई नहीं जानता। जब वर्षाऋतु में पानी बरसता है तब बीजों के अँखुये निकलते हैं। उसी भाँति इस भावी विपत्ति का किसी को पता नहीं था। यथा : मिलेहि माँझ बिधि बात बिगारी। जहँ तँह देहिं कैकईहि गारी। जब चेरी ने वर्षाऋतु होकर कपट जल बरसाया तो वह बीज कैकयी की कुमति रूपी भूमि में अङ्कुरित हुआ। अङ्कुरित होने पर दो पत्ते पहिले व्यक्त होते हैं। यहाँ दोनों वरदान ही दोनों पत्ते हैं। यही विपत्ति का वृक्ष दुःख रूपी फल का देनेवाला है।

कोप समाजु साजि सब सोई। राजु करत निज कुमति बिगोई॥
राउर नगर कोलाहलु होई। यहु कुचालि कछु जान न कोई॥४॥

अर्थ : कोप का सब समाज सजकर सोई। राज्य करते हुए अपनी कुबुद्धि से मारी पड़ी। राजमहल और नगर में धूम मची हुई है। इस कुचाल का किसी को पता नहीं।

व्याख्या : जिस भाँति हर्ष का साज समाज होता है। उसी भाँति कोप का भी साज समाज होता है। राजाओं में दोनों के व्यक्त करने का अधिक साधन होता है। उनके व्यक्त करने में ही बहुत कुछ वेग कम हो जाता है। कोप और हर्ष दोनों मनोविकार हैं। अतः मन के स्वास्थ्यलाभ के लिए उनके पृथक् पृथक् साज-समाज होने ही चाहिए। कोप के साज समाज का वर्णन महाराज के आने पर कवि करेंगे। इसलिए यहाँ नहीं करते। इस समय कोप का साज समाज करके कोपभवन में जाने का स्पष्ट अर्थ यह है कि मैं इस अभिषेकोत्सव से अप्रसन्न हूँ और इससे कोई सम्बन्ध नहीं रखना चाहती। कवि कहते हैं कि कुबुद्धि का प्रभाव देखो। कैकेयी

राज्य करती थी। दुःख का कोई कारण न था। सो उसकी कुबुद्धि हो उसे कष्ट में डाल रही है।

राजकुल का तद्भवरूप राउर है। अन्तःपुर के लिए इसका प्रयोग होता है। भाव यह कि अन्तःपुर में और उसके बाहर सम्पूर्ण नगर में इस समय राजतिलक की धूम मची हुई है। इस समय इतना बड़ा कुचक्र चल रहा है : इस बात का किसी को पता नहीं है : कैकेयी महारानी का कोपभवन में प्रवेश साधारण बात नहीं थी। इस समय कोपभवन में प्रवेश करना इस बात की घोषणा करना है कि मैं इस राजतिलक से अत्यन्त रुष्ट हूँ।

दो. प्रमुदित पुर नर नारि सब, सजहिं सुमंगलचार।
एक प्रविसहिं एक निर्गमहिं, भीर भूप दरबार ॥२३॥

अर्थ : आनन्द में विभोर होकर नगर के नर नारी सुन्दर मङ्गलाचार सज रहे हैं और राजद्वार पर बड़ी भीड़भाड़ है। कोई बाहर निकल रहा है और कोई भीतर जा रहा है।

व्याख्या : राम राज अभिषेकु सुनि हिय हरखे नर नारि। लगे सुमंगल सजन सब विधि अनुकूल बिचारि। इस दोहा से जिस प्रकरण का उपक्रम किया था उसी का उपसंहार दिखला रहे हैं। यहाँ यह भी दिखला दिया कि विधि की अनुकूलता नहीं है। विपत्ति के बीज में अङ्कुर निकल पड़ा। दरबार शब्द का प्रयोग ग्रन्थकार ने द्वार के अर्थ में किया है। यथा : गयउ सभा दरबार तब सुमिरि रामपद कंज। सिंघ ठवनि इत उत चितव धीर बीर बल पुंज। तुरित निसाचर एक पठावा। समाचार रावनहिं जनावा। सो राजद्वार पर भीड़ है। कैकेयी के कुचाल का पता नगरवासियों को तो है ही नहीं। स्वयं महाराज भी कुछ नहीं जानते।

बाल सखा सुनि हिय हरषाहीं। मिलि दस पाँच राम पहिं जाहीं॥
प्रभु आदरहिं प्रेमु पहिचानी। पूँछहिं कुसल खेम मृदु बानी॥१॥

अर्थ : बचपन के साथी यह समाचार पाकर हृदय में हर्षित होते हैं। दस पाँच मिलकर रामजी के यहाँ जाते हैं। प्रेम को पहिचान करके प्रभु आदर करते हैं और मृदुवानी से उनका कुशलक्षेम पूछते हैं।

व्याख्या : बचपन की मैत्री बड़ी दृढ़ होती है। भोजन करत बोल जब राजा। नहिं आवत तजि बाल समाजा। वही बालसमाज अब बड़ा हुआ है। मृगया आदि खेल के समय अब भी उनकी बराबर बुलाहट होती है। यथा : बंधु सखा सँग लेहिं बोलाई। बन मृगया नित खेलहिं जाई। वे सब भी आपस में सखा हैं। अतः समाचार पाकर बड़े प्रसन्न होते हैं। हमारा सखा राजा होगा। सो दस पाँच इकट्ठे होकर बधाई देने के लिए रामजी के पास जाते हैं। सखा का सम्बन्ध तो था ही अब राजा प्रजा का सम्बन्ध भी हुआ चाहता है।

प्रीति पहिचान यह रीति दरबार की। इसलिए कहते हैं कि प्रीति पहिचान कर प्रभु आदर दे रहे हैं। अर्थात् जिसकी जितनी प्रीति है उतना ही उसको आदर दिया जा रहा है। सखा की भाँति ही आदर है। प्रभुता पर कुछ ध्यान नहीं है। वक्ता, वाणी और वाच्य तीनों ही अच्छे हैं। वक्ता स्वयं प्रभु, वाणी मृदु और वाच्य कुशलक्षेम : खेल का समय बीते बहुत दिन हुए। अब भेंट कुछ दिनों पर होती है। इसलिए कुशलक्षेम पूछा।

फिरहिं भवन प्रिय आयसु पाई। करत परसपर राम बड़ाई ॥
को रघुबीर सरिस संसारा। सीलु सनेहु निबाहनिहारा ॥२॥

अर्थ : प्रिय की आज्ञा पाकर घर लौटते हैं। आपस में बड़ाई करते जाते हैं कि रघुवीर के समान शील और स्नेह का निबाहनेवाला संसार में कौन है ?

व्याख्या : बहुत देर तक नहीं ठहरते। क्योंकि इन्हें बहुतों से मिलना है। कार्यभार अधिक है। फिर भी आज्ञा माँगकर और मिलने पर लौटते हैं। रामजी प्रिय हैं। उनके आज्ञा देने में प्रेम झलकता है। सम्मान की प्राप्ति से प्रसन्न हैं। रास्ते में प्रशंसा करते हुए लौटते हैं। यही सच्ची प्रशंसा है। सखा हैं : मुख पर प्रशंसा नहीं करते। शील के निर्वाह का पता सम्मान से लगा और स्नेह का कुशलक्षेम पूछने से। राजा मित्रं केन दृष्टं श्रुतं वा। परिस्थिति के परिवर्तन में शील स्नेह का निर्वाह कठिन है। राजा द्रुपद ने अपने बालसखा द्रोणाचार्य का अनादर किया। अतः कहते हैं : शील स्नेह के निर्वाह करनेवाले रघुवीर ही हैं।

जेहि जेहि जोनि करम बस भ्रमहीं। तहँ तहँ ईसु देउ यह हमहीं ॥
सेवक हम स्वामी सियनाहू। होउ नात यहु ओर निबाहू ॥३॥

अर्थ : कर्म के वश जिस जिस योनि में हम भ्रमते फिरें वहाँ वहाँ ईश्वर हमें यह दें कि हम सेवक हों और सीतानाथ स्वामी हों। इस ओर नाता का निर्वाह हो।

व्याख्या : रामजी के सखा हैं। बड़े उच्चकोटि के उपासक हैं। मोक्ष नहीं चाहते। अशुभ कर्म के फल से छुटकारा नहीं चाहते। वालि की भाँति इतना ही चाहते हैं : जेहि जोनि जन्मौ कर्मबस, तहँ राम पद अनुरागऊँ। सेवक स्वामी के नाता का निर्वाह होता चला जाय। प्रत्येक जन्म में सखा हों। इस नाते पर आग्रह नहीं है। आग्रह सेवकसेव्यभाव के बने रहने पर है।

अस अभिलाषु नगर सब काहू। कैकयसुता हृदय अति दाहू ॥
को न कुसंगति पाइ नसाई। रहइ न नीच मते चतुराई ॥४॥

अर्थ : नगर में सभी को ऐसा ही अभिलाष है। पर राजा केकय की बेटी के हृदय में बड़ी भारी जलन है। बुरी संगत पाकर कौन नहीं बिगड़ता। नीच की राय होने से चतुराई नहीं रह जाती।

व्याख्या : सम्पूर्ण अयोध्यावासियों को श्रीरामजी के प्रति ऐसा अनुराग है कि भावी जन्म में भी सेवकसेव्यभाव बने रहने की ईश्वर से प्रार्थना करते हैं। परन्तु कैकय देश में उत्पन्न यहाँ दो हैं। एक कैकय की चेरी और दूसरी कैकय की बेटी। सो चेरी का दाह कह आये हैं। यथा : राम तिलकु सुनि भा उर दाहू। अब कैकय की बेटी के हृदय का अति दाह कहते हैं। इन दोनों व्यक्तियों की भावना अयोध्यावासियों से मेल नहीं खाती। अतः कवि इनका परिचय कैकय देश से सम्बन्ध दिखलाकर देते हैं।

जिसके अभिषेक से सम्पूर्ण राष्ट्र को आनन्द हो उसके राजतिलक से दाह होना तो अत्यन्त पतन का चिह्न है। फिर जिसका जन्म राजघर में हो और व्याह राजघर में हुआ हो उसका ऐसा सङ्कीर्ण हृदय कैसे हुआ ? इस पर कवि कहते हैं कि कुसङ्गति से बचना चाहिए। कुसङ्गति के कारण कैकेयी का ऐसा पतन हुआ। वह कपट पेटारी की संगति में पड़ गयी। अतः उसकी उदार बुद्धि का नाश हुआ। या लोकद्वयसाधनी चतुरता सा चातुरी चातुरी : जिससे दोनों लोक सुधरे वही चतुरता चतुराई है। नीच का साथ हो जाने से निश्चय चतुराई का नाश होता है। परलोक से ध्यान हटे बिना नहीं रहता।

१० नृपवचन राजरसभङ्ग

दो. साँझ समय सानँद नृपु, गयेउ कैकई गेह।
गवनु निठुरता निकट किय, जनु धरि देह सनेह ॥२४॥

अर्थ : सन्ध्या के समय आनन्द से राजा कैकेयी के महल में गये। मानो स्नेह शरीर धारण करके निष्ठुरता के पास गया।

व्याख्या : महाराज को रानी कैकेयी अत्यन्त प्रिय है। अत्यन्त प्रसन्न रहते हैं तो उस आनन्द की अभिवृद्धि के लिए कैकेयी के महल में जाते हैं। आज महाराज बड़े आनन्दित हैं। स्वयं शुभ समाचार सुनाने के लिए कैकेयी के महल में जा रहे हैं। इस आशा से कि इसको भरत से अधिक रामजी प्रिय हैं। वह अत्यन्त ही प्रसन्न होगी। पर बात उल्टी पड़ी। जिसे स्नेहमय समझते थे वह शरीरधारी निष्ठुरता मालूम पड़ी। किसी प्रकार से द्रवीभूत होनेवाली नहीं।

कोपभवन सुनि सकुचेउ राऊ। भय बस अगहुड परइ न पाऊ॥
सुरपति बसइ बाहुँबल जाकें। नरपति सकल रहहिं रुख ताकें ॥१॥

अर्थ : कोपभवन सुनकर राजा सङ्कुचित हो गये। डर के कारण उनका पैर आगे की ओर नहीं पड़ता है। इन्द्र जिसके बाहुबल से बसते हैं और सब राजा लोग रुख देखते रहते हैं।

व्याख्या : महाराज के आने पर रानी स्वागत के लिए आगे आती थीं। सो न आयीं। महाराज ने जब पूछा कि तुम्हारी स्वामिनी कहाँ हैं ? दासियों ने

कहा कोपभवन में हैं। सुनते ही महाराज सङ्कुचित हो गये कि इस समय कोपभवन जाने का अर्थ बड़ा बेढङ्गा लगेगा। लोग समझेंगे कि राजा के घर में फूट है। कैकेयी रामजी का अभिषेक नहीं चाहती। स्त्रीजित् की दशा कहते हैं कि महाराज कोपभवन में मनाने जाना चाहते हैं। पर डर से आगे पैर नहीं उठ रहा है। संसार में महाराज के बल और शौर्य की प्रशंसा है। इन्द्र के ऊपर आपत्ति आने पर महाराज दशरथ सहाय होते हैं। इसलिए कहते हैं कि देवताओं के राजा उनके भुजबल के आश्रित होकर बसते हैं और मनुष्यों के राजा तो रुख देखा करते हैं कि आज्ञा होने के पहिले ही महाराज के चाहे हुए कार्य का सम्पादन कर दें। यथा : नृप सब रहहिं कृपा अभिलाषे। लोकप करहिं प्रीति रुख राखे।

सो सुनि तिय रिस गयेउ सुखाई। देखहु काम प्रताप बड़ाई ॥
सूल कुलिस असि अँगवनिहारे। ते रतिनाथ सुमन सर मारे ॥२॥

अर्थ : वह स्त्री का क्रोध सुनकर सूख गये। देखो काम के प्रताप की महिमा। शूल, वज्र और खड्ग के जो सहनेवाले हैं उन्हें कामदेव ने फूल के बाणों से मारा।

व्याख्या : ऐसे शूरवीर स्त्री का क्रोध सुनकर सूख गये। इसमें स्त्री की कोई करामात नहीं है। यह तो काम के प्रताप की महिमा है। काम को स्त्री का बल रहता है। यथा : काम के केवल नारि। सो स्त्री का सामना भी न पड़ा। स्त्री के क्रोध का समाचार सुनकर सूख गये। प्रतापी स्वयं सब कार्य अपने हाथ से सम्पादन नहीं करता। उसके नाम से कार्य होता है। यहाँ न स्त्री को उपस्थिति है न काम की उपस्थिति है। केवल स्त्री के क्रोध के नाम से इतने बड़े वीर सूखे जा रहे हैं। यह काम के प्रताप की महिमा है।

शूल छेदन करता है। असि भेदन करता है। वज्र चूर चूर कर देता है या झुलस देता है। सो इन अस्त्रों को महाराज दशरथ ढाल पर नहीं रोकते थे। छाती पर लेते थे। वे ही आज कामदेव के फूल का बाण सहने में असमर्थ हो रहे हैं। अथवा घोर संग्राम में अनेक शस्त्रों के प्रहार से तो महाराज बचे पर काम के सुमन शर से नहीं बचेंगे। इसलिए सुमन सर मारे कहा।

सभय नरेसु प्रिया पहिं गयेऊ। देखि दसा दुखु दारुन भयऊ ॥
भूमि सयन पटु मोट पुराना। दिये डारि तन भूषन नाना ॥३॥

अर्थ : डरते हुए राजा प्रिया के पास गये। उसकी दशा देखकर दारुण दुःख हुआ। जमीन पर सोयो हुई हैं। मोटा कपड़ा पहन रक्खा है और शरीर के नाना प्रकार के गहनों को फेंक दिया है।

व्याख्या : यद्यपि नरेश हैं और प्रिया के पास जा रहे हैं। फिर भी डर रहे हैं। पहिले कह आये हैं कि डर से आगे पैर नहीं पड़ता। परन्तु बिना मनाये भी तो काम नहीं चलता। इस समय साहस किसका है कि महारानी तक जाय। स्वयं महाराज भयभीत हो रहे हैं। फिर भी डरते डरते गये। प्रिया की दशा देखकर तो

दारुण दुःख हुआ। भाव यह कि कोपभवन सुनने से ही दुःख हुआ था। अब जो कोप के साज में जब प्रिया को देखा तो महाराज को असह्य दुःख हुआ।

अब कोप का समाज साज कहते हैं कि रानी पृथ्वी पर पड़ी हैं। मोटे पुराने कपड़े पहने हुए हैं। शरीर पर के आभूषणों को उतारकर फेंक दिया है। भाव यह कि मैं अनाथा हूँ। दासी हूँ। मुझे अब सुख के साज से क्या मतलब ? जो तुम काल पाकर हमें बनाना चाहते हो वह मुझे आज ही स्वीकार है।

कुमतिहि कसि कुवेषता फाबी। अनअहिवातु सूच जनु भाबी ॥
जाइ निकट नृपु कह मृदु बानी। प्रानप्रिया केहि हेतु रिसानी ॥४॥

अर्थ : इस कुबुद्धि को कुवेष धारण करना कैसे फब रहा है। मानो भावी विधवापन को सूचित कर रही है। निकट जाकर राजा कोमल बात बोले कि हे प्राणप्रिये ! तुम क्यों रूठ गयी हो ?

व्याख्या : कवि कहते हैं कि भवितव्य के अनुसार रुचि हो जाती है। कुबुद्धि कैकेयी को आज यह कुरूपता अच्छी लग रही है। सब सुख साज समाज सुलभ है। उसे छोड़कर इसने विधवा का सा स्वरूप बना रक्खा है। मानो भवितव्य वैधव्य की सूचना दे रहा है।

राजा निकट चले गये। प्रसन्न करने के लिए मृदुवाणी से प्रिये ! कहकर सम्बोधन किया और रूठने का कारण पूछा। भाव यह कि मुझे नहीं मालूम कि तू किसलिए रूठी हुई है। यदि मालूम होता तो तुम्हारा अभीष्ट पूरा करके तब आते। इसलिए अपने रूठने का कारण बतलाओ। मेरे जान में कोई ऐसी बात नहीं हुई है जो तुम्हें अप्रिय हो। यदि अनजान में कुछ हुआ हो तो मालूम होने पर तुरन्त दुरुस्त किया जा सकता है। किसी को भी तुम्हारे रूठने का कारण नहीं मालूम। अतः तुम्हारे बतलाने से ही काम चल सकता है।

छं. [1]केहि हेतु रानि रिसानि परसत पानि पतिहि नेवारई।
मानहुँ सरोष भुअंग भामिनि विषम भाँति निहारई ॥
दोउ बासना रसना दसन बर मरम ठाहरु देखई।
तुलसी नृपति भवतव्यता बस काम कौतुक लेखई ॥

अर्थ : रानी किसलिए रूठी हो ? हाथ छूने से पति को रोक रही है। मानों क्रोध से भरी सर्प की स्त्री भयानक रीति से देख रही है। दोनों बासनाएँ दो जीभ हैं और वर दाँत हैं : दंशन के लिए मर्म स्थान देख रही है। तुलसीदासजी कहते हैं कि राजा होनहार के वश इसे काम कौतुक मान रहे हैं।

महाराज कह रहे हैं कि रानी तुम्हारे रूठने का कारण क्या है ? उत्तर न पाकर पाणिस्पर्श करना चाहते हैं। परन्तु वह हाथ छूने नहीं देती और क्रोधभरी

---

१. इस काण्ड के सभी छन्द हरिगीतिका हैं।

क्रूर दृष्टि से राजा की ओर ऐसी देख रही है। मानों वह उनकी स्त्री ही नहीं है। साँप की स्त्री है। भाव यह कि मुझे न छूओ। तुम्हारा मन मलिन है। झूठा प्रेम दिखाकर ठगने आये हो। मुझ सरलहृदया के साथ तुम्हारा ऐसा कपट व्यवहार कि तुम मुझे कौसिल्या की दासी और मेरे बेटे को राम का बन्दी बनाना चाहते हो : मन्थरा की दी हुई दृष्टि से देख रही है। यथा : मन मलीन मुहु मीठ नृपु राउर सरल सुभाउ। सर्पिणी को दो जीभ होती हैं। इसकी दो वासनाएँ दोनों जीभ हैं। १. भरत को राज्य २. रामजी को वनवास। और दंशन करनेवाले दो दाँत होते हैं। यहाँ जो दो वरदान माँगनेवाली है वे ही दोनों दाँत हैं। सर्पिणी यदि मर्मस्थान में दंशन कर ले तो काटा हुआ जी नहीं सकता। अतः रानी रूपी सर्पिणी मर्मस्थान देख रही है कि मर्मस्थान हाथ लगे तो दंशन करूँ। यहाँ मर्मस्थान राजा द्वारा रामजी का शपथ ग्रहण है। यथा : भूपति राम सपथ जब करई। तब मागेउ जेहि बचन न टरई।

श्रीगोस्वामीजी कहते हैं कि राजा भवितव्यता के वश में हैं। अत्यन्त स्पष्ट बात को नहीं लख रहे हैं। यह मान नहीं है। मान में ऐसी क्रूरदृष्टि नहीं होती। रामजी के अभिषेक के समय कोपभवन प्रवेश का सिवा इसके दूसरा अर्थ ही नहीं होता कि रानी को रामजी के राजतिलक से अप्रसन्नता है। पर राजा भवितव्यता के वश होने से यह सब कुछ लख नहीं रहे हैं। इसे रानी की मानप्रियता समझ रहे हैं। यथा : तुम्हहि कोहाब परम प्रिय अहई। इतना बड़ा उलट फेर काम का खेल है जिसने इतने बड़े चतुर राजा को अन्धा बना दिया : कामान्धो नैव पश्यति। यह नहीं देख रहे हैं कि सर्पिणी का लक्ष्य उन्हीं पर है। उन्हीं को सरोष विषम दृष्टि से देख रही है। यहाँ प्रेम का गन्ध भी नहीं है।

सो. बार बार कह राउ, सुमुखि सुलोचनि पिकबचनि।
कारन मोहि सुनाउ, गजगामिनि निज कोप कर ॥२५॥

अर्थ : बार बार महाराज कहते हैं कि हे सुमुखि ! हे सुलोचनि ! हे पिकवचनि ! हे गजगामिनि ! अपने क्रोध का कारण तो कहो।

व्याख्या : राजा मितभाषी होते हैं। उनके वचन का बड़ा मूल्य होता है। उनकी एकबार की दी हुई आज्ञा हटायी नहीं जा सकती। सो राजा एकबार के निवारण करने पर फिर स्पर्श का साहस नहीं कर रहे हैं। अपने प्रश्न का उत्तर न पाने पर भी बारबार वही पूछते जा रहे हैं : प्रान प्रिया केहि हेतु रिसानी ? केहि हेतु रानि रिसानि ? कारन मोहि सुनाउ गजगामिनि निज कोप कर ; रानी को प्रसन्न करने के लिए कभी सुमुखि कहते हैं। कभी सुलोचनि कहते हैं। कभी पिकवचनि और कभी गजगामिनि सम्बोधन करके उसकी स्तुति करते हैं। सर्पिणी की भाँति फटाटोप करनेवाली को सुमुखि कहते हैं। विषय दृष्टि से क्रुद्ध होकर देखनेवाली को सुलोचनि कहते हैं। फूत्कार की भाँति हुंकार करके करस्पर्श को रोकनेवाली को पिकवचनि कहते हैं और सर्पिणी की भाँति पलटा खायी हुई को गजगामिनि कह रहे हैं : बात

यही ठीक है कि सौन्दर्य कोई वस्तु नहीं है। मनकी कल्पना मात्र है। रानी की ये सब कुचेष्टाएँ महाराज को प्रणय कोप मालूम हो रही हैं।

अनहित तोर प्रिया केइँ कीन्हा। केहि दुइ सिर केहि जमु चह लीन्हा ॥
कहु केहि रंकहि करउँ नरेसू। कहु केहि नृपहि निकासउँ देसू ॥१॥

अर्थ : प्रिये ! किसने तेरा अहित किया ? किसे दो सिर हैं ? किसे यम लेना चाहते हैं ? बतलाओ किस दरिद्र को राजा कर दूँ या किस राजा को उसके देश से निकाल बाहर करूँ।

व्याख्या : जब बार बार पूछने पर भी क्रोध का कारण नहीं बतलाया तब राजा ने समझा कि मेरे ऊपर क्रुद्ध नहीं है। मालूम होता है किसी दूसरे ने इसका कुछ बिगाड़ा है। अतः पूछते हैं कि तेरा अनहित किसने किया ? राजा के अहित करने का किसी को साहस नहीं होता। तू तो मेरी प्रिया है। तेरा अहित करने का किसे साहस हुआ ? उसे दण्ड देनेवाला मैं हूँ। दण्ड दो प्रकार का होता है, १. शारीरिक और २. आर्थिक। सो यदि तुझे अपराधी को शारीरिक दण्ड दिलाना हो तो बतला मैं उसका शिरच्छेदन कर दूँ। एक सिरवाला तो तेरा अपराध करके नहीं जी सकता। यदि किसी को दो सिर हो तो भले ही बच जाय। एक सिर उसका तो मैं काट ही लूँगा। यदि किसी को आर्थिक दण्ड दिलाना हो तो वह यदि राजा भी हो तो मैं उसका देश निकाला कर सकता हूँ। यदि किसी को कुछ देना चाहती हो तो मैं उसे राजा बना सकता हूँ।

सकौं तोर अरि अमरउ मारी। काह कीट बपुरे नर नारी ॥
जानसि मोर सुभाउ बरोरू। मनु तव आनन चंद चकोरू ॥२॥

अर्थ : तेरा शत्रु यदि देवता भी हो तो उसे मार सकता हूँ। बेचारे नर नारी क्या हैं ? वे तो कीड़े मकोड़े हैं। हे सुन्दर ऊरुवाली ! तू तो मेरा स्वभाव जानती है कि मेरा मन तेरे मुखचन्द का चकोर है।

व्याख्या : मैं अमरों : देवताओं का सहायक हूँ। पर यदि वे तुझसे शत्रुता करें तो उन्हें भी मैं मार सकता हूँ। तेरा अनहित तो किसी मनुष्य ने ही किया होगा। वे क्या हैं ? कीड़े मकोड़े हैं। उनके मारने में क्या रक्खा है ? : भाव यह है कि जो मनोरथ हो उसे पूर्ण करने के लिए महाराज तैयार हैं। इतना बड़ा यशस्वी न्यायकारी राजा आज स्त्री का क्रीड़ामृग हो रहा है। स्त्री की प्रसन्नता के लिए सब कुछ करने को प्रस्तुत है।

कहते हैं कि इतने क्रोध की क्या आवश्यकता है ? मैं तो तेरे वश में हूँ। जो तू कहे वह मैं करने को तैयार हूँ। तू मेरे स्वभाव से परिचित है कि मेरा मन तेरा मुख देखा करता है जैसे चकोर चन्द्र को देखता है। यहाँ मुखचन्द्र का घाटा नहीं है। पर मेरा मन तो तेरे ही मुखचन्द्र का चकोर है।

प्रिया प्रान सुत सरबसु मोरें। परिजन प्रजा सकल बस तोरें ॥
जौं कछु कहउँ कपटु करि तोही। भामिनि राम सपथ सत मोही ॥३॥

अर्थ : प्रिये ! मेरे प्राण मेरे बेटे मेरा सर्वस्व मेरे कुटुम्बी मेरी प्रजा सब तेरे ही वश में हैं। यदि मैं कुछ कपट करके तुझसे कहता होऊँ तो हे भामिनि ! मुझे रामजी की सौ शपथ है।

व्याख्या : मैं और मेरा जो कुछ है वह सब तेरे अधीन है। इसी भाव को दृष्टि में रखकर कहा गया है : अमित दानि भर्ता वैदेही। मितं ददाति च पिता मितं भ्राता मितं सुतः। अमितस्य च दातारं भर्तारं का नु सेवयेत्। मनु। अधम सो नारि जो सेव न तेही। महाराज के इतना कहने पर भी जब न पसीजी तब उन्होंने समझ लिया कि यह मेरे कहने पर विश्वास नहीं कर रही है और मेरी बातों में इसे कपट का सन्देह हो रहा है। तब उसके विश्वास दिलाने के लिए महाराज ने रामजी की शपथ ली।

बिहसि माँगु मनभावति बाता। भूषन सजहि मनोहर गाता ॥
घरी कुघरी समुझि जिय देखू। बेगि प्रिया परिहरहि कुबेखू ॥४॥

अर्थ : मनचाही हुई बात हँसकर माँग लो और मनोहर शरीर पर आभूषण धारण कर लो। समय कुसमय को मनमें ख्याल करके देखो और हे प्रिये ! इस कुवेष का शीघ्र ही त्याग करो।

व्याख्या : महाराज कहते हैं कि लो ! अब हँस दो और जो जी चाहता हो उसे माँग लो। तुम्हारे अङ्ग मनोहर हैं। ये आभूषण के योग्य हैं। इनमें आभूषण साज लो। क्रोध का साज समाज एक न रहे। कहाँ कैसा मङ्गल का समय उपस्थित है कहाँ तुमने यह अमङ्गल वेष धारण कर रक्खा है। जो सुनेगा वह क्या कहेगा ? यह समय मङ्गलाचार का है। अतः कुवेष के परित्याग में देर न करो। जो तुम चाहोगी उसका मिलना ध्रुव है। पर माँगना पीछे और कुवेष परित्याग करो पहिले।

दो. यह सुनि मन गुनि सपथ बड़ि, बिहँसि उठी मतिमंद।
भूषन सजति बिलोकि मृगु, मनहु किरातिनि फंद ॥२६॥

अर्थ : यह सुनकर और बड़ी शपथ मन में गुनकर मतिमन्द हँस पड़ी और आभूषण सजने लगी। जैसे कि मृग को देखकर किरातिनी अपने फन्दे को सँवारने लगती है।

व्याख्या : रामजी के सौ शपथों को सुनकर और मन्थरा की बात : भूपति राम सपथ जब करई। तब माँगेहु जेहि बचनु न टरई। मनमें गुनकर वह मतिमन्द कैकेयी हँस पड़ी। महाराज कहते हैं : बिहँसि माँगु कैकेयी हँस पड़ी। महाराज कहते हैं : भूषन सजहि मनोहर गाता। कैकेयी भूषन सजने लगी। परन्तु वस्तुतः

महाराज के कहने पर नहीं हँसती है। उनके शपथ लेने पर प्रसन्न होकर हँस रही है और महाराज को अपने फन्दे में फँसाने के लिए आभूषण सज रही है। अतः ग्रन्थकार उसकी उपमा किरातिनी के फन्दा सजने से दे रहे हैं। जिससे वह सम्मुखस्थ मृग को फँसाती है।

पुनि कह राउ सुहृद जिअ जानी। प्रेम पुलकि मृदु मंजुल बानी ॥
भामिनि भयउ तोर मनभावा। घर घर नगर अनंद बधावा ॥१॥

अर्थ : फिर राजाजी उसे हितचिन्तक जानकर प्रेम से प्रफुल्लित होकर कोमल और सुन्दर वाणी बोले : हे भामिनि ! तेरी ही जी चाही बात हुई। नगर में घर घर आनन्द का बधावा बज रहा है।

व्याख्या : महाराज कैकेयी के भूषण सजने के अवसर पर उसे अधिक प्रसन्न करने के लिए शुभ समाचार सुना रहे हैं। उसे अब भी सुहृद समझते हैं। विचारते हैं कि मैंने हँसने को कहा तो हँस पड़ी। गहना साजने को कहा तो साजने लगी। अतः इसे अधिक प्रसन्न करने के लिए यह प्रिय समाचार इसी समय सुनाना चाहिए। सो सुनाने की इच्छामात्र से महाराज को आनन्द हो रहा है। मनमें प्रेम है। तन में पुलक है। वाणी में मृदुता और मञ्जुलता है।

महाराज कहने लगे कि हे भामिनी ! तू जो चाहती थी वही हो रहा है। बात यह है कि पहिले कैकेयी चाहती थी कि रामजी को राजतिलक हो। समाचार पाते ही मन्थरा को ईप्सित पुरष्कार देने को तैयार हो गयी थी। यथा : रामतिलक जौ सो चेहुँ काली। देउँ मागु मन भावत आली। बात तो बिगड़ी है मन्थरा के बहकाने पर। पूर्वधारणा के अनुसार महाराज कह रहे हैं कि नगर में घर घर बधावा बज रहा है और जिसका मनभावा हो रहा है उसका यह हाल !

रामहि देउँ कालि जुबराजू। सजहि सुलोचनि मंगल साजू ॥
दलकि उठेउ सुनि हृदय कठोरू। जनु छुइ गयउ पाक बरतोरू ॥२॥

अर्थ : कल रामजी को युवराजपद दूँगा। हे सुलोचनि ! तुम मङ्गलसाज साजो। सुनते ही तो उसका कठोर हृदय दलक उठा। जैसे बालतोड़ फोड़ा छू गया है।

व्याख्या : अब शुभ समाचार सुनाते हैं कि कल रामजी को युवराजपद दूँगा। अतः गहना सजने के बाद मङ्गल भी साजो। नगर में तमाम मङ्गलसाज सजा जा रहा है और तुम्हारे यहाँ कुछ भी नहीं है। उलटे कोपभवन में कोप का साज समाज बनाये पड़ी हो।

यद्यपि कैकेयी का हृदय कठोर हो गया था। फिर भी महाराज के मुख से इस वचन के सुनने पर उसके हृदय पर ऐसा आघात बैठा कि वह दलक उठा। बाल के टूटने से जो फोड़ा हो जाता है। उसके छूने से ऐसी पीड़ा होती है कि मनुष्य काँप उठता है। उसी भाँति कैकेयी का कलेजा काँप उठा। जहाँ व्यथा थी वही स्थान अकस्मात् स्पष्ट हो गया।

ऐसिउ पीर बिहँसि तेहिं गोई। चोर नारि जिमि प्रगटि न रोई ॥
लखी न भूप कपट चतुराई। कोटि कुटिल मनि गुरू पढ़ाई ॥३॥

अर्थ : ऐसी पीड़ा को भी वह हँसकर छिपा ले गयी। जैसे व्यभिचारिणी स्त्री प्रकट होकर नहीं रोती। राजा कपट चतुराई को नहीं लख रहे हैं। क्योंकि वह करोड़ों कुटिलों की मणिगुरु : कूबरी की पढ़ाई हुई है।

व्याख्या : हुई तो उसे बड़ी भारी पीड़ा और सुख तथा दुःख दोनों चेहरे पर दर्पण के प्रतिबिम्ब की भाँति झलक उठते हैं। उस दुःख की झलक को कहीं महाराज न लख लें। इसलिए वह हँसकर उसे छिपा ले गयी। जैसे चोर नारी प्रत्यक्ष नहीं रोती। चोर नारी व्यभिचारिणी स्त्री को कहते हैं। आज भी राजा की रखेली को चोर महल कहा जाता है। जैसे व्यभिचारिणी स्त्री पति की चोरी से पर पुरुष के साथ प्रेम करती है। उसका अनिष्ट सुनकर मनसे तो रो देती है। बाहर से प्रीति छिपाने के लिए हँसती है। इसी भाँति रानी भी हँसकर अपनी पीड़ा को छिपा ले गयी। यही महाराज के साथ विश्वासघात का उपक्रम है।

इस कपट चतुराई को महाराज नहीं लख रहे हैं। समझते हैं कि रामराज का समाचार सुनकर रानी आनन्द से हँस रही है। इतनी पण्डिताई कपट विद्या में रानी को कहाँ से आगयी? इसके उत्तर में ग्रन्थकार कहते हैं कि करोड़ों कुटिलों की शिरोमणि कूबरी ने पढ़ाकर पक्का कर रक्खा है। यथा : कहि कहि कोटिक कपट कहानी। धीरजु धरहु प्रबोधेसि रानी। तथा : काज सँवारेउँ सजगसबु सहसा जनि पतिआहु।

जद्यपि नीति निपुन नरनाहू। नारि चरित जलनिधि अवगाहू ॥
कपट सनेह बढ़ाइ बहोरी। बोली बिहँसि नयन मुहु मोरी ॥४॥

अर्थ : यद्यपि राजा नीति में निपुण हैं। पर स्त्री चरित्र भी अथाह समुद्र है। फिर वह कपट का प्रेम बढ़ाकर आँख और मुख को मोड़कर हँसती हुई बोली।

व्याख्या : नीतिनिपुण सब चरित्रों का थाह लगा तो लेते हैं। पर त्रियाचरित्र उनके लिए भी अथाह समुद्र है। गुरु का पक्का चेला चोट नहीं खाता। मन्थरा कोटि कुटिलमनि गुरु है। उसकी कपट चतुराई को रानी नहीं लख सकीं और रानी की कपट चतुराई को महाराज लखने में असमर्थ हैं। रानी का हृदय ऐसा दारुण हो गया है कि भीतर से पुत्र पति को त्यागने के लिए प्रस्तुत है। यथा : परउँ कूप तुअ बचन पर सकौं पूत पति त्यागि। और बाहर से नयन मुख मोड़कर स्नेह दिखाती हुई हँसकर बोली : यह किलंकिञ्चित हाव है।

दो. माँगु माँगु पै कहहु पिय, कबहुँ न देहु न लेहु।
देन कहेहु बरदान दुइ, तेउ पावत संदेहु ॥२७॥

अर्थ : हे प्रिय ! माँग माँग तो कहते हो पर कभी देना लेना कहीं कुछ भी नहीं। दो वरदान देने को कहा था। उनके मिलने में भी सन्देह है।

व्याख्या : महाराज ने बार बार प्रिये कहकर सम्बोधन किया था। अतः रानी भी प्रिय कहकर सम्बोधन करती है और उपालम्भ करती हुई कहती है कि आप माँग माँग तो कह देते हैं पर उस वचन को कार्य में परिणत नहीं करते। प्रमाण देती है कि पहिले भी इसी भाँति माँगु माँगु कहा था। परन्तु दिया क्या ? अब नया वरदान क्या दोगे ? जो दो वरदान देने के लिए कहा था वही दे दो तो मैंने बहुत पाया। मुझे तो सन्देह है कि उन्हीं दो को न दे सकोगे। सन्देह प्रकाश करने में तात्पर्य यह कि महाराज उस सन्देह को दूर करने के लिए सत्य की सराहना करें। देहु न लेहु कहने का भाव यह कि ईप्सित देते भी नहीं और नहीं कहकर अपयश लेते भी नहीं। यथा : देहु कि लेहु अयशकरि नांहीं।

जानेउ मरमु राउ हँसि कहई। तुमहि कोहाब परम प्रिय अहई ॥
थाती राखि न माँगिहु काऊ। बिसरि गयउ मोहि भोर सुभाऊ ॥१॥

अर्थ : राजा ने हँसकर कहा कि मैं मर्म जान गया। तुम्हें रूठना परम प्रिय है। तुमने धरोहर रखकर कभी नहीं माँगा। मेरा विस्मरणशील स्वभाव है। मैं भूल गया।

व्याख्या : महाराज ने तुरन्त समझ लिया कि असुर संग्राम में दिये हुए दोनों वरदानों के विषय में कह रही है। सो तो इनका रक्खा ही है। इनके माँगने की देर है। इन्होंने ही उस समय नहीं माँगा। कहा कि जब आवश्यकता होगी माँग लूँगी। सो वरदान में देर होना अप्रसन्नता का कारण नहीं हो सकता। इनका मान करने का स्वभाव है। सो वरदान न देने का बहाना ढूँढ़कर मान किये हुए हैं। अतः कहते हैं कि मुझे मर्म मालूम हो गया। तुम्हें रूठना बड़ा प्रिय है। उसी के लिए बहाना ढूँढ़ रक्खा है। तुम्हारी थाती रक्खी हुई है। नहीं माँगा इसमें दोष तुम्हारा है। यदि कहो कि धरोहर रखनेवाला यदि भूल भी जाय तो सच्चे महाजन को उचित है कि उसे याद दिलावे कि अपना धरोहर ले जाओ। इस पर महाराज कहते हैं कि मेरा विस्मरणशील स्वभाव है। मुझे भूल गया था कि तुम्हारा धरोहर रक्खा हुआ है। उसे बिना माँगे भी दे देना चाहिए।

झूठेहुँ हमहि दोषु जनि देहू। दुइ कै चारि माँगि मकु लेहू ॥
रघुकुल रीति सदा चलि आई। प्रान जाहुँ बरु बचनु न जाई ॥२॥

अर्थ : मुझे झूठमूठ दोष न दो। दो के बदले चार क्यों नहीं माँग लेती। सदा से रघुकुल की यह रीति चली आयी है कि प्राण चाहे चले जायँ। पर वचन न जाने पावे।

व्याख्या : कुछ भी संसर्ग रहने से झूठा दोष लग जाता है। परन्तु यहाँ तो मेरा दोष से कोई संसर्ग ही नहीं है। धरोहर में व्याज नहीं लगता। सो मैं व्याज

सहित देने को प्रस्तुत हूँ। व्याज की पराकाष्ठा मूल को द्विगुणित कर देना है। सो तुम मुझसे दो के स्थान में चार वरदान माँग लो। कैकेयी ने कहा था : देन कहेहु बरदान दुइ तेउ पावत संदेहु। उसी का उत्तर देते हुए महाराज कहते हैं कि मेरे कुल की रीति है कि प्राण छोड़ देते हैं वचन नहीं छोड़ते। मैं उस कुल का अग्रणी होकर वचन कैसे छोड़ूँगा ? मैं अपना वचन छोड़ नहीं सकता।

नहि असत्य सम पातक पुंजा। गिरि सम होहिं कि कोटिक गुंजा ॥
सत्य मूल सब सुकृत सुहाए। बेद पुरान बिदित मनु गाए ॥३॥

अर्थ : पातकों के समूह इकट्ठे होकर भी झूठ के बराबर नहीं हो सकते। क्या करोड़ों घुघुची पर्वत के समान हो सकती हैं ? जितने सुन्दर सुकृत हैं वे सब सत्यमूलक हैं। ऐसा ही वेद पुराण कहते हैं और मनु जी भी गान करते हैं।

व्याख्या : और जितने पाप हैं वे सत्य के सामने वैसे ही हैं जैसे पहाड़ के सामने घुघुची। अर्थात् सब पापों में अति विशाल असत्य है। इसीलिए सबसे नीचे का नरक अवीची है। जिसमें झूठे डाले जाते हैं। भाव यह कि ऐसी कुलरीति होने का यथेष्ट कारण है। प्राण देना मेरे पूर्व पुरुषों को स्वीकार था पर इतना बड़ा पाप करना स्वीकार न था।

और भी एक बात है। जितने पुण्य हैं वे सत्य के आधार पर हो खड़े हैं। सत्य के नष्ट होते ही पूर्व के सब पुण्य धराशायी हो जाते हैं। क्योंकि क्रिया के फल को आश्रय सत्य से ही मिलता है। यथा : सत्यप्रतिष्ठायाम् क्रियाफलाश्रयत्वम् तथा समूल एष परिशुष्यति योऽनृतं वदति। अज्ञातार्थज्ञापक होने से पाप पुण्य के निर्णायक वेद पुराण ही हैं। उनमें भी मनुस्मृति का पद बहुत ऊँचा है : यन्मनुरवदत्तद्भेषजम्। मन्वर्थविपरीता या सा स्मृतिर्न प्रशस्यते। वेद कहता है कि जो मनु कहते हैं वही औषध है। जो मनु के कहने के विपरीत है वह स्मृति मान्य नहीं है। अतः वचन को असत्य करके अपने पूर्वकृत पुण्यों का नाश और अवीची नरक को कौन स्वीकार करेगा ?

तेहि पर राम सपथ करि आई। सुकृत सनेह अवधि रघुराई ॥
बात दृढ़ाइ कुमति हँसि बोली। कुमत कुबिहग कुलह जनु खोली ॥४॥

अर्थ : इस पर श्री रामजी की शपथ मुझसे हो पड़ी। रघुराई रामजी पुण्य और स्नेह की सीमा हैं। बात को पक्की करके कुमति हँसकर बोली। मानो दुष्ट आशय रूपी बाज का टोप खोल दिया।

व्याख्या : रामजी सुकृत की अवधि हैं। यथा : सब कोउ कहै राम सुठि साधू। रामजी स्नेह की अवधि हैं। यथा : राम देत नहिं बनै गोसाईं। भाव यह कि दोही का शपथ लिया जाता है। पुण्यात्मा का या अपने स्नेही का। सो रामजी दोनों की सीमा हैं। सो मैंने रामजी की शपथ ले ली। अब तो नहीं कहने के लिए अवसर ही नहीं रह गया।

महाराज के इतना कहने पर यह बात इतनी दृढ़ हो गयी कि नर्म कहकर किसी भाँति उड़ायी नहीं जा सकती। महाराज ने कहा था : विहसि माँगु मन-भावति बाता। सो हँसकर बोली। बाज के आँख पर पट्टी बाँधकर रखा जाता है : जिसे टोप कहते हैं कि कहीं बेमौके झपट न पड़े। कैकेयी के दुष्ट आशय की उपमा बाज से दी है। उसे वह कपट चतुराई रूपी टोप से छिपाये रही। अवसर पाकर टोप खोल दिया। अर्थात् हँसकर बोली। भाव यह कि आशय ही व्यक्त होकर वचन में परिणत हो जाता है।

दो. भूप मनोरथ सुभग बनु, सुख सुबिहंग समाजु।
भिल्लिनि जिमि छाड़न चहति, बचन भयंकर बाजु ॥२८॥

अर्थ : राजा का मनोरथ सुन्दर वन है और सुख ही सुन्दर चिड़ियों का समाज है। भीलनी मानो वचन रूपी भयङ्कर बाज को छोड़ना चाहती है।

व्याख्या : साँझ समय सानंद नृपु गयउ कैकयी गेह। उसी आनन्द को यहाँ सुख कहा गया है। अर्थात् रामजी को राज्य देने का आनन्द। इस आनन्द के अन्तर्गत बहुत प्रकार के सुख हैं इसीलिए सुख सुबिहंग समाज कहा। एक ही वचन के दो वरदान दो विभाग मात्र हैं। मानो वचनरूपी बाज के दोनों वरदान दो पञ्जे हैं। भयङ्कर बाज है : एक एक पञ्जे में एक एक पक्षी के पकड़ने की ताकत रखता है। यहाँ कैकेयी की उपमा भिल्लिनी से दी। क्योंकि भिल्लिनी चिड़ियों के शिकारके लिए बाज जिलाती है और चिड़ियों का समाज देखकर उसे छोड़ देती हैं। उस बाज द्वारा विहङ्ग समाज का संहार हो जाता है। यहाँ राजा के मनोरथ रूपी वन में सुखरूपी चिड़ियों का समाज विहार करता था। सो कैकेयीरूपी भिल्लिनी के वचनरूपी बाज के चपेट से महाराज का मनोरथ वन सुख से शून्य हो जायगा।

सुनहुँ प्रानप्रिय भावत जी का। देहु एक बर भरतहि टीका ॥
माँगौं दूसर बर कर जोरी। पुरवहु नाथ मनोरथ मोरी ॥१॥

अर्थ : हे प्राणप्रिय ! मनोवाञ्छित सुनो। एक वर यह कि भरत को राजतिलक दो। दूसरा वरदान हाथ जोड़कर माँगती हूँ। हे नाथ मेरे मनोरथ को पूरा करो।

व्याख्या : प्राणप्रिय को छोड़कर जी का चाहा हुआ कौन पूरा कर सकता है। अतः कैकेयी प्राणप्रिय सम्बोधन दे रही है। बाज के पहिले पञ्जे की चोट है : देहु एक बर भरतहि टीका। राजा चुप हैं। आकार से कुछ लक्षित नहीं होता। अतः उसे स्वीकृत मान लिया।

पहिले वर के मिलने में कैकेयी को भी विशेष शङ्का नहीं थी। समझती थी कि यह वरदान मिल जायगा। दूसरे वर के मिलने में बड़ा सन्देह है। दूसरे वर को पहिले की भाँति नहीं कह सकी। कहने में सिटपिटाती है। क्योंकि स्वयं

रामजी के तिलक की इच्छा प्रकट कर चुकी है। यथा : भामिनि भयउ तोर मन भावा। हाथ जोड़ रही है बोलने में चूक हो रही है। मनोरथ शब्द का स्त्रीलिङ्ग में प्रयोग कर रही है। कहती है कि आप नाथ हैं। आपके बिना मनोरथ कौन पूरा करेगा : अब बाज पहिले पञ्जे के शिकार को सँभालकर दूसरे पञ्जे से चोट किया चाहता है।

तापस बेष बिसेषि उदासी। चौदह बरिस रामु बनवासी ॥
सुनि मृदु बचन भूप हियसोकू। ससिकर छुअत बिकल जिमि कोकू ॥२॥

अर्थ : तपस्वी का वेष धारण करके और विशेष रूप से उदासीन होकर चौदह वर्ष के लिए रामजी वनवासी हों। कोमल वचन को सुनकर राजा के हृदय में शोक हुआ। जैसे चन्द्र के किरण के स्पर्श से चकवा विकल हो जाता है।

व्याख्या : पहिले चोट : वर का प्रभाव यह हुआ कि हृदय में शोक हुआ। बाहर कुछ नहीं। मनोरथभङ्ग से दाह हुआ। यथा : सीतल सिख दाहक भइ कैसे। चकइहि सरद चंदनिसि जैसे। दूसरे पञ्जे की चोट। यह वरदान ऐसा माँगा जिससे अपनी निगाह से और दूसरों की निगाह से राजभाव जाता रहे। अतः तापस वेष में रामजी का रहना माँगती है। राज के मामलों से सम्बन्ध न रक्खें। मुनिव्रत वेष अहार से मनोवृत्ति बदल जाय। इसलिए उदासीन रहना माँगती है। कैकेयी के समझ में उससे चौदह दिन बात छिपायी गयी। पन्द्रहवें दिन मन्थरा से पता चला। यथा : भयउ पाख दिनु सजत समाजू। तुम्ह पाई सुधि मोहि सन आजू। अतः एक एक दिन बात छिपाने के बदले में एक एक वर्ष का वनवास माँगती है। फिर भी कैकेयी के हृदय में छिपा प्रेम है। नहीं तो मन्थरा ने सदा के लिए वनवास कहा था। यथा : सुतहि राजु रामहि बनबासू। अथवा १४ वर्ष का समय भरत को अपने शासन को दृढ़मूलक बना लेने के लिए यथेष्ट समझकर १४ वर्ष का वनवास माँगा। अथवा बुध की महादशा में तीन वर्ष व्यतीत हो चुके थे। चौदह बाकी थे। इसलिए रानी के मन में चौदह वर्ष के लिए वनवास माँगने का सङ्कल्प उठा। मृदु वचन यथा : सुनहुँ प्रानप्रिय भावत जी का।

गयउ सहमि नहि कछु कहि आवा। जनु सचान बन झपटेउ लावा ॥
बिबरन भयउ निपट नरपालू। दामिनि हनउ मनसु तरु तालू ॥३॥

अर्थ : सहम गये। कुछ कहते न बना। मानो वन में लवा के ऊपर बाज झपट पड़ा। राजा एक बारगी बेरंग हो गये : रंग फक हो गया। मानो ताड़ के पेड़ पर बिजली गिरी हो।

व्याख्या : दूसरी चोट से तो ऐसे सहमे कि कुछ कहते न बना। बोलना चाहा पर बोल न सके। पहिले में केवल मन की दशा दिखलायी। जब मन की दशा अधिक बिगड़ती है तब वाणी और शरीर पर प्रभाव पड़ता है। यहाँ वाणी की दशा कही। अब बाज झपट का पता लगा। पहिले तक तो मातृप्रेम ही समझते

थे। परन्तु इस दूसरे वरदान के समय तो ऐसी गति हुई जैसे बाज वन में लवा पर झपटता है। बाज के झपटने पर लवा चीं भी नहीं कर सकता। इस भाँति वाणी की दशा कहते हैं।

तालतरु तृणराज है। दूसरे पेड़ पर बिजली गिरने से कोई शाखा विशेष टूट जाती है। पर तृणराज तो एकदम झुलस जाते हैं। उनके डाल पत्ते सिरपर होते हैं वे एकदम नीचे आ पड़ते हैं।

माथे हाथ मूदि दोउ लोचन। तनु धरि सोचु लाग जनु सोचन ॥
मोर मनोरथु सुरतरु फूला। फरत करिनि जिमि हतेउ समूला ॥४॥
अवध उजारि कीन्हि कैकेई। दीन्हिसि अचल बिपति कै नेई ॥५॥

अर्थ : माथे पर हाथ रखकर और दोनों आँखें बन्द करके इस भाँति सोचने लगे जैसे स्वयं सोच शरीर धारण किये हो। मेरा मनोरथ रूपी कल्पवृक्ष फूल उठा था। फल लगते ही हथिनी ने उसे जड़ से उखाड़ फेंका। कैकेयी ने अयोध्या को उजाड़ दिया और विपत्ति की अटल नींव डाल दी।

व्याख्या : ऊपर की तीन अर्धालियों में क्रमशः मन वचन और तन की दशा कही। आघात पड़ते ही जो विकलता होती है उसे कहकर उसके बाद की दशा कहते हैं। दोनों हाथों पर इस भाँति माथा रखना जिसमें आँखें मुद जायँ शोक की मुद्रा है। जिसे अपने सोच का आरपार नहीं दिखाई पड़ता वह स्वभाव से इसी मुद्रा में हो जाता है। कवि उपमा देते हैं मानो सोच ही शरीर धारण करके सोच रहा है। भाव यह कि चक्रवर्तीजी को इस समय बाह्यज्ञान कुछ भी नहीं है। वे शोकमय हो रहे हैं।

कल्पवृक्ष के पृथ्वी पर आने से सभी अपना भाग्य मानते हैं और सब उसकी बढ़ोत्तरी चाहते हैं। क्योंकि सब जानते हैं कि यह सबकी कामना को पूर्ण करनेवाला है। अतः बड़े यत्न से कल्पतरु की सेवा होती है। हथिनी में बल बड़ा है। पर वह मूर्खा है। कल्पवृक्ष के गुणों से अपरिचित है। उसने आकर अपने बल मद से कल्पवृक्ष को ही उखाड़ फेंका। उखाड़ा हुआ वृक्ष फिर नहीं लगता।

यहाँ चक्रवर्तीजी के मनोरथरूप रामजी स्वयं कल्पवृक्ष हैं। उनका सब लायक होना फूलना है। यथा : कहइ भुसुआलु सुनिअ मुनिनायक। भये रामु सब बिधि सब लायक। और उनका अभिषेक होना फलना है। यथा : नाथ रामु करिअहिं जुबराजू। कहिअ कृपा करि करिअ समाजू। सो सब समाज हो रहा था। वरदान के बल से दर्पित कैकेयी हथिनी हुई। और किसी में कल्पवृक्ष के उखाड़ने की सामर्थ्य नहीं। इस मूर्खा ने रामजी के दिव्य गुणों को न जाना। उन्हें अयोध्या के बाहर उखाड़ फेंका। सबके हाथ से कल्पवृक्ष जाता रहा।

इतने दिन चक्रवर्तीजी को राज्य करते हुए किसी शत्रु का उजाड़ा अवध न उजड़ सका। कैकेयी ने उजाड़ दिया। भाव यह कि प्रजा रामजी में इतनी अनुरक्त

है कि रामजी के छोड़ते ही कोई अयोध्या में रहना न चाहेगा। यथा : जहँ रामु तहँ सबुइ समाजू। बिनु रघुबीर अवध नहि काजू। चले साथ अस मंत्रु दृढ़ाई। सुर दुर्लभ सुख सदन बिहाई। तथा : मोहिं लगि यहु कुटाटु तेहि ठाटा। घालेसि सब जग बारहँ बाटा। मिटइ कुजोगु राम फिरि आएँ। बसै अवध नहिं आन उपाएँ। सो इसने अचल विपत्ति की नींव दे दी। रामजी को राज्य कहकर वन दिया जायगा। सो चौदह वर्ष के लिए। इतने दिनों में तो अवध का पता भी न रह जायगा और चौदह वर्ष बीतने पर भी रामजी क्यों लौटेंगे। अतः इसने विपत्ति की अचल नींव डाल दी। अब मकान का बनना किसी के रोके नहीं रुकेगा : भाव यह कि चक्रवर्तीजी ने मन से वन दे दिया।

दो. कवनें अवसर का भयउ, गयउँ नारि बिस्वास।
जोग सिद्धि फल समय जिमि, जतिहि अबिद्या नास ॥२९॥

अर्थ : अब किस मौके पर क्या होगा? मैं तो स्त्री के विश्वास में मारा गया। जैसे योगसिद्धि के फल के समय अविद्या सन्यासी का नाश कर देती है।

व्याख्या : कह्यौ राज बन दियो नारि बस गरि गलानि गये राउ। अतः कहते हैं कि कहाँ तो मैं राज देने चला और कहाँ वन दे रहा हूँ। ऐसा होने का कारण कहते हैं कि राजनीति में मैं चूक गया। विश्वासो नैव कर्त्तव्यः स्त्रीषु राज-कुलेषु च। मैंने क्यों स्त्री का विश्वास किया? इसी चूक से मेरा सर्वनाश उपस्थित है। साँझ समय सानंद नृपु गयउ कैकयी गेह। महाराज कैकेयी को आनन्द का समाचार सुनाने गये। उन्हें विश्वास था कि कैकेयी सुनकर परम प्रसन्न होगी। क्योंकि सदा कहा करती है कि भरत से भी मुझे रामजी प्यारे हैं। यथा : भरत न मोहि प्रिय राम समाना। सदा कहहु यह सब जग जाना। जब कैकेयी को रूठी हुई पाया तब उसे प्रसन्न करने के लिए रामजी के तिलक का निश्चय सुनाते हैं : रामहिं देउँ कालि युबराजू। सजहि सुलोचनि मंगल साजू। इसपर कैकेयी भी बाहर से हँस पड़ी। इस भाँति चक्रवर्ती जी के विश्वास को और भी दृढ़ कर दिया कि कैकेयी को रामजी का अभिषेक पहिले की भाँति परम इष्ट है।

उदाहरण देते हैं कि जैसे योगसिद्धि के फल के समय, अर्थात् जड़ चेतन की ग्रन्थि विमोक के समय अविद्या बल छल करके ज्ञान दीप को बुझा देती है। यथा : छोरत ग्रंथि जानि खग राया। विघ्न अनेक करै तब माया। कल बल छल करि जाइ समीपा। अंचल बात बुझावहिं दीपा। ग्रन्थि न छूटि मिटा सो प्रकासा। बुद्धि विकल भइ विषय बतासा। विषय समीर बुद्धि कृत भोरी। एहिं बिधि दीप को वार बहोरी। तब फिर जीव बिबिध बिधि पावै संसृति क्लेस। हरि माया अति दुस्तर तरि न जाइ विहँगेस।

सो जिस भाँति उक्त संन्यासी का नाश अविद्या ने किया उसी भाँति मेरा सर्वनाश स्त्री द्वारा हुआ।

एहि बिधि राउ मनहि मन झाँखा । देखि कुभाँति कुमति मनु माखा ।।
भरतु कि राउर पूत न होहीं । आनहु मोल बेसाहि कि मोहीं ।।१।।

अर्थ : इस भाँति राजा मन ही मन झींख रहे थे । देखकर कुबुद्धि : कैकेयी के मन में बुरी तरह से क्रोध हुआ । बोली : क्या भरत आपके पुत्र नहीं हैं । मुझे क्या मोल खरीद लाये हो ?

व्याख्या—इस विधि से अर्थात् आँख मूँदे माथे पर हाथ रक्खे राजा अपने मनोरथ के नाश और अयोध्या के उजड़ने का सोच कर रहे थे । कवि कहते हैं कि कैकेयी की सुमति चली गयी । अब वह कुमति के अधीन है । उसने देखा कि राजा का ढङ्ग तो अच्छा नहीं है । राजा की यह अवस्था देखकर सुमति को दया आती । पर कुमति के मनमें क्रोध उमड़ा ।

उसने कहा कि क्या भरत आपके बेटे नहीं हैं ? भाव यह कि जैसे राम बेटे हैं वैसे ही भरत हैं । भरत को राज्य माँगने से आपको दु:ख क्यों है ? मैं भी तो रानी हूँ । दासी की भाँति मुझे मोल खरीद करके नहीं लाये हो । भाव यह कि राजा का बेटा राजा नहीं होता रानी का बेटा राजा होता है । दासी से भी राजाओं की सन्तति होती हैं पर वे पुत्र नहीं माने जाते । क्योंकि उनको जल पिण्ड का अधिकार नहीं होता । भरत के पिता आप राजा हैं और मैं भी पाणिगृहीता भार्या रानी हूँ । हम दोनों का बेटा भरत कैसे राज्य का अधिकारी नहीं है ? उसके लिए यदि मैंने राज्य माँगा तो आप को इतना दु:ख क्यों है ?

जो सुनि सरु अस लागु तुम्हारें । काहे न बोलहु बचनु सँभारें ।।
देहु उतरु अनुकरहु[1] कि नाहीं । सत्यसंध तुम्ह रघुकुल माहीं ।।२।।

अर्थ : जो सुनने से तुम्हें बाण सा लगा तो तुम पहिले ही सोच समझकर क्यों नहीं बोले ? जवाब दो । इनकार कर जाओ कि 'नहीं' । तुम रघुकुल में सत्यप्रतिज्ञ हो ।

व्याख्या : कैकेयी कहती है कि मेरे वरदान के वचन तुम्हें बाण से लगे । यथा : बिबरन भयउ निपट महिपालू । दामिनि हनेउ मनहुँ तरुतालू । परन्तु इस भाँति दु:ख होने का कारण तो कोई है नहीं । तुमने कहा था—कहु केहि रंकहि करउँ नरेसू । कहु केहि नृपहि निकासउँ देसू । सो मैंने तो किसी रङ्क को नरेश करने के लिए भी नहीं कहा । मैं तो एक राजकुमार को नरेश बनाने को कहती हूँ और न मैंने किसी नरेश को देश निकालने के लिए कहा । मैं तो केवल दूसरे राजकुमार के लिए १४ वर्ष का वनवास माँगती हूँ । तुम्हारे कहने से बहुत कम मैंने माँगा है । मैंने माँगने में सँभाल रक्खा । तुमने सँभालकर वचन क्यों न कहा । इस भाँति कैकेयी महाराज की नीतिज्ञता पर आक्षेप करती है ।

---

१. इनकार को ही ग्राम्यजन अनुकार कहते हैं ।

राजा को चुप देखकर फिर कहती है कि चुप न रहो। एक बात कह दो। इनकार ही कर जाओ कि नहीं दूँगा। रघुकुल की रीति है कि प्राण जाय तो जाय वचन न जाय और तुम तो उस कुल में सत्यसन्ध हो। संसार देख ले कि कितने बड़े सत्यसन्ध हो : स्त्रियाँ पति के स्वभाव को खूब जानती हैं। कैकेयी भी जानती है कि महाराज अपयश को डरते हैं। 'नहीं' कभी न कहेंगे।

देन कहेहु अब जनि बरु देहू। तजहु सत्य जग अपजसु लेहू ॥
सत्य सराहि[1] कहेहु बरु देना। जानेहु लेइहि माँगि चबेना ॥३॥

अर्थ : वर देने को कहा था। अब मत दो। सत्य को त्याग दो और संसार में अपयश लो। सत्य की सराहना करके वर देने को कहा तो क्या समझा था कि यह चबेना माँग लेगी।

व्याख्या : भाव यह कि पहिले तो कहा : झूठेहुँ हमहि दोसु जनि देहू। दुइ कै चारि माँगि मकु लेहू। रघुकुल रीति सदा चलि आई। प्रान जाहुँ बरु बचन न जाई। इस दृढ़ता से वर देनें को कहा। अब अपनी बात से हट जाओ मत दो। देना तो तुम्हारे हाथ में है। पर समझ लो कि सत्य को त्याग रहे हो और अपनी अपकीर्ति को अपना रहे हो।

यदि कहो कि मैं नहीं समझता था कि यह भरत को राज्य और रामजी को वनवास माँगेगी। मुझे धोखा हुआ। इसपर कहती है कि धोखे की बात नहीं। तुम कठिन से कठिन वर देने को जान बूझकर तैयार थे। प्रान जाहुँ बरु बचन न जाई। नहि असत्य सम पातक पुंजा। सत्यमूल सब सुकृत सुहाए। इंत्यादि वचनों को वर देते समय तुमने उच्चारण किया है। वरदान के समय सत्य की प्रशंसा का तात्पर्य ही यही है कि जो चाहो सो माँगो, मैं घोर से घोर संकट सहूँगा पर बात से न हटूँगा। तुम राजा हो। समझ सकते हो कि वरदान में चबेना ऐसी सुलभ वस्तु नहीं माँगी जाती।

सिवि दधीचि बलि जो कछु भाषा। तनु धनु तजेउ बचन पनु राखा ॥
अतिकटु बचन कहति कैकेई। मानहुँ[2] लोन जरे पर देई ॥४॥

अर्थ : शिवि दधीचि और राजा बलि ने जो कुछ कहा था शरीर और धन का त्याग करके भी वचन और प्रण को रक्खा। कैकेयी अत्यन्त कडुए वचन कह रही है मानों जले पर नमक छिड़क रही है।

व्याख्या : शिवि दधीचि और बलि सत्यसन्ध थे। शिवि ने अपने शरीर का माँस काटकर कबूतर के बराबर तौल दिया। कबूतर भारी हो गया। राजा शिवि माँस काट काटकर तुला पर चढ़ाते गये। अन्त में जब सिर चढ़ाने लगे तब इन्द्र

---

१. यह छेकोक्ति अलङ्कार है।
२. फलसिद्धास्पदा उत्प्रेक्षा।

और अग्नि ने प्रकट होकर उनकी सत्यप्रतिज्ञा की प्रशंसा की और उनके शरीर को ठीक कर दिया। राजा की शरणागतवत्सलता की परीक्षा के लिए इन्द्र बाज और अग्नि कबूतर बने थे। कबूतर भागता हुआ राजा शिवि की गोद में जा छिपा। बाज ने आकर कहा कि यह मेरा भक्ष्य है। इसे दे दीजिये। राजा ने कहा इसके बदले में जो माँगो दूँगा। बाज ने कहा अपने शरीर का मांस इसके बराबर तौल दो। शिवि कह सकते थे कि मुझे धोखा हुआ मैं नहीं समझता था कि तुम मेरे शरीर का मांस माँगोगे। परन्तु उन्होंने ऐसा न कहा। काटकर अपना मांस तौलने लगे। वे चबैना देनेवाले सत्यसन्ध नहीं थे।

दधीचि ऋषि देवताओं का धरोहर अस्त्र शस्त्र रक्खे हुए थे। राक्षसों से हैरान होकर वे उनको पान कर गये। जब देवता माँगने आये तो उन्होंने कहा कि वे तो जठरानल में पककर मेरी अस्थि में लीन हो गये हैं। मेरी हड्डी ले जाकर अपने अस्त्र शस्त्र बना लो। सो दधीचि जी इस भाँति रक्खी हुई थाती को लौटानेवाले सत्यसन्ध थे। चबैनावाले नहीं थे।

राजा बलि से वामन ने तीन हाथ पृथ्वी माँगी। दान पाने पर वामन ने अपना विराट् रूप कर लिया और उसके त्रैलोक्य का राज्य तथा उसकी शरीर भी नाप ली। राजा बलि ने यह न कहा कि मुझे धोखा हुआ मैं नहीं जानता था कि तुम इतनी बड़ी शरीर बना लोगे। क्योंकि वे सत्यसन्ध थे। चबैना देनेवाले नहीं थे।

इस भाँति शिवि दधीचि ने तन दिया। बलि ने तन धन दोनों दिया। पर न शिवि अपने प्राण से हटे और न दधीचि और न बलि अपने वचन से हटे। तीनों के साथ कपट हुआ। पर वे धर्म से न हटे। वे सत्यसन्ध थे। चबैना देनेवाले नहीं थे। तुम्हें न तन देना है न धन देना है। मुफ्त में सत्यसन्ध कहलाना है। इन कटु वचनों से महाराज को अति पीड़ा हो रही है। जैसे जले पर कोई नमक छिड़के और वह मनुष्य छटपटा उठे।

दो. धरम धुरंधर धीर धरि, नयन उघारे राय।
सिर धुनि लीन्ह उसास असि, मारेसि मोहि कुठांय ॥३०॥

अर्थ : धर्म की धूरि धारण करनेवाले महाराज ने धीरज धरकर नेत्र खोले और सिर धुनकर लम्बी श्वास ली कि इसने बुरी जगह मुझे तलवार मारी।

व्याख्या : महाराज के हृदय में शोक था। सो धैर्य धारण किया। माथे हाथ रखकर आँख मीचे हुए थे। सो आँख खोली। जले पर नमक छिड़कने के कारण सिर पीटा, अतिपीड़ा से लम्बी श्वास लेकर मन में कहा कि इसने मेरे मर्म पर तलवार मारी। इस चोट से मैं बच नहीं सकता। कहने के लिए इसकी चोट राम पर है। वस्तुतस्तु यह मेरे प्राण पर आघात हुआ।

कैकेयी ने कहा कि अपने को सँभालकर कुछ बोलो तो। हाँ या ना कुछ उत्तर तो दो और राजा की विकलता पर अनेक आक्षेप किया। तब राजा ने अपने

को सँभाला। धैर्य धारण करके आँख खोली। पर सामने का दृश्य देखकर सिर पीटने लगे। कैकेयी को ऐसा क्रोध में भरा पाया कि उससे दया या स्नेह की कोई आशा ही नहीं रह गयी। जब मनुष्य से कुछ करते नहीं बनता तभी वह सिर पीटता है। लम्बी साँस लेता है। राजा सत्य के अनुरोध से ना कर नहीं सकते और रामजी प्राणों से अधिक प्रिय हैं। उन्हें आँख से ओट करना और प्राण छोड़ना एक बात है। अतः हाँ करना भी असम्भव है। अब यदि कैकेयी ही दया करे तो कोई रास्ता निकल सकता है। सो कैकेयी : आगे दीख जरत रिसि भारी। मनहु रोष तरवारि उघारी हो रही है। अतः सिर पीटते हैं और लम्बी साँस लेते हैं। सोचते हैं कि इसके क्रोध रूपी खड्ग का आघात रामजी पर नहीं है मुझपर है। राम पुनीत विषय रस रूखे हैं : देवताओं ने भी कहा था कि विस्मय हर्ष रहित रघुराऊ। अतः रामजी की भी कोई विशेष हानि नहीं है। इसमें मरण हमारा है जो रामजी के बिना जी नहीं सकते। सबसे बड़ी बात तो यह है कि मैंने ही रामजी से कहलाया था कि कल तुम्हारा अभिषेक होगा और जब कल का दिन आवे तब मैं ही कहूँ कि मैं तुम्हें वनवास देता हूँ। यह तो प्राण रहते नहीं हो सकता। यथा : कह्यो राज बन दियो नारि बस गरि गलानि गयो राउ। अतः यह तलवार की चोट ऐसे मर्म पर की गयी है कि इसका परिणाम मृत्यु ही है। इसका कोई उपचार नहीं हो सकता। इसलिए कहते हैं कि यह तलवार मुझ पर चली है और इसने सद्यःप्राणहर मर्म को काट दिया।

आगे दीखि जरत रिस भारी। मनहु रोष तरवारि उघारी॥
मूठि कुबुद्धि धार निठुराई। धरी कूबरीं सान बनाई॥१॥

अर्थ : सामने क्रोध से जलती हुई : कैकेयी को देखा मानों खिंची हुई क्रोध की तलवार है। कुबुद्धि मूठ है। निष्ठुरता धार है। जिसपर : कूबरी ने शान दे रक्खा है।

व्याख्या : आँख खोलते ही महाराज की दृष्टि कैकेयी पर पड़ी। देखते हैं कि वह अपने वश में नहीं है। क्रोध के हाथ की शस्त्र हो गयी है। पहिले कोष में तलवार थी। यथा : ऐसिउ पीर बिहँसि तेहि गोई। चोरनारि जिमि प्रगटि न रोई। अब कोष के बाहर निकल आयी है। चोट कर रही है।

उस तलवार की मूठ कुबुद्धि है। उसे मजबूती से पकड़े हुए है और निष्ठुरता ही धार है। उसे शान रखकर कूबरी ने खूब तीखी कर रक्खी है। यथा : काजु सँवारेउ सजग सबु सहसा जनि पतिआहु।

लखी महीप कराल कठोरा। सत्य कि जीवनु लेइहि मोरा॥
बोले राउ कठिन करि छाती। बानी सबिनय तासु सोहाती॥२॥

अर्थ : चक्रवर्तीजी ने लखा कि कराल कठोर है। क्या सचमुच मेरा प्राण लेगी। राजा छाती कड़ी करके विनययुक्त वाणी जो उसे अच्छी लगे बोले।

व्याख्या : राजा हैं। स्वरूप देखते ही लख लिया कि यह तलवार : कैकेयी तो भयानक कठोर है। कुठाँव तलवार लगाने पर भी राजा समझते थे कि यह मेरा प्राण न लेगी। इतनी कठोर नहीं हो सकती कि पति के प्राण की परवाह न करे। पर अब उसकी कराल कठोरता देखकर यह भी सम्भव मालूम होने लगा।

राजा ऐसे सहमे हुए थे कि उनके मुख से शब्द नहीं निकलते थे। यथा : गयेउ सहमि नहि कछु कहि आवा। सो आवश्यकता देखकर उन्होंने छाती कड़ी की और बोले। क्रोधी से विनय करने और उसे अच्छी लगनेवाली वाणी बोलने से ही काम निकलता है। क्रोधी के ऊपर क्रोध करने से बात और बिगड़ती है। अतः राजा विनययुक्त प्रिय लगनेवाली वाणी बोले।

प्रिया बचन कस कहसि कुभाँती। भीर प्रतीति प्रीति करि हाँती॥
मोरें भरतु रामु दुइ आँखी। सत्य कहउँ करि संकरु साखी॥३॥

अर्थ : हे प्रिये ! हे भीरु ! विश्वास और प्रीति का हनन करके ऐसी बुरी तरह से वचन क्यों बोलती हो। मेरे तो भरत और राम दोनों आँखें हैं। शङ्कर को साक्षी देकर सत्य कहता हूँ।

व्याख्या : तू मेरी प्रिया है। तेरे मुख से प्रीति और प्रतीतियुक्त वचन ही शोभा देते हैं। सो तू ऐसे वचन क्यों बोल रही है जिससे प्रीति और प्रतीति का हनन हो। प्रीति का हनन यथा : सत्य सराहि कहहु बर देना। जानहु लेइहि माँगि चबेना। प्रतीति का हनन यथा : देहु उतरु अनुकरहु कि नाहीं। सत्यसंध तुम्ह रघुकुल माहीं। यह विनययुक्त वचन है।

कैकेयी ने कहा था : भरतु कि राउर पूत न होहीं। आनेउ मोल बिसाहि कि मोही। उसी का उत्तर देते हुए कहते हैं कि भरत और राम ये ही दोनों मेरी आँखें हैं। भरत पहिले राम पीछे। जो मनकी बात जाने उसी को साक्षी दिया जाता है। चक्रवर्तीजी शङ्कर को साक्षी देकर कह रहे हैं। जिसमें इस वचन के सत्य होने में कैकेयी को सन्देह न हो।

अवसि दूतु मैं पठइब प्राता। ऐहहिं बेगि सुनत दोउ भ्राता॥
सुदिनु सोधि सबु साज सजाई। देउँ भरत कहुँ राजु बजाई॥४॥

अर्थ : मैं सबेरा होते ही दूत भेजूँगा। समाचार : सुनते ही दोनों भाई शीघ्र आवेंगे। तब : सुदिन दिखाकर और सब साज सजकर भरत को डंका देकर राज दूँगा।

व्याख्या : सबेरा होते ही पहिला काम यह होगा कि भरत को बुलाने दूत भेजे जायँगे। दूत के पहुँचने की देर है भरत शत्रुघ्न के आने में देर न लगेगी। भाव यह कि टालमटोल की बात नहीं है। जितनी शीघ्रता सम्भव है की जायगी। रामजी के अभिषेक की तो अब कोई बात नहीं है।

मुझे भरत को राज्य देने में उतना ही उत्साह है जितना रामजी को

देने में था। अतः अच्छा मुहूर्त्त दिखवाकर धूमधाम के साथ डंका की चोट देकर भरत को राज्य दूँगा। यह देहु उतरु अनुकरहु कि नाहीं का उत्तर है। यह तासु सोहाती वाणी है।

दो. लोभु न रामहि राजु कर, बहुत भरत पर प्रीति।
मैं बड़ छोट बिचारि जिय, करत रहेउँ नृपनीति ॥३१॥

अर्थ : रामजी को राज्य का लोभ नहीं है और भरत से बहुत प्रेम करते हैं। मैं ही छोटे बड़े के विचार से राजनीति का बर्ताव करता था।

व्याख्या : रामजी को चौदह वर्ष वनवास देने का कारण यही हो सकता है कि वे भरत के अभिषेक में बाधक होंगे अथवा शासन में विघ्न उपस्थित करेंगे। परन्तु ऐसा तो वही कर सकता है जिसे राज्य का लोभ हो या जिसे तिलक दिया जाता हो उससे विरोध हो। रामजी को राज्य का लोभ नहीं है और भरत पर उनकी बड़ी प्रीति है। अतः उनसे कोई भय नहीं है। उन्हें तो मैं राजनीति का ख्याल करके राज देता था। राज्य का विभाजन नीति सम्मत नहीं है। नीतिशास्त्र की आज्ञा बड़े को ही राज्य देने की है अतः मैंने रामजी को राज्य देना चाहा था। कोई दूसरा कारण इसमें नहीं है।

राम सपथ सत कहउँ सुभाऊ। राममातु कछु कहेउ न काऊ॥
मैं सबु कीन्ह तोहि बिनु पूछें। तेहि तें परेउ मनोरथ छूछें॥१॥

अर्थ : मैं राम की सौ शपथ खाकर वस्तुस्थिति कहता हूँ कि रामजी की माता ने कभी कुछ नहीं कहा। मैंने सब बिना तुझसे पूछे किया। इससे मनोरथ खाली गया।

व्याख्या : मान लिया जाय कि रामजी को राज्य का लोभ नहीं है। तो कौसल्या की प्रेरणा से तो सब हो रहा है। इसपर चक्रवर्तीजी कहते हैं कि राम की माता ने कभी कुछ इस विषय में नहीं कहा और विश्वास दिलाने के लिए रामजी की शपथ ले रहे हैं।

चक्रवर्तीजी कहते हैं कि इसमें यदि कोई अपराध है तो मेरा है। मुझे उचित था कि इतना बड़ा कार्य करने के पहिले तुमसे सम्मति ले लेता। सो मैंने नहीं किया। उसका फल मिल गया। आजतक मेरा कोई मनोरथ विफल नहीं गया था। सो आज हुआ। अब रामजी का अभिषेक नहीं होगा।

रिस परिहरु अब मंगल साजू। कछु दिन गए भरत जुबराजू॥
एकहि बात मोहि दुख लागा। बर दूसर असमंजस माँगा॥२॥

अर्थ : अब क्रोध छोड़कर मङ्गल साज सजाओ। कुछ दिन के बाद भरत युवराज होंगे। एक ही बात में मुझे दुःख हुआ। यह दूसरा वर तुमने बेतुका माँगा है।

व्याख्या : कैकेयी क्रोध से भरी हुई है। इसलिए कहते हैं कि क्रोध को छोड़ दो। क्रोध करने से विवेक नहीं रह जाता। तुम्हारा मनोरथ पूर्ण हुआ। भूषण तो सज लिया है। अब मङ्गल भी साजो। कल तो नहीं हो सकता। भरत के आने पर उन्हें युवराज पद दूँगा। अतः पहिला वरदान मैं खुशी से देता हूँ।

दुःख तो मुझे दूसरे वरदान के देने में है। क्योंकि उसका तुक : सामञ्जस्य किसी भाँति नहीं बैठता। पहिले का तुक तो बैठ जाता है। भरत तुम्हारे और सुपुत्र हैं। उनके लिए तुम राज्य माँगती हो ठीक है। मुझे भी प्रिय है। परन्तु दूसरे वरदान से तुम्हें कोई लाभ नहीं और मेरी पीड़ा का कोई अन्त नहीं। अतः यह वरदान बेतुका है।

अजहूँ हृदउ जरत तेहि आँचा। रिसि परिहास कि साँचेहु साँचा ॥
कहु तजि रोषु राम अपराधू। सबु कोउ कहइ रामु सुठि साधू ॥३॥

अर्थ : उस आँच से अब भी हृदय जल रहा है। यह क्रोध है। हँसी है कि सचमुच सच्चा है। क्रोध छोड़कर राम का अपराध बताओ। सारी जनता कहती है कि रामजी अत्यन्त भले हैं।

व्याख्या : कैकेयी ने कहा था : जो सुनि सरु अस लाग तुम्हारे। इस पर चक्रवर्तीजी कहते है कि शर की भाँति नहीं वज्र की भाँति लगा। यथा : दामिनि हनउ मनहु तरु तालू। बिजली से तलवार सी चोट नहीं होती। उससे आग लग जाती है। सो इस दूसरे वर से मेरे शरीर में आग लग गयी। अब भी उसकी आँच से हृदय जल रहा है। मुझे विश्वास नहीं हो रहा है कि जो तुम कह रही हो वही तुम्हारा अभिप्रेत है। ऐसी बात तो क्रोध के वेग में कही जाती है। उसकी सचाई क्रोध के वेग मात्र में ही रहती है या परिहास में कही जाती है। जिसकी सचाई परिहास मात्र में सीमित रहती है।

यदि यह बात सचमुच सच्ची है तो अवश्य रामजी से कोई ऐसा अपराध बन पड़ा है जिसका दण्ड तुम उन्हें इस भाँति दिया चाहती हो। तो उसे मैं भी सुन लूँ। जिसमें वरदान देने में मुझे सन्तोष हो कि जो मैं कर रहा हूँ सो ठीक कर रहा हूँ। सम्भव है कि बात समझने में कुछ चूक हो रही हो। क्योंकि सारी जनता राम की साधुता की प्रशंसा करती है। ऐसे साधु से इतना बड़ा अपराध नहीं हो सकता। जिसके लिए यह दण्ड दिया जाय और बड़े अपराध पर ही ऐसा क्रोध होता है कि अपराध बिना प्रकट किये दण्ड देना ही उचित मालूम पड़ता है। अतः क्रोध का परित्याग करके पहिले अपराध बतलाओ।

तुहूँ सराहसि करसि सनेहू। अब सुनि मोहि भयउ संदेहू ॥
जासु सुभाउ अरिहि अनुकूला। सो किमि करिहि मातु प्रतिकूला ॥४॥

अर्थ : तू भी सराहना करती थी। प्रेम करती थी। अब सुनकर मुझे सन्देह

हुआ है। जिसका स्वभाव शत्रु के भी अनुकूल पड़ता है। वह माता के प्रतिकूल आचरण कैसे करेगा ?

व्याख्या : रामजी की सराहना जैसा संसार करता है जैसा प्रेम करता है वैसा ही तू करती थी और आज तू उन्हें वन दे रही है। अतः वन देना सुनकर मुझे सन्देह हुआ कि बात क्या है कि एकाएक तेरे भाव में इतना बड़ा परिवर्तन हुआ। अवश्य रामजी से कोई बड़ा अपराध बन पड़ा।

पर यह भी नहीं हो सकता। रामजी का स्वभाव शत्रु के भी अनुकूल पड़ता है। यथा : वैरिहु राम बड़ाई करहीं। ऐसे राम माँ के प्रातकूल आचरण करें यह हो नहीं सकता। कहीं समझने में भूल हो रही है।

दो. प्रिया हास रिस परिहरहि, माँगु बिचारि बिबेकु।
जेहि देखौं अब नयन भरि, भरत राज अभिषेकु ॥३२॥

अर्थ : प्रिये ! हँसी या रिस : इनमें से जो हो : छोड़ दो और विवेक विचार कर माँगो। जिसमें अब मैं भरत का राज्याभिषेक तो देख लूँ।

व्याख्या : हास्य या क्रोध में अतथ्य भी कहा जाता है। पर उसे कार्य में परिणत नहीं किया जाता। वर माँग लेने पर तो उसे कार्य में परिणत किया जायगा। अतः वर माँगने के समय स्वस्थ चित्त होकर माँगना चाहिए। अतः तुम भी विवेक पूर्वक विचार करके वर माँगो। पहिला वर मैंने दे दिया। अतः राम का अभिषेक नहीं देख सकूँगा। यदि दूसरा वर भी तूने वही रहने दिया तो भरत का अभिषेक तो होगा पर मैं न देख सकूँगा। जब से भरत आवें और शुभ मुहूर्त आवे उसके पहिले ही मेरा शरीर छूट जायगा। अतः ऐसा वर माँगो कि भरत के अभिषेकोत्सव को आँख भर देख लूँ।

जिअइ मीन बरु बारि बिहीना। मनि बिनु फनिकु जिअइ दुख दीना ॥
कहउँ सुभाउ न छलु मन माहीं। जीवन मोर राम बिनु नाहीं ॥१॥

अर्थ : चाहे मछली बिना जल के जीती रहे। बिना मणि के सर्प चाहे दुःख से दीन होकर जीये। मैं स्वभाव कहता हूँ मेरे मन में छल नहीं है कि मैं बिना राम के जी नहीं सकता।

व्याख्या : चक्रवर्तीजी समझ रहे हैं कि इसे रामजी से द्वेष हो गया है। पर मेरे ऊपर तो ममता होगी ही। अतः कहते हैं कि मैं राम के बिना जी नहीं सकता। इस बात का ख्याल करके रामजी का वनवास मत माँगो। यह मत समझो कि अपने मरने का डर दिखाकर मैं तुम्हें दूसरे वरदान से विरत कर रहा हूँ। अतः मेरे मन में छल है। मैं वस्तुस्थिति कहता हूँ। जिस भाँति मछली बिना जल के जी नहीं सकती। मणि के बिना सर्प छटपटाकर प्राण दे देता है। उसी भाँति बिना राम के मैं जी नहीं सकता : पूर्वजन्म में जो वरदान माँगा था : मनि बिनु फनि जिमि जल बिनु मीना। मम जीवन तिमि तुमहि अधीना। वही स्थिति इस जन्म में हो गयी है।

विश्वामित्र के साथ जब रामजी गये थे तब महाराज की स्थिति मणि बिनु फणि की सो हो गयी थी। यथा : सुत हिय लाइ दुसह दुःख मेटे। मृतक शरीर प्रान जनु भेंटे। अब जल बिनु मीनवाली स्थिति हो रही है। सच्चा स्नेह जल के साथ मीन का ही है। यथा : मकर उरग दादुर कमठ जल जीवन जल गेह। तुलसी केवल मीन को है सांचिलो सनेह। जो जिसके बिना प्राण धारण न कर सके वही स्नेह सच्चा है।

समुझि देखु जिय प्रिया प्रबीना। जीवनु राम दरस आधीना ॥
सुनि मृदु बचन कुमति अति जरई। मनहु अनल आहुति घृत परई ॥२॥

अर्थ : हे प्रवीण प्रिये ! तू समझ कर देख कि मेरा जीवन रामजी के दर्शन के अधीन है। कोमल वचनों को सुनकर कुबुद्धि : कैकेयी और भी जल उठी। मानो आग में घी की आहुति पड़ रही हो।

व्याख्या : तू मेरी प्रियाओं में प्रवीण है। तू विचार कर देख कि क्या मेरा प्रेम राम के प्रति इस प्रकार का है कि मैं उन्हें बिना देखे जी सकूँगा : सभी जानते हैं कि महाराज बिना राम के नहीं जी सकते। यथा : नृप कि जिअव बिनु राम। महाराज ने पूर्व जन्म में जैसा वरदान माँगा था वैसी ही दशा का अनुभव कर रहे हैं।

ये अत्यन्त कोमल वचन थे। सुमति के द्रवीभूत करने के लिए यथेष्ट थे। पर कैकेयी भी तो कुमति का स्वरूप हो गयी थी। वह एक एक बात पर इस भाँति भभक उठती थी जैसे घी की आहुति से आग भभकती है। कोमल वचन क्रोधाग्नि में घी की आहुति का काम कर रहे हैं। वह सोचती है कि :

१. स्वयं जो प्रीति प्रतीत की हानि की उसे नहीं विचारते और मुझे विचारने को कहते हैं।

२. अपनी इस करणी को नृपनीति बतलाते हैं।

३. कौसल्या को निर्दोष सिद्ध करने के लिए सब दोष अपने ऊपर ले रहे हैं।

४. राम पर इतना प्रेम है और भरत विदेश में हैं। इसकी चिन्ता ही नहीं है। यह जो कुछ कह रहे हैं वह सब राम को घर रखने का उपाय है। मैं अपने सरल स्वभाव से बहुत ठगी गयी। कुबरी ने ठीक कहा था : मन मलीन मुहु मीठ नृपु।

कहइ करहु किन कोटि उपाया। इहाँ न लागिहि राउरि माया ॥
देहु कि लेहु अजसु करि नाहीं। मोहि न बहुत प्रपंच सोहाहीं ॥३॥

अर्थ : चाहे करोड़ों उपाय करो पर यहाँ आप की माया नहीं चलेगी। या तो दो या नहीं कहकर अपयश लो। मुझे बहुत प्रपञ्च अच्छा नहीं लगता।

व्याख्या : रानी कुबरी की एक एक बात को गाँठ बाँधे। है उसने कहा था : काजु सँवारेहु सजग सबु सहसा जनि पतिआहु। सो सब वह अपने समझ में राजा

पर विश्वास न करके सजग होकर अपना काम सँवार रही है। कहती है कि अभी तो तुमने दो ही उपाय किया। एक तो राम के वनवास को वरदान से हटाकर जाँच पड़ताल का विषय बनाकर राजा की भाँति निर्णय करना चाहते हो। दूसरे वैधव्य का डर दिखाकर मुझे अपने निश्चय से हटाना चाहते हो। सो होने का नहीं। करोड़ उपाय से भी मैं अपने निश्चय से नहीं हट सकती। तुम अपनी माया के बोल से सत्यवादी बने हो। सब जगह तुम्हारी माया चल गयी पर यहाँ वह माया काम नहीं करेगी।

महाराज बाणी सविनय तासु सोहाती बोले थे। उसे वह प्रपञ्च बतला रही है। कहती है कि यह सब प्रपंञ्च है। तुम्हें प्रपञ्च अच्छा लगता है। मुझे नहीं अच्छा लगता : भाव यह कि महराज ने कहा था कि कहौं सुभाउ न छल मनमाहीं। रानी ठीक उसके विपरीत समझ रही है कि यह सब छल है। मैंने पहिले ही कहा था कि माँगु माँगु पै कहहु पिय कबहुँ न देहु न लेहु। सो इस बार तो देना पड़ेगा। या दो या स्पष्ट नहीं कहकर अपयश लो।

रामु साधु तुम्ह साधु सयानें। राम मातु भलि सब पहिचानें ॥
जस कौसिलाँ मोर भल ताका। तस फलु उन्हहि देउँ करि साका ॥४॥

अर्थ : राम साधु हैं और तुम सयाने साधु हो और सबने पहचान लिया है कि राम की माता भली हैं। कौसल्या ने जैसा मेरा भला चाहा है वैसा ही फल उन्हें ऐसा दूँगी कि शाका चल जाय।

व्याख्या : चक्रवर्तीजी का रामजी के विषय में यह कहना : लोभ न रामहि राजकर और अपने प्रति यह कहना : कहउँ सुभाउ न छल मनमाहीं तथा कौसल्याजी के लिए यह कहना कि राम मातु कछु कहेउ न काऊ कैकेयी को बहुत ही बुरा लगा। वह व्यङ्ग लिये हुए कहती हैं कि राम को राज का लोभ नहीं है। राम साधु हैं और तुम उनके पिता हो। इसलिए सयाने साधु हो। अपना काम साधना खूब जानते हो और राम की माता भली हैं। वे कुछ कहती सुनती नहीं। यह सब बातें किसी से छिपी नहीं हैं। इस षड्यन्त्र का पता सबको है। डर से भले ही कोई कुछ न कहे। मेरी सिधाई का फायदा उठाकर सब मेरा नाश चाहते हैं। इस षड्यन्त्र की मूल कौसल्या हैं। अतः उन्हें ऐसा फल दूँगी कि उसका शाका चल जाय। लोगों को यह घटना ऐसी चित्त पर खिंच जाय कि उस समय से दूसरी घटनाओं का समय लोग निश्चय करने लगें। यथा : अमुक घटना राम वनवास के दो वर्ष बाद हुई या इतने दिन पहिले हुई इत्यादि।

दो. होत प्रातु मुनिबेष धरि, जौं न रामु बन जाहिं।
मोर मरनु राउर अजसु, नृप समुझिअ मन माहीं ॥३३॥

अर्थ : सवेरा होते ही मुनिवेष धारण करके यदि राम वन न जायँगे तो राजन्! मैं प्राण दे दूँगी और आप का अयश होगा। इस बात को मन में विचारिये।

व्याख्या : सवेरे आप दूत भेजेंगे। भरत आवेंगे। सुदिन देखा जायगा। तब भरत को गद्दी होगी। यह तो दूर की बात है। सबेरा होते ही पहिले राम को वन भेजिये। दूत को पीछे भेजियेगा। वे मुनि का वेष धारण करके जायँ। संसार देख ले कि कपट से राज्य चाहनेवालों की ऐसी गति होती है। कौसल्या देख लें कि जिस पुत्र को उन्होंने राज वेष में देखना चाहा था वह तपस्वी वेष में वनवास के लिए जा रहा है। आप कहते हैं कि राम वन जायँगे तो मैं मर जाऊँगा। मैं कह रही हूँ कि राम वन न जायँगे तो मैं प्राण दे दूँगी और आपकी मरने से कहीं अधिक दुर्गति होगी। यथा : संभावित कहुँ अपजसु लाहू। मरन कोटि सम दारुन दाहू। राजा हो मन में विचार करो। मुझे कहते हो : समुझि देखु जिय प्रिया प्रवीना। आप स्वयं विचार क्यों नहीं करते। महाराज प्रिया प्रवीणा कहते हैं। कैकेयी प्राणपति अब नहीं कहती नृप कहती हैं।

अस कहि कुटिल भई उठि ठाढ़ी। मानहु रोष तरंगिनि बाढ़ी ॥
पाप पहार प्रगट भइ सोई। भरी क्रोध जल जाइ न जोई ॥१॥

अर्थ : ऐसा कहकर कुटिल उठकर खड़ी हो गयी। मानो क्रोध की नदी में बाढ़ आगयी हो। वह पाप के पहाड़ से निकली है। क्रोध जल से भरी हुई है। देखते नहीं बनता।

व्याख्या : कुटिल है। समझती है कि बातचीत बढ़ाने से अपनी जगह से हटना पड़ेगा। अतः बात खतम करती है। क्रोध के वेग से खड़ी हो गयी। मानो नदी में बाढ़ आगयी। पहिले कहा था : मनहु रोष तरवारि उघारी। अब क्रोध का वेग उमड़ चला। इससे कहते हैं तरंगिनि बाढ़ी। क्रोध में मुख की आकृति विकृत हो जाती है। अतः ऐसी भयानक मालूम होती है कि देखते नहीं बनता।

चित्तनदी उभयतोवाहिनी कल्याणवहा पापवहा च। चित्त नदी दोनों ओर बहती है कल्याणवहा और पापवहा। यथा : त्रिविध ताप त्रासक त्रिमुहानी। राम सरूप सिंधु समुहानी। पापवहा यथा : मानहु रोष तरंगिनि बाढ़ी।

नदी पहाड़ से प्रकट होती है। सो पुण्यपहाड़ से कल्याणवहा उद्गम स्थान है और पाप [1]पहाड़ पापवहा का उद्गम स्थान है। नदी में जल भरा रहता है। इस पापवहा नदी में क्रोधरूपी जल भरा है।

दोउ वर कूल कठिन हठ धारा। भँवर कूबरी बचन प्रचारा ॥
ढाहत भूपरूप तरु मूला। चली बिपति बारिधि अनुकूला ॥२॥

अर्थ : दोनों वर किनारे हैं। कठिन हठ धारा है। कूबरी के वचन का प्रचार भँवर है। राजारूपी वृक्ष के मूल को ढहाती हुई विपत्ति के समुद्र की ओर चली।

———

१. ऋषिकुमार का वध तथा उनके माता पिता का अग्निप्रवेश यही पाप पहाड़ है।

व्याख्या : नदी सदा दो किनारों के बीच से बहती है। सो इस पापवहा नदी के दोनों वर : भरत को राज्य और राम को वनवास दोनों किनारे हैं और हठधार दोनों कूलों का अवगाहन करता चलता है। उस हठधार में जहाँ तहाँ कूबरी के वचन का चमत्कार दिखाई पड़ता है। वही मानों इस नदी का भँवर है। कूबरी कुटिल उसकी उक्ति कुटिल। अतः उसके वचन का प्रभाव जो हठ की धारा में दृष्टिगोचर होता है उसकी उपमा भँवर से दी गयी।

जब नदी बढ़ती है तो किनारे पर के पेड़ की जड़ को धो देती है और पेड़ जा पड़ता है। यह पापवहा नदी राजा रूपी पेड़ के जड़ को गिराती हुई विपत्ति के समुद्र की ओर को उन्मुख हुई। नदी को समुद्र छोड़कर दूसरी गति नहीं। इसी भाँति पापवहा नदी को भी विपत्ति के समुद्र को छोड़कर अन्यगति नहीं है। अर्थात् अब यह क्रोधतरंगिणी विपत्ति के समुद्र में बिना पहुँचे कहीं रुक नहीं सकती।

लखी नरेस बात फुरि साँची। तिय मिस मीचु सीस पर नाँची ॥
गहि पद बिनय कीन्ह बैठारी। जनि दिनकर कुल होसि कुठारी ॥३॥

अर्थ : राजा ने लखा कि बात तो सचमुच सच्ची है। स्त्री के व्याज से मौत सिरपर नाच रही है। तब राजा ने कैकेयी के चरण पकड़ लिये और बिठलाया कहा कि : सूर्यकुल के लिए तू कुल्हाड़ी मत बन।

व्याख्या : चक्रवर्तीजी ने लखा कि मृत्यु तो आगयी। रानी निमित्त मात्र है। क्योंकि राम को वन माँगना रिसि परिहास में सत्य नहीं है। सचमुच सत्य है। अब जो यह यहाँ से चली जाती है तो बात खतम हो जाती है। यदि ठहरे तो और भी प्रयत्न किया जाय और यह अब आज्ञा देने से नहीं रुकेगी। अतः चरण पकड़ लिया। विनय किया कि बैठ जाओ। रानी इतने क्रोध में भी पति के इस भाँति विनय की अवहेलना न कर सकी। बैठ गयी। तब कहा कि सूर्यकुलरूपी वन के विध्वंस के लिए तू कुल्हाड़ी बनने का अपयश अपने ऊपर मत ले। रामचन्द्र के वन जाने से सूर्यकुल नष्ट हो जायगा। इस भाँति दूसरे वन में सङ्कोच करने के लिए प्रार्थना करते हैं।

माँगु माथ अबहीं देउँ तोही। राम बिरह जनि मारसि मोही ॥
राखु राम कहुँ जेहि तेहि भाँती। नाहि त जरिहि जनम भरि छाती ॥४॥

अर्थ : सिर माँग मैं अभी : उतारकर : देता हूँ। पर रामजी के विरह में मुझे मत मार। रामजी को जिस किसी भाँति रख ले। नहीं तो जन्म भर छाती जलेगी।

व्याख्या : चक्रवर्तीजी कहते हैं कि मुझे मरने का भय नहीं है। जो तू कहती है : सिवि दधीचि बलि जो कुछ भाखा। तन धन तजेउ बचन पन राखा। सो मैं भी कहता हूँ कि तू सिर माँग। देख मैं उतारकर देता हूँ कि नहीं। पर राम के विरह में घुल घुलकर मैं मरना नहीं चाहता। यहाँ राम के वन का प्रश्न नहीं है। मेरे मरने जीने का प्रश्न है। अतः राम को वन न जाने दे। मेरे सामने तापस वेष

विशेष उदासी रूप में ही सही रहने दे। मुझसे अलग न होने दे। यदि न मानेगी तो तुझे भी जन्म भर पछताना पड़ेगा।

दो. देखी ब्याधि असाधि नृपु, परेउ धरनि धुनि माथ।
कहत परम आरत बचन, राम राम रघुनाथ ॥३४॥

अर्थ : राजा ने देख लिया कि रोग असाध्य है। तब परम आरत वचन राम राम रघुनाथ कहते हुए सिर पीट पीटकर पृथ्वी पर गिर पड़े।

व्याख्या : पहिले लखा था कि स्त्री के बहाने मौत आगयी और लोगों को रोग के बहाने मौत आती है। सम्भव है कि स्त्री रूपी रोग कष्टसाध्य हो। अतः उसके उपशम का उपाय किया। चरण पकड़कर बैठाया। ऊँचा नीचा समझाया। पर वह टस से मस नहीं हुई। सिर देने पर तैयार हुए। राजा शिवि के सिर देने पर तैयार होने पर बाज मान गया। पर यह नहीं मानती। तब राजा ने देख लिया कि रोग असाध्य है। यह घुला घुलाकर ही प्राण लेगा। अतः अपने परम प्रिय को स्मरण करते हुए सिर पीटकर पृथ्वी पर गिर गये। अब चिकित्सा का प्रयत्न करेंगे। परेउ धरनि से शरीर की गति कही। धुनि माथ से मन की गति कही। कहत परम आरत बचन से वाणी की गति कही।

ब्याकुल राउ सिथिल सब गाता। करिनि कलपतरु मनहु निपाता॥
कंठु सूख मुख आव न बानी। जनु पाठीनु दीनु बिनु पानी॥१॥

अथ : राजा व्याकुल है। अङ्ग सब ढीले पड़ गये। मानो हथिनी ने कल्पवृक्ष को जड़ से उखाड़ डाला। कण्ठ सूखने लगा। मुख से शब्द नहीं निकलते। जैसे पहिना : मछली बिना जल के दीन हो जाय।

व्याख्या : हथिनी क्या जाने कि कल्पवृक्ष में क्या गुण है। उसने उसे उखाड़ कर फेंक दिया। उसे यह भी ख्याल नहीं है कि इसके उखाड़ने से संसार की कितनी बड़ी हानि हुई। उखड़ने पर कल्पवृक्ष की क्या दशा है। इस पर उसे पश्चात्ताप भी नहीं। राजा का मनोरथ कल्पवृक्ष था। यथा : मोर मनोरथु सुरतरु फूला। राजा उसकी जड़ थे। यथा : ढाहत भूप रूप तरु मूला। सो कैकेयी रूपी हथिनी ने मनोरथ के सहित राजा को समूल वृक्ष की भाँति उखाड़ फेंका। अब चक्रवर्तीजी की दशा उखड़े हुए वृक्ष की सी हो गयी।

अब राम राम रघुनाथ नहीं कहते हैं। क्योंकि गला सूख गया। शब्द ही नहीं निकलता। जल बिनु मीन की दशा हो गयी। मणि बिनु फणि की दशा तो पहिले थी। अब तो चक्रवर्तीजी बिना जल के पहिना मछली की भाँति छटपटा रहे हैं।

पुनि कह कटु कठोरु कैकेई। मनहुँ घाय महुँ माहुरु देई॥
जौं अंतहु अस करतबु रहेऊ। माँगु माँगु तुम्ह केहि बल कहेऊ॥२॥

अर्थ : फिर कैकेयी ने कठोर कटु कहा मानो घाव में विष दे रही है। यदि अन्त में तुम्हें यही करना रहा तो माँग माँग किस बूते पर तुमने कहा ?

व्याख्या : पहिले कह आये हैं : असि मारेसि मोहि कुठाँव । अब उसी तलवार के घाव में विष दे रही है। रक्त से विष का सम्बन्ध हो जाने से विष तुरन्त प्राण लेता है। खाने से तो पाक होने पर मारक होता है। अतः कैकेयी की कठोर कटु उक्ति की उपमा घाव में विष देने से दे रहे हैं। उसे राजा की इस दीन दशा पर दया नहीं आयी। बल्कि उसका क्रोध और बढ़ा कि सौत के लड़के पर इतना प्रेम है। मेरे लड़के की चिन्ता इन्हें नहीं है। अतः कहने लगी कि यदि अन्त में तुम्हें पैर पकड़कर विनती ही करनी रही तो माँग माँग किस बूते पर कहा। तब तो ऐसा बोलते रहे जैसे आकाशवाणी हो : माँगु माँगु तब भै नभ बाणी। अब पैर पकड़ते विनती करते हो।

दुइ कि होहिं एक समय भुआला। हँसब ठठाइ फुलाउब गाला ॥
दानि कहाउब अरु कृपनाई। होइ कि खेम कुसल रौताई ॥३॥

अर्थ : राजन् ! क्या ठहाका मारकर हँसना और गाल फुलाना दोनों बातें एक ही समय में हो सकती हैं ? दानी कहलाना चाहते हो और कृपणता भी करते हो। राजापन में कहीं कुशल क्षेम हो सकता है।

व्याख्या : शोक और हर्ष प्रसन्नता और अप्रसन्नता यह दोनों भाव एक दूसरे के अत्यन्त विरुद्ध है। हर्ष में आदमी हँसता है और शोक में रोता है। प्रसन्नता से अट्टहास करता है और अप्रसन्न होकर गाल फुलाता है। यह दोनों बातें युगपत् हो नहीं सकती। कहाँ यह कहना : कहु केहि रंकहि करउँ नरेसू। कहु केहि नृपहिं निकासउँ देसू। कहाँ यह कहना कि राखु राम कहँ जेहि तेहि भाँति। यही ठठाकर हँसने के साथ गाल फुलाना है।

सकुच विहाइ माँगु नृप मोही। मोरे नहिं अदेय कछु तोहीं। ऐसी वाणी दानी के मुख से शोभा देती है और माँग कहकर माँगने पर सङ्कोच करने को कहना कृपिण का काम है। कृपणता करनेवाले को दानी कहलाने का इच्छा नहीं होनी चाहिए। राजापन में क्षेम कुशल कहाँ ? कुशल क्षेम तो बनियापन में होता है।

छाड़हु बचनु कि धीरजु धरहू। जनि अबला जिमि करुना करहू ॥
तनु तिय तनय धामु धनु धरनी। सत्यसंध कहुँ तृन सम बरनी ॥४॥

अर्थ : या वचन छोड़ो या धीरज धरो। औरतों की तरह रोओ मत। शरीर, स्त्री, बेटे, धन, घर, जमीन ये सब सत्यसन्ध के लिए तिनके के बराबर कहे जाते हैं।

व्याख्या : रानी कैकेयी उपर्युक्त कठोर वचन कहकर अब कटुकठोर कहती है कि वचन छोड़ दो। इसमें कौन बात है। यदि बात का पास है तो धैर्य धरो। मर्द की तरह काम करो। रोकर काम निकालना तो स्त्रियों का काम है। सत्यसन्ध होना दिल्लगी नहीं है। सत्यसन्ध के लिए शरीर क्या है ? स्त्री क्या है ?

बेटे क्या हैं ? घर क्या चीज है ? और धन धरणी क्या है ? तुम्हें तो सबका सोच है। तन का सोच यथा : समुझि देखु जिय प्रिया प्रबीना। जीवनु राम दरस आधीना।

तिय का सोच यथा : राम मातु कछु कहेउ न काऊ।

तनय का सोच यथा : राखु राम कहँ जेहि तेहि भाँती।

धाम, धन, धरनी का सोच यथा : अवध उजार कीन्हि कैकेयी।

दो. मरम बचन सुनि राउ कह, कहु कछु दोषु न तोर।
लागेउ तोहि पिसाच जिमि, कालु कहावत मोर ॥३५॥

अर्थ : मर्म वचन सुनकर राजा ने कहा कि तेरा दोष कहीं कुछ भी नहीं है। मेरी मृत्यु तुझे पिशाच की भाँति लगी हुई है। वही यह सब कहला रही है।

व्याख्या : महाराज कैकेयी के स्वभाव से भली भाँति परिचित हैं। यह ऐसी थी नहीं। यह ऐसा कह सकती नहीं। ये सब बातें यह अपने होश में नहीं कह रही है। मेरी मृत्यु इसे पिशाच की भाँति लग गयी है। वही इससे ये बातें कहला रही है। पिशाच लगने पर वह मनुष्य होश में नहीं रहता। उसके मुख से पिशाच बोलता है। कैकेयी ने सदा महाराज को सेवा वश कर रक्खा था। ये अरुन्तुद बातें उसके स्वरूप के सर्वथा प्रतिकूल थीं।

चहत न भरत भूप[1] तहि भोरें। बिधि बस कुमति बसी जिय तोरें ॥
सो सबु मोर पाप परिनामू। भयउ कुठाहर जेहि बिधि बामू ॥१॥

अर्थ : भरत भूलकर भी राजा होना नहीं चाहते। विधिवश तेरे हृदय में कुमति बस गयी है सो सब मेरे पाप का फल है जो बेमौके ब्रह्मा बायें हो गये।

व्याख्या : ऊपर कह आये हैं : कछुक दोष नहिं तोर। उसी को स्पष्ट करते हैं कि जिस भरत के लिए तू सब कर रही है वे भूलकर भी राज्य नहीं चाहते। होनहार बुरा है इसलिए तेरे हृदय में कुबुद्धि आ बसी है। क्योंकि पहिले तेरी बुद्धि ऐसी नहीं थी। तेरी ऐसी बुद्धि के एकाएक ऐसा हो जाने का कारण मेरा पाप है। ब्रह्मदेव तो शुभाशुभ कर्म के फल देनेवाले हैं। उसी पाप का फल देने के लिए कुअवसर में बायें हो गये। यही बात रामजी को राज देने के लिए कहलाने के पहिले हुई होती तो दूसरी बात थी : कहेउ राज बन दियो नारि बस गरि गलानि गये राउ। इतना समय नहीं है कि भरत को बुलवा सकूँ। अतः यह मेरे पाप के कारण हो रहा है। तेरा दोष नहीं है। ब्रह्मदेव के बायें होने से मृत्यु होती है। सो यदि रणाङ्गन में वीरगति हो तो वह ब्रह्मदेव का सुठाहर में बायें होना कहा जायगा। प्रियतम के विरह में प्राण त्याग और संसार में स्त्रैण होने की अपकीर्ति का होना ब्रह्मदेव का कुठाहर में बायें होना है।

---

१. भूपतित्व शब्द में प्रकृतिप्रत्ययसन्धिर्लोपविकारागमाश्च वर्णनाम् से ति का लोप हुआ और सर्वत्र लवराम् इस सूत्र से 'वकार' का लोप होकर 'भूपत' रूप हो गया।

सुबस बसिहि फिरि अवध सुहाई । सब गुन धाम राम प्रभुताई ॥
करिहहिं भाइ सकल सेवकाई । होइहि तिहुँ पुर रामु बड़ाई ॥२॥

अर्थ : सुन्दर अयोध्या फिर स्वच्छन्द होकर बसेगी। सब गुणों के धाम रामजी की प्रभुता होगी। सब भाई सेवकाई करेंगे। तीनों लोक में रामजी की प्रशंसा होगी।

व्याख्या : अब चक्रवर्तीजी भविष्य कहते हैं। जो तू चाहती है वह तो होना नहीं है। होगा यह कि मैं तो रहूँगा नहीं। अयोध्या रामके वन जाने से एक बार अवश्य उजड़ जायगी। परन्तु फिर स्वच्छन्द होकर बसेगी। राम सबगुणधाम हैं। वे ही राजा होंगे और भाई लोग उनकी सेवा करेंगे। रामजी का यश इतना बढ़ेगा कि तीनों लोक में फैल जायगा। क्योंकि सब विधि सब लायक हैं।

तोर कलंकु मोर पछिताऊ । मुयहु न मिटिहि न जाइहि काऊ ॥
अब तोहि नीक लाग करु सोई । लोचन ओट बैठु मुँहु गोई ॥३॥

अर्थ : तेरा कलङ्क और मेरा पश्चात्ताप मरने पर भी नहीं मिटेगा और सदा बना रहेगा। अब जो तुझे अच्छा लगे सो कर। मेरी आँख के ओट होकर मुँह छिपाकर बैठ।

व्याख्या : तेरे कलङ्क और मेरे पश्चात्ताप का शाका अलबत्ता चलेगा। संसार कहेगा कि कैकेयी ने इतना बड़ा अनर्थ कर डाला और राजा उसी पश्चात्ताप में मर गये। हम लोगों के मरने पर भी लोग स्मरण रक्खेंगे। यह इतिहास हो जायगा और यावच्चन्द्रदिवाकरौ लोग इसे न भूलेंगे। यही होना है अब जो तेरे जी में आवे सो कर। मैं नहीं रोकता। जाना हो तो जा। रहना हो तो रह। पर मेरे सामने से हट जा। तू किसी के सामने मुँह दिखाने लायक नहीं रह गयी। अतः मुँह छिपाकर कहीं बैठ। जो महाराज कहते थे : मन तव आनन चंद चकोरू। वही आज उसका मुँह देखना नहीं चाहते हैं।

जब लगि जिअउँ कहउँ कर जोरी । तब लगि जनि कछु कहसि बहोरी ॥
फिर पछितैहसि अंत अभागी । मारसि गाइ नहारू लागी ॥४॥

अर्थ : हाथ जोड़कर कहता हूँ कि जब तक मैं जीता हूँ तब तक फिर कुछ न बोलना। अरे अभागी ! अन्त में फिर तू पछतायेगी। तू ताँत के लिए गोवध कर रही है।

व्याख्या : चक्रवर्तीजी कहते हैं कि मेरा अन्तकाल सन्निकट है। अतः जब तक जीता हूँ तब तक फिर कुछ न कहना। दण्ड देने का अवसर नहीं है। अतः हाथ जोड़ते हैं। तेरी वाणी अब मेरे कर्णगोचर न हो। तेरे शब्द भी सुनना नहीं चाहता।

नहारु कहते हैं ताँत को। पुमे नंहारु च सिरा धमन्यथ रसागसा : अभिधानप्पदीपिकायाम् श्लोक. २७९। ताँत राग बजाने के काम आता है। यथा : बाज

सुराग कि गाँडर ताती। बूढ़ी गाय या भैंस के ताँत से ही अच्छा राग बजता है। अतः अच्छा राग बजाने के लिए जिसने परमपूज्य गोमाता का वध किया वह अभागा गोहत्या लगने पर पीछे पछताता है। कैकेयी की भी यही दशा है। भरत राजा होना नहीं चाहते। पर यह राजमाता कहलाने का आभिमानिक सुख चाहती है। इस मनोविनोद के लिए परमपूज्य पति का वध कर रही है। इसीलिए चक्रवर्तीजी उसे अभागिनी कहते हैं। जो अल्प के लिए बड़ा भारी दुःख और अपयश मोल ले रही है।

दो. परेउ राउ कहि कोटि बिधि, काहे करसि निदानु।
कपट सयानि न कहति कछु, जागति मनहुँ मसानु ॥३६॥

अर्थ : राजा करोड़ों भाँति से कहकर कि : बात : क्यों समाप्त करती हैं। गिर पड़े। पर कपट करने में चतुर : कैकेयी कुछ बोलती ही नहीं। मानो मसान जगा रही है।

व्याख्या : राजा घर का मामला निपटाना चाहते हैं। इसलिए कारण पूछते हैं। कैकेयी विचार करने कराने के लिए तैयार नहीं हैं। वह राजा से हाँ या नहीं कराना चाहती है। कपट सयानी है। समझती है कि यहाँ पर कुछ भी कहने से मुझे अन्त में अपने निश्चय से हटना ही पड़ेगा। अतः ऐसी चुप्पी साधे हुए है। जैसे मसान जगाने वाले मौन साधकर बैठते हैं। उनके सामने चाहे जैसा दृश्य उपस्थित हो उसके ओर ध्यान न देकर धैर्य धारण किये हुए मौन होकर अपने साध्यपर ही दृष्टि लगाये रहते हैं।

यद्यपि निदान आदि कारण के अर्थ में आता है। पर इस ग्रन्थ में समाप्ति के अर्थ में भी आता है। यथा : देहि अगिन तन करहुँ निदानू। कार्य का कारण-दशा को प्राप्त होना ही उसकी समाप्ति है।

राम राम रट बिकल भुआलू। जनु बिनु पंख बिहंग बहालू॥
हृदयँ मनाव भोरु जनि होई। रामहि जाइ कहइ जनि कोई ॥१॥

अर्थ : राम राम रटते हुए राजा विकल हैं। जैसे बिना पंख के पक्षी विकल हों। मन में मनाते हैं कि सवेरा न हो। रामजी से जाकर कोई कह न दे।

व्याख्या : चक्रवर्तीजी को राम राम की रट लगी है। उन्हें अत्यन्त व्याकुलता में सिवा रामजी के कुछ सूझता नहीं है। उन्हें बड़ी बेचैनी है जैसी पक्षहीन पक्षी को होती है। पक्षी का तो सर्वस्व पक्ष ही है। उसके न होने से वह नितान्त असमर्थ दीन हीन हो जाता है। उसे चारों ओर मृत्यु ही दिखाई पड़ती है। कुछ करते नहीं बनता। अत्यन्त विकल होकर चें चें किया करता है। यही गति राजा की हो रही है। अत्यन्त विकल हैं। राम राम की रट लगाये हैं।

अति अनिष्ट भावी को सन्निकट देखकर उपायहीन आर्तपुरुष असम्भव के लिए प्रार्थना करता है। मन ही मन मनाते हैं कि सवेरा न हो। क्योंकि सवेरा

होते ही यह बात छिपी नहीं रह सकती। अयोध्या भर में फैल जायगी। कोई जाकर रामजी से भी कह देगा। वे उत्तम पुत्र हैं। मेरे बिना कहे ही वन चले जायेंगे।

उदउ करहु जनि रबि रघुकूल गुर। अवध बिलोकि सूल होइहि उर॥
भूप प्रीति कैकइ कठिनाई। उभय अवधि बिधि रची बनाई॥२॥

अर्थ : हे रघुकुल गुरु! सूर्य को उदय न करो। अयोध्या को देखकर कलेजे में शूल होगा। राजा की प्रीति और कैकेयी की कठिनता दोनों ब्रह्मा ने ऐसी रचकर बनायी कि हद हो गया।

व्याख्या : ईश्वर की नियति तो रुक नहीं सकती। वह तो होकर ही रहेगी। सवेरा तो होगा ही। सूर्य का उदय होना कौन रोक सकता है। इस पर गुरुभक्त राजा को कुलगुरु याद आये। यही विधि गति सदा से छेंकते आये हैं। यथा : सो गोसाईं जेहि बिधि गति छेकी। अतः उनसे प्रार्थना करते हैं : गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुः गुरुर्देवो महेश्वरः। गुरुः साक्षात्परं ब्रह्मतस्मै श्रीगुरवे नमः। आप सूर्य उदय न करें। क्योंकि सजी हुई अयोध्या देखकर हृदय में शूल उठेगा। कोई रघुकुलगुरु को रवि का विशेषण मानते हैं। पर यदि ऐसी बात होती तो उदित होउ जनि पाठ होता उदय करहु जनि न होता।

कवि कहते हैं कि राजा की सी प्रीति भी कहीं नहीं देखी गयी और न कैकेयी की सी कठिनाई कहीं देखी गयी। मालूम होता है कि इन्हें स्वयं ब्रह्मदेव ने रचकर बनाया कि ये दोनों संसार में बेजोड़ हों। नहीं तो ऐसी प्रीति के सामने कठिनाई ठहर नहीं सकती। हृदय द्रवीभूत हुए बिना रह नहीं सकता। पर कैकेयी का हृदय न पसीजा।

बिलपत नृपहि भयउ भिनुसारा। बीना बेनु संख धुनि द्वारा॥
पढ़हिं भाट गुन गावहिं गायक। सुनत नृपहि जनु लागहिं सायक॥३॥

अर्थ : राजा को विलाप करते करते सवेरा हो गया। द्वार पर वीणा, वंशी और शङ्ख की ध्वनि हुई। भाट विरद बोलने लगे। गवैया गुणगान करने लगे। सुन सुनकर राजा के हृदय में मानों वाण लग रहे हैं।

व्याख्या : इसी भाँति विलाप करते रात बीत चली। समय की गति रुकती नहीं। सवेरा हो ही गया। राजाओं के जगाने के लिए पहिले वीणा बजायी जाती है। तब उससे अधिक स्वरवाली वंशी वजायो जाती है। अन्त में शङ्खध्वनि होती है। जिससे निश्चय नींद टूट जाती है। उसके बाद स्फूर्ति उत्पन्न करने के लिए बन्दी विरद बोलते हैं। राजोचित गुणों की याद दिलाने के लिए गायक गुणगान करते हैं। यह सब राजाओं के यहाँ के प्रातःकाल के कृत्य हैं। ये सब इसलिए किये जाते हैं जिसमें महाराज सुखपूर्वक जागें और नित्यकृत्य में लग जायें।

परन्तु आज तो इनसे उलटा काम हो रहा है। जे हित रहे करे सोइ पीरा वाला हाल हो रहा है। ये एक एक सुख के साधन शराघात की भाँति पीड़ा दे रहे हैं। वीणा वेणु शङ्ख ने पुकारकर कह दिया कि सवेरा हो गया। बन्दी बोले कि सत्यसन्ध महाराज की जय हो! गवैयों ने गुण गाये कि महाराज के यश से दिगन्त व्याप्त हो रहा है। आज ये सब बातें परिस्थिति के प्रतिकूल पड़ रही हैं। इसीलिए शराघात का काम कर रही हैं।

मंगल सकल सोहाहिं न कैसें। सहगामिनिहि बिभूषन जैसें॥
तेहि निसि नींद परी नहि काहू। राम दरस लालसा उछाहू॥४॥

अर्थ : ये सब मङ्गल कैसे अच्छे नहीं लग रहे हैं जैसे सती होनेवाली स्त्री के गहने। उस रात को किसी को नींद नहीं पड़ी। सबको : रामजी के दर्शन की लालसा और उत्साह था।

व्याख्या : जिसे पति की वियोगाग्नि ऐसो बढ़ी हुई है कि लौकिकाग्नि शीतल मालूम होती है उसे भूषण का आभिमानिक सुख कैसे हो सकता है? इसी भाँति महाराज को ये मङ्गल अच्छे नहीं लग रहे हैं। अथवा जैसे सती के आभूषण से शृङ्गाररस की भावना नहीं होती प्रत्युत सती अपने शरीर को अग्नि के अर्पण करेगी ऐसी भावना जाग्रत् होती है। वह अपने पति का अनुगमन करेगी यह सोचकर निर्वेद उत्पन्न होता है। इसी भाँति सब मङ्गल सती का गहना हो गया। क्योंकि अयोध्या अपने पति का अनुगमन करेगी। यथा : अवध तहाँ जहँ राम निवासू। तहँइ दिवसु जहँ भानु प्रकासू।

सोया तो उस रात को कोई नहीं। महाराज विषाद के कारण नहीं सोये। कैकेयी क्रोध के मारे नहीं सोयी और लोग रामजी के दर्शन की लालसा तथा उत्साह के कारण नहीं सोये।

दो॰ द्वार भीर सेवक सचिव, कहहिं उदित रबि देखि।
जागेउ अजहुँ न अवधपति, कारनु कवनु बिसेखि॥३७॥

अर्थ : द्वार पर सेवक और मन्त्रियों की भीड़ इकट्ठी हो गयी। सूर्य को उदय हुआ देखकर कहते हैं कि जगत्पति अब भी नहीं जागे। ऐसा कौन विशेष कारण पड़ गया।

व्याख्या : आज अभिषेक का दिन है। राज्यभर के कामदार तथा मन्त्री कैकेयी के महल द्वार पर एकत्रित हो गये। क्योंकि महाराज उसी महल में हैं। सूर्योदय के बहुत पहिले से लोग जुट गये। आज महाराज भी जल्द उठेंगे। क्या जाने किसको कब कौन सी आज्ञा हो। अतः सभी उपस्थित हैं। पर सूर्य निकल आये। महाराज नहीं उठे। शंखध्वनि ने भी काम नहीं किया। अतः सबको न उठने का विशेष कारण जानने की उत्कण्ठा हुई।

पछिलें पहर भूपु नित जागा। आजु हमहिं बड़ अचरजु लागा ॥
जाहु सुमंत्र जगावहु जाई। कीजिअ काजु रजायसु पाई ॥१॥

अर्थ : पिछले पहर महाराज सदा जग जाते हैं। हमलोगों को बड़ा आश्चर्य हो रहा है। सुमन्त्रजी आप जाकर जगाइये और राजाज्ञा प्राप्त करके काम कीजिये।

व्याख्या : दिन कार्य करने के लिए और रात्रि विश्राम के लिए है। पर रात्रि का नाम ही त्रियामा है। तीन पहर तक की रात में गिनती है। बाद उसके दिन माना जाता है। सो एक पहर रात रहते ही महाराज नित्य जाग जाते थे। आज अभिषेक का दिन है। आज तो और भी सवेरे जगना चाहता था। महाराज नियम के बड़े पक्के हैं। उनके नियम में भङ्ग होना आश्चर्य है और विशेषत: आज के दिन ऐसा होना तो और भी आश्चर्य की बात है।

क्या माजरा है। बात समझ में नहीं आती। कोई दासी बाहर नहीं आ रही है। जिससे कुछ कहलाया जाय और कोई भीतर जा नहीं सकता। केवल सुमन्त्रजी को कहीं रोक नहीं है। ये मन्त्री होने के साथ ही साथ सारथि और सखा भी हैं। अत: सब लोग सुमन्त्रजी से कहते हैं कि अब बिना राजा के जगाये काम नहीं चलता। जगाने के अन्य उपाय सब हो चुके। वीणा बजी। वंशी बजी। शङ्ख बजा। बन्दियों ने विरुदावली कही। गायकों ने गान किया। सूर्यनारायण भी उदय हो गये। अब तो यही शेष है कि आप राजमहल में जाकर स्वयं महाराज को जगावें। यदि भगवान् न करें महाराज अस्वस्थ हों तो काम तो नहीं रुकना चाहिए। आप राजाज्ञा पाकर काम करिये।

गये सुमंत्रु तब [1]राउर माहीं। देखि भयावन जात डेराहीं ॥
धाइ खाइ जनु जाइ न हेरा। मानहु बिपति बिषाद बसेरा ॥२॥

अर्थ : तब सुमन्त्र जी महल में गये। सो ऐसा भयानक दिखाई पड़ा कि जाने में डर लगने लगा। मानो : वह स्थान : खाने दौड़ता है। देखते नहीं बनता। जैसे विपत्ति और विषाद का डेरा पड़ा हुआ है।

व्याख्या : सबकी आज्ञा शिरोधार्य करके सुमन्त्रजी राजमहल में गये। कहाँ तमाम नगर में उछाह और चहल पहल और कहाँ यहाँ का सन्नाटा उदासी देखकर सुमन्त्रजी को आगे बढ़ने में भय का सञ्चार होने लगा। परिस्थिति की विषमता का ऐसा प्रभाव पड़ा कि सुमन्त्रजी को मालूम होने लगा कि वह स्थान खाने दौड़ रहा है। देखते नहीं बनता। मानो राजलक्ष्मी ने इसे त्याग दिया और विपत्ति विषाद ने डेरा जमा लिया।

पूछे कोउ न ऊतरु देई। गये जेहि भवन भूप कैकेई ॥
कहि जयजीव बैठ सिर नाई। देखि भूप गति गयउ सुखाई ॥३॥

---

१. राजकुल शब्द के ज और क के लोप से राउर शब्द सिद्ध होता है।

अर्थ : पूछने पर कोई उत्तर नहीं देता। तब उस घर में गये जहाँ महाराज और कैकेयी थी। जय जीव कहकर माथा नवाया और बैठे। राजा की दशा देखकर सूख गये।

व्याख्या : सीधे शयनगृह में गये तो वहाँ कोई नहीं। दासियों से पूछते हैं क्या बात है ? महाराज कहाँ हैं ? कोई कुछ बोलता ही नहीं। मानो सब गूँगे बहरे हैं। सब अत्यन्त भयभीत हैं कुछ भी बतलाने की जिम्मेदारी अपने ऊपर लेने का साहस नहीं कर रहे हैं। तब राजा को खोजते खोजते कोपभवन में गये। जयजीव कहकर अभिवादन किया। सुमन्त्र महाराज के अभिन्नहृदय सखा हैं। अत्यन्त प्रेम करते हैं। महाराज की दशा देखकर सूख गये। अब दशा कहते हैं।

सोच बिकल बिबरन महि परेऊ। मानहुँ कमल मूलु परिहरेऊ॥
सचिउ सभीत सकै नहिं पूछी। बोली असुभ भरी सुभ छूछी॥४॥

अर्थ : शोक से विकल हैं। रंग बेरंग है। पृथ्वी पर पड़े हुए हैं। जैसे कमल की जड़ उखड़ गयी हो। मन्त्री डर के मारे कुछ पूछ नहीं सकते। तब अशुभ से भरी हुई शुभ से रीती : कैकेयी बोली।

व्याख्या : महाराज शोक से विकल हैं। यथा : सुनि मृदु बचन भूप हिय सोकू। ससिकर छुअत बिकल जिमि कोकू। विवर्ण हो रहे हैं। यथा : बिबरन भयउ निपट नरपालू। दामिनि हनेउ मनहुँ तरु तालू : जैसे कमल की जड़ उखड़ गयी हो और वह सूर्योदय पर भी अल्पप्राण और विवर्ण हो गया हो। उसके जीवित रहने की आशा न हो।

राजा की दशा देखकर मन्त्री सूख गये। यह पहिले ही कहा जा चुका है। अब पूछते भी डर लग रहा है। क्योंकि मन्त्री के आने पर भी महाराज कुछ कह नहीं रहे हैं। न जाने कैसे असामञ्जस्य में पड़े हुए हैं। फिर पूछें कैसे ? सुमन्त्र का आशय समझकर कैकेयी बोलीं। उसी का विशेषण देते हैं : असुभ भरी सुभ छूछी। भाव यह कि पहिले यह मङ्गलघट की भाँति शुभ से भरी थी। सो शुभ सब निकल गया है। उसके स्थान पर अशुभ भर गया है। उसे अब रामजी से आशा है कि वे जब यह बात सुनेंगे तो अवश्य वन चले जायेंगे और किसी की न सुनेंगे। अतः चाहती हैं कि रामजी किसी भाँति शीघ्र आजायँ तो उन्हीं के सामने बात खुले। पहिले खुल जाने से अनेक प्रकार की बाधाओं का भय है। अतः ऐसी बात बनावेंगी जिसमें अपना कार्य सिद्ध हो।

दो. परी न राजहि नींद निसि, हेतु जान जगदीसु।
राम राम रटि भोरु किय, कहइ न मरमु महीसु॥३८॥

अर्थ : रात राजा को नींद नहीं आयी। भगवान् जाने क्या कारण है। राम राम रटते रटते इन्होंने सवेरा किया है। अपना मर्म : राजा : बतलाते नहीं।

व्याख्या : कैकेयी बोली कि आज राजा को रात में नींद नहीं आयी। मैं तो इतना ही जानती हूँ। नींद न आने का कारण होना चाहिए। कोई रोग तो है नहीं। कोई चिन्ता होगी। पूछने पर कारण नहीं बतलाते। मैं इतना और कह सकती हूँ कि रातभर राम राम की रट लगाये रहे। इससे अनुमित होता है कि ये उस मर्म को राम से ही कहेंगे। जब तुमसे भी नहीं कहते और मुझसे भी नहीं कहते तो निश्चय यह अपनी पीड़ा राम से ही कहेंगे।

आनहु रामहिं बेगि बोलाई। समाचार तब पूँछहु आई।।
चलेउ सुमंत्रु राय रुख जानी। लखी कुचालि कीन्हि कछु रानी ।।१।।

अर्थ : शीघ्र रामजी को बुला लाओ तब आकर समाचार पूछना। महाराज का रुख पाकर सुमन्त्र चले। लखा कि रानी ने कुछ कुचाल किया।

व्याख्या : अतः रामजी को बुलाने में शीघ्रता करो। जितनी देर होगी उतनी ही पीड़ा अधिक होगी। रामजी को साथ लेकर लौटने पर समाचार पूछना। उसी समय राजा को जो कुछ कहना है कहेंगे।

रानी की बातें सुनी पर केवल उनकी आज्ञा पर मन्त्री काम नहीं करना चाहता। राजा का रुख देख रहा है। मालूम हुआ कि महाराज की भी यही रुचि है। जो पहिले यह मानते थे कि सवेरा न हो। कोई रामजी से ये बातें न कह दे। वे ही राजा अब रामजी का आना उचित समझ रहे हैं। जिसमें रामजी उनकी दशा देख लें और समझें कि जो आज्ञा हो रही है उसे देने में चक्रवर्तीजी को कितनी पीड़ा है। नितान्त बेवसी की हालत में उन्हें ऐसा कहना पड़ रहा है। सम्भव है कि इस भाँति कहलाई हुई बात के मानने में रामजी अपने को बाध्य न समझेंगे। अतः सुमन्त्रजी चले। पर इतना तो लख ही लिया कि रानी ने कोई कुचाल किया है जिसका प्रभाव रामजी पर बहुत बुरा पड़नेवाला है। नहीं तो कोपभवन में आज क्यों है? रानी कोपभवन में गयी और महाराज उसे मनाने गये। यही बात मालूम होती है।

सोच बिकल मग परइ न पाऊ। रामहि बोलि कहिहि का राऊ।।
उर धरि धीरजु गयउ दुआरें। पूँछहि सकल देखि मनु मारें।।२।।

अर्थ : मन्त्री : शोक से विकल हो गये। उनका कदम आगे नहीं बढ़ रहा है। विचारते हैं : रामजी को बुलाकर राजा क्या कहना चाहते हैं।

व्याख्या : सुमन्त्रजी का भी प्रेम रामजी पर राजा सा ही है। उधर राजा सोच बिकल बिबरन महि परेऊ और इधर मन्त्री : सोच बिकल महि परइ न पाऊ कदम आगे बढ़ता ही नहीं। राजाज्ञा के कारण चलना ही पड़ा। मन में सोचते हैं कि वह कौन सी अनिष्ट बात है जिसे रामजी के आने पर राजा कहेंगे। बात अत्यन्त अनिष्ट न होती तो महाराज इतने विकल न होते। महल के बाहर आने के पहिले

सुमन्त्रजी ने प्रयत्नपूर्वक धैर्य धारण किया। फिर भी उदासी नहीं गयी। लोग पूछने लगे कि क्या बात है ?

समाधानु करि सो सब ही का। गयउ जहाँ दिनकर कुल टीका ॥
राम सुमंत्रहि आवत देखा। आदरु कीन्ह पिता सम लेखा ॥३॥

अर्थ : उन्होंने सबका समाधान किया और जहाँ सूर्यकुल के टीका थे वहाँ गये। रामजी ने सुमन्त्र को आते देखा तो उनका आदर किया और पिता के समान माना।

व्याख्या : सुमन्त्रजी ने सबका समाधान किया कि महाराज को रात में नींद नहीं आयी। इससे देर हुई। अब रामजी को बुलाया है। लोगों का समाधान हो गया। क्योंकि : तेहि निसि नींद परी नहिं काहू। किसी को भी रात नींद नहीं लगी। राजा को तो न लगना ही प्राप्त था। रामजी को बुलाना भी ठीक ही है। तत्पश्चात् रामजी के पास गये।

निरखि बदनु कहि भूप रजाई। रघुकुल दीपहि चलेउ लेवाई ॥
रामु कुभाँति सचिव सँग जाहीं। देखि लोग जहँ तहँ बिलखाहीं ॥४॥

अर्थ : मुख देखकर राजा की आज्ञा कह सुनायी और रघुकुलदीप को साथ लिवा चले। रामजी जिस रीति से मन्त्रीजी के साथ जा रहे हैं : वह समयोचित नहीं है। यह देखकर लोग जहाँ के तहाँ विषाद करने लगे।

व्याख्या : रामजी पर मन्त्री का बड़ा प्रेम है। अतः पहिले प्रियदर्शन रामजी का मुख देखा तब कहा कि महाराज आपको शीघ्र ही देखा चाहते हैं : सुमन्त्रजी को रामजी के दर्शन की इच्छा थी। इसलिए रामजी को दिनकरकुलटीका कहा। अब साथ लेकर चलते हैं। इसलिए रघुकुलदीपक कह रहे हैं। जहाँ दीप जाता है वहीं प्रकाश करता चलता है और जहाँ से हट जाता है वहाँ अन्धेरा हो जाता है। रामजी तुरन्त चल पड़े।

आज राज्याभिषेक का दिन है। बड़े ठाटबाट से सवारी निकलनी चाहती थी। सो रामजी इस भाँति मन्त्री के साथ क्यों जा रहे हैं। अतः अभिषेक में निश्चय बाधा पड़ी। यह समझकर जो देखता है हताश हो जाता है। अतः जहँ तहँ बिलखाहीं कहते हैं।

दो. जाइ दीख रघुबंसमनि, नरपति निपट कुसाजु।
सहमि परेउ लखि सिंघिनिहि, मनहुँ बृद्ध गजराजु ॥३९॥

अर्थ : जाकर रघुवंशमणि ने राजा की अत्यन्त गिरी हुई स्थिति देखी। जैसे बूढ़ा गजराज सिंहिनी को देखकर सहम कर : भयभीत होकर गिर गया हो।

व्याख्या : वहाँ जाकर रामजी ने देखा कि दृश्य में बड़ा भारी परिवर्तन हो गया। अति सौम्य सुशीला रानी कैकेयी आज सिंहिनी की भाँति घात लगाये बैठी

है और शूलकुलिश असि अंगवनिहारे चक्रवर्तीजी बूढ़े गजराज की भाँति भयभीत से पृथ्वी पर पड़े हुए हैं। यहाँ पर चक्रवर्तीजी की उपमा वृद्ध गजराज से और कैकेयी की उपमा सिंहिनी से देकर कवि ने सारा दृश्य ही आँख के सामने खींच दिया। वृद्ध गजराज सब प्रकार से असमर्थ सिंहिनी से बचने का कोई उपाय नहीं देख रहा है और सिंहिनी क्रोध में भरी हुई उसका प्राण लेने पर तुली हुई है। उसमें तनिक भी दया का लेश नहीं है।

सूखहिं अधर जरइ सब अंगू। मनहु दीन मनि हीन भुअंगू ॥
सरुष समीप दीख कैकेई। मानहुँ मीचु घरी गनि लेई ॥१॥

अर्थ : होठ सूख रहा है। सब अंग जल रहे हैं। मानो बिना मणि के सर्प दीन हो रहा है। क्रोध से भरी हुई कैकेयी पास में ही दिखाई पड़ी। मानो साक्षात् मृत्यु बैठी हुई घड़ी गिन रही है।

व्याख्या : चक्रवर्तीजी की मानसिक दशा कहकर अब शारीरिक दशा कहते हैं कि शोकाग्नि से सारा शरीर जल रहा है। होठ सूख रहे हैं। जैसे मणिधर सर्प की मणि छिन गयी हो। रामजी ही यहाँ मणि स्थानीय हैं। इसीलिए पूर्व के दोहे में कवि भी उन्हें मणि कहते हैं। यथा : जाइ दीख रघुबंसमनि। सिंहिनी कहकर कैकेयी को मृत्यु रूप पहिले ही कह आये हैं। पर अब सीधे सीधे मृत्यु से उपमित कर रहे हैं। क्योंकि वह पास बैठी है मारती नहीं है। मृत्यु मरण शील को तबतक नहीं मारती जबतक कि उसका समय नहीं आ जाता। सो यहाँ समय सन्निकट है। अतः मृत्यु आ पहुँची है। अब वह केवल उस समय की प्रतीक्षा कर रही है। अतः उसके लिए घड़ी का गिनना कहा।

करुनामय मृदु राम सुभाऊ। प्रथम दीख दुख सुना न काऊ ॥
तदपि धीर धरि समउ बिचारी। पूँछी मधुर बचन महतारी ॥२॥

अर्थ : रामजी का स्वभाव करुणामय और मृदु है। पहिले पहल दुःख देख रहे हैं। उन्होंने दुःख : कान से भी नहीं सुना था। फिर समय का विचार करके धैर्य धारण किया और माँ से पूछा।

व्याख्या : रामजी ने पिता की दशा देखी कि बुलवाया तो पर कुछ कह नहीं सकते। ऐसे दुःखी हैं। रामजी का स्वभाव करुणामय है। बड़ा कोमल है। इनका स्वभाव देखकर ही चक्रवर्तीजी ने ऐसी व्यवस्था कर रक्खी थी कि रामजी के कान तक किसी का दुःख पहुँचने न पावे। अतः सबके दुःख का प्रतीकार पहिले ही कर दिया जाता था। उनके कान तक पहुँचने नहीं पाता था। अतः दुःख उन्होंने कभी सुना न था। देखने की कौन चलावे। सो आज पहिले पहल दुःख को देखा। अतः धैर्य छूटना स्वाभाविक था। परन्तु रामजी ने विचार से काम लिया। धैर्य धारण करके मीठी वाणी में माँ से पूछा।

मोहि कहु मातु तात दुख कारनु । करिअ जतनु जेहि होइ निवारनु ॥
सुनहु राम सबु कारनु एहू । राजहि तुम्ह पर बहुतु सनेहू ॥३॥

अर्थ : रामजी बोले : माँ ! मुझसे पिता के दुःख का कारण बतला । उसके निवारण का यत्न किया जाय। कैकेयी बोली : रामजी सुनो सब कारण तो यह है कि राजा का तुम्हारे ऊपर बड़ा प्रेम है ।

व्याख्या : पिताजी से ऐसी अवस्था में कुछ पूछना व्यर्थ समझकर माँ से पूछा कि माँ ! पिताजी को बड़ा दुःख है। कोई शारीरिक व्याधि तो है नहीं। मानसिक व्यथा है। उसका कारण तू जानती है और किसी से नहीं कहती तो मुझसे कह । जिसमें उसके हटाने का यत्न किया जाय ।

रामजी की बात सुनकर रानी बोली कि इस दुःख का मूल कारण राजा का तुम्हारे ऊपर अत्यधिक स्नेह है । स्नेह सभी पुत्रों पर है । पर तुम्हारे ऊपर अति अधिक है । भाव यह कि वैसा स्नेह मुझे नहीं है । राजा का यह स्नेह ही इनके दुःख का कारण हुआ है नहीं तो यह दुःख आता ही नहीं । सब पुत्रों पर यदि समान स्नेह होता और तदनुकूल कार्य करते तो मैं असन्तुष्ट न होती : यहाँ पर सूक्ष्मरूप से अपने वरदान माँगने का कारण कहा ।

देन कहेन्हि मोहि दुइ बरदाना । माँगेउँ जो कछु मोहि सोहाना ॥
सो सुनि भयउ भूप उर सोचू । छाड़ि न सकहिं तुम्हार सँकोचू ॥४॥

अर्थ : मुझे दो वरदान देने को कहा था । सो मुझे जो अच्छा लगा माँगा । उसे सुनकर महाराज के मनमें सोच हुआ है। तुम्हारा सङ्कोच इनसे छोड़ा नहीं जाता ।

व्याख्या : इनका इस प्रकार का पुत्रों के साथ विषम व्यवहार मुझे अच्छा नहीं लगा । मुझसे पूर्वकाल में इन्होंने दो वरदान देने को कहा था । उन्हीं को मैंने अवसर उपस्थित होने पर माँगा । वरदान का अर्थ यह है कि जो मनोवाञ्छित हो वह माँगे । मुझे जो अच्छा लगा वह मैंने माँगा । पर राजा को उससे बड़ा शोक हुआ । क्योंकि उसके देने में तुम्हारा सङ्कोच छोड़ना पड़ेगा और इनका किया यह होता नहीं है ।

दो. सुत सनेहु इत बचनु उत, संकट परेउ नरेसु ।
सकहु त आयसु धरहु सिर, मेटहु कठिन कलेसु ॥४०॥

अर्थ : इधर बेटे का स्नेह उधर वचन का पाश । इसी संकट में राजा पड़े हैं । यदि तुमसे हो सके तो आज्ञा शिरोधार्य करके कठिन क्लेश को काटो ।

व्याख्या—जो वरदान मैंने माँगा है वह तुम्हारे प्रतिकूल है । उसके देने में तुमसे प्रेम तोड़ना पड़ेगा । न देने से प्रतिज्ञाभङ्ग होती है । तुमसे प्रेम किसी हालत में राजा तोड़ना नहीं चाहते । पर प्रतिज्ञाभङ्ग को भी डरते हैं । इसी सङ्कट में ये

पड़े हुए हैं। अब तुम्हारा काम है। यदि तुम स्वयं प्रसन्नता पूर्वक उस आदेश को शिरोधार्य कर लो तो सब संकट कटा ही कटाया है।

निधरक बैठि कहै कटु बानी। सुनत कठिनता अति अकुलानी ॥
जीभ कमान बचन सर नाना। मनहु महिपु मृदु लच्छ समाना ॥१॥

अर्थ : बेधड़क बैठी हुई बातें कह रही है। सुनकर कठोरता अत्यन्त आकुल हो उठी। उसकी जिह्वा ही धनुष है और अनेक प्रकार के वचन ही वाण हैं और चक्रवर्तीजी कोमल निशाना हो रहे हैं।

व्याख्या : रानी होकर पति के लिए कठोर वचन कहने में मन्त्री और पुत्र के सामने सङ्कुचित होना चाहिए। सो यह बेधड़क बोलती चली जा रही है। चक्रवर्तीजो प्रार्थना कर चुके हैं। हाथ जोड़ चुके हैं कि जब तक मैं जीता हूँ तब तक फिर कुछ न बोलना। तू मेरे सामने से हट जा। पर इसका उसे कुछ ख्याल नहीं है। समझती है कि मेरे चुप रहने से या हट जाने से सम्भव है कि ये लोग आपस में बात करके कोई रास्ता ढूँढ़ निकालें। सो मैं न होने दूँगी। उसकी कठिनता देखकर स्वयं कठिनता अत्यन्त व्याकुल हो उठी। राजा के लिए कहना ही क्या है।

इस समय उसके मुख से वचन निकलते हैं वे मानो धनुष से छूटे हुए बाण हैं और सबका लक्ष्य एक मात्र चक्रवर्तीजी हैं। एक एक बाण उन्हें छेदे डालते हैं। उनमें इन आघातों के निष्फल करने योग्य कठिनता नहीं है। इसी से उनकी उपमा मृदु लक्ष्य से दी गयी।

जनु कठोरपनु धरें सरीरू। सिखइ धनुषविद्या बर बीरू ॥
सबु प्रसंगु रघुपतिहि सुनाई। बैठि मनहु तनु धरि निठुराई ॥२॥

अर्थ : मानो वीरवर कठोरपन शरीर धारण करके धनुषविद्या सीख रहा है। सब प्रसङ्ग रामजी को सुनाकर इस भाँति बैठी मानो निष्ठुरता ही शरीर धारण किये हुए है।

व्याख्या : बड़े वीरों का काम ही युद्ध करना है। अतः धनुषविद्या उनके बड़े काम की चीज है। वे हाथ बैठाने लिए बार बार लक्ष्य वेध करते हैं। उनका प्रयोजन ही वेध करना है। लक्ष्य के छिन्न भिन्न होने की उन्हें परवाह नहीं। अतः चक्रवर्तीजी को उन आघातों से कितनी पीड़ा पहुँच रही है इसका उसे कुछ ख्याल नहीं है। उसका काम चोट पहुँचाना हो गया है। कोई वार खाली न जाना चाहिए। इधर चक्रवर्ती जी का चित्त इतना कोमल है कि प्रत्येक वाक्यवाण गहरी चोट कर रहे हैं।

ऐसी निष्ठुर है कि अपने वरदान मिलने का प्रसङ्ग उसे थाती की भाँति महाराज के पास ही रहने देना तथा राज्याभिषेक का प्रसङ्ग आने पर भरत को राज्य तथा राम को वनवास माँगना राजा की भरत के राज्यविषयक स्वीकृति

रामजी के वनवास में ही असामञ्जस्य और अपना उसी पर हठ फलतः चक्रवर्तीजी की विकलता यह सब रामजी को सुना गयी। और तब चुपकी बैठी। भाव यह कि कहो अब क्या कहते हो। पिता के दुःख का कारण तो सुन लिया। अब निवारण करो। अतः कवि कहते हैं कि मानो निष्ठुरता ही शरीर धारण किये बैठी है।

मन मुसुकाइ भानुकुल भानू। रामु सहज आनंद निधानू॥
बोले बचन बिगत सब दूषन। मृदु मंजुल जनु बाग बिभूषन॥३॥

अर्थ : सूर्यकुल के सूर्य रामजी सहज आनन्द के निधान हैं। वे मन ही मन मुसकरा रहे हैं। सब दोषों से रहित कोमल और सुन्दर ऐसा वचन बोले मानो वह वाणी का भूषण है।

व्याख्या : सरकार सूर्यकुल के सूर्य हैं। इनके सामने अन्धकार आ नहीं सकता तथा स्वभाव से ही आनन्द के निधान हैं। दुःख की छाया भी इन पर नहीं पड़ सकती। महाराज इनके ऊपर दुःख आया चाहता है इस भावना से दुःखी हैं। यहाँ दुःख का सम्पर्क ही नहीं। वन जाने में अधिक प्रसन्नता है। अतः मन ही मन मुसकराते हैं। प्रकट मुसकराने से माता को कष्ट होगा।

ऐसे दोषयुक्त कठोर अनुचित वचन के उत्तर में पवित्र कोमल और वाणी के भूषणरूप वचन बोले : सुनत सीतापति सील सुभाउ। मोद न मन तन पुलक नयन जल सो नर खेहर खाउ।

सुनु जननी सोइ सुत बड़भागी। जो पितु मातु बचन अनुरागी॥
तनय मातु पितु तोषनिहारा। दुर्लभ जननि सकल संसारा॥४॥

अर्थ : हे माता! वही बेटा बड़ा भाग्यवान् है जिसे पिता माता के वचन में प्रेम हो। माँ! पिता माता को तुष्ट करनेवाला पुत्र सारे संसार में दुर्लभ है।

व्याख्या : ऐसी कटुवादिनी विमाता को जननी कहकर सम्बोधन करते हैं। उसने कहा था : सकहु त आयसु धरहु सिर मेटहु कठिन कलेसु। इसपर कहते हैं कि आज्ञा के शिरोधार्य करने या न करने का तो यहाँ प्रश्न ही नहीं है। यह तो मेरे लिए बड़भागी होने का अवसर है। पुत्र का बड़भागी होना तो पुत्रत्व के साफल्य में है। धन विद्यादि साधनों में नहीं। अतः जिस पुत्र को पिता के वचन में अनुराग हो वही बड़भागी है।

माता पिता तो दिन रात पुत्र की तुष्टि के प्रयत्न में ही रहते हैं। पर पुत्र ऐसा हो जो पिता माता को सन्तुष्ट रक्खे। यह बात संसार में दुर्लभ है। भाव यह कि मैं उन दुर्लभ पुत्रों में हूँ। मुझे पिता माता के वचन में अनुराग है। मैं उसके पालन में अति दुष्कर कर्म भी कर सकता हूँ। यहाँ तो ऐसा आदेश हो रहा है जिसमें सुख ही सुख है।

दो. [1]मुनिगन मिलनु बिसेषि बन, सबहि भाँति हित मोर।
तेहि महँ पितु आयसु बहुरि, संमत जननी तोर ॥४१॥

अर्थ : वनमें विशेष करके मुनियों से समागम होगा। जिससे सब भाँति मेरा हित है। उसपर पिता की आज्ञा और माँ ! तेरी सम्मति।

व्याख्या : सब कल्याण का मूल सत्सङ्ग है। सो जैसा वन में होगा वैसा यहाँ नहीं होता। क्योंकि मुनि लोग अधिकतर वहीं रहते हैं। पिता की आज्ञा और माँ की सम्मति से उसका महत्त्व और अधिक हो गया।

सुनु जननी सोइ सुत बड़भागी इत्यादि वचन की कोमलता है। मुनिगन मिलनु बिसेखि बन सबहि भाँति हित मोर। इत्यादि में मञ्जुलता अधिक है। वाग्विभूषणता आगे की अर्धाली में झलकेगी। अथवा सर्वत्र तीनों गुण हैं।

भरतु प्रानप्रिय पावहिं राजू। बिधि सब बिधि मोहि सनमुख आजू ॥
जौ न जाउँ बन ऐसेहु काजा। प्रथम गनिअ मोहि मूढ़ समाजा ॥१॥

अर्थ : भरत मेरे प्राणप्रिय हैं। वे राज्य पावें। मुझे तो आज विधाता सब प्रकार से अनुकूल हैं। यदि ऐसे काम के लिए भी मैं वन न जाऊँ तो मूढ़ों के समाज में प्रथम गणना मेरी ही है।

व्याख्या : इतना ही नहीं प्राणप्रिय भरत को राज्य मिल रहा है। अपने प्रिय के लिए ही लोग राज्य भोग और सुख की कामना करते हैं। यथा : येषामर्थे काङ्क्षितं नो राज्यं भोगाः सुखानि च। अतः मेरी कामना भी पूरी हो रही है। आज विधाता मुझपर सर्वथा अनुकूल हैं। सत्सङ्ग की प्राप्ति धर्म की प्राप्ति सुख की प्राप्ति अनायासेन हो रही है।

कोई भी बुद्धिमान् अपने हित पर दृष्टि रखता हुआ इससे मुँह नहीं मोड़ सकता। विधि के सम्मुख होने पर उससे लाभ न उठाना मूढ़ का काम है और सब विधि सम्मुख होने पर लाभ न उठानेवाला मूढ़ों का सरदार है। मैं ऐसा अवसर चूक नहीं सकता।

सेवहिं अरँडु कलपतरु त्यागी। परिहरि अमृत लेहिं बिषु माँगी ॥
तेउ न पाइ अस समउ चुकाहीं। देखु बिचारि मातु मन माहीं ॥२॥

अर्थ : जो कल्पवृक्ष का त्याग करके रेंड़ : एरण्ड की सेवा करते हैं। अमृत का परित्याग करके याचना पूर्वक विष ग्रहण करते हैं वे भी ऐसा अवसर न चूकेंगे। माँ तू मनमें विचार करके देख ले।

व्याख्या : अब मूढ़ की परिभाषा कहते हैं। जिसे सेव्यासेव्य ग्राह्याग्राह्य का विचार न हो वही मूढ़ है। कल्पवृक्ष सेवन करने योग्य है जो सब कामनाओं को

---

१. यहाँ समुच्चय : द्वितीय अलङ्कार है।

पूरा करता है। निरस्तपादपे देशे एरण्डोऽपि द्रुमायते। जहाँ कोई पेड़ नहीं होता। वहाँ एरण्ड की पूछ होती है। अतः कल्पतरु का त्याग करके एरण्ड की सेवा करनेवाला महामूर्ख है। प्राणदा अमृत का त्याग करके प्राणहर विष की याचना करनेवाला महाअज्ञानी है। पिता का आज्ञापालन कल्पवृक्ष है और राज्यपालन एरण्ड है एवं सत्सङ्ग अमृत है। विषयोपभोग विष है। अतः मूढ़ भी कल्पवृक्ष और अमृत ग्रहण के अवसर को नहीं चूकेगा। मैं कैसे चूक सकता हूँ। राज्यपालन का एरण्ड होना तथा विषयोपभोग का विष होना मनमें विचार करने से सिद्ध होता है। अतः माता को मनमें विचार करने के लिए कह रहे हैं।

अंब एकु दुखु मोहि बिसेखी। निपट बिकल नरनायकु देखी ॥
थोरिहि बात पितहि दुखु भारी। होति प्रतीति न मोहि महतारी ॥३॥

अर्थ : माँ ! मुझे एक विशेष दुःख है कि मैं महाराज को अत्यन्त विकल देख रहा हूँ। बात थोड़ी और पिताजी को दुःख बड़ा। इससे माँ मुझे विश्वास नहीं हो रहा है।

व्याख्या : सरकार माता से कहते हैं कि जो जो तुम कह गयी वे सब तो सुख की बातें हैं। दुःखी होने के लिए वहाँ स्थान ही नहीं है। विशेष दुःख तो यह देखकर हो रहा है कि महाराज इतने विकल क्यों हैं। इतने बड़े लाभ के लिए मैं वन जा रहा हूँ। यह कोई बड़े दुःख की बात नहीं है। इसके लिए इतनी बड़ी विकलता इतनी छटपटाहट इतना शोक तो समझ में नहीं आता। मुझे तो विश्वास नहीं होता कि जो तुम कह रही हो वही कारण है।

राउ धीरु गुन उदधि अगाधू। भा मोहि ते कछु बड़ अपराधू ॥
जातें मोहि न कहत कछु राऊ। मोरि सपथ तोहि कहु सतिभाऊ ॥४॥

अर्थ : महाराज धीर हैं। गुणों के अथाहसमुद्र हैं। मुझसे कोई बड़ा अपराध बन पड़ा है। जिससे महाराज मुझसे नहीं बोल रहे हैं। तुम्हें मेरी शपथ मुझसे साफ साफ बतला दो।

व्याख्या : महाराज धीर हैं। थोड़ी सी बात में विचलित हो नहीं सकते। गुणों के अथाह समुद्र हैं। जो बातें तुमने कही उनके गुणों को भली भाँति जानते हैं। समुद्र में क्षोभ होने का कोई बड़ा कारण होना चाहिए। मैंने जान बूझ कर कोई अपराध नहीं किया है। पर अनजान में भी बड़ा अपराध हो जाना सम्भव है। मालूम होता है कि मुझसे ऐसा ही कोई अपराध बन पड़ा है। जिससे महाराज मुझसे बोल नहीं रहे हैं। पर तुमसे तो कहा होगा। तुम क्यों छिपा रही हो। तुम्हें मेरी शपथ सच सच बतला दो। मैं सदा से तुम्हें प्यारा हूँ। अतः अपनी शपथ दे रहा हूँ।

दो. सहज सरल रघुबर बचन, कुमति कुटिल करि जान।
चलइ जोंक जल बक्रगति, जद्यपि सलिलु समान ॥४२॥

अर्थ : रघुवर के स्वभाव से ही सरल वचन को उस दुर्बुद्धि ने टेढ़ा ही समझा जैसे पानी के समान होने पर भी जोंक उसमें टेढ़ी चाल से ही चलती है।

व्याख्या : रामजी ने तो स्वभाव से ही सीधी सीधी बातें कहीं पर कैकेयी की बुद्धि उलटी हुई है। उसे उसमें कुटिलता की गन्ध मालूम हुई। उसने समझा कि यह भी वही बात कह रहे हैं जो महाराज कहते थे। यह भी अपने को निर्दोष सिद्ध करने के लिए मुझसे कारण पूछते हैं। अपराध की चरचा चलाकर अपना निरपराध होना हमारी निष्ठुरता और अपना प्रेम द्योतित करते हैं। बिधि सब बिधि मोहि सम्मुख आजू कहकर यह दिखला रहे हैं कि तुमने तो अपने समझ में दण्ड दिया। पर उससे मुझे कष्ट नहीं है।

रहसी रानि राम रुख पाई। बोली कपट सनेहु जनाई ॥
सपथ तुम्हार भरत कै आना। हेतु न दूसर मै कछु जाना ॥१॥

अर्थ : रामजी का रुख पाकर रानी प्रसन्न हो गयी और कपट प्रेम जनाती हुई बोली। तुम्हारी शपथ तथा भरत की शपथ मैं दूसरा कारण नहीं जानती।

व्याख्या : वचन को कुटिल मानती हुई भी यह जानकर प्रसन्न हो गयी कि रामजी का रुख वन जाने का है। रामजी की ओर से सब कथा सुनने पर भी कोई बात ऐसी नहीं कही गयी जिससे प्रेम की कमी अनुमित हो। अतः कैकेयी कपट पूर्वक अपना प्रेम जनाती है। रामजी ने मोर शपथ कहकर यह जनाया कि मैं तुझे प्यारा हूँ। तो कैकेयी भी शपथ लेते समय भरत के पहिले रामजी के नाम का उल्लेख करके : भरत न मोहि प्रिय राम समाना : इस भाव का परिचय दे रही है। कहती है कि मैं तो यही जानती हूँ जो तुमसे कहा है। इसके अतिरिक्त यदि कोई बात हो तो मुझे पता नहीं है।

तुम्ह अपराध जोगु नहि ताता। जननी जनक बधु सुखदाता ॥
राम सत्य सबु जो कछु कहहू। तुम्ह पितु मातु बचन रत अहहू ॥२॥

अर्थ : बेटा ! तुम अपराध के योग्य नहीं हो। तुम तो माँ बाप और भाई को सुख देनेवाले हो। रामजी ! जो तुम कहते हो सो सत्य है। तुम माता पिता के वचन में अनुरक्त हो।

व्याख्या : पर इससे अतिरिक्त दूसरी बात : मा मोहि ते कछु बड़ अपराधू सम्भव नहीं है। क्योंकि तुम में अपराध करने का माद्दा : योग्यता नहीं है। अपराध तो उससे होता है जिसमें दुःख देने की प्रवृत्ति होती है और तुम तो माँ बाप और भाई को सुख देनेवाले हो। अतः तुम्हारे अपराध का कोई प्रश्न ही नहीं उठता।

तुमने जो कहा कि वन जाने में लाभ ही लाभ है। सो भी सत्य है और तुम माता पिता के तुष्ट करनेवाले हो यह भी सत्य है और तुम पितु मातु वचन अनुरागी भी हो। इस भाँति वन जाने के लिए प्रोत्साहन देते हुए कहती है।

पितहि बुझाइ कहसु बलि सोई । चौथेंपन जेहिं अजसु न होई ॥
तुम्ह सम सुअन सुकृत जेहि दीन्हे । उचित न तासु निरादरु कीन्हे ॥३॥

अर्थ : मैं बलि जाउँ यही बात अपने पिता को समझाकर कहो । जिसमें चौथेपन में अपयश न हो । जिस पुण्य ने उन्हें तुम्हारे ऐसा पुत्र दिया उसका अनादर करना उचित नहीं ।

व्याख्या : अब यह सब बातें अपने पिता को समझाओ कि वन में जाने से लाभ ही लाभ है । मैं तो इसे बड़े भाग्य की बात मानता हूँ । जिसमें इनका शोक दूर हो । ये नहीं मानते । मरती समय : बुढ़ाई में अपयश लेने को तैयार हैं । वन तुम्हें जाना है । इसलिए तुम्हारे ही समझाये समझेंगे ।

बड़े पुण्य से भगवान् ने तुम्हारे ऐसा बेटा दिया है । उसी पुण्य का शरण ग्रहण करना चाहिए । पुण्य का सञ्चय करना चाहिए । सो अपनी बात छोड़कर इस अवस्था में उस पुण्य का निरादर कर रहे हैं ।

लागहिं कुमुख बचन सुभ कैसे । मगह गयादिक तीरथ जैसे ॥
रामहि मातु बचन सब भाए । जिमि सुरसरि गत सलिल सुहाए ॥४॥

अर्थ : बुरे मुँह से भले वचन ऐसे लगते हैं जैसे मगध देश में गयादिक तीर्थ हैं । रामजी को माता के वचन सब अच्छे लगे । जैसे गङ्गा में जाने से पानी अच्छा हो जाता है ।

व्याख्या : रामजी के विमुख होने से कैकेयी का मुख कुमुख है । उसने चार वचन बहुत उत्तम कहे : १. तुम्ह अपराध जोगु नहि ताता । २. राम सत्य सबु जो कछु कहहू । ३. पितहि बुझाइ कहसु बलि सोई और ४. तुम सम सुअन सुकृत जेहि दीन्हें । पर इतने से उसका कुमुखत्व गया नहीं । जैसे मगध में चार तीर्थों के रहते हुए भी उसकी अशुद्धि नहीं गयी । जैसे ऊपर की चार बातें कैकेयीजी की पवित्र हैं । वैसे ही चार स्थल मगध में भी पवित्र हैं । यथा : मगधेषु गया पुण्या पुण्यं राजगृहं वनम् । च्यवनस्याश्रमः पुण्यो नदी पुण्या पुनः पुनः । पाद्मे । श्रीगोस्वामीजी कहते हैं : बसि कुसंग चह सुजनता ताकी आस निरास । तीरथहू को नाम भो गया मगध के पास । गया तीर्थ होने पर भी आसुर तीर्थ है । इसलिए उसको शोभा नहीं ।

सरकार समझते हैं माता प्रेम करती है । प्रशंसा करती हैं । माता के भावोपहत वचन सरकार को पाकर भावपूर्ण हो गये । जैसे गन्दा पानी भी गङ्गा में मिलकर पवित्र हो जाता है : करमनास जल सुरसरि परई । तेहि को कहो सीस नहि धरई ।

दो. गइ मुरुछा रामहि सुमिरि, नृप फिरि करवट लीन्ह ।
सचिव राम आगमनु कहि, बिनय समय सम कीन्ह ॥४३॥

अर्थ : मूर्च्छा जाती रही। तब रामजी को स्मरण करके राजा ने करवट बदला। मन्त्री ने रामजी का आगमन कहकर समयानुकूल विनती की।

व्याख्या : अभी आँख बन्द हैं। महाराज मूर्च्छित थे। उन्हें रामजी का आना मालूम नहीं। जब कैकेयी को हट जाने को कहा था और वह नहीं हटी तो स्वयं महाराज ने मुँह फेर लिया। सुमन्त्रजी रामजी को बुलाने गये। उसी समय मूर्च्छा हुई। अब चेत हुआ है तब करवट बदली। जब मन्त्री ने देखा कि महाराज होश में आये तब विनय किया। बड़ा नाजुक समय है। महामन्त्री भी उतना ही बोलता है जितने बिना काम न चले। अर्थात् महाराज! धैर्य धरें, आँख खोलें। देखिये रामजी आगये इत्यादि :

अवनिप अकनि रामु पगु धारे। धरि धीरजु तब नयन उघारे॥
सचिव सँभारि राउ बैठारे। चरन परत नृप रामु निहारे॥१॥

अर्थ : चक्रवर्तीजी ने यह सुनकर कि रामजी पधारे हैं धैर्य धरकर आँख खोला। मन्त्री ने सँभाल कर महाराज को बिठाया। उन्होंने रामजी को चरणों पर गिरते देखा।

व्याख्या : आकर्ण्य शब्द का प्राकृत रूप अकनि है। महाराज की हालत बड़ी नाजुक है। शरीर व्याकुलता से इतना शिथिल हो गया है कि आँख नहीं खुलती। जब मन्त्री की वाणी सुनी कि रामजी पधारे हैं तब आँख खोली। आँख खोलने में धैर्य धारण करना पड़ा।

आँख तो खुली पर उठकर बैठ न सके। मन्त्री ने देखा कि अब यह बैठना चाहते हैं। पर उठ नहीं सकते। तब उसने सँभालकर बैठाया कि कहीं गिर न जायँ। उसी समय रामजी चरणों में गिरे। राजा ने देखा।

लिये सनेह बिकल उर लाई। गइ मनि मनहु फनिक फिरि पाई॥
रामहि चितइ रहेउ नरनाहू। चला बिलोचन बारि प्रबाहू॥२॥

अर्थ : स्नेह से विकल होकर हृदय से लगा लिया। जैसे खोई हुई मणि को सर्प ने फिर से पा लिया हो। नरेश रामजी को देखते रह गये। आँखों से अश्रुधारा बह चली।

व्याख्या : चक्रवर्तीजी को सन्देह था कि पता लगते ही रामजी कहीं उधर के उधर ही वन न चले जायँ। अतः उस सर्प की उपमा देते हैं जिसकी गयी हुई मणि फिर से मिली हो। अर्थात् मणि के लिए बड़ी उत्सुकता थी। मिलने पर बड़ा सन्तोष हुआ।

मन से वन दे चुके हैं। अतः रामहीन अवध का दृश्य सामने है। रामजी के देखने से मानो शरीर में प्राण का सञ्चार हो रहा है। पर साथ ही साथ यह भी ध्यान है कि थोड़े ही काल में रामजी का दर्शन दुर्लभ हो जायगा। सो प्रेम

उमड़ आया। आँखों से आँसू की धारा बह चली। प्रवाह रुकता नहीं। न जाने इतना जल कहाँ से आगया।

सोक बिबस कछु कहइ न पारा। हृदय लगावत बारहिं बारा ॥
बिधिहि मनाव राउ मन माहीं। जेहि रघुनाथु न कानन जाहीं ॥३॥

अर्थ : शोक के विवश हैं। कुछ कह नहीं सके। बार बार हृदय में लगा रहे हैं। मन ही मन विधाता से मना रहे हैं कि रामजी वन न जायँ।

व्याख्या : रामहिं चितै रहे से कर्मणा, शोक बिबस से मनसा तथा कछु कहै न पारा से वाचा शोक कहा। गयी हुई मणि मिली। कहीं फिर न चली जाय। अतः वियोग के भय से बार बार हृदय में लगाते हैं। पर तृप्ति नहीं होती।

मन ही मन विधाता से मनाते हैं कि रामजी वन न जायँ। भाव यह कि मैं तो कहूँ कि तुम वन जाओ। पर रामजी मेरे कहने पर भी न जायँ। बिधिहि मनाव कहने का कारण यह कि कोई ऐसी विधि बैठा दे कि मेरी बात भी न जा सके और रामजी भी वन न जायँ।

सुमिरि महेसहि कहइ निहोरी। बिनती सुनहु सदासिव मोरी ॥
आसुतोष तुम्ह अवढर दानी। आरति हरहु दीन जनु जानी ॥४॥

अर्थ : फिर महादेवजी का निहोरा करके कहते हैं कि हे सदाशिव मेरी विनती सुनो। तुम शीघ्र प्रसन्न होनेवाले हो और बेहिसाब देनेवाले हो। मैं दीन हूँ। ऐसा जानकर मेरी आर्त्तिहरण करो।

व्याख्या : चक्रवर्तीजी फिर विचारते हैं कि ब्रह्मदेव तो शुभाशुभ कर्म के फल देनेवाले हैं। साधन निरपेक्ष ईप्सित फल देनेवाले तो महादेव ही हैं और शीघ्र ही प्रसन्न भी होते हैं। यथा : औढरदानि द्रवत पुनि थोरे। सकत न देखि दीन करजोरे। अतः आराधन के फल पर जोर न देकर निहोरा करते हैं कि मुझे दीन जानकर मेरी विनती सुनो और मेरी आर्ति हरण करो।

दो. तुम्ह प्रेरक सबके हृदयँ, सो मति रामहि देहु।
बचनु मोर तजि रहहिं घर, परिहरि सीलु सनेहु ॥४४॥

अर्थ : तुम सबके हृदय के प्रेरक हो। ऐसी बुद्धि रामजी को दो कि मेरे वचन को हटाकर शील सनेह को छोड़कर घर रह जायँ।

व्याख्या : ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति। भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया। ईश्वर सब प्राणियों के हृदय में बैठा हुआ सबको कठपुतली की तरह नचाया करता है। अतः उस महादेव से चक्रवर्तीजी प्रार्थना करते हैं कि तुम सबके हृदय के प्रेरक हो। तुम्हारी प्रेरणा से ही रामजी ऐसे आज्ञाकारी हैं। शील सनेह के समुद्र हैं। यह तुम्हारी बड़ी कृपा है। पर आज ये गुण तो मेरे प्राणग्राहक हो रहे हैं। मेरा सर्वनाश उपस्थित है। सो रामजी की बुद्धि फेरने में

तुम्हीं समर्थ हो। उनकी बुद्धि फेर दो कि मैं तो कहूँ कि तुम वन जाओ। पर रामजी शील सनेह तोड़कर कहें कि पहिले अपराध तो बतलाओ तो पीछे वन जाने को कहो। गुरोरप्यवलिप्तस्य कार्याकार्यमजानतः। उत्पथप्रतिपन्नस्य परित्यागो विधीयते। रामजी धर्मशास्त्र लेकर उठें कि विषयलिप्त गुरु जिसे कार्याकार्य का ज्ञान न हो, सन्मार्गगामी न हो, उसका परित्याग करना चाहिए। अब यदि कहें कि तुम्हारा अशुभ कर्म उदय हुआ है, उसकी क्या गति होगी। तो कहते हैं :

अजसु होउ जग सुजसु नसाऊ। नरक परौं बरु सुरपुर जाऊ॥
सब दुख दुसह सहावउ मोही। लोचन ओट रामु जनि होहीं॥१॥

अर्थ : संसार में अपकीर्ति हो, कीर्ति का नाश हो, बल्कि स्वर्ग जाय मुझे नरक ही हो। मुझे सब दुःसह दुःख सहाओ पर राम आँख के ओट न हों।

व्याख्या : यदि मैं रामजी को वन नहीं देता तो कैकेयी प्राण दे देगी। उसने कह दिया है : होत प्रात मुनिवेषधरि जौं न राम बन जाहिं। मोर मरन राउर अजस नृप समुझिअ मनमाहिं। तो भले ही कैकेयी प्राण दे दें, मेरी अपकीर्ति हो जाय। बड़े परिश्रम और सावधानी से कमाये हुए सुयश का नाश हो जाय। लोग कहें कि राजा भ्रष्टप्रतिज्ञ हैं। इसकी करणी से ऊबकर रानी ने प्राण दिया और अपकीर्त से स्वर्ग में प्रवेश नहीं होता : केवल दूर्वा पीसकर पीनेवाले मुनि पर लोगों को भ्रम हो गया कि यह ताड़ी पीते हैं। इस अपकीर्ति से उनका स्वर्ग में प्रवेश न हुआ। सो मुझे भी न हो। भ्रष्टप्रतिज्ञ होने के पाप से भले ही नरन भोगना पड़े। इसके अतिरिक्त और जो दुःसह दुःख हैं। उन्हें भी उस अशुभ कर्म के फल रूप से मुझे सहना पड़े। मुझे स्वीकार है। पर रामजी मेरी आँखों के ओट न हों। इस सुख से मैं वञ्चित न होऊँ।

अस मन गुनइँ राउ नहि बोला। पीपर पात सरिस मनु डोला॥
रघुपति पितहि प्रेमबस जानी। पुनि कछु कहिहि मातु अनुमानी॥२॥

अर्थ : मनमें ऐसा विचारते हुए चक्रवर्तीजी कुछ बोले नहीं। परन्तु पीपर के पत्ते की भाँति मन डोल उठा। रामजी ने समझ लिया कि पिताजी प्रेम के वश में पड़ गये हैं और माँ फिर कुछ बोलना चाहती है। ऐसा अनुमान किया।

व्याख्या : रामजी को बुलवाया है। वे आये हुए हैं। उनसे कुछ कहना चाहिए। पर चक्रवर्तीजी कुछ बोले नहीं। क्योंकि उपर्युक्त बातें सोच रहे थे। उनका मन ऐसा अस्थिर हो गया जैसे पीपर का पत्ता होता है। पीपर का नाम ही चलदल है। उसके पत्ते सदा चलायमान रहते हैं। कभी ठहरते ही नहीं। यही दशा राजा के मन की हो रही है। उन्हें उस बात पर भी स्थिरता नहीं जो अभी गुन रहे थे उसपर भी स्थिर हो जाते तो कुछ बिगड़ा नहीं था। पर हैं धर्मधुरन्धर उनसे धर्म भी छोड़ते नहीं बनता।

रामजी ने देखा कि पिताजी प्रेम के वश हो गये हैं। इसलिए बोलने में

असमर्थ हैं और इधर कैकेयी समझे बैठी है कि ये वन न देंगे। इसलिए मुझे समझाने को कह रही है। इनके चुप रहने को वह सह न सकेगी। फिर कुछ बोला ही चाहती है। अनुमान किया कि इसने कह कहकर कष्ट बढ़ाया है। पिताजी का मुझपर इतना प्रेम इसे असह्य हो रहा है।

देस काल अवसर अनुसारी। बोले बचन बिनीत बिचारी ॥
तात कहौं कछु करौं ढिठाई। अनुचितु छमब जानि लरिकाई ॥३॥

अर्थ : देशकाल और अवसर के अनुसार विनीत वचन विचार कर बोले। हे तात ! मैं कुछ कहता हूँ ढिठाई करता हूँ। मेरे इस अनौचित्य को लड़कपन समझकर क्षमा कीजिये।

व्याख्या : यद्यपि पुत्र का धर्म पिता की आज्ञा मानना है उसे शिक्षा देना नहीं है। इसलिए विचारकर विनीत वचन देशकाल और अवसर के अनुकूल बोले। वहाँ पिता पुत्र का सम्मिलन हो रहा है। दूसरा कौन बोले। अतः रामजी का ही बोलना देश के अनुकूल था। वन जाने का समय भी माता ने सबेरे ही निश्चय किया है। अतः जो कुछ कहना सुनना हो उसका यही समय है। अतः रामजी का कहना काल के भी अनुकूल था। यही अवसर माता के आज्ञापालन का है। यथा : पितहिं बुझाइ कहसु बलि सोई। चौथेपन जेंहि अजसु न होई। अतः रामजी का कहना अवसर अनुकूल था।

बिना पूछे कहता हूँ यह मेरी ढिठाई है। बिना कहे रहा नहीं जाता यह लड़कपन है। ढिठाई और लड़कपन दोनों अनुचित हैं। पर आप पिता हैं। आप बच्चों का अनौचित्य क्षमा करते आये हैं सो इस बार भी क्षमा करेंगे।

अति लघु बात लागि दुखु पावा। काहु न मोहि कहि प्रथम जनावा ॥
देखि गोसाइहिं पूँछिउँ माता। पुनि प्रसंगु भए सीतल गाता ॥४॥

अर्थ : अत्यन्त छोटी सी बात के लिए आपको बड़ा दुःख हुआ। मुझे इस बात का समाचार पहिले किसी ने नहीं दिया। आपको देखकर मैंने माँ से पूछा। सब प्रसङ्ग सुनकर शरीर शीतल हो गया।

व्याख्या : माता ने कहा : छाड़ि न सकहिं तुम्हार संकोचू। सो दुःख सङ्कोच का था कि मैं रामजी से कैसे कहूँ कि तुम वन जाओ। यथा : कह्यो राज बन दियो नारिबस गरि गलानि गये राउ। सो यदि मुझे पहले समाचार मिल गया होता तो सङ्कोच की बात ही न थी मैं उधर से उधर ही वन चला जाता। यहाँ आने पर आपकी विकलता देखकर माता से पूछा। उसने सब प्रसङ्ग मुझसे कह सुनाया सुनकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। आपकी दशा देखकर शरीर सन्तप्त हो उठा था। सो शीतल हो गया। क्योंकि यह दोनों बात मुझे मुहमाँगी मिल गयी। मेरा मन नवगजेन्द्र की भाँति वन में ही आनन्द मानता है। राज्य उसे बन्धन मालूम होता है। भरत प्राणप्रिय हैं उन्हें राज्य मिलना ही मुझे इष्ट है। अपने प्रिय के लिए

ही लोग राज्य भोग और सुख चाहते हैं। सो प्राणप्रिय को मिला। इससे अधिक मङ्गल क्या होगा ?

दो. मंगल समय सनेह बस, सोचु परिहरिअ तात।
आयसु देइअ हरषि हिय, कहि पुलके प्रभु गात ॥४५॥

अर्थ : मङ्गल के समय स्नेहवश जो सोच करते हैं उसे छोड़ दीजिये। प्रसन्न मन से आज्ञा दीजिये। ऐसा कहते हुए प्रभु का शरीर पुलकित हो गया।

व्याख्या : वन के लिए प्रस्थान मेरे लिए मङ्गल है। सोच के लिए इसमें कोई स्थान ही नहीं है। बन्धन से छूटना और सब कल्याणों का मूल मुनिजन समागम से बढ़कर मङ्गल क्या हो सकता है। सो उपस्थित है। क्या सन्तसमागम से किसी का आज तक अकल्याण हुआ है। तब सोच किस बात का ? मेरे स्नेह के कारण आप सोच रहे हैं : लोचन ओट रामु जनि होहीं। इस सोच को छोड़िये और मेरे कल्याण की ओर दृष्टि देकर प्रसन्न होकर आज्ञा दीजिये। यह कहते हुए पुलक होने का कारण आनन्दातिरेक है। पिता के आज्ञा पालन से जन्म का साफल्य समझकर सरकार को अति हर्ष है।

धन्य जनमु जगतीतल तासू। पितहि प्रमोदु चरित सुनि जासू॥
चारि पदारथ करतल ताकें। प्रिय पितु मातु प्रान सम जाकें॥१॥

अर्थ : संसार में उसी का जन्म धन्य है। जिसके चरित्र सुनने से पिता को आनन्द हो। उसके चारों पदार्थ हस्तगत हैं। जिसे माता पिता प्राण के समान प्यारे हों।

व्याख्या : पिता धर्मः पिता कर्म पितैव परमा गतिः। पितरि प्रीतिमापन्ने प्रीयन्ते सर्वदेवताः। पिता ही धर्म है पिता ही कर्म है। पिता ही परमगति है। पिता के प्रसन्न होने से सभी देवता प्रसन्न हो जाते हैं। अतः गोस्वामीजी कहते हैं कि सबसे बड़ी सेवा पुत्र की यह है कि उसके चरित्र सुनने से पिता को आनन्द हो। कौसल्याजी कहती हैं : तात पितहि तुम्ह प्रान पियारे। देखि मुदित नित चरित तुम्हारे।

जिसका चरित ऐसा हो और जिसे माता पिता प्राण से प्यारे हों। उसे धर्म अर्थ काम और मोक्ष के लिए किसी साधन की अपेक्षा नहीं है। ये सब उसे आप से आप प्राप्त हो जाते हैं : रामजी के चरित्र से यह शिक्षा संसार को मिलती है।

आयसु पालि जनम फलु पाई। ऐहउँ बेगहिं होउ रजाई॥
बिदा मातु सन आवौं माँगी। चलिहौं बनहि बहुरि पग लागी॥२॥

अर्थ : आज्ञा पालन करके जन्म का फल पाकर के शीघ्र ही लौटूँगा। अब आज्ञा हो। माता से विदा माँग आऊँ। तब फिर चरणों में प्रणाम करके वन जाऊँगा।

व्याख्या : आयसु देइय हरखि हिय कहि पुलके प्रभुगात से प्रसग छोड़ा था। अब फिर वहीं से उठाते हैं। रामजी कहते हैं कि आप की आज्ञा के पालन में ही मेरे जन्म का साफल्य है। मैं अपना जन्म सफल करने जाता हूँ। चौदह वर्ष के बाद लौटने में एक मिनट की देर न लगाऊँगा। यह कोई न समझे कि नाराज होकर न लौटेंगे। या मनाने के लिए किसी को जाना पड़ेगा। मैं स्वयं लौट आऊँगा। बात तय हो गयी। अब आज्ञा हो। मौनं स्वीकारलक्षणम् मानकर कहते हैं कि जाने के पहिले माताजी से विदा माँगना भी परमावश्यक है। उनसे आज्ञा न माँगूगा। विदा माँगूगा और चलने से पहिले फिर चरणों की वन्दना के लिए आऊँगा।

सरकार समझ रहे हैं कि माँ से छुट्टी पाना सहज बात नहीं है और जब तक उनसे छुट्टी न मिल जाय तब तक विदाई का प्रणाम पिताजी से कैसे करें।

११. प्रजा विरह विषाद प्रसङ्ग

अस कहि रामु गवनु तब कीन्हा। भूप सोक बस उतरु न दीन्हा॥
नगर ब्यापि गइ बात सुतीछी। छुअत चढ़ी जनु सब तन बीछी॥३॥

अर्थ : ऐसा कहकर रामजी तब चले गये। राजा ने शोक के वश होकर उत्तर न दिया। नगर में यही तीखी बात व्याप्त हो गयी। जैसे छू जाने से सम्पूर्ण शरीर में बीछी व्याप्त हो जाती है।

व्याख्या : रामजी इस बात पर नहीं अड़े कि पिताजी मुख से कह दें कि तुम वन जाओ। तब मैं जाऊँगा। उन्होंने पिता की विकलता देखकर समझ लिया कि ये वन दे चुके। मुख से कहने में इन्हें कष्ट होगा। अतः वहाँ से माता के पास चल पड़े।

अभी तक यह बात नगर में फैली ही नहीं थी। पर अब रुक न सकी। तीखी बात होने के कारण सारे नगर में फैलते देर न लगी। जैसे बीछी छू जाने से सारे शरीर में व्याप्त हो जाती है। बीछी नाम का वृक्ष उत्तराखण्ड में होता है। उसके छू जाते ही सारे शरीर में तीव्र वेदना के व्याप्त होते देर नहीं लगती। बीछू यदि डङ्क मारे तो भी ऐसा ही होता है। पर उसके छू जाने से कुछ नही होता।

सुनि भये बिकल सकल नरनारी। बेलि बिटप जिमि देखि दवारी॥
जो जहँ सुनइ धुनइ सिरु सोई। बड़ विषादु नहि धीरजु होई॥४॥

अर्थ : सुनकर सब नरनारी विकल हो गये। जैसे दावाग्नि देखकर वृक्ष और लता विकल हो जाते हैं। जो जहाँ सुनता है सिर पीटने लगता है। विषाद बड़ा भारी है। धैर्य होता ही नहीं।

व्याख्या : भगवान् मनु कहते हैं कि पेड़ अन्तःसंज्ञ होते हैं। उनके भीतर ज्ञान होता है। महाभारत में युक्तिप्रदर्शनपूर्वक कहा गया है : तस्मात् पश्यन्ति

पादपाः । तस्मात् शृण्वन्ति पादपाः । पेड़ देखते हैं । पेड़ सुनते हैं । वन में आग लगी हुई देखकर लता और वृक्ष विकल हो जाते हैं । उसी भाँति रामजी का वनवास सुनकर नरनारी विकल हो उठे । समाचार के फैलने की शीघ्रता में बीछी की उपमा दी । पर बीछो में शारीरिक वेदना प्रधान है । यहाँ तो सबको रामजी को वनवास होगा यह सुनकर मानसिक वेदना हुई । दावानल देखकर हम भी जलेंगे : इस भय से वेलि विटप को मानसिक वेदना होती है । अतः यह दूसरी उपमा देनी पड़ी ।

अब उस मानसिक वेदना का शरीर पर प्रभाव दिखलाते हैं कि जब बड़ा विषाद होता है : धैर्य नहीं बँधता तो आदमी अपना सिर पीटने लगता है । यहाँ अयोध्या में सबकी यही दशा है । जो सुनता है सो रामविरहाग्नि से व्याकुल होकर सिर पीटने लगता है ।

दो. मुख सुखाहिं लोचन स्रवहिं, सोकु न हृदय समाइ ।
मनहुँ करुन रस कटकई, उतरी अवध बजाइ ॥४६॥

अर्थ : मुख सूखता है । आँख से आँसू बहता है । शोक हृदय में समाता नहीं । मानो करुणा रस की फौज डङ्का बजाकर अयोध्या में उतर पड़ी है ।

व्याख्या : जब शोकाग्नि हृदय में जलती है तब मुख सूखता है । आँख से आँसुओं की धारा बह निकलती है । असह्य शोक में ऐसा होता है । अयोध्या में नरनारियों की यही दशा है । मालूम होता है कि ये करुणा रस की सेना के योद्धा लोग हैं । सम्पूर्ण अयोध्या में फैले हुए अपना पराक्रम दिखलाकर कब्जा कर रहे हैं ।

मिलेहि माँझ बिधि बात बिगारी । जहँ तहँ देहिं कैकइहि गारी ॥
एहि पापिनिहि बूझि का परेऊ । छाइ भवन पर पावकु धरेऊ ॥१॥

अर्थ : मेल के बीच में ही ब्रह्मा ने बात बिगाड़ दी । जहाँ तहाँ कैकेयी को गालियाँ दे रहे हैं । इस पापिनी को समझ क्या पड़ा । जो घर को छाकर उसके ऊपर आग रख दिया ।

व्याख्या : इस राजकुल में ऐसा मेल था कि बात बिगड़नेवाली थी ही नहीं । यह ब्रह्मा की ही करामात है कि जहाँ कभी फूट न हुई वहाँ एकाएक बात बिगड़ गयी । फिर भी निमित्त कैकेयी हुई है । अतः जहाँ तहाँ लोग निःशङ्क होकर कैकेयी को गालियाँ देते हैं ।

कहते हैं कि यह पापिनी है । इसे इस काम में कौन सा लाभ दिखाई पड़ा । यह तो घर की छानेवाली थी । पुनि अस कबहुँ कहसि घरफोरी । तब धरि जीभ कढ़ावौं तोरी । कबहुँ न कियउ सवति आरेसू । आदि से लेकर आजतक इसने घर को छाया । कुटुम्ब में विरोध नहीं होने दिया । जब सब ठीक हो गया तो छाये हुए घर पर रामविरह रूपी अग्नि रख दी । यथा : सहि न सके रघुबर बिरहागी । चले लोग सब ब्याकुल भागी ।

निज कर नयन काढ़ि चह दीखा । डारि सुधा बिषु चाहति चीखा ॥
कुटिल कठोर कुबुद्धि अभागी । भइ रघुबंस बेनु बन आगी ॥२॥

अर्थ : अपने हाथों से आँख निकालकर देखना चाहती है । अमृत फेंककर विष चीखना चाहती है । यह कठोर कुटिल है । कुबुद्धि है । अभागी है । रघुवंश रूपी बाँस के वन के लिए यह आग हो गयी ।

व्याख्या : नयन अत्यन्त प्रिय का उपलक्षण है । यथा : मोरे भरत राम दुइ आँखी । इसी भाँति कैकेयी को रामजानकी दोनों आँख थे । यथा : जौ बिधि जन्म देइ करि छोहू । होहु रामसिय पूत पतोहू । सो यह अब समझ रही है कि आँख आवरण हैं । ये हट जायँ तो सुस्पष्ट दिखाई पड़ने लगे । अतः स्वयं वरदान माँगकर रामजी को वन भेज रही है । अपने हाथ से अपनी आँख निकाल रही है । समझती है कि इससे सुख मिलेगा । ऐसी मूर्खा है । रामराज्याभिषेक सुधा है । यथा : कनक सिंहासन सीय समेता । बैठहिं रामु होइ चित चेता । और रामवनगमन विष है । यथा : लोग बियोग बिषय विष दागे । सो यह सुधा को फेंककर विष का रसास्वादन करना चाहती है ।

कुटिल दूसरे की हानि करता है । यह कठोर कुटिल है । अपने ही कुल के नाश पर तुली हुई है । बाँस के वन में दैवयोग से बाँसों के रगड़ से अग्नि उत्पन्न हो जाती है । वह अग्नि उसी बाँस के वन का दाह करती है । उसी भाँति यह रघुवंश रूपी बाँस के वन की आग है । रघुवंश को भस्म करके मानेगी । यह कुबुद्धि है और अभागी है ।

पालव बैठि पेड़ु येहि काटा । सुख महुँ सोक ठाटु धरि ठाटा ॥
सदा रामु येहि प्रान समाना । कारन कवन कुटिलपनु ठाना ॥३॥

अर्थ : पल्लव पर बैठकर इसने पेड़ काटा । सुख में इसने शोक का ठाट ठट दिया । सदा रामजी इसे प्राण के समान थे । कारण क्या आपड़ा कि इसने कुटिलपन ठाना ।

व्याख्या : भरत पल्लवस्थानीय हैं । रामजी वृक्षस्थानीय हैं । यथा : पेड़ काटि एहिं पालव सींचा । जिस पल्लव का यह आश्रय कर रही है वह सर्वथा पेड़ के आश्रित है । यह पल्लव पर बैठकर पेड़ काटनेवाली भरत का आश्रय करके राम को वनवास देनेवाली कुबुद्धि है । रामजी के बिना भरतजी रह नहीं सकते ।

इसी भाँति सुख में बलपूर्वक शोक का ठाट रचनेवाला अभागा है । यह आनन्द से राज्य कर रही थी । सो यह बलपूर्वक विपत्ति का आह्वान कर रही है । अतः अभागी है ।

यह तो सदा रामजी को प्राण के समान मानती थी । इस कुटिलपन के लिए कारण होना चाहिए । पर कोई कारण तो नहीं मालूम होता । जब कोई कारण

विचार करने पर भी हाथ न लगा और बिना कारण कार्य होता नहीं। तो लोगों ने स्वभाव को ही कारण माना।

सत्य कहहिं कबि नारि सुभाऊ। सब बिधि अगहु अगाध दुराऊ ॥
निज प्रतिबिंबु बरुकु गहि जाई। जानि न जाइ नारि गति भाई ॥४॥

अर्थ : कवि लोग सत्य कहते हैं कि स्त्रियों का स्वभाव सब प्रकार से पकड़ में न आने योग्य अथाह और बात छिपानेवाला होता है। अपनी परछाहीं चाहे पकड़ में आजाय पर स्त्री की गति जानी नहीं जाती।

व्याख्या : अब लोगों को कवियों की उक्तियाँ याद पड़ीं। जिनमें उन लोगों ने वर्णन किया था कि स्त्रियों का स्वभाव ऐसा विचित्र होता है कि पकड़ में नहीं आता। उनके मन का पता नहीं चलता। बात को ऐसा छिपाना जानती हैं कि कभी प्रकट न हो। कैकेयी का स्वभाव स्वयं महाराज के पकड़ में नहीं आया। वे इसी विश्वास में रह गये कि रामजी इसे प्राण से प्यारे हैं। महाराज को उसके हृदय का थाह न लगा। वस्तुतः वह रामजी को प्यार नहीं करती थी। पर इस बात को इसने ऐसा छिपाया कि संसार धोखा खा गया। यथा : ऐसिउ पीर बिहँसि तेहि गोई। चोर नारि जिमि प्रगट न रोई। अपनी स्त्री है। अपने हाथ में है। पर उसकी गति जानी नहीं जाती। यथा : जिमि मुख मुकुर मुकुर निज पानी गहि न जाइ।

दो. काह न पावकु जारि सक, का न समुद्र समाइ।
का न करइ अबला प्रबल, केहि जग कालु न खाइ ॥४७॥

अर्थ : अग्नि क्या नहीं जला सकता? समुद्र में क्या नहीं समाता? प्रबल स्त्री क्या नहीं कर सकती और संसार में किसे काल नहीं खाता?

व्याख्या : यह आक्षेपात्मक प्रश्न है। अर्थात् जिस भाँति अग्नि सब कुछ जला सकती है। समुद्र सब कुछ डुबा सकता है। काल संसार के सभी पदार्थों को खा सकता है। उसी भाँति स्त्री यदि प्रबला हो जाय तो सब कुछ कर सकती है। महाकवि कालिदास कहते हैं : स्त्री पुंवच्च प्रभवति यदा तद्धि गेहं विनष्टम्। जब स्त्री पुरुष की भाँति प्रभुता करने लगती हैं। तो वह घर नष्ट हो जाता है। जलना डूबना और क्षय तीन मार्ग नाश के हैं। तीनों कैकेयी से हुए। १. बिधि कैकई किरातिन कीन्ही। जेहि दव दुसह दसहु दिसि दीन्ही। २. सोक सिन्धु बूड़त सबहि तुम अवलंबन दीन्ह। ३. अवध उजार कीन्हि कैकेयी।

रानी कैकेयी की प्रभुता इतनी बढ़ गयी थी कि महाराज सब काम उससे पूछकर करते थे। यथा : मैं सब कीन्ह तोहि बिनु पूछे। ताते परेउ मनोरथ छूछे। फल यह हुआ कि आज वह अग्नि समुद्र और काल की भाँति घातक हो रही है। अग्नि की भाँति यथा : आगे दीख जरत रिसि भारी। बिधि कैकेयी किरातिनी कीन्ही। जेहि दव दुसह दसहु दिसि दीन्ही। समुद्र की भाँति यथा : चली बिपति

बारिधि अनुकूला। काल की भाँति यथा : लागेउ तोहि पिसाच जिमि काल कहावत मोर। इसीलिए साध्वी स्त्री स्वातन्त्र्य को अपना अभाग्य मानती हैं। स्थूलदर्शी इस बात को नहीं देख सकते। कवि सूक्ष्मदर्शी होते हैं। इसलिए लोग कवियों का प्रमाण देकर बोल रहे हैं।

का सुनाइ बिधि काह सुनावा। का देखाइ चह काह देखावा ॥
एक कहहिं भल भूप न कीन्हा। बरु बिचारि नहि कुमतिहि दीन्हा ॥१॥

अर्थ : क्या सुनाकर ब्रह्मा ने क्या सुनाया। क्या दिखलाकर अब क्या दिखलाना चाहते हैं। एक कहते हैं कि राजा ने अच्छा नहीं किया जो इस कुबुद्धि को विचार करके वर नहीं दिया।

व्याख्या : यह ब्रह्माण्ड ब्रह्मदेव के संकल्प से ही उत्पन्न हुआ है और चल रहा है। अतः जो कुछ इसमें होता है सबके मूल में ब्रह्मदेव का सङ्कल्प है। अतः वे ही मुख्य कर्ता हैं। जो कल्याण सुना गया अर्थात् रामजी का अभिषेक : वह भी विधाता के ही कारण से सुना गया और अब जो रामजी का वनवास सुन रहे हैं वह भी उन्हीं की करतूत है। दिखलाया तो यह कि बाज गहागह अवध बधावा और अब उसी अवध में आर्तनाद देखने की बारी आ रही है।

छः प्रकार के विचार के लोग अवध में दृष्टिगोचर हो रहे हैं। वे लोग आपस में अपना अपना विचार प्रकट कर रहे हैं। १. अर्थशास्त्री बोले कि राजा ने अच्छा नहीं किया। सुबुद्धि कुबुद्धि का विचार करके वर देना चाहिए। देखो कुबुद्धि ने कैसा बुरा वर माँगा।

जो हठि भयउ सकल दुख भाजनु। अबला बिबस ग्यानु गुनु गाजनु ॥
एक धरम परमिति पहिचानें। नृपहिं दोषु नहिं देहिं सयानें ॥२॥

अर्थ : जो हठ पूर्वक सम्पूर्ण दुःख के पात्र हो गये। स्त्री के वश में हो जाने से मानो राजा के सब ज्ञान और गुण ही चले गये। एक सयाने धर्म की मर्यादा के जाननेवाले राजा को दोष नहीं देते थे।

व्याख्या : राजा को दुःखी होने की कोई बात नहीं थी। अब इस कारण से व्यर्थ दुःख के भाजन बन रहे हैं। उन्हें अपने वचन पर हठ न करना चाहिए। ऐसा विवेकी और गुणी राजा : धर्म धुरंधर नृपरिषि ज्ञानी। हृदय भगति मति सारँग पानी : सो स्त्री के वश में पड़ा हुआ मानों अपने सब ज्ञान और गुणों को खो बैठा है। यह इससे कहते नहीं बन रहा है कि मैं राजा हूँ। अन्याय नहीं कर सकता। किस अपराध से राम को वन दें।

२. धर्म की मर्यादा के जाननेवाले धर्मशास्त्री सयाने लोग कहते हैं कि इसमें राजा का कोई दोष नहीं है। संग्राम में सहायता के समय उन्होंने दो वर माँगने को कहा था। वे ही वर थाती की भाँति राजा के पास पड़े थे। आज इस दुष्टा ने उन्हीं

वरों से काम लिया। ये नर्म में माँगे हुए वर नहीं हैं जिससे राजा को दोषी कहा जा सके।

सिवि दधीचि हरिचंद कहानी। एक एक सन कहहिं बखानी ॥
एक भरत कर संमत कहहीं। एक उदास भाय सुनि रहहीं ॥३॥

अर्थ : शिवि दधीचि और हरिश्चन्द्र की कहानी एक एक से बखान कर कहते हैं। कोई भरत की सम्मति कहते हैं और कोई उदासीन होकर रह जाते हैं।

व्याख्या : उन धर्मशास्त्रियों का कहना है कि धर्म के निर्वाह में तो दुःख होता ही है। यहाँ तो दुःख की जितनी ही तीव्रातितीव्र मात्रा हो उतना ही धर्म का उत्कर्ष है। राजा शिवि शरणागत कपोत के लिए अपना मांस काटकर तौलते गये और वह कपोत भारी होता ही गया पर राजा अपना मांस काटने से विरत नहीं हुए। दधीचि ने अपनी हड्डियाँ दे डालीं। हरिश्चन्द्र ने अपना राज्य दिया। स्त्री बच्चे को बेंच दिया। स्वयं डोम के हाथ बिक गये। पर अपने धर्म से न हटे। यही महाराज के धर्म की परीक्षा का समय है। इसमें उनका दोष क्या है ?

३. तीसरे प्रकार के कुछ लोग कूटनीतिज्ञ ऐसे हैं कि इसमें भरत की चाल देखते हैं कि माँ को सिखा पढ़ाकर आप ननिहाल बैठे हुए हैं। चौथे ज्ञानी महात्मा हैं जो उदासीन हैं कुछ भी नहीं कहते।

कान मूँदि कर रद गहि जीहा। एक कहहिं यह बात अलीहा ॥
सुकृत जाहिं अस कहत तुम्हारे। रामु भरत कहुँ प्रानपियारे ॥४॥

अर्थ : कान मूँदकर और जीभ को दाँत से दाबकर कोई कहते हैं कि यह बात झूठ है। तुम्हारे ऐसा कहने से पुण्य का क्षय होगा। राम तो भरत को प्राण से प्यारे हैं।

व्याख्या : पाँचवे प्रकार के लोग भगवद् भक्त हैं। ये ऐसी बात सुनना नहीं चाहते। इसलिए कान मूँद लेते हैं और दूसरे को भी ऐसी बात कहने से निषेध करते हैं। इसलिए दाँत तले जीभ दबाते हैं और कहते हैं कि यह बात निर्मूल है। निर्दोष पर दोषारोपण करने से पुण्य का क्षय होता है। सो क्यों व्यर्थ अपने पुण्य का क्षय करते हो। संसार राज्य सुख तो अपने प्यारों के लिए ही चाहता है और भरत को राम प्राण से प्यारे हैं। उनके अभिषेक में भरत बाधक क्यों होंगे ?

दो. चंदु चवइ बरु अनल कन, सुधा होइ बिष तूल।
सपनेहुँ कबहुँ न करहिं किछु, भरतु राम प्रतिकूल ॥४८॥

अर्थ : चाहे चाँद में से आग के कण गिरें चाहे अमृत विष हो जाय पर सपने में भी भरत राम के प्रतिकूल कुछ भी नहीं कर सकते।

व्याख्या : चन्द्रमा हिमकर हैं : हिमकण का स्राव करते हैं। वे चाहे अग्निकण का स्राव करने लगें। उनके स्वरूप में इतना बड़ा वैषम्य उपस्थित हो जाय और

अमृत विष तुल्य हो : उसका स्वभाव ही पलट जाय, पर भरत के स्वरूप और स्वभाव में अन्तर नहीं पड़ सकता। यथा : भरत सुभाउ सुसीतलताई। सदा एकरस बरनि न जाई। सो भरतजी रामजी के प्रतिकूल सपने में भी नहीं हो सकते जाग्रत् की कौन चलावे।

एक बिधातहि दूषनु देहीं। सुधा देखाइ दीन्ह बिषु जेहीं ॥
खरभरु नगर सोचु सब काहू। दुसह दाहु उर मिटा उछाहू ॥१॥

अर्थ : कोई ब्रह्मा को दोष देते हैं जिसने अमृत दिखलाकर विष दिया। नगर में खलबली मच गयी। सबको सोच हो गया। हृदय में नहीं सहने योग्य दाह पैदा हो गया। उछाह जाता रहा।

व्याख्या : यह छठा प्रकार कर्मकाण्डियों का है। यह सीधे सीधे विधाता को दोष देते हैं। दिखाकर न देना दोष है और अमृत दिखाकर विष देना तो बड़ा ही कराल कर्म है। यथा : सुनिअ सुधा देखिअ गरल सब करतूति कराल। रामराज्या-भिषेकोत्सवरूपी अमृत विधाता ने दिखलाया। दिखलाकर न देते। रामजी का अभिषेक न होता यही बहुत था। उनको वनवास रूपी विष दिया जा रहा है!

विष दिये जाने पर जो खलबली मचती है वह मची। सबको सोच है कि इस विष से रक्षा कठिन है। विष काम भी करने लगा। हृदय में जलन उत्पन्न हो गयी। सबके हृदय में उत्साह था। यथा : सुनत राम अभिषेक सोहावा। बाज गहागह अवध बधावा। सो उछाह मिट गया।

बिप्रबधू कुलमान्य जठेरी। जे प्रिय परम कैकेयी केरी ॥
लगीं देन सिख सीलु सराही। बचन बानसम लागहिं ताही ॥२॥

अर्थ : ब्राह्मणों की स्त्रियाँ कुल की मान्य बड़ी बूढ़ी जो कैकेयी को परमप्रिय थीं उसके शील की प्रशंसा करती हुई समझाने लगीं। पर वे वचन उसे बाण जैसे लगते थे।

व्याख्या : ब्राह्मणों की स्त्रियाँ जिन्हें अति पूज्य दृष्टि से रानी कैकेयी सदा देखती थी कुल की मान्य ननद फूफी आदि जठेरी जेठानी चचियासास आदि जो कैकेयी को परमप्रिय थीं जब उन लोगों ने यह समाचार सुना तो अपना जोर समझकर कैकेयी के पास पहुँचीं और उसके शील की स्तुति करके समझाने लगीं। पर समझना तो दूर रहा उनके वचन उसे वाण के समान लगने लगे। उसने समझा कि ये ठकुरसोहाती करनेवाली आगयीं। ये सब शत्रु की ओर मिली हुई हैं। मेरे शील की सराहना इसलिए हो रही है कि मैं इनकी बातों में आकर अपने ध्येय से हट जाऊँ। ये एक बात भी मेरे हित की नहीं कह रही हैं। जिसमें कौसल्या का भला हो वही कह रही हैं। अतः वे वचन उसे बाण से लगते थे।

भरतु न मोहि प्रिय राम समाना । सदा कहहु येहु सबु जगु जाना ॥
करहु राम पर सहज सनेहू । केहि अपराध आजु बनु देहू ॥३॥

अर्थ : राम के समान मुझे भरत भी प्यारे नहीं सदा यह कहती आयी हो और संसार इस बात को जानता है । रामजी पर तुम स्वाभाविक स्नेह करती हो तो आज किस अपराध पर वन दे रही हो ।

व्याख्या : अब समझाने का प्रकार कहते हैं । वे सब कहने लगीं कि तुम तो सदा कहती रही कि राम के समान मुझे भरत भी प्यारे नहीं । तुम्हारा बर्ताव भी राम के साथ वैसा ही था । इसलिए संसार में यह बात प्रसिद्ध हो गयी कि महारानी कैकेयी बेटे से अधिक रामजी को मानती हैं । सो क्या वह कहना और वह वर्ताव मिथ्या था ? तुम्हारा स्नेह रामजी पर बनावटी था । यह तो हम लोग मान नहीं सकतीं । सो स्वाभाविक स्नेह में हठात् इतना बड़ा परिवर्तन क्यों ? बिना-कारण कार्य नहीं होता । अपराध से ही स्नेह में कमी आती है । इतने दिनों तक तो सब ठीक चला । आज जो वन दे रही हो सो किस अपराध पर ? हम लोग भी सुनें कि राम ने यह अपराध किया है । जगत् भी जाने : नहीं तो निरपराध को दण्ड देने का दोषी संसार तुम्हें समझेगा ।

कबहुँ न कियहु सवतिआ रेसू । प्रीति प्रतीति जान सबु देसू ॥
कौसल्याँ अब काह बिगारा । तुम्ह जेहि लागि बज्र पुर पारा ॥४॥

अर्थ : तुमने कभी सौतियाडाह नहीं की । तुम्हारी प्रीति और विश्वास को सारा देश जानता है । कौसल्या ने अब क्या बिगाड़ा जिसके लिए तुम सारे नगर पर वज्र ढहा रही हो ।

व्याख्या : कुछ उत्तर न मिलने पर उन लोगों ने सोचा कि रामजी से कोई अपराध नहीं हुआ । सौत का स्वभाव है दूसरी के पुत्र की बढ़ोतरी नहीं देख सकतीं । पर यहाँ तो यह बात कभी नहीं थी । अतः कहती है कि तुमने तो आज तक सौतियाडाह नहीं किया । तुम्हारे में और कौसल्या में जैसी प्रीति प्रतीति है वैसी सौतों में कहीं देखी नहीं जाती । यह बात संसार जानता है । रामजो को युवराजपद महाराज देते थे । उसमें कौसल्या का क्या दोष है ? सो तो अब होगा नहीं । अब तो भरत युवराज होंगे । बात समाप्त हो गयी । अब जो राम को वन भेज रही हो यह तो कौसल्या को दण्ड देना है । तुम्हारे विवाह में कौसल्या बाधक नहीं हुई । हवि विभाग में बाधक नहीं हुई । तुम्हारे बढ़ते हुए अधिकार में बाधक नहीं हुई । जब बिगाड़ करने का समय था तब बिगाड़ नहीं किया । अब कौसल्या ने क्या बिगाड़ा जो कहती हो : जस कौसिलाँ मोर भल ताका । तस फलु तिन्हहि देउँ करि साका । तुम तो चली हो कौसल्या को दण्ड देने सो वह दण्ड कौसल्या पर ही सीमित न रहकर सम्पूर्ण प्रजामण्डल पर गिरेगा । सम्पूर्ण प्रजा पर वज्र क्यों गिरा रही हो ?

दो. सीय कि पिय सँगु परिहरिहि, लखनु कि रहिहहिं धाम ।
राजु कि भूँजब भरत पुर, नृपु कि जिअहि बिनु राम ।।४९।।

अर्थ : सीता क्या पति का संग परित्याग करेगी ? लक्ष्मण क्या घर रहेंगे ? भरत क्या पुर का राज्य भोगेंगे ? राजा क्या बिना राम के जीवेंगे ?

व्याख्या : सीता कुलवधू है : वह निश्चय रामजी के साथ वन चली जायगी। क्या यह भी तुम्हें स्वीकार है ? लक्ष्मण का भी इतना प्रेम है कि वे भी घर नहीं रहेंगे। क्या यह भी तुम्हें इष्ट है ? कह सकती हो कि भरत तो राजा होंगे। भरत के राज्य के लिए मैं सब करती हूँ। पर प्रश्न तो यह है कि क्या ऐसी अवस्था में भरत राज्य स्वीकार करेंगे ? हम कहते हैं कि कभी नहीं करेंगे। रामजी रहते तो कदाचित् भरत स्वीकार भी करते। अतः राम को वन भेजकर तुम अपने मुख्य इष्ट का नाश कर रही हो और सबसे बड़ा अनिष्ट तुम्हारे लिए यह होगा कि महाराज बिना राम के न जीवेंगे। इतना बड़ा अनर्थ तुम्हारे हाथ से हुआ चाहता है।

अस बिचारि उर छाड़हु कोहू। सोक कलंक कोठि जनि होहू ।।
भरतहिं अवसि देहु जुबराजू। कानन काह राम कर काजू ।।१।।

अर्थ : ऐसा विचारकर क्रोध छोड़ दो। शोक और कलंक की कोठी न बनो। भरत को अवश्य युवराज पद दो। पर राम का वन में क्या काम है ?

व्याख्या : तुम्हारे क्रोध के भयानक दुष्परिणाम होंगे। भरत के राज देने में अर्थ कारण है। पर राम के वन देने में तो क्रोध कारण है। उसके वश होकर शोक और कलङ्क की निधान अपने को क्यों बनाती हो। राम के वन देने से तुम्हें असाधारण कलङ्क लगेगा और जब इस भाँति मिले हुए राज्य को भरत अस्वीकार कर देंगे महाराज बिना राम के प्राण त्याग करेंगे तब तुम शोक की कोठी होओगी। राम को वन भेजकर अव्यापारेषु व्यापार क्यों करती हो ?

नाहिन रामु राज के भूखे। धरम धुरीन विषय रस रूखे ।।
गुरु गृह बसहु रामु तजि गेहू। नृप सन अस बरु दूसर लेहू ।।२।।

अर्थ : रामजी राज के भूखे नहीं हैं। वे धर्म के धुरा के वहन करनेवाले हैं। विषय रस से रूखे हैं। रामजी घर छोड़कर गुरुजी के घर रहें। तुम राजा से यह दूसरा वर लो।

व्याख्या : यदि कहो कि भरत के राज्य में रामजी बाधक होंगे तो रामजी को सब जानते हैं। उन्हें राज की भूख नहीं है। राज्य की चाह उसे होती है जिसे विषय लिप्सा होती है जो राज धर्म के गौरव को नहीं जानता। रामजी तो सदा विषय रस से रूखे हैं : वे धर्मधुरीण हैं। जानते हैं कि राजधर्म का निर्वाह कठिन है। उन्हें राज्य की भूख हो नहीं सकती।

पर तुम्हें भूख है। तुम्हारे मन में शंका हो सकती है। तो राजा से दूसरा

वर माँग लो कि राम घर में न रहें। वे जाकर गुरुजी के घर रहें। गुरुजी की दृष्टि दिन रात उन पर रहेगी। फिर उनसे कोई भय का कारण न रह जायगा। लोग भी समझेंगे कि केवल भय से रानी ने रामजी को इस दृश्य से पृथक् कर रक्खा है। भरत के राज्य स्वीकार में भी अधिक कठिनता न होगी। महाराज के प्राण भी बच जायँगे।

जौं नहि लगिहहु कहें हमारे। नहि लागिहि कछु हाथ तुम्हारे ।।
जौं परिहास कीन्हि कछु होई। तौ कहि प्रगट जनावहु सोई ।।३।।

अर्थ : यदि तुम हम लोगों का कहना न मानोगी तो तुम्हारे हाथ कुछ न लगेगा। यदि तुमने हँसी की हो तो उसे प्रकट करके कह दो।

व्याख्या : रुख देखकर सखी कहती हैं कि यदि तुमने हमारा कहना न माना अपनी बात पर ही अड़ी रह गयी कि रामजी वन जायँ तो तुम्हारे हाथ सिवा शोक कलङ्क के और कुछ न लगेगा। कभी भरत राज्य स्वीकार नहीं करेंगे। राजमाता का स्वप्न झूठा हो जायगा। सखी हैं : बात सुधारने के लिए अवसर देती हैं कि यदि तुमने सचमुच हँसी की हो : क्योंकि हँसी में ही ऐसी निष्कारण बात कही जाती है तो बात अब हँसी की सीमा को उल्लंघन कर रही है। स्पष्ट कह दो कि यह तो हमने हँसी की थी।

राम सरिस सुत कानन जोगू। काह कहिहि सुनि तुम्हे कहुँ लोगू ।।
उठहु वेगि सोइ करहु उपाई। जेहि बिधि सोकु कलंकु नसाई ।।४।।

अर्थ : क्या राम ऐसा बेटा वन के योग्य है। लोग सुनकर तुम्हें क्या कहेंगे। उठो जल्दी से वही उपाय करो जिस विधि से शोक कलङ्क नष्ट हो।

व्याख्या : बेटा वन में भेजने की वस्तु नहीं है। खोटे बेटे को भी कोई वनवास नहीं देता। फिर रामजी ऐसा बेटा वनवास के योग्य कैसे है? भला, जो सुनेगा वह तुम्हें क्या कहेगा?

जब सखियों ने देखा कि यह टस से मस नहीं होती तब कहती हैं : बैठी क्या हो। उठो, बैठने से काम नहीं चलेगा। अब तुम्हें बिगड़ी बात के बनाने में परिश्रम करना पड़ेगा। शोक और कलंक तुम पर आ पड़ा। तुम बड़े दुःख में पड़ गयी। तुम्हें सूझता नहीं है।

छं. जेहि भाँति सोकु कलंकु जाइ, उपाय करि कुल पालही।
हठि फेरु रामहि जात बन, जनि बात दूसरि चालही ।।
जिमि भानु बिनु दिनु प्रान बिनु तनु चंदु बिनु जिमि जामिनी।
तिमि अवध तुलसीदास प्रभु बिनु समुझि धौं जिय भामिनी ।।

अर्थ : जिस भाँति शोक और कलङ्क मिटे वैसा उपाय करके कुल की रक्षा

कर लो। राम को वन जाने से हठ करके लौटाओ। दूसरी बात मुख से न निकालो। जैसे बिना सूर्य का दिन बिना चाँद की रात बिना प्राण का देह तुलसीदास के प्रभु के बिना अवध भी वैसा ही है। हे भामिनि मन में विचारो।

व्याख्या : सखी कहती है कि हम जो कहती हैं उतना ही नहीं। जिस उपाय से शोक कलङ्क मिटे सोई उपाय करो। कुल का नाश होना चाहता है उसे बचा लो। कदाचित् राम न फिरें तो उन्हें हठ करके लौटाओ। रामजी चल पड़े। उनका लौटना सरल नहीं है। चली जाओ कौसल्या के महल में दोनों माताएँ मिलकर रामजी को जाने से रोको।

अवधपुरी सोहावनी मङ्गलमय और पावनी है। सो भयावनी अमङ्गलमय और अपावनी हो जायगी। जैसे चाँद बिना रात भयावनी, सूर्य बिना दिन अपावन, प्राण बिना तन अमङ्गलमय, वही दशा अवध की बिना राम के हो जायगी। भली भाँति मन में समझ लो।

सो. सखिन्ह सिखावनु दीन्ह, सुनत मधुर परिनाम हित।
तेहिं कछु कान न कीन्ह, कुटिल प्रबोधी कूबरी ॥५०॥

अर्थ : सखियों ने ऐसी सीख दी जो सुनने में मधुर और परिणाम में हित हो। पर उसने एक न सुना। उसे कुटिल कूबरी ने सिखा पढ़ाकर पक्का कर रक्खा था।

व्याख्या : कठोर शब्दों में कहे गये हित शब्द का भी आदर किया जाता है। सखियों ने तो बहुत मधुर शब्दों में कहा। नहीं सुनने का कोई कारण नहीं था। पर कैकेयी ने एक न सुना। क्योंकि उसे कुटिल कूबरी ने समझा रक्खा था कहहिं झूठ फुरि बात बनाई। ते प्रिय तुम्हहि। कैकेयी ने समझ लिया कि आगयीं प्रिय बनाकर झूठी बातें कहनेवाली। उसने कहा था : काज सँवारेउ सजग सबु सहसा जनि पतिआहु। सो कैकेयी अपने समझ में सजग होकर काम सँवार रही थी। उन्हें अब सखियों पर विश्वास नहीं रह गया।

उतरु न देइ दुसह रिसि रूखी। मृगिन्ह चितव जनु बाघिनि भूखी ॥
ब्याधि असाधि जानि तिन्ह त्यागी। चलीं कहत मतिमंद अभागी ॥१॥

अर्थ : दुःसह क्रोध से रूखी हो गयी है। जवाब नहीं देती और इस भाँति देख रही है मानो भूखी बाघिन मृगी को देखती हो। असाध्य रोग जानकर उन्होंने उसे छोड़ दिया और मतिमन्द अभागी कहती हुई चली गयीं।

व्याख्या : है तो सदा की शीलवती। पर इस समय उसे इतना क्रोध है कि बेकाबू हो रही है। शील का कहीं नाम नहीं है। अति रूक्ष व्यवहार करती हैं। यह भी नहीं कि उनकी ओर देखती न हो। निर्निमेष नेत्र से देख रही है। पर चितवन में क्रोध भरा हुआ है। ऐसा मालूम पड़ रहा है कि किस समय टूट

पड़ेगी कुछ ठिकाना नहीं। जैसे बाघिन दुःसह भूख से उत्पतनोन्मुख हो रही है। कैकेयी की यही दशा दुःसह क्रोध के कारण हो रही है।

सखियों ने देखा कि यह किसी बात का उत्तर देना नहीं चाहती और क्रोध से भरी घूर रही है। तब उन लोगों ने समझ लिया कि यह असाध्य रोग है। यहाँ औषध काम नहीं कर रही है : काल बिबस कहँ भेषज जैसे। महाराज वृद्ध गजराज थे सहमकर गिर पड़े थे। पर ये तो मृगी हैं वहाँ से निकल भागो। यह मतिमन्द है। अभागी है। ऐसा कहती हुई चली गयीं।

राजु करत येह दैव बिगोई। कीन्हेसि अस जस करै न कोई ॥
एहि बिधि बिलपहिं पुर नर नारी। देहिं कुचालिहि कोटिक गारी ॥२॥

अर्थ : इस दइमारी ने राज करते हुए ऐसा किया जो कोई नहीं करता। इस विधि से पुरनरनारी विलाप करती हैं और इस कुचाल चलनेवाली को करोड़ों गालियाँ देते हैं।

व्याख्या : ऊपर मतिमंद अभागी कह आयी हैं। उसी को स्पष्ट करती हैं। यह दइमारी है। इस पर दैव का कोप हो गया है। अतः अभागी है। जो राज करता है वही प्रजामात्र के लिए आदर्श है। अतः उसे खूब सँभालकर पैर उठाना चाहिए। सो इसने ऐसा किया जैसा कोई नहीं करता। ते पितु मातु कहहु सखि कैसे। जिन पठये बन बालक ऐसे। अतः यह मतिमन्द है।

जो जहँ सुनइ धुनइ सिरु सोई। बड़ विषाद नहि धीरज होई से उपक्रम और एहि बिधि बिलपहिं कहकर उपसंहार करते हैं। विलाप के साथ ही साथ गाली का उपक्रम यथा—मिलेहिं माँझ बिधिबात बेगारी। जहँ तहँ देहिं कैकेइहि गारी और उपसंहार में : देहि कुचालिहि कोटिक गारी।

जरहिं बिषम जर लेहिं उसासा। कवनि राम बिनु जीवन आसा ॥
बिपुल बियोग प्रजा अकुलानी। जनु जलचर गन सूखत पानी ॥३॥

अर्थ : विषम ज्वर से जल रहे हैं। लम्बी लम्बी साँस लेते हैं कि रामजी के बिना जीने की कौन आशा है। विषम वियोग से प्रजा विकल हो उठी। जैसे पानी सूखते समय जलचर व्याकुल होते हैं।

व्याख्या : ज्वर का लक्षण है : देहेन्द्रियमनस्तापी सर्वरोगाग्रजो बली। यह देह इन्द्रिय और मनको ताप पहुँचाता है। सब रोगों का अग्रज : बड़ा भाई है और बलवान् है। सज्वरा एव जायन्ते सज्वरा एव म्रियन्ते। ज्वर के सहित जन्म होता है और ज्वर के सहित ही मृत्यु होती है और रोग तो पीछे उत्पन्न होते हैं। इसलिए ज्वर सब रोगों का बड़ा भाई है। इसे मनुष्य और देवता को छोड़कर और कोई भी जीव सह नहीं सकता। इसलिए बली कहा। सो वियोग ज्वर है और विषमवियोग विषम ज्वर है : आमज्वर सुविचिकित्स्य होता है और विषम ज्वर दुर्विचिकित्स्य होता है। रामजी का वियोग विषम ज्वर है। इसमें दाह होता है और उसके कारण से

व्याधिग्रस्त पुरुष लम्बी सासें लेता है। यही गति प्रजा की हो रही है। वह कहती है कि राम के बिना जीवन की क्या आशा है। भाव यह कि इस विषमज्वर की दवा केवल राम हैं।

सब बिधि सब पुरलोग सुखारी। रामचंद मुखचंद निहारी। अतः रामजी का वियोग सब वियोगों से अधिक है। जैसे जलचर के लिए जल का वियोग तो सीधे सीधे प्राण का ही वियोग है। पानी सूखने लगा तब सम्पूर्ण जलचरों का व्याकुल हो उठना स्वभावसिद्ध है। जिस भाँति जलचर के लिए पानी है उसी भाँति प्रजा के लिए रामजी हैं। उनका वियोग जितना निकट आता जाता है। उतनी ही प्रजा की व्याकुलता बढ़ रही है।

अति बिषाद बस लोग लोगाई। गये मातु पहिं रामु गोसाई॥
मुख प्रसन्नु चित चौगुन चाऊ। मिटा सोचु जनि राखइ राऊ॥४॥

अर्थ : स्त्री पुरुष तो सब विषादवश हैं और रामजी माँ के पास गये। मुख प्रसन्न है। चित्त में चौगुना आनन्द है। राजा रोक न लें यह सोच भी मिट गया।

व्याख्या : जिसके वनगमन के समाचार से स्त्री पुरुष इस भाँति विषाद वश हो रहे हैं। उन्हें वनगमन में लाभ ही लाभ दिखाई दे रहा है। चार लाभ गिनाये हैं १. मुनिगन मिलनु बिसेषबन सबहि भाँति हित मोर २. तेहिमहँ पितु आयसु ३. बहुरि संमत जननी तोर और ४. भरत प्रान प्रिय पावहिं राजू। इसलिए चित्त में चौगुना आनन्द है। आनन्द मन में होने से मुखपर प्रसन्नता के चिह्न आ ही जाते हैं। माता के कहने पर यह सोच रहा कि कहीं महाराज रख न लें। पर : अस कहि रामु गवनु तब कीन्हा। भूप सोक बस उतरु न दीन्हा। राजा के शोकवश होकर उत्तर न देने का अर्थ ही यही है कि राजा ने मन से बन दे दिया। अतः महाराज के रोक लेने का जो सोच रहा वह भी जाता रहा।

दो. नव गयंदु रघुबीर मनु, राजु अलान समान।
छूट जानि बन गवनु सुनि, उर अनंदु अधिकान॥५१॥

अर्थ : रामजी का मन नये गजराज के समान है। राज्य बन्धन के समान है। छूटा हुआ जानकर वनगमन सुनने से हृदय में आनन्द अधिक हो उठा।

व्याख्या : बूढ़ा गजेन्द्र छूटने पर भी वन नहीं जाता। घूम फिरकर हाथीखाने में ही आ जाता है। वह स्वातन्त्र्य के सुख को भूले हुए है। पर नये गजेन्द्र को स्वातन्त्र्य का सुख याद है। उसे मलीदा अच्छा नहीं लगता। वह बन्धन से लाचार होकर स्वातन्त्र्य सुख से वञ्चित है। इसी भाँति रामजी का मन है। वह नवगजेन्द्र की भाँति स्वच्छन्द विचरना चाहता है। राज्य उसे बन्धन मालूम हो रहा है। उससे वह सुखी नहीं है। यद्यपि नवगजेन्द्र बँधने पर भी मस्त ही रहता है। पर यदि बन्धन छूट जाय तो और भी आनन्दित हो उठता है। उसी भाँति आत्माराम पूर्ण

काम राम सहज आनन्द निधान हैं। पर गमन सुनने से उनका आनन्द बढ़ गया कि चलो इस राज बन्धन से छुट्टी मिली।

रघुकुल तिलक जोरि दोउ हाथा। मुदित मातु पद नायउ माथा ॥
दीन्हि असीस लाइ उर लीन्हे। भूषन बसन निछावरि कीन्हे ॥१॥

अर्थ : रघुकुलतिलक रामजी ने दोनों हाथ जोड़े हुए प्रसन्न होकर माँ के चरणों में सिर नवाया। माँ ने आशीर्वाद दिया। हृदय से लगा लिया और गहना कपड़ा निछावर किया।

व्याख्या : सरकार स्वयं ही रघुकुल के तिलक रूप हैं। इन्हें तिलक की आवश्यकता नहीं। वनगमन के निश्चय से बड़े प्रसन्न हैं। उसी प्रसन्नता में दोनों हाथ जोड़कर माँ के चरणों में प्रणाम किया : माँ ने समझा कि तिलक होने जा रहा है। अतः प्रसन्न हैं। आशीर्वाद ग्रहण करने के लिए प्रणाम करने आये हैं। माता परम प्रसन्न हो उठी। प्रेम उमड़ आया। आशीर्वाद देती हैं। रामजी अतिप्रिय हैं इससे हृदय से लगाती हैं। अभिषिक्त होने जा रहे हैं : इसलिए गहना कपड़ा निछावर करती हैं।

बार बार मुख चुंबति माता। नयन नेह जलु पुलकित गाता ॥
गोद राखि पुनि हृदयँ लगाए। स्त्रवत प्रेमरस पयद सुहाए ॥२॥

अर्थ : माँ बार बार मुख चूम रही हैं। आँखों में प्रेमाश्रु भरा हुआ है और शरीर में पुलक हो रहा है। गोद में बिठाकर हृदय से लगाया। सुन्दर स्तनों से प्रेमरस बहने लगा।

व्याख्या : नृप रानी परिजन सुकृत मधुकर बारि बिहंग। राजा और रानी का पुण्य भ्रमर है उसे रामजी के मुख कमल के रसास्वादन का अधिकार है। यद्यपि रामजी की उम्र इस समय सत्ताइस वर्ष की है। फिर भी माता का प्रेम वैसा ही है जैसे छोटे बच्चों पर होता है। वह बार बार मुख चूमती है। सात्त्विक भाव का उदय हुआ है। आँखों में आँसू भरे हुए हैं और देह में पुलकावली छायी हुई है। गोद में रामजी को बिठाती हैं और फिर से हृदय लगा रही हैं। सुन्दर स्तनों से प्रेम के मारे दूध बह चला। वात्सल्य भाव के अधिक बढ़ जाने से असमय में भी माता के स्तनों में दूध आ जाता है। इसीलिए गोस्वामीजी ने उसे प्रेमरस कहा।

प्रेमु प्रमोदु न कछु कहि जाई। रंकु धनद पदबी जनु पाई ॥
सादर सुंदर बदनु निहारी। बोली मधुर बचन महतारी ॥३॥

अर्थ : प्रेम और आनन्द का कुछ वर्णन नहीं हो सकता। मानो किसी दरिद्र को कुबेर की पदबी प्राप्त हो गयी हो। आदर के साथ सुन्दर मुख का अवलोकन करके माँ ने मीठे बचन कहे।

व्याख्या : इष्टजन्य भोग को प्रमोद कहते हैं। उस समय जैसा प्रेम और प्रमोद

माँ को हुआ उसका क्या वर्णन किया जाय। मानो दरिद्र को कुबेर का पद मिल गया। धनविहीन को ही दरिद्र कहते हैं। उसे धन मिलना दुर्लभ है। ऐसे को कुबेर का पद यदि मिल जाय अर्थात् नवों निधियाँ उसे प्राप्त हो जायँ जिसे वह जितना चाहे उसे उतना धन दे सके तो उस समय उसे जो आनन्द होता है वह वर्णनातीत है। यही दशा कौसल्या माता की हुई। इन्हें सब कुछ रहते हुए भी पुत्र नहीं था। पुत्र मुख दर्शन दुर्लभ था। सो इन्हें राम सा पुत्र मिला। अब रामजी का राज्याभिषेक होने जा रहा है। यह प्रसन्नता रंक के धनदपद प्राप्ति के समान है।

कहहु तात जननी बलिहारी। कबहिं लगन मुद मंगलकारी॥
सुकृत सील सुख सींव सुहाई। जनम लाभ कइ अवधि अघाई॥४॥

अर्थ : बेटा ! माता बलैया लेती हैं। कहो कब वह आनन्द और मंगल करने वाला लग्न है जो कि पुण्यशील के सुख की सीमा है और जन्म के लाभ की पूर्ण अवधि है।

व्याख्या : शुभकार्य शुभ लग्न में ही होते हैं। यहाँ लग्न का किसी को पता ही नहीं। लोग एक दूसरे से पूछते हैं : कबहिं लगन मुद मंगलकारी। यहाँ तक कि माता कौसल्या को भी पता नहीं। वे राम जी से पूछती हैं कि वह मुद मंगलकारी लग्न कब है ? बात यह हुई कि गुरुजी ने लग्न बताया नहीं कह दिया कि जब राम युवराज हों तभी शुभ लग्न है। वह लग्न इतनी प्रिय है कि माता उसे सुकृत सील के सुख की सीमा कहती है। जिस लग्न में रामजी का तिलक हो माता के लिए वही लग्न सुकृत शील के पुण्य की सीमा है और वही जन्मलाभ की पूरी अवधि है। यथा : राम बाम दिसि सोहति रंमारूप गुन खानि। देखि मातु सब हरखीं जन्म सुफल निज जानि।

दो. जेहि चाहत नर नारि सब, अति आरत एहि भाँति।
जिमि चातक चातकि तृषित, बृष्टि सरद रितु स्वाति॥५२॥

अर्थ : जिसे सभी स्त्री पुरुष अतिआर्त होकर इस तरह चाहते हैं जैसे प्यासे चातक और चातकी शरद ऋतु के स्वाती की वर्षा को चाहते हैं।

व्याख्या : जैसे महाराज को सब नगर का वृत्तान्त दूतों द्वारा मालूम रहता है उसी भाँति महारानी कौसल्या को भी दूतियों द्वारा सब नगर का वृत्तान्त मालूम है। वे जानती हैं कि प्रजावर्ग भी रामजी के तिलक के लिए आर्त है। अतः कहती हैं कि तुम्हारा तिलक मेरे लिए तो जन्मलाभ की अवधि है ही पर सारी प्रजा : नरनारी सब पपीहा की तरह शरद ऋतु के स्वाती की वर्षा का बाट जोह रहे हैं। स्वाती के बूँद के लिए ही पपीहा तरसता है। बारह महीने से उसी के लिए रट लगाये रहता है। यहाँ तो बारह वर्ष से प्रजा उसी लग्न की प्रतीक्षा कर रही है जिसमें तिलक होनेवाला है।

तात जाउँ बलि बेगि नहाहू। जो मन भाव मधुर कछु खाहू॥
पितु समीप तब जायेहु भैया। भइ बड़ि बार जाइ बलि मैया॥१॥

अर्थ : बेटा ! मैं बलैया लेती हूँ। जल्दी से नहा डालो। जो मनमें भावे सो मिठाई थोड़ी सी खालो तब पिता के पास जाना। बहुत देर हो गयी है। माँ बलैया लेती है।

व्याख्या : तुम्हें अभिषेक के लिए जाना है। कल से संयम में हो इसलिए जल्दी से नहाकर कुछ मीठा खालो। अभिषेक में बहुत देर लगेगी कब तक भूखे रहोगे। यदि संयम में हो तो अन्न न खाओ। मीठा खाने में तो कोई दोष नहीं है। अतः कलेवा करने के बाद पिता के पास जाना। दिन चढ़ आया। अभीतक तुमने कुछ खाया नहीं। इतना कहने पर भी अभिरुचि न देखकर कहती हैं कि मैं बलैया जाती हूँ। कुछ खा लो।

मातु बचन सुनि अति अनुकूला। जनु सनेह सुरतरु के फूला॥
सुख मकरंद भरे श्रियमूला। निरखि राम मनु भँवरु न भूला॥२॥

अर्थ : माता के अति अनुकूल वचन सुन करके जो कि स्नेहरूपी कल्पवृक्ष के फूल की भाँति सुख रूपी मकरन्द से भरे हुए और शोभा के मूल थे; रामजी का मन जो कि भ्रमर सा है देखते हुए भी नहीं भूला।

व्याख्या : भौंरा पुष्परस : मकरन्द का रसिक है। वह उसके सुगन्ध से आकृष्ट होकर उसके पास पहुँच जाता है और रस लेने में मुग्ध हो जाता है। ऐसा ही रामजी का मन है। यह प्रेम का बड़ा रसिक है। जहाँ प्रेम देखता है वहाँ रस के आस्वादन के लिए पहुँच जाता है। यथा : मुनि मानस पंकज भृंग भजे और उस रसास्वादन में अपने को भूल जाता है। पर यहाँ तो माता के वचन ऐसे अनुकूल थे मानों वे स्नेहरूपी कल्पवृक्ष के फूल हैं। सुखरूपी मकरन्द से भरे हुए हैं और शोभा के मूल हैं। उसे देखते हुए भी वही मकरन्द रसिक रामजी का मन आज अपने को भूलता नहीं है। उसे कर्तव्य विस्मृति नहीं हो रही है।

भावार्थ यह : प्रभु भाव ग्राहक अति कृपाल सुप्रेम ते सुख मानहीं और माता का वचन दिव्य प्रेम से भरा हुआ है। उस प्रेम को देखते हुए भी आज उस ओर आकृष्ट नहीं हो रहे हैं। किसी भाँति कर्त्तव्य पथ से विचलित नहीं होना चाहते।

धरम धुरीन धरम गति जानी। कहउ मातु सन अति मृदु बानी॥
पिता दीन्ह मोहि कानन राजू। जहँ सब भाँति मोर बड़ काजू॥३॥

अर्थ : धर्मधुरन्धर रामजीने धर्म की गति को जानकर माता से अति कोमल वाणी में कहा कि पिताजी ने मुझे वन का राज्य दिया है और वहाँ सभी तरह से मेरी बड़ी आवश्यकता है।

व्याख्या : सरकार धर्मधुरन्धर हैं। धर्म का चक्र इन्हीं के आधार पर फिरता

है। जानते हैं कि धर्मस्य सूक्ष्मा गतिः। पिता की आज्ञा मानना सब धर्मों में श्रेष्ठ है। परन्तु माँ इस प्रकार के प्रेम के शब्द बोल रही है। इसके उत्तर में वज्राघात जैसी बात कैसे कहूँ। अतः उसी बात को जितने कोमल शब्दों में कहा जा सकता था उतने कोमल शब्दों में कहा।

पिताजी ने मुझे वन का राज्य दे दिया। वन की व्यवस्था बहुत बिगड़ी हुई है। वहाँ बिना मेरे गये काम बन नहीं सकता। इस भाँति पिता के सत्य की तथा सद्भावना की रक्षा की। यही कथन का पाण्डित्य है कि जो कुछ सरकार ने कहा वह सत्य, प्रिय और हित था।

आयसु देहि मुदित मन माता। जेहि मुद मंगल कानन जाता ॥
जनि सनेह बस डरपसि भोरे। आनँदु अंब अनुग्रह तोरे ॥४॥

अर्थ : माँ तू प्रसन्न मन से आज्ञा दे जिससे वन जाते हुए मुझे आनन्द मङ्गल हो। प्रेमवश होकर भूलकर भी मत भयभीत हो। क्योंकि तेरे अनुग्रह से ही सब आनन्द होगा।

व्याख्या : सरकार कहते हैं कि पिताजी की आज्ञा हो चुकी पर प्रसन्न मन से नहीं हुई। अतः तू प्रसन्न होकर आज्ञा दे। यदि पिताजी की भाँति तू भी दुःखी होकर आज्ञा देगी तो मुझे वन यात्रा में आनन्दमङ्गल कैसे होगा ?

वन के दुःख को दृष्टि में रखकर भय से तू आज्ञा देने में विषण्ण मत हो। क्योंकि आनन्द का निवास तो माता के अनुग्रह में हैं। तेरा अनुग्रह यदि बना रहा तो रन में वन में मेरे लिए सर्वत्र ही आनन्द है।

दो. बरष चारि दस बिपिन बसि, करि पितु बचन प्रमान।
आइ पाय पुनि देखिहौं, मन जनि करसि मलान ॥५३॥

अर्थ : चौदह वर्ष वन में रहकर और पिता के वचन को प्रमाण करके लौटकर फिर चरणों का दर्शन करूँगा। तू मन को मलिन मत कर।

व्याख्या : अब वनवास की अवधि कहते हैं। चौदह वर्ष सुनने में बड़ा कठोर प्रतीत होगा। अतः उसे खण्ड करके कहते हैं। उसमें चार पहिले कहकर पीछे दश कहते हैं। पिता का वचन अप्रमाण न हो इसलिए वन में बसेंगे। कुछ राज्य न मिलने से नाराज होकर नहीं। बस अवधि पूरी होते ही लौटकर चरणों का दर्शन करूँगा। माता के मुखपर म्लानता की रेखा देखकर कहते हैं तू मन को म्लान मत कर।

बचन बिनीत मधुर रघुबर के। सर सम लगे मातु उर करके ॥
सहमि सूखि सुनि सीतलि बानी। जिमि जवास परे पावस पानी ॥१॥

अर्थ : रघुवर के विनययुक्त और मीठे वचन माँ को वाण जैसे लगे। कलेजा

वेध दिया। शीतल वाणी सुनकर सहमकर सूख गयो। जैसे जवासे पर बरसात का पानी पड़ा हो।

व्याख्या : इतने मधुर शब्दों में और विनीत भाव से कही हुई बात : पिता दीन्ह मोहि कानन राजू ''बरष चारिदस बिपिन बसि। माँ है : उसे वाण से लगे। कलेजा बिंध गया। जिसे वाण लगता है वह पृथ्वी पर गिर जाता है। माँ गिरी तो नहीं पर सहमकर सूख गयी। इसलिए कवि ने दूसरी उपमा दी। पावस का पानी बड़ा शीतल होता है। संसार को हरा भरा कर देता है। पर उसी शीतल जल से जवासा झुलस जाता है। उसके पत्ते गिर जाते हैं। वह बिल्कुल सूख जाता है। इसी भाँति कौसल्याम्बा भी रामजी की शीतल वाणी से सूख गयी : यहाँ विषमालङ्कार है।

कहि न जाइ कछु हृदय विषादू। मनहुँ मृगी सुनि केहरि नादू॥
नयन सजल तन थर थर काँपी। माँजहि खाइ मीन जनु माँपी॥२॥

अर्थ : हृदय में ऐसा विषाद हुआ जो कहा नहीं जा सकता। जैसे मृगी को सिंहनाद सुनने पर होता है। आँखों में जल भर आया। शरीर थर थर काँपने लगा। जैसे माँझा खाकर मछली विकल हो।

व्याख्या : माता का धैर्य एकदम छूट गया। जैसे सिंह का गर्जन सुनकर मृगी का धैर्य छूट जाता है। वह चौकड़ी भूल जाती है। हृदय में जो विषाद हुआ उसे कहा नहीं जा सकता। आँखों में जल आगया और थर थर काँपने लगी और ऐसी विकल हुई जैसे मछली ने माँजा खा लिया हो। पहिले पानी बरसने से जो गाज नदी में उत्पन्न होता है उसे खाकर मछली वड़ी विकल हो जाती हैं। इन तीन अर्धालियों से मनसा वाचा कर्मणा विषाद कहा।

धरि धीरजु सुत बदनु निहारी। गदगद बचन कहति महतारी॥
तात पितहि तुम्ह प्रानपिआरे। देखि मुदित नित चरित तुम्हारे॥३॥

अर्थ : धैर्य धरके बेटे का मुख देखकर गद्गद वाणी से माता कहने लगी : बेटा! तुम तो पिता को प्राण के समान प्यारे थे। वे नित्य तुम्हारे चरित्रों को देखकर प्रसन्न होते थे।

व्याख्या : थोड़ी देरतक यह विकलता रही। फिर माता ने धैर्य धारण किया और पुत्र का मुख देखा। माता ऐसी स्नेहमयी है कि पुत्र का मुख देखकर तब कुछ कहती है। आते ही : सादर सुंदरबदनु निहारी। बोली मधुर बचन महतारी। अव फिर बोलना है तो फिर पुत्र मुखावलोकन करता है। पर इस बार मुख की सुन्दरता देखने का भाव नहीं है। इस बार देखती है कि इन पर पिता की आज्ञा का क्या प्रभाव पड़ा? इसलिए सादर नहीं कहते। गला रुँधा हुआ है फिर भी बोलीं।

बात क्या है? घर से वह बेटा निकाला जाता है जो अप्रिय हो। महादुश्चरित्र

हो। तुम तो पिता को प्राण समान प्यारे हो। यथा : सब सुत प्रिय मोहि प्रान कि नाईं। राम देत नहि बनै गोसाईं। और तुम्हारे चरित्र देख देखकर वे सदा प्रसन्न होते थे। यथा : आयसु माँगि करहिं पुर काजा। देखि चरित हरखै मन राजा। अतः महान् आश्चर्य है। हुआ क्या ?

राजु देन कहुँ सुभ दिन साधा। कहेउ जान बन केहि अपराधा ॥
तात सुनावहु मोहि निदानू। को दिनकर कुल भयउ कृसानू ॥४॥

अर्थ : राज्य देने के लिए शुभ दिन निश्चय किया। वन जाने को किस अपराध पर कहा ? बेटा ! मुझे इसका आदि कारण बतलाओ। सूर्यकुल के लिए आग कौन हुआ ?

व्याख्या : तुम्हारे ऊपर कल तक इतने प्रसन्न थे कि तुम्हें राज्य देने के लिए शुभ दिन ठीक किया था। रातभर में ही क्या हो गया कि आज वन जाने को कह रहे हैं। यह तो तभी सम्भव है जब तुमसे कोई भारी अपराध हुआ हो। छोटे अपराध में भी इतना बड़ा दण्ड नहीं दिया जाता। अतः बतलाओ कि वह कौन सा अपराध तुमसे हुआ ? पूछने को तो पूछा पर वह जानती है। पक्का विश्वास है कि रामजी से अपराध हो नहीं सकता। अतः यह प्रश्न करती है कि सूर्यकुल के लिए आग कौन हुआ ? भाव यह कि महाराज अपना बस चलते तुम्हें वन दे नहीं सकते। कोई ऐसा हो असामञ्जस्य आ पड़ा है जिसमें उन्हें ऐसा करना पड़ा। जिसके कारण ऐसा करना पड़ा वह सूर्यवंश के लिए आग हो गया। इस आघात से वंश का वंश नष्ट हो जायगा। माँ कौसल्या उसका नाम जानना चाहती हैं।

दो. निरखि राम रुख सचिव सुत, कारनु कहेउ बुझाइ।
सुनि प्रसंगु रहि मूक जिमि, दसा बरनि नहि जाइ ॥५४॥

अर्थ : रामजी का रुख देखकर मन्त्रीपुत्र ने सब कारण समझाकर कह दिया। प्रसंग सुनकर कौसल्याजी गूँगे की भाँति चुप रह गयीं। उनकी दशा वर्णन नहीं की जा सकती।

व्याख्या : माँ की करतूत रामजी अपने मुख से नहीं कहना चाहते। मन्त्री के पुत्र साथ थे। उन्होंने रामजी का रुख पाकर आद्योपान्त सब कारण समझाकर कह दिया :

देवासुर संग्राम में महाराज के संग।
गई कैकेयी रानिहू जहाँ मच्यौ रन रंग ॥१॥
रिपु के प्रबल प्रहार ते मूर्छि परयौ जब राय।
तब रथ हाक्यौ कैकेयी नृप को लिये बँचाय ॥२॥
ह्वै प्रसन्न माँगन कह्यौ महाराज वर दोय।
कह्यौ कैकेयी माँगिहौ जब मोहि अवसर होय ॥३॥

आज राति को कैकेयी माँग्यो सो वरदान।
भरत राज अरु राम वन चौदह वरिस प्रमान ॥४॥
धर्मपाश से बँध्यो नृप नाहि कह सकत नाहि।
कहा कहौं भूपति विपति समुझहिं इतनहि माँहि ॥५॥

यह सब सुनकर माँ कौसल्याजी ठक रह गयीं। बोलने के लिए शब्द न मिले। जैसा गूँगा कहना चाहता हो पर कह नहीं सकता। आश्चर्य, असामञ्जस्य, शोक, धर्म सङ्कटादि अनेक भावों का जमघट हृदय में उदग हो गया। अतः कवि कहते हैं : दसा बरनि नहिं जाय।

राखि न सकइ न कहि सक जाहू। दुहूँ भाँति उर दारुन दाहू ॥
लिखत सुधाकर गा लिखि राहू। बिधि गति बाम सदा सब काहू ॥१॥

अर्थ : न रख सकती है न जाने को कह सकती है। क्योंकि दोनों तरह से हृदय में दारुण दाह है। चन्द्रमा लिखने चले और राहु लिख बैठे। ब्रह्मा की गति सदा सब के लिए टेढ़ी है।

व्याख्या : महारानी कौसल्या माता होने के कारण रख सकती है। पितुर्दशगुणा माता गौरवेणातिरिच्यते। पिता से माता दसगुना बड़ी है। वह यदि आज्ञा दे कि तुम घर रहो वन न जाओ तो धर्मधुरन्धर रामचन्द्र को मानना ही पड़ेगा। पर महारानी कौसल्या ऐसा नहीं कर सकतीं। पति के धर्म की रक्षा करना ही पत्नी का कर्त्तव्य है। अतः सामर्थ्य रहते भी रामजी को रख नहीं सकती और जाने को भी नहीं कह सकती। पुत्र के वियोग से जो दाह होगा वह सर्वथा असह्य है। धर्म त्याग में भी वैसा ही दाह है और दो ही रास्ते हैं। या जाने को कहें या घर रक्खें। कुछ सूझता नहीं कि क्या करें। अतः मूक : गूँगे की भाँति चुप रह गयीं।

नवग्रह पूजा में राहु की मूर्ति सूर्पाकार बनाते हैं और चन्द्रमा की मूर्ति द्वितीया के चन्द्र के आकार को बनाते हैं। कोई चन्द्रमा बनाने चला स्याही अधिक टपक पड़ी तो द्वितीया के चन्द्र का पेटा भर गया। सूर्पाकार हो गया एवम् राहु लिख गया। वही दशा यहाँ हुई। देने चले राज्य सो बीच में कैकेयी का वरदान टपक पड़ा राज्य का वन बन गया। ठीक उलटा हो गया। राहु चन्द्र का ग्रास करता है। सो वनगमनरूपी राहु ने अभिषेकरूपी चन्द्र का ग्रास कर लिया।

धरम सनेह उभय मति घेरी। भइ गति साँप छुछुंदरि केरी ॥
राखौं सुतहि करौं अनुरोधू। धरमु जाइ अरु बंधु बिरोधू ॥२॥

अर्थ : धर्म और स्नेह दोनों ने वुद्धि को घेर लिया। साँप छछूँदर की सी गति हो गयी। यदि अनुरोध करके बेटे को रोक लूँ तो धर्म भी जाता है और बन्धु विरोध भी खड़ा होता है।

व्याख्या : न तो धर्म छोड़ते बनता है और न स्नेह ही छोड़ते बनता है।

सो यहाँ कौसल्याजी की साँप छछूँदर सी गति हो गयो। भूखे साँप ने छछूँदर पकड़ा और उसे निगलने लगा। तब उसे छछूँदर की उत्कट दुर्गन्ध का बोध हुआ। केवड़े के वन में रहनेवाले सर्प को छछूँदर की दुर्गन्धि असह्य हो गयी। वह उसे उगलना चाहता है। पर इधर भूख भी जोरों से लगी हुई है। इसलिए उगला भी नहीं जाता। इसी भाँति महारानी से न तो धर्म छोड़ते बनता है और न ग्रहण करने में ही समर्थ हो रही हैं।

कहौं जान बन तौ बड़ि हानी। संकट सोच बिबस भइ रानी ॥
बहुरि समुझि तिय धरमु सयानी। रामु भरतु दोउ सुत सम जानी ॥३॥

अर्थ : यदि वन जाने को कहती हूँ तो भी बड़ो हानि है। इस भाँति संकट और सोच के विवश महारानीजी हो गयी। फिर सयानी स्त्री धर्म को समझकर तथा राम और भरत दोनों पुत्रों को समान जानकर।

व्याख्या : वन जाने की आज्ञा देने में भी बड़ी हानि दिखाई पड़ रही है। महाराज का अगाध प्रेम रामजी पर है। उनके वन जाने में स्वयं महाराज के प्राण संकट में पड़ जायँगे। एक ओर धर्म संकट दूसरी ओर पुत्र का सोच और सौभाग्य का सोच।

परन्तु महारानी कौसल्या सयानी हैं। पलड़ा धर्म की ही ओर झुका है। उन्होंने स्त्री धर्म का स्मरण किया। मेरे लिए राम और भरत बराबर हैं। क्योंकि एक स्त्री के पुत्रवती होने से शेष सब सपत्नियाँ पुत्रवती हो जाती हैं।

सरल सुभाउ राम महतारी। बोली बचन धीर धरि भारी ॥
तात जाउँ बलि कीन्हेहु नीका। पितु आयसु सब धरम क टीका ॥४॥

अर्थ : रामजी की माँ हैं। स्वभाव सरल है। भारी धीर धारण करके बोलीं। बेटा ! मैं तुम्हारी वलैया लेती हूँ। तुमने अच्छा किया। पिता की आज्ञा सब धर्मों की टीका है।

व्याख्या : रामजी सरल स्वभाव के हैं। यथा : सुमुख सुलोचन सरल सुभाऊ। उनकी माँ का भी स्वभाव वैसा ही सरल है। पहिले : धरि धीरजु सुत बदनु निहारी। गदगद बचन कहति महतारी। इस बार वन जाने की आज्ञा देनी है। अतः भारी धैर्य धारण किया। न तो बेटे का मुख देखा और न कण्ठ ही गद्गद हुआ और बोलीं।

यह पिता की आज्ञा मानने लायक नहीं थी। तुम कह सकते थे कि आपने मुझको भी राज्य देने का वचन दिया है। सो न करके आज्ञा मान ली। यह अच्छा किया। पिता की आज्ञा धर्मों की टीका है। तुमने राज्य का टीका छोड़कर धर्म का टीका स्वीकार किया। जीविते वाक्यकरणात् क्षयाहे भूरिभोजनात्। गयायां पिण्डदानैश्च त्रिभिः पुत्रस्य पुत्रता।

दो. राजु देन कहि[1] दीन्ह बनु, मोहि न सो दुख लेसु ।
तुम्ह बिनु भरतहि भूपतहि, प्रजहि प्रचंड कलेसु ॥५५॥

अर्थ : राज्य देने को कहकर वन दे दिया इसका तो मुझे दुःख का लेश नहीं है। तुम्हारे बिना भरत को महाराज को और प्रजा को प्रचण्ड क्लेश होगा।

व्याख्या : राज्य देने को कहकर वन जाने को कहना वन जाने के दुःख को तीव्रतम करना है। सो कैकेयी के कारण से कर रहे हैं। इस बात का दुःख मुझे होना चाहिए। पर मुझे इस दुःख का लेश भी नहीं है। क्योंकि मुझे सौतियाडाह नहीं है। मुझे दुःख इस बात का है कि तुम्हारा वियोग भरत को महाराज को तथा प्रजावर्ग को असह्य होगा। मुझे इनका दुःख स्मरण करके अपना दुःख कुछ जँचता नहीं।

क्या हृदय है ! कैसा प्रचण्ड त्याग है ! माता का सन्देह भरत पर जाता ही नहीं। वे भरत को ठीक जानती हैं। इसीलिए पहिले उन्हीं का नाम लेती हैं।

जौं केवल पितु आयसु ताता । तौ जनि जाहु जानि बड़ि माता ॥
जौं पितु मातु कहेउ बन जाना । तौ कानन सत अवध समाना ॥१॥

अर्थ : बेटा ! यदि केवल पिता की ही आज्ञा हो तो माता को बड़ी जानकर मत जाओ। यदि माता पिता दोनों ने वन जाने को कहा हो तो वन सौ अयोध्या के समान है।

व्याख्या : यहाँ तो धर्मशास्त्र से निर्णय हो रहा है। पितुर्दशगुणा माता गौरवेणातिरिच्यते। मातुर्दशगुणा मान्या विमाता धर्मभीरुणा ॥ धर्मशास्त्र माता का गौरव पिता से दशगुण अधिक बतलाता है। पर विमाता तो माता से भी दशगुण अधिक मान्य है। अतः कौसल्याम्बा कहती हैं कि यदि केवल पिता ने ही वन जाने की आज्ञा दी है तो मैं रोकती हूँ : वन मत जाओ और यदि माता पिता दोनों ने कह दिया हो तो धर्म का पलरा भारी वन जाने की ओर हो जाता है। धर्मो रक्षति रक्षितः। धर्म तुम्हारी रक्षा करेगा। वन सौ अयोध्या के समान सुखदायी हो जायगा। यथा : राम लखन सीता सहित सोहत परन निकेत। जिमि वासव बस अमर पुर सची जयंत समेत।

पितु बनदेव मातु बनदेवी । खग मृग चरन सरोरुह सेवी ॥
अंतहुँ उचित नृपहि बनबासू । बय बिलोकि हिय होइ हरासू ॥२॥

अर्थ : वन देव पिता हैं और वनदेवी माता हैं और पशु पक्षी चरण कमल के सेवक हैं। अन्त में भी तो राजा को वनवास ही उचित है। अवस्था देखकर जी दहलता है।

---

१. आक्षेप : तृतीय अलङ्कार।

व्याख्या : धर्म पालन के प्रभाव से वन की अधिष्ठात्री देवी और देव माता पिता के समान तुम्हारी रक्षा करेंगे। कोई भय तुम्हारे ऊपर न आने पावेगा। वन के पशु पक्षी भी तुम्हारे चरणों की सेवा करेंगे।

राजाओं के लिए वनवास कोई दुष्कर बात नहीं है। अन्त में तो राजाओं के लिए वनवास विहित ही है। यथा : चौथेपन जाइहिं नृप कानन। परन्तु तुम्हारी अवस्था वन जाने की नहीं है। शैशवेऽभ्यस्तविद्यानाम् यौवने विषयैषिणाम्। वार्धक्ये मुनिवृत्तीनां योगेनान्ते तनुत्यजाम्। इस कुल का नियम है कि बचपन में विद्या पढ़ते हैं। यौवन में विषय का सेवन करते हैं। वृद्धावस्था में मुनिवृत्ति ग्रहण करते हैं और अन्त में योग से शरीर छोड़ते हैं। सो तुम्हारी उम्र देखकर कि यही खेलने खाने का समय है जी दहलता है। यथा : कैकयनंदनि मंदमति कठिन कुटिलपन कीन्ह। जेहि रघुनंदन जानकिहि सुख अवसर दुख दीन्ह।

बड़भागी बनु अवध अभागी। जो रघुबंस तिलकु तुम्ह त्यागी ॥
जौं सुत कहौं संग मोहि लेहू। तुम्हरे हृदय होइ संदेहू ॥३॥

अर्थ : बड़भागी वन है। अवध अभागी है। हे रघुवंशतिलक ! जिसे तुम त्याग रहे हो यदि मैं कहूँ कि मुझे साथ ले लो तो बेटा ! तुम्हारे मन में सन्देह होगा।

व्याख्या : जब से तुम्हारा जन्म हुआ तब से अवध बड़भागी हुआ। जा दिन तें हरि गर्भहिं आए। सकल लोक सुख संपति छाए। अवधराजु सुरराज सिहाई इत्यादि : अब तुम इसका परित्याग कर रहे हो। यदि तुम न त्यागना चाहो तो तुम्हें कौन हटा सकता है। तुम्हारे त्यागने से यह अभागी हो जायगा। यथा : लागति अवध भयावनि भारी। मानहु कालराति अँधियारी। बड़भाग और अभाग तो तुम्हारे ग्रहण और त्यागने में है।

इस दु:सह दाह मिटने का एक रास्ता और भी है और वह यह है कि मैं तुम्हारे साथ चलूँ। पर यह मैं कह भी नहीं सकती। मैं तुम्हारे स्वभाव को जानती हूँ। तुम्हें तुरन्त सन्देह होगा कि इनके मन में सवति आरेसु है तभी न इनको भरत का राज्य नहीं रुचा संग चलने को कहती है।

पूत परम प्रिय तुम्ह सबही के। प्रान प्रान के जीवन जी के ॥
ते तुम्ह कहहु मातु बन जाऊँ। मैं सुनि बचन बैठि पछताऊँ ॥४॥

अर्थ : हे पुत्र ! तुम सभी को परम प्रिय हो। प्राण के प्राण हो। जीवन के जीवन हो। सो तुम कहते हो कि माँ ! मैं वन जाऊँ और मैं तुम्हारा वचन सुनकर बैठकर पछताऊँ।

व्याख्या : तुम मेरे पुत्र हो। तुम पर मेरा प्यार होना स्वाभाविक है। पर तुम तो प्राणी मात्र को परम प्रिय हो। यथा : अस को जीव जंतु जग मांही। जेहि रघुनाथ प्रान प्रिय नांही। तथा : प्रान प्रान के जीव के जीव सुख के सुख राम। श्रोत्रस्य

श्रोत्रं मनसो मनो यद् वाचो ह वाचं स हि प्राणस्य प्राणः। यह कौसल्याजी का अलौकिक विवेक है।

सो तुमने कहा कि माँ मैं वन जाऊँ और सुनकर माँ जीती रह गयी। इससे सिद्ध है कि मेरा स्नेह झूठा है। मेरा पछताना व्यर्थ है। तुम्हारे विरह में मैं नहीं मरूँगी।

दो. एह बिचारि नहिं करउँ हठ, झूठ सनेहु बढ़ाइ।
मानि मातु कर नात बलि, सुरति बिसरि जनि जाइ ॥५६॥

अर्थ : यह सोचकर और झूठे स्नेह को बढ़ाकर मैं हठ नहीं करती। मैं बलैया लेती हूँ। तुम माता का नाता मानकर मुझे भूल न जाना।

व्याख्या : मैंने विचार लिया कि जब वनगमन सुनकर मैं नहीं मरी तो मैं नहीं मरूँगी। मेरा स्नेह झूठा है। उस झूठे स्नेह को बढ़ाकर साथ जाने का हठ मैं क्यों करूँ। स्नेह झूठा सही पर माता का नाता सच्चा है। उस पर तुम ख्याल रखना। मैं माता होने योग्य नहीं फिर भी नाता समझकर मुझे भूल न जाना।

देव पितर सब तुमहि गोसाईं। राखहुँ पलक नयन की नाईं॥
अवधि अंबु प्रिय परिजन मीना। तुम्ह करुनाकर धरमधुरीना ॥१

अर्थ : सब देवता पितृगण तथा ईश्वर तुम्हारी रक्षा पलक नयन की भाँति करें। वनवास की अवधि जल है। प्रिय कुटुम्बी लोग मछली हैं। और तुम करुणाकर धर्मधुरन्धर हो।

व्याख्या : गोसाईं शब्द ईश्वर : विष्णु भगवान् का वाचक है। यथा : समरथ के नहिं दोष गोसाईं। रवि पावक सुरसरि की नाईं। आज भी बोलते हैं कि गोसइयाँ की जैसी मर्जी। माँ आशीर्वाद देती हैं। देवगण पितृगण अदृश्य रूप से सबकी रक्षा करते हैं। अतः उनकी पूजा संसार में प्रचलित है। यथा : इष्टान् भोगान् हि वो देवा दास्यन्ते यज्ञभाविताः। और विष्णु भगवान् जगत् के पालक हैं। अतः सबसे माँ प्रार्थना करती है कि जैसे पलक नयनों की रक्षा करती हैं उसी भाँति आप लोग रामचन्द्र की रक्षा करना।

ऐसा आशीर्वाद देकर तब रामजी से कहती हैं कि तुम्हारे वनवास की अवधि ही इस समय जल का काम करेगी। उसी के भरोसे मछली की भाँति प्रिय परिजन यथाकथञ्चित् प्राण धारण करेंगे। ज्यौं ज्यौं अवधि बीतती जायगी त्यौं त्यौं तुमसे मिलने के लिए इनकी आकुलता बढ़ेगी। जल के समाप्त होते ही सब मछलियाँ प्राण त्याग करेंगी। अतः विषम समस्या उपस्थित है। अवधि के भीतर तुम आ नहीं सकते। यद्यपि तुम धर्मधुरीण हो। अवधि के भीतर आने के लिए तुमसे आशा रखना व्यर्थ है तथापि करुणाकर हो। अतः

अस बिचारि सोइ करहु उपाई। सबहि जियत जेहि भेंटहु आई॥
जाहु सुखेन बनहि बलि जाऊँ। करि अनाथ जन परिजन गाऊँ ॥२॥

अर्थ : ऐसा विचार करके वही उपाय करना जिसमें जीते जी तुम आकर मिल सको। मैं बलैया लेती हूँ। तुम प्रिय कुटुम्बियों और गाँव को अनाथ करके सुख से वन जाओ।

व्याख्या : ऐसा उपाय करना जिसमें तुम्हारे आने तक सब जीते रहें : अतः सरकार ने वैसा ही उपाय किया। अवधि बीतने के एकदिन पहले ही अपने आगमन का समाचार हनुमानजी द्वारा अवध भेज दिया।

यहाँ तक माँ अपने को रोके रही। अब हृदय का उद्‌गार नहीं रुक सका। अतः आक्षेप के साथ आज्ञा दे रही हैं। तुम प्रसन्न मन से मेरे पास आये और मुझसे मुदित मन होकर आज्ञा देने को कहा सो मैं आज्ञा दे रही हूँ। प्रिय परिजन और गाँव को अनाथ करके तुम सुख से वन जाओ। भाव यह कि तुम्हारे जाने से प्रिय परिजन और राज्य सब अनाथ हो जायगा। कौन तुम्हारा विरह उतने दिनों तक सह सकेगा कौन नहीं सह सकेगा। ऐसे विषम संकटावस्था में मैं मुदित मन से आज्ञा कैसे दे सकती हूँ। पर तुम कहते हो उसे टाल भी नहीं सकती। अतः कहे देती हूँ कि सुख पूर्वक वन जाओ।

सब कर आजु सुकृत फल बीता। भयउ करालु काल बिपरीता ॥
बहु बिधि बिलपि चरन लपटानी। परम अभागिनि आपुहि जानी ॥३॥

अर्थ : आज सबके पुण्यों का फल बीत गया। कराल काल विपरीत हो गया। बहुत भाँति विलाप करके चरणों में लिपट गयी। अपने को परम अभागिन माना।

व्याख्या : सरकार का दर्शन सब सुकृतों का फल है। यथा : सब साधन कर सुफल सुहावा। लखन राम सिय दरसन पावा। सो दर्शन सबको दुर्लभ हुआ चाहता है। अतः कहती हैं कि सबके पुण्यों का फल आज समाप्त हो गया। सब बिधि सब पुर लोग सुखारी। रामचंद मुख चंदु निहारी। सो सभी का सुख छिन गया। जो काल सबके अनुकूल था आज वह कराल होकर विपरीत हो गया। किसी का सामर्थ्य नहीं है कि उसका अतिक्रमण कर सके। यथा : अंडकटाह अमित लयकारी। काल सदा दुरतिक्रम भारी।

बहुत प्रकार से विलाप किया और अति आर्त होकर अपने को परम अभागिन मानकर चरणों में लिपट गयी। स्त्रियों को दो ही परम प्रिय हैं पति और पुत्र। सो पुत्र का वियोग तो हो ही रहा है और फलस्वरूप पति को भी प्राण संकट है। अतः परम भाग्यवती होने पर भी संसार का चक्र ऐसा है कि उन्होंने अपने को परम अभागिन माना और पुत्र के चरणों में लिपट गयी। मानों क्रिया से दिखला रही हैं कि मैं तुम्हें छोड़ना नहीं चाहती।

दारुन दुसहु दाहु उर ब्यापा। बरनि न जाहिं बिलाप कलापा ॥
राम उठाइ मातु उर लाई। कहि मृदु बचन बहुरि समुझाई ॥४॥

अर्थ : कठिन दुःसह दाह हृदय में व्याप गया। विलाप के विस्तार का वर्णन नहीं किया जा सकता। रामजी ने उठाकर माँ को हृदय से लगा लिया और कोमल वचनों से फिर समझाया।

व्याख्या : पहिले कहा था : दुहू भाँति उर दारुन दाहू। सो एक रास्ते पर आ जाना पड़ा। जाने के लिए कह दिया। अब वियोग तथा उसके परिणाम पर ध्यान गया तो दारुण दुःसह दाह हृदय में व्याप गया। ऐसे समय में माँ जो विलाप कर रही हैं उसे विस्तार से कौन कह सकता है!

माँ व्याकुलता से पृथ्वी पर गिर गयी थी। सो रामजी ने उठाकर सान्त्वना देते हुए मृदुवचन कहकर फिर समझाने लगे। यथा :

अँब राउ अति ही दुखित तिनको करिय सँभार।
सब सनाथ नर नाथ ते तिनही पर सब भार॥
धरि धीरज संकट सहहु सत्य न नृप को जाय।
अवसि प्रथम दिन आइहौं चौदह वर्ष विताय॥
मेरो तो जीवन सफल वनहि गये ते होय।
मेरे हित तो भूलि कर सोच करै जनि कोय॥
तेरे मन काँचा किये मेरो धर्म नसाय।
धर्म सार संसार यह समुझि देखु जिय माय॥
पिता धर्म मम धर्म अरु अपनो धर्म विचारि।
आयसु दीजै हरखि हिय एहि कुलके अनुहारि॥

दो. समाचार तेहि समय सुनि, सीय उठी अकुलाइ।
जाइ सासु पद कमल जुग, बंदि बैठि सिरु नाइ॥५७॥

अर्थ : उस समय यह समाचार पाकर सीताजी व्याकुल हो उठीं। जाकर सास के दोनों चरणों की वन्दना करके सिर नीचा किये हुए बैठ गयीं।

व्याख्या : सीताजी को पता लगा कि पिता ने सरकार को चौदह वर्ष के लिए वन दिया है। सो माता से विदा लेने आये हैं। सुनते ही आकुल होकर उठ खड़ी हुई कि कहीं उधर से उधर ही वन न चले जायँ और वहाँ चली गयीं जहाँ कौसल्याजी को रामजी समझा रहे थे। वहाँ चले जाने का अर्थ ही यही है कि मैं भी साथ जाऊँगी। साथ ही मैं भी विदा ले लूँ। अतः सास की वन्दना करके सिर झुकाकर बैठीं। सिर झुकाकर बैठना यहाँ चिन्ता सूचक है।

दीन्हि असीस सासु मृदु बानी। अति सुकुमारि देखि अकुलानी॥
बैठि नमित मुख सोचति सीता। रूप रासि पति प्रेमु पुनीता॥१॥

अर्थ : सास ने कोमल वाणी में आशीर्वाद दिया। अत्यन्त सुकुमारी देखकर आकुल हो उठीं। रूप की राशि और पति के प्रेम से पवित्र सीताजी बैठी हुई सिर झुकाये सोच रही हैं।

व्याख्या : सासु पद कमल जुग बंदि बैठ सिरु नाइ। अतः मृदुबानी से सास ने आशीर्वाद दिया। स्त्रियों में चिरजीवनी होने के आशीर्वाद की प्रथा ही नहीं है। सौभाग्य का ही आशीर्वाद दिया जाता है। सास ने तुरन्त समझ लिया कि इस समय यहाँ चले आने का अर्थ ही यही है कि साथ जाने को तैयार है। सुकुमार तो रामजी भी हैं। पर यह तो अत्यन्त सुकुमारी है। इसका निर्वाह वन में कैसे होगा ? अपने धर्म पर खड़ी है। अतः क्या कहकर रोकें ? ऐसा सोचकर सास व्याकुल हो उठीं।

इधर सीताजी रूपराशि हैं : परम विरोधिनी सूर्पणखा कहेगी : रूप रासि बिधि नारि सवारी। रति सतकोटि तासु बलिहारी। कदापि वन के योग्य नहीं। परन्तु पतिप्रेम से पुनीत है। स्त्रियों को पवित्र करनेवाला पतिप्रेम ही है। यथा : एकइ धर्म एक ब्रत नेमा। काय बचन मन पति पद प्रेमा। यह पति का साथ छोड़ेगी नहीं। सोच से सिर झुकाये सोच रही है। चित्त संशय में पड़ा हुआ है।

चलनु चहत बन जीवननाथू। केहि सुकृती सन होइहि साथू॥
की तनु प्रान कि केवल प्राना। बिधि करतबु कछु जाइ न जाना॥२॥

अर्थ : प्राणनाथ वन को जाना चाहते हैं। देखें : किस पुण्यात्मा से इनका साथ होगा। शरीर और प्राण दोनों से साथ होगा कि केवल प्राण से ही होगा। विधाता को क्या करना है यह समझ में नहीं आता।

व्याख्या : जीवननाथ शब्द के प्रयोग से वियोग का असह्य होना द्योतित किया। सो प्राणनाथ वन जाना चाहते हैं। इनका साथ होना सुकृत का फल है। यथा : नाहि त हम कहु सुनहु सखि इन्हकर दरसन दूरि। यह संघट तब होइ जब पुन्य पुराकृत भूरि। सो प्राण में पाप का बेध नहीं होता। अतः इसके सुकृती होने में तो सन्देह नहीं है। पर शरीर साथ में जायगा कि नहीं इसी में संशय है। विधाता ही कर्म शुभाशुभ के फल देनेवाले हैं। अतः भोगायतन शरीर उनके अधीन है और वे क्या करेंगे यह कौन कह सकता है !

चारु चरन[1] नख लेखत धरनी। नूपुर मुखर मधुर कबि बरनी॥
मनहुँ प्रेम बस बिनती करहीं। हमहिं सीयपद जनि परिहरहीं॥३॥

अर्थ : सुन्दर चरण के नख से पृथ्वी पर लिख रही हैं। नूपुर को कवियों ने मधुर मुखर : मीठा बकवादी कहकर वर्णन किया है। मानो प्रेमवश विनती कर रहे हैं कि हमें सीताजी के चरण त्याग न करें।

व्याख्या : सीताजी के सोचने के समय की शोभा कहते हैं। स्त्रियों का स्वभाव है कि सोचने के समय पादाङ्गुष्ठ नख से पृथ्वी पर रेखा बनाने लगती हैं। यथा : महि नख लिखन लगीं सब सोचन : उसी के अनुसार सीताजी भी सुन्दर

---

१. हेतुसिद्धास्पदा : उत्प्रेक्षा अलङ्कार।

चरण नख से पृथ्वी पर लिख रही हैं। नववधू हैं। नूपुर धारण किये हुए हैं। चरण के हिलाने से नूपुर से कुछ शब्द भी हो रहा है। इसलिए कवि उसे मधुर मुखर कह रहे हैं। नहीं तो चलने के समय तो उसमें से ध्वनि होती ही है। यथा : कंकन किंकिनि नूपुर धुनि सुनि।

उसकी उत्प्रेक्षा करते हुए कवि कहते हैं कि मानो वे नूपुर पैर में लग लगकर विनती कर रहे हैं कि हम लोगों का इन चरणों से विछोह न हो। भगवती वन जाने को प्रस्तुत हैं। उस समय नूपुर परित्याग की भी सम्भावना है। अतः पहिले से ही विनती करते हैं कि हमें भी अपने साथ ले चलना। भाव यह कि सीताजी को कौन कहे उनके नूपुर भी वन जाने को प्रस्तुत हैं।

मंजु बिलोचन मोचति बारी। बोलीं देखि राम महतारी॥
तात सुनहु सिय अति सुकुमारी। सास ससुर परिजनहिं पियारी॥४॥

अर्थ : सुन्दर नेत्रों से आँसू बहाते हुए देखकर रामजी की माता बोलीं : बेटा ! सुनो सीता अत्यन्त सुकुमारी हैं और सास ससुर तथा परिजनों की प्यारी हैं।

व्याख्या : उस समय आँसू बहाने का अर्थ यही है कि मुझसे साथ जाने की आज्ञा माँग रही हैं। मैं नारीधर्म को जानती हुई इसे जाने से रोक नहीं सकती : ये पति हैं, ये अपने अधिकार से इसे रोक सकते हैं। अतः सीताजी से कुछ न कहकर रामजी से कहती हैं कि सीता अत्यन्त सुकुमारी हैं। कथमपि वन जाने योग्य नहीं है। सास ससुर परिजन की प्यारी है। तुम्हारा वियोग तो सबको ही होगा। इसके चले जाने से सबका दुःख अत्यन्त बढ़ जायगा।

दो. पिता जनक भूपाल मनि, ससुर भानुकुल भानु।
पति रबिकुल कैरव बिपिन, बिधु गुन रूप निधानु॥५८॥

अर्थ : इसके पिता जनक राजाओं में मणि हैं। ससुर सूर्यकुल के सूर्य हैं और पति सूर्यकुलरूपी कुमुद वन के लिए रूप निधान चन्द्र हैं।

व्याख्या : ऐसे घर की बेटी ऐसे घर आयी और ऐसा गुणवान् पति पाया। यह क्या जाने कि कष्ट सहन किसे कहते हैं। यह तो कथमपि वन जाने योग्य नहीं है। दूसरी बात यह कि इसके वन जाने से लोग क्या कहेंगे ? महाराज जनक की बेटी पैदल वन चली जा रही है। महाराज दशरथ की पुत्रवधू की यह दुर्दशा। रामचन्द्र की धर्मपत्नी होकर इस भाँति कष्ट उठा रही है एवं इसके वनगमन में तीनों का दुर्यश है।

मैं पुनि पुत्रबधू प्रिय पाई। रूप रासि गुन सील सुहाई॥
नयन पुतरि करि प्रीति बढ़ाई। राखेउँ प्रान जानकिहिं लाई॥१॥

अर्थ : मैंने प्रिय पुत्रवधू पायी जो कि रूप की राशि है और सुन्दर गुण

शीलवाली है। आँखों की पुतली बनाकर प्रेम बढ़ाया और अपने प्राणों को जानकी में लगाकर रक्खा।

व्याख्या : सदा चिन्ता रही कि मेरा पुत्र ऐसा है इसके समानशीला वधू कहाँ मिलेगी। सो मिल गयी। पुत्रवधूचित सभी बातें इसमें हैं। रूप को तो राशि ही है और इसमें सुन्दर गुण और शील है। अतः मुझे प्रिय है। आँख की पुतली की भाँति इससे प्रीति बढ़ायी। महाराज की भी ऐसी ही आज्ञा थी। यथा : बधू लरिकिनी पर घर आई। राखेहु पलक नयन की नाईं। सो मैंने इसमें प्रान लगाकर रक्खा है।

कलपबेलि जिमि बहुबिधि लाली। सींचि सनेह सलिल प्रतिपाली ॥
फूलत फलत भयउ बिधि बामा। जानि न जाइ काह परिनामा ॥२॥

अर्थ : कल्पलता की भाँति इसका बहुत भाँति से दुलार किया है और स्नेह के जल से सींचकर इसका पालन किया है। फूलते फलते समय विधाता बायें हो गये। क्या परिणाम होगा जाना नहीं जाता।

व्याख्या : माँ कौसिल्याजी कहती हैं कि मैंने इसे : सीताजी को कल्पवेलि माना कि इससे मेरे सब मनोरथ सिद्ध होंगे। वंशवृद्धि होगी। पुत्र पौत्र होंगे। दूसरे स्थान से लाकर यहाँ लगायी गयी है। अतः सब भाँति से रक्षा करके स्नेह रूपी जल से बराबर सींचती रही कि कहीं सूख न जाय। इस भाँति मैंने इसका पालन किया। जब अयोध्या में आयी बिल्कुल बाल्यावस्था थी। बच्चे प्रेम से ही पालन करने से जीते हैं। सो मैंने उसमें त्रुटि नहीं आने दी। अब बड़ी हुई। फूलने फ़लने का समय आया। बाल बच्चे की आशा हुई तो विधाता बायें हो गये। वनवास का प्रकरण आपड़ा। क्या परिणाम होगा नहीं जाना जाता। यह यह मरेगी कि जीयेगी कौन कह सकता है।

पलँग पीठ तजि गोद हिंडोरा। सिय न दीन्ह पगु अवनि कठोरा ॥
जिअन मूरि जिमि जोगवत रहऊँ। दीप बाति नहिं टारन कहऊँ ॥३॥

अर्थ : पलङ्ग पीढ़ा गोद और हिंडोला छोड़कर सीता ने कठिन पृथ्वी पर कभी पाँव रक्खा नहीं। इसे सञ्जीवनी बूटी की भाँति सावधानी से रक्षा करती चली आयी। दीये की बत्ती को उसकाने : बढ़ाने के लिए कभी नहीं कहा।

व्याख्या : सोते समय पलङ्ग पर भोजन के समय पीढ़े पर चलने के समय गोद में मन बहलाने के लिए पालना पर रहती थी। इसने कठोर भूमि पर आज तक पाँव न रक्खा। सञ्जीवनी बूटी की भाँति अत्यन्त दुर्लभ समझकर बड़ी सावधानी से इसका लालन पालन किया। अथवा बूटी की भाँति जिसमें प्राण बसता हो दिन रात चौकसी के साथ रक्षा की : रामजी की रक्षा महाराज जीवनतरु की भाँति करते थे और सीताजी की रक्षा कौसल्याजी जीवन मूलिका की भाँति करती थीं। हलके से हलका काम इससे कभी नहीं लिया। दिये की बत्ती को आगे खिसकाने

के लिए भी कभी आज्ञा नहीं दी। अर्थात् दासी आदि की अनुपस्थिति में हलके से हलका काम मैं कर लेती थी। पर सीताजी को किसी काम के लिए कभी नहीं कहा।

सोइ सिय चलन चहति बन साथा। आयसु काह होइ रघुनाथा ॥
चंद किरिन रस रसिक चकोरी। रबि रुख नयन सकै किमि जोरी ॥४॥

अर्थ : वही सीता अब साथ में वन जाना चाहती है। हे रघुनाथ! इसके लिए क्या हुकुम देते हो। चन्द्रमा के किरणों के रस की रसिक चकोरी क्या कभी सूर्य की ओर आँख उठाकर देखने में समर्थ हो सकती है।

व्याख्या : ऐसी लाड प्यार से पाली हुई सीता तुम्हारे साथ वन जाने को प्रस्तुत है। अपने धर्म पर खड़ी है। सम्भव असम्भव कुछ नहीं देख रही है। एक तो वन जाने में जो कष्ट होता है उसके सहने में यह सर्वदा अनुपयुक्त है। तिसपर तुम्हारे साथ जाने में तुम्हारी सेवा भी इसे करनी पड़ेगी। दास दासी होते तो फिर भी दूसरी बात थी। तुम रघुकुल के नाथ हो। बात समझ लो। अवसर ऐसा है कि मैं कुछ नहीं कह सकती। तुम्हारी आज्ञा मानना इसका परम धर्म है। अतः तुम इसे उचित आज्ञा प्रदान करो। परन्तु यह ध्यान में रखकर आज्ञा देना कि चकोरी सदा चन्द्रकिरण रसामृत का नेत्रों द्वारा पान किया करती है। उसमें इतना सामर्थ्य ही कहाँ कि सूर्य की ओर निर्निमेष नेत्र से देख भी सके : भाव यह कि सीता आँख से वन को देख न सकेगी।

दो. करि केहरि निसिचर चरहिं, दुष्ट जंतु बन भूरि।
बिष बाटिका कि सोह सुत, सुभग सजीवन मूरि ॥५९॥

अर्थ : वन में बहुत से हाथी सिंह राक्षस आदि दुष्ट जन्तु घूमा करते हैं। बेटा! सुन्दर सञ्जीवनी बूटी की शोभा क्या विषवाटिका में हो सकती है?

व्याख्या : करि केहरि निसिचर ये सब हिंसक और दुष्ट जन्तु निष्कारण हिंसक अर्थात् छोटे से बड़े जीव तक सबके सब दुखदायी हैं। इसलिए वन को विषवाटिका कहा। सीता सदा सुख में पली हुई सुन्दर सञ्जीवनी बूटी है। इसे विषवाटिका में आरोपण करने से ही यह सूख जायगी। अतः इसे वन ले जाने में किसी भाँति शोभा नहीं है।

बन हित कोल किरात किसोरी। रची बिरंचि बिषय सुख भोरी ॥
पाहन कृमि जिमि कठिन सुभाऊ। तिन्हहि कलेसु न कानन काऊ ॥१॥

अर्थ : ब्रह्मदेव ने वन के लिए कोल किरात की लड़कियों को बनाया है। वे विषय सुख जानती ही नहीं। पत्थर के कीड़े के समान उनका स्वभाव होता है। उन्हें वन में कोई कष्ट नहीं।

व्याख्या : यदि कहिये कि वन में कोल किरात की बेटियाँ तथा तपस्वी की

स्त्रियाँ रहती हैं वैसे ही यह भी रहेगी सो यह बात भी ठीक नहीं ! कोल और किरात की बेटियों को ब्रह्मा ने वन में रहने के लिए ही पैदा किया है। वे वन में पैदा हुई हैं। वन की कठिनाइयाँ उन्हें सात्म्य हो गयी हैं। उत्तम शब्द स्पर्श रूप रस गन्ध से उनका परिचय ही नहीं है। वे पत्थर के कीड़े की भाँति हो गयी हैं। पत्थर का कीट पत्थर में रहता है। पत्थर में ही उन्हें जीवनोपयोगी सामग्री मिल जाती है। उस सामग्री से वे ही काम चला सकते हैं। दूसरा कोई चाहने पर भी नहीं चला सकता। इसी भाँति कोल किरात की बेटियों को वन में कोई कष्ट ही नहीं है।

कै तापस तिय कानन जोगू। जिन्ह तप हेतु तजा सब भोगू ॥
सिय बन बसिहि तात केहि भाँती। चित्र लिखित कपि देखि डेराती ॥२॥

अर्थ : या तपस्वी की स्त्रियाँ वन के योग्य हैं। जिन्होंने तप के लिए सब भोग छोड़ दिया है। हे बेटा ! सीता वन में कैसे रहेगी ? यह तो चित्र में लिखे हुए बन्दर को देखकर डर जाती है।

व्याख्या : यदि कहिये कि वन में तपस्वी की स्त्रियाँ तो रहती हैं उनके लिए यह बात नहीं कही जा सकती। वे पूर्व आश्रम में सब सुखों से परिचित हैं। तपस्वी लोग प्रायः स्त्री के सहित वन में बसते हैं। पुत्रेषु भार्या निक्षिप्य वने गच्छेत् सहैव वा। शास्त्र की आज्ञा है कि भार्या को पुत्रों में छोड़ दे या साथ वन ले जाय।

बात ठीक है। पर उन्होंने तो स्वेच्छापूर्वक पुत्रोत्पादन के बाद दूसरा आश्रम ग्रहण किया है। वे तप के लिए सब भोगों का त्याग किये हुए हैं। यथा : बिसरी देह तपहि मन लागा। यहाँ तो पिता का वचन पालन के लिए वनगमन हो रहा है। दूसरे आश्रम ग्रहण का कोई प्रश्न ही नहीं है। सीता का उन तपस्विनियों से कोई समता नहीं है। यह तो चित्र में विकटरूप देखकर डर जाती है। करि केहरि निशिचर को प्रत्यक्ष देखने से तो यह प्राण छोड़ देगी। यह वन में कैसे रहेगी ?

सुरसर सुभग बनज बन चारी। डाबर जोगु कि हंसकुमारी ॥
अस बिचारि जस आयसु होई। मैं सिख देउँ जानकिहि सोई ॥३॥

अर्थ : मानससरोवर के सुन्दर कमल वन में विचरनेवाली हंस की बेटी क्या गड़ही के योग्य है ? ऐसा विचार करके जो आदेश दो मैं तदनुसार जानकीजो को शिक्षा दूँ।

व्याख्या : जहँ तहँ काक उलूक बक मानस सकृत मराल। जिस भाँति ब्रह्मदेव के कोल किरात किशोरी को वन के लिए बनाया है उसी भाँति हंस कुमारी को मानस सर के लिए बनाया। उसके कमल वन में विहार करने का जन्मसिद्ध अधिकार है। वह डावर : गड़ही के योग्य नहीं। उसके योग्य तो काक उलूक बक हैं। सीता राजा जनक की बेटी हंसकुमारी राजभोग पर उसका जन्मसिद्ध अधिकार

है। वह वन के योग्य नहीं है। ऐसा विचार करके तुम जो आदेश दो क्योंकि धर्मपत्नी पर पूरा अधिकार पति का ही होता है। तदनुसार मैं जानकी को शिक्षा दूँ।

जौं सिय भवन रहइ कह अंबा। मोहि कहँ होइ बहुत अवलंबा॥
सुनि रघुबीर मातु प्रिय बानी। सील सनेह सुधा जनु सानी॥४॥

अर्थ : माँ ने कहा कि यदि सीता घर रह जाय तो मुझे बहुत अवलंब रहेगा। रामजी ने माता की शील और प्रेमामृत से सनी प्रिय वाणी सुनकर।

व्याख्या : सीताजी के वनवास में जो दोष थे उन्हें दिखलाकर अब उनके घर रहने के गुणों को दिखलाती हैं। कहती हैं कि यदि सीता घर रह जाय : भाव यह कि इसके रहने का रास्ता तो नहीं मालूम हो रहा है पर यदि रह जाय तो तुम्हारे जाने पर मैं निरावलम्व न हो जाऊँगी। पति घर हैं ही पुत्रवधू भी है केवल पुत्र बाहर है। यही अवलम्बन की बहुतायत है।

रामजी ने माँ की प्रिय वाणी सुनी। शील और स्नेहयुक्त वाणी ही प्रिय होती है। सो माँ की वाणी में शील और स्नेह दोनों का बहुत उत्कर्ष है। अतः अमृत से उपमा दी। शील यथा—आयसु काह होइ रघुनाथा''''''अस बिचारि जस आयसु होई। स्नेह यथा : मो कहँ होइ बहुत अवलंबा।

दो. कहि प्रिय बचन बिबेकमय, कीन्ह मातु परितोषु।
लगे प्रबोधन जानकिहि, प्रगटि बिपिन गुन दोषु॥६०॥

अर्थ : विवेकमय और प्रिय वचन कहकर माता का परितोष किया और जानकीजो को वन के गुण और दोषों को प्रकट करके समझाने लगे।

व्याख्या : सरकार ने कहा कि इनके जाने की कोई आवश्यकता नहीं है। आपका कहना ठीक है। मेरे न रहने की अवस्था में आपकी सेवा का भार फिर किसपर रहेगा? मुझे मुनिव्रत वेष आहार की आज्ञा है। इसमें स्त्री का साथ ठीक भी नहीं। माँ से इतना कहकर सरकार जानकीजी को वन में जाने के दोषों और न जाने के गुणों को समझाकर कहने लगे। माँ के कहने के समय ही सरकार का रुख साथ न ले जाने का था। पर अब तो स्पष्ट शब्दों में कहना प्रारम्भ किया।

मातु समीप कहत सकुचाहीं। बोले समउ समुझि मन माहीं॥
राजकुमारि सिखावनु सुनहू। आनि भाँति जिय जनि कछु गुनहू॥१॥

अर्थ : माँ के सामने बोलने में सङ्कोच करते हैं। पर मनमें समय को समझकर बोले। हे राजकुमारी! शिक्षा सुनो और अपने मनमें कुछ और बात न समझो।

व्याख्या : बारह वर्ष ब्याह हुए हुआ। पर सरकार ऐसे सङ्कोची हैं कि माँ के सामने अभी तक कभी सीताजी से नहीं बोले। आज ऐसा समय आगया कि बिना बोले काम नहीं चलता। माँ चाहती हैं कि रामजी स्वयं सीताजी को समझावें।

अतः राजकुमारी कहकर सम्बोधन करके कहते हैं। भाव यह कि तुम राजकुमारी हो। सुशिक्षिता हो। हठ न करोगी। मैं जो बातें तुमसे कहूँगा उसका यह अर्थ न लगाना कि मेरा तुम्हारे प्रति प्रेम में कोई कमी है: प्रिया शब्द से सम्बोधन न करके रुखे शब्द राजकुमारी से सम्बोधन करता हूँ। इसे प्रेम में त्रुटि आने का लक्षण न समझना। मैं सिखावन देता हूँ तुम्हारी भलाई के लिए।

आपन मोर नीक जौं चहहू। बचनु हमार मानि गृह रहहू॥
आयसु मोर सासु सेवकाई। सब बिधि भामिनि भवन भलाई॥२॥

अर्थ : अपना और मेरा यदि भला चाहती हो तो मेरा वचन मानकर घर रहो। मेरा आदेश सास के सेवकाई के लिए है। हे भामिनी! घर में रहने से ही सब प्रकार की भलाई है।

व्याख्या : तुम्हारा धर्म विपत्ति में साथ न छोड़ने का है। सो तुम उसके लिए प्रस्तुत हो। तुम्हारी ओर से कोई त्रुटि नहीं है। परन्तु साथ चलने में न तुम्हारा कल्याण है और न मेरा। अतः हम दोनों की भलाई के लिए मेरा वचन मानकर घर रहो। जिस भाँति मैं पिता का वचन मानकर वन जाता हूँ उसी भाँति तुम मेरा वचन मानकर घर रहो। यदि कहो कि घर रहने से आपकी सेवा से वञ्चित हो जाऊँगी तो : आज्ञा सम न सुसाहिब सेवा। मेरी आज्ञा मानों यही बड़ी भारी सेवा है। सो मैं सास की सेवा के लिए तुम्हें आज्ञा देता हूँ। हे भामिनी! घर रहकर ही तुम हमारी सेवा करती रहोगी। मैं तुम्हारी ओर से निश्चिन्त रहूँगा। अतः घर रहने में ही सब प्रकार की भलाई है। वन में जाने से सब विधि से भलाई नहीं है।

एहि ते अधिकु धरमु नहिं दूजा। सादर सासु ससुर पद पूजा॥
जब जब मातु करिहि सुधि मोरी। होइहि प्रेम बिकल मति भोरी॥३॥

अर्थ : आदर के साथ सास ससुर के चरणों की पूजा से बढ़कर दूसरा धर्म नहीं है। जब जब माता मेरी याद करेगी तब तब प्रेम के विवश होकर सुध बुध खो बैठेगी।

व्याख्या : नारिधर्म पतिदेव न दूजा यह ठीक है। पर सास ससुर तो पति के मान्य हैं। धर्म की दृष्टि से भी। श्रद्धा के साथ सास ससुर के चरणों की पूजा ही परम धर्म है। तुम्हें शिक्षा भी मिली है : सास ससुर गुर पूजा करेहू। पति रुख लखि आयसु अनुसरहू। अतः मेरा आदेश मानो।

और दूसरी भी बात है कि जब जब माँ को मेरी सुध आवेगी और वह प्रेम के विवश होकर सुध बुध खो बैठेगी तब इसे सँभालनेवाला कौन है? दास दासी हैं। मान लिया कि वे सेवा करेंगी और विकलता के समय समझावेंगी भी पर उनके समझाने का प्रभाव क्या पड़ेगा?

तब तब तुम्ह कहि कथा पुरानी । सुंदरि समझायेहु मृदु बानी ॥
कहउँ सुभाय सपथ सत मोही । सुमुखि मातु हित राखउँ तोही ॥४॥

अर्थ : हे सुन्दरी ! तब तब तुम पुराणों की कथा कहकर मृदु वाणी से समझाना । मैं सौ शपथ लेकर कहता हूँ : हे सुमुखि ! मैं माता के लिए तुम्हें घर रखता हूँ ।

व्याख्या : तुमने इतिहास पुराण सुना है । तुम उन सब आख्यानों को जानती हो जिनमें सङ्कट के समय बड़े लोगों ने धैर्य धारण करके उससे विमुक्ति पायी हैं । उन कथाओं के सुनने से शोक का वेग रुक जाता है । ढाढस बँधता है । माता की विकलता के समय तुम उन कथाओं को कोमल वाणी से कहकर माँ को समझाना । हे सुन्दरी ! तुम्हारे धैर्य का : तुम्हारे व्यक्तित्व का माँ पर प्रभाव पड़ेगा ।

मैं स्वभाव कहता हूँ तुम्हारे आश्वासन के लिए ही नहीं कहता हूँ । मैं तुम्हें स्वयं साथ चलने के लिए कहता अथवा साथ ले जाता । पर मैं सौ शपथ खाकर कहता हूँ कि तुम्हें घर पर छोड़ने का कारण एकमात्र माँ है । इन्हें मैं किसके भरोसे छोड़ूँ ?

दो. गुर श्रुति संमत धरम फलु, पाइअ बिनहिं कलेस ।
हठ बस सब संकट सहे, गालव नहुष नरेस ॥६१॥

अर्थ : गुरु सम्मत और वेद सम्मत धर्म का फल बिना आयास के तुम्हें मिलेगा । हठ के वश होकर गालव और राजा नहुष ने सब सङ्कट सहा ।

व्याख्या : वेद सम्मत होने पर भी शिष्टानुगृहीत होने की आवश्यकता है । अतः सरकार कहते हैं कि गुरुश्रुति सम्मत जो धर्म है उसका फल तुम्हें अनायास प्राप्त हो रहा है । सास ससुर की सेवा करना कुलवधू का धर्म है और पतिरेको गुरुः स्त्रीणाम् । सो मैं भी आदेश दे रहा हूँ । अब इससे बढ़कर धर्म क्या होगा । सो वह फल तुम्हें घर बैठे मिल रहा है । उसे ग्रहण न करके यदि तुम हठ करोगी तो हठ का फल तो सङ्कट है । विश्वामित्रजी का शिष्य गालव था । गुरुजी उससे गुरुदक्षिणा नहीं लेना चाहते थे पर उसने हठ किया । तब गुरुजी ने ८०० श्यामकर्ण घोड़े माँगे । उनके लिए उसे राजाओं के यहाँ दौड़ना पड़ा और अनेक प्रकार का सङ्कट उठाना पड़ा । गुरुजी ने तो वैसे ही गुरुदक्षिणा के ऋण से विनिर्मुक्त कर दिया था । पर गालव ने हठ करके सङ्कट मोल लिया ।

इसी भाँति नहुष राजा अपने तेज से इन्द्र हो गये । सम्पूर्ण इन्द्रलोक पर उनका अधिकार हो गया । उन्होंने उस अधिकार का दुरुपयोग इन्द्राणी पर भी करना चाहा । हठ पकड़ लिया । यहाँ तक कि चढ़ेउ भूमिसुर यान । फल यह हुआ कि अगस्त्यजी के शाप से पृथ्वी पर आकर अजगर हो गये । फलतः हठ का फल सङ्कट झेलना है । अतः तुम हठ न करो । धर्मफल तुम्हें अनायास प्राप्त है ।

मैं पुनि करि प्रवान पितु बानी । बेगि फिरब सुनु सुमुखि सयानी ॥
दिवस जात नहिं लागिहि बारा । सुंदरि सिखवनु सुनहु हमारा ॥१॥

अर्थ : और मैं पिता के वचन को प्रमाण करके हे सुमुखि सयानी ! शीघ्र ही लौट आऊँगा । दिन जाते देर न लगेगी । हे सुन्दरी ! मेरी शिक्षा सुनो ।

व्याख्या : यह नहीं कहते कि मैं तुम्हें साथ नहीं ले जाऊँगा या ले जा नहीं सकता । जो अपने धर्म पर खड़ा है उसे बलपूर्वक कैसे रोकें । समझाने बुझाने से वही मान जाय तो ठीक है । अतः सरकार कहते हैं कि मैं अपनी इच्छा से वन विहार करने नहीं जा रहा हूँ । जिसमें यह शङ्का हो कि सम्भव है मन लग जाने से लौटने में देर हो । तो मैं केवल पिता की वाणी को प्रमाण करने जा रहा हूँ । न जाऊँ तो पिता का वचन अप्रमाण हुआ जाता है । जहाँ चौदह वर्ष बीते कि मैं घर आया । सुमुखि सुन्दरी सम्बोधन देकर अपनी आसक्ति प्रकट करते हैं । सयानी सम्बोधन से अपना हृद्गत भाव प्रकट करते हैं कि तुम मेरे प्रेम को जानती हो । मुझे स्वयं तुमसे मिलने की उत्कण्ठा रहेगी । मैं देर क्यों लगाऊँगा ?

जौं हठ करहु प्रेमबस बामा । तौ तुम्ह दुखु पाउब परिनामा ॥
काननु कठिन भयंकरु भारी । घोर घामु हिम बारि बयारी ॥२॥

अर्थ : हे शोभने ! यदि तुम प्रेमवश हठ करोगी तो परिणाम में तुम्हें दुःख होगा । वन भारी कठिन और भयङ्कर है । घोर घाम, पाला, जल और हवा है ।

व्याख्या : तुम्हारा वन में निर्वाह होना दुस्तर है । तुम सुन्दर स्वभाववाली हो । हठीली नहीं हो । पर यदि प्रेमवश हठ करोगी तो परिणाम में दुःख पाओगी : सरकार के इस कथन में सीताहरण और सीता परित्याग का संकेत है । अब वन के दुःखों का वर्णन करते हैं । पहिले यह कि वन में कहीं मृदुता का नाम नहीं । उसके देखने से बड़ा भय उत्पन्न होता है । उसमें रहना तो दूर की बात है । जाड़ा गरमी बरसात तीनों काल में महा दुःख है । गरमी के दिनों में असह्य घाम । जाड़ा के दिनों में असह्य पाला । बरसात में पानी और हवा असह्य होती है । अथवा वन की हवा और पानी भी अनुकूल नहीं पड़ता है । वन में शब्द स्पर्श रूप रस गन्ध सभी भयानक हैं । कानन कठिन भयंकर भारी से रूप की भयानकता कहा । घोर घामु हिम बारि बयारी से स्पर्श की भयानकता कहते हैं ।

कुस कंटक मग काँकर नाना । चलब पयादेहि बिनु पद त्राना ॥
चरन कमल मृदु मंजु तुम्हारे । मारग अगम भूमिधर मारे ॥३॥

अर्थ : रास्ते में कुशा काँटे और अनेक प्रकार के कंकड़ : भरे पड़े : हैं । पैदल चलना जूता भी नहीं । तुम्हारे चरण कमल कोमल और सुन्दर हैं । रास्ता दुर्गम और भारी भारी पहाड़ ।

व्याख्या : दूसरे यह कि रास्ते में कुश उगे रहते हैं । जो बड़े तीखे होते हैं ।

काँटे और कङ्कड़ ऐसे होते हैं कि जूते की दुर्गति हो जाती है। हमलोगों को मुनिव्रत पालन करना है। अतः पैदल चलना होगा। जूता भी नहीं पहन सकते। तुम्हारे चरण कमल से कोमल और सुन्दर हैं। ये दुर्गम मार्ग और बड़े बड़े पहाड़ों का सामना नहीं कर सकते।

कंदर खोह नदी नद नारे। अगम अगाध न जाहिं निहारे॥
भालु बाघ बृक केहरि नागा। करहिं नाद सुनि धीरजु भागा ॥४॥

अर्थ : कन्दरा, खोह, नदी, नद और नाले सभी दुर्गम और अथाह होते हैं। जिन्हें देखते नहीं बनता। बाघ, भालू, भेड़िया और हाथी ऐसा चिग्घाड़ करते हैं कि सुनकर धैर्य छूट जाता है।

व्याख्या : उन बड़े बड़े पहाड़ों में ऐसी ऐसी कन्दरा और ऐसे ऐसे खोह हैं। कितने भयानक नाले रास्ते में पड़ते हैं। बहुत से नाले मिलकर एकनद हो जाता है और बहुत से नद मिलकर नदियाँ बन जाती हैं। ये सबके सब दुर्गम हैं। अथाह हैं। ऐसे भयानक हैं कि देखते नहीं बनता। तीसरे यह कि उन वनों में हिंस्र जन्तु बाघ, भालू, भेड़िया, सिंह और हाथी रहते हैं जिनका चिग्घाड़ सुनकर धैर्य छूट जाता है। इससे शब्द की भयानकता कहा।

दो. भूमि सयन बलकल बसन, असनु कंद फल मूल।
ते कि सदा सब दिन मिलहिं, सबुइ समय अनुकूल ॥६२॥

अर्थ : पृथ्वी पर सोना, पेड़ की छाल पहनना, कन्द फल मूल खाना वह भी सदा नहीं मिलता। सभी अपने अपने समय पर मिलते हैं।

व्याख्या : तुमने कठोर पृथ्वी पर पैर नहीं रक्खा। सदा पलंग पीठ, गोद और पालने पर रही। वन में पृथ्वी पर सोना पड़ेगा। पेड़ों की छाल को कपड़ा की भाँति पहनना होगा। खाने के लिए केवल कन्द, फल और मूल मिलेंगे। वे भी सदा प्राप्य नहीं। सबके लिए ऋतु नियत है। स्थान नियत है। कोई किसी ऋतु में होता है और कोई किसी ऋतु में होता है। कोई कहीं पाया जाता है और कोई कहीं पाया जाता है। जीवनोपयोगी वस्तु भी दुर्लभ हैं। यहाँ रस ओर गन्ध के विषय में कहा।

नर अहार रजनीचर चरहीं। कपट बेष बिधि कोटिक करहीं॥
लागइ अति पहार कर पानी। बिपिन बिपति नहि जाइ बखानी ॥१॥

अर्थ : मनुष्यों को खानेवाले राक्षस वहाँ घूमा करते हैं। करोड़ों प्रकार के कपट वेष धारण किया करते हैं। पहाड़ी पानी बड़ा विकार करता है। वन की विपत्ति का वर्णन नहीं हो सकता।

व्याख्या : चौथे यह कि राक्षसों के मनुष्य ही आहार हैं। मनुष्य ही खाकर वे जीते हैं : खल मनुजाद द्विजामिष भोगी। वे आहार के खोज में घूमा करते हैं। कपट से अनेक वेष बनाया करते हैं। जिसमें कोई उन्हें जान न ले। कहीं मृग

बन जाते हैं। कहीं यति बन जाते हैं। इत्यादि। पहाड़ का पानी बड़ा विकार करता है। उसे पीकर लोग घर आने पर भी बीमार पड़ते हैं। मरणासन्न हो जाते हैं। वन में एक विपत्ति नहीं है। वन की विपत्तियों का पारावार नहीं।

काल कराल बिहंग बन घोरा। निसिचर निकर नारि नर चोरा॥
डरपहिं धीर गहन सुधि आए। मृग लोचनि तुम्ह भीरु सुभाए॥२॥

अर्थ : वन में कराल सर्प होते हैं। भयावने पक्षी होते हैं। राक्षस लोग स्त्री और पुरुष को चुरा ले जाते हैं। धीर पुरुष भी वन की याद आने से डर उठते हैं। हे मृगलोचनि! तुम तो स्वभाव से ही डरपोक हो।

व्याख्या : सुरक्षित स्थान में भी खतरा रहता है। वहाँ कराल सर्प होते हैं। जिनके काटने से कोई बच नहीं सकता। वहाँ के पक्षी भी घोर हैं। मनुष्य को तो अपना आहार समझते हैं। यथा : मोहि अहार दीन्ह जगदीसा। सुन्दर पुरुष पर राक्षसी आसक्त हो जाती हैं। सुन्दरी स्त्री पर राक्षस आसक्त हो जाते हैं। तब उन्हें खाते नहीं चुरा ले जाते हैं। जो खा जाने से बुरा है।

जिनकी धीरों में गिनती है और कभी वन में रहने का अवसर मिल चुका है वे वन की याद आ जाने से सिहर उठते हैं। हे मृगलोचनि! तुम तो स्वभाव से भीरु हो। माँ कहती है : चित्र लिखित कपि देखि डराती। तुम वन में कैसे बसोगी? वन में मृग बसते हैं। मृगलोचनी नहीं बसतीं।

हंस गवनि तुम नहि बन जोगू। सुनि अपजसु मोहि देइहिं लोगू॥
मानस सलिल सुधा प्रतिपाली। जिअइ कि लवंन पयोधि मराली॥३॥

अर्थ : हे हंसगामिनि तुम वन योग्य नहीं हो। सुन करके लोग मुझे अपयश देंगे। मानससरोवर के अमृत सदृश जल में पली हुई हंसिनी क्या क्षार समुद्र में जी सकती है?

व्याख्या : पाँचवें यह कि तुममें वन की योग्यता नहीं है। जिसमें जिस बात की योग्यता न हो उसमें उस वस्तु का विनियोग नीति विरुद्ध है। तुम्हारो हंस की भाँति मन्द गति है। वन में तीव्र गतिवाली कोल किरात किशोरियों का निर्वाह होता है। जो दौड़धूप कर सकें। तुम तो जाना चाहती हो पर साथ ले जाने में मेरा कितना भारी अपयश है। लोग कहेंगे कि भले ही सीता साथ जाने के लिए हठ करती रही हों पर रामचन्द्र कैसे थे जो ऐसी सुकुमारी को साथ वन ले गये। तुम वन में जी नहीं सकती। जैसे मानसरोवर के अमृत सदृश जल से पली हुई हंसिनी लवण समुद्र में नहीं जी सकती।

नव रसाल बन बिहरन सीला। सोह कि कोकिल बिपिन करीला॥
रहहु भवन अस हृदय बिचारी। चंद बदनि दुखु काननु भारी॥४॥

अर्थ : नयी अमराई में विहार करनेवाली कोकिल की शोभा क्या करील के

वन में हो सकती है। ऐसा मनमें विचार करके घर रहो। हे चन्द्रवदनि ! वन में बड़ा दुःख है।

व्याख्या : तुम्हारा वन जाना एक अशोभन कार्य है। कोकिल की शोभा नये आम के वन में विहार करने में है। आम्रवन में स्पर्श रूप रस गन्ध की बहुतायत तो स्वभाव से ही है। नवतरु किसलय में मृदु स्पर्श और सुन्दर रूप बौर में सुन्दर गन्ध फल में सुन्दर रस रहता है। केवल मनोहर शब्द का घाटा रहता है। उसे पूरा करके कोकिल आम्रवन को सर्वेन्द्रिय तर्पण बना देती है। अतः वहाँ उसकी शोभा है। करील में न तो पत्ते हैं, न सरस फल है, न सुगन्ध है। उसमें कोकिल जाती ही नहीं। करील के वन में यदि कोकिल जाय तो उसकी शोभा नहीं।

आपन मोर नीक जौ चहहू। बचनु हमार मानि गृह रहहू से उपक्रम करके रहहु भवन अस हृदय बिचारी से उपसंहार कर रहे हैं। सारांश इतना ही है कि वन में भारी दुःख है जो तुम झेल नहीं सकती।

दो. सहज सुहृद गुरु स्वामि सिख, जो न करइ सिर मानि।
सो पछिताइ अघाइ उर, अवसि होइ हित हानि ॥६३॥

अर्थ : स्वाभाविक हितचिन्तक गुरु और स्वामी की शिक्षा जो शिरोधार्य नहीं करता। वह मन में पेट भर पछताता है। उसके हित की अवश्य हानि होती है।

व्याख्या : स्वाभाविक हित चिन्तक माता पिता आदि गुरुजन ससुर सास आदि और स्वामी इनके वचन को अवश्य शिरोधार्य करना चाहिए। इसी में कल्याण है। नहीं तो निश्चय ऐसा अकल्याण होता है कि नहीं माननेवाला मन में पेट भर पछताता है चाहे मुख से न कहे। स्त्री का तो पति सहज सुहृद भी है। यथा : मितं ददाति च पिता मितं भ्राता मितं सुतः। अमितस्य च दातारं भर्तारं कानुसेवयेत्। अमितदानि भर्त्ता वैदेहीगुरु भी हैं। यथा : पतिरेको गुरुः स्त्रीणाम् और स्वामी तो हैं ही। अतः उनके वचन को तो अवश्य ही शिरोधार्य करना चाहिए। नहीं मानने से अवश्य हित की हानि होती है और मुख से चाहे न कहे पर मन में उसे पेट भर पछताना पड़ता है। भाव यह कि यदि मेरा वचन न मानोगी तो निश्चय हित हानि होगी और तुम पेट भर पछताओगी।

सुनि मृदु बचन मनोहर पिय के। लोचन ललित भरे जल सिय के ॥
सीतल[1] सिख दाहक भइ कैसें। चकइहि सरद चंद निसि जैसें ॥१॥

अर्थ : प्रिय के मनहरण करनेवाले कोमल वचन सुनकर सीताजी के सुन्दर नेत्र जल से भर आये। शीतल शिक्षा ऐसी दाहक हुई जैसे चकइ को शरद् चन्द्रमा-वाली रात दाहक होती है।

व्याख्या : एक तो प्रिय के वचन स्वभाव से ही प्रिय लगते हैं। तिस पर

---

१. विषम : अलङ्कार तृतीय।

ऐसे कोमल और मनोहर थे कि मन उसी के ग्रहण में तन्मय हो गया था। आँसू गिरना बन्द हो गया था। सो कथन समाप्त होते ही सीताजी के सुन्दर नेत्रों में फिर जल भर गया।

बड़ी शीतल शिक्षा थी पर सीताजी को वह दाहक हो गयी। जैसे शरद् चन्द्रमावाली रात स्वभाव से ही शीतल और सुखद है। पर चकई को तो वह अधिक दाह उत्पन्न करती है। पति वियोग के कारण चकई के लिए सभी रात्रि दाहक हैं। पर शरद् चन्द्र से युक्त रात्रि अधिक दाहक होती है। भाव यह कि कौसल्याजी के वचन भी दाहक थे। पर रामचन्द्र के मुख से उसी आशयवाले वचन अधिक दाहक हो उठे। रामजी ने वही भाव शब्दान्तर में कहे जो भाव कौसल्याजो ने व्यक्त किया था। पर प्रियतम के मुख से सुनने से वे अधिक वियोग-जन्यदाह के उत्पन्न करनेवाले हुए।

उतरु न आव बिकल बैदेही। तजन चहत सुचि स्वामि सनेही ॥
बरबस रोकि बिलोचन बारी। धरि धीरजु उर अवनि कुमारी ॥२॥

अर्थ : वैदेही विकल है उत्तर देते नहीं बनता। पवित्र और स्नेही स्वामी मुझे छोड़ना चाहते हैं। पृथ्वी की बेटी सीताजी ने धैर्य धारण किया और बलपूर्वक नेत्र के जल को रोका।

व्याख्या : जो रामजी कह गये उसका उत्तर है। पर मन में जो यह भावना उठी कि ऐसे पवित्र और स्नेही स्वामी मुझे छोड़ना चाहते हैं तो वैदेही विकल हो गयी। उत्तर मुख से निकलता ही नहीं। शुचि कहने का भाव यह कि सरकार विषय रस रूखे हैं। यथा : राम पुनीत विषय रस रूखे फिर भी स्नेही हैं। यथा : तत्व प्रेम कर मम अरु तोरा। जानत प्रिया एक मन मोरा। सो मन सदा रहत तोहि पाहीं। जानु प्रीति रस एतनहि माहीं : भाव यह कि अलौकिक प्रेमी होने पर भी मुझे छोड़ना चाहते हैं।

इस दाह से धैर्य छूट चला था। पर ये तो सर्वसहा पृथ्वी की बेटी हैं। माँ के सब गुण विद्यमान हैं। धैर्य धारण किया और नेत्र के जल को बल पूर्वक रोका।

लागि सासु पग कह कर जोरी। छमबि देवि बड़ि अबिनय मोरी ॥
दीन्हि प्रानपति मोहि सिख सोई। जेहि बिधि मोर परम हित होई ॥३॥
मैं पुनि समुझि दीखि मन माहीं। पिय बियोग सम दुखु जग नाहीं ॥४॥

अर्थ : सास के पाँव पड़कर और हाथ जोड़कर बोलीं कि हे देवि ! मेरी बड़ी भारी ढिठाई को क्षमा करना। मुझे प्राणपति ने वही शिक्षा दी जिससे मेरा परम कल्याण हो। मैंने भी उसे समझकर मन में देख लिया कि पति के वियोग से बढ़कर कोई दुःख संसार में नहीं है।

व्याख्या : पहिले सास से ही प्रार्थना करना है। क्योंकि सरकार ने कह दिया : सुमुखि मातु हित राखहुँ तोहीं और माता का बहुत बल इस बात पर है

कि सीता वन के दुःखों को न सह सकेगी और उन्हीं के प्रेरणा से सरकार ने वैसी ही शिक्षा दी। जव सीताजी आयी थीं तब वन्दना करके बैठीं। अव कुछ कहना है अतः फिर वन्दना करती हैं। भगवती ने आज तक सास की बातों का कभी उत्तर नहीं दिया। आज विना दिये स्वीकृति समझी जायगी। अतः उत्तर देना पड़ा। इसे सीताजी बड़ी भारी ढिठाई मानती हैं। अतः उसके लिए पहिले ही क्षमा प्रार्थी होती हैं।

आरम्भ से ही आर्यपुत्र न कहकर सङ्कोच छोड़कर प्राणपति कहा। इसका अर्थ ही यही है कि इनके बिना मैं जी नहीं सकती। प्राणपति को शिक्षा में कोई दोप नहीं है और वह शिक्षा मेरे बहुत भले के लिए है। मैंने उसे दत्तचित्त होकर सुना। समुझि कहकर उसका मनन करना कहती हैं और दीख मन माहीं से निदिध्यासन कहती हैं। अर्थात् ऊँचा नोचा अच्छी भाँति विचार लिया। सो यह निश्चय हुआ कि प्रिय वियोग के समान दुःख दूसरा जगत में है नहीं अधिक कहाँ से होगा। सास से सीताजी ने इतना ही कहना यथेष्ट समझा। क्योंकि स्त्री हैं। स्त्रीहृदय को जानती हैं। स्त्रीधर्म को जानती हैं। इनके लिए इतना ही अलं है। अतः यह : सहज सुहृद गुरुस्वामि सिख जो न करै हित मानि आदि का उत्तर है।

दो. प्राननाथ करुनायतन, सुंदर सुखद सुजान।
तुम्ह बिनु रघुकुल कुमुद बिधु, सुरपुर नरक समान ॥६४॥

अर्थ : हे प्राणनाथ, करुणायतन, सुन्दर, सुखद, सुजान, हे रघुकुल कुमुद चन्द्र ! तुम्हारे बिना स्वर्ग भी नरक के तुल्य है।

व्याख्या : अब सरकार से कहती हैं। प्राणनाथ सम्बोधन से वियोग में प्राण त्याग कहा। करुणायतन कहकर करुणा की प्रार्थी हैं। सुन्दर कहकर द्योतित किया कि मैं नित्य दर्शन चाहती हूँ। सुखद कहकर वियोग दुःख न देने की प्रार्थना करती है। सुजान कहकर मनोगत का जानकार होना कहती हैं। रघुकुल कुमुद विधु कहकर अपना सहज प्रेम कह रही हैं। इतनी बात केवल सम्बोधन में ही कह गयीं। अब कहती हैं कि तुम्हारे बिना मेरे लिए स्वर्ग भी नरक है। स्वर्ग में लोकोत्तर सुख मिलता है और नरक में लोकोत्तर दुःख मिलता है। भाव यह कि प्रियतम के बिना सुख सब दुःख रूप है। यथा : जे हित रहे करइँ ते पीरा। यह : रहहु भवन अस हृदय बिचारी। चंद बदनि दुःख कानन भारी का उत्तर है।

मातु पिता भगिनी प्रिय भाई। प्रिय परिवारु सुहृद समुदाई ॥
सासु ससुर गुर सजन सहाई। सुत सुंदर सुसील सुखदाई ॥१॥

अर्थ : माता, पिता, बहन, प्रिय भाई, प्रिय परिवार, सुहृद् समूह, सास, ससुर, गुरु, स्वजन, सहायक और सुन्दर सुशील सुखदायक पुत्र।

व्याख्या : १. पहिला परिचय माता से २. फिर पिता से फिर ३. बहन और ४. प्रिय भाई से। ये तो परम आत्मीय ठहरे। तत्पश्चात् ५. प्रिय परिवार

चाचा बाबा इत्यादि और ६. सुहृद्वर्ग। ये छः मैके के आत्मीय हैं। इस भाँति १. सास २. श्वसुर ३. गुरु ४. स्वजन ५. सहायक और ६. सुन्दर सुशील सुखदायक पुत्र ये छः आत्मीय सुसराल के। सब मिलाकर बारह हुए। इन्हीं पर स्त्रियों को प्रीति होती है।

जहँ लगि नाथ नेह अरु नाते। पिय बिनु तियहिं तरनिहुँ ते ताते ॥
तनु धनु धामु धरनि पुर राजू। पति बिहीन सबु सोक समाजू ॥२॥

अर्थ : हे नाथ जहाँ तक स्नेह और नाता है पति के बिना स्त्री को सब सूर्य की भाँति तापप्रद हैं।

व्याख्या : इन बारहों के भीतर ही सब स्नेह और सम्बन्ध का अन्तर्भाव है। इसीलिए स्नेही और सम्बन्धी न कहकर स्नेह और सम्बन्ध कहा। ये सब सुखदायी हैं। पर तभी तक जब तक कि स्त्री को पति का साथ है। पति का बिछोह होने पर ये बारहों द्वादशादित्य की भाँति तापक हो जाते हैं। एक आदित्य का ताप सहन नहीं होता बारह आदित्य का ताप कौन सह सकता है। यह : नव रसाल बन बिरहन सीला। सोह कि कोकिल बिपिन करीला : का उत्तर है।

चेतन की व्यवस्था कहकर अब जड़ वस्तुओं में जिनपर प्रेम होता है उन्हें गिनाती हैं। १. शरीर २. धन ३. धाम ४. धरणी ५. पुर और ६. राज्य यह सुख का समाज है। पर तभी तक जब तक पति का साथ है। पति के बिछोह में ये शोक के समाज हैं। इस बात को पतिव्रता स्त्रियाँ ही समझ सकती हैं। सामान्य स्त्री भी इसे नहीं समझ सकती। तब पुरुषों से समझने की कौन आशा है। अतः इन बातों को कौसल्या जी से कहकर सरकार से कहती हैं : यह मानस सलिल सुधा प्रतिपाली। जिअइ कि लवन पयोधि मराली का उत्तर है।

भोग रोग सम भूषन भारू। जम जातना सरिस संसारू ॥
प्राननाथ तुम्ह बिनु जग माहीं। मो कहुँ सुखद कतहुँ कछु नाहीं ॥३॥

अर्थ : भोग रोग के समान हो जाता है। गहने बोझ मालूम होते हैं और संसार तो यमयातनामय हो जाता है। हे प्राणनाथ! तुम्हारे बिना इस संसार में मुझे तो सुखद कहीं कुछ भी नहीं है।

व्याख्या : भोग की सामग्री रोग की भाँति दुःखद हो जाती है। भूषण धारण करने योग्य प्रिय वस्तु है। वह बोझा हो जाता है। संसार में जो व्यवहार चलता है यमयातना की भाँति महाकष्टप्रद प्रतीत होता है। यह : हंस गवनि तुम नहिं बन जोगू : का उत्तर है। इस भाँति भगवतीजी ने पतिव्रता स्वभाव का वर्णन किया : ऐसी स्त्री जो पति के साथ सती होती हैं उन्हें सती हो जाने में ही सुख है। वे सती हो जाने से इन महादुःखों से त्राण पा जाती हैं। जो इन गुणों से अपरिचित हैं उन्हें सती होना घोर नृशंस क्रिया प्रतीत होती है। अन्त में भगवती कहती हैं कि जो आपने कहा : रहहु भवन अस हृदय बिचारी। चंद बदनि दुख कानन भारी। सो

पुरुष होने के नाते स्त्री स्वभाव से अपरिचित होने के कारण कहा। हे प्राणनाथ ! तुम्हारे बिना संसार में कहीं कुछ भी सुखद नहीं है।

जिअ बिनु देह नदी बिनु बारी। तैसिअ नाथ पुरुष बिनु नारी ॥
नाथ सकल सुख साथ तुम्हारें। सरद बिमल बिधु बदनु निहारें ॥४॥

अर्थ : जैसे जीव के बिना देह बिना जल की नदी वैसे ही हे नाथ ! पुरुष के बिना स्त्री हो जाती हैं। हे नाथ ! तुम्हारे साथ मुझे सब सुख निर्मल शरत् चन्द्र के समान आपके मुख दर्शन में है।

व्याख्या : जैसे जीव के बिना देह अमङ्गल रूप अपवित्र और व्यर्थ हो जाता है : जिस भाँति जल के बिना नदी भयानक और कष्टप्रद हो जाती है वही दशा स्त्री की हो जाती है। तो क्या मैं इस संसार में अमङ्गल रूप अपवित्र व्यर्थ भयानक और कष्टप्रद होकर रहूँ ? जो सरकार ने कहा : मानस सलिल सुधा प्रतिपाली। जिअइ कि लवन पयोधि मराली। सो मेरे लिए घर ही लवण पयोधि है। मैं यहाँ नहीं जीऊँगी। सरकार के मुखचन्द्र के दर्शन में ही मुझे सब सुख है।

दो. खग मृग परिजन नगर बनु, बलकल बिमल दुकूल।
नाथ साथ सुर सदन सम, परनसाल सुख मूल ॥६५॥

अर्थ : नाथ के साथ पशु पक्षी कुटुम्बी वन नगर और पेड़ों की छाल निर्मल वस्त्र तथा पत्ते की कुटिया स्वर्ग की भाँति सुखमूल हो जायगी।

व्याख्या : नाथ का साथ रहने से वन्यजन्तु मेरे कुटुम्बी हो जायँगे। वन ही नगर की भाँति सुखद होगा। पेड़ों की छाल ही निर्मल वस्त्र का काम देंगे और पत्ते की कुटी में स्वर्ग का सुख होगा। प्रिय का साथ होने से सब दुःखद पदार्थ सुखद हो जाते हैं। जङ्गल में ही मङ्गल होगा। कोई दुःखद न होंगे यह विपिन विपति नहिं जाइ बखानी का उत्तर है।

बनदेवी बनदेव उदारा। करिहहिं सासु ससुर सम सारा ॥
कुस किसलय साथरी सुहाई। प्रभु सँग मंजु मनोज तुराई ॥१॥

अर्थ : उदार वनदेव और वनदेवी सास ससुर की भाँति रक्षा करेंगे। सरकार के साथ कुशा और कोमल पत्तों का बिछौना सुन्दर कामदेव का तोशक हो जायगा।

व्याख्या : माता ने आशीर्वाद दिया है : पितु बनदेव मातु बनदेवी। अतः कहती हैं कि वनदेव और वनदेवी उदार हैं। बिना पूजा पाये वन्य जीवों की रक्षा करते हैं। सो वनदेवी मेरी सास की भाँति रक्षा करेंगी और वनदेव ससुर की भाँति रक्षा करेंगे। यह : नर अहार रजनीचर करहीं। कपट वेष बिधि कोटिक चरहीं : का उत्तर है।

सरकार ने कहा था कि भूमि पर सोना होगा। इस पर कहती हैं कि भूमि

पर क्यों सोऊँगी कुश किशलय का बिछौना बनाया जायगा और प्रभु के साथ सुन्दर कामदेव के तोशक की भाँति सुखद होगा।

कंद मूल फल अमिअ अहारू। अवध सौध सत सरिस पहारू ॥
छिनु छिनु प्रभु पद कमल बिलोकी। रहिहौं मुदित दिवस जिमि कोकी ॥२॥

अर्थ : कन्दमूल फल का आहार अमृत के आहार सा होगा। पहाड़ अवध के सौ महलों की भाँति हो जावेंगे। क्षण क्षण सरकार के चरण कमल का दर्शन करके ऐसी प्रसन्न रहूँगी जैसे दिन में चकई प्रसन्न रहती है।

व्याख्या : सरकार ने कहा : असन कन्द फल मूल। सो कन्द फल और मूल का भोजन सरकार के साथ होने से अमृत के भोजन की भाँति स्वादिष्ट होंगे और जिन पहाड़ों के लिए सरकार ने कहा है : मारग अगम भूमिधर भारे। कंदर खोह नदी नद नारे। अगम अगाध न जाहिं निहारे : इत्यादि सो वे भूमिधर पहाड़ अयोध्या के सौ महल के समान सुखदायक होंगे।

सरकार ने कहा : कंदर खोह नदी नद नारे। अगम अगाध न जाहिं निहारे। सो कन्दर खोह नदी नद नारे में सरकार आगे आगे रहेंगे। मैं तो सरकार के चरणों को बराबर दर्शन करती हुई प्रसन्न रहूँगी जैसे दिन को चकई रहती है।

बन दुख नाथ कहे बहुतेरे। भय बिषाद परिताप घनेरे ॥
प्रभु बियोग लवलेस समाना। सब मिलि होहिं न कृपानिधाना ॥३॥

अर्थ : सरकार ने वन के बहुत से दुःख भय विषाद और परितापों का वर्णन किया। पर वे सब मिलकर प्रभु के वियोग के लवलेश के समान नहीं हैं।

व्याख्या : सरकार ने वन के बहुत दुःखों का वर्णन किया। उसमें भय का वर्णन किया। यथा : कानन कठिन भयंकर भारी। विषाद का वर्णन किया। यथा : घोरघाम हिम बारि बयारी। परिताप का वर्णन किया। यथा : कुस कंटक मग काँकर नाना। चलब पयादेहि बिनु पद त्राना। चरन कमल मृदु मंजु तुम्हारे। मारग अगम भूमिधर भारे। सो इन सब भय विषाद और परितापों को इकट्ठा किया जाय तो भी सरकार के वियोग के लवलेश के समान सब मिलकर भी नहीं होंगे।

अस जियँ जानि सुजान सिरोमनि। लेइअ संग मोहि छाँड़िअ जनि ॥
बिनती बहुत करौं का स्वामी। करुनामय उर अंतरजामी ॥४॥

अर्थ : हे सुजान शिरोमणि ! ऐसा जानकर मुझे साथ ले लीजिये। छोड़ न दीजिये। हे स्वामिन् ! मैं बहुत विनती क्या करूँ। आप करुणामय हैं और अन्तर्यामी हैं।

व्याख्या : सरकार ने कहा : जौं हठ करहु प्रेम बस बामा। तौ तुम्ह दुखु पाउब परिनामा। इसपर कहती हैं कि मैं हठ नहीं करती हूँ। वस्तुस्थिति कहती हूँ। आप सुजान शिरोमणि हैं। यथा : यह प्राकृत महिपाल सुभाऊ। जान सिरोमनि

कोसल राऊ। जो निष्करुण हो हृदय की बात न जानता हो उससे अधिक विनती की जाती है। सरकार तो करुणामय हैं। अन्तर्यामी हैं। आप से अधिक विनती क्या करें।

दो. राखिअ अवध जो अवधि लगि, रहत जानिअहि प्रान।
दीनबंधु सुंदर सुखद, सील सनेह निधान ॥६६॥

अर्थ : यदि आप समझें कि अवधि : चौदह वर्ष तक मेरे प्राण रह सकेंगे तो अवध में मुझे रखिये। आप दीनबन्धु हैं। सुन्दर हैं और शील तथा स्नेह के निधान हैं।

व्याख्या : सरकार ने कहा : दिवस जात नहिं लागिहि बारा। सुन्दरि सिखवन सुनहु हमारा। सो मैं शिक्षा शिरोधार्य करने को प्रस्तुत हूँ। पर प्राण मेरे वश में नहीं हैं। ये नहीं रहेंगे। यदि आप समझते हों कि ये चौदह वर्ष बिना आपके रह सकेंगे तो मुझे अवध में ही रहने दीजिये। दीनबन्धु सम्बोधन से अपनी दीनता कहा। सुन्दर कहकर अपनी आसक्ति कही और सील सनेह निधान कहकर साथ ले जाने के लिए प्रार्थना की। रहत न जानि अहि : पाठ मानने से अर्थ होगा कि मैं नहीं जी सकूँगी।

मोहि मग चलत न होइहि हारी। छिनु छिनु चरन सरोज निहारी॥
सबहि भाँति पिय सेवा करिहौं। मारग जनित सकल श्रम हरिहौं ॥१॥

अर्थ : मुझे रास्ता चलने में थकावट नहीं मालूम होगी। क्योंकि क्षण क्षण चरण कमलों का दर्शन होता रहेगा : सभी तरह से मैं प्रिय की सेवा करूँगी और रास्ते की थकावट दूर करूँगी।

व्याख्या : ऊपर के दोहों में पाँच सम्बोधन दिया है : १. दीनबन्धु २. सुन्दर ३. सुखद ४. शील निधान और ५. स्नेह निधान। अतः दीनबन्धु से अपनी दीनता कहती हैं। सरकार ने कहा था : चलब पयादेहि बिनु पद त्राना। इसका उत्तर भी साथ ही साथ है। कहती हैं कि मुझे तो रास्ते चलते थकावट होगी नहीं। क्योंकि सरकार के प्रत्येक पादप्रक्षेप को मुझे ध्यान से देखना पड़ेगा। यथा : प्रभु पद रेख बीचबिच सीता। धरति चरन मग चलति सभीता। इस भाँति क्षण क्षण चरण कमल का दर्शन करती चलूँगी। उसी आनन्द में मुझे पथश्रम का भान ही न होगा।

इतना ही नहीं सरकार के साथ कोई सेवक न होगा तो सेवा कौन करेगा। यहाँ तो सेवा का पूरा सौभाग्य प्राप्त नहीं था। अवसर ही नहीं मिलता था। प्रिय की सेवा करने में सुख मिलता है सो सब सेवा मैं करूँगी। एहि ते अधिक धरम नहिं दूजा। सादर सासु ससुर पद पूजा : का उत्तर दे रही हैं कि आपकी सेवा का अधिक सुअवसर प्राप्त होगा। एकइ धर्म एक ब्रत नेमा। काय बचन मन पतिपद प्रेमा। भाव यह कि मैं बोझ होकर साथ नहीं रहूँगी। मैं तो थकूँगी ही नहीं और सरकार के थकावट को दूर करूँगी। यह सीताजी आर्त्त होकर कह रही हैं। नहीं तो : घर

ते निकरी रघुवीर वधू, धरि धीर धरी मग में पग द्वै। झलकीं भली भाल कनी जल की, रद सूख गये अधराधर द्वै। इत्यादि।

पाय पखारि बैठि तरु छाहीं। करिहउँ बाउ मुदित मन माहीं ॥
श्रम कन सहित स्याम तनु देखें। कहँ दुख समउ प्रानपति पेखें ॥२॥

अर्थ : पैर धोकर पेड़ की छाया में बैठकर प्रसन्न मन से हवा करूँगी। पसीने की बूंदों के सहित स्याम शरीर के दर्शन से : प्राणनाथ के अवलोकन में दुःख के लिए समय कहाँ है।

व्याख्या : मैं जानती हूँ कि थकावट कैसे दूर की जाती है। जब आप थककर विश्राम के लिए पेड़ तले बैठेंगे तो मैं आपका पाँव धोकर प्रसन्न मन से हवा करूँगी। आपकी थकावट दूर होगी।

श्यामसुन्दर राम से अपनी आसक्ति कहती हैं कि जब थकावट में आपके शरीर की शोभा पसीने के बूँदों से और भी बढ़ जाती है सो उसके देखने में ही मन लग जायगा। दुःख के लिए अवसर कहाँ है ? भाव यह कि अनवरत मन के आप में लगे रहने से दुःख का भान हो नहीं सकता। सो दिन तो इस भाँति आनन्द से कटेगा।

सम महि तृन तरु पल्लव डासी। पाय पलोटिहि सब निसि दासी ॥
बार बार मृदु मूरति जोही। लागिहि ताति बयारि न मोही ॥३॥

अर्थ : समतल भूमि पर तृण और तरुपल्लव बिछाकर यह दासी रात भर पैर दाबेगी। बार बार इस कोमल मूर्ति को देखकर मुझे गरम हवा न लगेगी।

व्याख्या : अब रात की व्यवस्था कहती हैं कि भूमि शयन क्यों होगा ? मैं समतल भूमि देखकर उस पर तृण और पेड़ के कोमल पल्लव की शय्या बिछाऊँगी। मैं तो दासी हूँ। चरण सेवा मेरा धर्म है। सरकार थके रहेंगे। मैं रात भर चरण सेवा करूँगी। सरकार सुखद हैं। सेवा में भी सुख मिलता है। सरकार के नवनील नीरद सुन्दर मूर्ति का दर्शन करती रहूँगी। मुझे गरम हवा क्यों लगेगी। घोर घाम हिम बारि बयारी : का उत्तर।

को प्रभु सँग मोहि चितवनिहारा। सिंध बधुहि जिमि ससक सिआरा ॥
मैं सुकुमारि नाथ बन जोगू। तुम्हहिं उचित तप मो कहुँ भोगू ॥४॥

अर्थ : सरकार के साथ मुझे आँख उठाकर देखनेवाला कौन है ? सिंह की वधू को खरहा : खरगोश और सियार के देखने की सामर्थ्य कहाँ ? मैं सुकुमारी हूँ और सरकार वन के योग्य हैं। आपको तप उचित है और मुझे भोग उचित है।

व्याख्या : निसिचर निकर नारि नर चोरा : का उत्तर : सिंहवधू में ही ऐसी सामर्थ्य है कि शशक सिआर उसकी ओर आँख नहीं उठा सकते कि पुनः जब

वह सिंह के साथ हो। सरकार सिंह हैं। राक्षसादि आपके सामने शशक सिआर हैं। उनसे मुझे कौन डर है ?

सरकार शील सनेह निधान हैं। ऐसी बातें कैसे कहते हैं कि मैं वन में तप करूँगा और तुम घर में राजभोग भोगो। व्याह में प्रतिज्ञा कराया गया है कि धर्म अर्थ और काम में इसके साथ वरतना। तो क्या तप में मेरा साथ न होगा। यदि मैं सुकुमारी हूँ तो आप तो और भी अधिक सुकुमार हैं। यथा : व्यचरदनुवनं पद्मपद्भ्यां प्रियायाः। पाणिस्पर्शाक्षमाभ्याम्। यदि मैं वन के योग्य नहीं हूँ तो आप और भी अधिक नहीं हैं। वनवास की कौन कहे केवल पति के प्रवास में स्त्री को तप विहित है। सो मुझे सरकार कन्दमूल अशन को डरा रहे हैं।

दो. ऐसेउ[1] बचन कठोर सुनि, जौ न हृदउ बिलगान।
तौ प्रभु बिषय बियोग दुखु, सहिहहिं पाँवर प्रान॥६७॥

अर्थ : ऐसा कठोर वचन सुनकर भी यदि कलेजा न फटा तो यह नीच प्राण सरकार के विरह के दुःख को भी सह लेगा।

व्याख्या : हौं रहौं भवन भोग लोलुप ह्वै पति कानन कियो मुनि को साजु। तुलसीदास ऐसे विरह वचन सुनि कठिन हियो विहरयो न आजु। पिय निठुर वचन कहे कारन कवन। जगदम्बा कहती हैं : हंसगवनि तुम नहिं बन जोगू। यह वचन निष्ठुर है; हृदय विदारक है। आत्मा हि दाराः सर्वेषां दारसंग्रहवर्तिनाम्। सो मुझे आप अपने से अलग समझ रहे हैं। अतः यह वचन निष्ठुर है। मुझे सुख भोगने के लिए घर छोड़ रहे हैं। अतः हृदयविदारक हैं। इस वचन से हृदय फट जाना चाहता था। सो नहीं फटा। ऐसा कठिन है। इससे तो यही अनुमान होता है कि यह नीच प्राण सरकार के वियोग का विषम दुःख भी सह लेगा : यहाँ अत्यन्त तिरस्कृत ध्वनि है।

अस कहि सीय बिकल भइ भारी। बचन बियोग न सकी सँभारी॥
देखि दसा रघुपति जिय जाना। हठि राखे नहिं राखिहि प्राना॥१॥

अर्थ : ऐसा कहकर सीताजी अत्यन्त विकल हो गयीं। वियोग के वचन को सँभाल न सकीं। दशा देखकर रामजी ने मन में समझ लिया कि हठ पूर्वक छोड़ जाने से यह प्राण छोड़ देगी।

व्याख्या : समाचार तेहि समय सुनि सीय उठी अकुलाइ : से उपक्रम करके : अस कहि सीय बिकल भइ भारी से उपसंहार करते हैं। वियोग तो दूर की बात है वियोग वचन के ही सुनने में असमर्थ हो गयीं। भारी विकल हो गयीं। अर्थात् मूर्च्छित हुईं। यथा : तुलसीदास प्रभु विरह वचन सुनि सहि न सकी मुर्छित भइ भामिनि। गी.।

---

१. यहाँ व्याघात : द्वितीय अलङ्कार है।

उनकी यह दशा देखकर रामजी ने मन में समझ लिया कि ऐसी अवस्था में इन्हें घर रहने के लिए जोर देना हठ करना है। हठ इनका नहीं है। हठ मेरी ओर से हो रहा है। क्योंकि घर रखने से तो यह प्राण छोड़ देगी।

कहेउ कृपालु भानुकुल नाथा। परिहरि सोचु चलहु बन साथा ॥
नहि बिषाद कर अवसरु आजू। बेगि करहु बन गवन समाजू ॥२॥

अर्थ : कृपाल सूर्यकुल के नाथ ने कहा कि सोच न करो। साथ में वन चलो। आज विषाद का अवसर नहीं है। जल्दी वन चलने की तैयारी करो।

व्याख्या : सरकार सूर्यकुल के नाथ हैं। सूर्यकुल की रक्षा अपना कर्तव्य समझते हैं। सीताजी की दशा देखकर भगवती भास्वती अनुकम्पादेवी का उदय हुआ। क्योंकि सरकार स्वभाव से ही कृपाल हैं। कहने लगे कि अब सोच न करो। साथ में तुम भी वन चलो। आज ब्रह्मदेव सब प्रकार से मुझ पर अनुकूल हैं। अतः आज आनन्द के अवसर पर विषाद न करो। उठो! अब वन चलने की तैयारी करो।

कहि प्रिय बचन प्रिया समुझाई। लगे मातु पद आसिष पाई ॥
बेगि प्रजा दुख मेटब आई। जननी निठुर बिसरि जनि जाई ॥४॥

अर्थ : प्रिय वचन कहकर प्रिया को समझाकर माता को प्रणाम किया और आशीर्वाद पाया। माता बोली : जल्द आकर प्रजा का दुःख मिटाना और अपनी निष्ठुर माता को भूल न जाना।

व्याख्या : सरकार ने प्रिय वचन कहकर प्रिया को समझाया। यथा :

सहि न सकिहि वन दुख समुझि रह्यौं प्रीति उर गोय।
नतरु तिहारे संगते वन नंदनवन होय ॥
दोऊ कुल अनुरूप यह शुभ संकल्प तुम्हार।
दम्पति सम्पति में यथा तथा धर्म सहचार ॥
वेगि चलहु वनि धन रतन विप्रन्ह देहु वुलाय।
आभूषन गुरु तिय चरन अरपित करहु सुभाय ॥

कठोर वचन से जो हृदय पर चोट हुआ था उसी के मिटाने के लिए प्रिय वचन कहकर सीताजी को समझाया। तत्पश्चात् विदा होने के लिए माता के चरणों में प्रणाम किया और माता ने आशीर्वाद दिया। यह आशीर्वाद विदाई का है।

ऐसी दशा में भी माता को प्रजा की चिन्ता है। अतः कहती हैं कि तुम्हारे विना प्रजावर्ग बड़ा दुःखी होगा। यथा : राम दरस लगि लोग सब करत नेम उपवास। परिहरिभूषन भोग सुख जिअत अवधि की आस। सो लौटने में जल्दी करना। चौदह वर्ष वियोग का दुःख झेलना कठिन काम है। मैं निष्ठुर हूँ। भूल जाने लायक हूँ। पर माता का नाता स्मरण करके तुम भूल न जाना।

फिरिहि दसा बिधि बहुरि कि मोरी । देखिहों नयन मनोहर जोरी ॥
सुदिन सुघरी तात कब होइहि । जननी जिअत बदन बिधु जोइहि ॥४॥

अर्थ : हे विधाता ! क्या मेरी दशा भी फिर फिरेगी । मैं इस मनोहर जोरी को आँख से देखूँगी वह शुभ दिन और शुभ घरो बेटा ! कब आयेगी जब कि माता तुम्हारा चाँद सा मुखड़ा जीते जी फिर देखेगी ।

व्याख्या : कैसी ग्रहदशा मेरे ऊपर आयी हुई है । क्या मेरे दिन फिर लौटेंगे । यह मनोहर जोड़ी आँख के ओझल चौदह वर्ष के लिए हुआ चाहती है । क्या मैं उस शुभ दिन और उस शुभ घड़ी तक जीती रहूँगी जब कि यह जोड़ी वन से लौटेगी और फिर मैं तुम्हारे मुखचन्द्र का दर्शन पाऊँगी । उस दिन के सुख को याद करके माता कहती है :

दो. बहुरि बच्छ कहि लालु कहि, रघुपति रघुबर तात ।
कबहिं बोलाइ लगाइ हियँ, हरखि निरखिहउँ गात ॥६८॥

अर्थ : फिर कब वत्स कहकर, लाल कहकर, रघुपति, रघुवर और तात कहकर बुलाऊँगी और हृदय से लगाकर हर्षित होकर तुम्हें देखूँगी ।

व्याख्या : कौसल्याम्बा इन्हीं पाँच प्यार के शब्दों से रामजी को पुकारती थीं । कभी वत्स, कभी लाल, कभी रघुपति, कभी रघुवर और कभी तात करके सम्बोधन करती थीं । वह कहती हैं कि चौदह वर्ष ऐसा सम्बोधन के लिए अवसर न मिलेगा । किसे ऐसा सम्बोधन करके मैं बुलाऊँगी और हृदय में लगाकर हर्षित होकर शरीर की सुन्दरता देखूँगी । अतः मेरे सुख के दिन गये । अब देखें कब वे सुख के दिन लौटते हैं । मैं आशा लगाये उसी दिन की बाट जोहती रहूँगी ।

लखि सनेह कातरि महतारी । बचनु न आव बिकल भइ भारी ॥
राम प्रबोधु कीन्ह बिधि नाना । समउ सनेहु न जाइ बखाना ॥१॥

अर्थ : रामजी ने माता को स्नेह से ऐसा विह्वल देखकर कि मुख से वचन नहीं निकल रहा है और अत्यन्त विकल है नाना प्रकार से समझाया । उस समय का स्नेह वर्णन करते नहीं बनता ।

व्याख्या : कौसल्याजी बड़ी धैर्यवाली हैं । परन्तु माँ हैं । पुत्रवधू के विरह से अवलम्बनहीन सी होकर अत्यन्त विकल हो गयी हैं । सनेह कातरि : से मन की दशा कहा । बचनु न आव : से वाणी की दशा कहा । बिकल भई भारी : से तन की दशा कहा । रामजी ने देखा कि माँ अत्यन्त विकल है । साथ ले जाना धर्म नहीं हैं । महाराज का त्याग अनुचित है । अतः अनेक प्रकार से समझाया । यथा :

कवित्त

देखिवे में दुःख जो अपार दिखरात मात, किये ते विचार तामें कछुहू न सार है ।
जाते होत मिलन विछोह पुनि ताते होत, योग औ वियोग को ही रूप संसार है ॥

याते सुख दुख को समान मानि धीर धरो, वर्ष दस चार बीतने में नहिं वार है।
तेरे ही असीस लौटि वन ते नवैहों सीस, ईश की कृपा से पासे ढरत सुढार हैं॥

कवि कहते हैं कि उस समय जैसा प्रेम उमड़ा उसका बखान नहीं किया जा सकता।

तब जानकी सासु पग लागी। सुनिअ माय मैं परम अभागी॥
सेवा समय दैअँ बनु दीन्हा। मोर मनोरथु सफल न कीन्हा॥२॥

अर्थ : तब जानकी सास के पाँव पड़ीं और कहने लगीं कि माँ सुनो! परम अभागिन तो मैं हूँ। मेरा सेवा करने का समय था। सो दैव ने वन दे दिया। मेरा मनोरथ पूरा नहीं किया।

व्याख्या : विदा होने के लिए पहिले रामजी पाँव पड़े। यथा : लगे मातुपद आसिस पाई। इसके बाद जानकोजी के प्रणाम करने की बारी थी। पर माता ऐसी विकल हो गयी कि रामजी को बहुत भाँति समझाना पड़ा। जब कुछ शान्ति हुई तब जानकी पाँव पड़ीं और बोलीं कि माँ परम अभागिनी तो मैं हूँ। आप अपने को अभागिनी क्यों मानती हैं। आपने तो अपना कर्तव्य भलीभाँति निवाहा। मुझे पालपोसकर बड़ी किया। अब मैं इतनी बड़ी हुई कि आपकी सेवा कर सकूँ। सो दैव दुर्विपाक से मैं सेवा से वञ्चित हो रही हूँ। मेरा इतना पुण्य नहीं कि आपकी सेवा कर सकूँ। मेरा मनोरथ मेरे मन में ही रह गया। अतः अभाग मेरा है। सेवा का छीना जाना बड़ा भारी अभाग्य है। सो मुझसे आपकी सेवा छिन गयी। आपको छोड़कर वन जाना पड़ा।

तजब छोभु जनि छाँड़िअ छोहू। करमु कठिन कछु दोसु न मोहू॥
सुनि सिय बचन सासु अकुलानी। दसा कवनि बिधि कहौं बखानी॥३॥

अर्थ : आप दुःख को छोड़ देना पर छोह न छोड़ना। कर्म बलवान् है। मेरा भी कोई दोष नहीं हैं। सीताजी का वचन सुनकर सास व्याकुल हो गयीं। उस दशा का वर्णन कैसे करें।

व्याख्या : मन की अस्थिरता को क्षोभ कहते हैं। सीताजी कहती हैं कि मेरे जाने से जो आपको क्षोभ हो रहा है : सिय बन बसब तात केहि भाँती। सो क्षोभ को आप छोड़ दीजियेगा। यह क्षोभ आपको कष्ट देगा। पर छोह बनाये रखियेगा। क्योंकि आपके छोह से ही हमारा कल्याण है। मैं जो इस समय आपको छोड़ रही हूँ सो दैववश होकर छोड़ रही हूँ। इच्छा पूर्वक नहीं छोड़ रही हूँ। ऐसा ही कर्म फलोन्मुख हुआ है जिससे आपको छोड़ना पड़ रहा है।

सीताजी के प्रेम और विवेकमय वचन सुनकर इनके गुणों को स्मरण करके फिर चित्त अशान्त हो उठा। व्याकुल हो गयीं। उनकी दशा कहने की कोई विधि ही नहीं बैठती। तजब छोभ जनि छाड़अ छोहू। इस वाक्य में जो भाव भरे हुए हैं

उन्होंने कौसल्याजी के हृदय में सीताजी की कीमत और बढ़ा दी। अतः रामजी के समझाने से जो विकलता कुछ कम हुई थी वह और बढ़ गयी।

बारहिं बार लाइ उर लीन्ही। धरि धीरजु सिख आसिष दीन्ही॥
अचल होउ अहिवातु तुम्हारा। जब लगि गंग जमुन जल धारा॥४॥

अर्थ : बार बार कौसल्याजी ने सीताजी को हृदय से लगाया। धैर्य धारण करके शिक्षा दी और आशीर्वाद दिया कि जब तक गङ्गा और यमुना में जल धारा है तब तक तुम्हारा सोहाग बना रहे।

व्याख्या : सीता जी को हृदय से लगा लिया। एक बार के लगाने से सन्तोष नहीं होता। अतः बार बार हृदय से लगाती हैं। फिर धैर्य धारण करके वन में किस प्रकार से रहना चाहिए इस बात की शिक्षा दी और आशीर्वाद दिया।

स्त्रियों के लिए सोहाग से बढ़कर और कुछ नहीं है। उसके अचल होने का आशीर्वाद सास दे रही है। पर संसार में अचल कुछ भी नहीं सभी ओर से चलाचली है। यहाँ नित्यता प्रवाह रूपेण ही सम्भव है। अतः गङ्गा और यमुना की उपमा दी। अन्तिम कलियुग में गङ्गा का लोप कहा जाता है। अतः यमुना को भी साथ में कहा। अथवा सोहाग के बने रहने में दोनों का बना रहना आवश्यक है। गङ्गा यमुना दोनों मिलकर बहनेवाली नदियों की उपमा दी।

दो. सीतहि सासु असीस सिख, दीन्हि अनेक प्रकार।
चली नाइ पद पदुम सिरु, अति हित बारहिं बार॥६९॥

अर्थ : सीताजी को सास ने अनेक प्रकार से आशीर्वाद दिया और शिक्षा दी। सीताजी अत्यन्त प्रेम से बार बार चरणों में सिर झुकाकर चलीं।

व्याख्या : पहिले कहा था : मैं सिख देउँ जानकिहि सोई। सो इस समय वनवास के विषय में शिक्षा दी और सौभाग्यवती भव, पुत्रवती भव आदि अनेक प्रकार से आशीर्वाद दिया। अब सीताजी विदा होती हैं। अत्यन्त प्रेम से बार बार चरण कमलों में प्रणाम करती हैं। सास ने अत्यन्त प्रेम से बार बार हृदय से लगाया। वधू फिर भी अत्यन्त प्रेम से बार बार चरण कमलों में नत होती है।

१२. राम लक्ष्मण संवाद

समाचार जब लछिमन पाये। ब्याकुल बिलख बदन उठि धाये॥
कंप पुलक तन नयन सनीरा। गहे चरन अति प्रेम अधीरा॥१॥

अर्थ : जब लक्ष्मणजी ने समाचार पाया व्याकुल होकर म्लान मुख किये हुए उठकर दौड़ पड़े। उनके शरीर में कम्प था। आँखों में आँसू भरा था। प्रेमाधिक्य से अधीर होकर चरण पकड़ लिया।

व्याख्या : समाचार ही ऐसा था कि जो सुनता था विकल हो जाता था।

यथा : जो जहँ सुनै धुनै सिर सोई। बड़ विषाद नहिं धीरज होई। कौसल्याजी के लिए कहा गया : सहमि सूखि सुनि सीतल बानी। जिमि जवास परे पावस पानी। कहि न जाइ कछु हृदय विषादू। मनहु मृगी सुनि केहरि नादू। नयन सजल तन थर थर काँपी। माजहि खाइ मीन जनु मापी। सीताजी : समाचार तेहि समय सुनि सीय उठीं अकुलाइ। यहाँ तो : बारहिं ते निजहित पति जानी। लछिमन राम चरन-रति मानी। अतः लक्ष्मणजी को समाचार सुनते ही ऐसी व्याकुलता बढ़ी कि विषाद की रेखा मुख पर स्पष्ट दिखलायी पड़ी और दौड़ पड़े। घर में न किसी से कुछ कहा न सुना। मानो किसी से कोई सम्बन्ध ही नहीं है। अति उत्सुकता साथ जाने की है। कौसल्याजी के महल के बाहर आते ही आते रामजी के चरणों को व्याकुल होकर जा पकड़ा। प्रेमाधिक्य के कारण धैर्य छूटा जा रहा है। शरीर में काँप है। पुलक है। आँखों में आँसू भरा है।

कहि न सकत कछु चितवत ठाढ़े। मीनु दीनु जनु जल तें काढ़े ॥
सोचु हृदय बिधि का होनिहारा। सबु सुखु सुकृतु सिरान हमारा ॥२॥

अर्थ : कुछ भी बोल न सके। खड़े खड़े देखने लगे। जैसे जल से निकाली हुई मछली दीन हो जाय। मनमें सोच रहे हैं कि हे विधाता ! क्या होनेवाला है। मेरा तो सब सुख और पुण्य समाप्त हो गया।

व्याख्या : कौसल्याजी की भाँति इनके मुख से भी बोली नहीं निकल रही है। इनके जाकर चरण पकड़ लेने से सरकार खड़े हो गये। अब लक्ष्मणजी को जो कुछ कहना है उसके लिए निवेदन करने का अवसर है। पर इनकी दशा जल से बाहर निकाली हुई मछली की सी हो रही है। अनिमेष नयन से खड़े खड़े देख रहे हैं। मछली को पलक होती नहीं। बोल सकती नहीं। जल के बिना दीन हो जाती है और उस दीनता के व्यक्त करने का भी कोई साधन नहीं। होनहार क्या है। कुछ सूझ नहीं पड़ता। बस इतनी बात समझ में आ रही है कि मेरा सब पुण्य समाप्त हो गया। सुख समाप्त होने पर भी यदि पुण्य शेष रहे तो काल पाकर फिर सुख हो सकता है और यदि पुण्य भी समाप्त हो जाय तो फिर सुख की आशा ही नहीं। यथा : नाथ सकल सुख साथ तुम्हारे। सरद बिमल बिधु बदन निहारे।

मो कहुँ काह कहब रघुनाथा। रखिहहिं भवन कि लेहहिं साथा ॥
राम बिलोकि बंधु कर जोरें। देह गेह सब सन तृनु तोरें ॥३॥

अर्थ : मुझे रघुनाथजी क्या कहेंगे ? घर में रक्खेंगे कि साथ लेंगे। रामजी ने भाई को हाथ जोड़े हुए देह घर सबकी उपेक्षा तृण के समान किये हुए देखा।

व्याख्या : रघुकुल के नाथ हैं। जो इनकी आज्ञा होगी सो हटाया नहीं जा सकता। करना ही पड़ेगा। सीताजी को साथ ले लिया। देखें मेरे लिए क्या आज्ञा होती है। यद्यपि वे अर्धाङ्गनी हैं। पर मैंने भी बचपन से साथ नहीं छोड़ा है। परिस्थिति ऐसी है कि मुझे घर रहने के लिए छोड़ भी सकते हैं और सेवा के लिए

साथ भी ले सकते हैं। सीताजी के साथ होने से मेरी बड़ी आवश्यकता है। अतः लक्ष्मणजो संशय में पड़े हुए हैं।

इधर रामजी ने लक्ष्मण को देखा कि हाथ जोड़े खड़े हैं। कुछ कहते नहीं। इतना कहने से सब कुछ कह दिया। लक्ष्मण के देखने से मालूम होता है कि घर की उपेक्षा तृण की भाँति किये हुए तो ये आ ही रहे हैं देह की भी इन्हें अपेक्षा नहीं है। स्वयं चक्रवर्तीजी की भाँति बिना जल के मछली की सी दशा हो रही है।

बोले बचनु राम नयनागर। सील सनेह सरल सुख सागर॥
तात प्रेम बस जनि कदराहू। समुझि हृदय परिनाम उछाहू॥४॥

अर्थ : नीति में निपुण शील स्नेह सरलता और सुख के सागर कहने लगे कि हे तात ! प्रेम के वश होकर धैर्य न छोड़ो। हृदय में समझो कि इसका परिणाम उत्साहमय है।

व्याख्या : सरकार नीति में निपुण हैं। ऐसे समय में लक्ष्मणजी को अयोध्या से हटाना नहीं चाहते। शील और स्नेह के कारण घर रहने की आज्ञा देते भी नहीं बनता। सरल हैं। जो बात मनमें है वही कहेंगे और सुख के सागर हैं। उनके मनमें कोई विकार नहीं है। इस समय भी सुखी हैं। सागर चार हैं। इसलिए शील स्नेह सरलता और सुख चारों का समुद्र कहा।

सरकार ने कहा कि मनुष्य को सात्त्विक सुख के लिए यत्नशील होना चाहिए। जो आरम्भ में विष की भाँति प्रतीत होता है और परिणाम में अमृत सा मधुर है वही सात्त्विक सुख है। मेरे वन जाने का परिणाम बड़ा उत्साहमय होगा। बहुत बड़े यश की प्राप्ति होगी। अतः प्रेम के वश धैर्य त्याग न करो। धैर्य छोड़ने की कोई बात नहीं है।

दो. मातु पिता गुरु स्वामि सिख, सिर धरि करहिं सुभायँ।
लहेउ लाभु तिन्ह जनमकर, नतरु जनमु जग जायँ॥७०॥

अर्थ : जो स्वभाव से ही माता पिता गुरु और स्वामी की शिक्षा शिरोधार्य करते हैं उनका ही जन्म सुफल है। नहीं तो जगत् में जन्म ही व्यर्थ है।

व्याख्या : जो शिक्षा भगवती को दी थी वही लक्ष्मणजी को दे रहे हैं। यथा : सहज सुहृद गुरु स्वामि सिख जो न करै हित मानि। सो पछिताइ अघाइ उर अबस होइ हित हानि। भेद इतना ही है कि सीताजी का साथ चलना धर्मतः प्राप्त है लक्ष्मणजी का वैसा नहीं है। सरकार अपने लिए कहते हैं कि मैं तो अपना जन्म सफल करने जाता हूँ। अतः यहाँ दुःख की कोई चर्चा नहीं है। तुम भी माता पिता की सेवा करके जन्म सफल करो। तुम्हारा धर्म माता पिता की सेवा है। मेरे साथ चलना तुम्हारा धर्म नहीं है। यदि माता पिता की आज्ञा न मानें तो मेरा जन्म होना ही निष्फल हो जायगा। तुम्हें आज्ञा है नहीं। तुम माता पिता की सेवा छोड़कर जन्म को व्यर्थ क्यों करते हो !

अस जिय जानि सुनहु सिख भाई। करहु मातु पितु पद सेवकाई॥
भवन भरतु रिपुसूदनु नाहीं। राउ बृद्ध मम दुख मन माहीं॥१॥

अर्थ : हे भाई! ऐसा मन में समझकर मेरी शिक्षा सुनो। माता पिता के चरणों की सेवा करो। भरत शत्रुघ्न नहीं हैं। महाराज वृद्ध हुए। तिस पर उनके मन में मेरा दुःख है।

व्याख्या : तुम भाई हो। स्त्री की दूसरी बात है। उसका धर्म मेरी सेवा है। उसने मेरी शिक्षा यदि नहीं सुनो चलने के लिए हठ किया तो उसके धर्मानुकूल था। तुम्हारा धर्म तो माता पिता की सेवा है। उनके सामने भाई की क्या गिनती है। तुम उनकी सेवा करो। यदि भरत शत्रुघ्न घर होते तो भी एक बात थी कि वे माता पिता की सेवा कर लेंगे और राज्य भी सँभाल लेंगे। सो वे भी घर नहीं हैं। यदि कहो कि महाराज तो हुई हैं उन्हें सेवकों का क्या घाटा है? तो यह बात भी नहीं। महाराज वृद्ध हुए। अब उनका किया कुछ हो नहीं सकता। तिस पर मेरे लिए वे दुःखी हैं। उनसे कुछ करने धरने की आशा नहीं की जा सकती। इस दुःख की अवस्था में सेवकों से उनको सान्त्वना नहीं हो सकती। तुम्हारे पास रहने से ही उन्हें ढाँढ़स बँध सकता है।

मैं बन जाउँ तुम्हहि लेइ साथा। होइ सबहि बिधि अवध अनाथा॥
गुरु पितु मातु प्रजा परिवारू। सब कहुँ परइ दुसह दुख भारू॥२॥

अर्थ : यदि मैं तुम्हें साथ लेकर वन चला जाऊँ तो सब प्रकार से अवध अनाथ हो जायगा। गुरु पिता माता और कुटुम्ब सभी पर न सहने योग्य दुःख का बोझा आ पड़ेगा।

व्याख्या : सीताजी के साथ ले जाने से अवध अनाथ न होगा। इस समय मेरे ही जाने से अवध के लोग अपने को अनाथ समझेंगे। यदि तुम साथ चले तब तो अवधनाथ के रहते भी प्रजा अपने को सब विधि से अनाथ समझेगी। तुम्हारे रहने से सबको ढाढ़स बँधा रहेगा कि कम से कम लक्ष्मण तो हैं। सब सँभालेंगे। गुरु पिता और माता राज्यरक्षक और प्रजा तथा परिवार रक्ष्य हैं। सो सब पर नहीं सहने योग्य दुःख का बोझा आ पड़ेगा। मैं तुम्हें दुःख का बोझा सँभालने के लिए यहाँ छोड़ता हूँ। जिसमें इन लोगों को जिनके ऊपर दुःख का आना किसी प्रकार इष्ट नहीं है असह्य दुःख न आ पड़े।

रहहु करहु सब कर परितोषू। नतरु तात होइहि बड़ दोषू॥
जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी। सो नृपु अवसि नरक अधिकारी॥३॥

अर्थ : तुम घर रहो। सबका परितोष करो। नहीं तो भाई तुम्हें बड़ा दोष लगेगा। जिसके राज्य में प्रिय प्रजा दुःखी होती है वह राजा निश्चय नरक का पात्र हो जाता है।

व्याख्या : इसलिए तुम्हारा साथ चलना किसी प्रकार से उचित नहीं है। तुम घर रहो और सबका परितोष करो। यदि तुमने ऐसा न किया तो बड़ा भारी दोष होगा। सबके दुःख के कम करने का सामर्थ्य रहते हुए भी जो दूर नहीं करता केवल मोह के वश यथेच्छाचरण करता है वह निश्चय दोषी है। हे भाई! तुम व्यर्थ दोषी क्यों बनते हो ? दूसरी सबसे बड़ी बात यह है कि जो नरक से पिता की रक्षा करे वही पुत्र है। जो ऐसा नहीं करता वह पुत्र कैसा ? अरक्षित होकर प्रजा के दुःखी होने का पाप महाराज पर पड़ेगा। क्योंकि राजा वे ही हैं। उनका परलोक यदि हम लोगों के रहते बिगड़ा तो हम लोगों का पुत्र होना ही व्यर्थ हो जायगा। रञ्जनात् राजा। राजा शब्द का अर्थ ही यह है कि प्रजा को सुख देने-वाला। सो हम लोगों के रहते महाराज की गणना शोचनीयों में नहीं होने पावे। यथा : सोचिय नृपति जो नीति न जाना। जेहि न प्रजा प्रिय प्रान समाना।

रहहु तात असि नीति बिचारी। सुनत लखनु भये ब्याकुल भारी ॥
सिअरे बचन सूखि गये कैसें। परसतु तुहिन तामरसु जैसें ॥४॥

अर्थ : ऐसी नीति बिचार करके तुम घर पर रह जाओ। सुनते ही लक्ष्मणजी भारी व्याकुल हुए। शीतल वाणी से ऐसे सूख गये जैसे पाला के छू जाने से कमल सूख जाता है।

व्याख्या : हे भाई! नीति का विरोध नहीं करना चाहिए। नीति विरोध सोहाय न मोहीं। अतः न चाहते हुए भी नीति का विचार करके घर रह जाओ। सुनते ही लक्ष्मणजी अत्यन्त व्याकुल हो उठे। पहिले ही : ब्याकुल बिलखि बदन उठि धाये। अब तो भारी व्याकुल हुए। सरकार के शीतल वचन सुनकर वे तो सूख गये कि वही बात तो हुई जिसे मैं डरता था। श्रीगोस्वामीजी उपमा देते हैं कि जैसे शीतल पाला के स्पर्श से कमल सूख जाता है। भाव यह कि लक्ष्मणजी भी चक्रवर्तीजी की भाँति विवर्ण हो गये।

दो. उतरु न आवत प्रेम बस, गहे चरन अकुलाइ।
नाथ दासु मइँ स्वामि तुम्ह, तजहु त काह बसाइ ॥७१॥

अर्थ : उत्तर रहते हुए भी प्रेम के वश हो जाने से देते नहीं बनता। आकुल होकर चरण पकड़ लिया : कहने लगे कि : नाथ! मैं दास हूँ। आप स्वामी हैं। यदि त्याग दें तो मेरा वश क्या है।

व्याख्या : जितनी बातें सरकार ने कहीं लक्ष्मणजी के पास सबके उत्तर हैं। पर लक्ष्मणजी प्रेम के पराधीन हो गये हैं। देना चाहने पर भी देने में असमर्थ हैं। पहिले : गहे चरन अति प्रेम अधीरा। अब : गहे चरन अकुलाइ। विरह निश्चित मालूम होता है। अतः व्याकुल हैं। चुप रह जाने से स्वीकृति द्योतित होती है। अतः दो शब्दों में जो कुछ कहना था सब कह दिया। आप स्वामी हैं। मैं दास हूँ। यदि त्याग करें तो क्या वस है। भाव यह कि आप बारबार भाई कहते हैं और

भाई को जैसी शिक्षा देनी चाहिए वैसी शिक्षा देते हैं। पर मैं तो दास हूँ। वारहिं ते निज हित पति जानी। लछिमन रामचरन रति मानी। आप स्वामी हैं। स्वामी को दास के परित्याग का अधिकार है। यदि आप त्याग करते हैं तो मेरा कौन जोर है। ये सब कही हुई बातें मेरे चलने में बाधक नहीं हैं। आपकी आज्ञा बाधक है।

जिस भाँति ज्ञान और उपासना : भक्ति की समस्या पर उत्तरकाण्ड में विचार है उसी भाँति कर्म और भक्ति की समस्या पर यहाँ प्रकाश डाला गया है।

दीन्हि मोहि सिख नीकि गोसाईं। लागि अगम अपनी कदराईं ॥
नर बर धीर धरम धुरधारी। निगम नीति कहुँ ते अधिकारी ॥१॥

अर्थ : गोसाईं ने तो मुझे अच्छी शिक्षा दी। पर अपनी कायरता से मुझे अगम जान पड़ती है। जो धीर धर्म की धुरा के धारण करनेवाले श्रेष्ठ पुरुष हैं वे ही वैदिक नीति के अधिकारी हैं।

व्याख्या : अब लक्ष्मणजी प्रत्येक बातों के विषय में कुछ कहेंगे। क्योंकि वे सब उन्हें स्वीकार नहीं हैं। लक्ष्मणजी कहते हैं कि सरकार की शिक्षा बड़ी पवित्र बड़े उदार भाव की तथा सुगम है। पर मैं उसका अधिकारी नहीं। मुझसे ऐसा हो नहीं सकता। परिणाम में उछाह होगा। इस भरोसे मुझसे यह दुःख नहीं सहा जायगा। मुझमें साहस की बड़ी कमी है। मैं कायर हूँ। यह विनय : तात प्रेम बस जनि कदराहू के उत्तर में है।

इसके बाद : मातु गुरु स्वामि सिख सिर धरि करहि सुभाय इत्यादि के उत्तर में कहते हैं कि सरकार ने वैदिकी नीति का वर्णन किया जिससे जन्म सफल होता है। मैं उसका भी अधिकारी नहीं। धीर पुरुष जो धर्म की धुरा के धारण में समर्थ हैं वे ही वैदिकी नीति के अधिकारी हैं।

मैं सिसु प्रभु सनेह प्रतिपाला। मंदरु मेरु कि लेहिं मराला ॥
गुरु पितु मातु न जानउँ काहू। कहउँ सुभाउ नाथ पतिआहू ॥२॥

अर्थ : मैं तो बच्चा हूँ। सरकार के प्रेम से पला हूँ। क्या हंस मन्दर मेरु उठा सकता है। मैं गुरु पिता माता किसी को नहीं जानता। मैं स्वभाव कहता हूँ नाथ विश्वास करें।

व्याख्या : सरकार जानते हैं कि मैं भी शिशु ही हूँ। संसार के प्रपञ्च से अपरिचित हूँ। सरकार ने कहा भी है : सूध दूध मुख करिय न कोहू। कमल के पत्ते पर बैठनेवाले हंस में इतना सामर्थ्य कहाँ कि मन्दर मेरु को उठा सके। मुझे तो सरकार ने स्नेह से पाला है। कभी कोई बोझा मेरे ऊपर आने ही नहीं दिया। मैं मेरु मन्दर सदृश गुरु भारवाले निगम धर्म को कैसे उठा सकता हूँ? यह मेरे सामर्थ्य के बाहर की बात है। मैं अवध को सनाथ नहीं कर सकता।

अब : गुरु पितु मातु प्रजा परिवारू। सब कहँ परइ दुसह दुख भारू आदि का उत्तर देते हुए लक्ष्मणजी कहते हैं कि मैं गुरु पिता माता किसी को नहीं जानता। मैं अपने हृदय का भाव कहता हूँ। सरकार विश्वास करें। भाव यह कि सबकी ममता का तागा इकट्ठा करके लक्ष्मणजी डोरी बरकर सरकार के चरणों में दृढ़ता के साथ बाँध चुके हैं। अतः कहते हैं :

जहँ लगि जगत सनेह सगाई। प्रीति प्रतीति निगम निजु गाई ॥
मोरें सबइ एक तुम्ह स्वामी। दीनबंधु उर अंतरजामी ॥३॥

अर्थ : जगत् में जितने नेह और नाते हैं और स्वयं वेद ने जिस प्रीति और प्रतीति का गान किया है। हे स्वामी दीनबन्धु, उर प्रेरक! मेरे तो सब कुछ आप ही हैं।

व्याख्या : त्वमेव माता च पिता त्वमेव त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव। त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव त्वमेव सर्वं मम देवदेव। यह भाव मुझे स्वभावसिद्ध है। अतः मेरे सर्वस्व आप हो हैं। मैं बिना आपके दीन हूँ। आप दीनबन्धु हैं। अपना साथ न छोड़ाइये। आप स्वामी हैं। नाथ हैं। मुझे अनाथ न कीजिये। आप अन्तर्यामी हैं। बिना आपकी प्रेरणा मेरी बुद्धि ऐसी हुई कैसे ?

धरम नीति उपदेसिअ ताही। कीरति भूति सुगति प्रिय जाही ॥
मन क्रम बचन चरन रत होई। कृपासिंधु परिहरिअ कि सोई ॥४॥

अर्थ : धर्म नीति उसे उपदेश करना चाहिए। जिसे कीर्ति ऐश्वर्य और सद्गति प्रिय हो। मनसा वाचा कर्मणा जो चरण में रत हो हे कृपासिन्धु! क्या उसे छोड़ा जाता है ?

व्याख्या : रहहु करहु सबकर परितोषू। नतरु तात होइहि बड़ दोषू इत्यादि का उत्तर देते हुए कहते हैं कि मुझे न कीर्ति चाहिए न ऐश्वर्य चाहिए और न शुभगति चाहिए। जिन्हें इन सब वस्तुओं की अपेक्षा हो उन्हें धर्म नीति का उपदेश उचित है। यहाँ तो : सो सब करम धरम जरि जाऊ। जहँ न रामपद पंकज भाऊ। जोग कुजोग ज्ञान अज्ञानू। जहँ नहि राम प्रेम परधानू सिद्धान्त है। मैं तो मनसा वाचा कर्मणा सरकार का दास हूँ। मेरे छोड़ने का तो प्रश्न ही नहीं उठाना चाहिए।

दो० करुनासिंधु सुबंधु के, सुनि मृदु बचन बिनीत।
समुझाए उर लाइ प्रभु, जानि सनेह सभीत ॥७२॥

अर्थ : करुणासिन्धु रामजी ने सुबन्धु के कोमल और विनीत वचन सुनकर स्नेह से डरा हुआ जानकर हृदय में लगाकर समझाया।

व्याख्या : रहहु तात असि नीति बिचारी। सुनत लखनु भये व्याकुल भारी। लक्ष्मणजी की व्याकुलता देखकर करुणासिन्धु प्रभु ने जाना कि यह सुबन्धु है।

स्नेह से सभीत हो गया। अतः व्याकुलता मिटाने के लिए कलेजे से लगा लिया और समझाया। यथा :

सवैया : तुम्हरोइ भरोस हमेस हमें तुमही मम जीवन को रखवारे।
तजि देह सकौं न सकौं तजि तोहि तुही विजयानँद प्रान पियारे॥
मन में न धरो कछु हानि गलानि करें हम सोइ जोई निरधारे।
यह प्रेम को नेम न टारे टरै हम भक्तन के अरु भक्त हमारे॥
पाँख पखेरुन को प्रिय ज्यों फनि को मनिज्यों करिको कर जैसे।
तू प्रिय मोहि तथा विजयानंद आनत क्यों उर ख्याल अनैसे॥
देखि दुखी परिवार कह्यो सो यथा रुचि तात करो तुम तैसे।
वाम तजौ धन धाम तजौ वरु प्रान तजौं मैं तजौ तोहि कैसे॥

माँगहुँ बिदा मातु सन जाई। आवहु बेगि चलहु बन भाई॥
मुदित भये सुनि रघुबर बानी। भयउ लाभ बढ़ गइ बड़ि हानी॥१॥

अर्थ : हे भाई ! माताजी से विदा माँगो। जल्दी आओ और वन चलो। रामजी की वाणी सुनकर प्रसन्न हो गये। बड़ा भारी लाभ हुआ और बड़ी भारी हानि दूर हुई।

व्याख्या : रामजी के पास : मन क्रम बचन चरन रति होई। कृपा सिंधु परिहरिअ कि सोई का उत्तर नहीं था। अतः कहा कि मेरी ओर से अब रोक नहीं है। यदि माता आज्ञा दे दे। माता की आज्ञा सर्वोपरि है। वेद ने पहिले : मातृदेवो भव कहा। पितृदेवो भव पीछे कहा। यति पिता से भी वन्द्य है पर उसे भी माता की वन्दना का विधान है। पर सुमित्रा माता आज्ञा दे देंगी। तुम जाओ उनसे आज्ञा माँगो और वन चलने के लिए जल्दी करो। सरकार को वन जाने की बड़ी जल्दी है। माता ने कहा है : होत प्रातु मुनि बेष धरि जौं न राम बन जाहिं इत्यादि। अतः सीताजी से भी कहा : वेगि करहु बन गवन समाजू।

वन गमन का समाचार सुनकर व्याकुल हो गये थे। सो सरकार की वाणी सुनकर प्रसन्न हो गये। क्योंकि बड़ा भारी लाभ हुआ और बड़ो भारी हानि गयी। सरकार की सेवा : भक्ति ही लाभ की पराकाष्ठा है और सेवा न करना हो बड़ी भारी हानि है। यथा : लाभ कि कछु हरि भगति समाना। जेहि गावहिं श्रुति संत पुराना। हानि कि कछु एहि सम जग भाई। भजिअ न रामहिं नर तनु पाई। अतः लक्ष्मण जी प्रसन्न हो उठे।

हरषित हृदय मातु पहिं आए। मनहुँ अन्ध फिरि लोचन पाए॥
जाइ जननि पग नायेउ माथा। मनु रघुनंदनु जानकि साथा॥२॥

अर्थ : प्रसन्न मन से माता के पास आये। मानो अन्धे को फिर से आँख मिल गयी। जाकर माता के चरणों में सिर नवाया। परन्तु मन तो रामजानकी के साथ था।

व्याख्या : जन्मान्ध को अन्धेपन का दुःख नहीं होता : जन्मान्ध को यदि आँख मिल जाय तो वह बड़ी विपत्ति में पड़ता है। इतना बड़ा संसार उसके सामने आ जाता है। उसके समझ में नहीं आता कि यह क्या है? कई महीने की शिक्षा के बाद उसे बन्द दरवाजा और खुले दरवाजा का भेद मालूम होता है। रंग पहिचानने में महीनों लग जाते हैं। उसे आँख मिलने से आनन्द नहीं होता। आनन्द तो उसको होता है जो बीच में अन्धा हो जाता है और फिर आँख हो जाती है। लक्ष्मणजी को राम जानकी दोनों आँखों की भाँति थे। उनके विरह में अन्धे से हो गये थे। सूझ नहीं पड़ता था कि क्या होनेवाला है। जब सरकार ने साथ वन चलने को कहा तो मानो गयी हुई आँखें फिर मिल गयीं। ऐसी प्रसन्नता हुई। उसी खुशी से माँ के पास आये।

जाकर माँ को प्रणाम किया। पर मन उड़ा हुआ था। वह तो राम जानकी के साथ था। मन दूसरी जगह है। प्रणाम दूसरी जगह हो रहा है। रसम की तामीली मात्र हो रही है।

पूछे मातु मलिन मनु देखी। लषन कही सब कथा बिसेखी॥
गई सहमि सुनि बचन कठोरा। मृगी देखि दव जनु चहुँ ओरा॥३॥

अर्थ : मलिन मन देखकर माता ने पूछा। तब लक्ष्मणजी ने सब विशेष कथा कह सुनायी। कठोर वचन सुनकर। माँ सहम गयी। जैसे चारों ओर वन में आग लगी हुई देखकर मृगी घबड़ा जाय।

व्याख्या : चित्त के मल से ही मन मलिन होता है ऐसी बात नहीं है। चित्त के विक्षेप से भी मन मलिन होता है। जैसे चञ्चल जल प्रतिबिम्ब के स्पष्ट ग्रहण में असमर्थ होता है। यद्यपि लक्ष्मणजी प्रसन्न थे। पर माँ है उसने आभ्यन्तर चञ्चलता को देखा। जिसका कारण सरकार का वन जाना था। तब माता ने पूछा कि क्या बात है? रामजी के अभिषेक की बात तो माँ जानती ही थी। रात में कैकेयी के वरदान माँगनेवाली ही कथा विशेष थी। उसे लक्ष्मण ने कह सुनाया।

उस कठोर वचन को सुनकर एक बार तो माता सुमित्रा की वही दशा हो गयी जो महाराज की हुई थी। यथा : गयउ सहमि नहिं कछु कहि आवा। जिमि सचान बन झपटेउ लावा। माता सहम गयी। कुछ कहते सुनते न बना। उसे चारों ओर आग ही आग दिखायी पड़ी। १. पति वियोग २. पुत्र वियोग ३. राम सीता वियोग और ४. राज्य नाश। उसकी वही दशा हुई जो चारों ओर वन में आग देखकर मृगी को हो जाती है। बिधि कैकयी किरातनि कीन्हीं। जिन दव दुसह दसहु दिसि दीन्हीं।

लखन लखेउ भा अनरथ आजू। एहि सनेह बस करब अकाजू॥
माँगत बिदा सभय सकुचाहीं। जाइ संग बिधि कहिहि कि नाहीं॥४॥

अर्थ : लक्ष्मणजी ने लखा कि आज अनर्थ हुआ। यह प्रेम के वश होकर काम

बिगाड़ेगी। विदा माँगने में भय के साथ सङ्कोच होता था कि हे विधाता ! साथ जाने को कहेगी या नहीं।

व्याख्या : लक्ष्मणजी को साथ जाना है। इसलिए विदा माँगने आये हैं। पर माता की अवस्था देखकर विदा माँगने में सङ्कोच हो रहा है। कैसे विदा माँगें ? इसकी दशा तो बहुत खराब हो गयी। विदा माँगने में डर भी लगता है कि कहीं नहीं न कह बैठें। फिर रामजी साथ न ले जायँगे। विश्वामित्र यज्ञ रक्षा में जब मैं सरकार के साथ गया तब इसने नहीं रोका था। आज की बात कुछ दूसरी दिखायी पड़ती है। यह प्रेम के वश मुझे रोकना चाहती है और इसने यदि रोका तो अनर्थ हो गया। मेरा तो सब सुख सुकृत ही समाप्त हो जायगा।

दो. समुझि सुमित्रा राम सिय, रूपु सुसीलु सुभाउ।
नृप सनेह लखि धुनेउ सिरु, पापिनि दीन्हि कुदाउ ॥७३॥

अर्थ : सुमित्राजी ने राम जानकी के रूप शील और स्वभाव को स्मरण करके और चक्रवर्तीजी के प्रेम को लख करके सिर पीटने लगीं कि पापिनी ने भारी दगा दिया।

व्याख्या : सुमित्राजी ने राम जानकी के वनवास को सुनकर उनके रूप शील और स्वभाव का स्मरण किया कि ऐसे बेटे का वन भेजना क्या सामान्य बात है। फिर चक्रवर्तीजी के प्रेम पर दृष्टि डाला तो यही मालूम हुआ कि महाराज तो प्राण ही छोड़ देंगे। अतः अति व्याकुलता में सिर पीटने लगी। बोल उठी कि कैकेयी पापिनी है। इसके हृदय में बड़ा कपट था और सदा उसे छिपाये रही। मुँह से : भरत न मोहि प्रिय राम समाना कहती थी। सदा सबसे प्रेम से मिलती थी। यथा : कबहुँ न कियेउ सवति आरेसू। प्रीति प्रतीति जान सब देसू। इसीसे महाराज ने धोखा खाया। यथा : सिर धुनि लीन्ह उसास असि मारेसि मोहि कुठायँ।

धीरजु धरेउ कुअवसरु जानी। सहस सुहृद बोली मृदुबानी ॥
तात तुम्हारि मातु बैदेही। पिता रामु सब भाँति सनेही ॥१॥

अर्थ : कुअवसर जानकर धैर्य धारण किया। सुमित्राजी स्वभाव से ही सुहृद थीं। अतः मीठे वचन कहे। हे तात ! तुम्हारी तो माता जानकी है और सब भाँति स्नेह करनेवाले रामजी पिता हैं।

व्याख्या : आपत काल परिखिये चारी। धीरज धर्म मित्र अरु नारी। सो सुमित्राजी ने धैर्य धारण किया। सच्ची भलाई लक्ष्मणजी की देखी। लड़का रामजी की सेवा से वञ्चित हो जायगा ऐसा समझकर मीठे शब्दों में बोलीं। स्वभाव से सुहृद थीं। अतः रामजी के सम्मुख होते देखकर सहायक हुईं : जरउ सो संपति सदन सुख सुहृद मातु पितु भाइ। सनमुख होत जो राम पद करइ न सहस सहाइ।

लक्ष्मणजी विदा माँगने से सभीत और सङ्कुचित हो रहे हैं। इस बात को लख लिया। अतः उनके बिना कुछ कहे ही कहती हैं कि तुम्हारी माता तो जानकी

और पिता रामजी हैं। तुमने सदा हो ऐसी भावना की है और वे भी तुम्हें प्राण समान प्यारा मानते हैं। यथा : पुरजन प्रिय पितु मातु दुलारे। सिय रघुबीरहिं प्रान पियारे। तुम मुझसे आज्ञा माँगने क्यों आये ? उन्हीं से आज्ञा माँग लेना था।

अवध तहाँ जहँ राम निवासू। तहँइ दिवसु जहँ भानु प्रकासू ॥
जौं पै सीय राम बन जाहीं। अवध तुम्हार काजु कछु नाहीं ॥२॥

अर्थ : जहाँ राम रहें वही अयोध्या है। जहाँ सूर्य का प्रकाश हो वही दिन है। यदि राम जानकी वन जाते हैं तो अयोध्या में तुम्हारा कोई काम नहीं है।

व्याख्या : कहती है कि जिस भाँति राम जानकी पिता माता हैं उसी प्रकार जहाँ वे रहें वही अयोध्या है। यदि वे वन में रहें तो वन ही अयोध्या है। बिना राम के अयोध्या कैसी। यथा : लागति अवध भयावनि भारी। मानहु कालराति अँधियारी। उपमा देती हैं कि जहाँ सूर्य का प्रकाश हो वही दिन है। प्रकाश तो चन्द्र से भी होता है। अग्नि से भी होता है। पर दिन नहीं हो जाता। यथा : राका ससि षोड़श उर्वाहि तारागन समुदाइ। सकल गिरिन्ह दव लाइये बिनु रबि रात न जाइ। दिन तो सूर्य के प्रकाश से ही होता है। भाव यह कि रामजी के चले जाने से अवध का आनन्द चला जायगा और उनके बसने से जङ्गल में मङ्गल होगा। यथा : राम बास बन संपति भ्राजा। सुखी प्रजा जनु पाइ सुराजा इत्यादि।

यदि सीता राम वन जाते हैं तो तुम यहाँ रहकर क्या करोगे। अवध उजाड़ हो जायगा। तुम्हारे बसाये नहीं बसेगा। माँ जानती हैं कि बिना राम जानकी के यह जी नहीं सकता। लक्ष्मणजी के रख लेने पर कटुता बढ़ जाने की आशङ्का थी। अतः कहते हैं कि अवध तुम्हार काज कछु नांही। तुम्हारे रामजी के साथ रहने में ही कुशल है।

गुरु पितु मातु बंधु सुर साईं। सेइअहिं सकल प्रान की नाईं ॥
रामु प्रान प्रिय जीवन जी के। स्वारथरहित सखा सबही के ॥३॥

अर्थ : गुरु पिता माता बन्धु देवता और स्वामी इन सबकी सेवा प्राण के समान करनी चाहिए। राम तो प्राण से भी प्यारे हैं। प्राण के प्राण हैं और सबके स्वार्थ रहित सखा हैं।

व्याख्या : शरीर में पाँच प्राण हैं। प्राण अपान व्यान समान और उदान उसी भाँति पाँच बहिश्चर प्राण हैं : गुरु पिता माता भाई और स्वामी। अतः इनकी सेवा भी प्राण की भाँति ही करनी चाहिए। परन्तु रामजी तो प्राण के भी प्राण हैं। अतः प्राण से भी प्यारे हैं और सभी के स्वार्थ रहित सखा हैं। ईश्वर का जीव से स्वार्थ रहित सख्य है। द्वासुपर्णा सयुजा सखाया इत्यादि श्रुति प्रमाण है। यथा : ब्रह्म जीव इव सहज सनेहू। अतः इन बहिश्चर प्राणों की उपेक्षा करके भी राम जानकी की सेवा करनी चाहिए।

माता लक्ष्मणजी के सब प्रकार के भय और सङ्कोच का निराकरण करती

हैं। राम जानकी को माता पिता बतलाकर उनके निवास को अयोध्या बतलाकर भय दूर करती हैं और गुरु पिता माता भाई और देवता यद्यपि ये पाँचों बहिश्चर प्राण की भाँति हैं। पर इन्हें भी प्राण के प्राण स्वामी राम के लिए छोड़ा जा सकता है। यह कहकर सङ्कोच को दूर करती हैं।

पूजनीय प्रिय परम जहाँ तें। सब मानिअहिं राम के नातें ॥
अस जिय जानि संग बन जाहू। लेहु तात जग जीवन लाहू ॥४॥

अर्थ : जहाँ तक पूज्य और परम प्रिय हैं सबको राम के नाते से मानना चाहिए। ऐसा मनमें समझकर उनके संग वन जाओ और बेटा ! संसार में जीने का लाभ उठाओ।

व्याख्या : यदि राम से नाता है तभी पूज्य पूज्य हैं और प्रिय प्रिय हैं। यदि राम से नाता नहीं तो वे पूज्य भी नहीं प्रिय भी नहीं। उनका त्याग ही हितकर है। यथा : जाके प्रिय न राम बैदेही। तजिये ताहि कोटि वैरी सम यद्यपि परम सनेही। ऐसा मनमें निश्चय करके निश्चिन्त होकर वन में जाओ और अपने जीवन को सफल बनाओ। यथा : जीवन लाहु लखन भल पावा। सब तजि राम चरन मनु लावा।

दो. भूरि भाग भाजनु भयेउ, मोहि समेत बलि जाउँ।
जौं तुम्हरें मनु छाँड़ि छलु, कीन्ह राम पद ठाउँ ॥७४॥

अर्थ : यदि तुम्हारे मन ने छल छोड़कर रामजी के चरणों का आश्रय किया तो मैं तुम्हारी बलैया लेती हूँ। तुम तो हुए ही तुम्हारे साथ में भी बड़ी भाग्यवती हो गयी।

व्याख्या : जब तक राज्य की आशा थी तब तक रामजी के सेवन में स्वार्थ की भी सम्भावना थी। अब तो राज्य की कोई आशा नहीं। उलटा वन जाना पड़ा। इसी समय की सेवा सच्ची सेवा है। जिसमें स्वार्थ की गन्ध नहीं है ऐसे समय में रामचरणों का आश्रय करना अहोभाग्य है। सो तुम महाभाग्यवान् हुए और मुझे भी महाभाग्यवती बनाया। आज तुम्हारे होने से मैं भी परम भाग्यवती हुई।

पुत्रवती जुबती जग सोई। रघुपति भगतु जासु सुतु होई ॥
नतरु बाँझ भलि बादि बिआनी। राम बिमुख सुत तें हित जानी ॥१॥

अर्थ : वही युवती पुत्रवाली होती हैं जिसका बेटा रघुपति का भक्त हो। नहीं तो वन्ध्या भली। राम विरोधी बेटे से भलाई समझकर उसने व्यर्थ पुत्र उत्पन्न किया।

व्याख्या : पुत्रवती कहने का भाव यह कि अल्पवयस्का या वृद्धा में प्रसव की योग्यता नहीं। युवती ही पुत्र उत्पन्न करती हैं और उनसे भलाई की आशा रखती हैं। ऐसी युवतियों से संसार भरा पड़ा है। फिर भी वे सब पुत्रवती नहीं हैं। पुंनाम नरक का है। उससे जो माँ बाप की रक्षा करे वही पुत्र है। अतः पुत्रवाली युवतियाँ वे

ही हैं जिनके बेटे रामभक्त हैं। जो रामभक्त नहीं हैं : तिनते खर सूकर स्वान भले जड़ता बसते न कहैं कछु वै। तुलसी जेहि राम ते नेह नहीं सो सही पसु पूछ विषान न द्वै। जननी भरिभार मुई दस मास भई किन बाँझ गई किन च्वै। जरि जाउ सो जीवन जानकी नाथ जियै जग में तुम्हरो बिनु ह्वै।

यद्यपि माता नहीं जानती कि पुत्र कैसा होगा और न उसके जानने का पुत्र जनन में कोई उपयोग है। तथापि माता को बेटे से बहुत कुछ आशा होती है। सो अपने जनने को वह व्यर्थ नहीं मानती। पर वस्तुतः उसने पशु उत्पन्न किया। इसलिए कवि बियानी शब्द का प्रयोग करते हैं। वह उसका मनुष्य सा रूप देखकर भूली हुई है। पर सब मनुष्याकारवालों में मनुष्यता नहीं होती। आहार निद्रा भय मैथुन में मनुष्यता नहीं है। क्योंकि यह तो पशु में भी होता है। मनुष्यता तो धर्म में है और धर्म का साफल्य भगवद् भजन में है, अतः धर्महीन मनुष्य पशु के समान है। इस भाँति माता सुमित्रा लक्ष्मणजी को भगवद्भक्त देखकर अपने को पुत्रवती मान रही है। इसीलिए कहा : भूरिभाग भाजन भयेउ मोहि समेत बलिजाउँ इत्यादि।

तुम्हरेहि भाग रामु बन जाहीं। दूसर हेतु तात कछु नाहीं ॥
सकल सुकृत कर बड़ फलु एहू। राम सीय पद सहज सनेहू ॥२॥

अर्थ : बेटा ! तुम्हारे ही भाग्य से रामजी वन जा रहे हैं। दूसरा कोई कारण नहीं है। राम जानकी के चरणों में स्नेह होना सब पुण्यों का बड़ा फल यही है।

व्याख्या : यशोधन के कुटुम्ब में यश से ही भाग्य का निर्णय होता है। रामजी का साथ देने से यश तुम्हारे हाथ लगेगा और सेवा का ऐसा सुअवसर भी तुम्हें कभी न मिलता। अतः रामजी के वन जाने में प्रधान कारण तुम्हारा है। दूसरे कारण गौण हैं। नहीं तो कैकेयी के मनोरथ की पूर्ति तो भरत के राज्य मिलने से ही हो जाती। जो रामजी को भी इष्ट ही था। भरत के राज्य से राम वनवास का कौन सम्बन्ध ? अतः तुम्हारा भाग्य ही कारण है।

लौकिक सुख स्वर्ग और मोक्ष सुकृत के ही फल हैं जिसमें पूर्व पूर्व से उत्तरोत्तर बड़े हैं। पर सब सुकृतों का बड़ा फल तो रामजानकी के चरणों में स्वाभाविक स्नेह है। यथा : जहँ लगि साधन वेद बखानो। सबकर फल हरि भगति भवानी। आगे भरत जी भी कहेंगे : अहह धन्य लछिमन बड़भागी। राम पदारबिंद अनुरागी। माता को रामजी के स्वरूप का यथार्थ बोध है। अतः सेवा धर्म की दृढ़ता के लिए उपदेश दे रही है।

रागु रोषु इरिषा मदु मोहू। जनि सपनेहुँ इन्हके बस होहू ॥
सकल प्रकार बिकार बिहाई। मन क्रम बचन करेहु सेवकाई ॥३॥

अर्थ : राग द्वेष ईर्ष्या मद और मोह के वश में सपने में भी न होना। सब प्रकार के विकारों का त्याग करके मनसा वाचा कर्मणा सेवा करना।

व्याख्या : रागद्वेष दि छवों रिपु हैं। इनके वश में पड़ने से उसी भाँति कल्याण की हानि होती है जिस भाँति शत्रु के वश में पड़ जानेवाले को होती है। अथवा ये पाँच भक्ति के बाधक हैं इनसे बहुत बचना। गृह के प्रति राग, कैकेयी के प्रति रोष, भरत के प्रति ईर्ष्या, अपने गुणों के प्रति मद और रामजी के प्रति मोह को हृदय में स्थान न देना अर्थात् स्वप्न में भी इनके वश न होना।

मन में विकारों को स्थान देने से रामभक्ति के लिए स्थान नहीं रह जाता। ये ही सब सेवा धर्म में छल है और : भानु पीठ सेइअ उर आगी। स्वामिहि सर्व भाव छल त्यागी। अतः मनसा वाचा कर्मणा सेवा करना।

तुम्ह कहुँ बन सब भाँति सुपासू। सँग पितु मातु रामु सिय जासू ॥
जेहिं न रामु बन लहहिं कलेसू। सुत सोइ करेहु इहइ उपदेसू ॥४॥

अर्थ : तुमको तो वन में सब प्रकार का सुभीता है। जिसके साथ सीता और राम माँ बाप हैं। जैसे रामजी को वन में क्लेश न हो वैसा ही करना। बेटा! मेरा यही उपदेश है।

व्याख्या : तुम्हारे सुभीते के लिए कुछ कहना नहीं है। तुम्हारे माता पिता राम जानकी तुम्हारे साथ जा रहे हैं। वे स्वयं तुम्हारे सुभीते के लिए कुछ उठा न रक्खेंगे। यथा : जोगवहिं प्रभु सिय लखनहि कैसे। पलक बिलोचन गोलक जैसे। अतः तुम अपनी चिन्ता न करना और न अपने कष्ट को कष्ट गिनना। तुम यह ध्यान रखना कि रामजी को वन में कष्ट न हो। मेरा इतना ही उपदेश है।

छं. उपदेसु येहु जेहिं तात तुम्हरें रामु सिय सुखु पावहीं।
पितु मातु प्रिय परिवारु पुर सुख सुरति बन बिसरावहीं ॥
तुलसी प्रभुहि सिख देइ आयसु दीन्ह पुनि आसिष दई।
रति होउ अबिरल अमल सिय रघुबीर पद नित नित नई ॥

अर्थ : बेटा! यही उपदेश है कि तुम्हारे रामजानकी ऐसा सुख पावें कि उन्हें पिता माता प्रिय परिवार और नगर का सुख भूल जाय। तुलसीदासजी कहते हैं कि बेटे को शिक्षा दी। पश्चात् आज्ञा दी और आशीर्वाद दिया कि तुम्हें रामजी के चरणों में दिनदिन अविरल और निर्मल प्रीति हो।

व्याख्या : भक्ति के तीन दर्जे हैं : १. तस्यैवाहम् २. ममैवासौ और ३. स एवाहन् इति त्रिधा। प्रारम्भ में भक्त तदीय होते हैं। उनकी भावना होती है कि मैं सरकार का हूँ। दृढ़ता अधिक होने से वही भावना ममैवासौ के रूप में बदल जाती है तब भक्त की भावना हो जाती है कि सरकार हमारे हैं। स एवाहम् के सन्निकट में भक्तिवाले नहीं जाते। माता जानती है कि लक्ष्मणजी की ममैवासौ भावना है। इसलिए कहती है : तुम्हारे रामसिय। माता उपदेश देती है कि ऐसी सेवा करना कि जिसमें रामजानकी को पिता माता प्रिय परिवार और नगर का

सुख याद न पड़े। ऐसा उपदेश देकर आज्ञा दी कि तुम भी साथ में वन जाओ। तत्पश्चात् प्रेमाभक्ति प्राप्ति के लिए आशीर्वाद दिया।

दो. मातु चरन सिरु नाइ, चले तुरत संकित हृदय।
बागुर बिषम तोराइ, मनहु भाग मृगु भाग बस ॥७५॥

अर्थ : माता के चरण में सिर नवाकर डरते हुए निकल भागे। जैसे कठिन जाल को तोड़कर भाग्यवश मृगा भाग जाय।

व्याख्या : जब माता ने प्रसन्नता से वन में बरताव करने का उपदेश, जाने की आज्ञा, भक्ति का आशीर्वाद दिया तब शङ्कित हृदय से निकल भागने का अर्थ क्या ? उत्तर यही है कि समाचार पाकर कहीं भगवती उर्मिला न आजायें और सीताजी की भाँति वन जाने के लिए मचल न पड़ें। अतः भगवती उर्मिला के आ जाने की शङ्का से शङ्कित हैं। इसीलिए कठिन जाल में फँसे हुए मृग का दैवात् जाल तोड़कर निकल भागने से उपमा दिया। कठिन जाल माँ नहीं होती स्त्री होती है और इसीलिए सरकार ने अकेले लक्ष्मणजी को भेजा। आप विदा होने के साथ नहीं गये। पर भगवती उर्मिला चुप रह गयी। उनके चुप रह जाने में जितने भाव निकलते हैं कुछ भी कह देने से वह बात नहीं आती। यदि लक्ष्मणजी को वनवास मिला होता तो भगवती उर्मिला किसी के रोके न रुकतीं। पर वन तो मिला रामजी को। लक्ष्मणजी तो अपनी इच्छा से सेवा के लिए साथ जा रहे हैं। अतः उनके सेवा धर्म में विघ्नाचरण नहीं किया।

१३. वनगमन : केवट अनुराग प्रसङ्ग

गये लखनु जहँ जानकिनाथू। भे मन मुदित पाइ प्रिय साथू ॥
बंदि राम सिय चरन सुहाए। चले संग नृप मंदिर आए ॥१॥

अर्थ : लक्ष्मणजी वहाँ गये जहाँ जानकीनाथ थे। प्रिय साथ पाकर प्रसन्न मन हुए। रामजानकी के सुन्दर चरणों की वन्दना करके साथ चल पड़े और महाराज के महल में आये।

व्याख्या : सरकार जानकीजी के साथ धीरे धीरे चले जा रहे हैं। जहाँ से लक्ष्मणजी को माता के पास भेजा था वहाँ से आगे बढ़ गये हैं। अतः कवि लिखते हैं कि जहाँ जानकीनाथ थे वहाँ गये। साथ मिल गया। प्रिय का साथ ही सब आनन्दों में अधिक है। माता के और स्त्री के छोड़ने में दुःख का लेश भी नहीं है। प्रिय के साथ हो जाने की प्रसन्नता है।

जाकर रामजानकी के सुन्दर चरणों की वन्दना की और साथ हो लिये। इतना ही इस सूचना के लिए पर्याप्त था कि आज्ञा मिल गयी। यहाँ नृपमन्दिर से अभिप्राय उस महल से है जिसमें महाराज उस समय विद्यमान थे। अर्थात् महारानी कैकेयी के महल में, नहीं तो सभी रानियां के महल नृपमन्दिर हैं।

कहहिं परसपर पुर नर नारी । भलि बनाइ बिधि बात बिगारी ॥
तन कृस मन दुखु बदन मलीने । बिकल मनहुँ माखी मधु छीने ॥२॥

अर्थ : पुर नरनारी आपस में कहते हैं कि विधाता ने बात अच्छी बनाकर बिगाड़ दी । उनके शरीर कृश हो गये । मन में दुःख है । चेहरा उदास है । ऐसे विकल हैं जैसे शहद के छिन जाने से मक्खियाँ विकल हो जाती हैं ।

व्याख्या : जिस प्रसङ्ग को : अति बिषाद बस लोग लोगाईं कहकर छोड़ा था उसी को उठाते हैं । जब महाराज के महल से कौसल्याजी के महल की ओर चले थे उस समय प्रजावर्ग का विषाद कहा था । अब कौसल्याजी के महल से जानकी और लक्ष्मणजी के साथ कैकेयी के महल में जा रहे हैं । उस समय के प्रजावर्ग के विषाद का वर्णन करते हैं । तीनों मूर्तियों को साथ देखकर नर नारी आपस में कहते हैं कि विधाता ने कैसी अच्छी बात बना रक्खी थी कि वैसी बात कहीं देखने में नहीं आती । सो जैसी अच्छी बात बनी थी वैसी ही बिगड़ गयी । यह भी विधाता ने ही बिगाड़ा । एक को वन दिया गया । सो तीन चले ।

विषाद अतिमात्रा में है । उसका प्रभाव शरीर पर ऐसा पड़ा कि घण्टों और मिनटों में शरीर दुबले पड़ गये । कारण कहते हैं कि सबके मन में दुःख है । सबका चेहरा उदास है । सब ऐसे विकल हैं जैसे किराती ने मधु के छत्ते में से मधु निकाल लिया हो और मधु को मक्खियों ने देख न पाया हो कि किसने मधु छीन लिया । पहिले ही कह आये हैं : देखि लागि मधु कुटिल किराती । जिमि गँव तकइ लेउँ केहि भाँती । सो उसने ले ही लिया । रामराज्याभिषेक रूपी मधु छिन गया । अब प्रजावर्ग मधुमक्खियों की भाँति विकल होकर इधर उधर भनभना रहा है ।

कर मीजहिं सिरु धुनि पछिताहीं । जनु बिनु पंख बिहग अकुलाहीं ॥
भइ बड़ि भीर भूप दरबारा । बरनि न जाइ बिषादु अपारा ॥३॥

अर्थ : हाथ मीजते हैं । सिर पीटकर पछताते हैं । जैसे बिना पंख का पक्षी व्याकुल होता है । राजा के द्वार पर बड़ी भीड़ हुई । अपार विषाद का वर्णन नहीं किया जा सकता ।

व्याख्या : सामान्य लोगों का हाल कहकर अब बड़े बड़ों का हाल कहते हैं । छोटों की उपमा मक्खी से दी । अब बड़ों की उपमा पक्षियों से देते हैं । ये हाथ मीजते हैं । सामर्थ्य रहते हुए कुछ कर नहीं सकते । शोकावेग में सिर पीटते हैं । बड़ा भारी अनिष्ट हुआ इसलिए पछताते हैं । बिना पंख के पक्षी की भाँति अगतिक होकर आकुल हो रहे हैं कि अब जीवन यापन कैसे होगा ?

दरबार शब्द का प्रयोग मानस में राजद्वार के अर्थ में देखा जाता है । यथा : करि मज्जन सरयू जल गये भूप दरबार । तथा : गयउ सभा दरबार तब सुमिरि रामपद कंज इत्यादि । सब लोगों का महल के भीतर प्रवेश नहीं है । अतः राजद्वार

पर सब लोग इकट्ठे हो गये । बड़ी भीड़ हुई । विषाद का पारावार नहीं है । विषाद के उत्कटता का वर्णन नहीं हो सकता । सब हाय हाय कर रहे हैं ।

सचिव उठाइ राउ बैठारे । कहि प्रिय बचन रामु पगु धारे ।।
सिय समेत दोउ तनय निहारी । ब्याकुल भयउ भूमिपति भारी ।।४।।

अर्थ : मन्त्री ने : रामजी आये हुए हैं ऐसा प्रिय वचन कहकर उठाकर राजा को बिठाया । सीताजी के सहित दोनों बेटों को देखकर महाराज को भारी व्याकुलता हुई ।

व्याख्या : महाराज को अचेत देखकर मन्त्री क्षणभर के लिए हटता नहीं । शोक से अशौच लग जाता है नित्यकृत्य का अधिकार नहीं रह जाता । राजा का यह हाल है : ब्याकुल राउ सिथिल सब्र गाता । करिनि कल्पतरु मनहु निपाता । आप से उठने में भी असमर्थ हैं । कहाँ क्या हो रहा है इसका ज्ञान नहीं । मन्त्री सोचता है कि ये लोग विदा होने आये हैं । इन्हें बिठाना चाहिए । जो कहना हो कहें । इसलिए महाराज को उठाकर बिठलाता है । होश में लाने के लिए रामजी पधारे हैं ऐसा प्रिय वचन सुनाता है । क्योंकि यदि इस समय भी महाराज न बोले तो ये लोग प्रणाम करके चले जायँगे ।

इस प्रिय वचन को सुनकर महाराज ने आँख खोल दिया तो देखा बेटे वन जाने को प्रस्तुत हैं और सीताजी भी साथ में हैं । यह देखकर तो महाराज की व्याकुलता बहुत बढ़ गयी । दोनों बेटे प्राण के समान हैं । यथा : मेरे प्रान नाथ सुत दोउ । सो दोनों चले और महाराज जनक ने यह कहकर जानकी को सुपुर्द किया है : ये दारिका परिचारिका करि पालवी करुना नई । सो मैंने यही करुणा किया कि वन भेज रहा हूँ ।

दो. सीय सहित सुत सुभग दोउ, देखि देखि अकुलाइ ।
बारहिं बार सनेह बस, राउ लेइ उर लाइ ।।७६।।

अर्थ : सीताजी के सहित दोनों बेटों को देखकर महाराज आकुल हो रहे हैं । और प्रेम के वश होकर बार बार छाती से लगा लेते हैं ।

व्याख्या : सीताजी पर महाराज का पुत्रों से कम प्रेम नहीं है । मन्त्री से महाराज कहेंगे : एहि बिधि करेउ उपाय कदंबा । फिरइ त होइ प्रान अवलंबा । सीताजी पर बेटों से भी अधिक प्रेम कहने में अत्युक्ति नहीं है । दोनों भाइयों के वन चले जाने पर भी सीताजी के रह जाने से महाराज जी सकते थे । सो ये भी चलीं । अतः बार बार इन तीनों मूर्तियों को महाराज देखते हैं और प्रेमवश होकर बार बार कलेजे से लगाते हैं ।

सकइ न बोलि बिकल नरनाहू । सोक जनित उर दारुन दाहू ।।
नाइ सीसु पद अति अनुरागा । उठि रघुबीर बिदा तब माँगा ।।१।।

अर्थ : महाराज शोक से विकल थे। कुछ बोल नहीं सकते थे। शोक से उत्पन्न भयानक दाह हृदय में हो रहा था। अत्यन्त प्रेम से चरणों में सिर नवाकर रामजी ने उठकर विदा माँगी।

व्याख्या : राम जानकी और लक्ष्मण को बार बार हृदय से लगा रहे हैं। कहना भी चाहते हैं पर मुख से शब्द नहीं निकलते। क्योंकि शोक से कलेजा जल रहा था। दाह होने पर मनुष्य कराहता है पर दारुण दाह में कराहते भी नहीं बनता। पहिले जब रामजी ने कहा था : बिदा मातु सन आवहुँ माँगी। चलिहौं बनहि बहुरि पग लागी। तब भी शोक वश होने से महाराज बोल न सके। अब माता से विदा लेकर चलते समय केवल प्रणाम करने आये हैं। फिर भी महाराज बोलने में असमर्थ हैं।

रामजी रघुकुल में वीर हैं। उत्साहवर्धनो वीरः। पिता का अत्यन्त प्रेम देखकर समझ लिया कि यहाँ ठहरना वियोग के समय की यातना को और बढ़ाना ही है। अतः अत्यन्त प्रेम से चरणों को प्रणाम किया और उठ खड़े हुए और तब विदा माँगी।

पितु असीस आयसु मोहि दीजै। हरष समय बिसमउ कत कीजै ॥
तात किये प्रिय प्रेम प्रमादू। जसु जग जाई होइ अपबादू ॥२॥

अर्थ : पिताजी ! मुझे आशीर्वाद दीजिये और आज्ञा दीजिये। यह तो हर्ष का समय है। इसमें शोक क्यों करते हैं। हे तात ! प्रिय के प्रेमवश प्रमाद करने से संसार में यश नष्ट हो जायगा और दुर्यश होगा।

व्याख्या : भाव यह कि अब मैं चल रहा हूँ। मुझे आशीर्वाद दीजिये। आप पिता हैं। मेरे देवता हैं। आपके आशीर्वाद से सब मङ्गल होगा और कह दीजिये कि जाओ इतना आपके कह देने से मुझे कोई विघ्नबाधा न करेगा। यथा : गुरु पितु मातु स्वामि सिखपाले। चलेहुँ कुमग पग परहिं न खाले। मैं अपना जन्म सफल करने जा रहा हूँ। अतः हर्ष का समय है। इसमें विषाद को स्थान नहीं देना चाहिए। मुझे कष्ट होगा यह सोचकर ही आप शोक करते हैं। सो मुझे हर्ष है। क्योंकि मेरा जन्म सफल होने जा रहा है।

श्रीरामजी ने देखा कि वचन देने पर उसे कार्य में परिणत होते देखकर इस भाँति शोक करना प्रमाद है। अतः पिता से कहा कि जो शोक मनाया जा रहा है इसमें कोई तत्त्व नहीं है। यह केवल प्रिय प्रेम प्रमाद है। इससे लाभ कुछ नहीं और हानि बड़ी भारी। क्योंकि संसार में जो आपका यश फैला हुआ है वह नष्ट हो जायगा और अयश होगा। सम्भावितस्य चाकीर्तिर्मरणादतिरिच्यते।

सुनि सनेह बस उठि नरनाहाँ। बैठारे रघुपति गहि बाहाँ ॥
सुनहु तात तुम्ह कहुँ मुनि कहहीं। रामु चराचर नायकु अहहीं ॥३॥

अर्थ : सुनकर प्रेमवश चक्रवर्तीजी उठ खड़े हुए और रामजी को बाँह

पकड़कर बैठाया और कहा कि हे तात ! तुमको मुनि कहते हैं कि राम चर अचर सबके मालिक हैं।

व्याख्या : यह तो जाया ही चाहते हैं यह समझकर चक्रवर्तीजी आवेश में आकर उठ खड़े हुए। रामजी की बाँह पकड़ ली कि मैं जाने न दूँगा और बिठलाया कि अभी कुछ बातें करना है। मेरा प्रश्न है उसका उत्तर दे लो तो जाओ। तुम मेरे शोक को प्रिय प्रेम प्रमाद कहते हो। मैं पूछता हूँ कि प्रमाद किसका है ! हमारा या तुम्हारा ? यद्यपि मेरे मन में बात नहीं बैठती पर मुनि की गिरा असत्य नहीं हो सकती। वे कहते हैं कि राम चराचर के नायक हैं।

सुभ अरु असुभ करम अनुहारी। ईसु देइ फलु हृदयँ बिचारी ॥
करै जो करमु पाव फलु सोई। निगम नीति असि कह सबु कोई ॥४॥

अर्थ : शुभ और अशुभ कर्म के अनुसार ईश्वर हृदय में विचारकर फल देते हैं और जो कर्म करता है वही फल पता है। यही निगम की नीति है और सब लोग भी ऐसी ही कहते हैं।

व्याख्या : दण्ड और अनुग्रह का नियम अनादि काल से प्रवर्तित है। शुभकर्म का शुभफल और अशुभकर्म का अशुभफल होता है। यथा : तुलसी यह तनु खेत है मन वच करमं किसान। पाप पुन्य द्वै बीज हैं बवै सो लवै निदान। ईश्वर फल दाता है। वह शुभाशुभ कर्म का फल मात्रा प्रकार तथा काल का विचार करके देता है।

जो कर्म करता है उसका फ़ल उसी को मिलता है। यही निगम की नीति है और सब लोग भी यही कहते हैं। इसमें मतभेद नहीं। अतः यह सर्वसम्मत सिद्धान्त है।

दो. औरु करै अपराधु कोउ, और पाव फल भोगु।
अति बिचित्र भगवंत गति, को जग जानइ जोगु ॥७७॥

अर्थ : अपराध कोई और ही करे और फल भोग किसी दूसरे को मिले। यह अति विचित्र गति भगवान् की है। इसे संसार में कौन जान सकता है ?

व्याख्या : अपराध और फल भोग में वैषम्य होना विचित्रता है। दूसरे का दण्ड दूसरे को मिलना अति विचित्रता है। अवश्य सामञ्जस्य होगा। पर संसारी के समझ में नहीं आता। उसे ईश्वर का ही प्रमाद मालूम होता है।

अपराधिनी कैकेयी तुम से निरपराध को वन भेज रही है। कहु तजि रोष राम अपराधू पूछने पर उसके पास देने के लिए कोई उत्तर नहीं है। अन्त में उसे भी यही कहना पड़ा : तुम अपराध जोग नहिं ताता। माँग्यो जो कछु मोहि सोहाना और मुझसे विश्वासघात किया : तुहूँ सराहसि करसि सनेहू। पहिले स्नेह करती थी सराहना करती थी। जब मैंने कहा : भामिनि भयउ तोर मन भावा तो कैकेयी ने हँसकर और गहने पहनकर मुझे धोखा दिया। मेरे साथ विश्वासघात हुआ। मेरा

क्या दोष है ? मुझे दण्ड क्यों मिल रहा है ? यदि ईश्वर हो तो मुझे तुम्हारा प्रमाद मालूम हो रहा है। उत्तर न पाने पर कहते हैं कि भगवान् की गति जानी नहीं जाती। अत्यन्त विचित्र है : अभी तक चक्रवर्तीजी को तापस अन्ध शाप का स्मरण नहीं आ रहा है।

राय राम राखन हित लागी। बहुत उपाय किये छलु त्यागी ॥
लखी राम रुख रहत न जाने। धरम धुरंधर धीर सयाने ॥१॥

अर्थ : राजा ने रामजी के रखने के लिए छल छोड़कर बहुत उपाय किये। रामजी का रुख लख लिया। समझ लिया कि ये नहीं रहेंगे।

व्याख्या : महाराज ने जो उपाय रामजी के रखने के लिए सोचा या किया उनमें छल था। वे चाहते थे कि मैं रामजी को रहने के लिए न कहूँ रामजी स्वयं जाने के लिए तैयार न हों। यथा : तुम प्रेरक सबके हृदय सो मति रामहि देहु। बचन मोर तजि रहहिं गृह परिहरि सील सनेहु। अथवा : उदय करहु जनि रबि रबिकुलगुरु इत्यादि। परन्तु जब देख लिया कि ऐसे उपायों से काम न चलेगा तब छल रहित उपाय करने लगे कि मैंने चाहे कैकेयी से जो कहा हो पर तुम्हें तो मैंने वन जाने की आज्ञा नहीं दी। आज्ञा वही मान्य है जो इच्छापूर्वक दी जाय। मेरी इच्छा नहीं है कि तुम वन जाओ इत्यादि।

रामजी चुप हैं। उत्तर नहीं देते। पहिले ही एक बात ऐसी कह दी कि उसके सामने कोई बात अड़ती नहीं। उन्होंने कहा था कि यह सब प्रिय प्रेम प्रमाद है : इनमें वास्तविकता नहीं। यदि वास्तविकता होती तो महाराज इतने विकल न होते। विकलता कह रही है कि राजा ने वन दे दिया। अयोध्या में रुख देखकर काम होता है। संसार का नियम है कि प्रधान का रुख सभी देखते हैं। रामजी की प्रधानता इसी से सिद्ध है कि स्वयं चक्रवर्तीजी रुख देखते हैं और की कौन कहे स्वयं गुरुजी सबको रामजी के रुख रखने का उपदेश देते हैं। यथा : राखे राम रजाइ रुख हम सबकर हित होइ इत्यादि। महाराज यह भी जानते हैं कि रामजी धर्मधुरन्धर हैं। ये धर्म से न हटेंगे। सयाने धीर हैं। धर्म के मर्म को समझते हैं।

तब नृप सीय लाइ उर लीन्ही। अति हित बहुत भाँति सिख दीन्ही ॥
कहि बन के दुखु दुसह सुनाये। सासु ससुर पितु सुख समुझाये ॥२॥

अर्थ : तब महाराज ने सीताजी को हृदय से लगा लिया और अत्यन्त प्रेम से बहुत प्रकार से शिक्षा दी। वन के न सहने योग्य दुःखों को कह सुनाया। सास ससुर और पिता के सुखों को समझाया।

व्याख्या : चक्रवर्तीजी का प्रेम सीताजी पर ठीक बेटी की भाँति है। गोद में लेकर समझा रहे हैं। यथा :

दो. सासु ससुर जोगवत रहत तथा यथा पितु मात।
बेटी तू नहिं सहि सकिहि विकट विपिन उतपात ॥१॥

सोई कारज कीजिये जामे होइ निवाह।
नहिं पिपीलिका को उचित लेन सिंधु की थाह ॥२॥
कानन कानन ते सुन्यौ कानन बड़ी बलाय।
जहँ बसिबे को को कहै आँखि देखि नहिं जाय ॥३॥
हिंसक जीवन ते भरो कुशकण्टक भरिपूरि।
ठाम नहीं विश्राम को बिपिन बिपत्ति अति भूरि ॥४॥
कटुकषाय फल असन वन, वसन छाल अरु पात।
बिना त्रान अति, बिषम हिमि आतप बर्षा बात ॥५॥
सब सुपास गृहवास रुख लखत रहत रनिवास।
सखी करत मनुहारि मुख जोहँत दासी दास ॥६॥
सब सुख अवध विदेहपुर रहहु जहाँ मनमान।
सीख मानि मम पुत्रि जनि कानन करहु पयान ॥७॥

सिय मनु राम चरन अनुरागा। घरु न सुगमु बनु बिषमु न लागा॥
औरउ सबहि सीय समुझाई। कहि कहि बिपिन बिपति अधिकाई ॥३॥

अर्थ : सीताजी का मन रामजी के चरणों में अनुरक्त था। उनको घर रहने में सुभीता और वन में असुभीता नहीं मालूम पड़ा और सबों ने भी वन की विपत्तियों को बढ़ा बढ़ाकर वर्णन करते हुए समझाया।

व्याख्या : रामचरन पंकज रति जिनहीं। बिषय भोग बस करहि कि तिनहीं। रमा बिलास राम अनुरागी। तजत वमन जिमि नर बड़भागी। फिर जगदम्बा को घर सुगम और वन विषम कैसे मालूम हो ? सभी लोग एक मुख से वन के दुःख को बढ़ा बढ़ाकर समझाने लगे। ऐसी नीति है कि कार्यसिद्धि के लिए रोचक भयानक बातें कही जाती हैं। यथा :

छप्पय : वन निर्जन झन झनत चलत सन सन समीर खर।
भूमि तपत ज्यौं भाड़ अगिनि वरसत दिनकर कर॥
जहँ तहँ बीछी व्याल फिरत गज भालु बाघ हरि।
दिनहि भूत बेताल नचत बिकराल रूप धरि॥
जीवजंतु जरि जरि मरें जब दावानल लगि परै।
याते तू बन जान को ध्यान बधू जनि उर धरै॥

लक्ष्मणजी को कोई नहीं समझाता क्योंकि वे तो रामजी के बाटे : हिस्से पड़े हुए हैं। यथा : लखन राम के नेव। दूसरी बात यह भी है कि यदि रामजी वन जायँ तो लक्ष्मणजी का साथ जाना सबको प्रिय है। ये वीर हैं। रामजी के साथ सब कष्ट सह लेंगे और रामजी भी अकेले न रहेंगे भाई का साथ रहेगा।

सचिव नारि गुरु नारि सयानी। सहित सनेह कहहिं मृदु बानी॥
तुम्ह कहँ तौ न दीन्ह बनबासू। करहु जो कहहिं ससुर गुर सासू ॥४॥

अर्थ : मन्त्री और गुरु की सयानी स्त्रियाँ स्नेह से साथ कोमल वाणी में कहने लगीं कि तुमको तो वनवास नहीं दिया। इसलिए जैसा ससुर गुरु और सास कहें वैसा करो।

व्याख्या : भारी उत्पात सुनकर इस समय जो स्त्रियाँ महलों में आती जाती हैं वे सभी आगयी हैं। मर्दों के समझाने का प्रभाव सीताजी पर पड़ते न देखकर मन्त्री की स्त्रियाँ और गुरुजनों की स्त्रियाँ सीताजी को समझाने लगीं। स्नेह के साथ मृदु वाणी से समझाने का बड़ा प्रभाव पड़ता है। किं पुनः ये तो बड़ी बूढ़ी हैं। स्त्री धर्म और स्त्री हृदय की जाननेवाली हैं। रामजी जो इस समय सुख दुःख को न गिनकर वन जाने को प्रस्तुत हैं तो उनके लिए कारण है। उन्हें वनवास मिला है। तुमको तो वनवास नहीं दिया है। तो जिसका वचन मानकर रामजी वन जाते हैं उसका वचन तुम भी शिरोधार्य करके घर रहो। पतिरेको गुरुः स्त्रीणाम् : यह ठीक है। पर ससुर गुरु और सास तो गुरूणां गुरुः हैं। वे जो कहें सो तुम्हें कर्त्तव्य है।

दो. सिख सीतलि हित मधुर मृदु, सुनि सीतहि न सोहानि।
सरद चंद चंदिनि लगत, जनु चकई अकुलानि ॥७८॥

अर्थ : शीतल हित मधुर और कोमल शिक्षा सीताजी ने सुनी। पर उन्हें अच्छी न लगी। जैसे शरच्चन्द्र की चाँदनी के लगने से चकई व्याकुल हो जाती है।

व्याख्या : चाँदनी रात सबको प्रिय होती है पर चकई को नहीं। क्योंकि उसमें पति का विछोह होता है। शरद् की चाँदनी रात और भी दाहक होती है। सो सरकार ने जो शिक्षा दी वह शरद्चन्द निशि की भाँति दाहक हुई। यथा : सीतल सिख दाहक भइ कैसे। चकइहि सरदचन्द निसि जैसे। पर सचिव नारि गुरु नारि सयानी की शिक्षा तो शरद्चन्द चाँदनी की भाँति अति अधिक दाहक हुई। भगवती व्याकुल हो उठीं। शिक्षा का गुणाधिक्य दाहाधिक्य का कारण हो गया है। सरकार को शिक्षा शीतल थी। इसलिए उसे शरद्चन्द निशि कहा। सचिव नारि गुरु नारि सयानी की शिक्षा सीतल हित मृदु मधुर थी। इसलिए शरद्चन्द की चाँदनी से उपमित कर रहे हैं। स्नेह के सहित शिक्षा दे रही हैं। अतः शीतल है। तुम कहँ तौ न दीन्ह बनबासू। यह हित की बात है। करउ जो कहहिं ससुर गुरु सासू। यह मधुर शिक्षा है और मृदुवाणी में कहती हैं। यह मृदुता है। शरद्चन्द चाँदनी में शीतलता लाभ मधुरता और मृदुता होती है। अतः इससे शिक्षा को उपमित किया।

सीय सकुच बस उतरु न देई। सो सुनि तमकि उठी कैकेई ॥
मुनि पट भूषन भाजन आनी। आगे धरि बोली मृदु बानी ॥१॥

अर्थ : सीताजी सङ्कोचवश उत्तर नहीं देती हैं। यह सुनकर कैकेयी तमक उठी। मुनियों का वसन भूषण और बरतन लाकर आगे रक्खा और मीठी वाणी बोली।

व्याख्या : जिस इन्द्रिय से जिस विषय का ग्रहण होता है उसी से उसके अभाव का भी ग्रहण होता है। इसी से उत्तर न देने का सुनना कहते हैं। उत्तर प्रत्येक बातों का है। पर कुलवधू सोताजी इतने बड़े जनसमाज में सङ्कोच से उत्तर नहीं देतीं। कैकेयी से यह सहन न हुआ। वह समझती है कि सीता भी यदि साथ चली जावे तो सम्भव है कि ये वन से न लौटें। ये सब इतना प्रयत्न इसलिए कर रही हैं जिसमें रामजी अवश्य वन से लौटें। ये सब हमारी शत्रु हैं। अतः क्रोध के वेग में आकर उठ खड़ी हुईं।

राजदरबार है। मुनियों की विदाई के लिए मुनि पट भूषण भाजन आदि सभी वस्तुएँ प्रस्तुत रहती हैं। अतः मुनि पट भूषण और भाजन उठा लायीं। जिसमें वहाँ से ही वेष बदलकर वन में जायँ। जो लोग आज छत्रचामर के साथ चलते देखने के लिए उत्सुक थे वे अपने प्रिय को मुनि वेष में जाते देख लें और बात भी थी कि मुनि पट भूषण सामने रखते ही रामजी धारण कर लेंगे। तब समझाना बुझाना भी बन्द हो जायगा और व्यर्थ जो देर हो रही है वह न होगी। उन पट भूषण भाजनों को रामजी के सामने ला रक्खा और बोलीं :

नृपहि प्रान प्रिय तुम रघुबीरा। सील सनेह न छाँड़िहि भीरा ॥
सुकृतु सुजसु परलोकु नसाऊ। तुम्हहि जान बन कहिहि न काऊ ॥२॥

अर्थ : रघुवीर ! तुम महाराज को प्राणप्रिय हो। सो यह भीड़ शील सनेह न छोड़ेगी। चाहे पुण्य सुयश और पर परलोक भले ही नष्ट हो जाय पर तुम्हें वन जाने को कोई न कहेगा।

व्याख्या : रानी कैकेयी कहती हैं कि तुम रघुकल के वीर हो। साहस का कार्य करने में समर्थ हो। यहाँ इतना साहस किसी को नहीं है कि तुम्हें वन जाने को कहे। महाराज को तुम प्राणप्रिय हो। वे अपने मुँह से कहेंगे नहीं और यह जो लोगों की भीड़ लगी हुई है यथा : भइ बड़ि भीर भूप दरबारा : उनमें किसका साहस है कि राजा के प्राणप्रिय को वन जाने की सम्मति दे। इन लोगों को इस बात से क्या मतलब कि महाराज का सुकृत सुयश और परलोक नष्ट हो रहा है। ये राजा की प्रसन्नता के लिए शील और स्नेह जनाते ही रहेंगे।

अस बिचारि सोइ करहु जो भावा। राम जननि सिख सुनि सुख पावा ॥
भूपहिं बचन बान सम लागे। करहिं न प्रान पयान अभागे ॥३॥

अर्थ : ऐसा विचार करके जो तुम्हें अच्छा लगे सो करो। रामजी ने माता की शिक्षा सुनकर सुख पाया। राजा को ये वचन बाण के समान लगे। कहने लगे कि-अभागे प्राण निकलते भी नहीं।

व्याख्या : कैकेयी कहती है कि अब बात तुम्हारे ऊपर है। चाहे इन वसन भूषण भाजनों को धारण करो और वन जाओ चाहे न जाओ। इस व्यर्थ के प्रपञ्च में कुछ रक्खा नहीं है। माँ की शिक्षा सुनकर रामजी को तो सुख हुआ। बड़े शील

सङ्कोच में पड़े हुए थे। उसको तोड़ना न पड़ा। माँ ने रास्ता साफ कर दिया। परन्तु ये वचन जिसमें महाराज पर भी आक्षेप था, हितचिन्तकों पर भी आक्षेप था, सीताजी के रोकने के प्रयत्न का मूलच्छेदन करनेवाला था महाराज को बाण की भाँति लगे। वे कह चुके थे : जब लगि जिअउँ कहउँ कर जोरी। तब लगि जनि कछु कहेसि बहोरी। जानते थे कि जो बात इसके मुख से निकलेगी वह मर्म को काटनेवाली ही होगी। पर कैकेयी ने न माना। बाण की भाँति चोट करनेवाली वाणी फिर बोली : जीभ कमान बचन सर नाना। मनहुँ महिप मृदु लच्छ समाना। जनु कठोरपन धरे सरीरू। सिखइ धनुष विद्या बड़ बीरू। महाराज इस चोट को न सह सके। अभागे प्राण जाते भी नहीं ऐसा कहकर मूर्च्छित हो गये।

लोग बिकल मुरिछित नरनाहू। काह करिअ कछु सूझ न काहू ॥
रामु तुरत मुनि बेषु बनाई। चले जनक जननी सिरु नाई ॥४॥

अर्थ : लोग विकल हो उठे। राजा मूर्च्छित हो गये। किसी को नहीं सूझता कि क्या करें। इधर रामजी ने तुरन्त मुनि वेष बनाया और पिता माता को सिर नवाकर चले।

व्याख्या : मुनि पट भूषण भाजन को रामजी के सामने ला रखने से कुछ कहने सुनने का मार्ग ही अवरुद्ध हो गया। अब तो यही शेष है कि रामजी उसे धारण करें और वन चले जायँ। अतः सब लोग विकल हो उठे। महाराज को मूर्च्छा हो गयी। रामजी ने इस अवसर से लाभ उठाया। जानते थे कि मुनिवेष में देखकर महाराज तत्काल प्राणत्याग करेंगे। अतः इन्होंने मुनिवेष धारण में जल्दी की जिसमें महाराज की मूर्च्छितावस्था में ही बाहर निकल जायँ और महाराज दशरथ तथा रानी कैकेयी को सिर नवाकर चल पड़े।

दो. सजि बन साजु समाजु सब, बनिता बंधु समेत।
बंदि बिप्र गुरु चरन प्रभु, चले करि सबहिं अचेत ॥७९॥

अर्थ : वन का साज समाज सजकर स्त्री और भाई के सहित ब्राह्मण और गुरु की वन्दना करके तथा सबको अचेत करके चले।

व्याख्या : मुनि पट भूषण का धारण करना साज सजना है। भाई और स्त्री को साथ लेना और उन्हें भी मुनि पट भूषणयुक्त करना समाज सजना है। सो साज समाज ठीक करके सीता जी और लक्ष्मण जी के साथ चले। मुनि पट भूषण भाजन के सामने रख देने से महाराज मूर्च्छित हो गये और उनके धारण करने पर सब अचेत हो गये। चलने के पहिले सरकार ने अभेद्य कवच धारण कर लिया अर्थात् ब्राह्मण और गुरु को प्रणाम कर लिया। यथा : कवच अभेद्य बिप्र गुरु पूजा।

निकसि बसिष्ठ द्वार भये ठाढ़े। देखे लोग बिरह दव दाढ़े ॥
कहि प्रिय बचन सकल समुझाए। बिप्र बृंद रघुबीर बुलाए ॥१॥

अर्थ : निकलकर वसिष्ठजी के दरवाजे पर खड़े हुए। देखा कि सब लोग विरह के दावानल से झुलसे हुए हैं। प्रिय वचन कहकर सबको समझाया। फिर रघुवीर ने ब्राह्मणों को बुलाया।

व्याख्या : अवसि फिरब गुरु आयसु मानी। अब सरकार को लौटानेवाला केवल गुरु का आदेश ही है। ऐसा न हो कि कुछ दूर जाने के बाद गुरु की आज्ञा लेकर कोई पहुँचे कि लौट चलो। अतः गुरुजी के घर से ही प्रस्थान उचित है। दूसरे गुरु या ब्राह्मण के घर से ही प्रस्थान शास्त्र सम्मत है। अतः गुरुजी के द्वार पर खड़े हो गये। सब लोग साथ साथ चल रहे हैं। उनकी दशा देखा कि विरह के दावानल से मानो झुलसे हुए हैं। बिधि कैकेयी किरातिनि कीन्हीं। जेहि दव दुसह दसहुँ दिसि दीन्हीं। सरकार ने प्रिय वचन कहकर सबको समझाया यथा :

दोहा : हितकारी भारी सबै सब विधिते तुम मोर।
समय देखि धीरज धरहु करहु न निज मन थोर॥
वेगि लौटिहैं अवध हम केवल अवधि बिताय।
जाते नृप धीरज धरैं सब मिलि करहु उपाय॥
भरत सुजान सुशील शुचि मोहि प्रिय प्रान समान।
धर्म शील पालिहि प्रजहि सब गुन भवन अमान॥

इस भाँति सबको समझाने के बाद रघुवीर ने ब्राह्मण समाज को बुलाया। सरकार धर्मवीर हैं, दानवीर हैं, दयावीर हैं : यहाँ उन्हीं गुणों से अधिक काम लिया गया है। अतः श्री गोस्वामीजी उनके लिए बार बार रघुवीर शब्द का प्रयोग करते हैं।

गुरु सन कहि बरषासन दीन्हे। आदर दान बिनय बस कीन्हे॥
जाचक दान मान संतोषे। मीत पुनीत प्रेम परितोषे॥२॥

अर्थ : गुरुजी से कहकर वर्ष भर के लिए भोजन दिया और उन्हें आदर दान और विनय से वश कर लिया। तत्पश्चात् मंगनों को दान और सम्मान से सन्तुष्ट किया और मित्रों को पवित्र प्रेम से परितोष किया।

व्याख्या : एक वर्ष से अधिक अन्न रखने की आज्ञा ब्राह्मणों को शास्त्रतः नहीं है। अतः विप्रवृन्द को वर्षासन दिया। सरकार नित्य अन्न दान करते हैं। वन में दान के लिए अन्न नहीं मिलेगा। अतः प्रभूतान्न दान आज किया जा रहा है। अब अपने महल में न जायँगे। अतः गुरुजी से कहा कि इन लोगों को अन्न दे दिया जाय। ब्राह्मणों के वश करने की विधि कहते हैं कि ये आदर दान और विनय से वश होते हैं। इन्हें वश करने की दूसरी विधि नहीं है। ब्राह्मणों के वश करने में इनसे अतिरिक्त दूसरी विधि के प्रयोग से राजा भानुप्रताप मारे पड़े।

याचक को दान देनेवाले तो अनेक हैं। पर उनका सम्मान करनेवाला कौन है? और सम्मान ही सबसे बड़ा दान है। यथा : तुलसी कहत पुकारि कै सुनहु सकल

दे कान। भूमिदान गजदान ते बड़ों दान सम्मान। सो सरकार याचकों को भी सम्मान पूर्वक दान दे रहे हैं। जो सरकार के मित्र हैं उन्हें किस बात की कमी है। वे तो केवल प्रेम के भूखे हैं। उन्हें पवित्र प्रेम से परितुष्ट किया अर्थात् अत्यन्तप्रेम से मिले।

दासी दास बोलाइ बहोरी। गुरुहि सौंपि बोले कर जोरी ॥
सब कै सार सँभार गोसाईं। करबि जनक जननी की नाईं ॥३॥

अर्थ : फिर दासी दासों को बुलाया। उन्हें गुरुजी को सुपुर्द करके हाथ जोड़कर बोले कि हे गोसाईं ! इनकी देखभाल माँ बाप की भाँति कीजियेगा।

व्याख्या :-सरकार को दास बड़े प्रिय हैं। यथा : तिन्ह ते पुनि मोहि प्रिय निजदासा। जेहि गति मोरि न दूसरि आसा। अतः उन्हें गुरुजी को सौंपते हैं और हाथ जोड़कर विनय करते हैं कि इनकी देखभाल माँ बाप की भाँति कीजियेगा। भाव यह कि बाप माँ बच्चों के सब अपराध सहन करते हैं। मैंने भी इनके अपराधों को बाप माँ की भाँति सहन किया है और प्रतिपालन किया है। उसी भाँति आप भी इनके अपराधों को क्षमा करके इनका पालन करियेगा : इससे यह पता चलता है कि सरकार ने अपनी निजी सम्पत्ति को गुरुजी के सुपुर्द किया।

बारहिं बार जोरि जुग पानी। कहत रामु सब सन मृदु बानी ॥
सोइ सब भाँति मोरि हितकारी। जेहि तें रहइ भुआल सुखारी ॥४॥

अर्थ : बार बार हाथ जोड़कर रामजी सबसे कोमल वाणी से कहते हैं कि वही मेरा सब प्रकार से हितकारी है जिससे महाराज सुखी रहें।

व्याख्या : रामजी कहते हैं कि आपलोग सभी मेरे हितकारी हैं। पर सब प्रकार से मेरा हितकारी वही है जो महाराज को सुख सम्पादन में कृतकार्य हो। भाव यह कि रामजी महाराज को प्रजावर्ग के सुपुर्द कर रहे हैं। अतः सबसे यही विनय हाथ जोड़कर बार बार कह रहे हैं।

दो. मातु सकल मोरें बिरह, जेहि न होहिं दुख दीन।
सोइ उपाय तुम्ह करेहु सब, पुरजन परम प्रबीन ॥८०॥

अर्थ : मेरी सब माताएँ मेरे विरह से जिसमें दुःख से दीन न हों हे परम प्रवीण पुरजन ! वही उपाय आप लोग करियेगा।

व्याख्या : सरकार कहते हैं कि हे पुरजन ! आप लोग परम प्रवीण हैं। मेरे विरह में माताएँ सब दुःखी हैं। वे लोग जब सुनेंगी कि प्रजा रामजी के विरह से अत्यन्त दुःखी हैं तो उनके दुःख का पारावार न रहेगा। वे दुःख से दीन हो जायेंगी। अतः आप लोग मेरे चले जाने पर शोक न मनाइयेगा। यथा : कौसल्यादि सकल महतारी। तेउ प्रजा सुख होहिं सुखारी। आप लोग आपस में मिलकर सुख से रहने की चेष्टा कीजियेगा।

रामजी पिता माता का प्रजावर्ग के सुपुर्द कर रहे हैं। उन्हें भय है कि उनके चले जाने पर प्रजा महाराज की निन्दा करेगी। विरोध करेगी। भरत के राज्य का स्वागत नहीं करेगी। इससे माता पिता का कष्ट अधिक बढ़ जायगा। अतः उनको सुख पहुँचाने का भार रामजी प्रजा पर ही छोड़ रहे हैं।

एहि बिधि राम सबहिं समुझावा। गुरु पद पदुम हरषि सिरु नावा॥
गनपति गौरि गिरीसु मनाई। चले असीस पाइ रघुराई॥१॥

अर्थ : इस प्रकार रामजी ने सबको समझाया। गुरुजी के चरणकमल में हर्षित होकर सिर नवाया और गणेश गौरी और महेश को मनाकर आशीर्वाद पाकर रघुराज चल पड़े।

व्याख्या : कहि प्रिय बचन सकल समुझाये से उपक्रम करके विप्रमण्डली याचकगण, दासी, दास, प्रजावर्ग से यथोचित मिलना कहा। अब : एहि बिधि राम सबहि समुझाये कहकर इस प्रसङ्ग का उपसंहार करते हैं। अब गुरुजी को प्रणाम करके प्रस्थान करना कहते हैं। प्रस्थान के समय हर्ष का होना मङ्गल सूचक है। छूट जानि बन गमन सुनि उर अनंद अधिकान कहा था। सुनने से हर्ष हुआ था। अब तो वस्तुतः छुट्टी हो गयी। अतः सरकार हर्षित हैं। गणपति गौरी गिरीश प्रत्यक्ष नहीं हैं। अतः उनकी मानसवन्दना कहते हैं। स्वयं स्त्री और अनुज के साथ यात्रा कर रहे हैं। अतः अपने इष्टदेव की वन्दना भी स्त्री पुत्र के साथ ही करते हैं। गणपति गौरी गिरीश का ध्यान परिपूर्ण ब्रह्म का ध्यान है। शिवजी निर्गुण ब्रह्म हैं। उनकी गोद में मूलशक्ति गौरी हैं और उनके गोद में सगुण ब्रह्म गजानन हैं। गुरुजी ने प्रत्यक्ष आशीर्वाद दिया और गणपति गौरी गिरीश ने अन्तर्हित होकर आशीर्वाद दिया।

रामु चलत अति भयेउ बिषादू। सुनि न जाइ पुर आरत नादू॥
कुसगुन लंक अवध अति सोकू। हरष बिषाद बिबस सुरलोकू॥२॥

अर्थ : रामजी के चलने के समय बड़ा विषाद हुआ। नगर का आर्त्तनाद सुना नहीं जाता था। लङ्का में अपशकुन होने लगे। अयोध्या में अति शोक छा गया। देवता लोग हर्ष और विषाद के वश हो गये।

व्याख्या : लोगों को अति विषाद तो उसी समय हुआ जब रामजी माता से विदा माँगने चले। यथा : अति बिषाद बस लोग लोगाई। गये मातु पहँ राम गोसाँई। पर रामजी को वन जाते देखकर वह विषाद असह्य हो गया। लोग फूटकर रोने लगे। नगर भर में ऐसा आर्तनाद होने लगा कि सुनते नहीं बनता था। सुननेवाले का कलेजा फटने लगता था।

सरकार की यह यात्रा वस्तुतः लङ्काविजय यात्रा का पूर्व रूप था। अतः लङ्का में अपशकुन हुए। अयोध्या में अति शोक छा गया। कवि ने यहाँ यात्रा की दोनों सीमाओं की व्यवस्था कही। अभिषेक में विघ्नाचरण करनेवाले देवताओं

को तो प्रसन्नता होनी चाहती थी। पर इस आर्तनाद से उनके हर्ष में भी शोक का अनुवेध हो गया।

गई मुरुछा तब भूपति जागे। बोलि सुमंत्रु कहन अस लागे॥
रामु चले बन प्रान न जांहीं। केहि सुख लागि रहत तन मांहीं॥३॥

अर्थ : तब मूर्च्छा गयी। राजा जगे। सुमन्त्र को बुलाकर कहने लगे कि राम तो वन को चले पर प्राण नहीं जा रहे हैं। किस सुख के लिए अब शरीर में टिके हुए हैं।

व्याख्या : पुर में आर्तनाद जब होने लगा तब महाराज की मूर्च्छा गयी। जागकर सुमन्त को बुलाया। महाराज की बड़ी आस्था सुमन्त्र पर है। भूपति कहने का भाव यह कि प्रजा का आर्तनाद सुनकर जाग उठे। सुमन्त्र भी कहीं अचेत पड़े थे। बुलाने पर आये। राजा जब मूर्छा से जगे तो रामजी को नहीं पाया। नगर के आर्तनाद से जान लिया कि रामजी जा रहे हैं। सुमन्त्र से कहने लगे कि प्राणप्यारे राम तो जा रहे हैं। पर प्राण उनका साथ नहीं दे रहा है। एक ही तो अभिलाषा मेरे मन में थी वह बुरी तरह से भङ्ग हो गयी। अब किस सुख की आशा से प्राण शरीर में टिके हुए हैं।

एहि तें कवन ब्यथा बलवाना। जो दुखु पाइ तजहिं तनु प्राना॥
पुनि धरि धीर कहइ नरनाहू। लै रथु संग सखा तुम्ह जाहू॥४॥

अर्थ : इससे कौन सी पीड़ा बलवती है। जिस दुःख के पाने से प्राण शरीर को छोड़ता है। फिर धैर्य धरकर राजा कहते हैं कि हे सखे! तुम रथ लेकर साथ जाओ।

व्याख्या : महाराज को शिरोच्छेदन से अधिक पीड़ा राम विरह में है। यथा : माँगु माथ अबही देउँ तोहीं। रामबिरह जनि मारेसि मोहीं। अतः मन्त्री से पूछते हैं कि क्या इस पीड़ा से भी अधिक कोई दुःख है जिसे पाकर प्राण शरीर छोड़ता है? मन्त्री से कोई उत्तर न पाकर धैर्य धारण करके राजा ने कहा कि मित्र! तुम रथ लेकर साथ जाओ। भाव यह कि तुम्हारा जाना मेरे जाने के बराबर है। रामजी के हृदय में तुम्हारा बड़ा आदर है। यथा : राम सुमंत्रहि आवत देखा। आदरु कीन्ह पिता सम लेखा। अतः तुम स्वयं रथ लेकर रामजी के साथ जाओ।

दो. सुठि सुकुमार कुमार दोउ, जनकसुता सुकुमारि।
रथ चढ़ाइ देखराइ बनु, फिरेउ गयें दिन चारि॥८१॥

अर्थ : दोनों कुमार अति सुकुमार हैं और जनकसुता सुकुमारी हैं। सो रथ चढ़ाकर वन दिखलाकर चार दिनों में लौट आना।

व्याख्या : श्रीमद्भागवत में जनकनन्दिनी से अधिक सुकुमार सरकार को माना है। यथा : प्रियायाः पाणिस्पर्शाक्षमाभ्याम् मृदितपथरुजो यो हरीन्द्रानुजाभ्याम्।

इसलिए दोनों राजकुमारों को सुठि सुकुमार और जनकसुता को केवल सुकुमारी कहते हैं। भाव यह कि ये लोग पैदल चलने में समर्थ नहीं। इन्हें रथ पर चढ़ाकर वन के साथ इनका चक्षु:संयोग मात्र करा दो और चार दिन में लौटा लाओ। कह देना कि वनवास की अवधि में महाराज ने सङ्कोच करके केवल चार दिन का कर दिया। अतः अब घर लौट चलो।

जौं नहिं फिरहिं धीर दोउ भाई। सत्यसंध दृढ़ ब्रत रघुराई॥
तौ तुम्ह बिनय करेहु करजोरी। फेरिअ प्रभु मिथिलेसकिसोरी॥१॥

अर्थ : यदि दोनों भाई न फिरें क्योंकि धीर हैं, सत्यसन्ध हैं, दृढ़व्रत हैं, रघुराई हैं तो तुम हाथ जोड़कर विनय करना कहना कि प्रभो! मिथिलेश की बेटी को लौटा दीजिये।

व्याख्या : चार कारण न फिरने के हैं। रघुराई हैं : रघुकुल की प्रतिष्ठा बिगड़ने न देंगे। धीर हैं : सङ्कट से मुँह न मोड़ेंगे। सत्यसन्ध हैं : कैकेयी से वचनबद्ध भी हो चुके हैं। मुनिव्रत ग्रहण कर लिया है। दृढ़व्रत होने के कारण उसे न छोड़ेंगे।

महाराज मिथिलेशकिशोरी के लिए अतिआर्त हैं। सुमन्त्र से कहते हैं कि पहिला प्रयत्न तो सबके लौटाने के लिए करना। असफल होने पर तुम हाथ जोड़कर विनय करना। तुम्हारी विनय रामचन्द्र न टालेंगे। कहना कि प्रभो आप समर्थ हैं। आप जानकी को लौटा सकते हैं। आपकी आज्ञा पतिदेवता सुतीयमणि कभी नहीं टालेंगी। मैंने जानकी को तो समझाया। पर रामचन्द्र को जानकी के लिए आज्ञा देने की बात कहने का अवसर न मिला।

जब सिय कानन देखि डेराई। कहेउ मोर सिख अवसरु पाई॥
सासु ससुर अस कहेउ सँदेसू। पुत्रि फिरिअ बन बहुत कलेसू॥२॥

अर्थ : जब सीता वन देखकर डरे तो अवसर पाकर मेरी शिक्षा कहना कि सास ससुर ने ऐसा कहा है कि बेटी! लौट चलो वन में बड़ा क्लेश है।

व्याख्या : अब रह गयी यह बात कि यदि वह किसी का कहना पातिव्रतधर्म को अग्रसर करके न माने तब तुम अवसर देखना। अवसर पर की कही हुई बात प्रभाव डाले बिना नहीं रहती। सीता नहीं जानती कि वन कैसा है। वह उसे एक बड़े बगीचे के रूप में समझती है। वह स्वभाव से बड़ी भीरु है। चित्र में लिखे हुए बन्दर को देखकर डरती है। वन देखकर अवश्य डरेगी। वही अवसर मेरी शिक्षा के कहने का है। साथ ही साथ कौसल्या की ओर से भी कहना। क्योंकि ससुर से अधिक सास का प्रभाव वधू पर होता है। उससे दोनों की ओर से कहना कि बेटी! फिर चलो अभी तो तुमने वन में प्रवेश किया है। वन में बड़ा कष्ट मिलता है। उत्तरोत्तर कष्ट बढ़ता ही जायगा। तुम सहन के योग्य नहीं हो।

पितुगृह कबहुँ कबहुँ ससुरारी। रहेहु जहाँ रुचि होइ तुम्हारी॥
एहि बिधि करेहु उपाय कदंबा। फिरइ त होइ प्रान अवलंबा॥३॥

अर्थ : चाहे बाप के घर चाहे ससुराल जहाँ तुम्हारी रुचि हो वहाँ रहना। इस भाँति बहुत से उपाय करना। यदि लौट आवे तो प्राण को [1]सहारा मिल जाय।

व्याख्या : कुलवधू माता पिता और श्वसुर सास की सम्मति से कभी पितृगृह में रहती है और कभी पतिगृह में रहती हैं। महाराज ने कहलाया कि तुम्हारी जबतक रुचि हो तबतक अयोध्या में रहना। जबतक रुचि हो तबतक जनकपुर रहना। मेरा यह आग्रह नहीं है कि तुम वन से लौटकर अयोध्या में ही रहो। जहाँ रहने से जितने दिनों तक जी बहले तबतक अपनी रुचि के अनुसार रहना।

इस प्रकार से प्रलोभन देना और जो जो उपाय तुम्हें उपयुक्त प्रतीत हो सो सब करना। यदि सीता किसी प्रकार से लौट आवे तो मेरे प्राण को अवलम्ब मिल जाय। भाव यह कि महाराज को सीताजी भी उतनी ही प्रिय हैं जितने कि रामजी हैं। श्रुति कहती है कि स्त्री पुरुष का आधा शरीर है। अतः सीताजी के रहने से मानो आधे शरीर से वे ही विद्यमान हैं। अतः प्राणवियोग न होगा। कष्ट चाहे जितना हो।

नाहिं त मोर मरनु परिनामा। कछु न बसाइ भये बिधि बामा॥
अस कहि मुरुछि परा महि राऊ। राम लखनु सिय आनि देखाऊ॥४॥

अर्थ : नहीं तो इसका परिणाम मेरी मृत्यु ही है। विधाता के बायें होने से कोई वश नहीं चलता। ऐसा कहके राजा मूर्च्छा खाकर गिर गये कि राम लक्ष्मण और सीता को लाकर दिखला दो।

व्याख्या : सीता के लौट आने की आशा से ही मैं जी रहा हूँ। राम लक्ष्मण के लौटने की आशा तो बहुत कम है। यदि सीता भी नहीं लौटी तो इसका परिणाम यह होगा कि मैं मर जाऊँगा। विधाता बायें होने पर कोई वश नहीं चलता। कहते कहते महाराज अधीर हो गये। बोले कि राम लक्ष्मण और सीता को लाकर दिखा दो और मूर्च्छित होकर गिर गये। पहिले भी मूर्च्छित थे और इतनी बात कहके फिर मूर्च्छित हो गये। महाराज की हालत ऐसी नाजुक हो रही है।

दो. पाइ रजायसु नाइ सिरु, रथु अति बेग बनाइ।
गयउ जहाँ बाहेर नगर, सीय सहित दोउ भाइ॥८२॥

अर्थ : राजाज्ञा पाकर सिर नवाया और अत्यन्त त्वरा के साथ रथ जोतकर नगर के बाहर जहाँ सीता के सहित दोनों भाई थे वहीं गये।

व्याख्या : सुमन्त्र ने महाराज की मूर्च्छा की ओर ध्यान नहीं दिया। ध्यान देनेवाले बहुत लोग थे। रामजी के पास जल्दी पहुँचने की आवश्यकता थी। महाराज को सिर नवाया और फुरती से रथ जोतकर चले। तबतक रामजी नगर के बाहर

---

१. पूर्व जन्म में युगल मूर्ति वरद होकर प्रकट हुई थी। अतः एक के रह जाने से प्राण को सहारा मिलने की बात कह रहे हैं।

पहुँच चुके थे। रामजी का एक पग पैदल चलना सुमन्त्रजी को असह्य था। राजाज्ञा मात्र की देर थी।

तब सुमंत्र नृप बचन सुनाए। करि बिंनती रथ रामु चढ़ाए॥
चढ़ि रथ सीय सहित दोउ भाई। चले हृदयँ अवधहिं सिरु नाई॥१॥

अर्थ : तब सुमन्त्र ने राजा का वचन सुनाया और प्रार्थना करके रामजी को रथपर चढ़ाया। सीताजी के सहित दोनों भाई रथ पर चढ़कर अवध को प्रणाम करके चले।

व्याख्या : सुमन्त्र ने रथपर से ही कहा कि महाराज ने आपके लिए रथ भेजा है और कहा है कि आप लोग रथ पर चढ़कर जायँ पैदल न जायँ और अपनी ओर से भी प्रार्थना की। सरकार रथ पर चलना उचित नहीं समझते थे। सुमन्त्रजी ने विनती की कि आवश्यकता पड़ने पर मुनिजी रथ पर चढ़ते ही हैं। मुनिव्रत में रथ पर चढ़ना निषिद्ध नहीं है। यथा : तेहि रथ रुचिर बसिष्ठ कहँ हरषि चढ़ाइ नरेस।

तब दोनों भाई सीताजी के सहित रथ पर सवार हुए और चले। अवध को प्रणाम किया। यहाँ अवध से अयोध्या नगर अभिप्रेत है अयोध्या प्रान्त नहीं। कर्मणा और वाचा प्रणाम करने से कहीं लोगों की यह धारणा न हो कि अब ये अयोध्या न लौटेंगे। अतः मनसे ही प्रणाम किया। नगर के बाहर पहुँचने पर रथ आया। अतः नगर को प्रणाम करते हैं। अयोध्या मोक्षपुरी है। जन्मभूमि है। महाप्रभावा है। अत. प्रणाम किया।

चलत रामु लखि अवध अनाथा। बिकल लोग सब लागे साथा॥
कृपासिंधु बहुबिधि समुझावहिं। फिरहिं प्रेम बस पुनि फिरि आवहिं॥२॥

अर्थ : राम को चलते अवध को अनाथ देखकर लोग विकल होकर साथ लग गये। कृपासिन्धु रामजी बहुत समझाते हैं। लोग फिर भी जाते हैं पर प्रेमवश फिर लौट आते हैं।

व्याख्या : रामजी को इस प्रकार जाते देखकर लोगों ने विचारा कि अवध तो अनाथ हो गया। यथा : मैं बन जाउँ तुम्हहि लै साथा। होइ सबहि बिधि अवध अनाथा। अतः लोग विकल होकर अनाथ नाथ के साथ लगे : अयोध्या खाली पड़ जाती है। लोग सरकार के साथ वनवास के लिए चले।

सरकार कृपासिन्धु हैं। लोगों के कष्ट का ध्यान करके उन्हें लौटने के लिए अनेक प्रकार से समझाते हैं। यथा :

सवैया : जिन पाल्यौ सदा प्रिय प्रान समान प्रजातिनको तजिबो नहि नीको।
यदि संग चलौ हमरे नृपको तो परै अति उज्ज्वलहू जस फीको॥
नहि धर्म न अर्थ न काम सधै सबही विधिते असमंजस जी को।
विनती मन मानि फिरो घर को सबहीं प्रतिपालहु धर्म गृही को॥

लागति अवध भयावनि भारी। मानहुँ कालराति अँधियारी ॥
घोर जंतु सम पुर नर नारी। डरपहिं एकहि एक निहारी ॥३॥

अर्थ : अयोध्या भारी भयावनी सी मालूम पड़ती है। मानों अँधेरी कालरात्रि है। पुर के नर नारी मानों हिंसक जन्तु हैं। एक दूसरे को देखकर डर रहे हैं।

व्याख्या : सरकार के समझाने से लोग समझ तो जाते हैं और नगर में लौट भी आते हैं। पर अयोध्या जो सदैव सोहावनी तथा मङ्गलमय थी यथा : यद्यपि अवध सदैव सोहावनि। रामपुरी मंगलमय पावनि। सो आज भारी भयावनी मालूम पड़ती है। मानो वह कालरात्रि है। कालरात्रि स्वभाव से ही भयवानी है। तिसपर अँधेरी यदि हो तो भारी भयावनी हो जाती है। इसी भाँति अयोध्या कालरात्रि सी हो गयी और मानो घोर जन्तुओं से व्याप्त होने से और भारी भयावनी हो गयी।

जो वहाँ के वासी थे वे नररत्न थे। यथा : मनिगन पुर नरनारि सु जाती। सुचि अमोल सुन्दर सब भाँती। सो आज व्याघ्र सिंहादि हिंसक जन्तुओं के समान हो गये। जो एक दूसरे को देखकर डरा करते हैं। व्याघ्र सिंहादि हिंसक जन्तुओं में कभी मेल होता नहीं। ये गोल बाँधकर रहते नहीं देखे जाते। अतः एक दूसरे से डरा करते हैं। यही गति अवध निवासियों की हो रही है एक दूसरे को देखकर डर रहे हैं।

घर मसान परिजन जनु भूता। सुत हित मीत मनहुँ जमदूता ॥
बागन्ह बिटप बेलि कुम्हिलाहीं। सरित सरोबर देखि न जाहीं ॥४॥

अर्थ : घर मानो श्मशान है। कुटुम्बी लोग मानो भूत हैं और बेटे हित तथा मित्र मानो यमदूत हैं। बगीचों में पेड़ और लता कुँभिला रही हैं। नदी और तालाब देखते नहीं बनते।

व्याख्या : प्राणों के प्राण जीवों के जीव सुख के सुख राम के न होने से आज अयोध्या की यह दशा है कि लोगों को अपने अपने घर श्मशान की भाँति भयानक और अपवित्र मालूम हो रहे हैं। कुटुम्बी लोगों पर भूत की भावना हो रही है। बेटे सम्बन्धी और मित्र तो मानो साक्षात् प्राणहारक यमदूत से दिखायी पड़ते हैं। यह दशा चेतन प्राणियों की हो रही है। घर की यह दशा देखकर जी बहलाने के लिए बाग में जाते हैं तो वहाँ नित्य सींचे जानेवाले वृक्ष और लताओं को कुम्हिलाया हुआ देखते हैं। पहिले नदी और तालाब देखते ही बनते थे। सो आज देखते नहीं बनते। भाव यह कि सरकार के चले जाने से नगर की प्रकृति में भयानक परिवर्तन हो गया।

दो. हय गय कोटिन्ह केलिमृग, पुरपसु चातक मोर।
पिक रथांग सुक सारिका, सारस हंस चकोर ॥८३॥

अर्थ : हाथी घोड़े जिनकी संख्या करोड़ों की है और खेल के लिए जिलाये हुए पशु तथा ग्राम्य पशु, चातक, मोर, कोयल, चकवे, तोता, मैना, सारस, हंस और चकोर।

व्याख्या : महाराज की सेना में करोड़ों हाथी घोड़े हैं तथा नागरिकों के यहाँ भी हाथी घोड़े हैं। केलिमृग अजायबखाने तथा धनियों के बाग में जिलाये हुए हैं। ग्राम्य पशु गाय, भैंस, कुत्ता आदि चातक, मोर, कुहू कुहू ध्वनि करनेवाली कोकिलाएँ जल के सन्निकट रहनेवाले चकवा चकई तथा मनुष्य की बोली के अनुकरण करनेवाले तोता मैना मकान के ऊपर शोभा देनेवाले सारस और हंस तथा चन्द्र के प्रेमी चकोर इन सबों में कोई भी स्थिर रहनेवाले नहीं हैं।

राम बियोग बिकल सब ठाढ़े। जहँ तहँ मनहु चित्र लिखि काढ़े ॥
नगरु सफल बनु गहबर भारी। खग मृग बिपुल सकल नरनारी ॥१॥

अर्थ : रामजी के वियोग से विकल सब जहाँ के तहाँ खड़े हैं। मानों चित्र में लिखे हुए हैं। नगर मानों फलवाला घना वन है और सब नर नारी मानों बहुत से पशु पक्षी हैं।

व्याख्या : ये पशुपक्षी भी रामजी के वियोग से विकल होकर जो जहाँ थे वहीं खड़े हैं। कोई हिलते डोलते या बोलते नहीं। मालूम होता है कि ये सजीव नहीं हैं : चित्र में खींचे हुए हैं। ऐसा भयानक सन्नाटा छाया हुआ है। नगर में चहल पहल सब कुछ रामजी के कारण था। जहाँ राम नहीं वहाँ आराम कहाँ ?

नगर को सफल वन कहा। क्योंकि फल रहित वन में पशु पक्षी नहीं रहते। सफल वन पशु पक्षी से भरा रहता है। पशु वृक्ष के नीचे रहते हैं और पक्षी ऊपर रहते हैं। नगर में भी अनेक भूमिका : मरातिब के मकान हैं। सब में लोग रहते हैं। इसलिए पशुपक्षी से उपमित किया।

बिधि कैकेई किरातिनि कीन्हीं। जेहि दव दुसह दसहुँ [illegible]सि दीन्हीं ॥
सहि न सके रघुबर बिरहागी। चले लोग सब ब्य[illegible] भागी ॥२॥

अर्थ : विधाता ने कैकेयी को किराती बना दी। जिसने दुःसह दावानल : वन की आग दसो दिशा में लगा दी। लोग रामजी की विरहाग्नि न सह सके। सो व्याकुल होकर भाग खड़े हुए।

व्याख्या : आज भी किराती अपने बच्चों को रोग विनिर्मुक्त करने के लिए वन में आग लगा देती है। उनकी ऐसी धारणा है कि ऐसा करने से लड़के का लाभ होगा। कैकेयी ऐसी भली और समझदार रानी को किराती सा बना देना विधाता की ही करामात थी। ये ही चलते फिरते हंस को काग बना सकते हैं। यथा : बिचरत हंस काग किय जेही। पहिले कैकेयी की लगायी हुई आग चारों ओर थी। यथा : मृगी देखि दव जनु चहुँओरा। अब वही आग दसों दिशा में फैल गयी। वन में दसों दिशा में आग देखकर जैसे पशु पक्षी अपना अपना बसेरा

छोड़कर भाग चलते हैं इसी भाँति विरहाग्नि से सारे नगर को भस्मीभूत होते देखकर सब निवासी भाग खड़े हुए। प्रयत्न किया कि इस विरहाग्नि को सह ले जायँ। पर सहने में असमर्थ हो गये।

सबहिं बिचारु कीन्ह मन माहीं। राम लखनु सिय बिनु सुख नाहीं॥
जहाँ राम तहँ सबुइ समाजू। बिनु रघुबीर अवध नहिं काजू॥३॥

अर्थ : सबने मन में विचार किया कि राम लक्ष्मण और सीता के बिना सुख नहीं। जहाँ राम होंगे वहीं सब समाज रहेगा। बिना रघुवीर के अयोध्या में कोई काम नहीं है।

व्याख्या : मेल किसी से नहीं है। यथा : डरपहिं एकहिं एक निहारी। अतः इकट्ठे होकर सम्मति नहीं कर सकते। पर सबके मन में एक ही विचार उदय हुआ कि राम लक्ष्मण और सीता के बिना सुख हो नहीं सकता। सब लोगों ने नगर का घर का और अपना हाल देख लिया। अतः इसी निर्णय पर पहुँचे कि सब सुख तो सीता राम लक्ष्मण के रहने ही में था। सब सामग्री तो ज्यों की त्यों मोजूद है। पर दु:ख ने डेरा जमा लिया और बिना सुख के कोई जी नहीं सकता।

अतः जहाँ रामजी रहेंगे वहीं सब समाज भी रहेगा। बिना रामजी के अयोध्या में रहने का कोई प्रयोजन नहीं है। यहाँ रहकर भी हम किसी को सुख नहीं दे सकेंगे। क्योंकि स्वयं दु:ख से विकल रहेंगे।

चले साथ अस मंत्रु दृढ़ाई। सुर दुर्लभ सुखु सदन बिहाई॥
राम चरन पंकज प्रिय जिन्हहीं। विषय भोग बस करहिं कि तिन्हहीं॥४॥

अर्थ : ऐसा मन्त्र दृढ़ करके सुर दुर्लभ सुखवाले घरों को छोड़कर : रामजी के साथ : चले। रामजी के चरण कमल जिन्हें प्रिय हैं उन्हें क्या विषयभोग वश कर सकता है ?

व्याख्या : घर जल्दी किसी से नहीं छूटता। अत्यन्त दु:ख मिलने से ही आदमी घर को छोड़ता है। अयोध्या में तो सबको सुरदुर्लभ सुख प्राप्त है। पर उन्हें वे सुख ही बिना रामजी के महादु:खमय प्रतीत होते हैं। अतः सबने अपने मन में यही ठान ली कि रामजी के साथ ही वन चलना चाहिए। बात यह है कि जिन्हें रामजी के चरण में रति है उन्हें विषयभोग वश कर नहीं सकते। उन्हें स्वतः वशीकार संज्ञा वैराग्य की प्राप्ति हो जाती है। सारे संसार पर विषय भोग का अधिकार है केवल रामभक्त पर नहीं है।

दो. बालक बृद्ध बिहाइ गृह, लगे लोग सब साथ।
तमसा तीर निवासु किय, प्रथम दिवसु रघुनाथ॥८४॥

अर्थ : बाल वृद्ध को घर छोड़कर सब लोग साथ हो गये। पहिले दिन रामजी का निवास तमसा के किनारे हुआ।

व्याख्या : बालक वृद्ध को कोई साथ नहीं लेता है। क्योंकि उनके साथ लेने से रामजी का साथ ही न हो सकेगा। कितना भी धीरे रथ चले पर बालक वृद्ध तो उस तक नहीं पहुँच सकते। अयोध्या से चलकर पहिले दिन सरकार तमसा के किनारे ठहरे। अर्थात् चैत्र सुदी १० दसमी पुष्य नक्षत्र में सरकार ने वनयात्रा की। इसी दिन राज्याभिषेक होनेवाला था।

रघुपति प्रजा प्रेमबस देखी। सदय हृदय दुखु भयउ बिसेखी ॥
करुनामय रघुनाथ गोसाईं। बेगि पाइअहिं पीर पराईं ॥१॥

अर्थ : रामजी ने प्रजा को प्रेमवश देखा। हृदय में दया है इसलिए विशेष दुःख हुआ। रघुनाथ गोसाईं करुणामय हैं। पराये दुःख को शीघ्र ही प्राप्त करते हैं।

व्याख्या : रामजी ने देखा कि प्रजा प्रेम के वश है। मुझे छोड़ना नहीं चाहती। बड़े बूढ़े छोटे बच्चे सुख सम्पत्ति को छोड़कर मेरे साथ रहना चाहते हैं। ऐसी अवस्था में दुःख होना स्वाभाविक है। पर सरकार के दयार्द्र हृदय में विशेष दुःख हुआ। सरकार पानी पीकर रह गये। प्रजावर्ग ने भी उन्हीं का अनुसरण किया। रघुकुल के नाथ हैं। हृषीकेश हैं। पराये दुःख से शीघ्र ही द्रवीभूत हो जाते है। रघुनाथ हैं। अतः प्रजा को दुःखी नहीं देख सकते। इन्द्रियों के स्वामी हैं। अतः पराये दुःख की अनुभूति में इन्हें देर नहीं लगती।

कहि सप्रेम मृदु बचन सुहाए। बहुबिधि राम लोग समुझाए ॥
किए धरम उपदेश घनेरे। लोग प्रेम बस फिरहिं न फेरें ॥२॥

अर्थ : प्रेम के साथ सुन्दर कोमल वचन कहकर बहुत विधान से रामजी ने लोगों को समझाया। बहुत सा धर्मोपदेश किया। परन्तु लोग प्रेम के वश थे। फेरने से फिरते नहीं थे।

व्याख्या : प्रेममय सुन्दर कोमल वचन द्वारा रामजी ने समझाया। धर्मोपदेश किया। यथा :

तुम सुजान जनि धर्म को मेटौ मिलि मर्याद।
बाल वृद्ध ह्वै हैं करत घर में अधिक विषाद ॥
धर्म पिता माता धरम धर्म साईं सुत भाय।
जाते निबहै धर्म सोइ सब मिलि करहु उपाय ॥
होइ अवसि वन गवन ते गृही धर्म को लोप।
जो तजि मैं वन जात पुनि होइ तासु आरोप ॥
राउ निरादर उचित नहिं धरहु प्रीति उर गोय।
हमहु प्रजा तुमहू प्रजा करहु जो आयसु होय ॥
कष्टित तुम सबको निरखि मोहि कष्ट अति होय।
तजि विचार वन गवन को भवन जाहु सब कोय ॥

परन्तु लोग प्रेम के वश थे। प्रभु के फेरने पर भी नहीं फिरे।

सीलु सनेहु छाँड़ि नहिं जाई। असमंजस बस भे रघुराई॥
लोग सोग श्रम बस गए सोई। कछुक देवमाया मति मोई[1]॥३॥

अर्थ : शील सनेह छोड़ते नहीं बनता। रामजी बड़े असमञ्जस : दुविधा में पड़ गये। लोग शोक और परिश्रम के वश होकर सो गये। देवताओं की माया से भी कुछ मोहित हुए।

व्याख्या : को रघुबीर सरिस संसारा। सील सनेह निबाहनि हारा। रामजी का स्वभाव है कि शील और स्नेह का निर्वाह करते हैं। इन लोगों के साथ चलने का अर्थ ही यही है कि घर लौटो। नहीं तो जहाँ तुम बसोगे वहीं हम लोग भी बसेंगे। इन सबका साथ ले जाना सम्भव नहीं और साथ ये छोड़ते नहीं। बिना शील स्नेह तोड़े साथ ये छोड़ नहीं सकते। अतः रामजी असमञ्जस में पड़ गये।

इधर लोग सवेरे से ही शोक कर रहे हैं। यथा : जो जहँ सुनै धुनै सिर सोई। बड़ बिषाद नहिं धीरज होई। तिस पर रथ के साथ साथ आये हैं। इसलिए थके हुए थे। सब के सब सो गये। उनकी नींद की बेखबरी को देवताओं की माया ने बढ़ा दिया। क्योंकि इन लोगों का साथ रहना रामजी के वन जाने में विघ्नरूप था।

जबहिं जाम जुग जामिनि बीती। राम सचिव सन कहेउ सप्रीती॥
खोजु मारि रथु हाँकहु ताता। आन उपाय बनिहि नहिं बाता॥४॥

अर्थ : जब दो पहर रात्रि बीत गयी तब रामजी ने मन्त्री से प्रेमपूर्वक कहा कि हे तात! इस भाँति रथ चलाओ कि पता न चले। दूसरे उपाय से बात नहीं बनेगी।

व्याख्या : रामजी असमञ्जस में थे। सोये नहीं। जब आधी रात बीतो देखा कि तमाम सोता पड़ा हुआ है। कोई सगबगाता तक नहीं। तब प्रीति के साथ सुमन्त्र से कहा। सुमन्त्रजी पिता के सखा हैं। अतः उन्हें आज्ञा नहीं देते। प्रीति के साथ कहते हैं कि इस समय यदि इस भाँति रथ आप हाकें कि लीक देखने पर किसी को पता न चले कि रथ किधर गया। तभी हमारा साथ इन लोगों से छूट सकता है। दूसरा उपाय कोई है नहीं। यह सारथि का पाण्डित्य है कि रथ को घुमाकर मार्ग में पहिले की पड़ी हुई लीकों से रथ की लीक को ऐसा मिला दे कि ढूँढ़नेवाला यह निश्चय न कर सके कि रथ ने किस लीक का अनुसरण किया है।

दो. राम लखनु सिय जान चढ़ि, संभु चरन सिरु नाइ।
सचिव चलायेउ तुरत रथ, इत उत खोज दुराइ॥८५॥

---

१. यहाँ हकार का लोप होकर मोही का मोई रूप हो गया। यथा : प्रकृतिप्रत्यय-सन्धिर्लोपविकारागमाश्च वर्णानाम्।

अर्थ : राम लक्ष्मण और सीता ने रथ पर चढ़कर शिवजी के चरणों में सिर नवाया और मन्त्री ने इधर उधर के पता को छिपाकर तुरन्त रथ चला दिया।

व्याख्या : यह पता किसी को न था कि रामजी किस वन में और किस रास्ते से जावेंगे। सब लोग साथ हो गये थे कि चाहे जहाँ जायें हम लोग साथ न छोड़ेंगे। जहाँ जाना था सो सुमन्त्रजी से कह दिया। वे उधर रथ ले गये। पर पहिले रथ को इधर उधर ऐसा घुमाया कि पता न चल सके कि रथ किधर गया। चोरी से जा रहे हैं। इसलिए तस्कराणां पति को नमस्कार करके चले।

जागे सकल लोग भये भोरू। गे रघुनाथ भयेउ अतिसोरू॥
रथ कर खोज कतहुँ नहिं पावहिं। राम राम कहि चहुँ दिसि धावहिं॥१॥

अर्थ : सबेरा होने पर लोग जागे। बड़ा शोर मचा कि रामजी तो चले गये। रथ का पता कहीं से नहीं चलता है। लोग राम राम कहकर चारों ओर दौड़ते हैं।

व्याख्या : थके माँदे देव माया से मोहित लोग ऐसे सोये कि सवेरा होने पर ही जागे। देखा न तो रामजी हैं और न रथ है। जैसे रात को किसी का सर्वस्व चोरी हो जाय और जागने पर वह हाय हाय करे। वही गति अवधवासियों की हुई। बड़ा शोर मचा कि रामजी चले गये। किधर गये! कहाँ गये! किसी को मालूम नहीं। रथ का पता चले कि किधर से गया तो लीक का अनुसरण करके गन्तव्यस्थान तक पहुँचने का प्रयत्न किया जा सकता है। पर रथ का कुछ पता नहीं लगता कि किधर से गया। अतः लोग विकल हैं। उनके मुँह से कोई बात नहीं निकल रही है। केवल राम राम कहते हुए चारों ओर रथ के खोज में दौड़ रहे हैं।

मनहुँ बारिनिधि बूड़ जहाजू। भयउ बिकल बड़ बनिक समाजू॥
एकहिं एक देहिं उपदेसू। तजे राम हम जानि कलेसू॥२॥

अर्थ : मानों समुद्र में जहाज डूबता हो और व्यापारी का समाज अति विकल हो उठे। एक दूसरे को उपदेश दे रहे हैं कि रामजी ने क्लेश जानकर हमें छोड़ दिया।

व्याख्या : लोगों की विकलता जहाज के डूबने के समय वणिक् समाज की विकलता के समान हुई। यहाँ राम वियोग को अपार समुद्र से उपमित किया है। यथा : राम बियोग पयोधि अपारू। करन धार तुम अवध जहाजू इत्यादि। अवध जहाज पर तो सभी सवार हैं पर विकलता साथ जानेवाले वणिक् समाज को अधिक है। क्योंकि उन्हें प्राणों से अधिक प्रिय उनके सर्वस्व राम हैं। उन्हें वे गले बाँधे हुए हैं साथ नहीं छोड़ते। प्राण जाने की उतनी चिन्ता नहीं जितनी चिन्ता प्राणधन के वियोग से है। रामजी ने हमारा परित्याग किया इस बात की बड़ी विकलता है।

अतः एक दूसरे को समझाते हैं कि रामजी ने हम लोगों को अप्रिय जानकर परित्याग नहीं किया है। हम लोग उनको प्रिय हैं। हमें क्लेश न हो इसलिए हम लोगों को छोड़कर चले गये।

निंदहि आपु सराहहिं मीना। धिग जीवनु रघुबीर बिहीना ॥
जौं पै प्रिय बियोगु बिधि कीन्हा। तौ कस मरनु न मागें दीन्हा ॥३॥

अर्थ : अपनी निन्दा करते हैं और मछली की सराहना करते हैं। कहते हैं : रघुवीर के बिना जीने को धिक्कार है। विधाता ने यदि प्रिय का वियोग किया तो माँगो मौत क्यों नहीं दिया !

व्याख्या : अपने प्रेम को कच्चा पाकर अपनी निन्दा करते हैं। प्रशंसा मछली की करते हैं। क्योंकि उसका प्रेम सच्चा है। प्रिय पानी के वियोग से प्राण दे देती हैं : यथा : तुलसी केवल मीन को है साँचिलो सनेहु। रघुबीर बिहीन जीवन अधम का जीवन है। अतः हमारे जीवन को धिक्कार है।

विधाता का नाम विधि है। उन्हें अविधि कार्य न करना चाहिए। उचित तो यह था कि वे प्रिय का वियोग ही न देते। यदि दिया तो माँगने पर मौत भी देना था। पहिले तो अपनी निन्दा की। अब विधि की निन्दा करते हैं।

एहि बिधि करत प्रलाप कलापा। आए अवध भरे परितापा ॥
बिषम बियोगु न जाइ बखाना। अवधि आस सब राखहिं प्राना ॥४॥

अर्थ : इस प्रकार रोते कलपते परिताप से भरे हुए अयोध्या आये। विषम-वियोग का वर्णन नहीं किया जा सकता। अवधि की आशा से सब प्राण धारण कर रहे हैं।

व्याख्या : जब रथ का खोज न मिला तो लाचार होकर रोते कलपते घर लौटे। पर लौटने में महा दुःख उसी भूत यमदूत से व्याप्त श्मशान में ही रहना पड़ा। राम वियोग की अग्नि के ताप से सब परितप्त हैं। ऐसा दारुण वियोग व्यथा है कि उसका वर्णन नहीं हो सकता जो वर्णन किया गया। वह बहुत ही अल्प है। अब चौदह वर्ष के बाद तो भेंट होगी। इसी आशा पर सब जी रहे हैं। यदि यह आशा न होती तो निश्चय सब मर जाते। कौसल्याम्बा ने ठीक कहा था : अवधि अम्बु प्रिय परिजन मीना। तुम करुनाकर धर्म धुरीना। अस बिचारि सोइ करहु उपाई। सबहिं जियत जेहि भेंटहु आई।

दो. राम दरस हित नेम ब्रत, लगे करन नर नारि।
मनहुँ कोक कोकी कमल, दीन बिहीन तमारि ॥८६॥

अर्थ : रामजी के दर्शन के लिए सब नर नारी नियम व्रत करने लगे। मानों ये कोक कोकी और कमल हैं बिना सूर्य के दीन हो रहे हैं।

व्याख्या : ये सब पूर्वजन्म के तपस्वी हैं। अपने स्वरूप पर आगये। नियम व्रत रामजी के दर्शन के लिए करने लगे। यथा : पय अहार फल असन एक निसि भोजन एक लोग। करत रामहित नेमब्रत परिहरि भूषन भोग। जिस भाँति सूर्यनारायण के चार भक्त हैं : १. कमल २. कोक ३. मधुकर और ४. खगनाना उसी

भाँति : राम भगत जग चारि प्रकारा। १. ज्ञानी २. जिज्ञासु ३. अर्थार्थी और ४. आर्त। सो अयोध्या में अर्थार्थी और आर्त नहीं हैं। केवल ज्ञानी और जिज्ञासु हैं। ज्ञानी को उपमा कमल से और जिज्ञासु की उपमा कोक कोकी से दी गयी। ये रामजी के बिना वैसे ही दीन हो रहे हैं जैसे सूर्य के बिना कमल और कोक कोकी दीन रहते हैं।

सीता सचिव सहित दोउ भाई। सृंगबेरपुर पहुँचे जाई॥
उतरे राम देवसरि देखी। कीन्ह दंडवत हरषु बिसेखी॥१॥

अर्थ : सीता और मन्त्री के सहित दोनों भाई जाकर श्रृङ्गवेरपुर पहुँच गये। देवनदी गङ्गाजी को देखकर रामजी ने रथ त्याग किया और विशेष हर्ष के साथ दण्डवत् किया।

व्याख्या : राम लखन सिय जान चढ़ि संभु चरन सिर नाइ। सचिव चलाएउ तुरत रथ इत उत खोज दुराइ : से प्रसङ्ग छोड़ा था। बीच में पुरवासियों की कथा कहने लगे। अब फिर वहीं से कथा उठाते हैं कि चारों मूर्ति श्रृङ्गवेरपुर जाकर पहुँच गये। श्रृङ्ग है शरीर में जिसके उसे श्रृङ्गवेर कहते हैं अर्थात् श्रृङ्गीऋषि। उनका पुर श्रृङ्गवेरपुर। अथवा श्रृङ्गवेर अदरक को कहते हैं। सम्भव है कि वहाँ अदरक अधिक होता रहा हो इससे श्रृङ्गवेरपुर कहलाया हो। आजकल उसे सिंगरौर कहते हैं। यथा : सो जामिनि सिंगारौर गँवाई।

अब तीर्थ स्नान की विधि कहते हैं। गङ्गाजी के दर्शन से रामजी को विशेष हर्ष हुआ। क्योंकि गङ्गा जी के दर्शन मात्र से मुक्ति सुनी गयी है। यथा : गङ्गे ते दर्शनान्मुक्तिर्न जाने स्नानजं फलम्। गङ्गाजी के दर्शन होते ही रथ से उतर पड़े। यह तीर्थ का आदर है और दण्डवत् प्रणाम किया। क्योंकि गङ्गाजी सर्वतीर्थमयी हैं।

लखन सचिव सिय किये प्रनामा। सबहि सहित सुख पाएउ रामा॥
गंग सकल मुद मंगल मूला। सब सुख करनि हरनि सब सूला॥२॥

अर्थ : लक्ष्मण मन्त्री और सीताजी ने प्रणाम किया और सबके साथ रामजी ने सुख पाया। गङ्गा जी सभी मुद मङ्गल की मूल हैं। सब सुख करनेवाली और सब शूलों को हरनेवाली हैं।

व्याख्या : जिस समय रामजी ने दण्डवत् किया लक्ष्मण मन्त्री और सीताजी ने उसी समय प्रणाम किया। बड़े के दण्डवत् करने के समय सब लोग दण्डवत् न करें। केवल भक्तियुक्त प्रणाम कर दें यही विधि है। तीर्थ की प्राप्ति होने पर आनन्द होना चाहिए कि मुझे तीर्थ प्राप्ति हुई मेरा बड़ा भाग्य है। अतः कहते हैं सबके साथ रामजी को सुख हुआ।

सब अमङ्गलों का मूल सब दुःखों का करनेवाला सब शूलों की उत्पत्ति का कारण पाप है और गङ्गा के समान पापनाशक कोई तीर्थ नहीं है। शास्त्र कहता है : प्रायश्चित्तं तु तत्रैव यत्र गङ्गा न विद्यते। अतः गङ्गा जी को मुदमङ्गलमूल

निराकार ब्रह्म अथवा ब्रह्मद्रवा कहा। यथा : ब्रह्मद्रवेति विख्याता पापानि हर जाह्नवि।

कहि कहि कोटिक कथा प्रसंगा। राम बिलोकहिं गंग तरंगा ॥
सचिवहि अनुजहि प्रियहि सुनाई। बिबुध नदी महिमा अधिकाई ॥३॥

अर्थ : करोड़ों कथा प्रसङ्ग कहकर रामजी गङ्गा का तरङ्ग देखते हैं। मन्त्री अनुज और प्रिया को देवनदी की महामहिमा कह सुनाया।

व्याख्या : शत सहस्र लक्ष कोटि आदि शब्द बहुवचन वाची हैं। इनका अर्थ बहुत है। दर्शन प्रणाम विश्राम के बाद माहात्म्य कथन श्रवण भी होना चाहिए। इसलिए रामजी अनेक कथा प्रसङ्ग कहते जाते हैं और गङ्गाजी के तरङ्गों के दर्शन का आनन्द भी ले रहे हैं। इस भाँति देवनदी का महामहिमा कथन रामजी ने किया। भाव यह कि गङ्गा माहात्म्य के वक्ता स्वयं रामजी हुए और श्रोता सीताजी लक्ष्मण जी और सुमन्त्रजी हुए।

मज्जनु कीन्ह पंथ श्रम गयऊ। सुचि जलु पिअत मुदित मन भयऊ ॥
सुमिरत जाहि मिटइ श्रम भारू। तेहि श्रमु यह लौकिक ब्यवहारू ॥४॥

अर्थ : स्नान किया। रास्ते की थकावट दूर हुई। पवित्र जल पीते ही मन प्रसन्न हो गया। जिसके स्मरण करने से श्रम का बोझ दूर हो जाता है उसे श्रम होना लौकिक व्यवहार है।

व्याख्या : अदृष्टसुख कहकर अब दृष्टसुख कहते हैं। मज्जन पान से पाप हरण तो होता है यथा : मज्जन पान पाप हर एका। लौकिक सुख भी होता है। मज्जन से रास्ते की थकावट दूर हो जाती है और जल पीने से मन प्रसन्न हो जाता है। ऐसा जल जगतीतल में दूसरा है नहीं। अतः रामजी के मज्जन पान पर भी वही फल कहा गया।

प्रश्न उठता है कि क्या रामजी में संसारियों की भाँति श्रम का संसर्ग माना जायगा। इस पर कहते हैं कि सबसे भारी श्रम तो भवश्रम है। सो तो सरकार के स्मरण से मिट जाता है। जैसे : भवश्रम सोषक तोषक तोषा। उस प्रभु का श्रम के साथ संसर्ग कहना लौकिक व्यवहार है।

दो. सुद्ध सच्चिदानंदमय, कंद भानुकुल केतु।
चरित करत नर अनुहरत, संसृति सागर सेतु ॥८७॥

अर्थ : सूर्यकुल के पताका रामचन्द्र शुद्ध सच्चिदानन्द मेघ हैं। मनुष्य के अनुरूप चरित्र करते हैं जो संसार सागर के लिए पुल हैं।

व्याख्या : सुद्ध सच्चिदानन्दमय कन्द से स्वरूप कहा। भानुकुल केतु से अवतार कहा : चरित करत नर अनुहरत से लीला कहा। संसृति सागर सेतु से लोकोपकार कहा। अथवा सुद्ध सच्चिदानन्दमय कन्द से चिन्मय महाविष्णु कहा।

भानुकुल केतु कहकर रघुकुल में दशरथ के यहाँ जन्म होना जनाया। चरित करत नर अनुहरत कहने से राजते यो महीस्थित: का भाव दर्शाया और संसृति सागर सेतु से स्वस्वरूप प्रदातृत्व गुण का वर्णन किया। यथा : चिन्मयेऽस्मिन् महाविष्णौ जाते दशरथे हरौ। रघोः कुलेऽखिलं राति राजते यो महीस्थित:। रामतापनीये।

यह सुधि गुह निषाद जब पाई। मुदित लिये प्रिय बंधु बोलाई ॥
लिये फल मूल भेंट भरि भारा। मिलन चलेउ हियँ हरषु अपारा ॥१॥

अर्थ : यह खबर जब गुहनामी निषाद को लगी बड़ा प्रसन्न होकर प्रिय बन्धुओं को बुलवाया। बहँगी भर कर फल मूल भेंट के लिए और अपार आनन्द के साथ मिलने चला।

व्याख्या : गुहनाम भगवान् स्वामि कार्तिकेय का है। यथा : सेनानीरग्निभूर्गुहः। उस निषाद का भी यही नाम था। यह निषादों का अधिपति था। शृङ्गवेर पुर में रहता था। इसे जब खबर लगी कि सस्त्रीक सानुज रामजी मन्त्री के साथ पधारे हैं तो बड़ा प्रसन्न हुआ। भेंट के लिए फल मूल से बँहगी भर ली। अपने प्रिय भाई बन्धुओं को साथ ले लिया और मिलने चला। रामजी के आने का तो अर्थ ही यह है कि लक्ष्मण जी साथ हैं। पर भगवती सीताजी साथ हैं। यह सुनकर उसे अपार आनन्द हुआ कि युगलमूर्ति का दर्शन करूँगा। मालूम होता है कि गङ्गा स्नान के लिए आये हैं।

करि दंडवत भेंट धरि आगे। प्रभुहिं बिलोकत अति अनुरागे ॥
सहज सनेह बिबस रघुराई। पूँछी कुसल निकट बैठाई ॥२॥

अर्थ : भेंट सामने रखकर दण्डवत् प्रणाम किया और अत्यन्त प्रेम से सरकार का दर्शन करने लगा। रामजी ने स्वाभाविक स्नेह के वश उसे निकट बिठलाया और कुशल पूछी।

व्याख्या : राजा दण्डधर गुरु हैं। इसलिए दण्डवत् प्रणाम किया। रिक्तपाणि होकर : खाली हाथ राजदर्शन का निषेध है। इसलिए भेंट सामने रक्खा। जगदम्बा के दर्शन का अधिकार नहीं है। इसलिए प्रेम से टकटकी बाँधे सरकार का दर्शन कर रहा है।

हाथ बाँधे दूर खड़ा है। उसे सरकार के प्रति स्वाभाविक प्रेम है। किसी कारण से नहीं और सरकार सहज प्रेम के वश में रहनेवाले हैं। अतः उसे बुलाकर अपने निकट बिठलाया और कुशल पूछा। कुशल पूछने का अर्थ ही यह है कि पूछनेवाला कुशल चाहता है। जो अप्रसन्न होता है वह कुशल नहीं पूछता। यथा : दच्छ न कछु पूछी कुसलाता। सतिहि बिलोकि जरे सब गाता। निकट बैठना और कुशल पूछना आदर देना है : सम्मान करना है। हेमदान गजदान तें बड़ो दान सम्मान।

नाथ कुसल पद पंकज देखें। भयेउँ भागभाजनु जन लेखें॥
देव धरनि धनु धामु तुम्हारा। मैं जनु नीच सहित परिवारा॥३॥

अर्थ : हे नाथ ! आपके चरणों के दर्शन से सब कुशल है। मेरी तो गिनती भाग्यवानों में हो गयी। हे देव ! धरणी धन धाम सब आपका है। मैं तो परिवार के सहित नीच सेवक हूँ।

व्याख्या : सेवक सदन स्वामि आगमनू। मंगल मूल अमंगल दमनू। सरकार के चरण आने से सब कुशल है। जगदम्बा भी साथ हैं। अतः कहता है कि आज मेरी गणना भाग्यावानो में हो गयी। यहाँ इस तरह रहना ठीक नहीं है। मेरा तो सब कुछ सरकार का ही है। धरणी आपकी, धन आपका, घर आपका, मैं तो नीच सेवक परिवार के सहित हूँ। अतएव उनका परिवार सहित उपभोग करता हूँ। जब घर मौजूद है तब जगदम्बा सहित यहाँ ठहरना ठीक नहीं। यद्यपि वह जगदम्बा का नाम नहीं लेता है। पर उसके बरताव से यह झलक आती है।

कृपा करिअ पुर धारिअ पाऊ। थापिय जनु सब लोग सिहाऊ॥
कहेहु सत्य सबु सखा सुजाना। मोहि दीन्ह पितु आयेसु आना॥४॥

अर्थ : कृपा करिये। पुर में पधारिये। मेरी प्रतिष्ठा बढ़ाइये। सब लोग मेरे भाग्य की प्रशंसा करें। रामजी बोले : सुजान सखा ! तुमने ठीक कहा। पर पिताजी ने मुझे दूसरे प्रकार की आज्ञा दी है।

व्याख्या : पुर में न उतर कर गङ्गातीर में उतरे सो ठीक ही किया। पर अब तो स्नानादिक सब धर्मकृत्य हो चुके। अब मुझ पर कृपा कीजिये। पुर में पधारिये। पुर में पधारने से मेरी प्रतिष्ठा है। मैं प्रतिष्ठा की हुई मूर्ति की भाँति पूज्य हो जाऊँगा। लोग मेरे भाग्य की सराहना करेंगे।

श्रीरामजी ने उसे सखा सुजान कहकर सम्बोधन किया और कहा कि तुम्हारा कहना ठीक है। सस्त्रीक होने से मेरा पुर में उतरना उचित है। पर जैसा तुमने सुना होगा कि मेरा अभिषेक होनेवाला था सो नहीं हुआ। पिताजी की दूसरे प्रकार की आज्ञा हुई।

दो. बरष चारि दस बासु बन, मुनि ब्रत बेषु अहारु।
ग्राम बासु नहिं उचित सुनि, गुहहि भयउ दुख भारु॥८८॥

अर्थ : चौदह वर्ष वनवास करने की और मुनिव्रत वेष और आहार की आज्ञा हुई है। अतः ग्रामवास मुझे उचित नहीं है। यह सुनकर गुह को बड़ा भारी दुःख हुआ।

व्याख्या : अभी वनवास का प्रारम्भ ही है। इसलिए चारिदस कहते हैं। रामजी ने कहा कि चौदह वर्ष के लिए मुझे वनवास की आज्ञा है और तबतक के लिए मुनियों का व्रत पालन करने मुनियों का सा वेष धारण करने और मुनियों का

सा आहार करने की आज्ञा है। इसलिए अयोध्या छोड़कर वन जा रहा हूँ। ग्रामवास मुझे उचित नहीं है। नहीं तो मैं अवश्य तुम्हारे पुर में जाकर तुम्हारा आतिथ्य स्वीकार करता। मैं जबतक यहाँ ठहरूँगा पुर के बाहर ही रहूँगा।

राम लखन सिय रूप निहारी। कहहिं सप्रेम ग्राम नर नारी ॥
ते पितु मातु कहहु सखि कैसे। जिन्ह पठये बन बालक ऐसे ॥१॥

अर्थ : राम लक्ष्मण और सीताजी का रूप देखकर गाँव के नर और नारियाँ कहती हैं कि सखि! वे[1] पिता कैसे हैं जिन्होंने ऐसे बालकों को वन में भेज दिया।

व्याख्या : गाँव में समाचार फैलते क्या देर लगती है। बन्धुओं के सहित निषादराज को चलते देखकर गाँव के लोग जुट गये : देव देखि तव बालक दोऊ। अब न आँखि तर आवै कोऊ। तथा : जग अस जुवति कहाँ कमनीया। ऐसा उन्मादकारक रूप देखकर ग्राम नर नारियों के हृदय में बड़ा प्रेम उमगा। आपस में कहने लगे कि जिसके रूप को देखकर हम लोगों को इतना प्रेम हो रहा है उनके माता पिता का कैसा हृदय है कि उन्होंने ऐसे बालकों को वन भेज दिया। वानप्रस्थ आश्रम ग्रहण करने का समय नहीं आया है इसलिए बालक कहते हैं।

एक कहहिं भल भूपति कीन्हा। लोचन लाहु हमहि बिधि दीन्हा ॥
तब निषादपति उर अनुमाना। तरु सिंसुपा मनोहर जाना ॥२॥

अर्थ : कोई कहता है कि राजा ने अच्छा ही किया। विधाता ने हमको भी लोचन लाभ दे दिया। तव निषादपति ने मन में अनुमान किया तो अशोक का पेड़ मनोहर जँचा।

व्याख्या : आँख होने का यथार्थ लाभ तो यही है कि सरकार के सुन्दर मुखकमल का दर्शन हो। यथा : करहु सुफल सबके नयन सुंदर बदन देखाये। अतः किसी एक ने कहा कि भाई! राजा ने अच्छा किया जो इनको वन भेजा। विधाता ने ऐसा अवसर प्रदान कर दिया कि हमारे नयन भी इनके दर्शन से सफल हो गये।

इधर निषादपति ने मन में अनुमान किया कि ये मनोहर स्थान के रहनेवाले हैं। अतः इन्हें ठहरने के लिए भी मनोहर स्थान चाहिए। अमुक स्थान में अमुक त्रुटि है। ध्यान में अशोक का वृक्ष आया। मन में ठीक ठहराया कि यही मनोहर है। यहाँ सभी सुभीता है।

लै रघुनाथहि ठाउँ देखावा। कहेउ राम सब भाँति सुहावा ॥
पुरजन करि जोहारु घर आये। रघुबर संध्या करन सिधाये ॥३॥

अर्थ : रामजी को ले जाकर उस स्थान को दिखलाया। रामजी ने कहा कि

---

१. यहाँ असङ्गति : द्वितीय अलङ्कार है।

यह सब भाँति सुन्दर है। पुर के लोग ज़ोहार करके घर आये और रामजी सन्ध्या करने गये।

व्याख्या : स्वयं तो पसन्द कर लिया पर सरकार को पसन्द हो तब ठीक। इसलिए सरकार को ले जाकर वह स्थान दिखलाया। सरकार को भी पसन्द आगया। कहने लगे कि यह तो सब प्रकार से सुन्दर है। अर्थात् सभी प्रकार का सुभीता भी है।

जिस भाँति आजकल एक हाथ से वन्दना करते हैं अर्थात् सलाम करते हैं। उसी भाँति दोनों हाथ से वन्दना को जोहार कहते हैं। एक हाथ से वन्दना करने का बहुत बड़ा निषेध धर्मशास्त्र में है। सरकार के साथ पुरजन भी उस स्थान पर गये। पसन्द आने पर सरकार के वहीं ठहरने का निश्चय हुआ। तब पुरजन जोहार करके अपने अपने घर आये। तब तक सन्ध्या का समय हो गया। सरकार सन्ध्या के लिए गङ्गातट गये। अहरहः सन्ध्यामुपासीत। वेद की आज्ञा है कि प्रति दिन सन्ध्या करनी चाहिए। प्रातः सन्ध्या और सायं सन्ध्या दोनों ही के लिए विधि है। सरकार सायं सन्ध्या करने गये : रामोपासक को सन्ध्या का परित्याग नहीं करना चाहिए।

गुह सँवारि साँथरी डसाई। कुस किसलयमय मृदुल सुहाई॥
सुचि फल मूल मधुर मृदु जानी। दोना भरि भरि राखेसि पानी॥४॥

अर्थ : गुह ने कुश और कोमल पत्तों की मुलायम और सुन्दर साथरी सँवार कर बिछाया और पवित्र फल और मूल जो उसके जाने हुए थे कि मीठे और कोमल होते हैं उन्हें लाकर तथा पानी को भी दोनों में भरकर रक्खा।

व्याख्या : गुहराज दरबार से सम्बन्ध रखता है। उसे मालूम है कि कौन कौन से फल पवित्र हैं। उनमें जो मधुर और मृदु होते हैं उन्हें दोने में भरकर रक्खा और पानी भी दोने में भर भरकर रक्खा। जङ्गली लोग आज भी ऐसा दोना बनाते हैं जिसमें पानी रक्खा जा सकता है : जनश्रुति है कि उसी दिन से मल्लाहों का छुआ हुआ जल ग्राह्य हो गया। क्योंकि रामजी ने उसे ग्रहण कर लिया।

दो: सिय सुमन्त्र भ्राता सहित, कंद मूल फल खाइ।
सयन कीन्ह रघुबंसमनि, पाय पलोटत भाइ॥८९॥

अर्थ : सीताजी सुमन्त्र और भाई सहित कन्द मूल फल खाकर रघुवंशमणि रामजी ने शयन किया और भाई पैर दबाने लगे।

व्याख्या : आज दूसरे दिन रात के समय सरकार ने सीताजी सुमन्त्र और लक्ष्मणजी के साथ गुह के लाये हुए फल और मूल का भोजन किया। तत्पश्चात् उसी साथरी पर सोये जिसे गुह ने बिछाकर रक्खा था। लक्ष्मणजी चरणसेवा में लग गये।

उठे लखन प्रभु सोवत जानी । कहि सचिवहि सोवन मृदु बानी ॥
कछुक दूरि सजि बान सरासन । जागन लगे बैठि बीरासन ॥१॥

अर्थ : सरकार को सोते हुए जानकर लक्ष्मणजी उठे। मृदु वाणी से मन्त्री को सोने के लिए कहा। कुछ दूर पर धनुष वाण साजकर वीरासन से जागने लगे।

व्याख्या : सरकार को थकावट से नींद जल्द आगयी। निद्रित जानकर उठ गये। उस समय भी पैर दाबने से निद्राभङ्ग का भय था। तब लक्ष्मणजी ने मृदु वाणी से मन्त्री से कहा कि अब आप भी सोइये मैं जागूँगा। आपके जगने की आवश्यकता नहीं है। बिना मन्त्री के सोये और लक्ष्मणजी के हटे जगदम्बा न सोयेंगी।

तब लक्ष्मणजी वहाँ से कुछ दूर जाकर जहाँ से सरकार को देखते भी रहें और विस्पष्ट दिखायी भी न पड़ें वाण को ठीक किया। उसमें लगे हुए पर को ठीक किया। धनुष पर प्रत्यञ्चा चढ़ाया और वीरासन लगाकर जागने लगे। वीरासन लगाने पर निद्रा नहीं आती : आज से जागना प्रारम्भ हुआ और जबतक सरकार वन में हैं रात्रि को जागकर सरकार की रखवारी करते रहेंगे। यथा : तेहि पाछे लछिमन बीरासन कटि निषंग कर बान सरासन।

गुह बोलाइ पाहरू प्रतीती । ठाँव ठाँव राखे अति प्रीती ॥
आपु लखन पहिं बैठेउ जाई । कटि भाथी सर चाप चढ़ाई ॥२॥

अर्थ : गुह ने विश्वासपात्र पहरेदारों को बुलाकर स्थान स्थान पर अतिप्रीति के कारण नियुक्त कर दिया और स्वयं कमर में तरकस और हाथों में वाण और चढ़ा हुआ धनुष लेकर लक्ष्मणजी के पास जा बैठा।

व्याख्या : प्रेमी का हृदय पापशङ्की होता है। इसलिए निषादराज ने विश्वासपात्र पहरेदारों को जो शत्रु से मिल न जायँ। मौके मौके पर नियुक्त कर दिया। जिसके कारण वनवास हुआ है उसी के कारण वन में भी चोट हो सकती है। अथवा राजाओं के अनेक गुप्त शत्रु मित्र होते हैं जिनसे सदा सावधान रहना चाहिए।

लक्ष्मणजी को सोने के लिए नहीं कहता स्वयं सुसज्जित होकर उनके पास जा बैठता है। इतनी बड़ी जिम्मेदारी अपने ऊपर नहीं लेना चाहता। केवल लक्ष्मणजी का सहायक बनता है। लक्ष्मणजी अकेले जागेंगे साथ रहने से बातचीत होती रहेगी। रात कट जायगी।

श्री लक्ष्मण गीता

सोवत प्रभुहि निहारि निषादू । भएउ प्रेम बस हृदय बिषादू ॥
तनु पुलकित जलु लोचन बहई । बचन सप्रेम लखन सन कहई ॥३॥

अर्थ : प्रभु को सोते हुए देखकर प्रेम के वश निषाद के हृदय में विषाद हुआ। शरीर पुलकित हो उठा। नेत्रों से जल बहाने लगा। और प्रेम के साथ लक्ष्मणजी से कहने लगा।

व्याख्या : जब निषादराज लक्ष्मणजी के पास बैठे तो सरकार को निहारने का अवसर मिला। यह शयन की झाँकी है : नीदहु बदन सोह सुठि लोना। मनहुँ साँझ सरसीरुह सोना। सरकार के शयनागर की शोभा देखे हुए है। अतः शिंशिपा वृक्ष के नीचे सोये हुए देखकर प्रेमवश उसके हृदय में विषाद हुआ।

विषाद से सात्त्विक भाव हुआ। शरीर के रोंगटे खड़े हो गये। आँसू बहने लगे प्रेम के साथ लक्ष्मणजी से कहने लगा। विषाद से मन की दशा कही। तन पुलकित लोचन जल बहई से तन की दशा कही और बचन सप्रेम लखन सन कहई से बचन की दशा कही।

भूपति भवनु सुभाय सुहावा। सुरपति सदनु न पटतर पावा॥
मनिमय रचित चारु चौबारे। जनु रतिपति निज हाथ सँवारे॥४॥

अर्थ : राजमहल स्वभाव से ही ऐसा सुन्दर है कि इन्द्रासन से उसकी उपमा नहीं हो सकती। मणियों से रचे हुए चौवारे ऐसे मनोहर हैं मानो कामदेव ने उन्हें अपने हाथों सँवारा हो।

व्याख्या : महाराज के महल में सजावट की आवश्यकता नहीं। वे स्वभाव से ही परमसुन्दर बने हुए हैं। उसमें चार द्वारवाले घर : ऊपर के बँगले मणिगण से रचे हुए ऐसे मनोहर हैं कि मालूम होता है कि स्वयं कामदेव ने ही इनकी रचना की है। लंका और अयोध्या का जोड़ है। उधर : तेहिं मय दानव बहुरि सँवारा। कनक रचित मनि भवन अपारा और इधर : मनिमय रचित चारु चौबारे। जनु रति पति निज हाथ सँवारे।

दो. सुचि सुबिचित्र सुभोगमय, सुमन सुगंध सुबास।
पलँग मंजु मनि दीप जहँ, सब बिधि सकल सुपास॥९०॥

अर्थ : वे पवित्र बड़े विचित्र सुन्दर भोगों से पूर्ण फूलों के सुगन्ध से सुवासित रहते हैं। वहाँ सुन्दर पलङ्ग हैं। मणि के दीप हैं। सब प्रकार से सभी सुभीते हैं।

व्याख्या : सोने से ही मनुष्य अपवित्र हो जाता है। उठने पर स्नानादि का विधान है। सो वहाँ का शयनागार पवित्र है। पवित्रता होने पर भी सुन्दरता की कमी नहीं। अति विचित्र है। सब भोग की सामग्रियों से पूर्ण रहता है। सब प्रकार के पदार्थ स्रक् चन्दन वीणा आदि से सुसज्जित रहता है। फूलों के सुगन्ध से सुवासित रहता है। तीव्र गन्धवाले सुगन्ध की भी वहाँ गति नहीं है। सोने के लिए सुन्दर पलङ्ग ठण्ढी रोशनी के लिए मणिदीप कामशास्त्रानुमोदित सभी सामग्री और सभी प्रकार की जहाँ सुविधाएँ हैं।

विविध बसन उपधान तुराईं। छीर फेन मृदु बसन सुहाईं ॥
तहँ सिय रामु सयन निसि करहीं। निज छबि रति मनोज मद हरहीं ॥१॥

अर्थ : दूध के फेन की भाँति मुलायम सुन्दर अनेक प्रकार के कपड़े तकिये और गद्दियाँ थीं। वहाँ राम जानकी सदा सोते थे और अपनी शोभा से रति और कामदेव के गर्व को हरण करते थे।

व्याख्या : प्रत्येक ऋतु के उपयोगी वस्त्र तथा तकिये और तोशकें वे भी अनेक प्रकार की। मृदुता की पराकाष्ठा है। वे दूध के फेन के समान उज्ज्वल और कोमल हैं। ये सिय राम जिनके लिए चक्रवर्तीजी ने सारे उपभोग एकत्रित कर रक्खे थे। ऐसे भोगमय महल के सोनेवाले हैं। भोग्य की सुन्दरता कहकर भोक्ता की सुन्दरता कहते हैं कि उनकी छवि देखकर रति और कामदेव का गर्व छूट जाता था।

ते सिय रामु साँथरी सोये। श्रमित बसन बिनु जाहि न जोये ॥
मातु पिता परिजन पुरबासी। सखा सुसील दास अरु दासी ॥२॥

अर्थ : वे सियराम साथरी पर सोये हुए हैं। थके हुए हैं। बिना कपड़े के देखते नहीं बनता। माता पिता कुटुम्बी पुरवासी सखा सुशील दासी और दास।

व्याख्या : ऐसे परम सुन्दर तथा सुरदुर्लभोपभोग में पले हुए सियराम साथरी पर सोये हुए हैं। प्रश्न उठता है कि ऐसे सुखों में पले हुए को ऐसी साथरी पर नींद कैसे आयी ? इस पर कहना है कि थके हुए हैं। यथा : श्रमित भूप निद्रा अति आई। एक चादर शरीर ढकने के लिए नहीं है। कहाँ : रति मनोज छबि हरही और कहाँ : जाहि न जोये।

माता पिता सब प्रकार का सार सँभार करनेवाले यथा : सब कर सार संभार गोसाईं। करव जनक जननी की नाईं। परिजन पुरवासी सब प्रेम करनेवाले यथा : पुरजन परिजन प्रजा गोसाईं। सब सुचि सरस सनेह सगाईं। सेवक सेव्यभाव रखनेवाले सखा यथा : सेवक हम स्वामी सिय नाहू। होउ नात एहिओर निबाहू और अनन्य गतिक दास और दासी।

जोगवहिं जिन्हहिं प्रान की नाईं। महि सोवत तेइ रामु गोसाईं ॥
पिता जनक जग बिदित प्रभाऊ। ससुर सुरेस सखा रघुराऊ ॥३॥

अर्थ : जिसकी प्राण की भाँति रक्षा करते थे। वे राम गोसाईं पृथ्वी पर सो रहे हैं। जिसके जनक जैसे पिता हैं जिनका प्रभाव जगत में विदित है। जिसके ससुर इन्द्र के मित्र रघुराज दशरथ हैं।

व्याख्या : ऐसे माता पिता ऐसे परिजन पुरवासी ऐसे सखा ऐसे दास दासी जिनकी रात दिन चारों ओर से प्राण की भाँति रक्षा करते थे वे भगवान् रामचन्द्र पृथ्वी पर सो रहे हैं। इससे अधिक अनर्थ क्या होगा ?

स्त्री के भाग्य का निर्णय पिता ससुर और पति के योग्य मिलने पर निर्भर

है। सो जिनके पिता महाराज जनक : कौन हैं जो उनके प्रभाव को न जानता हो। जिनके ससुर महाराज दशरथ : आगे होइ जेहि सुरपति लेई। अरध सिंहासन आसन देई। स्वयं देवराज इन्द्र के मित्र।

रामचंदु पति सो बैंदेही। सोवति महि बिधि बाम न केही ॥
सिय रघुबीर कि कानन जोगू। करमु प्रधान सत्य कह लोगू ॥४॥

अर्थ : जिसके रामचन्द्र से पति हों वह वैदेही पृथ्वी पर सो रही है। विधाता किसके विपरीत नहीं हो जाते। राम जानकी क्या वन के योग्य हैं। लोग ठीक कहते हैं कि कर्म ही प्रधान है।

व्याख्या : जो वड़ होत सो राम बड़ाई। वे रामचन्द्र जिसके पति हों। भाव यह कि जिसको पिता ससुर और पति लोकोत्तर मिले वह भगवती सीता पृथ्वी पर सोवें। इनके भूमि पर सोने का कोई कारण ही नहीं। सिवा विधाता की करनी के और क्या कहा जा सकता है ? बिधि क़रतब पर कछु न बसाई।

बनहित कोल किरात किसोरी। रची बिरंचि बिषय सुख भोरी। कै तापस तिय कानन जोगू। जिन्ह तप हेतु तजा सब भोगू। कोल किरात विषय सुख जानते ही नहीं वे कानन योग्य हैं। तपस्वी लोग विषय सुख से अपरिचित नहीं हैं। पर तपस्या के लिए उसे छोड़ रक्खा है। वे भी कानन योग्य हैं। पर ऐसे सुख में पले हुए नवीन अवस्थावाले राम जानकी क्या वन के योग्य हैं। वे आँखों में रखने योग्य हैं। यथा : ये रखिअहिं सखि आँखिन्ह माहीं। सो इन्हें वनवास मिल गया। अतः कर्म ही प्रधान है। निषाद शास्त्र नहीं पढ़े हैं। अतः कहता है : सत्य कह लोगू। यहाँ निषादराज को मोह हुआ। उसने नहीं समझा कि प्रभु के जन्म कर्म दिव्य हैं। वे ईश्वर हैं। अपनी इच्छा से शरीर धारण करते हैं और ऐसी लीला करते हैं जिसे सुनने समझनेवालों को परमपद की प्राप्ति होती है। जिस भाँति जीव कर्मवश दुःख सुख के भागी रहते हैं। उसी भाँति रघुनाथजी को समझकर उसे मोह हुआ। विषाद होने पर ही अर्जुन को गीता का उपदेश हुआ। उसी भाँति निषादराज को मोह होने पर साक्षात् भगवान् रामानुज गीता का उपदेश करते हैं।

दो. कैकय नंदिनि मंदमति, कठिन कुटिलपनु कीन्ह।
जेहि रघुनंदन जानकिहि, सुख अवसर दुखु दीन्ह ॥९१॥

अर्थ : मन्दमति कैकय की बेटी ने घोर कुटिलपन किया। जिसने राम जानकी को सुख के अवसर में दुःख दिया।

व्याख्या : कैकयनन्दिनी तो रघुकुल कमल चन्दनी हैं। राजा कैकय भले ही नाती का राज्य सुनकर प्रसन्न हों पर रघुकुल का तो इसने नाश कर दिया। मन्दमति है। अवसर चूक गयी। सदा राम को प्राण के समान मानती रही। जब राम के अभिषेक का समय आया तब इसे उसी भाँति अनुमोदन करने में आगे होना था। सो इसने वनवास माँगा। राम जानकी को जो जगत् के हित हैं

दुःख दिया। यह उसका कुटिलपन है और सुख के अवसर पर दुःख दिया। यह कठिन कुटिलपन है।

भइ दिनकर कुल बिटप कुठारी। कुमति कीन्ह सबु बिस्व दुखारी ॥
भयउ बिषाद निषादहिं भारी। राम सीय महि सयन निहारी ॥१॥

अर्थ : यह सूर्यकुलरूपी वृक्ष के लिए कुल्हाड़ी रूप बन गयी। इस कुबुद्धि ने सारे विश्व को दुःखी कर दिया। राम सीय का पृथ्वी पर सोना देखकर निषाद को भारी विषाद हुआ।

व्याख्या : महाराज ने कहा था : जनि दिनकर कुल होसि कुठारी। आज वही बात निषादराज कह रहे हैं। कुल्हाड़ी लोहे की होती है। पर उसका बेंट काठ का ही होता है। बेंट से सम्बद्ध होकर ही वह वृक्ष काटने में समर्थ होती है। इसी भाँति कैकेयी कैकय देश की है। पर रघुवंश से सम्बद्ध होने के कारण आज वह दिनकर कुलरूपी विटप के काटने में समर्थ हो रही है। कुमति है : जहाँ कुमति तहँ बिपति निदाना। सो इस कुमति ने तो सारे विश्व को दुःखी कर दिया। यथा : राम गवन बन अनरथ मूला। जो सुनि सकल विस्व भइ सूला। इस भाँति निषादराज भगवती कैकेयी का दो अपराध बतलाते हैं। १. राम जानकी को सुख अवसर में दुःख देना और २. सम्पूर्ण विश्व को दुःखी करना।

राम जानकी का महीशयन देखकर सभी देखनेवाले को विषाद हुआ। पर निषाद को भारी विषाद हुआ : संसार से विषण्णा होने पर ही ज्ञानोपदेश की पात्रता होती है। अतः इसे लक्ष्मणजी उपदेश करेंगे। इस उपदेश को महात्माओं ने लक्ष्मणगीता के नाम से अभिहित किया।

बोले लखनु मधुर मृदुबानी। ग्यान बिराग भगति रस सानी ॥
काहु न कोउ सुखदुख कर दाता। निज कृत करम भोग सबु भ्राता ॥२॥

अर्थ—ज्ञान विराग भक्ति रससानी मधुर मृदुवाणी लक्ष्मणजी बोले। कोई भी किसी को सुख दुःख का देनेवाला नहीं है। हे भाई ! यह सब अपने किये हुए कर्म के भोग का फल है।

व्याख्या : भगवती कैकेयी पर निषादराज ने जो दोषारोपण किया है उसका निराकरण करना है तथा निषादराज ऐसे हितचिन्तक का मोहापनयन करना है अतः शिक्षा ग्रहण के लिए प्रार्थना न करने पर भी लक्ष्मणजी की प्रवृत्ति उसको उपदेश देने की ओर हुई। निषादराज की उक्ति: कैकयनंदिनि मंद मति कठिन कुटिलपन कीन्ह। जेहि रघुनंदन जानकिहि सुख अवसर दुःख दीन्ह। तथा : कुमति कीन्ह सब बिस्व दुखारी का खण्डन करना है। अतः मधुर मृदुवाणी बोले जिससे उसे अरुन्तुद प्रतीत न हो और उसके मोह को दूर करना है। इसलिए ज्ञान विराग भक्ति रससानी वाणी बोले।

कुमति कीन्ह सब बिस्व दुखारी का उत्तर देते हैं। निषादराज ने पहिले कहा था : कर्म प्रधान सत्य कह लोगू और फिर कैकेयीजी को दोष देने लग गया कि उन्होंने रघुनन्दन जानकी को सुख के अवसर पर दुःख दिया। ये दोनों बातें एक दूसरे के विरुद्ध हैं। मोह होने पर लोग इसी प्रकार से सोचा करते हैं। स्थिर नहीं कर सकते कि वस्तुस्थिति क्या है? इस पर लक्ष्मणजी कहते हैं कि जो तुम भगवती कैकेयी को दुःखदाता समझ रहे हो यह तुम्हारी भूल है। जीव तो कर्मवश दुःख सुख का भागी होता है। जैसा कर्म करता है वही उसका फल भोगता है। यही वेद की नीति है और सभी इसे मानते हैं। कर्म जड़ है स्वयं फल नहीं दे सकता। ईश्वर फलदाता है। वह शुभकर्म का शुभफल और अशुभ कर्म का अशुभ फल हृदय में विचार कर देता है। अतः कहा है : सुखस्य दुःखस्य न कोऽपि दाता परो ददातीति कुबुद्धिरेषा। कोई सुख दुःख का देनेवाला नहीं। दूसरा कोई देता है यह कुबुद्धि है। कर्म किया कैकेयी ने और दुःख पाया विश्व ने यह मानना अपसिद्धान्त है। विश्व के अशुभ कर्म के बिना उदय हुए विश्व को दुःख नहीं मिल सकता।

जोग बियोग भोग भल मंदा। हित अनहित मध्यम भ्रम फंदा॥
जनमु मरनु जहँ लगि जग जालू। संपति बिपति करम अरु कालू॥३॥

अर्थ : मिलना और बिछुड़ना बुरे और भले भोग शत्रु मित्र और मध्यस्थ ये भ्रम के फन्दे हैं। जन्म मरण जहाँ तक संसार का जाल है सम्पत्ति विपत्ति कर्म और काल।

व्याख्या : श्रीलक्ष्मणजी कहते हैं कि दुःख सुख का होना भी व्यावहारिक सत्य है पारमार्थिक सत्य नहीं है। क्योंकि विषय और इन्द्रिय का संयोग ही शीत उष्ण सुख दुःख के देनेवाले हैं। ये उत्पत्ति विनाशशील एवं अनित्य हैं। यथा : मात्रास्पर्शास्तु कौन्तेय शीतोष्णसुखदुःखदाः। आगमापायिनोऽनित्यास्तांस्तितिक्षस्व भारत : गीतायाम्। असङ्ग आत्मा को योग वियोग कहाँ? और जब योग वियोग नहीं तब दुःख का संयोग कैसा और उनके देनेवाले हित अनहित मध्यस्थ कहाँ से आगये। इसीलिए कहा है : शत्रु मित्र मध्यस्थ तीन ये मन कीन्हें बरिआई। त्यागब गहब उपेक्षणीय अहि हाटक तृन की नाई। अतः योग वियोग भल मन्द भोग और शत्रु मित्र मध्यस्थ भाव ही भ्रम है। इसी से लोग बँधे हैं। आगे चलकर उस जाल का भी निरूपण करेंगे। जिसमें ये सात प्रकार के फन्दे लगे हुए हैं।

वह जाल जिसके फन्दे में सभी संसारी जीव फँसे हैं यही जगत् है। वह जन्म से लेकर मरण तक फैला हुआ है। पुनरपि जननं पुनरपि मरणं पुनरपि जननीजठरे शयनम्। इसी जाल में फँसा हुआ जीव जन्म मरण का अनुभव सदा किया करता है। इसमें परमार्थ कुछ भी नहीं। सब व्यावहारिक है। सम्पत्ति विपत्ति भी वास्तविक नहीं। सबके सब क्षणिक हैं।

धरनि धामु धनु पुर परिवारू। सरगु नरकु जँह लगि ब्यवहारू ॥
देखिय सुनिय गुनिय मनमांहीं। मोह मूल परमारथ नांहीं ॥४॥

अर्थ : धरती, गृह, धन, पुर, परिवार, स्वर्ग, नरक आदि जहाँ तक व्यवहार है देखिये सुनिये मनमें विचार कीजिये तो सबका कारण मोह है। ये कोई परमार्थ नहीं है।

व्याख्या : उनके कारण कर्म और काल की भी व्यावहारिक सत्ता है। निष्क्रिय आत्मा से कोई सम्बन्ध नहीं। अतः ममता के आस्पद धरणी धाम पुर परिवार यहाँ तक कि स्वर्ग और नरक सब क्षयिष्णु हैं। इनमें भी कोई टिकाऊ नहीं। अतः सब असत्य हैं। सत्य तो वही है जिसमें देशतः कालतः वस्तुतः व्यभिचार न हो।

आँखों देखते हैं कि इस जगत् में कहीं किसी पदार्थ में क्षणमात्र के लिए स्थिरता नहीं है। परिवर्तन ही जगत् का स्वरूप है। कहाँ गये पिता पितामह जिनके गोद में स्वर्गीय आनन्द के भोग का अनुभव होता था! कहाँ गये वे मित्र जिनके साथ में दुःख भूल जाते थे! कहाँ गये वे महाप्रतापी सम्राट् जिनके विषय में सुना जाता है कि अपने धनुष की कोटि से पर्वतों को हटा हटाकर पृथ्वी के जोतने बोने योग्य बनाया! नगर ग्राम बसाकर मनुष्य को समाज बाँधकर रहना सिखाया! मन में विचारते हैं तो कहीं कोई सत्य हाथ नहीं आता। किसी वस्तु में सुख दुःख स्थायी नहीं है। जो वस्तु गरमी में दुःखद है वही जाड़े में सुखद हो जाती है। जो वस्तु एक देश में जैसा प्रभाव दिखाती है दूसरे देश में उसका दूसरा प्रभाव हो जाता है। स्वतः न कोई वस्तु सुखद है न दुःखद है न किसी में स्थिरता है। अतः कुछ भी पारमार्थिक सत्य नहीं है। अपना अज्ञान ही इन सबका मूल है। आत्म-स्वरूप के ज्ञान से इनका अभाव प्रत्यक्ष भासता है।

दो. सपने होइ भिखारि नृपु, रंक नाकपति होइ।
जागे लाभु न हानि कछु, तिमि प्रपंच जिय जोइ ॥९२॥

अर्थ : सपने में राजा भिखारी हो जाता है और दरिद्र इन्द्र हो जाता है। जागने पर न कुछ हानि है न लाभ है। इसी प्रकार से इस संसार को भी जी से जानो।

व्याख्या : सपना प्रातिभासित सत्य है। उस काल में वह सत्य ही प्रतीत होता है। किसी को यह प्रतीति नहीं होती कि मैं स्वप्न देख रहा हूँ। जो देख रहा हूँ वह मिथ्या है। सभी उस समय उसको सत्य मानते हैं। सिंहासन पर सोया हुआ राजा सपने में अपने को अति दीन दरिद्रावस्था में पाता है। उसे उस समय अपना राजा होना नहीं भासता। सिंहासन में ही लेटा हुआ उसे अपनी दीनता दरिद्रता ही सच्ची मालूम पड़ती है। इसी भाँति महादरिद्र सपने में देखता है कि इन्द्र हो गया। सब देवता ऋद्धि सिद्धि हाथ बाँधे खड़ी हैं। उस समय भी वह दरिद्र ही है।

पर निद्रादोष के हटते ही वह भ्रम जाता रहता है। उससे न राजा की कोई हानि हुई और न उस दरिद्र का कोई लाभ हुआ।

लक्ष्मणजी कहते हैं कि यह प्रपञ्च : व्यावहारिक सत्य भी सपना ही है। भेद इतना ही है कि यह सपना अधिक स्थायी है। वह सपना निद्रादोष से था। यह सपना मायादोष से है। जिस भाँति निद्रादोष की निवृत्ति से वह सपना नहीं रह जाता।

अस बिचारि नहिं कीजिअ रोसू। काहुहि बादि न देइअ दोसू ॥
मोह निसा सबु सोवनिहारा। देखिअ सपन अनेक प्रकारा ॥१॥

अर्थ : ऐसा विचारकर न क्रोध करना चाहिए और न किसी को दोष देना चाहिए। सब मोह रात्रि में सोनेवाले हैं। अनेक प्रकार के सपने देख रहे हैं।

व्याख्या : जगत् को भी सपना रूप जानो। यथा : उमा कहौं मैं अनुभव अपना। सत हरि भजन जगत सब सपना। विचार तो करो सपने में का शत्रु मित्र, सपने में का हानि लाभ तो अपने स्वरूप के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। सपने में तो कोई दूसरा रहता नहीं। आप ही अपना शत्रु बन जाता है और आप ही अपना मित्र बन जाता है फिर दोष किसे दें? सपने में जिसे शत्रु रूप देखा था क्योंकि उसने हानि की थी। जागने पर तो कोई उसे न शत्रु मानता है और न उस हानि को हानि समझता है। जानता है कि वह मिथ्या प्रपञ्च था। अतः न तो रोष करना चाहिए और न किसी को दोष देना चाहिए। भगवती कैकेयी को दोष देना सर्वथा असङ्गत है।

जिस भाँति सूर्य के न होने से रात होती है उसी भाँति ज्ञानसूर्य के अभाव से मोहरात्रि होती है। जिस भाँति रात को सब सोते हैं और अनेक प्रकार के स्वप्न देखते हैं उसी भाँति मोहरात्रि में सब सो रहे हैं और जागृतरूप अनेक प्रकार के स्वप्न देख रहे हैं। रात्रि के स्वप्न में जिस भाँति जाग्रत् का भान होता है। सभी स्वप्न देखनेवाले अपने को जागता हुआ ही मानते हैं। उसी भाँति मोहरात्रि में सोनेवालों का यह जागना भी स्वप्न ही है। यह जागना सच्चा जागना नहीं है। क्योंकि मोहनिशा के दूर होने पर इसका बाध देखा जाता है।

एहि जग जामिनि जागहिं जोगी। परमारथी प्रपंच बियोगी ॥
जानिअ तबहिं जीव जग जागा। जब सब बिषय बिलास बिरागा ॥२॥

अर्थ : इस जगत्‌रूपी रात्रि में जोगी जागते हैं जो परमार्थी हैं और संसार से जिसका बिछोह है। इसमें जीव को जागा हुआ तभी जानना चाहिए जब सभी विषय विलास से उसे वैराग्य हो।

व्याख्या : यही संसाररूपी रात्रि है। इसमें सपना देखनेवाले अपने को मिथ्या ही जागता हुआ मानते हैं। इसमें सच्चे जागनेवाले जोगी हैं। क्योंकि वे ही पारमार्थिक सत्य का साक्षात्कार करते हैं। इस स्वप्नरूपी प्रपञ्च का उनके लिए

सर्वथा बाध हो जाता है। वे व्यावहारिक सत्य को उसी भाँति मिथ्या अनुभव करते हैं जिस भाँति प्रातिभासिक सत्य उन्हें मिथ्या मालूम होता है। यथा : जेहि निसि सकल जीव सूतें तव कृपापात्र जन जागें। भाव यह कि जिस ओर योगी लोग जाग रहे हैं उस ओर संसारी लोग सोये हुए हैं और जिस ओर संसारी लोग जाग रहे हैं उस ओर योगी लोग सो रहे हैं। जैसे जिस समय उल्लू को दिखायी पड़ता है उस समय कौवा को नहीं सूझता और जिस समय कौवा को सूझता है उस समय उल्लू को नहीं सूझता। यही मति संसारी लोगों और योगियों की है।

अब सच्चे जागे हुए का लक्षण कहते हैं। जब तक चित्त में विषय विलास का राग है तबतक मोह निद्रा बनी हुई है। जब सब विषय विलास से विराग हो तब जानिये कि जीव जाग गया। अतः रामानुरागी ही सच्चे जागनेवाले हैं। यथा : रमा बिलास राम अनुरागी। तजत वमन जिमि जन बड़ भागी। भगवान् भी यही कहते हैं कि सभी योगियों में वे ही उत्तम है। जो मेरा भजन करते हैं। यथा : योगिनामपि सर्वेषां मद्‌गतेनान्तरात्मना। श्रद्धावान् भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः। गीतायाम्।

होइ बिबेकु मोह भ्रम भागा। तब रघुनाथ चरन अनुरागा ॥
सखा परम परमारथ एहू। मन क्रम बचन राम पद नेहू ॥३॥

अर्थ : विवेक होता है मोह भ्रम भाग जाता है। तब रघुनाथ के चरणों में अनुराग होता है। हे सखा ! परम परमार्थ यही है कि मनसा वाचा कर्मणा रामपद में अनुराग हो।

व्याख्या : जब तक विषय विलास में विराग नहीं होता तब तक विवेक नहीं होता। केवल शास्त्रीय ज्ञान से पूरा काम नहीं चलता। विवेकज ज्ञान से ही मोह का नाश होता है। पहिले अज्ञान होता है तब विपरीत ज्ञान होता है। विपरीत ज्ञान ही भ्रम है। विवेकज ज्ञान से भ्रम और उसके मूल मोह का नाश होता है। भ्रम और मोह के रहते रघुनाथजी के चरण में अनुराग नहीं होता। भगवान् गीता में कहते हैं कि पापी मोह में फँसे हुए जिनका ज्ञान माया से अपहरण हो गया है ऐसे अधम पुरुष मेरे शरण नहीं आते। अतः मनसा वाचा कर्मणा रामजी के चरणों में प्रेम होना ही परम पुरुषार्थ है। क्योंकि मोक्ष सुख भी बिना हरिभक्ति के ठहर नहीं सकता और सगुणोपासक तो मोक्ष चाहते ही नहीं। यथा : साधन सिद्धि रामपग नेहू। मोहि लखि परत भरत मत एहू।

राम ब्रह्म परमारथ रूपा। अबिगत अलख अनादि अनूपा ॥
सकल बिकार रहित गतभेदा। कहि नित नेति निरूपहिं बेदा ॥४॥

अर्थ : राम ब्रह्म परमार्थ रूप हैं। अव्यक्त, अलक्ष्य, अनादि और अनूप हैं। सब विकारों से रहित और भेद रहित हैं। उन्हें न इति न इति कहकर वेद निरूपण करते हैं।

व्याख्या : कुमति कीन्ह सब बिस्व दुखारी का उत्तर देकर : जेहि रघुनंदन जानकिहि सुख अवसर दुख दीन्ह का उत्तर रामजी के स्वरूप का निरूपण करके देते हैं। रामजी जीव नहीं हैं। वे ब्रह्म हैं। देशतः कालतः और वस्तुतः अपरिच्छिन्न हैं। इसलिए वे ही परमार्थ सत्य हैं। अरूप होने से अव्यक्त हैं। मन और वाणी से परे होने से अलख हैं। अथवा स्थूल दृष्टि से नहीं देखे जा सकने से अलख कहा। सबके आदि होने से अनादि कहा। अद्वितीय होने से अनूप कहा। यथा : जग सगुन निर्गुन रूप रूप अनूप भूप शिरोमने। चिदानन्द मय होने से विकार रहित कहा। यथा : चिदानन्दमय देह तुम्हारी। विगत बिकार जान अधिकारी। सर्वगत होने से भेदरहित कहा। इदमित्थं रूप से नहीं कहे जा सकने के कारण वेद नेति नेति कहकर निरूपण करते हैं : अथवा वेद नेति नेति कहकर अर्थात् यह भी नहीं यह भी नहीं अथवा स्थूल भी नहीं सूक्ष्म भी नहीं कहकर सब प्रकार के विशेषों का निषेध करते हैं। ऐसे प्रभु जिस भक्ति के अनुरोध से देह धारण करते हैं वह भक्ति महा प्रभावा है।

दो. भगत भूमि भूसुर सुरभि, सुर हित लागि कृपाल।
करत चरित धरि मनुज तनु, सुनत मिटहिं जग जाल ॥९३॥

अर्थ : वे कृपालु हैं। भक्त, भूमि, ब्राह्मण, गौ, देवता के लिए मनुष्य शरीर धारण करके लीला करते हैं। उसके सुनने से जग जाल मिट जाता है।

व्याख्या : अगुन अखंड अनंत अनादी। जेहि चिंतहि परमारथवादी। नेति नेति जेहि वेद निरूपा। निजानन्द निरुपाधि अनूपा। संभु बिरंचि बिस्नु भगवाना। उपजहि जासु अंस ते नाना। ऐसउ प्रभु सेवक बस अहई। भगत हेतु लीला तनु गहई। यद्यपि प्रभु जगत् से विलक्षण हैं। पर जगत पर कृपा करके भक्त, भूमि ब्राह्मण, गौ और देवताओं के लिए अर्थात् साधु के दुःख निवारण के लिए वही रामजी मनुष्यरूप धारण करके लीला कर रहे हैं। जेहि कहत गावत सुनत समुझत परमपद नर पावई। उस चरित के सुनने से जग जाल मिट जाता है। अर्थात् जन्म-मरण के बन्धन से रहित हो जाता है। यह चरित की अद्भुत महिमा है :

सखा समुझि अस परिहरि मोहू। सिय रघुबीर चरन रत होहू ॥
कहत राम गुन भा भिनुसारा। जागे जग मंगल सुखदारा ॥१॥

अर्थ : हे सखा ! ऐसा समझकर मोह को छोड़ो और सिय रघुवीर के चरणों में प्रेम करो। इस भाँति रामजी के गुणों को कहते कहते सबेरा हो गया और सुखरूप स्त्रीवाले जगमङ्गल रामजी जागे।

व्याख्या : उपसंहार करते हुए लक्ष्मणजी ने कहा कि हे सखा ! रामजी ब्रह्म हैं। जगत् के मङ्गल के लिए अवतीर्ण होकर नर चरित कर रहे हैं। ऐसा समझकर मोह को छोड़ दो। जाग जाओ। इनको प्राकृत नर समझकर विषाद न करो। इनके स्वरूप को न पहचानकर इन्हें मनुष्य मानना ही मोह है। परमार्थ

रूप ब्रह्म ही सिय रघुवीर रूप से दो मूर्ति धारण किये हुए हैं। अतः इनके चरणों में भक्ति करो। तुम्हें विषयों में राग है इससे इन्हें दुःखी समझ रहे हो।

इस प्रकार से रामगुण कहते कहते रात बीत गयी। समय का कुछ भान ही न रहा। एहि बिधि कहत रामगुन ग्रामा। पावा अनिर्वाच्य बिश्रामा। सोने से जगत् को विश्राम मिलता है। यहाँ जागने से अनिर्वाच्य विश्राम मिला है। सवेरा होते ही सुखरूप दारा हैं जिसकी अर्थात् साक्षात् आह्लादिनी शक्तिरूपा जिनकी स्त्री सीताजी हैं वे जगत् के मङ्गल करनेवाले रामजी जागे।

सकल सौच करि राम नहावा। सुचि सुजान बट छीर मँगावा॥
अनुज सहित सिर जटा बनाये। देखि सुमंत्र नयन जल छाये॥२॥

अर्थ : पवित्र और सुजान रामजी ने पहिले सब शौचविधि की फिर स्नान किया। तत्पश्चात् वटवृक्ष का दूध मँगाया। भाई के सहित जटा बनाया। जिसे देखकर सुमन्त्रजी की आँखों में आँसू आगये।

व्याख्या : शौच दो प्रकार का होता है। ध्यानादि मानसिक शौच है और शरीर की शुद्धि शारीरिक शौच है। रामजी स्वभाव से ही पवित्र हैं। फिर भी शास्त्रानुमोदित रीति से दोनों प्रकार का शौच करके स्नान किया। जब से घर से चले हैं तभी से मुनिव्रत और आहार चल रहा है। वल्कल धारण कर ही लिया है। अब मुनिवेष की पूर्ति के लिए जटा बनाना शेष है। सुमन्त्रजी किसलिए साथ आये हैं इस बात को समझ रहे हैं। अतः अपना अभिप्राय उनको सुस्पष्ट कर देने के लिए तुरन्त वटक्षीर मँगाया और दोनों भाइयों ने जटा बना ली। देखते ही सुमन्त्र समझ गये कि ये दोनों भाई लौटनेवाले नहीं हैं। बड़े सुजान हैं। जटा बनाकर ही जो कहना था कह दिया। अतः इस भाँति निराश होने से सुमन्त्रजी के नेत्रों में जल आगया। दूसरी बात यह कि सुमन्त्रजी पुत्र की भाँति स्नेह करते हैं। इनको जटा धारण किये हुए देखकर प्रेम उमड़ पड़ा। अतः आँखों में आँसू आगये।

हृदयँ दाहु अति बदन मलीना। कह कर जोरि बचन अति दीना॥
नाथ कहेउ अस कोसलनाथा। लै रथु जाहु राम के साथा॥३॥

अर्थ : कलेजे में अत्यन्त दाह उत्पन्न हो गया। मुख मलिन हो गया। हाथ जोड़कर दीन वचन बोले कि हे नाथ! कोसलनाथ ने कहा कि तुम रथ लेकर रामजी के साथ जाओ।

व्याख्या : सुमन्त्रजी के हृदय में दाह तो पहिले ही से था जटा धारण किये हुए देखकर वह दाह बहुत बढ़ गया। अतः उसका प्रभाव मुख पर पड़ा। मुख मलिन हो गया। समझा कि यही समय निवेदन का है। अतः हाथ जोड़कर अति दीन वचन बोले। हृदय दाह अति से मन की दशा कहा। बदन मलीना से तन की दशा कहा। बचन अति दीना कहकर वचन की दशा कह रहे हैं।

सुमन्त्रजी ने कहा कि आप भी मेरे नाथ हैं। पर कोसलनाथ सबसे बड़े हैं। उनकी आज्ञा आप को भी शिरोधार्य है। वे नहीं चाहते कि आप पैदल चलें। इसीलिए रथ लेकर मुझे भेजा। आपके लिए मुनि व्रत बेष आहार की जो आज्ञा थी वह जटा बना लेने से पूरी हो गयी। अब आगे क्या करना चाहिए उसके लिए भी आज्ञा हुई है।

बन देखाइ सुरसरि अन्हवाई। आनेहु फेरि बेगि दोउ भाई ॥
लखनु राम सिय आनेहु फेरी। संसय सकल सँकोच निबेरी ॥४॥

अर्थ : वन दिखाकर गङ्गा स्नान कराकर दोनों भाइयों को जल्दी लौटा लाना। सब संशय और सङ्कोच को दूर करके लक्ष्मण राम और सीता को लौटा लाना।

व्याख्या : सो आपने वन भी देख लिया। गङ्गा के उस पार वन है और गङ्गा स्नान भी कर लिया। रथ साथ है। लौट चलिये यही आज्ञा है। वन से आपका चक्षुः संयोग हो गया। यह संशय न कीजिये कि पिता की आज्ञा तो चौदह वर्ष के लिए थी। अब दूसरी आज्ञा चार दिन के लिए हुई तो इनमें से मैं किसे मानूँ। सो चौदह वर्ष की अवधि को ही सङ्कुचित करके चार दिन किया गया है। मैं मन्त्री हूँ। महाराज के प्रतिनिधि के नाते कह रहा हूँ। यह भी संशय न कीजिये कि आज तो लौट चलें। कल फिर कैकेयी की सम्मति से न जाने कैसी आज्ञा हो। सो कुछ न होगा। अब कैकेयी का कुछ सुना न जायगा। यह सङ्कोच भी न कीजिये कि जब वन के लिए चल पड़े तो लौटें क्या? मैं स्वयं महाराज की आज्ञा से रथ लेकर लौटाने के लिए आया हूँ। इसमें आपके लिए सङ्कोच की कोई बात नहीं है।

दो. नृप अस कहेउ गोसाइँ जस, कहइ करौं बलि सोइ।
करि बिनती पायन्ह परेउ, दीन्ह बाल जिमि रोइ ॥९४॥

अर्थ : महाराज ने ऐसा कहा है। हे नाथ! मैं बलैया लेता हूँ। अब जैसी आपकी मर्जी हो वैसा करूँ। इस प्रकार से प्रार्थना करके पैर पर गिर पड़े और बालक की भाँति रो दिया।

व्याख्या : सुमन्त्रजी कहते हैं कि महाराज की तो ऐसी आज्ञा हुई है। पर: राम रजाइ भेंट मन मांहीं। देखा सुना कतहुँ कोउ नांहीं। अतः मैं बलि जाऊँ। अब आप जो कहें सो मैं करूँ। ऐसा कहकर सुमन्त्रजी पैर पर गिर पड़े वे समझते थे कि दूसरी आज्ञा को प्रियप्रेमप्रमाद समझकर स्वीकार नहीं करेंगे। अतः उसके स्वीकार करने के लिए अनेक प्रकार से विनती की और बच्चों की भाँति फूट फूट कर रोने लगे।

तात कृपा करि कीजिअ सोई। जातें अवध अनाथ न होई ॥
मंत्रिहि राम उठाइ प्रबोधा। तात धरम मतु तुम सब सोधा ॥१॥

अर्थ : हे तात ! कृपा करके वही कीजिये जिससे अयोध्या अनाथ न हो। मन्त्री को रामजी ने उठाकर समझाया कि आप तो धर्म के सब सिद्धान्त समझे बूझे हैं।

व्याख्या : मन्त्री के विनय का सार इतना ही था कि यद्यपि कोई नियम ऐसा नहीं है जिससे कि आप लौट चलने को विवश हों। पर कृपाभिक्षा दीजिये जिससे अयोध्या अनाथ न हो। आपके बिना अयोध्यानाथ के रहते हुए भी अयोध्या अनाथ हो जायगी। ऐसी विनती पैर पर पड़े हुए सुमन्त्रजी कर रहे हैं।

सुमन्त्रजी पैर पर गिरे थे इसलिए रामजी ने उठाया। बच्चों की भाँति रो रहे थे इसलिए समझाया कि धर्मशास्त्र आपका भली भाँति जाना हुआ है। आप पिताजी को भी उपदेश देनेवाले हैं। आप ऐसा कैसे कहते हैं। धर्म के लिए कष्ट सहना ही तो धर्म पालन है। जो कष्ट को डरेगा वह धर्माचरण क्या करेगा ? अतः कष्ट के लिए धर्म नहीं छोड़ा जा सकता।

सिबि दधीचि हरिचंद नरेसा। सहे धरम हित कोटि कलेसा ॥
रंतिदेव बलि भूप सुजाना। धरमु धरेउ सहि संकट नाना ॥२॥

अर्थ : शिवि दधीचि और राजा हरिश्चन्द्र ने धर्म के लिए करोड़ों कष्ट सहे। रन्तिदेव और सुजान बलि राजा ने नाना संकट सहकर भी धर्म को नहीं छोड़ा।

व्याख्या : श्रीरामचन्द्र महाजनों का उदाहरण देते हैं कि राजा शिवि अपने शरीर का माँस अपने हाथ से काट काटकर कपोत के साथ तौलते गये। शरणागत होने पर भी कपोत ने कपट किया। वह भारी होता गया। राजा अपने बात से न हटा। सारा शरीर काट डाला। दधीच ऋषिने देवताओं की याचना करने पर अपनी शरीर की हड्डी दे दी। राजा हरिश्चन्द्रने राज्य दिया। स्वयं चाण्डाल के हाथ बिके। इन महाजनों ने धर्म के लिए नाना प्रकार के कष्ट सहे और महाजन जिस रास्ते से गये हों वही रास्ता है। रन्तिदेव ने अपना सर्वस्व दान कर दिया। बाल बच्चों के साथ अड़तालीस दिन बिना अन्न के रह गये। अन्न मिलते ही अतिथि लोग पहुँच गये। महाराज रन्तिदेव ने प्रसन्नतापूर्वक सब अन्न उनको खिला दिया। अपने लिए पानी भी न रक्खा। राजा बलि दान देने में ठगे गये। तीन पग के व्याज से तीनों लोक उनसे ले लिया गया। उस महात्मा ने यह भी नहीं कहा कि जिस रूप से दान लिया था उसी रूप से पृथ्वी नापो। अन्त में उन्हें नागपाश से बाँधा गया। पाताल भेज दिये गये पर धर्म नहीं छोड़ा। इन महाजनों ने रास्ता दिखला दिया कि कष्ट के समय में धर्मपालन ही सच्चा धर्मपालन है। कष्ट ही धर्मपरीक्षा का समय है। बड़े धर्मात्माओं को बड़ा कष्ट उनकी धर्मपरीक्षा के लिए आता है। अतः परीक्षा काल में दृढ़ता की आवश्यकता है।

धरमु न दूसर सत्य समाना। आगम निगम पुरान बखाना ॥
मैं सोइ धरमु सुलभ करि पावा। तजें तिहूँ पुर अपजसु छावा ॥३॥

अर्थ : शास्त्रों वेदों और पुराणों में कहा गया है कि सत्य के समान दूसरा धर्म नहीं है। मैंने उसी धर्म को सुलभ करके पाया है। छोड़ने से तीनों लोक में अपकीर्ति होगी।

व्याख्या : वेद कहता है। सत्यं वद : धर्मशास्त्र कहता है : सत्यान्नास्ति परो धर्मः। इतिहास पुराण कहते हैं : धर्मो जयति नाधर्मः सत्यं जयति नानृतम्। न स धर्मो यत्र न सत्यमस्ति। अतः सत्य सब धर्मों से बड़ा होने में सब शास्त्रों का ऐकमत्य है। वही सत्य मुझे सुलभ रीति से प्राप्त हुआ है। मुझे धर्मपरीक्षा में उत्तीर्ण होने में बड़ी कठिनाई का सामना नहीं करना पड़ रहा है। केवल चौदह वर्ष वनवास करने से ही मैं धर्मपरीक्षा में उत्तीर्ण हो जाऊँगा। यदि इस समय मैंने कच्चाई की तो बड़ा भारी अपयश होगा कि रामचन्द्र धर्म के लिए चौदह वर्ष वन जाने को भी तैयार न हुए।

संभावित कहुँ अपजस लाहू। मरन कोटि सम दारुन दाहू ॥
तुम्ह सन तात बहुत का कहऊँ। दियें उतरु फिर पातकु लहऊँ ॥४॥

अर्थ : प्रतिष्ठित पुरुष को अपयश होने से करोड़ों मरण के समान घोर दाह होता है। हे तात ! आपसे बहुत क्या कहें उलटकर जवाब देने से पाप होगा।

व्याख्या : वन जाने से धर्म का लाभ है और न जाने से प्रत्यवाय है। सम्भावितस्य चाकीर्तिर्मरणादतिरिच्यते। प्रतिष्ठित पुरुष की अकीर्ति मरणदाह से कहीं अधिक दाहक हाती है। भाव यह कि आप लोग मुझे दुःखी मानकर इतने दुःखी हैं। पर मेरा भला इस समय वन जाने में ही है। वन न जाने में मरणान्त वेदना होगी। अतः मेरे ऊपर दया करके मेरे लिए दुःखी न होइये।

आप स्वयं बड़े जानकार हैं। स्वयं इन बातों को खूब समझते हैं। आप पूज्य हैं। आपकी बात काटकर उत्तर देने से पाप होता है। अतः अधिक कहना सुनना व्यर्थ है।

दो. पितु पद गहि कहि कोटि नति, बिनय करब कर जोरि।
चिंता कवनिहुँ बात कै, तात करिअ जनि मोरि ॥९५॥

अर्थ : पिताजी का चरण पकड़कर करोड़ों नमस्कार करके : मेरी ओर से हाथ जोड़कर विनय कीजियेगा कि आप मेरे लिए किसी बात की चिन्ता न करें।

व्याख्या : सुमन्त्रजी ने कहा था : नृप अस कहेउ गोसाइँ जस कहउँ करउँ बलि सोइ। इसी के उत्तर में कहते हैं कि आप जाकर मेरी ओर से चरण पकड़कर पिताजी से करोड़ों प्रणाम कहियेगा और हाथ जोड़कर विनती कीजियेगा कि मेरे लिए किसी बात की चिन्ता न करें। धर्म के लिए इस थोड़े से कष्ट को मैं सुख के साथ सहन करूँगा और धर्मो रक्षति रक्षितः रक्षा किया हुआ धर्म आचरण करनेवाले की रक्षा करता है।

तुम्ह पुनि पितु सम अति हित मोरें। बिनती करौं तात करजोरें ॥
सब बिधि सोइ करतब्य तुम्हारें। दुखु न पाव पितु सोच हमारें ॥१॥

अर्थ : आप पिता के समान मेरे अत्यन्त हित हैं। हे तात ! हाथ जोड़कर विनती करता हूँ। सब विधि से आपका वही कर्तव्य है जिसमें हमारे सोच से पिताजी को दुःख न हो।

व्याख्या : रामजी सुमन्त्रजी से कहते हैं कि आप पिताजी के सखा हैं। पिता के समान ही मेरा कल्याण चाहनेवाले हैं। अब आपसे मैं हाथ जोड़कर विनती करता हूँ। मुझे इस बात की बड़ी चिन्ता है कि पिताजी को मेरे लिए बड़ा शोक होगा। मेरी विनती पर भी सम्भव है कि न मिटे। अब यहाँ आपका सब प्रकार से यह कर्तव्य होना चाहिए कि पिताजी मेरे शोक से दुःखी न हों। क्योंकि आप मन्त्री हैं। सखा हैं। परम विश्वासपात्र है। आपकी सम्मति का पिताजी आदर करते हैं। आपके समझाने बुझाने का प्रभाव पड़ेगा।

सुनि रघुनाथ सचिव संबादू। भयेउ सपरिजन बिकल निषादू ॥
पुनि कछु लखन कही कटु बानी। प्रभु बरजे बड़ अनुचित जानी ॥२॥

अर्थ : रामजी और मन्त्री का सम्वाद सुनकर कुटुम्बियों के सहित निषाद विकल हो गया। फिर लक्ष्मणजी ने कुछ कड़वी बात कही। प्रभु ने बड़ा अनुचित जानकर मना कर दिया।

व्याख्या : निषादराज कुटुम्ब के सहित रामजी के चरणों के प्रेमी हैं। रामजी और मन्त्री का संवाद ऐसा करुणापूर्ण हुआ कि सबके सब विषाद से विकल हो गये। उनके मन में निश्चय हो गया कि रामजी नहीं लौटेंगे। लक्ष्मणजी ने जो कहा उसे कवि ने दोहराना पसन्द नहीं किया। जिस बात के लिखने से कोई लाभ नहीं : कोई उपदेश नहीं उसे न लिखना ही उचित है। इतना ही कहना यथेष्ट है कि प्रभु ने उसे बड़ा अनुचित समझा और लक्ष्मणजी को अधिक कहने से रोक दिया। निःसन्देह वह पिताजी के प्रति अनादर सूचक बात थी। जैसा कि लोग ऐसे अवसर पर क्रोध से बोल देते हैं। सरकार ने रोक दिया कि क्या कहते हो।

सकुचि राम निज सपथ देवाई। लखन सँदेसु कहिअ जनि जाई ॥
कह सुमंत्रु पुनि भूप सँदेसू। सहि न सकिहि सिय बिपिन कलेसू ॥३॥

अर्थ : रामजी सङ्कुचित हो गये। अपनी शपथ दिलायी कि लक्ष्मण का सन्देश जाकर मत कहियेगा। तब सुमन्त्र ने महाराज का सन्देशा कहा कि सीताजी वन का कष्ट सह न सकेगी।

व्याख्या : लक्ष्मणजी के कटु कहने पर रामजी सङ्कुचित हो गये। क्योंकि दोनों भाइयों का हृदय इतना अभिन्न समझा जाता है कि लक्ष्मणजी की उक्ति को रामजी के आन्तरिक भाव के रूप में ग्रहण किया जा सकता है। यहाँ पर यह बात

भी खुल गयी कि लक्ष्मणजी ने जो कटु कहा था वह सन्देश रूप में था। अतः रामजी ने सुमन्त्रजी को अपना शपथ दिलाया कि पिताजी से लक्ष्मण का सन्देश न कहें। केवल मेरा सन्देश कहें।

सबके लौट जानेवाली आज्ञा के अस्वीकार करने पर सुमन्त्रजी ने राजा का सन्देश सुनाया कि तुम लोग पुरुष हो, वीर हो वन के क्लेश को सह जाओगे। पर सीताजी तो न सह सकेंगी। महाराज ने सुमन्त्र से कहा था : जौ नहिं फिरैं धीर दोउ भाई। सत्यसंध दृढ़व्रत रघुराई। तौ तुम्ह बिनय करेहु कर जोरी। फेरिअ प्रभु मिथिलेस किसोरी। उसी आज्ञा का पालन सुमन्त्रजी कर रहे हैं।

जेहि बिधि अवध आव फिरि सीया। सोइ रघुबरहि तुम्हहि करनीया ॥
नतरु निपट अवलंब बिहीना। मैं न जिअब जिमि जल बिनु मीना ॥४॥

अर्थ : जिस भाँति सीताजी अवध में फिर आवें वही तुम्हें और रामजी को कहना चाहिए। नहीं तो एकदम निराधार हो जाने से मैं बिना जल की मछली की भाँति नहीं जीऊँगा।

व्याख्या : महाराज का सन्देश कहते हुए सुमन्त्रजी कहते हैं कि सीता किस विधि से अवध लौट चलेंगी इसका निश्चय महाराज ने मेरे और आपके ऊपर छोड़ दिया है और स्वयं कह दिया है कि सीता वन के क्लेश को न सह सकेंगी केवल इतनी ही बात नहीं है। वह यदि नहीं लौटीं तो मैं जी नहीं सकता। मैं बिना पानी की मछली की भाँति निरालम्ब हो जाऊँगा। गिरा अर्थ जल बीचि सम कहिअत भिन्न न भिन्न। रामजी जल हैं। सीताजी लहर हैं। सो मछली यदि जल में न भी हो पर जल के लहर से सम्पर्क बना रहे तो भी मछली जी सकती है। यदि वह भी न रहे तो मरण ही परिणाम है।

दो. मइकें ससुरें सकल सुख, जबहिं जहाँ मनु मान।
तहँ तब रहिहि सुखेन सिय, जब लगि बिपति बिहान ॥९६॥

अर्थ : पितृगृह में और ससुराल में सभी सुख है। जहाँ जी चाहे वहाँ सीता जब तक विपत्ति की रात न बीते सुख से रहे।

व्याख्या : रामजी का वन गमन सूर्यास्त है। उनका विरह रात्रि है। सो जब तक यह रात्रि न बीते रामजी लौट न आवें तब तक सीता का जहाँ जी चाहे रहें। मैके और ससुराल में सभी सुख है। कोई घाटा नहीं। जब तक जी चाहे अवध में रहें जी बहलाने के लिए जनकपुर में भी रहें, मेरा कोई अनुरोध नहीं है। पर वन में न रहें।

बिनती भूप कीन्ह जेहि भाँती। आरति प्रीति न सो कहि जाती ॥
पितु सँदेसु सुनि कृपानिधाना। सियहि दीन्ह सिख कोटि बिधाना ॥१॥

अर्थ : महाराज ने जिस भाँति विनती की है वह आर्ति और विनय कहते

नहीं बनता। पिता का सन्देशा सुनकर कृपानिधान रामजी ने सीताजी को करोड़ों तरह से सीख दी।

व्याख्या : महाराज ने सीताजी के लौटाने के लिए विनती की। क्योंकि विपत्ति के समय पति से स्त्री को हटाने का कोई हक किसी को नहीं। विपत्ति के समय स्त्री की परीक्षा है। आपत काल परिखअहि चारी। धीरज धरमु मित्र अरु नारी। महाराज अपने को सापराध मान रहे हैं और स्नेहाधिक्य से आर्त हो रहे हैं। इसलिए विनती करते हैं कि तुम्हारा अनुरोध सीता को मानना ही पड़ेगा।

सरकार एक तो कृपानिधान हैं। आर्त पर कृपा करने का स्वभाव है। तिस पर पिता का सन्देश आर्ति और प्रीति से युक्त सुनकर सीताजी को कोटि प्रकार की शिक्षा दी। माता के कहने पर अनेक विधान से शिक्षा दी थी। अब कोटि विधान से देते हैं। ध्यान देने की बात है कि इतना होने पर भी शिक्षा ही देते हैं। आज्ञा नहीं देते कि तुम चली जाओ। क्योंकि जो अपने धर्म पर अग्रसर है उसे क्रिया की दुष्करता दिखलाकर सावधान किया जा सकता है। हठात् रोका नहीं जा सकता। दूसरे यह कि बोल चुके हैं : परिहरि सोच चलहु बन साथा और राम दो बार नहीं बोलते : रामो द्विर्नाभिभाषते।

सासु ससुर गुरु प्रिय परिवारू। फिरहुं त सब कर मिटै खँभारू॥
सुनि पति बचन कहति बैदेही। सुनहु प्रानपति परम सनेही॥२॥

अर्थ : तुम लौट जाओ तो सास, ससुर, गुरु, प्रिय और परिवार सबका दुःख मिट जाय। पति का वचन सुनकर वैदेही बोलीं कि हे प्राणपति! हे परम सनेही सुनो।

व्याख्या : रामजी के कोटि भाँति समझाने का निर्गलितार्थ यह कि जब तुम्हारे लौट जाने से सास, ससुर, गुरु, प्रिय, परिवार का दुःख मिटता है तब तुम अपने ऊपर दुःख को अङ्गीकार करके लौट जाओ। इन गुरुजनों का जिस कार्य से सन्तोष होता हो उससे बड़ा धर्म कौन है? रह गयो मेरी बात तो मेरी इस विषय में पूरी सम्मति है। मैं कह रहा हूँ और मेरे भी गुरुजन सास ससुर गुरु भी कह रहे हैं। वही करना पथ्य है। जिस धर्म की प्राप्ति मैं वन जाकर करना चाहता हूँ उसी धर्म की प्राप्ति अनायासेन घर लौटने से तुम्हें होगी इत्यादि।

पति का वचन पतिव्रता के लिए परम श्रद्धेय है। उसे सुनकर वैदेही ने कहा कि आप प्राणपति हैं। परम सनेही हैं। आप न सुनेंगे तो मेरी कौन सुनेगा।

प्रभु करुनामय परम बिबेकी। तनु तजि रहति छाँह किमि छेंकी॥
प्रभा जाइ कहँ भानु बिहाई। कहँ चंद्रिका चंदु तजि जाई॥३॥

अर्थ : प्रभु तो करुणामय हैं। परम विवेकी हैं। कहिये तो शरीर को छोड़कर क्या छाँह रोके रुक सकती है? सूर्य को छोड़कर प्रभा कहाँ जाय और चाँद को छोड़कर चाँदनी को कहाँ ठिकाना है?

व्याख्या : सरकार प्रभु हैं। समर्थ हैं। सब कुछ कर सकते हैं। परन्तु करुणामय हैं। यथा : करुणामय रघुनाथ गोसाईं। वेगि पाइहैं पीर पराई। मेरी पीड़ा का भी ध्यान करिये और आप परम विवेकी हैं। विचार करके देखिये। सरकार शरीर हैं तो मैं छाया स्थानीया हूँ। सरकार सूर्य हैं तो मैं प्रभा हूँ। सरकार चन्द्र हैं तो मैं चन्द्रिका हूँ। क्या छाया को सामर्थ्य है कि वह शरीर को छोड़कर पृथक् स्थिति अपनी रख सके। क्या प्रभा सूर्य को और चन्द्रिका चन्द्र को छोड़कर कहीं जा सकती है। यहाँ समझाने का कोई उपयोग नहीं है। मैं समझती सब हूँ पर पृथक् रहना मेरे सामर्थ्य के बाहर की बात है। यदि समझाने से छाया शरीर को छोड़कर पृथक् रह सके। प्रभा सूर्य को छोड़कर अलग हो सके। चन्द्रिका को चन्द्र के सिवा कोई दूसरा ठिकाना हो तो मुझपर भी समझाने का प्रभाव पड़ सकता है। जिसे छाया को प्रभा को या चन्द्रिका को रोकना हो। वह शरीर को रोके। सूर्य को रोके। चन्द्र को रोके। छाया प्रभा और चन्द्रिका रुकी ही रुकायी है। शरीर का वन भेजे और छाया को घर लौटाने के लिए कहे यह कौन सा विवेक है।

पतिहि प्रेममय बिनय सुनाई। कहत सचिव सन गिरा सुहाई ॥
तुम्ह पितु ससुर सरिस हितकारी। उतरु देउँ फिर अनुचित भारी ॥४॥

अर्थ : पति को प्रेममय विनती सुनाकर मन्त्री से सुन्दर वाणी बोलीं। आप पिता तथा ससुर के सदृश हित करनेवाले हो। मैं उलटकर उत्तर देती हूँ। यह भारी अनुचित है।

व्याख्या : पति से जो विनय किया वह प्रेममय था। प्रेम विश्लेष को नहीं सहन कर सकता। यद्यपि सुमन्त्र ने सीताजी से कुछ नहीं कहा था। जो कुछ उन्होंने कहा सो रामजी से कहा और रामजी ने सीताजी को समझाया। पर सीताजी उत्तर के रूप में प्रेममय विनय करके सुमन्त्रजी को उत्तर देने लगीं। जिसमें रामजी को यह कहना न पड़े कि देखिये यह नहीं मानतीं।

सुमन्त्र से सीताजी ने कहा कि मैं आपको पिता के समान मानती हूँ। पतिदेव भी आपको पिता के समान मानते हैं। अतः मैं आपको पिता और ससुर दोनों के समान हितकारी मानती हूँ। जिसके लिए पतिदेव ने कहा : दिये उतरु फिर पातकु लहऊँ। उसे मेरा उत्तर देना तो भारी अनुचित है।

दो. आरति बस सनमुख भइउँ, बिलग न मानब तात।
आरजसुत पद कमल बिनु, बादि जहाँ लगि नात ॥९७॥

अर्थ : मैं आर्ति के वश होकर सम्मुख हुई हूँ। इससे आप अप्रसन्न न हूजियेगा। आर्यपुत्र के चरण कमलों के बिना जहाँ तक नाते हैं सब व्यर्थ हैं।

व्याख्या : मैं आर्त हो रही हूँ। अतः आपके सम्मुख हूँ। अर्थात् उत्तर दे रही हूँ। आपके अप्रसन्न होने के लिए यथेष्ट कारण हैं। उत्तर भी भेद उत्पन्न

करनेवाला होगा। फिर भी आपसे प्रार्थना है कि आप अप्रसन्न न हों आरत कहहिं बिचारि न काऊ। सूझ गुआरिहि आपन दाऊँ। तथा : अति आरत अतिस्वारथी अति दीन दुखारी। इनको बिलगु न मानिये बोलहिं न बिचारी। मेरा उत्तर यही है : सब मानिये राम के नाते। आर्यपुत्र के चरण कमल बिना सब नाते व्यर्थ हैं। आगे की चौपाइयों में इसी बात को स्पष्ट किया है।

पितु बैभव बिलासु मै डीठा। नृप मनि मुकुट मिलिति पद पीठा ॥
सुख निधान अस पितु गृह मोरें। पिय बिहीन मन भाव न भोरें ॥१॥

अर्थ : पिताजी के ऐश्वर्य का विलास मेरा देखा हुआ है। जिनके चरण पीठ को राजाओं के मणिमुकुट स्पर्श करते हैं। मेरा पितृगृह : मायका ऐसा सुखनिधान है। पर पति के बिना मुझे भूलकर भी अच्छा नहीं लगता।

व्याख्या : जहँ लगि नात को स्पष्ट करते हुए पहिले पिता के ही विषय में कहती हैं कि पिताजी के चरणों पर राजा लोग मस्तक नहीं रख सकते। दूर से ही प्रणाम करते हैं। केवल उनके मणि मुकुट का ही स्पर्श उनके चरणपीठों से होता है। ऐसा सुखद मेरा पितृगृह है। पर वह भी तभी सुखद है जब तक कि सरकार साथ रहें। उनके बिना वह पितृगृह भी मुझे पसन्द नहीं। कहा गया था : मइके ससुर सकल सुख जबहिं जहाँ मन मान। तब तहँ रहिहि सुखेन सिय जब लगि बिपति बिहान। सो मइके के विषय में तो कह चुकी। अब ससुराल के विषय में सुनिये।

ससुरु चक्कवइ कोसलराऊ। भुवन चारिदस प्रगट प्रभाऊ ॥
आगें होइ जेहि सुरपति लेई। अरध सिंघासन आसन देई ॥२॥

अर्थ : ससुर तो कोसलपति चक्रवर्ती हैं। चौदहों भुवन में उनका प्रभाव प्रकट है। जिसे स्वयं देवराज आगे आकर स्वागत करते हैं और आधे सिंहासन पर बैठने के लिए स्थान देते हैं।

व्याख्या : अब कहती हैं कि ससुर का प्रभाव उनसे भी बढ़कर है। कोसल के राजा होते हुए भी चक्रवर्ती हैं। यथा : नृप सब रहहिं कृपा अभिलाखे। उनका प्रभाव चौदह भुवन में प्रकट है। भुवन चारि दस भूधर भारी। सुकृत मेघ बरखहिं सुख बारी। रिधि सिधि संपति नदी सोहाई। उमगि अवध अंबुधि कहँ धाई।

जब कभी अपने सखा इन्द्र से मिलने जाते हैं तो देवराज स्वयं स्वागत के लिए आगे से आकर लिवा जाते हैं और अपने साथ सिंहासन पर बिठाते हैं यथा : लोकप करहिं प्रीति रुचि राखे।

ससुरु एतादृस अवध निवासू। प्रिय परिवारु मातु सम सासू ॥
बिनु रघुपति पद पदमु परागा। मोहि केउ सपनेहुँ सुखद न लागा ॥३॥

अर्थ : ऐसे ससुर और अयोध्या का निवास प्रेम करनेवाले कुटुम्बी और माता के समान सास। पर रघुपति के चरण कमल की धूलि के बिना मुझे सपने में भी कोई सुखद नहीं मालूम हुआ।

व्याख्या : ससुर इन्द्र के तुल्य। अवधराज सुरराज से अधिक यथा : अवधराजु सुरराजु सिहाई। दसरथ धन सुनि धनद लजाई। परिवार के लोग सब प्रेम करनेवाले। सास तो माता के ऐसी यथा : कलप बेलि जिसि बहुविधि लाली। सींचि सनेह सुधा प्रतिपाली। अतः मन न लगने का कोई कारण नहीं। पर मुझे बिना रघुपति पद पंकज पराग के कोई सुखद सपने में भी नहीं मालूम हुआ। यथा : राम चरन पंकज प्रिय जिनहीं। विषय भोग बस करहिं कि तिनहीं।

अगम पंथ बनभूमि पहारा। करि केहरि सर सरित अपारा॥
कोल किरात कुरंग बिहंगा। मोहि सब सुखद प्रानपति संगा॥४॥

अर्थ : दुर्गम रास्ते, वन, भूमि, पहाड़, हाथी, सिंह, ताल और अपार नदियाँ, कोल, किरात, हिरनें और चिड़ियाएँ मुझे सभी प्राणपति के साथ होने से सुखद हैं।

व्याख्या : मइके ससुरे सकल सुख का उत्तर देकर अब : सहि न सकिहि सिय बिपिन कलेसू का उत्तर दे रही हैं। वन में जो दुःखद वस्तुएँ हैं जिनका वर्णन करके लोगों ने सीताजी को वन जाने के लिए समझाया था और जिसका उत्तर सङ्कोचवश सीताजी उस जन समुदाय में न दे सकीं। यथा : सीय सकुच बस उतरु न देई। इस समय उन सबों का नाम गिनाकर उत्तर दे रही हैं। वन का रास्ता दुःखद है। वन की भूमि वन के पहाड़ दुःखद हैं। वन में हाथी सिंहादि हिंस्र जन्तु भरे हैं। वन के ताल वन की नदियाँ वन के रहनेवाले कोल किरात अन्य पशु पक्षी दुःखद हैं। पर प्राणपति के साथ होने से मेरे लिए वे सब सुखद हैं।

दो. सास ससुर सन मोर हुँति, बिनय करबि परि पायँ।
मोर सोचु जनि करिअ कछु, मैं बन सुखी सुभायँ॥९८॥

अर्थ : सास ससुर के पाँव पड़कर मेरी ओर से विनय कीजियेगा कि मेरा कुछ भी सोच न करें। मैं स्वभाव से ही वन में सुखी हूँ।

व्याख्या : सास ससुर अस कहेउ सँदेसू। पुत्रि फिरिअ बन बहुत कलेसू। इस बात का उत्तर देते हुए कहती हैं कि मैं वन छोड़कर घर जा नहीं सकती। अतः आप मेरी ओर से उनके पाँव पड़कर विनय कर दीजियेगा कि मेरे लिए तो कुछ भी सोच न करें। मैं स्वभाव से ही वन में सुखी हूँ। अर्थात् मुझे स्वभाव से ही वन प्रिय है। महल प्रिय नहीं है। रमा बिलासु राम अनुरागी। तजत वमन जिमि जन बड़ भागी।

प्राननाथ प्रिय देवर साथा। बीर धुरीन धरे धनु भाथा॥
नहिं मग श्रमु भ्रमु दुखु मन मोरे। मोहि लगि सोच करिअ जनि भोरे॥१॥

अर्थ : मेरे साथ में प्राणनाथ हैं। प्रिय देवर हैं जो कि वीरों में धुरीण हैं और धनु तरकस धारण किये हुए हैं। मुझे रास्ते चलने के थकावट का भ्रम भी मेरे मन में नहीं है। मेरे लिए तो भूल करके भी सोच न कीजियेगा।

व्याख्या : सोच तो अनाथ का किया जाता है। मैं तो सनाथा हूँ। मेरे प्राणनाथ मेरे साथ हैं। मेरे प्रिय देवर भी साथ हैं। दोनों महापुरुष वीरों में धुरन्धर हैं। तिस पर उनके पास धनुष और तरकस है। कोई विघ्न बाधा मेरे सन्निकट आ नहीं सकती। मेरे मन में वन चलने का उत्साह है। मुझे पैदल चलने में थकावट नहीं होगी। मुझे थकावट के दुःख का भ्रम भी नहीं है। अतः मेरे लिए तो भूल करके सोच न कीजियेगा। लोगों को भ्रम है कि मुझे दुःख होगा। कहते थे वन देखकर डर जाओगी। सो मुझे वन देखकर बड़ा आनन्द हुआ। कन्द मूल फल भी मैंने खाया। पतिदेव को जटा धारण किये भी देखा। पर मुझे दुःख न हुआ। अब तो मुझे दुःख का भ्रम भी नहीं है।

सुनि सुमंत्रु सिय सीतल बानी। भयेउ बिकल जनु फनि मनि हानी ॥
नयन सूझ नहिं सुनइ न काना। कहि न सकै कछु अति अकुलाना ॥२॥

अर्थ : सुमन्त्र सीताजी की शीतल वाणी सुनकर ऐसे विकल हो गये जैसे मणि के चले जाने से सर्प विकल होता है। आँख से न सूझता है। न कान से सुनायी पड़ता है। अत्यन्त आकुल हो गये। कुछ कह नहीं सकते।

व्याख्या : सीताजी की वाणी तो शीतल थी पर उसमें बड़ी दृढ़ता थी। सुमन्त्रजी ने समझ लिया कि ये नहीं लौटेंगी। जो मैके और ससुराल के इतने बड़े ऐश्वर्य सुख को दुःखरूप देख रही है। जिस पतिदेवता शिरोमणि पति के साथ होने पर सम्पूर्ण दुःखों को सुख स्वरूप देख रही है। वह पति को वन में छोड़कर घर लौट सकती नहीं। अतः यह अन्तिम आशा भी निराशा में परिणत हो गयी। अतः उनकी दशा उस सर्प सी हो गयी जिसकी मणि छिन गयी हो। वधुओं की रक्षा बड़े प्यार के साथ महाराज के महल में की जाती थी। यथा : सुंदरि बधुन्ह सासु लइसोई। फनिकन्ह जनु सिर मनि उर गोई।

इन्द्रियाँ भारी विकल हो गयीं। अपने अपने विषयों के ग्रहण में असमर्थ हो गयीं। न आँख से दिखायी पड़ता है। न कान से सुनायी पड़ता है। न मुख से शब्द निकलते हैं।

राम प्रबोधु कीन्ह बहु भाँती। तदपि होत नहिं सीतलि छाती ॥
जतन अनेक साथ हित कीन्हें। उचित उतरु रघुनंदन दीन्हें ॥३॥

अर्थ : रामजी ने बहुत प्रकार से समझाया। फिर भी छाती ठण्ढी नहीं होती। साथ चलने के लिए अनेक यत्न किया पर रामजी ने उचित उत्तर दिया।

व्याख्या : सुमन्त्रजी की व्याकुलता देखकर रामजी समझाने लगे। यथा :

कवित्त : तात के प्रधान गुण ज्ञान के निधान
धर्मनीति में प्रमान आप सरिस जनैया कौन।
काको मुख ताकों एहि संकट विकट मांहि
धरि उर धीर लाजपति को सँभारो जौन।।
पितहिं बुझाइ समुझाइ सब मातुन को
कीजिये रजाय वेगि भरत बुलावो भौन।
सुकृत न जाय जग जस सरसाय ताप
तिमिर नसाय आप करिय उपाय तौन।।

इस भाँति बहुत समझाया पर सुमन्त्र के हृदय का दाह नहीं जाता। वह साथ चलने को उद्यत हो गये कि यदि आप लोग कोई नहीं लौटते, तो मुझे भी साथ ले चलिये। मैं अकेला लौटकर अयोध्या में क्या मुख दिखलाऊँगा। पर रामजी ने उचित उत्तर दिया। हम चारों भाइयों में से कोई भी इस समय अयोध्या में नहीं है। महाराज की यह दशा है। आप मंत्री हैं। ऐसे समय में महाराज को छोड़कर वन जाना आपका धर्म नहीं है।

मेटि जाइ नहिं राम रजाई। कठिन करम गति कछु न बसाई।।
राम लखन सिय पद सिरु नाई। फिरेउ बनिकु जिमि मूरु गँवाई।।४।।

अर्थ : रामजी की आज्ञा मिटायी नहीं जा सकती। कर्म की गति कठिन है। उग पर कोई वश नहीं चलता। राम लक्ष्मण तथा सीताजी के चरणों में सिर नवाकर लौटे। जैसे मूल पूँजी खोकर व्यापारी लौटता है।

व्याख्या : 'राम रजाइ सीस सबही के। उतपति थिति लय विषहु अमीके। राम रजाइ मेटि मन माँहीं। देखा सुना कतहुँ कोउ नाँहीं। अत' रामजी की आज्ञा मेटी नहीं जा सकती। नहीं तो सुमन्त्र किसी भाँति न लौटते। उनके लिए बिना राम के लौटना मरण से बढ़कर कष्टप्रद था। लौटकर महाराज से सन्देशा कहने के बाद फिर सुमन्त्रजी ने मुँह न दिखाया। महाराज का स्वर्गवास हुआ। क्रिया हुई। भरत सभा हुई। भरतजी चित्रकूट गये, लौटे पर सुमन्त्रजी का पता नहीं। रामजी के वन से लौटने पर ही सुमन्त्रजी घर के बाहर निकले। ऐसी चिरस्थायिनी पीड़ा सुमन्त्रजी को लौटने में थी। परन्तु कर्मगति कठिन है। उस पीड़ा को सहना ही पड़ा। कोई वश न चला।

राम लक्ष्मण और सीताजी के चरणों में सिर नवाकर इस भाँति चले जैसे कोई व्यापारी व्यापार के लिए गया हो। उसके मन में बड़ी आशा थी कि बहुत लाभ होगा। घरवाले आशा लगाये बैठे थे कि खूब मुनाफा करके घर आवेंगे। पर देव दुर्विपाक से कोई ऐसी घटना हुई कि मुनाफा को कौन कहे मूलधन भी नष्ट हो गया। जिस तरह से दुःखी होकर वह व्यापारी घर लौटता है उसी भाँति सुमन्त्रजी भी लौट चले।

सुमन्त्रजी रथ लेकर चले थे कि मैं राम लक्ष्मण जानकी को लौटा लाऊँगा और बड़ा भारी यश भी हाथ लगेगा कि राम लक्ष्मण जानकी किसी के भी समझाने पर भी घर न रहे उन्हें सुमन्त्रजी लौटा लाये। यहाँ मूलधन राम लक्ष्मण जानकी और मुनाफा लौटा लाने का यश था। सो रामजी के न लौटने पर बात ही दूसरी हो गयी। अब तो सुमन्त्रजी सीधे सीधे रामजी को वन पहुँचाने-वाले हो गये। अतः मूल भी हाथ से गया और दुर्यश के भागी हुए। सारी अयोध्या कहेगी कि इसी ने हम लोगों के सो जाने पर चोरी से रामजी को वन पहुँचाया।

दो. रथु हाँकेउ हय राम तन, हेरि हेरि हिहिनाहिं।
देखि निषाद बिषादबंस, धुनहिं सीस पछिताहिं ॥९९॥

अर्थ : रथ हाँका तो घोड़े रामजी की ओर देखकर हिहिनाते हैं। यह देखकर निषाद लोग सिर धुन धुनकर पछताने लगे।

व्याख्या : सुमन्त्रजी ने रथ हाँका अयोध्या जाने के लिए। पर घोड़ों को रामजी का वियोग सह्य नहीं। राम रहित होकर वे जाना नहीं चाहते। रामजी को देखकर हिनहिनाते हैं। यही इनका करुण क्रन्दन हैं। इनको रामजी का बड़ा विरह हुआ। गीतावली में कौसल्याजी के मुख से इसका विस्तार से वर्णन है। सचिव और रामजी का संवाद सुनकर निषाद परिजन के सहित विषाद से विकल हो गये थे। घोड़ों का हाल देखकर तो वे सिर पीट पीटकर पछताने लगे।

जासु बियोग बिकल पशु ऐसे। प्रजा मातु पितु जिइहहिं कैसें ॥
बरबस राम सुमंत्रु पठाये। सुरसरि तीर आपु तब आये ॥१॥

अर्थ : जिसके वियोग से पशु इतने विकल हैं उसके प्रजा माता पिता कैसे जीयेंगे? रामजी ने सुमन्त्र को जबरदस्ती लौटाया और तब स्वयं गंगाजी के किनारे गये।

व्याख्या : पशु आसन्नचेतन होते हैं। उन्हें कल : अनागत का ज्ञान नहीं होता। वे भी जब रामजी के वियोग से इतने विकल हैं तो जो बुद्धिजीवी अति निकट सम्बन्धवाले हैं यथा : प्रजा माता और पिता वे कैसे जीयेंगे? यही सोचकर निषादगण सिर धुनकर पछता रहे हैं।

प्रश्न यह उठता है कि फिर सुमन्त्र कैसे गये? इस पर कहते हैं कि राजी खुशी से नहीं गये रामजी ने जबरदस्ती उन्हें भेजा। वे रामजी की आज्ञा टार न सके। सुमन्त्र के रवाना होने के बाद रामजी गंगा के किनारे गये। स्नान के समय देख लिया था कि नाव घाट पर रहती है। इसलिए निषादराज को उसकी व्यवस्था के लिए नहीं कहा। सुमन्त्र के रहते गङ्गा तीर नहीं गये। जिसमें उन्हें साथ चलने का अवसर न मिले।

माँगी नाव न केवट आना । कहइ तुम्हार मरमु मैं जाना ।।
चरन कमल रज कहुँ सबु कहई । मानुष करनि मूरि कछु अहई ।।२।।

अर्थ : नाव माँगी तो केवट नहीं लाया । कहने लगा कि तुम्हारा मर्म मेरा जाना हुआ है । सभी लोग कहते हैं कि चरण कमल की धूलि मनुष्य बना देनेवाली कोई जड़ी है ।

व्याख्या : वहाँ जाकर देखा कि नाव किनारे पर नहीं । केवट उसे कुछ दूर छलका ले गया है । तब सरकार ने कहा कि नाव ले आवो । केवट कहता है कि यदि मैं आपका मर्म न जानता होता तो नाव को घाट पर ही रहने देता । मैं तो मर्म जानता हूँ । मैं नाव को कैसे ले आऊँ । यह बात तो किसी से छिपी नहीं है कि आपके चरणों की रज मनुष्य बनानेवाली जड़ी है : केवट ने देखा कि सुमन्त्र की विदाई से सरकार कुछ खिन्न से हो गये हैं । अतः उनके हँसाने का उपाय कर रहा है । शृङ्गवेरपुर शृङ्गीऋषि का आश्रम है । उन्हीं से भगवती शान्ता व्याही हैं । उसी नाते से वहाँ के मुनिपुत्रों ने सरकार से हँसी की थी । यथा :

बिंधि के वासी उदासी तपोव्रतधारी महा बिनु नारि दुखारे ।
गौतम तीय तरी तुलसी सो कथा मैं सुनि मुनिवृन्द सुखारे ।
ह्वै हैं शिला सब चंद्रमुखी परसे पद मंजुल कंजु तुम्हारे ।
कीन्ही कृपा रघुनायक जू करुना करके इतको पग धारे ।

यहाँ के बच्चे बच्चे इस बात को जानते हैं । केवट उसी नाते को काम में लाना चाहता है ।

छुअत सिला भइ नारि सुहाई । पाहन तें न काठ कठिनाई ।।
तरनिउ[1] मुनि घरनी होई जाई । बाट परै मोरि नाव उड़ाई ।।३।।

अर्थ : छूने ही शिला मुनि की स्त्री हो गयी । पत्थर से काठ कठिन नहीं होता । नाव भी मुनि की स्त्री हो जायगी । रास्ते में पड़ने से मेरी नाव ही उड़ जायगी ।

व्याख्या : परसि जासु पदपंकज धूरो । तरी अहल्या कृत अघ भूरी । जब शिला रज के स्पर्श मात्र से सुन्दर स्त्री हो गयी यथा : गौतम गये गृह गौनो सो लवाइके । तो इस काठ की नाव को मुनि की स्त्री हो जाने में क्या देर लगेगी । पत्थर से तो काठ कोमल होता है । यथा : पाहन ते वन वाहन काठ को कोमल है जल खाइ रहा है यह प्रसङ्ग कवित्त रामायण में देखने लायक है । यह नाव भी किसी मुनि की स्त्री हो जायगी । यह भी नहीं कि मेरी हो कर रहे । रास्ते में पड़ने से मेरी नाव उड़ जायगी । इसी भय से तो मैं किनारे से दूर हटा लाया हूँ ।

एहिं प्रतिपालउँ सबु परिवारू । नहिं जानउँ कछु और कवारू ।।
जौं प्रभु पार अवसि गा चहहू । मोहि पद पदुम पखारन कहहू ।।४।।

---

1. व्याज स्तुति अलंकार है ।

अर्थ : इसी से मैं सब परिवार का प्रतिपालन करता हूँ। दूसरा कोई काम धन्धा मैं जानता नहीं। अवश्य ही यदि पार जाना चाहते हैं तो मुझे चरण कमल के धोने की आज्ञा दीजिये।

व्याख्या : पात भरी सहरी सकल सुत वारे वारे
केवट की जाति कछु वेद ना पढ़ाइहौं।
सब परिवार मेरो यहि लागि राजा जू
दीन वित्त हीन कैसे दूसरी गढ़ाइहौं।
गौतम की घरनी ज्यौं तरनी तरैगी मेरी
प्रभु सो निषाद ह्वै के बाद ना बढ़ाइहौं।
तुलसी के ईश राम रावरे सों साँची कहौं
बिना पग धोए नाथ नाव ना चढ़ाइहौं।

मैं तो यही जानता हूँ कि सरकार को पार जाना नहीं हैं। किसी मुनि को सुन्दर स्त्री भेंट करना है। इस मर्म को मैं समझ रहा हूँ। यदि कहिये कि नहीं मुझे पार जाना आवश्यक है तो आज्ञा दीजिये मैं पैर धो लूँ जिसमें कोई रज का लेश न रह जाय।

छं. पद कमल धोइ चढ़ाइ नाव न नाथ उताराई चहों।
मोहि राम राउरि आन दसरथ सपथ सब साँची कहों॥
बरु तीर मारहु लखनु पै जब लगि न पाय पखारिहों।
तब लगि न तुलसीदास नाथ कृपालु पारु उतारिहों॥

अर्थ : चरण कमल धोकर नाव पर चढ़ाकर हे नाथ! मैं उतराई नहीं चाहता। मुझे आपकी शपथ दशरथ की सौगन्ध मैं सच्ची कहता हूँ। चाहे लक्ष्मणजी तीर मार दें। पर जब तक पैर न धो लूँगा तब तक हे कृपाल तुलसीदास के नाथ! मैं पार न उतारूँगा।

व्याख्या : सरकारी आज्ञा पालन में मुझे रत्ती भर आगा पीछा नहीं है। चरणों को धोकर नाव की रक्षा चाहता हूँ। फिर आपको नाव पर चढ़ाऊँगा। नहीं तो फिर चरणों में रज लग जायगा। सरकार के चढ़ जाने पर पार उतारने का तो कोई प्रश्न ही नहीं। मैं उतराई भी नहीं लूँगा। उतराई ली जाती है बटोहियों से। सरकार तो नाथ हैं। नाथ से उतराई कैसी? यदि कहिये कि नहीं तू बातें बनाता है तो इस पर कहता है कि मैं सच्ची बात कहता हूँ। सरकार नाथ हैं। सो आपकी शपथ लेता हूँ। महाराज दशरथ जगतीपति हैं उनकी शपथ लेता हूँ। पार उतारने में मुझे कोई उज्र नहीं है।

लखन बान धनु धरे बनाई। लक्ष्मणजी पार जाने की तैयारी करते हैं। धनुष बाण को सुधार रहे हैं। तो उन्हें भी हँसाने के लिए उन पर मारने की धमकी का

आरोप करता है। कहता है कि चाहे लक्ष्मणजी तीर मार दें पर बिना पैर धोये तो मैं पार उतारता नहीं।

दो. सुनि केवट के बयन, प्रेम लपेटे अटपटे।
बिहँसे करुना अयन, चितइ जानकी लखन तन ॥१००॥

अर्थ : केवट के प्रेम लपेटे अटपटे वचन सुनकर करुणाअयन रामजी जानकी और लक्ष्मण की ओर देखकर जोर से हँस पड़े।

व्याख्या : अटपटी बात अटपटी चेष्टा हास्यरस का उद्बोधक है। किं पुनः यदि प्रेम से पगी हुई हो। सो इसका मुख्य तात्पर्य तो पैर धोने में है। उसके लिए इतने बखेड़ेबाजी की बात पर सरकार हँस पड़े। हास्यरस का आनन्द प्रेमियों के साथ ही लिया जा सकता है अकेले नहीं। अतः उस रसोपभोग में सम्मिलित करने के लिए लक्ष्मण और सीताजी की ओर देखा। प्रसङ्ग प्राप्त अर्थ तो यही है : हास्य रस के विभाव की पुष्टि के लिए सखा और सखी की ओर देखना आवश्यक था। नहीं तो अकेले तो पागल हँसा करते हैं। जानकी लक्ष्मण की ओर देखने का और भी अर्थ लगाया जा सकता है। जानकीजी के हृदय में यही भाव उठा था। यथा : गौतम तिय गति सुमिरि करि नहि परसत पद पानि। मन विहंसे रघुवंसमनि प्रीति अलौकिक जानि। वहाँ मन में विहँसे थे। यहाँ प्रत्यक्ष विहँस रहे हैं। सखियों के कहने पर भी सीताजी के चरण स्पर्श न करने के साक्षी इस समय लक्ष्मणजी हैं। अतः उस समय का स्मरण करके प्रभु लक्ष्मण और जानकी की ओर देखकर हँस रहे हैं। कुछ लोग यहाँ पर हँसने के आशय को स्पष्ट करने के लिए किसी पूर्वजन्म की कथा की कल्पना करते हैं। पर ऐसी कल्पनाएँ यहाँ अप्रासङ्गिक हैं।

कृपासिंधु बोले मुसुकाई। सोइ करु जेहिं तब नाव न जाई ॥
बेगि आनु जलु पाय पखारू। होत बिलंबु उतारहि पारू ॥१॥

अर्थ : कृपासिन्धु मुसकुरा कर बोले कि अच्छा वही करो जिसमें तुम्हारी नाव बची रहे। शीघ्रता से जल लाकर पैर धो लो। देर हो रही है। पार उतार दो।

व्याख्या : कृपासिन्धु हैं। उसकी सब बखेड़ेबाजी को माने लेते हैं। कहते हैं कि जैसे तुम्हारी नाव बची रहे वही करो। मुझे इसे स्त्री बनाकर किसी मुनि को नहीं देनी है। मुझे पार जाने की जल्दी है। सो जल लाकर पैर धोने में जल्दी करो। इन सब बातों के कहने में सरकार के चेहरे पर मुसकुराहट है : हृदय अनुग्रह इन्दु प्रकासा। सूचत किरिन मनोहर हाँसा।

जासु नामु सुमिरत एक बारा। उतरहिं नर भवसिंधु अपारा ॥
सोइ कृपालु केवटहिं निहोरा। जेहिं जगु किये तिहुँ पगहुँ तें थोरा ॥२॥

अर्थ : जिसके नाम के एक बार स्मरण कर लेने से मनुष्य अपार भवसागर के

पार उतर जाता है। वही नामी कृपाल प्रभु केवट का निहोरा कर रहे हैं। जिन्होंने संसार को तीन पग से भी छोटा कर दिया था।

व्याख्या : आभीर जवन किरात खस स्वपचादि अति अघरूप जे। कहि नाम बारक तेपि पावन होहिं राम नमामि ते। जिसके नाम में ऐसी तारिणी शक्ति है कि एक बार उच्चारण करने से महापापी भी पावन होकर भवसागर पार होता है वही कृपाल गङ्गा पार जाने के लिए केवट से नाव माँगते हैं। वह नहीं लाता बखेड़ेबाजी करता है। तब आप उसका निहोरा करते हैं : सोई करु जेहि तव नाव न जाई''होत बिलंबु उतारिहि पारू। यहाँ पर कवि प्रभु के वामनावतार का स्मरण दिलाते हैं कि राजा बलि से सङ्कल्प लेकर जो नापने चले तो तीनों लोक नाप डाले। तीन पग पूरा न हुआ। उसे आज गङ्गा पार करना असम्भव हो रहा है। यह उनकी लीला है।

पद नख निरखि देवसरि हरषी। सुनि प्रभु बचन मोह मति करषी ॥
केवट राम रजायसु पावा। पानि कठवता भरि ले आवा ॥३॥

अर्थ : चरण के नख को देखकर गङ्गाजी प्रसन्न हुई। पर उनके वचन सुनकर मोह की ओर बुद्धि खिच गयी। केवट ने रामजी की आज्ञा पा ली सो कठौता भर के पानी लाया।

व्याख्या : गङ्गाजी को अपनी जन्मभूमि देखकर हर्ष हुआ। यथा : नख निर्गता मुनि बंदिता त्रैलोक्य पावन सुरसरी। क्योंकि सरकार के पद नख से उनकी उत्पत्ति है। पर निहोरावाला वचन सुनकर मोह की ओर बुद्धि खिचने लगी कि क्या वे वही सरकार नहीं हैं। भाव यह कि सरकार का मनुष्यभाव का अभिनय ऐसा मार्मिक होता है कि ऐसे जानकार को भी भ्रम हो जाय : और भ्रम नहीं है तो केवट को। यह सरकार की लीला है। उसे आज्ञा की देर थी। जल से भरकर कठौता ले आया कि इसमें पदरज धोयेंगे। उड़ जायगा तो कोई भारी हानि नहीं है।

अति आनंद उमगि अनुरागा। चरन सरोज पखारन लागा ॥
बरखि सुमन सुर सकल सिहाहीं। एहि सम पुन्यपुंज कोउ नाहीं ॥४॥

अर्थ : अत्यन्त आनन्द से प्रेम के उमङ्ग में आकर चरण कमल धोने लगा। फूलों की वर्षा करके देवता लोग ईर्ष्यापूर्वक कहने लगे कि इसके समान पुण्यात्मा कोई नहीं है।

व्याख्या : प्रभु रुख पाइके बोलाइ बाल घरनी को बंदि के चरन चहुँदिसि बैठे घेरि घेरि। छोटो सो कठौता भरि आनि पानी गङ्गाजी को धोइ पाय पियत पुनीत वारि फेरि फेरि। इसीलिए कवि कहते हैं पखारन लागा। क्या शोभा हुई। बीच में सरकार हैं। केवट बाल बच्चों के सहित घेरे हुए बैठा है। सरकार के चरण कमल को धोकर उस जल को फेर फेर कर पी रहा है। जिसमें रज नीचे न बैठ जाने पावे। ऊपर से देवता लोग पुष्पवृष्टि कर रहे हैं। ईर्ष्या कर रहे हैं कि हमारा

भाग्य ऐसा नहीं। इन चरणों को जनकजी ने धोया था। यथा : बहुरि रामपद पंकज धोये। जे हर हृदय कमल महँ गोये। उन चरणों को यह केवट होकर धो रहा है। अतः इस सा पुण्यवान् कोई नहीं।

दो. पद[1] पखारि जलु पान करि, आपु सहित परिवार।
पितर पारु करि प्रभुहि पुनि, मुदित गयेउ लइ पार ॥१०१॥

अर्थ : पैर धोकर स्वयं परिवार सहित जलपान किया और पितरों को पार करके प्रभु को हर्षित होकर पार ले गया।

व्याख्या : कोशलेन्द्रपदकञ्जमञ्जुलौ कोमलावजमहेशवन्दितौ जानकीकरसरोजलालितौ। प्रभु के चरण शिव अज से वन्दित हैं। जानकीजी के कर कमलों से लालित हैं। जेहि पद परसि तरी रिषि नारी। दंडक कानन पावन कारी। हर उर सर सरोज पद जोई। उस पद को अपने हाथों से प्रक्षालन करके उस चरणामृत को परिवार के साथ केवट ने पान किया। इससे उसके पितृकुल श्वशुरकुल तथा बन्धुओं के सभी कुल तर गये। इस भाँति उसने पहिले पितरों को भवसागर पार कर लिया तब प्रसन्न होकर प्रभु को गङ्गापार ले गया।

१४. सुरसरि उतरि प्रयाग निवास

उतरि ठाढ़ भए सुरसरि रेता। सीय रामु गुह लखन समेता॥
केवट उतरि दंडवत कीन्हा। प्रभुहि सकुच एहि नहिं कछु दीन्हा ॥१॥

अर्थ : सीता और रामजी गुह और लक्ष्मण के सहित उतरकर गङ्गाजी के रेत में खड़े हो गये। केवट ने उतरकर दण्डवत् किया। प्रभु को सङ्कोच हुआ कि इसे कुछ दिया नहीं गया।

व्याख्या : गङ्गापार पहुँचकर सीता और रामजी निषादराज और लक्ष्मण के साथ नाव पर से उतरकर रेत में खड़े हो गये। क्योंकि यहाँ नित्यकृत्य करना है। तब केवट ने उतरकर दण्डवत् किया। यहाँ पर यह बात अभ्रान्त रूप से स्पष्ट हो जाती है कि केवट और निषादराज गुह दो व्यक्ति थे। राजाओं के यहाँ नट आदि जब अपनी करामात दिखा चुकते हैं तो पीछे इनाम के लिए दण्डवत् करते हैं। सो केवल को दण्डवत् करते देखकर प्रभु को सङ्कोच हुआ कि इसे कुछ दिया नहीं गया। यद्यपि इसने कहा कि मुझे उतराई नहीं चाहिए। पर इससे परिवार का प्रतिपालन उतराई से ही होता है। अतः इसे कुछ देना चाहिए था। पैर धोने की गिनती उतराई में नहीं हो सकती।

पिय हिय की सिय जाननिहारी। मनि मुँदरी मन मुदित उतारी॥
कहेउ कृपाल लेहि उतराई। केवट चरन गहे अकुलाई ॥२॥

---

१. यहाँ अत्यन्तातिशयोक्ति : अलङ्कार है।

अर्थ : पिय के हिय की जाननेवाली सीताजी थीं। उन्होंने प्रसन्न मन से मणि की अगूँठी उतार दी। कृपालु ने कहा कि उतराई लो। केवट ने आकुल होकर चरण पकड़ लिया।

व्याख्या : प्रभु के सङ्कोच को सीताजी ने लखा। वे इनके मन की जाननेवाली हैं। क्योंकि इनका मन सदा उनके पास रहता है। यथा : सो मन सदा रहत तोहि पाँही। उतराई बड़ी छोटी चीज है। मणिमुदरी बड़ी अमूल्य वस्तु है। उतराई देने के लिए ऐसे अमूल्य आभूषण को उतारना स्त्रियों के लिए बड़े कष्ट की बात है। पर सीताजी को सरकार के सङ्कोच के सामने मणिमुदरी क्या है। अतः प्रसन्न मन से उतार दिया। सरकार देखते रहे। दोनों पर बड़ी कृपा है। उस मुदरी को उतराई के रूप में देने लगे।

उतराई का नाम सुनने ही केवट विकल हो गया। उतराई कैसी ? क्या मैंने इन्हें उतराई के लिए पार उतारा है। इतना ही तो मुझसे सेवा यावज्जीवन में बन पड़ी। उसका भी विनिमय दे रहे हैं। मेरी सेवा स्वीकार नहीं। लोग मुझे क्या कहेंगे कि उतराई के लिए स्त्री का गहना उतरवा लिया।

नाथ आजु मैं काह न पावा। मिटे दोष दुख दारिद दावा ॥
बहुत काल मैं कीन्हि मजूरी। आज दीन्हि बिधि बनि भलि भूरी ॥३॥

अर्थ : हे नाथ ! आज मैंने क्या नहीं पाया। दोष दुःख और दरिद्र की दावाग्नि शान्त हो गयी। मैंने बहुत दिनों से मजदूरी की है। पर विधाता ने आज मुझे अच्छी और पूरी मजदूरी दी है।

व्याख्या : भाव यह कि मैं पूर्णकाम हो गया। हृदय में दोष दुःख और दरिद्रता का दावानल जला करता था सो आज शान्त हो गया। मिटे दोष दुःख भव रजनीके। सो दोष दुःख से परलोक के दुःख का नाश कहा और दारिद कहने से ऐहिक दुःख का नाश कहा।

केवट कहता है कि कभी ऐसी मजदूरी मिली ही नहीं थी। यदि कहिये कि मैंने तो दी ही नहीं मिल कैसे गयी। इस पर कहता है कि विधाता ने दी। मनुष्य ऐसी मजदूरी दे नहीं सकता। मैंने आप से मजदूरी न लेने का प्रण किया था इसलिए विधि ने दी।

अब कछु नाथ न चाहिअ मोरें। दीनदयाल अनुग्रह तोरें ॥
फिरती बार मोहि जो देबा। सो प्रसादु मइँ सिर धरि लेबा ॥४॥

अर्थ : हे नाथ ! हे दीनदयाल ! तुम्हारे अनुग्रह से अब मुझे कुछ न चाहिए। लौटती बार जो देंगे वह प्रसाद मैं सिर धर कर लूँगा।

व्याख्या : मैं कृतकृत्य हो गया। आपके अनुग्रह से मुझे कोई घाटा नहीं रह गया। प्रभु दीनदयाल हैं। दया ने ही सब घाटा पूरा कर दिया। यदि कहिये घाटा नहीं सही। पर जो मिलता है उसके स्वीकार करने में क्या आपत्ति। इस पर कहता

है कि लौटती बार जो मिलेगा उसे शिरोधार्य करूँगा। क्योंकि उस समय मैं अयोध्या लौटने में सहायक होऊँगा। इस समय तो मैं प्रभु के वन जाने का मार्ग निरर्गल कर रहा हूँ। प्रभु की आज्ञा न टाल सका। इसलिए पार उतार दिया नहीं तो मैं कदापि पार न ले आता।

दो बहुत कीन्ह प्रभु लखन सिय, नहिं कछु केवटु[1] लेइ।
बिदा कीन्ह करुनायतन, भगति बिमल बरु देइ ॥१०२॥

अर्थ : सीता लक्ष्मण और रामजी ने बहुत प्रयत्न किया। पर केवट कुछ नहीं लेता। तब करुनायतन ने निर्मल भक्ति देकर विदा किया।

व्याख्या : जब जानकीजी के हाथ से लेना केवट ने किसी भाँति नहीं चाहा तो लक्ष्मणजी देने लगे। उनसे भी जब नहीं लिया तो स्वयं सरकार देने लगे। पर उसने किसी तरह से लेना स्वीकार नहीं किया। महात्माओं का कथन है कि उस अँगूठी का मूल्य तीनों लोक था। जब उसने नहीं लिया तो सरकार ने सब प्रकार से उसे निःस्पृह समझकर निर्मल भक्ति का वर दिया। देय को चौदह वर्ष तक नहीं रोका जा सकता। दूसरी बात यह है कि प्रभु का सङ्कल्प अमोघ है। अतः उसे बिना माँगे अनुपमसुखमूल भक्ति दी। बिना माँगे अविरल भक्ति केवट ने हो पायी।

तब मज्जनु करि रघुकुल नाथा। पूजि पारथिव नायेउ माथा ॥
सिय सुरसरिहि कहेउ कर जोरी। मातु मनोरथ पुरउबि मोरी ॥१॥

अर्थ : तब रघुकुलनाथ रामजी ने पार्थिव पूजन करके प्रणाम किया। सीताजी ने हाथ जोड़कर गङ्गाजी से प्रार्थना की कि माँ! मेरे मनोरथ को पूरा करना।

व्याख्या : गृहस्थ के लिए मध्याह्नकृत्य में ही विस्तार का विधान है। प्रातः-कृत्य तो सन्ध्या मात्र है। पूजनादि का विधान मध्याह्न में ही है। श्रीरामजी रघुकुलनाथ हैं। नित्य पार्थिवपूजन करते हैं। शिवजी के सावयव मूर्ति पूजने से लिङ्गपूजन अधिक विजयप्रद है। अश्वत्थामा ने व्यासजी से पूछा कि क्यों कृष्णार्जुन की ही विजय होती है मेरी क्यों नहीं होती। व्यासजी ने कहा कि तुम तीनों जन्म जन्मान्तर के शिवभक्त हो। कृष्णार्जुन ने महालिङ्ग पूजन किया और तुमने सावयव मूर्ति का पूजन किया है। अतः कृष्णार्जुन के सामने तुम विजयी नहीं हो सकते और लिङ्गपूजन में भी पार्थिव पूजन का बड़ा माहात्म्य है। अतः मध्याह्न स्नान करके रामजी ने पार्थिव : मिट्टी का शिवलिङ्ग बनाकर पूजन किया और अन्त में प्रणाम करके विसर्जन किया।

---

१. केवट में गुणमाहात्म्यासक्ति थी। यह ग्यारह प्रकार की भक्तियों में प्रथम है। यथा : गुणमाहात्म्यासक्तिरूपासक्तिपूजासक्तिस्मरणासक्तिदास्यासक्तिसख्यासक्तिकान्तासक्ति-वात्सल्यासक्त्यात्मनिवेदनासक्तितन्मयासक्तिपरमविरहासक्तिरूपा एकधाप्येकादशधा भवति। ना. भ. सू. ८२।

रामजी ने शिवजी की आराधना की और जानकीजी ने गङ्गाजी से मनौती मानी। उमा और गङ्गा दोनों शिवजी की शक्तियाँ हैं। सीताजी ने उमा : गौरी के पूजन के समय माँ सम्बोधन किया। यथा : पति देवता सुतीय महँमातु प्रथम तब रेख और यहाँ गङ्गा के पूजन में भी मातु सम्बोधन दे रही हैं। आज भी स्त्रियाँ सौभाग्य के लिए गौरीपूजन और मनोरथ पूर्ति के लिए गङ्गापूजन करती हैं।

पति देवर सँग कुसल बहोरी। आइ करउँ जेहि पूजा तोरी ॥
सुनि सिय बिनय प्रेमरस सानी। भइ तब बिमल बारि बर बानी ॥२॥

अर्थ : जिससे पति और देवर के साथ कुशलपूर्वक लौटकर फिर तुम्हारी पूजा करें। प्रेमरस से ओत प्रोत सीताजी विनती सुनकर निर्मल जल से श्रेष्ठ शब्द निकले।

व्याख्या : यहाँ बहोरी पद से पता चलता है कि जिस समय रामजी पार्थिव पूजन कर रहे थे उस समय सीताजी गङ्गापूजन कर रही थीं। पूजनोपरान्त हाथ जोड़कर मनौती मानती हैं। गङ्गाजी तक कोसलराज की सीमा है। वन में प्रवेश तो इसी के बाद होगा। अतः प्रार्थना करती हैं कि पति देवर के साथ मैं चौदह वर्ष के लिए वन जा रही हूँ। अब यदि आपकी कृपा से सब कुशल रहे तो चौदह वर्ष के बाद ही फिर दर्शन का संयोग हो सकता है। अतः आप ऐसी कृपा करें कि पति और देवर के साथ लौटकर फिर मैं आपकी पूजा कर सकूँ।

व्याख्या : सीताजी का विनय और प्रेम ऐसा सच्चा है कि उसने उमा को वश कर लिया था। यथा : विनय प्रेमवश भई भवानी। यहाँ उन्होंने गङ्गाजी को विनय और प्रेम के वश में कर लिया। वहाँ मूर्ति बोल उठी। यथा : बोली गौरि हरष उर भरेऊ। यहाँ विमल जल से श्रेष्ठ वाणी निकल रही है। मूर्ति पूजन का यही रहस्य है कि विनय और प्रेम से जड़ मूर्तियों में देवत्व का आविर्भाव हो उठे।

सुनु रघुबीर प्रिया बैदेही। तव प्रभाव जग बिदित न केही ॥
लोकप होहिं बिलोकत तोरें। तोहि सेवहिं सब सिधि कर जोरें ॥३॥

अर्थ : हे रघुवीर की प्रिया वैदेही! सुनो तुम्हारी प्रभुता संसार में कौन नहीं जानता। जिसे तुम देख दो वह लोकपाल हो जाय। तुम्हारी सेवा सब सिद्धियाँ हाथ जोड़े किया करती हैं।

व्याख्या : वहाँ भगवती गौरी ने कहा : सुनु सिय सत्य असीस हमारी। यहाँ गङ्गा कह रही हैं : सुनु रघुबीर प्रिया बैदेही। विवाह के बाद पति के नाम के साथ सम्बोधन करने की चाल है। पति के नाम के साथ स्त्री के नाम के लय हो जाने से सर्वथा ऐक्य हो जाता है। अथवा रघुवीर प्रिया और वैदेही दोनों सम्बोधन देने से पतिकुल और पितृकुल दोनों की उत्तमता कहा। तुम उद्भवस्थितिसंहारकारिणी क्लेशहारिणी तथा सर्वश्रेयस्करी हो। तुम्हारा प्रभाव कौन नहीं जानता। जिसकी ओर दृष्टि फिर जाय वह लोकपाल हो जाता है। यथा : जाकी कृपा कटाक्ष सुर

चाहत चितव न सोइ। सिद्धियाँ सब हाथ जोड़े तुम्हारी सेवा किया करती हैं। यथा : सिधि सब सिय आयेसु अकनि गईं जहाँ जनवास। लिये संपदा सकल सुख सुरपुर भोग बिलास।

तुम्ह जो हमहि बड़ि बिनय सुनाई। कृपा कीन्हि मोहि दीन्हि बड़ाई ॥
तदपि देबि मैं देबि असीसा। सफल होन हित निज बागीसा ॥४॥

अर्थ : तुमने जो हमें बड़ी विनय सुनायी सो तुमने बड़ी कृपा की। मुझे बड़ाई दी। फिर भी हे देवि! मैं अपनी वाणी को सफल करने के लिए तुम्हें आशीर्वाद दूँगी।

व्याख्या : तुम्हारा इतना कहना ही बड़ा भारी विनय है। तुम जो चाहोगी वह होकर ही रहेगा। फिर भी जो तुम विनय करती हो यह तुम्हारी कृपा है। मुझे बड़ाई दे रही हो। प्रभु बड़ाई दे चुके। यथा : सचिवहि अनुजहि प्रियहि सुनाई। बिबुध नदी महिमा अधिकाई। सो तुम उसी को पुष्ट कर रही हो।

यद्यपि तुम सर्व समर्थ हो। फिर भी तुम्हारा विनय मोघ न हो इसलिए मैं आशीर्वाद दूँगी। अथवा भागीरथी होने से मैं नाते में तुमसे बड़ी हूँ। अतः आशीर्वाद देने का मेरा हक भी है और आशीर्वाद देने में मेरी वाणी का साफल्य है। क्योंकि ऐसा होने ही वाला है। अब आशीर्वाद देती हैं।

दो. प्राननाथ देवर सहित, कुसल कोसला आइ।
पूजिहि सब मन कामना, सुजसु रहहि जग छाइ ॥१०३॥

अर्थ : तुम प्राणनाथ और देवर के सहित कुशलपूर्वक अयोध्या लौटोगी। तुम्हारी सब मन की कामनाएँ पूरी होंगी और तुम्हारी कीर्ति संसार में छा जायेगी।

व्याख्या : प्राणनाथ और प्रिय देवर के साथ जिस भाँति वन जा रही हो उसी भाँति कुशल पूर्वक अयोध्या में चौदह वर्ष बाद लौटोगी। तुम्हारे मन में सासों की सेवा करने की कामना है। यथा : सेवा समय देव वन दीन्हा। मोर मनोरथ सफल न कीन्हा। सो मनोरथ सफल होगा और भी जितने मनोरथ हैं सभी पूर्ण होंगे और तुम्हारी कीर्ति संसार भर में व्याप्त हो जायगी। यथा : जिति सुरसरि कीरति सरि तोरी। गवन कीन्ह बिधि अंड करोरी। वहाँ भगवती गौरी ने भी ऐसा ही आशीर्वाद दिया था। यथा : सुनु सिय सत्य असीस हमारी। पूजिहि मन कामना तुम्हारी।

गंग बचन सुनि मंगल मूला। मुदित सीय सुरसरि अनुकूला ॥
तब प्रभु गुहहि कहेउ घर जाहू। सुनत सूख मुखु भा उर दाहू ॥१॥

अर्थ : गङ्गाजी के मङ्गल मूल वचन को सुनकर सीताजी प्रसन्न हुई कि गङ्गाजी मेरे अनुकूल हैं। तब प्रभु ने गुह से कहा कि घर जाओ सुनते ही उसका मुख सूख गया और हृदय में दाह उत्पन्न हुआ।

व्याख्या : गङ्ग सकल मुद मङ्गल मूला । अतः उनके वचन भी मङ्गलमूल हैं । वहाँ : जानि गौरि अनुकुल सिय हिय हरख न जाइ कहि । यहाँ : मुदित सीय सुरसरि अनुकूला । जितना माँगा था उससे अधिक के लिए आशीर्वाद पाकर जाना कि गङ्गाजी अनुकूल हैं । अतः सीताजी मुदित हैं ।

गङ्गाजी के आशीर्वाद के बाद सरकार आगे चलने को तैयार हुए । इसलिए निषादराज को आज्ञा दी कि घर जाओ । हमें तो वन जाना है । निषादराज घर से तैयार होकर चले थे कि सरकार जहाँ रहेंगे उसे देखकर लौटेंगे । मैं तो जङ्गली हूँ । मेरे साथ रहने में क्या रोक है । पहिले भी आखेट में मैं साथ रहता ही था । पर सरकार की आज्ञा सुनते ही उसके हृदय में दाह उत्पन्न हुआ । अतः मुख सूख गया ।

दीन बचन गुह कह कर जोरी । बिनय सुनहु रघुकुलमनि मोरी ॥
नाथ साथ रहि पंथु देखाई । करि दिन चारि चरन सेवकाई ॥२॥

अर्थ : गुह हाथ जोड़कर दीन वचन बोला कि हे रघुकुलमणि ! मेरी विनती सुनिये । मैं सरकार के साथ रहकर रास्ता दिखाऊँगा । चार दिन चरणों की सेवा करूँगा ।

व्याख्या : आर्त होकर निषादराज दीन वचन बोले । भा उर दाहू से मन की दीन वचन कहकर वाणी की और करजोरी कहकर तन की दीनता दिखायी । रघुकुलमणि सम्बोधन से भाव यह कि इस कुल से अर्थी के मनोरथ की सदा से पूर्ति होती आयी है । सरकार तो उसमें मणि हैं । मेरी प्रार्थना स्वीकार हो ।

सरकार हमारे नाथ हैं । मैं इस भाँति वन में कैसे जाने दूँ । वन का रास्ता मेरा देखा है । मैं साथ रहकर रास्ता बतलाऊँगा । वन्य फल मूल का पता हम लोगों को ही रहता है । शयन के लिए साथरी आदि बनाने का काम मैं करूँगा । इस भाँति चार दिन के लिए सेवा का सौभाग्य मुझको प्राप्त होगा ।

जेहि बन जाइ रहब रघुराई । परन कुटी मैं करबि सुहाई ॥
तब मोहि कहँ जसि देब रजाई । सोइ करिहौं रघुबीर दोहाई ॥३॥

अर्थ : हे रघुराई ! जिस वन में जाकर आप रहेंगे उसमें सुन्दर पत्ते की कुटी मैं बना दूँगा । तब मुझे जो आज्ञा होगी सरकार की दोहाई मैं वह करूँगा ।

व्याख्या : निषादराज रहने का पूरा पता जान लेना चाहता है । कहता है कि जिस वन में आप रहेंगे वहाँ पर्णकुटी कौन बनावेगा ? यदि कहिये कि हम लोग बना लेंगे । तो इस पर कहता है कि वह ठीक न बनेगी । पत्ते की कुटी सुन्दर बनाना तो हम लोग जानते हैं । जब मैं कुटी बना लूँगा तब मेरे जाने या रहने पर विचार कीजियेगा । यदि आज्ञा होगी कि तुम चले जाओ तो सरकार की दोहाई मैं चला जाऊँगा । रहने के लिए हठ न करूँगा ।

सहज सनेह राम लखि तासू । संग लीन्ह गुह हृदय हुलासू ॥
पुनि गुह ग्याति बोलि सब लीन्हें । करि परितोषु बिदा तब कीन्हें ॥४॥

अर्थ : उसका सनेह देखकर रामजी ने गुह को साथ ले लिया। उसके हृदय में उल्लास हुआ। तत्पश्चात् गुह ने जातिवालों को बुला लिया और उनका सन्तोष करके विदा किया।

व्याख्या : सरकार सहज स्नेह के वश हैं। यथा : सहज सनेह बिबस रघुराई। अतः गुह की विनती स्वीकृत हुई। उसे साथ ले लिया। उसके हृदय में हर्ष है। साथ जाने को खुशी है।

गुह निषादराज है। अतः जातिवाले उसके साथ आये हैं। उनको बुलाकर गुह ने समझा दिया कि तुम लोग लौट जाओ। मेरा ही साथ जाना कठिन हो रहा है। तुम लोग साथ रहोगे तो मैं भी न जाने पाऊँगा। इनके रहने की व्यवस्था करके लौट आऊँगा। आगे भयङ्कर वन है। सम्भव है कि जानकीजी डरें। तो मुझे उन्हें लौटा ले जाने की आज्ञा मिलनी भी सम्भव है। ऐसी बातें कहकर उनका परितोष करके उन्हें विदा दिया।

दो. तब गनपति सिव सुमिरि प्रभु, नाइ सुरसरिहि माथ।
सखा अनुज सिय सहित बन, गवनु कीन्ह रघुनाथ ॥१०४॥

अर्थ : तब गणपति और शिवजी का स्मरण करके और गङ्गाजी को सिर नवाकर सखा अनुज और सीताजी के साथ सरकार वन को चले।

व्याख्या : अपना नाम अपने रखने से रहता है। अतः जिनकी प्रथम पूजा नाम के प्रभाव से होती है उन्हें पहिले स्मरण किया। तत्पश्चात् अपने सर्वार्थकारी शिवजी का स्मरण किया। यथा : सेवक स्वामि सखा सिय पीके। प्रत्यक्ष नहीं है। इसलिए स्मरण मात्र किया और गङ्गाजी घर की बड़ी बूढ़ी हैं और सामने हैं। अतः उन्हें सिर नवाया। आरम्भ में चले थे तब गणपति तथा शिवजी के साथ गौरीजी को मनाया था। यहाँ गङ्गाजी को प्रमाण किया। दोनों शक्तियाँ शिवजी की है। सो दोनों का मान रक्खा। तब सखा निषादराज, लक्ष्मण और सीता के साथ रघुनाथजी ने वनगमन किया।

तेहिं दिन भयउ बिटप तर बासू। लखन सखा सब कीन्ह सुपासू ॥
प्रात प्रातकृत करि रघुराई। तीरथराजु दीख प्रभु जाई ॥१॥

अर्थ : उस दिन पेड़ के नीचे निवास किया। लक्ष्मणजी और सखा निषादराज ने सब प्रबन्ध किया। सवेरे नित्यकृत्य करके प्रभु ने जाकर तीर्थराज का दर्शन किया।

व्याख्या : गङ्गा पार होने के बाद वहाँ से सीधा रास्ता चित्रकूट का हैं। पर सरकार प्रयागराज को बायाँ देना नहीं चाहते। अतः पूर्व की ओर मुड़े। रास्ते में ही सन्ध्या हो गयी। अतः वृक्ष के नीचे ठहर गये। भोजन शयनादि का प्रबन्ध लक्ष्मण और निषादराज ने किया।

सरकार जहाँ सोते हैं उठने पर प्रातःकाल का कृत्य वहीं करते हैं। जिसमें काल का लोप न हो। प्रयागराज निकट हैं। अतः मध्यान्ह कृत्य वहीं होगा। तीर्थों के राजा हैं। इसलिए प्रयागराज कहलाते हैं। सरकार चले। तीर्थराज का दर्शन हुआ।

सचिव सत्य श्रद्धा प्रिय नारी। माधव सरिस मीतु हितकारी ॥
चारि पदारथ भरा भँडारू। पुन्य प्रदेस देस अति चारू ॥२॥

अर्थ : सत्य मन्त्री हैं। श्रद्धा प्रिय स्त्री है। माधव जैसे हितकारी मित्र हैं। चारों पदार्थ से भण्डार भरा हुआ है। पुण्य प्रदेश ही अति सुन्दर राज्य है।

व्याख्या : तीर्थराज हैं। सब राजसी ठाट बाट है। राजा के छः अङ्ग होते हैं : मन्त्री, मित्र, राज्य, कोष, दुर्ग और सेना। राजा का मुख्य अङ्ग मन्त्री है : राज्य से भ्रष्ट राजा भी मन्त्री के होने से फिर राज्य प्राप्त कर सकता है। सो यहाँ सत्य ही मन्त्री हैं। बिना इनकी कृपा राजा से भेंट नहीं हो सकती। बिना सत्य के आश्रयण के तीर्थ फल की प्राप्ति नहीं हो सकती। पट्टाभिषिक्ता महिषी श्रद्धा तीर्थराज को बड़ी प्रिय है। इनके बिना धर्म की उत्पत्ति ही नहीं होती। दूसरे अङ्ग मित्र रूप से माधव हैं। सब प्रकार से तीर्थराज के सहायक हैं। तीसरा अङ्ग कोष है। उसमें चारों पदार्थ धम अर्थ काम और मोक्ष भरा हुआ है और अन्तर्वेदी : गङ्गा यमुना के बीच का पुण्य प्रदेश ही राज्य है।

छेत्रु अगमु गढ़ु गाढ़ सुहावा। सपनेहुँ नहिं प्रतिपच्छिन्ह पावा ॥
सेन सकल तीरथ बर बीरा। कलुष अनीक दलन रन धीरा ३॥

अर्थ : प्रयाग क्षेत्र ही दुर्गम दृढ़ दुर्ग : किला शोभायमान हैं। जिसे पाने का स्वप्न भी शत्रु नहीं देख सकते। सब तीर्थ ही वीरों की सेना हैं। जो पाप की सेना के नाश में बड़े रणधीर हैं।

व्याख्या : प्रयागराज का जो क्षेत्र है वही किला स्थानीय है। जिसमें न तो शत्रु का प्रवेश हो सकता है न उनका तोड़ा टूट सकता है। शत्रुओं ने कितने तीर्थ नष्ट कर डाले। पर प्रयागराज पर उनका बल न कभी चला और न चल सकने का वे स्वप्न ही देख सकते हैं। बौद्धों के काल में जब अयोध्यादि तीर्थ लुप्त हो गये थे केवल तीर्थराज बने रहे उन पर बौद्धों का जोर न चला। महाराज विक्रमादित्य ने प्रयाग की दूरी पुराणों से देख देखकर तीर्थों की स्थिति का पता लगाया और फिर से स्थापन किया। जितने बड़े बड़े तीर्थ संसार में हैं जो दिन रात पापों का नाश किया करते हैं वे सब तीर्थराज के ही सैनिक हैं।

संगमु सिंघासनु सुठि सोहा। छत्रु अछयबटु मुनि मनु मोहा ॥
चँवर जमुन अरु गंग तरंगा। देखि होहिं दुख दारिद भंगा ॥४॥

अर्थ : गङ्गा यमुना का सङ्गम ही श्रेष्ठ सुन्दर सिंहासन है। मुनियों के मन

को मोहित करनेवाला अक्षय वट ही जिसका छत्र है। गङ्गा यमुना की लहरें चँवर हैं। जिनको देखकर दुःख और दारिद्रय जाता रहता है।

व्याख्या : अब छओं अङ्ग कहकर साज सामान कहते हैं। सङ्गम तीर्थराज के बैठने के लिए सिंहासन है। वहीं दरबार लगता है। सब हाजिर होते हैं। बड़ी शोभा है। ऐसी शोभा कहीं देखी नहीं जाती। अक्षयवट का छत्र लगा हुआ है जो प्रलय में भी नष्ट नहीं होता। उसके पत्र पर बालमुकुन्द शोभित होते हैं। यथा : चिरजीवी मुनि ज्ञान बिकलजनु। बूड़त लहेउ बाल अवलंबनु। मुनि लोग इसके स्पर्श के लिए लालायित रहते हैं।

सङ्गम में गङ्गाजी का श्वेत हिलोरा और यमुनाजी का काला हिलोरा मिलता जुलता रहता है। मानों दोनों ओर से चँवर चल रहा है। दर्शन का माहात्म्य कहते हैं कि यमुना के दर्शन से दुःख और गङ्गा के दर्शन से दारिद्रय का नाश होता है।

दो. सेवहिं सुकृती साधु सुचि, पावहिं सब मन काम।
बंदी बेद पुरान गन, कहहिं बिमल गुन ग्राम ॥१०५॥

अर्थ : पुण्यात्मा साधु लोग उनकी सेवा करते हैं और मनोभिलषित पदार्थ पाते हैं। वेद पुराण वन्दीगण हैं जो निर्मल गुणगान किया करते हैं।

व्याख्या : जैसे राजसेवक राजा की कृपा से धनादि प्राप्त करते हैं उसी भाँति पुण्यवान् तथा साधु प्रयागराज की कृपा से धर्मार्थ काम और मोक्ष अपनी कामनानुसार पाया करते हैं। ऐसी उदार निर्मलकीर्ति का गान वेद पुराण वन्दीजन की भाँति करते हैं। अर्थात् उनके इस प्रकार की उदारता के प्रमाण वेदपुराण हैं।

को कहि सकइ प्रयाग प्रभाऊ। कलुष पुंज कुंजर मृगराऊ ॥
अस तीरथपति देखि सुहावा। सुख सागर रघुबर सुखु पावा ॥१॥

अर्थ : प्रयागराज के माहात्म्य को कौन कह सकता है। जो पापसमूह रूपी हाथी के लिए सिंहरूप हैं। ऐसे सुहावने तीर्थराज को देखकर सुखसागर रघुपति को भी सुख मिला।

व्याख्या : राजसमाज का प्रभाव वर्णन करके अब स्वयं राजा के विषय में कहते हैं कि इनका प्रभाव कोई नहीं वर्णन कर सकता है। संगम रूपी सुन्दर सिंहासन पर साक्षात् सिंह बैठा है। इसके सामने पापसमूह रूपी हाथी आते नहीं। इसका गन्ध पाकर क्षेत्र के बाहर भाग जाते हैं। इस सिंह को महापातक रूपी हाथी पर बड़ा चोप है। क्योंकि उन्हीं पर यह अपने नखों का पाण्डित्य दिखला सकता है। नखानां पाण्डित्यं प्रकटयतु कस्मै मृगपतिः।

तीरथराज दीख प्रभुजाई से उपक्रम करके : अस तीरथ पति देखि सुहावा से उपसंहार करते हैं। श्रीरामजी स्वयं सुखसागर हैं। सो उन्हें भी सुख हुआ।

प्रयागराज मित्र हैं। यथा : माधव सरिस मीत हितकारी। अतः मित्र के समागम का सुख हुआ।

कहि सिय लखनहि सखहिं सुनाई। श्रीमुख तीरथराज बड़ाई ॥
करि प्रनामु देखत बन बागा। कहत महातम अति अनुरागा ॥२॥

अर्थ : श्रीमुख से सीता, लक्ष्मण और सखा को सुनाकर तीर्थराज की महिमा कह सुनायी। प्रणाम करके वन और बागों को देख रहे हैं और अति अनुराग से माहात्म्य कह रहे हैं।

व्याख्या : वेद पुराण द्वारा प्रयागराज की महिमा वर्णित है। फिर भी आज श्रीमुख से महिमा कह रहे हैं। अतः उसके प्रामाणिक होने में क्या सन्देह है। तीर्थ में जाने पर तीर्थ की महिमा का वर्णन होना चाहिए। माहात्म्यश्रवण बिना पूरा फल नहीं होता। इसलिए सीताजी लक्ष्मणजी को सुना रहे हैं। क्षेत्र की सीमा पर बाग वन है। उनके दर्शन का भी पुण्य है। अतः प्रमाण करके अति अनुरागों से माहात्म्य वर्णन किया।

एहि बिधि आइ बिलोकी बेनी। सुमिरत सकल सुमंगल देनी ॥
मुदित नहाइ कीन्हि सिव सेवा। पूजि जथाबिधि तीरथ देवा ॥३॥

अर्थ : इस विधि से आकर त्रिवेणी का दर्शन किया। जो स्मरण करने से सब सुमङ्गल को देनेवाली हैं। प्रसन्न होकर स्नान किया और तीर्थ देवताओं की यथाविधि पूजा करके शिवजी की सेवा की।

व्याख्या : तीर्थयात्रा की यही विधि है। तदनुसार चलकर त्रिवेणी का दर्शन किया। जिसका स्मरण सभी सुमङ्गल का देनेवाला है। फिर दर्शन का क्या माहात्म्य कहा जाय। तीर्थराज में आज स्नान कर रहे हैं। इस बात की बड़ी खुशी है। तत्पश्चात् तीर्थ देवताओं की पूजा भो यथाविधि से की।

त्रिवेणीं माधवं सोमं भारद्वाजञ्च वासुकिम्। वन्देऽक्षयवटं शेषं प्रयागं तीर्थनायकम्। त्रिवेणी माधव सोमनाथ वासुकी अक्षयवट और शेषनागादि वहाँ के देवता हैं। तत्पश्चात् शिवजी की सेवा की। पूजन कार्य समाप्त हुआ।

तब प्रभु भरद्वाज पहिं आये। करत दंडवत मुनि उर लाये ॥
मुनि मन मोद न कछु कहि जाई। ब्रह्मानंद रासि जनु पाई ॥४॥

अर्थ : तब सरकार भरद्वाजजी के यहाँ गये। दण्डवत् करते हुए उनको मुनिजी ने हृदय से लगा लिया। मुनिजी को ऐसा आनन्द है कि उनसे कुछ कहते नहीं बनता। मानो ब्रह्मानन्द की राशि की ही प्राप्ति हो गयी।

व्याख्या : भरद्वाज मुनि बसहिं प्रयागा। तिनहि रामपद अति अनुरागा। तापस सम दम दया निधाना। परमारथ पथ परम सुजाना। ये महात्मा जङ्गम तीर्थराज हैं। अतः सरकार ने दण्डवत् प्रणाम किया। भरद्वाजजी इनको दण्डवत्

करते देख न सके। बीच में हो उठाकर हृदय से लगा लिया। मुनिजी को बड़ा आनन्द हुआ। कहना चाहते हैं पर कुछ भी कहते नहीं बनता। उन्हें मानो ब्रह्मानन्द की राशि हाथ लग गयी। सरकार का शरीर पाञ्चभौतिक नहीं है। घनीभूत ब्रह्मानन्द ही हैं। यथा : चिदानंदमय देह तुम्हारी। बिगत बिकार जान अधिकारी।

दो. दीन्हि असीस मुनीस उर, अति अनंदु अस जानि।
लोचन गोचर सुकृत फल, मनहुँ किए बिधि आनि ॥१०६॥

अर्थ : मुनिजी ने हृदय से ही आशीर्वाद दिया। उनके मन में ऐसा जानकर अत्यन्त आनन्द है कि विधाता ने लाकर मेरे पुण्य के फल को मेरे दृष्टिगोचर कर दिया।

व्याख्या : आशीर्वाद देना चाहते थे। पर बोल न सके। अतः मन से ही आशीर्वाद दिया। उन्हें ऐसा आनन्द है मानो सब साधनों के फल को ब्रह्मदेव ने लाकर दिखला दिया। सोचते हैं कि मैं खोजने भी न गया। ब्रह्मदेव ने लाकर दिखला दिया। तीन ही श्रेय के उपाय हैं। कर्मयोग भक्तियोग और ज्ञानयोग मैंने तीनों का अनुष्ठान किया। सो तीनों के फल मानो राम जानकी और लक्ष्मण के रूप में मुझे प्राप्त हो गये। यथा : सब साधन कर सुफल सुहावा। लखन राम सिय दरसन पावा।

कुसल प्रस्न करि आसन दीन्हें। पूजि प्रेम परिपूरन कीन्हें ॥
कंद मूल फल अंकुर नीके। दिये आनि मुनि मनहु अमी के ॥१॥

अर्थ : कुशल पूछकर आसन दिया। पूजा करके प्रेम से परिपूर्ण किया। कन्द मूल फल और अच्छे अङ्कुर अमृत से सुस्वादु लाकर मुनिजी ने दिये।

व्याख्या : कुशल प्रश्न शिष्टाचार है। जो अपने यहाँ आवे उससे कुशल पूछना आसन देना जलपान कराना धर्मशास्त्र की विधि है। यथा : तृणानि भूमिरुदकं वाक् चतुर्थी तु सूनृता। एतान्यपि सतां गेहे नोच्छिद्यन्ते कदाचन। पूजन का प्राण श्रद्धा और भक्ति है। उसी से पूजा पूर्ण होती है। त्रुटियों का मार्जन होता है। अतः मुनिजी ने पूजा को प्रेम से परिपूर्ण कर दिया।

नैवेद्य में कन्द मूल और अङ्कुर का भोग लगाया। मुनियों का यही आहार है। भरद्वाजजी कुलपति हैं। एक आवाज पर पचासों शिष्य दौड़ आते हैं। प्रयागराज में मुनियों का आना जाना लगा ही रहता है। अतः कन्द मूलादि संग्रह अधिक रहता है। उसमें से देखने में सुन्दर और खाने में अमृत से स्वादिष्ट फल मूलादि का नैवेद्य सामने रक्खा।

सीय लखन जन सहित सुहाये। अति रुचि राम मूल फल खाये ॥
भये बिगत श्रम रामु सुखारे। भरद्वाज मृदु बचन उचारे ॥२॥

अर्थ : सीता लक्ष्मण और निषादराज के साथ रामजी ने सुन्दर मूल फल को बड़े चाव से खाया। थकावट दूर हुई। रामजी सुखी हुए। तब भरद्वाजजी कोमल वचन बोले।

व्याख्या : चारों मूर्तियों को एक साथ परोसा। कन्द मूल फल अङ्कुर बड़े स्वादु थे और बड़े प्रेम से दिये गये थे। अतएव बड़े चाव से रामजी ने भोजन किया। पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति। तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः। पत्र पुष्प फल जो कोई मुझे प्रेम से देता है सो मैं उस प्रेम से दिये हुए पदार्थ को बड़े चाव से खाता हूँ : भगवद्गीतायाम्।

आज की यात्रा बड़ी लम्बी थी। अतः लौकिक व्यवहारानुसार सरकार थक गये थे। प्रेम परिपूर्ण पूजन से थकावट दूर हुई। पूजनोपरान्त स्तुति होनी चाहिए। अतः भरद्वाजजी मृदु वचन बोले।

आजु सुफल तपु तीरथ त्यागू। आजु सुफल जप जोग बिरागू॥
सुफल सकल सुभ साधन साजू। राम तुम्हहिं अवलोकत आजू॥३॥

अर्थ : हे रामजी ! आपके दर्शन से आज तप तीर्थ त्याग सफल हुआ। जप योग विराग सफल हुआ। शुभ साधनों के सब साज सुफल हुए।

व्याख्या : भरद्वाज तपस्वी थे। तीर्थराज में निवास करते थे। उदासीन थे। जप योग किया करते थे। वैराग्यवान् थे। अर्थात् परलोक के जो साधन हैं उनमें तत्पर थे। बहुत दिनों से यह क्रम चल रहा था। सो सबके सब आज अकस्मात् सफल हो गये। क्योंकि सब साधनों का फल रामजी का दर्शन है। यथा : मम दर्शन फल परम अनूपा। जीव पाव निज सहज सरूपा। सरकार के दर्शन से मुनिजी को सहज स्वरूप की प्राप्ति हुई। इसलिए कहते हैं कि आज सब सफल हो गये।

लाभ अवधि सुख अवधि न दूजी। तुम्हरें दरस आस सब पूजी॥
अब करि कृपा देहु बरु एहू। निज पद सरसिज सहज सनेहू॥४॥

अर्थ : न तो लाभ की दूसरी अवधि है न सुख की दूसरी अवधि है। तुम्हारे दर्शन से सब आशा पूर्ण हो गयी। अब कृपा करके यह वर दो कि आपके चरण कमलों में मेरी स्वाभाविक भक्ति हो।

व्याख्या : यं लब्ध्वा नापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः। सो मुनिजी अनुभव कर रहे हैं कि इससे बढ़कर दूसरा लाभ हो नहीं सकता और ब्रह्मानन्द राशि की प्राप्ति के सुख से बढ़कर दूसरा सुख हो नहीं सकता। यही सुख की पराकाष्ठा है। क्योंकि सभी आनन्द ब्रह्मानन्द के उपजीवी हैं। यथा : एषोऽस्य परमानन्दो योऽखण्डैकरसात्मकः। अन्यानि भूतान्येतस्य मात्रामेवोपभुञ्जते। सो मुनिजी ने ब्रह्मानन्द की राशि ही मानों पा ली। परम अनूप फल सहज स्वरूप की प्राप्ति से पूर्णकाम हो गये। इसलिए कहते हैं कि आस सब पूजी।

महात्माओं में साध्य से अधिक आदर साधन का होता है। भगवान् से भी

अधिक आदर भक्ति का है। अतः चरण कमलों में सहज स्नेह प्राप्ति का वर माँगते हैं। बिना प्रयत्न के ही प्रेम बना रहे। यह अविरल भक्ति कृपासाध्य है। अतः पूजोपरान्त यही प्रार्थना है।

दो. करम बचन मन छाड़ि छलु, जब लगि जनु न तुम्हार।
तब लगि सुख सपनेहुँ नहिं, कियें कोटि उपचार ॥१०७॥

अर्थ : मनसा वाचा कर्मणा छल छोड़कर जब तक कोई तुम्हारा भक्त न होगा तब तक चाहे करोड़ों उपाय करे उसे सपने में सुख नहीं मिल सकता।

व्याख्या : कर्म बचन मन छल छोड़कर भक्त हो जाना यही सहज स्नेह है। बिना सहज स्नेह सुख नहीं। क्योंकि भक्ति ही सब सुखखानि है। यथा : सब सुखखानि भक्ति तैं माँगी। अन्य उपचार की निःसारता कहा। यथा : नाहि न आवत आन भरोसो। एहि कलिकाल सकल साधन तरु है श्रम फलनि फरो सो। सुख सपनेहु न जोग साधन फल रोग वियोग धरोसो।

यह सातवीं स्तुति पुनर्वसु नक्षत्र है। इसमें चार तारे चमकते हैं : फल आशा स्नेह और सुख। फल की प्राप्ति आशा की पूर्ति स्नेह का वरदान सुख प्राप्ति का उपाय ये ही चार बातें इस स्तुति में हैं। यहाँ तप तीर्थ त्याग सब सकाम दिखायी पड़ रहे हैं। लाभ सुख आशा सभी गृहधर्म दिखायी दे रहे हैं। अतः स्तुति की आकृति गृह सी है। पुनर्वसु की आकृति गृह सी ज्योतिषशास्त्र बतलाता है। फल-श्रुति है। बीज सकल ब्रत धरम नेम के। यहाँ सब व्रत धर्म नियम का सफल होना कहा है और फल में ही बीज रहता है।

सुनि मुनि बचन रामु सकुचाने। भाव भगति आनंद अघाने ॥
तब रघुबर मुनि सुजसु सुहावा। कोटि भाँति कहि सबहिं सुनावा ॥१॥

अर्थ : मुनिजी का वचन सुनकर रामजी सङ्कुचित हो गये और भावभक्ति के आनन्द से तृप्त हुए। तब रामजी ने मुनि के सुन्दर सुयश को करोड़ों भाँति कहकर लोगों को सुनाया।

व्याख्या : सहज सरूप कथा मुनि बरनत रहत सकुचि सिर नाई। केवट मीत कहे सुख मानत बानर बंधु बड़ाई। सो मुनिजी सहज स्वरूप को लक्ष्य करके वरदान माँग रहे हैं। अतः रामजी सङ्कुचित हो गये। एवमस्तु भी नहीं कहा। परन्तु मुनिजी के कृतकृत्यता के भाव तथा भक्ति के आनन्द से तृप्त हो गये। भक्ति के आनन्द कहने का भाव यह कि भक्ति : राजसी और तामसी तो असुरों में पायी जाती है। ईर्ष्या पूर्वक द्वेष होना राजसी भक्ति : और भय पूर्वक द्वेष होना तामसी भक्ति है। पर इन भक्तियों में आनन्द नहीं। यथा : बैर भाव सुमिरत मोहिं निसिचर। पर परलोक उनका अवश्य बन जाता है। आनन्द तो सात्त्विकी भक्ति में है। मुनिजी की सात्त्विकी भक्ति है। अतः भक्ति का आनन्द कहा। जहाँ बड़े का नाता मान लेते हैं वहाँ वर माँगने पर एवमस्तु नहीं कहते मनोरथ पूर्ण कर देते हैं। यहाँ

मुनिजी की बड़ाई के व्याज से उनकी प्रार्थना की स्वीकृति द्योतित की। लोगों से मुनिजी के सुयश का वर्णन करने लगे कि ये साक्षात् जङ्गम प्रयागराज हैं। इतना बड़ा श्रोत्रिय कौन है। प्रणव की प्राप्ति इन्होंने इन्द्र से की है। संसार को रोग से आर्त देखकर इन्हीं महात्मा ने वैद्यशास्त्र का प्रचार सुश्रुत संहिता रचकर किया है करोड़ लक्ष सहस्र शत शब्द बहुवचन वाची हैं : इत्यादि।

सो बड़ सो सब गुन गन गेहू। जेहि मुनीस तुम आदर देहू॥
मुनि रघुबीर[1] परसपर नवहीं। बचन अगोचर सुखु अनुभवहीं॥२॥

अर्थ : हे मुनीश्वर! जिसे तुम आदर दो वही बड़ा है और वही गुणगण का घर है। मुनिजी तथा रामजो परस्पर विनीत हो रहे हैं और ऐसे सुख का अनुभव कर रहे हैं जो वाणी का विषय नहीं।

व्याख्या : अपने सहज स्वरूप को छिपाना है और मुनिजी के वचन को अप्रमाण कैसे कहें? अतः कहते हैं कि आप सत्यसङ्कल्प हैं। सत्यकाम हैं! आप जिस किसी को जैसा कह दें वही वैसा हो सकता है। आपने जो मेरी स्तुति की है वह कृपा करकें मुझे बड़ाई दी है। आपके आदर प्रदान से मैं बड़ा भी हुआ। गुण गेह भी हुआ।

भक्त और भगवान् का परस्पर विनय दिखलाते हुए अनिर्वचनीय आनन्द का आविर्भाव दिखलाया। विनय से ही प्रीति की वृद्धि होती है और जहाँ आनन्द है वहीं प्रीति है।

यह सुधि पाइ प्रयाग निवासी। बटु तापस मुनि सिद्ध उदासी॥
भरद्वाज आश्रम सब आये। देखन दसरथ सुअन सुहाये॥३॥

अर्थ : यह समाचार पाकर प्रयाग के रहनेवाले ब्रह्मचारी तपस्वी मुनि और उदासीन दशरथ के सुन्दर बेटों को देखने आये।

व्याख्या : जहाँ सरकार जाते हैं सब लोग उनके सौन्दर्य पर मुग्ध हो जाते हैं। चारों ओर सौन्दर्य की ख्याति फैल जाती है। अतः यह समाचार सब लोगों में फैल गया कि राजा दशरथ के बेटे प्रयाग स्नान के लिए आये हैं। उनके रूप की सम्पत्ति अलौकिक है। इस समय वे भरद्वाज के आश्रम में हैं। अतः ब्रह्मचारी वानप्रस्थ सन्यासी सिद्ध और विरतिरत गृही सभी देखने आये।

राम प्रनाम कीन्ह सब काहू। मुदित भये लहि लोयन लाहू॥
देहिं असीस परम सुखु पाई। फिरे सराहत सुंदरताई॥४॥

अर्थ : रामजी ने सभी को प्रणाम किया। सब नेत्रों का लाभ पाकर प्रसन्न हुए। परम सुख पाकर सब आशीर्वाद देते हैं और सुन्दरता की प्रशंसा करते हुए घर लौटते हैं।

---

१. यहाँ अन्योन्यालङ्कार है।

व्याख्या : बटु तापस मुनि सिद्ध उदासी। सभी प्रणम्य ठहरे। अतः मर्यादा-पुरुषोत्तम भगवान् ने सबको प्रणाम किया। नयनवन्त रघुपतिहि बिलोकी। पाइ जनम फल होहिं बिसोकी। सो ये लोग भी नयनफल पाकर विशोक हुए। सरकार के दर्शन से परम सुख हुआ। यथा : मम दर्शन फल परम अनूपा। जीव पाव निज सहज सरूपा। परम सुख पाकर सबने आशीर्वाद दिया और सौन्दर्य की प्रशंसा करते हुए लौट आये।

दो. राम कीन्ह विश्राम निसि, प्रात प्रयाग नहाइ।
चले सहित सिय लखन जन, मुदित मुनिहि सिरु नाइ ॥१०८॥

अर्थ : रामजी ने रात्रि को विश्राम किया। प्रातःकाल प्रयाग स्नान करके सीता लक्ष्मण और भक्त निषाद के साथ मुनिजी को सिर नवाकर प्रसन्न मन चले।

व्याख्या : रामजी ने रात को भरद्वाजजी के आश्रम में ही विश्राम किया। एक रात्रि तीर्थ में बिताया। प्रातः स्नान प्रयागराज अर्थात् त्रिवेणी में हुआ। अब और आगे चले। वाल्मीकि मुनिजी के दर्शन के लिए उत्साह है। अतः प्रसन्न मन से चलना कहा। रामजी सीता लक्ष्मण और गुह निषाद के साथ मुनि : भरद्वाजजी को प्रणाम किया और चल पड़े।

राम सप्रेम कहेउ मुनि पाहीं। नाथ कहिअ हम केहि मग जाहीं ॥
मुनि मन बिहँसि राम सन कहहीं। सुगम सकल मग तुम्ह कहुँ अहहीं ॥१॥

अर्थ : रामजी ने प्रेम के साथ मुनिजी से कहा कि हे नाथ! बतलाइये कि हम लोग किस रास्ते से जायँ। मुनिजी मन ही मन हँसकर रामजी से कहते हैं कि सभी रास्ते तुम्हारे लिए सुगम हैं।

व्याख्या : भरद्वाजजी वाल्मीकिजी के शिष्य हैं। यद्यपि रामजी रास्ता पूछते हैं। पर किसी स्थान का नाम नहीं लेते : जहाँ जाना है। भाव यह कि मुनिजी रास्ता भी बतलायें और गन्तव्य स्थान का भी निश्चय कर दें। मुनिजी से स्वामी सेवक भाव रखते हुए नाथ सम्बोधन देते हैं और प्रेम से पूछते हैं।

ऐश्वर्य छिपाते देखकर मुनिजी मन ही मन हँसे कि ये हमसे रास्ता पूछते हैं। अतः उत्तर देते हैं कि सभी रास्ते तुम्हारे लिए सुगम हैं। जिसने जग को तीन पग से भी थोड़ा कर डाला उसके लिए दुर्गम क्या है। मुनिजी ने गुरुजी के पास पहुँचाने का रास्ता ठीक कर दिया और गन्तव्य स्थान का निर्णय उन्हीं पर छोड़ा।

साथ लागि मुनि सिष्य बोलाये। सुनि मन मुदित पचासक आये ॥
सबहि राम पर प्रेम अपारा। सकल कहहि मगु दीख हमारा ॥२॥

अर्थ : साथ के लिए मुनिजी ने शिष्यों को बुलाया। सुनते ही प्रसन्न मन से लगभग पचास के आगये। सभी का रामजी पर अपार प्रेम है। सभी कहते हैं कि रास्ता हमारा देखा है।

व्याख्या : रास्ता ऐसा नहीं था कि केवल बतला देने से काम चले। अर्थात् कोई पगडण्डी ऐसी नहीं थी जिसे पकड़ा देने से काम चल जाय। रास्ता दिखाने के लिए साथ जाने की आवश्यकता थी। अतः साथ भेजने के लिए मुनिजी ने शिष्यों को आवाज दिया। सुनते ही लगभग पचास के आगये। मुनिजी ने पूछा कि गुरुजी के यहाँ जाने का रास्ता किसका देखा है। सभी कहने लगे कि हमारा देखा है। हमारा देखा है। सभी का रामजी पर अपार प्रेम था। सभी की इच्छा थी कि रामजी के साथ जायँ।

मुनि बटु चारि संग तब दीन्हे। जिन्ह बहु जनम सुकृत सब कीन्हे॥
करि प्रनामु रिषि आंयसु पाई। प्रमुदित हृदय चले रघुराई॥३॥

अर्थ : मुनिजी ने चार ब्रह्मचारियों को साथ कर दिया। जिन्होंने बहुत जन्मों तक सब पुण्य किया था। प्रणाम करके ऋषिजी की आज्ञा पाकर रामजी प्रसन्न होकर चल पड़े।

व्याख्या : एक के भी साथ देने से रास्ता दिखाने का काम चल सकता था। फिर भी मुनिजी ने चार शिष्य साथ कर दिये। क्योंकि जङ्गल की बात थी। उन्हें रामजी को पहुँचाकर लौटना भी था और मार्ग चलने में चार का विधान भी है। मुनिजी शिष्य सभी रामजी के प्रेमी थे। सभी पुण्यात्मा थे। अतः मुनिजी को उनके पूर्व जन्म के सुकृत के अनुसार निर्णय करना पड़ा।

रामजी विदाई के लिए प्रणाम करते हैं। अथवा आज्ञा प्राप्त करने के लिए प्रणाम करते हैं। आज्ञा पाकर प्रमुदित होकर चले। मुदित होकर सिर नवाया था। अब प्रमुदित होकर चले।

पंथ कथा प्रसङ्ग

ग्राम निकट जब निकसहिं जाई। देखहिं दरसु नारि नर धाई॥
होहिं सनाथ जनम फलु पाई। फिरहिं दुखित मनु संग पठाई॥४॥

अर्थ : जब किसी गाँव के निकट होकर निकलते थे तो स्त्री पुरुष दौड़कर दर्शन करते थे। जन्म फल पाकर सनाथ होते थे और मन को साथ भेजकर दुःखी लौटते थे।

व्याख्या : वन के छोर पर कहीं कहीं ग्राम है। उनके निकट जब वन में से निकलते हैं तो दर्शन के लिए ग्रामवासी नर नारी दौड़ पड़ते हैं। सरकार की शोभा देखते हैं। अपने को सनाथ मानते हैं। संसार में जन्म लेने का फल उन्हें प्राप्त हो गया। उनका मन सरकार के साथ हो गया और फिर न लौटा। लौटने में उन्हें बड़ा कष्ट हुआ।

दो. बिदा किये बटु बिनय करि, फिरे पाइ मन काम ।
उतरि नहाये जमुन जल, जो[1] सरीर सम स्याम ॥१०९॥

अर्थ : विनय करके ब्रह्मचारियों को विदा किया और वे मन चाहा फल पाकर लौटे। यमुना पार होकर स्नान यमुना जल में किया। जो उनके शरीर की भाँति श्याम था।

व्याख्या : ब्रह्मचारी अधिक दूर तक साथ जाने को उत्सुक थे। लौटना नहीं चाहते थे। सो उन्हें विनय करके लौटाया। वे भी खाली हाथ नहीं लौटे। उनकी कामनाएँ पूर्ण हुईं। यमुना पार होकर मध्याह्न कृत्य किया। पार होने की व्यवस्था निषादपति ने की। यमुना जल को शोभा कहते हैं कि वह सरकार के शरीर सा श्याम था : सम्भवतः जो अब गुलौरीघाट कहलाता है वहाँ पहुँच गये।

सुनत तीर बासी नर नारी। धाए निज निज काज बिसारी ॥
लखन राम सिय सुंदरताई। देखि करहिं निज भाग्य बड़ाई ॥१॥

अर्थ : सुनते ही तीर के रहनेवाले नर नारीं अपना अपना काम भूलकर दौड़े। लक्ष्मण राम और सीता की सुन्दरता देखकर अपने भाग्य की बड़ाई करते हैं।

व्याख्या : इस समाचार को सुनकर अति उत्कण्ठावश यमुना तीर के रहनेवाले अपना अपना काम अधूरा छोड़कर दौड़े कि उनके पहुँचने के पहिले ही कहीं चले न जायें। जैसे मुरली की ध्वनि सुनकर व्रजगोपिकाएँ दौड़ीं थीं। किसी ने एक ही आँख में अञ्जन लगा पाया था। किसी ने दूध को उफनता हुआ आग पर ही छोड़ा। वे श्रीकृष्ण के दर्शन की उत्सुकता में सब काम भूल गयीं। वही दशा आज यमुनातीरवासी नर नारियों की हुई।

आकर जब लक्ष्मण राम और सीता की सुन्दरता को देखा तो उन्हें ऐसा अलौकिक सुख हुआ कि अपने भाग्य की बड़ाई करने लगीं। अचिन्तित सुख या दुःख की प्राप्ति में भाग्य ही कारण माना जाता है।

अति लालसा बसहिं मन मांहीं। नाउँ गाउँ बूझत सकुचाहीं ॥
जे तिन्ह महुँ बय बिरिध सयाने। तिन्ह करि जुगुति रामु पहिचाने ॥२॥

अर्थ : उन लोगों के मन में बड़ी लालसा हो रही थी। फिर भी नाम ग्राम पूछने में सङ्कोच होता था। उनमें जो सयाने चतुर रहे उन्होंने युक्ति लगाकर रामजी को पहिचान लिया।

व्याख्या : जिसके देखने से मन को इतना सुख मिल रहा है उनके नाम और पता जानने की इच्छा होना स्वाभाविक है। पर पूछने में सङ्कोच होता है।

---

१. यहाँ प्रतीपालङ्कार है।

महामहिम पुरुष से सामान्य पुरुष को ऐसा प्रश्न करने में सङ्कोच होता ही है। पर जानने की अभिलाषा प्रबल है। उनमें जो ज्ञानवृद्ध थे उन्होंने युक्ति से पहिचाना।

चतुर हैं। उनका संसार देखा हुआ है। पर ऐसे बटोही तो नहीं देखे। निश्चय राजकुमार हैं। पर मुनिवेष बनाये हुए हैं। राजा दशरथ ने अपने ज्येष्ठ पुत्र राम को वन दिया है। वही राम ये हैं। ऐसा युक्ति से निश्चय किया।

सकल कथा तिन्ह सबहि सुनाई। बनहि चले पितु आयसु पाई॥
सुनि सबिषाद सकल पछिताहीं। रानी राय कीन्ह भल नाहीं॥३॥

अर्थ : उन्होंने सब कथा सब लोगों को सुनायी कि पिता की आज्ञा से ये वन को जा रहे हैं। सुनकर सब लोग विषाद के साथ पछताने लगे कि राजा रानी ने अच्छा नहीं किया।

व्याख्या : उन सयाने लोगों को रामजी के अभिषेक की तैयारी कैकेयी का वरदान माँगने तथा रामजी का पिता की आज्ञा शिरोधार्य करने की कथा मालूम थी। अतः रामजी के पहिचानने में कठिनाई न हुई और अब उन्होंने सबको वह कथा कह सुनायी कि वे ही रामजी पिता की आज्ञा से वन जा रहे हैं। तब यह सुनकर सबको विषाद हुआ। सब पछताने लगे और राजा रानी को दोष लगाने लगे कि उन लोगों ने अच्छा नहीं किया। यहाँ तक नर का पछताना कहा।

तेहि अवसर एक तापसु आवा। तेज पुंज लघु बयस सुहावा॥
कबि अलखित गति बेषु बिरागी। मन क्रम बचन राम अनुरागी॥४॥

अर्थ : उसी समय में एक तपस्वी आया। जो तेजस्वी सुन्दर और अल्पवयस्क था। वह गूढ़गति कवि था। उसका विरागी सा वेष था और मनसा वाचा कर्मणा रामानुरागी था।

व्याख्या : जिस समय लोग सविषाद पछता रहे थे उसी समय एक तपस्वी भी आगया। यमुना तीर के आनेवाले नर नारियों में उसकी विशेषता थी। अतः उसकी कथा अलग लिखते हैं।

सरकार अभी यमुना पार उतरे हैं। यहीं गुरौली घाट है। जहाँ पर सरकार का उतरना कहा जाता है। राजापुर श्रीगोस्वामीजी का जन्म स्थान यहाँ से बहुत निकट है। यहाँ इष्टदेव का आगमन वर्णन करने में भावावेश से कवि के लिए भूतकाल वर्तमान में परिणत हो गया और आप स्वयं आगये। तेज पुञ्ज से भौतिकता का अभाव कहा। दिव्य मानसिक शरीर से आये : बालपने सूधोमन राम सनमुख भयो। इसी से लघुबयस सुहावा कहा। कवि अलखित गति कहकर गोस्वामी जी स्पष्ट ही अलक्ष्यगति से अपना आना कहते हैं। श्रीगोस्वामीजी का विरागी वेष था ही। यथा : वेष विराग को राग भरो तनु। मन क्रम वचन श्रीरामजी में अनुराग होना प्रसिद्ध ही है।

दो. सजल नयन तन पुलकि निज, इष्ट देउ पहिचानि ।
परेउ दंड जिमि धरनि तल, दसा न जाइ बखानि ॥११०॥

अर्थ : अपने इष्टदेव को पहिचाकर उसकी आँखों में जल भर आया। रोंगटे खड़े हो गये। दण्ड के समान पृथ्वी तल पर गिर पड़ा। उसकी दशा वर्णन नहीं की जा सकती।

व्याख्या : इन महात्मा को सरकार के पहिचान करने में युक्ति का सहारा नहीं लेना पड़ा। इन्होंने सीधे सीधे पहिचाना कि जिन तीन मूर्तियों का नित्य ध्यान करता हूँ वे यही तो हैं। यथा : राम बाम दिसि जानकी लखन दाहिनी ओर। ध्यान सकल कल्यान मय सुरतरु तुलसी तोर। अतः कहते हैं : निज इष्टदेव पहिचानि सात्त्विक भाव हुआ। प्रेम में विभोर होकर दण्ड की भाँति पृथ्वी पर गिरे। शरीर का अध्यास नहीं रह गया। इसलिए कहते हैं : दसा न जाइ बखानि।

राम सप्रेम पुलकि उर लावा। परम रंकु जनु पारसु पावा ॥
मनहुँ प्रेम परमारथु दोऊ। मिलत धरें तनु कह सबु कोऊ ॥१॥

अर्थ : रामजी ने प्रेम के साथ पुलकित होकर इस भाँति हृदय से लगाया जैसे परम दरिद्र को पारस मिल गया हो। सब लोग कहने लगे कि मानो प्रेम और परमार्थ शरीर धारण करके मिल रहे हों।

व्याख्या : भक्त सजल नयन पुलकित तन होकर दण्ड के समान पृथ्वी पर गिरा। भगवान् ने सप्रेम पुलकित तन होकर हृदय से लगा लिया। भक्त की दशा बखानी नहीं जाती। भगवान् की भी ऐसी ही दशा है। महादरिद्र को पारस मिलने से जैसा आनन्द होता है वैसा आनन्द हो रहा है। ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।

परमार्थ को प्राप्त करानेवाला प्रेम है और प्रेम का चाहनेवाला परमार्थ है। अतः देखनेवालों ने इस मिलन को देखकर कह दिया कि मानों प्रेम और परमार्थ शरीरधारी होकर मिल रहे हैं। राम ब्रह्म तो परमार्थ रूप हैं ही। इधर भक्त भी प्रेममय हो रहा है। अतः ऐसी उपमा दी गयी।

बहुरि लखन पायन्ह सोइ लागा। लीन्ह उठाइ उमँगि अनुरागा ॥
पुनि सिय चरन धूरि धरि सीसा। जननि जानि सिसु दीन्ह असीसा ॥२॥

अर्थ : तत्पश्चात् वह लक्ष्मणजी के पाँव पड़ा। उन्होंने प्रेम से उमँगकर उठा लिया। तत्पश्चात् सीताजी के चरणों की धूलि सिर पर रक्खा। माँ ने बच्चा जानकर आशीर्वाद दिया।

व्याख्या : लक्ष्मणजी के चरण शीतल सुभग भक्त सुखदाया हैं। अतः उन चरणों को प्रणाम किया। उन्होंने भी अनुराग से उठा लिया। उठा लेने का अर्थ ही मिलना है।

फिर उसने अधिकारानुसार सीताजी के चरणों की धूलि को सिर पर धारण किया। जगदम्बा ने उसका शिशु भाव देखकर आशीर्वाद दिया। इस भाँति वह कृतकृत्य हो गया। यथा : अब कृतकृत्य भयउँ मैं माता। आसिष तौ अमोघ विख्याता।

कीन्ह निषाद दंडवत तेही। मेलेउ मुदित लखि राम सनेही ॥
पिअत नयन पुट रूप पियूखा। मुदित सुअसन पाइ जिमि भूखा ॥३॥

अर्थ : निषाद ने उसे दण्डवत् किया। उसने रामजी का स्नेही जानकर गले लगाया। वह नेत्ररूपी चषक से सौन्दर्यामृत का पान करने लगा और ऐसा प्रसन्न था जैसे सुन्दर भोजन पाकर भूखा प्रसन्न होता है।

व्याख्या : निषादराज ने उसे दण्डवत् किया। उन्होंने गले लगा लिया। निषादराज से पहिले पहल ये ही मिले। इन्होंने राम प्रेम के सामने जाति के अपकर्ष को कुछ न गिना। यथा : तुलसी भंगत स्वपच भलो भजै रैन दिन राम। ऊँचो कुल केहि काम को जहाँ न हरि को नाम। अति ऊँचे भूधरन पै भुजगन्ह के अस्थान। तुलसी नीचे होत हैं ईख अन्न अरु पान।

अब वह तपस्वी आँखों को पान पात्र बनाकर सौन्दर्यरूपी अमृत का पान करने लगा और ऐसा प्रसन्न था जैसे भूखा स्वादिष्ट अन्न पाकर प्रसन्न होता है। सरकार के रूप सुधा के पान करने से भक्तिरूपी सुस्वादु अन्न भी करतलगत होता है। यहाँ पर पीने और खाने की द्विविध तृप्ति का वर्णन किया। ये महात्मा तो इस प्रकार आनन्द लूटते रहे। अब नारी समाज का हाल सुनिये।

ते पितु मातु कहहु सखि कैसे। जिन्ह पठये बन बालक ऐसे ॥
राम लखन सिय रूपु निहारी। होहिं सनेह बिकल नर नारी ॥४॥

अर्थ : हे सखि ! वे माता पिता कैसे हैं जिन्होंने ऐसे बालकों को वन भेजा है। राम लक्ष्मण और जानकी के रूप को देखकर नर और नारी स्नेह से विकल हो रहे थे।

व्याख्या : आँखिन में सखि राखिबे जोग इन्हें किमि कै बनवास दयो है। जैसे निषादपति के यहाँ की नर नारियों ने कहा था वैसे ही ये भी कह रही हैं। यह अर्धाली मानस में दो बार आयी है। इन्हें माता पिता के निर्दयता पर आश्चर्य है।

पहिले तो राम लक्ष्मण और सीताजी के रूप को देखकर सब अपने भाग्य की बड़ाई करते थे। परन्तु जब सब कथा जान लिया तब उनके रूप को देखकर स्नेह से विकल होने लगे।

दो. तब रघुबीर अनेक बिधि, सखहिं सिखावनु दीन्ह।
राम रजायसु सीस धरि, भवन गवनु तेइँ कीन्ह ॥१११॥

अर्थ : तब रामजी ने अनेक विधि से सखा को शिक्षा दी। रामजी की आज्ञा शिरोधार्य करके वह घर गया।

व्याख्या : जब तक सरकार वहाँ थे यमुनातीरवासियों की ऐसी ही दशा थी। सरकार को सङ्ग में किसी का रखना पसन्द नहीं। अतः सखा निषादराज को अनेक प्रकार से शिक्षा दी। मेरा भजन जैसा वियोग में होता है वैसा संयोगावस्था में नहीं होता। अथवा वाल्मीकिजी के आश्रम जाने में कोई बाधक नदी भी नहीं है। हम लोग चले जायँगे। तुम्हारे साथ रहने में राज सम्बन्ध लगा रहेगा। मेरे उदासीन व्रत में बाधा रहेगी इत्यादि। फिर भी निषाराज को लौटने की इच्छा नहीं। पर रामजी की आज्ञा माननी ही पड़ी और वह घर लौट चला।

पुनि सिय राम लखन कर जोरी। जमुनहि कीन्ह प्रनामु बहोरी॥
चले ससीय मुदित दोउ भाई। रबितनुजा कइ करत बड़ाई॥१॥

अर्थ : फिर सीता राम और लक्ष्मण ने फिर यमुनाजी को प्रणाम किया। सीताजी के सहित प्रसन्न होकर दोनों भाई सूर्य की बेटी यमुनाजी की महिमा कहते चले।

व्याख्या : आने के समय प्रणाम नहीं कहा था। इसलिए जाते समय बहोरी पद देकर जनाया कि आने के समय भी प्रणाम किया था। बड़ी श्रद्धा से तीनों प्राणियों ने प्रणाम किया। मुख्य तो नदी की अधिष्ठात्री देवता हैं। जिनके जलमय शरीर को नदी कहा जाता है। आगे कहे हुए रबितनुजा शब्द से यही अर्थ स्पष्ट है।

यमुना स्नान करके सीता राम और लक्ष्मण सभी प्रसन्न हैं। रास्ते चलते यमुनाजी की महिमा कहते चले। दर्शन करने के समय महिमा कहने का अवसर नहीं मिला था। वहु : गी. प्रे.। यमुना की महिमा यथा : यमुना ज्यौं ज्यौं लागी बाढ़न। त्यौं त्यौं सुकृत सुभट कलि भूपहि निदरि लगे वहु काढ़न। ज्यौं ज्यौं जलमलीन त्यौं त्यौं जमगन मुख मलीन लहैं आढ़न। तुलसीदास जगदघ जवास ज्यौं अनघ मेघ लागे डाढ़न : वि. प.।

पथिक अनेक मिलहिं मग जाता। कहहिं सप्रेम देखि दोउ भ्राता॥
राज लखन सब अंग तुम्हारें। देखि सोचु अति हृदय हमारें॥२॥

अर्थ : रास्ते में जाते हुए अनेक बटोही : राहचलतू मिलते हैं। दोनों भाइयों को प्रेम के सहित देखकर कहते हैं। तुम्हें तो सब राजलक्षण पड़े हैं। देखकर हमारे हृदय में बड़ा सोच है।

व्याख्या : रास्ते से जा रहे हैं। अतः वन की ओर से आनेवाले पथिकों से भेंट होती है। दोनों भाइयों के दर्शन मात्र से उनके हृदय में प्रेम उमड़ आता है। उनमें सामुद्रिक के पण्डित भी हैं। देखते हैं तो दोनों भाइयों को राजलक्षण पड़े हुए हैं। कोई लक्षण ऐसे नहीं है जिससे इस दशा में पैदल चलें। उनसे बिना कहे नहीं

रहा जाता। वे कहते हैं कि तुम्हें देखकर हमें बड़ा सोच हो रहा है, कि लक्षण तुम्हें तो सब राजा के से पड़े हैं।

मारग चलहु पयादेहिं पाएँ। ज्योतिषु झूठ हमारेहि भाएँ॥
अगमु पंथु गिरि कानन भारी। तेहि महँ साथ नारी सुकुमारी॥३॥

अर्थ : पैदल रास्ता चल रहे हो। हमारी समझ में तो ज्योतिष शास्त्र झूठ मालूम पड़ता है। रास्ता दुर्गम है। भारी पर्वत और वन है। तिस पर साथ में सुकुमारी स्त्री है।

व्याख्या : ऐसे लक्षण युक्त पुरुष टहलने भले ही पैदल चले। तीर्थ में पैदल चलें। पर रास्ता पैदल नहीं चलते। हम ज्योतिषी ठहरे। हमारे फलकथन से ज्योतिष शास्त्र सच्चा समझा जाता है। सो जहाँ कुछ लक्षण अच्छे हैं कुछ बुरे हैं वहाँ फल न घटने पर मानना पड़ता है कि दोषगुण के तारतम्य के न समझने से चूक हुई। पर यहाँ तो जितने राजलक्षण हैं सब तुम्हारे में मौजूद हैं और तुम पैदल मञ्जिल तय कर रहे हो। अतः मेरा हृदय तो अब ज्योतिष को सच्चा मानने के लिए तैयार नहीं है।

मार्ग भी दुर्गम है। बड़े बड़े पहाड़ हैं। भारी जङ्गल हैं। बीच में कोई विश्राम स्थान नहीं। साथ में कोई सहायक नहीं। उलटे सुकुमारी स्त्री साथ में है। तुमलोग इसकी रक्षा करोगे कि अपना प्राण बचाओगे।

करि केहरि बन जाइ न जोई। हम सँग चलहिं जो आयसु होई॥
जाब जहाँ लगि तहँ पहुँचाई। फिरब बहोरि तुम्हहि सिरु नाई॥४॥

अर्थ : हाथी और सिंहों का वन देखते नहीं बनता। यदि आज्ञा हो तो हम साथ चलें। आप लोग जहाँ तक जायँगे वहाँ तक पहुँचाकर फिर हम तुम्हें प्रणाम करके लौट आवेंगे।

व्याख्या : फिर वन भी कैसा है कि इसमें हाथी भी हैं। सिंह भी है। अतः बड़ा भयानक है। देखते नहीं बनता। हम उसी में से होते आ रहे हैं। रक्षा के लिए आपके सङ्ग चलने को तैयार हैं। परन्तु बिना आज्ञा सङ्ग चलना भी अनुचित है।

यदि कहिये कि कहाँ तक साथ चलोगे। इसपर कहते हैं कि जहाँ तक आप जायँ वहाँ तक साथ चलेंगे। आपको गन्तव्य स्थान तक पहुँचाकर तब लौटेंगे। तुम्हहि सिरु नाई भाव यह कि इसका एहसान : निहोरा आप पर न होगा। हम अपने को कृतकृत्य मानेंगे।

दो. एहि बिधि पूछहिं प्रेम बस, पुलक गात जलु नैन।
कृपासिंधु फेरहि तिन्हहि, कहि बिनीत मृदु बैन॥११२॥

अर्थ : इस भाँति प्रेमवश पूछते हैं। उनको पुलक हो जाता है। आँखों में जल आ जाता है। पर कृपासिन्धु सबको विनीत कोमल वचन कहकर लौटा देते हैं।

व्याख्या : जो ज्योतिषी हैं। लक्षण देखकर पहिचानते हैं और जो नहीं लक्षण जानते वे भी रूप देखकर मुग्ध हो जाते हैं। प्रेम में उन्हें पुलकावली हो जाती है। आँखों में जल आ जाता है। सभी साथ जाने को तैयार हो जाते हैं। पर सरकार किसी को साथ नहीं लेते। विनीत और कोमल वचन कहकर लौटा देते हैं। क्योंकि कृपा के समुद्र हैं। समुद्र में जो कुछ डालिये उसे वह स्वीकार नहीं करता। गर्जन पूर्वक बाहर फेंक देता है पर सरकार कृपासिन्धु हैं। अतः विनीत मृदु वचन कहकर प्रार्थना अस्वीकार कर देते हैं।

जे पुर गाँव बसहिं मग माहीं। तिन्हहि नाग सुर नगर सिहाहीं॥
केहि सुकृती केहि घरी बसाये। धन्य पुन्यमय परम सुहाये॥१॥

अर्थ : रास्ते में जो पुर और ग्राम पड़ते थे उनसे ईर्ष्या नागलोक और देवलोक करते थे कि किस पुण्यवान ने किस शुभ घड़ी में ये धन्य और पुण्यमय तथा बड़े सोहावने गाँव बसाये हैं।

व्याख्या : यहाँ नागसुरनगर से उनके अधिष्ठात्री देवता अभिप्रेत हैं। जहाँ सरकार जाते हैं वहाँ परमानन्द की बाढ़ आ जाती है। नागसुरनगर में तो केवल विषयानन्द का प्रचार है। अतः वे ईर्ष्या करते हैं कि ऐसा आनन्द हमारे यहाँ कभी नहीं हुआ।

पुर और ग्राम की विभूति उसके बसानेवाले के पुण्य और बसाने के मुहूर्त पर निर्भर है। क्योंकि वे ग्राम और पुर बसानेवाले के पुत्र स्थानीय हैं। उनके यश को बनाये रहते हैं। उनने पुण्यानुसार ही उन पुर और ग्रामों की उन्नति होती है। बसाने का मुहूर्त ही उन पुर और ग्रामों का जन्म मुहूर्त है। सो ये ऐसे पुण्यमय हैं कि सरकार का चरण इनकी प्रान्तभूमि में आगया। अतः उन बसानेवाले सुकृतियों और उन पुण्यमुहूर्तों की प्रशंसा करते हैं।

जहँ जहँ राम चरन चलि जांहीं। तिन्ह समान अमरावति नांहीं॥
पुन्यपुंज मग निकट निवासी। तिन्हहिं सराहहिं सुरपुरबासीं॥२॥

अर्थ : जहाँ जहाँ रामजी के चरण चले जाते हैं उनके समान अमरावती भी नहीं है। रास्ते के निकट के रहनेवाले तो पुण्य के संमूह ही हैं। उनकी प्रसंसा सुरपुरवासी करते हैं।

व्याख्या : गाँव जो रास्ते में पड़ते हैं उनकी महिमा कहकर जिस स्थल में प्रभु के चरण पड़े उसकी महिमा कहते हैं। जिस भरत ने विधिविस्मयदायक विभव को आँख उठाकर नहीं देखा। वे ही : रज सिर धरि हिय नयनन्हि लावहिं। तब उसकी महिमा क्या कही जाय। इतना भाग्य इन्द्रपुर का कहाँ?

स्वर्गवासियों का तो कमाया हुआ पुण्य क्षण क्षण क्षीण होता जाता है। जब सब पुण्य क्षीण हो जाता है तो स्वर्ग से गिरा दिये जाते हैं। मग निकट निवासियों ने तो अपना मन ही सरकार को अर्पण कर दिया। यथा : फिरहिं दुखित मन संग पठाई। उनका पुण्य नित्य बढ़ता जा रहा है। वे पुण्यपुञ्ज हैं। अतः उनकी प्रशंसा स्वर्ग-निवासी कर रहे हैं।

जे भरि नयन बिलोकहिं रामहिं। सीता लखन सहित घनस्यामहिं॥
जे सर सरित राम अवगाहहिं। तिन्हहिं देव सर सरित सराहहिं॥३॥

अर्थ : जो घनश्याम राम को सीता लक्ष्मण सहित आँख भरकर देख रहे हैं। जिस सरोवर और नदी में रामजी स्नान करते हैं उन्हें देवता के सर और सरित प्रशंसा करते हैं।

व्याख्या : सुरपुरवासियों के प्रशंसा करने का कारण कहते हैं कि इतना भाग्य उनका नहीं है कि आँख भर सीता लक्ष्मण सहित रामजी का दर्शन पा सकें। नित्य-स्नान में सदा नदी नहीं मिलती है। तब सरोवर में स्नान होता है। सरकार सदा अवगाहस्नान करते हैं। कूप स्नान नहीं करते। देवसरि और देवसर मानसरोवर आदि हैं। इनका इतना भाग्य इस समय नहीं है कि सरकार के सर्वाङ्ग प्रक्षालन का सौभाग्य प्राप्त हो। अतः ये सब उन सरित सरोवर की प्रशंसा करते हैं जिनमें सरकार स्नान कर लेते हैं।

जेहि तरु तर प्रभु बैठहिं जाई। करहिं कलपतरु तासु बड़ाई॥
परसि राम पद पदुम परागा। मानति भूमि भूरि निज भागा॥४॥

अर्थ : जिस पेड़ के तले सरकार जाकर बैठते हैं। उसकी बड़ाई कल्पवृक्ष करता है। रामजी के चरण की धूलि का स्पर्श करके पृथ्वी अपना बड़ा भाग्य मानती है।

व्याख्या : सूर्यमण्डल के मध्य में चन्द्रमण्डल और उसके मध्य में अग्निमण्डल है और उसके भी मध्य में कल्पवृक्ष के नीचे दिव्य सिंहासन पर सरकार के ध्यान की विधि है। सो आज वही सरकार उस कल्पवृक्ष का अनादर करके साधारण वृक्ष के नीचे श्रमापनोदन के लिए जा बैठे हैं। अतः उस वृक्ष की बड़ाई कल्पवृक्ष करता है। जिसे कभी सरकार के श्रमापनोदन का सौभाग्य नहीं प्राप्त हुआ।

सौभाग्य की हजारों मुहर तो पृथ्वी पर ही लग रही हैं। ध्वज कुलिस अंकुस कंज जुत बन फिरत कंटक किन लहे। इन चिह्नों से पृथ्वी अङ्कित हो रही है। जो चरण अज शंकर से वन्दित है उनके स्पर्श का सौभाग्य दिन रात हो रहा है। अतः भूमि का अपना भूरि भाग्य मानना प्राप्त ही है।

दो. छाँह करहिं घन बिबुधगन, बरषहिं सुमन सिहाहिं।
देखत गिरि बन बिहँग मृग, रामु चले मगु जाहिं॥११३॥

अर्थ : मेघ छाया करते और देवता फूल बरसाते और बड़ाई करते हैं। पर्वत वन पक्षी और मृगों को देखते हुए रामजी रास्ते में चले जा रहे हैं।

व्याख्या : अद्भुत शोभा है। पृथ्वी मङ्गलमयी हो रही है। आकाश से मेघ छाया करते चले जाते हैं। देवता लोग पुष्पवृष्टि कर रहे हैं। सरकार पर्वत वन पक्षी मृगों को देखते हुए चल रहे हैं। वन यात्रा वन विहार हो रहा है। देवता लोग इस आनन्द को देखकर स्वर्ग सुख को तुच्छ मान रहे हैं। देवलोक में दो बड़े दोष हैं। एक ईर्ष्या और दूसरा गर्व। ये लोग दूसरे के सुखोत्कर्ष देखकर ईर्ष्या करते हैं और अल्पसुख देखकर गर्व करते हैं। उसी स्वभावानुसार इन्हें पृथ्वी पर के आनन्द को देखकर ईर्ष्या हो रही है।

सीता लखन सहित रघुराई। गाँव निकट जब निकसहिं जाई ॥
सुनि सब बाल बृद्ध नर नारी। चलहिं तुरत गृहकाज बिसारी ॥१॥

अर्थ : जब सीता और लक्ष्मण सहित रामजी किसी गाँव के निकट निकलते थे तो सुनते ही सब बालक वृद्ध नर और नारी घर का कार्य भूलकर तुरन्त चल पड़ते थे।

व्याख्या : ग्राम के मध्य से नहीं जाते। वन में से जब मैदान में निकल आते थे तो खेतिहरों की दृष्टि पड़ी। यह अलौकिक शोभा देखकर उन्होंने दौड़कर गाँव में खबर दिया : अवस देखिये देखन जोगू।

बालक वृद्ध गृह कार्य से विनिर्मुक्त हैं। अतः पहिले बालक चले। पीछे से बूढ़े चले। नरनारी अर्थात् युवक युवती गृहकार्य में लगे हैं। उन्होंने भी कार्य छोड़ा। समाचार देनेवाले के शब्द में ऐसी शक्ति आगयी है कि सुननेवाला घर का काम छोड़ देता है।

राम लखन सिय रूप निहारी। पाइ नयनफलु होहिं सुखारी ॥
सजल बिलोचन पुलक सरीरा। सब भये मगन देखि दोउ बीरा ॥२॥

अर्थ : राम लक्ष्मण और सीताजी को देखकर नेत्र होने के फल को पाकर सुखी होते थे। उनके नेत्रों में जल आगया। शरीर पुलकित हो उठा। सब दोनों वीरों को देखकर मग्न हो गये।

व्याख्या : राम लक्ष्मण पर दूर से ही दृष्टि पड़ी और सीताजी पर निकट आने पर। स्त्री पर विशेष रूप से दृष्टि न देना भारत की प्राचीन सभ्यता है। राम लक्ष्मण को दूर से ही देखते चले आते हैं। निकट आने पर सीताजी पर दृष्टि पड़ी। इसलिए राम लषन को पहिले कहा। दर्शन पाते ही शोकरहित हो गये। आँख होने का फल मिल गया। विशोक होना ही जन्म का फल है। अतः वे सुखी हो गये।

दोनों भाइयों का दर्शन चित्त देकर कर रहे हैं। अतः उसी आनन्द में मग्न हो गये। सात्त्विक भाव हो गया। आँखों में आँसू डबडबा आया और शरीर पुलकित हो उठा।

बरनि न जाइ दसा तिन्ह केरी। लहि जनु रंकन्हि सुरमनि ढेरी ॥
एकन्ह एक बोलि सिख देहीं। लोचन लाहु लेहु छन एहीं ॥३॥

अर्थ : उनकी दशा वर्णन करते नहीं बनता। जैसे कङ्गालों को चिन्तामणि का ढेर हाथ लग जाय। एक दूसरे को पुकारकर शिक्षा देते हैं कि इस क्षण नेत्रों का लाभ ले लो।

व्याख्या : उनकी दशा कहने योग्य नहीं सब होश के बाहर हो रहे हैं। कङ्गाल को रोटी दुर्लभ उन्हें मानो चिन्तामणि का ढेर हाथ लग जाय ऐसी दशा सबकी हो रही है। एक दूसरे को पुकारकर शिक्षा देते हैं। अवलोकहु भरि नयन बिकल जनि होहु करहु सुबिचार। धैर्य धारण करके इस क्षण दर्शन करके नेत्र होने के फल को प्राप्त करो। ये बहुत शीघ्र आँख के ओट हो जायँगे तब पछतावा रह जायगा कि आँख भर देख न पाये।

रामहिं देखि एक अनुरागे। चितवत चले जाहिं संग लागे ॥
एक नयन मग छबि उर आनी। होहिं सिथिल तन मन बरबानी ॥४॥

अर्थ : रामजी को देखकर किसी को ऐसा प्रेम हुआ कि देखते हुए साथ लगा चला जा रहा है। कोई नेत्र के मार्ग से छबि को हृदय में लाकर मनसा वाचा कर्मणा शिथिल हो गया।

व्याख्या : पहिले ही कह आये हैं : सुनि सब बाल वृद्ध नरनारी। चलहिं तुरत गृह काज बिसारी। अतः पहिले बालकों की दशा कहते हैं कि उन्हें रामजी को देखकर बड़ा प्रेम हुआ। अतः उन्हें देखते रहने के लिए बाल्यावस्थानुसार उन्हें देखते हुए साथ चले जा रहे हैं। तत्पश्चात् वृद्धों की दशा कहते हैं कि वे सरकार की मनोमयी मूर्ति हृदय में लाकर शिथिल हो गये। उनका तन मन वाणी कोई काम नहीं करती है।

दो. एक देखि बट छाँह भलि, डासि मृदुल तृन पात।
कहहिं गँवाइअ छिनुकु श्रमु, गवनब अबहिं कि प्रात ॥११४॥

अर्थ : कोई वट की अच्छी छाया देखकर कोमल तृण और पत्ते बिछाकर कहता है कि क्षण भर यहाँ आराम कर लोजिये अभी जाइयेगा या कल प्रातःकाल।

व्याख्या : अब नर युवा का हाल कहते हैं कि उसने देख लिया कि वन में से आ रहे हैं। उसमें विश्राम का स्थान नहीं है। अतः दौड़कर पहिले ही रास्ते में के बरगद के पेड़ को देखा कि यहाँ शीतल छाया है। उनके विश्राम योग्य है। सो थोड़े से कोमल तृण और पत्ते आसन के लिए बिछा दिये। जब रामजी वट के सन्निकट गये तब कहा कि यहाँ क्षण भर आराम कर लीजिये। आपको जल्दी जाना है कि प्रातःकाल तक ठहरियेगा ? उसकी हार्दिक इच्छा है कि रात भर ठहर जायें।

एक कलसं भरि आनहिं पानी । अँचइअ नाथ कहहिं मृदु बानी ॥
सुनि प्रिय बचन प्रीति अति देखी । राम कृपालु सुसील बिसेखी ॥१॥

अर्थ : कोई घड़ा भरकर पानी लाता है और मीठी वाणी से कहता है कि नाथ ! जल पी लीजिये । प्रिय वचन सुनकर और अत्यन्त प्रीति देखकर कृपालु रामजी जो विशेष सुशील हैं ।

व्याख्या : अब नारी की व्यवस्था कहते हैं कि घड़े में जल लेकर पहुँच गयीं और मीठी वाणी से कहने लगीं कि नाथ ! थोड़ा जल पी लिया जाय । सरकार ने प्रिय वचन सुना और उनका प्रेम देखा कि विश्राम के लिए स्थान भी ठीक कर रक्खा है । आसन के लिए कोमल तृण और पत्ते भी बिछे हैं । जल भी प्रस्तुत है । मीठी वाणी से स्वीकार करने के लिए प्रार्थना भी करते हैं । निदान आतिथ्य की देशकालानुसार पूरी तैयारी है । रामजी स्वभाव से ही कृपालु हैं और विशेष सुशील हैं । इनसे शील छोड़ते नहीं बनता ।

जानी श्रमित सीय मन मांहीं । घरिक बिलंबु कीन्ह बट छांहीं ॥
मुदित नारि नर देखहिं सोभा । रूप अनूप नयन मनु लोभा ॥२॥

अर्थ : मन में सीताजी को थकी हुई जानकर वट की छाया में लगभग एक घड़ी के विश्राम किया । प्रसन्न होकर नर नारी शोभा देखने लगे । अनूपरूप ने उनके मन को लुभा लिया ।

व्याख्या : चौथी बात यह कि यद्यपि सीताजी ने कुछ न कहा । पर सरकार ने मन में जान लिया कि ये थकी हुई हैं । इसलिए बरगद की छाया में ठहर गये । ग्रीष्मकाल में बट की छाया शीतल होती हैं । लगभग एक घड़ी के वहाँ विश्राम किया ।

लोगों को स्थिर होकर शोभा देखने का अवसर मिल गया । अतः बड़े प्रसन्न होकर देखने लगे । ऐसा अनुपम रूप कभी देखा नहीं था । इसलिए नेत्र और मन लुब्ध हो गये । वहाँ से हटाये नहीं हटते । किसी भाँति तृप्ति नहीं होती ।

एकटक सब सोहहिं चहुँ ओरा । रामचन्द्र मुख चंद चकोरा ॥
तरुन तमाल बरन तनु सोहा । देखत कोटि मदन मनु मोहा ॥३॥

अर्थ : सब एकटक चारों ओर शोभित हुए । रामचन्द्र के मुखचन्द के लिए उनकी आँखें चकोर हो गयीं । नये तमाल के रंग की सी शरीर की शोभा थी । जिसके देखते हुए करोड़ों कामदेवों का मन मोहित हो जाता था ।

व्याख्या : नयन और मन का लोभ दिखलाते हैं कि सबों ने चारों ओर से घेर लिया और पलक पड़ना बन्द करके देख रहे हैं । रामजी की शोभा से वे भी शोभित हो रहे हैं । चारों ओर से चन्द्रमा को घेरकर देखने में चकोरों की भी शोभा हो जाती है । यथा : मुनि समूह मह बैठे सनमुख सबकी ओर । सरद इंदु तन चितवत मानहु निकर चकोर ।

नये तमाल वृक्ष से श्यामता की उपमा दी गयी है। रामजी का वर्ण श्याम है इससे तरुण तमाल से उपमित किया। परन्तु लावण्य इतना है कि कोटि काम का मन मोह जाय। बिचारे ग्रामवासियों का मोहित होना कौन सी बड़ी बात है।

दामिनि बरन लखन सुठि नीके। नख सिख सुभग भावते जीके ॥
मुनि पट कटिन्ह कसें तूनीरा। सोहहिं कर कमलनि धनु तीरा ॥३॥

अर्थ : बिजली ऐसे वर्णवाले लक्ष्मणजी अत्यन्त भले लगते थे। नख से लेकर शिख तक उनकी सुन्दरता मन को बड़ी प्यारी लगती थी। वल्कल वसन से कमर में तरकस कसा हुआ था और हाथों में धनुष वाण शोभायमान थे।

व्याख्या : गौरवर्ण और दीप्तिमान होने से लक्ष्मणजी की उपमा बिजली से देते हैं। नख से शिख तक अवयव संगठन ऐसा है कि मन को बड़ा प्यारा लगता है। दोनों मूर्तियों का रूप पृथक् पृथक् वर्णन करके अब वेष का एक साथ ही वर्णन करते हैं कि यद्यपि वल्कल वसन पहने हैं। पर कमर में तरकस कसा हुआ है। हाथों में धनुष और बाण है। वन में से आ रहे हैं। अतः एक बाण तरकस से निकालकर हाथ में लिये हुए हैं खतरा का सामना करने के लिए।

दो. जटा मुकुट सीसन्हि सुभग, उर भुज नयन बिसाल।
सरद परब बिधु बदन बर, लसत स्वेद कन जाल ॥११५॥

अर्थ : मस्तकों पर सुन्दर जटा के मुकुट विशाल वक्षःस्थल भुजा और नेत्र शरदपुनो के चन्द्रमा से श्रेष्ठ मुखों पर पसीने के बूदों का जाल शोभायमान था।

व्याख्या : जटा के जूट उनके सिरों पर मुकुट की भाँति शोभा दे रहे हैं एवं वेष तो मुनियों सा है। पर उर भुज नयन का विशाल होना वीरता द्योतित कर रहा है। और शरदपूनों के चाँद से मुखड़ों पर पसीने की बूदों का जाल शृङ्गार को स्थान दे रहा है। यथा : श्रमकन सहित स्याम तनु देखें। कहँ दुख समउ प्रानपति पेखें। इस भाँति शान्त वीर और शृङ्गार रस तीनों का मेल इस झाँकी में दृष्टिगोचर हो रहा है।

बरनि न जाय मनोहर जोरी। सोभा बहुत थोरि मति मोरी ॥
राम लखन सिय सुंदरताई। सब चितवहिं चित मन मति लाई ॥१॥

अर्थः मनोहर जोड़ो का वर्णन नहीं किया जा सकता। शोभा बहुत है। मेरी बुद्धि थोड़ी है। राम लक्ष्मण और सीता की सुन्दरता को सब चित्त मन और बुद्धि लगाकर देख रहे हैं।

व्याख्या : यहाँ सीताजी की शोभा का वर्णन कवि ने अनधिकार के कारण नहीं किया। कहते हैं कि राम लक्ष्मण की जोड़ी का वर्णन करने में मैं असमर्थ हूँ। क्योंकि मेरी बुद्धि थोड़ी है। उसमें यह अपार शोभा समाती नहीं। जो वस्तु बुद्धि में नहीं समाती उसका वर्णन कैसे किया जा सकता है ?

जो लोग उस शोभा को देख रहे हैं। उनकी अवस्था वर्णन से शोभा की महत्ता को समझिये। वे लोग राम लक्ष्मण और सीता की सुन्दरता को मन बुद्धि चित्त लगाकर देख रहे हैं। यहाँ चार अन्त;करणों में केवल तीन का उल्लेख है। अहंकार का उल्लेख नहीं है। क्योंकि उसका पता ही नहीं। सब अपनपौ को भूले हुए हैं।

थके नारि नर प्रेम पियासे। मनहुँ मृगी मृग देखि दिआ से ॥
सीय समीप ग्रामतिय जांहीं। पूछत अति सनेह सकुचांहीं ॥२॥

अर्थ : प्रेम की प्यास से स्त्री पुरुष ऐसे थके जैसे मृगी मृग दीपक को देखकर थकित हो जाते हैं। सीताजी के पास गाँव की स्त्रियाँ जाती हैं और अति स्नेह से पूछने में सकुचाती हैं।

व्याख्या : प्रेम की प्यास मिटती ही नहीं बढ़ती ही जाती है। सरकार को देख रहे हैं। पर ऐसी इच्छा है कि यों ही देखते ही रहें। मृग और मृगी को दीपक देखने का अवसर नहीं मिलता। यदि मिल जाय तो वे निश्चल होकर देखा ही करें। उनके दीपक प्रेम की प्यास नहीं बुझती।

ग्राम की स्त्रियाँ प्रेम से सीताजी के पास पहुँच गयीं। प्रेमवश सबका परिचय पूछना चाहती हैं। प्रयोजन कुछ बतला नहीं सकती। पर जानने की अभिलाषा है। अतः पूछने में सङ्कोच है।

बार बार सब लागहिं पाए। कहहिं बचन मृदु सरल सुभाए ॥
राजकुमारि बिनय हम करहीं। तिय सुभाय कछु पूछत डरहीं ॥३॥

अर्थ : बार बार सब पाँव पड़ती हैं और कोमल वचन सुन्दर भाव से पूछती हैं। हे राजकुमारी ! मैं विनती करती हूँ। पर स्त्री स्वभाव के कारण पूछते डरती हूँ।

व्याख्या : अविनय के क्षमापन के लिए बार बार पाँव पड़ती हैं। पूछत अति सनेह सकुचाहीं से मनसा प्रेम कहते हैं। बार बार सब लागहिं पाएँ से कर्मणा प्रेम कहते हैं। कहहिं वचन मृदु सरल सुभाए से वचसा प्रेम कहते हैं। सुन्दर भाव से मृदु सरल वचन कहती हैं। स्वरूप देखकर ही समझ गयी कि ये राजघराने की हैं। अतः राजकुमारी कहकर सम्बोधन करती हैं। कहती हैं कि मेरी विनती यही है कि मैं कुछ पूछना चाहती हूँ। स्त्री स्वभाव से पूछने में डर लगता है। कहीं आप अप्रसन्न न हो जायँ कि तुम्हें इन बातों से क्या प्रयोजन ?

स्वामिनि अविनय छमबि हमारी। बिलगु न मानबि जानि गँवारी ॥
राजकुँअर दोउ सहज सलोने। इन्ह तें लहि[1] दुति मरकत सोने ॥४॥

---

१. यहाँ निदर्शना : द्वितीय अलङ्कार है।

अर्थ : हे स्वामिनि ! मेरी ढिठाई क्षमा करना। गँवारी जानकर नाराज न होना। ये दोनों राजकुमार स्वभाव से लावण्यधाम हैं। नीलम और सोने ने इन्हीं से चमक पायी है।

व्याख्या : राजकुमारी होने से स्वामिनि सम्बोधन करती हैं। यह मेरा अविनय है जो मैं नाता सम्बन्ध पूछती हूँ। मेरा क्या अधिकार है जो पूछूँ। पर मैं गँवारी हूँ। मैं नहीं जानती कि क्या और कैसे पूछा जाता है। मेरे गँवारपन के पूछने से अप्रसन्न न होना।

भगवती दोनों भाइयों से कुछ हटकर बैठी हैं। अतः उनसे पूछती हैं कि राजकुँवर दोउ बड़े ही सुन्दर हैं। नीलम की और सोने की द्युति इनके तेज के आगे फीकी है। इनके विषय में मुझे बड़ी उत्सुकता है।

दो. स्यामल गौर किसोर बर, सुंदर सुखमा अयन।
सरद सर्बरीनाथ मुखु, सरद सरोरुह नयन ॥११६॥

अर्थ : ये श्यामल गौर किशोर अत्यन्त सुन्दर और परम शोभा के निवास-स्थान है। शरद्चन्द्र ऐसा इनका मुख है और शरत् कमल ऐसी आँखें हैं।

व्याख्या : श्यामल गौर से वर्ण कहा। किशोर वर से अवस्था कही। सुन्दर सुखमा अयन से शोभा कही। शोभा की मर्यादा मुख और नेत्र ही हैं। सो शरद्चन्द्र से तो मुख हैं और शरत् के कमलों सी आँखे हैं। यद्यपि श्यामल गौर कहने से ही काम चल जाता। परन्तु वह शोभा पर इतनो लुब्ध है कि जैसा उससे हो सकता है पूरा वर्णन कर रही है।

कोटि मनोज लजावनिहारे। सुमुखि कहहु को आहि तुम्हारे ॥
सुनि सनेहमय मंजुल बानी। सकुची सिय मन महुँ मुसुकानी ॥१॥

अर्थ : हे सुमुखि ! ये करोड़ों कामदेव के लजानेवाले तुम्हारे कौन हैं। प्रेम से पूर्ण सुन्दर वाणी सुनकर सीताजी सङ्कुचित हुई और मन में मुसकुरायीं।

व्याख्या : सुमुखि सम्बोधन का भाव यह कि श्यामल गौर किशोर ही सुन्दर नहीं है। तुम भी सुन्दरी हो। अतः कहती हैं कि मुझे सम्बन्ध जानने की उत्कण्ठा हुई है। काम में ही सौन्दर्य की पराकाष्ठा मानी गयी है। सो ये तो करोड़ों कामदेव के लजानेवाले हैं। ये तुम्हारे कौन हैं ? यही मैं जानना चाहती हूँ। भाव यह है कि बिना सम्बन्ध के तो स्त्री अकेली साथ जा नहीं सकती। अतः ग्रामवधूटियाँ कुछ सम्बन्ध का अन्दाज कर रही हैं। वह अन्दाज ठीक है कि नहीं इसीलिए पूछती हैं। राम जानकी की शोभा ही ऐसी है कि इसमें दाम्पत्य भाव का होना देखनेवाले को इष्ट हो जाता है। यथा : जेहिं बिरंचि रचि सीय सँवारी। तेहिं स्यामल बर रचेउ बिचारी। जौं बिधिबस अस बनै सँजोगू। तौ कृतकृत्य होहिं सब लोगू।

स्पष्ट शब्दों में यह कहने में कि ये मेरे पति हैं स्त्रियों को सङ्कोच होता

ही है। फिर जानकीजी से आज तक ऐसा प्रश्न किसी ने किया ही नहीं था। अतः सङ्कुचित हुई और मनमें मुसकुरायीं कि इस स्नेहमय सुन्दर वाणी की उपेक्षा नहीं की जा सकती। अतः कहना ही पड़ा।

तिन्हहिं बिलोकि बिलोकति धरनी। दुहुँ सकोच सकुचति बरबरनी ॥
सकुचि सप्रेम बाल मृग नयनी। बोली मधुर बचन पिक बयनी ॥२॥

अर्थ : उन्हें देखकर पृथ्वी की ओर देखने लगीं। सुन्दर वर्णवाली सीताजी दोनों सङ्कोचों से सङ्कुचित हुईं। मृग के बच्चे सी आँखें हैं जिसकी और कोयल सी जिसकी वाणी है। ऐसी जानकीजी मधुर वचन बोलीं।

व्याख्या : सङ्कोच के समय वर्ण में दीप्ति अधिक हो जाती है। अतः बरबरनी विशेषण दिया। उनकी ओर देखकर फिर पृथ्वी की ओर देखने लगना सङ्कोच की मुद्रा है। पति के सामने उनके साथ सम्बन्ध का परिचय देने में भी सङ्कोच है और ऐसे प्रेम से पूछी हुई बात का उत्तर न देने में भी सङ्कोच है। अतः सीताजी दोनों सङ्कोचों से सङ्कुचित हो रही हैं।

नेत्र चञ्चल हो रहे हैं। इसलिए बालमृगनयनी विशेषण दिया। स्वभाव से ही बड़ा मधुर स्वर है। अतः पिकवयनी विशेषण दिया। ऐसी जानकीजी सङ्कोच और प्रेम से मधुर वचन बोलीं।

सहज सुभाय सुभग तन गोरे। नामु लखनु लघु देवर मोरे ॥
बहुरि बदनु बिधु अंचल ढाँकी। पिय तन चितइ भौंह करि बाँकी ॥३॥

अर्थ : स्वभाव ये ही सुन्दर भाव वाले और गौर शरीरवाले का नाम लक्ष्मण है। ये मेरे छोटे देवर हैं। फिर मुखचन्द्र को अञ्चल से ढककर और भौहें को टेढ़ी करके प्रिय की ओर देखकर।

व्याख्या : भगवती सीताजी कहती हैं कि स्वभाव से भी सुन्दर शरीर से भी सुन्दर गौरवर्णवाले मेरे छोटे देवर हैं। अर्थात् इनसे बड़े भी एक देवर हैं। इनका नाम तो लक्ष्मण है। अप्रसक्त होने से भरतजी का नाम नहीं लिया। अब रामजी को अपना पति कहना है और कहने में सङ्कोच है। स्त्रियाँ पति का नाम नहीं लेतीं। सो पहिले देवर का परिचय नाम लेकर देने से और बाद उनके नाम न लेने से ही बहुत कुछ कह दिया। नाम लेने के स्थान पर पति की ओर देखा। परिचय देने में सङ्कोच द्योतित करने के लिए मुखचन्द्र को अञ्चल से ढँककर देखा।

खंजन मंजु तिरीछे नयननि। निज पति कहेउ तिन्हहिं सिय सयननि ॥
भईं मुदित सब ग्रामबधूटीं। रंकन्ह राय रासि जिमि लूटीं ॥४॥

अर्थ : खञ्जन सी आँखों को तिरछा करके सीताजी ने उन्हें इशारे से बतला

दिया कि ये हमारे पति हैं। गाँव की सब स्त्रियाँ ऐसी प्रसन्न हुईं मानो उन्होंने सर्वोत्तम राशि लूट ली।

व्याख्या : एक तो भगवती की आँखें स्वभाव से ही खञ्जन सी सुन्दर हैं। तिस पर भौंह टेढ़ी करके तिरछी निगाह से रामजी की ओर देखा। भाव यह है कि कुलवधू के टेढ़ी भौंह और तिरछी निगाह के पात्र उनके पति ही होते हैं। अतः इस इङ्गित से उन्हें अपना पति बतला दिया। मनचाही बात मालूम पड़ने से सब ग्राम की स्त्रियाँ बड़ी प्रसन्न हुईं। मानो लूट में सर्वोत्तम राशि ढेर उन्हीं के हाथ लग गयी।

दो. अति सप्रेम सिय पाय परि, बहुबिधि देहिं असीस।
सदा सोहागिनि होहु तुम्ह, जब लगि महि अहि सीस ॥११७॥

अर्थ : अत्यन्त प्रेम से सीताजी के पाँव पकड़कर बहुत भाँति से आशीर्वाद देती हैं कि जब तक पृथ्वी शेष के सिर पर हैं तब तक तुम सदा सुहागिनी बनी रहो।

व्याख्या : ग्राम की स्त्रियों को बड़ा आनन्द हुआ। अतः अति प्रेम से सीताजी के पाँव पड़ती हैं। नीच जाति की हैं। अतः पाँव भी पड़ती हैं और आशीर्वाद भी देती हैं। स्त्रियों के लिए भारत में सौभाग्य का ही आशीर्वाद सबसे बड़ा माना जाता है। अहि महि सीस कहकर युगलजोड़ी के चिरञ्जीवी रहने की कामना द्योतित की।

पारबती सम पति प्रिय होहू। देबि न हम पर छाड़ब छोहू ॥
पुनि पुनि बिनय करिअ कर जोरी। जौं एहि मारग फिरिअ बहोरी ॥१॥

अर्थ : पार्वती के समान पति को प्रिय होओ। हे देवि ! हम पर से छोह न हटाना। बार बार हाथ जोड़कर विनती करती हूँ कि यदि आपका इसी रास्ते से लौटना हो।

व्याख्या : पति का प्रेम होना भी सोहाग है। यथा : मानो मुख देखरावनी दुलहिन करि अनुराग। सास सदन मन ललन हू सौतिन्ह दीन्ह सोहाग। अतः दूसरे प्रकार के सोहाग का भी आशीर्वाद देती हैं कि पार्वती के समान पति को प्यारी हो शिवजी ने पार्वतीजी को अपने आधे शरीर में मिला लिया। इसीलिए सती से उपमा नहीं दिया। वे अन्त में प्रिय न रह सकीं। आशीर्वाद देकर विनती भी करती हैं। जान गयी थीं, कि सीताजी का हम पर छोह हैं। अतः उस छोह को बनाये रखने के लिए विनय है।

बार बार विनय करती हैं। हाथ जोड़कर कहती हैं कि यदि आपका लौटना इसी मार्ग से हो जिस मार्ग से आप जा रही हैं।

दरसनु देब जानि निज दासी। लखी सीय सब प्रेम पियासी ॥
मधुर बचन कहि कहि परितोषीं। जनु कुमुदिनी कौमुदी पोषीं ॥२॥

अर्थ : तो अपनी दासी जानकर दर्शन देना। सीताजी ने लखा कि इन सबों को प्रेम की प्यास है। सो उन्हें मधुर वचन कहकर ऐसा सन्तुष्ट किया जैसे चाँदनी कुमुदिनी को पुष्ट करती है।

व्याख्या : पहिले ही स्वामिनि सम्बोधन करके उन सबों ने सेव्य सेवक भाव का नाता जोड़ रक्खा है। अतः कहती हैं कि जैसे हम लोग आपको स्वामिनी जानती हैं वैसे हो आप हम लोगों को दासी जानकर लौटते समय दर्शन दीजियेगा। हम लोगों के लिए अपनी सुविधा छोड़कर आप इधर से ही लौटें यह हम नहीं चाहतीं क्योंकि ऐसी प्रार्थना सेवक धर्म के विरुद्ध है।

भगवती चन्द हैं। उनकी मधुर वाणी चाँदनी है। सो जैसे चाँदनी कुमुदिनी का परितोष करती है : कुमुदिनी खिल उठती है उसी प्रकार से सीताजी के मधुर वचन से उनकी प्रेम की प्यास शान्त हुई। वे सन्तुष्ट हो गयीं।

तबहि लखन रघुबर रुख जानी। पूछेउ मगु लोगन्हि मृदु बानी ॥
सुनत नारि नर भये दुखारी। पुलकित गात बिलोचन बारी ॥३॥

अर्थ : तब लक्ष्मणजी ने रामजी का रुख जानकर लोगों से कोमल वाणी द्वारा रास्ता पूछा। सुनते ही स्त्री पुरुष सब दुःखी हो गये। उनको रोमाञ्च हो गया। नेत्रों में जल भर आया।

व्याख्या : लक्ष्मणजो ने रामजो के रुख से लख लिया कि सरकार की अब चलने की इच्छा है। सीताजी और ग्रामवधूटियों का सम्वाद भी समाप्त हो चुका था। अतः मृदु वाणी से वाल्मीकिजी के आश्रम का रास्ता लोगों से पूछा। सुनते ही स्त्री पुरुषों ने समझ लिया कि अब जाना चाहते हैं। पुलकित होना और सजलनयन होना सात्त्विक भाव है। यह दुःख में भी होता है। सुख में भी होता है। यहाँ पर दुःख से पुलक हुआ। इसलिए दुःखारी शब्द भी लिख दिया।

मिटा मोदु मन भये मलीने। बिधि निधि दीन्हि लेत जनु छीने ॥
समुझि करम गति धीरजु कीन्हा। सोधि सुगम मगु तिन्ह कहि दीन्हा ॥४॥

अर्थ : हर्ष मिट गया। मन मलिन हो गया। मानों विधाता निधि देकर अब छीने लेते हैं। कर्मगति समझकर धैर्य धारण किया और उन लोगों ने विचार करके सुगम रास्ता बतला दिया।

व्याख्या : सरकार के दर्शन से वे लोग : लहि जनु रंकन्हि सुरमनि ढेरी। ऐसे प्रसन्न थे जैसे दरिद्रों को चिन्तामणि का ढेर मिल जाय। सो रामजी का चला जाना सोचकर ऐसे दुःखी हुए मानों विधाता ने जो निधि दी थी उसे छीने लेते हैं।

अतः धैर्य छूट गया था। पर समझा कि कर्मगति दुर्लंघ्य है। इतना ही सुख भाग्य में था। धैर्य धारण करके विचार किया और सुगम रास्ता बतला दिया।

दो. लखन जानकी सहित तब, गवनु कीन्ह रघुनाथ।
फेरे सब प्रिय बचन कहि, लिये लाइ मन साथ ॥११८॥

अर्थ : तब लक्ष्मण और जानकी के सहित रामजी चले। सबको प्रिय वचन कहकर लौटाया। पर उनका मन साथ ले लिया।

व्याख्या : रघुनाथ हैं। अपनी प्रतिज्ञा पर दृढ़ हैं। एक वन से दूसरे में घुसते ही चले जाते हैं। ग्रामवासी भी साथ चले। प्रिय वचन कह के उनको लौटा दिया। पर उनके मन को साथ ले लिया। इस बार चित्त की चोरी नहीं की। पहिले की थी। यथा : लिये चोरि चित राम बटोही। वे सब साथ चलने को तैयार नहीं थे। इसलिए चोरी करनी पड़ी। ये तो साथ चलने को तैयार थे। अतः केवल उनके मन को साथ लिया। उन्हें लौटा दिया।

फिरत नारि नर अति पछताहीं। दैअहि दोषु देहिं मन माहीं ॥
सहित बिषाद परसपर कहहीं। बिधि करतब उलटे सब अहहीं ॥१॥

अर्थ : लौटते हुए स्त्री पुरुष अत्यन्त पछताते थे। मन ही मन देव को दोष देते थे। विषाद के साथ एक दूसरे से कहने लगे कि विधाता के करतब सब उलटे ही हैं।

व्याख्या : रामजी के कहने पर सब लौट पड़े। पर उन्हें पश्चात्ताप हो रहा है कि हम क्यों लौट रहे हैं। यह निधि दर्शन हम लोगों को विधाता ने दी थी। उसे छोड़कर हम घर लौट रहे हैं। यह भी विधि की प्रेरणा ही है। अतः मन ही मन कह रहे हैं कि इसमें भी विधाता का दोष है। लौटना न लौटना उनकी इच्छा की बात थी। इसमें भी विधाता को दोष देने पर लोग क्या कहेंगे। अतः इस मानसिक भाव को प्रकट नहीं करते पर मन में विधाता से अप्रसन्न हैं।

अतः उस अप्रसन्नता को विधाता के सभी कार्य उलटे होते हैं ऐसा कहकर प्रकट कर रहे हैं। रामजी के वन जाने से दुःखी हैं। अतः एक दूसरे से कह रहे हैं।

निपट निरंकुस निठुर निसंकू। जेहि ससि कीन्ह सरुज सकलंकू ॥
रूखु कलप तरु सागर खारा। तेहि पठए बन राजकुमारा ॥२॥

अर्थ : वह बिल्कुल निरंकुश निर्दय और निडर है। जिसने चन्द्रमा को रोगी और कलङ्की कर दिया। कल्पवृक्ष को पेड़ और समुद्र को खारा कर दिया। उसी ने राजकुमारों को वन भेजा।

व्याख्या : सब दुःखी होकर ब्रह्मदेव को ही बुरा भला कह रहे हैं। कहते हैं : १. निपट निरंकुश २. निठुर और ३. निःशङ्क हैं। यदि किसी का अङ्कुश उस पर होता तो जगत के आह्लाददायक तथा तापहारक चन्द्रमा को क्षयी : रोगयुक्त तथा कलङ्कयुक्त न करता। यदि कुछ भी दया उसे होती तो कल्पवृक्ष ऐसे उदार को जड़ न बनाता। यदि कुछ भी डर उसे होता तो समुद्र को खारा न बनाता। जब कि छोटी छोटी तलैया कूप आदि मीठे हैं। छोटे जलाशय के जल को बिगाड़नेवाला

अपराधी माना जाता है। जल के इतने बड़े भण्डार को खारा कर देनेवाला कैसे दण्डनीय नहीं है। पर उसे किसी का डर नहीं है। उसी विधाता ने राजकुमारों को वन भेजा है। रामजी को वन देने से निरंकुशता सीताजी को वन भेजने से निष्ठुरता और लक्ष्मणजी को वन भेजने से निःशङ्कता द्योतित होती है।

जौं पै इन्हहिं दीन्ह बनबासू। कीन्ह बादि बिधि भोग बिलासू॥
ए बिचरहिं मग बिनु पदत्राना। रचे बादि बिधि बाहन नाना॥३॥

अर्थ : यदि विधाता ने इन्हें वनवास दिया तो भोग विलास का निर्माण व्यर्थ ही किया। यदि ये रास्ते में नंगे पाँव चल रहे हैं तो विधाता ने अनेक प्रकार के वाहन व्यर्थ ही बनाये।

व्याख्या : सब वस्तुओं के लिए अधिकार अपेक्षित है। भोग विलास का इनसे बढ़कर अधिकारी कौन है। इन्हें भोग विलास करते हुए देखकर संसार को सुख होगा। क्योंकि : ये प्रिय सबहि जहाँ लगि प्रानी और इनको वन जाते देखकर लोग दुःखी होंगे। यथा : जो सुनि सकल बिस्व भइ सूला। अतः ऐसे अधिकारी को वन दिया तो विधाता का भोग विलास निर्माण ही व्यर्थ है।

ये वाहन पर निकलते तो देखकर संसार सुखी होता। इन्हें नङ्गे पाँव चलते देखकर किसका कलेजा नहीं फटेगा। यथा : राम लखन सिय बिनु पग पनहीं। करि मुनि बेषु फिरहिं बन बनहीं। एहि दुःखदाह दहइ दिन छाती। भूख न बासर नींद न राती। अतः विधाता का नाना प्रकार के वाहन की रचना ही व्यर्थ है।

ए महि परहिं डासि कुस पाता। सुभग सेज कत सृजत बिधाता॥
तरुतर बास इन्हहिं बिधि दीन्हा। धवल धामु रचि रचि श्रमु कीन्हा॥४॥

अर्थ : जब ये कुश और पत्ते बिछाकर पृथ्वी पर ही पड़ जाते हैं तो सुन्दर सेज विधाता ने क्यों बनाये हैं। जब विधाता ने इनके लिए पेड़ तले रहना नियत किया तो उज्ज्वल प्रासाद : महल रच रचकर केवल परिश्रम के भागी हुए।

व्याख्या : इन्हें कुश पत्ते बिछाकर जमीन पर सोते देखकर किसे दुःख न होगा। यथा : भयउ बिषाद निषादहि भारी। राम सीय महि सयन निहारी। सुन्दर सेज की शोभा तो इन्हीं के सोने से हो सकती है। यथा : जहँ सिय राम सयन नित करहीं। निज छबि रति मनोज मन हरहीं। अतः ब्रह्मा द्वारा सुन्दर सेजों का बनाया जाना ही व्यर्थ हो गया।

उज्ज्वल प्रासादों में ही इनका निवास उचित था। जब विधाता ने इन्हें तरुतर वास दिया तब धवल धाम की आवश्यकता न रह गयी। उनके बनाने में विधाता को श्रम ही हाथ लगा। फल कुछ न हुआ।

दो. जौ ये मुनि पट धर जटिल, सुन्दर सुठि सुकुमार।
बिबिध भाँति भूषन बसन, बादि किये करतार॥११९॥

अर्थ : यदि ये अत्यन्त सुन्दर सुकुमार वल्कल पहिने और जटा रखाये हैं तो अनेक प्रकार के भूषण वसन विधाता ने व्यर्थ ही बनाये।

व्याख्या : सुन्दर सुकुमारों के लिए मुनिपट और जटा नहीं है। मुनिपट और जटा तो उनके लिए है जो तप के लिए सब भोग त्यागे हुए हैं। इनके लिए अनेक प्रकार के भूषण वसन चाहिए जिससे उन भूषन वसनों की शोभा हो। इनके जटा वल्कल धारण करने पर विधाता का भूषण वसन की रचना ही निष्प्रयोजन है।

जौं ए कंद मूल फल खाहीं। बादि सुधादि असन जग माहीं॥
एक कहहिं ए सहज सुहाये। आपु प्रगट भए बिधि न बनाये॥१॥

अर्थ : यदि ये कन्द मूल खा रहे हैं तो संसार में अमृत आदि भोजन व्यर्थ ही हैं। एक ने कहा कि ये स्वभाव से ही सुन्दर हैं। ये आप ही प्रकट हुए हैं। इन्हें ब्रह्मा ने नहीं बनाया है।

व्याख्या : ये अमृत आदि भोजन करने योग्य हैं। इन्हें यदि कन्दमूल फल खिलाना रहा तो अमृतादि भोजन किसके लिए बनाये? भावार्थ यह कि जितने छः प्रकार के दुःख ऊपर गिना आये हैं वे सब वनवास के ही दुःख के अन्तगत हैं। ऐसे पुरुष को वनवास देने से विधाता को कौन सी फलसिद्धि हुई?

इस पर एक ने कहा कि ये स्वभाव से ही सुन्दर हैं। स्वयम्भू हैं। स्वयं प्रकट हो गये। ये ब्रह्मदेव के बनाये नहीं हैं।

जहँ लगि बेद कही बिधि करनी। श्रवन नयन मन गोचर बरनी॥
देखहु खोजि भुवन दस चारी। कहँ अस पुरुष कहाँ असि नारी॥२॥

अर्थ : जहाँ तक वेदों ने ब्रह्मदेव की करणी बतलायी है जो श्रवण नयन और मन का विषय है उसे खोजो। चौदहों भुवन खोज डालो। कहाँ ऐसे पुरुष हैं और कहाँ ऐसी नारी हैं।

व्याख्या : यह पण्डितों का गाँव मालूम होता है। यहाँ वेद के जानकार मौजूद हैं। कहते हैं कि श्रवण नयन मनगोचर जो कुछ विधि की करणी है सब में दोष का अनुवेध है। यथा : बिधि प्रपंच गुण अवगुण साना। ये निर्दोष उसमें कहाँ से आगये? चौदहों भुवन खोजकर देखो। न कहीं ऐसे पुरुष हैं न ऐसी नारियाँ ही कहीं हैं। ऐसे लोगों को वन क्यों दिया?

इन्हहि देखि बिधि मनु अनुरागा। पटतर जोगु बनावइ लागा॥
कीन्ह बहुत श्रम ऐक न आए। तेहि इरिषा बस आनि[1] दुराए॥३॥

अर्थ : इन्हें देखकर विधाता के मन में बड़ा प्रेम हुआ तो इनके ऐसा दूसरा

---

१. यहाँ हेतु असिद्धास्पदा उत्प्रेक्षा है।

बनाने लगे। परिश्रम बहुत किया। पर कोई अन्दाज ही नहीं लगा। उसी ईर्ष्या से इन्हें वन में लेकर छिपा दिया।

व्याख्या : कलाकार जब कोई अच्छी चीज देखता है और उसे पसन्द आ जाती है तब वह वैसी ही दूसरी बनाने का प्रयत्न करता है। मालूम होता है कि उसी भाँति ब्रह्मदेव ने भी चाहा कि इनके ही ऐसा दूसरा बनावें। सो ब्रह्मदेव ने बहुत उद्योग किया। पर कुछ करते धरते नहीं बन पड़ा। तब उन्हें ईर्ष्या हुई कि लोग कहेंगे कि इन्हें बनाने नहीं आता। बनाने आता तो दूसरा भी ऐसा बनाते। इसलिए इन्हें लाकर वन में छिपा दिया। जिससे लोग इन्हें देख ही न पावें और उनकी रचना शक्ति का आदर बना रहे।

एक कहहिं हम बहुत न जानहिं। आपुहि परम धन्य करि मानहिं ॥
ते पुनि पुन्य पुंज हम लेखे। जे देखहिं देखिहहिं जिन्ह देखे ॥४॥

अर्थ : एक ने कहा कि हम बहुत नहीं जानते। हम तो अपने को परम धन्य मान रहे हैं। हमारे लेखे तो वे भी पुण्यपुञ्ज हैं जो इन्हें देखते हैं देखेंगे और जिन्होंने देखा है।

व्याख्या : तीसरे ने कहा कि भाई ! तुम्हारी कल्पनाशक्ति बड़ी बलवती है। तुम बहुत जानते हो। अच्छा कारण ढूँढ़ निकाला। पर मैं कार्य कारण के पीछे नहीं पड़ता। मैंने इसका दर्शन पाया। इसी से अपने को धन्य मानता हूँ।

मैं ही नहीं पहिले जिन्होंने इनका दर्शन किया आज जो कर रहें हैं और भविष्य में जो करेंगे वे भी पुण्ययुञ्ज हैं। मेरा तो यही मत है।

दो. एहि बिधि कहि कहि बचन प्रिय, लेहिं नयन भरि नीर।
किमि चलिहहिं मारग अगम, सुठि सुकुमार सरीर ॥१२०॥

अर्थ : इस भाँति प्रिय वचन कह कहकर आँखों में आँसू भर लाते हैं कि अत्यन्त ही सुकुमार शरीरवाले ये दुर्गम रास्ते को कैसे पार करेंगे।

व्याख्या : फिरत नारि नर अति पछिताहीं से उपक्रम करके : लेहिं नयन भरि नीर से उपसंहार करते हैं। यहाँ पर तीन प्रकार से लोग बोले हैं। पहिले के कहने में तमोगुण की झलक आती है। दूसरे में रजोगुण स्पष्ट है। तीसरे में सत्त्वगुण का प्रकाश है। इस भाँति यह सोचकर कि ऐसे सुकुमार शरीर इस दुर्गम रास्ते में कैसे निबहेंगे। उन लोगों की आँखों में आँसू आ जाता है।

नारि सनेह बिमल बस होहीं। चकई साँझ समय जनु सोही ॥
मृदु पद कमल कठिन मगु जानी। गहबरि हृदय कहहिं बर बानी ॥१॥

अर्थ : स्त्रियाँ स्नेह से विकलता के वश हो जाती हैं। जैसे सायंकाल के समय चकई की शोभा हो जाती है। चरण कमल को कोमल और रास्ते को कठिन जानकर भरे हृदय से अच्छी वाणी बोलती हैं।

व्याख्या : विछोह के समय प्रेमपात्र पर अधिक प्रीति बढ़ जाती है। इसलिए विकलता के वश होना कहा। पुरुषों की दशा ऊपर कह आये कि उन्हें भी विषाद है। अब स्त्रियों की दशा कहते हैं कि वे तो विकलता के वश हो गयी हैं। उनकी अवस्था की उपमा सन्ध्या के समय चकई की अवस्था से दी गयी जब कि वह प्रिय के विरह से विकल होती है। प्रेमी की शोभा प्रेमपात्र के विछोह में विकल होने में है। इसलिए सोही शब्द का प्रयोग किया। स्त्रियाँ सरकार के रूप पर मोहित हैं। अतः चकई से उपमित किया। यथा : कहहु सखी अस को तनु धारी। जो न मोह यह रूप निहारी।

स्त्रियों के हृदय में भी वही विचार उठा जो पुरुषों के हृदय में उठा था कि कोमल सुन्दर चरण कठिन रास्ते में अत्यन्त पीड़ित होंगे। उस पीड़ा को सोचकर हृदय भर आया। अतः वर वाणी कहती हैं। प्रेमयुक्त वाणी ही वर वाणी है।

परसत मृदुल चरन अरुनारे। सकुचति महि जिमि हृदय हमारे ॥
जौं जगदीस इन्हहि बनु दीन्हा। कस न सुमनमय मारगु कीन्हा ॥२॥

अर्थ : कोमल और लाल चरणों को छूने में पृथ्वी उसी भाँति सङ्कुचित होती है जिस तरह हमारा हृदय सङ्कुचित होता है। यदि जगदीश ने इन्हें वन दिया तो रास्ते को पुष्पमय क्यों नहीं बनाया ?

व्याख्या : इस अरुण मृदुल चरण को हृदय में लाने से मेरा हृदय सकुचता है कि इन चरणों के स्पर्श योग्य हमारे दूषित हृदय नहीं हैं। इसी भाँति पृथ्वी को सङ्कोच हो रहा है कि इन कोमल चरणों के धारण योग्य मेरा वक्षस्थल नहीं है।

कमल का पुष्पों के ऊपर रहना ही उचित है। अतः इनके चरण कमल के लिए पुष्पमय मार्ग ही उपयुक्त है। जब विधि ने इतना उलटा पलटा किया कि इन्हें वन दे दिया तो मार्ग में भी उलटा पलटा करना चाहता था। उसे कठोर से पुष्पमय बना देते।

जौं माँगा पाइअ बिधि पाहीं। ए रखिअहि सखि आँखिन्ह माहीं ॥
जे नर नारि न अवसर आए। तिन्ह सिय रामु न देखन पाए ॥३॥

अर्थ : यदि ब्रह्मदेव से मुँह माँगा मिले तो हे सखि ! इन्हें आँखों में रखना चाहिए। जो नरनारि उस समय नहीं आये वे रामजी को नहीं देख पाये।

व्याख्या : विधि है। अपनी विधि बैठाया करते हैं। मुह माँगा नहीं देते। यदि देते तो इन्हें आँखों में रखती। कहीं जाने ही न देती। आँख बड़ी कोमल होती हैं। पुष्प का भी स्पर्श सहन नहीं कर सकती। आँखिन में सखि राखिवे जोग इन्हें किमि कै वनवास दयो हैं। आँख निर्लेप है। उनके रहने योग्य है। हृदय तो कलुषित है। वहाँ उन्हें रहने को कैसे कहें।

कुछ लोग गाँव में नहीं थे। पीछे से आये। सबने देखा। वे देख ही नहीं पाये। पता लगा कि ऐसी अलौकिक सुन्दर तीन मूर्तियाँ इधर से ही वन गयी हैं।

बटतर कुछ दर तक विश्राम भा किया था। लोगों ने चाहा भी था कि रात को यहीं ठहरें पर वे ठहरे नहीं।

सुनि सरूप बूझहिं अकुलाई। अब लगि गये कहाँ लगि भाई॥
समरथ धाइ बिलोकहिं जाई। प्रमुदित फिरहिं जनम फलु पाई॥४॥

अर्थ : स्वरूप की प्रशंसा सुनकर आकुल होकर पूछते हैं कि भाई! वे लोग कहाँ तक गये होंगे। समर्थ लोग दौड़कर जाते थे और दर्शन करके जन्मफल पा जाते थे और प्रसन्न होकर लौटते थे।

व्याख्या : अलौकिक स्वरूप का वर्णन सुनकर दर्शन के लिए आकुल होकर पूछते थे कि अब तक वे कितनी दूर आगे बढ़ गये होंगे। उनके मन में बड़ी उत्कण्ठा दर्शन की है। सभी ने दर्शन पाया। हम ही रह गये। अतः पहुँच के भीतर हों तो जाकर दर्शन करना चाहिए।

लोगों ने दूरी बतला दी। तब जो दौड़ने में समर्थ थे दौड़े पड़े। जाकर दर्शन किया। मनुष्य जन्म का फल ही सरकार का दर्शन है। यथा : राम चरन वारिज जब देखौं। तब निज जन्म सफल करि लेखौं। सो दर्शन प्राप्ति से कृतकृत्य हुए। जन्मफल पाकर आनन्द से लौटे।

दो. अबला बालक बृद्ध जन, कर मीजहिं पछिताहिं।
होहिं प्रेम बस लोग इमि, रामु जहाँ जहँ जाहिं॥१२१॥

अर्थ : स्त्री बच्चे और बूढ़े हाथ मल मलकर पछताते हैं। इस भाँति जहाँ जहाँ रामजी गये वहाँ के लोग सब प्रेम के वश हो गये।

व्याख्या : अब असमर्थों की बात कहते हैं कि स्त्री बालक और वृद्ध हाथ मलते हैं। पछताते हैं कि हमारे भाग्य में दर्शन बदा नहीं था। स्त्रियाँ दौड़ नहीं सकती थीं। वृद्ध महाअसमर्थ थे। बच्चे भी दूरतक नहीं दौड़ सकते थे। अतः इन्हें पछताना ही हाथ लगा। समर्थ को दौड़कर जाते देखकर ये जी मसोसकर रह जाते हैं। इस भाँति जहाँ रामजी जाते हैं वहाँ प्रेम का समुद्र उमड़ पड़ता है। ऐसी मूर्त्ति है कि जिन्होंने देखा वे भी पछताते हैं कि मैं संग क्यों नहीं गया और जिन्होंने दर्शन नहीं पाया वे भी पछताते हैं कि मेरे भाग्य में दर्शन नहीं रहा।

गाँव. गाँव अस होई अनंदू। देखि भानुकुल कैरव चंदू॥
जे कछु समाचार सुनि पावहि। ते नृप रानिहि दोसु लगावहिं॥१॥

अर्थ : सूर्यकुल के कुमुद के चन्द्रमा रूप रामजी को देखकर गाँव गाँव में ऐसा आनन्द हो रहा है। जो कोई समाचार पाते हैं वे राजा रानी को दोष लगाते हैं।

व्याख्या : सरकार का सौन्दर्य ही ऐसा है कि उसे देखकर स्त्रियाँ चन्द्रोदय पर कुमुदिनी की भाँति खिल उठती हैं। यथा : नारि कुमुदिनी अवध सर रघुपति बिरह दिनेस। अस्त भये बिगसित भईं निरखि राम राकेस। वैसी ही गति पुरुषों

की भी है। अतः कहते हैं कि इसी गाँव की यह दशा नहीं जितने गाँव रास्ते में पड़ते हैं वहीं आनन्द की लहर आ जाती है।

उन देखनेवालों में से किसी किसी को कुछ टूटा फूटा पता चल जाता है। वे राजा रानी को दोष देने लगते हैं। यथा : ते पितु मातु कहहु सखि कैसे। जिन पठए बन बालक ऐसे।

कहहिं एक अति भल नरनाहू। दीन्ह हमहिं जेइ लोचन लाहू ॥
कहहिं परसपर लोग लोगाई। बातें सरल सनेह सुहाई ॥२॥

अर्थ : किसी ने कहा कि राजा बहुत अच्छा है। जिसने हमको नेत्र होने का फल दिया। स्त्री पुरुष आपस में स्नेह से सरल और सोहाई बाते कहते हैं।

व्याख्या : अधिक लोग तो दोष लगानेवाले हो हैं। पर कोई ऐसे भी हैं जो कहते हैं कि राजा बहुत ही अच्छा है। उसने हम लोगों के कल्याण के लिए इतने बड़े स्वार्थ का त्याग किया। यदि इन्हें वन न भेजता तो हम लोगों के नेत्र सफल कैसे होते। यथा : करहु सफल सबके नयन सुन्दर बदन देखाइ।

घर के भीतर बात हो रही है। अतः लोग लोगाई का परस्पर कहना कहते हैं। स्नेह भरा चित्त होने से सरल बातें ही मुख से निकलती हैं और वे सोहाई भी होती हैं।

ते पितु मातु धन्य जिन्ह जाये। धन्य सो नगरु जहाँ ते आये ॥
धन्य सो देसु सैलु बनु गाऊँ। जहँ जहँ जाहिं धन्य सो ठाऊँ ॥३॥

अर्थ : वे माता पिता धन्य हैं जिन्होंने इन्हें जन्म दिया। वह नगर धन्य है जहाँ से आये हैं। वह देश पर्वत गाँव धन्य हैं। वह स्थान धन्य है जहाँ ज़हाँ ये जा रहे हैं।

व्याख्या : कहहु तात केहि भाँति कोउ करै बड़ाई तासु। राम लखन तुम सत्रुहन सरिस तनय सुचि जासु। अतः माता पिता धन्य हैं : धन्य अवध जो राम बखानी। अतः जहाँ से आये वह नगर धन्य है और : परसि राम पद पदुम परागा। मानत भूमि भूरि निज भागा। अतः वह देश वह पर्वत वह वन वह गाँव धन्य है जहाँ जहाँ ये जावेंगे। यथा : बड़ भागी बनु अवध अभागी। जौ रघुबंस तिलकु तुम त्यागी।

सुखु पायेउ बिरंचि रचि तेही। ए जेहि के सब भाँति सनेही ॥
राम लखन पथि कथा सुहाई। रही सकल मग कानन छाई ॥४॥

अर्थ : ब्रह्मदेव ने उसी को रचकर सुख पाया। जिसके ये सब भाँति से स्नेही हैं। राम लक्ष्मण के रास्ते की सोहाई कथा तमाम रास्ते और वन में छा गयी।

व्याख्या : माता पिता धन्य हैं। जन्मस्थान धन्य है। जहाँ जाते हैं वह स्थान धन्य है। पर इनके स्नेही भक्त ऐसे धन्य हैं कि उनको रचकर ब्रह्मदेव अपने को सुखी मानकर धन्य हुए। यथा : सो कुल धन्य उमा सुनु जगत पूज्य सुपुनीत।

श्रीरघुनाथ परायन जहँ नर उपज़ बिनीत। भक्त के उत्पन्न होने से कुल धन्य होता है। सभी कुल ब्रह्मदेव निर्मित हैं। अतः वे भी धन्य हुए। अथवा ब्रह्मदेव के निर्माण कला की पराकाष्ठा मनुष्य की रचना में है। पर मनुष्यता की पूर्णता तो हरिभक्ति से होती है। नहीं तो : तुलसी जेहि राम ते नेह नहीं सो सही पशु पूँछ विषाण न द्वै। अतः हरिभक्त के निर्माण से अपनी कला की पूर्णता देखकर ब्रह्मदेव सुखी होते हैं।

जिधर से सरकार जाते हैं उधर आनन्द की लहर आ जाती है। उसकी कथा चल पड़ती है और वह कथा सोहाई होती है। मनभावनी होती है। उसे कहते सुनते लोग सुख पाते हैं। यथा : भव मग अगम अनंदु बिनु श्रम रहेउ सिराइ।

दो. एहि बिधि रघुकुल कमल रबि, मग लोगन्ह सुख देत।
जाँहि चले देखत बिपिन, सिय सौमित्रि समेत ॥१२२॥

अर्थ : इस भाँति रघुकुल कमल के सूर्य रास्ते के लोगों को सुख देते हुए सीता और लक्ष्मण सहित वन को देखते हुए चले जाते हैं।

व्याख्या : छाँह करहिं घन बिबुध गन बरखहिं सुमन सिहाहिं। देखत गिरिवन बिहँग मृग रामचले वन जाहिं से उपक्रम करके एहि बिधि रघुकुल कमल रवि मग लोगन सुख देत इत्यादि से उपसंहार करते हैं। नौ दोहों में कैसे रास्ते के लोगों को सुख देते हुए रामजी वन देखते चले जा रहे हैं। इस बात का वर्णन किया।

आगें राम लखन बन पाछें। तापस बेष बिराजत काछें ॥
उभय बीच सिय सोहति कैसें। ब्रह्म जीव बिच माया जैसें ॥१॥

अर्थ : आगे आगे रामजी पीछे पीछे लक्ष्मणजो तपस्वियों का वेष बनाये हुए शोभायमान हैं। दोनों के बीच सीताजी कैसी सोहती हैं। जैसे ब्रह्म और जीव के बीच में माया हो।

व्याख्या : अब वन में जाते हुए तीनों मूर्तियों की कैसी शोभा है। इसे वर्णन करते हुए कहते हैं कि सम्बन्धानुसार तथा रक्षा के विचार से भी रामजी आगे आगे चलते हैं और लक्ष्मणजी पीछे पीछे चलते हैं। तपस्वियों के वेष में कसे कसाये शोभायामान हैं। यथा : अनुज सहित सिर जटा बनाये। दोनों के बीच में सीताजी हैं। इनका वेष अभी तपस्विनियों सा नहीं है। अतः कवि राम लक्ष्मण की उपमा तो ब्रह्मजीव से देते हैं और सीताजी की माया से। ब्रह्म माया को नहीं देखता। सर्वथा स्वतन्त्र है। परन्तु माया उसी के आश्रित है। उसी के पीछे चलती हैं। जीव यद्यपि ब्रह्म का ही अंश है। पर माया का अनुसरण करता है। ब्रह्म और जीव सजातीय पुरुष हैं। माया विजातीय स्त्री है। अतः वेष में भेद है। ब्रह्मजोव में भेद मायाकृत है। अतः माया को ब्रह्म जीव के बीच में कहा। इन्हीं सब बातों पर विचार करके कवि ने राम जानकी और लक्ष्मण की उपमा ब्रह्म, माया और जीव

से दिया। देखनेवाला जहाँ खड़ा है वहाँ से आते हुए तीनों मूर्तियों में पहिले रामजी को देखता है। पीछे सीताजी को तत्पश्चात् लक्ष्मणजी को। यहाँ देखनेवाला कवि है। इस बात पर ध्यान देना आवश्यक है कि वर्णन करने के समय कवि अपने को किस स्थान पर मान रहा है। अभी तीनों मूर्तियाँ दूर हैं। बहुत स्पष्ट दिखलायी नहीं पड़ रही हैं। अतः ब्रह्म माया और जीव से उपमित किया।

बहुरि कहहुँ छबि जसि मन बसई। जनु मधु मदन मध्य रति लसई॥
उपमा बहुरि कहौं जिय जोही। जनु बुध बिधु बिच रोहिनि सोही॥२॥

अर्थ : फिर जैसी छवि मन में बसी है वैसी कहता हूँ। मानों मधु और कामदेव के बीच में रति शोभित हो। फिर अपने जी में सोचकर उपमा कहता हूँ। जैसे बुध और चन्द्रमा के बीच रोहिणी शोभायमान हो।

व्याख्या : यहाँ मधु चैत्र मास वसन्त का उपलक्षण है। मदन और रति दम्पती हैं। वसन्त मदन का सखा है। चलते चलते ठीक सामने आजाने पर कवि शोभा को स्पष्ट देख रहा है। अतः मधु मदन और रति की उपमा देता है। आगे बढ़ने के बाद उपमा देने के समय सबसे पीछे होने के कारण लक्ष्मणजी को कवि पहिले देखता है तत्पश्चात् सीताजी को और उसके बाद रामजी को। अतः मधु को पहिले कहकर तब मदन रति का उल्लेख करता है। कवि शोभा देखने में मग्न है।

जब मूर्तियाँ बहुत दूर निकल गयीं, अब दृष्टि के ओझल हुआ चाहती हैं तब फिर उपमा देते हैं कि बुध और चन्द्रमा के बीच में जैसे रोहिणी हो। चन्द्रमा और रोहिणी दम्पती हैं। बुद्ध चन्द्रमा का पुत्र है। तीनों बहुत दूर हैं। दूर चले जाने पर उसी भाँति कवि पहले लक्ष्मणजी तत्पश्चात् सीता और रामजी को देखता है और उसी क्रम से वर्णन करता है। दूर की उपमा ब्रह्म, माया और जीव से दे आये हैं। और फिर दूर की ही उपमा देनी है। अतः कवि को सोचना पड़ा कि अब कौन सी उपमा दें। तो तीन तेजोमय वस्तु चन्द्र, रोहिणी और बुध से जो दूर स्थित हैं दे डाला। पर हृदय में बीचवाली छवि बसती है। अतः मधु, मदन, रति की उपमा दी। क्योंकि सबके मन में काम का निवास है और गोस्वामीजी के मन में उसके स्थान पर राम बसते हैं।

प्रभु पद रेख बीच बिच सीता। धरति चरन मग चलति सभीता॥
सीय राम पद अंक बराएँ। लखनु चलहि मग दाहिन लाएँ॥३॥

अर्थ : प्रभु के चरणों की रेखाओं के बीच बीच में सीताजी अपना पाँव धरती और डरती हुई रास्ता चलती हैं। सीता और रामचन्द्र के चरणों के चिह्नों को बचा बचाकर लक्ष्मणजी दाहिनी ओर से रास्ता चलते थे।

व्याख्या : सीताजी ठीक रामजी का अनुसरण करती हैं और अनुसरण करनेवाले का पैर अग्रगामी के चरण चिह्नों पर पड़ेगा ही। अतः सीताजी रामचन्द्र के चरण चिह्नों के बीच बीच में पैर रखती हैं और डरती हुई रास्ता चलती हैं कि

कहीं सरकार के चरण चिह्नों पर मेरा पैर न पड़ जाय। सीताजी की ऐसी पूज्य बुद्धि सरकार पर है।

वैसी ही पूज्य बुद्धि लक्ष्मणजी की दोनों सरकारों पर है। उन्हें दोनों मूर्तियों के चरण चिह्नों को बँचाना ठहरा। अतः वे दाहिनी ओर हटकर चल रहे हैं।

राम लखन सिय प्रीति सुहाई। बचन अगोचर किमि कहि जाई ॥
खग मृग मगन देखि छबि होहीं। लिये चोरि चित राम बटोही ॥४॥

अर्थ : लक्ष्मण राम और सीताजी की प्रीति वचन का विषय ही नहीं है। अतः कैसे कही जा सकती है। उनकी छवि देखकर पशु पक्षी मगन हो जाते थे। क्योंकि पथिक राम ने उनके चित्त चुरा लिये।

व्याख्या : राम लक्ष्मण और सीताजी की प्रीति ऐसी पवित्र और सुन्दर है कि मन में तो बड़ी अच्छी लगती है पर कहते नहीं बनती। यथा : इनके प्रीति परसपर पावनि। कहि न जाइ मन भाव सुहावनि। सुनहु नाथ कह मुदित बिदेहू। ब्रह्म जीव इव सहज सनेहू।

शोभा कैसी अद्भुत है कि पशु पक्षी देखकर मोहित हो जाते हैं। अपनी जाति की ही शोभा पर जीव रीझते हैं। खग की शोभा खग ही समझते हैं। मृग की शोभा मृग ही समझते हैं। ये मनुष्य की शोभा नहीं समझ सकते। पर यहाँ महाशोभा की ऐसी अतिशयता है कि वे भी मगन हो जाते हैं। कवि कहते है कि इसमें खग मृग की कोई बात नहीं है। राम बटोही ही मन के चोर हैं।

दो. जिन्ह जिन्ह देखे पथिक प्रिय, सिय समेत दोउ भाइ।
भव मगु अगमु अनंदु तेइ, बिनु श्रमु रहे सिराइ ॥१२३॥

अर्थ : जिसने जिसने सीता सहित दोनों भाई प्रिय पथिकों को देखा उनको संसार के अगम मार्ग में सुख हुआ और वह बिना परिश्रम के ही कट गया। समाप्त हो गया।

व्याख्या : अब प्रिय पथिकों के दर्शन का माहात्म्य सुनिये। संसार का रास्ता अगम है। दुःखमय है। पता नहीं कहाँ जा रहा है। पर जिसने इन तीनों मूर्तियों को रास्ता चलते देखा उसे भवमग आनन्दमय हो गया और बिना परिश्रम ही उसका अन्त मिल गया। अर्थात् वे अनायास ही भवसागर के पार हो गये।

[1]अजहुँ जासु उर सपनेहुँ काऊ। बसहुँ लखन सिय राम बटाऊ ॥
रामधाम पथ पाइहि सोई। जो पथु पाव कबहुँ मुनि कोई ॥१॥

अर्थ : अब भी जिसके हृदय में कभी सपने में भी लक्ष्मण सीता और राम

---

१. यहाँ भाविक अलङ्कार है।

तीनों पथिक बसते हैं। वह राम धाम के मार्ग को पायेगा। जिसको कोई मुनि कभी कभी पाते हैं।

व्याख्या : ऊपर कह आये हैं कि जिन्होंने रास्ते जाते हुए तीनों मूर्तियो को देखा उनका कैसा कल्याण हुआ। अब उक्त घटना से आजकल के लोगों का कैसे कल्याण होगा। सो बतलाते हैं। जैसा मनुष्य दिन को सोचता है वैसा ही रात को स्वप्न देखता है। अतः स्वप्न में देखना तभी सम्भव है जब जाग्रत में मनोयोग-पूर्वक ध्यान करे। इस भाँति यदि सपने में भी पथिक रूप से राम लक्ष्मण सीता मन में आजयँ तो उसे रामधाम का पथ मिल जाता है। रामधाम का पथ मिलना अतीव दुर्लभ है। किसी मुनि को किसी समय मिल जाता है।

तब रघुबीर श्रमित सिय जानी। देखि निकट बटु सीतल पानी ॥
तहँ बसि कंद मूल फल खाई। प्रात नहाइ चले रघुराई ॥२॥

अर्थ : तब रामजी सीताजी को थकी हुई जानकर और पास ही बरगद का पेड़ और ठण्ढा पानी देखकर वहाँ बसे। कन्द मूल फल खाया और सवेरा होते ही स्नान करके चल पड़े।

व्याख्या : दोपहर को भी सीताजी को थकी देखकर बरगद के पेड़ तले ठहरे थे। यथा : जानी श्रमित सीय मन माँहीं। घरिक बिलंब कीन्ह बट छाँहीं। अब फिर सीताजी थक गयीं तो फिर बरगद के तले ही ठहरे। वहाँ शीतल जलाशय भी था। रात्रि उसी पेड़ के तले बितायी। कन्द मूल फल भोजन किया। इससे यह भी पता चलता है कि केवल एक बार भोजन का नियम ले रक्खा है।

१५. वाल्मीकि मिलन प्रसङ्ग

देखत बन सर सैल सुहाये। बाल्मीकि आश्रम प्रभु आये ॥
रामु दीख मुनि बास सुहावन। सुन्दर गिरि काननु जलु पावन ॥३॥

अर्थ : सुन्दर वन तालाब पर्वत को देखते हुए प्रभु वाल्मीकिजी के आश्रम में आये। रामजी ने मुनि के सुहावने निवास स्थान को देखा कि सुन्दर वन है। पर्वत भी सुन्दर है और पवित्र जल है।

व्याख्या : ग्रामवासियों ने विचार करके सुगम रास्ता बतलाया था। सो उसकी सुगमता कहते हैं कि सुन्दर वन जलाशय और पर्वत देखते देखते प्रभु वाल्मीकिजी के आश्रम पर पहुँच गये। रामजी ने मुनिजी के सुन्दर आश्रम को देखा। आदि कवि हैं। रम्य स्थान पर अपना आश्रम बनाया था। जहाँ सुन्दर पर्वत हैं, सुन्दर वन हैं और पवित्र जल है।

सरनि सरोज बिटप बन फूले। गुंजत मंजु मधुप रस भूले ॥
खग मृग बिपुल कोलाहल करहीं। बिरहित बैर मुदित मन चरहीं ॥४॥

अर्थ : तालाबों में कमल और वनों में वृक्ष फल रहे थे और सुन्दर भौंरे रस में मस्त हुए गुञ्जार कर रहे थे। बहुत से पशु पक्षी कोलाहल कर रहे थे और वैर छोड़े हुए आनन्द से विचर रहे थे।

व्याख्या : आदि कवि के निवास योग्य रमणीय स्थल था। जलाशयों की शोभा कमलों के फूलने से हो रही थी और वन की शोभा वृक्षों के फूलने से हो रही थी और वे फूल ऐसे सरस थे कि चारों ओर वन में भौंरे गुञ्जार कर रहे थे। चिड़ियाँ चहचहा रही थीं। वन्य पशु भी अनेक प्रकार के शब्द कर रहे थे। किसी में स्वाभाविक वैर का नाम नहीं। सब प्रसन्न मन से विचर रहे थे।

सरनि सरोज बिटप बन फूले से गन्ध कहा। गुंजत मंजु मधुप रस भूले से रस कहा। खग मृग बिपुल कोलाहल करहीं से शब्द कहा। सुन्दर गिरि कानन जल पावन से रूप कहा। इस भाँति उस वन को सर्वेन्द्रिय तर्पण बतलाया। मुनिजी में ऐसी अहिंसा की प्रतिष्ठा थी कि उनके सन्निधान से पशुपक्षी स्वाभाविक वैर छोड़कर उस वन में निर्भय आनन्द से विचर रहे थे।

दो. सुचि सुंदर आश्रमु निरखि, हरखे राजिव नैन।
सुनि रघुबर आगमनु मुनि, आगे आयेउ लेन ॥१२४॥

अर्थ : राजीव लोचन राम पवित्र और सुन्दर आश्रम देखकर प्रसन्न हुए और मुनिजी रामजी के आगमन का समाचार सुनकर उनके लेने के लिए आगे आये।

व्याख्या : जैसा कवि के लिए आश्रम चाहिए वैसा आश्रम है। पवित्र भी है। सुन्दर भी है। उसे देखकर राजीवलोचन रामजी भी प्रसन्न हो गये। चितइ कृपा करि राजिव नयना। रामजी के रास्ते की कथा सम्पूर्ण वन में फैल गयी थी। शिष्यों ने समाचार दिया। पहाड़ पर आश्रम है। अतः उन लोगों ने दूर से ही सरकार को आते देखा। समाचार सुनकर मुनिजी ने आगे से आकर स्वागत किया।

मुनि कहुँ राम दंडवत कीन्हा। आसिरबादु बिप्रबर दीन्हा॥
देखि राम छबि नयन जुड़ाने। करि सनमानु आश्रमहिं आने॥१॥

अर्थ : मुनिजी को रामजी ने दण्डवत् किया। विप्रवर ने आशीर्वाद दिया। रामजी की छवि देखकर आँखें शीतल हो गयीं। सम्मान करके आश्रम में ले आये।

व्याख्या : वाल्मीकिजी बड़े तपस्वी और मुनियों में श्रेष्ठ हैं। अतः आते हुए देखकर रामजी ने दण्डवत् प्रणाम किया। जिस भाव से रामजी ने दण्डवत् किया। उसी भाव के अनुकूल ब्राह्मणों में श्रेष्ठ वाल्मीकिजी ने आशीर्वाद दिया।

मुनिजी की आँखें दर्शन की प्यासी थीं। अतः सन्तप्त हो रही थीं। जिसके नाम को इतने दिन से जप रहे थे, जिसके नाम के प्रताप से शुद्ध होकर ऋषिराज हुए आज वही नामी मिलने के लिए आश्रम में पधार रहे हैं। अतः आँखें उनकी छवि देखकर शीतल हुईं। स्वागत के लिए बहुत आगे चले आये थे। अतः बड़े सम्मान के साथ आश्रम में लिवा ले गये।

मुनिवर अतिथि प्रानप्रिय पाये। कंद मूल फल मधुर मँगाये ॥
सिय सौमित्र राम फल खाये। तब मुनि आसन दिये सुहाये ॥२॥

अर्थ : श्रेष्ठ मुनि प्राणप्रिय अतिथि पाया। मीठे मीठे कंद मूल और फल मँगाये। सीताजी लक्ष्मणजी तथा रामजी ने फल खाया। तब मुनिजी ने सुन्दर आसन दिये।

व्याख्या : पहिला काम मुनिजी ने यह किया कि भोजन की व्यवस्था पहिले की। प्रात काल स्नान करके सरकार चले हैं। रास्ता चलकर आये हैं। भूख अवश्य लगी होगी। अति मीठे मीठे कन्द मूल फल मँगाये। मुनिजी महाराज जनक के मित्र हैं। वात्सल्य भाव के उपासक हैं। रामजी इन्हें प्राण से प्यारे हैं। सो इस समय अतिथि होकर आये हैं। अत तुरन्त भोजन की व्यवस्था की सीताजी लक्ष्मणजी तथा रामजी जब भोजन कर चुके तब मुनिजी ने सुन्दर आसन दिये। भाव यह कि पहिले भी आसन दिये थे। पर वे सोहाये न थे। भोजन के समय पीढ़ा का ही विधान है। भोजनोपरान्त सोहाये अर्थात् कोमल आसन दिये।

बालमिकि मन आनँदु भारी। मंगल मूरति नयन निहारी ॥
तब कर कमल जोरि रघुराई। बोले बचन श्रवन सुखदाई ॥३॥

अर्थ : मङ्गलमूर्ति को आँखों से देखकर वाल्मीकिजी को बड़ा आनन्द हुआ तब हाथ जोड़कर रामजी कानों को सुख देनेवाले वचन बोले।

व्याख्या : ब्रह्म तन्मङ्गलं विदु । ब्रह्म ही मङ्गलमूर्ति है। वह नयन का विषय नहीं। सो मूर्तिमान होकर आश्रम में पधारा है। अतः उन्हें आँखों से देखकर वाल्मीकिजी को भारी आनन्द हुआ। यथा : नयन बिषय मों कहुँ भयेउ सो समस्त सुखमूल। सबइ लाभ जग जीव कहँ भये ईस अनुकूल।

वाल्मीकिजी का पिता सा भाव देखकर सरकार करकमल जोड़कर श्रवण सुखद वचन बोले। देख लिया कि वाल्मीकिजी ने भरद्वाज की भाँति कुशल नहीं पूछा। त्रिकालज्ञ हैं। सब जान गये। कष्टकर बात की चर्चा चलाना नहीं चाहते। पर मुझे तो इनसे आज्ञा लेकर निवास करना ठहरा। अतः मैं स्वयं सब कथा कहकर तब निवास के लिए स्थल पूछूँ। अतः श्रवण सुखद वचन बोले।

तुम्ह त्रिकाल दरसी मुनिनाथा। बिस्व बदरि जिमि तुम्हरें हाथा ॥
अस कहि प्रभु सब कथा बखानी। जेहि जेहि भाँति दीन्ह बनु रानी ॥४॥

अर्थ : हे मुनिनाथ! आप त्रिकालदर्शी हैं। संसार आपके हाथ में बेर के फल के समान है। ऐसा कहकर सरकार ने जिस जिस भाँति रानी ने वन दिया सो सब कथा कह सुनायी।

व्याख्या : रामजी ने कहा कि आप मुनियों के नाथ हैं। परम ज्ञानी हैं तथा त्रिकालदर्शी हैं। आप से कुछ छिपा नहीं है। यह संसार आपके करगत बेर के

फल के समान है। अर्थात् संसार में जो कुछ हो रहा है वह सब आपको प्रत्यक्ष है। बदरी फल कहने का भाव यह कि आप संसार को अपथ्य जानते हैं। यथा : धात्रीफलं सदा पथ्यमपथ्यं बदरीफलम्। आप समझ सकते हैं कि राज्य महाबन्धन है। इसके छूटने से मुझे हर्ष है।

ऐसा कहकर सरकार ने वाल्मीकिजी से सब कथा कही। जिस भाँति रानी ने वन दिया। भाव यह कि महाराज ने वन नहीं दिया। रानी ने दिया। सब कथा कहने का भाव यह कि जिससे सम्मति लेना हो उसे अपनी परिस्थिति से परिचित कर देना परम आवश्यक है। वाल्मीकि से निवासस्थल के लिए सम्मति लेनी थी। इसलिए सब कथा कह सुनायी। मुनिजी पूछते ही कि तुम राजकुमार होकर वन में क्यों बसना चाहते हो। अतः उनसे सब कहना प्राप्त था।

दो. तात बचन पुनि मातु हित, भाइ भरत अस राउ।
मो कहुँ दरस तुम्हार प्रभु, सबु मम पुन्य प्रभाउ ॥१२५॥

अर्थ : पिता का वचन तिस पर माता का हित और भरत जैसे भाई का राजा होना और हे प्रभु ! मुझे आपका दर्शन मिलना यह सब मेरे पुण्य का प्रभाव है।

व्याख्या : जो बात सरकार ने महारानी कैकेयी से कहा था वही यहाँ भी कहते हैं। यथा : मुनिगन मिलन बिशेष बन सबहि भाँति हित मोर। तेहि महुँ पितु आयसु बहुरि संमति जननी तोर। भरत प्रानप्रिय पावहि राजू। बिधि सब बिधि मोहि संमुख आजू। भाव यह कि पहिले भी विधि सम्मुख थे। पर आज तो सब विधि से सम्मुख हो गये हैं कि एक कार्य करने में चार चार कार्य सध रहे हैं। वन में आने से पिता का भला माता का भला भाई का भला और स्वयं अपना भला।

देखि पाय मुनिराय तुम्हारे। भए सुकृत सब सुफल हमारे॥
अब जहँ राउर आयसु होई। मुनि उदबेगु न पावै कोई ॥१॥

अर्थ : हे मुनिराज ! आपके चरणों को देखकर मेरे सब पुण्य सुफल हो गये। अब जहाँ आपकी आज्ञा हो और जहाँ रहने से कोई मुनि उद्वेग न पावे।

व्याख्या : सुकृत का फल सुयश है। यथा : पावन जस कि पुन्य बिनु होई। सो सरकार के सुयश का प्रचार वाल्मीकिजी द्वारा ही होनेवाला है। अतः कहते हैं कि मेरे सब सुकृत तो आपके दर्शन से सुफल हुए। निश्चित आसन्न भविष्य को भूतकाल में वर्णन किया जाता है। यथा : रंगभूमि आये दोउ भाई।

भरद्वाजजी वाल्मीकिजी के शिष्य हैं। सो शिष्य से रास्ता पूछा था। अब गुरुजी से निवास स्थान पूछते हैं कि हम क्षत्रिय हैं। आखेट आदि करेंगे। इससे मुनिलोगों के उद्वेग का भय है। अतः मुझे ऐसा स्थान चाहिए जहाँ रहने से किसी मुनि को उद्वेग न हो। क्योंकि उद्वेग उत्पन्न करना भी हिंसा है। यथा : उद्वेगजननं हिंसा सन्तापकरणं तथा।

मुनि तापस जिन्ह तें दुखु लहहीं। ते नरेस बिनु पावक दहहीं॥
मंगल मूल बिप्र परितोषू। दहइ कोटि कुल भूसुर रोषू॥२॥

अर्थ : मुनि तपस्वी जिनसे दुःख पाते हैं वे राजा बिना आग के जल जाते हैं। ब्राह्मण का परितोष सब मङ्गलों का मूल है और ब्राह्मण का क्रोध करोड़ों कुल को भस्म करता है।

व्याख्या : सरकार कहते हैं कि मैं अपने कल्याण के लिए पूछता हूँ। क्योंकि सब मङ्गलों का मूल ब्राह्मणों का परितोष है। क्योंकि इससे भगवान् प्रसन्न होते हैं। यथा : हरितोषणव्रत द्विज सेवकाई और ब्राह्मण के रोष से कोटि कुल भस्म हो जाता है। यथा : इंद्र कुलिस मम सूल बिसाला। कालदंड हरि चक्र कराला। जो इनकर मारा नहिं मरई। बिप्र रोष पावक सो जरई। इसलिए कहते हैं कि वह राजा बिना आग के जल जाता है।

अस जिअ जानि कहिअ सोइ ठाऊँ। सिय सौमित्रि सहित जहँ जाऊँ॥
तहँ रचि रुचिर परन तृन साला। बासु करौं कछु कालु कृपाला॥३॥

अर्थ : ऐसा मन में समझकर वह स्थान बतलाइये जहाँ सीता और लक्ष्मण के साथ मैं जाऊँ। वहाँ सुन्दर पत्ते और तृणों की कुटी बनाकर हे कृपालु ! मैं कुछ दिनों तक वहाँ निवास करूँ।

व्याख्या : स्थान पूछने के साथ ही साथ छुट्टी भी माँगते हैं कि हमलोग वहीं जाकर रहें। गृहस्थी के साथ रहना है। अतः वहाँ जलाशय आदि सभी बातों का सुपास चाहिए।

रास्ते में तो वृक्ष तले भी रह जाते थे। परन्तु वहाँ तो कुछ काल तक रहना होगा। अतः पर्णतृणशाला बनानी पड़ेगी। वनवास चौदह वर्ष के लिए है। अतः साल छः महीने तो कम से कम रहना है।

सहज सरल सुनि रघुबर बानी। साधु साधु बोले मुनि ग्यानी॥
कस न[1] कहहु अस रघुकुल केतू। तुम्ह पालक संतत श्रुति सेतू॥४॥

अर्थ : रामजी की स्वभाव से ही सरल वाणी सुनकर ज्ञानी मुनि ने साधु साधु : वाह वाह कहा। हे रघुकुल के ध्वज ! आप ऐसा क्यों न कहें। आप सदा वेद के पुल के रक्षक हो।

व्याख्या : मुनिजी कहते हैं कि वेदमार्ग का पालन तो रघुवंशियों का सहज स्वभाव है। यथा : रघुबंसिन्ह कर सहज सुभाऊ। मनु कुपंथु पगु धरहिं न काऊ। और आप तो रघुवंश के ध्वज रूप हो। आप ऐसी बात क्यों न कहें। आप श्रुति सेतु का पालन सदा सर्वदा करते हैं। ब्राह्मणत्व की ही रक्षा से वैदिक धर्म रक्षित

---

१ यहाँ सम : द्वितीय अलङ्कार है।

होता है। अतः ब्राह्मणत्व का रक्षा विधायक वाक्य जिस सरलता से आप ने कहा है वह आपके लिए स्वाभाविक है। सिवा आपके ऐसा वाक्य कौन कहे!

छं. श्रुति सेतु पालक राम तुम्ह, जगदीस माया जानकी।
जो सृजति जग पालति हरति, रुख पाइ कृपानिधान की॥
जो सहस सीसु अहीसु महिधरु, लखनु सचराचर धनी।
सुर काज धरि नरराज तनु, चले दलन खल निसिचर अनी॥

अर्थ : हे रामजी! आप वेद के पुल के रक्षा करनेवाले जगदीश हैं। जानकी माया हैं। जो कृपानिधान का रुख पाकर संसार की रचना पालन तथा संहार किया करती हैं। जो सहस्र सिरवाले सर्पराज पृथ्वी के धारण करनेवाले हैं वे ही चराचर के स्वामी लक्ष्मण जी हैं। देवताओं के कार्य के लिए नृप शरीर धारण करके खल निशाचरों की सेना के संहार के लिए चले हैं।

व्याख्या : यही आधिदैविक रामायण की कुञ्जी है। वाल्मीकिजी कहते हैं कि आप श्रुतिसेतु पालक हो। सो आवश्यकता पड़ते ही आगये। सन्तत पालक कहा था उसी को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि आप जगदीश हैं और यह जानकी आपकी माया हैं। यथा : आदि सक्ति जेहि जग उपजाया। सोउ अवतरिहि मोरि यह माया। सो आपलोग वेष बदले हुए ऐसा सुन्दर नाट्य कर रहे हैं। ये लक्ष्मणजी सहस्रशीर्षापुरुषः जाग्रत के विभु हैं। जाग्रत के आधार हैं। अतः चराचर के स्वामी हैं। ये भी मनुष्य बने हुए आपके साथ हैं। इस समय देवलोक और मनुष्यलोक से जो व्यापार चलता रहा : देवान् भावयतानेन ते देवा भावयन्तु वः। परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ। ब्रह्मदेव ने यज्ञ के साथ प्रजा की सृष्टि की और कहा कि इसी से तुम लोग देवताओं को बढ़ाओ और वे पूजित होकर तुम्हें बढ़ावें। इसी भाँति परस्पर भावना करते हुए परम कल्याण को प्राप्त हो। सो बन्द सा हो गया है। सुभ आचरन कतहुँ नहिं होई। देव बिप्र गुरु मान न कोई। द्विज भोजन मख होम सराधा। सबकै जाइ करहु तुम बाधा। इत्यादि। सो इस समय सुरकाज नरराज तन से ही हो सकता है। अतः आप लोग नरराज तन धारण करके खल निशाचरों का नाश करने चले हैं : गोस्वामीजी इस काण्ड के छन्दों में से केवल इसी में अपना नाम नहीं देते।

सो. राम सरूप तुम्हार, बचन अगोचर बुद्धि पर।
अबिगत अकथ अपार, नेति नेति नित निगम कह॥१२६[1]॥

अर्थ : हे रामजी! आपका स्वरूप वाणी का अविषय और बुद्धि के बाहर की

---

१. गोस्वामीजी का यह भी नियम है कि कोई क्रम नहीं निबहने देते। अयोध्याकाण्ड भर में पचीस के सोरठा के साथ छन्द देते हैं। पर यहाँ छब्बीसवें सोरठा के साथ दिया।

बात है। अव्यक्त है। अकथ है। अपार है। इसे नेति नेति कहकर वेद वर्णन करते हैं।

व्याख्या : लीला विग्रह कहकर परम स्वरूप कहते हैं। न तत्र चक्षुर्गच्छति न वाग् गच्छति नो मनो न विद्मो न विजानीमो यथैतदनुशिष्यादन्यदेव तद्विदिता-दथो अविदितदधि।

वेद कहता है कि न तो वहाँ दृष्टि जाती है न वाणी जाती है न मन जाता है। उसे न सामान्य रूप से जानते हैं न विशेषरूप से जानते हैं। कैसे कहें। वह जानने और न जानने दोनों से परे ही अतद्व्यावृत्ति से ही उसके विषय में कुछ कहा जा सकता है। अतः यह भी नहीं यह भी नहीं। स्थूल भी नहीं सूक्ष्म भी नहीं। इस प्रकार से वेद तुम्हारा निरूपण करता है।

जगु पेखन तुम्ह देखनिहारे। बिधि हरि संभु नचावनिहारे॥
तेउ न जानहिं मरमु तुम्हारा। औरु तुम्हहि को जाननिहारा॥१॥

अर्थ : संसार तमाशा है और तुम देखनेवाले हो और ब्रह्मा विष्णु और शिव नचानेवाले हैं। वे भी तुम्हारा मर्म नहीं जानते और तुम्हें जाननेवाला कौन है।

व्याख्या : संसार दृश्य होने से जड़ है। तुम द्रष्टा होने से चिद्रूप हो। विधि हरि शम्भु संसार की सृष्टि पालन और संहार करनेवाले तुम से ही बल पाकर अपने अपने कार्य में समर्थ हैं। यथा : जाके बल बिरंचि हरि ईसा। पालत सृजत हरत दससीसा। वे भी तुम्हारे मर्म को नहीं जानते। यथा : पालन सुर धरनी अद्भुत करनी मर्म न जानइ कोई। मया ततमिदं सर्वं जगदव्यक्तमूर्तिना। मत्स्थानि सर्व-भूतानि न चाहं तेष्ववस्थितः। न च मत्स्थानि भूतानि पश्य मे योगमैश्वरम्। भूतभृन्नच भूतस्थो ममात्मा भूतभावनः। भगवद्गीता में भगवान् कहते हैं कि मुझसे यह जगत् परिपूर्ण है। सब भूत मेरे में स्थित हैं। मैं उनमें स्थित नहीं हूँ और वे सब भूत मेरे में स्थित नहीं हैं। मेरे ऐश्वर योग को देख। भूतों को उत्पन्न करनेवाली मेरी आत्मा भूतों में स्थित नहीं है। मर्म का जानना ही वस्तुतः जानना है। अतः कहना होगा कि कोई तुम्हें नहीं जानता। यथा : न मे विदुः सुरगणा। प्रभवं न महर्षयः। गीतायाम्।

सोइ जानइ जेहि देहु जनाई। जानत तुम्हहि तुम्हइ होइ जाई॥
तुम्हरिहि कृपा तुम्हहि रघुनंदन। जानहिं भगत भगत उर चंदन॥२॥

अर्थ : जिसे तुम जना देते हो वही तुम्हें जानता है और तुमको जानते ही तुम्हीं हो जाता है। हे रघुनन्दन! तुम्हारी कृपा से हे भक्त उर चन्दन! तुम्हें भक्त जानते हैं।

व्याख्या : भगवद्गीता में भगवान् कहते हैं। भक्त्या मामभिजानाति यावान् यश्चास्मि तत्त्वतः। भक्ति से मुझे जानता है कि तत्त्वतः मैं क्या हूँ और कितना हूँ और : ब्रह्मवेद ब्रह्मैव भवति। ब्रह्म को जाननेवाला ब्रह्म ही हो जाता है। यमेष वृणुते

तेन लभ्यः। जिसे वह वरण करता है। उसी से वह प्राप्य है। अर्थात् तुम्हें जानना कृपा साध्य है। क्रिया साध्य नहीं है। भजन करनेवाले पर भगवान् कृपा करते हैं। निर्गलितार्थ यह है कि भजन करने से भगवान् प्रसन्न होते हैं और भक्त को अपना ज्ञान करा देते हैं और ज्ञान हो जाने पर भक्त भगवन्त में भेद नहीं रह जाता। यथा : भक्ति भक्त भगवंत गुरु चतुर नाम वपु एक।

चिदानंदमय देह तुम्हारी। बिगत बिकार जान अधिकारी॥
नर तनु धरेहु संत सुर काजा। कहहु करहु जस प्राकृत राजा॥३॥

अर्थ : तुम्हारी देह चित् आनन्दमय है। विकार से रहित है। इसे अधिकारी लोग जानते हैं। सन्त और देवताओं के लिए मनुष्य शरीर धारण कर रक्खा है। सांसारिक राजाओं की भाँति कहते हो और करते हो।

व्याख्या : सबके देह में और तुम्हारे देह में बड़ा अन्तर है। तुम में देह देही भेद नहीं है। चिदान्दमय लीलाविग्रह है। यथा : आनन्दमात्रकरपादमुखोदरादिः। मायागुणाननुगतो हि तथा विभाति। माया के गुणों का अनुसरग करता हुआ वैसा ही मालूम होता है। वस्तुतस्तु अविकारी हैं। इसीलिए गोता में कहा है कि जन्म कर्म च मे दिव्यम्। मेरा जन्म कर्म दिव्य है।

कर्मवश होकर तुमने देह धारण नहीं किया है। भक्त भूमि भूसुर सुरभि सुरहित लागि कृपाल। करत चरित धरि मनुज तन सुनत मिटहिं जग जाल।

राम देखि सुनि चरित तुम्हारे। जड़ मोहहिं बुध होहिं सुखारे॥
तुम्ह जो कहहु करहु सबु साचा। जस काछिअ तस चाहिअ नाचा॥४॥

अर्थ : हे रामजी! तुम्हारे चरित्र को देख सुनकर मूर्खों को मोह होता है और पडित सुखी होते हैं। तुम जो कहते हो और करते हो सो सब सत्य है। क्योंकि जैसा काछ काछे वैसा ही नाच नाचना चाहिए।

व्याख्या : अवजानन्ति मां मूढ़ा मानुषीतनुमाश्रितम्। परं भावमजानन्तो मम लोकमहेश्वरम्। भगद्गीता में भगवान् ने कहा है कि मूढ लोग मुझ मनुष्य शरीर धारण करनेवाले की अवज्ञा करते हैं। मेरे परम भाव को नहीं जानते कि मैं लोक का महेश्वर हूँ। मनुष्य की भाँति चरित देखकर और सुनकर मूढों को विपरीत ज्ञान होता है कि ये भी मनुष्य हैं। प्रभु के परम भाव को तो पण्डित जानते हैं कि लोक महेश्वर होकर कैसी मनुष्य लीला करते हैं। अतः वे सुखी होते हैं। यथा : उमा राम गुन गूढ़ पंडति मुनि पावहिं बिरति। पावहिं मोह बिमूढ़ जे हरि बिमुख न धर्म रति।

यथा अनेक बेष धरि नृत्य करै नट कोइ। सोइ सोइ भाव देखावै आपुन होइ न सोइ। नाटय में जो कुछ कहा या किया जाता है वह वस्तु स्थित न होने पर भी रंगमञ्च के लिए सच्चा है। क्योंकि जैसा वेष धारण करे वैसा ही अभिनय करने का नियम है।

दो. पुछेहु मोहि कि रहौं कहँ, मैं पूछत सकुचाउँ।
जहँ न होहु तहँ देहु कहि, तुम्हहिं देखावउँ ठाँउ ॥१२७॥

अर्थ : मुझसे पूछते हो कि कहाँ रहूँ और मैं पूछते हुए सङ्कोच करता हूँ कि जहाँ तुम न हो वह स्थान मुझे बतला दो तो वही स्थान मैं तुम्हें दिखा दूँ।

व्याख्या : अब जहँ राउर आयसु होई का उत्तर देते हैं कि तुमने तो सङ्कोच नहीं किया। वेषानुसार ठीक ठीक अभिनय कर दिया। पर मुझे सङ्कोच लगता है। मैं भी वैसा ही तुम्हें कैसे मान लूँ मैं तो जानता हूँ कि तुम सर्वव्यापक हो। अतः तुम्हारे प्रश्न का ठीक उत्तर तो यही है कि पहले यह बतलाओ कि तुम कहाँ नहीं हो। तब मैं कह दूँ कि वहीं रहो।

यह स्तुति पुष्य नक्षत्र है। तीन तारे यहाँ राम लक्ष्मण जानकीजी हैं। इन्हीं की चमक दिखायी पड़ती है। यहाँ ब्रह्म : राम लक्ष्य का वेध हुआ। अतः शर की आकृति माना। इसकी फलश्रुति है : समन पाप संताप सोक के। सो : जानत तुम्हहि तुम्हहि होइ जाई से सन्ताप शोक का शमन कहा।

सुनि मुनि बचन प्रेम रस साने। सकुचि राम मन महुँ मुसुकाने ॥
बालमीकि हँसि कहहिं बहोरी। बानी मधुर अमिअ रस बोरी ॥१॥

अर्थ : मुनिजी के वचन सुनकर रामजी सकुचे और मन ही मन मुसकुराये। वाल्मीकिजी फिर हँसकर मीठी वाणी अमृत रस से भिगोयी हुई बोले।

व्याख्या : सरकार में शील की पराकाष्ठा है। जब मुनि लोग सहज स्वरूप कथा का वर्णन करने लगते हैं तो सरकार को सङ्कोच होता है। मुनिजी की इस उक्ति पर : जहँ न होउ तहँ देउ कहि तुम्हहि देखावउँ ठाँउ : सरकार मुसकुराये। मुनिजी के गौरव से प्रकट नहीं मुसकराये। अतः कहते हैं : मन महु मुसुकाने।

सरकार ने माधुर्य में प्रश्न किया। वाल्मीकिजी ऐश्वर्य में उत्तर देते हैं। उसी बात को और भी बढ़ाते हुए बहुत कुछ कहेंगे। इसलिए हँस रहे हैं। भक्ति से पूर्ण वाणी है। इसलिए मधुर और अमिअ रस बोरी कहा। मिठास तो भक्ति में ही है।

सुनहु राम अब कहउँ निकेता। जहाँ बसहु सिय लखन समेता ॥
जिन्ह के श्रवन समुद्र समाना। कथा तुम्हारि सुभग सरि नाना ॥२॥

अर्थ : रामजी सुनो ! अब मैं घर बतलाता हूँ। जहाँ तुम सीता और लक्ष्मण के साथ बसो। जिनके कान समुद्र के समान हैं और तुम्हारी कथाएँ सुन्दर नदियाँ हैं।

व्याख्या : आपने कहा : अस जिय जानि कहिअ सोइ ठाऊँ। सिय सौमित्र सहित जहँ जाऊँ। तहँ रचि रुचिर परन तृन साला। बास करौं कछु काल कृपाला। सो पर्णशाला में क्यों रहोगे। मैं तुम्हें घर बतलाता हूँ और ऐसा विस्तृत घर जहाँ तीन मूर्ति रह सको। यहाँ भगवान् वाल्मीकि ने घर के व्याज से पूरी रामायण कही।

रामायण का अर्थ हा यह है : रामस्य अयनम् रामायणम्। रामजी का घर ही रामायण है। ग्रन्थ का नाम रामायण इसलिए है कि इसमें रामजी ही प्रतिपाद्य हैं। यथा : जेहि मह आदि मध्य अवसाना। प्रभु प्रतिपाद्य राम भगवाना।

वस्तुतस्तु भगवान् की कथा और भागवत की कथा में भेद नहीं है। भागवत की कथा में सिवा भगवत् कथा के और कुछ होता ही नहीं। इसी भाँति भगवान् की कथा में भक्त की कथा रहती है। भगवान् वाल्मीकि ने यहाँ भक्त की कथा कहते हुए भगवान् की कथा अर्थात् पूरी रामायण कही है। अब बालकाण्ड के पूर्वार्ध के भक्तों के लिए कहते हैं। इसमें उमा और भरद्वाज मुख्य श्रोता हैं। इनकी कथा पूर्वार्ध में है। ऐसे ही भक्तों को लक्ष्य करके कहा गया है कि जिनके कान समुद्र के समान हैं। समुद्र में स्वयं अपार जल भरा है। फिर भी १८०० नदियाँ इसमें अनवरत जल उड़ेला करती हैं और समुद्र सब को ग्रहण करता है। इसी भाँति श्रोता का हृदय राम कथा से पूर्ण है। फिर भी उसे कथा श्रवण से तृप्ति नहीं।

भरहिं निरंतर होहिं न पूरे। तिन्हके हिय तुम्ह कहुँ गृह रूरे॥
लोचन चातक जिन्ह करि राखे। रहहिं दरस जलधर अभिलाखे॥३॥

अर्थ : दिन रात उन्हें भरती हैं किन्तु पूरे नहीं होते। उनके हृदय में तुम्हारे लिए सुन्दर घर है। जिन्होंने अपनी आँखों को पपीहा बनाकर रक्खा है और मेघरूपी आपके दर्शन के लिए लालायित रहते हैं।

व्याख्या : इतने जल के ग्रहण से भी समुद्र भर नहीं उठता। इसी भाँति जा श्रोता कथा श्रवण से ऊबता नहीं सुनता ही जाता है उसके हृदय में तुम्हारे लिए सुन्दर घर है। उमा ने कहा : नाथ तवानन संसि स्रवत कथा सुधा रघुबीर। श्रवन पुटन्ह मन पान करि नहि अघात मतिधीर। इसी भाँति भरद्वाज भी नहीं अघाते। यथा : संभु चरित सुनि सरस सुहावा। भरद्वाज मुनि अति सुख पावा। बहु लालसा कथा पर बाढ़ी। नयनन्हि नीर रोमावलि ठाढ़ी।

बालकाण्ड के उत्तरार्ध के भक्त रूप के प्रेमी हैं। अतः उन्हें चातक कहा। चातक का नेम अटल है। वह मेघ से ही माँगता है। मेघ का दर्शन चाहता है। बूँद पान करता है। संसार में समुद्र भरा है। नदी तालाब जल से भरे हैं। पर चातक के लिए कुछ नहीं। इस प्रकार के भक्त मनु सतरूपा हैं। यथा : उर अभिलाष निरंतर होई। देखिय नयन परम प्रभु सोई। जो भुसुंडि मनमानस हंसा। सगुन अगुन जेहि निगम प्रसंसा। इत्यादि।

निदरहिं सरित सिंधु सर भारी। रूप बिंदु जल होहिं सुखारी॥
तिन्ह के हृदय सदन सुखदायक। बसहु बंधु सिय सह रघुनायक॥४॥

अर्थ : नदी समुद्र और तालाब के जल का निरादर करते हैं। रूप बिन्दु जल से ही सुखी होते हैं। उनका हृदय सुखदायक घर है। उसमें भाई और सीताजी के सहित हे रघुनायक ! तुम रहो।

व्याख्या : ऊपर मनु सतरूपा का चातक की भाँति राम श्यामघन के दर्शन की लालसा कहा। यहाँ : निदरहिं सरित सिन्धु सर बारी का मिलान कहते हैं। पानी का खजाना तो सरित सिन्धु और सर ही हैं। इसी भाँति सबके ध्येय ज्ञेय और आराध्य विधि हरिहर हैं। सो : बिधि हरिहर तप देखि अपारा। मनु समीप आये बहु बारा। माँगहु बर बहु भाँति लोभाये। परम धीर नहिं चलहिं चलाये। अन्त में प्रभु के रूप बिन्दु को पाकर हो कृतकृत्य हुए। ये ही दशरथ कौसल्या हुए। जनकजी की भी वही गति है। कहते हैं : इन्हहि बिलोकत अति अनुरागा। बरबस ब्रह्म सुखहि मन त्यागा। जानकीजी भी रूप बिन्दु से ही आनन्दित हैं। यथा : जनु चातकी पाइ जल स्वाती। जनक दूत : देव देखि तव बालक दोऊ। अब न आँखि तर आवत कोऊ। माता लोग : जे दिन गये तुमहिं बिनु देखे। ते बिरंचि नहिं पारहिं लेखे। चक्रवर्तीजी यथा : सुत हिअ लाइ दुसह दुःख मेटे। मृतक सरीर प्रान जनु भेटे। इस भाँति उत्तरार्ध ऐसे भक्तों से ही भरा पड़ा है।

ऐसे भक्तों का हृदय आपके लिए सुखदायक घर है। यहाँ आवभगत बराबर होती रहेगी। यहाँ भाई और सीताजी के साथ रहो। राम बाम दिसि जानकी लखन दाहिनी ओर। ध्यान सकल कल्यानमय सुरतरु तुलसी तोर।

दो. जस तुम्हार मानस बिमल, हंसिनि जीहा जासु।
मुकुताहल गुन गन चुनइ, राम बसहु हिय तासु ॥१२८॥

अर्थ : तुम्हारे यश रूपी निर्मल मानससरोवर में जिसकी जीभ हंसिनी रूपा है तुम्हारे गुणगण रूपी मुक्ताफल को चुना करती है। हे रामजी ! उसके हृदय में बसो।

व्याख्या : अयोध्याकाण्ड के पूर्वार्ध के भक्त हैं अवध निवासी। ये दिन रात रामजी का गुणगान करते हैं। महाराज दशरथ को सब समाचार दूतों द्वारा लगा करता है। यथा : रामरूप गुन सीलु सुभाऊ। प्रमुदित होइ देखि सुनि राऊ। सबकें उर अभिलाषु अस कहहिं मनाइ महेसु। आपु अछत युबराज पदु रामहि देउ नरेसु। को रघुबीर सरिस संसारा। सील सनेह निबाह निहारा। इन्हीं लोगों की जिह्वा हँसी है जो रामयश मानस में विचरती हुई गुणगण रूपी मुक्ताफल चुना करती है। यथा : जहँ तहँ नर रघुपति गुन गावहिं। बैठि परसपर इहै सिखावहिं। भजहु प्रनत प्रतिपालक रामहि इत्यादि। वाल्मीकिजी कहते हैं कि ये आपका ही गुणगान करते हैं। अतः इनके हृदय में बसने में आपकी ही प्रधानता है।

प्रभु प्रसाद सुचि सुभग सुबासा। सादर जासु लहइ नित नासा ॥
तुम्हहि निवेदित भोजनु करहीं। प्रभु प्रसाद पटु भूषन धरहीं ॥१॥

अर्थ : जिसकी नाक प्रभु के सुन्दर पवित्र प्रसाद के सुगन्ध को आदर के साथ लेती है और जो तुमको अर्पण करके भोजन करते हैं और प्रभु का प्रसाद वस्त्र और भूषण धारण करते हैं।

व्याख्या : जिन्होंने अपनी ज्ञानेन्द्रियों तथा मन को आप में ही लगा रक्खा है। १. सरकार के प्रसाद का पवित्र और सुन्दर सुगन्ध से जिसकी घ्राणेन्द्रिय नित्य तृप्त हुआ करती हैं अर्थात् जो बड़े आदर के साथ उस तुलसीयुक्त प्रसाद के गन्ध को ग्रहण करते हैं और जो आपके नैवेद्य का ही भोजन करते हैं अनिवेदित पदार्थ का ग्रहण नहीं करते हैं। यथा : यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्विषैः। भुञ्जते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात् और २. गहना कपड़ा भी सरकार को चढ़ाने के बाद ही धारण करते हैं। अर्थात् यज्ञशिष्ट पदार्थ को ही अपने उपभोग में लाते हैं। एवम् अपने ज्ञानेन्द्रियों को सरकार में ही लगाये हुए हैं।

सीस नवहिं सुर गुरु द्विज देखी। प्रीति सहित करि बिनय बिसेखी ॥
कर नित करहिं राम पद पूजा। राम भरोसे हृदय नहिं दूजा ॥२॥

अर्थ : देवता गुरु और ब्राह्मण को देखकर प्रीति के सहित विशेष विनय करके जिनके मस्तक झुक जाते हैं। जो नित्य हाथों से रामजी के चरणों की पूजा करते हैं। जिनके हृदय में रामजी का ही भरोसा है दूसरे का नहीं।

व्याख्या : देवता गुरु और ब्राह्मण प्रभु की अपरमूर्ति हैं। ३. जो इन्हें देखकर मनसा वाचा कर्मणा प्रणत होते हैं। प्रीति से मनसा विनय बिसेखी से वाचा तथा सीस नवहिं से कर्मणा प्रणाम कहा। ४. हाथों से रामजी के चरणों की पूजा नित्य करते हैं। इसभाँति कर्मेन्द्रियों को सफल करते हैं। ५. मन में राम का ही भरोसा रखते हैं दूसरे किसी का नहीं। यथा : बनै सो रघुबर से बनै या बिगरै भरिपूरि। तुलसी बनै जो और ते ता बनिबे मँह धूरि।

चरन राम तीरथ चलि जाहीं। राम बसहु तिन्ह के मन माहीं ॥
मन्त्रराजु नित जपहिं तुम्हारा। पूजहिं तुम्हहि सहित परिवारा ॥३॥

अर्थ : ६. जिसके पैर रामजी के तीर्थों में चले जाते हैं। हे रामजी ! तुम उनके मन में बसो। १. जो तुम्हारे मन्त्रराज का नित्य जप करते हैं और २. परिवार के सहित तुम्हारा पूजन करते हैं।

व्याख्या : अयोध्याकाण्ड के उत्तरार्ध में ऐसे भक्त भरतजी हैं। १. प्रसाद : अग्या सम न सुसाहिब सेवा। सो प्रसादु जन पावइ देवा। सरकार के प्रवास से अन्य प्रसादों से वञ्चित हो रहे हैं। अतः मुख्य प्रसाद के लिए प्रार्थना करते हैं। २. निवेदित भोजन। यथा : जात पयादे खात फल पिता दीन्ह तजि राज। जात मनावन रघुपतिहिं भरत सरिस को आज। क्योंकि भरतजी फलादि ही नैवेद्य लगा सकते हैं। ३. सीस नवहि सुर गुरु द्विज देखी। यथा : करि प्रनाम पूछहिं जेहि तेही। तथा : कतहुँ निमज्जन कतहुँ प्रनामा। ४. रामपद पूजा। यथा : नित पूजहिं प्रभु पाँवरी प्रीति न हृदय समाति। ५. राम भरोस। यथा : आपन जानि न त्यागिहैं मोहि रघुबीर भरोस ६. रामतीर्थ सेवन। यथा। चले राम बन अटन पयादे।

अब आरण्यकाण्ड के पूर्वार्ध के भक्त मुनियों के लिए कहते हैं। ये दीक्षित

लोग हैं। मन्त्रराज षडक्षर राम मन्त्र का जप करते हैं। वेदविधि से परिवार के साथ पूजन करते हैं। जप एकाकी होकर करते हैं। पूजन कुटुम्ब के साथ करते हैं।

तरपन होम करहिं बिधि नाना। बिप्र जेवाइ देहिं बहु दाना ॥
तुम्ह ते अधिक गुरहि जिअ जानी। सकल भाय सेवहिं सनमानी ॥४॥

अर्थ : जो लोग नाना विधि से तर्पण और होम करते हैं, ब्राह्मणों को भोजन कराते हैं और बहुत दान करते हैं, जो तुमसे भी अधिक गुरुजी को मन से जानकर सब भाव से सम्मान करके उनकी सेवा करते हैं।

व्याख्या : जप के दशांश का होम करते हैं और उसके भी दशांश का तर्पण करते हैं और उसके भी दशांश का ब्राह्मण भोजन करते हैं। इसीलिए यहाँ तीनों का उल्लेख है। अर्थात् जप का साङ्गोपाङ्ग अनुष्ठान करते हैं। इसके अतिरिक्त पितृ तर्पण देव होमादि कराते हैं।

गुरुदेव की पूजा सत्कार जो लोग भगवद्विग्रह से भी अधिक करते हैं। पूजन के समय यदि दैवात् गुरुजी का आगमन हो जाय तो भगवद्विग्रह की पूजा वहीं समाप्त करके शेष पूजन गुरुदेव का करना चाहिए। अर्थात् यदि चन्दन भगवद् विग्रह पर अर्पण कर चुका हो तो गुरु के आगमनोपरान्त तुलसीदल गुरुदेव पर ही चढ़ेगा। गुरु गोविंद दोनों खड़े काके लागू पाँय। बलिहारी उन गुरु की जिन गोविंद दान्ह दिखाय।

दो. सबु करि मागहिं एक फलु, राम चरन रति होउ।
तिन्ह कें मन मंदिर बसहु, सिय रघुनंदन दोउ ॥१२९॥

अर्थ : सब अनुष्ठान करके एक ही फल माँगते हैं कि रामजी के चरणों में प्रेम हो। ऐसे के मन मन्दिर में सीता और दोनों रघुनन्दन बसो।

व्याख्या : उपर्युक्त अनुष्ठान किसी अन्य कामना से नहीं करते। उनको एक मात्र भक्ति की ही कामना रहती है। सीताजी और दोनों रघुनन्दन राम लक्ष्मण तीनों मूर्ति के हृदय में बसने का कारण यह है कि उपासक ने परिवार सहित उपासना की थी। अतः परिवार : स्त्री और भाई सहित हृदय में बसने को कहते हैं : ऐसे भक्त आरण्य काण्ड के पूर्वार्ध में मुनिगण हैं।

१. मन्त्रराज का जप यथा : निसिदिनु देव जपत हहु जेही।
२. परिवार सहित पूजन यथा : भजे ससक्ति सानुज।
३. गुरुसेवा यथा : गुरुपद पंकज सेवा तीसरि भगति अमान।
४. रामचरनरति यथा : जोगजग्य जप तप जत कीन्हा।
प्रभु कहँ देइ भगति बर लीन्हा।

काम कोह मद मान न मोहा। लोभ न छोभ न राग न द्रोहा ॥
जिन्ह के कपट दम्भ नहि माया। तिन्ह कें हृदय बसहु रघुराया ॥१॥

अर्थ : जिनके हृदय में १. न काम है २. न क्रोध है ३. न भेद है ४. न मान है ५. न मोह है ६. न लोभ है ७. न क्षोभ है ८. न राग है ९. न द्वेष है १०. न कपट है ११. न दम्भ है १२. न माया है हे रघुराज ! तुम उनके हृदय में बसो।

व्याख्या : काम क्रोधादि सभी मानस रोग हैं। जिनका वर्णन उत्तरकाण्ड के अन्त में किया गया है। ये सदा जीव को पीड़ा पहुँचाया करते हैं। अतः उसे समाधि की प्राप्ति नहीं होती। जब मन इनसे रहित हो तब नैर्मल्य को प्राप्त होकर स्वस्थ होता है। उसी के लिए कहा गया है : निर्मल मन जन सो मोहि पावा। मोहि कपट छल छिद्र न भावा।

इस प्रकार के भक्त आरण्यकाण्ड के उत्तरार्ध में नारदजी हैं।

१. कामाभाव	यथा :	कामकला कछु मुनिहि न व्यापी।
२. क्रोधाभाव	यथा :	भयउ न नारद मन कछु रोषा।
३४. मद मानाभाव	यथा :	मोर सापकरि अंगीकारा।
		सहत राम नाना दुःख भारा।
		ऐसे प्रभुहि विलोकउँ जाई।
५. मोह मायाभाव	यथा :	साँचहुँ इनके मोह न माया।
६. लोभाभाव	यथा :	रामसकल नामन ते अधिका।
		होहु नाथ अघ खग गन वधिका।
७. क्षोभाभाव	यथा :	मुनिगति देखि सुरेस डेराना।
८९. रागद्वेषाभाव	यथा :	उदासीन धन धाम न जाया।
१०. कपटाभाव	यथा :	तब बिबाह मैं चाहौं कीन्हा।
		प्रभु केहि कारन करै न दीन्हा।
११. दम्भाभाव	यथा :	निरखि सैल सरि बिपिन बिभागा।
		भयउ रमापति पद अनुरागा।
१२. मायाराहित्य	यथा :	सहज बिकल मन लागि समाधी।

सब के प्रिय सब के हितकारी। दुख सुख सरिस प्रसंसा गारी ॥
कहहिं सत्य प्रिय बचन बिचारी। जागत सोवत सरन तुम्हारी ॥२॥

अर्थ : जो सबको प्रिय है। सबके हित करनेवाले हैं। दुःख सुख प्रशंसा और गाली जिन्हें समान हैं। सत्य और प्रिय वचन विचार पूर्वक बोलते हैं। जो जागते और सोते तुम्हारे शरण हैं।

व्याख्या : सबके प्रिय होने का कारण सबका हितकारी होना है। हितकारी ही प्रिय होता है। दुःख और सुख को समान मानना धीर का लक्षण है। यथा : सुख हरषहिं जड़ दुःख बिलखाहीं। दोउ सम धीर धरहिं मन माहीं। जिनको सरकार के चरणों में ममता होती है वे ही प्रशंसा गाली के समान मानने में समर्थ होते हैं। यथा : स्तुति निंदा उभय सम ममता मम पदकंज। विचार पूर्वक सत्य

प्रिय वचन बोलने की शास्त्राज्ञा है। यथा : सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात् न ब्रूयात् सत्यमप्रियम्। प्रियञ्च नानृतं ब्रूयादेषधर्मः सनातनः। जीव का भगवत् शरण जाना ही सबसे बड़ा पुरुषार्थ है। गीता में स्वयं भगवान् ने कहा है : सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज। जाग्रत में ऐसी भावना दृढ़ हो गयी है कि स्वप्न में भी शरणागत ही रहते हैं।

ऐसे भक्त किष्किन्धाकाण्ड के पूर्वार्ध में सुग्रीवजी हैं। इनका सर्वप्रिय होना इसी से सिद्ध है कि इनको लोगों ने इनके न चाहने पर भी राजा बनाया। यथा : दीन्हेंउ मोहि राज बरिआई। ये सबके हितकारी थे। बालि का भी इन्होंने हित ही चाहा। यथा : बालि परम हित जासु प्रसादा। मिलेहु राम तुम समन बिषादा। इन्हें दुःख सुख प्रशंसा गाली भी समान ही थी। यथा : सत्रु मित्र सुख दुःख जग माँही। मायाकृत परमारथ नाँहीं। ये सत्य और प्रिय वचन विचार पूर्वक बोलते थे। यथा : विषयवस्य सुर नर मुनि स्वामी। मैं पावँर पसु कपि अतिकामी। शरणागत तो ये सदा से ही थे। हनुमानजी कहते हैं : सो सुग्रीव दास तव अहई।

तुम्हहि छाड़ि गति दूसरि नाहीं। राम बसहु तिन्ह के मन माहीं॥
जननी सम जानहिं पर नारी। धनु पराव बिष तें बिष भारी॥३॥

अर्थ : जिन्हें तुम्हें छोड़कर दूसरी गति नहीं है। हे रामजी ! तुम उनके मन में बसो जो परायी स्त्री को माँ के समान जानते हैं। पराये धन को विष से भी भारी विष मानते हैं।

व्याख्या : सरकार को छोड़कर सुग्रीवजी को दूसरी गति नहीं थी। यथा : सुनि सुग्रीव परम भय माना। ऐसे भक्तों के हृदय में रामजी तुम बसो। भाव यह कि जो एकाकी तुम्हें भजता है उसके हृदय में एकाकी बसो और जिसकी भावना सस्त्रीक सानुज में हो उसके हृदय में सस्त्रीक सानुज बसो।

मातृवत् परदारेषु परद्रव्येषु लोष्टवत्। आत्मवत्सर्वभूतेषु यः पश्यति स पश्यति। अनुवाद में उत्कर्ष और भी बढ़ गया। पर द्रव्य को लोष्ट : ढेला नहीं विष से भी अधिक विष बतलाया गया। यह पच नहीं सकता। प्राण हरण करेगा। पुत्र पौत्र को भी अनिष्टकर होगा।

जे [1]हरषहिं पर संपति देखी। दुखित होहिं पर बिपत बिसेखी॥
जिन्हहिं राम तुम्ह प्रान पिआरे। जिन्ह के मन सुभ सदन तुम्हारे॥४॥

अर्थ : जो दूसरे की सम्पत्ति देखकर प्रसन्न होते हैं और दूसरे की विपत्ति देखकर दुःखी होते हैं। जिनको रामजी तुम प्राण के समान प्यारे हो। उनके मन तुम्हारे लिए मङ्गलमय घर हैं।

व्याख्या : पर सम्पत्ति से हर्ष, पर विपत्ति से विशेष दुःख, अपने सुख दुःख में

---

१. यहाँ उल्लास अलङ्कार है।

उतना हर्ष विषाद नहीं। यहाँ अनुवाद मूल से अधिक जोरदार : उत्कर्षयुक्त हो गया। इनका हर्ष और दुःख भी अलौकिक हो गया। अपना सुख दुःख वैसा कार्य नहीं करता।

पुत्र कलत्र प्राण प्यारे नहीं। तुम जिसे प्राण प्यारे हो अथवा अन्य देव भी मान्य हैं पर प्राण प्यारे तो तुम्हीं हो। अतः उनका मन तुम्हारे शुभ सदन हैं।

ये किष्किन्धाकाण्ड के उत्तरार्ध के भक्त वानरवीर हैं जो सीताजी की खोज के लिए दक्षिण दक्षिण भेजे गये थे। जननी सम जानहि पर नारी। यथा : मंदिर एक रुचिर तहँ बैठि नारि तप पुंज। दूरि ते ताहि सबन्हि सिर नावा। धन पराव बिष ते बिष भारी। भूख प्यास से मर रहे थे। पर बिना मालिक की आज्ञा के पानी तक न ग्रहण किया। यथा : तेहि तब कहा करहु जलपाना। खाहु सुरस सुंदर फल नाना। पर सम्पत्ति से हर्षं यथा : धन्य जटायू सम कोउ नाँहीं। पर दुःख से दुःखी यथा : अस कहि लवन सिंधु तट जाई। बैठे कपि सब दर्भ डसाई। राम तुम प्रानपियारे यथा : राम काज लयलीन मन बिसरा तन कर छोह।

दो. स्वामि सखा पितु मातु गुरु, जिन्ह के सब तुम्ह तात।
मन मंदिर तिन्ह के बसहु, सीय सहित दोउ भ्रात ॥१३०॥

अर्थ : हे तात ! जिनके तुम स्वामी सखा माता और गुरु सब कुछ तुम ही हो उसके मन मन्दिर में सीता सहित दोनों भाई बसो।

व्याख्या : जननी जनक बंधु सुत दारा। तनु धनु भवन सुहृद परिवारा। सबकै ममता ताग बटोरी। मम पद मनहि बाँध बर डोरी। सब भाव से जो सरकार की ही उपासना करता है। सब नाता उन्हीं से जोड़े हुए हैं। अतः वर्तमान सभी सम्बन्धी स्त्री और भाई सहित उसके मन मन्दिर में वास करो।

ऐसे भक्त सुन्दरकाण्ड के प्रारम्भ में हनुमानजी हैं। सरकार को ही स्वामी और पितु मातु मानते हैं। यथा : सेवक सुत पति मातु भरोसे। रहइ असोच बनै प्रभु पोसे। सरकार इन्हें सखा मानते हैं। यथा : ये सब सखा सुनहु मुनि मोरे। भये समर सागर कहँ बेरे। शिष्य होकर स्वयं हनुमानजी ने सरकार से प्रश्न किया था। यथा : तापर मैं रघुबीर दोहाई। जानहुँ नहि कछु भजन उपाई।

अवगुन तजि सबके गुन गहहीं। बिप्र धेनु हित संकट सहहीं ॥
नीति निपुन जिन्ह कइ जग लीका। घर तुम्हार तिन्ह कर मनु नीका ॥१॥

अर्थ : १. जो अवगुणों को छोड़कर सबके गुणों को ग्रहण करते हैं। २. ब्राह्मण और गायों के लिए संकट सहते हैं। ३. नीति निपुण होने की संसार में जिनकी थाप है। उनका सुन्दर मन तुम्हारा घर है।

व्याख्या : जिनका स्वभाव हंस सा है। अवगुणरूपी जल का त्याग करके गुणरूपी दुग्ध का ग्रहण करते हैं। यथा : संत हंस गुण गहहिं पय परिहरि बारि बिकार। विप्र धेनु यज्ञ के साधक हैं। विप्र में मन्त्र और गाय में हवि प्रतिष्ठित है।

इनकी रक्षा होनी ही चाहिए। अतः इनके लिए जो संकट सहते हैं। जो नीति में निपुण हैं। जिन्हें अनीति अच्छी नहीं लगती। ऐसे उत्तम हृदयवाले मनुष्य का हृदय तुम्हारा घर है। सरकार को नीति विरोध अच्छा नहीं लगता। यथा : नीति बिरोध सोहाइ न मोहीं। अतः मुनिजी नीति निपुण के हृदय में उन्हें बसने के लिए कहते हैं।

ऐसे भक्त सुन्दरकाण्ड के उत्तरार्ध में विभीषणजी हैं। १. अवगुन तजि सबके गुन गहहीं। यथा : सुनहु पवन सुत रहनि हमारी। जिमि दसनन्हि महँ जीभ बिचारी २. विप्र धेनु हित यथा : बिप्र रूप धरि बचन सुनाये। सुनत बिभीषनु उठि तहँ आये इत्यादि। ३. नीति निपुन यथा : मैं जानौ तुम्हारि सब रीती। अति नय निपुन न भाव अनीती।

गुन तुम्हार समुझाइ निज दोसा। जेहि सब भाँति तुम्हार भरोसा ॥
राम भगत प्रिय लागहिं जेही। तेहि उर बसहु सहित बैदेही ॥२॥

अर्थ : १. जो गुण तो तुम्हारा और दोष अपना समझता है। २. जिसे सब भाँति से तुम्हारा भरोसा है। जिसको रामजी के भक्त प्यारे लगते हैं। उसके हृदय में वैदेही सहित वास करो।

व्याख्या : संसार में उलटी बात है। जो बन जाय सो तो मैंने बनाया। बिगड़ जाय तो राम ने बिगाड़ा। यहाँ : गुन तुम्हार समुझै निज दोसा। संसार में धन जन परिजन गुण चतुराई का भरोसा रहता है। पर यहाँ तो सब भाँति राम का भरोसा है। राम का प्रिय लगना नहीं कहते पर भक्त प्रिय लगैं। अर्थात् भक्ति पर विशेष श्रद्धा है। यथा : पुनि रघुबीरहिं भगति पियारी। अतः वैदेही सहित बसने को वाल्मीकिजी ने कहा।

इस प्रकार के भक्त लङ्काकाण्ड के पूर्वार्ध में समुद्रजी हैं। १. गुन तुम्हार समुझैं निज दोषा। यथा : छमहु देव सब अवगुन मोरे। प्रभु भल कीन्हि मोहि सिख दीन्हीं। २. जेहि सब भाँति तुम्हार भरोसा। यथा : प्रभु प्रताप मैं जाब सुखाई। उतरिहि कटकु न मोरि बड़ाई। ३. रामभक्त प्रिय। यथा : जल निधि रघुपति दूत बिचारी। तैं मैनाक होहिं श्रम हारी।

जाति पाँति धनु धरमु बड़ाई। प्रिय परिवार सदनु सुखदाई ॥
सब तजि तुम्हहि रहइ उर लाई। तेहि के हृदय रहहु रघुराई ॥३॥

अर्थ : जाति, पाँति, धन, धर्म, बड़ाई प्रिय परिवार सुखदाई घर सब छोड़कर जो तुम्हारे में लौ लगाये रहता है हे रघुराई ! तुम उसके हृदय में रहो।

व्याख्या : जाति पांति धन धर्म बड़ाई ये पाँच स्थान प्रतिष्ठा के हैं और परिवार तथा घर दो सुख के हैं। सो सबों को छोड़कर मन की वृत्तियों को तुम्हारे में लगावे उसके हृदय में रहो। वह अकेला है और अकेले तुम्हीं में लौ भी लगाये है। अतः अकेले आप भी रहो।

ऐसे भक्त लङ्काकाण्ड के उत्तरार्ध में वानर सैनिक हैं। यथा : जो कछु आयसु ब्रह्मा दीन्हा। हरखे देव बिलंब न कीन्हा। बनचर देह धरी छिति माँहीं। अतुलित बल प्रताप तिन्ह पाहीं। गिरि तरु नख आयुध सब बीरा। हरि मारग चितवहिं मति धीरा। तथा : सुनु सुरपति कपि भालु हमारे। परे भूमि निसिचरन्ह जे मारे। मम हित लागि तजे इन्ह प्राना। सकल जियाउ सुरेस सुजाना।

सरगु नरकु अपबरगु समाना। जहँ तहँ देख धरें धनु बाना॥
करम बचन मन राउर चेरा। राम करहु तेहि के उर डेरा॥४॥

अर्थ : जिसे स्वर्ग नरक और मोक्ष समान है। सर्वत्र ही धनुर्बाणधारी को देखता है। मनसा वाचा कर्मणा आप का दास है। उसके हृदय में डेरा लगाओ।

व्याख्या : १. जो सर्वत्र धनुर्बाणधारी सरकार को देखता है। उसके लिए स्वर्ग नरक दोनों समान है।

२. मनसा वाचा कर्मणा सेवा में रत है। जिसे दूसरे का भरोसा नहीं। ऐसे भक्त उत्तरकाण्ड के पूर्वार्ध में सनकादिक हैं। ये सभी जगह सरकार को देखते हैं। अभेददर्शी हैं। यथा : रूप धरें जनु चारिउ बेदा। समदरसी मुनि बिगत बिभेदा। ३. सरकार में रति। यथा : आसा बसन ब्यसन यह तिनहीं। रघुपति चरित होहिं तहँ सुनहीं। ये असङ्ग विचरनेवाले हैं। गृही नहीं हैं। अतः इनके हृदय में आप भी संग रहित होकर डेरा कीजिये।

दो. जाहि न चाहिअ कबहुँ कछु, तुम्ह सन सहज सनेहु।
बसहु निरंतर तासु मन, सो राउर निज गेहु॥१३१॥

अर्थ : जिसे कभी कुछ भी नहीं चाहिए और तुमसे जिसका स्वाभाविक प्रेम है उसके हृदय में निरन्तर वास करो। वही आपका अपना घर है।

व्याख्या : किसी काल में किसी वस्तु की इच्छा नहीं। ऐसे भक्त भुसुण्डिजी हैं। यथा : मन से सकल बासना भागी। केवल रामचरन लय लागी। ऐसे का हृदय खास घर है। अतः इसमें निरन्तर रहो। ये ही चौदह भक्तिसूत्र वाल्मीकिजी से गोस्वामीजी को मिले हैं और इन्हीं के भाष्यरूप में सम्पूर्ण ग्रन्थ लिखा गया है।

एहि बिधि मुनिवर भवन देखाये। बचन सप्रेम राम मन भाये॥
कह मुनि सुनहु भानु कुल नायक। आश्रमु कहउँ समय सुखदायक॥१॥

अर्थ : इस प्रकार मुनिजी ने घर दिखाये। उनके प्रेमयुक्त वचन रामजी को अच्छे लगे। मुनिजी ने कहा कि हे सूर्यकुल के नायक! सुनिये। अब इस समय सुख देनेवाला आश्रम बतलाता हूँ।

व्याख्या : मुनिजी विधि के साथ बालकाण्ड से लेकर उत्तरकाण्ड तक के भक्तों के मन को रहने के लिए दिखलाते-गये। समझा कि अवध के महल में रहनेवाले हैं। जहाँ क्रोध के लिए भी पृथक् भवन बना हुआ है। कहीं सीताजी के

साथ रहते हैं। कहीं एकान्त में एकाकी रहते हैं। कहीं लक्ष्मणजी भी आजाते हैं। इनका एक भवन से काम नहीं चल सकता। इसलिए चौदह भवन दिखलाया और अनेक प्रकार से रहना कहा। बानी मधुर अमिअ रस बोरी से उपक्रम और वचन सप्रेम से उपसंहार किया। अतः राम मन भाये कहकर प्रभु की स्वीकृति दिखलाया। मुनिजी के गौरव से स्पष्ट एवमस्तु न कहा।

भानुकुलनायक से लीलाविग्रह सूचित करते हैं। समय सुखदायक से भाव यह कि अन्तर्यामी रूप योग्य गृह। इस समय के लीला विग्रह के अनुकूल नहीं है। अतः इस समय के लिए सुखदायक स्थान बतलाते हैं।

चित्रकूट गिरि करहु निवासू। तहँ तुम्हार सब भाँति सुपासू॥
सैलु सुहावन कानन चारू। करि केहरि मृग बिहग बिहारू॥२॥

अर्थ : चित्रकूट पर्वत पर निवास करो। वहाँ तुम्हारे लिए सब प्रकार की सुविधा है। सुहावना पर्वत है। सुन्दर वन है। हाथी सिंह मृग और पक्षी विहार किया करते हैं।

व्याख्या : रामजी ने पूछा था : अब जहँ राउर आयसु होई : वास करहु कछु काल कृपाला। उसका उत्तर देते हुए कहते हैं कि चित्रकूट पर्वत पर निवास करो; यहाँ आपके लिए सब प्रकार की सुविधा है। बड़ा सुहावना पर्वत है। राजधानी बनाने लायक है। वन भी बड़ा सुन्दर है। वन की सम्पत्ति से सम्पन्न है। उसीको इस समय राज्य बनाइये : इसका विस्तार भरतजी के आगमन के प्रसङ्ग में कहा गया है।

नदी पुनीत पुरान बखानी। अत्रि प्रिया निज तपबल आनी॥
सुरसरि धार नाउँ मंदाकिनि। जो सब पातक पोतक डाकिनि॥३॥

अर्थ : पवित्र नदी है। जिसकी प्रशंसा पुराणों में है। इसे अत्रिजी की स्त्री अपने तपबल से लायी हैं। यह गङ्गाजी की धारा है। इसका नाम मन्दाकिनी है। पापरूपी बच्चों के लिए डाकिनीरूप है।

व्याख्या : जलाशय का सान्निध्य कहते हैं। मन्दाकिनी नदी वहाँ बहती है। बड़ी पवित्र है। गङ्गा की धारा है। भगीरथ तपबल से भागीरथी को लाये हैं और इसे अत्रिप्रिया अपने तपबल से लायी हैं। बड़े बड़े महापातक इसके आहार हैं। जैसे डाइन बच्चों को खा जाती है उसी भाँति यह महापातकों को खा जाती है।

अत्रि आदि मुनिवर बहु बसहीं। करहिं जोग जप तप तन कसहीं॥
चलहु सफल श्रम सब कर करहू। राम देहु गौरव गिरिबरहू॥४॥

अर्थ : अत्रि आदि बहुत से श्रेष्ठ मुनि वहाँ निवास करते हैं। योग और जप करते हैं तथा तप से शरीर को कसते हैं। रामजी ! चलो सबके परिश्रम को सफल करो और पर्वत श्रेष्ठ को बड़ाई दो।

व्याख्या : मुनियों के सत्सङ्ग की तुम्हें बड़ी चाह रहती है। यथा : मुनिगन मिलन विसेष बन सबहिं भाँति हित मोर। सो अत्रि आदि बड़े बड़े मुनीश्वर वहाँ बसते हैं। जो मनसा वाचा कर्मणा परलोक जय में लगे हुए हैं। योग से मनोनिग्रह जप से वाणी का सदुपयोग तथा तप से शरीर का कसना कहा। यथा : भरत भवन बसि तप तन कसहीं। देह दिनहुँ दिन दूबरि होई। घटइ तेजुबलु मुख छबि सोई।

तुम्हारे वहाँ चलने से सबका श्रम सफल होगा। क्योंकि योग जप तप सब तुम्हारी प्राप्ति के लिए ही लोग करते हैं और तुम्हारे निवास से चित्रकूट की महिमा बढ़ेगी। अतः पर्वत श्रेष्ठ को बड़ाई दो। वह मेरुसे विमुक्त होकर विन्ध्य का शृङ्ग हो रहा है।

१६. चित्रकूट निवास प्रसङ्ग

दो. चित्रकूट महिमा अमित, कही महामुनि गाइ।
आइ नहाये सरित बर, सिय समेत दोउ भाइ ॥१३२॥

अर्थ : महामुनि ने चित्रकूट की अपार महिमा का वर्णन किया। तब सीता सहित दोनों भाइयों ने आकर उस श्रेष्ठ नदी में स्नान किया।

व्याख्या : वाल्मीकिजी महामुनि हैं। इनका वर्णन अमोघ है। इन्होंने चित्रकूट की अपार महिमा कही। चित्रकूट वस्तुतः पर्वतों में जो परमेश्वर की विभूति मेरु पर्वत है उसका शिखर है। एकबार मेरु के गर्व से क्रुद्ध होकर वायुदेव ने उसे उड़ा देने की ठान ली। भगवान् ने उसकी सहायता के लिए गरुड़जी को भेजा। उन्होंने मेरु को अपने डैनों से आच्छादित कर लिया। अतः वायु के प्रचण्ड वेग से भी मेरु की कोई हानि न हुई। मेरु ने कहा कि गरुड़जी! मुझे तो कुछ पता नहीं चल रहा है। वायु कुछ बल दिखा रहे हैं कि नहीं। गरुड़जी ने कहा कि बोलो मत। दबके पड़े रहो। बड़ी आपत्ति है। मेरु ने कहा कि तनिक सा मुझे भी सामना करने का अवसर दो। गरुड़जी ने थोड़ा सा डैना खिसका दिया तो दो शृङ्ग उड़ गये। एक वृन्दावन में गिरा जिसका गोवर्धन नाम है। दूसरा विन्ध्य शृङ्खला में जा गिरा जिसे चित्रकूट कहते हैं। ये दोनों महामहिम शृङ्ग देवताओं के विहार स्थल मेरु के हो हैं। अतः पर्वतों में इनकी महिमा है।

मालूम होता है कि मुनिजी भी सरकार के साथ चित्रकूट आये। अतः विदाई नहीं लिखी। आकर दोनों भाइयों ने सीताजी के सहित वियद्गङ्गा मन्दाकिनी में स्नान किया। यहाँ आकर कहने का भाव है कि कवि अपने को चित्रकूट में मान रहे हैं।

रघुबर कहेउ लखन भल घाटू। करहु कतहुँ अब ठाहर ठाटू॥
लखन दीख पय उतर करारा। चहुँ दिसि फिरेउ धनुष जिमि नारा ॥१॥

अर्थ : रामजी ने कहा कि हे लक्ष्मण! घाट अच्छा है। अब कहीं ठहरने का

ठिकाना करो। लक्ष्मणजी ने पयस्विनी नदी के उत्तर का करार देखा। जिसके चारों ओर धनुष की भाँति नाला फिरा हुआ था।

व्याख्या : नहाने के बाद घाट की प्रशंसा की और लक्ष्मणजी से कहा कि यहीं कहीं ठहरने की व्यवस्था करनी चाहिए। लक्ष्मणजी ने पयस्विनी नदी के उत्तर के किनारे को पसन्द किया। क्योंकि उसके चारों ओर स्वभाव से ही रक्षा की व्यवस्था है। तीन तरफ तो एक नाला धनुष की भाँति घूमा हुआ है और दोनों ओर से पयस्विनी नदी में जा मिला। इस भाँति चारों ओर स्वभाव से खाइँ बनी हुई है।

नदी पनच सर सम दम दाना। सकल कलुष कलि साउज नाना ॥
चित्रकूट जनु अचलु अहेरी। चुकइ न घात मार मुठभेरी ॥२॥

अर्थ : नदी मानों प्रत्यञ्चा है। शम दम दान बाण है। कलियुग के सब पाप शिकार हैं। चित्रकूट पर्वत ही मानो शिकारी है। मुठभेड़ के युद्ध में उसकी चोट खाली नहीं जाती।

व्याख्या : नदी मानो प्रत्यञ्चा है। बराबर धनुष पर मानों प्रत्यञ्चा चढ़ा ही रहता है। शम दम और दान ये तीन प्रकार के बाण हैं। नदी का आश्रयण करके इनका अनुष्ठान करने से कलियुग के सम्पूर्ण पाप मारे पड़ते हैं। वे ही मानो शिकार हैं।

अहेरी बड़े चञ्चल होते हैं। लेट बैठकर दौड़कर चोट करते हैं। पर चित्रकूट रूपी अहेरी अचल है। पर घात कभी नहीं चूकता। सामने जाते ही मारता है। शिकारी को शिकार पर बड़ा चोप होता है। इसी भाँति चित्रकूट को कलिकलुष विध्वंसन का बड़ा चोप है। पाप को मन्दाकिनी खा जाती है और कलिकलुष को चित्रकूट नष्ट करता है।

अस कहि लखन ठाउँ देखरावा। थलु बिलोकि रघुबर सुखु पावा ॥
रमेउ राम मनु देवन्ह जाना। चले सहित सुर थपति प्रधाना ॥३॥

अर्थ : ऐसा कहकर लक्ष्मणजी ने स्थान दिखाया। स्थल के देखने से रामजी को सुख हुआ। देवताओं ने जाना कि रामजी का मन रम गया। सो देवताओं के थवइयों में : स्थपति प्रधान विश्वकर्मा के साथ चले।

व्याख्या : रामजी ने कहा : करहु कतहुँ अब ठाहर ठाटू। सो लक्ष्मणजी ने जगह तजबीज करके रामजी को दिखलाया। भाव यह कि मुझे तो पसन्द है। यदि सरकार को भी पसन्द हो। सरकार को बहुत पसन्द आया। इसलिए दर्शन मात्र से सुख पाना लिखते हैं : चित्रकूट भी अहेरी है। सरकार भी अहेरी हैं।

इधर देवताओं ने जान लिया कि यह स्थल सरकार को पसन्द है। यहीं ठहरेंगे। अतः विश्वकर्मा को साथ लेकर कुटी बनाने चले। सरकार को सुन्दर पर्णशाला की रुचि है। मुनिजी से कहा है : तहँ रचि रुचिर परन तृन साला। बास करहुँ कछु काल कृपाला। इसलिए देवताओं ने विश्वकर्मा को साथ लिया सोचा कि

हम लोगों के कारण अयोध्या का राजप्रसाद छोड़ा है। कुटी बनाकर रहना चाहते हैं। अतः पर्णशाला इनके रहने योग्य बननी चाहिए।

कोल किरात बेष सब आये। रचे परन तृन सदन सुहाये ॥
बरनि न जाहिं मंजु दुइ साला। एक ललित लघु एक बिसाला ॥४॥

अर्थ : सब कोल किरात के वेष में आये और पत्ते तथा तृणों के घर बनाये। दो घर ऐसे सुन्दर बनाये कि जिनका वर्णन नहीं हो सकता। उसमें एक सुन्दर छोटा सा है और एक बड़ा।

व्याख्या : यदि देवता लोग अपने वेष से आते तो सरकार सेवा न लेते। इसलिए कोलकिरात का वेष धारण करके आये और पत्ते तथा तृणशाला बनाने लगे। विश्वकर्मा बनाने में लगे हैं। अतः पर्ण तृणशालाएँ ऐसी बनीं कि उनका वर्णन नहीं हो सकता। लक्ष्मणजी के रहने के लिए एक छोटी सुन्दर सी शाला बनायी और सरकार के लिए बड़ी शाला बनायी। क्योंकि जगदम्बा साथ में थीं।

दो. लखन जानकी सहित प्रभु, राजत रुचिर निकेत।
सोह मदनु मुनि बेष जनु, रति रितु राज समेत ॥१३३॥

अर्थ : लक्ष्मण और जानकी सहित प्रभु उस पर्णशाला में ऐसे विराजमान हुए मानो कामदेव रति और वसन्त के साथ मुनि का वेष धारण किये हुए हैं।

व्याख्या : जो सुन्दर है वह सभी अवस्था में सुन्दर है। सरकार लक्ष्मण और जानकीजी के साथ मुनिवेष से पत्ते की कुटिया में ठहरे हैं। पर वहाँ भी उनकी शोभा है। मानो स्वयं काम ने अपनी प्रिया रति तथा सखा वसन्त ऋतु के साथ मुनिवेष धारण कर रक्खा है।

अमर नाग किन्नर दिसिपाला। चित्रकूट आए तेहि काला ॥
रामु प्रनामु कीन्ह सब काहू। मुदित देव लहि लोचन लाहू ॥१॥

अर्थ : देवता, नाग, किन्नर और दिक्पाल उस समय चित्रकूट आये। रामजी ने सबको प्रणाम किया। देवता लोग नेत्र का फल पाकर प्रसन्न हुए।

व्याख्या : अमर नाग किन्नर दिक्पाल कहने का भाव कि सभी श्रेणी के देवता उस समय चित्रकूट आये। जिस भाँति नारदजी को सोच हुआ था : बिरहवंत भगवंतहि देखी। नारद मन भा सोच बिसेखी। मोर श्राप करि अंगीकारा। सहत राम नाना दुःख भारा। उसी प्रकार का भाव देवताओं के भी हृदय में उदय हुआ कि हम लोगों के कारण रामजी आज अयोध्या का राजप्रासाद छोड़कर पर्णकुटी में निवास कर रहे हैं। अतः इस समय दर्शन के लिए उपस्थित होना चाहिए। इस प्रकार से प्रत्यक्ष रूप से देवता लोग कभी नहीं आये थे।

मर्यादापुरुषोत्तम रामजी ने सबको प्रणाम किया। देवता लोग सरकार का

दर्शन पाकर प्रसन्न हो गये। इन लोगों ने भी रामजी के दर्शन से अपने नेत्रों का साफल्य माना।

बरषि सुमन कह देव समाजू। नाथ सनाथ भये हम आजू ॥
करि बिनती दुख दुसह सुनाये। हरषित निज निज सदन सिधाये ॥२॥

अर्थ : देव समाज ने पुष्पवर्षा कर दी और कहने लगे कि हे नाथ! आज हम लोग सनाथ हो गये। विनती करके अपना दुःसह दुःख सुनाया और प्रसन्न होकर अपने अपने घर गये।

व्याख्या : इन्हीं लोगों ने कुमन्त्रणा करके सरस्वती द्वारा मन्थरा तथा कैकेयी की बुद्धि को पलटवाया। फलतः रामजी को वनवास मिला। अतः अपने को सापराध मान रहे हैं। सबने पुष्पाञ्जलि दी। अतः फूलों की वर्षा हो गयी। वोले कि हम लाग अनाथ हो रहे थे। जब सरकार ने इतना कष्ट उठाया कि हम लोगों के लिए आज पर्णशाला में निवास स्वीकार किया तो हम लोग सनाथ हो गये। इस भाँति अनेक विनती करके अपना अपना दुसह दुःख सुनाया कि रावण के मारे हम लोगों के लोक उजाड़ हो गये। रावण के दरबार में हाथ जोड़कर खड़ा रहना पड़ता है। तिस पर भी इज्जत नहीं बचती। देव जच्छ गंधर्व मुनि किन्नर नाग कुमारि। जीति बरी निज बाहु बल बहु सुन्दर वर नारि। इत्यादि। अपनी रक्षा के लिए सन्नद्ध मालिक से अपना सब दुःख सुना देने से सन्तुष्ट हैं। उन्हें अनुकूल देखकर प्रसन्न हो घर लौट गये।

चित्रकूट रघुनंदनु छाये। समाचार सुनि सुनि मुनि आये ॥
आवत देखि मुदित मुनि बृंदा। कीन्ह दंडवत रघुकुल चंदा ॥३॥

अर्थ : श्रीरामजी चित्रकूट में आ बसे हैं। यह समाचार सुन सुनकर मुनि लोग आये। मुनिवृन्द को आनन्दित हुए आते देखकर रघुकुल के चन्द्रमा रामचन्द्र ने दण्डवत् प्रणाम किया।

व्याख्या : देवताओं को सब पता था। इसलिए कोल किरात वेष से आकर पर्णशाला बना गये। फिर अपने रूप से आकर अपना दुःख निवेदन कर गये। पर मुनि लोगों को सरकार के निवास करने के बाद पता चला। अतः पीछे से मुनि लोग आये। सरकार ने देखा कि मुनि लोग बड़े प्रसन्न चले आ रहे हैं। देवताओं से भी अधिक आदर सरकार के हृदय में मुनियों का है। अतः साष्टाङ्ग दण्डवत् किया। रघुकुल के चन्द हैं। सभी चकोरों को एक साथ प्रणाम करने में समर्थ हैं। अथवा रघुकुल में मुनियों का बड़ा आदर है और ये तो उस कुल के चन्द्रमा हैं। ये क्यों न इतना आदर करें।

मुनि रघुबरहि लाइ उर लेहीं। सुफल होन हित आसिष देहीं ॥
सिय सौमित्रि राम छबि देखहिं। साधन सकल सफल करि लेखहिं ॥४॥

अर्थ : मुनि लोग रामजी को कलेजे से लगा लेते हैं और वाणी की सफलता के लिए उन्हें आशीर्वाद देते हैं। सीता लक्ष्मण और रामजी की छवि देखते हैं और अपने सब साधनों को सफल मान रहे हैं।

व्याख्या : सरकार के उन्मादकारी सौन्दर्य पर मुनिगण मोहित हैं। कलेजे से लगाते हैं। सरकार की महिमा जानते हैं। फिर भी आशीर्वाद अपनी वाणी की सफलता के लिए देते हैं। भाव यह कि इनके कल्याण में सन्देह क्या ? अतः जो आशीर्वाद इन्हें देंगे सभी सफल होंगे। ये ही मुनि लोग कृष्णावतार में गोपिका हुए। तीनों मूर्तियों की छवि के दर्शन से अपने साधन की सफलता मानते हैं। यथा : आज सफल तप तीरथ त्यागू। आज सफल जप जोग बिरागू। सफल सकल सब साधन साजू। राम तुम्हहिं अवलोकत आजू। वाल्मीकिजी ने जो कहा था : चलहु सफल श्रम सबकर करहू : सो सब का श्रम सफल हुआ।

दो. जथाजोग सनमानि प्रभु, बिदा किये मुनि बृंद।
करहिं जोग जप जाग तप, निज आश्रमन्हि सुछंद ॥१३४॥

अर्थ : प्रभु ने जो जिस योग्य था उसका वैसा सम्मान करके विदा किया। वे लोग अपने अपने आश्रमों में स्वतन्त्र होकर योग यज्ञ जप तप करने लगे।

व्याख्या : साष्टाङ्ग दण्डवत् तो प्रभु ने सबको समान रूप से ही किया। पर सम्मान में योग्यता के तारतम्य पर ध्यान रक्खा। मिलने के बाद सबको विदा किया। अब ये लोग अपने अपने आश्रमों में योग यज्ञ जप स्वच्छन्द होकर करते हैं। पहिले राक्षसों को डरते थे। अतः स्वच्छन्दता नहीं रही। वाल्मीकिजी ने यज्ञ का नाम नहीं लिया। इतना ही कहा : करहि योग जप तप तन कसहीं। योग जप तप तो छिपकर भी हो सकता है। पर यज्ञ तो छिपकर नहीं हो सकता और : देखत जग्य निसाचर धावहिं। करहिं उपद्रव मुनि दुःख पावहिं। सो मुनि लोग यज्ञ नहीं कर सकते थे। अब किसी का डर नहीं। स्वच्छन्द होकर यज्ञ भी करते हैं।

यह सुधि कोल किरातन्ह पाई। हरषे जनु नव निधि घर आई ॥
कंद मूल फल भरि भरि दोना। चले रंक जनु लूटन सोना ॥१॥

अर्थ : यह समाचार कोल किरातों को मिला। वे ऐसे प्रसन्न हुए मानो नवोनिधि घर में आगयो। वे कन्द मूल फल दोना भर भर के ऐसे चले जैसे दरिद्र सोना लूटने चले हों।

व्याख्या : मुनिवृन्द को जाते और लौटते देखकर जिज्ञासा हुई कि क्या बात है। तब पता लगा। केवल पता लगने का यह माहात्म्य है कि उन्हें ऐसा आनन्द हुआ कि नवोनिधियाँ घर में आगयीं। महापद्मश्च पद्मश्च शंखो मकरकच्छपो। मुकुन्दकुन्दनोलाश्च खर्वश्च निधयो नव। निधि का अर्थ खजाना भी है पर खजाने का आना नहीं बनता। इसलिए नवनिधि की अधिष्ठात्री देवी अर्थ किया गया।

देवता और ऋषियों को भेंट मिला करती है। इसलिए वे लोग भेंट लेकर नहीं आये। ये भेंट लेकर भी चले। जो जिसके पास होता है वही भेंट भी देता है। इनके पास कन्द मूल फल छोड़कर और क्या है। इसलिए कन्द मूल फल को दोनों में भर भरकर ऐसे आह्लाद से चले जैसे दरिद्र जिसे अन्न भी मिलना कठिन हो सुने कि सोने की लूट हो रही है और दौड़ पड़े। उसी भाँति ये भी चले।

तिन्ह महँ जिन्ह देखे दोउ भ्राता। अपर तिन्हहि पूछहि मगु जाता॥
कहत सुनत रघुबीर निकाई। आइ सबन्हि देखे रघुराई॥२॥

अर्थ : उनमें से जिन्होंने दोनों भाइयों को देखा था दूसरे रास्ते में जाते हुए उनसे पूछते हैं। इस भाँति रामजी की सुन्दरता कहते सुनते आकर सबों ने रघुराई को देखा।

व्याख्या : कुछ देखकर लौट रहे थे। उनसे सरकार के विषय में प्रश्न करते हैं कि तुम देख आये। बतलाओ तो कैसे सुन्दर हैं? कैसा स्वभाव है? वे भी वर्णन करते हुए साथ हो लिये। इस भाँति सौन्दर्य और स्वभाव का वर्णन करते हुए और सुनते हुए सबों ने आकर सरकार को देखा।

करहिं जोहारु भेंट धरि आगे। प्रभुहि बिलोकहिं अति अनुरागे॥
चित्र लिखे जनु जहँ तहँ ठाढ़े। पुलक सरीर नयन जल बाढ़े॥३॥

अर्थ : भेंट सामने रखकर जोहार करते हैं और बड़े प्रेम से प्रभु का दर्शन करते हैं। जैसे चित्र में लिखे हों वैसे ही जो जहाँ था वह वहीं खड़ा रह गया। उनके शरीर पुलकित हो गये और नेत्रों में जल भर आया।

व्याख्या : कन्द मूल फल जो दोना में भरकर लाये थे उन्हें पहिले भेंट के रूप में सामने रक्खा तब जोहार किया। आजकल जैसे हाथ से लोग सलाम करते हैं उसी भाँति दोनों हाथों से जोहार किया जाता है। तत्पश्चात् सरकार के रूप माधुर्य का दर्शन करते हुए प्रेम में मग्न होकर एकदम स्तब्ध हो जाते हैं। उनका कोई अङ्ग हिलता नहीं। मानों चित्र में लिखे हैं। सात्त्विक भाव हो जाने से शरीर में पुलक हो गया है और नेत्रों में जल है।

राम सनेह मगन सब जाने। कहि प्रिय बचन सकल सनमाने॥
प्रभुहि जोहारि बहोरि बहोरी। बचन बिनीत कहहिं कर जोरी॥४॥

अर्थ : रामजी ने जान लिया कि सब स्नेह में मग्न हैं। अतः प्रिय वचन बोलकर सबका सम्मान किया। बार बार जोहार करते हैं और विनययुक्त वचन हाथ जोड़कर कहते हैं।

व्याख्या : देखा कि सब प्रेम में डूबाडूब हैं। कोई कुछ बोलता नहीं तो स्वयं सरकार ही प्रिय वचन बोले। तुम लोग राजी तो हो। बाल बच्चे तो राजी हैं। वन

में फल मूल तो यथेष्ट रूप से प्राप्त होता है। तुम लोगों को कोई कष्ट तो नहीं है इत्यादि।

सरकार की वाणी सुनकर और भी प्रेम बढ़ा। अतः बार बार जोहार करते हैं और विनीत वचन हाथ जोड़कर बोलते हैं।

दो. अब हम नाथ सनाथ सब, भये देखि प्रभु पाय।
भाग हमारे आगमन, राउर कोसलराय ॥१३५॥

अर्थ : अब हम प्रभु के चरणों के दर्शन से सनाथ हो गये। हे कोशलराय! हमारे भाग्य से आपका यहाँ आगमन हुआ है।

व्याख्या : मालिक के चरण दर्शन से दास सनाथ हो जाते हैं। नाथ के चरण दर्शन न होने से जीव अनाथ रहते हैं। कोसलराय के वन में आकर बसने का प्रयोजन क्या? यह मेरा भाग्य हो है जो आप यहाँ आ बसे हैं। देवताओं से प्रेमाधिक्य मुनियों ने दिखाया। अब उनसे भी अधिक प्रेम कोल किरातों में दिखलाते हैं। पिता दीन्ह मोहि कानन राजू का साफल्य स्पष्ट दिखायी पड़ रहा है।

धन्य भूमि बन पंथ पहारा। जहँ जहँ नाथ पाउ तुम्ह धारा ॥
धन्य बिहँग मृग कानन चारी। सफल जनम भए तुम्हहिं निहारी ॥१॥

अर्थ : हे नाथ! जहाँ जहाँ तुमने पाँव रक्खे वह भूमि वन रास्ता और पहाड़ धन्य हैं। ये वनचारी पशु पक्षी धन्य हैं जिनके जन्म तुम्हारे दर्शन से सफल हो गये।

व्याख्या : घर से चलने में भूमिखण्ड वन मार्ग और पहाड़ अवश्य ही मिले होंगे। क्योंकि इस घोर वन में बिना वन पहाड़ आदि उल्लंघन किये कोई आ नहीं सकता। वे सब आपके चरण स्पर्श से धन्य हो गये : प्रेम के आवेश में कोल किरातों के मुख से ऐसी बातें निकल रही हैं जो शास्त्र सम्मत हैं।

नगर के बिहँग मृग तो तुम्हारा दर्शन पाते ही थे। पर अब तो जङ्गल के विहँग मृग धन्य हो रहे हैं। दर्शन पा रहे हैं। उनका जन्म सफल हो गया। यथा : राम चरन वारिज जब देखौं। तब निज जन्म सफल करि लेखौं।

हम सब धन्य सहित परिवारा। दीख दरसु भरि नयन तुम्हारा ॥
कीन्ह बासु भल ठाउँ बिचारी। इहाँ सकल रितु रहब सुखारी ॥२॥

अर्थ : हम सब तो सकुटुम्ब धन्य हो गये। क्योंकि तुमको आँख भरकर देख रहे हैं। तुमने बहुत अच्छी जगह तजबीज करके निवास किया है यहाँ पर सभी ऋतुओं में सुखी रहोगे।

व्याख्या : भूमि वन पंथ पहाड़ जड़ हैं वे देख नहीं सकते। अतः चरण स्पर्श से धन्य हुए। वनचारी विहँग मृग उनकी अपेक्षा चेतन हैं। देख सकते हैं। वे चलते फिरते दृष्टि पड़ जाने से धन्य हुए। पर हम लोग तो बालबच्चों के साथ

धन्य हुए। क्योंकि आँख भरकर देख रहे हैं : जे हर हिय नयनन्हि कबहुँ निरखे नहीं अघाय।

उन कोल किरातों ने इस बात पर भी विचार किया कि यहाँ पर सरकार ठहरे हैं तो किसी प्रकार का कष्ट तो नहीं होगा। तो इसी निश्चय पर पहुँचे कि यह स्थल सभी ऋतुओं में सुखदायक है। अतः सरकार के पसन्द का अनुमोदन करते हैं कि निवास स्थान सरकार ने ठीक तजबीज किया।

हम सब भाँति करब सेवकाई। करि केहरि अहि बाघ बराई॥
बन बेहड़ गिरि कंदर खोहा। सब हमार प्रभु पग पग जोहा॥३॥

अर्थ : हम लोग हाथी सिंह सर्प और व्याघ्र को इधर आने ही न देंगे। सब प्रकार से सेवा करेंगे। वन अगम्य पर्वतों को अगम्य कन्दराएँ और खोह सबके सब हमारे रत्ती रत्ती देखे हुए हैं।

व्याख्या : हम लोग सरकार की सब भाँति से सेवा करेंगे। ईंधन पत्ता कन्द मूल फल आदि से तो सेवा करेहींगे। खतरे में भी बँचावेंगे। करि केहरि को इधर न आने देना कौन सी बड़ी बात है। हम साँप को भी इधर से न आने देंगे।

बीहड़ वन में करि केहरि कन्दर में सर्प और खोह में व्याघ्र रहते हैं। सो सब हमारे रत्ती रत्ती देखे हुए हैं। करि केहरि अहि व्याघ्र के निवास स्थान जानते हैं। उनकी संख्या जानते हैं। उन्हें बहकाकर दूसरे रास्ते में कर देना जानते हैं।

तहँ तहँ तुम्हहिं अहेर खेलाउब। सर निरझर जल ठाँउ देखाउब॥
हम सेवक परिवार समेता। नाथ न सकुचब आयसु देता॥४॥

अर्थ : हम आपको जहाँ तहाँ शिकार खेलावेंगे। तालाब झरने और रमणीय स्थल दिखलावेंगे। हम परिवार सहित सरकार के सेवक हैं। नाथ! आज्ञा देने में सङ्कोच न करियेगा।

व्याख्या : आज भी जङ्गली ही शिकार खेलाते हैं। इसलिए कहते हैं कि तालाब झरना जहाँ जहाँ जानवर पानी पीने जाते हैं और रम्यस्थल जहाँ वे रहते हैं सब तुमको दिखायेंगे। हँकवा करके आपके सामने ला देंगे। वे सब समझ रहे हैं कि बड़े शिकारी हैं। शिकार के लिए यहाँ ठहरे हुए हैं।

दो. बेद बचन मुनि मन अगम, ते प्रभु करुना अयन।
बचन किरातन्ह के सुनत, जिमि पितु बालक बयन॥१३६॥

अर्थ : जो वेद के लिए वचन से अगम्य हैं। मुनि के लिए मन से अगम्य हैं। वे करुणायतन किरातों की बातें इस भाँति सुन रहे हैं जैसे बाप बच्चों की बातों को सुनता है।

व्याख्या : नेति नेति जेहि बेद निरूपा। अतः वेद वचन से अगम और जितिपवन मन गो निरस करि मुनि ध्यान कबहुक पावही। अतः मुनि मन अगम है।

प्रभु ऐसे करुणायतन हैं कि किरातों की बातें मन लगाकर बड़े चाव से सुन रहे हैं। जैसे पिता बालक की बातें सुनता है। यथा : जौं बालक कह तोतरि बाता। सुनहिं मुदित मन पितु अरु माता।

रामहिं केवल प्रेमु पिआरा। जानि लेउ जो जाननिहारा॥
राम सकल बनचर तब तोषे। कहि मृदु बचन प्रेम परिपोषे॥१॥

अर्थ : रामजी को केवल प्रेम ही प्यारा है। जो जाननेवाला हो जान ले। रामजी ने सब जङ्गलियों को प्रेम से परिपुष्ट कोमल वचन कहकर तुष्ट किया।

व्याख्या : जप योग नियमव्रत रहित प्रेम केवल प्रेम है। सो रामजी को केवल प्रेम प्यारा है। यथा : जौ जप जाग जोग व्रत वर्जित केवल प्रेम न चहते। तौ कत सुर मुनिबर बिहाय ब्रज गोपगेह बसि रहते। केवल प्रेम पर सरकार रीझ जाते हैं। यथा : रीझत राम सनेह निसोते। ग्रन्थकार कहते हैं कि इस प्रसङ्ग से जो जिज्ञासु हैं वे जान लें।

प्रेम की प्यास को सरकार ने प्रिय वचन से शान्त किया। मृदु वचन से ही प्रेम परिपुष्ट होता है। यह सरकार की बड़ाई है कि वनचर को भी तुष्ट करते हैं।

बिदा किए सिरु नाइ सिधाए। प्रभु गुन कहत सुनत घर आए॥
एहि बिधि सिय समेत दोउ भाई। बसहिं बिपिन सुर मुनि सुखदाई॥२॥

अर्थ : विदा किया तो प्रणाम करके चले। सरकार के गुणों को कहते सुनते घर आये। इस भाँति सुरमुनिसुखदायी दोनों भाई सीता सहित वन में बसने लगे।

व्याख्या : आश्वासन देकर देवताओं को विदा किया। सम्मान करके मुनियों को विदा किया। अब प्रेम से परितुष्ट करके कोल किरातों को विदा किया। सरकार की निकाई कहते सुनते आये थे। अब प्रभु का गुण कहते सुनते घर लौटते हैं।

दरबार लगा रहता है। कभी देवता लोग आये। कभी मुनिगण पधारे। कभी कोल किरात हाजिर हुए। इस भाँति प्रभु वन में सुखी होकर बसते हैं। सुर मुनि के सुख के लिए ही वनवास अङ्गीकार किया है।

जब तें आइ रहे रघुनायकु। तब तें भयउ बनु मंगल दायकु॥
फूलहिं फलहिं बिटप बिधि नाना। मंजु बलित बर बेलि बिताना॥३॥

अर्थ : जब से रघुनायक आकर बसे तब से वन मङ्गलदायक हो गया। नाना प्रकार के पेड़ फूल और फल से भरे हुए हैं। सुन्दर लताओं ने लिपटकर मण्डप बना रक्खा है।

व्याख्या : जब से प्रभु आकर ठहरे तब से प्रकृति में परिवर्तन हो गया। वन में अनेक प्रकार के पेड़ हैं। उनके फूलने और फलने का समय अलग अलग है। पर प्रभु के पदार्पण का यह प्रभाव है कि सब के सब फूल फल रहे हैं। इस भाँति भयानक

वन भी मङ्गलदायक हो गया। इस प्रकार का प्रकृति में परिवर्तन प्रभु के पूर्णावतार का द्योतक है। इनके संयोग से चराचर सुखी तथा वियोग में दुःखी हो जाते हैं।

सुरतरु सरिस सुभाय सुहाये। मनहुँ बिबुध बन परिहरि आये ॥
गुंज मंजुतर मधुकर श्रेनी। त्रिबिध बयारि बहइ सुख देनी ॥४॥

अर्थ : कल्पवृक्ष के समान वे स्वभाव से ही सुन्दर हैं। मानों अनेकों उपवनों को छोड़कर आये हैं। भँवरों की श्रेणियाँ अधिक सुन्दर गुञ्जार कर रही हैं और सुख देनेवाली शीतल मन्द सुगन्ध हवा बह रही है।

व्याख्या : जिन पेड़ों का ऊपर उल्लेख हुआ है अब उनकी शोभा कहते हैं कि ऐसे सुन्दर पेड़ कहीं दिखायी नहीं देते। मालूम होता है कि ये इस लोक के वृक्ष ही नहीं हैं। ये देवलोक के वृक्ष हैं। सरकार का आना सुनकर ये भी नन्दनादि वनों का परित्याग करके यहाँ चले आये हैं। उनके फल फूल के देखने से मालूम होता था कि ऐसे ही कल्पवृक्ष होते होंगे।

भौरों का गुञ्जार मञ्जु होता ही है। पर यहाँ के भौरों का गुञ्जार भी अधिक मञ्जु है। वन में घोर घाम हिम वात चलता है। सो यहाँ शीतल मन्द सुगन्धयुक्त वायु चल रही है।

दो. नीलकंठ कलकंठ सुक, चातक चक्क चकोर।
भाँति भाँति बोलहिं बिहँग, श्रवन सुखद चित चोर ॥१३७॥

अर्थ : नीलकण्ठ कोयल तोता पपीहा चकवा और चकोर अनेक प्रकार की बोलियाँ बोल रहे हैं। जो कानों को सुख देनेवाली तथा चित्त को चुरानेवाली हैं।

व्याख्या : जिस भाँति सब ऋतु के फूल और फल लग रहे हैं। उसी भाँति सब ऋतुओं की चिड़िया बोल रही हैं और ऐसा मधुर बोल रही हैं कि सुनने से कान को ऐसा सुख होता है कि मन उधर ही लग जाय। नीलकण्ठ ग्रीष्म में : बोलते हैं। कलकण्ठ वसन्त में शुक शिशिर में चातक वर्षा में चकवा हिमऋतु में रात के बड़ी होने से। चकोर शरद में : चन्द्रमा के निर्मल होने से। सो यहाँ सभी ऋतुओं में बोल रहे हैं। इस भाँति वन को सर्वेन्द्रिय तर्पण कहा।

करि केहरि कपि कोल कुरंगा। बिगत बैर बिचरहिं सब संगा ॥
फिरत अहेर राम छबि देखी। होहिं मुदित मृगबृंद बिसेखी ॥१॥

अर्थ : हाथी सिंह बन्दर वाराह और मृग वैर छोड़कर एक सङ्ग विचर रहे हैं। शिकार के लिए घूमते हुए रामजी की छवि देखकर मृग लोग अधिक आनन्दित होते थे।

व्याख्या : पक्षियों का वर्णन करने के बाद वन्य पशुओं का वर्णन करते हैं। करि केहरि कपि कोल कुरंगा में वर्ण मैत्री दिखाकर इनमें मैत्री द्योतित करते हैं। इनमें भक्ष्यभक्षक सम्बन्ध है प्रीति हो नहीं सकती। पर सरकार के पादार्पण से यह

असम्भव भी सम्भव हो गया। सब जीवों ने सहज वैर परित्याग किया। उस स्थल में आकर परस्पर में अनुराग करने लगते थे।

राघव भावत मोहि विपिन की वीथिन्ह धावनि।
सुन्दर स्यामल अंग वसन पीत सुरंग कटि निषंग परिकर मेरवनि।
तैसइ श्रमसीकर रुचिर राजत मुख तैसिये ललित भ्रुकुटिन्ह की नवनि।
देखत खग निकर मृगरवनिन्ह जुत थकित विसारि जहाँ तहाँ की भवनि।
हरिदरसन फल पायो है ग्यान विमल जांचत भगति मुनि चाहत जवनि।
श्रवन सुख करनि भवसरिता तरनि गावत तुलसीदास कीरत पवनि।

बिबुध बिपिन जहँ लगि जग माहीं। देखि रामबनु सकल सिहाहीं॥
सुरसरि सरसइ, दिनकर कन्या। मेकलसुता गोदावरि धन्या॥२॥
सब सर सिंधु नदी नद नाना। मंदाकिनि कर करहि बखाना॥

अर्थ : संसार में जितने देवताओं के वन हैं वे सब रामवन को देखकर सिहाते हैं। गङ्गा सरस्वती यमुना नर्मदा और गोदावरी आदि पुण्य नदियाँ सभी सरोवर नाना नदी और नद सब मन्दाकिनी की सराहना करते हैं।

व्याख्या : जिस भाँति सब देवताओं के पृथक् लोक हैं वैसे ही उनके पृथक् पृथक् उपवन हैं जहाँ वे विहार करते हैं। वे वन आज रामवन की सम्पत्ति और भाग्य देखकर ईर्ष्या करते हैं कि हमारा भाग्य ऐसा नहीं हुआ कि सिय रघुवीर विहार स्थल हो सकें।

संसार में गङ्गादिक जितनी पुण्य नदियाँ हैं वे मन्दाकिनो की प्रशंसा करती हैं कि मन्दाकिनी धन्य है! जिसमें तीनों काल सरकार लक्ष्मण और जानकीजी के सहित अवगाहन करते हैं।

उदय अगस्त गिरि अरु कैलासू। मंदर मेरु सकल सुरबासू॥३॥
सैल हिमाचल आदिक जेते। चित्रकूट जसु गावहि तेते॥
बिधि मुदित मन सुखु न समाई। श्रम बिनु बिपुल बड़ाई पाई॥४॥

अर्थ : उदयाचल अस्ताचल कैलास और मन्दर मेरु आदि जितने देवताओं के निवास स्थान हैं और हिमालय आदिक जितने पर्वत हैं सब चित्रकूट का यशोगान करते हैं। विन्ध्याचल तो ऐसे प्रसन्न हैं कि उनके मन में आनन्द समा नहीं रहा है। उन्हें बिना परिश्रम ही बड़ी भारी बड़ाई मिल गयी।

व्याख्या : उदयाचल और अस्ताचल सूर्य नारायण से सम्बद्ध हैं। कैलास जहाँ सदाशिव उमा का निवास रहता है। मन्दर और मेरु पर तो सब देवताओं का निवास है। हिमालय पर्वतों के राजा ही ठहरे और अन्य जो महेन्द्राचलादि पुण्य पर्वत वड़े बड़े विशाल हैं वे सब छोटे से चित्रकूट पर्वत का यशोगान कर रहे

हैं। क्योंकि वह आज सरकार का निवासस्थान हो रहा है। उसकी महिमा बहुत बढ़ी हुई है।

विन्ध्याचल के आनन्द का तो कुछ ठिकाना ही नहीं। क्योंकि उन्हें बिना परिश्रम ही इतनी बड़ी बड़ाई मिली। चित्रकूट विन्ध्यश्रेणी में ही है। विन्ध्य को बड़ाई पाने की बड़ी इच्छा थी। इसलिए वे बढ़े भी थे। पर अगस्त्यजी ने उनका बढ़ना रोक दिया। उनका सब श्रम ही व्यर्थ हो गया था। सो इस समय बिना परिश्रम ही इतनी बड़ी बड़ाई पा गये।

दो. चित्रकूट के बिहँग मृग, बेलि बिटप तृन जाति।
पुन्य पुंज सब धन्य अस, कहहिं देव दिन राति ॥१३८॥

अर्थ : चित्रकूट के पक्षी पशु लता वृक्ष और तृण की जातियाँ पुण्यपुञ्ज हैं और धन्य हैं ऐसा देवता दिन रात कहते हैं।

व्याख्या : इन सबों को सरकार का सानिध्य प्राप्त है। अतः सामीप्यसुख का अनुभव कर रहे हैं। देवताओं को तो केवल वैषयिक सुख प्राप्त है। अतः देवता लोग चित्रकूट के पशु पक्षी लता वृक्ष और घास फूस के पुण्य की प्रशंसा करते हैं। देवलोक में रात दिन इनके पुण्य का कथनोपकथन चल रहा है।

नयनवंत रघुबरहि बिलोकी। पाइ जनम फल होहिं बिसोकी॥
परसि चरन रज अचर सुखारी। भये परम पद के अधिकारी ॥१॥

अर्थ : आँखवाले रामजी को देखकर जन्म होने का फल पाकर शोक रहित पद को प्राप्त होते हैं और अचर चरणरज को स्पर्श करके सुखी होते हैं। उन्हें मोक्ष का अधिकार प्राप्त हो जाता है।

व्याख्या : देवताओं द्वारा दिन रात चित्रकूट के चर अचर के गुणगान का कारण कहते हैं कि जिन्हें आँखें हैं वे तो रामजी को देखकर आँख होने का फल पा जाते हैं। आँख होने का फल तो यह है कि रामजी के चरणकमलों का दर्शन करके जन्म सफल हो। यथा : राम चरन बारिज जब देखौं। तब निज जनम सफल करि लेखौं। सो यहाँ चित्रकूट के विहँग मृग दर्शन करके शोक रहित पद को प्राप्त हो रहे हैं। जिन्हें आँखें नहीं हैं ऐसे अचर : स्थावर योनिवाले चरण की धूलि के स्पर्श से सुखी हो रहे हैं। उन्हें परमपद का अधिकार प्राप्त हो रहा है जो देवताओं को प्राप्त नहीं है। यावदधिकार देवताओं को मुक्ति नहीं मिलती।

सो बनु सैलु सुभाय सुहावन। मंगलमय अतिपावन पावन॥
महिमा कहिअ कवन बिधि तासू। सुखसागर जहँ कीन्ह निवासू ॥२॥

अर्थ : वह वन और पर्वत तो स्वभाव से ही सुहावना है। मङ्गलमय है। अति पवित्र को भी पवित्र करनेवाला है। उसकी महिमा किस भाँति कही जाय। सुख के समद्र ने स्वयं जहाँ निवास किया हो।

व्याख्या : अब रामवन और रामशैल का वृत्तान्त कहते हैं कि वह स्वभाव से ही सोहावना है। सरकार का निवास होगा इसलिए वे सुन्दर पैदा ही हुए। मङ्गलमय हैं। वहाँ निवास करने से यात्रा करने से मङ्गल होता है। जो अति पावन हैं उन्हें भी पावनता वहाँ से मिलती है। क्योंकि सुखसागर रामजी ने वहाँ निवास किया है। उसकी महिमा अकथनीय है कही नहीं जा सकती।

पय पयोधि तजि अवध बिहाई। जहँ सिय लखनु रामु रहे आई॥
कहि न सकहिं सुखमा जसि कानन। जौ सत सहस होहिं सहसानन॥३॥

अर्थ : क्षीर सागर और अवध छोड़कर जहाँ आकर राम जानकी ने निवास किया है। यदि एक लाख शेष भी हों तो भी वन की शोभा वे नहीं कह सकते।

व्याख्या : सरकार का विशेष रूप से प्राकट्य क्षीरसागर और वैकुण्ठ में माना जाता है। यथा : पुर बैकुण्ठ जान कह कोई। कोउ कह पयनिधि बस प्रभु सोई। वैकुण्ठ से भी अधिक अवध माना गया है। यथा : अवधपुरी सम प्रिय नहिं सोऊ। यहाँ अवध का उल्लेख है इसलिए वैकुण्ठ का नाम नहीं दिया। भावार्थ यह कि दोनों प्रिय निवास स्थान छोड़कर राम जानकी और लक्ष्मण यहाँ आ बसे हैं। उस वन की शोभा को लाखों शेष भी नहीं कह सकते। यथा : जो सुख सुधा सिंधु सीकरते सिव बिरंचि प्रभुताई। सो सुख सिंधु उमगि चल्यो दस दिसि कवन जतन कहौं गाई।

सो मैं बरनि कहौं बिधि केहीं। डाबर कमठ कि मंदर लेहीं॥
सेवहिं लखनु करम मन बानी। जाइ न सीलु सनेहु बखानी॥४॥

अर्थ : उसे मैं किस भाँति वर्णन कर सकता हूँ। कछुवा का बच्चा क्या मन्दर धारण कर सकता है। लक्ष्मणजी कर्म मन वाणी से सेवा करते हैं। उनके स्नेह शील की प्रशंसा नहीं की जा सकती।

व्याख्या : उस परम शोभा का वर्णन गोस्वामीजी कहते हैं कि मैं कैसे करूँ। मन्दर पर्वत को सब सुरासुर मिलकर धारण न कर सके तब कच्छपरूप से भगवान् ने पीठ पर धारण किया। उसे क्या कच्छप का बच्चा धारण कर सकता है? वह शोभा मन्दर की भाँति महान् है और मैं कच्छप के बच्चे की भाँति तुच्छ जीव हूँ। उसका वर्णन मुझसे सर्वथा अशक्य है। डाबर शब्द का प्रयोग पुत्र के अर्थ में गोस्वामीजी ने कवित्त रामायण में भी किया है। यथा : सोई बाँह गही जो गही समीर डाबरो।

बिना शील और स्नेह के सेवा में सरसता नहीं आती। मनसा वाचा कर्मणा सेवा लक्ष्मणजी वर्णनातीत स्नेह के साथ कर रहे हैं। जेहि न राम बन लहहि कलेसू। सुत सोइ करेहु इहै उपदेसू का साफल्य दिखाया।

दो. छिनु छिनु लखि सिय राम पद, जानि आपु पर नेहु।
करत न सपनेहुँ लखन चितु, बंधु मातु पितु गेहु॥१३९॥

अर्थ : क्षण क्षण सीता रामजी के चरणों का दर्शन करके और अपने ऊपर उनका प्रेम देखकर सपने में भी लक्ष्मणजी भाई माँ बाप तथा घर का ध्यान नहीं करते।

व्याख्या : लक्ष्मणजी का प्रेम इतना बढ़ा चढ़ा है कि प्रत्येक क्षण राम जानकी के चरणों के दर्शन का आनन्द लूट रहे हैं तथा उनका प्रेम अपने ऊपर देख रहे हैं। जिस पर अपना प्रेम हो वह भी अपने से प्रेम करे तभी प्रेम का आनन्द पूरा होता है। सो लक्ष्मणजी को पूर्णानन्द प्राप्त है। अतः उसी में मग्न होकर लक्ष्मणजी भाई माँ बाप और घर को याद भी नहीं करते। यहाँ घर शब्द से गेहिनी अभिप्रेत है।

राम संग सिय रहति सुखारी। पुर परिजन गृह सुरति बिसारी॥
छिनु छिनु पिय बिधु बदनु निहारी। प्रमुदित मनहुँ चकोर कुमारी॥१॥

अर्थ : पुर परिजन और घर की सुधि भूलकर रामजी के साथ सीताजी सुखी रहती हैं। प्रतिक्षण प्रिय के चन्द्रवदन को देखकर चकोर कुमारी की भाँति प्रसन्न रहती हैं।

व्याख्या : बिनु रघुपति पद पदुम परागा। मोहि केउ सपनेहुँ सुखद न लागा। का साफल्य दिखलाते हैं। स्वभाव से ही स्त्रियों को पुर परिजन और घर पर अधिक ध्यान रहता है। सो सीताजी ऐसी सुखी हैं कि उनको पुर परिजनादि स्मरण भी नहीं आते। नाथ सकल सुख साथ तुम्हारे। सरद बिमल बिधु बदन निहारे तथा : छिनु छिनु प्रभु पद कमल बिलोकी। रहिहौं मुदित दिवस जिमि कोकी। का साफल्य दिखाते हुए कहते हैं कि सीताजी प्रतिक्षण प्रिय : रामजी का मुखचन्द्र देखा करती हैं और चकोर कुमारी की भाँति प्रसन्न रहती हैं। चकोर कुमारी का चन्द्र से नवीन प्रेम है। बूढ़ी चकोरी में उतना प्रेम नहीं रह जाता। इसलिए चकोर कुमारी से उपमित किया।

नाह नेह नित बढ़त बिलोकी। हरषित रहति दिवस जिमि कोकी॥
सिय मनु राम चरन अनुरागा। अवध सहस सम बनु प्रिय लागा॥२॥

अर्थ : अपने नाथ के प्रेम को नित्य बढ़ता हुआ देखकर ऐसी हर्षित रहती हैं जैसे दिन में कोकी : चकई प्रसन्न रहती है। सीताजी का रामजी के चरणों में ऐसा अनुराग है कि सहस्र अयोध्या की भाँति वन प्रिय लग रहा है।

व्याख्या : रामजी का अपने ऊपर प्रेम नित्य बढ़ता हुआ देखकर चकई की भाँति सीताजी हर्षित रहने लगीं। रात्रि की प्रसन्नता द्योतित करने के लिए चकोरी से उपमा दी। अब दिन की प्रसन्नता कोकी से उपमा देकर दिखलाते हैं। भाव यह कि रात दिन प्रसन्न हैं। दुःख का लेश नहीं। अब : औध सौध सत सरिस पहारू का साफल्य दिखाते हैं कि जब वन का पहाड़ अवध के सौ महलों के बराबर है तो वन के भी सैकड़ों अवध के तुल्य होने में सन्देह क्या है ?

परनकुटी प्रिय प्रियतम संगा। प्रिय परिवारु कुरंग विहंगा॥
सासु ससुर सम मुनितिय मुनिवर। असनु अमिअ सम कंद मूल फर॥३॥

अर्थ : अत्यन्त प्यारे के साथ पत्ते की कुटी भी प्यारी है। पशु पक्षी प्रिय परिवार हो रहे हैं। मुनि की स्त्रियाँ और मुनि लोग सास ससुर हैं। कन्द मूल फल का भोजन अमृत के समान जान पड़ता है।

व्याख्या : नाथ साथ सुर सदन सम पर्नसाल सुख मूल का साफल्य दिखलाते हैं कि पत्ते की कुटी प्रियतम के सङ्ग में प्रिय हो रही है। अर्थात् जो जो बातें सीताजी ने अयोध्या में कही थीं वे सब सफल हो रही हैं। वहाँ कहा था : खग मृग परिजन। उसका साफल्य यह कहकर दिखलाते हैं कि कुरङ्ग विहङ्ग प्रिय परिवार हो रहे हैं। वहाँ कहा था : बनदेवी बनदेव उदारा। करिहहिं सासु ससुर सम सारा। सो सास के कथन के बल पर कहा था। यथा : पितु बन देव मातु बनदेवी। सो बनदेव और बनदेवी तो अदृश्य हैं। प्रत्यक्ष तो मुनियों की स्त्रियाँ और मुनि लोगों का व्यवहार सास ससुर सा है। कन्द मूल फल अमिअ अहारू का साफल्य : असनु अमिअ सम कन्द मूल फर कहकर दिखलाया।

नाथ साथ साँथरी सुहाई। मयन सयन सय सम सुखदाई॥
लोकप होहिं बिलोकत जासू। तेहि कि मोहि सक बिषय बिलासू॥४॥

अर्थ : नाथ के साथ सुन्दर साँथरी : पत्तों की चटाई कामदेव के सैकड़ों बिछौने के समान सुखदायक हो रहा है। जिसके देखने से लोकपाल पद प्राप्त होता है उसे क्या विषयविलास मोहित कर सकता है?

व्याख्या : नाथ साथ साथरी सुहाई। पिय सँग मंजु मनोज तुराई का साफल्य दिखा रहे हैं। अयोध्या में जो कुछ सीताजी ने कहा था उससे कुछ भी बढ़ाकर नहीं कहा था। हृदय का केवल शुद्ध भाव व्यक्त किया था। अतः ठीक वैसा ही अनुभव हो रहा है। जो बात गङ्गाजी ने कहा था। यथा : लोकप होहिं बिलोकत तोरे। तोहि सेवहिं सब सिधि कर जोरे। उसी का उद्धरण करते हुए कवि का कथन है कि उसे क्या विषय विलास मोहित कर सकता है : राम चरन पंकज मन जिनहीं। विषय भोग वस करहि कि तिनहीं।

दो. सुमिरत रामहिं तजहिं जन, तृन सम बिषय बिलासु।
राम प्रिया जग जननि सिय, कछु न आचरजु तासु॥१४०॥

अर्थ : रामजी को सुमिरते हुए भक्त लोग विषय विलास का तृण के समान परित्याग करते हैं। सीताजी तो रामजी की प्रिया हैं। जगदम्बा हैं। उनके लिए यह कौन सी आश्चर्य की बात है।

व्याख्या : रमा बिलास राम अनुरागी। तजहिं वमन जिमि नर बड़भागी। रामजी के अनुरागी मनुष्य लक्ष्मी के विलास को तो वमन की भाँति त्याग करते हैं।

पर विषय विलास को भी वे तृण के समान त्याग देते हैं। उनकी दृष्टि में विषय विलास उपेक्षा का विषय है और लक्ष्मी के विलास को तो वे सहन नहीं कर सकते। वमन की भाँति त्याग करके सुखी होते हैं। उत्तम पदार्थों का सेवन विषय विलास है और लक्ष्मी विलास यथा : झूमत द्वार मतंग अनेक जंजीर जड़े पद अंबु चुचाते। तीखे तुरंग मनो गति चंचल पौन के गौनहु ते बढ़ि जाते। भीतर चंदमुखी अवलोकत्ति बाहर भूप खड़े न समाते। एते भए तो कहा तुलसी जो पै जानकी नाथ के रंग न राते।

सीय लखन जेहि बिधि सुखु लहहीं। सोइ रघुनाथ करहिं सोइ कहहीं॥
कहहिं पुरातन कथा कहानी। सुनहिं लखन सिय अति सुखु मानी॥१॥

अर्थ : सीताजी और लक्ष्मण को जिस भाँति सुख मिले वही रामजी करते थे और कहते थे। पुरानी कथा और कहानियाँ कहते थे। लक्ष्मण और सीताजी अत्यन्त सुख मानकर सुनते थे।

व्याख्या : सरकार ने अपनी इच्छा को सीता और लक्ष्मण की इच्छा में तन्मय कर दिया। यहाँ तक कि सीताजी और लक्ष्मणजी को जैसे सुख मिले वही काम करते हैं। यद्यपि रघुनाथ हैं। फिर भी अपने को भक्त पराधीन कर रक्खा है।

सीताजी और लक्ष्मणजी प्रभु के मुख की वाणी सुनना चाहते हैं। यथा : सुनी चहैं प्रभु मुख कै बानी। जो सुनि होइ सकल भ्रम हानी। अतः सरकार पुरानी कथा कहानी कहते हैं। कहानी के द्वारा भी प्राचीन काल में शास्त्रोपदेश की प्रथा थी। पञ्चतन्त्र तथा हितोपदेश से सभी परिचित हैं। बालपन से ही सरकार को वेद पुराण के कहने सुनने का व्यसन भी है। यथा : बेद पुरान सुनहिं मन लाई। आपु कहहिं अनुजन्ह समुझाई।

जब जब राम अवध सुधि करहीं। तब तब बारि बिलोचन भरहीं॥
सुमिरि मातु पितु पुरजन भाई। भरत सनेहु सीलु सेवकाई॥२॥

अर्थ : जब जब रामजी अवध की याद करते हैं तब तब माता पिता पुरजन भाई और भरतजी के स्नेह और सेवकाई को स्मरण करके आँखों में आँसू भर लाते हैं।

व्याख्या : सीताजी और लक्ष्मणजी अवध की सुधि नहीं करते। क्योंकि जिस प्रेमी के लिए अवध छोड़ा है वह साथ है। रामजी अवध की सुधि करते हैं। क्योंकि उन्होंने किसी के लिए अवध नहीं छोड़ा है। दूसरी बात यह कि अवध सरकार को वैकुण्ठ से भी अधिक प्रिय है। अतः आँख में आँसू आ जाता है। कहते कुछ नहीं हैं। स्नेहमयी जननी, प्रेमनिधि पिता, शीलनिधि भाई शत्रुघ्न और भरतजी का स्नेह, शील और सेवा का स्मरण करके आँख में आँसू आ जाना स्वाभाविक है।

कृपासिंधु प्रभु होहिं दुखारी। धीरजु धरहिं कुसमउ बिचारी॥
लखि सिय लखन बिकल होइ जाहीं। जिमि पुरुषहि अनुसर परिछाहीं॥३॥

अर्थ : कृपासिन्धु प्रभु दुःखी हो जाते हैं। पर कुसमय जानकर धैर्य धारण करते हैं। इस बात को लखकर सीताजी और लक्ष्मणजी विकल हो जाते हैं। जैसे परछाहीं पुरुष का अनुसरण करती है।

व्याख्या : यद्यपि विस्मय हर्षरहित है। पर भगवान् कृपासिन्धु हैं। भक्त के दुःख से दुःखी हो जाते हैं। जानते हैं कि उनके बिना वे लोग कैसे दुःखी होंगे। कुसमय में शोक का परित्याग करके धैर्य धारण करने का विधान है। इसलिए धैर्य धारण करते हैं। कुछ कहते नहीं। फिर भी प्रतिक्षण सरकार के मुख देखनेवाली सीताजी और लक्ष्मणजी लखकर विकल हो जाते हैं। इन्हें सरकार का दुःख सह्य नहीं है। इन्हें प्रतिबिम्ब की भाँति अपना सुख दुःख कुछ नहीं है। रामजी के दुःख से दुःखी और रामजी के सुख से सुखी होते हैं। जैसे प्रतिबिम्ब बिम्ब के सुख दुःख से सुखी दुःखी हुआ करता है।

प्रिया बंधु गति लखि रघुनंदनु। धीर कृपाल भगत उर चन्दनु॥
लगे कहन कछु कथा पुनीता। सुनि सुखु लहहिं लखनु अरु सीता॥४॥

अर्थ : रघुनन्दन धीर कृपाल और भक्त के हृदय के लिए चन्दन हैं। प्रिया और भाई की दशा देखकर कुछ पवित्र कथा कहने लगे। सुनकर लक्ष्मणजी और सीताजी ने सुख पाया।

व्याख्या : कृपाल रघुनन्दन हैं। दुःखी नहीं रहने देंगे। धैर्य से अपने को भी सँभाला और अब सीता और लक्ष्मणजी को सँभालने के लिए कुछ पवित्र कथा कहने लगे। भक्त के हृदय को शीतलता पहुँचाने के लिए चन्दन रूप हैं। अतः कथा कहकर शोकापहरण किया। सीता और लक्ष्मणजी ने सुनकर सुख पाया।

दो. रामु लखन सीता सहित, सोहत परन निकेत।
जिमि बासव बस अमरपुर, सची जयंत समेत॥१४१॥

अर्थ : लक्ष्मण और सीताजी के सहित रामजी पर्णकुटी में ऐसे शोभित हैं जैसे इन्द्र इन्द्रपुर में इन्द्राणी और जयन्त के साथ बसते हैं।

व्याख्या : पर्णकुटी में निवास है। पर तीनों मूर्तियों में परस्पर ऐसा प्रेम है कि पर्णकुटी इन्द्रासन हो गयी और उसमें सरकार इन्द्र की भाँति, शची रूप सीताजी और जयन्त रूप लक्ष्मण के साथ निवास करते हैं। दरबार लगा है। कभी देवता लोग और कभी मुनि लोग हाजिरी बजाते हैं।

जोगवहिं प्रभु सिय लखनहि कैसें। पलक बिलोचन गोलक जैसें॥
सेवहिं लखनु सीय रघुबीरहि। जिमि अबिबेकी पुरुष सरीरहि॥१॥

अर्थ : प्रभु और सीताजी लक्ष्मणजी की कैसा सँभाल रखते हैं जैसे पलक नेत्र के गोलक का सँभाल रखता है और लक्ष्मणजी सीता और रामजी की कैसी सेवा करते हैं जैसी अविवेकी पुरुष शरीर की सेवा करता है।

व्याख्या : रामजी का सीता और लक्ष्मण के साथ कैसा बर्ताव था और सीता तथा लक्ष्मण का रामजी के साथ कैसा बर्ताव था। इस बात को कहकर अब राम जानकी का लक्ष्मण के साथ कैसा बर्ताव था तथा लक्ष्मणजी का राम जानकी के साथ कैसा बर्ताव था सो कहते हैं।

पलक दोनों नेत्र के गोलक की जिस भाँति रात दिन रक्षा करती है। कोई सदमा यदि गोलक पर आवे तो उसे अपने ऊपर लेती है। उसी भाँति रामजानकी दोनों लक्ष्मणजी की ऐसी रक्षा करते हैं कि कोई सदमा लक्ष्मणजी पर न आने पावे। आता हो तो उसे अपने ऊपर ले लेते हैं और लक्ष्मणजी श्री सीतारामजी की ऐसी सेवा करते हैं जैसे देह को ही आत्मा माननेवाला अविवेकी पुरुष शरीर की सेवा करता है। वह धर्माधर्म कुछ नहीं जानता। जिसमें शरीर को सुख मिले वही करता है। इसी भाँति लक्ष्मणजी सेवाधर्म के आगे किसी धर्म को नहीं गिनते। जिससे श्री सीतारामको सुख हो वही करते हैं। यथा : सो सब करम धरम जरि जाऊ। जहँ न राम पद पंकज भाऊ।

एहि बिधि प्रभु बन बसहिं सुखारी। खग मृग सुर तापस हितकारी ॥
कहेउँ राम बन गवन सुहावा। सुनहुँ सुमंत्र अवध जिमि आवा ॥२॥

१७. सचिवागमन प्रसङ्ग

अर्थ : इस विधि से खग मृग सुर और तपस्वी के हितकारी प्रभु वन में सुखी बसते हैं। रामजी का सुन्दर वन गमन तो कहा। अब सुमन्त्र अवध जिस भाँति आये उसे सुनिये।

व्याख्या : प्रभु का वन गमन भी सुन्दर है। अवध के लोगों का दु:खी होना और खग मृग सुर तापस का सुखी होना भी वनगमन की सुन्दरता का पोषक है। प्रभु तो सुख रूप ही ठहरे। वन में भी सुखी हैं। वन में भी सुखी रहने की विधि भी गोस्वामीजी ने यहाँ बतला दिया कि कुटुम्ब के लोगों में यदि परस्पर प्रेम हो और कुटुम्बियों के सुख के आगे अपने सुख को न गिने। परस्पर एक दूसरे के सदमा को अपने ऊपर लेने को तैयार हों तो वन में भी सुखी रह सकते हैं। इसके विपरीत होने से घर भी नरक हो जाता है। यहाँ तक रामचरित है। अब सुमन्त्र के अवध लौटने का प्रसङ्ग आरम्भ होता है।

फिरेउ निषाद प्रभुहि पहुँचाई। सचिव सहित रथ देखेसि आई ॥
मंत्री बिकल बिलोकि निषादू। कहि न जाइ जस भयउ बिषादू ॥३॥

अर्थ : निषाद प्रभु को पहुँचाकर लौटा तो मन्त्री सहित रथ को देखा। मन्त्री निषाद को देखकर विकल हो गये। ऐसा विषाद हुआ जो कहा नहीं जा सकता।

व्याख्या : चैत्र शुक्ल दशमी को वनवास हुआ। एकादशी को शृङ्गवेरपुर

ठहरे। द्वादशी को सुमन्त्र को विदा किया। त्रयोदशी को भरद्वाज के आश्रम में ठहरे। चतुर्दशी को निषादराज लौटे। देखा तो सुमन्त्रजी रथ के साथ अभी वही हैं।

मन्त्रीजी निषादराज को देखकर विकल हो गये। रही सही आशा भी टूट गयी। सम्भावना थी कि घोर वन देखकर सीताजी डरेंगी तब रामजी उन्हें लौटा देंगे। वह भी नहीं हुआ। निषादराज भी दु:खी होकर लौटे थे। एक दूसरे को देखकर दोनों रो पड़े। विषाद का वर्णन नहीं हो सकता।

राम राम सिय लखनु पुकारी। परेउ धरनि तल व्याकुल भारी ॥
देखि दखिन दिसि हय हिहिनाहीं। जनु बिनु पंख बिहँग अकुलाहीं ॥४॥

अर्थ : राम राम लक्ष्मण और सीता ऐसा पुकारते हुए पृथ्वी पर भारी व्याकुल होकर गिरे। दक्षिण की ओर देखकर घोड़े हिनहिना रहे हैं जैसे बिना डैना का पक्षी व्याकुल हो।

व्याख्या : मन्त्री रथ से नीचे गिर पड़े। हाय मारकर रोने लगे। मानो राम लक्ष्मण और सीताजी उतने ही दूर हैं जहाँतक उनकी आवाज पहुँच सकती है। इस भाँति तीनों मूर्तियों को नाम लेकर पुकारा। इधर घोड़े अनाथ होकर दक्षिण की ओर देखकर अलग रो रहे हैं। उनका हिनहिनाना ही रोना है। ऐसे दीन हो रहे हैं जैसे बिना पंख के पक्षी हों।

दो. नहि तृन चरहिं न पियहिं जल, मोचहिं लोचन बारि।
ब्याकुल भयेउ निषाद सब, रघुबर बाजि निहारि ॥१४२॥

अर्थ : न तृण चरते हैं न जल पीते हैं। आँखों से आँसू बहाते हैं। निषाद लोग रामजी के घोड़ों को देखकर व्याकुल हो गये।

व्याख्या : सरकार से बिछोह हुए तीसरा दिन है। तब से घोड़ों ने न घास खाया है न पानी पीया है। उनके आँख से आँसू बह रहा है। जिस ओर रामजी गये हैं उधर देख देखकर हिनहिनाना ऊपर कह आये हैं। घोड़ों की यह दशा देखकर निषादगण व्याकुल हो गये कि रामजी के विरह में जो न हो जाय सो थोड़ा है। जब पशुओं की यह दशा है तो सगे सम्बन्धियों की क्या दशा होगी। एक घोड़े की यह दशा होती तो समझा जाता कि बीमार है।

धरि धीरज तब कहइ निषादू। अब सुमंत्र परिहरउ बिषादू ॥
तुम पंडित परमारथ ग्याता। धरहु धीर लखि बिमुख बिधाता ॥१॥

अर्थ : धैर्य धारण करके निषादराज कहने लगा कि सुमन्त्रजी! अब विषाद को छोड़ो। तुम पण्डित हो। परमार्थ के जाननेवाले हो। विधाता को प्रतिकूल जानकर धैर्य धारण करो।

व्याख्या : विषाद में धैर्य छूट जाता है। सो सुमन्त्रजी तो धैर्य नहीं धारण कर सके। पर निषाद ने धैर्य धारण करके कहा कि मन्त्रीजी! जो होना था सो

हो चुका। विषाद छोड़ने से ही छूटता है। अशोच्य को सोचना पण्डित का काम नहीं। सत्रु मित्र सुख सुःख जग माँही। मोह मूल परमारथ नाहीं। आप परमार्थ के जाननेवाले हैं। आपको दुःखी नहीं होना चाहिए। जब ब्रह्मा प्रतिकूल हो जाते हैं तब कोई उपाय काम नहीं करता। धैर्य की परीक्षा का यही समय है। अतः आप धैर्य धारण कीजिये।

बिबिध कथा कहि कहि मृदु बानी। रथ बैंठारेउ बरबस आनी ॥
सोक सिथिल रथु सकै न हाँकी। रघुबर बिरह पीर उर बाँकी ॥२॥

अर्थ : कोमल वाणी से अनेक प्रकार की कथाएँ कहकर जबरदस्ती लाकर सुमन्त्र को रथ पर बिठाया। वह शोक से ऐसे शिथिल थे कि रथ हाँक नहीं सकते थे। उनके हृदय में रामजी के विरह की तीखी पीड़ा थी।

व्याख्या : सुमन्त्र किसी तरह बिना रामजी के अयोध्या लौटना नहीं चाहते। निषादराज ने कोमल वाणी से अनेक प्रकार की कथाएँ कहीं। जिनसे धैर्य बँध सके और जबरदस्ती रथ पर ला बिठाया। रामजी के विरह की पीड़ा ऐसी तीव्र थी कि समझाने बुझाने का कोई फल नहीं हुआ। हार्दिक व्यथा से अङ्ग शिथिल थे। रथ हाँकने की शक्ति नहीं।

चरफराहिं मग चलहिं न घोरे। बन मृग मनहुँ आनि रथ जोरे ॥
अढुकि परहिं फिरि हेरहिं पीछे। राम बियोग बिकल दुख तीछे ॥३॥

अर्थ : घोड़े तड़फड़ाते थे। रास्ता नहीं चलते थे मानो जङ्गली जानवरों को लाकर रथ में जोड़ दिया है। ठोकर खाते हैं। घूम घूमकर पीछे देखते हैं। रामजी के तीखे दुःख से विकल हैं।

व्याख्या : सारथि की यह दशा है कि रथ हाँक नहीं सकता। घोड़ों की यह दशा है कि वे आगे बढ़ना नहीं चाहते। रामजी के वियोग की पीड़ा उन्हें भी ऐसी कड़ी है कि वे रथ में जुते हुए तड़फड़ा रहे हैं। अन्य पशुओं की भाँति अशिक्षित से मालूम हो रहे हैं। बार बार ठोकर खाते हैं। आगे बढ़ाइये तो घूमकर पीछे देखते हैं।

जो कहु रामु लखनु बैदेही। हिंकरि हिंकरि हित हेरहिं तेही ॥
बाजि बिरह गति कहि किमि जाती। बिनु मनि फनिक बिकल जेहि भाँती ॥४॥

अर्थ : जो कोई राम लक्ष्मण और सीताजी का नाम ले लेता है हिनहिनाकर उसकी ओर प्यार की दृष्टि से देखते हैं। घोड़ों की दशा कैसे कही जाय। वे मणि विहीन सर्प की भाँति विकल हैं।

व्याख्या : सरकार सबकी आत्मा हैं। आत्मा किसे प्यारी नहीं है। घोड़ों की विकलता तो सारथि से कम नहीं। वे कुछ कह नहीं सकते। पर समझते सब

कुछ हैं। अतः व्याकुल हैं। मणि विहीन सर्पों की सी उनकी दशा हो रही है। माँ कौसल्या ने कहा है :

राघव एकबार फिरि आवो।
ये वरवाजि विलोकि आपने बहुरो बनहि सिधावो।
जे पय प्याइ पोखि करपंकज बार बार चुचुकारे।
क्यों जीवे मेरे राम लाड़िले ते अब निपट विसारे।
भरत सौगुनीसार करत हैं अतिप्रिय जानि तुम्हारे।
तदपि दिनहि दिन होत झाँवरे मनहु कमल हिम मारे।
सुनहु पथिक जो राम मिलहिं वन कहियो मातु संदेसो।
तुलसी मोहि और सबहिन ते इनको अधिक अंदेसो।

दो. भयउ निषादु बिषादुबस, देखत सचिव तुरंग।
बोलि सुसेवक चारि तब, दिये सारथी संग ॥१४३॥

अर्थ : मन्त्री और घोड़ों को देखकर निषाद विषादवश हो गया। चार सुसेवकों को बुलाकर सारथि के साथ कर दिया।

व्याख्या : निषादराज धैर्य धारण किये था। पर मन्त्री और घोड़ों की दशा देखकर उसका धैर्य जाता रहा। चारों घोड़ों के सँभालने के लिए चार सेवक साथ कर दिये। जो घोड़ों को भी सँभाले तथा सारथि पर भी ध्यान रक्खें। इसीलिए सुसेवक कहा। अथवा देख चुका है कि मुनिजी : भरद्वाजजी ने पहुँचाने के लिए चार बटु साथ कर दिये थे। यथा : मुनि बटु चार संग तब दीन्हें। इसलिए इसने भी चार सुसेवक साथ दिये। रास्ता चलने में चार का साथ चाहिए।

गुह सारथिहि फिरेउ पहुँचाई। बिरह बिषादु बरनि नहिं जाई॥
चले अवध लेइ रथहि निषादा। होहिं छनहिं छन मगन बिषादा ॥१॥

अर्थ : गुह : निषादराज सारथि को पहुँचाकर लौट आये। विरह से जो विषाद उन्हें है उसका वर्णन नहीं हो सकता। निषाद लोग रथ लेकर अयोध्या चले। वे भी क्षण क्षण विषाद में मग्न होते जाते हैं।

व्याख्या : कुछ दूर तक निषादराज पहुँचाने गये। अपनी आँखों देख लिया कि सुसेवक घोड़ों को सँभाले लिये जाते हैं। तब लौटे। जब मन्त्री का सामना हुआ तब भी कहा : कहि न जाइ जस भयउ बिषादू। अब घर लौटने पर कहते हैं : बिरह बिषाद बरनि नहिं जाई। बाल बच्चे सब रो रहे हैं।

अब मन्त्री की अवध यात्रा कहते हैं। घोड़े एकदम बेकार हैं। निषाद लोग रथ लिये चले जा रहे हैं। पर वे भी क्षण क्षण विषाद में मग्न हो जाते हैं। बार बार अपने को सँभालते हैं। पर सरकार का विरह ही ऐसा है कि उसे हटा नहीं सकते। बार बार मग्न हो जाते हैं।

सोच सुमंत्र बिकल दुख दीना। धिग जीवन रघुबीर बिहीना ॥
रहिहि न अंतहुँ अधम सरीरू। जसु न लहेउ बिछुरत रघुबीरू ॥२॥

अर्थ : सुमन्त्रजी व्याकुल और दुःख से दीन होकर सोचते थे कि रघुवीर के बिना जीवन को धिक्कार है। अन्त में यह अधम शरीर रहने का नहीं। फिर रघुवीर के बिछुरते समय इसने यश क्यों न लिया।

व्याख्या : विकल पुरुष कैसा सोचता है सो कवि दिखलाते हैं। रघुवर बिरह पीर उर बाँकी है। उसे न सहकर मन्त्री दीन हो गया है। ऐसी पीड़ा के सहित जीवन को धिक्कारता है। रघुवीर विहीन होने की पीड़ा है। रामजी ने पिता सम माना। यथा : आदर कीन्ह पिता सम लेखा। सो मन्त्री ने भी पुत्र सम माना। जौ पै प्रिय बियोग बिधि कीन्हा। तौ कस मरन न माँगे दीन्हा। छिति जल पावक गगन समीरा। पंच रचित यह अधम सरीरा। सो भी अन्त में जाने ही वाला है। अद्य वाब्दशतान्ते वा मृत्युर्वै प्राणिनां ध्रुवः। चाहे आज मरें चाहे सौ वर्ष बाद मरें। मरना तो ध्रुव ही है। इस समय मोका था। बड़ा यश मिलता। यथा : जिअन मरन फल दसरथ पावा। अंड कटाह अमित जस छावा। जिअत राम बिधु बदन निहारा। राम बिरह करि मरन सँवारा। सो यही मौका शरीर छोड़ने का था। सो नहीं छूटा।

भए अजस अघ भाजन प्राना। कवन हेतु नहिं करत पयाना ॥
अहह मंद मनु अवसर चूका। अजहुँ न हृदय होत दुइ टूका ॥३॥

अर्थ : मेरे प्राण अपयश और पाप के पात्र हो गये। किस कारण से ये नहीं निकलते। अहो ! यह मन्दमन मौका चूक गया। अब भी हृदय दो टुकड़ा नहीं हो जाता।

व्याख्या : परम पावन प्राण आज अयश तथा अघ के भाजन हुए। जगत् में दुर्यश हुआ कि मन्त्री होकर कुँअर को वन पहुँचा आया। यह मन्त्री होने योग्य न था। बिना पाप के पीड़ा होती नहीं और तीखी पीड़ा हृदय में हो रही है। अतः अघभाजन भी हुए। प्राण प्रयाण के दोनों हेतु यहाँ उपस्थित हैं। अत्यन्त पीड़ा और दुर्यश। फिर भी प्राण नहीं निकल रहा है। मन्त्री मन को धिक्कारता है कि यह अवसर चूक गया। रामजी के वियोग होते ही हृदय को फट जाना चाहता था। सो अब भी नहीं फटता।

मीजि हाथ सिरु धुनि पछिताई। मनहुँ कृपन धन रासि गवाँई ॥
बिरिद बाँधि बर बीरु कहाई। चलेउ समर जनु सुभट पराइ ॥४॥

अर्थ : हाथ मलकर सिर पीटकर पछता रहा है। मानो कृपण ने धन की राशि गवाँ दी। वीरता का बाना बाँधकर और श्रेष्ठ वीर कहलाकर रणाङ्गन से जैसे सुभट भाग चला हो।

व्याख्या : धनराशि के गँवा देने पर हाथ मलना सिर पीटना ये सब लक्षण कृपणों में प्रकट होते हैं। उनके पश्चात्ताप की कोई सीमा नहीं रहती। सुमन्त्र ने राम लक्ष्मण और जानकी तीनों धनराशि खोया। अब लोभी कृपण की भाँति पछता रहे हैं कि मैं रामजी के वन पहुँचाने का साधन बन गया। मेरे करतव से रामजी वन गये। मैंने ही पता न लगे इस भाँति रथ पर चढ़ाकर वन पहुँचा दिया। यथा : सचिव चलायेउ तुरत रथ इत उत खोज दुराइ।

सुमन्त्रजी इस हौसले से चले थे कि मैं लौटा लाऊँगा। लोग भी कहते थे कि मन्त्री है। महाराज का सखा है। निष्फल नहीं लौट सकता। कम से कम सीताजी को लौटा ही लावेगा। पर सरकार के सामने कोई युक्ति चली नहीं। लौटाने के लिए थे सो पहुँचाकर लौट रहे हैं। वीर लब्धप्रतिष्ठ जिस भाँति संग्राम से भागकर मुख दिखाना नहीं चाहता। उसी भाँति सुमन्त्रजी भी मुँह दिखाना नहीं चाहते। यश प्यारा नहीं हुआ। प्राण प्यारा हुआ।

दो. बिप्र बिबेकी बेदबिद, संमत साधु सुजाति।
जिमि धोखें मद पान कर, सचिव सोंच तेहि भाँति ॥१४४॥

अर्थ : जैसे विवेकी वेद का जाननेवाला, साधु सम्मत, कुलीन ब्राह्मण धोखे से मद्य पी ले। उसी भाँति मन्त्री को सोच हुआ।

व्याख्या : विद्या विनय सम्पन्न ब्राह्मण यदि धोखे से मद्य पी ले तो उसका ब्राह्मणत्व ही चला जाता है। ब्राह्मण के लिए मद्य पीने पर जितने प्रायश्चित्त हैं सब मरणान्त हैं। अतः उसके शोक का ठिकाना नहीं। यही हाल सुमन्त्र का हुआ। यह धोखा खा गये। समझा था कि मैं अवश्य कम से कम सीताजी को लौटा लाऊँगा। पर नहीं लौटा सके। परम्परया महाराज के मृत्यु के कारण हो गये। यदि धोखा न होता तो उसी रथ पर महाराज को बिठला ले जाते।

जिमि कुलीन तिय साधु सयानी। पतिदेवता करम बन बानी॥
रहै करम बस परिहरि नाहू। सचिव हृदय तिमि दारुन दाहू॥१॥

अर्थ : जिस भाँति किसी कुलीन, साध्वी, सयानी, मनसा वाचा कर्मणा पतिव्रता स्त्री को कर्मवश पति को छोड़कर रहना पड़े। वैसा ही दारुण दाह मन्त्री के हृदय में था।

व्याख्या : कुलीन से जाति कहा। साधु से स्वभाव कहा। पतिदेवता कर्म मन वाणी से धर्म निष्ठा कहा। सभी साधन सौभाग्य के हैं। परन्तु कर्मवश विधि के प्रतिकूल होने से उसे पति का वियोग हो गया। ऐसी स्त्री को दारुण दाह होता है। यथा : बन दुःख नाथ कहे बहुतेरे। भय बिषाद परिताप घनेरे। प्रभु बियोग लवलेस समाना। सब मिलि होहिं न कृपानिधाना।

लोचन सजल डीठि भइ थोरी। सुनइ न श्रवन बिकल मति भोरी॥
सूखहिं अधर लागि मुह लाटी। जिव न जाइ उर अवधि कपाटी॥२॥

अर्थ : नेत्रों में जल आ जाने से दृष्टि थोड़ी हो गयी। कानों से सुनायी नहीं पड़ता था। विकलता के कारण बुद्धि भोरी हो गयी। होठ सूख गये। तालू सूख गया। परन्तु अवधिरूपी किवाड़ के कारण प्राण नहीं निकल सकते थे।

व्याख्या : ज्ञानेन्द्रियाँ शिथिल हो गयीं। बुद्धि भोरी हो गयी। कुछ समझ में नहीं आ रहा है। मुख में शोष हो रहा है। मरण की दशा उत्पन्न हो गयी। फिर भी मौत नहीं आती। आशा लगी हुई है कि चौदह वर्ष बाद सरकार फिर लौटेंगे। मानों अवधिरूपी किवाड़ लगे हुए हैं। प्राण को निकलने नहीं देते।

बिबरन भयउ न जाइ निहारी। मारेसि मनहुँ पिता महतारी ॥
हानि गलानि बिपुल मन ब्यापी। जमपुर पंथ सोच जिमि पापी ॥३॥

अर्थ : शरीर का रङ्ग ऐसा विकृत हो गया कि देखते नहीं बनता। मानो मातृ-हत्या पितृहत्या लगी हुई है। बड़ी हानि और ग्लानि मन में व्याप रही है। जैसे पापी यमपुर पंथ में सोच करता हो।

व्याख्या : शोक का वेग बढ़ता ही जा रहा है। पहिले कृपण वैश्य का पछतावा कहा। उससे अधिक दुःख वीर क्षत्रिय का दुःख कहा। उससे भी अधिक विवेकी ब्राह्मण का सोच कहा। तीनों से तीव्र दाह पतिव्रता का कहा। इस भाँति उदाहरण देकर मन्त्री के शोक की बढ़ोत्तरी दिखायी। परन्तु ये सब उदाहरण दैव वश दुःख प्राप्ति के थे। अब शोक का वेग और बढ़ा तो सोचने लगा कि मैं महाराज के मृत्यु का कारण हो रहा हूँ। अतः उनके चेहरे का रङ्ग बिगड़ गया। अब जितना अवध निकट आ रहा है उतनी ही विकलता बढ़ती जा रही है। जो हानि होनेवाली है उसका ध्यान बँधा और उससे मन में ग्लानि उत्पन्न हुई। अयोध्या यमपुर मालूम होने लगा। जैसे पापी यमपुर के रास्ते में महा दुःख पाता हुआ सोचता है कि जब रास्ते में यह दशा हो रही है तो यमपुर पहुँचने पर क्या दशा होगी। इसी भाँति मन्त्री भी, अयोध्या पहुँचने पर जिस दुःख का सामना करना पड़ेगा उसे सोच रहा है।

यहाँ सुमन्त्रजी सोच रहे हैं कि अवध जाने पर उन्हें सात प्रकार की परिस्थितियों का सामना करना पड़ेगा और इस भाँति सात प्रकार की तीव्रतम मानसिक व्यथाओं को झेलना पड़ेगा। उन्हें स्मरण करके सुमन्त्रजी का हृदय ऐसा कातर हो रहा है मानों उन्हें उन व्यथाओं का इसी समय अनुभव करना पड़ रहा हो।

परिस्थिति	व्यथा
१. बचन न आव हृदय पछिताई। अवध काह मैं देखब जाई।	१. अहह मंद मन अवसर चूका। अजहुँ न हृदय होत दुई टूका।
२. राम रहित रथु देखिहि जोई। सकुचिहि मोहि बिलोकत सोई।	२. मीजि हाथ सिर धुनि पछिताई। मनहु कृपन धन रासि गँवाई।

परिस्थिति	व्यथा
३. धाइ पूछिहहिं मोहि जब बिकल नगर नर नारि। उतरु देव मैं सबहिं तब हृदय बज्रु बैठारि।	३. बिरुद बाँधि बर बीर कहाई। चलेउ समर जिमि सुभट बराई।
४. पुछिहहिं दीन दुखित सब माता। कहब काह मैं तिन्हहि बिधाता।	४. बिप्र बिबेकी बेदबिद संमत साधु सुजाति। जिमि धोखे मद पान कर सचिव सोच तेहि भाँति।
५. पुछिहहिं जबहिं लखन महतारी। कहिहौं कवन सँदेस सुखारी।	५. जिमि कुलीन तिय साधु सयानी। पति देवता करम मन बानी। रहै करम बस परिहरि नाहू। सचिव हृदय तिमि दारुन दाहू।
६. राम जननि जब आइहि धाइ। सुमिरि बच्छ जनु धेनु लवाई। पूँछत उतरु देव मैं तेही। गे बन रामु लखनु बैदेही।	६. लोचन सजल डीठि भइ थोरी। सुनइ न श्रवन बिकल मति भोरी। सूखहि अधर लागि मुँह लाटी। जिउ न जाइ उर अवधि कपाटी। बिबरन भयउ न जाइ निहारी। मारेसि मनहुँ पिता महतारी।
७. पूछिहि जबहिं राउ दुख दीना। जिवनु जासु रघुनाथ अधीना। देहौं उतरु कवनु मुँह लाई। आयेउ कुसल कुअँर पहुँचाई। सुनत लखन सिय राम सँदेसू। तृन जिमि तनु परिहरिहि नरेसू।	७. हानि गलानि बिपुल मन ब्यापी। जमपुर पंथ सोच जनु पापी।

बचन न आव हृदय पछिताई। अवध काह मैं देखब जाई॥
राम रहित रथ देखिहि जोई। सकुचिहि मोहि बिलोकत सोई॥४॥

अर्थ : उसके मुख से बात नहीं निकलती। मन में पछतावा हो रहा है कि अयोध्या जाकर मैं क्या देखूँगा। राम से रहित जो रथ देखेगा वह मुझे देखने में सङ्कोच करेगा।

व्याख्या : बिबरन भयउ से तन की दशा कहा। गलानि बिपुल मन ब्यापी से मन की दशा कहा। अब : बचन न आव से वचन की दशा कहते हैं। मन में पछता रहे हैं कि अभी अवध में जाकर न जाने क्या देखना है। यहाँ सीता राम लक्ष्मण वन गमन देखा। अवध में मरण देखना शेष है।

गर्हित कर्म करनेवाले को चाहे मुँह दिखाने में सङ्कोच न हो पर शिष्ट पुरुष को उसका सामना करने में सङ्कोच होता है। मन्त्रीजी सोच रहे हैं कि उसी

भाँति अयोध्या में लोग मुझे देखने में सङ्कोच करेंगे कि यह रामजी को वन पहुँचाकर जीता लौट रहा हूँ।

दो. धाइ पूछिहहिं मोहि जब, बिकल नगर नर नारि।
उतरु देब मैं सबहिं तब, हृदय बज्रु बैठारि ॥१४५॥

अर्थ : जब नगर के नर नारी व्याकुलता से दौड़कर मुझसे पूछेंगे तब कलेजे पर वज्र रखकर मुझे जवाब देना होगा।

व्याख्या : नगर के नर नारी विकल हैं। मेरे लौटने की प्रतीक्षा कर रहे हैं। मेरा आना सुनकर सब दौड़े हुए मेरे पास आवेंगे। तब उनको उत्तर देने के लिए मुझे वज्र सा कलेजा करना पड़ेगा। सुमन्त्रजी राष्ट्र के महामन्त्री हैं। अवध में बड़ी प्रतिष्ठा है। सबको भरोसा है कि रामजी वन गये। फिर भी महामन्त्री साथ हैं। बिना कुछ किये न लौटेगा। अतः मैं कुछ न कर सका। रामजी वन चले ही गये यह कहने में उसे मृत्युतुल्य कष्ट है।

पुछिहहिं दीन दुखित सब माता। कहब काह मैं तिन्हहिं बिधाता॥
पुछिहहि जबहिं लखन महतारी। कहिहौं कवन सँदेस सुखारी॥१॥

अर्थ : जब दीन दुःखी माताएँ पूछेंगी हे विधाता! तब मैं उनसे क्या कहूँगा। जब लक्ष्मण की माँ पूछेंगी तब मैं सुखी होकर कौन सा सन्देश कहूँगा।

व्याख्या : यम पुर पंथ सोच जनु पापी : पहिले कह आये हैं। उसी को स्पष्ट करके दिखला रहे हैं कि पुरजन को उत्तर देने में महाकष्ट। फिर माताओं के उत्तर देने में जो स्वयं दुःखी दीन हो रही हैं और भी अधिक कष्ट होगा। फिर लक्ष्मण की माँ पूछेंगी जिनके बेटे को मैं वन पहुँचाकर आ रहा हूँ। उनको उत्तर देने में कितने बड़े कष्ट का सामना है। यहाँ दुःखी होकर सुमन्त्रजी अपने को सुखारी कह रहे हैं।

राम जननि जब आइहि धाई। सुमिरि बच्छु जिमि धेनु लवाई॥
पूँछत उतरु देब मैं तेही। गे बनु राम लखनु बैदेही॥२॥

अर्थ : जैसे नयी व्याई हुई गाय बछड़े का याद करके दौड़ती है। उसी भाँति जब दौड़ी हुई रामजी की माँ आवेंगी तब मैं उन्हें उत्तर दूँगा कि राम लक्ष्मण जानकी वन चले गये।

व्याख्या : नयी व्याई हुई गाय को बछड़े का प्यार होता है। उसके स्मरण से उसके थन से दूध टपक पड़ता है। इस भाँति कौसल्याजी को रामजी पर बड़ी प्रीति है। मेरे आने का समाचार सुनकर वे स्वयं दौड़ी हुई आकर समाचार पूछेंगी। उनसे यह उत्तर देना कि राम लक्ष्मण जानकी वन चले गये कष्ट की पराकाष्ठा है।

जोइ पूछिहिं तेहि ऊतरु देबा । आइ अवध अब यहु सुखु लेबा ॥
पूँछिहि जबहिं राउ दुख दीना । जिवनु जासु रघुनाथ अधीना ॥३॥

अर्थ : जो पूछेगा उसे जवाब देना । यही सुख मुझे अब अवध में जाकर लेना है । जब दुःख से दीन महाराज पूछेंगे जिनका जीवन ही रामजी के आधीन है ।

व्याख्या : अब पूछने के प्रसङ्ग का उपसंहार करते हुए कहते हैं कि अयोध्या जाकर मुझे जिस बड़े भारी दुःख का सामना करना है वह यही है कि जो पूछेगा उसे उत्तर देना पड़ेगा । यदि सरकार को मैं लौटाने में समर्थ होता तो किसी को मुझसे पूछने की आवश्यकता ही क्या थी ? महा दुःखद सन्देश सबसे कहना मेरे लिए यही कार्य अयोध्या में है । यहाँ सुख से दुःख ध्वनित है । जैसे : कहिहौं कवन सँदेश सुखारी ।

यद्यपि महाराज हैं । पर इस समय दुःख से दीन हो रहे हैं । क्योंकि उनका जीवन ही राम दर्शन के आधीन है । यथा : समुझि देखु जिय प्रिया प्रबीना । जीवन राम दरस आधीना ।

देहौं उतरु कौन मुहु लाई । आएउँ कुसल कुँअर पहुँचाई ॥
सुनत लखन सिय राम सँदेसू । तृन जिमि तनु परिहरिहि नरेसू ॥४॥

अर्थ : कौन मुँह लगाकर जवाब दूँगा कि कुँअर को पहुँचाकर मैं कुशल से लौट आया । लक्ष्मण सीता और रामजी का सन्देश सुनकर राजा तृण के समान शरीर छोड़ देंगे ।

व्याख्या : सुमन्त्रजी विचार करते हैं कि मैं मन्त्री होकर उनसे कौन मुँह लेकर उत्तर दूँगा । उन्होंने कह दिया था : नाहि त मोर मरनु परिनामा । कछु न बसाइ भयेउ बिधि बामा । ऐसे अवसर पर रामजी के न लौटने पर मुझे जीते जी लौटना किसी तरह से शोभा नहीं देता और लक्ष्मण सीता और रामजी का सन्देश सुनने की देर है । राजा के शरीर छोड़ने में देर न लगेगी । वे तृण के समान शरीर छोड़ देंगे ।

दो. हृदउ न बिदरेउ पंक जिमि, बिछुरत प्रीतमु नीरु ।
जानत हों मोहि दीन्ह बिधि, यहु जातना सरीरु ॥१४६॥

अर्थ : प्रियतम जल के बिछुड़ते ही हृदय कीचड़ की भाँति फट नहीं गया । मालूम होता है कि ब्रह्मदेव ने मुझे यह यातना शरीर दे दिया है ।

व्याख्या : कीचड़ का प्रियतम जल है । क्योंकि वही उसके अस्तित्व का कारण है । उससे बिछोह होते ही कीचड़ सूखकर फट जाता है । उसी भाँति प्रियतम रामजी के बिछुड़ते ही मेरे हृदय को फट जाना चाहता था परन्तु नहीं फटा । इससे अनुमान होता है कि ब्रह्मदेव ने मुझे यातना शरीर दे रक्खा है । यातना शरीर नारकी लोगों को मिलता है । जो पीड़ा का तो ठीक ठीक अनुभव करता है

पर फटने छेदने पीटने आदि दण्ड पाने से छूटता नहीं। अजहुँ न हृदय होत दुइ टूका से उपक्रम करके : हृदय न बिदरेउ से उपसंहार करते हैं।

एहि बिधि करत पंथ पछितावा। तमसा तीर तुरत रथु आवा ॥
बिदा किए करि बिनय निषादा। फिरे पाय परि बिकल बिषादा ॥१॥

अर्थ : इस विधि से रास्ते में पछतावा करते करते रथ तुरन्त तमसा के तटपर पहुँच गया। विनय करके निषादों को विदा किया। वे भी चरणों पर गिरकर विषाद से विकल लौट गये।

व्याख्या : पछतावा तो बहुत हुआ। कहाँ तक लिखें। बचन न आव हृदय पछिताई से लेकर यहाँ तक पछताने की विधि दिखाने के लिए प्रादेश मात्र कथन किया। सुमन्त्रजी अयोध्या पहुँचने के भय से इतने डरे हुए हैं कि वहाँ पहुँचने में जितनी देर हो उतना ही अच्छा समझते हैं। सई और गोमती नदी पार किया तब तमसा तीर पहुँचे। पर उन्हें मालूम हो रहा है कि तुरन्त पहुँच गये।

तमसा नदी अयोध्या नगर से बहुत निकट है। नगर की सीमा उसके बाद पड़ती है। यथा : गयउ जहाँ बाहेर नगर सीय सहित दोउ भाइ। सुमन्त्रजी ने वहीं रथ रोका और निषादों को लौटाने लगे। वे सुसेवक थे। राजभवन तक बिना पहुँचाये लौटना नहीं चाहते थे। पर सुमन्त्र ने विनय करके उन्हें लौटा दिया। वे भी नमस्कार करके विषाद से विकल होकर ही लौटे।

पैठत नगर सचिव सकुचाई। जिमि मारेसि गुरु ब्राँभन गाई ॥
बैठि बिटप तर दिवस गँवावा। साँझ समय तब अवसरु पावा ॥२॥

अर्थ : नगर में प्रवेश करते हुए मन्त्री को ऐसा सङ्कोच होता था मानों उन्होंने गुरु ब्राह्मण और गाय की हत्या की है। पेड़ के तले बैठकर दिन बिताया जब सन्ध्या हुई तब मौका मिला।

व्याख्या : गुरुहत्या ब्रह्महत्या और गोहत्या ऐसे निन्दित कर्म हैं कि इनमें से एक का भी करनेवाला समाज से बहिष्कृत हो जाता है। उससे कोई सम्पर्क रखना नहीं चाहता। उसे समाज में मुख दिखाते नहीं बनता और जिसने तीनों किया हो उसके लिए कहना ही क्या है। मन्त्रीजी राम लक्ष्मण और जानकीजी को वन क्या पहुँचा आये मानों इन्हें तीनों हत्याएँ लग गयीं। अतः इन्हें नगर प्रवेश करने में परम सङ्कोच है। तमसा तीर निकट होने पर भी नगर से इतनी दूर है कि नागरिकों का जाना वहाँ तक कम होता है। अतः पेड़ के तले बैठकर दिन का शेष भाग व्यतीत किया जब सन्ध्या हुई तब प्रवेश का अवसर मिला।

अवध प्रबेसु कीन्ह अँधियारे। पैठ भवन रथु राखि दुआरे ॥
जिन्ह जिन्ह समाचार सुनि पाए। भूप द्वार रथु देखन आए ॥३॥

अर्थ : अँधेरे में नगर में प्रवेश किया। रथ को दरवाजे पर छोड़कर राजभवन

में घुस गये। जिन जिन लोगों ने समाचार सुना वे राजद्वार पर रथ देखने आये।

व्याख्या : यहाँ नगर का क्या हाल है कि तमाम अँधेरा पड़ा है। नगर में दीया नहीं जल रहा है। संन्ध्या समय सुमन्त्रजी तमसा तीर से चले। अँधेरा होते होते नगर में प्रविष्ट हो गये। रथ को द्वार पर छोड़कर तुरन्त राजभवन में घुस गये। जिसमें किसी से सामना न हो। फिर भी कुछ लोगों को समाचार लग गया कि सुमन्त्रजी लौट आये। रथ द्वार पर खड़ा है। सो लोग बात को पक्की करने के लिए रथ देखने आये। इतनी अधिक उत्सुकता लोगों को है।

रथु पहिचानि बिकल लखि घोरे। गरहिं गात जिमि आतप ओरे ॥
नगर नारि नर ब्याकुल कैसें। निघटत नीर मीनगन जैसें ॥४॥

अर्थ : रथ को पहिचान करके और घोड़ों को विकल देख करके उनके शरीर की दशा धूप में गलते हुए ओले की सी हो गयी। नगर के नर नारी ऐसे व्याकुल हुए जैसे पानी के घटने से मछलियाँ व्याकुल होती हैं।

व्याख्या : रथ को पहिचाना कि वही रथ है जिस पर सरकार सवार होकर गये थे। घोड़ों को देखा कि विकल हैं। समझ गये कि सरकार नहीं लौटे तो पसीना छूटने लगा। जैसे धूप में ओले की दशा हो रही है। नगर के लोग ऐसे व्याकुल हुए जैसे जल के घटने के समय मछलियाँ व्याकुल होती हैं। यथा : अवध अबु प्रिय परिजन मीना।

दो. सचिव आगमनु सुनत सबु, बिकल भयउ रनिवासु।
भवनु भयंकरु लाग तेहिं, मानहुँ प्रेत निवासु ॥१४७॥

अर्थ : मन्त्री का आगमन सुनकर सारा रनिवास विकल हो गया। उसे घर ऐसा भयंकर लगा मानो वह प्रेत का निवास है।

व्याख्या : मन्त्री आगये यह सुनकर रनिवास विकल हो उठा। क्योंकि इस समाचार का तो अर्थ ही यही है कि रामजी नहीं आये। रामजी आये होते तो समाचार मिलता कि रामजी आये। इधर सुमन्त्रजी को राजमहल ऐसा भयंकर प्रतीत हुआ कि मानो यहाँ प्रेत का निवास है। यहाँ मनुष्य नहीं रहते। जिस घर में प्रेत का निवास होता है वह स्थान देखने से भयंकर दिखायी पड़ता है। भले ही उसमें मनुष्य भी रहते हों। अथवा प्रेतनिवास का अर्थ यमपुर किया जा सकता है : क्योंकि यमराज परेतराट् कहलाते हैं। उनका निवास प्रेतनिवास है। पहिले कह आये हैं : जमपुर पंथ सोच जिमि पापी। सो मानो पापी यमपुर पहुँच गया। अब उसकी भयंकरता देखता है। यथा : यमद्वारे महाघोरे घोरा वैतरणी नदी।

अति आरति सब पूँछहिं रानी। उतरु न आव बिकल भई बानी ॥
सुन इन श्रवन नयन नहिं सूझा। कहहु कहाँ नृप जेहि तेहि बूझा ॥१॥

अर्थ : अत्यन्त आर्त होकर सब रानियाँ पूछ रही हैं। उत्तर नहीं दे सकते। वाणी विकल हो गयी। न तो आँख से सूझता है न कान से सुनायी पड़ता है। जिस तिस से पूछ रहे हैं कि राजा कहाँ हैं ?

व्याख्या : मन्त्रीजो किसी तरकीब से नर नारियों के पूछने से तो बचे। पर रनिवास में हैं और रानियाँ अत्यन्त आर्त हैं। अतः सबकी सब पूछ रही हैं। पहिले यही उनके समझ में नहीं आता था कि उनको क्या उत्तर देंगे। यथा : पुछिहहिं दीन दुखित सब माता। कहब काह मैं तिन्हहि बिधाता। सो वही हुआ वाणी विकल हो गयी। कुछ कहते नहीं बनता। विकलता और बढ़ी। ज्ञानेन्द्रियाँ ठीक काम नहीं कर रही हैं। न तो आँख से सूझ पड़ता है कि कौन मुझसे पूछ रहा है न कान से सुनायी पड़ता है कि क्या पूछ रहा है। यही सबसे पूछ रहे हैं कि महाराज कहाँ हैं ? एक धुन सवार है कि महाराज ने भेजा था। उन्हीं से सब कहना है।

दासिन्ह दीख सचिव बिकलाई। कौसल्या गृह गईं लेवाई ॥
जाइ सुमंत्र दीख कस राजा। अमिअ रहित जनु चंदु बिराजा ॥२॥

अर्थ : दासियों ने मन्त्री की विकलता देखी तो कौसल्याजी के महल में लिवा ले गयीं। जाकर सुमन्त्र ने राजा को देखा। जैसे अमृत विहीन चन्द्रमा विराजमान हों।

व्याख्या : रानियों ने भी मन्त्री की विकलता देखी कि वे तो सुन ही नहीं रहे हैं उत्तर किसे दें। दासियों ने मन्त्री की विकलता देखी कि यहाँ मुख से कहने से काम न चलेगा। इन्हें महाराज तक पहुँचाना होगा। तब उन्हें कौसल्याजी के महल में लिवा ले गयीं। सुमन्त्रजी को महाराज ने कैकेयी के महल से भेजा था और वहीं मूच्छित हो गये थे। मूर्च्छा से जागने पर कौसल्याजी के महल में चले गये। कैकेयी का परित्याग किया। वहाँ जाने पर मन्त्री ने महाराज को देखा। स्वरूप में बड़ा भारी अन्तर पाया। एक बारगी हतप्रभ हो गये हैं जैसे अमृतहीन चन्द्रमा पर राम विरह में हतप्रभ होने की ही शोभा है। अतः विराजमान होना कहते हैं।

आसन सयन बिभूषन हीना। परेउ भूमितल निपट मलीना ॥
लेइ उसासु सोच एहि भाँती। सुरपुर ते जनु खसेउ जजाती ॥३॥

अर्थ : न तो आसन है। न शय्या है। न गहने हैं। अत्यन्त मलिन होकर पृथ्वी तल पर पड़े हैं। लम्बी लम्बी श्वास ले रहे हैं और इस भाँति सोच रहे हैं जैसे स्वर्ग से ययाति राजा गिरे हों।

व्याख्या : राजा रत्नभुक् होता है। संसार में जितनी उत्तम वस्तु हैं उसका पात्र राजा है। उसे अपने गौरव की रक्षा के लिए सर्वोत्तम आसन, सर्वोत्तम शय्या, सर्वोत्तम वस्त्राभूषण रखना पड़ता है। पर दुःखी को सुख की सामग्री और भी दाहक होती है। अतः महाराज आसन शयन विभूषण हीन होकर भूमि पर पड़े हुए हैं। उनकी उपमा ययाति राजा से दी जा सकती है। जो इन्द्र से ठगे गये। अपने मुख से अपने

पुण्य का बखान करके क्षीणपुण्य होने से स्वर्ग से गिरा दिये गये। इस अंश में तो यह उपमा ठीक है कि दूसरे से ठगे गये निरपराध राजा स्वर्ग से गिराये गये। पर वे पृथ्वी पर नहीं आने पाये। उनके नातियों ने अपनी अपनी तपस्या का कुछ भाग देकर उन्हें फिर स्वर्ग भेज दिया। इतने अंश में उपमा मेल नहीं खाती। अतः सम्पाती की उपमा देते हैं।

लेत सोच भरि छिनु छिनु छाती। जनु जरि पंख परेउ संपाती ॥
राम राम कह राम सनेही। पुनि कह राम लखन बैदेही ॥४॥

अर्थ : क्षण क्षण में सोच से छाती भर लेते हैं। जैसे दग्धपक्ष सम्पाती गिरा हुआ है। राम राम प्यारे राम कहते हैं। फिर राम लक्ष्मण विदेहपुत्री ऐसा कहते हैं।

व्याख्या : चक्रवर्तीजी पृथ्वी पर पड़े हुए हैं। अतः दग्धपक्ष सम्पाती से उपमा दी गयी। यथा : जरेउ पंख अति तेज अपारा। परेउ धरनि करि घोरचिकारा। बिना पङ्ख का विहँग दीन हो जाता है। उसके सोच का पारावार नहीं रहता। वही गति महाराज की हो रही है। प्रेमपात्र राम का स्मरण करते हैं। फिर राम लक्ष्मण वैदेही का स्मरण करते हैं। कोई दूसरी भावना ही मन में नहीं है।

दो. देखि सचिव जय जीव कहि, कीन्हेउ दंड प्रनामु।
सुनत उठेउ ब्याकुल नृपति, कहु सुमन्त्र कहँ रामु ॥१४८॥

अर्थ : देखकर मन्त्री ने जयजीव कहकर साष्टाङ्ग प्रणाम किया। सुनते ही व्याकुल होकर राजा उठ बैठे और कहा कि सुमन्त्र कहो राम कहाँ हैं ?

व्याख्या : राजा को ऐसी दशा में देखकर मन्त्री ने जयजीव कहकर दण्डवत् की। महाराज का सामना होते ही मन्त्री सावधान हो गये। सुनने भी लगे और देखने भी लगे। जिसका हृदय में अधिक गौरव होता है उसका सामना होते ही एक बार पागल को भी सावधान होते देखा गया है। जयजीव : का शब्द सुनते ही महाराज ने जान लिया कि सुमन्त्र आगये। उत्सुकता से उठ बैठे और पूछा कि राम कहाँ हैं ?

भूप सुमंत्रु लीन्ह उर लाई। बूड़त कछु अधार जनु पाई ॥
सहित सनेह निकट बैठारी। पूछत राउ नयन भरि बारी ॥१॥

अर्थ : चक्रवर्तीजी ने सुमन्त्र को हृदय से लगा लिया। डूबते हुए को जैसे कुछ सहारा मिल जाय। प्रेम के सहित निकट बैठाकर आँखों में आँसू भरे हुए राजा ने पूछा।

व्याख्या : राजा का परम बल मन्त्री होता है। तिस पर सुमन्त्रजी सखा भी हैं। अति सङ्कट के समय ऐसे व्यक्ति के मिलने से कुछ आधार सा मिल जाता है। डूबते हुए को तिनका का सहारा भी सहारा मालूम होता है। राजा ने मन्त्री को

हृदय से लगा लिया और प्रेम से निकट बिठा लिया और आंख में आँसू भरकर महाराज ने पूछा। आते ही प्रश्न किया था कि राम कहाँ हैं ? कुछ उत्तर न पाकर परिस्थिति का आभास मिल गया। अतः नेत्रों में आँसू भरकर पूछते हैं।

राम कुसल कहु सखा सनेही। कहँ रघुनाथ लखनु बैदेही ॥
आने फेरि कि बनहि सिधाए। सुनत सचिव लोचन जल छाए ॥२॥

अर्थ : हे सनेही सखा ! रामजी का कुशल कहो। राम लक्ष्मण और वैदेही कहाँ हैं ? लौटा लाये कि वन को ही चले गये। सुनते ही मन्त्री की आँखें डबडबा आयीं।

व्याख्या : चक्रवर्ती जी मन्त्री से कहते हैं कि तुम मेरे सखा हो। प्रेम के पात्र हो। तभी तुम्हें रामजी के साथ लौटाने को भेजा था। सो सबसे पहिले तो रामजी का कुशल कहो। वे स्वस्थ तो हैं। तुम अकेले मेरे पास आये। राम लक्ष्मण सीता को कहाँ छोड़ा। वे लौट आये और तुम शुभ समाचार देने आये हो कि वन को ही चले गये ? सुनते ही मन्त्री की भी आँखें आँसू से भर गयीं।

सोक बिकल पुनि पूँछ नरेसू। कह सिय राम लखन सँदेसू ॥
राम रूप गुन सील सुभाऊ। सुमिरि सुमिरि उर सोचत राऊ ॥३॥

अर्थ : शोक से विकल हैं। इसलिए फिर महाराज पूछते हैं कि सीता राम और लक्ष्मण का सन्देश कहो। रामजी के रूप गुण शील और स्वभाव को स्मरण करके मन में राजा सोच रहे हैं।

व्याख्या : शोक से विकल हैं इसलिए दोबारा पूछते हैं। नहीं तो राजा हैं पहिले ही उत्तर न पाकर उन्हें समझ लेना चाहिए। फिर भी उत्तर न मिला। तब कहते हैं कि यदि नहीं लौटे तो कुछ कहा तो होगा। वह सन्देश ही सुना दो। ऐसा पूछते हैं और मन में रामजी का रूप गुण शील और स्वभाव नाच रहा है। मन ही मन सोचते हैं कि :

राउ सुनाइ दीन्ह बनबासू। सुनि मन भयउ न हरषु हराँसू ॥
सो सुत बिछुरत गए न प्राना। को पापी बड़ मोहि समाना ॥४॥

अर्थ : राज सुनाकर मैंने वनवास दे दिया। सुनकर जिसके मन में न हर्ष हुआ न शोक हुआ ऐसे बेटे से विछोह होते प्राण न गया। संसार में मेरे सा पापी कौन है ?

व्याख्या : मैंने वसिष्ठजी द्वारा राज देने का सन्देशा भेजा। सो देना तो दूर रहा मैंने वनवास दे दिया। ऐसा आज्ञाकारी बेटा कि उसने सुख दुःख को न गिना। मेरी आज्ञा के शिरोधार्य करने में ही अपनी मनस्तुष्टि मानी। ऐसे पुत्र के बिछुड़ते ही मुझे मर जाना चाहता था। सो मैं नहीं मरा। न जाने कैसा पाप मैंने किया है कि मुझे यह दुःख भोगना पड़ रहा है। इससे तो मर जाना कितना अच्छा था। संसार

में कोई भी ऐसा दु:ख पड़ने पर मर जाता। पर मैं नहीं मरा क्योंकि मुझे अपने किये हुए पाप का दुःख भोगना है। अतः मेरे समान पापी संसार में कोई नहीं है।

दो. सखा रामु सिय लखनु जहँ, तहाँ मोहि पहुँचाउ।
नाहि त चाहत चलन अब, प्रान कहउँ सतिभाउ ॥१४९॥

अर्थ : हे सखे ! जहाँ राम जानकी लक्ष्मण हैं वहाँ मुझे पहुँचा दो नहीं तो मैं सत्य भाव से कहता हूँ कि प्राण मेरे चला चाहते हैं।

व्याख्या : मन्त्री स्वयं नहीं जानते कि राम जानकी सीता कहाँ हैं ? इसीलिए रामजी ने मन्त्री को शृङ्गवेरपुर से ही विदा किया। निषादराज साथ चला उसे भी यमुना पार से लौटा दिया। मन्त्री कहना नहीं चाहता कि मैं नहीं जानता कि राम लक्ष्मण सीता कहाँ हैं ? इधर महाराज कह रहे हैं कि मुझे जल्दी से राम जानकी लक्ष्मण के पास पहुँचाओ। नहीं तो मैं मरा चाहता हूँ।

पुनि पुनि पूजत मंत्रिहि राऊ। प्रियतम सुअन सँदेस सुनाऊ ॥
करहि सखा सोइ बेगि उपाऊ। रामु लखनु सिय नयन देखाऊ ॥१॥

अर्थ : बार बार मन्त्री से महाराज पूछते हैं कि मुझे परम प्रिय बेटे का सन्देश सुनाओ। हे सखे ! तुरन्त ऐसा उपाय करो कि मैं राम सीता और लक्ष्मण को आँख से देखूँ।

व्याख्या : मन्त्री का धैर्य छूटा हुआ है। वह बोलने में असमर्थ हो रहा है। इधर महाराज बार बार पूछ रहे हैं कि मुझे परम प्रिय बेटे राम का सन्देश सुनाओ। साथ ही साथ यह भी कहते हैं कि जल्दी उन्हें लाकर मुझे दिखा देने का उपाय करो। विकलता में चित्त स्थिर न होने पर लोग ऐसा ही बोलते हैं। कैसे कोई राम जानकी लक्ष्मण को जल्दी से लाकर दिखा दे।

सचिउ धीर धरि कह मृदु बानी। महाराज तुम्ह पंडित ज्ञानी ॥
बीर सुधीर धुरंधर देवा। साधु समाजु सदा तुम्ह सेवा ॥२॥

अर्थ : मन्त्री ने धैर्य धारण करके कोमल वाणी कहा कि महाराज ! आप पण्डित ज्ञानी हैं। आप वीर हैं। सुन्दर धीरों में धुरन्धर हैं। आपने सदा साधु समाज का सेवन किया है।

व्याख्या : मन्त्री ने देखा कि महाराज का ज्ञान शोक से अपहृत हो गया है। अतः इन्हें अपने स्वरूप का स्मरण दिलाना चाहिए। अतः कहता है कि महाराज आप तो पण्डित हैं। पण्डित सोच नहीं करते। गतासूनगतासूंश्च नानुशोचन्ति पण्डिताः। आप ज्ञानी हैं। सर्वज्ञ समदर्शी हैं। आप के लिए पुत्र क्या और कलत्र क्या ? यथा : ज्ञान मान जहँ एकौ नाँहीं। देखइ ब्रह्म समाज सब माँही। आप वीर हैं। शूराणां मरणं तृणम् : आपको मृत्यु से भय कैसा ? आप धीर धुरन्धर हैं। दुःख से विचलित क्यों होते हैं ? आपने साधु समाज की सदा सेवा की है।

समधी बनकर बारात ले चलने के समय भी आपने साधुओं का साथ नहीं छोड़ा। यथा : साधु समाज संग महिदेवा। जनु तनु धरे करहिं सुख सेवा। आपको यह मोह कहाँ से आया ?

जनम मरन सब दुख सुख भोगा। हानि लाभु प्रिय मिलन बियोगा ॥
काल करम बस होंहि गोसाईं। बरबस राति दिवस की नाईं ॥३॥

अर्थ : जन्म, मरण, सब दुःख सुख के भोग, हानि, लाभ, प्रिय मिलन तथा उनका वियोग कालकर्म के वश है। जबरदस्ती रात और दिन की नाईं हुआ करते हैं।

व्याख्या : जन्म के बाद मरण फिर उसके बाद जन्म। दुःख के बाद सुख फिर उसके बाद दुःख, हानि के बाद लाभ उसके बाद फिर हानि प्रिय मिलन के बाद वियोग उसके बाद फिर मिलन। ये सब कर्म के फल के विपाक से होते हैं। नहीं चाहने से ये हटते नहीं। रात दिन की भाँति बलपूर्वक होते हैं। किसी के रोके नहीं रुकते। सुखस्यानन्तरे दुःखं दुःखस्यानन्तरे सुखम्। इस ईश्वर की नियति को कोई अन्यथा नहीं कर सकता।

सुख हरषहिं जड़ दुख बिलखाहीं। दोउ सम धीर धरहिं मनमाहीं ॥
धीरजु धरहु बिबेकु बिचारी। छाड़िअ सोचु सकलु हितकारी ॥४॥

अर्थ : सुख से हर्षित होना और दुःख आजाने पर विलखने लगना तो अज्ञानी का काम है। पण्डित तो दोनों को समान ही देखते हैं। आप विवेक से विचार करके धैर्य धारण कीजिये। हे सकल हितकारी ! सोच को छोड़िये।

व्याख्या : सुख दुःख आगमापायी हैं। अनित्य हैं। इनके लिए सहन करने का विधान है। यं हि न व्यथयन्त्येते पुरुषं पुरुषर्षभ। समदुःखसुखं धीरं सोऽमृतत्वाय कल्पते। जिसे दुःख सुख पीड़ा नहीं देते ऐसा धीर पुरुष अमृतत्व के योग्य होता है। आप सबके हित करनेवाले हैं। आप सोच को छोड़िये। आपके सोच करने से सबके हित में बाधा पड़ेगी।

दो. प्रथम बासु तमसा भयउ, दूसर सुरसरि तीर।
न्हाइ रहे जलपानु करि, सिय समेत दोउ बीर ॥१५०॥

अर्थ : पहिला निवास तमसा तट पर हुआ। दूसरा गङ्गा के तट पर दोनों वीर सीताजी के सहित नहाने के बाद पानी पीकर रह गये।

व्याख्या : शोक शान्ति की भूमिका बाँधकर पूरी कथा कहनी प्रारम्भ कर दी। जिसमें महाराज को पूरी परिस्थिति से परिचय हो जाय। कहा कि पहिले दिन तो तमसा तीर पर निवास हुआ। दूसरे दिन गङ्गातट पर निवास हुआ। दोनों भाई वीर हैं। सीता राम की योग्या हैं। तीनों मूर्तियों ने स्नान करके केवल पानी पी लिया। भाव यह कि वनवास में तीनों समर्थ हैं। यह व्यवस्था तब तक की है

जब तक निषादराज से भेंट नहीं हुई। वीर कहने का तात्पर्य ही यह है कि भोजन न करने से कोई म्लानता न हुई।

केवट कीन्ह बहुत सेवकाई। सो जामिनि सिंगरौर गँवाई ॥
होत प्रात बट छीर मँगावा। जटामुकुट निज सीस बनावा ॥१॥

अर्थ : केवट ने बड़ी सेवा की। वह रात सिंगरौर : शृङ्गवेरपुर में बीती। तब सबेरा होते ही बरगद का दूध मँगाया और अपने सिर पर जटा मुकुट बनाया।

व्याख्या : दिन भर पानी पीकर ही रह गये। केवट ने बड़ी सेवा की। उसने सोने की भी व्यवस्था की। भोजन की भी व्यवस्था की। रात को वहीं रहे। प्रातःकाल होते ही बरगद का दूध मँगाया और उससे जटा बनायी और सिर पर जूट : जूड़ा बाँधने से उसकी मुकुट सी शोभा हुई। भाव यह कि एकदम वन जाने पर तुले हुए देखकर कुछ कहने का साहस नहीं हुआ।

राम सखा तब नाव मँगाई। प्रिया चढ़ाइ चढ़े रघुराई ॥
लखनु बान धनु धरे बनाई। आपु चढ़े प्रभु आयसु पाई ॥२॥

अर्थ : राम सखा ने तब नाव मँगायी। प्रिया : सीताजी को सवार कराकर तब सरकार सवार हुए। लक्ष्मणजी ने धनुष वाण सँवारकर रख दिया। फिर प्रभु की आज्ञा पाकर स्वयं भी सवार हो गये।

व्याख्या : पहिले कह आये हैं : बरबस राम सुमन्त्र पठाये। सुरसरि तीर आपु तब आये और सुमन्त्र रथ पर जाने के लिए सवार हो गये और यहाँ रामजी के नाव पर सवार होने के समय सुमन्त्रजी को उपस्थिति कह रहे हैं। सो यह दोनों बातें कैसे बनती हैं? बात यह हुई कि सुमन्त्रजी से रहा न गया। रथ से उतरकर सरकार के सवार होने के समय फिर वहाँ पहुँचे। रामजी और केवट के संवाद से जो रस पाठकों के हृदय में उत्पन्न होता है उसे कुछ समय तक बने रहने देने के लिए उस समय कवि ने सुमन्त्र के लौटने का उल्लेख नहीं किया। अतः सुमन्त्र के विदाई के पहले और उनके लौटने के बाद जो जो बातें हुईं उनका सार सुमन्त्र के मुख से कहला रहे हैं।

बिकल बिलोकि मोहि रघुबीरा। बोले मधुर बचन धरि धीरा ॥
तात प्रनामु तात सन कहेहू। बार बार पद पंकज गहेहू ॥३॥

अर्थ : रघुवीर रामजी मुझे विकल देखकर धैर्य धारण करके मीठी बात बोले कि हे तात! पिताजी से प्रणाम कहना और बार बार चरण कमल मेरी ओर से पकड़ना।

व्याख्या : भाव यह कि सुमन्त्र की विकलता देखकर रामजी का जी भर आया। अतः बोलने में धैर्य धारण करना पड़ा और बोले कि पिताजी से मेरा प्रणाम कहना और अनेक बार मेरी ओर से चरण पकड़कर तब मेरा सन्देशा कहना।

यथा : पितु पद गहि करि कोटि नति बिनय करब कर जोरि। चिन्ता कवनि बात की तात करब जनि मोरि।

करवि पाय परि बिनय बहोरी। तात करिअ जनि चिंता मोरी ॥
बन मग मंगल कुसल हमारे। कृपा अनुग्रह पुन्य तुम्हारे ॥४॥

अर्थ : फिर चरणों पर गिरकर विनय कीजियेगा कि मेरे लिए चिन्ता न करें। वन के रास्ते में हम लोगों का कुशल मङ्गल आपकी कृपा अनुग्रह और पुण्य से होगा।

व्याख्या : भाव यह कि मन्त्री को रथ सहित भेजना जिसमें मुझे रास्ता चलने का कष्ट न हो अथवा चार दिन में वन का दर्शन करके चले आना आदि सन्देश का तात्पर्य यही है कि आपको मेरी चिन्ता है। सो चिन्ता न कीजियेगा। आपका पुण्य ऐसा है जिसके प्रभाव से वन के मार्ग में भी हम लोगों का कुशल मङ्गल रहेगा।

छं. तुम्हरे अनुग्रह तात कानन जात सब सुखु पाइहौं।
प्रतिपालि आयसु कुसल देखन पाय पुनि फिरि आइहौं ॥
जननी सकल परितोषि परि परि पाय करि बिनती घनी।
तुलसी करेहु सोइ जतनु जेहिं कुसली रहहिं कोसल धनी ॥

अर्थ : हे पिता! आपके अनुग्रह से वन जाते हुए सब सुख पाऊँगा। आज्ञा पालन करके कुशल के साथ चरणों के दर्शन के लिए फिर लौट आऊँगा। सब माताओं का सन्तोष करके उनके चरणों पर पड़कर विनय कीजियेगा। तुलसीदास कहते हैं कि ऐसा यत्न कीजियेगा जिसमें अवधपति कुशली रहें।

व्याख्या : यद्यपि वन में दुःख ही दुःख होता है। पर आपके अनुग्रह से मुझे सब सुख होगा। कानन नन्दन वन हो जायगा। यथा : जिमि बासव बस अमरपुर सची जयंत समेत। यह न समझियेगा कि सब सुख मिलने से कहीं वहीं न रह जायँ। इसलिए कहते हैं कि इतने दिनों तक आपके चरणों के दर्शन की उत्कण्ठा रहने से अवधि पूरी होते न होते मैं सेवा में उपस्थित हो जाऊँगा। श्रीरामजी ने यह सन्देश पिता को देकर अब माताओं के लिए कहते हैं कि उनके पैरों पर गिरकर मेरी ओर से बड़ी विनती कीजियेगा। विनती वही है जो पिता से की गयी। इसलिए दोहराते नहीं हैं और मुझसे भी विनय किया कि आप ऐसा यत्न कीजियेगा जिससे महाराज कुशल रहें। रामजी पिता के प्रेम को जानते हैं। अतः उनकी ओर से इन्हें चिन्ता है। बार बार उनके कुशल के लिए कह रहे हैं।

दो. गुर सन कहब संदेसु, बार बार पद पदुम गहि।
करब सोइ उपदेसु, जेहि न सोच मोहि अवधपति ॥१५१॥

अर्थ : बार बार गुरुजी के चरण कमलों को पकड़कर सन्देश कहना कि वही उपदेश करें जिससे मुझको कोसलपति न सोचें।

व्याख्या : विश्वामित्रजी के साथ भी महाराज मुझे नहीं जाने देते थे। गुरुजी के उपदेश से ही जाने दिया था। यथा : तब वसिष्ठ बहुबिधि समझावा। नृप सन्देह नास कहँ पावा। रामजी कहते हैं कि आज भी उसी उपदेश की आवश्यकता है। जिसमें अवधपति मेरा सोच न करें। मेरे सोच करने से उन्हें खतरा है और सम्पूर्ण अवध की रक्षा का भार उन्हीं पर है। उन्हीं के कुशल से सब का कुशल है।

पुरजन परिजन सकल निहोरी। तात सुनाएउ बिनती मोरी॥
सोइ सब भाँति मोर हितकारी। जा तें रह नरनाहु सुखारी॥१॥

अर्थ : पुरवासी कुटुम्बी आदि सबका निहोरा करके हे तात! मेरी विनती सुना देना कि वही मेरा सब प्रकार से हितकारी है जिससे महाराज सुखी रहें।

व्याख्या : सरकार पुरजन का प्रेम देखते आये हैं कि उनके लिए सब लोग घर द्वार पुत्र कलत्र सबको छोड़कर वनवास के लिए साथ चल पड़े। अतः उनसे निहोरा करके विनती करते हैं कि आप लोग निःसन्देह मेरा हित चाहते हैं। पर मेरे साथ वन में आकर बसने में मेरा सब प्रकार से हित नहीं है। सब प्रकार से हित तो महाराज के सुखी रखने में है।

कहब संदेसु भरत के आए। नीति न तजिअ राजपदु पाएँ॥
पालेहु प्रजहि करम मन बानी। सेयेहु मातु सकल सम जानी॥२॥

अर्थ : भरतजी के आने पर सन्देश कहना कि राजपद पाने पर नीति न छोड़ना। मनसा वाचा कर्मणा प्रजा का पालन करना। सब माताओं को समान जानकर सेवा करना।

व्याख्या : यद्यपि रामजी भलीभाँति जानते हैं कि भरतजी में वे सब बातें हैं जिनका कि वे उपदेश देना चाहते हैं। फिर भी छोटों को शिक्षा देना बड़ों का धर्म है। दूसरी बात यह है कि भरत को भी सन्देश देना है। न देने से नाराजगी मालूम होगी। अतः उपदेश के व्याज से उन्हें राज्य करने की आज्ञा देते हैं। कहते हैं कि राज्याभिषेक होने पर नीति नहीं छोड़ना। भाव यह कि तुम सदा नीति पर चलनेवाले हो। उसी रास्ते पर बनें रहना। प्रजा के पालन में प्रमाद न करना। माताओं में भेद न रखकर सबकी सेवा करना अर्थात् कैकेयी पर रुष्ट न होना।

ओर निबाहेहु भायप भाई। करि पितु मातु सुजन सेवकाई॥
तात भाँति तेहि राखब राऊ। सोच मोर जेहि करइ न काऊ॥३॥

अर्थ : पिता माता और स्वजन की सेवा करके भाईपन की सीमा तक निर्वाह करना। महाराज को इस भाँति रखना जिससे वे कभी मेरा सोच न करें।

व्याख्या : मेरे मत से यहाँ : और पाठ होना चाहिए। ओर निबाहने का तो

अर्थ ही यह है राज्य स्वीकार न करना। ऐसा रामजी नहीं कह सकते। मैं तो यही अर्थ करूँगा कि माताओं को समान जानकर सेवा करना और माता पिता और स्वजन की सेवा करके भाईपन निबाहना। अर्थात् तुम्हारा भाईपन निबाहना मैं इसी बात में मानूँगा कि माता और स्वजन की सेवा करो। यथा : सोइ सब भाँति मोर हितकारी। जाते रह नरनाह सुखारी। और पिताजी को तो इस भाँति रक्खो कि उन्हें मुझे स्मरण करने का अवसर न मिले कि रामजी यदि यहाँ होते तो मुझे यह कष्ट न होता या अमुक प्रकार से सुख देते। मेरे वन देने के कारण किसी भाँति अपमान न करना।

लखन कहे कछु बचन कठोरा। बरजि राम पुनि मोहि निहोरा ॥
बार बार निज सपथ देवाई। कहबि न तात लखन लरिकाई ॥४॥

अर्थ : लक्ष्मणजी ने कुछ कठोर वचन कहे। उन्हें रोककर रामजी ने मेरा निहोरा किया और बार बार शपथ दिलायी कि लक्ष्मण के लड़कपन को पिताजी से न कहना।

व्याख्या : रामजी के सन्देश के बाद लक्ष्मणजी के सन्देश की बारी आई। इस पर कहते हैं कि लक्ष्मणजी ने कुछ कठोर वचन कहे। रामजी ने उन्हें ऐसा कहने से रोका। वे वचन रामजी को बड़े अनुचित मालूम पड़े। मैं आप से उसे नहीं कह रहा हूँ। क्योंकि रामजी ने बार बार मुझे शपथ दिलाया है कि लक्ष्मण का सन्देश पिताजी से नहीं कहना और मेरा निहोरा किया है।

दो. कहि प्रनाम कछु कहन लिय, सिय भइ सिथिल सनेह।
थकित बचन लोचन सजल, पुलक पल्लबित देह ॥१५२॥

अर्थ : प्रणाम कहके कुछ कहना चाहा पर सीताजी स्नेह से शिथिल हो गयीं। वाणी रुक गयी। नेत्र में जल आगये और देह में पुलकावली हो आयी।

व्याख्या : महाराज ने तीनों मूर्तियों का सन्देश पूछा था। अतः सुमन्त्रजी अन्त में सीताजी का हाल कहते हैं कि उन्होंने प्रणाम कहकर कुछ सन्देश भी कहना चाहा पर कह न सकीं। स्नेह से शिथिल हो गयीं। यहाँ यह शङ्का उचित नहीं है कि सीताजी ने जो जवाब सुमन्त्रजी को दिया। उसे सुमन्त्रजी नहीं क्यों कह रहे हैं? महाराज ने राम लक्ष्मण और सीताजी का सन्देश पूछा था। सुमन्त्रजी तीनों का सन्देश कह रहे हैं। उनसे जो जो बातें रामजी से या सीताजी से हुई। उसके कहने की कोई आवश्यकता वन जाने के पश्चात् नहीं रह गयी।

तेहि अवसर रघुबर रुख पाई। केवट पारहि नाव चलाई ॥
रघुकुल तिलक चले एहि भाँती। देखेउँ ठाढ़ कुलिस धरि छाती ॥१॥

अर्थ : उसी अवसर रामजी का रुख पाकर केवट ने पार के लिए नाव चला

दी। रघुकुलतिलक इस प्रकार चले गये और मैं खड़ा हुआ छाती पर वज्र रक्खे देखता रहा।

व्याख्या : जिस समय सीताजी सन्देश कहने को थीं और स्नेहवश कह न सकीं। उसी अवसर पर सरकार का रुख हुआ कि नाव आगे बढ़ाओ रुकने में कष्ट ही बढ़ेगा। अतः केवट ने पार की ओर नाव चला दिया। मैं कलेजे को वज्र किये हुए देखता रह गया और रघुकुल के तिलक रामजी चले गये।

मैं आपन किमि कहहुँ कलेसू। जिअत फिरेउ लेइ राम सँदेसू ॥
अस कहि सचिव बचन रहि गयऊ। हानि गलानि सोचवस भयऊ ॥२॥

अर्थ : मैं अपना क्लेश कैसे कहूँ। जो मैं राम का सन्देश लेकर जीता लौटा। ऐसा कहकर मन्त्री की वाणी रुक गयी और वह हानि ग्लानि और सोच के वश हो गये।

व्याख्या : मन्त्री जी कहते हैं कि मुझे इसी बात का बड़ा भारी क्लेश है कि मैं रामजी को न लौटाकर उनका सन्देश लेकर लौटा। मैं मर क्यों नहीं गया? इससे आगे मन्त्रीजी कुछ न कह सके। हानि ग्लानि और शोक के वश हो गये। रामजी का वन चला जाना यह मूलधन की हानि है। मैं मर क्यों नहीं गया। इस बात की ग्लानि है अब क्या होनहार है। इस बात का सोच है।

सूत बचन सुनतहिं नरनाहू। परेउ धरनि उर दारुन दाहू ॥
तलफत बिषम मोह मन मापा। माँजा मनहुँ मीन कहुँ ब्यापा ॥३॥

अर्थ : सारथि का वचन सुनते ही महाराज पृथ्वी पर गिर पड़े। उनके हृदय में दारुण दाह हुआ। तड़पने लगे। विषम मोह से विकल हो गये। मानो मछली को माजा व्याप्त हो गया।

व्याख्या : सारथि के वचन से पूर्ण निराशा हुई और महाराज जो थोड़ी बहुत आशा के सञ्चार से उठकर बैठ गये थे पृथ्वी पर गिर पड़े। विरह की ज्वाला हृदय में भभक उठी। तड़पने लगे। विषम मोह में ऐसे विकल हो गये जैसे माजा खाकर मछली विकल होती है। बरसात का पहला पानी पड़ने से जो फेन नदियों में उत्पन्न होता है उसे मांजा : मञ्जा कहते हैं। उसे मछलियाँ खाकर अत्यन्त विकल होकर पानी के ऊपर आ जाती हैं।

करि बिलाप सब रोवहिं रानी। महा बिपति किमि जाइ बखानी ॥
सुनि बिलाप दुखहू दुखु लागा। धीरजहू कर धीरजु भागा ॥४॥

अर्थ : विलाप करके सब रानियाँ रोने लगीं। महाविपत्ति का वर्णन कैसे किया जाय। उस विलाप को सुनकर दुःख भी दुःखी हो गया। धैर्य का भी धैर्य जाता रहा।

व्याख्या : पुत्र और पुत्रवधू के लौटाने की आशा नहीं रही और पति को

यह दशा देखकर रानियाँ विलाप करके रोने लगीं। अर्थात् हार्दिक दुःख को व्यक्त करती हुई रोने लगीं। महाविपत्ति आ पड़ी। उसका बखान किया नहीं जा सकता।

उस विलाप को जिसने सुना वही दुःखी हो गया। उसका धैर्य छूट गया। अर्थात् वह भी रोने लगा। इसी बात को आलङ्कारिक भाषा में कवि कहते हैं कि दुःख भी दुःखी हो गया। धैर्य का भी धैर्य जाता रहा।

१८. नृपमरणप्रसङ्ग

दो. भयउ कोलाहलु अवध अति, सुनि नृप राउर सोरु।
बिपुल बिहग बन परेउ निसि, मानहु कुलिस कठोरु ॥१५३॥

अर्थ : महाराज के खास महल में शोर सुनकर अवध में बड़ा भारी हाहाकार मचा। जैसे बहुत से पक्षीवाले वन में कठोर बज्रपात हुआ हो।

व्याख्या : महाराज का खास महल महारानी कौसल्या का महल है। प्रजा भी जान रही है कि महाराज उसी महल में हैं और उनकी अवस्था चिन्ताजनक है। सुमन्त्र असफल होकर लौटे हैं। ऐसे अवसर पर उस महल में भारी रुदन शब्द का होना अत्यन्त अनिष्ट का सूचक है। अतः सम्पूर्ण अयोध्या में हाहाकार मच गया। उपमा देते हुए कवि कहते हैं कि जैसे पक्षियों से भरे वन में रात को वज्रपात हो और सम्पूर्ण वन के पक्षी चीं चीं करने लगे। महाराज के महल का शोर वज्रपात से उपमित है और नगर का कोलाहल पक्षियों के शब्द से उपमित है। तुम जेहि लागि बज्र पुर पारा का साफल्य दिखाया।

प्रान कंठगत भयउ भुआलू। मनि बिहीन जनु ब्याकुल ब्यालू ॥
इन्द्री सकल बिकल भईं भारी। जनु सर सरसिज बनु बिनु बारी ॥१॥

अर्थ : राजा का प्राण कण्ठ में आगया। ऐसे व्याकुल हुए जैसे मणिविहीन सर्प। सब इन्द्रियाँ अत्यन्त विकल हो गयीं। जैसे तालाब का कमलवन बिना जल के हो जाता है।

व्याख्या : समाचार सुनते ही राजा की मरणासन्न दशा हो गयी। प्राण कण्ठ में आगये। निकलने में देर नहीं है। जैसे मणि के बिना सर्प व्याकुल हो जाता है। प्राणों के उखड़ने से इन्द्रियाँ भारी विकल हुईं। जैसे कमलवन के तालाब का पानी सूख गया हो। कमल सब मौजूद हैं पर नीरस होकर सूख चले हैं। इसी भाँति इन्द्रियाँ हैं। पर नीरस होकर विकल हो रही हैं। यहाँ शरीर की उपमा तालाब से है। इन्द्रियों को कमलवन से और रामजी की जल से।

कौसल्या नृपु दीख मलाना। रबिकुल रबि अँथयउ जिय जाना ॥
उर धरि धीर राम महतारी। बोली बचन समय अनुसारी ॥२॥

अर्थ : कौसल्या ने राजा को कुँभलाया हुआ देखा। समझ लिया कि सूर्यकुल के सूर्य अस्त हुआ चाहते हैं। हृदय में धीरज धारण करके रामजी माता समयानुकूल वचन बोलीं।

व्याख्या : राजा की दशा देखकर कौसल्या ने समझा कि इनका शरीर अब नहीं रहा चाहता। मानसिक पीड़ा ही इस दशा का कारण है। अतः उस पीड़ा को कम करना चाहिए। मैं रामकी माता हूँ। मैं यदि आश्वासन दूँ तो सम्भव है कि ये सँभल जायँ। अतः स्वयं अधीर होती हुई भी उन्होंने धैर्य धारण किया और ऐसे अवसर पर जैसा उचित है वैसा बोलीं।

नाथ समुझि मन करिअ बिचारू। राम बियोग पयोधि अपारू॥
करनधार तुम्ह अवध जहाजू। चढ़ेउ सकल प्रिय पथिक समाजू॥३॥

अर्थ : नाथ! मन में समझ कर विचार कीजिये। राम का वियोग अपार समुद्र है। इस अवध जहाज के आप ही कर्णधार : माँझी हैं। सब प्रिय लोगों का समाज ही इस पर सवार है।

व्याख्या : भाव यह कि शोक छोड़कर आप विचार में स्थित हो जाइये। बड़े असमञ्जस का समय उपस्थित है। राम वियोग रूपी समुद्र का सामना पड़ गया। जिसका पार करना सबके सामर्थ्य के बाहर की बात है। अयोध्या रूपी जहाज इस समुद्र में आ फँसा है। इस पर सभी स्वजन बान्धव सवार हैं। आप ही इसके कर्णधार हो। कर्णधार से ही आशा की जाती है कि वह जहाज पार लगा देगा और पार लगना ही चाहिए। क्योंकि सब बन्धु बान्धव इस पर हैं।

धीरजु धरिअ त पाइअ पारू। नाहि त बूड़िहि सबु परिवारू॥
जौ जियँ धरिअ बिनय पिय मोरी। रामु लखनु सिय मिलहिं बहोरी॥४॥

अर्थ : धैर्य धारण कीजिये तो पार पाया जा सकता है। नहीं तो सब परिवार ही डूब मरेगा। यदि हे प्रिय! आप मेरे विनय को हृदय में स्थान दें तो फिर राम लक्ष्मण सीता से भेंट होगी।

व्याख्या यदि कर्णधार धैर्य धारण किये रहे तो बेड़ापार हो नहीं तो सारा परिवार डूब मरेगा। अतः इस सङ्कट के समय में भले ही सबका धैर्य छूट जाय पर आपका धैर्य बना रहना चाहिए। आप यदि मेरे विनय को हृदय में स्थान दें तो राम लक्ष्मण सीता से फिर भेंट होगी।

दो. प्रिया बचन मृदु सुनत नृपु, चितयउ आँखि उघारि।
तलफत मीन मलीन जनु, सींचत सीतल बारि॥१५४॥

अर्थ : प्रिया का कोमल वचन सुनकर राजा ने आँख खोलकर देखा। जैसे तड़पती हुई मलिन मछली शीतल जल से सींची गयी।

व्याख्या : महाराज प्राणकण्ठगत थे। इन्द्रियाँ विकल थीं। आखें बन्द थीं।

तड़पते थे। पर अपनी प्रिया कौसल्याजी का वचन सुनकर आँख खोल दिया। कुछ आश्वासन मिला। जैसे बिना जल के तड़पती हुई मछली को कोई ठण्ढे पानी से सिञ्चन करे और उसकी वेदना में तात्कालिक कमी हो जाय।

धरि धीरजु उठि बैठ भुआलू। कहु सुमन्त्र कहँ राम कृपालू ॥
कहाँ लखनु कहँ रामु सनेही। कहँ प्रिय पुत्रबधू बैदेही ॥१॥

अर्थ : धैर्य धरकर महाराज उठ बैठे और बोले। सुमन्त्र ! बतलाओ कि कृपाल राम कहाँ हैं ? लक्ष्मण कहाँ हैं ? स्नेही राम कहाँ हैं ? प्रिय पुत्रवधू वैदेही कहाँ है ?

व्याख्या : महाराज राम लखन और सीता के फिर मिलने की बात सुनकर धैर्य धारण करके उठ बैठे। पर उन्हें शोक से उन्माद सा हो गया। वे सुमन्त्र से पूछने लगे कि राम लक्ष्मण जानकी हैं कहाँ ? सुन चुके हैं कि शृङ्गवेरपुर में गङ्गा पार जाते हुए सुमन्त्र ने देखा। उसके बाद का हाल उसे कुछ मालूम नहीं। फिर भी पूछते हैं कि वे लोग कहाँ हैं।

बिलपत राउ बिकल बहु भाँती। भइ जुग सरिस सिराति न राती ॥
तापस अंध साप सुधि आई। कौसल्यहि सब कथा सुनाई ॥२॥

अर्थ : राजा विकल होकर अनेक प्रकार से विलाप करने लगे। रात युग के समान हो गयी। समाप्त ही नहीं होती। अन्धे तपस्वी के शाप की बात याद आगयी। सब कथा कौसल्याजी को सुनाया।

व्याख्या : राजा अनेक प्रकार से विलाप करने लगे। रात बीतना कठिन हो गया। दुःख की रात है। इसलिए युग के बराबर मालूम होने लगी। रात बीते तो राम लक्ष्मण जानकी कहाँ गये इसका पता लगाया जाय। उनसे भेंट करने का उपाय किया जाय। महाराज ने वन जाते समय रामजी से प्रश्न किया था : और करै अपराध कोउ और पाव फल भोग। उसका उत्तर उस समय रामजी ने नहीं दिया। राजा को भी याद न रहा कि युवावस्था में मैंने हाथी के धोखे में रात के समय अन्धतापस के पुत्र को शब्दवेधी वाण मारा था। पुत्रशोक से दुःखी होकर तपस्वी ने शाप दिया था कि मेरी भाँति पुत्रशोक में मरोगे। यही उस प्रश्न का उत्तर था। रामजी की प्रेरणा से इस समय वह घटना याद आगयी तो सब कथा कौसल्याजी को सुनाया।

भयउ बिकल बरनत इतिहासा। राम रहित धिग जीवन आसा ॥
सो तनु राखि करबि मैं काहा। जेहि न प्रेम पनु मोर निबाहा ॥३॥

अर्थ : उस इसिहास को वर्णन करते हुए विकल हो गये : कहने लगे कि राम रहित जीवन की आशा को धिक्कार है। उस शरीर को रखकर मैं क्या करूँगा जिसने कि मेरे प्रेमप्रण का निर्वाह न किया।

व्याख्या : अन्ध तपस्वी का इतिहास वर्णन करने में उसका पुत्रशोक स्मरण करके भारी ताप हुआ। अतः और भी विकल हुए। कहने लगे कि राम के न होने पर जीने की आशा को धिक्कार है ! रामजी जहाँ हों वहाँ जाकर भेंट कर आवें तो जी जायँगे। ऐसा जीवन मैं नहीं चाहता। यदि राम के बिना शरीर रह गया तो मेरा प्रेम झूठा हो जायगा। अतः जो मेरे प्रेमप्रण का निर्वाह न करे ऐसे शरीर को रखकर मैं क्या करूँगा और प्रेमप्रण का निर्वाह शरीर छूटने से ही होगा। अतः हर हालत में शरीर छूटना ही ठीक है।

हा रघुनंदन प्रान पिरीते । तुम बिनु जिअत बहुत दिन बीते ॥
हा जानकी लखन हा रघुबर । हा पितु हित चित चातक जलधर ॥४॥

अर्थ : हा प्राणप्यारे रघुनन्दन ! तुम्हारे बिना जीते बहुत दिन बीत गये। हा जानकी ! हा लक्ष्मण ! हा रघुवर ! हा पिता के चित्तचातक के हित करनेवाले जलधर !

व्याख्या : महाराज विलाप करते हुए कहते हैं कि हा प्यारे रघुनन्दन ! तुम्हारे विछोह होते ही मुझे मर जाना चाहता था। सो तुम्हारे बिना जीते हुए मुझे बहुत दिन बीत गये। दशमी को रामजी वन गये। छठे दिन सुमन्त्र लौटे। सो छ दिन महाराज को बहुत दिन मालूम हो रहा है। रामजी को स्मरण करके लक्ष्मणजी को स्मरण करके तथा वैदेहीजी को स्मरण करके हाय हाय कर रहे हैं और अन्त में फिर रामजी के लिए हाय करते हैं और कहते हैं कि पिता के चित्तचातक के लिए बादलरूप तो तुम्हीं हो।

दो. राम राम कहि राम कहि, राम राम कहि राम ।
तनु परिहरि रघुबर बिरह, राउ गयउ सुरधाम ॥१५५॥

अर्थ : राम राम कहकर, राम कहकर और फिर राम राम कहकर राम कहा और शरीर छोड़कर रामजी के विरह में राजा सुरलोक को पधारे।

व्याख्या : असाध्य व्याधि को देखकर तीन बार नाम लिया। यथा : देखी ब्याधि असाधि नृप परेउ धरनि धुनि माथ। कहत परम आरत बचन राम राम रघुनाथ। और मृत्यु को सामने देखकर छः बार स्मरण किया। यथा : राम राम राम राम राम राम जपत। मंगल मुद उदित होत कलिमल छल छपत। सो मङ्गल मुद के उदय तथा घरेलू झगड़े की शान्ति के लिए यही छः नामवाला मन्त्रोच्चारण ठीक समझा। इसी भाँति अनेक प्रकार से नाम लेने की अलग अलग फलश्रुतियाँ हैं। विनय-पत्रिका द्रष्टव्य है। अथवा[1] षटचक्र वेधै जौन। हरि रूप देखैं तौन। अतः एक

---

१. १. मूलाधार २. स्वाधिष्ठान ३. मणिपुर ४ अनाहत ५. विशुद्ध ६. आज्ञाचक्र। ये छः चक्र शरीर में हैं। इनके वेधन से सहस्रार में गति होती है जहाँ ब्रह्म साक्षात्कार होता है।

एक नाम स्मरण से एक एक चक्र का वेध किया। अथवा छः दिन तक सरकार का वियोग रहा। इसलिए छः बार लिया।

जिअन मरनु फलु दसरथ पावा। अंड अनेक अमल जसु छावा ॥
जिअत राम बिधु बदनु निहारा। राम बिरह करि मरन सँवारा ॥१॥

अर्थ : जीने मरने का फल राजा दशरथ ने पाया। अनेक ब्रह्माण्डों में उनका निर्मल यश छा गया। जीतें जी रामजी का चन्द्र वदन देखते रहे और राम के विरह में प्राण त्याग करके अपने मरणको सँवार लिया।

व्याख्या : एक बार जो रामजी का दर्शन पाता है उसका जीवन सफल हो जाता है और ये महाराज तो रामजी का दर्शन बराबर सत्ताईस वर्ष तक करते रहे। इनके ऐसा जीवन का फल पानेवाला कौन है : जाकर नाम मरत मुख आवा। अधमै मुकुत होइ श्रुति गावा। और इनका मरण तो रामजी के विरह में राम राम स्मरण करते हुए ही हुआ। अतः मरण का फल भी इनके समान किसी को नहीं मिला। यथा : बंदौं अवध भुआल सत्य प्रेम जेहि राम पद। विछुरत दीनदयाल प्रिय तनु तृण इव परिहरेउ।

जीना मरना उसी का फल है जिसका संसार में यश हो। महाराज दसरथ का निर्मल यश तो अनेक ब्रह्माण्डों में व्याप्त हो गया। यथा : तुलसी जान्यौ दसरथहि धरमु न सत्य समान। राम तजेउ जेहि लागि बिनु राम परिहरे प्रान।

सोक बिकल सब रोवहिं रानी। रूपु सीलु बलु तेज बखानी ॥
करहिं बिलाप अनेक प्रकारा। परहिं भूमितल बारहिं बारा ॥२॥

अर्थ : शोक से विकल होकर सब रानियाँ रो रही हैं। रूप शील बल और तेज का बखान करके अनेक प्रकार से विलाप करती हैं और पृथ्वीतल पर बार बार गिर रही हैं।

व्याख्या : महाराज चक्रवर्ती थे। इन्द्र के सखा थे। चौदहों भुवन में इनका प्रभाव था। इनके रूप शील बल और तेज के लिए कहना ही क्या है। ऐसे महाराज की रानियाँ आज रो रही हैं। उनके गुणों का बखान करके विलाप करती हैं। पृथ्वी पर पछाड़ खाकर गिर रही हैं। ऐसी ही जगत् की गति है। यह जगत् का नाटक ही दुःखान्त है।

बिलपहिं बिकल दास अरु दासी। घर घर रुदन करहिं पुरबासी ॥
अथएउ आजु भानुकुल भानू। धरम अवधि गुन रूप निधानू ॥३॥

अर्थ : दास और दासी विकल होकर विलाप कर रही हैं। घर घर पुरवासी रो रहे हैं। आज सूर्यकुल के सूर्य अस्त हो गये। जो धर्म के अवधि और गुण रूप के निधान थे।

व्याख्या : ऐसे स्वामी के वियोग में दास दासी भी विकल होकर रो रहे हैं।

घर घर रोना गाना मचा हुआ है। महाराज ऐसे प्रजावत्सल थे कि इनके आनन्द में प्रजा आनन्दित होती थी और इनके वियोग में रो रही है। गोस्वामीजी ने शोक में भी तारतम्य दिखलाया है। पुरवासी उनकी धर्मनिष्ठा और गुण रूप की प्रशंसा कर रहे हैं। कहते हैं कि आज सूर्यकुल का सूर्य अस्त हो गया।

गारी सकल कैकइहि देहीं। नयन बिहीन कीन्ह जग जेहीं ॥
एहि बिधि बिलपत रैनि बिहानी। आए सकल महामुनि ग्यानी ॥४॥

अर्थ : सब कैकेयी को गालियाँ देती हैं। जिसने संसार भर को नेत्ररहित कर दिया। इस प्रकार से विलपते हुए रात बीती और सब महामुनि ज्ञानी लोग आये।

व्याख्या : क्या रानियाँ, क्या दास दासी, क्या पुरवासी सब कैकेयी को गालियाँ देते हैं। सूर्य ही जगत् के चक्षु हैं। उनके अस्त होने से संसार नेत्रहीन हो जाता है। सो यह सूर्यास्त तो कैकेयी के कारण से हुआ। संसार में जो आया है सो जायगा। पर उस आने जाने का प्राकृत नियम है। तदनुसार कार्य होने से दुःख कम होता है। यथा : जौं बिनु अवसर अथव दिनेसू। जग केहि कहहु न होइ कलेसू।

इस भाँति विलाप कलाप में रात बीती। सवेरा होते ही महामुनि ज्ञानी आये। जिन पर शोक का प्रभाव नहीं पड़ता और दूसरों के शोकनिवारण में भी जो समर्थ हैं।

दो. तब बसिष्ठ मुनि समय सम, कहि अनेक इतिहास।
सोक निबारेउ सबहि कर, निज बिग्यान प्रकास ॥१५६॥[1]

अर्थ : तब वसिष्ठ मुनि ने समयानुकूल अनेक इतिहास कहकर सबके शोक की निवृत्ति अपने विज्ञान के प्रकाश से किया।

व्याख्या : वसिष्ठजी बड़े ज्ञानी हैं। कुलगुरु हैं। जानते हैं कि शोकनिवारण कैसे किया जाता है। उन्होंने ऐसे ऐसे इतिहास सुनाये जिनसे शोकनिवारण हो। ऐसे समयानुकूल इतिहास वर्णन तथा अपने विज्ञान के प्रकाश से संसार की असारता का प्रतिपादन करके सबके शोक का निवारण किया।

तेल नाव भरि नृप तनु राखा। दूत बोलाइ बहुरि अस भाखा ॥
धावहु बेगि भरत पहि जाहू। नृप सुधि कतहुँ कहहु जनि काहू ॥१॥

अर्थ : नाव में तेल भरकर राजा के शव को उनमें रख दिया। फिर दूतों को बुलाकर कहा कि जल्दी दौड़ो। भरतजी के पास जाओ। राजा का हाल कहीं भी किसी से न कहना।

व्याख्या : पहिला काम गुरुजी ने यह किया कि राजा के शव को तेल भरी

---

१. १५६ दोहों में रामचरित कहकर अब १४ दोहों में दशरथ का और्ध्वदैहिक क्रिया-प्रसङ्ग कहेंगे।

नाव में रक्खा। जिसमें संस्कार के समय तक बिगड़ न जाय। तत्पश्चात् दूत को बुलाकर भरतजी के पास भेजा जो कि दूर कैकय देश में थे। निकट ही चित्रकूट में राम लक्ष्मण थे उनके पास दूत नहीं भेजा। रामजी के स्वभाव को जानते थे कि पिता ने मेरे वियोग में प्राण त्याग किया। यह सुनकर रामजी की क्या दशा होगी। इसलिए यह समाचार रामजी को मेरी अनुपस्थिति में न लगे और उन्हें समाचार देना भी व्यर्थ है। वे नगर में आ नहीं सकते। भरतजी को ही महाराज अभिषेक करने के लिए वचनबद्ध हो चुके हैं। अतः भरतजी को ही बुलाना उचित समझा। इसलिए वहीं दूत भेजा और राजा का समाचार कहीं किसी से कहने के लिए मना कर दिया। समय ऐसा था कि उस समय महाराज के चारों बेटों में से कोई भी न था। ऐसे ही अवसर पर शत्रु चढ़ दबाते हैं। इसलिए राजा के मृत्यु का समाचार छिपाया गया।

एतनइ कहेउ भरत सन जाई। गुर बोलाइ पठयेउ दोउ भाई ॥
सुनि मुनि आयसु धावन धाए। चले बेग बर बाजि लजाए २॥

अर्थ : भरत से इतना ही कहना कि गुरुजी ने दोनों भाइयों को बुला भेजा है। मुनिजी की आज्ञा सुनकर दूत दौड़ चले। अपने वेग से उत्तम घोड़ों को लज्जित करते थे।

व्याख्या : यह समाचार भरतजी से भी न कहना। उनसे इतना ही कहना कि गुरुजी ने दोनों भाइयों को बुलाया है। मेरा नाम सुनते ही दोनों भाई तुरन्त चल पड़ेंगे। वसिष्ठजी की यह बात सुनकर दूत दौड़ चले। अश्वारोही भी नहीं भेजा। जिसमें किसी का ध्यान आकर्षित न हो। परन्तु वे दूत ऐसे थे कि उनके वेग को देखकर उत्तम घोड़े लज्जित हो जायँ। अतः अश्वारोहियों को भेजना उचित नहीं था।

अनरथु अवध अरंभेउ जब तें। कुसगुन होहिं भरत कहुँ तब तें ॥
देखहिं राति भयानक सपना। जागि करहिं कटु कोटि कलपना ॥३॥

अर्थ : जब से अयोध्या में अनर्थ आरम्भ हुआ तब से भरतजी को अपशकुन होने लगे। रात को भयानक स्वप्न देखते हैं और जागने पर करोड़ों बुरी कल्पनाएँ करते हैं।

व्याख्या : बाह्य जगत् और आन्तर जगत् में घना सम्बन्ध है। ईश्वर के घर से खतरे की घण्टी बजती है। उसी को अपशकुन कहते हैं। अवध में जब से अनर्थ आरम्भ हुआ अर्थात् जब से देवताओं की प्रार्थना से सरस्वती का आगमन विघ्नाचरण के लिए अवध में हुआ। यथा : हरषि हृदय कोसलपुर आई। जिमि ग्रहदसा दुसह दुखदाई। तभी से भरतजी को अपशकुन होने लगा। उसी का विवरण देते हैं। रात को भयानक सपना देखते हैं। जागने पर अनेक बुरी बुरी कल्पनाएँ

करते हैं। भयानक स्वप्न का फल बुरा होता है। भरतजी कैकेयदेश : ननिहाल में हैं। घर पर क्या होता है इसका पता नहीं।

बिप्र जेंवाइ देहिं दिन दाना। सिव अभिषेक करहिं बिधि नाना ॥
माँगहिं हृदय महेस मनाई। कुसल मातु पितु परिजन भाई ॥४॥

अर्थ : नित्य ब्राह्मणों को भोजन कराके दान देते थे। अनेक विधि से रुद्राभिषेक करते थे। महादेव को मनाकर मन में माता पिता कुटुम्बी और भाइयों की कुशल चाहते थे।

व्याख्या : स्वप्नदोष की शान्ति के लिए ब्राह्मण-भोजन दान तथा रुद्राभिषेक का विधान है। अभिषेक भी जल दुग्धादि से अनेक प्रकार से किया जाता है। शिवलिङ्ग पर गोदोहन सद्यः प्रत्यय कारक है। भरतजी ब्राह्मण भोजन कराते हैं। दक्षिणा देते हैं। तत्पश्चात् स्वयं अनेक विधि से रुद्राभिषेक करते हैं।

अभिषेक के बाद माता पिता परिजन और भाई के कुशल की प्रार्थना करते हैं। क्योंकि : भाविउ मेटि सकहिं त्रिपुरारी। अपने प्रेमियों के प्रति मन सदा पापाशङ्की होता है। सोचते हैं। सबेरे सपना देखा और वह ऐसा भयानक था कि मैं जाग उठा। इसका फल निश्चय अशुभ है।

१९. भरतागमन प्रसङ्ग

दो. एहि बिधि सोचत भरत मन, धावन पहुँचे आइ।
गुरु अनुसासन श्रवन सुंनि, चले गनेसु मनाइ ॥१५७॥

अर्थ : इस भाँति भरतजी सोच ही रहे थे कि दूत आ पहुँचे। गुरुजी की आज्ञा सुनकर गणेशजी को मना कर चले।

व्याख्या : भरतजी इस भाँति अशुभ की आशङ्का करके सोच रहे थे। तब से अयोध्या से दूत आगये। उन्होंने गुरुजी का अनुशासन सुनते ही गणेश को मनाकर प्रस्थान कर दिया। यहाँ गुरु अनुशासन शब्द ही कह रहा है कि इसमें विचार को स्थान नहीं है। अनिष्ट के अनुमान से भयभीत हो गये। गुरुजी की इच्छा मालूम होती है कि पहुँचने के पहिले मुझे कोई समाचार न मिले। ऐसा सोचकर भरतजी ने दूतों से अधिक पूछताछ न की और न यात्रा मुहूर्त दिखलाया। गुरु की आज्ञा को ही सब कुछ मानकर जय गणेश कहकर चल पड़े।

चले समीर बेग हय हाँके। नाघत सरित सैल बन बाँके ॥
हृदय सोचु बड़ कछु न सोहाई। अस जानहिं जिअँ जाउँ उड़ाई ॥१॥

अर्थ : उन्होंने हवा के वेगवाले घोड़ों को हाँका। नदी पहाड़ तथा बाँके जङ्गलों को पार करते हुए चले। हृदय में बड़ा भारी सोच था। इसलिए कुछ

अच्छा मालूम नहीं होता था। जी में ऐसा मालूम होता था कि उड़कर जल्दी से पहुँच जायँ।

व्याख्या : बड़ी शीघ्रता है। अतः वायुगतिवाले घोड़ों को रथ में जोड़ा। उन्हें भी जल्दी के लिए हाँक रहे हैं। बाँके शैल वन और नदियों को लाँघते चले जा रहे हैं। किसी की ओर दृष्टिपात नहीं करते। यद्यपि कैकय देश कश्मीर प्रान्त में है। वहाँ का प्राकृतिक दृश्य बड़ा सुहावना है। पर भरतजी के हृदय में बड़ा भारी सोच है। उन्हें कुछ अच्छा नहीं लग रहा है। रथ के इतने वेग से भी वे सन्तुष्ट नहीं हैं। चाहते हैं कि मैं उड़कर पहुँच जाऊँ। वे सोच रहे हैं गुरुजी ने बुलाया है। इतना ही कहकर दूत चुप है और कुछ नहीं कहता। बात रोकी गयी है। जो हमारे पहुँचने पर खोली जायगी। पिताजी ने क्यों नहीं बुलाया ? जिस बात का कहना उसे मना किया गया है। उसे जानने के लिए दूत पर दबाव डालना भी उचित नहीं। इधर भयानक सपना भी देखा। बात क्या हुई ?

एक निमेष बरष सम जाई। एहि बिधि भरत नगरु निअराई ॥
असगुन होहिं नगर पैठारा। रटहिं कुभाँति कुखेत करारा ॥२॥

अर्थ : एक निमेष वर्ष के समान बीतता था। इस भाँति नगर के सन्निकट भरतजी पहुँचे। नगर में अब प्रवेश के समय अपशकुन होने लगे। कराल काग : कुखेत में बुरी तरह से शब्द करने लगे।

व्याख्या : सोच की मात्रा इतनी बढ़ी हुई है कि निमेष वर्ष के समान बीतने लगा। ऐसे समय में सरित शैल वन की शोभा देखने का अवकाश या रुचि किसे हो सकती है। नगर पहुँचने की विधि कहकर प्रवेश कहते हैं।

प्रवेश के समय दाहिने सुखेत में काग का होना शुभ है। सो वहाँ बायें कुखेत में काग कठोर शब्द कर रहे हैं। काग की बोली अनेक प्रकार की होती है। कोई बड़ी ही भयङ्कर होती है।

खर सियार बोलहिं प्रतिकूला। सुनि सुनि होइ भरत मन सूला ॥
श्रीहत सर सरिता बन बागा। नगरु बिसेषि भयावनु लागा ॥३॥

अर्थ : गधे और सियार प्रतिकूल बोलने लगे। सुन सुनकर भरत के हृदय में शूल उठता था। तालाब नदी वन बाग सब शोभारहित हो रहे थे और नगर तो विशेषरूप से भयावन मालूम हुआ।

व्याख्या : गधे रेंकते हैं। सियारिन फेकरती हैं। ये सब महा असगुन हैं। सुन सुनकर भरतजी के हृदय में शूल होता था कि कोई भारी अनर्थ हुआ है। जिसे वहाँ सुनाना मुझे अच्छा नहीं समझा गया।

बागन्ह बिटप बेलि कुभिलाहीं। सरित सरोवर देखि न जाहीं। लागति अवध भयावनि भारी। मानहु कालराति अँधियारी। यह अवस्था रामजी के वन गमन

के समय हुई थी। अब तो महाराज भी नहीं हैं। स्थानों में मनुष्य के चेहरे की भाँति उदासी छा जाती है।

खग मृग हय गय जाँहि न जोए। राम बिरोग कुरोग बिगोए ॥
नगर नारि नर निपट दुखारी। मनहु सबन्हि सब संपति हारी ॥४॥

अर्थ : रामजी के वियोगरूपी कुरोग से सताये हुऐ पक्षी मृग घोड़े और हाथियों को देखते नहीं बनता था। नगर के स्त्री पुरुष एकदम दुःखी हो गये थे। मानों सबने अपनी सम्पति हार दी हो।

व्याख्या : हय गय कोटिन्ह केलि मृग पुरपसु चातक मोर। सुक रथांग पिक सारिका सारस हंस चकोर। राम बियोग बिकल सब ठाढ़े। जहँ तहँ मनहु चित्र लिखि काढ़े। ये इतने दुःखी हैं कि इनको देखते नहीं बनता। रोगी होने से कैसा भी सुन्दर पुरुष दर्शनीय नहीं रह जाता। सो ये सब राम वियोगरूपी रोग से ग्रस्त हैं। अतः हतप्रभ हैं।

नगर के भीतर जाने पर नर नारियों को देखा। उनकी दशा सुनिये। सब सम्पति हार जाने पर जैसे कोई दुःखी होता है। उसे कुछ सूझता नहीं। वैसी दशा सबकी हो रही है। रामजी ही सबके सर्वस्व थे। उन्हीं से : सब बिधि सब पुर लोग सुखारी थे। उन्हीं का मुखचन्द्र अयोध्या के लिए चन्द्र था। सो वन गये। इधर सूर्यास्त भी हो गया। यथा : अथएउ आज भानुकुल भानू। अतः अवध वासियों के दुःख का पारावार नहीं।

दो. पुरजन मिलहिं न कहहिं कछु, गँवहिं जोहारहि जाँहि।
भरत कुसल पूछि न सकहिं, भय बिषाद मन माँहीं ॥१५८॥

अर्थ : पुरजन मिलते हैं तो कुछ बोलते नहीं। चुपचाप जोहार करके अपना रास्ता पकड़ते हैं और भरतजी के मन में भय भी था विषाद भी था। इसलिए कुशल नहीं पूछ सकते थे।

व्याख्या : रास्ते में जो मिले उनका हाल सुनिये। उन्हें भरतजी के देखने पर किसी प्रकार का हर्ष नहीं है। उदासीनता इतनी बढ़ी हुई है कि कुशल तक नहीं पूछते। राजा के नाते जोहार कर देते हैं और चुपके से अपना रास्ता पकड़ते हैं। जिसमें बातचीत का अवसर न आने पाये। उन्होंने कुशल न पूछा तो भला भरतजी ही पूछते। सो ये पूछ नहीं सकते थे। उनके मन में भय था कि पूछने पर कोई बड़ी ही अनिष्टकारी घटना का समाचार मिलेगा। जिससे परिचित करना मुझे उचित नहीं समझा गया। अतः अत्यन्त विषण्ण थे।

हाट बाट नहिं जाइ निहारी। जनु पुर दहँ दिसि लागि दवारी ॥
आवत सुत सुनि कैकयनंदिनी। हरषी रबिकुल जलरुह चंदिनी ॥१॥

अर्थ : बाजार और रास्ता देखते नहीं बनता था। मानों नगर के दसों

दिशाओं में आग लगी हो। बेटे का आगमन सुनकर सूर्यकुल कमल के लिए चाँदनी रूपी कैकयनन्दिनी : कैकेयी बड़ी प्रसन्न हुई।

व्याख्या : जिस नगर के दशों दिशाओं में आग लगी हो वहाँ के हाट बाट की दुर्दशा के लिए क्या कहना है। यह आग कैकेयी रूपी किरातिनी ने अपने बेटे के कल्याण के लिए लगाया है : गोड़वाने में आज भी बीमार बच्चों के कल्याणार्थ वन में आग लगाने की मनौती मानी जाती है। इसीलिए उसे रबिकुल जलरुह चन्दिनि कहा। भले ही वह कैकयानन्द वर्धनी क्यों न हो।

सजि आरती मुदित उठि धाई। द्वारेहिं भेंटि भवन लेइ आई॥
भरत दुखित परिवारु निहारा। मानहुं तुहिन बनज बनु मारा॥२॥

अर्थ : आरती सजाकर बड़े हर्ष से उठकर दौड़ी। द्वार पर ही मिलकर घर लिवा ले गयी। भरत ने परिवार को दुःखी देखा। जैसे कमलवन पर पाला पड़ा हो।

व्याख्या : बेटा राजा होने आ रहा है। अतः आरती साजी जा रही है। बड़ी प्रसन्न है। आप ही आरती करने दौड़ी। दूसरा कोई साथ नहीं है। द्वार पर पहुँच कर वहीं आरती की और मिल-भेंटकर अपने घर लिवा ले गयी कि कहीं दूसरे किसी महल में प्रणाम करने न चले जायँ। कोई ऐसी पट्टी न पढ़ा दे कि सब करा धरा व्यर्थ पड़ जाय।

भरतजी गुरुजी के यहाँ न जाकर सीधे घर आये। जानते हैं कि पूर्णकाम गुरुजी को कोई निज का काम हो नहीं सकता। कोई बात घर में बिगड़ी है। माता पिता पुरजन और भाई के विषय में आशङ्का है। स्वप्न में भी भारी अशुभ माता के विषय में ही देखा है। दरवाजे पर लोग जुट गये हैं। पर दुःखी हैं। कुछ पूछते पर माँ आगयी। आरती करके मिल भेंटकर अपने महल में लिवा ले गयी। सब भेद कहना है। क्योंकि भरतजी कुछ जानते नहीं। शत्रुओं से सावधान करना है। मित्र रूप में शत्रु बहुत हैं। क्योंकि इसी ने रघुकुल कमल विपिन पर चाँदनी रात बनकर पाला गिराया है।

कैकेई हरषित एहि भाँती। मनहुँ मुदित दव लाइ किराती॥
सुतहि ससोच देखि मनु मारें। पूँछति नैहर कुसल हमारे॥३॥

अर्थ : कैकेयी इस प्रकार प्रसन्न है जैसे किराती वन में आग लगाकर प्रसन्न होती है। बेटे को शोकयुक्त तथा मन मारे देखकर पूछती है कि हमारे मायके में सब कुशल तो है।

व्याख्या : किराती जङ्गल में आग लगाकर प्रसन्न हो जाती है कि अब मेरा बेटा चङ्गा हो जायगा। इसी भाँति इतना बड़ा अनर्थ करके कैकेयी प्रसन्न है कि अब मेरा बेटा राजा हो जायगा। जैसे किराती जङ्गल में आग लगाकर हर्षित होती है कि अब मेरा बेटा चङ्गा हो जायगा। किरातों में अब भी ऐसा विश्वास है कि

जङ्गल में आग लगा देने से बीमार अच्छा हो जाता है। अतः आज भी वे बीमार बच्चों के स्वास्थ्य लाभ के लिए वन में आग लगा देती है।

लोगों को दुःखी देखकर भरत उदास हैं। इस बात का ख्याल ही नहीं है। रहै न नीच मते चतुराई। भय उत्पन्न हुआ कि मेरे मायके में तो सब कुशल है न ! मायके का बड़ा भरोसा है। यथा : नैहर जन्म भरब बरु जाई इत्यादि। भरतजी को सशोक मन मारे देखकर नैहर के कुशल के प्रति आशङ्का हुई।

सकल कुसल कहि भरत सुनाई। पूँछी निज कुल कुसल भलाई ॥
कहु कहँ तात कहाँ सब माता। कहँ सिय राम लखन प्रिय भ्राता ॥४॥

अर्थ : भरतजी ने सब कुशल कह सुनाया। तब अपने कुल का कुशल मङ्गल पूछा। बतला कि पिताजी कहाँ हैं, सब मातायें कहाँ हैं ? सीताजी रामजी और प्रिय भाई लक्ष्मण कहाँ हैं ?

व्याख्या : परिजनों को देख ही लिया। अब जिन्हें नहीं देखा उन्हें पूछते हैं। महाराज कैकेयी को अधिक मानते थे। प्रायेण उसी के महल में रहते थे। इसी से सब का आना जाना लगा रहता था। सो कोई नहीं दिखायी पड़ रहा है। भरत का आना सुनकर भी कोई नहीं आया। इसलिए एक एक को पूछ रहे हैं।

दो. सुनि सुत बचन सनेहमय, कपट नीर भरि नयन।
भरत श्रवन मन सूल सम, पापिनि बोली बयन ॥१५९॥

अर्थ : पुत्र के स्नेहमय वचन को सुनकर वह पापिनी आँखों में कपट के आँसू भरकर भरत के मन और कानों के लिए शूल के समान वचन बोली।

व्याख्या : पति विषयक स्नेहमय जिज्ञासा के वचन सुनकर विधवा माता की पीड़ा का पारावार नहीं रहता। सो कैकेयी को कोई पीड़ा नहीं हुई। उसे सात्त्विक भाव नाट्य करने के लिए आँखों में कपट के आँसू भरने पड़े। मन में दुःख नहीं है। दिखाना चाहती है कि मैं दुःखी हूँ। पति में प्रेम न देखकर पुत्र को माता के प्रति अश्रद्धा होती है। अतः यह नाट्य हो रहा है। इसी से कवि पापिनी कह रहे हैं। इसी के करतब से पति मरे। रामजी को वनवास हुआ। यह सब भरत के लिए किया। सो भरत को भी उसके वचन शूल की भाँति चोट पहुँचावेंगे।

तात बात मैं सकल सँवारी। भइ मंथरा सहाय बिचारी ॥
कछुक काज बिधि बीच बिगारेउ। भूपति सुरपति पुर पगु धारेउ ॥१॥

अर्थ : बेटा ! मैंने सारी बातें बना ली थीं। बिचारी मन्थरा सहायक हुई। बीच में विधाता ने कुछ काम बिगाड़ दिया। महाराज इन्द्रपुर को पधार गये।

व्याख्या : कहती है कि आदमी का बिगाड़ा हुआ तो सब मैंने सँवार लिया। अर्थात् राम को राज्य सब मिलकर दिलवा ही चुके थे। इतना बड़ा रघुवंश है। किसी ने मेरी सहायता न की। बिचारी मन्थरा ने वचन सहाय किया। वही एक

मायके की है। जो करणी किया है उसी के प्रकट करने की भूमिका बाँध रही हैं। पहिले ही वार्ता विशेष न कहकर ऐसी बातें करना जिसमें पीछे विवक्षित बात जम जाय यही भूमिका है। जो बात ब्रह्मा बिगाड़ते हैं वह मनुष्य का सुधारा नहीं सुधारता। राजा का देहान्त हो गया। सँवारा सो हमने, बिगाड़ा सो ब्रह्मा ने : यही तामसी बुद्धि है। बात को सँभालकर कहती है। जिसमें भरतजी को कम पीड़ा हो। मरना न कहकर इन्द्रपुर पधारना कह रही है।

सुनत भरतु भए बिबस बिषादा। जनु सहमेउ करि केहरि नादा॥
तात तात हा तात पुकारी। परे भूमि तल ब्याकुल भारी॥२॥

अर्थ : सुनते ही भरतजी विषाद के वश हो गये। जैसे सिंह का नाद सुनकर हाथी सहम उठा हो। तात! तात! हा तात! ऐसा पुकार करके अत्यन्त व्याकुल होकर पृथ्वी पर गिर पड़े।

व्याख्या : हाथी के लिए सिंह का नाद श्रवण मन के लिए शूल के समान है। केहरि का गन्ध हाथी नहीं सह सकते। कोसों दूर भागते हैं। नाद सुनने पर तो कुछ करते धरते नहीं बनता। महाराज का अस्वस्थ होना भरतजी नहीं सह सकते थे। अतः मरण सुनने पर भारी विकलता हुई। अपने को सँभाल न सके। धैर्य छूट गया। चिल्लाकर रो उठे और पृथ्वी पर गिर गये।

चलत न देखन पायउँ तोहीं। तात न रामहिं सौंपेहु मोहीं॥
बहुरि धीर धरि उठे सँभारी। कहु पितु मरन हेतु महतारी॥३॥

अर्थ : अन्त समय में मैं आपको देख न सका। हे तात! आपने मुझे रामजी को सौंपा भी नहीं। फिर धैर्य धारण करके सँभलकर उठे। बोले माँ! पिता के मरण का कारण बताओ।

व्याख्या : सुरपुर गवन सुनावा। अतः कहते हैं : चलत न देखन पायउँ तोही। भरतजी ने समझा कि सरकार ने दाह क्रिया किया होगा। सो मरती समय मैं मुख भी न देख सका। अन्तिम दर्शन मेरे भाग्य में नहीं था। एक आवश्यक बात मेरे लिए नहीं कर सके। रामजी को मुझे नहीं सौंपा कि मेरे बाद तुम्हीं इसके पिता हो।

कैकेयी कुछ नहीं कहती कि शोक का वेग निकल जाने दो। तब खुशी की बात सुनावेंगे। बेटे को ख्याल है कि राजा तो रामजी हो गये अब मेरा भरण पोषण रामजी के हाथ है। यदि सौंप देते तो बड़ी जागीर मिलने की आशा थी। नहीं तो थोड़ी ही मिलेगी और कौन कह सकता है कि न भी मिले। यह इसे नहीं मालूम है कि अब मैं ही राजा हूँ। अब इसे खुशखबरी सुनानी चाहिए। तब से भरतजी अपने को सँभालकर उठ बैठे। उठने में अपने को सँभालते हैं। हाथ पैर ठीक काम नहीं करते। अब पूछते हैं कि महाराज को कौन सा रोग हो गया था?

सुनि सुत बचन कहति कैकेई। मरमु पाछि जनु माहुर देई॥
आदिहु तें सब आपनि करनी। कुटिल कठोर मुदित मन बरनी॥४॥

अर्थ : बेटे का वचन सुनकर कैकेयी कहती है। मानो मर्म पर घाव करके विष दे रही है। वह कुटिल कठोर कैकेयी। आरम्भ से अपनी करणी बड़े प्रसन्न मन से सुना गयी : वर्णन कर गयी।

व्याख्या : भरतजी का वचन सुनकर जो कैकेयी ने कहा उसे आगे कहा जायगा। पहले प्रभाव कहते हैं। मानो मर्म पर घाव करके उस पर विष की पट्टी दी जा रही है। पहला वरदान भरत को राज्य माँगना मर्म पर घाव करना है और दूसरा वरदान रामजी को वनवास देना उस पर जहर की पट्टी बाँधना है। विष खिलाने से भी अधिक सद्यः परिणाम घाव पर विष देने से होता है। क्योंकि खाने के बाद पाक होने में कुछ समय लगता है और घाव पर विष रखने से उसका संसर्ग रक्त से सद्यः हो जाता है। अतः उसका तुरन्त प्रभाव होता है। शूल से वचन ने मर्म पर घाव किया। यथा : भरत श्रवन मन सूल सम पापिनि बोली बयन। दूसरे वचन ने उस पर विष प्रयोग सा प्रभाव डाला।

कैकेयी ऐसी कठोर है कि अपनी कुटिलता भरी करणी लगी प्रसन्न होकर वर्णन करने। कहने लगी कि मन्थरा द्वारा पता लगने पर कि राम का राज्याभिषेक होनेवाला है। मुझे बड़ी चिन्ता हुई कि उनके अभिषेक होने पर तुम्हें उनका गुलाम होकर रहना पड़ेगा। उधर अभिषेक की सब तैयारी हो चुकी थी। फिर मन्थरा ने जैसे जैसे समझाया जैसे जैसे वरदान माँगा गया, जैसे रामजी वन गये, जिस भाँति महाराज का देहावसान हुआ, सब कह गयी।

दो. भरतहि बिसरेउ पितु मरन, सुनत राम बन गौनु।
हेतु अपनपउ जानि जिअँ, थकित रहे धरि मौनु॥१६०॥

अर्थ : भरतजी को रामजी का वन जाना सुनकर पिता का मरण भूल गया। अपने को ही कारण समझकर चुप होकर ठक हो गये।

व्याख्या : राम वनगमन का चोट पितु मरण से भी बड़ा हुआ। मर्म पर घाव करने से विष की पट्टी अधिक दुःखदायक हुई। बड़ा भारी दुःख आजाने से छोटा दुःख भूल जाता है। पिता का मरण सुनने पर तो रोये चिल्लाये। पर राम वनगमन सुनकर मौन होकर स्तब्ध हो गये। क्योंकि मन में समझा कि सब अनर्थ का कारण तो मैं हुआ : पहिले वरदान का ही दूसरा वरदान पोषक है।

बिकल बिलोकि सुतहि समुझावति। मनहुँ जरे पर लोनु लगावति॥
तात राउ नहि सोचइ जोगू। बिढ़इ सुकृत जसु कीन्हेउ भोगू॥१॥

अर्थ : विकल देखकर बेटे को समझाती है। मानो जले पर नमक छिड़कती

है। बेटा ! महाराज सोचने योग्य नहीं हैं। उन्होंने पुण्य और यश उपार्जन करके संसार में सुख किया है।

व्याख्या : समझती है कि बाप के मरने के शोक में लड़के को राज्य प्राप्ति की खुशी दब गयी। मर्म पर चोट करके विष देना सहा जाता है। जले पर नमक छिड़कना नहीं सहा जाता। भरतजी का कलेजा जल रहा है। तिस पर इसका समझाना नमक का काम कर रहा है। सहा नहीं जाता। कैकेयी कहती है कि पाप कर्म करके सुख नहीं भोगा। पुण्य भी कमाया। यश भी कमाया और सांसारिक सुख भी भोगा। पापी के लिए सोचा जाता है कि इसकी क्या गति होगी या दुखिया के लिए सोचा जाता है कि बिचारा मर गया। कुछ सुख भोगने को न मिला। राजा को तो दोनों लोक में सुख ही सुख हुआ। उनके लिए क्यों सोचते हो ?

जीवत सकल जनम फल पाए। अंत अमरपति सदन सिधाए ॥
अस अनुमानि सोच परिहरहू। सहित समाज राजु पुर करहू ॥२॥

अर्थ : जीते जी जन्म पाने का सभी फल पाया। अन्त में इन्द्रासन पर चले गये। ऐसा अनुमान करके शोक को छोड़ो और समाज सहित नगर का राज्य करो।

व्याख्या : इन्द्रपुर जाना अनुमान से सिद्ध है। महाराज अश्वमेधान्त याजी थे। उनके इन्द्रपुर जाने में सन्देह क्या ? तिस पर इन्द्र के मित्र थे। यथा : ससुर सुरेस सखा रघुराऊ। अतः इन्द्र ने बुलाकर अपने पास रक्खा होगा। इस अनुमान के बल पर सोच छोड़ो। राजा गये। पर अपना समाज छोड़ गये हैं। उस समाज के साथ राज्य करो। क्यों व्यर्थ दुःख करते हो।

सुनि सुठि सहमेउ राजकुमारू। पाके छत जनु लाग अँगारू ॥
धीरजु धरि भरि लेहिं उसासा। पापिनि सबहिं भाँति कुल नासा ॥३॥

अर्थ : सुनकर राजकुमार भरतजी एकदम सहम गये। मानो पके घाव पर अङ्गार छू गया। वे धैर्य धारण करके लम्बी साँस ली और बोले कि रे पापिनी ! तैंने सभी तरह से कुल का नाश किया।

व्याख्या : एक एक बात रानी साहिबा की दूसरे से बढ़कर हो रही है। अतः कवि उपमा भी वैसी ही देते जाते हैं। पहिली बात : मर्म पाछि जनु माहुर देई। दूसरी बात : मानहु लोन जरे पर देई। अब तीसरी बात की उपमा देते हैं कि मानो पके हुए फोड़े पर कोई अङ्गार रख दे। राम का वनवास कहना मानो घाव पक गया है। उस पर राजपुर करऊ कहने ने तो मानो उस पर अङ्गार रखने का काम किया।

धैर्य करके तब उच्छ्वास लिया। नहीं तो स्तब्ध खड़े थे। इस बार बोल ही बैठे। पापिनि बोली बैन। अतः कहते हैं पापिनि सबहिं भाँति कुल नासा। दिन कर कुल जलरुह चन्दिनि है। राजा को मारा। परिजन को मरणान्त कष्ट दिया। बेटे को वन्न दिया। कुल नाश में कोई कसर न छोड़ा।

जौं पै कुरुचि रही अति तोही। जनमत काहें न मारे मोही ॥
पेड़ काटि तैं पालउ सींचा। मीन जिअन निति बारि उलीचा ॥४॥

अर्थ : यदि तुझे अत्यन्त ही कुरुचि थी तो जन्म लेते ही मुझे क्यों नहीं मार दिया ? पेड़ काटकर तूने पल्लव सींचा। मछली के जीने के लिए तूने पानी ही उलीच डाला।

व्याख्या : रघुकुल की रीति के विरुद्ध रुचि होना कुरुचि है और मुनिवेष धारण कराके रामजी को वन भेजना अत्यन्त कुरुचि है। इस कुरुचि द्वारा तैंने मेरे यशोमय शरीर का वध किया। तब मुझे जनमते ही क्यों नहीं मारा ? उस समय मर गये होते तो हम अपयश भाजन, प्रियजन द्रोही तो न होते।

यहाँ सींचा और उलीचा दोनों क्रियाओं से दोनों वरदान अर्थात् १. भरत को राज्य २. राम का वन माँगना द्योतित किया। रामजी को राज्य मिलना आमूल वृक्ष रूप था। उसके सिञ्चन से हम लोग पल्लव रूप आप से आप सिंच जाते। सो उसे तैसे काटा। वृक्ष की जड़ ही कट गयी। पल्लव के सींचने से पल्लव की रक्षा नहीं हो सकती।

मुझे राज्य देकर ही तू सन्तुष्ट नहीं हुई। तूने समझा कि राम के रहने से मैं राज्य न कर सकूँगा। सम्भव है कि मैं मारा जाऊँ। तूने यह न जाना कि जैसे मछली का जीवनाधार जल है उसी भाँति मेरे जीवनाधार राम हैं। जैसे कोई महामूर्ख यह समझकर कि जल में मछली डूब मरेंगी। पानी उलीच दे उसी भाँति तूने मेरी रक्षा के लिए रामजी को वनवास दिया। पहिले उदाहरण से राम के सुख से अपना सुख कहा। दूसरे से उन्हें जीवनाधार बताया। भाव यह कि मेरा हित चाहती हुई तूने मेरा सर्वनाश कर दिया।

दो. हंसबंस दसरथु जनकु, राम लखन से भाइ।
जननी तूँ जननी भई, बिधि सन कछु न बसाइ ॥१६१॥

अर्थ : सूर्यवंश ऐसा कुल, दशरथ, ऐसे पिता, राम लक्ष्मण ऐसे भाई हुए और माता ! तुम माता हुई। विधाता से कोई वश नहीं चलता।

व्याख्या : जब ब्रह्मदेव ने सूर्यवंश ऐसे उज्ज्वल कुल में जन्म दिया, जिसके समान दूसरा नहीं ऐसा पिता दिया। यथा : दसरथ गुन मन बरनि न जाहीं। अधिक कहा जेहि सम जग नाहीं। राम लक्ष्मण सा भाई दिया : जिन्हके जस प्रताप के आगे। ससि मलीन रबि सीतल लागे और माँ तुम्हें बना दिया। जिसके पापी हृदय ने मेरा हित चाहते हुए सर्वनाश कर दिया। यहाँ दूसरे जननी शब्द में काकु है। भिन्नकण्ठध्वनिर्धीरैः काकुरित्यभिधीयते।

जबतैं कुमति कुमत जिअ ठयेऊ। खंड खंड ह्वै हृदय न गयेऊ ॥
बर माँगत मन भइ नहिं पीरा। गरि न जीह मुँह परेउ न कीरा ॥१॥

अर्थ : रे कुमति ! जब यह दुर्बुद्धि तेरे हृदय में आयी तेरा हृदय टुकड़े टुकड़े क्यों न हो गया ! वर माँगने में तेरे मन में पीड़ा क्यों न हुई ! तेरी जीभ गली नहीं ! मुख में कीड़े न पड़े !

व्याख्या : जिस हृदय में सदा सुमति रही। जो सदा राम प्रेम से सरस रहा, उसमें जब दुर्बुद्धि का प्रवेश हुआ, उससे राम प्रेम जाता रहा। तब वह टुकड़े टुकड़े क्यों न हो गया। क्योंकि सरस वस्तु रस के वियोग से फट जाता है। इसलिए हृदय को फट जाना चाहता था।

यदि फटा नहीं तो कम से कम वर माँगते समय उसमें पीड़ा तो होनी ही चाहती थी। पर तुझे पीड़ा तक न हुई। यथा : मागउँ दूसर बर करजोरी। पुरवहु नाथ मनोरथ मोरी। जिस जीभ से जिस मुख से तैने ऐसा वरदान माँगकर इतना बड़ा घोर पाप किया उस जीभ को सद्यः गल जाना चाहता था और उस मुख में कीड़े पड़ जाने चाहते थे। यथा : ते नर नरकरूप जीवत जग भवभंजन पद बिमुख अभागी। भला तुझसे बिगड़ा तो बिगड़ा महाराज कैसे भूल गये ?

भूप प्रतीति तोरि किमि कीन्ही। मरन काल बिधि मति हरि लीन्ही ॥
बिधिहुँ न नारि हृदय गति जानी। सकल कपट अघ अवगुन खानी ॥२॥

अर्थ : राजा ने तेरा विश्वास कैसे किया। मरती समय विधाता ने उनकी बुद्धि हरण कर ली। ब्रह्मदेव भी स्त्री के हृदय की गति नहीं जान पाते जो सब प्रकार के कपट पाप और अवगुण की खानि होती है।

व्याख्या : महाराज तो नीतिकुशल थे। उन्हें समझना चाहिए था कि रामजी का अभिषेक है। आज यह कोपभवन में आयी है। खुशी नहीं मनाती। वरदान माँगती है। अवश्य इसे रामजी से भय है। रामजी के विरुद्ध ही कुछ माँगेगी। ऐसे अवसर पर विशेषतः तेरा विश्वास तो करना ही नहीं चाहता था। क्योंकि कोपभवन में जाने से ही तेरा भव व्यक्त हो गया था। सो : कालदण्ड गहि काहु न मारा। हरै धर्म बल बुद्धि बिचारा।

यदि कहिये कि राजा को इस बात का भरोसा था कि इसके हृदयगति को मैं जानता हूँ। यथा : जानेउ मरम राउ हँसि कहई। तुमहि कोहाब परम प्रिय अहई। तो मायारूप होने से ब्रह्मा भी नहीं जान सकते कि किस स्त्री की किस समय कैसी गति हो जायगी। माया के परिवार काम क्रोध से शिव चतुरानन के डरने की बात सुनी जाती है और नारि तो उनमें सबसे अधिक दारुण दुःखद है। यथा : काम क्रोध लोभादि पद प्रबल मोह कै धारि। तिन मह अति दारुन दुःखद मायारूपी नारि। जो जिसकी गति नहीं जानता उससे वह डरता है। अतः कहा जा सकता है कि विधाता को भी नारी के हृदय की गति नहीं मालूम। जितने कपट हैं, पाप हैं और अवगुण हैं। ये सब स्त्रियों के हृदय से ही उत्पन्न हुए हैं। जिस भाँति जितने धातु हैं। वे सब खानि से ही उत्पन्न होते हैं। कुछ पण्डितों का मत है कि विष देना

पहिले पहल स्त्रियों ने ही निकाला। नहीं तो जिसके पिता को वेदाधिकार हो, पति को हो, पुत्र को हो पर उसे न हो। यह बात निष्कारण नहीं हैं।

सरल सुसील धरमरत राऊ। सो किमि जानइ तीय सुभाऊ॥
अस को जीव जंतु जग मांही। जेहि रघुनाथ प्रानप्रिय नांहीं॥३॥

अर्थ : महाराज सरल सुशील धर्मात्मा थे। वे स्त्री स्वभाव को क्या जानें। ऐसे जीव जन्तु संसार में कौन है जिसे रघुनाथ प्राणप्रिय न हों।

व्याख्या : सत्य कहहिं कबि नारि सुभाऊ। सब बिधि अगह अगाध दुराऊ। महाराज सरल, स्त्री कपटखानि : महाराज सुशील और स्त्री अघखानि : महाराज धर्मरत और स्त्री अवगुणखानि। कपटखानि होने से अगह, अघखानि होने से अगाध और अवगुणखानि होने से दुराऊ। अतः महाराज तो जान ही नहीं सकते थे।

जिनहि निरखि मग साँपिनि बीछी। तजहि बिषम बिष तामस तीछी। क्योंकि अपनी आत्मा किसे प्रिय नहीं है। राम सो परमातमा भवानी। राम परमात्मा होने से सबकी आत्मा हैं। अतः वे सबको प्रिय हैं।

भे अति अहित रामु तेउ तोहीं। को तू अहसि सत्य कहु मोहीं॥
जो हसि सो हसि मुँह मसि लाई। आँखि ओट उठि बठहि जाई॥४॥

अर्थ : वे राम तुझे अत्यन्त अहित हो गये। तू है कौन मुझे ठीक ठीक बतला। चाहे तू जो हो मुख में कालिख लगाकर उठ और मेरी आँखों के आड़ में जाकर कहीं बैठ।

व्याख्या : अरिहु क अनभल कीन्ह न रामा। बैरिहु राम बड़ाई करहीं। वे राम तुझे अत्यन्त अहित हो गये। अब तू है कौन ? मुझसे सत्य बतला दे। मेरी वह माँ तो तू नहीं है। उसे तो रामजी प्राण से भी प्यारे थे। तब मेरे माँ के रूप में तू कौन है ? कोई राक्षसी है या पिशाची है। जो मेरी माँ का रूप धारण किये हुए है।

अच्छा चाहे तू वही हो चाहे दूसरी हो। दुष्ट बुद्धि का मुख मसि योग्य होता ही है। यथा : असि बुधि तौ बिधि मुँह मसि लोई। लोचन ओट बेठु मुँह गोई कहकर पति ने त्याग किया था : आँखि ओट उठि बैठहि जाई कहकर पुत्र ने भी त्याग किया। यथा : तजेउ पिता प्रहलाद विभीषन बंधु भरत महतारी।

दो. राम बिरोधी हृदय तें, प्रकट किन्ह बिधि मोहिं।
मो समान को पातकी, बादि कहौं कछु तोहिं॥१६२॥

अर्थ : ब्रह्मदेव ने मुझे राम विरोधी के हृदय से प्रकट किया है अतः मेरे समान पापी कौन है। तुझे मैं व्यर्थ ही कुछ कह रहा हूँ।

व्याख्या : त्याग के बाद अब उस ओर से क्रोध हटा तब आत्मग्लानि हुई कि मैं विरोधी के हृदय से पैदा हुआ। ऐसी ही ग्लानि सती को हुई थी। यथा : दच्छ सुक्र सम्भव यह देही। पापी मैं हूँ तुम्हें व्यर्थ पापिनी कहता हूँ। कर्म सुभासुभ

देइ विधाता। विधाता ने मेरा पाप देखकर ही तेरे उदर से मेरा जन्म दिया है। तू तो राम विरोधी के उदर से नहीं उत्पन्न हुई। मैं तो पूर्वजन्म का पापी हूँ। तू तो केवल इस जन्म की पापिनी है अतः मेरा तुझसे कहना व्यर्थ है।

सुनि सत्रुघुन मातु कुटिलाई। जरहिं गात रिस कछु न बसाई॥
तेहि अवसर कुबरी तहँ आई। बसन बिभूषन बिबिध बनाई॥१॥

अर्थ : शत्रुघ्न का शरीर माता की कुटिलता सुनकर क्रोध से जल रहा था। कोई वश नहीं चलता था। उस अवसर पर कुबरी वहाँ आगयी। उसने अनेक प्रकार के कपड़े और गहने से अपने को सजा रक्खा था।

व्याख्या : अभी तक शत्रुघ्नजी बोले ही नहीं। यह रघुकुल का विनय है। बड़ों के सामने छोटे बोलते ही नहीं। शत्रुघ्नजी सबसे छोटे हैं। रामायण भर में ये बोले ही नहीं। यही हाल लक्ष्मणजी का भरतजी के सामने रहता है। शत्रुघ्नजी भरतजी के साथ हैं। माता को कुटिलता सुन सुनकर देह में आग लगी हुई है। आज दूसरे से यह बात हुई होती तो क्या न कर बैठते। माँ हैं। इसलिए कुछ कर नहीं सकते। भरतजी ने तो खरी खोटी भी कही। पर ये चुप ही रहे।

जिस समय भरतजी ने माता का त्याग किया उसी अवसर पर कुबरी वहाँ चली आयी। वहाँ कोई आ नहीं सकता था। एकान्त में बात हो रही थी। कुबरी का साहस बढ़ा हुआ है। वाहवाही लेने आयी है। समझ लिया कि मेरी हितचिन्तकता अब तक रानी साहिबा कह चुकी होंगी। सो वस्त्राभूषण जो कैकेयी से मिले हैं उससे सज धजकर चखपूतरी बनी हुई आयी मुबारकबादी देने।

लखि रिसि भरेउ लखन लघु भाई। बरत अनल घृत आहुति पाई॥
हुमगि लात तकि कूबर मारा। परि मुह भरि महि करत पुकारा॥२॥

अर्थ : लखकर लक्ष्मणजी के छोटे भाई क्रोध से भर गये। मानो जलती हुई आग में घी की आहुति पड़ी। कूबर ताककर हुमक : कस कर लात मारा। मुँह के बल जमीन पर पुकार करती हुई गिरी।

व्याख्या : यद्यपि भरतजी के साथ हैं। पर लक्ष्मणजी के छोटे भाई हैं। तेजस्वी स्वभाव है। उसके सजधजकर आने का आशय लखा। क्रोध से भर गये कि इसी की लगायी सब आग है। उसके आने से जलती हुई आग में घी का काम किया। क्रोध भभक उठा न बोले न चाले।

कूबर ताककर लात मारा कि सब दोष की गठरी यही है। वीर के लात का आघात कूबरी क्या सहती। मुँह के बल पृथ्वी पर गिरी। चिल्लाने लगी कि क्या यही नेकी का बदला है? होम करते हाथ जल रहा है।

कूबर टूटेउ फूट कपारू। दलित दसन मुख रुधिर प्रचारू॥
आह दइअ मैं काह नसावा। करत नीक फलु अनइस पावा॥३॥

अर्थ : कूबर टूटा। सिर फूटा। दाँत टूट गये। मुँह से रक्त बह चला : कहने लगी हाय देव! मैंने क्या बिगाड़ा? मैंने भला किया : उसके बदले में फल बुरा मिला?

व्याख्या : कूबर पर लात लगा। इसलिए कूबर टूट गया। मुँह के बल गिरी। इससे कपाल में भी चोट आयी। दाँत भी टूट गये। भीतर से भी रक्त और बाहर से भी रक्त बह चला। फोरें जोग कपार हमारा का साफल्य है। कहने लगी अरे दैया रे मैंने क्या बिगाड़ा। बिगाड़ा तो कौसल्या ने जिन्होंने : रचि प्रपञ्च भूपति अपनाई। राम तिलक हित लगन धराई। मैंने तो भला किया। रानी को खबर दे दिया। नहीं तो आज रामचन्द्र राजा हो गये होते।

सुनि रिपुहन लखि नख सिख खोटी। लगे घसीटन धरि धरि झोंटी ॥
भरत दयानिधि दीन्ह छड़ाई। कौसल्या पहिं गे दोउ भाई ॥४॥

अर्थ : सुनकर शत्रुघ्नजी उसे नख से चोटी तक खोटी जानकर उसको झोंटा : केश पकड़ पकड़कर घसीटने लगे। दयासागर भरतजी ने उसे छोड़ा दिया। दोनों भाई कौसल्याजी के पास गये।

व्याख्या : उसकी बात सुनकर शत्रुघ्नजी ने लखा कि इसके कूबर में ही दोष नहीं है। इसके सर्वाङ्ग में दोष भरा है। उसका केश पकड़कर एक ओर घसीटकर फेंका और फिर घसीटकर दूसरी ओर फेंक दिया।

भरतजी दयानिधान हैं। उस पर भी दया किया कि यह चेरी है। इसकी इतनी ही बुद्धि थी। जब रानी की यह गति है तो चेरी का क्या दोष है। उठकर छोड़ाया। कहने से काम नहीं चला। अतः दुःखिनी रामजी की माता कौसल्याजी के पास दोनों भाई गये। महाराज का शव वहीं था।

प्रेमवर्णन प्रसङ्ग

दो. मलिन बसन बिबरन बिकल, कृस सरीर दुख भारु।
कनक कलप बर बेलि बन, मानहुँ हनी तुसारु ॥१६३॥

अर्थ : देखा कि : कपड़े मैले, बेरङ्ग, विकल, शरीर दुबली, दुःख के बोझ से दबी : ऐसी मालूम होती थीं। जैसे सुनहली लहलहाती हुई कल्पलता को वन में पाला मार गया हो।

व्याख्या : आज महाराज दशरथ की पट्टाभिषिक्ता महिषी की यह दशा है कि कपड़े मैले हो गये हैं। शरीर का रङ्ग काला पड़ गया है। शोक से विकल हैं। दुबली पड़ गयी हैं। बड़ा भारी दुःख है। क्या थीं क्या हो गयीं? जैसे पाला मार देने से कल्पलता झुलस गयी हो। कैकेयी में ऐसे लक्षण एक भी न थे। उसके कपड़े भी साफ थे। रङ्ग भी फीका नहीं था। पहले की सी ज्यों की त्यों थी। बल्कि अधिक प्रसन्न दिखायी पड़ी थी।

भरतहिं देखि मातु उठि धाई। मुरुछित अवनि परी झइँआई ॥
देखत भरतु बिकल भये भारी। परे चरन तनु दसा बिसारी ॥१॥

अर्थ : भरत को देखकर माता : कौसल्या उठकर दौड़ीं पर चक्कर खाकर पृथ्वी पर मूर्च्छित होकर गिर पड़ीं। देखते ही भरतजी बड़े विकल हुए। चरणों पर गिर पड़े। शरीर की सुध बुध न रही।

व्याख्या : कैकेयी और कौसल्या में अन्तर दिखला रहे। दुःख के समय बेटे को आते देखकर जैसी माँ की गति होती है वही कौसल्याजी की है। जैसा वात्सल्य रामजी पर वैसा ही भरत पर। आते देखकर मिलने के लिए उठ दौड़ीं। दुर्बलता से चक्कर आगया। मूर्च्छित हो गयीं। इधर भरतजी की यह दशा हुई कि देखकर भारी व्याकुल हुए। कौसल्याजी के चरणों पर शरीर की सुध.बुध खोकर जा गिरे। कौसल्याजी की दशा देखकर विकल हुए थे। मूर्च्छित देखकर भारी विकल हुए।

मातु तात कहँ देहि देखाई। कहँ सिय रामु लखनु दोउ भाई ॥
कैकइ कत जनमी जग माँझा। जौं जनमि त भइ काहें न बाँझा ॥२॥

अर्थ : माता ! पिताजी को दिखा दो। सीताजी और दोनों भाई राम लक्ष्मण कहाँ हैं। कैकेयी संसार में क्यों पैदा हुई। यदि हुई तो वन्ध्या क्यों न हुई ?

व्याख्या : मातु सम्बोधन से भाव यह कि कैकेयी माता नहीं। माता तो तू है। जो पिता को दिखावे वही माता है : मरती समय पिता को नहीं देखा। अतः शव का ही दर्शन चाहते हैं। सीताजी और राम लक्ष्मण दोनों भाई कहाँ हैं ? इन दोनों प्रश्नों से पिता के प्रति तथा भाइयों के प्रति अपना प्रेम द्योतित किया। अथवा इतना ही मालूम है कि बन गये। पर कहाँ हैं यह नहीं जानते। भाव के शुद्ध होने से अर्थ युक्त बातें आप से आप मुख से निकलती हैं। भरतजी के प्रश्न स्वाभाविक हैं। पर कैसा शोकोद्गार उससे प्रकट होता है।

माता नहीं कहते कैकेयी कहते हैं। उसी ने सब बिगाड़ा। इसलिए कहते हैं कि वह जनमी क्यों ? जगत् के हित के लिए जगत् में जन्म होता है। उससे घोर अहित हुआ। यदि जनमी तो उसे वन्ध्या होना चाहिए था। न बेटा होता न उसके लिए यह इतना बड़ा अनर्थ करती।

कुल कलंकु जेहि जनमेउ मोही। अपजस भाजन प्रियजन द्रोही ॥
को तिभुवन मोहि सरिस अभागी। गति असि तोरि मातु जेहि लागी ॥३॥

अर्थ : जिसने मुझ कुलकलङ्क को जन्म दिया है। मैं अपयश का पात्र और प्रियजन का द्रोही हुआ। मेरे समान तीनों भुवन में कौन अभागा है। जिसके कारण माँ ! यह तेरी दशा हुई।

व्याख्या : जिसके पुत्रवती होने से रघुकुल में कलङ्क लगा। मैं कलङ्की पैदा

हुआ। जगत कहेगा कि भरत के कारण उसके पिता मरे। रामजी को वन हुआ। महाराज के मरण और रामजी के वन से बढ़कर प्रियजन द्रोह क्या होगा ?

जिस बेटे के कारण माता को विधवा होना पड़े, पुत्र शोक भी सहन करना पड़े, मूर्च्छित होना पड़े और उस : बेटे ने कुछ किया न हो तो उस बेटे से बड़ा अभागा तीनों लोक में कौन होगा ?

पितु सुरपुर बन रघुबर केतू। मैं केवल सब अनरथ हेतू ॥
धिग मोहि भयेउँ बेनु बन आगी। दुसह दाह दुख दूखन भागी ॥४॥

अर्थ : पिताजी स्वर्ग गये। रघुकुल केतु वन गये। मैं इन सब अनर्थों का कारण हुआ। मुझे धिक्कार है। मैं बाँस के वन में आग होकर कठिन दाह दुःख और दूषण का भागी हुआ।

व्याख्या : अपना अभाग कहते हैं : पातीति पिता। रक्षा करनेवाले पिता तो स्वर्ग सिधारे और रघुकुल केतु श्रुतिसेतुरक्षक वन को गये। दोनों को असाधारण पीड़ा हुई। ये सब बड़े बड़े अनर्थ मेरे कारण हुए। दुसह दाह भागी यथा : मरन कोटि सम दारुन दाहू। दुःख के भागी यथा : संकर साखि रहेऊ ये घाये। दूषण के भागी यथा : एक भरत कर सम्मत करही। यह सब दुःख मुझे हुआ। विलाप में ही भरतजी जो कुछ उन्हें कहना था कह गये। अपने जन्म को धिक्कारते हैं। रघुबर केतू पाठ मानने से चारों भाइयों में श्रेष्ठ अर्थ करना पड़ेगा।

दो. मातु भरत के बचन मृदु, सुनि पुनि उठी सँभारि।
लिए उठाइ लगाइ उर, लोचन मोचति बारि ॥१६४॥

अर्थ : माता भरत के वचन सुनकर फिर से संभलकर उठीं। उठाकर छाती से लगाया। आँखों से आँसू चल रहा था।

व्याख्या : अभी तक माँ भी पृथ्वी पर पड़ी है। भरतजी भी पड़े हैं। भरत का विलाप पृथ्वी पर पड़े ही पड़े हो रहा है। भरत के मृदु वचन ने सिञ्चन का काम किया। माँ सँभलकर उठ बैठी। भरतजी को उठाकर छाती से लगाया और हृदय में लगाये हुए रो रही हैं। माँ हैं : बेटे का बिलाप नहीं सुन सकीं।

सरल सुभाय मायँ हिय लाए। अति हित मनहुँ राम फिरि आए ॥
भेंटेउ बहुरि लखन लघु भाई। सोकु सनेहु न हृदयँ समाई ॥१॥

अर्थ : सरल स्वभाव से माँ ने हृदय में लगाया। अत्यन्त प्रेम के साथ मानों रामजी लौट आये। फिर लक्ष्मणजी के छोटे भाई से मिलीं। शोक और स्नेह हृदय में समाता नहीं है।

व्याख्या : कौसल्याजी महाराज दशरथ की योग्या हैं। यथा : तुम गुरु विप्र

धेनु सुर देवी। तस पुनीत कौसल्या देवी। जैसे महाराज सरल थे वैसी ही यह भी सरल हैं। भरतजी के मिलने पर ऐसा प्रेम है मानो रामजी लौटकर आये हैं।

भरत को राम समान जानकर मिलीं और शत्रुघ्न को लक्ष्मण के समान जानकर मिलीं। शोक भी हृदय में समाने लायक नहीं। न प्रेम ही समाने लायक है। स्नेह से कलेजे से लगाती हैं। शोक से रो रही हैं। यहाँ पर स्पष्ट है कि शत्रुघ्नजी लक्ष्मणजी सहोदर भाई थे।

देखि सुभाउ कहत सबु कोई। राम मातु अस काहे न होई ॥
माता भरतु गोद बैठारे। आँसु पोंछि मृदु बचन उचारे ॥२॥

अर्थ : स्वभाव को देखकर सब कोई कहता था कि रामजी की माँ ऐसी क्यों न हों! माता ने भरतजी को गोद में बिठा लिया और आँसू पोंछकर कोमल वचन कहा।

व्याख्या : घर के लोग प्रिय परिजन जिन्हें वहाँ जाने का अधिकार था सब लोग वहाँ पहुँच गये। बड़े मारके का समय है। यहीं भविष्य का निर्णय है। कोसल्याजी के स्वभाव की सरलता देखकर सबके मुँह से वाह निकल गया। कहने लगे कि यह राम की माँ हैं। न रामजी के हृदय में भेद न इनके हृदय में भेद। दूसरी माँ ऐसे समय में कठोर बोलती।

कौसल्याजी का भरतजी पर बिल्कुल औरस पुत्र सा भाव है। गोद में बिठाती हैं। आँसू पोंछती हैं। रुख से समझ गयीं कि कैकेयी का अनादर करके आ रहे हैं। कष्ट को कम करने के लिए इस प्रकार का बर्ताव कर रही हैं।

अजहुँ बच्छ बलि धीरज धरहू। कुसमउ समुझि सोक परिहरहू ॥
जनि मानहु हियँ हानि गलानी। काल करम गति अघटित जानी ॥३॥

अर्थ : वत्स! मैं बलि जाऊँ। अब भी धैर्य धरो। बुरा समय जानकर धैर्य धरो। मन में हानि ग्लानि न मानो। इस बात को जान लो कि काल और कर्म की गति बनायी हुई नहीं है।

व्याख्या : धैर्य न धारण करने से बहुत काम बिगड़ चुका। धैर्य न धारण करने से ही महाराज का देहावसान हुआ। बहुत हो चुका। अब धैर्य धारण करो। समय घोर उपस्थित है। यह जानकर शोक छोड़ो। बड़ी बड़ी आपत्ति का सामना करना है : महाराज की और्ध्वदैहिक क्रिया की ओर इङ्गित है। जो बिगड़ा सो बिगड़ा। अधिक न बिगड़े :

पितु सुर पुर बन रघुकुल केतू। यह हानि है। धिग मोहि भयउ बेनुबन आगी इत्यादि ग्लानि है। माँ समझाती हैं कि हानि ग्लानि न मानो। काल और कर्म गति किसी की की हुई नहीं है। अर्थात् किसी के करने से काल की और कर्म की गति नहीं बनती।

काहुहि दोसु देहु जनि ताता । भा मोहि सब बिधि बाम बिधाता ॥
जो एतेहुँ दुख मोहि जिआवा । अजहुँ को जानइ का तेहि भावा ॥४॥

अर्थ : बेटा ! किसी को दोष मत दो । विधाता सब प्रकार से मेरे प्रतिकूल हो गये हैं । यदि इतने दुःख पर भी मुझे जिलाया तो कौन जाने उसे क्या मञ्जूर है ।

व्याख्या : वही बात जो लक्ष्मणजी ने निषादराज से कही था : काहु न कोउ सुख दुःख कर दाता । निज कृत कर्म भोग सब भ्राता : कौसल्याजी कह रही हैं । ये रामजी की माता हैं । इन्हें कैकेयी को दोष देना अखरता है । रामजी को भी इसी भाँति अच्छा नहीं मालूम हुआ कहा : दोष देइ जननिहि जड़ तेई । जिन्ह गुरु साधु सभा नहिं सेई । कहती हैं कि उनकी बुद्धि का पलटा खाना मेरे प्रति विधाता के वाम होने का फल है । न कैकेयी को दोष दो न अपने को ।

दो. पितु आयसु भूषन बसन, तात तजे रघुबीर ।
बिसमउ हरषु न हृदयँ कछु, पहिरे बलकल चीर ॥१६५॥

अर्थ : बेटा ! पिता की आज्ञा से रघुवीर ने गहने और कपड़े उतार दिये । हृदय में न हर्ष हुआ न विस्मय हुआ । वल्कल : छाल धारण कर लिया ।

व्याख्या : यही चोट राजा दशरथ को हुई : राउ सुनाइ दीन्ह बनवासू । सुनि मन भयउ न हरष हरासू । सो सुत बिछुरत गये न प्राना । को पापी बड़ मोहि समाना । कौसल्याकी के हृदय में सरकार का बिना हर्ष विषाद के मुनिवेष धारण करना चुभा हुआ है । उसी कष्ट को भरतजी के सामने व्यक्त कर रही हैं ।

मुख प्रसन्न मन रंग न रोषू । सब कर सब बिधि करि परितोषू ॥
चले बिपिन सुनि सिय सँग लागीं । रहइ न राम चरन अनुरागी ॥१॥

अर्थ : प्रसन्न मुख न राग, न रोष । सबका सब बिधि से परितोष करके वन को चले । सुनिके सीता सङ्ग लगी । राम चरण से अनुराग करनेवाली रुकी नहीं ।

व्याख्या : भूषण वसन परित्याग और वल्कल धारण में भी मुखश्री वैसी ही प्रसन्न थी जैसी सदा रहा करती थी । क्योंकि उनके मन में न किसी के प्रति राग था न रोष था । राग और रोष दोनों में से किसी के वेग से आकृति में विकार हो जाता है । उन्हें वन जाने का विषाद भी नहीं हुआ । राजिव लोचन राम चले तजि बाप को राज बटाऊ की नाईं । जाने के पहिले सबका सब विधि से परितोष किया । यथा : कहि प्रिय बचन सकल समुझाये । बिप्रबृंद रघुबीर बोलाये । जाचक दान मान परितोषे । कहि प्रिय बचन प्रेम परिपोषे इत्यादि ।

विकलता से क्रम का ध्यान नहीं है । इसलिए कहती हैं कि उन्होंने किसी को साथ नहीं लिया । उनका जाना सुनकर सीता साथ लग गयी । उसको मैंने समझाया । स्वयं रामजी ने समझाया । उसके श्वसुर ने समझाया । और भी लोगों ने

समझाया। पर उसका अनुराग ऐसा दृढ़ था कि कोई उसको अपने निश्चय से हटा न सका।

सुनतहिं लखनु चले उठि साथा। रहहिं न जतन किए रघुनाथा ॥
तब रघुपति सबही सिरु नाई। चले संग सिय अरु लघु भाई ॥२॥

अर्थ : सुनते ही लक्ष्मणजी उठकर साथ चले। रामजी के यत्न करने पर भी न रुके। तब रामजी सब ही को सिर नवाकर सीता और छोटे भाई को साथ लेकर चले।

व्याख्या : सुनते ही लक्ष्मण ने सोचने विचारने को स्थान ही नहीं दिया। उनके रोकने के लिए केवल रामजी ने ही यत्न किया। सुमित्राजी ने आज्ञा ही दे दी। उर्मिला बोली ही नहीं। महाराज ने अकेले उनका रोकना अनुचित समझा। अतः उन्हें केवल रामजी ने रोका था पर नहीं रुके। तब रामजी सबको प्रणाम करके सीता और लक्ष्मण के साथ चले।

रामु लखनु सिय बनहिं सिधाए। गइउँ न संग न प्रान पठाए ॥
एहु सब भा इन्ह आँखिन्ह आगे। तउ न तजा तनु जीव अभागे ॥३॥

अर्थ : राम लक्ष्मण और सीता वन को चले गये। मैं न साथ गयी और न प्राणों को ही साथ भेज सकी। यह सब इन्हीं आँखों के सामने हुआ। फिर भी अभागे जीव ने शरीर न छोड़ा।

व्याख्या : लक्ष्मण और सीता के वन जाने पर दो ही रास्ता था। या तो मैं साथ चली जाती या प्राणों को साथ भेज देती। जैसा कि सीता ने सोचा था : चलन चहत वन जीवन नाथू। केहि सुकृती सन होइहि साथू। की तनु प्रान कि केवल प्राना। बिधि करतबु कछु जाइ न जाना।

सुनने में और आँखों से देखने में बड़ा भेद है। आँखों देखने में जैसा प्रभाव हृदय पर पड़ता है वैसा सुनने में नहीं पड़ता। यथा : अब सब आँखिन्ह देखेंउ आई। जिअत जीव जड़ सबइ सहाई। सो मैंने तो सब आँखों से देखा। परन्तु मेरा जीव सुकृती नहीं है। सुकृती होता तो शरीर छोड़ देता। यह अभागा है। इसलिए नहीं छोड़ सका। न जाने इसे क्या क्या देखना है।

मोहिं न लाज निज नेहु निहारी। राम सरिस सुत मैं महतारी ॥
जिअइ मरइ भल भूपति जाना। मोर हृदय सत कुलिस समाना ॥४॥

अर्थ : अपने स्नेह का विचार करने पर मुझे लज्जा नहीं है। राम जैसा बेटा और मैं माँ हूँ। जीना मरना ठीक महाराज ने जाना। मेरा हृदय तो सौ वज्र के समान है।

व्याख्या : राम ऐसा बेटा जिसने माँ बाप की आज्ञा से प्रसन्नता पूर्वक क्षण भर में सर्वस्व त्यागकर वन का रास्ता लिया। मैं उसकी माँ हूँ। उसके विरह

होने पर जीते रहने में मुझे लज्जा होनी चाहिए। सो मुझे लज्जा नहीं है। जिसे लज्जा थी उसने शरीर छोड़ दिया। लज्जा महाराज को थी। यथा : कहेउ राज बन दियेउ नारि बस गरि गलानि गए राउ। उन्होंने ही जाना कि कैसे जोना चाहिए और कैसे मरना चाहिए। जिअत राम बिधु बदन निहारा। राम बिरह करि मरन सँवारा। मेरा हृदय तो सौ वज्र का सा कठोर है। जो ऐसे ऐसे आघात : पुत्र वनवास और पति के स्वर्गवास पर भी खण्ड खण्ड नहीं हुआ।

दो. कौसल्या के बचन सुनि, भरत सहित रनिवासु।
ब्याकुल बिलपत राजगृह, मानहुँ सोक निवासु ॥१६६॥

अर्थ : कौसल्याजी के वचनों को सुनकर भरतजी के सहित सारा रनिवास व्याकुल होकर विलाप करने लगा। राजगृह मानों शोकगृह हो गया।

व्याख्या : यहाँ मातु बचन न कहकर कौसल्या के वचन कहते हैं। क्योंकि भरतजी का आना सुनकर सभी रानियाँ वहाँ चली आयीं थीं और सबने कौसल्याजी का वचन सुना। सबका धैर्य छूट गया। सब की सब विलाप कर रही हैं। वहाँ रोनेवाले सब हैं। समझानेवाला कोई नहीं। इसलिए कहते हैं कि राजगृह सीधे सीधे शोक का निवास स्थान हो गया।

बिलपहिं बिकल भरत दोउ भाई। कौसल्या लिये हृदयँ लगाई ॥
भाँति अनेक भरतु समुझाए। कहि बिबेकमय बचन सुहाए ॥१॥

अर्थ : दोनों भाई विकल होकर विलाप करने लगे। तब कौसल्या ने हृदय से लगा लिया और विवेकमय अनेक बातें कहकर भरतजी को समझाया।

व्याख्या : भरतजी के साथ शत्रुघ्नजी भी विलाप करने लगे। शत्रुघ्नजी अब तक धैर्य धारण किये रहे। कौसल्याजी मूर्च्छित होकर गिरीं। भरतजी व्याकुल होकर गिरे। विलाप करने लगे। पर शत्रुघ्नजी ने धैर्य न छोड़ा। पर कौसल्याजी के वचन सुनने पर उनका भी धैर्य छूट गया।

कौसल्याजी का अलौकिक विवेक है। भरतजी के प्रेम को जानती हैं। आगे कहेंगी भी : गूढ़ सनेह भरत मन माँहीं। रहे नीक मोहि लागत नाँहीं। सो दोनों भाइयों को विकल देखकर अपने हृदय के साथ बड़ी जबरदस्ती करती हैं। दोनों भाइयों को अधिक विकल देखकर हृदय से लगा लेती हैं। सुन्दर विवेकमय वचन कहकर अनेक भाँति से समझाती हैं। यथा :

दो. पुत्रजन्म पितु मातु गति हेतु होत जग जान।
याते सुत पितु हेतु जनि सोक करहु मति मान ॥
यथा दारुद्वै सरित विच बहत कबहुँ मिली जात।
तथा मिलन जग जीव को नहिं अचरज विलगात ॥
चौदह वर्ष बिताइ पुनि ऐहैं रघुकलकेतु।
भावी प्रबल न सकइ मिटी जनि सोचउ तेहि हेतु ॥

दुख सुख फल निज कर्म के टारि सकै नहिं कोय।
याते धरि धीरज सहिय जो कछु होनी होय ।।

भरतहुँ मातु सकल समुझाईं। कहि पुरान श्रुति कथा सुहाई ।।
छल बिहीन सुचि सरल सुबानी। बोले भरत जोरि जुग पानी ।।२।।

अर्थ : भरतजी ने भी सब माताओं को पुराण और वेद की सुन्दर कथायें कहकर समझाया। भरतजी दोनों हाथ जोड़कर छलरहित पवित्र और सरल वाणी बोले।

व्याख्या : जब भरतजी शान्त हुए। तब सब माताओं को समझाने लगे। वेद के अधिकारी हैं। अतः वेद पुराण की कथा कहकर समझाने लगे। यथा :

दो. बड़े बड़े संकट सहत सहि न सकत सो छोट।
काँच सहै नहिं सहि सकै हीरक घन को चोट ।।
पतिदुःख सुतदुःख राजदुःख निजदुःख शैव्यारानि।
सह्यो कह्यो काहुहि न कछु धर्म मर्म पहिचानि ।।
यहि असार संसार में पग पग कठिन कलेस।
ईस भजन बिनु अम्ब सुनु कतहुँ नहीं सुख लेस ।।
जहँ संयोग वियोग तहँ कोउ सकें नहि टारि।
सब प्रकार ममता तजे बुध अस हिय निरधारि ।।
सपनो सो अपनो न कछु झूठो जग व्यवहार।
भजिय राम सब काम तजि अम्ब इहै जगसार ।।

जब कुछ शान्ति हुई तब भरतजी अपनी सफाई देते हैं। स्थिति ऐसी बेढङ्ग है कि कोई मान नहीं सकता और न सफाई हो दी जा सकती है। अतः शपथ लेते हैं। छलविहीन वाणी है। इसलिए शुचि है फिर भी सरल है। जिसके अर्थ समझने में कोई कठिनता न हो। मृदु मधुर विनययुक्त वाणी ही सुवाणी है। माताओं के सामने बोल रहे हैं। अतः दोनों हाथ जोड़कर बोलते हैं कि कृपा करके सुन लिया जाय !'

जे अघ मातु पिता सुत मारें। गाइ गोठ महि सुरपुर जारें ।।
जे अघ तिय बालक बध कीन्हें। मीत महीपति माहुर दीन्हे ।।३।।
जे पातक उपपातक अहहीं। करम बचन मन भव कबि कहहीं ।।
ते पातक मोहि होहु बिधाता। जौं एहु होइ मोर मत माता ।।४।।

अर्थ : जो पाप माता पिता और पुत्र के मारने से होता है और जो पाप गोशाला और ब्रह्मपुरी जलाने से होता है। जो पाप स्त्री और बालक के मार डालने से होता है और जो पाप मित्र और राजा को विष देने से होता है और जो जो पातक उपपातक मन वाणी और शरीर से किये हुए कवियों द्वारा कहे गये हैं। हे विधाता ! वे सब पाप मुझे हों। यदि इसमें माता ! मेरी सम्मति हो।

व्याख्या : वेद की आज्ञा है : मातृदेवो भव पितृदेवो भव। माता पिता परमेश्वर के रूप हैं। वे ही उत्पन्न करनेवाले और पालन करनेवाले हैं। सन्तति अपनी आत्मा हैं। उन्हें जिसने मारा उसके पाप का क्या ठिकाना ? गाय लोक की माता है जिसके रोम रोम में देवताओं का निवास है। जिसके पञ्चगव्य से त्वगस्थिगत पाप दूर होता है। जिसके गोबर के लेप से स्थान पवित्र होकर धर्म कर्म करने योग्य होता है। उनके रहने के लिए जो शाला बनी है उसमें जिसने आग लगाया, न जाने कितनी गाय उसमें बँधी हैं, ऐसे आग लगानेवाले के पाप का अन्त क्या है ? वर्णमात्र के जो गुरु हैं, जिनके धर्म की रक्षा से वैदिक धर्म की रक्षा है, उनकी पुरी में जिसने आग लगाया उसने कौन सा महा पाप नहीं किया। इन लोगों का पाप घोरातिघोर है। इनके अतिरिक्त और भी महा पाप हैं। जैसे स्वर्णस्तेय सुरापान आदि तथा उपपातक हैं। यथा : महायन्त्र निर्माण; बड़े बड़े इंजिन बनाना। जिनसे हजारों लाखों की जीविका मारी पड़े। भरतजी ब्रह्मदेव को साक्षी देकर कहते हैं कि ये सब पातक मुझे हों। अर्थात् अकृत्यकरणवाले सब पाप मुझे हों। यदि इस अनर्थ में मेरी सम्मति हो।

दो. जे परिहरि हरि हर चरन, भजहिं भूतगन घोर।
तेहि कइ गति मोहि देउ बिधि, जौं जननी मत मोर ॥१६७॥

अर्थ : हे माता ! जो हरिहर के चरणों को छोड़कर घोर भूतगण का भजन करते हैं, ब्रह्मदेव मुझे उनकी गति दें। यदि इस अनर्थ में मेरी सम्मति रही हो।

व्याख्या : कर्म सम्बन्धी पाप के विषय में कहकर अब उपासना सम्बन्धी पाप के विषय में कहते हैं। परिहरि का भाव यह कि पहिले हरिहर का भजन करते थे। पर तुच्छ सिद्धियों के लोभ में पड़कर घोर भूत प्रेतादि के पूजन में लग गये। ऐसे कर्णपिशाची आदि देखे गये हैं। जो अतीत घटना सब ठीक ठीक कह देते हैं। उनको सदा अशुद्ध रहना पड़ता है। देव पितृकर्म से उन्हें वञ्चित रहना पड़ता है। फलतः मरने पर उन्हें भूत ही होना पड़ता है : आजकल परलोक विद्या के नाम से भूत भजन का प्रचार बढ़ चला है। भरतजी कहते हैं कि मुझे उनकी गति मिले। यदि इस अनर्थ में मेरा मत हो।

बात यह है कि इतनी बात तो सभी जानते हैं कि भरतजी ने किया कुछ नहीं है। अधिक से अधिक जो उनके विरुद्ध कहा जा सकता है वह इतना ही है कि उनके सम्मति से सब कुछ हुआ। यथा : एक भरत कर सम्मत कहहीं। इसलिए भरतजी अपनी सम्मति न होने का शपथ ले रहे हैं।

बेचहिं बेदु धरमु दुहि लेहीं। पिसुन पराय पाप कहि देहीं ॥
कपटी कुटिल कलह प्रिय क्रोधी। बेद बिदूषक बिस्व बिरोधी ॥१॥
लोभी लंपट लोलुप चारा। जे ताकहि पर धनु पर दारा ॥
पावउँ मैं तिन्ह कै गति घोरा। जौं जननी एहु संमत मोरा ॥२॥

अर्थ : जो वेद को बेंचते हैं। धर्म को दूह लेते हैं। चुगुलखोर हैं। जो दूसरे का पाप मुँह से बोल देते हैं। कपटी कुटिल झगड़ालू क्रोधी वेद की दिल्लगी उड़ानेवाले और विश्व के विरोधी हैं। लोभी हैं। लम्पट हैं। लालच के दास हैं। जो पराये धन और पराई स्त्री पर निगाह लगाये रहते हैं। मैं उनकी घोर गति को प्राप्त होऊँ। यदि माँ ! अनर्थ में मेरी सम्मति हो।

व्याख्या : अब ज्ञान सम्बन्धी पाप के विषय से कहते हैं। मोल भाव का करना ही बेचना है। वेद का दान होता है विक्रय नहीं। गुरुदक्षिणा का ग्रहण होता है मूल्य का नहीं। वेद की कीमत आँकना महापाप है। धर्म को भावोपहत करना पाप है। जैसे विवाद के लिए विद्या पढ़ना, मद के लिए धन कमाना, दूसरे को पीड़ा देने के लिए शक्ति सञ्चय करना, दूसरे का पाप कहना : उसका पाप भक्षण करना है। कपटी छली को कहते हैं। जिसके मन की वक्रगति हो उसे कुटिल कहते हैं। वेद साक्षात् परमेश्वर की वाणी है। उसका मजाक उड़ानेवाला वेद विदूषक है। संसार से द्रोह करनेवाला विश्व विरोधी है। अथवा वेदविक्रयी आदि आठों विश्व-विरोधी हैं। पैसे पैसे का लोभी बेहया। यथा : लोलुप भ्रम गृहपशु ज्यों जहँ तहँ सिर पद त्रान बजै। तदपि अधम बिचरत तेहि मारग कबहुँ न मूढ़ लजै। ऐसे को ही लोलुपचार कहते हैं और जो साकांक्ष दृष्टि से परधन और पराई स्त्री को देखते हैं, उसके हरण का अवसर देखा करते हैं, ऐसे लोगों की बड़ी घोर गति होती है। भरतजी कहते हैं कि मैं इनकी घोर गति को प्राप्त होऊँ। यदि मेरी इस अनर्थ में सम्मति रही हो।

जे नहिं साधु संग अनुरागे। परमारथ पथ बिमुख अभागे ॥
जे न भजहिं हरि नर तनु पाई। जिन्हहि न हरि हर सुजसु सुहाई ॥३॥
तजि श्रुतिपंथु बाम पथ चलहीं। बंचक बिरचि बेष जगु छलहीं ॥
तिन्ह कै गति मोहि संकर देऊ। जननी जौं एहु जानउँ भेऊ ॥४॥

अर्थ : जिन्होंने साधु सङ्ग में प्रेम नहीं किया। जो अभागे परमार्थ पथ से विमुख हैं। जिन्होंने नर शरीर पाकर भगवान् को नहीं भजा। जिन्हें हरि हर सुयश अच्छा नहीं लगता। जो वेदमार्ग छोड़कर वाममार्ग में चलते हैं। ठग हैं। वेष बनाकर संसार को ठगते हैं। मुझे शङ्कर उनकी गति दें यदि माता ! मुझे यह भेद मालूम हो।

व्याख्या : अब कृत्याकरण के लिए शपथ ग्रहण करते हैं। मान लिया कि भरत की सम्मति नहीं थी। पर उन्हें यह भेद मालूम था। उन्होंने प्रकाश नहीं किया चुप रह गये। यही कृत्याकरण है। इसके लिए कहते हैं।

मति कीरति गति भूति भलाई। जो जेहि जतन जहाँ जब पाई। सो जानब सतसंग प्रभाऊ। लोकहुँ बेद न आन उपाऊ। जिसका ऐसे सत्सङ्ग में अनुराग नहीं वह तो परमार्थ पथ विमुख होगा ही। अतः वह अभागा है। नरतन भव-

बारिधि कहँ वेरो। जो न तरइ भवसागर नर समाज अस पाइ। सो कृत निंदक मन्दमति आतम हन गति जाइ। जिसे हरि हर सुयश नहीं सोहाता वह खल है। यथा : हरि हर जस राकेस राहु से। पहिले जो वैदिक थे वामाचार को श्रेष्ठ समझकर दक्षिणमार्ग परित्याग किया। सिद्धि के लालच से पञ्चमकार में रत हुए। सिद्धि कहीं कुछ नहीं। लाल कपड़ा पहन लिया। लाल तिलक हड्डी की माला धारण करके सिद्ध बने हुए संसार को ठगते हैं। ऐसे घोर कर्मियों की गति भरतजी कहते हैं कि मुझे शङ्कर दे यदि मुझे यह भेद भी मालूम हो।

गोस्वामीजो ने दो प्रकार का भेद माना : १. अकृत्यकरण और २. कृत्याकरण। अकृत्यकरण के तीन भेद माने : १. कर्म सम्बन्धी २. उपासना सम्बन्धी ३. ज्ञान सम्बन्धी। कर्म सम्बन्धो के तीन भेद माने : १. शरीरजन्य २. वाक्जन्य और मनोजन्य। सो उपर्युक्त शपथों में सभी को गिनाया है।

दो. मातु भरत के बचन सुनि, सांचे सरल सुभायँ।
कहति राम प्रिय तात तुम्ह, सदा बचन मन कायँ ॥१६८॥

अर्थ : माता भरत के सरल स्वभाव के सच्चे वचन सुनकर कहने लगीं कि बेटा ! तुम मनसा वाचा कर्मणा सदा रामजी को प्रिय हो।

व्याख्या : सरल स्वभाव से कहे हुए सच्चे वचन बिना प्रभाव डाले नहीं रहते। ऐसे वचन सुनकर माँ कौसल्या ने कहा कि मेरी जानी बात है। तुमको राम मनसा वाचा कर्मणा प्रिय हैं और राम को तुम मनसा वाचा कर्मणा प्रिय हो। राम प्रिय शब्द से दोनों अर्थ निकलते हैं और यहाँ दोनों अभिप्रेत हैं।

राम प्रानहु तें प्रान तुम्हारे। तुम रघुपतिहिं प्रानहु ते प्यारे ॥
बिधु बिष चबइ स्रवइ हिमु आगी। होइ बारिचर बारि बिरागी ॥१॥
भये ज्ञान बरु मिटइ न मोहू। तुम्ह रामहिं प्रतिकूल न होहू ॥

अर्थ : तुम्हें राम प्राणों से भी प्यारे हैं और तुम रामचन्द्र को प्राणों से प्यारे हो। चन्द्रमा से विष टपके और हिम : पाले : से आग निकले। जलचर जल से विरक्त हो जाय। ज्ञान होने पर चाहे मोह न मिटे पर तुम रामचन्द्र के प्रतिकूल नहीं हो सकते।

व्याख्या : प्राण का प्राण ही प्राण से प्यारा हो सकता है। सो प्राण का प्राण आत्मा है। तो तुम राम की आत्मा हो और राम तुम्हारी आत्मा हैं। इससे वनवास में तुम्हारी सम्मति हो नहीं सकती। चन्द्रमा सुधाकर हैं। उनके किरणों में अमृत स्राव हुआ करता है। सो चाहे वे अपना स्वभाव छोड़कर विष गिराने लग जायँ और आग का स्वभाव गरम है। पाला उसके निकट नहीं फटक सकता। यथा : तात अनल कर सहज सुभाउ। हिम तेहि निकट जाय नहिं काऊ। सो चाहे हिम से आग निकलने लगे। जलचरों को जल ही शरण है। सो चाहे जलचर जल से विरक्त हो जाय। मोह का नाश ही ज्ञान है। यदि मोह न मिटा तो ज्ञान कैसा ? इस पर

कहते हैं कि यदि ज्ञान होने पर भी मोह न मिटे। अर्थात् यदि ये चारों महा असम्भव सम्भव हो जायँ। पर तुम राम के प्रतिकूल हो नहीं सकते।

भरतजी ने चार बार शपथ लिया। माता यहाँ चार दृष्टान्त देकर उन्हीं चारों का अनुमोदन करती हैं।

मत तुम्हार एहु जो जग कहहीं। सो सपनेहुँ सुख सुगति न लहहीं ॥२॥
अस कहि मातु भरतु हिय लाए। थन पय स्रवहिं नयन जल छाए ॥
करत बिलाप बहुत एहि भाती। बैठेंहि बीत गई सब राती ॥३॥

अर्थ : संसार में जो कोई इसमें तुम्हारी सम्मति कहेगा। उसे सपने में भी सुख और सुमति की प्राप्ति नहीं होगी। ऐसा कहकर माता ने भरतजी को कलेजे से लगा लिया। छाती से दूध बहने लगा और आँखों में आँसू भर आया। इस भाँति बहुत विलाप करते बैठे ही बैठे सारी रात बीत गयी।

व्याख्या : माता कौसल्याजी कहती हैं कि तुम्हारे ऐसे साधु को जो मिथ्या दोष लगावेगा उसे सुख और गति सपने से भी नहीं मिलेगी। अर्थात् उसका लोक परलोक दोनों नष्ट हो जायगा। पुरवासियों में से जब किसी ने कहा कि इसमें भरतजी सम्मत हैं तो तुरन्त दूसरे ने कहा कि : सुकृत जाय अस कहे तुम्हारे। राम भरत कहुँ प्रान पियारे। महारानी कौसल्या इस व्याज से स्वयं शपथ ले रही हैं कि मुझे तुम पर सन्देह नहीं हो सकता।

ऐसा कहकर भरत को हृदय से लगा लिया। वात्सल्य भाव के उमड़ आने से छाती में दूध आगया और आँख में आँसू आगया। इतने दिनों बाद छाती में दूध का आना : अति वात्सल्य का द्योतक है।

कवि कहते हैं कि उस समय की करुणा का मैंने प्रादेशमात्र वर्णन किया। इसी भाँति बहुत विलाप करते बैठे ही बैठे सारी रात बीत गयी। करुणा भी एक प्रधान रस है। रोने से शोक का वेग निकल जाता है। इस भाँति कुछ सुख मिल जाता है। जो अति दुःख में नहीं रोता उसके मरने की सम्भावना रहती है।

२०. नृपक्रिया प्रसङ्ग

बामदेउ बसिष्ठ तब आए। सचिव महाजन सकल बोलाए ॥
मुनि बहु भाँति भरत उपदेसे। कहि परमारथ बचन सुदेसे ॥४॥

अर्थ : तब वामदेव और वसिष्ठजी आये। मन्त्री तथा महाजन लोगों को बुलवाया। बहुत भाँति से मुनिजी ने अवसरानुकूल परमार्थ के वचन कहकर भरतजी को बहुत भाँति से समझाया।

व्याख्या : वामदेव और वसिष्ठ दोनों महाज्ञानी और रघुकुल के हितचिन्तक हैं। भरतजी के आने का समाचार पाकर प्रातःकाल होते ही आये। महाराज का शव अन्तःपुर में ही पड़ा है। अब भरतजी आगये। उनके हाथ संस्कार कराना है।

अतः मन्त्रियों और नगर के प्रतिष्ठितों को बुलवाया। तब भरतजी को बहुत भाँति से उपदेश दिया। क्योंकि भरतजी पर अनेक प्रकार का शोक आ पड़ा है। परमार्थ के वचन ही शोक के दूर करने में समर्थ हैं।

दो. तात हृदय धीरजु धरहु, करहु जो अवसर आजु।
उठे भरत गुरु बचन सुनि, करन कहेउ सबु साजु ॥१६९॥

अर्थ : बेटा! धैर्य धरो और जैसा अवसर आ पड़ा है वैसा आज करो। भरतजी गुरुजी के वचन सुनकर उठे और सब साज करने की आज्ञा दी।

व्याख्या : वसिष्ठजी ने उपदेश के अन्त में कहा कि हृदय में धैर्य धारण करो और जो अवसर आज उपस्थित है उसे करो। भाव यह कि भरतजी की अनुपस्थिति में सबका कार्य वसिष्ठजी की आज्ञा से होता रहा। भरतजी के आते ही सब कार्य गुरुजी उनके सुपुर्द करते हैं कि अब तुम्हारी आज्ञा से कार्य होगा। अतः भरतजी उठे और सब साज करने के लिए आज्ञा दी।

नृप तनु बेद बिहित अन्हवावा। परम बिचित्र बिमानु बनावा ॥
गहि पग भरत मातु सब राखीं। रहीं रानि दरसन अभिलाषी ॥१॥

अर्थ : महाराज के शरीर को वेदोक्त विधि से स्नान कराया। परम विचित्र विमान बनाया। चरणों को पकड़ पकड़कर माताओं को सती होने से रोका। वे भी रामजी के दर्शन की अभिलाषा से रुक गयीं।

व्याख्या : कार्य विवरण कहते हैं। भरतजी के न रहने से मरणोपरान्त का सब कार्य रुका हुआ था। और्ध्वदैहिक कृत्य प्रारम्भ हुआ। स्नान में वेद मन्त्र पढ़े गये। शव के स्नान कराने की विधि है। शव के वहन के लिए परम विचित्र विमान बनाया गया। उत्साह से क्रिया हो रही है।

माताएँ वीरप्रसू होने पर भी सती होने के लिए उठीं। वीरप्रसू को सती होने का अधिकार नहीं। यथा : नान्वगात् वीरसूः कृपी। परन्तु अन्य रानियों को अधिकार था। पर भरतजी ने सबको चरण पकड़कर रोका। एक को पुत्र होने से सब माताएँ पुत्रवती हो जाती हैं। आप लोगों को चार चार पुत्र हैं। आप क्यों सती होती हैं? फिर जिसे अन्य वासना नहीं होती वे ही सती होती हैं तो क्या आप लोगों को रामजी के दर्शन की कामना नहीं है? यह दूसरी युक्ति काम कर गयी और सब रानियाँ रुक गयीं।

चंदन अगर भार बहु आए। अमित अनेक सुगंध सुहाए ॥
सरजु तीर रचि चिता बनाई। जनु सुरपुर सोपान सुहाई ॥२॥

अर्थ : चन्दन और अगर के बहुत से बोझे आये और बेपरमान बहुत से सुगन्धित पदार्थ आये। सरयू के किनारे रचकर चिता बनायी गयी। मानों स्वर्ग की सुन्दर सीढ़ी हो।

व्याख्या : जहाँ नदी हो वहाँ नदीतटपर ही दाह का विधान है। यहाँ पुण्यतोया सरयू बहती हैं। अतः सरयू के किनारे चन्दन अगर आदि सुगन्धित पवित्र द्रव्यों से रचकर बड़ी ऊँची चिता बनायी गयी। देखने से मालूम होता था कि यही स्वर्ग जाने की सुन्दर सीढ़ी है। सुन्दरता का बड़ा ध्यान सब कार्यों में है। यहाँ तक कि चिता बनाने में भी इसका ध्यान रक्खा गया।

एहि बिधि दाह क्रिया सब कीन्हीं। बिधिवत न्हाइ तिलांजुलि दीन्हीं ॥
सोधि सुमृति सब बेद पुराना। कीन्ह भरत दसगात्र बिधाना ॥३॥

अर्थ : इस विधि से सब दाह क्रिया की और विधि के साथ स्नान करके तिलाञ्जलि दी। फिर स्मृति वेद और पुराणों को देख सुनकर भरतजी ने दशगात्र का विधान किया।

व्याख्या : उपर्युक्त सब विधि दाह क्रिया के अन्तर्गत हैं। दाह के बाद स्वयं स्नान करके दाहजनित तृषोपशान्त्यर्थं तिलाञ्जलि दिया। प्राण निकल जाने पर भी यावत् देह पूर्णरूपेण नष्ट नहीं हो जाता। जब तक जीवात्मा का मृत शरीर से सम्बन्ध बना रहता है। यहाँ तक कि शरीर के जलने से जीव को ताप होता है।

दाह क्रिया के बाद दश दिनों तक दशगात्र विधान होता है। जिससे वह पुरुष सम्पूर्ण शरीरवाला होकर स्वर्ग में आनन्द करता है। यथा : यद् वो अग्निरजहादेकमङ्गं पितृलोकं गमयञ्जातवेदः। तद्एतन्पुनराप्यायामि साङ्गात्स्वर्गे पितरो मादयध्वम् : अथर्ववेद। अर्थ : हे पितरो ! पितृलोक जाते समय जो आपके जिस अङ्ग को अग्नि ने जलाया है उस अङ्ग को फिर पुष्ट करता हूँ। जिसमें सम्पूर्ण अङ्गवाले होकर आप स्वर्गलोक में आनन्द करें। दशगात्र विधान में त्रुटि होने से वह पुरुष विकलाङ्ग होकर स्वर्ग में पूर्ण सुख का भागी नहीं हो सकता। अतः दशगात्र विधान के सुसम्पन्न करने में भरतजी ने बड़ी सावधानी से काम लिया। श्रुति स्मृति पुराण के समन्वय से दशगात्र विधान किया।

जहँ जस मुनिवर आयसु दीन्हा। तहँ तस सहस भाँति सबु कीन्हा ॥
भये बिशुद्ध दिये सब दाना। धेनु बाजि गज वाहन नाना ॥४॥

अर्थ : जहाँ मुनिश्रेष्ठ वसिष्ठजी ने जैसी आज्ञा दी वहाँ सब वैसा ही हजारों तरह से किया। शुद्ध हो जाने पर गाय घोड़े हाथी और नाना प्रकार की सवारियाँ दान में दी।

व्याख्या : अब एकादशाह का कृत्य कहते हैं। मुनिजी की आज्ञा का पालन हजार विधि से किया गया। दशगात्र के बाद जो कृत्य होता है उसे एकादशाह का कृत्य कहते हैं। शुद्ध होने पर वह कृत्य किया जाता है। उसके बाद विशुद्ध हो गये तो पिता के प्रीत्यर्थं सब प्रकार का दान किया। यथा : गोदान वाजिदान गजदान शिविकादि दान दिये।

दो. सिंघासन भूषन बसन, अन्न धरनि धन धाम।
दिये भरतु लहि भूमिसुर, भे परिपूरन काम ॥१७०॥

अर्थ : सिंहासन गहने कपड़े अन्न पृथ्वी धन प्रासादादि भरतजी ने दिये। पाकर ब्राह्मण लोगों की कामना पूर्ण हो गयी।

व्याख्या : अब एकादशाह का दान कहते हैं। धेनु घोड़े हाथी तथा अनेक प्रकार के वाहन पहिले कह आये हैं और सात अब गिनाते हैं। इस भाँति ग्यारह की गिनती से एकादशाह का कृत्य कहते हैं। दान देने में देश काल पात्र का विचार होना चाहिए। अतः गोस्वामीजी तीनों दिखला रहे हैं। देश अयोध्यापुरी, काल एकादशाह, पात्र पृथ्वी के देवता, विद्या विनय सम्पन्न ब्राह्मण। अब दान का परिमाण कहते हैं कि प्रतिगृहीता पूर्णकाम हो गये। उन्हें अब किसी वस्तु की इच्छा न रह गयी। महाराज चक्रवर्तीजी के तृप्त्यर्थं दान हो रहा है। अतः शय्या का नाम न लेकर सिंहासन कहते हैं। भाव यह कि राजोपयोगी सम्पूर्ण वस्तुओं का दान किया।

राज्याभिषेक प्रस्ताव

पितु हित भरत कीन्हि जसि करनी। सो मुख लाख जाइ नहिं बरनी ॥
सुदिनु सोधि मुनिवर तब आए। सचिव महाजन सकल बोलाए ॥१॥

अर्थ : पिता के निमित्त भरतजी ने जो करणी की उसे मुख से वर्णन नहीं किया जा सकता। सुदिन सोधकर वसिष्ठजी आये और सब महाजनों यथा मन्त्रियों को बुलाया।

व्याख्या : त्रिभुवन तीन काल में महाराज दशरथ ऐसा राजा हुआ नहीं। अतः जैसे पिता थे उन्हीं के अनुरूप करणी भरतजी ने की। इस भाँति एकादशाह का दान कहा। महाराज को यह सब अनन्तगुणित होकर प्राप्त होगा। ऐसा भाव मन में रखकर भरतजी ने दान दिये। इस लोक और पर लोक का सुदृढ़ सम्बन्ध है। ब्रह्मदेव ने प्रजा की सृष्टि के साथ ही साथ यज्ञ की भी सृष्टि की और कहा कि इसी से तुम लोग बढ़ो और यही तुम लोगों के लिए कामधेनु हो। इससे तुम लोग देवताओं की भावना करो और बदले में देवता तुम्हारी भावना करें। इस प्रकार परस्पर की भावना करते हुए परमश्रेय को प्राप्त हो। तदनुसार यज्ञ द्वारा इस लोक और पर लोक में व्यापार चलता है। उसी व्यापारानुसार योग्य पात्र में उत्तम देशकाल में दी हुई वस्तु जिसके निमित्त दी जाती है उसे अनन्त गुणित होकर प्राप्त होती है। भरतजी की करणी ही ऐसी होती है। जिसका वर्णन नहीं हो सकता। किं पुनः पिता के लिए जो करणी की उसका वर्णन तो हो ही नहीं सकता। इसलिए सो मुख लाख जाइ नहिं बरनी कहा।

जब तक किसी का राज्याभिषेक न हो जाय तब तक मुनिजी पर राज्य का विशेष भार था। अतः स्वयं मुहूर्त देखकर वसिष्ठजी आये। पहिले से किसी को

सूचना न दी। रामजी के अभिषेक का समाचार एक रात पहिले फैल जाने से इतनी बड़ी बाधा उपस्थित हो गयी। अतः गुरुजी ने किसी को सूचना न देना ही उचित समझा। सभा से आ जाने पर मन्त्रियों को बुलाया। तब सब नगर के महाजनों को बुलाया। महाजनो येन गतः स पन्थाः। महाजन का अर्थ यह है : जिसे लोग मानते हों, अनुसरण करते हों। देश के सच्चे प्रतिनिधि ऐसे महाजन हैं। उनके चुनने की आवश्यकता नहीं होती। स्वभावतः उनकी ख्याति होती है। इस भाँति मन्त्र को गुप्त रखकर कार्य करने में गुरुजी की नीतिमत्ता द्योतित होती है। गुरुजी सबकी सम्मति से आज ही भरत को गद्दी दिया चाहते हैं।

बैठे राजसभा सब जाई। पठए बोलि भरत दोउ भाई॥
भरतु बसिष्ठ निकट बैठारे। नीति धरममय बचन उचारे॥२॥

अर्थ : वे सब राजसभा में आकर बैठे। तब भरत शत्रुघ्न दोनों भाइयों को बुलवाया। भरतजी को वसिष्ठजी ने निकट बैठाया और धर्म नीतिमय वचन बोले।

व्याख्या : राजसभा में आकर गुरुजी ने सबको बुलवाया। अतः सब वहीं आये दरबार लग गया। इस समय कवि भरतजी के साथ हैं। अतः लिखते हैं कि बैठे राजसभा सब जाई। दरबार लग जाने पर दोनों भाई भरत की बुलाहट हुई। चक्रवर्तीजी के पुत्रों में इस समय ये ही दो भाई हैं। गुरुजी ने भरतजी से कहा था : तात हृदय धीरज धरहु करहु जो अवसर आज। तदनुसार भरतजी ने धैर्य तो धारण किया। परन्तु पिता की क्रिया करने के बाद फिर सोच में पड़ गये।

अतः गुरुजी उन्हें बुलाकर आदर के लिए निकट बैठाया। भाव यह कि भरतजी पहिले से ही सिंहासन से दूर बैठ रहे हैं। तत्पश्चात् गुरुजी ने ऐसा वचन कहा जो धर्म और नीति दोनों दृष्टि से ठीक हो। यहाँ अर्थ का प्रश्न उपस्थित है। अर्थ का मूल्य राज्य है। जो अर्थ धर्म विरोधी होता है उसे अनर्थ कहते हैं और नीति विरुद्ध राज्य स्थायी नहीं होता। अतः गुरुजी के वचन धर्मनीतिमय हैं।

प्रथम कथा सब मुनिवर बरनीं। कइकइ कुटिल कीन्हि जसि करनीं॥
भूप धरमब्रतु सत्य सहारा। जेहि तनु परिहरि प्रेमु निबाहा॥३॥

अर्थ : पहिले मुनिवर ने जिस भाँति कुटिल कैकेयी ने करणी की थी वह सब कह सुनायी। फिर राजा के धर्मव्रत और सत्य की प्रशंसा की जिसने शरीर त्यागकर प्रेम का निर्वाह किया।

व्याख्या : जो बातें राजमहल में हुई उनका सुना सुनाया ज्ञान लोगों को था। भरतजी थे नहीं। अतः उन्हें भी सुनी सुनायी जानकारी है। गुरुजी निष्पक्ष पुरुष हैं। अतः सबकी जानकारी के लिए उपक्रम के रूप से कैकेयी की कुटिल करणी का वर्णन किया कि रामजी का अभिषेक आप लोगों की सम्मति से होनेवाला था। यह सुनकर कैकेयी जाकर कोपभवन में सोई। चक्रवर्तीजी मनाने गये। पूछा क्या

चाहती हो। कहने लगी दिया हुआ जब नहीं मिलता तो नयी बात क्या माँगे। राजा ने रामजी की शपथ ली। तब उसने वरदान माँगे।

राजा धर्मव्रत थे। अधर्म उन्होंने कभी किया नहीं। अतः सत्य को धर्म का मूल समझकर उसे नहीं छोड़ा। तुलसी जान्यौ दसरथहि धरमु न सत्य समान। राम तज्यौ जेहि लागि बिनु राम परिहरयौ प्रान। सो राजा धर्म और सत्य से न हटे। पर धर्म और सत्य के त्याग न करने से प्रेम का त्याग होता था। अतः राजा ने शरीर परित्याग करके इस असामञ्जस्य को भी दूर किया। अर्थात् प्रेम का निर्वाह भी भली भाँति किया।

कहत राम गुन सील सुभाऊ। सजल नयन पुलकेउ मुनिराऊ॥
बहुरि लखन सिय प्रीति बखानी। सोक सनेह मगन मुनि ग्यानी॥४॥

अर्थ : मुनिराज रामजी के गुण और स्वभाव को वर्णन करते हुए सजल नयन तथा पुलकित हो गये। फिर लक्ष्मणजी और सीताजी की प्रीति की प्रशंसा करने में ज्ञानी मुनि शोक और स्नेह में मग्न हो गये।

व्याख्या : आत्मारामाश्च मुनयो निर्ग्रन्था अप्युरुक्रमे। कुर्वन्त्यहैतुकीं भक्तिमित्थम्भूतगुणो हरिः। श्रीरामजी के गुण शील और स्वभाव ही ऐसे हैं कि मुनि लोगों के भी चित्त जो हरण करते हैं। अस सुभाउ कहुँ सुनैं न देखौ। केहि खगेस रघुपति सम लेखौ। को रघुबीर सरिस संसारा। सील सनेह निबाहनिहारा। इस अवसरपर उनके गुण शील और स्वभाव का ऐसा चमत्कृत प्रकाश हुआ कि उसके कहने में मुनिराज को भी पुलक हो गया और आँखें डबडबा आयीं।

प्रीति के बखान में लक्ष्मणजी की प्रशंसा पहिले सीताजी की पीछे। सीताजी तो साथ जाने के लिए धर्मतः भी बद्ध थीं। पर लक्ष्मणजी को तो इस प्रकार का कोई बन्धन नहीं था। इनकी प्रीति का प्रभाव मुनिजी पर ऐसा पड़ा था कि वर्णन करने में ज्ञानीमुनि होने पर भी शोक और स्नेह में मग्न हो गये। रामजी की प्रीति न बखानी। क्योंकि वे किसी को सङ्ग नहीं लिया चाहते थे। यहाँ पर रामजी के प्रीति प्रदर्शन न करने में ही शोभा है।

दो. सुनहु भरत भावी प्रबल, बिलखि कहेउ मुनिनाथ।
हानि लाभु जीवन मरनु, जसु अपजसु बिधि हाथ॥१७१॥

अर्थ : मुनिनाथ ने बिलखकर कहा कि भरतजी सुनो! यह प्रबल भावी है। हानि लाभ जीना मरना यश अपयश यह सब ब्रह्मदेव के हाथ में है।

व्याख्या : भरतजी की अनुपस्थिति में जो कुछ हुआ उसे कहते है। राम वनवास कहने में मुनिजी बिलख उठे। कारण यह कि प्रबल भावी के सामने किसी का बल नहीं चलता। त्रिपुरारि भावी मेट सकते हैं। पर हरिइच्छा रूपी भावी के सामने उनका भी बल नहीं चलता। सो इन घटनाओं में हरिइच्छा रूपी प्रबल भावी काम करती थी। इसी से प्रतीकार न हो सका। हानि लाभ जीवन मरण यश अपयश

मनुष्य के हाथों में नहीं है। [1]लाभ जीवन और यश कौन नहीं चाहता। पर सबको प्राप्त नहीं होता। हानि मरण और अपयश कोई नहीं चाहता। पर इससे कोई बचता नहीं। अतः यह सब ब्रह्मदेव के हाथ में है। यथा : कर्म सुभासुभ देइ बिधाता। सो यहाँ तो बात बिगाड़ने स्वयं सरस्वती आयी थीं। मुनिजी ने रामजी का वनवास नहीं कहा। बिलखने से वनवास सूचित हुआ।

अस बिचारि केहि देइअ दोसू। ब्यर्थ काहि पर कीजिअ रोसू ॥
तात बिचारु करहु मन माहीं। सोच जोगु दसरथु नृपु नाहीं ॥१॥

अर्थ : ऐसा विचार करके किसको दोष दिया जाय और व्यर्थ किस पर क्रोध किया जाय। हे तात ! मन में विचार तो करो। राजा दशरथ शोचनीय नहीं हैं।

व्याख्या : गुरुजी भरतजी को दुःखी देखकर समझाते हैं कि हानि लाभ जीवन मरण यश अपयश विधि के हाथ में है। मनुष्य के हाथ में नहीं है। क्योंकि काहु न कोउ दुःख सुखकर दाता। निजकृत कर्म भोग फल भ्राता। कोई किसी को दुःख सुख नहीं दे सकता। सब अपने ही किये का फल भोगते हैं। विधि भी शुभ और अशुभ कर्म के फल दाता हैं। अतः विचार करने से कोई दोषी नहीं ठहरता। राम गवन बन अनरथ मूला : यह हानि है। भूपति सुरपति पुर पगु धारे : यह मरण है और हेतु अपनपौ जानि जिय थकित भये धरि मौन : यह अपयश है। इसमें कैकेयी का भी दोष नहीं। यथा : सो भावी बस रानि अयानी। करि कुचाल अंतहु पछितानी। अतः : पापिनि सबहि भाँति कुल नासा। इस भाँति दोष देना अथवा जोहँसि सोहँसि मुह मसिलाई। लोचन ओट बैठु तैं जाई। इस भाँति क्रोध करना उचित नहीं है।

यदि कहिये कि मैं दोष नहीं देता हूँ। परन्तु पिता के मरण का सोच है। इस पर गुरुजी कहते हैं कि सोच तो असद्वृत्ति पुरुषों का किया जाता है। महाराज दशरथ तो परम सद्वृत्ति थे। जिसकी प्रजा सोच योग्य नहीं है। वह राजा सोच योग्य कैसे हो सकता है ?

सोचिअ बिप्र जो बेद बिहीना। तजि निज धरमु बिषय लयलीना ॥
सोचिअ नृपति जो नीति न जाना। जेहि न प्रजा प्रिय प्रान समाना ॥२॥

अर्थ : वह ब्राह्मण शोचनीय है जो वेदविहीन है और अपने धर्म को त्याग करके विषय में दत्तचित्त रहता है। वह राजा शोचनीय है जो नीति नहीं जानता और जिसको प्रजा प्राण के समान प्रिय नहीं है।

---

१. सर्वं एव महाभाग महत्त्वं प्रति सोद्यमाः। तथापि पुंसां भाग्यानि नोद्यमा भोग-हेतवः। वि. पु.। अर्थ : हे महाभाग ! सभी महत्त्व के लिए प्रयत्न करते हैं। परन्तु पुरुष का भाग्य भोग्य के कारण है। उद्यम कारण नहीं है।

व्याख्या : केवल गायत्री जाननेवाला ब्राह्मण यदि वह धर्मात्मा है विषय-लीन नहीं है तो वह तीनों वेद जाननेवाले सदाचारहीन ब्राह्मण से अच्छा है। ऐसा मनु भगवान् का मत है। अतः यहाँ वेद विहीन से सन्ध्या गायत्री के भी न जाननेवाले से अभिप्राय है। अतः जिस ब्राह्मण को सन्ध्या गायत्री तक का ज्ञान नहीं है और अपने धर्म शम दम तप शौचादि से रहित है वह स्पर्श रूप रसादि के सुखों में भूला हुआ है। वह सोचने योग्य है कि इसकी क्या गति होगी ? क्योंकि तप श्रुति और योनि ये तीन ही ब्राह्मण कारक हैं। सो योनि तो उसे ईश्वर की कृपा से मिल गयी। पर उसने न तप किया न वेद : विद्या पढ़ी। ऐसा पतित ब्राह्मण सर्वथा शोचनीय है।

राजन्यवर्ग के लिए नीति का जानना और प्रजा पालन ये ही प्रधान धर्म हैं। क्योंकि बिना नीति जाने राज्य नहीं रह सकता। राज कि रहइ नीति बिनु जाने। और राजा की सृष्टि ही प्रजापालन के लिए हुई। प्रजा के लिए प्राणोत्सर्ग करना राजा का धर्म है। अतः जिस राजा ने नीति न जाना और प्राण के समान प्रजा का पालन नहीं किया उसके लिए सोचना चाहिए। क्योंकि उसका दोनों लोक बिगड़ गया। नीति न जानने से राज्य नहीं रहेगा। सो यह लोक बिगड़ गया और ठीक प्रजा पालन न करने से नरक का भागी होगा। यथा : जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी। सो नृप अवसि नरक अधिकारी। परलोक भी बिगड़ा। अतः शोचनीय है।

सोचिअ बयसु कृपन धनवानू। जो न अतिथि सिव भगति सुजानू ।।
सोचिअ सूद्र बिप्र अवमानी। मुखरु मानप्रिय ग्यान गुमानी ।।३।।

अर्थ : धनी कृपण वैश्य को सोचना चाहिए जो अतिथि और शिवभक्त तथा सुजान नहीं है। ब्राह्मण की निन्दा करनेवाले शूद्र को सोचना चाहिए जो कि बकवादी प्रतिष्ठा चाहनेवाला और अपने को ज्ञानी मानता हो।

व्याख्या : वैश्य यदि निर्धन है तो कृपण होना दोषावह नहीं है। धनवान होने पर उसे कृपिण न होना चाहिए। मनुजी का कथन है कि ब्राह्मणों में वही श्रेष्ठ है जिसे ज्ञान अधिक है। क्षत्रियों में अधिक बलवाला श्रेष्ठ है और वैश्यों में धनी श्रेष्ठ है। ईप्सित फल की प्राप्ति बिना शिवजी की आराधना के नहीं होती। अतः वैश्य धनधान्य की समृद्धि के लिए अवश्य शिवभक्ति करे और अपने धन का विनियोग आतिथ्य सत्कार में करे। क्योंकि जितने में पेट भरे उतना ही धनियों का धन है। उससे अधिक को जो अपना धन मानता है उसे शास्त्र चोर बतलाता है। उसे दण्ड होना चाहिए। वैश्य को सुजान अर्थात् गुणग्राहक होना चाहिए। धनी यदि गुणग्राहक न होगा तो गुणों की पूजा का लोप हो जायगा। अतः श्रेष्ठ वैश्य यदि कृपण है, शिवभक्त नहीं है, अतिथिभक्त नहीं है, गुणग्राहक नहीं है तो वह निरयगामी होगा। वह सोचने योग्य है।

शूद्र शोचनीय होता है ब्राह्मणनिन्दक होने से। सति प्राप्तौ निषेधः। राज्य

की कामना धन की कामना ब्राह्मणों ने नहीं की। अतः राजन्य और वैश्य के निन्दित होने के लिए स्थान नहीं है। शूद्रों की सेवावृत्ति विधान करने से अज्ञानी मानप्रिय शूद्रों द्वारा निन्दा की सम्भावना है। वे यह नहीं सोचेंगे कि जाति आयु और भोग पूर्वजन्म के कर्म का फल है। उन्हें नहीं मालूम : ब्रह्माद्या ऋषिपर्यन्ताः स्मारका न तु कारका। ब्रह्मदेव से लेकर ऋषि पर्यन्त सब स्मरण करनेवाले हैं। बनानेवाले कोई नहीं। वे धर्मशास्त्रों में अपना निम्न अधिकार देखकर ब्राह्मणों को दोषी ठहरावेंगे। उनकी निन्दा करेंगे। इस भाँति अपने लिए नरकका मार्ग निरर्गल करेंगे। शूद्र का धर्म है कि ब्राह्मण की सेवा करे। विनीत हो। ज्ञानी होने में रोक नहीं है ज्ञानमानी न हो। युधिष्ठिर के यज्ञ में ज्ञानी चाण्डाल के भोजन कराने की कथा है। बिना उसके भोजन कराये यज्ञ की पूर्ति नहीं होती थी। सो उसे बहुमान पुरःसर पाण्डव अपने यज्ञ में लाना चाहते थे। पर उस ब्रह्मज्ञानी चाण्डाल ने सम्मान स्वीकार नहीं किया। केवल अन्न ग्रहण करके उनका यज्ञ पूर्ण कर दिया। अतः ब्राह्मणनिन्दक मुखर मानप्रिय और पण्डितम्मन्य शूद्र शोचनीय हो जाता है। क्योंकि उसकी असद्गति ध्रुव है।

सोचिअ पुनि पति बंचक नारी। कुटिल कलहप्रिय इच्छाचारी ॥
सोचिअ बटु निज ब्रतु परिहरई। जो नहिं गुरु आयसु अनुसरई ॥४॥

अर्थ : उस स्त्री को सोचना चाहिए जो पति को ठगती हो। कुटिल हो। लड़ाकी हो और स्वतन्त्र हो। उस ब्रह्मचारी को सोचना चाहिए जिसने अपना व्रत त्याग किया और गुरु की आज्ञा के बाहर हो गया।

व्याख्या : चारों वर्णों के धर्मों का वर्णन करके स्त्रियों का धर्म कहते हैं। जो पति को ठगती है अर्थात् परपति में रत है ऐसी स्त्री निरयगामिनी होती है। क्योंकि स्त्रियों के लिए एक ही धर्म व्रत और नियम शास्त्र में कहा है कि वे मनसा वाचा कर्मणा पति के चरणों में प्रेम करे और जो पति को धोखा देकर जार को भजती है वह सौ कल्प तक रौरव नरक में पड़ती है। यथा : एकइ धर्म एक ब्रत नेमा। काय बचन मन पतिपद प्रेमा। पति बंचक पर पति रति करई। रौरव नरक कल्प सत परई। ऐसी पतिवंचक नारी सरल तो हो ही नहीं सकती। कुटिल अवश्य होगी। कटुवादिनी के लिए सद्यः त्याग का विधान है। स्त्री में स्वातन्त्र्य की योग्यता नहीं है। उसका अवयव सङ्गठन इस प्रकार का होता है कि उसे सदा दूसरे की रक्षा की आवश्यकता रहती है। इसीलिए कहा है : पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति यौवने। पुत्रास्तु स्थविरे भावे न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति। जो इच्छाचारी स्त्री पिता पति और पुत्र से स्वतन्त्र होकर विचरेगी उसका पतन ध्रुव है। अतः ऐसी स्त्री को शोचनीय कहा है।

अब आश्रम का वर्णन करते हुए पहिले ब्रह्मचर्याश्रम के ही विषय में कहते हैं कि वह बटु ब्रह्मचारी : सोचने योग्य है जो अपना व्रत परित्याग कर देता है। उसे अवकीर्णी कहते हैं। यथा : अवकीर्णी भवेद् गत्वा ब्रह्मचारी तु योषितम्। गर्दभं

पशुमालभ्य नैऋतं स विशुध्यति। ब्रह्मचर्यावस्था में ब्रह्मचर्य ही प्रधान है। तीनों प्रकार के स्नातकों के लिए व्रतपालन आवश्यक है। जिसने पूर्ण विद्या नहीं भी पढ़ी वह भी व्रतस्नात होकर आश्रम के फल को प्राप्त होता है। इसी भाँति महाभारत में अनेक उदाहरण आये हैं कि गुरु की आज्ञा पालनमात्र से वे सिद्धि को प्राप्त हुए। भाव यह कि व्रतपालन और गुरु आज्ञापालन ये ही दोनों ब्रह्मचर्याश्रम के सार हैं। इनके अनादर से बटु निरयगामी होता है। अतः शोचनीय है।

दो. सोचिअ गृही जो मोह बस, करइ करम पथ त्याग।
सोचिअ जती प्रपंच रत, बिगत बिबेक बिराग ॥१७२॥

अर्थ : उस गृहस्थ को सोचना चाहिए जो मोहवश होकर कर्मपथ का त्याग करता है और उस संन्यासी को सोचना चाहिए जो प्रपञ्च में लगा हुआ है और उसे वैराग्य और विवेक नहीं है।

व्याख्या : जो ब्रह्मचर्य अवस्था से संन्यास ग्रहण में असमर्थ होता है वह गृहस्थाश्रम स्वीकार करता है उसका अधिकार केवल कर्म में है। यथा : कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः। एवं त्वयिनान्यथेतोस्ति न कर्म लिप्यते नरे। ईश०। केवल कर्म करता हुआ ही सौ वर्ष जीने की इच्छा करे। इसके अतिरिक्त हे नराभिमानी! तेरे लिए दूसरा रास्ता नहीं है। फल की इच्छा न करने से तुझे कर्म का लेप न होता। अतः गृहस्थ को नित्य नैमित्तिक कर्म सदा करते रहने की विधि है। उसके त्याग से उसे प्रायश्चित होता है। ज्ञान होने पर वह संन्यास ग्रहण करके कर्मपथ का त्याग कर सकता है। पर मोहवश त्याग[1] करने से वह त्याग बन्धन का कारण है। इस भाँति मोहवश होकर कर्मपथ के त्याग से अधोगति होती है। अतः ऐसा गृहस्थ शोचनीय है। बन्धायैव भवत्येषा ह्यविद्याप्यक्रमोज्झिता। क्रम से छोड़ी हुई अविद्या बन्धन का ही कारण होती है। वि. पु.।

लोकत्रय त्याग पूर्वक संन्यास ग्रहण किया जाता है। उसे यह सब संसार ब्रह्ममय प्रतीत होना चाहिए और त्याग पूर्वक जीवन यापन करना चाहिए। किसी के धन की इच्छा नहीं करनी चाहिए। यथा : ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्चिज्जगत्यां जगत्। तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मागृधः कस्यस्विद् धनम्। ईश०। संन्यास लेने पर जो प्रपञ्च में पड़ जाता है, ज्ञान वैराग्य खो बैठता है, उसे वान्ताशी : कुत्ता कहते हैं। क्योंकि उसने जिस वस्तु का त्याग किया था उसे फिर ग्रहण कर लिया। अतः प्रपञ्चो संन्यासी शोचनोय हो जाता है।

बैषानस सोइ सोचइ जोगू। तपु बिहाइ जेहि भावइ भोगू ॥
सोचिअ पिसुन अकारन क्रोधी। जननि जनक गुर बंधु बिरोधी ॥१॥

---

१. मोहवश कर्मपथ त्याग की इच्छा वाले अर्जुन को। भगवान् ने गीता का उपदेश करके कर्मपथारूढ़ किया।

अर्थ : वह वानप्रस्थ सोचने योग्य है जिसे तपस्या छोड़कर भोग अच्छा लगे। चुगुलखोर निष्कारण क्रोध करनेवाले तथा माँ बाप गुरु और भाई से विरोध करनेवाले को सोचना चाहिए।

व्याख्या : तीसरा आश्रम वानप्रस्थ तपःप्रधान है। ब्राह्मणों को चारों आश्रम का अधिकार है। क्षत्रिय को संन्यास का अधिकार नहीं है। वह विरक्त होकर वानप्रस्थ हो सकता है। यथा : संत कहहिं यह नीति दसानन। चौथेपन जाइय नृप कानन। अंतहु नृपहिं उचित बनबासू। वानप्रस्थ में ऐसी तपस्या करनी चाहिए कि देह भूल जाय और तपस्या में ही मन लग जाय। यथा : बिसरी देह तपहिं मन लागा। सो जिस वानप्रस्थी को भोग प्रिय है, तपस्या में मन नहीं लगता, वह स्वधर्म विरुद्धाचरण के कारण पापी है। उसे निरय निश्चय है।

वर्णाश्रमानुकूल सद्वृत्ति कहकर अब सर्व सामान्य असद्वृत्ति कहते हैं। चुगुलखोरी से बढ़कर कोई पाप नहीं है। यथा : अघ कि पिसुनता सम किछु आना। अकारण क्रोधी ही पिशुन होते हैं। अकारण क्रोधी का कुशल होता नहीं। यथा : जिमि चह कुसल अकारन क्रोधी। वही माँ बाप गुरु और बन्धु का भी विरोधी होता है। माँ बाप गुरु तो साक्षात् देवता हैं। भाई की सहायता करना परम कर्तव्य है। पर पिशुन इन लोगों का भी विरोध करता है। अतः उसका दोनों लोक बिगड़ता है। वह निश्चय शोचनीय है।

सब बिधि सोचिय पर अपकारी। निज तनु पोषक निर्दय भारी॥
सोचनीय सबहीं बिधि सोई। जो न छाड़ि छल हरि जन होई॥२॥

अर्थ : दूसरे के अपकार करनेवाले को सब भाँति सोचना चाहिए। क्योंकि वह अपने शरीर का पोषण करनेवाला बड़ा भारी निर्दय है और सब प्रकार से तो वह सोचनीय है जो छल छोड़कर हरिजन नहीं हो जाता।

व्याख्या : उपर्युक्त शोच्य तो वर्ण धर्म की दृष्टि से अथवा आश्रम धर्म की दृष्टि से अथवा कुशल की दृष्टि से शोच्य हैं। परन्तु सब विधि शोच्य तो परापकारी हैं। क्योंकि उनसा अधम कोई नहीं है। यथा : परपीड़ा सम नहि अधमाई। उन्हीं का लक्षण कहते हैं कि वह अपने शरीर का पोषण करनेवाला है। महा अविवेकी है। यह नहीं समझता : सबके देह परम प्रिय स्वामी। वह भारी निर्दय होता है। क्योंकि ठण्ढी तबीयत से दूसरे को पीड़ा पहुँचाता है। निर्दय तो क्रोधी भी होता है। पर उसकी निर्दयता तभी तक है जब तक कि उसे क्रोध है। शान्तावस्था में क्रोधी बड़ी दया भी करते हैं। इसलिए परापकारी को भारी निर्दय कहते हैं। ये ही सच्चे खल हैं। परहित हानि लाभ जिन केरे। उजरे हर्ष बिषाद बसेरे। हिंसा पर अति प्रीति तिनके पापहि कवन मिति। अतः ये सब विधि शोचनीय हैं।

जो न तरै भवसागर नर समाज अस पाइ। सो कृत निंदक मंद मति आतमहन गतिजाइ। जो ऐसा नरजन्म पाकर भव सन्तरण नहीं करता वह आत्मघाती

है और भव सन्तरण बिना भगवद् भजन के हो नहीं सकता। यथा : साधक सिद्ध विमुक्त उदासी। कवि कोबिद कृतज्ञ संन्यासी। जोगी सूर सुतापस ग्यानी। धर्म निरत पंडित विज्ञानी। तरहिं न बिनु सेए मम स्वामी। राम नमामि नमामि नमामी। अतः भजन न करनेवाला आत्मघाती है। अन्य दोषों के न रहते हुए भी जिसने छल छोड़कर हरिभक्ति न ग्रहण की वह सब प्रकार से शोचनीय है। हरिजन का अर्थ हरिभक्त है। समय ऐसा आगया है कि हरिजन शब्द का अर्थ लिखना पड़ा। इस काल में शब्दों के सनातन से परिगृहीत अर्थ बदल रहे हैं। देखते देखते हरिजन शब्द का अर्थ अछूत हो गया। कोई ऐसा अर्थ न समझ ले इसलिए लिखना पड़ा।

सोचनीय नहिं कोसलराऊ। भुवन चारिदस प्रगट प्रभाऊ॥
भयउ न अहइ अब होनिहारा। भूपु भरत जस पिता तुम्हारा ॥३॥
बिधि हरि हर सुरपति दिसिनाथा। बरनहिं सब दसरथ गुन गाथा ॥४॥

अर्थ : कोसलनाथ सोचने योग्य नहीं हैं। उनका प्रभाव तो चौदहों लोको में प्रकट है। हे भरत ! तुम्हारे पिता जैसे राजा थे वैसा न कभी कोई हुआ न इस समय है और न भविष्य में होनेवाला है।

व्याख्या : कोसलनाथ महाराज दशरथ धर्म धुरन्धर राजर्षि ज्ञानी और परम भक्त थे। प्रजा का पालन उन्होंने औरस पुत्र की भाँति किया। वे शोचनीय कैसे हो सकते हैं ? उनकी सद्गति ध्रुव है। त्रिभुवन तीन काल जग माँही। भूरिभाग दसरथ सम नाँहीं। यह बेजोड़ राजा था। पहिले भी बड़े बड़े राजा हुए पर दशरथ ऐसा कोई न हुआ। इस समय भी कोई नहीं है और न भविष्य में कोई होगा। रामचन्द्र भी दशरथ की बराबरी न कर सकेंगे। क्योंकि राम सा पुत्र होना तो दशरथ के ही भाग्य में था।

संभु बिरंचि विष्णु भगवाना। उपजहिं जासु अंस ते नाना। जिस रामजी के अंश से त्रिदेवों की उत्पत्ति है, वे राम उनके पुत्र हैं। अतः त्रिदेव दशरथजी के गुण-ग्राम वर्णन करते हैं। यथा : जासु सनेह सकोच बस राम प्रकट भए आइ। जे हरि हिय नयननि कबहुँ निरखे नहीं अघाइ। सुरपति बसहिं बाहु बल जाके। इसलिए सुरपति उनके गुण गाथ वर्णन करते हैं। लोकप करहिं प्रीति रुख राखे। अतः दिक्पाल भी उनके गुणों का गान करते हैं।

दो. कहहु तात केहि भाँति कोउ, करहि बड़ाई तासु।
राम लखन तुम्ह सत्रुहन, सरिस सुअन सुचि जासु ॥१७३॥

अर्थ : हे तात ! कहो कोई उनकी बड़ाई कैसे कर सकता है जिनके राम, लक्ष्मण से, तुम से और शत्रुघ्न से बेटे हैं।

व्याख्या : अब गुरुजी बड़ाई का मुख्य कारण कहते हैं। पुत्रेणायं लोको जय्यः। पुत्र से ही यह लोक जीता जाता है। अतः यदि किसी को तुम लोगों के ऐसा पुत्र हो तो उसकी गणना करें। ऐसा भाग्यवान् कौन है ? पिता के पुण्य की इयत्ता तो पुत्र

की महिमा से ही की जाती है। तुम चारों भाइयों सा शुद्धान्तःकरण पवित्र कौन है ? यथा : ईस प्रसाद असीस तुम्हारी। सुत सुतबधूँ देवसरि बारी। अतः जिसके पुण्य से तुम चारों भाइयों का उनके घर जन्म हुआ उसकी बड़ाई कोई करना चाहे तो कैसे करे। इस व्याज से गुरुजी ने चारों भाइयों की बड़ी प्रशंसा की।

सब प्रकार भूपति बड़भागी। बादि बिषादु करिअ तेहि लागी ॥
यहु सुनि समुझि सोचु परिहरहू। सिर धरि राज रजायसु करहू ॥१॥

अर्थ : चक्रवर्तीजी सब प्रकार से भाग्यवान् थे। उनके लिए शोक करना व्यर्थ है। इसको सुनकर और समझकर शोक करना छोड़ दो और सिर पर धारण करके राजाज्ञा का पालन करो।

व्याख्या : चार प्रकार से ही लोग बड़भागी होते हैं। यशस्वी होने से, राजा होने से, गुणी होने से तथा सत् सन्तान के होने से। भुवन चारि दस प्रकट प्रभाऊ से लेकर : सरिस सुअन सुचि जासु तक कहकर गुरुजी ने चक्रवर्तीजी के चारों प्रकार का अत्यन्त उत्कर्ष कहा। अतः चक्रवर्तीजी सब प्रकार से ही अशोच्य हैं। उन सा बड़भागी कौन होगा। सोचे जाते हैं अभागी, जिनका न यह लोक बना न परलोक बना।

तात बिचार करहु मन माँहीं से शोक न करने का उपक्रम करके यह सुनि समुझि सोचु परिहरहू। से उपसंहार करते हैं और उपदेश देते हैं कि राज्य को सिर पर चढ़ाकर अर्थात् स्वीकार करके राजाज्ञा का पालन करो। सुख के ध्यान से नहीं राजाज्ञा के ध्यान से करो। राजा दण्डधरो गुरुः। सबको राजाज्ञा मानना चाहिए। विशेषतः तुम तो उनके पुत्र हो।

राय राजपदु तुम कहुँ दीन्हा। पिता बचनु फुर चाहिअ कीन्हा ॥
तजे रामु जेहिं बचनहिं लागी। तनु परिहरेउ राम बिरहागी ॥२॥

अर्थ : चक्रवर्तीजी ने राजगद्दी तुम्हें दी। पिता के वचन को सत्य करना चाहिए। जिस वचन के लिए उन्होंने रामजी को त्यागा और रामजी की विरहाग्नि में शरीर त्याग दिया !

व्याख्या : भरतजी को चुप देखकर गुरुजी फिर कहते हैं कि तुम्हारे मन में यदि यह हो कि बड़े भाई के रहते मेरा गद्दी स्वीकार करना उचित नहीं है तो ऐसी बात नहीं है। महाराज सर्वथा राज्य के स्वामी थे। वे राज्य दान कर सकते थे। उनका राज्य पर पूरा अधिकार था। उन्होंने तुम्हें राज्यपद दिया। तुमको तो उनके वचन को सत्य करना ठहरा। यहाँ राज्य सुख का प्रश्न नहीं है। पिता के वचन के सत्य करने का प्रश्न है।

यदि कहो कि पिता को तो राम का राज्य प्रिय था तो यह बात भी नहीं है। उन्हें सबसे प्रिय अपना वचन था। अपने वचन के लिए ही उन्होंने रामजी का परित्याग किया और रामजी उनको अपने देह से भी अधिक प्यारे थे। अतः उनके

विरहाग्नि में शरीर का भी परित्याग किया। अर्थात् देह से प्रिय राम और राम से भी अधिक प्रिय वचन। यथा : तुलसी जान्यौ दसरथहि धरमु न सत्य समान। रामु तज्यौ जेहि लागि बिनु राम परिहरे प्रान।

नृपहिं बचन प्रिय नहिं प्रिय प्राना। करहु तात पितु बचन प्रवाना ॥
करहु सीस धरि भूप रजाई। हइ तुम कहँ सब भाँति भलाई ॥३॥

अर्थ : राजा को वचन प्यारा था। प्राण प्यारा नहीं था। हे तात! पिता के वचन को प्रमाण करो। राजाज्ञा का सिर चढ़ाकर पालन करो। इसी में तुम्हारी सब प्रकार की भलाई है।

व्याख्या : राजा का वचन ही सब कुछ होता है। अतः राजा को वचन प्रिय था। प्राण प्रिय नहीं था। उस वचन को प्रमाण करना ही चाहिए। तुम पुत्र होकर उनके वचन को प्रमाण न करोगे तो कौन करेगा। जिस वचन के लिए उन्होंने प्राण दिया वही अप्रमाण हो जायगा।

यदि कहो कि महाराज के बाद हक बड़े भाई का होता है। बड़ा भाई भी पिता के समान होता है। ज्येष्ठो भ्राता पितुः समः। अतः राज्य स्वीकार करने में मेरी भलाई नहीं है तो यह बात भी नहीं है। राजाज्ञा को शिरोधार्य करने में ही तुम्हारी सब प्रकार की भलाई है। तुम तो अपनी इच्छा से राज्य नहीं ले रहे हो। तुम पुत्रधर्मपुरःसर पिता की आज्ञा मान रहे हो। उस आज्ञा में यदि कोई दोष है तो उसके जिम्मेदार तुम नहीं हो। उसका प्रातिभाव्य आज्ञा देनेवाले पर है। प्रतिज्ञा और हेतु देकर अब उदाहरण देते हैं।

परसुराम पितु आग्या राखी। मारी मातु लोग सब साखी ॥
तनय जजातिहि जौबनु दयऊ। पितु आग्याँ अघ अजसु न भयऊ ॥४॥

अर्थ : परशुरामजी ने पिता की आज्ञा पालन की और माता को मार डाला। इसको संसार जानता है। ययाति राजा को बेटे ने जवानी दे दी। परन्तु पिता की आज्ञा के कारण उन लोगों को न पाप हुआ और न अपयश हुआ।

व्याख्या : परशुरामजी ने पिता की आज्ञा से मातृवध किया। उन्हें मातृवध इष्ट नहीं था। मातृवध से बड़ा कोई पाप नहीं। तुमने भी पहिले उसी को गिनाया। यथा : जे अघ मातु पिता सुत मारे। इतने बड़े पाप को परशुरामजी ने पिता की आज्ञा के सामने कुछ न गिना और पितृ आज्ञा पालन के प्रताप से पाप उनका स्पर्श भी न कर सका और न उनकी इस कारण अपकीर्ति हुई। संसार इस कथा को जानता है कि एकबार जमदग्निजी ने अपनी पत्नी रेणुकादेवी पर रुष्ट होकर अपने पुत्रों को आज्ञा दे दी कि इसे मार डालो। पर कोई राजा नहीं हुआ। तब अपने छोटे पुत्र परशुरामजी को आज्ञा दी कि इसे मार डालो और मेरी आज्ञा न माननेवाले अपने भाइयों को भी मार डालो। परशुरामजी ने वैसा ही किया। जमदग्नि ऋषि प्रसन्न हो गये। परशुरामजी से कहा वर माँग। उन्होंने

वर माँगा कि मेरी माँ और भाई जी उठें और उन्हें यह याद न रहे कि मैंने उन्हें मारा था। पिता ने तथास्तु कह के जिला दिया। जो हो मातृवध तो उनके हाथ हुआ। बतलाओ कौन उन्हें पूज्य नहीं मानता ?

ययाति राजा भगवान् भार्गव के शाप से बूढ़े हो गये। कामवासना से उनका मन तृप्त नहीं हुआ था। बड़ी विनती करने पर ऋषिजी ने शापानुग्रह किया कि यदि कोई तुम्हारी बुढ़ाई लेकर अपनी जवानी दे दे तो मेरे प्रसाद से यह सम्भव होगा। अपने लड़कों से उन्होंने जवानी माँगी पर किसीने न दिया। छोटे लड़के ने अपनी जवानी दी और बाप की बुढ़ाई लेकर बूढ़ा हो गया। यदि विचारा जाय तो कितना बड़ा अनर्थ हुआ। बेटा अपनी जवानी बाप को दे इससे बड़ा अनर्थ क्या होगा ! क्योंकि पुत्र के यौवन से उसकी माता को ही भोगेगा। इस पाप और दुर्यश का क्या ठिकाना ? परन्तु उसे यौवन देने की इच्छा न थी। बाप की आज्ञा से दे दिया। अतः न पाप हुआ न दुर्यश हुआ।

दो. अनुचित उचित बिचारु तजि, जे पालहिं पितु बयन।
ते भाजन सुख सुजसु के, बसहिं अमरपति अयन ॥१७४॥

अर्थ : जो उचित अनुचित का विचार छोड़कर पिता के वचन का पालन करते हैं वे सुयश के पात्र होकर इन्द्रलोक को प्राप्त करते हैं।

व्याख्या : पिता के वचन में उचित अनुचित के विचार को स्थान ही नहीं हैं। जो पिता ने आज्ञा दे दी वही पालनीय है। औचित्यानौचित्य का भार पिता पर है। पुत्र तो आज्ञा पालक ठहरा। उसे पिता के वचन पालन का पुण्य होता है। पाप से उसका स्पर्श नहीं होता। ऐसा वचन यदि दुःख का कारण दुर्यश का कारण तथा निरय का कारण भी जान पड़े तो भी पुत्र पर इनका कोई प्रभाव न पड़ेगा। पिता की आज्ञा पालनेवाला दुःख न पाकर सुख पावेगा। उसकी अपकीर्ति न होकर कीर्ति होगी। वह नरकगामी न होकर इन्द्रलोक में निवास पायेगा।

अवसिं नरेस बचन फुर करहू। पालहु प्रजा सोकु परिहरहू ॥
सुरपुर नृपु पाइहि परितोषू। तुम्ह कहुँ सुकृत सुजसु नहिं दोषू ॥१॥

अर्थ : तुम राजा के वचन को अवश्य सत्य करो। प्रजा का पालन करो और शोक का त्याग करो। राजा को स्वर्ग में सन्तोष होगा और तुमको पुण्य और सुन्दर यश होगा। दोष नहीं होगा।

व्याख्या : पहिले गुरुजी ने राजाज्ञा पालन करने को कहा। फिर पिता के वचन को सत्य करने को कहा। तीसरी बार पिता के प्रिय होने से वचन को प्रमाण करने के लिए कहा। चौथी बार राजाज्ञा पालन में भरतजी की भलाई दिखलाया। अब पाँचवीं बार भलाई का उदाहरण देकर उसी बात पर जोर देते हुए कहते हैं कि अवश्य राजा के वचन को सत्य करो। प्रधान राजधर्म प्रजा पालन है। वह इस समय सिवा तुम्हारे करता कौन है ? इसलिए शोक छोड़कर राजधर्म सँभालो।

यदि कहो कि राजा ने सन्तुष्ट होकर नहीं कहा है, वचनबद्ध होने से लाचार होकर कहा है। इसपर कहते हैं कि सुरपुर में राजा को सन्तोष होगा। तुम्हारे वचन पालन से जब सुरपुर में राजा का सम्मान बढ़ेगा तो उन्हें सन्तोष होगा। गुरु की हैसियत से कह रहे हैं कि तुम्हें पुण्य होगा, सुयश होगा। डरो मत कि मुझे पाप होगा या दुर्यश होगा। कारण देते हैं :

बेद बिदित संमत सबहीका। जेहि पितु देइ सो पावइ टीका ॥
करहु राजु परिहरहु गलानी। मानहु मोर बचनु हित जानी ॥२॥

अर्थ : वेद में भी ऐसा ही कहा है और लोक भी ऐसा ही मानता है कि जिसे पिता दे वही राजतिलक पावे। ग्लानि छोड़कर राज्य करो और मेरे वचन को हित जानकर मानो।

व्याख्या : सर्वोपरि प्रमाण वेद है। वह भी यही कहता है कि जिसे पिता दे वह राज्य पावे। वेद की आज्ञा ही धर्म है। चोदनालक्षणोऽर्थो धर्मः। लोकविद्विष्ट-धर्म को न करने का भी विधान है। पर इस विषय में लोक भी ऐसा ही मानता है कि जिसे पिता दे वह राज्य पावे। कुलरीति पिता के विशेष आज्ञा के अभाव में मान्य है।

इतना कहने पर भी भरतजी चुप हैं। अतः कहते हैं कि तुम ग्लानि को छोड़कर राज्य करो। मैं जो कहता हूँ उसे हित समझकर मानो। फिर भी भरतजी चुप हैं। गुरुजी की आज्ञा पर भी राज्य स्वीकार नहीं है। मर्म यह है कि स्वार्थ-सिद्धि की आज्ञा में विचार को अवसर मिलता है। स्वार्थ विरोध की आज्ञा में विचार को अवसर नहीं है। यही कारण है कि रामजी ने रुख देखकर आज्ञा मान ली और भरतजी कहने पर भी नहीं मान रहे हैं। गुरुजी इस बात को भलीभाँति समझते हैं कि इन्हें राम जानकी की अप्रसन्नता का भय है। कौसल्या आदि माताओं के दुःखी होने का ख्याल है। रामजी के लौटने पर उनके सामने सिंहासन पर कैसे बैठेंगे। इस बात का क्षोभ है। अतः फिर गुरुजी बोले।

सुनि सुख लहब राम बैदेहीं। अनुचित कहब न पंडित केहीं ॥
कौसल्यादि सकल महतारी। तेउ प्रजा सुख होहिं सुखारी ॥३॥

अर्थ : इस बात को सुनकर राम जानकी को सुख होगा और कोई पण्डित इसे अनुचित नहीं कहेगा। कौसल्या आदिक माता लोग भी प्रजा के सुख से सुखी होंगी।

व्याख्या : राम जानकी यह सुनकर कि तुमने भी पिता की आज्ञा को शिरोधार्य किया : सुखी होंगे। यह न सोचो कि वे अप्रसन्न होंगे। मैं उनके स्वभाव से भली भाँति परिचित हूँ। राम पुनीत विषय रस रूखे। लोलुप भूमि भोग के भूखे। मूर्खों की कोई गणना नहीं। उनका कोई चला नहीं सकता। गणना तो पण्डित के कहने की है। उसका जिम्मा मैं लेता हूँ कि कोई पण्डित अनुचित नहीं कह सकता।

मूर्खों के विषय में कहा गया है : भलो कहे बिनु जानहीं बिनु जाने अपवाद। ते नर गादुर जानि जिअ करिअ न हरख विषाद।

माताएँ भी महाराज दशरथ की योग्या हैं। उनको सबसे अधिक ख्याल प्रजा का रहता है। रामजी के वन चलते समय माता कौसल्याजी ने कहा : वेगि प्रजा दुख मेटव आई। इस समय प्रजा के अनाथ होने से वे सब दुःखी हैं। तुम्हारे राजा होने से प्रजा सुखी होगी तो वे लोग भी सुखी हो जावेंगी।

मरम तुम्हार राम कर जानिहि। सो सब बिधि तुम्ह सन भल मानिहि॥
सौंपेहु राजु राम के आएँ। सेवा करेहु सनेह सुहाएँ॥४॥

अर्थ : जो तुम्हारे और रामजी के मर्म को जानेंगे वे सब प्रकार से तुमसे भला मानेंगे। रामजी के आने पर उन्हें राज सौंप देना और सुन्दर प्रेम के साथ उनकी सेवा करना।

व्याख्या : अब प्रजा के विषय में कहते हैं कि वे तो इस समय भी तुमसे भला मानते हैं। वे ही क्यों जो तुम्हारे और रामजी के मार्मिक प्रेम को जानेगा वह सब तुमसे भला मानेगा। यथा : देवि परन्तु भरत रघुबर की। प्रीति प्रतीति जाइ नहीं तरकी . विधु विष चवइ स्रवइ हिमु आगी। होइ बारिचर बारि बिरागी। भए ग्यान बरु मिटइ न मोहू। तुम्ह रामहि प्रतिकूल न होहू।

तुम्हारा सेवाधर्म भी नहीं बिगड़ेगा। तुम केवल रामजी की अनुपस्थिति में राज्य करो। उनके आने पर राज्य सौंप देना और आनन्द से उनकी सेवा करना। यह राज्य करना भी उनकी सेवा करना ही है। इतना कहकर गुरुजी मौन हो गये। वस्तुतः जो निष्कर्ष गुरुजी ने निकला वह किसी का किया अन्यथा नहीं हो सका। फिर भी भरतजी का रुख अनुकूल न देखकर मन्त्री लोग बोले। राज्यकार्य में गुरुजी के बाद इन्हीं का नम्बर है।

दो. कीजिअ गुर आयसु अवसि, कहहिं सचिव कर जोरि।
रघुपति आयें उचित जस, तस तब करब बहोरि॥१७५॥

अर्थ : मन्त्री हाथ जोड़कर कहते हैं कि अवश्य गुरुजी की आज्ञा का पालन कीजिए। रामजी के लौट आने पर जैसा उचित होगा वैसा कीजियेगा।

व्याख्या : गुरुजी के प्रस्ताव का अनुमोदन करते हुए मन्त्री लोग बोले कि पहिली चार बातें जिनमें राज करने को कहा गया है स्वीकार न हो तो गुरुजी की आज्ञा तो अवश्य कीजिये। यह बात मन्त्री लोग हाथ जोड़कर विनय कर रहे हैं। अर्थात् प्रजापालन अवश्य कीजिये। सरकार को लौटने पर उचित विचार का अवसर है। इस समय तो प्रजापालन कर्तव्य है। आप नहीं पालन करेंगे तो कौन करेगा ? पिता की आज्ञा का पालन भी हो गया और आपका सेवा धर्म भी बना रह गया। तब तस करब बहोरि : भाव यह कि इस समय दूसरा कुछ करने का अवसर नहीं है।

कौसल्या धरि धीरजु कहई। पूत पथ्य गुर आयेसु अहई॥
सो आदरिअ करिअ हित मानी। तजिअ बिषादु काल गति जानी॥१॥

अर्थ : कौसल्याजी धैर्य धारणकर बोलीं : बेटा! गुरुजी की आज्ञा पथ्य है। उसका आदर करो और हित मान करके आचरण करो। कालगति मानकर विषाद छोड़ो।

व्याख्या : इस अवसर पर कौसल्याजी का बोलना अत्यन्त आवश्यक था। सब रानियों में प्रधान हैं। इन्हीं के पुत्र को वनवास दिया गया। इनके बिना कहे भरतजी का राज्य स्वीकार करना उचित भी नहीं था। भरतजी का प्रेम देखकर धैर्य छूट जाता था। अभिषेक की चर्चा से राम वनवास आँख के सामने आगया। इसलिए धैर्य छूट रहा था। उसे धारण किया। तीसरे यह कि आज महाराज के न होने से यह गति हो रही है नहीं तो अभिषेक के लिए कितना बड़ा उत्सव होता इत्यादि। धैर्य छूटने के अनेक कारण वर्तमान होने पर भी धैर्य धारणकर माँ बोली। पूत सम्बोधन में ही वात्सल्य उमड़ा पड़ता है। कहती हैं कि गुरुजी की आज्ञा पथ्य है। रोगी के लिए हितकर है। इस समय रामवियोगरूपी कुरोग से सब दुःखी हैं। यथा : राम वियोग कुरोग बिगोये। इसी से रोग का उपशमन सम्भव है। रोगी हो, अपने मन का न करो। सद्गुरु के वचन का विश्वास करो : कुपथ माँग रुज व्याकुल रोगी। सद्गुरु बैद्य बचन विश्वासा : यहाँ विश्वास करना हो आदर करना है और आचरण करना हो पथ्य सेवन है।

गुरुजी ने कहा था : मानहु मोर बचन हित जानी। कौसल्याजी को गुरुचरणों में महाराज की सी भक्ति है। यथा : तम पुनीत कौसल्या देवी। मेरे विशेषि गति रावरी तुलसी प्रसाद जाके सकल अमंगल भागे : अतः गुरुजी के वचन के लिए कहती हैं : सो आदरिअ करिअ हित मानो और बिषाद छोड़ने को कहती हैं। क्योंकि काल की गति हटाई नहीं जा सकती। यथा : काल करम गति अघटित जानी। अतः विषाद व्यर्थ है। भरतजी रो रहे हैं। इस पर कहती हैं।

बन रघुपति सुरपति नरनाहू। तुम एहिं भाँति तात कदराहू॥
परिजन प्रजा सचिव सब अंबा। तुमहीं सुत सब कहँ अवलंबा॥२॥

अर्थ : रघुपति रामजी वन में हैं। महाराज इन्द्र के यहाँ हैं। और तुम इस भाँति कादर हो रहे हो। कुटुम्बीजन प्रजा मन्त्री तथा माताओं को बेटा! केवल तुम अवलम्ब हो।

व्याख्या : माता कहती हैं कि उपाय भी तो दूसरा कोई नहीं है। रघुपति पालन में समर्थ थे सो तो वन में हैं यहाँ हैं नहीं महाराज भी नहीं हैं। वे अपने सखा इन्द्र के यहाँ चले गये। पहिले रामजी का नाम लिया। क्योंकि उन्हीं का अभिषेक सर्वसम्मति से होनेवाला था। महाराज वृद्ध हो गये थे। राज्य के भार से हलका होना चाहते थे। अतः उनका नाम पीछे से लिया। वे भी होते तो लाचार

होकर पालन करते हो। जब दोनों नहीं हैं तो तुम्हारे अतिरिक्त पालन कौन करता है ? सो तुम वीर होकर इस भाँति कादर हो रहे हो कि रोते हो।

प्रिय परिजन पुरजन, तुम्हारे पिता के सामने के मन्त्री, माताएँ सब इस समय निराधार हो रहे हैं। केवल तुम्हारा सहारा है। तुम्हारे साहस छोड़ने से ये सब मारे पड़ेंगे। इन पर दुःसह दुःख का भार आ पड़ेगा।

लखि बिधि बाम काल कठिनाई। धीरजु धरहु मातु बलि जाई॥
सिर धरि गुर आयसु अनुसरहू। प्रजा पालि पुरजन दुखु हरहू॥३॥

अर्थ : विधाता की प्रतिकूलता और काल की कठिनता को लखकर धैर्य धारण करो। माता तुम्हारी बलैया लेती है। गुरु की आज्ञा को शिरोधार्य करो और तदनुसार आचरण करो। प्रजा का पालन करके नागरिकों के दुःख का हरण करो।

व्याख्या : धीरजु धर्म मित्र अरु नारी। आपद काल परखिअहि चारी। सो यह आपत्काल उपस्थित है, विधाता प्रतिकूल है : जिसने कैकेयी को पागल बना दिया। यथा : बिधि बाम की करनी कठिन जेहि मातु कीन्हीं बावरी और काल भी कठिन उपस्थित है जिसके आगे किसी का बल नहीं चलता। यथा : सब कर आज सुकृत फल बीता। भयउ कराल काल बिपरीता : यही समय धर्म की परीक्षा का है। अतः मैं माँ हूँ तुम्हारी बलैया लेती हूँ तुम धैर्य धरो।

पूत पथ्य गुरु आयसु अहई से उपक्रम करके सिर धरि गुरु आयसु अनुसरहू से उपसंहार करती हुई कहती हैं कि प्रजापालन कौन करेगा ? इसलिए प्रजापालन करके पुरजन का दुःख हरण करो। क्योंकि इस समय बिना राजा के प्रजा अनाथ हो रही है।

गुरु के बचन सचिव अभिनंदनु। सुने भरत हिय हित जनु चंदनु॥
सुनि बहोरि मातु मृदु बानी। सील सनेह सरल रस सानी॥४॥

अर्थ : गुरुजी के वचन और मन्त्रियों का अभिनन्दन भरतजी ने सुना। जो हृदय के लिए चन्दन सा हितकर था। फिर शील स्नेह और सरलता के रस से सनी हुई माता की वाणी सुनी।

व्याख्या : गुरु के बचन प्रतीत न जेही। सपनेहु सुलभ न सुखसिधि तेही। जिसके लिए स्वयं भरतजी कहते हैं : अवसि फिरब गुरु आयसु मानी। सो गुरु की वाणी किसी प्रकार हटाने योग्य नहीं जिसके विषय में धर्म विरुद्ध होने की शङ्का भी नहीं की जा सकती। फिर मन्त्रियों ने उसका अनुमोदन किया। अतः नीति विषयक सन्देह भी उस पर नहीं किया जा सकता। वह वाणी शीतल और हित कारक थी। जिस भाँति चन्दन हृदय के लिए और स्पर्श में शीतल है।

फिर माता की मृदु वाणी सुनी। जो शील, स्नेह और सरल रस से सनी हुई थी। शील यथा : पूत पथ्य गुरु आयसु अहई। सनेह यथा : तुमही सुत सब कहँ

अवलम्बा । सरल यथा : धीरज धरहु मातु बलि जाई । तथापि भरतजी का कष्ट घटने के स्थान में बढ़ा । उन्हें आशा थी कि कम से कम माता कहेगी कि यदि भरतजी राज्य नहीं लेते तो रामजी को लौटाओ पर ये ऐसी सरल थीं कि जो सबने कहा उसी को इन्होंने भी मान लिया ।

छं. सानी सरल रस मातु बानी सुनि भरत व्याकुल भये ।
लोचन सरोरुह स्रवत सींचत बिरह उर अंकुर नये ॥
सो दसा देखत समय तेहि बिसरी सबहि सुधि देह की ।
तुलसी सराहत सकल सादर सींव सहज सनेह की ॥

अर्थ : सरलता के रस से सनी हुई वाणी को सुनकर भरतजी व्याकुल हो गये । उनके कमल रूपी नेत्रों से आँसू बहकर हृदय के नये विरहाङ्कुरों को सींचने लगे । उस दशा को देखकर सबको अपने देह की सुधि न रह गयी । तुलसीदासजी कहते हैं कि उस सहज सनेह की सीमा को सब लोग आदर के साथ सराहने लगे ।

व्याख्या : माता को ऐसी सरल वाणी सुनने से भरतजी व्याकुल हो गये । ऐसे सरल के ऊपर इतना बड़ा आघात हुआ और फिर भी इनकी सरलता ज्यों की त्यों है । भरतजी के नेत्रों से आँसू की धारा चली जिससे हृदय भींग उठा । मानो जो नये विरह के अंकुर उगे हैं उन्हें यह अश्रुधारा सिञ्चन कर रही है । विरह के नये अङ्कुर उगने का भाव यह है कि भरतजी देखते हैं कि सभी ने रामजी का चौदह वर्ष वनवास मान लिया । उनके लौटाने के लिए यत्न करने की भावना भी किसी में नहीं है । अतः नये विरह के अङ्कुर उगे ।

भरतजी के प्रेम की वह दशा देखने से सभी लोग प्रेम में मग्न हो गये । किसी को अपने देह की सुधबुध न रही । कुछ समय तक तो यह दृश्य था । मन के सँभलने पर सभी लोग आदर के साथ सहज प्रेम की सीमा की सराहना करते लगे । भाव यह कि सभी को सरकार के चरणों में प्रेम था । पर परम प्रेम की सीमा तो भरत में थी । प्रेमियों में प्रेम की गुण ग्राहकता होती है । अतः सादर सराहना करते हैं ।

सो. भरतु कमल कर जोरि, धीर धुरन्धर धीर धरि ।
बचन अमिअ जनु बोरि, देत उचित उत्तर सबहि ॥१७६॥

अर्थ : धैर्य की धुरा के धारण करनेवाले भरतजी धैर्य धारण करके अपने कमल सदृश हाथों को जोड़कर मानो अमृत में डुबाए हुए वचनों से सबको उचित उत्तर देने लगे ।

व्याख्या : भरतजी को किसीकी सम्मति स्वीकार नहीं है । पर सब लोग धैर्य धारण करने को कहते हैं । इसलिए धैर्य धारण किया अथवा बिना धैर्य धारण किए उत्तर दिया नहीं जा सकता और यदि उत्तर नहीं देते तो मौनं स्वीकारलक्षणम्

हुआ जाता है। जिनको उत्तर देना है वे सब बड़े हैं। इसलिए हाथ जोड़कर उत्तर देते हैं। उत्तर देने में कसर न रक्खेंगे इसलिए कहते हैं : देत उचित उत्तर सबहि। जिसको जैसा उत्तर देना चाहिए वैसा उत्तर देंगे। परन्तु उत्तर वस्तु ही ऐसी है जो किसी को प्रिय नहीं लगती। सभी चाहते हैं कि मेरी बात का कोई उत्तर न दे। क्योंकि उत्तर सुनने में रस बिगड़ता है। परन्तु भरतजी ऐसे शब्दों में उत्तर देते हैं जिससे सुननेवाले को परम सुख हो। उत्तर मीठा लगे और उससे सन्तोष हो। भरतजी की पण्डिताई है कि भरतजी उत्तर तो देते हैं पर प्रजा को, पञ्च परमेश्वर को उत्तर देते हैं। धर्मतन्त्र के मूल सिद्धान्त को पकड़े हुए उत्तर दे रहे हैं। उत्तर देने के लिए उपक्रम का ही यह अर्थ है कि कही हुई बात स्वीकार नहीं है और न स्वीकार करने का यथेष्ट कारण है।

मोहि उपदेसु दीन्ह गुर नीका। प्रजा सचिव संमत सबहीका॥
मातु उचित धरि आयसु दीन्हा। अवसि सीस धरि चाहौं कीन्हा॥१॥

अर्थ : मुझे गुरुजी ने अच्छा उपदेश दिया। प्रजा मन्त्री सभी की यह राय है। माँ ने भी उचित की धारणा से आज्ञा दी है। मैं शिरोधार्य करके अवश्य करना चाहता हूँ।

व्याख्या : पहिले पहल गुरुजी ही बोले थे। कहा था : मानहु मोर बचन हित जानी। इसलिए कहते हैं कि उपदेश में कोई त्रुटि नहीं है। वह अच्छा है। गुरुजी ने मानने के लिए कारण दिया। अतः भरतजी उसे आज्ञा न मानकर उपदेश मानते हैं। बात पर जोर देने के लिए मन्त्री कहते हैं कीजिअ गुरु आयसु अवसि। माँ कहती हैं : पूत पथ्य गुरु आयसु अहई। परन्तु वस्तुस्थिति यह है कि वह आज्ञा नहीं है उपदेश है। वह उपदेश मन्त्रियों की सम्मति के अनुकूल है। परन्तु प्रजा ने तो कुछ नहीं कहा फिर भा भरतजी प्रजा की सम्मति कहते हैं। क्योंकि प्रजा की ओर से विरोध नहीं हुआ। धर्मशास्त्र कहता है कि सभा में प्रवेश न करे और करे तो स्पष्ट बोले। क्योंकि अनुचित कहनेवाला और चुप रहनेवाला समान पापी है। आजकल लोग उस नियम को भूल गये। इसलिए हाथ उठवाना पड़ता है। जब प्रजा चुप रह गयी तो निश्चय हो गया कि उसकी भी यही राय है।

माता ने निःसन्देह आदेश दिया। पर उन्होंने भी उचित की धारणा से आदेश दिया। उसे पथ्य समझकर करने को कहा। भरतजी कहते हैं कि मैं भी चाहता हूँ कि तदनुसार कार्य करूँ। पर करने में असमर्थ हूँ। आप लोग कहते हैं कि शिरोधार्य करो। मैं शिरोधार्य करता हूँ। परन्तु चाहने पर भी करते नहीं बनता।

गुरु पितु मातु स्वामि हित बानी। सुनि मन मुदित करिअ भलि जानी॥
उचित कि अनुचित कियें बिचारू। धरमु जाइ सिर पातक भारू॥२॥

अर्थ : गुरु पिता माता स्वामी और हित की वाणी सुनकर उसे प्रसन्न मन

से अच्छा समझकर करे। उसमें उचित अनुचित का विचार करने से धर्म जाता रहता है और सिर पर पाप का भार होता है।

व्याख्या : गुरु पिता माता स्वामी और हित इनमें से एक का भी वचन उल्लंघनीय नहीं है। यहाँ तो पाँचों का ऐकमत्य है। यथा :

गुरुवाणी : करहु राजु परिहरहु गलानी।
पितुवाणी : कछु दिन गये भरत जुबराजू।
मातुवाणी : प्रजा पालि पुरजन दुख हरहू।
स्वामिवाणी : कहब सँदेसु भरत के आये। नीति न तजिअ राजपदु पाये।
हितवाणी : कीजिय गुरु आयसु अवसि।

अतः इसकी उपादेयता में तो कोई प्रश्न ही नहीं है। सहज सुहृद गुरुस्वामि सिख जो न करई हित मानि। सो पछिताय अघाय उर अवसि होय हितहानि। इनकी वाणी में उचित अनुचित विचार करने से धर्म का लोप होता है और पाप का बोझ सिर पर आ जाता है। अतः इसमें औचित्यानौचित्य के विचार को अवकाश नहीं है। अतः इस पर मैं भी विचार नहीं करता।

तुम्ह तउ देहु सरल सिख सोई। जो आचरत मोर भल होई ॥
जद्यपि यह समुझत हौं नीकें। तदपि होत परितोष न जीकें ॥३॥

अर्थ : तुम लोग तो वही शिक्षा मुझे देते हो जिसके आचरण से मेरा भला हो। यद्यपि मैं इस बात को भली भाँति समझ रहा हूँ। फिर भी जी को परितोष नहीं होता।

व्याख्या : उपदेश भी भावोपहत नहीं है सरल है। उसके समझने में भी कठिनता नहीं है। तुम लोग मेरा भला देख रहे हो। इस बात को अच्छी तरह से मैं समझ रहा हूँ। परन्तु अपने ही भले से मुझे सन्तोष नहीं होता। भाव यह कि तुम लोग सरकारके कष्ट की ओर दृष्टिपात नहीं कर रहे हो। क्या उनके कष्ट विनिर्मुक्ति का कोई उपाय नहीं है ? जब तक वे दुःख सहते वन में फिरते हैं तब तक मेरे सामर्थ्य के बाहर की बात है कि सोच छोड़कर प्रजापालन में दत्तचित्त हो जाऊँ। मेरे चित्त में परितोष नहीं हो रहा है। मैं आप लोगों की आज्ञा नहीं टाल सकता। परन्तु अपना हार्दिक भाव तो प्रकट कर सकता हूँ।

अब तुम्ह बिनय मोरि सुनि लेहू। मोहि अनुहरत सिखावनु देहू ॥
ऊतरु देउँ छमब अपराधू। दुखित दोष गुन गनहिं न साधू ॥४॥

अर्थ : अब तुम मेरी विनय सुन लो और मेरी योग्यतानुसार सिखावन दो। मैं उत्तर देता हूँ : मेरे अपराध को क्षमा करो। सज्जन लोग दुःखी आदमी के दोष गुण को नहीं गिनते।

व्याख्या : अन्तिम आदेश के पहिले विनय सुनना उचित है। अतः मेरी विनती सुनिये और तब ऐसी शिक्षा दीजिये जो मुझसे हो सके। जो बात मेरी की

हुई नहीं हो सकती उसे मैं चाहता हुआ भी नहीं कर सकता। आप लोगों ने जो शिक्षा मुझे दी वह है बड़ी अच्छी पर मैं उसका अधिकारी नहीं। तदनुसार आचरण करना मेरे सामर्थ्य के बाहर की बात है।

आप लोग बड़े हैं। आपका उत्तर देना अपराध है और मैं उत्तर देता हूँ। इसके लिए क्षमा प्रार्थी हूँ। उत्तर देने का कारण यह है कि मैं दुःखी हूँ। आप लोग साधु हैं। साधु लोग न तो दुःखी के दोष को ही गिनते हैं और न गुण को ही गिनते हैं। यहाँ उत्तर देने का प्रकरण है। इसलिए दोष पहिले कहा। गुण पीछे कहते हैं। दुःखी गाढ़े में पड़कर कटु बोलता है। यथा : कटु कहिये गाढ़े परे सुनि समुझि सुसाँई। परन्तु स्वामी उसके दोष को नहीं गिनता। दुःखी वैराग्ययुक्त वाणी बोलता है। पर उसके राग या विराग की वाणी पर साधु कुछ ख्याल नहीं करते। यथा : सुनि बिराग संजुत कपि बानी।

दो: पितु सुरपुर सिय रामु बन, करन कहहु मोहि राजु।
एहि तें जानहु मोर हित, कै आपन बड़ काजु ॥१७७॥

अर्थ : पिताजी स्वर्ग चले गये। सीता राम वन में हैं। मुझे राज करने को कहते हो। इसमें—मेरी भलाई समझते हो या अपना कोई बड़ा काम समझ रहे हो।

व्याख्या : पहिले यह विचार लो कि किस परिस्थिति में किससे क्या कह रहे हो। पिता मर गये। श्रीसीतारामजी वन गये और मेरे कारण से ये दुर्घटनाएँ हुईं। सो मुझ ही को राज करने को कहते हो। यह नहीं समझ रहे हो कि मेरे राज्य स्वीकार का अर्थ ही यही है कि इन दुर्घटनाओं में मेरी सम्मति थी। अतः समझ लो कि राज्य स्वीकार करना मेरे सामर्थ्य के बाहर की बात है। दूसरी बात यह है कि जो कोई किसी काम के करने के लिए किसी से कहता है तो दो बातों में एक बात अवश्य रहती है। उससे या तो करनेवाले का भला ईप्सित होता है या अपना भला ईप्सित होता है। भरतजी पूछते हैं कि यह तो बतलाओ कि तुम लोगों ने किसका भला सोचकर मुझे शिक्षा दी है। इससे तुम लोगों का भला होगा या मेरा?

हित हमार सियपति सेवकाई। सो हरि लीन्ह मातु कुटिलाई॥
मैं अनुमानि दीखि मन माँही। आन उपाय मोर हित नाँहीं ॥१॥

अर्थ : मेरी भलाई तो सीतापति की सेवा में है। उसे माता की कुटिलता ने हरण कर लिया। मैंने मन में अनुमान करके देख लिया कि किसी दूसरे उपाय से मेरा हित सम्भव नहीं है।

व्याख्या : यदि पहिला पक्ष लो कि मेरा हित राज्य स्वीकार में है तो ठीक नहीं। क्योंकि : सिव विरंचि सुर मुनि समुदाई। चाहत जासु चरन सेवकाई। वह सेवकाई मुझे प्राप्त थी। उस सेवकाई को माता की कुटिलता ने हरण कर लिया।

मेरे हाथ से सेवकाई निकल गयी। अहह धन्य लछिमन बड़ भागी। राम पदारविंद अनुरागी : सियपति कहकर महामाया पति कहा। यथा : उद्भवस्थितिसंहार-कारिणीं क्लेशहारिणीं। सर्वश्रेयस्करीं सीतां नतोऽहं रामवल्लभां। माता और पुत्र का सम्बन्ध ऐसा है कि माता की कुटिलता का आरोप पुत्र पर होता ही है। विशेषतः उस समय जब कि उसका कुटिलाचरण पुत्र के स्वार्थ के लिए हो। अतः अब मेरी गणना सेवकों में नहीं रह गयी। माता पुत्र की हित करती है। सो माता ने मेरा हित ही हरण कर लिया। आप लोग यदि हित चाहते हो तो सेवा का अवसर दो। माँ ने उन्हें वन में भेजकर हित से वञ्चित किया है। यदि लौटें तो हित हो। स्वारथ साँच जीव कर एहा। मन क्रम बचन रामपद नेहा।

अनुमान द्वारा ही मन से देखा जाता है। पर्वतो वह्निमान् कहनेवाले ने बिना आँख से देखे मन द्वारा देख लिया। अन्वयव्यतिरेक से यही सिद्ध होता है कि मेरा हित दूसरे उपाय से होनेवाला नहीं। यथा : तुम बिनु दुखी सुखी तुमते ही। मेरा हित कहने का भाव यह कि दूसरे का हित भले ही दूसरे उपाय से हो : एक अंग जो सनेहता निसिदिन चातक नेह। तुलसी जा सो हित लगै वहि अहार वहि देंह। जीव चराचर जहँ लगे है सबको हित मेह। तुलसी चातक मन बस्यो घन सो सहज सनेह।

सोक समाजु राजु केहि लेखें। लखन राम सिय बिनु पद देखें॥
[1]वादि बसन बिनु भूषन भारू। वादि बिरति बिनु ब्रह्म बिचारू॥२॥

अर्थ : लक्ष्मण राम और सीता के चरणों को बिना देखे यह राज्य किस गिनती में है। यह शोक समाज है। कपड़े के बिना गहने का बोझा व्यर्थ है और वैराग्य के बिना ब्रह्मविचार व्यर्थ है।

व्याख्या : यह राज्य नहीं है शोक समाज है। प्रिय के विरह में सुखद वस्तु भी दुःखद हो जाती है। यथा : जे हित रहे करैं ते पीरा। अतः यह राज समाज शोक समाज मालूम पड़ता है। इसका भला सुख में क्या गिनती है। लक्ष्मण राम सीता के चरणों का दर्शन हो तो सभी में सुख है। सुख उन चरणों में है बाह्य उपकरणों में नहीं। यथा : नाथ सकल सुख साथ तुम्हारे। सरद बिमल बिधु बदन निहारे। अब शङ्का यहाँ उठ सकती है कि लक्ष्मणजी तो छोटे हैं। उनके चरण दर्शन के लिए भरतजी क्यों कहते हैं। सीधा सा उत्तर यही है कि सीता और रामजी के साथ हैं। इसलिए : छत्रिणो गच्छन्ति की भाँति लक्ष्मणजी के साथ भी चरण शब्द का व्यवहार कर दिया। यथा : अनुज समेत गहेउ प्रभु चरना। दूसरी बात यह भी है कि यन्त्रराज के मुख्य त्रिकोण में ये ही तीन मूर्तियाँ हैं और इसी त्रिकोण रूप के शरण में देवता लोग गये। यथा :

---

१. विनोक्ति : प्रथम अलङ्कार है।

हेमाभया द्विभुजया सर्वालङ्कारया[1] चिता।
श्लिष्टः कमलधारिण्या पुष्टः कोसलात्मजः ॥ ९ ॥
दक्षिणे लक्ष्मणेनाथ सधनुष्पाणिना पुनः।
हेमाभेनानुजेनैव तदा कोणत्रयं भवेत् ॥१०॥
एवं त्रिकोणरूपं स्यात् तं देवा ये समाययुः। रा० ता० ४.११

स्वर्ण वर्णवाली दो भुजाओंवाली सब अलंकार धारण किये हुए हाथ में कमल लिये हुए सीता देवी से युक्त श्रीरामजी हैं। उनके दाहिनी ओर धनुष हाथ में लिये हुए लक्ष्मणजी है जिनका रङ्ग सोने सा है। इस भाँति त्रिकोण होता है। उसी त्रिकोण के शरण में देवता लोग गये।

शत्रुघ्न भरत और हनुमान दूसरे त्रिकोण में हैं। यथा :

उदग्दक्षिणयोः स्वस्य शत्रुघ्नभरतौ धृतः।
हनूमन्तं च श्रोतारमग्रतः स्यात् त्रिकोणकम् ॥४.३२।

अतः मुख्य त्रिकोण रूप में भक्ति द्योतित करते हैं।

गहना शोभा का कारण है पर यदि वस्त्र हो तो और यदि वस्त्र ही नहीं तो भूषण से शोभा नहीं। वह व्यर्थ होकर भाररूप हो जाता है। इसी भाँति रामजी हों तो राज्य सुखद है। उनके न होने पर राज्य में सुख कहाँ? वह तो भाररूप हो जायगा। बिधुबदनी सब भाँति सँवारी। सोह न बसन बिना बर नारी। इसी भाँति वैराग्य हो तो ब्रह्मविचार में आनन्द है। यदि वैराग्य ही नहीं तो ब्रह्मविचार में आनन्द कहाँ? उल्टा ब्रह्मविचार बड़ा भारी बोझा हो जाता है। उसका स्मरण रखना कठिन हो जाता है।

सरुज सरीर वादि बहु भोगा। बिनु हरिभगति जायँ जप जोगा ॥
जाँय जीव बिनु देह सुहाई। वादि मोर सबु बिनु रघुराई ॥३॥

अर्थ : रोगी शरीर हो तो बहुत से भोग व्यर्थ हैं। बिना हरिभक्ति के जप योग व्यर्थ है। जीव के बिना सुन्दर देह व्यर्थ है। रघुराई के बिना मेरा सब कुछ व्यर्थ है।

व्याख्या : भोग सुख देनेवाला है। पर यदि शरीर में कोई रोग हो तो भोग शक्ति भी घट जाती है और भोग से उस रोग की वृद्धि भी होती है। या यों कहिये कि रोगी के लिए भोग विष है। यथा : कुपथ माँग रुज व्याकुल रोगी। बैद न देइ सुनउ मुनि जोगी। अतः सब भोग उसके लिए व्यर्थ हैं। इसी भाँति राम वियोग रूपी कुरोग से जो दुःखी हैं उनके लिए राज्य अपथ्य है।

जप योगादि अनुष्ठान हरिभक्ति के लिए ही किया जाता है। यथा : जहँ लगि साधन बेद बखानी। सब कर फल हरिभगति भवानी। यदि हरिभक्ति ही न हुई तो

---

१. पाठभेद : सर्वालङ्कृतया।

सब साधन व्यर्थ गये। यथा : सो सब करम धरम जरि जाऊ। जहँ न रामपद पंकज भाऊ। जोग कुजोग ज्ञान अज्ञानू। जह नहि राम प्रेम परधानू।

सुन्दर देह हो पर उसमें जीव न हो तो वह देह व्यर्थ है। अमङ्गल रूप है। जीव रहने से वही देह मङ्गल रूप थी। यथा : जिय बिनु देह नदी बिनु वारी। तैसिअ नाथ पुरुष बिनु नारी। परन्तु रामजी के बिना मेरा तो सब कुछ व्यर्थ है। अर्थात् रामजी से ही मेरी शोभा है। रामजी से ही आनन्द है। रामजी से ही हित है। रामजी से ही सफलता है और रामजी से ही मङ्गल है अर्थात् बिना रामजी के न शोभा है, न आनन्द है, न हित है, न सफलता है, न मङ्गल है।

जाउँ राम पहि आयसु देहू। एकहि आँख मोर हित एहू॥
मोहि नृपु करि भल आपन चहहू। सोउ सनेह जड़ता बस कहहू॥४॥

अर्थ : मुझे आज्ञा दीजिये। मैं भी रामजी के पास जाऊँ। इसी एक बात में मेरा हित है। मुझे राजा बनाकर जो अपना भला चाहते हो सो स्नेह की जड़ता के वश होने से कहते हो।

व्याख्या : भरतजी सभा से कह रहे हैं कि मैं आज्ञा से बाहर नहीं हूँ। अतः आज्ञा माँगते हैं कि मुझे रामजी के पास जाने की आप लोग आज्ञा दें। क्योंकि मेरा भला उनके यहाँ जाने में ही है और आप लोग मेरा हित चाहनेवाले हैं। अतः अवश्य ही दीजिये।

यदि कहो कि हम लोग अपने लाभ के लिए तुम्हें राजा बनाना चाहते हैं। तब तो मैं यही कहूँगा कि मेरे ऊपर आप लोगों का इतना स्नेह है कि आप लोगों की बुद्धि में जड़ता आगयी है। आप लोगों की दोषों की ओर दृष्टि ही नहीं जा रही है। दोषज्ञ पण्डित का नाम है। जो दोष का विवेचन न कर सके वह कैसा पण्डित? मेरे राज्य से सुख हो नहीं सकता। कारण कहते हैं।

दो. कैकइ सुअन कुटिलमति, राम बिमुख गतलाज।
तुम्ह चाहत सुखु मोहबस, मोहि से अधम के राज॥१७८॥

अर्थ : कैकेयी का बेटा, कुटिल बुद्धि, राम विमुख और निर्लज्ज ऐसे अधम के राज्य में तुम सुख चाहते हो।

व्याख्या : मैं कैकेयी का बेटा हूँ। कैकेयी की बुद्धि की कुटिलता को सब जानते हैं। माँ का प्रभाव कहाँ तक बेटे पर न पड़ेगा। मेरी बुद्धि कुटिल है। रामजी के वन भेजने का कारण होने पर भी अपने को निर्दोष मानता हूँ। रामजी के विमुख हूँ। उनके सम्मुख होने की कोई चेष्टा न करने से निर्लज्ज हूँ। इतना बड़ा अपयश सहन करके जीवित हूँ। अधम कहते किसको हैं? जिसका जन्म बुद्धि कर्म और शील प्रशस्त न हो वही अधम है। मुझमें ये चारों नहीं हैं अतः मैं बहुत बड़ा अधम हूँ। अधम को राजा बनाना नहीं चाहिए। क्योंकि उसके कारण प्रजा का आदर्श बिगड़ जाता है। यथा राजा तथा प्रजा। केवल दण्ड विधान करना ही राजा

का कार्य नहीं है। उसका चरित्र प्रजा के लिए आदर्शरूप होना चाहिए। अधम के राजा बनने से प्रजा अधम हो जायगी। फिर सुख का लेश कहाँ ? अतः अधम को राजा बनाकर सुख चाहना जड़ता है।

कहौं साँचु सब सुनि पतियाहू। चाहिअ धरमसील नरनाहू ॥
मोहि राजु हठि देइहहु जबहीं। रसा रसातल जाइहि तबहीं ॥१॥

अर्थ : मैं सच कहता हूँ। सुनकर विश्वास करो। राजा धर्मात्मा होना चाहिए। मुझे हठपूर्वक राज्य जिस समय दोगे उसी समय पृथ्वी रसातल को चली जाएगी।

व्याख्या : मैं विनय प्रदर्शन के लिए नहीं कह रहा हूँ। अथवा जब मैं अपने को अधम स्वीकार कर चुका हूँ तो यह न समझ लो कि इस समय मैं झूठ कह रहा हूँ। मैं सच कहता हूँ। आप लोग विश्वास करिये। मैं वस्तुतः कुटिल हूँ। आप लोगों का सरलभाव से कहना मेरे हृदय में नहीं बैठ रहा है। मैं समझ रहा हूँ कि आप लोग मुझे वस्तुतः राज्यलिप्सु समझ रहे हैं। मुझे माँ की राय में समझ रहे हैं। यथा : तुम्ह तउ देहु सरल सिख सोइ। जो आचरत मोर भल होई। मैं राम विमुख हूँ। मेरे कारण रामजी सब प्रकार का कष्ट झेल रहे हैं। मुझे लज्जा नहीं है। जिसे लज्जा थी उसने शरीर त्याग दिया। मैं आप लोगों के सामने मुख दिखला रहा हूँ। अतः मैं राज्य के योग्य नहीं। कुटिल रामविरोधी और बेहया राजा नहीं होना चाहिए। राजा धर्मशील होना चाहिए। जिसमें प्रजा उसका अनुसरण करके धर्मात्मा हो।

अतः मैं राज लेना नहीं चाहता। आज्ञा के बल से मुझे दोगे तो मुझे लेना पड़ेगा। पर इसका फल बड़ा भयानक होगा। प्रजा मेरा अनुसरण करने लगेगी। पितृवध बन्धुविरोध धन-सम्पत्ति के लिए होने लगेगा। यथा राजा तथा प्रजा। प्रजा पतित हो जायगी। ऐसा पाप पृथ्वी पर बढ़ेगा कि वह सह न सकेगी। रसातल को चली जायगी। मेरे सिंहासन पर बैठने की देर है। तुम्हारा भला कुछ न होगा। उलटा बड़ा भारी विनाश उपस्थित हो जायगा।

मोहि समान को पाप निवासू। जेहि लगि सीय राम बनबासू ॥
रायँ राम कहु कानन दीन्हा। बिछुरत गमनु अमर पुर कीन्हा ॥२॥

अर्थ : भला मेरे बराबर पाप का निवास स्थान कौन होगा ? जिसके लिए सीता और राम को वनवास हुआ। राजा ने रामजी को वन तो दिया पर उनके बिछुड़ने पर आप सुरपुर भी चले गये।

व्याख्या : रसातल जाने का कारण कहते हैं कि मेरा पाप ही ऐसा है। क्योंकि मैं सीताजी और रामजी जैसे महापुण्यवानों के वनवास का कारण हूँ। वनवास बड़ा भारी दण्ड है। यथा : डरपहि धोर गहन सुधि आये। महा निकम्मों को वनवास दिया जाता है। यथा : अगुन अमान जानि तेहि दीन्ह पिता बनबास।

मेरे कारण इतने बड़े पुण्यवान् को ऐसा घोर दण्ड दिया गया। मेरे पाप का क्या ठिकाना ?

यदि कहिये कि तुम तो केवल वनवास दिये जाने के कारण हुए। प्रयोजक कर्त्ता हुए। मुख्यकर्त्ता अर्थात् वनवास देनेवाले तो महाराज थे। तो इसपर यह कहना है कि उन्होंने अपना प्राण देकर संसार के सामने अपनी सफाई भी दे दी। संसार जान गया कि राजा ने खुशी से वनवास नहीं दिया। वनवास जबरदस्ती राजा से दिलवाया गया जिसका उन्हें इतना दुःख हुआ कि उन्होंने प्राण दे दिया।

मैं सठ सब अनरथ कर हेतू। बैठ बात सब सुनहुँ सचेतू ॥
बिनु रघुबीर बिलोकि अवासू। रहे प्रान सहि जग उपहासू ॥३॥

अर्थ : मैं शठ हूँ। सब अनर्थ की जड़ हूँ। बैठा हुआ सब बातें सुन रहा हूँ। बिना रघुबीर के घर को देखकर भी ये प्राण जगत् की हँसी सहकर भी बने हैं।

व्याख्या : मैं शठ हूँ। मीठी बातें शठ कहे करिके महा बिगार। महाराज साधु थे। मैं अनर्थ का मूल होकर नहीं मरा। जीते जागते होश हवास में बैठा सब बातें सुनता हूँ। एक भरत कर संमत कहहीं। एक उदास भावसुनि रहहीं आदि। यदि कहिये कि तुम तो थे ही नहीं जब यह काण्ड हुआ। तो इसका उत्तर यह है कि जब घर लौटे और बिना सीता रामजी का घर पाया उस समय तो मुझे मर जाना था। पर नहीं मरा। मुझे कलङ्क से कौन बचा सकता है ? संसार मुझ पर हँसता है कि इसी के कारण रामजी को वन हुआ और मैं जीता हूँ। अतः मेरे निर्लज्ज होने में त्रुटि क्या है ?

राम पुनीत बिषय रस रूखे। लोलुप भूमि भोग के भूखे ॥
कहँ लगि कहौं हृदय कठिनाई। निदरि कुलिसु जेहि लही बड़ाई ॥४॥

अर्थ : पवित्र राम विषय रस से रूखे हैं। लालची लोग पृथ्वी के भोग के भूखे होते हैं। मैं अपने हृदय की कठिनता को कहाँ तक कहूँ। इसने वज्र का भी निरादर करके बड़ाई पाया है।

व्याख्या : राज्य करने में अपनी अयोग्यता कहकर रामजी की योग्यता कहते हैं। चाहिअ धर्मसील नरनाहू। तो रामजी पुनीत हैं। धर्मसील हैं। उन्हें राज्य की भूख नहीं। वे विषय रस के रसिक नहीं। यथा : नवगयंद रघुबीर मनु राज अलान समान। छूट जान बनगवन सुनि उर अनन्द अधिकान। उन्हें राज्य छोड़ने और वन जाने की आज्ञा हुई। तुरन्त छोड़कर चले गये। परम त्याग का उदाहरण प्रजा के सामने उपस्थित कर दिया। आज कोई लालची भोग का भूखा होता तो क्या इस भाँति छोड़ देता। रामजी का वचन है।

वाताभ्रविभ्रममिदं वसुधाधिपत्यमापातमात्रमधुरा विषयोपभोगाः।
प्राणास्तृणाग्रजलविन्दुसमा नराणां धर्मः सदा सुहृदहो न विरोधनीयः ॥

हवा के बवण्डर की भाँति यह पृथ्वी का स्वामित्व है और विषयोपभोग भी

तत्काल क लिए ही मधुर है और तिनके के सिरे पर लटकते हुए जलबिन्दु की भाँति प्राणों की स्थिति है। अतः हे मित्रो ! कभी भी धर्म का विरोध नहीं करना चाहिए।

ऐसे पुनीत रामजी के वनवास पर भी हृदय नहीं फटा तो यही कहना है कि इसने अपनी कठिनता से वज्र को भी मात कर दिया। अब मेरे हृदय की कठिनता की प्रशंसा है। कोमल हृदय महाराज का था जिन्होंने : बिछुरत गवन अमरपुर कीन्हा।

दो. कारन ते कारजु कठिन, होइ दोष नहि मोर।
कुलिस अस्थि तें उपल तें, लोह कराल कठोर ॥१७९॥

अर्थ : कारण से कार्य कठिन होता है। इसमें मेरा दोष नहीं है। हड्डी से वज्र और पत्थर से लोहा कराल कठोर होता है।

व्याख्या : मेरा हृदय ऐसा कठोर हो गया कि रामजी से सूना घर देखकर नहीं फटा और संसार में उपहासास्पद होने पर भी नहीं सरका। इसमें मेरा दोष नहीं है। क्योंकि कार्य से कारण कठोर अधिक होता ही है। वज्र दधीच ऋषि की अस्थि से बना है। पर वह अस्थि से कहीं अधिक कराल है। पत्थर में ही लोहा पाया जाता है। सभी धातु पहाड़ से ही निकलते हैं। परन्तु पत्थर से भी अधिक कठोर लोहा होता है। भाव यह कि कैकेयी से मेरा जन्म हुआ है। अतः उनसे भी अधिक कठोर होने में मेरा दोष नहीं है।

कैकेयी ने मेरे लिए सब कुछ किया। पर वह इस समय अचेत है। पगली सी हो रही है और मैं सचेत होकर सब बात सुन रहा हूँ। अतः मैं अधिक कठोर हूँ।

कैकई भव तनु अनुरागे। पावन प्रान अघाइ अभागे॥
जौ प्रिय बिरह प्रान प्रिय लागे। देखब सुनब बहुत अब आगे॥१॥

अर्थ : कैकेयी से उत्पन्न देह से प्रेम करनेवाले ये पावन प्राण बड़े अभागे हैं। यदि प्यारे के विरह में प्राण प्रिय लगा तो आगे बहुत कुछ देखना और सुनना है।

व्याख्या : प्राणों में पाप का वेध नहीं होता। वह सदा पावन है। परन्तु बड़ा ही अभागा है। क्योंकि मेरे इष्ट रामजी से विरोध करनेवाली कैकेयी से उत्पन्न शरीर पर इसने प्रेम कर रक्खा है। उसे छोड़ना नहीं चाहता। इष्ट विरोधी से उत्पन्न तन पर सती ने अनुराग नहीं किया। यथा : पिता मंद मति निंदत ओही। दक्ष सुक्र संभव यह देही। तजिहौं तुरत देह तेहि हेतू। उर धरि चंद मौलि वृषकेतू। नहीं छोड़ने का फल यह हुआ कि भवभञ्जन पद विमुख होना पड़ा। यही अभाग है। यथा : भवभंजन पद विमुख अभागी। प्राण ही जीवात्मा बुद्धि और मन का सम्बन्ध शरीर से बनाये रखता है। यह यदि सम्बन्ध शरीर से तोड़ दे तो टूट जाता है। इसे यदि यह तन प्रिय न होता तो यह छोड़ देता। यह बड़ा भारी अभागा है कि ऐसे शरीर से सम्बन्ध बनाये हुए हैं।

प्राण सबको प्यारा होता है। परन्तु ऐसे प्रेमी होते हैं जिन पर प्राण से

अधिक प्रेम होता है। उनके विरह में प्राण प्रिय नहीं मालूम होता है। उसे छोड़ दिया जाता है। क्योंकि वह महा दुःखदायी हो जाता है। उसके रहने से प्रिय के प्रतिकूल बहुत सी बातें देखने और सुनने में आती हैं। परन्तु मुझे तो प्राण प्रिय मालूम होते हैं। चाहता तो था कि यदि प्राण शरीर से सम्बन्ध नहीं छोड़ते तो मैं ही प्राणों से सम्बन्ध छोड़ देता। जिस भाँति चक्रवर्तीजी ने छोड़ दिया और वेदना से मुक्त हो गये। पर मैं न छोड़ सका। इससे अनुमान होता है कि अभी न जाने क्या क्या मुझे देखना और सुनना बाकी है। भोग शेष है। इसलिए जीवात्मा प्राण और शरीर एक दूसरे से बँधे हुए हैं। भाव यह कि जिस परिस्थिति में भरतजी हैं उसमें उन्हें राज्य के लिए कथन मात्र से दु सह वेदना हो रही है और जितना ही उनको स्वीकार के लिए बल दिया जाता है उतनी ही उनकी वेदना बढ़ रही है।

लखन राम सिय कहुँ बनु दीन्हा। पठइ अमरपुर पति हित कीन्हा॥
लीन्ह बिधवपन अपजसु आपू। दीन्हेंउ प्रजहिं सोकु संतापू॥२॥

अर्थ : लक्ष्मण राम और सीता को वन दिया। स्वर्ग भेजकर पति का हित किया और स्वयं विधवापन और अपयश लिया। प्रजा को शोक और सन्ताप दिया।

व्याख्या : भरतजी कहते हैं कि जिस कैकेयी से मेरा शरीर उत्पन्न हुआ है और उसकी करणी कैसी है कि राम जानकी को वन देकर अपयश लिया। पति को स्वर्ग भेजकर विधवापन लिया। मातृधर्म पत्नीधर्म तथा आत्मधर्म का खूब निर्वाह करके रानीपन भी खूब निबाहा! प्रजाओं को शोक सन्ताप दिया। यथा : मुख सुखाहि लोचन स्रवहिं सोक न हृदय समाइ। मनहु करुन रस कटकई उतरी अवध बजाइ। बिलपहिं बिकल दास अरु दासी। घर घर रुदन करहिं पुरवासी। यहाँ व्यङ्ग से भरतजी माता की भर्त्सना कर रहे हैं।

मोहि [1]दीन्ह सुखु सुजसु सुराजू। कीन्ह कैकई सब कर काजू॥
एहि ते मोर काह अब नीका। तेहि पर देन कहहु तुम टीका॥३॥

अर्थ : मुझे सुख सुयश और सुन्दर राज्य दिया। कैकेयी ने सबका काम बना दिया। इससे अच्छा मेरा क्या होगा। तिस पर तुम लोग मुझे टीका देने को कह रहे हो।

व्याख्या : मैं खास बेटा था। इसलिए मुझे तीन बातें दी : १. सुख २. सुयश और ३. सुराज और लोगों को दो दो ही दी थीं।

सुख। यथा : भरतहि बिसरयौ पितु मरन सुनत रामवन गौन।
सुयश। यथा : हेतु अपनपौ जानि जिय थकित परे धरि मौन।
सुराज। यथा : सोक समाज राज केहि लेखे।

---

१. यहाँ लेश अलङ्कार है।

इस भाँति कैकेयी ने पुत्रों का पति का अपना प्रजा का और सबका काम पूरा कर दिया। अर्थात् सर्वनाश कर दिया।

खास मेरी माँ के हाथ से यह सब अनर्थ हुआ। मेरे सुख, सुयश और सुराज के लिए। तिस पर तुम लोग यह चाहते हो कि मैं टीका भी कढ़वा लूँ। कहीं मुख दिखाने लायक भी मुझे रक्खोगे? यह तो मेरे सिर कलङ्क का टीका लगा देना है। मेरी माँ ने मेरे लिए इतना किया इतना ही अपयश कौन कम है। टीका देकर उसी बात की पुष्टि किया चाहते हो।

कैकै जठर जनमि जग माँही। यह मोहि कहँ कछु अनुचित नाँही ॥
मोरि बात सब बिधिहि बनाई। प्रजा पाँच कत करहु सहाई ॥४॥

अर्थ : जगत् में कैकेयी के पेट से जन्म लेने पर यह बात मेरे लिए अनुचित नहीं है। मेरी बातें तो सब ब्रह्मा ने ही बना दी हैं। अब प्रजा और पञ्च इसमें क्यों सहायता दे रहे हो।

व्याख्या : ऐसी स्थिति में टीका लेना संसार में किसी के लिए उचित न होता। पर मेरे लिए अनुचित नहीं है। क्योंकि मैं कैकेयी के पेट से पैदा हूँ। उसने इतना इतना काम कर डाला। मैं इतना भी न करूँ कि टीका ले लूँ। मुझे तो अनुचित नहीं है। पर तुम्हें भी उचित नहीं है कि मेरे कलङ्क को और भी दृढ़ बनाओ।

मेरी बात तो सब ब्रह्मदेव ने ही बिगाड़ दी। यथा : हंस बंस दसरथ जनक राम लखन से भाइ। जननी तूँ जननी भई बिधिसन कछु न बसाइ। अब बिगड़े हुए को और क्या बिगाड़ते हो। तुम प्रजा हो। तुम्हें ऐसा न करना चाहिए। पञ्च परमेश्वर है। इस नाते भी ऐसा न करना चाहिए।

दो. ग्रह ग्रहीत पुनि बात बस, तेहि पुनि बीछी मार।
ताहि पिआइअ बारुनी, कहहु काह उपचार ॥१८०॥

अर्थ : जो ग्रह से ग्रसित हो, बाई, चढ़ी हो बीछी भी मारे हो उसे मद्य पिला रहे हो कहो तो यह कैसी चिकित्सा है।

व्याख्या : ऊपर कह आये हैं १. लखन राम सिय कहुँ बन दीन्हा २. पठइ अमर पुर पति हित कीन्हा ३. दीन्हेंउ प्रजहिं सोक सन्तापू ४. मोहि दीन्ह सुख सुजसु सुराजू। कीन्ह कैकयी सब कर काजू। इसी प्रसङ्ग के उपसंहार में यह दोहा कहा गया है। इसमें भी चार बातें हैं १. ग्रह ग्रहीत २. बातबस ३. तेहि पुनि बीछी मार ४. ताहि पिआइय बारुनी कहहु काह उपचार। इससे स्पष्ट है कि पहिले के कही हुई चार बातों के दोषों को दिखलाते हुए पिछली चार बातें उदाहरण के रूप में कही गयी हैं। लखन राम सिय का वन जाना ही ग्रह ग्रहीत होना है। यथा—हरखि हृदय कोसलपुर आई। जनु ग्रहदसा दुसह दुःखदाई। पति को अमरपुर भेजना और विधवापन लेना एक ही बात है। इसका प्रभाव भरत जी पर सन्निपात

सा पड़ा। भरतजी ऐसे धीर ने माता को दुर्वाद कहा। सन्निपात जल्पसि दुर्वादा : ३. प्रजा को बीछी मारे जाने सा कष्ट है। अतः भरतजी को वैसी ही पीड़ा हो रही है। ४. राज मिलने को वारुणी के समान समझ रहे हैं। यथा : सबते कठिन राज मद भाई। सबका निर्गलितार्थ यह है कि भरत जी कह रहे हैं कि मैं तो इतना दुःखी हूँ और आप लोग उस दुःख को मिटाने के लिए मुझे राजरूपी वारुणी पिला रहे हैं। जिससे उसके नशे में सब दुःख भूल जाऊँ। नहीं समझ रहे हैं कि ऐसे रोगी को वारुणी घातक है। इसके लोक परलोक दोनों को नष्ट करेगी। ऐसी दयनीय दशा में जो पड़ा हो उसके लिए सर्व शोकहरा सुरा देकर रोग शान्त करने का प्रयत्न करना कौन सी चिकित्सा है। ऐसे पुरुष के लिए तो सुरा विष है। भाव यह कि राज्य देना सुरा है। यथा : सबसे कठिन राजमद भाई। जो अँचवत मातहिं नृप तेई। मेरे रोग की चिकित्सा करो। राज दे दो। सब भूल जायँगे। इस विचार से अनर्थ परम्परा बढ़ेगी, घटेगी नहीं।

कैकइ सुअन जोगु जग जोई। चतुर बिरंचि दीन्ह मोहि सोई ॥
दसरथ तनय राम लघु भाई। दीन्हि मोहि बिधि बादि बड़ाई ॥१॥

अर्थ : कैकेयी के पुत्र के लिए जगत् में जो योग्य था चतुर विधाता ने मुझे वही दिया। परन्तु दशरथ का बेटा होना और रामजी का छोटा भाई होना यह बड़ाई विधि ने मुझे व्यर्थ ही दी।

व्याख्या : योग्य माता को योग्य बेटा दिया। विरञ्चि बड़े चतुर हैं। माँ बेटे का अच्छा जोड़ जुटा दिया। अथवा कैकेयी के बेटे को क्या क्या मिलना चाहिए : सो सब ब्रह्माजी ने मुझे दिया। अर्थात् दुःख दुर्यश निर्लज्जता कठोरता करालता आदि।

पर दो बड़ाई मुझे व्यर्थ दिया। अर्थात् महाराज दशरथ का बेटा और रामजी का छोटा भाई बनाया। जब इस बड़ाई की ओर देखता हूँ तब पिता का प्राण देना और बड़े भाई का वन जाना देखते हुए ऐसे पिता का पुत्र और ऐसे भाई का भाई होकर राज्य कैसे ग्रहण करूँ। ब्रह्मदेव यदि ये व्यर्थ की दो बड़ाइयाँ न दिये होते तो मैं राज्य स्वीकार कर लिये होता। अतः :

तुम्ह सब कहहु कढ़ावन टीका। राय रजायसु सब कहँ नीका ॥
उतरु देउँ केहि बिधि केहि केही। कहहु सुखेन जथा रुचि जेही ॥२॥

अर्थ : तुम सब लोग मुझे राजतिलक कढ़ाने को कहते हो। क्योंकि राजा की आज्ञा है और सबको अच्छा लगता है। मैं किसे किसे और किस विधि से उत्तर दूँ। जिसकी जैसी रुचि हो सुख पूर्वक कहते जाओ।

व्याख्या : मेरे टीका के लिए राजा की आज्ञा भी है और सब लोग अच्छा समझते हो। मुझे तो न यह राजाज्ञा मालूम होती है और न सबके लिए उपकारक मालूम होती है। किसे किसे जवाब दें और किस विधि से दें। कहनेवालों में

गुरुजी हैं और पिताजी के मन्त्री भी सम्मिलित हैं। कोई उत्तर देने योग्य नहीं और न मुझे कोई विधि मालूम पड़ती है। जिस विधि से उत्तर दिया जा सके। सभी लोग समझते हों कि इस कुचक्र में मेरी सम्मति है। इसकी सफाई में दे नहीं सकता। अतः जिसे जैसी रुचि हो वह वैसा कहे। क्योंकि टीका के लिए कहना और इस कुचक्र में मेरी सम्मति मान लेना एक बात है। बात भी ऐसी ही है। राज्य उसी को दिया जाता है जिसने भलाई की हो। सो :

मोहि कुमातु समेत बिहाई। कहहु कहिहि के कीन्ह भलाई ॥
मो बिनु को सचराचर माही। जेहि सिय रामु प्रान प्रिय नाही ॥३॥

अर्थ : कुमाता के समेत मुझे छोड़कर और कौन कहेगा कि : मैंने भलाई की है। संसार में मेरे बिना कौन है जिसे रामजानकी प्राणप्रिय न हों।

व्याख्या : टीका मुझे होना ही चाहिए। क्योंकि राज्य के भलाई करनेवाले दो ही ठहरे : मेरी माँ या मैं। रामजी की माँ या रामजी ने तो राज की कोई भलाई की ही नहीं है। उन्हें टीका देने को आप लोग क्यों कहेंगे! इतना दबाव मुझ पर डाला जाता है अपयश के लिए। क्योंकि यह मानी हुई बात है कि जगत् के प्राणसम राम मुझे प्रिय नहीं है। यदि सब लोग इतना दबाव रामजी पर दें गुरुजी भी, मन्त्री भी, माताएँ भी और प्रजा भी तो रामजी को राज्य स्वीकार करना पड़े।

जिसे राम प्राणप्रिय न हों वही टीका स्वीकार कर सकता है। नहीं तो प्राण-प्रिय से छीने हुए टीके को कौन स्वीकार कर सकता है? इसीलिए आप लोग मुझे स्वीकार करने को कहते हैं।

परम हानि सबु कहँ बड़ लाहू। अदिन मोर नहिं दूषन काहू ॥
संसय सील प्रेम बस अहहू। सबुइ उचित सबु जो कछु कहहू ॥४॥

अर्थ : जो परम हानि है उसी में सबको बड़ा लाभ दिखायी पड़ता है। यह मेरा बुरा दिन है। किसी का दोष नहीं है। तुम सब लोग सन्देहशील और प्रेम के वश हो। इसलिए सब लोग जो कुछ कहो वह उचित ही है।

व्याख्या : जिसमें मेरी यशोहानि, धर्महानि, प्रेमहानि अर्थात् परम हानि है उसी में सबको लाभ दिखायी पड़ना विपरीत बुद्धि है। मेरे बुरे दिन के कारण सबकी बुद्धि विपरीत हो गयी। मैं किसी को दोष नहीं देता।

भीतर से संशय है कि भरत की रुचि देखकर ही माँ ने राज माँगा होगा। आँखों में शील है। इससे कैसे कहें कि तेरा राज मुझे स्वीकार नहीं। रामजी को बुलाओ। मेरे ऊपर प्रेम भी है। अजी इसी को राजा होने दो। ऐसी परिस्थिति में जो कुछ कहते हो उचित ही है। यथा : सो सनेह जड़ता बस कहहू।

दो. राम मातु सुठि सरलचित, मो पर प्रेम बिसेखि।
कहइ सुभाय सनेह बस, मोरि दीनता देखि ॥१८१॥

अर्थ : रामजी की माता अत्यन्त सीधे स्वभाववाली हैं और मुझपर उनका प्रेम भी अधिक है। वे स्वभाव और स्नेह के वश होकर मेरी दीनता देखकर कह रही हैं।

व्याख्या : रामजी की माता का कहना कोई कहना नहीं है। वे बड़ी सरल हैं। जो सब लोगों ने कह दिया उन्होंने तुरन्त मान लिया और मुझ पर प्रेम भी अधिक करती हैं। मुझे आर्त देखकर वे भी वही बात कहती हैं। वे इस पेंच के बात को नहीं पकड़ सकतीं कि मेरे राज्य स्वीकार करने से मेरी और मेरी माँ की एक सम्मति प्रमाणित हुई जाती है। कौसल्याजी के प्रति संशय का आक्षेप नहीं है। अतः उनके विषय में अलग कह रहे हैं। उनके सामने शपथ भी ले चुके हैं। वे कह चुकी हैं कि : मत तुम्हार यह जो जग कहहीं। सो सपनेहुँ सुख सुगति न लहहीं।

गुर बिबेक सागर जगु जाना। जिन्हहि बिस्व कर बदर समाना॥
मो कहँ तिलक साज सज सोऊ। भय बिधि बिमुख बिमुख सबु कोऊ॥१॥

अर्थ : संसार जानता है कि गुरुजी विवेक के समुद्र हैं। जिन्हें सारा संसार हाथ में आये हुए बेर के समान है। वे भी मेरे लिए तिलक का साज सज रहे हैं। ब्रह्मा के विमुख होने पर सभी विमुख हो जाते हैं।

व्याख्या : दूसरा व्यक्ति जिस पर संशय का आरोप नहीं हो सकता गुरुजी हैं और वे विवेक के समुद्र हैं। जिसने योगवासिष्ठ देखा है उसे मानना पड़ेगा कि वसिष्ठजी विवेक के समुद्र हैं। इतना ही नहीं सर्वज्ञ हैं। संसार में कोई बात इनसे छिपी नहीं है। इनके हाथ में संसार बदरी फल की भाँति है। सो और लोगों ने तो केवल मुख से कहा। पर गुरुजी तो साइत देखकर आये हैं तिलक देने के लिए। ये तो जानते हैं कि मेरा मत नहीं था। न मैं चाहता हूँ। न उचित है। फिर ये राज्य देने की तैयारी क्यों करते हैं? अतः कहना पड़ेगा कि ब्रह्मा के विमुख होने से सब विमुख हो गये। ब्रह्मा हिरण्यगर्भ हैं। प्राण और मन की समष्टि हैं। जब समष्टि ही विमुख हो गया तो व्यष्टि प्रतीपाचरण कैसे कर सकता है! जब सभी विमुख हो गये तो यह भी हो गये। अथवा गुरुजी ब्रह्मदेव के पुत्र हैं। पिता के नाराज हो जाने से ये भी अप्रसन्न हो गये हैं। पिता के प्रतिकूलाचरण धर्मतः भी नहीं कर सकते।

परिहरि रामु सीय जग माँहीं। कोउ न कहिहि मोर मत नाँहीं॥
सो मैं सुनब सहब सुख मानी। अंतहु कीच तहाँ जहँ पानी॥२॥

अर्थ : रामजी और सीताजी को छोड़कर जगत् में और कोई नहीं है। जो

यह कहे कि इसमें मेरी सम्मति नहीं है। सो मैं सब सुनूँगा और सुख मानकर सहूँगा। क्योंकि जहाँ पानी होता है वहाँ कीचड़ होता ही है।

व्याख्या : जो लोग मुझे राज्य लेने को कहते हैं वे दूसरे शब्दों में यह कहते हैं कि भरत का मत रहा है। अतः अब सब किसी ने मुझे माता के राय में कह दिया। परन्तु एक ठिकाना मुझे है जो कहेगा कि इसमें भरत का मत नहीं है और वह राम सीता हैं। भरतजी का जैसा विश्वास रामजी पर है वैसा ही सीताजी पर है। जानते हैं कि दोनों मूर्त्तियों में वास्तविक अभेद है। कोउ नहि कहहि का भाव यह कि जानता भी है कि मेरा मत नहीं है वह भी न कहेगा। नीति ही ऐसी है। असम्भाव्यं न वक्तव्यं साक्षात् दृष्टमपि क्वचित्। शिला तरति पानीयं गीतं गायति वानरः। इसी से कोई भी नहीं कहता।

जो बात लोग कह रहे हैं वह न सुनने लायक है न सहने लायक है। पर मैं सुनूँगा और सुख मानकर सहूँगा। क्योंकि : गगन चढ़े रज पवन प्रसंगा। कीचहि मिले नीच जल संगा। सो मेरा जल रूप कैकेयी का संग है। अतः मेरा कीच होना प्राप्त है।

डरु न मोहि जग कहहि कि पोचू। परलोकहु कर नाहिन सोचू॥
एकइ उर बस दुसह दवारी। मोहि लगि भे सिय राम दुखारी॥३॥

अर्थ : मुझे संसार बुरा कहे इसका मुझे डर नहीं है। परलोक का भी मुझे सोच नहीं है। मेरे हृदय में एक ही दुःसह दावानल दहक रहा है कि मेरे लिए श्रीराम जानकी दुःखी हुए।

व्याख्या : दुर्यश का भय सब ही प्रतिष्ठित पुरुषों को रहता है। यथा : संभावित कहँ अपजस लाहू। मरन कोटि सम दारुन दाहू। परन्तु मुझे उसका भी डर नहीं है। जिसका अपयश होता है उसकी स्वर्ग में गति नहीं होती। उसका परलोक बिगड़ जाता है। इस पर कहते हैं कि मुझे परलोक का भी सोच नहीं है। भाव यह कि इनको भी लक्ष्मणजी की भाँति कीर्ति भूति सुगति प्रिय नहीं है। यथा : धरम नीति उपदेसिय ताही। कीरति भूति सुगति प्रिय जाही।

भरत जी कहते हैं कि मुझे एक ही सोच है जो मेरे हृदय मे दावानल की भाँति दहक रहा है। यथा : जनु पुर दहँ दिसि लागि दवारी। इस समय अनेक प्रकार की दावाग्नि लगी हुई है। मेरे लिए उनमें से एक असह्य है और उसी ने हृदय में डेरा डाल रक्खा है और वह यह है कि मेरे लिए राम जानकी दुःखी हुए। अपने प्रेमी को कष्ट हो और अपने द्वारा हो इससे बढ़कर और कष्ट क्या होगा ?

जीवन लाहु लखन भल पावा। सबु तजि राम चरन मनु लावा॥
मोर जनम रघुबर बन लागी। झूठ काह पछिताउँ अभागी॥४॥

अर्थ : लक्ष्मण जी ने जीने का अच्छा फल पाया। सब कुछ छोड़कर रामजी

के चरण में मन लगाया। मेरा तो जन्म ही रामजी के वनवास के लिए हुआ। मैं अभागी झूठमूठ क्या पछताऊँ।

व्याख्या : लक्ष्मण छोटा है पर बाजी उसी ने मारा। सबका त्याग करके रामजी के चरण में मन लगाया। यथा : गुरु पितु मातु न जानउ काहू। कहौं सुभाउ नाथ पतिआहू। जहँ लगि जगत् सनेह सगाई। प्रीति प्रतीति निगम निजु गाई। मोरे सबइ एक तुम्ह स्वामी। अतः लक्ष्मण बड़भागी है।

मैं अभागी हूँ। अभागी वही है जिसने कुछ न किया हो और उस पर विपत्ति आवे। मेरा जन्म ही रामजी के वन के लिए हुआ। रामजी के वन जाने के लिए कोई रास्ता ही नहीं था। मेरे जन्म लेने से उनके वन जाने का मार्ग निरर्गल हुआ। अतः मेरा पछताना भी व्यर्थ है। जासु सुभाव अरिहु अनुकूला। उसके वन जाने की कौन सी बात थी।

दो. आपनि दारुन दीनता, कहहु सबहिं सिरु नाइ।
देखे बिनु रघुनाथ पद, जिय कै जरनि न जाइ ॥१८२॥

अर्थ : मैं सबको सिर झुकाकर अपनी दारुण दीनता कहता हूँ। बिना रामजी के चरणों के दर्शन किये मेरे जी की जलन मिट नहीं सकती।

व्याख्या : मुझे आप लोगों से आज्ञा लेना है। आप लोग आज्ञा दें तो मेरा असह्य दुःख दूर हो। न आज्ञा देंगे तो न जाऊँगा। आप लोगों का हुकुम बजाऊँगा। पर अपनी दारुण दीनता जो सही नहीं जाती सिर नवाकर कहता हूँ। मेरा कलेजा जल रहा है और वह जलन रघुनाथजी के दर्शन से ही दूर होगी। दूसरा उपाय नहीं है।

आन उपाय मोहि नहिं सूझा। को जिय कै रघुबर बिनु बूझा ॥
एकहि आँक इहै मन मांहीं। प्रातकाल चलिहौं प्रभु पांहीं ॥१॥

अर्थ : मुझे और कोई उपाय नहीं सूझता। बिना रघुवर के हृदय की बात कौन समझें। एक यही बात मेरे मनमें जमी हुई है कि सबेरा होते ही सरकार के पास चलूँगा।

व्याख्या : अपनी दारुण दीनता के मिटाने का उपाय तो मुझे यही सूझ रहा है कि आज की रात्रि बीतने पर सरकार के पास चलूँगा। आप लोगों को यदि कोई दूसरा उपाय सूझता हो तो कहिये। यदि कहिये कि प्रभु के पास जाने से क्या होगा ? इस पर कहते हैं कि हृदय की बात के समझनेवाले तो वही हैं। जो हृदय की बात नहीं समझता वह दारुण दीनता के दूर करने का उपाय क्या बतलावेगा। जो रोग नहीं पहिचान सकता दवा क्या दे सकता है ? अथवा वे दारुन दीनता दूर करने में समर्थ हैं और मैं कितना दीन हूँ यह बात भी वे ही जान सकते हैं। अब मैं अधिक देर नहीं कर सकता। कल प्रातःकाल प्रभु के पास जाऊँगा।

मैंने तो एक यही बात निश्चय की है। भाव यह कि मैं भी इसी चिन्ता में हूँ कि क्या करना चाहिए और आप लोग भी इसी चिन्ता में हैं। आप लोगों ने मुझे राज्य देने का निश्चय किया है उसे कह सुनाया। अतः मैं भी कहे देता हूँ कि मेरा निश्चय तो सवेरे सरकार के पास जाने का है।

जद्यपि मैं अनभल अपराधी। भै मोहि कारन सकल उपाधी ॥
तदपि सरन सनमुख मोहि देखी। छमि सब करिहहिं कृपा बिसेखी ॥२॥

अर्थ : यद्यपि मैं बुरा हूँ। अपराधी हूँ। मेरे ही कारण से सब उपद्रव हुआ है। तथापि मुझे शरण में आया हुआ देखकर सब क्षमा करके विशेष कृपा करेंगे।

व्याख्या : यदि कहिये कि तुम बुरे हो। क्योंकि अपराधी हो। अपराध यह है कि सम्पूर्ण उपाधि की जड़ तुम ही हो। मैं इस बात से इनकार नहीं करता। मैं ऐसा ही अपराधी हूँ कि मुझे क्षमादान दिया नहीं जा सकता है। अपराधी तो कैकेयी है। फिर भी वह अपराध का कारण नहीं है उसने अपराध मेरे लिए किया। तो सबकी जड़ तो मैं ही ठहरा।

यदि कहिये कि शरण जाने पर तो वे क्षमा अवश्य करेंगे। अपने प्रण का निर्वाह करेंगे। पर शरण जाना ही कौन आसान काम है। शरण जाने में मद मोह कपट छल सब छोड़कर शरण जाने का विधान है। तो क्या तुमने मद मोह कपट छोड़ दिया जो शरण जाते हो। इस पर कहते हैं कि भले ही मुझमें शरणागतोचित गुण नहीं हैं फिर भी जाने से शरण सम्मुख तो होऊँगा। शरण की ओर मेरी प्रवृत्ति तो रहेगी। उनके क्षमा दान के लिए इतना ही यथेष्ट है। इतने से ही न केवल सब अपराध क्षमा होगा बल्कि विशेष कृपा भी करेंगे।

सीलु सकुचि सुठि सरल सुभाऊ। कृपा सनेह सदन रघुराऊ ॥
अरिहुक अनभल कीन्ह न रामा। मैं सिसु सेवक जद्यपि बामा ॥३॥

अर्थ : रघुराज सुशील अत्यन्त सरल तथा सङ्कोची स्वभाववाले हैं। वे कृपा और प्रेम के घर हैं। राम ने कभी शत्रु का भी बुरा नहीं किया और मैं तो प्रतिकूल होने पर भी बालक और सेवक हूँ।

व्याख्या : सरकार शीलनिधान हैं। प्रभु तरुतर कपि डार पर ते किय आपु समान। तुलसी कहूँ न राम ते साहिब सीलनिधान। शीलनिधान बुरे को बुरा कहकर तिरस्कार नहीं कर सकता। इन सा सङ्कोची तो तीन काल में कहीं कोई हुआ ही नहीं। यथा : प्रेम कनौड़ो राम सो प्रभु त्रिभुवन तिहुँकाल न भाई। तरोरिनी हौं कह्यो कपि सों ऐसी मानिहि करे सेवकाई। अपराधी पर भी क्रोध नहीं करते। अत्यन्त ही सरल हैं। यथा : रामहिं मातु बचन सब भाए। जिमि सुरसरिगत सलिल सोहाए। माता के वन माँगने को ही उन्होंने प्रतोपाचरण नहीं माना। अतः तीनों स्वभाव के अङ्ग मेरे अनुकूल पड़ते हैं। चौथी बात यह कि कृपा और स्नेह के तो घर ही हैं।

अतः मेरे अपराध को क्षमा करके विशेष कृपा करना उनके लिए कोई बड़ी बात नहीं है।

उनका नाम राम है। उन्होंने शत्रु का भी कभी बुरा नहीं किया। 'बैरिउ राम बड़ाई करहीं। वे वैर को सदा प्रेम से जीतना चाहते हैं। शत्रु का आदर शत्रु से भी विनय शत्रु पर प्रेम करने में वे ही समर्थ हैं। मैं प्रतिकूल तो हूँ पर शिशु, सेवक हूँ। अतः मेरे अपराधको क्षमा करते उन्हें कितनी देर लगेगी।

तुम्ह पै पाँच मोर भल जानी। आयसु आसिष देहु सुबानी ॥
जेहि सुनि बिनय मोहि जनु जानी। आवहिं बहुरि रामु रजधानी ॥४॥

अर्थ : तुम पञ्चलोग भी इसमें मेरा कल्याण मानकर आज्ञा दो और सुन्दर वाणी से आशीर्वाद दो। जिससे मेरी प्रार्थना सुनकर मुझे अपना सेवक जानकर रामजी राजधानी को लौट आवें।

व्याख्या : तुम पञ्च हो। परमेश्वर हो। यदि अपना कल्याण न समझो तो मेरा कल्याण समझकर मुझे आज्ञा दो। आशीर्वाद दो। अर्थात् जाने के लिए आज्ञा दो और सफल मनोरथ होने के लिए आशीर्वाद दो। अयोध्या का नियम है कि पञ्च की सम्मति से सब काम होता है। यथा : जौ पाँचइ मत लागै नीका। करहु हरषि हिय रामहि टीका। आयसु आसिष देहु सुबानी। यहाँ सुबानी के अर्थ को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि आप लोग ऐसी वाणी कहिये कि तुम्हारी विनय सुनकर तुम्हें सेवक जानकर रामजी लौट आवें। मेरे कारण सकल उपाधि हुई। वही मैं लौटने के लिए विनय करने जाता हूँ। जब वनवास का कारण ही हट गया तब वनवास का प्रयोजन ही नहीं रह गया।

दो. जद्यपि जनम कुमातु तें, मैं सठु सदा सदोस।
आपन जानि न त्यागिहहिं, मोहि रघुबीर भरोस ॥१८३॥

अर्थ : यद्यपि मेरा जन्म कुमाता से हुआ है और मैं शठ सदा दोष युक्त हूँ। पर अपना समझकर नहीं त्यागेंगे। मुझे तो रघुवीर का ऐसा ही भरोसा है।

व्याख्या : कुमाता से जन्म। यथा : साँइ द्रोह मोहि कीन्ह कुमाता। मैं शठ काम बिगाड़कर मीठी बातें करता हूँ। सदा सदोष हूँ। मेरे दोष की सफाई नहीं दी जा सकती। मेरी ओर से तो सब बिगड़ा बिगड़ाया हुआ ही है। पर : मेरो भलो कियो राम आपनी भलाई। हौं तो साँई द्रोही पै सेवक हित साईं। अतः मुझे भरोसा है। अपना जानकर त्याग नहीं करेंगे। यथा : ससि कलंक हरि भृगुलता बड़वानलहि समुद्र। ग्रहण किये त्यागत नहीं महाघोर विषरुद्र।

भरत बचन सब कहुँ प्रिय लागे। राम सनेह सुधा जनु पागे ॥
लोग बियोग बिषय बिष दागे। मंत्र सबीज सुनत जनु[1] जागे ॥१॥

---

[1] १. ये दोनों पद राजापुर की प्रति में नहीं है और न उनकी आवश्यकता ही मालूम पड़ती है।

अर्थ : भरत के वचन सबको अच्छे लगे : मानो वे रामजी के स्नेहरूपी अमृत से पगे हुए थे। लोग वियोगरूपी विषम विष से जल रहे थे। वे मानो बीज सहित मन्त्र सुनते ही जाग उठे हों।

व्याख्या : गुरुजी बोले, माता बोलीं, मन्त्री लोग बोले, पर प्रजा की ओर से उपेक्षा बुद्धि ही थी। पर भरत के वचन सबको प्रिय लगे। यहाँ राज्य के लिए प्रस्ताव हो रहा था। पर प्रजा मानो सो रही थी। कोउ नृप होउ हमहि का हानी वाली बात चरितार्थ हो रही थी। प्रजा रामजी के दर्शन के लिए आर्त थी। यथा : राम दरस हित नेम व्रत लगें करन नर नारि। मनहुँ कोक कोकी कमल दीन बिहीन तमारि। सांसारिक सुख दुःख की ओर से उपेक्षा थी। अतः राज्य कौन करेगा ? इस प्रश्न पर ध्यान नहीं देते थे। राज्य के देवता तो प्रजा वर्ग हैं। उनके पुजारी राजा हैं। रञ्जनात् राजा। प्रजा के हित के लिए ही राजा हैं। प्रजा अपना हित रामदर्शन में मानती थी। वह राम विरह की अग्नि से जल रही थी। गुरुजी माता तथा सचिव सभी का मन्त्र तो अच्छा था। परन्तु उन मन्त्रों में बीज नहीं था। इससे देवता जाग्रत होकर अभिमुख नहीं होते थे। भरतजी के मन्त्र में बीज था : प्रातकाल चलिहौं प्रभु पाहीं। जेहि सुनि बिनय मोहि जन जानी। आवहिं बहुरि राम रजधानी। इसलिए कहते हैं कि लोग सबीज मन्त्र सुनते ही मानो जाग पड़े। अमृत में बोरी हुई बात थी। इसलिए सबको प्रिय भी लगी।

मातु सचिव गुर पुर नर नारी। सकल सनेह बिकल भये भारी ॥
भरतहिं कहहि सराहि सराही। राम प्रेम मूरति तनु आही ॥२॥

अर्थ : माताएँ मन्त्री गुरु और नगर के स्त्री पुरुष स्नेह से विकल हो गये। सब लोग भरतजी की प्रशंसा करके कहने लगे कि यह शरीर तो राम के प्रेम की मूर्ति ही है।

व्याख्या : माता, मन्त्री, गुरुजी तथा प्रजा सब अपना अपना प्रेम दबाये बैठे थे। महाराज के वरदान के सच्चा करने के लिए तथा भरतजी के सङ्कोच से राज्य के प्रस्ताव में सहमत थे। उद्बोधक कारण के पाते ही दबा हुआ प्रेम उमड़ उठा। जिसके लिए सब कुछ हुआ वही राज्य अस्वीकार करके रामजी के पास चलने को कहता है। इससे बड़ा उद्बोधक कारण और क्या हो सकता है। सब उमड़े हुए प्रेम के वेग के सँभालने में असमर्थ हैं। इसलिए विकल भये भारी कहते हैं।

भक्तों का सिद्धान्त है : सब मानिअहिं राम के नातें। भरत पर भी अधिक प्रेम राम के ही नाते था। यथा : भरत आगमनु सकल मनावहिं। आवहुँ बेगि नयन फल पावहिं। इतनी भक्ति से भरतजी ने पिता की क्रिया की : पितु हित भरत कीन्ह जस करनी। सो मुख लाख जाइ नहिं बरनी। पर भरतजी की प्रशंसा प्रजा ने नहीं की। अब भरतजी की बार बार सराहना होती है कि भरतजी तो मानो रामजी के प्रेम की मूर्ति है। मानो राम प्रेम ने नराकार धारण कर रक्खा है। ये भी रामजी की भाँति विषयरस रूखे हैं।

तात भरत अस काहें न कहहू। प्रान समान राम प्रिय अहहू ॥
जो पाँवरु अपनी जड़ताई। तुम्हहि सुगाइ मातु कुटिलाई ॥३॥

अर्थ : तात भरत ! तुम ऐसा क्यों न कहोगे। तुम रामजी को प्राण के समान प्यारे हो। जो नीच अपनी जड़ता से माता की कुटिलता का तुम पर आरोप करता है।

व्याख्या : प्रजा कहती है कि भैया भरत ! ऐसी बात तुम्हीं बोल सकते हो। क्योंकि रामजी को प्राणसे प्यारे हो। यथा : रामहिं बंधु सोचु दिन राती। अंडन्हि कमठ हृदउ जेहि भाँति। भरत प्रान प्रिय पावहिं राजू। भरत सरिस प्रिय को जग माँहीं। जिसको जितना भरोसा रामजी पर होता है वह रामजी को उतना ही प्रिय होता है। भरतजी को रामजी का बड़ा भारी भरोसा है। अतः रामजी को प्राण समान प्रिय हैं। कहते भी हैं : जद्यपि जनम कुमातु ते मैं सठ सदा सदोस। आपन जानि न त्यागिहैं मोह रघुबीर भरोस।

भरतजी ने कहा है : परिहरि राम सीय जगमाहीं। कोउ नहिं कहिह मोर मत नाहीं। संसय सील प्रेम बस अहहू। इस बात का उत्तर सब लोग दे रहे हैं। शपथ लेते हुए कहते हैं कि हम लोगों को तुम पर सन्देह नहीं है। जिसे तुम पर सन्देह हो वह नीच है। उसे जड़ता हो गयी है। अपनी जड़ता से माता की कुटिलता का आरोप तुम पर करता होगा।

सो सठु कोटिक पुरुष समेता। बसहि कलप सत नरक निकेता ॥
अहि अघ अवगुन नहिं मनि गहई। हरइ गरल दुख दारिद दहई ॥४॥

अर्थ : वह शठ करोड़ों पुरुषों के साथ सौ कल्प तक नरक में रहेगा। साँप के अवगुण और पाप का मणि नहीं ग्रहण करती। वह साँप के विष का हरण करती है और दुःख और दरिद्र को जला देती है।

व्याख्या : ऐसा अनर्थकारी आरोप करनेवाला नरक में निवास करेगा। यह अपराध इतना भारी है कि इसके करने से उसके कोटि कोटि पूर्वजों को भी नरक होगा और सौ कल्प के लिए होगा। इस व्याज से प्रजा वर्ग स्वयं शपथ लेती है कि हम लोगों को तुम पर सन्देह नहीं है। पहिले कहा : सुकृत जाइ अस कहे तुम्हारे। राम भरत कहँ प्रान पियारे। भरत के शपथ लेने पर माता कौसल्या ने कहा : मत तुम्हार यह जो जग कहही। सो सपनेहुँ सुख सुगति न लहही। अब सबीज मन्त्र सुनकर जगी हुई प्रजा कह रही है कि ऐसा कहनेवाला कोटि पुरुषों के साथ अनन्त काल तक नरक निवास करेगा।

यद्यपि जन्म कुमातु ते : का प्रजा उत्तर देती है कि कैकेयी सर्प है इसमें सन्देह नहीं। यथा : मानहु सरोष भुअंग भामिनि बिषय भाँति निहारई। पर सर्प से ही मणि उत्पन्न होती है और मणि उसे बहुत प्यारी भी है। दिन रात का साथ है। पर उसका गुण सर्प से सर्वथा विपरीत है। उसमें पुण्य गुण हैं। जो सर्प कृत दोषों

को हरण करता है सो भरतजी आप मणि हैं। अवसि चलिअ बन राम पहँ। यह निश्चय आप का विषहरण करनेवाला है और : आवहिं बहुरि राम रजधानी। यह निश्चय आप का दुःख दरिद्र का दाह करनेवाला है।

दो. अवसि चलिअ बन रामु जहँ, भरत मंत्रु भल कीन्ह।
सोक सिंधु बूड़त सबहिं, तुम्ह अवलम्बनु दीन्ह ॥१८४॥

अर्थ : भरत ने बड़ी अच्छी सम्मति स्थिर की है। जहाँ वन में रामजी हैं वहाँ अवश्य चलना चाहिए। शोकरूपी समुद्र में डूबते हुए को तुमने सहारा दिया।

व्याख्या : मन्त्र सबीज सुनत जनु जागे। अतः कहते हैं : भरत मन्त्र भल कीन्ह। जब रामजी प्रजा को तमसा तट पर सोते छोड़कर चले गये तब कहा था : मनहु बारिनिधि डूब जहाजू। भये बिकल सब बनिक समाजू। अतः इस समय कह रहे हैं : सोक सिंधु बूड़त सबहिं तुम अवलम्बन दीन्ह। यहाँ बूड़त कहकर यह दिखलाया कि डूबता हुआ पुरुष इस बात पर ध्यान नहीं दे सकता कि गद्दी पर कौन बैठे। लोग कहते हैं कि भरतजी ! हम लोग तुम्हारे सहारे बच गये। समुद्र के बाहर तो सरकार के निकाले निकलेंगे। कौसल्याजी ने यही बात महाराज से कही थी : नाथ समुझि मन करिअ बिचारा। राम बियोग पयोधि अपारा। कर्नधार तुम अवध जहाजू। चढ्यो सकल प्रिय पथिक समाजू। इत्यादि। सब को आशा थी कि महाराज जीते रहेंगे। तो कोई उपाय रामजी को लौटाने का होगा। सो महाराज ने धैर्य छोड़ दिया। बिना कर्णधार के जहाज डूब रहा था कि भरतजी ने पतवार हाथ में लिया। रामजी के पास दूसरे दिन चलने का दृढ़ निश्चय किया।

भा सब के मन मोदु न थोरा। जनु घन धुनि सुनि चातक मोरा ॥
चलत प्रात लखि निरनउ नीके। भरतु प्रान प्रिय भे सबही के ॥१॥

अर्थ : सबके मन में थोड़ा आनन्द न हुआ। जैसे मेघ का गर्जन सुनकर चातक और मोर को होता है। सवेरे चलने का अभ्रान्त निर्णय समझकर भरतजी सभी को प्राणप्रिय हो गये।

व्याख्या : चातक को बड़ी प्यास होती है। यथा : चातक रटत तृषा अति ओही। उसे घन के गर्जन से बड़ा आनन्द होता है। मोर को घन के आगमन से ऐसा आनन्द होता है कि नाचने लगता है। अयोध्या में दो प्रकार के भक्त हैं। ज्ञानी और जिज्ञासु। यथा : मनहु कोक कोकी कमल दीन बिहीन तमारि। इन्हीं दोनों प्रकार के भक्तों की यहाँ चातक और मोर से उपमा दी हुई है।

जब भरतजी ने रामजी के पास जाने के लिए सब से आज्ञा और आशीर्वाद माँगा तब सब लोग भरतजी की बड़ाई करने लगे और स्वयं चलने को तैयार हो गये। अतः रामजी के पास वन चलने का स्पष्ट निर्णय हो गया। जब रामजी वन को चलने लगे तो अवध को अनाथ जानकर लोग विकल होकर

साथ लगे थे। रामजी तमसा तीर सबको सोता हुआ छोड़कर चले गये। उस समय ऐसी गति हुई : मनहु बारिनिधि बूड़ जहाजू। भयउ बिकल बड़ बनिक समाजू। सो रामजी के पास जाने का सुअवसर भरतजी के द्वारा मिल रहा है। अतः भरतजी सबको प्राण से प्यारे हो गये।

मुनिहि बंदि भरतहि सिरु नाई। चले सकल घर बिदा कराई ॥
धन्य भरत जीवनु जग माहीं। सील सनेह सराहत जाहीं ॥२॥

अर्थ : मुनिजी की वन्दना करके भरतजी को सिर झुकाया और सब बिदा, माँगकर घर चले। जाते हुए भरतजी के शील और स्नेह की प्रशंसा करते जाते हैं कि संसार में भरतजी का जीवन धन्य है।

व्याख्या : काम पूरा हो गया। बात निर्णीत हो गयी। सबके मन में भरतजी के साथ ही प्रस्थान करने का विचार है। यात्रा के लिए साज सामान करने की जल्दी है। इसलिए मुनिजी द्वारा सभा समाप्ति की घोषणा का इन्तजार बिना किये सब लोग जाने के लिए छुट्टी माँग रहे हैं। इतनी जल्दी है कि छुट्टी माँगने के पहिले ही विदाई का प्रणाम होने लगा। मुनिजी ने बुलवाया था भरतजी के लिए। अतः दोनों व्यक्तियों से विदाई लेना प्राप्त था।

भरतजी की सराहना सभा में सब लोगों ने किया था। पर इतने से सन्तोष नहीं है। घर जाते समय रास्ते में भरतजी के शील और स्नेह की प्रशंसा करते जाते हैं। शील यथा : तुम पै पाँच मोर भल मानी। आयसु आसिष देहु सुबानी। इत्यादि। स्नेह यथा : देखे बिनु रघुनाथपद जियकै जरनि न जाइ। इत्यादि।

२१. पुरवासी सहित चित्रकूट प्रस्थान प्रसङ्ग

कहहिं परसपर भा बड़ काजू। सकल चलइ कर साजहिं साजू ॥
जेहि राखहिं रहु घर रखवारी। सो जानइ जनु गरदनि मारी ॥३॥
कोउ कह रहन कहिअ नहिं काहू। कौन चहइ जग जीवन लाहू ॥४॥

अर्थ : एक दूसरे से कहने लगे कि हुआ तो बड़ा भारी काम और अब चलने का साज सामान बनाने लगे। जिसे घर की रखवारी के लिए आज्ञा देते हैं वहं समझता है कि मेरा सिर काट लिया गया। कोई कोई यह समझने लगे कि किसी को रहने के लिए न कहो। कौन संसार में जीने का लाभ नहीं चाहता।

व्याख्या : लोग कहते हैं कि बड़ा काम हुआ। तपस्या बहुत शीघ्र सफल हुई। रामजी के दर्शन के लिए सब लोग नियम व्रत कर रहे थे। सो उसका योग जुट गया। भरत के साथ में हम लोग भी चलेंगे। उनसे किसी ने न कहा कि तुम भी चलो और न वह किसी से पूछते हैं। सीधे सीधे चलने का सामान ठीक कर रहे हैं। ये लोग कोक कोकी हैं। अर्थात् गृहस्थ हैं। घर की भी चिन्ता है। अरक्षित घर को छोड़ जाना ठीक न समझा। अतः किसी को घर की रखवारी के लिए चलने

से रोकते हैं। उसे घर में रहने के ख्याल से प्राणदण्ड पाने सा कष्ट हो रहा है। जिस मसान को भूत भी छोड़ रहे हैं उस सूने श्मशान में कैसे रहें। यथा : घर मसान परिजन जनु भूता। सुत हित मीत मनहु जमदूता।

उनका दु:ख देखकर कोई कमल स्थानीय कहने लगे कि किसी को घर रहने के लिए न कहो। अपने ही भाँति दूसरे को भी समझो। आत्मवत् सर्वभूतेषु यः पश्यति स पश्यति। जिस भाँति तुम जीवन लाभ चाहते हो उसी भाँति दूसरा भी चाहता है। जीवन लाभ तो सब छोड़कर रामजी के चरणों में चित्त लगाने में है। यथा : जीवन लाहु लखन भल पावा। सब तजि रामचरन मन लावा।

दो. जरउ सो संपति सदन सुख, सुहृद मातु पितु भाइ।
सनमुख होत जो रामपद, करइ न सहस सहाइ ॥१८५॥

अर्थ : वह सम्पत्ति वह गृहसुख और वे माता पिता भाई जल जायँ जो रामजी के चरणों के सम्मुख होने में सहस्रों सहायता न करें।

व्याख्या : सुख सम्पत्ति परिवार बड़ाई। सब परिहरि करिहौं सेवकाई। ये सब रामभगति के बाधक। कहहिं संत तव पद अवराधक। अतः सम्पत्ति गृहसुख मित्र माता पिता और भाई यदि रामजी के सम्मुख होने में सहायक हों तो रहें नहीं तो जल जायँ। भाव यह कि सम्पत्ति सदन सुख जले। जिसकी रक्षा के लिए मैं श्रीरामजी के दर्शन से वञ्चित किया जाता हूँ और सुहृद माता पिता भाई जलें जो इनकी रखवारी के लिए मुझे रामदर्शन से वञ्चित कर रहे हैं। इनका तो कर्तव्य था कि रामजी के सम्मुख होने से सहस्र प्रकार से सहायता करते। क्योंकि ये तो हितचिन्तक हैं। इन्हें मेरा सच्चा स्वार्थ देखना चाहिए था। यथा : स्वारथ साँच जीव कहँ एहा। मन क्रम बचन रामपद नेहा। ये सच्चा स्वार्थ नहीं देखते। कच्चे हितचिन्तक हैं। अतः इनसे कोई सम्बन्ध नहीं।

घर घर साजहिं बाहन नाना। हरषु हृदय परभात पयाना ॥
भरत जाइ घर कीन्ह बिचारू। नगरु बाजि गज भवन भँडारू ॥१॥

अर्थ : घर घर अनेक प्रकार के वाहन लोग साज रहे हैं। सबके हृदय में आनन्द है कि सवेरे चलना है। भरतजी ने घर जाकर विचार किया कि नगर घोड़े हाथी घर और कोष।

व्याख्या : अयोध्या नगर बड़ा सम्पत्तिशाली है। घर घर वाहन हैं। लोगो की उत्सुकता देखिये। प्रयाण तो प्रभात समय होगा और वाहन इसी समय साजे जा रहे हैं। अति मोद में ऐसा ही होता है। लोग सोचते हैं कि कौन जाने भरतजी उसी वेग से चित्रकूट चलें जिस वेग से कैकय देश से अयोध्या आये हैं। यथा : चले समीर बेग हय हाँके। नाघत सरित सैल बन बाँके। अथवा वहीं अभिषेक के लिए चतुरङ्गिणी सेना लेकर चलें। तब तो हम लोगों को भी तैयारी के साथ सङ्ग चलना चाहिए। अतः सब प्रकार की तैयारी चाहिए। प्रस्थान करने में केवल रात्रि

मात्र का व्यवधान है। इसलिए हर्षित हैं। भरतजी विचार करते हैं कि राजा इस समय कोई है नहीं। मन्त्री लोगों का साथ चलना आवश्यक है। नगर वाजि गज भवन और भण्डार : कोष अरक्षित हो जायगा। नगर भी एक प्रकार से सूना हो जायगा। सभी चलने की तैयारी कर रहे हैं। नगर की रक्षा से ही सब की रक्षा है।

संपति सब रघुपति कै आही। जौं बिनु जतन चलौं तजि ताही ॥
तौ परिनाम न मोरि भलाई। पाप सिरोमनि साँइ दोहाई ॥२॥

अर्थ : यह सब सम्पत्ति रघुपति की है। जो बिना रक्षा किये छोड़कर चल दूँ तो अन्त में मेरे लिए अच्छा न होगा। स्वामि दोहाई मैं पाप शिरोमणि हो जाऊँगा।

व्याख्या : उपर्युक्त सब सम्पत्ति सरकारी है। अपनी होती तो मैं भी कह देता कि जरौ सो सम्पत्ति सदन सुख। इन्तजाम इस समय मेरे हाथ में है। मैं सम्पत्ति को अरक्षित कैसे छोड़ जाऊँ। जो भवितव्य है वही होगा : यह ठीक है पर भवितव्य के भरोसे पुरुषार्थ त्याग तो नीति नहीं है। यत्ने कृते यदि न सिध्यति कोऽत्र दोषः। अतः दोष के बचाने लिए यत्न करना प्राप्त है।

यदि अरक्षित छोड़कर चलूँ तो परिणाम में दूसरे की भलाई चाहे हो भी पर मेरी भलाई तो नहीं ही होगी। मैं प्रभु और पिता के वचन को मोहवश हटाकर साज समाज के साथ वन जा रहा हूँ। इतनी ही धृष्टता कौन कम है। इतने से ही मैं पाप से बच न सकूँगा और इस पर यदि रक्षा में भी असावधानता रही तो राम दोहाई मेरे पाप शिरोमणि होने में कोई कसर न रह जायगी। अतः रक्षा करके ही चलना चाहिए।

करइ स्वामि हित सेवकु सोई। दूषन कोटि देइ किन कोई ॥
अस बिचारि सुचि सेवकु बोले। जे सपनेहुँ निजधर्म न डोले ॥३॥

अर्थ : सेवक वही है जो स्वामी का हित करे। भले ही लोग उसे करोड़ों दूषण क्यों न लगावें। ऐसा विचार करके पवित्र सेवकों को बुलाया। जो स्वप्न में भी अपने धर्म से विचलित नहीं हुए थे।

व्याख्या : पर यहाँ रक्खें किसे ? जिनहि कहहि रहु घर रखवारी। सो जानै जनु गर्दन मारी। सब चलने को तैयार हैं। जिसे रहने को कहूँगा वही दूषण देगा। अथवा संसार कहेगा कि झूठ ही भरत राज्य से इनकार करते हैं, इन्हें तो राज्य की बड़ी ममता है। जैसा हम लोगों को घर वैसा ही इनको राज्य। हमें तो अपने घर की परवाह नहीं और ये राज्यरक्षा के लिए हमें छोड़ रहे है। भरतजी सोचते हैं कि इस प्रकार का दूषण लोग मुझे लगा सकते हैं। पर मुझे इन दूषणों की परवाह नहीं करनी चाहिए। मुझे सेवक धर्म सँभालना है। मैं स्वामी का हित करूँगा। भले ही लोग मुझे दोष लगावें।

यहाँ पर शुचि सेवक की परिभाषा स्वयं ग्रन्थकार दे देते है कि जो सेवक

अपने धर्म से स्वप्न में भी चलायमान नहीं हुए। अर्थात् मालिक के न रहने पर शुचिसेवक ही प्राण की बाजी लगाकर स्वामी के हित की रक्षा कर सकता है।

कहि सब मरमु धरमु सब भाखा। जो जेहि लायक सो तेंहि राखा ॥
करि सबु जतनु राखि रखवारे। राम मातु पहिं भरतु सिधारे ॥४॥

अर्थ : सब मर्म कहकर धर्म का उपदेश दिया और जो जिस योग्य था उसे उस कार्य पर नियुक्त किया। सब प्रबन्ध करके रक्षकों को नियुक्त किया। तब रामजी की माता के पास भरतजी गये।

व्याख्या : राज्य के ऐसे मर्म होते हैं जो केवल राजा ही जानते हैं। प्रजा को उसका पता भी नहीं रहता। उसे तो यह भी नहीं मालूम होना चाहिए कि राजा किस भाँति शोषण कर रहा है। यथा : हरखत बरखत सब लखै करषत लखै न कोय। तुलसी पुहुमी भाग से भूप भानु सम होय। उसके मर्म को थोड़ा बहुत कामदार जानते हैं। मन्त्री को बड़ी जानकारी होती है पर पूरी जानकारी राजा को ही होती है। अतः शुचि सेवकों को बुलाकर आवश्यक सब मर्म बतलाया। जिसमें भरतजी की अनुपस्थिति में यथोचित कार्य करने में समर्थ हों। कैसी अवस्था आ पड़ने पर क्या करना धर्म होगा। ये सब बातें भी बतलायीं। परिस्थिति में परिवर्तन होने से राजधर्म में परिवर्तन करना होता है। अब भरतजी की पण्डिताई कहते हैं कि जो जिस योग्य था उसे वैसा ही कार्यभार दिया : अयोग्यः पुरुषो नास्ति योजकस्तत्र दुर्लभः।

यह सब व्यवस्था करके तत्पश्चात् भरतजी ने यथास्थान रक्षकों की नियुक्ति की। नगर के रक्षक अलग, वाजि गज के अलग, कोष के अलग रक्षक योद्धा नियुक्त किये। तब कौसल्याजी के पास गये महल की व्यवस्था के लिए।

दो. आरत जननी जानि सबु, भरत सनेह सुजान।
कहेउ बनावन पालकी, सजन सुखासन जान ॥१८६॥

अर्थ : स्नेह के पारखी भरतजी ने सब माताओं को आर्त जानकर उनके लिए पालकी सजने तथा सुखपाल आदि सवारी तैयार करने के लिए कहा।

व्याख्या : भरतजी ने जान लिया कि सब माताएँ दर्शन के लिए आर्त हैं। कैकेयी भी आर्त हैं। माताओं के लिए पालकी साजने तथा उनके सभी सहेलियों के लिए सुखासन, दासियों के लिए यान तैयार करने के लिए कहा। भरतजी प्रेम के बड़े पारखी हैं। यद्यपि माताएँ अपने चलने के लिए अनुरोध नहीं कर रही हैं। फिर भी उनको आर्त देखकर उनके चलने के लिए सवारी की आज्ञा देकर उनकी आर्ति को तत्काल दूर करना चाहते हैं। माताएँ स्त्री धर्म को आगे किये हुए अपने को पुत्र के अधीन मानती हैं। पिता रक्षति कौमारे भर्त्ता रक्षति यौवने। पुत्रास्तु स्थाविरे भावे न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति।

चक्क चक्कि जिमि पुर नर नारी । चलत प्रात उर आरत भारी ।।
जागत सब निसि भयउ बिहाना । भरत बोलाए सचिव सुजाना ।।१।।

अर्थ : चकवा चकई की भाँति पुर नर नारी सवेरे गमन के लिए आर्त हो रहे थे । पूरी रात जागते ही सवेरा हुआ । भरतजी ने सुजान मन्त्रियों को बुलाया ।

व्याख्या : चक्रवाक और चक्रवाकी में रात्रि को विछोह रहता है । एक नदी के इस पार तो दूसरा नदी के उस पार रहता है । इस भाँति उनकी रात्रि विरहव्यथा में कटती है । वे चाहते हैं कि कब रात्रि बीते और हम प्रियतम के पास चलें । इसी भाँति पुर नर नारी को भी रामजी के पास चलने में रात्रि व्यवधानरूप है । अतः उसके बीतने के लिए बड़े आर्त हो रहे हैं । किसी समय अभिषेक के लिए ऐसी ही उत्सुकता थी । यथा : सकल कहहिं कब होइहि काली ।

लालसा और उछाह के कारण उस रात में किसी को नींद नहीं आयी । यथा : तेहि निसि नीद परी नहिं काहू । राम दरस लालसा उछाहू । चित्त के चञ्चल होने से निद्रा नहीं आती । सवेरा होते ही भरतजी ने सुजान मन्त्रियों को बुलाया जिनके लिए इशारा काफी था । सुमन्त्रजी ने एकान्त वास ले रक्खा है । रामजी को वन पहुँचाने के बाद से उनका उल्लेख नहीं मिलता । रामजी जब वन से लौटे हैं तब सुमन्त्रजी भी दिखायी पड़ते हैं । अतः अन्य सुजान मन्त्रियों को बुलाया ।

कहेउ लेहु सब तिलक समाजू । बनहि देब मुनि रामहि राजू ।।
बेगि चलहु सुनि सचिव जोहारे । तुरत तुरग रथ नाग सँवारे ।।२।।

अर्थ : कहा कि तिलक का सामान सब ले चलो । वन में ही मुनिजो रामजी को राज्य देंगे । जल्दी चलो ऐसा सुनकर मन्त्रियों ने जोहार किया और तुरन्त घोड़े रथ और हाथी सजाये ।

व्याख्या : भरतजी ने आज्ञा दी कि तिलक का सामान जो सरकार के लिए पिताजी का एकत्रित किया हुआ है उसे साथ ले चलने की व्यवस्था करो । यथा : आनहु सकल सुतीरथ पानी । औषध मूल फूल फल पाना । कहे नाम गनि मंगल नाना । चामर चमर बसन बहु भाँती । रोम पाट पट अगनित भाँती । मनिगन मंगल वस्तु अनेका । जो जग जोग भूप अभिषेका । कारण भी कह देते हैं कि पिता जी का संकल्प सत्य हो । इसी सामान से मुनिजी वन में ही रामजी को राज्य दें । रामजी ने माता से कहा था : पिता दीन्ह मोहिं कानन राजू : सो गुरुजी वन में ही राज्य देंगे ।

उन सब चीजों को लेकर जल्द चलो । यहाँ जोहार से भाव यह कि आज्ञा शिरोधार्य है । पहिला काम यह कि चतुरङ्गिनी सेना सजायी । मुनिजी ने अभिषेक के समय यह भी कहा था कि सजहु तुरंग रथ नाग और सामान तो सब सजा सजाया ही रक्खा था । उठाने मात्र की देर थी । तुरङ्ग रथ नाग की अभिषेक योग्य तैयारी करनी थी । अतः पहिले यही किया ।

अरुंधती अरु अगिनि समाऊ। रथ चढ़ि चले प्रथम मुनिराऊ ॥
बिप्र बृंद चढ़ि बाहन नाना। चले सकल तप तेज निधाना ॥३॥

अर्थ : पहिले वसिष्ठजी भगवती अरुन्धती और अग्निहोत्र के सब सामान सहित रथ पर चढ़कर चले। फिर तपस्या और तेज के निधान ब्राह्मण लोग अनेक प्रकार के वाहनों पर चढ़कर चले।

व्याख्या : गुरुजी ने पत्नी के सहित अग्निहोत्र का सामान सब साथ में लिया : अभिषेकाङ्गभूत हवनादि प्रक्रिया की सिद्धि के लिए। इस यात्रा में अधिक दिन लगेंगे। अतः पूरी तैयारी से चले। पहिला रथ वसिष्ठजी का चला : मुनिजी को रामजी के लौटने में पूरा सन्देह है। राज्य भरतजी का हो गया। वे चाहे रामजी को दे सकते हैं। परन्तु चौदह वर्ष की अवधि के परिवर्तन में स्वयं चक्रवर्तीजी का अधिकार रघुनाथजी ने नहीं माना। चक्रवर्तीजी ने तो कह दिया : रथ चढ़ाइ देखराइ बन फिर्यौ गये दिन चारि। परन्तु रामजी ने इस आज्ञा को प्रियप्रेम प्रमाद ही समझा।

गुरुजी के पीछे ब्राह्मणों का समूह चला। ये लोग कोई रथ पर कोई घोड़े पर कोई हाथी पर चढ़कर चले। सिविका सुभग सुखासन याना। आदि महारानियों की सवारी में नियुक्त हैं। ये ब्राह्मण लोग बड़े तेजस्वी थे। तप तेज के निधान थे। यथा : बिनु तप तेज कि कर बिस्तारा। भावार्थ यह कि पूरे ब्राह्मण[1] थे तपः स्वाध्याय निरत थे।

नगर लोग सब सजि सजि जाना। चित्रकूट कहँ कीन्ह पयाना ॥
सिबिका सुभग न जाहिं बखानी। चढ़ि चढ़ि चलत भईं सब रानी ॥४॥

अर्थ : नगर के सवारियों को सजकर चित्रकूट को चल पड़े। सुन्दर पालकियों में जिनका वर्णन नहीं किया जा सकता सब रानियाँ चढ़कर चलीं।

व्याख्या : इसके बाद नगर के लोग चले। स्त्री पुरुष दोनों हैं। इसलिए : सब सजि सजि जाना कहा। नगर खाली पड़ गया। चित्रकूट की ओर चले। यद्यपि यह स्थिर नहीं है कि सरकार कहाँ हैं। पर इतना निषादराज से सुमन्त्रजी को पता चल गया है कि भरद्वाजजी के आश्रम से वाल्मीकिजी के आश्रम की ओर गये। वाल्मीकिजी का आश्रम चित्रकूट से अति सन्निकट है और चित्रकूट प्रख्यातस्थल है। अतः चित्रकूट की ओर प्रयाण करना कहते हैं।

भरतजी की आज्ञा से शिविका साजी गयी है। अतः कहते हैं : न जाहिं बखानी। माताएँ बेटे को राज्य देने चल रही हैं। अतः मङ्गल उपस्थित है। इसलिए

---

१. तपःश्रुतञ्च योनिश्च ह्येतद् ब्राह्मणकारकम्। तपःश्रुताभ्यां यो हीनो जातिब्राह्मण एव सः। तप श्रुति और जन्म ये तीन ब्राह्मण कारक हैं। जो तप और श्रुति से हीन हैं। वह केवल जन्म से ब्राह्मण हैं।

शिविका का शृङ्गार किया गया है। सात सौ पालकी रानियों की चलीं। नगरवासियों के पीछे रानियों की सवारी हैं।

दो. सौंपि नगर सुचि सेवकन्हि, सादर सकल चलाइ।
सुमिरि राम सिय चरन तब, चले भरत दोउ भाइ ॥१८७॥

अर्थ : शुचि सेवकों को नगर सौंपकर और आदर के साथ सबको रवाना करके राम जानकी के चरणों का स्मरण करके दोनों भाई भरत चले।

व्याख्या : पहिले शुचि सेवकों की नियुक्ति कहा। यथा : जो जेहि लायक सो तहँ राखा। अब उन्हीं को नगर सौंपते हैं। भाव यह कि नगर सूना है। सबका ध्यान रखें। भरतजी के आज्ञानुसार क्रम से सब चल रहे हैं। माँ की पालकियों के पीछे दोनों भाई स्वयं चले। सरकार गणपति गौरी गिरिश को मनाकर चले थे। भरतजी राम जानकी के चरणों का स्मरण करके चल रहे हैं। खिन्न को इन्हीं चरणों का भरोसा है। यथा : बंदौं सीताराम पद जिनहि परम प्रिय खिन्न।

राम दरस बस सब नर नारी। जनु करि करिनि चले तकि बारी ॥
बन सिय रामु समुझि मन माँहीं। सानुज भरत पयादेंहि जाँहीं ॥१॥

अर्थ : राम दर्शन वश सभी नर नारी ऐसे चले जैसे हाथी हथिनी जल को लक्ष्य करके चले हों। श्री राम जानकी वन में हैं ऐसा मन में समझकर भाई के साथ भरतजी पैदल चले।

व्याख्या : रामजी के दर्शन की सबको प्यास है। जैसे प्यास वश हाथी हथिनी जल को ताककर चले। इसी भाँति पुर नर नारी श्री रामनिवासस्थल चित्रकूट को लक्ष्य में रखकर चले। बड़ी शीघ्रता है कि कब चित्रकूट पहुँचेंगे। नर नारी मत्त-गजगामी हैं। शीघ्रता से चलने का स्वभाव नहीं। पर चाहके वश अति वेग से चले।

श्री सीताराम वन में हैं। यथा : ए बिचरहिं बन बिनु पदत्राना। रचे वादि बिधि बाहन नाना। स्वामी पैदल विचरते होंगे। सेवकधर्म नहीं कि वाहन पर चढ़ें। वे भी सानुज पयादे हैं। इसलिए भरतजी सानुज पयादे चले। इस दर्जे की सेवाधर्म की बारीकी भरतजी में है। सबको एक साथ चलने का कारण यह कि जंगल में ही आग लगी है। यथा : सहि न सके रघुबर बिरहागी। चले लोग सब ब्याकुल भागी।

देखि सनेहु लोग अनुरागे। उतरि चले हय गय रथ त्यागे ॥
जाइ समीप राखि निज डोली। राम मातु मृदु बानी बोली ॥२॥

अर्थ : भरतजी का स्नेह देखकर लोगों को अनुराग हुआ। घोड़े हाथी रथ से उतरकर चलने लगे। तब रामजी की माता अपनी पालकी भरतजी के पास ले जाकर कोमल वाणी बोलीं।

व्याख्या : पयादे चलने से स्नेह दिखायी पड़ गया। देखकर सबका अनुराग बढ़ा। सब लोग सवारियों पर से उतर पड़े। जब भरतजी पैदल चलते हैं तो हम लोग सवारी पर कैसे चलें। हमारे सवारी पर चलने को धिक्कार है। अर्थात् सब समाज पैदल चला। राग के पीछे अनुराग होता है। भरतजी को राग तथा नगर-वासियों को अनुराग हुआ।

सवारियों से उतरने के समय एकाएक समाज रुक गया। पूछने पर मालूम हुआ कि भरतजी के पैदल चलने से सब लोग सवारी से उतर रहे हैं। अतः रामजी की माँ से अपनी पालकी रोक ली। पहली पालकी उन्हीं की है। निकट आ जाने पर बोलीं। डोली पालकी यहाँ समानार्थक शब्द हैं। रामजी की माँ हैं। सबके कष्ट को नहीं देख सकतीं।

तात चढ़हु रथ बलि महतारी। होइहि प्रिय परिवारु दुखारी॥
तुम्हरे चलत चलिहि सबु लोगू। सकल सोक कृस नहिं मग जोगू॥३॥

अर्थ : बेटा ! माता बलैया लेती है। तुम रथ पर सवार हो लो : नहीं तो प्यारा परिवार दुःख पायेगा। तुम्हारे पैदल चलने पर सब लोग पैदल चलेंगे। सब शोक से दुर्बल हो रहे हैं। रास्ता चलने योग्य नहीं है।

व्याख्या : माता कौसल्या मृदु वाणी बोलती हैं। आज्ञा नहीं देतीं। प्रेम की शिक्षा है। अतः कहती हैं मैं बलि जाती हूँ। मेरी प्रीति के लिए रथ पर चलो। यदि कहो कि इसमें आप का क्या लाभ। अतः कहती हैं कि प्रिय परिवार दुःखी हो जायगा। तुम्हारे पैदल चलने पर सब लोग पैदल चलेंगे। यह नहीं कहतीं कि तुम्हारा पैदल चलना मुझे सह्य नहीं है। कहती हैं कि तुम चाहे दुःख उठाओ पर सम्पूर्ण परिवार को दुःखी न करो।

जब सरदार पैदल चला तो लोग सवारी पर कैसे चलेंगे। तन कृस मन दुःख बदन मलीने। बिकल मनहु माखी मधु छीने। ये लोग पैदल चलने योग्य नहीं हैं। कृश होने का कारण शोक है। शोक युक्त से रास्ता नहीं चला जाता। रास्ते में बैठ जाते हैं।

सिर धरि बचन चरन सिरु नाई। रथ चढ़ि चलत भए दोउ भाई॥
तमसा प्रथम दिवस करि बासू। दूसरि गोमति तीर निबासू॥४॥

अर्थ : आज्ञा को शिरोधार्य करके, चरणों में सिर नवाकर, दोनों भाई रथ पर चढ़कर चले। पहिले दिन तमसा तीर निवास करके दूसरे दिन गोमती के किनारे निवास किया।

व्याख्या : बड़ों की आज्ञा शिरोधार्य करके तदनुसार कार्य करना परम धर्म है। अतः प्रणाम करके रथ पर दोनों भाई चढ़कर चले। सरकार भी पहिले पैदल हो चले थे। पर पीछे से सुमन्त्र द्वारा चक्रवर्तीजी की आज्ञा जानकर रथ पर चढ़े। यथा : तब सुमंत नृप बचन सुनाये। करि बिनती रथ राम चढ़ाये।

सरकार देर में चले थे। बीच बीच में लोगों के समझाने बुझाने में भी देर हुई। अतः पहिला निवास तमसा तीर हुआ। भरतजी बड़े सबेरे चले। परन्तु सेना साथ थी। अतः तमसा तीर रुक गये। बहुत लोग साथ हैं। अतः नदी तीर पर डेरा देते हैं। सरकार दूसरे दिन गङ्गा तीर पहुँचे। पर भरतजी चौथे दिन पहुँचे। इन्हें बीच में गोमती तीर पर भी विश्राम करना पड़ा।

दो. पय अहार फल असन एक, निसि भोजन एक लोग।
करत राम हित नेम ब्रत, परिहरि भूषन भोग ॥१८८॥

अर्थ : कोई दूध ही पीते हैं। कोई फलाहार ही करते हैं। कोई रात्रि में ही भोजन करते हैं। सब लोग रामचन्द्र के लिए भूषण और भोग छोड़कर नियम और व्रत करते थे।

व्याख्या : राम दरस हित नेम ब्रत लगे करन नर नारि। इसी का स्पष्टीकरण करते हैं। पय अहार और फलअशन व्रत हैं और निशि भोजन नियम है। यह नियम व्रत रामजी के दर्शन के लिए हो रहा है। लोगों ने शृङ्गार और भोग दोनों को त्याग दिया है : भोग रोग सम भूषण भारू। पय अहार फल अशन ज्ञानी भक्त कर रहे हैं। निशि भोजन करनेवाले जिज्ञासु भक्त गृहस्थ लोग हैं। गृहस्थों के लिए रात्रि का उपवास वैद्यक शास्त्र में मना है। राम के वियोग का विधायक जो पाप है उसके नाश के लिए अवधवासियों ने यह नियम और व्रत ले रखा है।

सई तीर बसि चले बिहाने। शृंगबेरपुर सब निअराने ॥
समाचार सब सुने निषादा। हृदयँ बिचार करै सबिषादा ॥१॥

अर्थ : सई के किनारे बसकर सबेरे ही चले। शृंगवेरपुर के पास पहुँचे। निषाद ने जब सब समाचार पाया तो विषाद के साथ मन में विचार करने लगा।

व्याख्या : तीसरे दिन सई नदी के किनारे बसे। सबेरे ही चल पड़े। जो रास्ता सरकार ने एक दिन में तय क़िया था उसे तय करने में सेना साथ रहने से भरतजी को तीन दिन से अधिक लगे। शृङ्गवेरपुर को ही सिंगरौर कहते हैं। यथा : सो जामिनि सिंगरौर गँवाई। सब लोग सिंगरौर के निकट पहुँच गये। अभी सबेरा ही है।

जब सिंगरौर से कुछ दूर रहे तभी निषादराज को पता लग गया कि भरतजी चित्रकूट जा रहे हैं और बड़ी भारी चतुरङ्गिनी सेना साथ लिये हैं। जिस बात की विधि नहीं बैठती उसमें विचार होता ही है। अनिष्ट की शङ्का में सविषाद विचार होता है और इष्ट प्राप्ति की आशा में सानन्द विचार होता है। सेना के साथ भरतजी का आगमन सुनने से उसे अनिष्ट की आशङ्का हुई। इसलिए सविषाद विचार करने लगा।

कारन कवन भरतु बन जाँहीं। है कछु कपट भाव मन माँहीं ॥
जौ पै जियँ न होति कुटिलाई। तौ कत लीन्ह संग कटकाई ॥२॥

अर्थ : क्या कारण है कि भरतजी वन जा रहे हैं। कुछ कपट भाव मन में है। यदि कुटिलाई मन में न होती तो साथ में सेना क्यों लिया ?

व्याख्या : रामजी के वन जाने का कारण था। वे पिता के वचन से गये। भरत को तो राज्य मिला है। महाराज की क्रिया से छुट्टी पाते ही इन्हें राज्य सँभालना था। ये वन क्यों जा रहे हैं ? यद्यपि ऐसे अवसर पर भाई से मिलकर उनका सन्तोष करके ही राज्य करना शिष्टता है। पर यह बात ऊपरी है। देखौआ है। इनके मन में दूसरी बात है।

यदि इनके मन में कपट न होता तो साधारण रीति से चले जाते। पर सेन संग चतुरंग न थोरी की क्या आवश्यकता पड़ी। निष्कारण कार्य होता नहीं। सेना का साथ लेना ही कुटिलता का प्रमाण है। ठीक ऐसा ही लक्ष्मणजी ने सोचा। यथा : जौं जिय होति न कपट कुचाली। केहि सोहात रथबाजि गजाली। यह निषादराज लक्ष्मणजी का शिष्य है। उन्हीं की भाँति इसने भी सोचा। भरत के हृद्गत भाव तक गति नहीं हुई। यह न सोच सका कि भरत वन में ही राज्य देने जा रहे हैं।

जानहि सानुज रामहि मारी। करौं अकंटक राजु सुखारी ॥
भरत न राजनीति उर आनी। तब कलंकु अब जीवन हानी ॥३॥

अर्थ : समझते हैं कि भाई के सहित रामजी को मारकर सुखी होकर निष्कण्टक राज्य भोगेंगे। भरत ने राजनीति को चित्त में स्थान नहीं दिया। तब तो कलङ्क ही था। अब प्राणों की हानि होगी।

व्याख्या : चौदह वर्ष के वनवास से इनका पेट न भरा। समझा कि चौदह वर्ष के बाद ही सही पर रामचन्द्र भारी कण्टक हैं। अभी तो पिता के वचन से बँधे हुए हैं। नाभिषेको न संस्कारः सिंहस्य क्रियते मृगैः। विक्रमार्जितराज्यस्य स्वयमेव मृगेन्द्रता। विक्रम करके भी तुम राज्य न लेना। ऐसा वचन तो पिता का है नहीं। अतः कण्टकोद्धार के लिए चौदह वर्ष बाद का खटका न बना रहे राम लक्ष्मण को मारकर सुखी होकर राज्य करना चाहते हैं। लक्ष्मण और राम का अभिन्न हृदय है। अतः लक्ष्मण का भी बध चाहते हैं।

दण्डनीति अन्तिम उपाय है। पहिले तो राजा को साम, दान, और भेद से काम लेना चाहिए। यथा : साम दान अरु दंड विभेदा। नृप उर बसहिं नाथ कह वेदा। नीति धर्म के चरन सोहाये। सो पहिले दण्डनीति से ही काम लेते जान पड़ते हैं। यह राजनीति नहीं है। राज करने में तो यशोहानि थी। पर अब अकण्टक राज करने के उद्योग में जीवन हानि होगी।

सकल सुरासुर जुरहिं जुझारा। रामहि समर न जीतनिहारा ॥
का आचरजु भरत अस करहीं। नहिं बिष बेलि अमिअ फल फरहीं ॥४॥

अर्थ : जितने योद्धा देवता और असुर हैं वे सब जुट जांय। फिर भी रामजी को नहीं जीत सकते। भरतजी के ऐसा करने में कौन आश्चर्य है? विषकी लता में अमृत फल नहीं फलता।

व्याख्या : कारण यह है कि रामजी अजेय हैं। यथा : जीति को सकै अजय रघुराई। सुरासुर में सभी योद्धा नहीं होते। सो यदि सुरासरों में से छाँटकर सब योद्धा इकट्ठे हो जांय फिर भी समर में अकेले रामजी को नहीं जीत सकते। फिर यह मानुषी सेना उनका क्या कर सकती है। उसके लिए अकेले रामजी ही यथेष्ट हैं कि पुनः लक्ष्मणजी भी साथ हैं। इनके जीतने की इच्छा करना ही मृत्यु सूचक है।

भरतजी यदि रामजी से संग्राम के लिए प्रस्तुत हों तो इसमें क्या आश्चर्य है। निषादराज कहते हैं कि जब माता ने १४ वर्ष के लिए वन दिया तब बेटा यदि प्राण लेना चाहे तो क्या आश्चर्य है! कैकेयी रूपी विषवेलि के ही फल तो भरतजी हैं। ये अमृतफल कैसे हो जावेंगे? विचार करके निषादराज इस निर्णय पर आगये।

दो. अस बिचारि गुह ग्याति सन, कहेउ सजग सब होहु।
हथवासहु बोरहु तरनि, कीजिअ घाटारोहु ॥१८९॥

अर्थ : ऐसा विचारकर गुह ने अपने जाति बिरादरी से कहा कि सब लोग सावधान हो जाओ। हाथ लगाओ और नावों को डुबा दो और घाट को रोक लो।

व्याख्या : हृदय विचार करै से उपक्रम, और अस बिचरि से उपसंहार है। निषादराज का नाम गुह था। इन्हें सेना नहीं थी। इनके जाति भाई ही इनकी सेना थे। उनसे कहा कि तुम लोग होशियार हो जाओ। भरत से खतरा है। सब नावों को उठा उठाकर नदी में डुबा दो। जिसमें हम लोगों का अनादर करके गङ्गा पार न होने पावें। तब घाट रोककर डँट जाओ। हम लोगों के मारे जाने पर भी हमारी नावों से काम न ले सकें।

होइ सँजोइल रोकहु घाटा। ठाटहु सकल मरै के ठाटा ॥
सनमुख लोह भरत सन लेऊँ। जिअत न सुरसरि उतरन देऊँ ॥१॥

अर्थ : तैयार होकर घाट को रोक लो और सब लोग मरने का साज साजो। सनमुख भरत से लोहा मैं लूँगा और जीते जी गङ्गा न उतरने दूँगा।

व्याख्या : भरतजी का सामना करना है। अतः सब लोग तैयार हो जाओ। पार उतरने की जो जगह है वहीं रोको। यदि कहो कि इतनी बड़ी सेना को कैसे

रोकेंगे ? इसपर निषादराज कहते हैं कि रोक न सकेंगे तो मर तो सकेंगे। इसलिए मरने का सामान साजो। ठाटहु कहने का भाव है कि वीरगति प्राप्ति के लिए उत्साह चाहिए। गङ्गा तुलसी मुख में लेकर तैयार हो जाओ तुम लोग सेना को रोको।

भरतजी के सम्मुख लोहा मैं लूँगा। युद्धसिद्धिर्हि चञ्चला : अतः यह निश्चय नहीं कि मैं ही हारूँगा। पर सम्भावना ऐसी ही है। अतः यह निश्चय है कि जीते जी गङ्गा उतरने न दूँगा। मुझे मारकर तब पार उतरें। यहाँ आकर सेना ठहर जावेगी। नाव सब डूबी रहेंगी। अतः पार उतरने की व्यवस्था उन्हें करनी होगी। उसी समय संग्राम का अवसर प्राप्त होगा। जो व्यवस्था करें उसे बिगाड़ो। उतरते समय उन पर प्रहार करो।

समर मरनु पुनि सुरसरि तीरा। राम काजु छनभंगु सरीरा॥
भरत भाइ नृप मै जन नीचू। बड़े भाग असि पाइअ मींचू॥२॥

अर्थ : युद्ध में वीरगति तिस पर गङ्गा का किनारा तिस पर भी रामजी के कार्य के लिए और यह शरीर क्षण में नष्ट हो जानेवाला है। भरत उनके भाई हैं, राजा हैं, मैं नीच सेवक हूँ, बड़े भाग्य से ऐसी मौत मिलती है।

व्याख्या : यदि कहिये कि मर जाने से लाभ क्या ? तो इस पर निषादराज कहते हैं कि यदि शरीर चिरस्थायी होता तो यह प्रश्न बन सकता था। यह शरीर तो क्षणभङ्गुर है। कब छूट जायगा इसका क्या ठिकाना। पर छूटना निश्चित है। परन्तु ऐसा अवसर शरीर छोड़ने का क्या फिर मिल सकेगा ? द्वाविमौ पुरुषौ लोके सूर्यमण्डलभेदिनौ। परिव्राट् योगयुक्तस्तु रणे चाभिमुखे हतः। समर मरण से उत्तम काल कहा। सुरसरि तोर से उत्तम देश कहा। यथा : रेवातीरे तपः कुर्यात् मरणं जान्हवीतटे। भाव यह कि अनित्य वस्तु को नित्य की प्राप्ति के लिए त्यागना बड़ा भारी लाभ है। यह ऐसे ही किसी को बड़े भाग्य से मिलता है। यथा : मरे बहुत मरिहैं बहुत आज कालि के बीच। तुलसी काहू नहिं लही गीधराज की मीच : राजा का संग्राम साधारण पुरुषों से नहीं होता। पर यहाँ ऐसा ही सुयोग आ पड़ा है। उत्तम के हाथ से मरना प्रशस्त है। भरतजी रामजी के भाई और नराणां च नराधिपः हैं। इनसे उत्तम कौन होगा ?

स्वामि काज करिहहुँ रन रारी। जस धवलिहौं भुवन दस चारी॥
तजौं प्रान रघुनाथ निहोरे। दुहूँ हाथ मुद मोदक मोरे॥३॥

अर्थ : मैं स्वामी के कार्य के लिए रण में युद्ध करूँगा और चौदहों भुवन को अपने यश से सफेद कर दूँगा। रघुनाथ के लिए प्राण त्याग करूँगा। मेरे दोनों हाथ में आनन्द के लड्डू हैं।

व्याख्या : मेरे स्वामी तो रामजी हैं। सब कुछ उनको अर्पण हो चुका है। यथा : देव धरनि धन धाम तुम्हारा। मैं सेवक समेत परिवारा। अतः भरतजी भले साम्राज्य के स्वामी हों पर मेरे स्वामी तो रघुनाथजी ही हैं। उनके लिए

संग्राम में भरतजी के हाथ से शस्त्रपूत होकर गङ्गाजी के तीर वीरगति को प्राप्त हूँगा। मेरे यश से चौदह भुवन भर उठेगा। यश का कवियों ने श्वेत रङ्ग माना है। इसलिए निषादराज कहते हैं कि चौदहों भुवन मेरे यश से सफेद हो जायँगे।

निषादराज मरण का निश्चय किये हुए युद्ध को प्रस्तुत हैं। उनका इतना ही मात्र प्रयोजन है कि : जिअत न सुरसरि उतरन देऊँ। भरत को समर में जीतने की तो आशा भी नहीं की जा सकती। अपने लाभ के लिए लड़ने को तैयार हैं। लाभ यह है कि दोनों हाथ में आनन्द के मोदक है। लोक परलोक दोनों बन जायगा। जस धवलिहौं भुवन दसचारी : से लोक बनेगा और रघुनाथ निहोरे प्राण त्याग से परलोक बन जायगा। आज भी यह चाल है कि सौभाग्यवती स्त्री के मरने में उसके दोनों हाथ में लड्डू रखकर ही श्मशान ले जाते हैं। दोनों हाथ के लड्डू लोक परलोक दोनों के बन जाने के प्रतीक है।

साधु समाज न जाकर लेखा। राम भगत महुँ जासु न रेखा ॥
जाय जिअत जग सो महि भारू। जननी जौवन बिटप कुठारू ॥४॥

अर्थ : साधु समाज में जिसकी गिनती न हो और रामजी के भक्तों में जिसकी रेखा न हो वह संसार में व्यर्थ जीता है। वह पृथ्वी का बोझ है। माता के यौवन रूपी वृक्ष के छेदन के लिए वह कुठार रूप हुआ।

व्याख्या : परहित लागि तजहिं जे देही। संतत संत प्रसंसहि तेही। अतः परहित के लिए शरीर त्याग से संत समाज में गणना होगी और रघुनाथजी के निहोरे वीरगति प्राप्त होने से रामभक्तों में मेरी रेखा होगी। रेखा से भाव यह कि मेरे भक्त होने का निश्चय हो जायगा। यथा : रेख खँचाइ कहौं बल भाखी। सब भक्तों को रामजी के निहोरे प्राण त्याग करने का अवसर नहीं मिलता। यथा : धन्य जटायू सम कोउ नाँहीं। राम काज कारन तन त्यागी। हरिपुर गयउ परम बड़ भागी।

दो. बिगत बिषाद निषादपति, सबहिं बढ़ाइ उछाहु।
सुमिरि राम माँगेउ तुरत, तरकस धनुष सनाहु ॥१९०॥

अर्थ : विषाद से रहित होकर निषादपति ने सबका उत्साह बढ़ाकर रामजी का स्मरण करके तुरन्त तरकस धनुष और कवच माँगा।

व्याख्या : जब तक विचार करता था तब तक सविषाद था। अब निश्चय पर पहुँच गया। अतः कहते हैं कि निषादपति विषाद से रहित हुए। इतना ही नहीं अपने जाति भाइयों का उत्साह भी अपने मरण को मङ्गलमय वर्णन करके बढ़ाया और उस उत्साह को कार्य में परिणत करने के लिए पहिले स्वयं युद्ध के लिए तैयार होने लगा। इष्टदेव रामजी का स्मरण करके तरकस धनुष और कवच को जल्दी से लाने के लिए आज्ञा दी। जल्दी इसलिए है कि भरतजी की सेना आगे बढ़ती चली आती है।

बेगहु भाइहु सजहु सँजोऊ। सुनि रजाइ कदराइ न कोऊ॥
भलेहि नाथ सब कहहिं सहरषा। एकहिं एक बढ़ावइ करषा॥१॥

अर्थ : भाइयो ! जल्दी करो सब तैयारी कर लो। मेरी आज्ञा को सुनकर कोई साहस न छोड़ो। सब हर्ष के साथ कहने लगे कि : नाथ ! बहुत अच्छा और वे आपस में एक दूसरे से चढ़ा ऊपरी करने लगे।

व्याख्या : निषादराज बोले कि मैं तैयार हो रहा हूँ। तुम लोग जल्दी से तैयार हो जाओ। तुम लोग भाई हो। होहिं कुठाहर बंधु सहाए। तैयारी में कसर न रहे। इसलिए सजहु कह रहे हैं। मैंने मरने का ठाट ठटने की आज्ञा दे दी है। कादर मरने से डरते हैं। वे ऐसी आज्ञा सुनकर साहस छोड़ देते हैं। तुम लोग वीर हो। तुम में से कोई भी कादर की भाँति आचरण न करे।

निषादराज ने सबका उछाह बढ़ाया था। इसलिए सभी हर्ष के साथ आज्ञा को शिरोधार्य कर रहे हैं। सब गुह को राजा मानते हैं। अतः नाथ सम्बोधन दे रहे हैं। एक दूसरे से अमर्ष बढ़ाते हैं। जिसमें युद्ध करने में कसर न लगावें। आपस में चढ़ा ऊपरी है कि देखें कौन कैसा पुरुषार्थ करता है।

चले निषाद जोहारि जोहारी। सूर सकल रन रूचै रारी॥
सुमिरि राम पद पंकज पनही। भाथी बाँधि चढ़ाइन्हि धनही॥२॥

अर्थ : निषाद जोहारकर करके चले। सब शूर हैं। युद्धप्रिय हैं। रामजी की जूतियों का स्मरण करके तरकस बाँधा और धनुहियों को चढ़ाया।

व्याख्या : रजायसु हुई : बेगहु भाइहु। अतः जोहारि जोहारि चले। क्योंकि सबके सब शूर हैं। रन रूचै रारी। भावार्थ यह कि संग्राम में झगड़ा रुचता है। घर में नहीं। निषाद की जाति को जाति ही वीर थी।

यहाँ पर कवि ग्राम्य शब्दों का प्रयोग कर रहे हैं। ये सब सरकारी जूतियों के उपासक हैं। अतः इष्ट स्मरणपूर्वक भाथी बाँधा। भाथी तरकस को कहते हैं। मालिक रामजी का स्मरण करता है। उसके सेवक रामजी के जूते का स्मरण करते हैं। दासानुदास हैं। तत्पश्चात् धनुही को चढ़ाया। धनुही छोटे धनुष को कहते हैं।

अँगरी पहिरी कूँड सिर धरहीं। फरसा बाँस सेल सम करहीं॥
एक कुसल अति ओड़न खाँड़े। कूदहिं गगन मनहु छिति छाँड़े॥३॥

अर्थ : कवच पहनकर सिर पर कटोरा बाँधते हैं और परशु बाँस तथा बरछियों को सुधारते हैं। कोई कोई तलवार ढाल के बड़े पण्डित हैं। वे मानो पृथ्वी छोड़कर आकाश में कूद रहे हैं।

व्याख्या : अँगरी लोहे की अँगरखी अङ्गरक्षा के लिए पहन रहे हैं। सिर पर टोप के स्थान पर कटोरा आदि बरतन बाँध रहे हैं। भाथी और धनुष बाँधा था।

दूर से लड़ाई के लिए फरसा, बाँस और बरछा निकट से लड़ने के लिए सीधा कर रहे हैं। ये दूसरे प्रकार के वीर हैं।

तीसरे प्रकार के तलवार बहादुर वीर हैं। बड़े पैंतरेबाज हैं। ओड़न ढाल स्थानीय वस्तु को कहते हैं। उनका पैंतरा अभी से आरम्भ हो गया। ऐसे उछल रहे हैं मानो धरती पर उनका पैर ही नहीं पड़ रहा है।

निज निज साजु समाजु बनाई। गुह राउतहि जोहारे जाई ॥
देखि सुभट सब लायक जानें। लै लै नाम सकल सनमानें ॥४॥

अर्थ : अपना अपना साज समाज तैयार करके उन्होंने अपने स्वामी गुह को जाकर प्रणाम किया। देखकर सुभटों को सब योग्य जाना और नाम ले लेकर सबका सम्मान किया।

व्याख्या : तीनों प्रकार के वीरों ने अपना अपना साज समाज तैयार करके अपने मालिक गुह को जाकर प्रणाम किया। यहीं से सब तैयारी के लिए चले थे। यथा : चले निषाद जोहारि जोहारी। और तैयार होकर यहीं लौटे और निषादराज का फिर से जोहार किया कि हम लोग तैयार होकर आगये।

गुह राउत ने जब सुभटों को देखा तो बड़ा भरोसा हुआ कि ये सब लायक हैं। भली प्रकार सामना करने में समर्थ हैं। गुह राउत सबका नाम जानते हैं। कोई सेना तो है नहीं जो सबका नाम याद न रहे। यह तो टोली है। अपने ही भाई बन्धु सब हैं। अतः एक एक का नाम लेकर सम्मान कर रहे हैं। किसी से कहते हैं कि तुम्हारा बड़ा भरोसा मुझे है। किसी से कहते हैं कि तुम मेरी भुजा हो।

दो. भाइहु लावहु धोख जनि, आजु काज बड़ मोहि।
सुनि सरोष बोले सुभट, बीरु अधीरु न होंहि ॥१९१॥

अर्थ : भाइयो ! कुछ भी कसर न उठा रखना। आज मेरा बड़ा भारी काम आ पड़ा है। सुनकर सब सुभट सरोष होकर बोले कि वीर धैर्य नहीं छोड़ते।

व्याख्या : निषादराज कहते हैं कि तुम सब भाई हो। नौकर नहीं हो। अतः लड़ने में कोई कसर न पड़ने पावे। बड़ा काम मेरा तो आज ही पड़ा है। स्वामी का कार्य होने से मेरा बड़ा भारी काम है। दूसरी बात यह कि आज बड़ा भारी लाभ मेरे सामने है जो कि तुम्हारी सहायता से ही सिद्ध हो सकता है और वह यह है : जस धवलिहौं भुवन दस चारी। मेरे यश से चौदह भुवन प्रकाशित होनेवाला है और कीर्तिर्यस्य स जीवति। इतना सुनते ही वीरों को जोश आगया। कहने लगे कि वह वीर ही नहीं जो समय पर अधीर हो जाय। यह बात धनुर्धरों ने कही।

राम प्रताप नाथ बल तोरें। करहिं कटकु बिनु भट बिनु घोरें ॥
जीवत पाउ न पाछे धरहीं। रुंड मुंडमय मेदिनि करहीं ॥१॥

अर्थ : हे नाथ ! रामजी के प्रताप से और आपके बल से सेना को बिना वीर और बिना घोड़े का कर देंगे। जीते जी पीछे पैर न रक्खेंगे। पृथ्वी को रुण्ड मुण्ड से पाट देंगे।

व्याख्या : तब फरसा बाँस सेल सम करनेवाले बोले कि प्रताप रामजी का और बल आपका है, मेरा कुछ नहीं। सो उस प्रताप और बल की सहायता से सेना को बिना भट का और बिना घोड़े का कर दूँगा। भाव यह कि ऐसा चोट करूँगा यदि सवार बचे तो घोड़ा न बचेगा और यदि घोड़ा बचे तो सवार न बचेगा। मेरी चोट खाली जानेवाली नहीं है। भरत की सेना [illegible]ह विशेषता है कि उसमें सवार हैं। हमलोगों के पास घोड़े नहीं हैं। इसलिए हम [illegible]ग ऐसा युद्ध करेंगे कि घोड़ा बचे तो सवार नहीं और सवार बचा तो घोड़ा नहीं।

तब ओडन खाँडे में कुशल तलवार बहादुर बोले कि हमलोग मरने पर चाहे जिस बल गिरें पर जीते जी पैर पीछे न रक्खेंगे। जिसमें कदराई का प्रश्न ही न उठने पावे और यों ही न मर जायेंगे। जिसे एक हाथ मारेंगे वे दो टुकड़े हो जायेंगे। इस भाँति पृथ्वी को रुण्ड मुण्डमय बना देंगे। मुण्ड सिर को और रुण्ड धड़ को कहते हैं।

दीख निषादनाथ भल टोलू। कहेउ बजाउ जुझाऊ ढोलू ॥
एतना कहत छींक भइ बाएँ। कहेउ सगुनिअन्ह खेत सुहाएँ ॥२॥

अर्थ : निषादनाथ ने देखा कि टोली तो अच्छी है। बोले कि जुझाऊ ढोल बजने दो इतना कहते ही बायीं ओर छींक हुई। शकुन विचार करनेवालों ने कहा कि रणक्षेत्र सुन्दर होगा अपने पक्ष की जीत होगी।

व्याख्या : लोगों की बातें सुनकर निषादनाथ ने सुभटों की ओर देखा और मन में कहा कि टोली तो अच्छी है। वीरों के उत्साह वर्धन के लिए कहा कि जुझाऊ ढोल बजने दो। जुझाऊ बाजा तो है नहीं कि मारूराग बज सके। अतः जुझाऊ ढोल बजाने की आज्ञा दी। इससे भरतजी की सेना को भी सूचना देना है कि निषाद लोग युद्ध के लिए प्रस्तुत हैं। निषादराज के पास छोटे परिमाण में सब कुछ था।

निषादराज के आज्ञा देते ही बायें ओर छींक हुई। प्राचीन काल में सेना के साथ सगुन विचारनेवाले भी रहते थे। उन्होंने कहा विजय होगी पर थे सब नौजवान बिना बिचारे ही बोल दिया कि जिसमें टोली का जी न टूटे। यात्रा में छींक अच्छी नहीं मानी जाती। अथवा उन सबों ने यह अर्थ लगाया कि जो हम लोगों के बाएँ हैं, उन्हें विघ्न होगा।

बूढ़ एक कह सगुन बिचारी। भरतहि मिलिअ न होइहि रारी ॥
रामहि भरतु मनावन जाँहीं। सगुन कहै अस बिग्रहु नाँहीं ॥३॥

अर्थ : एक बूढ़े ने सगुन विचारकर कहा कि भरतजी से मिलिये झगडे की

बात नहीं है। भरत रामजी को मनाने जाते हैं। सगुन कह रहा है कि झगड़ा नहीं है।

व्याख्या : नौजवान सगुनियों ने विचार नहीं किया। यथा : कह्यो सगुनिअन्ह खेत सोहाए। अवसरोपयुक्त बात बोल उठे। पर उनमें एक बूढ़ा था उसने सगुन पर विचार किया कि जुझाऊ ढोल बजने की आज्ञा देते ही छींक हुई तो इसका तात्पर्य यह कि जुझाऊ ढोल बजने की आज्ञा न दो। अतएव कहता है कि सगुन कह रहा है कि झगड़े की बात नहीं है आप भरतजी से मिल लीजिये।

जब सगुन कहता है कि झगड़ा नहीं है तब निश्चय है कि भरत लड़ने नहीं जा रहे हैं। क्योंकि सगुन जुझाऊ बाजा बन्द करने को कह रहा है। यदि लड़ने नहीं जा रहे हैं तो सिवा मनाने के लिए जाने के दूसरी बात हो क्या सकती है? सेना मन्त्री सब अगवानी के लिए जा रहे हैं।

सुनि गुह कहइ नीक कह बूढ़ा। सहसा करि पछिताहिं विमूढ़ा ॥
भरत सुभाउ सीलु बिनु बूझे। बड़ि हित हानि जानि बिनु जूझे ॥४॥

अर्थ : यह बात सुनकर निषादराज गुह ने कहा कि वुड्ढा अच्छी बात कह रहा है। बिना विचारे काम करके विमूढ़ पछताते हैं। भरत का स्वभाव और शील बिना समझे अनजान में लड़ाई कर बैठने में बहुत बड़े कल्याण की हानि होगी।

व्याख्या : इस समय बड़ा भारी अनर्थ हो चुका था। सगुन के सावधान कर देने से बड़ा भारी अकल्याण रुक गया। सगुन पर ध्यान न देना अभिमान सूचक है। यथा : अति गर्व गनै न सगुन असगुन स्रवहिं आयुध हाथ ते। निषादराज विचार शील थे। बूढ़े की राय पर विचार किया कि मैंने तो जूझने में ही कल्याण देखा था पर यदि भरत सचमुच मनाने जा रहे हों तो उनके साथ जूझना रामजी का सद्यः विरोध हुआ। रामजी के लिए जूझने में जितना लाभ था उतनी ही हानि राम विरोधी होकर जूझने में है। लोक परलोक दोनों बिगड़ेगा। संसार में अपकीर्ति होगी कि बड़ा बेवकूफ था। बिना समझे ही लड़ गया। इससे यह लोक बिगड़ेगा और परलोक भागवत के विरोध से नष्ट हो जायगा।

दो. गहहु घाट भट समिटि सब, लेउँ मरम मिलि जाइ।
बूझि मित्र अरि मध्य गति, तस तब करिहउँ आइ ॥१९२॥

अर्थ : सब वीर लोग इकट्ठे होकर घाट पर कब्जा किये रहो। मैं मिलकर भेद लेने जाता हूँ। शत्रु मित्र और उदासीन भाव का पता लगाकर फिर जैसा उचित होगा वैसा करूँगा।

व्याख्या : निषादराज अपने वीरों को आज्ञा दे रहे हैं कि सब लोग सिमिट-कर घाट पर कब्जा जमाये रहो बाजा बजते क्या देर लगेगी। मैं जाकर भरतजी से मिलकर पता लगाये लेता हूँ कि उनका भाव क्या है? रामजी का विरोध इनके

हृदय में है कि मित्र भाव है कि उपेक्षा है। यदि मित्र होंगे तो सेवा करूँगा। विरोधी होंगे तो युद्ध करूँगा। यदि उनकी उपेक्षा दृष्टि होगी तो मैं भी उदासीन रहूँगा।

लखब सनेहु सुभाय सुहाएँ। बैरु प्रीति नहिं दुरइ दुराएँ ॥
अस कहि भेंट सजोवन लागे। कंद मूल फल खग मृग माँगे ॥१॥

अर्थ : सुन्दर स्वभाव से प्रेम पहिचाना जायगा। वैर और प्रीति छिपाने से नहीं छिपती। इतना कहकर भेंट की तैयारी करने लगे। कन्द मूल फल पक्षी और मृग मँगाये।

व्याख्या : मित्र अरि और मध्यगति के समझने में कोई कठिनता नहीं है। सुन्दर स्वभाव से ही प्रेम की परख हो जाती है। प्रेमी का ही सुन्दर स्वभाव सम्भव है। फिर बैर और प्रीति ऐसे प्रबल भाव हैं जो यत्नपूर्वक छिपाने से भी नहीं छिपते। जो स्वभाव और चेष्टा से मनोगत भाव नहीं लख सकता वह भेंट के पसन्द से क्या लखेगा ? रिक्तपाणिर्न पश्येत राजानं भिषजं गुरुम्। अतः भेंट की व्यवस्था करने लगे।

इँधन पात किरात मिताई के अनुसार भेंट की तैयारी होने लगी। यद्यपि मङ्गल कार्य में जलभाजन में रखकर ही मछलियाँ लायी जाती हैं और केलि मृग पक्षी भी भेंट में जाते हैं पर यहाँ ऐसा नहीं मालूम होता। सेना में सब प्रकार के लोग होते हैं। राजसिक और तामसिक वृत्ति का तो यह आहार ही है। अतः उनके लिए भी शास्त्र में देव पितृ अर्चन पूर्वक ही खाने का विधान है। निषादराज सात्त्विकों के सत्कार के लिए कन्द मूल फल, राजसिक के लिए खग मृग इकट्ठा कर रहे हैं।

मीन पीन पाठीन पुराने। भरि भरि भार कहारन्ह आने ॥
मिलन साजु सजि मिलन सिधाए। मंगल मूल सगुन सुभ पाए ॥२॥

अर्थ : कहाँर लोग पुरानी मोटी मोटी पहिना मछलियों के भार भरकर लाये। मिलने का सामान सजकर मिलने चले तो मङ्गल मूल शुभ शकुन मिले।

व्याख्या : शास्त्रों में मछली खाने की बड़ी निन्दा है। मत्स्यादः सर्वमांसादः। जिसने मछली खायी वह सब मांस खा चुका। अतः मछली घोर तामसिकों का आहार है। अतः उनके लिए मछलियाँ आयीं। यद्यपि कहाँर निषाद की अपेक्षा उच्च जाति के हैं पर बहँगी ढोना उन्हीं का काम है। यथा : कोटिन्ह काँवर चले कँहारा।

निषादराज ने मिलने का साज सजा अर्थात् तर्कस धनुष और सन्नाह कवच उतार दिया। और स्वजात्यनुकूल वस्त्र भूषादि से सुसज्जित होकर तथा उपहारादि लेकर मिलने गया। लड़ने की तैयारी के समय छींक बायें हुई। पर मिलने चले तो मङ्गल मूल शुभ शकुन हुए। दधि दुर्वा रोचन फल फूला। नव तुलसी दल मंगल मूला। ये ही मङ्गलमूल शकुन हैं। इन्हीं का मिलना मङ्गलमूल शुभ शकुनों का मिलना है।

देखि दूरि ते कहि निज नामू । कीन्ह मुनीसहि दंड प्रनामू ॥
जानि रामप्रिय दीन्हि असीसा । भरतहि कहेउ बुझाइ मुनीसा ॥३॥

अर्थ : दूर से ही मुनिराज को देखकर अपना नाम कहकर दण्डवत् किया। राम का प्यारा जानकर आशीर्वाद दिया और मुनिराज ने भरत को समझाकर कहा।

व्याख्या : पहिले ही मुनिराज के दर्शन हुए। यथा : अरुंधती अरु अगिन समाजू। रथ चढ़ि चलत भये मुनिराजू। सो निषादराज ने उनसे दूर से ही साष्टाङ्ग प्रणाम किया। जिसमें छाया न छू जाय। यथा : जासु छांह छुइ लेइय सींचा। अपना नाम परिचय के लिए कहा। अर्थात् नामग्रहण पूर्वक प्रणाम किया।

गुरुजी ने नाम सुना था कि निषादराज रामजी का प्रेमी है और सरकार भी उस पर प्रेम करते हैं। अतः मुनिराज ने आशीर्वाद दिया। मुनिराज के रथ के बाद ही भरतजी का रथ है। माताजी की आज्ञा से जब रथ पर सवार हुए तो रथ अन्य रथियों के पीछे नहीं रह सकता। सो गुरुजी ने कहा :

यह निषाद पति सुहृद अति, रघुपति सखा सुजान।
निरखि सेन संकित सजग, कीजिय याको मान॥

राम सखा सुनि स्यंदनु त्यागा । चले उतरि उमगत अनुरागा ॥
गाउँ जाति गुह नाम सुनाई । कीन्ह जोहारू माथ महि लाई ॥४॥

अर्थ : यह सुनते ही कि यह रामजी का सखा है। भरतजी रथ से उतर पड़े और अनुराग से उमगते हुए उसकी ओर चले। गुह ने गाँव जाति और नाम सुनाकर पृथ्वी पर सिर रखकर जोहार किया।

व्याख्या : राम सखा से भाव यह कि सरकार की बराबरी का दर्जा है। अतः भरतजी ने उसके आदर के लिए रथ का त्याग किया और पैदल चल पड़े। क्योंकि निषादराज दूर पर थे। यथा : देखि दूरि ते कहि निज नामू। कीन्ह मुनीसहि दंड प्रनामू। चलते समय हृदय में अनुराग उमगा पड़ता था।

अपनी ओर भरतजी को बढ़ते देखकर निषादराज ने पहिले ही अपने निवासस्थान का परिचय दिया। जिसमें समझ जाँय कि यह निषादों के गाँव का रहनेवाला निषाद है। अस्पृश्य है। फिर भी भरतजी नहीं रुके। तब स्पष्ट रूप से जाति की घोषणा की। तत्पश्चात् नाम भी सुना दिया। उसे भ्रम हुआ कि मुनीशजी से जो मैंने कहा है उसे शायद भरतजी नहीं सुन सके। इसलिए उसने इस बार जोर से कह सुनाया। पर भरतजी आगे बढ़ते ही गये। तब पृथ्वी पर सिर रखकर जोहार करता है। जिसमें स्पष्ट हो जाय कि यह अछूत है। मुनिजी को दण्डवत् किया। भरतजी को जोहार करता है। राजा लोगों को दोनों हाथ उठाकर प्रणाम किया जाता है। जिसे जोहार कहते हैं।

दो. करत दंडवत देखि तेहि, भरत लीन्ह उर लाइ ॥
मनहु लषन सन भेंट भइ, प्रेम न हृदय समाइ ॥१९३॥

अर्थ : उसे दण्डवत् करते देखकर भरतजी ने छाती से लगा लिया। मानो लक्ष्मणजी से भेंट हुई है। हृदय में प्रेम नहीं समाता था।

व्याख्या : प्रेम के उमङ्ग का अवसान तो हृदय लगाने पर ही होता है। भरतजी ने निषादराज को हृदय से लगा लिया और इतने अनुराग से गाढ़ालिङ्गन किया मानो लक्ष्मणजी से भेंट हुई हो। फिर भी हृदय में प्रेम नहीं समाता पुलक के मिससे प्रकट हो रहा है। लक्ष्मणजी पर भरतजी का साधारण प्रेम नहीं है। यथा : सोक समाजु राजु केहि लेखे। लखन रामसियपद बिनु देखे। लक्ष्मणजी सा प्रेम होने का कारण यह कि इसका भी त्याग श्रीरामप्रीत्यर्थं वैसा ही है जैसा लक्ष्मणजी का है। यथा : देव धरनि धनु धामु तुम्हारा। मैं जन नीच सहित परिवारा।

भेटत भरत ताहि अति प्रीती। लोग सिहाहिं प्रेम कै रीती ॥
धन्य धन्य धुनि मंगल मूला। सुर सराहि तेहि बरसहिं फूला ॥१॥

अर्थ : भरतजी उसे बड़े प्रेम से भेंटे। लोग ईर्ष्या करने लगे। यह प्रेम की रीति है। देवता लोग मङ्गलका मूल धन्य धन्य ध्वनि करके उसकी बड़ाई करते हैं और फूलों की वर्षा करते हैं।

व्याख्या : प्रेम वस्तु ही ऐसी है जिसमें नीच ऊँच का विचार रह नहीं सकता। प्रेम के प्रवाह में भेद बह जाता है। निषादराज ने सरकार से कहा था कि : थापिअ जनु सब लोग सिहाऊ। सो भरतलाल ने उसे स्थापन कर दिया और लोग भी इस प्रेम की रीति का डाह करने लगे कि वाह रे ! निषादराज का भाग्य।

नीचे लोग सिहाते हैं। ऊपर देवता सराहते हैं। बार बार उसे धन्य कहते हैं। देवताओं की धन्य धन्य ध्वनि मङ्गल मूल है। निषादराज साधारण धन्य नहीं हुए। देवपूजित हो गये। देवताओं ने उन पर पुष्पवर्षा की। ऐसी स्थापना हुई कि देवताओं ने फूल चढ़ाया।

लोक वेद सब भाँतिहि नींचा। जासु छाँह छुइ लेइअ सींचा ॥
तेहि भरि अंक राम लघु भ्राता। मिलत पुलक परिपूरित गाता ॥२॥

अर्थ : जो लोक में और वेद में सब भाँति नीच था। जिसकी छाया छू जाने से मार्जन का विधान है उसी से रामजी के छोटे भाई पुलकित होकर छाती से लगाकर मिल रहे हैं।

व्याख्या : लोक में नीच। यथा : हम जड़ जीव जीवगन घाती। कुटिल कुचाली कुमति कुजाती। पाप करत निसि बासर जाहीं। नहिं पट कटि नहिं पेट अघाहीं। यह हमारि अति बड़ि सेवकाई। लेहिं न वासन बसन चोराई। इस भाँति लोक में नीच हुआ। य इह कपूयाचरणा अभ्याशो हयत्ते कपूयां योनिमापद्येरन्

श्वयोनिं सूकरयोनिं वा चाण्डालयोनिं वा। इस भाँति निषाद होने से वेद में भी कपूय नीच योनि कहा गया। उसकी छाया के स्पर्श से मार्जन का विधान है। उसे स्पर्श करने की कौन चलावे ?

सो रामजी के छोटे भाई उसे अङ्क भरके हृदय लगा रहे हैं और प्रेम से ऐसे परिपूर्ण हैं कि सर्वाङ्ग में रोमाञ्च हो रहा है। रामजी के छोटे भाई कहने का भाव यह है कि जिसके विषय में स्वयं वसिष्ठजी कहते हैं कि समुझव कहव करव तुम्ह जोई। धर्मसारु जग होइहि सोई।

राम राम कहि जे जमुहाहीं। तिन्हहिं न पाप पुंज समुहाहीं ॥
यह तौ राम लाइ उर लीन्हा। कुल समेत जग पावन कीन्हा ॥३॥

अर्थ : जो राम राम कहकर जँभाई लेते हैं पापों के समूह उनका सामना नहीं करते। इसे तो रामजी ने हृदय से लगा लिया और कुल के सहित जगत में पवित्र कर दिया।

व्याख्या : जो राम कहकर जँभाई लेते हैं : भाव यह कि जो आलस्य से भी रामनामोच्चारण करते हैं उनका सामना करने का सामर्थ्य पापपुञ्ज को भी नहीं। क्योंकि उनका सामना पड़ते ही नष्ट हो जाते हैं। नाम्नोऽस्ति यावती शक्तिः पापनिर्दहने हरेः। तावत् कर्तुं न शक्नोति पातकं पातकीजनः। आलस्य से जपना। यथा : भाव कुभाव अनख आलसहूँ। राम जपत मंगल दिसि दसहूँ।

भरतजी के हृदय लगाने से ही रामजी का हृदय लगाना हो गया। यथा : तुम्ह जानहु कपि मोर सुभाऊ। भरतहि मोहि कछु अंतर काऊ। पहिले ही यदि रामजी हृदय लगाये होते तो भरतजी के हृदय लगाने पर देवताओं की पुष्प वर्षा इस समय न होकर उस समय होती सो वहाँ मिलना भी नहीं कहते। यथा : लिए फल मूल भेंट भरि भारा। मिलन चलेउ हिय हरखु अपारा। करि दंडवत भेट धरि आगे। प्रभुहि बिलोकत अति अनुरागे। देवता लोग कहते हैं कि अब यह कुल समेत संसार में पवित्र हो गया। भरतजी ने जब इसे हृदय से लगा लिया तो रामजी लगा चुके। लोक में यह जनश्रुति है कि रामजी के जल ग्रहण कर लेने से मल्लाहों की गिनती सत्शूद्रों में हो गयी। इनका पानी चलने लगा।

करमनास जलु सुरसरि परई। तेहि को कहहु सीस नहिं धरई ॥
उलटा नामु जपत जग जाना। बालमीकि भए ब्रह्म समाना ॥४॥

अर्थ : कर्मनाशा का जल गङ्गाजी में गिरता है। तो उसे कौन सिर पर नहीं चढ़ाता। संसार जानता है कि उलटा नाम जपते-जपते वाल्मीकि जी ब्रह्म के तुल्य हो गये।

व्याख्या : जनश्रुति है कि कर्मनाशा का जल स्पर्श करने से कर्म का नाश हो जाता है। इसलिए कर्मनाशा का जल कोई छूता नहीं। परन्तु कर्मनाशा जाकर गङ्गाजी में मिल गयी है। उसके जल के अनवरत गङ्गा में गिरते रहने पर भी

गङ्गाजल में अशुचिता नहीं आती। उसे सभी पापनाश के लिए सिर पर धारण करता है। अर्थात् जिसे सरकार ने अपना लिया वही पूज्य हो जाता है। उसके जाति आदि का विचार नहीं किया जाता। पर यह निश्चय हो जाना चाहिए कि रामजी ने अपना लिया। यथा :

जाको हरि दृढ़ करि अंग करयौ।
सोई सुसील पुनीत वेद विद विद्या गुननि भरयौ॥
उतपति पांडु सुतन की करनी सुनि सत पंथ डरयौ।
ते त्रैलोक्य पूज्य पावन जस सुनि सुनि लोक तरयौ॥
जो निज धर्म वेद बोधित सो करत न कछु बिसरयौ।
बिनु अवगुन कृकलास कूप मज्जित कर गहि उघरयौ॥
ब्रह्म विसिख ब्रह्माण्ड दहन क्षम गर्भ न नृपति जरयौ।
अजर अमर कुलिसहु नाहिन वध सो पुनि फेन मरयौ॥
विप्र अजामिल अरु सुरपति ते कहा जो नहिं बिगरयौ।
उनको कियो सहाय बहुत उर को संताप हरयौ॥

वाल्मीकिजी का उलटा नाम जप करना जगत् प्रसिद्ध है। उलटा जप का फल भी उलटा होना चाहिए। नाम के संसर्ग से उलटा जप भी महा फलदायक हुआ। वाल्मीकिजी ब्रह्म के समान हुए और उनकी वाणी वेद के समान हुई। यथा : वेदः प्राचेतसादासीत् साक्षात्‌रामायणात्मना।

दो. स्वपच सबर खस जवन जड़, पाँवर कोल किरात।
रामु कहत पावन परम, होत भुवन बिख्यात ॥१९४॥

अर्थ : चाण्डाल खश मूर्ख यवन नीच कोल किरात आदि सभी राम नाम के कहने से पवित्र होकर संसार में विख्यात हो जाते हैं।

व्याख्या : वाल्मीकिजी उदाहरण मात्र हैं। नियम यही है कि नीच भी राम कहने से परम पवित्र और भुवन विख्यात हो जाते हैं। स्वपच यवन आदि कहने से वेदबाह्यलोग अभिप्रेत हैं। अर्थात् जो जन्म से अपावन हैं वे भी पावन हो जाते हैं और उनकी संसार में ख्याति हो जाती है। कोई उनकी जाति का परवाह नहीं करता। इस प्रकार शास्त्र और लोक दोनों से शुद्धि कही।

नहिं अचरज जुग जुग चलि आई। केहि न दीन्ह रघुबीर बड़ाई॥
राम नाम महिमा सुर कहहीं। सुनि सुनि अवध लोग सुखु लहहीं ॥१॥

अर्थ : आश्चर्य की बात नहीं है। यह प्रथा तो युग युग से चली आती है। रामजी ने किसे बड़ाई नहीं दी ? राम नाम की महिमा देवता लोग कहते थे और सुन सुनकर अवधवासी सुखी होते थे।

व्याख्या : अनहोनी बात का हो पड़ना आश्चर्य है। पहिले बड़ा संशय हुआ कि लोक वेद सब भाँति से जो नीच है उससे इस भाँति भरतजी मिलते हैं। यह

क्या बात है ? फिर उस संशय का निरसन भी स्वयं ही करते हैं कि जो बात सदा से होती चली आयी हो उसके होने में आश्चर्य नहीं है। यथा : संतत दासन्ह देहु बड़ाई। जो बड़ होत सो राम बड़ाई। सदा से ही भगवान् दासों को बड़ाई देते हैं। यह भी सरकार का अनन्य दास है। अतः उस नाते से इसे बड़ाई मिल रही है। जो जाति में बड़े कहलाते हैं उन्हें ही बड़ाई कहाँ से मिली ? जिसने उन्हें बड़ाई दी थी वही निषादराज को भी बड़ाई दे रहा है।

राम की और नाम की महिमा देवगण आकाश में वर्णन कर रहे हैं। सुर सराहि तेहि बरषहिं फूला से उपक्रम और राम नाम महिमा सुर कहहीं से उपसंहार। देवता कह रहे हैं और अवधवासी श्रवण कर रहे हैं। इससे उन्हें सुख हो रहा है। यथा : हम सम पुण्य पुंज जग थोरे। जिन्हहिं राम जानत करि मोरे। देवताओं का सङ्कल्प है कि अवधवासी सुनें। अतः सुन रहे हैं, नहीं तो आकाश में कही हुई बात पृथ्वी पर क्यों सुनाई देने लगी ?

राम सखहि मिलि भरतु सप्रेमा। पूछी कुसल सुमंगल षेमा ॥
देखि भरत कर सीलु सनेहू। भा निषाद देहि समय बिदेहू ॥२॥

अर्थ : रामजी के सखा के साथ सप्रेम मिलकर भरतजी ने कुशल मङ्गल और क्षेम पूछा। भरतजी का शील और स्नेह देखकर निषादराज उस समय देह की सुधि भूल गये।

व्याख्या : मिलन प्रसङ्ग पूरा करके फिर कथा प्रसङ्ग प्रारम्भ करते हैं। सप्रेम शब्द देहली दीपक न्याय से दोनों ओर लगेगा। अर्थात् सप्रेम मिलकर कुशलादि सप्रेम पूछा। कुशल शब्द से विघ्नराहित्य अभिप्रेत है। यथा : बूझब राउर सादर साइँ। कुसल हेतु सो भयउ गोसाइँ। मङ्गल से इष्ट प्राप्ति और षेम से इष्ट संरक्षण के विषय में प्रश्न किया। अर्थात् योगक्षेम पूछा।

निषादराज भरतजी के शील स्नेह का पता लगाने चले थे। सो उनका शील स्नेह देखकर स्तब्ध हो गये। उन्हें अपने देह की सुधि न रह गयी। शील देखा कि राम सखा सुनि स्यन्दनु त्यागा और स्नेह देखा : भरत लीन्ह उर लाइ। मनहु लखन सन भेंट भइ। प्रेम न हृदय समाइ। मन में भी यह बात न आयी थी कि भरतजी में इतना शील स्नेह होगा। अतः आश्चर्य और प्रेम में डूबाडूब होकर शरीर की सुधि भूल गया।

सकुच सनेहु मोद मन बाढ़ा। भरतहि चितवत एकटक ठाढ़ा ॥
धरि धीरज पद बंदि बहोरी। बिनय सप्रेम करत कर जोरी ॥३॥

अर्थ : मन में सङ्कोच प्रेम और आनन्द बढ़ गया और खड़ा खड़ा एकटक भरतजी को देखने लगा। धैर्य धारण करके फिर चरणों में प्रणाम किया और प्रेम के साथ हाथ जोड़कर विनय करने लगा।

व्याख्या : निषादराज को अपने पूर्वकृत सन्देह पर सङ्कोच हुआ। शील

देखकर भरतजी पर स्नेह बढ़ा और स्वभाव देखकर मन में मोद हुआ। भरतजो कुशल पूछते हैं। उसका उत्तर देना चाहिए। परन्तु निषादराज भरतजी के गुणों को देखकर स्तब्ध हैं और प्रेम के उल्लास से भरतजी को एकटक देख रहे हैं। उत्तर देते नहीं बनता।

अतः धैर्य धारण किया। पहिले प्रेम से धैर्य छूट गया था। सो मनसा : धरि धीरज, कर्मणा : पद बंदि और वचसा : वचन सप्रेम कहत कर जोरी। सप्रेम प्रेम हुआ था। यथा : सप्रेमा, पूछी कुसल सुमंगल षेमा। अतः विनय सप्रेम करत कर जोरी। यह दूसरी वन्दना उत्तर देने के समय की है।

कुसल मूल पद पंकज पेखी। मैं तिहुँ काल कुसल निज लेखी ।।
अब प्रभु परम अनुग्रह तोरें। सहित कोटि कुल मंगल मोरें ।।४।।

अर्थ : श्रीचरण ही कुशल के मूल हैं। उनका दर्शन करके मैंने तीनों काल में अपना कुशल निश्चय कर लिया। प्रभो ! अब आपकी कृपा से कोटि कुल के सहित मेरा मङ्गल है।

व्याख्या : कुशल पूछने का उत्तर निषादराज देते हैं कि अब तो मैं कुशल के मूल : जड़ तक पहुँच गया। नहीं तो : तब लगि कुसल न जीव कहँ सपनेहुँ मन बिश्राम। जब लगि भजत न राम कह सोक धाम तजि काम। पूर्व काल में कुशल था। इसलिए चरणों का दर्शन हुआ। इस समय भी कुशल है। दर्शन कर रहा हूँ और भविष्य में भी इन्हीं चरणों के प्रताप से कुशल होगा।

मङ्गल पूछने का उत्तर निषादराज देते हैं कि दर्शन के बाद जो अनुग्रह हुआ उससे करोड़ों कुल के साथ मेरा मङ्गल हुआ। मेरी पूरी जाति पावन हो गयी। यथा : कुल समेत जग पावन कीन्हा। यथा : नभ सराहि सुर बरषहिं फूला।

दो. समुझि मोरि करतूति कुल, प्रभु महिमा जिअ जोइ।
जो न भजइ रघुबीर पद, जग बिधि बंचित सोइ ।।१९५।।

अर्थ : मेरे कूल और करतूति को समझकर और प्रभु की महिमा देखकर जो रघुवीर के चरण को न भजे वह संसार में विधाता द्वारा ठगा गया।

व्याख्या : अब क्षेम का उत्तर देते हैं। कुल और करतूति दोनों मलिन हैं। यथा : जासु छाँह छुइ लेइय सींचा। हम जड़ जीव जीवगन घाती। कपटी कायर कुमति कुजाती और सरकार की महिमा का पारावार नहीं। यथा : भरत महा महिमा जल रासी। मुनि मति तीर ठाढ़ि अबलासी। इन दोनों बातों को जो देखेगा वह सब रघुवीर के पद को भजेगा। मैं भी भजूँगा। जो न भजे वह नृपशु है। मनुष्य शरीर देकर ब्रह्मदेव ने उसे ठग लिया। वह मनुष्य शरीर में पशु ही है। आहार निद्रा भय मैथुन में लगा है। उसे कुछ भी विवेक नहीं है। रघुवीर पद भजने से ही क्षेम होता है। यथा : राम बिमुख संपति प्रभुताई। जाइ रही पाई बिनु पाई।

कपटीं कायरु कुमति कुजाती। लोक बेद बाहेर सब भाँती ॥
राम कीन्ह आपन जबहीं ते। भयेउँ भुवन भूषन तबहीं ते ॥१॥

अर्थ : कपटी कादर कुबुद्धि और कुजाति हूँ। सब भाँति लोक वेद से बाहर हूँ। पर जब से रामजी ने मुझे अपना कर लिया तभी से मैं संसार का भूषण हो गया।

व्याख्या : निषादराज कहते हैं न मेरा स्वभाव अच्छा, न हृदय अच्छा, न बुद्धि अच्छी और न जाति अच्छी, स्वभाव से कपटी, हृदय से कादर, बुद्धि तामसी और जाति से निषाद। मेरे स्वभाव में कपट है। उसका आरोप भरतजी ऐसे महासाधु पर किया। यथा : कारन कवन भरत बन जाँहीं। है कछु कपटभाव मन माँहीं। हृदय मेरा कादर है। युद्ध के लिए तैयार भी हुआ तो जाति भाइयों के भरोसे। फिर भी अधीर हो उठा। जाति भाइयों ने कहा : वीर अधीर न होहि। मैंने अधर्म को धर्म माना। भरतजी ऐसे महा भागवत से युद्ध करने का संकल्प किया। इससे मेरी बुद्धि तामसी। अधर्मं धर्ममिति या मन्यते तमसावृता। सर्वार्थान् विपरी-तांश्च बुद्धिः सा पार्थ तामसी। मेरी जाति पापमय है। राजा वेणु की जंघा के मन्थन से जो पाप पुरुष उत्पन्न हुआ वही हमारा मूल पुरुष है। उसी से निषाद जाति हुई। कहा भी है कि अधम को वेनु समान।

मुझे न लौकिक कर्म : समाज प्रवेश का अधिकार और न वैदिक कर्म : यज्ञादि साधनों का अधिकार। अतः हम लोक और वेद दोनों से बहिष्कृत हैं। कोई मुझसे सम्पर्क रखना नहीं चाहता। परन्तु जब से रामजी ने मुझे अपना लिया मेरे : देव धरनि धन धाम तुम्हारा। मैं जन नींच परिवारा। कहकर आत्मनिवेदन करने पर सरकार ने : कहेउ सत्य सबु सखा सुजाना। कहकर स्वीकार कर लिया। इतना ही नहीं आतिथ्य भी स्वीकार किया। तब से तो मैं भुवन का भूषण हो गया। सब लोग मेरी ऐसी चाह करने लगे जैसी आभूषण की चाह करते हैं। अर्थात् अब मेरे साथ से लोग अपने को कृतकृत्य मानने लगे।

देखि प्रीति सुनि बिनय सुहाई। मिलेउ बहोरि भरत लघु भाई ॥
कहि निषाद निज नामु सुबानी। सादर सकल जोहारी रानी ॥२॥

अर्थ : प्रीति देखकर और सुन्दर विनय सुनकर फिर भरतजी के छोटे भाई मिले। मीठी वाणी से अपना नाम ले लेकर उसने सब रानियों का आदर से जोहार किया।

व्याख्या : भरतजी के छोटे भाई शत्रुघ्नजी तत्पश्चात् मिले। यहाँ बहोरि शब्द तत्पश्चात् के अर्थ में आया है। भरतजी के मिलने के बाद इन्हें कुछ देखने सुनने की आवश्यकता नहीं थी। पर भरतजी तो साक्षात् गुरु आज्ञा से मिले। शत्रुघ्नजी को कोई ऐसी आज्ञा नहीं थी। अतः शत्रुघ्नजी को देखने सुनने की आवश्यकता पड़ी। उन्होंने निषादराज की प्रीति आँखों देखा। यथा : सकुच सनेह

मोद मन बाढ़ा। भरतहि चितवत एकटक ठाढ़ा। और सुन्दर विनय जो ऊपर लिखी गयी हैं कानों से सुना। अतः उसे आदर का पात्र जानकर उससे मिले।

तत्पश्चात् जिस भाँति मुनिजी को दण्डवत् दूर से अपना नाम सुनाकर किया था उसी भाँति सुन्दर वाणी से अपना नाम सुना सुनाकर सब रानियों का आदर से जोहार किया। जोहार : कर्मणा। सादर : मनसा। निज नाम सुबानी : वचसा।

जानि लखन सम देहिं असीसा। जिअहु सुखी सय लाख बरीसा॥
निरखि निषाद नगर नर नारी। भए सुखी जनु लखनु निहारी॥३॥

अर्थ : लक्ष्मण के समान जानकर रानियाँ आशीर्वाद दे रही हैं कि तुम सौ लाख बरस तक जीओ और सुखी रहो। निषादराज को देखकर नगर नर नारी ऐसे सुखी हुए मानो लक्ष्मण को देख पाया हो।

व्याख्या : संसार रानियों को जोहार करता है। पर रानियाँ सबको आशीर्वाद इस भाँति देती नहीं फिरतीं। अपने अति प्यारे पुत्रादि को ही आशीर्वाद देती हैं। पर निषादराज को सब ओर से आशीर्वाद इस भाँति दे रही हैं जैसे लक्ष्मणजी के प्रणाम करने पर माताएँ जिन शब्दों में आशीर्वाद देती थीं। सुखी होने का आशीर्वाद देती थीं और दीर्घायु का आशीर्वाद देती थीं। सौ लाख वर्ष यहाँ चिरकाल का बोधक है अथवा कीर्तियुक्त जीवन व्यतीत करने का आशीर्वाद देती थीं। यथा : कीर्तियस्य स जीवति।

नगर नर नारी ने भी वैसा ही मान लिया। क्योंकि भरतजी ने उसी भाव से उसका सत्कार किया था। लक्ष्मणजी : पुरजन प्रिय पितु मातु दुलारे थे। अतः प्रिय के दर्शन से जैसे सुखी होते थे वैसे हुए। इसका आदर भरतजी माताओं और प्रजावर्ग की ओर से लक्ष्मणजी का सा हो रहा है। क्योंकि इसकी भक्ति उसी प्रकार की है। यह भी लक्ष्मणजी के समान रामजी के लिए प्राण निछावर करने को प्रस्तुत हैं।

कहहिं लहेउ एहि जीवन लाहू। भेटेउ रामभाइ भरि बाहू॥
सुनि निषादु निज भाग बड़ाई। प्रमुदित मन लै चलेउ लेवाई॥४॥

अर्थ : कहने लगे कि जीने का लाभ इसने पाया। रामजी के भाई ने इसे भुजा भरकर भेंटा। निषादराज अपने भाग्य की बड़ाई सुनकर प्रसन्नचित्त होकर सबको लिवा ले चला।

व्याख्या : सब कहने लगे कि इसने जीने का लाभ प्राप्त कर लिया। क्योंकि रामजी के भाई इससे भुजा पसारकर मिले। यदि रामभद्र पाठ माना जाय तो अर्थ करना होगा कि रामजी ने इसको परिष्वङ्ग दिया : रामभद्र का प्रयोग रामजी के लिए कवि ने कहीं किया नहीं। लक्ष्मणजी ने जीवन लाभ पाया है। यथा : जीवन लाहु लखन भल पावा। सब तजि राम चरन मन लावा। भरतजी लक्ष्मण के समान

मानकर मिले। अतः सब इसे लक्ष्मण के समान मान रहे हैं। इस प्रकार का मतैक्य अयोध्या में चलता है।

अयोध्यावासियों के मुख से अपनी बड़ाई सुनकर निषादराज प्रमुदित हैं। क्योंकि अयोध्यावासी सरकार को अति प्रिय हैं। यथा : अति प्रिय मोहि इहाँ के बासी। जब रामजी के प्रिय किसी के भाग्य की बड़ाई करें तभी उसे भाग्यवान् समझना चाहिए। सर्व साधारण की बड़ाई का कोई मूल्य नहीं है। भलो कहे बिनु जाने ही बिनु जाने अपवाद। सो नर गादुर जानि जिअ करिअ न हरख बिषाद।

दो. सनकारे सेवक सकल, चले स्वामि रुख पाइ।
घर तरु तर सर बाग बन, बास बनाएन्हि जाइ ॥१९६॥

अर्थ : सब सेवकों को इशारा किया। वे स्वामी का रुख पाकर चले। उन्होंने घरों में वृक्षों के नीचे तालाबों पर बगीचों और जंगलों में सबके ठहरने के लिए डेरे सँवारे।

व्याख्या : निषादराज ने कहा था : देखि मित्र अरि मध्यगति तब तस करिहौं आइ। सो सबको लिवाकर निषादराज आगे आगे आ रहे हैं। इससे मित्र होना स्पष्ट हो गया और यह भी स्पष्ट हो गया कि निषादराज इनका आतिथ्य सत्कार करेंगे। अब इशारा पाकर उनके रुख से समझ गये कि टिकाने का बन्दोबस्त होना चाहिए। अतः घाट को छोड़ा और टिकाने की व्यवस्था में लग गये। सेना बड़ी है। सबके टिकाने का काम साधारण नहीं है। अतः प्रधान लोगों के लिए घर में दूसरों को गाँव में औरों को पेड़ तले सैनिकों को ग्राम के बाहर सर बाग वन में डेरे सँवारे।

सृंगबेरपुर भरत दीख जब। भे सनेह बस अंग सिथिल तब ॥
सोहत दिए निषादहिं लागू। जनु धनु धरे बिनय अनुरागू ॥१॥

अर्थ : जब भरतजी ने शृङ्गवेरपुर को देखा तब प्रेमवश अङ्ग ढीले पड़ गये। निषादराज को टेके हुए ऐसे शोभित हैं मानो विनय और अनुराग ने धनुष धारण कर रक्खा हो।

व्याख्या : सरकार ने जब से अयोध्या से प्रस्थान किया तब से शृङ्गवेरपुर में ही फल मूल भोजन किया। यहीं सोये। यहीं जटा बनायी। यहीं से वन चले। यथा : सो जामिनि सिंगरौर गँवाई। अतः शृङ्गवेरपुर के देखने से सरकार की स्मृति अति अधिक रूप में हुई। स्नेह के वश हो गये। अपने वश में नहीं रह गये। अतः अङ्ग ढीलें पड़ गये।

ऐसो शिथिलता हुई कि सहारा लेने की आवश्यकता हुई तो निषादराज का सहारा लिया। उसके हाथ में हाथ दिये चले जा रहे हैं। भरतजी मानो अनुराग की मूर्ति हैं और निषादराज इस समय विनय की मूर्ति हो गये। हाथ से हाथ मिलने की उपमा आकृति साम्य से धनुष के साथ दिया। विनय अनुराग का धनुष धारण

करना उनके उस समय प्रबल होने का द्योतक है। यहाँ भरतजी की उपमा अनुराग से और निषाद की उपमा विनय से दिया। तनु धरे पाठ मानने से यह अर्थ करना पड़ेगा कि मानो विनय और अनुराग ने शरीर धारण कर लिया है।

एहि बिधि भरत सेनु सबु संगा। दीख जाइ जग पावनि गंगा ॥
रामघाट कहँ कीन्ह प्रनामू। भा मनु मगनु मिले जनु रामू ॥२॥

अर्थ : इस विधि से भरत ने सेना के साथ जाकर जगत् को पवित्र करनेवाली गङ्गाजी का दर्शन किया। रामघाट को प्रणाम किया। मन ऐसा मग्न हुआ मानो रामजी मिल गये।

व्याख्या : भरतजी निषादराज से मिलने के बाद फिर रथ पर सवार नहीं हुए और भरतजी के पैदल चलने से सारा समाज पैदल चला। तीर्थ के निकट सवारी पर चलना निषिद्ध है। यथा : गिरिवर दीख जनक नृप जबहीं। करि प्रनाम रथ त्यागेउ तबहीं। अतः सब पैदल चले। पहिले शृङ्गवेरपुर दिखायी पड़ा और उसके बाद ही गङ्गाजी दिखायी पड़ीं। जगपावनि कहने से सर्वतीर्थमयी गङ्गा कहा। यथा : समृद्धं सौभाग्यं सकलवसुधायाः।

अब जहाँ सरकार ने स्नान किया था उसका नाम रामघाट पड़ गया था। यथा : उतरे राम देवसरि देखी। कीन्ह दंडवत हरष बिसेखी। वह स्थल रामजी से अधिक पवित्र हो गया। विरह दशा में प्रेमास्पद के अङ्ग से लगी हुई वस्तु भी उसी की भाँति प्रिय मालूम होती है। अतः भरतजी का मन मगन हो गया। मानो राम ही मिल गये। पहिले सवारी से उतरना कहा। तत्पश्चात् दर्शन कहा : अब सप्रेम प्रणाम कहते हैं।

करहिं प्रनाम नगर नर नारी। मुदित ब्रह्ममय बारि निहारी ॥
करि मज्जनु माँगहिं कर जोरी। रामचंद्र पद प्रीति न थोरी ॥३॥

अर्थ : नगर के नर नारी ब्रह्ममय वारि का दर्शन करके हर्षित होकर प्रणाम करते हैं। स्नान करके हाथ जोड़कर माँगते हैं कि रामचन्द्र के चरणों में अधिक प्रेम हो।

व्याख्या : भरतजी का प्रणाम कहकर अब पुरवासियों का प्रणाम कहते हैं कि नगर के नर और नारी सभी प्रणाम कर रहे हैं। भावना यह है कि गङ्गा जल जल नहीं है। स्वयं ब्रह्म ही द्रवीभूत होकर जल रूप से विद्यमान हैं। अतः गङ्गा का दर्शन ब्रह्मसाक्षात्कार है और स्पर्श ब्रह्मस्पर्श है। गोलोक में भगवान् वासुदेव स्वयं द्रवीभूत होकर गङ्गारूप में बह चले। ऐसी कथा गर्ग संहिता में है। इसीलिए गङ्गाजी की उपासना नीराकार ब्रह्म की उपासना है।

दर्शन और प्रणाम के बाद मज्जन का विधान है। अतः सब स्नान करने लगे। स्नान के बाद गङ्गाजी से प्रार्थना करते हैं। गङ्गाजी मनोरथ पूर्ण करती हैं। ऐसा विश्वास सभी गङ्गातटवासियों को है। सभी मङ्गलकार्य सम्पन्न होने पर गङ्गा

पुजैया होती है। अवधवासियों को एक मात्र यही मनोरथ है कि रामचन्द्र के चरणों में अनुराग बढ़े। जितना अनुराग है उतने को वे थोड़ा मानते हैं।

भरत कहेउ सुरसरि तव रेनू। सकल सुखद सेवक सुरधेनू ॥
जोरि पानि बर माँगउ एहू। सीय राम पद सहज सनेहू ॥४॥

अर्थ : भरतजी ने कहा हे सुरसरि ! तुम्हारी रेणु सब कामनाओं को देनेवाली कामधेनु है। हाथ जोड़कर यही वर माँगता हूँ कि सीता राम के पद में सहज स्नेह हो।

व्याख्या : सबने वारि की प्रशंसा की और गङ्गाजी से वरदान माँगा। भरतजी रेणु की प्रशंसा करते हैं। जो दिन रात जल से सम्बद्ध है। कहते हैं कि गङ्गाजी की रेणु सब सुख देनेवाली है और सेवक के लिए तो कामधेनु ही है। जो चाहे वह ले लो। अतः भरतजी कहते हैं कि तब आपकी क्या प्रशंसा की जाय। मैं हाथ जोड़कर यह वर माँगता हूँ कि सीताराम के चरणों में सहज अनुराग हो। जो किसी प्रकार भङ्ग न हो। इसी का विस्तार प्रयागराज से वर माँगने के प्रसङ्ग में है। यथा : जलद जनम भर सुरति बिसारउ। जाचत जल पवि पाहन डारउ। चातक रटनि घटे घटि जाई। बढ़े प्रेम सब भाँति भलाई। यही सहज प्रेम है।

दो. एहि बिधि मज्जनु भरत करि, गुरु अनुसासन पाइ।
मातु नहानी जानि सब, डेरा चले लवाइ ॥१९७॥

अर्थ : इस विधि से गुरुजी की आज्ञा पाकर स्नान करके और यह जानकर कि सब माताएँ स्नान कर चुकीं सबको डेरा पर लिवा ले चले।

व्याख्या : भरतजी ने गुरुजी की आज्ञा लेकर तब स्नान किया। क्योंकि पुण्यकार्य की शोभा बिना गुरुपूजन के होती नहीं। यथा : सुकृत संभुतन बिमल बिभूती। भरतजी का स्नान सबके पीछे है। देख लिया कि माता लोग भी स्नान कर चुकीं। तब सबको डेरे पर लिवा ले चले।

जहँ तहँ लोगन्ह डेरा कीन्हा। भरत सोधु सबही कर लीन्हा ॥
सुर सेवा करि आयसु पाई। राम मातु पहिं गे दोउ भाई ॥१॥

अर्थ : लोगों ने जहाँ तहाँ डेरा डाल दिया। भरतजी ने सबकी खोज खबर ली। तत्पश्चात् देवार्चन किया। तब आज्ञा पाकर माँ के पास गये।

व्याख्या : निषादराज के सेवकों ने तब तक घर तरुतर सर बाग और वन में डेरा के योग्य स्थान बना दिया। निषादराज की सम्मति के अनुसार सब लोगों ने डेरा डाल दिया। अब भरतजी की सावधानी कहते हैं कि सबकी खोज खबर ली। कौन कहाँ ठहरा हुआ है ? किसे क्या चाहिए ? यही खोज खबर लेना है। पहिला काम प्रजा संरक्षण है। सुर सेवा उसके बाद का काम है।

राजा के लिए प्रजा का रञ्जन ही सबसे बड़ी ईश्वर पूजा है। उससे समय

बचे तो देवार्चन भी करें। अतः भरतजी ने प्रजा की व्यवस्था करके तब देवार्चन किया। राजाओं में आज भी माँ के पास जाने में आज्ञा की आवश्यकता रहती है। अतः दासियों द्वारा आज्ञा पाकर तब कौसल्या के पास दोनों भाई गये।

चरन चाँपि कहि कहि मृदु बानी। जननी सकल भरतु सनमानी॥
भाइहिं सौंपि मातु सेवकाई। आपु निषादहि लीन्ह बोलाई॥२॥

अर्थ : भरतजी ने सब माताओं के पैर दबाकर और मृदु वाणी कहकर उनका सम्मान किया। माता कैकेयी की सेवा भाई को सौंपकर स्वयं निषादराज को बुला लिया।

व्याख्या : आज माताएँ पैदल चलीं हैं। अतः भरतजी सबके पैर दबाते हैं और मदु वाणी कहते हैं। माँ! आज आपको बड़ा कष्ट हुआ। पर तीर्थाटन में पैदल चलने का ही माहात्म्य है। इत्यादि बातें भरतजी ने कहीं।

कैकेयी का त्याग किया है। यथा : तज्यौ पिता प्रह्लाद विभीषन बंधु भरत महतारी। अतः उसके पास स्वयं सेवा के लिए नहीं गये। पर यह नहीं कि सेवा में त्रुटि होने पावे। इसलिए भाई शत्रुघ्न को उनकी सेवा का भार सौंपा। इस भाँति सब व्यवस्था करके तब अपने दुःख सुख की ओर दत्तचित्त हुए। अपनी जलन को कम करने के लिए निषादराज को बुला लिया।

चले सखा कर सों करजोरे। सिथिल सरीरु सनेहु न थोरे॥
पूँछत सखहि सो ठाउँ देखाऊ। नेकु नयन मन जरनि जुड़ाऊ॥३॥

अर्थ : सखा के हाथ से हाथ मिलाये हुए चले। शरीर शिथिल हो रहा था। क्योंकि स्नेह थोड़ा न था। सखा से पूछते हैं कि वह स्थान बतलाओ। मैं अपने नेत्र और मन की जलन को कुछ शीतल कर सकूँ।

व्याख्या : सरकार ने निषादराज से सखा का नाता मान रक्खा है। अतः भरतजी भी सखा मान रहे हैं। उसके हाथ से हाथ मिलाये चले। जहाँ चले वहाँ का स्मरण आते ही फिर पहिले की भाँति शरीर शिथिल हो चला। अतः उसी भाँति सखा का सहारा लिए हुए चले। यथा : राम सखा कर दीन्हें लागू।

वह स्थल देखना चाहते हैं जिसका वर्णन आगे करेंगे। अतः सखा से पूछते हैं। क्योंकि उसी ने सरकार का आतिथ्य सत्कार किया है। प्रयोजन यह है कि नयन और मन विरहानल से सन्तप्त हो रहे हैं। यथा : देखे बिनु रघुबीर पद जिय की जरनि न जाय। सो जलन तो सरकार के दर्शन से ही मिटेगी। पर जिस स्थान से सरकार का सम्बन्ध वनगमन के समय हुआ है उसके दर्शन से भी कुछ शान्ति होगी।

जहँ सिय रामु लखनु निसि सोए। कहत भरे जल लोचन कोए॥
भरत बचन सुनि भयउ बिषादू। तुरत तहाँ लइ गयेउ निषादू॥४॥

अर्थ : जहाँ सीता राम और लक्ष्मण रात को सोये थे। इतना कहते ही

नयन गोलक में जल भर आया। भरतजी के वचन सुनकर निषाद को बड़ा दुःख हुआ। तुरन्त उन्हें वहाँ ले गया।

व्याख्या : अब भरतजी निषादराज से कहते हैं कि जहाँ श्री सीता रामजी तथा लखनलाल रात को सोये थे उस विश्राम स्थल का मैं दर्शन करना चाहता हूँ। पृथ्वी पर ही सोये होंगे। यह बात चित्त पर चढ़ते ही आँखों में आँसू डबडबा आये। सरकार को सोते देखकर परिजन के साथ निषाद विकल हो गया था। यथा : सोवत प्रभुहि निहारि निषादू। भयउ सपरिजन बिकल बिषादू। अतः भरतजी को उसका ध्यान बँधते ही विषण्ण होना प्राप्त ही था।

जब सरकार को सोते देखकर निषाद विकल हुआ तो लखनलाल ने उसे समझाया। लक्ष्मण गीता का उपदेश किया। उसका विषाद जाता रहा। दूसरों को विषादत्याग का उपदेश देने लगा था। यथा : अब सुमंत परिहरहुँ बिषादू। सो भरतजी का वचन सुनकर उसे फिर विषाद हो गया। वह तुरन्त भरतजी को वहाँ ले गया। जिसमें जितनी जल्दी इनका ताप कम हो उतना ही अच्छा है।

दो. जहँ सिंसुपा पुनीत तरु, रघुबर किय बिश्रामु।
अति सनेह सादर भरत, कीन्हेउ दंड प्रनामु ॥१९८॥

अर्थ : जिस अशोकवृक्ष के नीचे रामजी ने विश्राम किया था वहाँ भरतजी ने अत्यन्त आदर और स्नेह के साथ दण्डवत् प्रणाम किया।

व्याख्या : वह स्थल तीर्थपूत हो गया था। यथा : जेहि तरु तर प्रभु बैठहिं जाई। करहिं कल्पतरु तासु बड़ाई। और उस वृक्ष के नीचे तो सरकार सोये थे। उसके तीर्थ होने में सन्देह ही क्या? जिसकी कृपा से मनुष्य विश्राम का पात्र होता है। यथा : जाकी कृपा लवलेस ते मतिमंद तुलसीदास हूँ। पायेउ परम विश्राम राम समान प्रभु नाहीं कहूँ। उस महाप्रभु ने जिस स्थल में विश्राम पाया उसकी क्या महिमा कही जाय। इसलिए भरतजी ने उस स्थल को अत्यन्त स्नेह और आदर के साथ दण्डवत् प्रणाम किया।

कुस साँथरी निहारि सुहाई। कीन्ह प्रनाम प्रदच्छिन जाई ॥
चरन रेख रज आँखिन्ह लाई। बनइ न कहत प्रीति अधिकाई ॥१॥

अर्थ : कुश की सुन्दर चटाई को देखकर जाकर के प्रणाम किया और प्रदक्षिणा की। चरण की रेखाओं के रज को आँखों में लगाया। प्रीति की अधिकता कहते नहीं बनती।

व्याख्या : सरकार के शृंगवेरपुर आने के समय कह चुके हैं : गुह सँवारि साँथरी डसाई। कुस किसलयमय मृदुल सोहाई। सो वह साथरी आज तक जैसी की तैसी पड़ी है। जनसंबाधवर्जित देश में वस्तु ज्यों की त्यों पड़ी रह जाती हैं। अतः भरतजी ने उस सुन्दर साथरी का दर्शन किया। देखते ही भरतजी समझ गये कि

यही सरकार की शय्या रही है। अतः सन्निकट जाकर प्रणामपूर्वक प्रदक्षिणा की जिस भाँति देवताओं की प्रदक्षिणा की जाती है।

उसी साथरी के निकट चरण चिह्न थे। ध्वज कुलिश अङ्कुश कञ्ज के स्पष्ट चिह्न को देखकर भरतजी पहिचान गये कि ये सरकार के चरण चिह्न हैं। चिह्न गम्भीर रेखा के हैं। अतः अब तक स्पष्ट बने हैं। भरतजी सरकार के चरण चिह्न पहिचानते हैं। जगदम्बा जानकीजी के चरण चिह्न नहीं पहचानते। क्योंकि : पलंग पीठ तजि गोद हिंडोरा। सिय न दीन्ह पद अवनि कठोरा। पूज्य चरणों के चिह्न भी पूज्य हैं और प्रिय हैं। अतः उनकी धूलियों को आँखों में लगाते हैं आँखों की जलन कम करने के लिए। यथा : नेकु नयन मन जरनि जुड़ाऊ। उसके स्पर्श से प्रीति ऐसी बढ़ी कि कवि वर्णन करने में अपनी असमर्थता प्रकट करते हैं।

कनक बिंदु दुइ चारिक देखे। राखे सीस सीय सम लेखे॥
सजल बिलोचन हृदय गलानी। कहत सखा सन बचन सुबानी ॥२॥

अर्थ : दो चार सोने के घुँघुरू अथवा सलमा सितारा देखे। सीताजी के समान समझकर सिर पर रख लिया। आँखों में आँसू और हृदय में ग्लानि आयी। सखा से सुन्दर वाणी बोले।

व्याख्या : रामजी और लक्ष्मणजी तो मुनि वेष में थे। परन्तु भगवती वसिष्ठजी की आज्ञा से राजवेष में ही थी। उनके साथरी के निकट दो चार सोने के घुँघुरू गिरे हुए थे। अतः भरतजी ने तुरन्त जान लिया कि ये भगवती के हैं। अतः उन्हें सीताजी के समान जानकर उन्हें सिर पर रख लिया। उनका पृथ्वी पर पड़ा रहना सहन न कर सके। भरतजी को शृङ्गवेरपुर में लक्ष्मण राम और जानकीजी तीनों व्यक्तियों से मिखने का सुख हुआ। रामजी से मिलने का सुख यथा : राम-घाट कहँ कीन्ह प्रनामू। भे मनु मगनु मिले जनु रामू। लक्ष्मणजी से मिलने का सुख यथा : करत दंडवत देखि तेहि भरत लीन्ह उर लाइ। मनहु लखन सन भेंट भइ प्रीति न हृदय समाइ। सीताजी से मिलने का सुख यथा : राखे सीस सीय सम लेखे।

अब भरतजी की दशा कहते हैं। तन की दशा : सजल बिलोचन। मन की दशा : हृदय गलानी। वचन की दशा : कहत सखा सन बचन सुबानी। घुँघुरुओं ने सीताजी के भी साथरी की याद दिला दी। सरकार के साथरी शयन के दुःख से भी अधिक दुःख सीताजी के साथरी शयन से भरतजी को हुआ। अतः सखा से बोले।

श्रीहत सीय बिरह दुतिहीना। जथा अवध नर नारि बिलीना॥
पिता जनक देउँ पटतर केही। करतल भोग जोग जग जेही ॥३॥

अर्थ : ये घुँघुरू भी सीताजी के विरह से ऐसे कान्ति हीन हो गये हैं जिस भाँति रामजी के विरह से अवधवासी निस्तेज हो गये हैं। इनके पिता महाराज जनक की उपमा किससे दूँ। संसार में योग और भोग दोनों जिनकी मुट्ठी में हैं।

व्याख्या : उन कनकबिन्दु के उठाने के समय भरतजी कहते हैं कि ये श्रीहत हो गये हैं। इनकी श्री तो तब थी जब कि ये जगदम्बा के शरीर के साथ थे। मानो इन्हें भी सीताजी के विरह का दुःख है। पहिले ये विनती भी कर चुके हैं। यथा : नूपुर मधुर मुखर कबि बरनी। मनहु प्रेमबस बिनती करहीं। हमहिं सीय पद जनि परिहरहीं। अब उदाहरण देते हैं कि जैसे रामजी के विरह से अवधवासी श्रीहीन हो गये हैं। भाव यह कि रामविरह से अवधवासी श्रीहीन और सीताजी के विरह से कनकबिन्दु श्रीहीन हैं। यहाँ विलीन और दुतिहीन शब्द समानार्थक है।

स्त्रियों की महिमा चार प्रकार से होती है : १. पिता के प्रभाव से २. श्वसुर की महिमा से ३. पति के उत्कर्ष से और ४. अपने गुणों से। अतः पहिले पिता का वर्णन भरतजी करते हैं। महाराज तो अनेक हैं। पर जनकजी का जोड़ी कोई नहीं। जहाँ योग है वहाँ भोग नहीं। जहाँ भोग है वहाँ योग नहीं है। योग भोग की युगपत् स्थिति ईश्वरकोटि में ही देखी जाती है। जीवकोटि में केवल जनकजी ही ऐसे हैं जहाँ दोनों दिखायी पड़ते हैं।

ससुर भानुकुल भानु भूआलू। जेहि सिहात अमरावतिपालू ॥
प्राननाथु रघुनाथ गोसाईं। जे बड़ होत सो राम बड़ाईं ॥४॥

अर्थ : जिसके श्वसुर सूर्यकुल के सूर्य हैं जिससे अमरावती के राजा : इन्द्र भी ईर्ष्या करते हैं। जिनके प्राणनाथ स्वामी रामजी हैं। जो कोई बड़ा होता है वह उन्हीं की बड़ाई से होता है।

व्याख्या : पिता का वर्णन करके श्वसुर का वर्णन करते हैं कि एक तो सूर्यकुल बड़ा। उनमें भी वे सूर्य। तिस पर राजा। तेज और ऐश्वर्य दोनों से सम्पन्न। यथा : अवधराजु सुरराजु सिहाई। दसरथ धनु सुनि धनद लजाई। भाव यह कि जो सुख इन्द्र को अमरावती में नहीं वह सुख महाराज दशरथ अवध में कर रहे हैं। इसलिए इन्द्र लज्जित हैं। सांसारिक सुख की पराकाष्ठा इन्द्र सुख ही है। सो भी महाराज दशरथ के भोग के जोड़ का नहीं। अवधवासियों को सुरदुर्लभ सुख है। यथा : सुरदुर्लभ सुख सदन बिहाई। ऐसे महाराज दशरथ की पुत्रवधू सीताजी हैं।

श्वसुर का वर्णन करके पति का वर्णन करते हैं कि वे तो रघुकुल के नाथ हैं। तिस पर गोसाईं हैं। अर्थात् हृषीकेश हैं : हृषीकेस सुनि नाउँ जाउँ बलि अति भरोस जियँ मोरे। तुलसिदास यह जीव सृंखला छुटिहि तुम्हारेहि छोरे। अर्थात् रामजी स्वयं : बन्ध मोक्षप्रद सर्व पर माया प्रेरक सीव हैं। मुख्य बड़ाई उन्हीं में है। दूसरे तो उनकी बड़ाई पाकर बड़े होते हैं। बिधिहि बिधिता हरिहि हरिता हरहि हरता जिन दई। सो जानकी पति मधुर मूरति मोद मय मंगल मई।

दो. पति देवता सुतीय मनि, सीय साँथरी देखि।
बिहरत हृदय न हहरि हर, पबि तें कठिन बिसेखि ॥१९९॥

अर्थ : पतिव्रता भली स्त्रियों में मणि सीताजी की कुशशय्या देखकर मेरा हृदय हे हर ! फट नहीं जाता। यह वज्र से भी अधिक कठोर है।

व्याख्या : अब स्वयं भगवती के गुण कहते हैं कि ये तो साक्षात् पार्वती सी पतिव्रता हैं। यथा : पति देवता सुतीय मनि मातु प्रथम तव रेख। यहाँ : पति देवता सुतीय मणि कहकर वही बात कही। उक्त विशेषण से पतिप्रिया भी कहा। यथा : पारवती सम पतिप्रिय होहूँ। जिनमें ऐसे अलौकिक गुण हैं उन्हें साथरी पर सोना पड़ा और यह दुःख उन्हें मेरे कारण हुआ। भरतजी शङ्कर को स्मरण करके कहते हैं कि मेरे हृदय को तो फट जाना चाहता था। शङ्कर के स्मरण का भाव यह है कि ये दूसरे के दुःख दूर करने के लिए विषपान करनेवाले हैं। मेरा हृदय वज्र से भी कठिन है जो अब भी नहीं फटता। भावार्थ यह कि हर इस दुःख को हरण करें।

लालन जोगु लखन लघु लोने। भे न भाइ अस अहहिं न होने ॥
पुरजन प्रिय पितु मातु दुलारे। सिय रघुबीरहिं प्रानपिआरे ॥१॥

अर्थ : छोटे लोने लखनलाल लाड़ प्यार के योग्य हैं। ऐसे भाई न हुए, न हैं, न होनेवाले हैं। पुरवासियों को प्रिय माता पिता के दुलारे और रामजानकी को तो प्राण से प्यारे हैं।

व्याख्या : लक्ष्मणजी की साथरी नहीं देखी। इससे भरतजी समझ गये कि लक्ष्मणजी नहीं सोये। सरकार का पहरा देते थे। अतः कहते हैं कि लक्ष्मणजी पहरा देने योग्य नहीं हैं। लाड़ प्यार के योग्य हैं। छोटे भाई हैं। पुत्र के समान हैं। सुन्दर सलोने हैं। पहरा इन्हें शोभा भी नहीं देता। इतिहास पुराण में भी ऐसे भाई सुनने को नहीं मिले जो राज्य छोड़कर भाई के साथ वन चला जाय। इस समय भी लक्ष्मण से भाई कहाँ हैं और भविष्य में भी सम्भावना नहीं। क्योंकि द्वापर में में तो सत्त्वगुण स्वल्प होता है। कलियुग में तो नाम मात्र शेष रह जाता है। उनमें ऐसे भाइयों के होने की कौन सी आशा है ?

लक्ष्मणजी में गुण ही ऐसे हैं कि सब कोई इनका सम्मान करता है। भाईपन जो इनका है वह तो आँख के सामने है। प्रजापालक भी ये ऐसे हैं कि पुरजन को प्रिय है। मातृ पितृ भक्ति ऐसी है कि पितु मातु दुलारे हैं। अर्थात् सभी लखनलाल का मुँह जोहते हैं। रामजानकी के तो परम प्रिय हैं। भाव यह कि जन्म से इनकी लालना सब और से होती आयी है। इन्हें कभी कष्ट का सामना ही नहीं पड़ा।

मृदु मूरति सुकुमार सुभाऊ। तात बाउ तन लाग न काऊ ॥
ते बन सहहिं बिपति सब भाँती। निदरे कोटि कुलिस एहि छाती ॥२॥

अर्थ : मूर्ति कोमल है। स्वभाव सुकुमार है। गरम हवा कभी शरीर में लगी नहीं। वे वन में सब भाँति विपत्ति सहते हैं। इस मेरी छाती ने कोटि वज्रों का निरादर किया।

व्याख्या : जैसे शरीर सुकुमार होने से शीतोष्ण सहने में असमर्थ हैं उसी भाँति सुकुमार स्वभाव होने से किसी की बात सह नहीं सकते। जन्म से ऐसे दुलार में पले हैं कि गरम हवा शरीर में कभी लगी नहीं। इस गरमी में क्या वह अयोध्या में घर के बाहर निकलने पाते।

आज वे वन में जहाँ गरमी से बचने के लिए कोई त्राण नहीं है और भयानक लू बहा करती है वहाँ सब प्रकार की विपत्ति सहन कर रहे हैं और कहाँ तक कहें सोते भी नहीं। रात दिन पहरा दे रहे हैं : इससे स्पष्ट है कि यह ज्येष्ठ का समय है और यह सब मेरे कारण हो रहा है। अतः मेरी छाती फट जानी चाहिए। पर वह नहीं फटती। उसके सामने कोटिवज्र भी कुछ नहीं है।

राम जनमि जगु कीन्हं उजागर। रूप सील सुख सब गुन सागर॥
पुरजन परिजन गुर पितु माता। राम सुभाउ सबहिं सुखदाता॥३॥

अर्थ : रामजी ने जन्म लेकर सारे जगत् को उज्ज्वल कर दिया। वे रूप शील सुख सब गुणों की खानि है। पुरवासी कुटुम्बी गुरु पिता और माता सभी को राम का स्वभाव सुख देनेवाला है।

व्याख्या : पुण्य का फल सुख और पाप का फल दुःख है। सो रामजी सा पुण्य किसका हो सकता है जिसके जन्म से ही संसार में उजेला फैल गया। यथा : भुवन कोटि कल्यान कंद जायो पूत कौसिल्या रानी। चारों भाई रूप शील और गुण के धाम हैं। उनमें भी रामजी अधिक सुख सागर हैं। यथा : चारिउ रूप सील गुन धामा। तदपि अधिक सुख सागर रामा। यहाँ सुख सागर के गुणाधिक्य का वर्णन करते हुए भरतजी कहते हैं रामजी का स्वभाव ही ऐसा पुण्यमय है कि उससे प्रजा कुटुम्बी गुरु पिता और माता को सुख उपजता है। यथा : अस सुभाउ कहुँ सुनौं न देखौं। केहि खगेस रघुपति सम लेखौं।

बैरिउ राम बड़ाई करहीं। बोलनि मिलनि बिनय मन हरहीं॥
सारद कोटि कोटि सत सेखा। करि न सकहिं प्रभु गुन गन लेखा॥४॥

अर्थ : शत्रु भी रामजी की बड़ाई करते हैं। उनका बोलना मिलना और विनय मन को हरण कर लेता है। कोटि कोटि शत शेष आदर के साथ प्रभु के गुणगान की लेखा नहीं कर सकते।

व्याख्या : स्वभाव का सौष्ठव कहाँ तक कहा जाय। इतने से ही समझ लेना चाहिए कि वैरी भी रामजी की बड़ाई करते हैं। क्योंकि रामजी का स्वभाव उनके भी प्रतिकूल नहीं पड़ता। यथा : जासु सुभाउ अरिहि अनुकूला। रामजी के बोलने मिलने और विनय से उनका भी मन हरण हो जाता है। यहाँ वैरी से कुल वैरी अभिप्रेत है। महाराज चक्रवर्तीजी कहते हैं : सेवक सचिव सकल पुरवासी। जे हमरे अरि मित्र उदासी। सबहि राम प्रिय जेहिं बिधि मोही। प्रभु असीस जनु तनु धरि सोही। नियम यही है कि वैरी सदा निन्दा ही करते हैं।

क्योंकि वे गुण को नहीं देख सकते। यथा : बैर अन्ध : प्रेमहि न प्रबोधू। पर सरकार के गुण ऐसे हैं कि अन्ध भी बिना अनुभव किये नहीं रह सकता।

यद्यपि प्राचीन पाठ सादर सेष है। परन्तु ठीक पाठ सारद सेष है। लेखक के प्रमाद से सारद के स्थान पर सादर लिख गया। शारदा वाग्देवता हैं। जितना वाग्व्यवहार है सो उन्हीं की कृपा से चालू है। अतः उनसे बढ़कर लेखा करनेवाला स्वर्गादि लोकों में कौन है और अति बुद्धिमान् शेषजी को सहस्र शीष हैं और प्रत्येक मुख में दो दो जिह्वा हैं। अतः वर्णन की इससे अधिक सामग्री किसी के पास हो नहीं सकती। ये पाताल के वक्ता हैं। सो दोनों लोकों के प्रधानवक्ता कोटि संख्या में प्रभु के गुणों की लेखा करना चाहें तो कर नहीं सकते। क्योंकि सरकार के गुणों का अन्त ही नहीं। जलसीकर महि रज गनि जाही। रघुपति गुन नहिं बरनि सिराही।

दो. सुख सरूप रघुबंस मनि, मंगल मोद निधान।
ते सोवत कुस डारि महि, बिधि गति अति बलवान ॥२००॥

अर्थ : रघुकुलमणि रामजी सुखस्वरूप ही हैं। मङ्गल और आनन्द के निधान हैं। वे पृथ्वी पर कुश बिछाकर सोते हैं। तो विधाता की गति अति बलवती है।

व्याख्या : श्रीरामजी तो सुख के स्वरूप ही हैं। मङ्गल और मोद के निधान हैं। यथा : जो आनंद सिंधु सुख रासी। सीकरते त्रैलोक्य सुपासी। मंगल भवन अमंगल हारी। द्रवहु सो दसरथ अजिर बिहारी। अर्थात् आनन्दमङ्गल के स्रोत हैं। भूपति भवनु सुभाय सुहावा। सुरपति सदन न पटतर आवा। मनिमय रचित चारु चौवारे। जनु रतिपति निज हाथ सँवारे। सुभग सुरभि पयफेन समाना। कोमल कलित सुपेती नाना। पलंग मंजु मनि दीप जहँ सब बिधि सकल सुपास। ऐसे सुख सामग्री के साथ शयन करनेवाले वे कुशा बिछाकर पृथ्वी पर सोते हैं। तो यहाँ यही कहना पड़ता है कि विधि की गति ही बड़ी बलवती है। जो अचिन्त्य कार्य बिना कारण के कर डालती है।

राम सुना दुखु कान न काऊ। जीवन तरु जिमि जोगवइ राऊ ॥
पलक नयन फनि मनि जेहि भाँती। जोगवहिं जननि सकल दिन राती ॥१॥

अर्थ : रामजी ने कभी कान से भी दुःख नहीं सुना। चक्रवर्तीजी जीवनवृक्ष की भाँति रक्षा करते थे। जैसे पलक आँखों की और सर्प मणि की रक्षा करता है। उसी भाँति माताएँ रक्षा करती थीं।

व्याख्या : चक्रवर्तीजी की आज्ञा थी कि कुमार रामभद्र बड़ा करुणाकर तथा वैराग्यवान् हैं। उसके पास कोई दुःख का समाचार न पहुँचने पावे। दुःख के दृश्य देखने की बात तो दूर है। इसलिए रामजी ने कभी कान से भी दुःख नहीं सुना। ऐसी जनश्रुति है कि किसी किसी का प्राण किसी वृक्ष में बसता है। उसके हरे रहने से वह स्वस्थ रहता है। मुरझाने से रुग्ण होता है और सूखने से मर जाता

है। एतद्विषयिणी अनेक कहानियाँ प्रचलित हैं। अतः प्राणपन से उस जीवम तरु की लोग रक्षा करते थे। क्योंकि उनका जीवनाधार वह वृक्ष था। महाराज चक्रवर्ती के जीवनवृक्ष रामजी थे। उसी भाँति वे उनकी रक्षा करते थे। यथा : सब सुत मोहिं प्रिय प्रान की नाईं। राम देत नहिं बनै गोसाईं।

केवल कौसल्याजी ही नहीं वल्कि सब माताएँ दिन रात बड़ी सावधानी और प्रेम से रक्षा करती थीं। जैसे पलक गोलक की रक्षा दिन रात करता है। कोई आघात आ जाने पर अपने ऊपर उसे ले लेता है। इतने से काम न चला। इसलिए फणिमणि से उपमा दी। क्योंकि फणि : सर्प मणि के पास किसी गैर को आने नहीं देता और बलप्रदर्शन करनेवाले को यमलोक पहुँचा देता है। इसी भाँति जननी भी रामजी की रक्षा करती थीं। अथवा जागृतावस्था की उपमा पलक नयन से है और सुषुप्तावस्था की उपमा फणिमनि से है। अथवा रामजी की रक्षा की उपमा पलक नयन से है और जानकीजी की रक्षा की उपमा फणिमणि से है। यथा : सुंदर बंधुन्ह सास लै सोईं। फनिकन्ह जिमि निज मनि उर गोई।

ते अब फिरत बिपिन पदचारी। कंद मूल फल फूल अहारी॥
धिग कैकेई अमंगल मूला। भइसि प्रान प्रियतम प्रतिकूला॥२॥

अर्थ : वे अब पैदल जङ्गल में घूमते हैं और कन्द मूल फल और फूल खाते हैं। अमङ्गल की मूल कैकेयी को धिक्कार है जो अपने प्राणप्रियतम के प्रतिकूल हो गयी।

व्याख्या : राजमहल के बाहर आँख के ओट जाने देने में जिसके इतना कड़ा पहरा रहता था। सवारी की इतनी बड़ी व्यवस्था थी। दुःख का दृश्य जिसके सामने आने नहीं पाता था और न दुःख के समाचार सुनने पाते थे। वे रामजी अब जङ्गल में घूमते हैं। उरपहिं धीर गहन सुधिआएँ। और वहाँ भी पैदल घूमते हैं। यथा : बिनु पानहिन्ह पयादेहिं पाएँ। संकर साखि रहेहुँ एहि घाएँ। अन्न का अधिकार नहीं। नहीं तो जङ्गल को ही मङ्गल बना दिया जाता। सब कुछ यहीं प्रस्तुत कर दिया जाता। जिस भाँति राजा लोग मृगया के लिए जंगल में जाते हैं उसी भाँति वनवास मङ्गलमय हो जाता। आज सब कुछ रहते किसी को सुख देने का सामर्थ्य नहीं।

उस सामर्थ्य की हरण करनेवाली कैकेयी को धिक्कार है। यही अमङ्गल की मूल है। मेरे घर में अमङ्गल इसी के कारण हुआ। स्त्रियों के लिए पति ही सब कुछ है। यथा : मातु पिता भगिनी प्रिय भाई। सुत सुंदर सुसील सुखदाई। जहँ लगि नाथ नेह अरु नाते। पिय बिनु तियहि तरनिहुते तांते। तनु धनु धाम धरनि पुर राजू। पति बिहीन सब सोक समाजू। भोग रोग सम भूषन भारू। जम जातना सरिस संसारू। सो यह अपने प्राणप्रियतम महाराज चक्रवर्ती के प्रतिकूल हो गयी। अथवा : जीव जन्तु असको जग माँहीं। जेहि रघुनाथ प्रानप्रिय नाँहीं। भे अति

अहित रामु तेउ तोही। को तू अहसि सत्य कहु मोहीं। सबको रामजी प्राणप्रियतम हैं। उनसे भी प्रतिकूल हो गयी।

मैं धिग धिग अघ उदधि अभागी। सबु उतपातु भयउ जेहि लागी ॥
कुल कलंकु करि सृजेउ बिधाता। साँइ दोह मोहिं कीन्ह कुमाता ॥३॥

अर्थ : मुझ पापसिंधु भाग्य रहित को धिक्कार है। जिसके लिए ये सब उत्पात हुए। विधाता ने मुझे कुलकलङ्क पैदा किया और कुमाता ने मुझे स्वामिद्रोही कर दिया।

व्याख्या : कैकेयी भी प्राणप्रियतम के प्रतिकूल पुत्र स्नेह के कारण हुई। अतः भरतजी अपने को धिक्कार देते हैं। मैं पापसिन्धु हूँ। क्योंकि दुर्यश बिना पाप के नहीं होता। मैं ऐसा अपयश भाजन पैदा हुआ। अतः अघउदधि हूँ और अभागी हूँ। भाग्यदोष से यह सब उत्पात मेरे लिए हुआ। अथवा सब उत्पात का मूल कारण होने से मैं अभागी हूँ। भवभञ्जन श्रीरामजी के विमुख होने की परिस्थिति आ पड़ी। काई कुमति कैकयी केरी। परी जासु फल बिपति घनेरा। चक्रवर्तीजी का स्वर्गवास और राम वनवास संक्षेपतः ये ही दोनों विपत्तियाँ हैं। भरतजी राज्य मिलने पर अपने को अघउदधि और रामजी के वनवास से अपने को अभागी मानते हैं। अथवा माताओं के विधवापन का कारण मानते हुए अपने को अभागी कहते हैं। यथा : को त्रिभुवन मोहिं सरिस अभागी। गति असि तोरि मातु जेहि लागी। मोर जनम रघुबर बन लागी। व्यर्थ काह पछिताउँ अभागी।

भरतजी कहते हैं कि ब्रह्मा ने ही मुझे कुल का कलङ्क बनाकर सिरजा। क्योंकि मैं अपयश भाजन हुआ और प्रियजन द्रोही हुआ और स्वामिद्रोह तो मुझे कुमाता के प्रसाद से प्राप्त हुआ। कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति। जो अपने पुत्र को भगवद् द्रोही बनावे अपयश का भाजन बनावे वही कुमाता है।

सुनि सप्रेम समुझाव निषादू। नाथ करिअ कत बादि बिषादू ॥
राम तुम्हहि प्रिय तुम्ह प्रिय रामहि। यह निरजोसु दोसु बिधि बामहि ॥४॥

अर्थ : सुन करके प्रेम के साथ निषादराज समझाते हैं कि हे नाथ! आप व्यर्थ विषाद क्यों करते हैं। रामजी तुम्हें प्रिय हैं और रामजी को तुम प्रिय हो। इसमें वाम विधि का ही सच्चा : निखालिस दोष है।

व्याख्या : जब स्वामी को सेवक प्रिय है और सेवक स्वामी प्रिय है तब स्वामी द्रोही की बात कहाँ से आयी? यहाँ पर तो निष्केवल दोष वाम विधि का है और स्थलों पर तो कुछ करणा कुछ कर्म गति मिलकर ही कार्य होता है। यहाँ तो करणी कुछ भी नहीं केवल कर्मगति काम कर रही है।

प्रेमी को प्रेम से ही सब समझाया जाता है तब वह समझता है नहीं तो नहीं समझता। अतः भरतजी को निषादराज प्रेम से समझा रहे हैं। प्रेम का पंथ ही

ऐसा है। निषादराज भरतजी से कहते हैं कि आप का विषाद व्यर्थ है। न उसके लिए कोई कारण है और न फल ही है।

छं. बिधि बाम की करनी कठिन जेहि मातु कीन्हीं बावरी।
तेहि राति पुनि पुनि करहिं प्रभु सादर सरहना रावरी॥
तुलसी न तुम सों राम प्रीतम कहत हौं सोहें कियें।
परिनाम मंगल जानि अपने आनिये धीरजु हियें॥

अर्थ : विधि वाम की करणी बड़ी कठिन है जिसने माता को पागल बना दिया। उस रात में प्रभु बार बार तुम्हारी सराहना करते थे। तुलसीदासजी कहते हैं कि रामजी को तुमसे अधिक प्रियतम कोई नहीं है। मैं इस बात को शपथ लेकर कहता हूँ। परिणाम में मङ्गल जानकर अपने हृदय में धैर्य धारण कीजिये।

व्याख्या : वाम विधि की करणी वड़ी कठिन होती है। वह स्वभाव ही पलट देती है। यथा : भयउ बाम बिधि फिरेउ सुभाऊ। माता ऐसी थी नहीं और न अब ऐसी है। बीच में ही अकस्मात् उसके स्वभाव में घोर परिवर्तन हो गया। जैसे कोई पागल हो जाता है। आप विचार कर देखिये।

कैकयी करी धौं चतुराई कौन।
राम लखन सिय बनहि पठाए पति पठए सुरभौन॥१॥
कहा भलो धौं भयो भरत को लगे तरुनतन दौन।
पुरवासिन्ह के नयन नीर बिनु कबहुँ तो देखति हौन॥२॥
कौसल्या दिनरात बिसूरति बैठि मनही मन मौन।
तुलसी उचित न होइ रोइवो प्रान गए सँग जौन॥३॥

सुमति कुमति में परिवर्तित हो गयी। हिताहित परिज्ञान शून्य हो गयी : चरइ हरित तृन बलि पसु जैसे। अपने होश में कैकेयी ने कुछ नहीं किया। अतः मैं उनका कुछ दोष नहीं मानता। प्रभु के हृदय में भी कुछ नहीं है। वे आप पर सन्देह नहीं करते। जिस रात को यहाँ ठहरे थे। बार बार आपकी प्रशंसा करते थे। निषादराज भरतजी के आश्वासन के लिए शपथ लेते हैं कि रामजी को तुमसे अधिक प्रियतम कोई नहीं है। क्योंकि जब पहिले पहल साथरी पर सोये तो वह समय कटु कहने का था सो आप की प्रशंसा कर रहे थे। सरकार जहाँ जाते थे भरतलाल की भूरि भूरि प्रशंसा करते थे। जिसमें उनकी कीर्ति को कलङ्कपङ्क स्पर्श न कर सके।

इस समय तो अमङ्गल हो ही गया। पर परिणाम में मङ्गल होगा। यत्तदग्रे विषमिव परिणामेऽमृतोपमम्। तत्सुखं सात्त्विकं प्रोक्तमात्मबुद्धिप्रसादजम्। जो सुख प्रारम्भ में विष की भाँति होता है। पर परिणाम उसका अमृत के समान होता है। वही सात्त्विक सुख है। वह आत्मबुद्धि के प्रसाद से प्राप्त होता है। अतः परिणाम में सात्त्विक सुख की प्राप्ति होगी। इस बात को मन में लाकर अधीर न होइये। हृदय में धैर्य को स्थान दीजिये।

दो. अंतरजामी रामु, सकुच सप्रेम कृपायतन।
चलिअ करिअ बिश्रामु, एह बिचार दृढ़ आनि मन ॥२०१॥

अर्थ : रामजी अन्तर्यामी हैं। सङ्कोच प्रेम और कृपा के आयतन हैं। ऐसा विचार मन में दृढ़ करके चलिये। विश्राम कीजिये।

व्याख्या : निषादराज कहते हैं कि रामजी अन्तर्यामी हैं। उनसे कुछ छिपा नहीं है। यथा : तुमते कछु न छिपी करुनानिधि तुम हो अंतरयामी। भीतर की बात सब जानते हैं। तब निर्दोष को भय क्या ? तिस पर सङ्कोची स्वभाव है। यथा : कहुँ न राम सम स्वामि सँकोची। रामजी कभी शील नहीं तोड़ेंगे। बात बनी बनायी समझिये। प्रेमी हैं। आप के सामना की देर है। प्रेम रोके न रुकेगा। कृपायतन हैं। आपको दुःखी देखकर कृपा करेंगे। इस भाँति चार कारण धैर्य धरने का देकर निषादराज कहते हैं कि बहुत देर हो गयी। आप चलकर विश्राम करिये। जो कारण मैंने दिये हैं। उन्हें आप भी जानते हैं। पर उन्हें दृढ़ रूप से मन में स्थान नहीं देते हैं इसलिए व्यर्थ विषाद कर रहे हैं।

सखा बचन सुनि उर धरि धीरा। बास चले सुमिरंत रघुबीरा ॥
एह सुधि पाइ नगर नर नारी। चले बिलोकन आरत भारी ॥१॥

अर्थ : सखा का वचन सुनकर हृदय में धैर्य धारण किया और रामजी को स्मरण करते डेरे पर चले। यह खबर पाकर अवध के नर नारी अत्यन्त आर्त होकर देखने चले।

व्याख्या : सखा का वचन सुनकर धैर्य धारण किया। समझते हैं कि यह अन्यथा नहीं कहेगा। सुत की प्रीति प्रतीत मीत की। श्रीगोस्वामीजी कहते हैं कि प्रीति तो बेटे पर होती है। परन्तु विश्वास तो मित्र का ही होता है। सखा ने कहा : चलिअ करिअ विश्राम। अतः रघुवीर का स्मरण करते डेरे पर चले। भाव यह कि रघुवीर हैं। सब सङ्कटों के सामना करने में समर्थ हैं। सखा के कथनानुसार विचार को दृढ़ करने के लिए रघुवीर का स्मरण करते हैं।

जैसा श्रेष्ठ पुरुष आचरण करता है वैसा ही दूसरे भी आचरण करते हैं। वह जो प्रमाण करता है संसार उसी का अनुसरण करता है। खबर फैल गयी कि भरतजी शयनस्थान के दर्शन के लिएं गये हैं। अब सब अयोध्यावासी शयनस्थान के दर्शन के लिए आर्त हो उठे कि भरतजी चले गये हम लोगों को नहीं ले गये। अथवा उनके भी नयन मन में जरनि है। उसे शीतल करने के लिए चले।

परदछिना करि करहिं प्रनामा। देहिं कैकइहि खोरि निकामा ॥
भरि भरि बारि बिलोचन लेहीं। बाम बिधातहि दूषन देहीं ॥२॥

अर्थ : प्रदक्षिणा करके प्रणाम करते हैं और कैकेयी को अत्यन्त दोष देते हैं। आंखों में आंसू बार बार आ जाता है और वाम विधि को दोष देते हैं।

व्याख्या : जिस भाँति भरतजी ने जाकर कुश साथरी की प्रदक्षिणा की थी और प्रणाम किया था उसी भाँति सारे अयोध्यावासी प्रदक्षिणा करके प्रणाम करते हैं। उन्हें भी साथरी देखकर विषाद होता है। अतः वे सब कैकेयी की निन्दा करते हैं कि यह सब अनर्थ केवल इसी के दोष से हुआ।

अत्यन्त दुःख से आँखों में जल भर आता है। सोचते हैं कि क्या घाटा रहा। जङ्गल में ही सब भोग की सामग्री जुट जाती। सब कुछ रहते कुछ करते नहीं बन रहा है। अतः वाम विधाता को दोष देते हैं। जिसके कारण कैकेयी के स्वभाव ने पलटा खाया। नहीं तो कैकेयी बड़ी शीलवती थी।

एक सराहहिं भरत सनेहू। कोउ कह नृपति निबाहेउ नेहू ॥
निंदहिं आपु सराहि निषादहिं। को कहि सकइ बिमोह बिषादहिं ॥३॥

अर्थ : कोई भरतजी की प्रशंसा करते हैं। कोई कहते हैं कि स्नेह का निर्वाह तो चक्रवर्तीजी ने किया। अपनी निन्दा और निषाद की सराहना करते हैं। विमोह के विषाद को कौन कह सकता है।

व्याख्या : कोई भरतजी के स्नेह की प्रशंसा करता है कि इन्हीं के प्रेम से रामजी के दर्शन की आशा है। अथवा इसलिए प्रशंसा करते हैं कि उनके कारण से साथरी का दर्शन हुआ। हम लोग तो सोच भी नहीं सकते थे। भरतजी का ऐसा प्रेम है कि सरकार के इस चिह्न को खोजकर निकाला। कोई चक्रवर्ती जी के स्नेह के निर्वाह की प्रशंसा करते हैं कि सत्य के पास में बँधकर यद्यपि रामजी को वन दिया पर शरीर का परित्याग करके स्नेह का भी भलीभाँति निर्वाह किया। यथा : नेह निबाहि देह तजि दसरथ कीरति अचल चलाई। वे लोग कहते हैं कि प्रेम का पन्थ ही ऐसा कठिन है कि निबह जाय तब जान पड़े कि प्रेमी हैं। सो राजा की निबह गयी और किसी से प्रेम निबाहते न बना। भरतजी भी धर्म से बँधे हैं। देखें यह कैसे नेह का निर्वाह करते हैं।

अयोध्यावासी अपनी निन्दा करते हैं कि हम लोग सम्पत्ति के साथी हैं। निषादराज की प्रशंसा करते हैं कि यह विपत्ति का साथी है। जन्म से हमारा साथ था। सो हम में उतना प्रेम नहीं जितना निषादराज में है। बात फैल गयी कि कुटुम्ब के साथ मरने को तैयार था। हम लोग मरने को तैयार नहीं हुए। माधुर्य में विषाद बढ़ा। अतः बिमोह कहते हैं। साथरी देखने से अवधवासियों को करुणा उमड़ आयी। शोक और मोह ये ही दो संसारवृक्ष के बीज हैं। परन्तु ये ही भगवत्सम्बन्धी होने से कल्याण के हेतु हो गये।

एहि बिधि राति लोगु सबु जागा। भा भिनुसार गुदारा लागा ॥
गुरहिं सुनाव चढ़ाइ सोहाई। नई नाव सब मातु चढ़ाई ॥४॥
दंड चारि महँ भा सबु पारा। उतरि भरत तब सबहि सँभारा ॥५॥

अर्थ : इस भाँति रात भर सब लोग जागते रहे। सवेरा होते ही गुदारे की

नाव लग गयी। पहिले अच्छी और सुन्दर नाव पर गुरुजी को चढ़ाया। नयी नावों पर माताओं को चढ़ाया। चार घड़ी में सब पार हो गये। तब भरतजी उतरकर सबको सँभालने लगे।

व्याख्या : इस भाँति रोते गाते रात बीती। करुणा से किसी को नींद न आयी। केवल कैकेयी भरत चक्रवर्तीजी और निषादराज की ही चर्चा होती रही। उधर निषादराज का इन्तजाम है। सवेरा होते ही नावें आकर घाट पर लग गयीं। सुन्दर और मजबूत नाव पर पहिले गुरुजी को चढ़ाया। सभी मङ्गलयात्रा में गुरुजी की ही सवारी पहिले निकलती है : अरुंधती अरु अगिन समाजू। रथ चढ़ि चलत भये मुनिराजू। इसलिए एक नाव केवल गुरुजी के लिए है। माताओं को नयी नावों पर चढ़ाया जिसमें भीतर जल आने का भय न रहे। भरतजी सबके पीछे उतरे। सेना बड़ी थी इसलिए कई खेवा करना पड़ा। चार घड़ी में सब पार हो गये। टिकने के समय भी : भरत सोध सबही कर लीन्हा और उतरने पर भी : उतरि भरत तब सबहिं सँभारा।

दो. प्रात क्रिया करि मातु पद, बंदि गुरहि सिरु नाइ।
आगे किये निषाद गन, दीन्हेउ कटकु चलाइ ॥२०२॥

अर्थ : प्रातःकाल की क्रिया करके माता के चरणों की वन्दना करके गुरुजी को सिर नवाया और निषादगण को आगे करके सेना का कूच बोल दिया।

व्याख्या : उस पार उतरकर प्रातःकाल का कृत्य किया। तब माता की वन्दना पश्चात् गुरु की वन्दना की। आगे का रास्ता निषादगण का देखा है। अतः उन्हीं को आगे कर दिया और सेना चल पड़ी। मातृदेवो भव। पितृदेवो भव। आचार्यदेवो भव। ऐसा वेद की आज्ञा है। अतः माता का चरण वन्दन करके तब गुरुजी की वन्दना की।

कियेउ निषादनाथु अगुआई। मातु पालकी सकल चलाईं ॥
साथ बोलाइ भाइ लघु दीन्हा। बिप्रन्ह सहित गवन गुर कीन्हा ॥१॥

अर्थ : निषादराज ने अगुआई किया : अर्थात् आगे आगे चले। माताओं की पालकियाँ उसके बाद चलायी गयीं। छोटे भाई को बुलाकर साथ में दिया। ब्राह्मणों के साथ गुरुजी चले।

व्याख्या : अपने राज्य की सीमा से बाहर वन में चल रहे हैं इसलिए इन्तजाम बदल गया। सबसे पहिले गुरुजी की सवारी चलती थी। सो सुरक्षा की दृष्टि से सबके पीछे चली। सबके आगे सेना चल रही है। उसके भी आगे रास्ता दिखलाने के लिए निषादगण चल रहे हैं। उसके बाद माताओं की पालकियाँ चलीं। उन पालकियों के आगे आगे स्वयं निषादराज चल रहे हैं। माताओं की रक्षा भरतजी ने निषादराज के जिम्मे अपना प्रतिनिधि बनाकर किया और शत्रुसूदनजी को निषादराज के साथ कर दिया। उसके बाद ब्राह्मणों के समाज के साथ गुरुजी

चले। इन्तजाम करनेवाले से कोई कारण नहीं पूछता। वह जैसा उचित है वैसी व्यवस्था करता है : एक नायक की आज्ञा चलनी चाहिए। क्योंकि बिना नायक के नाश होता है और अनेक नायक के होने से भी नाश होता है। अनायका विनश्यन्ति बहुनायकाः।

आपु सुरसरिहि कीन्ह प्रनामू। सुमिरे लखन सहित सिय रामू ॥
गवने भरत पयादेहि पाएँ। कोतल संग जाहिं डोरिआएँ ॥२॥

अर्थ : भरतजी ने स्वयं गङ्गाजी को प्रणाम किया। लक्ष्मणजी के सहित सीताराम का स्मरण किया। भरतजी पाँव पैदल चले। कोतल बिना सवार के घोड़े बागडोर से बँधे चले जा रहे थे।

व्याख्या : आने के समय भी गङ्गाजी को प्रणाम किया। अब जाने के समय भी प्रणाम कर रहे हैं। भेद इतना ही था कि आने के समय : रामघाट कहँ कीन्ह प्रणामू। अब उस पार चले गये हैं। उधर जंगल होने से घाट नहीं है। अतः सुरसरिहि कीन्ह प्रनामू लिखा। लक्ष्मणजी के सहित सीतारामजी का स्मरण करते हैं। क्योंकि वे ही यात्रा के लक्ष्य है। यथा : सोक समाज राज केहि लेखे। लखन राम सिय पद बिनु देखे।

यहाँ से ही रामजानकी तथा लक्ष्मणजी ने पाँव पैदल यात्रा की थी। अतः यहाँ से भरतजी ने पैदल यात्रा आरम्भ की। अयोध्या से ही पैदल चले थे पर माताजी ने रोक दिया। कहा : तुम्हारे चलत चलिहि सब लोगू। सकल सोक कृस नहिं मग जोगू। फिर भी वही बात होगी। इसलिए इस बार भरतजी ने सबको आगे चला दिया। आप पीछे रह गये। जिसमें उन्हें पैदल देखकर लोग सवारी से उतर कर पैदल न चलने लगें। सेवकों ने सब समाज को चले जाते देखकर भरतजी की सवारी के लिए घोड़े रख लिये। समझा कि कुछ दूर पैदल चलने की इच्छा है। फिर सवारी का काम पड़ेगा ही। शत्रुघ्नजी भी साथ नहीं हैं। अतः रथ पर चलने की इच्छा नहीं मालूम होती है। इसलिए उन सबों ने भरतजी के सवारी के घोड़े रोक रक्खे। वे बिना सवार को बागडोर से बँधे चल रहे हैं।

कहहिं सुसेवक बारहिं बारा। होइअ नाथ अस्व असवारा ॥
रामु पयादेहि पाय सिधाये। हम कहँ रथ गज बाजि बनाये ॥३॥

अर्थ : सुसेवक लोग बार बार कह रहे हैं कि सरकार घोड़े पर सवार हो जायँ। रामजी पाँव पैदल ही गये हैं और मेरे लिए रथ हाथी घोड़े बनाये गये हैं।

व्याख्या : जब देख लिया कि मन बहलाने के लिए जितनी दूर पैदल चला जाता है उस सीमा का अतिक्रमण हो गया। तब सुसेवकों ने कहा कि सरकार घोड़े पर सवार हो जायँ। वे सुसेवक हैं। स्वामी का उचित से अधिक पैदल चलना सहन नहीं कर सकते। सेवक समय न ढीठ ढिठाई। अतः बोल बैठे। भरतजी ने उस कहने की उपेक्षा की। आगे बढ़ते ही चले गये। सुसेवकों से नहीं रहा गया।

फिर कहा फिर कहा। तब भरतजी बोले कि सरकार रामजी तो पैदल गये। रथ हाथी घोड़े सब उनके लिए हैं। मेरे लिए नहीं हैं। यथा : संपति सब रघुपति कै आही। मैं सेवक हूँ। जहाँ उनका पैर पड़ा है वहाँ मेरा सिर लगना चाहिए। वहाँ मैं सवारी पर कैसे चलूँ।

सिर भर जाउँ उचित अस मोरा। सब तें सेवक धरमु कठोरा ॥
देखि भरत गति सुनि मृदु बानी। सब सेवक गन गरहिं गलानी ॥४॥

अर्थ : मेरे लिए उचित तो यह था कि सिर के बल जाता। क्योंकि सब धर्मों से कठिन सेवक धर्म है। भरतजी की अवस्था देखकर और कोमल वाणी सुनकर सेवकगण ग्लानि से गले जा रहे थे।

व्याख्या : कहहु तो कहाँ चरन कहँ माथा। जहाँ मालिक का चरण वहाँ सेवक का मस्तक। अतः उचित तो था कि जहाँ रामजी पाँव के बल चले वहाँ मैं सिर के बल चलूँ। परन्तु यह सम्भव नहीं है। इससे कम से कम मैं पैदल तो चलूँ। सेवक का ठीक धर्म पालन में मैं असमर्थ हो रहा हूँ।

भरतजी की प्रेम परवश दशा देखकर और मृदु वाणी सुनकर सेवक लोग ग्लानि से गले जा रहे थे। अर्थात् उन्हें ग्लानि हुई कि हम सुसेवक कहलाकर भी सेवाधर्म से अनभिज्ञ ठहरे और भरतजी स्वामी होकर सेवाधर्म में ऐसे पटु हैं। भरतजी ने मृदु वाणी कहा। धिक्कारा नहीं पर बात लग गयी। ऐसे उच्चकोटि के सेवक हैं कि उन्हें अविवक्षित ध्वनि से ग्लानि हुई।

दो. भरत तीसरे पहर कहँ, कीन्ह प्रबेसु प्रयाग।
कहत राम सिय राम सिय, उमगि उमगि अनुराग ॥२०३॥

अर्थ : भरतजी ने तीसरे पहर में प्रवेश किया। सीताराम सीताराम अनुराग के उमङ्ग में कहते जा रहे थे।

व्याख्या : सब लोग बहुत पहिले प्रयाग पहुँच गये। पर भरतजी तीसरे पहर में प्रयाग पहुँचे। ये पैदल पाँव बिना जूते के चल रहे थे। रेत धूप से जल रही थी। अतः चलने में अधिक कठिनता पड़ी। चित्रकूट जाने की इतनी त्वरा होने पर भी तीर्थ को बाँया नहीं दिया। प्रयागराज चले गये। मनसा वाचा कर्मणा धर्म प्रवृत्ति। यथा : कर्मणा : कीन्ह प्रवेस प्रयाग। वचसा : कहत रामसिय रामसिय। मनसा : उमगि उमगि अनुराग।

झलका झलकत पायन्ह कैसें। पंकज कोस ओस कन जैसें ॥
भरत पयादेहिं आए आजू। भयउ दुखित सुनि सकल समाजू ॥१॥

अर्थ : चरणों में झलका : छाले कैसे चमक रहे हैं जैसे कमल के कोष में ओस के कण चमकते हैं। भरतजी आज पैदल ही आये। यह समाचार सुनकर सब समाज दुःखी हो उठा।

व्याख्या : जलती हुई धूलि में बिना जूते के चलने से सम्पूर्ण चरणों में छोटे छोटे छाले पड़ गये। परन्तु चरणों की शोभा और भी बढ़ गयी। कमल के कोष पर ओस के कणों के पड़ जाने पर जैसी कमल की शोभा होती है वैसी ही चरणों की शोभा हुई। डेरे पर आने पर जब धूलि धूसरित चरण धोये गये तब यह शोभा दिखायी पड़ी।

समाचार सब समाज में फैल गया। सब चिन्तित थे कि भरतजी के आने में देर क्यों हो रही है। जब मालूम हुआ कि आज भरतजो पैदल ही आये। तो यह सुनकर सब समाज दुःखी हो गया। सब लोग समझ गये कि जहाँ से जहाँ तक रामजी पैदल गये हैं भरतजी सवारी पर नहीं चलेंगे। अब भरतजी की यात्रा पैदल होगी। कोमल चरण हैं। जेठ की धूप से पृथ्वी तप रही है। पहिले दिन के चलने में ही पैर में छाले पड़ गये। यह पूरा रास्ता कैसे कटेगा? भरतजी का निश्चय है यह टल भी नहीं सकता। अतः सब समाज दुःखी हो गया। माता लोग भी उनके सेवा धर्म में बाधक नहीं होना चाहती।

खबरि लीन्ह सब लोग नहाये। कीन्ह प्रनामु त्रिबेनिहिं आये॥
सबिधि सितासित नीर नहाने। दिये दान महिसुर सनमाने॥२॥

अर्थ : पता लगा लिया कि सब लोग नहा चुके। तब त्रिवेणी में आकर प्रणाम किया। विधि के साथ श्याम और श्वेतजल के सङ्गम में स्नान किया। ब्राह्मणों का सम्मान किया और दान दिया।

व्याख्या : आते ही भरतजी सबका सँभाल करते हैं। पता लगा कि सब लोग स्नान कर चुके। क्योंकि पहिले ही पहुँच चुके थे। तब आप स्नान के लिए सङ्गम पर गये और भगवती त्रिवेणी को प्रणाम किया।

सितासित शब्द से प्रयागराज का वेद प्रतिपाद्य होना द्योतित किया। यथा : सितासिते सरिते यत्र संगते। श्रुतिः। प्रयागराज में त्रिवेणी स्नान की जो विधि है। उस विधि से स्नान किया। संगम सिंहासन सुठि सोहा। चँवर जमुन अरु गंग तरंगा। देखि होहिं दुःख दारिद भंगा। स्नान के उपरान्त दान की विधि है। अतः ब्राह्मणों को दान दिया और सम्मान किया। क्योंकि सम्मान सबसे बड़ा दान है। यथा : तुलसी कहत पुकार के सुनहु सकल दै कान। हेम दान गज दान ते बड़ो दान सम्मान। सरकार के स्नान के समय कहा : मुदित नहाइ कीन्ह सिव सेवा। पूजि यथाबिधि तीरथ देवा। दान देना नहीं कहा। क्योंकि वे उदासीन थे। भरतजी के साथ धन है। अतः दान सम्मान दोनों लिखा। बिना सम्मान का दान व्यर्थ है और बिना दान का सम्मान केवल दम्भ है। अतः दान सम्मान दोनों होना चाहिए।

देखत स्यामल धवल हलोरे। पुलकि सरीर भरत कर जोरे॥
सकल काम प्रद तीरथ राऊ। बेद बिदित जग प्रगट प्रभाऊ॥३॥

अर्थ : काली और सुफेद लहरों को देखकर भरतजी ने पुलकित होकर हाथ

जोड़ा। हे तीर्थराज ! आप सब कामनाओं के देनेवाले हैं। आपका प्रभाव संसार में प्रकट है और वेद में भी विदित है।

व्याख्या : स्यामल धवल हिलोरे के देखने से भरतजी को रामजानकी का स्मरण हो उठा। अतः शरीर में पुलक हो गया। यथा : उतरि नहाये जमुन जल जो सरीर सम स्याम। तीर्थराज को प्रणाम करना चाहिए और मनोरथ प्राप्ति के लिए वरदान माँगना चाहिए। क्योंकि तीर्थराज का भण्डार चारों फल से भरा पूरा है। यथा : चारि पदारथ भरा भंडारू। सेवहिं सुकृती साधु सुचि पावहिं सब मन काम। बंदी बेद पुरान गन कहहिं बिमल गुनग्राम। इस दोहे के पहिले पद से जग प्रगट प्रभाऊ और दूसरे पद से बेद बिदित पद की व्याख्या की।

मागउँ भीख त्यागि निज धरमू। आरत काह न करइ कुकरमू ॥
अस जिय जानि सुजान सुदानी। सफल करहिं जग जाचक बानी ॥४॥

अर्थ : मैं अपना धर्म छोड़कर भीख माँगता हूँ। क्योंकि आर्त कौन सा कुकर्म नहीं करते। ऐसा मन में समझकर जो सुजान सुदानी हैं वे संसार में याचक की वाणी को सफल करते हैं।

व्याख्या : भिक्षा माँगना क्षत्रिय के लिए निषिद्ध है। परन्तु आर्त पुरुष को विधि निषेध का ख्याल नहीं रहता। अतः आर्त होकर क्षत्रिय भी भिक्षा माँगते हैं। भरतजी कहते हैं कि हे तीर्थराज ! आप प्रख्यात दानी हैं और मैं अत्यन्त आर्त हूँ। प्रमाण यह है कि क्षत्रिय होकर आप से भिक्षा माँगता हूँ। इतना आर्त हूँ कि अपने धर्म का भी परित्याग कर रहा हूँ। अतः मैं आर्त अधिकारी हूँ।

सुजान सुदानी जाचक के पात्रापात्र का विचार यदि वह आर्त हो तो नहीं करते। अपात्र भी आर्त होने से पात्र ही है। अतः उसकी वाणी को सफल करते हैं। आप भी पात्रापात्र का विचार न करके मेरी वाणी सफल कीजिये।

दो. अरथ न धरम न काम रुचि, गति न चहौं निरबान।
जनम जनम रति राम पद, यह बरदानु न आन ॥२०४॥

अर्थ : मुझे धर्मार्थ काम की रुचि नहीं है और निर्वाण गति भी नहीं चाहता हूँ। मैं यही वरदान चाहता हूँ कि जन्म जन्मान्तर में मेरी भक्ति श्रीरामजी के चरणों में हो। दूसरी कोई बात मैं नहीं चाहता।

व्याख्या : इतने आर्त होने का कारण कहते हैं कि आपका भण्डार धर्मार्थ काम और मोक्ष से भरपूर है और यही याचकों को मिला करता है। पर इनमें मेरी रुचि नहीं। मैं तो जन्म जन्म में रामजी के चरणों में रति प्राप्ति का वरदान चाहता हूँ। जो भण्डार में नहीं है वह चाहता हूँ। आप याचक की वाणी पूरा करनेवाले सुजान दानी है। आप जैसे हो सके मुझे भक्ति भिक्षा दीजिये। अर्थ धर्म काम तथा मोक्ष मुझे नहीं चाहिए। यथा : सगुन उपासक मोक्ष न लेहीं।

जानहु रामु कुटिल करि मोही । लोगु कहउ गुर साहिब द्रोही ॥
सीताराम चरन रति मोरें । अनुदिन बढ़उ अनुग्रह तोरें ॥१॥

अर्थ : रामजी भले ही मुझे कुटिल समझें और भले ही लोग मुझे गुरुद्रोही और स्वामिद्रोही कहें । सीताराम के चरणों में मेरी प्रीति आपके अनुग्रह से नित्य बढ़ती रहे ।

व्याख्या : वरदान में भरतजी एकाङ्गी प्रीति माँगते हैं । रामजी चाहे प्रेम करें चाहे प्रेम न करें । भले ही मुझे कुटिल मानकर घृणा करें मुझे स्वीकार है । उन पर आप कोई प्रभाव न डालें । उन्हें स्वच्छन्द रहने दें । पर रामजी के कुटिल जानने से दुर्यश होगा । लोग कहेंगे कि भरत गुरुद्रोही और स्वामिद्रोही हैं और रघुकुल यशोधन हैं । यशोहानि कैसे सही जायगी ? इस पर भरतजी कहते हैं कि यशोहानि मुझे स्वीकार है । पर सरकार की स्वच्छन्दता में भेद न पड़ने पावे । भरतजी कहते हैं कि वरदान का प्रभाव मुझ पर पड़े । श्रीसीतारामजी के चरणों में मेरी प्रीति नित्य बढ़ती रहे । अर्थात् सिद्धा भक्ति के लिए भरतजी की प्रार्थना है ।

जलदु जनम भरि सुरति बिसारउ । जाचत जलु पबि पाहन डारउ ॥
चातकु रटनि घटें घटि जाई । बढ़ें प्रेम सब भाँति भलाई ॥२॥

अर्थ : मेघ चाहे जन्म भर पपीहे को याद न करे । जल माँगने पर पत्थर और वज्र गिरावे । पपीहे की रटन घटने से वह घट जावेगा । प्रेम बढ़ने में ही उसकी सब भाँति से भलाई है ।

व्याख्या : चातक हंस सराहियत टेक विवेक विभूति । हंस विवेकी है और चातक प्रेमी है । अतः हंस में विवेक की विभूति है और चातक में टेक की विभूति है । यदि चातक की रटनि घट जावे तो उसके टेक की विभूति ही जाती रही । उसकी भलाई तो प्रेम के बढ़ने में ही है । चाहे मेघ उसे कितना भी कष्ट दे । इसी बात को गोस्वामीजी ने दोहावली में बड़े मार्मिक शब्दों में वर्णन किया है । यथा :

मान राखिवो माँगिवो पिय सों नित नव नेहु ।
तुलसी तीनिउ तब फबैं जौ चातक मत लेहु ॥
तीनलोक तिहुकाल जस चातक ही के हाथ ।
तुलसी जासु न दीनता सुनौ दूसरे नाथ ॥
जौ घन बरसै समयसिर जौं भरि जनम उदास ।
तुलसी या चित चातकहि तऊ तिहारी आस ॥
रटत रटत रसना लटी तृषा सूखिगे अंग ।
तुलसी चातक प्रेम को नित नूतन रुचि रंग ॥
चढत न चातक चित कबहुँ प्रियपयोद के दोष ।
तुलसी प्रेम पयोधि की ताते नाप न जोख ॥

परखि परुष पाहन पयद पंख करौ टुक टूक।
तुलसी दरी न चाहिये चतुर चातकहि चूक॥
उपल बरषि गरजत तरजि डारत कुलिस कठोर।
चितव कि चातक मेघ तजि कबहुँ दूसरी ओर॥

पवि पाहन दामिनि गरज झरि झँकोरि खरि खीझि।
रोष न प्रीतम दोष लखि तुलसी रागहि रीझि॥
प्रीति पपीहा पयद की प्रगट नई पहिचानि।
जाचक जगत कनाउडो कियो कनौडो दानि॥

साधन सांसति सब सहत सबहि सुखद फल लाहु।
तुलसी चातक जलद की रीझि बूझि बुध काहु॥
चातक जीवन दायकहि जीवन समय सुरीति।
तुलसी अलख न लखि परे चातक प्रीति प्रतीति॥

जीव चराचर जहँ लगे है सबको हित मेह।
तुलसी चातक मन बस्यौ घन सों सहज सनेह॥
प्रेम न परखिय परुषपन पयद सिखावन एह।
जग कह चातक पातकी ऊसर बरषे मेह॥

चरण चंगु गत चातकहि नेम प्रेम की पीर।
तुलसी परवस हाड़ पर परिहैं पुहमी नीर॥
बध्यौ बधिक पर्‌यौ पुन्यजल उलटि उठाई चोंच।
तुलसी चातक प्रेम पट मरतहुँ लगी न खोंच॥
तुलसी चातक देत सिख सुतहि बारही बार।
तात न तर्पन कीजिये बिना बारिधर धार॥

सो. जियत न नाई नार चातक घन तजि दूसरहिं।
सुर सरिहू को वारि मरत न माँगेउ अरध जल॥
सुन रे तुलसीदास प्यास पपीअहि प्रेम की।
परिहरि चारिउ मास जो अँचबे जल स्वातिको॥
जाचे बारह मास पिये पपीहा स्वाति जल।
जान्यौ तुलसीदास जोगवत नेही नेह मन॥

दो. उष्णकाल अरु देह खिन मग पंथी तन ऊख।
चातक बतियाँ ना रुचीं अनजल सीचे ऊख॥

जलद चातक का प्रेम पात्र है। चातक उसी का जल पीता है। दूसरे को उसे आशा नहीं। जलद जो उसे भूल जाय उस पर अत्याचार करे फिर भी चातक का प्रेम बढ़ता ही जाता है। इसी भाँति भरतजी भी श्रीरामजी के चरणों में प्रेम चाहते हैं। यही वरदान है।

कनकहि बान चढ़इ जिमि दाहें। तिमि प्रियतम पद नेम निबाहें ॥
भरत बचन सुनि माँझ त्रिबेनी। भइ मृदु बानि सुमंगल देनी ॥३॥

अर्थ : जिस भाँति सोने को तपाने से उस पर रङ्ग चढ़ जाता है वैसा ही रङ्ग प्रियतम के चरणों में प्रीति निर्वाह करने में चढ़े। भरतजी का वचन सुनकर मध्य त्रिवेणी में शुभ मङ्गल देनेवाली कोमल वाणी हुई।

व्याख्या : चेतन की उपमा देकर अब जड़ की उपमा देते हैं। प्रेम जड़ की अवस्था अभीष्ट है। चेतन का दुःखी होना सम्भव है। इसलिए जड़ की उपमा देते हैं। उसमें भी सोना तपाने के समय दमक उठता है। प्रेमास्पद के जलाने से और भी प्रेम में चमक बढ़े। जानते हैं कि सरकार विरहानल में तप्त करके प्रेम की परीक्षा ले रहे हैं। यथा : प्रेम अमिअ मन्दर बिरह भरत पयोधि गँभीर। मथि प्रगटेउ सुरसाधु हित कृपासिंधु रघुबीर।

भरतजी के ये वचन सुनकर मध्य त्रिवेणी अर्थात् सङ्गमरूपी सिंहासन से वचन सुनायी पड़ा। स्वयं त्रिवेणीजी बोल रही हैं।

तात भरत तुम्ह सब बिधि साधू। राम चरन अनुराग अगाधू ॥
बादि गलानि करहु मन माँही। तुम्ह सम रामहि कोउ प्रिय नाँही ॥४॥

अर्थ : तात भरत ! तुम सब प्रकार से साधु हो। रामचरण में तुम्हें अथाह प्रेम है। मन में व्यर्थ ग्लानि कर रहे हो। तुम्हारे समान रामजी को कोई प्रिय ही नहीं है।

व्याख्या : जानहु राम कुटिलकरि मोही। लोग कहउ गुरुसाहिब द्रोही। का उत्तर तीर्थराज देते हैं : तुम्ह सब बिधि साधू। पर उपकार बचन मन काया। संत सहज सुभाउ खगराया। तुम में स्वार्थ कहाँ ? साधु समाज में तुम्हारी रेखा और रामभक्तों में तुम्हारी लेखा है। तुम्हें स्वयं अगाध अनुराग है। मैं क्या दूँ ? केवल तुम्हारे सन्देह मिटाने के लिए निषादराज की भाँति निषादराज के ही शब्द दोहराये देता हूँ। यथा : नाथ करिअ कत बादि बिषादू। राम तुमहि प्रिय तुम प्रिय रामहि। तुलसी न तुम सम राम प्रीतम कहत हौं सौंहे किये। इत्यादि।

दो. तनु पुलकेउ हिय हरषु सुनि, बेनि बचन अनुकूल।
भरत धन्य कहि धन्य सुर, हरषित बरषहिं फूल ॥२०५॥

अर्थ : वेणी के अनुकूल वचन सुनकर भरतजी का शरीर पुलकित हो गया और हृदय में हर्ष हुआ। भरतजी धन्य हैं धन्य हैं ऐसा कहकर देवता फूलों की वर्षा करते हैं।

व्याख्या : भई मृदु बानि सुमंगल मूला से उपक्रम करके : बेनि बचन अनुकूल से उपसंहार करते हैं। गङ्गा यमुना सरस्वती के सङ्गम तीर्थराज का सिंहासन है। अतः त्रिवेणी की वाणी ही प्रयागराज की वाणी है। भरतजी ने : धिग धिग मोहि

अघ उदधि अभागी कहा था। अतः उसी का सम्मार्जन करते हुए देवता लोग भरतजी को धन्य धन्य कह रहे हैं और पुष्पवर्षा करके पूजन कर रहे हैं।

प्रमुदित तीरथराज निवासी। बैखानस बटु गृही उदासी ॥
कहहिं परसपर मिलि दस पाँचा। भरत सनेहु सीलु सुचि साँचा ॥१॥

अर्थ : प्रयागराज के रहनेवाले वानप्रस्थ गृहस्थ उदासी सब प्रसन्न हुए और दस पाँच आपस में मिलकर कहते हैं कि भरतजी का प्रेम और शील पवित्र और सच्चा है।

व्याख्या : भरतजी के साथ सेना आयी है। बड़ी भीड़भाड़ है। अतः सबको भरतजी के आने की खबर है। वैखानस वानप्रस्थ आश्रमी को कहते हैं। गृहस्थाश्रमी को गृही कहते हैं। बटु ब्रह्मचारी को कहते हैं और उदासी से यहाँ संन्यासी से तात्पर्य है। तीर्थराज हैं। अतः यहाँ सभी आश्रम के लोग बसते हैं। अतः भरतजी को देखने के लिए पहिले से ही तैयार हैं। रामजी जब आये थे तो उनके साथ भीड़ नहीं थी। अतः उनके आने का पता देर से लगा और वे सुन्दरता देखने की भावना से आये थे। यथा : यह सुधि पाइ प्रयाग निवासी। बटु तापसमुनि सिद्ध उदासी। भरद्वाज आश्रम सब आये। देखन दसरथ तनय सुहाये।

जहाँ तहाँ गोष्ठी में बातचीत हो रही है। त्रिवेणी के मध्य से जो वाणी का प्रादुर्भाव हुआ उसी का अनुवाद कर रहे हैं। यथा : रामचरन अनुराग अगाधू। भरत सनेह सील सुठि साँचा। यथा : तात भरत तुम सब बिधि साधू।

सुनत राम गुन ग्राम सुहाए। भरद्वाज मुनिबर पहिं आए ॥
दंड प्रनामु करत मुनि देखे। मूरतिमंत भाग्य निज लेखे ॥२॥

अर्थ : रामजी के गुणगणों को सुनते हुए भरद्वाज मुनिवर के पास आये। मुनिजी ने भरतजी को साष्टाङ्ग प्रणाम करते देखा तो उन्हें मूर्तिमान् अपना भाग्य माना।

व्याख्या : भरतजी के स्नेह और शील वर्णन के बाद प्रसङ्ग प्राप्त रामजी का गुणग्राम वर्णन करने लगे। रामजी का रूप और स्वभाव देख चुके हैं। यथा : राम प्रणाम कीन्ह सब काहू। मुदित भये लहि लोचन लाहू। देहिं असीस परम सुख पाई। फिरे सराहत सुंदरताई। रामजी के दर्शन से मुदित थे। आज भरतजी के दर्शन से मुदित हैं। भरतजी उधर से ही जा रहे हैं। तमाम रास्ते यही चर्चा है। अतः राम गुणग्राम सुनते हुए भरद्वाज के आश्रम पर आये। प्रयाग में भरद्वाजजी का दर्शन प्रधान है। क्योंकि ये जङ्गम तीर्थराज हैं। प्रयागराज के देवताओं की भाँति ये भी अङ्गभूत है। यथा : प्रयागं माधवं सोमं भारद्वाजं च वासुकिम्। वन्देऽक्षयवटं शेषं प्रयागं तीर्थनायकम्।

न तो सरकार के ही आने का पता मुनिजी को था जो आगे लेने आते और न भरतजी के ही आने का पता लगा। भावार्थ यह कि तीर्थराज में रहने से इनके

यहाँ लोगों का आना जाना सदा लगा रहता था। घोर वन में रहनेवाले मुनियों के यहाँ जिस भाँति किसी विशेष व्यक्ति का आना एक विशेष घटना समझी जाती थी और उसका समाचार बटु लोग पहिले से ही दे देते थे। वैसी कोई बात यहाँ न थी। अतः शिष्यों ने पहिले से खबर नहीं दी। इसलिए भरतजी को दण्डवत् प्रणाम करते मुनिजी ने देखा तो अपना बड़ा भाग्योदय माना। पूर्वजन्मकृतं कर्म तद्दैवमिति कथ्यते। अतः भरतजी को मूर्तिमान पूर्व जन्मकृत पुण्य माना। सरकार को वर्तमान जन्म का किया हुआ पुण्य माना था। यथा : लोचन गोचर सुकृत फल मनहु किये बिधि आनि।

धाइ उठाइ लाइ उर लीन्हें। दीन्हि असीस कृतारथ कीन्हें॥
आसनु दीन्ह नाइ सिरु बैठे। चहत सकुच गृह जनु भजि पैठे॥३॥

अर्थ : दौड़े और उठाकर छाती से लगा लिया। आशीर्वाद देकर कृतार्थ किया आसन दिया तो सिर झुकाकर बैठे मानो सङ्कोच रूपी घर में भागकर घुस जाना चाहते हैं।

व्याख्या : भरतजी ने दूर से प्रणाम किया था। अतः दौड़ पड़े। इतने बड़े भागवत का दण्ड की भाँति भूमि में पड़ा रहना सह न सके तथा उन्हें हृदय लगा लेने की बड़ी चाह है। सत्कार करने का बड़ा उत्साह है। आशीर्वाद देने के लिए हृदय उमगा आ रहा है। अतः चार क्रियाओं का एक साथ ही प्रयोग है। भरतजी इस सत्कार से कृतार्थ हुए अथवा भक्तिरस्तु ऐसा आशीर्वाद दिया। इससे भरतजी ने अपने को कृतार्थ माना। सिर झुकाकर बैठना सङ्कोच तथा सोच की मुद्रा है। सरकार से मुनिजी ने कुशल प्रश्न करके तब आसन दिया। भरतजी से कुशल प्रश्न नहीं किया। आसन दे दिया। मुनिजी समझते हैं कि जब जानता हूँ कि कुशल नहीं है तब उसका प्रश्न करना और भी छेड़कर दुःख देना है। भरतजी को देखा कि ये इतने सङ्कुचित हैं मानो सङ्कोचरूपी घर में पैठ जाना चाहते हैं। सम्मुख होकर बात करने में कष्ट है।

मुनि पूछब कछु येह बड़ सोचू। बोले रिषि लखि सीलु सँकोचू॥
सुनहु भरत हम सब सुधि पाई। बिधि करतब पर किछु न बसाई॥४॥

अर्थ : यह बड़ा सोच था कि मुनिजी कुछ पूछेंगे। ऋषिजी भरतजी का शील सङ्कोच देखकर बोले : भरतजी ! सुनो मुझे सब पता लग गया है। विधाता के किये हुए को कौन मिटा सकता है। किसी का कुछ वश्य नहीं है।

व्याख्या : सङ्कोच को स्पष्ट करते हैं। मुनिजी ने कुशल तो नहीं पूछा। फिर भी कुछ तो पूछेंगे ही और यह पूछना चाहे किसी विषय में हो। माता की चर्चा बिना चले नहीं रह सकती। माता के निन्दनीय कर्म से सन्तान को सङ्कोच होता ही है और विशेषतः जब उसी के पुत्र को किसी के पूछने पर कहना पड़े। ये मुनि ठहरे। इनसे सब कहना पड़ेगा। इस सङ्कोच को लखकर मुनिजी बोल उठे कि भरतजी !

तुम्हें कुछ कहना नहीं हैं। मुझे सब पता लग गया है। जो कुछ हुआ है उसमें मानुषी करणी नहीं है। वह सब विधि की करणी है। मानुषी करणी होती तो उस पर बल लग सकता था। जो बिधि लिखा लिलार। देव दनुज नर नाग मुनि कोउ न मेटनिहार। अतः किसी का कोई वश्य नहीं है।

दो. तुम्ह गलानि जिय जनि करहु, समुझि मातु करतूति।
तात कैकइहि दोसु नहिं, गई गिरा मति धूति ॥२०६॥

अर्थ : तुम माता की करतूत समझकर अपने मन में ग्लानि न करो। हे तात ! इसमें कैकेयी का दोष नहीं है। सरस्वती उनकी बुद्धि को ठग ले गयी।

व्याख्या : मुनिजी को देवताओं के रहस्य का पता हैं। अतः स्पष्ट कहे देते हैं कि सरस्वती ने आकर मन्थरा द्वारा कैकेयी की बुद्धि हरण कर ली। कैकेयी का दोष कुछ भी नहीं है। ब्रह्मदेव का रुख पाकर ही सरस्वती ने देवताओं के विनय को स्वीकार किया। अतः यह सब विधि की करणी है। तुम व्यर्थ ग्लानि न करो।

यहउ कहत भल कहहि न कोऊ। लोकु बेदु बुध सम्मत दोऊ ॥
तात तुम्हार बिमल जस गाई। पाइहि लोकउ बेदु बड़ाई ॥१॥

अर्थ : ऐसा कहने को कोई अच्छा नहीं कहेगा। क्योंकि पण्डितों को लोक और वेद दोनों मान्य हैं। हे तात ! तुम्हारे निर्मल यश को गाकर लोक और वेद दोनों बड़ाई पायेंगे।

व्याख्या : बात तो मैंने ठीक कही। पर इसे अच्छा कोई न कहेगा। क्योंकि इसके कहने में पण्डिताई नहीं है और पण्डितों को लोक और वेद मान्य हैं। लोक पहिले वेद पीछे। क्योंकि वेद कौन है ? इस प्रश्न का निपटारा तो लोक से ही होगा। अतः वेद भी लोक प्रमाण पर ही ठहरा है। माता के निर्दोष होने से तुम निर्दोष हो यह कहना तुम्हारा अपमान करना है। बात तो यह है कि कैकेयी के करतब से ही तुम्हारा इतना निर्मल यश हुआ।

क्योंकि तुम्हारा यश बड़ा पवित्र है। तुम्हारे ऐसा आचरण करना महा दुर्लभ है। उसके वर्णन से लोक और वेद की बड़ाई होगी। जो लोग तुम्हारा यश गावेंगे उनकी बड़ाई होगी। वेद की भी तुम्हारे यशोगान से प्रशंसा होगी। ऐसे महायशस्वी को यदि कोई कहे कि निर्दोष है तो कहनेवाले को ससार कहेगा कि इनसे कहते न बना।

लोक बेद सम्मत सबु कहई। जेहि पितु देइ राजु सो लहई ॥
राउ सत्य ब्रत तुम्हहि बोलाई। देत राजु सुखु धरमु बड़ाई ॥२॥

अर्थ : सब लोग ऐसा ही कहते हैं। यह बात लोक और वेद सम्मत है कि जिसे पिता दे वह राज्य पावे। सत्यव्रत राजा तुम्हें बुलाकर राज्य सुख धर्म और बड़ाई दे देते।

व्याख्या : लोक और वेद के बड़ाई पाने का कारण कहते हैं कि तुम्हारी करणी लोक और वेद दोनों से ऊँची निकली। क्योंकि इस बात में सबका ऐकमत्य है कि जिसे पिता दे वही राज्य पावे। यह सर्वसम्मत सिद्धान्त है।

राजा सत्यव्रत थे। अतः विशेष नियम से काम ले सकते थे। वरदान दे दिया था उसे मिथ्या नहीं कर सकते थे। अतः रामजी को न देकर तुम्हें दे देते और उसके साथ सुख धर्म और बड़ाई भी देते। सुख यथा : हरखे सकल पाइ जनु राजू। धर्म यथा : प्रजा पालि परिजन दुख हरहू। बड़ाई यथा : राजा दण्डधरो गुरुः।

राम गवनु बन अनरथ मूला। जो सुनि सकल बिस्व भइ सूला ॥
सो भावी बस रानि अयानी। करि कुचालि अंतहु पछितानी ॥३॥

अर्थ : रामजी का वन जाना अनर्थ का मूल हो गया। जिसे सुनकर संसार को शूल हुआ। सो भी होनहार के वश बेसमझ रानी कुचाल करके अन्त में पछतायी।

व्याख्या : पर दूसरा वर बड़ा अनर्थकारी माँगा। राम वनगमन से अयोध्या उजाड़ हुई। महाराज मरे। जिनका घनिष्ठ सम्बन्ध था उनकी गति कौन कहे। संसार भर में जिसने सुना उसे शूल हो गया। संसार से अभिप्राय उन लोगों से है जिनमें वस्तुतः मनुष्यता है। मनुष्यरूप से जो पशु विचरते हैं उनकी गणना मनुष्यों में नहीं है।

भावीवश हो जाने से बड़े बड़े बुद्धिमानों की बुद्धि बिगड़ जाती है। ज्ञानी महाराज भानुप्रताप की बुद्धि बिगड़ गयी। जिसने जन्मभर वासुदेवार्पण कर्म किया। यथा : करै जे धरम करम मन बानी। वासुदेव अर्पित नृप ग्यानी। उसने वर माँगा देहाध्यासियों की भाँति। यथा : जरा मरन दुख रहित तनु समर जितै जनि कोउ। एकछत्र रिपुहीन महि राज कलपसत होउ। महारानी तो सूधी थी। यथा : काहु कहौं सखि सूध सुभाऊ। दाहिन बाम न जानेहुँ काऊ। यह यदि भावीवश होकर विकृत मस्तिष्क हो गयी तो इसमें आश्चर्य ही क्या है? भावीवश इसकी बुद्धि मारी गयी। यथा : भावी बस प्रतीति उर आई। फिर जब प्रकृतिस्थ हुई तो पछतायी। पहिले भी रामजी में प्रेम था। आज भी प्रेम है। तो बीच में हो क्या गया? यही भावी है।

तहउँ तुम्हार अलप अपराधू। कहइ सो अधमु अयान असाधू ॥
करतेहु राजु त तुम्हहि न दोषू। रामहि होत सुनत संतोषू ॥४॥

अर्थ : वहाँ भी यदि कोई तुम्हारा स्वल्प भी अपराध कहे तो वह अधम है। अज्ञानी है और साधु नहीं है। यदि तुम राज्य भी करते तो तुम्हारा कोई दोष न होता। रामजी को सुनकर सन्तोष होता।

व्याख्या : कुचाल में बड़ा अपराध प्रयोजक कर्ता का हुआ करता है और स्वल्प अपराध उपेक्षा करनेवाले का होता है। सो तुम्हें प्रयोजक कर्ता तो कोई कह नहीं सकता। यदि कोई स्वल्पापराध भी कहे तो वह अधम है। अर्थात् लोक वेद

से विमुख है। बुद्धिहीन है और उसका हृदय दूषित है। ऐसे पुरुष ही अपने बुद्धि दोष से दूसरों में दोष देखते हैं।

अधम यथा : कहहि सुनहि अस अधम नर ग्रसे जे मोह पिसाच।

अयान यथा : मरम तुम्हार रामकर जानिहि।
ते सब बिधि तुम्ह सन भल मानिहि।

असाधु। यथा : मत तुम्हार यहु जो जग कहही।
ते सपनेहुँ सुख सुगति न लहही।

जो वसिष्ठजी ने कहा था वही भरद्वाजजी भी कहते हैं। यथा : सुनि सुख लहब राम वैदेही। अनुचित कहब न पंडित केही। राय राजपद तुम कहँ दीन्हा। पिता वचन फुर चाहिअ कीन्हा।

दो. अब अति कीन्हेउ भरत भल, तुम्हहिं उचित मत एहु।
सकल सुमंगल मूल जग, रघुबर चरन सनेहु ॥२०७॥

अर्थ : भरतजी ! अब तुमने बहुत अच्छा किया। तुम्हारे लिए यही उचित राय थी। रामजी के चरणों में प्रेम होना इस संसार में सब सुमङ्गलों का मूल है।

व्याख्या : भरतजी ! यदि तुम राज्य करते तो वह भी भली बात थी : धर्माविरुद्ध [1]प्रेय को कौन नहीं चाहता ? तुमने नहीं किया। यह अत्यन्त भली बात हुई। राज्य करते तो धर्मानुकूल होता। इसलिए उसे भला कहा। परन्तु तुमने श्रीरामचरणानुराग को आगे करके राज्य का त्याग करके श्रेय का ग्रहण किया। अतः यह बहुत ही भला हुआ। तुम्हारे ऐसे साधु पुरुष के योग्य कार्य हुआ।

सो सब करम धरम जरि जाऊ। जहँ न रामपद पंकज भाऊ। जोग कुजोग ज्ञान अज्ञानू। जहँ नहिं राम प्रेम परधानू। अतः रामजी के चरणों में स्नेह ही सब मङ्गलों का मूल है। क्योंकि रामजी स्वयं मङ्गल मूल हैं। यथा : मंगल मूल राम सुत जासू। अतः मङ्गल मूल से स्नेह करना स्वयं मङ्गल मूल है।

सो तुम्हार धनु जीवनु प्राना। भूरिभाग को तुम्हहि समाना ॥
यह तुम्हार आचरजु न ताता। दसरथ सुअन राम प्रिय भ्राता ॥१॥

अर्थ : और वह तुम्हारा धन जीवन और प्राण है। तुम्हारे ऐसा महाभाग्यवान् कौन है ? हे तात ! यह तुम्हारे लिए आश्चर्य की बात नहीं है। तुम दशरथ के पुत्र और रामजी के प्रिय भाई ठहरे।

---

१. अन्यच्छ्रेयोऽन्यदुत एव श्रेयस्तेनानार्थे पुरुषः सिनीतः। तयोः श्रेय आददानस्य साधु भवति। हीयतेऽर्थातय उ प्रेयो वृणीते। काठके। श्रेय दूसरी वस्तु है और प्रेम दूसरी वस्तु है। वे दोनों पृथक् पृथक् विषय में मनुष्यों को बाँधते हैं। उनमें से श्रेय के ग्रहण करनेवाले का कल्याण होता है और वह अर्थ से गिर जाता है जो प्रेय को स्वीकार करता है।

व्याख्या : वह रघुवर चरण स्नेह तुम्हारा धन है। यथा : माँगहु भीख त्यागि निज धर्मू से : अनुदिन बढ़हु अनुग्रह तोरे तक अथवा : सोक समाज राज केहि लेखे। लखन राम सिय पद बिनु देखे। तुम्हारा जीवन है। यथा : बादि जीव बिनु देह सोहाई। बादि मोर सब बिनु रघुराई। और वही तुम्हारा प्राण है। यथा : अस को जीव जन्तु जग माँही। जेहि रघुनाथ प्रान प्रिय नाहीं। अतः तुम्हारे ऐसा महाभाग्यवान् कोई नहीं।

जिस कुल में जो न हो आयी हो उस काम को कर बैठना आश्चर्य की बात है। तुम्हारे कुल में तो ऐसा होता आया है। अतः तुम्हारे लिए आश्चर्य की बात नहीं है। पहिले की बात न कहकर वर्तमान की बात कहता हूँ। तुम्हारे पिता महाराज दशरथ प्रेम के समुद्र थे। यथा : बंदौ अवध भुआल सत्य प्रेम जेहि राम पद। बिछुरत दीन दयाल प्रिय तन तृन इव परिहरेउ। तुम्हारे बड़े भाई कैसे भ्रातृवत्सल हैं। यथा : भरत प्रान प्रिय पावहि राजू। बिधि सब बिधि मोहि संमुख आजू। रामहि बंधु सोच दिन राती। अंडन्हि कमठ हृदउ जेहि भाँती। अतः तुम में इतना राम स्नेह होना आश्चर्य की बात नहीं है।

सुनहु भरत रघुपति मन माँहीं। प्रेम पात्रु तुम्ह सम कोउ नाँहीं ॥
लखन राम सीतहिं अति प्रीती। निसि सब तुम्हहि सराहत बीती ॥२॥

अर्थ : भरतजी ! सुनो। रामजी के मन में तुम्हारे समान प्रेमपात्र कोई दूसरा नहीं है। लक्ष्मण राम और सीताजी की सारी रात तुम्हारी प्रशंसा करने में ही बीती।

व्याख्या : भरद्वाजजी भरतजी को आश्वासन देते हुए कहते हैं कि रामजी तुमको प्रिय हैं; इतना ही नहीं है रामजी को तुम्हारे समान प्रिय कोई नहीं है। यथा : भरत सरिस प्रिय को जग माँहीं। इहै सगुन फल दूसर नाँहीं

भरतजी की उस समय यह गति थी कि रात को भयानक सपने देखते थे। यथा : देखहिं रात भयानक सपना। जागि करहिं कटु कोटि कलपना। भक्त भयानक स्वप्न देखता है। जागकर अनेक चिन्ता करता है। अतः सरकार नहीं सो रहे हैं। भक्त का स्मरण कर रहे हैं। इसी बात को निषादराज कह रहे हैं। यथा : तेहि रात पुनि पुनि करहि प्रभु सादर सरहना रावरो। और यही बात भरद्वाजजी कह रहे हैं कि जिस दिन मेरे यहाँ ठहरे तीनों प्राणी रात भर तुम्हारी ही सराहना करते रह गये।

जाना मरमु नहात प्रयागा। मगन होहिं तुम्हरे अनुरागा ॥
तुम्ह पर अस सनेहु रघुबर कें। सुख जीवन जग जस जड़ नर कें ॥३॥

अर्थ : मैंने प्रयाग में स्नान करते उनके मर्म को जाना। वे तुम्हारे प्रेम में मग्न हो रहे थे। तुम पर ऐसा स्नेह रामजी का है जैसे जड़ पुरुष को संसार के सुखमय जीवन पर होता।

व्याख्या : भरद्वाजजी कहते हैं कि यद्यपि सव रात तुम्हारी प्रशंसा होती रही। पर तुम्हारे और रामजी के प्रेम का मर्म मैंने उनके प्रयाग स्नान करते समय जाना कि शरीर तो सितासित नीर में मग्न हो रहा है। पर मन तुम्हारे अनुराग में मग्न था। श्यामवर्ण वारि को देखकर तुम्हारे स्मरण से शरीर में पुलक हो गया : इसी भाँति भरतजी भी श्याम वर्ण जल को देखकर रामजी के स्मरण हो आने से विरह समुद्र में मग्न हुए थे। यथा : रघुबर बरन बिलोकि बर बारि समेत समाज। होत मगन बारिधि बिरह चढ़े बिबेक जहाज।

भरद्वाजजी कहते हैं कि तीर्थराज में स्नान के समय में भी तुम्हारे अनुराग में मग्न रहना श्रीरामजी के अतीव प्रेम का द्योतक है। ऐसा प्रेम जो जड़ मनुष्य को सुख जीवन पर होता है वह सुख जीवन के लिए क्या नहीं करता धर्म अर्थ काम और मोक्ष सबसे हाथ धो बैठता है। इसी का साफल्य दिखाते हुए कहेंगे : मुख प्रसन्न करि सकुच तजि कहहु करउँ सोइ आजु।

यह न अधिक रघुबीर बड़ाई। प्रनत कुटुंब पाल रघुराई॥
तुम्ह तउ भरत मोर मत एहू। धरे देह जनु राम सनेहू॥४॥

अर्थ : यह रामजी के लिए अधिक बड़ाई की बात नहीं है। वे प्रणत : प्रणाम करनेवाले के कुटुम्ब के पालन करनेवाले हैं। हे भरतजी ! मेरा मत तो यह है कि तुम शरीरधारी रामप्रेम ही हो।

व्याख्या : तुम्हारे ऊपर रामजी का इतना प्रेम होना रामजी के लिए कोई बड़ाई की बात नहीं है। क्योंकि वे तो एक बार के प्रणाम करनेवाले को अपना बना लेते हैं। उसके कुटुम्ब को अपना मान लेते हैं। अतः उसके पालन की बात कौन कहे। उसके कुटुम्ब का पालन करते हैं और तुम तो मेरे मत से शरीरधारी रामप्रेम ही हो। अतः तुम्हारे ऊपर उनका इतना प्रेम होना प्राप्त ही है।

दो. तुम्ह कहँ भरत कलंक यह, हम सब कहँ उपदेसु।
राम भगति रस सिद्धि हित, भा यह समउ गनेसु॥२०८॥

अर्थ : तुम्हारे लिए तो भरत यह कलङ्क है। पर हम तपस्वियों के लिए तो यह उपदेश : हो गया। रामभक्ति रस सिद्धि के लिए यह समय : जब कि रामजी तापस वेष से वन में हैं और तुम उन्हें लौटाने जा रहे हो गणेश रूप हो गया।

व्याख्या : मुनिजी कहते हैं : अवधराज सुरराज सिहाई। दसरथ धन सुनि धनद लजाई। ऐसा राज्य पिता ने तुमको दिया। उसको स्वीकृति तुम : गृहस्थ को कलङ्क मालूम हो रही हैं। यह बात हम वनवासी तपस्वियों के लिए उपदेश रूप है। रामभक्ति के लिए तुम ऐसे समृद्ध राज्य का त्याग कर रहे हो जिसका अर्थ यही है कि भक्तिसुख के सामने स्वर्ग सुख भी तुच्छ है। यथा : सूख हाड़ लै भाग सठ स्वान निरखि मृगराज। छीन लेइ जनि जानि जड़ तिमि सुरपतिहि न लाज।

तथा : सब सुख खानि भगति तैं माँगी। नहिं जग कोउ तोहि सम बड़ भागी। लाभ कि कछु हरिभगति समाना। जेहि गावहिं श्रुति संत पुराना।

यह समय तो सिद्धिदाता गणेश हो गया। इसके स्मरण करने से भक्तिरस की सिद्धि होगी। यथा : जेहि सुमिरत सिधि होइ गन नायक करिबर बदन। विभाव अनुभाव और व्यभिचारी भावों से व्यञ्जना वृत्ति द्वारा जो स्थायी भाव अभिव्यक्त होता है उसी को रस कहते हैं। यथा : प्रीति की उत्पादिका ललना आदि आलम्बन है। प्रीति के पोषक चन्द्रोदय आदि उद्दीपन हैं। इन्हीं आलम्बन और उद्दीपनों को विभाव कहते हैं। इसके बाद अश्रु और पुलक आदि जो अनुभव में लाने योग्य विकृति होती है। उसे अनुभाव कहते हैं। विशेष रूप से हृदय में स्थायी भाव सञ्चार करानेवाले जो हर्षादि भाव हैं उन्हें व्यभिचारी भाव कहते हैं और अविच्छिन्न प्रवाहवाला भाव स्थायीभाव कहलाता है।

जैसे : सियमुख ससि भये नयन चकोरा। यहाँ सीताजी आलम्बन हैं। कंकन किंकिन नूपुर धुनि सुनि उद्दीपन है। भये बिलोचन चारु अचंचल यह अनुभाव है। मानहु मदन दुंदुभी दीन्ही। मनसा बिस्वबिजय कहँ कीन्ही। यह व्यभिचारी भाव है और यहाँ सीता विषयक जो प्रेमरूपा चित्तवृत्ति है यही रति स्थायी भाव है। यथा : देखि सीय सोभा सुख पावा। हृदय सराहत बचन न आवा। यही स्थायी भाव उपर्युक्त आलम्बन, उद्दीपन, अनुभाव और विभाव से पुष्ट होकर रसरूप हो गया और शृङ्गार कहलाया।

इसी भाँति जहाँ सर्वेश्वर रामचन्द्र आलम्बन हैं। रामचरित्र का पाठ या श्रवण उद्दीपन है। पुलक और अश्रु अनुभाव है। हर्षादि व्यभिचारी भाव है। ये रामचरणरति स्थायी भाव को पुष्ट करके रसरूप में परिणत कर देते हैं। यही भक्तिरस है।

परन्तु काव्य शास्त्र के पारङ्गत कहते हैं : रतिर्देवादिविषया व्यभिचारी तथाञ्चितः। स्त्री पुरुष की एक दूसरे के विषय में प्रेम नामक जो चित्तवृत्ति होती है उसे रति स्थायी भाव कहते हैं। वही प्रेम यदि देवता गुरु तथा पुत्रादि के विषय में हो तो भाव कहलाता है। इसके लिए वे कई सूक्ष्म कारण भी देते हैं। परन्तु वह केवल बाल की खाल निकालना है। उन कारणों पर विचार करने पर यद्यपि वे इस बात को स्पष्ट नहीं कहते। तात्पर्य इतना ही निकलता है कि कान्ता विषयक प्रेम जितना गाढ़ा होता है उतना देवतादि विषयक प्रेम नहीं होता।

और बात भी ऐसी ही है। संसार में ऐसा ही देखा जाता है। वेद भगवान् भी साक्षी देते हैं कि उस प्रेम में न बाहर का ज्ञान रहता है न भीतर का ज्ञान रहता है। जब देवादि के विषय में वैसा प्रेम नहीं होता तो उसे रस कैसे कहें? स्वयं गोस्वामीजी नौ रस मानते हैं। यथा : नवरस जप तप जोग बिरागा। भक्ति को रस मानने से तो दस हो जायँगे।

इस पर भरद्वाजजी कहते हैं कि यह ठीक है। पहिले ऐसा ही था। पर भरतजी

तुम्हारे प्रेम ने भक्तिभाव का रस होना सिद्ध कर दिया। यथा : परम प्रेम पूरन दोउ भाई। मन बुधि चित अहमिति बिसराई : रामजी और भरत लाल के मिलन में दोनों भाइयों का प्रेम ऐसा है कि बाहर भीतर का ज्ञान जाता रहा। इसका प्रभाव भी दर्शकों पर ऐसा पड़ता है कि भरत मिलाप जैसा मेला दूसरा काशी में कोई होता नहीं। अतः अब से भक्तिरस की सिद्धि हुई।

नव बिधु बिमल तात जसु तोरा। रघुबर किंकर कुमुद चकोरा॥
उदित सदा अथइहि कबहू ना। घटिहि न जग नभ दिन दिन दूना॥१॥

अर्थ : हे तात ! तुम्हारा यश निर्मल नया चन्द्रमा है और रामजी के भक्त लोग उसके लिए कुमुद और चकोर हैं। यह सदा उदित रहेगा। कभी अस्त न होगा और संसाररूपी आकाश में यह घटेगा नहीं। दिन दिन दूना होता चला जावेगा।

व्याख्या : रामभक्ति रस साक्षात् अमृत है। उसकी स्थिति भरत यश रूपी चन्द्र में सदा रहेगी। इसी के दिखलाने के लिए कवि भरतयश को नव विधु से उपमित करते हुए रूपक बांधते हैं। भरद्वाजजी कहते हैं कि हे तात ! तुम्हारा यश, निर्मल नवीन चन्द्र है। निर्मल शब्द से कलङ्क रहित होना कहा और नवीन शब्द से उसे बढ़नेवाला कहा। नवीन : दुइज का चन्द्र नित्य वर्धनशील होता है और पुराना पूर्णिमा का चन्द्र ह्रासशील होता है। रामजी के दो प्रकार के भक्त पंकज और कोक स्थानीय भरतयश चन्द्र के लिए क्रमशः कुमुद और चकोर स्थानीय हो जाते हैं। रामचन्द्र का यश सूर्य है और भरत का यश चन्द्र है। रामोपासक ही भरतयश के प्रेमी होते हैं। अतः जो रामयश के लिए पङ्कज हैं वे भरतयश के लिए कुमुद हो जाते हैं और जो रामयश के लिए कोक हैं वे भरतयश के लिए चकोर हो जाते हैं।

भरतयश चन्द्र की इस चन्द्र से बहुत विशेषता है। यह चन्द्र कभी उदय होता है और कभी अस्त हो जाता है। शुक्लपक्ष में बढ़ता है और कृष्णपक्ष में घटता है। पर भरतयश चन्द्र अस्त होना जानता ही नहीं और न घटना जानता है। दिन दिन बढ़ता ही जाता है। इस चन्द्र का प्रचार तो आकाश में है। पर भरतयश चन्द्र का प्रसार सम्पूर्ण संसार में होगा। निर्गलितार्थ यह कि चन्द्रमा में बहुत दोष है। यथा : अवगुन बहुत चन्द्रमा तोहीं। परन्तु भरतयश चन्द्र निर्दोष है और गुणाधिक्य भी इसमें है।

कोक तिलोक प्रीति अति करिहीं। प्रभु प्रतापु रबि छबिहि न हरिहीं॥
निसि दिन सुखद सदा सब काहू। ग्रसिहि न कैकइ करतब राहू॥२॥

अर्थ : त्रैलोक्यरूपी कोक इस पर अत्यन्त प्रीति करेगा। प्रभु रामजी के प्रताप का सूर्य इसकी छवि का हरण न करेगा। यह रात दिन सदा सबको सुख देनेवाला होगा और इसे कैकेयी का करतबरूपी राहु न ग्रस सकेगा।

व्याख्या : चन्द्र तो कोक को शोक देता है। परन्तु भरतयश चन्द्र के प्रति त्रिलोकरूपी कोक का अत्यन्त प्रेम है। चकोररूपी रामभक्त तो प्रेम करते ही हैं और

चन्द्र से न प्रेम करनेवाले कोक भी भरतयश चन्द्र से अत्यन्त प्रेम करते हैं। अर्थात् विरही को भी भरतयश चन्द्र शान्तिप्रद है।

इस चन्द्र की छवि को सूर्य का प्रताप छीन लेता है। पर भरतयश चन्द्र की छवि को प्रभु प्रताप रवि नहीं छीनता। चन्द्रमा निसिदिन सबको सुखद नहीं होता। दिन के समय किसी को सुखद नहीं होता और रात्रि के समय विरहियों के लिए महा दुःखद है और भरतयश चन्द्र सदा सबको सुखद है।

राहु सूर्य और चन्द्र दोनों के तेज पर चोट करता है। इसी भाँति कैकेयी के करतबरूपी राहु ने राम और भरत दोनों के ऊपर अपना प्रभाव डाला। राम के प्रति यथा : तापस बेष बिसेष उदासी। चौदह वर्ष राम बनवासी। भरत के प्रति यथा : देहु एक बर भरतहि टीका। सो रामरूपी सूर्य पर तो कैकेयी के करतव का प्रभाव पड़ गया। अर्थात् रामजी को वनवास हो गया। पर भरतजी पर प्रभाव न पड़ा। भरतजी ने टीका स्वीकार नहीं किया।

पूरन राम सुपेम पियूषा। गुर अवमान दोष नहिं दूषा ॥
राम भगत अब अमिअ अघाहू। कीन्हेहु सुलभ सुधा बसुधाहू ॥३॥

अर्थ : रामजी के प्रेमामृत से परिपूर्ण है और गुरुअपमान रूपी दोष से दूषित नहीं है। रामजी के भक्त लोग अब इस अमृत से परितृप्त हों। क्योंकि तुमने इस अमृत को वसुधा में भी सुलभ कर दिया।

व्याख्या : चन्द्र में अमृत का निवास माना गया है। पर भरतयश चन्द्र तो राम सुप्रेमामृत से पूर्ण है। चन्द्र गुरुअपमान से दूषित हैं। यथा : ससि गुरुतियगामी नहुष चढ़ेउ भूमि सुर यान। पर भरतयश चन्द्र गुरुअपमान दोष से दूषित नहीं है। गुरुअपमान का प्रसङ्ग आ पड़ा। महाराज दशरथ ने रामजी को युवराज पद देना कहकर स्त्रीवश हो भरत को राज्य दिया। यदि भरतजी स्वीकार कर लेते तो बड़े भाई के अपमान से दूषित हो जाते। पर भरतजी ने वह राज्य अङ्गीकार नहीं किया। अथवा भरतजी ने पिता की आज्ञा भङ्ग किया। फिर भी गुरु अपमान दोष से दूषित नहीं हुए।

चन्द्रमा में अमृत बसता है। पर वह किसी को पान करने के लिए नहीं मिलता। संसार में उसका मिलना दुर्लभ है। अब इस अमृत के रसिक रामभक्त लोग इस अमृत को जो भरकर पीकर परितृप्त हो जायँ। भरतजी के द्वारा श्रीराम सुप्रेमामृत जगत् को सुलभ हो गया।

भूप भगीरथ सुरसरि आनी। सुमिरत सकल सुमंगल खानी ॥
दसरथ गुन गन बरनि न जाहीं। अधिकु कहा जेहि सम जग नाहीं ॥४॥

अर्थ : राजा भगीरथ गङ्गा लाये जो स्मरण करने से सुमङ्गल की खानि है। राजा दशरथ के गुणगण का वर्णन नहीं हो सकता। अधिक के लिए क्या कहा जाय जिसके समान कोई भी नहीं है।

व्याख्या : भानु वंस भये भूप घनेरे। अधिक एक ते एक बड़ेरे। इनमें राजा भगीरथ ने तो लाकर गङ्गाजी को पृथ्वी पर वहा दिया। जिस गङ्गा को स्मरण करने से सब सुमङ्गल सिद्ध होते हैं। गङ्गा गङ्गेति यो ब्रूयात् योजनानां शतैरपि। मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति। गङ्गा गङ्गा ऐसा स्मरण करने से सब पाप कट जाते हैं। विष्णुलोक में गति हो जाती है। इतना बड़ा कल्याण संसार का किया।

इसी वंश में राजा दशरथ हुए। इनके गुणों का वर्णन नहीं हो सकता। उनसे बड़ा कोई क्या होगा ? उनके बराबरी का ही संसार में कोई नहीं हुआ। इसी बात को अगले दोहे में स्पष्ट करते हैं।

दो. जासु सनेह सकोच बस, राम प्रगट भए आइ।
जे हर हिय नयननि कबहुँ, निरखे नहीं अघाइ ॥२०९॥

अर्थ : जिसके स्नेह और सङ्कोच के वश में पड़कर रामजी आकर प्रकट हुए। जिन्हें महादेवजी हृदय की आँखों से जीभरकर कभी न देख सके।

व्याख्या : राजा भगीरथ विष्णुपदी गङ्गा लाये। राजा दशरथ स्वयं उस प्रभु को लाये जिनके चरणकमल से गङ्गाजी की उत्पत्ति है। राजा दशरथ ने स्वायम्भू मनु के रूप से बड़ा भारी तप करके रामजी का दर्शन पाया। संसार को भी यह दर्शन हो इसलिए पुत्ररूप में उन्हें माँगा। उनके प्रेम और सङ्कोच से रामजी इस पृथ्वी पर आकर प्रकट हुए। नहीं तो रामजी का यथेष्ट दर्शन शिवजी को भी ध्यान में दुर्लभ है। उस रामजी को जगत् के सब लोगों ने भौतिक नेत्रों से पेट भर देखा। अतः महाराज दशरथ राजा भगीरथ से भी बढ़ गये।

कीरति बिधु तुम कीन्ह अनूपा। जहँ बस राम प्रेम मृगरूपा ॥
तात गलानि जरहु जिय जाएँ। डरहु दरिद्रहि पारस पाएँ ॥१॥

अर्थ : तुमने बड़ा अनोखा कीर्तिरूपी चन्द्रमा बनाया जहाँ राम का प्रेम मृग रूप होकर बसता है। हे तात ! तुम व्यर्थ ही जी में ग्लानि करते हो। पारस पाने पर भी तुम दरिद्र को डरते हो।

व्याख्या : राजा भगीरथ को भरद्वाजजी ने गङ्गाजी के लाने के कारण महा यशस्वी कहा। महाराज दशरथ का यश उनसे अधिक हुआ। उन्होंने स्वयं राम को लाकर सबके लिए उनका दर्शन सुलभ कर दिया। परन्तु हे भरतजी जिस यशचन्द्र को तुमने बनाया उसकी उपमा नहीं है। इस चन्द्र में तो राम का प्रेम भक्त के प्रति मृग रूप से बसता है। यथा : जग जप राम राम जप जेही। राम सम्बन्धी प्रेम तो अमृतरूप से इस चन्द्र में पूर्ण तो है ही। यथा : पूरण राम सुप्रेम पियूषा। राम प्रेम भक्त के प्रति इसमें मृगरूप से बसता है। यह रामप्रेम मृगरूप हैं। कहीं स्थिर नहीं रहता। यथा : बोले बिहँसि महेस तब ग्यानी मूढ़ न कोइ। जेहि जस रघुपति करहिं जब सो तस तेहि छन होइ। पर तुम्हारे यशचन्द्र में यह मृग स्थिर होकर बस गया

है। इसे छोड़कर कहीं जाता ही नहीं। यथा : सुनहु लखन भल भरत सरीसा। बिधि प्रपंच महँ सुना न दीसा। अतः तुम्हारी महिमा सबसे बड़ी है।

तुम तो व्यर्थ ही मन में ग्लानि करते हो। तुम रामोपासक परहितनिरत हो। तुम्हें दुःख कहाँ ? यथा : कबहुँक दुःख सबकर हित ताके। तेहि कि दरिद्र परस मनि जाके। ग्लानि का कारण तुम्हारे सन्निकट आ नहीं सकता। अतः व्यर्थ दुःख मत मानो।

सुनहु भरत हम झूठ न कहहीं। उदासीन तापस बन रहहीं ॥
सब साधन कर सुफल सुहावा। लखन राम सिय दरसनु पावा ॥२॥

अर्थ : भरतजी सुनो ! हम झूठ नहीं कहते क्योंकि उदासीन हैं। तपस्वी हैं और वन में रहते हैं। सब साधनों की सुन्दर सफलता लक्ष्मण राम और सीताजी का दर्शन पाना है।

व्याख्या : भरद्वाजजी कहते हैं कि जो बात मैं कहूँगा वह हठात् मनमें न बैठेगी। अतः यह कहना आवश्यक पड़ गया कि मैं झूठ नहीं कहता। अतः मेरी बात को अर्थवाद न मान लेना। क्योंकि झूठ तो रागद्वेषवाले पुरुष विषय लोलुप तथा जनसमाज में रहनेवाले बोलते हैं। मैं उदासीन हूँ। तपस्वी हूँ और वन में रहता हूँ। मुझे किसी से रागद्वेष नहीं। मैं झूठ क्यों बोलूँगा। सत्य से कर्मफल को आश्रय मिलता है। मैं यदि झूठ बोलूँ तो तपस्या ही नष्ट हो जाय। मैं वन में रहता हूँ। किसी से कोई प्रयोजन नहीं। असत्य तो किसी प्रयोजन से बोला जाता है।

इतनी भूमिका के पश्चात् भरद्वाजजी ने निम्नलिखित बात कही। लक्ष्मणजी रामजी तथा सीताजी का दर्शन पाना सब साधनों की सुन्दर सफलता है। यथा : आजु सफल तपु तीरथ त्यागू। आजु सफल जप जोग बिरागू। सफल सकल सुभ साधन साजू। राम तुम्हहिं अवलोकत आजू। लाभ अवधि सुख अवधि न दूजी। तुम्हरे दरस आस सब पूजी।

तेहि फल कर फलु दरस तुम्हारा। सहित पयाग सुभाग हमारा ॥
भरत धन्य तुम्ह जस जग जयेऊ। कहि अस पेम मगन मुनि भयेऊ ॥३॥

अर्थ : उस फल का फल तुम्हारा दर्शन है। प्रयागराज के सहित हमारा अहोभाग्य है। भरतजी ! धन्य हो। तुमने यश से जगत् को जीत लिया। ऐसा कहकर मुनि जी प्रेम में मग्न हो गये।

व्याख्या : लखन रामजानकी का दर्शन तो दिव्य फल है। उस फल में भी फल लगता है। यथा मनु सतरूपा ने तप करके राम जी का दर्शन पाया। वह दर्शन उनके तप का फल था। पर उस फल में भी फल लगा। सरकार बोले : माँगहु बर जोइ भाव मन महादानि अनुमानि। सो मैंने जो कुछ साधन किया था उसके फल रूप में रामजानकी तथा लक्ष्मणजी का दर्शन लाभ किया और उस फल का फल है कि

तुम्हारा दर्शन पाया। इस दर्शन से मैं भी कृतार्थ हुआ और प्रयागराज भी कृतार्थ हुए। क्योंकि महात्मा लोग ही तीर्थ को तीर्थ बनाते हैं।

भरद्वाजजी कहते हैं कि भरतजी तुम धन्य हो। तुमने यश से संसार को जीत लिया। शस्त्रबल अस्त्रबल सैन्यबल से संसार के जीतनेवाले धन्य नहीं हैं। ऐसा कहकर मुनिजी प्रेममग्न हो गये। आगे कुछ नहीं कह सके। भरतजी चुपचाप सुन रहे हैं। मुनिजी चार दोहे तक बोलते ही गये। प्रेम उनका बढ़ता ही गया। यहाँ तक कि प्रेम में मग्न होकर चुप हो गये।

सुनि मुनि बचन सभासद हरषे। साधु सराहि सुमन सुर बरषे॥
धन्य धन्य धुनि गगन प्रयागा। सुनि सुनि भरतु मगन अनुरागा॥४॥

अर्थ : मुनिजीका वचन सुनकर सभासद हर्षित हुए और साधु साधु ऐसी प्रशंसा करके देवताओं ने फूल बरसाये। आकाश में और प्रयागराज में धन्य धन्य की ध्वनि गूँज उठी। उसे सुन सुनकर भरतजी प्रेम में मग्न हो रहे थे।

व्याख्या : जिस समय भरतजी वहाँ गये थे मुनियों की सभा लगी थी। यथा : तहाँ होइ मुनि रिषय समाजा। जाहिं जे मज्जन तीरथ राजा। सो सभा की सभा ने मुनिजी के वचन का अनुमोदन हर्षित होकर किया। भरद्वाजजी के वचन ऐसे प्रभावपूर्ण थे कि आकाश से देवताओं ने उनकी प्रशंसा करके पुष्पवृष्टि की।

आकाश में देवताओं की धन्य धन्य ध्वनि और प्रयागराज में मुनियों की धन्य धन्य ध्वनि हुई। भगवती सत्योक्ति की पूजा दोनों लोकों में हुई। कहनेवाले मग्न और सुननेवाल भरतजी प्रेम में मग्न हो रहे थे।

दो. पुलक गात हियँ रामु सिय, सजल सरोरुह नयन।
करि प्रनामु मुनि मंडलिहि, बोले गदगद बयन॥२१०॥

अर्थ : शरीर में पुलक और हृदय में राम जानकी और नेत्रकमल अश्रु से पूर्ण थे। इस भाँति भरतजी मुनि मण्डली को प्रणाम करके गद्‌गद वचन बोले।

व्याख्या : पुलकगात और सजल सरोरुह नयन से भरतजी के तन की दशा कही। गद्‌गद बयन कहकर वाणी की दशा कही : हिय राम सिय से मन की दशा कही। इस भाँति प्रेम से पूर्ण भरतजी मुनिमण्डली को प्रणामकर बोले। भाव यह कि मुनिजी ने जो कुछ कहा है भरतजी का दुःख उससे व्यतिरिक्त है। यदि वही दुःख होता तो बोलने के लिए अवकाश नहीं था।

मुनि समाजु अरु तीरथ राजू। साँचिहु सपथ अघाइ अकाजू॥
एहि थल जौं किछु कहिअ बनाई। एहि सम अधिक न अघ अधमाई॥१॥

अर्थ : मुनियों का समाज और तीर्थों के राजा प्रयागराज यहाँ सच्चा शपथ लेने से भी हानि की पराकाष्ठा है। यहाँ पर यदि कुछ बनाकर कहा जाय तो इसके बराबर या अधिक पाप और नीचता नहीं है।

व्याख्या : सच्ची शपथ लेना भी धर्मशास्त्र से गर्हित है। फिर झूठी शपथ के लिए क्या कहा जाय। उससे तो बड़ा भारी पाप होता है। कोई अधम ही ऐसे पाप करने का दुःसाहस करेगा। उसमें भी तीर्थं पुण्य पाप के लिए उर्वरा भूमि है। इसमें किया हुआ पाप शतगुण सहस्रगुण अधिक हो जाता है। यह तो तीर्थराज प्रयाग है। तिस पर जङ्गम तीर्थराज साधु समाज के बीच में बैठा हुआ हूँ। मुनिजी ने कहा था : सुनहु भरत हम झूठ न कहहीं। यहाँ पर भरतजी कहते हैं कि मैं झूठ नहीं कहता हूँ। मुनिजी यति हैं। अतः झूठ न कहने का कारण अपनी विरक्तता बतलाते हैं। भरतजी गृहस्थ हैं। अतः झूठ न कहने का कारणरूप से स्थल की महत्ता कहते हैं। भाव यह कि अपनी अपनी बातों पर सन्देह दोनों महापुरुषों को है कि श्रोता झूठ समझेंगे।

अतः मुनि समाज अरु तीरथ राजू कहकर भरतजी शपथ ग्रहण कर रहे हैं। कहते हैं कि इस स्थल में सच्ची बात में भी यदि अलङ्कारादि रचना से कुछ बनावट की जाय तो इसके समान पाप नहीं है। नहिं असत्य सम पातक पुंजा। गिरि सम होहिं कि कोटिक गुंजा। उस असत्य का पुट भी यदि इस स्थल में आ जाय तो उसके समान पाप कोई नहीं और ऐसे पाप करनेवाले सा अधम कोई नहीं। इससे अधिक पाप और अधमाई क्या होगी। भाव यह कि जो कुछ मैं कहूँगा वह निवारण सत्य होगा। अर्थवाद को भी स्थान नहीं है।

तुम्ह सर्बग्य कहउँ सतिभाऊ। उर अंतरजामीं रघुराऊ॥
मोहि न मातु करतब कर सोचू। नहिं दुखु जियँ जगु जानिहि पोचू॥२॥

अर्थ : आप सर्वज्ञ हैं। मैं सच्चे भाव से कहता हूँ। रामजी हृदय की बात जाननेवाले हैं। मुझे माता की करतूति का सोच नहीं है और न इस बात का दुःख है कि संसार मुझे नीच समझेगा।

व्याख्या : भरतजी कहते हैं कि तिस पर यह बात है कि आप सर्वज्ञ हैं। आपके सामने बनावट नहीं चल सकती और न जिसके विषय में कुछ कहना है उसी के सामने कोई बनावठ चल सकेगी। क्योंकि रघुराज रामजी उर अन्तर्यामी हैं। आपने कहा : तुम गलानि जिय जनि करहु समुझि मातु करतूति। अतः मुझे माता की करतूति का सोच नहीं है। आपने कहा : तात गलानि करहु जिय जायें। अतः मुझे संसार के यह समझने का कि भरत नीच हैं : कोई दुःख नहीं है। क्योंकि श्री मुख से उसका निराकरण हो चुका।

नाहिन डरु बिगरिहि परलोकू। पितहु मरन कर मोहि न सोकू॥
सुकृत सुजस भरि भुवन सुहाए। लछिमन राम सरिस सुत पाए॥३॥

अर्थ : परलोक बिगड़ने का भी मुझे डर नहीं है। पिताजी के मरने का भी मुझे सोच नहीं है। उनका सुन्दर पुण्य और कीर्ति संसार में भर उठी है और लक्ष्मण तथा राम ऐसे उन्हें पुत्र मिले हैं।

व्याख्या : भरतजी कहते हैं : आपने कहा कि करतेहु राज त तुमहि न दोषू। रामहि होत सुनत संतोषू। सो मुझे इस बात का डर नहीं है कि राज्य ग्रहण से परलोक बिगड़ेगा। अथवा जो मैं पिता का वचन न मानकर जा रहा हूँ इससे परलोक बिगड़ेगा। इस बात का डर मुझे नहीं है। भले ही मेरा परलोक बिगड़े। पर रामजानकी और लक्ष्मण को सुख हो।

और क्या कहें पिताजी के मरने का भी मुझे सोच नहीं हैं। यथा : भरतहि बिसरेउ पितु मरन सुनत राम बन गौन। अब गुरु मुख से सुने हुए अशोच्य प्रतिपादक प्रसङ्ग के अनुकूल पिता का अशोच्य होना कहते हैं। यथा :

सोचनीय नहि कोसल राऊ। भुवन चारिदस प्रगट प्रभाऊ।।
भयउ न अहइ न अब होनिहारा। भूप भरत जसपिता तुम्हारा।।
बिधि हरिहर सुरपति दिसिनाथा। बरनहि सब दसरथ गुनगाथा।।
दो. कहहु तात केहि भाँति कोऊ करहि बड़ाई तासु।
रामलखन तुम शत्रुहन सरिस सुअन सुचिजासु।।
सब प्रकार भूपति बड़ भागी। बादि बिषादु करिअ तेहि लागी।।

राम बिरह तजि तनु छनभंगू। भूप सोच कर कवनु प्रसंगू।।
राम लखन सिय बिनु पग पनहीं। करि मुनि बेषु फिरहिं बन बनहीं।।४।।

अर्थ : रामजी के विरह में क्षणभङ्गुर शरीर का परित्याग किया। इसलिए महाराज के शोक का तो कोई प्रसङ्ग नहीं है। परन्तु राम लक्ष्मण और सीताजी पावों में बिना जूता पहिने मुनिवेष धारण किये हुए वन वन में फिर रहे हैं।

व्याख्या : गुरुजी ने जो : सब प्रकार भूपति बड़ भागी कहा था उसी को स्पष्ट करते हुए भरतजी कहते हैं कि उनके मरण की विधि में भी उनके बड़े भाग्य ने उनका साथ दिया। यथा : राम बिरह दसरथ मरन मुनि मम अगम सुमीचु। राम विरह में प्राण त्यागना यह इतने बड़े भाग्य की बात है कि मुनि लोग मन से भी इसके पाने की आशा नहीं रखते। इसलिए भरतजी कहते हैं कि चक्रवर्तीजी के सोच करने के लिए तो कोई प्रसङ्ग ही नहीं है।

उपर्युक्त ये चार बातें ही ऐसी थीं जिसके लिए दु:ख होना चाहता था। सो उनका मुझे दु:ख नहीं है। अब जिस बात का दु:ख है उसे कहते हैं। राम लखन जिनके बारे में निषादराज कहता है :

मातु पिता परिजन पुरबासी। सखा सुसील दास अरु दासी।।
जोगवहिं जिन्हहिं प्रान की नाईं। महि सोवत तेइ रामु गोसाईं।।
पिता जनक जग बिदित प्रभाऊ। ससुर सुरेस सखा रघुराऊ।।
रामचंदु पति सो बैदेही। सोवत महि बिधि बाम न केही।।

लक्ष्मणजी के विषय में स्वयं भरतजी कह चुके हैं। यथा :

लालन जोगु लखन लघु लोने। भे न भाइ अस अहहिं न होने॥
पुरजन प्रिय पितु मातु दुलारे। सिय रघुबीरहिं प्रान पियारे॥
मृदु मूरति सुकुमार सुभाऊ। तात बाउ तन लाग न काऊ॥

ते बन सहहिं बिपति सब भाँती। इन तीनों मूर्तियों के पैरों में कुशकण्टकादि से रक्षा के लिए जूते नहीं हैं। शीत ऊष्ण निवारण के लिए कपड़े नहीं हैं। मुनि का वेष बनाये हुए हैं। त्राण के लिए कोई स्थान नहीं है। वन वन में घूम रहे हैं। राजा का रङ्क की भाँति रहना अति कष्ट कारक है।

दो. अजिन बसन फल असन महि, सयन डासि कुस पात।
बसि तरु तर नित सहत हिम, आतप बरषा बात ॥२११॥

अर्थ : मृगछाला पहनना; फलों का भोजन, कुश और पत्ते बिछाकर पृथ्वी पर सोना और पेड़ों के नीचे रहकर नित्य धूप वर्षा और वात का सहन करना।

व्याख्या : जीवन के जितने आवश्यक साधन हैं उन सब में ही तीनों मूर्तियों को अत्यन्त कष्ट हो रहा है। बहुमूल्य सुखप्रद वस्त्र धारण करनेवालों को मृगचर्म पहनना पड़ रहा है। अमृतवत् सुस्वादु भोजन करनेवालों को अन्न दुर्लभ है। वन्य फलों पर गुजारा करना पड़ रहा है। क्षीर फेन सम मृदु बिछावन युक्त मञ्च : पलङ्ग पर सोनेवालों को कुश पल्लव बिछाकर पृथ्वी पर सोना पड़ रहा है। महल में रहनेवाले पेड़ तले धूप पाला और झंझावात सह रहे हैं। सुख के सब साधन सुलभ हैं। पर उनके उपभोग से वे बिना अपराध के वञ्चित किये गये हैं। भरतजी कहते हैं कि इन चार बातों का मुझे दुःख है।

एहि दुख दाह दहइ दिन छाती। भूख न बासर नींद न राती॥
एहि कुरोग कर औषधु नाँही। सोधेउँ सकल बिस्व मन माँही ॥१॥

अर्थ : इस दुःख की जलन से सदा छाती जला करती है। न दिन को भूख लगती है और न रात को नींद लगती है। इस कुरोग की कोई दवा नहीं है। मैंने मन ही मन सारा विश्व ढूँढ़ डाला।

व्याख्या : चिन्ता ज्वाल सरीर वन दावा लगि लगि जाय। प्रगट धुआँ नहिं देखिये उर अंतर धुँधुवाय। उर अंतर धुँधुवाय जरै जिमि काँच की भट्टी। जरिगे लोहू मांस रह गयी हाड़ की ठट्टी। कह गिरिधर कवि राय सुनोरे मेरे मीता। सो नर कैसे जियै जासु उर व्यापै चीता।

सो भरतजी को रामजी की चिन्ता रूपी ज्वाला हृदय को जला रही है। क्षण भर भी शान्त नहीं होती। भूख और नींद जाती रही। कहीं विश्राम नहीं। यथा : निसि न नींद दिन भूख नहिं भरत बिकल सुठि सोच। नीच कीच बिच मगन जस मीनहि सलिल सकोच।

यह कुरोग है। इसने नित्यरोग क्षुधा निद्रा को भी दवा लिया है। यथा :

कहा भलो धौं भयो भरत को लगे तरुन तन दौन। अथवा इसकी दवा नहीं है इसलिए कुरोग है। यह मानसिक रोग है। इसके शान्ति के उपाय ढूँढ़ने में भरतजी कहते हैं कि मैंने मन से सम्पूर्ण विश्व ढूँढ़ डाला। सद्गुरु वैद्य का भी वचन सुन चुका। कोई औषध हाथ न लगा।

मातु कुमत बढ़ई अघ मूला। तेहि हमार हित कीन्ह बसूला॥
कलि कुकाठ करि कीन्ह कुजंत्रू। गाड़ि अवध पढ़ि कठिन कुमंत्रू॥२॥

अर्थ : माता का बुरा विचार ही पापों का मूल बढ़ई हुआ। उसने हमारे हित को बँसूला बनाया। उसने कलि के कुकाठ का कुयन्त्र बनाया और कठिन कुमन्त्र को पढ़कर अवध में गाड़ दिया।

व्याख्या : भरतजी का कहना है कि इस दुःख से मैं ही दुःखी नहीं हूँ। सम्पूर्ण प्रजा मण्डल का यही हाल है। अचल विपत्ति की नींव पड़ गयी। सम्पूर्ण अयोध्या उजाड़ हुआ चाहती है। इसी बात को यन्त्र के रूपक में कहते हैं। देश के उजाड़ने के लिए बढ़ई बँसूला द्वारा बहेड़े के काठ का यन्त्र बनाता है। कलि शब्द का अर्थ बहेड़े का वृक्ष है और विरोध अर्थ भी है। उस यन्त्र को कुमन्त्र पढ़कर गाड़ा जाता है। इससे वह देश उजाड़ हो जाता है। सिवा उस यन्त्र को उखाड़ फेंकने के देश के बसने का कोई उपाय नहीं। यहाँ कैकेयी का कुविचार ही बढ़ई हुआ। उसने भरतजी के हित को बँसूला बनाकर विरोध-रूपी काठ से वह यन्त्र तैयार किया और : तापस वेष बिसेष उदासी। चौदह बरिस राम बनवासी। इस मन्त्र को पढ़कर अयोध्या में गाड़ दिया : अर्थात् वरदान माँग लिया। अघमूला। यथा : काई कुमति कैकेई केरी। परी जासु फल बिपति घनेरी। अवधि पाठ मानने से भी अर्थ वही रहेगा। पर गाड़ने के स्थान का निश्चय नहीं हो सकेगा।

मोहि लगि यहु कुठाटु तेहि ठाटा। घालेसि सबु जगु बारहँबाटा॥
मिटइ कुजोगु राम फिरि आएँ। बसै अवध नहिं आन उपाएँ॥३॥

अर्थ : उसने यह कुठाट मेरे लिए रचा और सारे लोगों को बारह बाट करके नष्ट कर दिया। रामजी के लौटने से यह कुयोग मिट सकता है। अयोध्या के बसने का उपाय यही है। दूसरा नहीं है।

व्याख्या : भरतजी कहते हैं कि यह कुसाज मेरे हित के लिए साजा गया। इससे साजनेवाले की महामूर्खता द्योतित किया। यन्त्र बनानेवाले ने यह न समझा कि इससे भरत का हित नहीं हो सकता उलटा देश उजड़ जायगा। जिस भाँति रामचरण में लीन रहने से अन्तःकरण में स्वाराज्य रहता है। परन्तु बहिर्मुख होने से दश इन्द्रियाँ और मन बुद्धि का मार्ग पकड़कर बारह बाट हो जीव दीन हो जाता है। उसी भाँति रामजी के रहने से सब सुख रहेगा और उनके वन जाने से सम्पूर्ण राज्य नष्ट हो जायगा। रामजी का लौटना ही उस यन्त्र का उखाड़ना है। वे यदि फिर आवें तो अयोध्या बसती है। नहीं तो दूसरा उपाय नहीं है।

भरत बचन सुनि मुनि सुखु पाई । सबहि कीन्ह बहु भाँति बड़ाई ॥
तात करहू जनि सोचु बिसेखी । सब दुख मिटिहि राम पग देखी ॥४॥

अर्थ : भरत के वचन को सुनकर मुनि ने सुख पाया और सबने बहुत प्रकार से प्रशंसा की और बोले हे तात ! विशेष सोच न करो । रामजी के चरण दर्शन से सब दुःख मिट जायगा ।

व्याख्या : भरतजी का वचन सुनकर मुनि भरद्वाज को सुख हुआ । भरतजी का श्रीराम चरणों में प्रीति सूचक वचन सुनने से परमार्थपद परम सुजान को सुख होना स्वाभाविक है । सबने बहुत भाँति से भरतजी की प्रशंसा की अर्थात् भरतजी के भायप, भगति, भरोस, भलाई की बड़ाई की ।

मुनिजी सोच करने को नहीं रोकते । क्योंकि यह सोच भी कल्याणदायक है । विशेष सोच न करने की सलाह देते हैं । क्योंकि दूसरी दवा है और वह यह : सब दुख मिटिहि रामपद देखी । भरतजी पहिले कह भी चुके हैं : देखे बिन रघुवीर पद जिय की जरनि न जाय ।

इस भाँति सोच को कम करने का आदेश देकर भोजन शयन के लिए आग्रह करते हैं ।

दो. करि प्रबोधु मुनिवर कहेउ, अतिथि प्रेमप्रिय होहु ।
कंद मूल फल फूल हम, देंहि लेहु करि छोहु ॥२१२॥

अर्थ : समझाने के बाद मुनिराज ने कहा कि अब तुम प्रेमप्रिय अतिथि होओ और कन्द मूल फल फूल जो कुछ हम दें कृपा करके उसे स्वीकार करो ।

व्याख्या : आतिथ्य सत्कार की स्वीकृति के लिए पहिले प्रबोध किया । चित्त का कष्ट मिटाया । उचित आतिथ्य की योग्यता अपने में न समझकर प्रेम प्रिय होहु कहते हैं । अर्थात् मेरे प्रेम को स्वीकार करो । तुम्हें किसी वस्तु को आवश्यकता नहीं । कृपा करके मेरा दिया हुआ फल फूल स्वीकार करो । मुझ पर छोह करो । मुनिजी भरतजी की महामहिमा जानते हैं । यथा : जयति बिबुधेश धनदादि दुर्लभ महाराज सम्राज सुखप्रद बिरागी ।

सुनि मुनि बचन भरत हियँ सोचू । भयेउ कुअवसर कठिन सँकोचू ॥
जानि गरुइ गुरु गिरा बहोरी । चरन बंदि बोले कर जोरी ॥१॥

अर्थ : मुनिजी का वचन सुनकर भरतजी के मन में सोच हुआ कि कुअवसर में कठिन सङ्कोच आ पड़ा । फिर गुरु की वाणी का गौरव समझकर चरणों की वन्दना करते हुए हाथ जोड़कर बोले ।

व्याख्या : भरतजी समझ गये कि भरद्वाजजी हम लोगों को विश्राम देना चाहते हैं । परन्तु यह अवसर सुखोपभोग का नहीं है । मैं सेवा धर्म में हूँ । जब तक स्वामी सुखोपभोग स्वीकार न करें तब तक सेवक सुखोपभोग कैसे करे ! अथवा

भरतजी ने यह सोचा कि मैं तीर्थ में आया हूँ। यहाँ दान करना प्राप्त है। ब्राह्मण का आतिथ्य कैसे स्वीकार करूँ। परन्तु भरद्वाजजी के वचन का उल्लंघन भी नहीं किया जा सकता। वर्णानां ब्राह्मणो गुरुः। तिस पर भरद्वाजजी तापस शम दम दया निधान और परमार्थ पथ में परम सुजान हैं। ये तो नितरां गुरु हैं।

ऐसे अवसर पर गुरुगिरा ही प्रमाण है। जहाँ धर्म दूसरा हो और गुरु आज्ञा कुछ भिन्न हो तो गुरु आज्ञा ही बड़ी मानी जाती है। गुरु की आज्ञा पालन में उचित अनुचित विचार को स्थान नहीं है। यथा : कह सिव जदपि उचित अस नाँहीं। नाथ बचन पुनि मेटि न जाँहीं।

सिर धरि आयेसु करिअ तुम्हारा। पर धरम येहु नाथ हमारा॥
भरत बचन मुनिवर मन भाए। सुचि सेवक सिष निकट बोलाए॥२॥

अर्थ : आप की आज्ञा को शिरोधार्य करके पालन करूँ। यही हे नाथ! मेरा परम धर्म है। भरत के वचन मुनिराज को अच्छे लगे। उन्होंने पवित्र सेवकों और शिष्यों को निकट बुलाया।

व्याख्या : सिर धरि आयसु करिअ तुम्हारा। परम धर्म यह नाथ हमारा। यही अर्धाली ज्यों की त्यों उस प्रकरण में आयी है। जिसमें रामजी उमा के स्वीकार करने के लिए शङ्करजी से अनुरोध करते हैं। वहाँ शङ्करजी की प्रतिज्ञा थी कि एहि तन सतिहि भेट मोहि नाँहीं और रामजी का अनुरोध इसके विपरीत था। यथा : जाइ विवाहहु सैलजहि यह मोहि माँगे देहु। यहाँ शिवजी को भी कुअवसर कठिन सङ्कोच पड़ा था। सामान्य धर्म का परम धर्म से बाध होता है। गुरु की आज्ञा शिरोधार्य करना परम धर्म है। अतः भरतजी ने अपने सामान्य धर्म के प्रतिकूल शिवजी की भाँति गुरु आज्ञा को परम धर्म मानते हुए आतिथ्य को स्वीकार कर लिया।

भरतजी की स्वीकृति से मुनिजी को प्रसन्नता हुई। अतः मन भाए लिखते हैं। भरतजी से छोह करने के लिए मुनिजी ने कहा था। सो भरतजी ने छोह कर दिया। अतः आतिथ्य सत्कार की तैयारी करनी चाहिए। भरतजी के आतिथ्य का अर्थ है सम्पूर्ण सेना तथा अयोध्यावासियों का आतिथ्य। इसलिए जितने व्यक्ति मुनिजी की सेवा में थे क्या शिष्य क्या भृत्य जो सपने में भी अपने धर्म से विचलित नहीं हुए थे उन्हें निकट बुलाया। भरतजी के आतिथ्य में केवल पुण्यात्मा लोगों से ही काम लिया जायगा। रामजी को मार्ग प्रदर्शन के लिए भी भरद्वाजजी ने इस बात का ध्यान रक्खा। यथा : मुनि बटु चारि संग तब दीन्हें। जिन बहु जन्म सुकृत सब कीन्हें।

चाहिअ कीन्ह भरत पहुनाई। कंद मूल फल आनहु जाई॥
भलेहि नाथ कहि तिन्ह सिर नाए। प्रमुदित निज निज काज सिधाए॥३॥

अर्थ : उनसे कहा कि भरत की पहुनाई करनी चाहिए। इसलिए कन्द मूल

फल जाकर ले आवो। उन्होंने कहा हे नाथ ! बहुत अच्छा। सिर नवाया और प्रसन्न होकर अपने अपने काम पर चले गये।

व्याख्या : भरत की पहुनाई करनी चाहिए। इतने में ही जो कुछ कहना था मुनिजी ने कह दिया। जगत् के भरण पोषण करनेवाले भरत की पहुनाई करनी है। अतः इनके अनुरूप कन्द मूल फल ले आवो। मुनिजी के शिष्य सेवक बड़े पटु हैं। मुनिजी के पास अत्युत्तम फल मूलकन्द तैयार भी रहता है। रामजी के सत्कार के समय कहा गया है : कन्द मूल फल अंकुर नीके। दिये आनि पुनि मनहु अमीके।

वे सेवक और शिष्य बड़े शुचि थे। आज्ञा पाकर बड़े प्रमुदित हुए। खोज खोजकर अधिक मात्रा में जल्दी से लाना है। अतः तुरन्त चल दिये और छितरा कर चले फल लाने को कोई फलवाले वृक्षों की ओर चले। कन्द लाने कोई उस ओर चले जिधर उसकी बहुतायत थी। सब ने काम बाँट लिये। इसलिए निज निज काज सिधाये कहा : ऋषियों के सत्कार के लिए तो कन्द मूल ही जायगा।

मुनिहि सोच पाहुन बड़ नेवता। तसि पूजा चाहिअ जस देवता॥
सुनि रिधि सिधि अनिमादिक आईं। आयसु होइ सो करहिं गोसाईं॥४॥

अर्थ : मुनिजी को सोच हुआ कि मैंने पाहुन : मेहमान तो बड़ा नेवत दिया है। अब जैसा देवता हो वैसी पूजा भी चाहिए। यह सुनकर ऋद्धि और अणिमादि सिद्धि आयीं। बोलीं हे स्वामिन् जो आज्ञा हो सो हम करें।

व्याख्या : नेवता देना तो सहल है। पर आतिथ्य सत्कार कठिन कार्य है। देवता के स्वरूपानुकूल पूजा होनी चाहिए। बिश्व भरण पोषण कर जोई। ताकर नाम भरत अस होई। अतः भरत की महामहिमा है। ये बड़े पाहुन हैं। इनके स्वरूपानुकूल आतिथ्य कैसे हो मुनिजी इस सोच में पड़े। रामजी के आने पर सोच नहीं हुआ। क्योंकि उनका मुनिव्रत वेष अहार था। कन्द मूल फल से काम चल गया। पर भरत के लिए तो यह बात नहीं है और राज समाज के साथ हैं। अतः इनका आतिथ्य तो बड़े ठाट बाट से होना चाहिए।

परन्तु भरद्वाजजी की तपस्या और त्याग ऐसा है कि ऋद्धि सिद्धि शिष्यों से पूछती रहती हैं कि हम लोगों की सेवा का समय आ पड़े तो बतलाना। ऋषिजी से जाकर पूछने का उनका साहस नहीं पड़ता। ऋषिजी को उनकी आवश्यकता नहीं। आज शिष्यों में दौड़ धूप देखकर पूछा। अपना अवसर जानकर स्वयं मुनिजी की सेवा में उपस्थित हो गयीं और आज्ञा माँगने लगीं कि हमलोगों को भी कुछ सेवा के लिए हुकुम हो।

दो. राम बिरह ब्याकुल भरतु, सानुज सहित समाज।
पहुनाई करि हरहु स्रमु, कहा मुदित मुनिराज॥२१३॥

अर्थ : मुनिराज ने प्रसन्न होकर कहा कि रामजी के विरह में भरतजी अपने

छोटे भाई और समाज के साथ विकल हैं। सो तुमलोग उनका आतिथ्य सत्कार करके थकावट दूर करो।

व्याख्या : ऋद्धि सिद्धि के इस समय आ जाने से मुनिराज प्रसन्न हो उठे। बोले भरतजी शत्रुघ्नजी और उनका सारा समाज रामविरह से व्याकुल है। मनसे पीड़ित शरीर से श्रमित हैं। यथा : भरत पयादेहि आये आजू। भयउ दुखित सुनि सकल समाजू। झलका झलकत पायन्ह कैसे। पंकज कोस ओस कन जैसे। सो इन लोगों की ऐसी पहुनाई हो कि इन लोगों का चित पहुनाई के सुख की ओर खिंच आवे और कुछ समय के लिए विरह भूल जाँय और श्रम जाता रहे।

रिधि सिधि सिर धरि मुनिवर बानी। बड़भागिनी आपुहि अनुमानी ॥
कहहिं परसपर सिधि समुदाई। अतुलित अतिथि राम लघु भाई ॥१॥

अर्थ : ऋद्धि सिद्धि ने श्रेष्ठ मुनिजी की वाणी को शिरोधार्य करके अनुमान किया कि हम लोग बड़ी भाग्यवान् हैं। आपस में सिद्धि लोग कहती हैं कि रामजी के छोटे भाई ऐसे अतिथि हैं जिनकी तुलना नहीं।

व्याख्या : ऋद्धि साक्षात् कुबेरजी की धर्मपत्नी हैं। सिद्धियाँ आठ हैं। यथा : १. अणिमा २. लघिमा ३. प्राप्ति ४. प्राकाम्य ५. महिमा तथा ६. ईशित्व ७. वशित्व च ८. तथा गरिमा। ऋद्धि और सिद्धियों ने भरद्वाजजी की आज्ञा शिरोधार्य किया। आज तक मुनिजी ने कभी कोई काम नहीं लिया था। अतः उन लोगों ने अनुमान किया कि हम लोगों का बड़ा भाग्य जगा है। तभी मुनिजी ने सेवा स्वीकार की है। सानुज सहित समाज भरतजी के पहुनाई करने का अवसर मिला और इस समय हमारी की हुई पहुनाई मुनिजी की मानी जायगी। अतः भरतजी को स्वीकार करना पड़ेगा। इससे भी अपने को बड़भागिनी माना। यथा : सीतापति सेवकाई। कामधेनु सत सरिस सोहाई। तथा : मानत सुख सेवक सेवकाई।

सिद्धि लोग आपस में बात करने लगीं कि तस पूजा चाहिअ जस देवता और भरतजी तो रामजी के छोटे भाई हैं। अत बेजोड़ अतिथि हैं। इनके स्वरूपानुकूल पूज़ा कैसे बनेगी ? भरतजी के बेजोड़ होने के प्रमाण में स्वयं कवि कहते हैं : निरवधि गुन निरुपम पुरुष भरत भरत सम जानि। कहिअ सुमेरु कि सेर सम कबिकुल मति सकुचानि।

मुनि पद बंदि करिअ सोइ आजू। होइ सुखी सब राज समाजू ॥
अस कहि रचेउ रुचिर गृह नाना। जेहि बिलोकि बिलखाहिं बिमाना ॥२॥

अर्थ : मुनिजी के चरणवन्दन करके आज ऐसा ही काम करना चाहिए जिसमें सारा राजसमाज सुखी हो। ऐसा कहकर उन लोगों ने ऐसे सुन्दर सुन्दर घर बनाये। जिन्हें देखकर विमान विलख उठें।

व्याख्या : भरद्वाजजी कुबेरजी के नाना हैं। ऋद्धि सिद्धि ने सलाह की कि उनके चरणों की वन्दना करके ऐसा तो कर ही डालना चाहिए। जिसमें यदि

भरतजी को सुखी न कर सकें तो उनका समाज तो सुखी हो जावे। ऋद्धि सिद्धि को आशा नहीं है कि वे भरतजी को सुखी करने में समर्थ होंगी। तब उन्होंने सोचा कि यदि उनके समाज को हम लोग सुखी बना सकी तो यह भी भरतजी के सुखी होने का कारण होगा।

ऐसा विचार करके उन लोगों ने अपनी दिव्य शक्ति से क्षणभर में ऐसे घर बनाये जिनके सामने विमान भी कुछ न ठहरें। घर ही सुख के समान का आश्रय है। अतः यही सम्पूर्ण भोग का उपलक्षण है। इसलिए पहिले गृह रचे। विमान की उपमा देकर उन्हें दैवी भोगों से परिपूर्ण कहा तथा अत्यन्त ऊँचा कहा अथवा उन्हें मङ्गम गृह कहा। समाज को टिकाना है। इसलिए नाना प्रकार के गृह बनाये।

भोग बिभूति भूरि भरि राखे। देखत जिनहि अमर अभिलाखे ॥
दासी दास साजु सब लीन्हे। जोगवत रहहिं मनहि मनु दीन्हे ॥३॥

अर्थ : उन घरों में बहुत सा भोग और ऐश्वर्य भर रक्खा। जिन्हें देखकर देवताओं का जी ललच जाय। दासी दास सब प्रकार के सामान लिये हुए मन में मन मिलाकर उसकी सँभाल करते हैं।

व्याख्या : उन घरों में सब प्रकार के भोग तथा उनके साधन विभूति ऐश्वर्य : को खूब भरा। मकान तो ऐसे बने जिनके टक्कर के विमान नहीं और उनमें सामान ऐसे भरे गये जिन्हें देखकर देवताओं को भी अभिलाषा हो उठे। क्योंकि अवधवासी उनमें ठहरनेवाले हैं। जो ऋद्धि सिद्धि से तथा सुरदुर्लभ सुख से अपरिचित नहीं हैं। यथा : रिधि सिधि संपति नदी सुहाई। उमगि अवध अंबुधि कहँ धाई। तथा : सुर दुर्लभ सुख सदन बिहाई।

यदि अनुकूल सेवक न हों तो सम्पत्ति का आनन्द नहीं मिलता। अतः घरों में दासी दास सुख का साज लिए प्रस्तुत हैं। मालिक से मन मिलाकर सेवा करना जानते हैं। चाहते ही ईप्सित पदार्थ प्रस्तुत कर देते हैं। आज्ञा को आवश्यकता नहीं। यथा : मधुपर्क मंगल द्रव्य जो जेहि समय मुनिमन मँहु चहैं। भरे कनक कोपर कलस सो तब लिये परिचारक रहैं।

सब समाजु सजि सिधि पल माँही। जे सुख सुरपुर सपनेहु नाँही ॥
प्रथमहि बास दिये सब केही। सुंदर सुखद यथा रुचि जेही ॥४॥

अर्थ : सिद्धियों ने वहाँ पलभर में सब समाज सजा दिये। जो सुख स्वर्ग में भी सपने में न मिले। पहिले तो सबको उनकी रुचि के अनुसार सुन्दर सुखदायी निवास स्थान दिये।

व्याख्या : इतने बड़े समाज को सजने में ऋद्धि सिद्धि को कुछ भी विलम्ब न हुआ। सिद्धियों के लिए यह क्षणभर का काम था। जितना जल्दी पहुनाई आरम्भ हो जाय उतना ही अच्छा। अतः पहिले उन घरों में सब लोगों को टिकाया। इस टिकाने में यथायोग्य से काम नहीं लिया गया। बल्कि यथारुचि से काम लिया

गया। योग्यता पर ध्यान देने से यथेप्सित सुख न मिलता। ये घर देखने में सुन्दर और रहने में सुखद थे।

दो. वहुरि सपरिजन भरत कहुँ, रिषि अस आयेसु दीन्ह।
बिधि बिसमय दायकु बिभव, मुनिवर तपबल कीन्ह ॥२१४॥

अर्थ : फिर कुटुम्ब सहित भरत को निवास दिया। क्योंकि ऋषिजी ने ऐसी ही आज्ञा दी और उन्होंने अपने तप बल से ऐसा वैभव रच दिया जिसे देखकर ब्रह्मदेव को भी आश्चर्य हो।

व्याख्या : सपरिजन भरत के रहने के लिए ऋषिजी ने ऋद्धि सिद्धि कों यह आज्ञा दी कि सबके टिका देने के पीछे इन्हें टिकाना और अपने तपबल से विधि विस्मय दायक विभव उत्पन्न किया। यथा : तप से अगम न कछु संसारा। बिधि विस्मय दायक विभव से त्रिपाद् विभूति का विभव कहा। मुनिजी ने ऐसी व्यवस्था की कि मुनियों का सत्कार तो शिष्य सेवकों के सुपुर्द किया। राज समाज का सत्कार ऋद्धि सिद्धि के सुपुर्द किया और भरतजी का सपरिजन सत्कार तपबल से स्वयं करने लगे।

मुनि प्रभाउ जब भरत बिलोका। सब लघु लगे लोकपति लोका॥
सुख समाजु नहिं जाइ बखानी। देखत बिरति बिसारहिं ग्यानी ॥१॥

अर्थ : मुनिजी के प्रभाव को जब भरतजी ने देखा तो उन्हें सभी लोकपतियों के लोक छोटे जँचने लगे। सुख समाज की प्रशंसा नहीं हो सकती। जिसके देखते ही ज्ञानी का वैराग्य भूल जाय।

व्याख्या : भरतजो का स्वभाव है कि सबकी खोज लेते हैं। अतः ऋद्धि सिद्धि का भी प्रभाव देखा : राजा जनक की ओर से सीताजी की आज्ञा से ऋद्धि सिद्धि आयी थीं। यथा : सिधि सब सिय आयसु अकिन गयी जहाँ जनबास। लिये संपदा सकल सुख सुरपुर भोग बिलास। निज निज बास बिलोकि बराती। सुर सुख सकल सुलभ सब भाँती। बिभव भेद कछु कोउ न जाना। सकल जनक कर करहिं बखाना। सबका खोज खबर लेकर जब अपने डेरे की ओर देखा तो वहाँ की समृद्धि के सामने इन्द्रादि लोकपाल के लोक हलके मालूम पड़े।

वहाँ कैसा सुख समाज था? इसका वर्णन नहीं हो सकता। क्योंकि वह तो विस्मय दायक विभव था। विधि के सृष्टि के जीव उसका क्या वर्णन कर सकें। उसे देखकर ज्ञानी का वैराग्य भूल जाय। ज्ञानी में वैराग्य की पराकाष्ठा होती है। यह समाज महामाया की कृपा से हुआ। ज्ञानिनामपि चेतांसि देवी भगवती हि सा। बलादाकृष्य मोहाय महामाया प्रयच्छति। पर भरतजी परम भक्त हैं। इनकी विरति बनी रही। यथा : भरतहि होइ न राजमदु बिधि हरिहर पद पाय।

आसन सयन सुवसन बिताना। बन बाटिका बिहग मृग नाना॥
सुरभि फूल फल अमिअ समाना। बिमल जलासय बिबि बिधाना॥२॥

अर्थ : आसन, शय्या, वस्त्र, चँदवा, उपवन, फुलवारी और नाना प्रकार के पक्षी और मृग सुगन्धित फूल और अमृत के समान स्वादिष्ट फल और अनेक प्रकार के निर्मल जलाशय।

व्याख्या : आसन बैठने के लिए, शय्या सोने के लिए, सुवसन शीत उष्ण निवारण के लिए, वितान क्षुद्र जन्तुओं से रक्षा के लिए। वन वाटिका विहार के लिए, नाना प्रकार के पक्षी चहचहाने के लिए और मृग कुलेल करने के लिए। अब उन उपवन तथा वाटिका के फल फूल का वर्णन करते हैं। फूल सुगन्धित हैं और फल अमृत के समान स्वादु हैं।

असन[1] पान सुचि अमिअ अमीं से। देखि लोग सकुचात जमी से॥
सुर सुरभी सुरतरु सबहीं के। लखि अभिलाषु सुरेस सची के॥३॥

अर्थ : खान पान और पवित्र अमृत सा जल जिन्हें देखकर लोग यमी की भाँति सङ्कोच करते हैं। सभी के पास कामधेनु और कल्पवृक्ष थे। जिन्हें देखकर इन्द्र और इन्द्राणी को अभिलाष उत्पन्न हो।

व्याख्या : अहिंसा सत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहाः यमाः। १. अहिंसा २. सत्य ३. चोरी न करना ४. ब्रह्मचर्य ५. संग्रह न करना। ये पाँच यम हैं। जिन्होंने इनका व्रत ले रक्खा है वे यमी हैं। इन्हें भोग्य पदार्थ के संग्रह में सङ्कोच होता है। पर यहाँ के भोग्य पदार्थ इतने ऊँचे दर्जे के हैं कि लोगों को उन्हें देखकर यमियों की भाँति सङ्कोच होता है। उनका चित्त कहे देता है कि इनके उपभोग की मेरे में योग्यता नहीं। अमिअ का अर्थ जल भी है। यथा : पयः कीलालममृतं जीवनं भुवनं वनम्। यहाँ प्रथम अमिअ का अर्थ जल है।

इतने पर भी कोई घाटा न रह जाय। इसलिए सबके पास कामधेनु और कल्पवृक्ष हैं। जिन्हें देखकर इन्द्र इन्द्राणी को अभिलाष हो कि मेरे नन्दन वन में भी ऐसी कामधेनु और ऐसे कल्पतरु होते। राजसमाज के सुख को देखकर अमर अभिलाखे पर मुनिवर के तपबल से अर्जित सम्पत्ति ऐसी थी कि उसे देखकर इन्द्र इन्द्राणी को अभिलाष हो जावे।

रितु बसंत बह त्रिबिध बयारी। सब कहँ सुलभ पदारथ चारी॥
स्रक चंदन बनितादिक भोगा। देखि हरख बिस्मय बस लोगा॥४॥

अर्थ : वसन्त ऋतु हो गयी। शीतल मन्द सुगन्ध वायु बहने लगी। सबको धर्मार्थ काम मोक्ष सुलभ हो गया। माला चन्दन तथा स्त्री आदि में है जिनके : ऐसे भोगों को देखकर लोग हर्ष और आश्चर्य के वश में हो गये।

---

१. यहाँ अभेद : रूपक सम है।

व्याख्या : समय का परिवर्तन हो गया। ग्रीष्म ऋतु वसन्त हो गयी। अतः त्रिविध समीर बहने लगा। धमार्थ काम की कौन चलावे मोक्ष भी उस समय सुलभ हो गया। माला और चन्दन का गृही को अधिकार है। क्योंकि ये कामोपभोग की सामग्री हैं और स्त्री शरीर को सांसारिक सुखों का सर्वश्रेष्ठ साधन माना गया है। इसीलिए वनितादिक भोग कहते हैं। जब स्वर्ग के सभी सुख हैं, कामधेनु हैं, कल्पवृक्ष हैं तो अप्सराएँ क्यों न हों? यह सब देखकर लोगों को हर्ष भी हुआ और आश्चर्य भी हुआ कि ऐसा भोग मोक्ष का एकत्रकरण कहीं देखा नहीं गया था और न सुना ही गया था।

दो. संपति चकई भरतु चक, मुनि आयसु खेलवार।
तेहि निसि आश्रम पिंजराँ, राखे भा भिनुसार ॥२१५॥

अर्थ : सम्पत्ति चकई हुई, भरतजी चकवा हुए और मुनिजी की आज्ञा मानो खेलवाड़ हो गया। उस रात को आश्रम रूपी पिंजड़े में दोनों को रक्खे ही रक्खे सवेरा हो गया। चकवा चकई का समागम न हुआ।

व्याख्या : चकवा चकई में भोक्तृभोग्य सम्बन्ध है। परन्तु उनका मिलन सूर्य साक्षिक ही होता है रात्रि में वियोग रहता है। यह जानकर मानो किसी खेलवाड़ी ने उन दोनों को रात के समय एक पिंजड़े में बन्द कर दिया। यह देखने के लिए इतने सन्निकट होने पर भी दोनों का वियोग कैसे स्थिर रह सकता है। पर उन दोनों के एकत्रित होने पर वियोग बना रहा। दोनों ने एक दूसरे की ओर आँख उठाकर भी नहीं देखा। यहाँ तक कि सवेरा हो गया। वैसी ही दशा यहाँ हुई। यहाँ चकवा स्थानीय भरतजी और चकई स्थानीय सम्पत्ति हुई। भानुकुल भानु के न होने से वह समय रात्रि स्थानीय हुआ। उस विशेष रात्रि में मानों भरतजो सम्पत्ति के साथ एक स्थान में मुनिजी की आज्ञा से एकत्रित हो गये। अन्यथा भरतजी सम्पत्ति से दूर रहते थे। यथा : नंदि गाँव करि परन कुटीरा। कीन्ह निवास धरम धुर धीरा। पर उस एकत्रित होने से भरतजी के नियम में भङ्ग न हुआ। सम्पत्ति का कोई प्रभाव भरतजी पर नहीं पड़ा। भरतजी की वियोग व्यथा ज्यों की त्यों बनी रह गयी और रात्रि व्यतीत हो गयी। यथा : मनहुँ कोक कोकी कमल दीन बिहीन तमारि।

कीन्ह निमज्जनु तीरथ राजा। नाइ मुनिहि सिरु सहित समाजा ॥
रिषि आयसु असीस सिर राखी। करि दंडवत बिनय बहु भाषी ॥१॥

अर्थ : तीर्थराज में स्नान किया। समाज के सहित मुनिजी की वन्दना की। ऋषिजी की आज्ञा और आशीर्वाद को शिरोधार्य करके दण्डवत् की और बहुत विनय किया।

व्याख्या : तीर्थराज में प्रवेश होने के समय भी स्नान और जाते समय भी स्नान की विधि है। सरकार ने भी ऐसा ही किया था। यथा : राम कीन्ह बिश्राम

निसि प्रात प्रयाग नहाइ। चले सहित सिय लखन जन मुदित मुनिहि सिर नाइ। सहित समाज पहुनाई हुई थी। अतः सहित समाज सिर नवाया। विदाई माँगा। यहाँ प्रयाग न कहकर तीर्थराज कहा। भाव यह कि यह भी सहित समाज विराजमान हैं।

ऋषिजी की आज्ञा से पहुनाई स्वीकार किया था। अतः जाने के लिए भी आज्ञा माँगी। सो आज्ञा मिली। वन्दना किया था। इसलिए आशीर्वाद मिला कि मनोवाञ्छित सिद्ध हो। अतः आज्ञा और आशीर्वाद दोनों को शिरोधार्य करके दण्डवत् किया। आने के समय भी दण्डवत् किया था। मुनिजी ने सत्कार करने में कुछ उठा नहीं रक्खा। इसलिए बहुत विनती भी की।

पथ गति कुसल साथ सब लीन्हे। चले चित्रकूटहिं चितु दीहे॥
राम सखा कर दीन्हें लागू। चलत देहु धरि जनु अनुरागू॥२॥

अर्थ : रास्ते के जानने में चतुर लोगों को साथ लिया और चित्रकूट में चित्त दिये हुए चले। राम सखा के हाथ का सहारा पकड़े चले जा रहे हैं। मानो देह धारण किये हुए साक्षात् अनुराग ही है।

व्याख्या : सरकार के चलने के समय जब रास्ता दिखाने के लिए शिष्यों को बुलाया तो पचासों आगये और सब कहने लगे कि हमारा सब रास्ता देखा है। पर चार व्यक्तियों को रास्ता दिखाने के लिए पचास तो भेजे नहीं जा सकते। अधिक से अधिक चार जा सकते हैं। अतः मुनिजी ने ऐसे चार को चुना जिन्होंने अनेकों जन्म में बहुत से पुण्य किये थे। शेष शिष्यों का अभिलाष मन में ही रह गया। आज भरतजी को रास्ता दिखाना और इनके साथ पूरा समाज है। अतः आज पचासों की नियुक्ति रास्ता दिखाने के लिए कर दी गयी। अथवा सरकार को रास्ता दिखाने के लिए चारों वेद शिष्य वेष में गये थे और सारे समाज को रास्ता दिखाने के लिए साङ्गोपाङ्ग वेद सरहस्य सोपनिषदं सेतिहास पुराण रास्ता दिखाने चले। पहिले तो चित्तवृत्ति प्रयाग की ओर थी। तीर्थराज को बायाँ देकर जाना नहीं चाहते थे। पर अब तो मन सीधे चित्रकूट में लगा हुआ है।

अत्यन्त प्रेम से शरीर शिथिल है। अतः निषादराज का सहारा लिये चल रहे हैं। मानों शरीरधारी अनुराग हैं। इस समय सखा में वह विनय नहीं है जो प्रथम मिलन के समय था। यथा : राम सखा कर दीन्हे लागू। जनु धनु धरे बिनय अनुरागू। घनिष्ठता अधिक हो जाने से विनय की मात्रा कम हो गयी।

नहिं पद त्रान सीस नहिं छाया। पेमु नेमु ब्रतु धरमु अमाया॥
लखन राम सिय पंथ कहानी। पूछत सखहि कहत मृदु बानी॥३॥

अर्थ : न पावों में जूते हैं, न सिर पर छाया है और प्रेम नेम व्रत और धर्म सब मायारहित है। लक्ष्मण और रामजानकी की पन्थ कथा पूछते चलते हैं और सखा मृदुवाणी से कहता चला जा रहा है।

व्याख्या : राजा लोग जूता तो पहनते हैं पर छाता नहीं लगाते। छाता दूसरे खोले रहते हैं उसी की छाया में चलते हैं। यहाँ न जूता पैर में है न सिर पर छाया है। प्रेम ऐसा है : चलत देह धरि जनु अनुरागू। नेम ऐसा है : गवने भरत पयादहि पाएँ। कोतल संग जाहि डोरिआएँ। व्रत ऐसा है : नहि पद त्रान सीस नहि छाया और धर्म ऐसा : लखन रामसिय पंथ कहानी। पूछत सखहि कहत मृदु बानी। इन सब में छल का स्पर्श नहीं। अतः अमाया कहते हैं।

पन्थ कहानी में पहिले लक्ष्मण विषयक प्रश्न किया। क्योंकि वे सर्वाधिकारी थे। तत्पश्चात् प्रभु विषयक प्रश्न है। सीता विषयक प्रश्न सबके पीछे है। क्योंकि वे तो रक्ष्य रहीं। सखा शृङ्गवेरपुर से यमुनातीर तक साथ रहा है। अतः उस कथा को मृदुवाणी से कह रहा है और भरतजी सुनते जा रहे हैं।

राम बास थल बिटप बिलोके। उर अनुराग रहत नहि रोके ॥
देखि दसा सुर बरसहि फूला। भइ मृदु महि मग मंगलु मूला ॥४॥

अर्थ : रामजी के निवासस्थल के वृक्ष को देखने से हृदय में अनुराग रोके नहीं रुकता। यह दशा देखकर देवगण पुष्पवृष्टि करते हैं। पृथ्वी कोमल हो गयी। रास्ता मङ्गलमूल हो गया।

व्याख्या : पन्थ कथा सुनते भरतजी अपने अनुराग को रोके चले जा रहे हैं। तब से वह वटवृक्ष आगया जिसके तले भगवान् ने विश्राम किया था। उसे देखने से अनुराग रोकने पर भी नहीं रुकता। सच्चे अनुरागी अपने अनुराग को छिपाया चाहते हैं पर वह छिपता नहीं। अति सनेह सादर भरत कीन्हेउ दंड प्रनाम। यह भरतजी की यात्रा विधि है।

अब प्रेम की दशा का फल कहते हैं। भक्ति की दशा में पूजन का सौभाग्य मिलना कठिन है। अतः देवताओं ने फूल की वर्षा ऊपर से की। पृथ्वी ने अपनी सहज कठोरता परित्याग किया। कुश कण्टकादि को दूर करके रास्ते को मङ्गलमूल कर दिया। क्योंकि भरतजी के पाँव में जूते नहीं है।

दो. किये जाहि छाया जलद, सुखद बहइ बर बात।
तस मगु भयउ न राम कहँ, जस भा भरतहि जात ॥२१६॥

अर्थ : बादल छाया करते जा रहे हैं। सुख देनेवाली हवा बह रही है। वैसा रास्ता रामजी को भी नहीं हुआ जैसा भरत को जाने के समय में हुआ।

व्याख्या : भरतजी को छाता नहीं लगा था। अतः बादल छाया करते जा रहे हैं। बादल की छाया के सामने छाता की छाया क्या वस्तु है। ज्येष्ठ का महीना है। सो लू नहीं चल रहो है। शीतल मन्द सुगन्ध वायु बह रही है। यद्यपि ऐसी ही बात रामजी के चलने के समय हुई थी। यथा : परसि रामपद पदुम परागा। मानत भूमि भूर निज भागा। छाँह करहि घन बिबुध गन बरखहि सुमन सिहाँहो। इत्यादि। पर भरत की यात्रा के समय में अधिकता से हुई। राम ते अधिक रामकर दासा।

जड़ चेतन मगं जीव घनेरे। जे चितए प्रभु जिन्ह प्रभु हेरे ॥
ते सब भये परम पद जोगू। भरत दरस मेटा भव रोगू ॥१॥

अर्थ : रास्ते में जड़ चेतन जीव भरे पड़े थे। उनमें जिन्होंने प्रभु को देखा या जिनको प्रभु ने देखा वे सब परमपद के अधिकारी हो गये। भरत के दर्शन से उनका संसाररूपी रोग छूट गया।

व्याख्या : सरकार के दर्शन के विषय में कह चुके हैं : जिन्ह जिन्ह देखे पथिक प्रिय सिय समेत दोउ भाइ। भवमग अगमु अनंदु तेइ बिनु श्रम रहे सिराइ। अब भरतजी की विशेषता कहते हैं कि रास्ते के जीवमात्र को परमपद की योग्यता प्राप्त हो गयी। जो चेतन जीव थे उन्होंने प्रभु भरतजी को देखा और जो जड़जीव थे देखने में असमर्थ थे उन्हें प्रभु भरत ने देखा। दोनों कृतार्थ हो गये। जिन्होंने प्रभु को देखा उनकी अन्तःकरणवृत्ति भरताकार में परिणत हुई और ऐसा होते ही उनके सम्पूर्ण कल्मष दूर हो गये। उन्हें परमपद प्राप्ति की योग्यता हो गयी और जिनको भरतजो ने देखा। उनके आकार से भरतजी की अन्तःकरण की वृत्ति आकारित हो गयी। जिसके आकार से परम पुनीत भरतजो की वृत्ति आकारित हो जाय उसके सद्गति में सन्देह ही क्या है? यहाँ प्रभु शब्द भरतजी के लिए आया है। क्योंकि यहाँ भरतजी की प्रभुता कह रहे हैं। मेघनाद वध प्रकरण में देवताओं ने प्रभु कहकर ही लक्ष्मणजी की स्तुति की है। यथा : तुम प्रभु सब देवन्ह निस्तारा। भव रोग को नष्ट होने से अभिप्राय आवागमन से रहित होने का है।

यह बड़ि बात भरत कइ नाँही। सुमिरत जिनहि रामु मन माँही ॥
बारक नाम कहत जग जेऊ। होत तरन तारन नर तेऊ ॥२॥

अर्थ : भरतजी के लिए यह कोई बड़ी बात नहीं है। जिन्हें स्वयं रामजी मन में स्मरण किया करते हैं। संसार में यदि कोई एक बार भी नाम स्मरण करता है वह स्वयं तरता है और दूसरों को तारता है।

व्याख्या : यदि कोई कहे कि यह तो बड़ी भारी बात है। रामजी के दर्शन से तो नेत्रवाले ही तरे। नेत्रविहीनों का कोई उपकार नहीं कहते और भरतजी के कारण चराचर का उपकार हुआ। इस पर कवि कहते हैं कि भरतजी के लिए बड़ी बात नहीं है। जिसके नाम का जप स्वयं रामजी किया करते हैं। यथा : जग जप राम राम जप जेही। उनकी महिमा स्पष्ट ही रामजी से बड़ी है। अब मार्ग के मङ्गलदातृत्व का कारण कहते हैं।

एक बार भी जिसके नाम को लेकर मनुष्य स्वयं भी तर जाता है और दूसरों को भी तारता है। सँभालकर रामजी का नाम लिया जाता है। यथा : बार बार रघुबीर सँभारी। तरकेउ पवन तनय बल भारी। संभारि श्रीरघुबीर धरि प्रचारि कपि रावन हन्यो। महात्मा किनारामजी ने कहा है : सो प्रभु सब में रमि रह्यो सर्व रूप सब ओर। ताते राम सँभारि गहु सब नामन को मोर। इसीलिए

कहते हैं। जनम जनम मुनि जतन कराहीं। अंत राम कहि आवत नाहीं। जिसके नाम की इतनी प्रभुता है।

भरतु राम प्रिय पुनि लघु भ्राता। कस न होइ मगु मंगलदाता ॥
सिद्ध साधु मुनिवर अस कहहीं। भरतहि निरखि हरषु हिय लहहीं ॥३॥

अर्थ : भरतजी तो रामजी को प्रिय हैं और उनके छोटे भाई हैं। अतः रास्ता मङ्गलदाता क्यों न हो! यह बात सिद्ध साधु और श्रेष्ठ मुनि गण कहते हैं। और भरतजी का दर्शन करके हृदय से हर्षित हो रहे हैं।

व्याख्या : अपने सत्कार से मनुष्य उतना प्रसन्न नहीं होता जितना कि अपने प्रिय के सत्कार से तथा अपने पुत्र के सत्कार से प्रसन्न होता है। भरतजी तो रामजी को अत्यन्त प्यारे हैं। यथा : भरत सरिस प्रिय को जगमाँहीं। और छोटे भाई होने से पुत्र स्थानीय हैं। अतः रास्ता भरत के लिए रामजी से भी अधिक सुखकारक हुआ। कवि कहते हैं कि ऐसा न होने का कोई कारण नहीं।

ऐसी बातें सिद्ध साधक और स्थितधी महात्मा आपस में कहने लगे और भरतजी का दर्शन करके कृतकृत्य हो गये। सिद्ध लोग चाहने से सिद्धि द्वारा प्रकृति के किसी नियम में परिवर्तन कर सकते हैं। यहाँ आप से आप हो रहा है। साधु लोगों का मनसा वाचा परोपकार करने का स्वभाव है। सो देख रहे हैं कि भरतजी के मार्ग में चलने से चराचर का आप से आप उपकार हो रहा है। मुनि लोग स्थितप्रज्ञ हैं। इन्हें जीवों की परम प्राप्ति योग्यता से हर्ष है। अथवा बिना साधन के ही अपने कल्याण की प्राप्ति से हर्षित हैं।

देखि प्रभाउ सुरेसहि सोचू। जगु भल भलेहि पोच कहुँ पोचू ॥
गुरु सन कहेउ करिअ प्रभु सोई। रामहि भरतहि भेंट न होई ॥४॥

अर्थ : यह प्रभाव देखकर इन्द्र को चिन्ता हुई। संसार भले को भला और बुरे को बुरा है। गुरुजी से कहा कि हे प्रभो! अब ऐसा कीजिये कि राम से और भरत से भेंट न हो।

व्याख्या : प्रकृति में परिवर्तन द्वारा भरत की महामहिमा देखकर उपर्युक्त महानुभावों को तो सुख हुआ। परन्तु इन्द्र को सोच हुआ कि यहाँ तो जड़ पिघल रहे हैं। राम तो करुणासिन्धु हैं। उन्हें पिघलते कितनी देर लगेगी। संसार विचित्र वस्तु है। बुरे को यहाँ भला खोजने से नहीं मिलता। उसी भाँति भले को बुरा नहीं मिलता। यहाँ एक ही वस्तु एक को विष है और दूसरे को अमृत है। निर्णायक कुछ भी नहीं। अतः यही कहना होगा कि अपने भावनानुसार संसार की प्रतीति होती है।

इन्द्र गुरुजी को आज्ञा देते हैं। उनसे उपाय पूछना चाहिए। सो उन्हें ही उपाय बतलाते हैं। यह उनकी आसुरी सम्पत्ति है। कहते हैं कि आप प्रभु हैं। आप में सामर्थ्य है। आप चाहे तो रामजी से भरतजी की भेंट न हो और इसी में हम लोगों का कल्याण है और आप गुरु हैं। हमारा कल्याण साधन कीजिये।

दो. राम सँकोची प्रेम बस, भरत सपेम पयोधि ।
बनी बात बिगरन चहति, करिअ जतनु छलु सोधि ॥२१७॥

अर्थ : रामजी सङ्कोची और प्रेम के वश हैं और भरतजी सुन्दर प्रेम के समुद्र हैं। बनी बात बिगड़ना चाहती है। अतः माया करके कोई उपाय करना चाहिए।

व्याख्या : इन्द्रजी कहते हैं कि रामजी स्वभाव से सङ्कोची हैं। आगे कहेंगे : तेहि ते अधिक तुम्हार सँकोचू और प्रेमवश हैं। यथा : रामहि केवल प्रेम पियार। जानिलेहु जो जाननि हारा। ये सङ्कोच प्रेमवश होकर सब कुछ कर सकते हैं और भरत प्रेम के समुद्र हैं। इन दोनों महात्माओं के मिलने की देर है। भरत निश्चय रामजी को लौटा ले जावेंगे। हम लोगों की बात बन गयी है। रामजी राज्य छोड़कर वन आगये हैं। सो सब करा धरा मिट्टी हुआ चाहता है। अतः इनके न मिलने में ही हम लोगों की कुशल है और न मिलने देने का कोई प्रशस्त यत्न नहीं है। माया से ही ऐसा उपाय सम्भव है। क्योंकि वही अघटित घटना पटीयसी है। सो ऐसी माया हम लोगों से साध्य नहीं है। आप गुरु हैं। समर्थ हैं। आप ही कोई ऐसी माया कीजिये जिससे राम और भरत से भेंट न हो।

बचन सुनत सुरगुरु मुसकानें। सहसनयन बिनु लोचन जानें ॥
मायापति सेवक सन माया। करियत उलटि परइ सुरराया ॥१॥

अर्थ : वचन सुनकर बृहस्पतिजी मुसकुराये और हजार आँखवाले को बिना आँख का समझा। बोले हे देवराज ! मायापति के सेवक से यदि माया की जाय तो उलटकर अपने गले पड़ती है।

व्याख्या : देवराज ने तो कहा : करिय जतन छल सोधि। पर गुरुजी मुसकुरा पड़े। सोचा कि इनकी तो यह दशा है : लोचन सहस न सूझ सुमेरू। इन्द्र को हजार आँखें हैं पर क्या एक से भी नहीं सूझता। ये अन्धे ही हैं। यथा : तुलसी स्वारथ सामुहे परमारथ तन पीठि। अंध कहे दुःख पाइहैं दिठियारो केहि डीठि। ये केवल अपना ही स्वार्थ देख रहे हैं। परमार्थ की ओर से मुँह फेर लिया है। अतः ये अन्धे हैं। इन्हें आँखवाला किस हिसाब से कहा जाय।

देवराज से कहा कि रामजी मायापति हैं। इनकी माया सबसे प्रबल है। यथा : सुन खग प्रबल राम की माया। माया सब सिय माया माहू। वह रामजी की माया उनके सेवक पर बड़ी कृपा करती है। उसे नहीं व्यापती। यथा : नट कृत बिंकट कपट खगराया। नट सेवकहि न व्यापै माया। यदि उनके सेवक से कोई माया करता है तो वह माया उलटकर उस माया करनेवाले के गले पड़ जाती है। यथा : हिंस्रः स्वपापेन विहिंसितः खलः साधुः समत्वेन भयाद्विमुच्यते। पीड़ा देनेवाला अपने पाप से ही मारा पड़ता है और साधु समदर्शिता द्वारा भय से छूट जाता है।

तकै नीच जो मीच साधुकी सो पामर तेहि मीच मरै।
बेद बिदित प्रहलाद कथा सुनि को न भगति पथ पाँव धरै॥

तब किछु कीन्ह राम रुख जानी। अब कुचालि करि होइहि हानि ॥
सुनु सुरेस रघुनाथ सुभाऊ। निज अपराध रिसाहिं न काऊ ॥२॥

अर्थ : उस समय तो रामचन्द्र का रुख जानकर कुछ किया था। अब कुचाल करने से हानि होगी। हे देवराज ! रघुनाथजी का स्वभाव सुनो। अपने अपराध से कभी अप्रसन्न नहीं होते।

व्याख्या : यदि कहो कि पहिले आप ऐसा कर चुके हैं। सरस्वती को प्रेरणा किया था। यथा : बिपति हमारि बिलोकि बड़ि मातु करिअ सोइ आजु। राम जाहिं बन राजु तजि होइ सकल सुर काजु। यद्यपि उस प्रसङ्ग में स्पष्ट वृहस्पतिजी का उल्लेख नहीं आया है। पर मालूम होता है कि देवताओं की ओर से प्रवक्ता गुरुजी ही थे। गुरुजी ने उस समय रामजी का रुख देख लिया था। यथा : जनमे एक संग सब भाई। भोजन सयन केलि लरिकाई। कर्नवेध उपवीत बिआहा। संग संग सब भयउ उछाहा। बिमल बंस यह अनुचित एकू। बंधु बिहाइ बड़ेहि अभिषेकू। तथा : नवगयंदु रघुबीर मनु राजु अलान समान। छूट जानि बन गवनु सुनि उर अनंदु अधिकान। रुख देखकर माया के लिए सरस्वती की प्रेरणा की। राम रुख पाकर कुचाल में भी हानि नहीं। यथा : चलेहुँ कुमग पग परहिं न खाले। इस समय रामजी का रुख भरत से मिलने का है। दिन रात सोचते हैं। यथा : रामहि बंधु सोच दिन राती। इस समय कुचाल करने से रक्षा नहीं है।

देवता स्वार्थी होते हैं। देवराज होने से इनका महास्वार्थी होना द्योतित किया। यहाँ सुरेश शब्द में यही व्यङ्ग्य है। अब रामजी का स्वभाव देवराज को बतलाते हैं। जिससे व्यवहार करना हो उसके स्वभाव को समझ लेना बड़ा आवश्यक है। उनका स्वभाव है कि अपने अपराध से अप्रसन्न नहीं होते। रामजी को वन हुआ यह उनके प्रति अपराध था। इसलिए सरकार अप्रसन्न न हुए।

जो अपराधु भगत कर करई। राम रोष पावक सो जरई ॥
लोकहुँ बेद बिदित इतिहासा। येह महिमा जानहिं दुरबासा ॥३॥

अर्थ : जो भक्त का अपराध करता है वह रामजी के क्रोधाग्नि में भस्म होता है। इसका इतिहास लोक और वेद में भी विदित है। इस महिमा को दुर्वासाजी जानते हैं।

व्याख्या : भगवान् भक्त के प्रति किये हुए अपराध को नहीं सहते। क्रोध करते हैं और उनके क्रोध करने पर अपराधी फिर नहीं बचता। यथा : बेद बिरुद्ध मही सुर साधु ससोक कियो सुरलोक उजारयौ। और कहा कहौं तीय हरी तबहूँ करुनाकर कोप न धारयौ। सेवक छोह ते छाड़ी छमा तुलसी कहे राम सुभाउ तुम्हारो। तौलो न दाप दल्यो दसकंधर जौ लौ विभीषन लात न मारयौ।

दो बड़े भारी प्रमाण हैं : लोक और वेद। सो दोनों में यह बात प्रसिद्ध है। तुम्हें नहीं मालूम यह बड़े आश्चर्य की बात है। भक्त की महिमा दुर्वासा ऋषि

जानते हैं। जिन्होंने भक्त अम्बरीष पर क्रोध करके कृत्या उत्पन्न की। तुरन्त भगवान् का सुदर्शनचक्र चला। उसने कृत्या को भस्म करके दुर्वासा को अपना लक्ष्य बनाया। दुर्वासाजी साल भर भागते फिरे। ब्रह्मधाम शिवलोकादि में रक्षा के लिए गये। पर रक्षा न हुई। सुदर्शन से पीछा नहीं छूटा। तब स्वयं भगवान् के शरण गये। उन्होंने कहा कि तुम्हें क्षमा प्रदान तो अम्बरीष ही कर सकता है। अन्ततः भक्त अम्बरीष के शरण जाने पर ही रक्षा मिली।

भरत सरिस को राम सनेही। जगु जप राम रामु जप जेही ॥४॥

अर्थ : भरत के ऐसा राम का स्नेही कौन है ? संसार तो राम को जपता है और रामजी भरत को जपा करते हैं।

व्याख्या : राजा अम्बरीष भी बड़े स्नेही रामजी के थे। परन्तु भरत ऐसा तो कोई भी नहीं है। यथा : सुनहु भरत रघुबर मन मांहीं। प्रेमपात्र तुम सम कोउ नांहीं। और कहाँ तक कहा जाय सम्पूर्ण संसार राम को जपता है। सो राम भरतजी के स्नेह के ऐसे वशीभूत हैं कि वे सदा भरत भरत भरत जपा करते हैं। सो भरत के अपराधी को कहाँ त्राण मिलेगा। राम भरत के भेंट में बाधक होना भगवत् अपराध और भागवत्त अपराध दोनों ही है।

दो. मनहु न आनिअ अमरपति, रघुबर भगत अकाजु।
अजसु लोक परलोक दुख, दिन दिन सोक समाजु ॥२१८॥

अर्थ : हे अमरपति ! रघुवर भक्त के काम बिगाड़ने की बात मन भी न आने दो। इससे लोक में दुर्यश और परलोक में दुःख होगा और दिन दिन शोक समाज बढ़ेगा।

व्याख्या : भगवत् का अपराध तथा भागवत अपराध मन में भी स्थान देने योग्य नहीं है। इन्हें मन में स्थान देने से लोक परलोक दोनों बिगड़ता है और सुख तो भाग ही जाता है। निरन्तर शोक की शृङ्खला बढ़ती है। लोग दुर्यश तथा परलोक का दुःख ऐहिक सुख के लिए अङ्गीकार करते हैं। पर भागवतापराध से ऐहिक सुख भी नष्ट हो जाता है और उसे विपत्ति पर विपत्ति आती ही जाती है। दुर्यश तथा परलोक का नष्ट होना ऊपर से होता है। इस बात को दूसरे शब्द में कहा : करे तो उलटि पड़े सुरराया। मन में स्थान देना ही कार्यारम्भ है। जिसने मन में स्थान दिया वह एक दिन कर बैठेगा।

सुनु सुरेस उपदेसु हमारा। रामहि सेवक परम पियारा ॥
मानत सुख सेवक सेवकाई। सेवक बैर बैरु अधिकाई ॥१॥

अर्थ : हे देवराज ! मेरा उपदेश सुनो। रामजी को सेवक अत्यन्त प्रिय हैं। वे सेवक की सेवा करने से सुख मानते हैं। सेवक से वैर करने से अधिक वैर मानते हैं।

व्याख्या : इन्द्र ने गुरुजी से कहा था : करिअ प्रभु सोई। रामहिं भरतहिं भेंट न होई। उसी का उत्तर गुरुजी देते हैं कि मेरा उपदेश सुनो ! आज्ञा मत दो। सचिव वैद्य गुरु तीन जौं प्रिय बोलहिं भय आस। राज धर्म तन तीनि कर होइ वेगि ही नास। मैं तुम्हारे भले की बात कहता हूँ। रामजी को सेवक के समान कोई प्यारा नहीं। यथा : पुनि पुनि सत्य कहौं तोहि पाहीं। मोहि सेवक सम कोउ प्रिय नाहीं। सो उनका स्वभाव है कि उनके सेवक की यदि कोई सेवा करे तो बड़े सुखी होते हैं। यथा : सीतापति सेवक सेवकाई। कामधेनु सय सरिस सुहाई।

और यदि कोई उनके सेवक से वैर करे तो उसके प्रति अधिक वैर मानते हैं। उन्हें देवता प्यारे हैं। इसमें सन्देह नहीं। पर सेवक के इतने नहीं : सहे सुरन्ह बहु काल बिषादा। नरहरि किये प्रकट प्रहलादा। देवता लोग तो हिरण्यकश्यप द्वारा बहुत सताये गये। पर अवतार न हुआ। पर जब वह भक्त प्रह्लाद को सताने लगा तो खम्भ फाड़कर प्रकट हुए।

यद्यपि सम नहिं राग न रोषू। गहहि न पापु पूँनु गुन दोषू ॥
करम प्रधान बिस्व करि राखा। जो जस करइ सो तस फल चाखा ॥२॥

अर्थ : यद्यपि सम हैं। न उन्हें राग है न क्रोध है। किसी के पाप पुण्य का ग्रहण नहीं करते। विश्व में कर्म को प्रधान कर रक्खा है। जो जैसा करता है वैसा फल पाता है।

व्याख्या : यद्यपि रामजी समता की सीमा हैं। उनमें रागरोषरूपी विषमता नहीं है। यथा : विस्मय हरष रहित रघुराऊ। तुम जानहु सब राम प्रभाऊ। पर विश्व के कार्य सञ्चालन के लिए कर्म को प्रधान बना रक्खा है। यथा : करै जो कर्म पाव फल सोई। निगम नीति अस कह सब कोई। अर्थात् कर्म की प्रधानता में किसी को सन्देह नहीं है। यथा : तुलसी यह तन खेत है मन वच कर्म किसान। पाप पुन्य द्वै बीज है बवैं सो लवै निदान।

तदपि करहिं सम बिषम बिहारा। भगत अभगत हृदय अनुसारा ॥
अगुन अलेख अमान एकरस। रामु सगुन भये भगत प्रेम बस ॥३॥

अर्थ : फिर भी भक्त और अभक्त के हृदयानुसार वे सम और विषम विहार करते हैं। निर्गुण, निर्लेप अमान और एकरस होते हुए भी रामजी भक्त के प्रेमवश सगुन हो गये।

व्याख्या : यद्यपि रामजी समता की सीमा है। विषमता से रहित हैं। न उन्हें राग द्वेष है न उन्हें किसी के पुण्य से कोई प्रयोजन है। संसार कर्मानुसार सुख दुःख भोगा करता है। फिर भी उनका विहार कभी सम और कभी विषम होता है। जिस भाँति दर्पण सबके लिए समान है। उसे किसी से रागद्वेष नहीं। पर उसमें यदि क्रोधपूर्वक देखें तो दर्पण में क्रोधमयी मूर्ति का और यदि प्रसन्न होकर देखें तो हँसमुख मूर्ति का दर्शन होता है। उनमें भक्त और अभक्त के हृदयों का

भाव प्रतिफलित होता है। ऐसा होने से न तो दर्पण में विषमता आता है और न रामजी में ही विषमता आती है। पर व्यवहार विषम होता है।

रामजी स्वभाव से निर्गुण हैं। निर्लेप हैं। उनमें भेद को स्थान नहीं है। इसलिए अमान हैं और उनमें विकार नहीं होता। इसलिए एकरस हैं। अतः उन्हें अज कहा है। उनका जन्म नहीं होता। परन्तु परम भक्त स्वायम्भू को अभिलाषा हुई कि मैं उनका दर्शन इस चर्म चक्षु से करूँ तो भगवान् को शरीर धारण करना पड़ा। वे निर्गुण से सगुण हो गये। यथा : उर अभिलाष निरंतर होई। देखिअ नयन परम प्रभु सोई। अगुन अखंड अनंत अनादी। जेहि चितहिं परमारथवादी। नेति नेति जेहि बेद निरूपा। निजानंद निरुपाधि अनूपा। संभु बिरंचि बिष्णु भगवाना। उपजहिं जासु अंस ते नाना। ऐसेउ प्रभु सेवक बस अहई। भगत हेतु लीला तनु गहई।

राम सदा सेवक रुचि राखी। बेद पुरान साधु सुर साखी॥
अस जिय जानि तजहु कुटिलाई। करहु भरत पद प्रीति सुहाई॥४॥

अर्थ : रामजी ने सदा सेवक की रुचि रक्खी है। वेद पुराण देवता और सन्त इसके साक्षी हैं। ऐसा मन में समझकर कुटिलता छोड़ो और भरतजी के चरणों में सुन्दर प्रीति करो।

व्याख्या : सेवक सेवा धर्म में स्थिर है। कुछ माँगता नहीं। तब सरकार को उसकी रुचि देखकर कार्य करना पड़ता है। वेद पुराण सन्त और देवता रामकथा के जाननेवाले हैं। सो सब जानते हैं कि रामकथा वस्तुतः सेवकों की रुचि रखने की कथा है। सन्तों की रुचि रखने के लिए रामावतार हुआ। यथा : तुम सारिखे संत प्रिय मोरे। धरौं देह नहिं आन निहोरे। बाल लीला कुमार लीला आदि सेवकों की रुचि रखने के लिए हुआ। राज्य त्यागकर वनगमन भी सेवकों की रुचि रखने के लिए ही हुआ। यथा : अत्रि आदि मुनिबर बहु बसहीं। करहि जोग जप तप तन कसहीं। चलहु सफल श्रम सबकर करहू। राम देहु गौरव गिरिवरहू। अतः रामजी अपने सेवक भरत की रुचि अवश्य रक्खेंगे। इसमें सन्देह नहीं है।

तुम जो कहते हो : करहु जतन छल सोधि यही कुटिलाई। सो कुटिलाई छोड़कर भरत के चरणों में प्रीति करो। भरत तुम्हारा काम नहीं बिगड़ने देंगे।

दो. राम भगत परहित निरत, पर दुख दुखी दयाल।
भगत सिरोमनि भरत ते, जनि डरपहु सुरपाल॥२१९॥

अर्थ : हे सुरपति ! भरतजी रामभक्त हैं। परहित में तत्पर रहते हैं। दूसरे के दुःख से दुःखी होनेवाले दयालु हैं। भक्त शिरोमणि हैं। उनसे डरो मत।

व्याख्या : रामभक्त से भी काम नहीं बिगड़ता। यथा : साधु ते होइ न कारज हानी। क्योंकि रामभक्त परहित निरत होते हैं। दूसरे के दुःख से दुःखी होते हैं। उनका स्वभाव दयालु होता है। यथा : संत हृदय नवनीत समाना। कहा कबिन्ह

पर कहे न जाना। निज परिताप द्रवै नवनीता। पर दुख द्रवहिं संत सुपुनीता। यहाँ तो भरतजी भक्त शिरोमणि हैं। इनसे डरने की कौन बात है। सो तुम क्यों डरते हो। तुम तो सुरपाल हो। असुरपाल डरें तो एक बात भी है।

सत्यसंध प्रभु सुर हितकारी। भरत राम आयसु अनुसारी ॥
स्वारथ बिबस बिकल तुम्ह होहू। भरत दोसु नहि राउर मोहू ॥१॥

अर्थ : प्रभु सत्यसन्ध हैं। देवताओं के हितकारी हैं और भरतजी रामजी के आज्ञा पालक हैं। स्वार्थ विवश हो। इसलिए तुम विकल होते हो। भरत का दोष नहीं है। तुम्हारा ही अज्ञान है।

व्याख्या : न डरने का कारण कहते हैं। रामजी समर्थ हैं। सत्यसन्ध हैं। जो प्रतिज्ञा की है उसे पूरा करेंगे। यथा : जनि डरपहु मुनि सिद्ध सुरेसा ... हरिहौं सकल भूमि गरु आई। निर्भय होहु देव समुदाई : देवताओं के सदा से हित करनेवाले हैं। यथा : जब जब नाथ सुरन्ह दुख पायो। नाना तनु धरि तुमहि नसायो। जब मालिक ऐसा है और भरतजी सेवक हैं आज्ञाकारी हैं तब डरने की तो कोई बात नहीं है। अत्यन्त स्वार्थ के कारण तुम इस पर ध्यान न देकर विकल हो रहे हो। इसमें भरतजी का कोई दोष है ही नहीं। केवल अपने अज्ञान से आप व्यर्थ दुःखी हो रहे हैं।

सुनि सुरबर सुरगुर बर बानी। भा प्रमोदु मन मिटी गलानी ॥
बरषि प्रसून हरषि सुरराऊ। लगे सराहन भरत सुभाऊ ॥२॥

अर्थ : सुरगुरु की श्रेष्ठ वाणी सुनकर देवराज के मन की ग्लानि मिट गयी और प्रसन्नता हुई। देवराज ने हर्षित होकर फूल बरसाया और भरत के स्वभाव की प्रशंसा करने लगे।

व्याख्या : इन्द्र भगवान् देवताओं में श्रेष्ठ हैं। गुरु के वाक्य पर विश्वास है। उनकी संशयोच्छेदिनी वाणी सुनकर ग्लानि मिट गयी। यथा : बंदौं गुरुपद कंज कृपासिंधु नररूप हर। महा मोह तम पुंज जासु बचन रबिकर निकर। देवराज प्रसन्न हो गये। देखि दसा सुर बर्षहिं फूला। सो देवराज के सोच से पुष्प वर्षा बन्द हो गयी थी। अब फिर प्रारम्भ हुई। देवराज ने स्वयं हर्षित होकर बरसाया और भरत के स्वभाव की प्रशंसा करने लगे। देवता लोग पहिले से ही भरत के स्वभाव पर मुग्ध हैं। उन्हें भ्रम हो गया था कि यह स्वभाव उनके प्रतिकूल पड़ेगा। जब गुरुजी के वचन से प्रतिकूलता की शङ्का जाती रही तब प्रशंसा करने लगे।

एहि बिधि भरतु चले मग जाहीं। दसा देखि मुनि सिद्ध सिहाहीं ॥
जबहि रामु कहि लेंहि उसासा। उमगत प्रेमु मनहुँ चहुँ पासा ॥३॥

अर्थ : इस भाँति भरतजी रास्ते से चले जाते थे। उनकी दशा देखकर मुनि

और सिद्ध सिहाने लगे। जब राम कहकर लम्बी श्वास लेते थे तो मानो चारों ओर प्रेम उमड़ा पड़ता था।

व्याख्या : राम सखा के हाथ का सहारा लिये हुए नंगे पैर बिना छाता लगाये लक्ष्मण राम और जानकीजी के रास्ते की कहानी सखा द्वारा सुनते प्रेम में मग्न चले जा रहे हैं। यह भरतजी के रास्ता चलने की विधि है। उनकी दशा प्रेम में ऐसी हो रही है जिसे देखकर स्थितप्रज्ञ मुनिगण और जीवन्मुक्त सिद्ध को भी ईर्ष्या होती है कि यह दशा मेरी कभी नहीं हुई। सिद्ध सिहाते हैं कि बिना सिद्धि के लिए प्रयत्न किये ही भरत को ऐसी सिद्धि प्राप्त है : किये जांहि छाया जलद सुखद बहइ बरबात। भई मृदु महि मग मंगल मूला। इत्यादि।

भरतजी प्रेम के पयोधि हैं। पयोधि जब उच्छ्वास लेता है तब जल फैल जाता है ज्वार भाटा आजाता है। इसी भाँति जब भरतजी राम कहकर उच्छ्वास लेते हैं तो चारों ओर प्रेम उमगने लगता है। उनके नामोच्चारण में ऐसा दर्द है कि सुननेवाले का हृदय पिघल उठता है। इस दशा को मुनि लोग सिहाते हैं।

द्रवहि बचन सुनि कुलिस पखाना। पुरजन पेमु न जाइ बखाना ॥
बीचबास कर जमुनहि आए। निरखि नीरु लोचन जल छाए ॥४॥

अर्थ : वचन सुनकर वज्र और पाषाण पिघले जा रहे हैं। पुरजन के प्रेम का तो वर्णन नहीं हो सकता। बीच में मुकाम करके यमुना तीर पहुँचे। जल देखकर आँखों में जल आगया।

व्याख्या : उनके नामोच्चारण में ऐसा दर्द है कि उसका प्रभाव जड़ पदार्थों पर पड़ रहा है। वज्र और पाषाण पिघल रहे हैं। तेन शृण्वन्ति पादपाः। इस महाभरत के वचन से पता लगता है कि पेड़ भी सुनते हैं। गोस्वामीजी कहते हैं कि पत्थर और पाषाण भी सुनते हैं और द्रवीभूत भी होते हैं। पर वचन में वैसा ही दर्द होना चाहिए। भरतजी के साथ पुरजन हैं। उनके कान में जब पाषाण को द्रवीभूत करनेवाली वाणी पड़ती है तो उनकी कैसी दशा हुई जाती थी। इसका तो वर्णन नहीं हो सकता।

एक रात्रि रास्ते में निवास हुआ। दूसरे दिन यमुना तीर पहुँच गये। यहाँ यमुना से तीर में लक्षणा है। यमुना जल की श्यामता की उपमा सरकार की शरीर की श्यामता से दी जाती है। यथा : उतरि नहाए जमुन जल जो सरीर सम स्याम। उसी का साफल्य दिखाते हुए कहते हैं कि उस जल के देखने से सरकार की श्याम मूर्ति हृदय पटल पर हो आयी। अतः नेत्रों में जल डबडबा आया।

दो. रघुबर बरन बिलोकि बर, बारि समेत समाज।
होत मगन बारिधि बिरह, चढ़े बिबेक जहाज ॥२२०॥

अर्थ : श्रीरघुनाथजी के रङ्ग का सुन्दर जल देखकर समाज सहित भरतजी राम विरह समुद्र में डूबते डूबते विवेकरूपी जहाज पर चढ़ गये।

व्याख्या : जितना आगे बढ़ते जाते हैं विरह की उत्कण्ठा बढ़ती जाती है। रामवास थल बिटप बिलोके। उर अनुराग रहत नहिं रोके। अब तो प्रभु शरीर सम स्याम यमुना जल देख लिया। बस विरह समुद्र में मग्न होने लगे। मग्न होने का भाव यह कि अपने को ही भूलने लगे। समुद्र में डूबनेवाला यदि जहाज पर चढ़ जाय तो बच जाता है। भरतजी भी समाज सहित विवेक जहाज का आश्रयण करके ही डूबने से बँचे। अपने को सँभालना ही विवेक है। यथा : प्रेम मगन मन जानि नृप करि बिवेक धरि धीर। इस भाँति भरतजी ने समाज सहित अपने : स्वरूप को सँभालकर धैर्य धारण किया।

जमुन तीर तेहि दिन करि बासू। भयेउ समय सम सबहि सुपासू ॥
रातहिं घाट घाट की तरनीं। आई अगनित जाइ न बरनी ॥१॥

अर्थ : यमुनाजी के किनारे उस दिन निवास किया। समयानुसार सबको सुभीता मिला। रात ही रात घाट की नौकाएँ अनगिनती आ गयीं। उनका वर्णन नहीं हो सकता।

व्याख्या : पहिले जो बात लक्षणा से कहा था उसे अभिधा से कह रहे हैं पहिले कहा था : बीच बास करि जमुनहि आए। सो यमुना में कोई नहीं आता। सो यमुना शब्द ने अपना मुख्य अर्थ छोड़ा और पवित्र शीतल गुणयुक्त तट का ग्रहण किया। भरतजी समाज सहित यमुना तट आये। परन्तु पार नहीं गये। वहीं ड़ेरा डाल दिया। सबके खाने पीने की व्यवस्था करनी थी। सो ऐसी परिस्थिति में जैसा सुभीता सम्भव है वैसा किया गया। इधर पार होने की भी व्यवस्था होने लगी। नियम यही है कि घाटों पर नाव लगी रहती हैं। जिसे आवश्यकता होती है वहीं से लेते हैं। सो रात ही रात सब घाटों से नावों को मँगाकर वहाँ बाँध दिया जिसमें सबेरे पार जाने में सुभीता हो। सेना को नदी के किनारे ठहराने में सुभीता होता है। नहीं तो जल की व्यवस्था में कठिनाई होती है।

प्रात पार भये एकहि खेवा। तोषे रामसखा की सेवा ॥
चले नहाइ नदिहि सिर नाई। साथ निषादनाथु दोउ भाई ॥२॥

अर्थ : सबेरे एक ही खेवा में पार हो गये। अतः राम सखा की सेवा से तुष्ट हुए। दोनों भाई साथ में निषादनाथ स्नान करके और नदी को प्रणाम करके चले।

व्याख्या : यहाँ चले क्रिया का कर्त्ता दोउ भाई है। शब्द स्पष्ट है। इससे यह कल्पना करना कि निषादनाथ दो भाई थे। केवल श्रोता के मनोरञ्जन के लिए है। क्योंकि ऐसा अर्थ करने से चले क्रिया का कर्त्ता ही लापता हो जाता है।

नाव को एक पार से दूसरे पार ले जाने को खेवा कहते हैं। सो रात ही रात नावों को जुटा लेने का यह फल हुआ कि सारा समाज एक खेवा में ही पार हो गया। यह व्यवस्था रामसखा निषादनाथ ने की। अतः उनकी इस सेवा पर

लोग सन्तुष्ट हुए। बड़ी हैरानी बची नहीं तो गङ्गा पार होने में चार दण्ड लगा था। यथा : दंण्ड चार मँह भे सब पारा। उतरि भरत पुनि सबहि सँभारा।

उस पार जाकर स्नान किया। प्रातः कृत्य का उस पार ही किया जाना अनुमित है। चलने के समय नदी को प्रणाम किया। आने के समय प्रणाम नहीं कहा। नदी क. दर्शन होते ही तो विरह सागर में मग्न होने लगे, प्रणाम की सुधि ही न रही। अतः चलते समय प्रणाम कहते हैं। निषादराज के अधिकृत वन प्रदेश में आगये। अतः शत्रुघ्नजी गुरु के साथ न रहकर भरतजी के साथ हैं। इन्तजाम बदल गया।

आगे मुनिबर बाहन आछें। राज समाजु जाइ सबु पाछें॥
तेहि पाछें दोउ बंधु पयादें। भूषन बसन बेष सुठि सादें॥३॥

अर्थ : आगे मुनिजी की श्रेष्ठ सवारी थी। पीछे सब राज समाज चल रहा था। उसके पीछे दोनों भाई अत्यन्त सादे भूषण वसन और वेष में पैदल जा रहे थे।

व्याख्या : कोई भय नहीं है। इसलिए मुनिजी की सवारी आगे आगे है। मुनिवर के साथ सारा समाज है। मुनिबर बाहन आछे कहने से सबका सवारी पर होना कहा।

सबके पीछे दोनों भाई पैदल जा रहे हैं इससे भी और लोगों का सवारी पर जाना ही सिद्ध होता है। तापस वेष नहीं है। तथापि अत्यन्त सादा शृङ्गार है। महाराज कुमार के भूषण वसन वेष का सादा होना उदासी का लक्षण है। यहाँ दोउ भाई शब्द का तात्पर्य बहुत स्पष्ट हो गया। साथ निषादनाथ दोउ भाई : पद में जो दोउ भाई शब्द आया है उसी को यहाँ दोउ बंधु पयादे शब्द से कह रहे हैं।

सेवक सुहृद सचिवसुत साथा। सुमिरत लखनु सीय रघुनाथा॥
जहँ जहँ राम बास बिश्रामा। तहँ तहँ करहिं सप्रेम प्रनामा॥४॥

अर्थ : सेवक मित्र और मन्त्री के पुत्र उनके साथ थे। लक्ष्मण और राम जानकी का स्मरण करते जाते थे। जहाँ जहाँ रामजी का निवास या विश्राम हुआ था वहाँ वहाँ प्रेम के साथ प्रणाम करते थे।

व्याख्या : भरत पयादेहि आये आजू। भयउ दुखित सुनि सकल समाजू। अतः आज भरतजी का समाज भरतजी के साथ है। सेवक तो साथ हैं ही सुहृद् अर्थात् बालसखा तथा निषादराज साथ हैं। मन्त्री के पुत्र भी साथ में हैं। राजकुमारों के साथ मन्त्री पुत्र रहते हैं। यथा : निरखि राम रुख सचिव सुत कारन कहेउ बुझाइ।

बीच में रामजी के निवासस्थल भी मिले। विश्रामस्थल भी मिले। श्रद्धातिशय से सभी जगह प्रणाम करते हैं। रामजी के क्षणिक संगर्ग से वे तीर्थ हो गये।

दो. मगबासी नर नारि सुनि, धाम काम तजि धाइ।
देखि सरूप सनेह सब, मुदित जनम फलु पाइ ॥२२१॥

अर्थ : रास्ते में रहनेवाले स्त्री पुरुष सुनकर घर के कामकाज छोड़कर दौड़ पड़ते थे और सब लोग उनके रूप और स्नेह को देखकर जन्म लेने का फल पाकर प्रसन्न हो जाते थे।

व्याख्या : रास्ते में के रहनेवाले प्रभु के आगमन का समाचार पाकर अपना काम छोड़कर दौड़े थे। यथा : सुनत ग्रामबासी नर नारी। धाये निज निज काज बिसारी। राम लखन सिय सुंदरताई। देखि करहिं निज भाग्य बड़ाई। वे ही भरतजी का आगमन सुनते हैं। अतः उन लोगों ने अति आतुरता से धाम भी छोड़ा काम भी छोड़ा। दौड़ पड़े।

स्वरूप और स्नेह को देखकर प्रसन्न हैं। स्वरूप से सौन्दर्य और स्नेह से स्वभाव अभिप्रेत है। दर्शन करके लोग कृतार्थ होते हैं। जिन्होंने रामजी को नहीं देखा था शोभा सुनकर पछताते थे। वे भी दौड़े। धाम को भी अरक्षित छोड़ा।

कहहिं सप्रेम एक एक पाँहीं। रामु[1] लखनु सखि होंहि कि नाँहीं ॥
बयबपु बरन रूपु सोइ आली। सीलु सनेहु सरिस सम चाली ॥१॥

अर्थ : एक दूसरे से प्रेम के साथ कहती हैं कि हे सखी ! ये राम लक्ष्मण हैं कि नहीं हैं। हे आली ! आयु शरीर रङ्ग और रूप तो वही हैं। शील और स्नेह भी सदृश है तथा चाल भी वैसी ही है।

व्याख्या : स्त्रियों का हाल कहते हैं कि उन सबों ने रामजी का दर्शन किया है। तीनों मूर्तियों के नाम से भी परिचित हैं। यथा : सकल कथा तिन सबहि सुनाई। बनहि चले पितु आयसु पाई। भरतजी रामजी के ही सदृश हैं। एकाएक कोई लख नहीं सकता और लक्ष्मण शत्रुसूदन एक रूप हैं। अतः भरत और शत्रुसूदन दोनों भाइयों को देखकर राम लक्ष्मण का भ्रम हुआ जनकपुर में भरत शत्रुघ्न को देखकर एक सखी की उक्ति है : सखि जस राम लखन कर जोटा। तैसइ भूप संग दुइ ढोटा। स्याम गौर सब अंग सोहाए। परन्तु कुछ सन्देह भी हो रहा है अतः आपस में एक दूसरे से पूछती हैं कि कदाचित् किसी को अधिक जानकारी हो।

अब संशय का कारण कहती हैं कि उम्र भी इन लोगों की उतनी ही है। शरीर भी वैसा ही है। रंग भी वही है। आकृति भी वैसी ही है। इस भाँति शरीर का मिलान करके स्वभाव का मिलान करती है कि शील और स्नेह भी वैसा ही है : जिस भाँति प्रत्येक पुरुष की आकृति और स्वर में भेद होता है उसी भाँति उनकी गति भी भिन्न प्रकार की होती है। इनकी गति भी वैसी ही है। मत्त मंजु कुंजर बर गामी हैं।

---

१. यहाँ सामान्य अलङ्कार है।

बेषु न सो सखि[1] सीय न संगा। आगे अनी चली चतुरंगा ॥
नहिं प्रसन्न मुख मानस खेदा। सखि संदेहु होइ एहि भेदा ॥२॥

अर्थ : हे सखि ! परन्तु वैसा वेष नहीं है और सीताजी भी साथ नहीं हैं। इनके आगे आगे चतुरंगिनी सेना चल रही है। मुख प्रसन्न नहीं है। इनके मन में खेद है इस भेद से सन्देह हो रहा है।

व्याख्या : जिस भाँति समता के तीन कारण हैं उसी भाँति भिन्नता के तीन कारण हैं। एक तो इनका तापस वेष नहीं है : राजसी वेष है। यथा : भूषन बसन बेष सुठि सादे। इनके साथ सीताजी भी नहीं हैं और तीसरा भेद यह बतलाती हैं कि उनके साथ तो कोई भी नहीं था। इनके साथ चतुरङ्गिणी सेना है। फिर भी ये तीनों भेद बहिरङ्ग हैं। अन्तरङ्ग नहीं हैं। इसलिए अन्तरङ्ग लक्षण कहती है कि इन्हें मानस खेद मालूम होता है। वे लोग तो प्रसन्न थे। यथा : आनद उमंग मन, यौवन उमंग तन शोभा को उमंग उमगत अंग अंग है।

तासु तरक तियगन मन मानी। कहहिं सकल तेहि सम न सयानी ॥
तेहि सराहि बानी फुरि पूजी। बोली मधुर बचन तिय दूजी ॥३॥

अर्थ : उसका तर्क स्त्रियों को ठीक जँचा। सब कहने लगीं कि तेरे समान कोई चतुर नहीं है। उसकी प्रशंसा करके और उसकी सत्योक्ति का सम्मान करके दूसरी स्त्री मधुर वाणी बोली।

व्याख्या : उपर्युक्त सखी की युक्ति बड़ी परिष्कृत थी। समता और भेद को उसने गिनकर अलग दिखला दिया। अतः सबके मन में उसकी बात बैठ गयी। सबकी सब उसको सराहने लगी कि तेरे ऐसी सयानी कोई नहीं है। तूने एक एक बात को निगरा दिया।

तत्पश्चात् दूसरी सखी जिसे कथाप्रसङ्ग का परिचय था उसकी प्रशंसा करके उसकी सत्योक्ति की पूजा की अर्थात् कहा कि यह एकदम ठीक कह रही है। यहाँ सम्मान पूर्वक अनुमोदन ही पूजा है और तब सबकी जानकारी के लिए मधुर शब्दों में कहने लगी।

कहि सप्रेम सब कथा प्रसंगू। जेहि बिधि राम राज रस भंगू ॥
भरतहि बहुरि सराहन लागी। सील सनेह सुभाय सुभागी ॥४॥

अर्थ : उसने प्रेम के सहित सब कथाप्रसङ्ग कहा कि इस इस भाँति रामजी के राज्याभिषेक में विघ्न हुआ। तत्पश्चात् वह सुभागी भरतजी और उनके शील सनेह की प्रशंसा करने लगी।

व्याख्या : यह आख्यान उसको प्रिय था। इसलिए उसने प्रेम से रामजी के

---

१. यहाँ विशेष अलङ्कार है।

राज्याभिषेक का प्रस्ताव तथा रानी कैकेयी का चक्रवर्तीजी से दो वरदान माँगना तदनुसार रामजी का वन गमन तथा सीता और लक्ष्मणजी का प्रेम से उनका अनुगमन करना वर्णन किया।

तत्पश्चात् भरतजी की प्रशंसा करने लगी कि जिसके लिए सब कुछ हुआ उसने इस अनर्थ का अनुमोदन नहीं किया और गुरु मन्त्री आदि के अनुरोध पर भी राज्य स्वीकार नहीं किया और भाई प्रेम से दुःखी होकर उनके पास जा रहे हैं। भाव यह कि ये दोनों भी उन्हीं राम लक्ष्मण के भाई हैं। इसीलिए वैसा ही रूप स्वभाव और चाल है। ये राम लक्ष्मण नहीं हैं।

दो. चलत पयादें खात फल, पिता दीन्ह तजि राजु।
जात मनावन रघुवरहिं, भरत सरिस को आजु ॥२२२॥

अर्थ : पैदल चलते हैं। फल खाते हैं। पिता ने राज्य दिया उसे छोड़कर रामजी को मनाने जाते हैं। आज कौन भरत के समान है ?

व्याख्या : शील का वर्णन करती है : चलत पयादे खात फल। स्नेह का वर्णन करती है : पिता दीन्ह तजि राज। जात मनावन रघुपतिहि। राज छोड़ने का प्रमाण यह है : चलत पयादे खात फल। तब राज्य कौन करेगा ? इसके उत्तर में कहती है : जात मनावन रघुपतिहि। अर्थात् रामजी लौट आवें और राज्य करें। इसलिए उन्हें मनाने जाते हैं। दूसरे के मनाने से उनके मानने की आशा नहीं है। पिता के दिये हुए राज्य को ठोकर मारनेवाला इस समय कौन है ? भाव यह कि चाहे पहिले कोई हुआ हो तो हम नहीं जानती। पर इस समय ऐसा कौन है : अर्थात् कोई नहीं है।

भायप भगति भरत आचरनू। कहत सुनत दुख दूषन हरनू ॥
जो किछु कहब थोर सखि सोई। राम बंधु अस काहें न होई ॥१॥

अर्थ : भरत का भाईपन भक्ति और आचरण कहते और सुनते दुःख और दूषण का नाश होता है। हे सखि ! जो कुछ कहा जाय सो थोड़ा है। रामजी के भाई ऐसे क्यों न हों !

व्याख्या : पहिले जो शील सनेह सुभाय कह आये हैं उसी को दूसरे शब्दों में भायप भगति और आचरण शब्द से कह रहे हैं। भायप शील के अन्तर्गत भक्ति स्नेह के अन्तर्गत है और आचरण स्वभाव के अन्तगत है। चलत पयादे खात फल : यह भरतजी की भक्ति है। पिता दीन्ह तजि राज : यह भाई पन है और जात मनावन रघुपतिहि : यह आचरण है। इन बातों के कहने सुनने से दुःख और उसका कारण दूषण दूर हो जाता है। अर्थात् भरतजी सबसे बड़े पुण्यश्लोक हैं। यथा : पुण्यसिलोक तात तर तोरे। अतः इनके ऐसा आज कोई नहीं है।

इनके विषय में जो कुछ कहा जायगा वही थोड़ा पड़ेगा। क्योंकि इनके गुण वैखरी के विषय नहीं हैं। इतना ही कहना यथेष्ट है कि ये रामजी के भाई हैं।

रामजी के गुण इनमें वर्तमान हैं। रामजी में कैसा भायप है ? कहते हैं : भरत प्रान प्रिय पावहिं राजू। बिधि सब बिधि मोहि सनमुख आजू। कैसा स्नेह है कि रामहि बंधु सोच दिन राती। अंडन्हि कमठ हृदउ जेहि भाँती। और कैसा आचरण है कि : राजिव लोचन राम चले तजि बाप को राज बटाऊ की नाँई।

हम सब सानुज भरतहि देखें। भइन्ह धन्य जुवती जन लेखें ॥
सुनि गुन देखि दसा पछिताहीं। कैकइ जननि जोग सुत नाहीं ॥२॥

अर्थ : हम लोग भाई के साथ भरतजी का दर्शन करके पुण्यवान् स्त्रियों की गिनती में आगयीं। भरतजी के गुण सुनकर और दशा देखकर सब पछताती हैं कि यह बेटा तो कैकेयी माता के योग्य नहीं है।

व्याख्या : भायप भगति भरत आचरनू। कहत सुनत दुःख दूषन हरनू। और हम लोगों ने तो इनका दर्शन पाया है। अतः हम लोगों का भी लेखा पुण्यवान् स्त्रियों में हो गया। कहँ हम लोक बेद बिधि हीनी। लघु तिय कुल करतूति मलीनी। पुण्यवान् स्त्रियाँ कह सकती हैं कि हमने अमुक पुण्य किया है। हम लोग अपना कौन पुण्य बतला सकती थीं। पर अब हम भी कह सकती हैं कि हमने भरत शत्रुघ्न का दर्शन किया है। अतः हम लोग भी धन्य युवतियों के लेखे में आगयीं।

भरतजी का गुण सुना : पिता दीन्ह तजि राज। जात मनावन रघुपतिहि। और दशा देखी : चलत देह धरि जनु अनुरागू। तो सब पछताने लगीं कि रामजी को वन नाहक हो गया। जब भरतजी राज्य चाहते ही नहीं तो उनके लिए राज्य और रामजी के लिए वन क्यों माँगा ? अतः कैकेयी बड़ी कठोर हृदय है। भरत ऐसा कोमल हृदय बेटे को ऐसा माता का मिलना योग्य कार्य न हुआ। अथवा भरत रामजी के भाई होने योग्य तो हैं : कैकेयी के बेटे होने योग्य नहीं हैं।

कोउ कह दूषन रानिहि नाहिन। बिधि सबु कीन्ह हमहि जो दाहिन ॥
कहँ हम लोक बेद बिधि हीनी। लघु तिय कुल करतूति मलीनी ॥३॥

अर्थ : किसी ने कहा है कि इसमें रानी का दोष नहीं है। यह सब ब्रह्मा ने किया जो कि हमारे दाहिने : अनुकूल हैं। कहाँ हम लोग लोक और वेद विधि से हीन स्त्रियों में लघु हैं। कुल की करतूत भी मलिन है।

व्याख्या : एक कहती है हम लोगों को विधाता अनुकूल हो गये थे। घर में बैठे इनका दर्शन दिलाना चाहते थे। अतः उन्होंने इस प्रकार उलट फेर कर दिया। शुद्ध हृदय से जो बात निकलती है वह बिना जाने लक्ष्य वेध कर देती है। जो बात भरद्वाज मुनि कहते हैं : बिधि करतब पर किछु न बसाई। वही बात ये स्त्रियाँ बिना जाने कह रही हैं।

ब्रह्मदेव के अनुकूल होने का कारण देती हैं कि यह अघटित घटना कैसे हुई ? हम लोग तो लोक वेद दोनों में हीन हैं। यथा : लोक बेद सब भाँतिहि नीचा। जासु छाँह छुइ लेइअ सींचा। स्त्रियों में भी हम अधम हैं। यथा : उत्तम मध्यम नीच लघु।

चार प्रकार कहा गया है। लघु शब्द अधम के अर्थ में प्रयुक्त है। कुल करतूति मलीनी। यथा : पाप करत निसि बासर जाहीं। नहिं कटि पट नहिं पेट अघाहीं।

बसहिं कुदेस कुगाँव कुवामा। कहँ यह दरसु पुन्य परिनामा॥
अस अनंदु अचरजु प्रतिग्रामा। जनु मरुभूमि कलपतरु जामा॥४॥

अर्थ : हम कुदेश और कुगाँव में बसती हैं और बुरी स्त्री हैं और कहाँ दर्शन पुण्यों का फल है। गाँव गाँव में ऐसा आश्चय और आनन्द हो रहा है जैसे मरुदेश में कल्पवृक्ष उग आया हो।

व्याख्या : यहाँ कुदेश से अभिप्राय वन्य देश से है और कुगाँव से भीलों के ग्राम से तात्पर्य है और हम लोग स्वयं बुरी स्त्री हैं। भाव यह कि पथभ्रष्ट, कुलभ्रष्ट, करणीभ्रष्ट, देशभ्रष्ट और धर्मभ्रष्ट। अधम ते अधम अधम अति नारी। तिन्ह महुँ मैं मतिमंद अघारी। हमें यह दर्शन महादुर्लभ है। यह घटना तो ब्रह्मदेव के हमारे दाहिने होने से हुई है।

अनहोनी बात होने से आश्चर्य और परम मङ्गलदायक होने से आनन्द। गोस्वामीजी उदाहरण देते हैं कि जैसे मरुभूमि में कल्पवृक्ष उग जावे। मरुभूमि में कोई वृक्ष नहीं होता। जहाँ तहाँ आक : मदार के पेड़ दिखायी पड़ते हैं। वहाँ आम का होना आश्चर्य और आनन्द की बात है कल्पवृक्ष के लिए कहना ही क्या है। यहाँ अच्छे लोग दिखायी ही नहीं पड़ते। भरतजी ऐसे महापुरुषों के आने की कौन आशा थी ?

दो. भरत दरसु देखत खुलेउ, मगु लोगन कर भागु।
जनु सिंघलबासिन्ह भयेउ, बिधि बस सुलभ प्रयागु॥२२३॥

अर्थ : भरत दर्शन से रास्ते के लोगों का तो भाग्य खुल गया। जैसे सिंहलदेश : सीलौन के रहनेवालों को भाग्यवश प्रयागराज सुलभ हो गया हो। भारत वर्ष से सिंहल द्वीप जहाज पर जाना होता है।

व्याख्या : सिंहलद्वीप के निवासी लङ्का के पड़ोसी हैं। उनसे प्रयागराज से क्या मतलब ? यदि ऐसी घटना घट जाय कि विधिवश प्रयागराज को ही वहाँ जाना पड़े तो उनके आश्चर्य और आनन्द का क्या ठिकाना है। श्रीगोस्वामीजी ने सत्सङ्ग को जङ्गम प्रयागराज माना है। उसका भी लङ्का के पड़ोस में जाना दुर्घट है। अतः कवि का कथन है कि मगवासी लोगों का भाग्य खुल गया। जिस भरतजी के दर्शन का भरद्वाजजी : तेहि फल कर फल दरस तुम्हारा। सहित प्रयाग सुभाग हमारा : कहते हैं। वह दर्शन रास्ते के निवासियों को अनायास सुलभ हो गया। अतः उनका अहोभाग्य है।

निज गुन सहित राम गुन गाथा। सुनत जाहिं सुमिरत रघुनाथा॥
तीरथ मुनि आश्रम सुरधामा। निरखि निमज्जहिं करहिं प्रनामा॥१॥

अर्थ : अपने गुणों के सहित रामजी के गुणग्राम सुनते और रघुनाथजी को स्मरण करते भरतजी चले जा रहे हैं। तीर्थ मुनि आश्रम और देव मन्दिर देखकर स्नान करते हैं और प्रणाम करते हैं।

व्याख्या : इस समय लोगों में भरतजी की चरचा चल रही है। परन्तु भरत चरित्र का आश्रम रामचरित है। रामचरित से पृथक् करके भरत चरित नहीं वर्णन किया जा सकता। अतः भरतजी रास्ते जाते हुए लोगों के मुख से अपने गुणग्राम के साथ ही साथ रामगुणग्राम सुनते चले जा रहे हैं। भरतजी रामगुणग्राम के सुनने के रसिक हैं। अतः सुनत जाँहि क्रिया का कर्म रामगुणगाथा को रक्खा।

रास्ते में तीर्थ मिलते हैं। उन्हीं को पकड़कर मुनि के आश्रम हैं और उन आश्रमों में देव मन्दिर हैं। यह देखकर भरतजी तीर्थ में स्नान करते हैं। आश्रम और मन्दिरों को प्रणाम करते हैं। यथा : कतहुँ निमज्जन कतहुँ प्रनामा। तीर्थ प्रायेण पुण्य जलाशय को ही कहते हैं।

मन ही मन माँगहिं बर एहू। सीय राम पद पदुम सनेहू ॥
मिलहिं किरात कोल बनबासी। वैषानस बटु जती उदासी ॥२॥

अर्थ : मन ही मन यह वरदान माँगते हैं कि राम जानकी के चरणों में भक्ति हो। कोल किरात वन के रहनेवाले वानप्रस्थ, ब्रह्मचारी, संन्यासी और उदासी मिलते हैं।

व्याख्या : भरतजी तीर्थ आश्रम और देव मन्दिर को जड़ पदार्थ नहीं मानते। इनके भी अधिष्ठात्री देवता होते हैं। उनकी प्रतिष्ठा होती है। अतः उनको प्रणाम करके मन ही मन वरदान माँगते हैं। तीर्थराज से स्पष्ट शब्दों में वरदान माँगा था। सो स्पष्ट शब्दों में उत्तर मिला। अतः दिखावा बचाने के लिए मन ही मन वरदान माँगा। वरदान भी वही है जो तीर्थराज से माँगा था। यथा : सीता राम चरन रति मोरे। अनुदिन बढ़उ अनुग्रह तोरे।

वन में जा रहे हैं। अतः रास्ते में किरात कोल वन के रहनेवाले मिलते हैं। वानप्रस्थ मिलते हैं। ब्रह्मचारी तथा संन्यासी मिलते हैं। उदासीन गृहस्थ भी मिलते हैं। भरतजी सबको प्रणाम करते हैं। भक्त : आश्वचाण्डालगोखरम्। कुत्ता, चाण्डाल, गौ, गधा सबमें परमेश्वर को देखते हुए सबको प्रणाम करते हैं।

करि प्रनामु पूछहिं जेहि तेही। केहि बन लखनु रामु वैदेही ॥
ते प्रभु समाचार सब कहहीं। भरतहि देखि जनम फलु लहहीं ॥३॥

अर्थ : प्रणाम करके जिस किसी से पूछते हैं कि लक्ष्मण और राम जानकी किस वन में रहते हैं। वे लोग सरकार का सब समाचार कहते हैं और भरतजी को देखकर जन्म का फल प्राप्त करते हैं।

व्याख्या : जिस ज्ञान का आश्रय करके गोस्वामीजी ने जड़ चेतन जितने जीव हैं सबको प्रणाम किया। उसी ज्ञान का आश्रय करके भरतजी सबको प्रणाम

करते हैं। जी में खटका लगा है : राम लखन सिय सुनि मम नाँऊ। उठि जनि अनत जाहि तजि ठाऊँ। अतः सबसे वन का नाम पूछते हैं। जिसमें लक्ष्मण राम जानकी निवास करते हैं। जैसे मुहल्ले और नगरों के नाम होते हैं उसी भाँति वनों के नाम भी होते हैं।

तब वे लोग प्रभु का समाचार बतलाते हैं। भरतजी तो केवल वन का नाम पूछते हैं। पर वे भरतजी को आर्त देखकर सब समाचार जो उन्हें मालूम हैं बतलाते हैं और भरतजी के दर्शन से उनका जन्म सुफल हो जाता है। भरद्वाजजी ने कहा ही है : तेहि फल कर फल दरस तुम्हारा। सहित प्रयाग सुभाग हमारा।

जे जन कहहिं कुसल हम देखे। ते प्रिय राम लखन सम लेखे ॥
एहि बिधि बूझत सबहि सुबानी। सुनत राम बनबास कहानी ॥४॥

अर्थ : जो लोग कहते हैं कि हमने देखा है वे कुशल से हैं। उन्हें राम लक्ष्मण के समान प्रिय माना। इस प्रकार सबसे सुन्दर वाणी द्वारा पूछते और रामजी के वनवास की कहानी सुनते चले जाते हैं।

व्याख्या : प्रिय का कुशल कहनेवाला भी परम प्रिय होता है। यथा : जे कहिहैं आए राम लखन घर करि मुनि मख रखवारी। ते तुलसी प्रिय मोहि लागि है ज्यों सुभाय सुतचारी। शुभ समाचार देनेवाला प्रिय माना जाता है। उसे पुरस्कार दिया जाता है। अतः कुशल कहनेवाले ऐसे प्रिय लगे जैसे राम लक्ष्मण प्रिय थे।

सबसे पूछने का अभिप्राय यही कि यदि सब लोग एक ही वन का नाम लें तो निश्चय हो जाय कि मेरा नाम सुनकर वन छोड़कर अन्यत्र नहीं गये। दूसरी बात यह है कि भरतजी रामचरित के रसिक हैं। सबसे पूछने से कुछ न कुछ नयी बात मालूम ही होती है।

दो. तेहि वासर बसि प्रातहीं, चले सुमिरि रघुनाथ।
राम दरस की लालसा, भरत सरिस सब साथ ॥२२४॥

अर्थ : उस दिन रहकर सवेरे ही रघुनाथजी को स्मरण करके चले। भरतजी ही के समान सब साथ में रहनेवालों को रामजी के दर्शन की लालसा है।

व्याख्या : वन में ही डेरा डाला। सवेरा होते ही चल पड़े। पता चल गया कि सरकार का निवासस्थान सन्निकट है। इसलिए रामजी के दर्शन की लालसा बढ़ी हुई है। जैसी भरत को लालसा है वैसी ही सब साथवालों को है। अतः सबको बड़ी जल्दी है। कवि ने भी शीघ्रता की है। कथा संक्षेप में कह रहे हैं। दो शब्द में उस रात का ठहरना कहा। स्मरण में भी संक्षेप कर रहे हैं। पहिले लिखते थे : सुमिरत लखन सीय रघुनाथा। यहाँ कहते हैं : सुमिरि रघुनाथ।

जहाँ नदी किनारे नहीं ठहरते वहाँ स्नानादिक का वर्णन नहीं करते। क्योंकि अवगाह स्नान ही वस्तुतः स्नान है। यथा : बीच बास करि जमुनहि आये और

यहाँ से चलते समय कहते हैं : चले नहाइ नदिहि सिर नाई। लक्ष्मण सीता सहित रघुनाथजी का स्मरण करके प्रस्थान करते थे। आज शीघ्रता में रघुनाथ का ही स्मरण कहा।

मंगल सगुन होहिं सब काहू। फरकहिं सुखद बिलोचन बाहू ॥
भरतहि सहित समाज उछाहू। मिलिहहिं रामु मिटहि दुख दाहू ॥१॥

अर्थ : मङ्गल शकुन सब किसी को हो रहा है। सुख देनेवाले नेत्र और भुजाएँ फड़कने लगीं। भरतजी को समाज के सहित उत्साह है कि रामजी मिलेंगे और दुःख का दाह मिटेगा।

व्याख्या : शुभाशुभ सूचक कुछ चिह्न हैं जिन्हें भगवती प्रकृति शुभाशुभ घटनाओं के पहिले प्रकट कर देती हैं। इसके लिए शकुन शास्त्र ही पृथक् बना हुआ है जिसमें उन चिह्न विशेष के फल दिये हुए हैं। यह बराबर घटता है। श्री गोस्वामीजी इनका बार बार उल्लेख करते हैं। यहाँ पर कहते हैं कि मङ्गल सूचक शकुन सबको हो रहा है। सबकी आँखें और भुजाएँ फड़क रही हैं। स्त्रियों के वाम अङ्ग का फड़कना शुभ है और पुरुषों के दक्षिण अङ्ग का फड़कना शुभ है। यथा : भरत नयन भुज दच्छिन फरकत बारहिं बार। जानि सगुन मन हरष अति लागे करन बिचार। तथा : जब अति भयेउ बिरह उरदाहू। फरकेउ बाम नयन अरु बाहू। यहाँ नर नारि दोनों हैं। अतः दक्षिण वाम न कहकर सुखद बिलोचन बाहू कहा।

शकुन विचार करके भरतजी को समाज सहित उत्साह है। क्योंकि प्रिय मिलन ही शुभ शकुन का फल है। यथा : सगुन प्रतीति भेंट प्रिय केरी। अतः रामजी के मिलन का निश्चय हो रहा है। फलतः वियोगजन्य दुःखदाह के मिटाने की भी दृढ़ आशा है। सो सबके हृदय में उत्साह है। मुनिजी ने कहा भी है : सब दुख मिटिहि रामपद पेखी।

करत मनोरथ जस जिय जाकें। जाहिं सनेह सुरा सब छाकें ॥
सिथिल अंग पग मग डगि डोलहिं। बिह्वल बचन प्रेम बस बोलहिं ॥२॥

अर्थ : जिसके मन में जैसा मनोरथ है वैसा ही मनोराज करते हुए प्रेममयी मदिरा में उन्मत्त हुए सब चले जा रहे हैं। सब अङ्ग शिथिल हैं। पैर भी शिथिल हैं। रास्ते में डगमगाते हुए चल रहे हैं और प्रेमवश विह्वल वचन बोल रहे हैं।

व्याख्या : यहाँ पर सबके प्रेम का वर्णन करते हुए कवि उनकी मद्यपों से उपमा दे रहे हैं। जब मनुष्य सुरापान करके मदोन्मत्त हो जाता है तब अपने मन की बात जोर जोर से कहने लगता है। उसके अङ्ग शिथिल हो जाते हैं। रास्ते में ठीक ठीक पैर नहीं पड़ते। वही दशा यहाँ हो रही है। सबके सब प्रेममयी मदिरा से उन्मत्त हो रहे हैं। अतः रामजी के दर्शन पाने पर क्या क्या करेंगे। वे सब बातें मन में ही न रखकर मुख से स्पष्ट बोलते जा रहे हैं। प्रिय के मिलने का निश्चय

होने पर मनोरथ उठते हैं। पर उसे व्यक्त कोई नहीं करता। अति सप्रेम गा बिसरि दुराऊ। यहाँ मुख से बोलने लगे। शरीर और वाणी की भी वही दशा हो गयी जो शराबियों की होती है। पैर ओखा पड़ता है। हकला हकलाकर बोलते हैं।

राम सखा तेहि समय देखावा। सैल सिरोमनि सहज सुहावा ॥
जासु समीप सरित पथ तीरा। सीय समेत बसहिं दोउ बीरा ॥३॥

अर्थ : उस समय रामसखा ने उस स्वभावतः सुन्दर पर्वत शिरोमणि को दिखलाया। जिसके समीप पयस्विनी नदी के तीर पर सीताजी के सहित दोनों वीर बसते थे।

व्याख्या : प्रयागराज से ही सब लोग चित्रकूट की ओर चित्त लगाये चले जा रहे थे। यथा : चले चित्रकूटहि चित दीन्हे। सो चित्रकूट : कामदगिरि दिखायी पड़ने लगा। रामसखा पहिचानता था और उसे पता लग गया था कि सरकार का चित्रकूट के समीप पयस्विनी नदी के तट पर डेरा है। अतः उसने दिखलाया कि वही चित्रकूट दिखला रहा है। चित्रकूट मेरु का शिखर है। वायु देवने मेरु से पृथक् करके यहाँ डाल दिया है। इसलिए सहज सुहावन है और सरकार के निवास से शैलशिरोमणि हो गया। यथा : सैलहिमालय आदिक जेते। चित्रकूट जस गावहिं तेते।

देखि करहिं सब दंड प्रनामा। कहि जय जानकि जीवन रामा ॥
प्रेम मगन अस राजसमाजू। जिमि फिरि अवध चले रघुराजू ॥४॥

अर्थ : देखकर सब लोग जानकीजीवन रामचन्द्र की जय कहकर दण्डवत् प्रणाम करने लगे। राजसमाज ऐसा प्रेम में मग्न हुआ मानो रामजी अयोध्या लौटकर चल रहे हों।

व्याख्या : चित्रकूट का महा माहात्म्य है। : शैल शृङ्ग भवभंग हेतु लखु दलन कपट पाखंड दंभ दलु। जहँ जनमें जग जनक जगपति बिधि हरिहरि प्रपंच छलु। त्रिदेव में से किसी से सम्बद्ध होने से ही वह भूमि महातीर्थ हो जाती है और चित्रकूट तो तीनों देव की जन्मभूमि है। यहाँ रुद्र भगवान् दुर्वासा होकर, विष्णु भगवान् दत्तात्रेय होकर, ब्रह्मदेव चन्द्रमा होकर अवतीर्ण हुए हैं और तीनों ब्रह्मज्ञानी ऋषि हुए। उत्पत्ति स्थिति संहार के प्रपञ्च से सम्बन्ध न रक्खा : अतः त्रिदेव की जन्मभूमि होने से इस महातीर्थ का दर्शन करके जनकजी ने रथ परित्याग किया। यथा : गिरिवर दीख जनक नृप जबहीं। करि प्रनाम रथ त्यागेउ तबहीं। अतः सब लोग दण्ड प्रणाम कर रहे हैं। इस समय जानकीजीवन राम का निवास स्थान हो रहा हैं। अतः जानकीजीवन रामजी की जय कहकर दण्डवत् कहते हैं।

दो. भरत प्रेमु तेहि समय जस, तस कहि सकहिं न सेषु।
कबिहि अगम जिमि ब्रह्म सुख, अह मम मलिन जनेषु ॥२२५॥

अर्थ : उस समय भरत का जैसा प्रेम था वैसा शेषजी भी नहीं कह सकते। कवि को उसका कहना वैसा ही अगम है जैसा अहङ्कार और ममता से मलिन पुरुष को ब्रह्मसुख अगम होता है।

व्याख्या : सारे समाज की दशा कहकर तब भरतजी की दशा कहते हैं कि उनकी दशा तो शेष भी नहीं कह सकते। शेष बड़े प्रेमी हैं, सरकार का साथ नहीं छोड़ते, बड़े वाग्मी हैं, दो सहस्र जिह्वा है। उन्हें अगम नहीं है। पर कह नहीं सकते। गोस्वामीजी कहते हैं कि मुझे अगम है। क्योंकि मुझे अनुभव नहीं है। जैसे ब्रह्मसुख का अनुभव अहन्ता ममता से मलिन हृदय पुरुष को नहीं हो सकता। यथा : मैं तैं मोर मूढ़ता त्यागू। महामोह निसि सोवत जागू। तथा : मुकुर मलिन अरु नयन बिहीना। राम रूप देखहिं किमि दीना। अतः मैं कैसे कह सकता हूँ। जब न द्वैत भासे और न निद्रा हो। उस सुख को ब्रह्मानन्द कहते हैं। अहन्ता ममता से मलिन पुरुष को या तो द्वैत भासेगा या निद्रा होगी। अतः उस ब्रह्मसुख का अनुभव हो ही नहीं सकता।

सकल सनेह सिथिल रघुबर कें। गए कोस दुइ दिनकर ढरकें ॥
जलु थलु देखि बसे निसि बीते। कीन्ह गवनु रघुनाथ पिरीते ॥१॥

अर्थ : सब लोग रामजी के स्नेह में शिथिल हो गये। दो कोस चले। सूर्य अस्ताचल की ओर अभिमुख हुए। जलाशय देखकर डेरा डाल दिया। सवेरा होते ही रामजी के प्रेमी चल पड़े।

व्याख्या : सब लोग ऐसे स्नेह सुरा से छके थे कि रास्ता चलना असाध्य व्यापार हो पड़ा। शरीर शिथिल है। चलने में डगमगाते हैं परन्तु दर्शन की लालसा से चलना बन्द भी नहीं करते। दिन भर चलते रहे। पर दो ही कोस चल पाये। तब तक सूर्यनारायण अस्ताचल के सन्निकट पहुँच गये।

तब होश आया कि कहीं ठहरना चाहिए। सो जलाशय देखकर ठहर गये। पर रात बीतना कठिन हो गया। रात तीन पहर में ही खतम हो जाती है। चौथे पहर की दिन में गिनती है। सो एक पहर रात रहते ही चल पड़े। ये सबके सब रामजी के प्रेमी हैं। कब भेंट होगी : इस लालसा के कारण बड़ी शीघ्रता है।

लक्ष्मण क्रोध प्रसङ्ग

उहाँ रामु रजनी अवसेषा। जागें सीय सपन अस देखा ॥
सहित समाज भरत जनु आए। नाथ बियोग ताप तन ताए ॥२॥

अर्थ : वहाँ रामजी रात के अन्तिम भाग में जागे। सीताजी ने स्वप्न देखा कि मानो सरकार के वियोग से सन्तप्त भरतजी समाज सहित आये हैं।

व्याख्या : कवि सदा भगवान् के साथ रहते हैं। अतः रामजी के यहाँ का जो कुछ हाल कहना है उस प्रकरण में इहाँ शब्द का प्रयोग करते हैं और दूसरे स्थान

के लिए वहाँ कहते हैं। परन्तु भक्त का प्रसङ्ग आने पर कवि रामजी का साथ छोड़कर भक्त के पास चले जाते हैं। तब उस स्थान को इहाँ और रामजी के पास को उहाँ कहते हैं। इस नियम का निर्वाह सारे ग्रन्थ में कवि ने किया है। अतः इस समय कवि भरतजी के साथ हैं। रामजी के यहाँ की कथा लिखने में उहाँ का प्रयोग करते हैं।

वहाँ अवधवासियों के प्रयाण करने के पहिले ही सरकार जाग गये। उसी समय अर्थात् रात्रि अवशेष में सीताजी ने स्वप्न देखा। जिस स्वप्न का घटना से सम्बन्ध होता है कवि उस स्वप्न का भी उल्लेख करते हैं। सीताजी ने वह सपना रामजी को सुनाया। वे समझती हैं कि यह स्वप्न निरर्थक नहीं है। क्योंकि जागते समय इसे देखा है। सपना देखने के बाद नींद लग जाने से स्वप्न निरर्थक हो जाता है।

और रामजी से कहने लगीं : इतने शब्दों का अध्याहार करना होगा। सपना का हाल कह रही हैं। अतः कहती हैं कि सहित समाज मानो भरतजी आये। अपना प्रातिभासिक सत्य है। व्यावहारिक सत्य की अपेक्षा मिथ्या होता है। अतः मानो शब्द का प्रयोग किया और कहती हैं कि भरतजी समाज के सहित सरकार के वियोग से सन्तप्त हैं। नाथ शब्द का भाव यह कि भरतजी ने राज्य नहीं स्वीकार किया नाथ आप ही को माना। ताप तन ताये का भाव यह कि वियोगाग्नि सहन न हो सकी। मनाने आये हैं।

सकल मलिन मन दीन दुखारी। देखी सासु आन अनुहारी॥
सुनि सिय सपन भरे जल लोचन। भए सोचबस सोच बिमोचन॥२॥

अर्थ : सब मन मलिन हैं। दीन और दुःखी हो रहे हैं और देखा कि सास लोग जैसी थीं वैसी नहीं हैं।

व्याख्या : अब समाज की दशा कहती हैं सब उदास हैं। किसी में प्रसन्नता नहीं बल्कि ऐसे दुःखी हैं कि दीन हो रहे हैं। भाव यह कि मानसिक दुःख से दुःखी हैं। मन की म्लानता से दुःख और दुःख की अधिकता से दीनता है। सास वही हैं पर उनका स्वरूप दूसरा हो रहा है। स्वप्न का कुछ भाग सत्य और कुछ का फल असत्य होता है। यथा : त्रिजटा का स्वप्न : बानर लंका जारी। जातुधान सेना सब मारी। इतना भाग सत्य हुआ : खर आरूढ़ नगन दससीसा। मुंडित सिर खंडित भुज बीसा। इत्यादि का फल असत्य हुआ। इसी भाँति यहाँ भी भरतजी का समाज सहित दुःखी होकर आना सत्य हुआ और : सास आन अनुहारी का फल असत्य हुआ।

सीताजी के स्वप्न के फल का विचार करके आँखों में आँसू भर आया। सरकार सोच विमोचन हैं। फिर भी सोचवश हो गये : ऐसा कहने से सरकार की लीला कही। यथा : जथा अनेक बेष धरि नृत्य करै नट कोइ। सोइ सोइ

भाव देखावे आपुन होइ न सोइ। असि रघुपति लीला उरगारी। दनुज बिमोहनि जन सुखकारी।

लखन सपन यह नीक न होई। कठिन कुचाह सुनाइहि कोई॥
अस कहि बंधु समेत नहाने। पूजि पुरारि साधु सनमाने॥४॥

अर्थ : लक्ष्मण! यह स्वप्न अच्छा नहीं है। कोई बहुत बुरा समाचार सुनावेगा। ऐसा कहकर भाई के साथ स्नान किया और शङ्कर की पूजा करके साधुओं का सत्कार किया।

व्याख्या : जिस समय भगवती ने स्वप्न कहा उस समय लक्ष्मणजी भी पाद वन्दना के लिए आगये थे। अतः सीताजी से कुछ न कहकर लक्ष्मणजी से कहते हैं कि इस स्वप्न का फल अच्छा नहीं है। कोई बड़ा अनिष्ट समाचार सुनावेगा। क्योंकि भरतजी के आने की तो सम्भावना नहीं है। कोई समाचार ही लेकर आवेगा और वह समाचार ऐसा होगा जिसके कारण भरत भी दुःखी हैं। समाज भी दुःखी है और माताओं के स्वरूप में भी अन्तर पड़ा है।

कुछ सपने ऐसे होते हैं जिनका फल होते देखा जाता है। स्वप्नाध्यायी में इसका विस्तार है कि कौन कौन सपने सत्य होते हैं और कौन निष्फल होते हैं तथा किस सपने का फल कितने विलम्ब से होता है। सीताजी का सपना ऐसा था जिसका फल सद्यः होनेवाला था : ऐसा ही सपना त्रिजटा का था।

स्वप्न दोष निवारण के लिए प्रातः स्नान, शिव पूजन, दानादि का विधान है। अतः मर्यादा पुरुषोत्तम ने भाई के साथ स्नान किया। शिव पूजन किया तथा मुनियों का सम्मान किया।

छं. सनमानि सुर मुनि बंदि बैठे उतर दिसि देखत भये।
नभ धूरि खग मृग भूरि भागे सकल प्रभु आश्रम गये॥
तुलसी उठे अवलोकि कारनु काह चित सचकित रहे।
सब समाचार किरात कोलन्हि आइ तेहि अवसर कहे॥

अर्थ : देवता तथा ऋषियों का सम्मान करके बैठे तो उत्तर की ओर देखने लगे। आकाश में धूलि है और चिड़ियाएँ तथा मृग भागे हुए प्रभु के आश्रम में पहुँचे। तुलसीदास कहते हैं कि यह देखकर उठे कि क्या कारण है और चकित रह गये। उस समय कोल किरातों ने आकर सब समाचार सुनाया।

व्याख्या : सरकार स्वप्न की यथासाध्य शान्ति करके बैठे। उत्तर की ओर विशेषता दिखायी पड़ी। अतः उस ओर देखने लगे। सेना के आगमन का चिह्न दृष्टिगोचर होने लगा। धूरि पूरि नभ मण्डल रहा। उत्तर से दक्षिण की ओर सेना आ रही है। अतः खग मृग भागकर आश्रम की ओर चले आ रहे हैं। अयोध्या वहाँ से उत्तर ही पड़ती है। विशेष दृष्टि प्रसार के लिए उठे। चकित होकर देखते हैं कि धूलि

उठने और खग मृग के भागने का कारण क्या है। किरात कोलों ने कहा था : हम सब भाँति करब सेवकाई। करि केहरि अहि बाघ बराई। सो सेना का आगमन देखकर उन सबों ने पता लगाया कि किसकी सेना है और आकर पहिले ही सरकार को समाचार दिया।

दो. सुनत सुमंगल बैन, मन प्रमोद तन पुलक भर।
सरद सरोरुह नैन, तुलसी भरे सनेह जल ॥२२६॥

अर्थ : सुन्दर मङ्गल के वचन सुनते ही मन में आनन्द हुआ। शरीर में पुलक हुआ। शरत्काल के कमल से आँखों में तुलसीदास कहते हैं कि प्रेम का जल भर आया।

व्याख्या : भरतजी के आगमन का समाचार सुमङ्गल है। तत्सूचक वचन भी सुमङ्गल है। भरतजी पर सरकार का इतना प्रेम है कि उनके आगमन के समाचार सुनते ही मन में हर्ष हो उठा। शरीर में पुलक हो गया। पुलक होना और नेत्रों में जल भर आना ये अनुभाव है। जो शोक और हर्ष दोनों में होते हैं। यथा : सकल सखी गिरिजा गिरि मैना। पुलक सरीर भरे जल नैना। नारदहूँ यह भेद न जाना। दसा एक समुझब बिलगाना। सरकार ने कुछ कहा नहीं। अतः यह पता न लग सका कि यह सजल नयन और पुलक तन किस विभाव का अनुभाव है।

बहुरि सोच बस भे सियरवनू। कारन कवन भरत आगवनू ॥
एक आइ अस कहा बहोरी। सेन संग चतुरंग न थोरी ॥१॥

अर्थ : फिर जानकी नाथ सोच में पड़ गये कि भरत के आने का कारण क्या है ? फिर एक ने आकर कहा कि उनके साथ थोड़ी चतुरङ्गिनी सेना नहीं है।

व्याख्या : पहिले सीताजी का सपना सुनकर सोचवश हुए थे। यथा : भये सोचबश सोच विमोचन। अब भरतजी का आगमन सुनकर रामजी फिर सोचवश हुए। सोच यह कि भरत के आने का कारण नहीं मालूम होता। पिताजी ने राज्य के लिए कह ही दिया था। मैंने भी उसका बार बार अनुमोदन किया। यथा : भरत प्रान प्रिय पावहिं राजू। बिधि सब बिधि मोहि सनमुख आजू। और हमारे तथा : कहब संदेस भरत के आए। नीति न तजिअ राजपद पाये। फिर पिताजी के आदेश के प्रतिकूल यहाँ आने का कारण क्या ?

पहिले किरात ने आकर केवल भरतजी के आगमन का समाचार दिया। जैसा सुना था वैसा ही उसने खबर दिया। जब उन सबों ने आँखों देखा कि बड़ी भारी सेना है। यह तो अङ्गरक्षक सेना नहीं है। आक्रमणोपयोगी सेना है। तब दूसरी खबर भेजने की आवश्यकता हुई। क्योंकि सेना का चलना युद्ध की सूचना देता है और यहाँ रामजी के सिवा दूसरा है कौन ? अतः दूसरे ने यह खबर भी दे डाली।

सो सुनि रामहि भा अति सोचू। इत पितु बच इत बंधु सकोचू ॥
भरत सुभाउ समुझि मन माँहीं। प्रभु चित हित थिति पावत नाँहीं ॥२॥

अर्थ : यह सुनकर रामजी को अत्यन्त सोच हुआ। इधर तो पिता का वचन और इधर भाई का सङ्कोच। भरतजी स्वभाव को मन में समझकर प्रभु का चित्त हित स्थिति को प्राप्त नहीं होता।

व्याख्या : दूसरे समाचार को सुनते ही सरकार समझ गये कि भरत मेरे अभिषेक की तैयारी किये हुए आ रहे हैं। अतः यह सुनते ही सोच की मात्रा अधिक बढ़ गयी। पिता की आज्ञा और भाई का सङ्कोच इन दोनों में कोई कम प्यारा नहीं है। अतः दोनों पक्षों के लिए इत शब्द का प्रयोग हुआ है। यदि तारतम्य होता तो जिधर अधिक प्रवृत्ति होती उधर के लिए इत और जिधर कम प्रवृत्ति होती उधर के लिए उत आता। ग्रन्थभर में इत उत का इसी भाव में प्रयोग हुआ है। इस समय परिस्थिति ऐसी आगयी कि या तो पिता का वचन छोड़ें या भाई का सङ्कोच छोड़ें। तीसरा मार्ग नहीं है। अतः सरकार को बड़ा सोच हुआ।

रामजी भरत के स्वभाव को सोचते हैं कि भरत को मेरे चरणों में प्रेम है। यथा : राम चरन पंकज मन जासू। लुबुध मधुप इव तजै न पासू। बहुत सम्भव है कि भरतजी राज्य स्वीकार न करें। तब क्या होगा ? मैं पिता का वचन छोड़ नहीं सकता। भरत राज्य स्वीकार नहीं करता। ऐसी विकट स्थिति में तीसरा मार्ग कौन है जिससे सामञ्जस्य बैठ जाय। ऐसा कोई मार्ग दिखायी नहीं पड़ता।

समाधान तब भा यह जाने। भरत कहे महु साधु सयाने ॥
लखनु लखेउ प्रभु हृदय खभारू। कहत समय सम नीति बिचारू ॥३॥

अर्थ : तब यह जानकर समाधान हुआ कि भरत मेरी आज्ञा में हैं और सयाने साधु हैं। लक्ष्मणजी ने लखा कि प्रभु के हृदय में सोच है। समयानुकूल नीति का विचार कहा।

व्याख्या : इस विचार से सामञ्जस्य बैठ गया कि भरत मेरी आज्ञा माननेवाले हैं। यथा : भोरेहुँ भरत न पेलिहहिं मनसहुँ राम रजाय। तथा : भरत राम आयसु अनुसारी। इसके अतिरिक्त भरत सयाने साधु हैं। मुझे पुत्रधर्म से विमुख होने पर कभी हठ न करेंगे। स्वयं कष्ट सह जावेंगे पर किसी के धर्म पर आघात न होने देगें।

लक्ष्मणजी सदा प्रभु की चित्तवृत्ति को लखा करते हैं। सो इन्होंने लखा कि सरकार कहते कुछ नहीं पर इनके हृदय में सोच है। सीताजी ने बुरा सपना देखा है और उसका फल सरकार ने कह दिया कि कोई बड़ा अनिष्ट का समाचार सुनावेगा। यह किरात आकर चतुङ्गिनी सेना के साथ भरतजी के आगमन का समाचार दे रहा है। यह समाचार अति अनिष्टकर तभी हो सकता है जब भरत के मन में पाप आवे। अतः यह अवसर युद्ध के लिए सन्नद्ध हो जाने का है। यह विचार का समय

नहीं है कि भरत धर्म की मर्यादा कैसे मिटावेंगे और मुझसे प्रेम करना कैसे छोड़ देगें। अतः समयानुकूल नीतिका विचार कहने लगे।

बिनु पूछे कछु कहउँ गोसाईं। सेवकु समयँ न ढीठ ढिठाई॥
तुम्ह सर्बग्य सिरोमनि स्वामी। आपुनि समुझि कहउँ अनुगामी॥४॥

अर्थ : हे स्वामी ! बिना पूछे ही कुछ कहता हूँ। सेवक समय पर ढिठाई करने से ढीठ नहीं होता। आप सर्वज्ञों में शिरोमणि हैं। मैं सेवक हूँ। अपनी समझ कहता हूँ।

व्याख्या : लक्ष्मणजी ने कहा कि बिना पूछे कुछ कहना ढिठाई है। यह ख्यापन करना है कि मैं बड़ा समझदार हूँ। पर मेरी ढिठाई समय : मौके की है। अतः इस ढिठाई से मैं ढीठ नहीं समझा जा सकता। अथवा यह सेवक का समय है अतः मेरी ढिठाई ढिठाई नहीं है। सेना सिर पर आगयी। उसका सामना करना मुझ सेवक का काम है। प्रभु सर्वज्ञों में शिरोमणि है। मैं अल्पज्ञ जीव हूँ। आप का ही समझना उपादेय है पर मैं अपनी समझ कहता हूँ। भरतजी के आगमन के दो ही कारण हो सकते हैं। एक तो जैसा सरकार सोचते हैं। दूसरा वह जो कि मैं सोचता हूँ।

दो. नाथ सुहृद सुठि सरल चित, सील सनेह निधान।
सब पर प्रीति प्रतीति जियँ, जानिअ आपु समान॥२२७॥

अर्थ : नाथ ! आप सुहृद अत्यन्त सरलचित्त और शील स्नेह के निधान हैं। सबके ऊपर आपकी प्रीति है। सब पर विश्वास है और सबको अपने समान जानते हैं।

व्याख्या : लक्ष्मणजी कहते हैं कि जो मैं सोचता हूँ उसे सरकार सोच नहीं सकते। क्योंकि निष्कारण भला चाहने का आपका स्वभाव है। मन वाणी और कर्म एक रूप है। महात्मा हैं। शील और स्नेह के निधान हैं। आप दुःशील निर्दय स्वार्थी कपटियों की बातें समझ नहीं सकते। क्योंकि सब पर आपका प्रेम है और सब पर विश्वास है। अतः प्रीति प्रतीतिवाली बात ही सोचते हैं। यह सोचना भी ठीक ही है। क्योंकि जो जैसा होता है वैसा ही संसार को देखता है।

बिषई जीव पाइ प्रभुताई। मूढ़ मोह बस होहिं जनाई॥
भरत नीति रत साधु सुजाना। प्रभु पद प्रेमु सकल जगु जाना॥१॥

अर्थ : विषयी जीव जब प्रभुता पाते हैं तो वे मूढ़ अज्ञान के वश अपने को जानते हैं। भरतजी नीतिरत हैं। सुजान साधु हैं। उनको सरकार की चरणों में प्रीति है। यह सारा संसार जानता है।

व्याख्या : तीन प्रकार के जीव संसार में होते हैं। १. सयाने सिद्ध २. साधक और ३. विषयी। यथा : बिषयी साधक सिद्ध सयाने। त्रिविध जीव जग बेद बखाने।

उनमें से सिद्ध और साधक तो सम्पत्ति पाकर अधिक नम्र हो जाते हैं। यथा : फल भारन नमि बिटप सब रहे भूमि नियराय। पर उपकारी पुरुष जिमि नवहिं सुसंपति पाइ। परन्तु विषयी जीव की बात ही दूसरी है। उन्हें सम्पत्ति न रहे, प्रभुता न रहे तभी उनकी चित्तवृत्ति शान्त रहती है। बड़े सीधे और बड़े अच्छे बने रहते हैं। पर जहाँ उनको प्रभुता मिली तहाँ वे होश के बाहर हो जाते हैं। अपने को जनाने की धुन उन्हें सवार हो जाती है। मूढ़ लोग ही विषयी होते हैं। प्रभुता पाने से उनकी मूढ़ता अधिक बढ़ जाती है। तब वे अपनी प्रभुता के ख्यापन के लिए अनर्थ करने लगते हैं। यह साधारण नियम है।

नीतिरत साधु प्रकृति हरिभक्त के प्रभुता पाने से तो संसार को सुख होता है। यथा : बिस्व सुखद जिमि इंदु तमारी। वे सूर्य चन्द्र की भाँति सम्पूर्ण विश्व के सुखदाता हो जाते हैं। परन्तु यहाँ तो अद्भुत बात हुई। भरतजी नीतिरत भी हैं और साधुओं में सुजान हैं। उनकी प्रसिद्धि है कि सरकार के चरणों के अनुरागी हैं।

तेऊ आज राज पदु पाई। चले धरम मरजाद मेटाई॥
कुटिल कुबंधु कुअवसरु ताकी। जानि राम बनबास एकाकी॥२॥

अर्थ : वे भी आज राज्यपद पाकर धर्म की मर्यादा को मिटा चले। जो कुटिल कुबन्धु होते हैं वे कुअवसर देखनेवाले होते हैं। उन्होंने रामजी को वनवास में अकेला जानकर।

व्याख्या : अतः यह ठीक है : श्रीमद बक्र न कीन्ह केहि प्रभुता बधिर न काहि। देखिये जिन भरतजी में आज के पहिले ऐसे उत्कृष्ट गुण थे आज जब उन्हें राजपद मिल गया तो धर्म की मर्यादा मिटाकर चल पड़े। धर्म में कर्म ज्ञान उपासना तीनों का अन्तर्भाव है। सो भरतजी ने तीनों मिटाया : कर्मपथ से विचलित हुए। यथा : भरत न राजनीति उर आनी। तब कलंक अब जीवन हानी। ज्ञान भी नहीं रह गया : सकल सुरासुर जुरहिं जुझारा। रामहिं समर न जीतनि हारा। उपासना भी गयी : जानहि सानुज रामहि मारी। करौं अकंटक राज सुखारी।

भरतजी की इस करणी को देखकर पता चलता है कि अपने को असमर्थ पाकर अपने रूप को छिपाये रहे। राज पाने पर अपने यथार्थ रूप को प्रकट कर दिया। भरत कुबन्धु हैं। सुबन्धु तो कुअवसर में सहाय होते हैं। यथा : होंहि कुठायँ सुबंधु सहाये। ये कुअवसर के ताक में रहे। वह कुअवसर अब मिला। अयोध्या में तो सारी प्रजा आपके साथ है। वहाँ आपका क्या कर सकते थे ? यहाँ देखा कि वन में अकेले हैं। यद्यपि आप अकेले नहीं हैं। पर वे जानते हैं कि अकेले हैं। सरकार सुठि सरल हैं। भरत कुबन्धु हैं। सरकार सील सनेह निधान हैं। भरत कुअवसर ताकी हैं। सरकार को तो : सब पर प्रीति प्रतीति जि है और भरत अकंटक राज करने आये हैं।

करि कुमंत्रु मन साजि समाजू। आए करइ अकंटक राजू॥
कोटि प्रकार कलपि कुटिलाई। आए दल बटोरि दोउ भाई॥३॥

अर्थ : मन में बुरी सलाह ठानकर और समाज सजाकर अकण्टक राज्य करने आये हैं। करोड़ों प्रकार की कुटिलता की कल्पना करके दोनों भाई सेना इकट्ठी करके आये हैं।

व्याख्या : अतः आप अपने समान भरत को न समझिये। इन्होंने अपने मन में कुमन्त्र विचारा है। इसलिए साज समाज छोड़कर अकण्टक राज करने चले हैं। माता से जो कसर रह गयी उसे पूरा करने चले हैं। उसने १४ वर्ष के लिए सरकारी वनवास माँगा। पर चौदह वर्ष के बाद तो क्षत्रिय अपना धर्म सँभाले गा ही। राज्य के लिए युद्ध होगा ही। ऐसा निश्चय करके भरत आपको अकण्टक समझते हैं। अतः कण्टकोद्धार के लिए सेना इकट्ठी करके आये हैं।

इन्होंने करोड़ों प्रकार से कुटिलता की कल्पना की है। अपने में कुटिलता है। इसलिए आप ऐसे महापुरुष में उन्हें करोड़ों प्रकार की कुटिलता दिखायी पड़ रही है। शत्रुघ्न भी षड्यन्त्र में सम्मिलित हैं। अतः दोनों भाई सेना लिये आ रहे हैं।

जौ जिय होति न कपट कुचाली। केहि सोहात रथ बाजि गजाली॥
भरतहि दोसु देइ को जाएँ। जग बौराइ राजपद पाएँ॥४॥

अर्थ : यदि इनके जी में कपट कुचाल न होती तो रथ घोड़े और हाथियों की पंक्ति किसे अच्छी लगती। व्यर्थ ही भरत को दोष कौन दे। राजपद पाने पर सभी उन्मत्त हो जाते हैं।

व्याख्या : यदि कहिये कि भरतजी सरकार से मिलने आये हैं। उनके मन में कपट कुचाल नहीं है। उनके मन में सरकार के वनवास होने का दुःख है। अतः राजा होने पर भी भाई की समवेदना से मिलने आ रहे हैं तो यह बात भी नहीं है। यदि दुःखी होते तो उन्हें यह ठाट बाट अच्छा न लगता। उन्हें ठाट बाट इतना प्रिय है कि केवल भेंट करने के लिए चतुरङ्गिनी सेना साथ लिये हुए है। यही इस बात का यथेष्ट प्रमाण है कि उन्हें सरकार के वनवास का दुःख नहीं बल्कि खुशी है।

अपनी बात की पुष्टि करते हुए लक्ष्मणजी कहते हैं कि यही संसार का नियम है कि जो राजपद पा जावे वही पागल हो जाय। अतः हमारा भरतजी को दोष देना व्यर्थ है जो दोष सभी से हो जाता हो उसके लिए किसी एक को दोषी नहीं कहा जा सकता।

दो. ससि गुर तिय गामी नहुषु, चढेउ भूमिसुर जान।
लोक बेद तें बिमुख भा, अधम को बेन समान॥२२८॥

अर्थ : चन्द्रमा ने गुरु स्त्री से गमन किया। नहुष ब्राह्मणों के द्वारा ले चलने-

वाले यान पर चढ़े। राजा बेन सा अधम तो कोई नहीं हुआ। क्योंकि वह लोक और वेद दोनों से विमुख हुआ।

व्याख्या : उदाहरण देते हैं। चन्द्रमा ने राज्य पाकर : औषधियों और ब्राह्मणों के पति होकर महापातक किया। गुरुतल्पग हुए। क्या संसार अन्य सुन्दरियों से रिक्त हो गया था। नहुष राजा इन्द्रत्व पाकर ऐसे यान पर चढ़ने की धृष्टता की जिसके ढोने में ब्रह्मर्षि लोग लगाये गये थे। क्या संसार में उसे दूसरी सवारी न 'मिली। ब्रह्मर्षियों के यान पर चढ़ने में क्या कोई विशेष सुख है। राजा वेणु लोक वेद दोनों से गया। न सांसारिक सुख ही किया न धर्म ही कमाया। उसने परमेश्वर से कोई सम्बन्ध न रक्खा। न प्रेमी ही हुआ न वैरी ही हुआ। उसकी आज्ञा थी : न यष्टव्यं न होतव्यं न दातव्यं कदाचन। कोई यज्ञ न करे, हवन न करे और न कोई दान करे। यज्ञ और होम में खाद्य पदार्थ के हवन करने से लोगों की हानि होती है। दान करने से आलसियों की संख्या बढ़ती है। अतः यह कर्म कोई कर न पावे। इसलिए कहते हैं कि बेन सा नीच कौन होगा ?

सहस बाहु सुरनाथ त्रिसंकू। केहि न राजमद दीन्ह कलंकू॥
भरत कीन्ह यह उचित उपाऊ। रिपु रिन रंच न राखब काऊ॥१॥

अर्थ : कार्तवीर्यार्जुन इन्द्र तथा त्रिशंकु राजा इनमें से किसे राजमद ने कलङ्क नहीं दिया ? भरत ने यह उचित उपाय किया कि शत्रु और ऋण का शेष भी नहीं रखना चाहिए।

व्याख्या : सहस्रबाहु कार्त्तवीर्यार्जुन ने ऋषि की गाय चाही। उन्हें रत्नभुक् होने का मद था और वह जमदग्नि ऋषि की गाय रत्न थी। ऋषिजी ने देने से इनकार कर दिया। इस कलह में ऋषिजी मारे गये। उनके अपराध से इक्कीस बार पृथ्वी निःक्षत्र की गयी। यह कलङ्क राजा सहस्रबाहु को राजमद के कारण लगा। नहीं तो राजा सहस्रबाहु ऐसे योगी थे कि चौदहों भुवन में चौदह शरीर धारण करके एक ही समय में अपना राज्याभिषेक कराया था। इन्द्र रत्नभुक् होने के अभिमान से स्त्रीरत्न अहल्या के जार हुए और घोर दुर्दशा को प्राप्त हुए। आज तक वह कलंक न गया। सहस्र नेत्र के रूप में उनके शरीर में विद्यमान हैं। त्रिशंकु राजा ने सशरीर स्वर्ग जाने की धुन में गुरु वसिष्ठजी का अपमान किया। ऋषि पुत्र के शाप से चाण्डाल हो गये। महर्षि विश्वामित्र की कृपा से ऊर्ध्वगति भी हुई तो आजतक स्वर्ग में उलटे लटके हैं। सो राजमद से सबको कलङ्क लगता ही है।

भरतजी तो राजमद से पागल नहीं हुए। जैसा कि ये लोग हो गये थे। ये तो उचित उपाय कर रहे हैं। नीति शास्त्र कहता है : ऋणशेषोऽग्निशेषश्च व्याधिशेषस्तथैव च। विवर्धते पुनर्यस्मात् तस्माच्छेषं न कारयेत्। ऋण और शत्रु का शेष भी न रहने देना चाहिए। क्योंकि ये समय पाकर बढ़ जाते हैं। यदि कोई कहे कि हम लोग तो भाई भाई हैं शत्रु कैसे हुए ? तो एक भोग्य वस्तु के निमित्त सहोदरों में बड़ा भारी बैर खड़ा हो जाता है। यथा : एकामिषप्रभवमेव सहोदराणामुज्जृम्भते

जगति वैरमिति प्रसिद्धम् । भग्त की दृष्टि से आप वैरी हैं। अतः यह प्रयत्न भरतजी का कण्टकोद्धार के लिए है।

एक कीन्ह नहिं भरत भलाई। निदरे रामु जानि असहाई ॥
समुझि परिहि सो आजु बिसेखी। समर सरोष राम मुखु पेखी ॥२॥

अर्थ : भरत ने एक बात अच्छी नहीं की जो रामजी को असहाय जानकर निरादर किया है। सो आज वह भी विशेष रूप से समझ में आ जायगा जब युद्ध में क्रुद्ध रघुनाथजी का मुख देखेंगे।

व्याख्या : आज वे असहाय हैं। इसलिए रामजी को असहाय जानकर निरादर करने चले हैं। जब तक रामजी ससहाय थे तब तक तो सेवक ही बने फिरते थे। यथा : प्रभु पद प्रेम सकल जग जाना। उन्होंने समझ लिया है कि रामजी असहाय हैं। पर हैं नहीं। धनुष हाथ में रहते असहाय कैसे हैं ?

भरतजी ने आज तक रामजी का क्रुद्ध मुख देखा ही नहीं है। क्योंकि संग्राम में कभी साथ नहीं रहे। मैंने सुबाहु मारीच के युद्ध में कालानल के सदृश मुख रघुनाथजी का देखा है। वह मुख आज भरतजी को संग्राम भूमि में दिखायी पड़ेगा। तब उन्हें विशेष रूप से समझ पड़ेगा कि रामजी का अनादर करके बहुत ही बुरा किया। यथा : राम बिरोध कुसल चह सठ हठ बस अति अग्य।

एतना कहत नीति रस भूला। रन रस बिटपु पुलक मिस फूला ॥
प्रभु पद बंदि सीस रज राखी। बोले सत्य सहज बल भाषी ॥३॥

अर्थ : इतना कहते हुए नीति रस भूल गया और युद्ध रस रूपी वृक्ष पुलक के व्याज से फूल उठा। प्रभु के चरणों में नमस्कार करके रजको सिर पर चढ़ाया और सच्चे सहज बल की घोषणा करते हुए बोले।

व्याख्या : उनके रहते सरकार को युद्ध करना पड़ेगा। इस बात को वीर लक्ष्मण सहन नहीं कर सकते। युद्ध में सरकार के मुख के देखने में भरत असमर्थ होंगे। इस बात के मुख से निकालते ही नीतिरस विस्मरण हो गया। क्योंकि रणरस का बड़े वेग से आविर्भाव हुआ। लक्ष्मणजी को पुलक हो गया : मानो रणरस रूपी वृक्ष के लिए बहार आगयी। लक्ष्मणजी मानो स्वयं रणरस हैं और पुलक होना उनका पुष्पित हो उठना है।

अब फल लग रहा है। युद्ध के लिए आज्ञा माँगेंगे। इसलिए वन्दना करते हैं। भाव यह कि सरकार को धनुष उठाना न पड़ेगा। सरकारी चरण रज के प्रभाव से लक्ष्मण सब करेगा। इसलिए चरणरज सिर पर धारण करते हैं। युद्ध में दर्प करना वीर की शोभा है। अतः दर्प करने में भी लक्ष्मणजी अपने बल को बढ़ाकर नहीं कह रहे हैं। अपने स्वाभाविक बल का सत्य स्वरूप वर्णन करते हैं।

अनुचित नाथ न मानब मोरा। भरत हमहिं उपचरा न थोरा ॥
कहँ लगि सहिअ रहिअ मन मारे। नाथ साथ धनु हाथ हमारे ॥४॥

अर्थ : हे नाथ ! मेरे आचरण को अनुचित न मानियेगा। भरत ने हम लोगों की कम पूजा नहीं की। कहाँ तक सहें और मन मारे रहें। नाथ मेरे साथ हैं और धनुष मेरे हाथ में है।

व्याख्या : लक्ष्मणजी को डर है कि उनके इस आचरण से सरकार अप्रसन्न होंगे। कहेंगे कि तुम अनुचित करते हो। अतः व्यङ्ग से कह रहे हैं कि भरत ने हम लोगों की थोड़ी पूजा नहीं की। माता छोड़ाया। पिता छोड़ाया। कुटुम्ब छोड़ाया। राज्य छोड़ाया। अब हम लोग वन वन मारे फिरते हैं। इतने पर भी सन्तोष नहीं। अब सेना लेकर प्राण लेने आये हैं।

सहने की भी तो कोई सीमा होती है। बिना एक बिन्दु रक्त गिराये हम लोगों ने राज्य छोड़ दिया। घर कुटुम्ब सर्वस्व छोड़ दिया। वन में दुःसह कष्ट बिना एक शब्द मुख से निकाले भोग रहे हैं। तिस पर हमें सेना बल दिखाने आये हैं। तो अब बतलाइये कहाँ तक सहें। यदि कोई कहे कि अनाथ असहाय के लिए अन्य उपाय क्या है ? तो इस पर कहते हैं कि मैं असहाय भी नहीं हूँ। हमारा सहाय धनुष है। मैं अनाथ भी नहीं हूँ। मेरे नाथ मेरे साथ हैं।

दो. छत्र जाति रघुकुल जनमु, राम अनुग जग जान।
लातहुँ मारे चढति सिर, नीच को धूरि समान ॥२२९॥

अर्थ : एक तो क्षत्रिय जाति दूसरे रघुकुल में जन्म। संसार जानता है कि मैं राम का अनुगामी हूँ। धूल भी लात मारने से सिर चढ़ती है। उसके बराबर तो नीच कोई नहीं है।

व्याख्या : धर्म्याद्धि युद्धाच्छ्रेयोऽन्यत् क्षत्रियस्य न विद्यते। क्षत्रिय के लिए धर्म युद्ध से अधिक कल्याणकर कुछ भी नहीं। युद्ध हमारे लिए प्रेय भी है श्रेय भी है। दूसरे रघुकुल में जन्म है। जिस कुल में कोई संग्राम में पीठ नहीं दिखाता। तीसरे मैं सरकार का अनुगामी हूँ। ऐसे अवसर पर अनुगामी ही अग्रगामी होता है। अतः मैं चुप नहीं रह सकता। धूल तो महा नीच है। लात खाते हो खाते धूल हुई है। पर उसे कोई हाथ से मारे तो सिर चढ़ जाती है। भरत ने लात तो पहिले मारा। अब हाथ मारने आये हैं। अतः मैं उनके सिर चढ़ जाऊँगा। आगे बढ़कर भरत से लोहा लूँगा।

उठि करजोरि रजायसु माँगा। मनहु बीर रस सोवत जागा ॥
बाँधि जटा सिर कसि कटि भाथा। साजि सरासनु सायकु हाथा ॥१॥

अर्थ : उठकर हाथ जोड़ आज्ञा माँगी। मानो वीर रस सोते से जग गया। सिर में जटा बाँधी कमर में तरकस कसा और धनुष को चढ़ाकर हाथ में वाण ले लिया।

व्याख्या : इतना कहकर लक्ष्मणजी उठ खड़े हुए। बिना आज्ञा युद्ध नहीं कर सकते थे। इसलिए रजायसु माँगा। मानो लक्ष्मणजी में वीर रस सो रहा था वह जाग उठा। प्रसुप्तावस्था से उदारावस्था को प्राप्त हुआ। सरकार चुप हैं। सब कुछ सुन रहे हैं। लक्ष्मणजी ने फिर भी युद्ध की तैयारी आरम्भ कर दी। आगे चलकर सेना का सामना करना है।

जटा बाँधा जिसमें युद्ध करते समय आँख के सामने न आ जावे। तरकस कमर में बाँधा जिसमें युद्ध करते समय ईप्सित वाण के निकाल लेने में सुभीता हो। धनुष पर प्रत्यञ्चा चढ़ाना हो धनुष को साजना है। शत्रु का सामना होने पर प्रहार में देर न हो इसलिए एक वाण तरकस से निकालकर हाथ में ले लिया।

आजु राम सेवक जसु लेऊँ। भरतहि समर सिखावन देऊँ ॥
राम निरादर कर फलु पाई। सोवहुँ समर सेज दोउ भाई ॥२॥

अर्थ : आज रामजी के सेवक होने का यश लूँगा। भरत को लड़ना सिखाऊँगा। रामजी के निरादर का फल पाकर दोनों भाई रणशय्या पर सोवें।

व्याख्या : लक्ष्मणजी यशोधन हैं। बड़ा भारी लाभ रामसेवक रूपी यश है। आज सेवा धर्म की परीक्षा का समय आगया है। आज भारत से युद्ध करना ही सरकारी सेवा है। सो उसमें यश लूँगा। भरत को बतलाऊँगा कि इस प्रकार से लड़ना होता है। तब संसार जानेगा कि तीनों भाइयों में रामजी का सेवक तो लक्ष्मण हैं।

निदरे राम जानि असहाई। सो उस निरादर का फल पावें। राम निरादर का फल यही है कि रणशय्या पर दोनों भाई सोवें। भावार्थ यह कि मेरे हाथ उन लोगों का वध होगा। वे राम निरादर का फल पावेंगे। मैं तो निमित्त मात्र होकर यश का भागी हूँगा। राम का निरादर करनेवाला तो उसी समय गत प्राण हो जाता है जिस समय कि निरादर करता है। उसके मारने में रक्खा क्या है। आये दल बटोरि दोउ भाई। अतः सोवहु समर सेज दोउ भाई। भाव यह कि भरत लक्ष्मण में भाई का नाता है। मुझसे कोई नाता नहीं। मानिय सबहि राम के नाते। जब रामजी के वैरी हैं तो हमारे वैरी हैं।

आइ बना भल सकल समाजू। प्रगट करउँ रिस पाछिल आजू ॥
जिमि करि निकर दलइ मृगराजू। लेइ लपेटि लवा जिमि बाजू ॥३॥

अर्थ : सब समाज आज भले ही जुट गया है पिछले क्रोध को आज प्रकट करूँगा। जैसे सिंह गजगणों का संहार करता है और बाज जैसे लवा को लपेट लेता है।

व्याख्या : शत्रु का पूरा समाज का समाज हाथ लग गया। नहीं तो यह पता लगाना कठिन होता कि शत्रु समाज में कौन कौन लोग हैं। बस इतने ही के संहार से शत्रु मात्र का संहार हो जायगा। वरदान से बँधे हुए हम क्रोध को दबाये

बैठे हैं। रिसि उर मारि रंक जिमि राजा। बिपिन बसै तापस के साजा। सो गति हमारी हो रही है। लक्ष्मण के हृदय में आरम्भ से ही चोट है। यथा : समाचार जब लछिमन पाये। ब्याकुल बिलखि बदन उठि धाये। तथा : पुनि कछु लखन कही कटु बानी प्रभु बरजे बड़ अनुचित जानी : अतः क्रोध को प्रकट न कर सके।

आज तो बात दूसरी हो गयी। भाग्य से स्वयं भरत सेना साजकर चढ़ आये हैं। अब तो पिछले क्रोध के प्रकट करने का समय आगया। अब तो युद्ध करने में वरदान बाधक न होगा। आज सबको मारूँगा। समशीलवीर भरत शत्रुघ्न तथा सेनानायकादि हैं। उनका ऐसा विदारण करूँगा जैसे सिंह अकेला गजयूथ का विदारण करता है। रही सेना वह बिचारी क्या लड़ेगी? लाख लवा क्या एक बाज से युद्ध कर सकते हैं। बाज के चपेट से लवा कहीं दिखायी नहीं पड़ते। यथा : बाज झपट जिमि लवा लुकाने।

तैसेहिं भरतहिं सेन समेता। सानुज निदरि निपातउँ खेता॥
जौं सहाय कर संकरु आई। तौ मारउँ रन राम दोहाई॥४॥

अर्थ : वैसे ही भरत को सेना समेत और छोटे भाई के समेत रणक्षेत्र में निरादर करके गिराऊँगा। यदि शिवजी भी सहायता के लिए आवेंगे तो भी राम दोहाई रण में बिना मारे न छोड़ूंगा।

व्याख्या : सानुज भरत के लिए लक्ष्मणजी : जिमिकरि निकर दलइ मृगराजू और सेना के मर्दन के विषय में : लेइ लपेटि लावा जिमि बाजू। उपमा देते हैं। उन्होंने रामजी का निरादर किया है। उसका फल समर भूमि में निरादर करके दूँगा। अर्थात् खेलाकर मारूँगा।

शङ्कर भगवान् संहारकर्ता है। अतः इनका सामना कोई नहीं कर सकता। तो यदि शङ्करजी भी भरतजी की सहायता करें तो भी राम दोहाई में रण में भरत को मार ही डालूँगा। दूसरे स्थान में भी लक्ष्मणजी ने इन्हीं शब्दों में शङ्करजी को स्मरण किया है। यथा : जो सत संकर करैं सहाई। तदपि हतौं रन राम दोहाई। अतः यह शङ्का उठनी स्वाभाविक है कि रामजी के अत्यन्त प्रिय शङ्करजी पर लक्ष्मणजी इस भाँति आक्षेप क्यों करते हैं? इन स्थलों में शङ्करजी का कोई प्रसङ्ग भी नहीं था। फिर व्यर्थ उन्हें अपमानित क्यों करते हैं?

बात यह है कि इन स्थलों में शङ्कर सम्बन्धी आक्षेप सूचक शब्दों में वक्ता का तात्पर्य नहीं है। तात्पर्य तो इस बात पर जोर देने में है कि मैं शत्रु का वध अवश्य करूँगा। क्योंकि शङ्कर भगवान् का इन स्थलों में कोई प्रसङ्ग नहीं है। अतः तत्सम्बन्धी तात्पर्य नहीं है। न निन्दा निन्द्यं निन्दितुं प्रवृत्ता किन्तु विधेयं स्तोतुम्। निन्दा का निन्द्य के निन्दा में तात्पर्य नहीं है। किन्तु विधेय की स्तुति में तात्पर्य है। शास्त्रों में जहाँ तुलसीमाला और ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण की महिमा है वहीं भस्म रुद्राक्ष की निन्दा है और जहाँ भस्म रुद्राक्ष धारण की महिमा कही गई है वहाँ तुलसीमाला और ऊर्ध्वपुण्ड्र की निन्दा की गयी है।

ऐसे वाक्यों में मोह उन्हीं को होता है जो तात्पर्य निर्णय की विधि से अनभिज्ञ हैं। जहाँ ऊर्ध्वपुण्ड्र तुलसीमाला धारण की महिमा कही जा रही है वहाँ भस्म रुद्राक्ष धारण का कोई प्रसङ्ग नहीं है। अतः वह निन्दा तुलसीमाला और ऊर्ध्वपुण्ड्र की स्तुति के लिए है भस्म रुद्राक्ष की निन्दा के लिए नहीं। इसी भाँति जहाँ भस्म रुद्राक्ष की महिमा गायी गयी है वहाँ तुलसीमाला और ऊर्ध्वपुण्ड्र की निन्दा भस्म रुद्राक्ष की स्तुति के लिए है तुलसी ऊर्ध्वपुण्ड्र की निन्दा के लिए नहीं। इस बात को न समझकर लोग व्यर्थ बड़ा भारी विवाद उपस्थित करते हैं।

अतः यहाँ शिवजी पर आक्षेप केवल शत्रु वध के निश्चय पर जोर देने के लिए है न कि शिवजी की निन्दा के लिए। आज भी लोग कह बैठते हैं कि ब्रह्मा आवें तो भी मैं नहीं मानूँगा उनका तात्पर्य न मानने पर रहता है। ब्रह्मदेव की आज्ञा भङ्ग पर नहीं।

दो. अति सरोष माखे लखनु, लखि सुनि सपथ प्रवान।
समय लोक सब लोकपति, चाहत भभरि भगान ॥२३०॥

अर्थ : लक्ष्मणजी को अत्यन्त क्रोध में भरा हुआ देखकर और उनके प्रमाण शपथ को सुनकर सब लोग डर गये और लोकपतियों ने घबराकर भागना चाहा।

व्याख्या : क्रोध के स्पष्ट चिन्ह देखकर जाना कि लक्ष्मणजी अतिक्रुद्ध है। यथा : माखे लखन कुटिल भइ भौहें। रदपट फरकत नैन रिसौहें। और प्रमाण शपथ सुनकर समझा कि ये कर दिखावेंगे। यह तो प्रलयवाला क्रोध है। अतः लोकवासी लोग सभय हो गये और लोकपति लोक छोड़कर भागना चाहते हैं। जैसे भूकम्प में लोग घर छोड़कर भागते हैं। जनकपुर में भी : लखन सकोप बचन जे बोले। डगमगानि महि दिग्गज डोले। इस समय तो शपथ लिया है। अतः लोकपति भागना चाहते हैं। लक्ष्मणजी जगत् के आधार साक्षात् शेष है। अतः उनके कोप से जगत् व्याकुल हो उठता है। जाग्रत के विभु के क्रोध के सामने कौन ठहरेगा ?

जगु भय मगन गगन भइ बानी। लखन बाहुबलु बिपुल बखानी ॥
तात प्रताप प्रभाउ तुम्हारा। को कहि सकइ को जाननिहारा ॥१॥

अर्थ : जगत् तो भय में मग्न था। इधर आकाश वाणी हुई। लक्ष्मणजी के बाहुबल की विपुलता का बखान किया। हे तात ! तुम्हारे प्रताप और प्रभाव को कौन कह सकता है और कौन जाननेवाला है।

व्याख्या : यहाँ जग शब्द से जगत् की अधिष्ठातृ देवता अभिप्रेत है। नहीं तो जड़ से हर्ष और भय बन नहीं सकता। आकाश से देवता बोले। देवता दिखायी नहीं पड़ रहे हैं। शब्द सुनायी पड़ रहा है। इसलिए कहते हैं कि आकाशवाणी हुई। वीरों के शान्त करने का यही उपाय है कि उनके उत्कर्ष का वर्णन किया जाय। अपकर्ष कहना तो तेजोवध है और शत्रु पक्ष के उत्कर्ष कहने से क्रोध ही बढ़ता है। इसलिए लक्ष्मणजी के बाहुबल का वर्णन देवताओं ने किया कि आप कन्दुक :

गेंद की भाँति ब्राह्माण्ड के उठाने में समर्थ हैं। कच्चे घड़े की भाँति उसे तोड़ सकते हैं। मन्दर और मेरु को मूली की भाँति तोड़ सकते हैं इत्यादि।

बाहुबल कहने के बाद प्रताप कहते हैं। प्रताप बल से पृथक् होकर काम करता है। यथा : समुझि रामप्रताप कपि कोपा। सभा माँझ पन करि पद रोपा। प्रताप और प्रभुता दोनों बल से पृथक् काम करते हैं। भेद यही है कि प्रताप में ताप का अनुभव होता है प्रभाव में ऐश्वर्य का। देवता लोग कहते हैं कि आप अनन्त हैं। अनन्त के प्रभाव और प्रताप का ज्ञान ही किसी को नहीं हो सकता। उसका वर्णन कैसे सम्भव हैं। यथा : जय अनंत जय जगदाधारा।

अनुचित उचित काजु किछु कोऊ। समुझि करिअ भल कह सबु कोऊ ॥
सहसा करि पाछें पछिताहीं। कहहिं बेद बुध ते बुध नाहीं ॥२॥

अर्थ : कोई भी कार्य हो उचित और अनुचित विचारकर तब उसे करना चाहिए। जिसमें सब लोग अच्छा कहें। जो एकाएक कर बैठने के बाद पीछे से पछताते हैं वेद और विद्वान् कहते हैं कि वे पण्डित नहीं हैं।

व्याख्या : आकाशवाणी द्वारा देवता कहते हैं कि अनुचित उचित का विचार करके ही कार्य करना चाहिए। यही नियम है। यहाँ अनुचित होने जा रहा है इसी से उसे पहिले कहा। देवताओं से गुरुजी ने कहा था : करहु भरत पद प्रीति सोहाई। सो यह आकाशवाणी भरत पद प्रीति का फल है। नहीं तो : रामहिं भरतहिं भेंट न होई का संयोग तो जुट ही गया था। यह : आकाशवाणी लक्ष्मणजी के क्रोध को अनुचित ठहराती है।

सहसा विदधीत न क्रियामविवेकः परमापदां पदम्। एकाएक कोई काम नहीं कर बैठना चाहिए। क्योंकि अविवेक बड़े भारी आपदा का कारण है। नीति रस भूल गये थे। उसे देवता लोग याद दिलाते हैं कि जो बिना विचारे भावावेश में काम कर बैठता है उसे पीछे पछताना होता है। ऐसा कार्य आपके योग्य नहीं है। क्योंकि ऐसा करनेवाले की निन्दा वेद ने भी की है और विद्वान् लोग भी कहते हैं कि बिना विचारे काम करनेवाला पण्डित नहीं है।

सुनि सुर बचन लखन सकुचाने। राम सीय सादर सनमाने ॥
कही तात तुम्ह नीति सुहाई। सब तें कठिन राजमदु भाई ॥३॥

अर्थ : देवताओं के वचन सुनकर लक्ष्मणजी सङ्कुचित हो गये। रामजी और सीताजी ने उनका आदर के साथ सम्मान किया और कहा हे तात ! तुमने सुन्दर नीति कही। राजमद सबसे कठिन है।

व्याख्या : जब देवताओं के वचन लक्ष्मणजी ने सुने तो उन्हें सङ्कोच हुआ। देवता मिथ्या कह नहीं सकते। सरकार की ही समझ ठीक है। मैंने बेसमझे बड़े भाई को क्या कह डाला। यह समझकर सङ्कुचित हुए। तब रामजी और जानकीजी ने आदर के साथ सम्मान किया। लक्ष्मणजी की बाँह पकड़कर सन्निकट बिठाया।

भरतजी ने पहिले कहा था : परिहरि राम सीय जग माँहीं। कोउ नहिं कहहि मोर मत नाँहीं। लक्ष्मणजी भी नहीं कहेंगे। दूसरे को गिनती क्या ? वही हुआ।

सरकार पहिले लक्ष्मणजी की नीति की प्रशंसा करते हैं। यही कायदा है कि जिसके बातों का उत्तर देना हो तो पहिले उसके कथन के उस अंश की प्रशंसा करनी चाहिए जितना कि उपादेय हो। तत्पश्चात् अनुपादेय अंश का खण्डन करना चाहिए। पहिले खण्डन ही आरम्भ करने से उपादेय अंश की प्रशंसा करने के लिए अवसर नहीं मिलता। अतः सरकार ने पहिले नीति की प्रशंसा को : कनक कनक ते सौ गुनी मादकता अधिकात। यह खाये बौरात है वह पाये बौरात। लक्ष्मणजी ने कहा था : जग बौराय राजपद पाये। उसी की पुष्टि सरकार कर रहे हैं। यहाँ मद शब्द मद्य के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। भाव यह कि सभी मद्यों में राजरूपी मद्य का नशा बड़ा कठिन हैं।

जो अँचवत मातहिं नृप तेई। नाहिन साधुसभा जेहिं सेई ॥
सुनहुँ लखन भल भरत सरीसा। बिधि प्रपंच महँ सुना न दीसा ॥४॥

अर्थ : उसे पीते वे ही राजा लोग मतवाले हो जाते हैं जिन्होंने साधु सभा की सेवा नहीं की। लक्ष्मण ! सुनो भरत सा भला ब्रह्मा की सृष्टि में न कोई सुना गया न देखा गया।

व्याख्या : पर इस मद्य की मादकता साधुसेवियों पर प्रभाव नहीं डाल सकती। जो साधुसेवी नहीं हैं उनके विवेक को यह हरण कर ही लेती है। विषयी साधक सिद्ध सयाने। त्रिबिध जीव जग बेद बखाने। राम सनेह सरस मन जासू। साधु सभा बड़ आदर तासू। साधु सभा में बैठनेवाला जानता है कि उस सभा में राजा का मान नहीं है। भक्तों का मान है।

ब्रह्मा का प्रपञ्च ही गुण अवगुण मिलाकर बना है। इसमें गुण अवगुण ऐसे मिले हुए हैं जैसे दूध में जल मिल जाता है। यथा : सगुनु खीर अवगुनु जल ताता। मिलइ रचइ परपंच बिधाता। पर भरत ने हंस की भाँति उसमें से गुण को ही ग्रहण किया है। अवगुण को एक बारगी त्याग कर दिया है। यथा : गहि गुन पय तजि अवगुन बारी। निज जस जगत कीन्ह उँजियारी। भरत हंस रबि बंस तड़ागा। जनमि कीन्ह गुन दोष बिभागा। भरत साधु शिरोमणि हैं।

दो. भरतहि होइ न राजमदु, बिधि हरिहर पद पाइ।
कबहुँ कि काजी सीकरनि, छीरसिंधु बिनसाइ ॥२३१॥

अर्थ : भरत को तो विधि हरिहर पद पाने पर भी राजमद नहीं हो सकता। क्या काँजी के छींटे से क्षीरसिन्धु विकृत हो सकता है।

व्याख्या : यह कतिपय देश का राज्य क्या वस्तु है जो कि नदी देश पर्वतादि से सीमित है। विधि हरिहर का अधिकार असीम है जो सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड पर चलता है। सो उनका पद यदि अकेले भरतजी को मिल जाय तो भी उन्हें राजमद नहीं

हो सकता। थोड़े दूध को छेना में परिवर्तन करने के लिए उसमें काँजी का छींटा दिया जाता है जिससे दूध फट जाता है। पर उसका कुछ भी प्रभाव क्षीरसिन्धु पर नहीं पड़ सकता। विधि हरिहर पद भी भरतरूपी अगाध क्षीरसिन्धु के लिए काँजी का छींटा है। इसमें उसमें विकार आ नहीं सकता।

तिमिरु तरुन तरनिहि मकु गिलई। गगनु मगन मकु मेघहिं मिलई ॥
गोपद जल बूड़हिं घटजोनी। सहज छमा बरु छाड़इ छोनी ॥१॥

अर्थ : अन्धकार चाहे दोपहर के सूर्य को निगल जाय, आकाश चाहे डूबकर मेघ में समा जाय, अगस्त्यजी गोपद के जल में डूब जाय, पृथ्वी चाहे स्वाभाविकी क्षमा छोड़ दे।

व्याख्या : पञ्चभूतों में कभी विकार नहीं होता। केवल सृष्टि के आरम्भ में तथा प्रलय के समय विकार होता है। क्योंकि इनको अपने स्वभाव पर स्थिर रहने से ही जगत् की स्थिति है। यथा : गगन समीर अनल जल धरनी। इन्हकइ नाथ सहज जड़ करनी। तव प्रेरित माया उपजाये। सृष्टि हेतु सब ग्रंथनि गाये। प्रभु आयसु जेहि कहँ जो अहई। सो तेहि भाँति रहे सुख लहई। सो तेज का स्वभाव है कि वह अन्धकार को नष्ट कर देता है। अन्धकार तेज के सामने ठहर नहीं सकता। सो तेजः पुञ्ज मध्याह्न के सूर्य को चाहे अन्धकार ग्रस ले। आकाश सबको अवकाश प्रदान करता है। सो वह सङ्कुचित होकर मेघ में मिल जाय। अगस्त्यजी समुद्र का शोषण कर गये थे। सो गोपद का जल ऐसा रूप धारण करे कि अगस्त्यजी को ही डुबा दे। पृथ्वी की क्षमा से ही संसार चल रहा है। वह सब कुछ सहन किया करती है। वह भी चाहे अपनी स्वाभाविकी क्षमा का परित्याग करे। इस भाँति तेज, आकाश, जल और पृथ्वी के विषय में कहकर अब वायु के विषय में कहते हैं।

मसक फूँक मकु मेरु उड़ाई। होइ न नृपमदु भरतहि भाई ॥
लखन तुम्हार सपथ पितु आना। सुचि सुबंधु नहिं भरत समाना ॥२॥

अर्थ : मच्छर की फूँक से चाहे मेरु पर्वत उड़ जाय। पर हे भाई ! भरत को राजमद नहीं हो सकता। हे तात ! तुम्हारी शपथ और पिता की दोहाई भरत के ऐसा पवित्र और अच्छा भाई कहीं नहीं है।

व्याख्या : गुणों में तीव्रता या मन्दता का होना ही विकार है। अतः पञ्चभूतों में दोनों प्रकार का विकार दिखाते हुए कहते हैं कि मच्छर के फूँक से रूई के कण में भी गति नहीं देखी गयी। वह फूँक यदि मेरु को उड़ा दे ऐसा भारी परिवर्तन हो पर भरत को राजमद नहीं हो सकता। यथा : भरत सुभाउ सुसीलताई। सदा एकरस बरनि न जाई। भाव यह कि पंचभूतों में भले ही विकार हो जाय पर भरत के स्वभाव में विकार आ नहीं सकता।

भरत पर कुटिल कुबंधु का आरोप न करो। तुम सा प्यारा कोई नहीं। पिता सा पूज्य कोई नहीं। सो मैं दोनों की शपथ लेकर कहता हूँ कि भरत के ऐसा पवित्र

सुबन्धु कोई नहीं। भाईपन के नाते तुम भी वैसे नहीं। तुम्हें तो राज्य छूटने का क्रोध है। भरत राज्य को गिनता नहीं। हम लोगों के कष्टों को सोचकर दुःखी हुआ आ रहा है।

सगुनु खीरु अवगुन जलु ताता। मिलइ रचइ परपंचु बिधाता ॥
भरतु हंस रबिबंस तड़ागा। जनमि कीन्ह गुन दोष बिभागा ॥३॥

अर्थ : गुण रूपी दूध और अवगुण रूपी जल मिलाकर ब्रह्मा ने इस संसार को रचा है। सूर्यवंश रूपी तालाब में भरत हंस हैं। जिसने जन्म ग्रहण करके गुण दोष का विभाग किया है।

व्याख्या : वेद पुराण और इतिहास सभी कहते हैं कि ब्रह्मदेव की सृष्टि गुण दोष को मिलाकर बनी है। यथा : दुःख सुख पाप पुण्य दिन राती। साधु असाधु सुजाति कुजाती। दानव देव ऊँच अरु नीचू। अमिअ सुजीवनु माहुरु मीचू। माया ब्रह्म जीव जगदीसा। लच्छि अलच्छि रंक अवनीसा। कासी मग सुरसरि कबिनासा। मरु मालव महिदेव गवासा। सरग नरक अनुराग बिरागा। निगम अगम गुन दोष बिभागा। ऐसा गुण दोष मिला हुआ है कि पता ही नहीं चलता। वेद शास्त्र ने उसका विभाग करके बतलाया है। परन्तु अवगुण को छोड़कर गुण को ग्रहण करने की शक्ति हंस की भाँति सन्त को है। हंस दूध और पानी मिले हुए में से दूध को ग्रहण कर लेता है जल को छोड़ देता है। सो सूर्यवंश में हंस की भाँति भरत सन्त हैं। जैसे हंस से तालाब शोभित होता है उसी भाँति भरत से सूर्यकुल शोभित है। भरतजी ने जो किया भरतजी जो करते हैं या जो करेंगे सो सब गुण है : इसीलिए गुरुजी ने कहा : समुझव कहब करब तुम्ह जोई। धर्मसारु जग होइहि सोई।

गहि गुन पय तजि अवगुन बारी। निज जस जगत कीन्ह उँजिआरी ॥
कहत भरत गुन सीलु सुभाऊ। प्रेम पयोधि मगन रघुराऊ ॥४॥

अर्थ : गुण रूपी दूध को लेकर और अवगुण रूपी जल का परित्याग करके अपने यश से संसार को उँजेला कर दिया। भरत के गुण शील और स्वभाव को वर्णन करते करते प्रेम के समुद्र में रामजी मग्न हो गये।

व्याख्या : भरतजी ने संसार के सामने आदर्श उपस्थित कर दिया। संसार जान गया कि गुण क्या है और अवगुण क्या है। इस भाँति संसार में जो गुणावगुण के अविवेक का अन्धकार था सो मिट गया।

भरतजी के गुण शील स्वभाव पर सरकार रीझे हुए हैं। अतः उसके वर्णन करने में रामजी प्रेम समुद्र में मग्न हो रहे हैं : इसीलिए कहा है : भरत चरित करि नेम जे सप्रेम गावहिं सुनहिं। सीय राम पद प्रेम अवसि होइ भव रस बिरति। अथवा रामजी तो थोड़े से प्रेम पर ही रीझ जाते हैं और भरत सुप्रेम पयोधि में मग्न हो रहे हैं।

दो. सुनि रघुबर बानी बिबुध, देखि भरत पर हेतु।
सकल सराहत राम सो, प्रभु को कृपा निकेतु ॥२३२॥

अर्थ : रामजी की वाणी सुनकर और भरत पर प्रेम देखकर सब देवता लोग सराहने लगे कि प्रभु के ऐसा कृपा निधान कौन है ?

व्याख्या : रामजी की भरत सम्बन्धिनी गुण शील स्वभाव निरूपिणी वाणी सुनी। गुण यथा : सुनहु लखन भल भरत सरीसा। विधि प्रपंच मह सुना न दोसा। शील यथा : भरतहि होइ न राजमद विधि हरिहर पद पाइ। स्वभाव यथा : भरत हंस रविबंस तड़ागा। जनमि कीन्ह गुण दोष विभागा। और भरत पर रामजी का प्रेम देखा। यथा : प्रेम पयोधि मगन रघुराऊ। सब देवता प्रशंसा करने लगे कि रामजी के ऐसा कोई प्रभु कृपानिकेत नहीं है। भाव यह कि प्रभु लोग दूसरे की वेदना समझते ही नहीं। [1]लक्ष्मीवन्तो न जानन्ति प्रायेण परवेदनाम्। शेषो धराभराक्रान्तः शेते नारायणः स्वयम्। सरकार तो सेवक के प्रेम में मग्न हैं। अतः ऐसा कृपानिधान स्वामी कहीं नहीं है।

जौं न होत जग जनम भरत को। सकल धरम धुर धरनि धरत को ॥
कबि कुल अगम भरत गुन गाथा। को जानइँ तुम्ह बिनु रघुनाथा ॥१॥

अर्थ : यदि जगत् में भरत का जन्म न होता तो सब धर्मों की धुरा रूपी पृथ्वी को कौन धारण करता ? हे रघुनाथ ! कविकुल के पहुँच के बाहर भरत के गुणों की गाथा सिवा तुम्हारे और कौन जाने।

व्याख्या : धारणात् धर्ममित्याहुर्धर्मो धारयति प्रजाः। सो एक धर्म का धारण करना कठिन हो जाता है सकल धर्म के धुरा को कौन धारण कर सकता है ? उसके धारण करने में भरतजी ही समर्थ हैं। इनके धारण करने से धरणी की रक्षा है। यथा : भरत भूमि रह राउर राखी। बिना धर्म के धुर धारण किये धारण की हुई भी धरणी अरक्षित होकर नष्ट हो जाती है।

कवियों से कोई बात नहीं छिपी रहती। नारदहू यह भेद न जाना। लछिमनहू यह मरम न जाना। सो कवियों ने जान लिया। परन्तु भरत की गुणगाथा कवियों के लिए अगम है। क्योंकि : कबिहि अरथ आखर बल साँचा। अनुहर ताल गतिहि नट नाचा। अर्थ ही कवि के हृदय में नहीं आता। यथा : कबिहि अगम जिमि ब्रह्म सुख अहमम मलिन जनेषु। जान सिरोमणि कोसल राऊ। मात्र उस गुण गाथ से परिचित हैं।

लखन राम सिय सुनि सुरबानी। अति सुखु लहेउ न जाइ बखानी ॥
इहाँ भरतु सब सहित सहाएँ। मंदाकिनी पुनीत नहाएँ ॥२॥

---

१. लक्ष्मीवान् प्रायेण दूसरे के दुःख को नहीं समझते। शेष पर तो सम्पूर्ण पृथ्वी लदी हुई है। उस पर नारायण भी स्वयं जाकर सोते हैं।

अर्थ : लक्ष्मणजी रामजी और सीताजी ने देवताओं की वाणी सुनकर ऐसा सुख पाया जिसका वर्णन नहीं हो सकता। यहाँ भरतजी ने सेना के साथ पवित्र मन्दाकिनी नदी में स्नान किया।

व्याख्या : यह आकाश वाणी देवताओं की हुई थी। इसलिए कहते हैं कि तीनों मूर्ति बड़े प्रसन्न हुए। उसमें पहिले लक्ष्मणजी को कहते हैं। महात्माओं का क्रोध व्यक्ति पर नहीं होता अवगुण पर होता है। अवगुण पर क्रोध हुआ। पर जब मालूम हो गया कि ये अवगुण भरतजी में नहीं हैं। क्योंकि देवता अन्यथा नहीं कहते और भरतजी में बड़े दिव्यगुण हैं जिन्हें रामजी ही जानते हैं। तो लक्ष्मणजी बड़े प्रसन्न हुए। रामजी और सीताजी को भी बड़ी प्रसन्नता हुई। अपने प्रिय के गुणगणों की प्रशंसा देवताओं के मुख से सुनकर ऐसा सुख हुआ जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता।

उहाँ राम रजनीं अवसेषा। जागे सीय सपन अस देखा। कहकर जिस प्रसङ्ग को उठाया उसे यहाँ समाप्त कर रहे हैं। अतः इहाँ शब्द का प्रयोग करके कथन आरम्भ करते हैं। भाव यह कि अब भरतजी का चरित कहेंगे और उन्हीं के साथ कवि अपने को मान रहे हैं। जल थल देखि बसे निसि बीते। कीन्ह गवनु रघुनाथ पिरीते। यहाँ से प्रसङ्ग छोड़ा था। अब मन्दाकिनी स्नान से प्रसङ्ग फिर से आरम्भ करते हैं। जहाँ ठहरे थे वहाँ से सन्निकट ही मन्दाकिनी थीं। अतः वहीं स्नान किया है। मन्दाकिनी गङ्गाजी की धारा है। इसलिए पुनीत कहते हैं। यथा : सुरसरि धार नाँउ मंदाकिनि। जो सब पातक पोतक डाकिनि।

सरित समीप राखि सब लोगा। माँगि मातु गुर सचिव नियोगा॥
चले भरतु जहँ सिय रघुराई। साथ निषादनाथु लघु भाई॥३॥

रामजी से भेंट

अर्थ : नदी के तीर पर सब लोगों को ठहराकर तथा माता गुरु और मन्त्री से आज्ञा माँगकर भरतजो वहाँ चले जहाँ सीताजी और रामजी थे। उनके साथ निषादराज और शत्रुघ्नजी थे।

व्याख्या : शरण जा रहे हैं। इसलिए भरतजी किसी को साथ नहीं लेते। मन्दाकिनी के तीर पर सबके टिकने का भी सुभीता है। गुरुजो तथा माताओं को लेने के लिए स्वयं सरकार को आना चाहिए। अतः उन्हें भी साथ नहीं लिया। सरकार मुनिवृत्ति में हैं। अतः वहाँ साज समाज का जाना भी ठीक नहीं। अतः अकेले जाने के लिए गुरुजी माताजी तथा मन्त्रियों से आज्ञा माँगी। निषादनाथ रास्ता दिखाने के लिए साथ हैं। शत्रुघ्न के साथ रहते हुए भी भरतजी दो नहीं गिने जाते। लक्ष्मण ने भी दो नहीं गिना।

समुझि मातु करतब सकुचाहीं। करत कुतरक कोटि मन माहीं॥
रामु लखनु सिय सुनि मम नाऊँ। उठि जनि अनत जाहिं तजि ठाऊँ॥४॥

अर्थ : माता का करतव समझकर सङ्कुचित होते हैं और मन में कुतर्क की कोटि करते हैं। रामजी लक्ष्मण और सीताजी मेरा नाम सुनकर स्थान छोड़ किसी दूसरी जगह न चले जायँ।

व्याख्या : माता के कुकृत्य से पुत्र को सङ्कोच होना स्वाभाविक है। माता ने जो कुछ किया पुत्र की कल्याण कामना के लिए ही किया। अतः माता के करतव से पृथक् होना सम्भव नहीं है। इसलिए स्वयं निपराध होते हुए भी सङ्कुचित हैं और ऐसी अवस्था में जैसे कुतर्क की कोटियाँ मन में उठती हैं वैसी ही उठ रही हैं।

भरतजी की कुतर्क की कोटि का प्रादेशमात्र कवि दिखलाते हैं। भरतजी सोचते हैं कि मेरे आने का समाचार सरकार को पहिले ही लग जायगा। क्योंकि मेरे साथ सेना है। मेरे करतब पर ध्यान करके कहीं यह निश्चय न कर लें कि मैं भरत का मुख न देखूँगा। इसलिए कहीं तीनों मूर्ति आश्रम छोड़कर दूसरी जगह न चले जायँ। जहाँ हमें पता न लग सके। सामान कोई पास नहीं है जिसे हटाने में देर लगे। केवल उठकर दूसरी जगह चला जाना ही तो है।

दो. मातु मतें महुँ मानि मोहि, जो किछु करहिं सो थोर।
अघ अवगुन छमि आदरहिं, समुझि आपनी ओर ॥२३३॥

अर्थ : मुझे माता के मत में मानकर जो कुछ कर बैठें वह थोड़ा है और यदि अपनी ओर समझें तो पाप और अवगुण को क्षमा करके आदर कर सकते हैं।

व्याख्या : यहाँ विचार करने में दो ही पक्ष उठ सकते हैं। या तो मुझे माता की राय में समझें जैसा कुछ लोगों ने समझा था : एक भरत कर सम्मत कहहीं। तब तो मेरा अपराध सर्वथा अक्षम्य है। फिर मुझे यह आज्ञा होना : तुम मुख न दिखलाओ यहाँ से चले जाओ आदि जो कुछ कहें वह थोड़ा ही होगा। अपराध इतना गुरुतर है कि कोई दण्ड उसके मुकाबिले का नहीं है और यदि मुझे अपनी ओर समझें माता की ओर न समझें तो मातृकृत अपराध को क्षमा करके आदर भी कर सकते हैं। जैसा पुरवासियों ने कहा था : अहि अवगुन नहिं मनि गहई। हरइ गरल दुख दारिद दहई। अथवा यदि अपने स्वरूप पर ध्यान दें तो अघ अवगुण को क्षमा करके आदर भी कर सकते हैं।

जौं परिहरहिं मलिन मनु जानी। जौं सनमानहिं सेवकु मानी ॥
मोरे सरन रामहि की पनही। राम सुस्वामि दोसु सब जनही ॥१॥

अर्थ : यदि मलिन मन जानकर त्याग करें या सेवक मानकर सम्मान करें। मेरे लिए तो रामजी की जूती ही शरण है। रामजी भले स्वामी हैं। दोष सब सेवक का है।

व्याख्या : अब भरतजी अपना कर्तव्य निश्चय करते हैं। चाहे रामजी का उनके साथ जैसा वर्ताव हो। पर अपने लिए निश्चित मार्ग होना चाहिए। जिससे हर हालत में काम लिया जा सके। मलिन मन का सङ्कार त्याग करते हैं। यथा :

मोहि कपट छल छिद्र न भावा। परन्तु दूसरा पक्ष यह भी है : निज अपराध रिसाहिं न काऊ। रहत न प्रभु चित चूक किये की। को साहिब सेवकहिं नेवाजी। आपु समाज साज सब साजी। इत्यादि।

राम तो सुस्वामी हैं। उनमें दोष नहीं है। कुस्वामी पर सन्देह रहता है कि कदाचित् कुछ दोष स्वामी का भी हो। पर जब यह निश्चित है कि सुस्वामी हैं तब जो कुछ दोष सम्भव है वह जन का ही है। अतः चाहे परित्याग करें चाहें सम्मान करें। मुझे उनकी जूती ही शरण है। पर जूती इस समय त्यक्त है। यथा : राम लखन सिय बिनु पग पनही। करि मुनिवेष फिरहिं बन बनही। अतः मैं उसी त्यक्त जूती के शरण जाऊँगा या तो उसे पहना दूँगा नहीं तो उसी की उपासना करूँगा।

जग जस भाजन चातक मीना। नेम पेम निज निपुन नवीना॥
अस मन गुनत चले मग जाता। सकुच सनेह सिथिल सब गाता॥२॥

अर्थ : संसार में पपीहा और मछली ये ही यश के पात्र हैं। जो अपने अपूर्व नेम और प्रेम में निपुण हैं। ऐसा मन में विचारते चले जाते हैं। सङ्कोच और प्रेम से सब शरीर शिथिल है।

व्याख्या : भरतजी मन में कहते हैं कि संसार में प्रेमियों में से दो ने ही यश पाया : एक चातक ने और दूसरे मछली ने। चातक अपूर्व नेम में निपुण है। यथा : डोलत बिपुल बिहंग बन पियत पोखरिन्हि बारि। सुजस धवल चातक नवल तुही भुवन दस चारि। और मीन अपूर्व प्रेम में निपुण है। यथा : मकर उरग दादुर कमठ जल जीवन जल गेह। तुलसी एकै मीन को है साँचिलो सनेह। भाव यह कि मीन के ऐसा प्रेम तो केवल चक्रवर्तीजी निबाह पाये और किसी से न निबहा। यथा : बंदौ अवध भुआल सत्य प्रेम जेहि रामपद। बिछुरत दीन दयाल प्रिय तनु तृन इव परिहरेउ। अब तो चातकवाला नेम निर्वाह करना है। जो सुख सम्पत्ति राम घनश्याम से न मिले उसे स्वीकार न करना यही निश्चय है

भरतजी रास्ते चले जाते हैं और इसी प्रकार का विचार करते जाते हैं। यहाँ भाव सन्धि है। स्नेह के साथ सङ्कोच है। रास्ते में ही स्नेह से शिथिल शरीर हो रहा है और सरकार के सन्मुख जाने में सङ्कोच भी है। इस द्विविध मनोगति से सारा शरीर शिथिल है।

फेरति मनहुँ मातु कृत खोरी। चलत भगति बल धीरज धोरी॥
जब समुझत रघुनाथ सुभाऊ। तब पथ परत उताइल पाऊ॥३॥

अर्थ : माता की की हुई दुष्टता मानो पीछे हटाती है। पर धैर्य धुरीण : भरतजी भक्ति के बल से चल रहे हैं। जब रामजी के स्वभाव को समझते हैं तब रास्ते में जल्दी जल्दी पैर पड़ता है।

व्याख्या : शरीर शिथिल हो रहा है। जिस पर माता की की हुई करणी

मानो पीछे फेर रही है कि कौन मुँह लेकर सामने जाऊँ। पर भरतजी धीर धुरीण हैं। भक्ति के बल से चले जा रहे हैं। भरतजी भक्त शिरोमणि हैं। उनकी गति माता की करणी के स्मरण से तो रुकती है पर जब सरकार के स्वभाव का स्मरण करते हैं : अस सुभाउ कहुँ सुनै न देखै। केहि खगेस रघुपति सम लेखैं। सुनहु सखा निज कहहुँ सुभाऊ। जान भुसुंडि सम्भु गिरि जाऊ। जौ नर होइ चराचर द्रोही। आवइ सभय सरन तकि मोही। तजि मद मोह कपट छल नाना। करउँ सद्य तेहि साधु समाना। तब तो आशा के सञ्चार से पैर जल्दी जल्दी उठने लगता है।

भरत दसा तेहि अवसर कैसी। जल प्रबाह जल अलि गति जैसी ॥
देखि भरत कर सोचु सनेहू। भा निषाद तेहि समय बिदेहू ॥४॥

अर्थ : उस समय भरतजी की दशा वैसी हो रही है जैसी कि भौंरे की जल प्रवाह में होती है। भरतजी के सोच और स्नेह को देखकर निषादराज को तो अपने शरीर की सुधि न रह गयी।

व्याख्या : रामजी के स्वभाव के स्मरण से भरतजी की गति तीव्र हो जाती है और माता के दोष के स्मरण से एकाएक रुक जाते हैं। फिर चल पड़ते हैं। ऐसा ठहर ठहर कर वेग से चलने की उपमा गोस्वामीजी जल के भौंरे से देते हैं। वह प्रवाह में वेग से चलता हुआ बार बार रुकता ही जाता है। गोस्वामीजी ने यह एक अद्भुत उपमा दी जिसे जहाँ तक मेरी जानकारी में कोई भी कवि किसी अवसर में नहीं दे सका है।

निषादराज देखते हैं कि भरतजी कुछ सोचकर ठहर जाते हैं और फिर प्रसन्न होकर चल पड़ते हैं। इससे उनके सोच और स्नेह का अनुभव करते हुए निषादराज ऐसे मग्न हो गये कि उन्हें अपने देह की सुधि न रह गयी।

दो. लगे होन मंगल सगुन, सुनि गुनि कहत निषादु।
मिटिहि सोच होइहि हरषु, पुनि परिनाम बिषादु ॥२३४॥

अर्थ : मङ्गल शकुन होने लगे। उन्हें सुनकर और गुनकर निषादराज ने कहा कि सोच मिटेगा। हर्ष होगा। परन्तु परिणाम में विषाद ही है।

व्याख्या : यहाँ शकुन का सुनना कहते हैं। इससे मालूम होता है कि यहाँ पक्षी की बोली से शकुन निर्णय किया जा रहा है। प्रधान शकुन तो पक्षी ही हैं। पक्षी को ही शकुन कहते हैं। अन्य शुभाशुभ सूचक घटनाएँ तो गौण हैं। निषादराज शकुन ज्ञान में बड़े पण्डित थे। इनकी युद्ध यात्रा के समय जो छींक हुई उसके फल निर्णय करने में सगुनियों में मतभेद हुआ तो उसका निर्णय निषादराज ने ही किया। यथा : नीक कह बूढा। पहिले पक्षी के बोलने से मालूम हुआ : मिटिहि सोच दूसरे के बोलने से पता लगा : होइहि हरख। तीसरे के बोलने से मालूम हुआ : पुनि परिनाम बिषाद। अथवा पक्षी नहीं दिखायी पड़ता है। केवल शब्द सुनायी पड़ता है।

इससे अनुमान हुआ कि हर्ष स्थायी नहीं होगा। उसी बात को निषादराज भरतजी से कह रहे हैं।

सेवक बचन सत्य सब जाने। आश्रम निकट जाइ निअराने ॥
भरत दीख वन सैल समाजू। मुदित छुधित जनु पाइ सुनाजू ॥१॥

अर्थ : सेवक की सब बातों को सत्य जाना। आश्रम के सन्निकट जाकर समीप पहुँच गये। भरतजी ने वन और पर्वत के समाज को देखा। ऐसे प्रसन्न हुए जैसे भूखा सुअन्न पाकर प्रसन्न होता है।

व्याख्या : भरतजी ने सेवक के तीनों वचनों को सत्य जाना। अर्थात् सरकार का दर्शन होगा। इसलिए मिटिहि सोच कह रहा है। सरकार सम्मान करेंगे। इसलिए : होइहि हरख कह रहा है। पर अवध नहीं लौटेंगे इसलिए परिणाम विषाद कह रहा है। आश्रम में नहीं पहुँचे परन्तु राम वन जिसमें आश्रम है उसके निकट पहुँच गये।

इतने निकट पहुँचे कि वन और शैल का समाज दिखायी पड़ने लगा। सबका समाज पृथक् पृथक् होता है। सो कवि पहले वन समाज कहकर तब शैल समाज का वर्णन करेंगे। यहाँ उस समाज के देखने से भरतजी को कैसी प्रसन्नता हुई। उसी का वर्णन करते हैं। भूखे को अन्न चाहिए चाहे वह कैसा ही हो। कदन्न पाकर भी भूखा सुखी होता है। यदि उसे सुअन्न मिल जाय तो उसकी प्रसन्नता का क्या ठिकाना ! उस वन शैल समाज को देखने से हो भरतजी अति प्रसन्न हैं। इस प्रसन्नता के साथ आतुरता का योग है। इसलिए भूखे के सुअन्न प्राप्ति से उपमित किया।

ईति भीति जनु प्रजा दुखारी। त्रिबिध ताप पीड़ित ग्रह मारी ॥
जाइ सुराज सुदेस सुखारी। होहि भरत गति तेहि अनुहारी ॥२॥

अर्थ : ईति प्रीति से जैसे प्रजा दुःखो हो, तीनों ताप से तप्त हो, मारीग्रह से पीड़ित हो सो सुदेश और सुराज में जाकर सुखी हो वैसी ही भरत की गति हो रही है।

व्याख्या : भरतजी केवल अपने ही दुःख से दुःखी नहीं हैं : उन्हें माताओं और प्रजाओं का भी भारी दुःख है। यथा : देखि न जाहिं बिकल महतारी। जरहिं त्रिबिध जर पुर नर नारी। पहिले भरतजी के व्यक्तिगत दुःख का मिटना कहकर अब प्रजावर्ग के दुःख का मिटना कहते हैं। प्रजावर्ग के दुःख के मिटने से भरतजी का दूसरे प्रकार का भी दुःख मिटा।

अतिवृष्टिरनावृष्टिर्मूषकाः शलभाः शुकाः। प्रत्यासन्नाश्च राजानः षडेता ईतयः स्मृता। अतिवृष्टि, अनावृष्टि, चूहे, टिड्डी, सुग्गों का आक्रमण तथा राजाओं का सन्निकट आना ये छः इति कही गयी है। इन छओं के कारण दुर्भिक्ष पड़ता है। सो जैसे ईति आदि के डर से प्रजा देश छोड़कर भाग चली हो, उसे आधिदैविक

आधिभौतिक और आध्यात्मिक ताप भी हो, ग्रह भी उनके प्रतिकूल हों वे सुराज और सुदेश पाकर सुखी हो जाते हैं। सो अवधवासी ईति के भय से देश छोड़कर चले आ रहे हैं। यथा : मुख सुखाहि लोचन स्रवहि सोकु न हृदय समाइ। मनहु करुन रस कन्टइ कई उतरी अवध बजाइ। उन्हें आधिदैविक ताप भी है। यथा : मिलेहि माझ बिधि बात बिगारी। तथा : कीन्ह मातु मिस काल कुचाली। ईति[1] भीति जनु पाकत साली। आध्यात्मिक ताप। यथा : तन कृस मन दुख बदन मलीने। बिकल मनहु माछी मधु छीने। आधिभौतिक ताप। यथा : नगर फैल गयी बात सुतीछी। छुअत चढ़ी जनु सब तन बीछी। ग्रहमारी भी है। यथा : घर मसान परिजन जनु भूता। सुत हित मीत मनहु जमदूता।

ऐसी प्रजा को सुदेश की चाह होती है। जहाँ सुभिक्ष हो और सुराज की आवश्यकता होती है। जहाँ सुव्यवस्था हो। यदि उन्हें सुदेश और सुराज दोनों की प्राप्ति एक ही स्थल में हो तो वे सुखी हो जाते हैं। सो पुर नर नारियों के दुःख की शान्ति समझकर भरतजी का दूसरे प्रकार का भी दुःख जाता रहा।

राम बास बन संपति भ्राजा। सुखी प्रजा जनु पाइ सुराजा॥
सचिव बिरागु बिबेकु नरेसू। बिपिन सुहावन पावन देसू॥३॥

अर्थ : राम वास वन : वन की सम्पत्ति से ऐसा शोभित है जैसे अच्छे राजा की प्राप्ति से प्रजा सुखी होती है। विराग मन्त्री हैं विवेक राजा हैं। सुहावना वन ही पवित्र देश है।

व्याख्या : पहिले राम वन का वर्णन कवि करते हैं कि वह वन वन की सम्पत्ति से शोभायमान है। अर्थात् मुनि तपस्वी के उपयोग की सामग्री से परिपूर्ण है। जैसे अच्छे राजा के होने से प्रजा सुखी हो जाती है। वन सात्त्विक प्रदेश है। यहाँ निवृत्तिमार्ग के ऋषि मुनि रहते हैं। उनके उपयुक्त सभी सामग्री यहाँ हैं।

वहाँ पर विराग मन्त्री हैं, विवेक राजा हैं और वन प्रदेश ही उत्तम देश है। जहाँ विवेक राजा का राज्य है। भाव यह कि संसार में प्रायेण सर्वत्र ही मोह राजा का राज्य है और काम क्रोधादि का आधिपत्य है। पर यहाँ तो विवेक राजा की विजय है। मोह राजा के राज्य में संसार दुःख झेल रहा है। सुख तो तभी सुलभ है जब विवेक राज्य में पदार्पण करे।

भट जम नियम सैल रजधानी। सांति सुमति सुचि सुंदर रानी॥
सकल अंग संपन्न सुराऊ। राम चरन आश्रित चित चाऊ॥४॥

अर्थ : यम नियमादिक योद्धा हैं। पर्वत ही राजधानी है और शान्ति तथा सुमति सुन्दर रानियाँ हैं। श्रेष्ठ राजा सब अङ्गों से परिपूर्ण है और रामजी के चरणों के आश्रित होने से चित्त में प्रसन्नता है।

---

१. यह छठी ईति है। करुण रस रूपी राजा का धावा अवध पर हो गया है।

व्याख्या : राजा विवेक के योद्धा पाँच यम और पांच नियम हैं। जिस भाँति मोह राजा के काम क्रोधादि योद्धा हैं और विवेक राजा की राजधानी राम शैल है जिस भाँति मोह राजा की राजधानी इन्द्रपुर है। राजधानी उस प्रदेश को कहते हैं जहाँ स्वयं राजा का निवास हो। शैल पर मानो विवेक राजा स्वयं रहते हैं। राजा को दो पवित्र रानियाँ भी हैं एक तो शान्ति रानी हैं और दूसरी सुमति रानी हैं।

राजा के जितने अङ्ग सेना कोषादि हैं सबसे विवेक राजा सम्पन्न है और वे रामचरण के आश्रित हैं। अतः स्नेह में मग्न रहते हैं।

दो. जीति मोह महिपालु दल, सहित बिबेक भुआलु।
करत अकंटक राजु पुर, सुख संपदा सुकालु ॥२३५॥

अर्थ : विवेक राजा मोह राजा को दल सहित जीतकर निष्कण्टक राज्य कर रहे हैं और पुर में सुख सम्पत्ति और सुकाल है।

व्याख्या : इससे यह पता चलता है कि पहिले यहाँ भी मोह राजा का राज्य था। पर जब से सरकार का आगमन हुआ तब से सरकार के आश्रय से विवेक राज की जीत हो गयी। अब वे वन और प्रदेश में अकण्टक राज्य करते हैं। वहाँ सुख सम्पदा और सुकाल बना हुआ है। भाव यह कि जिस भाँति पिण्ड में विवेक जय से आनन्द होता है उसी भाँति राम वन और शैल में आनन्द का साम्राज्य है। यथा : सेवक सुमिरत नाम सुप्रीति। बिनु श्रम प्रबल मोहदल जीती। फिरत सनेह मगन सुख अपने। नाम प्रसाद सोच नहिं सपने।

बन प्रदेश मुनि बास घनेरे। जनु पुर नगर गाउँ गन खेरे॥
बिपुल बिचित्र बिहग मृग नाना। प्रजा समाजु न जाइ बखाना ॥१॥

अर्थ : वन प्रदेश में बहुत से मुनियों के निवास स्थान हैं। वे ही मानो पुर, नगर, गाँव और पुरवा हैं। बहुत से अनेक प्रकार के पक्षी और बहुत प्रकार के मृग हैं। वे ही ऐसे प्रजा समाज हैं जिनका बखान नहीं हो सकता है।

व्याख्या : उस वन प्रदेश में बहुत से मुनियों के आश्रम हैं। वे आश्रम ही मानों पुर नगर ग्राम और खेट विस्तार के तारतम्य से हैं। नगर बड़ा होता है। पुर उससे छोटा, ग्राम उससे भी छोटा होता है। खेट शब्द का प्राकृत रूप खेर है अर्थात् पुरवा। यथा : आप पाप को नगर बसावत सहि न सकत पर खेरे।

अब उन पुर, नगर, ग्राम और खेरा के निवासी प्रजा कौन से हैं? मुनि लोग प्रजा हो नहीं सकते और न एक आश्रम में उतने मुनि ही रह सकते हैं कि उनकी उपमा नगरादि से दी जा सके। अतः कहते हैं कि उन आश्रमों में अनेक प्रकार के बहुत से पक्षी बसे हुए हैं। उनमें अनेक प्रकार के मृग भी विचरते हैं। वे ही मानों प्रजा के समाज हैं। पक्षी ऐसे सुन्दर हैं, उनकी बोली इतनी सुहावनी है कि वर्णन नहीं किया जा सकता। सुन्दर मृग अनेक प्रकार के कलोल कर रहे हैं। उनके लिए भी ऐसी ही बात कही जा सकती है। भगवती ने कहा था : खग

मृग परिजन नगर बन। माँ कौसल्या ने कहा था : खग मृग चरण सरोरुह सेवी। सो उन्हीं का प्रजा रूप से वर्णन हो रहा है।

खगहा करि हरि बाघ बराहा। देखि महिष वृष साजु सराहा ॥
बयरु बिहाय चरहिं एक संगा। जहँ तहँ मनहुँ सेन चतुरंगा ॥२॥

अर्थ : गैंड़ा, हाथी, सिंह, व्याघ्र, सूअर, भैंसा, वैल के साज को देखकर प्रशंसा की। वे वैर छोड़कर जहाँ तहाँ विचर रहे हैं। मानो वे ही चतुरंगिणी सेना हैं।

व्याख्या : इस पशु समाज को जो देखता है वही प्रशंसा करता है। खगहा गैंड़े को, हरि सिंह को, वाराह बनैले सुअर को, महिष भैंस और वृष बैल को कहते हैं। इन सबों में एक दूसरे से वैर है। सो स्वाभाविक वैर छोड़कर एक साथ विचर रहे हैं। जैसे चतुरंगिणी सेना विचर रही हो।

पहिले कह आये हैं : सकल अंग संपन्न सुराऊ। उन अङ्गों का वर्णन करते हुए सम्पत्ति, मन्त्री, देश, रानी, सेनापति, प्रजा, सेना का वर्णन करके अब सुराज के मङ्गल का वर्णन करते हैं।

झरना झरहिं मत्त गज गाजहिं। मनहुँ निसान बिबिध बिधि बाजहिं ॥
चक चकोर चातक सुक पिक गन। कूजत मंजु मराल मुदित मन ॥३॥

अर्थ : झरना झरते हैं। मत्त हाथी गरजते हैं। मानो अनेक प्रकार के डंके बज रहे हैं। चकवा, चकोर, पपीहा, शुक, कोयल और हंस प्रसन्न मन होकर कूज रहे हैं।

व्याख्या : जहाँ मङ्गल होता है वहाँ डंके बजते हैं। वहाँ वाद्य, गान और नृत्य होता है। सो यहाँ जो झरना झर रहा और मत्त हाथी गरज रहे हैं। वे ही मानो डंके बज रहे हैं। ध्वनि में भेद होने से बिबिध बिधि कहा।

यहाँ पर छ: पक्षियों का कूजना लिखा जा रहा है। जो भिन्न ऋतुओं में बोलते हैं। पर आनन्दातिरेक से यहाँ सब बोल रहे हैं। ये ही मानो तालधारी हैं बाजे बजा रहे हैं। पुष्पवाटिका में चातक कोकिल कीर चकोरा। कुजत विहंग नटत कल मोरा कह आये हैं। यहाँ नदी के निकट होने से चक और हंस अधिक कह रहे हैं।

अलिगन गावत नाचत मोरा। जनु सुराज मंगल चहुँ ओरा ॥
बेलि बिटप तृन सफल सफूला। सब समाजु मृदु मंगल मूला ॥४॥

अर्थ : भौंरों के झुण्ड गाते और मोर नाच रहे हैं। मानो सुराज में चारों ओर मङ्गल हो रहा है। विटप तृण सब फल और फूल से सम्पन्न हैं। सब समाज आनन्द और मङ्गल का मूल हो रहा है।

व्याख्या : जब तालधारी लोगों ने साज मिला लिया तब गान आरम्भ होता है। यहाँ भ्रमरगण ही गानेवाले हैं। जब गान होने लगा और वाद्य बजने लगे तब उस रस की पूर्ति तो नृत्य से ही हो सकती है। अतः कहते हैं कि मोर नाच रहे हैं।

नाचनेवाला बड़े सजधज से आता है। पक्षियों में मोर से अधिक सजधज किसी का नहीं है।

लागे बिटप मनोहर नाना। बरन बरन बर बेलि बिताना। उनमें भी फल फूल लगे हैं। राजा राम चरन आश्रित चित चाऊ हैं। प्रजा वैर बिहाय चरहिं एक संगा। पक्षी नाच गा रहे हैं। बेलि बिटप सब सफल सफूल हैं। इसलिए सब समाज को मङ्गल मूल कह रहे हैं।

दो. राम सैल सोभा निरखि, भरत हृदय अति पेमु।
तापस तप फल पाइ जिमि, सुखी सिराने नेमु ॥२३६॥

अर्थ : राम शैल की शोभा देखकर भरतजी के हृदय में अत्यन्त प्रेम हो रहा है। जैसे तपस्या का फल प्राप्त होने पर तपस्वी नियमों की समाप्ति में सुखी होता है।

व्याख्या : भरत दीख वन सैल समाजू : उपक्रम करके : राम सैल सोभा निरखि से उपसंहार करते हैं। उसके देखने से सबके हृदय में आनन्द हुआ। पर भरत के हृदय में अत्यन्त आनन्द हुआ। यहाँ प्रेम का आनन्द है। यथा : तदपि प्रीति कै प्रीति सुहाई। मानो तपस्वी को तप फल मिल गया और जो कष्ट कर नियम उसने स्वीकार किये थे वे सब समाप्त हो गये। उस समय जैसा सुख तपस्वी को होता है वैसा सुख भरतजी को रामशैल शोभा निरीक्षण से हुआ। क्योंकि जहाँ रामजी होते हैं वहीं शोभा रहती है। भरतजी स्वयं अयोध्या की व्यवस्था देख चुके हैं। श्रीहत सर सरिता वन बागा। नगर विसेषि भयावनु लागा। खग मृग हय गय जाहिं न जोए। राम बियोग कुरोग बिगोए। अतः रामजी के यहाँ होने के निश्चय से भरतजी को अत्यधिक सुख हुआ। जिस भरतलाल को भरद्वाजजी के विधि विस्मय दायक विभव का कोई प्रभाव न पड़ा उस पर राम शैल का ऐसा प्रभाव पड़ा कि उसके दर्शन के सुख में मग्न हैं।

तब केवट ऊँचे चढ़ि धाई। कहेउ भरत सन भुजा उठाई॥
नाथ देखिअहिं बिटप बिसाला। पाकरि जंबु रसाल तमाला॥१॥

अर्थ : तब केवट दौड़कर ऊँचे चढ़ गया और भरतजी से भुजा उठाकर कहने लगा कि हे नाथ ! ये जो बड़े बड़े पेड़ देखे जाते हैं पाकर का पेड़ है। जामुन का पेड़ है। आम और आबनूस का पेड़ है।

व्याख्या : ऊँचे पर चढ़े जाने से दूर के और नीचे के दृश्य स्पष्ट दिखायी पड़ते हैं। केवट ने ठीक अन्दाज कर लिया है। फिर भी निश्चय करने के लिए ऊँचे पर दौड़कर चढ़ गया। भरतजी को अतिप्रिय के दर्शन कराने की उत्सुकता से शीघ्रता की और भरतजी को दिग्दर्शन कराने के लिए भुजा उठाकर बोला।

कहता है कि इस वन के पेड़ों में जो बड़े बड़े पेड़ों का झुण्ड है उसे देखिये।

उसमें पाकर जामुन रसाल और तमाल के पेड़ हैं। भाव यह कि इतने निकट पहुँच गये हैं कि वृक्षों की पहिचान हो रही है।

जिन्ह तरुबरन्ह मध्य बटु सोहा। मंजु बिसालु देखि मनु मोहा॥
नील सघन पल्लव फल लाला। अबिचल छाँह सुखद सब काला॥२॥

अर्थ : उन श्रेष्ठ वृक्षों के बीच में वट का वृक्ष शोभित हो रहा है। वह बड़ा सुन्दर है। विशाल है। उसके देखने से मनमोहित हो जाता है। नीले घने पत्ते हैं और लाल फल हैं। इसकी छाया घनी और सब काल में सुख देनेवाली है।

व्याख्या : अब पाँचवाँ पेड़ दिखला रहे हैं जो उपर्युक्त चारों वृक्षों के बीच में है। वह वट का वृक्ष है। वट के पत्ते दूर से देखने से नीले रङ्ग के मालूम होते हैं। उन पत्तों में लाल फल बड़ो शोभा दे रहे हैं। वटवृक्ष सभी वृक्षों में बड़ा होता है। इसका फैलाव बहुत विस्तृत होता है। घने पत्तों के कारण धूप छनकर भी नहीं आ सकती इससे उसकी छाँह भी घनी होती है। जाड़े में गरम होती है। बरसात में भी यह जल को बहुत रोकता है। अतः ये सब गुण वट को छोड़कर अन्य वृक्षों में नहीं पाये जाते।

मानहुँ तिमिर अरुनमय रासी। बिरची बिधि सँकेलि सुषमासी॥
ए तरु सरित समीप गोसाईं। रघुबर परनकुटी जहँ छाईं॥३॥

अर्थ : मानों ब्रह्मदेव ने अन्धकार और अरुणिमा की राशि को इकट्ठा करके परम शोभा सी रच दी है। ये पेड़ हे गोसाईं! नदी के तीर पर हैं। जहाँ रामजी ने पर्णकुटी बना रक्खी है।

व्याख्या : अब पहिले जो कह आये हैं कि देखि मन मोहा उसी का कारण कहते हैं कि वटवृक्ष में मानो परम शोभा सी छायी हुई है। ऐसा जान पड़ता है कि अन्धकार की राशि और अरुण राशि को मिलाकर इसे ब्रह्मदेव ने बनाया है। अन्धकार और अरुणिमा को लेकर कुछ रचना करना मनुष्य द्वारा साध्य नहीं है। इसलिए कहते हैं कि मानो ब्रह्मदेव ने बना रक्खा है। नील सघन पल्लव मानो अन्धकार है और लाल लाल फूल मानो अरुणिमा है।

ये पेड़ मन्दाकिनी के तट पर हैं। सरकारी पर्णकुटी के आगे हैं। केवट कहता है कि मैंने कहा था : जेहि बन जाइ रहब रघुराई। पर्णकुटी मैं करब सुहाई। सो मुझे यमुना पार से ही लौटा दिया है। कला विधान से मालूम होता है कि स्वयं ही बनाया है।

तुलसी तरुवर बिबिध सुहाए। कहुँ कहुँ सिय कहुँ लखन लगाए॥
बट छायाँ बेदिका बनाई। सिय निज पानि सरोज सुहाई॥४॥

अर्थ : अनेक प्रकार के तुलसी के सुन्दर सुन्दर पेड़ कहीं कहीं सीताजी ने

कहीं कहीं लक्ष्मणजी ने लगा रक्खा है। वट की छाया में वेदिका : चबूतरा बना हुआ है। उसे सीताजी ने अपने कर कमलों से बनाया है।

व्याख्या : निषादराज सब बातों की खबर दिन रात लिया करते थे। छोटी सी छोटी बातों का उन्हें पता है। कहते हैं कि बहुत से तुलसी के पेड़ वहाँ लगे हुए हैं। उनमें से किसी किसी को लक्ष्मणजी किसी किसी को सीताजी ने लगा रक्खा है। भाव यह कि तुलसी बहुत पवित्र है और रामजी को प्रिय है। यथा : रामहि प्रिय पावन तुलसी सी। पूजा के भी बड़ी उपयोगी है। स्वास्थ्य के लिए भी परम हितकर है। अतः कोई घर तुलसी से रहित न होना चाहिए।

वट की छाया में जो वेदिका बनी है उसे सीताजी ने अपने हाथ से बनाया है। भाव यह : मृदु मूरति सुकुमार सुभाऊ होने पर भी लक्ष्मणजी तथा परम सुकुमारी जनक दुलारी सीताजी गृहस्थी के सब कार्य सानन्द अपने हाथों कर रही हैं।

दो. जहाँ बैठि मुनिगन सहित, नित सिय रामु सुजान।
सुनहिं कथा इतिहास सब, आगम निगम पुरान ॥२३७॥

अर्थ : जहाँ मुनि समाज के साथ बैठकर सुजान सीता रामजी कथा इतिहास शास्त्र वेद और पुराण सुना करते हैं।

व्याख्या : वह वेदिका भी छोटी सी नहीं है जिसे सीताजी ने बनाया है। उस पर मुनियों की सभा लगती है। सीताजी और रामजी बड़े सुजान हैं। कथा सुनने के बड़े प्रेमी हैं। सब जानने पर भी बार बार सुनते हैं। यथा : वेद पुरान वसिष्ठ बखानहिं। सुनहिं राम जद्यपि सब जानहिं। भाव यह कि इन ग्रन्थों का श्रवण महापुण्य जनक है। कल्याणकांक्षी को इनका श्रवण नित्य करना चाहिए। मुनिगण मिलन विसेष वन सबहि भाँति हित मोर : का साफल्य दिखला रहे हैं। बचपन से सरकार श्रवण के बड़े रसिक हैं। यथा : बेद पुरान सुनहि मन लाई। आपु कहैं अनुजन्ह समुझाई। काष्ठ जिह्वा स्वामीजी कहते हैं : श्रवनहि सब भावन की जरिहैं। बिना सुने कोउ कैसे जनिहैं बिनु जाने कोउ का करिहैं।

सखा बचन सुनि बिटप निहारी। उमगे भरत बिलोचन बारी॥
करत प्रनाम चले दोउ भाई। कहत प्रीति सारद सकुचाई ॥१॥

अर्थ : सखा का वचन सुनकर पेड़ों को देखा तो भरतजी के आँखों में जल उमग चला। दोनों भाई प्रणाम करते हुए चले। उस प्रेम को कहते हुए सरस्वती सङ्कुचित होती हैं।

व्याख्या : राम सैल सोभा निरखि भरत हृदय अति प्रेम। राम शैल की शोभा देखने से ही भरत के हृदय में अत्यन्त प्रेम उमड़ा था। तब से निषादराज ने भुजा उठाकर दिखलाया कि इस वट विटप को देखिये। जिसके नीचे मुनि सभा में सरकार कथा सुनते हैं। सखा के इस वचन को सुनकर विटप को देखा तो

प्रेम और अधिक उमड़ा आँखों में जल उमग आया। सरकार को अति निकट समझकर वहीं से प्रणाम करते चले। जिस भाँति मन्दिर का शिखर दर्शन करते ही परम भक्त लोग साष्टाङ्ग करते चलते हैं। पहिले ही कहा था : सिर भर जाउँ उचित अस मोरा। सो यही सिर के बल चलना है। उतनी दूर से समाज के साथ इस भाँति चलने में बड़ी बाधा थी। पर यहाँ तो निकट भी पहुँच गये और समाज भी साथ नहीं है। अतः साष्टाङ्ग प्रणाम करते चले।

यहाँ प्रीति के वर्णन का प्रसङ्ग आगया। कवियों को शारदा का भरोसा रहता है। उन्हीं की कृपा से वर्णन करते हैं। यथा : भगति हेतु बिधि भवन बिहाई। सुमिरत सारद आवत धाई। सो स्वयं सरस्वती को प्रीति के वर्णन में सङ्कोच है। क्योंकि उस प्रेम तक शारदा की भी गति नहीं है। वर्णन क्या करें ?

हरखहिं निरखि रामपद अंका। मानहु पारस पायेउ रंका॥
रज सिर धरि हियँ नयनन्हि लावहिं। रघुबर मिलन सरिस सुख पावहिं॥२॥

अर्थ : रामजी के चरणों के चिह्न देखकर ऐसे प्रसन्न होते हैं जैसे दरिद्र को पारस मिल गया हो। धूलि को सिर पर धरकर हृदय और आँखों में लगाते हैं। रामजी से मिलने के बराबर सुख पाते हैं।

व्याख्या : यहाँ तक सरकार बराबर आते जाते हैं। दण्डवत् प्रणाम करते समय : ध्वज कुलिश अंकुश कञ्ज के चिह्न विस्पष्ट दिखायी पड़ रहे हैं। रामपद अङ्क पारस है। इसी से अभीष्ट सिद्धि होती है। रामजी मिलते हैं। पारस स्वयं सोना नहीं है। पत्थर है। पर सोना बनाता है। इसलिए उसका आदर सोना से भी अधिक है। गीधराज को दर्शन का बड़ी आर्ति रही। अतः उन्होंने पद अङ्क का ही ध्यान किया। यथा : सुमिरत राम चरन जिन्ह रेखा। अति दरिद्र को सोना की बड़ी चाह है। इसलिए पारस पाने पर उसकी प्रसन्नता का अन्त नहीं है। इसी भाँति चरण चिह्न की प्राप्ति से भरतजी कृतकृत्य हैं।

उस अङ्क के रज को सिर पर धारण करते हैं। प्रिय वस्तु के लिए शरीर में तीन ही स्थान है। सिर हृदय और नयन। अतः उस धूलि को सिर पर रक्खा। जो उंगली लगी रह गयी उसे हृदय में लगाया। फिर भी सूक्ष्म अंश लगा रह गया उसे आँखों में लगा रहे हैं। रामजी मिलते तो आँखों से देखते हृदय से लगाते। सिर से प्रणाम करते। यहाँ भी तीनों अङ्गों को इसी भाँति सुख मिल रहा है। इसीलिए कहते हैं : रघुबर मिलन सरिस सुख पावहिं।

देखि भरत गति अकथ अतीवाँ। प्रेम मगन मृग खग जड़ जीवाँ॥
सखहिं सनेह बिबस मग भूला। कहि सुपंथ सुर बरषहि फूला॥३॥

अर्थ : भरत की अत्यन्त अकथनीय गति देखकर पशु पक्षी जड़ जीव प्रेम में मग्न हो गये। सखा तो प्रेम के विवश होने के कारण रास्ता भूल गया। तब देवताओं ने रास्ता बतलाकर फूल बरसाये।

व्याख्या : भरत दसा तेहि समय जस तस कहि सकहिं न सेषु। कबिहि अगम जिमि ब्रह्म सुख अह मम मलिन जनेषु। मन्दाकिनी के उस पार से ही भरतजी की अकथ दशा थी। इस समय तो अतीव अकथ है। इसका प्रभाव कोल किरात को कौन कहे जड़ जीव पशु पक्षी पर भी पड़ा। वे भी प्रेममग्न हो गये।

सखा निषादराज रास्ता दिखाने लिए साथ थे। पेड़ों को पहिचानते ही ऊँचे पर चढ़े। भलीभाँति मार्ग का निर्णय कर लिया। पर भरतजी का प्रेम देखकर वे भी ऐसे प्रेममग्न हुए कि उन्हें रास्ता भूल गया। बेरास्ते चल पड़े। देवताओं को सेवा करने का अवसर मिल गया। उन लोगों ने सुन्दर रास्ता बतलाया और ऐसी प्रेमावस्था में भरतजी के पूजन की महा महिमा समझकर फूल बरसाया।

निरखि सिद्ध साधक अनुरागे। सहज सनेहु सराहन लागे॥
होत न भूतल भाउ भरत को। अचर सचर चर अचर करत को॥४॥

अर्थ : देखकर सिद्ध और साधक भी अनुराग में आगये। स्वाभाविक स्नेह की सराहना करने लगे। इस भूतल पर यदि भरतजी का अस्तित्व न होता तो जड़ को चेतन और चेतन को जड़ कौन करता ?

व्याख्या : भरत के प्रेम का प्रभाव पशु पक्षी आदि निम्न कोटि के जीवों तक पड़ा और सिद्ध साधक ऐसे उच्चकोटि के जीवों पर भी पड़ा। विराग के बानावाले सिद्ध साधक भी अनुराग में आगये क्योंकि विरागी जिसके अनुरागी होते हैं यथा : जेहि लागि बिरागी अति अनुरागी उन्हीं के ये भी अनुरागी हैं। अतः स्वाभाविक प्रेम की प्रशंसा करने लगे। वैधी भक्ति ऐसी हो नहीं सकती। यह तो स्वाभाविकी भक्ति है।

प्रशंसा करते हुए कहते हैं कि यह सामर्थ्य भरत के ही प्रेम में है जिसके प्रभाव से जड़ तो द्रवीभूत हो जायँ उनमें चेतन के धर्म दृष्टिगोचर होने लगे और चेतन स्तब्ध हो जायँ उनमें जड़ के धर्म लखायी पड़ने लगे। भाव यह कि भरत के कारण जगत् का बड़ा भारी उपकार हुआ और साधुओं के लिए तो आदर्श खड़ा हो गया। यथा :

दो. प्रेमु अमिअ मंदरु बिरहु, भरतु पयोधि गँभीर।
मथि प्रगटेउ सुर साधु हित, कृपासिंधु रघुबीर॥२३८॥

अर्थ : प्रेमरूपी अमृत को विरह रूपी मन्दर से भरत रूपी अथाह समुद्र को मथकर कृपा के समुद्र रामजी ने देवता रूपी साधु के लिए प्रकट किया।

व्याख्या : भरत गम्भीर पयोधि हैं। यथा : कबहुँ कि काँजी सीकरन्हि छीर सिंधु बिनसाइ। पयोधि का मन्थन तो मन्दर से हुआ। पर भरत रूपी गम्भीर पयोधि का मन्थन तो उससे नहीं हो सकता था। इसलिए उनके मन्थन के लिए विरह ही मन्दर हुआ। पयोधि को तो सुरासुर ने मन्थन किया था। परन्तु इस मन्दर के सञ्चालन की शक्ति तो उनमें भी नहीं। अतः सरकार ने स्वयं अपने विरह से

मन्थन किया। भरतजी विचलित हो उठे। भरतहिं बिसरेउ पितु मरन सुनत राम बन गौन। उस पयोधि का मन्थन तो देवताओं के हित के लिए हुआ। पर भरत रूपी पयोधिका मन्थन साधुओं के लिए हुआ। क्योंकि मन्थन से प्रेमामृत प्रकट हुआ जिसके रसास्वादन करनेवाले साधु हैं। इतना बड़ा कष्ट साधुओं के हित के लिए उठाया। अतः कृपासिन्धु कहते हैं।

सखा समेत मनोहर जोटा। लखेउ न लखन सघन बन ओटा ॥
भरत दीख प्रभु आश्रमु पावन। सकल सुमंगल सदन सुहावन ॥१॥

अर्थ : सखा सहित मनोहर जोड़ी को घने वन के आड़ के कारण लक्ष्मणजी ने नहीं लखा। भरतजी ने प्रभु के पावन आश्रम को देखा। जो सब सुमङ्गल का सुन्दर घर था।

व्याख्या : भरत शत्रुघ्न की जोड़ी मनोहर है। यथा : सखि जस रामलखन कर जोटा। तैसइ भूप संग दुइ ढोटा। और सखा के सँग हैं। अतः मिलने की बड़ी उत्कण्ठा होनी चाहिए। परन्तु लक्ष्मणजी ने नहीं लखा। लक्ष्मणजी सरकार का पहरा दिया करते हैं। बड़े सावधान रहते हैं। यथा : कछुक दूरि सजि बान सरासन। जागन लगे बैठि बीरासन। परन्तु बीच में सघन वन था। सघन वन में से बाहर की वस्तु दिखायी पड़ती है। परन्तु बाहर से सघन वन के भीतर कुछ भी नहीं दिखायी पड़ता। अतः सावधान होने पर भी लक्ष्मणजी लख न सके।

परन्तु भरतजी ने प्रभु के आश्रम को देखा जो कि पवित्र भी था। सुमङ्गल भवन भी था और सुन्दर भी था। पवित्र वस्तु इष्ट प्रापक नहीं होता और यदि दोनों बातें हों भी तो वह सुन्दर नहीं होती। प्रभु के आश्रम में तीनों बातें हैं।

करत प्रवेस मिटे दुख दावा। जनु जोगी परमारथु पावा ॥
देखे भरत लखन प्रभु आगें। पूछें बचन कहत अनुरागें ॥२॥

अर्थ : प्रवेश करते ही दुःख दावानल मिट गया। मानो योगी को परमार्थ की प्राप्ति हुई। भरतजी ने देखा कि लक्ष्मणजी सरकार के सामने हैं। पूछने पर अनुराग में पगे हुए कुछ कह रहे हैं।

व्याख्या : भरतजी के हृदय में दुःख का दावानल लगा हुआ है। वह उस आश्रम में प्रवेश करते ही मिट गया। यथा : एहि दुःख दाह दहै दिन छाती। भूख न बासर नींद न राती। इससे उस आश्रम का सुमङ्गल सदन होना दिखलाया। दुःखदाव भी मिटा और परम सुख की प्राप्ति हुई। दोषापनयन कहकर गुणाधान कहते हैं कि मानो योगी ने परमतत्त्व पा लिया। यथा : पावा परमतत्त्व जनु योगी। अमृत लहेउ जनु संतत रोगी। भावार्थ यह कि भरतजी मानो कृतकृत्य हो गये। यह वही समय है। जब सरकार पूछ रहे हैं कि भरतजी कहाँ तक आगये हैं। तुमने पेड़ पर चढ़कर क्या क्या देखा? और लक्ष्मणजी उत्तर दे रहे हैं। प्रसंगप्राप्त बात तो यही है। वाल्मीकीय में लक्ष्मणजी का पेड़ पर चढ़ना और भरतजी की सेना का अवलोकन

लिखा है। ग्रन्थकार कुछ स्पष्ट लिखते नहीं। अतः अनुमान यही होता है कि लक्ष्मणजी के क्रोध की शान्ति के बाद सरकार उसी विषय में कुछ पूछ रहे हैं।

सीस जटा कटि मुनि पट बाँधे। तून कसें कर सर धनु काँधें ॥
वेदी पर मुनि साधु समाजू। सीय सहित राजत रघुराजू ॥३॥

अर्थ : सिर पर जटा बाँधे हुए हैं और कमर में वल्कल बँधा हुआ है। तरकस कसे हुए हैं। हाथ में बाण ओर कन्धे पर धनुष है। वेदी के ऊपर मुनि और साधुओं का समाज है। सीताजी के सहित रामजी सुशोभित हैं।

व्याख्या : लक्ष्मणजो ने बीररस के आवेश में युद्ध को तैयारी की थी अभी तक उसी वेष में हैं। यथा : बाँधि जटा सिर कटि कसि भाथा। साजि सरासन सायक हाथा। भेद इतना ही है कि उस समय सजा हुआ धनुष था। इस समय कन्धे पर लटक रहा है। लक्ष्मणजी वेदी के नीचे हैं। यह वही वेदी है जिसके बारे में निषादराज ने कहा था : बट छाया बेदिका बनाई। सिय निज पानि सरोज सोहांई। जहाँ बैठि मुनि गन सहित नित सिय राम सुजान। सुनहिं कथा इतिहास सब आगम निगम पुरान। सो सरकार भी बैठे हैं सीताजी भी बैठी हैं। मुनि समाज भी जुट गया है। सरकार का दरबार लगा हुआ है। इस मुनि मण्डली में राम जानकी की बड़ी शोभा है। क्योंकि सरकार मुनिवेष में हैं।

बलकल बसन जटिल तनु स्यामा। जिमि मुनिबेष कीन्ह रति कामा ॥
कर [1]कमलनि धनु सायकु फेरत। जिय की जरनि हरत हँसि हेरत ॥४॥

अर्थ : पेड़ों के छाल का कपड़ा है। शरीर श्याम है। मानो काम और रति ने मुनि का वेष बना रक्खा है। करकमलों से धनुष वाण फेरते हैं और सहासावलोकन से जी की जलन का हरण कर रहे हैं।

व्याख्या : पीतरङ्ग के वल्कल धारण करने से : स्याम सरीर सुभाय सुहावन की बड़ी शोभा हो रही है। सरकार का रङ्ग श्याम है। जगदम्बा का वर्ण गौर है। सौन्दर्य की पराकाष्ठा रति और काम में ही माना गया है। अतः कवि उपमा देते हैं कि मानो स्वयं रति और काम ने ही मुनि का वेष धारण कर रक्खा है। रति का वर्ण गौर और काम का श्याम है।

सरकार वीरोचित स्वभावानुकूल अस्त्र-शस्त्र से सदा सावधान रहते हैं। उसे सुधारा करते हैं। अभ्यास के लिए फेरा करते हैं। सो उस समय धनुष वाण फेर रहे हैं और हँसकर देख रहे हैं। उस सहासावलोकन से मानो जिय की जलन को हरण कर रहे हैं। भरतजी ने कहा था : देखे बिनु रघुनाथ पद जिय कै जरनि न जाइ। सो मानो उसी के मिटाने के लिए हँसकर देख रहे हैं।

---

१. यहाँ परिणामालङ्कार है।

दो. लसत मंजु मुनि मंडली, मध्य सीय रघुचंदु ।
ग्यान सभाँ जनु तनु धरे, भगति सच्चिदानंदु ॥२३९॥

अर्थ : सुन्दर मुनिमण्डली के बीच में रामचन्द्र सीताजी के साथ विराजमान हैं। जैसे शरीर धारण किये हुए ज्ञान की सभा में भक्ति और सच्चिदानन्द विराजमान हों।

व्याख्या : ज्ञान प्राचुर्य के कारण मुनि मण्डली की उपमा ज्ञानसभा से दी गयी। अर्थात् साक्षात् विवेक विराग शम दम मानो मूर्तिमान बैठे हैं और ज्ञान की शोभा बिना भक्ति के होती नहीं। यथा : सोह न राम प्रेम बिनु ग्यानू। करनधार बिनु जिमि जल जानू। जोग कुजोग ग्यान अग्यानू। जहँ नहिं राम प्रेम परधानू। सो सच्चिदानन्द राम हैं। यथा : राम सच्चिदानंद दिनेसा। और भक्ति उनको प्रिया हैं। यथा : पुनि रघुबीरहिं भगति पियारी। अतः सीय रघुचंद की उपमा भक्ति सच्चिदानन्द से दी गयी। वे भी शरीर धारण किये हुए विराजमान हैं।

सानुज सखा समेत मगन मन। बिसरे हरष सोक सुख दुख गन ॥
पाहि नाथ कहि पाहि गोसाईं। भूतल परे लकुट की नाईं ॥१॥

अर्थ : भरतजी भाई और सखा सहित मगन मन हो गये। हर्ष शोक सुख दुःख सब भूल गये। हे नाथ! रक्षा करो। हे गोसाईं! रक्षा करो ऐसा कहकर दण्ड की भाँति पृथ्वी पर गिर गये।

व्याख्या : भरतजी शत्रुघ्न और निषादराज सबका मन मग्न हो गया। अर्थात् अपना कार्य करने में असमर्थ हो गया। अतः हर्ष शोक सुख दुःख का स्मरण न रह गया। अनुभूतविषयासम्प्रमोषः स्मृतिः। सो स्मृति नहीं रह गयी। पहिले हर्ष हुआ था। यथा : हरषहिं निरखि रामपद अंका। सुख यथा : रघुबर मिलन सरिस सुख पावहिं। दुःख और शोक तो पहिले हो मिट गया था। यथा : करत प्रवेस मिटे दुखं दावा। जनु जोगी परमारथ पावा। इस समय तो स्मरण भी नहीं रह गया कि कभी शोक दुःखादि थे।

भूयोऽर्थ में दो बार पाहि कहा। यथा : त्राहि त्राहि आरत हरन। अथवा : प्रभु पितु बचन मोह बस बेली। आएउ इहाँ समाज सकेली। अतः दोनों अपराध की क्षमा के लिए दो बार पाहि कहा। भरतजी दुर्बल हो रहे हैं। अतः लकुटी की नाईं भूमि पर गिरना कहा। मनु शतरूपा हृष्टपुष्ट थे। अतः उनके लिए लिखा : परे दंड इव गहि पद पानी।

बचन सप्रेम लखन पहिचाने। करत प्रनामु भरत जियँ जाने ॥
बंधु सनेह सरस एहि ओरा। उत साहिब सेवा बस जोरा ॥२॥

अर्थ : लक्ष्मणजी ने प्रेम सहित वचन पहिचाने और ऐसा जी में जाना कि

भरतजी प्रणाम कर रहे हैं। इधर तो भाई का सरस प्रेम और उधर स्वामी की सेवा की प्रबलता।

व्याख्या : भरतजी के सप्रेम वचन को लक्ष्मण ने पहिचाना और किसी ने नहीं। क्योंकि सरकार की सेवा में सावधान हैं। इतना ही नहीं यह भी जान लिया कि भरतजी प्रणाम कर रहे हैं। भाई के सरस प्रेम ने इस ओर मन को खैंचा : दौड़कर भाई से लिपट जाने को जी चाहा और उधर सरकार पूछते थे। लखनलाल उत्तर दे रहे थे। अतः स्वामी की सेवा में लगे थे। यथा : देखे भरत लखन प्रभु आगे। पूछे बचन कहत अनुरागे। गोस्वामीजी दोनों ओर इत लिखते हैं। यथा : इत पितु बच इत बंधु सकोचू।

मिलि न जाइ नहिं गुदरत बनई। सुकबि लखन मन की गति भनई ॥
रहे राखि सेवा पर भारू। चढ़ी चंग जनु खैंच खेलारू ॥३॥

अर्थ : न मिलते बनता है और न छोड़ते ही बनता है। सुकवि लक्ष्मण के चित्त की गति का वर्णन करता है। सेवा पर ही भार रख छोड़ा। जैसे पतङ्ग उड़ानेवाला चढ़ी हुई पतङ्ग को खींचता हो।

व्याख्या : सेवा में रहने से मिलि न जाइ और भाई के सरस प्रेम के खैंच से मन उस ओर से इधर भी नहीं आता। इसलिए कहते हैं : नहिं गुदरत बनई। छोड़ते भी नहीं बनता। लखनलाल दोनों ओर की खैंचतान में पड़ गये। इस समय लखनलाल के मन की गति का वर्णन करना सुकवि का काम है सो सुकवि कहता है।

चङ्ग सीधे ऊपर नहीं जाती हवा के रुख पर जाती है। यहाँ चङ्ग उपमान है। मन उपमेय है। मन भरतजी की ओर खिंचा। इसी को चङ्ग का चढ़ना कहा। लक्ष्मणजी की उपमा खेलाड़ी : पतङ्गबाज से है सो खेलाड़ी ने पतङ्ग को हाथ से जाने न दिया। परेते पर बोझा दिया। यहाँ सेवा परेता है। उसी में लखनलाल की मनोवृत्ति रूप नख लिपटा हुआ है।

कहत सप्रेम नाइ महि माथा। भरत प्रनाम करत रघुनाथा ॥
उठे रामु सुनि प्रेम अधीरा। कहुँ पट कहुँ निषंग धनु तीरा ॥४॥

अर्थ : लक्ष्मण ने प्रेम सहित पृथ्वी पर सिर नवाकर कहा कि हे रघुनाथ ! भरतजी प्रणाम कर रहे हैं। रामचन्द्र इस बात को सुनते ही प्रेम से अधीर हो उठे। कपड़ा कहीं है। निषंग कहीं है। धनुष कहीं है और तीर कहीं है।

व्याख्या : बात करते करते प्रणाम का भाव यही कि अत्यन्त आवश्यकीय बात इस बीच में आन पड़ी। यदि सादा प्रणाम होता तो बात के सिलसिले में ही समझा जाता। अतः लक्ष्मणजी ने पृथ्वी पर सिर रखकर प्रणाम किया। भरतजी ने नाथ कहकर पाहि कहा था। अतः लक्ष्मणजी रघुनाथ सम्बोधन करके कहते हैं कि आप रघुकुल के नाथ हैं। रघुकुल के मुख्य भरत प्रणाम करते हैं।

लक्ष्मणजी का वचन सुनते ही सरकार उठे। उठते ही सबने देखा तीर की

भाँति भरत के पास पहुँचते कोई देख न पाया। अतः गोसाईंजी ने सरकार का चलना नहीं लिखा। उठने में अधीरता दिखलाते हैं। खबर नहीं कि उत्तरीय कहाँ गिरा। हाथ से धनु सायक फेर रहे थे सो धनुष कहाँ गिरा। निषङ्ग और तीर कहाँ गिरे इसका ध्यान न रहा। रामजी को अधीर करनेवाला केवल प्रेम है।

दो. बरबस लिए उठाइ उर, लाये कृपानिधान।
भरत राम की मिलन लखि, बिसरे सबहिं अपान ॥२४०॥

अर्थ : कृपा निधान रामचन्द्र ने भरत को जोर से उठाकर छाती से लगाया। भरत और रामजी के मिलने को देखकर सब अपनी सुधि भूल गये।

व्याख्या : प्रेम में जो मग्न होता है उसे उठना अच्छा नहीं लगता। यथा : प्रेम मगन तेहि उठब न भावा। अतः कहते हैं कि बल पूर्वक सरकार ने उठा लिया। स्वयं प्रेम में अधीर हैं। इसलिए हृदय से लगा लिया। भरतजी ने यह भी अनुमान किया था : जौ सनमानहि सेवक मानी। सो हृदय से लगाकर सम्मान किया। अतः प्रभु को कृपानिधान कह रहे हैं। सो मिलते समय ऐसी प्रीति बढ़ी कि देखनेवाले ऐसे मग्न हुए कि उन्हें अपनी सुधि न रही।

मिलनि प्रीति किमि जाइ बखानी। कबिकुल अगम करम मन बानी॥
परम प्रेम पूरन दोउ भाई। मन बुधि चित अहमिति बिसराई ॥१॥

अर्थ : मिलने का प्रेम कैसे वर्णन किया जाय। क्योंकि कवियों के लिए मनसा वाचा कर्मणा अगम हैं। मन बुद्धि चित्त अहन्ता को भूलकर दोनों भाई परम प्रेम से परिपूर्ण हो रहे हैं।

व्याख्या : रामजी की प्रीति भरत के प्रति जैसी थी उसे वर्णन भी किया यथा : रामहि बंधु सोच दिन राती। अंडन्हि कमठ हृदउ जेहि भाँती था। भरत की प्रीति रामजी के प्रति जैसी थी सो भी कहा। यथा : राम चरन पंकज मन बासू। लुबुध मधुप इव तजै न पासू। परन्तु कवि कहते हैं कि मिलने की प्रीति कैसे बखानी जा सकती है जब कि मार्ग में चलने की प्रीति ही कविकुल के लिए अगम थी। यथा : कबिहि अगम जिमि ब्रह्म सुख अहमम मलिन जनेषु। वहाँ तो अगमता की उपमा दी थी। पर यहाँ तो सीधे कह रहे हैं कि मनसा वाचा कर्मणा अगम है।

परम प्रेम में दोनों भाई ऐसे डूबाडूब हैं कि अन्तःकरण चतुष्टय का पता नहीं। प्रेम समाधि लग गयी। दर्शन करने से ही भरतजा को हर्ष शोक सुख दुःख गण भूल गया था। इस समय हर्ष शोक सुख दुःख गण के अनुभव के जो करण हैं : मन बुद्धि और चित्त उनकी भी विस्मृति हो गयी। भाव यह कि स्वयं मिलनेवालों को ही अपनी दशा का पता नहीं तो दूसरे कैसे जानें। मन में प्रेम के भर जाने से उसकी गति रुद्ध हो गयी। यदा : प्रेम भरा मन निज गति छूँछा।

कहहु सुप्रेम प्रगट को करई। केहि छायाँ कबि मति अनुसरई॥
कबिहि अरथ आखर बलु साँचा। अनुहरि ताल गतिहि नटु नाँचा ॥२॥

अर्थ : कहिये तो उस प्रेम को कौन प्रकट करे। किस छाया का कवि की मति अनुसरण करे। कवि को तो अक्षर और अर्थ का सच्चा बल होता है ' जैसे नट ताल की गति के अनुसार नाचता है।

व्याख्या : जिस प्रेम में मन बुद्धि चित्त अहन्ता का विस्मरण हो गया वह कैसे प्रकट किया जा सकता है ? अन्तःकरण ही अन्तः के प्रेम को प्रकट करते हैं। अन्तःकरण की गति की छाया का अनुसरण करके ही कवि वर्णन करते हैं। यहाँ अन्तःकरण में गति ही नहीं। तब किस छाया का कवि अनुसरण करे। कवि को अक्षर और अर्थ का सच्चा बल है। शब्द और अर्थ ही काव्य का शरीर है। वह अक्षर और अर्थ का ऐसा प्रयोग करता है कि उसे सरस्वती का नृत्य कहा जाता है। कुछ भाव अक्षर के प्रयोग से ही प्रकट हो जाते हैं। कुछ अर्थ के बल से प्रकट होते हैं। परन्तु वह तभी सम्भव है जब मन बुद्धि चित्त अहङ्कार में गति हो। बिना गति के ताल कैसे दिया जायगा। तालः कालक्रिया मानम् और बिना ताल के नाचनेवाला कैसे नृत्य करे। इस भाँति कविकुल के लिए कर्म मन वाणी से उस प्रीति को अगम बतलाया।

अगम सनेह भरत रघुबर को। जहँ न जाइ मनु बिधि हरि हर को ।।
सो मैं कुमति कहौं केहि भाँती। बाज सुराग कि गाँडर ताँती ।।३।।

अर्थ : भरत और रामजी का स्नेह दुर्गम है। जहाँ ब्रह्मा विष्णु और रुद्र का भी मन नहीं जाता। उस प्रेम को मुझ सा कुबुद्धि कैसे कह सकता है। क्या भेंड की ताँत से अच्छा राग बज सकता है।

व्याख्या : अब मन से अगम कह रहे हैं कि बिधि हरिहर के मन के लिए अगम है। कवि तो मनुष्य है। उसकी क्या गिनती है। अहङ्कार शिव बुद्धि अज मनराशि चित्त महान। यहाँ मन बुधि चित्त अहमिति का ही विस्मरण है और विधि हरिहर उन्हीं के अधिष्ठाता हैं। अतः उनकी गति नहीं है।

विधि हरिहर सुमतियों के शिरोमणि हैं और मैं तो कुमति हूँ। जब ऐसों की पहुँच नहीं तो मेरी पहुँच कहाँ तक हो सकती है। भेंड़ की ताँत : आँत के नसों से सुराग नहीं बज सकता। सारङ्गी आदि में बूढ़ी भैंस आदि की आँत की नस का प्रयोग होता है तब अच्छा राग बजता है। भेंड़ की आँत छोटी होती है और उसमें लचक नहीं होती। अर्थात् मैं कुमति होकर उसे कैसे कह सकता हूँ। इस भाँति वाणी से अगम कहा। सङ्गीत में तीन की आवश्यकता होती है। गान ताल और नृत्य की। इस भाँति कवित्व में भी तीन की आवश्यकता होती है। शिक्षा जानकारी और शक्ति की। यहाँ विषम अगम्य शक्ति दुर्बल और कुमति गाँडर ताँती है। सुमति वृद्धा भैंसे की ताँती है। गाँडर ताँती से सुराग ही नहीं बजता और जिस गान के ताल का थाह नहीं वह गाँडर ताँती से कैसे बजेगा। गाँडर भेंड़ को कहते हैं। इसीलिए उसके चरवाहे को गँडेरिया कहा जाता है।

मिलनि बिलोकि भरत रघुबर की । सुरगन सभय धकधकी धरकी ॥
समुझाये सुरगुरु जड़ जागे । बरषि प्रसून प्रसंसन लागे ॥४॥

अर्थ : भरत और रघुवर का मिलन देखकर देवताओं की तो डर से छाती धड़कने लगी । जब वृहस्पतिजी ने समझाया तब उनकी जड़ता गयी । फूलों की वर्षा करके प्रशंसा करने लगे ।

व्याख्या : इतने बड़े प्रेम को देखकर देवताओं का कलेजा हिलने लगा कि यह तो वही बात हुई जिसको हमलोग डरते थे । राम सँकोची प्रेमबस भरत सुप्रेम पयोधि । बनी बात बिगरन चहति करिअ जतनु जल सोधि । भरतजी निश्चय लौटा ले जावेंगे और रामजी लौट जायँगे । भरत का अनुरोध कभी व्यर्थ नहीं जा सकता । हम कहते रहे : करिअ प्रभु सोई । रामहि भरतहि भेंट न होई । पर गुरुजी ने नहीं माना । अब तो भेंट हो गयी । अब क्या उपाय है ?

गुरुजी ने समझाया कि रामजी के अनुरोध को भरत ही कैसे टालेंगे । इस समय भक्त और भगवान् का सम्मिलन हो रहा है । यही पूजन का समय है । तुम लोग क्या सोच रहे हो ? तब देवताओं की जड़ता गयी और पुष्पवृष्टि तथा स्तुति करने लगे ।

दो. मिलि सप्रेम रिपुसूदनहि, केवटु भेंटेउ राम ।
भूरि भायँ भेंटे भरत, लछिमन करत प्रनाम ॥२४१॥

अर्थ : प्रेम के साथ शत्रुघ्न से मिलकर फिर रामजी केवट से मिले । लक्ष्मण को प्रणाम करते देखकर भरतजी बड़े प्रेम के साथ उनसे मिले ।

व्याख्या : भरतजी के बाद सरकार शत्रुघ्नजी से मिले । तत्पश्चात् केवट से मिले । जब सरकार भरतजी से मिल चुके तब लक्ष्मणजी को प्रणाम करने का अवसर मिला । भरतजो लक्ष्मण से बड़े प्रेम के साथ मिले । तब तक सरकार केवट से मिले । लक्ष्मणजी की भी वही दशा है जो भरतजी की थी । ये भी उठना नहीं चाहते । अतः भरतजी का मिलना कहते हैं ।

भेंटेउ लखन ललकि लघु भाई । बहुरि निषादु लीन्ह उर लाई ॥
पुनि मुनिगन दुहुँ भाइन्ह बंदे । अभिमत आसिष पाइ अनंदे ॥१॥

अर्थ : तब फिर लक्ष्मणजी उमगकर छोटे भाई से मिले । फिर निषाद को छाती से लगा लिया । फिर दोनों भाइयों ने मुनियों की वन्दना की और ईप्सित आशीर्वाद पाकर आनन्दित हुए ।

व्याख्या : भरतजी से छूटते ही लक्ष्मणजी शत्रुघ्नजो से लिपट गये । प्रणाम करने तक का अवसर नहीं दिया । इतनी उत्सुकता ललकि शब्द के द्योतित होती है । इधर रामजी केवट से मिल चुके तब से लक्ष्मणजो ने उसे हृदय से लगा लिया । जब तक रामजी और भरतजी का मिलन हुआ तब तक लोग स्तब्ध होकर खड़े

रहे। फिर रामजी का और केवट मिलन तथा भरत लक्ष्मण मिलन एक काल में हुआ। तत्पश्चात् लक्ष्मणजी ने केवट को हृदय से लगाया।

यह मिलन वेदी के बाहर हुआ। अब वहाँ से वेदी के पास लौटे तो देखा कि मुनि मण्डली खड़ी प्रेम मिलन देख रही है। अतः मुनिगण को दोनों भाई भरत शत्रुघ्न ने प्रणाम किया। भगवद्भक्तिरस्तु यही अभिमत आशीर्वाद है। इस आशीर्वाद से दोनों भाइयों को बड़ा आनन्द हुआ। क्योंकि मुनियों का अशीर्वाद है। निष्फल नहीं जा सकता।

सानुज भरत उमगि अनुरागा। धरि सिर सिय पद पदुम परागा ॥
पुनि पुनि करत प्रनाम उठाए। सिर कर कमल परसि बैठाए ॥२॥

अर्थ : फिर भरतजी छोटे भाई के साथ उमगकर सीताजी के चरणों की धूलि को माथे चढ़ाकर बार बार प्रणाम करने लगे। सीताजी ने उनके मस्तक को अपने कर कमल से स्पर्श करके उन्हें उठाया और बिठला दिया।

व्याख्या : सरकार तो दौड़ पड़े। लक्ष्मणजी भी साथ ही गये। पर सीताजी जहाँ की तहाँ रह गयीं। अतः वहाँ पहुँचने पर भरतजी ने पग धूलि ली। भगवती की चरण धूलि कहीं नहीं मिली थी। केवल : कनकबिंदु दुइ चारिक देखे। राखे सीस सीयसम लेखे। सरकार की चरण धूलि अपेक्षाकृत सुलभ है। पर भगवती की चरण धूलि महा दुर्लभ है। स्त्रियों के चरण स्पर्श का अधिकार भारतवर्ष में अतिविरल है।

भगवती को बारम्बार भरतजी प्रणाम कर रहे हैं। क्योंकि इनके अनुग्रह पर सरकार का अनुग्रह अवलम्बित है : जब से यह भाव देश से उठ गया तब से घर में फूट होने लगी। भगवती ने हाथ के इशारे से उठाया। सिर का स्पर्श कर कमल से किया। यह सौभाग्य भरतजी का ही हुआ।

सीयँ असीस दीन्ह मन माहीं। मगन सनेह देह सुधि नाहीं ॥
सब बिधि सानुकूल लखि सीता। भे निसोच डर अपडर बीता ॥३॥

अर्थ : सीताजी ने मन ही मन में आशीर्वाद दिया। वे स्नेह में मग्न थीं। उन्हें देह की सुधबुध नहीं थी। सब प्रकार से सीताजी को सानुकूल देखकर भरतजी सोच रहित हो गये। निर्मूल भय जाता रहा।

व्याख्या : सीताजी आशीर्वाद देना चाहती हैं। परन्तु स्नेहाधिक्य से वाणी काम नहीं कर रही है। अतः मन में ही आशीर्वाद दिया। दोनों भाई परम प्रेम में पूर्ण थे। भगवती भी परम प्रेम में पूर्ण हैं। इन्हें भी देह की सुधि नहीं है। भरतजी ने लख लिया। सिर के कर कमल द्वारा स्पर्श से जान लिया कि सीताजी सभी प्रकार से सानुकूल हैं। भरतजी को भरोसा भी ऐसा ही था। अवध की सभा में कहा भी था : परिहरि रामुसीय जगमाँही। कोउ नहिं कहिहि मोर मत नाँहीं। फिर भी मन में डर होता था कि कदाचित् दुःखी हों। क्योंकि दुःखी होने के लिए

यथेष्ट कारण है। सो अब मालूम हुआ कि वह डर निर्मूल था। माता की पूरी प्रसन्नता है।

कोउ किछु कहइ न कोउ किछु पूँछा। प्रेम भरा मन निज गति छूँछा॥
तेहि अवसर केवटु धीरजु धरि। जोरि पानि बिनवत प्रनामु करि॥४॥

अर्थ : उस समय न किसी ने कुछ कहा न किसी ने कुछ पूछा। मन प्रेम से भर गया था। अतः अपनी स्वाभाविक गति से रीता था। उस अवसर केवट ने धैर्य धारण करके प्रणाम पूर्वक करबद्ध प्रार्थना की।

व्याख्या : इतने दिन के बाद भेंट हो रही है। कुशल मङ्गल पूछना चाहिए। परिस्थिति में इतना बड़ा परिवर्तन हुआ है कि उस विषय की चर्चा होना प्राप्त है। सो कोई कुछ बोलता नहीं। सब व्यवहार का कारण मन की हलचल है। सो मन में प्रेम भरा है। अतः वह स्थिर हो रहा है। फिर पूछने या कहने की प्रक्रिया हो तो कैसे हो : बड़ी सावधानी रक्खी गयी है कि चक्रवर्तीजी के देहावसान का समाचार रामजी को गुरुजी के अनुपस्थिति में न लगने पावे। नहीं तो उन्हें सँभालेगा कौन ?

केवट ने धैर्य धारण किया : डूबती हुई नाव के समय धैर्य धारण करने का उसे अभ्यास है। कुशल कुछ कहने लायक नहीं। अयोध्या का हाल गुरुजी के मुख से ही कहा जाना चाहिए। किसे साहस है कि चक्रवर्तीजी का मरण सुनाये और किसे सामर्थ्य है कि रामजी को उस समय सँभाले। अतः पहिले इनकी भेंट गुरुजी से होनी चाहिए। अतः प्रणाम करके विनय करता है।

दो. नाथ साथ मुनिनाथ के, मातु सकल पुर लोग।
सेवक सेनप सचिव सब, आए बिकल बियोग॥२४२॥

अर्थ : हे नाथ ! मुनिनाथ के साथ सब माताएँ, नगर निवासी, सेवक, सैनिक और मन्त्री सब लोग वियोग से व्याकुल आये हैं।

व्याख्या : निषादराज का भाव यह कि भरतजी तो सानुज मेरे साथ चले आये। उधर गुरुजी के साथ माताएँ और सब प्रजा है। इतना ही नहीं मन्त्री लोग सेनापति लोग आये हैं। कारण यह है कि सब सरकार के वियोग से विकल हैं। यथा : सहि न सके रघुवर बिरहागी। चले लोग सब ब्याकुल भागी। इस तरह से निषादराज कह रहे हैं। जिसमें चक्रवर्तीजी के विषय में प्रश्न ही न उठे। समझ लें कि महाराज वहाँ हैं ही। सबके आने में कोई हानि नहीं।

सीलसिंधु सुनि गुर आगवनू। सिय समीप राखे रिपुदमनू॥
चले सबेग रामु तेहि काला। धीर धरम धुर दीनदयाला॥१॥

अर्थ : शीलसिन्धु रामजी ने गुरुजी का आगमन सुनकर सीताजी के पास शत्रुघ्नजी को रक्खा। धैर्य और धर्म के धुरन्धर दीनदयाल उस समय वेग से चले।

व्याख्या : सदाचार के समुद्र हैं। जिस गुरुजी के कहने से पिता वचन त्याग सकते हैं यथा : अवसि फिरिहि गुरु आयसु मानी : उस गुरुजी का आगमन सुनकर क्षण भर भी नहीं ठहर सकते। निषादराज ने तो माताओं का भी आगमन कहा। पर सबसे अधिक प्रभाव रामजी पर गुरु के आगमन का पड़ा। सीताजी को साथ ले जाने से फिर वहीं ठहरना पड़ेगा और यहाँ ठहरना ठीक नहीं। अतः सीताजी की रक्षा के लिए शत्रुघ्नजी को छोड़ दिया। लक्ष्मणजी का भी जाना प्राप्त था। कुलवधू अरक्षित किसी भाँति नहीं छोड़ी जा सकती।

सरकार मत्तमंजु कुंजर वर गामी हैं। पर उस समय वेग से चले। गुरुजी के अगवानी की त्वरा है। इस भाँति और किसी स्थान पर चलना नहीं पाया जाता। गुरुजी घर पर आये तो वहाँ भी सरकार ने अगवानी किया। गुरु आगमन सुनत रघुनाथा। द्वार आइ पद नायेउ माथा। यहाँ तो गुरुजी अयोध्या से चलकर आ रहे हैं। अतः अधिक आगे होकर लेना चाहिए। धीर हैं। पण्डित हैं। धर्म के धुरा के वहन करनेवाले हैं। दीनों के ऊपर दया करनेवाले हैं। बड़ों का संम्मान करेंगे। वियोग से विकल लोगों की आर्त्ति का हरण करेंगे।

गुरहिं देखि सानुज अनुरागे। दंड प्रनाम करन प्रभु लागे॥
मुनिवर धाइ लिए उर लाई। प्रेम उमगि भेंटे दोउ भाई॥२॥

अर्थ : गुरुजी को देखकर भाई के साथ अनुराग में आगये। प्रभु दण्ड प्रणाम करने लगे। मुनिवर ने दौड़कर उन्हें छाती से लगा लिया और प्रेम में उमगकर दोनों भाइयों से मिले।

व्याख्या : सरकार का आना सुनकर गुरुजी को आगे करके मिलने के लिए सब लोग इकट्ठे हो गये। जहाँ से गुरुजी पर दृष्टि पड़ी वहीं से सरकार ने दण्ड प्रणाम साष्टाङ्ग दण्डवत् आरम्भ किया। क्योंकि गुरुजी के चरणों में अटूट प्रेम है।

सरकार को साष्टाङ्ग करते हुए आते देखकर गुरुजी दौड़ पड़े कि अब एक दण्डवत् भी अधिक न हो। गुरुजी प्रेम से उमगकर दोनों भाइयों से मिले। भावार्थ यह कि दोनों भाई साष्टाङ्ग प्रणाम करते आ रहे थे।

प्रेम पुलकि केवट कहि नामू। कीन्ह दूरि ते दंड प्रनामू॥
राम सखा रिषँ बरबस भेंटा। जिमि महि लुठत सनेह समेटा॥३॥

अर्थ : फिर केवट ने प्रेम से पुलकित हो अपना नाम कहकर दूर से प्रणाम किया। ऋषिजी राम सखा से जबरदस्ती मिले। मानो जमीन पर गिरते हुए घी प्रेम को समेट लिया।

व्याख्या : सरकार के साथ आया है और तदीय है। सरकार दण्डवत् करते हैं तो निषादराज भी दण्डवत् करता है। गुरुजी को देखता है कि प्रेम के उमंग में हैं कहीं मुझे छू न लें। अतः दूर से दण्डवत् करता है। अपना नाम कहता है। यह

नियम हाथ लगा कि अत्यन्त प्रेम में स्पृश्यास्पृश्य का विचार आर्यसन्तान न करे और अस्पृश्य जाति उनको धर्मरक्षा के लिए स्वयं दूर रहें।

मुनिजी ने केवट को नहीं भेंटा रामसखा को भेंटा। रामसखित्व के सामने जाति का विचार कुछ नहीं। वह मिलना नहीं चाहता था। ऋषिजी जबरदस्ती मिले। घी का घड़ा तो लुढ़कना चाहता है पर सावधान पुरुष गिरते हुए घी को समेट लेता है गिरने नहीं देता। इसी भाँति मुनिजी स्नेह : प्रेम का पृथ्वी पर लुढ़कना न देख सके। निषादराज के मिलने में मुनिजी ने बल और त्वरा दोनों से काम लिया। यहाँ स्नेह शब्द में श्लेष है। स्नेह प्रेम घी तेल आदि का वाचक है।

रघुपति भगति सुमंगल मूला। नभ सराहि सुर बरसहिं फूला॥
एहि सम निपट नीच कोउ नाँहीं। बड़ बसिष्ठ सम को जग माँहीं॥४॥

अर्थ : आकाश में देवता लोग : रघुपति भक्ति सुमंगल मूल हैं। ऐसी प्रशंसा करके फूल की वर्षा कर रहे हैं। कहते हैं : इसके ऐसा एक बारगी नीच कोई नहीं और वसिष्ठ से बड़ा संसार में कौन है ?

व्याख्या : सकल सुमंगल मूल जग रघुबर चरन सनेहु। इस स्नेह को प्रारब्ध के मिटाने की शक्ति है। भक्ति ने इसे शुद्ध बना दिया। भक्ति की स्तुति देवता कर रहे हैं और पुष्पवृष्टि द्वारा गुणों का पूजन कर रहे हैं।

देवता लोग आश्चर्य कर रहे हैं कि निषाद अत्यन्त नीच जाति है और वसिष्ठजी से बड़ा कोई नहीं है जिन्हें रामजी के गुरु होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। इन्होंने ही विश्वामित्र को क्षत्रिय से ब्राह्मण बनाया। अतः जो वसिष्ठजी करें वही प्रमाण है। वसिष्ठजी ने इसे स्पृश्य बना लिया। रामजी के मिलने पर देवताओं ने आश्चर्य नहीं किया। क्योंकि ये तो सदा सर्वमत सर्वहित हैं। सभी से मिले मिलाये हैं। वसिष्ठजी के मिलने पर बड़ा आश्चर्य है। क्योंकि ये तो कर्मकाण्डी हैं। इन्होंने कर्मकाण्ड का अवहेलन कैसे किया।

दो. जेहि लखि लखनहु ते अधिक, मिले मुदित मुनिराउ।
सो सीतापति भजन को, प्रकट प्रताप प्रभाउ॥२४३॥

अर्थ : जिसे देखकर मुनिराज लक्ष्मणजी से भी अधिक आनन्दित होकर मिले। यह सब सीतापति के भजन का प्रत्यक्ष प्रभाव है।

व्याख्या : वसिष्ठजी लक्ष्मणजी से भी अधिक आनन्दित होकर निषादराज से मिले। स्वयं मुनिनाथ हैं। लक्ष्मणजी मिलना चाहते थे और यह नहीं चाहता था। अतः मुनिजी को बलपूर्वक मिलना पड़ा। भजन सत्कार विशेष के पाने की इच्छा से नहीं किया जाता। पर भजन का प्रभाव ऐसा है कि भक्त का जगत् सत्कार करता है। उसमें भी उद्भवस्थिति संहारकारिणी, क्लेशहारिणी, सर्वश्रेयस्करी सीता के वल्लभ के भजन का प्रभाव क्यों न सकल सुमङ्गल मूल हो।

आरत लोग राम सबु जाना। करुनाकर सुजान भगवाना ॥
जो जेहि भायँ रहा अभिलाखी। तेहि तेहि कै तसि तसि रुचि राखी ॥१॥

अर्थ : करुणा की खानि तथा सुजान भगवान् ने सब लोगों को जाना कि आर्त हो रहे हैं। जो जिस भाव का अभिलाषी रहा उसकी वैसी ही रुचि रक्खी।

व्याख्या : शत्रुघ्नजी से मिलने के बाद और लोगों से मिलने की बारी है और सब लोग मिलने के लिए उत्सुक हैं। सब लोग अपने हृदय में अपना पृथक् पृथक् मनोरथ लिये हैं कि मैं इस भाँति मिलूँगा। भगवान् सुजान हैं। यथा : को जियकै रघुबर बिनु बूझा। करुणाकर हैं। सबको देख रहे हैं कि मिलने के लिए आर्त हैं। अतः जिसे जिस भाव से जिसकी मिलने की अभिलाषा थी उससे उसी भाव से मिले। किसी की रुचि में भेद न पड़ने पाया। मिलने में सबकी रुचि रखते हैं। कोई कृपा कटाक्ष के भूखे थे। कोई चरणरज चाहते थे। कोई गले लगाना चाहते थे। कोई अपने सिर पर सरकार का हाथ चाहते थे। कोई वचनामृत सुनना चाहते थे। सो सबकी अभिलाषा पूर्ण की।

सानुज मिलि पल महुँ सब काहू। कीन्ह दूरि दुख दारुन दाहू ॥
यह बड़ि बात राम कै नाहीं। जिमि घट कोटि एक रबि छाँहीं ॥२॥

अर्थ : एक पल में भाई के सहित सबसे मिलकर दुःख और दारुण दाह को दूर किया। रामजी के लिए यह बड़ी बात नहीं है। जैसे करोड़ों घड़ों में एक सूर्य की छाया पड़ती है।

व्याख्या : यह भगवान् का ऐश्वर्य है कि एक पल में सबसे भाई के साथ मिले। अमित रूप प्रकटे तेहि काला। सो नहीं हुआ। सरकार उसी रूप से लक्ष्मणजी के साथ सबसे मिले। एहि दुख दाह दहै दिन छाती। सो दाह कार्य और दुःख कारण है। मानसिक दुःख दाह का कारण होता है। सो कारण के साथ कार्य को दूर किया।

अब उदाहरण देते हैं कि जैसे भगवान् सूर्य एक ही हैं पर प्रतिबिम्ब द्वारा करोड़ों घट से एक साथ मिलते हैं। उसी भाँति अपनी अघटित घटना पटीयसी माया द्वारा सबसे मिले।

मिलि केवटहि उमगि अनुरागा। पुरजन सकल सराहहिं भागा ॥
देखीं राम दुखित महतारी। जनु सुबेलि अवलीं हिम मारी ॥३॥

अर्थ : सब पुरजन अनुराग से उमगकर केवट से मिलकर भाग्य की सराहना करते हैं। रामजी ने माताओं को दुःखी देखा। जैसे सुन्दर लता की श्रेणी को पाला मार दिया हो।

व्याख्या : सरकार से मिलकर सब केवट से मिलते हैं। गुरुजी का अनुसरण करते हैं। यद्यदाचरति श्रेष्ठः तत्तदेवेतरो जनः। स यत् प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनु-

वर्तते। वास्तविक गुण पूजा के सामने जाति पर ध्यान नहीं दिया जाता। अपने भाग्य की प्रशंसा करते हैं। अथवा केवट के भाग्य की प्रशंसा करते हैं। केवट को सरकार का साथी मानते हैं। यह अयोध्यावासी नहीं है। वनवासी है।

देखी सास आन अनुहारी। यह भाग सीताजी के स्वप्न का ठीक हो रहा है। कौसल्याजी को भरत ने देखा : कनक कलप बर बेलि जनु मानहु हनी तुषार। यही अवस्था सब माताओं की रामजी देख रहे हैं। मानो सुनहली कल्पवल्ली को पाला मार दिया हो। पाला मारते ही वेली झुलस जाती है। सरकार सबसे मिलकर तब माताओं से मिल रहे हैं।

प्रथम राम भेंटी कैकेई। सरल सुभायँ भगति मति भेई ॥
पग पर कीन्ह प्रबोधु बहोरी। काल करम बिधि सिर धरि खोरी ॥४॥

अर्थ : पहिले रामजी कैकेयी से मिले। सरल स्वभाव के साथ और बुद्धि उनकी भक्तिरस से भींगी हुई थी। चरणों पर गिरकर फिर समझाया और दोष का कालकर्म और विधि के सिर पर रक्खा।

व्याख्या : सरकार का यह हाल है : कहैं मोहि मैया कहौं मैं न मैया भरत की बलैया लेहौं भैया तेरी मैया कैकेयी है। सरल सुभाय रघुराय तेहि मातु मानी काय मन बानी हूँ न जानी कै मतेई है। अतः पहिले कैकेयी से सरल स्वभाव तथा भक्ति भरे हुए मिले।

कैकेयी रोने लगी। अतः चरणों को पकड़कर समझाया। भरद्वाजजी ने केवल विधि को दोष दिया था। सरकार ने काल कर्म और विधि को दोष दिया। इन्हीं को कर्म फल प्राप्ति का कारण कहा।

जननी जनि होय दुखी जिय में करनी बिधि की कछू जात न जानी।
सब नाचत कर्म की डोर बँधे अस कोइ नहीं अपने बस प्रानो ॥
मतिहू तसि होत समय जस होत बृथा मन में नर मानत ग्लानी।
सपनो सो सबै अपनो न कछु जिय जानि के हानि न मानत ज्ञानी ॥

दो. भेंटी रघुबर मातु सब, करि प्रबोधु परितोषु।
अंबु ईस आधीन जगु, काहु न देइअ दोषु ॥२४४॥

अर्थ : फिर रामजी प्रबोध और परितोष करके सब माताओं से मिले। बोले : हे अम्ब ! यह जगत् ईश के अधीन है। किसी को दोष नहीं देना चाहिए।

व्याख्या : तत्पश्चात् सब माताओं से मिले। यहाँ स्पष्ट है कि तीनों पट्टमहिषियों के अतिरिक्त जो माताएँ थीं उनसे मिले। सबकी वही दशा है। अतः सबको समझाना बुझाना और परितुष्ट करना पड़ा। उन लोगों ने कैकेयी को दोष दिया। अतः सरकार कहते हैं कि संसार ईश्वर के अधीन नटमर्कट की भाँति नाचता है। परतन्त्र को क्या दोष है ? वह तो प्रेरक की प्रेरणानुसार आचरण करता है। अहङ्कारविमूढात्मा कर्त्ताहमिति मन्यते। अतः किसी को दोष नहीं देना चाहिए।

गुरतिअ पद बंदे दुहुँ भाई। सहित बिप्रतिय जे संग आई ॥
गंग गौरि सम सब सनमानी। देहिं असीस मुदित मृदु बानी ॥१॥

अर्थ : गुरुजी की स्त्री की दोनों भाइयों ने वन्दना की और जो ब्राह्मण की स्त्रियाँ उनके साथ आयी थीं उन सबका गङ्गा और गौरी के समान सम्मान किया और वे प्रसन्न होकर मृदु वाणी से आशीर्वाद देने लगीं।

व्याख्या : अरुन्धती अरु अगिनि समाऊ। रथ चढ़ि चले प्रथम मुनिराऊ। सो भगवती अरुन्धती भी आयी हुई हैं। वे भी रनिवास के साथ हैं। अतः उनके चरणों की भी दोनों भाइयों ने वन्दना की। इनसे मिलना नहीं कहते। केवल चरण वन्दना का अधिकार है। वसिष्ठजी के साथ ब्राह्मण लोग थे। भगवती अरुन्धती के साथ ब्राह्मणियाँ थीं। ब्रह्मकुल शङ्कर रूप हैं। शङ्कर की दो शक्तियाँ उमा और गंगा। अतः उनका सम्मान गंगा और गौरी के समान किया। ब्राह्मणियों के सम्मान में मनुष्य बुद्धि ही नहीं। सभी मङ्गल कार्य में गंगा और गौरी का पूजन किया जाता है। [1]आरम्भ में गौरी का और अन्त में गंगाजी का। सम्मान करने से वे प्रसन्न हो गयीं। मृदुवाणी में आशीर्वाद देने लगीं।

गहि पद लगे सुमित्रा अंका। जनु मेटी संपति अति रंका ॥
पुनि जननी चरनन दोउ भ्राता। परे प्रेम ब्याकुल सब गाता ॥२॥

अर्थ : सुमित्राजी के पावों पड़कर उनके गोद में ऐसे लिपटे जैसे अति दरिद्र को सम्पत्ति मिले। तत्पश्चात् माँ के चरणों में दोनों भाई गिरे। प्रेम से उनके अंग शिथिल थे।

व्याख्या : चरण पकड़ने के बाद दोनों भाई सुमित्राजी के गोद में लिपट गये। छोड़ना नहीं चाहते। जैसे सम्पत्ति पाने पर दरिद्र उससे लिपट जाता है। अलग होना चाहता ही नहीं। सुमित्राजी का सिद्धान्त है : सकल सुकृत कर बड़ फल एहू। सीय रामपद कमल सनेहू। अतः सरकार भी उन्हें उसी भाँति चाहते हैं।

तत्पश्चात् माँ कौसल्या के चरणों में गिरे। प्रेम से अपने को सँभाल नहीं सक रहे हैं। अतः प्रेम से सब शरीर व्याकुल है। अति मात्रा होने से प्रेम में और सुख में भी व्याकुलता होती है।

अति अनुराग अंब उर लाए। नयन सनेह सलिल अन्हवाए ॥
तेहि अवसर कर हरख बिषादू। किमि कबि कहइ मूक जिमि स्वादू ॥३॥

अर्थ : अत्यन्त प्रेम से माँ ने हृदय से लगा लिया। प्रेम के आँसू से नहला

---

१. गनपति गौरि गिरीस मनाई। चले राम तथा : तब गनपति सिव सुमिरि प्रभु नाइ सुरसरिहि माथ।

दिया। उस समय के हर्ष विषाद को कवि कैसे कहें। जैसे गूँगा स्वाद का वर्णन कैसे करे।

व्याख्या : माँ ने कहा था : सुदिन सुघरी तात कब होइहि। जननी जिअत बदन बिधु जोइहिं। सो वह घड़ी आगयी। अति अनुराग से प्रेमाम्बु प्रवाह बह चला। हृदय में लगाये हुए हैं आँखों से आँसू बह रहा है। वह सरकार के ऊपर पड़ रहा है। दोनों भाई भींग गये।

हर्ष मिलने का और विषाद वनवास का। उस समय हर्ष भी अत्यन्त हुआ। साथ ही साथ विषाद भी कम नहीं है। उसे कवि अनुभव करता है। पर कह नहीं सकता। स्वाद का कहना अशक्य है। गुड़ चीनी शहद मिश्री का अन्तर कोई कह नहीं सकता। अनुभव सब करते हैं। सो मूक तो बोलने में ही असमर्थ है। वह स्वाद का वर्णन क्या कर सकता है। कवि हर्ष विषाद के संमिश्रण का कैसे वर्णन करें।

मिलि जननिहि सानुज रघुराऊ। गुरसन कहेउ कि धारिअ पाऊ॥
पुरजन पाइ मुनीस नियोगू। जल थल तकि उतरेउ लोगू॥४॥

अर्थ : भाई के सहित रामजी माँ से मिलने के बाद गुरुजी से कहा कि पधारिये। तब नगर के लोग मुनिजी की आज्ञा पाकर जलयुक्त थल देखकर उतरने लगे।

व्याख्या : उदासीन रूप से रहने का [1]वचन है। इसलिए सरकार प्रजावर्ग के साथ रहना नहीं चाहते। केवल गुरुजी से चलने को कहते हैं। माता के मिलन से मिलन की पूर्णाहुति। किसे ठहरने को कहें। किसे साथ चलने को कहें। इस असामञ्जस्य में केवल गुरुजी से कहा। गुरुजी जैसा उचित समझें करें।

गुरुजी ने चलने के पहिले सबको वहीं ठहरने की आज्ञा दी। लोग जलाशय देख देखकर वहाँ ठहर गये। भरतजी के कहने से लोग नदी के किनारे ठहर गये थे। मालूम नहीं कहाँ निवास करना होगा। अब मालूम हुआ कि यहीं ठहरना है। अतः जल थल देखना पड़ा। नदी के किनारे धूप रहती है। अतः छाया और जल दोनों का सुभीता देखकर लोग उतरे।

दो. महिसुर मंत्री मातु गुर, गने लोग लिए साथ।
पावन आश्रम गवनु किय, भरत लखन रघुनाथ॥२४५॥

अर्थ : ब्राह्मण, मन्त्री, माताएँ और गुरु तथा गिने हुए लोगों को साथ में लिया और भरत लक्ष्मण तथा रामजी पावन आश्रम को गये।

व्याख्या : गुरुजी ने अपने साथ ब्राह्मण, मन्त्री, और माताओं को लिया। कवि भी पद मैत्री से काम लेकर बार बार मकार का प्रयोग करते हैं महिसुर,

———

१. यथा : तापस बेष बिसेष उदासी।

मन्त्री और मातु और कम से कम लोग उनकी सेवा के लिए साथ में लिया और आश्रम की ओर चले। शत्रुघ्नजी पहिले से वहीं हैं। इसलिए भरत, लखन और रघुनाथजी का चलना कहते हैं। गिने हुए लोग को साथ में लेने का भाव यह कि अनगिनती लोगों को वहाँ छोड़ा। अथवा साथ में लेनेवालों को गिन लिया कि इनसे एक भी अधिक जाने न पावें।

सीय आइ मुनिबर पग लागी। उचित असीस लही मन मागी ॥
गुरुपतिनिहि मुनि तियन्ह समेता। मिली पेमु कहि जाइ न जेता ॥१॥

अर्थ : सीताजी आकर वसिष्ठजी के पावों पड़ीं। मन माँगी हुई उचित आशीष प्राप्त हुई। तत्पश्चात् गुरुजी की स्त्री तथा मुनियों की स्त्रियों से मिलीं। वह प्रेम कहा नहीं जाता।

व्याख्या : गुरुजी को आया हुआ देखकर भगवती स्वयं प्रणाम करने गयीं। गुरुजी ने सावित्री भव ऐसा आशीर्वाद दिया। कुल वधुओं के लिए यही उचित आशीर्वाद है और यही सीताजी को ईप्सित था। सीताजी ने चाहा था कि गुरुजी से यही आशीर्वाद मिले और वही मिला। महिसुर मन्त्री और माताएँ गिने गिनाये लोग ही थे। अतः सीताजी अकेले उस समाज में चली गयीं।

तत्पश्चात् अरुन्धतीजी के पास गयीं। उनके साथ मुनिपत्नियाँ थीं। उन लोगों से सीताजी जाकर मिलीं। उनसे मिलने में अकथनीय प्रेम था। सीताजी ठीक क्रम के अनुसार मिल रही हैं। सरकार ने व्युत्क्रम कर दिया। माताओं को अति दुःखी देखकर गुरुतिय वन्दन के पहिले ही उनसे मिले। यथा : देखी राम दुखित महतारी। जनु सुबेलि अवली हिम मारी। प्रथम राम भेटी कैकेई।

बंदि बंदि पग सिय सबही के। आसिर बचन लहे प्रिय जी के ॥
सासु सकल जब सीय निहारी। मूँदे नयन सहमि सुकुमारी ॥२॥

अर्थ : सीताजी ने सभी के चरणों में प्रणाम करके अपने जी के प्यारे आशीर्वाद पाये। सासुओं को जब सीताजी ने देखा तो सुकुमारी ने सहमकर आँखें बन्द कर लीं।

व्याख्या : जितनी मुनि की स्त्रियाँ आयीं थीं सरकार ने सबका गङ्गा गौरी सा सम्मान किया। दूर से पूजन किया। भगवती पहिले सबसे मिलीं। तत्पश्चात् सबके चरणों की वन्दना की। उन लोगों ने भी जो हृदय को प्रिय रहा वही आशीर्वाद दिया। स्त्रियों में तो एक ही आशीर्वाद सौभाग्य विषयक प्रचलित है।

सरकार ने माताओं को देखा। जनु सुबेलि अबली हिम मारी। परन्तु भगवती सुकुमारता के कारण देख न सकीं। भय से आँख मूँद ली। इतना बड़ा परिवर्तन माताओं में हुआ है कि जो सीताजी निर्भीक वन में गयीं वे ही सासों की यह दशा देख न सकीं।

परीं बधिक बस मनहु मराली । काह कीन्ह करतार कुचाली ॥
तिन्ह सिय निरखि निपट दुखु पावा । सो सब सहिअ जो दैउ सहावा ॥३॥

अर्थ : मानों हंसिनियाँ वधिक के वश में पड़ो हुई हैं। सोचने लगीं : कर्तार ने यह क्या कुचाल किया। उन्होंने सीताजो को देखकर अत्यन्त ही दुःख पाया। कहने लगीं : जो दैव सहावें वह सहना ही है।

व्याख्या : मानस सलिल सुधा प्रतिपाली। जिअइ कि लवन पयोधि मराली। सो मराली वधिक के वश पड़ी है। मानो आसन्न मृत्यु सी हैं। अति विकल हैं। ब्रह्मदेव को दूषण देती हैं। जैसा सपना में देखा था : देखी सासु आन अनुहारी। वही दशा सासों की है। सरकार को माताएँ : जनु सुबेलि अबली हिम मारी : दिखायी पड़ती हैं। क्योंकि वे भी इनको सुबेलि की दृष्टि से देखती थीं। यथा : मुदित मातु सब सखी सहेली। फलित बिलोकि मनोरथ बेली। और माता भगवती को मराली रूप से देखती थीं। यथा : जिअइ कि लवन पयोधि मराली। अतः उन्होंने सास को मराली रूप देखा।

सास ने सीताजी को आँख की पुतली की भाँति माना था। यथा : नयन पुतरि करि प्रीति बढ़ाई। राखेउ प्रान जानकिहिं लाई। सो जानकी को तापस वेष में देखकर अत्यन्त दुःखी हुईं और सब दुःख तो सहा अब यह भी सहना पड़ा कि पुत्रवधू तापस वेष में है। सोचती हैं कि यह पूर्वजन्म के कर्म का फल है। पूर्वजन्म कृतं कर्म तद्दैवमिति कथ्यते। इससे सहना ही पड़ेगा।

जनक सुता तब उर धरि धीरा। नील नलिन लोयन भरि नीरा ॥
मिली सकल सासुन्ह सिय जाई। तेहि अवसर करुना महि छाई ॥४॥

अर्थ : तब राजा जनक की बेटी सीताजी ने हृदय में धैर्य धारण करके और नीले कमल से नेत्रों में आंसू भरकर सब सासों से जाकर मिलीं। उस अवसर पर करुणा पृथ्वी पर छा गयी।

व्याख्या : सीताजी महाराज जनक की बेटी हैं। तुरन्त धैर्य धारण किया। पर आँखों में आँसू भर गये। भगवती की आँखों में कज्जल है। इसलिए नीले कमल की उपमा कवि दे रहे हैं।

जानकी प्रत्येक सास के पास जा जाकर मिलीं। उस समय करुण रस का ऐसा प्रवाह बहा कि सम्पूर्ण पृथ्वी पर छा गया। छाई का भाव यह कि सब पर असर पड़ा। कोई बाकी न रहा।

दो. लागि लागि पग सबनि सिय, भेंटति अति अनुराग।
हृदय असीसहि प्रेम बस, रहिअहु भरी सोहाग ॥२४६॥

अर्थ : सीताजी सबके पावों पर पड़ पड़कर अति प्रेम से मिलने लगीं। वे लोग प्रेमवश हृदय से आशीर्वाद दे रही हैं कि सदा सौभाग्यवती रहोगी।

व्याख्या : लड़कियाँ माताओं से मिलती हैं। पर सास का चरण पकड़ती हैं। ऋषि पत्नियों में माता की दृष्टि थी। अतः पहिले उनसे मिलीं। पूज्य होने के कारण प्रणाम पीछे किया। परन्तु रानियाँ तो सब सास हैं। अतः प्रणाम पहिले किया। पीछे से अति प्रेम के कारण मिलीं। सब का कण्ठ गद्‌गद है। जी भरा है। बोल नहीं सकतीं। अतः मन ही मन आशीर्वाद देती हैं। पति के जीवित रहने को सोहाग कहते हैं। तथा पति के प्रेम को भी सोहाग कहते हैं।

बिकल सनेह सीय सब रानी। बैठन सबहि कहेउ गुर ग्यानी ॥
कहि जग गति मायिक मुनिनाथा। कहे कछुक परमारथ गाथा ॥१॥

अर्थ : सीताजी तथा सब रानियाँ स्नेह से व्याकुल हो रही थीं। तब ज्ञानी गुरुजी ने सबको बैठने के लिए कहा। फिर मुनिनाथ ने जगत् की मायिक गति कहकर कुछ परमार्थ की गाथा कही।

व्याख्या : गुरुजी ज्ञानी हैं। अतः विकल नहीं हैं। यथा : सोक निवारेउ सबहि कर निज विज्ञान प्रकास। देखा कि सारा समाज विकल है। किसी को बैठने की सुधि नहीं है और अब महाराज चक्रवर्तीजी के स्वर्गारोहण का समाचार छिप नहीं सकता। अतः यही समय है कि रामजी को महाराज दशरथ की मृत्यु का समाचार सुनाया जाय। इस समाचार के सुनाने में पाण्डित्य है। रामजी को सँभालना है। यह अपने विरह में महाराज का मरण सुनकर अति विकल होंगे। इसी से प्रयत्न पूर्वक इस समय तक इनसे चक्रवर्तीजी के मरण का समाचार छिपाया गया था। समाचार सुनाने के पहिले रामजी को उसके सुनाने के लिए तैयार करना है। अतः अनुकूल परिस्थिति उत्पन्न करने के लिए गुरुजी की आज्ञा हुई कि सब लोग बैठ जायँ। सब लोग जहाँ के तहाँ बैठ गये।

तब मुनियों के नाथ हैं इन्होंने जगत् की गति का मायिक होना वर्णन किया कि यह जगत् क्षणभंगुर है। यहाँ सब कुछ परिवर्तनशील है। यहाँ जो पैदा हुआ है वह अवश्य मरेगा। यहाँ सब कुछ मृत्यु के मुख में है और व्यवहार स्थिर की भाँति है। यहाँ न कोई किसी का पिता है न कोई किसी का पुत्र है। कोई किसी का कुछ नहीं है। जैसे नदी में बहते हुए काठ कुछ देर के लिए इकट्ठे हो जाते हैं और उसी नदी के वेग से फिर अलग अलग हो जाते हैं। इसी भाँति यहाँ पुत्र पिता स्त्री पति आदि का मिलना है। सब प्रकार से विछोह ही सिद्ध है और कुछ परमार्थ की गाथा कही। यथा : इस नश्वर संसार से चित्त हटाकर इसे स्वप्न समझकर उस सत्य वस्तु में ही चित्त स्थिर करना चाहिए। जिसमें इस विश्व की उत्पत्ति स्थिति और लय होता है। जिसके प्रकाश से सृष्टि प्रकाशित होती है। जो आनन्द तथा प्रकाश रूप शान्त सनातन है। यह द्वैत अन्धकार है। उसका परित्याग करके उस परम भूतेश्वर का सहारा लेना चाहिए। तभी यह संसाररूपी महा बन्धन से मनुष्य छूट सकता है। इस भाँति ज्ञान की भूमिका तैयार करके तब :

नृप कर सुरपुर गवनु सुनावा। सुनि रघुनाथ दुसह दुखु पावा ॥
मरन हेत निज नेहु बिचारी। भे अति बिकल धीर धुरधारी ॥२॥

अर्थ : राजा की स्वर्गयात्रा सुनायी। सुनकर रामजी को दु:सह दु:ख हुआ। मरने का कारण अपना स्नेह समझकर धीर धुरन्धर अत्यन्त व्याकुल हुए।

व्याख्या : वसिष्ठजी ने राजा दशरथ के स्वर्गारोहण का समाचार कहा कि तुम्हारे वियोग ' चक्रवर्तीजी ने शरीर परित्याग किया। इतनी भूमिका करने पर भी इस समाचार से सरकार को ऐसा दुःख हुआ कि सह न सके। दु:ख के न सहे जाने पर जो मनुष्य की दशा होती है वह दशा रामजी की हुई। यद्यपि रामजी स्वभाव से धीर धुरन्धर थे। पर यह विचारकर कि मेरे प्रेम से ही महाराज की मृत्यु हुई अत्यन्त भारी विकलता रामजी को हुई। इसी विकलता को सोचकर सबने यही निश्चय किया था कि गुरुजी ही यह समाचार कहें।

कुलिस कठोर सुनत कटु बानी। बिलपत लखन सीय सब रानी ॥
सोक बिकल अति सकल समाजू। मानहुँ राज अकाजेउ आजू ॥३॥

अर्थ : वज्र के समान कठोर कटु वाणी सुनकर लक्ष्मणजी सीताजी तथा सब रानियाँ विलाप करने लगीं। सारा समाज अत्यन्त शोक से विकल हो गया। मानो आज ही राजा का देहान्त हुआ है।

व्याख्या : महाराज के स्वर्गारोहण की वाणी सुनने में कुलिश कठोर और ग्रहण करने में कटु थी। लक्ष्मणजी सीताजी तथा सब रानियाँ विलाप करने लगीं। लक्ष्मण और सीताजी ने अभी सुना है। इसलिए पहिले उनका नाम देते हैं। सारा समाज इस भाँति शोक विकल हुआ मानो चक्रवर्तीजी का देहान्त आज ही हुआ। यथा : सोक बिकल सब रोवहिं रानी। रूप सील बल तेज बखानी। करहिं विलाप अनेक प्रकारा। परहिं भूमितल बारहिं बारा। भयउ कोलाहल अवध अति सुनि नृप राउर सोर। बिपुल बिहंग बन परेउ निसि मानहु कुलिस कठोर।

मुनिबर बहुरि रामु समुझाए। सहित समाज सुसरित नहाए ॥
ब्रत निरंबु तेहि दिन प्रभु कीन्हा। मुनिहु कहे जलु काहु न लीन्हा ॥४॥

अर्थ : मुनिवर ने फिर रामजी को समझाया। समाज के सहित मन्दाकिनी में स्नान किया। उस दिन सरकार ने निर्जल व्रत किया। मुनिजी के कहने पर भी किसी ने जल ग्रहण नहीं किया।

व्याख्या : गुरुजी ने पहिले भी समझाया था। ज्ञान की भूमिका समझाना ही था। सिवा गुरुजी के सरकार को समझावे कौन ? गुरुजी ने रामजी को समझाया। क्योंकि सबसे अधिक विकलता उन्हीं को थी। उनके समझाने पर सब लोग समझ जायेंगे। यथा : तुम सुजान सब जानि जनि सोच करिय मतिमान। जनम मरन बिछुरन मिलन हित अनहित अज्ञान। झूठो सकल सनेह जग स्वारथ ही को नेह।

सकल खेल दिन चारि को बन्धु मातु पितु गेह। उठहु तात धीरज धरहु बिलपत सकल समाज। चह्यो पुत्र जेहि हेतु नृप बेगि करो सो आज।

पिता का मरण सुनते ही अशौच लगता है। अतः स्नान प्राप्त है। समाज सब शोक ग्रस्त है। अतः सभी अशुचि हैं। सो समाज के सहित सरकार ने मन्दाकिनी में स्नान किया। सरकार ने उस दिन निर्जल व्रत किया। सबने वैसा ही किया। प्रेमातिरेक से गुरुजी का भी वचन किसी ने नहीं माना। गुरुजी का कहना आज्ञा नहीं है। धर्मशास्त्र का निर्णय मात्र है। गुरुजी का कहना था कि व्रत रामजी करें तो कर सकते हैं। तुम लोगों को व्रत आवश्यक नहीं। कम से कम जल तो पी लो। पर किसी ने न पीया।

दो. भोरु भये रघुनंदनहि, जो मुनि आयसु दीन्ह।
श्रद्धा भगति समेत प्रभु, सो सबु सादरु कीन्ह ॥२४७॥

अर्थ : सवेरा होने पर मुनिजी ने जो आज्ञा दी उसे श्रद्धा भक्ति के साथ प्रभु ने बड़े आदर के साथ किया।

व्याख्या : ज्येष्ठ पुत्र होने से प्रिय होने से और्ध्वदैहिक क्रिया का अधिकार रामजी को ही था। उनकी अनुपस्थिति में भरतजी ने सब कुछ किया था। अतः फिर से पितृ क्रिया रामजी ने की। यहाँ मुनिजी की आज्ञा ही सब कुछ है। श्रद्धा बिना धर्म नहिं होई। गुरुवेदान्तवाक्येषु विश्वासः श्रद्धा।

करि पितु क्रिया बेद जसि बरनी। भे पुनीत पातक तम तरनी॥
जासु नाम पावक अघ तूला। सुमिरत सकल सुमंगल मूला ॥१॥

अर्थ : जैसा वेद ने वर्णन किया है। वैसी पिता की क्रिया करके पापरूपी अन्धकार के लिए सूर्यरूप रामजी पवित्र हुए। जिसका नाम पापरूपी रूई के लिए अग्नि है। जिसका स्मरण सब सुमङ्गल का मूल है।

व्याख्या : जहाँ सूर्य हैं। वहाँ अन्धकार की प्राप्ति नहीं है जहाँ रामजी हैं वहाँ पातक की प्राप्ति नहीं है। फिर भी उन्होंने जैसा वेद ने वर्णन किया है उस विधान से क्रिया की। रामजी सात्त्विक कर्ता हैं। शास्त्र की मर्यादा का यथार्थ पालन करते हैं। अतः लौकिक व्यवहार के अनुसार शुद्ध हुए। नहीं तो उन्हें अशुद्धि कहाँ? इसी बात को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि प्रभु स्वयं पातकरूपी अन्धकार के लिए सूर्य हैं और उनका नाम पापरूपी रूई के लिए अग्नि है। सूर्य को अन्धकार के नाश में कोई आयास नहीं : उदय तासु त्रिभुवन तम भागा। अग्नि के एक कण को भी रूई के अपार राशि के नाश में कुछ अधिक आयास नहीं है। जिसको उपाधि होने से नाम में इतनी सामर्थ्य है कि पापराशि का तो नाश करता ही है सम्पूर्ण मङ्गल का भी विधान करता है। दोषापनयन ही नहीं गुणाधान भी करता है।

सुद्ध सो भयउ साधु संमत अस। तीरथ आवाहन सुरसरि जस॥
सुद्ध भएँ दुइ बासर बीते। बोले गुर सन राम पिरीते ॥२॥

अर्थ : वे शुद्ध हुए ऐसी साधुओं की सम्मति है। जैसे गङ्गाजी में तीर्थ का आवाहन। शुद्ध हुए दो दिन बीते तब रामजी ने प्रीति के साथ गुरुजी से कहा।

व्याख्या : यह साधु सम्मत है कि स्वयं राजा अपने बनाये हुए नियम से शासित हो। मनुष्यरूप धारण करने पर स्वयं भगवान् वेद की मर्यादा का पालन करें। उसके विधान के अनुसार शुद्ध हों। जिस भाँति गङ्गाजी परम पावन हैं। सर्व तीर्थमयी हैं। उन्हें पवित्र करने के लिए किसी तीर्थ की आवश्यकता नहीं है। फिर भी गङ्गाजी में अन्य तीर्थों का आवाहन किया जाता है। साधु सम्मत नियम है कि जिस जल में स्नान करना हो उसमें तीर्थों का पहिले आवाहन करे। जिसमें वह पुनीत हो जाय। उसी नियमानुसार गङ्गा स्नान करनेवाले गङ्गाजल को पवित्र करने के लिए तीर्थों का आवाहन करते हैं। इस पवित्रीकरण का यह अर्थ नहीं है कि गङ्गाजल अशुद्ध था। मतलब शास्त्र मर्यादा रक्षण से है। इसी भाँति क्रिया करने पर रामजी का शुद्ध होना है। ज्येष्ठ कृ. १४ को रामजी सम्भवतः शुद्ध हुए।

शुद्ध होने के बाद दो दिन और बीते। अर्थात् एकादशाह की क्रिया भी समाप्त हो गयी। अब जाने के लिए कहना है। सो प्रधान से ही कहना चाहिए। सब लोग गुरुजी के साथ आये हैं। यही समाचार महाराज को लगा था। नाथ साथ मुनिनाथ के मातु सकल पुरलोग। अतः उन्हीं से कहना है। जाने के लिए कहने में प्रीति का हनन होता है। अतः प्रीति के साथ बोले।

नाथ लोग सब निपट दुखारी। कंद मूल फल अंबु अहारी॥
सानुज भरत सचिव सब माता। देखि मोहि पल जिमि जुग जाता॥३॥

अर्थ : हे नाथ ! सब लोग अत्यन्त दुःखी हैं। कन्द मूल फल और पानी से गुजर कर रहे हैं। शत्रुघ्न के साथ भरत मन्त्री और सब माताओं को देखकर मुझे एक पल युग के समान बीत रहा है।

व्याख्या : जाने के लिए कहना है। इसलिए रामजी पहिले रहने के दुःख की चर्चा करते हैं। कहते हैं कि इन लोगों का दुःख मुझसे सहा नहीं जाता। ये लोग सुर सदन सुख घर छोड़कर आये हैं और यहाँ कोई सुख का साधन नहीं है। भूमि सयन बलकल बसन असन कंद फल मूल। अतः सब लोग अत्यन्त ही दुःखी हैं। यह तो प्रजा का हाल हुआ। शत्रुघ्न के सहित भरत, मन्त्री और माता सबको दुःखी मैं नहीं देख सकता। सरकार अपने दुःख से दुःखी नहीं है। अपने प्रेमियों के दुःख से दुःखी हैं। कहते हैं कि मुझे एक पल युग की भाँति बीतता है। निष्कारण इतना कष्ट क्यों उठा रहे हैं। भावार्थ यह कि इन लोगों को क्षणभर भी यहाँ रहना ठीक नहीं। जितना जल्दी हो सके सब लोग जायँ।

सब समेत पुर धारिअ पाऊ। आपु इहाँ अमरावति राऊ॥
बहुत कहेउँ सबु कियेउँ ढिठाई। उचित होइ तस करिअ गोसाईं॥४॥

अर्थ : सबके साथ अयोध्या पधारिये। आप यहाँ हैं और महाराज इन्द्रपुर में हैं। मैंने बहुत कह डाला। यह मैंने ढिठाई की। जैसा उचित हो वैसा करिये।

व्याख्या : आप सबके साथ अयोध्या पधारिये। भाव यह कि अपने साथ भरत शत्रुघ्न मन्त्री माता तथा पुरलोग को भी लेते जाइये। आप ही के साथ ये लोग आये हैं। आप के बिना अयोध्या अनाथ होगी। यदि महाराज होते तो कोई हर्ज नहीं था। वे भी तो अमरावती को कूच कर गये। अब अयोध्या का रक्षक कोई इस समय नहीं है। भाव यह कि यहाँ वहाँ दोनों जगह लोग दुःखी हैं।

आपको स्वयं सबकी चिन्ता है। मेरा इतना कह जाना अनुचित है। ढिठाई है। पर मेरे मन में जो था मैंने कह दिया। मेरे बातों का ख्याल न करके जैसा उचित हो वैसा आप करें।

दो. धर्मं सेतु करुनायतन, कस न कहहु अस राम।
लोग दुखित दिन दुइ दरस, देखि लहहुँ बिश्राम ॥२४८॥

अर्थ : हे धर्मसेतु करुणायतन राम! आप ऐसा क्यों न कहें? लोग दुःखित हैं। दो दिन आप का दर्शन पाकर विश्राम पा रहे हैं।

व्याख्या : गुरुजी कहते हैं कि आप धर्मसेतु हैं। प्रजा का इतना ध्यान होना आपको उचित है। गुरु पर इतनी आस्था होनी ही चाहिए। करुणायतन हैं। अपने कंद मूल फल अम्बु अहार से दुःख नहीं है। लोगों को ऐसा आहार मिलता है इस बात का इतना दुःख है कि पल युग के समान बीतता है। सो बात ऐसी नहीं है। लोग तो आपके दर्शन बिना दुःखी थे। दो दिन से दर्शन हो रहा है। सो विश्राम पा रहे हैं। कन्द मूल फल अम्बु आहार की किसी को चिन्ता नहीं है। अयोध्या का यथेष्ट रक्षा का प्रबन्ध भरतजी कर आये हैं। अतः उसकी चिन्ता नहीं है। इतने दिनों में कुछ बनता बिगड़ता नहीं।

राम बचन सुनि सभय समाजू। जनु जलनिधि महुँ बिकल जहाजू॥
सुनि गुर गिरा सुमंगल मूला। भयउ मनहु मारुत अनुकूला॥१॥

अर्थ : रामजी का वचन सुनकर सारा समाज डर गया। जैसे समुद्र में जहाज विकल हो उठे। सुमङ्गलमूल गुरुजी का वचन सुना मानों अनुकूल हवा चल पड़ी।

व्याख्या : रामजी का कहना कि सबके साथ आप लौट जाइये सुनकर समाज का समाज भयभीत हो गया कि इनके घर लौट चलने का तो प्रश्न ही नहीं उठने पाया और यह सबको घर लौटा रहे हैं। मानो हम लोग इनके हाथ से चक्रवर्तीजी की क्रिया सम्पन्न कराने आये थे। भगवती कौसल्या ने कहा था : नाथ समुझि मन करिय बिचारू। राम बियोग पयोधि अपारू। कर्नधार तुम अवध जहाजू। चढ़ेउ सकल प्रिय पथिक समाजू। धीरजु धरिय त पाइअ पारू। नाहिं त बूड़िहि सब परिवारू। सो कर्णधार तो चल बसे। सब लोग शोक सिन्धु में डूब रहे थे। उन्हें भरतजी ने अवलम्ब दिया। सबको लेकर चित्रकूट आये। यथा : सोक

सिंधु बूड़त सबहिं तुम्ह अवलंबनु दीन्ह। यहाँ आने पर रामजी के वचनरूपी प्रतिकूल मारुत का ऐसा झोंका लगा कि सारा जहाज विकल हो गया। उसी समय गुरुजी का वचन ऐसा मङ्गलमूल हुआ कि उससे सबकी विदाई भी रुक गयी और यह बात भी स्पष्ट हो गयी कि प्रजा आपको अपनी आँखों के ओट नहीं चाहती। यह वचन तो ऐसा हुआ मानों हवा अनुकूल बह गयी।

पावन पय तिहुँ काल नहाहीं। जो बिलोक अघ ओघ नसाहीं ॥
मंगलमूरति लोचन भरि भरि। निरखहिं हरषि दंडवत करि करि ॥२॥

अर्थ : जिस जल के दर्शन से पाप समूह नष्ट हो जाता है उस पवित्र जल में लोग त्रिकाल स्नान करते हैं। दण्डवत् करके लोग मङ्गल मूर्ति का दर्शन प्रसन्न होकर आँख भर कर रहे हैं।

व्याख्या : अब पवन की अनुकूलता में जो सुख हुआ उसे कहते हैं। मन्दाकिनी गङ्गा की धारा है। पातक पोतक डाकिनि हैं। डाकिनी को देखने से बच्चे डरकर मर जाते हैं। इसी भाँति मन्दाकिनी के दर्शन से पाप नष्ट हो जाते हैं। उसके पवित्र जल में सब लोग त्रिकाल स्नान करते हैं। स्नान के बाद दर्शन करते हैं। सरकार मङ्गल भवन अमङ्गल हारी हैं। उनका दर्शन आँख भरकर कर रहे हैं। क्योंकि दर्शन की भूख है। पियत नयन पुट रूप पियूखा। मुदित सुअसन पाइ जिमि भूखा। पहिले साष्टाङ्ग दण्डवत् करते हैं। तत्पश्चात् खड़े होकर दर्शन कर रहे हैं भाव यह कि किसी की सरकार के प्रति मनुष्य बुद्धि नहीं है।

राम सैल बन देखन जाँही। जहँ सुख सकल सकल दुख नाँही ॥
झरना झरहिं सुधासम बारी। त्रिबिध तापहर त्रिबिध बयारी ॥३॥

अर्थ : रामशैल और रामवन देखने जाते हैं। जहाँ सब सुख है और दुःख सब के सब नहीं हैं। झरनों से अमृत के समान जल झरता है और त्रिविध ताप हरनेवाली त्रिविध वायु चल रही है।

व्याख्या : तत्पश्चात् सब लोग यात्रा के लिए जाते थे। रामशैल और वन की यात्रा करते थे। वे लोग राम वन से बाहर ही टिकाये गये थे। अतः वहाँ यात्रा के लिए जाते हैं। रामशैल वन की महिमा कहते हैं कि वहाँ सभी सुख हैं। शब्द स्पर्श रूप रस गन्ध ही द्वारा बाह्य ज्ञान होता है। सो वहाँ सब अनुकूल हैं और दुःख सबके सब नहीं हैं। वहाँ शान्ति ऐसी है कि सब दुःख भाग जाते हैं और मन को परम विश्राम मिलता है। अब सब सुखों का वर्णन करते हैं कि झरनों के जल अमृत की भाँति स्वादु और तोषदायक है। शीतल मन्द सुगन्ध वायु चलती है। वह ऐसी अद्भुत है कि आध्यात्मिक आधिदैविक और आधिभौतिक ताप का हरण करती है और संसार की त्रिविध वायु तो केवल भौतिक ताप को कम करनेवाली होती है।

बिटप बेलि तृन अगनित जाती। फल प्रसून पल्लव बहु भाँती ॥
सुंदर सिला सुखद तरु छाहीं। जाइ बरनि बन छबि केहि पाहीं ॥४॥

अर्थ : अगणित जाति के विटप वेलि और तृण थे। फल फूल और पत्ते अनेक प्रकार के थे। सुन्दर चट्टान और सुख देनेवाली पेड़ों की छाया थी। वन की शोभा किससे वर्णन की जा सकती है।

व्याख्या : रामशैल का वर्णन करके वन का वर्णन करते हैं। ऐसा वन है जिसमें एक ही जाति के पेड़ नहीं हैं सभी जाति के पेड़ हैं। जिनकी गिनती नहीं हो सकती। यही हाल वल्ली और तृण का है। अतः अपूर्व शोभा वन की हो रही है। विटप में फल हैं। वल्ली में फूल हैं और तृण में पत्ते हैं। जब विटप वेलि और तृण अगणित जाति के हैं तब फल फूल और पत्ते भी उतने ही भाँति के होंगे।

सुन्दर चट्टान पड़ी है। चलते चलते थक जानेवालों के लिए वे विश्रामप्रद हैं और वे भी पेड़ों की छाँह में हैं। जैसे बागों में कुरसियाँ लगी रहती हैं। कवि का कहना है कि वन की छवि ऐसी है जो किसी से वर्णन की नहीं जा सकती। यथा : सो बन बरनि न सक अहिराजा। जहाँ प्रकट रघुबीर बिराजा।

दो. सरनि सरोरुह जल बिहग, कूजत गुंजत भृंग।
बैर बिगत बिहरत बिपिन, मृग बिहंग बहु रंग ॥२४९॥

अर्थ : तालाबों में कमल खिल रहे हैं। जल के पक्षी कूज रहे हैं और भौंरे गूँज रहे हैं। वैर को छोड़कर वन में मृग और बहुत रङ्ग के पक्षी विहार कर रहे हैं।

व्याख्या : सरनि सरोरुह : से गन्ध कहा। बिहंग कूजत गुंजत भृंग : से शब्द कहा। झरना झरहिं सुधासम बारी : से रस कहा। त्रिबिध ताप हर त्रिबिध बयारी से स्पर्श कहा। जाइ बरनि बन छबि केहि पाहीं : से रूप कहा। इस भाँति उस वन को सर्वेन्द्रिय तर्पण कहा।

कोल किरात भिल्ल बनबासी। मधु सुचि सुंदर स्वादु सुधा सी ॥
भरि भरि परन पुटीं रचि रूरी। कंद मूल फल अंकुर जूरी ॥१॥

अर्थ : वन के रहनेवाले कोलकिरात और भील पवित्र सुन्दर और अमृत सी सुस्वाद मधु को सुन्दर पत्तों की दोनियाँ रचकर उनमें भरकर और कन्द मूल फल अङ्कुर और जूरी को।

व्याख्या : कोल किरात भील ये सब जङ्गली जातियों के नाम हैं। रामजी के पधारने पर भी इन सबों ने आतिथ्य सत्कार किया था। यथा : कंद मूल फल भरि भरि दोना। चले रंक जनु लूटन सोना। अब अयोध्यावासी जो वन में विहरते गये हैं उनके आतिथ्य सत्कार का उपक्रम करते हैं। वे लोग पत्ते की दोनियों में शहद भर भरकर लाये : जङ्गली जाति ऐसी सुन्दर दोनियाँ बनाते हैं जिनमें भरा

हुआ जल टपक नहीं सकता। मधु शब्द का शहद भी अर्थ है और मद्य भी अर्थ है। इसीलिए शुचि शब्द दिया जिसमें शहद का ही बोध हो। सुन्दर स्वादु मधु कमल की होती है। कदाचित् ही कोई वस्तु ऐसी स्वादु होती हो। इसलिए अमृत सी कहते हैं। जङ्गली जाति मीठे के नाम पर केवल शहद को ही जानते हैं। अतः उनके आतिथ्य सत्कार में प्रधानता मधु की है। इसलिए पहले उसी का उल्लेख करते हैं। कन्द मूल फल अंकुर जूरी का तो बोझा ही है। इसलिए उनके लिए पात्र नहीं कहा। अथवा उन्हें भी दोनों में भरकर लाये। जूरी बनारस प्रान्त की भाषा है। जिस अङ्कुर में पत्ते आजायँ और फटकर अलग न हों उसे जूरी कहते हैं। सूरन आदि की जूरी ही खाने के काम में आती है। क्योंकि वह गला नहीं काटती।

सबहि देहिं करि बिनय प्रनामा। कहि कहि स्वादु भेदु गुन नामा॥
देहिं लोग बहु मोल न लेहीं। फेरत राम दोहाई देहीं॥२॥

अर्थ : सबको विनय और प्रणाम करके देते हैं। उनके स्वाद का भेद बतलाते हैं। उनके गुण कहते हैं। नाम बतलाते हैं। लोग उनका अधिक मूल्य देते हैं। फिर भी नहीं लेते। फेरने पर रामजीकी दोहाई देते हैं।

व्याख्या : नगर के लोग वन के कन्द मूलादि को क्या जानें। इसलिए उन्हें उनका स्वाद गुण और नाम बतलाते हैं। भाव यह कि जो आपकी प्रकृति के अनुकूल पड़े उसे स्वीकार करिये। जिसे बतलाइये उसे और लावें। उनके स्वीकार करने से अपने को कृतकृत्य समझते हैं। अतः प्रणाम पूर्वक स्वीकार करने के लिए विनय करते हैं।

उनकी श्रद्धाभक्ति से प्रसन्न होकर अवधवासी उनकी बहुत कीमत देते हैं। वे कीमत लेने पर राजी नहीं। अवधवासी मुफ्त में लेना नहीं चाहते। अतः फेर देते हैं। इस पर वे रामजी की दोहाई देते हैं। विनय प्रणाम से जब काम न चला तब स्वामी की दोहाई दी।

कहहिं सनेह मगन मृदु बानी। मानत साधु प्रेम पहिचानी॥
तुम्ह सुकृती हम नीच निषादा। पावा दरसनु राम प्रसादा॥३॥

अर्थ : वे स्नेह में मग्न होकर कोमल वाणी से कहते थे कि प्रेम की पहिचान करके साधु लोग मानते हैं। आप लोग पुण्यात्मा हैं। हम नीच निषाद हैं। रामजी के प्रसाद से आपका दर्शन मिला।

व्याख्या : वे प्रेम में मग्न हैं कि हमारे यहाँ ऐसे ऐसे पुण्यात्मा अतिथि आये हैं। अतः मृदुवाणी बोलते हैं कि आप लोग साधु हैं। साधु लोग प्रेम के ग्राहक होते हैं। यह प्रेमोपहार है। हम लोग भी व्यवसायी नहीं हैं।

हम लोग आप लोगों के पादार्पण से कृतकृत्य हैं। क्योंकि आप उत्तम हैं। सुकृती हैं। उस जन्म में सुकृत किया है तब ऐसा जन्म पाया है। इस जन्म में भी पुण्य ही कमा रहे हैं। किसी दूसरे की वस्तु बिना कीमत चुकाये लेना नहीं चाहते।

हम निषाद हैं। निषाद पापी जाति मात्र का उपलक्षण है। अतः निषाद में कोल किरात भिल्ल तीनों का अन्तर्भाव है। निषाद कहने का भाव यह कि पूर्वजन्म के पाप से नीचकुल में जन्म हुआ और इस जन्म में भी पापाचरण ही हो रहा है। हमारा इतना भाग्य कहाँ कि आप लोगों का दर्शन हमें मिले। यह तो रामजी की कृपा है कि आपका दर्शन मिला। वे कृपा करके यहाँ आये और उसी कारण से आप यहाँ आये हुए हैं।

हमहि अगम अति दरसु तुम्हारा। जस मरु धरनि देवधुनि धारा॥
राम कृपाल निषाद नेवाजा। परिजन प्रजउ चहिअ जस राजा॥४॥

अर्थ : हम लोगों को तो आपका दर्शन दुर्लभ है। जैसे मरुभूमि में गङ्गाजी की धारा दुर्लभ है। कृपालु रामजी ने निषादों पर दया की। परिजन प्रजा को भी राजा का अनुगमन करना चाहिए।

व्याख्या : कोल किरात कहते हैं कि हम लोगों की भूमि मरुभूमि तुल्य है। जहाँ जल दुर्लभ है। कूप भी ऐसे विरल हैं जहाँ कठिनता से भी जल की प्राप्ति हो सके वहाँ जैसे गङ्गा की धारा बह उठे। इस भाँति आपका आगमन हमारे यहाँ हुआ है। हम लोग कृतकृत्य हो गये तो क्या हम गङ्गा की धारा की पूजा न करें। गङ्गा की धारा को क्या यह शोभा देता है कि वह कहे कि मैं पापियों का उपहार न ग्रहण करूँगी। तब गङ्गा आयीं क्यों? गङ्गा का आगमन तो पापियों के उद्धार के लिए ही होता है।

कृपाल रामजी ने निषादों पर कृपा की। निषादराज का सत्कार स्वीकार किया। यहाँ आने पर हम लोग जो कुछ कन्द मूल फल ले गये उसे स्वीकार किया। आप लोग तो उनकी प्रजा हैं। प्रजा को राजा का अनुगमन करना चाहिए। राज्ञि धर्मिणि धर्मिष्ठाः पापे पापाः समे समाः। राजानमनुवर्तन्ते यथा राजा तथा प्रजा। अतः आप लोग हमारा प्रत्याख्यान न कीजिये।

दो. यह जियँ जानि सँकोचु तजि, करिअ छोहु लखि नेहु।
हमहि कृतारथ करन लगि, फल तृन अंकुर लेहु॥२५०॥

अर्थ : ऐसा जी में जानकर सङ्कोच छोड़कर हमारा स्नेह देखकर छोह कीजिये। हम लोगों को कृतार्थ करने के लिए फल तृण और अङ्कुर को स्वीकार कीजिये।

व्याख्या : राजा रामचन्द्र ने हमारे सत्कार को स्वीकार किया। दाम देने की बात भी जबान पर न लाये। आप क्यों सङ्कोच करते हैं। आपके लिए रास्ता साफ है कि राजा स्वीकार कर चुके तो हमें क्या दोष है। अतः सङ्कोच न करिये। हम छोटे हैं। हम पर छोह करिये। हमारा प्रेम देखिये कि वन में से ढूँढ़कर अच्छे फूल फल लाये हैं। आपको आवश्यकता नहीं है। अयोध्या से रसद लदकर आयी है।

पर हम कृतार्थ कैसे होंगे। आप हम लोगों को कृतार्थ करने के लिए स्वीकार करिये। हमारे गार्हस्थ्य धर्म की रक्षा कीजिये।

तुम्ह प्रिय पाहुने बन पगु धारे। सेवा जोगु न भाग हमारे ॥
देब[1] काह हम तुम्हहिं गोसाईं। ईंधनु पात किरात मिताईं ॥१॥

अर्थ : आप प्रिय अतिथि वन में पधारे हैं। हमारे भाग्य आपकी सेवा करने योग्य नहीं। हे गोसाईं ! हम आपको क्या देगें। किरात की मित्रता तो ईंधन और पत्ते की होती है।

व्याख्या : पाहुन अर्थात् अतिथि। अतिथि कहकर पूज्य होना द्योतित किया। प्रिय दर्शन होने से प्रिय पाहुन कहते हैं। यथा : प्रिय पाहुने भूप सुतचारी। यह अघटित घटना हुई कि आपका पधारना वन में हुआ। हमारा धर्म है कि आपकी पूजा करें। मन में बड़ा उत्साह भी है कि आपकी पूजा करें। परन्तु भाग्य हमारा खोटा है : तस पूजा चाहिअ जस देवता। हममें आपकी पूजा की शक्ति नहीं है। हम आपका उचित सत्कार नहीं कर सकते।

आपको सङ्कोच है कि हम दूसरे का मुफ्त कैसे लें। यहाँ हमारे पास धरा ही क्या है जो आपको दें। प्रसिद्ध कहावत है : ईंधन पात किरात मिताईं। किरात प्रेम करें तो ईंधन दें और पत्ते दें। सो हम ईंधन पत्तेवाले आप ऐसे ऐश्वर्यवान् की पूजा कैसे करें।

यह हमारि अति बड़ि सेवकाई। लेहि न बासन बसन चोराई ॥
हम जड़ जीव जीवगन घाती। कुटिल कुचाली कुमति कुजाती ॥२॥

अर्थ : हमारी बड़ी भारी सेवा यही है कि हम आपका बरतन कपड़ा नहीं चुरा लेते। हम जड़ जीव हैं। जीवगण को मारा करते हैं। कुटिल, कुचाली, कुमति और कुजाति हैं।

व्याख्या : आप ऐसे महान् हैं कि हमारे दिये हुए फल फूल को भी बिना मूल्य दिये स्वीकार नहीं करते और हम ऐसे नीच हैं कि चोरी करके भी दूसरे की वस्तु ले लेते हैं। हमें कपड़े बर्तन कहाँ मिले। अतः उसके लिए चोरी करते हैं। आपके यहाँ कपड़े और बर्तन भरे पड़े हैं। पर हमने नहीं चोराया। यह हमारी थोड़ी सेवकाई नहीं है। आप नहीं समझ सकते कि कपड़ा और बर्तन देखने के बाद एक किरात को चोरी से मन को रोकने में कितने बड़े मनोनिग्रह से काम लेना पड़ता है।

केवल चोरी ही नहीं प्राण मारकर चोरी करते हैं। हिंसा ही हमारा उद्यम है। हम जड़जीव हैं। जीवों को मारा करते हैं। मन से कुटिल हैं। करणो से कुचाली हैं। बुद्धि से कुमति हैं और व्यवहार में कुजाति हैं। दिन रात द्रोह करते हैं।

---

१. यहाँ लोकोक्ति : अलङ्कार है।

पाप करत निसि बासर जाहीं। नहि पट कटि नहि पेट अघाहीं ॥
सपनेहुँ धरम बुद्धि कस काऊ। यह रघुनंदन दरस प्रभाऊ ॥३॥

अर्थ : पाप करते रात दिन बीतता है। न तो कमर में कपड़ा है और न पेट अघाता है। हमको कभी धर्म बुद्धि कैसी? यह तो रघुनन्दन के दर्शन का प्रभाव है।

व्याख्या : किरात कहते हैं कि हम लोग रात दिन पाप ही करते हैं। चोरी और हिंसा की जीविका है। फिर भी भूखे नंगे रहते हैं। जीवन निर्वाह दुष्कर है। पुनर्दरिद्री पुनरेव पापी। पाप करते हैं लोग लौकिक सुख के लिए। हमें पाप करने पर भी अन्न वस्त्र दुर्लभ है। यह तो जाग्रत का हाल है।

अब सपने का हाल सुनिये। जाग्रत के संस्कारानुसार ही स्वप्न होता है। अतः स्वप्न में भी पाप कर्म ही देखते हैं। धर्मबुद्धि सपने में भी दुर्लभ है। यह धर्मबुद्धि जो हम लोगों में पाप देख रहे हैं कि अतिथि सत्कार का भाव जाग्रत हुआ है वह तो रघुनन्दन के दर्शन का प्रभाव है। आपके राजा द्वारा ही तो हममें धर्मबुद्धि का उदय हुआ है। हम सत्कार करने चले हैं और आप ही प्रत्याख्यान द्वारा उसका अवरोध कर रहे हैं।

जब तें प्रभु पद पदुम निहारे। मिटे दुसह दुख दोष हमारे ॥
बचन सुनत पुरजन अनुरागे। तिन्हके भाग सराहन लागे ॥४॥

अर्थ : जब से सरकारी चरण कमलों का हमें दर्शन हुआ हमारे दुःसह दुःख और दोष मिट गये। वचन सुनकर पुरजन अनुराग में आगये। उनके भाग्य की प्रशंसा करने लगे।

व्याख्या : सरकार के दर्शन से बुद्धि भी पलटी और दुःख दोष भी मिटा। दोष होने से ही दुःख होता है। अतः दुःख अपने कारण के साथ मिट गया।

भविष्य में भी पाप की आशङ्का नहीं रह गयी। इस समय हम सब तरह से शुद्ध हैं। सरकार के दर्शन के बाद भी क्या हम में दोष लगा है।

विनती युक्तियुक्त भक्ति संयुत वचन सुनकर पुरजनों को अनुराग हुआ। वे लोग उनके भाग्य की सराहना करने लगे : बड़ भागी बन अवध अभागी। जो रघुबंश तिलक तुम त्यागी। भाग्यवान् ये लोग हैं जिनमें सरकार आकर बसे हुए हैं। आज हम लोग अभागी हो रहे हैं जिन्हें छोड़कर सरकार यहाँ आये हैं।

छं. लागे सराहन भाग सब अनुराग बचन सुनावहीं।
बोलनि मिलनि सिय राम चरन सनेह लखि सुखु पावहीं ॥
नरनारि निदरहि नेहु निज सुनि कोल भिल्लनि की गिरा।
तुलसी कृपा रघुबंसमनि की लोह लै लौका तिरा ॥

अर्थ : सब लोग उनके भाग की सराहना करते हैं और अनुराग के वचन सुनाते हैं। उन लोगों का बोलना मिलना और सीता रामजी के ऊपर जो उनका

स्नेह है उसे लखकर सुख पा रहे हैं। नर नारी कोल भीलों की वाणी सुनकर अपने प्रेम का अनादर करते हैं। श्री तुलसीदास कहते हैं कि यह रघुवंशमणि की कृपा है कि लोहा लेकर लौका तिर गया।

व्याख्या : यहाँ प्रसङ्ग यह है कि अवधवासियों में और किरातों में शास्त्रार्थ छिड़ गया है। जङ्गली लोग आतिथ्य के लिए कन्द मूल फल लाये हैं। अवधवासी उसका मूल्य देना चाहते हैं और न लेने पर उनका कन्द मूल फल फेर देते हैं। हम अन्त्यजों का प्रतिग्रह क्यों करें। धर्मशास्त्र में यह महा निषिद्ध है। जङ्गलियों का उत्तरपक्ष यह था कि सरकार के दर्शन से हमारे दोष दुःख मिट गये। यह दान भी नहीं है आतिथ्य सत्कार है। उदाहरण में वे स्वयं सरकार को देते हैं कि उन्होंने हमारा सत्कार स्वीकार किया है। इस वाग्युद्ध के अन्त में जङ्गलियों की जीत हुई। अवधवासियों के पास उत्तर नहीं रह गया। उनका प्रेम देखकर अपने प्रेम की निन्दा करने लगे। अर्थात् उन्हें सत्कार स्वीकार करना पड़ा। इसी बात को महाकवि ने चार अक्षरों में कहा : लोहा लै लौका तिरा। अर्थात् सामना करके लौका तिर गया। लोहा लेना सामना करना या लड़ाई करने को कहते हैं। यथा : सनमुख लोह भरत सन लेउँ। लौका तिरने का अधम साधन है सो समर में लोहा लेकर : सामना करके जहाज का तिरना कठिन हो जाता है। यहाँ अवधवासियों से : मनिगन पुर नर नारि सुजाती। सुचि अमोल सुंदर सब भाँति। से सामना करके अर्थात् शास्त्रार्थ करके लौका : कुटिल कुचाली कुमति कुजाती। तिर गया। अर्थात् पार पा गया। अवधवासियों को उनका फल मूलादि ग्रहण करना पड़ा।

दो. बिहरहिं बन चहुँ ओर, प्रतिदिन प्रमुदित लोग सब।
जल ज्यों दादुर मोर, भये पीन पावस प्रथम ॥२५१॥

अर्थ : सब लोग प्रसन्न होकर वन में चारों ओर प्रतिदिन विचर रहे हैं। पहली ही वर्षा में जिस प्रकार मेढक और मोर मोटे हो जाते हैं उसी प्रकार इन लोगों की भी दशा हो गयी।

व्याख्या : मानसिक सुख दुःख का प्रभाव शरीर पर कितना बड़ा पड़ता है। इसी बात को दिखाते हुए कवि कहते हैं कि नित्य लोग प्रसन्न मन से वन में चारों ओर विचरते हैं : जहँ सुख सकल सकल दुख नाहीं। अतः उनकी दशा उन मेढक और मोरों सी हो रही है जो पहिली ही बरसात में हृष्ट पुष्ट हो जाते हैं।

बर्षारितु रघुपति भगति तुलसी सालि सुदास। राम नाम बर बरन जुग सावन भादों मास। एक ऐसे हैं जो मोर की भाँति ठहर ठहरकर सुस्वर से नामोच्चारण करते हैं और कुछ ऐसे हैं जो मेढक की भाँति नाम की धुन बाँधते हैं। ये राम घनश्याम की कृपा दृष्टि को वृष्टि से पहिली ही वर्षा : भक्ति की उमंग में हृष्ट पुष्ट हो हो गये। नहीं तो : तनकृस मन दुख बदन मलीने थे।

पुरजन नारि मगन अति प्रीती । बासर जाहिं पलक सम बीती ॥
सीय सासु प्रति वेष बनाई । सादर करइ सरिस सेवकाई ॥१॥

अर्थ : पुर नर नारि अत्यन्त प्रीति में मग्न थे । पलक की भाँति दिन बीत रहे थे । सीताजी जितनी सास थीं उतने वेष बनाकर आदर के साथ समान सेवा करती थीं ।

व्याख्या : पुर नर नारी ऐसे प्रेम में मग्न हुए कि बाहर का उन्हें कुछ अनुसन्धान भी नहीं रहा । पूरा दिन बीत गया । उन्हें मालूम हो रहा है कि एक निमेष बीता है । अत्यन्त सुख के दिन बीतते देर नहीं लगती । यथा : मास दिवसकर दिवस भा मरम न जानै कोइ ।

सब लोगों का हाल कहकर अब रनिवास का हाल कहते हैं । भगवती सास की सेवा के लिए पहुँच गयीं । सासों की सेवा की बड़ी अभिलाषा है । यथा : सेवा समय दैउ बन दीन्हा । मोर मनोरथ सफल न कीन्हा । सो मनोरथ के पूरा करने का अवसर हाथ लगा । सास हैं संख्या में अधिक । एक शरीर से सबकी सेवा हो नहीं सकती । अतः जिस भाँति सबसे मिलने के लिए सरकार ने अमित रूप धारण किया उसी भाँति भगवती भी जितनी सास थीं उनती हो गयी । निरादर के साथ सेवा किसी काम की नहीं । अतः सादर सबकी समान भाव से सेवा करने लगीं । जैसी सेवा कौसल्या की वैसी ही सेवा कैकेयी की ।

लखा न मरमु राम बिनु काहूँ । माया सब सिय माया माहूँ ॥
सीय सासु सेवा बस कीन्हीं । तिन्ह लहि सुख सिख आसिष दीन्हीं ॥२॥

अर्थ : इस भेद को सिवा रामजी के और कोई नहीं लख पाया । क्योंकि सब माया सीताजी की माया के अन्तर्गत है । सीताजी ने सासुवों को सेवा के वश कर लिया । उन्होंने सुख पाकर शिक्षा और आशार्वाद दिये ।

व्याख्या : सब सास समझ रही हैं कि सीता केवल मेरी सेवा में है । यहाँ पृथक् पृथक् महल भी नहीं हैं । सब दासियाँ सब जगह आ जा रही हैं । फिर भी इस मर्म को कोई न लख सका कि सीताजी की सब सासों के पास युगपत् उपस्थिति कैसे हो रही है । न लखने का कारण देते हैं कि यह सीताजी की माया है और जितनी माया है सबकी सब इसके : सीताजी की माया के अन्तर्गत हैं । आदि सक्ति जेहि जग उपजाया । सोउ अवतरिहि मोरि यह माया । अतः जिसकी माया है वही मर्म को लख सका । विवाह के समय भी जो महिमा भगवती ने प्रकट किया था उसे रघुनायक ही जान सके थे । जीव उस माया के मर्म को कैसे लख सकता है ?

भगवती ने ऐसी सेवा की कि सास सब उनके वश में हो गयीं । उन्हें बड़ा सुख हुआ । सुख मिलने पर बड़ों से दो वस्तुएँ मिलती हैं । एक शिक्षा और दूसरा आशीर्वाद । सो दोनों मिला ।

लखि सिय सहित सरल दोउ भाई । कुटिल रानि पछितानि अघाई ॥
अवनि जमहि जाचति कैकेई । महि न बीचु बिधि मीचु न देई ॥३॥

अर्थ : सीताजी के सहित दोनों भाइयों को सरल देखकर कुटिल रानी पेट भर पछतायी । अब कैकेयी पृथ्वी और यम से याचना करती है । पर न तो पृथ्वी फटती है और न ब्रह्मदेव मृत्यु देते हैं ।

व्याख्या : सब माताओं का हाल कहकर अब रानी कैकेयी का हाल कहते हैं । सीताजी की सेवा के वश हो गयीं । उन्होंने रामजी को कुटिल समझा था । यथा : सहज सरल रघुबर बचन कुमति कुटिल करि जान । अब देखा कि दोनों भाई सरल हैं । रामजी ने जो कहा था : सुनु जननी सोइ सुत बड़भागी । जो पितु मातु बचन अनुरागी । तनय मातु पितु तोषनिहारा । दुर्लभ जननि सकल संसारा । मुनिगन मिलन बिसेषि बन सबहि भाँति हित मोर । तेहि महँ पितु आयसु बहुरि संमत जननी तोर । भरतु प्रान प्रिय पावहिं राजू । बिधि सब बिधि मोहि सनमुख आजू । सो इनका आन्तरिक भाव था । वन देने से मुझ पर कुछ भी रोष नहीं है और सीता भी वैसी ही हैं । मैंने इस महासाधुओं के साथ क्या किया ? पछतायी तो पहिले भी थी । पर अब पेटभर पछतायी । यह पश्चात्ताप तो तभी मिटे जब पृथ्वी फटे में समा जाऊँ या विधाता मुझे मौत दें । अतः पृथ्वी और यम से प्रार्थना करती हैं । पर न तो पृथ्वी फटती है न विधाता मौत देते हैं । यम भी विधाता की आज्ञा के अनुवर्ती हैं । बिना विधाता की आज्ञा के मृत्यु भी नहीं दे सकते । अतः यम न कहकर विधाता कहा ।

लोकहु बेद बिदित कबि कहहीं । राम बिमुख थलु नरक न लहहीं ॥
यह संसउ सब के मन माँहीं । राम गवनु बिधि अवध कि नाँहीं ॥४॥

अर्थ : यह बात लोक और वेद में प्रसिद्ध है और कवि भी कहते हैं कि रामविमुख को नरक भी स्थान नहीं देता । यह संशय सबके मन में है कि हे विधि ! रामजी अवध जायँगे कि नहीं ।

व्याख्या : इस बात पर सबका ऐकमत्य है कि राम विमुख का कहीं ठिकाना नहीं लगता । अन्य पापियों का तो ठिकाना नरक में लगता है । पर राम विमुख को स्थान देना नरक भी स्वीकार नहीं करता । सब जग ताहि अनलहु ते ताता । जो रघुबीर बिमुख सुनु भ्राता ।

रनिवास का हाल कहकर अब रामजी के घर के लौटने के विषय में क्या हो रहा है उसका वर्णन करते हुए कहते हैं कि सबके मन में यह संशय है कि रामजी घर लौटते हैं कि नहीं । उनके कहने से उनका रुख स्पष्ट है कि लौटना नहीं चाहते । पर गुरुजी हम लोगों की ओर से बोल रहे हैं । इसलिए सब लोग संशय में पड़े हुए हैं कि देखें क्या होता है ।

दो. निसि न नींद नहिं भूख दिन, भरतु बिकल सुचि सोच ।
नीच कीच बिच मगन जस, मीनहि सलिल सँकोच ॥२५२॥

अर्थ : न रात को नींद है न दिन को भूख है । भरतजी पवित्र सोच में विकल हैं । जैसे कीच में नीचे डूबो हुई मछली को जल का सङ्कोच हो : जल न मिले ।

व्याख्या : सोच करनेवाले को न रात को नींद लगती है न दिन को भूख लगती है । महात्माओं का सोच भी पवित्र होता है । क्योंकि वह अविद्या के अन्तर्गत न होकर विद्या के अन्तर्गत होता है । विकलता भी साधारण नहीं है । अवधि अम्बु प्रिय परिजन मीना । सो यहाँ दो दिन की अवधि है वह भी बीत चली । पानी सूख चला कीचड़ बाकी है । कीचड़ के भी सूखने के भय से महाविकल है । इसी भाँति भरतलालजी की विकलता कहा । ये बड़े मच्छ हैं । इसलिए विकलता विशेष है और मछलियों के लायक पानी है । उन्हें सोच नहीं वे मगन हैं । यथा : पुर नर नारि मगन अति प्रीती ।

कीन्हि मातु मिस काल कुचाली । ईति भीति जस पाकत साली ॥
केहि बिधि होइ राम अभिषेकू । मोहि अवकलत उपाउ न एकू ॥१॥

अर्थ : माता के व्याज से काल ने कुचाल किया । जैसे धान पकते समय ईति का भय हो । किस विधि से रामजी का अभिषेक हो मुझे तो कोई उपाय नहीं फुर रहा है ।

व्याख्या : अब भरतजी का सोच कहते हैं । भरतजी को कैकेयी का पछितावा है । अतः कहते हैं कि माता को तो ब्याज बनाया कराल काल ने । यथा : सब कर आज सुकृत फल बीता । भयउ कराल काल बिपरीता । क्योंकि सभी कार्यों की सिद्धि में काल असाधारण कारण है । उपमा देते हैं कि जैसे धान पकने के समय अतिवृष्टि हो पड़े । अथवा कोई दूसरी ईति आ पड़े । अतिवृष्टि, अनावृष्टि, मूषक, टिड्डी और राजाओं का आक्रमण यह सब ईतियाँ हैं । इसी भाँति सरकार के राज्याभिषेक के समय कैकेयी का वरदान हुआ । यथा : मोर मनोरथ सुरतरु फूला । फरत करिनि जिमि हतेउ समूला ।

सब लोग तो केवल संशय में पड़े हैं कि देखें रामजी लौटते हैं या नहीं । पर भरतजी तो उपाय सोच रहे हैं कि किस उपाय से रामजी का अभिषेक हो । किस भाँति लौटने पर राजी हो जायँ । तब अभिषेक के लिए कहा जाय । जिससे राजसी ठाट से घर लौटें । पर कोई उपाय स्थिर नहीं कर पा रहे हैं । सबसे प्रबल उपाय मौजूद है । पर उनसे काम कैसे लिया जाय । अतः भरतजी कहते हैं कि कोई सामञ्जस्य नहीं बैठता ।

अवसि फिरिहि गुर आयसु मानी । मुनि पुनि कहब राम रुचि जानी ॥
मातु कहेहुँ बहुरहिं रघुराऊ । राम जननि हठ करबि कि काऊ ॥२॥

अर्थ : गुरुजी की आज्ञा मानकर तो निश्चय ही लौट चलेंगे। पर मुनिजी रामजी का रुख देख लेंगे तब कहेंगे। माता के कहने पर भी रामजी लौटेंगे। पर वे राम की माता हैं वे क्या कभी हठ करेंगी ?

व्याख्या : सबसे बड़ा उपाय तो यह है कि गुरुजी आज्ञा दें तो पिता की आज्ञा गुरुजी की आज्ञा के सामने हट जायगी। आचार्यो यस्तु यां जातिं विधिवद्वेद पारगः। उत्पादयति साविञ्या सा सत्या साजरामरा। पिता तो इस स्थूल देह को उत्पन्न करता है। पर आचार्य से जो जन्म सावित्री द्वारा होता है यही सत्य है और अजर अमर है। अतः गुरु का पद पिता से भी बड़ा है। उनके आज्ञा देने पर निश्चय अयोध्या लौट चलेंगे। पर गुरुजी तो उनका रुख देखते हैं। यदि उनका रुख अनुकूल होगा तभी आज्ञा देंगे। वन चलते समय महल से निकलकर गुरुजी के ही द्वार पर खड़े हुए। गुरुजी चाहते तो रोक लेते। पर गुरुजी ने रुख नहीं पाया। इसलिए नहीं रोका।

इनके बाद माता का दर्जा है। माता यदि हठ पकड़ ले तो भी लौट चलेंगे। पहिले भी माता ने कहा था : जौं केवल पितु आयसु ताता। तौ जनि जाहु जानि बड़ि माता। जौ पितु मातु कह्यौ बन जाना। तौ कानन सत अवध समाना। पर यह रामजी की माता हैं। यह कभी हठ करेंगी नहीं। वन जाते रोका भी तो यह कह दिया कि यदि कैकेयी की भी आज्ञा हो तो चले जाओ। हठ करना तो मेरी माता जानती है कि चाहे प्रलय हो जाय वह अपने हठ से नहीं हटती। सो कौसल्याजी कभी हठ करेंगी ही नहीं।

मोहि अनुचर कर केतिक बाता। तेहि महँ कुसमउ बाम बिधाता ॥
जौं हठ करउँ त निपट कुकरमू। हरगिरि ते गुरु सेवक धरमू ॥३॥

अर्थ : मैं तो सेवक हूँ। मेरी बात ही क्या ? तिस पर कुसमय है और विधाता प्रतिकूल है। यदि मैं हठ कर बैठूँ तो यह बड़ा भारी बुरा काम होगा। क्योंकि सेवक का धर्म कैलाश से भी भारी है।

व्याख्या : भरतजी समझ रहे हैं कि इनके बाद यदि किसी का प्रभाव पड़ सकता है तो मेरा ही पड़ सकता है। सरकार स्वयं कहेंगे : तासु बचन मेटत मन सोचू। तेहि ते अधिक तुम्हार सँकोचू। फिर भी मैं तो सेवक हूँ। सेवक की बात ही क्या है। उसका धर्म स्वामी को सङ्कोच न आने देना ही है। यथा : जो सेवक साहिबहिं सकोची। निज हित चहै तासु मति पोची। सो मैं यदि हठ कर बैठता हूँ तब तो सेवक धर्म ही जाता रहेगा। इससे बढ़कर अनुचित क्या होगा ? सेवक धर्म का सँभाल बड़ा कठिन है। कैलाश पर्वत उठाना उतना कठिन नहीं है : रावण ने कैलाश उठाया पर सेवक धर्म सँभाल न सका। स्वामी का घर ही उखाड़ डाला। अतः मैं हठ कर नहीं सकता।

एकउ जुगुति न मन ठहरानी। सोचत भरतहिं रैन बिहानी ॥
प्रात नहाइ प्रभुहिं सिरु नाई। बैठत पठए रिषयँ बोलाई ॥४॥

अर्थ : एक युक्ति भी मन में नहीं ठहरी। भरत को सो चते ही सोचते रात बीत गयी। सवेरे नहाकर और प्रभु को प्रणाम करके बैठते ही ऋषिजी ने बुला भेजा।

व्याख्या : भरतजी ने इन उपायों के अतिरिक्त और भी उपाय सोचे जिनका वर्णन विस्तार से आगे होगा। जिसमें पिताजी का वचन भी बना रहे और सरकार अयोध्या भी लौट चलें और वह यह है कि हम दोनों भाई अपना अपना हिस्सा पलट लें। रामजी मानते हैं : पिता दीन्ह मोहि कानन राजू। सो कानन का राज मैं ले लूँ और अवध का राज्य रामजी स्वीकार करें। पर यह बात प्रमाण न होने पावेगी। सरकार मुझे भी पिता के वचन से न हटने देंगे। यह बात प्रमाण तो तब हो जब गुरुजी इसकी व्यवस्था दें। पर यह बात गुरुजी क्यों नहीं कहते। इसी विचार में रात बीत गयी कोई बात मन में बैठी नहीं। सब लोग सोये पर भरतजी जागते ही रह गये।

भरतजी भी स्नान करके सरकार के दर्शन के लिए जाते हैं। सो ज्योंही दर्शन करके लौटकर बैठे तब तक ऋषिजी का बोलावा आगया। ऋषिजी का भाव यह कि दो दिन के लिए मैंने कहा था। सो बीत गया अब काम की बात होनी चाहिए।

प्रथम सभा : पुनि रघुपति बहु बिधि समझाए : प्रकरण

दो. गुर पद कमल प्रनामु करि, बैठे आयसु पाइ।
बिप्र महाजन सचिव सब, जुरे सभासद आइ ॥२५३॥

अर्थ : गुरुजी के चरणों में प्रणाम करके आज्ञा पाकर बैठे। ब्राह्मण, महाजन, मन्त्री सब सभासद आकर जुट गये।

व्याख्या : सरकार ने गुरुजी से ही कहा था : सब समेत पुर धारिअ पाऊँ। आप इहाँ अमरावतिराऊ⋯उचित होय सो करिअ गोसाईं। अतः अब क्या करना उचित है। इसलिए गुरुजी ने सबेरा होते ही ब्राह्मण, महाजन : अगुआ मन्त्री को बुलवाया और भरतजी को बुलवाया। भरतजी ने आकर चरणकमलों की वन्दना की। गुरुजी की आज्ञा पाकर बैठ गये। तब तक सब समाज जुट गया। सभा लग गयी।

बोले मुनिबरु समय समाना। सुनहु सभासद भरत सुजाना ॥
धरम धुरीन भानुकुल भानू। राजा राम स्वबस भगवानू ॥१॥
सत्य संध पालक श्रुति सेतू। राम जनमु जग मंगल हेतू ॥

अर्थ : श्रेष्ठ मुनिजी समय के अनुसार बोले कि हे सभासदो तथा सुजान भरत सुनो। धर्म के धुरन्धर तथा सूर्यकूल के सूर्य राजाराम स्वतन्त्र भगवान् हैं। वे सत्यसन्ध हैं। श्रुतिसेतु पालक हैं। राम का जन्म संसार के मङ्गल के हेतु हुआ है।

व्याख्या : मननात् मुनिः। वसिष्ठजी मनन करनेवालों में श्रेष्ठ हैं। ये जो सबसे सम्मति पूछ रहे हैं यही समयानुकूल बोलना है। अयोध्या में यही निश्चय

हुआ था : अवसि चलिअ बन रामु हँ। तथा : जेहि सुनि बिनय मोहि जनु जानी। आवहिं बहुरि राम रजधानी। सो रामजी के पास तो हम लोग पहुँच गये। अब रामजी अयोध्या कैसे लौटें कैसे उनका अभिषेक हो यही विचार करना है। इसी लए गुरुजी ने सभा इकट्ठी की है। जिसमें सबकी लाभ हानि हो उसमें सबकी सम्मति लेनी चाहिए। सभा के धर्माधर्म में सबका भाग है। अतः सभासदों को पहिले सम्बोधन करते हैं। परन्तु गुरुजी जानते हैं कि इनमें करने धरनेवाले भरत हैं। अतः विशेष लक्ष्य भरत की ओर है। उन्हें सुजान कहकर भणित भगति मति गति का जानकार होना सूचित किया।

अब कहते हैं कि रामजी धर्मधुरीण हैं। धर्म से डिगेंगे नहीं। भानुकुलभानु हैं। यथा : जानहु तात तरनि कुल रीती। सत्यसंध पितु कीरति प्रीती। पिता की कीर्ति को न बिगड़ने देंगे। सत्यसन्ध हैं सत्य को छोड़ेंगे नहीं। श्रुति सेतुपालक हैं। पितृ देवो भव मातृ देवो भव आदि जो वेद का मार्ग है उसे नष्ट न होने देंगे। रामजी का जन्म केवल अयोध्या के मङ्गल के लिए नहीं है सम्पूर्ण संसार के मङ्गल के लिए है। सच्चे राजा तो राम ही हैं। इनकी आज्ञा का उल्लंघन हो नहीं सकता। क्योंकि सदा स्वतन्त्र हैं। और सभी परवश हैं। माया के नचाने से नाचते हैं। ये भगवान् हैं। उत्पत्तिं प्रलयश्चैव भूतानामगतिं गतिं। वेत्ति विद्यामविद्याञ्च स सवाच्यो भगवान् इति। जो उत्पत्ति, प्रलय, प्राणियों की अगति, गति, विद्या और अविद्या को जाने उसे भगवान् कहते हैं।

गुर पितु मातु बचन अनुसारी। खल दल दलन देव हितकारी॥
नीति प्रीति परमारथ स्वारथु। कोउ न राम सम जान जथारथु॥२॥

अर्थ : गुरु पिता माता के वचन के अनुसार चलनेवाले हैं। खल दल के दलन करनेवाले और देवता के हितकारी हैं। नीति प्रीति परमार्थ और स्वार्थ को राम की भाँति यथार्थ कोई नहीं जानता।

व्याख्या : कभी पिता की आज्ञा उल्लंघन नहीं करेंगे। पूर्व के छवो विशेषणों का यही सारांश है। अब पिछले दो विशेषणों का सारांश कहते हैं कि इन्हें खल दल का नाश और देवताओं का हित करना है : तुलसिदास जौ रहौं मातु हित को सुर साधु बिप्र भय टारे।

इसके अतिरिक्त रामजी सा जानकार भी कोई नहीं। नीति प्रीति परमार्थ और स्वार्थ के भीतर ही सब कुछ है। सो इन चारों विषयों का इनके समान कोई जाननेवाला नहीं है। चारों को विचार के ही वन में आये हैं। यथा : परमार्थ : मुनिगन मिलन बिशेष बन। नीति : तेहि पर पित आयसु। प्रीति : सम्मत जननी तोर। स्वार्थ : भरत प्रान प्रिय पावहिं राजू। बिधि सब बिधि मोहि सनमुख आजू।

बिधि हरि हरु ससि रबि दिसिपाला। माया जीव करम कुलि काला॥
अहिप महिप जँह लगि प्रभुताई। जोग सिद्धि निगमागम गाई॥३॥

अर्थ : ब्रह्मा, विष्णु, शिव, चन्द्र, सूर्य, दिक्पाल, माया, जीव, कर्म और काल ये सब शेष से लेकर राजा तक जो प्रभुताई हैं और योग की सिद्धियाँ जिनका गान वेद ने किया है।

व्याख्या : विधि हरि हर उत्पत्ति स्थिति और लय करनेवाले हैं। रवि शशि संसार के हित कर्त्ता और इन्द्र, अग्नि, यम, निर्ऋति, वरुण, वायु, कुबेर, ईशान, ये क्रमशः पूर्वादि दिशाओं के पालन करनेवाले हैं। माया जो सारे संसार को नचानेवाली है। जीव संसार का भोक्ता है। उसी के भोग के लिए संसार बना हुआ है और कर्म जिसकी मूर्त्ति संसार है और काल : गुणों का क्षोभक : जिसके कारण प्रकृति में वैषम्य होकर सृष्टि होती है और जो सबका संहारकर्त्ता है : प्रभुताई की सीमा शेष से लेकर राजा तक है। शेष पृथ्वी को धारण किये हुए हैं। राजा भी प्रजा रूपी धर्म द्वारा देश विदेश को धारण करता है और योग की अनेक सिद्धियाँ जो वेदादि शास्त्रों द्वारा प्रतिपादित हैं।

करि बिचार जिय देखहु नीकें। राम रजाइ सीस सबही कें ॥४॥

अर्थ : अच्छी तरह से जी में विचार करके देखो। रामजी की आज्ञा सबके सिर पर है।

व्याख्या : यहाँ पर वसिष्ठजी सरकार के ऐश्वर्य को एक बारगी खोले देते हैं। महात्मा हैं। सभा में अन्यथा भाषण नहीं करेंगे। दूसरे यह कि त्रिकालज्ञ हैं। उन्हें भरतजी की इस भावना का उत्तर देना है : मुनि पुनि कहब राम रुचि जानी। कहते हैं कि सब लोग विचार करके अच्छी तरह से देखो। यह जो संसार का बड़ा भारी आडम्बर चल रहा है उसके चलानेवाले क्षण भर विश्राम न करके जो अपने कार्य में तत्पर हैं वे किसकी न हटाई जानेवाली आज्ञा के वशीभूत होकर काम कर रहे हैं। सभी रामजी की आज्ञा के वशीभूत हैं। वैसा ही चलने में उन्हें सुख है। यथा : प्रभु अज्ञा जेहि कहँ जस अहई। सो तेहि भाँति रहे सुख लहई।

दो. राखें राम रजाइ रुख, हम सब कर हित होइ।
समुझि सयाने करहु अब, सब मिलि संमत सोइ ॥२५४॥

अर्थ : रामजी की आज्ञा और रुख रखने से ही हम लोगों का कल्याण होगा। यह समझकर आप लोग सुचतुर हैं। सब लोग मिलकर राय बिठाओ।

व्याख्या : गुरुजी का कहना है कि राय करने के पहिले इस बात को दृढ़ रूप से मन में रख लो कि रामजी की आज्ञा मानने और रुचि रखने में ही सबका कल्याण है। उनकी आज्ञा और रुख के विरुद्ध कार्य करने में भलाई नहीं है। उनकी आज्ञा और रुख के विरुद्ध चाहे मैं आज्ञा दूँ। चाहे कौसल्याजी हठ करें। चाहे भरतजी सङ्कोच डालें। कभी कल्याणप्रद फल नहीं हो सकता। अतः उनकी आज्ञा और रुख को ध्यान में रखते हुए आप लोग कोई रास्ता सोचें।

सब कहुँ सुखद राम अभिषेकू। मंगल मोद मूल मगु एकू ॥
केहि बिधि अवध चलहिं रघुराऊ। कहहु समुझि सोइ करिअ उपाऊ ॥१॥

अर्थ : रामजी का अभिषेक होना सबके लिए सुखद है और यही एक रास्ता मङ्गल मोद का मूल है। अब किस विधि से रामजी अवध चलें इस बात को आप लोग समझकर कहिये। वही उपाय किया जाय।

व्याख्या : भरतजी सोचते थे : केहि बिधि होइ राम अभिषेकू। मोहि अवकलत उपाउ न एकू। गुरुजी भी वही बात कहते हैं और उसका उपाय सबसे पूछते हैं। क्योंकि सबको इसी में सुख है। यही रास्ता मङ्गलमूल है और अभिषेक तभी सम्भव है जब रामजी अयोध्या लौटने को राजी हों। अब इनके लौटाने की विधि क्या होगी? पिता के वचन को ये छोड़ेंगे नहीं और बिना छोड़े अयोध्या जाना कैसे बनता है? और बिना अयोध्या जाने को राजी हुए अभिषेक कैसे बनता है? अभिषेक में झगड़ा नहीं है। उसे रामजी मान जायेंगे। क्योंकि पिता ने भरतजी को राज्य दिया। भरत उसे स्वीकार करते हैं और रामजी के चरणों में अर्पित किया चाहते हैं। अतः अभिषेक में बाधा नहीं है। बाधा है अयोध्या लौटने में। उसे कैसे दूर किया जाय। इसी पर आप लोग विचार करिये। जो उपाय निश्चित हो तदनुसार ही काम किया जाय।

सब सादर सुनि मुनिबर बानी। नय परमारथ स्वारथ सानी ॥
उतरु न आव लोग भए भोरे। तब सिरु नाइ भरत कर जोरे ॥२॥

अर्थ : सब ने आदर के साथ मुनिवर की श्रेष्ठ वाणी सुनी। जो नीति परमार्थ और स्वार्थ से सनी हुई थी। किसी से जवाब नहीं चलता। लोग भोले हो गये। तब सिर नवाकर भरतजी ने हाथ जोड़ा।

व्याख्या : बोले मुनिबर समय समाना। सुनहु सभासद भरत सुजाना। इस भाँति सबसे सम्मति पूछना मुनिजी की नीतिमत्ता है। रामजी के स्वरूप का ज्ञान कराना परमार्थ है : राखे राम रजाय रुख हम सबकर हित होइ। यह स्वार्थ है। इस भाँति वसिष्ठजी की नय परमारथ स्वारथ सानी वाणी सबने आदर से सुनी। भाव यह कि सबको विश्वास है कि मुनिजी कहते हैं वही तथ्य और वही पथ्य है।

वसिष्ठजी पहले सभासदों को सम्बोधन करके बोले थे। अतः पहिले उन्हीं से उत्तर की आशा थी। सो इन लोगों की बुद्धि काम नहीं करती। अतः कवि ने कहा कि लोग भोले हो गये। अपनी बुद्धि का सभी को अभिमान होता है। पर जब वह काम नहीं करती तब लाचार होकर मानना ही पड़ता है कि बुद्धि काम नहीं कर रही है। अतः सब लोग चुप हैं। सबको चुप देखकर भरतजी ने माथा नवाकर हाथ जोड़ा। अर्थात् कुछ कहा चाहते हैं।

भानुबंस भये भूप घनेरे। अधिक एक तें एक बड़ेरे॥
जनम हेतु सब कहँ पितु माता। करम सुभासुभ देइ बिधाता॥३॥

अर्थ : सूर्यवंश में बहुत से राजा लोग हुए। उनमें से एक से एक अधिक और बड़े भी हुए। माँ बाप से उनका जन्म हुआ और शुभाशुभ कर्म ब्रह्मदेव ने दिया।

व्याख्या : वैवस्वत मन्वन्तर भर में सूर्यवंशी राजाओं की प्रधानता रहती है। सो सूर्यवंश में न जाने कितने राजा हुए और बड़े बड़े प्रतापी हुए। किसे कम कहा जाय और किसे अधिक कहा जाय। पर इन लोगों के बड़प्पन का कारण क्या हुआ? इसे विचारने पर तो यही देखा जाता है कि माता पिता तो केवल जन्म के कारण हुए और ब्रह्मदेव ने उस जन्म में भोगने के लिए शुभाशुभ कर्म का विधान कर दिया। अर्थात् प्रारब्ध कर्म निश्चित कर दिये। भाव यह कि माता पिता जन्म के साथी हैं पर कर्म का साथी कोई नहीं। ब्रह्मदेव के नियत शुभाशुभ कर्म को भोगने के सिवा अन्य गति नहीं।

दलि दुख सजइ सकल कल्याना। अस असीस राउरि जग जाना॥
सो गोसाइँ बिधि गति जेंहि छेंकी। सकै को टारि टेक जो टेकी॥४॥

अर्थ : संसार जानता है कि आपका आशीर्वाद ऐसा है कि दुःख को नाश करके सब कल्याणों को साज देता है। आप ऐसे स्वामी हैं कि ब्रह्मदेव की गति को भी रोक देते हैं। आपने जो टेक किया उसे कौन टाल सकता है।

व्याख्या : ब्रह्मदेव ने जो शुभाशुभ नियत कर दिया उसे मिटानेवाला कोई नहीं। यथा : कह मुनीस हिमवंत सुनु जो बिधि लिखा लिलार। देव यज्ञ गन्धर्व मुनि कोउ न मेटनिहार। सो सूर्यवंश के पुरोहित आप हैं। आपके आशीर्वाद से सूर्यकुल के राजाओं का दुःख टलकर सदा कल्याण हुआ। आपके आशीर्वाद का यह प्रताप संसार जानता है। अर्थात् मेरे कुल का कल्याण तो सदा आप द्वारा होता आया है।

ब्रह्मा की गति शुभाशुभ कर्मों का विपाक है। सो अशुभ कर्म के विपाक को आप सदा से रोकते आये हैं। माता पिता की की हुई रक्षा न हुई। वे तो जन्म के साथी थे। विधाता ने शुभाशुभ दोनों कर्म दिया। उनसे भी कोई सहायता नहीं मिली। सहायता तो आपसे सदा मिलती आयी है। आपने हमारे कुल के लिए ब्रह्मा की गति को भी रोका है। आपने जो टेक धर लिया उसे ब्रह्मा भी नहीं टाल सकते। तो दूसरे की गिनती क्या? अतः आप यदि रामजी को लौटने की टेक पकड़ लें तो कौन बाधा कर सकता है?

दो. बूझिअ मोहि उपाउ अब, सो सब मोर अभागु।
सुनि सनेहमय बचन गुर, उर उमगा अनुरागु॥२५५॥

अर्थ : अब आप मुझसे उपाय पूछते हैं। यह सब मेरा अभाग्य है। स्नेहमय वचन सुनकर गुरुजी के हृदय में अनुराग उमड़ पड़ा।

व्याख्या : उपाय बतलानेवाले आप सो मुझसे उपाय पूछते हैं। यह हमारा अभाग्य नहीं है तो क्या है ? हम तो आज्ञाकारी ठहरे। आज्ञा देनेवाले तो आप हैं। यही हमारे कुल का रास्ता है। यथा : मोहि सम यहु अनुभयेउ न दूजे। सब पायेउँ रज पावनि पूजे। उत्तर में भरतजी ने ऐसे स्नेहमय वचन कहे कि गुरुजी के हृदय में अनुराग उमग आया। तात्पर्य यह कि आप उपाय बतलाइये। हम लोग तदनुकूल आचरण करें।

तात बात फुरि राम कृपाहीं। राम बिमुख सिधि सपनेहुँ नाहीं ॥
सकुचउँ तात कहत एक बाता। (अरध तजहिं बुध सरबसु जाता ॥१॥
तुम कानन गवनहु दोउ भाई। फेरिअहि लखन सीय रघुराई ॥
सुनि सुबचन हरखे दोउ भ्राता)। भे प्रमोद परिपूरन गाता ॥२॥

अर्थ : हे तात ! पर राम कृपा की बदौलत ही यह बात है। राम के विमुख तो सपने में भी सिद्धि नहीं है। बेटा ! मैं एक बात कहने में सङ्कोच करता हूँ : बुद्धिमान् लोग सर्वस्व जाता देखकर आधा छोड़ देते हैं। तुम दोनों भाई वन जाओ। लक्ष्मण सीता और रामजी को लौटा लिया जाय। ऐसा सुन्दर वचन सुनते ही दोनों भाई के शरीर में पुलक हो गया।

व्याख्या : मैं टेक कर लेता था उसे कर डालता था। यह बात सच है। पर वह सिद्धि भी तो रामकृपा का ही फल है। यहाँ तो राम से ही काम पड़ गया है। अतः टेक चल नहीं सकती। राम की कृपा से टेक निबहता है। उनके विमुख होने से सिद्धि कहाँ ?

गुरुजी ने यह बात तो कही। फिर भी उपाय बतलाने का बोझा तो उन पर ही रहा। पर जो उपाय था उसके कहने में गुरुजी को सङ्कोच था। राजा ने अयोध्या का राज भरत को दिया और चौदह वर्ष के लिए वन का राज्य रामचन्द्र को। यथा : पिता दीन्ह मोहि कानन राजू। सो दोनों भाई अपना अपना भाग बदल लो। तुम वन जाओ। राम राज पर जायँ। पर निरपराध भरत को वन कैसे भेजें। अतः कहा : सकुचउँ तात कहत एक बाता। परम बुद्धिमान् भरतजी भी वसिष्ठ के ही शिष्य थे। कहते ही लख लिया कि गुरुजी के मन में यह बात है। सो आनन्द से भर उठे।

श्री गोस्वामीजी : जहाँ प्रेम तहँ नेम नहिं : का अनुसरण करते हुए से मालूम होते हैं। सातों काण्ड में कोई भी नियम निबहने नहीं दिया है। छः काण्डों में श्लोकों से मङ्गलाचरण करते हुए भी लङ्का में दोहे से मङ्गलाचरण कर दिया। केवल अयोध्या में प्रायेण नियम निबहा है। परन्तु उसमें भी कई स्थानों पर सात अर्धालियाँ हैं। पचीस दोहे पर बराबर छन्द आते गये हैं। पर स्थल पर २६ दोहों

पर छन्द दिया है। आरण्य में तो दो अर्धालियों के बाद भी छन्द देखा गया है। अतः किसी विशेष स्थल पर छः अर्धालियाँ भी आश्चर्य जनक नहीं है।

राजापुर की प्रति को मैं प्रतिष्ठित प्राचीनतम प्रति मानता हूँ। उनमें उपर्युक्त कोष्ठान्तर्गत चार अर्धालियाँ : अर्थ तजहिं बुध सर्बस जाता। आदि नहीं है। न उनकी आवश्यकता है और न सामञ्जस्य बैठता है। सर्वस क्या है ? अर्ध क्या है ? जो अर्ध बतलाया जाता है वह वस्तुतः अर्ध होता है कि नहीं ? लखन सीय रघुबीर के लौटने में दोनों भाइयों के वन जाने की कारणता कैसे हुई ? इन प्रश्नों का यथार्थ उत्तर नहीं मिलता। तुम कानन गवनहु दोउ भाई। ऐसा गुरुजी का आदेश सुनने पर भी उनसे : कीजिय बचन प्रवान कहकर प्रमाण माँगना और वन को न चले जाना और गुरुजी के : सकुचहुँ तात कहत एक बाता। कहकर एकदम न ठहरना और बेधड़क उस बात को कह डालना अस्वाभाविक मालूम पड़ता है।

यह बात अवश्य है कि अयोध्या में गुप्त भाव भरे हुए हैं और कठिनता से हाथ आते हैं। इस काण्ड में आदेश से कम काम लिया जाता है। रुख से काम लिया जाता है। भरतजी को सोचते सोचते रात बीत गयी। कोई युक्ति प्रभु के लौटाने की स्थिर नहीं कर सके। कौन भरतजी ? जिनके महिमा सिन्धु के किनारे मुनिजी की मति अबला सी खड़ी रह गयी। उनके मन में यह धर्मसम्मत युक्ति भी आयी कि पिता ने प्रभु को चौदह वर्ष के लिए वन दिया और मुझे राज्य दिया। सो प्रभु तो उसे स्वीकार करके वन चले आये। पर मुझे अस्वीकार है। इसलिए हम दोनों भाई अपना अपना हिस्सा अदल बदल कर लें। इस भाँति प्रभु के धर्म में पीड़ा भी न होगी। केवल यह एक युक्ति है जिसे धर्मसम्मत कह सकते हैं। पर प्रभु मुझे भी पिता की आज्ञा से हटने न देंगे। यथा : मोहि अनुचर कर केतिक बाता। तेहि मँह कुसमउ बाम बिधाता। इसलिए यह युक्ति भी ठहर न सकी।

यहाँ सभा में मुनिजी सरकार के लौटने का उपाय पूछने लगे। भरतजी खिझलाकर कहने लगे : बूझिअ मोहि उपाउ अब सो सब मोर अभागु। इस पर गुरुजी ने उसी एक मात्र उपाय को कहना चाहा। पर उस उपाय का कहनेवाला भी कैकेयी की भाँति निन्द्य समझा जायगा। अतः इतना ही कहकर ठहर गये : सकुचहुँ तात कहत एक बाता।

मुनिजी के मुख से यह बात निकलते ही समझनेवाले लोग समझ गये कि वह कौन सी बात है। भरतजी प्रसन्न हो गये कि इस बात पर यदि मुनिजी स्थिर हो जायँ तो सरकार को भी मानना पड़ेगा। रह गयी मुझे निष्कारण वन भेजने की बात जिसके कहने में मुनिजी को सङ्कोच है सो तो मुझे परम इष्ट है। अतएव मुनिजी के सङ्कोच मिटाने और उन्हें उसी बात पर दृढ़ रखने के लिए कहते हैं : कानन करहुँ जनम भर बासू। एहि ते अधिक न मोर सुपासू ... नाथ निज कीजिअ बचन प्रवान।

यह बात अवश्य है कि इस प्रकार अर्थ करने में दोनों भाइयों के हिस्से के अदल बदलवाली बात की कल्पना करनी होगी। परन्तु भरत के वन भेजने में

ऐसी कल्पना बिना किये अर्थ बैठ ही नहीं सकता। चाहे कोई भी अर्थ किया जाय। अतः मैं राजापुर की प्रति के पाठ से पूर्ण सम्मत हूँ और कोष्ठान्तर्गत चार पद मुझे क्षेपक मालूम होते हैं।

मन प्रसन्न तन तेजु बिराजा। जनु जिय राउ रामु भये राजा ॥
बहुत लाभ लोगन्ह लघु हानी। सम दुख सुख सब रोवहिं रानी ॥३॥

अर्थ : मन प्रसन्न हो गया। शरीर में तेज विराजमान हो गया। मानो चक्रवर्तीजी गये और रामजी राजा हो गये। लोगों को लाभ अधिक और हानि थोड़ी थी। रानियों के लिए दुःख सुख समान ही रह गया। वे रोने लगीं।

व्याख्या : दो बात का शोक था। एक चक्रवर्तीजी के सुरपुर गमन का। दूसरे राम के वनवास का। सो मानो दोनों बिगड़ी हुई बातें बन गयी। ऐसी प्रसन्नता भरतजी को हुई। दशरथजी के जी उठने के समान खुशी हुई। अतः मन प्रसन्न हो गया और रामजी के राजा होने के समान उत्साह हुआ। अतः शरीर में तेज विराजमान हुआ। नहीं तो गँवारी कह रही थी : मुख प्रसन्न नहिं मानस खेदा। इतनी खुशी का कारण यह कि भरतजी सोचते हैं कि रामजी के राजा होने से लोगों को बड़ा लाभ होगा और मेरे वन जाने से हानि बहुत थोड़ी होगी। पर रानियाँ रोने लगीं कि एक बेटा लौटा तो दूसरा वन चला। उनके लिए बात वह की वही रह गयी।

कहहिं भरतु मुनि कहा सो कीन्हें। फलु जग जीवन्ह अभिमत दीन्हे ॥
कानन करउँ जनम भरि बासू। एहि तें अधिक न मोर सुपासू ॥४॥

अर्थ : भरतजी ने कहा कि मुनिजी का कहा करने से संसार के जीवों को अभिमत देने का फल मिलेगा। मैं जन्म भर वन में ही रहूँ इससे बढ़कर मुझे कोई सुभीता नहीं है।

व्याख्या : भरतजी कहते हैं : सकचहुँ तात कहत एक बाता। कहकर मुनिजी को जो बात अभिप्रेत है। उसके करने से जगत् के जीवों को अभिमत दान का फल होगा। रामजी के वनवास से सारे विश्व को शोक है। उनका राज पर लौटना सबको इष्ट है। सम्पूर्ण विश्व को अभिमत दान के पुण्य की सीमा नहीं है। इसके लिए यदि मैं जन्म भर वनवास करूँ तो भी थोड़ा है। इससे अच्छा सुअवसर कब मिलेगा कि केवल वनवास करने से जीव मात्र के अभिमत दान का फल मिले।

गुरुजी ने जिस बात का इशारा मात्र किया था उसके खोल देने से भरतजी का यह अभिप्राय था कि कहने में जब गुरुजी सङ्कुचित होते हैं तो उनको सङ्कोच में रखना उचित नहीं। अतः स्वयं उस बात को स्पष्ट करके तदनुकूल कार्य करने में अपना बड़ा भाग्य होना ख्यापन करते हैं।

दो. अन्तरजामी रामु सिय, तुम सरवग्य सुजान।
जौं फुर कहहु त नाथ निज, कीजिअ बचनु प्रवान ॥२५६॥

अर्थ : राम सीता अन्तर्यामी हैं और आप सर्वज्ञ तथा सुजान हैं। यदि आप सच कह रहे हैं तो हे नाथ ! आप अपने वचन को प्रमाण कीजिये अर्थात् पूरा कीजिये।

व्याख्या : भरतजी ने कहा कि आप जिस बात को कह रहे हैं वह मुझे स्वीकार है। उसे करने में मुझे बड़ा आनन्द है। चौदह वर्ष नहीं मैं यावज्जीवन वनवास के लिए प्रस्तुत हूँ। मेरी बातें बनावटी नहीं स्वयं सरकार तथा महारानी सीता देवी अन्तर्यामी हैं और आप सर्वज्ञों में भी सुजान हैं। देख लीजिये कि मेरे हृदय में कितना आनन्द है। सम्बन्ध प्रागल्भ्य से कहते हैं कि यदि आपने मुझे बहकाने के लिए न कहा हो तो अपने वचन का प्रमाण कीजिये। सरकार को लौटाइये और मुझे वन भेजिये।

भरत बचन सुनि देखि सनेहू। सभा सहित मुनि भयउ बिदेहू ॥
भरत महा महिमा जलरासी। मुनि मति ठाढ़ि तीर अबला सी ॥१॥

अर्थ : भरत का वचन सुनकर और उनकी प्रीति देखकर मुनि वसिष्ठ को सभा के सहित देह की सुधि न रही। भरत की महा महिमा रूपी समुद्र के तट पर मुनिजी की बुद्धि स्त्री के समान खड़ी रह गयी।

व्याख्या : कानन करहुँ जनम भर बासू। एहि ते अधिक न मोर सुपासू। इत्यादि वचन सुनकर : मन प्रसन्न तन तेज बिराजा। जनु जिय राउ राम भये राजा। ऐसी प्रेम की दशा देखकर न मुनिजी को तन मन की सुधि रह गयी और न सभासदों को तन मन की सुधि रह गयी।

भरत की प्रशंसा करने के लिए उनकी महिमा का बखान करने के लिए मुनिजी का जी उमगा। पर मुनिजी की बुद्धि नहीं काम करती कि कैसे भरतजी का बखान करें। उनकी महा महिमा देखकर मुनिजी की बुद्धि ऐसी स्तब्ध रह गयी जैसे महा समुद्र को देखकर कोई स्त्री स्तब्ध रह जाय और उसे न सूझे कि इसमें मेरी गति कैसे हो। यहाँ अबला शब्द देखकर गोस्वामीजी ने यह दिखलाया कि वह प्रबला है अबला नहीं है जो दुःसाहस कर बैठे।

गा चह पार जतनु हियँ हेरा। पावत नाव बोहितु बेरा ॥
अउर करहि को भरत बड़ाई। सरसी सीप कि सिंधु समाई ॥२॥

अर्थ : पार जाना चाहती है। मन से अनेक उपाय ढूँढ़े। पर उसे न नाव ही मिली न जहाज ही मिला और न बेड़ा ही हाथ लगा। दूसरा कौन भरत की बड़ाई कर सकता है। क्या तालाब की सीप में समुद्र समा सकता है ?

व्याख्या : समुद्र का सन्तरण भुज बल से नहीं हो सकता। अतः उसका उपाय नाव जहाज या बेड़ा की प्राप्ति है। इसी भाँति जब मुनिजी की बुद्धि ने भरत की महा महिमा रूपी समुद्र के पार करने के लिए विद्यारूपी नाव वेदरूपी जहाज और शरीररूपी बेड़ा का सहारा चाहा। पर कोई प्राप्त न हुआ। सब प्रयत्न

निष्फल गये : विद्या के नाव होने का प्रमाण। यथा : केवट बुधि बिद्या बड़ि नावा। वेद के जहाज होने का प्रमाण। यथा : बंदौं चारिउ बेद भव बारिधि बोहित सरिस। शरीर के बेड़ा होने का प्रमाण। यथा : नर तन भव बारिधि कहँ बेरो।

भावार्थ यह कि न तो विद्या के बल से पद्यादि की रचना से भरत की महामहिमा कह सके। न वेद मन्त्रों के उद्धरण से ही महिमा कही जा सकी। न न शरीर की चेष्टा से ही हृद्गत भाव व्यक्त कर सके। अतः मुनिजी की बुद्धि स्तब्ध रह गयी।

जब विवेक सागर गुरु वसिष्ठजी ही बड़ाई करने में असमर्थ रहे तो दूसरे किस में यह सामर्थ्य कहाँ से आवे कि भरत की बड़ाई कर सके। समुद्र से सीपी निकलती है। उसमें समुद्र नहीं समा सकता। अतः जब समुद्र की सीपी में जो कि दीर्घाकार होती है समुद्र नहीं समा सकता। तो तालाब की सीपी में जो कि अति क्षुद्राकार होती है समुद्र कैसे समायेगा ? अगम सनेह भरत रघुवर को। जहँ न जाय मन बिधि हरिहर को। विधि समुद्र हैं। उससे उत्पन्न सीपी स्थानीय वसिष्ठजी हैं। सो भरत के स्नेह की महिमा में विधि की गति नहीं। तब वसिष्ठजी की गति न होना स्वभाव से प्राप्त है। सामान्य लोग तो पल्वल की सीपी हैं। इनकी उत्पत्ति जीवों से है। इनके मन में भरत की महिमा कैसे आ सकती है।

भरतु मुनिहि मन भीतर भाए। सहित समाज राम पहिं आए॥
प्रभु प्रनामु करि दीन्ह सुआसनु। बैठे सब सुनि मुनि अनुसासनु॥३॥

अर्थ : भरतजी मुनिजी के मन में बहुत अच्छे लगे। तब समाज के सहित रामजी के पास आये। प्रभु ने प्रणाम करके सुन्दर आसन दिये और सब मुनिजी की आज्ञा पाकर बैठ गये।

व्याख्या : मुनिजी भरतजी की बड़ाई तो नहीं कर सके। पर उनके हृदय में उनकी महिमा का अनुभव हुआ और भरतजी पर उनका बड़ा प्रेम हो गया। अतः कुछ न कहकर भरतजी का काम करने के लिए रामजी के पास चल पड़े। सारा समाज साथ हो गया। रामजी के पास पहुँचे। सरकार ने उठकर समयानुकूल सुन्दर आसन दिये। सरकार के सामने सब खड़ा रहना चाहते हैं। मुनिजी के अनुशासन पाने पर बैठे। यथा : बैठन सबहि कह्यौ गुरुज्ञानी।

बोले मुनिबरु बचन बिचारी। देस काल अवसर अनुहारी॥
सुनहुँ राम सरबग्य सुजाना। धरम नीति गुन ग्यान निधाना॥४॥

अर्थ : मुनियों में श्रेष्ठ वसिष्ठजी देश काल और अवसर के अनुसार विचार कर बोले। हे सर्वज्ञ, सुजान, धर्म नीति, गुण और ज्ञान के निधान रामजी सुनिये।

व्याख्या : मुनिजी ने जब भरतजी को बुलवाया था उस अवसर पर समय के समान बोले थे। यथा : बोले मुनिबर समय समाना। पर यहाँ रामजी के सामने देश काल अवसर के अनुसार बोले। मुनिजी ने विचार किया कि ऐसे अवसर पर

रामजी से ही उपाय पूछना चाहिए। यहाँ सब लोग वन में हैं। राजगद्दी खाली पड़ी है। सब लोग आर्त हो रहे हैं। भरतजी गद्दी स्वीकार नहीं करते। ऐसी स्थिति अधिक दिन चल नहीं सकती एवं मनन करनेवाले श्रेष्ठ मुनिजी देश काल अवसर का विचार करते हुए बोले।

रामजी को सम्बोधन करते हुए सर्वज्ञ सुजान धर्म नीति और गुणनिधानादि विशेषण से विशेषित करते हैं। भाव यह कि एवं गुण विशेषण विशिष्ट पुरुष ही ऐसे अवसर पर उपाय कह सकता है। रामजी सर्वज्ञ शिरोमणि हैं। कोई बात उनसे छिपी नहीं। सुजान हैं। गुण ग्राहक हैं। सबका सम्मान जानते हैं। धर्म नीति में बाधा न पड़े। दोष और मोह से सम्पर्क न हो ऐसा उपाय बतला सकते हैं।

दो. सबके उर अंतर बसहु, जानहु भाउ कुभाउ।
पुरजन जननी भरत हित, होइ सो कहहु उपाउ ॥२५७॥

अर्थ : सबके हृदय में वास करते हो। सबके भाव कुभाव को जानते हो। जिसमें पुरजन माता और भरत का हित हो ऐसा उपाय बतलाओ।

व्याख्या : सबके उर अंतर बसहु। कहकर वसिष्ठजी आज ऐश्वर्य खोले देते हैं। क्योंकि सबके हृदय देश में रहनेवाला तो केवल ईश्वर है। ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति। सो रामजी से किसी के हृदय का भाव छिपा नहीं है। अतः परिस्थिति समझाने की आवश्यकता नहीं। जो रामजी उपाय कहें वही धर्माविरोधी होगा। सन्तोष कारक होगा और हित होगा। अतः कहते हैं : पुरजन जननी भरत हित होइ सो कहहुँ उपाउ।

भाव यह कि हम लोगों को उपाय नहीं सूझ रहा है। पुरजन जननी भरत हित पर ध्यान देने से धर्म में बाधा है। धर्म की रक्षा करने से पुरजन जननी भरत हित नहीं होता और पुरजन जननी भरत हित किसी भाँति उपेक्षा का विषय भी नहीं है।

आरत कहहिं बिचारि न काऊ। सूझ जुआरिहि आपन दाऊ ॥
सुनि मुनि बचन कहत रघुराऊ। नाथ तुम्हारेहि हाथ उपाऊ ॥१॥

अर्थ : आर्त विचारकर कभी नहीं कहते। जुआड़ी को अपना ही दाँव सूझता है। मुनिजी का वचन सुनकर रामजी कहने लगे कि नाथ! उपाय तो आपके हाथ में है।

व्याख्या : इस पर यदि कहा जाय कि आप गुरु हैं। विवेक सागर हैं। आपके हाथ में विश्व बदरीफल के समान है। आपका ही उपाय बतलाना प्राप्त है। अतः कहते हैं कि इस समय मैं आर्त हूँ। मैं विचार पूर्वक कुछ नहीं कह सकता। आर्त होने का कारण कहते हैं कि मेरी दशा इस समय जुआड़ी की सी हो रही है। मुझे भरत की रुचि रखने के अतिरिक्त और कुछ सूझ नहीं रहा है जुआड़ी को अपना ही दाँव सूझता है। हमारे सर्वस्व तो आप हैं। यथा : मुनि जन धन सर्वस सिव प्राना।

सो आप लौटते हैं। या वन जाते हैं। यही दाँव लगा हुआ है। सो मुझे आपका लौटना ही सूझता है। उचित अनुचित नहीं सूझता। इतने में ही मुनिजी को जो कुछ कहना रहा सब कह दिया।

मुनिजी ने कहा था : पुरजन जननी भरत हित होय सो कहिय उपाय। इस पर सरकार कहते हैं कि उपाय आपके हाथ है और तदनुसार कार्य करना मेरा काम है। दोनों भाई एक ही बात बोलते हैं। भरतजी ने कहा : बूझिअ मोहि उपाय अब सो सब मोर अभाग। और रामजी कह रहे हैं : नाथ तुम्हारेहि हाथ उपाऊ। अर्थात् उपाय कहना आपका कर्तव्य और आज्ञापालन मेरा कर्तव्य है।

सबकर हित रुख राउरि राखें। आयसु किए मुदित फुर भाखें॥
प्रथम जो आयसु मों कहुँ होई। माथे मानि करउँ सिख सोई॥२॥

अर्थ : आपका रुख रखने में सच कहने और प्रसन्न होकर आज्ञा पालन में सबका हित है। पहिले मुझे जो आज्ञा हो मैं उस शिक्षा को माथे पर चढ़ाकर करूँगा।

व्याख्या : मन से आपके रुख पर ध्यान रक्खे। कर्म से आपकी आज्ञा प्रसन्न मन से पालन करे और वचन को सत्य कहे। इसी में पुरजन जननी और भरत सबका हित है। केवल कहता ही नहीं हूँ करने को स्वयं तैयार हूँ। आज्ञा हो वन जाऊँ। आज्ञा हो अवध फिर चलूँ। पिता की आज्ञा छोड़ दूँ। जो आज्ञा हो वही करूँ और प्रसन्नता से महाप्रसाद रूप से आज्ञा को सिर चढ़ाऊँ। यदि इस पर कहा जाय कि आप तो मान लेंगे। पर क्या इसी भाँति और लोग भी मानेंगे? अतः कहते हैं :

पुनि जेहि कहँ जस कहब गोसाईं। सो सब भाँति घटिहि सेवकाई॥
कह मुनि राम सत्य तुम भाखा। भरत सनेह बिचारु न राखा॥३॥

अर्थ : तत्पश्चात् जिसको जो आज्ञा होगी वह सब तरह से सेवकाई करेगा। मुनिजी ने कहा कि रामजी! आपने सत्य कहा। पर भरत के स्नेह ने विचार रहने नहीं दिया।

व्याख्या : भाव यह कि मैं ही नहीं सब लोगों को आपकी आज्ञा माननी होगी। आपकी आज्ञा पालन करने के लिए ही मैंने जन्म लिया है। यथा : आयसु काह कहिय किन मोहीं। आप आर्त क्यों होते हैं?

मुनिजी ने कहा कि रामजी! आपका कहना ठीक है। सारा समाज और स्वयं आप भी मेरा कहना मानेंगे। पर मैं तो गुरु हूँ। मुझे तो जो धर्म है वही कहना चाहिए। पर भरत के स्नेह ने मुझे विचारपथ से विचलित कर दिया है। यहाँ सीधे सीधे धर्म कथन से भरत के प्रेम को बड़ा धक्का पहुँचेगा। प्रेमी प्रेमपात्र के समझाने से ही समझ सकता है। केवल धर्म की व्यवस्था देने से नहीं समझता।

तेहि ते कहउँ बहोरि बहोरी। भरत भगति बस भइ मति मोरी॥
मोरें जान भरत रुचि राखी। जो कीजिअ सो सुभ सिव साखी॥४॥

अर्थ : इसलिए मैं बार बार कहता हूँ कि मेरी बुद्धि भरत की भक्ति के वश हो गयी है। मेरी समझ में भरत की रुचि रखकर जो कीजियेगा वही शुभ होगा। इस विषय में मैं शङ्कर को साक्षी देता हूँ।

व्याख्या : वसिष्ठजी कहते हैं कि पहिले भी मैंने कहा था : भरत हित होय सो कहिय उपाउ। और अब भी कहता हूँ : भरत सनेह बिचार न राखा। मेरी बुद्धि अपने वश में नहीं है। भरत की भक्ति के वश हो गयी है। भरत जैसा चाहते हैं। मेरी बुद्धि वैसी ही हो गयी है। मैं इस समय यथार्थ कहने में असमर्थ हूँ। फिर भी इतना कहे देता हूँ कि चाहे घर लौटिये चाहे वन जाइये पर जो करिये वह भरत की रुचि रखते हुए करिये। इसमें सन्देह न कीजिये कि भरत की रुचि रखने में अधर्म स्पर्श करेगा। मैं शङ्कर को साक्षी देकर कहता हूँ कि भरतजी की रुचि रखकर जो ही कुछ किया जायगा उससे शुभ ही होगा। क्योंकि भरत जो समझेंगे कहेंगे करेंगे वही संसार में धर्मसार होगा।

दो. भरत बिनय सादर सुनिअ, करिअ बिचार बहोरि।
करब साधुमत लोकमत, नृपनय निगम निचोरि ॥२५८॥

अर्थ : भरतजी के विनय को आदर के साथ सुनिये और फिर से विचार कीजिये और साधुमत लोकमत राजनीति और वेद का जो निचोड़ हो वही कीजिये।

व्याख्या : भरत की रुचि समझने के लिए उनके सन्तोष के लिए भरत के विनय को तदनुकूल कार्य करने का भाव हृदय में रखकर सुनिये। मैं यह नहीं कहता कि वैसा कर ही डालिये। भरत का मनोभङ्ग न होने पावे और साधुमत लोकमत राजनीति और वेद का सार ग्रहण करके कार्य कीजिये। मुनिजी भरत के विनय का बल देख चुके हैं जिससे कि उनकी बुद्धि भरत के वश हो गयी। मुनिजी जानते हैं कि भरत की विनय सुनने के बाद भक्तवत्सल बिना द्रवीभूत हुए नहीं रह सकते। सारांश यह कि आप उचित ही करिये पर भरत को सन्तुष्ट करके।

गुर अनुराग भरत पर देखी। राम हृदय आनंदु बिसेखी ॥
भरतहिं धरम धुरंधर जानी। निज सेवक तन मानस बानी ॥१॥

अर्थ : गुरुजी का अनुराग भरत पर देखकर रामजी को विशेष आनन्द हुआ। भरतजी को धर्म धुरन्धर और मनसा वाचा कर्मणा अपना सेवक जानकर।

व्याख्या : पहिले कह आये हैं : भरत मुनिहि मन भीतर भाये। सो मन के भीतर अच्छा लगना ही अनुराग है। वह अनुराग गुरुजी के वचनों से खूब विस्पष्ट हो गया। मोरे जान भरत रुचि राखी। जो कीजिय सो सुभ सिव साखी। इससे अधिक क्या कहा जा सकता है ? सो गुरुजी का इतना प्रेम भरत पर देखकर सबको आनन्द हुआ। पर रामजी को विशेष आनन्द हुआ। क्योंकि भरत रामजी को प्राणप्यारे हैं।

यथा : तुम रघुपतिहिं प्राणहुँ ते प्यारे। अपने प्रिय का इतना बड़ा भाग्य देखकर विशेष आनन्द हुआ।

रामजी की अपार भक्ति गुरु चरणों में है। गुरुजी के अनुराग होने से भरतजी को बड़भागी समझा और उनको अपना आज्ञाकारी तथा सयाने साधु पहिले से ही जानते थे। यथा : भरत कहे मँह साधु सयाने। अतः भरतजी पर ही निर्णय छोड़ देना रामजी ने ठीक समझा। नीति भी है कि जिस पर भार दे उसे पहिले समझ भी लेना चाहिए।

बोले गुर आयसु अनुकूला। बचन मंजु मृदु मंगलमूला ॥
नाथ सपथ पितु चरन दोहाई। भएउ न भुअन भरत सम भाई ॥२॥

अर्थ : गुरुजी की आज्ञा के अनुकूल मनोहर कोमल और मङ्गलमूल वचन बोले। हे नाथ ! आपकी शपथ और पिता के चरणों की दोहाई देकर कहता हूँ कि इस संसार में भरत सा भाई कोई हुआ नहीं।

व्याख्या : गुरुजी की आज्ञा के अनुकूल रामजी बोले। अर्थात् भरतजी की रुचि को भलीभाँति स्थान देने के लिए बोले :

नाथ सपथ पितु चरन दोहाई। भयउ न भुवन भरत सम भाई ॥
जे गुरु पद अंबुज अनुरागी। ते लोकहुँ बेदहुँ बड़भागी ॥
मंजुवचन : राउर जापर अस अनुरागू। को कहि सकै भरत कर भागू ॥
मृदु वचन : लखि लघु बंधु बुद्धि सकुचाई। करत बदन पर भरत बड़ाई ॥
मङ्गलमूल वचन : भरत कहहिं सोइ कियें भलाई।

शपथ दो ही का लिया जाता है पूज्य का या प्रिय का। यहाँ रघुनाथजी दोनों का शपथ लेते हैं : पूज्य वसिष्ठजी का और प्रिय पिताजी का और कहते हैं : भयउ न भुवन भरत सम भाई। इस भाँति भरत के स्नेह का विचार किया। भरतजी के पीठ पीछे भी लक्ष्मणजी से कहा था : लखन तुम्हार सपथ पितु आना। सुचि सुबंधु नहिं भरत समाना।

जे गुर पद अंबुज अनुरागी। ते लोकहुँ बेदहुँ बड़भागी ॥
राउर जा पर अस अनुरागू। को कहि सकइ भरत कर भागू ॥३॥

अर्थ : जो गुरु के चरण कमल के अनुरागी हैं वे लोक और वेद में भी बड़भागी माने जाते हैं। आपका जिस पर ऐसा अनुराग है उस भरत के भाग्य को कौन कह सकता है।

व्याख्या : गुरु के चरण में प्रीति होने से इस लोक और परलोक दोनों में कल्याण होता है। इसलिए लोकहुँ वेदहुँ बड़भागी कहा। यथा : बंदौ गुरुपद पदुम परागा से : बड़े भाग उर आवै जासू तक।

यहाँ तो बात बहुत चढ़ी बढ़ी है। स्वयं गुरुजी कहते हैं : भरत भगति बस

भइ मति मोरी। इत्यादि। यहाँ तो गुरुजी का अनुराग भरत पर है। इसलिए भरत के भाग्य का वर्णन कौन कर सकता है।

लखि लघु बंधु बुद्धि सकुचाई। करत बदन पर भरत बड़ाई॥
भरत कहहिं सोइ किएँ भलाई। अस कहि राम रहे अरगाई॥४॥

अर्थ : छोटे भाई को देखकर उसके मुँह पर बड़ाई करने में बुद्धि को सङ्कोच होता है। भरत जो कहें वैसा ही करने में भलाई है। ऐसा कहकर रामजी चुप हो गये।

व्याख्या : बड़े के सम्मुख उनकी बड़ाई करना : स्तुति प्राप्त है। परन्तु अपने से छोटे की बड़ाई उसके मुख पर नहीं करना चाहिए। भरत छोटा भाई है। उसके सामने उसकी बड़ाई करने में बुद्धि सङ्कुचित होती है। तात्पर्य यह कि भरत में बड़े गुण हैं जो मैं उनके सामने नहीं कह सकता।

जब भरतजी सामने नहीं रहे तब रामजी ने लक्ष्मण से भरतजी की बड़ाई करते कहा था।

सुनहु लखन भल भरत सरीसा। बिधि प्रपंच महँ सुना न दीसा॥
भरतहिं होइ न राजमद बिधि हरिहर पद पाइ।
कबहुँकि काँजी सीकरनि छीर सिंधु बिनसाइ॥
सगुन खीर अवगुन जल ताता। मिलइ रचइ परपंच बिधाता॥
भरत हंस रबिबंस तड़ागा। जनमि कीन्ह गुन दोष बिभागा॥
गहि गुन पय तजि अवगुन बारी। निज जस जगत कीन्ह उँजियारी॥ इत्यादि।

अन्त में रामजी ने कहा कि भरत जो कहें तदनुसार कार्य करने में भलाई है। भाव यह कि भरत साधुमत लोकमत नृप नय निगम की अवहेलना कभी करेंगे नहीं। अतः यही विचार ठीक है कि भरत जो कहें वही सब करें मैं भी करूँ।

दो. तब मुनि बोले भरत सन, सबु सँकोचु तजि तात।
कृपासिंधु प्रिय बंधु सन, कहहु हृदयँ की बात॥२५९॥

अर्थ : तब मुनिजी ने भरत से कहा कि हे तात! सब सङ्कोच छोड़कर कृपासिन्धु प्रिय बन्धु रामजी से अपने हृदय की बात कह डालो।

व्याख्या : रामजी को चुप देखकर मुनिजी बोले कि यही अवसर है अपने हृदय की बात कहने का। तुम मुझसे उपाय के लिए कहते थे। सो उपाय मैंने कर दिया। रामजी ने सब निर्णय तुम्हारे ऊपर छोड़ दिया। इस समय यदि सङ्कोच करोगे तो बात न बनेगी। फिर जिससे कहना है वे कृपासिन्धु हैं और प्रिय बन्धु हैं। उनसे दिल खोलकर बोलो। महूँ सनेह सकोचबस सन्मुख कहेउँ न बैन : वाली बात इस अवसर पर ठीक नहीं।

सुनि मुनि बचन राम रुख पाई । गुर साहिब अनुकूल अघाई ॥
लखि अपने सिर सबु छरु भारू । कहि न सकहिं कछु करहिं बिचारू ॥१॥

अर्थ : मुनिजी का वचन सुनकर रामजी का रुख पाकर गुरु और स्वामी को पूरी तरह से अनुकूल देखकर और अपने ऊपर नहीं सँभलनेवाला बोझा अनुभव करके कुछ कह नहीं सकते भरतजी विचार कर रहे हैं ।

व्याख्या : मुनिजी का वचन सुना । सङ्कोच छोड़कर बोलने के लिए और सरकार का भी रुख पाया कि हाँ कहो । गुरुजी ने कहा था : राखे राम रजाय रुख हम सबकर हित होय । सो रुख भी देख लिया । अवसर ठीक पाकर ही बोलना चाहिए । सो भरतजी ने देख लिया कि गुरुजी और स्वामी रामजी पूरी तरह से अनुकूल हैं । विनय करने का यही अवसर है ।

गुरुजी ने मेरी ओर से बहुत कहा । अतः स्वामी रामजी ने सब बोझा मेरे ऊपर छोड़ दिया । यह बोझा मेरे सँभालने लायक नहीं है । पिता के वचन त्यागने से अधर्म है । सो उसे त्यागने को कैसे कहूँ । नहीं कहता हूँ तो पुरजन जननी और अपना स्वार्थ भी नहीं सधता । इधर सँभालो तो उधर नहीं सँभलता । उधर सँभालो तो इधर नहीं सँभलता । अपने ऊपर बोझा : जिम्मेदारी आ पड़ना बड़ी कठिन समस्या है । वही भरतजी जो सोचते थे : अवसि फिरब गुरु आयसु मानी । मुनि पुनि कहब राम रुचि जानी । मातु कहे बहुरहिं रघुराऊ । राम जननि हठ करबि कि काऊ । मोहि अनुचर कर केतिक बाता । तेहि महँ कुसमउ बाम बिधाता । वही जब उनके ऊपर सब बोझा रख दिया गया तब लौटने के लिए कहने में हिचकते हैं । विचार करने लगे कि रामजन्म संसार भर के मङ्गल के लिए है । रामजी खलदल दलन देव हितकारी हैं । सो देवताओं का हित इनके वन जाने में है । प्रजाओं का हित इनके लौटने में है । यहाँ क्या करना चाहिए ।

पुलकि सरीर सभाँ भये ठाढ़े । नीरज नयन नेह जल बाढ़े ॥
कहब मोर मुनिनाथ निबाहा । एहि ते अधिक कहौं मैं काहा ॥२॥

अर्थ : शरीर में पुलक हो गया । सभा में खड़े हो गये । कमल ऐसे नेत्र आँसू से भर गये । कहने लगे कि मेरा कहना तो मुनिनाथ ने निवाह दिया । इससे अधिक मैं क्या कहूँ ?

व्याख्या : गुरु और स्वामी को अनुकूल जानकर भरतजी को हर्ष से सात्त्विक भाव हुआ । रोंगटे खड़े हो गये । नेत्रों में जल भर आया । बोलने के लिए सभा में खड़े हो गये । सबके हित अनहित का प्रश्न है । भरत के मन्त्र को ही पसन्द करके सब लोग भरतजी के साथ आये हैं । अतः सब कुछ भरतजी के विनय पर ही निर्भर है । अतः सबके सुनने के लिए भरतजी खड़े होकर बोले । अथवा बड़ों की सभा है । अतः बोलने के समय खड़े हो गये । सभा में खड़ा होकर बोलने की रीति अति प्राचीन मालूम होती है ।

भरतजी कथन के प्रारम्भ में ही मुनिजी के कथन की चर्चा करते हैं कि जो कुछ मुझे कहना था वह सब मुनिजी ने कह दिया। अर्थात् मेरी ओर से बोलने में गुरुजी ने कुछ बाकी नहीं छोड़ा।

मैं जानऊँ निज नाथ सुभाऊ। अपराधिहु पर कोह न काऊ॥
मो पर कृपा सनेह बिसेखी। खेलत खुनिस न कबहूँ देखी॥३॥

अर्थ : मैं अपने स्वामी का स्वभाव जानता हूँ कि अपराधी पर भी कभी क्रोध नहीं करते। मुझ पर तो अधिक प्रेम करते हैं। खेल में भी क्रोध करते कभी नहीं देखा।

व्याख्या : भयउ न भुवन भरत सम भाई का उत्तर देते हुए कहते हैं कि यह तो मेरी जानी बात है कि अपराधी पर भी कभी न क्रोध करने का सरकार का स्वभाव है। मैंने पहिले ही कहा था : यद्यपि मैं अनभल अपराधी। भा मोहिं कारन सकल उपाधी। तदपि सरन सम्मुख मोहिं देखी। छमि सब करिहैं कृपा बिसेखी। वही हुआ। मेरे अपराध पर ध्यान नहीं उलटे मेरे भाईपन की प्रशंसा हो रही है।

मेरे ऊपर तो सदा से ही अधिक कृपा करने का स्वभाव है। खेलने में झगड़ा हो ही जाता। मैंने तो खेलने में भी सरकार को कभी क्रोध करते नहीं देखा। यथा : कहत राम बिधु बदन रिसौंहे सपनेहुँ लख्यो न काउ। सो आज भी मुझ पर परम कृपा है।

सिसुपन ते परिहरेउँ न संगू। कबहुँ न कीन्ह मोर मन भंगू॥
मैं प्रभु कृपा रीति जियँ जोही। हारेहु खेल जितावहिं मोहीं॥४॥

अर्थ : बचपन से कभी साथ नहीं छोड़ा। कभी मेरा मन नहीं तोड़ा। मैंने प्रभु की कृपा की रीति का अनुभव किया है कि हारा हुआ खेल भी मुझे जिता देते थे।

व्याख्या : भरतजी : सिसुपन ते परिहरेउ न संगू कहकर अपना दुःख प्रकट कर रहे हैं कि आज जन्म का संग छूट रहा है। रामचरन पंकज मन जासू। लुबुध मधुप इव तजै न पासू। सो आज भौंरे का कमल से विछोह हो रहा हैं। आज तक सरकार ने कभी मेरा मन भङ्ग नहीं किया। बचपन में भी : जीति हारि चुचुकारि दुलारत देत दियावत दाउँ। सो आज मेरा मन भङ्ग हो रहा है।

मैंने प्रभु की कृपा की रीति का अनुभव किया है कि हारी हुई बाजी मुझे जिता देते थे। वही स्वभाव पड़ा है। वही आशा दृढ़ है। आज भी मेरी हारी हुई बाजी जिताइये।

दो. महूँ सनेह सकोच बस, सनमुख कही न बयन।
दरसन तृपति न आजु लगि, पेम पियासे नयन॥२६०॥

अर्थ : मैंने भी स्नेह और सङ्कोचवश कभी सन्मुख वचन नहीं कहे। प्रेम की प्यासी आखें आज तक दर्शन से तृप्त नहीं हुईं।

व्याख्या : अधिक दुलार होने से मैं धृष्ट नहीं हुआ। बल्कि मेरा स्नेह और सङ्कोच बढ़ता गया। आज तक मैंने सामने बोलने का साहस नहीं किया और न बराबर देखने का साहस किया। यथा : हारे हरख होत हिय भरतहिं। जिते सकुच सिर नयन नये। प्रेम के कारण देखने की बड़ी इच्छा पर कभी आँख भर देखा नहीं। दर्शन की प्यास कभी बुझी नहीं। ऐसा दर्शन भी आज दुर्लभ हुआ चाहता है।

बिधि न सकेउ सहि मोर दुलारा। नीच बीच जननी मिस पारा ॥
यहउ कहत मोहिं आजु न सोभा। अपनी समुझि साधु सुचि को भा ॥१॥

अर्थ : ब्रह्मदेव मेरा दुलार न सह सके। नीच ने माता के व्याज से अन्तर डाल दिया। यह भी कहते आज मुझे शोभा नहीं देता। अपनी समझ से साधु और पवित्र होने से क्या होता है ?

व्याख्या : मेरा ऐसा दुलार ब्रह्मा से न देखा गया कि मैं पुत्र हूँ। नाभिजन्मा हूँ। सो मेरा इतना दुलार नहीं जितना भाई का दुलार हो रहा है। ऊँच निवास नीच करतूती। देखि न सकहिं पराइ बिभूती। सो यह नीच करतूति देखिये कि दुलार में अन्तर डालने के लिए माँ को बहाना बना दिया। माँ के दोषी होने से मैं दोष से बच नहीं सकता और न कुछ कर सकता हूँ। यदि दूसरे को मिस बनाया होता तो मैं उसे राम निरादर का फल चखा देता।

सब ब्रह्मा का दोष है। मैं तो निरपराध हूँ। यह भले ही अपने मन में समझ लूँ पर संसार तो नहीं मानेगा। दस्तूर तो यही कि माँ बाप का कलङ्क अपने ऊपर लेकर सुपुत्र माँ बाप को निष्कलङ्क स्थापित करने का प्रयत्न करते हैं। सदा तो मेरी माँ भली रही और जब कलङ्क का समय आया तो माँ बुरी हो गयी और मैं भला हो गया। यह भी कोई बात है ? अपने को साधु और पवित्र मान लेने से कोई साधु और पवित्र नहीं हो जाता।

मातु मंदि मैं साधु सुचाली। उर अस आनत कोटि कुचाली ॥
फरइ कि कोदव बालि सुसाली। मुकुता प्रसव कि संबुक काली ॥२॥

अर्थ : माता मन्द हैं और मैं श्रेष्ठ और सदाचारी हूँ। ऐसी बात मन में लाना ही कुचाली की सीमा है। क्या कोदो की बाली अच्छा धान फल सकती है। पुराना घोंघा से क्या मोती निकल सकता है।

व्याख्या : माता कुचाली है और मैं साधु सुचाली हूँ। इस बात का कहना दूर रहा ऐसा भाव भी मन में लाना कुचाल की पराकाष्ठा है। जिसने माता को कुचाली समझा वह स्वयं बड़ा भारी कुचाली है। उसे समझना चाहिए कि कुचाली माता से सुचाली पुत्र उत्पन्न ही नहीं हो सकता। सम्पूर्ण चराचर में यही नियम है। कोदव की वाली से धान नहीं फलता और न पुराने घोंघा से मोती निकलता है।

नये घोंघे से ही कोई मूल्यवान् वस्तु नहीं निकलती तो पुराने से मोती कैसे निकलेगी। कहीं ताल पाठ है। वहाँ पर यह अर्थ करना होगा कि जब समुद्र के घोंघे से मोती नहीं निकलती तो ताल के घोंघे से कैसे निकलेगी।

सपनेहु दोस क लेस न काहू। मोर अभाग उदधि अवगाहू॥
बिनु समझे निज अघ परिपाकू। जारिउँ जायँ जननि कहि काकू॥३॥

अर्थ : सपने में भी किसी के दोष का लेश नहीं है। मेरा दुर्भाग्य रूपी समुद्र का थाह नहीं है। बिना अपने पापों का परिणाम समझे मैंने माता को काकु कहकर व्यर्थ जलाया।

व्याख्या : भरतजी कहते हैं कि किसी को दोष का लेश भी नहीं है। न तो ब्रह्मदेव का कोई दोष है और न माता का ही दोष है। बिना पाप के दुःख होता नहीं। पूर्वजन्म कृत कर्म ही वर्तमान जन्म का भाग है। मेरे पूर्वार्जित कर्म बड़े खोटे हैं। अतः इस जन्म में मेरा ऐसा अभाग्य उदय हुआ कि उसे अथाह समुद्र कहा जा सकता है। इस बात को बिना समझे मैंने व्यर्थ ही काकु का प्रयोग करके अर्थात् : जननी तू जननी भई बिधि सन कछु न बसाइ। ऐसा कहकर माँ का जी दुःखाया। भिन्नकण्ठध्वनिर्धीरैः काकुरित्यभिधीयते। भिन्न कण्ठध्वनि को पण्डित लोग काकु कहते हैं।

हृदयँ हेरि हारेउँ सब ओरा। एकहि भाँति भलेहि भल मोरा॥
गुर गोसाइँ साहिब सिय रामू। लागत मोहि नीक परिनामू॥४॥

अर्थ : मैं अपने मन से चारों ओर ढूँढ़कर थक गया। केवल एक ही भाँति अच्छी तरह से मेरा भला है कि गुरुजी समर्थ हैं और सीताराम मालिक हैं। मुझे परिणाम भला मालूम पड़ता है।

व्याख्या : एकौ जुगुति न मन ठहरानी। सोचत भरतहि रैन बिहानी। अतः भरद्वाजजी से भी कहा : एहि कुरोग कर औषध नाँहीं। सोधेउँ सकल बिस्व मन माँहीं। यही बात यहाँ कह रहे हैं कि कोई उपाय ऐसा नहीं जिसमें मेरा भलीभाँति भला हो। एक ही बात का आसरा है कि गुरुजी समर्थ हैं। यथा : सो गोसाइँ बिधि गति जेहि छेकी और सीताराम स्वामी हैं। इन्हें छोड़कर मुझे निर्दोष कहनेवाला कोई नहीं है। यथा : परिहरि रामसीय जग माँहीं। कोउ नहिं कहिहि मोर मत नाँहीं। इनके किये मेरा सब प्रकार से भला होगा और इन सब बातों का परिणाम अच्छा होगा।

दो. साधु सभा गुर प्रभु निकट, कहउँ सुथल सति भाउ।
प्रेम प्रपंचु कि झूठ फुर, जानहिं मुनि रघुराउ॥२६१॥

अर्थ : साधु सभा में गुरुजी और स्वामी के निकट तथा पवित्र स्थल में मैं

सच्चे भाव से कह रहा हूँ। यह प्रेम है कि प्रपञ्च है। झूठ है कि सत्य है। इसे मुनिजी और रामजी जानते हैं।

व्याख्या : अब हृदय की बात कहते हैं। अतः शपथ ले रहे हैं कि मैं सत्यभाव से कहता हूँ। यहाँ साधु सभा है। तिस पर स्वयं गुरुदेव और स्वामी भी बैठे हैं। चित्रकूट सा तीर्थ है यहाँ पर मैं कह रहा हूँ। असत्य नहीं कह सकता। यदि कहना भी चाहूँ तो बात छिप नहीं सकती। मुनि वसिष्ठजी तथा साक्षात् रघुराज खूब समझते हैं कि मेरा प्रेम है या प्रपञ्च है। मैं झूठ कह रहा हूँ या सच कह रहा हूँ। गुरुजी सर्वज्ञ हैं और रघुराज अन्तर्यामी हैं।

भूपति मरन पेम पनु राखी। जननी कुमति जगतु सबु साखी ॥
देखि न जाहिं बिकल महतारी। जरहिं दुसह जर पुर नर नारी ॥१॥

अर्थ : प्रेम के प्रण की रक्षा करके महाराज का देहावसान हुआ। माँ की दुर्बुद्धि को संसार जानता है। माँ लोग ऐसी विकल हैं कि देखते नहीं बनता। पुर के नर नारी दुःसह ज्वर से जल रहे हैं।

व्याख्या : पहिला शूल यह है कि पिता का देहावसान हुआ। परन्तु सन्तोष की बात इतनी हुई कि प्रेमप्रण की रक्षा में हुआ। जिसकी प्रशंसा स्वयं गुरुजी ने किया। यथा : भूप धरमब्रतु सत्य सहारा। जेहि तनु परिहरि प्रेम निबाहा। दूसरी विपत्ति यह कि माँ का दुर्यश संसार में फैल गया। जिसकी दुर्बुद्धि से महाराज का मरण हुआ। यदि माँ का मरण हो गया होता तो वह भी सह्य था। पर अपयश होना असह्य है। गुरुजी को भी कहना पड़ा। यथा : प्रथम कथा सब मुनिबर बरनी। कैकइ कुटिल कीन्हि जस करनी।

तीसरा शूल यह कि कौसल्यादि माता ऐसी विकल हैं उनकी दशा देखी नहीं जाती। यथा : मलिन बसन बिबरन बिकल कृस सरीर दुख भार। कनक कलप बर बेलि बन मानहुँ हनी तुसार। चौथा यह कि प्रजागण दुःसही विरह यातना भोग रहे हैं। यथा : नगर नारि नर निपट दुखारी। मनहु सबन्हि सब सम्पति हारी।

महीं सकल अनरथ कर मूला। सो सुनि समुझि सहिउँ सब सूला ॥
सुनि बन गवनु कीन्ह रघुनाथा। करि मुनि बेष लखन सिय साथा ॥२॥

अर्थ : मैं ही सब अनर्थों का मूल हूँ। सो सुनकर और समझकर सब शूल मैंने सहा। परन्तु रघुनाथजी लक्ष्मण और सीता के साथ मुनि का वेष बनाकर वन गये। यह सुनकर।

व्याख्या : ये सब अनर्थ मेरे कारण हुए। यथा : सुतहि राज रामहि बनबासू। देहु लेहु सब सवति हुलासू। यह सब सुना और मन में यह विचारा कि जब मैं ही सब अनर्थ का मूल हूँ तो मुझे छोड़कर इन शूलों को कौन सहेगा। अतः ये तीनों शूल सहन करने योग्य न होने पर भी मैं सहन कर गया।

अब शूलों से बड़ा शूल कहते हैं कि जब सुना कि रघुनाथजी वन को गये। साथ में सीता और लक्ष्मणजी गये और मुनिवेष बनाकर गये।

यथा : राम गवन बन अनरथ मूला।
जो सुनि सकल बिस्व भइ सूला॥

तथा : पितु आयसु भूषन बसन तात तजे रघुबीर।
बिसमउ हरख न हृदय कछु पहिरे बलकल चीर॥

चले बिपिन सुनि सिय संग लागी। रहइ न रामचरन अनुरागी॥
सुनतहि लखन चले उठि साथा। रहहि न जतन किये रघुनाथा॥

बिनु पानहिन्ह पयादेहि पाँए। संकर साखि रहेउँ एहि घाए॥
बहुरि निहारि निषाद सनेहू। कुलिस कठिन उर भएउ न बेहू॥३॥

अर्थ : कि बिना जूते के पैदल गये। शङ्कर साक्षी हैं कि इस घाव से भी मैं बँच गया। फिर निषाद का स्नेह देखकर इस वज्र से कठिन हृदय में छेद नहीं हुआ।

व्याख्या : ऐसी दशा में भी पैदल वन गये। पैर में जूते भी नहीं। यह चोट ऐसी बैठी कि इससे बचना कठिन था। शङ्कर को साक्षी देकर भरतजी कह रहे हैं कि फिर भी मैं बँच गया। यथा : भरतहिं बिसरघौ पितु मरन सुनत राम बन गौन। हेतु अपनपौ जानि जिअ थकित रहे धरि मौन। फिर निषाद का प्रेम देखा कि सरकार के लिए मरने को तैयार था। यथा : भरत भाइ नृप मै जन नीचू। बड़े भाग अस पाइअ मीचू। इसका प्रेम देखने पर तो मेरे कलेजे को फट जाना चाहता था कि जिसके प्रेम से निषाद प्राण देने को प्रस्तुत है उसका भाई होकर मैं जीवित हूँ। पर मेरा कलेजा नहीं फटा। यह वज्र से भी अधिक कठिन है।

अब सबु आँखिन्ह देखेउँ आई। जिअत जीव जड़ सबइ सहाई॥
जिन्हहि निरखि मग साँपिनि बीछी। तजहिं बिषम बिष तापस तीछी॥४॥

अर्थ : अब तो मैंने सब आँखों से देख लिया। जीव जड़ को जीते रहने से सभी सहना पड़ता है जिसे देखकर विषम विषवाली साँपिन और बीछी भी जो तपस्वियों के लिए भी तीखी है रास्ता छोड़ देती है।

व्याख्या : पहिले तो सब सुनता आता था। यहाँ आकर तो सब अपनी आँखों देख लिया। अब तो शरीर छूट जाना चाहिए था। परन्तु नहीं छूटा। यह शूल भी मैं सह गया। जड़ जीव जो अवसर आने पर भी नहीं मरता उसे क्या क्या नहीं सहना पड़ता?

भयानक विषैली साँपिन और बीछी अधिक अन्धकार में बड़ी विकराल हो उठती हैं। तनिक सा खटका होते ही काटती हैं। तपस्वियों के लिए तो उनका वैर त्यागना प्राप्त है। यथा : अहिंसाप्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्यागः। परन्तु वे नहीं त्यागतीं। रामजी के देखने से वे भी आर्द्र हो जाती हैं। रामजी को देखकर उनका

भी वैर छूट जाता है। वे भी इतनी भली हो जाती हैं कि रास्ता छोड़कर हट जाती हैं।

दो. तेइ रघुनन्दनु लखनु सिय, अनहित लागे जाहि।
तासु तनय तजि दुसह दुख, दैउ सहावइ काहि ॥२६२॥

अर्थ : वे ही रघुनन्दन लक्ष्मण और सीता जिसे वैरी मालूम पड़े उसके बेटे को छोड़कर दैव दुःसह दुःख किसे सहावे।

व्याख्या : जिस रामजी लक्ष्मण और जानकी की तपस्वियों से भी अधिक अहिंसा प्रतिष्ठा है। अथवा जिस राम जानकी और लक्ष्मण को वन की साँपिन बोछी भी हित मानते हैं उन्हें जिसने अहित माना उसे घोर दण्ड होना ही चाहिए। फिर माता के लिए पुत्र का दुःसह दुःख अतीव असह्य है। अतः उसके बेटे को दुःसह दुःख सहाना दैव का कर्त्तव्य हो जाता है। क्योंकि दैव शुभाशुभ फल का देनेवाला है। यथा : कर्म सुभासुभ देइ बिधाता।

सुनि अति बिकल भरत बर बानी। आरति प्रीति बिनय नय सानी॥
सोक मगन सब सभा खँभारू। मनहु कमल बन परेउ तुषारू ॥१॥

अर्थ : भरतजी की अति विकल आर्त्ति प्रीति विनय और नय से सनी हुई वाणी सुनकर सब सभा अति शोकयुक्त हो गयी जैसे कमल वन में पाला पड़ गया हो।

व्याख्या : यद्यपि भरतजी की वाणी अत्यन्त व्याकुलता से भरी है। फिर भी उसमें आर्त्ति, प्रीति, विनय और नय सना हुआ है। पहिले नय कहा। यथा : कहब मोर मुनि नाथ निबाहा। एहि ते अधिक कहब मैं काहा। फिर विनय किया। यथा : मैं जानउँ निज नाथ सुभाऊ। तब प्रीति कहा। यथा : महूँ सनेह सकोच बस सनमुख कहेउँ न बैन। अन्त में आर्त्ति कहा। यथा : तेइ रघुनन्दन लखन सिय अनहित लागे जाहिं।

भरतजी का ऐसा वचन सुनते ही सभी सभासद् के हृदयों में शोक उमड़ आया। सब दुःखी हो गये। उनके आकार और चेष्टा ऐसी दैन्यसूचक हो गयी जैसे कमल वन में पाला पड़े और वह खाक स्याह हो जाय। ऐसे ही अवसर पर खँभार शब्द का प्रयोग अन्यत्र भी देखा जाता है। यथा : देखि निबिड़तम दसहु दिसि कपि दल परेउ खँभार।

कहि अनेक बिधि कथा पुरानी। भरत प्रबोधु कीन्ह मुनि ग्यानी॥
बोले उचित बचन रघुनंदू। दिनकर कुल कैरव बन चंदू ॥२॥

अर्थ : अनेक प्रकार की पुरानी कथाएँ कहकर मुनि ज्ञानी ने भरतजी को समझाया। सूर्यकुल रूपी कोईं के चन्द्रमा रघुनन्दन रामजी उचित वचन बोले।

व्याख्या : ऐसे अवसर पर प्राचीन कथा जिसमें संसार के अनित्यत्व का वर्णन हो और महापुरुषों के महाविपत्ति में धैर्य धारण करने का वर्णन हो सुनाने

से ही शोकयुक्त का शोक थमता है। अतः ज्ञानी मुनिजी ने अनेक विधि से ऐसी कथाएँ कहीं।

पूत प्रह्लाद को न लाग्यो पापलेश पितु पार करने को तासु भक्ति भई नैयासी।
त्योंही पृथुराज को न लाग्यो बेनु कृत पाप प्रबल प्रताप पुहुमीहू भई गैयासी।
भगति बखानौं भूरि भापय बखानौं तेरी बिरति बखानौ एक बात नहिं मैयासी।
दुखित न होउ देखि दोष जननी को तुम कीरति तुम्हारी जग जागत जुन्हैयासी।

दो. बिना पुण्य सुख होत नहिं दुःख न होत बिनु पाप।
काहुहिं दोष न दीजिये समुझि मनहिं मन आप॥
राम सच्चिदानन्द घन तहाँ नहीं दुःख लेश।
ताते बहुत न कीजये हिय महँ व्यर्थ कलेश॥

मुनिजी स्वयं ज्ञानी हैं। अतः उनके कथन का प्रभाव भरतजी पर पड़ा और उन्हें प्रबोध हुआ।

वसिष्ठजी के उपदेश और भरतजी के प्रबोध के बाद रघुनन्दन रामजी बोले। ये रघुकुल रूपी कैरव : कोईं के वन के लिए चन्द्रमा हैं। इनके उदय से कैरव वन खिल उठता है। शोक का अपनयन गुरुजी ने किया। अब आनन्द का आधान रामजी करेंगे। इनकी वाणी में ऐसा प्रभाव है कि तुषार के मारे कमल वन को कैरव वन बनाकर प्रफुल्लित कर दिया। फिर भी मुख से जो वचन निकलते हैं वे मनोरञ्जक होते हुए भी उचित ही होते हैं।

तात जायँ जिय करहु गलानी। ईस अधीन जीव गति जानी॥
तीन काल तिभुवन मत मोरें। पुन्यसिलोक तात तर तोरे॥३॥

अर्थ : हे तात ! ईश्वर के अधीन जीव की गति जानकर तुम व्यर्थ जी में ग्लानि करते हो। मेरे मत से तो तीनों काल में जो पुण्य श्लोक तीनों लोक के हैं वे सब तुम्हारे नीचे हैं।

व्याख्या : सुभ अरु असुभ कर्म अनुहारी। ईस देइ फल हृदय बिचारी। शुभाशुभ फल का देनेवाला ईश्वर है। अतः कर्म बन्धन से निबद्ध जीव की गति ईश्वर के अधीन है। फिर ग्लानि करना ही व्यर्थ है। ग्लानि करने से ईश्वरीय व्यवस्था उलट नहीं सकती।

रह गयी तुम्हारी बात। सो तुम्हारे विषय में मैं यह कह सकता हूँ कि जिन पुण्यात्माओं का नाम मङ्गलमय दिन बीतने के लिए प्रातःकाल लिया जाता है वे सब तुमसे निम्नकोटि में हैं। तुम्हारे ऐसा पुण्य श्लोक तीनों लोक में न हुआ न है और न होगा।

उर आनत तुम्ह पर कुटिलाई। जाइ लोकु परलोकु नसाई॥
दोसु देइ जननिहि जड़ तेई। जिन्ह गुर साधु सभा नहि सेई॥४॥

अर्थ : तुम्हारे ऊपर किसी प्रकार की कुटिलता हृदय में लाते ही लोक भी

जाता रहेगा और परलोक भी नष्ट होगा। माता को वे ही जड़ दोष देते हैं जिन्होंने कभी गुरु और साधु की सभा का सेवन नहीं किया है।

व्याख्या : मही सकल अनरथ कर मूला : इस भरतजी की उक्ति का उत्तर देते हुए सरकार कहते हैं कि तुम्हारे ऊपर जो मन से भी कुटिलता का आरोप करेगा उसका लोक परलोक सब बिगड़ जायगा। जितने ही पवित्र पुरुष का निन्दक निन्दा करता है उतनी ही उसके दोष को मात्रा बड़ी हो जाती है। सो तुम्हारे ऐसे पुण्यात्मा पर मिथ्यारोपण का भाव भी मन में आना परम अकल्याण का कारण होगा।

भरतजी ने कहा था : जननी कुमति जगत सब साखी : इस उक्ति का उत्तर देते हुए कहते हैं कि माता को दोष देना अनुचित है। माता को दोष तो जड़ व्यक्ति दिया करते हैं जिन्हें समझ नहीं। मातृदेवो : भव ऐसा वेद कहता है। उनका हर प्रकार से मान करना चाहिए। जिसने गुरु साधु की सभा का सेवन किया है वह जानता है कि कोई भी किसी के दुःख सुख का देनेवाला नहीं है। अपना कर्म ही शुभाशुभ फल देते हैं। यथा : जीव कर्मबस दुःख सुख भागी। फिर गुरु सेवी और साधु सेवी माता को दुःख देनेवाली कैसे मान सकते हैं ? भरतजी तुम तो गुरु साधु सेवी हो। तुम ऐसा न कहो। जिसे ज्ञान नहीं है वह दूसरे को दुःख सुख देनेवाला मानता है।

दो. मिटिहहिं पाप प्रपंच सब, अखिल अमंगल भार।
लोक सुजसु परलोक सुखु, सुमिरत नामु तुम्हार ॥२६३॥

अर्थ : तुम्हारा नामस्मरण से सब पाप प्रपञ्च और सम्पूर्ण अमङ्गल के समूह मिट जायँगे और इस लोक में सुयश और परलोक में सुख होगा।

व्याख्या : भरतजी सब पुण्य श्लोकों में बड़े हैं। अतः उनके नामस्मरण को महिमा सरकार श्रीमुख से कहते हैं कि तुम्हारे नामस्मरण से पाप का प्रपञ्च भी मिटेगा और अमङ्गल भी नष्ट होंगे। स्मरण करनेवाले को इस लोक में कीर्ति और परलोक में आनन्द प्राप्त होगा। तुम्हारी अकीर्ति का तो प्रश्न ही नहीं है। यथा : समन सकल उतपात सब भरत चरित जप जाग। सरकार ने कह दिया : उर आनत तुम पर कुटिलाई। जाइ लोक परलोक नसाई। इससे कुछ अयोध्यावासी जिन्होंने भरत का सम्मत कहा था लोक परलोक से भ्रष्ट हो चले थे उनका परिहार सरकार ने इस वचन से कर दिया कि वे भी भरतजी का नाम लेकर लोक में सुयश और परलोक में सुख के भागी होंगे।

कहउँ सुभाउ सत्य सिव साखी। भरत भूमि रह राउरि राखी ॥
तात कुतरक करहु जनि जाएँ। बैर पेम नहिं दुरइ दुराएँ ॥१॥

अर्थ : मैं शिवजी को साक्षी देकर स्वभाव कहता हूँ। हे भरतजी ! कि तुम्हारे रखने से पृथ्वी ठहरी है। हे तात ! तुम व्यर्थ का कुतर्क न करो। वैर और प्रेम छिपाये नहीं छिपता।

व्याख्या : सरकार उस भाव को समझ रहे हैं जिससे प्रेरित होकर भरतजी ने कहा था : मोहि राज हठि देहौ जबहीं । रसा रसातल जाइहि तबहीं । आदर्श बिगड़ जाने से पृथ्वी रसातल को जाती है। अतः राजा का आचरण ऐसा होना चाहिए जिसमें प्रजा का आदर्श न बिगड़ने पावे। भरतजी के राज्य स्वीकार सें प्रजा का आदर्श बिगड़ जाता। प्रजा के सामने यह आदर्श उपस्थित हो जाता कि पिता के मरने की परवाह न करके भाई को वनवास देकर स्वार्थ साधन करना चाहिए। संसार की व्यवस्था ही बिगड़ जाती और लोगों का घोर पतन होता : जैसा कि आजकल हो रहा है। अतः सरकार कहते हैं कि आदर्श के न बिगड़ने देने का श्रेय तुम्हें ही है। अतः तुम्हारे रक्षा करने से संसार बड़े भारी पतन से बच रहा है।

जिससे कोई लाभ न हो ऐसा सुतर्क भी करना निष्फल है और निष्फल कुतर्क तो करना ही नहीं चाहिए। भगवती कैकेयी न कोदव हैं। न संबुक काली है। न साँपिन बीछी हैं। उनमें कोई दोष नहीं है और न तुममें दोष का लेश है। ते रघुनंदन लखन सिय अनहित लागेजाहि। तासु तनय तजि दुसह दुख दैव सहावै काहि। ऐसी बातें करना कुतर्क है और इससे कोई लाभ भी नहीं है। तुम्हें अपने प्रेम के लिए शपथ लेने की आवश्यकता नहीं। वैर और प्रेम ये दोनों भाव ऐसे हैं कि इन्हें कोई छिपाना भी चाहे तो छिपा नहीं सकता। निषादराज ने भी यही कहा था : लखब सनेहु सुभाव सुहाएँ। बैरु प्रीति नहि दुरइ दुराएँ।

मुनिगन निकट बिहग मृग जाहीं। बाधक बधिक बिलोकि पराहीं ॥
हित अनहित पसु पंछिउ जाना। मानुष तनु गुन ग्यान निधाना ॥२॥

अर्थ : मुनियों के पास चिड़ियाँ और जानवर चले जाते हैं और बाधक तथा वधिक को देखकर भागते हैं। अपना हित और अनहित पक्षी और पशु भी जानते हैं। मनुष्य का शरीर तो गुण ज्ञानका निधान है।

व्याख्या : मुनिगण अहिंसा में प्रतिष्ठित हैं। वे जीव जन्तु से भी प्रेम करते हैं। अतः उनके प्रेम का प्रभाव पशु पक्षी पर भी पड़ता है। वे निःशङ्क उनके पास पहुँच जाते हैं और बाधक वधिक का प्रभाव इतना उग्र होता है कि उन्हें देखकर पशु पक्षी भाग खड़े होते हैं। अतः यह सिद्ध है कि हित अनहित का परिज्ञान अज्ञानी पशु और पक्षियों को भी हो जाता है। फिर मनुष्य को क्यों न होगा। मनुष्य का चोला तो गुण ज्ञान का भण्डार है। उसे हित अनहित का ज्ञान होना स्वाभाविक है। नहि कस्तूरिकामोदः शपथेन विभाव्यते। कस्तूरी की सुगन्ध शपथ से नहीं प्रमाणित्त की जाती। भाव यह कि तुम्हारा प्रेम संसार देख रहा है।

तात तुम्हहि मैं जानेउँ नीके। करौं काह असमंजसु जीके ॥
राखेउ राँय सत्य मोहि त्यागी। तनु परिहरेउ पेम पनु लागी ॥३॥

अर्थ : हे तात ! मैं तुम्हें अच्छी तरह जानता हूँ। पर करूँ क्या ? जी में बड़ा

असामञ्जस्य हो रहा है। महाराज ने मेरा त्याग करके सत्य की रक्षा की और प्रेम के प्रण के लिए शरीर त्याग दिया।

व्याख्या : तुम्हें तो बचपन से देख रहा हूँ। यथा : जनमे एक संग सब भाई। भोजन सयन केलि लरिकाई। कनबेध उपबीत बिआहा। संग संग सब भयेउ उछाहा। अतः तुम्हें अच्छी तरह जानता हूँ और तुम्हारे प्रेम प्रण को सफल भी करना चाहता हूँ। पर करूँ क्या? बड़ा भारी असामञ्जस्य उठ खड़ा हुआ है। उसकी विधि किसी भाँति नहीं बैठा सका। पिताजी भी असामञ्जजस्य में पड़ गये थे। सत्य और प्रेम का सामञ्जस्य नहीं बैठता था। अतः मुझे त्याग करके उन्होंने सत्य की प्रतिष्ठा की और मेरे प्रेम के निर्वाह में शरीर ही त्याग दिया। इस भाँति उन्होंने तो सामञ्जस्य बिठा लिया।

तासु बचन मेंटत मन सोचू। तेहि ते अधिक तुम्हार संकोचू॥
तापर गुरु मोहि आयसु दीन्हा। अवसि जो कहहु चहउँ सोइ कीन्हा॥४॥

अर्थ : उनके वचन के मिटाने में मन में सोच हो रहा है और उससे भी अधिक तुम्हारा सङ्कोच है। उसके ऊपर स्वयं गुरु की आज्ञा हो गयी। अतः जो तुम कहो उसे निश्चय सिर चढ़ाकर करना चाहता हूँ।

व्याख्या : असामञ्जस्य यह है कि उस सत्यप्रतिज्ञ प्रेमनिधि पिता के वचन को कैसे मिटा दूँ और इधर तुम्हारा सङ्कोच में किसी भाँति नहीं छोड़ सकता। जब से तुम्हारा आना सुना तभी से इस असामञ्जस्य में पड़ा हूँ। यथा : सो सुनि रामहिं भा अति सोचू। उत पितुबच इत बंधु सँकोचू। ऐसी स्थिति में पड़ गया कि किसे छोड़ूँ किसे ग्रहण करूँ। फिर भी पलड़ा तुम्हारे ही ओर झुकता था। अब तो कोई बात ही नहीं है। गुरुजी ने आज्ञा दे दी। यथा : मोरे जान भरत रुचि राखी। जो कीजिअ सो सुभ सिव साखी। अब तो जो तुम कहो वही मैं करना चाहता हूँ।

दो. मनु प्रसन्न करि सकुच तजि, कहहु करौं सोइ आजु।
सत्यसंध रघुबर बचन, सुनि भा सुखी समाजु॥२६४॥

अर्थ : मन प्रसन्न करके और सङ्कोच छोड़ करके जो कहो सो मैं आज करूँ। सत्यसन्ध रघुवर रामजी के वचन को सुनकर समाज सुखी हो गया।

व्याख्या : रामजी कहते हैं कि भरत तुम्हारी सङ्कोची बान है। गुरुजी ने भी कहा और मैं भी कहता हूँ कि सङ्कोच छोड़कर स्पष्ट कहो कि क्या चाहते हो इतना ही नहीं प्रसन्न मन से कहो। जिसमें तुम प्रसन्न हो वही मैं किया चाहता हूँ। जो तुम कहोगे उसे आज ही करूँगा : हीलाहवाली नहीं। बोलो क्या चाहते हो।

सरकार का वचन सुनकर सारा समाज सुखी हो गया। रघुकुल कैरव वनचन्द के वचन को सुनकर कैरव वन खिल उठा। क्योंकि सरकार सत्यसन्ध हैं। जो कह दिया वह निश्चय करेंगे। भरतजी लौटने को कहेंगे ही। अतः आशा की पूर्ति होते देखकर सब प्रसन्न हो गये।

सुर गन सहित सभय सुरराजू। सोचहिं चाहत होन अकाजू ॥
बनत उपाउ करत कछु नाँहीं। राम सरन सब गे मन माँहीं ॥१॥

अर्थ : देवगण के सहित इन्द्र भयभीत हो गये। सोचने लगे कि अब काम बिगड़ा चाहता है और कुछ करते धरते बन नहीं रहा है। सो सब मन से रामजी के शरण गये।

व्याख्या : रामजी की बात सुनकर सब देव समाज डर गया। इन्द्र भी डर गये कि रामजी ने तो सब बोझा भरतजी पर डाल दिया। अब भरतजी क्या कहेंगे कि आप वन चले जाइये। भरतजी कहेंगे ही अयोध्या लौटाने को। सरकार सत्यसन्ध हैं। अयोध्या लौट जायँगे और यदि वे अयोध्या चले गये तो फिर सीताहरण और रावण वध कैसे होगा ? रावण स्वयं रामजी से लड़ने नहीं आवेगा। सुबाहु वध हुआ। विराध वध हुआ। पर रावण चुप रह गये। रामजी निष्कारण उसका वध करेंगे नहीं। तब तो हम लोगों का दुःख फिर ज्यों का त्यों रह गया।

हम पहिले ही कह रहे थे : करिय जतन छल सोधि। जिसमें रामजी से भरत की भेंट न हो। पर गुरुजी ने कहा : भगत सिरोमनि भरत से जनि डरपहु सुरपाल। अब क्या करें ? समय का बड़ा सङ्कोच है। रामजी और भरतजी पर माया चल नहीं सकती। दूसरे पर चलावें तो उसे कार्य में परिणत करने के लिए समय चाहिए। रामजी इधर प्रतिज्ञा कर बैठे हैं : मन प्रसन्न करि सकुच तजि कहहु करौं सोइ आज। अतः अब तो कोई उपाय नहीं है। सभा बैठी हुई है। इस समय हम लोग प्रत्यक्ष जाकर कुछ कह नहीं सकते। अतः कोई उपाय नहीं है। इस भाँति अपने को असमर्थ पाकर सब देवता लोग मन से रामजी के शरण गये।

बहुरि बिचारि परसपर कहहीं। रघुपति भगत भगतिबस अहहीं ॥
सुधि करि अंबरीष दुरबासा। भे सुर सुरपति निपट निरासा ॥२॥

अर्थ : फिर विचारकर आपस में कहने लगे कि रघुपति तो भक्त की भक्ति के वश में रहते हैं। राजा अम्बरीष और दुर्वासा का कथानक स्मरण करके देवगण और इन्द्र अत्यन्त निराश हो गये।

व्याख्या : शरण जाने के बाद यह बुद्धि फुरी कि अब रामजी के हाथ रह ही क्या गया। ये तो भक्त के वश में हैं। भरत ने जो प्रार्थना की तो इन्होंने सब भार भरत पर ही डाल दिया। यही इनका स्वभाव है। जब दुर्वासा शरण में गये तो कह दिया : अहं भक्तपराधीनो ह्यस्वतन्त्र इव द्विज। इसी तरह हम लोगों को भी टका सा जवाब मिल गया : अहं भक्तपराधीनो ह्यस्वतन्त्र इव। अतः अब तो राम शरण से भी आशा नहीं।

सहे सुरन्ह बहु काल बिषादा। नरहरि किए प्रगट प्रहलादा ॥
लगि लगि कान कहहिं धुनि माथा। अब सुर काज भरत के हाथा ॥३॥

अर्थ : देवताओं ने बहुत काल तक दु:ख उठाया। पर नृसिंह को प्रह्लाद ने प्रकट किया। सब एक दूसरे के कान लगकर और सिर धुनकर कहने लगे कि अब देवताओं का काम तो भरत के हाथ में है।

व्याख्या : सरकार को देवताओं से कहीं अधिक भक्त का ध्यान रहता है। पहिले भी हिरण्यकश्यप ने क्या कम दु:ख दिया। पर सरकार प्रकट नहीं हुए। इन्हें तो भक्त प्रकट करता है। प्रह्लाद पर दु:ख पड़ा तब प्रकट हुए। अत: इनका वन जाना या अयोध्या लौटना अब भरत के हाथ है।

अतः लज्जा से सभा में खुले मैदान नहीं कह रहे हैं। एक दूसरे के कान में कह रहे हैं और पश्चात्ताप से सिर पीटते हैं कि हम सब लोगों ने तो मिलकर पाँव रोपकर भरत का अपकार किया। यथा : पाँव रोपि सब मिलि मोहिं घाला। अब भरत के हाथ में मेरी कार्यसिद्धि आयी। अतः बात बिगड़ी ही बिगड़ाई है।

आन उपाई न देखिअ देवा। मानत रामु सुसेवक सेवा ॥
हिय सपेम सुमिरहु सब भरतहि। निज गुन सील राम बस करतहि ॥४॥

अर्थ : हे देवता लोग ! दूसरा उपाय तो अब कुछ दिखाता नहीं। रामजी सुसेवक की सेवा को मानते हैं। अतः प्रेमयुक्त हृदय से सब कोई भरत का स्मरण करो। जिसने अपने गुण और शील से रामजी को वश कर लिया है।

व्याख्या : सब देवता लोग इसी बात पर आगये कि सिवा भरत के शरण गये कोई उपाय नहीं है। क्योंकि रामजी सुसेवक की सेवा को मानते हैं। देवताओं का सङ्कोच उसके सामने कुछ नहीं है। परन्तु भरत की शरण जाने का भी तो अवसर नहीं है। अतः हृदय से ही भरतजी को प्रेम से सुमिरो। भरतजी बड़े शीलवान् हैं। बड़े गुणी हैं। हम लोगों का काम बिगड़ने नहीं देंगे। उनमें कम शील और गुण है। रामजी तो उनके शील और गुण के वश हैं।

दो. सुनि सुर मत सुरगुर कहेउ, भल तुम्हार बड़ भागु।
सकल सुमंगल मूल जग, भरत चरन अनुरागु ॥२६५॥

अर्थ : देवताओं की सम्मति सुनकर वृहस्पतिजी ने कहा कि तुम्हारा बड़ा अच्छा भाग्य है। संसार में भरत के चरण में अनुराग होना सब शुभमङ्गलों का मूल है।

व्याख्या : देवताओं की सम्मति जब गुरु वृहस्पति ने सुनी तब बोले। अभी तक चुप रहे क्योंकि पहिले की उनकी कही हुई बात देवताओं के मन में ठीक नहीं बैठी थी। उन्होंने पहिले ही कह दिया था : भगत सिरोमनि भरत से जनि डरपहु सुरपाल। सो सुरपाल समाज सहित डर गये। गुरुजी चुप हैं कि डर रहे हैं तो डरने दो। हम क्या करें। हमने तो पहिले ही कह दिया है कि मत डरो। अब जब देखा कि देवता भरतजी के शरण में मन से जाना चाहते हैं तो इस प्रस्ताव का अनुमोदन करते हुए गुरुजी ने कहा कि तुम्हारा भाग्य अच्छा है और बड़ा भाग्य

है कि तुम्हारे मन में भरत के शरण जाने की बात आगयी। भरत के चरण में अनुराग होना इस संसार में सब सुमङ्गलों का मूल है। अतः तुम्हारा मङ्गल होनेवाला है। उन लोगों का अभाग है जिनके मन में भरत की भक्ति नहीं आती।

सीतापति सेवक सेवकाई। कामधेनु सय सरिस सुहाई ॥
भरत भगति तुम्हरे मन आई। तजहु सोचु बिधि बात बनाई ॥१॥

अर्थ : सीतापति सेवक की सेवकाई सौ कामधेनु के समान सुन्दर है। तुम्हारे मन में भरत की भक्ति आगयी। सब सोच छोड़ दो। ब्रह्माजी ने ही बात बना दी।

व्याख्या : सीतापति के सेवक भरत हैं। उनकी सेवकाई अर्थात् भक्ति सौ कामधेनु के समान कल्याणकारिणी है। रामजी की भक्ति तो एक ही कामधेनु के समान कही गयी है। यथा : सुनु खगेस हरि भगति बिहाई। जे सुख चाहहिं आन उपाई। ते जड़ कामधेनु गृह त्यागी। खोजत आकु फिरहिं पय लागी। एक कामधेनु सब मनोरथ पूर्ण करती है सौ कामधेनु क्यों न पूरा करेंगी ?

तुम लोगों के मन में यह बात जो आयी : हिय सप्रेम सुमिरहु सब भरतहि। सो मानो सौ कामधेनु का आगमन हुआ। अब मनोरथ पूर्ण होने में सन्देह नहीं है। पहिले जो तुम लोगों ने विचार किया था : रामहि भरतहि भेंट न होई। वह बात बिगड़ने का रास्ता था। विधि सानुकूल होते हैं तब भरत की भक्ति मन में आती है। अतः अब सोच छोड़ दो स्वयं ब्रह्मा ने ही बात बना दी। मेरे कहने पर बात मन में न आयी और इस समय आगयी तो यह ब्रह्मा की ही करतूत है।

देखु देवपति भरत प्रभाऊ। सहज सुभायँ बिबस रघुराऊ ॥
मन थिर करहु देव डरु नाँहीं। भरतहिं जानि राम परिछाहीं ॥२॥

अर्थ : हे देवराज ! भरत का प्रभाव देखो। रामजी जिसके सहज स्वभाव से वश हो रहे हैं। भरतजी को राम की परछाहीं जानकर देवता लोग ! मन को स्थिर करो। डर की कोई बात नहीं है।

व्याख्या : गुरुजी कहते हैं कि भरत के प्रभाव को आँखों देख लो। भरत ने न कोई तप किया, न आराधना की। अपने स्वभावानुकूल काम करते जा रहे हैं और उस पर रामजी उनके वश में हैं। कह रहे हैं : कहहु करउँ सो आज। भरत के मन रखने के सामने न पिता का वचन ही कुछ है और न तुम लोगों का सङ्कोच ही किसी गिनती में है।

तुम्हारा मन चञ्चल हो उठा है। उसे स्थिर करो। क्योंकि डर की कोई बात नहीं है। भरत को राम की परिछाहीं : प्रतिबिम्ब जानो। पुरुष जैसी चेष्टा करता है उसका प्रतिबिम्ब भी वैसी ही चेष्टा करता है। प्रतिबिम्ब बिम्ब के प्रतिकूल चेष्टा कर नहीं सकता।

सुनि सुरगुर सुर संपत सोचू। अंतरजामी प्रभुहिं संकोचू॥
निज सिर भारु भरत जियँ जाना। करत कोटि बिधि उर अनुमाना॥३॥

अर्थ : वृहस्पतिजी और देवताओं की सलाह और विचार सुनकर प्रभु अन्तर्यामी को सङ्कोच हुआ। भरतजी मन में जान गये कि सब बोझा मेरे ऊपर है। इसलिए करोड़ों प्रकार का अनुमान करने लगे।

व्याख्या : वृहस्पतिजी की सम्मति और देवताओं का विचार सरकार ने सुना। उनके लिए व्यवधान कोई वस्तु नहीं है। बातचीत आकाश में होती थी। पर सरकार सब सुनते थे। गुरुजी की सम्मति भी सुनी और देवताओं का विचार भी सुना। अतः सरकार सङ्कुचित हुए। सङ्कुचित होने का यथेष्ट कारण भी है। यथा : प्रभु प्रनाम करि दीन्ह भरोसो। चले मुदित मन डर न खरोसो। सो आज सब निर्णय भरत पर छोड़े बैठे हैं। अन्तर्यामी हेतु गर्भ विशेषण है। सबके अन्तर का हाल जानते हैं।

देवताओं का विचार कहकर जहाँ से प्रसङ्ग छोड़ा था वहीं फिर उठाते हैं। रामजी के यह कहने से कि कहहु करउँ सोइ आज। भरतजी ने जान लिया कि सरकार ने सब बोझा मेरे ऊपर छोड़ दिया। पिता के वचन का भार, प्रजा के सुख का भार, स्वामी के धर्म का भार, माताओं की अभिरुचि का भार, देवताओं के कार्य का भार, सब भरतजी पर आ पड़ा। अतः तर्क की कोटियाँ उठीं। स्वामी के धर्म को बचाते हैं तो पुरजन परिजन माताओं के दुःख का अन्त नहीं और अवध लौट चलने को कहते हैं तो देवताओं का कार्य बिगड़ता है और सरकार के धर्म में बाधा पड़ती है। मैं सेवक हूँ स्वामी का धर्म कैसे बिगड़ने दूँ इत्यादि।

जरि बिचारु मन दीन्ही ठीका। राम रजायसु आपन नीका॥
निज पन तजि राखेउ पन मोरा। छोहु सनेहु कीन्ह नहिं थोरा॥४॥

अर्थ : विचार करके मन में यही ठीक किया कि रामजी की आज्ञा में ही अपनी भलाई है। अपना प्रण छोड़कर मेरा प्रण रक्खा। सो थोड़ा छोह और स्नेह नहीं किया।

व्याख्या : विचार करके गुरुजी के उपदेश पर आगये : राखे राम रजाय रुख हम सब कर हित होइ। राजा वही है जिसकी रजायसु : आज्ञा सब पर चले। अब यदि रामजी की आज्ञा से सब कार्य होना आरम्भ हो जाय तो स्वभावतः वे राजा हो जाते हैं। अतः यदि न भी लौटे तो भी राज्य की स्वीकृति तो हो ही जाती है। जीव का कल्याण ईश्वर की आज्ञापालन में है। यथा : प्रभु आयसु जेहि कहँ जस अहई। सो तेहि भाँति रहे सुख लहई।

जिस समय सरकार ने कह दिया : मन प्रसन्न करि सकुच तजि कहहु करौं सोइ आज। उसी समय वन से लौटना और सिंहासनारूढ़ होना स्वीकार कर लिया। अपना प्रण छोड़ दिया और मेरा प्रण रख लिया। छोह और स्नेह की सीमा हो

गयी। अब जो वह आज्ञा दें वही करने में भलाई है। ऐसे मालिक को सङ्कोच में डालना अच्छा नहीं।

दो. कीन्ह अनुग्रह अमित अति, सब बिधि सीतानाथ।
करि प्रनामु बोलेउ भरतु, जोरि जलज जुग हाथ ॥२६६॥

अर्थ : सीतानाथ ने सब प्रकार से मुझ पर अत्यन्त अनुग्रह किया। दोनों कर कमल जोड़कर और प्रमाण करके भरतजी बोले।

व्याख्या : तदपि सरन सनमुख मोहि देखी। छमि सब करिहहिं कृपा बिसेखी। यह आशा जो भरतजी को थी वह परिपूर्ण हो गयी। सीतानाथ पद से दिखलाया कि सीताजी की भी वैसी ही कृपा हुई। यथा : सब बिधि सानुकूल लखि सीता। भे निसोच, उर अपडर बीता। अतः सरकार के कथन के उत्तर में विनय करने के लिए प्रणाम किया और हाथ जोड़कर बोले।

कहउँ कहावउँ का अब स्वामी। कृपा अंबुनिधि अंतरजामी ॥
गुर प्रसन्न साहिब अनुकूला। मिटी मलिन मन कल्पित सूला ॥१॥

अर्थ : हे स्वामिन्! क्या मैं कहूँ और क्या कहलाऊँ। आप कृपा के समुद्र हैं और अन्तर्यामी हैं। गुरुजी प्रसन्न हैं। स्वामी अनुकूल हैं। मलिन मन का कल्पित शूल मिट गया।

व्याख्या : भरतजी बड़े सङ्कोची हैं। यदि कुछ कहना होता है तो दूसरे से कहलाते हैं। यथा : महूँ सनेह सकोच बस सनमुख कहेउँ न बैन। अतः कहते हैं कि मैं क्या कहूँ या दूसरे से कहलाऊँ। कृपा के समुद्र और अन्तर्यामी से कहना क्या है? कहना या कहलाना तो उससे होता है जिसे कृपा भी थोड़ी हो और मन की बात भी न जानता हो। यहाँ तो कृपा का समुद्र उमड़ रहा है और किसी के हृदय की बात छिपी नहीं है।

गुरुजी ने कह दिया : मोरे जान भरत रुचि राखी। जो किजिअ सो सुभ सिव साखी। अतः देख लिया कि गुरुजी प्रसन्न हैं। सरकार स्वयं कह रहे हैं : तेहि तें अधिक तुम्हारा संकोचू। अब इससे अधिक अनुकूलता क्या होगी। मेरा मन मलिन है। अतः बात जल्दी समझ में नहीं आती। मन को मिथ्या कल्पना से शूल उठता था : राम लखन सिय सुनि मम नाऊँ। उठि जनि अनत जाहिं तजि ठाऊँ। सो शूल जाता रहा। मैं गुरुजी को भी अप्रसन्न समझता था। यथा : बूझिअ मोहि उपाउ अब सो सब मोर अभाग। अब मन का सब दुःख मिट गया।

अपडर डरेउँ न सोच समूलें। रबिहि न दोसु देव दिसि भूलें ॥
मोर अभागु मातु कुटिलाई। बिधि गति बिषम काल कठिनाई ॥२॥

अर्थ : मैं झूठे डर से डर गया। मेरा सोच निर्मूल था। जिसे दिग्भ्रम हुआ

हो सूर्य को दोष नहीं देना चाहिए। मेरा अभाग और माँ की कुटिलता ब्रह्मा की विषमगति और काल की कठिनता।

व्याख्या : सरकार के : तात तुमहि मैं जानउँ नीके। इस कहने का उत्तर देते हैं कि दोष सरकार का नहीं। दोष मेरा है कि मैं निष्कारण भय से भीत हो गया। मेरी गति दिग्भ्रमवाले की सी हो गयी। दिग्भ्रमवाले को सूर्यनारायण पश्चिम उदित होते प्रतीत होते हैं तो उसमें सूर्यनारायण का कोई दोष नहीं। वे तो यथा पूर्व सदा पूर्व में ही उदय होंगे। दोष तो दिग्भ्रमवाले की मति का है जो विपरीत समझ रहा है।

बात यह हुई कि चार बातें आ पड़ीं। १. मेरा अभाग्य उदय हो गया। २. माँ ने कुटिलता से काम लिया। ३. ब्रह्माजी बायें हो गये और ४. कराल काल उपस्थित हो गया। १. मोर अभाग। यथा : झूठ काह पछिताउँ अभागी। २. माँ की कुटिलता। यथा : कैकयनंदनि मंदमति कठिन कुटिलपन कीन्ह। ३. विधिगति विषय। यथा : बिधि बाम की करनी कठिन जेहि मातु कीन्हीं बावरी और। ४. काल कठिनाई। यथा : भयउ कराल काल बिपरीता।

पाउँ रोपि सब मिलि मोहि घाला। प्रनतपाल पन आपन पाला॥
येह नइ रीति न राउरि होई। लोकहुँ बेद बिदित नहिं गोई॥३॥

अर्थ : सबने मिलकर पाँव रोपकर मेरा सत्यानाश किया। पर प्रणतपाल ने अपने प्रण का पालन किया। यह आपकी नयी रीति नहीं है। लोक और वेद में विदित है। कहीं छिपी नहीं है।

व्याख्या : उपर्युक्त चारों ने प्रतिज्ञा करके मेरा सर्वनाश किया। पाँव रोपना का अर्थ प्रतिज्ञा करना है। यथा : सुनु दसकंठ कहौं पन रोपी। इन चारों के विरोध करने पर रक्षा का उपाय नहीं। पर प्रणतपाल ने अपना प्रण पालन किया। सरकार का प्रण है : कौन्तेय प्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति : ताते नाश न होइ भक्त कर। सरकार ने मुझे बचा लिया।

यह सरकार की बड़ी पुरानी नीति है। मेरी रक्षा करने में किसी नयी रीति से काम नहीं लिया गया। यह नीति अनादिकाल से चली आती है। अतः वेद ने भी कहा है लोक में भी सब कोई जानता है। इसी से सङ्कट आ पड़ने पर बड़ा भारी नास्तिक भी सरकार की शरण जाता है। क्योंकि यह प्रसिद्ध बात है कि सरकार अशरण शरण हैं और अकारण करुण हैं।

जगु अनभल भल एकु गोसाईं। कहिअ होइ भल कासु भलाईं॥
देउ देवतरु सरिस सुभाऊ। सनमुख बिमुख न काहुहि काऊ॥४॥

अर्थ : संसार तो बुरा है। एक सरकार ही भले हैं। फिर किसकी भलाई से भला हो? हे देव! आपका स्वभाव कल्पवृक्ष सा है। न आप कभी किसी के सम्मुख रहते हैं और न विमुख रहते हैं।

व्याख्या : भरत भूमि रह राउर राखी का उत्तर देते हुए भरतजी कहते हैं कि सरकार ही केवल भले हैं। क्योंकि सच्चिदानन्द रूप हैं। जगत् तो अनित्य जड़ और दुःख रूप है। जगत् में भलाई है ही नहीं। उससे भलाई कैसे होगी। उसमें यदि कहीं भलाई की झलक दिखायी पड़े तो वह सरकार की ही भलाई की झलक है।

सरकार देव हैं और स्वभाव सरकार का देवतरु अर्थात् कल्पवृक्ष सा है। कल्पवृक्ष न किसी के अनुकूल है न प्रतिकूल है। अपने स्वरूप में स्थित है। कितना भी कोई बुरा हो कल्पवृक्ष किसी को दण्ड देने नहीं जाता और न भले को इनाम देने जाता है।

दो. जाइ निकट पहिचानि तरु, छाँह समनि सब सोच।
मागँत अभिमत पाव जग, राउ रंकु भल पोच ॥२६७॥

अर्थ : कल्पवृक्ष के पास जाय। उसे पहिचाने तो उसकी छाया से सब सोच नष्ट होता है और माँगने से राजा रंक भले बुरे संसार में उससे अभिलषित पदार्थ प्राप्त करते हैं।

व्याख्या : कल्पवृक्ष तो कहीं है ही। पर वह किसी को लाभ नहीं पहुँचाता। जिसे लाभ प्राप्त करना हो वह उसके पास जाय। तथा अन्य वृक्षों में उसे पहिचाने। तो इतना फल वह तुरन्त देता है कि उसके छाँह में जानेवाले का सोच-हरण कर लेता है और यदि उससे प्रार्थना करे तो जो चाहे वही मिलता है।

इसी प्रकार जिसे कल्याण की कामना हो वह सरकार के सम्मुख जाय। सरकार को पहिचाने। आश्रय ग्रहण करे। तो इतने से ही उसके कोटि जन्म के पाप नष्ट हो जाते हैं। यथा : सनमुख होइ जीव मोहि जबहीं। जन्म कोटि अघ नासहिं तबही और माँगने से तो जो जिसकी अभिलाषा करता है उसकी प्राप्ति होती है। यथा : मोर दरस अमोघ जगमाँहीं।

लखि सब बिधि गुर स्वामि सनेहू। मिटेउ छोभु नहिं मन संदेहू॥
अब करुना कर कीजिअ सोई। जनहित प्रभु चित छोभु न होई ॥१॥

अर्थ : सब प्रकार से गुरु और स्वामी का स्नेह लख करके मेरा क्षोभ मिट गया। अब मन में सन्देह नहीं है। हे करुणाकर ! अब ऐसा कीजिये कि सेवक के लिए प्रभु के चित्त में क्षोभ न हो।

व्याख्या : भरतजी कहते हैं कि मेरे मन में क्षोभ भी था और सन्देह भी था। क्षोभ यथा : महीं सकल अनरथ कर मूला। और सन्देह यथा : जौ परिहरहिं मलिन मनु जानी। जौं सनमानहिं सेवक मानी। अब दोनों मिट गया। गुरुजी का इतना स्नेह कि मेरे लिए सरकार से कहा : भरत भगति बस भइ मति मोरी। और सरकार का इतना स्नेह कि मेरे सङ्कोच को पिता के वचन से अधिक माना। अतः अब न तो क्षोभ है न संन्देह है।

सरकार करुणाकर मेरे ऊपर करुणा करके सब कुछ करने को तैयार हैं। पर ऐसे मालिक को क्षोभ में डाल देने से मेरा धर्म बिगड़ेगा। अतः अब मेरी यही प्रार्थना है कि सरकार वैसा ही करें जिसमें मेरे कारण सरकार का चित्त क्षुब्ध न हो।

जो सेवकु साहिबहि सँकोची। निज हित चहइ तासु मति पोची ॥
सेवक हित साहिब सेवकाई। करइ सकल सुख लोभ बिहाई ॥२॥

अर्थ : जो सेवक मालिक को सङ्कोच में डालकर अपना हित चाहता है उसकी बुद्धि नीच है। सेवक का हित तो इसी में है कि स्वामी की सेवकाई सब सुखों का लोभ छोड़कर करे।

व्याख्या : सेवक का धर्म बड़ा गहन है। योगियों के लिए भी अगम्य है। जहाँ मालिक पयादे पाँव चले वहाँ सेवक का सिर बल चलना उचित है। यथा : सिर भरि जाउँ उचित अस मोरा। अतः सेवक का मालिक को सङ्कोच में डालकर अपना काम निकालना नीचता है।

सेवक का धर्म यह है कि सब सुखों का लोभ छोड़कर मालिक की सेवा करे। जो सेवक अपना सुख चाहेगा वह सेवा क्या करेगा ? अतः मैं अपने सुख के लिए तो सरकार को सङ्कोच में डाल ही नहीं सकता।

स्वारथु नाथ फिरे सबही का। किये रजाइ कोटि बिधि नीका ॥
यह स्वारथ परमारथ सारू। सकल सुकृत फल सुगति सिंगारू ॥३॥

अर्थ : हे नाथ ! आपके लौटने में सबका स्वार्थ है। पर आपकी आज्ञा शिरोधार्य करना कोटि गुना अच्छा है। यही स्वार्थ और परमार्थ का सार है। सब पुण्यों का फल है और सुगति का शृङ्गार है।

व्याख्या : सरकार के वियोग में पुर नर नारी विकल हैं। यथा : जरहि बिषम ज्वर पुर नर नारी। अतः सरकार के लौट चलने से उनका ज्वर उतर जायगा। यथा : सब कँह सुखद राम अभिषेकू। वे सुखी हो जायँगे। यह अच्छी बात है। पर इससे करोड़गुनी अच्छी बात यह है कि सब आपकी आज्ञा माने। क्योंकि सबका कल्याण तो आपकी आज्ञा मानने से ही होगा। गुरुजी ने कह दिया है : राखे राम रजाय रुख हम सबकर हित होइ। क्योंकि प्रभु की आज्ञा जिसके लिए जो हो वह उसी भाँति से चलने में सुख पाता है। मनुष्य प्रेय के लोभ में आकर श्रेय को हाथ से जाने देते हैं। यह उनकी भूल है। श्रेय तो सरकार के आज्ञापालन में है। यथा : प्रभु आयसु जेहि कहँ जस अहई। सो तेहि भाँति रहे सुख लहई।

सरकार की आज्ञा का पालन ही स्वार्थ का सार है। यथा : स्वारथ साँच जीव कहँ एहा। मन क्रम बचन राम पद नेहा। और परमार्थ का सार भी यह है। यथा : सखा परम परमारथ एहू। मन क्रम बचन रामपद नेहू। अर्थात् सरकार की भक्ति ही स्वार्थ परमार्थ का सार है और : आज्ञा सम न सुसाहिब सेवा। अर्थात्

उत्तमोत्तम भक्ति सरकार की आज्ञा का पालन है। यही सब पुण्यों का फल है। यथा : जहँ लगि साधन बेद बखानी। सबकर फल हरि भगति भवानी। और यही सुगति का शृङ्गार है। यथा : सोह न राम प्रेम बिनु ज्ञानू। करनधार बिनु जिमि जल जानू। जोग कुजोग ग्यान अग्यानू। जँह नहि राम प्रेम परधानू।

देव एक बिनती सुनि मोरी। उचित होइ तस करब बहोरी ॥
तिलक समाजु साजि सब आना। करिअ सुफल प्रभु जौं मनु माना ॥४॥

अर्थ : हे देव ! एक विनती मेरी है। उसे सुन लीजिये। तत्पश्चात् जो उचित हो वह कीजिये। तिलक का सब समाज साज करके लाया हूँ। यदि सरकार का जी चाहे तो उसे सफल कीजिये।

व्याख्या : मुनिजी ने आज्ञा दी थी : कृपासिन्धु प्रियबंधु सन कहहु हृदय की बात। सो हृदय की बात कह रहे है कि वन में ही राज्य देने के लिए तिलक साज सजा सजाया आया हुआ है। यदि सरकार का जी चाहे तो सफल कर दीजिये। यह मेरी विनय है। इसी के लिए गुरुजी ने कहा है : भरत बिनय सादर सुनिय करिय बिचार बहोरि। करब लोकमत बेदमत नृप नय निगम निचोरि। अब इस पर विचार करिये। जैसा उचित समझिये वैसा कीजिये। यह तो प्रथम पक्ष है।

दो. सानुज[1] पठइअ मोहि बन, कीजिअ सबहि सनाथ।
नतरु फेरिअहि बंधु दोउ, नाथ चलौं मैं साथ ॥२६८॥

अर्थ : अथवा मुझे छोटे भाई के साथ वन भेज दीजिये और सबको सनाथ कीजिये। यदि यह भी स्वीकार न हो : तो दोनों भाई लौट जायँ मैं साथ चलूँ।

व्याख्या : मुनिजी की सोची हुई बात कह रहे हैं कि दोनों भाइयों में दायका अदल बदल हो जाय। आप राज्य पर जाइये और मैं वन जाऊँ। इससे लाभ यह होगा कि प्रजा सनाथ हो जायगी। वह सरकार में ही अनुरक्त है। शत्रुघ्नजी विनय भरतजी से कर चुके हैं कि आप वन जाइयेगा तो मुझे अवश्य साथ ले लीजियेगा। अतः शत्रुघ्न सहित वन जाने की आज्ञा माँग रहे हैं। यदि यह भी पसन्द न हो तो तीसरा पक्ष कहते हैं कि दोनों भाई लक्ष्मण शत्रुघ्न घर फिर जायँ और सरकार के साथ मैं वन चलूँ। भरतजी का मुख्य आशय यह है कि मुझे सरकार की सेवा का सौभाग्य हो। अयोध्या लौटकर शासन में हाथ न लगाना पड़े। एक क्षण के लिए राज्य भरतजी को स्वीकार नहीं।

नतरु जाहिं बन तीनिउँ भाई। बहुरिअ सीय सहित रघुराई ॥
जेहि बिधि प्रभु प्रसन्न मन होई। करुना सागर कीजिअ सोई ॥१॥

अर्थ : नहीं तो हम तीनों भाई वन जायँ। सरकार जनकनन्दनी के साथ जायँ। जिस प्रकार सरकार का मन प्रसन्न हो हे करुणासागर ! वही कीजिये।

---

१. यहाँ आक्षेप : प्रथम अलङ्कार है।

व्याख्या : भाव यह कि सर्व प्रधान विनय तो यह है कि सरकार अपना अभिषेक स्वीकार करें। फिर राजा की इच्छा चाहे जहाँ से राज्य करें। नहीं तो राज्य में और वन में अदला बदली हो जाय। यह भी नहीं तो : कर्ता भोक्ता त्वमेव हि। ऐसा सरकार ने लक्ष्मणजी से कहा है। सो उन्हीं को राज्य पर भेज दिया जाय। सहायता के लिए साथ में शत्रुघ्न रहे और सेवा में मैं रहूँ। यदि सरकार समझें कि वन का शासन इस समय कठिन व्यापार है वह मुझसे हो सधेगा। यथा : पिता दीन्ह मोहि कानन राजू। जहँ सब भाँति मोर बड़ काजू। तो आप के स्थान पर हम तीनों भाई वन जायँ। तीनों मिलकर काम सँभाल लेगें। हवि के विभाग के अनुसार भी रामचन्द्र के हवि के तुल्य शेष तीनों भाइयों का हवि मिलाकर होता है। यथा : अर्ध भाग कौसिल्यहि दीन्हा। उभय भाग आधे कर कीन्हा। इत्यादि।

सीय सहित कहने का यह भाव है कि कहीं यह आज्ञा न हो कि मैं सीता को लौटा देता हूँ। इतने से हो सन्तोष करो। यथा : जौं सिय भवन रहै कह अंबा। मो कँह होइ बहुत अवलंबा। यथा : तौ तुम्ह बिनय करेहु कर जोरी। फेरिय प्रभु मिथिलेस किसोरी।

भरतजी कहते हैं कि यदि ये चारों विधियाँ नापसन्द हों तो जिस विधि से सरकार का मन प्रसन्न हो वही किया जाय। मैं यह जोर नहीं देता कि इन चार पक्षों में से सरकार किसी को अवश्य स्वीकार करें। सरकार करुणासागर हैं। सरकार जो करेंगे वही ठीक होगा।

देव दीन्ह सबु मोहि अभारू। मोरे नीति न धरम बिचारू॥
कहउँ बचन सब स्वारथ हेतू। रहत न आरत के चित चेतू॥२॥

अर्थ : हे देव ! आप ने सब बोझा मेरे ऊपर रख दिया और मुझे नीति और धर्म का विचार नहीं है। जो वचन कहता हूँ सो स्वार्थ के लिए कहता हूँ। क्योंकि आर्त्त के मन में विवेक नहीं रहता।

व्याख्या : भरतजी कहते हैं कि नीति और धर्म के विचार की यहाँ आवश्यकता है। यह विवेचना करना है कि धर्म में बाधा भी न हो और अपना स्वार्थ भी सधे। सो मुझमें यह सामर्थ्य नहीं। यथा : एकौ जुगुति न मन ठहरानी। सोचत भरतहि रैन बिहानी। सो बोझा मेरे ऊपर डाला गया है। उसके वहन में मैं समर्थ नहीं हूँ। इस पर कहा जा सकता है कि तब तुमने ये चार पक्ष कैसे उठाये ? इस पर भरतजी कहते हैं। इन चारों पक्षों में मेरा स्वार्थ साधन होता है। स्वार्थ के कारण मैं आर्त्त हो रहा हूँ। आर्त्त को विचार शक्ति नहीं होती गुरुजी ने ठीक ही हा था : आरत कहहिं बिचारिन काऊ। सूझ जुआरिहिं आपन दाऊ।

उतरु देइ सुनि स्वामि रजाई। सो सेवकु लखि लाज लजाई॥
अस मैं अवगुन उदधि अगाधू। स्वामि सनेहँ सराहत साधू॥३॥

अर्थ : जो स्वामी की आज्ञा सुनकर उत्तर दे उस सेवक को देखकर लज्जा भी लज्जित हो जाती है। मैं ऐसे दोषों का अथाह समुद्र हूँ। यह स्वामी का स्नेह है कि मेरी प्रशंसा साधु कहकर कर रहे हैं।

व्याख्या : स्वामी का रुख देखकर ही काम कर देना चाहिए। सेवक का धर्म है कि स्वामी के मन में मन मिलाये हुए उसके मनोनुकूल चले। यथा : जोगवत रहहिं मनहि मन दीन्हें। यदि स्वामी को कहना पड़ा तब तो अवश्य ही कर डालना चाहिए। फिर भी न करे तो लज्जा की बात है और यदि सेवक ने उत्तर दे दिया तो इससे बढ़कर लज्जा की बात क्या होगी : भृत्यश्चोत्तरदायकः। भृत्य का उत्तर देना बड़ा भारी दोष है।

मैं तो ऐसा दोष का समुद्र हूँ कि सरकार की आज्ञा पाकर भी स्वीकार नहीं किया और यहाँ उत्तर देने को खड़ा हो गया। पर सरकार ऐसे करुणासागर हैं कि मेरी साधुता की सराहना करते हैं कि साधुता के कारण भरत मेरा वचन नहीं मानता। भरत साधु हैं। यथा : पुन्यसिलोक तात तर तोरे।

अब कृपाल मोहि सो मत भावा। सकुच स्वामि मन जाहि न पावा ॥
प्रभु पद सपथ कहहुँ सति भाऊ। जग मंगल हित एक उपाऊ ॥४॥

अर्थ : हे कृपाल ! अब मुझे यही मत अच्छा लगता है कि जिसमें स्वामी के मन में सङ्कोच न पाया जाय। प्रभु के चरण की शपथ सच्चे भाव से कहता हूँ कि संसार के मङ्गल के लिए एक ही उपाय है।

व्याख्या : जब सरकार ने कह दिया कि जो भरत कहें उसे आज कर डालूँगा तब तो बात सब पलटा खा गयी। भरत तो सेवक है। सरकार की आज्ञा का पालन करनेवाला है। उसे आज्ञा देने का अधिकार भी नहीं है। वह ऐसा चाह भी नहीं सकता। सरकार मालिक हैं। सरकार के मन में सङ्कोच न हो। प्रसन्न चित्त से आज्ञा दें। मालिक तो वही है जिसकी आज्ञा चले। सरकार आज्ञा दें और उसी के अनुसार सब चले। यही मेरा अब अभीष्ट है। अतः सरकार के चरण की शपथ लेकर शुद्ध हृदय से कहता हूँ कि संसार के मङ्गल के लिए यही एक उपाय है। सब कहँ सुखद राम अभिषेकू। मंगल मोद मूल मगु एकू। सो सरकार की आज्ञा देने से और सबका उसका पालन करने से वह काम हो जाता है। अभिषेक आज हो या दस दिन बाद हो।

दो. प्रभु प्रसन्न मन सकुच तजि, जो जेहि आयसु देव।
सो सिर धरि धरि करिहि सबु, मिटिहि अनट अवरेव ॥२६९॥

अर्थ : सरकार प्रसन्न होकर सङ्कोच छोड़कर जिसे जो आज्ञा देंगे वही शिरोधार्य करके सब लोग करेंगे। बड़ा भारी उपद्रव और उलझन मिट जावेगी।

व्याख्या : सरकार ने कहा था : तासु बचन मेटत मन सोचू। तेहि ते अधिक तुम्हार संकोचू। अतः भरतजी कहते हैं कि सोच छोड़ दीजिये। प्रसन्न मन से आज्ञा

दीजिये और सङ्कोच भी न करिये। जिस भाँति सरकार ने भरतजी से कहा था : मन प्रसन्न करि सकुच तजि कहहु करउँ सो आज। सो भरतजी भी उसी भाँति सरकार पर सब भार छोड़ते हुए कहते हैं : प्रभु प्रसन्न मन सकुच तजि जो जेहि आयसु देव इत्यादि। सो सिर धरि धरि करिहि सब : कहने का भाव यह कि इस समय भरतजी सम्पूर्ण प्रजावर्ग की ओर से बोल रहे हैं। गुरुजी के किये हुए निर्णय पर आगये : राखे राम रजाय रुख हम सबकर हित होय। अतः कह रहे हैं कि आज्ञा पालन से ही यह कठिन अवरेव मिट जायगा। अर्थात् जो कुछ दुःख सुख होगा। वह राजाज्ञा के पालन में होगा। अतः सरकार के दुःख से दुःखी प्रजा को बहुत बड़ा आश्वासन होगा।

भरत बचन सुचि सुनि सुर हरषे। साधु सराहि सुमन सुर बरषे ॥
असमंजस बस अवध निबासी। प्रमुदित मन तापस बनबासी ॥१॥

अर्थ : भरतजी का वचन सुनकर देवता प्रसन्न हो गये और वाह वाह कहकर उन पर फूल बरसाने लगे। अयोध्या निवासी असमञ्जस में पड़ गये और तपस्वी तथा वन के निवासियों का मन प्रसन्न हो गया।

व्याख्या : वचन की शुचिता यही है कि वह सत्य प्रिय और हित हो। इसलिए शुचि कहा अथवा धर्मयुक्त होने से तथा स्वार्थ विहीन होने से भरतजी के वचन को शुचि कहा। सरकार का वचन सुनने से देवताओं के सहित इन्द्र भयभीत हो गये थे। सो भरतजी का वचन सुनकर हर्षित हुए कि जब रामजी पर बात आगयी तो ये अपनी प्रसन्नता से पिता का वचन नहीं छोड़ेंगे और अवधवासी भी असमञ्जस में पड़ गये कि देखें भरतजी के कहे हुए पक्षों में से रामजी किसे पसन्द करते हैं। बहुत सम्भावना तो यही है कि न लौटें। रामजी का वचन सुनकर बेचारे सुखी हो गये थे। सो फिर असमञ्जस में फँस गये। तपस्वी और वनवासियों ने समझ लिया कि जब रामजी पर बात आगयी तो नहीं लौटना ही सिद्ध है। अतः सरकार के सहवास के आनन्द से वञ्चित न होंगे। भावार्थ यह कि अपने अपने स्वार्थानुकूल लोगों को हर्ष या विषाद हुआ।

चुपहि रहे रघुनाथ संकोची। प्रभु गति देखि सभा सब सोची ॥
जनक दूत तेहि अवसर आए। मुनि बसिष्ठ सुनि बेगि बोलाए ॥२॥

अर्थ : सङ्कोची रघुनाथजी चुप ही रह गये। प्रभु की गति देखकर सभा की सभा सोच में पड़ गयी। उसी अवसर पर जनकजी के दूत आये। सुनकर वसिष्ठजी ने उन्हें तुरन्त बुलवाया।

व्याख्या : कोउ न राम सम स्वामि सँकोची। सरकार का स्वभाव ही सङ्कोची है। यद्यपि भरतजी ने कहा कि सरकार सङ्कोच छोड़कर आज्ञा दें। पर सरकार सङ्कोच नहीं छोड़ सकते हैं। कैसे कह दें कि तुम लोग लौट जाओ मैं नहीं जाऊँगा।

सब सभा के लोगों को सरकार का सङ्कोच देखकर सोच पैदा हो गया कि ये अयोध्या जाने के लक्षण नहीं हैं।

सरकार सङ्कोच में पड़े हुए चुप हैं। सभा स्तब्ध है कि देखें क्या आज्ञा होती है। तब से प्रतिहारियों ने समाचार दिया कि महाराज जनक के दूत आये हैं। यह समाचार ऐसा आया कि सब काम ही रुक गया। गुरुजी ने कहा कि जल्दी बुलाओ। भाव यह कि जनकजी का समाचार सुनने के पहिले ही रामजी कोई निर्णय न कर दें।

करि प्रनाम तिन रामु निहारे। बेषु देखि भए निपट दुखारे ॥
दूतन्ह मुनिबर बूझीं बाता। कहहु बिदेह भूप कुसलाता ॥३॥

अर्थ : प्रणाम करके उन्होंने रामजी को देखा तो वेष देखकर बड़े दुःखी हुए। मुनिजी ने दूतों से कहा कि विदेह राजा कुशल कहो।

व्याख्या : दूत लोग सभा में उपस्थित हुए। प्रणाम करके रामजी को देखा। विवाह के समय देखा था। कहाँ वह वेष और कहाँ वल्लल वसन पहिने और जटा बनाये हुए देखा। अतः दूतों को बड़ा भारी दुःख हुआ।

मुनियों में श्रेष्ठ वसिष्ठजी ने इसके पहिले कि दूत कुछ कहें पूछा विदेह राजा का कुशल कहो। भाव यह कि राजा जनक विदेह हैं। उन्हें देहाध्यास नहीं है। इतना बड़ा अनर्थ अयोध्या में हो गया। जनकपुर से कोई पूछने न आया कि क्या हो रहा है। अतः यह जानने की उत्सुकता है कि महाराज विदेह कुशल से तो हैं ?

सुनि सकुचाइ नाइ महि माथा। बोले चरवर जोरें हाथा ॥
बूझब राउर सादर साईं। कुसल हेतु सो भयेउ गोसाईं ॥४॥

अर्थ : सुनकर सङ्कुचित होकर दूत लोग नमस्कार करके हाथ जोड़े हुए बोले कि आपका जो आदर के साथ पूछना हुआ वही कुशल का कारण हो गया।

व्याख्या : मुनिजी के पूछने की ध्वनि समझकर दूत लोग सङ्कुचित हुए। परन्तु दूतों में ये श्रेष्ठ हैं। उत्तर देना जानते हैं। उन सबों ने तो पहिले पृथ्वी पर सिर रखकर प्रणाम किया। तत्पश्चात् हाथ जोड़कर : अत्यन्त विनय से बोले।

दूतों ने कहा कि आपने जो आदर के साथ पूछा कि विदेह राजा कुशल से तो हैं ? आपने राजा कुशल से हैं ऐसा नहीं पूछा। आदर के लिए विदेह विशेषण दिया। वहीं विदेहता ही कुशल का कारण हो गयी। भाव यह कि अयोध्या के समाचार से महाराज को ऐसी चोट लगी कि विदेह होने के कारण रक्षा हो गयी। नहीं तो वहाँ भी अनर्थ हो ही चुका था।

दो. नाहि त कोसल नाथ कें, साथ कुसल गइ नाथ।
मिथिला अवध विसेष तें, जगु सब भयउ अनाथ ॥२७०॥

अर्थ : हे नाथ ! नहीं तो कोसलनाथ महाराज दशरथ के साथ कुशल चली गयी। सारा जगत् अनाथ हो गया और मिथिला अवध तो विशेषरूप से अनाथ हो गये।

व्याख्या : दूत कहते हैं कि वस्तुस्थिति तो यह है कि कुशल तो कोसलनाथ साथ लेते गये। कोसलनाथ यद्यपि अवध के ही राजा थे पर चक्रवर्ती थे। सभी राजा उनकी कृपा के भिखारी बने रहते थे। यथा : नृप सब रहहिं कृपा अभिलाषे। लोकप करहिं प्रीति रुख राखे। उन पर उनका शासन चलता था। अतः महाराज के देहावसान से संसार अनाथ हो गया। महाराज जनक तो सेवक सेव्यभाव रखते थे। यथा : यह राज साज समाज सेवक जानवी बिनु गथ लये। अतः मिथिला और अवध विशेषरूप से अनाथ हो गये। क्योंकि इनसे उनका साक्षात् सम्बन्ध था। मिथिला के लोग तो महाराज से ऐसी प्रीति रखते थे : दसरथ गवन सोहाइ न काहू। भावार्थ यह कि महाराज के देहावसान का दुःख अवध से कम मिथिला में नहीं मनाया गया।

कोसलपति गति सुनि जनकौरा। भे सब लोग सोक बस बौरा॥
जेहिं देखे तेहि समय बिदेहू। नामु सत्य अस लाग न केहू॥१॥

अर्थ : कोसलपति की गति सुनकर जनकपुर के लोग तो मारे शोक के पागल हो गये। उस समय जिसने महाराज विदेह को देखा उसे उनका विदेह नाम सच्चा न मालूम हुआ।

व्याख्या : रामजी के विरह में महाराज के देहावसान के समाचार का ऐसा प्रभाव जनकपुर निवासियों के ऊपर पड़ा कि सब पागल से हो गये। किसी को अपनी सुधि न रह गयी और महाराज जो : मिथिलायां प्रदग्धायां न मे किञ्चित् प्रदह्यते। माननेवाले थे। वे तो ऐसे विकल हुए कि उस समय जिसने उन्हें देखा उसे यही मालूम हुआ कि इनका नाम विदेह नाहक लोगों ने रख छोड़ा है। इन्हें तो प्रबल देहाध्यास है। समधी के मरने का समाचार पाकर इस भाँति तो कोई सामान्य पुरुष भी विकल नहीं होता।

रानि कुचालि सुनत नरपालहि। सूझ न कछु जस मनि बिनु ब्यालहि॥
भरत राज रघुबर बनवासू। भा मिथिलेसहि हृदयँ हराँसू॥२॥

अर्थ : रानी की कुचाल को सुनते ही राजा की ऐसी दशा हो गयी जैसे मणि के बिना सर्प की हो जाती है। उन्हें कुछ सूझ ही नहीं पड़ता था। भरत को राज और राम का वनवास सुनकर मिथिलाधिपति के हृदय में अत्यन्त दुःख हुआ।

व्याख्या : स्वायम्भू मनु ने वर माँगा था : मनि बिनु फनि जिमि जल बिनु मीना। मम जीवन तिमि तुमहि अधीना। सो जल बिनु मीन की दशा महाराज दशरथ की हुई उन्होंने प्राण ही त्याग दिया और मणि बिनु फनि की दशा राजा जनक की हुई। यथा : मनि बिनु फनि जियै व्याकुल बेहाल रे। और यह सब रानी

के कुचाल से हुआ। अतः उसका प्रतीकार कुछ नहीं हो सकता था। यदि दूसरे द्वारा ऐसी बात होती तो महाराज दण्ड विधान करते। अब कुचाल को स्पष्ट करता हुआ दूत कहता है : भरत राज रामहि बनबासू। यह दोनों बातें ऐसी आपड़ीं कि कुछ किया नहीं जा सकता था। भरत का राज्य अनिष्ट नहीं कहा जा सकता था। पर राम के वनवास से उसका सम्बन्ध जुटने से इष्ट भी नहीं कहा जा सकता। जैसे राम जामाता तैसे भरत जामाता। यहाँ पुरुषार्थ को एकदम कोई स्थान ही नहीं था। अतः महाराज के हृदय में ह्रास हुआ।

नृप बूझे बुध सचिव समाजू। कहहु बिचारि उचित का आजू ॥
समुझि अवध असमंजस दोऊ। चलिअ कि रहिअ न कह कछु कोऊ ॥३॥

अर्थ : महाराज ने विद्वत् समाज तथा मन्त्रिमण्डल से पूछा कि इस अवसर पर क्या करना चाहिए। अवध के दोनों असामञ्जस्यों को समझकर चलना चाहिए या रह जाना चाहिए। इस प्रश्न पर सब मौन रह गये।

व्याख्या : अपनी बुद्धि काम करते न देखकर महाराज ने विद्वत् समाज और मन्त्रिमण्डल बुलाया। बड़ा विकट प्रश्न है। अतः राज्य के सभी बुद्धिमान् इकट्ठे किये गये। प्रश्न यह सामने रक्खा गया कि ऐसे अवसर पर महाराज को क्या करना चाहिए। अयोध्या प्रस्थान करें या यहीं ठहरकर देखें कि आगे क्या होता है। तब उचित अवसर पर कुछ किया जाय। इसी प्रश्न पर विचार करना था।

रामजी और भरतजी दोनों दामाद हैं। किसी एक का पक्ष लिया नहीं जा सकता। जाने पर किसी न किसी का पक्ष ग्रहण करना ही होगा। रामजी वन गये भरत को राज्य मिला। पर इतने से ही मामला ठण्ढा नहीं हुआ। रामजी के विरह में चक्रवर्तीजी ने प्राणत्याग किया। प्रजा रामजी में ही अनुरक्त है। नहीं तो भरत के राज्य के साथ साथ रामजी को वनवास माँगने का क्या अभिप्राय था? जब चक्रवर्तीजी ही सामञ्जस्य नहीं बिठा सके तो दूसरा कैसे बिठा सकेगा? तिस पर जनकजी का सम्बन्ध ऐसा है कि ये कुछ भी नहीं कह सकते। अतः न जाना ही ठीक है। पर दूसरा पक्ष यह भी है कि इस समय अयोध्या में आग लगी हुई है। यथा : बिधि कैकयी किराततिनि कीन्ही। जिन्ह दव दुसह दसहु दिसि दीन्ही। ऐसे समय पर अति सन्निकट सम्बन्धी दूर खड़े तमाशा कैसे देख सकते हैं? अतः इन दोनों असामञ्जस्य को देखकर किसी से कोई निश्चित्त निर्णय करते नहीं बना।

नृपहिं धीर धरि हृदय बिचारी। पठए अवध चतुर चर चारी ॥
बूझि भरत सतिभाउ कुभाऊ। आएहु बेगि न होइ लखाऊ ॥४॥

अर्थ : राजा ने हो धैर्य धारण करके विचार किया और चार चतुर दूतों को अयोध्या भेजा और आज्ञा दी कि भरतजी का सद्भाव दुर्भाव समझकर जल्द आवो। पर कोई तुम लोगों को लख न सके।

व्याख्या : महाराज ने देख लिया कि किसी की बुद्धि काम नहीं करती है।

धीरजु धर्म मित्र अरु नारी। आपत काल परखिअहिं चारी। सो महाराज ने धैर्य धारण करके स्वयं विचार किया कि रानी कैकेयी के कुभाव का पता चल गया। परन्तु भरतजी के मन में क्या है : इस बात का पता बिना लगे कर्तव्य निश्चित नहीं किया जा सकता। अतः अत्यन्त चतुर चार दूतों को बुलाया और उन्हें अयोध्या भेजा कि जाकर के सद्भाव या कुभाव का पता लगावें। वेषभूषा और भाषा आदि से कोई लख न पावे कि ये दूत बाहर से पता लगाने आये हैं और जितना सम्भव हो उतनी शीघ्रता इस काम में करें।

दो. गए अवध चर भरत गति, बूझि देखि करतूति।
चले चित्रकूटहि भरत, चार चले तिरहूति ॥२७१॥

अर्थ : दूत लोग अवध गये। भरत की गति का पता लगाकर और करतूत देखकर जब भरतजी चित्रकूट चले तब दूत मिथिला चले।

व्याख्या : वसिष्ठजी के पूछने की ध्वनि समझकर दूत महाराज का हाल भी कहने लगे। भाव यह कि चक्रवर्तीजी के देहावसान का समाचार पाते ही शोक के प्रथम वेग समाप्त होने पर महाराज स्वयं अवध चलने को तैयार थे। परन्तु बिना सब बात समझे काम करना उचित न समझकर दूतों को सच्चा पता लगाने के लिए भेजा। ऐसे अवसरों पर राजकाज में जिन भावों का प्रदर्शन किया जाता है वे प्रायेण वास्तविक नहीं होते। दूतों से ही असली भेद हाथ लगता है। सो दूत अवध आये। आप लोगों को पता न लगा और सब समाचार लेकर जब भरतजी चित्रकूट चले तब दूत भी मिथिला चले। यही कारण महाराज के देर करने का हुआ। यदि आपके यहाँ से समाचार गया होता तो महाराज के आने में देर न होती।

दूतन्ह आइ भरत कइ करनी। जनक समाज जथामति बरनी ॥
सुनि गुरु परिजन सचिव महीपति। भे सब सोच सनेह बिकल अति ॥१॥

अर्थ : दूतों ने आकर भरतजी की करणी जनकजी की सभा में यथा बुद्धि वर्णन की। सुन करके गुरु सभासद मन्त्री और राजा सबके सब सोच और स्नेह में अत्यन्त विकल हो गये।

व्याख्या : भरतजी के ही सद्भाव और कुभाव के जानने के लिए दूत भेजे गये थे। अतः उन लोगों ने भरतजी की मङ्गलमय करणी का वर्णन राज समाज में किया और कहा कि हम लोग भरतजी की करणी यथामति कह रहे हैं। नहीं तो वह अवर्णनीय है।

महाराज उस समय सभा में थे। अतः गुरु परिजन और मन्त्री लोग भी थे। यह समाचार सुनकर सब सोच और प्रेम में मग्न हो गये। सोच रामजी का और प्रेम भरतजी का। रामजी पिता का वचन हटाकर लौट आवेंगे इस बात में सबको सन्देह है और भरत राज्य स्वीकार नहीं करेंगे। यह भी निश्चय है। तब होता

क्या है ? इस प्रकार का सोच पैदा हुआ और भरतजी की प्रेम कथा सुनने से सबके मन में प्रेम उमड़ आया।

धरि धीरजु करि भरत बड़ाई। लिए सुभट साहनी बोलाई॥
घर पुर देस राखि रखवारे। हय गय रथ बहु जान सँवारे॥२॥

अर्थ : धैर्य धारण करके भरतजी की बड़ाई की। योद्धाओं और सेनापतियों को बुलवाया। घर राजधानी और देश की रक्षा का प्रबन्ध करके हाथी, घोड़े, रथ और बहुत सी सवारियाँ सजायीं।

व्याख्या : जिस भाँति चक्रवर्तीजी के निधन पर सबका धैर्य छूट गया था उसी भाँति भरतजी की करणी सुनकर भी सबका धैर्य जाता रहा। पहिली बार भी महाराज ने ही सब के पहिले धैर्य धारण किया। इस बार भी उन्हीं ने ही अपने को सबके पहले सँभाला और निश्चय कर लिया कि चलना चाहिए और देर न होने पावे। भरतजी और रामजी में कोई बात तय पाने के पहले मेरा पहुँचना जरूरी है। ऐसा सोचकर महाराज ने पहले घर की रक्षा की। तत्पश्चात् राजधानी और तत्पश्चात् देश की रक्षा की व्यवस्था की। जहाँ जैसा उचित था सेना और सेनापति स्थापित किये गये और साथ चलने के लिए चतुरङ्गिणी सेना तथा बहुत सी सवारियाँ सजायी गयीं। दूतों से सुन चुके हैं कि भरतजी के साथ रनिवास की भी यात्रा हुई है। अतः महाराज ने भी रनिवास का ले जाना उचित समझा। ऐसी आपत्ति के समय बेटी दामाद से मिलने की उन लोगों को उत्कट इच्छा होना स्वाभाविक था।

दुघरी साधि चले ततकाला। किए बिश्रामु न मग महिपाला॥
भोरहिं आजु रहाइ प्रयागा। चले जमुन उतरन सबु लागा॥३॥

अर्थ : दुघरी साध के उसी समय चल पड़े। महाराज ने रास्ते में विश्राम भी नहीं किया। आज प्रातःकाल ही प्रयाग स्नान करके चल पड़े। लोग यमुना पार करने लगे।

व्याख्या : काल बल प्राप्त करने के लिए मुहूर्त देखकर ही कार्य करने की विधि है और यात्रा का मुहूर्त बड़ी कठिनता से मिलता है। यहाँ चलने की बड़ी शीघ्रता है। ऐसे अवसर के लिए दुघड़िया मुहूर्त का विधान है। अत्यन्तावश्यकता में उसी से काम लिया जाता है। वह मुहूर्त दो घड़ी में एक बार आ जाता है। अतः तत्काल यात्रा के लिए दुघड़िया साइत देखी गयी। महाराज चल पड़े सो अत्यन्त शीघ्र पहुँचने के लिए रास्ते में विश्राम भी नहीं किया। आज प्रातःकाल प्रयागराज पहुँच गये। त्रिवेणी स्नान करके चल पड़े। बीच में यमुनाजी पड़ीं। पार करने की व्यवस्था हुई। लोग उतरने लगे।

खबरि लेन हम पठये नाथा। तिन कहि अस महि नायउ माथा॥
साथ किरात छ सातक दीन्हें। मुनिबर तुरत बिदा चर कीन्हें॥४॥

अर्थ : हे नाथ ! हम लोगों को खबर लेने के लिए भेजा है। ऐसा कहकर उन सबों ने सिर झुकाया। छः सात किरात साथ देकर मुनिजी ने तुरन्त उन सबों को विदा किया।

व्याख्या : मुनिजी के जिज्ञास्य विषय का उत्तर देकर उन सबों ने पुनः प्रणाम किया। अर्थात् यह दिखलाया कि हम लोगों का इतना ही कथन था। हम लोग तो केवल खबर लेने आये हैं। कोई विशेष बात हम लोगों को नहीं कहनी है।

~ मुनिजी ने समझ लिया कि महाराज जनक इन लोगों का इन्तजार करते होंगे। अतः इनका रोकना ठीक नहीं। अतः तुरन्त उनको विदा किया तथा उन सबको सरल मार्ग दिखाने तथा महाराज को सेना सहित सुभीते के रास्ते से लाने के लिए छः सात किरातों को साथ कर दिया।

जनकागमन प्रसङ्ग

दो. सुनत जनक आगवनु सबु, हरषेउ अवध समाजु।
रघुनंदनहि सकोचु बड़, सोच बिबस सुरराजु ॥२७२॥

अर्थ : जनकजी का आना सुनकर अयोध्या का समाज प्रसन्न हो उठा। रामजी बड़े सङ्कोच में पड़ गये और इन्द्र देवता को तो बड़ा सोच हुआ।

व्याख्या : जनकजी के आने के समाचार मात्र से मामला पलटा खा गया। अवध निवासी असमञ्जस में पड़े हुए थे सो हर्षित हो गये। भरतजी का वचन सुनकर देवता हर्षित हो गये थे सो सोच के विवश हो गये। महाराज रामचन्द्र वैसे ही सङ्कोच के वश चुप हो रहे थे सो उनका सोच और भी बढ़ गया। महाराज जनक चक्रवर्तीजी के समकक्ष हैं। इनका बड़ा भारी प्रभाव सब पर है। इनके स्वयं आने का रामजी के लौटाने को छोड़कर दूसरा अर्थ हो नहीं सकता।

गरइ गलानि कुटिल कैकेई। काहि कहै केहि दूषनु देई॥
अस मन आनि मुदित नर नारी। भयउ बहोरि रहब दिन चारी॥१॥

अर्थ : कुटिल कैकेयी ग्लानि से गली जाती है। किस से कहे और किसे दूषण दे। स्त्री पुरुष तो यह बात मन में लाकर प्रसन्न हो रहे हैं कि फिर चार दिन तो रहना हो गया।

व्याख्या : जनकजी का आगमन सुनकर कैकेयी तो ग्लानि के मारे गली जाने लगी कि समधी आ रहे हैं। वे क्या कहेंगे। स्त्रियों को समधी का बड़ा ख्याल होता है। पछताती तो पहिले से ही थी। यथा : लखि सिय सहित सरल दोउ भाई। कुटिल रानि पछितानि अघाई। अब उसकी ग्लानि से बुरी दशा है। ग्लानि से सम्भावित पुरुष की तो मृत्यु हो जाती है। यथा : कह्यो राजबन दियो नारिबस गरि गलानि गये राउ। कैकेयी का इस समय कोई सहानुभूति करनेवाला नहीं है। जिससे कि वह अपना दुःख कहे। क्योंकि कहने से भी कुछ दुःख घट जाता है और कोई

ऐसा भी नहीं है जिसे वह दोष दे कि मैं अमुक के बहकावे में आगयी। कुबरी को भी दोष नहीं दे सकती। क्योंकि कुलमान्य जठेरी तथा उसके परम प्रिय सखियों ने बहुत समझाया था और अन्त में कह भी दिया : जौ नहिं लगिहौ कहे हमारे। नहिं लागिहि कछु हाथ तुम्हारे। सो सखियों की सलाह छोड़कर उसने मतिमन्द कूबरी की बात क्यों मानी ? अतः स्पष्ट सब दोष उसी का था। उसने सखियों की भी सहानुभूति खो दी। अब मन ही मन मर रही है। किसी से कुछ कह नहीं सकती।

जनकजी के आने का परिणाम क्या होगा ? इस बात पर तर्क वितर्क न करके लोग इतने पर ही प्रसन्न हैं कि मिथिलेश के आने से चार दिन ठहरने का अवसर और हाथ लग गया।

एहि प्रकार गत बासर सोऊ। प्रात नहान लाग सबु कोऊ ॥
करि मज्जनु पूजहि नर नारी। गनप गौरि तिपुरारि तमारी ॥२॥

अर्थ : इस प्रकार वह दिन बीता। प्रातःकाल होते ही सब लोग नहाने लगे। नहा नहाकर स्त्री और पुरुष, गणेश, गौरी और सूर्य का पूजन करते हैं।

व्याख्या : अपने अपने हृद्‌गत भावों के उधेड़बुन में शेष दिन भी बीत गया। यहाँ दिन में रात का भी अन्तर्भाव है। सवेरा हुआ। जनकजी के आने की बात है। इसलिए तुरन्त नित्यकृत्य के निर्वाह में लग गये। अब अवधवासियों की दिनचर्या कहते हैं।

पहिले स्नान किया। सन्ध्या तर्पणादि का उसी में अन्तर्भाव है। तब पूजन आरम्भ हुआ। अवधवासी स्मार्त वैष्णव हैं। शिवद्रोही नहीं हैं। शिव विष्णु में अभेद है। यथा : माधवोमाधवावीशौ सर्वसम्पद्‌विधायिनौ। वन्दे परस्परात्मनौ परस्पर-नुतिप्रियौ। माधव विष्णु और उमाधव शिवजी दोनों सम्पत्ति के देनेवाले हैं। दोनों एक दूसरे की आत्मा हैं और दोनों को एक दूसरे की वन्दना करना प्रिय है। स्मार्त वैष्णव पञ्चदेवोपासक होते हैं। अतः ये लोग गणपति, गौरी, शिवजी और सूर्य का पूजन करते हैं।

रमा रमन पद बंदि बहोरी। बिनवहिं अंजुलि अंचल जोरी ॥
राजा रामु जानकी रानी। आँनद अवधि अवध रजधानी ॥३॥

अर्थ : तत्पश्चात् रमारमण विष्णु भगवान् के चरणों की वन्दना करके अञ्जलि और अञ्चल जोड़कर विनय करते हैं कि रामजी राजा हों। जानकी रानी हों और आनन्द की सीमा अयोध्या राजधानी हो।

व्याख्या : यहाँ रमारमण शब्द का अन्वय पूर्व की अर्धाली के साथ है अर्थात् पूजहि क्रिया का कर्म रमारमण शब्द है। पूजन के बाद चरणों की वन्दना करके पुरुष लोग अञ्जलि बाँधकर और स्त्रियाँ अञ्चल जोड़कर विनय करती हैं कि रामजी राजा हों। प्रजा सिवा रामजी के दूसरे को राजा नहीं चाहती। इतना ही नहीं

जानकी रानी हों। सबकी प्रीति जैसे रामजी में है वैसी ही जानकीजी में है। इस मनोहर जोड़ी के देखते रहने की बड़ी अभिलाषा है। यथा : फिरिहि दसा बिधि बहुरि कि मोरी। देखिही नयन मनोहर जोरी।

राजा लोग अपने पसन्द के अनुसार कभी राजधानी बदल भी देते हैं। सो ऐसा न हो राजधानी अयोध्या ही रहे। क्योंकि अयोध्या आनन्द की पराकाष्ठा है। सरकार के चार विग्रहों में एक है। यथा : रामस्य नाम रूपञ्च लीलाधाम परात्परम्। एतच्चतुर्विधं प्राहुः साक्षाद् रामस्य विग्रहः। पाठभेदः एतच्चतुष्टयं नित्यं सच्चिदान्दविग्रहम्। तथा : अवध प्रभाव जान तब प्रानी। जब उर बसहिं राम धनुपानी।

सुबस बसउ फिरि सहित समाजा। भरतहि रामु करहुँ जुबराजा॥
एहि सुख सुधा सींचि सब काहू। देव देहु जगजीवन लाहू॥४॥

अर्थ : फिर आनन्द सहित सब समाज बसे। भरत को रामजी युवराज बनावें। इस सुखरूपी अमृत से सींचकर हे देव संसार में जीने का लाभ दीजिये।

व्याख्या : भरतजी पहिले ही कह चुके हैं : मिटै कुजोग राम फिरि आये। बसिहि अवध नहि आन उपाये। नहीं तो सब बारहबाट हो जायँगे। वही बात आज प्रजा पञ्चदेव की उपासना करके माँगती है कि राजा राम हों जानकी रानी हों इत्यादि। तब यह प्रश्न उठता है कि महाराज ने भरत को टीका देने का वचन दिया है। उसकी क्या गति होगी। इस पर कहते हैं कि चक्रवर्तीजी ने यौवराज्य के टीका का वचन दिया था। सो रामजी भरत को युवराज का टीका कर दें। चक्रवर्तीजी का वचन भी बना रह जाता है।

सब लोग दुःसह ज्वर से जल रहे हैं। सो इस सुखरूपी अमृत से पञ्चदेव सबको सीचें। बिना इस अमृत का सिञ्चन किये ज्वर और जलन दोनों न मिटेगी। अभिलाष सबका यही है। यथा : कालि लगन भलि केतिक बारा। पूजिहि बिधि अभिलाषु हमारा। कनक सिंहासन सीय समेता। बैठहिं राम होइ चित चेता। उसी अभिलाष में बाधा पड़ने से ज्वर है। अभिलाष की पूर्ति ही जीवन का लाभ है। अतः हमारे जीवन का लाभ इसी में है कि रामजी राजा हों इत्यादि।

दो. गुर समाज भाइन्ह सहित, रामराजु पुर होउ।
अछत राम राजा अवध, मरिअ माँग सबु कोउ॥२७३॥

अर्थ : बड़ों के समाज के और भाइयों के सहित रामजी का राज्य पुर में हो और राम के राजा रहते ही सबका देहावसान हो जाय।

व्याख्या : चक्रवर्तीजी तो चले गये। चौदह वर्ष में न जाने कितने लोग चले जायँगे। उनका अभिलाष पूरा न हो सकेगा। भरतजी जो स्वयं वन जाने को तैयार हैं। भाइयों को भी साथ ले जाने को कह रहे हैं। सो भी न हो। ऐसा न होने से जो सुख हम लोग चाहते हैं वह पूरा न होगा। यथा : सम दुःख सुख सब

रोवहिं रानी। और रामजी का वियोग किसी को कभी न हो। हम सबकी मृत्यु रामजी के राजा रहते ही हो जाय।

सुनि सनेहमय पुरजन बानी। निंदहि जोग बिरति मुनि ग्यानी ॥
एहि बिधि नित्य करम करि पुरजन। रामहि करहि प्रनाम पुलकि तन ॥१॥

अर्थ : पुरजन की प्रेममय वाणी सुनकर ज्ञानी मुनि योग और वैराग्य की निन्दा करते हैं। इस भाँति नित्यकर्म करके पुरजन रामजी को पुलकित शरीर होकर प्रणाम करते हैं।

व्याख्या : वाणी से पुरजन के प्रेम का उत्कर्ष जानकर ज्ञानी लोग लगे वैराग्य और योग की निन्दा करने। प्रजा राजा के सम्बन्ध के कारण इनकी इतनी प्रीति बढ़ी हुई है। अतः सम्बन्ध ही परतम भाव है। जिससे बिना ध्यान, बिना तप, बिना योग और बिना ज्ञान के श्रीरघुनन्दन पर अव्यभिचारिणी प्रीति होती है। यथा : एभ्यः परतमो भावः सम्बन्धाख्यः स्वयं स्वराट्। बिना ध्यानेन तपसा योगं ज्ञानं विनैव हि। श्रीरघुनन्दने प्रीतिः पराह्यव्यभिचारिणी। वर्धतेऽनुदिनं विप्र सत्यं सत्यं न चान्यथा[1]। सो यह सम्बन्धाख्य महाभाव का प्रभाव है कि इन सामान्य लोगों की जिनका ध्यान तप योग से कोई सम्बन्ध नहीं है रामजी में ऐसी प्रीति है। अतः वैराग्य और योग सम्बन्धाख्य भाव के सामने कुछ नहीं है।

नित्य कर्म की विधि ऊपर कह आये हैं। सभी लोग पञ्चदेव की उपासना करके राम सम्बन्धी माँगन माँगते हैं। तत्पश्चात् रामजी को प्रणाम करने के लिए जाते हैं।

ऊँच नीच मध्यम नरनारी। लहहिं दरसु निज निज अनुहारी ॥
सावधान सबही सनमानहि। सकल सराहत कृपानिधानहि ॥२॥

अर्थ : उच्च नीच और मध्यम श्रेणी के नरनारी अपने अपने अनुसार दर्शन पातेहैं। भगवान् : सावधान होकर सबका सम्मान करते हैं और सब कृपानिधान की बड़ाई करते हैं।

व्याख्या : पुर नरनारी में सात्त्विक राजस और तामस सभी प्रकृति के लोग आये हैं और वे सब सरकार के दर्शन के लिए गये। पर सबको एक रूप दर्शन नहीं हो रहा है। सात्त्विक रूप का दर्शन पाते हैं। राजसिक राजसरूप का दर्शन पाते हैं और तामसिक तामसरूप का दर्शन पाते हैं। तीनों प्रकार का ध्यान शास्त्रों में कहा गया है।

सरकार बड़ी साहिबी में बड़े सावधान हैं। ऐसा नहीं होता कि कोई उपेक्षित रह जाय। जो राजदर्शन के लिए जाता है सरकार सबका सम्मान करते हैं। यथा : अस कपि एक न सेना माही। राम कुसल जेहि पूछी नाहीं। सम्मान ही सब

---

१. अहिर्बुध्न्यसंहितायाम्।

दानों में बड़ा है। सो सम्मान पाकर सब कृतकृत्य हैं और सरकार की बड़ाई करते हैं। कहते हैं कि यह कृपानिधान की कृपा है जो हमारा इतना सम्मान हो रहा है।

लरिकाइहि तें रघुबर बानी। पालत नीति प्रीति पहिचानी ॥
सील सकोच सिंधु रघुराऊ। सुमुख सुलोचन सरल सुभाऊ ॥३॥

अर्थ : बचपन से ही सरकार का स्वभाव है कि प्रीति की पहिचान करके नीतिका पालन करते हैं। श्रीरघुनाथ शील सङ्कोच के समुद्र हैं। उनका श्रीमुख सुन्दर नेत्र सुहावना और स्वभाव सरल है। भगवान् सुमुख हैं। मीठी वाणी बोलते हैं और सुलोचन हैं : सदा कृपा दृष्टि से देखते हैं।

व्याख्या : रीझत राम सनेह निसोते। प्रीति पहिचान यह रीति दरबार की। पुरलोग कहते हैं कि लोगों में सद्‌गुण सिखाने से आते हैं। पर सरकार में तो यह गुण बचपन से ही दिखायी पड़ते हैं। प्रीति की पहिचान करके नीति का पालन करते हैं। व्यवहार यथायोग्य करते हैं। परन्तु प्रीति के पहिचान की झलक बराबर रहती है। शील सङ्कोच के तो समुद्र हैं। सुमुख सुलोचन होने से उसका प्रभाव और भी बढ़ जाता है। तिस पर सरल स्वभाव होने से उत्कर्ष की सीमा हो जाती है।

शील। यथा : चारिउ सील रूप गुन धामा।
तदपि अधिक सुखसागर रामा ॥
सङ्कोच। यथा : चुपहिं रहे रघुनाथ सँकोची।
प्रभु गति देखि सभा सब सोची ॥
सुमुख। यथा : सब बिधि सब पुरलोग सुखारी।
रामचंद्र मुखचंद निहारी ॥
सुलोचन। यथा : मामवलोकय पंकज लोचन।
कृपा बिलोकनि सोच बिमोचन ॥
सरल सुभाऊ। यथा : रामहि मातु बचन सब भाए।
जिमि सुरसरि गत सलिल सुहाए ॥

कहत राम गुन गन अनुरागे। सब निज भाग सराहन लागे ॥
हम सम पुन्य पुंज जग थोरे। जिनहि रामु जानत करि मोरे ॥४॥

अर्थ : रामजी के गुणगणों को कहते कहते अनुराग में आगये। सब अपने भाग्य की सराहना करने लगे कि हम लोगों के समान पुण्यपुञ्ज संसार में थोड़े ही लोग हैं। जिन्हें राम अपना करके मानते हैं।

व्याख्या : सरकार के गुणगण-ही ऐसे हैं कि उनके स्मरण करने से अनुराग बढ़ता है। यथा : सुमिरि सुमिरि गुनग्राम राम के उर अनुराग बढ़ाउ। उपर्युक्त चौपाई में जो गुणगण सरकार के कहे गये हैं उनके स्मरण करने से रामपद में अनुराग बढ़ता है। अतः उन लोगों का अनुराग बढ़ा। तब अपने अपने भाग्य की

सराहना करने लगे। ऐसे ही स्थल में भाग्य की सराहना की जाती है जहाँ सराहना करने से बड़े की स्तुति ध्वनित हो।

जो अतिप्रिय हो वही अपना होता है। जिससे प्रेम नहीं वह सगासम्बन्धी भी अपना नहीं माना जाता। सरकार हम लोगों को अपना करके जानते हैं। अतः हम लोग सरकार को अतिप्रिय हैं। यथा : अति प्रिय मोहि इहाँ के बासी। बड़े बड़े योगीन्द्र मुनीन्द्र बड़े बड़े पुण्यपुञ्ज चाहते हैं कि उनका सरकार पर प्रेम हो। ऐसे सरकार हमारे पर प्रेम करते हैं। अतः हमारे पुण्य का क्या ठिकाना? इस भाँति अपने भाग्य की बड़ाई करते हैं।

दो. प्रेम मगन तेहि समय सब, सुनि आवत मिथिलेसु।
सहित सभा संभ्रम उठेउ, रबिकुल कमल दिनेसु ॥२७४॥

अर्थ : उस समय सब प्रेम में मग्न थे। समाचार आया कि मिथिलेश आ रहे हैं। अतः सभा के सहित सूर्यकुल कमल के सूर्य एकाएक उठ खड़े हुए।

व्याख्या : सब लोग मिथिलेश के आगमन की आशा से ही नित्यकृत्य का निर्वाह करके पास जुट गये थे और सरकार से सम्मान पाकर उनके गुणों के स्मरण से प्रेम में विभोर हो रहे थे। उन्हें स्मरण भी नहीं रहा कि क्यों यहाँ इकट्ठे हुए हैं। तब से समाचार मिला कि महाराज जनक आ रहे हैं। महाराज की इतनी प्रतिष्ठा सरकार की दृष्टि में है कि घबड़ाये से उठ खड़े हुए और सभा की सभा उसी भाँति उठ खड़ी हुई।

भाइ सचिव गुर पुरजन साथा। आगे गवनु कीन्ह रघुनाथा ॥
गिरिबरु दीख जनकपति जबहीं। करि प्रनामु रथु त्यागेउ तबहीं ॥१॥

अर्थ : भाई मन्त्री गुरु और पुरजन को साथ लिये हुए रघुनाथजी आगे चले। राजा जनक ने जब पर्वतों में श्रेष्ठ चित्रकूट को देखा तो उसी समय प्रणाम करके रथ से उतर पड़े।

व्याख्या : सरकार से ज्यों ही जनकराज का आगमन सुना त्यों ही ससम्भ्रम उठे और उनको आगे से लेने के लिए चल पड़े। सभा में उस समय भाई गुरु और पुरजन जुटे थे। वे भी साथ हो लिये। अभी राजा जनक इतनी दूर हैं कि शैलशृङ्ग का दर्शन हुआ ही चाहता है। सो दर्शन होते ही महाराज ने चित्रकूट को प्रणाम किया और तीर्थ का आदर करते हुए रथ से उतर पड़े। यहाँ से महाराज जनक समाज सहित सरकार से मिलने पैदल चले और उधर समाज सहित सरकार उनसे मिलने पैदल चले आ रहे हैं। जिस भाँति रघुपति शब्द का प्रयोग होता है उसी भाँति जनकपति शब्द का प्रयोग है।

राम दरसु लालसा उछाहू। पथ श्रम लेसु कलेसु न काहू ॥
मन तहँ जहँ रघुबर बैदेही। बिनु मन तन दुख सुख सुधि केही ॥२॥

अर्थ : रामजी के दर्शन की लालसा और उत्साह से रास्ते के परिश्रम के लेश का भी क्लेश किसी को नहीं है। उनका मन तो रामजी में लगा था। बिना मन के दुःख सुख की सुध किसको हो।

व्याख्या : राजा जनक के समाज का वर्णन करते हुए कहते हैं कि श्रीराम जानकी के दर्शन की लालसा और शीघ्र दर्शन की दृढ़ आशा से सबको ऐसा उत्साह है कि रास्ते चलने में परिश्रम पड़ा है। उसके क्लेश का लेश भी किसी में नहीं है। जनकपुर से चित्रकूट चले आ रहे हैं और रास्ते में कहीं विश्राम भी नहीं किया। अतः सबके थक जाने में सन्देह नहीं है। परन्तु कोई थकावट का अनुभव नहीं कर रहा है। क्योंकि सबका मन रामजी में ऐसा लगा है कि तन की सुध बुध किसी को नहीं और शीघ्र दर्शन पाने के उत्साह से सब भरे हैं। इससे अयोध्यावासियों सा ही प्रेम मिथिलावासियों का भी दिखलाया।

आवत जनकु चले एहि भाँती। सहित समाज प्रेम मति माती ॥
आये निकट देखि अनुरागे। सादर मिलन परसपर लागे ॥३॥

अर्थ : इस भाँति समाज सहित जनकजी चले आरहे थे। उन लोगों की बुद्धि प्रेम से मतवाली हो रही थी। निकट पहुँचकर सबको अनुराग हुआ और आदर के साथ एक दूसरे से मिलने लगे।

व्याख्या : इस भाँति लालसा उत्साह और प्रेम में मग्न जनकजी समाज के साथ बढ़े चले आते थे। उधर से रघुनाथजी समाज सहित आगये। रास्ते में भेंट हो गयी। दोनों समाज के लोग दूसरे समाज से परिचित हैं। देखते ही अनुराग उमड़ पड़ा। अतः आदर से आपस में मिलने लगे। परिस्थिति में बड़ा अन्तर है। इसलिए कवि आनन्द की चर्चा नहीं कर रहे हैं। जैसा व्याह के समय किया था। यथा : जनु आनंद समुद्र दुइ मिलत बिहाइ सुबेल।

लगे जनक मुनिजन पद बन्दन। रिषिन्ह प्रनामु कीन्ह रघुनन्दन ॥
भाइन्ह सहित रामु मिलि राजहिं। चले लेवाइ समेत समाजहिं ॥४॥

अर्थ : जनकजी मुनियों की चरण वन्दना करने लगे और ऋषियों को रामजी ने प्रणाम किया। भाइयों के सहित रामजी महाराज से मिलकर समाज के सहित उन्हें लिवा चले।

व्याख्या : अवध समाज में रामजी आगे हैं। मिथिला समाज में जनकजी आगे हैं। अतः गोस्वामीजी पहिले इन्हीं की व्यवस्था कहते हैं कि जनकजी तो वसिष्ठ वामदेवादि की वन्दना करने लगे और रामजी शतानन्द विश्वामित्रादि की वन्दना करने लगे। सगे सम्बन्धी से मिलने के पहिले ऋषियों की वन्दना आवश्यक समझी गयी। तत्पश्चात् रामजी भाइयों के साथ महाराज जनक से मिले और उन्हें समाज के साथ लिवा चले। ऐसे अवसर पर रास्ता दिखाने के लिए छोटे भी बड़े के आगे चलते हैं।

दो. आश्रम सागर साँत रस, पूरन पावन पाथु।
सेन मनहुँ करुना सरित, लिए जाहिं रघुनाथु ॥२७५॥

अर्थ : शान्त रसरूपी पावन जल से भरे हुए आश्रमरूपी समुद्र की ओर मानो सेनारूपी करुणानदी को रामजी लिवाये जा रहे हैं।

व्याख्या : जिस भाँति राजा भगीरथ गङ्गाजी को लिवाकर समुद्र में मिला दिया। स्वयं रथ पर आगे आगे चले और गङ्गाजी पीछे पीछे चलीं उसी भाँति रघुनाथजी सेनारूपी सरित को आश्रमरूपी समुद्र की ओर लिवा ले चले। यहाँ आश्रम की उपमा समुद्र से दी। समुद्र क्षीरजल से भरा होता है और आश्रम शान्तरस के जल से पूर्ण है। समुद्र का जल पावन नहीं होता। केवल विशेष विशेष अवसर तथा विशेष विशेष तीर्थ के योग होने पर ही उसके स्पर्श का विधान है। पर शान्तरस रूपी जल तो सदा पावन है।

सेना की उपमा करुणा नदी से दी। चक्रवर्तीजी के देहावसान के बाद आज ही अवध तथा जनकपुर के समाज से भेंट हुई। भेंट होने से घाव ताजा हो गया। दोनों समाज में करुणा छा गयी। सब विलाप करते जा रहे हैं। इसी से उनकी उपमा करुणा सरित से दिया। रामजी आगे आगे चल रहे हैं। सबको अपने आश्रम में लिवाये जाते हैं। अतः करुणा सरित का लिवा जाना उनके लिए कहा गया है।

बोरित ग्यान बिराग करारे। बचन ससोक मिलन नद नारे ॥
सोच उसास समीर तरंगा। धीरज तट तटवर कर भंगा ॥१॥

अर्थ : ज्ञान विराग रूपी करारों को डुबोती हुई चली। शोकयुक्त वचनरूपी नदनारे मिलते गये। सोच रूपी हवा से उच्छ्वासरूपी तरङ्गें : उठने लगीं। धैर्यरूपी तट के वृक्ष गिरने लगे।

व्याख्या : समुद्र में अनेक नदियाँ अनेक दिशाओं से आकर मिलती हैं। यहाँ रामजी के आश्रम की उपमा शान्तरस के समुद्र से दी गयी है। उसमें भी कुछ शान्तिरस की नदियों का आकर मिलना मानना ही होगा। जिन रास्तों से मुनिगण आकर सरकार का दर्शन करते थे उन्हें शान्तिरस की नदियों से उपमित किया जा सकता है। उन्हीं रास्तों में एक वह भी है जिससे रघुनाथजी महाराज जनक को लिवाये जा रहे हैं। आज उस रास्ते से शोकयुक्त समाज जा रहा है। अतः वह शान्तिरस की नदी उस अत्यन्त भारी करुणारस की नदी से जिसे रघुनाथजी लिये जाते हैं ऐसी दब गयी है कि उसके ज्ञान विराग के करारे भी डूब गये। ज्ञान विरागरूप करारा शान्तरस की नदी का ही माना जा सकता है। करुणा सरित का नहीं माना जा सकता। भाव यह कि बड़े बड़े ज्ञानी विरागी भी करुणारस में मग्न हो रहे हैं। शोक भरे वचन नद और नाले हैं। जिससे नदी की वृद्धि होती जा रही है। सोच से जो उच्छ्वास ले रहे हैं वही मानों वायुजनित तरङ्ग हैं। धैर्यरूपी तट के वृक्ष जो अभी तक बद्धमूल थे इस प्रबल तरङ्ग से छिन्नमूल होकर गिरते जा रहे

हैं। भाव यह कि जिनका धैर्य अभी तक छूटा न था वह भी शोकपूरित उच्छ्वास से छूटा जा रहा है।

बिषम बिषाद तोरावति धारा। भय भ्रम भवँर अवर्त अपारा ॥
केवट बुध बिद्या बड़ि नावा। सकहि न खेइ ऐक नहि आवा ॥२॥

अर्थ : विषम विषाद ही त्वरावती धारा है। उसमें भयरूपी भँवर और भ्रमरूपी आवर्त : चक्कर पड़ रहा है। पण्डित लोग विद्यारूपी वड़ी नाव के केवट हैं। सो वे नाव के चलाने में असमर्थ हैं। क्योंकि वे किंकर्तव्यविमूढ हो रहे हैं।

व्याख्या : लोगों में जो विषम विषाद है वही इस करुणा नदी की तीव्र धारा है। त्वरावती शब्द का प्राकृत रूप तोरावती हुआ। विषाद में क्या होनेवाला है इस बात का भय उत्पन्न होता है और यथार्थ अनुभव की शक्ति जाती रहती है। इसलिए भ्रम होता है। इसीलिए विषादरूपी धारा का भँवर भय को और आवर्त भ्रम को कहा! भँवर और आवर्त वेगवती धारा में ही पड़ते हैं। उसी भाँति विषम विषाद में भय और भ्रम उत्पन्न होता है।

विषादरूपी धारा के पार करने में विद्यारूपी नाव द्वारा पण्डितरूपी केवट ही समर्थ हैं। अर्थात् विद्या के बल से पण्डित ही ऐसी समय में धैर्य बँधा सकते हैं। सो उनका किया भी कुछ नहीं हो रहा है। विषाद का वेग इतना बढ़ा हुआ है कि उन्हें इस बात का अन्दाज ही नहीं लगता है कि कैसे धैर्य बँधावें।

बनचर कोल किरात बिचारे। थके बिलोकि पथिक हिय हारे ॥
आश्रम उदधि मिली जब जाई। मनहुँ उठेउ अंबुधि अकुलाई ॥३॥

अर्थ : बटोहीरूपी विचारे वन के फिरनेवाले काले और किरात उसे देखकर स्थगित हो गये। उनकी हिम्मत छूट गयी। जब वह आश्रमरूपी समुद्र में जा मिली तो मानो समुद्र आकुल हो उठा।

व्याख्या : जिस वेगवती नदी में बड़ी बड़ी नाव और केवट की बुद्धि नहीं काम करती वहाँ वन में फिरनेवाले कोल किरात क्या कर सकते हैं। वे तो विचारे हैं। उनका कोई चारा नहीं। उनके पास तो छोटी सी भी नाव नहीं है। उनकी हिम्मत तो इसी नदी को देखकर छट जाती है। वे किंकर्तव्यविमूढ़ होकर देखते ही रह जाते हैं।

दुःखी समाज को देखकर राह चलते हुए की भी इच्छा होती है कि उनके दुःख का कारण पूछें और उन्हें धैर्य बँधावें। सो यहाँ वन में विचरनेवाले कोल किरात ही बटोही स्थानीय हैं। वे ही इस दुःखी समाज के साथ समवेदना प्रकट करके धैर्य बँधाने का प्रयत्न कर सकते हैं। पर इस समाज में इस समय बिषाद का इतना वेग है कि बड़े बड़े ज्ञानी विरागी शोकमग्न हो रहे हैं। इनकी दशा देखकर ही वे अल्पज्ञ कोल किरात स्तब्ध हो गये। उन्हें कुछ भी चेष्टा करने का साहस न हुआ।

जव वह करुणा नदी जाकर आश्रमरूपी समुद्र से मिली तो मानों समुद्र आकुल हो उठा। अर्थात् वह शान्त रस से भरापूरा आश्रम इन विषाद करनेवालों के पहुँचने से कोलाहल पूर्ण हो गया।

सोक बिकल दोउ राज समाजा। रहा न ग्यानु न धीरजु लाजा ॥
भूप रूप गुन सील सराही। रोवहिं सोक सिंधु अवगाही ॥४॥

अर्थ : दोनों राज समाज शोक से विकल है। न वहाँ ज्ञान है। न धैर्य है। न लज्जा है। महाराज : दशरथ के रूप गुण और शील की सराहना करके शोक सिन्धु में स्नान करनेवाले रो रहे हैं।

व्याख्या : जहाँ गङ्गा जाकर समुद्र से मिलती है उसे गङ्गासागर तीर्थ कहते हैं। वहाँ लोग स्नान करते हैं। यहाँ भी करुणा नदी और आश्रम सागर का सङ्गम हुआ है। यहाँ के स्नान करनेवाले यात्री दोनों राज समाज हैं। करुणा नदी के सङ्गम से वह आश्रम शोक सिन्धु हो गया। इसी में यात्री स्नान करते हैं। अर्थात् शोक से विकल हैं। उनका धैर्य छूट गया है। ज्ञान का कहीं पता नहीं। उन्हें रोने में छाती पीटने में देह के सँभाल के बाहर हो जाने में लज्जा नहीं है। वे स्तुति पाठ की भाँति महाराज चक्रवर्तीजी के रूप गुण और शील की प्रशंसा करते हैं और रो रहे हैं।

छं. अवगाहि सोच समुद्र सोचहिं नारि नर ब्याकुल महाँ।
दै दोष सकल सरोस बोलहि बाम बिधि कीन्हौं कहाँ ॥
सुर सिद्ध तापस जोगिजन मुनि देखि दसा बिदेह की।
तुलसी न समरथु कोउ जो तरि सकै सरित सनेह की ॥

अर्थ : शोक समुद्र में स्नान करके स्त्री पुरुष अत्यन्त व्याकुल हैं। वे ब्रह्मा को दोष देकर रोष के साथ कह रहे हैं कि वामविधि ने क्या कर दिया। देवता सिद्ध तपस्वी और योगी लोगों ने महाराज विदेह की दशा देखी। तुलसीदास कहते हैं कि ऐसा समर्थ कोई नहीं है जो स्नेह की नदी का अतिक्रमण कर सके।

व्याख्या : यद्यपि चक्रवर्तीजी के देहावसान हुए एक महीना बीत गया है। दोनों समाज अपना शोक दबाये हुए थे। पर दोनों स्नेहियों का समाज मिल गया है। रामजी का वेष देखकर जनकपुर निवासियों का दुःख फूट पड़ा जो कि उन्हें वरवेष में देख चुके थे। उनके दुःख फूटने से अयोध्यावासियों का भी दुःख ताजा हो गया। दोनों समाज इस समय रामजी के आश्रम में ठहरकर रो रहे हैं। उसी दृश्य का वर्णन करते हुए कवि कहता है कि नर नारी अत्यन्त व्याकुल हैं। उन्होंने मानो शोक समुद्र में स्नान किया है। वे सोच रहे हैं कि क्या हो रहा था और क्या हो गया? वे इसमें ब्रह्मदेव को दोष दे रहे हैं और क्रोध से कह रहे हैं कि प्रतिकूल होकर ब्रह्मदेव ने यह क्या कर दिया।

ऊपर कह आये हैं : रहा न ज्ञान न धीरज लाजा। उसी को यहाँ दिखला रहे हैं। व्याकुल महा : से धैर्य का न रहना कहा। शोक समुद्र में स्नान से ज्ञान का न रहना कहा। दै दोष सकल सरोष बोलहिं वाम बिधि कीन्ही कहा : से लज्जा न रहना कहा। राजा विदेह मुनियों के भी गुरु स्थानीय हैं। यथा : जासु ज्ञान रबि भव निसि नासा। बचन किरन मुनि कमल विकासा। उनकी दशा सुरसिद्ध तापस योगियों ने देखी कि महा शोकाकुल हो रहे हैं। अत. गोस्वामीजी कहते हैं कि जब देहाध्यास रहित जनकजी की यह दशा है तब यही कहना पड़ता है कि स्नेह की नदी के सन्तरण का सामर्थ्य किसी को भी नहीं।

सो. किंए अमित उपदेस, जहँ तहँ लोगन्ह मुनिबरन।
धीरज धरिअ नरेस, कहेउ बसिष्ठ बिदेह सन ॥२७६॥

अर्थ : जहाँ तहाँ लोगों को मुनियों ने बहुत से उपदेश दिये। वसिष्ठजी ने महाराज से कहा कि राजन्! धैर्य धारण कीजिये।

व्याख्या : डूबते हुए लोगों को सहारा देने के लिए मुनिगण ने हाथ बढ़ाया। अर्थात् स्नेह सरित के पार करने में लोगों को असमर्थ देखकर महात्मा लोग करुणा करके ज्ञानोपदेश जहाँ तहाँ देने लगे। क्योंकि प्रेम का वेग ज्ञान से ही शान्त होता है। यथा : परम प्रेम तिनकर प्रभु देखा। कहा बिविध बिधि ग्यान बेसेखा। यहाँ तो विदेह राजा जिन्हें देहाध्यास नहीं वे भी स्नेह सरित में गोता खा रहे हैं। उन्हें कौन उपदेश दे। अतः उन्हें वसिष्ठजी ने केवल इतना कहकर सावधान किया कि राजा अपनी जिम्मेदारी को समझें। यदि राजा ही धैर्य छोड़ेगा तो प्रजा कैसे धैर्य धारण करेगी।

जासु ग्यानु रबि भव निसि नासा। बचन किरन मुनि कमल बिकासा॥
तेहि कि मोह ममता निअराई। यह सिय राम सनेह बड़ाई ॥१॥

अर्थ : जिसके ज्ञानरूपी सूर्य से संसाररूपी रात्रि का नाश हो जाता है और वचनरूपी किरण के लगने से मुनिरूपी कमल खिल उठते हैं। उनके निकट क्या मोह ममता आ सकती है? यह तो सीता राम के प्रेम की बड़ाई है।

व्याख्या : उत्तरकाण्ड में ज्ञान दीपक का वर्णन है। जिसके प्रकाश से साधक के भेद भ्रम का नाश होता है। आत्मानुभव सुख होता है। परन्तु जनकजी का ज्ञान ऐसा है कि संसाररूपी रात्रि को ही नष्ट कर देता है और उनके वचन ऐसे होते हैं कि सुनकर मुनि लोग कमल की भाँति खिल उठते हैं। उस ज्ञान रवि के सामने मोह ममतारूपी अन्धकार जा नहीं सकता। यथा : तहँ कि तिमिर जहँ तरनि प्रकासू। उनमें जो मोह ममता दिखलायी पड़ती है वह भक्ति का उत्कर्ष हैं। मोह ममता नहीं है। वही स्नेह पुत्र कलत्रादि में होने से मोह ममता कहलाता है। यदि परमेश्वर में हो तो भक्ति कहलाता है और परम कल्याण का कारण होता है।

यथा : आत्मारामश्च[1] मुनयो निर्ग्रन्थाअप्युरुक्रमे । कुर्वन्त्यहैतुकीं भक्तिमित्थं भूतगुणो हरिः ।

बिसई साधक सिद्ध सयाने । त्रिबिध जीव जग बेद बखाने ॥
राम सनेह सरस मन जासू । साधु सभाँ बड़ आदर तासू ॥२॥

अर्थ : विषयी साधक और सयाने सिद्ध इन तीन प्रकार के जीव का होना वेद वर्णन करता है। परन्तु जिसका मन रामजी के प्रेम से सरस होता है। साधु सभा में उसका बड़ा आदर होता है।

व्याख्या : वेदादि शास्त्र कहते हैं कि तीन प्रकार के ही जीव होते हैं। एक जो विषय में लिप्त हैं। दूसरे जो सद्गति के लिए यत्नशील हैं और तीसरे सयाने सिद्ध अर्थात् जीवन्मुक्त मुनीन्द्र। साधु सभा में यथास्थान सभी का आदर है। परन्तु बड़ा आदर तो उसी का है जिसका हृदय रामजी के स्नेह में सरस हो। चाहे वह विषयी ही क्यों न हो। अर्थात् जिसका चित्त भगवत् चरित्र से द्रवीभूत हो उसी का अत्यन्त आदर होता है। कठोर चित्तवाले का वैसा आदर नहीं होता।

सोह न राम प्रेम बिनु ग्यानू । करनधार बिनु जिमि जल जानू ॥
मुनि बहुबिधि बिदेहु समुझाए । रामघाट सब लोग नहाए ॥३॥

अर्थ : रामजी के प्रेम के बिना ज्ञान की शोभा उसी भाँति नहीं होती जैसे बिना कर्णधार के जलयान की शोभा नहीं होती। मुनिजी ने अनेक प्रकार से विदेह राजा को समझाया। सब लोगों ने रामघाट पर स्नान किया।

व्याख्या : निरुपास्ति ज्ञान से पतन होता है। इसलिए सोपास्ति ज्ञान की ही प्रशंसा है। यथा : जे ज्ञान मान बिमत्त तव भय हरनि भगति न आदरी। ते पाइ सुर दुर्लभ पदादपि परत हम देखत हरी। ज्ञान और भक्ति से वही सम्बन्ध है जो नाव और कर्णधार में है। नाव मनुष्य को जल में डूबने नहीं देगी। पर वह स्वयं लक्ष्य स्थान प्राप्ति कराने अर्थात् पार पहुँचाने में असमर्थ है। कर्णधार ही उसे पार पहुँचा सकता है। इसी भाँति ज्ञान साधक को भवसागर में डूबने से बचा सकता है। पर उसके पार नहीं पहुँचा सकता। पार तो भक्ति ही पहुँचावेगी। यथा : बिस्वास करि सब आस परिहरि दास तब जे होइ रहे। जपि नाम तव बिनु श्रम तरहिं भव नाथ सो समरामहे। भाव यह कि जनकजी का ज्ञान सोपास्ति ज्ञान था।

वसिष्ठजी ने बहुत प्रकार से विदेहराज को समझाया। यथा :

जनम होत नृप मरन हित मरन जनम हित होय।
चला चली चहुँदिसि लखिय थिर कतहूँ नहि कोय ॥

---

१. आत्माराम मुनिगण, जिनकी चिज्जड़मयी ग्रन्थि छूट गयी है वे भी भगवान् में निष्कारण भक्ति करते हैं। क्योंकि भगवान् के गुण ही ऐसे हैं।

थिर मानै गन्धर्वपुर दामिनि सरद पयोद।
सो थिर मानि शरीर को करै विनोद प्रमोद॥
गिरिहु गिरत तारा खसत सूख जाति जल राशि।
ध्रुवहु अध्रुव जग होत है कतहुँ न कोउ अविनाशि॥
शशक शृंग वन्ध्या तनय मृगजल सम जग जानि।
दुख सुख सम करि जानिये, किये शोक हित हानि॥
तुमसे ज्ञान विधान को उचित न करन विषाद।
जानत हो एहि जगत को तीन काल मे बाध॥
सत्यसन्ध दसरथ नृपति, धर्म निरत जग जान।
तीनि काल तिहु भुवन में नहिं कोउ तासु समान॥
शोचनीय सो होइ नहिं मनम्ह करहु बिचार।
करि विवेक धीरज धरहु ज्ञानिन्ह के सरदार॥

शोक भी एक प्रकार का सूतक है। अतः सबने रामघाट पर स्नान किया। जहाँ सरकार एक बार स्नान करते हैं उस घाट का नाम रामघाट पड़ जाता है। सरकार के स्नान से तीर्थ का उत्कर्ष बढ़ जाता है। शृङ्गवेरपुर में भी इसी भाँति रामघाट नाम पड़ा। यथा : रामघाट कहँ कीन्ह प्रनामू। भा मनु मगनु मिले जनु रामू।

सकल सोक संकुल नर नारी। सो बासरु बीतेउ बिनु बारी॥
पसु खग मृगन्ह न कीन्ह अहारू। प्रिय परिजन कर कौन बिचारू॥४॥

अर्थ : सब नरनारी शोक से परिपूर्ण थे। वह दिन बिना जल के ही बीत गया। पशु पक्षी और मृगों ने भी कुछ न खाया। प्रिय परिजन की तो बात ही क्या है ?

व्याख्या : लोगों का शोक ऐसा बढ़ गया था कि उस दिन किसी ने जल भी ग्रहण नहीं किया। यद्यपि मुनि लोगों ने बहुत उपदेश दिया। फिर भी शोक का दृढ़ संस्कार मिटा नहीं। दोनों समाज के भेंट हो जाने से चोट ताजी हो गयी। उसका प्रभाव वातावरण पर ऐसा पड़ा कि पशु खग मृग ने भी आहार ग्रहण नहीं किया। यहाँ पशु से अभिप्राय सेना के हाथी घोड़ों से है और खग मृग से अभिप्राय वन्य पशु पक्षी से है। जब इन लोगों की ऐसी दशा हुई तब सगे सम्बन्धियों के लिए यह कहना कि उन्होंने भी जल नहीं ग्रहण किया : व्यर्थ है।

दो. दोउ समाजु निमिराजु रघु, राजु नहाने प्रात।
बैठे सब बट बिटप तर, मन मलीन कृस गात॥२७७॥

अर्थ : महाराज़ जनक और रामचन्द्रजी तथा दोनों समाजों ने प्रातः स्नान किया और दोनों जाकर वटवृक्ष के नीचे बैठे। उनके मन मलिन थे और शरीर दुर्बल था।

व्याख्या : रात में दोनों समाज में से किसी को नींद नहीं आयी। शोक से भूख नींद जाती रहती है। सवेरा होने की देर थी। सबने स्नानादि नित्य कर्म किये। तत्पश्चात् वट के पेड़ तले इकट्ठे हुए। वटवृक्ष का ही इतना बड़ा होना सम्भव है कि जिसके नीचे दो राजसमाज एकत्रित हो सकें। मन की खिन्नता का ऐसा प्रभाव पड़ता है कि कल जो हट्टे कट्टे थे यथा : जल ज्यौं दादुर मोर भये पीन पावस प्रथम : वे ही आज कृशगात हो गये हैं। दृढ़ मूलक शोक का संस्कार मुनियों के उपदेश से भी नहीं मिटा। स्नान करने पर भी मन मलिन हो रहे हैं।

जे महिसुर दसरथ पुर वासी। जे मिथिलापतिनगर निवासी॥
हंस बंस गुर जनक पुरोधा। जिन्ह जग मगु परमारथु सोधा॥१॥

अर्थ : दशरथपुर के रहनेवाले जो ब्राह्मण थे और जो जनकपुर के रहनेवाले थे तथा सूर्यवंश के गुरु तथा जनकजी के पुरोहित जिन्होंने संसार में परमार्थ का मार्ग ढूँढ़ निकाला था।

व्याख्या : जनकजी का आना सुनकर कल मुनि लोग आस पास से आगये थे। उन लोगों ने उपदेश किया था। आज वे लोग नहीं हैं और लोगों में केवल शोक का वेग रुक मात्र गया है। पर भीतर ज्यों का त्यों बना हुआ है। अतः अयोध्या तथा मिथिला के महीसुर जो मोहजनित संशय के हरण में समर्थ हैं वे लोग तथा सूर्यवंश के गुरु ज्ञाननिधि वसिष्ठजी तथा पुरोहित शतानन्दजी जिन्होंने संसार में परमार्थ पथ ठीक कर लिया है कि कैसा आचरण करने से जीव परमार्थ पथ में अग्रसर होता है।

लगे कहन उपदेस अनेका। सहित धरम नय बिरति बिबेका॥
कौसिक कहि कहि कथा पुरानी। समझाई सब सभा सुबानी॥२॥

अर्थ : वे लोक धर्म नीति वैराग्य और विवेक युक्त अनेक उपदेश कथन करने लगे। विश्वामित्रजी ने अनेक पुरानी कथाओं को कहकर सम्पूर्ण सभा को सुन्दर वाणी से समझाया।

व्याख्या : जनकपुर के लोगों को वहाँ के ब्राह्मण, अयोध्या के रहनेवालों को अयोध्या के ब्राह्मण, अयोध्या के राज घराने को वसिष्ठजी तथा मिथिला के राज-घराने को शतानन्दजी उपदेश करने लगे। इन लोगों को परमार्थ का रास्ता मालूम था। अतः इनके उपदेश का प्रभाव पड़ा। पहिले विषादयोग होता है। तब ज्ञानयोग के उपदेश का अवसर उपस्थित होता है। विषण्ण होकर आर्त्त हो गये थे। अतः इनमें उपदेश की पात्रता आगयी थी। अधिकारानुसार कहीं धर्म नीतिका उपदेश हो रहा है। यथा : सोचनीय नहिं कोसल राऊ। भुवन चारि दस प्रगट प्रभाऊ। कहीं विरति का उपदेश। यथा : राम बिरह तजि तन छन भंगू। भूप सोच कर कौन प्रसंगू। कहीं ज्ञान का। यथा : जो तनु धरौं तजौं पुनि अनायास हरि जान। जिमि नूतन पट पहिरै नर परिहरै पुरान।

पीछे से विश्वामित्रजी ने पुरानी कथाएँ, हरिश्चन्द्र, शिवि, दधीचि, रन्ति-देवादि की कथाएँ कहकर सम्पूर्ण सभा को समझाया कि धर्माचरण में जितना ही कष्ट होता है उतना ही अनुष्ठाता के पुण्य का उत्कर्ष है। विश्वामित्रजी का समझाना। यथा :

आया है सो जायगा सुनहु सभासद वृंद।
यहाँ शोक करना नहीं कोई भी स्वच्छन्द॥
वे हैं धन्य जो धर्म के लिए उठाते कष्ट।
उनका जीना व्यर्थ जो धर्म पन्थ से भ्रष्ट॥
सत्य न छोड़ा भूप ने दिया देह को छोड़।
दुनिया में हो गया इक नृप दशरथ बेजोड़॥
तौल तराजू पर दिया काटि काटि निज मांस।
गुरुता बढ़ी कपोत की शिबि नहिं हुए उदास॥
गये काटते अन्त तक काँप उठा संसार।
कठिन परिक्षा धर्म की धन्य जो पावे पार॥
राज गया रानी बिकी बिके डोम के हाथ।
हरिश्चन्द्र फिर भी नहीं तजे धर्म का साथ॥
वामन ने बलि को ठगा बलि ने तजा न धर्म।
नाप दिया निज देह को कठिन धर्म का मर्म॥
बढ़ी विरह ज्वाला बड़ी जल भुन गया शरीर।
सत्य न दशरथ तज सके ऐसे थे मति धीर॥
ऐसे राजा की प्रजा होकरके तुम लोग।
शोक तजो धीरज धरो नश्वर सुख दुख भोग॥

तब रघुनाथ कौसिकहि कहेऊ। हाथ कालि जल बिनु सबु रहेऊ॥
मुनि कह उचित कहत रघुराई। गयउ बीति दिन पहर अढाई॥३॥

अर्थ : तब रघुनाथजी ने विश्वामित्रजी से कहा कि हे नाथ! कल सब लोग निर्जल रह गये। मुनिजी ने कहा कि रघुनाथजी ठीक कहते हैं। ढाई प्रहर दिन भी बीत गया।

व्याख्या : सबका सोच रघुनाथजी को है। यथा : सानुज भरत सचिव सब माता। देखि माहि पल जिमि जुग जाता : विश्वामित्रजी का उपदेश समाप्त होते ही सरकार ने उनसे कहा कि सबको भोजन करने के लिए आज्ञा दोजिये। कल किसी ने पानी तक नहीं पीया है। अतः क्षुधातृषा भी चित्त के दुःख बढ़ाने में सहायक है। प्राप्त तो यह था कि आज लोग नित्य की अपेक्षा सवेरे ही भोजन करते।

श्री रघुनाथजी का आशय समझकर मुनिजी महाराज जनक की ओर अभिमुख होकर कहते हैं कि श्री रामजी का कहना उचित है। कल का दिन तो बीता ही

आज भी मध्याह्न से ऊपर आधा पहर बीत गया। मध्याह्न तक भोजन कर लेने का विधान है।

रिषि रुख लखि कह तेरहुति राजू। इहाँ उचित नहिं असन अनाजू॥
कहा भूप भल सबहिं सोहाना। पाइ रजायसु चले नहाना॥४॥

अर्थ : ऋषिजी का रुख देखकर विदेहराज ने कहा कि यहाँ अन्न खाना उचित नहीं। सबको यह बात अच्छी लगी। कहने लगे कि महाराज ठीक कहते हैं और राजा की आज्ञा पाकर नहाने चले।

व्याख्या : विश्वामित्रजी का आशय : कि अब सब लोगों को भोजन करना चाहिए। समझकर महाराज जनक बोले कि यहाँ आश्रम में जहाँ कि श्रीरामजी कन्द मूल फल खाते हैं। हम लोगों का अन्न खाना ठीक नहीं हैं। यह बात सबको ठीक जँची। सब कहने लगे कि महाराज ठीक कह रहे हैं। सब लोग आज्ञा माँग माँगकर मध्याह्न स्नान के लिए चले। तीर्थ में आने से सब लोग त्रिकाल स्नान मन्दाकिनी में करते हैं। यथा : मन्दाकिनी मज्जन तिहुँकाला।

दो. तेहि अवसर फल फूल दल, मूल अनेक प्रकार।
लै आये बनचर बिपुल, भरि भरि काँवरि भार॥२७८॥

अर्थ : उसी समय बहुत से वनवासी कोल भील फल फूल मूल अनेक प्रकार के भारों : बहँगियों में भर भरकर ले आये।

व्याख्या : उधर कोल भिल्लों को आतिथ्य सत्कार की चिन्ता लगी। सो उन लोगों ने बहुत फल फूल कन्द मूल इकट्ठे किये जिसमें सारे समाज का सत्कार हो सके। आतिथ्य सत्कार तो अवधवासियों से पहले ही स्वीकार करा चुके हैं। यथा : तुलसी कृपा रघुवंस मनि की लोह लै लौका तिरा। सो उसी समय जबकि लोग नहाने चले वे सब बहँगियों में भर भरकर कन्द मूल फलादि ले आये।

कामद भे गिरि राम प्रसादा। अवलोकत अपहरत बिषादा॥
सर सरिता बन भूमि बिभागा। जनु उमगत आनद अनुरागा॥१॥

अर्थ : रामजी के प्रसाद से पर्वत कामदायक हो गया। उसके देखने से विषाद जाता रहता था। तालाब नदी वन और भूमि का विभाग ऐसा था कि मानो आनन्द और अनुराग उमड़ा पड़ता है।

व्याख्या : अब प्रश्न यह उठता है पर्वत पर इतना कन्द मूल फल कहाँ से आगया कि दोनों समाज के लिए यथेष्ट हो। इसलिए ग्रन्थकार कहते हैं कि रामजी के प्रसाद से वह पर्वत कामद हो गया। कामधेनु कामतरु तो सुना था पर कामद गिरि सुनने में नहीं आया। रामजी के प्रसाद से उस पर्वत में कामनापूर्ण करने की शक्ति आगयी। जिसने जो कन्द मूल फल जिस परिणाम में चाहा उसे वह उसी परिणाम में मिला और मनोहर ऐसा हो गया कि उसके देखने से विषाद का नाश

हो जाय। सब लोग विषण्ण थे। मुनियों के समझाने बुझाने से धैर्य बँधा था। अतः उन पर अनुग्रह करके सरकार ने ऐसी शक्ति पहाड़ को दी। सर शैल विपिन विभाग में ऐसी शोभा होती है कि उसके देखने से भगवत् चरणों में अनुराग उपजता है। यथा : निरखि सैल सरि बिपिन बिभागा। भयउ रमापति पद अनुरागा। यहाँ भगवत् कृपा से ऐसी शोभा हुई कि उन विभागों से मानों आनन्द और अनुराग उमगा पड़ता है।

बेलि बिटप सब सफल सफूला। बोलत खग मृग अलि अनुकूला ॥
तेहि अवसर बन अधिक उछाहू। त्रिबिध समीर सुखद सब काहू ॥२॥

अर्थ : लताएँ और वृक्ष फल और फूल से युक्त हो गये। खग मृग और भौंरे अनुकूल बोलते थे। उस अवसर पर वन में अधिक उछाह था। शीतल मन्द सुगन्ध वायु सबको सुख देनेवाली बहती थी।

व्याख्या : ऋतु और कुऋतु की कालगति का उल्लङ्घन करके सभी बेलि बिटप पुष्पित और फलित हो गये। इससे वन का कामदातृत्व कहा और खग के अनुकूल बोलने से उसका मनोहरत्व कहा। उस वन में तो सदा उछाह रहता था। यथा : अलिगन गावत नाचत मोरा। जनु सुराज मंगल चहुँ ओरा। परन्तु इस अवसर में उछाह बढ़ गया। यहाँ तक कि जेठ के महीने में शीतल मन्द सुगन्धि युक्त वायु चलने लगी। वन का वातावरण ऐसा हो गया कि उसका प्रभाव बिना लोगों पर पड़े न रह सके।

जाइ न बरनि मनोहरताई। (जनु महि करत जनक पहुनाई ॥
तब सब लोग नहाइ नहाई)। राम जनक मुनि आयसु पाई ॥३॥

अर्थ : वहाँ की सुन्दरता का वर्णन नहीं की जा सकती : मानो पृथ्वी जनक आतिथ्य सत्कार कर रही हो। तब सब लोग स्नान करके रामजी जनकजी और मुनिजी की आज्ञा पाकर।

व्याख्या : अवलोकत अपहरत बिषादा : से इस प्रसङ्ग का उपक्रम करके : जाइ न बरनि मनोहरताई : से यहाँ उपसंहार करते हैं। कोष्ठान्तर्गत पद राजापुर के प्रति में नहीं है और खटकते भी हैं। जाइ न बरनि मनोहरताई : कहने से स्पष्ट है कि यहाँ मनोहरता का वर्णन समाप्त हो गया। जाइ न बरनि मनोहरताई के पहिले ही उत्प्रेक्षा के लिए अवसर था। वर्णन समाप्त करने के बाद उत्प्रेक्षा से उसी प्रसङ्ग को उठाना शोभा नहीं देता। अतः इसे मैं क्षेपक मानता हूँ।

देखि देखि तरुबर अनुरागे। जहँ तहँ पुरजन उतरन लागे ॥
दल फल मूल कंद बिधि नाना। पावन सुंदर सुधा समाना ॥४॥

अर्थ : श्रेष्ठ वृक्षों को देखकर पुरजनों को अनुराग हुआ और वे जहाँ तहाँ

उतरने लगे। पत्ते फल मूल और कन्द अनेक प्रकार के जो पवित्र सुन्दर और अमृत से स्वादिष्ट थे।

व्याख्या : पहिले कह चुके हैं : सुरतरु सरिस सुभाय सोहाये। मनहु बिबिध बन परिहरि आये। सो सभी वृक्ष कल्पवृक्ष से हैं। जिसे देखते हैं उसी के नीचे ठहरने की इच्छा हो रही है। अतः अनुराग से जहाँ तहाँ लोग पेड़ों के नीचे उतरने लगे। वन की सम्पत्ति दिखलाते हैं कि इसमें अनेक प्रकार के पत्ते ऐसे हैं, मूल ऐसे हैं, कन्द ऐसे हैं कि इनका स्वाद अमृत सा है। देखने में भी सुन्दर हैं और मेध्य हैं।

दो. सादर सब कहँ रामगुर, पठए भरि भरि भार।
पूजि पितर सुर अतिथि गुर, लगे करन फलहार ॥२७९॥

अर्थ : आदर के साथ सबके पास रामजी और गुरुजी ने भार भर भर कर भेजा। सो देव पितृ अतिथि पूजन के बाद सब लोग फलाहार करने लगे।

व्याख्या : पहिले ही निर्णय हो चुका है कि यहाँ अन्न न खाना चाहिए। अतः अर्थापत्ति हुई कि सभी लोग फल फूल खायेंगे। फल फूल भी यथेष्ट परिमाण में कोल भील आदि ले आये। रामजी को सबके खाने पीने की चिन्ता है। गुरुजी को भी चिन्ता है। यथा : चिन्ता गुरुहि नृपहि घर बन की। ये ही दो महात्मा मुखिया हैं। अतः इन लोगों ने जहाँ तहाँ लोग उतरे हैं उनके डेरों पर जितने मनुष्य हैं उनके परते से यथेष्ट फल मूलादि काँवर में भर भरकर आदर के साथ भिजवाया। अवधपुरवासी और जनक पुरवासी सब धर्मात्मा हैं। शास्त्रानुकूल आचरणवाले हैं। उन्होंने बलिवैश्वदेवादि पञ्चयज्ञ करके अतिथि सत्कार करके तब यज्ञशिष्ट फलाहार करने लगे। यथा : यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्बिषैः[1]।

एहि बिधि बासर बीते चारी। रामु निरखि नर नारि सुखारी ॥
दुहु समाज असि रुचि मन माँहीं। बिनु सियराम फिरब भल नाँहीं ॥१॥

अर्थ : इस प्रकार चार दिन बीत गये। सब नर नारी रामजी का दर्शन करके सुखी हैं। दोनों समाज के मन में यह रुचि है कि बिना रामजानकी के लौटना ठीक नहीं है।

व्याख्या : उपक्रम किया था : अस मन आनि मुदित नर नारी। भयउ बहोरि रहब दिन चारी। यहाँ उसी प्रकरण का उपसंहार कहते हैं कि वे चार दिन इस प्रकार से बीत गये। कोल भील आदि दल फल फूल लाते थे। जो सबके पास यथेष्ट मात्रा में पहुँच जाता था। लोग फलाहार कर लेते थे और सरकार के दर्शन से सुखी थे। यथा : सब बिधि सब पुरलोग सुखारी। रामचंद मुखचंदु निहारी।

कोई चलने की चर्चा नहीं करता। क्योंकि सबके मन में यही बात है कि

---

१. यज्ञशिष्ट भोजन करनेवाले सब पापों से छूट जाते है।

रामजानकी को लेकर ही चलना चाहिए। बिना इन्हें लिये चलने से वनवास ही ठीक है। केवल अवधवासी ही नहीं जनकपुरवासी का भी यही निर्णय है।

सीता राम संग बनबासू। कोटि अमरपुर सरिस सुपासू ॥
परिहरि लखन राम बैदेही। जेहि घरु भाव बाम बिधि तेही ॥२॥

अर्थ : रामजानकी के साथ वनवास करने में करोड़ स्वर्ग के समान सुख है। राम लक्ष्मण और जानकीजी को छोड़कर जिसे घर अच्छा लगे उसको ब्रह्मा बायें है।

व्याख्या : प्रिय के साथ दुःख की सामग्री भी सुखद प्रतीत होती है और प्रिय के विरह में सुख की सामग्री भी महा दुःखद हो जाती है। वनवास महा दुःखद है। यथा : डरपहिं धीर गहन सुधि आये। सो दोनों समाज को कोटि स्वर्ग के समान सुखद जँच रहा है। कहते हैं कि जिस अभागे को राम लखन वैदेही को छोड़कर घर अच्छा लगे तो समझ लेना चाहिए कि विधाता बायें हो गये हैं। विधाता के बायें होने से ही स्वभाव पलटता है। यथा : भयउ बाम बिधि फिरेउ सुभाऊ। तथा : प्रान प्रान के जीव के जिअ सुख के सुख राम। अतः स्वभाव से ही राम सबको प्यारे हैं। जिन्हें घर प्यारा लगा निश्चय उसका स्वभाव पलट गया। अवश्य उसके प्रतिकूल ब्रह्मदेव हो गये। ऐसा दोनों समाज ने निश्चय कर लिया।

दाहिन दइव होइ जब सबहीं। राम समीप बसिअ बन तबहीं ॥
मंदाकिनि मज्जन तिहुँ काला। राम दरसु मुद मंगल माला ॥३॥

अर्थ : जब सभी को दैव अनुकूल हो तब रामजी के समीप वन में रहना हो। तीनों काल में मन्दाकिनी का स्नान और रामजी का दर्शन तो आनन्द मङ्गल की माला है।

व्याख्या : इस समय सबको दैव अनुकूल हैं। तब हम लोग सब राम के समीप वन में बस रहे हैं। रामजी के सान्निध्य में सुख है। नहीं तो न घर में सुख है न वन में है। यथा : सब बिधि सब पुरलोग सुखारी। रामचंद मुखचंद निहारी। क्योंकि राम ही आनन्द सिन्धु सुखराशि हैं। उन्हीं के सुखलेश से सब सुखी होता है। अमरपुर में पुण्य क्षीण होता है और मन्दाकिनी में मज्जन करने से पाप क्षीण होता है। यथा : सुरसरि धार नाम मन्दाकिनि। जो सब पातक पोतक डाकिनि। सो मन्दाकिनी का मज्जन हम लोगों को तीनों काल में हो रहा है। यहाँ रामदर्शन और मन्दाकिनी मज्जन दोनों सुलभ हैं। मानो हम लोग मुदमङ्गल की माला का उपभोग कर रहे हैं।

अटनु राम गिरि बन तापस थल। असनु अमिअ सम कद मूल फल ॥
सुख समेत संबत दुइ साता। पल सम होहि न जनिअहि जाता ॥४॥

अर्थ : रामगिरि, रामवन तथा तपस्वियों के आश्रम में घूमते और कन्द मूल खाते चौदह वर्ष तो पल के समान बीत जायँगे। जाते हुए मालूम भी न पड़ेंगे।

व्याख्या : राम सैल बन देखन जाँहीं। जहँ सुख सकल सकल दुःख नाँहीं। कन्द मूल फल अमिअ अहारू। औध सौध सत सरिस पहारू। ये लोग नित्य रामशैल और रामवन में घूमते हैं और कन्द मूल फल खाते हैं और परम सुखी हैं। सुख के दिन बीतते देर नहीं लगती। अतः कहते हैं कि चौदह वर्ष ऐसे आनन्द से बीतेंगे कि मालूम भी न होगा कि इतने दिन बीत गये। घर की सुधि भी न आवेगी। विश्वामित्रजी को मेनका के साथ कई सहस्र वर्ष बीत गये और उन्हें कुछ भी पता न चला। चौदह वर्ष का बीतना प्रियतम प्राण धन रामजी के साथ बीतते का क्या पता चलेगा।

दो. एहि सुख जोग न लोग सब, कहहिं कहाँ अस भागु।
सहज सुभायँ समाज दुहुँ, राम चरन अनुराग ॥२८०॥

अर्थ : इस सुख के योग्य सब लोग नहीं हैं। ऐसा भाग्य कहाँ है ऐसा लोग कह रहे हैं। सहज स्वभाव से ही दोनों समाज को रामजी के चरणों में अनुराग है।

व्याख्या : अयोध्यावासी और जनकपुरवासी दोनों समाज आपस में कहते हैं कि रामजी के साथ वन बसनेवाला सुख इतने ऊँचे दर्जे का है कि इसके लिए बड़े भाग्य की आवश्यकता है। उतना बड़ा भाग हम लोगों का कहाँ? दोनों समाज को रामजी के चरणों में स्वाभाविक प्रेम है उसमें कुछ भी बनावट नहीं है। अतः उन्हें विश्वास नहीं होता कि उनका भाग्य ऐसा होगा कि चौदह वर्ष रामजी के साथ रहने का अवसर प्राप्त हो सके।

एहि बिधि सकल मनोरथ करहीं। बचन सप्रेम सुनत मन हरहीं ॥
सीय मातु तेहि समय पठाईं। दासी देखि सुअवसरु आईं ॥१॥

अर्थ : इस भाँति मनोरथ कर रहे हैं। उनके प्रेमयुक्त वचन सुनकर मन हरण हो जाता है। सीताजी की माता ने उस समय दासी भेजा। वह अच्छा अवसर देखकर आयी।

व्याख्या : लोगों के मनोरथ करने की विधि का प्रादेशमात्र दिखलाकर कहते हैं कि सब लोग इस विधि से मनोरथ करते हैं और सरलता के कारण उस मनोरथ को प्रेम के साथ स्पष्ट शब्दों में बोलते भी जाते हैं। सरलता और प्रेम में यह सामर्थ्य है कि वैसे वचन सुननेवाले का मन हरण कर लेते हैं।

महाराज जनकजी के साथ सीताजी की माता महारानी सुनयना भी आयी हुई हैं। इधर कौसल्यादि रामजी की माता आयी हैं। मिलना आवश्यक है। सम्बन्ध के अनुसार पुछार : मातमपुरसी के लिए महारानी सुनयना का मिलने के लिए आना आवश्यक है। अतः सुनयनाजी ने दासी भेजा कि जब वह देख ले कि कौसल्यादि महारानियों को फुरसत है तब आकर खबर दे। उनसे कहे न, नहीं तो

वे लोग आवश्यक कार्य को भी छोड़कर मिलने के लिए समय निकाल लेंगी। सो दासी ठीक अवसर देखकर लौट आयी।

सावकास सुनि सब सिय सासू। आयेउ जनक राज रनिवासू॥
कौसल्या सादर सनमानी। आसन दिये समय सम आनी॥१॥

अर्थ : सीताजी के सभी सासों को इस समय फुरसत है। यह बात सुनकर जनकराज का रनिवास आगया। कौसल्याजी ने आदर के साथ सम्मान किया और समय के अनुकूल आसन लाकर दिया।

व्याख्या : दासी ने पता पाकर कि इस समय कौसल्या आदि महारानियों को अवकाश है। जनकजी की सुनयना आदि रानियाँ मिलने आयीं। महाराज जनकजी को भी चार रानियाँ थीं। कालिका पुराण में इसका उल्लेख है। यथा : चतसृभिस्तु भार्य्याभिर्यज्ञार्थे दीक्षितोऽभवत्। जनकपुर की दासी है। इसलिए उसने सीताजी का सम्बन्ध दृष्टि में रखकर समाचार दिया कि सीताजी की सासों को इस समय अवकाश है।

इधर रामजी की माताओं में सबसे बड़ी और प्रधान कौसल्याजी हैं। अतः सत्कार करने में वे ही अग्रसर हुईं। राज्य पर होतीं तो बैठने के लिए सिंहासन की व्यवस्था होती। पर यहाँ वन में हैं। अतः इस समय जैसा सम्भव है वैसा आसन दिया।

सीलु सनेहु सकल दुहुँ ओरा। द्रवहिं देखि सुनि कुलिस कठोरा॥
पुलक सिथिल तनु बारि बिलोचन। महि नख लिखन लगीं सब सोचन॥३॥

अर्थ : दोनों ओर सबके शील और प्रेम को देखकर और सुनकर कठोर वज्र भी पिघल जाता था। सभी के शरीर पुलकित थे। शिथिल थे। नेत्रों में जल था। नख से पृथ्वी पर लिखती हुई सोचने लगीं।

व्याख्या : दोनों ओर की महारानियों में बड़ा शील है और साथ ही साथ स्नेह भी अति अधिक है। उन लोगों की दशा देखकर और वचन सुनकर वज्र ऐसा कलेजा भी द्रवीभूत हो जाय। यहाँ कुलिश शब्द का अर्थ कुलिश जैसा हृदय लक्षणा से किया जायगा। क्योंकि कुलिश का देखना सुनना नहीं बनता।

अत्यन्त स्नेह से सबका शरीर पुलकित है और शिथिल है। सबको सात्त्विक भाव हुआ है। अब शोक की मुद्रा कहते हैं। स्त्रियों का स्वभाव है कि जब सोच में होती हैं तो पैर के नख से पृथ्वी पर लिखती सी हैं: ऐसी ही बात कवि श्री जानकीजी के विषय में कह आये हैं। यथा : चारु चरन नख लेखति धरनी। नूपुर मुखर मधुर कबि बरनी। इत्यादि।

सब सिय राम प्रीति किसि मूरति। जनु करुना बहु बेष बिसूरति॥
सीय मातु कह बिधि बुधि बाँकी। जो पय फेनु फोर पबि टाँकी॥४॥

अर्थ : सब सीताराम के प्रेम की मूर्ति सी थीं। मानो करुणा ही अनेक मूर्ति धारण करके सोच कर रही हो। सीताजी की माँ ने कहा कि ब्रह्मदेव की मति टेढ़ी है। जो दूध के फेन को वज्र की टाँकी से फोड़ते हैं।

व्याख्या : सबका अन्तःकरण सीताराम के प्रेम से भरा हुआ एक रूप का हो रहा है और सभी करुणा कर रही हैं। अतः कवि कहते हैं कि मानो स्वयं करुणा ही ने अनेक रूप धारण कर लिया है।

चक्रवर्तीजी के देहावसान के बाद यह पहिली भेंट है। अतः समवेदना प्रकाश : मातमपुरसी का अवसर है। सीताजी की माता का वार्ता आरम्भ करना प्राप्त है और बात चक्रवर्तीजी के देहावसान सम्बन्धी ही होनी चाहिए और इस विषय के उठाने में कैकेयी का नाम लेना ही पड़ेगा। कैकेयीजी उपस्थित भी हैं। अतः किस भाँति वार्ता आरम्भ की जाय ? यहाँ पर हिन्दू संस्कृति का दृश्य कवि ने खोलकर दिखलाया है। सीताजी की माता कहती हैं कि ब्रह्मदेव की बुद्धि बड़ी बाँकी है। वे दूध के फेन को वज्र की टाँकी से फोड़ते हैं। इतने में ही भगवती सुनयना को जो कहना था सो कह दिया : ब्रह्मदेव की बुद्धि बाँकी है कहकर ब्रह्मदेव पर आक्षेप किया कि यह करणी ब्रह्मदेव की है। उन्हीं के बिगाड़ने से सब बिगड़ा। दूसरे किसी का इसमें दोष नहीं है। दूध का फेन तो मुख के श्वास से फूट सकता था। महारानी कैकेयी के भरत को राज्य माँग लेने से ही रामजी का अभिषेक टल सकता था। अन्यत्र राज्य सुख को दूध से उपमित भी किया है। यथा : भामिनि भयउ दूध कै माँखी। उस दूध के फेन को ब्रह्मदेव ने वज्र की टाँकी से फोड़ा। अर्थात् रामजी के वनवास के साथ भरत को राज्य माँगा गया। रामजी का वनवास ही वज्र की टाँकी है। फल वही हुआ जो होना था। दूध का आधार पात्र भी नष्ट हो गया। अर्थात् चक्रवर्ती का देहावसान हो गया। चक्रवर्ती के देहावसान के समय वज्र की टाँकी का दृश्य उपस्थित कर किया। यथा : भयउ कोलाहल अवध अति सुनि नृप राउर सोर। बिपुल बिहँग बन परेउ निसि मानहुँ कुलिस कठोर।

दो. सुनिअ सुधा[1] देखिअहि गरल, सब करतूति कराल।
जहँ तहँ काल उलूक बक, मानस सकृत मराल ॥२८१॥

अर्थ : अमृत सुना जाता है और विष देखा जाता है। सभी करणी उनकी कराल है। उलूक और बक तो सर्वत्र ही हैं। केवल मानस : सरोवर में हंस है।

व्याख्या : सुनने में राम राज्याभिषेक आया और देखने में वनवास आया। यही अमृत का सुना जाना और विष का दिखायी पड़ना है। यथा : का सुनाइ बिधि काह सुनावा। राउ सुनाइ दीन्ह बनबासू। इसका कारण यह है कि संसार काक उलूक से भरा पड़ा है। दुनिया में खल विषयी और राग द्वेष का ही बोलबाला है। विवेकी हंस तो दूर मानस सरोवर में सुने जाते हैं। भाव यह कि कुसङ्ग इस संसार में सुलभ

---

१. यहाँ ललित : अलङ्कार है।

है। सुसङ्ग तो भाग्य से ही बड़े परिश्रम से मिलता हैं। अर्थात् किसी रागद्वेषी खल प्राणी की मन्त्रणा से ही भगवती कैकेयी की बुद्धि विकृत हुई। काक मलिन उलूक अज्ञानी और बक दगाबाज मराल विवेकी माना जाता है। काक मन्द बुद्धि होता है। यथा : महामंद मति कारन कागा। मन्थरा जन्म से ही काक सी थी। यथा : नाम मनथरा मंद मति। सरस्वती के कारण उल्लू हो गयी। यथा : गई गिरा मति फेरि··करै बिचार कुबुद्धि कुजाती। होउ अकाज कौन बिधि राती। कैकेयीजी के पास जाते जाते बकी हो गयी। यथा : बकहिं सराहत जानि मराली। हंस भरत सो दूर थे। यथा : भरत हंस रबि बंस तड़ागा।

सुनि ससोच कह देबि सुमित्रा। बिधि गति बड़ि बिपरीत बिचित्रा ॥
जो सृजि पालइ हरइ बहोरी। बाल केलि सम बिधि मति भोरी ॥१॥

अर्थ : सुनकर सुमित्रा देवी सोच के साथ कहने लगीं कि ब्रह्मदेव की गति अत्यन्त विपरीत और विचित्र है। जो सृष्टि पालन करता है और फिर संहार कर देता है। बालकों के खेल की भाँति ब्रह्मदेव की मति भोली है।

व्याख्या : सुनयनाजी ने विधि की बुद्धि की वक्रता का वर्णन किया। सुमित्राजी उनकी गति का वर्णन करती हैं। संसार जिस गति से चलता है। उससे विधि की गति विपरीत है। संसार में विष वृक्ष को भी लगाकर कोई नहीं काटता और व्यर्थ का काम कोई नहीं करना चाहता। ब्रह्मदेव सृष्टि करते हैं। अन्त में स्वयं उसका संहार कहते हैं। यह विघि की गति की गति की विपरीतता है और जिसका अन्त में संहार ही करना है उसकी सृष्टि करने से ही क्या लाभ है। यह विघि की गति की विचित्रता है। अतः कहना पड़ता है कि विधि की मति भोली है। जो अनहोनी बात हो जाती है वह विधि का ही करतब है। ऐसी सुन्दर रचना करके बिगाड़ दिया। दोनों महारानियों ने विधि का ही दोष ठहराया।

कौसल्या कह दोसु न काहू। करम बिबस दुख सुख छति लाहू ॥
कठिन करम गति जान बिधाता। जो सुभ असुभ सकल फलदाता ॥२॥

अर्थ : कौसल्याजी ने कहा कि किसी का दोष नहीं है। दुःख सुख हानि लाभ कर्म के अनुसार हुआ करता है। कठिन कर्म गति को विधि जानते हैं जो कि शुभ अशुभ फल दिया करते हैं।

व्याख्या : महारानी कौसल्या ने कहा कि किसी का दोष नहीं है। यथा : काहु न कोउ सुख दुख कर दाता। निजकृत कर्म भोग सब भ्राता। दुःख सुख हानि लाभ सब अपने किये हुए कर्मों का फल है। विधाता सबके पूर्वार्जित शुभाशुभ कर्मों को जानते हैं और तदनुसार फल देते हैं। यथा : कालरूप तिन कह मैं ताता। सुभ अरु असुभ करम फल दाता।

ईस रजाइ सीस सबही के। उतपति थिति लय बिषहु अमी के ॥
देबि मोह बस सोचिअ बादी। बिधि प्रपंचु अस अचल अनादी ॥३॥

अर्थ : ईश्वर की आज्ञा उत्पत्ति पालन संहार अमृत और विष सभी के सिर हैं। हे देवि ! मोह के वश व्यर्थ ही सोच करना है। विधाता का प्रपञ्च अनादिकाल से अटल है।

व्याख्या : ईश्वर की आज्ञा टल नहीं सकती। वह होकर ही रहती हैं। यथा : हरि इच्छा भावी बलवाना। हृदय सराहत संभु सुजाना। तथा : गरल सुधा रिपु करै मिताई। गोपद सिंधु अनल सितलाई। गरुड़ सुमेरु रेनु सम ताही। राम कृपा करि चितवा जाही। तथा : मातु मृत्यु पितु समन समाना। सुधा होइ बिष सुनु हरिजाना। मित्र करै सतरिपु कै करनी। तात कहँ बिबुध नदी बैतरनी। सब जग ताहि अनलहु ते ताता। जो रघुबीर बिमुख सुनु भ्राता। सिद्ध है कि ईश्वर की आज्ञा ही उत्पत्ति स्थिति लय विष अमृत सबको मान्य है। अतः शोक करना व्यर्थ है। अनादि काल से कर्म जाल में उलझे हुए जीव दुःख पा रहे हैं और इसी भाँति संसार सदा चलता रहेगा। सृष्टि के बाद लय और लय के बाद पुनः सृष्टि इस प्रकार संसार प्रवाहरूपेण नित्य है। शोक करने का कोई फल नहीं है।

भूपति जिअब मरब उर आनी। सोचिअ सखि लखि निज हित हानी ॥
सीय मातु कह सत्य सुबानी। सुकृती अवधि अवधपति रानी ॥४॥

अर्थ : महाराज का जीना मरना याद करके जो सोच होता है वह अपने हित की हानि देखकर होता है। सीताजी की माता ने कहा कि पुण्यवानों की सीमा अवध नरेश की महारानी की सुन्दर वाणी सत्य है।

व्याख्या : अपने स्वार्थ की हानि हुई। इसीलिए महाराज के मरने जीने का सोच है। जिससे जिनके स्वार्थ की हानि नहीं होती उसके जीने मरने का कोई परवाह नहीं करता। संसार स्वार्थ के वशीभूत है। नवा[1] अरे पत्युः कामाय पतिः प्रियो भवति आत्मनस्तु कामाय पतिः प्रियो भवति।

यह सुनकर सीताजी की माता ने कहा कि महाराज सुकृतियों के शिरोमणि थे। आप उनकी सहधर्मिणी हैं। आपने जो सुन्दरवाणी कही वही सत्य है। हम लोगों का कथन तो केवल शोकोद्गार मात्र था।

दो. लखनु रामु सिय जाँहु बन, भल परिनाम न पोचु।
गहबरि हिय कह कोसिला, मोहि भरत कर सोचु ॥२८२॥

अर्थ : गह्वर हृदय से कौसल्याजी ने कहा कि लक्ष्मण और राम सीता वन जायँ। इसका परिणाम अच्छा है बुरा नहीं। पर मुझे तो भरत का सोच है।

व्याख्या : कौसल्याजी ने पहिले से ही सन्तोष कर रक्खा है। यथा : जाउ सुखेन बनहि बलि जाऊँ। राखहुँ सुतहि करउँ अनुरोधू। धर्म जाइ अरु बंधु बिरोधू।

---

१. याज्ञवल्क्यजी ने कहा कि हे मैत्रेयी ! पति की कामना से पति प्रिय नहीं होता। आत्मा की कामना से पति प्रिय होता है।

तथा : अस बिचारि नहिं करउँ हठ झूठ सनेह बढ़ाइ इत्यादि। अतः कहती हैं कि लक्ष्मण और राम जानकी वन जायँ। क्योंकि इसका परिणाम अच्छा है। चौदह वर्ष के बाद ये लोग लौट आवेंगे। संसार में इनका यश होगा। परन्तु मुझे भरत का सोच है। भाव यह कि जैसी वाणी भरतजी बोल बैठते हैं ऐसी ही वाणी इनके पिता के मुख से निकलती थी। यथा : सो सुत बिछुरत गये न प्राना। को पापी बड़ मोहि समाना। भरत भी ऐसी ही वाणी बोलते हैं। यथा : मैं सठ सब अनरथ कर हेतू। बैठि बात सब सुनउँ सचेतू। बिनु रघुबीर बिलोकि अवासू। रहे प्रान सहि जग उपहासू। जौं प्रिय बिरह प्रान प्रिय लागे। देखब सुनब बहुत अब आगे। इत्यादि। अतः मुझे भरत का सोच है कि कहीं यह लड़का भी बाप की भाँति धोखा न दे देवे।

ईस प्रसाद असीस तुम्हारी। सुत सुतबधूँ देवसरि बारी॥
राम सपथ मैं कीन्ह न काऊ। सो करि कहौं सखी सति भाऊ॥१॥

अर्थ : ईश्वर की कृपा से और आपके आशीर्वाद से बेटे और बहुएँ गङ्गाजल हैं। रामजी की शपथ मैंने कभी नहीं की। सो उनकी शपथ करके मैं सच्चे भाव से कहती हूँ।

व्याख्या : ऐसी परिस्थिति में कल्मष हृदय में आ ही जाता है। परन्तु भगवत् कृपा और आपके : अर्थात् भागवत के आशीर्वाद से बेटे और बहुएँ गङ्गा जल की भाँति निर्मल और पवित्र हैं। उनके हृदय में किसी प्रकार के कल्मष का प्रवेश नहीं हुआ। जैसे गङ्गाजल की पवित्रता में विकार नहीं आता। उसमें कीड़े नहीं पड़ते। इसी भाँति बेटे और बहुओं के हृदय में न विकार है न होने की सम्भावना है। अर्थात् इस काण्ड के उपस्थित होने पर भी परम प्रीति बनी हुई है।

इसी प्रीति का उदाहरण देते हुए भरतजी की प्रशंसा का उपक्रम कहते हुए कहती हैं कि मैंने कभी भी रामजी की शपथ नहीं ली। महाराज तो कभी ले भी लेते थे। यथा : भामिनि राम सपथ सत मोही। सो आज मैं रामजी की शपथ लेकर कहती हूँ। ऐसे शपथ लेने की यह आवश्यकता है कि इस समय भरत की बड़ाई करने में मेरी चतुरता का ध्यान सुननेवाले के मन में आ सकता है। अतः सत्यता की दृढ़ता के लिए कहती हूँ। सखी सम्बोधन का यह भाव है कि आप से कोई छिपाव नहीं है अथवा यदि कोई मुझमें त्रुटि हो तो आपको सुधारने का अधिकार है।

भरत सील गुन बिनय बड़ाई। भायप भगति भरोस भलाई॥
कहत सारदहु कर मति हीचे। सागर सीप कि जाहिं उलीचे॥२॥

अर्थ : भरतजी के शील, गुण, विनय, बड़ाई, भाईपन, भक्ति, भरोस और भलाई को कहते हुए सरस्वती की बुद्धि भी हिचक जाती है। जैसे सीप से समुद्र उलचा नहीं जा सकता।

व्याख्या : भरत का शील देखिये कि अट्ठाईस वर्ष के हुए। अभी रामजी के सामने नहीं देखते। बोलने में भी सङ्कोच करते हैं। यथा : महूँ सनेह सकोच बस सनमुख कही न बैन। दरसन तृपित न आजु लगि प्रेम पियासे नैन। इसी भाँति भरतजी के गुण, विनय, बड़ाई, भाईपन, भक्ति और भलाई का उत्कर्ष है।

गुण। यथा : निरवधि गुन निरुपम पुरुष भरत भरत सम जानि।
कहिय सुमेरु कि सेरसम कबिकुल मति सकुचानि॥

विनय। यथा : भरत कमलकर जोरि धीर धुरन्धर धीर धरि।
बचन अमिय जनु बोरि देत उचित उत्तर सबहि॥

बड़ाई। यथा : और करै को भरत बड़ाई।
सरसी सीप कि सिन्धु समाई॥

भायप। यथा : सुचि सुबंधु नहि भरत समाना।
भयउ न भुवन भरत सम भाई॥

भगति। यथा : तुम्ह तउ भरत मोर मत एहू।
धरे देह जनु राम सनेहू॥

भरोस। यथा : आपन जानि न त्यागिहैं मोहि रघुबीर भरोस।

भलाई। यथा : सुनहु लखन भल भरत सरीखा।
बिधि प्रपंच मह सुना न दीखा॥

भरतजी के इन भावों का वर्णन सरस्वती भी नहीं कर सकतीं। मनुष्य की क्या गिनती है। जैसे सीप से समुद्र नहीं उलचा जा सकता। यथा : बिधि हरिहर माया बड़ि भारी। सोउ न भरत मति सकै निहारी।

जानउँ सदा भरत कुलदीपा। बार बार मोहि कहेउ महीपा॥
कसें कनकु मनि पारिख पाएँ। पुरुष परिखिअहि समय सुभाएँ॥३॥

अर्थ : बार बार चक्रवर्तीजी ने कहा है कि मैं तो सदा भरत को कुलदीप जानता हूँ। सोना कसे जाने पर और मणि परखनेवाले के मिलने पर और पुरुष काम पड़ने पर स्वभाव से परखा जाता है।

व्याख्या : कौसल्याजी इसके प्रमाण में चक्रवर्तीजी के वचन को उद्धृत करती है कि एक बार नहीं बार बार मुझसे महाराज ने कहा है कि भरत कुल का दीप है। भाव यह कि जिस भाँति अन्धकार में दीप से ही काम चलता है। इसी भाँति कुल की विपत्ति के दूर करने का काम भरत से ही सम्भव है।

सोना के खरेपन का पता बिना कसे नहीं लगता। मणि की बहुमूल्यता का पता बिना जौहरी के नहीं लगता। इसी भाँति पुरुष की उत्तमता का पता बिना विपत्ति में उसके स्वभाव को देखे नहीं चलता। सो आज मालूम हो रहा है कि महाराज का कथन कितना सत्य था।

अनुचित आजु कहब अस मोरा । सोक सनेह सयानप थोरा ॥
सुनि सुरसरि सम पावनि बानी । भई सनेह बिकल सब रानी ॥४॥

अर्थ : आज मेरा ऐसा कहना अनुचित है। क्योंकि : इसमें शोक, स्नेह और सयानापन थोड़ा है। गङ्गाजल के समान निर्मल वाणी सुनकर सब रानियाँ स्नेह से विकल हो गयीं।

व्याख्या : कौसल्याजी कहती हैं कि यही बात आज यदि दूसरे के मुख से निकलती तो ठीक थी या दूसरे अवसर पर मैं ही कहती तो भी ठीक थी। क्योंकि इस समय ऐसा कहने का यह अर्थ लगेगा कि मुझे राम वनगमन का शोक कम है भरत का सोच है। अपना प्राण बड़ा प्यारा है उसे न छोड़ेंगी। स्नेह भी कम है। भरत की बाजी बीस देखकर रामजी से अधिक भरत पर प्रीति दिखला रही हैं। सयानापन भी थोड़ा है। क्योंकि लोग समझेंगे कि मैं भरतजी को बढ़ावा दे रही हूँ जिसमें भरतजी हठ करके रामजी को लौटा ले चलें। फिर भी मुझे ऐसा कहना पड़ता है। क्योंकि स्नेहाधिक्य के कारण भरतजी के विषय में मुझे भय हो रहा है।

कौसल्याजी की ऐसी सरल वाणी जिसमें छल का स्पर्श नहीं सुनकर सब रानियाँ स्नेह से विकल हो गयीं कि ऐसे सरल को ऐसी विपत्ति ? अथवा भरत के स्नेह की अत्यन्त गम्भीरता सुनकर विकल हो गयीं।

दो. कोसल्या कह धीर धरि, सुनहु देबि मिथिलेसि ।
को बिबेक निधि बल्लभहि, तुमहि सकइ उपदेसि ॥२८३॥

अर्थ : कौसल्याजी ने धैर्य धारण करके कहा कि हे मिथिलेश्वरी देवी ! सुनो। तुम विवेक के समुद्र महाराज विदेह की वल्लभा हो। तुम्हें कौन उपदेश दे सकता है।

व्याख्या : सबके विकल होने पर कौसल्याजी धैर्य धारण करके महरानी सुनयना का धैर्य बँधाते हुए कहती हैं कि आप को कौन उपदेश दे सकता है ? आप विवेक के समुद्र महाराज जनक की वल्लभा हो। आप में भी वैसे ही गुण हैं। यदि न होते तो उनकी वल्लभा कैसे होती। आप स्वयं विचार पूर्वक धैर्य धारण करें। सुनयनाजी ने चक्रवर्तीजी की प्रशंसा करते हुए कहा था : सुकृती अवधि अवधपति रानी। यहाँ कौसल्याजी जनकजी की प्रशंसा करती हुई कहती हैं : को बिबेक-निधि बल्लभहिं तुमहि सकै उपदेसि।

रानि राय सन अवसरु पाई । अपनी भाँति कहब समुझाई ॥
रखिअहिं लखनु भरतु गवनहिं बन । जौं यह मत मानइ महीप मन ॥१॥

अर्थ : हे रानी ! अवसर पाकर अपनी ओर से समझाकर महाराज से कहना कि भरतजी वन जायँ और लक्ष्मण रोक लिये जायँ उनका जाना ठीक नहीं। परन्तु यदि इस बात पर महाराज का मन माने तो : नहीं तो नहीं।

व्याख्या : अवसर पर कही हुई बात कारगर होती है। अतः यह बात अवसर पाकर कहना। परन्तु मेरे सन्देश की भाँति नहीं कहना। नहीं तो महाराज उसे कर्तव्य मान बैठेंगे। उसे अपनी ओर से यदि समझाकर कहेंगी तो उस बात का ख्याल भी करेंगे और उचित अनुचित का विचार भी करेंगे।

लक्ष्मण का वन जाना अच्छा नहीं है। रामजी के साथ भरत का जाना ठीक है। बड़ी चूक हुई जो महाराज को वन नहीं भेजा गया। उस चूक से शिक्षा ग्रहण करना चाहिए। भरत कहते हैं : न तरु फेरिअहि बन्धु दोउ नाथ चलौं मैं साथ। सो भरत साथ जायँ। यह मेरी सम्मति है।

तौ भल जतनु करब सुबिचारी। मोरें सोचु भरत कर भारी ॥
गूढ़ सनेह भरत मन माँही। रहें नीक मोहि लागत नाँही ॥२॥

अर्थ : तो विचार करके अच्छी तरह यत्न करना। मुझे भारी सोच भरत का है। भरत के मन में गूढ़ प्रेम : रामजी के प्रति है। उनका रहना मुझे अच्छा नहीं लगता।

व्याख्या : यदि यह बात महाराज को जँचे तो आप भी अच्छी तरह से विचार कर इस बात पर खूब जोर दे देना। जिसमें विचार कार्य में परिणत हो जाय। क्योंकि मुझे भरत का भारी सोच है। अत्यन्त प्रेमी का प्रेमपात्र के साथ रहने में ही भला है और भरत के मन में रामजी के प्रति गूढ़ प्रेम है। जितना प्रेम मालूम पड़ता है उससे कहीं अधिक है। इसलिए भरत का रहना मुझे अच्छा नहीं मालूम होता। मोहि भरत कर सोच : कहकर जिस बात का उपक्रम किया उसी का उपसंहार : मोरे सोच भरत कर भारी कहकर कर रही हैं।

लखि सुभाउ सुनि सरल सुबानी। सब भइ मगन करुन रस रानी ॥
नभ प्रसून झरि धन्य धन्य धुनि। सिथिल सनेह सिद्ध योगी मुनि ॥३॥

अर्थ : स्वभाव देखकर और सरल सुन्दर वाणी सुनकर सब करुणरस में मग्न हो गयीं। आकाश से फूलों का झर लग गया और धन्य धन्य ध्वनि हुई। सिद्ध योगी मुनि स्नेह से शिथिल हो गये।

व्याख्या : सिवाय सच्चे स्नेही के और किसकी ताकत है जो कहे कि भरत का रहना मुझे अच्छा नहीं लगता। सो कौसल्याजी का ऐसा स्वभाव देखकर और जैसा मन का भाव है ठीक वैसा ही बोलते देखकर सब रानियाँ प्रेम में मग्न हो गयीं।

कुटिल लोग इस बात का दूसरा ही अर्थ करेंगे। इस बात की परवाह न करके सीधे सीधे भरत का कल्याण देखनेवाली कौसल्या माता पर देवताओं ने पुष्पवृष्टि की और धन्य धन्य कहा। अर्थात् देवलोक में प्रशंसा होने लगी। देवता, सिद्ध, मुनि और योगियों को दूर श्रवण की सिद्धि है। अतः उन लोगों ने अपने अपने स्थान से ही सब बातें सुन ली। सो सिद्ध योगी और मुनि लोग तो स्नेह से शिथिल हो गये। धन्य धन्य भी नहीं कह सके।

सबु रनिवासु बिथकि लखि रहेऊ। तब धरि धीर सुमित्रा कहेऊ ।।
देबि दंड जुग जामिनि बीती। राम मातु सुनि उठी सुप्रीती ।।४।।

अर्थ : सब रनिवास देखकर थकित रह गया तब धैर्य धरकर महारानी सुमित्रा ने कहा कि हे देवि ! दो दण्ड रात बीत गयी। सुनकर रामजी की माता प्रीति के साथ उठ खड़ी हुई।

व्याख्या : कौसल्याजी का स्वभाव तथा सरल वाणी देखकर सब रानियाँ तो प्रेम में मग्न हो गयीं। तब सुमित्राजी ने धैर्य धारण किया और रात अधिक होते देखकर कहा कि देवि ! दो दण्ड रात बीत गयी। भाव यह कि महाराज अन्तःपुर में पधारे होंगे और आप सब लोग यहीं हैं।

सुमित्राजी की बात सुनकर विदाई के लिए कौसल्याजी खड़ी हो गयीं। यह सबसे बड़ी हैं। इनके उठने से सारा दरबार उठ गया।

दो. बेगि पाउ धारिअ थलहि, कह सनेह सतिभाय।
हमरे तब अब ईस गति, कै मिथिलेस सहाय ।।२८४।।

अर्थ : अब आप शीघ्र डेरे पर पधारे। हमें तो अब ईश्वर का भरोसा है। या मिथिलाधीश सहायक हैं। यह बात स्नेह और सच्चे भाव से कहा।

व्याख्या : कौसल्याजी कहती हैं कि सेवाधर्म के सँभालने के लिए अब आप शीघ्रता करें और डेरे पर पधारें। भेंट होने का निष्कर्ष कहती हैं कि हम लोगों को या तो परमेश्वर का भरोसा है या मिथिलेश्वर का। भाव यह कि चक्रवर्तीजी के न रहने से हम लोग अनाथ हो गयीं। सिवा ईश्वर और मिथिलेश्वर के दूसरा सहायक नहीं दिखायी पड़ता। हेतु रहित उपकारी तो दो ही हैं। भगवान् और भागवत। यथा : हेतु रहित जुग जग उपकारीं। तुम तुम्हार सेवक असुरारी।

लखि सनेहु सुनि बचन बिनीता। जनकप्रियाँ गह पाँय पुनीता ।।
देबि उचित असि बिनय तुम्हारी। दसरथ घरिनि राम महतारी ।।१।।

अर्थ : प्रेम देखकर और विनीत वचन सुनकर जनक की प्रिया ने पवित्र चरणों को पकड़ लिया। कहने लगीं : कि हे देवि ! तुम्हारी ऐसी विनती उचित है। क्योंकि राजा दशरथ की गृहिणी हो और रामजी की माँ हो।

व्याख्या : महारानी कौसल्याजी ने जो बात कही उससे स्नेह और सत्य भाव टपक रहा था। सुनयनाजी ने ऐसा स्नेह देखकर और : हमरे तो अब ईसगति कै मिथिलेस सहाय। ऐसा विनययुक्त वचन सुनकर उनके चरण पकड़ लिये। चरण का विशेषण देते हैं पुनीत। भाव यह कि कौसल्याजी के चरण पवित्र हैं। उनके स्मरण से पाप छूटते हैं : विद्या का फल विनय है। नमन्ति फलिनो वृक्षाः नमन्ति गुणिनो जनाः। शुष्ककाष्ठानि मूर्खाश्च न नमन्ति कदाचन। जो जितना बड़ा होता है उसमें उतना ही विनय होता है। अतः सुनयनाजी कहती हैं कि आप में ऐसा विनय होना

उचित ही है। स्त्रियों का परिचय पति और पुत्र से ही दिया जाता है। सो दोनों आपको बड़े महान् और बड़े विनयी मिले। अतः आप में ऐसा विनय होना प्राप्त है। महाराज दशरथ का ऐसा विनय कि जनकपुर की चिट्ठी को सिंहासन पर से उठकर हाथ में लिया। यथा : मुदित महीप आप उठि लीन्ही। रामजी का ऐसा विनय कि महाराज का आगमन सुनते ही उठकर खड़े हो गये। यथा : सहित सभा संभ्रम उठेउ रघुकुल कमल दिनेस।

प्रभु अपने नीचहु आदरहीं। अगिन धूम गिरि सिर तिनु धरहीं ॥
सेवक राउ करम मन बानी। सदा सहाय महेसु भवानी ॥२॥

अर्थ : प्रभु अपने नीच का भी आदर करते हैं। अग्नि धूम को और पर्वत तृण को अपने सिर चढ़ाये रहते हैं। महाराज तो मनसा वाचा कर्मणा सेवक हैं। सहाय तो आपके सदा महेश भवानी हैं।

व्याख्या : सुनयनाजी कहती है कि आप ने जो कहा सो अपनी बड़ाई के अनुसार ही कहा। जिन्हें परमेश्वर प्रभुता देता है वे अपने से छोटे का आदर करते हैं। कहाँ अग्नि और कहाँ धूम। अग्नि तेजस्वी और धूम का आधार है। सो अपने आधेय अन्धकारमय धूम को अपने सिर पर धारण करता है। कहाँ महा गौरवयुक्त पर्वत और कहाँ अतिलाघवयुक्त तृण। सो भूधर अपने आधेय तथा सर्वथा उपेक्ष्य तृण को सिर पर स्थान देता है। जलधि अगाध मौलि बह फेनू। संतत धरनि धरत सिर रेनू। यही नियम है। तदनुसार आप कह रही हैं! नहीं तो महाराज विदेह तो सेवक हैं। यथा : यह राज साज समाज सेवक जानवो बिनु गथ लये। महाराज आपकी सहायता क्या करेंगे। आपके सहायक तो सदा ही महेश भवानी हैं।

रउरे अंग जोगु जग को है। दीप सहाय कि दिनकर सोहै ॥
रामु जाइ बनु करि सुर काजू। अचल अवधपुर करिहहिं राजू ॥३॥

अर्थ : आपकी सहायता के योग्य संसार में है कौन ? सूर्य का सहायक होना क्या दीप को शोभा देता है। रामजी वन जाकर देवताओं का कार्य करके अवधपुर में अचल राज्य करेंगे।

व्याख्या : सुनयनाजी कहती हैं कि महाराज विदेह सहायक नहीं सेवक हैं। संसार में ऐसा कौन है जो आपका सहायक होने योग्य हो। आपके सहायक महेश भवानी हैं। दीप सूर्य की कौन सी सहायता करेगा। आपका कार्य स्वयं सिद्ध है। रामजी जो वन जा रहे हैं सो देवताओं का कार्य सँवारने के लिए जा रहे हैं। वे अपनी इच्छा से जा रहे हैं। नहीं तो उन्हें राज्य से हटाकर वन भेजने में कौन समर्थ है। वहाँ से लौटकर वे अयोध्या में अचल राज्य करेंगे।

अमर नाग नर राम बाहुबल। सुख बसिहहिं अपने अपने थल ॥
येह सब जागबलिक कहि राखा। देबि न होइ मुधा मुनि भाषा ॥४॥

अर्थ : देवता नाग और मनुष्य रामजी के बाहुबल के सहारे सुख से अपने अपने स्थानों में बसेंगे। ये सब बातें महर्षि याज्ञवल्क्यजी ने पहिले ही कह रक्खा है। हे देवि ! मुनिजी का कहा अन्यथा नहीं हो सकता।

व्याख्या : इस समय तीनों लोक के निवासी दुःखी हैं। अपने अपने पद से च्युत हैं : रावण की भौंहे देखते रहते हैं। ब्रह्म सृष्टि जहँ लगि तनुधारी। दसमुख वस वर्ती नर नारी। सो राम के बाहुबल से देव कण्टकों का उद्धार होगा। फिर से तीनों लोक के निवासी अपने अपने लोकों में सुख से बसेंगे। भाव यह कि रामजी का वनवास जग मङ्गल के लिए हो रहा है।

योगी याज्ञवल्क्य ने यह सब राम तापनीय में कह रक्खा है। उनके वचन अन्यथा नहीं हो सकते। वे वेद वाक्य हैं।

दो. अस कहि पग परि पेम अति, सिय हित बिनय सुनाइ।
सिय समेत सिय मातु तब, चली सुआयसु पाइ ॥२८५॥

अर्थ : ऐसा कहकर चरणों पर गिरकर और सीताजी के लिए विनय करके सीताजी के सहित सीताजी की माता आज्ञा पाकर चलीं।

व्याख्या : ऐसा कहकर अत्यन्त प्रेम से सुनयनाजी ने सीताजी को साथ ले जाने के लिए विनय किया। जिसमें सीताजी को महाराज भी देख लें। माता से सास का अधिकार बड़ा है। इसलिए साथ ले जाने के लिए महारानी कौसल्या की आज्ञा की आवश्यकता पड़ी। महारानी कौसल्या ने आज्ञा दे दी और सुनयनाजी सीताजी को साथ लेकर अपने डेरे पर गयीं।

प्रिय परिजनहि मिली बैदेही। जो जेहि जोगु भाँति तेहि तेही ॥
तापस बेष जानकी देखी। भा सबु बिकल बिषाद बिसेखी ॥१॥

अर्थ : प्यारे कुटुम्बियों से जानकीजी मिलीं। जो जिस योग्य था उससे उसी भाँति से मिलीं। तपस्विनी के वेष में जानकीजी को देखकर सब लोग विषाद से विशेष विकल हो गये।

व्याख्या : यहाँ वैदेही शब्द से जानकीजी का भी देहाध्यास रहित होना दिखलाया। यहाँ परिजन से भी मैके के परिजन से तात्पर्य है। उन सबसे जानकीजी उसी भाँति मिलीं जिस भाँति सरकार अपने परिजनों से मिले। यथा : जो जेहि भाँय रहा अभिलाखी। तेहि तेहि कै तसि तसि रुचि राखी। भेद इतना ही है कि यहाँ यथारुचि न कहकर यथायोग्य कहते हैं। स्त्री शरीर से ऐसा ही उचित भी है। प्रिय परिजन का मिलना नहीं कहते। वैदेही का मिलना कहते हैं। मिलने में अग्रसर वैदेही हुईं। परिजन तो उनको तपस्विनी के वेष में देखकर विषाद से अति विकल हो गये थे। उन लोगों को रामजी को ही तापस वेष में देखने से विषाद था। जानकीजी के उस वेष में देखकर वह विषाद बहुत बढ़ गया। क्योंकि जानकीजी सबको प्राण सी प्यारी थीं। यथा : परिवार पुरजन मोहि राजहि प्रान प्रिय सिय जानवी।

जनक राम गुर आयसु पाई। चले थलहिं सिय देखी आई ॥
लीन्हि लाइ उर जनक जानकी। पाहुनि पावन पेम प्रान की ॥२॥

अर्थ : जनकजी रामजी और वसिष्ठजी की आज्ञा पाकर डेरे पर गये। देखा कि सीताजी आयी हुई हैं। राजा ने पवित्र प्रेम और प्राण की पाहुनी जानकी को हृदय से लगा लिया।

व्याख्या : भाव यह कि राजा उस समय वसिष्ठजी और रामजी के पास थे। उन लोगों से छुट्टी लेकर डेरे पर आये। रानी से सीताजी को साथ लाने के लिए पहिले ही कह रक्खा था। सो डेरे पर आते ही देखा कि वे आगयी हैं। महाराज को जानकीजी प्राण सी प्यारी थीं। इसलिए : पाहुनि पावन प्रेम प्रान की कहा। पिता और पुत्री का बड़ा पवित्र प्रेम होता है। आज जानकीजी पाहुन अर्थात् अतिथि की भाँति आयी हैं। जानकीजी के पुकारने का नाम सीया था। रानी तथा सामान्य लोग पहिले प्राकृत ही बोलते थे और प्राकृत में सीता शब्द का सीया रूप हो जाता है।

उर उमगेउ अंबुधि अनुरागू। भयउ भूप मनु मनहुँ पयागू ॥
सिय सनेह बटु बाढ़त जोहा। तापर राम प्रेम सिसु सोहा ॥३॥
चिरजीवी मुनि ग्यान बिकल जनु। बूड़त लहेउ बाल अवलंबनु ॥

अर्थ : हृदय में प्रेम का समुद्र उमड़ पड़ा। उस समय राजा का हृदय प्रयाग राज हो गया। सीताजी का स्नेह रूपी वृक्ष बढ़ता दिखायी पड़ा। उस पर राम प्रेमरूपी बालक शोभायमान हुआ। सो ज्ञानरूपी चिरञ्जीवी मुनि ने व्याकुल होकर डूबते हुए बालक का सहारा पाया।

व्याख्या : यहाँ जिस रूपक से कवि ने काम लिया है उनका संक्षेप वृत्तान्त यह है कि चिरञ्जीवी मुनि मार्कण्डेय मुनिजो ने प्रलय का दृश्य देखना चाहा। भगवान् ने उन्हें वह दृश्य दिखलाया। उन्होंने देखा कि समुद्र उमड़ा हुआ सारे संसार को डुबाता चला आता है। सम्पूर्ण पृथ्वी डूब गयी। कहीं किसी वस्तु का पता नहीं है। परन्तु जल के साथ ही साथ बढ़ता हुआ अक्षय वट केवल प्रयाग का पता दे रहा है। मुनिजी उस प्रलय कालीन समुद्र में तैरने लगे। तैरते तैरते श्रान्त और तरङ्गों के थपेड़े से व्याकुल हो गये। उस समय उस वट के पत्ते पर बालमुकुन्द को शयन करते देखा। कहीं ठिकाना न देखकर उन्हीं बालमुकुन्द के चरणों का आश्रय पकड़ा।

यहाँ जानकीजी को हृदय में लगाते ही राजा के हृदय में पुत्री अनुराग का समुद्र उमड़ पड़ा। उस समुद्र में सारी मनोवृत्तियाँ डूब गयीं। फिर भी महाराज का ज्ञान नहीं डूबा। वह अनुराग के साथ ही साथ तैरता हुआ ऊपर ही रहा। उस अपार समुद्र में तैरते और तरङ्ग के थपेड़ों को सहते सहते ज्ञान विकल हो चला। निरालम्ब होकर ज्ञान अधिक काल तक नहीं टिक सकता। उस समय सीताजी का प्रेम महाराज के हृदय का पता दे रहा था और उस प्रेम के आधार पर रामजी का

प्रेम था। उसी रामप्रेम का आश्रय ग्रहण करके ज्ञान की रक्षा हुई। यथा : सोह न राम प्रेम बिनु ग्यानू। करनधार बिनु जिमि जलजानू।

यहाँ पुत्री के अनुराग को समुद्र माना। उसने सभी मनोवृत्तियों को डुबा दिया। एक मनोवृत्ति इष्ट देवता सीताजी के प्रेम सम्बन्धिनी शेष रह गयी वह नहीं डूबी। अनुराग के साथ ही साथ बढ़ती गयी और उस मनोवृत्ति के आश्रित श्रीराम प्रेम सम्बन्धिनी वृत्ति रही। वह राम प्रेमवाली वृत्ति ज्ञान की बाधक नहीं है। बल्कि उसकी शोभा को बढ़ानेवाली है। उसी के आधार से राजा के ज्ञान की रक्षा हुई। नहीं तो उस समय विदेहता समाप्त हो जाती।

मोह मगन मति नहिं बिदेह की। महिमा सिय रघुबर सनेह की ॥४॥

अर्थ : विदेह की मति मोह में मग्न होनेवाली नहीं है। पर यह राम जानकी के स्नेह की महिमा है।

व्याख्या : भाव यह कि महाराज जनक ज्ञानियों में शिरोमणि हैं। पुत्री के प्रेमरूपी मोह को सामर्थ्य नहीं कि उनकी बुद्धि को क्षुब्ध कर सके। वही प्रेम जब सांसारिक पदार्थ में होता है तो मोह कहलाता है और महा अनर्थ का कारण है। परन्तु वही जब राम जानकी के चरणों में होता है तो भक्ति कहलाता है। वह ज्ञान का विरोधी नहीं है। अर्थात् महाराज तक को सोपास्ति ज्ञान है। अतः राम जानकी के स्नेह की यह महिमा है कि वह ज्ञान का बाधक न होकर साधक होता है और उसकी शोभा को बढ़ाता है।

दो. सिय पितु मातु सनेह बस, बिकल न सकी सँभारि।
धरनिसुताँ धीरजु धरेउ, समउ सुधरमु बिचारि ॥२८६॥

अर्थ : सीताजी पिता माता के स्नेह में ऐसी बिकल हुईं कि अपने को सँभाल न सकी। पर पृथ्वी की कन्या ने समय और सद्धर्म का विचार करके धैर्य धारण किया।

व्याख्या : इधर सीताजी भी माता पिता के स्नेह से व्याकुल हो गयी। परन्तु धरणिसुता हैं। उन्होंने धैर्य धारण किया। विचारा कि धैर्य छोड़ने से इस समय यह अर्थ लगेगा कि सीता वनवास से दुःखी है और अपने सद्धर्म के भी प्रतिकूल पड़ेगा। यथा : राम संग सिय रहित सुखारी। प्रिय परिजन गृह सुरति बिसारी।

तापस बेष जनक सिय देखी। भयउ प्रेमु परितोषु बिसेखी ॥
पुत्रि पवित्र किए कुल दोऊ। सुजस धवल जगु कह सबु कोऊ ॥१॥

अर्थ : तपस्विनी के वेष में सीताजी को देखकर जनकजी को विशेष प्रेम और परितोष हुआ। बोले : हे पुत्री ! तैंने दोनों कुल पवित्र किया। तेरे : यश से संसार उजागर हो गया। यह सभी कहते हैं।

व्याख्या : तापस वेष से सीताजी का रामप्रेम द्योतित हुआ। इसी को पिछली

अर्धाली में : तापर राम प्रेम सिसु सोहा : कहकर वर्णन किया। यही प्रेम जनकजी के ज्ञान का अवलम्बन हुआ। तापस वेष में सीताजी को देखकर जो प्रेम बढ़ा उसी की समता अक्षय वट से दी गयी है। उसी के आधार पर रामप्रेम था। जनकजी के लिए रामप्रेम का आधार सीताप्रेम का ही होना स्वाभाविक है। वही प्रेम ज्ञान का अवलम्बन हुआ। उसी से विशेष परितोष हुआ।

अब परितोष का रूप कहते हैं कि इस पतिप्रेम से रघुकुल निमिकुल दोनों पवित्र हुए। ऐसा सती बेटी के उत्पन्न होने से पितृकुल और पतिकुल दोनों पवित्र हो जाते हैं। सो तेरा सुयश संसार में फैल गया। सभी कहते हैं कि धन्य है संसार जिसमें ऐसी स्त्रीरत्न उत्पन्न होती हैं।

जिति सुरसरि कीरति सरि तोरी। गवनु कीन्ह बिधि अंड करोरी ॥
गंग अवनि थल तीनि बड़ेरे। एहिं किए साधु समाज घनेरे ॥२॥

अर्थ : तुम्हारी कीर्तिरूपी नदी गङ्गाजी को भी जीतकर करोड़ों ब्रह्माण्ड में चली गयी। गङ्गाजी के तीन बड़े स्थल पृथ्वी पर हैं। पर इस कीर्ति ने बहुत से साधु समाज बनाये।

व्याख्या : जनकजी कहते हैं कि त्रिपथगा गङ्गा तो केवल तीनों लोकों में गयी हैं। पर तेरी कीर्तिरूपी नदी तो करोड़ों ब्रह्माण्डों में पहुँच गयी। गङ्गाजी ने केवल तीन बड़े तीर्थ बनाये। १. हरद्वार २. प्रयाग और ३. गङ्गा सागर। पर तेरी कीर्ति नदी ने न जाने कितने साधु समाज बना दिये। जो तीर्थ को भी तीर्थ बनाते हैं। यथा : तीर्थीकुर्वन्ति तीर्थानि। भाव यह कि धर्म के लिए कष्ट सहने का ऐसा उदाहरण तुमने स्थापन किया कि कितने लोग धर्म के लिए कष्ट सहने को खड़े हो जावेंगे और यही साधुता है।

पितु कह सत्य सनेह सुबानी। सिय सकुच महुँ मनहुँ समानी ॥
पुनि पितु मातु लीन्हिं उर लाई। सिख आसिष हित दीन्हि सुहाई ॥३॥

अर्थ : पिता तो सच्ची स्नेह युक्त सुन्दर वाणी कहते थे। पर सीताजी तो मानो सङ्कोच में गड़ी जाती थीं। फिर पिता माता ने उन्हें गले से लगा लिया और हितकर शिक्षा तथा आशीर्वाद दिया।

व्याख्या : जनकजी ने प्रेम से सच्ची बात प्रशंसा के रूप में कहा। यह पिता के मुख से अपने पतिप्रेम की प्रशंसा सुनकर सीताजी अत्यन्त सङ्कुचित होती जाती थीं। स्नेहमयी वाणी यथा : पुत्रि पवित्र किये कुल दोऊ। सत्य वाणी यथा : सुयस धवल जग कह सब कोऊ। सुवाणी यथा : जिति सुरसरि कीरति सरितोरी : इत्यादि :

अति प्रेम से फिर पिता ने और माता ने हृदय से लगाया। कवि वात्सल्य दिखलाते हुए कहते हैं कि पिता माता ने शिक्षा दी कि इसी भाँति धर्मपालन करने से ही दोनों लोक बनता है इत्यादि और आशीर्वाद दिया। यद्यपि यहाँ सीताजी

द्वारा वन्दना नहीं लिखा। फिर भी आशीर्वाद देने से प्रणाम का अनुमान करना पड़ेगा।

कहति न सीय सकुचि मनमाहीं। इहाँ बसब रजनी भल नाही ॥
लखि रुख रानि जनायउ राऊ। हृदयँ सराहत सीलु सुभाऊ ॥४॥

अर्थ : सीताजी मन में सङ्कोच करती हुई यह कह न सकीं कि यहाँ रात को रहना ठीक नहीं। रानी ने रुख समझकर महाराज को सूचित किया और मन से शील स्वभाव की प्रशंसा की।

व्याख्या : सीताजी रामजी के साथ वानप्रस्थ धर्म से रहती हैं। सरकार को : मुनि व्रत बेष अहार : की आज्ञा पिता द्वारा मिली हुई है। वानप्रस्थावस्था में क्षत्रिय पत्नी के साथ शयन करें और दोनों के बीच से साक्षीरूप से खड्ग रक्खा रहे। अतः रामजी के पास जाना आवश्यक था। पर सङ्कोच से कह नहीं सकती थीं। पर उनका रुख देखकर माँ समझ गयी। हृदय से सीताजी के शील स्वभाव की प्रशंसा करती हुई महाराज जनक से जाकर कहा कि सीताजी कहती नहीं है पर उनका जाना आवश्यक है।

दो. बार बार मिलि भेंटि सिय, बिदा कीन्ह सनमानि।
कही समय सिर भरत गति, रानि सुबानि सयानि ॥२८७॥

अर्थ : सीताजी से बार बार मिलकर और सम्मान करके उन्हें विदा किया और चतुर रानी ने ठीक अवसर देखकर भरत का हाल सुन्दर वाणी से कह सुनाया।

व्याख्या : अत्यन्त प्रेम के कारण बार बार मिलीं। समय ऐसा था कि विदाई में कुछ दे नहीं सकते थे। अतः सम्मान करके ही सीताजी को विदा किया। कौसल्याजी ने कहा था : रानि रायसन अवसर पाई। अपनी भाँति कहब समुझाई। सो सयानी रानी ने अच्छा मौका देखकर भरतजी का हाल सुन्दर वाणी द्वारा राजा से कहा कि भरत का प्रेम ऐसा है कि इन्हें घर लौटाने में बड़ा खतरा मालूम होता है। इनका प्रेम भी महाराज दशरथ सा ही है। एक गलती हो चुकी है कि महाराज दशरथ को लोगों ने रामजी के पास वन में नहीं भेजा। अब दूसरी गलती भरत को अयोध्या भेजकर न करनी चाहिए। बल्कि लक्ष्मण को अयोध्या भेज दिया जाय इत्यादि।

सुनि भूपाल भरत ब्यवहारू। सोन सुगंध सुधा ससि सारू ॥
मूँदे सजल नयन पुलके तन। सुजसु सराहन लगे मुदित मन ॥१॥

अर्थ : राजा ने भरत का व्यवहार सुनकर जो सोने में सुगन्ध और चन्द्रमा के सारभूत अमृत सा था आँखें मूद लीं और शरीर उनका पुलकित हो गया तथा प्रसन्न मन होकर उनके सुयश की प्रशंसा करने लगे।

व्याख्या : गति और व्यवहार समानार्थक शब्द हैं। उस व्यवहार को सोना सा कहा। पर सोने में सुगन्ध नहीं स्वाद नहीं। इस व्यवहार रूपी सोने में सुगन्ध भी है और अमृत सा स्वाद भी है।' व्यवहार में सोनापन भरतजी का स्वभाव है। यथा : कनकहि बान चढ़े जिमि दाहे। कनको पुनि पखान ते होई। जारेउ सहज न परिहरि सोई। कसे कनक मनि पारिख पाये। पुरुष परखियहि समय सुभायें। सुवास से भाईपन कहा। यथा : १. अवलोकनि बोलनि मिलनि प्रीति परसपर हास। २. भायप भलि चहु बंधु की। १. जल माधुरी २. सुवास। सुधा ससि सारू से भक्ति कहा। यथा : राम सनेह सुधाकर सारू। भाव यह कि भरत का व्यवहार अलौकिक सोना है जो इस संसार में नहीं है। अमृत भी अनेक प्रकार का होता है। वह भी अमृत ही था जिसे पाताल में पीकर भीमसेन बलवान हुए थे। पर वह उन्हें अमर न कर सका। वह पाताल लोक का अमृत था। परन्तु चन्द्रमा में जो अमृत है उसे देवता लोग पान करते हैं। वह अमृतों में भी उत्तम कोटि का है। इसी भाँति भरतजी की भक्ति भी उत्तम कोटि की है।

ऐसे व्यवहार को सुनकर महाराज जनक को सात्त्विक भाव हुआ। आनन्द से उन्होंने आँखें बन्द कर लीं। रोगटें खड़े हो गये। बोल न सके। मन ही मन सुयश की सराहना करने लगे। भाव यह कि तन मन वचन से प्रेम में मग्न हो गये। मूँदे सजल नयन से तन की दशा कही। सुजस सराहन लगे से वचन की दशा कही और मुदित मन से मन की दशा कही।

सावधान सुनु सुमुखि सुलोचनि। भरत कथा भव बंध बिमोचनि ॥
धरम राजनय ब्रह्मबिचारू। इहाँ जथामति मोर प्रचारू ॥२॥

अर्थ : राजा ने कहा कि हे सुमुखि सुलोचनि! भरत की कथा भवबन्धन से छुड़ानेवाली है। तुम सावधान होकर सुनो। धर्म राजनीति और ब्रह्मविचार इन विषयों में यथामति मेरी पहुँच है।

व्याख्या : जनकजी प्रिया होने से सुमुखि सुलोचनि सम्बोधन देते हैं। अथवा रानी का नाम सुलोचनि : सुनयना है और सुमुखि नाम का विशेषण है। भरत की कथा असाधारण है। उसके सुनने से भवबन्धन कट जाता है। यथा : भरत चरित्त करि नेम तुलसी जे सादर सुनहि। सीय रामपद प्रेम अवसि होइ भवरस बिरति। अतः मैं जो कहता हूँ उसे सावधान होकर सुनो।

मेरी गति तीन विषयों में है। धर्मशास्त्र में राजनीति में और ब्रह्मविद्या में। इन तीनों विषयों की यदि कोई बात हो तो उसमें मैं अपनी सम्मति दे सकता हूँ। अपनी बुद्धि के अनुसार निर्णय भी कर सकता हूँ।

सो मति मोर भरत महिमाही। कहइ काह छल छुअति न छाँहीं ॥
बिधि गनपति अहिपति सिव सारद। कबि कोबिद बुध बुद्धि बिसारद ॥३॥

भरत चरित कीरति करतूती । धरम सील गुन बिमल बिभूती ॥
समुझत सुनत सुखद सब काहू । सुचि सुरसरि रुचि निदरि सुधाहू ॥४॥

अर्थ : वह मेरी बुद्धि भरत की महिमा का क्या वर्णन करे । उसकी छाया को भी छल छू नहीं पाता । ब्रह्मदेव गणेश शेष सारद कवि कोविद और बुद्धि विशारद पण्डित के लिए भरत का चरित कीर्ति करतूति धर्म शील गुण और निर्मल ऐश्वर्य सुनने और समझने में तो सबको सुखद है और गङ्गाजल सा पवित्र और अमृत से अधिक सुस्वादु है ।

व्याख्या : महाराज जनक कहते हैं कि वह मेरी बुद्धि जो धर्मशास्त्र राजनीति और ब्रह्मविचार में काम कर जाती है भरत महिमा कहने में कुण्ठित हो जाती है । किसी विषय के कथन करने में उसे सीमित करना पड़ता है । उसका आदि अन्त कहना पड़ता है । महिमा का विचार वहीं तक है जहाँ तक छल का स्पर्श नहीं है । छल का स्पर्श होते ही महिमा समाप्त हो जाती है । अतः जहाँ तक छल नहीं है वहीं तक महिमा का वर्णन होता है । पर भरत की महिमा की छाया को छल स्पर्श नहीं करता । अतः उसका वर्णन हो तो कैसे हो ?

१. विधि, २. गणपति, ३. अहिपति, ४. शिव, ५. शारद, ६. कोविद कवि और ७. बुद्धि विशारद पण्डित । ये ही सात बड़े वर्णन करनेवाले हैं । इन सब लोगों को १. भरत का चरित्र, २. कीर्ति, ३. करतूति, ४. धर्म, ५. शील, ६. गुण और ७. निर्मल विभूति, समझने और सुनने में सुखद है ।

१. विधि को चरित्र सुखद : सृष्टि रक्षा के कारण । यथा :
सोक सिंधु बूड़त सबहि तुम अवलंब न दीन्ह ।

२. गणपति को कीर्ति सुखद विघ्न विनाशकारी होने से । यथा :
समन अमित उतपात सब भरत चरित जप जाग ।

३. शेषजी को करतूति सुखद : पृथ्वी सँभालने से । यथा :
भरत भूमि रह राउर राखी ।

४. शिवजी को धर्म सुखद : रामभक्ति होने से । यथा :
रामभगति मय भरत निहारे ॥

५. शारदा को शील सुखद : स्वार्थ रहित होने से । यथा :
परमारथ स्वारथ सुख सारे ।
भरत न सपनेहु मनहु निहारे ॥

६. कवि कोविद को गुण सुखद : रसास्वाद होने से । यथा :
करहु सो प्रेम प्रगट को करई ।
केहि छाया कबि मति अनुसरई ॥

७. बुद्धि विशारद पण्डित को विमल विभूति सुखद : शिक्षामय होने से । यथा :
भरतहि होइ न राज मद बिधि हरिहर पद पाइ ।

क्योंकि ये गङ्गाजल की भाँति पवित्र हैं। छलहीन होने से और अमृत से भी मीठे हैं। राम प्रेममय होने से।

दो. निरवधि[1] गुन निरुपम पुरुषु, भरतु भरत सम जानि।
कहिअ सुमेरु कि सेर सम, कबिकुल मति सकुचानि ॥२८८॥

अर्थ : असीम गुणवाले उपमारहित पुरुष भरत भरत के ही समान हैं। सुमेरु को क्या सेर के समान कहा जायगा? इसलिए : कवि समाज की बुद्धि सङ्कुचित हो गयी।

व्याख्या : भरत के गुणों की सीमा नहीं इसलिए निरवधि कहा और उनकी उपमा भी नहीं इसलिए निरुपम कहा। अनन्वयालङ्कार देते हुए महाराज कहते हैं कि भरत के समान भरत ही हैं। दूसरे लोगों से समानता दी नहीं जा सकती। अन्य लोगों में और भरत में उतना ही अन्तर है जितना कि सुमेरु पर्वत और सेर : बटखरे में है। अतः दूसरे से उपमा देने में कवि की बुद्धि सङ्कुचित होती है कि इतना बड़ा वैषम्य होते हुए उसे सामान्य धर्म में लाना ठीक नहीं।

अगम सबहि बरनत बर बरनी। जिमि जलहीन मीन गमु धरनी ॥
भरत अमित महिमा सुनु रानी। जानहि रामु न सकहि बखानी ॥१॥

अर्थ : हे श्रेष्ठ वर्णवाली! सभी के लिए वर्णन करना अगम है। जैसे जल रहित पृथ्वी पर मछली की गति नहीं होती। हे रानी! भरतजी की असीम महिमा रामजी जानते हैं। परन्तु वे भी वर्णन नहीं कर सकते।

व्याख्या : भरत का चरित विषय वासना रहित है। इसलिए उसकी उपमा जलहीन धरनी से दी गयी। विषय को अत्यन्त जल और मन को मीन माना गया है। यथा : बिषय बारि मन मीन भिन्न नहिं होत कबहुँ पल एक। विषयरूपी जल से मनरूपी मछली क्षण भर के लिए भी अलग नहीं हो सकती। इसलिए निर्विषय वस्तु में मन की गति होना वैसा ही है जैसे जलहीन स्थान में मीन की गति। अतः भरत के चरित्र में किसी की गति नहीं है। मछली जानती ही नहीं कि बिना जल का प्रदेश कैसा होता है। इसी भाँति भरत की महिमा कोई नहीं जानता। केवल रामजी जानते हैं क्योंकि वे भी विषय रस से रूखे हैं। यथा : राम पुनीत विषय रस रूखे। परन्तु वे भी कह नहीं सकते। क्योंकि कहना और सीमित करना एक बात है। असीम का वर्णन हो नहीं सकता। असीमता जानी जा सकती है पर कही नहीं जा सकती। अतः भरत की महिमा रामजी जानते हैं कि असीम है। कही नहीं जा सकती इसीलिए तो असीम है।

बरनि सपेम भरत अनुभाऊ। तिय जिय की रुचि लखि कह राऊ ॥
बर नहि लखनु भरत बन जांही। सब कर भल सबके मन माँही ॥२॥

---

१. यहाँ अनन्वयालङ्कार है।

अर्थ : प्रेम के साथ भरत की महिमा का वर्णन करके स्त्री की रुचि देखकर राजा ने कहा कि भरत वन जायँ। इसी में सबका भला है और यही बात सबके मन में है। लक्ष्मण का जाना अच्छा नहीं।

व्याख्या : पहिले राजा जनक ने भरतजी की महत्ता का वर्णन किया। रानी ने भरत की गति कहने में इस बात के दिखलाने का पूरा प्रयत्न किया कि लक्ष्मणजी को रोक लिया जाय और भरत को रामजी के साथ वन जाने दिया जाय। क्योंकि रामजी का विरह भरत के लिए असह्य है। लक्ष्मण और शत्रुघ्नजी मिलकर राजकाज सँभालेंगे। अतः रानी की रुचि का समर्थन करते हुए राजा ने कहा कि जो तुमने कहा है वह सबके भले की बात है और सभी यह चाहते हैं कि लक्ष्मण का जाना ठीक नहीं। भरतजी वन जायँ।

देबि परंतु भरतु रघुबर की। प्रीति प्रतीति जाइ नहिं तरकी ॥
भरतु अवधि सनेह ममता की। यद्यपि राम सीम समता की ॥३॥

अर्थ : परन्तु हे देवी ! भरत और रामजी की प्रीति और प्रतीति में तर्क काम नहीं करता। यद्यपि रामजी समता की सीमा हैं तथापि भरत स्नेह और ममता की सीमा हैं।

व्याख्या : जनकजी रानी से कहते हैं कि तुम्हारा तर्क ठीक है। परन्तु रामजी में और भरत में कितनी प्रीति है और कितनी प्रतीति है इसमें तर्क काम नहीं करता। क्योंकि बुद्धि की वहाँ तक पहुँच नहीं।

जिस भरतजी के कल्याण के लिए तुम उनका वन जाना सोच रही हो वे अपना कल्याण किस बात में मानेंगे। रामजी की आज्ञा पालन में या उन पर सङ्कोच डालने में यह कौन कह सकता है।

यद्यपि रामजी समता की सीमा हैं। उनके साथ चाहे लक्ष्मण जायँ या भरत जायँ उनके लिए दोनों बराबर हैं। पर भरत भी स्नेह और ममता की सीमा हैं। वे कभी लक्ष्मणजी या रामजी के मन में ठेस नहीं लगने देंगे।

परमारथ स्वारथ सुख सारे। भरत न सपनेहुँ मनहुँ निहारे ॥
साधन सिद्धि राम पग नेहू। मोहि लखि परत भरत मत एहू ॥४॥

अर्थ : परमार्थ और स्वार्थ के सारे सुखों को तो मानो भरत ने कभी सपने में भी नहीं देखा। साधन और सिद्धि : दोनों रामजी के चरणों का प्रेम है। मुझे तो यही भरत का मत मालूम पड़ता है।

व्याख्या : भरत ने प्रयागराज से माँगा : अर्थ न धर्म न काम रुचि गति न चहौं निर्वान। अर्थ धर्म काम से स्वार्थ सुख कहा और निर्वाण गति से परमार्थ सुख कहा। इन दोनों सुखों को भरतजी चाहते नहीं। मानो इनकी ओर कभी आँख उठाकर देखा ही नहीं है।

नियम तो यही है कि भक्ति से मुक्ति सुलभ हो जाती है। यथा : राम भजत सोइ मुकुति गोसाईं। अनइच्छित आवै बरिआईं। रामभक्ति साधन हुई और मुक्ति साध्य हुई। यही साधारण नियम है। यथा : भक्तिर्मुक्तिविधायनी भगवतः श्रीरामचन्द्रस्य हि। परन्तु मुझे मालूम होता है कि भरतजी साधन और सिद्धि भक्ति को ही मानते हैं। रामभजन करके वे भक्ति ही चाहते हैं मुक्ति नहीं चाहते। यथा : सगुन उपासक मोक्ष न लेही। तिनकहँ राम भगति निज देही।

दो. भोरेहुँ भरत न पेलिहहिं, मनसहुँ राम रजाइ।
करिअ न सोचु सनेह बस, कहेहु भूप बिलखाइ ॥२८९॥

अर्थ : भूल करके भरतजी मन से भी रामजी की आज्ञा का उल्लंघन न करेंगे। प्रेम के वश होकर सोच न करो। ऐसा राजा ने बिलखकर कहा।

व्याख्या : आज्ञा सम न सुसाहिब सेवा। सबसे बड़ी सेवा आज्ञापालन है। रामजी आज्ञा देंगे कि तुम राज्य पर जाओ तो भरत मन से भी उसका उल्लंघन न करेंगे। दुःख सह लेगें। सो जिसे दुःख झेलना है वह स्वयं झेलने के लिए तैयार हो तो उसके लिए सोच न करना चाहिए। स्नेह के वश होकर शोक करना व्यर्थ है। यह बात राजा ने बिलखकर कहा।

राम भरत गुन गनत सप्रीती। निसि दंपतिहि पलक सम बीती ॥
राज समाज प्रात जुग जागे। न्हाइ न्हाइ सुर पूजन लागे ॥१॥

अर्थ : रामजी और भरतजी के गुणों को प्रेम के साथ गिनते हुए दोनों प्राणी को सारी रात पलक के समान बीत गयी। सवेरे दोनों राज समाज जागे और नहा नहाकर देव पूजन करने लगे।

व्याख्या : न तो रामजी के गुणों की संख्या और न भरतजी के गुणों की सीमा थी। यथा : जल सीकर महिरज गनि जाहीं। रघुपति गुन नहि बरनि सिराहीं। तथा : निरवधि गुन निरुपम पुरुष भरत भरत सम जानि। भगवान् और भागवत के गुण ही ऐसे हैं। उनकी गणना में बड़ा मन लगता है। अतः दोनों प्राणी रात भर उन्हीं की गणना करते रहे। रात कब बीत गयी उन लोगों को पता नहीं। राजा रानी तो जागते रहे पर समाज खूब सोया। अतः उनका जागना लिखते। उठने के साथ ही नित्यकृत्य में लग गये। गनप गौरि तिपुरारि तमारी। रमारमन पद बंदि बहोरी। बिनवहि अंजुलि अंचल जोरी। इत्यादि।

२२. दूसरी सभा : रघुपति प्रबोध प्रसङ्ग

गे नहाइ गुर पहिं रघुराई। बंदि चरन बोले रुख पाई ॥
नाथ भरतु पुरजन महतारी। सोक बिकल बनबास दुखारी ॥२॥

अर्थ : रघुराज स्नान करके गुरुजी के पास गये। चरण की वन्दना करके

रुख पाकर बोले। हे नाथ ! भरत, नगरनिवासी और माताएँ सब सोच से विकल और वनवास से दुःखी हैं।

व्याख्या : सब लोगों ने तो नहा नहाकर इष्टदेवों का पूजन किया। पर सरकार के तो इष्टदेव गुरुजी हैं। ये स्नानादि करके गुरुजी के दर्शन को जाते हैं। आज भी इसीलिए गये। पर आज कुछ कहना है : मुनिजी ने समझ लिया। सो मुनिजी का जब रुख पाया कि क्या कहना चाहते हो। तो चरण वन्दना करके बोले।

भरत, पुरजन और माताएँ ये सब लोग मानसिक और शारीरक कष्ट से दुःखी हैं। शोक विकल से मानसिक कष्ट कहा और वनवास से शारीरक कष्ट कहा। गुरुजी तो तपस्वी हैं। अतः उनके दुःख का नाम नहीं लेते। ये लोग व्यर्थ दुःख सह रहे हैं।

सहित समाज राउ मिथिलेसू। बहुत दिवस भये सहत कलेसू ॥
उचित होइ सोइ कीजिअ नाथा। हित सबही कर रउरे हाथा ॥३॥

अर्थ : महाराज मिथिलेश को सहित समाज कष्ट उठाते बहुत दिन हो गये। इसलिए हे नाथ ! जो उचित हो वही कीजिये। आप ही के हाथ सबका हित है।

व्याख्या : भरत माता पुरजन तो क्लेश उठा रहे हैं। सम्बन्धी भी कष्ट उठा रहे हैं। राजा मिथिलेश के कष्ट उठाने का कोई कारण नहीं है। फिर वे भी कष्ट उठा रहे हैं। पहिले भी मैंने कहा था। तब आज्ञा हुई : लोग दुखित दिन दुइ दरस देखि लहुँ बिश्राम। सो वे दो दिन तो कभी के बीत गये। तब से मिथिलेश आगये। इन्हें भी आये कई दिन हो गये। मुझे जो कहना था कह दिया आगे आप मालिक हैं। जो आप उचित समझें सो करें। आपकी ही आज्ञा मानने और रुख रखने में सबकी भलाई है। आप जैसा कहेंगे वैसा ही सब करेंगे। अतः जिसमें सबका हित हो सो कीजिये। हित सदा उचित करने में होता है। ध्वनि यह है कि पिता के वचन की रक्षा हो।

अस कहि अति सकुचे रघुराऊ। मुनि पुलके लखि सीलु सुभाऊ ॥
तुम्ह बिनु राम सकल सुख राजा। नरक सरिस दुहु राज समाजा ॥४॥

अर्थ : ऐसा कहकर रामजी अति सङ्कुचित हो गये। मुनिजी शील स्वभाव देखकर पुलकित हो गये। कहा हे राम ! तुम्हारे बिना दोनों राजसमाज का सुख साज नरक के समान है।

व्याख्या : गुरुजी को कुछ भी करने के लिए विनय करने में भी रामजी को सङ्कोच होता है। पहिले भी जाने के लिए जब कहा था तब अन्त में यही कहा : बहुत कहेउँ सब कियेउँ ढिठाईं। उचित होय तस करिअ गोसाईं। वही बात फिर कह रहे हैं। इसलिए अत्यन्त सकुचे। मुनिजी प्रभु का सङ्कोची स्वभाव देखकर मग्न हो गये। पुलक हो आया। अस सुभाउ कहुँ सुनै न देखें। केहि खगेस रघुपति सम लेखें।

प्रिय के विरह में सुख के साज और भी दुःखदायी हो जाते हैं। अतः गुरुजी कहते हैं कि दोनों समाज को सुख तो तुम्हारे संयोग में है। तुम्हारे विरह में ये सुख के साज नरक समान दुःखदायक हो जायेंगे।

दो. प्रान प्रान के जीव के, जिव सुख के सुख राम।
तुम्ह तजि तात सोहात गृह, जिनहि तिनहि बिधि बाम ॥२९०॥

अर्थ : हे तात ! तुम प्राण के प्राण हो। जीव के जीव हो और सुख के सुख हो। तुमको छोड़कर जिन्हें घर अच्छा लगता है उन पर विधाता बायें हो गये हैं।

व्याख्या : सब लोग कष्ट सह रहे हैं। इस बात का उत्तर देते हुए वसिष्ठजी कहते हैं कि सुख के मूल स्रोत तो आप हैं। आपके छोड़ने में सुख कहाँ ? आप ही के कारण प्राण प्राणन क्रिया करता है। इसलिए आप प्राण के प्राण हैं। जिस बिम्ब का जीव प्रतिबिम्ब है वह बिम्ब आप ही हैं। इसलिए आप जीव के जीव हैं। विषय सुख के भी मूल में ब्रह्म सुख है। इसलिए आप सुख के सुख हैं। गृह में भी सुख है। पर वह सुख भी आप के होने से हैं। आपको छोड़कर सुख कहाँ। यथा : जगदातमा प्रानपति रामा। तासु बिमुख किमि लह बिश्रामा। यही साधारण नियम है। स्वभाव से जीव और ब्रह्म में स्नेह है। यथा : ब्रह्म जीव इव सहज सनेहू। जिस पर विधाता वाम होते हैं उसका स्वभाव पलट जाता है। यथा : भयउ बाम बिधि फिरेउ सुभाऊ। अतः आपको छोड़कर जिसे घर अच्छा लगा उसके लिए समझ लेना चाहिए कि इस पर विधाता ही बायें हो गये। भाव यह कि सब लोग यहीं रहने से सुखी हैं किसी को घर जाने की रुचि नहीं है।

सो सुख करमु धरमु जरि जाऊ। जहँ न राम पद पंकज भाऊ ॥
जोगु कुजोगु ग्यानु अग्यानू। जहँ नहिं राम पेम परधानू ॥१॥

अर्थ : वह सुख और वह कर्म धर्म जल जाय जिसमें रामजी के चरणों में प्रेम न हो। वह योग कुयोग है। वह ज्ञान अज्ञान है। जिसमें रामजी का प्रेम प्रधान न हो।

व्याख्या : उचित होय सो कीजिय नाथा का उत्तर देते हुए गुरुजी कहते हैं कि यहाँ उचित अनुचित कुछ नहीं। जिसमें धर्म अर्थ और काम में बाधा न हो वही उचित है। परन्तु जिस धर्मार्थ काम में आप के चरणों के प्रेम का अभाव हो वह धर्मार्थ काम जले। उससे कोई प्रयोजन नहीं।

जिस योग में रामप्रेम न हो उससे मोह का नाश नहीं होता और जिस ज्ञान में रामप्रेम की प्रधानता न हो वह तारने में समर्थ नहीं होता। यथा : पुरुष कुजोगी जिमि उरगारी। मोह बिटप नहिं सकै उपारी। तथा : सोह न रामप्रेम बिनु ज्ञानू। करनधार बिनु जिमि जलजानू।

तुम्ह बिनु दुखी सुखी तुम्ह तेही। तुम्ह जानहु जिअँ जो जेहि केही ॥
राउर आयसु सिर सबही के। बिदित कृपालहिं गति सब नीके ॥२॥

अर्थ : तुम्हारे बिना दुःखी और तुमसे ही सब सुखी हैं। जिसके हृदय में जो है उसे तुम जानते हो। आपकी आज्ञा सबके सिर पर है। हे कृपाल ! आपको सबकी गति विदित है।

व्याख्या : चाहे विषयी हो। चाहे साधक हो। चाहें सिद्ध हो। सब तुम्हारे बिना दुःखी रहते हैं। यथा : तन कृस मन दुःख बदन मलीने। बिकल मनहु माछी लघु छीने और तुम्हारी उपस्थिति से सब सुखी होते हैं। यथा : सब बिधि सब पुरलोग सुखारी। रामचंद मुखचंद निहारी। तुम्हीं सबके हृदय के जाननेवाले हो। यथा : को जिय कै रघुबर बिनु बूझा।

जो आपने कहा : हित सबही कर रउरे हाथा। सो बात नहीं है। आपकी आज्ञा सबके सिर पर है। मेरे सिर पर भी है। क्योंकि आप कृपाल हैं और अन्तर्यामी सबकी गति जानते हैं। यथा : सबके उर अन्तर बसहु जानहु भाउ कुभाउ। जीव चाहे कैसा ही बड़ा हो ईश के ऐसा नहीं हो सकता। अतः आपकी ही आज्ञा के पालन से सबका हित है। यथा : प्रभु आज्ञा अपेल स्रुति गाई। तथा : प्रभु आयसु जेहि कहँ जस अहई। सो तेहि भाँति रहे सुख लहई।

आपु आश्रमहि धारिअ पाऊ। भयउ सनेह सिथिल मुनिराऊ ॥
करि प्रनामु तब राम सिधाए। रिषि धरि धीर जनक पहँ आए ॥३॥
(राम बचन गुरु नृपहि सुनाए। सील सनेह सुभाव सुहाए ॥)

अर्थ : अब आप आश्रम में पधारिये। यह कहकर मुनिराज प्रेम से शिथिल हो गये। रामजी प्रणाम करके चले गये। ऋषिजी धैर्य धारण करके जनकजी के पास आये। गुरुजी ने रामजी का शील स्नेह और स्वभाव से सुन्दर वचन राजा को सुनाया।

व्याख्या : ऋषिजी ने : आपु आश्रमहि धारिअ पाऊँ। कहकर यह जना दिया कि मैं आपका अभिप्राय समझ गया। वही होगा। रामजी के वचन सुनकर ऋषिजी स्वयं स्नेह से शिथिल हो गये थे। अतः रामजी के चले जाने पर धैर्य धारण करके महाराज जनक के यहाँ आये और रामजी का शील स्नेह और उनका स्वाभाविक सुन्दर वचन उन्हें कह सुनाया। शील यथा : बंदि चरन बोले रुख पाई। तथा : अस कहि अति सकुचे रघुराऊ। स्नेह यथा : नाथ भरतु पुरजन महतारी। सोक बिकल बनबास दुखारी। सहित समाज राउ मिथिलेसू। बहुत दिवस भये सहत कलेसू। सुन्दर स्वभाव यथा उचित : होइ सोइ कीजिअ नाथा। हित सबही कर तुम्हरे हाथा।

इस भाँति ऋषिजी ने महाराज को रामजी के आन्तरिक भावों से परिचित करा दिया। कोष्ठान्तर्गत दो पद, राजापुर की प्रति में नहीं हैं। पर इन्हें बिना माने काम नहीं चलता।

महाराज, अब कीजिअ सोई। सबकर धर्म सहित हित होई ॥४॥

अर्थ : गुरुजी ने कहा कि महाराज ! अब वही कीजिये जिससे सबका सहित हित हो।

व्याख्या : भाव यह कि यह अर्धाली रामजी के वचन : उचित होइ सोइ कीजे नाथा का अनुवाद है। धर्म सहित सबका हित करना ही उचित है। चक्रवर्तीजी के न रहने पर जनकजी की उपस्थिति में उनकी ही आज्ञा सब पर चलेगी। अतः मुनिजी उन्हीं से कहते हैं।

दो. ग्यान निधान सुजान सुचि, धरम धीर नरपाल।
तुम्ह बिनु असमंजस समन, को समरथ एहि काल ॥२९१॥

अर्थ : हे राजन् ! तुम ज्ञान के घर सुजान पवित्र और धर्मधीर हो। तुम्हारे बिना इस असामञ्जस्य के मिटाने में इस समय कौन समर्थ है।

व्याख्या : भाव यह : धर्म राजनय ब्रह्म बिचारू। इहाँ यथा मति मोर प्रचारू। जनकजी ने कहा था सो मुनिजी जिन विशेषणों से राजा को सम्बोधित करते हैं उनका भी यही अभिप्राय है। ज्ञान निधान से ब्रह्म विचार कहा। सुचि सुजान से राजनय कहा। धर्मधीर से धर्मशास्त्र का ज्ञान कहा। ऐसा गुणी राजा इस समय में कौन है। सामञ्जस्य बिठाना निर्णय करना राजा का काम है। यहाँ जो असामञ्जस्य आ पड़ा है कि धर्म पर ध्यान देने से सबका अहित होता है। सबका हित करने से रामजी का धर्म जाता है। इस असामञ्जस्य को आप ही मिटा सकते हैं।

सुनि मुनि बचन जनक अनुरागे। लखि गति ग्यानु बिरागु बिरागे ॥
सिथिल सनेह गुनत मन माँही। आए इहाँ कीन्ह भल नाँही ॥१॥

अर्थ : मुनिजी का वचन सुनने से जनकजी प्रेम में आगये। उनकी गति देखकर ज्ञान विराग को भी विराग हो गया। स्नेह से शिथिल होकर मन में विचार करने लगे कि मैंने यहाँ आकर अच्छा नहीं किया।

व्याख्या : जनकजी ने जब मुनिजी का वचन सुना कि आप इस प्रेम और धर्म के सामञ्जस्य को बिठलाइये। जिसका स्पष्ट अर्थ यही है कि मुझसे सामञ्जस्य नहीं बैठता तो जनकजी स्वयं प्रेम में आगये। रामानुराग का दर्जा ज्ञान विराग से बढ़ा चढ़ा है। जनकजी का अनुराग देखकर ज्ञान विराग को भी विराग हो गया कि अब हम यहाँ नहीं रहेंगे। अब अनुराग ही यहाँ रहे। क्योंकि काम आ पड़ने पर जनकजी अनुराग का ही सम्मान करते हैं। वे हृदय से अनुरागी हैं। यथा : जाहि रामपद गूढ़ सनेहू। इनके लिए राजा जनक विचारते हैं। यहाँ धर्म तो यही है कि रामजी वन जायँ और स्नेह वन जाने देना नहीं चाहता। मैं सम्बन्धी हूँ। मैं कैसे कहूँ कि रामजी का वन जाना ही ठीक है अतः मेरा यहाँ आना ठीक नहीं हुआ।

रामहि राय कहेउ बन जाना । कीन्ह आपु प्रिय प्रेम प्रवाना ॥
हम अब बन तें बनहि पठाई । प्रमुदित फिरब बिबेक बड़ाई ॥२॥

अर्थ : चक्रवर्तीजी ने रामजी को वन जाने को कहा और स्वयं उन्होंने प्यारे के प्रेम को सच्चा कर दिखलाया और हम अब रामजी को वन में ही भेजकर विवेक की बड़ाई के साथ लौटेंगे।

व्याख्या : भाव यह कि जनकजी चक्रवर्तीजी के समकक्ष हैं। यथा : सम समधी देखा हम आजू। सो चक्रवर्तीजी ने तो रामजी को वन में भेजकर धर्म निबाहा और अपना शरीर छोड़कर प्रेम का निर्वाह भी कर दिखाया। यही तो एक मात्र रास्ता धर्म और प्रेम के सामञ्जस्य बिठाने का है। यह तो नहीं है कि मैं रामजी को वन से लौटा ले चलने के बदले वन जाने की सम्मति देकर घर लौटूँ और यह समझकर सन्तोष कर लूँ कि मैं बड़ा विवेकी हूँ।

तापस मुनि महिसुर सुनि देखी । भये प्रेम बस बिकल बिसेखी ॥
समउ समुझि धरि धीरजु राजा । चले भरत पहिं सहित समाजा ॥३॥

अर्थ : तपस्वी मुनि और ब्राह्मण लोग सुनकर और देखकर प्रेम के वश हो विशेष व्याकुल हुए। फिर राजा समय का विचार करके और धैर्य धारण करके समाज के सहित भरतजी के पास आये।

व्याख्या : सभी लोगों की बात नहीं कहते। जो लोग विराग का व्रत लिये हुए हैं वे भी वसिष्ठजी की बात सुनकर और दोनों महाज्ञानियों की दशा देखकर प्रेमवश हो गये। उनकी विकलता सामान्य लोगों से भी अधिक थी। क्योंकि वे विषय की सूक्ष्मता को विशेषरूप से समझ रहे थे।

प्रजा का रञ्जन करनेवाला ही राजा कहलाता है। राजा ने सोचा कि मेरी विकलता के व्यक्त होने से प्रजा अधिक विकल होगी और मेरी स्थिति ऐसी है कि जब मैं यहाँ आया हूँ तो मुझे ही सामञ्जस्य बिठलाना है। वसिष्ठजी कहते हैं। अतः राजा ने धैर्य धारण किया। जनकजो राजा हैं। सामञ्जस्य बिठलाने की विधि जानते हैं। देखा कि सम्पूर्ण प्रजा की दृष्टि इस समय भरतजी पर है और प्रेम भी भरतजी का सबसे अधिक है। धर्म के भी जानकार भरतजी हैं। अतः सामञ्जस्य बिठाने का भार भरत पर ही छोड़ा जाय। अतः कुछ न कहकर समाज सहित भरतजी के पास चल पड़े।

भरत आइ आगें भइ लीन्हें । अवसर सरिस सुआसन दीन्हें ॥
तात भरत कह तिरहुति राऊ । तुम्हहि बिदित रघुबीर सुभाऊ ॥४॥

अर्थ : भरतजी ने आगे आकर उनका स्वागत किया और समयानुकूल अच्छा आसन दिया। तिरहुत : तीरयुक्त के राजा ने कहा कि हे तात भरत ! तुम्हें रामजी का स्वभाव मालूम है।

व्याख्या : श्वसुर भी पिता के तुल्य हैं। अतः जनकजी का आगमन जानकर भरतजी आगे आकर उनका स्वागत करके अपने डेरे पर लिवा ले गये। यहाँ वन में सिंहासन का योग नहीं था। अतः सुन्दर आसन जो इस समय दिया जा सकता था सो दिया।

बैठने के बाद महाराज जनक ने भरतजी को सम्बोधन करते हुए कहा कि तुम तो जानते हो कि रामजी का कैसा सङ्कोची स्वभाव है। यथा : कहुँ न राम सम स्वामि सँकोची।

दो. राम सत्यव्रत धर्म रत, सब पर सीलु सनेहु।
संकट सहत सँकोच बस, कहिय जो आयसु देहु ॥२९२॥

अर्थ : रामजी सत्यव्रत हैं। धर्म में रत हैं। सब पर उनका स्नेह और शील है। सङ्कोच के वश पड़े हुए सङ्कट सह रहे हैं। इसलिए जो तुम आज्ञा दो उनसे कहा जाय।

व्याख्या : रामजी के सङ्कोच को और भी स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि रामजी का व्रत ही सत्य है और सदा धर्म में ही लगे रहते हैं। अर्थात् सत्य और धर्म वे छोड़ नहीं सकते और सत्य धर्म तो यही है कि वे वन जायँ। साथ ही साथ उन्हें सबका शील है और सब पर उनका स्नेह है। अतः यह स्पष्ट आज्ञा भी नहीं दे रहे हैं कि तुम लोग यहाँ से चले जाओ। मैं नहीं लौट सकता। वे शील स्नेह भी नहीं छोड़ सकते। अतः वे सङ्कोच वश सङ्कट सह रहे हैं। उन्हें सङ्कट से छुड़ाना तुम्हारा काम है। अब एक बात स्पष्ट हो जानी चाहिए। यह द्विविधा की दशा असह्य है। अतः तुम जो आज्ञा दो वही उनसे करने को कहा जाय। भाव यह कि तुम्हारे ऐसा उनका स्नेही कोई नहीं है। तुम्हीं उन्हें लौटाने आये हो। हम लोग तो तुम्हारे पक्ष को पुष्ट करने आये हैं। अतः रामजी के सत्यव्रत और धर्म को विचार करके तथा स्नेह को भी ध्यान में रखकर जो तुम निर्णय करके कहो वही हम लोग चलकर रामजी से करने के लिए कहें।

सुनि तन पुलकि नयन भरि बारी। बोले भरतु धीर धरि भारी ॥
प्रभु प्रिय पूज्य पिता सम आपू। कुलगुरु सम हित माय न बापू ॥१॥

अर्थ : सुनकर भरतजी को पुलक हो गया और आँखों में आँसू भर आया। भरत जो भारी धैर्य धारण करके बोले। आप प्रभु पूज्य पिता के समान हैं। कुलगुरु के समान हितकारी न बाप है और न माँ है।

व्याख्या : जनकजी का उपर्युक्त बचन सुनकर भरतजी को सात्त्विक भाव हुआ, उनके रोंगटे खड़े हो गये। नेत्रों में जल आगया। उन्हें बोलने में भारी धैर्य धारण करना पड़ा। यहाँ प्रेमियों का समाज इकट्ठा हुआ है। सबका धैर्य छूटा जा रहा है। जनकजी चलते हैं तो धैर्य धारण करके चलते हैं। भरतजी बोलते हैं तो भारी धैर्य धारण करके बोलते हैं।

पिता धर्मतः पुत्रों का प्रभु भी हैं और पूज्य भी हैं। श्वशुर पिता के तुल्य हैं। इसलिए भरतजी कहते हैं कि आप प्रभु पूज्य पिता के तुल्य हैं। धर्म यही है कि आप आज्ञा दें और मैं पालन करूँ और कुलगुरु आप से भी अधिक हैं। क्योंकि वे पिता और माता से भी विशेष हितकारी हैं। उन्हें मुझे आज्ञा देनी चाहिए। मुझसे सम्मति न पूछनी चाहिए।

कौसिकादि मुनि सचिव समाजू। ग्यान अंबुनिधि आपुनु आजू ॥
सिसु सेवकु आयसु अनुगामी। जानि मोहि सिख देइअ स्वामी ॥२॥

अर्थ : विश्वामित्रादि मुनिसमाज है। सचिवसमाज है। हे स्वामी ! मुझे बच्चा सेवक और आज्ञा पालक जानकर आप लोग आज्ञा दीजिये।

व्याख्या : विश्वामित्रादि मुनिगण सभी प्रभु और पूज्य हैं। पिताजी का मन्त्री समाज है। सभी को मुझे आज्ञा देने और उपदेश देने का अधिकार है। स्वयं आप आज दिन ज्ञान के समुद्र हैं। सभी ऋषि मुनि आपका थाप मानते हैं। मैं आप के लिए शिशु, गुरुजी के लिए सेवक और शेष महानुभावों के लिए विधेय हूँ। आप लोगों के सामने मुझे आज्ञा देने का अधिकार नहीं है। मैं तो आज्ञाकारी हूँ। ऐसा जानकर आप लोग आज्ञा दीजिये।

एहि समाज थल बूझब राउर। मौन मलिन मैं बोलब बाउर ॥
छोटे बदन कहौं बड़ि बाता। छमब तात लखि बाम बिधाता ॥३॥

अर्थ : ऐसे समाज में ऐसी जगह में आपका पूछना ! मुझसे : मैं मौन हूँ और मलिन हूँ। मैं उलटा सुलटा बोलूँगा। मैं छोटे मुँह बड़ी बात कहता हूँ। हे तात ! विधाता को बायें समझकर आप क्षमा कीजियेगा।

व्याख्या : बड़े का प्रश्रय : अदब यहाँ तक माना जाता है कि जब से भरतजी आये हैं लक्ष्मणजी मौन हैं कि जो कुछ बातचीत करना होगा भरतजी करेंगे। उनके सामने मेरा बोलना अनुचित है और जब से जनकजी आये हैं भरतजी मौन हैं कि मुझ से बड़ा बोलने के लिए आगया है। बोलते भी हैं तो कहते हैं कि मेरा कहना छोटे मुँह बड़ी बात के सदृश है। उसे क्षमा कीजिये। जिसके विधाता विमुख हो जाते हैं वह ऐसा ही बोलता है।

इसीलिए भरतजी कहते हैं कि मैं तो सब भार आप पर छोड़कर मौन हूँ। जो आप कर दें सो स्वीकार है और दूसरी बात यह कि मैं दुःखी हूँ। इसलिए अन्तःकरण मलिन हो रहा है। न जाने कैसी बात मुख से निकल जाय। भाव यह कि आप लोग बड़े हैं। आपकी आज्ञा रामजी पर चल सकती है। सो आप लोग कुछ कहते नहीं। मुझ सेवक से कहने के लिए कहते हैं। ऐसी बातें मेरे मन में है जिसके कहने में धृष्टता है। अतः कहते हैं : मैं बोलब बाउर। रामजी के पास भरत या लक्ष्मण में से कोई न कोई रहता ही है। इसी से शत्रुघ्नजी को बोलने का अवसर ही रामायण भर में न मिला।

आगम निगम प्रसिद्ध पुराना। सेवा धरमु कठिन जग जाना ॥
स्वामि धरमु स्वारथहि बिरोधू। बैरु अंध प्रेमहि न प्रबोधू ॥४॥

अर्थ : वेद शास्त्र और पुरान में प्रसिद्ध है और संसार जानता है कि सेवाधर्म कठिन है। स्वामी के धर्म और स्वार्थ में विरोध है, वैर अन्धा है, और प्रेम का प्रबोध नहीं होता।

व्याख्या : यहाँ स्वामी के धर्म से और सेवक के स्वार्थ से विरोध पड़ गया है। स्वामी का धर्म यथा : मैं सोइ धर्म सुलभ करि पावा। तजे तिहूँ पुर अपजस छावा। सेवक का स्वार्थ यथा : जेहि सुनि बिनय मोहि जनु जानी। आवहिं बहुरि राम रजधानी। दोनों में विरोध पड़ गया। दोनों एक साथ नहीं हो सकता। स्वामी का धर्म सेवक के स्वार्थ को नहीं देख सकता और न सेवक का स्वार्थ स्वामी के धर्म को देख सकता है। क्योंकि वैर अन्धा है। इस पर यदि यह कहा जाय कि फिर सेवक अपना स्वार्थ छोड़े तो इस पर यह कहते हैं कि प्रेम को प्रबोध नहीं। वह मानता नहीं।

दो. राखि राम रुख धरमु ब्रतु, पराधीन मोहि जानि।
सब कें संमत सर्ब हित, करिय पेमु पहिचानि ॥२९३॥

अर्थ : रामजी का रुख धर्म व्रत की रक्षा करते हुए, मेरी पराधीनता पर ध्यान देते हुए, सब की राय से जो सबका हित हो उसे प्रेम पहिचानकर करना चाहिए।

व्याख्या : भरतजी कहते हैं कि मेरा सेवाधर्म न बिगड़ने पावे। इसलिए रामजी का रुख रखिये और स्वामी का धर्म व्रत न भङ्ग हो इसलिए उसकी भी रक्षा कीजिये। मुझे कुछ कहने का अधिकार नहीं। अतः मुझे पराधीन जान लीजिये। मेरा विचार छोड़िये। जिसमें सबकी राय हो सबका हित होता हो उसे प्रेम के पहिचान के साथ कीजिये। जिसमें दरबार का कायदा न बिगड़ने पाये। यथा : प्रीति पहिचान यह रीति दरबार की। कहिय जो आयसु देउ का उत्तर देते हुए भरतजी कहते हैं कि मैंने पहिले ही कहा था : मौन मलिन मैं बोलब बाउर। आप एक सामञ्जस्य बिठाने के लिए मेरे यहाँ आये और मैंने बहुत से सामञ्जस्य बिठाने के लिए निवेदन किया।

भरत बचन सुनि देखि सुभाऊ। सहित समाज सराहत राऊ ॥
सुगम अगम मृदु मंजु कठोरे। अरथु अमित अति आखर थोरे ॥१॥

अर्थ : भरत के वचन सुनकर और स्वभाव देखकर समाज सहित राजा जनक प्रशंसा करने लगे कि भरतजी की वाणी सुगम भी है अगम भी है। मृदु मञ्जु भी है। कठोर भी है। असीम अर्थ है और अक्षर थोड़े हैं।

व्याख्या : सब लोग भरतजी की वाणी और स्वभाव पर मुग्ध हैं कि क्या

वाणी है और कैसा सुन्दर स्वभाव है कि सब कुछ कह दिया पर कठोरता व्यक्त न हुई। वाणी की प्रशंसा करते हैं कि सुनने में तो सुगम है पर समझने में अगम है। विनय प्रेम युक्त होने से मृदु है। निर्दोष होने से मञ्जु है। फिर भी कठोर उत्तर है कि आप कुलगुरु हैं। अवस फिरब गुरु आयसु मानी। और आप पिता के समान हैं। सब कुछ कह सकते हैं। पर कुछ कहना नहीं चाहते। मुझ पराधीन सेवक से कहलाना चाहते हैं। ऐसी ध्वनि निकलती है। इससे कठोर भी है। स्वामिधर्म स्वारथहि बिरोधू। बैर अंध प्रेमहि न प्रबोधू। इतने से अक्षरों में असीम अर्थ भरा पड़ा है।

जिमि मुखु मुकुर मुकुरु निज पानी। गहि न जाइ अस अदभुत बानी ॥
भूप भरतु मुनि साधु समाजू। गे जहँ बिबुध कुमुद द्विजराजू ॥२॥

अर्थ : जैसे दर्पण में मुख का प्रतिबिम्ब हो और दर्पण अपने हाथ में हो। पर मुख का प्रतिबिम्ब पकड़ा नहीं जाता। ऐसी अद्भुतवाणी है। तब राजा जनक भरत और मुनि साधु का समाज देवकुल कुमुद चन्द्र रामचन्द्र के पास गये।

व्याख्या : भरतजी की वाणी दर्पण की भाँति निर्मल है और उसमें प्रतिबिम्बित मुख अत्यन्त स्पष्ट हैं। दर्पण इतना छोटा कि हाथ में आगया। फिर भी इतना बड़ा मुख ज्यों का त्यों उसमें आगया। पर यह सामर्थ्य किसी को नहीं कि उस प्रतिबिम्बित मुख को कोई पकड़ सके। हाथ के भीतर दर्पण और उसके भीतर मुख फिर भी हाथ उसे नहीं पकड़ सकता। यही अद्भुतता है। ऐसी ही भरतजी की वाणी है। बात स्पष्ट और थोड़े शब्दों में कही। पर पकड़ में नहीं आती है। भाव यह कि भरत के वचन का उत्तर किसी के पास नहीं।

वसिष्ठजी जनक के पास गये। वे भरतजी के पास गये। कुछ निर्णय न हुआ। अब सब लोग मिलकर रामजी के पास जा रहे हैं।

सुनि सुधि सोच बिकल सब लोगा। मनहुँ मीनगन नव जल जोगा ॥
देव प्रथम कुलगुर गति देखी। निरखि बिदेह सनेह बिसेखी ॥३॥

अर्थ : यह समाचार सुनकर लोग सोच से ऐसे व्याकुल हुए जैसे नये जल के योग से मछलियाँ व्याकुल होती हैं। देवताओं ने पहले कुलगुरु की गति देखी। फिर राजा जनक के विशेष प्रेम को देखा।

व्याख्या : जलती हुई पृथ्वी पर जब पहिला जल गिरता है तो वह भी तप्त हो जाता है और जब वह जल जलाशय में पहुँचता है तो मछलियाँ व्याकुल हो उठती हैं। इसी प्रकार यह समाचार पाकर लोग विकल हो गये। समाचार नवीन जल स्थानीय है।

देवताओं को अपना स्वार्थ इतना सताये हुए है कि ये प्रत्येक हलचलों पर निगाह रखते हैं। उन्होंने पहिले कुलगुरु की गति देख ली कि स्नेह से शिथिल हो रहे हैं। इनकी आज्ञा मिलने पर रामजी पिता के वचन को भी नहीं मानेंगे। इधर

जनकजी की गति देखी कि ये महात्मा स्नेह से विशेष शिथिल हो गये। इनका बहुत बड़ा सङ्कोच रघुनाथजी को है।

राम भगतिमय भरतु निहारे। सुर स्वारथी हहरि हिय हारे॥
सब कोउ राम प्रेममय पेखा। भए अलेख[1] सोच बस लेखा॥४॥

अर्थ : भरतजी को देखा कि राम भक्तिमय हो रहे हैं। तो स्वार्थी देवताओं ने हहरकर हाथ पैर ढीला करके हिम्मत छोड़ दी। सब किसी को देखा कि राम प्रेममय हो रहे हैं तो देवता लोग ऐसे सोचवश हुए कि उनका लेखा नहीं हो सकता।

व्याख्या : गुरुजी और जनकजी की दशा तो देखी ही थी। अब भरतजी को देखते हैं तो वे रामप्रेममय हो रहे हैं। इन तीनों व्यक्तियों पर देवताओं का बल चल नहीं सकती। अतः देवताओं ने भयभीत होकर हिम्मत छोड़ दी। रामजी के स्वभाव को देवता जानते हैं कि वे भक्तों के पराधीन से हो जाते हैं। अतः उनके लौट जाने के भय से भीत हो गये।

इतना ही नहीं वहाँ सभी को राम प्रेममय देख रहे हैं। अतः उनके सोच का अन्त नहीं है। समझ रहे हैं कि ऐसे प्रेमियों के एक मत होने में कितनी देर लगेगी।

दो. रामु सनेह सकोच बस, कह ससोच सुरराजु।
रचहु प्रपंचहि पंच मिलि, नाहि त भयउ अकाजु॥२९४॥

अर्थ : शोकयुक्त होकर देवराज ने कहा कि रामजी सङ्कोची हैं और प्रेम के वश हैं। अतः सब पञ्च लोग मिलकर प्रपञ्च रचो। नहीं तो बात बिगड़ा चाहती है।

व्याख्या : शोक के वश सब देवताओं की ऐसी गति देखकर स्वयं देवराज शोकयुक्त होकर बोल उठे कि रामजी का सङ्कोची स्वभाव है और वे स्नेह के वशीभूत हो जाते हैं। अतः अब चुप रहने का समय नहीं है। सब पञ्च मिलकर माया करो। एक दो की माया से काम न चलेगा। यदि त्रुटि हुई तो काम को बिगड़ने में देर नहीं है। यही समय पुरुषार्थ करने का है।

सुरन्ह सुमिरि सारदा सराही। देबि देव सरनागत पाही॥
फेरि भरत मति करि निज माया। पालु बिबुध कुल करि छल छाया॥१॥

अर्थ : देवताओं ने सरस्वती का स्ममण करके स्तुति की और कहा कि हे देवि ! हम लोग शरण में आये हैं रक्षा करो। अपनी माया करके भरत की बुद्धि फेर दो और छल की छाया करके देवकुल की रक्षा करो।

व्याख्या : सरस्वती का ही आवाहन और स्तुति करके देवता लोगों ने रामाभिषेक में विघ्न किया। रामजी को वनवास हुआ। भरतजी के प्रेम के कारण वह

---

१. यहाँ विरोधाभास : अलङ्कार है।

सब प्रयत्न आज निष्फल हुआ चाहता है। अतः इन्द्र की आज्ञा मानकर देवताओं ने प्रपञ्च रचने के लिए फिर सरस्वती का आवाहन किया। उन्हें प्रसन्न करने के लिए स्तुति की। उन्हें सङ्कोच में डालने के लिए शरणागत हुए।

अन्त में अपना प्रयोजन निवेदन करते हैं कि भरत को बुद्धिरूपी आतप से हम लोग पीड़ित हैं। अतः माया करके भरत की बुद्धि तू फेर दे। माया के आवरण की छाया में हम लोग घोर आतप से बच जायँ। जैसे पहले कर चुकी हो। यथा : अजस पेटारी ताहि करि गई गिरा मति फेरि।

बिबुध बिनय सुनि देबि सयानी। बोली सुर स्वारथ जड़ जानी ॥
मो सन कहहु भरत मति फेरू। लोचन सहस न सूझ सुमेरू ॥२॥

अर्थ : देवताओं की स्तुति और विनय सरस्वतीजी ने आकर सुनी। परन्तु सरस्वती बड़ी सयानी हैं। देवता स्वार्थ के कारण जड़ हो गये हैं। यह जानकर बोलीं कि मुझे भरत की बुद्धि फेरने को कहते हैं। इन्हें नेत्र तो हजार हैं। पर सुमेरु पर्वत नहीं दीखता।

व्याख्या : इनकी बुद्धि काम नहीं करती। जहाँ बिबुध कुमुद द्विजराज स्वयं बैठे हैं। वहाँ बिबुध : देवताओं को भय कहाँ ? परन्तु देवता स्वार्थान्ध हो गये हैं। इनकी विवेक दृष्टि मारी पड़ी है। स्थूल दृष्टि हजार होने से भी कोई आँखवाला नहीं हो जाता। देखो हजार आँख होने पर भी इन्द्र को यह नहीं सूझ रहा है कि किसकी बुद्धि फेरी जा सकती है और किसकी नहीं फेरी जा सकती। रामजी के परम प्रेमी की बुद्धि कौन फेर सकता है। उनके स्नेह तक त्रिदेव का मन नहीं जाता वहाँ मेरी क्या गति है। पहिले जो मैंने बुद्धि फेरा था तो मन्दमति मन्थरा की बुद्धि को फेरा था। मन्थरा सेर है और भरत सुमेरु हैं। कहाँ मन्थरा और कहाँ भरत।

बिधि हरि हर माया बड़ि भारी। सोउ न भरत मति सकै निहारी ॥
सो मति मोहि कहत करु भोरी। चंदिनि कर कि चंडकर चोरी ॥३॥

अर्थ : विधि हरिहर की माया बड़ी भारी है। वह भी भरत की मति की ओर देख नहीं सकती। उस मति को भोरी करने के लिए मुझे कहते हो। चाँदनी सूर्य को कैसे चुरा सकती है।

व्याख्या : जिसे भरत के स्वरूप का ज्ञान है वह समझ सकता है कि विधि हरिहर ईश्वर हैं। उनकी माया के बल से संसार की उत्पत्ति पालन और लय हुआ करता है। पर उनकी स्थिति भरत के सामने ऐसी है जैसे क्षीरसागर के सामने काँजी के दो चार बिन्दु। भरत की बुद्धि सूर्य के समान है। मायारूपी अन्धकार उसके सामने टिक नहीं सकता। मैं तो विधि की आश्रिता हूँ। चाँद की चाँदनी हूँ। मेरे तेज के सामने खद्योत भले ही छिप जायँ। सूर्य कैसे छिप सकते हैं। भाव यह

कि जिस भाँति सूर्य की ज्योति से ही चन्द्र प्रकाशित है उसी भाँति भरत के तेज से ही विधि हरिहर का तेज है। तुम लोगों को भरत के स्वरूप का बोध नहीं है।

भरत हृदय सिय राम निबासू। तहँ कि तिमिर जहँ तरनि प्रकासू ॥
अस कहि सारद गइ बिधि लोका। बिबुध बिकल निसि मानहु कोका ॥४॥

अर्थ : भरत के हृदय में राम जानकी का निवास है। वहाँ अन्धकार कहाँ जहाँ सूर्य का प्रकाश है। ऐसा कहकर सरस्वती ब्रह्मलोक चली गयी। देवता लोग ऐसे विकल हो गये जैसे रात को चकवा।

व्याख्या : भरतजी की इतनी बड़ी महिमा का कारण यह है कि उनके हृदय में राम जानकी का निवास है। रामजी सूर्य हैं। सीताजी उनकी प्रभा हैं। इसीलिए भरतजी की बुद्धि सूर्यरूप हो रही हैं। भरतजी की महिमा विधि हरिहर से अधिक कही गयी है। वहाँ मायारूपी अन्धकार की गति कहाँ ?

ऐसा कहकर सरस्वतीजी ब्रह्मलोक चली गयीं। देवताओं को और कुछ कहने सुनने का अवसर नहीं दिया। देवताओं के लिए सूर्यास्त हो गया। वे कोक की भाँति विकल हो गये।

दो. सुर स्वारथी मलीन मन, कीन्ह कुमंत्र कुठाटु।
रचि प्रपंचु माया प्रबल, भय भ्रम अरति उचाटु ॥२९५॥

अर्थ : देवता स्वार्थी हैं। उनका मन मलीन है। उन्होंने सलाह करके कुसाज साजा। प्रपञ्च, प्रबल माया, भय, भ्रम, अप्रीति और उचाट की रचना की।

व्याख्या : देवताओं को स्वार्थी कहने पर भी मलिन मन कहा। क्योंकि सरस्वती के समझाने पर भी उन्हें बोध न हुआ। यथा : तदपि मलिन मन बोध न आवा। भरतजी ने कहा था : सबके सम्मत सर्वहित करिअ प्रेम पहिचानि। तो सबको यदि उचाट हो जाय : भ्रमादि हो जाय तो काम बन सकता है। भरत पर माया नहीं चल सकती। लोगों पर तो चल सकती है। देवताओं की समष्टि की माया है। इसलिए प्रबल माया कहते हैं। लोगों को वन में भय लगने लगा। मन में अस्थिरता आगयी। घर की ओर भी मन दौड़ने लगा। सरकार की प्रीति भी कम हो गयी। चित्त में उचाट हो गया।

करि कुचालि सोचत सुरराजू। भरत हाथ सबु काजु अकाजू ॥
गये जनकु रघुनाथ समीपा। सनमाने सब रबिकुल दीपा ॥१॥

अर्थ : कुचाल करके इन्द्र सोचने लगे कि काम का बिगाड़ या सुधार तो भरत के हाथ में है। जनकजी तब रामजी के पास गये। रविकुलदीप ने सबका सम्मान किया।

व्याख्या : यद्यपि सब देवताओं ने मिलकर प्रपञ्च : माया रची। फिर भी सबके सरदार होने से इन्द्र का नाम लिया जा रहा है। उन्हीं की आज्ञा से माया

रची गयी। अब वे सोचने लगे कि जिनके ऊपर माया काम करेगी उनके हाथ में तो कुछ है नहीं। काम का बिगाड़ना या सुधारना तो भरतजी के हाथ में है और उन पर यह माया भी काम नहीं कर सकती। कवि ने : भूप भरत सब साधु समाजू। गे जहँ बिबुध कुमुद द्विजराजू : से प्रसङ्ग छोड़ा था। बीच में देवताओं का हाल कहने लगे। अब फिर वहीं से प्रसङ्ग उठाते हैं कि जनकजी रामजी के पास पहुँचे। प्रधान होने से उन्हीं का नाम लिया। रामजी ने सबका सम्मान किया।

जब रामजी को सुमन्त चक्रवर्तीजी के यहाँ लिवा चले तब दीप कहा था। यथा : रघुकुल दीपहि चले लवाई। यहाँ जनकजी के सामने भी दीप ही कह रहे हैं। भानुकुल भानु नहीं कहते अथवा राम और भरत दोनों दीप हैं। यथा : जानेउ सदा भरत कुलदीपा ' बार बार मोहि कहेउ महीपा।

समय समाज धर्म अबिरोधा। बोले तब रघुबंस पुरोधा ॥
जनक भरत संबादु सुनाई। भरत कहाउति कही सुहाई ॥२॥

अर्थ : रघुवंश के पुरोहित तब समय समाज और धर्म के अनुकूल बोले। उन्होंने जनक और भरत की बातचीत कह सुनायी और भरतजी की सोहावनी उक्ति भी कही।

व्याख्या : सरकार ने वसिष्ठजी से कहा था : उचित होय सो कीजिय नाथा। अतः तुरन्त वसिष्ठजी काम में लग गये। जनकजी के पास गये। उन्हें लिये दिये भरतजी के पास गये। समय समाज और धर्म के अविरोध बोलना ही उचित है। वसिष्ठजी रघुवंश के पुरोहित हैं। पूज्य हैं। सब प्रकार से हितचिन्तक हैं। इनका कहना कोई टाल नहीं सकता।

समय ऐसा उपस्थित है कि कोई कुछ निर्णय नहीं कर पाता। जनकजी ने भरत के ऊपर सब छोड़ा कि जो भरत कहें सो किया जाय और भरतजी कहते हैं : राखि राम रुख धर्म ब्रत पराधीन मोहि जानि। सबके सम्मत सर्वहित करिय प्रेम पहिचानि। अवध समाज के मुखिया भरत मैथिल समाज के मुखिया राजा जनक। सो इन्हीं दोनों की सम्मति सारे समाज की सम्मति समझनी चाहिए। ऐसे अवसर पर वसिष्ठ कहते हैं कि मेरी सम्मति यह है।

तात राम जस आयसु देहू। सो सब करइ मोर मत एहू ॥
सुनि रघुनाथ जोरि जुग पानी। बोले सत्य सरल मृदु बानी ॥३॥

अर्थ : हे तात राम ! तुम जैसी आज्ञा दो वही सब करें। मेरा तो यही मत है। सुनकर रामजी दोनों हाथ जोड़कर मृदु वाणी बोले।

व्याख्या : नीति प्रीति परमार्थ और स्वार्थ सबके तुम यथार्थ जानकार हो। अतः सबके सम्मत सर्वहित का निर्णय तुम्हीं कर सकते हो। अतः तुम जो आज्ञा दो वही सब लोग करें। इससे भरत के सेवाधर्म का भी निर्वाह हो जायगा। क्योंकि

इसके बाद जो कुछ भरत करेंगे वह सब करना तुम्हारी आज्ञा का पालन होने से सेवकाई के अन्तर्गत होगा।

यह सुनकर रामजी ने आज्ञा नहीं दी। बड़ों के सामने जैसा बोलना चाहिए वैसा बोले। दोनों हाथ जोड़कर सत्य सरल और मृदु वाणी बोले।

बिद्यमान आपुनि मिथिलेसू। मोर कहब सब भाँति भदेसू॥
राउर राय रजायसु होई। राउरि सपथ सही सिर सोई॥४॥

अर्थ : स्वयं मिथिलेश के विद्यमान होते हुए मेरा कहना सब तरह से गँवारपन है। आपकी और महाराज की जो आज्ञा हो मैं आपकी शपथ खाकर कहता हूँ कि वही मेरे लिए ठीक है और शिरोधार्य है।

व्याख्या : पिता के समान महाराज मिथिलेश हैं। उनके सामने आज्ञा देना अनुचित है। किसी प्रकार उचित नहीं है। आप गुरु हैं। आपकी आज्ञा सर्वोपरि है। अतः आप दोनों बड़े उपस्थित हैं। आप लोग सम्मति कर लीजिये। वही मुझे शिरोधार्य होगा। इसके लिए मैं आपकी शपथ लेता हूँ। भाव यह कि यदि आप लोगों की यही आज्ञा हुई कि तुम लौट चलो तो मैं पिता का वचन छोड़ दूँगा। यही रामजी की सत्य सरल और मृदु वाणी है।

दो. राम सपथ सुनि मुनि जनकु, सकुचे सभा समेत।
सकल बिलोकत भरत मुखु, बनइ न ऊतरु देत॥२९६॥

अर्थ : रामजी की शपथ सुनकर मुनिजी और जनकजी सभा समेत सङ्कुचित हो गये। सब लोग भरतजी का मुख देखने लगे। किसी से उत्तर देते नहीं बनता।

व्याख्या : धर्म के मर्म के जाननेवाले महापुरुष पिता के वचन के उल्लंघन करने की सम्मति दे नहीं सकते। तो जब लौटने को कह ही नहीं सकते तो और कहेंगे ही क्या? अतः किसी को उत्तर नहीं सूझता। रामजीने सरल बात कही कि मुझे तो बड़ों को बात माननी है। उनका वचन मानकर वन आया। अब स्वयं गुरुजी तथा पिता सदृश मिथिलेश कहें कि तुम लौट चलो तो मैं चलूँ। अब गुरुजी तथा जनकजी धर्मविरोध कैसे करें। इसलिए जवाब नहीं सूझता। भरतजी का मुख देखते हैं कि तुमसे जो कुछ कहते बने इस समय कहो। क्योंकि तुम्हीं इस कार्य में अग्रसर हो।

सभा सकुच बस भरत निहारी। रामबंधु धरि धीरजु भारी॥
कुसमउ देखि सनेहु सँभारा। बढ़त बिधि जिमि घटज निबारा॥१॥

अर्थ : भरतजी ने देखा कि सभा सङ्कोच के वश में पड़ गयी। तब रामजी के भाई ने भारी धैर्यधारण किया। कुसमय देखकर इस भाँति स्नेह को सँभाला जिस भाँति बढ़ते हुए विन्ध्याचल को अगस्त्यजी ने रोक दिया था।

व्याख्या : भरतजी ने देखा कि रामजी के शपथ पूर्वक कहने से अब किसी

को उत्तर नहीं सूझ रहा है। सबके सब सङ्कोच में पड़ गये। भरतजी प्रेम से भरे हुए हैं। जनकजी के आ जाने पर स्वयं कुछ कहना नहीं चाहते। अत्यन्त आवश्यकता पड़ने पर एक बार बोले थे। अब फिर बिना बोले काम नहीं चलता। अतः भारी धैर्य धारण करके बोले। रामजी भाई हैं। उनको उत्तर देने में ये ही समर्थ हैं।

कथा है कि किसी समय विन्ध्याचल बढ़ने लगा। उसका इरादा इतना बढ़ने का था जिसमें सूर्यनारायण उसकी परिक्रमा करने लगें : जिस भाँति सुमेरु की परिक्रमा करते हैं। इस अस्वाभाविक बढ़ाव को देखकर देवताओं को भय हुआ। वे लोग काशी आकर अगस्त्यजी को लिवा ले गये जो विन्ध्य के गुरु थे। उन्हें देखकर विन्ध्याचल ने साष्टाङ्ग दण्डवत् किया। मुनिजी ने कहा कि जब तक मैं दक्षिण से नहीं लौटता तब तक यों ही पड़े रहो। उस समय से विन्ध्याचल का बढ़ना रुक गया। अगस्त्यजी दक्षिण से लौटे ही नहीं।

यहाँ इतने से ही तात्पर्य है कि भरतजी का प्रेम विन्ध्याचल की भाँति बढ़ता चला जाता था। उसे रोकने से सद्गुणरूपी सुरगण असमर्थ थे। फिर भी भरतजी ने उसे ऐसा रोका जैसे अगस्त्यजी ने विन्ध्याचल को बढ़ने से रोक दिया। अर्थात् प्रेम को प्रसुप्तावस्था में ला दिया।

यहाँ भरतजी की समता अगस्त्य मुनि से और प्रेम की विन्ध्याचल से है।

सोक कनकलोचन मति छोनी। हरी बिमल गुन गन जगजोनी॥
भरत बिबेक बराह बिसाला। अनायास उधरी तेहि काला॥२॥

अर्थ : शोकरूपी हिरण्याक्ष ने निर्मल गुणरूपी जग को उत्पन्न करनेवाली बुद्धिरूपी पृथ्वी को हर लिया था। भरत के विचाररूपी विशाल वराह ने उसका तत्काल उद्धार किया।

व्याख्या : कथा है कि किसी समय हिरण्याक्ष नामी दैत्य पृथ्वी को हरण करके पाताल में ले गया था। उसे वाराह रूप में प्रकट होकर भगवान् ऊपर ले आये। यहाँ शोक को हिरण्याक्ष कहा। उसने सबकी बुद्धि हरण कर ली। समष्टि की बुद्धि होने से उसे पृथ्वी से उपमित किया। जिस भाँति पृथ्वी स्थावर जङ्गम का उत्पत्ति स्थान है उसी भाँति बुद्धि भी सब गुणगणों का उत्पत्ति स्थान है। भरत के विवेक ने उसका उद्धार किया। इसीलिए उसे वाराह कहा। भरत के विवेक से सबको बात सूझने लगी। यह बात किसी को न सूझी कि सरकार से कहें कि आप पिता का वचन मानिये। भरत नहीं मान रहे हैं। उन्हें मानने के लिए आज्ञा दीजिये। आपकी आज्ञा से भरत सब करें। उनका सेवाधर्म न बिगड़े।

करि प्रनामु सब कहँ कर जोरे। राम राउ गुरु साधु निहोरे॥
छमब आजु अति अनुचित मोरा। कहउँ बदन मृदु बचन कठोरा॥३॥

अर्थ : भरतजी ने हाथ जोड़कर प्रणाम किया। तत्पश्चात् श्रीरामजी का

जनकजी का गुरुजी का और साधुओं का निहोरा किया और बोले कि आज मेरे अत्यन्त अनुचित : आचरण को क्षमा कीजियेगा। मैं कोमल मुख से कठोर बातें कहता हूँ।

व्याख्या : पहिले प्रणाम किया। तत्पश्चात् रामजी जानकीजी गुरुजी और साधुओं से क्षमा करने के लिए निहोरा किया कि आज मैं अत्यन्त अनुचित कर रहा हूँ। बात सरकार से और गुरुजनों से हो रही है। इस बीच में मेरा हस्तक्षेप अनुचित है और तिस पर मैं कठोर कहूँगा जो कहना कि मेरे ऐसे व्यक्ति के लिए शोभा नहीं देता। अतः मेरे इस भारी अनुचित कर्म को आप लोग क्षमा करें। इसके लिए मैं निहोरा करता हूँ।

हियँ सुमिरी सारदा सुहाई। मानस ते मुख पंकज आई ॥
बिमल बिबेक धरम नय साली। भरत भारती मंजु मराली ॥४॥

अर्थ : हृदय से स्मरण करते ही सुन्दर सरस्वती मानस से मुखकमल में आगयीं। भरतजी को सरस्वती निर्मल विवेक धर्म और नीतिवाली सुन्दर हंसिनी रूप थीं।

व्याख्या : यह भरतजी की सरस्वती हैं। अतः बड़ी सुन्दर हैं। भरतजी ने उनका स्मरण किया। ये उनके मानस में रहती हैं। इसलिए उन्हें मराली कहा। स्मरण करते ही भरतजी के मुख में आगयीं। वाणी की सुन्दरता तभी है जब उसमें विवेक धर्म और नीति तीनों का योग हो। वाणीरूपी हंसिनी गुणरूपी पय और दोषरूपी जल को अलग करती हैं। पर यह हंसिनी धर्म और नीति से भी युक्त हैं। अतः अधिक सुन्दर हैं।

दो. निरखि बिबेक बिलोचननि, सिथिल सनेह समाजु।
करि प्रनामु बोले भरतु, सुमिरि सीय रघुराजु ॥२९७॥

अर्थ : विवेकरूपी नेत्र से सारे समाज को स्नेह से शिथिल देखकर उन्हें प्रणाम किया और राम जानकी को स्मरण कर भरतजी बोले।

व्याख्या : रामजी के स्नेह में मग्न समाज को देखकर भरतजी ने उस समाज को प्रणाम किया। यदि समाज का समाज प्रेममग्न हो तो वह सब प्रकार से प्रणम्य हो जाता है। बोलने के पहिले रामजानकी के स्मरण का भाव यह कि अपनी बात का सही उत्तर आप ही मेरे द्वारा दीजिये।

प्रभु पितु मातु सुहृद गुर स्वामी। पूज्य परम हित अंतरजामी ॥
सरल सुसाहिबु सील निधानू। प्रनतपालु सर्बग्य सुजानू ॥१॥

अर्थ : हे प्रभो! आप पिता माता सुहृद परमहित अन्तर्यामी हैं। आप सरल सुस्वामी शीलनिधान प्रणतपाल सर्वज्ञ और सुजान हैं।

व्याख्या : यहाँ भरतजी ने अठारह विशेषण दिये हैं। जिनमें सात तो

सम्बन्धबोधक हैं और शेष सरकार के गुणों के व्यापक हैं। ये ही विरदावली हैं जिनका वर्णन भरतजी करेंगे। अगस्त्य संहिता में सम्बन्ध को परतम स्वराट् भाव कहा है। इसके द्वारा बिना ध्यान और बिना योग के बिना तप के और बिना ज्ञान के श्री रघुनन्दन में परा अव्यभिचारिणी प्रीति नित्य बढ़ती ही रहती है। यथा : एभ्यः परतमो भावो सम्बन्धाख्यः स्वयं स्वराट्। बिना ध्यानेन तपसा योगं ज्ञानं विनैव हि। श्रीरघुनन्दने प्रीतिः पराह्यव्यभिचारिणी। वर्धतेऽनुदिनं विप्रं सत्यं सत्यं न चान्यथा। श्रीगोस्वामीजी कहते हैं : मोहि तोहि नाते अनेक मानिये जो भावै। सो भरतजी ने सात सम्बन्ध माने। पिता माता सुहृद गुरु स्वामी पूज्य और परम हित के सम्बन्ध। यहाँ पर भरतजी ने भाई के सम्बन्ध को नहीं गिनाया। क्योंकि उसके लिए कह आये हैं : दसरथ सुअन राम लघु भाई। दीन्हि मोहि बिधि बादि बड़ाई। अङ्गद ने तीन सम्बन्ध माना था : गुरु का पिता का और माता का। यथा : मोरे तुम प्रभु गुरु पितु माता। जाउँ कहाँ तजि पद जल जाता। यहाँ तो सात सात सम्बन्ध हैं। भाव यह कि मैं आपको छोड़कर कहाँ जा सकता हूँ।

प्रभु यथा : राजाराम स्वबस भगवानू।
पितु यथा : ज्येष्ठः भ्राता पितुः समः।
मातु यथा : रामहि बंधु सोच दिन राती।
अंडन्हि कमठ हृदउ जेहि भाँती॥
सुहृद यथा : सिसुपन ते परिहरेउ न संगू।
कबहु न कीन्ह मोर मन भंगू॥
गुरु यथा : बेद पुरान सुनहि मनलाई।
आप कहहिं अनुजहि समुझाई॥
स्वामी यथा : जेठ स्वामि सेवक लघु भाई।
पूज्य यथा : पूजनीय प्रिय परम जहाँ ते।
सब मानिये राम के नाते॥
परमहित यथा : भरत सरिस प्रिय को जगमाँहीं।
कबहुँ न कीन्ह मोर मन भंगू।

अब सरकार के सद्गुण कहते हैं कि श्रीमद से लोग टेढ़े हो जाते हैं। यथा : श्रीमद बक्र न कीन्ह केहि। पर सरकार महान् श्रीमान् होने पर भी सरल है। सरकार सुस्वामी हैं। अपनी ओर देखकर कुसेवक का भी भरण करते हैं। यथा : राम सुस्वामि कुसेवक मोसो। निज दिसि देखि दयानिधि पोसो। तिस पर भी शील निधान हैं। सेवक की ढिठाई पर ध्यान नहीं देते। यथा : प्रभु तरु तर कपि डारपर ते किये आपु समान। तुलसी कहूँ न राम से साहिब सील निधान। प्रणत के पालन करनेवाले हैं। यथा : सकृत प्रणाम किये अपनाये। सर्वज्ञ हैं। यथा : तुमसे कछु न छिपी करुनानिधि तुम हौ अन्तरजामी। सुजान हैं। जन के जी की बात जानते हैं। यथा : राम सुजान जान जन जी की। समर्थ हैं। दोष अपनी क्रिया उन पर नहीं कर सकते। यथा : समरथ कहँ नहिं दोष गोसाइँ। रबि पावक सुरसरि की नाइँ।

समरथु सरनागत हितकारी । गुनगाहकु अवगुन अघहारी ॥
स्वामि गोसाइँहि सरिस गोसाईं । मोहि समान मैं सांइ दोहाईं ॥२॥

अर्थ : समर्थ हैं। शरणागत के हित करनेवाले हैं। गुणग्राहक हैं। अवगुण और पाप के नाश करनेवाले हैं। हे स्वामी ! मालिक तो मालिक से ही हैं और मैं भी अपने ही जैसा हूँ। स्वामी की शपथ लेकर कहता हूँ।

व्याख्या : समर्थ के विषय में ऊपर कह आये हैं। अथवा समर्थ शब्द का अन्वय शरणागत हितकारी के साथ है। भाव यह कि सरकार शरणागत के हित करने में समर्थ हैं। यथा : जौं सभीत आवा सरनाई। रखिहौं ताहि प्रान की नाई। सरन गये प्रभु ताहु न त्यागा। बिस्व द्रोह कृत अघ जेहि लागा। सरकार गुणग्राहक हैं। यथा : देखि दोष कबहुँ न उर आने। सुनि गुन साधु समाज बखाने। सरकार अवगुन अघहारी हैं। यथा : करौं सद्य तेहि साधु समाना।

अनन्वयालङ्कार से अपने इस कथन का तात्पर्य कहते हैं कि न तो आप सा भला स्वामी कहीं है और न मुझ सा बुरा सेवक ही कोई है। यथा : राम सो खरो है कौन मोसो कौन खोटो। राम सों बड़ो है कौन मोसो कौन छोटो। अब अपनी खोटाई कहते हैं :

प्रभु पितु बचन मोह बस पेली। आयेउँ इहाँ समाजु सकेली ॥
जग भल पोच ऊँच अरु नीचू। अमिअँ अमरपद माहुरु मीचू ॥३॥

अर्थ : प्रभु और पिता के वचन को मोह के वश हटाकर यहाँ समाज इकट्ठा करके आया हूँ। संसार में बुरा भला ऊँचा और नीचा अमृत अमरपद विष और मृत्यु है।

व्याख्या : भरतजी कहते हैं कि भलाई में मेरे मालिक का जोड़ नहीं और खोटाई में मेरा कोई जोड़ नहीं। मैं ऐसा खोटा कि अज्ञान के वश में आकर प्रभु सम्मत पिता के वचन को न मानकर मैं यहाँ समाज इकट्ठा करके आया। भाव यह कि प्रभु और पिता के वचन मानने में विचार को स्थान नहीं है। इस पर विचार करना ज्ञान नहीं है अज्ञान है। सो प्रभुसम्मत पिता के वचन का मैंने स्वयं तो उल्लङ्घन किया ही और आपसे भी उल्लङ्घन कराने के लिए गुरु माता सचिव तथा पुरजनों को इकट्ठा करके यहाँ ले आया। इस बात का भी विचार न किया कि आज्ञा कोई हटा नहीं सकता। चाहे भला हो चाहे बुरा हो। चाहे ऊँचा हो चाहे नीचा हो। चाहे अमृत हो चाहे विष हो। चाहे अमरपद हो चाहे मृत्यु ही हो। सबको मानना पड़ता है।

राम रजाइ मेंटि मन माँहीं। देखा सुना कतहुँ कोउ नाँहीं ॥
सो मइ सब बिधि कीन्ह ढिठाई। प्रभु मानी सनेह सेवकाई ॥४॥

अर्थ : पर जिसने रामजी की आज्ञा को मन से भी मेटा हो ऐसा कहीं भी

किसी को न देखा न सुना। सो मैंने सब प्रकार से ढिठाई की। पर स्वामी ने उस ढिठाई को स्नेह और सेवा मान लिया।

व्याख्या : उपर्युक्त भलों और बुरों में कितनों को तो मैंने देखा है और कितनों को सुना है। पर ऐसा सामर्थ्य कहीं किसी में न पाया जो आपकी आज्ञा मन से भी मेट सके। भाव यह : नट मर्कट इव सबहि नचावत। राम खगेस बेद अस गावत। तथा : प्रभु आयसु जेहि कहँ जस अहई। सो तेहि भाँति रहे सुख लहई। प्रभु आज्ञा अपेल श्रुति गाई। करहु सो बेगि जो तुमहिं सोहाई।

मैंने ऐसे प्रभु की आज्ञा को सब प्रकार से न मानने की ढिठाई की। यह मेरी खोटाई है और उस ढिठाई को स्नेह और सेवकाई मान लेना यह सरकार का अघहारित्व है।

दो. कृपा भलाई आपनी, नाथ कीन्ह भल मोर।
दूषन भे भूषन सरिस, सुजसु चारु चहुँ ओर ॥२९८॥

अर्थ : अपनी कृपा और भलाई से नाथ ने मेरा भला किया। मेरे दूषण ही भूषण हो गये और सुन्दर सुयश चारों ओर फैल गया।

व्याख्या : जग अनभल भल एकु गोसाईं। कहिअ होइ भल कासु भलाईं। सो मुझमें भलाई थी ही नहीं। सरकार ने कृपा करके ऐसी भलाई की कि मेरे दूषण ही भूषण हो गये। मेरी ढिठाई लोगों की दृष्टि में स्नेह और सेवा के रूप में परिणत हो गयी। सरकार ने प्रशंसा कर दिया : भयउ न भुवन भरत सम भाई। सो मेरा सुन्दर सुयश चारों ओर फैल गया। यह सरकार का गुणग्राहकत्व है।

राउरि रीति सुबानि बड़ाई। जगत बिदित निगमागम गाई ॥
कूर कुटिल खल कुमति कलंकी। नीच निसील निरीस निसंकी ॥१॥

अर्थ : आपकी सुन्दर रीति आपका सुन्दर स्वभाव आपकी बड़ाई संसार में प्रसिद्ध है। उसका गान वेद शास्त्र ने किया है। जो क्रूर, कुटिल, खल, कुबुद्धि, कलङ्की, नीच, दुःशील, नास्तिक और निःशङ्क हैं।

व्याख्या : सरकार की रीति ही ऐसी है कि पतितों को पवित्र करते हैं। इसी से पतितपावन विरद हैं। यथा : ऐसी कौन प्रभु की रीति। बिरद हेतु पुनीत परिहरि पाँवरनि पर प्रीति। स्वभाव ऐसा सुन्दर है कि नीच से भी प्रीति करते हैं यदि उसमें प्रेम हो। यथा : श्रीरघुबीर की यह बानि। नीच हू सो करत प्रीति सुप्रीति उर अनुमानि। बड़ाई अर्थात् महिमा की तो सीमा ही नहीं है। यथा : महिमा अमित न कहि सकहिं सहस सारदा सेस। यह बात छिपी नहीं है। संसार जानता है। वेद और शास्त्रों में इसकी प्रशंसा है। यह सरकार का : समरथ सरनागत हितकारित्व है।

क्रूर में दया नहीं होती और दया में ही सब धर्मों का निवास है। यथा : दया में वसत नाथ सकल धरम। कुटिल में सरलता नहीं होती। कुटिल ही दुरात्मा है। उसके मन वाणी और कर्म में एकवाक्यता नहीं। यथा : मनस्यन्यत् वचस्यन्यत्

कर्मण्यन्यत् दुरात्मनाम् । खल निष्कारण ही दूसरे की बुराई करते हैं। यथा: खल बिनु कारण पर अपकारी । तामसी बुद्धिवालों की विपरीत बुद्धि होती है। वे अधर्म को ही धर्म समझते हैं। हित को अनहित समझते हैं। यथा : तव उर कुमति बसी बिपरीता । हित अनहित मानहुँ रिपु प्रीता। कलङ्की को दुनिया बुरा कहती है। यथा : कुल कलंक जेहि जनम्यो मोही। अपजस भाजन प्रिय जन द्रोही। लोक वेद से बहिष्कृत को नीच कहते हैं। यथा : लोक बेद बाहर सब भाँती। आचारहीन को दुःशील कहते हैं। उन्हें वेद भी पवित्र नहीं कर सकते। यथा : आचारहीनं न पुनन्ति वेदाः । निरीश ही असुर हैं। यथा : मानहि मातु पिता नहिं देवा। साधुन्ह सन करवावहि सेवा । जिनके अस आचरण भवानी । ते जानहु निसिचर सब प्रानी। निःशङ्क से भाव यह कि जिनको परलोक का डर नहीं। यथा : स्वारथ बस परलोक नसाही । ये शरण में रक्खे जाने के पात्र नहीं हैं।

तेउ सुनि सरन सामुहे आए। सकृत प्रनाम किहें अपनाए ॥
देखि दोष कबहु न उर आने। सुनि गुन साधु समाज बखाने ॥२॥

अर्थ : वे भी सुनकर जहाँ सामने आये और एक बार प्रणाम किया तहाँ आपने अपना लिया। देखकर भी दोष को हृदय में स्थान नहीं देते। गुणों को सुनकर भी साधुसमाज में बखान करते हैं।

व्याख्या : ऐसे क्रूर कुटिल खल से सभी दूर भागते हैं। पर सरकार की बात दूसरी है। आपके सामने यदि ऐसा पुरुष भी आपके गुण गणों को सुनकर शरण में आवे तो एक बार प्रणाम करने से ही आप उसे अपना लेते है। पहिली बात यह है कि आपके सुयश सुनने से उसे यह सङ्कल्प हो कि मैं ऐसे के अनुकूल चलूँगा। इनके प्रतिकूल का परित्याग करूँगा और उसे विश्वास हो जाय कि सरकार निश्चय मेरी रक्षा करेंगे मैं इन्हीं को अपना रक्षक मानूँगा। मुझ से तो सब बिगड़ गया और अपने को सरकार को समर्पण कर दें तो सरकार एक प्रणाम से प्रसन्न होकर उसे अपना बना लेते हैं। वह तदीय हो जाता है।

यथा : सनमुख होइ जीव मोहि जबहीं। जनम कोटि अघ नासहिं तबहीं।
जौ नर होइ चराचर द्रोही। आवै सभय सरन तकि मोही।
तजि मदमोह कपट छल नाना। करौं सद्य तेहि साधु समाना।

उसके एक प्रणाम से रामजी प्रसन्न हो जाते हैं। उस प्रणाम की बड़ी महिमा है। यहाँ : प्रनत पाल सरवज्ञ सुजानू का साफल्य दिखलाया।

उसके दोषों को कभी हृदय में स्थान नहीं देते। देखते हुए भी नहीं देखते।

यथा : जेहि अघ बधेउ ब्याध जिमि बाली।
फिरि सुकंठ सोइ कीन्हि कुचाली ॥
सोइ करतूति बिभीषन केरी।
सपनेहुँ सो न राम हियँ हेरी ॥

तेहि भरतहिं भेटत सनमाने ।
राजसभाँ रघुबीर बखाने ।।

जो तदीय हो चुका उससे चूक भी हो जाय तो वह फिर परित्यक्त नहीं होता । ऐसा सुन्दर सरकार का स्वभाव है । अब बड़ाई कहते हैं ।

को साहिब सेवकहि नेवाजी । आपु समाज साज सब साजी ।।
निज करतूति न समुझिअ सपनें । सेवक सकुच सोचु उर अपने ।।३।।

अर्थ : ऐसा कौन स्वामी है जो सेवक पर कृपा करके अपने सब समाज और साज साज दे । अपनी करतूत पर स्वप्न में भी ध्यान न दे । यदि सेवक को सङ्कोच हो तो अपने मन में सोच हो ।

व्याख्या : सेवक कैसा भी हितचिन्तक हो पर उसे कोई बराबरी का दर्जा नहीं देता । पर रामजी की यह बड़ाई है कि उसका स्वयं समाज साज देते हैं ।

यथा : बालि त्रास ब्याकुल दिन राती ।
तन बहु ब्रन चिंता जर छाती ।।
सो सुग्रीव कीन्ह कपि राऊ ।
अति कृपाल रघुबीर सुभाऊ ।।
प्रभु तरुतर कपि डारपर ते किये आपु समान ।
तुलसी कहूँ न राम से साहिब सील निधान ।।

सरकार का स्वभाव बड़ा विस्मरणशील है । स्वयं जो जो भलाई किया है उसे भूल जाते हैं और सेवक को यदि सङ्कोच हो तो उन्हें मन में सोच होता है अर्थात् सङ्कोच मिटाने का प्रयत्न करते हैं । यथा : सकुच बिहाय मागु नृप मोही । तथा : मन प्रसन्न करि सकुच तजि कहहु करउँ सोइ आजु ।

सो गोसाइँ नहि दूसर कोपी । भुजा उठाइ कहउँ पन रोपी ।।
पसु नाचत सुक पाठ प्रबीना । गुन गति नट पाठक आधीना ।।४।।

अर्थ : ऐसा मालिक दूसरा कोई नहीं है । मैं भुजा उठाकर और प्रण करके कहता हूँ । पशु नाचते हैं और तोता पाठ करने में प्रवीण होता है । परन्तु गुण और गति नट और पाठक के अधीन होता है ।

व्याख्या : भरतजी कहते हैं कि मालिक तो बहुत हैं । पर ऐसा मालिक कोई है नहीं । भुजा उठाकर प्रण रोपकर मैं कहता हूँ : सारी सभा में सबका साक्षी देने के लिए भुजा उठाकर प्रण किया जाता है । यथा : निसिचर हीन करउँ महि भुज उठाइ पन कीन्ह । कि : स्वामि गोसाइँहि सरिस गोसाइँ ।

सरकार ने जो कहा : भयउ न भुवन भरत सम भाई इत्यादि । उसपर भरतजी कहते हैं कि इसमें मेरी करतूत कुछ नहीं । पशु नाचता है । उसके नृत्य की गति नट के आधीन होती है । उसकी शिक्षा के अनुसार वह नाचता है । तोता श्लोक

पढ़ता है। वह कुछ नहीं समझता। जैसा सिखाया हुआ है वैसा कहता है। सो मेरे में जो गुण दिखायी पड़ते हैं वे सरकार की प्रेरणा से हैं। यह अन्तर्यामित्व है।

दो. यों सुधारि सनमानि जन, किये साधु सिरमोर।
को कृपालु बिनु पालिहैं, बिरदावलि बरजोर ॥२९९॥

अर्थ : इस भाँति अपने जन को सुधारकर और सम्मान देकर साधुओं का सिरमौर बना दिया। कृपालु के बिना ऐसी बाँकी विरदावली का कौन बल पूर्वक पालन कर सकता है।

व्याख्या : मुझमें गुण कहाँ। जो दिखायी पड़ते हैं वे सरकार के सिखाये हैं। यथा : बेद पुरान सुनहिं मन लाई। आप कहहिं अनुजन्ह समुझाई। अथवा मैंने तो ढिठाई की। न पिता की आज्ञा मानी न सरकार की शिक्षा मानी। परन्तु सरकार ने बलपूर्वक बिगड़ी हुई बात को सुधार दिया। यथा : सुनहु लखन भल भरत सरीखा। बिधि प्रपंच मह सुना न दीखा। सम्मान दिया। यथा : उठे राम सुनि प्रेम अधीरा। कहुँ पट कहुँ निषंग कहुँ तीरा। साधु सिरमौर बनाया। यथा : भरतहिं होइ न राजमद बिधि हरि हर पद पाइ। कबहुँ कि काँजो सीकरन्हि छीर सिंधु बिनसाइ। यहाँ : प्रभु पितु मातु सुहृद गुर स्वामी। पूज्य परम हित का साफल्य दिखलाया।

सोक सनेह कि बाल सुभाएँ। आयेउँ लाइ रजायसु बाएँ॥
तबहुँ कृपाल हेरि निज ओरा। सबहि भाँति भल मानेउ मोरा ॥१॥

अर्थ : शोक से स्नेह से या बाल स्वभाव से आज्ञा को हटाकर मैं यहाँ आया। फिर भी कृपालु ने अपनी ओर देखकर सभी भाँति से मेरा भला ही माना।

व्याख्या : भरतजी अपना दोष कहते हैं कि मैं स्वयं निश्चय नहीं कर सकता कि मैं यहाँ क्यों आया ? शोक के कारण आया कि स्नेह के कारण आया कि बाल-स्वभाव से आया। यहाँ बाल का अर्थ अज्ञानी है। अर्थात् स्वभाव से मैं अज्ञानी हूँ। उसी स्वभाव की प्रेरणा से आया है। चाहे जैसे आया पर आज्ञा उल्लंघन करके ही आया। क्योंकि आज्ञा पालन में विचार को स्थान नहीं है। यथा : मातु पिता गुरु प्रभु कै बानी। बिनहि बिचार करिअ सुभजानी। शोक यथा : राम लखन सिय बिनु पग पनही। करि मुनिबेष फिरहि बन बनही। एहि दु:ख दाह दहै दिन छाती। भूख न बासर नींद न राती।

स्नेह यथा : देखे बिनु रघुनाथ पद जिय कै जरनि न जाइ।

बाल सुभाएँ यथा : आन उपाउ मोहि नहिं सूझा।

सरकार कृपालु हैं। अपनी ओर देखते हैं। जन के दोष को नहीं देखते। जब मुझ से आज्ञा भङ्ग का अपराध नहीं हुआ था तब तो भला मानना ही था। यथा : तात बचन पुनि मातु हित भाइ भरत अस राउ। मो कह दरस तुम्हार प्रभु सब मम पुन्य प्रभाउ। आज्ञा भङ्ग करने पर भी भला ही माना। नहीं तो मैं इस योग्य

था कि मेरा मुख भी न देखते। यथा : राम लखन सिय सुनि मम नाऊँ। उठि जनि अनत जाहिं तजि ठाऊँ। सो मुझे दर्शन दिया।

देखेउँ पायँ सुमंगल मूला। जानेउँ स्वामी सहज अनुकूला ॥
बड़े समाज बिलोकेउँ भागू। बड़ी चूक साहिब अनुरागू ॥२॥

अर्थ : सुमङ्गलमूल चरणों का दर्शन पाया। जाना कि स्वामी की स्वभाविक कृपा बनी है। बड़े समाज में अपना भाग्य देखा कि मुझ से बड़ी चूक होने पर भी स्वामी अनुकूल हैं।

व्याख्या : सरकार मेरा नाम सुनने पर भी दूसरी जगह नहीं चले गये। इन मङ्गलमूल चरणों का दर्शन हुआ। तब मुझे मालूम हुआ कि सरकार की स्वाभाविक अनुकूलता में कोई भेद नहीं पड़ा।

इतना ही नहीं। इतनी बड़ी चूक पर भी स्वामी का इतना अधिक अनुराग है। इससे मैं अपने को बड़भागी मानता हूँ। यह सभा बड़ों की है। जिसमें गुरु श्वशुर माता सचिव तथा वृद्ध महाजन सभी एकत्रित हैं। इसमें सरकार ने पिता के वचन के गौरव से अधिक मेरे सङ्कोच को स्थान दिया। यथा : तासु बचन मेटत मन सोचू। तेहि ते अधिक तुम्हार संकोचू : जो मैं कहूँ वही कर डालने पर तैयार हो गये और श्रीमुख से मेरे भाग्य की बड़ाई की।

कृपा अनुग्रह अंगु अघाई। कीन्हि कृपानिधि सब अधिकाई ॥
राखा मोर दुलार गोसाईं। अपने सील सुभायँ भलाई ॥३॥

अर्थ : हे गोसाईं ! हे कृपानिधे ! आप ने कृपा और साङ्ग अनुग्रह जी खोलकर अधिकता के साथ किया। अपने शील स्वभाव और भलाई से मेरा दुलार रक्खा।

व्याख्या : भरतजी कहते हैं कि मेरे अपराधों को केवल क्षमा ही नहीं किया बल्कि उन अपराधों को ही सद्‌गुण का रूप दे दिया। दूषण भूषण हो गये। दुर्यश सुयश हो गया। सम्मान मिला। मैं साधुओं का सिरमौर बन गया। मेरे लिए पिता का वचन तक त्यागने को प्रस्तुत हो गये। अब कृपा और अनुग्रह का कौन सा अङ्ग बचा जिसका प्रयोग मुझ पर जी खोलकर और पूरी तरह से नहीं किया गया।

मेरा दुलार सदा से होता आया है। उसे ब्रह्मा नहीं सह सके। माँ के व्याज से उसमें बीज डालना चाहा। यथा : बिधि न सकेउ सहि मोर दुलारा। नीच बीच जननी मिस पारा। परन्तु सरकार ने अपने शील स्वभाव और भलाई से मेरा दुलार रख लिया। ब्रह्मा का बिगाड़ा भी नहीं बिगड़ा। सरकार का शील स्वभाव और भलाई प्रख्यात है।

शील यथा : तुलसी कहूँ न राम ते साहिब सील निधान।
स्वभाव यथा : जासु स्वभाव अरिहु अनुकूला।

भलाई। यथा : राम निकाई रावरी है सबहीं को नीक।

नाथ निपट मइ कीन्हि ढिठाई। स्वामि समाज सकोच बिहाई ॥
अबिनय बिनय जथारुचि बानी। छमिहि देउ अति आरति जानी ॥४॥

अर्थ : हे नाथ ! मैंने अत्यन्त ढिठाई की। जो स्वामी और समाज के सङ्कोच को छोड़कर नरम और कड़ी मनमानी वाणी कही। हे राजन् ! उसे मुझे अत्यन्त आर्त्त जानकर क्षमा करें।

व्याख्या : कहऊँ बदन मृदु बचन कठोरा से उपक्रम करके : अबिनय बिनय यथा रुचि बानी से उपसंहार कर रहे हैं। यहाँ स्वामी और बड़ों का समाज उपस्थित है। ऐसे समाज में सङ्कोच ही उचित है। यदि बोले भी तो संयत भाषा में ही बोलना उचित है। भरतजी कहते हैं सो मैं सङ्कोच छोड़कर इतना बोल गया और उसमें कठोर वाणी भी कही। यथा : फरइ कि कोदव बालि सुसाली। मुकता प्रसव कि संबुक काली इत्यादि। अतः क्षमा माँगता हूँ। मैं अत्यन्त आर्त्त हूँ और आप सुस्वामी हैं। यथा : कटु कहिये गाढ़े परे सुनि समुझि सुसाँइँ।

दो. सुहृद सुजान सुसाहिबहि, बहुत कहब बड़ि खोरि।
आयसु देइअ देव अब, सबुइ सुधारी मोरि ॥३००॥

अर्थ : सुहृद सुजान और सुस्वामी से बहुत कहना भी बड़ा दोष है। हे राजन् ! अब आप आज्ञा दें और मेरा सब कुछ सुधार दें।

व्याख्या : सुहृद सुजान और सुसाहिब से अधिक न कहना चाहिए। क्योंकि अधिक कहने का यह अर्थ होता है कि स्वामी सुहृद सुजान नहीं हैं। अब मैं विनती कर चुका और सरकार ने सादर सुना भी। अब आप आज्ञा दें। आपके आज्ञा देने से ही सब सुधर जायगा। भाव यह कि जिसकी आज्ञा चले वही राजा है। आपकी आज्ञा से मैं काम करूँगा तो राजा आप रहे मैं सेवक रहा। मेरा सेवधर्म बना रह जायगा। सरकार ने मेरे दूषण को भूषण तो किया। अब आज्ञा देकर मेरी बिगड़ी भी सुधार दें। यथा : बिगरी बनावै कृपानिधि की कृपा नई।

प्रभु पद पदुम पराग दोहाई। सत्य सुकृत सुख सीव सुहाई ॥
सो करि कहउँ हिये अपने की। रुचि जागत सोवत सपनेकी ॥१॥

अर्थ : जो सत्य सुकृत और सुख की सुन्दर सीमा हैं उस स्वामी के चरण कमल के रज की दोहाई देकर जागत सोवत और सपने की रुचि जो हृदय में है कहता हूँ।

व्याख्या : सरकार सुन्दर सत्य की सीमा हैं। जगत् में आपेक्षिक सत्य है। पूर्ण रूपेण सत्य तो सरकार ही हैं। सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म। सत्यसंध दृढ़ब्रत रघुराई। सरकार सुकृत की सीमा हैं। यथा : सुकृत सनेह अवधि रघुराई। सरकार आनन्द की सीमा हैं। यथा : जो आनन्द सिंधु सुख रासी। इस भाँति रामजी को सच्चि-

दानन्द दिनेश कहा। ऐसे महाप्रभु की शपथ लेकर अपनी रुचि कहते हैं। जो जाग्रत अवस्था में तो सदा बनी ही रहती है। स्वप्न भी जाग्रत के संस्कार के अनुरूप ही होता है। अतः स्वप्न में भी यही रुचि संस्कार रूप से रहती है। घोर निद्रा के समय में भी वह बीज रूप से रहती है। गुरुजी ने सरकार को मेरी रुचि रखने को कहा। सरकार भी उसके रखने के लिए सब तरह से तैयार हैं। अतः मैं उसे कहे देता हूँ।

सहज सनेह स्वामि सेवकाई। स्वारथ छल फल चारि बिहाई॥
अग्या सम न सुसाहिब सेवा। सो प्रसादु जन पावइ देवा॥२॥

अर्थ : स्वामी की सेवा में स्नेह हो। चारों फल सम्बन्धी स्वार्थ रूपी छल छोड़कर हो। अच्छे स्वामी की सबसे बड़ी सेवा आज्ञा पालन है। वही प्रसाद आपका दास चाहता है।

व्याख्या : सच्ची सेवा में स्वार्थ ही छल है और जितने स्वार्थ हैं वे अर्थ धर्म काम और मोक्ष के अन्तर्गत हैं। अतः इनसे रहित स्वामी की सेवा में सहज स्नेह चाहता हूँ। कपट प्रीति या कृत्रिम प्रीति नहीं चाहता। सेवा में भी सबसे बड़ी स्वामी की आज्ञा है। अतः आप कृपा करके आज्ञा दें। उसी का मैं पालन करूँ। आपकी आज्ञा से जो कुछ मैं करूँगा। वही सरकार की सेवा हो जायेगी। अतः अब मैं यही प्रसाद चाहता हूँ कि मुझे आज्ञा हो कि भरत ! तू यह कर। बस इतना ही मेरा अभीष्ट है।

अस कहि प्रेम बिबस भए भारी। पुलक सरीर बिलोचन बारी॥
प्रभु पद कमल गहे अकुलाई। समउ सनेहु न सो कहि जाई॥३॥

अर्थ : ऐसा कहकर भारी प्रेम के वश हुए। उनके शरीर में पुलक हो आया। आँखें डबडबा आयीं। सरकार के चरण को व्याकुल होकर पकंड़ लिया। उस समय का वह स्नेह कहा नहीं जाता।

व्याख्या : पहिले स्नेह सँभाला था। बढ़त बिन्ध्य जिमि घटज निवारा। परन्तु इस बात के निवेदन करने में वह स्नेह नहीं सँभल सका। फूट चला। अतः एकदम प्रेम के विवश हो गये। उन्हें सात्त्विक भाव हो गया। प्रेम में डूबने लगे। आधार की भाँति चरण को व्याकुल होकर पकड़ लिया। भरतजी को सब दुःख स्वीकार है। पर सरकार असामञ्जस्य में न रहें।

कृपासिंधु सनमानि सुबानी। बैठाये समीप गहि पानी॥
भरत बिनय सुनि देखि सुभाऊ। सिथिल सनेह सभा रघुराऊ॥४॥

अर्थ : कृपासिन्धु ने सुन्दर वाणी से सम्मान करके हाथ पकड़कर बैठाया। भरतजी का विनय सुनकर और स्वभाव देखकर सारी सभा और स्वयं रामजी स्नेह से शिथिल हो गये।

व्याख्या : भरतजी चरणों पर गिरे थे। सरकार ने उनका हाथ पकड़कर निकट बैठाया। सरकार कृपासिन्धु हैं। भरतजी के आचरण से द्रवीभूत हो गये। उनका सत्कार सुन्दर वाणी से किया। सभा ने और रामजी ने भरतजी का विनय सुना। जिसका तात्पर्य यह था कि मेरा स्वामीसेवक भाव न बिगड़े। भरतजी सब दुःख सहने को तैयार हैं। पर सरकार की आज्ञा से। निर्गलितार्थ यह कि आप मालिक होना स्वीकार करिये। सब कुछ आप की आज्ञा से हो।

सुरगुरुजी ने पहिले ही कहा था : देखु देवपति भरत प्रभाऊ। सहज सनेह बिबस रघुराऊ। सो विनय सुनकर और स्वभाव देखकर सभा सहित रामजी स्नेह से शिथिल हो गये।

छं. रघुराउ सिथिल सनेहु साधु समाज मुनि मिथिला धनी।
मन महु सराहत भरत भायप भगति की महिमा घनी॥
भरतहि प्रसंसत बिबुध बरखत सुमन मानस मलिन से।
तुलसी बिकल सब लोग सुनि सकुचे निसागम नलिन से॥

अर्थ : रामजी साधु समाज मुनि मिथिलेश सब स्नेह से शिथिल हो गये और मन ही मन भरतजी के भाईपन तथा भक्ति की महा महिमा की सराहना करने लगे। देवता लोग भरतजी की प्रशंसा करते हैं और मलिन मन से फूल बरसाते हैं। तुलसीदासजी कहते हैं कि सब लोग सुनकर विकल हो गये और रात आने पर कमल की भाँति सङ्कुचित हो गये।

व्याख्या : पहिले कह आये हैं : सिथिल सनेह सभा रघुराऊ। इसी पुरइन का कमल है : रघुराउ सिथिल सनेह साधु समाज मुनि मिथिलाधनी। सभा में ये ही लोग थे। वे सबके सब स्नेह में ऐसे शिथिल हो गये कि मुख से वाक्य नहीं निकलता। भरतजी के भाईपन की सराहना मन ही मन कर रहे हैं कि भरतजी सब दुःख सहने को तैयार हैं। पर रामजी के चित्त पर सङ्कोच की छाया तक नहीं आने देते और भक्ति की महामहिमा की प्रशंसा करते हैं कि जिसके प्रभाव से सारी सभा जिसमें ऐसे ऐसे धुरन्धर ज्ञानी भी हैं स्नेह से शिथिल हो गयी। सभा की गति कहकर अब देवताओं का हाल कहते हैं कि अपनी कार्य सिद्धि भरतजी द्वारा होते देखकर फूलों की वर्षा कर रहे हैं। पर मलिन मन से करते हैं। क्योंकि मन इनका शुद्ध नहीं है। लोगों की यह अवस्था हुई कि यह दशा सुनकर वे मुरझा गये। पहले उनका छटपटाना कहा था। यथा : सुनि सुधि सोच बिकल सब लोगा। मनहु मीनगन नव जल जोगा। अब उनका मुरझाना कहते हैं कि निशागमन के कारण जैसे कमल सङ्कुचित हो जाता है वैसे हो गये।

सो. देखि दुखारी दीन, दुहु समाज नर नारि सब।
मघवा महा मलीन, मुए मारि मंगल चहत॥२०१॥

अर्थ : दोनों समाज के सब नर नारियों को दीन दुःखी देखकर महामलिन इन्द्र मरे हुए को मारकर मङ्गल चाहते हैं।

व्याख्या : जो स्वयं दुःख से दुःखी हो रहा हो उसे और दुःख देने के लिए तत्पर होना ही मरे हुए को मारना है। सभा का सब समाचार पाकर लोग बड़े दुःखी हुए। इन्द्र ने देखा कि इनका दुःखी होना भी सरकार के लौट चलने का कारण हो सकता है। अतः ऐसा उपाय होना चाहिए जिसमें लोगों की बुद्धि ही पलट जाय। ये रामजी के साथ वन में रहना चाहते हैं। सो उन्हें घर लौटना अच्छा लगने लगे। दीन दुखियों का मन स्वस्थ नहीं होता। उन पर माया शीघ्र काम करती है। अतः यही समय माया करने का है। देवता मानस मलिन हैं। देवराज इन्द्र महा-मलिन हैं।

कपट कुचालि सींव सुरराजू। पर अकाज प्रिय आपन काजू॥
काक समान पाकरिपु रीती। छली मलीन कतहूँ न प्रतीती॥१॥

अर्थ : देवराज तो कपट और कुचाल की सीमा हैं। इन्हें दूसरे का काम बिगाड़ना और अपना काम बनाना प्रिय है। इन्द्र की रीति कौवे के समान है। छली हैं। मलिन हैं। इन्हें कहीं भी विश्वास नहीं है।

व्याख्या : इन्द्र को केवल अपना काम प्रिय हो इतनी ही बात नहीं। दूसरे का काम बिगाड़ना भी उतना ही प्रिय है। देवता लोगों को केवल अपना काम प्रिय था। अपना काम हाते ही फूलों की वर्षा करने लगे। परन्तु इन्द्र से लोगों में इतनी भक्ति का होना न देखा गया। उनके मानसिक सद्भाव को बिगाड़ने पर तुल गये।

उनकी रीति कौवे की रीति सी है। जिस भाँति कौआ छली मलिन होता है उसे किसी का विश्वास नहीं होता। उसी भाँति इन्द्र भी छली हैं। मलिन हैं। दिव्य शरीर प्राप्त करने पर भी इनके हृदय का मालिन्य दूर नहीं हुआ। माया कर ही बैठे। इन्हें कहीं विश्वास नहीं। स्पष्ट देख रहे हैं कि भरतजी रामजी की आज्ञानुसार ही चलना चाहते हैं और रामजी को पिता की आज्ञा शिरोधार्य है। पर इन्द्र को इन पर भी विश्वास नहीं। कदाचित् लोगों के अनुरोध से ही रामजी लौट जायँ इस सन्देह के कारण उन पर माया चलाना चाहते हैं। भाव यह कि जहाँ विषय की लोलुपता है वहाँ कपट और कुचाल रहेगा ही। इन्द्रपद विषय भोग की सीमा है। अतः वहाँ कपट कुचाल की पराकाष्ठा रहेगी ही।

प्रथम कुमत करि कपटु सँकेला। सो उचाटु सबके सिर मेला॥
सुरमाया सब लोग बिमोहे। राम प्रेम अतिसय न बिछोहे॥२॥

अर्थ : पहिले ही कुमन्त्रणा करके माया की रचना की थी। उसी उच्चाटन को सबके ऊपर डाल दिया। देवताओं की माया से सब लोग मोहित हो गये। रामजी के प्रेम से अत्यन्त बिरहाकुल नहीं हुए।

व्याख्या : रचि प्रपंच माया प्रबल भय भ्रम अरति उचाट। इस प्रकार जो माया पहिले सब ने मिलकर बनायी थी उसी का प्रयोग समय पाकर सबके ऊपर कर दिया। यहाँ उच्चाटन के अन्तर्गत भय भ्रम और आर्त्ति को समझ लेना चाहिए। देवताओं ने उच्चाटन का प्रयोग किया। इससे लोगों को रामजी के विरह का जितना दुःख होना था उतना नहीं हुआ। कर मीजहिं सिर धुनि पछिताहीं। जिमि बिनु पंख बिहग अकुलाहीं। ऐसी दशा नहीं हुई।

भय उचाट बस मन थिर नाहीं। छन बन रुचि छन सदन सोहाहीं॥
दुबिध मनोगति प्रजा दुखारी। सरित सिंधु संगम जनु बारी॥३॥

अर्थ : भय और उचाट के वश हो गये। मनमें स्थिरता नहीं रह गयी। क्षण में वन में रहने को जो चाहने लगा। दूसरे क्षण में घर की ओर मन दौड़ने लगा। मन की द्विविध गति से प्रजा दुःखी हो गयी जैसे नदी और समुद्र के सङ्गम में श्रेष्ठ जल की दशा हो जाती है।

व्याख्या : उच्चाटनवाली माया सबके हृदय में काम करने लगी। ज्वारभाटा आने लगा। कभी समुद्र के पानी का वेग नदी में आ जाता है। इससे नदी में बाढ़ आजाती है और कभी उसके हट जाने से स्वाभाविक अवस्था में हो जाती है। इसी भाँति उनके हृदय में कभी रामजीका प्रेम अत्यन्त अधिक हो जाता है और कभी घर को सुधि आने से कम हो जाता है। पर सर्वथा प्रेमाभाव नहीं होता।

नदी की गति स्वाभाविक समुद्र की ओर जाने की है। पर समुद्र का सङ्गम होने पर उस गति में बाधा आ पड़ती है। समुद्र के झोंके के कारण नदी का जल कभी उलट पड़ता है और उसकी उलटी गति हो जाती है फिर ठीक हो जाता है। फिर उलटा बहने लगता है। यह क्रम सङ्गम पर चला ही करता है। जल की एक गति नहीं होने पाती। यही दशा लोगों के चित्त नदी की हो गयी। मन रामसिन्धु की ओर तो अनवरत जाता ही रहता है पर बार बार घर की ओर भी लौटता है।

दुचित कतहुँ परितोषु न लहहीं। एक एक सन मरमु न कहहीं॥
लखि हियँ हँसि कह कृपानिधानू। सरिस स्वान मघवान जुवानू॥४॥

अर्थ : मनकी द्विविध गति हो जाने से कहीं भी सन्तोष नहीं हो रहा है। एक दूसरे से मर्म नहीं कह रहे हैं। इस बात को लखकर कृपानिधान मन ही मन हँसकर कहने लगे कि श्वान जवान और मघवान : इन्द्र एक से ही हैं।

व्याख्या : न घर में मन ठहरता है न वन में लगता है। कहीं शान्ति नहीं पाता। मन के इस प्रकार के परिवर्तन को कोई एक दूसरे पर प्रकाशित नहीं करता। सङ्कोच मालूम होता है कि कहीं : सुख समेत सम्वत दुइ साता। पल सम होहिं न जनिअहिं जाता। इत्यादि भावना थी और कहाँ दो ही दिन में घर की ओर मन दौड़ने लगा।

इस बात को कृपा सिन्धु रामजी ने लखा। कृपा सिन्धु हैं। यह देखकर भी अप्रसन्न नहीं होते। मन ही मन इन्द्र की करणी पर हँसते हैं कि व्याकरण शास्त्र में भी श्वन् युवन् मघवन् शब्दों की एक ही गति है। यथा : श्वयुवमघोनामतद्धिते। व्यवहार में भी ऐसा ही जान पड़ता है। विषय लोलुपता तीनों में समान है।

दो. भरतु जनकु मुनिजन सचिव, साधु सचेत बिहाइ।
लागि देवमाया सबहिं, तथा जोगु जनु पाइ ॥३०२॥

अर्थ : भरत, जनक, मुनिगण, मन्त्री और सावधान साधुओं को छोड़कर देवताओं की माया और सभी को जो जैसा था उसे वैसी ही लगी।

व्याख्या : सो उचाट सबके सिर मेला। इसलिए सबको देवमाया लगी। किसी को कम किसी को अधिक। उनकी साधुता और सावधानता के तारतम्यानुसार लगी। भरतजी, जनकजी, मुनिगण, मन्त्रिगण और सावधान साधु पर देवमाया का कोई प्रभाव नहीं पड़ा। भाव यह : राम भगति चिंतामनि सुन्दर। बसइ गरुड़ जाके उर अंतर। तेहि बिलोकि माया सकुचाई। करि न सकै कछु निज प्रभुताई।

कृपा सिंधु लखि लोग दुखारे। निज सनेह सुरपति छल भारे॥
सभा राउ गुरु महिसुर मंत्री। भरत भगति सब कै मति जंत्री ॥१॥

अर्थ : कृपा सिन्धु रामजी ने देखा कि लोग मेरे स्नेह और इन्द्र की प्रबल माया से दुःखी हो रहे हैं और सभा, राजा, गुरुजी, ब्राह्मण और मन्त्रियों की बुद्धि को भरतजी की भक्ति ने जकड़ रक्खा है।

व्याख्या : सरकार ने देखा कि द्विविधा में पड़े हुए लोग दुःखी हो रहे हैं। इन्द्र की माया उन्हें घर की ओर खींच ले जाती है। मेरा स्नेह भी छोड़ते नहीं बनता और इधर सभा, महाराज, जनक, वसिष्ठजी, ब्राह्मण और मन्त्री समाज भरत की भक्ति के वशीभूत हो रहा है। यथा : रघुराउ सिथिल सनेह साधु समाज मुनि मिथिलाधनी। कोई अपने काबू में नहीं है।

रामहिं चितवत चित्र लिखे से। सकुचत बोलत बचन सिखे से॥
भरत प्रीति नति बिनय बड़ाई। सुनत सुखद बरनत कठिनाई ॥२॥

अर्थ : रामजी को इस भाँति देख रहे हैं मानो चित्र में लिखे गये हों और बोलते हुए सङ्कुचित होते हैं। मानो सिखायी हुई बातें बोल रहे हैं। भरत की प्रीति नम्रता विनय और बड़ाई सुनने में तो सुख देनेवाली है पर उसका वर्णन कठिन है।

व्याख्या : अतः जिन्हें इन्द्र की माया लगी है वे भी और जिन्हें नहीं लगी है वे भी एकटक रामजी की ओर देख रहे हैं कि देखें सरकार की क्या मर्जी होती है। सबको स्वयं कुछ कहने में सङ्कोच हो रहा है जैसे सिखी सिखायी बात कहने में सङ्कोच होता है। जो बात मन से उठती है वह बिना कहे नहीं रही जाती और सिखी सिखायी बात समय पड़ने पर भूल जाती है।

भरतजी की प्रीति यथा : अस कहि प्रेम बिबस भये भारी।
भरतजी की नति यथा : प्रभु पद पदुम गहे अकुलाई।
भरतजी की विनय यथा : प्रभु पद पदुम पराग दोहाई।
सत्य सुकृत सुख सीम सोहाई॥
सो करि कहौं हिये अपने की।
रुचि जागत सोवत सपने की॥
भरतजी की वड़ाई यथा : सहज सनेह स्वामि सेवकाई।
स्वारथ छल फल चारि बिहाई॥

जासु बिलोकि भगति लवलेसू। प्रेम मगन मुनिगन मिथिलेसू॥
महिमा तासु कहै किमि तुलसी। भगति सुभाय सुमति हियँ हुलसी॥३॥

अर्थ : जिसके भक्ति के लवलेश को देखकर मुनिगण और मिथिलेश प्रेम में मग्न हो गये। उसकी महिमा तुलसी कैसे कहे। भक्ति के स्वभाव से सुमति तो उठी।

व्याख्या : भरत सुप्रेम पयोधि। भरत जी प्रेम के समुद्र हैं। समुद्र की तरङ्ग तट पर स्थित मनुष्य को सराबोर कर देती है। पर भरत ऐसे समुद्र हैं कि इनकी भक्ति के लवलेश के दर्शन से मुनिगण और स्वयं मिथिलेश जैसे ज्ञानी प्रेम में मग्न हो जाते हैं। उस भक्ति की महिमा तुलसी कैसे कह सकता है। परन्तु भक्ति का स्वभाव है कि उसके कारण सुमति उठती है। सो हृदय में सुमति उठी परन्तु :

आपु छोटि महिमा बड़ि जानी। कबिकुल कानि मानि सकुचानी॥
कहि न सकत गुन रुचि अधिकाई। मति गति बाल बचन की नाई॥४॥

अर्थ : अपने को छोटी और महिमा को बड़ी जानकर कविकुल की मर्यादा पर ध्यान देकर सङ्कुचित हो गयी। गुण कह नहीं सकती और रुचि अधिक है। सो बुद्धि की गति बच्चों के वचन जैसी हो गयी।

व्याख्या : भक्ति के प्रभाव से सुमति तो उठी पर उसने देखा कि मैं छोटी हूँ और महिमा बड़ी है। मेरा वर्णन करने के लिए प्रयत्न करना कविकुल की प्रतिष्ठा को बिगाड़ना है। अतः गुणों का वर्णन कर नहीं सकती और रुचि वर्णन करने की बहुत है। अतः उसकी गति बालक के वचन सी हो गयी। बालक को बोलने की बड़ी रुचि है। पर उससे बोलते बनता नहीं।

दो. भरत बिमल जसु बिमल बिधु, सुमति चकोर कुमारि।
उदित बिमल जन हृदय नभ, एकटक रही निहारि॥३०३॥

अर्थ : भरत का निर्मल यशरूपी चन्द्रमा जो भक्त के हृदयरूपी आकाश में उदय हुआ है उसे सुमतिरूपी चकोर की कन्या टकटकी लगाये देखती रह गयी।

व्याख्या : नव बिधु बिमल तात जस तोरा। रघुबर किंकर कुमुद चकोरा··· गुरु अपमान दोष नहिं दूषा। वही भरत का निर्मल यश भक्त के निर्मल हृदय रूपी

आकाश में उदित हुआ। उसे सुमतिरूपी चकोर कुमारि एकटक देखती रह गयी। कुछ कह न सकी। सुमति भक्ति के स्वभाव से अभी उत्पन्न हुई है। यथा : भगति सुभाय सुमति हिय हुलसी। इसलिए चकोरी न कहकर चकोरकुमारि कहा। बोलने की कुशलता भी उसमें नहीं है। प्रेम भी नया है। अतः वर्णन में सर्वथा असमर्थ है।

भरत सुभाउ न सुगम निगमहूँ। लघु मति चापलता कबि छमहू ॥
कहत सुनत सतिभाउ भरत को। सीय राम पद होइ न रत को ॥१॥

अर्थ : भरत का स्वभाव वेद को भी सुगम नहीं है। हे कविलोग ! लघुमति की चपलता आप लोग क्षमा करें। भरत के सत्य भाव को कहते सुनते हुए सीतारामजी के चरणों में कौन रत नहीं होगा।

व्याख्या : त्रैगुण्यविषया वेदाः। वेद का विषय त्रैगुण्य है और भरत का सुन्दर भाव त्रैगुण्य से परे है। परमहंसों को प्रिय हैं। अतएव कहते हैं : न सुगम निगमहूँ। ऐसे महापुरुष के गुण वर्णन की रुचि की अधिकता यदि लघुमति तुलसीदास को हो तो उसका प्रयत्न चपलता ही है। अतः कवि लोगों से गोस्वामीजी क्षमा माँगते हैं।

अब ऐसे प्रयत्न करने का कारण कहते हैं कि भरतजी के सद्भाव कथन श्रवण से उस भाव का मज्जन पान हो जाता है। यथा : मज्जन पान पाप हर एका। कहत सुनत एक हर अबिबेका। अतः भरत के सद्भाव में मज्जन करने से उसे पान करने से श्रीसीताराम के चरणों में प्रीति उत्पन्न होती है। अतः इस कथन का प्रयत्न भी महाफल देनेवाला है।

सुमिरत भरतहि प्रेमु राम को। जेहि न सुलभु तेहि सरिस बाम को ॥
देखि दयाल दसा सबही की। राम सुजान जानि जन जी की ॥२॥

अर्थ : भरतजी को स्मरण करते हुए भी जिसे रामजी का प्रेम सुलभ न हो। उसके ऐसा वाम कौन है ? दयाल रामजी ने सबकी दशा देखी। सरकार सुजान हैं। जन के जी की बात जानते हैं।

व्याख्या : सुमिरिअ नाम रूप बिनु देखे। आवत हृदय सनेह बिसेखे। नाम स्मरण से ही नामी में विशेष प्रेम हो जाता है। भरतजी का स्मरण करना और रामजी में प्रेम होना एक बात है। यथा : तुम्ह तउ भरत मोर मत एहू। धरे देह जनु राम सनेहू। अतः भरत के स्मरण से ही रामप्रेम की प्राप्ति होनी चाहिए। जिसे नहीं हुई उसके ऐसा बुरा कोई नहीं।

रामजी दयालु हैं। उन्होंने सबकी दशा देखी कि सब दुःखी हैं। तिस पर इन्द्र की माया का भी प्रभाव इन पर पड़ा है। सुजान हैं। उनकी मनोगति भी देख रहे हैं कि बिचारे द्विविधा में पड़े हैं। साधु समाज ने मुनि मिथिलेश की दशा देखी कि स्नेह से शिथिल हैं। भरत की दशा देखी कि प्रेम में आकुल हो रहे हैं। अतः

धरम धुरीन धीर नय नागर। सत्य सनेह सील सुख सागर ॥
देसु कालु लखि समउ समाजू। नीति प्रीति पालक रघुराजू ॥३॥

अर्थ : धर्म के धुरन्धर, धीर, नीति में चतुर, सत्यस्नेह और सुख के समुद्र नीति और प्रीति के पालन करनेवाले रघुराज, देशकाल, समाज और अवसर देखकर।

व्याख्या : सरकार धर्मधुरन्धर हैं : धर्म कभी छोड़ेंगे नहीं। धीर हैं : नहीं लौटेंगे। नयनागर हैं : सभी विषमताओं का सामञ्जस्य बिठावेंगे। सत्य के सागर हैं : प्रतिज्ञा भङ्ग कभी न करेंगे। स्नेह के सागर हैं : प्रेम का भङ्ग न करेंगे। शील के सागर हैं शील भङ्ग नहीं करेंगे और सुख सागर हैं : सबको सुख पहुँचावेंगे। देश काल अवसर और समाज का ध्यान रखते हुए नीति प्रीति का पालन करते हुए बोले।

बोले बचन बानि सरबसु से। हित परिनाम सुनत ससिरसु से ॥
तात भरत तुम्ह धरम धुरीना। लोक बेद बिद प्रेम प्रबीना ॥४॥

अर्थ : रामजी वाणी के सर्वस्व जैसे वचन बोले। जो परिणाम में हित और सुनने में अमृत सा था। हे भैया भरत ! तुम धर्म धुरीण हो। लोक और वेद को जाननेवाले हो और प्रेम में प्रवीण हो।

व्याख्या : बिमल बिबेक धरम नयसाली। भरत भारती मंजु मराली। भरत की वाणी ऐसी थी। उसके उत्तर में रामजी का वचन मानो वाणी का सर्वस्व था। क्योंकि : हितं मनोहारि च दुर्लभं वचः और सरकार के वचन परिणाम में हित और सुनने में अमृत से मनोहारी था।

भरतजी ने कहा था : प्रभु पितु बचन मोह बस पेली। आयेउँ इहाँ समाज सकेली। मैंने सरकारी आज्ञा भङ्ग किया। मैं अपराधी हूँ। इस पर सरकार कहते हैं कि तुम धर्मधुरीण हो। जो तुमने किया वही धर्म है। लोक और वेद के जाननेवाले के लिए ऐसा ही करना प्राप्त था। ऐसा ही करने से प्रेम का निर्वाह होता है। तुम्हारे आचरण का कहीं जोड़ नहीं है।

दो. करम बचनु मानस बिमल, तुम्ह समान तुम्ह तात।
गुरु समाज लघु बंधु गुन, कुसमय किमि कहि जात ॥२०४॥

अर्थ : हे तात ! कर्म वचन और मन की निर्मलता में तुम तुम ही जैसे हो। बड़ों के समाज में छोटे भाई का गुण इस कुसमय में कैसे कहा जा सकता है।

व्याख्या : सरकार कहते हैं कि तुमने जो कहा है : मोहि समान मैं साइँ दोहाई। सो ठीक है। सचमुच तुम्हारा जोड़ नहीं। परन्तु अवगुणों में नहीं गुणों में। तुम्हारे ऐसा : कर्म बचन मानस बिमल। कहाँ खोजने से मिलेगा। यह समय तुम्हारे गुणों के कथन के अनुकूल नहीं है। क्योंकि उसका अर्थ दूसरा लग जायगा

और बड़ों के समाज में छोटे भाई के गुणों का वर्णन भी उचित नहीं है। तुम अपने को सापराध मत मानो। तुम्हारे गुणों पर मैं मुग्ध हूँ।

जानहु तात तरनि कुल रीति। सत्यसंध पितु कीरति प्रीती॥
समउ समाजु लाज गुरुजन की। उदासीन हित अनहित मन की॥१॥

अर्थ : हे तात ! सूर्यकुल की रीति जानते हो कि सत्यसन्ध होते हैं और पिता की कीर्ति पर प्रीति होती है। समय समाज बड़ों की लज्जा और उदासीन मित्र और शत्रु के मन को भी जानते हो।

व्याख्या : सरकार कहते हैं कि हे तात ! तुम सूर्यकुल की रीति जानते हो : रघुकुल रीति सदा चलि आई। प्रान जाहु बरु बचनु न जाई। अज, दिलीप, रघु आदि जितने महाराज इस कुल में हुए हैं सभी सत्यसन्ध हुए हैं। सभी पिता की कीर्ति के बढ़ानेवाले हुए। अतः सत्य का अनादर नहीं होना चाहिए और पिता की कीर्ति न बिगड़नी चाहिए। तुम समय को भी जान रहे हो कि कैसा कठिन समय उपस्थित है कि सब व्यवस्था ही डाँवाडोल हो रही है। समाज की भी दशा जान रहे हो कि सब अपने को अनाथ मान रहे हैं। गुरुजन की लज्जा को भी तुम जान रहे हो कि ये कैसे सङ्कोच में पड़े हैं कि सामञ्जस्य बिठाना भी चाहते हैं फिर भी स्वयं कुछ नहीं कह रहे हैं। हमीं दोनों भाइयों को आपस में निर्णय करने के लिए कह रहे हैं। राजाओं के कितने शत्रु मित्र होते हैं। कितने उदासीन होते हैं। उनका पता लगाना कठिन होता है। परन्तु तुम राजकाज से भली भाँति परिचित हो। तुम सबको जानते हो। इतना ही नहीं उनके मन में क्या है यह भी तुम्हें अविदित नहीं है।

तुमहि बिदित सबही कर करमू। आपन मोर परम हित धरमू॥
मोहि सब भाँति भरोस तुम्हारा। तदपि कहउँ अवसर अनुसारा॥२॥

अर्थ : तुम सबके कर्मों को भी जानते हो। अपने और मेरे परमहित और धर्म को भी जानते हो। मुझे सब तरह से तुम्हारा भरोसा है। फिर भी अवसर के अनुसार कहता हूँ।

व्याख्या : शत्रु मित्र और उदासीनों ने कब कब क्या क्या किया है। सो भी तुम जानते हो अर्थात् राज्य के मर्मों के जानकार हो। मेरा परमहित कैसे होगा। मेरा धर्म क्या है। तथा स्वयं तुम्हारा परमहित कैसे होगा तथा स्वयं तुम्हारा धर्म क्या है। उसे भी जानते हो। भावार्थ यह कि शासकोचित सभी बातें तुम में मौजूद हैं। अतः मुझे तुम्हारा भरोसा सब प्रकार से है। फिर भी अवसर ऐसा प्राप्त है कि मुझे मुख से कहना ही पड़ रहा है।

तात तात बिनु बात हमारी। केवल गुरकुल कृपा सँभारी॥
नतरु प्रजा परिजन परिवारू। हमहि सहित सबु होत खुआरू॥३॥

अर्थ : हे तात ! पिताजी के बिना हमारी बात को केवल कुलगुरु की कृपा ने सँभाल लिया। नहीं तो प्रजा नगरवासी कुटुम्बी सभी हमारे साथ बड़े दुःख को प्राप्त होते।

व्याख्या : हम लोगों की बात तो बिगड़ ही चुकी थी। चक्रवर्तीजी का देहान्त हुआ और वहाँ हम चारों भाइयों में से कोई नहीं। ऐसे ही समय में शत्रुओं की बन पड़ती है। सो कुलगुरु ने चक्रवर्तीजी के देहावसान के समाचार को नगर की सीमा के बाहर जाने नहीं दिया। महाराज के शव को तेलभरी नाव में रक्खा। तुम्हें बुलाने के लिए दूत कैकय देश में भेजा। मुझे बुलाने के लिए यहाँ कोई नहीं आया। यदि कोई आता तो मुझे अपनी प्रतिज्ञा छोड़कर पिता की क्रिया करने के लिए अयोध्या जाना ही पड़ता। सम्भव था कि मैं उस चोट को न सह सकता। तो और भी अनर्थ होता। तुम्हें भी गुरुजी ने पिताजी के मरण और मेरे वनवास का समाचार नहीं भेजा। केवल इतना ही कहलाया कि गुरुजी ने बुलाया है। ठीक समाचार मिलने से तुम्हारी वहाँ क्या दशा होती कौन कह सकता है। गुरुजी की उपस्थिति में समाचार मिलने पर चोट हम लोगों को लगी। उसे गुरुजी ने अपने विज्ञान के प्रकाश से सँभाल लिया। इसी भाँति माताओं को भी गुरुजी ने सँभाला। प्रजा परिवार का संरक्षण भी राजा के अभाव में गुरुजी ने ही किया। यदि गुरुजी ने यह सब न किया होता तो हम लोग सभी प्रजा परिवार के सहित नष्ट भ्रष्ट हो जाते।

जौं बिनु अवसर अथव दिनेसू। जग केहि कहहु न होइ कलेसू॥
तस उतपातु तात बिधि कीन्हा। मुनि मिथिलेस राखि सबु लीन्हा॥४॥

अर्थ : यदि बेसमय ही सूर्य अस्त हो जायँ तो कहो संसार में किसे कष्ट न होगा। ऐसा उत्पात हे तात ! ब्रह्मदेव ने किया। पर मुनिजी तथा मिथिलाधिपति ने सबको बँचा लिया।

व्याख्या : रामजी भी विधि को ही उत्पात का कारण बतला रहे हैं। यह उत्पात इतना प्रबल था कि जैसे बेसमय सूर्य का अस्त होना। बेसमय में सूर्य का अस्त होना विधि के किये ही हो सकता है। दूसरे को ऐसा सामर्थ्य ही नहीं है। ऐसा होने पर संसार में उथल पुथल मच जाना स्वाभाविक है। समय पर अस्त होना तो स्वाभाविक नियम ही है। चक्रवर्तीजी का प्रियविरह में शरीरत्याग अनवसर का सूर्यास्त था। उस समय सब सँभालना गुरुजी का ही काम था। गुरुजी जिस भाँति सदा से विधिगति को रोकते आये हैं वैसे ही इस बार भी रोका। महाराज के देहावसान का पता लगने के बाद जनकजी ने भी रक्षा का प्रयत्न किया। स्वयं रक्षा के लिए सन्नद्ध होकर दूतों के द्वारा समाचार लेते रहे। इसलिए जनकजी का भी नाम पीछे से रक्षा के कार्य में जोड़ दिया।

दो. राज काज सब लाज पति, धरम धरनि धन धाम।
गुर प्रभाव पालिहि सबहि, भल होइहि परिनाम॥३०५॥

अर्थ : सब राजकार्य, लज्जा, प्रतिष्ठा, धर्म, धरणी, धन और धाम का पालन गुरुजी की कृपा करेगी और परिणाम अच्छा होगा।

व्याख्या : मोहि राज हठि दै ही जबहीं। रसा रसातल जाइहि तबहीं। आदि बातें जो तुम्हारे मनमें भरी हैं : उन्हें छोड़ो। राजकार्य लज्जा प्रतिष्ठा धर्म धरणी आदि का पालन गुरु के प्रसाद से होता रहेगा। मुझे या तुम्हें तो निमित्त मात्र होना है। भावार्थ यह कि गुरुजी की आज्ञा मानते हुए चले चलना मात्र हम लोगों का काम है। परिणाम की चिन्ता कदापि नहीं करनी चाहिए। गुरु की आज्ञा पालन रूप में जो कुछ होगा उसका परिणाम बुरा हो नहीं सकता।

सहित समाज तुम्हार हमारा। घर बन गुरु प्रसाद रखवारा॥
मातु पिता गुर स्वामि निदेसू। सकल धरम धरनीधर सेसू॥१॥

अर्थ : समाज के सहित तुम्हारा और हमारा रक्षक घर और वन में गुरुजी की कृपा है। माता पिता गुरु और स्वामी की आज्ञा सम्पूर्ण धर्मरूपी धरणी के लिए शेष रूप है।

व्याख्या : भाव यह कि : राज काज सब लाजपति धरम धरनि धन धाम का रक्षक तो गुरुजी का प्रभाव है और हमारा तुम्हारा रक्षक उनका प्रसाद है। प्रभाव प्रभुता को कहते हैं और प्रसाद कृपा को कहते हैं। गुरुजी बैठे रहेंगे : उनके प्रभाव से राजकार्य आदि ठीक चलता रहेगा और उनकी कृपा से मेरी रक्षा वन में होती रहेगी और घर में तुम्हारी रक्षा होती रहेगी।

क्योंकि माता पिता गुरु और स्वामी की आज्ञा पर ही सब धर्म उसी भाँति टिके हुए हैं जैसे पृथ्वी शेषजी पर टिकी है। सम्पूर्ण धर्मों के सँभालने की शक्ति केवल माता पिता गुरु और स्वामी की आज्ञा पालन में है दूसरे में नहीं। सम्पूर्ण धर्म का विचार करके पृथक् पृथक् पालन में कौन समर्थ है? माता पिता आदि की आज्ञा पालन से ही सब धर्मों का पालन आप से आप हो जाता है।

सो तुम करहु करावहु मोहू। तात तरनि कुल पालक होहू॥
साधक एक सकल सिधि देनी। कीरति सुगति भूतिमय बेनी॥२॥

अर्थ : उसे तुम भी करो और मुझ से भी कराओ। हे तात! सूर्यकुल के पालक बनो। साधक के लिए यह सब सिद्धियों की देनेवाली कीर्त्ति सुगति और भूतिमय त्रिवेणी एक ही है।

व्याख्या : भाव यह कि यदि तुम मुझ से पिता के वचन का पालन न कराओगे तो मैं न कर सकूँगा। मैं तो कह चुका हूँ : मन प्रसन्न करि सकुच तजि कहहु करौं सोइ आजु। अतः पिता की आज्ञा का पालन तुम भी करो और मुझ से भी कराओ। इस भाँति सूर्यकुल की रक्षा करो। नहीं तो सूर्यकुल की : सत्यसन्ध पितु कीरति प्रीतीवाली रीति मिट जायगी।

कामनाओं के पूर्ण करनेवाली त्रिवेणी में जिस भाँति गङ्गा यमुना और

सरस्वती का सङ्गम है उसी भाँति पिता की आज्ञापालनरूपी त्रिवेणी में कीर्त्ति सुगति और भूति तीनों का सङ्गम है और यह साधना सकल सिद्धियों को देनेवाली है।

सो बिचारि सहि संकटु भारी। करहु प्रजा परिवारु सुखारी ॥
बाँटी बिपति सबहि मोहि भाई। तुमहि अवधि भरि बड़ि कठिनाई ॥३॥

अर्थ : यह विचारकर भारी सङ्कट सहकर तुम प्रजा और परिवार को सुखी करो। हे भाई ! मुझ पर विपत्ति आयी। उसे सबने बाँट ली। फिर तुम्हें तो चौदह वर्ष की अवधि तक बहुत कष्ट है।

व्याख्या : ऐसा विचार करके हमारे वन जाने के सङ्कट को सहो। मैं जानता हूँ कि मेरे वन जाने को तुम पिता के मरण से भी बड़ा सङ्कट मानते हो ; इसलिए संकटु कहते हैं। उसे तुम सहो और प्रजा परिवार को सुखी करो। तुम्हारे लिए राज्य सङ्कट है। फिर भी प्रजा परिवारके सुख के लिए इस सङ्कट को सहो।

विपत्ति बँटानेवाला वही है जो उस विपत्ति में दुःखी हो और स्वयं साथ में दुःख भोगे। यथा : बिपति बँटावनिहार बंधु बिनु करौं भरोसो का को। सो मेरी विपत्ति को सबने बाँट लिया। यथा : राम दरस हित नेम ब्रत लगे करन नर नारि। मनहु कोक कोकी कमल दीन बिहीन तमारि। सो मैं तुम्हें विपत्ति बाँटने को कहता हूँ राज करने के लिए नहीं कहता।

जानि तुम्हहि मृदु कहउँ कठोरा। कुसमय तात न अनुचित मोरा ॥
होहिं कुठायँ सुबंधु सहायें। ओड़िअहि हाथ असनिहु के घायें ॥४॥

अर्थ : तुम्हें कोमल जानकर भी मैं कठोर कह रहा हूँ। यह समय ही ऐसा कठिन है। मेरा अनुचित नहीं है। ऐसे बुरे समय पर अच्छे भाई ही सहायक होते हैं, वज्र की चोट को भी हाथ से ही रोका जाता है।

व्याख्या : तुम्हारे ऐसे कोमल स्वभाव के पुरुष से यह कहना कि तुम भारी सङ्कट सह जाओ कठोरता है। पर समय ही ऐसा उपस्थित है कि मैं लाचार होकर कह रहा हूँ। इसलिए मेरा कहना भी अनुचित नहीं है। वज्र की चोट ऊपर आयी तो सिवा हाथ के और कौन आड़े आवेगा। यही भारी विपत्ति ऊपर आयी तो सिवा भाई के और किसे आगे करें। राज्य विपत्ति है : इसे तुम जानते हो। मैं जानता हूँ। संसार नहीं जानता। उसे चौदह वर्ष सँभाल दो। उसके बाद मैं आकर सँभाल लूँगा। राज्ये गृध्नन्त्यविद्वांसो ममत्वाहृतचेतसः। अहंमानमहामानमदमत्ता न मादृशाः। मूढ़ लोग जिनके चित्त को अहन्ता ममता ने ग्रस लिया है राज्य चाहते हैं। मेरे ऐसे लोग नहीं चाहते। वि. ७.१.७।

दो. सेवक कर पद नयन से, मुख सो साहिब होइ।
तुलसी प्रीति कि रीति सुनि, सुकबि सराहँहि सोइ ॥३०६॥

अर्थ : सेवक तो हाथ पैर और आँख सा होता है और मालिक मुख की भाँति होता है। तुलसीदास कहते हैं कि इस तरह की प्रीति की रीति सुनकर सुकवि उसकी बड़ाई करते हैं।

व्याख्या : परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ। सेवक और स्वामी दोनों राज्य में परस्परोपकारक हैं। भाव यह है कि तुम प्रसाद चाहते हो। यथा : सो प्रसाद जन पावइ देवा। सो यही नियम है कि कर पद नयन सेवक हैं। खाद्य लाकर मुख को अर्पण करते हैं और फिर उसी के रस को प्रसाद रूप से ग्रहण करते हैं। इस भाँति सरकार ने भरत के राज्य अर्पण को स्वीकार किया और पुनः प्रसाद रूप से भरत को सुपुर्द करते हैं। यही प्रीति की रीति है और इसी की सुकवि प्रशंसा करते हैं। निर्गलितार्थ यह कि मुझे राज्य स्वीकार है। अब तुम उसके सेवक की भाँति चलाओ।

सभा सकल सुनि रघुबर बानी। प्रेम पयोधि अमिअ जनु सानी ॥
सिथिल समाजु सनेह समाधी। देखि दसा चुप सारद साधी ॥१॥

अर्थ : सारी सभा ने रामजी की वाणी सुनी। जो प्रेम के समुद्र के समान अमृत से सनी थी। सारा समाज स्नेह की समाधि में शिथिल हो गया। यह दशा देखकर सरस्वती मौन हो गयी।

व्याख्या : रामजी की वाणी में से प्रेम का समुद्र उमड़ पड़ता था। उसका जल लवण समुद्र के जल की भाँति खारा न था। अमृत के समान मीठा था। जैसे परिचित समुद्र का जल लवण से सना होता है उसी भाँति प्रेम समुद्र मानो अमृत से सना हुआ था।

सभी सभासद् भरतजी के वचन से स्नेह में शिथिल हो रहे थे। रामजी की वाणी सुनते ही उनको प्रेम समाधि लग गयी। गोरक्ष संहिता के मत से प्रेम समाधि भी समाधि का एक भेद है। सो सब के सब प्रेम समाधि में मग्न हो गये। उन लोगों की यह दशा देखकर समाधि भङ्ग के भय से सरस्वती भी चुप हो गयीं। नहीं तो स्वभावतः वे तो मुखर हैं। यथा : गिरा मुखर तन अर्ध भवानी। भाव यह कि सब चुप हैं। किसी के मुख से बात नहीं निकलती। सन्नाटा छा गया।

भरतहि भयउ परम संतोषू। सनमुख स्वामि बिमुख दुखु दोषू ॥
मुखु प्रसन्न मन मिटा बिषादू। भा जनु गूँगेहि गिरा प्रसादू ॥२॥

अर्थ : भरतजी को परम सन्तोष हुआ कि स्वामी अनुकूल हैं और दोष दुःख हट गया। भरतजी का मुखमण्डल प्रसन्न हो गया। मन से विषाद मिट गया। जैसे गूँगे पर सरस्वती की कृपा हो गयी हो।

व्याख्या : सन्तोष तो सभा मात्र को हुआ। पर भरतजी को परम सन्तोष हुआ। कारण कहते हैं कि स्वामी हमारे अनुकूल हैं और दोष तथा उसका कार्य दुःख दूर हो गया। सरकार ने राज्य स्वीकार कर लिया। कर पद नयन की भाँति

काम करने के लिए आज्ञा हुई। अब मेरा शासन करना भी राज करना नहीं है। विपत्ति बटाना है। रामजी की सेवा करना है।

भरतजी का विषण्ण मुख प्रसन्न हो गया। ग्रामवासियों तक ने कहा था : मुख प्रसन्न नहिं मानस खेदा। मानस खेद भी दूर हो गया। जनकजी से कहा था : मौन मलिन मैं बोलब बाउर। सो मानो गूँगे पर सरस्वती की कृपा हो गयी। वह बोलने भी लगा और उसे सब शास्त्र भी फुरने लगा। ऐसी प्रसन्नता भरतजी को हुई।

कीन्ह सप्रेम प्रनामु बहोरी। बोले पानि पंकरुह जोरी ॥
नाथ भयेउ सुखु साथ गए को। लहेउँ लाहु जग जनमु भए को ॥३॥

अर्थ : फिर प्रेम के साथ प्रणाम किया और करकमल जोड़कर बोले। हे नाथ! साथ जाने का सुख मुझे मिल गया। संसार में जन्म लेने का लाभ मिल गया।

व्याख्या : सप्रेम : से मनसा। बोले : से वाचा और : पानि पंकरुह जोरी : से कर्मणा प्रेम कहा। अब यह प्रणाम कृतकृत्य होने का है अथवा पुनः कुछ कहना चाहते हैं। अतः प्रणाम करते हैं। हाथ जोड़कर बोलने का भाव यह कि दसो नह जोड़कर मैं सेवा के लिए प्रस्तुत हूँ।

भरतजी कहते हैं कि मुझे बड़ी अभिलाषा थी कि मैं लक्ष्मण की भाँति साथ वन में जाता और सेवा करता। इसलिए मैंने कहा था : नतरु फेरिअहि बंधु दोउ नाथ चलौं मैं साथ। क्योंकि सरकार की सेवा में ही जीवन जन्म का लाभ है। यथा : जीवन लाहु लखन भल पावा। सब तजि रामचरन चित लावा। सो लाभ मुझे मिल गया। सरकार के साथ वन में जाने से सेवा करने से जो सुख मिलता वही सुख मुझे अयोध्या में रहकर सरकारी सेवा करने से मिलेगा। भावार्थ यह कि भरतजी ने रामजी का वनवास और अपना अवधवास स्वीकार कर लिया।

अब कृपाल जस आयसु होई। करउँ सीस धरि सादर सोई ॥
सो अवलंब देउ मोहि देई। अवधि पार पावउँ जेहि सेई ॥४॥

अर्थ : हे कृपालु! अब आपकी जैसी आज्ञा हो वही सिर धरकर आदर के साथ करूँ। आप मुझे वह अवलम्ब दीजिये। जिसकी सेवा करके अवधि का पार पा जाऊँ।

व्याख्या : बात सब ठीक हो गयी। फिर भी भरतजी स्पष्ट आज्ञा के लिए विनय करते हैं। भाव यह : प्रभु पितु बचन मोह बस पेली। आयेउँ इहाँ समाज सकेली। सो बात अब नहीं होगी। अब जो आज्ञा होगी उसे शिरोधार्य करके आदर के साथ पालन करूँगा।

चरण की सेवा साक्षात् रूप से नहीं कर सकता तो ऐसा आधार तो मिलना चाहिए। जिसे चरणों का प्रतीक मानकर सेवा करता हुआ अवधि का पार पा सकूँ। बिना अवलम्ब चौदह वर्ष काटे नहीं कटेगा।

दो. देव देव अभिषेक हित, गुर अनुसासनु पाइ ।
आनेउँ सब तीरथ सलिल, तेहि कहँ काह रजाइ ॥२०७॥

अर्थ : हे राजन् ! आपके अभिषेक के लिए सब तीर्थों का जल गुरुजी की आज्ञा पाकर लाया हूँ । उसके लिए क्या आज्ञा होती है ।

व्याख्या : अभिषेक में सब तीर्थों के जल की आवश्यकता पड़ती है । सो गुरुजी की आज्ञानुसार चक्रवर्तीजी ने मँगवाया था । यथा : आनहु सकल सुतीरथ पानी । उस जल को गुरुजी की आज्ञा से ही साथ लाया हूँ । अन्य सामग्री तो टिकाऊ हैं । पर जल तो चौदह वर्ष नहीं रह सकता । सब तीर्थों का जल होने से अद्भुत वस्तु हो गयी । आपके ही अभिषेक के लिए प्रस्तुत किया गया है । अतः अब आप जैसी आज्ञा दें वैसा किया जाय ।

एकु मनोरथु बड़ मन माहीं । सभय सकोच जात कहि नाहीं ॥
कहहु तात प्रभु आयेसु पाई । बोले बानि सनेह सुहाई ॥१॥

अर्थ : एक बड़ी लालसा मन में है । परन्तु भय और सङ्कोच के कारण कहते नहीं बनता । प्रभु की आज्ञा हुई कि हे भाई ! कहो । तब सुन्दर स्नेहमय वाणी बोले ।

व्याख्या : पहिले कह चुके हैं : राम सैल सोभा निरखि भरत हृदय अति प्रेम । सो अति प्रेम होने से उसके देखने की बड़ी लालसा है । सब लोगों ने घूम घूमकर देखा । यथा : विहरहिं वन चहुँ ओर प्रति दिन प्रमुदित लोग सब । जल ज्यों दादुर मोर भये पीन पावस प्रथम । परन्तु भरतजी सोच में ही पड़े रहे : निसि न नींद नहिं भूख दिन भरत बिकल सुठि सोच । नीच कीच बिच मगन जस मीनहि सलिल सकोच । इन्होंने घूमकर नहीं देखा । अब सोच के दूर होने पर वह लालसा जाग पड़ी । अतः कहते हैं कि मन में बड़ी लालसा है ।

बड़ों के सामने सैर सपाटा की लालसा प्रकट करने में सङ्कोच होना स्वाभाविक है । यथा : लखन हृदय लालसा बिसेखी । जाइ जनकपुर आइअ देखी । प्रभु भय बहुरि मुनिहि सकुचाहीं । प्रगट न कहहिं मनहि मुसुकाहीं । यहाँ उसी भाँति भरतजी को भी कहने में भय और सङ्कोच होता है । परन्तु लालसा के अधिक होने से कहना ही पड़ा ।

चित्रकूट सुचि थल तीरथ बन । खग मृग सर सरि निर्झर गिरिगन ॥
प्रभु पद अंकित अवनि बिसेखी । आयसु होइ त आवउँ देखी ॥२॥

अर्थ : यदि आज्ञा हो तो चित्रकूट के पवित्र स्थल, तीर्थ, वन, पक्षी, मृग, नदी तालाव झरने, पर्वत और विशेष करके सरकार के चरण चिह्न से अङ्कित भूमि को देख आऊँ ।

व्याख्या : चित्रकूट में प्रवेश करते समय भरतजी ने वहाँ की शोभा देखी

तो उस वन के भली भाँति देखने की लालसा उसी समय हुई। परन्तु वह समय पर्यटन के लिए उपयुक्त नहीं था। उसी लालसा को ही प्रकट करते हुए उस दृश्य का वर्णन करते हुए कवि ने कहा : भरत दीख बन सैल समाजू। मुदित छुधित जनु पाइ सुनाजू'''राम वास बन संपति भ्राजा। सुखी प्रजा जनु पाइ सुराजा'''बन प्रदेस मुनि वास घनेरे'''बिपुल बिचित्र विहंग मृग नाना। प्रजा समाज न जाइ बखाना''' झरना झरहि मत्त गज गाजहि इत्यादि। उस पर भी वह भूमि प्रभुपद अंकित होने से बड़ी सौभाग्यवती हो गयी है। यथा : हरखहि निरखि राम पद अंका। जनु भेटी संपति अति रंका। अतः इन वस्तुओं के देखने की आज्ञा चाहते हैं।

अवसि अत्रि आयसु सिर धरहू। तात बिगत भय कानन चरहू॥
मुनि प्रसाद बनु मंगल दाता। पावन परम सुहावन भ्राता॥३॥

अर्थ : हे तात ! अवश्य अत्रिजी की आज्ञा को शिरोधार्य करो। हे भाई ! निर्भय होकर वन में विचरो। मुनिजी की कृपा से यह वन मङ्गलदाता पावन और परम सुहावना है।

व्याख्या : यहाँ के मुख्य ऋषि अत्रिजी हैं। यथा : अत्रि आदि मुनिवर जहँ बसही। करहि जोग जप तप तन कसही। सो जो विधि से बतलावें उसी विधि और क्रम से यात्रा करो। फिर वन के विचरने में कोई भय नहीं है। किसी तपस्वी या मुनि को उद्वेग न होगा। इस वन में जो पवित्रता, शोभा और माङ्गल्य जो देख रहे हो वह मुनिजी के प्रसाद से है। यहाँ की प्रधान नदी मन्दाकिनी भी उन्हीं की धर्मपत्नी भगवती अनुसूया की लायी हुई हैं।

रिषिनायकु जहँ आयसु देहीं। राखेहु तीरथ जलु थल तेहीं॥
सुनि प्रभु बचन भरत सुखु पावा। मुनि पद कमल मुदित सिरु नावा॥४॥

अर्थ : ऋषियों के राजा अत्रिजी की जहाँ के लिए आज्ञा हो वहाँ तीर्थ के जल को रखना। प्रभु का वचन सुनकर भरतजी को सुख हुआ और प्रसन्न होकर मुनिजी के चरणों में सिर नवाया।

व्याख्या : भरतजी ने पहिले पूछा था : आनेउँ सब तीरथ सलिल तेहि कहँ कहा रजाइ। उसके उत्तर में रामजी कहते हैं कि यहाँ अत्रिजी का शासन है। उन्हीं से पूछो कि जल कहाँ रक्खा जाय। जहाँ बतलावें वहीं रख देना। रख देना कहने का भाव यह है कि वे ही जानते हैं कि कहाँ रख देने से वह जल सदा बना रहेगा।

लालसा पूर्ति के अनुकूल आज्ञा पाने से भरतजी को सुख हुआ। मुनिजी भी उस सभा में आसीन थे और सब सुन रहे थे। भरतजी ने जाकर उनके चरणों में प्रसन्न होकर प्रणाम किया। भाव यह कि अब जैसी आज्ञा आपकी हो वैसा करूँ। सरकार जो कुछ करते हैं ऋषियों की आज्ञा लेकर करते हैं। वैसी ही आज्ञा भी भरतजी को दी।

दो. भरत राम संबाद सुनि, सकल सुमंगल मूल।
सुर स्वारथी सराहि कुल, बरषत सुरतरु फूल ॥३०८॥

अर्थ : भरत और रामजी के सकल सुमङ्गल मूल सम्वाद को सुनकर स्वार्थी देवता लोग कुल की प्रशंसा करते हुए हर्षित होकर कल्पवृक्ष के फूल बरसाने लगे।

व्याख्या : भरतजी और रामजी का सम्वाद सभी मङ्गलों का मूल है : कीरति सुगति भूति मय बेनी। इसी में सारे संसार के सुमङ्गल का बीज निहित है। इसलिए इसे सुमङ्गल मूल कहते हैं। इसे सुनकर देवता लोग हर्षित होकर कल्पवृक्ष के फूल बरसाने लगे। पहिले फूल बरसे थे। उस समय मलिन मन से बरसे थे। अब हर्षित होकर वर्षा कर रहे हैं। क्योंकि निश्चय हो गया कि रामजी अयोध्या न लौटेंगे और सूर्यकुल की प्रशंसा करते हैं। स्तुति करते हैं कि इस कुल में सभी धर्मात्मा हैं। स्वार्थी केवल अपना स्वार्थ देखते हैं। संसार का भला बुरा नहीं देखते। देवता लोग अपना काम बिगड़ते देखकर जिन रघुवंशियों पर : रचि प्रपंच माया प्रबल भय भ्रम अरति उचाट फेंका था इस समय अपना काम बनते देखकर उन्हीं पर कल्पवृक्ष का फूल बरसा रहे हैं।

धन्य भरत जय राम गोसाईं। कहत देव हरषत बरिआईं॥
मुनि मिथिलेस सभाँ सब काहू। भरत बचन सुनि भयेउ उछाहू ॥१॥

अर्थ : भरत धन्य हैं। राम गोसाईं का उत्कर्ष है। ऐसा देवता कहते हैं और जबरदस्ती प्रसन्न होते हैं। मुनिजी को मिथिलेश को और सभी सभासद् को भरत के वचन को सुनकर उत्साह हुआ।

व्याख्या : देवता लोग कहते हैं कि भरत पुण्यात्मा हैं। अपने कष्ट का ख्याल न किया। संसार के मङ्गल पर ध्यान दिया। इसलिए धन्य हैं। सुकृती पुण्यवान् धन्यः। और स्वामी रामजी का उत्कर्ष है कि जैसा हम लोगों को भरोसा दिया था वैसा ही किया। सबका मन भी रख दिया। धर्म सम्बन्धी असामञ्जस्य भी मिटा दिया। इसलिए उनकी जय जयकार है। देवताओं का कार्य अग्रसर हुआ। इसलिए प्रसन्नता प्रकाश करते हैं। परन्तु उन्हें सच्ची प्रसन्नता नहीं हुई। उनकी प्रसन्नता पूरी तो तब होती जब उनकी माया द्वारा कार्य होता। सो उनकी माया द्वारा तो कोई कार्य हुआ नहीं। वह तो रामजी, भरतजी, जनकजी, तथा सावधान साधुओं पर काम ही न कर सकी। जो कुछ हुआ सो रामजी की और भरतजी की सज्जनता के कारण हुआ। किसी तरह कार्य तो हो गया। इसलिए मन में व्यर्थ माया के प्रयोग करने की लज्जा भी है। अतः प्रसन्नता सच्ची नहीं है।

सबको भरत का स्नेह देखकर भय था कि यदि रामजी न लौटे तो इनकी क्या दशा होगी। पर जब उनका वचन सुना : नाथ भयउ सुख साथ गए को। लहेउँ लाहु जग जनम भए को। तो मुनिजी, जनकजी तथा सभी सभासदों को उछाह हुआ।

भरत राम गुन ग्राम सनेहू। पुलकि प्रसंसत राउ बिदेहू॥
सेवक स्वामि सुभाउ सुहावन। नेमु पेमु अतिपावन पावन॥२॥

अर्थ : विदेह राजा पुलकित होकर भरत और रामजी के गुणगण तथा स्नेह की प्रशंसा करने लगे। सेवक और स्वामी दोनों का स्वभाव सुहावना है। उनका नियम और प्रेम अत्यन्त पवित्र को भी पवित्र करनेवाला है।

व्याख्या : देहाध्यास रहित राजा जनक को भी भरत और रामजी के गुणों और प्रेम को देखकर आनन्द से पुलक हो गया। प्रशंसा करने लगे कि दोनों भाइयों में कैसा स्नेह है। जो देखने में नहीं आता और कैसे अद्भुत गुण हैं। जिनके कारण बड़ा भारी असामञ्जस्य दूर हुआ। जिसे देखकर मेरे मन में यह बात उठ गयी : आये इहाँ कीन्ह भल नाही।

गुणग्राम। यथा : सेवक स्वामि सुभाव सोहावन। स्नेह। यथा : नेम प्रेम अतिपावन पावन। जो पावन होता है वह सोहावन नहीं होता और जो सोहावन होता है वह पावन नहीं होता। पर यहाँ तो दोनों भाइयों के स्वभाव नेम और प्रेम में सुन्दरता और पावनता भरी है। ज्ञान अतिपावन है। यथा : नहि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते। परन्तु इनका नेम उसको भी पवित्र करनेवाला है। यथा : भक्तार्थं कल्पितं द्वैतमद्वैतादपि सुन्दरम्।

मति अनुसार सराहन लागे। सचिव सभासद सब अनुरागे॥
सुनि सुनि राम भरत सम्बादू। दुहु समाज हियँ हरषु बिषादू॥३॥

अर्थ : मन्त्री और सभासद सब अनुराग से अपनी बुद्धि के अनुसार प्रशंसा करने लगे। रामजी और भरतजी के सम्वाद को सुन सुनकर दोनों समाज के हृदय में हर्ष और विषाद दोनों हुआ।

व्याख्या : सबकी समाधि भङ्ग हो गयी। सरस्वती खुल गयीं। मन्त्री और सभासद सभी अपनी अपनी बुद्धि के अनुसार प्रशंसा करने लगे। पूरी प्रशंसा तो हो नहीं सकती। फिर भी अनुराग ऐसा है कि बिना प्रशंसा किये रहा नहीं जाता।

सबका तो सभा में प्रवेश सम्भव नहीं था। अतः सभा में जो जो हुआ सो सब कर्ण परम्परा से सब लोगों को मालूम हुआ। पता लगने पर सबको हर्ष भी हुआ और विषाद भी हुआ। रामजी के राज्य स्वीकार से हर्ष हुआ और चौदह वर्ष का विछोह तो सहना पड़ेगा इस बात का विषाद भी हुआ। सभी के मन में यह शङ्का थी कि चौदह वर्ष के बाद भी रामजी राज्य स्वीकार नहीं करेंगे।

राममातु दुखु सुखु सम जानी। कहि गुन राम प्रबोधी रानी॥
एक कहहिं रघुबीर बड़ाई। एक सराहत भरत भलाई॥४॥

अर्थ : रामजी की माता ने दुःख सुख को समान जानकर रामजी के गुणों

का वर्णन करके रानियों को समझाया। एक रामजी की बड़ाई करने लगीं। एक भरत की सज्जनता की प्रशंसा करने लगीं।

व्याख्या : समदुःखसुखं धीरम्। दुःख सुख को समान देखना ही पण्डिताई है। रामजी की माता हैं। कारण के गुण कार्य में रहते हैं। माता समदुःखसुख धीर हैं। इसलिए रामजी भी वैसे ही हैं। अतः कौसल्या माता ने सुख दुःख सम जानकर और रानियों को जो विषाद कर रही थीं समझाया कि रामजी तो साधु हैं। उन्हें सुख दुःख बराबर है। राम वैराग्यवान् हैं राम धर्मात्मा हैं। इनका वनवास में कोई अनिष्ट नहीं हो सकता इत्यादि।

रानियों में कोई रामजी की बड़ाई करती है कि रामजी कैसे सत्यप्रतिज्ञ हैं। कैसे धर्मात्मा हैं। कैसे शीलवान् हैं। इसी भाँति कोई कैसे साधु हैं कैसे आज्ञाकारी हैं। कैसे प्रेमी हैं इत्यादि भरत की सज्जनता कह रही हैं।

दो. अत्रि कहेउ तब भरत सन, सैल समीप सुकूप।
राखिअ तीरथ तोय तहँ, पावन अमिअ अनूप ॥३०९॥

अर्थ : अत्रिजी ने भरतजी से तब कहा कि इस पर्वत के सन्निकट एक कूआँ है। यह पवित्र अमृत रूप अनुपम है। तीर्थ जल वहीं रखिये।

व्याख्या : सरकार ने भरतजी से कहा था कि अत्रिजी जहाँ कहें वहाँ तीर्थ जल रख दो। अतः अत्रिजी ने भरत से कहा कि कहीं दूर नहीं जाना है। इसी पर्वत के निकट एक सुन्दर कूआँ है जो स्वयं पवित्र है। उसी में यह तीर्थ जल रक्खो। गुणवान् में देने से इसका महत्त्व और भी बढ़ जायगा। नदी नहीं बतलाया। क्योंकि उसमें जल ठहर नहीं सकता। कूआँ में छोड़ने से वह कूआँ सदा के लिए परम पावन हो जायगा। तीर्थजलप्रभाव के कारण पावन है। गुण होने से अमिअ है और अनादि सिद्ध स्थल होने से अनूप है।

भरत अत्रि अनुसासन पाई। जल भाजन सब दिये चलाई ॥
सानुज आपु अत्रि मुनि साधू। सहित गये जहँ कूप अगाधू ॥१॥

अर्थ : भरतजी ने अत्रि मुनि की आज्ञा पाकर सब जलपात्रों को रवाना कर दिया। स्वयं भाई के सहित, अत्रि, मुनि और साधुओं के सङ्ग वहाँ गये जहाँ वह अथाह कूआँ था।

व्याख्या : अत्रिजी ने यह तो बतला दिया कि इसी पर्वत के सन्निकट कूआँ है। उसी में तीर्थ जल रखना चाहिए। परन्तु किस मुहूर्त में जल का स्थापन करना चाहिए ? कौन स्थापन करे ? किस विधि से स्थापन हो ? इन सब बातों के लिए जब भरतजी ने पूछा तब अत्रिजी की आज्ञा हुई कि आज ही मुहूर्त अच्छा है। जल ले चलो। अतः भरतजी ने सब जलपात्रों को तुरन्त रवाना कर दिया और भरतजी शत्रुघ्नजी अत्रिमुनि तथा साधुगण उस जल के पीछे पीछे चले।

पावन पाथ पुन्यथल राखा। प्रमुदित प्रेम अत्रि अस भाखा ।।
तात अनादि सिद्ध थल एहू। लोपेउ काल बिदित नहिं केहू ।।२।।

अर्थ : उस पवित्र जल को उस पुण्य स्थल में स्थापन किया और प्रेम से प्रसन्न होकर महर्षि अत्रि ने कहा कि हे तात ! यह अनादि सिद्धपीठ है। बहुत दिन से इसका लोप हो गया था। किसी को इसका पता न रहा।

व्याख्या : इस पृथ्वी में भिन्न भिन्न स्थानों का भिन्न भिन्न प्रभाव है। जिस भाँति कहीं केसर होता है कहीं घास तक नहीं जमती। कहीं धान होता है तो कहीं गेहूँ होता है। इसी भाँति कोई स्थल धर्म के लिए अनुकूल है तो कोई अर्थ के लिए अनुकूल है। कोई काम के लिए अनुकूल है और कोई मोक्षदायक है। इसी भाँति बहुत से सिद्धपीठ हैं जहाँ अनुष्ठान करने से सिद्धि की प्राप्ति होती है। ऐसे सिद्धपीठ भी कहीं किसी महापुरुष के तपश्चर्या से बन गये हैं और कोई स्वभाव से ही बने हुए हैं। जिस स्थल में जल रखने का प्रस्ताव मुनिजी ने किया था वह अनादि सिद्धपीठ था। मुनिजी कहते हैं कि काल के प्रभाव से यह पट गया था। किसी को मालूम भी नहीं था कि यहाँ तीर्थ है। वहाँ जल का स्थापन करके मुनिजी उस तीर्थ की महिमा कहने लगे। संसार का उपकार होने से मुनिजी बड़े प्रसन्न हैं और प्रेम से भरे हुए हैं।

तब सेवकन्ह सरस थलु देखा। कीन्ह सुजल हित कूप बिसेखा ।।
बिधि बस भयउ बिस्व उपकारू। सुगम अगम अति धरम बिचारू ।।३।।

अर्थ : तुम्हारे सेवकों ने देखा कि इस स्थल में खोदने से पानी जल्दी निकलेगा। अतः सुन्दर जल के लिए विशेष कूआँ बना दिया। सो दैवयोग से संसार का उपकार हो गया। धर्म का विचार अत्यन्त सुगम भी और अगम भी है।

व्याख्या : सेना प्रस्थान के पहिले ही कुछ लोग आगे से जाकर उसके विश्राम के लिए उपयुक्त स्थल ठीक करते हैं और उसके ठहरने की व्यवस्था करते हैं। जहाँ जलाशय नहीं होता वहाँ पहिले से ही कूप खोदकर तैयार कर देते हैं। क्योंकि प्यास लग जाने पर कूआँ खोदते नहीं बनता। मुनिजी ने भरतजी से कहा कि तुम्हारी सेना के अग्रगामी दल ने देखा कि यहाँ सेना का विश्राम होना चाहिए और जल यहाँ पर कहीं सेना के उपयोग के लिए यथेष्ट नहीं है। विशेषज्ञों ने बतलाया कि इस स्थान पर खोदने से जल मिलेगा। अतः यहीं खोदकर कूआँ बना दिया : मालूम होता है कि भरतजी की सेना यहीं ठहरी थी। क्योंकि गुरुजी की आज्ञा से गिने गिनाये लोग ही आश्रम में गये।

सो दैवयोग से संसार का उपकार हो गया। सेना तो आकर चली गयी। परन्तु कूआँ बना हुआ है। इसके जल से जो काम लेगें उन्हें पुण्य होगा। अतः बड़े भारी तीर्थ का उद्धार अनायास हो गया। कहीं धर्म बड़ी सुगमता से अनायास प्राप्त होता है और किसी अवसर पर बड़े आयास करने पर भी प्राप्त होना कठिन हो

जाता है। इसी को कहते हैं : धर्मस्य सूक्ष्मा गतिः। सो यह बड़ा भारी पुण्य कार्य तीर्थोद्धार अनायास तुम्हारे द्वारा हो गया।

भरतकूप अब कहिहैं लोगा। अति पावन तीरथ जल जोगा॥
प्रेम सनेम निमज्जत प्रानी। होइहि बिमल करम मन बानी॥४॥

अर्थ : लोग अब इसे भरतकूप कहेंगे। यह अत्यन्त पवित्र तीर्थ जल के योग्य था। प्रेम और नेम के सहित इसमें स्नान करने से प्राणी कर्म मन और वाणी से निर्मल हो जायँगे।

व्याख्या : मज्जन और पान करने से तीर्थ का जल पाप हरण करता है। भगवद् गुणानुवाद से वाणी निर्मल होती है। शास्त्र विचार से मन निर्मल होता है। परन्तु इस कूप में यह अपूर्वता है कि यदि प्रेम और नियम के साथ इसका सेवन हो तो यह कर्म मन और वाणी तीनों के निर्मल कर देने में समर्थ है।

दो. कहत कूप महिमा सकल, गये जहाँ रघुराउ॥
अत्रि सुनायेउ रघुबरहिं, तीरथ पुन्य प्रभाउ॥३१०॥

अर्थ : कूप की महिमा कहते हुए सब रामजी के पास गये। तब मुनिजी ने रघुनाथजी को तीर्थ के पुण्य प्रभाव को सुनाया।

व्याख्या : सुनि अनुकथन परस्पर होई। पथिक समाज सोह सर सोई। सो लौटते समय तीर्थ के पुण्य प्रभाव का कथनानुकथन हो जाता था। तीर्थ सम्बन्धी बातों में ही रास्ता कटा। सरकार के पास पहुँचने पर रामजी को अत्रि मुनिजी ने उन्हें तीर्थ का पुण्य प्रभाव सुनाया। जिस समय मुनिजी ने उसकी फलस्तुति की थी उस समय रघुनाथजी नहीं थे और उन्हें सुनाना परमावश्यक था। उनके सुन लेने से ही कथन की हुई महिमा स्थायी भी हो गयी।

कहत धरम इतिहास सप्रीती। भयउ भोरु निसि सो सुख बीती॥
नित्य निबाहि भरत दोउ भाई। राम अत्रि गुर आयसु पाई॥१॥

अर्थ : धार्मिक इतिहास कहते कहते सवेरा हो गया। वह रात सुख से बीत गयी। नित्य कर्म का निर्वाह करके दोनों भाई भरत रामजी गुरु और अत्रि की आज्ञा पाकर।

व्याख्या : उस पुण्य स्थल में जो जो धार्मिक घटनाएँ हुई थीं उनका इतिहास अत्रिजी प्रेम से वर्णन करने लगे। सब लोग प्रेम से सुनने लगे। इस भाँति सारी रात बीत गयी। किसी को कुछ मालूम न हुआ। भावार्थ यह कि उस स्थल का ऐसा महा माहात्म्य है जिसके वर्णन में अनेक कथाएँ अत्रिजी ने सुनायीं।

नित्य कर्म भी संक्षेप से किया। इसीलिए निर्वाह करना चाहते हैं। शास्त्र भी ऐसे समय में नित्यकर्म के संक्षेप करने की आज्ञा देता है। दोनों भाई अर्थात् भरत शत्रुघ्न ने पहिले गुरुजनों की आज्ञा प्राप्त की। स्वामी की आज्ञा प्राप्त की

जिसमें रामवन में पर्यटन का अधिकार प्राप्त हो। तत्पश्चात् गुरु की आज्ञा प्राप्त की। जिसमें सुकृत की शोभा हो। तत्पश्चात् अत्रिजी की आज्ञा प्राप्त की। जिसमें मुनि तापस के बाधा पाने का भय न हो।

सहित समाज साज सब सादे। चले राम बन अटन पयादे॥
कोमल चरन चलत बिनु पनहीं। भइ मृदु भूमि सकुचि मन मनहीं॥२॥

अर्थ : समाज के सहित सादे साज से राम वन की यात्रा के लिए पैदल चले। बिना जूते के कोमल चरणों द्वारा चल रहे हैं। अतः पृथ्वी मन ही मन सकुचाकर कोमल हो गयी।

व्याख्या : तीर्थाटन की विधि कहते हैं। तीर्थाटन में ठाटबाट मना है। इसलिए सब साज समाज सादा है। राजसी ठाट कोई भी नहीं। यहाँ तक कि पैर में जूते भी नहीं। पैदल वन में चले जा रहे हैं। चक्रवर्ती के पुत्र हैं। बिना जूते के पैदल चलने का अभ्यास नहीं और चरण भी इतने कोमल हैं कि पृथ्वी पर चलने योग्य नहीं।

उनको इस भाँति चलते देखकर पृथ्वी को अपने मन में अपनी कठिनाई पर सङ्कोच हुआ। अतः वह स्वयं कोमल हो गयी जिसमें भरतजी उसके कठोरता का अनुभव न करें। जिसकी रखवो भूमि रह रही है उसको दुःखद होने में पृथ्वी को सङ्कोच है। यथा : भरत भूमि रह राउर राखी।

कुस कंटक काँकरी कुराई। कटु कठोर कुबस्तु दुराई॥
महि मंजुल मृदु मारग कीन्हें। बहत समीर त्रिबिध सुख लीन्हें॥३॥

अर्थ : कुश, कण्टक, कङ्कड़ी, कुराई, कटु कठोर बुरी वस्तुओं को छिपाकर पृथ्वी ने सुन्दर कोमल रास्ता कर दिये और सुख लिये शीतल मन्द सुगन्ध वायु बहने लगी।

व्याख्या : रास्ते के छोटे गड़हे जिसके चारों ओर घास पात जम जाते हैं। उसे कुराई कहते हैं। कोई इसका अर्थ कुरैया का वृक्ष कहते हैं। भूमि के मृदु होने का वर्णन करते हैं कि उसने अति कठोर बुरी वस्तुओं को अपने भीतर कर लिया। जिसमें कोमल चरणों को कष्ट न हो। गड़हों के अभाव से मार्ग मञ्जुल हो गया और कुश कण्टकादि के न होने से मृदु हो गया। ज्येष्ठ के महीने में लू चलती है। सो यहाँ शीतल मन्द सुगन्ध वायु बहती है जिससे शरीर को सुख मिले।

सुमन बरषि सुर घन करि छाँहीं। बिटप फूलि फलि तृन मृदुताहीं॥
मृग बिलोकि खग बोलि सुबानी। सेवहिं सकल राम प्रिय जानी॥४॥

अर्थ : देवता फूल बरस करके, बादल छाया करके, पेड़ फूल व फलकर, तृण कोमल होकर, मृग देखकर, पक्षी सुन्दर वाणी बोलकर सब भरतजी की सेवा करते हैं। वे जानते हैं कि ये रामजी को प्रिय हैं।

व्याख्या : त्रिविध समीर : से स्पर्श सुख कहा। सुमन वृष्टि : से गन्ध सुख कहा। बिटप फूलि फलि : से रस सुख कहा। मृग बिलोकि : से रूप सुख कहा और खग बोलि सुबानी : से शब्द कहा। इससे सर्वेन्द्रिय तर्पण दृश्य का वर्णन किया। जो राम को प्रिय होता है उस पर चराचर की कृपा स्वभाव से होती है। राम सब की आत्मा हैं। अतः अपनी आत्मा के प्रिय की कौन सेवा नहीं करेगा ?

जो जिसको प्रिय होता है। उसकी शक्ति उसमें काम करने लगती है। महात्माओं में अलौकिक शक्ति के काम करने का यही रहस्य है। भरतजी रामजी को अत्यन्त प्रिय हैं। अतः उनकी जड़ को चेतन बनानेवाली शक्ति भरत में काम कर रही है। यथा : होत न भूतल भाव भरत को। अचर सचर चर अचर करत को। अतः भरत के सन्निधान में उनका जड़त्व अत्यन्त शिथिल हो गया और उन्होंने भरत को राम प्रिय जानकर उनकी सेवा की।

दो. सुलभ सिद्धि सब प्राकृतहु, राम कहत जमुहात।
राम प्रानप्रिय भरत कहुँ, यह न होइ बड़ि बात ॥३११॥

अर्थ : साधारण पुरुष को भी जो राम कहकर जँभाई लेता है उसे सब सिद्धियाँ सुलभ हो जाती हैं। सो राम के प्राणप्रिय भरत के लिए यह बड़ी बात नहीं है।

व्याख्या : श्रोता के चित्त में शङ्का हो सकती है कि ऐसी सिद्धि होनी कि उसके सान्निध्य से अचर को भी ज्ञान हो जाय बड़ी बात है। इस पर गोस्वामीजी कहते हैं कि यह भरत के लिए बड़ी बात नहीं है। क्योंकि भरतजी रामजी को प्राण प्रिय हैं। उनमें रामजी की सब शक्तियाँ काम कर सकती हैं। जो लोग रामजी का इतना ध्यान रखते हैं कि कम से कम जँभाई लेने के समय तो उनका नाम मुँह से निकले। ऐसे ध्यान रखनेवाले को भी सब सिद्धियाँ सुलभ हो जाती हैं और भरतजी तो रामजी को ऐसे प्रिय हैं कि रामजी उनका दिन रात ध्यान रखते हैं। यथा : रामहिं बंधु सोच दिन राती। अंडन्हि कमठ हृदउ जेहि भाँती।

यहाँ पर गोस्वामीजी ने सिद्धि प्राप्ति का अत्यन्त सरल मार्ग बतला दिया। साधक को बस इतना ध्यान नाम का रखना पड़ेगा कि जँभाई के समय अवश्य नाम मुख से निकल जाय। इतने ध्यान के सतत बने रहने से सामान्य अधिकारी को भी सिद्धियाँ सुलभ हो जाती हैं। नाम का प्राण से सम्बन्ध होने पर सिद्धियाँ मिलती हैं। नाम का निःश्वास प्रश्वासात्मक जप करने से प्राणों से नाम का सम्बन्ध हो जाता है।

एहि बिधि भरत फिरत बन माहीं। नेमु प्रेमु लखि मुनि सकुचाहीं ॥
पुन्य जलासय भूमि बिभागा। खग मृग तरु तृन गिरि बन बागा ॥१॥

अर्थ : इस विधि से भरतजी वन में घूम रहे हैं। नेम प्रेम देखकर मुनियों को

सङ्कोच हो रहा है। पवित्र जलाशय, भूखण्ड, पक्षी, मृग, तृण, वृक्ष, पर्वत, वन और बाग।

व्याख्या : भरतजी के वन की यात्रा की विधि का उपसंहार करते हुए कहते हैं कि इस विधि से भरतजी वन की यात्रा कर रहे हैं। राजकुमार होकर अत्यन्त सादे वेष से पैदल बिना जूता के ऐसे वन में जहाँ कुश कण्टक कङ्कड़ी भरी हुई है जेठ के महीने की धूप में घूम रहे हैं। इसे देखकर मुनि लोगों को भी सङ्कोच होता है कि हम लोग भी इस भाँति नहीं यात्रा कर सकते। कम से कम पादुका तो धारण कर ही लेते हैं और न हम लोगों में ऐसा प्रेम ही है कि सरकार के चरण चिह्नों को देखकर ऐसा हर्ष हो जैसा भरत को हो रहा है।

चित्रकूट के जलाशय पावन हैं। जिन्हें देखकर देवनदी और देवसर ईर्ष्या करते हैं। यथा : जे सर सरित राम अवगाहहिं। तिनहि देवसर सरित सराहहिं। भूखण्ड पवित्र है। क्योंकि वे सरकार के चरण चिह्नों से अङ्कित हैं। पक्षी मृग वेलि विटप तृण सब धन्य हैं। क्योंकि उन्हें रामजी का सन्निधान प्राप्त हैं। यथा : चित्रकूट के बिहँग मृग बेलि बिटप तृन जाति। पुन्य पुंज सब धन्य अति कहत देव दिन राति।

चारु पवित्र बिचित्र बिसेखी। बूझत भरतु दिव्य सब देखी॥
सुनि मन मुदित कहत रिषिराऊ। हेतु नाम गुन पुन्य प्रभाऊ॥२॥

अर्थ : सुन्दर पवित्र और विशेष विचित्र तथा दिव्य देखकर भरतजी पूछते हैं और ऋषिराज उनके प्रश्नों को सुनकर प्रसन्न मन से उनके हेतु गुण और प्रभाव बतलाते हैं।

व्याख्या : जलाशय, भूमि विभाग, खग, मृग, तृण, तरु सब अलौकिक शोभा सम्पन्न हैं। मानो इस लोक के हैं ही नहीं। इसलिए भरतजी जलाशय के पुण्यमय होने का हेतु पूछते हैं। खग मृग के नाम पूछते हैं। तृण तरु के गुण पूछते हैं। गिरि वन बाग का पुण्य प्रभाव पूछते हैं और अत्रि मुनि सबका पृथक् पृथक् वर्णन करते हैं। भाव यह कि यात्रा में यात्री को इन सब बातों की जानकारी प्राप्त करनी चाहिए। केवल रास्ता नापने से यात्रा का साफल्य नहीं है।

कतहुँ निमज्जन कतहुँ प्रनामा। कतहुँ बिलोकत मन अभिरामा॥
कतहुँ बैठि मुनि आयसु पाई। सुमिरत सीय सहित दोउ भाई॥३॥

अर्थ : कहीं स्नान करते थे। कहीं प्रणाम करते थे। कहीं मनोहर वन का दर्शन करते थे। कहीं मुनिजी की आज्ञा पाकर बैठ जाते थे और सीताजी के साथ रामजी का स्मरण करते थे।

व्याख्या : पुण्य जलाशयों में स्नान करते थे। भूमि विभाग को प्रणाम करते थे। खग मृग तृण तरु को देखते थे। वन बाग में मुनिजी की आज्ञा से ठहर जाते थे और बैठकर रामजानकी का स्मरण करते थे। भक्त को भगवान् के स्मरण

में ही विश्राम मिलता है सृष्टि वैचित्र्य के देखने से उन्हें उस स्रष्टा के विचित्र महा-सृष्टिनैपुण्य का ध्यान बँधता है।

देखि सुभाउ सनेहु सुसेवा। देहिं असीस मुदित बनदेवा ॥
फिरहिं गएँ दिनु पहर अढ़ाई। प्रभु पद कमल बिलोकहिं आई ॥४॥

अर्थ : स्वभाव स्नेह और अच्छी सेवा देखकर वनदेव प्रसन्न होकर आशीर्वाद देते हैं। ढाई पहर बीतने पर यात्रा से लौटते हैं और सरकार के चरण कमलों का दर्शन करते हैं।

व्याख्या : बनों के भी पृथक् पृथक् अधिष्ठातृ देवता और देवियाँ होती हैं। यथा : बनदेवी बनदेव उदारा। करिहहि सास ससुर सम सारा। सो वनदेव भरतजी का स्नेह देखकर कि सरकार के चरणों में इतनी प्रीति है। स्वभाव देखकर कि मुनिजी की आज्ञा से ही सब कुछ करते हैं। एक एक वस्तु के विषय में जानकारी प्राप्त करते हैं। माहात्म्य जानकर कहीं स्नान करते हैं और कहीं प्रणाम करते हैं। ऐसी सेवा देखकर वनदेवता प्रसन्न हो जाते हैं और आशीर्वाद देते हैं।

इस भाँति भरतजी ढाई पहर तक तो यात्रा में व्यतीत करते हैं। तब अपराह्न में भोजनादि के लिए लौटते हैं। लौटने पर फिर सरकार के चरणों का दर्शन करते हैं और उसी दर्शन से यात्रा की परिपूर्णता मानते हैं।

दो. देखे थल तीरथ सकल, भरत पाँच दिन माँझ।
कहत सुनत हरिहर सुजसु, गयउ दिवस भइ साँझ ॥३१२॥

अर्थ : भरतजी ने पाँच दिन में चित्रकूट के सब तीर्थों का दर्शन कर लिया। हरिहर का सुयश कहते सुनते दिन बीता और सन्ध्या हुई।

व्याख्या : आज भी चित्रकूट की यात्रा पाँच दिनों में की जाती है। पाँच दिनों में यात्रा पूर्ण हुई। यात्रा के दिनों में अवशिष्ट समय को हरिहर सुयश के कथन श्रवण में बिताना चाहिए। अतः कहते हैं कि भरतजी का दिन इस भाँति यात्रा के नियमों को पालन करते बीता।

तीसरी सभा

भोर न्हाइ सबु जुरा समाजू। भरत भूमिसुर तिरहुति राजू ॥
भल दिनु आजु जानि मन माहीं। रामु कृपाल कहत सकुचाहीं ॥१॥

अर्थ : सवेरे नहाकर सब समाज जुटा। जिसमें भरतजी ब्राह्मण लोग तथा तिरहुत के राजा थे। आज अच्छा दिन है ऐसा मन में जानने पर भी राम कृपालु कहने में सङ्कोच करते हैं।

व्याख्या : सब कुछ निर्णय हो गया। भरतजी की समाज के सहित यात्रा भी समाप्त हो गयी। लोग नहा नहाकर सरकार के पास आगये। अब उन लोगों

को छुट्टी माँगनी चाहिए। पर कोई कुछ कहता नहीं है। रामजी मन में सोच रहे हैं कि आज यात्रा के लिए शुभ मुहूर्त है। यात्रा का मुहूर्त जल्दी मिलता नहीं। अतः इन लोगों को आज चला जाना चाहिए। पर मैं कैसे कहूँ कि आप लोग जाइये। रामजी इस सङ्कोच में पड़ गये। बड़े कृपालु हैं। निष्ठुर वचन मुख से कहना नहीं चाहते।

गुर नृप भरत सभा अवलोकी। सकुचि राम फिरि अवनि बिलोकी ॥
सील सराहि सभा सब सोची। कहुँ न राम सम स्वामि सँकोची ॥२॥

अर्थ : रामजी ने गुरु, राजा, भरत तथा सभा की ओर देखा। फिर सङ्कुचित होकर नीचे देखने लगे। शील की प्रशंसा करके सभा ने सोचा कि राम के समान सङ्कोची मालिक कहीं नहीं हैं।

व्याख्या : शुभ मुहूर्त का ध्यान गुरुजी को होना चाहिए। इसलिए उनकी ओर देखा। महाराज जनक को ख्याल होना चाहिए कि दोनों राज्य सूने पड़े हैं। इसलिए जनकजी की ओर देखा। भरतजी ने वन देखने के लिए आज्ञा माँगा था। सो देख चुके। अब ठहरने का कारण नहीं है। अतः उनकी ओर देखा। अन्य लोगों को ठहर ठहरकर घर को सुधि आ जाती है। यथा : छन बन रुचि छन सदन सोहाहीं। अतः उन लोगों की ओर देखा। जब कोई न बोला तो सङ्कोच से निगाह नीची कर ली।

सभी सभासद रुख पहिचाननेवाले हैं। समझ लिया कि सरकार विदा करना चाहते हैं। पर सङ्कोच से कह नहीं रहे हैं। मन ही मन प्रशंसा करते हैं कि ऐसा सङ्कोची मालिक कहाँ मिलेगा। रामजी शील के सागर हैं।

भरत सुजान राम रुख देखी। उठि सप्रेम धरि धीर बिसेखी ॥
करि दंडवत कहत कर जोरी। राखी नाथ सकल रुचि मोरी ॥३॥

अर्थ : सुजान भरतजी ने रामजी का रुख देखा। विशेष धैर्य धारण करके प्रेम के साथ उठे। दण्डवत् करके हाथ जोड़कर बोले कि नाथ ने मेरी सब रुचि रख ली।

व्याख्या : भरत सुजान हैं। समझते हैं कि सरकार से छुट्टी भी मुझे ही लेनी पड़ेगी। मेरो ही मन्त्र से सब लोग यहाँ आये हैं। अतः विदाई के लिए कोई न कहेगा और रामजी के सबकी ओर देखने और सङ्कुचित होने का मतलब यही है कि आज अच्छा दिन है। अब सब लोग प्रस्थान करें। अतः रामजी के वियोग जन्य दुःख के सहन करने के लिए विशेष धैर्य धारण किया और प्रेम के साथ उठकर दण्डवत् प्रणाम किया और हाथ जोड़कर बोले कि सरकार ने मेरी सभी रुचि रख ली। मुझे सेवक जानकर सम्मानित किया। मेरा कलङ्क मिट गया। मेरे कहने पर अपनी प्रतिज्ञा भङ्ग करने के लिए भी तैयार हो गये। वन की यात्रा के

लिए भी आज्ञा दे दी। अतः मेरा आना सार्थक हुआ। यथा : नाथ भयउ सुख साथ गए को। लहेउँ लाहु जग जनम भए को।

मोहि लगि सहेउ सबहि संतापू। बहुत भाँति दुखु पावा आपू॥
अब गोसाइँ मोहि देउ रजाई। सेवउँ अवध अवधि भर जाई॥४॥

अर्थ : मेरे लिए सभी सन्ताप सहा और बहुत भाँति स्वयं दुःख उठाया। हे स्वामी! अब मुझे आज्ञा मिले कि मैं जाकर अवधि भर अवध की सेवा करूँ।

व्याख्या : भरतजी कहते हैं कि मेरे लिए सरकार को मानसिक सन्ताप सब प्रकार का सहना पड़ा। मैंने सरकारी आज्ञा नहीं मानी। सबको इकट्ठा करके सरकार को सङ्कोच में डाला। सरकार के चित्त में क्षोभ हुआ। कष्ट उठाया। यथा : राम सत्यव्रत धर्मरत सबकर सील सनेहु। संकट सहत सकोच बस कहिअ जो आयसु देहु। और भी बहुत प्रकार के दुःख आपको हुए। अब मैं अधिक कष्ट देना नहीं चाहता। केवल आज्ञा चाहता हूँ। मुझे आज्ञा हो कि जब तक सरकार वन से नहीं लौटते तब तक मैं अयोध्या की सेवा करूँ। अर्थात् प्रजा पालन करूँ।

दो. जेहिं उपाय पुनि पाँय जनु, देखइ दीनदयाल।
सो सिख देइअ अवधि लगि, कोसल पाल कृपाल ३१३॥

अर्थ : हे कोसलपाल कृपाल! अवधि तक के लिए मुझे ऐसी शिक्षा दीजिये जिस उपाय से हे दीनदयाल! यह दास फिर चरणों का दर्शन करे।

व्याख्या : भरतजी कहते हैं कि कोसलपाल आप हैं। आप ही कोसल के प्रकृत राजा हैं। प्रजा के हृदय पर आप का राज्य है। मैं तो कोसलपुर का सेवक होकर उसकी सेवा उतने ही दिन करूँगा जितने दिन कि आप वन में हैं। अब आप कृपा करके ऐसी शिक्षा दीजिये जिससे मैं अयोध्या का पालन भी करूँ और लौटने पर सरकार उसे जूठा न समझें और मैं भी जिस उपाय का अवलम्बन करके उतने दिन तक जीवन धारण कर सकूँ। भाव यह है कि आप दीनदयाल हैं। कृपाल हैं। मैं दीन हो रहा हूँ। मुझे यह उपाय नहीं सूझ रहा है कि चौदह वर्ष तक बिना आपके मैं कैसे जीवन धारण कर सकूँगा और लौटने पर सरकार को यह धारणा भी न हो कि चौदह वर्ष तक भरत ने शासन किया तो अब मैं जाकर इसे कैसे हटाऊँ। इसी को शासन करने दो। सरकार की दयालु प्रकृति होने से मुझे यह भी भय हो रहा है। अतः कृपा करके आप ही उपाय बताइये।

पुरजन परिजन प्रजा गोसाईं। सब सुचि सरस सनेह सगाई॥
राउर बदि भल भव दुख दाहू। प्रभु बिनु बादि परम पद लाहू॥१॥

अर्थ : हे गोसाइँ! पुरजन कुटुम्बी और प्रजा सब स्नेह के सगापन से सरस और पवित्र हैं। आप के लिए संसार के दुःख का दाह भी भला है। प्रभु के बिना परम पद का लाभ भी व्यर्थ है।

व्याख्या : अपनी ओर से कहकर अब प्रजा की ओर से कहते हैं कि पुरजन और परिजन सब स्नेह के नाते से सरस हैं। यथा : हम सम पुन्य पुंज जग थोरे। जिनहि राम जानत करि मोरे। अतः सब पवित्र हैं। क्योंकि भक्ति से ही अन्तःकरण शुद्ध होता है। प्रेम भगति जल बिनु रघुराई। अभ्यन्तर मल कबहुँ कि जाई।

सभी की यह व्यवस्था है कि आपके लिए यदि संसार दुःख का दाह भी हो तो अच्छा मानते हैं। भाव यह कि संसार के दुःख का दाह यदि अपने लिए हो तो बुरा है। यथा : डरपहिं धीर गहन सुधि आये। पर आपके लिए वह भी सहना परम सुखद है। यथा : सुख समेत संवत दुइ साता। पल सम होहिं न जनिअहिं जाता। और यदि आप न हों तो परम पद की प्राप्ति भी व्यर्थ है। यथा : सगुन उपासक संग तहँ रहहिं मोक्ष सुख त्यागी।

स्वामि सुजानु जानि सबही की। रुचि लालसा रहनि जन जी की ॥
प्रनतपालु पालिहि सब काहू। देउ दुहूँ दिसि ओर निबाहू ॥२॥

अर्थ : हे स्वामि सुजान प्रणतपाल ! आप तो सबके हृदय की रुचि और रहनी सम्बन्धी जी की लालसा जानकर सबका पालन करेंगे। दोनों तरफ का पूरा निर्वाह करेंगे।

व्याख्या : सुजान तो वही हैं जो हृदय की बात जान लें। आप सुजान स्वामी हैं। सबके हृदय की बात जानते हैं। आपसे किसी की रुचि, लालसा और रहनी छिपी नहीं है।

रुचि यथा : दोउ समाज अस रुचि मन माँहीं।
बिनु सिय राम फिरब भल नाँहीं ॥
दाहिन दैउ होइ जब सबही।
राम समीप बसिअ बन तबही ॥
लालसा यथा : गनप गौरि त्रिपुरारि तमारी।
रमा रमनपद बंदि बहोरी।
बिनवहिं अंजुलि अंचल जोरी ॥
राजा राम जानकी रानी।
आनँद अवधि अवध रजधानी ॥
गुरु समाज भाइन्ह सहित रामराज पुर होउ।
अछत राम राजा अवध मरिअ माँग सब कोउ ॥
रहनि यथा : राम दरस हित नेम ब्रत लगे करन नर नारि।
मनहु कोक कोकी कमल दीन बिहीन तमारि ॥

आप प्रणतपाल हैं। यहाँ सभी प्रणत हैं। यथा : मंगल मूरति लोचन भरि भरि। निरखहिं हरषि दंडवत करि करि। अतः सरकार सबका पालन करेंगे और घर और वन दोनों ओर का निर्वाह करेंगे।

अस मोहि सब बिधि भूरि भरोसो । कियें बिचारु न सोचु खरो सो ॥
आरति मोर नाथ कर छोहू । देहु मिलि कीन्ह ढीठु हठि मोहू ॥३॥

अर्थ : मुझे तो ऐसा बड़ा भारी भरोसा है । यदि विचार करता हूँ तो सोच की बात कुछ भी नहीं है । अपनी आर्त्ति और सरकार का छोह दोनों ने मिलकर मुझे हठ करके ढीठ बना दिया ।

व्याख्या : भरतजी कहते हैं कि सरकार सबका पालन करेंगे । घर वन दोनों का निर्वाह करेंगे । इस बात का मुझे पूरा भरोसा है । अतः विचार करने पर तो सोच को कहीं स्थान नहीं है । फिर भी मैं सोच करता हूँ । अविनय विनय यथा रुचि वाणी बोलता हूँ । तो यह मेरी ढिठाई है । मैं ढिठाई करना चाहता नहीं । परन्तु मैं आर्त्त हूँ और आर्त्त से ढिठाई हो ही जाती है । यथा : आरति बस सनमुख भइउँ बिलग न मानव तात । और छोह करने से भी बच्चे ढीठ हो जाते हैं । सो सरकार का छोह इतना है कि उसने भी मुझे ढीठ बना दिया है ।

यह बड़ दोषु दूरि करि स्वामी । तजि सकोच सिखइअ अनुगामी ॥
भरत बिनय सुनि सबहि प्रसंसी । छीर नीर बिबरन गति हंसी ॥४॥

अर्थ : हे स्वामिन् ! इस बड़े दोष को दूर करके मैं अनुचर हूँ मुझे शिक्षा दीजिये । भरत की प्रार्थना सुनकर सबने प्रशंसा की कि भरतजी की वाणी दूध और जल को अलग करने के लिए हंस सी थी ।

व्याख्या : वात्सल्य को स्थान देकर सरकार मेरा सम्मान करते हैं । इससे मेरी ढिठाई बढ़ती है । मैं इसे बड़ा दोष मानता हूँ । सो सरकार मेरा सम्मान न करें और सङ्कोच छोड़कर मुझे शिक्षा दें कि मैं अवध की सेवा किस भाँति करूँ । मुझे जो विधि पालन करने की सरकार बतलायेंगे उसी विधि से मैं पालन करने का प्रयत्न करूँगा । भावार्थ यह कि आपके अयोध्या में न रहने पर आपकी आज्ञा से अवध का पालन करना मुझे स्वीकार है । परन्तु जिस विधि से मैं पालन करूँ वह विधि भी आपकी बतलायी हुई होगी तभी सेवा धर्म निबहेगा ।

ऐसे गुण दोष को पृथक् करनेवाली वाणी की उपमा हंस से दी गयी है । इसे सुनकर सभी ने प्रशंसा की ।

दो. दीनबंधु सुनि बंधु के, बचन दीन छलहीन ।
देस काल अवसर सरिस, बोले राम प्रबीन ॥२१४॥

अर्थ : दीनबन्धु प्रवीण रामचन्द्र भाई के छलहीन दीन वचन सुनकर देश काल और अवसर के अनुकूल बोले ।

व्याख्या : सरकार दीनबन्धु हैं । भरतजी बन्धु भी हैं और दीन वचन बोल रहे हैं । सरकार प्रवीण हैं । जानते हैं कि इस वचन में छल की छाया नहीं है । यदि भरतजी शिक्षा के लिए प्रार्थना करते हैं तो उनका ऐसा करना उचित है । अतः

देश काल और अवसर अनुसार बोले। देश काल और अवसर के अनुसार बोलना ही प्रवीणता है।

तात तुम्हारि मोरि परिजन की। चिंता गुरहिं नृपहिं घर बन की ॥
माथे पर गुर मुनि मिथिलेसू। हमहि तुम्हहि सपनेहु न कलेसू ॥१॥

अर्थ : हे तात ! मेरी परिजन की, घर की और वन की चिन्ता गुरुजी और महाराज को है। हम लोगों के सिर पर गुरुजी और मिथिलाधिपति बने हैं। हमें और तुम्हें सपने में भी क्लेश नहीं है।

व्याख्या : भरतजी ने कहा था : देव दुहू दिसि ओर निबाहू। उसी के उत्तर में सरकार कहते हैं हम लोग अनाथ नहीं हैं कि चिन्ता करें कि घर में क्या होता होगा या वन में क्या होता होगा। भरतजी ने सब बोझा अपने बड़े रामजी पर रक्खा और रामजी सब बोझा अपने बड़े गुरुजी तथा महाराज जनक पर रख रहे हैं।

हम लोगों के सिर पर गुरुजी तथा महाराज मिथिलेश के करकमलों की छाया है। हमें या तुम्हें चिन्ता करने की कोई बात नहीं है। गुरुजी तथा महाराज जनक सदा रक्षा करेंगे।

मोर तुम्हार परम पुरुषारथु। स्वारथु सुजसु धरमु परमारथु ॥
पितु आयसु पालिहिं दुहु भाई। लोक बेद भल भूप भलाई ॥२॥

अर्थ : मेरा तुम्हारा परम पुरुषार्थ स्वार्थ सुयश और परमार्थ यही है कि दोनों भाई पिता की आज्ञा पालन करें। राजा की भलाई से लोक और वेद में भी भला है।

व्याख्या : नीति प्रीति परमारथ स्वारथ। कोउ न राम सम जान जथारथ। सो रामजी निर्णय किये देते हैं कि स्वार्थ, सुयश, धर्म और पुरुषार्थ सब कुछ पिता की आज्ञा पालन करने में हैं। यथा : पिता धर्मः पिता कर्म पितैव परमा गतिः। पितरि प्रीतिमापन्ने प्रीयन्ते सर्व देवता। अतः रामजी कहते हैं कि हम दोनों भाइयों की सब तरह से भलाई पिता की आज्ञा के पालन करने में है। आज्ञा पालन से सुरपुर में चक्रवर्तीजी को सन्तोष होगा। उनका सत्य अक्षुण्ण रह जायगा। उनकी भलाई होगी तो हम लोगों का भी लोक और परलोक सुधरेगा। यहाँ वेद शब्द परलोक का उपलक्षण है। क्योंकि वह अज्ञातार्थ का ज्ञापक है।

गुर पितु मातु स्वामि सिख पालें। चलेहुँ कुमग पग परहिं न खालें ॥
अस बिचारि सब सोच बिहाई। पालहु अवध अवधि भरि जाई ॥३॥

अर्थ : गुरु पिता माता स्वामी की शिक्षा पालन करने से बेरास्ते चलने पर भी पैर खाले में नहीं पड़ता। ऐसा विचार करके सब सोच छोड़कर अवधि पर्यन्त अवध का पालन करो।

व्याख्या : स्वयं वेद कहता है : मातृदेवो भव। पितृदेवो भव। आचार्यदेवो भव। स्वामी भी पिता ही है। क्योंकि वह रक्षा करता है। पातीति पिता। पिता शब्द का व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ ही रक्षक है। इन चारों में देवभाव रखना चाहिए। जिस भाँति देवता की आज्ञा में विचार को स्थान नहीं है तदनुसार कार्य करने से हानि हो नहीं सकती। ईश्वरीय सहायता होती है। गुरु पिता माता स्वामी को आज्ञा अटपटी होने पर भी हानिकारक नहीं हो सकती। परिणाम उसका अच्छा ही होता है। रामजी के कहने का भावार्थ यह है कि हम लोग तो भले रास्ते पर चल रहे हैं हमारी हानि कैसे होगी ?

अब रामजी आज्ञा देते हैं कि ऐसा विचारकर सब सोच छोड़कर चौदह वर्ष तक अयोध्या का पालन करो। लौट आने पर मैं सँभाल लूँगा।

देसु कोसु परिजन परिवारू। गुर पद रजहिं लाग छरुभारू ॥
तुम्ह मुनि मातु सचिव सिख मानी। पालेहु पुहुमि प्रजा रजधानी ॥४॥

अर्थ : देश, कोश, पुरवासी और परिवार आदि की जिम्मेदारी तो गुरुजी के चरणों की धूलि को है। तुम मुनिजी माता और मन्त्रियों की शिक्षा मानकर पृथ्वी प्रजा और राजधानी की रक्षा करना।

व्याख्या : भरतजी ने शिक्षा देने के लिए प्रार्थना की थी। अतः सरकार कहते हैं कि तुम्हें तीन काम करना है : पृथ्वी का पालन। प्रजा का पालन और राजधानी का पालन। सो गुरुजी माता और मन्त्रियों की सम्मति लेकर करना। पृथ्वी दूसरे के अधिकार में न जाने पावे। प्रजा दुःखी न हों और राजधानी की व्यवस्था बिगड़ने न पावे। राजधानी ही सम्पूर्ण व्यवहार का स्रोत है।

दो. मुखिआ मुखु सों चाहिये, खान पान कहुँ एक।
पालइ पोषइ सकल अँग, तुलसी सहित बिबेक ॥३१५॥

अर्थ : तुलसीदासजी कहते हैं कि मुखिया मुख की भाँति होना चाहिए। जो अकेले खाय और पीये। पर सब अङ्गों का विवेक के सहित पालन पोषण करे।

व्याख्या : मुख अकेले हो खाता है और पीता है। पर अपने पास कुछ नहीं रखता। उसे कूँच पीसकर पाक के योग्य बनाकर पक्वाशय के सुपुर्द कर देता है और वहाँ से उसका रस बनकर यथायोग्य सब अङ्गों का पोषण होता है। विवेक के साथ भोजन का भाव यह कि इतना न खा जावे कि अजीर्ण हो जाय। न इतना कम खाय कि शरीर क्षीण हो जाय। शुद्ध और पथ्य पदार्थ का ही सेवन करे।

इसी भाँति मुखिया को आचरण करना चाहिए। वह जो कुछ ग्रहण करे इसमें से कुछ अपने पास न रक्खे। सबका सब सार्वजनिक कार्य विभाग के सुपुर्द कर दे और वहाँ से यथोचित सबका पालन हो। इतना अधिक कर न ले कि प्रजापीड़ा हो और इतना कम भी न ले कि शासन व्यवस्था दुर्बल हो जाय। जिनसे कर लेना उचित है उन्हीं से ले। शास्त्रीय मर्यादा भङ्ग न हो।

राजधरम सरबसु एतनोई। जिमि मन माँह मनोरथ गोई ॥
बंधु प्रबोधु कीन्ह बहु भाँती। बिनु अधार मन तोषु न साँती ॥१॥

अर्थ : राजधर्म का सार सर्वस्व इतना ही है। जैसे मन में मनोरथ छिपा रहता है। रामजी ने बहुत प्रकार से समझाया। परन्तु बिना आधार के न मन में सन्तोष हुआ न शान्ति हुई।

व्याख्या : रामजी कहते हैं कि इतना ही राजधर्म का सर्वस्व है। शेष का सम्पूर्ण राजधर्म इसका विस्तार है। इस पर ध्यान रहने से सम्पूर्ण राजधर्म का पालन होगा। जैसे सम्पूर्ण मनोरथों का निवास मन में ही रहता है उसी भाँति सम्पूर्ण राजधर्म इसी दोहे में है। इस भाँति राजधर्म की शिक्षा देकर बहुत भाँति से भरतजी को समझाया। यथा :

तुम्हरे निबाहे निबहेगी सबहीं कि बलि उर धरि धीर धर्म मारग सँवारिये।
जा में विजय आनंद बधाई तिहुँलोक बजै विप्र सुर साधु महि संकट निवारिये॥
होवै सुरकाज महाराज को वचन साँच तात कुल कीरति पताका फहराइये।
वचन तिहारो मानि आइके करौंगो राज अवधि बिताय तौलों अवध सँवारिये॥

इस प्रकार से बहुत समझाया। परन्तु भरतजी साकारोपासक हैं। उन्हें आधार चाहिए। बिना आधार के उन्हें न सन्तोष है न शान्ति है।

भरत सील गुरु सचिव समाजू। सकुच सनेह बिबस रघुराजू ॥
प्रभु करि कृपा पाँवरी दीन्ही। सादर भरत सीस धरि लीन्ही ॥२॥

अर्थ : भरत का शील और गुरु तथा सचिव का समाज, रघुराज सङ्कोच और स्नेह के वश में पड़ गये। कृपा करके प्रभु ने अपने खड़ाऊँ दिये जिन्हें आदर के साथ भरतजी ने सिर पर चढ़ा लिये।

व्याख्या : इधर भरतजी का शील उधर बड़ों का तथा पिता के मन्त्रियों का समाज। भरतजी अवलम्ब चाहते हैं। बड़े के अभाव में उसकी चरण पादुका के ही उपासना की सनातन रीति है। अतः अपनी चरण पादुका देना प्राप्त है। परन्तु बड़ों के समाज में अपनी चरण पादुका देने में रामजी को सङ्कोच है। भरत का इतना शील स्नेह है कि उनके माँगने पर कैसे न दें। इधर बड़ों के समाज में अपने चरण पादुका के देने में सङ्कोच है। अतः रामजी सङ्कोच के वश में पड़ गये। अन्त में स्नेह को ही विजय हुई। सरकार को चरणपादुका देनी पड़ी।

चरन पीठ करुनानिधान के। जनु जुग जामिक प्रजा प्रान के ॥
संपुट भरत संनेह रतन के। आखर जुग जनु जीव जतन के ॥३॥

अर्थ : करुणानिधान के खड़ाऊँ : चरणपीठ मानो प्रजाप्राण के दो पहरेदार हैं। भरतजी के प्रेमरूपी रत्न के लिए डब्बा हैं। जाव के यत्न के लिए मानो दो अक्षर हैं।

व्याख्या : सरकार के खड़ाऊँ मानो दो पहरेदार प्रजा के प्राण के हैं। वे उसे निकलने न देंगे। प्रजा यह समझकर प्राण धारण करेगी कि सिंहासन पर रामजी नहीं हैं तो उनका खड़ाऊँ तो है। अब निर्विवाद रूप से रामजी का राज्य है।

रक्षा के लिए रत्न पेटक में रक्खे जाते हैं। पेटक में दो ढकने होते हैं। भरतजी का प्रेम बड़ा बहुमूल्य है। इसलिए उसे रत्न कहते हैं। जिस भाँति रत्न का आधार पेटक होता है। उसी भाँति भरतजी के प्रेम का आधार दोनों खड़ाऊँ हुए। भरतजी उन्हीं का पूजन करेंगे। सिंहासन पर स्थापित करेंगे। उन्हीं से आज्ञा लेकर सब राजकाज सँभालेंगे।

इन खड़ाऊँ की आराधना से रामजी की प्राप्ति होगी। जिस भाँति रा और म दोनों के जप से रामजी की प्राप्ति जीव को होती है। यथा : नाम निरूपन नाम जतन से। सोउ प्रकटत जिमि मोल रतन से।

कुल कपाट कर कुसल करम के। बिमल नयन सेवा सुधरम के ॥
भरत मुदित अवलंब लहे ते। अस सुख जस सिय राम रहे तें ॥४॥

अर्थ : कुल के लिए मानो किवाड़ थे। कर्म के लिए मानो दोनों कुशल हाथ थे। सेवारूपी सुधर्म के लिए मानो दोनों नेत्र थे। अवलम्ब प्राप्त होने से भरत प्रसन्न हुए। उन्हें ऐसा सुख हुआ जैसा सीता राम के रह जाने से होता।

व्याख्या : कुल के लोगों के लिए भी वह खड़ाऊँ प्राणाधार हुआ। अतः कुल का रक्षक हुआ। कपाट से रक्षा होती है। यथा : ध्यान तुम्हार कपाट। कपाट भी दो होते हैं और खड़ाऊँ भी दो होते हैं। कर्म का कौशल यही है कि वह बन्ध का कारण न हो। इन खड़ाऊँ को सिंहासनारूढ़ करके जो राजकार्य भरतजी करेंगे वह बन्धन का कारण न होगा। इसलिए उन्हें कर्म के लिए दो कुशल हाथों से उपमित किया। सेवारूपी सुधर्म के लिए तो वे मानो दोनों आँख हो गये। माँगि माँगि आयसु करत राज काज बहु भाँति। भरतजी उन्हीं खड़ाऊँ की आज्ञा से सब राजकार्य करते थे। ये खड़ाऊँ न होते तो किससे आज्ञा माँगते। आज्ञा सम न सुसाहिब सेवा। अतः वह सेवा अन्धों की सेवा सी होती। मन में स्थिर न कर सकते कि जो मैं कर रहा हूँ वह सरकार की मर्जी के अनुकूल है या नहीं। खड़ाऊँ के कारण निश्चय करने में सुभीता था। इसलिए उसे आँख कहा।

दो. माँगेउ बिदा प्रनामु करि, राम लिये उर लाइ।
लोग उचाटे अमरपति, कुटिल कुअवसरु पाइ ॥३१६॥

अर्थ : प्रमाण करके विदा माँगा। रामजी ने हृदय से लगा लिया। कुटिल इन्द्र ने कुअवसर पाकर लोगों के चित्त में उचाट कर दिया था।

व्याख्या : पाँवरी मिल गयी। अतः काम पूरा हो गया। इसलिए भरतजी ने प्रणाम किया और विदा माँगी। रामजी ने हृदय से लगा लिया। भाव यह कि तुम प्राण से प्यारे हो। अवश होकर मैं विदा करता हूँ। कवि इन्द्र को कपटी कहते हैं

कि ऐसे करुणा के अवसर में भी उन्हें कपट न भूला। देखा कि यह मेरे लिये बड़ा अच्छा अवसर है। इस समय उचाट का प्रयोग करने से रामजी अप्रसन्न न होंगे और लोगों ने जो निश्चय किया था कि विना रामजी के फिरना अच्छा नहीं वे हठ भी न करेंगे।

सो कुचालि सब कहँ भइ नीकी। अवधि आस सम जीवनि जी की ॥
नतरु लखन सिय राम बियोगा। हहरि मरत सब लोग कुरोगा ॥१॥

अर्थ : वह कुचाल सब के लिए अच्छी हो गयी। अवधि की आशा के समान जीव की जीवन हो गयी। नहीं तो लक्ष्मण सीता और राम के वियोगरूपी कुरोग से सब लोग हहरकर मर जाते।

व्याख्या : अवधि आस सब राखहिं प्राना। सबका जीवनाधार अवधि हो गयी थी। अर्थात् सब यह आशा लगाये जी रहे थे कि चौदह वर्ष बाद फिर भेंट होगी। उसी भाँति यह उच्चाटन भी जीवनाधार हो गया। नहीं तो लक्ष्मण सीता और रामजी का वियोग ऐसा कुरोग था जो सबका प्राण लेकर ही छोड़ता। उच्चाटन के कारण वियोग व्यथा बहुत कुछ कम हो गयी।

रामकृपा अवरेब सुधारी। बिबुध धारि भइ गुनद गोहारी ॥
भेंटत भुज भरि भाइ भरत सो। राम प्रेमरसु कहि न परत सो ॥२॥

अर्थ : रामजी की कृपा ने अवरेब सुधार दिया। देवताओं की सेना गुणदायक गोहार हो गयी। भुजा भरके भरत से भाई को भेंटते हुए रामजी का वह प्रेमरस कहते नहीं बनता।

व्याख्या : देवताओं ने तो लोगों की बुद्धि को विकृत करने के लिए उच्चाटन का प्रयोग किया था। इससे उनकी बुद्धि में विकार भी हो गया। पर रामजी की कृपा से वह विकार लाभदायक हो गया। बिगरी बनावै कृपानिधि की कृपा नई। अवरेब टेढ़ी काट को कहते हैं। सो देवताओं की यह टेढ़ी चाल : कुचाल रामकृपा से हितकर सिद्ध हुई। देवता लोग तो सब मिलकर अहित करने चले थे। जिस भाँति सेना अहित करने चलती है। पर रामजी की कृपा से वह सेना गोहार हो गयी। हित-कारिणी हो गयी। निर्बल की सहायता के लिए जो लोग इकट्ठे होकर चलते हैं उसे गोहार कहा जाता है। यथा : गाय गोहार तिरिया गोहार आदि।

भयउ न भुवन भरत सम भाई। सो ऐसे भाई का गाढ़ आलिङ्गन करने में जिस प्रीतिरस का प्रादुर्भाव हुआ वह सर्वथा अवर्णनीय था।

तन मन बचन उमग अनुरागा। धीर धुरंधर धीरजु त्यागा ॥
बारिज लोचन मोचत बारी। देखि दसा सुर सभा दुखारी ॥३॥

अर्थ : शरीर मन और वचन में अनुराग उमड़ पड़ा। धैर्यधारियों के धुरन्धर ने

धैर्य छोड़ दिया। कमल ऐसे नेत्रों से जल गिर रहा है। इस दशा को देखकर देवसभा दुःखी हो गयी।

व्याख्या : तन मन बचन : से रामजी का उमङ्ग कहीं नहीं कहा गया। क्योंकि सरकार का स्वभाव हर्ष शोक से रहित है। यथा : बिस्मय हरख रहित रघुराऊ। तुम जानहु सब राम प्रभाऊ। सो यहाँ प्रेम ऐसा बढ़ा कि सरकार के स्वभाव में भी परिवर्तन दृष्टिगोचर होने लगा। इतने बड़े धीर का धैर्य डग गया। आँखों से जल गिरने लगा।

देवताओं का तो काम बन रहा था। पर सरकार की दशा देखकर वे भी दुःखी हो गये। इसीलिए सेना शब्द का प्रयोग न करके कवि ने सभा शब्द का प्रयोग किया।

मुनिगन गुर धुर धीर जनक से। ग्यान अनल मन कसे कनक से ॥
जे बिरंचि निरलेप उपाए। पदुम पत्र जिमि जग जल जाए ॥४॥

अर्थ : मुनि समाज गुरु वसिष्ठजी और जनक के समान धीर जिनका मनरूपी सोना ज्ञान की अग्नि में कसा हुआ था। जिन्हें ब्रह्मदेव ने निर्लेप उत्पन्न ही किया था। संसाररूपी जल में जो कमल के पत्ते की भाँति पैदा हुए थे।

व्याख्या : मुनि समाज का अर्थ ही ज्ञानी समाज है। स्थितधीर्मुनिरुच्यते। क्योंकि स्थितप्रज्ञ को ही मुनि कहते हैं। उनमें भी वसिष्ठजी सबसे अग्रगण्य जिन्होंने योगवासिष्ठ कहा है और जनक के समान धीर। जिनका कहना है : सहज बिराग रूप मन मोरा। मिथिलायां न मे किञ्चित् प्रदह्यते। वामदेवादि गर्भज्ञानी। जो संसार में ही पैदा हुए। संसार से ही जीवन धारण करते हैं। फिर भी पद्मपत्र की भाँति निर्लेप रहते हैं। वे भी।

दो. तेउ बिलोकि रघुबर भरत, प्रीति अनूप अपार।
भए मगन मन तन बचन, सहित बिराग बिचार ॥३१७॥

अर्थ : वे भी रामजी के मिलने की अनुपम अपार प्रीति देखकर विराग और विचार के सहित तन मन वचन से मग्न हो गये।

व्याख्या : भरत और रामजी की प्रीति की उपमा नहीं है। क्योंकि प्रीति तो स्वार्थ को लेकर होती है। यथा : सुर नर मुनि सबकै यह रीती। स्वारथ लागि करहिं सब प्रीती। और इनकी प्रीति में स्वार्थ का लेश नहीं। इसलिए प्रीति को अनूप कहा और : राम संकोची प्रेम बस भरत सुप्रेम पयोधि। इससे अपार कहा और भी अनूपता यह है कि ऐसे ऐसे ज्ञानी भी उसे देखकर प्रेम में डूबने लगे। उनका विवेक विचार भी डूबने लगा। ज्ञानी तो पद्मपत्रमिवाम्भसा रहते हैं। उनके प्रेम में डूबने का तो प्रश्न ही नहीं उठता। वे विवेक के जहाज पर चढ़े हैं। पर यह प्रेम ऐसा अनूप अपार था कि इसे देखकर डूबने लगे और ऐसा अपार था कि पार न पा सके।

भावार्थ यह कि ऐसे ऐसे लोग भी प्रेमाकुल हो गये। उनका विवेक विचार उस समय कार्य करने में असमर्थ हो गया।

जहाँ जनक गुरु गति मति भोरी। प्राकृत प्रीति कहत बड़ि खोरी॥
बरनत रघुबर भरत बियोगू। सुनि कठोर कबि जानिहि लोगू॥१॥

अर्थ : जहाँ जनक और गुरुजी की मति की गति भोली हो जाती है उसे प्राकृत प्रीति कहना बड़े दोष की बात है। रामजी और भरत के वियोग का वर्णन करने से सुनकर लोग कवि को कठोर जानेंगे।

व्याख्या : ऊपर कह आये हैं कि मुनिगण वसिष्ठजी और जनकोजी राम और भरत की अपार प्रीति देखकर विवेक विचार के साथ मग्न हो गये। अर्थात् उन लोगों की मति गति भोली हो गयी। वह प्रीति सांसारिक प्रीति नहीं है। वह भक्त और भगवान् की प्रीति अलौकिक है। संसार से मन हटाकर ही भगवान् में लगाना सम्भव है। अतः उस प्रीति को सांसारिक प्रीति कथमपि नहीं कहा जा सकता। उसे सांसारिक प्रीति भाई भाई की प्रीति कहने में बड़ा दोष है।

दूसरी बात यह है कि रामजी और भरतजी के वियोग वर्णन में इतनी करुणा है कि उसके वर्णन को सुनकर लोग वर्णन करनेवाले को कठोर कहेंगे। अतः जो विषय वर्णनातीत है और उसके वर्णन के प्रयत्न में सुननेवाले भी उसे बुरा कहें उस विषयको अछूता छोड़ देना ही ठीक है।

सो सकोचु रसु अकथ सुबानी। समउ सनेहु सुमिरि सकुचानी॥
भेंटि भरतु रघुबर समुझाए। पुनि रिपुदवनु हरखि हिय लाए॥२॥

अर्थ : वह सङ्कोच है और रस कथनीय नहीं है। सुन्दर वाणी समय के स्नेह को स्मरण करके सङ्कुचित हो गयी। रामजी ने भरत से गले मिलकर उन्हें समझाया। तत्पश्चात् फिर शत्रुघ्नजी को हर्षित होकर हृदय से लगा लिया।

व्याख्या : एक तो कठोर कहे जाने का सङ्कोच दूसरे वियोग में रसका उत्कर्ष संयोग से भी अधिक हो जाता है। सो राम और भरत के वियोग का रस सर्वथा अकथनीय है। अतः कवि की सुवाणी उस समय के स्नेह को स्मरण करके सङ्कुचित हो गयी। कुछ कह न सकी अर्थात् अपना नृत्य उसने बन्द कर दिया।

अब निष्कर्ष कहते हैं कि रामजी ने भरतजी से गले मिलकर उन्हें समझाया।

यथा : मैं पितु बचन प्रमाण करि करि पूरन सुरकाज।
जब लगि आवत तात तुम पालहु राज समाज॥
अघटित घटना जो घटी सो सुर माया जानि।
सोच करहु जनि ईस बस जीव सदा जिय जानि॥
निज स्वारथ हित सब सहत दुःख सुख योग बियोग।
जग मंगल हित सहहि दुःख तात धन्य ते लोग॥

शत्रुघ्न सबसे छोटे हैं। उन पर बड़ा वात्सल्य है। अतः हर्ष से हृदय से लगा लिया।

सेवक सचिव भरत रुख पाई। निज निज काज लगे सब जाई ॥
सुनि दारुन दुखु दुहूँ समाजा। लगे चलन के साजन साजा ॥३॥

अर्थ : सेवक और मन्त्री भरतजी का रुख पाकर अपने अपने काम में सब लग गये। दारुण दुःख की बात सुनकर दोनों समाज चलने का साज सजने लगे।

व्याख्या : सरकार के समझाने से भरतजी को प्रबोध हो गया। क्योंकि पादुका प्राप्त कर चुके थे। अतः उनका चलने का रुख हुआ। रुख देखकर मन्त्री लोग अपने कार्य में लगे। तिलक का साज साथ आया था। सबको सँभालकर ले चलना, सेना को आज्ञा देना, माताओं के चलने की व्यवस्था आदि में तथा सेवक लोग अपनी अपनी सेवा सम्बन्धी व्यवस्थाओं में लग गये। रुख पाकर कार्य करने की विशेषता। अयोध्याकाण्ड भर में गोस्वामीजी ने दिखलाया है। चिन्तित कार्य करना ही उत्तम सेवक का लक्षण है। आज्ञा पाने पर कार्य करनेवाले मध्यम हैं। आज्ञा पाने पर भी आनाकानी करनेवाले अधम हैं।

दोनों समाज ने सुन लिया कि भरतजी विदा हो लिये। तो उन्हें दारुण दुःख हुआ। देवताओं की माया के काम करते रहने पर भी उनके प्रेम की मात्रा में अधिक ह्रास नहीं हुआ। इतना ही हुआ कि वे दुःखी मन से चलने को तैयार हो गये। अपना अपना बोरिया बधना बाँधने लगे।

प्रभु पद पदुम बंदि दोउ भाई। चले सीस धरि राम रजाई ॥
मुनि तापस बनदेव निहोरी। सब सनमानि बहोरि बहोरी ॥४॥

अर्थ : सरकार के चरण कमलों की वन्दना करके दोनों भाई रामजी की आज्ञा शिरोधार्य करके चले। मुनि तपस्वी और वनदेव का निहोरा किया। सबका बार बार सम्मान किया।

व्याख्या : दोनों भाई भरतजी और शत्रुघ्नजी ने मिलने के बाद रामजी के चरण कमलों की वन्दना की और चल पड़े। जो सरकार से प्राप्त होता है उसे भरतजी शिरोधार्य करते हैं। पादुका मिली उसे शिरोधार्य किया। यथा : प्रभु करि कृपा पाँवरी दीन्हीं। सादर भरत सीस धरि लीन्हीं। इस समय जाने के लिए आज्ञा हुई उसे भी शिरोधार्य किया। पहिले भरतजी ने कहा था : अब गोसाईं मोहि होइ रजाई। सेवहुँ अवध अवधि भरि जाई। सो आज्ञा मिल गयी कि अवधि भर अर्थात् मेरे लौटने तक जाकर राज्य की सेवा करो। अतः आज्ञानुसार सेवा करने के लिए भरतजी चले। चलते समय मुनि तपस्वी और वनदेवों का भरतजी ने निहोरा किया। बार बार सम्मान किया कि आप लोगों ने बड़ी कृपा की। हम लोगों के दुःख सुख में बड़ी सहानुभूति दिखलायी। ऐसी ही कृपा सदा बनी रहे इत्यादि।

दो. लखनहिं भेटि प्रनामु करि, सिर धरि सिय पद धूरि।
चले सप्रेम असीस सुनि, सकल सुमंगल मूरि ॥३१८॥

अर्थ . लक्ष्मणजी से गले मिलकर और प्रणामपूर्वक सीताजी की चरण की धूलि सिर पर धारण करके सकल सुमङ्गल मूल आशीर्वाद श्रवण करके प्रेम के साथ प्रस्थान किया।

व्याख्या : इस समय लक्ष्मणजी सीताजी के सन्निकट थे। सो दोनों भाई लक्ष्मणजी से मिले। प्रणामादि प्रक्रिया मिलने के ही अन्तर्गत है। तत्पश्चात् भगवती जनकनन्दिनी को प्रणाम करके उनकी चरण की धूलि को सिर पर धारण किया। भगवती की चरण धूलि की महा महिमा भरतजी जानते हैं। आये तब भी उस धूलि को सिर पर धारण किया था। जाने के समय भी सिर पर धारण कर रहे हैं। इस समय भगवती ने स्पष्ट शब्दों में आशीर्वाद दिया। पहिले से ही चित्त को सावधान आशीर्वाद देने के लिए किये हुए हैं। माता का आशीर्वाद अमोघ है। यथा : आसिस तव अमोघ विख्याता। अतः सुमङ्गल मूल कहते हैं।

सानुज राम नृपहि सिर नाई। कीन्हि बहुत बिधि बिनय बड़ाई ॥
देव दया बस बड़ दुखु पायेउ। सहित समाज काननहि आयेउ ॥१॥

अर्थ : लक्ष्मण के सहित रामजी ने जनकजी को प्रणाम किया और बहुत विधि से विनय और स्तुति की। कहा कि राजन्! आपने दया परवश होकर बहुत दुःख पाया। समाज के सहित वन में चले आये।

व्याख्या : भरतजी के विदा होने पर लक्ष्मणजी ने समझ लिया कि अब सरकार जनकजी को विदा करेंगे। अतः लक्ष्मणजी रामजी के पास चले आये और उनके साथ जनकजी को प्रणाम किया। श्री रामजी ने जनकजी की स्तुति की। ऐसे अवसर पर बड़ों की स्तुति करना प्राप्त है। विनय भी किया। संक्षेप में स्तुति कहते हैं कि आप ब्रह्मज्ञानियों के सरदार हैं। आपकी सब में समदृष्टि है। अतः आपके लिए अपना पराया कुछ भी नहीं। आपका कष्ट उठाना केवल दयापरवश होने से होता है। सो आपने बड़ा कष्ट उठाया। समाज के सहित जनकपुर से यहाँ वन में चले आये।

पुर पगु धारिअ देइ असीसा। कीन्ह धीर धरि गवनु महीसा ॥
मुनि महिदेव साधु सनमाने। बिदा किए हरि हर सम जाने ॥२॥

अर्थ : अब आशीर्वाद देकर पुर को पधारिये। महाराज ने धैर्य धारण करके प्रस्थान किया। मुनिगण, साधुगण, ब्राह्मणों का सम्मान करके हरि और हर के समान करके विदा किया।

व्याख्या : सरकार जनकजी से कहते हैं कि आपको कष्ट उठाते बहुत दिन हुए। सो अब हम लोगों को आशीर्वाद दीजिये। आपके आशीर्वाद से ही हम लोगों का मङ्गल होगा और अब राजधानी को सनाथ कीजिये। महाराज स्नेह से विह्वल

हो रहे थे। रामजी का वचन सुनकर धैर्य धारण किया और चल पड़े। फिर भी स्पष्ट शब्दों में आशीर्वाद न दे सके।

तत्पश्चात् सरकार ने मुनिगणों ब्राह्मणों और साधुओं को विदा किया। उन लोगों का सम्मान हरि और हर की भाँति किया। त्रिदेव में ब्रह्मा विष्णु और महादेव तीन देवता हैं। सो अपूज्य होने से ब्रह्मदेव का उल्लेख कवि ने नहीं किया।

सासु समीप गये दोउ भाई। फिरे बंदि पग आसिष पाई ॥
कौसिक बामदेव जाबाली। पुरजन परिजन सचिव सुचाली ॥३॥

अर्थ : दोनों भाई सास के पास गये और चरणवन्दना की तथा आशीर्वाद पाकर लौटे। विश्वामित्र, वामदेव, जाबालि, परिजन, पुरजन तथा सज्जन मन्त्रियों को।

व्याख्या : फिर दोनों भाई सास से मिलने जनकजी के डेरा पर गये। जाकर चरणवन्दना की। महाराज आशीर्वाद न दे सके। दोनों भाइयों के मिलन प्रीति देखने से अत्यन्त विह्वल हो गये थे। सास ने नहीं देखा था। अतः वे आशीर्वाद देने में समर्थ हुईं।

जनक समाज को विदा करके सरकार धनुर्वेद के गुरु विश्वामित्र गर्भज्ञानी वामदेव तथा जाबालि महर्षि तथा परिजन, पुरजन, सज्जन तथा मन्त्रियों को सम्मान करके लौटाया। परिजन पुरजन और मन्त्रिगण अपने अपने कामों में लगे थे। अतः उनके पास जा जाकर कृपानिधि ने सबका सत्कार किया सरकार का स्वभाव सज्जन सदाचारी के पास स्वयं जाने का है। सुचाली शब्द से कवि ने वही बात जनायी।

जथा जोगु करि बिनय प्रनामा। बिदा किये सब सानुज रामा ॥
नारि पुरुष लघु मध्य बड़ेरे। सब सनमानि कृपानिधि फेरे ॥४॥

अर्थ : यथा योग्य विनय प्रणाम करके भाई के साथ रामजी ने विदा किया। कृपानिधान ने सब छोटे मध्यम और बड़े स्त्री और पुरुषों को सम्मान करके लौटाया।

व्याख्या : प्रणाम में भी दर्जा है। कोई वाङ्मात्र पूजन का अधिकारी है। किसी का चरण स्पर्श किया जाता है। किसी को साष्टाङ्ग प्रणाम किया जाता है। इसी प्रकार से विनय में भी तारतम्य है। अतः रामजी ने भाई के सहित सभी पूज्य महानुभावों को यथायोग्य प्रणाम तथा विनय पूर्वक विदा किया। पूज्यपूजा व्यतिक्रम नहीं होने पाया। प्रभु कृपानिधि हैं। शेष लोगों में जो छोटे बड़े मध्यम स्त्री और पुरुष थे उन सबका सम्मान करके घर लौटाया। सामान्य लोगों की विदाई न कह कर सम्मानपूर्वक घर लौटाना कहा।

दो. भरत मातु पद बंदि प्रभु, सुचि सनेह मिलि भेंटि।
बिदा कीन्ह सजि पालकी, सकुच सोच सब मेटि ॥३१९॥

अर्थ : भरतजी की माता के चरणों की वन्दना करके पवित्र प्रेम से उनसे मिले भेंटे। उनका सङ्कोच और सोच को मिटाकर पालकी सजाकर विदा किया।

व्याख्या : अब माताओं को विदा करना शेष रहा। सो जिस भाँति : प्रथम राम भेंटी कैकेई। उसी भाँति पहिले कैकेयी को ही विदा किया। पवित्र स्नेह से न मिलने का यथेष्ट कारण था। अतः कवि कहते हैं कि पवित्र स्नेह से मिल भेंटकर : गले लगाकर विदा किया। उनका सङ्कोच और सोच दूर किया। उनके आने पर भी सरल स्वभाव और भक्ति से मिले थे पर देखा कि उनका सङ्कोच और सोच गया नहीं है। विना बात स्पष्ट किये सङ्कोच सोच जा नहीं सकता। अतः देवमाया के भेद को स्पष्ट कहकर और भूभार उतारने के लिए वन जाने की आवश्यकता बतलाकर उसे सोच सङ्कोच से विनिर्मुक्त किया। सम्मान के लिए स्वयं पालकी सजाकर उस पर बिठाया।

परिजन मातु पितहिं मिलि सीता। फिरी प्रानप्रिय प्रेम पुनीता ॥
करि प्रनामु भेंटी सब सासू। प्रेम कहत कबि हिय न हुलासू ॥१॥

अर्थ : प्राणपति में जिसका पवित्र प्रेम है। ऐसी सीताजी परिजन माता और पिता से मिलकर लौट आयीं। तत्पश्चात् प्रणाम करके सब सासों से मिलीं। प्रेम के वर्णन करने में कविहृदय में हुलास नहीं है।

व्याख्या : जब भरतजी प्रणाम करने आये और आशीर्वाद लेकर चले गये तब यह समझकर कि विदाई हो रही है सीताजी जनकजी के डेरे पर गयीं। उसी समय दोनों भाई राम और लक्ष्मणजी भी सास से मिलने आये। सीताजी पहिले परिजनों से मिलीं। पीछे माता और पिता से मिलकर लौट आयीं। क्योंकि प्राणप्रिय रामचन्द्र में उनका पुनीत प्रेम है। यथा : प्रीति पुरातन लखै न कोई। तथा : मन बिहँसे रघुबंसमनि प्रीति अलौकिक जानि।

अवध प्रान्त की रीति है कि बेटियाँ माँ से मिलती हैं प्रणाम नहीं करतीं। माताएँ भी बेटियों से मिल लेती हैं आशीर्वाद नहीं देतीं। तदनुसार कवि ने भी सीताजी का माता आदि से मिलना ही कहा। प्रणाम आशीर्वाद नहीं कहा।

लौटने पर सीताजी सास लोगों के डेरों पर गयीं। उनसे प्रणाम करके तब मिलीं। उस समय जो प्रेम का दृश्य हुआ वह ऐसा करुणामय था कि उसके लिखने में कवि के हृदय में उल्लास नहीं होता। अतः नहीं लिखा।

सुनि सिख अभिमत आसिष पाई। रहीं सीय दुहु प्रीति समाई ॥
रघुपपि पटु पालकी मँगाई। करि प्रबोधु सब मातु चढ़ाई ॥२॥

अर्थ : शिक्षा सुनकर और जो चाहा आशीर्वाद पाकर सीता दोनों ओर की प्रीति में मग्न हो गयीं। रामजी ने अच्छी पालकियाँ मँगायीं और समझा बुझाकर सब माताओं को चढ़ाया।

व्याख्या : सास लोगों ने शिक्षा दी कि इस भाँति पति तथा देवर के साथ

बर्ताव करना इत्यादि और मनचाहा आशीर्वाद दिया कि परमेश्वर तुम्हें पति देवर के साथ कुशलपूर्वक वन से घर लौटावें। यथा : पति देवर संग कुसल बहोरी। आइ करौं जेहि पूजा तोरी। तब से रामजी भी कैकेयी को विदा करके आगये। सीताजी मैके और ससुराल दोनों ओर की प्रीति में मग्न हो रही थीं।

रामजी ने अच्छी पालकियाँ मँगायीं। माताओंकी इच्छा जाने की नहीं। अतः उन्हें समझाया। यथा :

अवधि मात्र धीरज धरिअ अम्ब समुझि बिधि बाम।
जेहि पावै परितोष नृप अधिक बसत सुर धाम॥
तुम्हरे दुःख कीन्हें अधिक पीर भरत हिय होइ।
रहैं सुखी जेहि बिधि भरत सब मिलि कीजै सोइ॥
त्यागि मोह ममता सकल सिर धरि ईस रजाय।
भजिय ताहि संसार भ्रम जाते जाय नसाय॥

एवं समझा बुझाकर पालकियों पर चढ़ाया।

बार बार हिलि मिलि दुहु भाई। सम सनेह जननी पहुँचाई॥
साजि बाजि गज बाहन नाना। भूप भरत दल कीन्ह पयाना॥३॥

अर्थ : दोनों भाई बार बार हिल मिलकर समान स्नेह के साथ माताओं को पहुँचाया। घोड़े हाथी आदि अनेक प्रकार के वाहनों का साजकर राजा जनक और भरत की सेनाओं ने प्रस्थान किया।

व्याख्या : सब माताओं से हिलने मिलने में लक्ष्मणजी साथ हैं। माताओं के साथ ठीक बच्चों सा भाव वात्सल्य की दृढ़ता के लिए दर्शाया। सब माताओं के समान स्नेह के साथ सेना तक पहुँचाया।

इधर सेना भी आयी थी। इससे गजबाजि का सजाना लिखते हैं। आने के समय दोनों सेनाएँ अलग-अलग आयीं। अब विदा होकर साथ साथ चल रही हैं। क्योंकि जनकजी अवध जाना चाहते हैं। जनकजी बड़े हैं। इससे उनकी सवारी आगे आगे चल रही है। भरतजी समाज सहित उनके पीछे हैं।

हृदय रामु सिय लखनु समेता। चले जाहिं सब लोग अचेता॥
बसह बाजि गज पसु हिय हारे। चले जाहिं परबस मन मारे॥४॥

अर्थ : लक्ष्मण के सहित राम जानकी हृदय में हैं। सब लोग अचेत चले जा रहे हैं। बैल घोड़े हाथी आदि पशु मन मारे हिय हारे परवश में पड़े चले जा रहे हैं।

व्याख्या : राम जानकी तथा लक्ष्मण को साथ नहीं ले जा सके तो उनकी मनोमयी मूर्तियों को हृदय में धारण किये हुए चले जा रहे हैं। पर साक्षात् उनका साथ नहीं है। अतः अचेत हैं। अर्थात् अन्तर्यामी की प्रेरणा से चले जा रहे हैं। मन जाने का अब भी नहीं है।

अचेत का उदाहरण देते हुए लिखते हैं कि सेना में क्रम नहीं है। पहिले बैल चल रहे हैं। सबसे आगे चलनेवाले घोड़े उनके पीछे हैं। हाथी बीच में चल रहे हैं। बेसर महिष उनके पीछे हैं। उनका मन भी जाने का नहीं है। पर पराये वश में हैं। अतः हियहारे चले जा रहे हैं। उत्साह उन्हें भी नहीं है।

दो. गुर गुरतिय पद बंदि प्रभु, सीता लखन समेत।
फिरे हरख बिसमय सहित, आये परन निकेत ॥३२०॥

अर्थ : सरकार सीता और लक्ष्मण के सहित गुरु और गुरु की स्त्री के चरणों की वन्दना करके हर्ष और विस्मय के साथ लौटे और अपने पर्णकुटी में आये।

व्याख्या : सबसे प्रधान होने के कारण अन्त में भगवती अरुन्धती के साथ वसिष्ठजी की वन्दना की। गुरुजी भी जनकीजी की भाँति धैर्य सँभाले रह गये। आशीर्वाद तक न दे सके। गुरुजी की वन्दना है। धर्मकृत्य है। अतः सपत्नीक वन्दना किया। यथा : धरे चरन सिय सहित बहोरी। रघुनाथजी हर्ष विस्मय रहित हैं। सो हर्ष विस्मय सहित लौटे। सङ्कोचवश सङ्कट में पड़े थे। उसके छूटने से हर्ष और प्रिय परिजन के वियोग से विस्मय।

बिदा कीन्ह सनमानि निषादू। चलेउ हृदय बड़ बिरह बिषादू॥
कोल किरात भिल्ल बनचारी। फेरे फिरे जोहारि जोहारी॥१॥

अर्थ : सम्मान करके निषाद को विदा किया। वह चल पड़ा। उसके हृदय में बड़ा विरह और विषाद था। कोल किरात भील वन के रहनेवाले लौटने पर जोहार कर करके लौटे।

व्याख्या : सबके पीछे विदा किया। क्योंकि निषादराज पर्णकुटी के यहाँ बैठे रह गये थे। सरकार लौटकर आये तब उसका सम्मान करके विदाई की। निषादराज विदा करने पर चल तो पड़े पर उनकी इच्छा जाने की नहीं थी। सरकार के विरह से उनके हृदय में बड़ा विषाद हुआ था।

कोल किरात भील आदि वन के रहनेवाले सरकार के यहाँ इतने अतिथियों का आना देखकर आप से आप सेवा के लिए उपस्थित हो गये थे। इतने दिन साथ रहने से उन्हें सरकार का साथ छोड़ा अच्छा नहीं लगता था। अतः सरकार ने कहा कि अब तुम लोग अपने अपने निवास स्थान को लौट जाओ। तब जोहार करके लौटे।

प्रभु सिय लखन बैठि बट छाहीं। प्रिय परिजन बियोग बिलखाहीं॥
भरत सनेहु सुभाउ सुबानी। प्रिया अनुज सन कहत बखानी॥२॥

अर्थ : प्रभु सीताजी लक्ष्मणजी वट की छाया के तले बैठकर प्रिय परिजन के वियोग में बिलखने लगे। भरतजी का स्नेह स्वभाव सुवाणी सरकार प्रिया और अनुज से बखान करके कहने लगे।

व्याख्या : इस समय वट तले कोई नहीं है। केवल यही तीन प्राणी बैठे हैं और प्रिय परिजन के वियोग में बिलख रहे हैं। उधर वे लोग भी विरह में अचेत चले जाते थे। ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्। यह युक्ति चरितार्थ हो रही थी।

सरकार भरत के स्वभाव स्नेह और सुवाणी का वर्णन प्रिया और अनुज से करने लगे।

भरत का स्वभाव यथा : भरत सुभाउ न सुगम निगमहू।
भरत का स्नेह यथा : होत न भूतल भाव भरत को।
सचर अचर चर अचर करत को॥
भरत की सुवाणी यथा : बिमल बिबेक धरम नय साली।
भरत भारती मंजु मराली॥

प्रीति प्रतीति बचन मन करनी। श्रीमुख राम प्रेम बस बरनी॥
तेहि अवसर खग मृग जल मीना। चित्रकूट चर अचर मलीना॥३॥

अर्थ : रामजी ने भरतजी के मनसा वाचा कर्मणा प्रीति प्रतीति का वर्णन प्रेम के वश होकर श्रीमुख से किया। उस अवसर में चित्रकूट के पक्षी मृग और पानी की मछलियाँ चर और अचर सब उदास हो गये।

व्याख्या : सरकार प्रेम के वश में हैं। इसलिए श्रीमुख से भरतजी के मनसा वाचा कर्मणा प्रीति प्रतीति का वर्णन सीताजी और लक्ष्मणजी से कर रहे हैं। सच्चा बखान वही है जो सामने भी किया जाय और पीठ पीछे भी किया जाय। यथा : बामदेव रघुकुल गुर ज्ञानी। बहुरि गाधिसुत कथा बखानी। यह बखान विश्वामित्रजी के चले जाने पर किया गया। जो कि उनकी कथा का बखान उनके सामने हो चुका था।

यथा : मुनि मन अगम गाधिसुत करनी।
मुदित बसिष्ठ विपुल बिधि बरनी॥
बोले बामदेव सब साँची।
कीरति कलित लोकतिहुँ माँची॥

उस समय चित्रकूट के आकाशवासी खग पृथ्वी पर के रहनेवाले मृग तथा जल में की रहनेवाली मछलियाँ जिन्हें दर्शन का भी सौभाग्य प्राप्त न था सबके सब खिन्न हो गये। चर और अचर के उदास होने का कारण यह है कि चित्रकूट के अधिष्ठात्री देवता स्वयं इस वियोग के दृश्य को देखकर दुःखी हो गये थे।

बिबुध बिलोकि दसा रघुबर की। बरषि सुमन कहि गति घर घर की॥
प्रभु प्रनामु करि दीन्ह भरोसो। चले मुदित मन डरु न खरो सो॥४॥

अर्थ : देवताओं ने रामजी की दशा देखकर फूलों की वर्षा की और घर घर

को जो गति हो रही थी सो निवेदन किया। प्रभु ने प्रणाम करके भरोसा दिया। प्रसन्न होकर चले। उन्हें तृण के समान भी भय नहीं रह गया।

व्याख्या : सरकार को पीड़ित देखकर मन पलटने के लिए देवताओं ने पुष्प की वर्षा की और रावण के कारण जो दशा उन लोगों की हो रही थी उसका पृथक् पृथक् वर्णन किया। उसमें सरकार के हृदय से वीररस का उदय हो। दूसरी बात यह भी है कि वनवास के प्रधान कारण होने से अपने को सापराध भी मानते हैं। अतः अपनी अपनी पीड़ा को कथा कह सुनायी कि बिना सरकार के आये हम लोगों की पीड़ा मिट नहीं सकती थी इसलिए हम लोग निरुपाय थे।

सरकार मर्यादापुरुषोत्तम हैं। अतः प्रणाम किया और उन लोगों को भरोसा दिया कि अब मैं आगया। अब आप लोग चिन्ता न करें। सुनकर देवता लोग प्रसन्न हो गये। सरकार के अप्रसंन्न होने का भय जाता रहा और सरकार के भरोसा देने से रावण से पिण्ड छूटने का दृढ़ विश्वास हो गया। अतः अपने अपने लोक को चले। नहीं तो जब से भरतजी चले थे देवता लोग साथ थे। उन्हें बड़ी उत्सुकता थी कि देखें क्या होता है।

दो. सानुज सीय समेत प्रभु, राजत परन कुटीर।
भगति ग्यानु बैराग्य जनु, सोहत धरे सरीर ॥३२१॥

अर्थ : लक्ष्मण और सीताजी के साथ सरकार पर्णकुटी में ऐसे शोभित हैं जैसे भक्ति ज्ञान और वैराग्य शरीर धारण करके शोभित हो।

व्याख्या : यहाँ कवि सरकार की कथा को विश्राम दे रहे हैं। पहिले जब आकर चित्रकूट में ठहरे थे। तब आनन्द का वर्णन करते हुए कहा था : राम लखन सीता सहित सोभित परन निकेत। जिमि बासव बस अमर पुर सची जयन्त समेत। इस संमय प्रभु वियोगावस्था में है। इसलिए पर्ण निकेत न कहकर पर्ण कुटीर कह रहे हैं। लक्ष्मणजी की उपमा जयन्त से न देकर वैराग्य से दे रहे हैं। सीताजी को शची न कहकर भक्ति कह रहे हैं। सरकार को वासव न कहकर सशरीर ज्ञान से उपमित कर रहे हैं। निर्गलितार्थ यह कि सरकार जिस अवस्था में रहें उसी में उनकी शोभा है। यहाँ कथा को विश्राम देकर अब जहाँ से भरतचरित छोड़ा था वहीं से उठाते हैं।

१३. पादुका सहित अवध प्रत्यागमन प्रसङ्ग

मुनि महिसुर गुर भरत भुआलू। रांम बिरह सब साज बिहालू ॥
प्रभु गुन ग्राम गनत मन माहीं। सब चुपचाप चले मग जाहीं ॥१॥

अर्थ : मुनि, ब्राह्मण लोग, गुरुजी, भरतजी तथा राजा जनक तथा सब साज समाज रामजी के विरह में बेहाल हो रहा है। सरकार के गुणग्राम को मन में गुनते हुए सब चुपचाप रास्ते में चले जा रहे हैं।

व्याख्या : बसह बाजि गज पसुहिय हारे। चले जात परबस मन मारे। यहाँ से प्रसङ्ग छोड़ा था। अब : राम बिरह सब साज बिहालू। कहकर उसी प्रसङ्ग को फिर से उठाते हैं। पहिले कह आये हैं : हृदय राम सिय लखन समेता। चले जात सब लोग अचेता। उसी बात को : प्रभु गुन ग्राम गुनत मन माँही। पद से कह रहे हैं। चले जात सब लोग अचेता : का अनुवाद करते हुए कहते हैं : सब चुपचाप चले मग जाहीं।

जमुना उतरि पार सबु भएऊ। सो बासर बिनु भोजन गएऊ ॥
उतरि देवसरि दूसर बासू। रामसखाँ सब कीन्ह सुपासू ॥२॥

अर्थ : यमुना उतरकर सब लोग पार हुए। वह दिन बिना भोजन के बीत गया। दूरे दिन गङ्गापार करके डेरा डाला। रामसखा निषादराज ने सब सुभीता किया।

व्याख्या : लौटते समय सीधा रास्ता पकड़ा। पहिले ही दिन यमुना पार करके डेरा डाला। जिसमें सबेरे नाव पर चढ़ने उतरने का टण्टा न रहे। विषादी को भूख नहीं लगती। अतः किसी ने कुछ खाया नहीं। प्रयागराज जाना नहीं था। इसलिए दूसरे दिन गङ्गापार करके डेरा डाला। दो दो सेना एक साथ चल रही हैं। अतः सिवा नदी के किनारे के दूसरी जगह पड़ाव पड़ नहीं सकता। गङ्गा पार होने पर शृङ्गवेरपुर में आगये। वहाँ निषादराज का निवास स्थान है। अतः उसने सब सुभीता कर दिया।

सई उतरि गोमती नहाये। चौथें दिवस अवधपुर आये ॥
जनकु रहे पुर बासर चारी। राज काज सब साज सँभारी ॥३॥

अर्थ : फिर सई उतरकर गोमती नदी में स्नान किया। चौथे दिन अयोध्या पहुँच गये। जनकजी चार दिन राजधानी में रहे। राजकाज और सब साज को सँभाला।

व्याख्या : जाते समय : तमसा प्रथम दिवस करि बासू। दूसर गोमति तीर निवासू। सई तीर बसि चले बिहाने। लौटाते समय पहिले सई पड़ी। तब गोमती पड़ीं। दो दिन का रास्ता एक दिन में तय किया। अवध पुर आये : कहने से ही तमसा पार होना कह दिया गया।

जनकजी का पहिले पहल अयोध्या आना ग्रन्थकार लिखते हैं। अयोध्या आकर जनकजी चार दिन ठहरे। इसी बीच में वहाँ के शासन प्रणाली का निरीक्षण किया। सेना कोष दुर्ग आदि की व्यवस्था का निरीक्षण किया। देख लिया कि सब ठीक है। तब :

सौंपि सचिव गुर भरतहि राजू। तेरहुति चले साजि सब साजू ॥
नगर नारि नर गुर सिख मानी। बसे सुखेन राम रजधानी ॥४॥

अर्थ : मन्त्री गुरु और भरत को राज्य सौंपकर सब साज सजकर मिथिला को प्रस्थान किया। नगर के नर नारी गुरुजी की शिक्षा मानकर सुख से रामजी की राजधानी में बसे।

व्याख्या : जनकजी ने राज्य की व्यवस्था मन्त्रियों के जिम्मे किया। गुरुजी को निरीक्षण का भार दिया। शासन भरतजी के सुपुर्द करके मिथिला को प्रस्थान किया। सेना साथ है। इसलिए सब साज साजना कहते हैं। सौंपने का भाव यह कि यह थाती रामजी की है। जब तक वे न लौटें तब तक सँभालो। कोई अड़चन आ पड़े तो मुझे समाचार दो।

लोगों ने सुना कि रामजी नहीं लौटे। अतः वे बड़े दुःखी हुए। उनका मन उचटा हुआ है। अवध में वसना नहीं चाहते। पर गुरुजी ने सबको समझाया कि रामजी नहीं लौटे यह ठीक है। पर राज उन्होंने स्वीकार कर लिया। यह राज उन्हीं का है और उन्हीं की राजधानी है। उनकी अनुपस्थिति में राज्यभार भरतजी के ऊपर है। आप लोग किसी बात की चिन्ता न करें। इस भाँति गुरुजी के प्रबोध करने पर सब लोग सुख से बसे।

दो. राम दरस लगि लोग सब, करत नेम उपवास।
तजि तजि भूषन भोग सुख, जिअत अवधि की आस ॥३२२॥

अर्थ : रामजी के दर्शन के लिए सब लोग नियम और उपवास करने लगे। भूषण और भोग सुख को छोड़ दिया। रामजी के दर्शन की आशा से सब जी रहे हैं।

व्याख्या : फिर लोगों का नियम-उपवास आरम्भ हो गया। नियम यथा : पय अहार फल असन इक। उपवास यथा : निसि भोजन इक लोग। काम्य कर्म सब लोगों ने बन्द कर दिया। भूषण से आभिमानिक सुख होता है। अतः उसे भी छोड़ा। उस भाँति अनुष्ठान करने से ही इष्ट की प्राप्ति होती है। इन लोगों की इष्टप्राप्ति रामजी का दर्शन है। ये उसी की आशा से जीवन धारण कर रहे हैं।

२४. भरत रहनि प्रसङ्ग

सचिव सुसेवक भरत प्रबोधे। निज निज काज पाइ सिख ओधे ॥
पुनि सिख दीन्हि बोलि लघु भाई। सौंपी सकल मातु सेवकाई ॥१

अर्थ : भरतजी ने मन्त्रियों और सुसेवकों को समझाया। वे सब शिक्षा पाकर अपने अपने काम में लग गये। फिर छोटे भाई को बुलाकर शिक्षा दी। सब माताओं की सेवा उन्हें सौंपीं।

व्याख्या : नगर के लोगों को गुरुजी ने समझाया और वे उनका कहना मानकर अवध में सुख से बसे। गुरुजी आज्ञा में रामजी भी हैं। भरतजी भी हैं। अतः जो गुरुजी ने कहा उसमें सन्देह करने के लिए किसी को स्थान नहीं है।

इसलिए प्रजा मात्र को दिलासा गुरुजी ने दिया और प्रजा ने उसे माना। जनकजी के सौंपने के अनुसार गुरुजी ने कार्यारम्भ कर दिया।

इस समय शासक भरतजी हैं। पर वे राजकाज में दिन रात व्यस्त रहना नहीं चाहते। अतः मन्त्रियों और कामदारों को बुलाकर[1] समझाया कार्य विभाग करके उन लोगों में काम बाँट दिया और वे लोग अपने अपने काम में लग गये। अब रह गयी माताओं की सेवा। उसे छोटे भाई शत्रुघ्न के सुपुर्द किया। दूसरे से यह सेवा बन नहीं सकती थी और उन्हें तत्सम्बन्धी शिक्षा भी दी।

भूसुर बोलि भरत कर जोरे। करि प्रनाम बय बिनय निहोरे॥
ऊँच नीच कारजु भल पोचू। आयसु देब न करब संकोचू॥२॥

अर्थ : ब्राह्मणों को बुलाकर भरतजी ने हाथ जोड़े और प्रणाम करके विनय निहोरा किया कि ऊँचा नीचा भला बुरा जो काम हो उसके लिए आज्ञा दीजियेगा। सङ्कोच न कीजियेगा।

व्याख्या : भरतजी ने तत्पश्चात् ब्राह्मणों को बुलवाया। ये पृथ्वी के देवता हैं। इनकी प्रजा में गिनती नहीं है। प्रजा में गिनती वैश्य और शूद्र की है। इसलिए राजा विशाम्पतिः कहलाता है। ब्राह्मणों के लिए किसी पर दावा करने का विधान नहीं है। वह अपने अपराधी को अपनी तपस्या के बल से दण्ड दे। अतः भरतजी ने उन्हें प्रणाम किया। उनसे बहुत विनती की और उनका निहोरा किया कि जो उनकी आज्ञा में न चले उनके लिए मुझे आज्ञा दें। सङ्कोच न करें कि नित्य उठकर आज्ञा देना भी अच्छा नहीं है। मैं उस आज्ञा के लिए कृतज्ञ हूँगा और जिस प्रकार का कार्य हो उसके लिए मुझे आज्ञा मिले। इस बात का सङ्कोच न किया जाय कि अमुक कार्य ऐसा तुच्छ है। ऐसा छोटा है। इसके लिए भरत को कैसे कहें इत्यादि।

परिजन पुरजन प्रजा बोलाए। समाधानु करि सुबस बसाए॥
सानुज गे गुरु गेहँ बहोरी। करि दंडवत कहत कर जोरी॥३॥

---

१. जब लगि प्रभु आवत नाहीं तब लगि सब अधिकार।
जो जाको जैसो रह्यो सो सब करै सँभार॥
सम्मति रघुपति की सकल राज पाट धन धाम।
योग क्षेम बाढै सदा समुझि सँभारो काम॥
दुखी प्रजा रघुपति विरह करहु तासु मनुहार।
करहि सकल सत भाव से वेद विहित आचार॥
होय न पावै पाप कहुँ करिअ नित्य यह सोघ।
रहै प्रजा सुख शान्ति से बढै न कतहुँ विरोध॥
सेवक धर्म सँभारिये सजग होउ सब कोय।
परमधर्म सब को यथा स्वामी को हित होय॥

अर्थ : परिजन पुरजन और प्रजाओं को बुलवाया। उनका समाधान करके उन्हें स्वतन्त्र करके बसाया। छोटे भाई के साथ गुरुजी के घर गये और दण्डवत करके हाथ जोड़कर बोले।

व्याख्या : तत्पश्चात् परिजन अर्थात् कुटुम्बी क्षत्रियवर्ग को बुलाया। राजधानी के रहनेवाले तथा देशवासियों को बुलवाया। उनका समाधान किया कि यद्यपि सरकार धर्मशाप में बँधे रहने के कारण नहीं लौटे फिर भी उन्होंने राज्य स्वीकार कर लिया है। मैं तो उनकी आज्ञा से आप लोगों की सेवा करूँगा। आप लोगों के व्यक्तिगत स्वातन्त्र्य में कोई बाधा नहीं पड़ने पायेगी।

फिर शत्रुघ्नजी को लिये हुए गुरुजी के पास गये। जिसमें जो कुछ गुरुजी कहें उससे शत्रुघ्नजी परिचित रहें। वहाँ गुरुजी को दण्डप्रणाम किया और बोले।

आयसु होइ त रहउँ सनेमा। बोले मुनि तन पुलकि सपेमा॥
समुझब कहब करब तुम्ह जोई। धरम सारु जग होइहि सोई॥४॥

अर्थ : आज्ञा हो तो नियमपूर्वक रहूँ। मुनिजी पुलकित होकर प्रेम से बोले कि जो कुछ तुम समझोगे, कहोगे, करोगे, संसार में वही धर्म का सार : तथ्य होगा।

व्याख्या : रामजी पिता की आज्ञा से मुनिव्रत वेष आहार स्वीकार किये हुए हैं। उनके इस भाँति जीवन पालन करने पर मैं सुख नहीं चाहता। मैं भी उसी भाँति रहना चाहता हूँ। पर उस भाँति रहने के लिए बड़े की आज्ञा की आवश्यकता है। सो आप यदि आज्ञा दें तो मैं उसी नियम से रहूँ। भरतजी की यह वाणी सुनकर मुनिजी प्रेम से पुलकित हो उठे और बोले कि तुम्हारी ऐसी स्थिति हो गयी है कि जो तुम मन में समझोगे, वाणी से कहोगे, और कर्म से आचरण करोगे वही धर्म का सार होगा। अर्थात् तुम साक्षात्कृतधर्मा हो गये। तुम्हारे लिए किसी की आज्ञा की आवश्यकता न रह गयी और न धर्मशास्त्र देखने की आवश्यकता रही।

दो. मुनि सिख पाइ असीस बड़ि, गनक बोलि दिनु साधि।
सिंघासनु प्रभु पादुका, बैठारे निरुपाधि॥३२३॥

अर्थ : शिक्षा सुनकर और बहुत बड़ा आशीर्वाद पाकर ज्योतिषियों को बुलाकर सुदिन निश्चय किया और सरकार की पादुकाओं को सिंहासन पर निर्विघ्न प्रतिष्ठित कर दिया।

व्याख्या : मुनिजी की शिक्षा हुई कि जो कुछ तुम सोच रहे हो। उसे निःसन्देह कर डालो। क्योंकि वही धर्म होगा। संसार धर्म के अनुसार चलकर अपने को कृतकृत्य मानता है। परन्तु तुम जो आचरण करोगे वही धर्म होगा। यह इतना बड़ा आशीर्वाद है जो किसी को कभी मिला नहीं। अतः भरतजी ने ज्योतिषियों को बुलाकर शुभ मुहूर्त निकलवाया और उसी मुहूर्त में सरकार की पादुका को सिंहासनारूढ़ किया। इस प्रकार से पिता की आज्ञा से जो राज्य मिला था उसे रामजी को

अर्पण किया। पितु आयसु पालिअ दोउ भाई : कहकर जो रामजी ने आज्ञा दी थी उस वचन को भी पूरा किया। इसके लिए गुरुजी से सुदिन नहीं पूछा। गुरुजी तो सरकार के अभिषेक का सुदिन बतलावेंगे। यथा : गुरु बसिष्ठ द्विज लिये बुलाई। आज सुघरी सुदिन समुदाई। रामजी के अभिषेक में उपाधि उठ खड़ी हुई थीं। अतः भरतजी ने सरकारी पादुका को निर्विघ्न सिंहासन पर प्रतिष्ठित किया।

इस सिंहासन पर पादुका प्रतिष्ठत हो चुकी है। इस पर सरकार का अभिषेक होना ठीक नहीं। यही समझकर : प्रभु बिलोकि मुनि मन अनुरागा। तुरत दिव्य सिंहासन माँगा। रबि सम तेज सो बरनि न जाई। बैठे राम द्विजन्ह सिर नाई।

राम मातु गुर पद सिरु नाई। प्रभु पद पीठ रजायसु पाई ॥
नंदिगाँव करि परन कुटीरा। कीन्ह निवासु धरम धुर धीरा ॥१॥

अर्थ : रामजी की माता के और गुरुजी के चरणों में प्रणाम करके और सरकार की पादुका की आज्ञा पा करके नन्दिग्राम में पत्ते की कुटिया बनाकर धर्म धुरधीर भरतजीने निवास किया।

व्याख्या : आज्ञा अपनी माता से ही माँगना उचित था। यथा : बिदा मातु सन आवहुँ माँगी। पर भरतजी ने उनका त्याग किया था। यथा : तज्यौ पिता प्रहलाद बिभीषन बंधु भरत महतारी। अतः रामजी की माता से आज्ञा माँगी। उन्हीं को माता मानते हैं। यहाँ केवल प्रणाम ही लिखा है। पर इस प्रणाम का तात्पर्य स्वीकृति प्राप्त करना है। गुरुजी की स्वीकृति तो मिल चुकी है। तत्पश्चात् स्वामी के अभाव में उनकी पादुका से आज्ञा ली। क्योंकि वे ही : बिमल नयन सेवा सुधरम के हैं। देवताओं के अस्त्र-शस्त्र आभूषण वाहन सभी उनके स्वरूप से पृथक् नहीं होते। अतः पादुका ने आज्ञा दे दी। यह तो : आखर युग जनु जीव जतन के हैं। इनसे तो सरकार स्वयं रत्न से मूल्य की भाँति प्रकट होते हैं। सो उन्हें प्रकट करके आज्ञा ले ली।

नन्दिग्राम तीन पुण्य [1]ग्रामों में से एक है और राजधानी से अत्यन्त दूर है और न अत्यन्त निकट है। वहीं पर्णकुटी बनायी। सरकार को पर्णकुटी में रहते देख आये हैं। अतः महल में न रहेंगे। धर्म धुरधीर हैं। अपने रहने के लिए पर्णकुटी बनायी।

जटा जूट सिर मुनिपट धारी। महि खनि कुस साँथरी सँवारी ॥
असन बसन बासन ब्रत नेमा। करत कठिन रिषिधरम सप्रेमा ॥२॥

अर्थ : सिर में जटाजूट और वल्कल वसन धारण किया। पृथ्वी खोदकर कुश लेकर साथरी बनायी। भोजन, वसन, बरतन, व्रत, नेम आदि कठिन ऋषि धर्म को प्रेम के साथ करने लगे।

---

१. शालग्राम नन्दिग्राम शम्भलग्रामश्च : उपाकर्मपद्धति।

व्याख्या : देखा था कि सरकार वल्कल वसन और जटा धारण किये हुए हैं। अतः आप ने भी जटा धारण की और वल्कल वसन पहिना। देख आये हैं कि सरकार साथरी पर सोते हैं। इसलिए भरतजी ने भी कुशाओं की साथरी बनायी। छिन्न मूल होने से कुशा अशुद्ध हो जाते हैं। इसलिए पृथ्वी खोदकर कुशा निकाले। सरकार का मुनिव्रत वेष आहार है। अतः भरतजी ने भी उन्हीं की भाँति भोजन वसन और बरतनों से काम लिया और व्रत तथा नियम जैसा वानप्रस्थ अवस्था में किया जाता है करने लगे। वानप्रस्थ का धर्म बड़ा कठिन है। पर भरतजी प्रेम से उसका पालन करने लगे।

भूषन बसन भोग सुख भूरी। मन तन बचन तजे तिन तूरी ॥
अवधराजु सुरराजु सिहाई। दसरथ धनु सुनि धनद लजाई ॥३॥

अर्थ : भूषण वसन और भोग के बड़े भारी सुख को मनसा वाचा कर्मणा तृण के समान तोड़कर फेंक दिया। अवध के राज्य को इन्द्र भी सिहाते थे और चक्रवर्तीजी के धन को सुनकर कुबेरजी भी लज्जित होते थे।

व्याख्या : धर्मशील महाराज दशरथ के राज्य में सुख सम्पत्ति बिना बुलाये ही चली आती थी। यथा : रिधि सिधि संपति नदी सुहाई। उमगि अवध अंबुधि कहँ धाई। कहि न जाइ कछु नगर बिभूती। जनु एतनिअ बिरंचि करतूती। अतः अवध का राज्य ऐसा सुखसमृद्धि से भरा था और चक्रवर्तीजी के पास इतना धन था कि उसे त्रिलोकीनाथ इन्द्र और धनाधिप कुबेर ईर्ष्या करते थे। लज्जित होते थे कि लोकपाल होने पर भी हम राजा दशरथ के जोड़ के नहीं हैं। ऊँच निवास नीच करतूती। देखि न सकहिं पराइ बिभूती।

तेहि पुर बसत भरत बिनु रागा। चंचरीक जिमि चंपक बागा ॥
रमा बिलासु राम अनुरागी। तजत बमन जिमि जन बड़भागी ॥४॥

अर्थ : उस पुर में भरतजी रागरहित होकर बसते हैं जैसे चम्पक बाग में भौरा बसे। लक्ष्मी के विलास को बड़भागी रामानुरागी वमन की भाँति त्याग देते हैं।

व्याख्या : ऐसे समृद्ध राज्य में जहाँ : करहिं सकल सुर दुर्लभ भोगा। भरतजी विरक्त की भाँति रहते हैं। उन्हें सुख नहीं। क्योंकि वे तो रामजी के चरण कमल के भौंरे हैं। वहीं सुख मानते हैं। चम्पक बाग में उन्हें सुख कहाँ ? अयोध्या चम्पक बाग की भाँति सबको सुखदायी है पर भरत को नहीं। चम्पा में गुन बहुत हैं रूप रंग अरु वास। पर यह अवगुन एक है कि भंवर न आवे पास। सो दैवयोग से भरतरूपी भौंरे को अवधरूपी चम्पक बाग में बसना पड़ा। अतः उसमें विरक्त की भाँति वे बस रहे हैं।

कारण यह कि लक्ष्मी का विलास रामानुरागी के अनुकूल नहीं पड़ता है। वे उसे पचा नहीं सकते। अजीर्ण अन्न की भाँति वह उनके लिए महा कष्टकर होता है। वमन की भाँति उसे परित्याग करके ही वे सुखी होते हैं।

दो. राम पेम भाजन भरतु, बड़े न येहि करतूति।
चातक हंस सराहिअत, टेक बिबेक बिभूति ॥३२४॥

अर्थ : रामजी के प्रेमपात्र भरतजी इस करतूति से बड़े नहीं हैं। टेक की विभूति से चातक की और विवेक की विभूति से हंस की प्रशंसा होती है।

व्याख्या : लक्ष्मी के प्रेम भाजन रामजी हैं। यथा : जासु कृपा कटाच्छ सुर चाहत चितव न सोइ। राम पदारबिंद रति करति सुभावहिं खोइ। और रामजी के प्रेम भाजन भरतजी हैं। भरतजी की ऐसी महिमा है कि उनके गुणों पर रामजी मुग्ध हैं और रामजी के गुणों पर लक्ष्मी मुग्ध हैं। अतः लक्ष्मी के गुणों पर यदि भरतजी न मुग्ध हों तो उनके लिए कोई बात नहीं है। उनके लिए ऐसा टेक : तेहि पुर बसत भरत बिनु रागा। और ऐसा विवेक : तजत बमन जिमि जन बड़भागी। कोई बड़ी बात नहीं है। टेक के लिए चातक की प्रशंसा ठीक है। विवेक विभूति के लिए हंस की प्रशंसा उचित है। क्योंकि वे पक्षी होकर ऐसा टेक और ऐसी क्षीर नीर विवरण की विभूति को धारण करते हैं।

देह दिनहुँ दिन दूबरि होई। घटइ तेजु बलु मुखछबि सोई॥
नित नव राम पेम पनु पीना। बढ़त धरम दलु मन न मलीना ॥१॥

अर्थ : शरीर प्रतिदिन दुर्बल होकर घटता जाता था। पर तेज और बल नहीं घटता था और मुख की शोभा भी वैसी ही थी। नित्य नवीन रामप्रेम प्रण से पुष्ट होकर धर्म दल बढ़ता जाता था और मन उदास नहीं होता था।

व्याख्या : जिस भाँति कसरत करनेवालों का शरीर दुर्बल हो जाता है परन्तु उसमें कस बढ़ता जाता है। उसी भाँति योग जप तप से शरीर की स्थूलता मात्र कम हुई तेज और बल नहीं। यथा : करहिं जोग जप तप तन कसहीं। यथार्थ बल के ह्रास न होने से मुख छवि में अन्तर नहीं पड़ा। दल अर्थात् जप तप आदि नित्य नये रामप्रेम के प्रण से पुष्ट होकर बढ़ते जाते थे। उदासी मन में आने नहीं पाती थी। अतः शरीर की दुर्बलता से कोई वास्तविक हानि नहीं थी। क्योंकि दिव्य तेज और दिव्य बल जिनका सम्बन्ध धर्म से है वह बढ़ रहा था। बिना रामप्रेम के धर्म पुष्ट नहीं होता।

जिमि जलु निघटत सरद प्रकासे। बिलसत बेतस बनज बिकासे॥
सम दम संजम नियम उपासा। नखत भरत हियँ बिमल अकासा ॥२॥

अर्थ : जिस भाँति शरद ऋतु के प्रकाश से जल तो घटता है परन्तु वेंत का विलास बढ़ता है। कमल खिल जाते हैं। शम, यम, नियम, उपवासरूपी नक्षत्र भरत के निर्मल हृदयरूपी आकाश में शोभित होते हैं।

व्याख्या : शरद ऋतु में वर्षा की बुढ़ाई आजाती है। इसलिए जल घटने लगता है। पर वेंत में पत्ते नये नये बढ़ जाते हैं और कमल फूलने लगते हैं। यहाँ

भरतजी का शरीर ही तालाब है। वह मुनि व्रतरूपी शरद के आगमन से क्षीण तो होने लगा।

यहाँ भरतजी का शरीर जल है। वह नेमरूपी शरद के आगमन से नित्य घट रहा है। परन्तु जल का आश्रित वेंत बढ़ रहा है। उसके पत्ते पुष्ट हो रहे हैं। कमल विकसित हो रहा है। यहाँ धर्मदल को वेतसविलास से उपमित किया है और अम्लान मन को विकसित कमल से उपमित किया है। यहाँ दल शब्द में श्लेष है। धर्म के पक्ष में इसका अर्थ सेना होगा और वेंत के पक्ष में पत्ता अर्थ किया जायगा। भावार्थ यह कि भरतजी की धर्म सम्पत्ति बढ़ती जाती है और मन में म्लानता नहीं आने पाती। शरदागमन से भरत का दहराकाश : हृदयाकाश निर्मल हो गया है। शम, दम, नियम, उपवास आदि नक्षत्र स्पष्टरूप से चमक रहे हैं।

ध्रुव बिस्वासु अवधि राकासी। स्वामि सुरति सुरबीथि बिकासी ॥
राम पेम बिधु अचल अदोषा। सहित समाज सोह नित चोखा ॥३॥

अर्थ : विश्वास ही ध्रुव तारा है। अवधि पूर्णिमा सी है। स्वामी की सुरति-रूपी सुरवीथी प्रकाशित हो रही है। रामजी का प्रेम ही निश्चल और निष्कलङ्क चन्द्रमा है जो समाज के सहित नित्य शोभायमान है।

व्याख्या : ताराओं में ध्रुव अविचल है। यथा : ध्रुव अबिचल कबहूँ न चले। इसी भाँति भरतजी के हृदय में रामजी के प्रति अविचल विश्वास है। वही ध्रुव है और चौदह वर्ष की अवधि ही पूर्णिमा तिथि है। बारहो पूर्णिमाओं में शरद पूर्णिमा बड़ी सुन्दर होती है। इसी भाँति संयोगदशा के प्रेम से वियोग के समय के प्रेम में अधिक चमत्कार है। स्वामी की स्मृतिरूपी सुरवीथी सम्पूर्ण आकाश में फैली हुई है। उसका प्रकाश बहुत स्पष्ट हो रहा है एवं राम प्रेमरूपी चन्द्रमा समाज के सहित भरतजी के हृदयरूपी निर्मल नभ में नित्य अत्यन्त शोभायमान है। भेद इतना ही है कि यह चन्द्रमा सदा कलङ्कयुक्त है और चलायमान है। पर रामप्रेम-रूपी चन्द्र निश्चल और निष्कलङ्क है। वीथी की संख्या नव शास्त्रकारों ने बतलाया है। १. नाग वीथी २. गज वीथी ३. ऐरावती वीथी ४. आर्षभी वीथी ५. गो वीथी ६. जारद्गवी वीथी ७. अज वीथी ८. मार्गी वीथी और ९. वैश्वानरी वीथी। ये नवों वीथियाँ सम्पूर्ण नक्षत्र मण्डल में फैली हुई हैं। तीन तीन नक्षत्र एक एक वीथी में पड़ते हैं। इस भाँति सत्ताइस नक्षत्रों में नव वीथियाँ हैं। स्मरण करने-वाले स्मरणीय के [1]गुणग्रामों को ही स्मरण करते हैं। अतः सुरवीथी से स्वामि सुरति को उपमित किया।

---

१. ये नवगुण गुरुजी के कहे हुए हैं जिनकी सुरति भरतलाल सदा किया करते है। यथा : १. धर्म धुरीन २. भानुकुल भानू ३. राजाराम ४. स्ववस ५. भगवानू ६. सत्यसन्ध ७ पालक श्रुति सेतू ८. रामजन्म जग मंगल हेतू ९. गुर पितु मातु बचन अनुसारी १०. खल दल दलन देव हितकारी।

भरत रहनि समुझनि करतूती । भगति बिरति गुन बिमल बिभूती ॥
बरनत सकल सुकबि सकुचाहीं । सेस गनेस गिरा गमु नाहीं ॥४॥

अर्थ : भरत का रहन सहन समझ और करतूत, उनकी भक्ति, उनका वैराग्य, उनकी निर्मल विभूति का वर्णन करने में सभी सुकवि सङ्कुचित होते हैं। शेष गणेश और सरस्वती की गति नहीं है।

व्याख्या : १. भरत रहनि यथा : तेहि पुर बसत भरत बिनु रागा ।
चंचरीक जनु चंपक बागा ॥
२. समुझनि यथा : रमा बिलास राम अनुरागी ।
तजत बमन जिमि जन बड़भागी ॥
३. करतूति यथा : रामप्रेम भाजन भरतु बड़े न एहि करतूति ।
चातक हंस सराहिअत टेक बिबेक बिभूति ॥
४. भगति यथा : नित नव राम प्रेम पन पीना ।
५. विरति यथा : बढ़त धरम दल मन न मलीना ॥
६. गुन यथा : सम दम संजम नियम उपासा ।
नखत भरत हिय बिमल अकासा ॥
७. विमल विभूति यथा : रामप्रेमु बिधु अचल अदोषा ।
सहित समाज सोह नित चोखा ॥

भाव यह कि कवि समझ रहे हैं कि मुझसे वर्णन ठीक नहीं हुआ। अतः कहते हैं कि सभी सुकवि को सङ्कोच होता है। अतः मुझे सङ्कोच होना ठीक ही है। क्योंकि भक्त की महिमा शेष शारदा भी नहीं कह सकते। स्वयं सरकार कहते हैं : कहि सक न सारद सेष नारद सुनत पद पंकज गहे। अस दीनबन्धु कृपाल अपने भगत गुन निज मुख कहे। गणेश और शारदा दोनों समकक्ष के योग्यतावाले हैं : एक वाङ्मय है और दूसरी वाग्देवता हैं। यथा : वर्णानामर्थसंघानां रसानां छन्दसामपि। मङ्गलानाञ्च कर्त्तारौ वन्दे वाणीविनायकौ। अतः गणेशजी के लिए भी वही बात कही गयी।

दो. नित पूजत प्रभु पाँवरी, प्रीति न हृदय समाति ।
माँगि माँगि आयसु करत, राज काज बहु भाँति ॥३२५॥

अर्थ : नित्य प्रभु की पादुका की पूजा करते हैं, प्रीति हृदय में समाती नहीं और आज्ञा माँग माँगकर बहुत भाँति के राजकार्य का सम्पादन करते हैं।

व्याख्या : नित पूजत प्रभु पाँवरी : कर्मणा। प्रीति न हृदय समात : मनसा। माँगि माँगि आयसु करत : वाचा। प्रभु करि कृपा पाँवरी दीन्हीं। सादर भरत सीस धरि लीन्ही। अतः करुणानिधान के चरणपीठ को सिंहासनारूढ़ किया। सीताराम की भावना से उसकी नित्य पूजा करते हैं और राजकार्य करने में उसकी आज्ञा माँग लेते हैं। क्योंकि वही : कुल कपाट कर कुसल करम के। बिमल नयन

सेवा सुधरम के : स्थानीय हैं। उसी के द्वारा भरतजी की जिज्ञासा सरकार तक पहुँचती है और वहाँ से जो आज्ञा होती है वह भरतजी तक पहुँच जाती है। उपासना के बल से पादुका टेलीफोन का काम दे रहा है।

पुलक गात हियँ सिय रघुबीरू। जीह नामु जप लोचन नीरू ॥
लखन राम सिय कानन बसहीं। भरतु भवन बसि तपु तनु कसहीं ॥१॥

अर्थ : शरीर में पुलक है। हृदय में रामजानकी हैं। जिह्वा से नाम जप हो रहा है। नेत्रों में जल है। लक्ष्मण राम और सीता तो वन में बसते हैं। पर भरतजी तो घर में ही रहते हुए तप से तन को कस रहे हैं।

व्याख्या : अब भरतजी की दशा कहते हैं। प्रेमातिशय से शरीर में पुलक और नेत्रों में जल बना रहता है। यह तो शरीर की दशा है और सदा हृदय में रामजानकी का निवास रहता है। यह मन की दशा है और जिह्वा से नाम का जप चला जा रहा है। यह वचन की दशा है। लक्ष्मण राम और जानकी तो वनमें बसते हैं। फिर भी ऐसे रङ्ग से रहते हैं जैसे शची और जयन्त के साथ इन्द्र अमरावती में रहते हैं। समय पाकर भगवती का पुष्प शृङ्गार भी हो जाता है। यथा : एक बार चुनि कुसुम सोहाए। निजकर भूषन राम बनाए। सीतहि पहिराए प्रभु सादर। बैठे फटिक सिला पर सुंदर। परन्तु भरतजी अयोध्या में ही रहते हुए ऋषियोंकी भाँति तप से शरीर को कस रहे हैं। यथा : अत्रि आदि मुनिवर बहु बसहीं। करहिं जोग जप तप तन कसहीं।

दोउ दिसि समुझि कहत सबु लोगू। सब बिधि भरत सराहन जोगू ॥
सुनि ब्रत नेमु साधु सकुचाहीं। देखि दसा मुनिराज लजाहीं ॥२॥

अर्थ : दोनों ओर का विचार करके सब लोग कहते हैं कि सब प्रकार से तो भरत ही सराहना के योग्य हैं। भरतजी का नियम और व्रत सुनकर साधु सङ्कुचित होते हैं और दशा देखकर मुनीश्वर लज्जित हो जाते हैं।

व्याख्यां : लोग रामजी का रहन सहन देख आये हैं और अब भरतजी का रहन सहन देखते हैं। दोनों का मिलान करते हैं तो इसी निश्चय पर पहुँचते हैं कि सब विधि से भरतजी की सराहना उचित है। रामजी तो पिता के वाक्य से वन में गये। मुनिव्रत वेष आहार स्वीकार किया। उनकी इस विधि से सराहना है। इधर भरतजी को पिता ने राज्य दिया। परन्तु भरतजी ने उसका परित्याग किया। सेवाधर्म को अग्रसर करके रामजी की पादुका को सिंहासनारूढ़ किया। अब उसी की सेवा करते हैं। मुनिजी की आज्ञा लेकर मुनिव्रत वेष आहार सम्पूर्ण भोग सामग्री के रहते हुए घर में रहकर कर रहे हैं। अतः भरतजी सभी विधि से प्रशंसा के योग्य हैं।

साधु लोग सब कुछ छोड़कर नियमव्रत करते हैं। सो भरतजी का नियम व्रत घर में ही उनसे बढ़ा चढ़ा है। मननशील मुनि लोग वन में रहकर स्थितप्रज्ञ होते

हैं। यहाँ भरतजी सदा प्रेम में डूबाडूब रहते हैं। अतः इनकी दशा सुनकर साधु और मुनियों को सङ्कोच होता है : हम लोगों ने गृहस्थी छोड़ा फिर भी ऐसा नियम व्रत और भगवत् प्रेम का निर्वाह नहीं कर सकते। यही सङ्कोच है।

परम पुनीत भरत आचरनू। मधुर मंजु मुद मंगल करनू ॥
हरन कठिन कलि कलुष कलेसू। महामोह निसि दलन दिनेसू ॥३॥

अर्थ : भरतजी का चरित्र परम पवित्र, मधुर, सुन्दर, मुद और मङ्गल का करनेवाला है। कठिन कलियुग के कलुष : पाप और क्लेश को हरण करनेवाला है और महामोहरूपी रात्रि को दूर करने के लिए तो सूर्य है।

व्याख्या : कवि उपसंहार करते हैं कि भरत का चरित्र परम पवित्र है। साधु और मुनियों के लिए भी अनुकरणीय है। बड़ा ही मधुर है। यथा : नित पूजत प्रभु पाँवरी प्रीति न हृदय समाति। माँगि माँगि आयसु करत राज काज बहु भाँति। सुन्दर ऐसा है कि सब लोग सराहना करते हैं। यथा : सब बिधि भरत सराहन जोगू। मुद मङ्गल करण ऐसा है : सुनि व्रत नेम साधु सकुचाहीं। देखि दसा मुनिराज लजाहीं। प्रशस्त आचरण ही मङ्गल है तथा कलियुग में पाप और क्लेश को तीक्ष्णता का आधिक्य है। उसे हरनेवाला है और महामोह को तो ऐसा नाश करता है जैसे सूर्य रात्रि का नाश करते हैं। कहीं अन्धकार का लेश नहीं रह जाता। क्लेश पाँच है : अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, भिनिवेश। आचरण में रहनि, समुझनि, करतूति, भगति, विरति, गुन और विभूती इन सातों का अन्तर्भाव है।

पाप पुंज कुंजर मृगराजू। समन सकल संताप समाजू ॥
जन रंजन भंजन भव भारू। राम सनेह सुधाकर सारू ॥४॥

अर्थ : पापरूप हाथी के लिए तो सिंहरूप है। सन्ताप समाज के लिए यमरूप हैं। भक्तों के मन को प्रसन्न करनेवाला, संसार के भार को दूर करनेवाला और राम के स्नेहरूपी चन्द्र का तो साररूप अमृत है।

व्याख्या : इन सातों की फलश्रुति कहते हुए बतलाते हैं कि भरतजी की रहनि : कठिन कलि कलुष और क्लेश को हरनेवाली हैं। उनकी समुझनि : महामोह निसि दलन दिनेश हैं। उनकी करतूति : पापपुंज कुंजर मृगराज हैं। उनकी भक्ति सकल सन्ताप समाज के लिए यमराज हैं। यमराज का ही नाम शमन है। यथा : शमनो यमराड् यमः। भरतजी की विरति : जनरञ्जन है। उनके गुण भवभार भञ्जन है और उनकी विभूति : रामसनेह सुधाकर सार है।

छं. सिय राम प्रेम पियूष पूरन होत जनमु न भरत को।
मुनि मन अगम जम नियम सम दम बिषम व्रत आचरत को ॥
दुख दाह दारिद दंभ दूषन सुजस मिस अपहरत को।
कलिकाल तुलसी से सठन्हि हठि राम सनमुख करत को ॥

अर्थ : रामजानकी के प्रेम से भरे हुए भरत का यदि जन्म न हुआ होता तो मुनि के मन के लिए भी अगम यम, नियम, शम, दम और विषम व्रत का आचरण कौन करता ? दुःख जलन दरिद्र दम्भ और दूषण को सुयश के बहाने से कौन हरण करता ? कलिकाल में भी तुलसी ऐसे शठों को हठ करके रामजी के सम्मुख कौन करता ?

व्याख्या : सीताराम के चरणों में भरतजी का प्रेम जन्म से ही था। यथा : तुम तउ भरत मोर मत एहू। धरे देह जनु राम सनेहू। रामजी में प्रेम होना और सीताजी में प्रेम होना एक ही बात है। क्योंकि रामजी और सीताजी : देखिअत भिन्न न भिन्न हैं। इसीलिए : सिय राम प्रेम कहा। रामजी में अवधवासियों को इतना प्रेम था : पय अहार फल असन एक निसि भोजन एक लोग। करत राम हित नेम व्रत परिहरि भूषन भोग। और भरतजी तो रामप्रिय और लघु भाई थे। इसलिए उन्होंने जो यम, नियम, शम, दम और विषम व्रत किये वह मुनि लोगों के लिए करने को कौन चलावे मन से भी अगम था। अर्थात् ऐसा अनुष्ठान किसी ने नहीं किया। भाव यह है कि जिसे रामभक्ति होती है वह राम की प्राप्ति के लिए शम, दम, यम, नियमादि विषम व्रत का आचरण करता है। जो रामजी की प्राप्ति के लिए अनुष्ठान नहीं करता है उसे रामभक्ति हुई ही नहीं।

अब भरत चरित्र की फलश्रुति कहते हैं। भरत चरित्र से दोषापनयन होता है उसे कहते हैं कि दुःख दाह दरिद्र दम्भ और दूषण का इस चरित्र के श्रवण से नाश होता है। यम के श्रवण से दुःख का नाश होता है। नियम के श्रवण से दाह का नाश होता है। शम के श्रवण से दरिद्रता का नाश होता है। दम के श्रवण से दम्भ का नाश होता है और विषम व्रत के श्रवण से दूषण का नाश होता है।

यम	१.	भरत की अहिंसा		यथा : देखि दसा मुनिराज लजाहीं। भरत दयानिधि दीन्ह छड़ाई।
	२.	,,	अस्तेय	यथा : संपति सब रघुपति कर आही।
	३.	,,	ब्रह्मचर्य	यथा : नन्दिग्राम करि पर्नकुटीरा।
	४.	,,	अपरिग्रह	यथा : जटाजूट सिर मुनिपट धारी। महि खनि कुस साथरी सँवारी।
	५.	,,	सत्य	यथा : कहहुँ साँच सब सुनि पतियाहू।
नियम	१.	,,	तप	यथा : भरत भवन बसि तप तन कसही।
	२.	,,	शौच	यथा : करत सकल रिषि धर्म सप्रेमा।
	३.	,,	सन्तोष	यथा : भरत मुदित अवलंब लहेते। अस सुख जस सिय राम रहेते।
	४.	,,	स्वाध्याय	यथा : जोह नाम जप लोचन नीरू।
	५.	,,	ईश्वर प्रणिधान	यथा : नित पूजत प्रभु पाँवरी। प्रीति न हृदय समात।

शम यथा : पुलक गात हिय सिय रघुबीरू।
जीह नामु जप लोचन नीरू॥
दम यथा : भूषन बसन भोग सुख भूरी।
मन तन बचन तजे तृन तूरी॥
व्रत : विषम यथा : सुनि ब्रत नेम साधु सकुचाहीं।

दोषानयन कहकर गुणाधान कहते हैं कि इस कराल कलिकाल में भी अत्यन्त शठों को हठ करके राम सम्मुख तो भरत का यश ही करता है ! जो अपने अज्ञान को राम पर धरनेवाले शठ हैं। यथा : ते सठ हठ बस संसय करहीं। निज अज्ञान राम पर धरहीं। वे भी यदि भरत चरित्र सुने तो यह चरित्र उन्हें बलपूर्वक रामजी के सम्मुख कर देता है।

सो. भरत चरित करि नेमु, तुलसी जे सारद सुनहिं।
सीय राम पद पेमु, अवसि होइ भव रस बिरति ॥३२६॥

अर्थ : भरत चरित्र को जो नियम पूर्वक प्रेम से गाते या सुनते हैं उनको अवश्य श्रीसीतारामजी के चरणों में प्रेम होता है और संसार के रस से उन्हें अवश्य वैराग्य हो जाता है।

व्याख्या : अत्यन्त शठ के लिए रामभक्ति प्राप्त करने का यही साधन है कि भरत चरित्र को प्रेम और नेम के साथ गान करे या सुने। उसकी शठता छूट जाती है। वह भव रस में निरत था सो विरत हो जायगा। वह अपने अज्ञान का आरोप रामजी पर करता था। सो उसकी : गुन तुम्हार समुझै निज दोसा। जेहि सब भाँति तुम्हार भरोसा। ऐसी बुद्धि अवश्य हो जायगी।

भरत चरित्र की इति नहीं है। अतः ग्रन्थकार ने इति नहीं दिया।

नमः शिवाय

श्रीराम

श्रीगणेशाय नमः । श्रीगुरवे नम.

श्रीरामचरितमानस

अरण्यकाण्ड : तृतीय सोपान

सटीक

सप्तकाण्डरूपी सात मोक्षदायिका पुरियों में अरण्य : वन काण्ड तीसरी मायापुरी : हरद्वार है । हरद्वारान्तर्गत कनखल में दक्षेश्वर महादेव हैं । वहीं दक्ष का यज्ञ हुआ है और भगवती सती ने शरीर त्याग किया है । इस कथा का मूल भी इसी काण्ड में है । अतः इस काण्ड को मायापुरी माना गया है । दूसरी बात यह है कि इस काण्ड में सतीजी माया की जानकी बनीं । श्रीरामजी ने जानकी जी को अग्नि के सुपुर्द करके माया की जानकी से काम लिया । रावण ने मारीच को मायामृग बनाकर सीता का हरण किया । खरदूषण के युद्ध में राक्षसों ने अति घनी माया की । तत्पश्चात् श्रीरामजी की माया से सब मारे गये । यहाँ माया का ही खेल दिखायी पड़ता है । अतः इसका मायापुरी होना अन्वर्थक है । यथा :

बालकाण्ड है अवध अवध मथुरा मन भावन ।
हरद्वार आरण्य काशिका किष्किन्धा मन ।।
काञ्ची सुन्दर लसत लङ्क उज्जैन सुहावन ।
उत्तर द्वारावतीपुरी सातो मन भावन ।।
लसत जहाँ सोपान प्रति ऐसो राम चरित्र सर ।
विजयानन्द सेवत सुलभ सब सुखकर कलिकलुष हर ।।

आरण्य वन को कहते हैं । वन के रास्ते में उतार चढ़ाव तथा विश्राम स्थल का कोई ठिकाना नहीं रहता । कहीं पर्वत की चढ़ाई, कहीं उतराई, कहीं खन्दक । अतः इस काण्ड में बाल अयोध्या की भाँति चौपाई दोहादि का क्रम नहीं है । किसी दोहे में २६ अर्धालियाँ हैं और किसी में केवल दो हैं । अद्भुत विचित्रता इस काव्य में है । स्थान की समता और विषमता अर्धालियों के न्यूनाधिक्य से सूचित किया गया है ।

मङ्गलाचरण

श्लो. मूलं[1] धर्मतरोर्विवेकजलधेः पूर्णेंदुमानंददं
वैराग्यांबुजभास्करं ह्यघघनध्वांतापहं तापहं ।
मोहांभोधरपूगपाटनविधौ स्वःसम्भवं शंकरं
वंदे ब्रह्मकुलं कलंकशमनं श्रीरामभूपप्रियं ॥१॥

अर्थ : धर्मरूपी वृक्ष के मूल, विवेकरूपी समुद्र को आनन्द देनेवाले पूर्णचन्द्र, वैराग्यरूपी कमल के लिए सूर्यरूप, पापरूपी अन्धकार को निश्चय ही मिटानेवाले, तीनों तापों के हरण करनेवाले, मोहरूपी बादलों के समूह को छिन्न भिन्न करने की क्रिया में वायुरूप तथा शंकररूप, श्री राजा रामचन्द्र के प्रिय, कलङ्कनासक ब्रह्मकुल की मैं वन्दना करता हूँ।

व्याख्या : जिस भाँति शङ्कररूप हनुमानजी की वन्दना करने से शिवजी की पृथक् वन्दना सुन्दरकाण्ड में नहीं की। उसी भाँति इस काण्ड में भी शङ्कररूप ब्रह्मकुल की वन्दना करते हैं। पृथक् वन्दना शङ्करजी की नहीं करते। इस काण्ड के कथानुसार सरकार का ब्रह्मकुल में निवास अनेक वर्षों तक होता रहा। किसी ब्रह्मकुल में पन्द्रह दिन ही रहे। किसी में छः महीने रहे। वनवास का अत्यधिक भाग यों ही व्यतीत किया। इसलिए उस महावन का नाम महाकोसल पड़ गया। कहा भी है : सकल मुनिन्ह के आश्रमन्हि जाइ जाइ सुख दीन्ह। ब्रह्मकुल की रक्षा के लिए ही शेष कथा का विस्तार हुआ। यथा : निसिचर हीन करउँ महि भुज उठाइ प्रन कीन्ह। इसी के लिए अगस्त्यजी से मन्त्र पूछा। यथा : अब सो मंत्र देहु प्रभु मोही। जेहि प्रकार मारौं सुर द्रोही। अतः कवि ने भी शङ्कर की वन्दना ब्रह्मकुल के रूप में ही की। शङ्करजी अष्टमूर्ति हैं। १. पृथ्वी २. अप ३. तेज ४. वायु ५. आकाश ६. सूर्य ७. चन्द्र और ८. यजमान। इसी भाँति ब्रह्मकुल भी अष्टमूर्ति हैं। उसी का विवरण करते हैं। गीताभाष्य में भाष्यकार कहते हैं : ब्राह्मणत्वस्य हि[2] रक्षणेन रक्षितो भवति वैदिको धर्मः। अतः धर्मवृक्ष का मूल ब्रह्मकुल ही है। एवं वृक्षमूल कहकर पृथ्वीरूप कहा : १.

विवेक का कोई ओर छोर नहीं है। इसीलिए इसकी उपमा समुद्र से दी जाती है। यथा : गुर बिबेक सागर जग जाना। उस विवेक समुद्र को आनन्द देनेवाला ब्रह्मकुल है। ब्रह्मकुल के दर्शन से विवेक की वृद्धि होती है। ब्राह्मणों के दर्शन न होने से विदेश में गये हुए क्षत्रिय ही म्लेच्छ, हूण, पुल्कस यवन आदि हो गये। अतः ब्रह्मकुल को चन्द्ररूप कहा : २.

---

१. शार्दूल विक्रीडित छन्द है।

२. ब्राह्मणत्व की ही रक्षा से वैदिक धर्म की रक्षा होती है।

वैराग्यरूपी कमल का पोषण करनेवाला ब्रह्मकुल सूर्यरूप हैं : ३. ब्रह्मकुल के उदय से ही वैराग्य विकसित हो उठता है। यथा : प्रथमहि बिप्र चरन अति प्रीती। निज निज कर्म निरत श्रुति रीती। एहि कर फल पुनि बिषय बिरागा।

पापान्धकार के नाश के लिए ब्रह्मकुल तेजरूप हैं : ४. ब्राह्मण के दक्षिण अङ्गुष्ठ में सब तीर्थों का निवास है। अतः विप्रपादोदक के पान करनेवाले के सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जाते हैं।

तापनाशक होने से ब्रह्मकुल को जलरूप कहा : ५. यथा : विपद्घनध्वान्त-सहस्रभानवः समीहितार्थार्पणकामधेनवः। अपारसंसारसमुद्रसेतवः पुनन्तु मां ब्राह्मण-पादरेणवः ॥

मोहरूपी मेघ आकाशरूपी आत्मस्वरूप को आच्छादित कर देता है। उसे तितरबितर कर देने में वायुरूप ब्रह्मकुल समर्थ हैं : ६. यथा : बंदों प्रथम मही सुर चरना। मोह जनित संसय सब हरना।

आकाश अवकाश प्रदान से सबका कल्याण करता है। इसलिए वह शङ्कर हैं। ब्रह्मकुल भी अपने ब्रह्मकर्म से संसार का कल्याण करता है। इसलिए वह भी शङ्कर हैं। इस भाँति ब्रह्मकुल को आकाशरूप कहा : ७.

श्रीरामभूपप्रियं का अर्थ है श्रीरामभूप प्रिय हैं जिसको। या जो रामभूप को प्रिय है। यथा : हरितोषन ब्रत द्विज सेवकाई। यजमान यज्ञ से भगवान् की पूजा करता है। इसलिए वह भगवान् को प्रिय है और ब्राह्मण का कर्म ही यजन याजन है। अतः ब्रह्मकुल को यजमान रूप कहा : ८.

इस भाँति अष्ट मूर्ति ब्रह्मकुल शङ्कररूप होकर कलङ्क का नाश करता है। कलङ्क ब्रह्मकुल की कृपा बिना नहीं छूटता। जब ब्राह्मण प्रायश्चित्तादि से पवित्र करके किसी को ग्रहण करते हैं तभी उसका कलङ्क छूटता है। ऐसे ब्रह्मकुल की श्रीग्रन्थकार वन्दना करते हैं।

श्लो. [1]सान्द्रानन्दपयोदसौभगतनुं पीताम्बरं सुन्दरं
पाणौ बाणशरासनं कटिलसत्तूणीरभारं वरं।
राजीवायतलोचनं धृतजटाजूटेन संशोभितं
सीतालक्ष्मणसंयुतं पथिगतं रामाभिरामं भजे ॥२॥

अर्थ : जिनका शरीर घना आनन्दरूपी जल बरसानेवाले मेघों के समान शोभायुक्त हैं। जो पीताम्बर धारण किये हैं और सुन्दर[2] हैं। जिनके हाथों में बाण और धनुष है। जिसका कटि भाग उत्तम तरकस के भार से सुशोभित है। कमल के

———

१. यह भी शार्दूल विक्रीडित छन्द है।

२. समविभक्ताङ्ग।

समान जिसके विशाल नेत्र हैं। जो मस्तक पर जटाजूट धारण करने से अत्यन्त शोभायमान हैं और जो सीताजी और लक्ष्मणजी सहित मार्ग में चले जा रहे हैं। ऐसे आनन्द देनेवाले श्री रामचन्द्रजी को मैं भजता हूँ।

व्याख्या : बादल जल की वर्षा करते हैं। परन्तु सरकार का शरीर आनन्द बरसानेवाला बादल है। अतः वैसी ही उसकी शोभा है। पीतवल्कल उनके शरीर पर आ जाने से पीताम्बर की शोभा दे रहा है अथवा भगवती जनकनन्दनी पीताम्बर धारण किये हुए हैं। उसका आरोप सरकार पर करके उनको पीताम्बर कह रहे हैं। यथा : छत्रिणो गच्छन्ति कहने में जो छाता नहीं लगाये हुए हैं उस पर भी छातावाले का आरोप होता है। अथवा श्याम शरीर पर पीताम्बर सा मुनिपट अत्यन्त खिल रहा है। इससे सुन्दरं कहते हैं। हाथ में धनुषबाण और कटि में तूणीर की शोभा है। इससे भक्त विपत्तिभञ्जन गुण का वर्णन किया। यथा : राजिव नयन धरे धनु सायक। भगत बिपति भंजन सुखदायक। कृपादृष्टि युक्त होने से : राजीवायत लोचन कहा। यथा : चितइ कृपाकरि राजिव नैना। जटाजूट धारण करने से शोभा घटी नहीं, प्रत्युत और बढ़ गयी। यथा : मरकत सयलपर लरत दामिनि कोटि। सीता और लक्ष्मण के साथ मार्ग चलने से और भी मनोहरता बढ़ी। यथा : जनु मधु मदन मध्य रति लसई। ऐसे सुन्दर राम को गोस्वामीजी कहते हैं कि मैं प्रणाम करता हूँ।

सान्द्रानन्दपयोद सौभागतनुं से ; रघुपति चित्रकूटबसि जाना। चरित किये श्रुति सुधा समाना : कहा। पीताम्बरं सुन्दरं से : दिव्यबसन भूषन पहिराये। जे नित नूतन अमल सोहाये। अर्थात् अत्रि मिलन कहा। पाणौ बाणशरासनौ कटिलसत्तूणीरभारं वरं से : विराध बध तथा खरदूषण वध कहा। राजीवायतलोचनं से : मुनियों पर कृपा कहा। घृतजटाजूटेन संशोभितं से मुनिवेष में भी सूर्पणखा का आसक्त होना कहा। सीतालक्ष्मणसंयुतं से : पञ्चवटी निवास कहा। पथिगतं से : सीतान्वेषण कहा। अभिराम से : शवरी गीध गति तथा नारद वरदान कहा। इस प्रकार सरकार के ध्यान वर्णन के व्याज से अरण्यकाण्ड की सम्पूर्ण कथाओं के प्रतीक दे दिये।

इस काण्ड में सीताहरण होगा। अतः दो ही श्लोकों में वन्दना किया। सुन्दरकाण्ड में पता लग जायगा तब फिर उस काण्ड से तीन श्लोकों में वन्दना प्रारम्भ हो जायगी।

२५. सुरपति सुत करनी प्रसंग

सो. उमा[1] राम गुन गूढ़, पंडित मुनि पावहिं बिरति।
पावहिं मोह बिमूढ़, जे हरि बिमुख न धर्म रति ॥१॥

---

१. यहाँ मुद्रा अलङ्कार है।

अर्थ : हे उमा ! रामजी के गुण गूढ़ हैं। पण्डित मुनि इससे वैराग्य प्राप्त करते हैं। परन्तु जो विमूढ़ हैं। परमेश्वर से विमुख हैं और जिन्हें धर्म में प्रेम नहीं है वे मोह को प्राप्त होते हैं।

व्याख्या : अरण्यकाण्ड की कथा में ही उमा को सती शरीर में मोह हुआ था। अतः शङ्कर भगवान् सावधान करते हैं। जब से रामजी जनकपुर में गये तब से लेकर यहाँ तक की कथा में गोस्वामीजी के वक्तृत्व की ही प्रधानता है। धनुषभङ्ग हुआ, ब्याह हुआ, बनवास हुआ, भरतजी मनाने गये, महाराज जनक आये, भरत जी को पादुका मिली, भरतजी के साथ महाराज जनक अवध आये, राज को सँभाल-कर जनकपुर लौट गये, यह सब माधुर्य की कथा थी। अतः गोस्वामीजी ही बोलते रहे। ऐश्वर्य की कथा आते ही ज्ञान घाट के वक्ता शिवजी बोल उठे : उमा राम गुन गूढ़। गूढ़ कथा को ज्ञानी ही समझ सकता है।

जो शीघ्र लखाई न पड़े उसे गूढ़ कहते हैं। यथा : गूढ प्रेम लखि परै न काहू। लखनेवाले पण्डित : ज्ञानी और मुनि : मनन करनेवाले हैं। उन्हें राम गुण में वैराग्य होता है। यथा : कामिन्ह के दीनता देखाई। धीरन्ह के मन बिरति दृढ़ाई। जिसे सीधी बात न समझ पड़े उसे मूढ़ कहते हैं। यथा : माया बिबस भये मुनि मूढ़ा। समुझी नहिं हरि गिरा निगूढ़ा। जिन्हें बात उलटी समझ पड़े वे विमूढ़ हैं। विमूढ़ होने से ज्ञान के अधिकारी नहीं। हरिविमुख होने से भक्ति के अधिकारी नहीं। धर्म रति न होने से कर्म के अधिकारी नहीं। ऐसे वेदबाह्यों को रामगुण से मोह प्राप्त होता है। भरत चरित ऐसा नहीं है। यथा : भरत चरित करि नेमु तुलसी जे सादर सुनहिं। सीयराम पद प्रेम अवसि होहिं भव रस बिरति। भरत चरित समाप्त हुआ। अतः रामचरित प्रारम्भ करने के पहिले अपने शिवजी श्रोता को सावधान करते हैं।

पुर नर भरत प्रीति मैं गाई। मति अनुरूप अनूप सुहाई॥
अब प्रभु चरित सुनहु अति पावन। करत जे बन सुर नर मुनि भावन॥१॥

अर्थ : पुरवासियों और भरतजी के अनुपम और सुन्दर प्रेम का मैंने अपनी बुद्धि के अनुसार गान किया। अब अत्यन्त पवित्र प्रभु के चरित्र सुनो जिसे सुर नर मुनि भावन चरित्र को वे वन में कर रहे हैं।

व्याख्या : अब द्वितीय सोपान और तृतीय सोपान के दाब की कथा चली : एक सीढ़ी दूसरे को दाबकर ही बनती है। उसे दोनों की सन्धि समझना चाहिए। इसे सङ्गति भी कह सकते हैं। पुर नर प्रीति पहिले यथा : राम दरस हित लोग सब करत नेम उपवास। परिहरि भूषन भोग सुख जिअत अवध की आस। तत्पश्चात् भरत की प्रीति कही। यथा : नित पूजत प्रभु पाँवरीं प्रीति न हृदय समात। माँगि माँगि आयसु करत राज काज चहु भाँति। मति अनुरूप कहकर यथार्थ गान में अपनी असमर्थता कहा। भगवान् और भागवत का यश मति अनुरूप ही कहा जा सकता है। यथा : बरनत सकल सुकबि सकुचाहीं। शेष गनेस गिरा गमु नाहीं। अनूप

यथा : मुनिमन अगम जम नियम सम दम बिषम व्रत आचरत को। सुहाई यथा : कलि काल तुलसी से सठन्हि हठि राम सनमुख करत को।

शिवजी कहते हैं कि तुम सेवक का चरित सुन चुकी। अब प्रभु का चरित सुनो। एहि बिधि प्रभु बन बसहिं सुखारी। खग मृग सुर तापस हितकारी। सो वह पावन चरित था। इस चरित में खग मृग के स्थान में नर का हित होने लगा। अतः इसे अतिपावन कहते हैं। अथवा भक्तिका श्रृङ्गार रस के योग से अत्यन्त उत्कर्ष हो उठता है, इसलिए अतिपावन कहा।

एक बार चुनि कुसुम सुहाए। निज कर भूषन राम बनाए॥
सीतहिं पहिराए प्रभु सादर। बैठे फटिक सिला पर सुंदर॥२॥

अर्थ—एक बार सुन्दर सुन्दर फूल चुनकर रामजी ने अपने हाथों से गहने बनाये और सीताजी को अत्यन्त आदर के साथ पहिनाये। तब सुन्दर स्फटिक की शिला पर बैठे।

व्याख्या : श्रृङ्गार तो प्रायेण करते ही रहते थे। यथा : सिय अंग लिखे धातु राग सुमननि भूषन बिभाग तिलक करनि का कहौं कला निधान की। माधुरी बिलास हास गावत यश तुलसीदास बसत हृदय जोरी प्रिय परम प्रान कीं। गीतावली। इस समय एक बार की बात कही जाती है। कुसुम : कहने से वसन्त ऋतु कहा। क्योंकि इसी ऋतु में कुसुम फूलता है। सुहाये चुनि : कहने का भाव यह कि भूषण बनाने योग्य फूल। निजकर : कहने का भाव यह कि पूजन के लिए अपने हाथों से फूल चुनने का विधान है। दूसरे यह कि भूषण बनानेवाला ही जान सकता है कि किन किन फूलों की कितनी आवश्यकता है। राम बनाये : कहने से प्रभु की रसिकता कलाज्ञान तथा शास्त्रनिष्ठा सूचित की। स्त्रियों की पूजा वस्त्र भूषण द्वारा करनेका शास्त्र विधान है और तापस बेष बिसेख उदासी : रहने का वरदान है। अतः फूलों के गहने जगदम्बा के पूजन के लिए बना रहे हैं। नवरात्र में पूजन का माहात्म्य अधिक है।

सादर पहिराये : कहने से पूजन करना कहा। सुन्दरी सीता सुन्दर राम सुन्दर फटिक शिला पर बैठे हैं। सामने मन्दाकिनी बह रही हैं। उस पार सामने जयन्त टीला है। चारों ओर हरियाली छा रही है। अद्भुत झाँकी है।

सुरपति सुत धरि बायस बेखा। सठ चाहत रघुपति बल देखा॥
जिमि पिपीलिका सागर थाहा। महा मंदमति पावन चाहा॥३॥

अर्थ : इन्द्र का बेटा शठ था। उसने कौए का रूप धारण करके रघुपति का बल देखना चाहा। जैसे महामन्दमति चींटी समुद्र का थाह पाना चाहे।

व्याख्या : बल की महिमा सुन रक्खा था। चरित्र से विलासप्रियता सूचित हुई। अतः सन्देह हुआ। सुरपति सुत : कहने का भाव यह है : ऊँच निवास नीच करतूती। देखि न सकें पराई बिभूती। ऐसे का बेटा है। रङ्ग में भङ्ग करने चला। दूसरे यह कि : काक समान पाक रिपुरीती। छली मलीन न कतहुँ प्रतीती। उनका

बेटा होने से यह भी छली मलिन और प्रतीतिहीन है। आप्त पुरुषों से सुनने पर भी इसे प्रतीति नहीं। काक सा स्वभाव है। अतः वही वेष धारण किया। छली है। समझता है कि किसी को सम्भावना भी नहीं होगी कि सुरपति का बेटा काक बनेगा। शठ है व्यर्थ दुराव करता है। उसकी इच्छा है कि किसी को पता भी न लगे और मैं परीक्षा ले लूँ। इसलिए यह रूप लाया। कपट सार सूची सहस बाँधि बचन परवास। करि दुराव चह चातुरी सो सठ तुलसीदास।

पिपीलिका के लिए जल की रेखा दुर्लंघ्य है। उसके लिए समुद्र के थाह पाने की वासना ही महाअमङ्गलरूप है। कोई चींटी ऐसी मतिमन्द नहीं है जो किसी घट के जल का भी थाह जानना चाहती हो। पर यह महामतिमन्द है। चींटी होकर समुद्र का थाह स्वयं लेना चाहता है।

सीता चरन [1]चोंच हति भागा। मूढ़ मंदमति कारन कागा ।।
चला रुधिर रघुनायक जाना। सींक धनुष सायक संधाना ।।४।।

अर्थ : काग होने के कारण सीताजी के चरण में मूढ़ मन्दमति चोंच मारकर भागा। रक्त बह चला तो रघुनाथजी ने जाना। सीक के धनुष पर बाण का सन्धान किया।

व्याख्या : मूढ़ बेसमझ को कहते हैं। बेसमझी के कारण भगवत् अपराध और भागवत अपराध दोनों कर बैठा। रामजी तो चाहने पर परीक्षा भी दे देते हैं। यथा : कह सुग्रीव सुनहु रघुबीरा। बालि महाबल अतिरन धीरा। दुंदुभि अस्थिताल देखराये। बिनु प्रयास रघुनाथ ढहाये। ऐसे सरल प्रभु से कपट करके दो दो अपराध करने की क्या आवश्यकता थी। अतः मूढ़ कहा। अवसर चूक गया। इसलिए मन्दमति कहा। यथा : अहह मंदमनु अवसर चूका। जगदम्बा के चरणों को पाकर लोग कौन सा मनोरथ नहीं सिद्ध कर लेते। सो इस मन्दमति ने उस पर प्रहार किया। कारण कागा : भाव यह कि मन उसका कौआ सा था ही। शरीर भी कौआ का धारण कर लिया। अतः भीतर बाहर से कौआ ही हो गया। अतः मूढ़ता और मति की मन्दता का परिचय दे रहा है। सीताजी के चरण में चोंच मारकर भागा। रामजी ने आघात करने के समय न जाना। जगदम्बा के अङ्क में आराम करते थे। यथा : ममाङ्के भरताग्रजः। जब गरम गरम रक्त का शरीर से योग हुआ तब जाना। रघुकुल की प्रतिष्ठा रखने के लिए बाध्य थे। नहीं तो देवताओं के रक्षक हैं। शृङ्गार में थे धनुष बाण पास न था। क्रियासिद्धिः सत्वे भवति महतां नोपकरणे। सींक का ही धनुष बाण बना लिया। कौआ उड़ाने के लिए यही बहुत है। उसने भी समझा कि रामजी ने मुझे कौआ ही जाना है। इसलिए सीक धनुष और बाण से मुझे डरा रहे हैं।

---

१. ऐन्द्रः काकस्तदागत्य नखैस्तण्डेन चासकृत्। मत्पादाङ्गुष्ठमारक्तं विददारामिषाशया। अध्या०। इन्द्र का बेटा काक बनकर नख और चोंच से मेरे पैर के अंगूठे में चोट किया।

दो. अति कृपाल रघुनायक, सदा दीन पर नेह।
ता सनु आइ कीन्ह छलु, मूरख अवगुन गेह ॥१॥

अर्थ : रघुनाथजी अत्यन्त कृपालु हैं। सदा दीनों पर उनकी अनुकम्पा रहती है। मूर्ख अवगुण के घर ने उनसे आकर छल किया।

व्याख्या : रघुनाथ अति कृपालु हैं। यदि यह उनका अपराध किये होता तो क्रोध भी नहीं करते। यथा : सुनु सुरेस रघुनाथ सुभाऊ। निज अपराध रिसाहिं न काऊ। जो अपराध भगत कर करई। राम रोष पावक सो जरई। उनका दीन पर सदा प्रेम रहता है। यदि यह दीन होकर सुग्रीव की भाँति बल में सन्देह करता तो कृपा पूर्वक उसको बल भी दिखा देते और उसका अकल्याण भी न होता। ऐसे प्रभु से छल करना मूर्खता और दोषाकरता का परिचय देना है। छल तो उससे किया जाता है जिससे सरलता से काम न निकले। ऐसे कृपालु दीनानाथ से छल किया। अतः मूर्ख है। अवगुण का घर है। उसे अच्छी बात सूझती ही नहीं।

प्रेरित मंत्र ब्रह्मसर धावा। चला भाजि बायस भय पावा ॥
धरि निज रूप गयउ पितु पाँहीं। राम बिमुख राखा तेहि नाँहीं ॥१॥

अर्थ : मन्त्र से प्रेरित होकर ब्रह्मास्त्र दौड़ा। कौआ भयभीत होकर भाग चला। अपना रूप धारण करके पिता के पास गया। पर राम विमुख होने से उसने नहीं रक्खा।

व्याख्या : वह सीक का बाण मन्त्र बल से ऐषीकास्त्र हो गया। ऐषीकास्त्र ब्रह्मास्त्र का भेद है। उसका प्रयोग सीक द्वारा ही होता है। जिस भाँति यह देखने में कौआ पर वस्तुतः इन्द्र पुत्र था, उसी भाँति उसके प्रति जिस बाण का प्रयोग किया गया वह देखने में सीक था। पर वस्तुतः ब्राह्मास्त्र था। जयन्त ने पहिले सीक ही समझा। अतः निर्भय था। पर जब उसने ऐषीकास्त्र कालानल के समान तेज देखा तो डर के भागा। वायस भय पावा : कहने का भाव यह कि काँय काँय करता भागा।

पातीति पिता। पिता शब्द का व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ ही रक्षक है। पुत्र का परमाश्रय पिता ही होता है। अतः पहिले इन्द्रलोक गया। वहाँ काक का प्रवेश नहीं। इसलिए काक रूप परित्याग करके अपना रूप धारण किया। दूसरे यह कि काक रूप होने से पिता के पहिचानने में विलम्ब की सम्भावना थी और विलम्ब होने से अस्त्र के मार लेने का भय था। इसलिए अपना रूप धारण किया। तीसरे पिता की अप्रसन्नता का भा भय था कि तूने काक रूप क्यों धारण किया। चौथे यह पिता के लिए पुत्र प्रिय दर्शन है। अतः अपने रूप में होने से वात्सल्य की अधिक आशा थी। सो पिता ने रक्खा नहीं। अर्थात् निकाल दिया कि जैसा किये हैं वैसा फल भोग। मैं इसमें कुछ नही कर सकता। जयन्त ने ज्ञान बल और दिव्य बल तो

देख ही लिया। ब्रह्मास्त्र को अप्रतिक्रिय जानकर ही भागा है। अब प्रभाव का अनुभव कर रहा है।

भा निरास उपजी मन त्रासा। यथा चक्र भय रिषि दुर्बासा ॥
ब्रह्मधाम सिवपुर सब लोका। फिरा श्रमित ब्याकुल भय सोका ॥२॥

अर्थ : निराश हो गया। उसके मन में त्रास उत्पन्न हो गया जिस भाँति दुर्वासा ऋषि चक्र से सन्त्रस्त हो गये थे। वह ब्रह्मलोक शिवलोकादि समस्त लोकों में थका हुआ और भय शोक से व्याकुल होकर भागता फिरा।

व्याख्या : पहिले जयन्त को आशा थी कि पिता रक्षा करेंगे। उनके प्रत्याख्यान से वह निराश हो गया। पहिले भयभीत होकर भागा था अब सन्त्रस्त हो गया। जैसे चक्र के भय से दुर्वासा ऋषि निराश और सन्त्रस्त हो गये थे वही दशा इसकी हो गयी। अम्बरीष राजा के यहाँ दुर्वासा ऋषि अतिथि हो गये। उस दिन द्वादशी थोड़ी थी। राजा एकादशी व्रत करके पारण करने जा रहा था। ऋषिजी से भोजन के लिए प्रार्थना किया। ऋषिजी ने स्वीकार किया और आवश्यक कार्य के लिए यमुना किनारे गये। ऋषिजी के आने में देर हुई। इधर द्वादशी बीत रही थी। इसलिए ब्राह्मणों से आज्ञा लेकर राजा ने जल प्राशन कर लिया। इस पर क्रुद्ध होकर ऋषि ने कृत्या प्रकट की। सुदर्शनचक्र राजा की रक्षा करता था। उसने कृत्या को तो भस्म कर ही दिया स्वयं दुर्वासा ऋषिजी पर धावा कर दिया।

ऋषिजी भाग चले। चक्र ने पीछा किया। जितना ऋषिजी भागते थे उतना ही सुदर्शन भी दौड़कर उनका पीछा करता था। ऋषिजी सन्त्रस्त होकर शरण खोजने लगे। पर किसी ने उन्हें शरण नहीं दी।

इसी भाँति जयन्त भी भागता हुआ देवताओं की परम शरण ब्रह्माजी के पास गया। वहाँ भी शरण न मिली तो अवढर दानी शिवजी के शरण गया। वहाँ से भी निराश होकर वरुण कुबेरादिक के लोकों में घूमता फिरा। दौड़ते-दौड़ते श्रमित हो गया। भय और शोक से उसकी बुरी गत हो गयी।

काहू बैठन कहा न ओही। राखि को सकै राम कर द्रोही ॥
मातु मृत्यु पितु समन समाना। सुधा होइ बिष सुनु हरिजाना ॥३॥

अर्थ : किसी ने उसे बैठने तक को नहीं कहा। रामजी के द्रोही की कौन रक्षा कर सकता है। माता मौत हो जाती है। पिता यमराज के समान हो जाते हैं। हे गरुड़जी ! अमृत विष हो जाता है।

व्याख्या : शरण में रखना तो दूर की बात है। किसी ने यह भी नहीं कहा कि बहुत थके हो। दम भर विश्राम कर लो। क्योंकि उसके पीछे ही पीछे रामजी का बाण भी साथ ही जाता था। राम के द्रोही की रक्षा करने में कोई समर्थ नहीं। यथा : जौं खल भयेसि राम कर द्रोही। ब्रह्म रुद्र सक राखि न तोही।

यहाँ भगवान् के उत्कर्ष का प्रसङ्ग है। अतः उपासना घाट के वक्ता भुसुण्डिजी बोल उठे : सुनु हरिजाना। जब माता पिता की यह गति है तो सम्पूर्ण जगत् के विरोधी हो जाने में कौन सन्देह है। पिता के प्रत्याख्यान के अन्तर्गत ही माता का भी प्रत्याख्यान आ जाता है। उस समय इन्द्राणी भी वहीं थी। जब बाण पीछा कर रहा हो उस समय लौटाना मृत्यु के मुख में फेंकना ही है। इसलिए कहा : मातु मृत्यु पितु समन समाना। मृत्यु और शमन : यम एक ही वस्तु है पुल्लिङ्ग स्त्रीलिङ्ग मात्र का भेद है। रक्षा और नाश की शक्ति किसी वस्तु में नहीं है। प्रभु के अनुग्रह निग्रह में है। अनुग्रह हो तो सुमेरु भी रेणु हो जाय और निग्रह हो तो माँ बाप भी मृत्यु और यम हो जायँ। इसी प्रकार प्राणद शक्ति और मारक शक्ति अमृत विष में नहीं है। सरकारी अनुग्रह हो तो विष अमृत हो जाता है। नहीं तो अमृत विष हो जाता है। सुरलोक में अमृत का होना प्रसिद्ध है। सो पिता माता ने अमृत से सिञ्चन नहीं किया। रामविरोधी के लिए उसे भी विष ही समझा।

मित्र करै सत रिपु कै करनी। ता कहुँ बिबुधनदी बैतरनी॥
सब जगु ताहि अनलहु ते ताता। जो रघुबीर बिमुख सुनु भ्राता॥४॥

अर्थ : मित्र सौ शत्रु की करणी करता है। उसके लिए गङ्गाजी वैतरणी हो जाती हैं। हे भाई! जो राम विमुख हों तो सम्पूर्ण संसार उसके लिए अग्नि से भी गरम हो जाता है।

व्याख्या : राम के विमुख होते ही जमीन आसमान पलट जाता है। मित्र सौ शत्रु की करणी कर बैठता है। अपने समझ में वह भला करता है। पर उससे बड़ी हानि हो जाती है। यहाँ जयन्त की काया पलट विद्या ने उसके सौ शत्रु के समान हानि की। न उसे कायापलट विद्या आती और न वह काक होकर भगवती पर प्रहार करता। शङ्कर भगवान् के जटा में सकल कलुष विध्वंसिनी गङ्गाजी सदा रहती हैं। परन्तु जयन्त के पाप का हरण न कर सकीं। उसे वैतरणीरूप दिखायी पड़ीं। वहाँ से भी वह भागा।

सम्पूर्ण जगत् उसे अग्नि से अधिक दाहक हो गया। कहीं वह बैठ नहीं पाता : राम बिमुख थल नरक न लहहीं। प्रभु के सम्मुख होने से अग्नि भी शीतल हो जाती है। यथा : गरल सुधा रिपु करै मिताई। गोपद सिंधु अनल सितलाई। गरुड़ सुमेरु रेनु सम ताहीं। रामकृपा करि चितवा जाही। भाव यह कि जीवन मरण, साध्यासाध्य, लाभ हानि तथा शीतोष्ण की शक्तियाँ सरकार के विमुख सम्मुख होने पर अवलम्बित हैं। स्वतन्त्ररूपेण किसी वस्तु में नहीं है। प्रभु के विमुख होने से जयन्त के लिए सब कुछ उलटा हो गया।

नारद देखा बिकल जयंता। लागि दया कोमल चित संता॥
पठवा तुरत राम पहिं ताही। कहेसि पुकार प्रनत हित पाही॥५॥

अर्थ : नारदजी ने जयन्त को विकल देखा। सन्त का चित्त कोमल होता है। सो दया आगयी। तुरन्त उसे रामजी के पास भेजा। उसने पुकारकर कहा कि हे प्रणत के हित करनेवाले ! रक्षा कीजिये।

व्याख्या : नारदजी ने जयन्त को देखा। पर वह इतना विकल था कि उसने नारदजी को नहीं देखा। सन्तों में यही विशेषता है कि ये राम विमुख पर भी दया करते हैं। इसीलिए कहा गया है : बिधि हरिहर कबि कोबिद बानी। कहत साधु महिमा सकुचानी। जयन्त : कहने का भाव यह कि इन्द्र और इन्द्राणी से लालित पालित इसे मालूम भी नहीं था कि विकलता किसे कहते हैं। दूसरा भाव यह कि इस समय अपने असली रूप में हैं। काक रूप में नहीं हैं। सन्त हृदय नवनीत समाना। कहा कबिन्ह पर कहै न जाना। निज परिताप द्रवै नवनीता। पर दुख द्रवहिं संत सुपुनीता। जिस पर पिता ने दया न की, पितामह ने न की, अवढरदानी शङ्कर ने न की। उस पर सन्त की दया हो गयी और वह दया अमोघ है।

सन्त लोग ऐसी युक्ति बतलाते हैं कि तुरन्त कार्यसिद्धि हो। नारदजी बोले कि शरण के लिए क्यों व्यर्थ अन्य स्थानों में टक्कर मारता है। तू स्वयं रामजी के शरण में चला जा। मन्त्र और विधि बतला दी। मन्त्र : प्रणत हित पाही। विधि : कहेसि पुकारि। पुकारकर कहने का भाव यह कि मद, मोह, कपट को अवसर न मिले। मद मोह कपट छलवाले पुकारकर शरण नहीं जा सकते।

आतुर सभय गहेसि पद जाई। त्राहि त्राहि दयाल रघुराई॥
अतुलित बल अतुलित प्रभुताई। मैं मतिमंद जान नहिं पाई॥६॥

अर्थ : आतुर और सभीत होकर उसने चरण पकड़ लिये और कहा हे दयाल ! हे रघुराई ! रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये। आप के बेतौल बल और प्रभुता को मैं मतिमन्द जान न सका।

व्याख्या : अति विकल था। इसलिए उसे आतुर कहा। विकलता का कारण भय था। इसलिए सभय कहा अथवा चरण ग्रहण के लिए आतुर था। शरण आने में तीन बातों की आवश्यकता है १. भयभीत होना २. शरण ताककर आना ३. मद मोह कपट छलादि का त्याग। यथा : जौ नर होइ चराचर द्रोही। आवै सभय सरन तकि मोही। तजि मद मोह कपट छल नाना। करौं सद्य तेहि साधु समाना। तीनों बातें जयन्त में दिखलाया। सभय : शब्द से भयभीत होना कहा। आतुर शब्द से शरण ताकना कहा। पाहि पाहि की पुकार से : मद मोह कपट छल त्याग कहा। अथवा सभय से : मनसा। गहेसि पद जाई से : कर्मणा और त्राहि त्राहि दयाल रघुराई : वाचा शरण ग्रहण कहा।

सरकार के सीक धनुष सायक में इतना सामर्थ्य है कि ब्रह्म रुद्र भी उससे रक्षा नहीं कर सकते। इससे अतुलित बल कहा और : काहू बैठन कहा न ओही। इससे अतुलित प्रभुताई कहा। अब परीक्षा हो चुकी। देख लिया। सब देवताओं ने

समझा मैं न समझ सका। अतः मैं मतिमन्द हूँ। सीताजी को पुष्प से शृङ्गारित करते देखकर विलासी समझ लिया था।

निज कृत कर्म जनित फल पाएउ। अब प्रभु पाहि सरन तकि आएउ ॥
सुनि कृपाल अति आरत बानी। एक नयन करि तजा भवानी ॥७॥

अर्थ : अपने किये हुए कर्म का फल पा चुका। हे प्रभो ! अब रक्षा कीजिये। मैं शरण ताककर आया हूँ। हे भवानी ! कृपालु रामजी ने अत्यन्त आर्तवाणी सुनकर उसकी एक आँख फोड़कर छोड़ दिया।

व्याख्या : जयन्त कहता है : राम बिमुख थल नरक न लहहीं। यह बात ठीक है। संसार में मुझे कहीं त्राण नहीं है। यही मेरे किये हुए कर्म का फल है। जब फल पा चुका तब शरण के उपदेष्टा गुरु मिल गये। मैं अनन्य शरण हूँ। अनन्यता द्योतित करने के लिए कवि ने शरण का ताकना कहा। यथा : तब ताकेसि रघुनायक सरना। आवै समय सरन तकि मोही। भाव यह कि आप ही रक्षा करें तो होय। नहीं तो मैं मरा।

सासति करि पुनि करहिं पसाऊ। नाथ प्रभुन्ह कर सहज सुभाऊ। कृपाल हैं। उसका वध नहीं चाहा। इसलिए बाण ने उसे मारा नहीं केवल उसके पीछे लगा हुआ उसे डराता गया। अब आर्तवाणी सुना। इसलिए काना करके छोड़ दिया। ब्रह्मास्त्र अमोघ है। अप्रतिक्रिय है। अतः वह खाली जा नहीं सकता। उसकी मर्यादा भी रखनी है। एक नेत्र के नष्ट होने से भी काम नहीं रुकता। अतः उस अस्त्र को एक नेत्र पर ही गिराया। सरकार एक बाण सन्धान कर लेते हैं तो फिर नहीं लौटाते। यहाँ तो बाण चल गया था। अतः बाण की मर्यादा रक्षा के लिए जयन्त को एक नेत्र देना पड़ा। अथवा अपना अपराध क्षमा कर दिया। पर भक्त का अपराध अक्षम्य है। अतः एक नयन करके ही प्राण छोड़ दिया। प्रभु नेत्र की भाँति जानकीजी तथा लक्ष्मणजी की रक्षा करते हैं। यथा : जोगवहिं प्रभु सिय लखनहि कैसे। पलक बिलोचन गोलक जैसे। अतः जानकीजी पर प्रहार करनेवाले के नेत्र पर प्रहार न्याय था।

दो. कीन्ह मोह बस द्रोह, जद्यपि तेहि कर बध उचित।
प्रभु छाड़ेउ करि छोह, को कृपाल रघुबीर सम ॥२॥

अर्थ : उसने मोहवश द्रोह किया था। उसका तो वध ही दण्ड था। पर प्रभु ने छोह करके छोड़ दिया। रघुवीर के समान कृपाल कौन है ?

व्याख्या : रामजी का बल जानने के लिए सीताजी पर चोट करना अन्याय की पराकाष्ठा है। द्रोह का कोई कारण नहीं था। मोहवश द्रोह करनेवाले का दण्ड ही वध है। शरण आने से छोह किया प्राण छोड़ दिया। ऐसे द्रोही पर कृपा करना रघुवीर का ही काम है। अतः गोस्वामीजी आक्षेपार्थ प्रश्न करते हैं : को कृपाल रघुबीर सम ? अर्थात् कोई नहीं।

रघुपति चित्रकूट बसि नाना । चरित किए श्रुति सुधा समाना ।।
बहुरि राम अस मन अनुमाना । होइहि भीर सबहि मोहि जाना ।।१।।

२६. प्रभु अत्रि भेंट प्रसंग

अर्थ : रघुपति ने चित्रकूट में बसकर श्रवणामृत चरित्र किये । फिर रामजी ने यह अनुमान किया कि सब लोग मुझे जान गये । अब : भीड़ होगी ।

व्याख्या : वाल्मीकिजी ने कहा था : चित्रकूट गिरि करहु निवासू । जहँ तुम्हार सब भाँति सुपासू । उसी का साफल्य दिखलाते हैं । सब भाँति सुपास दिखलाने के लिए शृङ्गार रस का वर्णन किया । केवल पुष्प शृङ्गार ही नहीं नाना प्रकार के चरित्र किये । जिस भाँति राधानाथ का विहार स्थल वृन्दावन है उसी भाँति सीतानाथ का विहार स्थल प्रमोदवन प्रसिद्ध है । चरित्र में शृङ्गार रस के योग से माधुर्यातिशय हो गया । इसलिए : श्रुति सुधा समाना या अति सुधा समाना कहते हैं । अथवा अलौकिक रति ही वेदों का सार है । इसलिए : श्रुतिसुधा समाना कहा ।

सरकार ने निषादराज को यमुनातीर से ही विदा कर दिया, जिसमें सबको निवासस्थल का पता न चले । सरकार अवध निवासियों के प्रेम को जानते हैं । यथा : जेहि राखैं रहु घर रखवारी । सो जानै जनु गरदन मारी । सब रामजी का दर्शन चाहते हैं । घर की रखवारी के लिए रहना नहीं चाहते । अब तो भरतजी समाज के साथ निवासस्थल देख गये । अब तो अयोध्या भर को सरकार के निवास स्थान का पता चल गया । अयोध्या से बराबर आना जाना लगा रहेगा । भीड़ बनी ही रहेगी । विशेष रूप से घर से उदासीन रहने का वरदान महाराज से माँगा गया है । यथा : तापस बेष बिशेष उदासी । चौदह बरिस राम बनवासी । अतः श्रीरामजी ने निवास-स्थल बदल देने का निश्चय किया ।

सकल मुनिन्ह सन बिदा कराई । सीता सहित चले द्वौ भाई ।।
अत्रि के आश्रम जब प्रभु गएऊ । सुनत महा मुनि हरषित भएऊ ।।२।।

अर्थ : सब मुनियों से विदा लेकर सीता सहित दोनों भाई चले । जब प्रभु अत्रिजी के आश्रम पर पहुँचे तो सुनते ही महामुनिजी प्रसन्न हो उठे ।

व्याख्या : वाल्मीकिजी की आज्ञा लेकर तो चित्रकूट आये थे । अब चलने के समय सब मुनियों से विदा लेकर चलते हैं । राजधर्म दिखला रहे हैं कि राजा सब कार्य ब्राह्मणों की आज्ञा से करें । शासनशक्ति सदा ज्ञानशक्ति के सामने अब नतमस्तक हो । यहाँ तो सब मुनियों की तपस्या सफल करने आये थे । यथा : चलहु सफल श्रम सबकर करहू । अतः सबसे विदा लेना प्राप्त है । एहि बिधि सीय सहित दोउ भाई । बसहिं बिपिन सुरमुनि सुखदाई । अतः अब चलने के समय कहते हैं : सीता सहित चले द्वौ भाई । यहाँ : सुरपति सुत करणीवाला प्रसङ्ग समाप्त हुआ । अब : प्रभु अरु अत्रि भेंट प्रसङ्ग चला ।

चित्रकूटवासी मुनियों में अत्रिजी प्रधान हैं। यथा : अत्रि आदि मुनिवर बहु बसहीं। अथवा : मुनि नायक जहँ आयसु देहीं। राखहु तीरथ जल थल तेहीं। अतः सब मुनियोंसे विदा ले लेने पर भी इनसे विदा लेना आवश्यक था। अतः उनके आश्रम पर गये। मुनिजी ने शिष्यों द्वारा प्रभु के आगमन का समाचार सुना। बड़े हर्षित हुए : सेवक सदन स्वामि आगमनू। मंगल मूल अमंगल दमनू।

पुलकित गात अत्रि उठि धाए। देखि रामु आतुर चलि आए॥
करत दंडवत मुनि उर लाए। प्रेम बारि द्वौ जन अन्हवाए॥३॥

अर्थ—पुलकित शरीर होकर अत्रिजी उठकर दौड़ पड़े। यह देखकर रामजी आतुरता के साथ चले आये। दण्डवत् करते ही मुनिजी ने हृदय से लगा लिया और प्रेमाश्रु से दोनों को स्नान कराया।

व्याख्या : अत्रिजी हर्षित हुए। इसलिए सात्त्विक भाव हुआ। रोमाञ्च हो गया। आश्रम मण्डल में सरकार का पादार्पण हुआ। आगे से आकर लेना चाहिए। इस शिष्टाचार में अन्तर न पड़ने पावे। इसलिए उठि धाए कहा। मुनिजी आतुर हैं। दौड़े चले आते हैं। इसलिए रामजी भी आतुरता से चले आये। भगवती साथ में हैं इसलिए दौड़े नहीं। पर मानसिक अवस्था समान ही है। ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्। यह नियम है। इस भाँति स्वागत कहा।

अत्रिजी को अतिप्रेम है। इसलिए भलीभाँति दण्डवत् भी नहीं करने दिया। उठाकर हृदय से लगा लिया। सरकार मर्यादा पालन करते हैं। मुनिजी भी उसका उल्लंघन नहीं कर सकते। पर आनन्दाश्रु की झरी लग गयी। आशीर्वाद तक न दे सके। मानो आनन्दाश्रु से ही स्नान करा रहे हैं। यहाँ षोडशोपचार पूजा होगी। यथा : आसनं स्वागतं पाद्यं अर्घ्यमाचमनीयकम्। मधुपर्काचमनं स्नानं वस्त्रं चाभरणानि च। सुगन्धं सुमनो धूपं दीपं नैवेद्यवन्दनम्।

देखि राम छबि नयन जुड़ाने। सादर निज आश्रम तब आने॥
करि पूजा कहि बचन सुहाए। दिए मूल फल प्रभु मन भाए॥४॥

अर्थ : श्रीरामजी की छवि देखकर मुनिजी के नेत्र शीतल हो गये। तब वे उनको आदरपूर्वक अपने आश्रम में ले आये। सुन्दर वचनों को कहकर पूजा की और मूल फल का नैवेद्य लगाया जो प्रभु को बहुत अच्छे लगे।

व्याख्या : घनश्याम राम के दर्शन से आँखें शीतल हुई। मुनिजी दौड़कर आश्रम के बाहर ही सरकार से मिले थे। अतः आदर के साथ लिवा ले गये। रामायण में सभी स्थलों पर जिस भाग्यवान् को दोनों भाइयों का दर्शन हुआ उसने पहिले तो दोनों भाइयों को देखकर आनन्द पाया। पर पीछे से आँखें प्रभु में ही बँध गयी। यथा : पहिले : दीन्ह असीस देखि भल जोटा। पर पीछे से : रामहि चितइ रहे भरि लोचन। रूप अपार मार मद मोचन। इत्यादि।

शेष पूजा, आसन, पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय मधुपर्क, आचमन, वस्त्र, आभरण,

गन्ध, पुष्प, धूप, दीप से तथा : मेरा बड़ा भाग्य है, मैं कृतकृत्य हुआ इत्यादि वचन कहकर किया। अथवा : सुहाये वचन वेद वाक्यों से पूजन किया। अन्त में मूल फल का नैवेद्य लगाया। भक्ति से अर्पण किये गये। अतः मनभायें लिखते हैं। यथा : पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति। तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि -प्रयतात्मनः। गी.

दो. प्रभु आसन आसीन, भरि लोचन सोभा निरखि।
मुनिवर परम प्रवीन, जोरि पानि अस्तुति करत ॥३॥

अर्थ : प्रभु आसन पर विराजमान हैं। नेत्र भरकर उनकी शोभा देख करके परम प्रवीण मुनिश्रेष्ठ हाथ जोड़कर स्तुति करने लगे।

व्याख्या : जब से सरकार आसन पर बैठे हैं तब से मुनि पूजामें लगे हैं। पूजा करते हुए भी शोभा देखते जा रहे हैं। परन्तु कृत्य में लगे रहने से आँखभर देख न सके। अतः आसन पर बैठी हुई पूजित मूर्त्ति की शोभा आँख भरकर पूजन के बाद देखा। मुनिजी परम प्रवीण हैं। पूजा के बाद स्तुति भी होनी चाहिए। अतः हाथ जोड़कर स्तुति करते हैं। अथवा : या लोकद्वयसाधनी चतुरता सा चातुरी चातुरी। इसलिए ऐसी स्तुति करते हैं जिससे दोनों लोक सधे। क्योंकि मुनिवर परम प्रवीण हैं। यह गुणग्राम : स्तुति नवाँ अश्लेषा नक्षत्र है। इसकी फल स्तुति : प्रियपालक परलोक लोक के है।

नमामि भक्तवत्सलं। कृपालु सील कोमलं ॥
भजामि ते पदाम्बुजं। अकामिनां स्वधामदं ॥१॥

अर्थ : हे भक्तवत्सल ! हे कृपालु, हे कोमल स्वभाववाले ! मैं आपको नमस्कार करता हूँ। निष्काम पुरुषों को अपना परम धाम देनेवाले आपके चरणों को मैं भजता हूँ।

व्याख्या : विश्ववास भगवान् भक्त पर कृपा करके प्रकट हुए हैं। इसलिए : भक्तवत्सल कृपालु कहा। यथा : भक्तवछल प्रभु कृपा निधाना। बिस्ववास प्रगटे भगवाना। केवल प्रकट ही नहीं होते। भक्त पर बड़ा छोह करते हैं। जेहि जन पर ममता अति छोहू। जेहि करुणा करि कीन्ह न कोहू। गई बहोरि गरीब नेवाजू। सरल सबल साहिब रघुराजू। कभी भक्त पर क्रोध नहीं करते। उसकी बिगड़ी सुधारा करते हैं। अतः कोमल सील कहते हैं। यथा : अति दयालु गुरु स्वल्प न क्रोधा। पुनि पुनि मोहि सिखाव सुबोधा। एक सूल मोहि बिसर न काऊ। गुरु कर कोमल सील सुभाऊ। इससे भजनीय भगवान् का स्वभाव कहा।

अब सामर्थ्य कहते हैं सरकार के चरण कमल कामना रहित जनों को स्वधाम देते हैं। यथा : तन तजि तात जाहु मम धामा। देउँ काह तुम पूरन कामा। ऐसे चरण कमलों को मैं भजता हूँ।

निकाम स्याम सुंदरं । भवांबुनाथ मंदरं ॥
प्रफुल्ल कंज लोचनं । मदादि दोष मोचनं ॥२॥

अर्थ : आप अत्यन्त श्याम सुन्दर संसाररूपी समुद्र के मन्थन के लिए मन्दराचल रूप, फूले हुए कमल के समान नेत्रवाले और मद आदि दोषों को नष्ट करनेवाले हैं।

व्याख्या : स्याम सरीर सुभाय सुहावन। सोभा कोटि मनोज लजावन। अतः सरकार के श्याम शरीर को अति सुन्दर कहा। शरीर की सुन्दरता बन्ध का कारण होती है। उसी सुन्दरता में बँधा हुआ संसार दुःख पाता है। पर यह सुन्दरता भवसागर को अभिभूत करनेवाली है। अतः उसे मन्दर रूप कहते हैं।

प्रफुल्ल कञ्ज की उपमा देकर नेत्रों की सुन्दरता कहा। मदादि दोष मोचनं : कहकर उसका प्रभाव कहा। उसो नेत्र में कृपावलोकनि बसती हैं। क्रोध मनोज मोह मद माया। छूटै सकल राम की दाया। इसीलिए श्रीनारदजी ने विनय किया : मामवलोकय पंकज लोचन।

प्रलंब बाहु विक्रमं । प्रभोऽप्रमेय वैभवं ॥
निषंग चाप सायकं । धरं त्रिलोक नायकं ॥३॥

अर्थ : हे प्रभो ! आप की लम्बो भुजा का पराक्रम और आपका ऐश्वर्य अप्रमेय है। आप तरकस और धनुष धारण करनेवाले। तीनों लोकों के स्वामी हैं।

व्याख्या : कर्तुमकर्तुमन्यथा कर्तुं समर्थः प्रभुः। अतः प्रभु सम्बोधन दिया। आजानुभुज हैं। अतः प्रलम्ब बाहु कहा। उसके बल की सीमा नहीं। वही पृथ्वी का भार हरण करने में समर्थ है। यथा : भुजबल बिपुल भार महि खंडित। अथवा : सुमिरत श्री रघुबीर की बाहैं। होत सुगम भव उदधि अगम अति कोउ लाँघत कोउ उतरत थाहैं। सोतल सुखद छाँह जेहिकर की मेटत पापताप माया। निसि बासर तेहिकर सरोज की चाहत तुलसीदास छाया। अप्रमेय वैभव यथा : जो नहि देखा नहि सुना जो मनहू न समाय। सो सब अद्भुत देखेउँ बरनि कवनि बिधि जाय। जो कुछ भुसुण्डिजी ने देखा वह प्रभु का वैभव नहीं था।

सरकार जो धनुष बाण धारण किये रहते हैं। जो अखण्ड दण्डायमान काल तथा खण्ड काल के प्रतीक हैं। निषङ्ग खण्ड कालों का कोष है। तथा : लव निमेष परमान जुग वर्ष कल्पसर चंड। भजसि न मन तेहि रामकहँ काल जासु कोदंड। अतः त्रिलोक के नायक हैं। यहाँ तक नित्य दिव्य मूर्ति का वर्णन है।

दिनेस वंस मंडनं । महेस चाप खंडनं ॥
मुनींद्र संत रंजनं । सुरारि वृंद भंजनं ॥४॥

अर्थ : आप सूर्यकुल के भूषण हैं। शिवजी के धनुष के तोड़नेवाले हैं। मुनीश और सन्तों को सुख देनेवाले और देवताओं के शत्रु समूह के नाश करनेवाले हैं।

व्याख्या : दिनेशवंश मण्डन कहकर सूर्यवंश में अवतार कहा। महेशचाप खण्डन कहकर सीता स्वयम्वर कहा। इस भाँति बालकाण्ड की कथा सूत्र रूप में कहा। जन्म से लेकर विवाह तक की कथा इसी का विस्तार है।

सरकार मुनिगण के मिलन में सब प्रकार से अपना हित मानते हैं। वनवास स्वीकार के समय श्रीमुख से कहते हैं : मुनिगन मिलन बिसेष बन सबहिं भाँति हित मोर। और वन में जाकर मुनियों के श्रम को सफल करते हैं। यथा : अत्रि आदि मुनिवर बहु बसहीं। करहिं जोग जप तप तन कसहीं। चलहु सफल श्रम सबकर करहू। राम देहु गौरव गिरि बरहू। मुनियों का अस्थि समूह देखकर पृथ्वी को निशिचर हीन करने की प्रतिज्ञा करते हैं। यथा : निसिचर निकर सकल मुनि खाए। सुनि रघुबीर नयन जल छाए। निसिचर हीन करहुँ महि भुज उठाई पन कीन्ह। सकल मुनिन्ह के आश्रमन्हि जाइ जाइ सुख दीन्ह। तब से निशिचर हीन महि करने का उद्योग प्रारम्भ हुआ। अगस्त्यजी से मन्त्र पूछा : अब सो मन्त्र देहु प्रभु मोही। जेहि प्रकार मारौं मुनि द्रोही। मुनि ने पञ्चवटी में निवास का मन्त्र दिया। वहीं सूर्पणखा की नाक कटी और राक्षसों से वैर बँधा। इसीलिए : मुनींद्र संतरंजनं कह रहे हैं।

उसी कारण से खरदूषण से युद्ध हुआ। सीताजी हरी गयीं। उन्हें खोजते समय सुग्रीव मिताई हुई। लङ्कापर चढ़ाई हुई और निशिचर वंश का विनाश हुआ। इसलिए : सुरारि वृंद भंजनं कहा एवं अयोध्याकाण्ड, अरण्य, सुन्दर, किष्किन्धा और लङ्का की कथा सूत्र रूप से कही।

मनोज वैरि वंदितं। अजादि देव सेवितं ॥
विशुद्ध बोध विग्रहं। समस्त दूषणापहं ॥५॥

अर्थ : आप कामारि शिवजी द्वारा वन्दित तथा ब्रह्मादि देव सेवित हैं। आप की मूर्ति विशुद्ध बोधमय है और आप सब दोषों के नष्ट करनेवाले।

व्याख्या : राक्षसों के वध के बाद लङ्का में ही शिवजी आये। ब्रह्मादि देवगण आये और प्रभु की स्तुति की। अतः कामारि वन्दित तथा ब्रह्मादि देवों से सेवित होना कह रहे हैं : कोसलेन्द्र पदकञ्जमञ्जुलौ कोमलावजमहेश वन्दितौ। अथवा : मन जात किरात निपात किये। मृगलोग कुभोग सरे न हिये। हतिनाथ अनाथन्हि पाहि हरे। बिषया बन पाँवर भूलि परे। अर्थात् सरकार की सेवा से कामजय होता है और देवों की सेवा से देवत्व प्राप्ति होती है। यह सूचित किया।

लीलाविग्रह भी पाञ्चभौतिक नहीं है। यथा : चिदानंद मय देह तुम्हारी। बिगत बिकार जान अधिकारी। माया का परदा कुछ काल के लिए कुछ हट जाता है और विशुद्ध बोधमय विग्रह प्रकट हो जाता है। यही प्रभु का अवतार है। यथा : भये प्रगट कृपाला। उस लीला विग्रह के सम्मुख होते ही सब दूषण नष्ट हो जाते हैं। यथा : सम्मुख होइ जीव मोहि जबहीं। जन्म कोटि अघ नासहिं तबहीं। इससे शिव ब्रह्मादि से सेवित और वन्दित होने का कारण भी कहा।

नमामि इंदिरापतिं । सुखाकरं सतां गतिं ॥
भजे सशक्ति सानुजं । शचीपति प्रियानुजं ॥६॥

अर्थ : मैं लक्ष्मीपति को नमस्कार करता हूँ। जो सुखों की खानि तथा सत्य पुरुषों की गति हैं। मैं शचीपति के छोटे भाई को शक्ति और अनुज के साथ भजता हूँ।

व्याख्या : इन्दिरापति कहकर रामजी का अयोध्या में राज्याभिषेक कहा। यथा : राम बाम दिसि सोहति रमारूप गुन खानि। देखि मातु सब हरखी जनम सुफल निज जानि। सुखाकर से : रामराज्य की सुख सम्पदा कहा। यथा : रामराज्य कर सुख संपदा। बरनि न सकहि फनीस सारदा। सतां गतिम् : कहकर सन्तों का दर्शन के लिए आगमन कहा। यथा : नारदादि सनकादि मुनीसा। दरसन लागि कोसलाधीसा। दिन प्रति सकल अयोध्या आवहिं। देखि नगर बिराग बिसरावहिं।

सीताजी शक्ति हैं। सरकार शक्तिमान् हैं। शक्ति और शक्तिमान् में भेद नहीं है। सानुज से भरत लक्ष्मण और शत्रुघ्नरूपी अंशों का ग्रहण है। सरकार अंशी हैं। यथा : अंसन्ह सहित देह धरि ताता : शचीपति के अनुज तो बहुत से देवता हैं। पर प्रिय अनुज तो उपेन्द्र : वामनरूप से सरकार ही हैं। जिन्होंने बलि को छल कर त्रिलोकी इन्द्र को दी। यहाँ भी माया मानुष रूप धारण करके रावण से त्रिलोकी को छीनकर इन्द्र को ही लौटाने के फेर में हैं। अतः वामनावतार का उल्लेख करते हैं। सरकार गुणातीत अरु भोग पुरन्दर हैं। अतः शचीपति प्रियानुज कहते हैं।

त्वदंघ्रिमूल ये नराः । भजंति हीन मत्सराः ॥
पतंति नो भवार्णवे । वितर्क वीचि संकुले ॥७॥

अर्थ : जो मनुष्य मत्सर रहित होकर आपके पैर के तलवे का भजन करते हैं वे वितर्करूपी तरङ्गों से परे भवसागर में नहीं पड़ते।

व्याख्या : यत्पादप्लवमेकमेव हि भवाम्भोधेस्तितीर्षावताम्। सरकार के चरण ही भवसागर के लिए नौकारूप हैं। नौका का आश्रय ग्रहण करनेवाला पार चला जाता है और जल से उसका स्पर्श नहीं होता। इसी भाँति सरकार के चरणतल के भजन करनेवाले का संस्पर्श संसार में रखते हुए भी संसार से लेप नहीं रहता। वे संसार में गिरते नहीं। शर्त यही है कि उनमें मत्सरता न हो। मत्सर मान मद चोर हैं। ये भक्तिमणि को चुरा ले जाते हैं। अतः शुद्ध हृदय से भजन होना चाहिए। सागर में नित्य नयी तरङ्गें उठा करती हैं। कभी वह क्षीणकल्लोल नहीं होता। उसी भाँति भवसागर में तर्क वितर्क की लहरें उठा करती हैं। इन्हीं के थपेड़ों से तिरने में असमर्थ होकर प्राणी डूब जाता है। यथा : खेद खिन्न मन तर्क बढ़ाई। भयउँ मोहबस तुम्हरिहि नाई।

तिरनेवाली भी दो प्रकार के होते हैं। एक ऐसे हैं जो भक्ति ही चाहते हैं

मुक्ति नहीं चाहते। यथा : राउर बदि भलभव दुख दाहू। प्रभु बिनु बादि परम पद लाहू। ऐसे भक्त भी वितर्क वीचि सङ्कुल भवसागर में नहीं पड़ते। सरकार के चरणों का शरण ग्रहण किये हुए जहाज पर सैर करते हुए फिरते हैं और दूसरों को भी कृतार्थं करते हैं और एक ऐसे हैं जो भजन से मुक्ति चाहते हैं। भवसागर से पार चले जाते हैं और फिर उन्हें जहाज की भी आवश्यकता नहीं रह जाती। ऐसे दोनों प्रकार के भक्तों को संसार सागर बाधा नहीं कर सकता। यहाँ तक भक्ति कहा।

विविक्तवासिनः सदा। भजंति मुक्तये मुदा ॥
निरस्य इन्द्रियादिकं। प्रयान्ति ते गतिं स्वकं ॥८॥

अर्थ : एकान्तवासी सदा प्रसन्नतापूर्वक मुक्ति के लिए इन्द्रियों का निग्रह करके भजन करते हैं। वे अपने स्वरूप को प्राप्त होते हैं।

व्याख्या : इनमें से मुक्ति चाहनेवाले : मुमुक्षु जनसंबाध वर्जित स्थान में रहकर आनन्द से भजन करते हैं। देहेन्द्रियादिकों को अपने से पृथक् मानते हुए अन्वय व्यतिरेक द्वारा स्वात्मगति अर्थात् कैवल्य को प्राप्त होते हैं। यथा : राम भजत सोई मुकुति गोसाइँ। अन इच्छित आवइ बरिआइँ। पहिले नमामि भक्त वत्सलं : कहकर भजनीय का स्वभाव कहा। अकामिनां स्वधामदं : कहकर भजनीय का सामर्थ्य कहा। निकाम श्यामसुन्दरं : कहकर स्वरूप कहा। दिनेश वंशमंडनं आदि कहकर चरित्र कहा। त्वदंघ्रिमूल ये नराः आदि कहकर भक्ति और मुक्ति के लिए भजन करने का उपदेश देते हैं।

तमेकमद्भुतं प्रभुं। निरीहमीश्वरं विभुं ॥
जगत्गुरुं च शाश्वतं। तुरीयमेव केवलं ॥९॥

अर्थ : उसी एक, अद्भुत प्रभु, इच्छारहित, ईश्वर, व्यापक, जगद्गुरु, नित्य, तुरीय और केवल को।

व्याख्या : आप निर्गुण रूप में जगत् से विलक्षण हैं। अतः अद्भुत हैं तथा सगुण रूप से भी अद्भुत हैं। यथा : जो नहिं देखा नहिं सुना जो भजहूं न सभाय। सो अब अद्भुत देखेउं बरनि कवन बिधि जाय। तथा प्रभु होने पर भी निरीह हैं और ईश्वर होकर विभु हैं। अतः सभी प्रकार से अद्भुत हैं। आश्चर्यवत् पश्यति कश्चिदेनमाश्चर्यवद्वदति तथैव चान्यः। आश्चर्यवच्चैनमन्यः शृणोति श्रुत्वाप्येनं वेद न चैव कश्चित्।

स सर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्। इस योगसूत्र का ठीक उल्था है : जगद्गुरुं च शाश्वतं। वह अनन्तकाल से सबका गुरु है। ब्रह्मदेव को भी जिसने वेद दिया। आज भी गुरुमुख से वही उपदेश करता है। नहीं तो एक मनुष्य दूसरे का गुरु नहीं हो सकता। मनुष्य विनाशी है। ईश्वर अविनाशी हैं। वे ही अनादि गुरु हैं। वे ही जिसके मुख द्वारा उपदेश करते हैं उसी को संसार गुरु मानता है।

सो अनादि गुरु आप ही हैं। जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति अवस्था से परे होने से आप तुरीय कहे जाते हैं। तीनों अवस्था की भी अपेक्षा न करके आप केवल तुरीय अर्थात् तुरीयातीत हैं।

भजामि भाववल्लभं। कुयोगिनां सुदुर्लभं॥
स्वभक्त कल्प पादपं। समं सुसेव्यमन्वहं॥१०॥

अर्थ : जो भाव प्रिय, कुयोगियों के लिए अत्यन्त दुर्लभ, अपने भक्तों के लिए कल्पवृक्ष सम और सदा सुखपूर्वक सेवन करने योग्य हैं। ऐसे आपको : मैं निरन्तर भजता हूँ।

व्याख्या : ऐसे तुरीय का भजन जाग्रदावस्था में कैसे सम्भव है। इस पर कहते हैं कि भाव आपको प्यारा है। जिस भाव से जो भजता है। उसके लिए वैसे ही हो जाते हैं। यथा : जाकी माया बस बिरंचि सिव नाचत पार न पायो। करतल ताल बजाइ ग्वाल जुवतिन्ह सोइ नाच नचायो इत्यादि। जो भगवद्भक्ति हीन योग है उसी को कुयोग कहते हैं। यथा : योग कुयोग ज्ञान अज्ञानू। जहँ नहिं रामप्रेम परधानू। कुयोगियों के लिए आप इसलिए दुर्लभ हैं कि वे मोह वृक्ष उखाड़ नहीं सकते। यथा : पुरुष कुयोगी सुनु उरगारी। मोह बिटप नहिं सकैं उपारी।

भक्तयोगी के लिए आप कल्पवृक्ष हैं। यथा : देव देवतरु सरिस सुभाऊ। सनमुख बिमुख न काहुहि काऊ। जाइ निकट पहिचानि तरु छाँह समन सब सोच। माँगे अभिमत पाइ जग राव रंक भल पोच। आप वैषम्यरहित हैं। यथा : यद्यपि सम नहिं राग न रोषू। आप सदा सुसेव्य हैं। यथा : बलि पूजा चाहत नहीं चाहत एक प्रीति।

अनूप रूप भूपतिं। नतोहमुर्विजा पतिं॥
प्रसीद मे नमामि ते। पदाब्ज भक्ति देहि मे॥११॥

अर्थ : हे अनूप रूप पृथ्वीपति ! हे धरणीसुता नाथ ! मैं आपको प्रणाम करता हूँ। मुझ पर प्रसन्न होइये। मैं आपको नमस्कार करता हूँ। मुझे अपने चरणों की भक्ति दीजिये।

व्याख्या : आप सगुण रूप भी हैं और निर्गुण रूप भी हैं। अथवा आप में अनुपम सौन्दर्य है। इसलिए अनूप रूप हैं। आप पृथ्वीपति भी हैं और पृथ्वी की कन्या सीता के भी पति हैं। पति शब्द पा रक्षणे धातु से बना है। सो रक्षा करनेवाले को पति कहते हैं और सप्तपदी के बाद वर की पति संज्ञा होती है। यहाँ पति शब्द दोनों अर्थ में आया है। धरणी की आप रक्षा करनेवाले हैं और धरणी सुता के आप स्वामी हैं।

जो एक बार प्रणाम करता है उसे आप अपना लेते हैं। मैंने तो तीन बार प्रणाम किया है। यथा : १. नमामि भक्तवत्सलं २. नमामि इन्दिरापतिं और

३. प्रसीद मे नमामि ते। अतः भक्ति माँगते हैं। यह स्तुति : भक्तवत्सलं से प्रारम्भ होकर : भक्ति देहि मे से समाप्त होती है। इसका आरम्भ और पर्यवसान दोनों भक्ति में है। आदि अन्त के मिलने से चक्राकार आकृति हो जाती है। अतः इसका वर्णन अश्लेषा नक्षत्र की भाँति चक्राकार है और भजन ही इसमें तारे की भाँति पाँच स्थानों में चमकता है। यथा : १. भजामि ते पदाम्बुजं २. भजे सशक्ति सानुजं ३. भजंति हीनमत्सराः ४. भजंति मुक्तये मुदा ५. भजामि भाववल्लभं।

पठंति ये स्तवं इदं। नरादरेण ते पदं॥
व्रजंति नात्र संशयं। त्वदीय भक्तिसंयुताः ॥१२॥

अर्थ : जो इस स्तुति को आदर से पढ़ते हैं वे आपकी भक्ति संयुक्त होकर आपके पद को प्राप्त होते हैं।

व्याख्या : फलश्रुति कहते हैं : प्रिय पालक परलोक लोक के। २८ गुणग्रामों की अट्ठाईस फलश्रुतियाँ बालकाण्ड के आरम्भ में ही कही गयी हैं। यह नवाँ गुणग्राम है। गुणग्राम को ही स्तुति कहते हैं। भक्तिरूपी पूर्णिमा में ये नक्षत्रों की भाँति सुशोभित हैं। नवीं नक्षत्र अश्लेषा है। उसका आकार चक्र सा है और उसमें पाँच तारे चमकते हैं। ये बातें ऊपर दिखला दी गयी हैं। फलश्रुतियाँ भी ठीक इसी क्रम से हैं। यथा : जल मंगल गुनग्राम राम के। दानि सकल धन धर्म धाम के। इत्यादि। यहाँ : ते पदं व्रजंति से परलोक का पालक कहा और त्वदीय भक्तिसंयुता से इस लोक का पालक कहा। यथा : सोह सैल गिरिजा गृह आयें। जिमि जन राम भगति के पाये।

दो. बिनती करि मुनि नाइ सिरु, कह कर जोरि बहोरिं।
चरन सरोरुह नाथ जनि, कबहुँ तजै मति मोरि ॥४॥

अर्थ : विनती करके मुनिजी ने सिर नवाया और फिर हाथ जोड़कर बोले कि चरण कमल को हे नाथ ! कभी मेरी बुद्धि परित्याग न करे।

व्याख्या : जोरि पाणि अस्तुति करत : से उपक्रम और बिनती करि मुनि सिर : से उपसंहार है। पहिले हाथ जोड़कर स्तुति की थी। अब हाथ जोड़कर वरदान माँगते हैं कि आप सबके हृदय के प्रेरक हैं। मेरी मति को ऐसी प्रेरणा कीजिये कि इन चरण कमलों को कभी न छोड़े। इस समय तो मेरी बुद्धि इन चरणों में लगी है। क्योंकि साक्षात् दर्शन हो रहा है। पर आपके चले जाने पर समय पाकर कहीं मेरी बुद्धि बहिर्मुख न हो जाय। क्योंकि चरणों के छोड़ने पर फिर कहीं ठिकाना नहीं है। यथा : श्रीरघुबीर चरन चिंतन तजि नाहि न ठौर कहूँ। मुनिजी योग जप और तप से शरीर को कस रहे थे। यथा : करहिं जोग जप तप तन कसहीं। आज उस परिश्रम के फल की प्राप्ति का अवसर आया है। अतः मुनिजी बुद्धि की प्रेरणा का वरदान माँगकर गायत्री जप के लक्ष्य की ही सिद्धि चाह रहे हैं। गायत्री की उपासना में बुद्धि की प्रेरणा ही माँगी जाती है।

सरकार जिससे बड़ा का नाता मान लेते हैं उसके वरदान माँगने पर एवमस्तु नहीं कहते। अभीष्ट प्रदान कर देते हैं। तत्पश्चात् मुनिजी के कहने पर सीताजी भगवती अनुसूया के पास गयीं।

अनसूया के पद गहि सीता। मिली बहोरि सुसील बिनीता ॥
रिषिपतिनी मन सुख अधिकाई। आसिष देइ निकट बैठाई ॥१॥

अर्थ : फिर सुशील और विनीत सीताजी अनसूया के चरणों को पकड़कर उनसे मिलीं। ऋषिपत्नी के मन में बड़ा सुख हुआ। उन्होंने आशीर्वाद देकर निकट बिठलाया।

व्याख्या : न गुणान् गुणिनो हन्ति स्तौति चान्यगुणानपि। न हसेत् परदोषांश्च सानसूया प्रकीर्त्यते। जो गुणी के गुण में दोष नहीं लगाता और दूसरे के गुणों की स्तुति करता है दूसरे के दोषों का उपहास नहीं करता उसे अनसूया कहते हैं। अत्रिजी की पत्नी का जैसा नाम था वैसा ही गुण था। ये पतिव्रताओं की शिरोमणि थीं। इनके राम अत्रिजी ही थे। दूसरे राम को ये नहीं जानती थीं। अतः दर्शन के लिए नहीं आयीं। ऋषिपत्नी के पास जगदम्बा सीताजी गयीं। बड़ी विनीत हैं। इसलिए जाकर चरण ग्रहण किया। सुशील हैं : इसलिए मिलीं। स्त्रियों के लिए दण्डवत् प्रणाम की विधि नहीं। प्रणाम करके परिष्वङ्ग देने का ही सदाचार है। यथा : करि प्रनाम भेटी सब सासू।

अनसूयाजी का परिचय देते हुए कवि कहते हैं कि ऋषिजी की पत्नी हैं। आह्लादिनी शक्ति भगवती सीताजी के परिष्वङ्ग से उन्हें बड़ा सुख प्राप्त हुआ। सीताजी ने चरण ग्रहण किया। इसलिए आशीर्वाद दिया : सौभाग्यवती भव। पुत्रवती भव। यही आशीर्वाद स्त्री समाज में आज भी प्रचलित है। सीताजी ने दूर बैठना चाहा तो आदर से उन्हें निकट बिठलाया। मनसा : सुख अधिकाई। वचसा : आसिष देइ और कर्मणा : निकट बैठाई।

दिब्य बसन भूषन पहिराए। जे नित नूतन अमल सुहाए ॥
कह रिषिबधू सरस मृदु बानी। नारि धर्म कछु ब्याज बखानी ॥२॥

अर्थ : दिव्य कपड़े और गहने पहिनाये। जो सदा नये स्वच्छ और सुन्दर बने रहते थे। फिर ऋषिपत्नी कुछ स्त्रीधर्म के व्याज से मधुर और कोमल वाणी से बखानकर कहने लगीं।

व्याख्या : भगवती अनसूया चन्द्र की माता हैं। चन्द्र से ही क्षत्रियों का प्रधान वंश चला है। सूर्यवंश और चन्द्रवंश में कन्या का लेन देन है। इसलिए अनसूयाजी कुलवृद्धा हैं। अतः उनका प्रीतिदान स्वीकार करना पड़ा। सम्भवतः इसी भय से सीताजी फिर किसी ऋषिपत्नी से नहीं मिलीं। अनसूयाजी तापस वेष में जानकीजी को नहीं देख सकीं। अतः दिव्य वसन भूषण पहिनाया। जिसमें वनवास की अवधि भर काम दे। दिव्य बसन भूषण का प्रभाव कहते हैं कि जो कभी पुराना मैला तथा

विकृत न हो । ऋषिजी ने सरकार का पूजन किया । ऋषिपत्नी जानकी जी का पूजन करती हैं । स्त्रियों का पूजन वस्त्रालङ्कार से ही होता है ।

ऋषिजी ने पूजनोत्तर श्रीरामचन्द्र से सोहाए वचन कहे थे । अब ऋषिपत्नी पूजनोपरान्त सरस मृदुवाणी बोलीं । नारीधर्म के व्याज से सीताजी की स्तुति की तथा संसार को उपदेश दिया । यथा : कहेउँ कथा संसार हित । पातिव्रत्य पुरःसर ही भगवती का वनवास हुआ था । अतः पातिव्रत्य धर्म वर्णन से सरसता कहा । अर्थतः सरस और शब्दतः मधुर ।

मातु पिता भ्राता हितकारी । मित प्रद सब सुनु राजकुमारी ॥
अमित दानि भर्ता बैदेही । अधम सो नारि जो सेवन तेही ॥३॥

अर्थ : हे राजकुमारी ! सुनो : माता, पिता, भाई सभी हित करनेवाले हैं । परन्तु वे सब एक सीमा तक ही देनेवाले हैं । परन्तु हे जानकी ! पति तो असीम देनेवाला है । वह स्त्री अधम है । जो ऐसे पति की सेवा नहीं करती ।

व्याख्या : हितकारियों में माता प्रथम है । पिता उसके बाद है । भाई का तीसरा नम्बर है । ये सब देनेवाले हैं । पर इनके देने की सीमा है । राजकुमारी सम्बोधन का भाव यह है कि महाराज जनक ने इतना दिया फिर भी दायज की सीमा थी । सर्वस्व न दे सके । यही संसार की रीति है । माता पिता देते हैं और कह देते हैं कि बेटी ! इतना सब तुम्हारा है । इसलिए मितदानी हैं ।

भर्ता यह नहीं कहता । उसका जो कुछ है सब पर स्त्री का अधिकार है । यथा : प्रिया प्रान सुत सर्वस मोरे । परिजन प्रजा सकल बस तोरे । यह बात भर्ता ही कह सकता है । मितं ददाति च पिता मितं भ्राता मितं सुतः । अमितस्य च दातारं भर्तारं कानुसेवयेत् । अतः भर्ता को सेवा न करनेवाली स्त्री अधम है । तुमने तो पति सेवा के लिए राज्य छोड़ा । तुम उत्तम हो ।

धीरजु धर्म मित्र अरु नारी । आपद काल परिखिअहि चारी ॥
बृद्ध रोगबस जड़ धनहीना । अंध बधिर क्रोधी अति दीना ॥४॥

अर्थ : धैर्य, धर्म, मित्र और स्त्री, इन चारों की परीक्षा आपत्ति के समय होती है । बूढ़ा, रोगी, मूर्ख, दरिद्र, अन्धा, बहरा, क्रोधी और अत्यन्त दीन ।

व्याख्या : सम्पत्तिकाल में धैर्य, धर्म, मित्र और स्त्री ये चारों अनुकूल रहते हैं । विपत्तिकाल ही इनकी कसौटी है । अर्थात् तुम्हारी भाँति परीक्षा में कोई उत्तीर्ण नहीं हुआ । यथा : तापस बेष जनक सिय देखी । भयउ प्रेमु परितोषु बिसेषी । पुत्रि पवित्र किये कुल दोऊ । सुजस धवल जगु कह सबु कोऊ । जिति सुरसरि कीरति सरि तोरी । गवनु कीन्ह बिधि अंड करोरी । आपत्तिकाल कहकर ऐसा उदाहरण देती हैं जिनसे सुख मिल ही नहीं सकता ।

ये आठ दुःखद होने से अपमान के पात्र हो जाते हैं । १. वृद्ध जो पाँचवीं अवस्था अपक्षय को प्राप्त है । २. रोगवश अर्थात् असाध्य रोग से गृहीत कुष्ठी आदि

हैं। ३. बुद्धिविहीन ४. धनहीन ५. चक्षुरिन्द्रियहीन ६. और बहिरा ७. क्रोधी स्वभाव तथा ८. अति दीना स्त्री की प्रतिष्ठा तथा सुख पति से ही है। उसमें यदि ऐसे दोष हों फिर भी पति अपमान की वस्तु नहीं है।

ऐसेहु पति कर किए अपमाना। नारि पाव जमपुर दुख नाना ॥
एकै धर्म एक ब्रत नेमा। काय बचन मन पति पद प्रेमा ॥५॥

अर्थ : ऐसे पति का भी अपमान करने से स्त्री यमपुर में अनेक प्रकार के दुःख पाती है। मनसा वाचा कर्मणा पति के चरणों में प्रेम करना। स्त्री के लिए बस एक ही धर्म है एक ही व्रत है और एक ही नियम है।

व्याख्या : पति का अपमान नरक में गिरानेवाला है। चाहे पति उपर्युक्त दोषों से युक्त ही क्यों न हो। उपर्युक्त दोषियों में पापी को नहीं गिनाया। पापी जबतक प्रायश्चित्त न कर ले तब तक त्याज्य है। पति के अपमान से यमपुर प्राप्ति और नरक में घोर दण्ड होता है। जो अपमान के पात्र नहीं हैं उनके अपमान से नरक होने में कहना ही क्या है। जिस प्रकार लोकोत्तर सुख प्राप्ति के लिए स्वर्ग है उसी प्रकार लोकोत्तर दुःख के लिए नरक है।

अनेक धर्म है। असंख्यात व्रत है। बहुत से नियम हैं। परन्तु स्त्री के लिए कोई भी नहीं है। उसका पति से पृथक् नियम व्रतादि में अधिकार नहीं है। पतिपद प्रेम होने से ही उसे सम्पूर्ण धर्म, व्रत और नियम का फल मिल जाता है। स्त्री यदि कोई व्रत या नियम का पालन करना चाहे तो पति की आज्ञा से उसके कल्याण के लिए कर सकती है। प्रेम रहते अनादर नहीं होता। अतः अनादर करते ही स्त्रियाँ पतित हो जाती हैं। किसी प्रकार से प्रेम में व्यभिचार न होने पावे। अथवा काम से प्रेम धर्म, वचन से प्रेमव्रत, और मन से प्रेम यही स्त्रियों के लिए नियम है।

जग पतिब्रता चार बिधि अहहीं। बेद पुरान संत सब कहहीं ॥
उत्तम के अस बस मन माँही। सपनेहु आन पुरुष जग नाँही ॥६॥

अर्थ : संसार में चार प्रकार की पतिव्रताएँ हैं। वेद पुराण और सब सन्त ऐसा ही कहते हैं। उत्तम के मन में ऐसा भाव बसा रहता है कि सपने में भी जगत् में दूसरा पुरुष नहीं है।

व्याख्या : पतिव्रता के चार प्रकार के होने में सबका ऐकमत्य है। अर्थात् यह शिष्टानुगृहीत सिद्धान्त है। स्त्री पुरुष में भोक्तृ भोग्य दृष्टि स्वभाविकी है। स्वभाविकी प्रवृत्ति के निरोध में ही शास्त्र की उपयोगिता है। वह निरोध स्त्रियों में चार प्रकार से सम्भव है। स्वभाविकी प्रवृत्ति का सर्वात्मना निरोध हठात् नहीं हो सकता। अतः उस दृष्टि को सब पर से हटाकर एक में केन्द्रित करना शास्त्रीया प्रवृत्ति है। अतः स्त्री का अपनी भोक्तृ दृष्टि को पाणिगृहीता के ऊपर ही केन्द्रित करना पातिव्रत्य है। उसी का चार प्रकार कहा गया हैं : १. भोक्तृभोग्य दृष्टि कहीं

न होकर केवल पति में ही होना। २. भोक्तृभोग्य दृष्टि को सब ओर से खींचकर केवल पति में केन्द्रित करना। ३. भोक्तृभोग्य दृष्टि केन्द्रित नहीं हो सकी। पर धर्मादि के विचार से इन्द्रियदमन करना। ४. दूसरों के भय आदि से धर्म का निभ जाना।

इनमें प्रथम श्रेणी की स्त्रियाँ उत्तम हैं जो पुरुषरूप से अपने पति को ही जानती हैं। दूसरे के पुंस्त्व की भावना ही नहीं है। यद्यपि स्वप्न में अपना वश नहीं है। पर बिना वासना के स्वप्न भी नहीं होता। अतः उन्हें स्वप्न में भी पर पुरुष में पुंस्त्व की भावना नहीं होती।

मध्यम परपति देखै कैसे। भ्राता पिता पुत्र निज जैसे॥
धर्म बिचारि समुझि कुल रहई। सो निकृष्ट त्रिय श्रुति अस कहई॥७॥

अर्थ : मध्यम पराये पति को ऐसे देखती है जैसे वह अपना भाई पिता या पुत्र हो। जो धर्म का विचारकर और अपने कुल की मर्यादा समझकर बची रहती हैं वह निकृष्ट स्त्री है। ऐसा वेद का मत है।

व्याख्या : वह स्त्री मध्यम श्रेणी की है जिसे दूसरों में भी पुंस्त्व की भावना है पर उन्हें भोग्यदृष्टि से नहीं देखती। समानवयस्क पर भाई की दृष्टि, वयोवृद्ध पर पिता की दृष्टि, अल्पवयस्क पर पुत्र की दृष्टि रखती है। यहाँ तक मानसिक अपवित्रता को स्थान नहीं है।

परन्तु जिस स्त्री को अन्य पुरुष के प्रति भोग्यदृष्टि तो हुई पर वह धर्म का विचार करके कुल की मर्यादा पर ध्यान करके व्यभिचार से बच जाती है। उसकी शारीरिक शुद्धता अक्षुण्ण है। मानसिक अशुद्धि भी अधिक नहीं हुई। अतः वह पतिव्रताओं में निकृष्ट है।

बिनु अवसर भय ते रह जोई। जानेहु अधम नारि जग सोई॥
पति बंचक परपति रति करई। रौरव नरक कल्प सत परई॥८॥

अर्थ : जो अवसर न मिलने से या भय से बच जाती है उसे संसार में अधम पतिव्रता समझना। पति को ठगकर जो परपति से रति करती है वह सौ कल्प तक रौरव नरक में पड़ती है।

व्याख्या : जिसे कोई विचार नहीं है। केवल भय से या अवसर न मिलने से पतिव्रता बनी हुई है वह भी शारीरिक शुद्धि के कारण से पतिव्रता ही है। पर उनमें अधम है। क्योंकि उसकी रक्षा में उसका विचार करना नहीं है। दूसरों का भय कारण है। अतः पातिव्रत्य की रक्षा के लिए स्त्रियों पर रोक लगाये गये हैं। जिसमें उनका परलोक और यह लोक बना रहे। स्वार्थान्धता इसमें कारण नहीं हैं। स्थानं नास्ति क्षणो नास्ति नास्ति प्रार्थयिता नरः। तेन नारद नारीणां सतीत्वमुपजायते। स्थान नहीं है। फुरसत नहीं कोई प्रार्थना करनेवाला नहीं है। तब जाकर हे नारद स्त्रियों में सतीत्व उत्पन्न होता है। पातिव्रत्य उत्पन्न होने पर भी कुमारावस्था में पिता, यौवन में पति और वृद्धावस्था में पुत्र रक्षा करे। स्त्री में स्वतन्त्रता

की योग्यता प्रकृति के नियम से नहीं है। स्वतन्त्रता के लिए प्रोत्साहन देनेवाले ही उनके धर्मनाश के कारण हैं। वे भला चाहते हुए भी अज्ञानवश उनका महा अकल्याण करते हैं।

यहाँ तक स्वकीया के विषय में कहा। अब परकीया के विषय में कहते हैं। जो पतिव्रता का आडम्बर बनाये हुए अपने पति को धोखा देकर दूसरे से प्रेम करती है उसने यहाँ तो प्रतिष्ठा बना रक्खी है पर परलोक में धोखा नहीं चलता। वहाँ उसे सौ कल्प तक घोर नरक भोगना पड़ेगा। एक सहस्र चतुर्युगों का एक कल्प होता है।

छन सुख लागि जनम सत कोटी। दुख न समझ तेहि सम को खोटी॥
बिनु श्रम नारि परम गति लहई। पतिव्रत धर्म छाँड़ि छल गहई॥९॥
पति प्रतिकूल जनम जहँ जाई। बिधवा होइ पाइ तरुनाई॥

अर्थ : क्षण भर के सुख के लिए जो सौ करोड़ जन्म के दुःख को नहीं समझती उसके ऐसी खोटी कौन है। जो स्त्री छल छोड़कर पातिव्रत्य धर्म ग्रहण करती है वह बिना परिश्रम के परमगति को प्राप्त होती है। जो पति के प्रतिकूल है वह जहाँ जाकर जन्म लेती है वहीं युवावस्था के प्राप्त होने पर विधवा हो जाती है।

व्याख्या : विषयसुख क्षणभङ्गुर है। इसके लिए उसने अपना सौ कोटि जन्म बिगाड़ा। अल्प के लिए बड़ी भारी हानि को कुछ न गिना। इसलिए उसे अत्यन्त खोटी बतलाते हैं। खोटे की परिभाषा ही यही है। जो थोड़े से लाभ के लिए अपना धर्म छोड़े। विषयेन्द्रियसंयोगात् यत्तदग्रेऽमृतोपमम्। परिणामे विषमिव तत्सुखं राजसं स्मृतम्। विषय और इन्द्रिय के संयोग से जो पहिले अमृत सा जान पड़े और परिणाम में विष के समान हो उसे राजस सुख कहते हैं। पहिले तो रतिसुख ही राजस है। सो भी धर्मविरुद्ध होने से घोर तामस हो गया। तामस का फल ही अधोगति है। उसे असंख्य जन्म तक श्व-सूकरादि योनियों में दुःख भोगना पड़ता है।

पुरुषगण यज्ञ में दान से तथा ऐसे ही अन्य कष्टसाध्य उपायों से क्रमशः प्राजापत्य आदि लोकों को प्राप्त होते हैं। किन्तु स्त्रियाँ तन मन वचन से पति की सेवा करने से ही उनकी हितकारिणी होकर पति के समान शुभ लोकों को अनायास ही प्राप्त कर लेती हैं जो कि पुरुषों को अत्यन्त परिश्रम से मिलते हैं। इसलिए स्त्रियाँ धन्य हैं।

ऐसे उदाहरण भी हैं जहाँ सतीत्व भङ्ग नहीं हुआ पर पति से विरोध हो गया। उस प्रतिकूलाचरण का दण्ड कहते हैं कि ऐसी स्त्री का जहाँ जन्म होता है वहाँ भी पतिसुख उससे छीन लिया जाता है। वह तरुणावस्था में विधवा हो जाती है। तरुणावस्था में विधवा होना परमेश्वरीय दण्ड है। उसके भोग लेने में ही कल्याण है। इसीलिए शास्त्रों में विधवा विवाह का विधान नहीं है।

सो. सहज अपावनि नारि पति सेवत सुभ गति लहइ ।
जसु गावत श्रुति चारि अजहुँ तुलसिका हरिहि प्रिय ॥
सुनु सीता तव नाम सुमिरि नारि पतिब्रत करहिं ।
तोहि प्रान प्रिय राम कहेउ कथा संसार हित ॥५॥

अर्थ : स्त्री स्वभाव से ही अपवित्र होती है। उन्हें शुभ गति पतिसेवा से होती है। आज भी तुलसी हरि को प्रिय हैं और चारों वेद उनके यश का गान करते हैं।

व्याख्या : स्त्री के शरीर की बनावट ही ऐसी है कि वे शुद्ध नहीं रह सकतीं। वे महीने में तीन दिन क्रम से चाण्डाली, ब्रह्मघातिनी और रजकी की भाँति अशुद्ध रहती हैं। पुरुष के शुक्र को नौ मास गर्भ के रूप में धारण करती हैं। इसलिए सहज अपावनी कहा। फिर भी पति से इनकी शुभ गति होती है। अन्य उपाय इनकी सद्‌गति का है नहीं। पति के पाणिग्रहण से इनके शरीर का पति के शरीर से अभेद हो जाता है। वे उसकी अर्धाङ्गिनी हो जाती हैं। अतः उपर्युक्त दोष पति सेवा करनेवाली को नहीं लगता। इसलिए हिन्दुओं में लड़के भले ही बिना ब्याहे रह जायँ पर लड़की बिना ब्याही नहीं रहने पातीं। इतना ही नहीं कि वे दोष से विनिर्मुक्त हो जाती हैं। उनकी शुभ गति होती है। उसके यश को चारों वेद गाते हैं। अर्थात् उसकी शाश्वती गति होती है। क्योंकि पतिव्रता स्त्री भगवान् को प्रिय होती है। यथा : परम सती असुराधिप नारी। तेहि बल ताहि न जितहिं पुरारी। छल करि टारयो तासु ब्रत प्रभु सुर कारज कीन्ह। जब तेहि जान्यो मर्म सब साप कोप करि दीन्ह। तासु श्राप प्रभु कीन्ह प्रमाना। आज भी वही असुराधिप नारी तुलसी रूप से भगवान् के गले की हार बनी रहती है। यथा : रामहि प्रिय पावन तुलसी सी।

सीता नाम स्मरण से पातिव्रत्य का निर्वाह होता है। अतः पहिले की भाँति : सुनु राजकुमारी न कहकर नाम लेकर : सुनु सीता कहती हैं। तुम्हारा तो नाम लेकर स्त्रियाँ पातिव्रत्य धर्म का निर्वाह करेंगी। तुम्हारे लिए क्या कहना है। तुम पतिप्राणा हो। गौरी का नाम लेकर स्त्रियाँ पातिव्रत्यरूपी खड्‌गधारा पर चढ़ती हैं और तुम्हारा नाम लेकर उनका निर्वाह होता है। गुणवान से कहने से सम्वाद का संसार में प्रसार हो जाता है और उससे संसार का हित हो जाता है। इसलिए तुम से कहा। तुम्हें उपदेश देने के लिए नहीं।

सुनि जानकी परम सुख पावा। सादर तासु चरन सिरु नावा ॥
तब मुनि सन कह कृपानिधाना। आयसु होइ जाउँ बन आना ॥१॥

अर्थ : सुनकर जानकीजी को परम सुख हुआ। आदर के साथ उनके चरणों में सिर नवाया। तब मुनिजी से कृपानिधान रामजी ने कहा कि आज्ञा हो तो दूसरे वन में जाऊँ।

व्याख्या : जिस धर्म पर परम प्रेम था उसीका निरूपण सरस मृदुवाणी द्वारा सुनने से बड़ा भारी सुख हुआ। अथवा परम सुख पावा कहकर शिष्य की कृतकृत्यता दिखलाया। उपदेश की समाप्ति पर प्रणाम करना चाहिए। यथा : तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया। अथवा विदा होने के लिए प्रणाम करती हैं।

जब देखा कि सम्वाद समाप्त हो गया जानकीजी प्रणाम कर चुकीं तब सरकार ने विदाई के लिए आज्ञा माँगी। ऋषि की आज्ञा लेकर ही नया काम करते हैं। वाल्मीकिजी की आज्ञा लेकर ही चित्रकूट में बसे थे। आंत्रिजी की आज्ञा लेकर तब दूसरे वन में जायँगे। कृपानिधान हैं। अत्रि आदि का श्रम सफल कर चुके। अब अन्य ऋषियों के श्रम को सफल करने के लिए जाना चाहते हैं।

संतत मो पर कृपा करेहू। सेवक जानि तजेहु जनि नेहू ॥
धर्म धुरंधर प्रभु कै बानी। सुनि सप्रेम बोले मुनि ज्ञानी ॥२॥

अर्थ : सदा मुझपर कृपा करते रहियेगा। मुझे सेवक जानकर स्नेह न छोड़ियेगा। धर्मधुरन्धर प्रभु की वाणी सुनकर ज्ञानी मुनि प्रेम पूर्वक बोले।

व्याख्या : प्रभु अपना कुशल ऋषियों की दया पर निर्भर मानते हैं। इसलिए सदा कृपा बनाये रखने के लिए प्रार्थना करते हैं। यथा : हमरे कुसल तुम्हारिहिं दाया। मुनिजी सेवक सेव्य भाव के उपासक हैं और प्रभु ब्रह्मण्य देव हैं। अतः ये भी सेवक सेव्य भाव रखते हैं। अतः कह रहे हैं कि सेवक जानकर प्रेम बनाये रखियेगा। यथा : सेवक सुत पति मातु भरोसें। रहइ असोच बनै प्रभु पोसे। ब्राह्मणत्व की रक्षा से ही वैदिक धर्म की रक्षा होती है। सो ब्राह्मणत्व का इतना बड़ा आदर है कि प्रभु अपने को अत्रि के ब्राह्मण होने के नाते सेवक कह रहे हैं। अतः धर्मधुरन्धर कहा। मुनिजी ज्ञानी हैं। पर भक्ति को नहीं छोड़ते। अतः विनीत वाणी सुनकर भक्ति के सहित बोले। अत्मारामाश्च मुनयः निर्ग्रन्था अप्युरुक्रमे। कुर्वन्त्यहैतुकीं भक्तिमित्थं-भूतगुणो हरिः। भागवते।

जासु कृपा अज सिव सनकादी। चहत सकल परमारथ बादी ॥
ते तुम्ह राम अकाम पिआरे। दीन बंधु मृदु बचन उचारे ॥३॥

अर्थ : जिसकी कृपा ब्रह्म शिव सनकादिक सभी परमार्थवादी चाहा करते हैं। आप वे ही अकाम प्रिय दीनबन्धु राम हैं। मृदु वचन बोल रहे हैं।

व्याख्या : ब्रह्मदेव ब्रह्मविद्या के सम्प्रदाय के प्रवर्तक हैं। शिवजी साक्षात् दक्षिणा मूर्ति हैं। यथा : तस्मै श्रीगुरुमूर्तये नम इदं श्रीदक्षिणामूर्तये। सनकादिक निवृत्ति मार्ग के उपदेष्टा हैं। ये सभी परमार्थवादी हैं। ये लोग आपकी कृपा चाहते हैं। क्योंकि आप स्वयं परमार्थ रूप हैं। यथा : राम ब्रह्म परमारथ रूपा।

जिन्हें और वस्तुएँ प्यारी हैं, उन्हें आप प्यारे नहीं हो सकते। अतः आप अकाम पियारे हैं परन्तु दीनबन्धु हैं और मैं अकाम न होने पर भी दीन हूँ। इसलिए दया करके ऐसा मृदु वचन कह रहे हैं। यह आपका अप्रतिम शील है।

अब जानी मैं श्री चतुराई । भजी तुमहि सब देव बिहाई ॥
जेहि समान अतिसय नहि कोई । ता कर सील कस न अस होई ॥४॥

अर्थ : अब मैंने लक्ष्मीजी की चतुराई समझी । जिन्होंने सब देवताओं को छोड़कर आपको ही भजा । जिसके न तो कोई समान है । न बढ़कर है । उसका शील ऐसा क्यों न हो ?

व्याख्या : आपका शील देखकर मुझे लक्ष्मीजी की चतुरता का पता चला कि उन्होंने सीधे सीधे शील को देखा । ऐसा शील किसी में न पाया । अतः सबको छोड़कर आपका ही भजन किया । त्रैलोक्य की प्रभुता शीलवान् का ही भजन करती हैं : महाभारत में शीलनिरूपणाध्याय द्रष्टव्य है ।

शील ही उत्कर्ष का कारण है । तुम्हारे समान कोई नहीं है तो बढ़कर कोई कैसे हो सकता है । अतः तुम्हीं अपने एक तुच्छ सेवक को इतनी बड़ाई देने में समर्थ हो । नत्वत्समस्त्वभ्यधिकः कुतोऽन्यः । गीतायाम् । अतः आप में ही ऐसे शील का होना सम्भव है ।

केहि बिधि कहौं जाहु अब स्वामी । कहहु नाथ तुम्ह अंतरजामी ॥
अस कहि प्रभु बिलोकि मुनि धीरा । लोचन जल बह पुलक सरीरा ॥५॥

अर्थ : हे स्वामी ! मैं किस प्रकार कहूँ कि चले जाइये । हे नाथ ! आप अन्तर्यामी हैं । आप ही बतलाइये ऐसा कहकर धीर मुनि प्रभु को देखने लगे । उनके नेत्रों से जल बह चला और शरीर पुलकित हो उठा ।

व्याख्या : आयसु होइ जाउँ बन आना : के उत्तर में मुनिजी कहते हैं : तुमसे कछु न छिपी करुनानिधि तुम हौ अंतरजामी । विनय । मेरा मन आपको छोड़ने को नहीं चाहता और आप स्वामी होकर आज्ञा माँग रहे हैं । अतः नहीं भी नहीं कर सकते । अब आप ही बताइये कि मैं आपको जाने के लिए कैसे कहूँ ?

यद्यपि ज्ञानी मुनि धैर्यवाले हैं । फिर भी प्रेम के वश हो गये । आने पर भी : प्रेम बारि दोउ जन अन्हवाये । और जाते समय भी : लोचन जल बह पुलक सरीरा । ऐसी दशा हो गयी ।

छं. तन पुलक निर्भर प्रेम पूरन नयन मुख पंकज दिए ।
मन ग्यान गुन गोतीत प्रभु मैं दीख जप तप का किए ।
जप जोग धर्म समूह ते नर भगति अनुपम पावई ।
रघुबीर चरित पुनीत निसि दिनु दास तुलसी गावई ॥

अर्थ : मुनिजी अत्यन्त प्रेम से पूर्ण हैं । शरीर में पुलक है । मुख कमल में आँखें लगी हुई हैं । विचारते हैं कि मैंने क्या जप तप किये थे कि मन ज्ञान और इन्द्रियों से परे प्रभु के दर्शन पाये । जप योग और धर्म समूह से मनुष्य को अनुपम

भक्ति की प्राप्ति होती है। रघुवर के पुनीत चरित को रात दिन तुलसी दास गान करता है।

व्याख्या : ज्ञानी मुनि जब अत्यन्त प्रेम में मग्न हो जाते हैं तो वह दशा कहते नहीं बनती। यथा : निर्भर प्रेम मगन मुनि ग्यानी। कहि न जाइ सो दसा भवानी। उसी दशा का यहाँ यथासाध्य वर्णन है। मुनिजी के शरीर में पुलकावलि छायी हुई है। एकटक होकर मुख की शोभा देख रहे हैं। अत्यन्त सुख का अनुभव हो रहा है। अतः कहते हैं कि जो जप तप मैंने किये वह क्या था? इस सुख के आगे कुछ न था। जप योग और धर्म का बहुत अनुष्ठान करने से तब अनुपम भक्ति की प्राप्ति होती है। जप वचसा, योग मनसा और धर्म कर्मणा अनुष्ठित होता है। मनसा वाचा कर्मणा साधन करने से भक्ति मिलती है। मुझसे तो कुछ न बन पड़ा।

दासों में तुलसी बड़ा निकम्मा है। यथा : साहिब सीतानाथ सो सेवक तुलसीदास। उससे जप योग धर्म समूह कुछ नहीं बन पड़ता और दृढ़ भक्ति चाहता है। इसलिए रात दिन रघुवीर का यशगान किया करता है। रावनारि जस पावन गावहिं सुनहि जे लोग। राम भगति दृढ़ पावहिं बिनु बिराग जप जोग।

दो. कलिमल समन दमन मन, राम सुजस सुखमूल।
सादर सुनहि जे तिन्ह पर, रामु रहहिं अनुकूल॥

अर्थ : कलियुग के मल का नाश करनेवाला मन का दमन करनेवाला रामजी का सुयश सुख का मूल है। आदर के साथ श्रवण करनेवाले पर रामजी अनुकूल हो जाते हैं।

व्याख्या : मन के दमन से ही सुख होता है। कलिमल से दूषित मन का निरोध होता नहीं। अतः अयोध्याकाण्डान्तर्गत रामचरित को : कलि मल समन दमन मन कहा। कलि का अर्घ और अवगुण ही कलि मल है। दूसरी कोई बात न सोचे। एकाग्र होकर कथा श्रवण करे। यही सादर श्रवण है। यथा : एहि बिधि अमित जुगुति मन गुनेऊँ। मुनि उपदेस न सादर सुनेऊँ। कथा कहने की अपेक्षा श्रवण का माहात्म्य अधिक बतला रहे हैं। भरत चरित सुनने से भी सीय रामपद प्रेम की प्राप्ति होती है और राम चरित्र सुनने से श्रीरामजी की अनुकूलता होती है। यथा : ताकहँ प्रभु कछु अगम नहिं जापर तुम अनुकूल। प्रभु प्रताप बड़वानलहि जारि सकइ खलु तूल।

अयोध्याकाण्ड में : राम लखन सीता सहित सोहत परन निकेत। जिमि बासव बस अमरपुर सची जयंत समेत। यहाँ तक रामयश है। इसके बाद सुमन्त का लौटना तथा चक्रवर्तीजी का देहान्त कहकर भरत चरित्र आरम्भ कर दिया और भरत चरित्र की समाप्ति करते हुए काण्ड की समाप्ति कर दी। इति न देकर कथन की अपूर्णता दिखलाया। पर वस्तुतः अयोध्याकाण्ड की समाप्ति चित्रकूट की कथा की समाप्ति के साथ है। अतः अयोध्याकाण्ड की सन्धि यहाँ तक आयी है। वाल्मीकि

तथा अध्यात्म में भी अयोध्याकाण्ड की समाप्ति चित्रकूट की कथा समाप्त होने पर ही माना है।

सो. कठिन काल मल कोस, धर्मु न ग्यान न जोग जप।
परिहरि सकल भरोस, रामहि भजहिं ते चतुर नर ॥६॥

अर्थ : यह कठिन काल कलिमल का निधान है। इसमें ज्ञान योग जप सभी असम्भव हैं। इसलिए सब भरोसा छोड़कर जो राम को भजते हैं वे ही मनुष्य चतुर हैं।

व्याख्या : अघ अवगुण की खानि होने से कलियुग को मलकोष तथा कठिन कहा। यथा : सो कलिकाल कठिन उरगारी। पाप परायन सब नर नारी। अतः धर्म न ज्ञान न योग जप : यह सब कुछ नहीं हो सकता। ये सब निर्विकार चित्त से ही साध्य हैं। अतः इनका भरोसा नहीं। अनुष्ठान का निषेध नहीं है। पर भरोसा इनका नहीं है। भरोसा भजन का है। देशकाल का विचार करके कार्य करनेवाला चतुर है। अतः चतुरता इसी में है कि रामजी का भजन करे।

२७. विराधवध प्रसङ्ग

मुनि पद कमल नाइ करि सीसा। चले बनहि सुर नर मुनि ईसा ॥
आगे रामु अनुज पुनि पाछे। मुनिबर बेष बने अति काछे ॥१॥

अर्थ : मुनिजी के चरणों में सिर नवाकर देवता मनुष्य और मुनियों के स्वामी वन को चले। रामजी आगे हैं। छोटे भाई पीछे हैं। श्रेष्ठ मुनि का वेष बनाये अत्यन्त : कसे कसाये सुशोभित हैं।

व्याख्या : यद्यपि मुनिजी ने प्रेमवश स्पष्ट आज्ञा नहीं दी। फिर भी : केहि बिधि कहौं जाहु बन स्वामी। कहने से आज्ञा हो ही गयी। अतः प्रणाम करके चले। अर्थात् इस वन से दूसरे वन में चले। प्राकृत सीमा के अनुसार वनों का भी विभाग होता है। उनके नाम भी होते हैं। सुर नर मुनि की रक्षा के लिए अधिक सङ्कट सहन करेंगे। इसलिए सुर नर मुनि ईसा : कहा। अथवा यद्यपि सुर नर मुनि ईश हैं तथापि मर्यादा पालन के निमित्त मुनि चरण कमल को प्रणाम करके चले।

चित्रकूट जाने के समय का वर्णन है : आगे राम लखनु बने पाछें। तापस बेष बिराजत काछें। यहाँ लखन के स्थान में अनुज शब्द का प्रयोग हुआ। परन्तु बात वही है। उसी वेष और उसी क्रम से चले। अतः पुनि कहा। लखन प्यार से पुकारने का नाम था। सो उसका प्रयोग अयोध्याकाण्ड तक हुआ। अब अवध से दूर जा रहे हैं और ऐश्वर्यप्रधान लीला आरम्भ हो रही है। अतः लछिमन सीता आदि नामों का प्रयोग होगा। यहाँ भी लखन न कहकर अनुज शब्द का प्रयोग किया। यहाँ से घोर वन आरम्भ हुआ। विकट परिस्थिति के सामना की भी सम्भावना है। अतः सब प्रकार से तैयार होकर चल रहे हैं।

उभय बीच श्री सोहइ कैसी। ब्रह्म जीव बिच माया जैसी ॥
सरिता बन गिरि अवघट घाटा। पति पहिचानि देहिं बर बाटा ॥२॥

अर्थ : दोनों के बीच में श्री जानकी कैसी शोभित हैं। जैसे ब्रह्म और जीव के बीच में माया हो। नदी पर्वत और दुर्गम घाटियाँ स्वामी को पहिचानकर सुन्दर रास्ता दे देते हैं।

व्याख्या : श्री शब्द के प्रयोग से ही दिखलाया कि इस समय भगवती सीता तापस वेष में नहीं हैं। दिव्य वसन भूषन पहिरे हुए हैं। जो ऋषिवधू भगवती अनसूया ने पहिना दिया था।

ब्रह्म का अनुसरण माया करती है और जीव माया का अनुसरण करता है। यथा : माया वस्य जीव अभिमानी। ईस वस्य माया गुनखानी। ब्रह्म माया को नहीं देखता माया ब्रह्म को देखा करती है। यथा : सोइ प्रभु भ्रूबिलास खग राजा। नाच नटी इव सहित समाजा। अथवा ब्रह्म जीव में भेद नहीं है। माया बीच में आकर भेद बनाये हुए हैं। यथा : मुधा भेद जद्यपि कृत माया। इसलिए रामजी की उपमा ब्रह्म से सीताजी की माया से और लक्ष्मणजी की जीव से दिया।

अत्रिजी के आश्रम से विराधवन पहुँचने में सरिता सर गिरि अवघट घाट सभी मिलते हैं। उनके अभिमानी देवता प्रभु को पहिचानकर सुन्दर मार्ग देते हैं। यथा : बनदेवी बन देव उदारा। करिहहिं सासु ससुर सम सारा। ब्रह्म माया और जीव की भाँति शोभा है। अतः पहिचानने में कठिनता नहीं है।

जहँ जहँ जाहिं देव रघुराया। करहिं मेघ तहँ तहँ नभ छाया ॥
मिला असुर बिराध मग जाता। आवत ही रघुबीर निपाता ॥३॥

अर्थ : जहाँ जहाँ रघुराज देव जाते हैं वहाँ वहाँ आकाश से मेघ छाया करते जाते है। रास्ते में जाते हुए विराध राक्षस मिला। सामने आते ही श्रीरघुवीर ने उसे मार गिराया।

व्याख्या : यहाँ देव शब्द के प्रयोग से ऐश्वर्य द्योतन किया। यहाँ अधिदेव चरित्र का प्राधान्य है। जहाँ प्रभु जाते हैं वहीं मेघ छत्र की भाँति छाया करते हैं। आकाश मण्डल में घिरे नहीं हैं। द्यावा पृथ्वी सब सेवा में तत्पर हैं।

असुर विराध कहने से आसुरी सम्पत्ति द्योतन किया। दम्भोदर्पोऽभिमानश्च क्रोधः पारुष्यमेव च। अज्ञानं चाभिजातस्य पार्थ सम्पदमासुरीम्। इससे विराध में सब दुर्गुण दिखाये। ये सब लोग विश्राम ले रहे थे और विराध रास्ते से जा रहा था। आवत ही रघुबीर निपाता : विराध का आततायी होना दिखलाया : आततायिनमायान्तं हन्यादेवाविचारयन्। रघुवीर निपाता पद से विराध का पराक्रमी होना द्योतित किया।

तुरतहि रुचिर रूप तेहि आवा। देखि दुखी निज धाम पठावा ॥
पुनि आए जहँ मुनि सरभंगा। सुंदर अनुज जानकी संगा ॥४॥

२८, शरभंग देह त्याग प्रसंग

अर्थ : उसने तुरन्त ही सुन्दर रूप प्राप्त किया। दुःखी देखकर उसे अपने धाम में भेज दिया। फिर वे सुन्दर भाई और जानकी के साथ शरभङ्ग मुनिजी के पास आये।

व्याख्या : प्रभु के बाणों के प्रहार से विराध के अङ्ग प्रत्यङ्ग जर्जर हो गये। वर प्रसाद से उसके प्राण नहीं निकलते थे। अतः गड्ढा खोदकर उसी में उसे तोप दिया। यथा : खनि गर्त गोपित विराधा और उसे दुःखी देखकर अपने धाम में भेज दिया। धाम जाने योग्य सुन्दर रूप उसे मिल गया जिसे धारणकर वह राम धाम गया।

वहाँ से दो कोस पर शरभंग मुनि का आश्रम था। उनकी तीनों मूर्ति की उपासना थी। अतः कहते हैं : सुंदर अनुज जानकी संगा। वरदान में भी मुनिजी ने तीनों मूर्तियों को अपने हृदय में वास माँगेंगे। यथा : सीता अनुज सहित प्रभु नील जलद तनु स्याम। मम हिय बसहु निरंतर सगुन रूप श्रीराम।

दो. देखि राम मुख पंकज, मुनिवर लोचन भृंग।
सादर पान करत अति, धन्य जनम सरभंग ॥७॥

अर्थ : श्रीरामजी के मुख कमल को देखकर श्रेष्ठ मुनिजी की आँखें भौंरा होकर आदर के साथ पान कर रही हैं। शरभंग का जन्म धन्य है।

व्याख्या : मुनिजी की आँखें भृङ्ग होकर रूप मकरन्द का पान कर रही हैं। यथा : पियत नयन पुट रूप पियूषा। मन तो चोरी चल गया। इसलिए उसका उल्लेख नहीं करते। यथा : निजपन राख्यो जन मन चोरा। इसीलिए प्रणाम आशीर्वाद नहीं कहते। शरभङ्गजी का जन्म अति धन्य कहा। क्योंकि खूब ठगे गये। यहाँ तो ठगे जाने का ही माहात्म्य है। सरकार के दर्शन पर भी जिसका मन चोरी न जाय सावधान रहे उसे श्री गोस्वामिपाद धिक्कार देते हैं। यथा : ठगिसी रही जे न ठगे धिक ते। कविता। एक बात और है। चोर से प्रणाम आशीर्वाद का शिष्टाचार नहीं है। रूप सुधा का पान करनेवाला धन्य और अति पान करनेवाला अति धन्य हैं। सो शरभङ्गजी अतिधन्यों में हैं। देखा तो तीनों व्यक्तियों को पर ध्यान तो राममुख पंकज मकरन्द का ही कर रहे हैं।

कह मुनि सुनु रघुबीर कृपाला। संकर मानस राजमराला ॥
जात रहेउँ बिरंचि के धामा। सुनेउँ श्रवन बन ऐहहिं रामा ॥१॥

अर्थ : मुनि ने कहा कि हे रघुवीर ! हे शङ्कर के मानस के राजहंस ! सुनो। मैं ब्रह्मलोक को जा रहा था। कान से सुन पाया कि वन में रामजी आवेंगे।

व्याख्या : अभी विराध वध किये चले आ रहे हैं। इसलिए रघुवीर कहा। यथा : आवत ही रघुबीर निपाता। कृपा करके दर्शन दिया। इसलिए कृपाल कह रहे हैं। अपने मानस में बसाना है। इसलिए : संकर मानस राज मराल कहते हैं। राज मराल से सौन्दर्य तथा गाम्भीर्य का आधिक्य द्योतन किया। मुनिजी ने प्रभु को बोलने न दिया। आप ही बोलते चले गये। बड़ी जल्दी है। प्रभु खड़े हैं।

इन्द्र भगवान् लेने आये थे ब्रह्मलोक ले जाने के लिए। पर प्रभु के दर्शन के सामने ब्रह्मलोक क्या है ? इसलिए नहीं गये। चलने की तैयारी कर चुके थे। प्रभु के आने का समाचार पाकर रुके। अतः पूजा सत्कार कुछ न कर सके। कांक्षामृत्यु हैं : जब चाहें तब मरें। इनके लिए मरना कुछ नहीं है। केवल आने जाने की बात है।

चितवत पंथ रहेउँ दिन राती। अब प्रभु देखि[1] जुड़ानी छाती॥
नाथ सकल साधन मैं हीना। कीन्ही कृपा जानि जन दीना॥२॥

अर्थ : दिन रात बराबर आपकी राह देख रहा था। अब सरकार को देखकर छाती ठण्ढी हुई। हे नाथ ! मैं सब साधनों से हीन हूँ। मुझे दीन सेवक जानकर आपने कृपा की।

व्याख्या : घोर वन में यही एक मार्ग है। कहीं आप रात को इधर से निकल न जायँ इसलिए रात दिन बराबर रास्ता देखता रहा। सोया नहीं। देखे बिनु रघुनाथ पद जिय की जरनि न जाय। सो अब जलन गयी। छाती ठण्ढी हुई।

अपने को सकल साधन से हीन मानना कार्पण्य है। भक्त के लिए यह भाव आवश्यक है। प्रभु का दर्शन क्रियासाध्य नहीं कृपासाध्य है। सरकार को दीन प्रिय हैं। अतः दीन सेवक जानकर आपने दर्शन दिया।

सो कछु देव न मोहि निहोरा। निज पन राखेउ जन मन चोरा॥
तब लागि रहहु दीन हित लागी। जब लगि मिलौं तुम्हहि तनु त्यागी॥३॥

अर्थ : हे देव ! यह मेरे ऊपर कुछ भी एहसान नहीं है। आप जन के मन के चोर हैं। अपने प्रण की रक्षा आपने की है। जब से शरीर त्यागकर आपसे मिल जाता हूँ तब तक दीन के हित के लिए यहीं ठहरे रहिये।

व्याख्या : तस्कराणां पतये नमः। चोर तो धन चुराते हैं। आप भक्तों का मन चुराते हैं। मेरा मन चुरा लिया। मैं दीन हो रहा हूँ। क्षण भर आपके बिना नहीं रह सकता। कहीं मन लेकर चले न जाना। इसलिए तब तक ठहरिये। अब आपसे मिलने में स्थूल शरीर का ही व्यवधान है। उसे छोड़कर आपसे मिलना चाहता हूँ। सदा आपके पास बना रहूँ अर्थात् सामीप्य मुक्ति चाहते हैं।

---

१. यहाँ प्रहर्षण अलङ्कार है।

जोगु जग्य जप तप जत कीन्हा । प्रभु कहुँ देइ भगति बर लीन्हा ।।
येहि बिधि सर रचि मुनि सरभंगा । बैठे हृदय छाड़ि सब संगा ।।४।।

अर्थ : योग यज्ञ जप और तप जो कुछ मुनिजी ने किया था वह सब प्रभु को समर्पण करके भक्ति वर ले लिया । इस प्रकार से चिता बनाकर शरभङ्ग मुनि सब आसक्तियों को छोड़कर उस पर बैठ गये ।

व्याख्या : सभी शुभ कर्मों को रामजी को अर्पण कर दिया । यथा : यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोसि ददासि यत् । यत् तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम् । और उसके बदले में भक्ति वरदान माँग लिया । मुनिजी बड़े चतुर हैं । इस भाँति अध्रुव को देकर ध्रुवपद को प्राप्त किया । क्योंकि : तीर्थाटन साधन समुदाई । जोग बिराग ज्ञान निपुनाई । नाना कर्म धर्म व्रत दाना । संजम जम जप तप मख नाना । भूतदया द्विज गुरु सेवकाई । बिद्या बिनय बिबेक बड़ाई । जहँ लगि साधन बेद बखानी । सबका फल हरि भगति भवानी ।

एहि विधि : कहने का भाव यह है कि सब कर्मों को ब्रह्मार्पण करके भक्तिवर ले करके और इहलोक परलोक की सब वासना छोड़ करके योगाग्नि से शरीर त्याग करेंगे । अतः स्वयं चिता रचकर उस पर बैठे ।

दो. सीता अनुज समेत प्रभु, नील जलद तनु स्याम ।
मम हिय बसहु निरंतर, सगुन रूप श्रीराम ।।८।।

अर्थ : नीले बादल के समान श्याम शरीरवाले श्रीरामजी सगुण रूप से हे प्रभु ! सीता और लक्ष्मण के सहित निरन्तर मेरे हृदय में वास कीजिये ।

व्याख्या : सीता अनुज सहित अपने हृदय में बसाते हैं । अपने हृदय को प्रभु के निवास के लिए भवन बना रहे हैं । अतः भवनाकार यह गुणग्राम : स्तुति दसवीं मघा नक्षत्र है । इसमें पाँच तारे चमकते हैं । पाँच कार्य हुए हैं । वे ही पाँच तारे हैं : १. कहने से सुना : वन ऐहैं रामा २. प्रभु को देखकर छाती शीतल हुई ३. शरीर छोड़कर प्रभु से मिलना चाहा ४. भक्ति वर लिया ५. सीता अनुज समेत प्रभु को हृदय में बसाकर देह त्याग किया । इसकी फल स्तुति है : सचिव भूपति बिचार के ।

इसी नील जलद तनु श्याम ने मन चुराया था । सो चोर को स्त्री भाई सहित हृदय में बन्द कर लिया । कभी बाहर न जाने देंगे । अतः निरन्तर कहते हैं । यद्यपि निर्गुण सगुण रूप में अन्तर नहीं । पर चोरी सगुण रूप ने की है । अतः वे ही कैद भी रहें । भाव यह कि प्रभु निर्गुण रूप से तो सबके हृदय में बसते हैं पर इससे दुःख तो नहीं दूर होता । यथा : अस प्रभु हृदय अछत अविकारी । सकल जीव जग दीन दुःखारी । दुःख दूर तो सगुण रूप के बसने से होता है । इसलिए सगुण रूप से बसाते हैं । सीता लक्ष्मण के साथ ही प्रभु का मुख्य त्रिकोण रूप बनता है । अतः दोनों के साथ हृदय में बसाने का वरदान माँगा ।

अस कहि जोग अगिनि तनु जारा । राम कृपा बैकुंठ सिधारा ॥
ताते मुनि हरि लीन न भयऊ । प्रथमहिं भेद भगति बर लयऊ ॥१॥

अर्थ : ऐसा कहकर शरभङ्गजी ने योगाग्नि से अपने शरीर को जला डाला और रामजी की कृपा से वैकुण्ठ चले गये । पहिले भेदभक्ति का वर माँग रक्खा था । इसलिए मुनिजी भगवान् में लीन नहीं हुए ।

व्याख्या : योगाग्नि से शरीर त्यागने की क्रिया समान ही थी । इसलिए सतीजी और शरभङ्गजी के देहत्याग प्रकरण में दोनों स्थान में एक ही पद का प्रयोग किया । अस कहि जोग अगिनि तन जारा । तब लगि रहौं दीन हित लागी । जब लगि तुमहि मिलौं तनु त्यागी : कहकर सरकार को खड़ा कराये हुए हैं । अतः वही जल्दी है । एवमस्तु सुनने की भी प्रतीक्षा नहीं की । कृपा का बड़ा भरोसा है । कहा भी है : सुनु रघुबीर कृपाला । कीन्हीं कृपा जानि जन दीना । अतः रामकृपा वैकुण्ठ सरकार का रूप ही है । उसकी लोक में गणना नहीं है । यथा : कहु मतिमंद लोक बैकुंठा ।

योगाग्नि से शरीर छोड़नेवाले को हरिपद लीन होना चाहिए । यथा : तजि जोग पावक देह हरिपद लीन भइ जहँ तहि फिरे । परन्तु मुनिजी लीन नहीं हुए । इसका कारण देते हैं कि अभेद भक्ति से जीव लीन होता है । भेंदभक्ति से नहीं । यथा : ताते उमा मोक्ष नहिं पायो । दसरथ भेदभक्ति मन लायो । सती के लीन न होने में भी ऐसा ही कारण हुआ । यथा : सती भरत हरिसन वर माँगा । जन्म जन्म सिव पद अनुरागा ।

रिषि निकाय मुनिबर गति देखी । सुखी भए निज हृदय बिसेखी ॥
अस्तुति करहि सकल मुनि बृंदा । जयति प्रनत हित करुना कंदा ॥२॥

अर्थ : ऋषि समूह मुनिश्रेष्ठ की श्रेष्ठ गति देखकर अपने मन में विशेष सुखी हुए । सब मुनि लोग स्तुति कर रहे हैं कि प्रणाम करनेवाले हितकारी करुणा के मेघ की जय हो ।

व्याख्या : ऋषि मन्त्रद्रष्टा हैं । उन लोगों ने मुनिवर का वैकुण्ठ पधारना देखा तो अपने मन में बड़े हर्षित हुए । यह ऋषियों की मुदिता है कि पुण्यवान् की उत्तम गति से उन्हें प्रसन्नता हुई ईर्ष्या नहीं हुई : विराध वध का समाचार पाने से । शरभङ्ग के आश्रम आते आते ऋषियों की भीड़ इकट्ठी हो गयी । उन्हें प्रभु से अपना कष्ट निवेदन करना है । प्रभु को देखकर सुखी हुए । मुनिवर की गति देखकर विशेष सुखी हुए । अतः प्रणत्त हित और करुणाकन्द की जय ऐसा कहकर स्तुति करते हैं । प्रणतहित कहकर अपनी शरणागति दिखलायी और करुणाकन्द कहकर सभी ऋषियों पर करुणादृष्टि की वृष्टि की आशा दिखलायी ।

पुनि रघुनाथ चले बन आगें । मुनिबर बृंद बिपुल सँग लागें ॥
अस्थि समूह देखि रघुराया । पूँछी मुनिन्ह लागि अति दाया ॥३॥

अर्थ : फिर रघुनाथजी आगे वन में चले। श्रेष्ठ मुनि लोगों का बड़ा समूह साथ लग गया। हड्डियों का ढेर देखकर रघुनाथजी को बड़ी दया आयी। मुनियों से पूछा।

व्याख्या : रघुनाथ हैं। अनाथ मुनियों को सनाथ करने आये हैं। पहिले कह चुके हैं कि चले बनहि सुर नर मुनि ईसा। शरभङ्ग के आश्रम पर ठहर गये थे। अतः आगे चलना कहते हैं। अपने अपने यहाँ ले जाने के लिए मुनि लोगों ने साथ पकड़ लिया। अस्थि समूह देखने से प्राणियों के असामयिक मृत्यु का अनुमान हुआ। इससे बड़ी दया हुई। इतने नर कङ्काल के एकत्र होने का कोई विशेष कारण होना चाहिए : इससे पूछा। मुनियों के मुख से अत्याचारियों के अत्याचार का वर्णन सुनना चाहते हैं। राजधर्म का आश्रयण करके उनका दण्ड विधान करना है।

जानतहूँ पूछिअ कस स्वामी। सबदरसी तुम्ह अंतरजामी ॥
निसिचर निकर सकल मुनि खाए। सुनि रघुबीर नयन जल छाए ॥४॥

अर्थ : जानते हुए भी आप कैसे पूछते हैं। हे स्वामी ! आप तो सर्वज्ञ और अन्तर्यामी हैं। राक्षसों के समूह ने सब मुनियों को खा डाला है। सुनकर श्रीरघुवीर की आँख डबडबा आयी।

व्याख्या : आप सर्वज्ञ हैं। सब कुछ जानते हैं, अन्तर्यामी हैं। आप से कुछ छिपा नहीं है। अतः यह घटना भी आपको अविदित नहीं है। फिर क्यों पूछते हैं ? भाव यह कि पापियों के पाप कहने में भी दोष है पर आप स्वामी हैं। आपकी आज्ञा अपेल है। अतः निवेदन करते हैं। राक्षस लोग इकट्ठे होकर सब मुनियों का यहाँ भोजन किया है। राक्षसों के आहार ही मनुष्य हैं कि पुनः ब्राह्मणों का खाना तो उन्हें अति प्रिय है। यथा : खल मनुजाद द्विजामिष भोगी। मुनि लोग गर्भगत बालक की भाँति प्रतिरोध करने में असमर्थ थे। अतः उनका भोज इसी स्थान पर राक्षसों द्वारा हुआ।

सरकार केवल युद्धवीर दानवीर ही नहीं हैं दयावीर भी हैं। इसलिए रघुवीर शब्द का प्रयोग किया। उपर्युक्त बातें सुनते ही करुणाकर की आँखों में जल आगया। अपराधियों के अपराध का पर्याप्त प्रमाण मिल गया। अतः दण्ड विधान के लिए प्रतिज्ञा हो रही है।

दो. निसिचर हीन करउँ महि, भुज उठाइ पन कीन्ह।
सकल मुनिन्ह के आश्रमन्हि, जाइ जाइ सुख दीन्ह ॥९॥

अर्थ : भुजा उठाकर प्रतिज्ञा की कि मैं पृथ्वी को बिना राक्षस की कर दूँगा। फिर सब मुनियों के आश्रमों में जा जाकर उन्हें सुख दिया।

व्याख्या : मुनियों ने कहा : निसिचर निकर सकल मुनि खाए। अतः सरकार प्रतिज्ञा करते हैं : निसिचर हीन करउँ महि। सब मुनि लोगों को भरोसा

देने के लिए भुज उठाइ प्रन कीन्ह। अपना दृढ़ निश्चय सूचित करने के लिए भुजा उठाकर प्रण करने का नियम है। यथा : भुजा उठाइ कहौं प्रन रोपी। प्रन बिदेह-कर कहहिं हम भुजा उठाइ बिसाल। बहुत से ऋषि इस अभिलाषा से साथ थे कि सरकार को अपने अपने आश्रम में ले चलें। अतः सरकार सबके आश्रमों में गये और सुख दीन्ह कहने का भाव यह कि सबके आश्रमों में ठहरे। किसी के आश्रम पर पन्द्रह दिन, किसी के यहाँ एक महीना, किसी के आश्रम पर डेढ़ महीना, किसी के आश्रम पर तीन महीना, कहीं छः महीना, कहीं सालभर। इस भाँति वनवास की अवधि का दस साल व्यतीत किया। राक्षस लोग विराध वध से सशङ्क हो गये थे। अतः एक भी हाथ न लगे। उन सबों ने उधर का रास्ता छोड़ दिया। इसके बाद सुतीक्ष्ण प्रीति प्रसङ्ग आरम्भ करते हैं।

२९. सुतीक्ष्ण प्रीति प्रसंग

मुनि अगस्ति कर सिष्य सुजाना। नाम सुतीछन रति भगवाना॥
मन क्रम बचन राम पद सेवक। सपनेहुँ आन भरोस न देवक॥१॥

अर्थ : मुनि अगस्त्य के एक सुजान शिष्य थे। उनका नाम सुतीक्ष्ण था। उनकी भगवान् में भक्ति थी। मन कर्म और वचन से रामजी के चरणों के सेवक थे। उन्हें सपने में भी दूसरे देवता का भरोसा न था।

व्याख्या : अगस्त्य मुनि के बहुत शिष्य थे। कोई कर्मठ थे, कोई योगी थे, कोई ज्ञानी थे, उनमें सुतीक्ष्णजी बड़े सुजान थे। क्योंकि उनकी रति भगवान् में थी। यथा : राम सनेह सरस मन जासू। साधु सभा बड़ आदर तासू। मुनि अगस्त्य कर शिष्य : कहने का भाव यह कि महा प्रभावशाली ऋषि के शिष्य थे। उनकी भक्ति प्रसिद्ध है। अगस्त्यसंहिता रामभक्ति का प्रधान ग्रन्थ है। उनका शिष्य कहकर उनमें भी रामोपासना सूचित किया।

मनक्रम बचन छाड़ि चतुराई। भजत कृपा करिहहिं रघुराई। सो ये मन वचन कर्म से रामजी के चरणों के सेवक थे। अतः सरकारी कृपा के पात्र थे। सेवकाई में भी अनन्यता कहते हैं कि नित्य नैमित्तिक कर्म के निर्वाह करने में जिन जिन देवताओं के पूजन स्तवन या व्रत का विधान है। सो सब करते थे। पर भरोसा किसी का स्वप्न में भी नहीं करते थे। उन्हें केवल रामजी का भरोसा था।

प्रभु आगवनु श्रवन सुनि पावा। करत मनोरथ आतुर धावा॥
हे बिधि दीनबंधु रघुराया। मो से सठ पर करिहहिं दाया॥२॥

अर्थ : कानों से प्रभु का आगमन सुन पाया। मनोरथ करते हुए आतुरता से दौड़ पड़े। क्या यह सम्भव है कि दीनबन्धु रघुराज मुझ से शठ पर दया करेंगे ?

व्याख्या : चलते फिरते किसी भाँति वह बात कान में पड़ गयी कि सरकार इधर आ रहे हैं। इस बात को पक्की करने के लिए अवसर कहाँ ? आतुर हो दौड़

पड़े। प्रेमपात्र के आगमन को सुनते ही प्रेमी के मनोरथों का अन्त नहीं रह जाता। यथा : करत मनोरथ बहु मन माही। एक बिधि करत मनोरथ जात न लागी पार। आतुर धावा : से पहिली दशा अभिलाष कहा। : १ :

हे विधि : कहकर ब्रह्मदेव का आश्चर्य के साथ स्मरण करते हैं। विधि का कार्य तो विधि से होता है। मेरे ऊपर दया करने की कौन विधि है ? मैं शठ हूँ। शठ सेवक तो स्वामी के लिए शूल समान होता है। क्या प्रभु की दीनबन्धुता इतनी है कि मेरे ऐसे भारी शठ पर भी उनकी अनुकम्पा होगी ? यह दूसरी दशा चिन्ता है। : २ :

सहित अनुज़ मोहि राम गोसाईं। मिलिहहिं निज सेवक की नाईं ॥
मोरे जियँ भरोस दृढ़ नाहीं। भगति बिरति न ग्यान मन माहीं ॥३॥

अर्थ : क्या छोटे भाई के सहित स्वामी रामजी मुझसे निज सेवक की भाँति मिलेंगे। मेरे मन में तो दृढ़ भरोसा नहीं होगा। क्योंकि मेरे मन में भक्ति, वैराग्य या ज्ञान नहीं है।

व्याख्या : ऊपर की अर्धाली में कहा है कि क्या मुझसे शठ पर दया करेंगे। अब उसी बात को स्पष्ट करते हैं। वह कौन सी दया है जो सुतीक्ष्णजी चाह रहे हैं ? सो वह दया सरकार का परिष्वङ्ग देना है और वह दया परिष्वङ्ग ऐसा हो जो निज दास को सरकार देते हैं। क्योंकि परिष्वङ्ग तो पिता, माता, पुत्र, सखा आदि को भी दिया जाता है। पर उसे मुनिजी नहीं चाहते। क्योंकि सरकार को सबसे अधिक प्रिय निज दास हैं। स्वयं भरतजी ने प्रभु द्वारा निज दास की भाँति स्मरण किये जाने की अभिलाषा प्रकट की। यथा : निज दास ज्यों रघुबंस भूषन कबहुँ मन सुमिरन करयो। मुनिजी उसी भाव से मिलना चाह रहे हैं और उससे भी भाई सहित मिलने में पूरा सत्कार है। भगवत् भागवत दोनों के मिलने का सुख है। यथा : अनुज सहित मिलि ढिग बैठारी। अब प्रश्न यह रहा कि निज दास किसे कहते हैं ? इस बात को स्वयं प्रभु ने स्पष्ट किया है : तिन्ह ते पुनि मोहि प्रिय निज दासा। जेहि गति मोरि न दूसरि आसा। जिसे प्रभु को छोड़कर दूसरे की आशा नहीं वही निज दास है। परिष्वङ्ग मिलने को कहते हैं। सरकार ने स्वयं कहा है कि परिष्वङ्ग से अधिक मेरे पास देने के लिए कुछ नहीं है। उसी अत्यन्त सुख का स्मरण करके मुनिजी विह्वल हैं। यह तीसरी अवस्था स्मरण है। : ३ : रामजी गोसाईं हैं। सब के मालिक हैं। दयालु हैं। ये शठ सेवक की प्रीति रुचि रखनेवाले हैं। अतः मुझसे अनुज के साथ निज सेवक की भाँति मिलना उनके लिए असम्भव तो नहीं है। यह चौथी अवस्था सरकार का गुण कथन है। : ४ :

मुनिजी कहते हैं कि फिर भी मेरे मन में दृढ़ भरोसा नहीं हो रहा है। क्योंकि मेरे में साधन का बड़ा घाटा है। भक्ति पथ पर मैं आरूढ़ नहीं हूँ : श्रुति सम्मत हरि भगति पथ संजुत बिरति बिवेक। हरिभक्ति में भक्ति वैराग्य और विवेक तीनों चाहिए।

मुझमें तीनों में से एक भी नहीं है। अतः उनकी दीनबन्धुता का भरोसा है। अपनी ओर दृष्टि करने से तो दृढ़ता नहीं होती। यह पाँचवीं दशा उद्वेग है। : ५ :

नहि सतसंग जोग जप जागा। नहि दृढ़ चरन कमल अनुरागा ॥
एंक बानि करुनानिधान की। सो प्रिय जाके गति न आन की ॥४॥

अर्थ : इधर तो सत्सङ्ग योग जप यज्ञ कुछ भी नहीं और न चरण कमल में दृढ़ अनुराग है। हाँ करुणा निधान का ऐसा स्वभाव है कि उनको वही प्रिय है। जिसे दूसरे का भरोसा न हो।

व्याख्या : श्रुति सम्मत हरि भगति पथ वैधी भक्ति है। इसके अतिरिक्त पाँच साधन और भी है। १. सत्सङ्ग यथा : सतसंगति मुद मंगल मूला। सोइ फल सिधि सब साधन फूला। २. योग यथा : करहि जोग जोगी जेहि लागी। ३. जप यथा : द्वादस अच्छर मंत्र पुनि जपहिं सहित अनुराग। ४. यज्ञ यथा : त्रेता बिबिध यज्ञ नर करहीं। प्रभुहिं समर्पि कर्म भव तरहीं। ५. दृढ़ चरन कमल अनुराग यथा : पद कमल परागा रस अनुरागा। मम मनमधुप करइ पाना। अर्थात् रागानुगा भक्ति। यहाँ पाँच में एक भी नहीं। यह छठी दशा प्रलाप है। : ६ :प्रिय को विद्यमान मानकर निरर्थक वचन रचना है।

तब उनके कारुणिक स्वभाव का भरोसा है। मुझे अन्य गति नहीं है और उन्हें अनन्यगतिक प्रिय हैं। यथा : है तुलसी के एक गुन अवगुन बिधि कह लोग। भलो भरोसो रावरो राम रीझिबे जोग।

होइहैं सुफल आजु मम लोचन। देखि बदन पंकज भव मोचन ॥
निर्भर प्रेम मगन मुनि ग्यानी। कहि न जाइ सो दसा भवानी ॥५॥

अर्थ : भव मोचन मुख कमल के दर्शन से आज मेरी आँखें सुफल होंगी। मुनि ज्ञानी पूर्ण प्रेम में निमग्न हो गये। हे भवानी ! वह दशा कही नहीं जा सकती।

व्याख्या : अतः यह निश्चय किया कि दर्शन मिलेगा। लोचन का साफल्य सरकार के दर्शन से होता है। यथा : करहु सुफल सब के नयन सुन्दर बदन देखाइ। आँखें तो अगणित जन्म से मिलती चली आयी हैं : सफल कभी न हुईं। सफल हुईं होती तो जन्म हीं क्यों होता। इसलिए बदन पंकज का भव मोचन विशेषण दिया।

सुतीक्ष्णजी ज्ञानी मुनि हैं। योगवासिष्ठ के प्रधान श्रोता हैं। तथापि निर्भर प्रेम में मग्न हैं। यह रामजी के प्रेम की महिमा है। यथा : मोह मगन मति नहि बिदेह की। महिमा सिय रघुबर सनेह की। आत्मारामाश्च मुनयो निर्ग्रन्थाः अप्युरुक्रमे। कुर्वन्त्यहैतुकीं भक्तिमित्थंभूतगुणो हरिः। ज्ञानघाट के वक्ता जवाब देते हैं कि वह दशा कही नहीं जा सकती। जिसकी यह दशा है वह स्वयं उस दशा को नहीं समझ रहा है। यह सातवीं दशा उन्माद है। : ७ :

दिसि अरु बिदिसि पंथ नहिं सूझा । को मैं चलेउ कहाँ नहिं बूझा ॥
कबहुँक फिरि पाछे पुनि जाई । कबहुँक नृत्य करइ गुन गाई ॥६॥

अर्थ : उन्हें दिशा विदिशा और रास्ता कुछ भी सूझ नहीं रहा है । मैं कौन हूँ कहाँ जा रहा हूँ । इसका भी चेत नहीं है । कभी घूमकर पीछे चले जाते हैं । कभी गुणों का गान करके नाचने लगते हैं ।

व्याख्या : पहिले करत मनोरथ आतुर धावा । अब मनोरथ करते करते निर्भर प्रेम में विभोर होने से रास्ता सूझना बन्द हो गया । उन्हें यह पता नहीं कि पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्खिन किधर है । नैऋत्य, वायव्य, अग्नि और ईशान कोण कौन हैं । इधर उधर देखते हैं । कुछ मालूम नहीं होता । दशा बढ़ती ही गयी अपने को भूल गये । कहाँ चले थे यह भी मालूम नहीं : पन्थ का न सूझना आठवीं दशा व्याधि है । : ८ :

जब कहाँ जाते हैं : यही भूल गये : तब लौट पड़े, फिर लौटना भूलकर गुणगान करके नाचने लगे : होइहि सुलभ आजु मम लोचन । इस आशा पर इतना आनन्द बढ़ा हुआ है : आगे जाते जाते रुक गये । लौटे तो फिर गति रुक गयी । यह जड़ता का सञ्चार नवीं दशा है । : ९ :

अबिरल प्रेम भगति मुनि पाई । प्रभु देखहिं तरु ओट लुकाई ॥
अतिसै प्रेम देखि रघुबीरा । प्रगटे हृदयँ हरन भव भीरा ॥७॥

अर्थ : मुनि ने प्रगाढ़ प्रेमाभक्ति प्राप्त कर ली । सरकार वृक्ष की आड़ में छिपे हुए देख रहे हैं । मुनि का अत्यन्त प्रेम देखकर भव भय के हरण करनेवाले रामजी हृदय में प्रकट हो गये ।

व्याख्या : जड़ता का सञ्चार कहकर अविरल भक्ति की प्राप्ति कहते हैं । इतने देर तक सरकार पेड़ के आड़ में खड़े देख रहे थे । भक्तों के पागलपन की दशा सरकार को प्रिय है । छिपे इसलिए हैं कि प्रकट होने से विप्रलम्भावस्था ही समाप्त हो जायगी ।

असह्य प्रेमवेग अर्थात् दशम दशा : मरण की प्राप्ति होते देखकर हृदय में प्रकट हुए । दशा ऐसी थी कि पत्ता खटकने से काम बिगड़ता । इसलिए तरु ओट से सामने जाने का प्रयत्न नहीं किया । हृदय में प्रकट हो गये । अतिशय प्रेम से ही प्रभु प्रकट होते हैं और उसी से भव भय का नाश होता है ।

मुनि मग माँझ अचल होइ बैसा । पुलक सरीर पनस फल जैसा ॥
तब रघुनाथ निकट चलि आए । देखि दसा निज जन मन भाए ॥८॥

अर्थ : मुनिजी बीच रास्ते में अचल होकर बैठ गये । उनका शरीर कटहल के समान रोमाञ्चित हो गया । तब रामजी उनके पास चले आये और अपने भक्त की दशा देखकर अपना भक्त उन्हें बहुत प्यारा लगा ।

व्याख्या : मुनिजी को प्रेम समाधि लग गयी। नहीं तो बीच रास्ते में कोई अचल होकर नहीं बैठता। ये रास्ते में ही अचल हुए। क्योंकि रास्ते में ही इन्हें हरि की प्राप्ति हुई। आनन्द से अद्भुत पुलक हो गया। कटहल के काँटे घने पुलक के ऐसे होते हैं। मुनिजी के शरीर में कोई स्थान ऐसा न रह गया जहाँ उत्तम पुलक न हो।

जब रामजी ने देख लिया कि मुनिजी अत्यन्त आनन्द से पुलकित हैं। तब निकट गये। प्रभु का स्वभाव है कि निज जन को अपना लेते हैं। सुतीक्ष्णजी का मनोरथ भी था कि रामजी उन्हें निज जन जाकर मिलें। यथा : निज जन जानि ताहि अपनावा। प्रभु सुभाउ कपि कुल मन भावा।

मुनिंहि राम बहु भाँति जगावा। जाग न ध्यान जनित सुख पावा ॥
भूप रूप तब राम दुरावा। हृदयँ चतुर्भुज रूप देखावा ॥९॥

अर्थ : मुनिजी को रामजी ने अनेक भाँति से जगाया। पर मुनिजी नहीं जागे। क्योंकि उन्हें सरकार के ध्यान का सुख मिल रहा था। तब रामजी ने राजा के रूप को अन्तर्धान कर दिया और उनके हृदय में चतुर्भुज रूप दिखलाया।

व्याख्या : सोने से मूर्च्छा से तथा समाधि से व्युत्थान दशा में होश में आने को जागना कहते हैं। अतः श्रीरामजी ने समाधि अवस्था से उन्हें जाग्रत अवस्था में लाने की अनेक चेष्टा की। जो जो उपाय समाधि से उतारने के हैं सो सब काम में लाये। पर उनकी समाधि भङ्ग न हुई। तात्पर्य यह कि प्रेमाधिक्य से आप से आप समाधि लग जाती है और ऐसी लगती है कि उससे उतारना कठिन हो जाता है। क्योंकि समाधि जनित आनन्द को साधक छोड़ना नहीं चाहता। सरकार ने देखा कि इस तरह ये न जागेंगे।

ये माधुर्य के उपासक थे। ऐश्वर्य रूप के नहीं थे। भूप रूप माधुर्य का रूप है और चतुर्भुज रूप ऐश्वर्य का है। यद्यपि दोनों रूप सरकार के ही हैं। द्विचत्वारि षडष्टासां दश द्वादश षोडश। अष्टादशामी कथिता हस्ताः शङ्खादिभिर्युताः। पूर्व तापनीये। दो, चार, छः, आठ, दस, बारह, सोलह, अठारह हाथ तक भगवान् रामभद्र के शङ्ख आदि से युक्त माने गये हैं। पर भूप -रूपवाली माधुर्य मूर्ति द्विभुज है। मुनिजी उसी के उपासक थे। प्रभु ने उस मूर्ति को अन्तर्धान कर लिया और उसके स्थान पर चतुर्भुज मूर्ति शङ्खचक्रादि से युक्त प्रकट कर दिया।

मुनि अकुलाइ उठा तब कैसें। बिकल हीन मनि फनिवर जैसें ॥
आगे देखि राम तनु स्यामा। सीता अनुज सहित सुख धामा ॥१०॥

अर्थ : मुनिजी तब किस भाँति आकुल होकर उठे। जैसे मणि ले लेने से श्रेष्ठ सर्प व्याकुल होकर उठता है। आगे देखा कि श्यामसुन्दर सुखधाम राम सीता और अनुज के सहित विराजमान हैं।

व्याख्या : मुनिजी ने भूप रूप की शोभा को हृदय में धारण कर रक्खा था। यथा : निरखि राम सोभा उर धरहू। निज मनि फनि मूरति मनि करहू। अपने मन को फणि सर्प और प्रभु की मूर्ति को मणि बना रक्खा था। माधुर्योपासकों के लिए भूप रूप ही अति सुन्दर है। विष्णु चारि भुज बिधि मुख चारी। बिकट बेष मुख पंच पुरारी। अपर देउ अस कोउ न आही। एहि छबि सखी पटतरिअ जाही। सो उस रूप के अन्तर्धान होते ही चतुर्भुज रूप का कुछ भी ख्याल न करते हुए मुनिजी मणिहीन भुजङ्ग की भाँति विकल होकर उठे। यथा : सूखहिं अधर जरहिं सब अंगू। मनहु दीन मति हीन भुअंगू।

त्रेता में विष्णु भगवान् का पीतरङ्ग रहता है। यहाँ तनु स्यामा पाठ होने से यह अर्थापत्ति होती है कि चतुर्भुज मूर्ति जो प्रकट हुई थी उसका श्याम तन भी नहीं था। जिसने सर्प का मणि लिया : उस पर सर्प का बड़ा क्रोध होता है। समाधि भङ्ग करनेवाले पर समाधिस्थ का भयानक क्रोध होता है। यथा : भयउ ईस मन छोभ बिसेखी। नयन उघारि सकल दिसि देखी। सौरभ पल्लव मदन बिलोका। भयउ कोप कंपेउ त्रैलोका। तब सिव तीसर नैन उघारा। चितवत काम भयउ जरि छारा। अतः मुनिजी ने आँख खोलकर देखना चाहा कि किसने उनकी समाधि भङ्ग की। तो आगे अपने परम प्रिय सुखधाम राम की मूर्ति पाते हैं। मनोरथ से भी अधिक की प्राप्ति होती है। अनुज तो साथ में ही हैं। जगदम्बा जानकीजी भी साथ में हैं।

परेउ लकुट इव चरनन लागी। प्रेम मगन मुनिवर बड़भागी॥
भुज बिसाल गहि लिए उठाई। परम प्रीति राखे उर लाई॥११॥

अर्थ : बड़े भाग्यवान् मुनियों में श्रेष्ठ प्रेम में मग्न होकर छड़ी की भाँति गिरकर चरणों में लगे। सरकार ने विशाल भुजाओं से पकड़कर उन्हें उठा लिया और बड़े प्रेम से उन्हें हृदय में लगाये रहे।

व्याख्या : प्रेम मगन कहने से देह दशा की विस्मृति कहा। चरणों में छड़ी के गिरने की भाँति गिरे। इस भाँति गिरने से चोट लगेगी। इस बात का ध्यान न रहा। बड़ा भाग्यवान् वही है जिसे सरकार के चरणों की प्राप्ति हो : श्री गोस्वामीजी लकुट और दण्ड में कुछ भेद करते हैं। लकुट पतला होता है। दण्ड मोटा होता है। मुनिजी दुर्बल हैं। अतः इनकी उपमा लकुट से देते हैं। भरतजी भी प्रभु के विरह से दुर्बल हो गये थे। उनके लिए भी कवि लिखते हैं : भूतल परेउ लकुट की नाईं। मनुजी आकाशवाणी सुनकर हृष्ट पुष्ट हो गये थे। यथा : हृष्ट पुष्ट तनु भयउ सोहाये। मानहु अबहिं भवन ते आये। अतः उनकी उपमा दण्ड से देते हैं। यथा : हरख बिबस तन दसा भुलानी। परेउ दण्ड इव गहि पद पानी। ऐसे को ही यहाँ प्रेम मगन शब्द से कहा।

प्रभु की भुजाएँ विशाल हैं। दूर से ही उठा लेती हैं। मुनिजी का मनोरथ पूर्ण हो रहा है। राम गोसाइँ निज सेवक की भाँति मिल रहे हैं। मुनिजी लकुट

की भाँति चरणों में पड़े हैं। उठना नहीं चाहते। छड़ी आपसे नहीं उठती : उठाने से उठती है। अतः प्रभु ने अपने हाथों से इन्हें उठा लिया। अपना दास उन्हें सबसे अधिक प्रिय है। इसलिए परम प्रेम से हृदय में लगाये हुए हैं। विरह सन्तप्त हृदय को शान्ति दे रहे हैं।

मुनिहि मिलत अस सोह कृपाला। कनक तरुहि जनु भेंट तमाला॥
राम बदनु बिलोकि मुनि ठाढ़ा। मानहु चित्र माँझ लिखि काढ़ा॥१२॥

अर्थ : मुनिजी से मिलते हुए कृपाल ऐसे शोभित हुए जैसे धतूर के पेड़ से तमाल : आबनूस पेड़ मिल रहा हो। मुनिजी खड़े हुए श्रीरामजी का मुख देख रहे हैं। मानो चित्र में लिखकर बनाये गये हों।

व्याख्या : प्रेमाधिक्य से भक्त भगवन्त दोनों में जाड्य है। इसलिए पेड़ों से उपमा दी। मुनिजी को इस समय भी पुलक है। अतः उनकी उपमा धतूर के वृक्ष से दिया। धतूर का फल भी कटहल के फल सा कंटकित होता है। प्रभु की उपमा तमाल वृक्ष से दिया। तमाल वृक्ष श्याम होता है। उसके पत्ते भी श्याम होते हैं। अतः प्रभु से उपमित किया।

मिलने के बाद मुनिजी खड़े हुए मुह देख रहे हैं। कुछ कहने सुनने की सामर्थ्य नहीं है। न होश है। जैसे चित्र में लिखे हुए मुनि जैसे लिखे जाते हैं वैसे ही बने रहते हैं। यदि आँख खुली है तो खुली ही रहती है। पलक गिरती ही नहीं। सिवा दर्शन के किसी अन्य भाव का हृदय में स्थान नहीं है।

दो. तब मुनि हृदय धीर धरि, गहि पद बारहि बार।
निज आश्रम प्रभु आनि करि, पूजा बिबिध प्रकार॥१०॥

अर्थ : तब मुनिजी धैर्य धारण करके और बार बार चरणों को पकड़कर प्रभु को अपने आश्रम में ले आये और अनेक प्रकार से पूजा।

व्याख्या : दुःख में जो उद्विग्न न हो, सुख की जिसे इच्छा न हो, राग द्वेष भय जिसका निकल गया हो, उसे मुनि कहते हैं। इस समय उनका धैर्य छूटा हुआ है। सो हृदय में धैर्य धारण किया। प्रेम से बार बार चरण ग्रहण करते हैं। अथवा अपने आश्रम में लिवा चलने के लिए बार बार सङ्कोच में डाल रहे हैं। यथा : बार बार गहि चरण संकोची। यहाँ सरकार की ओर से प्रणाम दण्डवत् कुछ नहीं हो रहा है। क्योंकि ऐश्वर्य खुल गया है। रास्ते में पूजा नहीं हो सकती। अतः आश्रम में लिवा लाये। षोडशोपचार राजोपचारादि पूजनों में से जो जो सम्भव था सब किया। इसलिए विविध प्रकार कहा।

कह मुनि प्रभु सुनु बिनती मोरी। अस्तुति करौं कवन बिधि तोरी॥
महिमा अमित मोरि मति थोरी। रबि सनमुख खद्योत अँजोरी॥१॥

अर्थ : मुनि ने कहा : हे प्रभु ! मेरी विनती सुनो। तुम्हारी स्तुति किस विधि से करूँ। महिमा अपार है और मेरी बुद्धि थोड़ी है। जैसे सूर्य के सामने जुगनू का प्रकाश।

व्याख्या : पूजा के बाद स्तुति होनी चाहिए। सो पूजा तो शास्त्रानुसार कर डाला। उसके लिए विधि नहीं पूछा। पर स्तुति करने में तो शास्त्र भी असमर्थ है। यथा : महिमा निगम नेति कहि गाई। अतः स्तुति की विधि नहीं सूझती। सो सरकार से ही विनय करते हैं कि आप ही विधि बतलाइये। यदि नहीं बतलाते तो स्तुति करने में बिगड़ जाय तो मेरा दोष नहीं।

विधि न समझने का कारण बतलाते हैं कि आपकी महिमा का पारावार नहीं और महिमा कथन को ही स्तुति कहते हैं। तिस पर मेरी बुद्धि बहुत थोड़ी है। जब प्रभु की महिमा की ओर देखती है तब काम नहीं करती। वैसे संसार में तो खूब काम करती है। तथा : निसि तम घन खद्योत बिराजा। पर सूर्य का सामना पड़ते ही खद्योत का प्रकाश सूर्य के प्रकाश में लीन हो जाता है। कुछ भी काम नहीं कर सकता। पता भी नहीं चलता कि खद्योत भी संसार में कहीं है। ऐसी ही मेरी बुद्धि की गति हो रही है। जो लोग प्रवीण हैं उनकी बुद्धि भी दीपादिवत् निस्तेज हो जाती है। पर अपने अस्तित्व का प्रकाश करती है। यथा : मुनिवर परम प्रवीन जोरि पानि अस्तुति करत। यहाँ तो मेरी जुगुनू की दशा है। रात में भी जुगनू चमकते चमकते रह जाता है। एकरस प्रकाश नहीं कर पाता। दिन में क्या प्रकाश करेगा।

स्याम तामरस दाम सरीरं। जटा मुकुट परिधान मुनि चीरं ॥
पानि चाप सर कटि तूनीरं। नौमि निरंतर श्रीरघुबीरं ॥२॥

अर्थ : नीलकमल की माला के समान शरीरवाले। जटा का मुकुट और मुनिवस्त्र धारण करनेवाले हाथों में धनुष बाण लिये हुए। तथा कमर में तरकस कसे हुए श्रीरघुवीर को मैं निरन्तर नमस्कार करता हूँ।

व्याख्या : स्याम तामरस दाम शरीरं : से सुन्दरता कहा। यथा : स्यामसरोज दाम सम सुन्दर। जटा मुकुट परिधान मुनिचीरं : से धर्म परायणता कही। यथा : पितु आयसु भूषन बसन तात तजे रघुबीर। हृदय न हरष बिषाद कछु पहिरे बलकल चीर। अथवा ऐसा सौन्दर्य है कि जटा मुकुट मालूम होता है और वल्कल परिधान मालूम होता है। यथा : पीताम्बरं सुंदरं। पानि चाप सर कटि तूनीरं : से द्विभुज मूर्ति कहा। तथा भक्तों की सब प्रकार से रक्षा दिखलाया। यथा : तब लगि हृदय बसत खल नाना। लोभ मोह मत्सर मद माना। जब लगि उर न बसत रघुनाथा। धरे चाप सायक कटि भाथा। प्रभु की ऐसी श्री है कि लोभ मोहादि सामने ठहर नहीं सकते। सरकार को सशस्त्र देखते ही भाग जाते हैं। इसलिए श्रीरघुवीर कहा। अथवा श्रीरूपिणी सीताजी साथ हैं इसलिए श्रीरघुवीर कहा। यथा : उभय बीच श्री सोहइ कैसी। ब्रह्म जीव बिच माया जैसी प्रभु का। स्वभाव है कि एक बार प्रणाम

करनेवाले को अपना कर लेते हैं। इसलिए तदीय होने के लिए निरन्तर प्रणाम करते हैं। यह पहला नमस्कार है। यह स्तुति वीररस से भी है। इसलिए इसे विचाररूपी भूप का सुभट फल श्रुति प्रकरण में कहा है। अथवा असाध्य जानकर भी उत्साह के साथ स्तुति करते चले जाते हैं। अतः इसकी स्तुति विचार भूपति की सुभटरूपा है।

मोह विपिन घन दहन कृशानुः। संत सरोरुह कानन भानुः॥
निसिचर करि बरूथ मृगराजः। त्रातु सदा नो भव खग बाज.॥३॥

अर्थ : हे मोहरूपी घन बन के जलाने के लिए अग्निरूप, हे सन्तरूपी कमल बन के सूर्य, हे राक्षस रूपी हाथी के झुण्ड के लिए सिंह, हे संसाररूपी चिड़िया के लिए बाजरूप! हमारी रक्षा कीजिए।

व्याख्या : अति दुःखद होने से मोह को विपिन कहा। यथा : डरपहिं धार गहत सुधि आये। घन कहने का भाव यह कि इसमें पड़ने से मनुष्य मार्गभ्रष्ट हो जाता है। और फिर उससे बाहर निकलना कठिन हो जाता है। मोह विपिन में भी सरकार अव्यक्त रूप से भरे पड़े हैं। पर उसमें अति संघर्ष होने से। यथा : करहिं अनीति जाइ नहिं बरनी। सीदहि विप्रधेनु सुर धरनी। प्रभु अग्नि की भाँति व्यक्त हो जाते हैं। मोह विपिन का नाश कर देते हैं। इससे अवतार का कारण कहा। अब कार्य कहते हैं। प्रभु के उदय से सूर्योदय की भाँति सन्तरूपी कमल का बन विकसित हो उठता है। इस भाँति साधु परित्राण कहकर दुष्टों का विनाश कहते हैं। प्रभु को प्रतिज्ञा करके बन में रहते इतने दिन बीते। पर एक भी राक्षस हाथ न चढ़ा। जिस भाँति सिंह का गन्ध न सहकर हाथी जंगल छोड़ देते हैं। उसी भाँति प्रभु का गन्ध सहने में राक्षस असमर्थ हो जाते हैं। अब प्रभु का मोक्षदातृत्व गुण कहते हैं। आवागमन भव है। उसे खग कहा है। खग का आकाश में और पृथ्वी में आना जाना लगा रहता है। बाज उसको भक्षण कर जाता है। प्रभु भी भव भय को भक्षण करके मुक्ति देते हैं। त्रासु कहकर अपनी रक्षा के लिए प्रार्थना की। स्वरूप को नमस्कार करके मनमें बसाते हैं और गुणों से अपनी रक्षा चाहते हैं।

अरुन नयन राजीव सुवेसं। सीता नयन चकोर निसेसं॥
हर हृदि मानस बाल मरालं। नौमि राम उर बाहु बिसालं॥४॥

अर्थ : जो लाल कमल से लाल नेत्र वाले और सुन्दर वेष वाले हैं। जो सीताजी के नेत्र चकोर के चन्द्रमा है और जो शिवजी के हृदयरूपी मानसरोवर के लिए जो हंस हैं ऐसे विशाल वक्षःस्थल और भुजावाले रामजी को मैं नमस्कार करता हूँ।

व्याख्या : नयन की अरुणिमा चक्रवर्ती होने का चिन्ह है। कमल से नेत्रों की उपमा कृपा कटाक्ष के लिए दी जाती है। यथा : मामवलोकय पंकज लोचन। कृपा विलोकनि सोच विमोचन। पहिले रूप का वर्णन किया था। फिर गुण वर्णन करने

लगे। अब फिर रूप वर्णन करते हैं। यथा : वल्कल बसन जटिल तनु स्यामा। जनु मुनिवेष कीन्ह रति कामा। इस भाँति सुवेष हैं। अब सुन्दरता की पराकाष्ठा कहते हैं कि सीताजी ऐसी सुन्दरी के नेत्ररूपी चकोर के लिए चन्द्रमा है। यथा : जाइ समीप राम छबि देखी। रही जनु कुँअरि चित्र अवरेखीं।

बूढ़े मुनि ने संकर मानस राज मराल कहकर वर्णन किया था। ये मुनि शिष्य हैं। इसलिए बाल मराल कह रहे हैं। सीता जी साक्षात् देखती हैं। इसलिए चन्द्र चकोर की उपमा दी। शिवजी ध्यान से देखते हैं इसलिए उनके हृदयरूपी मानसरोवर का हंस बतलाया। उर बाहु बिसाल कहकर विक्रम सूचित करते हैं। श्री रघुबीर कहकर रघुकुल में जन्म दिखलाया। सीता नयन चकोर कहकर विवाह कहा। यह दूसरा नमस्कार है।

संसय सर्प ग्रसन उरगादः। समन सुकर्कस तर्क बिषादः॥
भव भंजन रंजन सुर जूथः। त्रातु सदा नो कृपा बरूथः॥५॥

अर्थ : जो संशयरूपी सर्प के ग्रसन के लिए गरुड़ हैं। अत्यन्त कर्कश तर्क जनित विषाद के नाश करनेवाले हैं। आवागमन को मिटानेवाले और देवताओं के समूह को आनन्द देने वाले हैं। ऐसे कृपा के समूह रामजी सदा हमारी रक्षा करें।

व्याख्या : संशय को सर्प कहते हैं। क्योंकि संशयग्रस्त के हृदय में दुःखद कुतर्क की लहरें उठती हैं। यथा : संसय सर्प ग्रसेउ मोहि ताता। दुखद लहरि कुतर्क बहु व्राता। सो संशय सर्प ही आपका भक्ष्य है। इसलिए गरुड़ से उपमा दी। सर्प का ग्रास तो हुआ। पर जिसका उसने दंशन किया है उसकी रक्षा कैसे होगी? अतः कहते हैं कि आप दुःखद तर्क विषाद के भी शमन करनेवाले हैं। विष के उतरने के कारण भी गरुड़ ही होते हैं। गारुड़ी विद्या से विष उतरता है। एवं ज्ञान स्वरूप कहा : यथा : ज्ञान उदय जिमि संसय जाहीं। इस स्तुति में भव का उल्लेख तीन बार आया है। १. ज्ञानियों के लिए संसार की पारमार्थिक स्थिति है ही नहीं। केवल व्यावहारिको स्थिति है। इसलिए उनके लिए वह खग है। कभी काम खग से ही पड़ जाता है। उसके लिए प्रभु बाज हैं। उसे निर्मूल कर देते हैं। तब सजात वाद सामने आ जाता है। २. कर्मठों के लिए संसार वास्तविक है। इसलिए उसका भङ्ग कर देते हैं तब दैवी प्रकृतिवालों को सुखानुभव होता है। अतः भव भंजन रंजन सुर यूथः कहा। ३. भक्तों के लिए सेतु हो जाते हैं। उनका आश्रयण करके भक्त भव सरिता के आरपार आया जाया करते हैं। उन्हें भव सरिता बाधक नहीं है।

निर्गुन सगुन बिषम सम रूपं। ग्यान गिरा गोऽतीतमनूपं॥
अमलमखिल - मनवद्यमपारं। नौमि राम भंजन महि भारं॥६॥

अर्थ : जो निर्गुण, सगुण, विषम और समरूप हैं। जो ज्ञान, वाणी और इन्द्रियों से अतीत हैं। जो अनूप, निर्मल सम्पूर्ण, दोष रहित, अनन्त और पृथ्वी का भार उतारनेवाले हैं। ऐसे रामजी को मैं नमस्कार करता हूँ।

व्याख्या : निर्गुण सगुण कहकर मिश्र ब्रह्म कहा। विषम समरूप कहकर जगन्मय कहा। ग्यान गिरा गोतीत से साक्षात् ब्रह्म कहा। तीनों होने से अनूप कहा। यथा : अनूप रूप भूपति। अवतार रूप में तीनों का समावेश है। यथा : ब्रह्मांड निकाया निर्मित माया रोम रोम प्रति वेद कहै। सो मम उर वासी यह उपहासी सुनत धीर मति थिर न रहै। अमल से शुद्ध, अविरल से पूर्ण, अनवद्य से निर्विकार, अपार से व्यापक अथवा अपरिच्छिन्न कहा। भंजन महिभार से पूर्णावतारधारण करके रावणादि का बध कहा। यथा : अतिसय देखि धर्म कै ग्लानी। परम सभीत धरा अकुलानी। गिरि सर सिंधु भार नहिं मोही। जस मोहि गरुअ एक पर द्रोही। ऐसे रामजी को नमस्कार करते हैं। यह तीसरा नमस्कार है।

भक्त कल्पपादप आरामः। तर्जन क्रोध लोभ मद कामः॥
अति नागर भव सागर सेतुः। त्रातु सदा दिनकर कुल केतुः॥७॥

अर्थ : जो भक्त के लिए कल्पवृक्ष के बाग हैं। क्रोध, लोभ, मद और काम को डाँटनेवाले हैं। अत्यन्त चतुर और संसार समुद्र के सेतु हैं। ऐसे सूर्यकुल के ध्वजारूप श्रीरामजी हमारी रक्षा करें।

व्याख्या : रूप कहकर फिर गुण कहते हैं। कल्पवृक्ष तो सबके लिए समान है। किसी के सन्मुख या विमुख नहीं है। उसके निकट जाने और पहिचानने की आवश्यकता है। माँगने से वह चाही हुई वस्तु दे देता है। परन्तु भक्त को तो किसी वस्तु की कामना नहीं है। यथा : नान्या स्पृहा रघुपते हृदयेऽस्मदीये। वह तो उन्हीं प्रभु को ही चाहता है। इसलिए उसके लिए प्रभु कल्पवृक्ष के बाग हो जाते हैं। उन्हीं में भक्त विहार करते हैं। उसी बाग की सुन्दरता देखने में मग्न रहते हैं। उन्हें काम, क्रोधादिक शत्रुओं का भी भय नहीं रहता। क्योंकि प्रभु उन्हें भगा देते हैं। अतः तर्जन क्रोध लोभ मद कामः कह रहे हैं। इन्हें शत्रु इसलिए कहा कि ये ही जीव को नरक में ले जाते हैं। यथा : काम क्रोध मद लोभ सब नाथ नरक के पंथ।

नागर चतुर को कहते हैं। यहाँ प्रभु को अति नागर कहते हैं। प्रभु भक्त के लोक परलोक दोनों को सँभालते हैं। भवसागर के सेतु हैं। इनका आश्रयण करने से अनायासेन भवसागर पार किया जा सकता है। यथा : अति अपार जे सरित वर जौं नृप सेतु कराहिं। चढ़ि पिपीलकउ परम लघु बिनु श्रम पारहिं जाहिं। सर्वात्मना साधनहीन चींटी जिस भाँति सेतु का आश्रयण करके अनायासेन पार चली जाती है उसी भाँति सभी साधनों से हीन भक्त भी केवल प्रभु का आश्रय करके अनायासेन भवसागर पार हो जाते हैं। उन्हें भवसागर के मध्य उत्ताल तरङ्ग तथा मकर उरग बाधा नहीं कर सकते। दिनकर कुलसेतु कहकर रामावतार कहा। मुनिजी उन्हीं से सदा अपनी रक्षा चाहते हैं। दूसरे से नहीं। यथा : बनै तो रघुबर ते बनै या बिगरै भरपूर। तुलसी बनै जो और तेहि बनिवे मह धूर।

अतुलित भुज प्रताप बल धामः । कलि मल बिपुल बिभंजन नामः ॥
धर्म बर्म नर्मद गुन ग्रामः । संतत संतनोतु मम रामः ॥८॥

अर्थ : जिसके भुज प्रताप की तौल नहीं । जो बल के धाम हैं । जिसका नाम कलि के विशाल मल का नाश करनेवाला है । जो धर्म के कवच हैं । जिनका गुणग्राम सुख देनेवाला है । ऐसे राम सदा मेरा कल्याण करें ।

व्याख्या : संक्षेप में नाम रूप लीला और धाम चारों कह रहे हैं । अतुलित-भुजप्रतापबलधामः से रूप कहा : कलिमलविपुलविभंजननामः से नाम कहा । धर्मवर्मनर्मदगुणग्रामः से लीला कहा : और संतत संतनोतु मम रामः से धाम के लिए प्रार्थना करते हैं ।

प्रभु बल के धाम हैं । उन्हीं के बल से सम्पूर्ण सृष्टि चल रही है । यथा : सुनु रावन ब्रह्मांड निकाया । पाइ जासु बल बिरचति माया । जाके बल बिरंचि हरि ईसा । पालत सृजत हरत दससीसा । जा बल सीस धरत सहसानन । अंडकोस समेत गिरि कानन । इत्यादि । उनके भुजा के प्रताप की भी तुलना नहीं है । यथा : ब्रह्म धाम सिवपुर सब लोका । फिरा श्रमित व्याकुल भय सोका । काहू बैठन कहा न ओहीं । राखि को सकै राम कर द्रोही । अन्त में वही जयंत कहता है : अतुलित बल अतुलित प्रभुताई । मैं मतिमंद जान नहि पाई । नाम की प्रभुता ऐसी है कि इस कराल कलिकाल में लोक परलोक उसी द्वारा सिद्ध होता है । नहीं तो सब धर्मों को कलिमल ग्रसे हुए हैं । किसी से काम नहीं चलता । यथा : नाम काम तरु काल कराला । सुमिरत समन सकल भव जाला । प्रभु के गुणग्राम से धर्म की रक्षा होती है और सुख मिलता है । यथा : राम को सुमिरिबो सब बिधि ही को राज रे । रामको बिसारिबो निषेध सिरताज रे । तथा : एहि बिधि कहत राम गुनग्रामा । पावा अनिर्वाच्य बिश्रामा ।

तीन प्रकारसे भजन कहा गया है । तस्यैवाहं ममैवासौ स एवाहमिति त्रिधा । मैं उनका हूँ । वे मेरे हैं और वही मैं हूँ । ये ही तीन प्रकार हैं । सेवक आरम्भ में समझता है कि मैं उनका हूँ । जब सम्बन्ध प्रागल्भ्य होता है तब समझता है कि वे मेरे हैं और जब उस प्रागल्भ्य की अति वृद्धि होती है तब समझने लगता है कि उनमें और मुझमें भेद नहीं है । यहाँ पर मुनिजी सम्बन्ध प्रागल्भ्य से मम रामः कह रहे हैं और उन्हीं से सदा अपना कल्याण चाहते हैं । यथा : मोर दास कहाइ नर आसा । करै तो कहहु कहाँ बिस्वासा ।

जदपि बिरज व्यापक अबिनासी । सब के हृदय निरंतर बासी ॥
तदपि अनुज श्री सहित खरारी । बसतु मनसि मम कानन चारी ॥९॥

अर्थ : यद्यपि आप निर्मल व्यापक और अविनाशी हैं । सबके हृदय में निरन्तर वास करते हैं । फिर भी छोटे भाई और लक्ष्मी के सहित हे खरारि ! हे काननचारी ! मेरे मन में बसो ।

व्याख्या : विरज से प्रकृति पार कहा। व्यापक से अपरिच्छिन्न कहा। अविनासी से नित्य कहा। अर्थात् निर्गुण रूप से सरकार सबके हृदय में निवास करते हैं। फिर भी संसार के सब जीव दीन और दुःखी हो रहे हैं। अतः निर्गुण रूप से काम नहीं चलता। इसलिए मुनिजी सगुण रूप से हृदय में बसाना चाहते हैं और सगुण रूप में भी उस रूप से जिस रूप में उस समय लीला कर रहे हैं। क्योंकि लीला विग्रह से ही काननचारी होकर मुनिगण को सुलभ हो रहे हैं। खरारि होकर उन्हें अभय दे रहे हैं। अनुज लक्ष्मण तथा श्री सीता शक्ति साथ में हैं। अतः उनके साथ ही हृदय में बसाना चाहते हैं जिसमें सानन्द निवास हो। यथा : राम लखन सीता सहित सोहत परन निकेत। जिमि बासव बस अमरपुर सची जयंत समेत। भाव यह कि दण्डक वन की भाँति अपने मनको पवित्र करने की प्रार्थना करते हैं।

जे जानहिं ते जानहु स्वामी। सगुन अगुन उर अंतरजामी ॥
जो कोसल पति राजिव नयना। करौ सो रामु हृदय मम अयना ॥१०॥

अर्थ : हे स्वामी ! जो आपको सगुण निर्गुण और उर अन्तर्यामी भी जानते हैं वे जाना करें। मेरे हृदय को तो जो राजीवनयन कोसलपति राम हैं वे ही घर बनावें।

व्याख्या : रामजी सगुण निर्गुण तथा अन्तर्यामी रूप हैं। ऐसा शास्त्र कहता है। और शास्त्रज्ञ लोग इस बात को जानते हैं। सो उनका जानना उन्हीं के लिए कल्याणदायक हो। मैं तो ऐश्वर्य उपासक नहीं। मेरे लिए तो माधुर्य ही सब कुछ है। अतः मैं सगुण निर्गुण या अन्तर्यामी रूप नहीं चाहता। मैं तो राजीवलोचन कोसलपति रामको हृदय में बसाना चाहता हूँ। सो रामजी अवतीर्ण होकर कोसलपति हुए हैं। वे मेरे मन में घर करें। पहिले काननचारी रूप से बसने की प्रार्थना की थी। फिर सोचा कि यह रूप तो कुछ ही दिनों के लिए है। इसके बाद जाकर अयोध्या के राजा हो जायँगे। अतः कोसलपति होकर भी हृदय में निवास करें।

अस अभिमान जाइ जनि भोरें। मैं सेवक रघुपति पति मोरें ॥
सुनि मुनि बचनु राम मन भाए। बहुरि हरषि मुनिवर उर लाए ॥११॥

अर्थ : ऐसा भूलकर अभिमान न छूटे कि मैं सेवक हूँ और श्री रघुनाथजी मेरे स्वामी हैं। मुनिजी का वचन सुनकर श्रीरामजी मन में बहुत प्रसन्न हुए। तब उन्होंने फिर हर्षित होकर श्रेष्ठ मुनि को हृदय से लगा लिया।

व्याख्या : सरकार को अभिमान प्रिय नहीं है। अतः भक्त को अभिमान होने देना प्रभु नहीं चाहते। यथा : जन अभिमान न राखहिं काऊ। पर सेवक-सेव्यभाव-वाला अभिमान तो भक्ति का प्राण है। इतना ही ज्ञानी और भक्त में अन्तर है। ज्ञानी भी ब्रह्ममय जगत् को देखता है। भक्त भी ब्रह्ममय देखता है। पर ज्ञानी में कोई अभिमान नहीं रहता। अपने अस्तित्व को भी ब्रह्म में लय कर देता है। भक्त

सेवक रूप से अपना अस्तित्व अलग बनाये रहता है। यथा : मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवंत।

यह गुणग्राम पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्र है। इसमें दो तारे चमक रहे हैं। एक रूप और दूसरा गुण। नौमि के साथ द्वितीयान्त विभक्तिवाले रूप के विशेषण हैं और त्रातु के साथ प्रथमान्त विभक्तिवाले गुणबोधक शब्द हैं। इन्हीं दोनों ताराओं की चमक सम्पूर्ण स्तुति में है। दूसरी बात यह है कि इस तारा का रूप मञ्च सा है। मञ्च की स्थिरता नहीं। जहाँ आवश्यक हो उठाकर रख दिया। इसी भाँति इस स्तुति में स्थिरता नहीं है। कहीं बसहु मनसि मन काननचारी : कहीं काननचारी को बसाते हैं तो कहीं कोसलपति को बसाना चाहते हैं। कहीं मम हिय गगन इन्दु इव बनहु : कहते हैं। सिद्धान्त तो यह है कि सगुन उपासक परहित निरत नीति दृढ़ नेम। ते नर प्रान समान मम जिन्हके द्विजपद प्रेम। अतः सगुणोपासना ही ध्येय जानकर मुनिजी के वचन सरकार को प्यारे लगे। प्राण समान प्रिय होने से फिर हृदय से लगाया।

परम प्रसन्न जानु मुनि मोही। जो बर माँगहु देउँ सो तोही॥
मुनि कह मैं बर कबहुँ न जाँचा। समुझि न परइ झूठ का साँचा॥१२॥

अर्थ : हे मुनि! मुझे परम प्रसन्न जानो। जो वर माँगो वही तुम्हें दूँ। मुनि ने कहा कि मैंने कभी वर नहीं माँगा। क्योंकि यह रूढ़ि का साँचा समझ में नहीं आता। अथवा क्या झूठ है क्या सत्य है : यह समझ में नहीं आता।

व्याख्या : प्रभु की प्रसन्नता अमोघ है और मुनिपर परम प्रसन्न हैं। अतः कहते हैं कि मुझे परम प्रसन्न जानकर माँगो अर्थात् माँगने में कसर न करो। यह शङ्का मन में न करो कि अमुक वस्तु न मिलेगी। जो तुम्हें अच्छा लगेगा वही तुमको दूँगा। सरकार महादानी हैं। याचक को प्रोत्साहन देते हैं कि थोड़ा न माँगना। यथा : बोले कृपा निधान पुनि अति प्रसन्न मोहि जानि। माँगहु वर जोइ भाव मन महादानि अनुमानि।

मुनिजी ने कहा कि वरदान तो मैंने कभी माँगा नहीं। क्योंकि यह संसार रूढ़ि का साँचा है। बस ऐसा ही न जाने कब से चढ़ा आता है। अच्छे बुरे का पता नहीं चलता। सम्भव है कि जिसे मैं अमृत समझता हूँ वह विष हो। यदि झूठ का साँचा पाठ माना जाय तो यह अर्थ करना होगा कि मुझे झूठ और सच का परिज्ञान नहीं। झूठ और सच की पहिचान बिना ब्रह्मज्ञान के होती नहीं। यथा : झूठेहु सत्य जाहि बिनु जाने। जिमि भुजंग बिनु रजु पहिचाने। और मुझे ब्रह्मज्ञान नहीं है। इससे मुझे पहिचान नहीं है। सम्भव है कि कोई मिथ्या वस्तु माँग लें। इसीलिए मैंने कभी वरदान नहीं माँगा। सदा से फलानुसन्धान रहित कर्म करते आये।

तुम्हहि नीक लागै रघुराई। सो मोहि देहु दास सुखदाई॥
अबिरल भगति बिरति बिग्याना। होहु सकल गुन ग्यान निधाना॥१३॥

अर्थ : हे रघुनाथजी ! जो तुम्हें अच्छा लगे। हे दासों के सुख देनेवाले ! वही मुझे दो। तुम प्रगाढ़ भक्ति, वैराग्य, विज्ञान और सभी गुण और ज्ञान के निधान हो जाओ।

व्याख्या : प्रभु माँगने के लिए कहते हैं। अतः अवश्य माँगूँगा। सो हे रघुनाथजी ! आप सर्वज्ञ हैं। आप दासों के सुख देनेवाले हैं और मैं आपका दास हूँ। आप निर्णय कर सकते हैं कि कौन वस्तु मेरे लिए सुखकारक होगी। आप मुझे सुखी करना चाहते हैं : इसलिए जो वर माँगहु देहु सो तोही कह रहे हैं। पर मेरी चाह तो यही है जो आपको अच्छी लगे। जो आप न चाहें वह मैं भी नहीं चाहता। सो अपने पसन्द के अनुसार ही मुझे दो।

प्रभु ने मुनीजी की बात को युक्तियुक्त समझकर स्वयं उनके हितकर पदार्थों का निर्णय किया। अथवा अपने पसन्द के अनुसार बोले कि पाँच बातें हमें पसन्द हैं : १. अविरल भक्ति २. वैराग्य ३. विज्ञान ४. सकल गुण निधानता तथा ५. ज्ञान निधानता। अतः पाँचों तुम्हें दिया।

प्रभु जो दीन्ह सो बरु मैं पावा। अब सो देहु मोहि जो भावा ॥१४॥

अर्थ : प्रभुने जो दिया वह वर तो मैंने पा लिया। अब जो मुझे अच्छा लगा सो दीजिये।

व्याख्या : सरकार के देते ही पाँचों बातें मुनिजी को प्राप्त हो गयीं। वे स्वयं अनुभव कर रहे हैं कि अविरल भक्ति विज्ञानादि पाँचों गुण उनमें प्रवेश कर गये। अतः कहते हैं कि सरकार ने जो जो दिया सो सब मुझे मिल गया। अब सब बातें मेरी समझ में आने लगीं। फिर भी देखते हैं कि जिस बात की मुझे चाह थी वह परम कल्याणकारी है और उसे सरकार ने नहीं दिया। अतः कहते हैं कि अब मुझे जो अच्छा लगा है उसे दीजिये।

दो. अनुज जानकी सहित प्रभु, चाप - बान धर राम।
मम हिय गगन इंदु इव, बसहु सदा येह काम ॥११॥

अर्थ : हे प्रभो ! हे रामजी ! कामना यह है कि छोटे भाई लक्ष्मण और सीताजी के सहित मेरे हृदय रूपी आकाश में चन्द्रमा की भाँति निवास कीजिये।

व्याख्या : परन्तु चाहने में दो बात हो गयी थी। बसतु हृदय मम कानन चारी और जो कोसलपति राजिव नयना। करहु सा राम हृदय मम अयना। अतः इस बार और भी सँभालकर माँगते हैं। रामजी का निवास वन में तो बहुत थोड़े दिनों के लिए है और कोसलपुरी में तो बहुत दिनों तक रहेगा पर सदा तो नहीं रहेगा और चन्द्रमा का निवास आकाश में रहता है। अतः मुनिजी चन्द्रमा की भाँति सरकार को अपने हृदय गगन में सदा के लिए बसाना चाहते हैं। सूर्य की भाँति अकेले नहीं। जैसे चन्द्रमा बुध और रोहिणी के साथ बसते हैं उसी भाँति सरकार भी छोटे भाई लक्ष्मण तथा सीताजी के सहित बसें। कभी सरकार का

विछोह न हो। इस भाँति मुनिजी ने सदा के लिए तीनों मूर्तियों को हृदय में बसा लिया।

एवमस्तु करि रमानिवासा। हरखि चले कुंभज रिषि पासा ॥
बहुत दिवस गुर दरसनु पाएँ। भए मोहि एहिं आश्रमु आएँ ॥१॥

अर्थ : एवमस्तु ऐसा वरदान देकर रमानिवास रामजी हर्षित होकर अगस्त्य ऋषि के पास चले। गुरुजी का दर्शन पाये और इस आश्रम में आये मुझे बहुत दिन हुए।

व्याख्या : सरकार परम प्रसन्न हैं। अतः स्वयं भी वर दिया और मुनिजी के माँगे हुए वर के लिए ऐसा ही हो कहा और एक रूप से उनके हृदय में निवास किया। दूसरे रूप से चले। अगस्त्यजी वसिष्ठजी के भाई हैं। अतः उनके दर्शन के लिए हर्षित होकर चले।

अगस्त्यजी से रावण वध के लिए मन्त्र लेंगे। शरणागत मुनियों के त्रास का हरण करके उन्हें सुख देंगे। इसलिए रमानिवास कह रहे हैं। यथा : दे भक्ति रमानिवास त्राणहरण सरन सुखदायकं।

गुरुजी के आश्रम में जाने का प्रभु का विचार जानकर सुतीक्ष्णजी ने कहा कि गुरुजी के आश्रम को छोड़कर यहाँ मुझे बहुत दिन हुए और जब से यहाँ आये तब से गुरुजी का दर्शन नहीं किया : इतने सन्निकट होने पर भी गुरुजी का दर्शन न करना शास्त्रविरुद्ध है और उसकी अभिलाषा भी है। फिर भी न जाने का कारण था। बिना सरकार को सङ्ग लिये गुरुजी के पास जा नहीं सकते थे।

अब प्रभु संग जाहु गुर पाँहीं। तुम्ह कहुँ नाथ निहोरा नाँहीं ॥
देखि कृपानिधि मुनि चतुराई। लिए संग बिहँसे द्वौ भाई ॥२॥

अर्थ : अब प्रभु के साथ गुरुजी के पास चलूँ। हे नाथ! यह निहोरा आप पर नहीं है। कृपानिधि मुनिजी की चतुराई देखकर उन्हें साथ ले लिया और दोनों भाई विहँसे।

व्याख्या : मुनिजी कहते हैं कि अब आपके सङ्ग गुरुजी के पास चलूँगा। आपको पहुँचाने नहीं जा रहा हूँ। इसलिए आप पर निहोरा नहीं है। अपने मतलब से जा रहा हूँ।

प्रभु कृपानिधि हैं। नयी कृपा करते ही जाते हैं। यथा : बिगरी बनावै कृपानिधि की कृपा नई। मुनिजी की चतुराई देखा कि साथ में चलकर मुझे गुरुजी को दक्षिणा रूप में देना चाहते हैं। गुरुजी के पास बिना मेरे साथ न जाने का अर्थ क्या है? अतः मुनिजी की चतुराई पर दोनों भाई खूब हँसे और साथ ले लिया।

३०. प्रभु अगस्त्यसत्संग

पंथ कहत निज भगति अनूपा। मुनि आश्रम पहुँचे सुरभूपा ॥
तुरत सुतीछन गुरु पहँ गयऊ। करि दंडवत कहत अस भयऊ ॥३॥

अर्थ : रास्ते में अपनी अनूप भक्ति का वर्णन करते हुए सुरभूप रामजी मुनिजी के आश्रम पर पहुँच गये। सुतीक्ष्णजी तुरन्त गुरुजी के पास गये और दण्डवत् करके ऐसा कहने लगे।

व्याख्या : बातचीत करते करते रास्ता कट जाता है। अतः रास्ता चलते बातचीत होती जाती है। यथा : बरनत पंथ बिबिध इतिहासा। बिस्वनाथ पहुँचे कैलासा। मुनिजी को भक्ति प्रिय है और सरकार को भी वही प्रिय है। इसलिए अनूप भक्ति जो सुख की मूल है उसका वर्णन करते चले। यथा : भगति तात अनुपम सुख मूला। मिलइ जो संत होहिं अनुकूला। सुरभूप हैं। प्रजा के हित के लिए पहुँचे।

सुतीक्ष्णजी गुरुजी के पास त्वरित गति से आगे बढ़ गये और जाकर दण्डवत् किया। गुरुजी साकांक्ष हुए कि गुरु दक्षिणा में रामजी को मिलाने के लिए कहकर गया था। इतने दिनों के बाद आया है। देखें क्या कहता है ?

नाथ कोसलाधीस कुमारा। आए मिलन जगत आधारा ॥
राम अनुज समेत बैदेही। निसि दिनु देव जपत हहु जेही ॥४॥

अर्थ : हे नाथ ! कोशलाधीश के कुमार जगत् के आधार रामजी छोटे भाई तथा जानकीजी के समेत मिलने आये हैं। हे देव ! जिनका आप दिन रात जप करते हैं।

व्याख्या : कोसलाधीस कुमारा कहकर दाशरथि राम अर्थात् अवतार होना द्योतित किया। यथा : ते दसरथ कौसल्या रूपा। कोसलपुरी प्रकट नरभूपा। तिनके गृह अवतरिहौं जाई। जगत् आधार से ब्रह्म कहा। यथा : एहि बिधि जग हरि आश्रित रहई। आये मिलन से गुरु दक्षिणा की उपस्थिति कही। गुरुजी राम बाम दिसि जानकी लखन दाहिनी ओर के उपासक हैं। अतः केवल रामजी के आने की बात सुनकर मनोरथ को पूर्ण न मानते हुए उतने प्रसन्न हुए जितना होना चाहिए था।

सुतीक्ष्णजी की बुद्धि बड़ी तीक्ष्ण है। तुरन्त समझ गये। अतः कहते हैं : अनुज समेत बैदेही : आये हुए हैं। रात दिन जिसे आपजपा करते हैं : कहकर अभिलाषा की पूर्ति की ओर सङ्केत करते हैं।

सुनत अगस्ति तुरत उठि धाए। हरि बिलोकि लोचन जल छाए ॥
मुनि पद कमल परे द्वौ भाई। रिषि अति प्रीति लिये उर लाई ॥५॥

अर्थ : यह सुनते ही अगस्त्यजी तुरन्त उठकर दौड़े। भगवान् को देखते ही उनकी आँखों में जल भर आया। दोनों भाई मुनिजी के चरणों में गिरे। ऋषिजी ने अत्यन्त प्रेम से हृदय में लगा लिया।

व्याख्या : सुनते ही अगस्त्यजी अति उत्कण्ठा से उठकर दौड़ पड़े। आगे जाकर लेना चाहिए। कहीं चले न आवें और इस सत्कार से मैं वञ्चित रह जाऊँ

अथवा आश्रम द्वार पर ही कहीं खड़े न हों। प्रभु को देखा तो सात्त्विक भाव हुआ। आँखों में आनन्दाश्रु छा गया। दृष्टि थोड़ी हो गयी। गुरुजी के सम्बन्ध से दोनों भाइयों ने दण्डवत् किया। अगस्त्यजी बड़े ऊँचे दर्जे के ऋषि हैं। इनके यहाँ साक्षात् शङ्कर भगवान्-सत्सङ्ग के लिए आते हैं। सनकादिक आते हैं। यथा : एक बार त्रेता जुग माहीं। संभु गये कुंभज रिषि पाहीं। तहाँ रहे सनकादि भवानी। जहँ घट संभव मुनि बिज्ञानी। दण्डवत् करते देखकर ऋषिजी ने अत्यन्त प्रीति से हृदय में लगा लिया। अपने सन्तप्त हृदय को शीतल किया।

सादर कुसल पूँछि मुनि ग्यानी। आसन बर बैठारे आनी॥
पुनि कर बहु प्रकार प्रभु पूजा। मोहिं सम भाग्यवंत नहिं दूजा॥६॥

अर्थ : ज्ञानी मुनि ने आदरपूर्वक कुशल पूछकर उन्हें लाकर आसन पर बिठलाया। फिर बहुत प्रकार से प्रभु की पूजा करके बोले कि मेरे समान दूसरा कोई भाग्यवान् नहीं है।

व्याख्या : मुनि ज्ञानी कहकर उनकी भक्ति को अहैतुकी कहा। यथा : आत्मारामाश्च मुनयो निर्ग्रन्था अप्युरुक्रमे। कुर्वन्त्यहैतुकीं भक्तिमित्थम्भूतगुणो हरिः। आदर से विनय पूछना सत्कार का प्रथम अङ्ग है। तत्पश्चात् आश्रम में ले गये। आसन दिया। सरकार को उनके सामने आसन पर बैठाने में सङ्कोच है। अतः मुनिजी ने आग्रहपूर्वक बिठाया। भगवती गायत्रीरूपा ब्राह्मणों की उपास्य देवता हैं। अतः उसके उपासना के विरुद्ध पड़ने की आशङ्का से प्रणाम नहीं करतीं। केवल बड़ों की आज्ञा से वसिष्ठजी को प्रणाम करती हैं। यथा : सास ससुर गुरु सेवा करेहू।

पञ्चोपचार, षोडशोपचार, सहस्रोपचार पूजा की जाती है। यहाँ कोई नियम नहीं। जितने प्रकार की पूजाएँ बन पड़ीं सभी की गयीं। तत्पश्चात् अपने भाग्य की प्रशंसा की। साक्षात् प्रभु के आगमन से बढ़कर और भाग्य क्या होगा। अथवा सरकार की प्राप्ति से भाग्यवान् तो और लोग भी हुए। पर गुरुदक्षिणा में सरकार को मुनिजी ने ही पाया। इसलिए मो सम भाग्यवंत नहिं दूजा कह रहे हैं।

जहँ लगि रहे अमर मुनि बृंदा। हरषे सब बिलोकि सुख कंदा॥७॥

अर्थ : जितने मुनि थे वे सब सुख के बादल रामजी को देखकर हर्षित हुए।

व्याख्या : अपर मुनिवृन्द श्रीराम मन्त्र की व्याख्या सुन रहे थे। जिस समय प्रभु आये उस समय अगस्त्यजी श्रीराम मन्त्र की व्याख्या कर रहे थे। व्याख्या समाप्त होते न होते श्रीरामजी की प्राप्ति हो गयी। आनन्द की वर्षा हो गयी। यथा : भूसुर ससि नव बृंद बलाहक हैं। अतः मुनि लोग नव शस्य की भाँति आनन्द कन्द की प्राप्ति से हर्षित हो उठे।

दो. मुनि समूह महँ बैठे, सनमुख सब की ओर।
सरद इंदु तन चितवत, मानहु निकर चकोर॥१२॥

अर्थ : मुनि समूह के बीच में रामजी सबके सम्मुख बैठे। जैसे चकोर का समूह शरत्‌चन्द्र की ओर टकटकी लगाये देख रहा हो।

व्याख्या : मुनिमण्डली के मध्य में बैठे हैं। और किसी की ओर पीठ नहीं है। सब अपने सामने ही देख रहे हैं। मुनिलोग बड़े प्रेमी हैं। बड़े आनन्द से दर्शन कर रहे हैं। इसलिए चकोर निकर से उपमा दी। रामजी बड़े सुन्दर हैं। इसलिए उन्हें शरत्‌चन्द्र से उपमित किया। चकोरों को चन्द्रमा का दर्शन बड़ा प्रिय है। किं पुनः शरत्‌चन्द्र के दर्शन से तो वे अघाते ही नहीं। ऐसी ही मुनियों की दशा हुई। चन्द्रमा का पृष्ठ भाग किसी को दृष्टिगोचर नहीं होता। क्योंकि चन्द्रमा अपनी धुरी पर नहीं घूमते। सरकार का इच्छामय रूप है। अतः सङ्कल्पानुसार दर्शन हो रहा है।

तब रघुबीर कहा मुनि पाँहीं। तुम्ह सन प्रभु दुराव कछु नाँहीं ॥
तुम्ह जानहु जेहि कारन आयेउँ। ताते तात न कहि समझाएउँ ॥१॥

अर्थ : तब रघुबीर ने मुनिजी से कहा हे प्रभो ! आपसे कोई छिपाव नहीं है। मैं जिस कारण से आया हूँ आप जानते हैं। इससे हे तात ! मैंने समझाकर नहीं कहा।

व्याख्या : जब पूजनोपरान्त मुनिजी कृतकृत्य होकर बैठे तब कहा। रघुबीर हैं : अपनी प्रतिज्ञा : निसिचर हीन करौं महि भुज उठाइ प्रन कीन्ह : पूरी किया चाहते हैं। अगस्त्यजी को सरकार प्रभु कहते हैं। स्वामी सेवक का नाता जोड़े बैठे हैं। स्वामी से छिपाव नहीं करना चाहिए। यथा : स्वामिहि सर्व भाव छल त्यागी। अतः कहते हैं कि आप से कोई छिपाव नहीं है। भावार्थ यह कि औरों से छिपाव है। यथा : गुप्त रूप अवतरेउ प्रभु।

दूसरी बात यह कि जो भेद जानता हो उससे क्या दुराव है। लोग तो यही जानते हैं कि कैकेयी के वरदान के कारण पिता ने वन दिया। इसीलिए आये हैं। पर मुख्य कारण आप जानतें हैं। तुलसी जो गृह रहौं मातु हित को सुरधेनु बिप्र भय टारे। गी.। वाल्मीकिजी से थोड़ा दुराव किया था। सो उन्होंने सारा भेद ही खोल दिया। यथा : श्रुति सेतु पालक राम तुम जगदीस माया जानकी। जो सृजति जग पालति हरति रुख पाइ कृपा निधान की। जो सहस सीस अहीस महिधर लखन सचराचर धनी। सुरकाज धरि नरराज तन चले दलन खल निसिचर अनी। अतः कहते हैं कि आप जानते हैं विस्तार से कहने की अवश्यकता नहीं है।

अब सो मंत्र देहु प्रभु मोही। जेहि प्रकार मारौं मुनिद्रोही ॥
मुनि मुसुकाने सुनि प्रभु बानी। पूछेहु नाथ मोहि का जानी ॥२॥

अर्थ : हे प्रभो ! अब मुझे ऐसा मन्त्र दीजिये जिस प्रकार से मुनिद्रोही को मैं मारूँ। प्रभु की वाणी सुनकर मुनिजी मुसकुराये : बोले कि मुझसे नाथ ! क्या समझकर पूछ रहे हैं।

व्याख्या : भाव यह कि प्रतिज्ञा तो कर दिया कि निसिचर हीन करौं महि पर तब से एक निसिचर भी हाथ न लगा। विराध्र बध से सब सावधान हो गये हैं। सामना बचा जाते हैं। अब ऐसा मन्त्र चाहिए कि जिसमें निसिचर सामने आवें और उन्हें मार सकूँ। यहाँ मन्त्र शब्द का अर्थ सम्मति है। यथा : मंत्र न यह लछिमन मन भावा।

रामजी मुनिजी को प्रभु कहते हैं। और मुनिजी रामजी को प्रभु कहते हैं। परस्पर एक दूसरे में स्वामी सेवक भाव मान रहे हैं। मुनिजी मुसकुराये कि सर्वज्ञ तथा सर्वशक्तिमान् होकर कैसी अल्पज्ञ तथा अल्प सामर्थ्य की सी वाणी बोल रहे हैं। अतः कहते हैं कि मुझे क्या समझकर पूछा। नियम यह है कि अपने अधिक जानकार से बात पूछी जाती है। क्या मैं आपके पूछने योग्य हूँ जो आप पूछ रहे हैं। प्रभु के स्थान पूछने पर वाल्मीकिजीने भी ऐसा ही उत्तर दिया था कि जहँ न होउ तहँ देउँ कहि तुम्हहि बतावों ठाउँ। भरद्वाजजी से रास्ता पूछा तो उन्होंने कहा : सुगम सकल मग तुम कहँ अहहीं। ऐसा ही उत्तर अगस्त्यजी दे रहे हैं।

तुम्हरेइ भजन प्रभाव अघारी। जानौं महिमा कछुक तुम्हारी ॥
ऊमरि तरु बिसाल तव माया। फल ब्रह्मांड अनेक निकाया ॥३॥

अर्थ : हे पाप नाशक ! तुम्हारे ही भजन के प्रभाव से तुम्हारी कुछ महिमा मैं जानता हूँ। तुम्हारी माया गूलर के विशाल वृक्ष के समान है। जिसमें ब्रह्माण्डों के अनेक समूह फलरूप से लगे हुए हैं।

व्याख्या : मुनिजी कहते हैं कि मेरी जानकारी इतनी ही है कि आपकी महिमा का प्रादेशमात्र जानता हूँ। इतना ज्ञान भी आपके भजन से ही हुआ। यथा : जाना चहहिं गूढ गति जेऊ। नाम जीह जपि जानहिं तेऊ। यही तो मेरी जानकारी है। उसे भी सुन लीजिये।

मुनिजी ने प्रभु की माया की उपमा गूलर के वृक्ष से दिया। इससे अच्छी उपमा दूसरी मिलनी दुर्लभ है। अब साधारण धर्म कहते हैं। गूलर के वृक्ष में तमाम फलों के गुच्छे लगते हैं। उसी भाँति मायावृक्ष में ब्रह्माण्ड निकाय लगे हुए हैं। यथा : रोम रोम प्रति लागे कोटि कोटि ब्रह्मांड।

जीव चराचर जंतु समाना। भीतर बसहिं न जानहिं आना ॥
ते फल भच्छक कठिन कराला। तव भय डरत सदा सोउ काला ॥४॥

अर्थ : ये चराचर जीव उन फलों के जन्तु के समान हैं। जो उनके भीतर बसते हैं। और दूसरा कुछ भी नहीं जानते। उन फलों का खानेवाला काल है। वह कठिन कराल है। पर आपके डर से वह भक्त सदा डरा करता है।

व्याख्या : जिस भाँति गूलर के फल के भीतर जन्तु बसते हैं उसी भाँति ब्रह्माण्ड के भीतर चराचर जीव बसते हैं। न उन जन्तुओं को गूलर के फल के बाहर का कोई वृत्तान्त ज्ञात है और न चराचर जीवों को अपने ब्रह्माण्ड के बाहर का

कुछ पता है। मुनिजी कहते हैं कि मैंने आपके भजन के प्रभाव से इतना ही जान पाया है कि यही ब्रह्माण्ड सब कुछ नहीं है। ऐसे ऐसे अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड मायावृक्ष में गूलर के फल के गुच्छों की भाँति गुथे हुए हैं।

वह मायावृक्ष मानों काल के लिए ही लगा हुआ है। गूलर के फल की भाँति ही काल भी एक ब्रह्माण्ड का एक ही ग्रास करता है। लोग गूलर के फल को फोड़कर उसमें के जीवों को पहिले उड़ा देते हैं। तब उसे खाते हैं। पर काल ब्रह्माण्डों को जीवों के सहित खा जाते हैं। इसलिए कठिन कराल है। इस भाँति सब ब्रह्माण्डों को खाया करता है। गूलर वृक्ष की ही भाँति मायावृक्ष में नये नये ब्रह्माण्ड उत्पन्न हुआ करते हैं। और काल उनका कलेवा किया करता है। वह ऐसा कराल है कि उसका पेट भरता नहीं। केवल कलेवा से किसी का काम नहीं चलता। यथा : सुर नर असुर नाग मुनि देवा। नाथ सकल जग काल कलेवा : और प्रभु तो काल व्याल के भी भक्षक साक्षात् गरुड़ रूप हैं। अपने अन्तक से सभी डरते हैं। अतः वह काल भी आपके भय से भयभीत रहता है। भाव यह है कि उस काल का भी अन्त है। देशतः कालतः वस्तुतः अपरिच्छिन्न केवल आप हैं। आप ही कालत्रयातीत हैं।

ते तुम्ह सकल लोकपति साँई। पूछेहु मोहि मनुज की नाँई ॥
यह बर मागउँ कृपानिकेता। बसहु हृदय श्री अनुज समेता ॥५॥

अर्थ : वे ही आप सब लोगों के स्वामी होकर भी मुझसे मनुष्य की भाँति पूछ रहे हैं। हे कृपानिकेत ! मैं तो यह वर माँगता हूँ कि मेरे हृदय में सीताजी तथा छोटे भाई के सहित सदा निवास कीजिये।

व्याख्या : जैसी बात आपने पूछा ऐसी बातें तो मनुष्य पूछा करते हैं। आप तो मनुष्य नहीं हैं। आप तो काल के भी काल अखिल ब्रह्माण्डनायक हैं। आप स्वामी हैं। आपके ऐसा कहने से अस्मदादिक को मोह हो सकता है। यथा : प्रभु जोइ कहहु तुम्हहि सब सोहा। हमरे होत बचन सुनि मोहा। अतः मोह के भय से तुरन्त मुनिजी ने वरदान माँगा। अनुज श्री सहित बसने से फिर मोह का भय न होगा। अतः मेरे हृदय में सीता और अनुज सहित बसिये। यथा : तब लगि हृदय बसत खलना। लोभ मोह मत्सर मद माना। जब लगि उर न बसत रघुनाथा। धरे चाप सायक कटि माथा। तथा : भरत हृदय सिय राम निवासू। तहँ कि तिमिर जहँ तरनि प्रकासू : गुरु शिष्य की समान रुचि है। सुतीक्ष्णजी ने भी हृदय में बसाने के लिए वरदान माँगा था।

अबिरल भगति बिरति सतसंगा। चरन सरोरुह प्रीति अभंगा ॥
जद्यपि ब्रह्म अखंड अनंता। अनुभव गम्य भजहि जेहि संता ॥६॥

अर्थ : और प्रगाढ भक्ति वैराग्य सत्संग तथा चरण कमलों में अटूट प्रेम

माँगता हूँ। यद्यपि जिस अखण्ड और अनन्त ब्रह्म को सन्त भजते हैं वे अनुभव से ही जाने जाते हैं।

व्याख्या : अन्तराय रहित भक्ति को अविरल भक्ति कहते हैं। यह सब साधन का फल है। यथा : सबकर फल हरि भगति भवानी। वैराग्य सब धर्मों का फल है। यथा : तेहिकर फल पुनि विषय बिरागा। संतसङ्ग फल सिद्धि है। यथा : सतसंगति मुद मंगल मूला। सोइ फल सिधि सब साधन फूला। इस भाँति मुनिजी ने तीनों फल हो माँगा। फिर भी अटूट प्रेम के लिए प्रार्थना करते हैं। प्रेम का प्रवाह तैल धारावत् अविच्छिन्न होना चाहिए। बीच में भङ्ग न हो। भजन तो वैरभाव से भी होता है। यथा : वैरभाव सुमिरत मोहि निसिचर : पर मुनिजी को वैसा भजन पसन्द नहीं। क्योंकि उससे जाड़े में गङ्गास्नान की भाँति इस लोक में आनन्द नहीं मिलता। अतः प्रेम भाव से भजन चाहते हैं। गरमी में गङ्गास्नान की भाँति प्रेम भाव से भजन करने में इस लोक और परलोक दोनों में सुख है अथवा अविरल भक्ति ता निर्गुण रूप की भी होती है। अतः चरण सरोरुह प्रीति अभङ्गा से बात स्पष्ट कर दिया कि सगुण रूप की भक्ति मुनिजी चाहते हैं।

मुनिजी ने दोषापनयन के लिए सरकार का हृदय में निवास माँगा। अब गुणाधान के लिए अविरल भक्ति आदि माँग रहे हैं।

अब सगुण भक्ति माँगने का कारण कहते हैं। यद्यपि निर्गुण रूप से प्रभु ब्रह्म है। अत्यन्त बृहत् अर्थात् व्यापक है। वस्तुतः अपरिच्छिन्न है। अखण्ड होने से देशतः अपरिच्छिन्न है। अनन्त होने से कालतः अपरिच्छिन्न है। अनुभवगम्य है अर्थात् स्वसंवेद्य हैं। परम अधिकारी सन्त लोग उनका भजन करते हैं। यथा : मोहि परम अधिकारी जानी। लागे करन ब्रह्म उपदेसा। अज अद्वैत अगुन हृदयेसा : और यही परमार्थ रूप है।

अस तव रूप बखानौ जानौ। फिरि फिरि सगुन ब्रह्म रति मानौ ॥
संतत दासन्ह देहु बड़ाई। ताते मोहि पूँछेहु रघुराई ॥७॥

अर्थ : ऐसे रूप का मैं वर्णन करता हूँ और जानता हूँ। फिर भी लौट लौटकर सगुण ब्रह्म में ही रति मानता हूँ। आप सदा से ही दासों को बड़ाई देते आये हैं। इसीलिए हे रघुनाथजी ! आपने मुझसे पूछा है।

व्याख्या : सरकार के इस परमार्थ रूप का मैं वर्णन भी किया करता हूँ। ऐसा कहने पर भी मुनिजी कहते हैं कि रूप को मैं जानता हूँ। भाव यह कि वर्णन तो परोक्ष ज्ञानवाले भी किया करते हैं। पर उन्हें अनुभव नहीं है और वह रूप अनुभवगम्य है। मुनिजी का कहना है कि मुझे अनुभव भी है। अर्थात् अपरोक्ष ज्ञान भी है। फिर भी उस अनुभव से बारबार हटकर सगुण रूप में प्रीति करता हूँ। यथा : सुनि गुन गान समाधि बिसारी। सादर सुनहि परम अधिकारी : अतः समाधि छोड़कर सगुण ब्रह्म में प्रीति करता हूँ। क्योंकि प्रभु में गुण ही ऐसे हैं।

यह स्तुति उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र है। इसमें दो तारे चमकते हैं सगुण और निर्गुण। आकार शय्या का सा है। जिस भाँति दिनभर घूम फिरकर मनुष्य शय्या में ही विश्राम पाता है इसी भाँति निराधार निर्गुण में घूम घामकर शय्या की भाँति सगुण में ही रति होती है। यथा : अस तव रूप बखानौ जानौ। फिरि फ़िरि सगुन ब्रह्म रति मानौ : इस स्तुति की फलश्रुति में ग्रन्थकार ने कुम्भज शब्द रखकर स्पष्ट कर दिया कि यह अगस्त्यजी की स्तुति है। उन्हीं की भाँति अपार लोभसमुद्र को सोख जाती है। यथा : कुंभज लोभ उदधि अपार के। जिसे यह भावना हो गयी कि इस ब्रह्माण्ड में हम गूलर फल के कीट की भाँति रहते हैं : कुछ जानते नहीं : उसमें लोभ की भावना रह नहीं सकती।

मुनिजी के वरदान माँगने पर सरकार ने एवमस्तु नहीं कहा। क्योंकि उन्हें बड़ा मान लिया है पर दे दिया। मुनिजी अनुभव कर रहे हैं कि वरदान मिल गया। अब जो मन्त्र पूछा गया था उसके विषय में कहते हैं कि मैं दास हूँ। प्रभु की प्रीति दास पर अधिक है। अतः उन्हें बड़ाई देते हैं। नहीं तो आपके लिए अज्ञेय क्या है ? प्रभु के पूछने पर हठात् गुरु की भाँति उपदेश करने बैठना धृष्टता है और कुछ न कहना आज्ञा भङ्ग है। अतः भूमिकापूर्वक उत्तर देते हैं।

३१. दण्डक वन की पावनता

है प्रभु परम मनोहर ठाँऊँ। पावन पंचवटी तेहि नाँऊँ ॥
दंडक बनु पुनीत प्रभु करहू। उग्र श्राप मुनिवर कर हरहू ॥८॥

अर्थ : हे प्रभो ! एक परम मनोहर स्थान है। पवित्र पञ्चवटी उसका नाम है। हे प्रभो ! आप दण्डक वन को पवित्र कीजिये और श्रेष्ठ मुनि के उग्र शाप को दूर कीजिये।

व्याख्या : अब अपनी सम्मति कहते हैं कि दण्डक वन में एक स्थान है जिसे पञ्चवटी कहते हैं। वह परम मनोहर है। अश्वत्थो बिल्ववृक्षश्चवटो धात्री अशोककम्। वटीपञ्चकमित्युक्तं स्थापयेत् पञ्चदिक्षु च। वहाँ पाँच दिशाओं में पञ्चवट स्थापित हैं। पीपल, बेल, वट, आँवला और अशोक। उसका नाम पवित्र है। वह स्थान तो भृगुमुनि के शाप से अपवित्र हो चुका है : वह दण्डक राजा का राज्य था। उसने मुनिपुत्री के साथ बलात्कार किया। इस पर मुनिजी ने दारुण शाप दिया। वह राज्य नष्ट होकर वन हो गया। वहाँ राक्षस रहते हैं। मुनि नहीं रह सकते। उसको शाप 'विनिर्मुक्त करने में आप ही समर्थ हैं। अर्थात् वहाँ आपको राक्षस मिलेंगे। वह स्थान बड़ा रमणीय है। आपके जाने से शाप के कारण जो अपवित्रता आगयी है : राक्षसों का निवासस्थल हो गया है : वह अपवित्रता दूर हो जायगी।

बास करहु तहँ रघुकुल राया। कीजे सकल मुनिन्ह पर दाया ॥
चले राम मुनि आयसु पाई। तुरतहिं पंचवटी नियराई ॥९॥

अर्थ : हे रघुकुल के राजा ! आप वहीं वास कीजिये और सब मुनियों पर दया कीजिये। मुनिजी की आज्ञा पाकर रामजी वहाँ से तुरन्त ही चल दिये और पञ्चवटी के सन्निकट पहुँच गये।

व्याख्या : आपके निवास योग्य वह स्थल है। वहीं आप निवास कीजिये। आप रघुकुल के राजा हैं। आपको दुष्टों को दण्ड देने का अधिकार और सामर्थ्य है। मुनिजी महात्मा हैं। राक्षसों का वध करना न कहकर मुनियों पर दया करने को कहते हैं। मुनियों पर दया करके ही प्रभु प्रतिज्ञा कर चुके हैं : निसिचर हीन करौं महि। उस प्रतिज्ञा की पूर्ति वहीं निवास करने से होगी। दुष्टों का निग्रह ही सज्जनों पर अनुग्रह करना है। यही बड़ी भारी अहिंसा है और दुष्टों पर अनुग्रह ही बड़ी भारी हिंसा है। इस अहिंसा के सिद्धान्त के स्थापना के लिए ही अवतार होता है। यथा : परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्। धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे।

आज्ञा पाने से ही आज्ञा माँगना अर्थतः सिद्ध है। प्रतिज्ञा पूर्ति की उत्कट इच्छा है। अतः तुरन्त चल दिये। इसलिए केवल रामजी का ही चलना लिखते हैं। क्योंकि केवल उन्हीं ने प्रतिज्ञा की थी। वहाँ से पञ्चवटी दो योजन पर थी। अतः उसी दिन उसके निकट पहुँच गये।

३२. गीध मैत्री प्रसङ्ग

दो. गीधराज सैं भेंट भइ, बहु बिधि प्रीति बढ़ाइ।
गोदावरी निकट प्रभु, रहे परन गृह छाइ ॥१३.७॥

३३. पञ्चवटी निवास मुनित्रास भञ्जन प्रसङ्ग

अर्थ : वहाँ गीधराज से भेंट हुई। उसके साथ बहुत प्रकार से प्रेम बढ़ाकर प्रभु गोदावरी नदी के निकट पत्ते की कुटी बनाकर रहने लगे।

व्याख्या : गीधराज का नाम जटायु था। वे वहाँ रहते थे। उनसे भेंट हुई। बड़े पुराने परिचित निकले। महाराज दशरथ की उनकी मैत्री थी। इस भेंट से वह प्रीति और बढ़ी। उन्होंने कहा कि जिस समय आप दोनों भाई आखेट के लिए जायँगे उस समय मैं जानकीजी की रक्षा करूँगा। एक सहायक मिलने के नाते से भी प्रीति बढ़ी। इसलिए कवि लिखते हैं : बहु बिधि प्रीति बढ़ाइ। प्रभु समर्थ हैं : गोदावरी नाम की पुण्य नदी के निकट पर्णकुटी बनाकर ठहर गये। नहीं तो वहाँ राक्षसों का इतना भय था कि देवता लोग कुटी बनाने नहीं आये। जैसा कि चित्रकूट में किया था या प्रवर्षण गिरि पर करेंगे। यथा : प्रथमहि देवन्ह गिरि गुहा राखी रुचिर बनाइ। राम कृपा निधि कछु दिन बास करहिंगे आइ।

जब ते राम कीन्ह तहँ बासा। सुखी भये मुनि बीती त्रासा ॥
गिरि बन नदी ताल छबि छाए। दिन दिन प्रति अति होहिं सुहाए ॥१॥

अर्थ : जब से रामजी ने वहाँ निवास किया मुनि लोग सुखी हो गये। उनका डर जाता रहा। पहाड़ वन नदी ताल सब शोभा से छा गये। नित्य प्रति वे अधिक सुहावने होने लगे।

व्याख्या : अगस्त्यजी ने कहा था। बास करहु तहँ रघुकुल राया। कीजिअ सकल मुनिन्ह पर दाया। उसी का साफल्य दिखला रहे हैं। दया यह हुई कि वे अभय हो गये। सूर्पणखा रावण से कहेगी कि जिन्हकर भुजबल पाइ दसानन। अभय भये विचरत मुनि कानन। दण्डकारण्य के बाहर रहनेवाले भी त्रस्त रहते थे। अब तो सभी मुनि निर्भय आनन्द से वन में घूमने लगे।

अब मुनिजी के दूसरे वचन का साफल्य दिखलाते हैं। दूसरा वचन यह था कि : दंडक बन पुनीत प्रभु करहू। सो दण्डक वन पुनीत हो गया। परम मनोहर होने पर भी भयप्रद था। इससे उसकी मनोहरता दबी हुई थी। अब भय के हट जाने से निर्दोष हो गया। अतः कहते हैं कि शोभा छा गयी। इतना ही नहीं प्रभु के निवास के माहात्म्य से शोभा नित्य बढ़ने लगी। गिरि, वन, नदी और ताल ये ही प्राकृत दृश्य हैं। दण्डक वन में ये सब थे। इनकी शोभा नित्य नवीन मालूम होने लगी।

खग मृग वृंद अनंदित रहहीं। मधुप मधुर गुंजत छबि लहहीं॥
सो बन बरनि न सक अहिराजा। जहाँ प्रकट रघुबीर बिराजा॥२॥

अर्थ : पशु पक्षी सब आनन्दित होकर रहने लगे और मधुर गुंजार करते भौंरे शोभा पा रहे थे। जहाँ प्रत्यक्ष रघुवीर विराजमान हैं उस वन का स्वयं शेषजी वर्णन नहीं कर सकते।

व्याख्या : प्रभु के निवास से चित्रकूट की भाँति यहाँ भी सब जीवों ने सहज वैर छोड़ दिया और उस वन में एक दूसरे से प्रेम करने लगे। यथा : सहज वैर सब जीवन्ह त्यागा। गिरिपर सकल करहिं अनुरागा। अतः कहते हैं : खग मृग वृंद अनंदित रहहीं। वन के पेड़ सदा फूलने फलने लगे। यथा : फूलहिं फलहिं सदा तरु कानन। फल फूलों की सरसता कहते हैं कि भौंरे गूँज रहे थे। फल फूलों की शोभा भौंरों के गूजने से हो जाती है। अतः छबि लहहीं कह रहे हैं। वन में भी छवि है और वनवासी जीवों में भी छवि है।

सभी वर्णन करनेवालों में शेषजी को बड़ा सुभीता है। फणमण्डल से मण्डित होने से सब ओर एक साथ देखते हैं और वर्णन करने का साधन भी अत्यन्त अधिक है। सहस्रमुख हैं और एक एक मुख में दो दो जिह्वाएँ हैं। सब ओर से सबका वर्णन अनेक भाँति से एक साथ कर सकते हैं। पर यहाँ तो प्रभु के आने से क्षण क्षण नित्य नवीन शोभा बढ़ रही है। वर्णन करते ही करते शोभा आगे बढ़ जाती है। तब कैसे वर्णन कर सकें? इससे दण्डक वन का केवल दोषापनयन नहीं कहा। गुणाधान भी कहा।

३४. लक्ष्मणोपदेश प्रसंग

एक बार प्रभु सुख आसीना। लछिमन बचन कहे छलहीना॥
सुर नर मुनि सचराचर साँई। मैं पूछौं निज प्रभु की नाँई॥३॥

अर्थ : एक बार प्रभु सुख से बैठे थे। उस समय लक्ष्मणजी ने छलहीन वचन कहे। हे सुर नर मुनि तथा चराचर के स्वामी! मैं अपने स्वामी की भाँति पूछता हूँ।

व्याख्या : एकबार : भाव यह कि देश पहिले कह चुके है। सो बन बरनि न सक अहिराजा। जहाँ प्रकट रघुवीर बिराजा। अर्थात् दण्डक वन का यह वृत्तान्त है। समय के लिए कह रहे हैं कि दिन निश्चित नहीं। पर अगस्त्यजी से मिलकर पञ्चवटी में ठहरने के बाद और सूर्पणखा के आगमन के पहिले ही किसी दिन।

प्रभु कर्तुमकर्तुमन्यथा कर्तुं समर्थः प्रभुः अर्थात् समर्थ हैं। दण्डक वन का उग्र शाप हरण करके उसे पवित्र करके विराजमान हैं। यथा : अगस्त्य वचन : दंडक बन पुनीत प्रभु करहू। उग्र श्राप मुनिवर कर हरहू।

सुख आसीना : भाव यह कि नित्य क्रिया करके सावकाश बैठे हैं। एकान्त है। जनकनन्दनी भी वहाँ पर नहीं है। ऐसा ही समय प्रश्न के लिए उपयुक्त है। सुखासन से बैठे हैं। योगशास्त्र का भी यही अनुशासन है कि स्थिरसुखमासनम्।

लछिमन : बचपन से ही प्रभु के चरणों में प्रेम करनेवाले हैं। यथा : बारेहि ते निज हित पति जानी। लछिमन राम चरन रति मानी। अर्थात् भक्त भी और सखा भी।

छलहीन वचन कहे : यहाँ अहङ्कार का अनुवेध ही छल है। अन्याय युक्त प्रश्न करनेवाले का उत्तर देना निषिद्ध है। यथा : नापृष्टः कस्यचिद् ब्रूयात् न चान्यायेन पृच्छतः। यहाँ छलहीन शब्द से सच्ची जिज्ञासा दिखलायी। सुनी चहैं प्रभु मुख कै बानी। जो सुनि होइ सकल भ्रम हानी।

सुरनर मुनि सचराचर साइँ : भाव यह कि आप सर्वेश्वर हैं। सबके गुरु हैं। स सर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्। जगद्गुरुं च शाश्वतं। तुरीयमेव केवलं। इत्यादि।

मैं पूछौ : भाव यह कि मैं तो आपका निज दास हूँ। यथा : गुरु पितु मातु न जानउँ काहू। कहउँ सुभाउ नाथ पतिआहू। जहँ लगि जगत् सनेह सगाई। प्रीति प्रतीति निगम निजगाई। मोरे सबुइ एक तुम्ह स्वामी। दीनबंधु उर अंतरजामी।

निज प्रभु की नाइँ : भाव यह कि जीव और ईश्वर में अनेक सम्बन्ध है। यथा : मोहि तोहि नातो अनेक मानिये जो भावे। सो मुझे तो आप की ही गति है। दूसरे की आशा नहीं। अतः निज प्रभु की नाइँ पूछता हूँ। यथा : पुनि मोहि तिन्हते प्रिय निज दासा। जेहि गति मोरि न दूसरि आसा।

मोहि समुझाइ कहहु सोइ देवा । सब तजि करौं चरन रज सेवा ।।
कहहु ग्यान विराग अरु माया । कहहु सो भगति करहु जेहि दाया ।।४।।

अर्थ : हे देव ! मुझे वही समझाकर कहो । जिससे सब त्याग करके चरणरज की सेवा करूँ । मुझे ज्ञान विराग और माया बतलाओ और वह भक्ति बतलाओ जिससे दया करते हो ।

व्याख्या : देवा : श्रीरामजी इष्टदेव हैं । इसलिए देव सम्बोधन दिया । जिसकी सेवा करनी है उसीसे सेवा की विधि जान लेने से भ्रम को स्थान नहीं रह जाता । सो सेव्य होने से उनका देव शब्द से सम्बोधन किया गया ।

सोइ मोहि समुझाइ कहो : यद्यपि छहों प्रश्नों के लिए समझाकर कहने के लिए प्रार्थना है । तथापि सोइ शब्द के प्रयोग से अन्तिम प्रश्न पर अधिक जोर मालूम पड़ता है । क्योंकि सिद्धान्त तो थोड़े शब्दोंमें ही कहा जा सकता है । परन्तु साधन के बिना विस्तारपूर्वक कहे काम नहीं चलता । यह प्रश्न साधन विषयक है ।

सब तजि : भाव यह कि : आप सुर नर मुनि सचराचर साईं है । आपका सभी भजन करते हैं । रागी पुरुष को श्री चरणों में अति अनुराग नहीं हो सकता । वह तो विरागी को ही हो सकता है । यथा : जेहि लागि विरागी अति अनुरागी विगत मोह मुनि वृंदा । दूसरा भाव यह है कि बिना सब कुछ तजे रात दिन भजन नहीं हो सकता । यथा : अब प्रभु कृपा करहु एहि भाँती । सब तजि भजन करौं दिनराती ।

चरन रज सेवा करौं : लक्ष्मणजी का बड़ा प्रेम श्री चरणों में है । यथा : चापत चरन लषन उर लाये । समय सप्रेम परम सचुपाये । वह प्रेम पिपासा बढ़ती ही जाती है । अतः चरण रज सेवा को ही लक्ष्मणजी पूछते हैं । यहाँ पर चरण रज सेवा कहकर अपना आर्ताधिकारी होना सूचित किया ।

ग्यान : दूसरा प्रश्न ज्ञान विषयक है । क्योंकि कहहिं संत मुनि वेद पुराना । नहिं कुछ दुर्लभ ग्यान समाना । तथा : ग्यान मोच्छ प्रद वेद बखाना । विषय सम्बन्धी ज्ञान तो सभी को है । पर जानने योग्य ज्ञान कौन सा है ?

विराग : तीसरा प्रश्न विराग विषयक है । क्योंकि यही विवेक राजा का मन्त्री है । यथा : सचिव विराग विवेक नरेसू । इसके बिना संन्यासी भी उपहास योग्य समझा जाता है । यथा : सब नृप भये जोग उपहासी । जैसे बिन बिराग संन्यासी । वह विराग क्या है ?

अरु माया : यद्यपि माया में ही संसार पड़ा हुआ है । तथापि उसके जानने की आवश्यकता है । क्योंकि इसके चरित्र को कोई लख नहीं पाता । और इसी के वश में पड़ा हुआ संसार नाच रहा है । यथा : जो माया सब जगहि नचावा । जासु चरित लखि काहु न पावा । यह माया बिना रामजी की कृपा के नहीं छटती । लक्ष्मणजी इसका भी परिचय जानना चाहते हैं । यह चौथा प्रश्न है ।

कहहु सो भगति : भक्ति शब्द की व्युत्पत्ति दो प्रकार से है। एक तो भावव्युत्पत्ति है। यथा : भजनं अन्तःकरणस्य भगवदाकारता भक्तिः । भजन अर्थात् अन्तःकरण की भगवदाकारता भक्ति है और दूसरे में करणव्युत्पत्ति होती है। यथा : भज्यते सेव्यते भगवदाकारमन्तःकरणं क्रियते अनया। जिससे सेवन अर्थात् भगवदाकार अन्तःकरण किया जाता है उसे भक्ति कहते हैं। पहिली को फलरूपा और दूसरी को साधनरूपा भक्ति कहते हैं। शाण्डिल्यशतसूत्री तथा नारद-भक्तिसूत्र में परम प्रेम को भक्ति माना है। यथा : सा पराऽनुरक्तिरीश्वरे। शा. सू.। सा कस्मै परमप्रेमरूपा। परन्तु यह सात्त्विकी परिभाषा है। इसके अन्तर्गत राजस और तामस भक्त नहीं आ सकते। भक्तिरसायन में दी हुई परिभाषा में सभी प्रकार के भक्तों का समावेश है। यथा : द्रुतस्य भगवद्धर्माद् धारावाहिकतां गता। सर्वेशे या मनोवृत्तिर्भक्तिरित्यभिधीयते। भगवत् गुणश्रवण से जिसका चित्त द्रवीभूत होता है उसकी चित्तवृत्ति यदि परमेश्वर में धारावाहिकता को प्राप्त हो तो उसे भक्ति कहते हैं।

कहहु जेहि दाया : भजत कृपा करिहैं रघुराई। सो रघुराई सात्त्विकी भक्ति होने पर तो कृपा करते ही हैं। राजसी और तामसी भक्ति होने पर भी करते हैं। यथा : उमा राम मृदु चित करुनाकर। बैर भाव सुमिरत मोहि निसिचर। देहि परम गति सो जिअ जानी। अस कृपालु को कहहु भवानी।

दो. ईश्वर जीव भेद प्रभु, सकल कहहु समुझाइ।
जाते होइ चरन रति, सोक मोह भ्रम जाइ ॥१४.८॥

अर्थ : प्रभो ! ईश्वर और जीव में क्या भेद है। यह सब समझाकर कहिए। जिसमें आपके चरणों में प्रेम होकर शोक मोह तथा भ्रम दूर हो।

व्याख्या : ईश्वर जीव भेद : भाव यह कि ईश्वर भी चेतन है और जीव भी चेतन है। दोनों कर्म करते हैं। दोनों माया से सम्बद्ध हैं। दोनों अनादि हैं। फिर दोनों में अन्तर क्या ?

प्रभु : भाव यह कि पहिले ही कह आये हैं कि मैं पूछहुँ निज प्रभु की नाईं। अतः इस लछिमन उपदेश प्रकरण भर में सरकार के लिए प्रायेण प्रभु शब्द का ही प्रयोग है। यथा : एक बार प्रभु सुख आसीना। मैं पूछौं निज प्रभु की नाईं। ईश्वर जीव भेद प्रभु सकल कहहु समुझाइ। तथा : लछिमन प्रभु चरनहि सिरनावा।

सकल कहहु समुझाइ : भाव यह कि छहों प्रश्न समझाकर कहिए। यहाँ इन प्रश्नों का उत्तर केवल व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ अथवा परिभाषा मात्र से हो सकता है। अतः प्रार्थना की जा रही है कि समझाकर कहिए। समझाने से ही भ्रान्ति दूर होती है।

जाते होइ चरन रति : अपना लक्ष्य भी कहे देते हैं कि मेरा लक्ष्य भक्ति है : मुक्ति नहीं। जिसका लक्ष्य मुक्ति है उसके समझाने का मार्ग दूसरा है। जैसा कि

उत्तरकाण्ड के ज्ञान दीपक प्रसङ्ग में विस्तृत रूप से कहा गया है और भक्ति के समझाने का दूसरा ही मार्ग है। जो इस प्रकरण में कहा जायगा।

सोक मोह भ्रम जाई : इष्टवियोग जन्य दुःख से शोक होता है। मोह अज्ञान को कहते हैं। भ्रम अन्यथा ज्ञान कहते हैं। इसके विना हटे भक्ति नहीं होती। यथा : होइ विवेक मोह भ्रम भागा। तब रघुनाथ चरन अनुरागा। इससे यह भी दिखला दिया कि ये ही प्रश्न सब प्रश्नों के मूल हैं। इनका अभ्रान्त उत्तर यदि मन में बैठ जाय तो शोक मोह भय निवृत्तिपूर्वक भक्ति प्राप्ति का अधिकार होता है।

थोरेहि महँ सब कहहुँ बुझाई। सुनहु तात मति मन चितु लाई ॥
मैं अरु मोर तोर तैं माया। जेहि बस कीन्हे जीव निकाया ॥१॥

अर्थ : हे तात ! मैं थोड़े ही में सब समझाकर कहता हूँ। तुम बुद्धि मन और चित्त लगाकर सुनो। मैं मेरा तैं और तेरा यही माया है। जिसने जीव समूह को वश कर रक्खा है।

व्याख्या : थोरेहि महँ सब कहहुँ बुझाई : यह वक्ता का पाण्डित्य है कि सब कुछ समझाकर कहे और विस्तार न होने पावे। कितना काम तो उत्तर के क्रम से निकाल दिया। यहाँ देखेंगे कि प्रश्न के क्रम से उत्तर का क्रम भिन्न है। मोहि समझाइ कहौं सोइ देवा। सब तजि करौं चरन रज सेवा : ऐसा प्रश्न किया। पर सरकार ने इस प्रश्न का उत्तर पहिले न देकर चौथे प्रश्न का उत्तर : मैं अरु मोर तोर तैं माया कहकर देते हैं। क्योंकि भूमौ पतित पादानां भूमिरेव परं बलम् जो जमीन पर गिरा है वह उसी को टेककर उठेगा। सब लोग माया ही में पड़े हैं। अतः पहिले माया को ही समझना उचित समझा। उसके समझ लेने पर शेष का समझना कष्टसाध्य नहीं रह जाता। तात : यह प्यार का शब्द है। बड़े छोटे सबके लिये आता है। यथा : तात तात बिनु बात हमारी। तात सुनावहु मोहिं निदानू। इत्यादि।

सुनहु मन मति चितु लाई : संकल्पविकल्पात्मक मन है। निश्चयात्मिका बुद्धि होती है। चित्त धारण करता है। परन्तु अन्तःकरण चार हैं : मन बुद्धि चित्त और अहङ्कार। सो तीन को लगाकर सुनने को कहते हैं। अहङ्कार का निषेध उसका नाम न लेकर करते हैं। अहङ्कार से जिज्ञासा की पात्रता नहीं रह जाती। और एकाग्रता के लिए मन बुद्धि चित्त को लगा देने की अनिवार्य आवश्यकता है।

मैं अरु मोर : बोलने वाला अपने को मैं कहता है। इसी को व्याकरण में उत्तम पुरुष कहते हैं। यहाँ मैं शब्द का प्रयोग मुख्य अर्थ में हुआ। अर्थात् चिदाभास और कूटस्थ का एकीभाव। अविद्या में पड़े हुए चेतन के प्रतिविम्ब को चिदाभास कहते हैं। और उसके अधिष्ठानभूत चिदंश को कूटस्थ कहते हैं। कूटस्थ और चिदाभास का विवेक न करके दोनों को एक मान लेना ही यहाँ एकीभाव है। इसी अर्थ में मैं शब्द का प्रयोग सर्व साधारण किया करते हैं।

मैं शब्द के षष्ठी का रूप मोर है। इसके द्वारा गृहादि से अपने सम्बन्ध का बोध होता है। यही मैं अरु मोर सब अनर्थों की [1]जड़ है। पहिले मैं अहंभाव का स्फुरण होता है। उसके फुरते ही जगत् दृश्य सपने की भाँति सामने खड़ा हो जाता है। मैं अरु मोर को ही मोह निशा कहा है। इसी रात में सोता हुआ मनुष्य संसार रूपी स्वप्न देख रहा है। यथा : मैं तें मोर मूढ़ता त्यागू। महामोह निसि सोवत जागू।

तोर तें : मैं का प्रतिद्वन्द्वी तें है सो कोई यह न समझ ले कि तें और तोर माया की सीमा के बाहर है। अतः इसका अलग उल्लेख किया गया। बोलनेवाला जिससे बोलता है उसे तें तुम आप कहता है। इसे व्याकरण में मध्यम पुरुष कहा है। मैं के स्फुरण के बाद तें का स्फुरण होता है। इसलिए मैं अरु मोर के बाद तें अरु तोर का उल्लेख किया। मोर की भाँति तोर भी तें के षष्ठी का रूप है। और सम्बन्ध स्थापन करता है।

माया : भाव यह कि मैं अरु मोर तोर तें माया है। निस्तत्त्व है। कार्य तो इसका दिखलाई पड़ता है। अधिष्ठान से इसकी पृथक् सत्ता कुछ भी नहीं है। जिस भाँति सीप में रजत तीन काल में नहीं है। पर प्रत्यक्ष भासता है। यह भासना निस्तत्त्व है। पर यह मिटाये नहीं मिटता। इसी भाँति माया की स्थिति है। वह तीन काल में नहीं है। पर संसार भ्रम किसी के हटाये नहीं हटता। यथा : जासु सत्य ताते जड़ माया। भास सत्य इव मोह सहाया।

रजत सीप महुँ भास जिमि यथा भानु कर वारि।
जदपि मृषा तिहुकाल सोइ भ्रम न सकइ कोउ टारि॥

एहि बिधि जग हरि आश्रित रहई। जदपि असत्य देत दुख अहई॥

जेहि बस कीन्हें : भाव यह कि जिसे माया ने वश्य कर रक्खा है। इससे माया का कार्य कहते हैं। माया और प्रकृति पर्यायवाची शब्द हैं। यथा : मायां तु प्रकृतिं विन्द्यात् मायिनं तु महेश्वरम्। इसी से सम्पूर्ण जगत् की रचना होती है और इसी ने सबको वश्य कर रक्खा है। यथा : जीव चराचर बस कै राखे। सो माया प्रभु सों भय भाखे।

जीव निकाया : भाव यह कि कूटस्थ चिदाभास और लिङ्ग शरीर के समूह को जीव कहते हैं। ये जीव असंख्य हैं। ये सब माया के वश हैं। जिस भाँति जल में पड़ा हुआ प्रतिबिम्ब जल के वश में होता है जल के ऊपर उठने से वह ऊपर उठता है। जल के नीचे गिरने से वह नीचे गिरता है। जल के चञ्चल होने से वह चञ्चल होता है। इसी भाँति जीव माया के वश रहता है। माया जैसा कराती है

---

१. अनात्मन्यात्मबुद्धिर्या चास्वे स्वमिति या मतिः।
संसारतरुसम्भूतिबीजमेतद् द्विधा स्थितम्॥ वि. पु. ६.७.११

अनात्मा में आत्मबुद्धि मैं और जो अपना नहीं है उसे अपना मानना : मोर ये ही दोनों संसार वृक्ष की उत्पत्ति के बीज हैं।

वैसा करता है। यथा : ईश्वर अंस जीव अविनासी। चेतन अमल सहज सुखरासी। सो मायावस भयउ गोसाईं। बँध्यो कीर मरकट की नाईं।

गो गोचर जहँ लगि मन जाई। सो सब माया जानेहु भाई॥
तेहि कर भेद सुनहु तुम सोऊ। विद्या अपर अविद्या दोऊ॥२॥

अर्थ : इन्द्रिय विषय और मन की जहाँ तक दौड़ है इन सबको हे भाई ! माया जानना। उसके दोनों भेदों को सुनो : एक अपर विद्या और दूसरी अविद्या।

व्याख्या : गो गोचर : गो अर्थात् इन्द्रियाँ। इन्द्रियाँ दश हैं। पाँच ज्ञानेन्द्रिय और पाँच कर्मेन्द्रिय। गोचर अर्थात् पाँच विषय : शब्द स्पर्श रूप रस और गन्ध।

जहँ लगि मन जाई : मनकी दौड़ बहुत दूर तक होती है। यह मन स्थूलतम पदार्थों में अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड तक जाता है और सूक्ष्मतम पदार्थ में महत् तत्त्व तथा प्रकृति तक पहुँचता है। सो सब माया जानेहु अर्थात् परा प्रकृति अपरा प्रकृति ये दोनों ही माया हैं। जो हो न सके उसे कर दिखलानेवाली माया है। इसलिए अघटितघटनापटीयसी कहते हैं।

भाई : भाई सम्बोधन से अपना प्रेम द्योतित किया। जिस भाँति सदा से शिक्षा देते आये हैं। उसी भाँति इस बार भी शिक्षा दे रहे हैं। यथा :

राम करहिं भ्रातन्ह पर प्रीती। नाना भाँति सिखावहिं नीती॥
बेद पुरान सुनहि मन लाई। आपु कहहिं अनुजहिं समुझाई॥

तेहि कर भेद : ऊपर कहा जा चुका है कि माया और प्रकृति पर्यायवाची शब्द हैं। मैं अरु मोर तोर तैं माया कहकर परा प्रकृति का वर्णन किया जो कि जीवभूत होकर जगत् को धारण किये हुए हैं और गो गोचर जहँ लगि मन जाई। सो सब माया जानेहु भाई। कहकर अपरा प्रकृति का वर्णन किया। अब दूसरे प्रकार से उसके भेद कहेंगे।

सुनहु तुम सोऊ : यद्यपि भेद विषयक प्रश्न नहीं है। तथापि विषय को स्पष्ट करने के लिए उसके भेद का भी वर्णन करेंगे। उसके सुनने के लिए कह रहे हैं।

विद्या अपर अविद्या दोऊ : उस माया के दो भेद हैं। एक अपर विद्या दूसरी अविद्या। यथा : प्रभु सेवकहिं न व्याप अविद्या। प्रभु प्रेरित व्यापै तेहि विद्या। अङ्गों सहित वेदत्रयी अपरा विद्या है। तत्रापरा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्ववेदः शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं ज्यौतिषमिति। मुण्डक। अपरा विद्या कहने से ही पता चलता है कि कोई पराविद्या भी उसकी चर्चा आगे की जायगी। यहाँ अपरा विद्या तथा अविद्या का वर्णन किया जा रहा है जो माया की सीमा के भीतर है।

एक दुष्ट अतिसय दुखरूपा। जा बस जीव परा भवकूपा॥
एक रचइ जग गुन बस जाकें। प्रभु प्रेरित नहिं निज बल ताकें॥३॥

अर्थ : एक दुष्ट अत्यन्त दुःखरूप है। जिसके वश में आकर जीव संसार कूप

में पड़ा हुआ है और एक जिसके वश में गुण : सत्त्व रसस् और तमस् हैं प्रभु से प्रेरित होकर संसार को रचते हैं। उसे अपना बल नहीं है।

व्याख्या : एक दुष्ट : यहाँ एक एक कहकर क्रम नहीं देते। क्योंकि क्रम इष्ट नहीं है। पहले अविद्या का ही वर्णन करना है। उसे दुष्ट इसलिए कहा कि वह दोषयुक्त है। शुद्धसत्त्वप्रधाना नहीं है। जो दुष्ट होता है दोषयुक्त होता है। उससे दूसरे को पीड़ा पहुँचती है। अतः कहते हैं :

अतिसय दुःख रूपा : यह दुष्ट अविद्या अविशुद्धि के तारतम्य से अनेक प्रकार की होती है। यही स्थूल और सूक्ष्म शरीर की कारणभूता : प्रकृति की अवस्था विशेष कारण कहलाती है। पञ्च महाभूतों से निर्मित इस अस्थि मांसमय देह को स्थूल शरीर कहते हैं। इसी के भीतर इसका अनुकरण करती हुई अपञ्चीकृत महाभूत तथा उसके कार्य पञ्च प्राण दश इन्द्रिय मन और बुद्धि की बनी हुई सूक्ष्म देह है। इन दोनों सूक्ष्म और स्थूल शरीरों से अविद्या द्वारा ही जीव बद्ध होता है। यथा :

ईस्वर अंस जीव अबिनासी। चेतन अमल सहज सुखरासी ॥
सो माया बस भयउ गोसाईं। बँध्यो कीर मरकट को नाईं ॥
जड़ चेतनहि ग्रंथि परि गई। जदपि मृषा छूटत कठिनई ॥
तब ते जीव भयउ संसारी। छूट न ग्रंथि न होइ सुखारी ॥
जिय जब तें हरि तें बिलगान्यो। तब तें देह गेह निज जान्यो ॥
माया बस स्वरूप बिसरायो। तेहि भ्रम ते दारुन दुख पायो ॥

पायो जो दारुन दुसह दुख सुख लेस सपनेहु नहि मिल्यो।
भव सूल सोक अनेक जेहि तेहि पंथ तू हठि हठि चल्यो ॥
बहु जोनि जन्मि जरा बिपत्ति मतिमन्द हरि जान्यो नहीं।
श्रीराम बिनु बिश्राम मूढ़ विचारु लखु पायो कहीं ॥

विनय. १३६.

जेहि बस जीव परा भवकूपा : अविद्या द्वारा स्थूल सूक्ष्म शरीर का अध्यास भ्रम ही बन्धन है। इसी बन्धन के कारण जीव भवकूप में पड़ा हुआ दुःख पा रहा है। द्वैत ही भवकूप है। जगत् ईस्वर का कार्य : रचित है और जीव का भोज्य है। माया वृत्त्यात्मक ईस्वर का सङ्कल्प जगत् की उत्पत्ति का कारण है और मनोवृत्त्यात्मक जीव का सङ्कल्प भोग का साधन है। जैसे ईस्वर ने स्त्री बना दी। अब उसी को कोई भार्या, कोई बहू, कोई ननद, कोई देवरानी और कोई माता मानता है। वह मांसमयी स्त्री तो एक ही है। परन्तु मनोमयी के अनेक भेद हो गये। जीव का बन्धन करनेवाली यह मनोमयी : स्त्री है। ईस्वर की बनायी हुई मांसमयी बन्धन करनेवाली नहीं है। इस भाँति द्वैत दो प्रकार का है। एक ईस्वरकृत और दूसरा जीवकृत। ईस्वरकृत द्वैत बन्धन का कारण नहीं है। सो जीवकृत द्वैत को भवकूप कह रहे हैं। कूप इसलिए कहते हैं कि यह तमोमय दुःख रूप है और इससे

बाहर केवल अपने पुरुषार्थ द्वारा निकलना भी कठिन है। करुणानिधान भगवान् या उनके कृपापात्र गुरु ही करावलम्बन देकर बाहर निकाल सकते हैं। विनय में गोस्वामीजी ने द्वैत को भवकूप कहा है। यथा :

द्वैतरूप भवकूप परौं नहिं अस कछु जतन बिचारो।

उसी अविद्या को मोहशक्ति कहा गया है। माया में निर्माण शक्ति की भाँति एक मोहशक्ति भी है। वही जीव को मोहित करती है। मोह से अतीशता को प्राप्त होकर भवकूप में पड़ा जीव सोचता है :

मैं जन्म्यो मोहि मातु पिता तिय तनय धाम धन।
ये मेरे हैं शत्रु मित्र विद्या बल परिजन॥
यों ही यह विद्वान् चित्त फुरना से कल्पित।
देखत बहु बिधि स्वप्न अविद्या ते अति निद्रित॥१॥

तथा : बोते हैं विषवल्लि बीज दुःख को जो प्रेम के नाम से।
होते हैं अँखुए भरे अनल के सो नेह के धाम से॥
शोकारण्य बढ़ा विशाल इनसे सो लाख शाखा धरे।
देहों को दहता तुषानल यथा निर्धूम ज्वाला भरे॥२॥

: प्रबोधचन्द्रोदय

एक रचइ जग : वह भगवती अपरा विद्या संसार की रचना करती है। यहाँ रचना उपलक्षण है। इसीके साथ पालन और उपसंहार भी समझ लेना चाहिए। यह अपरा विद्या भगवान् की पुरातनी परा नाम्नी शक्ति है।

सर्वशक्तिः परा विष्णोर्ऋग्यजुःसामसंज्ञिता।
सैषा त्रयी तपत्यंहो जगतश्च हिनस्ति या॥७॥
सैषा विष्णुः स्थितः स्थित्यां जगतः पालनोद्यतः।
ऋग्यजुःसामभूतोऽन्तः सवितुर्द्विज तिष्ठति॥३॥
मासि मासि रविर्यो यस्तत्र तत्र हि सा परा।
त्रयीमयी विष्णुशक्तिरवस्थानं करोति वै॥९॥
ऋचः स्तुवन्ति पूर्वाह्णे मध्याह्नेऽथ यजूंषि वै।
बृहद्रथन्तरादीनि सामान्यह्नः क्षये रविम्॥१०॥
अङ्गमेषा त्रयी विष्णोर्ऋग्यजुःसामसंज्ञिता।
विष्णुशक्तिरवस्थानं सदादित्ये करोति सा॥११॥
न केवलं रवेः शक्तिर्वैष्णवी सा त्रयीमयी।
ब्रह्माथ पुरुषो रुद्रस्त्रयमेतत् त्रयीमयम्॥१२॥
सर्गादौ ऋङ्मयो ब्रह्मा स्थितौ विष्णुर्यजुर्मयः।
रुद्रः साममयोऽन्ताय तस्मात् तस्याशुचिर्ध्वनिः॥१३॥
एवं सा सात्त्विकी शक्तिर्वैष्णवी या त्रयीमयी।
आत्मसप्तगणस्थं तं भास्वन्तमधितिष्ठति॥१४॥

तया चाधिष्ठितः सोऽपि जाज्वलीति स्वरश्मिभिः ।
तमः समस्तजगतां नाशं नयति चाखिलम् ॥१५॥
अंश २ अ० ११ : विष्णुपुराण

इसी को ऋक्, यजुः, साम कहते हैं। यही त्रयी सूर्य को ताप प्रदान करती है। संसार के पाप को नाश करती है। स्थिति के समय यही विष्णु होकर जगत् का पालन करती है। यही ऋक्, यजुः, साम रूप से सूर्य के भीतर ठहरी हुई है। प्रत्येक मास में जो पृथक् पृथक् सूर्य कहे गये हैं उनमें यह वेद त्रयी रूपिणी पराशक्ति निवास करती है। पूर्वाह्न से ऋक्, मध्याह्न से यजु और सायंकाल वृहद्रथन्तरादि साम श्रुतियाँ सूर्य की स्तुति करती हैं। यह ऋक्, यजुः सामरूपिणी वेदत्रयी भगवान् विष्णु का ही अङ्ग हैं। ये सदा आदित्य में रहती हैं। यह त्रयीमयी वैष्णवी शक्ति केवल सूर्य की ही नहीं है। ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र तीनों त्रयीमय हैं। सर्ग के आदि में ब्रह्मदेव ऋक्मय होते हैं। पालन के समय विष्णु यजुर्मय होते हैं। और अन्त में रुद्र साममय होते हैं। इसीलिए उसकी ध्वनि अपवित्र कही गयी है। इस प्रकार यह त्रयीमयी वैष्णवी शक्ति अपने सातों गणों में स्थित सूर्य में अवस्थित रहती है। उसमें अधिष्ठित सूर्यदेव अपनी प्रखर रश्मियों से प्रज्वलित होकर संसार के सम्पूर्ण अन्धकार को नष्ट करते हैं। इस भाँति त्रयीमयी अपरा विद्या ही संसार की रचनेवाली है। यथा :

एतना मन आवत खगराया। रघुपति प्रेरित व्यापी माया॥ अपरा विद्या
सो माया न दुखद मोहि काहीं। आन जीव इव संसृत नाहीं॥
उदर माझ सुनु अंडजराया। देखेउँ बहु ब्रह्माण्ड निकाया॥
अति विचित्र तहँ लोक अनेका। रचना अधिक एक ते एका॥
कोटिन्ह चतुरानन गौरीसा। अगणित उडगन रवि रजनीसा॥
अगनित लोकपाल जमकाला। अगनित भूधर भूमि बिसाला॥
सागर सरि सर बिपिन अपारा। नाना भाँति सृष्टि बिस्तारा॥
सुर मुनि सिद्ध नाग नर किन्नर। चारि प्रकार जीव सचराचर॥

दो. जो नहिं देखा नहिं सुना जो मनहूँ न समाइ।
सो सब अद्भुत देखेउँ बरनि कवन बिधि जाइ॥
एक एक ब्रह्मांड महुँ रहौं बरष सत एक।
एहि बिधि देखत फिरौं मैं अंड कटाह अनेक॥

लोक लोक प्रति भिन्न बिधाता। भिन्न बिस्नु सिव मनु दिसित्राता॥
नर गन्धर्व भूत बेताला। किंनर निसिचर पसु खग ब्याला॥
देव दनुज गन नाना जाती। सकल जीव तहँ आनहि भाँती॥
महि सरि सागर सर गिरि नाला। सब प्रपंच तहँ आनहि आना॥
भ्रमत मोहि ब्रह्मांड अनेका। बीते मनहुँ कल्प सत एका॥ इत्यादि।

गुन बस जाकें : इस अपरा विद्या के वश में गुण है। विशुद्ध सत्त्व प्रधाना

होने से उसमें जो ब्रह्म का प्रतिबिम्ब पड़ता है वह पूर्ण होता है। उसी को सर्वज्ञ ईश्वर कहते हैं। उन्हीं की यह परा शक्ति सत्त्व रज और तम को वश में रखती है। ब्रह्मा विष्णु रुद्रमयी होने से यह सत्त्व रज तम की अधिष्ठात्री देवी है। अतः इसके वश में गुण है। उसके जिस रूप से हम परिचित हैं वह उसकी वाङ्मयी मूर्ति है।

प्रभु प्रेरित नहिं निज बल ताकें : भगवान् कहते हैं कि वेद नामवाली पुरातनी परा[1] शक्ति मेरी है। यह सर्ग के आदि में ऋक् यजु साम रूप से प्रवृत्त होती है। अर्थात् उसको प्रवृत्त करनेवाला, उसके प्रभु भगवान् हैं। उनकी प्रेरणा बिना वह कुछ नहीं कर सकती। अतः कहते हैं : नहिं निज बल ताकें। शक्तिमान् से पृथक् शक्ति की कोई सत्ता नहीं होती। अतः कहा गया कि उसको अपना स्वतन्त्ररूपेण बल नहीं है। यथा :

सुनु रावन ब्रह्मांड निकाया। पाइ जासु बल बिरचति माया।।
लव निमेष महँ भुवन निकाया। रचइ जासु अनुसासन माया।।
जासु सत्यता ते जड़ माया। भास सत्य इव मोह सहाया।।

अपरा विद्या और अविद्या दोनों माया के भेद हैं। अतः दोनों के लिए माया शब्द व्यवहृत है। प्रसङ्ग से पहिचानना चाहिए। चौथे प्रश्न का उत्तर समाप्त हुआ।

ज्ञान मान जहँ एकौ नाँहीं। देख ब्रह्म समान सब माँहीं।।
कहिअ तात सो परम बिरागी। तृन सम सिद्धि तीन गुन त्यागी।।४।।

अर्थ : जहाँ एक भी मान नहीं है। ब्रह्म को सब में समान देखता है। वही ज्ञान है। हे तात उसे परम वैराग्यवान् कहा गया है। जो तृण के समान सिद्धि तीनों गुणों का त्यागी हो।

ज्ञान : पराविद्या[2] जिससे अक्षर ब्रह्म जाना जाता है। इसी को ब्रह्मविद्या कहते हैं। चारों[3] महावाक्यों द्वारा ब्रह्मका उपदेश होता है। उसमें से ·न्दोग्य श्रुतिगत वाक्य का उपदेश लोमश महर्षि ने भुसुण्डि को ब्राह्मण जन्म भ किया था। यथा :

लागे करन ब्रह्म उपदेसा। अज अद्वैत अगुन हृदयेसा।।
अकल अनीह अनाम अरूपा। अनुभवगम्य अखंड अनूपा।।
मन गोतीत अमल अविनासी। निर्विकार निरवधि सुख रासी।।
सो तैं तोहि तोहि नहिं भेदा। वारि बीचि इव गावहिं वेदा।।

---

१. ममैवैषा परा शक्तिर्वेदसंज्ञा पुरातनी। ऋग्यजुःसामरूपेण सर्गादौ सम्प्रवर्तते।।
कूर्मपुराणे।

२. परा यया तदक्षरमधिगम्यते।

३. चारों वेदों से चार महावाक्य लिये गये हैं १. ऋग्वेदान्तर्गत ऐतरेय आरण्यक से २. यजुर्वेदान्तर्गत बृहदारण्यक से ३. सामवेदान्तर्गत छान्दोग्य से और ४. अथर्व वेद से।

इसी को ज्ञान कहा है। क्योंकि आगे चलकर गरुड़जी भुसुण्डिजी से पूछते हैं कि कहहिं संत मुनि वेद पुराना। नहिं कछु दुर्लभ ज्ञान समाना। सोइ मुनि तुम्ह सन कहेउ गोसाईं। नहिं आदरेहु भगति की नाईं। शेष तीन वाक्य भी इसी भाँति ब्रह्म जीव के ऐक्य का प्रतिपादन करते हैं। यहाँ भगवान् लक्ष्मणजी को ऐतरेय आरण्यक गत महावाक्य प्रज्ञानं के तात्पर्य का उपदेश कर रहे हैं।

मान जहँ एकौ नाहीं : मीयते अनेन इति मानम्। जिससे नापा जाता है उसे मान कहते हैं। वह मान लघु, गुरु, महत्, अणु, उत्तम, मध्यम, अधम आदि भेद से अनेक प्रकारके होते हैं। ब्रह्मा, इन्द्रादि देव उत्तम हैं। मनुष्य मध्यम हैं। अश्व गजादि अधम हैं। एवं विद्या विनयसम्पन्न ब्राह्मण तथा गौ पूज्य, हाथी मध्यम, कुत्ता श्वान आदि निकृष्ट हैं। ये बातें मान से सिद्ध हैं। यह मान देहादिकों में ही सम्भव हैं। पर जो चेतन ब्रह्म सबमें व्याप्त है उसका कोई मान नहीं है।

देख ब्रह्म समान सब माहीं : चक्षु इन्द्रिय द्वारा निकले हुए अन्तःकरण वृत्ति से उपहित चैतन्य से ही पुरुष दर्शन योग्य रूपादि को देखता है। श्रोत्र द्वारा निकले हुए अन्तःकरणवृत्ति उपाधिवाले चैतन्य से सुनता है। घ्राण द्वारा निकले हुए अन्तःकरणवृत्ति उपहित चैतन्य से सूँघता है। वागिन्द्रियावच्छिन्न चैतन्य से बोलता है। रसेन्द्रिय द्वारा निकले हुए अन्तःकरणवृत्ति उपहित चैतन्य से चखता है। वही प्रज्ञान चैतन्य ब्रह्म है और वह सबमें समान है। इन्द्रियादि की विकलता या सकलता से दर्शनादि में तारतम्य हो सकता है। परन्तु चैतन्य सबमें समान ही है। ऐसी समान दृष्टि रखना ही ज्ञान है। यथा :

बिषय करन सुर जीव समेता। सकल एक ते एक सचेता॥
सबकर परम प्रकाशक जोई। राम अनादि अवध पति सोई॥

जगत प्रकाश्य प्रकासक रामू।

जड़ चेतन जग जीव जत सकल राम मय जानि।
बन्दौं सबके पद कमल सदा जोरि जुग पानि॥
उमा जे राम चरन रत बिगत काम मद क्रोध।
निज प्रभुमय देखहिं जगत का सन करहिं बिरोध॥
देस काल दिसि बिदिसहु माहीं। कहहु सो कहाँ जहाँ प्रभु नाहीं॥
अग जगमय सब रहित बिरागी। प्रेम ते प्रभु प्रगटइ जिमि आगी॥

: यह दूसरे प्रश्न का उत्तर हुआ।

तात : प्यार का शब्द है। यहाँ छोटे भाई के लिए आया है। भाव यह कि तुमने वैराग्य के विषय में प्रश्न किया है। सो वैराग्य तुम्हें स्वभाव से ही प्राप्त है। वनगमन के समय में मैंने स्वयं देख लिया है। यथा :

राम बिलोकि बन्धु कर जोरे। देह गेह सब सन तृन तोरे॥
मातु चरन सिर नाइ चले तुरत संकित हृदय।
बागुर बिषम तोराइ मनहु भाग मृग भाग बस॥

अतः तुमसे वैराग्य का वर्णन करना केवल कथा को विस्तार देना है। अतः जो वैराग्य से भी साध्य परम वैराग्य है। उसका वर्णन मैं तुमसे करूँगा।

सो परम बिरागी कहिअ : भाव यह कि विषय दो प्रकार का है : एक दृष्ट और दूसरा आनुश्रविक। जो इस लोक में देखा सुना जाता है वह दृष्ट कहलाता है जैसे : शब्द रूपादि। अनुश्रव वेद को कहते हैं। सो जिसका पता वेद से लगता है उसे आनुश्रविक कहते हैं। जैसे स्वर्गादि। सो दोनों प्रकार के विषयों के परिणाम विरसत्व के देखने से जिनको इनका लोभ नहीं रह गया वे इन विषयों के वश्य नहीं होते। विषय ही उनके वश में रहते हैं। उनके वैराग्य की वशीकार संज्ञा है। यथा : यहि तन कर फल विषय न भाई। सरगहु स्वल्प अन्त दुखदाई। इन विषयविषयक वैराग्यवालों को परम विरागी नहीं कहते। परम विरागी का लक्षण है :

तृन सम सिद्धि तीन गुन त्यागी : जिसने अणिमादिक अष्ट सिद्धि तथा सत्त्व, रज और तम का त्याग किया हो वह परम विरागी है। पहला वैराग्य अर्थात् ऊपर कहा हुआ वैराग्य विषयविषयक था। पर परम वैराग्य तो गुण विषयक होता है। गुण विषयक वैराग्य ही सच्चा वैराग्य है। ऐसे वैराग्यवान् को परम विरागी कहना चाहिए। यथा :

विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः।
रजवर्जं रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते॥ गीता २.५९

बिधि हरिहर तप देखि अपारा। सनु समीप आये बहु बारा॥
माँगहु बर बहु भाँति लोभाए। परम धीर नहिं चलहि चलाए॥

यहाँ रजोगुण के अधिष्ठाता विधि सत्त्वगुण के अधिष्ठाता हरि और तमोगुण के अधिष्ठाता हर अपने गुण सम्बन्धी सब प्रकार के सुख तथा सिद्धियों का लोभ दिखा रहे हैं। पर परम वैराग्यवान् स्वायम्भू मनु को उन गुणों तथा सिद्धियों की इच्छा नहीं हुई। यह तीसरे प्रश्न का उत्तर हुआ।

दो. माया ईस न आपु कहुँ, जान कहिअ सो जीव।
बंध मोच्छ प्रद सर्वपर, माया प्रेरक सीव॥९.१५॥

अर्थ : जो माया, ईश्वर और अपने को न जाने उसे जीव कहा जाता है और जो बन्ध मोक्ष का देनेवाला, सबके परे, माया का प्रेरक है वह शिव है।

व्याख्या : माया ईस न आपु कहँ जान : भाव यह कि माया का ज्ञान : ईश्वर का ज्ञान तथा अपने आत्मा का ज्ञान ऐसा परस्पर सापेक्ष है कि एक के ज्ञान के लिए शेष दो का ज्ञान अनिवार्य है। क्योंकि ब्रह्म और जीव में भेद करनेवाली केवल माया है।

यथा : ब्रह्म जीव बिच माया जैसी। तथा : मुधा भेद जद्यपि कृत माया। बिनु हरि जाइ न कोटि उपाया। उस माया की स्थिति बड़ी ही विचित्र है। न वह सत् है न असत् है न सदसत् है। न भिन्न है न अभिन्न है न भिन्नाभिन्न है। न

निरवयव है न सावयव है। वह ब्रह्मात्मैक्य ज्ञान से हटाई जा सकती है। यथा : कोऊ कह सत्य झूठ कर कोऊ जुगल प्रबल करि मानै। तुलसीदास परिहरै तीन भ्रम सो आपन पहिचानै। वह माया जिसकी सत्यता से भासती है उस मायी ईश्वर का बिना निरूपण किये माया का निरूपण कैसे होग ? अथवा जिस [1]जीव पर उसका अधिकार है- उसका बिना निरूपण किये ही माया कैसे जानी जायेगी ? इसी भाँति जिसका अंश [2]जीव है उसी अंशी का बिना निरूपण किये-अथवा जिस [3]माया ने उस अखण्ड ईश्वर का अंश कल्पित किया है उसका बिना निरूपण किये जीव का निरूपण कैसे होगा ? एवं जिसके कारण ईश्वर मायी है और जिसके अंश होने से वह अंशी है उस माया और जीव के निरूपण बिना ईश्वर का निरूपण कैसे होगा ? और बिना निरूपण किये ज्ञान कैसे होगा ? अतः जिसे एक का सम्यक् ज्ञान नहीं है उसे तीनों का सम्यक् ज्ञान सहीं है। इसीलिए कहा : माया ईस न आपु कहँ जान। जिसे माया, ईश्वर व अपना ज्ञान नहीं है।

कहिअ सो जीव : ऐसे अज्ञानी अथवा अल्पज्ञ को जीव कहते हैं। अर्थात् अज्ञान और अस्पज्ञता ही उसे जीव बनाये हुए हैं। अज्ञान का हटाना और स्वरूप का ज्ञान एक ही वस्तु है। ज्ञान होते ती वह जीव नहीं रह जाता। वह ब्रह्मपद को [4]प्राप्त हो जाता है। यथा :

सोइ जानै जेहि देहु जनाई। जानत तुम्हहिं तुमहि होइ जाई॥

बन्ध मोच्छप्रद : मिथ्या ज्ञानकृत जो कर्तृत्वाभिमान है उसे बन्ध कहते हैं और तत्त्वज्ञान से जो अज्ञान और उसके कार्य का अभाव होता है उसी को मोक्ष कहते हैं। सो बन्धप्रद ईश्वर है वही कर्मफल दाता है। जीव भी अनादि है और उसके कर्म भी अनादि हैं। ये दोनों बीजाङ्कुर न्याय से सिद्ध हैं। सदा से ही अङ्कुर का कारण बीज और बीज का कारण अङ्कुर होता चला आया है। इसी भाँति

---

१. माया बस मति मंद अभागी। हृदय जवनिका बहु बिधि लागी॥

२. ईश्वर अंश जीव अबिनासी। चेतन अमल सहज सुख रासी॥

३. बाधा काटा जिनने उस आदि पुरुष को।
पुरगन ने बांटा शाश्वत जगदीश्वर को॥
उन ब्रह्मविदों का विद्या द्वारा बिधि से।
हो मरण पुराहित ब्रह्मैकत्व हो फिर से॥ प्र. चं.।

४. प्राप्त नहीं बाधित नहीं नहीं उदित नहिं अस्त।
क्रम विकास वा लय नहीं नहीं असत नहिं सत्त॥
नहीं असत नहिं सत्त लोकत्रय बाधित होता।
मेरा सहज प्रकास उदित भासित जब होता॥
बरनै मिश्र बिचारि प्रबोधोदय मैं प्राक्तन।
होगा भूले कभी जीव पदवी अब प्राप्त न॥ प्र. चं.।

जन्म का कारण पूर्वार्जित कर्म और उसका भी कारण पूर्वजन्म यह क्रम अनादि काल से चला आता है और ईश्वर भी अनादि काल से तत्तत् कर्मों का फल देता चला आता है। इसी से उसे बन्धप्रद कहते हैं। यथा : जेहि बांध्यो सुर असुर नाग मुनि प्रबल कर्म की डोरी। वही ईश्वर मोक्षप्रद भी है। उसी की कृपा से जीव मिथ्या ज्ञानकृत कर्तृत्वादि अभिमान से छूटता है। यथा : तुलसीदास यह मोह संृखला छुटिहै तुम्हरे छोरे। दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया। मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते। भगवान् कहते हैं यह मेरी दैवी गुणमयी माया पार पाने योग्य नहीं है। जो मेरी शरण में आते हैं वे ही इस माया को तर सकते हैं।

सर्वपर : वही ईश्वर सबके परे हैं। सबका उपादान होने से प्रकृति सबका कारण है। परन्तु ईश्वर उससे भी परे है। यथा :

प्रकृति पार प्रभु सब उर बासी। ब्रह्म निरीह बिरज अबिनासी॥
जो माया सब जगहि नचावा। जासु चरित लखि काहु न पावा॥
सोइ प्रभु भ्रूबिलास खगराजा। नाच नटी इव सहित सहाजा॥
जगु पेखन तुम्ह देखनिहारे। बिधि हरि संभु नचावनि हारे॥

माया प्रेरक सीव : प्रश्न है कि ईश्वर जीवहि भेद प्रभु सकल कहहु समुझाइ। सो उसका उत्तर देते हुए जीव का लक्षण कहकर शिव अर्थात् ईश्वर का लक्षण कहते हैं। तद्भव रूप से शकार का [1]सकार और ह्रस्व का [2]दीर्घ विकल्प करके होता है। इस भाँति शिव का प्राकृत रूप सीव है। शिव नाम ईश्वर का है। विष्णुसहस्रनाम में भी शिव शम्भु शङ्करादि नाम आये हैं। शिव और राम में अभेद माना गया है। यथा : सेवक स्वामि सखा सियजी के। हित निरुपधि सब बिधि तुलसी के। तथा : पूजि पार्थिव नाएउ माथा। लिंग थापि बिधित करि पूजा। सिव समान प्रिय मोहि न दूजा। कहकर शिवजी को रामजी का आत्मा[3] ही

---

१. शषोः सः २.४३ प्राकृतप्रकाशे। सर्वत्र शकार षकार का सकार होता है।

२. ईत् सिंहजिह्वयोश्च ॥१७॥ चकारोऽनुक्तसमुच्चयार्थः।
सिंहः सीहो जिह्वा जीहा यहाँ इकार का ईकार हुआ।

३. रुद्रस्य परमो विष्णुर्विष्णोश्च परमः शिवः।
एक एव द्विधा भूतो लोके चरति नित्यशः॥
न विना शंकरं विष्णुर्न विना केशवं शिवः।
तस्मादेकत्वमायातो रुद्रोपेन्द्रौ तु तौ पुरा॥ हरिवंशे

अर्थ : रुद्र के बड़े विष्णु हैं और विष्णु के बड़े रुद्र हैं। एक ही दो भाग होकर लोक में विचरते हैं। बिना शंकर के विष्णु नहीं और बिना केशव के शिव नहीं। इसलिए पहले ही रुद्र और विष्णु एकत्व को प्राप्त हुए।

ये त्वेनं विष्णुमव्यक्तं मां च देवं महेश्वरम्। एकीभावेन पश्यन्ति न तेषां पुनरुद्भवः॥
तस्मादनादिनिधनं विष्णुमात्मानमव्ययम्। मामिव संप्रपश्यध्वं पूजयध्वं तथैव च॥
: कूर्म पुराण ईश्वर गीता।

स्वीकार किया है। क्योंकि सबके प्रिय आत्मा ही होता है। अयमात्मा परानन्दः परप्रेमास्पदं यतः। तात्पर्य यह कि जीव शिव से वास्तविक भेद नहीं है। सच्चिदानन्द रूप से जीव और शिव में अभेद है। पर माया ने कल्पित भेद कर रखा है। व्यवहार काल में वह भेद सत्य भी है। शिव बन्ध मोक्षप्रद सर्व पर और मायाप्रेरक है एक हैं। जीव बद्ध हैं, अभिमानी हैं, माया के वश में हैं और अनेक हैं। यथा : माया वश परिछिन्न जड़ जीव कि ईश समान।

ग्यान अखंड एक सीताबर। माया बस्य जीव सचराचर॥
जौ सबके रह ज्ञान एक रस। ईस्वर जीवहि भेद कहहु कस॥
माया बस्य जीव अभिमानी। ईस बस्य माया गुन खानी॥
परबस जीव स्वबस भगवंता। जीव अनेक एक श्रीकंता॥
मुधा भेद यद्यपि कृत माया। बिनु हरि जाइ न कोटि उपाया॥

दो. रामचन्द्र के भजन बिनु जो चह पद निर्बान।
ज्ञानवंत अपि सो नर पसु बिनु पूँछ बिषान॥

यह छठे प्रश्नका उत्तर हुआ।

[1]धर्म तें बिरति जोग तें ग्याना। ग्यान मोच्छप्रद बेद बखाना॥
जा तें बेगि द्रवउँ मैं भाई। सो मम भगति भगत सुखदाई॥१॥

अर्थ : धर्म से वैराग्य, वैराग्य से योग और योग से ज्ञान होता है और वेद

———

अर्थ : जो इन अव्यक्त विष्णु और मुझ देव महेश्वर को एक भाव से देखेगा उसका फिर जन्म नहीं होगा। इसलिए अनादिनिधन विष्णु अव्यय आत्मा को मेरे ऐसा देखो और उसी भाँति पूजा करो।

ये नमस्यन्ति गोविन्दं ते नमस्यन्ति शंकरम्।
येऽर्चयन्ति हरिं भक्त्या तेऽर्चयन्ति वृषध्वजम्॥
ये द्विषन्ति विरूपाक्षं ते द्विषन्ति जनार्दनम्।
ये रुद्रं नाभिजानन्ति ते न जानन्ति केशवम्॥

रुद्रहृदय उपनिषद्.

अर्थ : जो गोविन्द को नमस्कार करते हैं वे शंकर को नमस्कार करते हैं। जो हरि की भक्ति पूर्वक पूजा करते हैं वे वृषध्वज की पूजा करते हैं। जो विरूपाक्ष से द्वेष करते हैं वे जनार्दन से द्वेष करते हैं। जो रुद्र को नहीं जानते वे केशव को भी नहीं जानते। इत्यादि प्रमाणों से शास्त्र भरे पड़े हैं।

१. यहाँ कारणमाला अलङ्कार है।

बखान करता है कि ज्ञान मोक्ष देनेवाला है। जिससे मैं शीघ्र द्रवीभूत होता हूँ। वह तो[१] : सब प्रकार के भक्तों को सुख देनेवाली मेरी भक्ति है।

धर्म तें बिरति : जो जगत् की स्थिति का कारण है : धारणाद्धर्ममित्याहुर्धर्मो धारयति प्रजाः। तथा प्राणियों की उन्नति और मोक्ष का हेतु है : यतोऽभ्युदय निःश्रेयससिद्धिः स धर्मः। एवं कल्याण का भी ब्राह्मणादि वर्णाश्रमावलम्बियों से जिसका अनुष्ठान किया जाता है : चोदनालक्षणोऽर्थो धर्मः। उसे धर्म कहते हैं।

वेद ने दो प्रकार के धर्म बतलाये हैं : एक प्रवृत्तिलक्षण और दूसरा निवृत्तिलक्षण। ज्ञान वैराग्य जिसका लक्षण है उसे निवृत्तिलक्षण धर्म कहते हैं। वह साक्षात् कल्याण का हेतु है। वर्ण और आश्रम को लक्ष्य करके जो सांसारिक उन्नति के लिए कहा गया है वह प्रवृत्तिलक्षण धर्म है। वह यद्यपि स्वर्गादि के साधन का हेतु है। फिर भी ईश्वरार्पण बुद्धि से फलकामना रहित होकर किये जाने पर अन्तःकरण शुद्धि का कारण होता है। शुद्धान्तःकरण पुरुष के लिए ज्ञाननिष्ठा की योग्यता प्राप्ति द्वारा ज्ञानोत्पत्ति का कारण होने से वह मोक्ष का हेतु भी होता है। इसी को कर्मयोग भी कहते हैं।

गुरु सुर संत पितर महि देवा। करै सदा नृप सब कै सेवा॥
भूप धरम जे बेद बखाने। सकल करै सादर सुख माने॥
दिन प्रति देइ बिबिध बिधि दाना। सुनै शास्त्र बर बेद पुराना॥
नाना बापी कूप तड़ागा। सुमन बाटिका सुंदर बाग़ा॥
बिप्र भवन सुर भवन सुहाए। सब तीरथन्ह बिचित्र बनाए॥

जहँ लगि कहे पुरान श्रुति एक एक सब जाग।
बार सहस्र सहस्र नृप किये सहित अनुराग॥

हृदय न कछु फल अनुसंधाना। भूप बिबेकी परम सुजाना॥
करै जे धरम करम मन बानी। बासुदेव अर्पित नृप ग्यानी॥

इस प्रकार धर्माचरण से वैराग्य होता है। उसकी उत्पत्ति जिस विधि से होती है उसका विशद वर्णन शतपञ्च चौपाई ग्रन्थ में मिलेगा। उसका संक्षेप इतना ही है कि शास्त्र विधि के अनुसार फल की कांक्षा न रखते हुए कर्तव्य बुद्धि से आनन्द

---

१. १. नाम जीह जपि जागहिं जोगी। बिरति बिरंचि प्रपंच बियोगी॥
ब्रह्म सुखहि अनुभवहिं अनूपा। अकथ अनामय नाम न रूपा॥
२. जाना चहहिं गूढ़ गति जेऊ। नाम जीह जपि जानहिं तेऊ॥
३. साधक नाम जपहिं लय लाये। होहिं सिद्ध अनिमादिक पाये॥
४. जपहिं नाम जन आरत भारी। मिटहिं कुसंकट होहि सुखारी॥
राम भगत जग चारि प्रकारा। सुकृती चारिउ अनघ उदारा॥
५. सकल कामना हीन जे राम भगति रस लीन।
नाम सुप्रेम पियूष ह्रद तिनहुँ किये मन मीन॥

पूर्वक जप, तप, व्रत, यम, नियमादि वेदविहित शुभ धर्मों का आचरण श्रद्धापूर्वक करे और वे भावोपहत[1] न होने पावे। तब परम धर्म अहिंसा का उदय होता है। उसे वशीकृत निर्मल मन द्वारा विश्वास से दृढ़ करें। उस अहिंसा का योग, विषय-वासना त्याग, क्षमा, तोष और धृति से भी हो। जब ऐसी स्थिति हो जाय तब मुदिता तथा इन्द्रिय दमन पूर्वक सत्योक्ति : वेद के अनुसार विचार करे तब निर्मल विराग का उदय होता है। यथा :

सात्विक श्रद्धा धेनु सोहाई। जो हरि कृपा हृदयबस आई ॥
जप तप व्रत यम नियम अपारा। जे श्रुति कह सुभ धरम अचारा ॥
तेइ तृन हरित चरै जब गाई। भाव बच्छ शिशु पाइ पेन्हाई ॥
नो इति बृत्ति पात्र बिस्वासा। निर्मल मन अहीर निज दासा ॥
परम धरम मय पय दुहि भाई। अवटइ अनल अकाम बनाई ॥
तोष मरुत तब छमा जुड़ावै। धृति सम जावन देइ जमावै ॥
मुदिता मथै बिचार मथानी। दम अधार रजु सत्य सुबानी ॥
तब मथि काढ़ि लेइ नवनीता। बिमल बिराग सुभग सुपुनीता ॥

योग ते ज्ञाना : वैराग्य से सत् लक्ष्य पर चित्त के स्थिर करने के अभ्यास से चित्तवृत्ति का निरोध होता है उसी को योग कहते हैं। योगी का कर्म अशुक्ला कृष्ण होता है। तब ममता मल के दूर होने से वही वैराग्य में परिणत होता है। वह वैराग्य ज्ञान ही है। यही तत्पद का शोधन है। तत्पश्चात् सबमें ब्रह्मदृष्टि दृढ़ करे तब जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति अवस्थाओं में से क्रमशः वैषयिक ज्ञान उसके संस्कार और अज्ञान को दूर करे। तब तुरीय अवस्था की प्राप्ति होती है। इसे त्वं पद का शोधन कहते हैं। सो त्वं पद के लक्ष्यार्थ को तत्पद के लक्ष्यार्थ में लीन करके सानन्द समाधि में स्थित हो। वाच्यार्थ और लक्ष्यार्थ दो होते हैं। फल पेड़ में होता है। फल शब्द का वाच्यार्थ पेड़ में होनेवाली वस्तु विशेष है। परन्तु कर्मफल कहने से फल शब्द का वह अर्थ नहीं लिया जायगा। इसमें लक्ष्यार्थ लिया जायगा। यहाँ फल का लक्ष्यार्थ है कर्म का परिणाम : नतीजा। इसी भाँति त्वं पद का वाच्यार्थ जीव और लक्ष्यार्थ कूटस्थ : तुरीय है एवं तत् पद का वाच्यार्थ ईश्वर और लक्ष्यार्थ शुद्ध चेतन ब्रह्म है। यही अपरोक्ष ज्ञान है। यथा :

---

१. तपो न कल्कोऽध्ययनं न कल्कः स्वाभाविको ज्ञानविधिर्न कल्कः।
प्रसह्य वित्ताहरणं न कल्कः सर्वाणि भावोपहतानि कल्कः ॥

अर्थ : तप करना पाप नहीं हैं। न वेद पढ़ना पाप है। स्वाभाविक ज्ञान की विधि भी पाप नहीं है। हठ करके धन छीन लेना भी पाप नहीं है। परन्तु भावोपहत हो जाने से ये सब पाप हो जाते हैं। भाव यह कि दम्भ के लिए तप करना। दूसरे को जीतने के लिए वेद पढ़ना। बुरी नियत से देखना सुनना और धन के मालिक के भले के लिए नहीं बल्कि अपने स्वार्थ के लिए धन छीन लेना पाप है। क्योंकि ऐसा करने में भाव बिगड़ता है।

दो. जोग अगिनि करि प्रगट तब कर्म सुभासुभ लाइ।
बुद्धि सिरावै ग्यान घृत ममता मल जहि जाइ॥
तब विज्ञान निरूपिणी बुद्धि बिसद घृत पाइ।
चित्त दिया भरि धरै दृढ़ ममता दियटि बनाइ॥
तीनि अवस्था तीनि गुन तेहि कपास ते काढ़ि।
तूल तुरीय सँवारि पुनि बाती करै सुगाढ़ि॥
एहि बिधि लेसै दीप तेजरासि विज्ञानमय।
जातहि जासु समीप जरहिं मदादिक सलभ सब॥

ज्ञान मोक्ष प्रद : भाव यह है कि तब अखण्ड : सोहमस्मि वृत्ति का उदय होता है। उससे आत्मानुभव सुख होता है। भेद भ्रम जाता रहता है। मोहादि दूर होते हैं। तब चिद् जड़ ग्रन्थि खुल जाती है और जीव का मोक्ष हो जाता है। यही ज्ञानयोग है। यथा :

सोहमस्मि इति बृत्ति अखंडा। दीप सिखा सोइ परम प्रचंडा॥
आतम अनुभव सुख सुप्रकासा। तब भवमूल भेद भ्रम नासा॥
प्रबल अविद्या कर परिवारा। मोह आदि तम मिटै अपारा॥
तब सोइ बुद्धि पाइ उँजियारा। उर गृह बैठि ग्रंथि निरु आरा॥
छोरन ग्रंथि पाव जौं सोई। तौ यह जीव कृतारथ होई॥
जौं निर्बिघ्न पंथ निर्बहई। सो कैवल्य परम पद लहई॥
अति दुर्लभ कैवल्य परम पद। संत पुरान निगम आगम वद॥

वेद बखाना : वेद ने स्वयं ज्ञान का बखान किया है। यथा : ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः। तमेव विदित्वातिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय। ज्ञानादेव हि कैवल्यम्। बिना ज्ञान के मुक्ति नहीं होती। उसे जानने से ही मृत्यु का अतिक्रमण किया जा सकता है। मुक्ति का दूसरा मार्ग नहीं है। ज्ञान से ही कैवल्य की प्राप्ति होती है। इत्यादि। भाव यह कि मोक्ष का साक्षात् कारण ज्ञान है। यही संक्षेप में अद्वैतवाद है। अन्य मोक्षप्रद साधन ज्ञान द्वारा ही मोक्ष देते हैं। काशी मोक्ष देती है। क्योंकि ज्ञानखानि है। भक्ति मुक्ति देती है। क्योंकि ज्ञान विज्ञान उसके अधीन हैं। यथा :

मुक्ति जन्म महि जानि ज्ञान खानि अघ हानिकर।
जहँ बस संभु भवानि सो कासी सेइअ कस न॥
सो स्वतंत्र अवलम्ब न आना। तेहि आधीन ज्ञान विज्ञाना॥

भाई : यहाँ भाई सम्बोधन का भाव यह है कि तुम हमारे स्वभाव से परिचित हो। यहाँ मैं अपना स्वभाव कहता हूँ। अथवा भाई होने से तुम्हारा मेरे में भाव स्वाभाविक है और प्रेम का ही मार्ग सुलभ और सुखद है। उसी का मैं निरूपण करूँगा। यथा : सुलभ सुखद मारग यह भाई। भक्ति मोर पुरान श्रुति गाई। अतः भाई सम्बोधन दिया। मैं से सगुण ब्रह्म अभिप्रेत है। क्योंकि एकरस निर्विकार निर्गुण ब्रह्म में द्रवता सम्भव नहीं। और यहाँ उसी का प्रसङ्ग है। सगुण ब्रह्म के

अवतारों में भी रामावतार प्रसक्त है। क्योंकि उसकी विशेषता कही गयी है। अध्यात्म रामायण कहता है : अवतारा ह्यसंख्येया हरेः सत्त्वनिधेर्द्विजाः। नेषां सहस्रसदृशो रामो नाम जनैः श्रुतः। अर्थात् सत्त्वनिधि हरि के बहुत से अवतार हैं। उनमें से जगद् विख्यात रामावतार सहस्त्रों के समान हैं और विनय में ग्रन्थकार भी कहते हैं कि : एकइ दानि सिरोमनि साँचो। हरिहु और अवतार आपने राखी बेद बड़ाई। लै चिउरा निधि दई सुदामहि जद्यपि बाल मिताई।

जाते बेगि द्रवउँ : भाव यह कि अन्य साधनों से भी मैं द्रवीभूत होता हूँ। परन्तु शीघ्र नहीं। क्योंकि उसमें साधक को अपने बल का भरोसा रहता है। उन्हें भगवान् ने प्रौढ़ तनय माना है। परन्तु अमानी दास को शिशु बालक सम माना है। जिसे अपना भरोसा कुछ नहीं। सर्वात्मना माँ का भरोसा है। यथा : मोरे प्रौढ़ तनय सम ज्ञानी। बालक सिसु सम दास अमानी। जानहिं मोर बल निज बल ताही। दोउ कहँ काम क्रोध रिपु आही। भगवान् भी वीतचिन्त्य रहते हैं कि यह प्रौढ़ तनय है। यह काम क्रोधादि शत्रु का सामना कर लेगा। परन्तु अमानी दास की रखवारी करते हैं। यथा : गहि सिसु बच्छ अनल अहि धाई। तहँ राखै जननी अरगाई। अतः मानना पड़ेगा कि भगवान् के शीघ्र द्रवीभूत होने के भी कारण हैं। दूसरी बात यह है कि निर्गुण की उपासना में अधिक क्लेश है। देहाभिमानियों की गति अव्यक्त में बड़ी कठिनता से होती है। सर्व कर्मों का संन्यास करके गुरु के पास जाना और वहाँ वेदान्त वाक्यों का विचार करना और उन विचारों से अनेक प्रकार के भ्रमों को दूर करने में महान् प्रयास करना पड़ता है। सगुणोपासना में कोई प्रतिबन्ध नहीं है। उसे ईश्वर की कृपासे स्वयं तत्त्वज्ञान का उदय होता है और ब्रह्मलोक के ऐश्वर्य को भोगकर कैवल्य प्राप्त करता है। गीता में भगवान् ने कहा है कि हे पार्थ ! जो सब कर्मों को मुझे अर्पण करके मुझमें लग जाते हैं और अनन्य योग से मेरा ध्यान करते हुए उपासना करते हैं। ऐसे मुझ में चित्त लगानेवालों को मैं शीघ्र ही संसार सागर से पार कर देता हूँ। ध्यान देने योग्य बात यह है कि कभी वह करुणावरुणालय भक्तों पर द्रवीभूत होकर पूति दुर्गन्धियुक्त संसार में भी अवतीर्ण होता है। कभी राजा बन्दियों पर करुणा करके कारागार के निरीक्षण के लिए वहाँ पदार्पण करता है। यदि कभी ईश्वर अवतीर्ण ही न हो तो उसके होने का प्रमाण ही क्या है ? उस अवतीर्ण रूप के भजन की बड़ी महत्ता है। क्योंकि वह अवतार उस विश्व रूप भगवान् की द्रवीभूत मूर्ति है। उसे कृपा करते देर नहीं लगती।

सो मम भगति : भक्ति प्रेम को कहते हैं। वही प्रेम यदि छोटों पर हो तो वात्सल्य कहलाता है। बराबर पर हो तो मैत्री सौहार्द या सख्य कहलाता है। बड़ों के प्रति हो तो भक्ति कहलाता है। वही प्रेम यदि संसारी पुरुषों पर हो तो बन्ध का कारण होता है और वही यदि ईश्वर के चरणों में हो तो भवबन्ध से मुक्ति देता है। यथा :

जननी जनक बन्धु सुत दारा। तनु धनु भवन सुहृद परिवारा॥
सबकै ममता ताग बटोरी। मम पद मनहि बांध बरि डोरी॥

समदरसी इच्छा कछु नाहीं। हरख सोक भय नहिं मन माहीं॥
अस सज्जन मम उर बस कैसे। लोभी हृदय बसै धन जैसे॥

इसी भक्ति से भगवान् शीघ्र ही द्रवीभूत होते हैं। द्रवीभूत होने का प्रारम्भ जीव के ईश्वर प्रति अनुकूल होते ही हो जाता है। यथा : सन्मुख होइ जीव मोहि जबहीं। जनम कोटि अघ नासहिं तबहीं। बिना करुणानिधान के प्रति अनुकूल हुए तो सब साधन ही निष्फल हैं। यथा : जोग कुजोग ज्ञान अज्ञानू। जहँ नहिं राम प्रेम परधानू। निरुपास्ति ज्ञान भी टिकाऊ नहीं होता। क्योंकि भक्ति ही योग और ज्ञान के भी विघ्नों को दूर करनेवाली है। यथा : अतः प्रत्यक् चेतनाधिगमोऽप्यन्तरायाभावश्च। यो. १ पाद २९ सूत्र.। अर्थात् भक्ति से प्रत्यक् चेतना का ज्ञान होता है और विघ्नों का नाश भी होता है। भक्ति के साथ होने से करुणानिधान की करुणा बनी रहती है और उसी से सिद्धि होती है। परन्तु उसमें देर लगती है। क्योंकि भक्ति के साथ अन्य साधनों का मिश्रण रहता है। शुद्ध भक्ति होने से भगवान् को पूर्ण करुणा में देर नहीं लगती। यथा :

रामहि केवल प्रेम पियारा। जानि लेहु जो जाननि हारा॥
रीझत राम सनेह निसोते। को जग मंद मलिन मति मोते॥
जौ पै हरि जन के गुन गहते।
तौ सुरपति कुरुराज बालि सौ, कत हठि बैर बिसहते॥
जौ जप जाग जोग ब्रत बर्जित, केवल प्रेम न चहते॥
तौ कत सुर मुनि बर बिहाइ, ब्रज गोप गेह बसि रहते॥

भगत सुखदाई : भाव यह कि दुःखदाई पदार्थों को हटाकर ही भक्ति भगवती का पादार्पण होता है। जननी जनक बंधु सुत दारा। आदि नश्वर पदार्थों में ममता रहना ही दुःखदाई है। सो भक्ति करने में इनसे मनोवृत्ति को हटाकर तब भगवान् के चरणों में लगायी जाती है। जब तक इनमें प्रेम है तब तक भक्ति कहाँ? और जब अविनाशी भगवान् के चरणों में मन लगा तब सुख ही सुख है। स्वयं भगवती भास्वती भक्ति में ही ऐसी सामर्थ्य है कि भक्त के सन्निकट विपत्ति को फटकने नहीं देती। यथा : बचन काय मन मम गति जाहीं। सपनेहुँ बूझिअ बिपत्ति कि ताही। यदि भक्ति में त्रुटि है तभी विपत्ति का आगमन होता हैं। भुसुण्डि ने कहा : देखेउँ करि सब करम गोसाईं। सुखी न भयेउँ अबहिं कि नाईं। भक्ति के सामने दूसरे की कौन कहे स्वयं माया का बल नहीं चलता। क्योंकि भक्ति भगवान् की प्यारी है। यथा :

पुनि रघुबीरहि भगति पियारी। माया खलु नर्तकी बिचारी॥
भगतिहि सानुकूल रघुराया। ताते तेहि डरपति अति माया॥

भुसुण्डिजी कहते हैं कि भक्ति छोड़कर सुख पाने का दूसरा उपाय नहीं है। यथा :

श्रुति पुरान सब ग्रंथ कहाहीं। रघुपति भगति बिना सुख नाहीं॥
कमठ पीठ जामहि बरु बारा। बंध्या सुत बरु काहुहि मारा॥

फूलहि नभ बरु बहु बिधि फूला। जीव न लह सुख हरि प्रतिकूला॥
तृषा जाइ बरु मृगजल पाना। बरु जामहि सस सीस बिषाना॥
अन्धकार बरु रबिहि नसावै। राम बिमुख न जीव सुख पावै॥
हिम ते अनल प्रगट बरु होई। बिमुख राम सुख पाव न कोई॥

इसी से चिद्रूप जीव और अचिद्रूप जगत् दोनों का शरीर माननेवाला विशिष्टाद्वैतवाद, जीव जगत् के सूक्ष्मतत्त्व को ईश्वर में वर्तमान माननेवाला द्वैताद्वैतवाद, जीव ब्रह्म का सार्वकालिक भेद माननेवाला द्वैतवाद तथा जीव को अग्नि के स्फुलिङ्ग के समान अंश माननेवाला शुद्धाद्वैतवाद सभी ने एक मुख से भक्ति को ही साधन गाना है। अद्वैतवाद के परमाचार्य शङ्कर भगवान् : सत्यपि भेदापगमे नाथ तवाहं न मामकीनस्त्वम्। सामुद्रो हि तरङ्गः क्वचन समुद्रो हि न तारङ्गः कहते हैं। अर्थात् भेद चले जाने पर भी हे नाथ ! मैं तुम्हारा हूँ। मेरे तुम नहीं हो। समुद्र का तरङ्ग होता है तरङ्ग का समुद्र नहीं होता।

सो सुतंत्र अवलंब न आना। तेहि अधीन ज्ञान बिज्ञाना॥
भगति तात अनुपम सुख मूला। मिलइ जो संत होंहि अनुकूला॥२॥

अर्थ : वह : भक्ति स्वतन्त्र है। उसे : दूसरे का अवलम्बन नहीं है। ज्ञान विज्ञान उसके अधीन हैं। हे ! तात अनुपम सुख मूल भक्ति यदि सन्त अनुकूल हों तो मिलती है।

व्याख्या : सो सुतन्त्र : जो परमुखापेक्षी न हो वही स्वतन्त्र है। कर्म और ज्ञान स्वतन्त्र नहीं है। यज्ञ यागादि कर्म में अधिकार, द्रव्य, विधान, सामर्थ्य, देश, काल आदि का बड़ा बखेड़ा है। उसकी सिद्धि इनके अधीन है। फिर भी यदि उसमें भक्ति का पुट न रहा तो उससे संसार ही दृढ़ होता चला जाता है। इसीलिए श्रीगोस्वामीजी कहते हैं :

सो सब करम धरम जरि जाऊ। जहँ न रामपद पंकज भाऊ॥
करतउ सुकृत न पाप सिराहीं। रक्त बीज इव बाढ़त जाहीं॥

ज्ञान भी स्वतन्त्र नहीं है। ऊपर कह आये हैं कि ज्ञानदीप के प्रज्ज्वलित करने में तत् पद के और त्वं पद शोधन में तथा एकीकरण में कितने साधनों की अनिवार्य आवश्यकता है। सब कुछ होने पर भी आत्मानुभव प्रकाश में तथा चित् जड़ग्रन्थि के छोड़ने में अचिन्त्य बाधायें आ पड़ती हैं। यथा :

छोरत ग्रंथि जानि खगराया। बिघन अनेक करै तब माया॥
रिद्धि सिद्धि प्रेरै बहु भाई। बुद्धिहि लोभ दिखावहिं आई॥
कल बल छल करि जाहिं समीपा। अंचल बात बुझावहिं दीपा॥
जौं तेहि बुद्धि बिघ्न नहि बाधी। तौ बहोरि सुर करहिं उपाधी॥
इन्द्री द्वार झरोखा नाना। तहँ तहँ सुर बैठे करि थाना॥
आवत देखहिं बिषय बयारी। ते हठि देहिं कपाट उघारी॥

जब सो प्रभंजन उर गृह जाई। तबहिं दीप बिज्ञान बुझाई॥
ग्रन्थि न छूटि मिटा सो प्रकासा। बुद्धि बिकल भइ बिषय बतासा॥
बिषय समीर बुद्धि कृत भोरी। तेहि बिधि दीप को बार बहोरी॥

दो. तब फिर जीव बिबिध बिधि, पावइ संसृति क्लेस।
हरि माया अति दुस्तर, तरि न जाइ बिहगेस॥

यदि ज्ञान सिद्ध हो तो भी भक्ति का आदर वहाँ भी अनिवार्य है। नहीं तो निरुपास्ति ज्ञान से साधक का पतन होता है। यथा : जो ज्ञान मान बिमत्त तव भव हरनि् भगति न आदरी। ते पाइ सुर दुर्लभ पदादपि परत हम देखत हरी।

अवलम्ब न आना : भक्ति के स्वातन्त्र्य का कारण कहते हैं कि उसे दूसरे का अवलम्बन नहीं है। वह कर्म : यज्ञादि और ज्ञान की मुखापेक्षी नहीं है। यह बात नहीं है कि बिना यज्ञ किये भक्ति होती ही नहीं। यहाँ पर ग्रन्थकार कहते हैं :

कौन धौं सोमयाजी अजामिल अधम। कौन गजराज धौं बाजपेयी। अर्थात् ये आर्त्त भक्त बिना यज्ञयागादि के ही कल्याण भाजन हुए और यह बात भी नहीं कि बिना ज्ञान के भक्ति न हो। किरातों को कौन बड़ा ज्ञान था। यथा : किरात बचन प्रभु प्रति :

कीन्ह बास भल ठाँउ बिचारी। इहाँ सकल रितु रहब सुखारी॥
हम सब भाँति करब सेवकाई। करि केहरि अहि बाघ बराई॥
बन बेहड़ गिरि कंदर खोहा। सब हमार प्रभु पग पग जाहा॥
तहँ तहँ तुम्हहिं अहेर खेलाउब। सर निर्झर जल ठाँउ देखाउब॥
हम सेवक परिवार समेता। नाथ न सकुचब आयसु देबा॥

दो. बेद बचन मुनि मन अगम ते प्रभु करुना अयन।
बचन किरातन्ह के सुनत जिमि पितु बालक बयन॥

इसलिए भक्ति को स्वतन्त्र कहा है। भक्ति विशेष से चाहे हुए भगवान् भक्त के अभिमुख होते हैं और इच्छामात्र से उसके अभीष्ट प्रदान पूर्वक उस पर अनुग्रह करते हैं। ईश्वर की इच्छामात्र से उस भक्तयोगी को शीघ्र से शीघ्र समाधि की प्राप्ति होती है और समाधि का फल भी होता है। भगवत्स्मरण से भक्त को रोगादि विघ्न भी नहीं होते और स्वरूप[1] दर्शन भी उसे होता है। अतः भक्ति की उपमा चिन्तामणि से दिया। जिस भाँति चिन्तामणि का प्रकाश स्वाभाविक है। दीप के प्रकाश की भाँत आगन्तुक नहीं है। उसी भाँति भक्ति में स्वात्मानुभव प्रकाश स्वाभाविक है।

---

१. प्रणिधानाद् भक्तिविशेषादावर्जित ईश्वरस्तमनुगृह्णात्यभिधानमात्रेण। तदभिध्यानमात्रादपि योगिन आसन्नतमः समाधिफलं च भवति।

यो. भा. १.२३

ये तावदन्तराया व्याधिप्रभृतयस्ते तावदीश्वरप्रणिधानान्न भवन्ति। स्वरूपदर्शनमप्यस्य भवति। योग भा. १.२९

जिस भाँति चिन्तामणि से सब सुखों का लाभ होता है उसी भाँति भक्ति से भी सर्वाभीष्ट की सिद्धि होती है। अतः भक्ति स्वतः सब कुछ करने में समर्थ है। यथा :

राम भगति चिंतामनि सुन्दर। बसइ गरुड़ जाके उर अंतर॥
परम प्रकाश रूप दिन राती। नहिं कछु चहिय दिया घृत बाती॥
मोह दरिद्र निकट नहिं आवा। लोभ बात नहिं ताहि बुझावा॥
प्रबल अविद्या तम मिटि जाई। हारहिं सकल सलभ समुदाई॥
खल कामादि निकट नहिं जाहीं। बसै भगति जाके उर माहीं॥
गरल सुधा सम अरि हित होई। तेहि मनि बिन सुख पाव न कोई॥
व्यापहिं मानस रोग न भारी। जिन्ह के बस सब जीव दुखारी॥
राम भगति मनि उर बस जाके। दुख लव लेस न सपनेहुँ ताके॥
चतुर सिरोमनि तेइ जग माहीं। जे मनि लागि सुजतन कराहीं॥

तेहि आधीन ज्ञान बिज्ञाना : ऊपर दिखला चुके हैं कि ज्ञान विराग की स्थिति बिना भक्ति के नहीं होती। श्रीमद् भागवत माहात्म्य में ज्ञान विराग के अधीन होने का बड़ा सुन्दर उपाख्यान हैं। वृन्दावन में एक युवती सुन्दरी रुदन करती थी और दो वृद्ध पुरुष मृत्यु शय्या पर पड़े ऊर्ध्वश्वास ले रहे थे। नारदजी के पूछने पर मालूम हुआ कि वृद्ध युवती भक्ति है और दोनों चेतना रहित पुरुष ज्ञान विराग उसके पुत्र हैं। वृन्दावन में आने से भक्ति तो वृद्धा से तरुणी हो गयी। पर उसके पुत्रों का कोई उपकार नहीं हुआ। अन्त में नारद भगवान् के उद्योग से भागवत की कथा हुई और उससे ज्ञान विराग भी स्वस्थ हो गये। तात्पर्यार्थ यही है कि भक्ति से ही ज्ञान वैराग्य उत्पन्न हाते हैं तथा उसकी कृपा से स्वास्थ्य लाभ करते हैं। जिसे भक्ति होती है उसे ज्ञान विराग स्वयं ही प्राप्त हो जाते हैं। यथा :

सब सुख खानि भगति तै माँगी। नहिं जग कोउ तोहि सम बड़भागी॥
जो मुनि कोटि जतन नहिं लहहीं। जे जप जोग अनल तट दहहीं॥
रीझेउँ देखि तोरि चतुराई। मागेहु भगति मोहि अति भाई॥
सुनु बिहँग प्रसाद अब मोरे। सब सुभ गुन बसिहहिं उर तोरे॥
भगति ज्ञान बिज्ञान बिरागा। जोग चरित्र रहस्य बिभागा॥
जानब तै सबही कर भेदा। मम प्रसाद नहिं साधन खेदा॥

तात : प्रश्न हुआ था : कहहु सो भगति कहहु जेहि दाया। आदेश हो रहा है। जाते बेगि द्रवौं मैं भाई। यहाँ भी प्रश्न से उत्तर में विशेषता है। अतः प्यार के शब्द : तात से सम्बोधन करते हैं। ऊपर भी ऐसा ही हो चुका है। पूछा था सकल कहहु समुझाई। उत्तर हुआ : थोरेहि महं सब कहउँ बुझाई। सुनहु तात। प्रश्न विराग के विषय में हुआ। उत्तर मिला : सुनहु तात सो परम बिरागी। अतः निष्कर्ष यही निकला कि जहाँ प्रश्न से उत्तर में कुछ विशेष बात प्यार के कारण कहनी है वहाँ तात शब्द से सम्बोधन करते हैं।

भगति अनुपम सुख मूला : भक्ति के तीन विभाग है : १. साधन २. भाव

और ३. प्रेम। जो करने से हो और जिससे उसके कारण नित्य सिद्ध भाव का हृदय में आविर्भाव हो उसे साधन भक्ति कहते हैं। द्रवीभूत चित्तवृत्ति में जब राम रङ्ग चढ़ जाता है तो उसे भाव भक्ति कहते हैं। जब श्रीराम चरण में क्षण क्षण अविच्छिन्न आसक्ति बढ़ती चले। गुणों की कामना न रहे। ऐसे परमानन्द शान्तिमय अनुभव रूप निरोध को प्रेमा भक्ति कहते हैं। १. साधन भक्ति यथा : भगति के कहौं बखानी। २. भाव भक्ति यथा : भये काल बस जब पितु माता। मैं बन गयउँ भजन जन त्राता। ३. प्रेमा भक्ति यथा : अविरल प्रेम भगति मुनि पाई। प्रभु देखहिं तरु ओट लुकाई। जो भगति सदा बनी रहे। जिसमें कभी व्यवधान पड़े ही नहीं। जिसमें अन्तराय का होना सम्भव ही नहीं वही अनुपम है। कर्म तो ऐसा हो नहीं सकता। क्योंकि उसका स्वरूप ही त्याग ग्रहणात्मक है। ज्ञान भी जीव में एक रस नहीं रह सकता। यथा : जौं सबके रह ज्ञान एक रस। ईश्वर जीवहि भेद कहहु कस। परन्तु भक्ति ऐसी है जिसमें अन्तराय सम्भव नहीं। उसी को अविरल, अनपायिनी, सिद्धा, अनन्या आदि अनेक नामों से कहते हैं। उस पर माया का भी बल नहीं चलता। अतः वह अनूप हैं। सुखमूल है। यथा :

राम भगति निरुपम निरुपाधी। बसइ जासु उर सदा अबाधी॥
तेहि बिलोकि माया सकुचाई। करि न सकै कछु निज प्रभुताई॥
अस बिचारि जे मुनि बिज्ञानी। जाचहिं भगति सकलसुख सानी॥

मिलइ : भाव यह कि कृपासाध्य है क्रियासाध्य नहीं। अपने पुरुषार्थ से उसे कोई नहीं प्राप्त कर सकता। वह भगवान् के अनुग्रह से ही मिलती है। यथा : अबिरल भगति बिसुद्ध तव श्रुति पुराण जो गाव। जेहि खोजत योगीश मुनि प्रभु प्रसाद कोउ पाव। भगत कल्पतरु प्रनत हित कृपासिन्धु सुखधाम। सोइ निज भगति मोहि प्रभु देहु दया करि राम।

जो सन्त होहिं अनुकूला : भाव यह कि प्रभु प्रसाद से ही वह मिलती है। चाहे साक्षात् प्रभु द्वारा मिले। चाहे उनके अपर रूप सन्तों द्वारा मिले। विशुद्ध सन्त का समागम भी बिना प्रभु की कृपा सम्भव नहीं है। यथा :

सन्त बिसुद्ध मिलहिं परि तेही। चितवहिं राम कृपा करि जेही॥

जिसके अङ्ग अङ्ग के प्रति वेदों ने लोकों की कल्पना की है। उस प्रभु का दर्शन दुर्लभ है। स्वयं भगवान् कहते हैं :

सुदुर्दर्शमिदं रूपं दृष्टवानसि यन्मम।
देवा अप्यस्य रूपस्य नित्यं दर्शनकाङ्क्षिणः॥
नाहं वेदैर्न तपसा न दानेन न चेज्यया।
शक्य एवंविधो द्रष्टुं दृष्टवानसि मां यथा॥
भक्त्या त्वनन्यया शक्य अहमेवंविधोऽर्जुन।
ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परंतप॥

गीता ११. ५२-५४

अर्थात् हे अर्जुन ! तुमने मेरे जिस सुदुर्दर्श रूप का दर्शन किया है उसके दर्शन के लिए देवता भी सदा लालायित रहते हैं। वेद से, तप से, दान से या यज्ञ से कोई मेरा दर्शन इस भाँति नहीं पा सकता जिस भाँति तुमने पाया है। केवल अनन्य भक्ति से ही भक्त इस प्रकार से जान सकता है देख सकता है और मेरे में प्रवेश कर सकता है। सो विश्व रूप भगवान् समुद्र हैं। सबकी इन तक गति नहीं। यह पुरुषार्थ मेघरूपी सन्तों में ही है कि भगवान् की ही मङ्गलमयी मधुर मनोहर मूर्ति भक्ति को लाकर मिला दे। आनन्दकन्द भगवान् चन्दन के वृक्ष हैं। पर सर्पादि विघ्नबाहुल्य से कोई चन्दन वृक्ष तक जा नहीं सकता। पर यह सामर्थ्य सन्तरूपी मरुत् में ही है कि उसकी आनन्दमयी विभूति भक्ति को लाकर पुरुषार्थहीन प्राणी से मिला दे। इसलिए कहते हैं : मिलै जो सन्त होहि अनुकूला। यथा :

मोरे मन प्रभु अस बिस्वासा। राम ते अधिक राम कर दासा॥
रामसिन्धु घन सज्जन धीरा। चंदन तरु हरि संत समीरा॥
सब कर फल हरि भगति सोहाई। सो बिनु संत न काहू पाई॥
अस बिचारि जोइ कर सतसंगा। राम भगति तेहि सुलभ बिहंगा॥

यह पाँचवें प्रश्न का उत्तर समाप्त हुआ। अब प्रथम प्रश्न का उत्तर कहते हैं।

भक्तियोग : साधना

भगति के साधन कहहुँ बखानी। सुगम पंथ मोहि पावहि प्रानी॥
प्रथमहि बिप्र चरन अति प्रीती। निज निज कर्म निरत श्रुति रीती॥३॥

अर्थ : भक्ति के साधनों को बखान करके कहता हूँ। इस : सुगम पन्थसे मुझे प्राणी प्राप्त होते हैं। पहिले ही विप्र के चरणों में अति प्रीति हो और वैदिक रीति से अपने अपने कर्म में निरत : लगे हों। ७.२० बरनाश्रम निज निज धरम निरत बेद पथ लोग।

व्याख्या : भगति के साधन : अविरल भक्ति का प्रसङ्ग समाप्त हुआ। अब जो पहले प्रश्न किया था : मोहि समुझाउ कहौ सो देवा। सब तजि करौं चरन रज सेवा। उसका आरम्भ होता है। भाव यह कि जिस साधन से सुख सम्पत्ति परिवार और बड़ाई आदि का परित्याग करके सेवकाई में जीव प्रवृत्त होता है उसका वर्णन किया जा रहा है। वे ही भक्ति के साधन हैं। ईश्वर के अस्तित्व का ज्ञान मनुष्य में स्वाभाविक है। वह छोटे छोटे बच्चों में भी पाया जाता है। निरीश्वरवाद अस्वाभाविक है। बड़ी कठिनता से गले उतरना है। फिर भी : ईश्वर नहीं है ऐसा अभ्रान्त ज्ञान तो किसी को होता ही नहीं। उसके बिना जाने भी ईश्वर के अस्तित्व की धारणा छिपी छिपायी कहीं न कहीं उसके हृदय में पड़ी ही रहती है। तब ईश्वर की प्राप्ति के लिये प्रयत्न करना उसके लिए स्वाभाविक है। फिर भी मनुष्य जो ईश्वर की भक्ति नहीं करता उसका कारण यह है कि सुख सम्पत्ति परिवार

बड़ाई इत्यादि उसके बाधक हैं। इन बाधकों को दूर करने से हृदय में स्वतः भक्ति का सञ्चार हो उठता है। यथा :

सुख सम्पति परिवार बड़ाई। सब परिहरि करिहौं सेवकाई।।
ये सब राम भगति के बाधक। कहहिं संत तव पद अवराधक।।
अब प्रभु कृपा करहु एहि भाँति। सब तजि भजनु करउँ दिन राती।।

कहहुँ बखानी : भाव यह कि समझाकर कहता हूँ। क्योंकि प्रार्थना ही ऐसी है : मोहि समुझाइ कहौं सोइ देवा। साधन के वर्णन में कुछ विस्तार करना ही पड़ता है। साधन अनेक होते हैं और उनके पूर्वापर का क्रम होता है। उनमें उलट फेर होने से सिद्धि में कठिनाई होती है और ठीक क्रम से चलने में सुगमता होती है और सिद्धि भी शीघ्र होती है। दूसरी बात यह कि ज्ञानपन्थ की भाँति यह अकथ कहानी नहीं है। जो न समझते ही बने न बखानते ही बने। यथा : सुनहु तात यह अकथ कहानी। समुझत बनै न जात बखानी।

सुगम पंथ : जिस मार्ग से चलने में विघ्नबाधा न हो। आयास न हो। वही सुगम पंथ है। इस पंथ पर चलनेवाली की रखवारी स्वयं भगवान् करते हैं। अतः उसे विघ्नबाधा दबा नहीं सकती और उसमें योग जप तप व्रत उपवासादि कष्टकर अनुष्ठान नहीं है। आप से आप समाधि सिद्ध होती है। भक्ति योग के पथिक को भगवान् के सहारे से पार का प्राप्त करना कठिन नहीं होता है। यथा :

ज्ञान पंथ कृपान कै धारा। परत खगेस होइ नहिं वारा।।
कहत कठिन समुझत कठिन साधन कठिन विवेक।
होई घुनाच्छर न्याय ज्यौं पुनि प्रत्यूह अनेक।।
सोम कि चापि सकै कोउ तासू। बड़ रखवार रमापति जासू।।
कहहु भगति पथ कवन प्रयासा। जोग न मख जप तप उपवासा।।
सुमिरत हरिहि श्राप गति बाधी। सहज बिमल मन लागि समाधी।।

मोहि पावहि प्रानी : एक व्यापक अविनाशी अविकारी सच्चिदानन्दघन ब्रह्म सबके हृदय में विद्यमान है पर उसकी प्राप्ति तो नहीं होती। यदि प्राप्ति होती तो जीव दीन दुखारी नहीं होते। काष्ठ में अग्नि तो अव्यक्तरूप से व्याप्त है पर मन से काष्ठ और अग्नि को पृथक् करने से अग्नि को प्राप्ति नहीं होती। उसकी प्राप्ति तब होगी जब यत्न से उस अव्यक्त अग्नि को व्यक्तरूप में लाया जाय। इसी भाँति अव्यक्त ब्रह्म सर्वत्र व्याप्त है। स्वयं हृदय में विराजमान है पर प्राप्ति उसकी नहीं होती। जब भक्ति द्वारा उसे व्यक्तरूप : सगुणरूप में लाया जाय तब उसकी प्राप्ति होती है। हीरे में मूल्य है पर हीरे से स्वयं तो कोई काम नहीं चलता। जब यत्न किया जाय और उसके कुव्यक्त मूल्य को व्यक्तरूप में लाया तब उससे काम चल सकता है। यथा :

सहे सुरन्ह बहुकाल बिषादा। नरहरि किये प्रगट प्रहलादू।।
एक दारुगत देखिय एकू। पावक सम जुग ब्रह्म बिबेकू।।
नाम निरूपन नाम जतन तें। सोउ प्रकटत जिमि मोल रतन तें।।

प्रथमहि : भाव यह कि भक्ति पथ पर पैर रखनेवाले को पहिले साधन भक्ति को अङ्गीकार करना पड़ता है। प्रथमहिं कहकर यह दिखलाया कि यहाँ जो कुछ कहा जायगा उसमें क्रम है। दूसरा तीसरा कहकर स्पष्ट न गिनाने पर भी क्रम समझ लेना चाहिए।

बिप्र चरन अति प्रीति : विप्र वेदपाठी ब्राह्मण को कहते हैं। ब्राह्मण में यदि ब्राह्मणोचित गुण न हो तो भी उसका कर्मठ होना अनिवार्य है। वेद विहीन ब्राह्मण शोच्य हो जाता है। अतः गोस्वामीजी ने विप्र शब्द का अधिक प्रयोग किया है। ब्राह्मण शब्द का अति विरल प्रयोग है। सो पहला साधन यह है कि विप्र के चरण में अति प्रीति हो। क्योंकि द्विज सेवकाई हरि तोषण व्रत है। विप्र के पूजित होने से भगवान् तुष्ट होते हैं। इसीलिए ये महिदेव कहलाते हैं।

अति प्रीति कहने का भाव यह कि उनसे शापित ताड़ित तथा अपमानित होने पर भी क्रोध न करे। उनकी पूजा ही करे। क्योंकि शील गुणहीन ब्राह्मण के भी पूजन का विधान है। गुण ज्ञान प्रवीण शूद्र के पूजन का विधान नहीं है। पूर्व जन्म के [1]कर्मों से ही जाति आयु और भोग की प्राप्ति होती है। जो रमणीयाचरण है उनको रमणीय योनि की प्राप्त होती है वे ब्राह्मण क्षत्रिय या वैश्य होते हैं और जो कपूयाचरण है उनको कपूय योनि को प्राप्ति होती है वे चाण्डाल योनि या कुत्ते की योनि को प्राप्त होते हैं। अतः शील गुण रहित विप्र की पूजा वस्तुतः उसके पूर्व जन्म के रमणीयाचरण की पूजा है। जिसके विपाक से उसे ब्राह्मण शरीर मिला है और गुण ज्ञान प्रवीण शूद्र की अपूज्यता उसके पूर्व जन्म के कपूयाचरण का परिचायक रूप है। इस जन्म का रमणीयाचरण अभी परिपक्व नहीं हुआ है। आगामी जन्म में उसके आयु और जाति व भोग का कारण होगा। यथा :

सुनु गन्धर्व कहौं मैं तोही। मोहि न सोहाय ब्रह्मकुल द्रोही॥

दो. मन क्रम बचन कपट तजि जो कर भूसुर सेव।
मोहि समेत बिरंचि सिव बस ताके सब देव॥

सापत ताड़त परुष कहंता। बिप्र पूज्य अस गावहिं संता॥
पूजिअ बिप्र सील गुन हीना। सूद्र न गुनगन ग्यान प्रबीना॥

अतः जिस भाँति अश्वत्थ तुलसी आदि स्वयं अपने कल्याण सम्पादन में असमर्थ हैं। पर उनके पूजकों का कल्याण होता है। उसी भाँति शील गुण हीन विप्र अपना कल्याण करने में असमर्थ हैं। पर उनके पूजक का कल्याण होता है।

निज निज कर्म निरत : अपने वर्ण और अपने आश्रम के कर्म में लगा रहे। भाव यह कि शोक मोहादि दोषों से जिनका चित्त घिरा हुआ है ऐसे सभी प्राणियों से स्वधर्म का त्याग और निषिद्ध धर्म का सेवन स्वाभाविक ही होता है : तथा च सर्वप्राणिनां शोकमोहादि दोषाविष्टचेतसां स्वभावत एव स्वधर्मपरित्यागः प्रतिषिद्ध-

१. सति मूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगाः। प० यो० सू०.

सेवा च स्यात्। शां० भा०. जैसे अर्जुन पहले स्वयं ही क्षात्रधर्म रूप युद्ध में प्रवृत्त हुआ था। तब भी शोक मोह द्वारा विवेक ज्ञान के दब जाने से उस युद्ध से उपरत हुआ और दूसरों का धर्म भिक्षाचरण में प्रवृत्त होने लगा। अतः ब्राह्मण में जो अन्य जाति के कर्म करने की प्रवृत्ति देखी जाती है या हीन जाति में जो उच्च जाति के कर्म करने की प्रवृत्ति देखी जाती है। इसी भाँति संन्यस्त में जो गृहस्थ धर्म की प्रवृत्ति तथा गृहस्थ में संन्यास धर्म की प्रवृत्ति है। उसका कारण शोक मोहादि से विवेक विज्ञान का दब जाना ही है। दूसरी बात यह है कि जिनका सम्बन्ध ब्राह्मणों से टूट जाता है। उनसे वर्णाश्रम धर्म का निर्वाह किसी भाँति सम्भव नहीं। मनु भगवान् ने स्पष्ट लिखा है कि यहीं के क्षत्रिय जो बाहर जाकर बसे। वे ब्राह्मणों से असम्बद्ध होने के कारण वर्णाश्रम धर्म से पतित होकर यवन, म्लेच्छ, पुल्कस, किरातादि अवस्था को प्राप्त हो गये हैं। स्वधर्मत्याग से मनुष्य पतित हो जाता है। यथा :

बिप्र निरच्छर लोलुप कामी। निराचार सठ बृषली स्वामी॥
सूद्र करहिं जप तप ब्रत नाना। बैठि बरासन कहहिं पुराना॥
गुन मन्दिर सुन्दर पति त्यागी। भजहिं नारि नर पर पुरुष अभागी॥
सौभागिनी बिभूषन हीना। बिधवन्ह के सिंगार नवीना॥
तपसी धनवंत दरिद्र गृही। कलि कौतुक तात न जात कही॥

इत्यादि।

श्रुति रीति : भाव यह कि वेद की रीति से जिसका जो कर्म है वही करे। दूसरा न करे। अदृष्टार्थ का ज्ञान वेद तथा तच्चरणाश्रित शास्त्रों से ही हो सकता है। ईश्वर स्वर्ग या धर्म को किसी ने देखा नहीं। इनका ज्ञान अन्य किसी प्रमाणों से नहीं हो सकता। अचिन्त्याः खलु ये भावा न तांस्तर्केण योजयेत्। जो भाव अचिन्त्य हैं उन सब में तर्क को स्थान नहीं देना चाहिए। अतः धर्म कैसे पालन करना चाहिए इसे श्रुति ही बतला सकती है। लाखों मनुष्यों के एक स्वर के चिल्लाने से भी न कोई वस्तु पुण्य हो सकती है न पाप हो सकती है। करोड़ों आदमियों के एक साथ आवाज उठाने पर भी न शीशा हीरा हो सकता है और न हीरा शीशा हो सकता। इसका विवेक तो पारखी : जौहरी ही कर सकता है। अतः कल्पित आचार न करे। जो कर्म एक के लिए धर्म है वही दूसरे के लिए अधर्म हो जाता है। इसलिए कार्याकार्य की व्यवस्था में शास्त्र ही प्रमाण है। शास्त्र विधान को जानकर ही कर्म करना चाहिए। तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ। ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं कर्म कर्तुमिहार्हसि। गीता १६.२४.। यःशास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः। न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परां गतिम्। गीता १६.२३.। जो शास्त्र विधि को छोड़कर अपने मन का करते हैं उन्हें न तो सिद्धि मिलती है न सुख मिलता है। न उनको परा गति की प्राप्ति होती है। श्रुतिरीति कर्म करने की यह है कि शास्त्रविहित कर्म को संग रहित होकर बिना रागद्वेष के फल की इच्छा न रखते हुए करे। तात्पर्यार्थ यह कि अपनी स्वाभाविकी प्रवृत्ति

को शास्त्रीया बनावे और उसे ऐसा दृढ़ बनावे कि उसके त्याग में उतनी ही कठिनता मालूम पड़े जितनी कि पहिले स्वाभाविकी प्रवृत्ति के त्याग में मालूम पड़ी थी। यथा :

सिवि दधीच हरिचंद नरेसा। सहे धरमहित कोटि कलेसा॥
रंतिदेव बलि भूप सुजाना। धरम धरेउ सहि संकट नाना॥
मैं सोइ धर्म सुलभ करि पावा। तजें तिहूँ पुर अपजस छावा॥
संभावित कहँ अपजस ताहू। मरन कोटि सम दारुन दाहू॥

एहि कर फल पुनि बिषय बिरागा। तब मम धर्म उपज अनुरागा॥
श्रवनादिक नव भक्ति दृढ़ाहीं। मम लीला रति अति मन माहीं॥४॥

अर्थ : इसका फल फिर विषय विराग है। तब मेरे धर्म में अनुराग उत्पन्न होता है। तब श्रवणादिक नव भक्तियाँ दृढ़ होती हैं और मन में मेरी लीला की अत्यन्त प्रीति होती है।

एहि कर फल पुनि : भाव यह कि कार्यकारण श्रृंखला चल रही है। विप्रचरण प्रीति का फल श्रुतिरीति से स्वधर्माचरण। अब उसका फल कहते हैं। इसलिए पुनि शब्द का प्रयोग किया है।

बिषय बिरागा : अर्थात् वशीकार संज्ञा वैराग्य प्राप्त होता है। जिसका वर्णन पहले किया है जा चुका है। भाव यह कि शास्त्रीया प्रवृत्ति दृढ़ होने से ही वस्तु विचार का उदय होता है। तब विषय के दोष परिणाम विरसत्वादि दिखायी पड़ने लगते हैं। बिना दोष दर्शन के वैराग्य नहीं होता।

तुरत बिरत होके रोक के इन्द्रियों को
स्मरण मनन से भी नारि के जी हटाऊँ।
सुरत बिरसता को देह बीभत्सता को
प्रति दिन जिय सोचूँ काम यों नसाऊँ॥

कमलदल से सूक्ष्म चर्म विरंचि यदि मढ़ता नहीं।
मांस के इस पिंड को त्वक् खोल में धरता नहीं॥
गृद्ध काक श्रृगाल लोहु मांस के भक्षक सदा।
टूटते इस देह पर मिलते कहाँ रक्षक तदा॥
कभी नहीं उपकार करेंगे किया नहीं करते।
पुत्र किसी के भी क्या तेरे सुखद नहीं होते॥
उनका विरह मर्मभेदी दुःख है नाहक उनके।
लिये बहुत सा मेहनत करना कष्ट बहुत सह के॥
ब्रह्मा इन्द्र मुनीस सागर मही मन्वादि दीर्घायु हैं।
वे भी लाख करोड़ होकर मरे ये जीव अल्पायु हैं॥

को है मोह अहो प्रकाश करता जो शोक को लोक में।
बुद्‌बुद से तनके लिये मिलन है जो पाँच का पाँच में ।।

प्रवोध चन्द्रोदय.

वैराग्योदय की आवश्यकता दोनों मार्गों में अनिवार्य है। धर्म ते विरति : ज्ञानयोग प्रकरण में कहा गया है और यहाँ भी वही बात कही जा रही है। पर इसके बाद की प्रक्रिया में भेद है। ज्ञानमार्गी वैराग्योदय के बाद योग द्वारा : तत् त्वं पद शोधन करके : सोहमस्मि वृत्ति से आत्मानुभव करते हुए चिज्जड़ ग्रन्थि को सुलझाकर मोक्ष लाभ करते हैं। पर सगुणोपासक यह रास्ता नहीं पकड़ते। वे मोक्ष नहीं चाहते। उन्हें सिद्धा भक्ति चाहिए। यथा :

सगुन उपासक मोक्ष न लेहीं। तिन कहँ राम भगति निज देहीं।।
साधन सिद्धि राम पद नेहू। मोहि लखि परत भरत मत एहू।।

तब मम धर्म : श्री रामजी कहते हैं कि मेरा धर्म उनके धर्मों का पता उनके गुण श्रवण से ही लग सकता है। अतः उनके गुणगणों का श्रवण ही भगवद्धर्म है। यथा : भगवद्धर्मश्च भगवद्‌गुणश्रवणं न तु धर्मबुद्ध्या तदनुष्ठानपर्यन्तं विवक्षितम्। भक्तिरसायने.। अर्थ : भगवद्धर्म भगवद्‌गुण श्रवण हैं। यहाँ धर्म बुद्धि से उसके अनुष्ठान तक की विवक्षा नहीं हैं। यथा : तस्मात् केनाप्युपायेन मनः कृष्णे निवेशयेत्। यहाँ केनाप्युपायेन का तात्पर्य यही है कि चाहे धर्मबुद्धि से अनुष्ठान करके चाहे न करके अर्थात् भगवद् गुण श्रवण से मन को भगवच्चरणों में लगावे। अतः कहते हैं :

उपज अनुरागा : भाव यह कि जब तक वैराग्य का उदय नहीं हुआ था तब तक तो विषय में अनुराग था। मन सदा विषय के धर्मों में ही आसक्त रहता था और जब विषय से विराग हुआ तो स्वभाव से ही भगवान् की ओर जायगा। उनके करुणा भक्तवत्सलतादि गुणों पर अनुरक्त होगा : यहाँ से भाव भक्ति का प्रारम्भ हुआ। यथा :

समुझि समुझि गुनग्राम राम के उर अनुराग वढ़ाउ।
मन मेरे मानै सिख मेरी। जौ निज भगति चहै हरि केरी।।
उर आनहि प्रभुकृत हित जेते। सेवहि ते जे अपन पौ चेते।।
दियो सुकुल जनम सरीर सुंदर हेतु जो फल चारि को।
जो पाइ पंडित परम पद पावत पुरारि मुरारि को।।
यह भरत खंड समीप सुरसरि थल भलो संगति भली।।
तेरी कुमति कायर कलपवल्ली चहत विषफल फली।।

इत्यादि।

श्रवणादिक नव भक्ति : १. श्रवणम् २. कीर्तनं विष्णोः ३. स्मरणम् ४. पादसेवनम् ५. अर्चनं ६. वन्दनं ७. दास्यं ८. सख्यम् ९. आत्मनिवेदनम्। ये ही श्रवणादिक नव भक्ति हैं।

१. श्रवण : १. नाम २. चरित्र ३. गुणादि के सुनने को श्रवण कहते हैं।
१. नाम श्रवण यथा : वेगि विलम्ब न कीजिये लीजिय उपदेस।
महाँ मंत्र जपिये सोई जेहि जपत महेस ॥
२. चरित्र श्रवण यथा : लागो सुनै श्रवन मन लाई।
आदिहि ते सब कथा सुनाई ॥
आसा वसन व्यसन येह तिन्हही।
रघुपति चरित होइ तहं सुनही ॥
३. गुण कीर्तन, यथा : सुनत फिरौं हरिगुन अनुवादा।
अव्याहत गति संभु प्रसादा ॥

२. कीर्तन : १. नाम २. लीला और ३. गुणादि के गान को कीर्तन कहते हैं।
१. नाम कीर्तन यथा : राम नाम महिमा सुर कहहीं।
सुनि सुनि अवध लोग सुख लहहीं ॥
२. लीला कीर्तन यथा : बर तर कह हरि कथा प्रसंगा।
आवैहि सुनहिं अनेक विहंगा ॥

३. स्मरण : जिस किसी भाँति मन द्वारा सम्बन्ध को स्मरण कहते हैं। यह इतना वड़ा प्रवल साधन है कि इसके प्रभाव से भगवद्विरोधियों का भी उद्धार हो जाता है। यथा : उमा राम मृदु चित करुनाकर। बैर भाव सुमिरत मोहि निसिचर। देहिं परम गति अस जिय जानो। अस कृपालु को कहहु भवानी। तथा : तुलसी अपने राम को रीझि भजें चह खोझ। खेत परे ते जामिहैं उलटो सीधो बीज। स्मरण यथा :

सुमिरत हरिहिं साप गति बाधो। सहज बिमल मन लागि समाधी ॥
सुमिरत रामहिं तजहिं जन तृन सम बिषय बिलासु।
राम प्रिया जग जननि सिय कछु न आचरज तासु ॥
सुमिरि पवनसुत पावन नामू। अपने बस करि राखेउ रामू ॥ इत्यादि।

४. पाद सेवन : चरणों की पूजा सेवा। कुछ भक्त ऐसे हैं जो केवल चरणों का हो ध्यान पूजन करते हैं। कोई ऐसे हैं जो चरण चिह्नों का ही ध्यान पूजन किया करते हैं। यथा :

कर नित करहिं राम पद पूजा। राम भरोस हृदय नहिं दूजा ॥
आगे परा गीध पति देखा। सुमिरत राम चरन जिन्ह रेखा ॥

५. अर्चन : शुद्धि न्यासादि पूर्वाङ्ग निर्वाह पूर्वक उपचारों द्वारा मन्त्रों से पूजन को अर्चन कहते हैं। यथा :

तब मुनि हृदय धीर धरि, गहि पद बारहि बार।
निज आश्रम प्रभु आनि करि, पूजा बिबिध प्रकार ॥

६. वंदन : दण्डवत् प्रणाम यथा : सकृत् प्रणाम किये अपनाए।
मंगल मूल प्रणाम जासु जग मूल अमंगल को खनै। विनय.

पुनि मन बचन करम रघुनायक। चरन कमल बंदौं सब लायक ॥
मो ते होइ न प्रति उपकारा। बंदौं तव पद बारंबारा ॥

७. दास्य : मैं ईश्वर का किङ्कर हूँ : ऐसे अभिमान को दास्य कहते हैं। यथा :
अस अभिमान जाइ जनि भोरे। मैं सेवक रघुपति पति मोरे ॥
मोर दास कहाइ नर आसा। करै तौ कहँ कहाँ बिस्वासा ॥

८. सख्य : सख्य के दो भेद हैं : विश्वास और २. मित्रवृत्ति।
१. विश्वास यथा : है तुलसी के एक गुन अवगुन निधि कहैं लोग।
भलो भरोसो रावरो राम रीझिबे जोग ॥
२. मित्रवृत्ति : तुलसी कहीहैं साँची रेख बार बार खाँची।
ढील किये नाम महिमा की नाव बोरिहौं ॥ विनय.

९. आत्म निवेदन : आत्मा शब्द का दो अर्थ पण्डितों ने माना है। एक तो अहन्तास्पद देही और दूसरा ममतास्पद देह।
देही यथा : अब मैं जन्म संभु हित हारा। को गुन दोष न करै बिचारा ॥
देह यथा : हृदय घाउ मेरे पीर रघुवीरै।
पाइ सजीवन जागि कहत यौं प्रेम पुलकि बिसराय सरीरै ॥
मोहि कहा बूझत पुनि पुनि जैसे पाठ अरथ चरचा कीरै ॥
सोभा सुख छति लाभ भूप कहँ केवल कांति मोल हीरै ॥
तुलसी सुनि सौमित्रि वचन सब धरि न सकत धीरौ धीरै ॥
उपमा राम लखन की प्रीति की क्यों दीजै खीरैं नीरैं ॥

दृढ़ाहीं : भाव यह है कि श्रवणादिक नव भक्तियों का कर्तव्य रूप से शास्त्रों में वर्णन है। अतः इनकी गिनती साधन भक्ति में है। साधक इनका आचरण स्वधर्मानुष्ठान समझकर करता आ रहा था। परन्तु अनुराग के बिना ये दृढ़मूलक नहीं हो पाती थी। अब प्रभु के धर्मों में अनुराग उत्पन्न हो जाने से दृढ़मूलक हो गयी।

मम लीला रति : लीला का अर्थ चरित्र है। भगवान् आप्तकाम हैं। अतः किसी प्रयोजन का उद्देश्य रखकर उनकी प्रवृत्ति नहीं होती। उनका चरित्र उनकी लीला है। परन्तु उनके चरित्र का कथन और श्रवण का उपयोग नवधा भक्ति के कीर्तन और श्रवण प्रकरण में कहा जा चुका है। अतः यहाँ पर लीला से उनके चरित्र के अनुकरण से तात्पर्य है। यथा : खेलौं तहाँ बालकन्ह मीला। करौं सकल रघुनायक लीला। श्रीमद्भागवत में भी प्रेमाधिक्य से गोपियों द्वारा भगवान् के चरित्र के अनुकरण का वर्णन है। यथा : लीला भगवतस्तास्ता ह्यनुचक्रुस्तदात्मिकाः। अतः यहाँ मम लीला का अर्थ हुआ रामलीला।

लीला और नाटक बहुत अंशों में समान होने पर भी एक वस्तु नहीं है। इन दोनों में उतना ही भेद है जितना कि बाजार में रखी हुई मूर्ति और स्थापित मूर्ति में भेद होता है। लीला उपासना की दृष्टि से की जाती है। उसमें मुकुट पूजा

होती है। ब्राह्मण के बच्चों का श्रीराम लक्ष्मण के रूप में वरण होता है। और जब तक उनके सिर पर मुकुट रहता है तब तक उनकी पूजा प्रतिष्ठा भगवद्विग्रह के समान ही होती है। आज भी श्रीगोस्वामीजी के मन्दिर : भदैनी काशी में प्रतिवर्ष रामलीला होती है। इससे पता चलता है कि ग्रन्थकार का लीला के प्रति कितना अनुराग था। लीला से उपासकों को असाधारण लाभ होता है। भक्तिरस के आविर्भाव के लिए तथा रस के अंकुरित होने के लिए श्रीरामलीला वर्षाऋतु है। आलम्बन उद्दीपनादि सभी सामग्री रामलीला से सुलभ हो जाती हैं।

अति मन माहीं : भक्तों की रामलीला में बड़ी प्रीति रहती है। बड़ा उत्साह रहता है। जिस मधुर मूर्ति की झाँकी श्रीरामलीला में हो जाती है उसका दृढ़मूलक छाप हृदय में बैठ जाता है। परम्परा के अनुसार श्रीरामलीला वर्ष में एक बार आश्विन मास में होती है। परन्तु उसकी प्रीति मन में बराबर बनी रहती है और उन दिनों के लिए चित्त सदा लालायित रहता है जब कि लीला प्रारम्भ होती है। सुना जाता है कि ग्रन्थकार को श्रीअवध में रामलीला के व्याज से ही भगवद्दर्शन हुआ था। परतन्त्रता के दिनों में स्वातन्त्र्य की भावना की बड़ी भारी रक्षा श्रीरामलीला से हुई और आज भी धार्मिक भावों का प्रभाव जैसा जनता पर पड़ता है वैसा अन्य उपायों से सम्भव नहीं। हताश हृदयों में आशा लता को प्राण प्रदान तो रामलीला ही करती है।

संत चरन पंकज अति प्रेमा। मन क्रम बचन भजन दृढ़ नेमा ॥
गुरु पितु मातु बंधु पति देवा। सब मोहि कहँ जानै दृढ़ सेवा ॥५॥

अर्थ : संत चरन पंकज से अत्यन्त प्रीति होती है। मनसा वाचा कर्मणा मेरा भजन दृढ़ नियम से : होता है। गुरु पिता बन्धु पति और देवता सब कुछ मुझी को दृढ़ सेवावाला जानता है।

संत चरन पंकज अति प्रेमा : जब लीला द्वारा साधक प्रत्यक्ष देखता है कि सन्तों के परित्राण के लिए ही प्रभु अवतार धारण करते हैं। सन्तों के मिलने की इच्छा के सामने उन्हें राज्य तिलक फीका मालूम पड़ता है : वनवास श्रेयस्कर बोध होता है। जब लीला में प्रभु को सन्तचरणों में अवनत होते देखते हैं तब सन्तचरण पङ्कज से अति प्रेम न होना आश्चर्य है। जब श्रीमुख से सन्तों की स्तुति सुनते हैं तब उनके प्रति साधक का अत्यन्त अनुराग बढ़ता है। यथा :

सुनु मुनि संतन्ह के गुन कहऊँ। जिन्ह ते मैं उनके बस रहऊँ ॥
षट् बिकार जित अनघ अकामा। अचल अकिंचन सुचि सुख धामा ॥
अमितबोध अनीह मित भोगी। सत्य सार कबि कोबिद जोगी ॥
सावधान मानद मद हीना। धीर धर्म गति परम प्रबीना ॥

दो. गुनागार संसार दुख रहित बिगत संदेह।
तजि मम चरन सरोज प्रिय तिन्ह कहुँ देह न गेह ॥ इत्यादि।

मुनि सुनु साधुन के गुन जे ते। कहि न सकैं सारदश्रुति ते ते ।।
छं. कहि सक न सारद सेष नारद सुनत पद पंकज गहे।
अस दीनबन्धु कृपाल अपने भगत गुन निज मुख कहे ।।

परन्तु ऐसे सन्त महात्मा की पहिचान अत्यन्त कठिन है। बिना सन्तों के संसार चल नहीं सकता। वे सबको सब देशों में सुलभ हैं। परन्तु विषयी जीव को उनकी पहिचान नहीं। अतः उनकी प्राप्ति नहीं होती। उनकी प्राप्ति के लिए पुण्यपुञ्ज चाहिए। भगवान् की कृपा चाहिए। यथा :

पुन्य पुंज बिनु मिलहि न संता। सत संगति संसृति कर अंता ।।
पुन्य एक जग मह नहिं दूजा। मन क्रम बचन बिप्र पद पूजा ।।
संत बिसुद्ध मिलहिं परि तेही। चितवहि राम कृपा करि जेही ।।

भगवान् भाववश्य हैं। इसलिए भाव भक्ति करनेवाले पर हरिकृपा होती है। उन्हें सन्त मिलते हैं और उनसे उनको भक्ति चिन्तामणि की प्राप्ति होती है। यथा :

भाववस्य भगवान सुख निधान करुणा अयन।
तजि ईर्ष्या मदमान भजिय सदा सीता रवन ।।
मोरे मन प्रभु अस बिस्वासा। राम ते अधिक राम कर दासा ।।
राम सिंधु घन सज्जन धीरा। चंदन तरु हरि संत समीरा ।।
सबकर फल हरि भगति सुहाई। सो बिनु संत न काहू पाई ।।
अस बिचारि जोइ कर सतसंगा। राम भगति तेहि सुलभ बिहंगा ।।

मन क्रम बचन भजन दृढ़ नेमा : भाव यह कि पहले उसे श्रवणादिक नव भक्ति दृढ़ हुई थी। अब सन्तों के प्रसाद से मनसा वाचा कर्मणा दृढ़ नियम के साथ भजन प्रारम्भ हुआ। राम भगति के बाधकों की ओर से वृत्ति फिर गयी। यथा :

जरउ सो संपति सदन सुख सुहृद मातु पितु भाइ ।।
सनमुख होत जो रामपद कर इन . कोटि सहाय ।।
मन क्रम बचन रामपद सेवक। सपनेहुँ आन भरोस न देवक ।।

अब साधक महात्मा पद को प्राप्त हुआ। जो मन में हो वही वाणी में हो। वही कर्म से हो। यह लक्षण महात्मा का है और मन में दूसरी बात हो वाणी से कोई दूसरी बात कहे और कर्म उन दोनों से पृथक् ही कुछ करे : यह दुरात्माका लक्षण है। मनस्येकं वचस्येकं कर्मण्येकं महात्मनाम्। मनस्यन्यत् वचस्यन्यत् कर्मण्यन्यत् दुरात्मनाम्। वाणी से भजन करना और मन दूसरी ओर रहे अथवा कर्म से भजन करना वाणी से कुछ दूसरी बातें करते रहना तथा मन से अन्य विषयों का ध्यान करते रहना यथार्थ भजन नहीं है। मन में भी भगवान् हो : वाणी से भी. उनकी स्तुति हो : कर्म से उनकी परिचर्या होती रहे तब उस भजन को मन वच कर्म से भजन कहेंगे।

दूसरी बात यह है भोजन की भाँति भजन भी हित है। अतः इसे नित्य नियम के साथ प्रीतिपूर्वक करना चाहिए। अन्यथा भजन का ठीक प्रभाव नहीं पड़ता। यथा :

भोजन करिय तृपिति हित लागी । जिमि सो असन पचव जठरागी ॥
असि हरि भगति सुगम सुखदाई । को अस मूढ़ न जाहि सोहाई ॥

गुरु पितु मातु : जिनके लिए स्वयं श्रुति भगवती कहती हैं : मातृदेवो भव । पितृदेवो भव । आचार्यदेवो भव । माता पिता आचार्य ये तीनों ही देव हैं । ये ही तीनों अग्नियाँ हैं । इन्हीं की सेवा से लोक परलोक बनता है । इनकी आज्ञापालन में यदि बुरे रास्ते पर चलना पड़े तो भी अकल्याण नहीं होता । यथा :

गुरु पितु मातु स्वामि सिख पाले । चलेहुँ कुमग पग परहिं न खाले ॥

बन्धु पति देवा : बन्धु जो आड़े समय में काम आते हैं । यथा :

होहिं कुठाँय सुबंधु सहायें । ओड़िअहिं हाथ असनिहुँ के घाये ॥

पति का अर्थ स्वामी है । जिसका सब भाँति छल छोड़कर सेवा का विधान है । यथा : भानु पीठि सेइअ उर आगी । स्वामिहि सर्व भाव छल त्यागी । देवता इष्ट फल देनेवाले हैं । यथा : इष्टान् भोगान् हि वो देवा दास्यन्ते यज्ञभाविताः । तैर्दत्तानप्रदायैभ्यो यो भुंक्ते स्तेन एव सः । गीतायाम्. ३.१२.

यहाँ पर छः को गिनाया है । और भी जितने प्रेम के पात्र हैं उन सबको भी समझ लेना ।

सब मो कह जानै : भाव यह कि सबकी ओर से ममता हटाकर श्रीरामजी से प्रीति करे । श्रीरामजी को ही माता पिता गुरु बन्धु स्वामी और देवता माने । अर्थात् माहात्म्य-ज्ञान युक्त सुदृढ़ और सबसे अधिक स्नेह हो । यथा :

राम मातु पितु बन्धु सुजन गुरु पूज्य परम हित ।
साहेब सखा सहाय नेह नाते पुनीत चित्त ॥
देस कोस कुल कर्म धर्म धन धाम धरनि गति ।
जाति पाँति सब भाँति लागि रामहि हमारि मति ॥
परमारथ स्वारथ सुजस सुलभ राम ते सकल फल ।
कह तुलसीदास अब जब कबहुँ एक राम ते मोर भल ॥

दृढ़ सेवा : अर्थात् जिस साधक की सेवा दृढ़ हो गयी है । भाव यह कि जिसके लिए ऊपर लिख आये हैं : मन क्रम बचन भजन दृढ़ नेमा । दृढ़ सेवावाला भक्त सब नाता : सम्बन्ध जोड़ने में समर्थ हो सकता है ।

मम गुन गावत पुलक सरीरा । गद्गद गिरा नयन बह नीरा ॥
काम आदि मद दंभ न जाके । तात निरन्तर बस मैं ताके ॥६॥

अर्थ : मेरे गुणों का गान करते हुए जिसके शरीर में रोमाञ्च हो जाय । गला भर उठे । आँखों से अश्रु को धारा बहे और काम आदि मद दम्भ जिसे न हों । हे तात ! में उसके वश में रहता हूँ ।

मम गुन गावत : भाव यह कि तब उस भक्ति की श्रीहरि में अविच्छिन्न मनोगति हो जाती है । उन्हीं का गुण बराबर गान किया करता है । उन्हीं का

मूर्ति का ध्यान किया करता है। दूसरी कोई बात उसे अच्छी नहीं लगती और श्रीहरि को भी भक्तों का गान परम प्रिय है। उन्हीं का वचन है : नाहं वसामि वैकुण्ठे योगिनां हृदये न हि। मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद। मैं न तो वैकुण्ठ में बसता हूँ और न योगियों के हृदय में बसता हूँ। हे नारद! जहाँ मेरे भक्त गान करते हैं मैं वहीं रहता हूँ। इसकी कोई आवश्यकता नहीं कि वह गान स्वरताल युक्त मीठा हो। यह अभिप्राय होता तो कहते : गायका यत्र गायन्ति। पर ऐसा नहीं कहते। अतः भक्तों का गान उन्हें प्रिय है। चाहे वह संगीत दृष्टि से कैसा ही हो।

पुलक सरीरा गद्गद गिरा नयन बह नीरा : शरीर में रोमाञ्च होना, गला भर आना. आँखों से आँसू की धारा चलना। ये सब प्रेम में डूबाडूब होने के लक्षण हैं। यहाँ पर भक्तों के गानप्रिय होने का कारण कहते हैं। भक्त प्रेम में डूबाडूब हैं। वह प्रेम में मग्न होकर गान करता है। उसे लय स्वर ताल का पता नहीं। श्रीहरि ऐसे ही गान पर रीझ जाते हैं। भीतर के प्रेम के बाहरी लक्षण—पुलक शरीर गद्गद और नयन नीर हैं। यथा :

कछु ह्वै न आई गयो जन्म जाय।
अति दुर्लभ तनु पाइ कपट तजि। भजे न राम मन वचन काय॥
रामविमुख सुख लह्यो न सपनेहुँ निसिवासर तयो तिहुँ ताय॥
सेये नहिं सीतापति सेवक साधु सुमति भली भगति भाय॥
सुने न पुलकि तन कहे न मुदित मन किये जे चरित रघुवंस राय॥

काम आदि मद दंभ न जाके : काम क्रोध मोह लोभ मद दंभ आदि दुरभिसन्धि हैं। जो किसी कामना से गान करता हो वह भले हो अर्थार्थी भक्त हो पर प्रेमा भक्ति उसे नहीं है। जो मदसे गान करता हो कि मैं संगीत शास्त्र का आचार्य हूँ अथवा मुझसे गानेवाले दुर्लभ हैं उसे भी भगवद् गुणगान का कुछ फल तो होता ही है। पर प्रेमभक्तिसे उसका कोई सम्बन्ध नहीं। अथवा जो लोभ से गान करता है कि गान करने से मुझे कुछ मिलेगा या जो दम्भ से गान करता है कि लोग मुझे भक्त कहेंगे उनका गान वैसा नहीं : चाहे वह कितना ही लय सुर तानसे ठीक हो : जो भगवान् को रिझा सके। अतः गान सभी अभिसन्धियों से रहित होना चाहिए। यथा : प्रेम भगति जल बिनु रघुराई। अभिअन्तर मल कबहुँ कि जाई।

तात : प्रश्न है : मोहि समुझाइ कह सोइ देवा। सब तजि करौं चरन रज सेवा। और उत्तर हो रहा है : तात निरंतर बस मैं ताके। यहाँ भी उत्तर प्रश्न से कहीं अधिक विशेषता रखता है। इसलिए फिर तात सम्बोधन देते हैं।

निरंतर बस मैं ताके : श्रीमद्भागवत में दुर्वासा से स्वयं भगवान् ने कहा है कि हे ब्राह्मण! मैं भक्त के पराधीन हूँ। एक प्रकार से अस्वतन्त्र हूँ। अहं भक्तपराधीनो ह्यस्वतन्त्र इव द्विज। सो भगवान् ही भक्त के पराधीन रहते हैं। यथा :

मनोगतिरविच्छिन्ना हरौ प्रेमपरिप्लुता। अभिसन्धिविनिर्मुक्ता भक्तिर्विष्णु-वशंकरी। पञ्चरात्रे,

श्रीहरि में अविच्छिन्न और अभिसन्धि रहित प्रेमपरिप्लुता मनोगति का होना ऐसी भक्ति है जो हरि को वश में रखती है।

दो. बचन कर्म मन मोरि गति, भजनु करहिं निहकाम।
तिन्हके हृदय कमल महुँ, करौं सदा बिस्राम ॥१६.१०॥

अर्थ : जिन्हें मनसा वाचा कर्मणा मेरी ही गति है और निष्काम भजन करते हैं उनके हृदय कमल में मैं सदा विश्राम करता हूँ।

व्याख्या : वचन कर्म मन मोरि गति : जिन्हें मनसा वाचा कर्मणा श्रीराम की ही गति है दूसरा चारा नहीं वे ही जागते सोते भगवान् की शरण में रहते हैं। दूसरे से बोलना भी पड़ा तो सत्य प्रिय और विचारकर हित की बात बोलते हैं। उन्हीं को दुःख सुख प्रशंसा और गारी समान होती है। वे सबके हितकारी और सबके प्रिय होते हैं। यथा :

सबके प्रिय सबके हितकारी। दुःख सुख सरिस प्रसंसा गारी॥
कहहिं सत्य प्रिय बचन बिचारी। जागत सोवत सरन तुम्हारी॥
तुम्हहि छाड़ि गति दूसर नाहीं। राम बसहु तिन्हके मन माहीं॥

भजन करहिं निहकाम : वे ही भक्त निष्काम भजन कर सकते हैं जिन्हें न तो परमार्थ की कामना है न गूढ़ गति जानना चाहते हैं। न उन्हें अणिमादिक सिद्धि चाहिए और न किसी सङ्कट से विनिर्मुक्ति चाहते हैं। यथा :

सकल कामना हीन जे राम भगति रस लीन।
नाम सुप्रेम पियूष हृद तिनहु किये मन मीन॥

तिनके हृदय कमल महँ : भाव यह कि उन्हीं के हृदय की शोभा है। ३ कमल की उपमा दी है। भ्रमर को भी उस कमल को छोड़ : दूसरि गति नहीं। हृदय ऐसा है जहाँ भगवान् सगुण रूप से रहते हैं। निर्गुण रूा से तो उनका निव सभी हृदयों में है। यथा :

व्यापक एक ब्रह्म अविनासी। सत चेतन घन आँनद रासी॥
अस प्रभु हृदय अछत अविकारी। सकल जीव जग दीन दुखारी॥

करहुँ सदा बिश्राम : जिनके हृदय में कुछ और कामनाएँ हैं उनके हृदय में सगुण रूप से प्रकट हाने पर भी श्री हरि विश्राम नहीं कर पाते। उसकी रुचि रखने के लिए सतत चञ्चल रहना पड़ता है। यथा : राम सदा सेवक रुचि राखी। वेद पुरान साधु सुर साखी। पर प्रेमाभक्तिवाले निष्काम भजन करते हैं। अतः भगवान् को विश्राम उन्हीं के हृदयमें मिलता है। उस प्रेमाभक्ति के भी चौदह भेद श्रीवाल्मीकिजी ने कथन किया है। यथा :

१. जिन्हके श्रवन समुद्र समाना। कथा तुम्हरि सुभग सरि नाना॥
भरहिं निरंतर होहिं न पूरे। तिनके हिय तुम्ह कहुँ गृह रूरे॥
२. लोचन चातक जिन्ह करि राखे। रहहिं दास जलधर अभिलाखे॥
निदरहिं सरित सिंधु सर भारी। रूप बिंदु जल होहिं सुखारी॥
तिन्हके हृदय सदन सुखदायक। बसहु बंधु सिय सह रघुनायक॥
३. जसु तुम्हार मानस बिमल हंसिनि जीहा जासु।
मुकताहल गुन गन चुनइ राम बसहु हिअ तासु॥
४. प्रभु प्रसाद सुचि सुभग सुबासा। सादर जासु लहइ नित नासा॥
तुम्हहि निवेदित भोजन करहीं। प्रभु प्रसाद पट भूषन धरहीं॥
सीस नवहिं सुर गुरु द्विज देखी। प्रीति सहित करि बिनय बिसेषी॥
कर नित करहिं राम पद पूजा। राम भरोस हृदय नहिं दूजा॥
चरन राम तीरथ चलि जाहीं। राम बसहु तिन्हके मन माहीं॥
५. मंत्रराजु नित जपहिं तुम्हारा। पूजहिं तुम्हहिं सहित परिवारा॥
तरपन होम करहिं बिधि नाना। बिप्र जेंवाइ देहिं बहु दाना॥
तुम्ह ते अधिक गुरहि जिय जानी। सकल भाव सेवहिं मन मानी॥

दो. सबु करि मागहिं एक फलु रामचरन रति होउ।
तिन्ह के मन मंदिर बसहु सिय रघुनंदन दोउ॥

६. काम कोह मद मान न मोहा। लोभ न छोभ न राग न द्रोहा॥
जिन्हके कपट दंभ नहिं माया। तिन्हके हृदय बसहु रघुराया॥
७. सबके प्रिय सबके हितकारी। दुःख सुख सरिस प्रसंसा गारी॥
कहहिं सत्य प्रिय बचन बिचारी। जागत सोवत सरन तुम्हारी॥
तुम्हहि छाड़ि गति दूसरि नाहीं। राम बसहु तिन्हके मन माहीं॥
८. जननी सम जानहिं पर नारी। धन पराव बिष ते बिष भारी॥
जे हरषहिं पर संपति देखी। दुखित होहिं पर बिपति बिसेषी॥
जिन्हहि राम तुम प्रान पियारे। तिन्हके मन सुभ सदन तुम्हारे॥
९. स्वामि सखा पितु मातु गुरु, जिन्हके सब तुम नात।
मन मन्दिर तिन्हके बसहु, सीय सहित दोउ भ्रात॥
१०. अवगुन तजि सबके गुन गहहीं। बिप्र धेनु हित संकट सहहीं॥
नीति निपुन जिन्ह कइ जग लीका। घर तुम्हार तिन्हकर मनु नीका॥
११. गुन तुम्हार समुझहिं निज दोसा। जेहि सब भाँति तुम्हार भरोसा॥
राम भगत प्रिय लागहि जेही। तेहि उर बसहु सहित बैदेही॥
१२. जाति पांति धन धाम बड़ाई। प्रिय परिवार सदन सुखदाई॥
सब तजि तुम्हहि रहइ उर लाई। तेहि के हृदय रहहु रघुराई॥
१३. सरगु नरक अपबरगु समाना। जहँ तहँ देख धरे धनु बाना॥
करम बचन मन राउर चेरा। राम करहु तेहि के उर डेरा॥

१४. जाहि न चाहिअ कबहुँ कछु तुम सन सहज सनेहु।
बसहु निरंतर तासु मन, सो राउर निज गेहु ॥

भगति जोग सुनि अति सुख पावा। लछिमन प्रभु चरनन्हि सिरु नावा ॥

अर्थ : भक्तियोग सुनकर लछिमन को बड़ा सुख मिला। उन्होंने प्रभु चरणों में नमस्कार किया।

व्याख्या : भक्तियोग : भक्ति के साधन कहहु बखानी से लेकर : तिन्ह के हृदय कमल महँ करउँ सदा तक भक्तियोग है। भक्तियोग सब योगों में उत्तम है। स्वयं भगवान् ने कहा है : योगिनामपि सर्वेषां मद्गतेनान्तरात्मना। श्रद्धावान् भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः। सभी योगियों में जो मुझमें मन लगाकर श्रद्धा पूर्वक मेरा भजन करता है वह सबसे बड़ा योगी है।

सुनि अति सुख पावा : भाव यह कि कर्मयोग और ज्ञानयोग सुनकर सुख मिला। पर भक्तियोग सुनकर अति सुख मिला। प्रभु मुख की वाणी सुनने से सकल भ्रम की हानि होती है। अतः भक्तियोग के अभ्रान्त ज्ञान से परम सुख की प्राप्ति हुई।

लछिमन प्रभु चरनन्हि सिरु नावा : इससे शिष्य की कृतकृत्यता कहा। मैं पूछौं निज प्रभु की नाईं : से उपक्रम करके : प्रभु चरनन्हि सिरु नावा : से उपसंहार करते हैं।

एहि बिधि गये कछुक दिन बीती। कहत बिराग ग्यानगुन नीती ॥१॥

अर्थ : इस प्रकार वैराग्य, ज्ञान, गुण और नीति कहते हुए कुछ दिन बीत गये।

व्याख्या : इस भाँति कहते सुनते कुछ दिन बीत गये। भाव यह कि अवधि का समय बहुत बीत गया। अब थोड़ा ही शेष है। उसमें भी कुछ दिन कथा कहते सुनते बीता। ये कथाएँ वैराग्य, ज्ञान, गुण और नीति विषयक थीं। नीति में धर्मार्थ काम का सामञ्जस्य बिठाना होता है। सरकार का स्वभाव है कि भाइयों को शिक्षा दिया करते हैं। यथा : राम करहिं भ्रातन्ह पर प्रीती। नाना भाँति सिखावहिं नीती।

३५. सूर्पणखा विरूप करण प्रसङ्ग

सूपनखा रावन कै बहिनी। दुष्ट हृदय दारुन जसि अहिनी ॥
पंचवटी सो गइ एक बारा। देखि बिकल भइ जुगल कुमारा ॥२॥

अर्थ : सूर्पणखा नाम की रावण की बहन थी। जो नागिन जैसी भयानक और दुष्ट हृदय थी। वह एक बार पञ्चवटी गयी। दोनों कुमारों को देखकर विकल हो गयी।

व्याख्या : सूपनखा जिमि कीन्हि कुरूपा : प्रकरण आरम्भ हुआ। जैसे रावण

जगत् के रुलानेवाले थे वैसे ही उन्हें बहन विधाता ने दी थी। रावण के नाम से परिचय देकर उसका वैधव्य भी सूचित किया। जैसा रावण दुष्ट हृदय और सर्प की भाँति दारुण था। यथा : जस पावन रावन नाग महा। उसी भाँति उसकी बहन भी साँपिन थी। रावण की बहिनी कहकर उसका प्रताप भी कहा। किसकी सामर्थ्य जो उसके प्रतिकूल आचरण करे। अहि से अहिनी अधिक दारुण होती है। रावण को दस सिर थे उसे दस नख सूप के से थे।

वह कुलटा थी। घूमा करती थी। एक बार पञ्चवटी पहुँच गयी। मुनिजी के मन्त्र के साफल्य का समय आ पहुँचा। मुनिजी ने कहा था : है प्रभु परम मनोहर ठाऊँ। पावन पंचवटी तेहि नाऊँ। बास करहु तहँ रघुकुल राया। कीजे सकल मुनिन्ह पर दाया। तदनुसार सरकार पञ्चवटी में बसे। वहाँ सूर्पणखा पहुँची। पादचिह्न की शोभा पर मोहित होकर अन्वेषण करती हुई राम लक्ष्मण के पास तक पहुँच गयी। दोनों भाई यद्यपि मुनिवेष में हैं पर हैं राजकुमार। वह कुलटा दोनों भाइयों पर मोहित हो गयी। अति कामासक्त होने से विकल हो गयी। उसने दोनों कुमारों को देखा। दोनों कुमारों ने उसे नहीं देखा।

भ्राता पिता पुत्र उरगारी। पुरुष मनोहर निरखत नारी॥
होइ बिकल सक मनहि न रोकी। जिमि रबिमनि द्रव रबिहि बिलोकी॥३॥

अर्थ : हे गरुड़जी! स्त्री मनोहर पुरुष को देखकर चाहे वह भाई, पिता, पुत्र ही क्यों न हो विकल हो जाती है। मन को रोक नहीं सकती। जैसे सूर्यकान्त मणि सूर्य को देखकर द्रवीभूत हो जाता है।

व्याख्या : समान वयस्कों में भ्राता, ज्येष्ठों में पिता और कनिष्ठों में पुत्र को भी देखकर विकल हो जाती हैं। उन्हें सम्बन्ध का भी विचार नहीं रह जाता। इनकी मनोहरता पर राक्षसी नारी आसक्त हो जाती हैं। यह नियम पतिव्रताओं पर लागू नहीं है। यथा : उत्तम के अस बस मन माहीं। सपनेहु आन पुरुष जग नाहीं। इत्यादि।

ऐसी राक्षसी नारियों को सम्बन्ध या वय का भी विचार नहीं होता। वे रूपमात्र देखती हैं। अग्निस्राव हो सूर्यकान्तमणि का द्रवीभूत होना है। उसी भाँति उनके मन में कामाग्नि प्रकट हो जाती है। स्त्री जाति सुलभ मान से अपने को रोकना भी चाहती हैं पर रोक नहीं सकती। सुवेषं पुरुषं दृष्ट्वा भ्रातरं यदि वा सुतम्। योनिः क्लिद्यति नारीणां सत्यं सत्यं हि नारद। इसी बात को बड़ी पण्डिताई से गोस्वामीजी कह गये।

रुचिर रूप धरि प्रभु पहिं जाई। बोली बचन बहुत मुसुकाई॥
तुम्ह सम पुरुष न मो सम नारी। यह सँजोग बिधि रचा बिचारी॥४॥

अर्थ : सुन्दर रूप धारण करके प्रभु के पास जाकर बहुत मुसकुराकर वचन

बोली। न तुम्हारे सा पुरुष है न मेरे समान स्त्री है। यह संयोग ब्रह्मदेव ने विचारकर रचा है।

व्याख्या : सूर्पणखा महाविकट रूप स्थूलोदरी करालाख्या थी। उसने माया से अपना सुन्दर रूप बनाया। जानती थी कि स्वाभाविक रूप से काम बिगड़ जायगा। ऐसा रूप बनाऊँ कि ये मुझ पर मोहित हो जायँ : करहिं उपद्रव असुर निकाया। नाना रूप धरहिं करि माया। सूर्पणखा मोहित तो दोनों भाइयों पर हुई थी। किन्तु प्रभु जानकर रामजी के पास गयी। स्वयं दूती बनकर आयी। शृङ्गार का प्रस्ताव स्वयं उसे ही करना है। अतः माया फैलाती हुई मुसकुराकर बोली। भाव यह कि स्मितपूर्वाभिभाषिणीवाली मुसकुराहट नहीं थी।

उसका कहना यह था कि तुम और मैं दोनों अप्रतिम सुन्दर हैं। सीता मुझ सी सुन्दरी नहीं है। यह तुम्हारे जोड़ की नहीं है। तुम्हारा इसका संयोग दैवत् हो गया। तुम्हारा और मेरा संयोग ब्रह्मदेव ने विचारकर रचा है। जेहि बिरंचि रचि सीय सँवारी। तेहि स्यामल बर रचेउ बिचारी : ऐसा जनकपुर में स्त्रियों ने कहा था। वही भाव लिये सूर्पणखा अपने को कह रही है।

मम अनुरूप पुरुष जग माहीं। देखेउँ खोजि लोक तिहुँ नाहीं ॥
ताते अब लगि रहिउँ कुमारी। मनु माना कछु तुम्हहिं निहारी ॥५॥

अर्थ : मेरे जोड़ का पुरुष संसार में नहीं है। मैंने तीनों लोक खोजकर देख लिया। इसलिए अबतक कुमारी ही रह गयी। तुम्हें देखकर कुछ मन आकर्षित हुआ।

व्याख्या : अनुरूप वर मिलने की इच्छा कन्या के लिए स्वाभाविक है। सूर्पणखा कहती है कि मेरे अनुरूप तो वर ही संसार में नहीं है। मैं तीनों लोक में खोजकर देख चुकी। इससे स्पष्ट ध्वनि निकलती है कि यह तीनों लोक में अपने लिए पुरुष खोजती फिरती है। इसका भाई रण मदमत्त होकर तीनों लोक में फिरता है। उसे प्रतिभट नहीं मिलता : रन मदमत्त फिरै जग धावा। प्रतिभट खोजत कतहुँ न पावा। और यह कामोन्मत्त होकर तीनों लोकों में पुरुष खोजती फिरती है। पर कोई अनुरूप नहीं मिलता। जनकपुर की स्त्रियाँ परदे में रहनेवाली थीं। अतः वे बिचारी कहती हैं : सोभा अस कहुँ सुनियत नाहीं। वे देखना नहीं कहतीं। यह देखना कहती है। अतः इसका कुलटा होना ध्वनित है।

सूर्पणखा पूर्ण युवती है। विवाह के काल का अतिक्रमण किये हुए है। ऐसी अवस्था में रामजी को उसके परपूर्वा होने का सन्देह न उठे। इसलिए इतने वर्ष तक कुमारी रहने का कारण बतलाती है कि किसी को देखकर मन ही नहीं माना। विवाह कैसे करे। अतः आज तक कुमारी ही हूँ। इस भाँति अपना स्वातन्त्र्य भी द्योतन किया। फिर भी स्त्री गुण सुलभ मान को कुछ बचाए हुए है। कहती है कि तुम्हें देखकर कुछ मन माना। पूरी तरह नहीं। अपने मन में यह न समझना कि तैं बड़ा सुन्दर हूँ। मैं तुमसे अधिक सुन्दरी हूँ। परन्तु जब कहीं मन नहीं मानता

तो जहाँ थोड़ा भी मानता है उसी में सन्तोष करना चाहिए। भाव यह कि लङ्का में स्त्री पुरुष के संयोग में मन मानना ही कारण है। किसी धर्म बन्धन या समाज बन्धन की आवश्यकता नहीं होती।

सीतहि चितइ कही प्रभु बाता। अहै कुँआर मोर लघु भ्राता॥
गइ लछिमन रिपु भगिनी जानी। प्रभु बिलोकि बोले मृदु बानी॥६॥

अर्थ : सीताजी की ओर देखकर प्रभु ने यह बात कही कि मेरा छोटा भाई कुँआर है। लक्ष्मणजी के पास गयी। उन्होंने शत्रु की बहन जानकर प्रभु को देखकर कोमल वाणी में कहा।

व्याख्या : सीताजी की ओर देखने का भाव यह कि मेरे तो स्त्री है। मेरा भाई कुमार है। यहाँ पर शङ्का होती कि लक्ष्मणजी का विवाह हो चुका था। उन्हें कुमार कहने से तो मिथ्या भाषण हो जायगा। उत्तर यह है गो ब्रह्मणहिंसायां वृत्त्यर्थे प्राणसङ्कटे स्त्रीषु नर्मविवादेषु नानृतं स्याद् जुगुप्सितम्। यहाँ स्पष्ट नर्मविवाद है। सूर्पणखा अपने को कुमारी बतला रही है। प्रभु ने नर्मविवाद में भी मिथ्या को स्थान न मिले इसलिए लक्ष्मण को कुमार कह रहे हैं। राजा के बेटे कुमार कहलाते हैं। चाहे विवाह हुआ हो चाहे न हुआ हो। यथा : देखि बिकल भई जुगल कुमारा। यहाँ रामजी को भी कुमार ही राजपुत्र होने से कहा गया। यहाँ सरकार का लक्ष्मणजी को कुमार कहना परिहास में भी सत्य की रक्षा का अद्भुत उदाहरण है। सीताजी की ओर देखकर सूर्पणखा को उत्तर देने के अनेक कारण हैं। पहिले तो यह कि उसने कहा था : यह संयोग बिधि रचा बिचारी। उसके उत्तर में सीताजी की ओर देखते हैं कि संयोग जो होना था हो गया। मैं सस्त्रीक हूँ। दूसरा भाव यह कि रघुवंशी के मन और दृष्टि को पराई स्त्री नहीं पाती। सूर्पणखा विद्युज्जिह्व की विधवा है। अतः इसकी ओर दृष्टि न देकर बातचीत के समय सीताजी की ओर देखते हैं। तीसरे यह कि दूसरी ओर देखकर बात करना अनादर सूचक है। चौथे यह कि इधर देखो : रुचिर रूप धारण करने पर भी ऐसी न बन सकी। मन माना कछु तुमहि निहारी : का उत्तर देते हुए कहते है : अहै कुमार मोर लघु भ्राता। वह भी मेरे सा ही है। उसे देखकर तुम्हारा मन मान जायगा : तुम अहिनी हो। यथा : दुष्ट हृदय दारुन जिमि अहिनी और वह तो साक्षात् अहीश है। यथा : जो सहससीस अहीस महि धर लखन सचराचर धनी।

सूर्पणखा राक्षसी थी परिहास नहीं समझ सकी। वह तो दोनों मूर्तियों पर आसक्त थी। नहीं बड़े छोटे ही सही। अतः वह लक्ष्मणजी के पास तुरन्त पहुँची और सब बात कहा। लक्ष्मणजी की दृष्टि को उसकी माया आवृत न कर सकी। उन्होंने जान लिया कि यह शत्रु : रावण की बहन है। यह लक्ष्मणजी का ऐश्वर्य है कि सूर्पणखा को देखकर उसे रावण की बहन उसके वेष बदलने पर भी पहिचान लिया। परन्तु अभी तो सीताहरण हुआ नहीं। रावण शत्रु कैसे हो गया? इसका उत्तर यह है कि रावण अधर्म में निरत था और भूतद्रोही था। इसलिए वह परम

शत्रु था। यथा : यस्त्वधर्मेषु निरतः सर्वलोकविरोधकृत्। तं रिपुं परमं विद्यात् शास्त्राणामेष निर्णयः। नारद पुराणे। सरकार का रुख देखने के लिए उनकी ओर देखते हैं। रुख देखकर समझ गये कि परिहास चलने देना चाहते हैं। अतः उससे कोमल वाणी बोले।

सुंदरि सुनु मैं उनकर दासा। पराधीन नहिं तोर सुपासा॥
प्रभु समर्थ कोसलपुर राजा। जो कछु करहिं उनहिं सब छाजा॥७॥

अर्थ : हे सुन्दरी ! सुनो मैं तो उनका दास हूँ। पराधीन हूँ। यहाँ तेरा सुभीता नहीं। वे प्रभु हैं। समर्थ हैं। कोसलपुर के राजा हैं। वे जो कुछ करें सभी शोभा देता है।

व्याख्या : पहिले ही सुन्दरि सम्बोधन करते हैं। भाव यह कि तुम सुन्दरी हो प्रत्याख्यान योग्य नहीं हो। पर करूँ क्या, मैं तो उसका दास हूँ : जिनके पास से तुम लौटी आती हो। तुम सुन्दरी हो। रानी होने लायक हो। दासी बनना क्यों चाहती हो। भोग विलास के लिए स्वतन्त्र पुरुष चाहिए। मैं पराधीन हूँ और : पराधीन सपनेहु सुख नाहीं। जिसे सपने में भी सुख नहीं वह तुम्हें सुख कहाँ से देगा।

रामजी की ओर देखकर ही बोल रहे हैं। ये भी पराई स्त्री की ओर दृष्टिपात नहीं करना चाहते। कहते हैं कि मैं दास हूँ और वे मेरे प्रभु हैं। एक रानी होने से क्या हुआ ? वे समर्थ हैं। चाहे सौ रानी ब्याहें। इनके पिता को तीन पटरानी और सात सौ रानियाँ थीं, तुम दूसरी पटरानी होकर रहोगी। अतः उन्हें सात सौ ब्याह भी फबता है। दास एक स्त्री को सँभाल नहीं सकता। इसलिए बिना स्त्री का हूँ।

सेवक सुख चह मान भिखारी। ब्यसनी धनु सुभ गति बिभिचारी॥
लोभी जसु चह चार गुमानी। नभ दुहि दूध चहत ए प्रानी॥८॥

अर्थ : सेवक सुख चाहे, भिखारी मान चाहे, व्यसनी धन चाहे, व्यभिचारी शुभगति चाहे, लोभी यश चाहे, संशयी चार चाहे। ये प्राणी आकाश का दोहन करके दूध चाहते हैं।

व्याख्या : सब धर्मों से सेवक धर्म कठोर है। अतः सेवक को अपने सुख की आशा ही न करना चाहिए। इसी भाँति भिखारी मान की आशा ही न करे। जिसे कुछ भी मान होगा वह भीख कैसे माँगेगा ? लोलुप भ्रमत गृह पशु ज्यों जहँ तहँ सिरपद त्रान बजै : ऐसा पुरुष मान की आशा कैसे करेगा। व्यसन में धन का दुष्प्रयोग होता है। व्यसनी धन खोनेवाला है। अतः उसे धनी होने की आशा छोड़ देनी चाहिए। परतियगामी को निश्चय नरक होता है। यथा : सुभ गति पाव कि परतियगामी। उसे शुभगति की आशा करनी व्यर्थ है। लोभी का प्रातःकाल कोई नाम नहीं लेता। उसका यश कैसा होगा। यह तो उदार के हिस्से की चीज है। उसके लिए लोभी की आशा झूठी है। संशयी को दोनों लोक

में से किसी में सुख नहीं। नायं लोकोस्ति न परो न सुखं संशयात्मनः। गी.। अर्थात् चारों फल में किसी की प्राप्ति नहीं हो सकती। यहाँ गुमान शब्द का अर्थ संशय है। यथा : तुलसी जु पै गुमान को होतो कछू उपायु। तौ कि जानकिहिं जानि जियँ परिहरते रघुराउ। अतः संशयी को चारों फल की आशा निराशा ही है। चार से चार फल अभिप्रेत है। जैसे सोरह से सोलह श्रृङ्गार का ग्रहण होता है। यथा : नव सप्त साजे सुंदरी सब मत्त करिवर गामिनी।

अथवा गुमानी शब्द का अर्थ अभिमानी और चार शब्द का अर्थ दूत किया जाय। भाव यह कि दूत चाहे कि मेरा अभिमान अक्षुण्ण रहे यह भी असम्भव है। जब कि हनुमान्‌जी ऐसे दूत को कहना पड़ा : मोहि न कछु बांधे कइ लाजा। कीन्ह चहउँ निज प्रभु कर काजा। निर्गलितार्थ यह है कि इन छवों की आशाएँ झूठी हैं।

पुनि फिरि राम निकट सो आई। प्रभु लछिमन पहिं बहुरि पठाई ॥
लछिमन कहा तोहि सो बरई। जो तृन तोरि लाज परिहरई ॥९॥

अर्थ : वह लौटकर फिर रामजी के पास आयी। प्रभु ने फिर उसे लक्ष्मणजी के पास भेज दिया। लक्ष्मणजी ने कहा कि वही वरेगा जिसने लज्जा को तृण के समान तोड़कर फेंक दिया हो।

व्याख्या : सूर्पणखा लक्ष्मणजी के पास से फिरी कि ठीक है। दास से सुख न मिलेगा। मेरा रानी होना ही ठीक है। भाई लङ्केश्वर है में कोसलेश्वरी बनूँगी। ऐसा सोचकर सरकार के पास गयी। तब उन्होंने समझाया कि रानी को सापत्न्य दुःख सहना ही पड़ता है। लक्ष्मण वैसा दास नहीं है। वह मेरा छोटा भाई है। वही कर्त्ता धर्ता है। वह कुमार रहे में दो दो व्याह कर लूँ। यह नहीं हो सकता। सूर्पणखा ने समझा कि ठीक है। इनसे तो व्याह तो हो जाय। स्वयं मुझको ही क्या घाटा है। मैं इन्हें लेकर लङ्का चली जाऊँगी।

यह सब सोचकर वह लक्ष्मणजी के पास आयी कि क्या हुआ मुझे दासी रहना स्वीकार है। तब लक्ष्मणजी ने कहा तू बेहया है। जो बेहया हो वह तुझसे व्याह करे। इस प्रकार तू कामातुर हो गयी है कि हम दोनों भाइयों में से किसी पर तेरी स्थिरता नहीं। बड़े को चाहकर छोटे को चाह और छोटे को चाहकर बड़े को चाहते तुझे लाज न आयी। मुझे तो अब तुझे उनके पास भेजने में भी लज्जा आती है। इस भाँति कोरा जवाब लछिमनजी की ओर से मिल गया।

तब खिसिआनि राम पहिं गई। रूपु भयंकर प्रगटत भई ॥
सीतहि सभय देखि रघुराई। कहा अनुज सन सयन बुझाई ॥१०॥

अर्थ : तब खिसियाई हुई रामजी के पास गयी। और अपना भयङ्कर रूप प्रकट किया। सीताजी को डरी हुई देखकर रामजी ने छोटे भाई को इशारे से कहा।

व्याख्या : कोरा जवाब पाकर खिसियाई कि रामजी ने जो इनके पास भेजा इसका अभिप्राय यह था कि मैं बेहया प्रमाणित हो जाऊँ। रामजी ने मेरी दुर्गति की। दोनों में से कोई मुझे व्याहना नहीं चाहता। ये मजाक कर रहे हैं। आगे कहेगी भी : तासु अनुज काट्यो श्रुति नासा। सुनि तब भगिनि करी परिहासा। अतः साम से काम न चलेगा। तब भयङ्कर रूप धारण करके सीताजी को खाने-दौड़ी की यह मेरे मार्ग में कंटक है।

सीताजी को सभय देखकर रामजी ने छोटे भाई को इशारा कर दिया। ऋग् यजु साम अथर्व कहकर उँगली से आकाश को काटा। भाव यह कि श्रुति और नाक काट दो। ऋगादि श्रुति है और श्रुति कान को कहते हैं। आकाश का नाम नाक है और प्राकृत में नासिका को नाक कहते हैं। यथा : वेदनाम कहि अंगुरिन्ह खंडि अकास। पाठयो सूपनखाहि लखन के पास।

दो. लछिमन अति लाघव सो, नाक कान बिनु कीन्ह।
ताके कर रावन कहुँ, मनौ चुनौती दीन्हि ॥१७.११॥

अर्थ : लक्ष्मणजी ने बड़ी फुर्ती से उसे बिना नाक कान की कर दिया। मानों उसके हाथ से रावण को चुनौती दे दी।

व्याख्या : लक्ष्मणजी ने ऐसी फुर्ती की कि वह जान न पायी कि कब लक्ष्मणजी आये और कब शस्त्र चलाया। वह नाक पर हाथ न रख सकी : यथा : अति लाघव उठाइ धनु लीन्हा। दमकेउ दामिनि जिमि जब लयऊ। पुनि धनु नभ मंडल सम भयऊ। लेत उठावत खैंचत गाढ़े। काहु न लखा देख सब ठाढ़े। यह सूर्पणखा का नाक काटना मानो रावण को चुनौती दी गयी कि तुम्हारे बहन का नाक कान मैंने काटा जो करना हो सो करो।

यह कर्म लक्ष्मणजी का इन्द्र से भी अशक्य था। किसकी सामर्थ्य जो रावण के जीते सूर्पणखा की नाक काटे। नाक कान काटना कवि ने नहीं कहा। क्योंकि काटते किसी ने देखा नहीं एकाएक बिना नाक कान की हो गयी। इससे अनुमान हुआ कि नाक कान काटा गया। रावण की बहन है। इसलिए रावण को चुनौती लक्ष्मणजी ने दी।

३६. खरदूषण वध प्रसंग

नाक कान बिनु भइ बिकरारा। जनु स्रव सैल गेरु कै धारा ॥
खरदूषन पहिं गइ बिलपाता। धिग धिग तव पौरुष बल भ्राता ॥१॥

अर्थ : बिना नाक कान के विकराल हो गयी। मानो पर्वत से गेरु की धारा बह रही हो। विलाप करती हुई खरदूषण के पास गयी, बोली भाई ! तेरे पौरुष और बल को धिक्कार है।

व्याख्या : नाक ही मुख की शोभा है। सो नाक कान दोनों कट गये। भयङ्कर रूप तो उसका था ही। यथा : रूप भयंकर प्रगटत भई। अब बिना नाक कान के विकराल हो गयी। पर्वताकार उसका शरीर नाक कान कटने से तीन धाराएँ रक्त की बहने लगीं। ऐसा मालूम होने लगा कि मानों अञ्जन पर्वत पर से गेरु की तीन धाराएँ गिर रही हों।

अब सूर्पणखा को प्रतिहिंसा वृत्ति उत्पन्न हुई। रोती चिल्लाती खरदूषण के पास गयी। खर इसका सगा भाई था। रावण के तुल्य बलवान् था और सन्निकट था। उसके पास पहुँचकर उसे धिक्कारने लगी कि तू जीता बैठा है और मेरी नाक कट गयी। तेरे बल और पौरुष को धिक्कार है। तेरे बल और पौरुष का जिसे भय होता वह मेरी नाक कैसे काटता ? बहन है। उसे अपने भाई के बल पौरुष का बड़ा भरोसा था।

तेहि पूँछा सब कहेसि बुझाई। जातुधान सुनि सेन बनाई॥
धाए निसिचर निकर बरूथा। जनु सपच्छ कज्जल गिरि जूथा॥२॥

अर्थ : उसने पूछा तो सब समझाकर बतलाया। सुनकर उस राक्षस ने सेना तैयार की। राक्षसों के झुण्डों की सेना दौड़ी जैसे पक्षवान् कज्जलगिरि के समूह दौड़ते हों।

व्याख्या : खरदूषण ने पूछा कि किसने नाक काटी, क्यों काटी ? उसने समझा दिया कि अवध के राजा के लड़के हैं। मृगया के लिए वन में आये हैं। मुझे सुना कि रावण की बहन है तो मुझसे परिहास करने लगे। मेरे नाराज होने पर उसके छोटे भाई ने नाक कान काट ली। यथा :

राजा हैं अँवध को अँवधि बल विक्रम को
नाँम राँम श्याँम सरसीरुह वरन हैं।
संग सुकुमारि नारि तीर गोदावरी के
करँत विहार मुनिगन को सँरन हैं॥
ताको लघुभाँय हाँय पाँय के सजाँय मेरो
रूप हरि लीन्ह्यो काँटि नासिकाँ श्रवन हैं।
पिशित खियाँव ताँको शोणित पियाँव नातो
आँज दईमाँर मेरो निहिचित मरँन है॥

खरदूषण ने सोचा कि राजा का लड़का है तो सहाय भी होगा। दुर्बल को इतना सामर्थ्य और साहस कहाँ कि इसकी नाक कान काट सके। अतः सेना साथ में रहनी चाहिए। अतः उसने सेना तैयार की। यूथपों को बुलाकर क्रमबद्ध होकर चलने का आदेश देना तथा योग्य सेनापति के अधीन कर देना यही सेना तैयार करना है।

खरदूषण की आज्ञा की देर थी। राक्षसों का झुण्ड दौड़ चला। बड़ा उत्साह है युद्ध करने का, साथ ही स्वामी के बहन की नाक कटने पर अमर्ष भी है। राजा

का लड़का मुलायम आहार है। इसलिए झुण्ड के झुण्ड दौड़ पड़े कि पहिले हमहीं जाकर मार डालें। राक्षस सब विशाल थे और काले थे। इसलिए कज्जलगिरियूथ से उपमा दी और वे सबके सब दौड़ पड़े। इसलिए सपक्ष कह रहे हैं। पक्षहीन होने पर तो पर्वत अचल हो गये। ये सबके सब आसन्न मृत्यु हैं। इसलिए कवि : सहित प्राण कज्जलगिरि नहीं कह रहे हैं।

नाना बाहन नानाकारा। नानायुध धर घोर अपारा ॥
सूपनखा आगे करि लीनी। असुभ रूप श्रुति नासा हीनी ॥३॥

अर्थ : नाना प्रकार के वाहन थे। नाना प्रकार का आकार था। नाना प्रकार के अपार घोर हथियार थे। उन्होंने अशुभ रूप नककटी कनकटी सूर्पणखा को आगे कर लिया।

व्याख्या : सेना में नियम है कि आकार आयुध और वाहन एक सा होता है। पर राक्षसी सेना में यह नियम नहीं। उनके वाहन भी नाना प्रकार के, उनके आकार भी नाना प्रकार के, उनके हथियार भी अनेक प्रकार के हैं। वे हथियार ऐसे घोर हैं कि प्रतिद्वन्द्वी को उनका पार पाना कठिन है। भाव यह कि खरदूषण की सेना बड़ी विकट थी जो देवताओं को युद्ध में जीत चुकी थी।

सबों ने सूर्पणखा को आगे कर लिया कि तू चलकर बतला कि शत्रु कहाँ है ? अथवा अब तू आगे आगे चल। देखें कोई क्या कर लेता है। इससे उनकी बुद्धि का नाश कहा। जब यात्रा के समय अमङ्गल रूप को आगे कर लिया तब उनके मङ्गल की कौन आशा है।

असगुन अमित होहिं भयकारी। गनहिं न मृत्यु बिबस सब झारी ॥
गर्जहिं तर्जहिं गगन उड़ाहीं। देखि कटकु भट अति हरषाहीं ॥४॥

अर्थ : अगणित भयङ्कर अपशकुन होने लगे। वे सबके सब मृत्यु के विवश हैं। इसलिए गिनते नहीं। वे गर्जते हैं। ललकारते हैं। आकाश में उड़ते हैं। सेना को देखकर वीर लोग बड़े प्रसन्न हो रहे हैं।

व्याख्या : प्रकृति अपनी परिस्थिति द्वारा भविष्य का ज्ञापन कराती है। विचारशील पुरुष उससे लाभ उठाते हैं। यहाँ युद्ध यात्रा के समय असंख्य भय सूचक अपशकुन हो रहे हैं। यथा : भट गिरहिं रथते बाजि गज चिक्करहिं भाजहिं साथ ते। गोमायु गीध कराल खर रव स्वान बोलहिं अति घने। जनु काल दूत उलूक बोलहिं बचन परम भयावने। परन्तु जिनका भविष्य बुरा रहता है वे इन अपशकुनों से सचेत नहीं होते। यथा : भयउ कालबस काहु न माना। कहेसि बजावहु जुद्ध निसाना। इसी भाँति ये सब काल के वश थे। अतः अपशकुन की परवाह न की। बल्कि गर्जते और ललकारते चले हैं। राक्षस होने से आकाश में उड़ने की शक्ति है। सेना ऐसी बनी हुई कि देखकर सुभटों को बड़ा हर्ष है। क्योंकि उनकी समझ में जीत निश्चित है।

कोउ कह जिअत धरहु द्वौ भाई। धरि मारहु तिय लेहु छुड़ाई ॥
धूरि पूरि नभ मंडल रहा। राम बोलाइ अनुज सन कहा ॥५॥

अर्थ : कोई कहता है कि जीते जी दोनों भाइयों को पकड़ लो। पकड़ कर मारो और स्त्री छीन लो। आकाश में धूलि भर उठी। तब रामजी ने छोटे भाई को बुलाकर कहा।

व्याख्या : मन में बड़ा हर्ष है। इसलिए मनोरथ भी बढ़ा चढ़ा है। एक कहता है कि जीते जी पकड़ लो। वे हम लोगों से क्या लड़ेंगे ? वीर का जीते जी बन्दी हो जाना बड़े अपमान की बात है। दो ही भाई तो हैं। दो चार वार करें तो उसे सह लेना उनके चोट से हम मर तो जायँगे नहीं पर पकड़ लो जीते जी। जिसमें स्त्री हरण का दुःख वे अपनी आँखों देख लें। तब अपनी चाही हुई विधि से उनका वध करना। सूर्पणखा के नाक कान कटने का बदला तो तभी चुकेगा।

सेना के चलने से धूलि उड़ती है। जिसके देखने से सेना के आने की सूचना मिल जाती है। यथा : नभ धूरि खग मृग भूरि भागे विकल प्रभु आश्रम गये। यहाँ तो आकाश मण्डल धूरि से भर गया। सरकार ने देखा। बात समझ गये। यहाँ पहिला काम सीताजी का हटाना है। सीताजी की रक्षा में चित्त बँटा रहने से भली भाँति युद्ध न हो सकेगा। तब रामजी ने बुलाकर अपने छोटे भाई लक्ष्मण से कहा। सीताजी से नहीं कहा। छोटा भाई : कहने का भाव यह कि सरकार की भाँति वे भी युद्ध में समर्थ हैं। यथा : अनुज निसाचर कटक संहारा।

लै जानकिहि जाहु गिरि कंदर। आवा निसिचर कटकु भयंकर ॥
रहेहु सजग सुनि प्रभु कै बानी। चले सहित श्री सर धनु पानी ॥६॥
देखि राम रिपुदल चलि आवा। बिहँसि कठिन कोदंड चढ़ावा ॥७॥

अर्थ : जानकी को लेकर पर्वत की कन्दरा में चले जाओ। राक्षसों की भयङ्कर सेना आ पहुँची। सावधान रहना : ऐसी सरकार की वाणी सुनकर हाथ में धनुष बाण लेकर श्री : सीता के सहित चले।

रामजी ने देखा कि शत्रु की सेना आगयी। हँसे और कठिन धनुष पर प्रत्यञ्चा चढ़ाया।

व्याख्या : सीताजी तो राक्षसी को देखकर डर गयी थीं। सेना देखने पर इनकी क्या गति होगी। अथवा नाक कान काटने का बदला स्त्री हरण है। सो मुख्य चोट जानकी पर तथा तुम पर होगा। तुमने नाक काटा है। सो जानकी को लेकर तुम पहाड़ की गुफा में चले जाओ। वे न देख पावें कि तुम कहाँ हो। राक्षसी सेना के आने में विलम्ब नहीं है और वहाँ भी सावधान रहना। कन्दरा में जानकी रहे। द्वार पर तुम रहना। यदि राक्षस वहाँ तक पहुँच जायँ तो उनका वध करना। लक्ष्मणजी की इच्छा जाने की नहीं। स्वयं युद्ध करना चाहते हैं। परन्तु प्रभु की वाणी को हटा न

सके। यथा : उतरु देइ सुनि स्वामि रजाई। सो सेवकु लखि लाज लजाई। तुरन्त सीताजी के साथ चल पड़े। धनुष बाण हाथ में लेकर चलने से सावधानता कहा।

लक्ष्मणजी ने नहीं देखा। वे गिरि कन्दरा में चले गये थे। रामजी ने देखा कि शत्रु की सेना आगयी। निसिचर हीन करउँ महि : ऐसी प्रतिज्ञा करने के समय से ही राक्षस रिपु हैं। सेना देखकर सरकार हँसे कि वर्षों से मैं खोजता था। एक भी हाथ न चढ़े। आज तो इतने एक साथ ही मिल गये। कठिन कोदण्ड जो वैष्णव शार्ङ्ग धनु था बहुत दूर तक मार करता था और स्वयं अच्छेद्य था। उसे चढाया।

छं. कोदंड कठिन चढ़इ सिर जट जूट बाँधत सोह क्यौं ॥
मरकत सयल पर लरत दामिनि कोटि सो जुग भुजग ज्यौं ॥
कटि कसि निषंग बिसाल भुज गहि चाप बिसिख सुधारि कै ॥
चितवत मनहु मृगराज प्रभु गजराज घटा निहारि कै ॥

अर्थ : कठिन धनुष को चढ़ाकर सिर पर जटा का जूट बाँधते हुए प्रभु की कैसी शोभा हुई ? जैसे पन्ने के पर्वत पर करोड़ों बिजलियों से दो साँप लड़ते हों। कमर में तरकस कसकर विशाल भुजा से धनुष पकड़कर और तीरों को सुधारकर सरकार इस भाँति देख रहे हैं जैसे गजराजों की घटा देखकर सिंह ताकता हो।

व्याख्या : पहिला काम था निर्गुण धनुष को सगुण करना। इस धनुष पर प्रत्यञ्चा सिवा सरकार के और कोई नहीं चढ़ा सकता था। यथा : राम रमापति कर धनु लेहू। खैंचहु मिटै मोर संदेहू। इत्यादि। सो उस धनुष पर प्रत्यञ्चा चढ़ाया। युद्ध के समय केश कहीं आँखों को न ढँक लें : इसलिए जटा का जूट बाँधने लगे। उसको छबि कवि कहते हैं कि पन्ने के पर्वत की भाँति सरकार का श्याम शरीर उनके सिर पर केश समूह दामिनि कोटि की भाँति भस्म लगाते लगाते बाल स्वर्णवर्ण होकर चमकने लगे थे। उन्हें दोनों हाथों से जूट रूप में सिर पर लपेट रहे हैं। सो ऐसी छवि हो रही है मानो दो सर्प दामिनी कोटि से लड़ाई कर रहे हैं। भुजा की उपमा सर्प से दी जाती है। यथा : लग्यो स्याम कर पीठि दही री। मानो नील सिखर से निकर्‍यो गोपद संजुत प्रकट अहीरो। जटा बाँधने के बाद कमर में तरकस कसा। फिर धनुष को कन्धे से उतारकर हाथ में लिया और बाणों को सुधारने लगे। जिसमें बाण लक्ष्यवेध करने में न चुकें। अब तैयार होकर शत्रु सेना की ओर बड़े चोप से देख रहे हैं। यथा : मनहु मत्त गजगन निरखि सिंह किसोरहिं चोप। यहाँ परुषा वृत्ति है। कवि ने ट ठ ड ढ ण पाँचों का प्रयोग किया है। कोदण्ड में ण और ड, कठिन में ठ, चढ़ाइ में ढ और जटजूट में ट।

दो. आइ गए बगमेल, धरहु धरहु धावत सुभट।
जथा बिलोकि अकेल, बाल रबिहि घेरत दनुज ॥१२.१८॥

अर्थ : बगमेल आगये। पकड़ो पकड़ो कहते सुभट दौड़े। जैसे अकेला देखकर उदयकालीन सूर्य को दानव घेर लेते हैं।

व्याख्या : इतने अन्दाज से प्रभु ने युद्ध की तैयारी की कि इधर तैयारी समाप्त हुई और उधर शत्रु की सेना पहुँच गयी। घुड़सवारों का दस्ता जो बाग मिलाकर सेना के आगे चलता है अर्थात् अग्रगामिनि सेना आगयी। प्रभु को अकेला देखकर जीते ही पकड़ लेने के लिए पकड़ो पकड़ो ऐसी अवाज देते दौड़े और प्रभु को घेर लिया। कवि कहते हैं कि उस समय ऐसी शोभा हुई जैसे प्रातःकाल दस सहस्र मन्देह नाम के दैत्य उदयकालीन सूर्य को घेर लेते हैं। पौराणिकी कथा है कि नित्य उदयकाल में दस सहस्र दैत्य सूर्यनारायण से युद्ध करने के लिए उन्हें घेर लेते हैं और मारे जाते हैं। ब्रह्मदेव के वरदान से फिर वे जी उठते हैं और नित्य सूर्यनारायण द्वारा मारे जाते हैं। सूर्यनारायण का कुछ कर नहीं पाते। बालरवि के साथ प्रभा भी नहीं चन्द्र भी नहीं रहते। इसलिए अकेला कहते हैं। यहाँ भी सरकार के साथ सीताजी भी नहीं और लक्ष्मणजी भी नहीं। अतः अकेले थे। पास जाने का साहस नहीं। मुख से : पकड़ो पकड़ो कहते हैं। इसलिए चारों ओर से घेर लिया।

प्रभु बिलोकि सर सकहिं न डारी। थकित भई रजनीचर धारी ॥
सचिव बोलि बोले खर दूषन। यह कोउ नृपबालक नर भूषन ॥१॥

अर्थ : प्रभु को देखकर हाथ से बाण नहीं छूटता। राक्षसी सेना थकित रह गयी। तब मन्त्री को बुलाकर खरदूषण बोले कि यह कोई राजा का लड़का मनुष्यों का भूषण है।

व्याख्या : राक्षसों ने दूर से घेरा डाल रक्खा है। सरकार तक शस्त्र की पहुँच नहीं है। बाण पहुँच सकता है। पर उसे चलाने का सामर्थ्य किसी को नहीं। प्रभु के देखने से साहस छूट गया। यह प्रभु की प्रभुता है। सबके सब स्थगित हो गये। यथा : जिन बीथिन्ह बिहरहिं सब भाई। थकित होहिं सब लोग लोगाई। लोग लोगाई थकित होते ही थे। आज रजनीचर धारी थकित हो गयी।

खरदूषण ने देखा कि क्या मामला है। सेना रुक क्यों गयी ? सरकार को देखते ही बात समझ गया। मन्त्री को बुलवाया। ऐसे तेजस्वी के सामने जाकर सन्देश कहना भी सामान्य दूत का काम नहीं है। अतः मन्त्री को दूत बनाकर भेजना चाहता है। खर और दूषण का साथ बोलना कहकर दोनों का एकप्राण होना कहा। नृपबालक कहकर अल्पबल और अपरिपक्व बुद्धि होना द्योतित करता है। पर कहता है कि इन्हें देखने से आँखों को सुख मिल रहा है। अतः ये नरभूषण हैं। यथा : नरभूषण लोचन सुखदाई। खरदूषण ने समझ लिया कि अपराध सूर्पणखा का है। राजपुत्र हैं। व्यभिचारिणी समझकर दण्ड दिया है।

नाग असुर सुर नर मुनि जेते। देखे जिते हते हम केते ॥
हम भरि जन्म सुनहु सब भाई। देखी नहिं असि सुंदरताई ॥२॥

अर्थ : नाग, असुर, सुर, नर और जितने मुनि हैं उनमें से कितनों को मैंने देखा है। जीता है और मार डाला है। पर हे भाइयो ! सुनते जाओ। मैंने ऐसी सुन्दरता नहीं देखी।

व्याख्या : जब सूर्पणखा तीनों लोक देख चुकी है तो खरदूषण के तीनों लोक को देख डालने में आश्चर्य ही क्या है ? अतः व्यवहार योग्य पाँच प्रकार की सृष्टि उसकी देखी हुई है। नाग असुर से पाताल लोक कहा। सुर से स्वर्गलोक कहा और नर और मुनि से मर्त्यलोक कहा। उनमें से जो बलवान् थे उन्हें जीता या मारा। पर हाथ कहीं रुका नहीं।

यहाँ हाथ रुक रहा है। अलौकिक सुन्दरता देखकर स्तब्ध है। अतः सबको सुनाकर कहता है कि जब से होश सँभाला ऐसी सुन्दरता नहीं देखी। उसके कहने का भाव यह कि तुम लोग भी सुन्दरता देखकर ही स्तब्ध हो प्रभुता से नहीं।

जद्यपि भगिनी कीन्हि कुरूपा। बध लायक नहिं पुरुष अनूपा ॥
देहु तुरत निज नारि दुराई। जीअत भवन जाहु द्वौ भाई ॥३॥

अर्थ : यद्यपि बहन को कुरूप कर दिया तथापि ये अनूप पुरुष हैं। वध के योग्य नहीं हैं। अपनी छिपाई हुई स्त्री दे दें और दोनों भाई जीते जी घर लौट जाएँ।

व्याख्या : इन्होंने अपराध बड़ा भारी किया। हमारे बहन का नाक कान काटकर कुरूप बना दिया। इस कुरूप करण का दण्ड तो वध ही है। सूर्पणखा मनुष्य के लिए तो बड़ी भयावनी थी। पर राक्षसों की दृष्टि में वहाँ भी सौन्दर्य था। रावण ने जब स्वर्ग पर धावा किया था उसी समय लङ्का से सूर्पणखा का हरण हुआ था। अतः खरदूषण कहते हैं कि इतना अपराध करने पर भी इनका वध उचित नहीं है। संसार से शोभा उठ जावेगी। इन्हें दूसरा दण्ड देना चाहिए। यह अकेले ही दिखाई पड़ते हैं। स्त्री और भाई नहीं दिखाई पड़ते। अतः सिद्ध है कि इन्होंने उस स्त्री को छिपा दिया है। सो उस छिपाई हुई स्त्री को दे दें। यही दण्ड है। मैं दोनों भाइयों का प्राण नहीं मारूँगा।

मोर कहा तुम ताहि सुनावहु। तासु बचन सुनि आतुर आवहु ॥
दूतन्ह कहा राम सन जाई। सुनत राम बोले मुसुकाई ॥४॥

अर्थ : मेरा यह कहना तुम लोग उसे जा सुनाओ और उसका वचन सुनकर शीघ्र लौट आवो। दूतों ने जाकर रामजी से कहा। सुनते ही रामजी ने मुसकुरा कर कहा।

व्याख्या : खरदूषण अङ्गुल्या निर्देश करके कहता है कि मेरा कहना तुम उसे जाकर सुना दो। यहाँ से कही हुई बात वह नहीं सुन सकता और तुरन्त आकर उसका उत्तर मुझसे कहो। खरदूषण के मन में सन्देह है कि रामजी इस प्रस्ताव को स्वीकार नहीं करेंगे। उन्होंने अपने भाई के साथ स्त्री को हटा दिया है और अकेले निर्भीक

युद्ध के लिए खड़े हैं। आतुर आवहु : कहने का भाव यह है कि जवाब सवाल न करना। जितनी कृपा में कर रहा हूँ वही बहुत है। सचिवगण ही दूत हैं। उन्होंने जाकर रामजी से कह डाला। दूसरे को इतना कहने का साहस न पड़ता। सरकार स्मितपूर्वाभिभाषी हैं। अतः स्वभावतः मुसकुराकर बोले अथवा उसकी चतुरता पर मुसकुराये कि बिना युद्ध किये ही जीत चाहता है। अथवा इस बात पर मुसकुराये कि इसने मुझे इतना नरम चारा समझ रक्खा है कि मैं स्त्री देकर सन्धि कर लूँगा। अथवा अपने दौर्बल्य को कृपा रूप दे रहा है अथवा उसकी कामुकता पर मुसकुराये कि इसे यदि सुन्दरी स्त्री मिल जाय तो बहन का नाक कान काटना कुछ नहीं।

हम छत्री मृगया बन करहीं। तुम्ह से खल मृग खोजत फिरहीं ॥
रिपु बलवंत देखि नहिं डरहीं। एक बार कालहु सन लरहीं ॥५॥

अर्थ : रामजी ने कहा : हम क्षत्रिय हैं। वन में आखेट करते फिरते हैं। तुम्हारे ऐसे दुष्ट पशुओं को तो खोजते फिरते हैं। बलवान् शत्रु को देखकर डरते नहीं। एक बार तो काल से भी लड़ जाते हैं।

व्याख्या : प्रभु कहते हैं कि ऐसी बात तो किसी राक्षस से कहनी थी। जो स्त्री प्रतिष्ठा से अनभिज्ञ हो। हम क्षत्रिय हैं। क्षतात्किल त्रायत इत्युदग्रः क्षत्रस्य शब्दो भुवनेषु रूढः। जो क्षत से रक्षा करे वह क्षत्रिय है। नगर की रक्षा करके बन में आखेट करते हैं। खल मृग हिंसक जन्तु व्याघ्रादि को खोजते फिरते हैं। यदि कोई मिले तो कोसों उसके पीछे दौड़ते चले जाते हैं। तुम लोग भी पशु हो। आहार निद्रा भय मैथुन में ही आसक्त हो। धर्म से तुम्हारा कोई सम्बन्ध नहीं। यथा : आहारनिद्राभयमैथुनञ्च सामान्यमेतत् पशुभिर्नराणाम्। धर्मो हि तेषामधिको विशेषः धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः और पशुओंमें भी दुष्ट पशु हो : ऐसे पशु को तो हम लोग खोजते फिरते हैं। सो तुम लोग इतने हमें मिल गये हो। हम कैसे छोड़ सकते हैं?

यदि कहो कि व्याघ्रादि मेरे सामने क्या हैं। हम बड़े बलवान् हैं। तो हम लोग भी डरनेवाले नहीं। क्षत्रिय तनु धरि समर सकाना। कुल कलंकु तेहि पामर आना। जौं रन हमहि प्रचारै कोऊ। लरहिं सुखेन काल किन होऊ। काल से बली तो कोई नहीं। मैं उससे भी लड़ने को प्रस्तुत हूँ।

जद्यपि मनुज दनुज कुल घालक। मुनि पालक खल सालक बालक ॥
जौं न होइ बल घर फिरि जाहू। समर बिमुख मैं हतौं न काहू ॥६॥

अर्थ : यद्यपि मैं मनुष्य हूँ। पर दनुजकुल का नाश करनेवाला हूँ। मुनियों का पालन करनेवाला और खलों के हृदय में चुभनेवाला बालक हूँ। यदि बल न हो तो घर लौट जाओ। लड़ाई में पीठ दिखानेवाले किसी को मैं नहीं मारता।

व्याख्या : नरभूषण का उत्तर देते हुए प्रभु कहते हैं कि साधारणतः मनुष्य राक्षसों के भक्ष्य हैं। पर मैं मनुष्य हूँ। पर दनुजकुल का नाश करनेवाला हूँ : इससे

अपना अवतार होना भी ध्वनित किया। परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्। अथवा मारीच सुबाहु वध की ओर लक्ष्य करते हुए कहते हैं। यथा : ये कौसिक मख के रखवारे। जिन रन अजिर निसाचर मारे। अथवा अपनी प्रतिज्ञा को जनाया। जो अस्थि समूह देखकर किया था। निसिचर हीन करउँ महि।

ये कोउ नृप बालक का उत्तर देते हुए कहते हैं : मुनि पालक खल सालक बालक। भाव यह कि खल वध का कारण मुनिपालन है। बिना खल वध के मुनिपालन नहीं होता। साधुता से खल के स्वभाव के परिवर्तन की आशा मूर्खता है। अतः खलों का वध ही सच्ची अहिंसा है।

प्रभु कहते हैं कि युद्ध करने के लिए चढ़ आये। तब युद्ध न करने में दो ही पक्ष हैं। या तो हम दुर्बल और कादर हों या तुम दुर्बल और कादर हो। सो मैं तो काल से लड़ने को तैयार हूँ। रह गया दूसरा पक्ष कि तुम निर्बल और कादर हो तो मेरा वीर व्रत है। पीठ दिखानेवाले पर शस्त्र प्रहार नहीं करता। घर लौट जाओ। मैं पीछा करके मारनेवाला नहीं हूँ।

रन चढ़ि करिअ कपट चतुराई। रिपु पर कृपा परम कदराई ॥
दूतन्ह जाइ तुरत सब कहेऊ। सुनि खरदूषन उर अति दहेऊ ॥७॥

अर्थ : लड़ाई पर चढ़ आकर अब कपट चतुराई करते हो। शत्रु पर दया करना तो भारी कादर का लक्षण है। दूतों ने जाकर तुरन्त सब कह सुनाया। सुनकर खरदूषन का कलेजा अत्यन्त जल उठा।

व्याख्या : बध लायक नहिं पुरुष अनूपा का उत्तर। बिना लड़े ही जीत चाहते हो। सेना की दुरवस्था देखकर भीतर से भयभीत हो। बाहर से दया का रूपक दिखाते हो। केवल धमकी देकर स्त्री लेना चाहते हो। बात ऐसी करते हो कि लड़ाई न पड़े : कपट चतुर नहिं होइ जनाई। मैं तुम्हारा शत्रु मैंने तुम्हारे बहन का नाक कान काटा। मेरे पर दया कैसी ? वस्तुतः तुम कादर हो। केवल बातें बनाते हो।

जाने के समय जो वेग दूतों में था लौटने के समय वह न रह गया। पारा उतर गया। अतः जाना कहते हैं। आतुर आवहु : आज्ञा थी। अतः : जाइ तुरत सब कहेऊ। सुनकर सबका कलेजा जल उठा। खरदूषण के हृदय में तो अधिक दाह हुआ। इस पुरइन से जो छन्द रूपी कमल निकला है। वह निम्नोक्त है।

छं. उर दहेउ कहेउ कि धरेहु धाए बिकट भट रजनीचरा।
सर चाप तोमर सक्ति सूल कृपान परिघ परसु धरा ॥
प्रभु कीन्ह धनुष टँकोर प्रथम कठोर घोर भयावहा।
भए बधिर ब्याकुल जातुधान न ज्ञान तेहि अवसर रहा ॥

अर्थ : कलेजा जल उठा। बोले कि पकड़ लो। बिकट भट राक्षस दौड़ पड़े। सब धनुष, बाण, भाला, बरछी, त्रिशूल, तलवार, बेवँड़ा और गँड़ासा लिये हुए थे।

सरकार ने पहिले धनुष का टङ्कोर किया जो कि कठोर घोर और भयानक था। राक्षस बहरे और व्याकुल हो गये। उन्हें उस समय ज्ञान न रह गया।

व्याख्या : खरदूषण बड़े अभिमानी हैं। एक मनुष्य के लिए मारने की आज्ञा क्या दें। कहते हैं कि पकड़ लो। सुभट घेरे खड़े हैं। पर उनसे तो बाण भी जिसे देखकर नहीं चलता है उसे पकड़ेंगे क्या? अतः विकट भट दौड़े। सरकार का सामना पड़ने पर गर्जन बन्द है। कोई धनुष का टङ्कोर भी नहीं करता। अतः प्रभु ने धनुष का टङ्कोर किया। उसको कठोरता से बधिर हो गये। उसकी घोरता से व्याकुल हो गये। उसकी भयावहता से ज्ञानशून्य हो गये।

दो. सावधान होइ धाए, जानि सबल आराति।
लागे बरषन राम पर, अस्त्र सस्त्र बहु भाँति ॥१९॥
तिन्ह के आयुध तिल सम, करि काटे रघुबीर।
तानि सरासन स्रवन लगि, पुनि छाँड़े निज तीर ॥१३.१९॥

अर्थ : शत्रु को बलवान् जानकर सावधान होकर दौड़े। रामजी पर अस्त्र शस्त्र की वर्षा करने लगे। उनके हथियार को रामजी ने तिल के समान काटकर टुकड़े टुकड़े कर दिया। तब कान तक धनुष खैंचकर अपने बाण छोड़े।

व्याख्या : प्रभु के धनुष का टङ्कार सुनकर सब वधिर व्याकुल और उस समय ज्ञानशून्य हो गये। सेना के सञ्चालन की व्यवस्था बिगड़ गयी। फिर सावधान हुए और शत्रु को बलवान् समझकर दौड़े। पकड़ लेने का ध्यान छोड़ दिया। निकट नहीं जाते। शस्त्र तो निकट जाकर आघात करने का हथियार है। उसे भी अस्त्र की भाँति दूर से फेंक फेंककर मार रहे हैं। इस भाँति प्रभु पर अस्त्र शस्त्र की वर्षा हो गयी।

प्रभु बनैती दिखलाते हैं। दो खण्ड करने से भी अस्त्र शस्त्र कट जाते हैं। पर उन्हें तिल के समान टुकड़े टुकड़े किया। इतने हथियार चारों ओर से गिर रहे हैं अपना बचाना कठिन होना चाहिए। पर सरकार का लाघव ऐसा है कि उन्हें तिल के समान काट रहे हैं। वीरव्रत हैं। पहिले चोट नहीं करते। पहिले उनकी अस्त्र शस्त्र की वर्षा को निष्फल किया। तब चोट करने के लिए अपनी तीरें छोड़ीं। कान तक धनुष खैंचा जिसमें दूर तक मार करे।

छं. तब चले बान कराल। फुंकरत जनु बहु ब्याल ॥
कोपेउ समर श्रीराम। चले बिसिख निसित निकाम ॥१॥
अवलोकि खरतर तीर। मुरि चले निसिचर बीर ॥
भए क्रुद्ध तीनिउ भाइ। जो भागि रन ते जाइ ॥२॥

अर्थ : तब कराल बाण चले। जैसे बहुत से साँप फुंकार करते चलें। श्रीराम ने लड़ाई में क्रोध किया। अत्यन्त तीखे बाण चले। अधिक तीखे बाणों को देखकर राक्षस वीर भाग चले। तीनो भाई क्रुद्ध हुए। बोले कि जो लड़ाई से भाग जायगा।

व्याख्या : जब निज तीर छोड़े तो उसकी करालता कहते हैं कि वे ऐसे चले जैसे फुँकारता हुआ सर्प चले। शत्रु के शस्त्रास्त्र छेदन के लिए जो बाण चले थे वे कराल नहीं थे। ये कराल हैं। सरकारके बाणों की उपमा सर्पों से ही आगे भी दी जायगी। यथा : राम मारगन नभ चले लहलहात जनु व्याल। ये बाण भी भयभीत करने के लिए चलाये गये हैं। मारने के लिए नहीं। नहीं तो काल फणीश से उपमा दी जाती। यथा : मानहु काल फनीस। डरानेवाले थे। इसलिए फुँकरत जनु व्याल कहा।

इन कराल बाणों के चलने से सेना भागी नहीं डँटी रह गयी। तब श्रीराम ने कोप किया। अब युद्ध यज्ञ आरम्भ हुआ। यथा : चाप स्रुवा सर आहुति जानू। कोप मोर अति घोर कृसानू। इत्यादि। श्रीराम कहकर : रामः शस्त्रभृतामहम् की ओर लक्ष्य है। अर्थात् परशुराम के जीतनेवाले राम। अङ्गों की पूजा में श्रीराम शब्द से दाशरथी राम का ही ग्रहण हुआ है। यथा : श्रीरामाय नमः उदरं पूजयामि। श्री रामाय नमः हृदयं पूजयामि। युद्धयज्ञ में तीसरे प्रकार के बाण चले। ये अत्यन्त ही चोखे थे। यथा : को सहि सकै सुरासुर समरथ विसिख काल दसनन ते चोखे। इन तीरों को देखकर निशिचर वीर भाग चले। वीर इसलिए कहा कि अनेक लड़ाइयाँ लड़ चुके हैं। अस्त्रों का मर्म जानते हैं। पहिले बाण खर रहे उन्हें तो सह गये। पर ये तो खरतर हैं। नितान्त असह्य है। अतः घूमकर भाग चले। खर की सेना के लिए खरतर तीर की आवश्यकता भी थी।

यहाँ तीनों भाई से अभिप्राय खर दूषण और त्रिशिरा से है। ये भागनेवाले नहीं सेना के नमकहरामी पर उन लोगों ने क्रोध किया : सर्वसु खाइ भोग करि नाना। समर भूमिभये बल्लभ प्राना। चारों ओर से सेना को ललकारा कि रण से भागते हो जीने के लिए। सो न होने पायेगा।

तेहि बधब हम निज पानि। फिरे मरन मन महुँ ठानि॥
आयुध अनेक प्रकार। सनमुख ते करहिं प्रहार॥३॥
रिपु परम कोपे जानि। प्रभु धनुष सर संधानि॥
छाँड़े बिपुल नाराच। लगे कटन बिकट पिसाच॥४॥

अर्थ : उसे हम अपने हाथ से मारेंगे। मन में मरना ठानकर फिरे। वे अनेक प्रकार के हथियारों का प्रहार सामने जाकर करने लगे। प्रभु ने शत्रुओं को अत्यन्त कुपित जानकर धनुष पर बाण चढ़ाकर बहुत से नाराच छोड़े। विकट पिशाच कटने लगे।

व्याख्या : भागनेवाले को हम मारेंगे और अपने हाथ से मारेंगे। किसी दूसरे का विश्वास न करेंगे। यह सुनकर वीर लोग लौट पड़े। जीत की आशा तो किसी को नहीं है। मरण निश्चय करके लौट रहे हैं। मरण ठान लेने पर वह व्यक्ति ही दूसरा हो जाता है। मरता क्या न करता।

शर शक्ति तोमर शूल कृपाण परिघ और परशु की चोट सामने जाकर करते हैं। जिसे देखकर हाथ से बाण नहीं चलते थे : मरण ठान लेने पर उन्हीं के सामने जाकर प्रहार कर रहे हैं। उनको भागते देखकर प्रभु ने बाण चलाना बन्द कर दिया था। प्रतिज्ञा भी है समरबिमुख मैं हतौं न काहू। अब उनके सामने जब जाकर प्रहार करने लगे : प्रभु ने प्रहार सहा।

पहिले भी कुपित थे। तब दूर से अस्त्र शस्त्र की वर्षा करते थे। अब परम कुपित हैं। अतः सन्मुख जाकर चोट करते हैं। प्रभु ने तब फिर धनुष पर बाण चढ़ाया। दूसरी लड़ाई प्रारम्भ हुई। इस लड़ाई में लोहमय बाण : नाराच छूटे। बिकट पिशाच कटने लगे। पिशितमाचमतीति पिशाचः। मांस खानेवाले को पिशाच कहते हैं। ये ही सब मुनियों को खाये थे।

उर सीस भुज कर चरन। जहँ तहँ लगे महि परन ॥
चिक्करत लागत बान। धर परत कुधर समान ॥५॥
भट कटत तन सत खंड। पुनि उठत करि पाखंड ॥
नभ उड़त बहु भुज मुंड। बिनु मौलि धावत रुंड ॥६॥
खग कंक काक सृगाल। कटकटहिं कठिन कराल ॥७॥

अर्थ : छाती, सिर, हाथ, भुजा और पैर जहाँ तहाँ पृथ्वी पर गिरने लगे। बाण लगते ही चिग्घाड़ते हैं। धड़ पहाड़ को भाँति गिर रहे हैं। वीर लोग सौ सौ टुकड़े कटकर गिर रहे हैं और फिर माया करके उठते हैं। आकाश में बहुत सी भुजाएँ और सिर उड़ रहे हैं। बिना सिर के रुण्ड दौड़ रहे हैं। चील्ह, कौए, आदि पक्षी और गीदड़ भयङ्कर कटकट शब्द कर रहे हैं।

व्याख्या : नाराच के चोट से पाँच पाँच खण्ड होकर कट रहे हैं। यह कोई विशेष विद्या बनैती की है। क्योंकि अन्यत्र भी नाराच चलने पर इसी भाँति कटना लिखा है। यथा : जँह तहँ चले बिपुल नाराचा। लगे कटन भट बिकट पिसाचा। कटहि चरन सिर उर भुज दंडा। बहु तक बीर होहिं सत खंडा। जिन्हें देखो वे पाँच खण्ड होकर गिरते हैं।

बाणों का वेग और बढ़ा तो सात खण्ड या सौ खण्ड होकर गिरने लगे। जब पाँच खण्ड होकर गिरना कहा था वहाँ धड़ का पहाड़ की भाँति गिरना कहा। अब तो सौ खण्ड होकर गिर रहे हैं। अतः धड़ों का पहाड़ की भाँति गिरना नहीं लिखते। सौ खण्ड होने पर भी माया से सब खण्ड एकत्रित हो जाते हैं और वे सब उठ खड़े होते हैं। यह नये प्रकार की माया है। ऐसी माया लङ्का के युद्ध में भी नहीं देखी गयी। तब प्रभु ने युद्ध की शैली बदली। भुज मुण्डों को काट काटकर आकाश में फेंकने लगे। जिसमें जुटने न पावें। तब बिना सिर के रुण्ड दौड़ने लगे।

अब रणभूमि मांस रुधिरमय हो गयी। हिंसक जन्तु प्रकट हुए : काक कंक ले

भुजा उड़ाहीं । एकते छीनि एक लै खाँहीं । एक कहहिं ऐसेउ सौंघाई । सठहु तुम्हार दरिद्र न जाई । जंबुक निकर कटक्कट कट्टहिं । खाहिं अघाहिं हुआहिं दुपट्टहिं । जब रणभूमि मांस रुधिरमय हो गयी तब हिंसक जीव प्रकट हुए । बीभत्स रस का प्रादुर्भाव हुआ । शृगाल को कवि ने कठिन कराल कहा है । क्योंकि मरते हुए का मांस नोचकर खाते हैं । एक दूसरे पर कटकटाते हैं कि यह तो मेरा आहार है तू कैसे यहाँ आगया ।

कटकटहिं जंबुक भूत प्रेत पिसाच खर्प्पर संचहीं ।
बेताल बीर कपाल ताल बजाइ जोगिनि नंचहीं ॥
रघुबीर बान प्रचंड खंडहिं भटन्ह के उर भुज सिरा ।
जहँ तहँ परहिं उठि लरहिं धरु धरु धरु करहिं भयंकर गिरा ॥१॥

अर्थ : गीदड़ कटकटाते हैं । भूत प्रेत और पिशाच खप्पर में रक्त जमा करते हैं । वीर वेताल खोपड़ियों पर ताल देते हैं और योगिनियाँ नाच रही हैं । रघुवीर के प्रचण्ड बाण योद्धाओं की छाती भुजा और सिरोंको काट रहे हैं । वे जहाँ तहाँ गिरते हैं फिर उठकर लड़ते हैं और भयङ्कर शब्दसे पकड़ो पकड़ो कहते हैं ।

व्याख्या : प्रेत लोक के घोर जीव भी आ डँटे । पेटभर खाया पीया । अब दूसरे दिनके लिए खप्पर भरकर रख रहे हैं । निश्चिन्त होने के बाद आनन्द का जलसा आरम्भ हुआ । वेताल वीर नट कपाल को बजाकर ताल दे रहे हैं और योगिनी नृत्य कर रही हैं । ये योगिनी भी एक प्रकार की प्रेत ही है । रुधिर पान से सब मत्त हो रहे हैं । योद्धा लोग जहाँ उठे कि तीन टुकड़े हुए । फिर भी वे माया से उठ खड़े होते हैं और लड़ने लगते हैं । सबके सब रण मद में मत्त हैं । मालिक ने पकड़ने की आज्ञा दी थी । अतः पकड़ो, पकड़ो, पकड़ो यही शब्द भयङ्कर ध्वनि से उच्चारण कर रहे हैं ।

अंताबरी गहि उड़त गीध पिसाच कर गहि धावहीं ।
संग्राम पुर बासी मनहु बहु बाल गुड़ी उड़ावहीं ॥
मारे पछारे उर बिदारे बिपुल भट कहँरत परे ।
अवलोकि निज दल बिकल भट त्रिसिरादि खरदूषन फिरे ॥२॥

अर्थ : अँतड़ियों को लेकर गीध उड़े जाते हैं । उन्हें पिशाच हाथ से पकड़े हुए दौड़ते हैं । मानो संग्रामरूपी पुर के रहनेवाले बहुत से बालक पतङ्ग उड़ा रहे हों । मारे गये । पृथ्वी पर गिराये गये बहुत से योद्धा कराहते हुए पड़ गये । अपनी सेना को विकल देखकर त्रिशिरा आदि खरदूषण लौटे ।

व्याख्या : आँत स्वभावतः लम्बी होती है । फिर शैतान की आँत तो बहुत लम्बी सुनी जाती है । सो उन्हें लेकर गीध उड़ चले । उनके दूसरे सिरों को पिशाचों ने पकड़ लिया और दौड़ने लगे तो ऐसा दृश्य उपस्थित हुआ मानो संग्राम भूमि ही

एक पुर है। वहाँ के रहनेवाले लड़के पतङ्ग उड़ाते हों। सेना के कुछ लोग मारे गये। कुछ पछाड़ खाकर गिरे और बहुत से पड़े पड़े कराह रहे थे। खरदूषण त्रिशिरा ने देखा कि सेना समाप्त हो चली। तो स्वयं सरकार की ओर लौट पड़े। पहिले सैनिकों को प्रेरणा करके सरकार से लड़ने के लिए भेजते थे। यथा : भये क्रुद्ध तीनिउ भाई। जो भागि रन ते जाइ। तेहि बधब हम निज पान।

सर सक्ति तोमर परसु सूल कृपान एकहि बारहीं।
करि कोप श्रीरघुबीर पर अगिनिति निसाचर डारहीं॥
प्रभु निमिष महुँ रिपु सर निवारि पचारि डारे सायका।
दस दस बिसिख उर माँझ मारे सकल निसिचर नायका॥३॥

अर्थं : अगणित निशाचर श्रीरघुवीर के ऊपर बाण, बरछी, तोमर, फरसा, त्रिशूल और तलवार एक साथ ही फेंकने लगे। प्रभु ने क्षणभर में शत्रुओं के बाणों को दूर करके, ललकारकर बाण छोड़े। प्रत्येक राक्षसों के नायक के हृदय में दस दस बाण मारे।

व्याख्या : तीसरी लड़ाई प्रारम्भ हुई। खरदूषण त्रिशिरादि वीर योद्धा भी अकेले सरकार से युद्ध करने का साहस नहीं करते। क्रोध से भरे हुए दूर से हथियार फेंक रहे हैं। हथियारों की वर्षा हो गयी। प्रभु वीरव्रत हैं। उनकी अस्त्र शस्त्र वर्षा को सहन करते हुए अपने बाणों से उसका निवारण किया और प्रत्येक सेनापति के हृदय में दस दस बाण मारे : बहुतों के साथ युद्ध करते समयकी कोई प्रक्रिया है जिससे दस दस बाण प्रतिभटों के हृदय में लगते हैं। यथा : दसदस सर सब मारेसि परे भूमि कपि बीर।

छं. महि परत उठि भट भिरत मरत न करत माया अति घनी।
सुर डरत चौदह सहस प्रेत बिलोकि एक अवध धनी॥
सुर मुनि सभय प्रभु देखि मायानाथ अति कौतुक कर्‌यो।
देखहि परसपर राम करि संग्राम रिपुदल लरि [1]मर्‌यो॥४॥

अर्थं : पृथ्वी पर गिरते हैं और उठकर योद्धा फिर लड़ते हैं मरते नहीं। और घनी माया कर रहे हैं। देवता लोग चौदह सहस्र प्रेतों में अकेले श्री रामजी को देखकर डर रहे हैं। देवता और मुनियों को डरा हुआ देखकर मायानाथ ने बड़ा खेल किया कि एक दूसरे को राम देखते हुए संग्राम करके शत्रु की सेना लड़ मरी।

---

१. यह संग्रम मृगशिरा नक्षत्र है : प्रथम मृगसीरस को जलपात। गोजर बीछी साँप छंछूदर वीर बहूटी चरत। पहिले कह आये हैं : वर्षा घोर निसाचररारी। सो वर्षा के दसो नक्षत्र बरसेंगे। यह संग्राम पहिले नक्षत्र की वर्षा है। सुरकुल सालि सुमंगलकारी है। यथा : हरषित बरखहि सुमन सुर, बाजहिं गगन निसान।

व्याख्या : ये वीर अमर मालूम पड़े। क्योंकि कटकर टुकड़े टुकड़े होकर तो पृथ्वी पर गिरते थे। परन्तु फिर उठ जाते थे। मरते न थे और अत्यन्त दुरूह माया करते थे। कवि उन्हें प्रेत कहते हैं। क्योंकि ये मर मरकर जीते हैं। देवताओं ने देखा कि ये चौदह हजार प्रेत हैं और अवधेश रामजी अकेले हैं। अतः डरने लगे कि देखें क्या होता है ! सरकार ने देखा कि देवता और मुनि डर रहे हैं तो उनकी माया के जवाब में एक खेल कर दिया कि वे सब एक दूसरे को राम देखने लगे और आपस में ही कटकर मर गये।

दो. राम राम कहि तनु तजहिं, पावहिं पद निर्वान।
करि उपाय रिपु मारे, छन महँ कृपानिधान ॥२०॥

अर्थ : राम राम कहकर शरीर छोड़ते हैं। निर्वाण पद को प्राप्त हो रहे हैं। इस भाँति उपाय करके कृपानिधान ने क्षण भर में शत्रुओं का संहार कर दिया।

व्याख्या : एक दूसरे को शत्रु सेना के सैनिक राम देखने लगे। जो मारता है वह कहता है कि राम को मारा। जो मारा जाता है वह कहता है कि राम ने मारा। इस भाँति अन्तकाल में सबके मुख से राम नाम का उच्चारण हो रहा है। अतः सबको निर्वाण पद की प्राप्ति हो रही है। यथा : अन्तकाले च मामेव स्मरन् मुक्त्वा कलेवरम्। यः प्रयाति त्यजन् देहं स याति परमां गतिम्। जाकर नाम मरत मुख आवा। अधमौ मुकुत होत स्रुति गावा।

सरकार कृपानिधान हैं। ऐसा उपाय किया कि अनायासेन सब राक्षसों का मोक्ष हो गया।

दो. हरषित बरषहिं सुमन सुर, बाजहिं गगन निसान।
अस्तुति करि करि सब चले, सोभित बिबिध बिमान ॥१४.२०॥

अर्थ : प्रसन्न होकर देवता लोग फूल बरसाने लगे। आकाश में डङ्का बजने लगा। स्तुति करके सब देव आकाश में विमानों पर शोभायमान होकर चले।

व्याख्या : देवता लोग डर गये थे सो हर्षित होकर फूल बरसाने लगे। राक्षसों से इतने भयभीत थे कि यहाँ पर्ण तृणशाला भी बनाने नहीं आये थे। सो आकाश में डङ्का बजा रहे हैं। युद्ध देखने आये थे सो किसी ने नहीं जाना। अब जाते समय प्रत्यक्ष हो गये। आकाश में विमान पर शोभित हुए।

जब रघुनाथ समर रिपु जीते। सुर नर मुनि सब के भय बीते ॥
तब लछिमन सीतहि लै आए। प्रभु पद परत हरषि उर लाए ॥१॥

अर्थ : जब रघुनाथजी युद्ध में शत्रु को जीत गये तब सुर नर मुनि सबका भय बीत गया। तब लक्ष्मण सीताजी को ले आये। पैर पड़ते हुए प्रभु ने हर्षित हो लक्ष्मणजी को हृदय से लगा लिया।

व्याख्या : जब से सरकार पञ्चवटी में ठहरे हैं मुनि लोगों का त्रास तो तभी

से दूर हो गया था। यथा : जब ते राम कीन्ह तहँ बासा। सुखी भये मुनि बीती त्रासा। अब जब शत्रुओं को रण में जीत लिया तब सुर नर मुनि सबका भय समाप्त हो गया।

आकाश में निशान बजा। देवताओं ने स्तुति की। जब लक्ष्मणजी ने सुना और युद्ध का कोलाहल शान्त हो गया तब समझ लिया कि जीत हो गयी। तब सीताजी को लेकर लक्ष्मणजी आये। प्रभु के चरणों में नमस्कार किया। सरकार ने विजय की खुशी में हर्षित होकर हृदय से लगाया। माधुर्य लीला है। रण सङ्कट से विनिर्मुक्त होकर भाई से मिल रहे हैं। चुनौती तो सरकार ने लक्ष्मण के हाथ से दिलाया। परन्तु युद्ध की धार को अपने ऊपर लिया।

सीता चितव स्याम मृदु गाता। परम प्रेम लोचन न अघाता॥
पंचबटी बसि श्रीरघुनायक। करत चरित सुर मुनि सुखदायक॥२॥

अर्थ : सीताजी श्याम मृदुगात को देख रही हैं। उन्हें परम प्रेम है। उनकी आँखें नहीं अघाती। पञ्चवटी में बसकर श्री रघुनायक सुर मुनि सुखदायक चरित करते हैं।

व्याख्या : आँखें दर्शन की प्यासी हैं। निज पानि मनि महुँ देखिअत मूरति सुरूप निधान की। चालति न भुजबल्ली बिलोकनि बिरह भयबस जानकी। वही जानकी समर सङ्कट से विनिर्मुक्त देखकर श्याम मृदु गात को परम प्रेम से देख रही हैं और जी चाह रहा है कि देखा ही करें।

चित्रकूट का चरित सुर नर मुनि भावन था। यथा : करत जे बन सुर नर मुनि भावन। पर पञ्चवटी का चरित सुरमुनि सुखदायक है। वहाँ नर का निवास नहीं। अतः उनका नाम नहीं लिखा। राक्षस मुनियों को खा गये तो कोलकिरात को कैसे छोड़ते?

३७. दशानन समाचार प्रसंग

धुआँ देखि खरदूषन केरा। जाइ सुपनखा रावन प्रेरा॥
बोलि बचन क्रोध करि भारी। देस कोस कै सुरति बिसारी॥३॥

अर्थ : खरदूषण का शव देखकर सूर्पणखा ने जाकर रावण को प्रेरणा किया। भारी क्रोध करके बोली कि देश और कोश की सुध विसराकर।

व्याख्या : धुआँ अर्थात् शव या लाश। पहिले गिरकर उठ जाते थे। मरत न करत माया अति घनी। पर इस बार नहीं उठे। अतः सूर्पणखा ने जान लिया कि मर गये। तब जाकर रावण को प्रेरणा किया। ताके कर रावन कहँ मनौ चुनौती दीन्ह। सो रावण तक चुनौती पहुँच गयी। पहिले खरदूषण को प्रेरा था : कुल में कुलटा उत्पन्न होने से कुल का नाश हो जाता है। दूसरा कोई रावण के प्रेरने में समर्थ नहीं था।

सूर्पणखा का खरदूषण पर क्रोध था। पर रावण पर भारी क्रोध था। इसी के कारण विधवा हुई। विधवा होने के कारण नाक कान कटा। बहन है इसलिए भारी क्रोध कर सकती है। नहीं तो : कर जोरे सुर दिसिप बिनीता। राजा के लिए देश काल प्रधान है। सूर्पणखा रावण से कहती है कि तुझे दोनों की खबर नहीं। खरदूषण के मरने की खबर देने मैं आ रही हूँ। तुझे नहीं मालूम की देश में इस समय क्या हो रहा है। अब जनस्थान के कोष का भी कोई रक्षक नहीं रह गया।

करसि पान सोवसि दिनु राती। सुधि नहिं तव सिर पर आराती ॥
राजनीति बिनु धन बिनु धर्मा। हरिहि समर्पे बिनु सतकर्मा ॥४॥
बिद्या बिनु बिबेक उपजाएँ। श्रम फल पढ़ें किये अरु पाएँ ॥
संग[१] तें जती कुमंत्र ते राजा। मान ते ग्यान पान ते लाजा ॥५॥
प्रीति प्रनय बिनु मद ते गुनी। नासहि बेगि नीति अस सुनी ॥६॥

अर्थ : तू शराब पीता है और दिन रात सोता है। तेरे सिर पर शत्रु है और तुझे खबर नहीं है। १. नीति के बिना राज पाने से २. और बिना धर्म के धन पाने से ३. भगवान् के समर्पण बिना सत् कर्म करने से ४. बिना विवेक उपजाये विद्या पढ़ने से केवल श्रम ही फल है। संग हो जाने से संन्यासी। १. कुमन्त्र से राजा २. मान से ज्ञान ३. और पान से लाज ४. बिना ईमानदारी के प्रीति ५. और मद से गुणी ६. शीघ्र ही नष्ट होते हैं। ऐसी नीति सुनी गयी है।

व्याख्या : सूर्पणखा अपना दोष छिपाने के लिए सब दोष रावण के सिर मढ़ रही है कि तेरी असावधानी से तेरे शत्रु इतने बढ़ गये हैं कि आज उन्होंने मेरी नाक काट ली। तू देश कोष की सुरत्ति बिसारकर मद्यपान करता है और रात दिन पड़ा रहता है। सर्वशोक हरा सुरा में मस्त रहता है। तुझे कुछ भी चिन्ता नहीं है। तेरा शत्रु अयोध्या से चलकर जनस्थान पहुँच गया। अब यहाँ आना चाहता है। तुझे वह नहीं छोड़ेगा।

तू नीति शास्त्र की अवहेलना करता है। मैंने जो नीति सुनी है उसे सुनाती हूँ। चार का श्रम ही फल होता है। छः का शीघ्र ही नाश होता है और छः को छोटा नहीं गिनना चाहिए।

१. बिना नीति के राज्य प्राप्ति में जो श्रम होता है वही[२] फल है। क्योंकि राज्य तो रहेगा नहीं। यथा : राज कि रहै नीति बिनु जाने। २. बिना धर्म के अर्थ के उपार्जन में जो श्रम हुआ वही फल है। क्योंकि वह अर्थ अनर्थ है। टिकाऊ नहीं

---

१. यहाँ दीपकालङ्कार है।

२. तत्कर्म यन्न बन्धाय सा विद्या या विमुक्तये। आयासायापरं कर्म विद्यान्या शिल्पकौशलम्। कर्म वही है जिससे बन्ध न हो। विद्या वही है जिससे मोक्ष हो। दूसरे कर्म श्रम के लिए हैं और दूसरी विद्या शिल्प कौशलमात्र है।

हो सकता। ३. बिना हरि के समर्पण किये सत्कर्म के अनुष्ठान में जो श्रम हुआ वही फल है। क्योंकि वह बन्ध का कारण है। ४. और बिना विवेक उत्पन्न हुए विद्योपार्जन में जो श्रम हुआ वहीं फल है। क्योंकि विद्या का फल ही विवेक है। मैं तो देखती हूँ कि तुम्हारे राज्य, धन, सत्कर्म और विद्या के उपार्जन का फल श्रम ही हुआ।

१. सङ्ग से यती का शीघ्र ही पतन होता है। यथा : सब नृप भये जोग उपहासी। जैसे बिनु बिराग संन्यासी।

२. कुमन्त्र से राजा का शीघ्र ही पतन होता है। यथा : सचिव वैद गुरु तीन जौं प्रिय बोलहिं भय आस। राजधर्म तन तीनि कर होइ बेगिही नास।

३. मान से ज्ञान का नाश होता है। क्योंकि : ज्ञान मान जहँ एकौ नाहीं। देख ब्रह्म समान सब माहीं।

४. पान से तुरन्त लज्जा का नाश होता है। शराबी नङ्गे होकर नाचते बहुधा देखे गये हैं।

५. बिना ईमानदारी के प्रीति का तुरन्त नाश होता है। यथा : बिलग होत रस जाय कपट खटाई परत ही।

६. मद से गुणो का नाश होता है। यथा : अवगुन मूल सूलप्रद नाना। सकल सोक दायक अभिमाना।

मैं देखती हूँ कि कुमन्त्र, मान, पान और मद से तेरे राज्य ज्ञान लज्जा और गुणों का नाश हो चला।

दो. रिपु रुज पावक पाप प्रभु, अहि गनिअ न छोट करि।
अस कहि बिबिध बिलाप, करि लागी रोदनु करन ॥२१॥

अर्थ : शत्रु, रोग, अग्नि, पाप, मालिक और सर्प को छोटा करके नहीं गिनना चाहिए। ऐसा कहकर अनेक प्रकार से विलाप करके रोने लगो।

व्याख्या : ये छः गूढ़ वीर्य हैं। इनका तुरन्त उपाय करना चाहिए। ये कथमपि उपेक्षणीय नहीं हैं। मैं देखती हूँ कि तुम अति प्रबल शत्रु की उपेक्षा कर रहे हो।

ऐसा कहकर, छाती पीटकर, सिर कूटकर, जमीन पर पछाड़ खाकर रोने लगी। धैर्य धारण करके इतना नीति का उपदेश उसने इसलिए दिया जिसमें रावण समझे कि सूर्पणखा बड़ी विचारशीला है। इसने अनीति नहीं किया होगा। सब दोष राजपुत्रों का ही है।

दो. सभा माँझ परि ब्याकुल, बहु प्रकार कह रोइ।
तोहि जिअत दसकंधर, मोरि कि असि गति होइ ॥२१.१५॥

अर्थ : सभा के बीच में व्याकुल होकर गिर पड़ी और बहुत प्रकार से रोकर कहा कि दशकन्धर! तेरे जीते ही जीते मेरी क्या ऐसी दशा होनी थी।

व्याख्या : बात और बढ़ी अब सभा में गिर गयी और बहुत प्रकार से रोकर कहा कि तुम मर गये होते और मेरी नाक कटती तो मुझे सन्तोष होता। जिसको एक सिर होता है उसके जीते उसकी बहिन की नाक कोई काट नहीं सकता। पर तुझे दस सिर हैं। मुझे तैंने विधवा किया। मुझे तो अब तेरी ही गति है।

सुनत सभासद उठे अकुलाई। समुझाई गहि बाँह उठाई॥
कह लंकेस कहसि निज बाता। केइ तव नासा कान निपाता॥१॥

अर्थ : सुनते ही सभासद व्याकुल होकर उठे। उसे समझाया और बाहु पकड़कर उठाया। रावण ने कहा कि अपनी बात कह कि तेरा नाक कान किसने काटा ?

व्याख्या : रावण अपने स्थान से न हिला। पिछली बात से सबने पहिचाना। नहीं तो पहिले पहिचान भी नहीं सके थे। आकुल होकर सभासद उठे कि राजा की बहन की नाक किसने काटी और उसे समझाने लगे :

सूपनखे धीरज धरहि अनहोनी यह बात।
किन कीन्ह्यो कैसे भयो यह दारुण उतपात॥
मिटिहि इंद्र पद ब्रह्मपद रहिहि न नेक निसानि।
दियो चुनौती कौन जग लंकपतिहि लघु मानि॥

इतना समझाने पर भी नहीं उठी। तब उसको भुजा पकड़कर उठाया।

तब रावण बोले कि अपना हाल कह। मैं क्या करता हूँ उससे तुझे क्या प्रयोजन ? यह बतला कि तेरी नाक और कान किसनें काटा ?

अवध नृपति दसरथ के जाए। पुरुष[1] सिंह बन खेलन आए॥
समुझि परी मोहि उन्ह कै करनी। रहित निसाचर करिहहिं धरनी॥२॥

अर्थ : अयोध्या के राजा दशरथ के बेटे जो कि पुरुषों में सिंह हैं वन में अहेर खेलने आये हैं। उनकी करणी मुझे समझ पड़ी कि वे पृथ्वी को निशिचर हीन करेंगे।

व्याख्या : लक्ष्मणजी ने सूर्पणखा से कहा था : प्रभु समर्थ कोसलपुर राजा और सरकार के मुख से सुन चुकी है : हम क्षत्रिय मृगया बन करहीं। अयोध्या के राजा दशरथ की ख्याति संसार में थी। यथा : जीति को सक संग्राम दसरथ के रन बाँकुरे। अतः उसने परिचय तदनुसार ही दिया और कहा कि उनकी करणी देखकर मुझे निश्चय हो गया कि वे पृथ्वी का निशिचरहीन किया चाहते हैं और कर डालेंगे। उन्होंने कहा था : हम क्षत्रिय मृगया बन करहीं। तुमसे खल मृग खोजत फिरहीं। वही कर दिखाया। करि उपाय रिपु मारे छन महँ कृपानिधान। एक ने चौदह सहस्र का संहार किया और उनका कोई कुछ न कर सका।

---

१. यह रत्नावली अलङ्कार है।

जिन्ह कर भुजबल पाइ दसानन । अभय भये बिचरत मुनि कानन ॥
देखत बालक काल समाना । परम धीर धन्वी गुन नाना ॥३॥

अर्थ : हे दशानन ! जिनके भुजबल को पाकर मुनि लोग निर्भय होकर वन में विचरते हैं। देखने में तो बालक हैं। पर काल के समान हैं। बड़े भारी धनुर्धर हैं और उनमें नाना प्रकार के गुण हैं।

व्याख्या : तुम्हारा शासन उस देश से उठ गया। अब वहाँ उनका शासन चल रहा है। जो मुनि लोग निशाचरों के डर से छिपे फिरते थे वे अब आनन्द से वन में विचरते हैं। किसी का सामर्थ्य नहीं कि उनसे बोल सके। यथा : जब ते राम कीन्ह तहँ वासा। सुखी भये मुनि बीती त्रासा।

वे देखने में ही अल्पवयस्क हैं। राक्षसों के संहार करने में साक्षात् काल ही हैं। बड़े भारी धनुर्धर हैं। उनकी बाण विद्या के आगे किसी का किया कुछ नहीं होता। इसके अतिरिक्त भी अनेक गुण हैं। न जाने कौन विद्या कर दी कि सारी सेना आपस में ही कट मरी।

अतुलित बल प्रताप द्वौ भ्राता । खल बध रत सुर मुनि सुखदाता ॥
सोभा धाम राम अस नामा । तिन्ह के संग नारि एक स्यामा ॥४॥

अर्थ : उन दोनों भाइयों के बल प्रताप का कोई तौल नहीं है। वे देवता और मुनि के सुख देनेवाले हैं और खलों के नाश में लगे रहते हैं।

व्याख्या : बल ऐसा है कि उनके धनुष का टङ्कार कोई सह नहीं सकता। यथा : प्रभु कीन्ह धनुष टंकोर प्रथम कठोर घोर भयावहा। और प्रताप ऐसा है कि उनकी ओर देखा नहीं जाता। यथा : प्रभु बिलोकि सर सकहिं न डारी। दोनों भाई एक से एक हैं : मुनि पालक खल शालक बालक : इस भगवदुक्ति का अनुवाद करती हुई कहती हैं : खल बध रत सुर मुनि सुखदाता। छवि पर आसक्त हैं। अतः सोभा धाम कहती हैं। राक्षस लोग उन्हें राम कहते थे। यथा : राम राम कहि तनु तजहिं। अतः कहती हैं राम अस नामा : राक्षसों को नाम मालूम था। बहुत दिनों से नाम सुनते थे। सीताजी पर बड़ी डाह है। इसलिए परिचय देती है। तिनके संग नारि एक स्यामा। श्यामा भवति श्यामाङ्गी श्यामा षोडशवार्षिकी। अप्रसूता भवेत् श्यामा श्यामा मधुरभाषिणी। अप्रसूता और मधुरभाषिणी होने से श्यामा कहा। जानती हैं कि रावण को उसके नाक कान कटने की उतनी परवाह नहीं होगी। सुन्दरी स्त्री के लिए वह सब कुछ कर सकता है।

रूप रासि बिधि नारि सँवारी । रति सत कोटि तासु बलिहारी ॥
तासु अनुज काटे स्रुति नासा । सुनि तव भगिनि करहिं परिहासा ॥५॥

अर्थ : विधाता ने उस स्त्री को ऐसी रूप की राशि बनाया है कि सौ करोड़

रति भी उस पर निछावर हैं। उन्हीं के छोटे भाई ने मेरे नाक कान काट डाले। मैं तेरी बहिन हूँ। यह सुनकर वे मुझसे हँसी करने लगे।

व्याख्या : रावण को कामुक जानकर सीताजी के रूप की प्रशंसा करती है। राम शोभाधाम नारि रूप राशि। राम के अंग अंग पर वारिये कोटि कोटि शत काम। नारि के लिए कहती हैं : रति सतकोटि तासु बलिहारी। उसे ब्रह्माजी ने अपने हाथ से सँवारकर बनाया है। तुम्हारे महल में ऐसी स्त्री एक भी नहीं है।

उसी राम के छोटे भाई ने नाक कान काटा। जब सुना कि मैं तुम्हारी बहिन हूँ तब मुझसे परिहास करने लगे। बड़ा कहने लगा कि छोटे से ब्याह कर लो। छोटा कहने लगा कि बड़े से ब्याह करो : स्वयं ब्याह करने गयी थी इस बात को छिपा रक्खा। जब मैं चिढ़ी तो नाक काट लिया।

खर दूषन सुनि लगे पुकारा। छन महुँ सकल कटक उन्ह मारा ॥
खर दूषन तिसिरा कर घाता। सुनि दससीस जरे सब गाता ॥६॥

अर्थ : मेरी पुकार सुनकर खरदूषण सहायता करने आये। पर उन्होंने क्षण भर में सारी सेना को मार डाला। खरदूषण और त्रिशिरा का वध सुनकर रावण के सारे अंग जल उठे।

व्याख्या : अन्याय सुनकर ही कमजोर की ओर से गोहार इकट्ठा होता है। सो खरदूषण हमारी पुकार सुनकर सब सेना लेकर दण्ड देने गये। सो करि उपाय रिपु मारे छन महँ कृपानिधान। देखते देखते उन्होंने सबका संहार कर दिया। सकल कटक में खरदूषण त्रिशिरा भी आगये। नाक कान काटने से जलन न हुई। खर दूषण का मरना सुनकर जल भुन उठा। क्रोध से जलन होती है। पहिले अपना ही शरीर जलता है। शत्रु की हानि जब होगी तब होगी।

दो. सूपनखहि समुझाइ करि, बल बोलेसि बहु भाँति।
गयउ भवन अति सोच बस, नींद परै नहिं राति ॥२२.१६॥

अर्थ : उसने सूर्पनखा को समझाकर बहुत प्रकार से अपने बल का बखान किया। किन्तु वह अत्यन्त चिन्तावश होकर अपने महल में गया। उसे रात भर नींद नहीं पड़ी।

व्याख्या : समझाया कि हमारी ओर तो पूरा इन्तजाम था। १४००० सुभट के साथ खरदूषण तेरी रक्षा के लिए थे। जब उनको पता न लगा तो मुझे कैसे लग जाता? अब तो उन्हें दण्ड देना मेरा काम ठहरा। खरदूषण में केवल एक बल शारीरिक था। मुझे भुजबल, तपबल, अस्त्रबल, सेनाबल, दुर्गबल, सब बल है। राम में क्या है ?

बढ़ी भयानकता अधिक कटे नाक अरु कान।
अब केवल तव दरस ते मुनिगन तजिहैं प्रान ॥

देव यज्ञ गन्धर्व नर मुनिमँह नाक प्रधान।
भीमरूप निशिचरन में कौन नाक की मान॥
तदपि देहुँ बैरिहि तुरत उत्कट फल परिपाक।
करौं हवाले कालके जिन काट्यौ तव नाक॥
कौन बली या जगत् में जों मोको समुहाय।
लोकपाल निज लोक ते मेरे भय भगि जाय॥
क्षण महँ एकार्णव करौं कहा नान की बात।
देव दनुज को को कहै कालहु मोहि डरात॥
मैं तेरे रिपु को अभी डारत मूल बहाय।
जाहु सुखेन सुषेनपहँ करिहैं अवसि सहाय॥

ऐसा कहकर दरबार बरखास्त कर दिया। अति सोच से रात नींद न आयी: सो किमि सोव सोच अधिकाई।

सुर नर असुर नाग खग माँही। मोरे अनुचर कहँ कोउ नाँहीं॥
खर दूषण मोहि सम बलवंता। तिन्हहि को मारइ बिनु भगवंता॥१॥

अर्थ : विचार करने लगा। देवता, मनुष्य, असुर, नाग और पक्षियों में कोई ऐसा नहीं जो मेरे सेवक की भी बराबरी का हो। खर दूषण तो मेरे हो समान बलवान् थे। उन्हें भगवान् के सिवा और कौन मार सकता है।

व्याख्या : रावण सोचता है: कुमुख अकम्पन कुलिसरद धूम्रकेतु अतिकाय। एक एक जग जीति सक ऐसे सुभट निकाय। ये सब हमारे अनुचर हैं। इन्हीं का कोई प्रतिभट नहीं है। जग में सुर नर असुर नाग खग हैं। ये ही पाँच पराक्रमी हैं। वे मेरे ही अनुचर के बराबर नहीं हैं।

जीव में सामर्थ्य नहीं कि मेरे समान बलवान को मार सके। ब्रह्मा सब जाना मन अनुमाना मोर कछू न बसाई। जीव मात्र के जय के लिए मेरे अनुचर यथेष्ट हैं। मेरे अनुचर भी ईश्वर के ही मारे मर सकते हैं।

सुर रंजन भंजन महि भारा। जौं भगवंत लीन्ह अवतारा॥
[1]तउ मैं जाइ बयरु हठि करऊँ। प्रभु सर प्रान तजे भव तरऊँ॥२॥

अर्थ : देवताओं को आनन्द देनेवाले और पृथ्वी का भार हरण करनेवाले भगवान् ने यदि अवतार लिया है तो मैं जाकर उनसे हठपूर्वक वैर करूँगा और प्रभु के बाण से प्राण छोड़कर भवसागर तर जाऊँगा।

व्याख्या : महा पण्डित है। जानता है कि मुझसे देवताओं को कष्ट है। हम लोगों के कारण पृथ्वी का भार बढ़ गया है। ऐसे ही अवसरों पर अवतार होता है। गुप्त अवतार भी होते हैं। यथा: वामनावतार, ईश्वर होकर यदि चाहें कि पता न

---

१. यहाँ विचित्रालङ्कार है।

लगे तो कैसे लग सकता है। और जीवों में भी ऐसे बलवान कभी कभी हो जाते हैं कि राक्षसों को मार लेते हैं। यथा : तेहि के सत सुत अरु दस भाई। खल अ[illegible] अजय देव दुःखदाई। प्रथमहि भूप समर सब मारे। बिप्र संत सुर देखि दुखारे। अतः यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि अवतार हुआ है। यदि ईश्वर हैं तो वैर नहीं करेंगे। सूर्पणखा कथित निरपराधता उसके मन में नहीं आयी। मैं हठपूर्वक वैर करूँगा। क्योंकि निर्वाणदायक क्रोध जाकर भगति अवसहि बस करी। रावण अपनी गति के लिए व्यग्र है। इतना ही रावण विभीषण में भेद है। विभीषण में निश्चयात्मिका बुद्धि है रावण में नहीं है। विभीषण भजन कर सकता है। रावण नहीं कर सकता। प्रभु शर से तीनों शरीरें नष्ट हो जाती हैं। यह प्रभु शर की विशेषता है।

होइहि भजनु न तामस देहा। मन क्रम बचन मंत्र दृढ़ एहा ॥
जौं नररूप भूप सुत कोऊ। हरिहउँ नारि जीति रन दोऊ ॥३॥

अर्थ : इस तामस शरीर से भजन तो होगा नहीं। अतएव मन वचन और कर्म से यही दृढ़ निश्चय है। यदि वे मनुष्य रूप कोई राजकुमार होंगे तो उन दोनों को रण में जीतकर स्त्री को हर लूँगा।

व्याख्या : भजन करना ही सुगति का शास्त्रानुमोदित उपाय है। सो मुझसे होगा नहीं। वैर भली भाँति कर सकूँगा : मैं कौन सा काम भलीभाँति कर सकूँगा। इस बात को सोच निकालना साधारण पण्डिताई नहीं है। खूब विचार के बाद यही मन्त्र दृढ़ किया कि किसी की सलाह न मानूँगा। वैर करूँगा और यदि जिस पर मुझे अवतार का सन्देह है वह मनुष्य निकला तो जीतकर स्त्री हरण करूँगा : यद्यपि जीति पूर्वकालिक क्रिया है। इससे अर्थ निकला कि पहिले जीतकर पीछे स्त्री हरण करूँगा। पर इस पर कोई निश्चय नहीं है। निश्चय वैर करने में और स्त्री हरण करने में है।

चला अकेल जान चढ़ि तहवाँ। बस मारीच सिंधु तट जहवाँ ॥

रामजी की युक्ति

इहाँ राम जसि जुगुति बनाई। सुनहु उमा सो कथा सुहाई ॥४॥

अर्थ : रावण रथ पर चढ़कर अकेला ही वहाँ चला जहाँ समुद्र के तट पर मारीच रहता था। शिवजी कहते हैं कि : हे पार्वती! यहाँ श्रीरामचन्द्रजी ने जैसी युक्ति रची वह सुन्दर कथा सुनो।

व्याख्या : षट्कर्णो भिद्यते मन्त्रः। ऐसा नीतिशास्त्र का आदेश है। अतः अकेला चला। सारथि को भी साथ न लिया। बस मारीच सिंधु तट जहवाँ : से पता चलता है कि और भी विचार उसने किया। जो उसकी क्रिया से लक्षित होता है। लिखा नहीं गया। माया से बचने के लिए साधुओं को भी युक्ति करनी चाहिए। व्रजन्ति ते मूढ़धियः पराभवम् भवन्ति मायाविषु ये न मायिनः। वे मूढ़ हार जाते

हैं जो मायावी से माया नहीं करते सम्बोधन से शिवजी उमा को सावधान करते है।

दो. लछिमन गए बनहिं जब, लेन मूल फल कंद।
जनकसुता सन बोले, बिहँसि कृपा सुख बृंद ॥२३.१७॥

अर्थ : लक्ष्मणजो जब कन्द मूल फल लेने के लिए वन में गये तब कृपा और सुख के समूह श्रीरामचन्द्रजी हँसकर जानकीजी से बोले।

व्याख्या : इधर प्रभु ने सोचा कि अब सूर्पणखा रावण के पास जावेगी। खर दूषण के व्यवहार से पता चल गया कि चोट सीताजी पर होगी। रावण सम्मुख संग्राम का साहस न करेगा। सीताहरण करेगा। रावण ने भी सबसे बात छिपायी। प्रभु भी लछिमन तक से बात छिपाते हैं। लक्ष्मण के जान लेने पर विलापादि न बन सकेगा। माया को प्रेरणा करना है इससे हँसे। रत्न की चोरी के लिए चोर चला। इधर रत्न बदल शोशा : इमीटेशन उस स्थान पर रक्खा जा रहा है। चोर को धोखा देना चाहते हैं। इसलिए हँसकर बोले। भगवती पर कृपा है। उन्हें दुःख में नहीं डालना चाहते। इससे : कृपा सुखबृंद कहा।

सुनहु प्रिया व्रत रुचिर सुसीला। मैं कछु करबि ललित नरलीला॥
तुम्ह पावक महुँ करहु निवासा। जौ लगि करौं निसाचर नासा॥१॥

अर्थ : हे प्रिये! हे सुन्दर पातिव्रत धर्म पालन करनेवाली सुशीले! सुनो। मैं अब कुछ मनोहर मनुष्य लीला करूँगा। इसलिए जबतक मैं राक्षसों का नाश करूँ तबतक तुम अग्नि में निवास करो।

व्याख्या : सरकार करुणानिधान हैं। सुजान हैं। भगवती के शोल सनेह को जानते हैं। यथा : करुणानिधान सुजान सील सनेह जानत रावरो। करुणानिधान हैं। अतः इस झमेले में उनको डालना नहीं चाहते। झमेला बड़ा है। लै जानकिहि जाहु गिरि कंदर : से काम न चलेगा। कुछ दिन तक अलग रखना है और भगवती के स्नेह को जानते हैं। अतः कहते हैं : सुनहु प्रिया। गुणग्राहक : सुजान हैं। अतः व्रत रुचिर कहते हैं। भगवती के शीलको जानते हैं। अतः सुशोला कहते हैं।

शुद्ध माधुर्य की लीला ललित नरलीला है। अभी तक ऐश्वर्य मिश्रित लीला किया है। और शुद्ध माधुर्य में तुम्हें अत्यन्त कष्ट होगा। अधिक दिनों का विछोह होगा। हरण होगा राक्षसों की अश्लील बातें सुननी पड़ेंगी। अतः ऐसे समय में तुम्हारा साथ रहना ठीक नहीं है।

पावक मेरी ही विभूति है : वसूनां पावकश्चास्मि तथा : अग्निर्देवानामवमो विष्णुः। अतः उसमें निवास से सर्वथा मेरा वियोग न होगा और बिना पावक में निवास किये प्रतिबिम्ब की उत्पत्ति न होगी : पावक सन्निधान विद्या से बायस्कोप में प्रतिबिम्ब का खेल देखा जाता है। निसिचर नाश के समय तक तुम्हारे प्रतिबिम्ब से काम लिया जायगा। शपथ लेने के समय तुम अग्नि से प्रकट होना।

जबहिं राम सबु कहा बखानी । प्रभु पद धरि हियँ अनल समानी ॥
निज प्रतिबिंब राखि तहँ सीता । तैसेइ सील रूप सुबिनीता ॥२॥

अर्थ : श्रीरामजी ने ज्यों ही सब समझाकर कहा । त्यों ही श्रीसीताजी प्रभु के चरणों को हृदय में धरकर अग्नि में समा गयीं । सीताजी ने अपनी ही छायामूर्ति वहाँ रख दी । जो उनके जैसे ही शील स्वभाव और रूपवाली तथा वैसे ही विनम्र थीं ।

व्याख्या : रामजी ने कहा : रावण चल पड़ा तुम्हारे हरण के लिए । यदि छल में कृतकार्य न होगा तो बल से हरण चाहेगा एवं रावण वध हो जायगा । परन्तु निशिचरहीन महि न हो सकेगी । अतः निशिचरहीन महि करने के लिए यह आवश्यक है कि तुम्हारा हरण हो । कम से कम रावण यह समझे कि मैंने सीता हरण कर लिया । प्रभु पद हृदय में धारण करती हैं आधार के लिए । अग्नि में लय हो गयीं । क्योंकि अग्नि से ही प्रकट होना है ।

सब समझाकर कहा । अतः अपना प्रतिबिम्ब छोड़ती गयीं । देवयोनि में यह सामर्थ्य है । अथवा योग से भी अनेक शरीर प्रकट किया जा सकता है । बिम्ब और प्रतिबिम्ब के रूप में तो भेद नहीं होता । यहाँ तो शील और विनय में भी भेद नहीं था ।

लछिमनहूँ येह मरमु न जाना । जो कछु चरित रचा भागवाना ॥

३८. दशकन्धर मारीच बतकही प्रसङ्ग

दसमुख गयउ जहाँ मारीचा । नाइ माथ स्वारथ रत नीचा ॥३॥

अर्थ : भगवान् ने जो कुछ लीला रची इस रहस्य को लक्ष्मणजी ने भी नहीं जाना । स्वार्थपरायण और नीच रावण वहाँ गया जहाँ मारीच था और उसको सिर नवाया ।

व्याख्या : यह मर्म प्रभु और भगवती के ही बीच में रहा । सादृश्य ऐसा था कि लक्ष्मणजी भी नहीं समझ सके कि भगवती बदल गयीं । नारद शाप : नारि बिरह तुम होव दुःखारी । का अभिनय लछिमन के जान जाने से नहीं हो सकता था । लछिमन कन्द मूल लेकर लौटे । देखा कि पहिले की तरह दोनों सरकार बैठे हैं । जबतक रावण मारीच के पास न पहुँचा तबतक यहाँ से सीताजी हटा दी गयीं । लछिमनजी के लौट आने के बाद रावण मारीच के पास पहुँचा । तबतक अपने ही रूप में रहा । अतः दशमुख कहते हैं । अथवा दसो सिर झुकाया । उसके एक प्रणाम में दस प्रणाम है । नीच का जब स्वार्थ आ पड़ता है तब ऐसे ही प्रणाम करते हैं । यथा : करि बिनती पद गहि दस सीसा । बोला बचन सुनहु जगदीसा ।

नवनि नीच कै अति दुखदाई । जिमि अंकुस धनु उरग बिलाई ॥
भय दायक खल कै प्रिय बानी । जिमि अकाल के कुसुम भवानी ॥४॥

अर्थ : नीच का झुकना अत्यन्त दुःखदायीं होता है। जैसे अंकुश धनुष साँप और बिल्ली का झुकना। हे भवानी ! दुष्ट की मीठी वाणी भय देनेवाली होती है। जैसे बिना ऋतु के फूल।

व्याख्या : नीच का मिलना दुःखदायी है। यथा : मिलत एक दारुण दुख देहीं। और नवनि : अति दुखदायी है चाहे दूसरे की प्रेरणा से नमन करे। यथा : अंकुश धनु। चाहे स्वेच्छा से नमन करे। यथा : उगर बिलाई। भाव यह कि यह प्रणाम मारीच के प्राण लेने के लिए है। यह नीच है। उसका कहना न मानेगा केवल स्वार्थ से प्रणाम मात्र करता है। यथा : बान प्रताप जान मारीचा। तासु कहा नहिं मानेहिं नीचा।

खल प्रिय वाणी नहीं कहते : बचन बज्र जेहि सदा पियारा। वे यदि प्रिय वाणी बोलें तो सावधान होना चाहिए। यह प्रिय वाणी प्राण घातक है। कुसुम बड़ा सुहावना होता है। वह कुसुम वसन्त में ही फूलता है। यदि अन्य ऋतु में फूले तो अनिष्ट सूचक है। रावण ने मधुर वाणी से अभिवादन किया। आगे दिखाया जायगा कि उसने अंकुश धनु उरग और बिलाई की भाँति आचरण भी किया।

दो. करि पूजा मारीच तब, सादर पूछी बात।
कवन हेतु मन ब्यग्र अति, अकसर आयेहु तात ॥२४.१८॥

अर्थ : तब मारीच ने उसकी पूजा करके आदर पूर्वक बात पूछी : हे तात ! आपका मन किस कारण इतना अधिक व्यग्र है और आप अत्यन्त अकेले क्यों आये हैं ?

व्याख्या : राजा का आगमन है। अतः पहिले पूजा की। तब बड़े आदर से बात पूछी। सब बातें मधुर भी बोलते हैं। उलटी हैं। मन से अति व्यग्र हैं और अत्यन्त अकेले भी हैं। यथा : अति अकेल बन बिपुल कलेसू। राजा का दो चार के साथ रहना भी एकान्त ही समझा जाता है। किसी के साथ न रहना अति अकेल है। मनसा वाचा कर्मणा व्यग्रता दिखलायी। दशरथजी ने विश्वामित्र की पूजा करके तब आने का कारण पूछा। भुसुण्डिजी ने भी गरुड़जी से ऐसा ही किया। यही सदाचार है।

दसमुख सकल कथा तेहि आगें। कही सहित अभिमान अभागें ॥
होहु कपट मृग तुम्ह छलकारी। जेहि बिधि हरि आनौं नृपनारी ॥१॥

अर्थ : भाग्यहीन रावण ने सारी कथा अभिमान सहित उसके सामने कही : और फिर कहा तुम छल करनेवाला कपट मृग बनो। जिस उपाय से मैं उस राजवधू को हर लाऊँ।

व्याख्या : दशमुख कहने का भाव यह कि दसों दिशा में देखता जाता है कि हमें कोई देखता तो नहीं। चोरी खुलने का डर है। रावण ने किसी से सब कथा

नहीं कही। सूर्पणखा का नासिका छेदन केवल मारीच से कहा। सो भी भव भंजन पद विमुख अभागी ने अभिमान के सहित कहा। यथा : सूर्पनखा का घोखे में नाक कान काटा। खर दूषण ऐसे मूर्ख थे लड़ने गये राम से सो आपस में ही लड़कर मर गये। अब अंकुश देता है। होहु कपट मृग तुम छलकारी। धनु की भाँति लक्ष्य स्थिर करता है : जेहि बिधि हरि आनौ नृपनारी।

उपाय में परिवर्तन कर रहा है। बलप्रयोग के साथ स्त्रीहरण का संकल्प छोड़ दिया। स्त्रीहरण करके हठपूर्वक वैर करना यही निश्चय हो गया। कहने लगा कि तुम मायावी हो। कपट मृग बनो। मृग बनकर छल करो। अंकुश का काम कर रहा है : महा मत्त गजराज कहँ वसकर अंकुस खर्व। अब धनुष का लक्ष्य वेध काम करना है : जेहि बिधि हरि आनौ नृपनारी। बहिन के नाक कान काटने का यही उत्तर है। अर्थात् वह विधि भी तुम्हीं को ठीक करना पड़ेगा जिसमें लछिमन भी वहाँ से हट जायँ। व्यग्रता के उत्तर में सकल कथा कही।

तेहि पुनि कहा सुनहु दससीसा। ते नररूप चराचर ईसा॥
तासों तात बयरु नहि कीजै। मारें मरिअ जिआएँ जीजै॥२॥

अर्थ : तब मारीच ने कहा : हे दशशीश ! सुनिये। वे मनुष्यरूप में चराचर के ईश्वर हैं। हे तात ! उनसे वैर न कीजिये। उन्हीं के मारने से मरना और उनके जिलाने से जीना होता है।

व्याख्या : तेहि पुनि : बोलने का मुहावरा है। यथा : मैं पुनि निज गुरु सन सुनी। विशेष बात कहने के अर्थ में पुनि का प्रयोग है। सकल कथा तेहि आगे कही सहित अभिमान : का उत्तर मारीच देता है कि अभिमान जीव से चलता है ईश्वर से नहीं। तुमने चराचर से वैर किया। यथा : तुम सुर असुर चराचर जीते। पर चराचर के स्वामी से वैर न करो।

मारे मरिअ जिआए जीजै : उन्हें मारने जिलाने दोनों का अधिकार है सुबाहु को मारना चाहा मार डाला। मुझे भी मार डालते। मैं तो उन्हीं का जिलाया जीता हूँ। जेहि बिधि हरि आनउ नृपनारी : का उत्तर यही है कि नारी का हरण करना और अपने काल को बुलाना एक ही बात है।

मुनि मख राखन गयउ कुमारा। बिनु फर सर रघुपति मोहि मारा॥
सत योजन आएउँ छन माँहीं। तिन्ह सन बयरु किए भल नाँहीं॥३॥

अर्थ : यही राजकुमार मुनि विश्वामित्र के यज्ञ की रक्षा के लिए गये थे। उस समय श्री रघुनाथजी ने बिना फल का बाण मुझे मारा था। जिससे मैं क्षण भर में सौ योजन पर आ गिरा। उनसे वैर करने में भलाई नहीं है।

व्याख्या : होहु कपट मृग तुम छलकारी : का उत्तर देता है कि मैं उनका बाण नहीं सह सकता। तब तो कोमल अवस्था थी। अब तो प्रौढ़ हुए होंगे। मैं विघ्न करने गया था। वे रक्षा करने गये थे। फर सहित मारते तो मैं भी मर

जाता। उस बार छोड़ दिया। इस बार मार ही डालेंगे : हम लोगों से लड़ने बिना सेना के गये थे।

बिनु फर बाण राम तेहि मारा। सत योजन गा सागर पारा। भयानक बाण का वेग है। हमें शत योजन फेंकना क्या साधारण बल की बात है। छलकारी मृग क्या बनेंगे ? वहाँ कोई विधि बैठने की नहीं। एक बाण में मामला तय है। ऐसे प्रबल पुरुषार्थी के साथ वैर न करो। यद्यपि तुम्हारा भला वैर करने ही से हुआ है। लंका वैर से मिली। पुष्पक वैर से मिला। यहाँ तो मृत्यु ही मिलनी है।

भइ मम कीट भृंग की नाई। जहँ तहँ मैं देखऊँ दोउ भाई ॥
जौं नर तात तदपि अति सूरा। तिन्हहि बिरोधि न आइहि पूरा ॥४॥

अर्थ : मेरी दशा तो भृंगी कीड़े की सी हो गयी है। जहाँ तहाँ श्रीराम लक्ष्मण दोनों भाइयों को ही देखने लगा और हे तात ! यदि वे मनुष्य हैं तो भी बड़े शूरवीर हैं। उनसे बिरोध करने में पूरा न पड़ेगा।

व्याख्या : भृंग से छोटा कीट चारों ओर भृंग ही भृंग देखता है। उसी भाँति मेरी बुद्धि में विकार आगया। अत्यन्त भीत हो गया था। बाण लगने के पहिले दोनों भाइयों को देखा था। वे ही दोनों सब जगह दिखाई पड़ने लगे। मेरा सामर्थ्य उनके बाण के सामने जाने का नहीं है।

तुष्यतु दुर्जनन्यायेन कहता है : मैं तो नर नहीं मानता। यदि नर भी मान लो तो अतिशूर हैं। सबके विरोध से पूरा पड़ा। भुजबल बिस्व वस्य करि राखेसि कोउ न स्वतन्त्र। परन्तु इनसे पूरा न पड़ेगा।

दो. जेहि ताड़का सुबाहु हति, खंडेउ हर कोदंड।
खर दूषन तिसिरा बधेउ, मनुज कि अस बरिवंड ॥२५.१९॥

अर्थ : जिसने ताड़का और सुबाहु को मारकर शिवजी का धनुष तोड़ दिया और खर दूषण और त्रिशिरा का वध कर डाला। ऐसा प्रचण्ड बली कहीं मनुष्य हो सकता है।

व्याख्या : ये चारों अमानुष कर्म थे। ताड़का वध से मुनि ने चीन्हा। यथा : तब मुनि निज नाथहि जिय चीन्हो। सुबाहु वध से देव मुनि ने चीन्हा। यथा : अस्तुति करहि देव मुनि बृंदा। धनुष भंग से तुलसी ने चीन्हा। यथा : कोदंड भंजेउ राम तुलसी जयति बचन उचारहीं। खर दूषण वध से सूपनखा ने चीन्हा। यथा : खल बध रत सुर मुनि सुखदाता। अतः कहता है : मनुज कि अस बरिवंड। इस तर्क से आप भी जान जाइये। बचपन से ही इनके सब अमानुष कर्म हैं।

मारग जात भयानक भारी। केहि बिधि तात ताड़का मारी ॥
घोर निसाचर बिकट भट समर गनहि नहि काहु।
मारेउ सहित सहाय किमि खल मारीच सुबाहु ॥

कमठ पीठ पविकूट कठोरा। नृप समाज महँ सिव धनु तोरा॥
सकल अमानुष कर्म तुम्हारे।

जाहु भवन कुल कुसल बिचारी। सुनत जरा दीन्हेसि बहु गारी॥
गुरु जिमि मूढ़ करसि मम बोधा। कहु जग मोहि समान को योधा॥१॥

अर्थ : अतः अपने कुल की कुशल विचारकर आप लौट जाइये। यह सुनकर रावण जल उठा और उसने बहुत सी गालियाँ दीं। और कहा : अरे मुर्ख ! तू गुरु की तरह मुझे ज्ञान सिखाता है ? बता तो संसार में मेरे समान योद्धा कौन है ?

व्याख्या : मारीच ने कहा : जो रास्ता तुम पकड़ना चाहते हो उससे तो कुल का नाश हो जायगा : राम रोष पावक अति घोरा। होइहि सलभ सकल कुल तोरा। जो अपराध भगत कर करई। राम रोष पावक सो जरई। भाव यह कि मैं तो जाऊँगा ही नहीं। तुम भी यह उद्योग छोड़ दो। पर रावण मन्त्र दृढ़ किये हुए हैं। इसके विरोध में सुनना नहीं चाहता। जबतक सिद्धान्त निश्चय की कोटि में नहीं पहुँचता तब तक विरोधी तर्क सुनने की प्रवृत्ति होती हैं। अतः बिगड़ा : आज्ञा भङ्ग भी करता है और मुझे भी बेवकूफ भी बनाता है। सर्प की भाँति रावण पलट गया। अभी प्रणाम किया है। अभी गाली देने लगा। क्षुद्र लोगों की यही दशा है। स्वार्थ सधते न देखकर जल उठा। मार डालता पर काम लेना है। इससे गाली ही दिया। उल्लू गधा आदि मूर्खता द्योतक शब्दों का प्रयोग किया : गोस्वामीजी प्रेम की गाली भी नहीं कहते। यह तो द्वेष मूलक थी। सर्पों की भाँति विष वमन करता है।

तू मूढ़ है। सरल बात नहीं समझता। वह मनुजों में बरिवंड होगा। पर : नर बानर केहि लेखे मांही। नर मेरा क्या कर सकता है। तुझे सौ योजन फेंक दिया तो इससे क्या हुआ ? कौन सी बड़ी बात किया ? गुरु बोध कराने का अधिकारी है। मैं महापण्डित और तू महा मूर्ख। तू मुझे बोध देने चला। तुझे यह अधिकार कहाँ से हुआ जो ज्ञान देने चला है।

तब मारीच हृदय अनुमाना। नवहि बिरोधे नहिं कल्याना॥
शस्त्री मर्मी प्रभु सठ धनी। बैद बंदि कबि भानस गुनी॥२॥

अर्थ : तब मारीच ने हृदय में अनुमान किया कि शस्त्रधारी, भेद जाननेवाला, समर्थ स्वामी, हठी, धनवान, वैद्य, भाट, कवि और रसोइया इन नौ व्यक्तियों से वैर करने में कुशल नहीं होता।

व्याख्या : अनुमान द्वारा सामान्य से विशेष में अवतरण होता है। नौ के विरोध से कल्याण नहीं होता। यह भी नव में से हैं। अतः इससे भी विरोध नहीं करना चाहिए। हृदय में अनुमान करता है। अपने कल्याण का निर्णय मन में ही करना चाहिए।

शस्त्री से विरोध नहीं करना चाहिए। उसका विश्वास नहीं कब चोट कर बैठे। नदीनां च नखीनां च श्रृंगीणां शस्त्रपाणिनाम्। विश्वासो नैव कर्त्तव्यः स्त्रीषु राजकुलेषु च। शस्त्र न हो तो भी मर्मी से विरोध न करे। मर्म पर आघात करेगा। यथा : नाभी कुण्ड पियूष बस याके। नाथ जियत रावण बल ताके : शस्त्री, मर्मी न होने पर भी प्रभु का विरोध नहीं करना। यथा : प्रभुअहि गनिअ न छोट करि। कुछ भी न हो यदि शठ हो : जिद्दी हो तो भी बचना चाहिए। वह सब सङ्कट सहकर भी अपकार करेगा। धनी से भी वैर नहीं करना चाहिए। अर्थस्य पुरुषो दासः नार्थो दासो हि कस्यचित्। उसे बहुत सहायक मिलेंगे। वैद्यः प्राणधनानि च। वैद्य तो प्राण के धन हैं। इनसे वैर कभी नहीं करना चाहिए। बंदी जहाँ तहाँ अपकीर्ति फैलाते हैं। कविपद के लालित्य से लोग उस पद को स्मरण कर लेते हैं और उसकी अपकीर्ति अमर हो जाती है। रसोइया के हाथ तो सदा प्राण रहता है। अतः इनसे वैर करने में कल्याण नहीं होता।

उभय भाँति देखा निज मरना। तब ताकेसि रघुनायक सरना ॥
उतरु देत मोहि बधब अभागें। कस न मरों रघुपति सर लागें ॥३॥

अर्थ : जब मारीच ने दोनों प्रकार से अपना मरण देखा। तब उसने श्रीरघुनाथजी की शरण ताकी। सोचा कि : उत्तर देते ही यह अभागा मुझे मार डालेगा। फिर श्रीरघुनाथजी के बाण लगने से ही क्यों न मरूँ!

व्याख्या : रामादपि च मर्तव्यं मर्तव्यं रावणादपि। उभयोर्यदि मर्तव्यं वरं रामो न रावणः। जब राम से भी मरना है और रावण से भी मरना है तो राम के हाथ से मरना ठीक है रावण के हाथ से नहीं। भगवान् का कथन है : जो नर होय चराचर द्रोही। आवै समय सरण तकि मोही। तजि मद मोह कपट छल नाना। करौं सद्य तेहि साधु समाना। सो यह कपट छल न छोड़ सका। अतः साधु समान नहीं बनाया। पर साधु की गति दे दी। कपट छल सहित शरण जाने से वह दण्ड होता है।

प्रश्न था : कहु जग मोहि समान को जोधा। उत्तर तो यही है कि तब चोरी से स्त्री हरण क्यों करते हो? जाओ छीन लाओ। पर यह उत्तर सुनते ही यह अभागा मुझे मार डालेगा। अब यह अभागा है। अपने कुल भर का संहार अपनी आँखों देखेगा। मेरा मरण देखना इसके लिए क्या है! तो अभागे के हाथ क्यों मरूँ? यह भवभंजन पद विमुख है : रघुबीर सर तीरथ सरीरन्हि त्यागि गति पैहैं सही। सो सही परम गति क्यों न लें।

अस जिय जानि दसानन संगा। चला राम पद प्रेमु अभंगा ॥
मन अति हरष जनाव न तेही। आजु देखिहौं परम सनेही ॥४॥

अर्थ : हृदय में वह ऐसा समझकर रावण के साथ चला। श्रीरामजी के चरणों में उसका अखण्ड प्रेम है। उसके मनमें इस बात का अत्यन्त हर्ष है कि आज मैं

अपने परम स्नेही श्रीरामजी को देखूँगा; किन्तु उसने यह हर्ष रावण को नहीं जनाया।

व्याख्या : गाली खाकर भी चुप देखकर रावण ने समझ लिया कि ठीक हो गया। अब बिलाई का कार्य करता है। बिलाई जिस भाँति चूहे को दाब ले जाती है उस भाँति ले चला। दशानन के सङ्ग जा रहा है। किसी ओर से भागकर निकल नहीं सकता। फिर भी रामपद प्रेम अभंग है। जाता है रावण के साथ प्रेम राम में है। जिसके साथ जाता है उसका काम करेगा। राक्षस भी अपना वर्ग नहीं छोड़ता। मनुष्य छोड़ देता है। रामके हाथसे मरने की अभिलाषा है। क्योंकि प्रेमी के हाथसे मरने में भी आनन्द है।

प्राणभय से दर्शन नहीं करते थे। अब तो दर्शन करेंगे। अद्भुत प्रेमी हैं। उसे बड़ा हर्ष है। पर उस हर्ष को दबाये हैं। कहीं रावण न जान जाय नहीं तो मुझ पर अविश्वास करके अभी मार देगा। वह जानता है कि प्रभु परम सनेही हैं। सबको मारा मुझे छोड़ दिया।

छं. निज परम प्रीतम देखि लोचन सुफल करि सुख पाइहौं।
श्री सहित अनुज समेत कृपानिकेत पद मन लाइहौं॥
निर्बान दायक क्रोध जा कर भगति अवसहि बस करी।
निज पानि सर संधानि सो मोहि बधिहि सुखसागर हरी॥

अर्थ : अपने परम प्रियतम को देखकर नेत्रों को सफल करके सुख पाऊँगा। जानकीजी सहित और छोटे भाई लक्ष्मणजी समेत कृपानिधान श्रीरामजी के चरणों में मन लगाऊँगा। जिनका क्रोध भी मोक्ष देनेवाला है और जिनकी भक्ति उन स्वतन्त्र भगवान् को भी वश में करनेवाली है। अहा! वे ही आनन्द के समुद्र श्रीहरि अपने हाथों से बाण सन्धान कर मेरा वध करेंगे।

व्याख्या : प्रियतम नहीं परम प्रीतम : स तु प्राणस्य प्राणाः। होइहै सुफल आजु मम लोचन। देखि वदन पंकज भवमोचन। उन्हें आँखभर देखूँगा। श्री सहित नहीं देखा था। अनुज समेत तो देखा था। कृपा निकेत हैं। ऐसी कृपा सुनी देखी नहीं गयी कि उनका क्रोध भी कृपा ही है। क्रोध करें तो निर्वाण दें। भगवान् सर्वतन्त्रस्वतन्त्र हैं। पर भक्ति से वश हो जाते हैं : रीझे बस होहि खीझे देत निज धाम रे। खर दूषण सरकार के हाथ से नहीं मरे फिर भी निर्वाण पाया। सुखसागर के हाथ मरने में भी सुख है। मेरा भाग्य देखो कि मारने के लिए मुझे लक्ष्य बनावेंगे। जिसे मुनि लोग लक्ष्य बनाते हैं। प्रणवो धनुः शरो ह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते। अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत् तन्मयो भवेत्। प्रणव धनु है। आत्मा शर है और ब्रह्म लक्ष्य है। सो बाण की भाँति तन्मय होकर सावधानी से लक्ष्यवेध करना चाहिए।

दो. मम पाछें धर धावत, धरें सरासन बान।
फिरि फिरि प्रभुहि बिलोकिहौं, धन्य न मो सम आन॥२०.२६॥

अर्थ : धनुष बाण धारण किये मेरे पीछे पीछे पकड़ने के लिए पृथ्वी पर दौड़ते हुए प्रभु को मैं फिर फिरकर देखूँगा। मेरे समान धन्य दूसरा कोई नहीं है।

व्याख्या : शरासन बाणधारी मूर्ति ध्येय है। यथा : बन खेलत राम फिरैं मृगया तुलसी छवि सो वरनै किमि कै। जानकीजी का भी यह ध्यान था : जेहि बिधि कपट कुरंग संग धाइ चले श्रीराम। वह छवि अपूर्वं है मुनि जेहि ध्यान न पावहिं नेति नेति कह बेद। मृग घूम घूमकर शिकारी को देखता है। बड़े बड़े प्रेमी और क्या करते हैं? देखन मिस मृग बिहँग तरु फिरै बहोरि बहोरि। ऐसा भाग्य किसी का हुआ नहीं कि जिसके पीछे पीछे रामजी दौड़ते फिरें।

तेहि बन निकट दसानन गएऊ। तब मारीच कपट मृग भएऊ॥
अति बिचित्र कछु बरनि न जाई। कनक देह मनि रचित बनाई॥१॥

अर्थ : जब रावण उस वन के निकट पहुँचा तब मारीच कपट मृग बन गया। वह अत्यन्त ही विचित्र था। कुछ वर्णन नहीं किया जा सकता। सोने का शरीर मणियों की पच्चीकारी करके बनाया था।

व्याख्या : आश्रम निकट नहीं गया। वन निकट गया। आश्रम से निकलकर वन जाना पड़ता था। यथा : लछिमन गये बनहिं जब लेन मूल फल कन्द। कारण यह कि दशानन है कोई भी पहिचान सकता है। वन का पता सूर्पंणखा से लग चुका है। वन के निकट तक दोनों अपने रूप में गये। वहाँ पहुँचने पर मारीच कपट मृग हुआ। होहु कपट मृग तुम छलकारी : का साफल्य। खरदूषण की ओर से पीछे माया हुई। रावण ने माया से ही कार्य प्रारम्भ किया।

बनने की तारीफ तो इसमें है कि भेद लखाई न पड़े। परन्तु माया से बनी हुई वस्तु प्राकृत से सुन्दर होती है। यहाँ प्राकृत मृग भगवती का चित्त आकर्षण न कर सकेगा। वन में मृग फिरा ही करते हैं। अतः अवर्णनीय रूप अति विचित्र धारण किया। मृग पीले होते हैं। अतः कनकदेह बनाया। दाँत श्वेत, खुर सींग कृष्ण, जिह्वा लाल। अतः हीरा नीलमणि माणिक्य के बनाये। जड़ में चेतन की भाँति लचकने की शक्ति है। अतः अति विचित्र कहा : माया वराह भी अति विचित्र था : नील महीधर सिखर सम देखि बिसाल बराह।

३९. माया सीताहरण प्रसंग

सीता परम रुचिर मृग देखा। अंग अंग सुमनोहर बेषा॥
सुनहु देव रघुबीर कृपाला। येहि मृग कर अति सुंदर छाला॥२॥

अर्थ : सीताजी ने उस परम सुन्दर हिरन को देखा। जिसके अंग अंग की छटा अत्यन्त मनोहर थी। वे बोली हे देव! हे कृपालु रघुवीर! सुनिये। इस मृग की छाल बहुत सुन्दर है।

व्याख्या : सूर्पणखा : रुचिर रूप धरि प्रभु पहँ आई। पर काम न चला दोनों भाइयों ने प्रत्याख्यान किया। अतः परम रुचिर मृग बना। सीताजी परम रुचिर मृग देखकर ही मोहित हो सकती हैं। सीताजी ने मृग रूप देखा। पर दोनों भाइयों ने मारीच रूप देखा। दोनों भाई कथा कहने सुनने में लगे हैं। अतः पहिले न देखा। यथा : बैठे हैं राम लखन अरु सीता। पंचवटी वर पर्णकुटी तर कहैं कछु कथा पुनीता। एक एक अंग सुष्ठु मनोहर है। जहाँ जाय मन तहँइ लुभाई।

दिवि क्रीड़ाविजिगीषा के अर्थ में आता है। उसी का देव शब्द बनता है। सरकार कौतुकी हैं। शिकारी हैं। अतः देव शब्द सम्बोधन दिया। अथवा देव हैं राजा हैं। राजा रत्नभुक् होते हैं। यह मृग रत्न है। उनके पास रहने योग्य है। रघुवीर के लिए इसके वध में क्या रक्खा है। मुझ पर कृपा कीजिये। इसे जीता पकड़ लीजिये तो : पायि पालिबे योग मंजु मृग मारेउ मंजुल छाला। गी०.

सत्यसंध प्रभु बध करि येही। आनहु चर्म कहति बैदेही ॥
तब रघुपति जानत सब कारन। उठे हरषि सुर काज सँवारन ॥३॥

अर्थ : जानकीजी ने कहा : हे सत्यप्रतिज्ञ प्रभो ! इसको मारकर इसका चमड़ा ला दीजिये। तब श्री रघुनाथजी मारीच के कपट मृग बनने का सब कारण जानते हुए देवताओं का कार्य बनाने के लिए हर्षित होकर उठे।

व्याख्या : आप सत्यसन्ध हैं। आप का निशाना खाली नहीं जा सकता है और समर्थ हैं। मृग पर अत्यन्त मोहित हैं। अतः उपर्युक्त विशेषण देती हैं। यदि जीता न पकड़ा जाय तो इसे मारकर चमड़ा ले आइये। शोभा तो इसके चर्म में ही है। यदि आप प्रतिज्ञा कर लें तो अवश्य लावेंगे।

सब कारण जानते हैं। रावण का भेजा मारीच आगया। इसीलिए इसका वध नहीं किया था। समुद्र पार फेंक दिया था। इसी के द्वारा सब कार्य देवताओं का सुधरेगा। उठे हरषि : जिस कार्य के लिए चौदह वर्ष वनवास स्वीकार किया वह उपस्थित हो गया। प्रतिज्ञा पूरी होने का लक्षण देखकर उठे हरषि। क्योंकि सुर काज सँवारना है।

मृग बिलोकि कटि परिकर बाँधा। करतल चाप रुचिर सर साँधा ॥
प्रभु लछिमनहि कहा समुझाई। फिरत बिपिन निसिचर बहु भाई ॥४॥

अर्थ : हिरन को देखकर श्रीरामजी ने कमर में फेंटा बाँधा और हाथ में धनुष लेकर उस पर सुन्दर बाण चढ़ाया। फिर प्रभु ने लक्ष्मणजी को समझाकर कहा। हे भाई ! वन में बहुत से राक्षस फिरते हैं।

व्याख्या : पकड़ने के लिए दौड़ना है। अतः कमर कसा। परम रुचिर मृग है। इसलिए शर भी रुचिर है। छिपाकर सन्धान करते हैं। इसलिए करतल कहा। दृष्टि बराबर मृग पर ही रही। कहीं निकल न जाय। तुमसे खल मृग खोजत फिरहीं। पूरी तैयारी करके सीताजी की रखवारी का बन्दोबस्त करते हैं। स्त्रियों की सदा

रक्षा करनी चाहिए। उन्होंने सरकार से कहा। अतः स्वयं उठे। लक्ष्मणजी को न कहा। सीय लखन जेहि बिधि सुख लहहीं। सोइ रघुबीर कहहिं सोई करहीं।

समझाया कि हम लोग निशाचरों से बद्धवैर हो चुके। मृग ऐसा होता नहीं। मेरे जाने पर सीताजी पर चोट न हो। हम दोनों भाइयों से डरते हैं। सामना न करेंगे। चोट सीता पर है और राक्षसों को भी दूर दूर से आते जाते देखता हूँ। सम्भव है कि एक आवे अथवा बहुत से आ जावें। नासिका छेदन का उत्तर स्त्री हरण है। मारीच आगया कोई माया हुआ चाहती है।

सीता केरि करहु रखवारी। बुधि बिबेक बल समय बिचारी ॥
प्रभुहि बिलोकि चला मृग भाजी। धाए रामु सरासन साजी ॥५॥

अर्थ : तुम बुद्धि और विवेक के द्वारा बल और समय का विचार करके सीताजी की रखवारी करना। प्रभु को देखकर मृग भाग चला। श्रीरामचन्द्रजी भी धनुष चढ़ाकर उसके पीछे दौड़े।

व्याख्या : रामजी ने कहा कि सीताजी की रक्षा तुम्हें सुपुर्द करता हूँ। स्त्री रक्षा में चार बात की आवश्यकता होती है। केवल १. बल से ही रक्षा नहीं होती? शत्रु छल से भी काम लेते हैं। अतः उसके समझने के लिए २. बुद्धि चाहिए। स्त्रियाँ अविवेकी होती हैं। अतः ३. विवेक से काम लेना चाहिए। जैसा ४. समय देखे वैसा काम करे। समय के प्रतिकूल कार्य निष्फल होता है।

बँध्यो वैर निशिचरन्ह ते भयो विपुल संहार।
छलही उनको परम बल जानत सब संसार ॥१॥
साहस सनमुख समर को अब ये करिहहिं नाँहि।
सोचहि सीता हरन ही को उपाय मन माँहि ॥२॥
दूर दूर ते देखियत निशिचर परैं लखाय।
पै हम दोऊ बंधु ढिग सकें न ये नियराय ॥३॥
होय न प्राकृत हिरन यह मायामय मारीच।
पै कर्तव्य प्रधान मम जातै छीजे नीच ॥४॥
पाइ कुअवसर रचि सकत ये प्रपंच बहु भाँति।
ताते तात सजग रहेउ मायावी यह जाति ॥५॥

मारीच के मन में तो यह बात है : निज परम प्रीतम देखि लोचन सुफल करि सुख पाइहौं। फिर भी साथ में आने की लाज है। अतः वहाँ से हटाने के लिए भाग चला। रामजी धनुष चढ़ाये हुए ही दौड़े। पीछा किया। भक्त का मनोरथ पूर्ण हो रहा है : मम पाछे धर धावत धरे सरासन बान। फिरि फिरि प्रभुहि बिलोकिहौं, धन्य न मो सम आन।

निगम नेति सिव ध्यान न पावा। मायामृग पाछे सोइ धावा ॥
कबहुँ निकट पुनि दूरि पराई। कबहुँक प्रगटै कबहुँ छपाई ॥६॥

अर्थ : वेद जिनके विषय में नेति नेति कहकर रह जाते हैं और शिवजी भी जिन्हें ध्यान में नहीं पाते। वे ही श्रीरामजी माया से बने हुए मृग के पीछे दौड़ रहे हैं। वह कभी निकट आ जाता है और फिर दूर भाग जाता है। कभी प्रकट हो जाता है और कभी छिप जाता है।

व्याख्या : सरकार का अद्भुत माधुर्य है। वेद वाणी से न पा सके। नेति नेति जेहि बेद निरूपा। योगी शिव ध्यान में न पा सके : जो हर हिय नयनन्हि कबहुँ निरखे नहीं अघाय। ये लोग जिसके पाने के लिए पीछे दौड़ते हैं। आज वह मायामृग के पीछे दौड़ा। यह सरकार की नरलीला है। उमा करत रघुपति नर लीला।

मारीच मृग दूर ले जाने का प्रयत्न कर रहा है। यदि बहुत दूर चला जाय तो शिकारी हताश होकर फिर जाय। इसलिए निकट भी आ जाता है। निकट ही बना रहे तो पकड़ा जाय। इसलिए दूर भागता है। अलक्षित रहे तो फिर शिकारी निराश हो लौट जाय। इसलिए प्रकट हो जाता है और लक्षित रहे तो मारा जाय। इसलिए छिप भी जाता है।

प्रगटत दुरत करत छल भूरी। येहि बिधि प्रभुहि गयेउ लै दूरी ॥
तब तकि राम कठिन सर मारा। धरनि परेउ करि घोर पुकारा ॥७॥

अर्थ : इस प्रकार प्रकट होता और छिपता हुआ तथा बहुतेरा छल कपट करता हुआ वह प्रभु को दूर ले गया। तब श्रीरामचन्द्रजी ने ताककर कठोर बाण मारा। जिसके लगते ही वह घोर शब्द करके पृथ्वी पर गिर पड़ा।

व्याख्या : अपनी जान भी बँचाता है और शिकारी का साहस भी नहीं छूटने देता। अतः प्रगटत दुरत चला जा रहा है। छल भी खूब करता है। यथा : तुरत कीन्ह नृप सर संधाना। महि मिलि गयउ बिलोकत बाना। यह दूर ले जाने की विधि है। पञ्चवटी से बस्तर : रियासत ले गया। वहीं मृगवध हुआ है। अब वहाँ के वन में मृग होते ही नहीं।

इससे मालूम होता है कि रामजी ने हल्के बाण मारे। जिसमें घायल हो जाय। मरे नहीं और मैं पकड़ लूँ। इसी से रुचिर शर साधा था। इस भाँति सरकार दूर चले आये। रावण को पूरा मौका देते हैं। जब देख लिया कि काफी दूर आ गये तब ताककर जिसमें निशाना न चूके और कठिन शर जो प्राण ले ले मारा। राक्षस माया करता है। सरकार उसकी माया को मानते जाते हैं और वह माया उलटी पड़ती जाती है। जानकी हरण दोनों को इष्ट है। घोर पुकार : जिसमें शब्द पञ्चवटी तक पहुँचे।

लछिमन कर प्रथमहिं लै नामा। पाछे सुमिरेसि मन महुँ रामा ॥
प्रान तजत प्रगटेसि निज देहा। सुमिरिसि राम समेत सनेहा ॥८॥

अर्थ : उसने पहिले लक्ष्मणजी का नाम लेकर पीछे मन में श्रीरामजी का

स्मरण किया। प्राण त्याग करते समय उसने अपना राक्षसी शरीर प्रकट किया और प्रेम सहित श्रीरामजी का स्मरण किया।

व्याख्या : होहु कपट मृग तुम छलकारी : कहा है सो छलकारी का साफल्य कहते हैं। लक्ष्मण को पुकारता है। पीछे से राम का स्मरण मुक्ति के लिए करता है। जाकर नाम मरत मुख आवा। अधमौ मुकुत होइ स्तुति गावा : उसने रावण का काम कर दिया।

प्राण त्याग के समय कपट छोड़ा। देह जो मृग रूप में छिपा था प्रकट कर दिया। सादर सुमिरन जे नर करहीं। भव बारिधि गोपद इव तरहीं। स्नेह के साथ स्मरण ही सादर सुमिरन है।

अंतर प्रेमु तासु पहिचाना। मुनि दुर्लभ गति दीन्ह सुजाना ॥९॥

अर्थ : सर्वज्ञ श्रीरामजी ने उसके हृदय के प्रेम को पहचानकर उसे वह गति दी जो मुनियों को भी दुर्लभ है।

व्याख्या : जगत् में ऐसे प्रेम की पहिचान नहीं है। विरोधी क्रियाओं के बीच में अन्तः प्रेम सरकार ने पहिचान लिया। सुजान है। उसे मुनिदुर्लभ गति दी। रीझत राम सनेह निसोते। निर्वाण मुनिदुर्लभ है। पर प्रभु ज्ञानशिरोमणि हैं। ऐसी दुर्लभ गति भी उस राक्षस को दे दी। तब ताकेसि रघुनायक सरना : का साफल्य। सरकार ने भी ताककर बाण मारा कि मोक्ष हो जाय।

दो. बिपुल सुमन सुर बर्षहिं, गावहिं प्रभु गुन गाथ।
निज पर दीन्ह असुर कहँ, दीनबन्धु रघुनाथ ॥२७.२१॥

अर्थ : देवता बहुत से फूल बरसा रहे हैं और प्रभु के गुणों की गाथाएँ गा रहे हैं कि श्री रघुनाथजी ऐसे दीनबन्धु हैं कि उन्होंने असुर को अपना परम पद दे दिया।

व्याख्या : खर दूषण वध में : हर्षित बर्षहि सुमनं सुर बाजहिं गगन निसान। यहाँ निसान नहीं बजाते। रावण सुन लेगा। हर्षित भी नहीं हैं। सीता हरण हो रहा है पर उनके कल्याण की सिद्धि प्रारम्भ हो गयी। अतः विपुल सुमन बरसा रहे हैं कि ऐसे दीनबन्धु हैं कि इसे अपना पद दिया। यह पक्का असुर था। प्रभु को पहिचानने पर भी इसने पराकाष्ठा की खलता की। मिलत एक दारुण दुख देहीं। असुर भी दीन हो जाय तो उसे निज पद देते हैं। सुमिरेसि राम समेत सनेहा। उसकी दीनता है।

खल बधि तुरत फिरे रघुबीरा। सोह चाप पर कटि तूनीरा ॥
आरत गिरा सुनी जब सीता। कह लछिमन सन परम सभीता ॥१॥

अर्थ : दुष्ट मारीच को मारकर श्री रघुवीर तुरन्त लौट पड़े। हाथ में धनुष

और कमर में तरकस शोभा दे रहा है। इधर जब सीता ने दुःख भरी वाणी सुनी तो वे बहुत ही भयभीत होकर लक्ष्मणजी से कहने लगीं।

व्याख्या : यद्यपि मुनि दुर्लभ गति मिली पर था वह खल : परहित घृत जिनके मन माखी। जिमि कुठार चंदन आचरनी। प्रभु ने उसका प्राण छोड़ दिया था। सो उनके साथ इसने ऐसा घात किया। तुरत फिरे। उसके पुकारने पर चिन्ता हुई कि यह शब्द सीता सुनी होंगी तो उसका क्या हाल हुआ होगा। इसने छल किया है। लक्ष्मण को सीताजी के पास से हटाने के लिए सीता हरण का उद्योग राक्षसों की ओर से हो रहा है। रघुवीर हैं। एक राक्षस को मारा। औरों का सामना करने के लिए त्वरा है। सीताजी ने जिन शब्दों से सम्बोधन किया है उनका साफल्य कवि ने दिखलाया। देव शब्द का साफल्य लिख चुके हैं। रघुवीर शब्द का साफल्य यहाँ हुआ। निज पद दीन्ह असुर कहँ : से दयाल शब्द सफल हुआ। तब तक राम कठिन सर मारा : से सत्यसन्ध शब्द का सफल हुआ। बिपुल सुमन सुर बर्षहि गावहि प्रभु गुण गाथा : से प्रभु शब्द सफल हुआ। खल वध से ही चाप तूणीर की शोभा है। यथा : तुम से खल मृग खोजत फिरहीं। काम न होने से हाथ में तीर नहीं है।

सुनी तो लछिमन ने भी पर बुद्धि से काम लिया। समझ गये कि मारीच की चाल है। पर सीताजी सुनकर परम सभीत हो गयीं। तन पसेव कदली जिमि कांपी। पति भाव प्रधान है। ऐश्वर्य पर ध्यान नहीं है। जानती हैं कि लछिमन ने भी सुना। सुनकर उन्हें कोई तरद्दुत नहीं हुआ। फिर भी कहती हैं : सुनहु तात कोउ तुमहिं पुकारत प्राणनाथ की नाईं। कह्यो लखन हत्यो हिरन कोपि. सिय हठि पठयो बरियाईं। गीतावली.

जाहु बेगि संकट अति भ्राता। लछिमन बिहँसि कहा सुनु माता ॥
भृकुटि बिलास सृष्टि लय होई। सपनेहु संकट परै कि सोई ॥२॥

अर्थ : तुम शीघ्र जाओ। तुम्हारे बड़े भाई सङ्कट में हैं। लक्ष्मणजी ने हँसकर कहा : हे माता! सुनो : जिनके भौं के इशारे मात्र से सारी सृष्टि और प्रलय हुआ करता है वे रामजी क्या कभी स्वप्न में भी सङ्कट में पड़ सकते हैं ?

व्याख्या : सङ्कट है देर करने से प्राणान्त होगा। भ्राता कहने से भाव यह : होंहि कुठायँ सुबंधु सहायें। लक्ष्मणजी ने हँस दिया। इतने दिन साथ रही। महिमा न जान पायीं। जब से सुमित्राजी ने कहा है : तात तुम्हार मातु बैदेही। तब से माँ कहते हैं : यह लक्ष्मणजी का विवेक है।

सृष्टि के भीतर ही सब जीव हैं। उन्हीं से सङ्कट की सम्भावना है। सो सृष्टि और लय उनके भृकुटि विलास से होता है। इतनी बड़ी उनकी महिमा है। उन्हें सङ्कट की सम्भावना स्वप्न में भी नहीं। क्योंकि जाग्रत् के संस्कार से ही स्वप्न होता है। सकल सुरासुर जुरहिं जुझारा। रामहि समर न जीतन हारा। अतः लक्ष्मणजी कहते हैं कि यह राक्षस के मरणकाल का चिग्घाड़ है।

मरम बचन जब सीता बोला। हरि प्रेरित लछिमन मन डोला ॥
बन दिसि देव सौंपि सब काहू। चले जहाँ रावन ससि राहू ॥३॥

अर्थ : इस पर सीताजी जब मर्म वचन कहने लगीं तब भगवान् की प्रेरणा से लक्ष्मणजी का मन भी चञ्चल हो उठा। वे श्री सीताजी को वन और दिशाओं आदि के देवताओं को सौंपकर वहाँ चले जहाँ रावणरूपी चन्द्रमा के लिए राहुरूपी श्रीरामचन्द्रजी थे।

व्याख्या : हँसने से खराब अर्थ लगा। तब मर्माघात करनेवाला अनुपयुक्त वचन कहा। इस बात को कवि ने अनुपयुक्त पद प्रयोग से दिखलाया : सीता बोला : अनुपयुक्त प्रयोग सा मालूम पड़ता है। पर अशुद्ध नहीं है। बोल धातु रूप है। उसे भूतकाल के अर्थ में प्रयुक्त किया। ऐसा ही करते हैं। यथा : कह सीता सुनु जती गोसाइँ। कह सीता धरि धीरज गाढ़ा। यहाँ केवल धातु रूप भूतकाल के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। अकार को दीर्घ तुकबन्दी के लिए किया। यथा : मन अस रहन कहिहि मोहि रामा। अतः बोला का प्रयोग अशुद्ध नहीं है।

लक्ष्मण का मन मर्म वचन सुनने पर भी न डोलता। पर हरि की प्रेरणा के आगे कुछ नहीं चलता : हरि इच्छा भावी बलवाना।

यह लक्ष्मण का समय विचार है कि वनदेव, वनदेवी, दिशिदेव तथा जितने जीवजन्तु हैं सबको सौंपा। अर्थात् भगवान् विश्व रूप को सौंपा। राहु से चन्द्र प्रभाहीन हो जाते हैं। इसी भाँति रामजी से रावण भी प्रभाहीन हो गया है। यथा : राक्षसान् मर्त्यरूपेण राहुर्मनसिजं यथा। प्रभाहीनांस्तथा कृत्वा राज्यार्हाणां महीभृताम्।

सून बीच दसकंधर देखा। आवा निकट जती कें बेषा ॥
जाकें डर सुर असुर डेराहीं। निसि न नींद दिन अन्न न खाँहीं ॥४॥

अर्थ : रावण शून्य के बीच देखकर संन्यासी के वेष में श्री सीताजी के समीप आया। जिसके डर से देवता और दैत्य तक इतना डरते हैं कि रात को नींद नहीं आती और दिन में भर पेट अन्न नहीं खाते।

व्याख्या : वहाँ कोई नहीं था और चारों ओर रेखा खिंची हुई थी। यथा : रामानुज लघु रेख खँचाई। सो नहिं असि नाघेहु मनुसाई। तब यती के वेष से निकट आया जिसमें विश्वास हो। अर्घ पाद्य भिक्षा देने के लिए शून्य से बाहर आजायँ। त्रिदण्डी का रूप धारण किया जिसमें शिखा यज्ञोपवीत रह सके। यती से स्त्री हरण की आशङ्का ही नहीं होती।

जिसके डर से देवताओं को रात के समय नहीं लगती। यथा : सो किमि सोअ सोच अधिकाई। सोच से क्षुधा भी मारी जाती है। गले अन्न नहीं उतरता। देवताओं का अन्न अमृत है। सो श्रौत कर्म से बनता है। श्रौतकर्म दिन को ही होता है। अतः दिन को अन्न न खाना कहा।

सो दससीस स्वान की नाईं। इत उत चितइ चला भड़िहाईं ।।
इमि कुपंथ पग देत खगेसा। रह न तेज तन बुधि बल लेसा ।।५।।

अर्थ : वही दस सिरवाला रावण कुत्ते की तरह इधर उधर ताकता हुआ भड़िहाइ : चोरी के लिए चला। हे गरुड़जी,! इस प्रकार कुमार्ग पर पैर रखते ही शरीर में तेज तथा बुद्धि एवं बल का लेश भी नहीं रह जाता।

व्याख्या : रावण ऐसा पराक्रमी था और परमेश्वर की देन में भी उसे नव सिर अधिक मिले थे। सो यती का वेष धारण करके चला। यती को स्त्री की इच्छा होना ही कुत्तापन है। ऐसे को वान्ताशी : कुत्ता कहते हैं। कहीं मालिक मकान देख न ले। लक्ष्मण या राम आ न जायँ। इस भय से रावण इधर उधर देखते जैसे भड़िहाई के लिए कुत्ते चलते हैं वैसे चले। खुले घर में कुछ खाने को चीज पा जाने की लालच से दिहात में कुत्ते भड़िहाई के लिए चलते हैं। उन्हें डर लगा रहता है कि कहीं घर का मालिक न आजाय। नहीं तो बिना मारे नहीं छोड़ेगा।

स्वान कहकर तेज नाश कहा। इत उत चितइ चला : से बल का नाश कहा। भड़िहाई : से बुद्धि का नाश कहा।

नाना बिधि कहि कथा सुहाई। राजनीति भय प्रीति देखाई ।।
कह सीता सुनु जती गोसाईं। बोलेहु बचन दुष्ट की नाईं ।।६।।

अर्थ : रावण ने अनेकों प्रकार की सुहावनी कथाएँ रचकर सुनायी सीताजी को राजनीति भय और प्रेम दिखलाया। सीताजी ने कहा : हे यति गोसाईं ! तुमने तो दुष्ट की तरह वचन कहे।

व्याख्या : संन्यासी को उपदेश का अधिकार : इन्द्र और अहिल्या की कथा कहा। राजा का रत्नभुक् होना कहा। भगवती को स्त्री रत्न कहा। राजा के अपमान करनेवाले को घोर दण्ड होता है। तुम महल में रहने योग्य हो। मैं बहुत दिन से प्रीति करता हूँ।

सीताजी की ओर से सभ्यता की पराकाष्ठा है। यती को साक्षात् दुष्ट नहीं कहतीं। दुष्ट की नाईं कहती हैं। वेष के अनुकूल वचन नहीं हैं। मनस्यन्यत् वचस्यन्यत् कर्मण्यन्यद् दुरात्मनाम्।

तब रावन निज रूप देखावा। भई सभय जब नामु सुनावा ।।
कह सीता धरि धीरजु गाढ़ा। आइ गएउ प्रभु रहु खल ठाढ़ा ।।७।।

अर्थ : जब रावण ने अपना असली रूप दिखलाया और जब नाम सुनाया तब तो सीताजी भयभीत हो गयीं। उन्होंने गहरा धीरज धरकर कहा : अरे दुष्ट ! खड़ा तो रह ! प्रभु आगये।

व्याख्या : मैं यती नहीं हूँ : इस बात के कहने के बदले अपना स्वरूप दिखलाया। अतः उसके नाम से भय होता था। यथा : कीधौं स्रवण सुनेसि नहि

मोही। नाम सुनकर सीताजी डरीं कि इससे तो वैर बँधा हुआ है। इसके बहिन को नाक काटी गयी है। यह वैर चुकाने आया है। अतः सभीत हुईं।

ऐसी सभीत हुईं कि बहुत बड़ा धीरज धारण करके बोलने में समर्थ हुईं। सीताजी ने पहिला प्रयत्न उसके भगाने का किया कि प्रभु का आना सुनकर भाग जायगा। अपना स्वरूप धारण करने पर खल कहती हैं। जानती हैं कि दोनों सरकारों के न रहने पर इसे आने का साहस हुआ है।

जिमि हरिबधुहि छुद्र सस चाहा। भएसि कालबस निसिचर नाहा॥
सुनत बचन दससीस रिसाना। मन महुँ चरन बंदि सुख माना॥८॥

अर्थ : जैसे सिंह की स्त्री को क्षुद्र खरगोश चाहे वैसे ही अरे राक्षसराज! तू काल के वश हुआ है। यह वचन सुनकर रावण लज्जित हो गया। पर मन में उसने सीताजी के चरणों को वन्दना करके सुख माना।

व्याख्या : को प्रभु संग मोहि चितवन हारा। सिंह बधुहि जिमि ससक सियारा। मैं स्वयं तेरा संहार करने में समर्थ हूँ। शश को सिंह वधू की चाह होना ही उसके कालवश होने का चिह्न है। नहीं तो सिंहवधू की कामना कैसे करेगा।

उसने अपना स्वरूप दिखाया। नाम सुनाया : वश में लाने के लिए। यदि जानता कि इस भाँति फटकारा जायगा तो नाम न कहता। नाम सुनकर भी उसे शश कह रही हैं। अपने को सिंहवधू कहती हैं। इस तेजस्विता पर लज्जित हो गया।

भगवती का उपासक है : एहि के हृदय बसं जानकी, जानकी उर मम वास है। भगवती के ध्यान से ही अजेय है। काटत सिर होइहि बिकल छूट जाइहि तव ध्यान। तब रावणहि हृदय महँ मरिहहिं राम सुजान। जगदम्बा के उचित क्रोध पर मन में सुख हुआ।

दो. क्रोधवंत तब रावन, लीन्हिसि रथ बैठाइ।
चला गगनपथ आतुर, भयँ रथ हाँकि न जाइ॥२८.२२॥

अर्थ : फिर क्रोध में आकर रावण ने सीताजी को रथ में बिठा लिया और वह बड़ी उतावली के साथ आकाश मार्ग से चला। किन्तु डर के मारे उससे रथ हाँका नहीं जाता था।

व्याख्या : माया से रथ उपस्थित हो गया। उस पर केश पकड़कर सीताजी को बिठा लिया और गगन पथ से चला : जहाँ मनुष्य की गति नहीं। भय से हाथ पैर भारी हो गये : कि कहीं राम लक्ष्मण आ न जायँ। रथ हाँकते नहीं बनता। पर रावण का रूप देखते ही वनदेवी वनदेव तथा भूत मात्र भयभीत हो गये। अतः वे भी रक्षा नहीं कर सके।

हा जगदेक बीर रघुराया। केहि अपराध बिसारेहु दाया॥
आरति हरन सरन सुखदायक। हा रघुकुल सरोज दिननायक॥१॥

अर्थ : हा जगत् के अद्वितीय वीर श्रीरघुनाथजी। आपने किस अपराध से मुझ पर दया भुला दी। हे दुःखों के हरनेवाले। हे शरणागत को सुख देनेवाले! हा रघुकुलरूपी कमल के सूर्य!

व्याख्या : जोर से चिल्लाती हैं कि सरकार तक शब्द पहुँचे। जगदेक वीर यथा : तुला पिनाक साहु नृप परिजन भट बटोरि सबके बल जोखे। परसुराम से वीर सिरोमनि क्षनमँह भये खेत के से धोखे। रघुराया : सिव अज पूज्य चरन रघुराई। रघुकुल की प्रतिष्ठा की रक्षा इन्हीं से है। विरह का प्रलाप है। प्रभु को पता भी नहीं। फिर भी मानों जानकर दया विसरा दिया। ऐसा उपालम्भ करती हैं। भर्ता को आज्ञा दी है यह अपराध अवश्य है : सत्यसन्ध प्रभु बध कर एही। आनहु चर्म कहति वैदेही। पर यह ऐसा अपराध नहीं जिससे दया विस्मरण हो जाय। आप को तो दया विस्मरण होती ही नहीं।

आरति हरण से अपना आर्त्त होना कहा : जपहि नाम जन आरत भारी। मिटहि कुसंकट होंहि सुखारी। शरण सुखदायक से अपना शरण होना कहा। स्त्री को पति ही शरण है। आप शरण सुखदायक हैं : मैं दुःखी हूँ। आप दिननायक हैं : मैं रघुकुल की ही कमलिनी हूँ।

हा लछिमन तुम्हार नहि दोसा। सो फलु पायेउँ कीन्हेउँ रोसा॥
बिबिध बिलाप करति बैदेही। भूरि कृपा प्रभु दूरि सनेही॥२॥

अर्थ : हा लक्ष्मण तुम्हारा दोष नहीं है। मैंने क्रोध किया उसका फल पाया। हा! प्रभु की कृपा तो बहुत हैं। परन्तु स्नेही प्रभु बहुत दूर रह गये हैं। एवं श्रीजानकीजी बहुत प्रकार से विलाप कर रही हैं।

व्याख्या : अब देवर को स्मरण करती हैं। लक्ष्मण के हटाने का मैं ही कारण हुई। मैं लक्ष्मण का दोष समझती थी। सो उनका दोष नहीं था। दोष हमारा था जो निर्दोष पर क्रोध किया। उसका फल पाया। प्रभु का वियोग हुआ। लक्ष्मण ऐसे देवर क्या रोष योग्य हैं।

कवि संसार की गति दिखलाते हैं कि वैदेही विविध विलाप करती हैं और कहती हैं कि प्रभु समर्थ हैं। कृपा भी बहुत है। स्नेह भी है। इसके हाथ से छूटने का सभी योग है। पर दूर हैं। मेरे शब्द उन तक नहीं पहुँचते।

बिपति मोर को प्रभुहि सुनावा। पुरोडास चह रासभ खावा॥
सीता कै बिलाप सुनि भारी। भए चराचर जीव दुखारी॥३॥

अर्थ : प्रभु को मेरी यह विपत्ति कौन सुनावे। पुरोडाश को गदहा खाना चाहता है। सीताजी का भारी विलाप सुनकर जड़ चेतन सभी जीव दुःखी हो गये।

व्याख्या : कोई ऐसा नहीं जो मेरी विपत्ति प्रभु को सुनावे। किसी ने हरण करते नहीं देखा। न ले जाते कोई देख रहा है। फिर हमारी विपत्ति उन्हें कौन सुनावेगा? जल में डूब जाने या हिंसक जन्तु के खा जाने का भ्रम हो सकता है :

पुरोडाश चावल की टिकिया यज्ञाग्नि में पकायी जाती है। उसे यज्ञ के बाहर के लोग नहीं प्राप्त कर सकते। दूर्वाकन्दनिकन्दन का उससे कौन सम्बन्ध।

विलाप में इतनी करुणा थी कि स्थावर जङ्गम जीव दुःखी हो गये। द्रवहि बचन सुनि कुलिस कठोरा। भाव यह कि वनदेव वनदेवी लोकपाल सब दुःखी हैं। पर किसी को सामर्थ्य नहीं कि हिल सके।

गीधराज सुनि आरत बानी। रघुकुल तिलक नारि पहिचानी ॥
अधम निसाचर लीन्हे जाई। जिमि मलेच्छ बस कपिला गाई ॥४॥

अर्थ : गीधराज जटायु ने सीताजी की दुःख भरी वाणी सुनकर पहिचान लिया कि ये रघुकुल तिलक श्रीरामचन्द्रजी की पत्नी हैं। नीच राक्षस इनको लिये जा रहा है जैसे कपिला गाय म्लेच्छ के पाले पड़ गयी हो।

व्याख्या : पर गीधराज ऐसे नहीं हैं। अतः इनका सुनना पृथक् लिखते हैं। आर्त्त के गीधराज सहायक हैं। तिस पर : हा जगदेक वीर रघुराया से समझ लिया कि ये रघुकुल तिलक की स्त्री हैं और मेरी रघुकुल से मैत्री है।

अधम निशाचर चोरी से लिये जा रहा है। कपिला गाय बड़ी सीधी होती है। म्लेच्छ गोभक्षक होते हैं। उनसे गाय का छुड़ाना सबका परम धर्म है। ऐसे प्रयत्न में प्राण की आहुति देना ही प्राप्त है। खर दूषण भी निशाचर थे। पर अधम नहीं थे। लड़कर सीताजी को लिया चाहते थे। यह अधम है।

सीते पुत्रि करसि जनि त्रासा। करिहौं जातुधान कर नासा ॥
धावा क्रोधवंत खग कैसे। छूटै पवि पर्वत कहूँ जैसे ॥५॥

अर्थ : हे सीते पुत्रि ! भय मत कर। मैं इस राक्षस का नाश करूँगा। वह पक्षी क्रोध में भरकर कैसे दौड़ा जैसे पर्वत की ओर वज्र छूटता हो।

व्याख्या : महाराज दशरथ का मित्र होने से वृद्ध होने से पुत्रि कहता है। अभय देता है। मैं मौजूद हूँ। मैं यातुधान का नाश करूँगा। सीताजी को ढाढ़स बँधाया और रावण को सचेत किया।

नीचे से ऊपर जा रहा है। वेग ऐसा है कि मालूम होता है कि ऊपर से नीचे टूट रहा है। वज्र से ही पर्वत के पक्ष कटे हैं। पर्वत पर प्रहार करनेवाला वज्र ही है। सो गीधराज वज्र की भाँति रावणरूपी पर्वत आ रहे हैं।

रे रे दुष्ट ठाढ़ किन होई। निर्भय चलेसि न जानेहि मोही ॥
आवत देखि कृतांत समाना। फिरि दसकंधर कर अनुमाना ॥६॥

अर्थ : रे रे दुष्ट ! खड़ा क्यों नहीं होता ? निडर होकर चल दिया। मुझे तूने नहीं जाना। उसको यमराज के समान आता हुआ देखकर रावण घूमकर मन में अनुमान करने लगा।

व्याख्या : रावण निकला चला ही जा रहा है। अतः खड़ा होने के लिए ललकारा। मेरी पहिले ही ललकार : करिहौं जातुधान कर नासा। पर ही खड़ा हो जाना चाहता था। अतः कारण पूछते हैं। तू राम लक्ष्मण के दूर होने से निर्भय जा रहा है। यह तुझे नहीं मालूम कि मैं पहरे पर हूँ। अपना पुरुषार्थ घोषित किया।

रावण ने मुड़कर देखा कि काल की भाँति क्रुद्ध चला आ रहा है। रावण लौट पड़ा कि इसके वेग के सामने रथ का वेग कुछ नहीं है। अनुमान करता है कि यह है कौन ? बड़ा भारी है। इतना बड़ा कौन हो सकता है ?

की मैनाक कि खगपति होई। मम बल जान सहित पति सोई ॥
जाना जरठ जटायू एहा। मम कर तीरथ छाँड़िहि देहा ॥७॥

अर्थ : यह या तो मैनाक पर्वत है या पक्षियों का स्वामी गरुड़ है। पर वह तो अपने स्वामी विष्णु सहित मेरे बल को जानता है। रावण ने उसे पहिचान लिया कि यह तो बूढ़ा जटाय है। यह मेरे हाथरूपी तीर्थ में शरीर छोड़ेगा।

व्याख्या : पर्वत है पर उड़ रहा है तो यह मैनाक है और कोई पर्वत तो उड़ नहीं सकते। निकट आने पर चोंच आदि दिखायी पड़े तब कहता है कि गरुड़ है पर अनुमान से तो यही सिद्ध है कि गरुड़ नहीं हो सकता। क्योंकि विष्णु और गरुड़ दोनों मेरे बल को जानते हैं : साहिब महेस सदा संकत रमेस मोहि।

जब और निकट आया तो उसके मुँह से निकल पड़ा कि यह तो बूढ़ा जटायु है। इनकी जवानी सत्ययुग में थी। यथा : हम दोउ बंधु प्रथम तरुनाई। त्रेता ब्रह्म मनुज तन धरिहि। बूढ़ा कहने का भाव कि अब इसमें बल नहीं है। वृद्धावस्था से दुःखी होकर शरीर छोड़ने के लिए मेरे पास चला आ रहा है। मेरे कररूपी तीर्थ में शरीर विसर्जन करेगा।

सुनत गीध क्रोधातुर धावा। कह सुनु रावण मोर सिखावा ॥
तजि जानकिहि कुसल गृह जाहू। नाहि तो अस होइहि बहुबाहू ॥८॥

अर्थ : यह सुनकर गीध क्रोध में भरकर बड़े वेग से दौड़ा और बोला : रावण ! मेरा सिखावन सुन। जानकीजी को छोड़कर कुशल पूर्वक अपने घर चला जा। नहीं तो हे बहुत भुजाओंवाले ! ऐसा होगा कि :

व्याख्या : क्रुद्ध तो पहिले ही थे। पर इसका उत्तर ऐसा था कि गीधराज क्रोधातुर हो गये। पर वृद्ध कहा था इससे शिक्षा देने के लिए ठहर गये और कहा कि मेरी सीख सुन। भाव यह कि तू किसी की सीख नहीं सुनता। यदि पुलस्त्य और विश्रवा की सीख सुनता तो ऐसे कर्म में हाथ ही न लगाता। मैं परलोक की शिक्षा नहीं देता हूँ। इस लोक की ही शिक्षा देता हूँ : दोनों दोनों को पहिचान गये।

पहिले मैं ही तुम्हें कुशल से घर न जाने दूँगा। पर तुझे बहुत बाँह है। कदाचित् मेरे हाथ से बँचा भी तो :

राम रोष पावक अति घोरा। होइहि सकल सलभ कुल तोरा ॥
उतरु न देत दसानन जोधा। तबहिं गीध धावा करि क्रोधा ॥९॥

अर्थ : श्रीरामजी के क्रोधरूपी अत्यन्त भयानक अग्नि में तेरा सारा वंश फनगा होकर भस्म हो जायगा। योद्धा रावण कुछ उत्तर नहीं देता। तब गीध क्रोध करके दौड़ा।

व्याख्या : जो घर कुशल सहित पहुँचे तो कुल सहित नाश होगा। रामजी का रोष घोर पावक है। पावक तुम्हारे कुल को भस्म कर देगा : यद्यपि लघुता राम कहँ तोहि बधे बड़ दोष। तदपि कठिन दसकंठ सुनु क्षत्रि जाति कर रोष। राम रोष अति घोर पावक है। किसी को भी न छोड़ेगा। जानकी के छोड़ देने से बच जाओगे।

उत्तर कोई है नहीं। प्रत्युत्तर में राम लक्ष्मण के आजाने का भय भी है। रावण योद्धा है। लड़ने को तैयार हो गया। गीधराज ने समझ लिया कि यह न मानेगा तब क्रोध से दौड़े।

धरि कच बिरथ कीन्ह महि गिरा। सीतहि राखि गीध पुनि फिरा ॥
चोंचन्ह मारि बिदारेसि देही। दंड एक भइ मुरुछा तेही ॥१०॥

अर्थ : उसने रावण का बाल : शिखा पकड़कर उसे रथ के नीचे गिरा दिया। रावण पृथ्वी पर गिर पड़ा। गीध सीताजी को अपने घोंसले में बिठाकर फिर लौटा और चोंचों से मार मारकर रावण के शरीर को विदीर्ण कर डाला। इससे उसे एक घड़ी के लिए मूर्च्छा हो गयी।

व्याख्या : पहिला काम विरथ करना है। अतः केश पकड़कर पृथ्वी पर नीचे फेंक दिया। चोंच से सिवाय केश पकड़कर फेंकने के और क्या उपाय था! जब से रावण अपने को सँभाले तब तक अपने घोसले में सीताजी को रखकर जहाँ रावण था वहाँ गीधराज आये। युद्ध के बीच में सीताजी के रहने से युद्ध न हो सकेगा : रावण के केश पकड़नेवाले गीधराज मन्दोदरी के केश पकड़नेवाले हनुमानजी।

चोंच के प्रहार भयानक हैं। किसी अस्त्र से नहीं रुकते। गीधराज पर चोट करता है तो पङ्ख पर रोकते हैं। गीधराज ने रावण के वज्र जैसे शरीर को विदार डाला। दूसरा वीर मर जाता। पर वह प्रसाद से न मरा। एक दण्ड मूर्च्छित हो गया। गीधराज खड़े हैं। मूर्च्छित वीर पर चोट नहीं करते हैं।

तब सक्रोध निसिचर खिसिआना। काढ़ेसि परम कराल कृपाना ॥
काटेसि पंख परा खग धरनी। सुमिरि रामु करि अद्भुत करनी ॥११॥

अर्थ : तब खिसियाये हुए रावण ने क्रोधयुक्त होकर अत्यन्त भयानक तलवार निकाली और उससे जटायु के पंख काट डाले। जटायु अद्भुत करणी करके और श्रीरामजी को स्मरण करके पृथ्वी पर गिर पड़े।

व्याख्या : बल न चलने पर खिसिआया। जिसको वृद्ध समझकर अनादर किया उसी के हाथ से मूर्च्छा हुई। अतः खिसियाया। कराल अस्त्रों से काम न चला तब परम कराल कृपाण निकाला। यह शङ्करदत्त चन्द्रहास कृपाण है। इसके चोट से कोई बचता नहीं। पंख से ही शस्त्र रोकते हैं सो पंख ही काटा।

आकाश में युद्ध होता था। पंख कटने से जटायुजी पृथ्वी पर गिरे। यथा : पंख बिनु खग अति दीना। गिरते समय राम का स्मरण किया मृत्यु समझकर। अद्‌भुत करणी : ऐसी दुर्दशा रावण की कोई कर न सका था। मुये मरत मरिहैं सकल घरी पहर के बीच। लह्यो न काहू आजुलौं गीधराज की मीच।

सीतहि जान चढ़ाइ बहोरी। चला उताइल त्रास न थोरी ॥
करति बिलाप जाति नभ सीता। ब्याध बिबस जनु मृगी सभीता ॥१२॥

अर्थ : सीताजी को फिर रथ पर चढ़ाकर रावण बड़ी उतावली के साथ चला। उसे भय कम न था। सीताजी आकाश में विलाप करती हुई जा रही हैं। मानों व्याध के वश में पड़ी हुई कोई भयभीत हिरनी हो।

व्याख्या : पहिले : क्रोधवंत तब रावण लीन्हेसि रथ बैठाई। अब : सीतहि जान चढ़ाई बहोरी। चला। पहिले : चलेउ गगन पथ आतुर। अब : चला उताइल। पहिले : भय रथ हाँकि न जाय। अब : त्रास न थोरी। अभी तो गीध मिला न जाने अब कौन मिले।

सीताजी का फिर विलाप आरम्भ हुआ। अब आकाश में विलाप हो रहा है। कपिला गौ म्लेच्छ वश होने पर विलाप मात्र करती हैं और मृगी वन्यजन्तु हैं छटपटाती हैं। पर मृगी को छुड़ाने कौन आवे: अब कोई छुड़ाने न आवेगा। जिस दृष्टि से जटायु ने देखा उस दृष्टि से दूसरा कोई देख न सका। इसलिए मृगी की उपमा दी।

गिरि पर बैठे कपिन्ह निहारी। कहि हरि नामु दीन्ह पट डारी ॥
एहि बिधि सीतहि सो लै गएऊ। बन असोक महँु राखत भएऊ ॥१३॥

अर्थ : पर्वत पर बैठे हुए बन्दरों को देखकर सीताजी ने हरिनाम लेकर वस्त्र डाल दिया। इस प्रकार वह सीताजी को ले गया और उन्हें अशोक वन में जा रक्खा।

व्याख्या : गिरि ऋष्यमूक पर मन्त्रियों के सहित सुग्रीव विचार कर रहे थे। सीताजी को बड़ी चिन्ता है कि गीधराज भी मारे गये। अब फिर वही प्रश्न उठा : बिपत मोर को प्रभुहि सुनावा। अतः आभूषण बाँधकर सुग्रीव की ओर फेंका और राम राम हा राम ऐसा पुकारा। भाव यह कि मैं राम की हूँ। राम को पट देना। हा राम ! अर्थात् इच्छा के प्रतिकूल यह लिये जाता है। रावण ने व्यग्रता में इस बात का ध्यान न किया।

एहि विधि अर्थात् बलपूर्वक वह सीताजी को ले गया : रावण का महा अन्याय प्रमाणित हो गया। स्त्री हरण करनेवाला आततायी है। उसके वध में विचार नहीं। अशोक वन अति सुरक्षित था। विभीषण के बिना बताये जिसका पता हनुमानजी को न चला। वहाँ ले जाकर उसने सीताजी को रक्खा।

दो. हारि परा खल बहु बिधि, भय अरु प्रीति देखाइ।
तब असोक पादप तर, राखिसि जतनु कराइ॥
जेहि बिधि कपट कुरंग सँग, धाइ चले श्रीराम।
सो छबि सीता राखि उर, रटति रहति हरि नाम ॥२९.२३॥

अर्थ : सीताजी को बहुत प्रकार से भय और प्रीति दिखलाकर जब वह दुष्ट हार गया तब उन्हें यत्न करके अशोक वृक्ष के नीचे रख दिया। जिस प्रकार कपट मृग के साथ श्रीरामजी दौड़ चले थे उसी छवि को हृदय में रखकर वे हरिनाम रटती रहती हैं।

व्याख्या : दान और भेद के लिए कोई स्थान नहीं था। अतः भय और प्रीति से काम लिया। खल है। खल को पर अकाज में अधिक पुरुषार्थ हो जाता है। यथा : पर अकाज भट सहसबाहु से। पर यहाँ हारना पड़ा। पहिले अशोक वन के प्रासाद में रखना चाहा। पर भगवती वहाँ न रहेंगी। वनवास मिला है। अतः अशोक वृक्ष के तले रक्खा और वहाँ भी पहरे में।

प्रेम ते पीछे तिरीछे प्रियाहि चितै चित दै चले लै चित चोरे।
श्याम शरीर पसेउ लसै हुलसै तुलसी छबि सो मन मोरे॥
लोचन लोल चलै भृकुटी कल काम कमाननि सो तृण तोरे।
राजत राम कुरंग के संग निषंग कसे धनु से सर जोरे॥

यह विधि कपट कुरंग के संग धाइ चलने की है। उसी छवि ने चित्त चुराया है। अतः उसी छवि को हृदय में रखकर नाम रटती हैं।

४०. रघुवीर विरह वर्णन प्रसङ्ग

रघुपति अनुजहि आवत देखी। बाहिज चिंता कीन्ह बिसेखी॥
जनकसुता परिहरिउ अकेली। आयहु तात बचन मम पेली॥१॥

अर्थ : इधर श्रीरघुनाथजी ने छोटे भाई लक्ष्मणजी को आते देखकर बाह्य रूप में बहुत चिन्ता की और कहा : हे भाई! तुमने जानकीजी को अकेली छोड़ दिया और मेरा वचन टालकर यहाँ चले आये।

व्याख्या : अनुज को आते देखकर बाहर से विशेष चिन्ता की मुद्रा नाटक के पात्र की भाँति रामजी ने धारण की। पर हृदय से निश्चिन्त थे। व्यग्र होने के कारण अनुज ने सरकार को न देखा। चिन्तावाली बात भी बोले। बाह्य तभी लिखा जाता है जब अन्तर से भेद हो।

जनक सुता से भाव यह कि जिसके लिए इतना बड़ा समारोह हुआ था : देव दनुज धरि मनुज सरीरा। बिपुल बीर आये रन धीरा। ऐसे स्त्री रत्न को अकेले क्यों छोड़ा ? अथवा यदि कोई अनिष्ट हुआ तो जनकजी को क्या जवाब देगें ? भोरेहु भरत न पेलिहहि मनसहुँ राम रजाइ। सो तुमने मेरी आज्ञा कैसे हटायी।

निसिचर निकर फिरहिं बन माहीं। मम मन सीता आस्रम नाहीं ॥
गहि पद कमल अनुज कर जोरी। कहेउ नाथ कछु मोहि न खोरी ॥२॥

अर्थ : राक्षसों के झुण्ड वन में फिरते रहते हैं। मेरे मन में ऐसा आता है कि सीता आश्रम में नहीं हैं। छोटे भाई लक्ष्मणजी ने श्रीरामजी के चरण कमलों को पकड़कर हाथ जोड़कर कहा : हे नाथ ! मेरा कुछ भी दोष नहीं है।

व्याख्या : मैंने तुम्हें समझा दिया था : फिरत बिपिन निसिचर बहु भाई। सीता केरि करेहु रखवारी। मारीच ने तुम्हारा नाम लेकर इसीलिए पुकारा कि तुम चले आओ और इसीलिए मैंने भी कहा था : बुद्धि बिबेक बल समय बिचारी। सो तुमने बड़ी गलती की। अवश्य सीता को या तो राक्षस खा गये या हरण कर ले गये।

लक्ष्मणजी ने चरण पकड़ा अपराध क्षमापन के लिए। हाथ जोड़ा प्रार्थना करने के लिए। इसमें मेरा थोड़ा भी अपराध नहीं। सब अपराध सीताजी का है ऐसा ध्वनि से लक्षित कराते हैं। मुख से अपराध नहीं कहते। न वह मर्म वचन कहते हैं जो सीताजी बोल बैठी थीं।

अनुज समेत गए प्रभु तहवाँ। गोदावरि तट आस्रम जहवाँ ॥
आस्रम देखि जानकी हीना। भए बिकल जस प्राकृत दीना ॥३॥

अर्थ : लक्ष्मणजी सहित प्रभु श्रीरामचन्द्रजी वहाँ गये जहाँ गोदावरी के तट पर उनका आश्रम था। आश्रम को जानकीजी से रहित देखकर श्रीरामजी साधारण मनुष्य की भाँति व्याकुल और दुःखी हो गये।

व्याख्या : भाई का उत्तर पाते ही बात समझ लिया फिर उनसे इस विषय में कुछ न कहा। लक्ष्मणजी भी साथ लौट पड़े। सीताजी होतीं तो आये लिखते। गोदावरी निकट प्रभु रहे पर्णगृह छाइ : आश्रम तो मन्दाकिनी के निकट भी था। अतः आश्रम के साथ गोदावरी शब्द दिया।

पहिले ही कहा था : मम मन सीता आस्रम नांहीं वही बात हुई। जिस इन्द्रिय से जिस वस्तु का भाव ग्रहण होता है उसी से उसके अभाव का भी ग्रहण होता है। संसारिक पुरुष जैसे दीन और विकल होते हैं वैसे विकल हुए : मुनि अति बिकल मोह मति नाठी। मनि गिरि गई छूटि जनु गांठी।

हा गुन खानि जानकी सीता। रूप सील ब्रत नेम पुनीता ॥
लछिमन समुझाए बहु भाँती। पूछत चले लता तरु पाँती ॥४॥

अर्थ : हा गुणों की खानि जानकी ! हा रूप, शील, व्रत और नियमों में पवित्र सीते ! लक्ष्मणजी ने बहुत प्रकार से समझाया। तब श्री रामजी लताओं और वृक्षों की पंक्तियों से पूछते हुए चले।

व्याख्या : जिस भाँति भगवती ने विलाप किया : हा जगदेक बीर रघुराया। उसी भाँति सरकार भी विलाप करते हैं। उन्होंने जगदेक वीर कहा। ये गुण खानि कहते हैं। उन्होंने रघुराया कहा। ये जानकी सीता कहते हैं। उन्होंने : आरति हरन सरन सुख दायक कहा। ये : रूप सील व्रत नेम पुनीता कहते हैं। अनुज दियो भरोसो तौ लौ है सोच खरोसो। सिय समाचार प्रभु जौ लों न लहे।

लक्ष्मणजी ने समझाया कि सरकार को विलाप शोभा नहीं देता। उनका पता लगाना चाहिए :

नाथ रोकि मन सोक बस होहु न परम सुजान।
कलुषित मति अति करत नहि तुमसे ज्ञान निधान ॥
लखि बियोग दुख तजहु प्रभु प्रेमपात्र को नेह।
गीलीहू बाती जरत जब लगि भरो सनेह ॥
तात तजिय यह कृपिण मति आनि हिये उत्साह।
अर्थी जन को अर्थ बिनु होइ न सके निवाह ॥
नहि दुर्लभ कछु तिनहि जग जिनहि सदा उत्साह।
नहि कोउ बल उत्साह सम गोपद होय अथाह ॥
होत दुखी नहि कर्म में उत्साही जन कोय।
निश्चय सीता को मिलन उत्साहहि से होय ॥
तुम कहँ कैसी दीनता तुम त्रिभुवन आधार।
भूलि रहे निज रूप को कीजिय तनिक सँभार ॥
कहँ सीता कहि नाथ जब पूछेउ अति बिलखाय।
सहसा उठि मृगगन दयो दच्छिन दिसा दिखाय ॥
याते दच्छिन दिसि चलिय सीता हेरन हेतु।
चिन्ता कार्य बिनासिनी त्यागहु रघुकुल केतु ॥

सो उनकी बात मान गये तो लता तरु से पूछते चले। उन्मादावस्था कह रहे हैं। जो सुन सकता है वह देख भी सकता है। सीता के बिलाप सुनि भारी। भये चराचर जीव दुखारी। यथा : तस्मात् शृण्वन्ति पादपाः। तथा : तस्मात् पश्यन्ति पादपाः। वहाँ लता वृक्ष थे।

हे खग मृग हे मधुकर श्रेनी। तुम देखी सीता मृगनैनी ॥
खंजन सुक कपोत मृग मीना। मधुप निकर कोकिला प्रबीना ॥५॥
कुंद कली दाड़िम दामिनी। कमल सरद ससि अहि भामिनी ॥
बरुन पास मनोज धनु हंसा। गज केहरि निज सुनत प्रसंसा ॥६॥

अर्थ : हे पक्षियो ! हे मृगगण ! हे भौंरे की पंक्तियो ! तुमने कहीं मृगनयनी सीता को देखा है ? खञ्जन, तोता, कबूतर, हिरण, मछली, भौंरों का समूह, प्रवीण कोल, कुन्दकली, अनार, बिजली, कमल, शरद का चन्द्रमा और नागिनी, वरुण का पाश, कामदेव का धनुष, हंस, गज और सिंह ये सब आज अपनी प्रशंसा सुन रहे हैं।

व्याख्या : वहाँ खग मृग और मधुकर थे। खग मृग बृंद अनंदित रहहीं। मुखर मधुप गुंजत छबि लहहीं। सो न खग कूजते हैं। न मधुकर गूँजते हैं। न मृग कलोल करते हैं। अतः समझा कि ये लोग कुछ जानते हैं। अतः उन्हीं से पूछते हैं। नाम न जानते हों तो रूप बतलाते हैं : मृगनयनी। सरकार मृगलोचनी कहते ही थे। मृगलोचनि तुम भीरु सुभाए।

इस वर्णन में कोई क्रम नहीं है। प्रेमोन्माद के कथन में क्रम निबह भी नहीं सकता। गोस्वामीजी ने सरकार का नखशिख स्थान स्थान पर वर्णन किया है। भगवती के नखशिख के वर्णन का अधिकार नहीं है। पुत्र को माँ के नखशिख वर्णन का अधिकार स्वभावतः नहीं है। अतः वर्णन नहीं किया। यहाँ स्वयं सरकार विरहावस्था में नखशिख वर्णन कर रहे हैं। उसे भी कवि ने कितना सँभालकर लिखा। उपमेय का नाम तक नहीं आने दिया केवल उपमान कह रहे हैं। अठारह उपमाओं में सब कहा। नेत्र की उपमा खञ्जन से, मृग मीन से, नासिका की शुक से, कण्ठ की कपोत से, केश की मधुप निकर, सर्पिणी और वरुण पाश से, स्वर की कोकिला से, दाँत की कुन्दकली और दाडिम से, वर्ण की दामिनी से, कर पद की कमल से, मुख की शरद शशि से, गति की हंस और गज से और कटि की केहरि से उपमा दी जाती है।

इन अठारह की निन्दा होती रही कि ये उपमान : सीताजी के सामने कुछ नहीं हैं। ये जूठी की भाँति सीताजी के अङ्गों के सामने घृणास्पद समझी जाती रहीं। यथा : सब उपमा कवि रहे जुठारी। केहि पटतरिय बिदेह कुमारी। अब प्रशंसा हो रही है कि इनके सामने उपमेय कोई है ही नहीं।

श्रीफल कनक कदलि हरषाहीं। नेकु न संक सकुच मन माहीं॥
सुनु जानकी तोहि बिनु आजू। हरषे सकल पाइ जनु राजू॥७॥

अर्थ : बेल और कनक कदली : एक प्रकार का केला। हर्षित हो रहे हैं। इनके मन में जरा भी शङ्का और सङ्कोच नहीं है। हे जानकी ! सुनो। तुम्हारे बिना ये सब आज ऐसे हर्षित हैं मानों राज पा गये हों।

व्याख्या : कुच की उपमा श्रीफल से और कनक कदली की उपमा जंघा से दी जाती है। ये अङ्ग आवृत रहते हैं। जो अङ्ग आवृत रहते हैं उनके उपमान को निरावरण देखकर कहते हैं कि इन्हें लज्जा नहीं है। अतः अनावृत है और शङ्का भी नहीं है कि कदाचित् जानकीजी आजायँ तो फिर ये फीके पड़ जायँगे। अथवा इस बात की भी शङ्का नहीं है कि कोई हरण कर लेगा।

आज तक तेरे रहने से ये नहीं हरखे। आज इतने हर्षित हैं मानो इन्हें राज मिल गया है: राज्य में आभिमानिक सुख बड़ा भारी है। राज्य तुल्य भोग आमात्यादिक धनियों को भी होता है। पर उन्हें आभिमानिक सुख नहीं होता। आभिमानिक सुख ही साधारण धर्म है जिससे राज की उपमा दी। क्षत्रियों[१] को तो राज्य प्राप्ति से अधिक प्रिय और कुछ नहीं होता। अतः रामजी उनके हर्ष की उपमा राज्य प्राप्ति के हर्ष से देते हैं।

किमि सहि जात अनख तोहि पाहीं। प्रिया बेगि प्रगटसि कस नाहीं ॥
एहि बिधि खोजत बिलपत स्वामी। मनहुँ महा बिरही अति कामी ॥८॥

अर्थ: तुमसे यह स्पर्द्धा कैसे सही जाती है? हे प्रिये! तुम शीघ्र ही प्रकट क्यों नहीं होती? इस प्रकार स्वामी श्रीरामजी सीताजी को खोजते हुए ऐसा विलाप करते हैं जैसे कोई महा विरही और अत्यन्त कामी पुरुष हो।

व्याख्या: इनकी ऐंठ तू कैसे सह रही है। इनकी ऐंठ को प्रकट होकर क्यों नहीं मिटा देती। यहाँ प्रभु भी जानकी को प्रत्यक्ष कल्पना करके प्रलाप कर रहे हैं। मुझसे तो इनकी ऐंठ नहीं देखी जाती। क्योंकि तुझसे स्पर्द्धा रखते हैं। तुझसे कैसे सहा जा रहा है। तू शीघ्र ही प्रकट होकर इनकी ऐंठ मिटा क्यों नहीं देती।

रावण के ले जाने की विधि कहकर अब सरकार के खोजने और विलाप करने की विधि कहते हैं। खोजने की विधि: पूछत चले लता तरु पाँती। विलाप की विधि: किसी उपमान को देखकर उपमेय स्मरण हो उठता है। भाव यह कि विधि ऐसी पकड़ रखी है जो अति विरही और अति कामी पकड़ते हैं।

पूरन काम रामु सुखरासी। मनुज चरित कर अज अबिनासी ॥

४१. गीधक्रिया प्रसङ्ग

आगे परा गीधपति देखा। सुमिरत राम चरन जिन्ह रेखा ॥९॥

अर्थ: पूर्णकाम, आनन्द की राशि, अजन्मा और अविनाशी श्रीरामजी मनुष्यों के से चरित्र कर रहे हैं। आगे जाने पर उन्होंने गीधपति जटायु को पड़ा देखा।

व्याख्या: परन्तु सरकार पूर्णकाम हैं। अतः उन्हें कामना नहीं। यथा: कहेहु तात अस मोर प्रणामा। सब प्रकार प्रभु पूरण कामा। और सुखराशि हैं। उनका विलाप करना विडम्बना है। मनुज चरित कर रहे हैं। यथा: एक बार अतिसै सब चरित किये रघुबीर। जो प्रभु बिपिन फिरत तुम देखा। बंधु समेत धरे मुनि बेखा। जासु चरित अवलोकि भवानो। सती सरीर रहिहु बौरानी। नहीं तो न उनका जन्म होता है और न उनमें बिकार आता है। उमा के समझाने के लिए माधुर्य के साथ ही ऐश्वर्य कहा।

---

१. राज्यलाभाद्विना नान्यत् क्षत्रियाणामतिप्रियम्। वि. पु. ६.७.१

इस भाँति जहाँ जटायुजी पड़े थे वहाँ पहुँच गये। गीधपति को सामने पड़ा हुआ देखा। गीधपति ने नहीं देखा। आसन्नमृत्यु हैं। आँख बन्द है। मानसिक क्रिया मात्र थोड़ी सी हो रही है। सरकार के चरण के चिह्न ध्वज कुलिश अंकुश कंज का ध्यान कर रहे हैं। गीध की दृष्टि तीव्र होती है। इन्होंने सूक्ष्म रेखाओं को भी देखा था। उन रेखाओं पर मोहित थे। रेखाओं के ध्यान के पृथक् पृथक् माहात्म्य हैं। यथा : अंकुश मन गज वशकारी हैं। वज्र पाप पहाड़ का नाश करता है। ध्वजा के ध्यान से परलोक जय होता है। कंज भवमोचन है। इससे ताप नष्ट होता है। इत्यादि।

दो. कर सरोज सिर परसेउ, कृपासिन्धु रघुबीर।
निरखि राम छबि धाम मुख, बिगत भई सब पीर ॥३०.२४॥

अर्थ : कृपा सागर श्रीरघुवीर ने अपने कर कमल से उसके सिर का स्पर्श किया। श्रीरामजी का शोभाधाम मुख देखकर उसकी सब पीड़ा जाती रही।

व्याख्या : कबहुँ सो कर सरोज रघुनायक धरिहउ नाथ सीस मेरे। जेहि कर अभय किये जन आरत वारक विवस नाम टेरे। अभी तक गीध के घायल होने का कारण नहीं मालूम। फिर भी दुःखी देखकर अस्पृश्य गीध के सिर पर हाथ रक्खा। क्योंकि कृपासिन्धु हैं। रघुवीर हैं। अतः दयावीर भी हैं। सिर पर हाथ रखते ही आँख खुल गयी। तब मुख छवि देखा। देखते ही पीड़ा मिटी। क्योंकि वदन पंजक भव मोचन हैं। सब पीर, कालकर्म गुण सुभाव उसके सीस तपत।

तब कह गीध बचन धरि धीरा। सुनसु राम भंजन भव भीरा ॥
नाथ दसानन एह गति कीन्हीं। तेंहि खल जनक सुता हरि लीन्हीं ॥१॥

अर्थ : तब धीरज धरकर गीधराज ने यह वचन कहा : हे जन्म मृत्यु के भय का नाश करनेवाले श्रीरामजी ! सुनिये। हे नाथ ! रावण ने मेरी यह दशा की है। उसी दुष्ट ने जानकीजी को हर ली है।

व्याख्या : सरकार की मुख छवि देखकर पीर मिटने पर धीर धारण किया। शरीर क्षत विक्षत होने से बोल नहीं सकते थे। उनकी भवभीर दर्शन से मिट गयी। इसलिए भंजन भवभीरा कहते हैं। राम नाम का भी उच्चारण हुआ। प्रभु कुछ पूछते नहीं हैं। पर इन्हें कहने की जल्दी है कि कहीं सीता की सुधि बिना दिये ही मेरे प्राण न निकल जायँ।

दशानन ने यह गति की। भाव यह है कि उसे दशमुख हैं। यही उसकी पहिचान है : दस सिर ताहि बीस भुजदंडा। रावन नाम वीर बरिबंडा। रावण का हाल कहते हैं कि वह खल है। उसने जनकसुता का हरण किया। जनक ऋषियों के मान्य हैं और यह ऋषिपुत्र होकर जनकसुता का हरण करता है। अर्थापत्ति से जटायुजी का जीतेजी जानकी को न जाने देना सिद्ध हुआ। गीधराज ने एहसान न

जताया। भगवती को चिन्ता थी : बिपति मोर को प्रभुहिं सुनावा। सो गीधराज ने सुना दिया।

लै दच्छिन दिसि गएउ गोसाईं। बिलपति अति कुररी की नाईं॥
दरस लागि प्रभु राखेउँ प्राना। चलन चहत अब कृपानिधाना॥२॥

अर्थ : हे गोसाईं! वह उन्हें लेकर दक्षिण दिशा को गया है। सीताजी कुररी की तरह अत्यन्त विलाप कर रहीं थीं। हे प्रभो! मैंने आपके दर्शन के लिए ही प्राण रोक रक्खे थे। हे कृपानिधान! अब ये चलना चाहते हैं।

व्याख्या : अब खोजने का मार्ग बतलाते हैं। दक्षिण दिशा ले गया। आकाश मार्ग में विलाप करती जाती थीं। इससे कुररी की उपमा दी। कुररी क्रौञ्च पक्षी को कहते हैं। यह जोड़ा के विछोह में अत्यन्त विलाप करती है। पृथ्वी पर गिरने पर भी जाने की दिशा देख रक्खा था। किसी वस्तु में अत्यन्त ममता रहने से जल्दी प्राण निकलता नहीं। मुझे दर्शन की अत्यन्त इच्छा थी। जिसमें सीताजी का समाचार दे सकूँ। क्षत विक्षत होने पर जीने के लिए प्राण रखने की इच्छा आवश्यक है। अथवा गीधराज की मृत्यु और मोक्ष दो वस्तु नहीं हैं। किसी वासना के रहने से मोक्ष नहीं होता। इसलिए गीधराज की मृत्यु नहीं हुई। अब कहते हैं कि वासना पूरी हो गयी। अत: अब चलना चाहता हूँ। इससे पहिले मैंने चलना नहीं चाहा : कांक्षा मृत्यु की सिद्धि प्राप्त हो गयी। सरकार का हाथ सिर पर है इसलिए कृपानिधान कहा।

राम कहा तनु राखहु ताता। मुख मुसुकाइ कही तेंहि बाता॥
जाकर नाम मरत मुख आवा। अधमौ मुकुत होइ स्रुति गावा॥३॥

अर्थ : श्रीरामचन्द्रजी ने कहा : हे तात! शरीर को बनाये रखिये। तब उसने मुसकुराते मुँह से यह बात कही : मरते समय जिसका नाम मुख में आ जाने से महान् पापी भी मुक्त हो जाता है। ऐसा वेद गाते हैं।

व्याख्या : रामजी ने कहा हे तात! आप शरीर रक्खें। यथा :

मेरे जान तात कछू दिन जी जै।
देखिअ आप सुअन सेवा सुख मोहि पितु को सुख दीजे।
दिव्य देह इच्छा जीवन जग विधि मनाइ मँगि लीजे॥
हरिहर सुजस सुनाइ दरस दे लोग कृतारथ कीजे॥

सुनकर गीधराज मुसकुराये कि भला! मैं ऐसा अवसर चूक सकता हूँ। यथा : जन्म जन्म मुनि जतन कराहीं। अंत राम कहि आवत नाहीं। मम लोचन गोचर सोइ आवा। बहुरि कि प्रभु अस बनहि बनावा। और बोले यथा—

देखि बदन सुनि बचन अमिय तन राम नयन जल भीजे।
बोल्यौ विहँसि विहँग रघुवर बलि कहौं सुभाव पती जे॥
मेरे मरिवे सम न चारि फल होहिं तौ क्यों न कही जे।
तुलसी प्रभु दियो उतरु मौन ही परी मानौ प्रेम सही जे॥

सो मम लोचन गोचर आगे। राखौं देह नाथ केहि खाँगे ॥
जल भरि नयन कहहिं रघुराई। तात करम निज तें गति पाई ॥४॥

अर्थ : वही आप मेरे नेत्रों के विषय होकर सामने खड़े हैं। हे नाथ ! अब मैं किस कमी की पूर्ति के लिए देह को रक्खूँ ? नेत्रों में जल भरकर श्रीरघुनाथजी कहने लगे : हे तात ! आपने अपने श्रेष्ठ कर्मों से दुर्लभ गति पायी।

व्याख्या : गीधराज ने कहा : मरती समय तुम्हारे नाम स्मरण का महा माहात्म्य है। महा पापी भी तर जाता है। पर उस समय तुम्हारे स्मरण की सम्भावना ही नहीं है : प्राणप्रयाणसमये कफवातपित्तैः कण्ठावरोधनविधौ स्मरणं कुतस्ते। मेरा ऐसा सौभाग्य है कि ऐसे समय में तुम स्वयं मेरे आँखों के सामने हो। अब किस घाटा की पूर्ति के लिए शरीर रक्खूँ।

रघुराई हैं बड़े कृतज्ञ। शरीर छोड़ने का निश्चय सुनकर आँख में आँसू आगया। कहने लगे : तुम जो दुर्लभ गति प्राप्ति कर रहे हो वह तुम्हारे कर्म का फल है।

परहित बस जिन्ह के मन माहीं। तिन्ह कहुँ जग दुर्लभ कछु नाहीं ॥
तनु तजि तात जाहु मम धामा। देउँ काह तुम्ह पूरनकामा ॥५॥

अर्थ : जिनके मन में दूसरे का हित बसता है उनके लिए जगत् में कुछ भी दुर्लभ नहीं है। हे तात ! शरीर छोड़कर आप मेरे परम धाम में जाओ। मैं आपको क्या दूँ। आप तो पूर्णकाम हैं।

व्याख्या : स्वार्थ तो सबके मन में बसता है। पर जिस महापुरुष के मन में परहित बसे उसके अन्त समय में मेरा आना दुर्लभ नहीं है। क्योंकि : परहित सरिस धर्म नहि भाई। तुमने परहित के लिए प्राण दिया है। सद्गति तुम्हारे हिस्से की चीज है। गीधराज : राखौ देह नाथ केहि खाँगे कह चुके हैं। अतः प्रभु भी उन्हें पूर्णकाम कह रहे हैं। पूर्णकाम को कोई कुछ दे नहीं सकता। पूर्णकाम के लिए ही राम धाम है। जहाँ से फिर लौटना नहीं पड़ता।

दो. [1]सीताहरण तात जनि, कहेहु पिता सन जाइ।
जौं मैं राम त कुल सहित, कहिहि दसानन आइ ॥३१.२५॥

अर्थ : हे तात ! सीताहरण की बात आप जाकर पिताजी से न कहियेगा। यदि मैं राम हूँ तो दशमुख रावण कुटुम्ब सहित वहाँ जाकर स्वयं ही कहेगा।

व्याख्या : सीताहरण सुनकर पिताजी परलोक में भी दुःखी होंगे। हरण प्राप्ति दोनों साथ ही सुनेंगे तो दुःख न होगा। धर्मात्माओं के सङ्कल्प मात्र से परलोक में माता पिता पुत्र सुहृद उपस्थित हो जाते हैं। सो तुम ऐसे लोक को जा रहे हो

---

१. यहाँ पर्यायोक्ति अलङ्कार है।

जहाँ स्मरण मात्र से मित्र उपस्थित होंगे। महाराज दशरथ उपस्थित हो जायँगे और महाराज के स्मरण से आप उपस्थित होंगे। सो यह चर्चा न करना। जटायुजी ने कहा था : होइहि सलभ सकल कुल तोरा। उसी को दृढ़ करते हुए कहते हैं कि शीघ्र ही रावण कुल सहित वहाँ उपस्थित होगा। वह राग द्वेष शून्य देश है। रावणादि भी प्रेम से मिलेंगे। वही सब कथा कहेंगे। मेरो सुनियो तात सँदेसो। सीय हरन जनि कहेउ पिता सन होइहैं अधिक अँदेसो। रावरे पुन्य प्रताप अनल महु अलप दिननि रिपु दहिहैं। कुल समेत सुरसभा दसानन समाचार सब कहिहैं।

गीध देह तजि धरि हरि रूपा। भूषन बहु पट पीत अनूपा॥
स्याम गात बिसाल भुज चारी। अस्तुति करत नयन भरि बारी॥१॥

अर्थ : जटायु ने गीध का देह त्यागकर हरि का रूप धारण किया और बहुत से दिव्य आभूषण और अनूप पीताम्बर पहना। श्याम शरीर है। विशाल चार भुजाएँ हैं और नेत्रों में जल भरकर वह स्तुति कर रहे हैं।

व्याख्या : प्रभु ने कहा : तनु तजि तात जाहु मम धामा। उसी का साफल्य दिखला रहे हैं कि जटायु की गीधवाली शरीर छूट गयी और हरिधाम में जाने योग्य शरीर की प्राप्ति हुई। वह देह स्वयं हरि के अनुरूप थी। मुकुट अङ्गदादि भूषणों से सुशोभित थी और दिव्य पिताम्बर धारण किये थी। उसका श्याम वर्ण था। विशाल चार भुजाएँ थी : हरिलोक निवासियों का रूप भूषण वसनादि हरि के सदृश होता है। भोग और ऐश्वर्य भी वैसा ही होता है। केवल कौस्तुभ मणि विप्रचरण चिह्न नहीं रहता और न उत्पत्ति प्रलय का सामर्थ्य होता है।

दिव्य शरीर प्राप्ति के अनन्तर जटायुजी आँखों में आँसू भरकर स्तुति करने लगे।

छं. जय राम रूप अनूप निर्गुन सगुन गुन प्रेरक सही।
दससीस बाहु प्रचंड खंडन चंड सर मंडन मही॥
पाथोद गात सरोज मुख राजीव आयत लोचनं।
नित नौमि राम कृपाल बाहु बिसाल भव भय मोचनं॥

अर्थ : हे रामजी! आपकी जय हो। आपका रूप अनुपम है। आप निर्गुण हैं। सगुण हैं और सत्य ही गुणों के प्रेरक हैं। दस सिरवाले रावण के प्रचण्ड भुजाओं को खण्ड खण्ड करने के लिए प्रचण्ड बाण धारण करनेवाले, पृथ्वी को सुशोभित करनेवाले, सजल मेघ के समान श्याम शरीरवाले कमल के समान मुख और कमल के समान नेत्रवाले, विशाल भुजाओंवाले और भवभय से छुड़ानेवाले कृपालु श्रीरामजी को मैं नित्य नमस्कार करता हूँ।

व्याख्या : जटायुजी कहते हैं कि आपका राम रूप अनूप है। क्योंकि वह सगुण भी है। निर्गुण भी है और वस्तुतस्तु गुण का प्रेरक है। अर्थात् आपके सगुण होने

पर भी निर्गुण रूप अक्षुण्ण ज्यों का त्यों बना हुआ है। निर्गुण होते हुए भी गुणों पर आपका सच्चा आधिपत्य है। आपकी प्रेरणा से घोर तामसी देह छूटकर मुझे यह शुद्ध सात्त्विकी शरीर प्राप्त हुआ है। मैं भविष्य को वर्तमान की भाँति देख रहा हूँ। ये आपके चण्ड बाण दशशीश के प्रचण्ड बाहु के खण्डन करनेवाले हैं और पृथ्वी को रोग विनिर्मुक्त करके शोभा प्रदान करनेवाले हैं। यथा : दससीस बिनासन बीस भुजा कृत दूर महामहि भूरि रुजा। आपका सजल जलद नील वर्ण, कमल सा मुख और कमल से ही बड़े बड़े नेत्र और विशाल भुजाएँ संसार के भय को दूर करनेवाली हैं। यथा : स्याम सरूप सुभाय सुहावन। सोभा कोटि मनोज लजावन। निरखि : बदन पंकज भवमोचन। मामवलोकय : पंकज लोचन कृपा बिलोकनि सोच बिमोचन : तथा सुमिरत श्री रघुबीर की बाहें। होत सुगम भव उदधि अगम अति कोउ लाँघत कोउ उतरत थाहें। आपसे पृथ्वी की शोभा हो रही है।

लोचन और भुज सबके सब भवमोचन हैं।

पाथोद गात भवमोचन	यथा : श्यामल गात प्रणत भयमोचन।
सरोज मुख भवमोचन	यथा : देखि बदन पंकज भवमोचन।
राजीव लोचन भवमोचन	यथा : राजीव बिलोचन भवभय मोचन।
बाहु विसाल भवभय मोचन	यथा : सुमिरत श्रीरघुबीर को बाहें। होत सुगम भव उदधि अगम अति कोउ लाँघत कोउ उतरत थाहें॥

अतः हे कृपाल राम ! मैं आपको नित्य नमस्कार करता हूँ।

बलमप्रमेयमनादिमजमव्यक्तमेकमगोचरं।
गोविंद गोपर द्वंद्वहर बिग्यानघन धरनीधरं॥
जे राम मंत्र जपंत संत अनंत जन मन रंजनं।
नित नौमि राम अकाम प्रिय कामादि खल दल गंजनं॥

अर्थ : आप अपरिमित बलवाले हैं। अनादि, अजन्मा, अव्यक्त, एक अगोचर गोविन्द : वेद वाक्यों द्वारा जानने योग्य। इन्द्रियों से अतीत, जन्म मरण, सुख दुःख, हर्ष, शोकादि द्वन्द्वों को हरनेवाले विज्ञान की घनमूर्ति और पृथ्वी के आधार हैं तथा जो संत राम मंत्र को जपते हैं उन अनन्त सेवकों के मन का आनन्द देनेवाले हैं। उन निष्काम प्रिय तथा काम आदि दुष्टों के दलन करनेवाले श्रीराम जी को मैं नित्य नमस्कार करता हूँ।

व्याख्या : बलमप्रमेय : से सर्वशक्तिमान् होना कहा। अनादि कहकर पुराण पुरुष होना जनाया। अज कहकर माया से मानुष रूप धारण करना बतलाया। अव्यक्त कहकर मन बुद्धि से परे होना द्योतित किया। एक से एकमेवाद्वितीयम्, नेह नानास्ति किञ्चन रूप को लक्षित किया। अगोचर कहकर इन्द्रियों से परे होना कहा।

यथा : न तत्र चक्षुर्गच्छति न वाग् गच्छति नो मनो न विद्मो न विजानीमो यथैतदनु शिष्यादन्यदेव तद्विदितादथो अविदितादधि। गोविन्द कहकर औपनिषद पुरुष होना बतलाया। यथा : तमौपनिषदं पुरुषं पृच्छामि। गोपर से विज्ञाता होना कहा। यथा : विज्ञातारं वा अरे केन विजानीयात्। द्वन्द्वहर से विपत्ति नाशक। विग्यान घन से ब्रह्मरूप और धरनीधर से सर्वाधिष्ठान कहा।

इस भाँति प्रभु के स्वरूप का वर्णन करके मन्त्रराज की महिमा कहते हैं कि अनन्त : असंख्य सन्तों ने इसी का जप किया है करेंगे और करते हैं और आनन्द को प्राप्त होते हैं। यथा : बरन बिलोचन जनजिअ जोऊ।

जटायुजी कहते हैं कि मैं ऐसे राम की नित्य वन्दना करता हूँ। जिसे अकाम प्रिय हैं और जो अकाम को प्रिय है। क्योंकि कामादि खल दल के नाश करनेवाले वे ही हैं। यथा : तब लगि हृदय बसत खल नाना। लोभ मोह मत्सर मद माना। जब लगि उर न बसत रघुनाथा। धरे चाप सायक कटि भाथा।

जेहि स्रुति निरंजन ब्रह्म व्यापक बिरज अज कहि गावहीं।
करि ध्यान ग्यान बिराग योग अनेक मुनि जेहि पावहीं॥
सो प्रगट करुनाकंद सोभा बृंद अग जग मोहई।
मम हृदय पंकज भृंग अंग अनंग बहु छबि सोहई॥

अर्थ : जिनको श्रुतियाँ माया से परे ब्रह्म व्यापक निर्विकार और जन्मरहित कहकर गान करती हैं। मुनि जिन्हें ध्यान, ज्ञान, वैराग्य और योग आदि अनेक साधन करके पाते हैं। वे ही करुणाकन्द शोभा के समूह स्वयं प्रकट होकर जड़ चेतन समस्त जगत् को मोहित कर रहे हैं। वे ही मेरे हृदयकमल के भ्रमर रूप हैं और उनके अंग अंग में बहुत से कामदेवों की छवि शोभा पा रही है।

व्याख्या : श्रुति कहती है कि रामजी निरञ्जन हैं। अति सूक्ष्म होने से आकाश की भाँति निर्लेप हैं। ब्रह्म हैं। सबसे बड़े हैं। व्यापक हैं। देश काल दोनों में व्याप्त हैं। यथा : देस काल दिसि बिदिसहु माँहीं। कहहु सो कहाँ जहाँ प्रभु नाँहीं। विरज से अर्थात् प्रकृति के पार हैं। अतः अज हैं। किसी भाँति परिच्छिन्न होने योग्य नहीं हैं। ध्यान, ज्ञान, विराग से अर्थात् काण्डत्रय की सहायता से योग द्वारा मुनि जिसे प्राप्त करते हैं। यथा : ज्ञानं कर्म च भक्तिश्च नान्योपायोऽस्ति भूतले। दूसरा उपाय कोई नहीं है। अब सुयोग कहते हैं कि वही नयन विषय हो रहे हैं। कारण यह है कि करुणाकन्द हैं। इस समय करुणा की वर्षा हो रही है। रामावतार ही करुणावतार है। इससे और भी सुभीता है। भयानक रूप से प्रकट होते तो लोग घबराते। यहाँ तो सुन्दरता से संसार को मोहित कर रहे हैं। जटायुजी कहते हैं कि कहाँ तक करुणा कही जाय। मेरे हृदय कमल के भृङ्ग हो रहे हैं। अङ्ग अङ्ग पर अनेक कामोंकी शोभा हो रही है।

जो अगम सुगम सुभाव निर्मल असम सम सीतल सदा।
पश्यन्ति जं जोगी जतन करि करत मन गो बस सदा ॥
सो राम रमा निवास संतत दास बस त्रिभुवन धनी।
मम उर बसउ सो समन संसृति जासु कीरति पावनी ॥

अर्थ : जो अगम और सुगम हैं। निर्मल स्वभाव हैं। विषम और सम हैं तथा सदा शीतल हैं। मन और इन्द्रियों को सदा वश में करते हुए योगीजन बहुत साधन करने पर जिन्हें देख पाते हैं। वे तीनों लोकों के स्वामी रमानिवास श्रीरामजी निरन्तर अपने दासों के वश में रहते हैं। वे ही मेरे हृदय में निवास करें। जिनकी पवित्र कीर्ति आवागमन को मिटानेवाली है।

व्याख्या : जो अगम हैं और सुगम भी हैं। यथा : मुनि जेहि ध्यान न पावहिं नेति नेति कह बेद। सो अज प्रेम भगति बस कोसल्या के गोद। जिसका स्वभाव निर्मल है। यथा : रामहिं मातु बचन सब भाये। जिमि सुरसरि गत सलिल सोहाये। जो सम भी हैं। विषम भी हैं। यथा : जद्यपि सम नहिं राग न रोषू। गहइ न पाप पुण्य गुन दोषू। तदपि करइ सम बिषम बिहारा। भक्त अभक्त हृदय अनुसारा। सदा शीतल हैं। यथा : सिसुपन ते पितु मातु बंधु गुरु सेवक सचिव सखाउ। कहत राम बिधु बदन रिसौंहे सपनेहु लख्यो न काउ। वह मांसचक्षु से नहीं देखे जा सकते। उनके लिए योग दृष्टि तथा शास्त्र दृष्टि चाहिए। यथा : तदीक्षणस्य स्वाध्यायचक्षुर्योगस्तथा परम्। न मांसचक्षुषा द्रष्टुं ब्रह्मभूतः स शक्यते। वि. पु. और योग दृष्टि के लिए चित्तवृत्ति का निरोध सदा चाहिए। दास १र वशता कहते हैं।

ऐसेउ प्रभु सेवक बस अहई। भगति हेतु लीला तनु गहई ॥
जग पावन कीरति बिस्तरिहहि। गाइ गाइ भवनिधि नर तरिहहि ॥

अतः जटायुजी उन्हें हृदय में बसने के लिए प्रार्थना करते हैं। पाँच विषय का ही इसमें वर्णन है। १. सगुण रूप २. निर्गुण रूप ३. मन्त्र ४. अवतार ५. और भक्त परतन्त्रता। ये ही हस्तनक्षत्र के पाँच तारे हैं। इसको फल श्रुति है : काम कोह कलिमल करि गन के। केहरि सावक जन मन बन के।

दो. अबिरल भगति माँगि बर, गीध गएउ हरिधाम।
तेहि की क्रिया जथोचित, निज कर कीन्ही राम ॥३२.२६॥

अर्थ : अखण्ड भक्ति का वर माँगकर गृध्रराज जटायु श्रीहरि के परम धाम को चले गये। श्रीरामचन्द्रजी ने उसकी दाह कर्म आदि सारी क्रियाएँ यथायोग्य अपने हाथों से की।

व्याख्या : अविरल भक्ति स्तुति के बाद माँगी। बड़े का नाता मान रक्खा है। इसलिए एवमस्तु नहीं कहा। सरकार ने : जाहु मम धामा कहा था। सो हरि

धाम गये। सरकार ने स्वयं पिता की भावना से यथोचित क्रिया की। पक्षियों में मांस वितरण किया। तृप्यन्तु पक्षिणः सर्वे तृप्तो भवतु पक्षिराट्। धाम देने के बाद क्रिया की आवश्यकता न थी। परन्तु गीधराज के शरीर की प्रतिष्ठा के लिए सरकार ने अपने हाथ से क्रिया की।

कोमल चित अति दीनदयाला। कारन बिनु रघुनाथ कृपाला ॥
गीध अधम खग आमिष भोगी। गति दीन्हीं जो जाचत जोगी ॥१॥

अर्थ: श्री रघुनाथजी अत्यन्त कोमल चित्तवाले दीनदयालु और बिना ही कारण कृपालु हैं। गीध पक्षियों में भी अधम पक्षी और मांसाहारी था। उसको भी वह दुर्लभ गति दो। जिसे योगीजन माँगते रहते हैं।

व्याख्या: प्रायेण प्रभु लोग पर वेदना नहीं जानते कठोर चित्त होते हैं। पर: अति कोमल रघुबीर सुभाऊ। यद्यपि अखिल लोक कर राऊ। परन्तु श्रीरामजी अति कोमल चित्त हैं। अपना धाम देने पर भी सन्तोष नहीं। अपने हाथ से क्रिया करने लगे। दीनदयाल से सङ्कटहारी कहा। यथा: दीनदयाल बिरद संभारी। हरहु नाथ मम संकट भारी। बिनु हेतु सनेही हैं। इसी भाँति बिनु हेतु कृपाल हैं। कोमल चित्त हैं। अतः अविरल भक्ति दिया। दीनदयाल हैं। अतः निज धाम दिया। निष्कारण कृपालु हैं। इसलिए अपने हाथ क्रिया किया। आप ही गुण देते हैं और आप ही उस गुण पर मुग्ध होते हैं।

भक्ति स्पृहारहित को दी जाती है। गीध को नहीं। हरि धाम पवित्र मुनियों के लिए है अधम खग के लिए नहीं। प्रभु के करकञ्ज की छाया दयालु लोगों के लिए है हिंसक के लिए नहीं। गीध शकुनाधम सब भाँति अपावन होते हैं। उनके जीवन का मूल्य क्या है? अधम खग तो बहुत हैं। पर मुर्दा खानेवाला गीध ही है। योगी का सार्वभौम अहिंसा महाव्रत है। सो गीध को ऐसी गति दी जिसके लिए योगी लोग तरसते हैं।

सुनहु उमा ते लोग अभागी। हरि तजि होहिं बिषय अनुरागी ॥

४२. कबन्धवध तथा शबरी गति प्रसङ्ग

पुनि सीतहि खोजत द्वौ भाई। चले बिलोकत बन बहुताई ॥२॥

अर्थ: हे पार्वती! सुनो। वे लोग अभागे हैं जो भगवान् को छोड़कर विषयों से अनुराग करते हैं। फिर दोनों भाई सीताजी को खोजते हुए आगे चले। वे वन की सघनता देखते जाते हैं।

व्याख्या: नर तन पाइ बिषय मन देहीं। पलटि सुधा ते सठ विष लेहीं। हरि रूप सुधा है और विषय विष है। गीध से इतना ही हुआ कि हरिपद में अनुरक्त हो गया। अतः वह महा भाग्यवान् हो गया। गीध भाग्यवान् हुआ। रावण अभागी हुआ। पहले खग, मृग तथा मधुकर श्रेणी से सीता का पता पूछते थे। अब पता

लग गया। अतः अब उनसे नहीं पूछते हैं पर खोजते हैं। यह नहीं मालूम कि रावण ने कहाँ रख छोड़ा है। वन बहुत बड़ा है। इतना बड़ा वन अब तक नहीं मिला। अतः उसकी बहुतायत देखते हुए चले जाते हैं।

संकुल लता बिटप घन कानन। बहु खग मृग तहँ गज पंचानन ॥
आवत पंथ कबंध निपाता। तेहि सब कही साप कै बाता ॥३॥

अर्थ : वह सघन वन लताओं और वृक्षों से भरा है। उसमें बहुत से पक्षी, मृग, हाथी और सिंह रहते हैं। श्रीरामजी ने रास्ते में आते हुए कबन्ध राक्षस को मारा। उसने शाप की सब बातें कहीं।

व्याख्या : वन की घनता कहते हैं कि विटप से भरा हुआ था और उनमें लताएँ लिपटी हुई थीं। फलदार वन है। खग मृग बहुत हैं। बड़ा घोर वन है। इसलिए गज पञ्चानन भी हैं। मनुष्य का उल्लेख नहीं है। इससे ज्ञात होता है कि घोर निर्जन वन था। कबन्ध के भय से कोई आता जाता न था।

प्रभु जिधर जाते थे उधर वह आता था। इससे उसका मार्ग में बाधक होना कहा। मरने के बाद वह अपने पूर्व रूप में हो गया। शाप मिलने के कारण वह राक्षस हो गया था। मारे जाने को उसने उपकार माना। कृतज्ञता के प्रकाश के लिए उसने शाप का सब वृत्तान्त प्रभु से निवेदन किया कि मैं पूर्वजन्म में बड़ा सुन्दर था। पर ऐसा ही भयानक रूप धारण करके मुनियों को डराता फिरता था।

दुरबासा मोहि दीन्ही स्रापा। प्रभु पद पेखि मिटा सो पापा ॥
सुनु गंधर्ब कहउ मैं तोही। मोहि न सोहाइ ब्रह्मकुल द्रोही ॥४॥

अर्थ : उसने कहा कि इसी पर : दुर्वासाजी ने मुझे शाप दे दिया। अब प्रभु के चरणों को देखने से वह पाप मिट गया। श्रीरामजी ने कहा : हे गन्धर्व ! सुनो मैं तुम्हें कहता हूँ। ब्राह्मणकुल से द्रोह करनेवाला मुझे नहीं सुहाता।

व्याख्या : दुर्वासा का शाप था। मिटनेवाला नहीं। वह देवासुर संग्राम में लड़ा। इन्द्र का वज्र लगा। फिर भी शाप न मिटा। पाप के कटने के लिए ही मुनि लोग कृपा करके शाप देते हैं। सो पाप प्रभु के दर्शन से कटा। सन्मुख होइ जीव मोहि जबहीं। जन्म कोटि अघ नासहिं तबहीं।

प्रभु ने गन्धर्व कहकर उसको सम्बोधन किया : इससे पता चलता है कि पूर्वजन्म में वह गन्धर्व था। और कहा कि मुझे ब्राह्मणकुल से द्रोह करनेवाला अच्छा नहीं लगता। ब्राह्मण[1] और गाय एक कुल की दो शाखा हैं। एक में मन्त्र और दूसरे में हवि प्रतिष्ठित है। अर्थात् ये ही दोनों यज्ञ के मुख्य साधन हैं और यज्ञ से ही दोनों लोकों का कल्याण होता है। गो ब्राह्मणकुल का द्रोह करना तो देवलोक

---

१. ब्राह्मणाश्चैव गावश्च कुलमेकं द्विधा कृतम्। एकत्र मन्त्रास्तिष्ठन्ति हविरन्यत्र तिष्ठति। मनुः.

से चलते हुए व्यापार के बन्द करने की चेष्टा है। यह यज्ञपुरुष को प्रिय हो नहीं सकतो। जिस भांति गो के दुग्धादि से ही यज्ञ सम्पन्न होते हैं। बकरी के दूध से सम्पन्न नहीं हो सकते। उसी भांति ब्राह्मण मुखोच्चरित मन्त्रों से ही यज्ञ सुसम्पन्न होते हैं। अब्राह्मण के मुखोच्चरित मन्त्र से नहीं होते। इसीलिए हिन्दू जाति और उसके शास्त्रों में गोकुल और ब्राह्मणकुल का बड़ा मान है। यथा :

दो. मन क्रम बचन कपट तजि, जो कर भूसुर सेव।
मोहि समेत बिरंचि सिव, बस ताकें सब देव ॥३३.२७॥

अर्थ : मन कर्म और वचन से कपट छोड़कर जो ब्राह्मणों की सेवा करता है। मुझ समेत ब्रह्मा शिव आदि सब देवता उसके वश में हो जाते हैं।

व्याख्या : ब्राह्मणों का वेद में प्रधान अधिकार है। अतः वे पृथ्वी के देवता हैं। आज भी जिसको शास्त्र का ज्ञान है उसे साक्षात् या परम्परया ब्राह्मणों से ही हुआ है। अतः उनकी सेवा कपट छोड़कर करनी चाहिए। बाहर से नम्र रहे और भीतर से नम्र नहीं यही कपट सहित सेवा है : बाहिज नम्र देखि मोहि सांई। बिप्र पढ़ाव पुत्र की नांई। सब देवों के वशीकरण का द्विज सेवा ही उपाय है। यथा : किं तस्य दुर्लभतरमिह लोके परत्र च। यस्य विप्राः प्रसीदन्ति शिवो विष्णुश्च सानुगः। भाग०.

सापत ताड़त परुष कहंता। बिप्र पूज्य अस गावहिं संता॥
पूजिय बिप्र सील गुन होना। सूद्र न गुन गन ग्यान प्रबीना ॥१॥

अर्थ : शाप देता हुआ मारता हुआ और कठोर वचन कहता हुआ भी ब्राह्मण पूज्य हैं। ऐसा सन्त कहते हैं। शील और गुण से हीन भी ब्राह्मण पूजनीय है और गुणगणों से युक्त और ज्ञान में निपुण भी शूद्र पूजनीय नहीं है।

व्याख्या : गुणतः तो सभी पूज्य होता है। गुण की पूजा स्वाभाविक है। पर ब्राह्मण जन्मतः भी पूज्य हैं। यदि उनमें गुण भी ब्राह्मण के हों। वेदपाठी भी हों तो शापत : मन से, ताड़त : कर्म से और परुष कहंता : वाणी से होने पर भी वे पूज्य हैं। शापत ताड़त परुषवक्ता पूज्य योग्य नहीं है। पर विप्र हैं। उनके पूर्वजन्म के कुछ कर्म ऐसे हैं कि जिससे वे पूजा माने जाते हैं यथा : तुलसी पीपल आदि। तद् य इह रमणीयचरणा अभ्याशोहयत् ते रमणीयां योनिमापद्येरन्। ब्राह्मणयोनिं वा क्षत्रिययोनिं वा वैश्ययोनिं वाथ य इह कपूयचरणा अभ्याशोहयत् कपूयां योनिमापद्येरन् श्वयोनिं वा सूकरयोनिं वा चाण्डालयोनिं वा। भगवान् वासुदेव कहते हैं : विप्रं कृतागसमपि नैव द्रुह्यत मामकाः। घ्नन्तं बहु शपन्तं वा नमस्कुरुत नित्यशः। भा०। मेरे भक्त अपराधी ब्राह्मण का भी द्रोह न करें। मारते हुए शाप देते हुए ब्राह्मण को भी नमस्कार ही करें। बधे पाप अपकीरति हारे। मारतहूँ पा परिय तुम्हारे। साप सीस धरि हरषि हिय प्रभु बहु बिनती कीन्ह। भृगुपति बकहिं कुठार उठाये। मन मुसुकाहिं राम सिर नाये। इत्यादि।

ब्राह्मण कम से कम गायत्री मात्र जाने, आचरण और गुण से हीन हो फिर भी पूजा उसकी होगी। जहाँ शास्त्रों में ब्राह्मण पूजन विधान है वहाँ ब्राह्मणोचित गुणवाला शूद्र पूजित नहीं होगा। हीनगुणवाला ब्राह्मण ही पूजित होता है। यथा : तुलसी पूजन विधान में तुलसी के स्थान पर अनार अंगूर का पूजन नहीं हो सकता।

कहि निज धर्म ताहि समुझावा। निज पद प्रीति देखि मन भावा॥
रघुपति चरन कमल सिरु नाई। गयउ गगन आपनि गति पाई॥२॥

अर्थ : श्रीरामजी ने अपना धर्म कहकर उसे समझाया। अपने चरणों में प्रेम देखकर वह उनके मन को अच्छा लगा। तदनन्तर श्रीरघुनाथजी के चरण कमलों में सिर नवाकर वह अपनी गति : गन्धर्व का स्वरूप पाकर आकाश में चला गया।

व्याख्या : प्रभु ब्रह्मण्य देव हैं। ब्राह्मणों पर प्रीति करना अपना धर्म मानते हैं। यथा :

प्रभु ब्रह्मण्य देव मैं जाना। मोहि निति पिता तजेउ भगवाना॥

जेते धर्म सकाम सबै को फल कटु जानो।
धन दारा सुत गेह विनश्वर दुःखमय मानो॥
स्वर्गहु विनशन शील - चारि दिन को सुखदाई।
श्री गुरु चरण सरोज शरण में भूरि भलाई॥
गुरु गोविन्द को निष्कपट सेवा विजयानन्द करो।
विरति ज्ञान संयुत सुभग भगति पंथ नित अनुसरो॥
सतसंगति नित करो शौच तप मौन निबाहो।
ब्रह्मचर्य व्रत धरो अहिंसा समता चाहो॥
जड़ चेतन को आत्मरूप ईश्वर करि देखो।
गहो सदा संतोष संत रहनी जिय लेखो॥
प्रभु सबमें सब प्रभुहि में जानि अहंता को तजो।
ये तेरह हैं भागवत सद्गुण विजयानंद भजो॥

अतः द्विज सेवा को हरितोषण व्रत कहा गया है। इससे भगवान् तुष्ट होते हैं। इस बात को उसे समझाया। जिसमें फिर उससे ऐसी चूक न हो। अपने चरणों में प्रेम देखकर उसे परम कल्याणकर उपदेश दिया। तब वह कृतकृत्य होकर प्रभु चरणों पर नत हुआ तथा गन्धर्व लोक को गया। स्वयं भक्ति का उपदेश दे चुके हैं। उसे अन्यस्पृहा न होने से और कुछ न दिया। अतः गगन जाना कहा। चरणं में सिर देने से ही ऊर्ध्व गति होती है। यथा : अतिशय बड़ भागी चरणनन्हि लागी जुगल नयन जल धार बही...गई पतिलोक अनन्द भरी। अधोगति हो गयी थी। सो ऊर्ध्व गति की बाधा दूर हो गयी।

ताहि देइ गति राम उदारा। सबरी के आस्रम पगु धारा॥
सबरी देखि राम गृहँ आए। मुनि के बचन समुझि जिय भाए॥३॥

अर्थ : उदार श्रीरामजी उसे गति देकर शबरीजी के आश्रम पधारे। शबरीजी ने रामजी को घर में आये देखा। तब मुनि : मतङ्गजी के वचनों को याद करके उनका मन प्रसन्न हो गया।

व्याख्या : कबन्ध के उद्धार में उदार कह रहे हैं। यथा : ऐसो को उदार जग मांही। बिनु सेवा जो द्रवै दीन पर राम सरिस कोउ नांहीं। कबन्ध ने क्या सेवा की। उदार हैं : गति देने से तृप्ति नहीं। घर जा जाकर गति देते हैं तथा : सुगम अगम बरदायक होने से उदार हैं। अथवा ऐसे उदार हैं कि शबरी के आश्रम चले। सकल मुनिन्ह के आस्रम जाइ जाइ सुख दीन्ह। सो शबरी कौन मुनि थी ? प्रभु के चरण पड़ने से उसकी कुटिया भी आश्रम हो गयी।

शबरी ने देखते ही पहिचान लिया कि ये ही राम हैं। शबरी उसे गृह ही समझती है। आश्रम का ख्याल उसे मन से भी नहीं है। राम किसी के गृह नहीं जाते। विभीषण ने कहा : अब जन गृह पुनीत प्रभु कीजै। सरकार नहीं गये। ग्रामवास उचित नहीं है। पर शबरी का गृह सरकार के विचार में आश्रम ही है। मुनि के जिय भाये वचन समझकर उसने पहिचाना। मुनिजी ने जो ध्यान बताया था सो आँखों के सामने देखा।

सरसिज लोचन बाहु बिसाला। जटा मुकुट सिर उर बनमाला ॥
स्याम गौर सुंदर दोउ भाई। सबरी परी चरन लपटाई ॥४॥

अर्थ : कमल सदृश नेत्र और विशाल भुजावाले सिर पर जटाओं का मुकुट और हृदय पर वनमाला धारण किये हुए सुन्दर साँवले और गोरे दोनों भाइयों के चरणों में शबरी लिपट पड़ी।

व्याख्या : मुनिजी ने उसकी योग्यतानुकूल सामान्य ध्यान बतलाया था कि बड़ी बड़ी कमल की सी आँखें हैं। लम्बी लम्बी भुजाएँ हैं। दो गहना भी बतला दिया था। जटा का ही मुकुट और पैर तक लटकती हुई माला रहती है। यह भी उदारता है कि उसके ध्यानानुरूप वेष से उसके सामने आये। नहीं तो यहाँ नवमाला कहाँ से आगयी ?

दोनों भाई का एक रूप और वेष है। वर्ण में केवल भेद है। शबरी चरणों में लिपट गयी। स्त्री है। उसे चरण में लिपटने का ही अधिकार है।

प्रेम मगन मुख बचन न आवा। पुनि पुनि पद सरोज सिर नावा ॥
सादर जल लै चरन पखारे। पुनि सुंदर आसन बैठारे ॥५॥

अर्थ : वह प्रेम में मग्न हो गयी। मुख से वचन न निकला। बार बार चरण-कमलों में सिर नवा रहा है। फिर उसने जल लेकर आदर पूर्वक दोनों भाइयों के चरण धोये और फिर उन्हें सुन्दर आसनों पर बिठाया।

व्याख्या : प्रेम मगन : मनसा। मुख बचन न आवा : वाचा। सिर नावा : कर्मणा। मुख से बोलना चाहती है। पर कहते नहीं बनता। तव बार बार प्रणाम करती है।

श्रीचरणों को केवट ने पखारा था। अब शबरी पखार रही है। शबरी बड़े इन्तजाम में थी। जब से मुनिजी कह गये तभी से नित्य नये आसन बनाती। सुन्दर सुन्दर कन्द मूल फल लाती। कौन जाने कब राम आवेंगे। शबरी के पूजन में न विधि है न मंत्र है। केवल भक्ति है। तीन उपचार से पूजन करती है। पाद्य आसन और नैवेद्य से।

दो. कंद मूल फल सुरस अति, दिए राम कहुँ आनि।
प्रेम सहित प्रभु खाए, बारंबार बखानि ॥३४.२८॥

अर्थ : उसने अत्यन्त रसीले और स्वादिष्ट कन्द मूल और फल लाकर श्रीरामजी को दिये। प्रभु ने बारंबार प्रशंसा करके उन्हें प्रेम सहित खाया।

व्याख्या : लाकर दिया कहने का भाव यह कि कहीं इकट्ठा करके रक्खे थी वहाँ से लाकर दिया। जब से गुरुजी कहकर चले गये कि तेरे पास रामजी आवेंगे : पर कब आवेंगे यह नहीं कहा : तब से नित्य शबरी पूजोपचार इकट्ठा करती थी। न जाने किस समय आ जावेंगे। इसलिए फलों को खाकर उनके मिठास की परीक्षा कर लेती थी। जो मीठे जँचते थे उन्हें तोड़कर नैवेद्य लगाने के लिए रख लेती थी। आज भी लोग सट्टी में जाकर आम को चख लेते हैं। पसन्द आने पर खरीदते हैं। उसी भाँति जहाँ अति सरस कन्द मूल फल रक्खे थे वहाँ से लाकर रामजी को दिये। अति कृतज्ञ परम सुजान प्रभु ने उनका बार बार बखान करके भोजन किया। यहाँ यह न समझना चाहिए कि लक्ष्मणजी ने नहीं खाया। रामजी का खाना कहने में ही लक्ष्मणजी का भोजन करना आगया। आगे चले बहुरि रघुराई का अर्थ यह नहीं है कि लक्ष्मणजी नहीं चले।

पानि जोरि आगें भइ ठाढ़ी। प्रभुहि बिलोकि प्रीति अति बाढ़ी ॥
केहि बिधि अस्तुति करौं तुम्हारी। अधम जाति मैं जड़मति भारी ॥१॥

अर्थ : फिर वह हाथ जोड़कर आगे खड़ी हो गयी। प्रभु को देखकर उसका प्रेम अत्यन्त बढ़ गया। कहा : मैं किस प्रकार आपकी स्तुति करूँ। मैं नीच जाति की और अत्यन्त मूढ़ बुद्धि हूँ।

व्याख्या : पहिले कन्द मूल फल परोसती थी। जब सरकार खा चुके तब हाथ जोड़कर आगे खड़ी हुई स्तुति के लिए : भाव यह कि मेरी इतनी ही पूजा थी। मैं किसी योग्य नहीं। पूजा में व्यग्र होने से एकाग्र होकर दर्शन नहीं कर सकी थी। प्रीति तो बढ़ी हुई थी ही। दर्शन से और प्रीति बढ़ी।

बोली कि मैं स्तुति की विधि नहीं जानती। तिस पर तुम्हारी स्तुति : स्तुतिर्ब्रह्मादीनामपि तदवसन्नास्त्वयि गिरः। अधम जाति हूँ : कोई स्तोत्र भी कण्ठ नहीं है कि उससे स्तुति करूँ। भारी जड़मति हूँ। अपने मन से कुछ कल्पना भी नहीं कर सकती।

अधम ते अधम अधम अति नारी। तिन्ह मँह मैं अतिमन्द अघारी ॥
कह रघुपति सुनु भामिनि बाता। मानउँ एक भगति कर नाता ॥२॥

अर्थ : अधमाधमों में भी स्त्री अधम हैं। उनमें भी हे पाप नाशन ! मैं अतिमन्द हूँ। श्रीरघुनाथजी ने कहा कि हे भामिनि ! मेरी बात सुन। मैं तो केवल एक भक्ति का ही नाता मानता हूँ।

व्याख्या : पहिले अधम से : जाति हीन कहा। दूसरे अधम : शब्द से अघ जन्म महि कहा। तीसरा अधम : शब्द नारी होने के नाते कहा। नारी होने से दोष में उत्कर्ष आ जाता है। यथा : काने खोरे कूबरे कुटिल कुचाली जानि। तिय बिसेष पुनि चेरि कहि भरत मातु मुसुकानि। ऐसी स्त्री भी यदि बुद्धिमती हो तो भी कुछ स्तुति कर ही सकती है। शबरी कहती है कि मैं ऐसी स्त्रियों में भी भारी जड़मति हूँ। स्तुति करना जानती भी नहीं। प्रभु के साक्षात्कार होने पर स्तुति करना चाहिए। अब मैं क्या करूँ। जिससे आप प्रसन्न हो। यथा : स्तोतुन्न जानामि देवेश किं करोमि प्रसीद मे। अ. रा.

रघुपति हैं : सुनि सनमानहिं सबहिं सुबानी। भगति भनिति मति गति पहिचानी। यह प्राकृत महि पाल सुभाऊ। जान सिरोमणि कौसल राऊ। रीझत राम सनेह निसोते। को जग मंद मलिन मति मोते। अतः कहते हैं : मेरी बात सुन। मैं एक ही नाता : सम्बन्ध मानता हूँ। भक्त मेरे नातेदार : सम्बन्धी हैं। तू अधम क्यों कहती है। तू तो मेरी नातेदार है : कबन्ध के प्रकरण में जाति की बड़ाई किया। क्योंकि वह गुण को बड़ा माननेवाला था। दोनों के सामञ्जस्य के लिए यहाँ गुण की प्रशंसा करते हैं। क्योंकि यह जाति को बड़ा मानती है।

जाति पाति कुल धर्म बड़ाई। धन बल परिजन गुन चतुराई ॥
भगति हीन नर सोहै कैसा। बिनु जल बारिद देखिअ जैसा ॥३॥

अर्थ : जाति, पाँति, कुल, धर्म, बड़ाई, धन, बल, कुटुम्ब, गुण और चतुरता। इन सबके होने पर भी भक्ति से रहित मनुष्य कैसा लगता है जैसे जलहीन बादल दिखायी पड़ता है।

व्याख्या : दस गुण कहे जिससे मनुष्य की शोभा होती है। गुण की वृद्धि के साथ साथ शोभा का उत्कर्ष होता है। जाति में होना ही शोभा की बात है। फिर यदि पाँति में बैठने पावे तो शोभा और भी बढ़े। उससे भी यदि कुलीन हो तो क्या बात है। इसी भाँति दसों के होने से बड़ी भारी शोभा होती है।

भक्तिहीन होने से ये दसों शोभाएँ व्यर्थ हैं। जैसे बिना जल का बादल। वह राम सुयश का वर्षा कर नहीं सकता। देखने में तो वह स्वच्छ है, श्वेत है, पर उसमें मनुष्यता नहीं है। अतः शोभा की कमी पड़ गयी : बसन हीन नहिं सोह सुरारी। सब भूषण भूषित बर नारी।

नवधा भगति कहउँ तोहि पाँहीं । सावधान सुनु धरु मन माँहीं ॥
प्रथम भगति संतन्ह कर संगा । दूसरि रति मम कथा प्रसंगा ॥४॥

अर्थ : मैं तुझसे अब अपनी नवधा भक्ति कहता हूँ । तू सावधान होकर सुन और मन में धारण कर । पहिली भक्ति है सन्तों का सत्सङ्ग । दूसरी भक्ति है मेरे कथा प्रसङ्ग में प्रेम ।

व्याख्या : तुझसे कहता हूँ दूसरे किसी से नहीं कहा । भागवत धर्म गन्धर्व से कहा । नवधा भक्ति जिससे सम्बन्ध : नाता स्थापित होता है उसे तुझसे कहता हूँ । यह चाण्डाल तक के लिए है । सुनने में अनवधानता होने से बात मन में ठीक आवेगी नहीं । अतः सावधान होकर मन में धारण कर । बिना मन में धारण किये निश्चय न हो सकेगा कि कौन सी भक्ति कितनी मुझमें है और किसकी कमी है । सरकार को उसका सङ्कोच छुड़ाना है : सेवक सकुच सोच उर अपने । और उसे नगरवासियों की भाँति उपदेश देकर कृतकृत्य करना है । इसलिए नाता के स्पष्ट करने के व्याज से उसे नवधा भक्ति का उपदेश करते हैं ।

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम् । अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्म-निवेदनम् । यही नवधा भक्ति प्रसिद्ध है और भगवान् ने भी इसी नवधा भक्ति का उपदेश लक्ष्मणजी को दिया । यथा : स्रवणादिक नवभक्ति दृढ़ाहीं । मम लीला रति अति मन माहीं । परन्तु शबरी को जिस नवधा भक्ति का उपदेश दिया वह तो स्पष्ट ही श्रवणादिक नवभक्ति से पृथक् है । इस पार्थक्य का कारण होना चाहिए ।

लक्ष्मणजी को सरकार ने भक्तियोग का उपदेश दिया । यथा : भक्तियोग सुनि अति सुख पावा । लछिमन प्रभु चरनन्हि सिरु नावा । जिसमें साधनभक्ति भावभक्ति तथा प्रेमा भक्ति तीनों का समावेश है । उसमें कोई बात छूटी नहीं है । यथा : थोरेहि महँ सब कहौं बुझाई । सुनहु तात मति मन चितलाई । और यह भी मानना पड़ेगा कि दोनों उपदेशों का हृदय एक है । फिर भी प्रकार में इतना बड़ा अन्तर क्यों ? यह प्रश्न बिना उठे नहीं रह सकता ।

दोनों प्रकरणों को निविष्ट चित्त से मनन करने से यह बात मन में आती है कि भक्तियोग का लक्ष्य भगवान् को अपना प्रेमपात्र बनाना है । भक्त को कोई कामना न होनी चाहिए । यहाँ तक कि प्रेमपात्र की प्रसन्नता की भी अपेक्षा न रहे । यथा : जानहु राम कुटिल करि मोही । लोग कहउ गुर साहिब द्रोही । सीता-राम चरन रति मोरे । अनुदिन बढ़उ अनुग्रह तोरे । तथा : बचन कर्म मन मोरि गति भजन करै निष्काम । तिन्हके हृदय कमल महु करौं सदा बिस्राम : अर्थात् भक्तियोग का पर्यवसान भगवान् को प्रेमपात्र बनाने में है ।

परन्तु शबरी को जिस नवधाभक्ति का उपदेश दिया है उसका पर्यवसान स्वयं भगवान् के प्रेमपात्र बनने में है । यथा : नवमहुँ एकउ जिन्हके होई । नारि पुरुष सचराचर कोई । सोइ अतिसय प्रिय भामिनि मोरें । सकल प्रकार भगति दृढ़ तोरें ।

शबरी अपने को भक्तियोग का अधिकारी नहीं मानती। यहाँ तक कि उसे स्तुति करने में भी सङ्कोच है। कहती है : केहि बिधि अस्तुति करौं तुम्हारी। अधम जाति मैं जड़मति भारी। अधम ते अधम अधम अति नारी। तिन्ह मँहु मैं अतिमंद अघारी। इस पर भगवान् उसे भक्ति के नव लक्षण बताते हैं। जिससे भक्त भगवान् का प्रेमपात्र बन जाता है। एवं शबरी को आश्वासन देते हैं कि तू अपनेको अधम न जान। तुझमें नवों प्रकार की भक्ति है। इससे तू मुझे अतिशय प्रिय है। इसका प्रमाण यह : जोगि बृंद दुर्लभ गति जोई। तो कहँ आज सुलभ भइ सोई।

अतः निष्कर्ष यह निकला कि भक्तियोग का पर्यवसान भगवान् को प्रेमपात्र बनाने में है और शबरी को जिस नवधा भक्ति का उपदेश दिया उसका पर्यवसान भगवान् का प्रेमपात्र बनने में है। अतः दोनों में पार्थक्य निष्कारण नहीं है। अतः दोनों का पृथक् पृथक् उपदेश हुआ।

सरकार का उपदेश भगवद्गीता के उपदेश की भाँति किसी व्यक्ति विशेष के लिए ही नहीं है। पार्थो वत्सः सुधोर्भोक्ता दुग्धं गीतामृतं महत्। अर्जुन तो केवल बछड़े थे। गीतामृत के भोक्ता तो पण्डित लोग हैं। इसी भाँति इन उपदेशों से लाभ उठानेवाले भक्त लोग हैं। लक्ष्मणजी तथा शबरी तो निमित्त मात्र हुए। शबरी में नवधा भक्ति पूर्ण रूप से विद्यमान थी। फिर भी संसार के कल्याणार्थ उसे उपदेश दिया गया। जिस भाँति भगवती अनसूया ने सीताजी को पातिव्रत का उपदेश दिया। यथा :

सुनु सीता तव नाम सुमिरि नारि पतिव्रत करहिं।
तोहि प्रानप्रिय राम कहेउँ कथा संसार हित॥

एक भक्ति से कल्याण होता है। केवल सत्संग से ही सध जाता है। यथा : अस विचारि जो कर सतसंगा। राम भगति तेहि सुलभ बिहंगा। सतसंगति मुद मंगल मूला। सोइ फल सिधि सब साधन फूला। दूसरी भक्ति रामकथा में रति। यथा :

रामचरित राकेस कर सरिस सुखद सब काहु।
सज्जन कुमुद चकोर चित हित बिसेष बड़ लाहु॥
महा मोह महिखेस बिसाला। रामकथा कालिका कराला॥
रामकथा सुंदर कर तारी। संसय बिहग उड़ावन हारी॥

दो. गुरु पद पंकज सेवा, तीसरि भगति अमान।
चौथी भगति मम गुन गन, करै कपट तजि गान॥३५.२९॥

अर्थ : तीसरी अमान भक्ति है : गुरु के चरण कमलों की सेवा और चौथी भक्ति यह है कि कपट छोड़कर मेरे गुण समूहों का गान करे।

व्याख्या : गुरु के चरण की सेवावाली भक्ति मानरहित होनी चाहिए। स्वयं प्रभु उसे अपनाये हुए हैं। धनुष भङ्ग के लिए सीय स्वयम्बर में सब राजा लोग

इष्ट देवता को प्रणाम करके चले। पर प्रभु ने तो गुरु चरणों को प्रणाम किया। यथा : गुरुहिं प्रनाम मनहिं मन कीन्हा। अति लाघव उठाइ धनु लीन्हा। श्री चक्रवर्तीजी : राजा दशरथ कहते हैं : मोहि सम येहु अनुभयेउ न दूजे। सब पायेउ रज पायन पूजे। मानरहित यथा : गुरुपद पद्म पलोटत प्राते।

चौथी भक्ति हरि गुणगान है। भगवान् कहते हैं कि न मैं वैकुण्ठ में बसता हूँ और न योगियों के हृदय में बसता हूँ। मेरे भक्त जहाँ गान करते हैं वहीं मैं बसता हूँ। नाहं वसामि वैकुण्ठे योगिनां हृदये न हि। मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद।

परन्तु समय : शर्त यह है कि कपट छोड़कर मान करें। दूसरों के दिखाने के लिए या अपनी प्रसिद्धि के लिए नहीं। सभी पुण्य भावोपहत हो जाने पर पाप हो जाते हैं। यथा : सर्वाणि भावोपहतानि कल्कः।

मंत्र जाप मम दृढ़ बिस्वासा। पंचम भजन सो बेद प्रकासा॥
छठ दम सील बिरति बहु कर्मा। निरत निरंतर सज्जन धर्मा॥१॥

अर्थ : मेरे मन्त्र का जप और मुझमें दृढ़ विश्वास : यह पाँचवीं भक्ति है जो वेदों में प्रसिद्ध है। छठी भक्ति है इन्द्रियों को निग्रह : शील : बहुत कार्यों से वैराग्य और निरन्तर सन्त पुरुषों के आचरण में लगे रहना।

व्याख्या : मननात् त्रायत इति मन्त्रः। कौनिउ सिद्धि कि बिनु बिस्वासा। मन्त्र जप में तो विश्वास का अधिक उपयोग है। भविष्यतीति मनः कृत्वा सततमव्यथैः। जब वाणी मन में प्रतिष्ठित हो और मन वाणी में प्रतिष्ठित हो तभी यथार्थ रूप से जप होता है। भगवती श्रुति कहती हैं : वाङ् मे मनसि प्रतिष्ठिता मनो मे वाचि प्रतिष्ठितमाविरावीर्मे एधि और श्रुति भगवती ने ही राममन्त्र में प्राणीमात्र का अधिकार बतलाया है। यथा : मन्त्रेषु तेषु सर्वेषामधिकारोऽस्ति देहिनाम्। इसीलिए कहते हैं : पंचम भजन सो बेद प्रकासा। दम से इन्द्रिय जय और शील से आचार का ग्रहण किया : बहुशाखा ह्यनन्ताश्च बुद्धयोऽव्यवसायिनाम्। काम्य कर्म से विरत हो नित्य नैमित्तिक से नहीं। सज्जनधर्म परोपकारादि हैं जिनका सविस्तर वर्णन : प्रभु नारद सम्वाद प्रकरण में है। उनमें सदा लगा रहे। यह छठी भक्ति हुई।

सातवँ सम मोहि मय जग देखा। मो तें संत अधिक करि लेखा॥
आठवँ जथालाभ संतोषा। सपनेहुँ नहिं देखइ पर दोषा॥२॥

अर्थ : सातवीं भक्ति है : जगत् भर को समभाव से मुझमें ओत प्रोत देखना और सन्तों को मुझसे भी अधिक करके मानना। आठवीं भक्ति है : जो कुछ मिल जाय उसी में सन्तोष करना और स्वप्न में भी पराये दोषों को न देखना।

व्याख्या : सातवीं भक्ति है : निज प्रभुमय देखहि जगत् कासन करहिं विरोध।

परन्तु सन्तों को भगवान् से भी अधिक माने। क्योंकि भगवत्प्राप्ति उन्हीं के द्वारा होती है। यथा : रामसिंधु घन सज्जन धीरा। चंदन तरु हरि संत समीरा।

आठवीं भक्ति है : यथा लाभ सन्तोष। सन्तोषादनुत्तमसुखलाभः। यो. द. सन्तोष से ऐसा सुख मिलता है जिससे बढ़कर कोई सुख नहीं है। यथा : कोउ बिस्राम कि पाव तात सहज सन्तोष बिनु। बिनु सन्ताष न काम नसाहीं। काम अछत सुख सपनेहु नाहीं। राम भजन बिनु मिटहि कि कामा।

और दूसरे का दोष तो सपने में भी न देखे। दूसरे के दोष देखने का स्वभाव हो जाने से बिना जाने वे दोष अपने हृदय में डेरा करने लगते हैं। इसीलिए परदोष निरीक्षण खल का लक्षण कहा गया है।

नवम सरल सब सन छलहीना। मम भरोस हिय हरष न दीना ॥
नव महुँ एकउ जिन्ह के होई। नारि पुरुष सचराचर कोई ॥३॥

अर्थ : नवीं भक्ति है सरलता और सबके साथ कपट रहित व्यवहार करना : हृदय में मेरा भरोसा रखना और किसी भी अवस्था में हर्ष और विषाद का न होना। इन नवों में से जिनके एक भी होती है वह स्त्री पुरुष जड़ चेतन कोई भी हो।

व्याख्या : सरलता महात्मा का लक्षण है। मनस्येकं वचस्येकं कर्मण्येकं महात्मनाम्। शत्रु में भी छलहीन साधु ही हो सकता है। हिंस्रः स्वपापेन विहिंसितः खलु साधुः समत्वेन भयाद्विमुच्यते। मम भरोस हिय यथा : मोर दास कहाइ नर आसा। करै तो कहहु कहाँ बिस्वासा। तथा : आपन जानि न त्यागिहहिं मोहि रघुबीर भरोस। हर्ष और दीनता के लिए फिर कोई कारण नहीं रह जाता।

ये नवो भक्ति स्वतन्त्र हैं। इसीलिए कहते हैं कि इन नवों में से एक[1] के भी होने से वह भक्त मुझे प्रिय होता है। इस नवधा भक्ति में एक का भी होना दुर्लभ है। नारी होने से अपने को अनधिकारी क्यों समझती हैं। पुरुष नपुंसक नारि वा जीव चराचर कोइ। सर्व भाव भज कपट तजि मोहि परम प्रिय सोइ।

आनिन्द्ययोन्यधिक्रियते पारम्पर्या सामान्यवत्। शा० भ० सू०। भक्ति में निन्द्य योनि सामान्य रूप से सबको अधिकार है।

सोइ अतिसय प्रिय भामिनि मोरें। सकल प्रकार भगति दृढ़ तोरें ॥
जोगि बृन्द दुर्लभ गति जोई। तो कहुँ आज सुलभ भइ सोई ॥४॥

अर्थ : हे भामिनि ! मुझे अत्यन्त वही प्रिय हैं। फिर तुझमें तो सभी प्रकार की भक्ति दृढ़ है। अतएव जो गति योगियों को भी दुर्लभ है वही आज तेरे लिए सुलभ हो गयी।

---

१. ईश्वर : तुष्टेरे कोपि बली। शा० भ० सू०। एक का भी विशेष रूप से अनुष्ठान करने पर वही परमेश्वर को सन्तुष्ट करके बलवान् हो जाता है।

व्याख्या : नर नारि होने से मेरे बर्ताव में भेद नहीं। रीझत राम सनेह निसोते। सकल प्रकार भक्ति दृढ़ होने से भामिनि कहा। तेजोमयी मूर्ति शबरी हो गयी।

योगि वृन्द दुर्लभ गति कैवल्य पद है : अति दुर्लभ कैवल्य परम पद। संसार को अति दुर्लभ तेरे लिए सुलभ हो गयी। आज का भाव यह कि काल पाकर नहीं आज ही तू मुक्त होगी।

मम दरसन फल परम अनूपा। जीव पाव निज सहज सरूपा॥
जनकसुता कइ सुधि भामिनि। जानहि कहु करिबरगामिनि॥५॥

अर्थ : मेरे दर्शन का परम अनुपम फल यह है कि जीव अपने सहज स्वरूप को प्राप्त हो जाता है। हे भामिनि ! हे गजगामिनि ! अब यदि तू जानकीजी की कुछ खबर जानती हो तो कह।

व्याख्या : सहज स्वरूप की प्राप्ति ही कैवल्य पद है। यह मेरे दर्शन का फल है। ईश्वर दृष्टि से दर्शन किया। मेरे साक्षात्कार बिना मुक्ति नहीं होती। मेरा दर्शन : साक्षात्कार परम अनूप है। मेरा स्वरूप ही बना देता है।

भामिनि से उपक्रम करके : कह रघुपति सुनु भामिनि बाता। भामिनि में अभ्यास : सोइ अतिसय प्रिय भामिनि मोरे। तथा भामिनि से उपसंहार करते हैं। यथा : जनकसुता कर सुधि भामिनि। उसके गति की भी प्रशंसा करते हैं। यथा : जानहि कहु करिबरगामिनि। भाव यह है कि जिस भाँति प्रेम की मिठास शबरी के फलों में थी उसी भाँति प्रेम का सौन्दर्य उसके शरीर में था। जिसने उसके फल की प्रशंसा की वही महाप्रभु उसके सौन्दर्य की भी प्रशंसा कर रहे हैं एवं सब प्रकार से उसका आदर कर रहे हैं। उसकी ग्लानि का सम्मार्जन कर रहे हैं। खोई हुई वस्तु को सबसे पूछना चाहिए। सीता हरण के बाद पहिली मनुष्य शबरी ही मिली। अतः उससे सीताजी की सुधि पूछते हैं। उसे कृतज्ञता प्रकाश का भी समय नहीं दे रहे हैं।

पंपा सरहि जाहु रघुराई। तहँ होइहि सुग्रीव मिताई॥
सो सब कहिहि देव रघुबीरा। जानत हूँ पूछहु मति धीरा॥६॥

अर्थ : शबरी ने कहा : हे रघुनाथजी ! आप पम्पा नामक सरोवर को जाइये। वहाँ आपकी सुग्रीव से मित्रता होगी। हे देव ! हे रघुवीर ! वह सब हाल बतावेगा। हे धीरबुद्धि ! आप सब जानते हुए भी मुझसे पूछते हैं।

व्याख्या : शबरी ने सीताजी को स्वयं नहीं देखा। सुग्रीव ने देखा है। योगबल से जानती है। अतः सुग्रीव का पता बतला रही है। अथवा गुरु मुख से पूरा रामायण सुन चुकी है। यथा : यह सब जागबलिक कहि राखा। गुरुजी ने तो कहा था कि सुग्रीव सब बतलावेंगे। हमें बतलाने को तो नहीं कहा था।

देव से कौतुक प्रियता अथवा सर्वज्ञता और रघुवीर से सामर्थ्य कहा। तुमसे क्या छिपी है। यह आपका कौतुक है कि जानते हुए भी पूछते हैं। मतिधीर हैं : राजनीति राखत सुर त्राता। अतः रघुवीर कहा।

बार बार प्रभु पद सिरु नाई। प्रेम सहित सब कथा सुनाई ॥७॥

अर्थ : बार बार प्रभु के चरणों में सिर नवाकर प्रेमसहित उसने सब कथा सुनायी।

व्याख्या : उपक्रम : में पुनि पुनि पद सरोज सिर नावा कहा था। अब उपसंहार में भी कहते : बार बार प्रभु पद सिर नाई। जोगि बृंद दुर्लभ मति जोई। तो कहँ आज सुलभ भइ सोई। कहने के बाद प्रभु ने शबरी को पुनः कृतज्ञता प्रकाश करने का समय नहीं दिया। जनकसुता का हाल पूछने लगे। अतः उत्तर देकर तब प्रणाम करती हैं। जिसे संक्षेप में कहा था उसे विस्तार में कहने लगी।

छं. कहि कथा सकल बिलोकि हरि मुख हृदय पद पंकज धरे।
तजि जोग पावक देह हरि पद लीन भइ जहँ नहिं फिरे ॥
नर बिबिध कर्म अधर्म बहु मत सोकप्रद सब त्यागहू।
बिस्वास करि कह दास तुलसी रामपद अनुरागहू ॥

अर्थ : सब कथा कहकर भगवान् के मुख दर्शन कर हृदय में उनके चरण कमलों को धारण कर लिया और योगाग्नि से देह को त्यागकर वह उस दुर्लभ हरिपद में लीन हो गयी जहाँ से लौटना नहीं होता। तुलसीदासजी कहते हैं कि अनेकों प्रकार के कर्म, अधर्म और बहुत से मत ये सब शोकप्रद हैं। हे मनुष्यो! इनका त्याग कर दो और विश्वास करके श्रीरामजी के चरणों में प्रेम करो।

व्याख्या : सब कथा कही : कैसे गुरुजी के पास आयी ? कैसे गुरुजी की कृपा हुई ? कैसे गुरुजी ने सब कथा सीताहरण रावण वध की कही थी। वदन पंकज भव मोचन का निरीक्षण किया : पर उपासक चरणों की थी। इसकी कथा में चरण का ही बार बार उल्लेख होता है। अतः चरणों को ही हृदय में रक्खा।

योगाग्नि से शरीर छोड़ा। उमा तथा शरभङ्ग ने भी योगाग्नि से शरीर छोड़ा। पर वे हरिपद लीन नहीं हुए। क्योंकि वर दूसरे प्रकार का माँग चुके थे। इसने कोई वर नहीं माँगा। अतः हरिपद लीन हुई। उस पद से लौटना नहीं होता। न स पुनरावर्तते।

अतः गोस्वामीजी नरजाति को शिक्षा देते हैं। बहुशाखा ह्यनन्ताश्च बुद्धयोऽव्यवसायिनाम्। अतः काम्य धर्म के अनेक प्रकार हैं। बहुमत लखि श्रुति शास्त्र पुराणन्हि जहाँ तहाँ ''झगरो सो। इन्हें छोड़ो : सबकर मत खग नायक एहा। करिय राम पद पंकज नेहा। अतः इन्हीं में अनुराग कर।

दो: जाति हीन अघ जन्म महि, मुक्त कीन्हि अस नारि।
महामन्द मन सुख चहसि, ऐसे प्रभुहि बिसारि ॥३६.३०॥

अर्थ : जो नीच जाति की और पापों की जन्मभूमि थी। ऐसी स्त्री को भी जिन्होंने मुक्त कर दिया। अरे महा दुर्बुद्धि मन ! तू ऐसे प्रभु को भूलकर सुख चाहता है।

व्याख्या : जिसका जन्म कर्म दोनों बिगड़ा हुआ। तिस पर स्त्री पाप योनि उसको मुक्त किया भजन पर रीझ के। यह मन महा मन्द है। जयन्त के मन सा है। सुख रूप को भूलकर सुख चाहता है। ऐसे प्रभुहि बिसार : बलि पूजा चाहत नहीं चाहते एकै प्रीति। ऐसा प्रभु क्या भूलने योग्य है।

४३. सरोवरतीरगमन प्रसंग

चले राम त्यागा बन सोऊ। अतुलित बल नर केहरि दोऊ ॥
बिरही इव प्रभु करत बिषादा। कहत कथा अनेक संबादा ॥१॥

अर्थ : श्रीरामचन्द्रजी ने उस वन को भी छोड़ दिया और वे आगे चले। दोनों भाई अतुलित बलवान् और मनुष्यों में सिंह के समान हैं। प्रभु विरही की तरह विषाद करते हुए अनेक कथाएँ और संवाद कहते हैं।

व्याख्या : बहुरि बिरह बरनत रघुबीरा। जेहि बिधि गये सरोवर तीरा। सो विरह वर्णन प्रसङ्ग कहते हैं। पुनि सीतहिं खोजत दोउ भाई। चले बिलोकत बन बहुताई। इसी वन में शबरी का आश्रम था। अब उस वन को भी पीछे छोड़ दिया। एक वन को छोड़ दूसरे में निर्भीक घुसे चले जा रहे हैं। अतः अतुलित बल कहा। रावण के बध का तो तौल रहा। वन में निर्भीक घुसने से नर केहरि कहा। दो सिंह साथ नहीं रहते यहाँ दोनों साथ हैं।

एहि बिधि खोजत बिलपत स्वामी। मनहु महा बिरही अति कामी : की अवस्था तो नहीं है। फिर भी बिरही इव विषाद कर रहे हैं। कबहूँ योग बियोग न जाके। योग हुआ हो तो बियोग भी हो। अतः विरही इव विषाद करते हैं। नर गति भगत कृपालु देखाई। कथा भी विरह की संवाद भी विरह का। जो दूसरों में हुई उसकी कथा : संवाद जो आपस में हुआ।

लछिमन देखु बिपिन कइ सोभा। देखत केहि कर मन नहिं छोभा ॥
नारि सहित सब खग मृग बृंदा। मानहुँ मोरि करत हहिं निंदा ॥२॥

अर्थ : हे लक्ष्मण ! जरा वन की शोभा तो देखो। इसे देखकर किसका मन क्षुब्ध न होगा ? पक्षी और पशुओं के समूह सभी स्त्री सहित हैं। मानो ये मेरी निन्दा कर रहे हैं।

व्याख्या : अब कथा आरम्भ हुई। पिछला वन बड़ा था। यह सुहावना है। उद्दीपन उपस्थित हुआ। लक्ष्मण को दिखलाते हैं। कहेहू ते कछु दुख घटि होई : अतः कहते हैं। आलम्बन की प्राप्ति में भी लछिमन से ही कहा था। यथा : जासु बिलोकि अलौकिक शोभा। सहज पुनीत मोर मन सोभा।

इस उद्दीपन के समय सबको आलम्बन है। मैं निरालम्ब हूँ। खग मृग तक नारी सहित हैं और मैं नारी रहित हूँ। कोई खग मृग ऐसे नहीं जिन्हें जोड़ा न हो। जो कोई बिना जोड़ा के होता तो मैं अपनी निन्दा न मानता। खग मृग सा भी सुख मुझे प्राप्त नहीं है। वे निन्दा नहीं करते पर मुझे वैसी ही लज्जा हो रही है। जैसी निन्दा सुनने से होती है : ग्लानि सञ्चारी है। मानों कहते हैं कि इन्होंने नारी को साथ नहीं रक्खा। बड़ा बुरा किया। खग मृग मुझसे बुद्धिमान् हैं।

हमहि देखि मृग निकर पराहीं। मृगी कहहिं तुम्ह कहँ भय नाहीं ॥
तुम्ह आनंद करहु मृग जाए। कंचन मृग खोजन ए आए ॥३॥

अर्थ : हमें देखकर जब हिरनों के झुण्ड भागने लगते हैं तब हिरनियाँ उनसे कहती हैं : तुमको भय नहीं है। तुम तो साधारण हिरनों से पैदा हुए हो। अतः तुम आनन्द करो। ये तो सोने का हिरन खोजने आये हैं।

व्याख्या : मनुष्य को देखकर ही मृगादि वन्यजन्तु भाग जाते हैं ? किं पुनः धनुर्धारी को देखकर मृग जाति में भी स्त्री अवध्य हैं। अतः भय मृग को ही रहता है। सो मृग भाग खड़े होते हैं कि ये मृग के खोज में आये हैं : मुझे मारेंगे। मनुष्य की आहट पाकर भागते हैं। पर प्रभु की शोभा देखकर खड़े हो जाते हैं। इस पर प्रभु उत्प्रेक्षा करते हैं कि वे मृगी के कहने से भागते भागते रुक गये। मृग जाये : कहकर आर्यपुत्र की भाँति पति को सम्बोधन करती हैं और कहती हैं कि ये मृग के बच्चे को नहीं मारते। ये तो कञ्चनमृग को खोजने आये हैं। असम्भवं हेममृगस्य जन्म तथापि रामो लुलुभे मृगाय।

संग[१] लाइ करिनीं करि लेहीं। मानहुँ मोहि सिखावन देहीं ॥
शास्त्र सुचिंतित पुनि पुनि देखिय। भूप सुसेवित बस नहिं लेखिय ॥४॥

अर्थ : हाथी हथिनियों को साथ लगा लेते हैं। वे मानों मुझे शिक्षा देते हैं। भली भाँति चिन्तन किये हुए शास्त्र को भी बार बार देखते रहना चाहिए। अच्छी तरह सेवा किये हुए भी राजा को वश में नहीं समझना चाहिए।

व्याख्या : हथिनी छूट जाती हैं। पर हाथी बड़ा ख्याल रखते हैं। उसे सङ्ग ले लेते हैं। मुझे सिखाने के लिए नहीं। पर मुझे मालूम होता है कि मुझे सिखावन देते हैं। इन्हें इतनी बुद्धि हुई मुझे न हुई। यद्यपि जानकी ने मुझे कहा था कि जाओ : सत्यसन्ध प्रभु बध कर एही। आनहु चर्म कहति बैदेही। पर मुझे मानना नहीं था।

---

१. यहाँ निदर्शना : तीसरा अलङ्कार है।

मुझे उसका साथ छोड़ना नहीं चाहिए था। मृग तुच्छ जीव हैं। मेरे मन्दबुद्धि तथा लोभ की निन्दा करने लगे। ये गजराज हैं। बड़े हैं। ये निन्दा नहीं करते। सि..वन देते हैं : शास्त्रं सुचिन्तितमपि प्रतिचिन्तनीयमाराधितोऽपि नृपतिः परिशङ्कनीयः।

राखिअ नारि जदपि उर माहीं। जुवती सास्त्र नृपति बस नाहीं॥
देखहु तात बसंत सुहावा। प्रिया हीन मोहि भय उपजावा॥५॥

अर्थ : और स्त्री को चाहे हृदय में ही क्यों न रक्खा जाय। परन्तु युवती स्त्री, शास्त्र और राजा किसी के वश में नहीं रहते। हे तात ! इस सुन्दर बसन्त को तो देखो। प्रिया के बिना मुझको यह भय उत्पन्न कर रहा है।

व्याख्या : अङ्के स्थितापि युवती परिरक्षणीया। शास्त्रे नृपे च युवतौ च कुतो वशित्वम्। उर माहीं राखिय : आलिङ्गित भी रहे। अतः अङ्के स्थिता और राखिय उर माहीं में भेद नहीं है। भेद इतना ही है कि कुतो वशित्वं कहने के समय में गोस्वामीजी ने युवतो पद पहिले दिया। अर्थात् वश में न आनेवालों में युवती की प्रथम गणना है।

विपिन की शोभा कहते कहते मृग दिखायी पड़े तो उसका हाल कहने लगे। तब से हाथी दिखायी पड़ा उससे अपना सम्वाद कहने लगे। अब फिर वन वर्णन प्रारम्भ किया। विपिन की शोभा का कारण कहते हैं। वसन्त सुहावा। प्रिया के सहित होने से यह उत्सव मनाने का समय था। उनके शृङ्गार के लिए फूलों के गहने बनाते। सो प्रिया के न होने से यह भयदायक हो गया। जे हित रहे करइ तेइ पीरा। मेरे लिए जमाना पलट गया।

दो. बिरह बिकल बलहीन मोहि, जानेसि निपट अकेल।
सहित बिपिन मधुकर खग, मदन कीन्ह बगमेल॥३७.३१॥

अर्थ : मुझे विरह से व्याकुल बलहीन और बिल्कुल अकेला जानकर कामदेव ने वन भौरों और पक्षियों को साथ लेकर मुझ पर धावा बोल दिया।

व्याख्या : काम से मेरी अनबन बहुत दिनों से चली आती है। एकबार पुष्पवाटिका में मदन ने डङ्का दिया था। मानहु मदन दुंदुभी दीन्ही। मनसा बिस्व बिजय कहँ कीन्ही। पर उस समय उसका किया कुछ न हो सका। विश्व विजय मेरे हाथ लगी। यथा : बिस्व बिजय जसु जानकि पाई। तब से जानकी का विरह कभी हुआ नहीं। अतः उसका घात बैठा नहीं। इस समय मैं विरह विकल बलहीन हूँ : जब से सीताहरण हुआ है तब से राक्षस अदृश्य रूप से रामजी के पहरे पर हैं। बराबर रावण को खबर दिया करते हैं। उन्हीं से खबर पाकर रावण ने अंगद से कहा : तब प्रभु नारि विरह बलहीना। और उसके समक्ष में मैं अकेला हूँ। अतः मदन ने बगमेल किया है। विपिन मधुकर खग उसकी सेना हैं। वसन्त मित्र है।

दो. देखि गयउ भ्राता सहित, तासु दूत सुनि बात ।
डेरा कीन्हेउ मनहुँ तब, कटकु हटकि मन जात ॥३७॥

अर्थ : परन्तु जब उसका दूत यह देखा गया कि मैं भाई के साथ हूँ तब उसकी बात सुनकर कामदेव ने मानो सेना को रोककर डेरा डाल दिया है ।

व्याख्या : त्रिबिधि बयारि बसीठी आयी । वन में से दूत बाहर निकलकर आया सन्देश लेकर । पर दूत नहीं मालूम पड़ता । यह भेदिया है यथा : रिपु के दूत कपिन्ह तब जाने । ब्रह्मचारी भाई साथ में है । वह सहायक है : समझा बुझा लेता है । यह समाचार पाकर फौज को मानो आगे बढ़ने से रोक दिया । तुमसे लक्ष्मण ! काम भय खाता है । डेरा दे दिया । समझ बूझकर धावा करेगा । कहाँ वगमेल किया था, कहाँ डेरा डार दिया : यह सोचकर कि जब अकेला पावेंगे तब चोट करेंगे ।

बिटप बिसाल लता अरुझानी । बिबिध बितान दिये जनु तानी ॥
कदलि ताल बर ध्वजा पताका । देखि न मोह धीर मन जाका ॥१॥

अर्थ : विशाल वृक्षों में लताएँ उलझी हुई ऐसी मालूम होती हैं कि मानो नाना प्रकार के तम्बू तान दिये गये हैं । केला और ताड़ सुन्दर ध्वजा पताका के समान हैं । इन्हें देखकर वही नहीं मोहित होता जिसका मन धीर है ।

व्याख्या : डेरा दिया है, इससे पहिले डेरा का ही वर्णन प्रारम्भ किया । एक वृक्ष की लता दूसरे पर जा रही हैं । इस भाँति लाखों तम्बू तने हुए हैं । लताएँ अनेक रंग की और अनेक प्रकार के फूलवाली होती हैं । इसलिए विविध बितान कहा । लता के फैलने का भी क्रम एक सा नहीं । परिमाण भी एक सा नहीं ।

चतुष्कोण झण्डे को ध्वजा त्रिकोण को पताका कहते हैं । फौज में जहाँ तहाँ ध्वजा पताका फहराते हैं । ध्वजा छोटा पताका बड़ा होता है । कदली ध्वजा और ताल पताका हैं । ध्वजा पताका देखकर मनुष्य का साहस छूट जाता है कि शत्रु आया । ध्वजा पताका देखकर किला छोड़कर भागने का दृष्टान्त इतिहासों में मिला है ।

बिबिध भाँति फूले तरु नाना । जनु बानत बने बहु बाना ॥
कहुँ कहुँ सुंदर बिटप सुहाए । जनु भट बिलग बिलग होइ छाए ॥२॥

अर्थ : अनेकों वृक्ष नाना प्रकार के फूले हुए हैं । मानों अलग अलग बर्दी धारण किये हुए बहुत से तीरन्दाज हों । कहीं कहीं सुन्दर वृक्ष शोभा दे रहें हैं । मानो योद्धा लोग अलग अलग होकर ठहरे हों ।

व्याख्या : वसन्त में वृक्ष फूल उठते हैं । एक पेड़ में एकही रंग के फूल होते हैं । वृक्ष नीचे से ऊपर तक फूल से लदे हैं मानों अनेक बीर अनेक प्रकार की बर्दी पहिने हैं । बानैत = सिपाही । धनुर्वेद सभी प्रकार के शास्त्रों की शिक्षा देता

है। अतः शस्त्रकुशल सिपाही को बानैत कहते हैं। डेरा पड़ गया है। इसलिए पलटन में क्रम नहीं है विलग विलग हैं।

सुन्दर पेड़ बहुत नहीं होते। कुछ कुछ दूर पर होते हैं। इसी भाँति सभी सिपाही भट नहीं होते। वे अपने अपने समाज के साथ अलग अलग ठहरे हुए हैं। अतः उनकी उपमा सुन्दर वृक्ष से दी गयी है।

कूजत पिक मानहुँ गज माते। ढेंक महोख ऊँट बिसराते॥
मोर चकोर कीर बर बाजी। पारावत मराल सब ताजी॥३॥

अर्थ : कोयलें कूज रही हैं। मानों मतवाले हाथी चिग्घाड़ रहे हैं। ढ़ेक और महोख पक्षी मानों ऊँट और खच्चर हैं। मोर, चकोर, तोते, कबूतर और हंस मानों सब सुन्दर ताजी घोड़े हैं।

व्याख्या : मत्त गज गर्जते है और पिक कूजते हैं : गर्जहि गज घंटा धुनि घोरा। विरही को पिक का कूजना हाथी के गर्जन सा डरावना प्रतीत होता है। पञ्चम निषाद प्रतीत होता है। आम के बौर पर बैठी कोकिल मालूम होती है कि गजराज के पाँव में सोने का लंगर पड़ा है। ढ़ेक की टाँग लम्बी होती हैं। महोख चौड़े होते हैं। गज का वर्णन करके बार बरदारी के जानवर ऊँट और खच्चर का वर्णन करते हैं।

मोर चकोर कीर की चाल अच्छी होती हैं। इससे इन्हें बरवाजी कहा और कबूतर और हंस की बड़ी भारी गति है। इसलिए इन्हें ताजी कहा। कबूतर और घोड़ों के रंग की भी बड़ी बारीकी है। कबूतरबाजों को खूब रंगों का पहिचान होता है।

तीतर लावक पदचर यूथा। बरनि न जाइ मनोज बरूथा॥
रथ गिरि सिला दुंदुभी झरना। चातक बंदी गुन गन बरना॥४॥

अर्थ : तीतर और बटेर पैदल सिपाही के झुण्ड हैं। कामदेव की सेना का वर्णन नहीं हो सकता। पर्वतों की शिलाएँ रथ और जल के झरने के नगाड़े हैं। पपीहे भाट हैं जो गुण समूह का वर्णन करते हैं।

व्याख्या : तीतर लावा ऊँचे नहीं उड़ते। प्रायेण पैर से ही बड़ी तेजी से चलते हैं। इससे इन्हें पैदल कहा। काम की सेना का वर्णन नहीं हो सकता। लौकिक सेना का तो वर्णन सम्भव है। वन में जितने पशु पक्षी हैं सब काम की सेना हैं : बन उपवन बाटिका तड़ागा। जहँ तहँ जनु उमगत अनुरागा।

जब रथ से घोड़े खोल दिये जाते हैं तो रथ गिरि शिला की भाँति स्थिर दिखायी पड़ते हैं। झरना का शब्द हुआ करता है मानों दुंदुभी बज रही है। नौबत झर रही है। चातक भाट की भाँति काम का गुण गा रहे हैं। पीय पीय कहकर उसे जगत् का प्रिय बतला रहे हैं। काम की जीत से ही संसार चल रहा है।

मधुकर मुखर भेरि सहनाई । त्रिबिध बयार बसीठी आई ।।
चतुरंगिनी सेन सँग लीन्हें । बिचरत सबहि चुनौती दीन्हें ।।५।।

अर्थ : भौरों की गुञ्जार भेरी और शहनाई है । शीतल मन्द और सुगन्धित हवा मानों दूत बनकर आयी है । इस प्रकार चतुरङ्गिणी सेना साथ लिये कामदेव मानों सब को चुनौती देता हुआ विचर रहा है ।

व्याख्या : गुंजत अलि लै चल मकरंदा । ये मधुर मुखर होते हैं । अतः इन्हें शहनाई और नगाड़ा कहा । शहनाई राजा के पास बजती है । जो हवा का झोंका आया सो शीतल मन्द सुगन्धित था । इसलिए इसे बसीठी कहा । सुलह की बात लेकर आया : हमारे शरण आ जाओ प्राण छोड़ देंगे । हम लोगों ने रावण को चुनौती दिया । यह जगत् को चुनौती देता घूमता है । जहाँ जहाँ बसन्त आया है वहाँ वहाँ यही हाल है । अथवा बसन्त की सेना संसार में व्याप्त हो गयी है । अतः सबको एक साथ चुनौती दे रहा है ।

लछिमन देखत काम अनीका । रहहिं धीर तिन्ह कै जग लीका ।।
एहि के एक परम बल नारी । तेहि ते उबर सुभट सोइ भारी ।।६।।

अर्थ : हे लक्ष्मण ! कामदेव की इस सेना को देखकर जो धीर बने रहते हैं जगत् में उन्हीं की वीरों में प्रतिष्ठा होती है । इस कामदेव को एक स्त्री का बड़ा भारो बल है । क्योंकि सांसारिक भोगों में स्त्री शरीर ही सर्वोत्कृष्ट भोग है । उससे जो बच जाय वही श्रेष्ठ योद्धा है ।

व्याख्या : पहिले देखने को कहा : लछिमन देखु बिपिन कर सोभा । देखत केहि कर मन नहिं छोभा । देखहु तात बसन्त सुहावा । इत्यादि । इस भाँति कामियों की दीनता दिखायी । अब धीरों के मन में विरति को दृढ़ करते हैं । कहते हैं कि जिसे क्षोभ न हुआ संसार में उसी का लीक है : रेख खँचाइ कहौं बल भाखी । वही बड़ा धीर है ।

लोभ के इच्छा दम्भ बल काम के केवल नारि । नारि में चित्त न हो तो काम अकिञ्चित्कर है । अवगुन मूल सूल प्रद प्रमदा सब्र दुख खानि । ताते कीन्ह निवारन मुनि मैं यह जिय जानि ।

दो. तात तीनि अति प्रबल खल, काम क्रोध अरु लोभ ।
मुनि बिग्यान धाम मन, करहिं निमिष महुँ छोभ ।।३८।।

अर्थ : हे तात ! काम क्रोध और लोभ ये तीन अत्यन्त प्रबल दुष्ट हैं । ये विज्ञान के धाम मुनियों के भी मनों को पलभर में क्षुब्ध कर देते हैं ।

व्याख्या : बिना कारण वैर करते हैं । इसलिए खल कहा । इन्हीं से प्रयुक्त होकर मनुष्य पापाचरण करते हैं । इसलिए प्रबल खल कहा । त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः । कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत् त्रयं त्यजेत् । काम एष

क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः। महाशनो महापाप्मा विद्धयेनमिह वैरिणम्। खल बिनु कारण पर अपकारी। मुनि मन छोभ करहिं छन माहीं। ये आत्मा के नाश करनेवाले काम क्रोध और लोभ नरक के द्वार हैं। ये बड़े खानेवाले पापी हैं। इन वैरियों को जाने रहो। ये निष्कारण अपकार करते हैं। मुनि के मन में पलक मारते क्षोभ करते हैं।

दो. लोभ के इच्छा दंभ बल, काम के केवल नारि।
क्रोध के परुष बचन बल, मुनिबर कहहि बिचारि ॥३८.३२॥

अर्थ : लोभ को इच्छा और दम्भ का बल है। काम को केवल स्त्री का बल है और क्रोध को कठोर वचनों का बल है। श्रेष्ठ मुनि विचारकर ऐसा कहते हैं।

व्याख्या : इनका मर्म कहते हैं। इच्छा और दम्भ को स्थान न देने से लोभ मारा पड़ता है। स्त्री की कामना न रहने से काम मारा पड़ता है। परुष वचन के त्याग तथा सहन से क्रोध का जय होता है। मुनियों के ऊपर चोट करता है। अतः मुनियों ने उसका उपाय सोच निकाला है।

गुनातीत सचराचर स्वामी। राम उमा सब अंतरजामी ॥
कामिन्ह कै दीनता देखाई। धीरन्ह के मन बिरति दृढ़ाई ॥१॥

अर्थ : शिवजी कहते हैं : हे पार्वती ! श्रीरामचन्द्रजी तीनों गुणों से परे चराचर जगत् के स्वामी और सबके अन्तर के यमन करनेवाले हैं। ऊपर की बातें कहकर : उन्होंने कामी लोगों की बेवसी दिखलायी और विवेकी पुरुषों के मन में वैराग्य को दृढ़ किया।

व्याख्या : विषाद तमोगुण का कार्य है। सरकार गुणातीत हैं। अतः उनसे विषाद का सम्पर्क नहीं। चराचरात्मक जगत् उनका स्व है। जगत् से निर्लेप रहने पर भी वे उसके स्वामी हैं। चेतन जीव के भी प्रेरक हैं। वे विषाद से प्रेरित नहीं हो सकते। यहीं उमा को मोह हुआ था। अतः ज्ञान घाट के वक्ता यहाँ सरकार के स्वरूप का निरूपण करते हैं। अतः उमा सम्बोधन दिया।

यह उनकी लीला है। फिर भी कुछ प्रयोजन होना चाहिए। अतः कहते हैं लोक शिक्षा के लिए : चाटत चाम सँवारत चामहि चाम बिना मन दीन : अवतार भी हो यदि स्त्री संग्रह करे तो उसे भी विलाप करना पड़ता है। दीनता का प्रदर्शन पण्डितों के हृदय में वैराग्य संदीपनार्थ किया : उमा राम गुन गूढ़ का साफल्य।

क्रोध मनोज लोभ मद माया। छूटहिं सकल राम की दाया ॥
सो नर इंद्रजाल नहिं भूला। जा पर होइ सो नट अनुकूला ॥२॥

अर्थ : क्रोध, काम, लोभ, मद और माया ये सभी श्रीरामजी के दया से

छूट जाते हैं। वह नट : भगवान् जिस पर प्रसन्न होता है वह मनुष्य इन्द्रजाल : माया : में नहीं भूलता।

व्याख्या : सकल बिघ्न ब्यापहिं नहिं तेही। राम सुकृपा बिलोकहिं जेही। तुम्हारी कृपा तुम्हहि रघुनन्दन। जानहिं भगत भगत उर चंदन। अतः सरकार की कृपा से माया ही छूट जाती है। कामनादि तो उसके अधीन हैं।

छूटने की प्रक्रिया कहते हैं। माया इन्द्रजाल है। सरकार नट हैं। यह संसार उसी नट का फैलाया हुआ इन्द्रजाल है। नट कृत बिकट कपट खगराया। नट सेवकहिं न ब्यापै माया। शेष जगत् उसी में भूला फिरता है। नट तो इन्द्रजाल पसारनेवाला है। उसका कृपापात्र इन्द्रजाल में नहीं भूलता वह कैसे भूलेगा।

उमा कहउँ मैं अनुभव अपना। सत हरि भजनु जगत सब सपना॥
पुनि प्रभु गये सरोवर तीरा। पंपा नाम सुभग गंभीरा॥३॥

अर्थ : हे उमा ! मैं तुम्हें अपना अनुभव कहता हूँ : हरि का भजन ही सत्य है। यह सारा जगत् तो स्वप्न की भाँति असत् है। फिर प्रभु श्रीरामजी पम्पा नामक सुन्दर और गहरे सरोवर के तीर पर गये।

व्याख्या : कोई ऐसा कृपापात्र है भी जो इस इन्द्रजाल में न भूला हो। तो शिवजी पहिले अपने को ही उदाहरण रूप में देते हैं। अतः अपना अनुभव कहते हैं। मुझे जगत् सपना सा मिथ्या प्रतीत होता है : व्यावहारिक सत्य स्वीकार नहीं है : दिखायी मुझे भी पड़ता है। पर मुझे उसके सत्यता का भान नहीं होता। सब प्रातिभासिक है। मुझे हरि भजन सत्य मालूम होता है। हरि भजन से ही संसार के मिथ्यात्व का निश्चय होता है। हरि भजन मात्र से सत् की प्रतीति होती है।

पंपा सरहि जाहु रघुराई। सो सरकार वहाँ पहुँचे। गम्भीर सरोवर है और सुन्दर है। उत्तर में मानस सरोवर है और दक्षिण में पम्पा है। दोनों सुभग गम्भीर हैं। देखने में सुन्दर अवगाहन में गम्भीर। गहराई आँख से दिखायी पड़ती है।

संत हृदय जस निर्मल बारी। बाँधे घाट मनोहर चारी॥
जहँ तहँ पियहिं बिबिध मृग नीरा। जनु उदार गृह जाचक भीरा॥४॥

अर्थ : उसका जल सन्तों के हृदय जैसा निर्मल है। मन को हरनेवाले सुन्दर चार घाट बँधे हुए हैं। भाँति भाँति के पशु जहाँ तहाँ जल पी रहे हैं। मानो उदार दानी पुरुषों के घर याचकों की भीड़ लगी हो।

व्याख्या : गहराई दिखायी पड़ने के लिए निर्मल जल चाहिए। अतः कहते हैं सन्त हृदय की भाँति निर्मल हैं। सन्त लोग गम्भीर होते हैं। परन्तु ऐसे निर्मल हृदय के होते हैं कि कोई बात छिपाते नहीं। उनके हृदय की बात स्पष्ट मालूम हो जाती है। मनस्येकं वचस्येकं कर्मण्येकं महात्मनाम्। ऐसा निर्मल हैं कि तल में पड़ी हुई वस्तु दिखायी पड़ती है। उस जंगल में भी घाट बँधा हुआ है। राजा की सावधानी द्योतित होती है।

बड़ा भारी सरोवर है। बहुत दूर तक फैला हुआ है। अतः विविध मृग बिना बाधा जल पी रहे हैं। सरोवर को उपमा उदार गृह से दिया। मृगों की उपमा याचकों से दिया। सबकी प्यास मिट रही है। मनोरथ पूर्ण हो रहा है। बस्ती सन्निकट नहीं है।

दो. पुरइनि सघन ओट जल, बेगि न पाइअ मर्म।
मायाछन्न न देखिऐ, जैसे निर्गुन ब्रह्म ॥३९. क॥

अर्थ : घनी पुरइनों के आड़ में जल का जल्दी पता नहीं मिलता। जैसे माया के ढँके रहने के कारण निर्गुण ब्रह्म नहीं दीखता।

व्याख्या : देखने में पुरइन पुरइन दिखायी पड़ती है। पत्तों ने जल को ढँक रक्खा है। कहाँ जल है इस बात का पता नहीं चलता और जल है सभी जगह। इसी भाँति निर्गुण ब्रह्म का पता नहीं चलता माया ही दिखायी पड़ती है जब कि निर्गुण ब्रह्म सर्वत्र है। इससे माया का अपने अधिष्ठान का ही आवरण करना दिखलाया। माया की तुच्छता भी दिखलायी। परिसीमित होना भी दिखलाया।

दो. सुखी मीन सब एक रस, अति अगाध जल मांहि।
जथा धर्मसीलन्ह के, दिन सुख संजुत जांहि ॥३९.३३॥

अर्थ : उस सरोवर के अत्यन्त अथाह जल में सब मछलियाँ सदा एक समान सुखी रहती हैं। जैसे धर्मशील पुरुषों के सब दिन सुखपूर्वक बीतते हैं।

व्याख्या : धर्म वारि है। धर्मशील मछली है। अगाध धर्म होने से दुःख आ ही नहीं सकता : सुखी मीन जहँ नीर अगाधा। एक रस यथा : तुलसी पंछिन के पिये घटै न सरवर नीर। धर्म किये धन ना घटै जो सहाय रघुबीर। अति अगाध जल न हो तो एक रस सुख नहीं रहता। वर्णाश्रम निज निज धरम निरत बेद पथ लोग। चलहिं सदा पावहि सुखहिं नहि भय सोक न रोग। धर्मशीलन की उपमा मछलियों से दिया और धर्म की उपमा अगाध जल से दिया। धर्मो रक्षति रक्षितः। गोस्वामीजी प्रकृति वर्णन में भी उपदेशात्मक उपमाएँ देते हैं। यथा वर्षा शरद वर्णन में दिया।

बिकसे सरसिज नाना रंगा। मधुर मुखर गुंजत बहु भृंगा॥
बोलत जल कुक्कुट कल हंसा। प्रभु बिलोकि जनु करत प्रसंसा ॥१॥

अर्थ : उसमें रंगबिरंगे कमल खिले हुए हैं। बहुत से भौंरे मधुर स्वर से गुञ्जार कर रहे हैं। जल के मुर्गे और राजहंस बोल रहे हैं मानो प्रभु को देखकर उनकी प्रशंसा कर रहे हों।

व्याख्या : फूले कमल सोह सर कैसा। निर्गुण ब्रह्म सगुन भए जैसा। जल को निर्गुण, पुरइन को माया, गुण को कमल कहा। गुणों में नाना रङ्ग है : मुनि मन मधुप रहत जिन्ह छाये। माया से ऊपर माया में ही ब्रह्म सगुण रूप से व्यक्त होते हैं।

जलपक्षी सिर उठा उठाकर बोलते हैं : मानो प्रभु की प्रशंसा करते हैं। ये मृगों की भाँति निन्दा नहीं करते। ये निर्गुण ब्रह्म में विचरण करनेवाले हैं। इनकी वाणी सुन्दर है। पर सगुण ब्रह्म की प्रशंसा करते हैं। सगुण ब्रह्म दर्शनीय हैं।

चक्रवाक बक खग समुदाई। देखत बनइ बरनि नहिं जाई॥
सुन्दर खग गन गिरा सुहाई। जात पथिक जनु लेत बोलाई॥२॥

अर्थ : चक्रवाक बगुले आदि पक्षियों का समुदाय देखते ही बनता है। उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। सुन्दर पक्षियों की बोली बड़ी सुहावनी लगती है मानो रास्ते में जाते हुए पथिक को बुलाये लेती हों।

व्याख्या : सरोवर जलपक्षियों से भरा है। अनेक रङ्ग के पक्षी चकवा बगुला आदि से बड़ी शोभा हो रही हैं। देखते ही बनता है कहते नहीं बनता। कहा भी है : वयांसि तद् व्याकरणं विचित्रम्।

चहचहाहट सुनकर पथिक का जी चाह जाय कि वहाँ चलकर विश्राम कर लें। विश्राम करने की इच्छा नहीं है। इसलिए जात पथिक कहा। वे पक्षी देखने में भी सुन्दर और उनको गिरा भी मनोहर है।

ताल समीप मुनिन्ह गृह छाए। चहुँ दिसि कानन बिटप सुहाए॥
चंपक बकुल कदंब तमाला। पाटल पनस पनास रसाला॥३॥

अर्थ : उस झील के समीप मुनियों ने आश्रम बना रक्खे हैं। उसके चारों ओर वन के सुन्दर वृक्ष हैं। चम्पा मौलसिरी, कदम्ब, तमाल, पाटल, कटहल, ढाक और आम आदि।

व्याख्या : महातीर्थ है। अतः उसके सन्निकट मुनि लोग बसे हैं। धर्म कार्य में जल का बराबर काम पड़ता है। अतः तीर में ही कुटिया छा रक्खा है। पेड़ और झाड़ियों के बीच में कुटियाँ हैं।

अब वृक्ष और झाड़ियों का नाम गिनाते हैं। ये सब वृक्ष मुनियों के काम के हैं। आठ में से चार फल फूलवाले हैं। शेष फूलवाले या पत्तेवाले हैं।

नव पल्लव कुसुमित तरु नाना। चंचरीक पटली कर गाना॥
सीतल मंद सुगंध सुभाऊ। संतत बहइ मनोहर बाऊ॥४॥

अर्थ : बहुत प्रकार के वृक्ष नये नये पत्तों और पुष्पों से युक्त हैं जिस पर भौरों के समूह गुञ्जार कर रहे हैं। स्वभाव से हो शीतल, मन्द, सुगन्धित एवं मन को हरनेवाली हवा सदा बहती रहती है।

व्याख्या : नये पल्लव और कुसुम से वृक्ष की शोभा और चंचरीक पटली से पुष्प पल्लव की शोभा है। मारे आनन्द के गान कर रहे हैं। क्योंकि पत्र पुष्प में रसबाहुल्य है। जितना गिनाया है सो उपलक्षण मात्र है। अनेक प्रकार के वृक्ष हैं।

ये चञ्चरीक निकट हैं। अतः उनका गान करना कहा : क्योंकि कमलवाले चञ्चरीकों को ऊपर कह चुके हैं कि वे गुञ्जारते थे। ये गान करते हैं।

और जगह केवल वसन्त में शीतल मन्द सुगन्ध युक्त वायु बहता है। यहाँ स्वभाव से ही बहा करता है। जल के निकट होने से शीतल। वन से घिरे रहने के कारण मन्द। फूलों के योग से सुगन्ध।

कुहू कुहू कोकिल धुनि करहीं। सुनि रव सरस ध्यान मुनि टरहीं ॥५॥

अर्थ : कोयलें कुहू कुहू ध्वनि कर रही हैं। उनकी रसीली बोली सुनकर मुनियों का भी ध्यान टूट जाता है।

व्याख्या : यह वसन्त में ही बोलती है। इसलिए इसके लिए सन्तत शब्द का प्रयोग नहीं किया। ये गज माते की भाँति नहीं कूजती हैं। पञ्चम स्वर से बोल रही हैं। ये सब सामग्री भी तो उद्दीपन की है। पर इन्हें लक्ष्मणजी को नहीं दिखलाते : कुवलय बिपिन कुन्त बन सरिसा। उरग स्वास सम त्रिबिध समीरा। नव तरु किसलय मनहुँ कृसानू : नहीं कहते। विरह वर्णन पम्पासर तक है। यथा : बहुरि बिरह बरनत रघुबीरा। जेहि बिधि गये सरोवर तीरा। क्योंकि मुनियों का आश्रम आगया। यथा : ताल समीप मुनिन्ह गृह छाये।

दो. फल भारन नमि बिटप सब, रहे भूमि निअराइ।
पर उपकारी पुरुष जिमि, नवहिं सुसंपति पाइ ॥४०.३४॥

अर्थ : फलों के बोझ से झुककर सारे वृक्ष पृथ्वी के पास आ लगे हैं। जैसे परोपकारी पुरुष बड़ी सम्पत्ति पाकर विनय से झुक जाते हैं।

व्याख्या : परोपकारियों को सुसम्पत्ति का धारण करना भी बोझ है। जल्दी बोझा उतरे। इसलिए वृक्ष झुककर पृथ्वी के निकट हो जाते हैं तोड़नेवाले के सुभीते के लिए। परोपकारी के पास कुसम्पत्ति तो आ ही नहीं सकती। सुसम्पत्ति भी बोझ हो जाती है। संत बिटप सरिता गिरि धरनी। परहित हेतु सबन की करनी। नमन्ति फलिनो वृक्षाः नमन्ति गुणिनो जनाः। शुष्ककाष्ठानि मुर्खाश्च न नमन्ति कदाचन।

देखि राम अति रुचिर तलावा। मज्जनु कीन्ह परम सुख पावा ॥
देखी सुंदर तरुबर छाया। बैठे अनुज सहित रघुराया ॥१॥

अर्थ : श्रीरामजी ने अत्यन्त सुन्दर तालाब देखकर स्नान किया और परम सुख पाया। एक सुन्दर उत्तम वृक्ष की छाया देखकर श्रीरघुनाथजी छोटे भाई लक्ष्मणजी सहित बैठ गये।

व्याख्या : परम रम्य आराम यह जो रामहिं सुख देत। अति रुचिर से परम रम्य कहा। मज्जन कीन्ह पंथ स्रम गयऊ। सुचि जल पियत मुदित मन भयऊ : कहने से जाना गया कि वन ने दुःख दिया। तालाब ने सुख दिया। इससे

पुण्य तीर्थ का माहात्म्य दिखलाते हैं। जे सर सरित राम अवगाहहिं। तिनहि देवसर सरित सराहहिं। जिस सम्पत्ति से परोपकार नहीं वह सुसम्पत्ति भी नहीं है। क्योंकि उसकी प्रथम गति नहीं है। यथा : सो धन धन्य प्रथम गति जाकी।

जेहि तरुतर प्रभु बैठहिं जाई। करहि कल्पतरु तासु बड़ाई। यहाँ वर शब्द श्लिष्ट है। वट के पेड़ तले बैठे। यथा : तेहि गिरि पर वट बिपट बिसाला। अविरल छाँह सुखद सब काला। रघुराई हैं। ऐसे स्थान पर बैठते हैं जहाँ दरबार लग सके। अनुज सहित बैठे। अनुज ही सहाय हैं। यथा : देखि गयउ भ्राता सहित तासु दूत सुनि बात।

४४. प्रभु नारद संवाद

तहँ पुनि सकल देव मुनि आए। अस्तुति करि निज धाम सिधाए॥
बैठे परम प्रसन्न कृपाला। कहत अनुज सन कथा रसाला॥२॥

अर्थ : फिर वहाँ सब देवता और मुनि आये और स्तुति करके अपने अपने धाम को चले गये। कृपालु रामजी परम प्रसन्न बैठे हुए छोटे भाई लक्ष्मणजी से रसीली कथाएँ कह रहे हैं।

व्याख्या : सुरन्ह बिलोकि दसा रघुबर की। बरषि सुमन कह गति घर घर की। तथा : निसिचर निकर सकल मुनि खाये। देवता और मुनि दोनों ने फिर याद किया था। सो देवमुनि के लिए सरकार ने राक्षसों से वैर किया। अतः उन लोगों ने स्तुति की और चले गये। ईश्वर बुद्धि से आये। अतः सरकार ने प्रणाम नहीं किया।

सदा भाई से कहा करते हैं। सूपनखा के आने पर कथा छूटी है। एहि बिधि गये कछुक दिन बीती। कहत बिराग ग्यान गुन नीति। फिर विरह का नाट्य होने लगा। नारदजी के शाप को अङ्गीकार करके तब तक अभिनय किया जब तक कि नारदजी को असह्य न हो जाय। नारद को सोच होते ही शाप का साफल्य हो गया। अब परम प्रसन्न बैठे हैं।

बिरहवंत भगवंतहि देखी। नारद मन भा सोच बिसेखी॥
मोर स्राप करि अंगीकारा। सहत राम नाना दुःख भारा॥३॥

अर्थ : भगवान् को विरह युक्त देखकर नारदजी के मन में विशेष रूप से सोच हुआ कि मेरे ही शाप को स्वीकार करके श्रीरामजी नाना प्रकार के दुःखों का भार सह रहे हैं।

व्याख्या : कबहूँ योग बियोग न जाके। उसको विरहवंत देखकर नारदजी को विशेष सोच हुआ। अर्थात् सोच तो सबको हुआ। नारद को अपनी करतूत समझकर अधिक सोच हुआ। मुझ पर इतनी कृपा की कि मेरे कहने पर भी मेरी बात नहीं हटायी। इन्हें कर्म शुभाशुभ बाधा नहीं कर सकता। फिर भी मेरे शाप

को अङ्गीकार किया। अब : करिहैं कीस सहाय तुम्हारी। इसे सत्य करने के लिए सुग्रीव की शरण जा रहे हैं। भूमि सयन बल्कल वसन असन कन्द फल मूल : चल ही रहा है।

ऐसे प्रभुहि बिलोकउँ जाई। पुनि न बनिहि अस अवसरु आई ॥
येह बिचार नारद कर बीना। गए जहाँ प्रभु सुख आसीना ॥४॥

अर्थ : ऐसे : भक्तवत्सल प्रभु को जाकर देखूँ। फिर ऐसा अवसर न बन आवेगा। यह विचारकर नारदजी हाथ में वीणा लिये हुए वहाँ गये जहाँ प्रभु सुखपूर्वक बैठे हुए थे।

व्याख्या : प्रभु के अवतार तो अनेक हुए पर जैसी भक्तवत्सलता रामावतार में दिखा रहे हैं ऐसी तो कभी देखी नहीं गयी। अपने क्षुद्र भक्त के शाप को सत्य करने के लिए इतना कष्ट उठा रहे हैं। इस भक्तवत्सलता का तो कीर्त्तिस्तम्भ स्थापित करना चाहिए और वह कीर्तिस्तम्भ अचल तभी होगा जब रामनाम मत्स्य कूर्म वाराहादि नामों से अधिक महत्त्ववाला हो। इस समय मुझ पर सरकार की बड़ी भारी दया का उद्रेक है। इस समय जाकर वरदान के रूप में यही बात माँगने से बहुत सम्भव है कि मिल जाय। क्योंकि यही ऐसे वरदान माँगने का अवसर है है। फिर ऐसा अवसर नहीं मिलेगा। अतः नारदजी ने परम वात्सल्यमयी भगवान् की मूर्ति के दर्शन करने का निश्चय किया।

वीणापाणि हैं। गाते बजाते चले। सुख आसीन तहाँ दोउ भाई। कथा हो रही है।

गावत राम चरित मृदु बानी। प्रेम सहित बहु भाँति बखानी ॥
करत दंडवत लिये उठाई। राखे बहुति बार उर लाई ॥५॥

अर्थ : वे कोमल वाणी से प्रेम के साथ बहुत प्रकार से बखान बखानकर रामचरित्र का गान करते हुए चले आ रहे थे। दण्डवत् करते देखकर श्रीरामचन्द्रजी ने नारदजी को उठा लिया और बहुत देर तक हृदय से लगाये रक्खा।

व्याख्या : वीणा से : कर्मणा। गावत रामचरित : वाचा। प्रेम सहित : मनसा। ऐसी मृदु वाणी कि वीणा का साथ दे सके।

दण्डवत कर नहीं पाये और प्रभु ने उठा लिया। अपराधी अपने को मानकर दण्डवत प्रणाम करते हैं। बहुत बार उर लाई। आश्वासन के लिए सोच मिटाने के लिए। तुम मुझे बड़े प्रिय हो। तुम्हारे शाप के अनुसार बर्त्तने में मुझे सुख है। देखो मैं परम प्रसन्न हूँ। ये सब भाव बहुत देर तक हृदय लगाने से द्योतित हुए।

स्वागत पूछि निकट बैठारे। लछिमन सादर चरन पखारे ॥६॥

अर्थ : फिर कुशल पूछकर पास बिठा लिया। लक्ष्मणजी ने आदर के साथ उनके चरण धोये।

व्याख्या : स्वागत कर निकट आसन दिया। ईश्वर भाव लेकर आये हैं। इसलिए स्वयं पैर नहीं धोया। लक्ष्मणजी ने आदर से धोया। शास्त्र मर्यादा का पालन हो रहा है। पेड़ के नीचे बैठे हैं। फिर भी तृणभूमि, उदक और सूनृत से नारदजी का आतिथ्य हो रहा है। यथा : तृणानि भूमिरुदकं वाक् चतुर्थी तु सूनृता। एतान्यपि सतां गेहे नोच्छिद्यन्ते कदाचन। मनु।

दो. नाना बिधि बिनती करि, प्रभु प्रसन्न जियँ जानि।
नारद बोले बचन तब, जोरि सरोरुह पानि ॥४१.३५॥

अर्थ : बहुत प्रकार से विनती करके और प्रभु को मन में प्रसन्न जानकर तब नारदजी कमल सदृश हाथों को जोड़कर वचन बोले।

व्याख्या : अपराध क्षमापन के लिए पहिले नाना विधि से विनती की। जब देख लिया कि प्रभु की मेरे ऊपर प्रसन्नता है। तब हाथ जोड़कर बोले : मनोरथ पूर्ति के लिए विनय करने का उपयुक्त समय वही है जब दाता को अपने ऊपर प्रसन्नता हो।

सुनहु उदार सहज रघुनायक। सुंदर अगम सुगम बर दायक ॥
देहु एक बर मागउँ स्वामी। जद्यपि जानत अंतरजामी ॥१॥

अर्थ : हे स्वभाव से उदार श्रीरघुनाथजी ! सुनिये। आप सुन्दर अगम और सुगम वर के देनेवाले हैं। हे स्वामी ! मैं एक वर माँगता हूँ वह मुझे दीजिये। यद्यपि आप अन्तर्यामी होने के नाते सब जानते ही हैं।

व्याख्या : सहज उदार होने का कारण देते हैं : रघुनायक रघुकुल ही सहज उदार हैं। मंगन लहइ न जिनके नाहीं। सरकार तो उस कुल के नायक हैं। सहज उदार से ही मनोवाञ्छित की प्राप्ति होती है। यथा : माँगहु बर जोइ भाव मन महादानि अनुमानि। माँगनेवाले से चूक हो तो सरकार सँभाल लेते हैं। अवढर दानी नहीं हैं। यथा : कुपथ माँग रुज व्याकुल रोगी। बैद न देइ सुनहु मुनि जोगी। उदारता बड़ी है पर सुन्दरता पर भी ध्यान रहता है। अगम वर को भी सुगम की भाँति दे देते हैं : एक लालसा बड़ि उर माहीं। सुगम अगम कहि जात सो नाहीं। तुमहि देत अति सुगम गोसाईं। अगम लागि मोहि निज कृपनाईं।

स्वामी को छोड़कर किससे माँगे। स्वामी ही समर्थ हैं। जो माँगेंगे वह उनका स्व है। उदार से अनेक वर माँगा जा सकता है। पर मैं एक ही वर माँगता हूँ जिससे अवश्य मिले। सो आप जानते हैं। क्योंकि आप ही माँगने के लिए प्रेरणा कर रहे हैं। को जिय की रघुबर बिन बूझा। पर वर में शब्द प्रमाण है। इसलिए माँगता हूँ।

जानहु मुनि तुम्ह मोर सुभाऊ। जन सन कबहुँ कि करउँ दुराऊ ॥
कवन बस्तु असि प्रिय मोहि लागी। जो मुनिवर न सकहु तुम्ह मागी ॥२॥

अर्थ : श्रीरामजी ने कहा : हे मुनि ! तुम मेरा स्वभाव जानते ही हो। क्या मैं अपने भक्तों से कभी कुछ छिपाव करता हूँ ? मुझे ऐसी कौन सी वस्तु प्रिय लगी है जिसे हे मुनिश्रेष्ठ ! तुम नहीं माँग सकते ?

व्याख्या : जो वस्तु जिसे प्रिय होती है। उसे वह छिपाकर रखता है कि दूसरा ले न ले। परन्तु उसी वस्तु को उसे अपने प्रेम पात्र के देने में हर्ष होता है। भगवान् नारदजी से कहते हैं कि तुम मेरे स्वभाव को जानते हो कि मुझे भक्त के समान कोई प्रिय नहीं है। यथा : मोरे हित हरि सम नहिं कोऊ। मैंने अपनी स्वतन्त्रता भक्त को दे रक्खी है। उनके परतन्त्र रहता हूँ। अहं भक्तपराधीनः ह्यस्वतन्त्र इव द्विज। मुझे ऐसी कौन वस्तु प्रिय लगी जिसे तुम नहीं माँग सकते। अतः माँगने में सङ्कोच क्यों करते हो ? यहीं पर : तब बिबाह मैं चाह्यौ कीन्हा। प्रभु केहि कारन करै न दीन्हा : इस शङ्का का बीज पड़ गया। नारदजी को याद आगया कि वह वस्तु विश्व मोहिनी थी। जिसे माँगने पर भी मुझे न देकर स्वयं ले लिया। यथा : दुलहिनि लै गये लच्छि निवासा। नृप समाज सब भयउ निरासा।

जन कहुँ कछु अदेय नहिं मोरें। अस बिस्वास तजहु जनि भोरें ॥
तब नारद बोले हरषाई। अस बर मागउँ करउँ ढिठाई ॥३॥

अर्थ : मुझे भक्त के लिए कुछ भी अदेय नहीं है। ऐसा विश्वास भूलकर भी मत छोड़ो। तब नारद जी हर्षित होकर बोले : मैं ऐसा वर माँगता हूँ यह धृष्टता करता हूँ।

व्याख्या : यह न समझो कि मैं कह दूँगा : अदेयस्तु वरो ह्येषः। अतः सङ्कोच छोड़कर माँगो : सकुच बिहाय माँगु नृप मोहीं। मोरे नहिं अदेय कछु तोहीं। विश्वास छोड़ने में अकल्याण है। भक्तिपथ से पतन हो जाता है। नारद का माँगने में साहस न पड़ते देखकर प्रोत्साहन के लिए पहिले ही देने के लिए वचनबद्ध हो रहे हैं। बड़ी इच्छा है कि नारद माँगें।

नारदजी प्रसन्न हो गये कि मनोवाञ्छा सिद्ध हुई। इनकी अवस्था ठीक स्वायम्भू मनु सी है। वर माँगने में आगा पीछा हो रहा है। बात ढिठाई की है। सरकार के नामों के महत्त्व में उलट फेर करने का जीव को कौन सा अधिकार है। ऐसा वर माँगना अनधिकार चेष्टा है।

जद्यपि प्रभु के नाम अनेका। स्रुति कह अधिक एक तें एका ॥
राम सकल नामन्ह ते अधिका। होउ नाथ अघ खग गन बधिका ॥४॥

अर्थ : यद्यपि प्रभु के अनेकों नाम हैं और वेद कहते हैं कि वे सब एक से एक बढ़कर हैं। तो भी हे नाथ ! राम नाम और पापरूपी पक्षियों के समूह के लिए वधिक होने में सब नामों से बढ़कर हो।

व्याख्या : ढिठाई को स्पष्ट करते हैं। राम अनन्त अनन्त गुनानी। जन्म कर्म अनन्त नामानी। उन नामों में छोटा बड़ा कोई नहीं। एक से एक अधिक है।

इसमें वेद प्रमाण है। उसमें कुछ बोलना वेद में हाथ लगाना है। वेद सरकार की वाणी है।

जिस अवतार में इतनी भक्तवत्सलता है कि मेरी बात : शाप : झूठी न हो इसलिए सरकार इतना कष्ट सहन कर रहे हैं। उस अवतार का नाम सब नामों से अधिक हो। वेद में हस्तक्षेप न हो। इसलिए कहते हैं कि अघ खग वधिकत्व में अधिक हो। वधिक बड़े बड़े उपाय से चिड़िया फँसाता है। यह नाम अघखग को निर्मूल कर दे।

दो. राका रजनी भगति तव, राम नाम सोइ सोम।
अपर नाम उडगन बिमल, बसहुँ भगत उर ब्योम ॥४२॥

अर्थ : आपकी भक्ति पूर्णिमा की रात्रि है। उसमें राम नाम यही पूर्णचन्द्र होकर और अन्य सब नाम तारागण होकर भक्तों के हृदयरूपी निर्मल आकाश में निवास करें।

व्याख्या : भक्ति में लेशाविद्या स्वीकार है। इसी से राका रजनी कहा। उसमें पूर्णचन्द्र राम नाम हो। चन्द्र की भाँति मायान्धकार का नाशक हो। पर अकेले चन्द्र की भी शोभा नहीं और नाम भी तारों की भाँति साथ रहें। शोभा बढ़ावें। पर महावीर्य राम नाम ही में हो। भक्तों के दहराकाश में सदा चाँदनी बनी रहे।

दो. एवमस्तु मुनि सन कहेउ, कृपासिंधु रघुनाथ।
तब नारद मन हरष अति, प्रभु पद नायउ माँथ ॥४२.३६॥

अर्थ : कृपासागर श्रीरघुनाथजी ने मुनि से : ऐसा ही हो कहा। तब नारदजी ने मन में अत्यन्त हर्षित होकर प्रभु के चरणों में मस्तक नवाया।

व्याख्या : कृपासिन्धु हैं। करुणानिधि हैं। नारद पर कृपा होती ही जाती है। रघुनाथ हैं। अतः दे दिया। एवमस्तु कहा। कृतकृत्य होकर नारदजी प्रणाम करते हैं। मनोरथ की पूर्ति से अति हर्ष है।

अति प्रसन्न रघुनाथहि जानी। पुनि नारद बोले मृदु बानी ॥
राम जबहि प्रेरेहु निज माया। मोहेहु मोहि सुनहु रघुराया ॥१॥

अर्थ : श्रीरघुनाथजी को अत्यन्त प्रसन्न जानकर नारदजी फिर कोमल वाणी बोले : हे रामजी ! हे रघुनाथजी ! सुनिये। जब आपने अपनी माया को प्रेरित करके मुझे मोहित किया था।

व्याख्या : नारदजी ने देखा कि वर देने पर भी प्रसन्नता में कुछ भी अन्तर न पड़ा। अतः निश्चय किया कि इस समय अति प्रसन्न हैं। जो जो काम लेना हो उसे लेने का यही समय है। जो कुछ प्रष्टव्य है उसके पूछ लेने का भी यही समय है। अतः नारदजी मृदु वाणी बोले।

ज़ब काम मुझे मोहित न कर सका। आपकी माया से मैं मोहित हुआ। आप रघुराया हो। अभिमान नहीं रहने देता। यथा : श्रीपति निज माया तब प्रेरी। सुनहु कठिन करनी तेहि केरी।

तब विवाह मैं चाहैं कीन्हा। प्रभु केहि कारन करै न दीन्हा॥
सुनु मुनि तोहि कहउँ सहरोसा। भजहिं जे मोहि तजि सकल भरोसा॥२॥

अर्थ : तब मैं विवाह करना चाहता था। हे प्रभु ! आपने मुझे किस कारण विवाह नहीं करने दिया। प्रभु बोले : हे मुनि ! सुनो। मैं तुम्हें उत्साह के साथ कहता हूँ कि जो समस्त आशा : भरोसा छोड़कर केवल मुझको ही भजते हैं।

व्याख्या : मैंने कोई अनुचित बात नहीं चाही। विवाह करना धर्माविरुद्ध काम है। इसकी प्रशंसा शास्त्रों में है। यथा : धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ। सो उसमें आप ही बाधक हुए। स्वयं व्याह कर लिया। विश्वमोहिनी को स्वयं लेने के अतिरिक्त और कौन कारण हो सकता है। जिससे आपने मुझे व्याह न करने दिया और आप कहते हैं : जन कहुँ कछु अदेय नहिं मोरे। ये दोनों बातें तो असमञ्जस हैं।

सरकार ने उत्तर दिया कि कार्य भार बढ़ जाने के भय से मैं हतोत्साह नहीं हूँ। अतः उत्साह के साथ कहता हूँ कि जो लोग सबका भरोसा छोड़कर मुझे भजते हैं : जिन्हें दूसरे किसी का भी भरोसा हो उन लोगों के लिए नहीं कहता। जिन्हें केवल मेरा भरोसा है उनके लिए कहता हूँ।

करउँ सदा तिन्ह कै रखवारी। जिमि बालकहि राख महतारी॥
गह सिसु बच्छ अनल अहि धाई। तहँ राखै जननी अरगाई॥३॥

अर्थ : मैं सदा उनकी वैसे ही रखवारी करता हूँ जैसे माता बालक की रक्षा करती है। छोटा बच्चा जब आग और साँप को पकड़ने दौड़ता है तो वहाँ माता उसे : अपने हाथों अलग करके बचा लेती है।

व्याख्या : दूसरे को भी भरोसा रखनेवालों की सदा रखवारी नहीं करता। सेवक सुत पति मातु भरोसे। रहइ असोच बनै प्रभु पोसे। उन्हें किसी का आसरा नहीं होता। इसलिए मैं भी उन्हें दूसरों पर नहीं छोड़ता। जैसे माँ बच्चे की रखवारी करती है। उसकी सब चेष्टाओं पर ध्यान रखती है।

शिशु वच्छ अर्थात् छोटा : नादान बच्चा। यथा : बहुरि बच्छ कहि लाल कहि रघुपति रघुबर तात। प्यार बच्चा : अंगारा खूब चमकता है और सर्प बड़ा सुन्दर है। यह देखकर पकड़ने के लिए दौड़ता है। यहाँ विषय अनल है काम सर्प है। यथा : मनकरि बिषय अनल बन जरई। काम भुजंग डसत जब जाही। उस समय माँ लड़के की इच्छाभिघात का ख्याल नहीं करती। बलपूर्वक हटा लेती है।

प्रौढ़ भए तेहि सुत पर माता। प्रीति करै नहिं पाछिलि बाता ॥
मोरे प्रौढ़ तनय सम ग्यानी। बालक सुत सम दास अमानी ॥४॥

अर्थ : किन्तु जब वह सयाना हो जाता है तब उस पुत्र पर माता प्रेम तो करती है। परन्तु पिछली बात नहीं रहती। ज्ञानी मेरे सयाने पुत्र के समान है और अपने सामर्थ्य का मान न करनेवाले सेवक मेरे शिशु पुत्र के समान है।

व्याख्या : वही बच्चा जब कुछ बड़ा हो जाता है फिर भी माँ प्रीति करती है। पर प्रत्येक चेष्टा पर ध्यान नहीं रखती। माँ जानती है कि इसे इतना ज्ञान है कि भले बुरे को पहिचान सकता है। इसी भाँति ज्ञान के कारण ईश्वर की ओर से देखरेख कम हो जाती है कि ज्ञान है सँभाल लेगा।

ज्ञानी प्रौढ़ तनय है। अमानी दास बालक शिशु है। यहाँ बच्छ शिशु का अर्थ खुल गया इसका अर्थ बालक शिशु है।

जनहि मोरे बल निज बल ताही। दुहु कहँ काम क्रोध रिपु आही ॥
येह बिचारि पंडित मोहि भजहीं। पाएहुँ ज्ञान भगति नहिं तजहीं ॥५॥

अर्थ : मेरे सेवक को केवल मेरा ही बल रहता है और उसे : ज्ञानी को अपना बल होता है। पर काम क्रोधरूपी शत्रु तो दोनों के लिए हैं। ऐसा विचारकर बुद्धिमान् लोग मुझको ही भजते हैं। वे ज्ञान प्राप्ति होने पर भी भक्ति को नहीं छोड़ते।

व्याख्या : भेद का कारण कहते हैं। भक्त को मेरा भरोसा और ज्ञानी को अपना भरोसा रहता है। यथा : तामैश्वर्य्यपरां काश्यपः परत्वात्। आत्मैकपरां बादरायणः। ईश्वर का आश्रय करना यह काश्यप का मत है। आत्मा का आश्रय करना बादरायण का मत है। मेरी ओर से भेद नहीं है। भेद ज्ञानी की ओर से है। उसने मेरा भरोसा छोड़ा। अपना भरोसा किया। काम क्रोध तो ज्ञानी और भक्त दोनों के शत्रु हैं।

पण्डित अपना भरोसा नहीं रखते। यही उनकी पण्डिताई है। जिसमें हर समय मुझे उन पर ध्यान रखना पड़े। ज्ञानी होकर भी भक्ति करते हैं। ज्ञानी होकर यदि मुझे न भजा तो उसे यथार्थ ज्ञान नहीं हुआ। वाक्य ज्ञान कुशल मात्र हैं।

दो. काम क्रोध लोभादि मद, प्रबल मोह कै धारि।
तिन्ह महँ अति दारुन दुखद, मायारूपी नारि ॥४३.३७॥

अर्थ : काम, क्रोध, लोभ, और मद आदि अज्ञान की प्रबल सेना है। इसमें माया की साक्षात् मूर्ति स्त्री तो अत्यन्त दारुण दुःख देनेवाली है।

व्याख्या : ये सब मोह की फौज हैं। ये सब दारुण दुःखद हैं। उनमें स्त्री तो मायारूपिणी ही है। यह अति दारुण दुःखद है। काम क्रोधादि तो इसके सेवक हैं।

मोह न अंध कीन्ह केहि केही। को जग काम नचाव न जेही॥
तृष्णा केहि न कीन्ह बौराहा। केहि कर हृदय क्रोध नहिं दाहा॥
ज्ञानी तापस शूर कवि, कोविद गुन आगार।
केहि कै लोभ बिडंबना, कीन्ह न येहि संसार॥
यह सब माया कर परिवारा। प्रबल अमित को बरनै पारा॥
सिव चतुरानन जाहि डराहीं। अपर जीव केहि लेखे माँहीं॥

मायारूपी नारी का भाव यह कि वस्तु विचार से कुछ नहीं ठहरती। अब नारी का मायामयत्व बतलाते हैं।

सुनु मुनि कह पुराण स्रुति संता। मोह बिपिन कहुँ नारि बसंता॥
जप तप नेम जलासय झारी। होइ ग्रीषम सोखइ सब नारी॥१॥

अर्थ : हे मुनि ! सुनो। पुराण वेद और सन्त कहते हैं कि मोहरूपी वन को विकसित करने के लिए स्त्री वसन्त ऋतु के समान है। जप तप नियमरूपी सम्पूर्ण जलाशयों को स्त्री ग्रीष्म रूप होकर सर्वथा सोख लेती है।

व्याख्या : पुराण, श्रुति के कहने पर भी सन्तों के कहने की अपेक्षा रहती है कि अमुक धर्म शिष्टानुगृहीत है कि नहीं। मोह विपिन है। महा कष्टकर इसमें जो भूला सो बाहर नहीं निकल सकता। डरपहि धीर गहन सुधि आये। नारि वसन्त है। मोह विपिन पल्लवित पुष्पित हो उठता है। मोह विपिन यों ही दुःखद है। फिर जहाँ स्त्री आयी तब फिर क्या कहना है। अब बाल बच्चे होंगे। माया बढ़ती ही जावेगी।

१. जप २. तप ३. नियम से ही कार्य को क्षमता होती है। १. जपात् सिद्धि प्रजायते। २. तप बल रचै प्रपंच बिधाता। तप अधार सब सृष्टि भवानी। ३. नियम : नेम प्रेमु शंकर कर देखा। अविचल हृदयँ भगति कै रेखा। प्रगटे राम कृतज्ञ कृपाला। सो ये तीनों जलाश्रय की भाँति उपयोगी है। जलाश्रय तीन सर कूप वापी हैं। यथा : बन बाग उपवन बाटिका सर कूप वापी सोहहीं। ग्रीष्म में चाहे कोई सर वापी कूप बिना सूखे रह जाय। पर नारी तो सब जप तप नियम सोख ही लेती हैं : मुनि अति बिकल मोह मति नाठी। जप तप कछु न होइ तेहि काला : वन को बढ़ाती है जल को सुखाती है।

काम क्रोध मद मत्सर भेका। इन्हहि हरषप्रद बरषा एका॥
दुर्बासना कुमुद समुदाई। तिन्ह कहँ सरद सदा सुखदाई॥२॥

अर्थ : काम क्रोध मद और डाह आदि मेढक हैं। इनको वर्षाऋतु होकर हर्ष प्रदान करनेवाली एक मात्र स्त्री है। बुरी वासनाएँ कुमुदों के समूह हैं। उनको सदैव सुख देनेवाली यह शरद् ऋतु है।

व्याख्या : सर सूखने से भेकों को नष्ट हो जाना चाहिए। सो उनके लिए वर्षा हो जाती है। मरे भी जी उठते हैं। ये काम क्रोध मत्सर भेक हैं। ये व्यर्थ

टरटराया करते हैं। कभी राम नहीं कहते। जीभ सो दादुर जीभ समाना। एका का अर्थ बेजोड़ है।

कुमुद रात को फूलते हैं। शरदऋतु में इनकी बढ़ोत्तरी होती है। दुर्वासना रात को बढ़ती है। चोरी जारी रात में ही होती है। इन्हें शरद ऋतु होकर बढ़ाती है। भाव यह कि षड्ऋतुरूपा होकर कालचक्र रूपिणी है। एक साथ अनेक ऋतु का कार्य कर रही है। और सब भाँति हानिकारक है।

धर्म सकल सरसीरुह बृंदा। होइ हिम तिन्हहि दहै सुख मंदा ॥
पुनि ममता जवास बहुताई। पलुहइ नारि सिसिर रितु पाई ॥३॥

अर्थ : समस्त धर्म कमलों के झुण्ड हैं। यह मन्द : विषयजन्य सुख देनेवाली स्त्री हिम ऋतु होकर उन्हें जला डालती है। फिर मानसरूपी जवास का समूह स्त्रीरूपी शिशिर ऋतु को पाकर हरा भरा हो जाता है।

व्याख्या : धर्म कमल है। हिमऋतु सब कमलों का नाश करती है। एक कमल भी नहीं बचता। स्त्री सुख देकर धर्म का नाश करती है और वह सुख भी मन्द सुख है। आपातमात्रमधुरा विषयोपभोगाः। नारदजी के चरण पंकज का भाव ही हरण कर लिया। कहने लगे : स्वारथ साधक कुटिल तुम सदा कपट व्यवहार। सरकार के विमुख हो गये। और : सो सब करम धरम जरि जाऊ। जहँ न राम पद पंकज भाऊ।

जवास में काँटा ही काँटा होता है। ममता भी जवास की भाँति कण्टकाकीर्ण है। कलेजे में चुभती है। शिशिर ऋतु में इसकी वृद्धि होती है। वर्षा में नाश होता है। सो काम क्रोधरूपी भेक के लिए वर्षा होने पर भी यह ममता जवास के लिए शिशिर हो जाती है। चार को सुख और दो को दुःख देती है।

पाप उलूक निकर सुखकारी। नारि निबिड़ रजनी अँधियारी ॥
बुधि बलु सील सत्य सब मीना। बनसी सम त्रिय कहहिं प्रबीना ॥४॥

अर्थ : पापरूपी उल्लुओं के समूह के लिए यह स्त्री सुख देनेवाली घोर अन्धकारमयी रात्रि है। बुद्धि, बल, शील और सत्य ये सब मछलियों को फाँसने के लिए स्त्री वंशी के समान है। चतुर पुरुष ऐसा कहते हैं।

व्याख्या : मोह निसा सब सोवनिहारा। सो यह अमावस की रात्रि है। इसमें किसी का प्रचार नहीं। केवल पाप उलूक का प्रचार इसमें होता है। पुण्य पक्षी तो इसमें अन्धे रहते हैं। स्त्री पाने पर न भीतर का ज्ञान रहता है न बाहर का।

जप तप नियम जलाश्रय के बुद्धि बल शील सत्य में सब मीन हैं। इन्हीं से इनका जीवन है। स्त्री वंशी है। उसमें : परम प्रेम मृदु चारो। परम प्रेम चारा है। चारा के लोभ से बुद्धि बल शील सत्य सब मारे पड़ते हैं। इनके कारण मनुष्य

दुर्बुद्धि निर्बल दुःशील और झूठा हो जाता है। जो जो गुण तुम्हारे में है सो सब हरण हो जाता। दुर्गुण आकर डेरा लगाते हैं।

दो. अवगुन मूल सूलप्रद, प्रमदा सब दुख खानि।
ताते कीन्ह निवारन, मुनि मैं यह जियँ जानि ॥४४.३८॥

अर्थ : युवती स्त्री अवगुणों की मूल, पीड़ा देनेवाली और सब दुःखों की खान है। इसलिए हे मुनि ! मैंने जी में ऐसा जानकर तुमको विवाह करने से रोका था।

व्याख्या : संसृति मूल सूलप्रद नाना। सकल सोकदायक अभिमाना। सो उस अभिमान को तोड़ने का उपाय किया था। यदि व्याह हो जाता तो प्रमदा संग्रह से अवगुन मूल नाना शूलप्रद वस्तु तो बनी ही रहती। तुम अनर्थ से न बच सकते। अतः मैंने व्याह से रोक दिया। प्रमदा कहने का भाव यह कि इन्हें मद बना ही रहती है। यह उपदेश यति तथा ब्रह्मचारी के लिए है। यहाँ पर अच्छी बुरी स्त्री का प्रश्न नहीं है। ब्रह्मचारी स्त्री मात्र से विरत हो। न पश्येत् लिखितामपि। चित्र की स्त्री न देखे। गृहस्थ के लिए तो कह ही आये हैं : नारि सहित सब खग मृग बृंदा। मानहु मोरि करतहहिं निन्दा।

सुनि रघुपति के बचन सुहाए। मुनि तन पुलक नयन भरि आए ॥
कहहु कवन प्रभु कै असि रीती। सेवक पर ममता अरु प्रीती ॥१॥

अर्थ : श्रीरघुनाथजी के सुन्दर वचन सुनकर मुनि का शरीर पुलकित हो गया और नेत्र भर आये। वे सोचने लगे : कहो तो किस प्रभु की ऐसी रीति है कि जिसका सेवक पर इतना ममत्व और प्रेम हो।

व्याख्या : अति प्रसन्न रघुनाथहि जानी। तब प्रश्न किया। उत्तर देने पर कहते हैं : सुनि रघुपति के बचन सुहाए। ऐसे भाये कि सात्त्विक भाव हो गया : यह समझकर कि मैंने क्या समझा था और सरकार का क्या भाव था।

ऐसा मालिक कौन होगा कि गाली सुनकर भी कल्याण ही करे। यथा : मथत सिंधु रुद्रहि बौराएहु...सदा कपट व्यवहारु। सेवक पर ऐसी ममता यथा : साप सीस धरि हरखि हिय प्रभु बहु बिनती कीन्ह। ऐसी प्रीति यथा : निज माया कै प्रबलता करषि कृपानिधि लीन्ह।

सेवाधर्म कठिन जग जाना। सो स्वामी धर्म को कठिन करके दिखला दिया।

जे न भजहि अस प्रभु भ्रम त्यागी। ग्यान रंक नर मंद अभागी ॥
पुनि सादर बोले मुनि नारद। सुनहु राम बिग्यान बिसारद ॥२॥

अर्थ : जो मनुष्य भ्रम को त्यागकर ऐसे प्रभु को नहीं भजते वे ज्ञान के कङ्गाल दुर्बुद्धि और अभागे हैं। फिर नारद मुनि आदर सहित बोले हे विज्ञान विशारद श्रीरामजी ! सुनिये।

व्याख्या : यहाँ : प्रभु रक्षा करेंगे ऐसे विश्वास का न होना ही भ्रम है। जिसे भजनीय में ही भ्रम है उसे ज्ञान कहाँ हुआ ? वह मोहवश है। अतः मन्द है। न वह शिशु बच्छ ही हो सका। न प्रौढ़ तनय ही हो सका। अतः अभागी है।

नारदजी का गद्गद कण्ठ है। इससे मृदु वचन न कह सके सादर बोले। मुनि हैं। मनन शील हैं। मन में ठीक किया कि सरकार ने सन्तों को बड़ा ऊँचा पद दिया। स्वयं कहते हैं और अपने वचन के प्रमाण में : सुनु मुनि कह पुराण स्रुति संता। कहते हैं। सो सन्त को कैसे पहिचाने। अतः इन्हींसे लक्षण पूछना चाहिए। ये विज्ञान विशारद हैं।

संतन्ह के लच्छन रघुबीरा। कहहु नाथ भव भंजन भीरा ॥
सुनु मुनि संतन्ह के गुन कहऊँ। जिन्ह ते मैं उन्ह के बस रहऊँ ॥३॥

अर्थ : हे रघुवीर ! हे भवभय का नाश करनेवाले मेरे नाथ ! अब कृपाकर सन्तों के लक्षण कहिये। श्रीरामजी ने कहा : हे मुनि ! सुनो। मैं सन्तों के गुणों को कहता हूँ जिनके कारण मैं उनके वश में रहता हूँ।

व्याख्या : सरकार भवभय भंजन और भीर भञ्जन है। भीर : आपत्ति को कहते हैं। असाधारण धर्म को लक्षण कहते हैं। आप रघुवीर हैं। दया करके कहिये।

दूसरी बात प्रारम्भ होती है। अतः सुनु कहते हैं। सन्तों के गुण ही उनके लक्षण हैं। वे असन्त में नहीं पाये जाते हैं। उनकी बातें मेरे लिए प्रमाण है। क्योंकि मैं स्वयं उनके वश में रहता हूँ : भगति अवसहि बस करी।

षट बिकार जित अनघ अकामा। अचल अकिंचन सुचि सुखधामा ॥
अमितबोध अनीह मितभोगी। सत्यसार कबि कोबिद जोगी ॥४॥

अर्थ : वे सन्त, काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मत्सर इन छः दोषों को जीते हुए, पाप रहित, कामना रहित, स्थिर बुद्धि, सर्व त्यागी, बाहर भीतर से पवित्र, सुख के धाम, असीम ज्ञानवान्, इच्छारहित, मिताहारी, सत्यनिष्ठ, कवि, विद्वान् और योगी होते हैं।

व्याख्या : पहिला लक्षण षट् विकार काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर उनके वश में हैं। वे इनके वश नहीं है। अनघ हैं सञ्चित पाप भी नष्ट हो गये हैं और क्रियमाण से लेप नहीं है। अकाम हैं वासना रहित हैं। अचल हैं। अपने धर्म से चलायमान नहीं होते। यथा : वट बिस्वास अचल निज धर्मा। अकिञ्चन हैं। किसी वस्तु में उन्हें ममत्व बुद्धि नहीं है। बाहर भीतर से शुद्ध होते हैं। फलतः सुखधाम हैं।

उनका ज्ञान परिच्छिन्न नहीं है। यथैकेन मृत्पिण्डेन विज्ञातेन सर्वं मृण्मयं विज्ञातं भवति। जैसे एक मिट्टी के पिण्ड के जान लेने से उसके सभी विकार घटशरावादि जाने जाते हैं। उसी भाँति एक ब्रह्म के ज्ञान होने से कुछ ज्ञातव्य शेष नहीं रह जाता। इसलिए उन्हें अमित बोध कहा। अब उन्हें इच्छा नहीं होती। ऐसे ज्ञानी विधि निषेध से परे होते हैं। फिर भी मितभोगी होते हैं। भिक्षा, कौपीन, कंथा, पादुका में

ही उनका भोग सीमित रहता है। सत्यसार : व्यवहार सच्चा है। सच्चा लेना, सच्चा देना, सच्चा भोजन, सत्य चबेना। मितभोगी और सत्यसार होने से कवि : त्रिकालज्ञ हो जाते हैं। उन्हें वेदार्थ का भान होने लगता है। आपसे आप निरुद्ध होकर मन भगवच्चरण में लग जाता है। कुयोगी भी नहीं है। मोह विटप के उखाड़ने में समर्थ हैं : इससे ज्ञान कहा।

सावधान मानद मदहीना। धीर धर्म गति परम प्रबीना ॥५॥

अर्थ : सावधान, दूसरों को मान देनेवाले, अभिमान रहित, धैर्यवान्, धर्म की गति में अत्यन्त निपुण होते हैं।

व्याख्या : सावधान का अर्थ है प्रमादरहित : प्रमादो वै मृत्युः। इन्हें दूसरे को मान देने में प्रमाद नहीं होता। जो मान देता है वह स्वयं भी मान चाहता है। वे मदहीन रहते हैं। मान नहीं चाहते। धीर हैं : ते धीर अछत बिकार हेतु जे रहत मनसिज बस किये। धर्मगति बहुत सूक्ष्म होती है। गहना कर्मणो गतिः। सो उनकी गति में परम प्रवीण हैं। कर्म विकर्म अकर्म तीनों की सूक्ष्मता को समझते हैं : इसमें कर्म कहा।

दो. गुनागार संसार दुख, रहित बिगत संदेह।
तजि मम चरण सरोज प्रिय, तिन्ह कहुँ देह न गेह ॥६.४५.३९॥

अर्थ : गुणों के घर संसार के दुःखों से रहित और सन्देहों से सर्वथा छूटे हुए होते हैं। मेरे चरण कमलों को छोड़कर उनको न देह ही प्रिय होती है न घर ही।

व्याख्या : पण्डिते च गुणाः सर्वे। खल अघ अगुण साधु गुण गाहा। उभय अपार उदधि अवगाहा। गुण के आस्पद वे ही हैं। संसृत सन्निपात दारुण दुःख से रहित हैं। कभी कभी विद्या व्याप जाती है। अतः विद्या के दुःख का निषेध नहीं किया : हरि सेवकहिं न ब्याप अबिद्या। प्रभु प्रेरित ब्यापे तेहि बिद्या। उन्हें सन्देह होता ही नहीं। मेरा चरण ही प्रिय है देह गेह प्रिय नहीं। मेरे चरण के सम्बन्ध से देह गेह में प्रेम है। यदि बाधक हो तो उसे त्याग देवें : इससे भक्ति कहा।

निज गुन स्रवण सुनत सकुचाहीं। पर गुन सुनत अधिक हरषाहीं।'
सम सीतल नहिं त्यागहि नीति। सरल सुभाउ सबहि सन प्रीती ॥७.१॥

अर्थ : कानों से अपने गुण सुनने में सकुचाते हैं। दूसरों के गुण सुनने में विशेष हर्षित होते हैं। सम और शीतल हैं। न्याय का कभी त्याग नहीं करते। सरल स्वभाव होते हैं और सभी से प्रेम रखते हैं।

व्याख्या : निरभिमान हैं। संसार अपने गुण को सुनकर फूल उठता है पर उन्हें सङ्कोच होता है। गुणों के ठीक महत्त्व को जानते हैं। उनके मन मुताबिक वे गुण अपने में नहीं पाते। ऐसा उदार हृदय है कि पर गुण से हर्ष होता है। संसार

परगुण सहन नहीं कर सकता। वे गुणों पर आसक्त हैं। गुणों की बढ़ोत्तरी परम इष्ट है।

वे सम हैं यथा : निज प्रभु मय देखहिं जगत। शीतल हैं यथा : जहाँ सान्ति सत गुरु की दई। तहाँ क्रोध की जरि जरि गई। नीति नहीं छोड़ते : नीति विरोध सोहाइ न मोही। सब पर प्रीति प्रतोति जिय जानिय आपु समान। अतः स्वभाव से सरल होते हैं। सब पर प्रीति करते हैं : आत्मवत् सर्वभूतेषु यः पश्यति स पश्यति। अर्थात् भक्त में भगवान् के सब गुण आ जाते हैं।

जप तप ब्रत दम संजम नेमा। गुरु गोबिंद बिप्र पद प्रेमा॥
स्रद्धा छमा मयत्री दाया। मुदिता मम पद प्रीति अमाया॥८.२॥

अर्थ : वे जप, तप, व्रत, दम, संयम और नियम में रत रहते हैं। और गुरु गोविन्द तथा ब्राह्मणों के चरणों में प्रेम रखते हैं। उनमें श्रद्धा, क्षमा, मैत्री, दया, प्रसन्नता और मेरे चरणों में निष्कपट प्रेम होता है।

व्याख्या : उन्हें जप : मन्त्र का अभ्यास। तप : चान्द्रायणादि। व्रत : एकादशी आदि। दम : इन्द्रिय निग्रह। संयम : धारणा ध्यान समाधि। नेम : कार्यानुष्ठान में दृढ़ता। उसमें भङ्ग न हो। गुरु : ज्ञानदाता। गोविन्द : गोरक्षक भगवान् और विप्र इन पर स्वाभाविक प्रीति होती है।

श्रद्धा जननीव पाति योगिनम् : माँ की भाँति योगी की रक्षा करती है। श्रद्धा बिन धर्म नहिं होई। क्षमा : क्रोध को जीतनेवाली है। सामर्थ्य रहते अपराधी को दण्ड न देना क्षमा है। सुखी लोगों में मित्रता का भाव रखना। उनसे वैर न करना। दुःखी पर दया। पुण्यात्माओं को देखकर प्रसन्न होना : मैत्री करुणामुदितोपेक्षाणां सुखदुःखपुण्यापुण्यविषयाणां भावनातश्चित्तप्रसादनम्। ये सब गुण उनमें होते हैं।

बिरति बिबेक बिनय बिग्याना। बोध जथारथ बेद पुराना॥
दंभ मान मद करहि न काऊ। भूलि न देहि कुमारग पाऊ॥९.३॥

अर्थ : तथा उन्हें वैराग्य, विवेक, विनय, विज्ञान और वेद पुराण का यथार्थ ज्ञान रहता है। वे दम्भ, अभिमान, मद कभी नहीं करते और भूलकर भी कुमार्ग पर पैर नहीं रखते।

व्याख्या : विवेक राजा है। विराग उसका मन्त्री है। यथा : सचिव बिराग बिबेक नरेसू। विनय विद्या का फल है। ज्ञानी होने पर भी विनय रहे। अपरोक्ष ज्ञान को विज्ञान कहते हैं। उन्हें वेद पुराण का यथार्थ बोध होता है। श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ कहाते हैं। वेद पुराण के जाननेवाले बहुत हैं। पर यथार्थ बोध सबको नहीं है। सन्तों में ये सब गुण होते हैं।

अब जो सन्त नहीं करते उसे कहते हैं। १. दम्भ : करौं जो कछु धरौं सचि पचि सुकृत सिला बटोरि। पैठि उर बरबस दयानिधि दंभ लेत अंजोरि। २. मान यथा :

सकल सोक दायक अभिमाना। ३. मद यथा : श्रीमद बक्रन कीन्ह केहि। ४. कुमार्ग में पैर रखना। ये चार बात सन्त कभी नहीं करते।

गावहि सुनहि सदा मम लीला। हेतु रहित परहित रत लीला ॥
मुनि सुनु साधुन्ह के गुन जेते। कहि न सकहिं सारद श्रुति तेते ॥१०.४॥

अर्थ : सदा मेरी लीला को गाते सुनते हैं और बिना ही कारण दूसरों के हित में लगे रहते हैं। हे मुनि ! सन्तों के जितने गुण हैं उनको सरस्वती और वेद भी नहीं कह सकते।

व्याख्या : मेरी लीला गावे भी सुने भी : श्रोता मिले तो गावे वक्ता मिले तो सुने। निष्कारण परोपकार कहते हैं। यथा : पर उपकार बचन मन काया। संत सहज सुभाव खगराया। प्रकरण का उपसंहार करते हुए अन्त में दो प्रधान गुण कहा। यहाँ तक असाधारण गुण कहा : जिनते मैं उनके बस रहहू। वैसे तो अगणित गुण हैं।

शारदा स्वर्गलोक की वक्ता, श्रुति मर्त्यलोक की वक्ता। वे भी सन्तों के सब गुण नहीं कह सकते। भाव यह कि अकथनीय हैं। वैखरी में उनका वर्णन नहीं हो सकता : संत हृदय नवनीत समाना। कहा कविन्ह पै कहै न जाना। निज परिताप द्रवै नवनीता। पर दुःख द्रवहिं संत सुपुनीता।

छं कहि सक न सारद सेष नारद सुनत पद पंकज गहे।
अस दीनबंधु कृपाल अपने भगत गुन निज मुख कहे ॥
सिरु नाइ बारहिं बार चरनन्हि ब्रह्मपुर नारद गए।
ते धन्य तुलसीदास आस बिहाइ जे हरि रँग रँए ॥

अर्थ : शेष और शारदा भी नहीं कह सकते : यह सुनते ही नारदजी ने श्रीरामजी के चरण कमल पकड़ लिये। दीनबन्धु कृपालु प्रभु ने इस प्रकार अपने श्रीमुख से अपने भक्तों के गुण कहे। भगवान् के चरणों में बार बार सिर नवाकर नारदजी ब्रह्मलोक को चले गये। तुलसीदासजी कहते हैं कि वे पुरुष धन्य हैं जो सब आशा छोड़कर केवल श्रीहरि के रंग में रँग गये हैं।

व्याख्या : पूर्व अर्धाली में शेष को कहने के लिए स्थान नहीं था। अतः छन्द में कहते हैं। शिष्य की कृतकृत्यता। अपने सेवक का गुण कोई अपने मुख से नहीं कहता। सरकार की इतनी अनुकम्पा है कि अपने मुख से सेवक के गुण कहे। अर्थात् भागवत धर्म का वर्णन किया। नारदजी ने इसीलिए पूछा था कि जो गुण अपने में न हों उसके लिए मैं प्रयत्न करूँ। सो देखा कि मेरे गुणों को अपने मुख से कह रहे हैं। अतः बार बार चरणों में सिर नवाया।

आशा छोड़कर हरि के रंग में रँग जाने में ही सब गुण हैं।

सोइ सरवग्य गुनी सोइ ग्याता। सोइ महि मंडित पंडित दाता॥
धर्मपरायण सोइ कुलत्राता। रामचरण जाकर मन राता॥
बिधि हरिहर कबि कोबिद बानी। कहत साधु महिमा सकुचानी॥
सतसंगति दुर्लभ संसारा। निमिष दंड भरि एकौ बारा॥

दो. रावनारि जसु पावन, गावहिं सुनहिं जे लोग।
राम भगति दृढ़ पावहिं, बिनु बिराग जप जोग॥४६. क॥

अर्थ : जो लोग रावण के शत्रु : अथवा जिसका शत्रु रावण है ऐसे श्रीरामजी का पवित्र यश गावेंगे और सुनेगें वे वैराग्य जप और योग के बिना ही श्रीरामजी की दृढ़ भक्ति पावेंगे।

व्याख्या : रावण का यश मन्द। रावणारि का पावन। इस काण्ड में रावण से वैर हो गया। इसलिए रावणारि कहते हैं। भक्ति के साधन हैं बिराग जप और योग। यथा : जप योग धर्म समूह ते नर भगति अनुपम पावई। सो कथा गान और श्रवण से मिल जाती है। यह इस काण्ड का माहात्म्य है।

दो. दीप सिखा सम जुवति तनु, मन जनि होसि पतंग।
भजहि राम तजि कामु मदु, करहि सदा सतसंग॥४६. ख. ४०॥

अर्थ : युवती स्त्रियों का शरीर दीपक की लौ के समान है। हे मन ! तू उसका पतिंगा न बन। काम और मद को छोड़कर श्री रामचन्द्रजी का भजन कर और सदा सत्संग कर।

व्याख्या : दीपशिखा को मनोहर देखकर मन पतंग होकर कूदता है और भस्म हो जाता है। यौवनावस्था में ही मनोहर है। जहाँ यौवनावस्था गयी तहाँ मनोहरता भी चली जाती है। अपने मन को शिक्षा देते हैं। सरकार ने नारदजी को स्त्री संग्रह नहीं करने दिया। अतः तू भी संग्रह न कर।

काम मद भजन पथ के बाधक हैं। इन्हें छोड़कर भजन कर और सदा सत्संग कर। यथा : तुलसी घट नव छिद्र को सतसंगति सर बोर। बाहर रहै न प्रेम जल कीजै जतन करोर। उमा रामगुण गूढ़ पण्डित मुनि पावहि बिरति : का साफल्य दिखलाया।

इति श्रीमद्रामचरितमानसे सकलकलिकलुषविध्वंसने विमलवैराग्यसंपादनो
नाम तृतीयः सोपानः समाप्तः

यह काण्ड श्रीरामचरित मानस में आरण्यक का काम देता है।

॥ हरि ॐ तत्सत् ॥

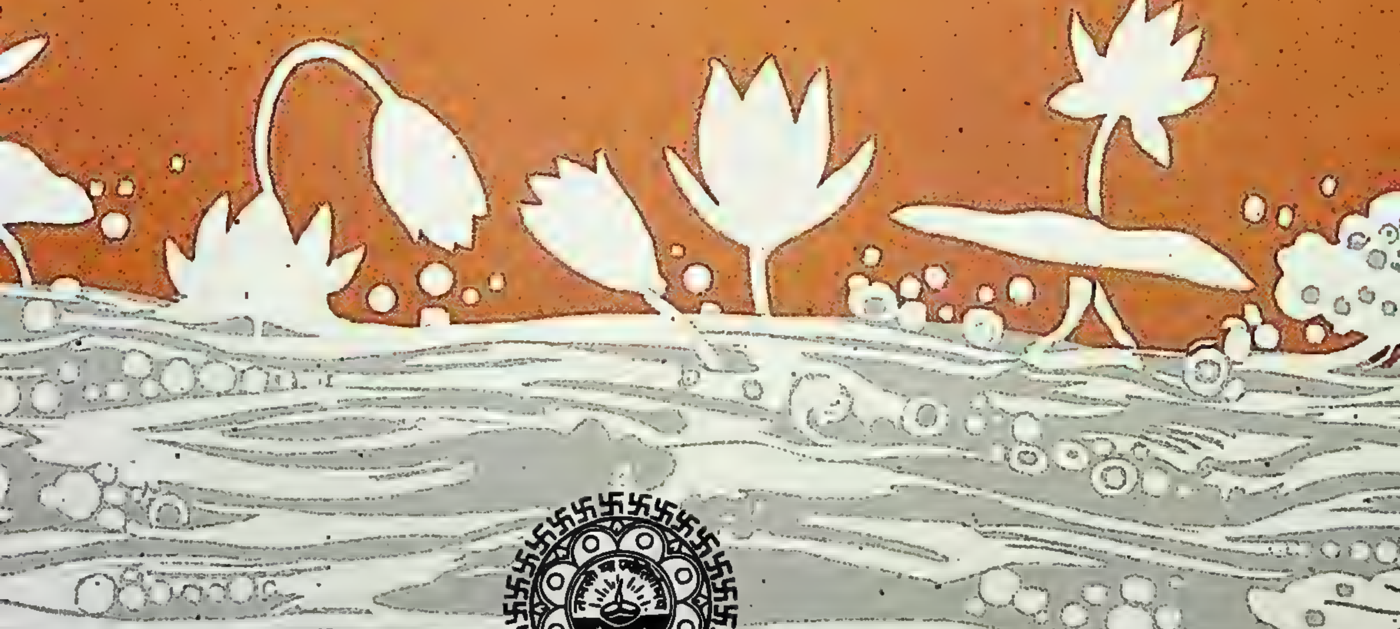

चौखम्बा विद्याभवन
वाराणसी

श्रीरामचरितमानस

विजया टीका

मानसराजहंस पं० विजयानन्द त्रिपाठी

॥ श्रीः ॥

विद्याभवन प्राच्यविद्या ग्रन्थमाला
१४७

श्रीरामचरितमानस

विजया हिन्दी टीका

(तृतीय भाग)

चतुर्थसोपान : किष्किन्धाकाण्ड
पञ्चमसोपान : सुन्दरकाण्ड
षष्ठसोपान : लंकाकाण्ड
सप्तसोपान : उत्तरकाण्ड

टीकाकार
मानसराजहंस पं. श्री विजयानन्दजी त्रिपाठी

सम्पादक
डॉ. श्रीनाथ मिश्र 'रामायणी'
डॉ. सहजानन्द त्रिपाठी

चौखम्बा विद्याभवन
वाराणसी

प्रकाशक
चौखम्बा विद्याभवन
(भारतीय संस्कृति एवं साहित्य के प्रकाशक तथा वितरक)
चौक (बैंक ऑफ बड़ोदा भवन के पीछे)
पो. बा. नं. 1069, वाराणसी 221001
दूरभाष : 2420404

सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन
पुनर्मुद्रित संस्करण 2004 ई.
मूल्य : ,1500.00 (1-3 भाग सम्पूर्ण)

अन्य प्राप्तिस्थान
चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान
38 यू. ए. बंगलो रोड, जवाहर नगर
पो. बा. नं. 2113
दिल्ली 110007
दूरभाष : 23856391

❖

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन
के. 37/117 गोपालमन्दिर लेन
पो. बा. नं. 1129, वाराणसी 221001
दूरभाष : 2335263, 2333431

विषयानुक्रमणिका

४. किष्किन्धाकाण्ड

मङ्गलाचरण : सीतान्वेषण तत्पर दोनों रघुवरों से भक्ति की प्रार्थना। सदा रामनामामृत पान करनेवाले सुकृतियों को धन्यवाद : संस्कृत। काशी विश्वनाथ के सेवन का मन को उपदेश। पृष्ठ १ से।

मारुतिमिलन प्रसंग : प्रभु का ऋष्यमूक पर्वत के निकट पहुँचना। सुग्रीव का भयभीत होकर हनुमान् को भेजना। हनुमान् का विप्ररूप से जाना। हनुमान् के प्रश्न। राम के उत्तर। हनुमान्‌जी का विनय। अनन्य भक्ति की परिभाषा। सुग्रीव की कथा समझाकर हनुमान्‌जी का दोनों भाइयों को पीठ पर चढ़ाकर सुग्रीव के पास ले जाना : दो. ३.५ तक। पृ० ६ से।

सुग्रीव मिताई प्रसंग : सुग्रीव से भेंट। हनुमान् का दोनों ओर की कथा समझाकर राम सुग्रीव की अग्निसाक्षिक मैत्री कराना। लक्ष्मण का सब रामचरित्र वर्णन करना। आकाशमार्ग से जाती हुई जानकी के समाचार का सुग्रीव द्वारा निवेदन। पट देना। प्रभु का पट को हृदय में लगाकर सोच करना। सुग्रीव की प्रतिज्ञा। रामचन्द्र का सुग्रीव के वन में बसने का कारण पूछना। सुग्रीव की आत्मकथा। वालिवध की प्रतिज्ञा। मित्रधर्मोपदेश। रामचन्द्र का अपने बल के भरोसे सुग्रीव को शोक त्यागने के लिए कहना। सुग्रीव का सन्देह। रामचन्द्र के बल की परीक्षा। सुग्रीव का ज्ञान। निवृत्तिमार्ग से भजन के लिए कृपा करने का विनय। रामचन्द्र का उत्तर : दो. ६.२४ तक। पृ० १७ से।

बालिवध प्रसंग : प्रतिज्ञा सत्य करने के लिए सुग्रीव को साथ लेकर रामचन्द्र का किष्किन्धा जाना। राम के भेजे हुए सुग्रीव का गर्जन। बालि को तारा का समझाना। बालि का निश्चय। युद्ध से भागकर सुग्रीव का राम के यहाँ जाना। राम का माला और बल देकर उसे युद्ध के लिए फिर भेजना। नानाविध युद्ध। सुग्रीव की हार। रामचन्द्र का बाण मारना। बालि का प्रश्न। रामचन्द्र का उत्तर। बालि की अति कोमल वाणी सुन रामचन्द्र का उसके सिर पर हाथ हाथ रखना। बालि का शरीर रखने के लिए प्रस्तुत न होना। अङ्गद को सौंपना। बालि का तन त्याग। प्रजा की बिकलता। तारा का विलाप। तारा का ज्ञानलाभ। बालि की अन्त्येष्टि : दो. १०.८ तक। पृ० ३४ से।

कपि तिलक प्रसंग : रामचन्द्र का लक्ष्मण को समझाकर भेजना। सुग्रीव को राज्य। अङ्गद को यौवराज्य। सुग्रीव का राजनीति उपदेश। अपने कार्य के न भूलने की चेतावनी। सुग्रीव का घर लौट आना : दो. ११.१० तक। पृ० ४८ से।

प्रवर्षण शैल वास : वन वर्णन। सिद्ध मुनि की सेवा। फटिक शिला पर लक्ष्मण को भक्ति, वैराग्य, राजनीति और विवेक का उपदेश : दो. १२.७ तक। पृ० ५१ से।

वर्षा शरद वर्णन प्रसंग : बादल का घिर आना। मोर का नाचना। मेघ गर्जन। बिजली की चमक। पानी पड़ना। पर्वतों की स्थिरता। बरसाती नदियों।

का तोड़। पानी का ढावर होना। बहकर तालाबों में जाना। जल का नदी द्वार से समुद्र में पहुँचना। पृथिवी का हरा भरा होना। दादुर ध्वनि। पेड़ों में नये पल्लव। अर्क जवास का होना। धूल का कठिनता से मिलना। धान की खेती। जुगनू की बहार। महावृष्टि से क्यारियों का फूट चलना। किसानों का निराना। ऊसर में तृण का न उगना। पृथिवी का जन्तुओं से भर जाना। पथिकों का जहाँ का तहाँ ठहर जाना। कभी कभी प्रबल हवा बहना। कभी दिन में अन्धकार और कभी धूप का वर्णन। शिक्षाप्रद उपमाओं का निर्देश। शरद ऋतु : काश का फूलना। अगस्त्य का उदय होना। सरितासर में निर्मल जल। जल का घटना। खञ्जन का आगमन। बिना कीचड़ और रेणु की पृथिवी। मीन की विकलता। आकाश की निर्मलता। कहीं कहीं पर थोड़ी वृष्टि का होना। रास्तों का खुल जाना। अगाध जल की मछलियों का सुखी रहना। कमल के फूलने से सर की शोभा। सुन्दर रात्रि में भी चक्रवाक को दुःख। चातक की रटन। चन्द्र का तापहरण। चकोरों का आह्लाद। मशक दंश का नाश। बरसाती जीवों के विनाश का वर्णन : शिक्षाप्रद उपमाओं के साथ : दो. १७ तक। पृ० ५४ से।

राम रोष प्रसंग : सुग्रीव के सुधि बिसारने पर रामचन्द्र का क्रोध। लक्ष्मण का सुग्रीव वध के लिए उद्यत होना। रामचन्द्र का समझा कर भेजना। इधर हनुमान् का सुग्रीव को समझाना। सुग्रीव की आज्ञा से बन्दरों को बुलाने के लिए दूत भेजना : दो. १८.७ तक। पृ० ७० से।

कपि त्रास प्रसंग : लक्ष्मण का क्रोध प्रदर्शन। अङ्गद को अभय दान। तारा और हनुमान् को भेजकर सुग्रीव का लक्ष्मणजी को बुलवाना। लक्ष्मण से सुग्रीव की भेंट। सुग्रीव की विनय। दूतों के भेजने का समाचार कहना। सबका रामचन्द्र के पास आना। सुग्रीव की विनय। रामचन्द्र का प्रेम : दो. २०.८ तक। पृ० ७५ से।

सुग्रीव दूत प्रेरणा प्रसंग : बानर कटक का आगमन। उसकी अपारता। रामचन्द्र का शील। सीता की खोज के लिए बानर भटों को सुग्रीव की आज्ञा। सुभटों को दक्षिण भेजना। सुग्रीव का उपदेश। हनुमान् को अँगूठी देना और सीताजी को समझाने के लिए शिक्षा। सबका प्रस्थान : दो. २३.४ तक। पृ० ८२ से।

सीता की खोज प्रसंग : निशाचरों का वध। मुनियों को घेरना। सुभटों को प्यास। वन में भूल जाना : पृ० ८३ से।

विवर प्रवेश प्रसंग : हनुमान् का गिरि पर चढ़कर विवर में चिड़ियों के घुसने का कौतुक देखना। सबको लेकर दिखाना। विवर प्रवेश। तपस्विनी नारी का दर्शन। उसकी आज्ञा से मज्जन। फलाहार। सबका आँख मूँदना। खोलने पर अपने को समुद्र तट पर पाना। उक्त नारी का रघुनाथजी के यहाँ जाना। अनपायिनी भक्ति का लाभ। बदरी यात्रा : दो. २५ तक। पृ० ९० से।

सम्पाती मिलन प्रसंग : बानरों को सोच। समुद्र किनारे अनशन। जाम्बवान् का उपदेश। सम्पाती का आगमन। उसके वचनों से बानरों को भय। अंगद द्वारा जटायु की प्रशंसा। सम्पाती द्वारा उसका वृत्तान्त पूछा जाना। जटायु का

इति वृत्त। जटायु की क्रिया। सम्पाती की आत्मकथा। सीता का समाचार। सम्पाती का पक्ष लाभ। बानरों को ढाढस देकर प्रस्थान : दो. २८.५ तक। पृ० ९३ से।

सम्पाती कथा श्रवण प्रसंग : पृ० ९८ से।

हनुमान् कृत बल कथा श्रवण प्रसंग : सबका पार जाने में संशय रखकर अपना बल कहना। जाम्बवान् का अपनी बुढ़ाई की ओट पकड़ना। अपनी जवानी की कथा। अङ्गद का लौटने में संशय बतलाना : दो. २९.२ तक। पृ० १०३ से।

अथ हनुमत् चरित : जाम्बवान् द्वारा पवन तनय की प्रशंसा। हनुमान् का आवेश। पराक्रम कथन। जाम्बवान् से शिक्षा के लिए प्रार्थना। जाम्बवान् की शिक्षा। काण्ड की फलश्रुति : उमा के छठे प्रश्न के उत्तरार्ध का उत्तर प्रारम्भ। यथा : सुनिअ तासु गुनग्राम। जासु नाम अघ खग बधिक : दो. ३० तक। पृ० १०५ से।

५. सुन्दरकाण्ड

मंगलाचरण : वेदान्त वेद्य सुरगुरु रामचन्द्र वन्दना। भक्ति के लिए याचना। रामदूत वन्दना : संस्कृत : पृ० १११ से।

समुद्राल्लंघन प्रसंग : जामवन्त के वचन का अच्छा लगना। हनुमान् का सबको तसल्ली देकर प्रणाम करना। सुन्दर भूधर पर चढ़कर हनुमान् का कृपण के धन की भाँति राम को सुमिरना। कूदना। मैनाक का सम्मान। सुरसा भगवती का विघ्नाचरण। परीक्षा के बाद सुरसा देवी का आशीर्वाद। सिंहिकावध। पार पहुँचना। वन की शोभा देखना। विशाल शैल पर चढ़कर लंकानिरीक्षण। लंका वर्णन : दो. ३ तक। पृ० ११४ से।

लंका प्रवेश प्रसंग : मशकसमान रूप से रात को नरहरिस्मरण पूर्वक लंका में प्रवेश। लंकिनी का पहिचान लेना। उसपर प्रहार। लंका की विनय। भगवान् को स्मरण करके लंका प्रवेश। घर घर ढूंढ़ना। दशानन का महल। विभीषण से भेंट। विभीषण हनुमान् संवाद। पूछने पर विभीषण का सीता के दर्शन की युक्ति बतलाना। अशोक वन में भगवती का दर्शन। तरुपल्लव में छिपकर विचार। रावण का आगमन। रावण सीता संवाद। रावण का सीता वध के लिए उद्यत होना। मन्दोदरी का समझाना। सीता को त्रास दिखाने के लिए निशाचरियों को रावण की आज्ञा। एक मास की अवधि। रावण का प्रस्थान। निशाचरियों का त्रासना। त्रिजटा का अपना स्वप्न तथा उसका फल सुनाना। निशाचरियों का भयभीत होकर सीताजी के पैर पकड़ना। सबका प्रस्थान। सीता का चितारोपण तथा अग्निदान के लिए त्रिजटा से विनय। त्रिजटा का समझाना तथा प्रस्थान। सीता का प्रेमोन्माद। अशोक वृक्ष से अग्नि के लिए प्रार्थना : दो. ११.१२ तक। पृ० १२५ से।

सीता धैर्य दान प्रसङ्ग : हनुमान् का मुद्रिका गिराना। अशोक वृक्ष का दिया हुआ अङ्गार समझकर सीता का उठा लेना। मुँदरी की पहिचान। हर्ष विषाद। हनुमान् द्वारा राम गुण वर्णन। सीता का एकाग्र होकर सब सुनना। वक्ता को देखने की इच्छा। हनुमान् का निकट

१. कहहु नाथ जिमि रावन मारा।

जाना। सीता को विस्मय। विश्वास दिलाने के लिए हनुमान् का शपथ लेना। नर वानर सङ्ग विषयक प्रश्न। उत्तर। सीताजी का विश्वास। सीता हनुमान् संवाद। रामचन्द्र का सन्देश। सीता की प्रेम विह्वलता। हनुमान् का ढाढ़स बँधाना। सीता का कपिसेना की कार्य-कारिता में सन्देह। हनुमान् का निज देह प्रकट करना। सीता को भरोसा। हनुमान् की विनय। सीता को सन्तोष। आशीर्वाद। हनुमान् का बार बार प्रणाम : दो. १६.६ तक। पृ० १४८ से।

वन विध्वंस प्रसङ्ग : सीताजी से फल खाने की आज्ञा पाकर हनुमान् का बाग में प्रवेश। फल खाने के बाद पेड़ तोड़ना। बहु भटों से युद्ध। रावण के यहाँ पुकार। अनेक भटों का आगमन तथा युद्ध। सुभटों के साथ अक्षकुमार का आगमन। अक्षवध। बहुत बड़ा युद्ध। महाभटों के साथ इन्द्रजीत का आगमन। घोर युद्ध। मेघनाद को मूर्च्छा। मेघनाद की माया। ब्रह्मास्त्र प्रयोग। हनुमान् को मूर्च्छा। हनुमान् को नागपाश से बाँधकर मेघनाद का ले जाना : दो. १९.५ तक। पृ० १६२ से।

रावण प्रबोध प्रसङ्ग : रावण की सभा। हनुमान् की निर्भीकता। रावण के चार प्रश्न। हनुमान् के उत्तर। हनुमान् का विनती के व्याज से अतिहित उपदेश। वध दण्ड के लिए रावण की आज्ञा। विभीषण का आगमन। दूत के अवध्य होने से अन्य दण्ड के लिए विभीषण की विनय। सबकी सम्मति। पूँछ जलाने की आज्ञा। पूँछ जलाने की विधि। नगर में घुमाकर पूँछ में आग लगाना : दो. २४.७ तक। पृ० १७० से।

लङ्का दहन प्रसङ्ग : हनुमान् का अति-लघु रूप धारण कर बन्धन से निकल जाना। तीन बार उलट पुलट कर लङ्का दाह। समुद्र में कूदकर पूँछ बुझाना। विश्राम। सीता से चिह्न के लिए प्रार्थना। चूड़ामणि प्राप्ति। सीता का सन्देश। सीताजी की विह्वलता। हनुमान्जी का धीरज देना। प्रस्थान के समय घोर गर्जन : दो. २७.१ तक। पृ० १८४ से।

पुनः समुद्रोल्लङ्घन प्रसङ्ग : समुद्र लाँघकर पार जाना। सबसे मिलना। नवीन इतिहास कहते सुनते प्रभु के पास प्रस्थान : दो. २७.६ तक। पृ० १९१ से।

रघुनाथ सन्निकट आगमन प्रसंग : मधुवन का फल खाना। रखवारों की सुग्रीव के पास पुकार। सुग्रीव का हर्ष। तब तक बानरों का आगमन। सुग्रीव का सबसे मिलना। कुशल प्रश्न। हनुमान् द्वारा कार्यसिद्धि सुनकर उनसे फिर मिलना। सबका राम के पास जाना। प्रणाम। रामचन्द्र का सबसे कुशल प्रश्न : दो. २९ तक। पृ० १९३ से।

वैदेही कुशल कथन प्रसंग : जाम्बवान् का हनुमत् चरित राम को सुनाना। राम का पुनः हनुमान् से मिलना। रामचन्द्र हनुमत् संवाद। प्रभु की कृतज्ञता। हनुमान् का चरणों पर गिरना। रामचन्द्र का हृदय लगाना। लंका दाह विधि पूछना। हनुमान् का प्रभु प्रताप को कारण बतलाकर शिव मनभावनी भक्ति माँगना। प्रभु का एवमस्तु कहना। इस संवाद की फलश्रुति। बानरों का जय-जयकार। इति हनुमत् चरित्र : दो. ३३.५ तक। पृ० १९६ से।

सेना समेत रघुवीर का समुद्रतट-

प्रस्थान प्रसंग : सुग्रीव को यात्रा का बनाव करने के लिए आज्ञा। सुग्रीव का यूथप यूथ को बुलाना। रामचन्द्र का प्रस्थान। शकुन। सीता को शकुन। रावण को अशकुन। कटक यात्रा वर्णन। सिन्धु तीर पर उतरना। कपि वीरों का फलाहार : दो. ३५ तक। पृ० २०७ से।

मन्दोदरी का रावण को समझाना : प्रथम बार : मन्दोदरी को दूतियों द्वारा लंका के आतङ्क का समाचार। मन्दोदरी का एकान्त में रावण को समझाना। रावण का उसकी भीरुता पर हँसना। रावण का सभा में जाना : दो. ३६.६ तक। पृ० २१४ से।

रावण की सभा : रावण को सिन्धुपार सेना के आने का समाचार। मन्त्रियों से सलाह। मन्त्रियों की ठकुरसोहाती बात। विभीषण का आगमन। ऋषि पुलस्त्य का सन्देश और अपनी विनय सुनाना। माल्यवान् का अनुमोदन। दोनों को निकाल देने के लिए रावण की आज्ञा। माल्यवान् का प्रस्थान। विभीषण की पुनः विनय। रावण का क्रोध चरण-प्रहार। विभीषण का बार बार पैर पकड़ना और हितोपदेश। सचिव सहित आकाश में जाकर विभीषण को रावण को चेतावनी। विभीषण का प्रस्थान : दो. ४१.३ तक। पृ० २१८ से।

विभीषण मिलन विधि प्रसङ्ग : विभीषण का मनोरथ। सिन्धु पार आना। वानरों का विभीषण को ठहराकर सुग्रीव को समाचार देना। सुग्रीव की विभीषण के बाँधने की सलाह। रामजी की शरणागत वत्सलता। उभय भाँति लाने की आज्ञा। अङ्गद हनुमान् का जाकर विभीषण को ले आना। विभीषण का प्रेम। विभीषण की शरणयाचना। दण्डवत। रामचन्द्र का उठकर हृदय लगाना। पास बिठाना। कुशल पूछना। विभीषण राम संवाद। विभीषण का शम्भुमनभाविनी भक्ति माँगना। एवमस्तु कहकर राम का विभीषण को अभिषिक्त करना। रामचन्द्र का सुग्रीव विभीषण से समुद्र सन्तरण का उपाय पूछना। विभीषण का समुद्र से विनय करने की सलाह। लक्ष्मण का विरोध। रामचन्द्र का लक्ष्मण को समझाकर सिन्धुतीर कुश बिछाकर बैठना : दो. ५०.७ तक। पृ० २३२ से।

शुक सारण की कथा : विभीषण के साथ ही रावण का दूत भेजना। कपि वेष से उनका सब चरित्र देखना। प्रेममग्न होकर कपट भूल जाना। तब वानरों का पहचानना और उन्हें बाँधकर सुग्रीव के यहाँ ले आना। अङ्ग भंग के लिए सुग्रीव को आज्ञा। शुक सारण का रामचन्द्र की दोहाई देना। लक्ष्मण का छुड़ा देना। रावण को उसके हाथ चिट्ठी भेजना। वाचिक सन्देश। शुक सारण का रावण के पास जाना। रावण के चार प्रश्न। शुक के उत्तर। रावण का समुद्र से मार्ग माँगने पर हँसी उड़ाना। दूत का पत्र देना। चीठी बँचवाना। रावण का पुनः हँसी उड़ाना। शुक का विनयपूर्वक उपदेश। रावण का चरण प्रहार। शुक का चरणों पर सिर नवाकर रामचन्द्र के पास जाना। आत्म कथा। शुक की गति : दो. ५०.१२ तक। पृ० २५८ से।

सागर निग्रह प्रसङ्ग : तीन दिन बीतने पर भी समुद्र का विनय न मानना। रामचन्द्र का क्रोध। लक्ष्मण से धनुष बाण माँगना। शर सन्धान। समुद्र के

हृदय में ज्वाला। जल जन्तुओं का जलना। विप्र वेष में समुद्र का शरण आना। समुद्र की विनय। रामचन्द्र का कपि कटक उतरने के लिए उपाय पूछना। समुद्र का उपाय कथन। समुद्र की उत्तर तटवासी पापियों के वध के लिए उस शर को छोड़ने की प्रार्थना। रामचन्द्र का वैसा ही करना। रामचन्द्र का पौरुष देखकर समुद्र को हर्ष। समुद्र का सब चरित्र सुनाना। चरण वन्दन करके प्रस्थान। काण्ड की फलश्रुति : दो. ६० तक। पृ० २७४ से।

६. लङ्काकाण्ड

मङ्गलाचरण : गोस्वामीजी का मन को रामभजन के लिए समझाना : हिन्दी। खल वध निरत रामचन्द्र की वन्दना। कन्दर्पहन्ता शङ्कर की वन्दना। खलों के दण्ड विधायक शङ्कर से मङ्गल की प्रार्थना। संस्कृत : पृ० २८३ से।

सेतुबन्ध प्रसङ्ग : रामचन्द्र की सेतुबन्ध के लिए मन्त्रियों को आज्ञा। जाम्बवान् द्वारा समुद्र सन्तरण के ब्याज से नाम की स्तुति। हनुमान् की अत्युक्ति। जाम्बवान् की : नलनील को बुलाकर सेतुबन्ध के लिए आज्ञा। वानरों को विटप गिरि लाने का आदेश। सेतु-रचना। रामचन्द्र का शङ्कर स्थापना की इच्छा प्रकट करना। सुग्रीव का दूत भेजकर मुनियों को बुलवाना। श्रीरामेश्वर स्थापना। शिवद्रोही की निन्दा। राम-द्रोही शैव और शिवद्रोही वैष्णव की निन्दा। श्री रामेश्वर तथा सेतु की महिमा। मुनियों का प्रस्थान। सेतु का दृढ़ीकरण। सेना का चलना। सेतुबन्ध के निकट ऊँचे पर से कृपालु का सिन्धु की बहुताई देखना। प्रभु के दर्शन के लिए जल जन्तुओं का प्रकट होना। राम की आज्ञा से कटक का चलना। सिन्धु पार डेरा। फलाहार की आज्ञा। कपिदल का उत्साह। निशाचरों का नासिका छेदन : दो. ४.८ तक। पृ० २८७ से।

मन्दोदरी का रावण का समझाना : दूसरी बार : नककटे राक्षसों का रावण को खबर देना। सेतुबन्ध सुनकर रावण की आकुलता। रावण का घर जाना। मन्दोदरी का उसे अपने महल में ले जाना। चरणों पर सिर नवाकर अञ्चल रोपकर समझाना। रावण का अपनी प्रभुता का बखान करना। सभा में जाना : दो. ७.५ तक। पृ० ३०२ से।

रावण सभा : रावण का सभा में जाकर मन्त्रियों से युद्धविधि निश्चय के लिए मन्त्र पूछना। मन्त्रियों का फिर ठकुर-सुहाती बातें कहना। प्रहस्त की फटकार और सीता भेजकर प्रीति करने तथा न मानने पर युद्ध की सलाह। रावण का अत्यन्त लगती बात बोलना। प्रहस्त का प्रस्थान। रावण का जाकर लङ्का के शिखर के मकान पर बैठकर नाच देखना : दो. १० तक। पृ० ३१० से।

सुवेली की झाँकी : रामचन्द्र का सुवेल शैल पर उतरना। उसके शिखर पर किसलय सुमन बिछाकर लक्ष्मण का मृगछाला बिछाना। उस पर सरकार का शयन झाँकी वर्णन। ध्यान की फलश्रुति। चन्द्रमा पर उत्प्रेक्षा। रामचन्द्र के बाण से रावण के छत्र मुकुट और मन्दोदरी के ताटङ्क का गिरना। सभासदों को भय। मन्दोदरी को शोक : दो. १३.६ तक। पृ० ३१७ से।

मन्दोदरी का रावण को समझाना : तीसरी बार : मन्दोदरी का विश्वरूप

वर्णन। राम से प्रीति करने के लिए विनय। रावण द्वारा स्त्रियों के आठ अवगुणों का वर्णन। विश्वरूप वर्णन के व्याज से अपनी प्रभुताई का वर्णन मानकर रावण द्वारा मन्दोदरी की उक्ति की प्रशंसा। रावण के मतिभ्रम होने से कालवश होने का मन्दोदरी को निश्चय। प्रातःकाल रावण का सभा के लिए प्रस्थान : दो. १६ तक। पृ० ३२७ से।

अंगद दूत प्रसङ्ग : रामचन्द्र का मन्त्रियों को बुलाकर मन्त्र पूछना। अङ्गद को दूत बनाकर भेजने के लिए जाम्बवान् की सलाह। सबकी यही सम्मति। प्रभु की आज्ञा। अङ्गद का प्रस्थान। पुर में प्रवेश करते हुए रावणसुत वध। नगर में कोलाहल। बिना पूछे मार्ग प्रदर्शन। निशाचर भेजकर अङ्गद का रावण को समाचार देना। रावण का बुलवाना। रावण का रूप। अङ्गद की निर्भयता। सभासदों का अभ्युत्थान। रावण का क्रोध। अङ्गद से परिचय पूछना। अङ्गद का परिचय देना तथा राम के कार्य और उसके हित की बात कहना। रावण से आठ बार प्रश्नोत्तर। रावण द्वारा राम की निन्दा। अङ्गद का क्रोधपूर्वक पृथिवी पर हाथ मारना। भूकम्प। रावण का मुकुट गिरना। अङ्गद द्वारा चार मुकुटों का प्रभु के पास फेंका जाना। पृथिवी मर्कटहीन करने के लिए रावण की आज्ञा। अङ्गद का उस पर गाल बजाने का उपालम्भ। रावण का अङ्गद को लबार कहना। अङ्गद की कठिन प्रतिज्ञा। किसी के हटाये पैर का न हटना। अङ्गद के प्रचारने पर रावण का उठना। पैर पकड़ते समय अंगद द्वारा रामचरण ग्रहण का उपदेश। रावण का लज्जित होकर लौटना। सिर नीचा करके सिंहासन पर बैठना। अंगद द्वारा नाना प्रकार की नीतियों का उपदेश। रावण का एक न मानना। प्रभु सुयश सुनाकर अंगद का प्रस्थान। रावण को सुतवध का समाचार मिलना। निशाचरों की व्याकुलता। अंगद का जाकर प्रभुचरण ग्रहण : दो. ३५ तक। पृ० ३३५ से।

मन्दोदरी का रावण को समझाना : चौथी बार : सन्ध्या समय रावण का दुःखी होकर घर लौटना। मन्दोदरी का समझाना। लक्ष्मण की खींची हुई रेख के उलङ्घन करने का साहस न करने का अंगद के पराक्रम का हनुमान् के पुरुषार्थ का उदाहरण देकर रामचन्द्र को अजेय बतलाना। रावण के गाल बजाने की निन्दा करना। राम के पराक्रम का वर्णन। काल सन्निकट आने की चेतावनी। नगर दाह और दो पुत्रों के वध से ही बात खतम करने की प्रार्थना। नारी की बाण सी बात सुनकर प्रातःकाल ही सभा में जा बैठना। अति अभिमान से त्रास विस्मरण : दो. ३७.२ तक। पृ० ३९३ से।

निशाचर कीश लड़ाई प्रसङ्ग : प्रभु के यहाँ अंगद की बुलाहट। गढ़ का समाचार कथन। मन्त्रियों को बुलाकर रामचन्द्र का लङ्का में प्रवेश की विधि पूछना। कपीश जाम्बवान् और विभीषण का कपि-कटक को चार अनियों में विभक्त करना। यथायोग्य सेनापतियों की नियुक्ति। लङ्का पर पहिला धावा। लङ्का में कोलाहल। रावण की आज्ञा। कोट के कँगूरों पर निशाचरी सेना। बानरों का गढ़ पर चढ़ जाना।

निशाचरों को पकड़कर नीचे कूदना। दूसरे धावे में निशाचरों का भागना, रावण का क्रोध। निशाचरी सेना का प्राणपण से युद्ध। बानरोंका पलायन। मेघनाद के प्रभाव से पश्चिम फाटक का न टूटना। हनुमान् को बानरी सेना के पलायन का समाचार। हनुमान् के प्रहार से मेघनाद को मूर्च्छा। अङ्गद को हनुमान् के अकेले गढ़ पर जाने का समाचार मिलना। अंगद का भी कूद कर लंका पर चढ़ना। रावण का महल गिराना। राक्षसी सेना के मध्य में कूदना। घोर युद्ध। महामुखियों को प्रभु के पास फेंकना। उनकी गति। राक्षसी सेना का मर्दन करके अङ्गद हनुमान् का लौटना। प्रदोष का बल पाकर राक्षसों का लौट पड़ना। फिर युद्ध। अकम्पन और अतिकाय की माया। सरकार का अंगद हनुमान् को भेजना। अग्न्यस्त्र से प्रकाश। फिर युद्ध। निशाचरी सेना का भागकर गढ़ पर चढ़ जाना। बानरी सेना का लौट आना। ७ दोहों में चारो फाटक की लड़ाई समाप्त : दो. ४७.२ तक। पृ० ४०० से।

रावण की सभा : मन्त्रियों को बुलाहट। आधी सेना का संहार होने पर परामर्श। माल्यवान् की सीता दे देने की सम्मति। रावण का क्रोध। माल्यवान् का प्रस्थान। मेघनाद का भरोसा देना। दो. ४८.७ तक। पृ० ४२५ से।

मेघनाद का गढ़ से उतरकर युद्ध करना : सवेरा होते ही बानरों का लंका घेरना। लंका पर से तोप का चलना। बन्दरों का शैल फेंककर निशाचरों को मारना। मेघनाद का दुर्ग से उतर कर युद्ध के लिए डंका देना। मेघनाद के प्रहार से कपिसेना की विकलता। हनुमान् द्वारा मेघनाद का विरथ होना। मेघनाद का रामचन्द्र के पास प्रस्थान। अस्त्रों के निष्फल होने पर माया। रामचन्द्र के एक बाण से माया भंग। लक्ष्मण का युद्ध के लिए चलना। रावण के भेजे हुए सुभटों का आना। जोड़ी से जोड़ी का युद्ध। लंका के सब सुभटों का संहार। गड्डों का रुधिर से भर जाना। लक्ष्मण मेघनाद की जोड़ी। प्राणावशेष होने पर मेघनाद द्वारा वीरघातिनी साँगी का प्रहार। लक्ष्मण की मूर्च्छासन्ध्या समय दोनों कटकों का लौटना : ५ दोहों में मेघनाद का प्रथम युद्ध : दो. ५४.४ तक। पृ० ४२९ से।

लक्ष्मण का उपचार : हनुमान्‌जी का मूर्च्छित लक्ष्मण को लाना। सरकार का अति दुःख करना। जाम्बवान् के कहने पर हनुमान्‌जी का भवन सहित सुषेण को लाना। सुषेण का पर्वत और औषधि बतलाना। हनुमान् का जाना। रावण का कालिनेमि को भेजना। कालिनेमि की माया। कालिनेमि वध, औषधि न पहचानकर हनुमान्‌जी का शैल उखाड़ लेना। आकाश मार्ग में दौड़ते हुए अवधपुरी के ऊपर चला जाना। भरतजी का निशिचर समझकर बाण मारना। हनुमान् को मूर्च्छा। भरत का जगाना। समाचार पाने पर भरत का सशैल हनुमान् को बाण द्वारा भेजने का प्रस्ताव। बाण के समान जाने की प्रतिज्ञा करके हनुमान्‌जी का प्रस्थान। राम का विलाप प्रलाप। हनुमान् का आगमन। प्रभु का मिलना। वैद्य का

उपाय करना। लक्ष्मण का उठ बैठना। राम लक्ष्मण मिलन। हनुमान् जी का सुषेण को लंका पहुँचाना। दो. ६१.४ तक। पृ० ४४२।

कुम्भकर्ण बल पौरुष संहार प्रसंग : समाचार सुनकर रावण की व्याकुलता। कुम्भकर्ण को जगाना। रावण द्वारा सीताहरण तथा राक्षस वध निवेदन। कुम्भकर्ण द्वारा रावण की निन्दा। कुम्भकर्ण की भक्ति। रावण का मद्य और महिष मँगाना। खा पीकर कुम्भकर्ण का एकाकी प्रस्थान। विभीषण से भेंट। समाचार पाकर बलवान वानरों का दौड़ना। विटप भूधर प्रहार। कुम्भकर्ण के प्रहार से वानर भटों को मूर्च्छा। सुग्रीव को काँख में दाबकर कुम्भकर्ण का लौटना। सुग्रीव का मूर्च्छा भङ्ग और कुम्भकर्ण के नाक कान काटकर प्रभु के यहाँ आगमन। कुम्भकर्ण का लौटना। कपिसेना मर्दन। निशाचरी सेना का आगमन। राम का युद्ध के लिए उतरना। धनुष टङ्कार। लक्ष बाणों से क्षण में सेना संहार। कुम्भकर्ण के फेंके पर्वतों का बाणों से चूर्णीकरण। कुम्भकर्ण पर बाण प्रहार। विकल देखकर वानरी सेना का आक्रमण। वानरी सेना मर्दन। आर्त्तनाद। राम का अपनी सेना को पीछे करके आगे बढ़ना। कुम्भकर्णवध। उसके तेज का प्रभु के मुख में प्रवेश। सुर मुनि को आश्चर्य। देवस्तुति। पुष्प वर्षा। नारद का आकर खल बध में शीघ्रता करने को कहना। संग्राम भूमि में सरकार की शोभा : ७ दोहों में कुम्भकर्ण वध : दो. ७१ तक। पृ० ४६२ से।

मेघनाद बल पौरुष संहार प्रसंग : रावण का तथा रानियों का विलाप। मेघनाद का समझाना। सवेरा होते ही वानरी सेना का चारों फाटकों पर डट जाना। युद्ध मेघनाद का मायामय रथ पर चढ़कर आकाश में जाना। बाण वर्षा। शरपञ्जर। खरारि को भी नागपाश से बाँधना। अन्त में दुर्वाद कहते हुए प्रकट होना। जाम्बवान का पराक्रम। पैर पकड़कर मेघनाद को लङ्का में फेंकना। नारद का गरुड़ को भेजना। नागपाश से मुक्ति। बानरों का आक्रमण। राक्षसों का पलायन : दो दोहों में मेघनाद की लड़ाई। मेघनाद का अजय मख करना। विभीषण का प्रभु को समाचार देना। सरकार का अङ्गदादि के साथ लक्ष्मण को भेजना। मेघनाद वध के लिए आदेश। लक्ष्मण का प्रस्थान। यज्ञ विध्वंस। मेघनाद बध : १ दोहे में तीसरी लड़ाई, कुल आठ दोहों में मेघनाद युद्ध। हनुमान् का मेघनाद का शव लङ्का द्वार पर रख आना। सब देवताओं का आगमन। स्तुति : दो. ७६.५ तक। पृ० ४८८ से।

निशिचर निकर मरण प्रसंग : रावण का प्रथम युद्ध : सुत वध श्रवण से रावण को मूर्च्छा। मन्दोदरी रुदन। नागरिकों की विकलता। रावण का ज्ञानोपदेश। सवेरा होते ही बानरों का आक्रमण। रावण की घोषणा। रथ का सजाव। असगुन का न गिनना। सेना प्रस्थान वर्णन। रावण की अपनी सेना को कपिसेना संहार की आज्ञा। दोनों भाइयों का वध अपने जिम्मे लेना। सेना का सम्मुखीकरण। युद्ध। रावण को रथी और सरकार को विरथ देख कर विभीषण का धैर्य त्याग। रामचन्द्र द्वारा जयप्रद रथ का वर्णन। धर्म रथ

रूपक। विभीषण की कृतकृत्यता। दोनों सेनाओं में घोर युद्ध। निशाचरों का पलायन। रावण का रथ आगे बढ़ाना। रावण का प्रहार। कपिसेना में विकलता। लक्ष्मण का संग्राम भूमि में उतरना। रावण को ललकार। रावण के आयुधों का लक्ष्मण द्वारा खण्डन। लक्ष्मण का प्रहार। रावण को मूर्च्छा। जागकर ब्रह्मदत्त सांगी का प्रयोग। लक्ष्मण को मूर्च्छा। रावण का न उठा सकना। हनुमान् से युद्ध। हनुमान् का लक्ष्मण को लाना। राम के वाक्य से लक्ष्मण का जागना। धनुर्बाण लेकर रावण पर आक्रमण। रावण को मूर्च्छा। सारथि का उसे रथ पर लाद ले जाना : छं. ८४ तक। पृ० ५०६ से।

रावण यज्ञ विध्वंस : रावण का यज्ञ। विभीषण का समाचार देना। सवेरा होते ही सरकार द्वारा सुभटों का भेजा जाना। सुभटों का रावण भवन प्रवेश। यज्ञ विध्वंस। सुभटों का कुशलपूर्वक राम के यहाँ प्रस्थान : दो. ८५ तक। पृ० ५३२ से।

रघुपति रावण समर प्रसंग : रावण का सक्रोध प्रयाण। असगुन। सेना का धावा। प्रभु से देवताओं की विनती। सरकार का युद्ध के लिए तैयारी। निशाचरी सेना का आगमन। युद्ध में वर्षा का रूपक। रुधिर सरिता का प्रादुर्भाव। रामबाण से निशिचर संहार। सुरपति का निजरथ भेजना। रामजी का सवार होना। रावण से बानरों के प्रहार का न सहा जाना। रावण की माया। सेना का चकित होना। रामबाण से माया का नाश। विप्र चरण नमस्कारपूर्वक राम का रथ आगे बढ़ाना। रावण का दुर्वचन। सरकार का उपदेश। राम रावण युद्ध। विभीषण पर घोर शक्ति प्रहार। सरकार का उस शक्ति को अपने ऊपर लेना। मूर्च्छा। विभीषण रावण युद्ध। विभीषण को श्रामन्त देखकर हनुमान् का दौड़ना। हनुमान् रावण युद्ध। हनुमान् पर संकट देखकर बानरी सेना का आक्रमण। कपिसेना मर्दन। रामचन्द्र के ललकारने पर प्रचण्ड बानरों का दौड़ना। रावण का अन्तर्धान होना। असंख्य रावणों का प्रादुर्भाव। कपिसेना का पलायन। देवताओं का पलायन। एक बाण से सब दशकन्धरों का नाश। रावण को एक देखकर देवताओं को हर्ष। सरकार का भुजा उठाकर बानरों को फेरना। देवताओं की स्तुति। रावण का क्रोध करके देवताओं पर धावा। देवताओं में हाहाकार। अङ्गद का रावण को नीचे गिराना। रावण की बाण वर्षा से कपिसेना का घायल होना। राम रावण युद्ध। सिर भुजा बढ़ते देखकर बानरों को क्रोध। उन पर प्रहार। रावण के बाणों से बानर वीरों को मूर्च्छा। जाम्बवान् का आक्रमण। जाम्बवान् के प्रहार से रावण को मूर्च्छा। सूत का लादकर रावण को घर ले जाना। बानरों का प्रभु के पास लौटना : रावण का दूसरा युद्ध : दो. ९८ तक। पृ० ५३५ से।

सीता विलाप : त्रिजटा का यह समाचार सीता को देना। रामबाण से सिर कटने पर भी रावण के न मरने पर सीताजी का विलाप। त्रिपटा का समझना। विरह व्यथा से विलाप। सगुन से धैर्य : दो. ९९.६ तक। पृ० ५७५ से।

रावण वध प्रसंग : तीसरा युद्ध : अर्धरात्रि में रावण का मूर्च्छा से जागना। रणभूमि छुड़ाने से सारथि पर क्रोध। प्रातःकाल होते ही रथ पर सवार होकर दौड़ना। निशाचरों का बानरों के प्रहार से भाग जाना। बानरों के प्रहार से रावण की विकलता। रावण की माया। लक्ष्मण कपीश समेत कपिसेना की विकलता। रामबाण से माया का नाश। राम रावण युद्ध। सरकार का विभीषण की ओर देखना। विभीषण का मर्म बतलाना। रामचन्द्र द्वारा कराल बाण सन्धान। उत्पात। रावण वध। उसके तेज का प्रभुमुख में प्रवेश। जयजयकार सरकार की समराङ्गण-शोभा : २२ दोहों में रावणवध : दो. १०३ तक। पृ० ५८१ से।

मन्दोदरी शोक प्रसंग : बाण से गिराये हुए पति के सिर को देखते ही मन्दोदरी को मूर्च्छा। अन्य युवतियों का रोते हुए मन्दोदरी को लेकर रणागन में आना। मन्दोदरी का विलाप। विभीषण को दुःख। लक्ष्मण का विभीषण को लेकर सरकार के पास आना। क्रिया करने की आज्ञा। रावण की विधिवत् क्रिया, तिलाञ्जलि देकर मन्दोदरी आदिकों का प्रस्थान : दो. १०५ तक। पृ० ५९५ से।

विभीषण राज्य प्रसंग : विभीषण का आकर प्रणाम करना। सरकार का लक्ष्मण को सुग्रीवादि के साथ भेजना। विभीषण को गद्दी। सबका विभीषण के साथ लौट आना। सरकार का बन्दरों के प्रति कृतज्ञता प्रकाशन। अपने सहित बानरों के कीर्तिमान की फल-श्रुति : दो. १०६ तक। पृ० ६०१ से।

सीता रघुपति मिलन प्रसङ्ग : रावण-वध समाचार देने तथा सीता का कुशल लेने के लिए हनुमान् का भेजा जाना। हनुमान् का जाकर समाचार देना। सीता को हर्ष। आशीर्वाद। सरकार के दर्शन के लिए त्वरा। हनुमान् का लौटकर प्रभु को कुशल सुनाना। सरकार द्वारा हनुमान् का विभीषण अङ्गद के साथ सीता को लाने के लिए भेजा जाना। सीताजी का मज्जन। शिविका पर चढ़ाकर सीता को लाना। बानरों को दर्शन की अभिलाषा। सरकार की आज्ञा से पैदल लाना। प्रभु द्वारा दुर्वाद। अग्नि परीक्षा। अग्नि का मूर्ति धारण करके सीता समर्पण। राम जानकी की छवि। मातलि की विदाई : दो. १०९.१ तक। पृ० ६०४ से।

देव स्तुति प्रसङ्ग : सुर सिद्धों की स्तुति। ब्रह्म स्तुति। दशरथ का आगमन। दशरथ को दृढ़ ज्ञान। दशरथ का सुरधाम गमन। इन्द्र स्तुति। इन्द्र को कपि भालु के जिलाने की आज्ञा। सुधा वृष्टि। कपि भालुओं का जी उठना। शङ्कर की स्तुति। गृह पवित्र करने के लिए विभीषण की विनय। सरकार को भरत मिलन के लिए त्वरा। विभीषण का मणि वसन से भरकर पुष्पक विमान भेंट देना। विमान पर चढ़कर कपिदल में सरकार की आज्ञा से विभीषण द्वारा मणि वसन की वर्षा। बन्दरों की लीला। तीनों सरकार का बार बार हँसना। बन्दरों की विदाई। सुग्रीवादि का अतिशय प्रेम देखकर सबको विमान पर चढ़ा लेना : दो. ११८.३ तक। पृ० ६१४ से।

अवध प्रयाण प्रसङ्ग : विमान पर प्रभु की शोभा। सीता को रणभूमि दिख-

लाना । रामेश्वर को प्रणाम । दण्डक वन में रामजी का अगस्त्यादि मुनियों के स्थान में जाना । चित्रकूट में मुनियों से मिलना । फिर त्रिवेणी स्थान । हनुमान् को भरत के पास अपना कुशल सुनाने तथा समाचार लेने के लिए भेजना । भरद्वाज से मिलकर फिर गङ्गा पार उतरना । गङ्गा पुजाई । निषाद की प्रीति । सरकार का हृदय से लगा लेना । काण्ड की फलश्रुति । मन को नाम का आधार ग्रहण के लिए उपदेश : दो. १२१ तक । पृ० ६४५ से ।

७. उत्तरकाण्ड

मंगलाचरण : ६५५ से ।

उमा[1] के सातवें प्रश्न का उत्तर :

नगरनिकट आगमन विधि प्रसङ्ग : पुष्पकारूढ़ राम की वन्दना । चरणकमल वर्णन । शङ्कर की वन्दना । संस्कृत पुरजनों की आरती । भरत को शकुन । भरत का विचार । उनका विरहसागर में मग्न होना । हनुमदागमन । समाचार कथन । भरत को हर्ष । पूछने पर हनुमान् द्वारा आत्मपरिचय । भरत का मिलन । सम्वाद । हनुमान् का जाकर राम से कुशल कहना । सरकार का प्रयाण । भरत का कोसलपुर आना । अवध में उछाह । रामचन्द्र का कपियों को पुरी दिखलाना तथा पुरी का बखान । सरकार का पुष्पक से उतरकर उसे कुबेर के पास भेजना । भरत के सङ्ग सबका आगमन । मिलन । आरती । निछावर । सखाओं का परिचय । सुखकन्द का घर चलना । अयोध्या में तैयारी । अयोध्या सनाथ । कैकेयी के घर जाना । कैकेयी प्रबोध तत्पश्चात् अपने घर जाना : दो. ९.२ तक । पृ० ६५८ से ।

रामाभिषेक प्रसङ्ग : गुरु वशिष्ठ का मुहूर्त । ब्राह्मणों का अनुशासन । गुरुजी की आज्ञा से सुमन्त का रथ गजवाजि सँवारना । परिचार को मङ्गल द्रव्य लाना । अवधपुरी की रचना । पुष्पवृष्टि । सखा तीनों भाई सरकार तथा जानकी का मज्जन तथा शृङ्गार । राम वाम दिशि रमा की शोभा । ब्रह्मादि देवों का आगमन । अभिषेक । देवस्तुति । वेद स्तुति । शिव स्तुति । अभिषेक की फलश्रुति । सखाओं का छः महीने निवास । बिदाई । अङ्गद का प्रेम । निषाद की बिदाई : दो. १९.५ तक । पृ० ६८९ से ।

पुरवर्णन तथा : अनेक : नृपनीति प्रसंग : रामराज्य की विशेषता । चारों चरणों से धर्म । काल कर्म स्वभाव गुण कृत दुःख की हानि । सप्तसागर मेखला भूमि में एकछत्र राज्य । सबका मनोजय । प्रकृति की अनुकूलता । कोटि अश्वमेध । सीता की गुणगाथा । चारों भाइयों का सौभ्रात्र । चारों भाइयों के दो दो पुत्र । राजा से प्रजा तक सब कथा के रसिक । नारदादि की नित्य अवधयात्रा । नगर की शोभा । जहाँ तहाँ गुण गान । दोषों को दुःख और गुणों को सुख । भाइयों तथा हनुमान् के सहित रामचन्द्र का उपवन जाना । सनकादिक का आगमन । राम का सत्कार । मुनियों की स्तुति । अभीष्ट वर पाकर ब्रह्मलोक प्रस्थान । भरत के प्रश्न पर सरकार का सन्त असन्त की करनी । सन्तों के गुण । असन्तों के स्वभाव । वेद पुराण का

---

१. राज बैठि कीन्ही बहु लीली । सकल कहहु संकर सुखसीला ॥

निर्णय। अपना फलदातृत्व। परम सयानों के उपाय गुण और दोष वर्णन करना। फिर घर जाना। ब्रह्मलोक में कथा। पुरवासियों को उपदेश। अवधवासी का कृतार्थ होना। वसिष्ठ मुनि का आगमन। आत्मकथा। भक्ति वरदान याचना : दो. ४९.१ तक। पृ० ७२३ से।

उमा के आठवें प्रश्न का उत्तर : [1]एक बार पुर बाहर गमन। गज रथ तुरग का संविभाग। अमराई में विश्राम। नारद का आगमन। गुणगान। शोभा सिन्धु को हृदय में रखकर प्रस्थान : दो. ५१ तक। पृ० ७९१ से।

कथोपसंहार : जो कथा भुसुण्डिजी ने गरुड़जी से कही थी उसे उमा को सुनाकर : अर्थात् बारह प्रश्नों में से आठ का उत्तर देकर। आगे क्या कहूं ? इस विषय में शिवजी का प्रश्न। उमा की कृतकृत्यता। कथा से मन का न अघाना : दो. ५२.७ तक। पृ० ७९६ से।

उमा के पाँच प्रश्न : १. अतिदुर्लभ हरिभक्ति काक ने कैसे पाई ? २. यह प्रभुचरित कैसे पाया ? ३. तुमने उससे कैसे सुना ? ४. गरुड़ ने मुनियों को छोड़कर काक से क्यों सुना ? ५. किस विधि से सम्वाद हुआ : दो. ५४.५ तक। पृ० ८०० से।

तीसरे[2] प्रश्न का उत्तर : प्रश्न सुनकर शिवजी को आनन्द। कथनीय इतिहास का माहात्म्य। गरुड़ द्वारा ऐसे ही प्रश्न काक के प्रति किये जाने का उल्लेख। उन सब बातों के कहने की प्रतिज्ञा। अतः पहिले तीसरे प्रश्न के उत्तर की आवश्यकता। दक्ष यज्ञ में सती के शरीर त्याग पर दुःखित शिवजी का नील शैल पर जाना। वहाँ का दृश्य। भुसुण्डि की दिनचर्या। मराल शरीर धारण करके शिवजी का कथा श्रवण। तत्पश्चात् कैलासागमन : दो. ५७ तक। पृ० ८०४ से।

चौथे[3] प्रश्न का उत्तर : नागपाश में बँधे हुए रामचन्द्र को छुड़ाने पर गरुड़ को विषाद। गरुड़ का संशयोच्छेद के लिए नारद के पास जाना। नारद का उसे ब्रह्मदेव के पास भेजना। ब्रह्मदेव का शिव के पास भेजना। शिव का भुसुण्डि के पास भेजना। अभिमान भङ्ग तथा पक्षीभाषा में यथार्थ बोध होना ही काक के पास गरुड़ को भेजने का कारण : दो. ६२ तक। पृ० ८१० से।

पाँचवें[4] प्रश्न का उत्तर : अथ उत्तरघाट प्रारम्भ : गरुड़ का भुसुण्डि के यहाँ जाना। तड़ाग मज्जन। जल पान। कथा प्रारम्भ के समय पहुँचना। भुसुण्डि का सत्कार। पूजा। आज्ञा के लिए प्रार्थना। आश्रम के दर्शन से ही मोह संशय भ्रम का भङ्ग। श्रीराम कथा सुनने के लिए विनय। भुसुण्डि का चौरासी प्रसङ्गों में रामकथा कहना : मूल रामचरितमानस। गरुड़ की कृतकृत्यता। उसी भ्रम को सत्सङ्ग का

---

१. बहुरि कहहु करुनायतन कीन्ह जो अचरज राम।
प्रजा सहित रघुबंसमनि किमि गवने निज धाम॥

२. तुम केहि भाँति सुना उरगारी। कहहु मोहि अति कौतुक भारी॥

३. सो कहि हेतु तात कहि जाई। सुनि कथा मुनि निकर बिहाई॥

४. कहहु कवन बिधि भा संबादा। दोउ हरिभगत काग उरगादा॥

कारण होने से हितकर मानना। गरुड़ की वाणी से काग को हर्ष। गोप्यमत प्रकाशन के लिए अधिकारी। श्रोता के लक्षण। भुसुण्डि की सुशीलता। मोह होना आश्चर्य की बात नहीं। माया कटक का वर्णन। उनकी करतूत। मिथ्या होने पर भी रामकृपा बिना माया से मुक्ति नहीं। माया प्रेरक का स्वरूप। भक्त हेतु अवतार तथा नटसमान चरित। दनुजविमोहनी जन सुखकारिणी लीला। अपने मोह से राम में मोह का भ्रम। गृहासक्त के लिए रामस्वरूप ज्ञान असम्भव। निर्गुण रूप की अतिसुलमता। सगुण के सुगम अगम चरित्र श्रवण से मुनि को भी भ्रम : दो. ७३ तक। पृ० ८२० से।

रामरहस्य : उमा के ग्यारहवें प्रश्न का उत्तर : [1]आत्ममोह की कथा सुनाने की प्रतिज्ञा। राम का स्वभाव मानहारी। जब जब रामावतार तब तब अपने इष्टदेव बालक राम दर्शन के लिए भुसुण्डि की अवधयात्रा। जन्म महोत्सव देखना। पाँच वर्ष रह जाना। एक बार सब चरित्रों की अतिशयिता। नृप अजिर विहारी के नख शिख का वर्णन। शिशु लीला। लघु वायस रूपधारी भुसुण्डि से विविध विधि क्रीड़ा। प्राकृत शिशु सदृश लीला देखकर भुसुण्डि को मोह। एक मायापति का अखण्ड ज्ञान : जीव मायावश्य। जीव ईश भेद मिथ्या माया कृत। तथापि बिना हरिकृपा के कोटि उपाय से भी अच्छेद्य। हरिसेवक को अविद्या न व्याप कर विद्या का व्यापना। भ्रम से भुसुण्डि को चकित देखकर। राम का हँसना, भुसुण्डि का मुख में चला जाना। राम के उदर में अनन्त ब्रह्माण्डों का दर्शन। वहाँ की रचना। अगणित ब्रह्मा, शङ्कर, सूर्य, चन्द्र, अगणित भूधर, भूमि, सागर, सर, सरिता, विपिन, तथा जो न देखा न सुना न मन में समाया सो सब देखना। प्रत्येक ब्रह्माण्ड में सृष्टिवैषम्य। प्रति ब्रह्माण्ड में अपने रूप में भेद। प्रति भुवन में अवधपुरी, सरयू, पुर नरनारी, दशरथ कौसल्या के रूप में भेद। प्रतिब्रह्माण्ड में रामावतार अभेद। बालचरित घूमते घूमते एक सौ एक कल्पों का बीतना। अपने आश्रम में आना। रामावतार सुनकर अवध में जाना। उन्हीं राम का दर्शन। दो घड़ी में सब देखना। भुसुण्डि को विकल देखकर पुनः हास। भुसुण्डि का मुख के बाहर आना और फिर वही शिशु लीला। भुसुण्डि का त्राहि त्राहि करके पृथिवी पर गिरना। सरकार द्वारा माया की प्रभुता का रोका जाना। भुसुण्डि का विनय। वरदान के लिए आज्ञा। दुर्लभ भक्ति माँगना। सब सत् गुणों के बसने का वरदान। सिद्धान्तोपदेश। अति नीच भक्त का भी प्रिय होना। अजान पुत्र भी भक्त होने से पिता का प्राणप्रिया सरकार का दूध के लिए रोना। माता का दूध पिलाना। इस सुख के लवलेश की प्राप्ति के सम्मुख ब्रह्मसुख का अनादर। तब से माया का न व्यापना। भुसुण्डिजी का अनुभव : राम के भजन का उपदेश। राम की महिमा। राम के गुण। राम की भाववश्यता। गरुड़जी की कृतज्ञता : दो. ९२.१ तक। पृ० ८८७ से।

---

१. औरौ राम रहस्य अनेका। कहहु नाथ अति बिमल बिबेका।

भुसुण्डि चरित

पहिले और दूसरे प्रश्न का उत्तर :[1] गरुड़ का हर्ष। पिछले मोह के लिए पश्चात्ताप। भुसुण्डिजी को प्रणाम। प्रशंसा। गरुड़जी के चार प्रश्न : १. काक देह पाने का कारण २. रामचरितसर प्राप्तिस्थान ३. काल के व्यापने का कारण ४. भुसुण्डि के आश्रम में आने से मोह भागने का कारण। प्रश्न सुनकर भुसुण्डि को हर्ष। गरुड़ की बुद्धि की प्रशंसा। बहुत जन्मों की सुधि आना। काक शरीर में राममक्ति की उत्पत्ति अतः उसका प्रिय होना। इच्छा मरण होने से शरीर का न त्यागना। मोह द्वारा भुसुण्डिजी का पहिले बहुत सताया जाना। सब कर्म करके देख लेना ऐसे सुख का कहीं न मिलना। पूर्व काल के कलियुग में अयोध्या जाकर शूद्र होना। परम शैव अन्यदेव निन्दक राम की महिमा से अनभिज्ञ होना। अवध की महिमा। कलियुग धर्म वर्णन। अधर्म और विपरीत धर्म का प्रचार। कलि के गुण। नाम से गति। हरिगुण गान का आधार होना। मानस पुण्य का होना। मानस पाप का न होना। दान से कल्याण। चारों युगों की विवेचना। युग धर्म के ज्ञान से अधर्म का त्याग। धर्म में रति। राम के भक्त पर कालधर्म का बल नहीं। मायाकृत गुण दोष का बिना भजन के नाश न होना। बहुत दिन अवध वास के बाद दुकाल पड़ना। भुसुण्डि का उज्जैन जाना। ब्राह्मण से मन्त्र लेना। भुसुण्डि के विष्णुद्रोह से गुरु को पीड़ा। गुरु के उपदेश की उपेक्षा। गुरु के जाने पर शिव मन्दिर में बैठे जप करते रह जाना। शिव का शाप। गुरु का हाहाकार करना। शङ्कर की स्तुति करना। रुद्राष्टक। उसकी फलश्रुति। वर माँगने के लिए आकाश-वाणी। गुरु द्वारा शङ्कर चरण भक्ति तथा भुसुण्डि के लिए परम कल्याण का माँगा जाना। शापोद्धार। विन्ध्यगिरि में सर्प होना। अन्त में ब्राह्मण शरीर प्राप्ति। भुसुण्डि की हरि भक्ति। माता पिता के मरने पर भजन के लिए प्रस्थान। रामचरणदर्शन की लालसा। ईश्वर के सर्वभूतमय होने मे मुनियों का ऐकमत्य। मेरु शिखर पर वट छाया में बैठे हुए लोमश ऋषि का शरण ग्रहण : दो. ११० तक। पृ० ८९६ से।

प्रसंगात् उमा के नवें प्रश्न का उत्तर :[2] ब्रह्मज्ञानरत विज्ञानी मुनि का भुसुण्डि को परम अधिकारी समझकर ब्रह्मोपदेश। षोडशलक्षणयुक्त सुखराशि का निरूपण। महावाक्य का उपदेश। भुसुण्डि की सगुण उपासना कहने के लिए प्रार्थना। मुनि द्वारा सगुण मत का खण्डन। निर्गुण का उपदेश। भुसुण्डि का निर्गुण मत दूर करके हठपूर्वक सगुण निरूपण। मुनि का सकोप ज्ञान निरूपण।

---

१. सो हरि भगति काक किमि पाई।
यह प्रभु चरित पवित्र सोहावा।
कहहु कृपाल काक किमि पावा॥
२. पुनि प्रभु कहहु सो तत्व बखानी।
जेहि विज्ञान मगन मुनि ज्ञानी॥

भुसुण्डि का तर्क वितर्क। श्रवण में अश्रद्धा। पुनः पुनः सगुण पक्ष आरोपण। मुनि का शाप देना। भुसुण्डि का काग होकर प्रणामपूर्वक उड़ चलना। गरुड़ के प्रथम प्रश्न का उत्तर। भगवान् का मुनि की बुद्धि पलटना। मुनि का भुसुण्डि को बुलाकर राममन्त्र देना। बालक रूप राम का ध्यान। रामचरितमानस की कथा सुनाना। भक्तिहीन को न सुनाने का आदेश। गरुड़ के दूसरे प्रश्न का उत्तर। मुनि का आशीस देना। भुसुण्डि का रामप्रिय कामरूप इच्छामरण होना। गरुड़जी के तीसरे प्रश्न का उत्तर। जिस आश्रम में भुसुण्डि का निवास वहाँ एक योजन तक अविद्या का न व्यापना। गरुड़जी के चौथे प्रश्न का उत्तर। काल कर्म गुण स्वभाव का न व्यापना। राम रहस्य ज्ञान इच्छित प्राप्ति के लिए आशीर्वाद देना। आकाश वाणी से आशीस की पुष्टि। जब जब रामावतार तब तब शिशु लीला तक भुसुण्डि का अवध निवास : दो. ११४ तक। पृ० ९४९ से।

अथ सतपञ्च चौपाई प्रारम्भ : उमा के ग्यारहवें[1] प्रश्न का प्रसङ्गात् उत्तर : निरूपासित ज्ञान की निन्दा। ज्ञान भक्ति के अन्तर के विषय में गरुड़जी का प्रश्न। ज्ञान भक्ति का अभेद निरूपण। ज्ञान भक्ति भेद। रामरहस्य। ज्ञान विराग पुरुषवर्ग। पुरुष की स्त्री द्वारा पतन। माया और स्त्रीवर्ग। भक्ति प्रभु की प्यारी। माया नर्तकी। माया का भक्ति से सङ्कोच और भय। रहस्यज्ञान से मोह का नाश। ज्ञान भक्ति का दूसरा अन्तर। चिन्जड़ ग्रन्थि निरूपण। छूटने से ही कल्याण। न छूटने का कारण। उपायों का अकिञ्चित्करत्व : दो. ११६ तक। पृ० ९७० से।

ज्ञान दीपक प्रसंग : धर्म ते बिरति योग ते ज्ञाना। ज्ञान मोक्षप्रद वेद बखाना के व्याख्या रूप में ज्ञानदीपक प्रसङ्ग। उसमें विघ्नबाहुल्य। पृ० ९७६ से।

श्री भक्तिचिन्तामणि प्रसंग : जाते वेगि द्रवौं मैं भाई सो मम भगति भगत सुखदाई के व्याख्यारूप में भक्तिचिन्तामणि प्रसंग। भक्ति से मुक्ति। भक्ति से अनायास अविद्या नाश। भक्ति की सुगमता सुख-दायित्व। सेवक सेव्यभाव बिना भव सन्तरण असम्भव। भक्त धन्य। भक्तिमणि की प्रभुता। भक्तिमणि कृपासाध्य। भक्ति चिन्तामणि प्राप्ति का उपाय। सत्संग से भक्ति प्राप्ति में सुलभता : दो. १२० तक। पृ० ९९० से।

उमा के बारहवें[2] प्रश्न का प्रसंगात् उत्तर : गरुड़ के सात प्रश्न १. दुर्लभ शरीर कौन? २. बड़ा दुःख कौन? ३. बड़ा सुख कौन? ४. सन्त असन्त का स्वभाव कैसा? ५. कौन पुण्य बड़ा? ६. कौन सा पाप बड़ा? ७. मानसरोग कौन से? भुसुण्डिजी द्वारा क्रमशः सभी का उत्तर देना। मानसरोग का उपचार। सबका मत। बिना रामभक्ति के कोई : पाँचों सुखों में से : सुख नहीं। प्रभु की सामर्थ्य समझकर भजन, भुसुण्डि का निश्चय : संस्कृत श्लोक : दो. १२२ तक। पृ० ९९७ से।

---

१. औरौ राम रहस्य अनेका। कहहु नाथ अति बिमल बिबेका॥

२. जो कछु मैं पूछा नहिं होई। सोउ दयाल जनि राखहु गोई॥

गरुड़ भुसुण्डि संवाद का उपसंहार : उत्तरघाट की समाप्ति : अनुपम हरिचरित कथन की समाप्ति। श्रुति सिद्धान्त। भजनीय राम। भुसुण्डि की विनय। सत्संग की महिमा। भजन से अपावन भी पावन। भुसुण्डि की सुशीलता। रामचरित की अपारता। राम के गुण-गण स्मरण से भुसुण्डि को हर्ष। राम की महिमा। बल प्रताप प्रभुताई। राम का स्वभाव। उनकी सेवा बिना निस्तार नहीं। उन्हें तीन बार प्रणाम। अघ-राशिपावनकरण को प्रणाम जिसका नाम भवभेषज है। उस कृपाल के सदा अनुकूल रहने की प्रार्थना। गरुड़ की कृतकृत्यता तथा कृतज्ञता प्रकाश। सन्त हृदय स्तुति। जन्म का साफल्य। श्रोता का कर्कर्य। प्रणामपूर्वक गरुड़ का वैकुण्ठ प्रस्थान : दो. १२५ तक। पृ० १०१३ से।

उमा शम्भु संवाद का उपसंहार : पश्चिम घाट की समाप्ति : भुसुण्डि चरित की फलश्रुति। सब साधनों का फल हरि-भक्ति। इस कथा के निरन्तर श्रवण से भक्तिप्राप्ति। छल छोड़कर भजन करने-वाला ही लायक। नौ धन्यों का विवरण। अधिक प्रीति देखने पर ही गुप्त कथा का प्रकाश। रामकथा के अनधिकारी। रामकथा के अधिकारी। रामकथा से यथेच्छा भक्ति या मुक्ति। रामचरित की फलश्रुति। गिरिजा का कृतज्ञता प्रकाश तथा कृतकृत्यता : दो. १२९ तक। पृ० १०२१ से।

भरद्वाज याज्ञवल्क्य संवाद का उपसंहार : दक्षिण घाट की समाप्ति : उमा शम्भु संवाद की फलश्रुति। राम उपासकों को इस संवाद का प्रिय होना। रघुपति कृपा से यथामति गान की प्रतिज्ञापूर्ति : दो. १२९.४ तक। पृ० १०२७ से।

ग्रन्थोपसंहार : पूर्वघाट की समाप्ति : इस कलिकाल में राम स्मरण। राम गुणगान। राम-कथा-श्रवण ही साधन। राम भजन के लिए मन को उपदेश। एक बार नामोच्चारण से पावन होना। सम्पूर्ण ग्रन्थ की फलश्रुति। शतपञ्च-चौपाई ग्रन्थ की फलश्रुति। ग्रन्थकार की परम विश्राम प्राप्ति। राम की विनय : संस्कृत : अपने अज्ञान की शान्ति के लिए शम्भुकृत दुर्गम रामायण को भाषा-बद्ध करने की प्रतिज्ञा की पूर्ति। श्रीरामचरितमानस में भक्तिपूर्वक अव-गाहन के फल।

ग्रन्थ की समाप्ति।

बावरी तू बावरो बतावै शिवशंकर को,
किंकर हैं जाके देव सेवत सुरेश हैं।
महिमा बखानें नेति - नेति करि मानें,
भेद वेदहुँ न जानै गुन गावत गनेश हैं॥
तनया तिहारी ताको जानती प्रताप पति—
भाव तिनही में ताते धरति महेश हैं।
सबके सुपासी आप रहत उदासी मुक्ति—
मुक्ति जहँ दासी ऐसे मालिक महेश हैं॥

—विजयानन्द त्रिपाठी

दुर्गापुरस्थित श्रीराम जानकी मन्दिर

मानसराजहंस पं. श्रीविजयानन्द जी त्रिपाठी

मानसराजहंस श्री विजयानन्द त्रिपाठी के प्रमुख शिष्य

डॉ. श्रीनाथ मिश्र रामायणी

श्री राम चरित मानस

विजया टीका

श्रीराम

श्रीगणेशाय नमः । श्रीगुरवे नमः

श्रीरामचरितमानस

किष्किन्धाकाण्ड : चतुर्थ सोपान

सटीक

मङ्गलाचरण

श्लो. कुंदेंदीवरसुन्दरावतिबलौ विज्ञानधामावुभौ
शोभाढ्यौ वरधन्विनौ श्रुतिनुतौ गोविप्रवृन्दप्रियौ ।
मायामानुषरूपिणौ रघुवरौ सद्धर्मवर्मौ हितौ
सीतान्वेषणतत्परौ पथिगतौ भक्तिप्रदौ तौहि नः ॥१॥

अर्थ : कुन्द और नील कमल के समान सुन्दर, अत्यन्त बलवान विज्ञान धाम शोभा के धनी, श्रेष्ठ धनुर्धर, वेद से वन्दित, गो ब्राह्मण समूह के प्रिय या प्रेमी, माया से मनुष्य का रूप धारण किये, सद्धर्म के लिए कवचरूप, हितकारी, श्री सीता जी के खोज में तत्पर, दोनों पथिक, दोनों रघुकुल में श्रेष्ठ, हमें भक्ति के देनेवाले हों।

व्याख्या : कुन्द की भाँति गौरवर्ण लक्ष्मण जी और नील कमल से सुन्दर श्यामवर्ण रामजी हैं। इनकी फूलों से उपमा देकर कोमलता, सौन्दर्य और सौगन्ध्य कहा। सुन्दर और सुकुमार व्यक्ति में बल की न्यूनता होती है। पर ये दोनों व्यक्ति अतिबल हैं।

पुनः बलवान् शरीर की ही सेवा में लगे रहते हैं। उन्हें देहाध्यास की मात्रा अधिक होती है। पर ये विज्ञान के धाम हैं। अतः शोभा के धनी हैं। अथवा दूसरों को इनसे शोभा मिलती है। इसलिए शोभा के धनी हैं। यथा : राज कुँअर दोउ सहज सलोने। इनते लहि दुति मरकत सोने। इतने पर भी विख्यात धनुर्धर हैं। मेघनाद कहता है : कहँ कोसलाधीस दोउ भ्राता। धन्वी सकल लोकबिख्याता। विरूद्धधर्माश्रयत्व दिखलाकर तब कहते हैं कि वेद इन्हीं को नमो नमः करते हैं। अर्थात् ये ही परमात्मा हैं। अब अवतीर्ण होने का कारण कहते हैं कि इन्हें गो ब्राह्मण प्यारे हैं। उन्हीं के लिए इन्होंने माया से मनुष्य रूप धारण किया है।

वस्तुतस्तु जीव भी अजन्मा है और ब्रह्म भी अजन्मा है। गीता में भगवान् कहते हैं कि कदाचित् इस : जीव का जन्म नहीं होता और अपने लिए भी कहते हैं कि मैं अजन्मा हूँ, अव्ययात्मा हूँ और भूतों का ईश्वर हूँ। यथा : न जायते म्रियते वा कदाचित् तथा : अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन्। भेद इतना ही है कि जीव का जन्म अविद्या द्वारा होता है और ईश्वर माया द्वारा देह ग्रहण करते हैं। माया से ही दो स्वरूप से भासित होते हैं। यथा : ब्रह्म जो निगम नेति कहि गावा। उभय वेष धरि सोइ कि आवा। रघुकुल में जन्म लिया है। इससे रघुवर कहते हैं। धर्मसेतु रक्षक हैं। धर्मग्लान्यधर्माभ्युत्थान की निवृत्ति के लिए जगत् के कल्याण के लिए अवतीर्ण हैं। अवतार तथा अवतार ग्रहण का प्रयोजन कहकर अब प्रसङ्गानुकूल ध्यान करते हैं कि सीताहरण हो गया। सो उन्हीं की खोज में तत्पर हैं। ऐसे अवसर में भी रास्ते चलते भक्ति-चिन्तामणि का वितरण हो रहा है। अतः गोस्वामी जी भक्ति की याचना कर रहे हैं। अथवा जो भक्त के लिए इतना कष्ट उठा रहे हैं कि वन-वन में ढूँढते फिरते हैं : जदपि अकाम तदपि भगवाना। भगत बिरह दुख दुखित सुजाना। उनसे भक्ति ही माँगना चाहिए। अतः दीनघाट के वक्ता दीन जनों के लिए भक्ति की याचना कर रहे हैं। इसीलिए बहुवचन नः का प्रयोग किया।

श्लो. ब्रह्मांभोधिसमुद्भवं[1] कलिमलप्रध्वंसनं चाव्ययं
श्रीमच्छंभुमुखेंदुसुंदरवरे संशोभितं सर्वदा
संसारामयभेषजं सुखकरं श्रीजानकीजीवनं
धन्यास्ते कृतिनः पिबन्ति सततं श्रीरामनामामृतम् ॥२॥

अर्थ : वे सुकृती धन्य हैं जो वेदरूपी समुद्र से उत्पन्न, कलिमल के नाश करनेवाले, अव्यय, श्रीमान् शम्भु के सुन्दर मुखचन्द्र में सर्वदा विराजमान, संसाररूपी रोग के औषध, सुख कर, श्री जानकी के जीवन, श्री रामनामामृत को सदा पान किया करते हैं।

व्याख्या : नामी का वर्णन करके नाम का वर्णन करते हैं। स्वाद तोषसम सुगति सुधा के : कह आये हैं। इसलिए उसका वर्णन अमृत रूप से करते हैं। अमृत पीनेवाले धन्य नहीं हैं। केवल दीर्घजीवी होकर कौन धन्य हुआ है। काकोऽपि जीवति चिराय बलिं च भुंक्ते। पुण्यमय जीवन एक मुहूर्त का भी बहुत है। इसलिए कहते हैं कि जो पुण्यात्मा सदा रामनामामृत का पान करते हैं वे धन्य हैं। अमृत तो लौकिक अम्भोधि से उत्पन्न है।

१. पर नामामृत तो वेदाम्भोधि से उत्पन्न है। यथा : बिधि हरिहर मय बेद प्रण सों : अमृत से स्थूल मल की निवृत्ति होती है। पर

---

१. यह शार्दूलविक्रीडित छन्द है।

२. इस नामामृत से कलिमल की निवृत्ति होती है। अमृत तो पीने से चुक जाता है। पर

३. नामामृत तो कभी चुकता नहीं। अमृत का निवास तो चन्द्रमण्डल में सुना जाता है। पर

४. नामामृत तो साक्षात् श्रीमान् शङ्कर जी के सुन्दर मुखचन्द्र में सर्वदा शोभित रहता है। भाव यह कि शिवजी के मुखचन्द्र के सामने यह चन्द्रमण्डल क्या है? चन्द्रमण्डल में अमावस्या को अमृत की हानि हो जाती है। पर नामामृत तो सदा शिवजी के मुखचन्द्र में विराजमान रहता है। यथा : तुम पुनि राम राम दिनराती। सादर जपहु अनंग अराती। अमृत रोगों की दवा है। पर

५. नामामृत तो संसाररूपी रोग की दवा है और सुख देनेवाला है। भाव यह कि दोषापनयन ही नहीं गुणाधान भी करता है। अमृत सामान्य जीवों का जीवन है। पर

६. रामनामामृत तो उद्भवस्थितिकारिणी, क्लेशहारिणी, सर्वश्रेयस्करी, रामवल्लभा श्री जानकीजी का जीवन है। भगवान् राम षडैश्वर्य सम्पन्न हैं। उसी भाँति रामनाम भी षडैश्वर्य सम्पन्न है। इसलिए श्रीरामनाम को अमृत कहते हैं। इस भाँति श्रीग्रन्थकार श्रीरामनामामृत को अमृत से सर्वात्मना श्रेष्ठ समझकर सदा पान करने का उपदेश देते हैं। इसका पान चीख चीखकर करना चाहिए। यथा : चीखि चीखि चसकन सों रामसुधा पीजिये : देवस्वामी। जितने साधन हैं। सब आयाससाध्य हैं। केवल नामाराधन साधनकाल में भी सुखकर और फलकाल में भी श्रेयस्कर है। यहाँ सतत श्रीरामनामामृत पान करनेवालों की स्तुति से तात्पर्य यह है कि इस काण्ड में योग जप करनेवाले ऋषियों से भेंट न होगी। इसमें तो केवल भालू बन्दरादिकों से भेंट होगी। जिन्हें केवल नामामृत पान में अधिकार है और वे धन्य हैं। क्योंकि : अधम सरीर राम जिन पाये।

इस काण्ड में किष्किन्धा का राज्य सरकार ने सुग्रीवजी को दिया है और प्रधानतः किष्किन्धा की ही कथा इसमें है। अतः इसका नाम किष्किन्धा रक्खा। यदि किष्किन्धा नाम न रखते तो पता ही न चलता कि अर्धराति पुरद्वार पुकारा, मन्त्रिन्ह पुर देखा बिनु साईं : आदि पदों में किस पुर का उल्लेख कर रहे हैं। क्योंकि इस काव्य भर में कहीं किष्किन्धा का नाम नहीं आया है।

यह सप्तपुरियों में से चौथी काशी की भाँति काण्डों के मध्य में स्थित है। काशीजी में रामनाम की महिमा शंकर पार्वती की महिमा और स्वयं पुरी की महिमा है। इस काण्ड में न सबको स्तुति : वन्दना है। यहाँ रुद्ररूप हनुमान्‌जी को रामजी ने दर्शन दिया है। भक्ति का उपदेश दिया है। हनुमान्‌जी की कृपा से बन्दर भालुओं को भी भगवत्प्राप्ति हुई है। इसलिए यह काण्ड काशी है। जिसकी कहीं गति नहीं उसकी गति काशी है। यथा : येषां क्वापि गतिर्नास्ति तेषां वाराणसी गतिः। इस काण्ड में भी : बालित्रास ब्याकुल दिन राती। तन बहु व्रण

चिताजर छाती। सो सुग्रीव कीन्ह कपिराऊ। अति कृपाल रघुबीर सुभाऊ। इस भाँति यह काण्ड काशी है।

सो. मुक्ति जन्म महि जानि, ग्यान खानि, अघ हानिकर।
जहँ बस संभु भवानि, सो कासी सेइअ कस न ॥
जरत सकल सुरबृन्द, बिषम गरल जेहिं पान किय।
तेहि न भजसि मनमंद, को कृपाल संकर सरिस ॥

अर्थ : मुक्ति की जन्मभूमि, ज्ञान की खानि और पाप नाशिनी जहाँ शिव पार्वती बसते हैं : ऐसा : जानकर उस काशी की सेवा क्यों न की जाय? सब देवताओं को जलते हुए : जानकर : उल्वण विष को जो पान कर गये। हे मन्द मन ! उसे : क्यों नहीं भजता। शङ्कर ऐसा कृपाल और कौन है ?

व्याख्या : काशी मुक्ति की जन्मभूमि है। यहीं मुक्ति उत्पन्न होती है और कहीं मुक्ति उत्पन्न होती ही नहीं। जिस भाँति रामावतार अयोध्या में हो होता है। कृष्णावतार मथुरा में ही होता है उसी भाँति मुक्ति का अवतार काशी में ही होता है। अन्य पुरियाँ काशी प्राप्त करानेवाली हैं और काशी द्वारा मुक्ति हो जाती है। इसलिए वे भी मुक्तिदायिनी कहलाती हैं पर मुक्ति काशी में ही होती है। अन्य स्थलों में अथवा अवस्था विशेष में मुक्ति मिलने की कथा शास्त्रों में सुनने में आती है। वह मुक्ति भी काशी द्वारा ही होती है। काशी के दो रूप और हैं। भ्रू और नासिका के सन्धिस्थल पर जो त्रिपुटी है वह आध्यात्मिक काशी है। सूर्य मण्डल के मध्य में आधिदैविक काशी है। अन्य स्थानों और अवस्थाओं में जो मुक्ति होतो है उसका कारण आधिदैविक और आध्यात्मिक काशी है। अतः काशी को मुक्ति की जन्मभूमि कहा।

परन्तु श्रुति कहती है कि बिना ज्ञान के मुक्ति नहीं होती : ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः। तमेव विदित्वातिमृत्युमेति। इस पर कहते हैं : ग्यान खानि। काशी ज्ञान की खानि है। जिस भाँति खानि से निकलकर ही धातुओं का प्रसार जगत् में होता है इसी भाँति जो कुछ ज्ञान का प्रसार जगत् में है उसका मूल स्रोत काशी है। परन्तु मन में मल रहते ज्ञान हो नहीं सकता और निर्मल मन होने पर ज्ञान क्यों नहीं होगा ? इसलिए कहते हैं : अघ हानिकर। काशी पापनाशिनी है। जहाँ शिव पार्वती जगत् के माता पिता सदा निवास करते हैं किसी अवस्था में भी काशी को नहीं छोड़ते। शिवजी के काशीके छोड़ने की भी कथा पुराणों में आयी है। परन्तु उस अवस्था में भी उनका सूक्ष्म रूप से निवास रहता है। इसीलिए इसे अविमुक्त क्षेत्र कहते हैं। यहाँ निवास करके महासत्र चलाते हैं। भगवती अन्नपूर्णा काशीनिवासियों को अन्न देती हैं और भगवान् शिव मुमूर्षु के दक्षिण कर्ण में राम तारक मन्त्र का उपदेश करते हैं। जिससे उसे ज्ञान होकर मुक्ति हो जाती है। अतः भवानी शंकर की कृपा से यहाँ यावज्जीवन योगक्षेम चलता है और अन्त में मुक्ति मिलती है। ग्रन्थकार

अपने मन से कहते हैं : क्योंकि मन से ही वेद्य जाना जाता है कि ऐसी काशी का सेवन क्यों नहीं करता ? यथा :

सेइय सहित सनेह देह भरि कामधेनु कलिकासी।
समन सोक संताप पापरुज सकल सुमंगल रासी॥
मरजादा चहुँ ओर चरनवर सेवत सुरपुरबासी।
तीरथ सब सुभ अंग रोम सिवलिंग अमित अबिनासी॥
अंतरअयनु अयनुभल थनफल बच्छ बेद बिस्वासी।
गल कंबल बरुना बिभाति जनु लूम लसति सरितासी॥
दंडपानि भैरवविषान मलरुचि खलगन भयदासी।
लोल दिनेस तिलोचन लोचन करन घंट घंटासी॥
मनिकर्निका बदन ससि सुन्दर सुरसरि सुख सुषमासी।
स्वारथ परमारथ परिपूरन पंचकोस महिमासी॥
बिस्वनाथ पालक कृपालु चित लालति नित गिरिजासी।
सिद्धिसंची सारद पूर्जाहि मन जोगवत रहति रमासी॥
पंचाच्छरी प्रान मुद माधव गव्य सुपंचनदासी।
ब्रह्म जीव सम रामनाम दोउ आखर बिस्व बिकासी॥
चारितु चरति करम कुकरम करि मरत जीवगन घासी।
लहत परमपद पय पावन जेहि चहत प्रपंच उदासी॥
कहत पुरान रची केसव निज कर करतूति कलासी।
तुलसी बसि हरपुरी राम जपु जो भयो चहै सुपासी॥

काशी में बसकर राम नाम का जप करना सर्वथा इष्ट है। जिस मन्त्र के बल से मुक्ति लेना है उसका अभ्यास अवश्य करना चाहिए। परन्तु कामधेनु काशी का प्राण पञ्चाक्षरमन्त्र शिवाय नमः है। अर्थात् शिवजी का भजन काशीवास का प्राण है। स्वयं सरकार ने शिवजी के भजन का बार बार उपदेश दिया है। यथा : जपहु जाइ संकर सतनामा। तथा : औरो एक गुपुत मत सबहि कहौं कर जोरि। संकर भजन बिना नर भगति न पावइ मोरि। सिव सेवा कर फलसुत सोई। अबिरल भगति रामपद होई। इत्यादि।

अतः ग्रन्थकार अपने मन को उपदेश देते हैं कि रे मन मन्द ! तू शङ्कर का भजन कर। बिना कारण का कार्य नहीं होता। शङ्कर भजन कारण है और राम भक्ति उसका फल है। भजनीय में दो गुण होना चाहिए। एक तो वह समर्थ हो। दूसरे कृपालु हो। यदि भजनीय समर्थ है और कृपाल नहीं हैं तो उसका भजन व्यर्थ है और यदि कृपाल होने पर भी समर्थ नहीं है तो भी उसके भजन का कोई फल नहीं है। भगवान् शङ्कर में ये दोनों गुण अत्यन्त उत्कर्ष रूप में हैं। एक ही उदाहरण में ग्रन्थकार दोनों गुण दिखलाते हैं। जब समुद्रमन्थन के समय रत्न निकलने लगे तब अन्य देवता लोग उन्हें ग्रहण करने लगे, परन्तु जब उल्वण

विषका प्रादुर्भाव हुआ और उसके क्षार से अमर मरने और अजर जरने लगे तब तो सबने त्राहि त्राहि किया। उस समय भगवान् शङ्कर आगे आकर उस विषका पान कर गये और देवताओंकी रक्षा हो गयी। उस पान से शिवजी का कोई अपकार नहीं हुआ। ऐसे समर्थ और ऐसे दयालु शङ्कर हैं। दूसरा कोई ऐसा नहीं है। इससे यही गमक निकलता है कि श्री गोस्वामीजी शेष जीवन काशी में बसकर शिवजी की आराधना में तथा श्री रामनाम के जप में व्यतीत करना चाहते हैं।

४५. [1]मारुति मिलन प्रसंग

आगे चले बहुरि रघुराया। रिष्य मूक पर्वत नियराया॥
तहँ रह सचिव सहित सुग्रीवाँ। आवत देखि अतुल बल सीवाँ॥१॥

अर्थ : रघुनाथजी फिर आगे चले। ऋष्यमूक पर्वत के निकट पहुँच गये। वहाँ मन्त्रियों के सहित सुग्रीव रहते थे। सो अतुल बल की सीमा को आते देखकर :

व्याख्या : शवरी के आश्रम से चले थे। तब कहा गया था : चले राम त्यागा बन सोऊ। तत्पश्चात् शवरी के कथनानुसार पम्पासर गये। यथा : पंपासरहिं जाहु रघुराई। तहँ होइहि सुग्रीव मिताई। वहाँ ठहर गये थे। अब फिर आगे चले। अतः कहते हैं : आगे चले बहुरि : रघुराया हैं। नीति के अनुसार कार्य करेंगे। सुहृत्तम चाहे साधन और वित्त से हीन हों पर बुद्धिमान् हो तो शीघ्र ही कार्य साधन करता है : असाधना वित्तहीना बुद्धिमन्तः सुहृत्तमाः। साधयन्त्याशु कार्याणि काककूर्ममृगाखुवत्। अतः बुद्धिमान् सुहृत्तम हनुमान् जी से मिले और उन्हीं के द्वारा सब कार्योंका साधन हुआ। पम्पासर के पास ही मातङ्ग ऋषि का आश्रम पर्वत पर था। ऋषिजी बड़े प्रगल्भ थे। अतः उन्हें ऋष्यमूक कहा जाता था। उन्हीं के नाम से वह पर्वत प्रसिद्ध था। सो उसके इतना सन्निकट पहुँच गये कि पर्वत पर से सरकार का स्पष्ट दर्शन होने लगा।

ऋष्यमूक जाने का प्रयोजन कहते हैं कि वहाँ मन्त्री सहित सुग्रीव रहते थे। भाव यह कि षडङ्ग राज्य में उन्हें एक अङ्ग मन्त्री बच गये थे। राज्य, कोष, सेना, दुर्ग, मित्र कुछ नहीं रह गया था। साधन हीन और वित्त हीन थे। परन्तु थे बुद्धिमान्। सब कुछ जाने पर भी मन्त्रियों को उन्होंने हाथ से बाहर नहीं जाने दिया था। क्योंकि मन्त्री के बचे रहने से पुनः राज्य के लौट आने की आशा रहती है और इस बात पर भी ध्यान रखते थे कि उधर से कौन आता जाता है। सो उन्होंने अतुल बल की सीमा राम लक्ष्मण को आते देखा। यद्यपि बल का चाक्षुष प्रत्यक्ष नहीं होता तथापि : तेज प्रताप रूप जहँ तहँ बल बूझिअ : जा० मं०। अतः परम बुद्धिमान् सुग्रीवजी तेज प्रताप रूप के देखने से जान गये कि ये तो अतुल बल की सीमा हैं।

---

१. यहाँ से ४५ वाँ : मारुति मिलन प्रसङ्ग प्रारम्भ होता है।

सुग्रीव को चार मन्त्री थे। परन्तु उनको बड़ी आस्था हनुमान्‌जी पर थी। क्योंकि कार्य सिद्धि हनुमान्‌जी से ही होती थी।

अति सभीत कह सुन हनुमाना। पुरुष जुगल बल रूप निधाना॥
धरि बटु रूप देखु तें जाई। कहेसु जानि जिअ सैन बुझाई॥२॥

अर्थ : अत्यन्त सभीत होकर कहा कि हनुमान्! सुनो। दोनों पुरुष बल और रूप के निधान हैं। ब्रह्मचारी का रूप धारण करके तुम जाकर देखो। उनका अभिप्राय जानकर मुझे इशारे से बतला देना।

व्याख्या : सुग्रीव वालिके भय से सभीत तो रहते ही थे। यथा : इहाँ साप बस आवत नाहीं। तदपि सभीत रहौं मन माहीं। इन अतुल बल सींव दोनों भाइयों को देखकर अब अत्यन्त सभीत हो गये। अपने मन्त्री हनुमान्‌जी से कहा कि ये दोनों पुरुष बल और रूप के निधान हैं। इनके पास तुम ब्रह्मचारी का वेष धारण करके जाओ और इनसे : संस्कृत में बातचीत करके इनके मनोगत भाव को जानकर हाथ के इशारे से मुझे आगाह कर दो : बतला दो। अर्थात् यदि उनसे कोई भय न हो तो मुझे हाथ के इशारे से आश्वासन दे देना। किसी प्रकार का आश्वासन न पाने पर मैं समझ लूँगा कि इनसे भय है। ब्रह्मचारी के भेष में जाकर मिलने से वे तुम्हें मेरा सखा न समझेंगे। क्योंकि नर वानर का कोई साथ नहीं है। यथा : नर बानरहिं संग कहु कैसे। और अपने हृद्‌गत भावों को न छिपावेंगे। यथा : अध्यात्मे : ताभ्यां सम्भाषणं कृत्वा जानीहि हृदयं तयोः। विनयावनतो भूत्वा एवं जानीहि निश्चयम्। यदि तौ तुष्टहृदयौ संज्ञां कुरु कराग्रतः। अर्थ : उन दोनों से बातचीत करके उनके हृदय को जानो। विनय से अवनत होकर उनके निश्चय को जानो। यदि उनका हृदय तुष्ट हो तो हाथ के अग्रभाग से इशारा कर देना।

पठए बालि होहिं मन मैला। भागौं तुरत तजौं यह सैला॥
बिप्ररूप धरि कपि तहँ गयऊ। माथ नाइ पूछत अस भयऊ॥३॥

अर्थ : यदि मनमलीन वालि के भेजे हों अथवा वालि के भेजे हुए ये मन के मैले हों तो मैं तुरन्त भागूँ और इस पहाड़ को छोड़ दूँ। विप्र का रूप धारणकर कपि वहाँ गये और सिर नवाकर ऐसा पूछने लगे।

व्याख्या : वालि का मन मैला है। वह मेरे वध के लिए कितने बानर भेज चुका। जो मेरे हाथ से मारे गये। कौन कहता है कि ये दोनों अतुल बलसींव उसके भेजे हुए नहीं है। यदि उसके भेजे हुए होंगे तो इनका भी मन मैला होगा। मेरे वध के लिए ही आये होंगे। बातचीत से पता लग जायगा। वे मेरी खोज में होंगे तो तुम्हें ब्रह्मचारी ब्राह्मण समझकर अत्यन्त छिपाव न करेंगे। यदि उनके हृदय में दुर्भावना होगी तो मैं तुरन्त भाग जाऊँगा। ये बड़े पराक्रमी मालूम होते हैं। इनसे मैं नहीं बच सकता। ये धनुर्धारी हैं। इनका सामना पड़ जाने पर भाग करके भी प्राण बचाना अशक्य है। अतः तुरन्त भागूँगा और यही पर्वत एकमात्र शरण है।

यथा : इहाँ स्राप बस आवत नाहीं। सो इसका भी परित्याग करूँगा जिससे उनके तीर का निशाना न बनना पड़े।

सुग्रीव तथा हनुमान् आदि उनके सचिव सब वानर थे। इसलिए हनुमान्जी के लिए यहाँ कपि शब्द का प्रयोग हुआ है। यद्यपि हनुमान्जी कपि थे। पर वेदपाठो ब्राह्मण यथा : वेदपाठो भवेद्विप्रः के रूप में रामजी तथा लक्ष्मणजी के पास गये। बन्दर की लखान बड़ी कड़ी होती है। तुरन्त लख गये कि मैं ही नहीं रूप बदले हुए हूँ। ये लोग भी रूप बदले हुए हैं। निश्चय ये सूर्य से तेजस्वी कोई बड़े देवता हैं। इसलिए पहिले सिर नवाया। तत्पश्चात् इस भाँति पूछने लगे। सिर नवाकर पूछने का दूसरा भाव यह है कि मैं पूज्य बुद्धि से पूछता हूँ। हनुमान्जी संस्कृत में बोले। जिससे राम लक्ष्मण समझ सकें। उनसे किष्किन्धा की भाषा समझने की आशा नहीं थो।

हनुमान्जी विश्वविद्याग्रणी, सामगाताग्रणो हैं। अतः जब रूप बदलते हैं तब ब्राह्मण का ही रूप धारण करते हैं। रामजी से विप्ररूप से मिले। विभीषण से भी विप्ररूप में ही मिले। यथा : बिप्र रूप धरि बचन सुनाये। भरतजी से भी विप्र रूप से ही मिले। यथा : बिप्र रूप धरि पवनसुत धाइ गये जनुपोत।

को तुम स्यामल गौर सरीरा। छत्री रूप फिरहु बन बीरा॥
कठिन भूमि कोमल पदगामी। कवन हेतु बिचरहु बन स्वामी॥४॥

अर्थ : साँवरे और गोरे शरीरवाले वीर ! तुम कौन हो। क्षत्रिय रूप से वन में विचरण कर रहे हो। भूमि कठिन है और तुम कोमल चरण से चलनेवाले हो। हे स्वामिन् ! किस कारण से वन में घूमते हो।

व्याख्या : धनुर्धारी देखकर बीर सम्बोधन कर रहे हैं और कुन्देन्दीवर सुन्दर देखकर स्यामल गौर सम्बोधन कर रहे हैं और परिचय पूछते हैं : तुम कौन हो ? रूप तुम्हारा क्षत्रिय का सा है। पर तुम मनुष्य नहीं हो कोई देवता हो। यहाँ की भूमि बड़ी कठोर है और तुम्हारे चरण बड़े कोमल हैं। बिना यान या पादत्राण के किसी भाँति यात्रा करने योग्य नहीं हैं और वानप्रस्थ भी नहीं हो। फिर तुम्हारे वन में विचरने का कोई कारण नहीं मालूम होता : इस भाँति वन में विचरण का प्रयोजन पूछते हैं। अथवा इस भाँति बिना पादत्राण के विचरण करनेवाले का पद भी कठोर हो जाना चाहिए। पर तुम्हारे चरण कोमल ही बने हैं। यह अलौकिक गुण मनुष्य में नहीं हो सकता। अतः देवबुद्धि से : स्वामिन् सम्बोधन करते हैं। बिना पादत्राण के चलने से तुम्हें शिकारी भी नहीं कह सकते हैं। अतः तुम्हारे वन विचरण का कोई भी प्रयोजन नहीं मालूम होता। अथवा लक्षण से तुम स्वामी मालूम होते हो। यथा : राज लषन सब अंग तुम्हारे। देखि सोचु अति हृदय हमारे। मारग चलहु पयादेहि पाएँ। ज्योतिष झूठ हमारेहि भाएँ। और इस भाँति वन में घूमते हो इसलिए पूछता हूँ।

मृदुल मनोहर सुन्दर गाता। सहत दुसह बन आतप बाता ॥
की[1] तुम्ह तीनि देव मँह कोऊ। नर नारायन की तुम्ह दोऊ ॥५॥

दो. जग कारन तारन भव, भंजन धरनी भार।
की तुम्ह अखिल भुवनपति, लीन्ह मनुज अवतार ॥१॥

अर्थ : मन को हरण करनेवाला आपका सुन्दर शरीर है और वन में दुःसह धूप और लू सहन कर रहे हो। क्या तुम त्रिदेवों में से कोई हो या तुम दोनों नरनारायण हो या संसार के कारण भवसागर के पार उतारनेवाले पृथ्वी का भार उतारनेवाले अखिल ब्रह्माण्ड के नायक हो। मनुष्य का अवतार धारण किये हो।

व्याख्या : पहिले चरण पर ध्यान गया। जिन चरणों का ध्यान करते थे वैसे ही चरण देखकर प्रश्न किया। अब मृदुल मनोहर सुन्दर शरीर देखकर तद्विषयक प्रश्न करते हैं। ऐसा शरीर वन की भयानक लू और धूप सहने के योग्य नहीं है। अथवा ऐसी कड़ी धूप और लू सहने पर भी शरीर के सुकुमारतादि गुण बने हैं। यह आश्चर्य की बात है। इसका कारण जानने के लिए प्रश्न कर रहे हैं। कौन सा ऐसा प्रयोजन आपड़ा है कि आप वन में ग्रीष्म ऋतु की भयानक लू और धूप सहन करते हुए भी बिना छाता जूता के इस निर्जन वन में घूम रहे हैं?

अब हनुमान्जी यह भी बतला रहे हैं कि सरकार को देखकर उनके मन में कौन सी भावनाएँ उठ रही हैं। वे पूछते हैं कि क्या आप तीनों देवों में से कोई हैं? भाव यह कि आप सामान्य देवता भी नहीं हो या तो विष्णु शिव या विष्णु और ब्रह्मा हो। श्यामल गौर वर्णों के देखने से यह अनुमान उठ रहा है। नहीं तो तुम दोनों नर नारायण हो। अनुमान में बराबर सन्निकट चले आ रहे हैं। पहिले तीन में से दो का अनुमान किया। अब दो का ही अनुमान करते हैं। चुप देखकर तीसरा अनुमान करते हैं।

या अखिल भुवनेश्वर संसार के बीज हो। भक्तानुग्रह के लिए संसार के तारण और धरणी के भार के भञ्जन के लिए मनुष्य का अवतार धारण किये हो। अथवा जिस जिस कल्प में जिसका जिसका रामावतार हुआ था उस उस कल्प में उस उस कल्प के हनुमान् ने अपने तर्क से उन्हें पहिचाना। जिस कल्प में जय विजय रावण कुम्भकर्ण हुए थे उस कल्प में वैकुण्ठनाथ का रामावतार हुआ था। अतः उस कल्प के हनुमान्जी पूछते हैं : की तुम तीन देव महँ कोऊ। और जिस कल्प में जलन्धर रावण हुआ था तथा जिस कल्प में दोनों रूद्रगण रावण कुम्भकर्ण हुए थे और क्षीरशायी का रामावतार हुआ था। उन दोनों कल्पों में जो हनुमान् हुए थे उन्होंने प्रश्न किया : नर नारायण की तुम दोऊ। तथा जिस कल्प में भानु प्रताप और अरिमर्दन रावण कुम्भकर्ण हुए थे और स्वयम्भू ब्रह्म का रामावतार

---

१. यह सन्देहालङ्कार है।

हुआ था उस कल्प के हनुमान्‌जी ने पूछा : की तुम अखिल भुवन पति लीन्ह मनुज अवतार।

कोसलेस दसरथ के जाए। हम पितु बचन मानि बन आए ॥
नाम राम लछिमन दोउ भाई। संग नारि सुकुमारि सुहाई ॥१॥

अर्थ : हम कोसल के राजा दसरथ के पुत्र हैं। हम पिता का वचन मानकर वन में आये हैं। राम और लक्ष्मण नाम के दोनों भाई हैं। सङ्ग में सुन्दर सुकुमारी स्त्री थी।

व्याख्या : को तुम स्यामल गौर सरीरा। छत्री रूप फिरहु बन बीरा। इस प्रथम प्रश्न का उत्तर देते हैं। अपना पूरा परिचय अपना नाम, पिता का नाम, जाति और निवासस्थान कहकर दिया जाता है। सो : कोसलेस दसरथ के जाए कहकर पिता का नाम, जाति और निवासस्थान कहा। नाम राम लछिमन दोउ भाई : कहकर अपना नाम राम और भाई का नाम लक्ष्मण बतलाया। नाम बतलाने के क्रम से अपना ज्येष्ठ होना और लक्ष्मणजी का कनिष्ठ होना कहा। साथ ही साथ घूमने का कारण कहते हैं कि हम दोनों भाई हैं। बन में आने का प्रयोजन कहते हैं : हम पितु बचन मानि बन आए। अब : कठिन भूमि कोमल पद गामी। कौन हेतु बिचरहु बन स्वामी। मृदुल मनोहर सुंदर गाता। सहत दुसह बन आतप बाता का उत्तर देते हैं कि हम दो नहीं तीन थे। मेरे सङ्ग में एक सुन्दर सुकुमारी स्त्री थी। यथा : संग नारि सुकुमारि सुहाई। हम तीनों वन में आये थे। इससे अपना सस्त्रीक होना कहा। तुम्हें हम सुकुमार सोहाये मालूम पड़ते हैं। सुहाई और सुन्दरी तो वह थी।

इहाँ हरी निसिचर बैदेही। बिप्र फिरहिं हम खोजत तेही ॥
आपन चरित कहा हम गाई। कहहुँ बिप्र निज कथा बुझाई ॥२॥

अर्थ : यहाँ निशिचर ने वैदेही को हरण कर लिया। हे विप्र ! हम उसी को खोजते फिरते हैं। अपनी कथा तो मैंने कह सुनायी। अब अपनी कथा समझा कर कहिये।

व्याख्या : इहाँ अर्थात् वनमें। कोसल देश की गिनती तो अब वहाँ में है। क्योंकि उसे छोड़कर वन में आये हैं। संग में सुकुमारी नारी थी : इस कहने में ही इस प्रश्न का बीज है कि वह क्या हुई ? इस पर कहते हैं कि उसे निशिचर ने हरण किया। नाम पता नहीं जानते। इतना ही जानते हैं कि दक्षिण की ओर ले गया। यथा : लै दच्छिण दिसि गयउ गोसाइँ। वह भी राजकन्या थी। राजा विदेह की पुत्री थी। उसीकी खोज में हम आतप वात की परवाह नहीं कर रहे हैं ! आप विप्र हैं। जानते ही हैं कि विवाह के समय प्रतिज्ञा की जाती है कि धर्म में, अर्थ में, काम में इसी के साथ वर्तेंगे सो त्रिवर्ग की हानि हो रही है।

श्री रामजी कहते हैं कि अपनी कथा तो मैंने कह सुनायी। अर्थात् पूरी कथा कह दी। कोसलेस दसरथ के जाये : कहकर बालकाण्ड की कथा कही। हः। पितु बचन मानि बन आए। नाम राम लछिमन दोउ भाई। संग नारि सुकुमारि सोहाई। कहकर अयोध्या काण्ड की कथा कही। इहाँ हरी निसिचर बैदेही। बिप्र फिरहिं हम खोजत तेही : कहकर अरण्यकाण्ड की कथा कही। आधिभौतिक प्रश्न के उत्तर में आधिभौतिक कथा कह सुनायी। आधिदैविक विषयक प्रश्न : कि तुम तीन देव मह कोऊ आदि का उत्तर नहीं दिया। क्योंकि पूर्व जन्म की कथा परिचय के उपयोगी नहीं है। अथवा प्राकृत राजा की भाँति अपना परिचय देना ही इष्ट था। यथा : नर तन धरेहु संत सुरकाजा। कहहु करहु जस प्राकृत राजा। तुम जो कहहु करहु सब साँचा। जस काछा तस चाहिअ नाचा। जो वेष धारण किया है उसके विरुद्ध पड़ता। इसलिए अन्तिम प्रश्न का उत्तर नहीं दिया। अब कहते हैं कि हमारा परिचय पूछा तो अपना भी कहो। जिस भाँति मैंने विस्तार से अपना चरित कहा उसी भाँति विस्तार से अपना चरित सुनाओ। इस घोर निर्जन वन में ब्रह्मचारी का ही कौन काम है ?

प्रभु पहिचानि परेउ गहि चरना। सो सुख उमा जाइ नहि बरना ॥[१]
पुलकित तन मुख आव न बचना। देखत रुचिर बेष कै रचना ॥३॥

अर्थ : प्रभु को पहिचानकर चरण पकड़कर पड़ गये। हे उमा ! वह सुख वर्णन नहीं किया जा सकता। शरीर पुलकित हो गया। मुख से वचन नहीं निकलता था। सुन्दर वेष की रचना देखते थे।

व्याख्या : जो रामजी ने परिचय दिया वह आकाश वाणी से मिल गया। यथा : ते दसरथ कौसल्या रूपा। कौसलपुरी प्रकट नर भूपा। तिन्हके गृह अवतरिहौ जाई। रघुकुलतिलक सो चारिउ भाई। नारद बचन सत्य सब करिहौं। परम सक्ति समेत अवतरिहौं। शक्ति साथ नहीं थी। इसीसे कुछ सन्देह था। अब पता चल गया : इहाँ हरी निसिचर बैदेही। अतः पहिचान में सन्देह नहीं रह गया। यहाँ ये लोग सरकार की बाट जोह रहे थे। यथा : गिरितरु नख आयुध सब बीरा। हरि मारग चितवहिं मति धीरा। हनुमान्‌जी को तो अवतार हो जाने का भी पता था। प्रभु के जन्म और प्रत्येक उत्सवों की कथा नारदजी जा जाकर सुना आते थे। यथा : राम जनम सुभकाज सब कहत देव रिषिआइ। सुनि सुनि मन हनुमान के प्रेम उमँग न अमाइ। रा. प्र.। परिचय पाते ही पहिचान लिया कि ये ही प्रभु हैं। हनुमान्‌जी परम भक्त हैं। चरण पकड़कर साष्टाङ्ग दण्डवत् किया। भक्त भगवन्त के मिलने का सुख शिवजी कहते हैं कि हे उमा वर्णनातीत है। यथा : राम लखन हनुमान् मन दुहुदिसि

---

१. न वै जनो जातु कथञ्चनाव्रजेन्मुकुन्दसेव्यन्यवदङ्ग संसृतिम्।
स्मरन्मुकुन्दाङ्घ्र्युपगूहनं पुनर्विहातुमिच्छेन्न रस ग्रहो यतः ॥
श्रीमद्भागवत

परम उछाहु। मिला सुसाहिब सेवकहि प्रभुहिं सुसेवक लाहु। रा० प्र०। मन से उछाह कहते हैं। यथा : सो सुख उमा जाइ नहि बरना। तन में उछाह कहते हैं प्रभु पहिचानि परेउ गहि चरना। देखत रुचिर वेषकै रचना। वाणी से उछाह। यथा : मुख आव न बचना। हनुमान्‌जी को सात्त्विक भाव हो गया।

पुनि धीरज धरि अस्तुति कीन्ही। हरष हृदय निज नार्थाहि चीन्हीं॥
मोर न्याउ मैं पूछा साइँ। तुम्ह पूछहु कस नर की नाइँ॥४॥

अर्थ : फिर धैर्य धारण करके स्तुति की। अपने स्वामी को पहिचानकर हृदय में हर्ष हो रहा था। कहने लगे : मैंने जो आप से पूछा तो मेरा पूछना उचित था। आप मनुष्य की भाँति क्यों पूछ रहे हैं?

व्याख्या : हनुमान्‌जी पण्डित हैं। समझते हैं कि दर्शन होते ही स्तुति करना चाहिए। अति प्रेम से धैर्य छूट गया था। मुख से वचन नहीं निकलता था। सो धैर्य धारण करके स्तुति की। प्राकृत में वर्ण विशेष का आगम हो जाता है। सो यहाँ अकार का आगम होकर स्तुति का अस्तुति रूप हो गया।

प्रेमी के मिलते ही उलाहना शुरू हो जाता है। जवाबतलब होता है। सो आरम्भ हो गया। प्रभु ने पूछा था : कहहु बिप्र निज कथा बुझाई। सो कथा नहीं कहते। उलाहना देते हैं कि मैंने आपसे परिचय पूछा था। उसी बल से आप मुझ से पूछते हैं। पर मेरा पूछना तो न्याय था। मैं जीव हूँ। अल्पज्ञ हूँ। आपको नहीं पहिचान सका। इसलिए पूछा। परन्तु आपका पूछना तो न्याय नहीं है। आप तो सर्वज्ञ हैं। आप मनुष्य की भाँति कैसे पूछते हैं। अपना पहिचान लेना व्यक्त करते हैं कि मैं नरके धोखे में अब नहीं हूँ। सरकार का पूछना न्याय नहीं है। मेरे साथ अन्याय हुआ है।

तव मायावस फिरौं भुलाना। ताते मैं नहि प्रभु पहिचाना॥

दो. एक मैं मंद मोह बस, कुटिल हृदय अग्यान।
पुनि प्रभु मोहि बिसारेउ, दीन बन्धु भगवान॥२॥

अर्थ : मैं तो आपकी माया के वश में भूला फिरता हूँ। इसलिए मैंने प्रभु को नहीं पहिचाना। एक तो मैं मन्द हूँ। मोह के वश में हूँ। मेरा हृदय कुटिल है। मैं अज्ञानी हूँ। तिस पर हे दीनबन्धु भगवान्! आपने मुझे भुला दिया।

व्याख्या : मेरे भूलने का यथेष्ट कारण है। मैं जीव हूँ। अल्पज्ञ हूँ। माया के वश में हूँ। इसलिए भूला फिरता हूँ। भूल यहाँ तक बढ़ गयी कि स्वामी को नहीं पहिचान सका। जान बूझकर मैंने पूछा हो यह बात नहीं है। पर आप तो ईश्वर हैं। सर्वज्ञ हैं। माया के नाथ हैं। यथा : परवस जीव स्ववस भगवंता। जीव अनेक एक श्रीकंता। तथा : देखी माया सब बिधि गाढ़ी। अति सभीत जोरे कर ठाढ़ी। देखा जीव नचावै जाही। आप तो अपने अंशजीवों को पहिचानते हैं। आपने जान बूझकर

मुझे भुलाया। यह ठीक है कि मैं भूला फिरता हूँ। पर आप तो भक्त को खोजते फिरते हैं ? आपके लिए भूलने का कोई कारण नहीं है।

मोह वश माया वश होना एक ही बात है। मायावश होने से मैं मन्द हूँ। मेरा हृदय कुटिल है। वेष बदल के प्रभुका भेद लेने आया हूँ। मुझे ज्ञान नहीं है। अन जानत की चूक क्षमा की जाती है। सो मेरी चूक क्षमा नहीं की गयी। मेरा उद्धार तो केवल स्वामी की कृपा पर निर्भर है। सो प्रभु ने दीनबन्धु और भगवान् होकर मुझे जान बूझकर भुला दिया। क्योंकि पूर्ण को विस्मृति नहीं होती। अपूर्ण को तत्परता के तारतम्यानुसार अविस्मृति होती है।

जदपि नाथ बहु अवगुन मोरे। सेवक प्रभुहि परै जनि भोरे॥
नाथ जीव तव माया मोहा। सो निस्तरै तुम्हारेहिं छोहा॥१॥

अर्थ : हे नाथ ! यद्यपि मुझ में बहुत से अवगुण है। फिर भी सेवक को प्रभु भूल नहीं जाते। हे नाथ ! जीव तो आपकी माया से मोहित हुआ पड़ा है। उसका निस्तार तो आपके छोह से ही हो सकता है।

व्याख्या : यद्यपि : संत हंस गुन गहहिं पय परिहरि वारि विकार। सन्त लोग गुण का ही ग्रहण करते हैं और विकार का त्याग करते हैं। और मेरे में विकार बाहुल्य है : यहाँ विकार शब्द अवगुण के अर्थ में आया है। अतः मेरे विसारे जाने के लिए पर्याप्त कारण है। पर मैं सेवक हूँ। मुझे दूसरा आसरा भरोसा नहीं है। अतः सरकार मुझे न भूलें।

आप के भूलने से मेरा निस्तार नहीं है। जीव तो आपकी माया से मोहित है। उसका सामर्थ्य नहीं है कि वह अपने बल द्वारा माया के पञ्जे से निकल सके : जो ज्ञानिन्हकर चित अपहरई। बरिआई बिमोह बस करई। उसका निस्तार तो आपके छोह से ही सम्भव है : यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूं-स्वाम्। वेद कहता है कि जिसे यह वरण करता है उसी को प्राप्त होता है। उसे ही विश्वात्मा अपने रूप का दर्शन देता है। अवगुण बाहुल्य का भी मैं दोषी नहीं। अतिसय प्रबल देव तव माया। छुटै राम करहु जो दाया। अपने बल से माया का हटाना सर्वथा असाध्य है : दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया : भ० गी०। मेरी दैवी गुणमयी माया उल्लंघन नहीं की जा सकती।

तापर मैं रघुबीर दोहाई। जानहुँ नहि कछु भजन उपाई॥
सेवक सुत पति मातु भरोसे। रहइ असोच बनै प्रभु पोसें॥२॥

अर्थ : तिस पर मैं रघुवीर की दोहाई भजन का उपाय कुछ भी नहीं जानता। सेवक स्वामी के भरोसे उसी भाँति रहता है जैसे बच्चा माँ के भरोसे बेफिक्र रहता है। प्रभु को सेवक का पोषण करते ही बनता है।

व्याख्या : हनुमान्‌जी अपनी विशेषता कहते हैं कि मैं अपने को सेवक

मानता मात्र हूँ। पर सेवा का उपाय कुछ भी नहीं जानता कि सरकार को कैसे और कहाँ पावें और किस प्रकार से सेवा करें। यह मैं विनय प्रदर्शन के लिए नहीं कह रहा हूँ। शपथ खाकर सत्य कहता हूँ। रघुबीर से बढ़कर मुझे कौन है! उनकी शपथ करता हूँ। जिन्होंने सेवा धर्म का दर्शन पाया है वे कहते हैं: सब ते सेवक धर्म कठोरा। मुझे तो सेवा धर्म का दर्शन भी नहीं हुआ। मैं क्या जानूँ कि सेवा कैसे की जाती है?

मैं तो यही जानता हूँ कि सेवक बच्चा है। वह स्वामी रूप माँ के भरोसे बेपरवाह होकर घूमता है। उसे अपनी फिक्र नहीं। यदि माँ पोषण करे तभी बात बन सकती है। और माँ ख्याल करती ही है। यथा: मोरे प्रौढ़ तनय समज्ञानी। बालक सुत सम दास अमानी। गह सिसु बच्छ अनल अहि धाई। तहँ राखै जननी अरगाई। भाव यह कि मुझे प्रभु को छोड़कर दूसरा भरोसा नहीं है। इतना ही सेवक सेव्य भाव मेरे में है। श्री गोस्वामीजी कहते हैं:

है तुलसी के एक गुन अवगुन निधि कह लोग।
भलो भरोसो रावरो राम रीझिबे जोग॥

यह हनुमत् कृत स्तुति चित्रा नक्षत्र है। हनुमान्‌जी की मति रूप सीपी में स्वाती सरस्वती की कृपा से उत्पन्न हुई है। अतः इसे मोती माना है। इसमें एक तारा: प्रभु बार बार चमक रहा है। फल श्रुति है: अतिथि पूज्य प्रियतम पुकारिके। क्योंकि हनुमान् रूपी रुद्र को अतिथि रूप से भगवत्प्राप्ति हुई है।

अस कहि परेउ चरन अकुलाई। निज तनु प्रगटि प्रीति उरछाई॥
तब रघुपति उठाइ उर लावा। निज लोचन जल सींचि जुड़ावा॥३॥

अर्थ: ऐसा कहकर चरणों में आकुल होकर पड़ गये। प्रीति हृदय में छा गयी। अपना शरीर प्रकटकर दिया। तब रघुपति ने उठाकर हृदय से लगा लिया और अपने नेत्रों के जल से सींचकर शीतल किया।

व्याख्या: प्रेमाकुल होकर चरणों में गिरे। अत्यन्त प्रेम के कारण दुराव जाता रहा। यथा: अति सप्रेम गा बिसरि दुराऊ। प्रीति हृदय में छा गयी। कपट के लिए स्थान नहीं रह गया। ब्राह्मण का शरीर कपटमय था। सो अन्तर्धान हो गया। फिर बन्दर के बन्दर हो गये। दुराव छूटते ही प्रभु ने उठाकर हृदय से लगा लिया। रामहिं केवल प्रेम पियारा। जानि लेहु जो जाननिहारा। कपट सहित होने से ब्राह्मण शरीर को हृदय में नहीं लगाया और निश्छल होने से वानर शरीर को हृदय से लगाया। जीव तो ईश्वर को प्रिय है ही। यथा: सब मम प्रिय सब मम उपजाये। तथा: ब्रह्म जीव इव सहज सनेहू। दुराव ही जीव को ईश्वर से अलग किये हुए है। यथा: कपट करौं अन्तर्यामिहु ते अघ व्यापकहि दुरावौं। दुराव देखकर ही प्रभु प्रेम को रोके हुए थे। सो दुराव के हटते ही उमड़ पड़ा। श्रीरामजी ने उठा लिया हृदय से लगाया और प्रभु के अश्रुपात से

हनुमान्‌जी भींग उठे। आकुलता से सन्तप्त हो रहे थे। सो प्रेमपात्र के प्रेमाश्रु से शीतल हुए। भाव यह कि सरकार की हम पर इतनी प्रीति है। यह जानकर हृद्‌गत सन्ताप जाता रहा।

सुनु कपि जिय मानसि जनि ऊना। तैं मम प्रिय लछिमन ते दूना ॥
समदरसी मोहि कह सब कोऊ। सेवकप्रिय अनन्य गति सोऊ ॥४॥

अर्थ : हे कपि ! सुनो। तुम मन में न्यूनता न मानना। तुम मुझे लक्ष्मण से दूने प्रिय हो। मुझे सब लोग समदर्शी कहते हैं। पर : मैं सेवक प्रिय हूँ। क्योंकि : उसे भी अन्य गति नहीं है।

व्याख्या : अब विप्र नहीं कहते कपि कहते हैं। विप्र सम्बोधन के साथ प्रेमाभाव था। वेगाना बने हुए प्रश्न करते थे कि अपना परिचय दो : कहहु बिप्र निज कथा बुझाई। कपि सम्बोधन के साथ प्यार है। अब परिचय की आवश्यकता नहीं है। ईश्वर हैं। सर्वज्ञ हैं। सब जानते हो हैं। अब रामजी न इनसे परिचय पूछेंगे और न ये परिचय देंगे। प्रभु हनुमान्‌जी की ग्लानि देखकर आश्वासन देते हैं कि मैंने विस्मरण कर दिया। इस बात की हीनता न मानना। तुम उपेक्षित नहीं हो। मुझे अत्यन्त प्रिय हो। जो अपने को उपेक्षित मान रहा है उसे लक्ष्मण से दूना न कहें तो अपने में जो प्यार की मात्रा है वह प्रकाशित नहीं होती। हनुमान् जी को इस वचन से जो सान्त्वना मिली उसे समझते हुए ही हनुमान्‌जी ने सीताजी को : जनि जननी मानहु जिअ ऊना। तुम्हते प्रेमु राम के दूना। कहकर सान्त्वना दी।

रामजी कहते हैं कि सबके लिए मैं तो समदर्शी हूँ। समान व्यवहार करता हूँ। पर सेवक के लिए नहीं। वह प्रिय है। उसके लिए मुझे विषम व्यवहार करना पड़ता है। यथा : यद्यपि सम नहि राग न रोषू। गहहिं न पापु पुन्य गुन दोषू। तदपि करहिं सम बिषम बिहारा। भगत अभगत हृदय अनुसारा। क्योंकि उसे दूसरी गति नहीं है। तुम भी अनन्य गतिक हो। अतः परम प्रिय हो। ऐसे भक्तों की मैं सदा रखवारी करता हूँ। यथा : करउँ सदा तिन्ह कै रखवारी। जिमि बालकहिं राख महतारी।

दो. सो अनन्य जाकें असि, मति न टरइ हनुमंत।
मैं सेवक सचराचर, रूप स्वामि भगवंत ॥३॥

अर्थ : हे हनुमान्‌जी ! वही अनन्य है जिसकी ऐसी बुद्धि कभी टलती नहीं कि मैं तो सेवक हूँ। और यह चराचर रूप स्वामी भगवान् का ही रूप है।

व्याख्या : हनुमान्‌जी ने कहा था कि मुझे भजन का उपाय नहीं मालूम : इसलिए उन्हें भजन का उपाय बतलाते हैं कि चराचरात्मक सब कुछ मेरा शरीर है। अतः चराचरात्मक स्वामी भगवान् का भजन करना ही अनन्य भक्ति है। वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः। यह सब कुछ वासुदेव हैं ऐसा माननेवाले

महात्मा अत्यन्त दुर्लभ हैं। यही अनन्य भक्त की विशेषता है कि चराचरात्मक जगत् को तो भगवान् का रूप मानें और अपने को सेवक मानें। यह भावना किसी भाँति टलने न पावे : अस अभिमान जाइ जनि मोरे। मैं सेवक रघुपति पति मोरे। चराचरात्मक जगत् को भगवद्रूप मानता हुआ अपने को भी वही न मान ले। अपने को सेवक माने। इस बुद्धि के टल जाने की बड़ी सम्भावना है। अतः सावधान करते हैं। ऐसे उपासक [1]अनन्य कहलाते हैं।

देखि पवन सुत पति अनुकूला। हृदय हरष बीती सब सूला ॥
नाथ सैल पर कपिपति रहई। सो सुग्रीव दास तव अहई ॥१॥

अर्थ : पवनसुत ने देखा कि स्वामी : अपने अनुकूल हैं तो उनके हृदय में हर्ष हुआ। और सब शूल जाता रहा। बोले हे नाथ! पर्वत पर कपिपति सुग्रीव रहता है। वह आपका दास है।

व्याख्या : कवि यथावसर कहते कहते कवि समाज का परिचय भी देते जा रहे हैं। पहिले बतलाया कि ऋष्यमूक पर्वत पर सुग्रीव मन्त्रियों के सहित रहते हैं। उनमें से जिस मन्त्रि पर उन्हें बड़ी आस्था है उनका नाम हनुमान् है। यथा : अति सभीत कह सुनु हनुमाना। ये लोग सब कपि जाति के थे। यथा : सुनु कपि जिय मानेसि जनि ऊना। अब हनुमान्‌जी के पिता का नाम बतलाते हैं। देखि पवन सुत पति अनुकूला। पवन सुत कहकर हनुमान्‌जी का दिव्य जन्म तथा महाबली होना भी द्योतित किया। पति अनुकूला : कहकर इनकी सेवक सेव्य भाव से रामजी की उपासना भी कहा। रामजी के ऐसा पूछने से : बिप्र कहहु निज कथा बुझाई। हनुमान्‌जी को बड़ा दुःख हुआ था कि स्वामी मेरे अनुकूल नहीं हैं। उनकी अनुकूलता देखने से सब दुःख जाता रहा।

उर लावा : से कर्मणा अनुकूलता। निज लोचन जल सींचि जुड़ावा : से मनसा अनुकूलता और जनि जिय मानेसि ऊना : से वचसा अनुकूलता देखा। तब हृदय की तीव्र वेदनाएँ जाती रहीं और बड़ा हर्ष हुआ। यथा : तुम्ह कृपाल जापर अनुकूला। ताहि न व्याप त्रिबिध भव सूला। हनुमान्‌जी को अपनी मन्दता अपने कपट और अपने अज्ञान तथा सरकार द्वारा विस्मृति किये जाने का बड़ा शूल हुआ था। यथा : एक मंद मैं मोह बस कुटिल हृदय अज्ञान। पुनि प्रभु मोहि बिसारेहु दीन बंधु भगवान्।

---

१. खं वायुमग्निं सलिलं महीञ्च ज्योतींषि सत्त्वानि दिशो द्रुमादीन्।
सरित्समुद्रांश्च हरेः शरीरं यत् किञ्चभूतं प्रणमेदनन्यः ॥
—श्रीमद्भा०

अर्थ : आकाश वायु अग्नि, जल, पृथ्वी, तारागण, जीव, दिशायें, वृक्ष आदि नदी समुद्र सब हरि के शरीर हैं। अनन्य इन्हें प्रणाम करे।

अब प्रभु के पूछे हुए प्रश्न : बिप्र कहहु निज कथा बुझाई का उत्तर देते हैं। सैल पर : कहकर अपना उस समय का निवासस्थान बतलाया। कपि पति रहई कहकर अपने को उन्हीं कपि पति का दूत होना बतलाया। सुग्रीव कहकर उनका नाम बतलाया। दास तव अहई कहकर उनका सरकारी उपासक होना बतलाया। फलतः अपना परिचय दास के सेवक रूप से दिया।

तेहि सन नाथ मयत्री कीजे। दीन जानि तेहि अभय करीजे॥
सो सीता कर खोज कराइहि। जहँ तहँ मरकट कोटि पठाइहि॥२॥

अर्थ : हे नाथ! उससे मैत्री कीजिये। उसे दीन जानकर अभय करिये। वह सीता की खोज करावेंगे और सर्वत्र करोड़ों बन्दरों को भेजेंगे।

व्याख्या : वह कपिपति समान शील व्यसन हैं। कपिपति होने पर राज च्युत है। स्त्री विरही है। शैल वास कर रहा है। पर धर्मज्ञ है और कृतज्ञ है। नीतिसम्मत है : समानशीलव्यसनेषु मैत्री। यहाँ पर हनुमान्‌जी उत्तम दूत का कार्य कर रहे हैं। जिससे सुग्रीव को इतना भय है कि रूप देखने मात्र से शैल छोड़कर भागना चाहते हैं। उनसे मैत्री कराने का प्रयत्न कर रहे हैं। कहते हैं कि इस समय वह दीनावस्था में है और भयभीत है। उसे आप अभय करने में समर्थ हैं। यदि आप उसे अभय करेंगे तो वह आपके बड़े काम आयेगा। राक्षस आपकी पत्नी को हरण करके ले गया है। वह कौन राक्षस है। कहाँ ले गया है। इसका पता नहीं है। आप दोनों भाई कहाँ कहाँ खोजेंगे। जिस भाँति आप लोग खोज रहे हैं यह खोजने की विधि नहीं है। एक वन से दूसरे वन में खोजते चले जाते हैं। वनों का बड़ा विस्तार है। उन्हीं वनों का बड़ा भारी भाग बिना खोजा ही रह जाता है। यदि सुग्रीव का भय हट गया तो वह एक एक स्थान पर करोड़ों बन्दर भेजेगा। थोड़े ही समय में सम्पूर्ण संसार छान डालेगा। जहाँ से होगा वहाँ से पता लगायेगा। स्त्री की खोज स्त्रियों में होनी चाहिए। सो बन्दरों से कहीं परदा भी नहीं होता। वे सर्वत्र जा जाकर पता ले सकते हैं। आप दोनों मित्र होकर परस्परोपकारक होंगे। आप उसका उपकार पहिले कीजिये। उपकार का ही फल मित्रता है। रामजी ने विदेह राजकन्या का परिचय देते हुए उनका नाम भी बतला दिया था। अतः हनुमान्‌जी कहते हैं : सो सीता कर खोज कराइहि।

४६. सुग्रीव मिताई

एहि बिधि सकल कथा समुझाई। लिये दुऔ जन पीठि चढ़ाई॥
जब[1] सुग्रीव राम कहुँ देखा। अतिसय जन्म धन्य करि लेखा॥३॥

अर्थ : इस विधि से सब कथा समझाकर दोनों व्यक्तियों को अपनी पीठ पर

---

१. यहाँ से ४६ वाँ प्रसङ्ग : सुग्रीव मिताई प्रारम्भ हुआ।

चढ़ा लिया। जब सुग्रीव ने रामजी को देखा तब अपने जन्म को अतिशय धन्य माना।

व्याख्या : समझाया कि सब बन्दरों ने सुग्रीव को राजा मान लिया है। परन्तु बालि के भय से सुग्रीव भागे भागे फिरते हैं। किसी की शक्ति नहीं कि सुग्रीव को शरण दे। यदि आपके द्वारा सुग्रीव का भय हट गया तो वानर मात्र पर उसकी आज्ञा चलेगी। इस समय वह स्वयं दीन और भयभीत हो रहा है। कुछ नहीं कर सकता। अभय होने पर वह सब कुछ कर सकता है इत्यादि। दोनों भाइयों ने समझ लिया कि बात ठीक है। शबरी ने पहिले ही कह रक्खा है : पंपासरहिं जाहु रघुराई। तहँ होइहि सुग्रीव मिताई। सो सब कहिहि देव रघुबीरा। अतः सुग्रीव की मित्रता इन लोगों को पहिले से ही इष्ट थी। इधर हनुमान्‌जी ने वही प्रस्ताव सामने रक्खा। सरकार ने उसे मान लिया। अब हनुमान्‌जी दोनों भाइयों को सुग्रीव के पास ले जाना चाहते हैं। पर्वत के ऊपर ले जाना है। इसलिए अपनी पीठ पर चढ़ा लिया। हनुमान्‌जी को उस कठिन भूमि में सरकार का कोमल पद से चलना बहुत अखरा। अब एक पद पृथ्वी पर चलने देना नहीं चाहते। अतः पीठ पर लेकर चले। यथा : हनूमान सम नहिं बड़भागी। नहि कोउ रामचरन अनुरागी।

इधर सुग्रीव के लिए यथेष्ट संकेत भी मिल गया कि जिसे तुम शत्रु समझते थे उससे परम कल्याण की आशा है। इनका आगमन बड़ा हितकारी होगा। इसीलिए पीठ पर चढ़ाये लिये आता हूँ। संकेत बहुत स्पष्ट है। सुग्रीवजी समझ गये। दोनों भाइयों को देखकर जन्म को धन्य माना। परन्तु सन्निकट आने से जब बहुत स्पष्ट दर्शन होने लगा तो रामजी को अधिक गुणसागर देखकर अपने जन्म को अतिशय धन्य माना। इसी मूर्ति का तो ध्यान करते थे : पुरखा ते सेवक भये हृ ते भये हनुमान्। सुग्रीवजी साक्षात् सूर्यनारायण के अवतार थे। सो अपने वानर जन्म को अतिशय धन्य माना। क्योंकि उसीके द्वारा भगवत् प्राप्ति सम्भव हुई। यथा : बिछुरे ससि रबि मन नयनहि ते पावत दुख बहु तेरो। भ्रमत श्रमित निसि दिवस गगन महँ तहँ रिपु राहु बड़ेरो। विनय पद ८७.

सादर मिलेउ नाइ पद माथा। भेंटेउ अनुज सहित रघुनाथा ॥
कपि कर मन बिचार एहि रीती। करिहहिं बिधि मोसन ए प्रीती ॥४॥

अर्थ : आदर के साथ चरणों में सिर नवाकर तब गले मिले और रघुनाथजी भी भाई के साथ उनसे मिले। अब सुग्रीवजी अपने मन में विचार कर रहे हैं कि हे विधि! क्या ये हमसे प्रीति करेंगे?

व्याख्या : हनुमान्‌जी ने कहा था : सो सुग्रीव दास तब अहई। उसी का साफल्य दिखाते हुए सुग्रीवजी का शिष्टाचार कहते हैं कि चरणों पर सिर रख दिया और मिले। अब रामजी की ओर का शिष्टाचार कहते हैं कि रामजी भाई के सहित

मिले। भाव यह है कि आते ही उन्हें सखा का पद दिया। इसी भाँति विभीषण से मिलेंगे। यथा : अनुज सहित मिलि ढिग बैठारी।

पहिले तो सुग्रीवजी को इनसे प्राण का भय हुआ। अब हनुमान्जी के संकेत से तथा मिलने के ढङ्ग से मैत्री की आशाएँ थी। मन में विचार करने लगे कि हम जाति के बन्दर और ये इतने महान् हैं। क्या मेरा इतना बड़ा भाग्य होगा कि ये मुझसे प्रीति करेंगे। मनुष्य बन्दरों से सदा बचते रहते हैं। उन्हें अपने पास नहीं आने देते। आगे चलकर सीताजी यही शङ्का हनुमान्जी से करेंगी : नर बानरहि संग कहु कैसे ? अतः कर्म शुभाशुभ के देनेवाले ब्रह्मदेव को सम्बोधन करके मन से प्रश्न करते हैं।

दो. तब हनुमंत उभय दिसि, की सब कथा सुनाइ।
पावक साखी देइ करि, जोरी प्रीति दृढ़ाइ ॥४॥

अर्थ : तब हनुमान्जी ने दोनों ओर की सब कथा सुनाकर अग्नि साक्षिक मैत्री द्वारा दृढ़ प्रीति जोड़ दी।

व्याख्या : तत्पश्चात् हनुमान्जी ने दोनों ओर की कथा : बात को स्पष्ट करने के लिए जिसमें पीछे से कोई बात ऐसी न निकले जिससे किसी को धोखा हो कह सुनायी। सुग्रीवजी से कहा कि ये अयोध्या के राजा के पुत्र हैं। पिता की आज्ञा मानकर वन आये हैं। यहाँ इनकी स्त्री को कोई राक्षस हर ले गया। उसी को आप लोग ढूँढ़ रहे हैं : पता नहीं लगता और रामजी से कहा कि ये हम लोगों के राजा सुग्रीव हैं। इनके भाई ने इनका सर्वस्व तथा स्त्री हरण कर रक्खा है। आप सहाय होकर इनका राजपाट लौटवाइये। ये सीता का अन्वेषण करायेंगे और उनकी प्राप्ति में सहायक होंगे। परन्तु इस कार्य में एक दूसरे पर विश्वास करना होगा। कार्य का गौरव देखकर यह उचित मालूम होता है कि आप लोगों में अग्नि साक्षिक मैत्री हो। किसी प्रकार से सहायता में कोई त्रुटि न होने पावे। दोनों पक्ष से स्वीकृति मिलने पर अग्नि को साक्षी देकर हनुमान्जी ने मैत्री करा दी। समान शत्रु मित्रवाली मैत्री हुई। इसलिए : जोरी प्रीति दृढ़ाइ कहा।

अग्निदेव कर्म के साक्षी हैं। सबकी गति जानते हैं। इस लोक और देवलोक में व्यापार इन्हीं के द्वारा चलता है : अग्निर्वै देवानामवमा विष्णुः। अग्नि ही देवताओं के रक्षक विष्णु रूप हैं। ये प्रत्यक्ष देव निरपराध की रक्षा तथा अपराधी को दण्ड देते हैं। यथा : तौ कृसानु सबके गति जाना। मो कहँ होहु श्रीखण्ड समाना।

कीन्हि प्रीति कछु बीच न राखा। लछिमन राम चरित सब भाखा ॥
कह सुग्रीव नयन भरि बारी। मिलिहि नाथ मिथिलेस कुमारी ॥१॥

अर्थ : प्रीति किया कोई अन्तर न रक्खा। लक्ष्मण ने रामजी के सब चरित्र कह सुनाये। सुग्रीवजी ने आँखों में आँसू भरकर कहा कि नाथ ! मिथिलेश की बेटी मिलेगी।

व्याख्या : अग्नि साक्षिक मैत्री होने से दोनों पक्ष ने एक दूसरे में कोई भेद न रक्खा। तब लक्ष्मणजी ने सब रामचरित्र कह सुनाया। हनुमान्‌जी को पूरी जानकारी न थी। जितना जान पाये थे उतना कह दिया। पर ऐसी मैत्री में यह उचित है कि एक दूसरे का रत्ती रत्ती हाल जाने। जिसमें कार्य साधन में कहीं चूक न हो। अतः लक्ष्मणजी ने सब रामचरित्र कह सुनाया। राज्याभिषेक के समय वनवास और उसमें भी स्त्री हरण। इस करुण कथा को सुनकर सुग्रीवजी के नेत्रों में जल आगया। मित्र के दुःख से सुग्रीवजी दुःखी हो गये। धैर्य बँधाते हुए बोले कि सीताजी मिलेंगी। पता पर पता चलता जा रहा है। यहाँ तक आप ठीक पते पर आये हैं। कुछ जटायुजी ने कहा और कुछ मुझे भी मालूम है। इससे निश्चय होता है कि जानकीजी मिलेंगी।

[1]मंत्रिन्ह सहित इहाँ एक बारा। बैठ रहेउँ मैं करत बिचारा॥
गगन पंथ देखी मैं जाता। परबस परी बहुत बिलपाता॥२॥

अर्थ : मैं यहाँ एक बार मन्त्रियों के साथ बैठा कुछ विचार कर रहा था। तब मैंने : सीताजी को पराये वश में पड़ी बड़ा भारी विलाप करती हुई आकाश मार्ग से जाते देखा।

व्याख्या : सुग्रीवजी कहते हैं कि आप इतने ठीक रास्ते से आये हैं कि ठीक इसी के ऊपर से सीताजी गयी हैं। एक बार मैं मन्त्रियों के साथ इसी स्थान पर बैठा कुछ विचार कर रहा था। हनुमान्, तार, नील और नल चारों थे। मेरी दृष्टि पड़ गयी। आकाश मार्ग से सीताजी बहुत बड़ा विलाप करती चली जाती थीं। पराये वश में पड़ी थीं। भाव यह कि रावण का रथ बड़े ऊँचे से जा रहा था। पहाड़ के शिखर पर तो सुग्रीवजी थे ही। पर उनसे भी इतने ऊँचे पर जा रहा था कि इन्होंने रावण को नहीं पहिचाना। इतना ही जान सके कि कोई स्त्री पराये वश पड़ी विलाप करती जा रही है।

राम राम हा राम पुकारी। हमहि देखि दीन्हेउ पट डारी॥
मांगा राम तुरत तेहिं दीन्हा। पट उर लाइ सोच अति कीन्हा॥३॥

अर्थ : राम राम और हा राम। ऐसा पुकारकर हम लोगों को देखकर कपड़ा फेंका। रामजी ने मांगा। उन्होंने तुरन्त लाकर दिया : रामजी ने पट को हृदय से लगाकर अत्यन्त सोच किया।

व्याख्या : अब वह स्त्री सीताजी ही थीं। इस निश्चय के लिए कहते हैं। राम, राम हाय राम पुकारकर वस्त्र फेंका। तीन बार राम कहने का भाव यह कि राम को देना। दूसरी बार कहने का भाव यह कि मैं राम की हूँ। तीसरी बार हाय

---

१. चार मन्त्री हनुमान, नील, नल, और तार।

राम कहने का भाव यह कि मैं राम को चाहती हूँ। बलपूर्वक हरण की जा रही हूँ। इस भाँति राम, राम, हा राम, कहने में जो कुछ कहना चाहती थीं सो सब कह दिया। सुग्रीवजी कहते हैं कि उन्होंने हम लोगों को देखा। हरण करनेवाले ने न हम लोगों को देखा और न पट डारते उन्हीं को देखा। ऊपर का फेंका हुआ वस्त्र खण्ड ठीक लक्ष्य पर नहीं गिर सकता। अतः कपड़ा फाड़कर उसमें केयूर, कुण्डल और नूपुर बांध कर फेंका। पर धर्मात्मा सुग्रीवजी ने उसे खोलकर भी न देखा कि उसमें क्या है? उसे न्यासभूत समझकर राम जब मिलें तो उन्हें देने के लिए रख लिया। इसीलिए : पट दीन्हा कह रहे हैं।

रामजी ने तुरन्त माँगा। उत्सुकता बढ़ी कि देखें वह पट सीताजी का ही है या नहीं। सुग्रीवजी ने उसे पर्वत की गुफा में डाल रक्खा था। तुरन्त लाकर दिया। सरकार तुरन्त पहिचान गये। विरही का प्रेमास्पद की भाँति ही उसके वस्त्राभरण पर प्रेम होता है। उसे हृदय से लगा लिया और विलाप करने लगे। लक्ष्मणजी से कहते हैं लक्ष्मण! देखा ये केयूर, कुण्डल और नूपुर सीता के ही तो हैं। लक्ष्मणजी कहते हैं कि केयूर कुण्डल तो आप जानें मैं नहीं जानता। मैं तो नूपुर को पहिचानता हूँ। क्योंकि नित्य चरणों की वन्दना करता था।

यथा : नाहं जानामि केयूरे नाहं जानामि कुण्डले।
नूपुरावेव जानामि नित्यं पादाभिवन्दनात्॥

कह सुग्रीव सुनहु रघुबीरा। तजहु सोच मन आनहु धीरा॥
सब प्रकार करिहउँ सेवकाई। जेहि बिधि मिलहिं जानकी आई॥४॥

अर्थ : सुग्रीव ने कहा कि हे रघुवीर सुनो। सोच छोड़ो। मन में धैर्य लाओ। मैं सब प्रकार से सेवकाई करूँगा और जिस विधि से जानकी आकर मिलें : सो सब करूँगा।

व्याख्या : सुग्रीवजी ने मित्र का कार्य आरम्भ कर दिया। आश्वासन देते हैं कि आप रघुवंशियों में वीर हैं। वीर अधीर न होहिं। आप ऐसे वीरों को शोक करना शोभा नहीं देता। चिन्ता कार्यविनाशनी है। उसे छोड़िये। धैर्य धारण करिये। उत्साह बढ़ाइये। अब धैर्य धारण की भूमिका कहते हैं कि हम केवल पता लगा कर नहीं रह जायेंगे। शत्रु को मारकर सीताजी को लाकर मिला देंगे। आप किसी बात की अब चिन्ता न करें।

दो. सखा बचन सुनि हरषे, कृपा सिन्धु बल सींव।
कारन कौन बसहु बन, मोहि कहौ सुग्रीव॥५॥

अर्थ : कृपासिन्धु और बल की सीमा रामजी सखा का वचन सुनकर प्रसन्न हो गये। कहने लगे : सुग्रीव! मुझे बतलाओ तुम वन में क्यों रहते हो?

व्याख्या : सखा के वचन पर बड़ा विश्वास है। सुनकर हर्षित हुए कि मित्र

को जैसा बोलना चाहिए वैसी बात सुग्रीव बोले। सरकार कृपा के सिन्धु हैं। सुग्रीव पर बड़ी कृपा है। अतः उसके आश्वासन देने पर हर्षित हो रहे हैं। नहीं तो बलशील हैं। शत्रु के विजय करने में किसी की अपेक्षा नहीं है : एक बार कैसेहुँ सुधि जानौं। कालहु जीति निमिष महु आनौं। सुग्रीव ने अपनी प्रतिज्ञा स्पष्ट कर दी। अब स्वयं प्रतिज्ञा करने के लिए सुग्रीव के वनवास का कारण पूछते हैं। स्वयं सुग्रीव के मुख से सविस्तार कथा सुनना चाहते हैं। हनुमान्जी ने अति संक्षेप में अवसरानुकूल कथा कही थी। लक्ष्मणजी के रामचरित्र कहने पर सुग्रीवजी को अपना चरित्र कहना प्राप्त था। परन्तु सुग्रीव को कहने का अवसर नहीं मिला था। इसलिए स्वयं पूछते हैं।

नाथ बालि अरु मैं दो भाई। प्रीति रही कछु बरनि न जाई ॥
मयसुत मायावी तेहि नाऊँ। आवा सो प्रभु हमरे गाऊँ ॥१॥

अर्थ : नाथ ! वालि और मैं दोनों भाई हूँ। ऐसी प्रीति रही जिसका वर्णन नहीं हो सकता। मय का बेटा जिसका नाम मायावी था हमारे गाँव में आया।

व्याख्या : श्रीराम की आज्ञा को शिरोधार्य करके अपने वन में बसने का कारण आद्योपान्त वर्णन करते हैं। जिसके कारण से वनवास स्वीकार किया है उसका नाम निर्देश करते हुए कहते हैं कि वालि और मैं दोनों भाई हैं। दोनों में वालि ज्येष्ठ हैं। इस कारण भी उसके नाम का पहिले निर्देश किया। सम्बन्ध की घनिष्ठता प्रेम की घनिष्ठता दिखाते हैं कि हम दोनों भाइयों में अवर्णनीय प्रीति थी। एक दूसरे पर प्राण निछावर करते थे।

अब उस प्रीति के भंग होने की कारणभूत घटना का वर्णन करते हैं कि मय दानव का बेटा जिसका नाम मायावी था। अर्थात् रावण का साला एक दिन हमारे गाँव किष्किन्धा में आया। किष्किन्धा को मैं भी उसी भाँति अपना समझता था जिस भाँति वालि समझते थे। इसी बात का द्योतन के लिए कवि ने बहुवचन : हमरे शब्द का प्रयोग किया है। मय असुरों के विश्वकर्मा थे। उनका बेटा होने से उसे बड़ा अभिमान था। किष्किन्धा को वह गाँव मानता था। वालि द्वारा रावण के पराभव से रुष्ट था। बल से उन्मत्त होकर अकेले ही युद्ध की आकांक्षा से आया।

अर्ध राति पुरद्वार पुकारा। बाली रिपुबल सहइ न पारा ॥
धावा बालि देखि सो भागा। मैं पुनि गयउँ बन्धुसँग लागा ॥२॥

अर्थ : आधी रात को उसने किष्किन्धा के पुरद्वार पर आकर ललकारा। वालि शत्रु के बल प्रदर्शन को सह न सका। दौड़ पड़ा। देखते ही वह भाग चला। मैं भाई के साथ ही साथ चला।

व्याख्या : आधी रात का समर असुरों के लिए अत्यन्त अनुकूल होता है। प्रदोष के समय से ही उनका बल बढ़ने लगता है। यथा : पाइ प्रदोष हर्ष दसकंधर

और आधी रात को तो वह अपनी पराकाष्ठा को पहुँच जाता है। उस समय बन्दर अत्यन्त ही निर्बल रहते हैं। क्योंकि रात को उन्हें सूझता ही नहीं। मायावी किष्किन्धा को गाँव समझकर आया था। आने पर पता चला कि वह पुर है। प्राकार से घिरा हुआ है। उसने पुर के भीतर प्रवेश नहीं किया। बाहर से ही ललकारा। समझता था कि इस समय पुर के बाहर आने का साहस बन्दर न कर सकेंगे और हमारी जीत हो जायगी।

बात भी ऐसी हुई। किष्किन्धा वीर वानरों से भरी हुई थी। परन्तु कुसमय होने से सब लोग उस ललकार को सह गये पर वालि से नहीं सहा गया। वह शत्रु का सामना करने के लिए दौड़ पड़ा। निशाचर रात को भी देखते हैं। वालि के स्वरूप को देखते ही उसका साहस छूट गया। वह भाग चला। बालि ने उसका पीछा किया। उस समय किसी ने वालि का साथ न दिया। पर : ओड़िअहि हाथ असनिहुँ के घाए। होहिं कुठासु बंधु सहाए। सुग्रीवजी कहते हैं मैं भाई के साथ ही साथ पुर के बाहर आया और जब उन्होंने पीछा किया तो मैं भी साथ रहा।

गिरवर गुहा पैठ सो जाई। तब बाली मोहि कहा बुझाई ॥
परिखेसु[1] मोहि एक पखवारा। नहिं आवौं तौ जानेसु मारा ॥३॥

अर्थ : वह एक पर्वत की गुफा में घुस गया। तब वालि ने मुझे समझाकर कहा कि तुम मेरी बाट एक पखवारे तक जोहना। यदि इतने दिनों तक मैं न लौटूँ तो तुम समझ लेना कि मैं मारा गया।

व्याख्या : बालि पर अपनी प्रीति दिखलाकर सुग्रीवजी अपने ऊपर वालि की प्रीति दिखलाते हैं कि वह राक्षस पर्वत की गुफा में घुस गया। समझा कि इसमें घुसने का साहस न करेगा। इस अँधेरी गुफा में दिन को घुसने का साहस किसी का नहीं पड़ सकता है रात को कौन घुसेगा? पर वालि ही बड़ा वीर है। उसने उसके वध का दृढ़ सङ्कल्प कर लिया था। मुझे भी साथ ही गुफा में घुसने के लिए तैयार देखकर मुझे समझाकर कहा : जानता था कि इस समय मेरी आज्ञा पर भी सुग्रीव नहीं रुक सकता।

जानि जाइ नहि गुफा महँ राक्षस होंहि कितेक।
तदपि गुफा है साँकरी सम्मुख आइहि एक ॥१॥
इहाँ न पीछे ते कोऊ करि सकिहै उपकार।
याते सब को मारिहौं जो वे होयँ हजार ॥२॥

---

१. प्रतीक्षा का तद्भव रूप 'परिखा' हुआ। सर्वत्र लवराम् इस सूत्र से 'प्र' का लोप हुआ। 'प्रतिवेतस पताकासु डः' इस सूत्र से 'त' का 'ड' हो गया और 'ष्क स्क क्षां खः' इस सूत्र से 'क्ष' का 'ख' हो गया इस भाँति प्रतीक्षा का प्राकृत रूप 'पडिखा' हुआ। उसी का अपभ्रंश 'परिखेसु' है।

सो तुम बाहर ही ठहरि रक्षौ विल को द्वार।
जाते पीछे आइ नहि राक्षस करें प्रहार।।३।।
विलग विलग ह्वै बंधु दोउ यथा साधिहौं काज।
तथा सचिय नहिं संग रहि होइहि अधिक अकाज।।४।।
याते मोहि अकेल ही जान गुफा महँ देहु।
ह्वै सचेत बाहिर रहहु करहु न मन संदेहु।।५।।

जाते समय कहता गया कि एक पखवारे का दम मेरे में है। इससे अधिक काल तक भी मैं अनवरत युद्ध कर सकता हूँ। पर एक पखवारे तक तो मुझे कोई मार नहीं सकता। अतः पन्द्रह दिन तक तुम मेरे लौटने की आशा से यहाँ ठहरना। यदि इतने दिनों तक मैं न लौटूँ तो समझ लेना कि मैं मारा गया। इससे अधिक काल तक ठहरने की आवश्यकता नहीं है।

मास दिवस तहँ रहेउँ खरारी। निसरी रुधिर धार तहँ भारी।।
बालि हतेसि मोहि मारिहि आई। सिला देइ तहँ चलेहुँ पराई।।४।।

अर्थ : हे खरारि ! मैं महीने दिन रहा। वहाँ से भारी रक्त की धारा निकली। तब मैंने निश्चय किया कि वालि मारा गया। अब मुझे भी मारेंगे। इसलिए उस बिल के द्वार को : शिला से बन्द करके मैं भाग चला।

व्याख्या : खरारि सम्बोधन का भाव यह हैं कि रामजी ने भी खरदूषण के युद्ध में भाई लक्ष्मण को वहाँ से हटा दिया था। भाई की ममता भाई ही जानता है। अतः सुग्रीवजी कहते हैं कि पन्द्रह दिन बीतने पर वहाँ से लौट नहीं आया। एक पखवारे को कौन कहे मैं दो पखवारे तक बाट जोहता रहा और भी अधिक समय तक बाट जोहता। पर हुआ क्या कि उस गुफाद्वार से भारी रक्त की धारा निकली। मैंने निश्चय कर लिया कि वालि मारा गया। एक पखवारे का उसका दम था। उसे बीते एक पखवारा और हो गया। जब बिल्कुल दम टूट गया तब राक्षसों ने उसे मार पाया है। जिसे वालि दम रहते न मार पाया उसे दम टूटने पर कैसे मार सकेगा ? अतः वालि ही मारा गया। इसमें सन्देह नहीं। मास दिवस : शब्द ग्रन्थ भर में एक महीने के अर्थ में आया है। इसका अर्थ बारह दिन करना उचित नहीं है। यथा : मास दिवस कर दिवस का। मास दिवस महँ नाथ न आवा। इत्यादि। अध्यात्म में तो स्पष्ट उल्लेख है : इत्युक्त्वाऽऽविश्व स गुहां मासमेकं न निर्ययौ। ऐसा कहकर वह गुफा में घुसा और एक महीने तक बाहर न आया। बारह दिन अर्थ करने में सुग्रीव अपराधी सिद्ध होते हैं और सुग्रीव यह सब अपनी निरपराधता सिद्ध करने के लिए ही कह रहे हैं। अतः महीने भर : अर्थ करना ही ठीक है।

सुग्रीवजी कहते हैं कि तब मुझे भय उत्पन्न हुआ कि जिसने वालि को मारा उसके सामने मैं क्या हूँ। अब बाहर निकल कर मुझे भी मारेगा। मैं यहाँ बिल्कुल

अकेला हूँ। बहुत सम्भव है कि भागकर भी मैं न बच सकूँ। इसलिए मैंने पहिले शिला द्वारा उस गुफा के द्वार को बन्द किया जिसमें बाहर निकलनेवाले को यथेष्ट समय लगे और तबतक मैं उनके पहुँच के बाहर चला जाऊँ और भाग चला।

मंत्रिन्ह पुर देखा बिनु सांई। दिन्हेहु मोहि राज बरिआई ॥
बाली ताहि मारि गृह आवा। देखि मोहि जियँ भेद बढावा ॥५॥

अर्थ : मन्त्रियों ने पुर को बिना स्वामी का देखा तो मुझे इच्छा न रहते भी राजगद्दी दे दी। तब तक : बालि उसे मार कर आया। मुझे देखकर उसने मन में भेद बढ़ाया।

व्याख्या : किष्किन्धा लौटकर वालि के मारे जाने का सब वृत्तान्त कहा। तब तक अङ्गद का जन्म नहीं हुआ था। मन्त्रियों ने देखा कि राज्य अनाथ हो रहा है। मैं राज्य चाहता नहीं था। बहुत दुःखी था। पर मन्त्रियों ने बहुत आग्रह किया कि आपका हक है। बिना राजा के राज्य चल नहीं सकता। अतः मुझे स्वीकार करना पड़ा।

पर बात यह हुई कि वालि ही अन्त में विजयी हुआ। वह रुधिर की धारा मायावी तथा उसके साथियों की थी। लौटते समय उसे गुफा से बाहर निकलने में बड़ी कठिनाई हुई। गुहा द्वार की शिला को हटाकर किसी भाँति बाहर आया तो वहाँ सुग्रीव को न पाया। घर लौटा तो देखता क्या है कि सुग्रीव राजा बने बैठे हैं। विचार से यदि काम लेता तो रुष्ट होने की कोई बात न थी। परन्तु उसने उलटा सोचना प्रारम्भ किया। अर्थ लगाया कि सुग्रीव को उसका मरना इष्ट था। इसलिए गुफा द्वार को शिला से बन्द किया। इत्यादि।

रिपु सम मोहि मारेसि अति भारी। हरि लीन्हेसि सर्बस अरु नारी ॥
ताके भय रघुबीर कृपाला। सकल भुवन मइ फिरेउँ बिहाला ॥६॥

अर्थ : शत्रु की भाँति उसने मुझे बहुत मारा। मेरा सर्वस्व हरण कर लिया और स्त्री भी ले ली। हे रघुवीर कृपाल ! उसके डर से मैं सम्पूर्ण भुवनों में बेहाल भागता फिरता था। यहाँ शाप के कारण नहीं आता। फिर भी मन में डरा करता हूँ।

व्याख्या : मुझे अपराधी ही नहीं उसने शत्रु माना और शत्रु की भाँति मुझ पर प्रहार किया। अर्थात् वध की इच्छा से मुझे मारा। मैं बेहाल होकर भागा। उसने पीछा किया। सम्पूर्ण पृथ्वीतल में मैं भागता फिरा। उसने पीछा न छोड़ा। किसी का सामर्थ्य भी नहीं कि उससे मेरी रक्षा कर सके। मुझे कहीं शरण नहीं मिली। उसने मेरा सर्वस्व हरण कर लिया और स्त्री भी हरण कर ली। सूर्य के अंश होने से सुग्रीव की गति वालि की गति से अधिक तीव्र थी। अतः सुग्रीव हाथ न आये। तब उसने धन दारापहरण किया। यहाँ तक कथा जो सुग्रीव ने कही उसका अधिक

प्रभाव रामजी पर न पड़ा। अपनी प्रकृति के अनुसार उसका अच्छा अर्थ लगाते गये कि समझने में सबसे चूक होती है। वालि से भी चूक हुई। इसलिए उसने मारकर निकाल दिया। स्त्री को नहीं निकाला रहने दिया। भाई पर रुष्ट होने पर वह निकाला जा सकता है पर उसकी स्त्री कैसे निकाली जायगी ?

इहाँ श्राप बस आवत नाहीं। तदपि सभीत रहउँ मनमाँही ॥
सुनि सेवक दुख दीनदयाला। फरकि उठीं द्वौ भुजा बिसाला ॥७॥

अर्थ : यहाँ शाप के कारण नहीं आता। फिर भी मैं मन सभीत रहता हूँ। सेवक के दुःख को सुनकर दीन दयाल की दोनों विशाल भुजाएँ फड़क उठीं।

व्याख्या : शङ्का उठती है कि तब तुम किष्किन्धा के पास ही ऋष्यमूक पर कैसे ठहरे हो। इस पर सुग्रीवजी कहते हैं कि यहाँ के लिए उसे शाप है। यहाँ आवे तो उसका सिर फटकर प्राण निकल जाय। फिर भी मुझे मारने के लिए बलवान् वानरों को भेजा ही करता है। वे मेरे द्वारा मारे गये पर डर लगा रहता है कि अब वह न जानें किसको भेजेगा।

जब इस बात को सुना तो निश्चय कर लिया कि वालि इनके जान का भूखा है नहीं तो अब बैर बढ़ाने से क्या प्रयोजन ? उसे यथेष्ट समय मिल गया कि वह सब बातों को समझता। सुग्रीव की निरपराधता पर दया करता। पर उसने ऐसा नहीं किया। निष्कण्टक होकर उसकी स्त्री को भोगना चाहता है। अतः उसके वध के लिए बलवान् वानरों को भेजता है। सरकार दीनदयाल हैं। सुग्रीव की दीन दशा पर दया आयी। दोनों विशाल भुजाएँ फड़क उठीं। इस प्रकार भुजाओंके फड़कने का सम्बन्ध शकुन अपशकुन से नहीं है। वीरता के आवेश से है।

दो. सुनु सुग्रीव मारिहौं, बालिहि एकहि बान।
ब्रह्म रुद्र सरनागत, गए न उबरिहि प्रान ॥६॥

अर्थ : सुनो सुग्रीव मैं वालि को एक ही बाण से मारूँगा। ब्रह्म रुद्र के शरण जाने पर भी उसका प्राण न बचेगा।

व्याख्या : अब सरकार सुग्रीव को आश्वासन देते हैं कि मैं वालि को मारूँगा और एक ही बाण से मारूँगा। मेरे एक प्रहार को वालि नहीं सह सकता। मैं दो बार बाण चढ़ाता ही नहीं। आश्रित को दो स्थानों में स्थापित नहीं करता। अर्थी को दो बार देता नहीं और न दो बार बोलता हूँ : द्विः शरं नाभिसन्धत्ते द्विः स्थापयति नाश्रितान्। द्विर्ददाति न चार्थिभ्यो रामो द्विर्नाभिभाषते। यदि कहो कि उसके बड़े बड़े सहायक हैं। तो इस पर कहते है कि पहिले तुम्हें शरण देनेवाला कोई नहीं था। अब मेरे बाण के पीछा करने पर उसे शरण देनेवाला कोई न मिलेगा। सबसे बड़े शरणद ब्रह्म रुद्र हैं। वे भी शरण में नहीं रक्खेंगे। जयन्त को नहीं रक्खा। तुम शोक छोड़ दो। अब बालि का भय तुम्हें नहीं है।

जे न मित्र दुख होहिं दुखारी । तिन्हहिं बिलोकत पातक भारी ॥
निज दुख गिरि सम रज करि जाना । मित्र क दुख रज मेरु समाना ॥१॥

अर्थ : जो लोग मित्र के दुःख से दुःखी नहीं होते उनके देखने से महापाप होता है । अपने पर्वत के समान दुःख को धूल के समान जाने और मित्र के रज के समान दुःख को मेरु पर्वत के समान माने ।

व्याख्या : या तो सरकार ने अस्थि समूह देखकर निशिचरहीन पृथ्वी करने की प्रतिज्ञा ऋषि समाज में की थी या इस समय सुग्रीव के दुःख से सन्तप्त होकर प्रतिज्ञा बालि वध के लिए की है । ऐसी प्रतिज्ञा के औचित्यख्यापन के लिए तथा संसार के उपदेश के लिए मित्रधर्म का वर्णन कर रहे हैं । मित्र के दुख से दुःखी होना धर्म है । जिसने इस धर्म का उल्लङ्घन किया उसका पाप महापापों से भी बढ़कर है । महापातकी के संसर्ग से महापातक होता है । पर मित्र के दुःख से दुःखी न होनेवाले के मुखदर्शन से महापातक होते हैं । पुण्यात्मा के दर्शन से पुण्य का और पापात्मा के दर्शन से पाप का प्रभाव मन पर पड़ता है । क्योंकि विषयावच्छिन्न चेतन के साथ अन्तःकरणावच्छिन्न चेतन के बिना एक हुए दर्शन की क्रिया ही सम्पन्न नहीं होती । वालि ने मेरे मित्र की स्त्री हरण की । मैं उसे बिना मारे नहीं छोड़ सकता ।

निषेधमुख से निरूपण करके अब वही बात विधिमुख से कहते हैं कि मित्र के दुःख के आगे अपने दुःख के भूलने की विधि है और वह तभी सम्भव है जब अपने बड़े भारी दुःख को भी तुच्छ समझे और मित्र के तुच्छ दुःख को भी बड़ा भारी जाने । ऐसी दृष्टि मैत्री के बल से होती है । भाव यह कि यद्यपि मैं भी स्त्रीविरह से दुःखी हूँ । क्योंकि निशिचर उसे हरण कर ले गया है । पर वह दुःख इस समय मेरे लिए कुछ नहीं है । यथा : तिय बिरही सुग्रीव सखा लखि प्रान प्रिया बिसराई । जानत प्रीति रीति रघुराई । मैं पहिले सुग्रीव के दुःख को दूर करूँगा । फिर मेरे लिए जैसा होगा देखा जायगा ।

जिन्हके असिमति सहज न आई । ते सठ कत हठि करत मिताई ॥
कुपथ निवारि सुपंथ चलावा । गुन प्रगटै अवगुनहिं दुरावा ॥२॥

अर्थ : जिनका स्वभाव से ही ऐसी बुद्धि न हो वे शठ क्यों हठ करके मित्रता करते हैं ? कुपन्थ से हटाकर सुपन्थ में चलावे । उसके गुण को प्रकट करे और दुर्गुण को छिपावे ।

व्याख्या : मैत्री के अधिकारी वे ही हैं जिनमें ये गुण स्वभाव से ही प्राप्त हों । सिखाने पढ़ाने से नहीं और जिनमें ये गुण स्वभाव से प्राप्त नहीं हैं वे मैत्री के अधिकारी नहीं हैं । उन्हें मैत्री न करना चाहिए । यदि वे करना चाहें तो वे शठ हैं । उनमें मैत्री न निबहेगी । मैत्री करके वे मित्र को तो विपत्ति में डालेंगे ही

अपना भी लोक परलोक व्यर्थ बिगाड़ डालेंगे। जब मन में यह ठान सकें कि इनके लिए मैं बड़ा से बड़ा कष्ट उठाऊँगा तभी मैत्री करना उचित है।

मित्र के लोक परलोक की चिन्ता चाहिए। कुपथ पर चलने से उसका त्याग न करे। उसे अच्छे रास्ते पर ले चले। कुपन्थ से उसे हटावे। व्यक्तिगत जीवन में रोक टोक करने का मित्र को ही अधिकार है। गुरु न होकर भी गुरु का कार्य करे। माता पिता की भाँति उसके अपराध को सहन करे। उसका कल्याण चाहे। उसके दुर्गुणों को छिपावे और लोगों में उसके गुणों की प्रशंसा करे। सुग्रीवजी के लिए सरकार को सब कुछ करना पड़ा। १. कुपथ निवारि सुपंथ चलावा। यथा : भय देखाइ लै आवहु तात सखा सुग्रीव। २. गुन प्रगटै अवगुनहि दुरावा। यथा : ते भरतहि भेटत सनमाने। राजसभा रघुबीर बखाने।

देत लेत मन संक न धरई। बल अनुमान सदा हित करई।'
बिपतिकाल कर सतगुन नेहा। श्रुति कह संत मित्र गुन एहा ॥३॥

अर्थ : देने लेने में मन में शङ्का न रक्खे। अपने बल के अनुसार सदा हित करे। विपत्तिकाल में सौगुना प्रेम करे। वेद और सन्त कहते हैं कि ये मित्र के गुण हैं।

व्याख्या : मित्र के धन और अपने धन में भेद नहीं है। इसलिए देने लेने में शङ्का न करे। मित्र का प्रेम पुरस्कार स्वीकार करे। यह बात मन में न लावे कि इनका मैं क्यों लूँ। इसी भाँति प्रेमोपहार मित्र को दे। इस बात पर ध्यान न दे कि इसकी इन्हें क्या आवश्यकता है। परन्तु देने पर पहिले ध्यान रहे। लेने पर पीछे। इसीलिए : देत लेत कहा। लेत देत नहीं कहा। पौरुष की अपेक्षा न करके काम करना तामस हो जाता है। उससे किसी का हित नहीं होता। अनहित होने का ही विशेष भय रहता है। अतः जहाँ तक किया हो सके मित्र का हित ही करे। कहा गया है : कुसमय मीत का को कौन ? पर यह बात नहीं है। मित्र की परीक्षा का काल ही कुसमय है : धीरजु धरम मित्र अरु नारी। आपदकाल परिखिअहि चारी। उस समय उस पर सौगुनी प्रीति बढ़नी चाहिए। श्रुति कहती है और सन्त कहते हैं। भाव यह है कि शिष्टानुमोदित श्रुति मित्र के ये ही धर्म बतलाती हैं।

आगे कह मृदु बचन बनाई। पाछे अनहित मन कुटिलाई ॥
जाकर चित अहिगति सम भाई। अस कुमित्र परिहरेहिं भलाई ॥४॥

अर्थ : मुख के सामने तो मीठी बातें बना बनाकर कहता है। पीछे बुराई करता और मन में कुटिलता रखता है। जिसका मन साँप की गति की भाँति टेढ़ा है। ऐसे कुमित्र के परित्याग में ही कल्याण है।

व्याख्या : अब कुमित्र का लक्षण कहते हैं। पहले कह आये हैं : ते सठ कत हठ करत मिताई। शठ का स्वभाव है : मीठी बातें सठ करै करिके महाबिगार।

उसी स्वभाव के अनुकूल वह मित्र के साथ भी आचरण करता है। आँख के सामने तो वह मृदुवचन बना बनाकर बोलता है। उसका कल्याण नहीं देखता। पीठ पीछे बुराई करता है। उसके मन में कुटिलता है। उसके मन, कर्म और वाणी की गति भिन्न प्रकार की होती। कवि उसके चित्त की उपमा सर्प से देते हैं। वह कुमित्र है। उसे दूर से परित्याग करना चाहिए। नहीं तो कल्याण नहीं हो सकता। सच्चा मित्र तो उसका कल्याण देखेगा। उसके कल्याण के लिए आवश्यकता पड़ने पर कठोर भी बोलेगा। उसका व्यवहार सदा सरल होगा। मन वाणी और कर्म से कल्याण ही करेगा। वह पीठ पीछे स्तुति करेगा। भलाई करेगा।

सेवक सठ नृप कृपिन कुनारी। कपटी मित्र सूल सम चारी॥
सखा सोच त्यागहु बल मोरे। सबबिधि घटब[1] काज मैं तोरे॥५॥

अर्थ : शठ सेवक, कृपण राजा, बुरी स्त्री और कपटी मित्र ये चार शूल की भाँति : दुःखदायक हैं। हे सखे ! मेरे बल : के भरोसे पर शोक का त्याग करो। सब प्रकार से मैं तुम्हारा काम बनाऊँगा।

व्याख्या : हेयम् दुःखमनागतम्। जो दुःख बीत गया है उससे छुट्टी मिल चुकी है। जो आ पड़ा है उसे भोगना ही है। आनेवाले दुःख से बचने का उपाय होना चाहिए। शत्रु से तो मनुष्य स्वभाव से ही सावधान रहता है। मध्यस्थ को भी संशय की दृष्टि से देखता है। धोखा सदा उनसे होता है जिन्हें मनुष्य अपना हितचिन्तक समझता है। वे चार हैं : सेवक, राजा, स्त्री और मित्र। इन्हीं के भरोसे मनुष्य सोता है। इनकी कुचाल से रक्षा नहीं है। अतः कवि कहते हैं कि शठ सेवक का परित्याग करना चाहिए। शठ सेविका मन्थरा की कुचालि से अयोध्या में सर्वनाश उपस्थित हो गया। रावण कृपण राजा थे। उनके दान की चर्चा कहीं नहीं सुनाई पड़ती। लूट खसोट से ही तो उन्हें सोने की लङ्का पुष्पक विमान सुन्दर स्त्रियाँ और अपार सम्पत्ति राशि मिली थी। पर उनकी कुचालि से ही निशिचरहीन पृथ्वी हो गयी। कुनारी सूर्पणखा थी। उसके कुचाल से सारा कुटुम्ब भस्म हो गया। कपटी मित्र एकतनु थे। उनकी कुचाल से राजा भानुप्रताप के राज्य और कुल का संहार हो गया। अतः शठ सेवक कृपण राजा कुनारी और कपटी मित्र सर्वथा त्याग करने योग्य हैं। ये अपने होकर तीव्र बेदना पहुँचाते हैं। अतः इनकी उपमा शूल से दी है। शूल शरीर में ही उत्पन्न होकर शरीर का नाश करता है। अतः शूल के नाश के लिए चिकित्सा की जाती है। इनसे शीघ्रातिशीघ्र पिण्ड छुड़ाने का महत् प्रयत्न होना चाहिए।

मित्र धर्म निरूपण करके सुग्रीव को समझाया और आश्वासन दिया कि मैं मित्रधर्म को जानता हूँ। मेरे बल के भरोसे सोच छोड़ो। मैं तुम्हारा काम सब तरह से बनाऊँगा। १. तुम्हारे शत्रु को मारूँगा। २. तुम्हें राज्य दूँगा। ३. तुम्हें

---

१. यहाँ घटब का अर्थ : करब है। यथा : सो सब भाँति घटिहि सेवकाई।

सुपन्थ पर चलाऊँगा। ४. तुम्हारे यश का विस्तार करूँगा। ५ तुम्हारा परलोक बनाऊँगा।

१. शत्रुवध यथा : मारा वालि राम तब हृदय माँझ सरतानि।

२. राज्यदान यथा : राज दीन्ह सुग्रीव कहँ अंगद कहँ जुवराज।

३. सुपंथ पर चलना यथा : भय देखाइ लै आवहु तात सखा सुग्रीव।

४. यश का विस्तार यथा : ते भरतहिं भेटत सनमाने।
राज सभा रघुबीर बखाने॥

५. परलोक सुधार यथा : अब गृह जाहु सखा सब भजेहु मोहि दृढनेम।
सदा सर्वगत सर्वहित जानि करेहु अति प्रेम॥

कह सुग्रीव सुनहु रघुबीरा। बालि महाबल अति रनधीरा॥
दुंदुभि अस्थि ताल देखराये। बिनु प्रयास रघुनाथ उठाये॥६॥

अर्थ : सुग्रीव ने कहा हे रघुबीर! सुनो। वालि महाबल और अति रणधीर है। दुन्दुभी की हड्डी और ताल दिखलाया। रघुनाथ ने उसे बिना परिश्रम के ही उठा लिया : अर्थात् हटा दिया।

व्याख्या : सुग्रीव ने समझा कि मेरे मित्र ने वालि का बल बिना जाने ऐसी प्रतिज्ञा कर दी। ये धोखे में न रहें। इसलिए उसने कहा कि यद्यपि आप रघुकूल में वीर हैं। पर वालि महाबली है और रण में अत्यन्त धीर है। आप वालि के बल को समझ लें। यह जो पहाड़ के समान सिर की हड्डी पड़ी है यह दुन्दुभी नाम के राक्षस की है। यह रात्रि को भैंसा बनकर किष्किन्धा में आया और वालि को युद्ध के लिए ललकारा। वालि ने उसकी सींग पकड़कर उसे पृथ्वी पर पछाड़ दिया और उसका सिर लेकर ऊपर उछाल दिया। सो यहाँ एक योजन पर आकर गिरा। मातङ्ग ऋषि के आश्रम में रक्त की वर्षा हो गयी। उसी पर ऋषि ने शाप दिया कि यदि तू मेरे पर्वत के निकट आवेगा तो तेरा सिर फट जायगा। इस सिर को यदि आप उठा सकें तो समझा जा सकता है कि आप उससे लड़ सकेंगे। रघुनाथ ने उसे पैर के अँगूठे से दस योजन पर फेंक दिया। सुग्रीव और उनके मन्त्री वाह वाह करने लगे। सुग्रीव ने बल तो देख लिया। फिर भी युद्ध कौशल देखने के लिए कहा कि ये सात ताल हैं जिन्हें हिलाकर बालि पत्रहीन कर देता था। इन्हें यदि आप एक बाण से वेध दें तो निश्चय आप वालिवध में समर्थ होंगे। रामजी का बाण उन सातों तालों को वेधकर पर्वत और पृथ्वी को वेधता हुआ लौटकर उनके तूणीर में प्रवेश कर गया।

मित्र ने परीक्षा लेनी चाही। सरकार सहर्ष देने के लिए तैयार हो गये। शुद्ध हृदय से यदि जयन्त इसी भाँति विनय किये होता तो इतनी दुर्दशा में न फँसता।

देखि अमित बल बाढ़ी प्रीती । बालि बधब इन्ह भइ परतीती ॥
बार बार नावइ पद सीसा । प्रभुहि जान मन हरष कपीसा ॥७॥

अर्थ : अपरमित बल देखकर प्रीति बढ़ी । विश्वास हो गया कि ये वालि को मारेंगे । बार बार चरणों में सिर झुकाने लगा । प्रभु को जानकर सुग्रीव को हर्ष हुआ ।

व्याख्या : सुग्रीव ने देखा कि वालि महाबल है । पर इनके बल का तो थाह ही नहीं है । यह अमानुष पराक्रम किसी में हो नहीं सकता । इनके वालिवध करने में सन्देह नहीं है । मनुष्य नहीं हैं । ईश्वर हैं । अतः सुग्रीव बार बार चरण पर गिरने लगे । प्रभु को पहिचान लेने से सुग्रीवजी को बड़ा हर्ष हुआ । उन्होंने शोक का परित्याग किया ।

सरकार को देखकर ही सुग्रीवजी समझ गये थे कि ये बल की सीमा हैं । पर इस अचिन्त्य पराक्रम को देखकर तो आश्चर्य से चकित हो गये । कार्य सिद्धि की दृढ़ आशा से प्रीति बढ़ी । यथा : जेहि ते कछु निज स्वारथ होई । तेहि पर ममता कर सब कोई । जो बाण पाताल में प्रवेश कर सकता है वह वालिवध भी कर सकता है ।

उपजा ग्यान बचन तब बोला । नाथ कृपा मन भयउ अलोला ॥
सुख संपति परिवार बड़ाई । सब परिहरि करिहउँ सेवकाई ॥८॥

अर्थ : ज्ञान उपजा तब यह बात बोले कि नाथ की कृपा से मन स्थिर हो गया । सुख, सम्पत्ति, परिवार और बड़ाई इन सबों को छोड़कर सेवा करूँगा ।

व्याख्या : ईश्वरबुद्धि से ईश्वर दर्शन ही दर्शन है । विश्व रूप भगवान् का थोड़ा बहुत दर्शन तो सभी को होता है । परन्तु उसमें ईश्वरबुद्धि न होने से फल नहीं होता । प्रभु के जान लेने से दर्शन का तुरन्त फल मिला । शोकापनोदन होकर मन में प्रसन्नता आयी । उससे बुद्धि स्थिर हुई । तब ज्ञान उपजा । यथा : मम दरसन फल परम अनूपा । जीव पाव निज सहज सरूपा । तब वचन बोले कि प्रभु की कृपा से मेरा मन स्थिर हो गया । मन का स्थिर होना बड़ा कठिन कार्य है । अर्जुन को भी यह असाध्य जान पड़ा । भगवान् ने भी : असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम् । उसी बात को दोहरा दिया । ऐसे चल मन के एकाएक स्थिर हो जाने का सिवा भगवत्कृपा के और दूसरा कारण हो नहीं सकता । यद्यपि परम चपल श्री संतत थिर न रहत कतहूँ । हरिपद पंकज पाइ अचल भइ करम बचन मनहूँ ।

चित्त के स्थिर हो जाने से सुख सम्पत्ति परिवार बड़ाई से चित्त हट जाता है । जब तक इनमें चित्त लगा है तब तक स्थिर हो सकता नहीं । अतः कहते हैं कि इन्हें छोड़कर सेवकाई करूँगा । यथा : स्वामिहि सर्वभाव छल त्यागी । यही ज्ञान का लक्षण है कि सब छोड़कर भगवान् के भजन की इच्छा हो । यथा : हृदय बहुत दुःख लाग । जनम गयउ हरि भगति बिनु ।

ए सब राम भगति के बाधक। कहहिं संत तव पद अवराधक ।।
सत्रु मित्र सुख दुःख जग माहीं। माया कृत परमारथ नाहीं ।।९।।

अर्थ : आपके चरणों की आराधना करनेवाले सन्त लोग कहते हैं कि ये सब राम भक्ति के बाधक हैं। शत्रु मित्र सुख और दुःख जो संसार में हैं वे सब माया के बनाये हुए हैं। परमार्थ नहीं हैं।

व्याख्या : सुख सम्पत्ति परिवार और बड़ाई रहते हुए क्या सेवकाई नहीं हो सकती? इस पर कहते हैं कि सन्त लोग भी जिन्होंने प्रभु की आराधना के मार्ग में अपने को लगा दिया है कहते हैं कि ये सब रामभक्ति के बाधक हैं। केवल मेरा ही यह अनुभव नहीं है। यथा : रमाबिलास राम अनुरागी। तजहिं वमन जिमि जन बड़भागी।

अब सुग्रीवजी कहते हैं कि शत्रु मित्र सुख दुःख जो जग में हैं वे अविद्याकृत है। यथा : धरनि धामु धनु पुर परिवारू। सरगु नरकु जहँ लगि व्यवहारू। देखिअ सुनिअ गुनिअ मन माँही। मोह मूल परमारथ नाँही। सुग्रीवजी को व्यावहारिक और पारमार्थिक सत्ता का विवेक हुआ। पारमार्थिक सत्ता तो केवल राम की है। यथा : राम ब्रह्म परमारथ रूपा। न कश्चित् कस्यचिन्मित्रं न कश्चित् कस्यचिद्रिपुः। व्यवहारेण मित्राणि जायन्ते शत्रुवस्तथा। इस संसार में न कोई किसी का मित्र है न कोई शत्रु है। व्यवहार से ही शत्रु मित्र उत्पन्न होते हैं।

बालि परम हित जासु प्रसादा। मिलेहु राम तुम्ह समन बिषादा ।।
सपने जेहि सन होइ लराई। जागे समुझत मन सकुचाई ।।१०।।

अर्थ : वालि तो परम हित है। जिसकी कृपा से हे रामजी! विषाद के शमन करनेवाले आपकी प्राप्ति हुई। जिससे अब यदि स्वप्न में भी लड़ाई हो तो जागने पर समझने से मन सङ्कुचित होगा।

व्याख्या : वालि अब शत्रु नहीं रहा। वह तो परम हित हो गया। क्योंकि उसके कोप ने प्रसाद का काम किया। हित की कृपा से कल्याण होता है वह तो परम हित है। उसके तो कोप से कल्याण हो रहा है। विषाद के शमन करनेवाले स्वयं श्री चरणों की प्राप्ति हो रही है। अब इससे बढ़कर और दूसरा क्या होगा। ऐसी कल्याणकारिणी भावना तो केवल मुनियों में देखो जाती है कि उनके शाप से परिणाम में परम हित होता है। यथा : मुनि श्राप जो दीन्हा अति भल कीन्हा परम अनुग्रह मैं माना। देखेउँ भरि लोचन हरिभव मोचन ईहइ लाभु संकर जाना।

जाग्रत् में तो अब उससे लड़ाई हो नहीं सकतो। हाँ सपने की घटनाओं में अपना कुछ वश नहीं चलता। सो यदि सपने में कहीं लड़ाई हो भी जाय तो जागने पर जब उसे विचारेंगे तो बड़ा पश्चात्ताप होगा कि इतने बड़े उपकारी से मैं सपने में भी क्यों लड़ गया? गोकि सपने के अपराध का अपराध में गिनती नहीं है। अतः अब सरकार वालिवध का विचार छोड़ दें।

अब प्रभु कृपा करहुँ एहि भाँती। सब तजि भजनु करौं दिन राती ॥
सुनि बिराग संजुत कपि बानी। बोले बिहँसि रामु धनु पानी ॥११॥

अर्थ : अब प्रभु इस प्रकार से कृपा करें कि मैं सब कुछ छोड़कर दिन रात भजन करूँ। कपि की विराग संयुक्त वाणी सुनकर के हाथ में धनुष धारण करनेवाले रामजी हँसकर बोले।

व्याख्या : अब प्रभु वालि के वध की कृपा न करें। इस भाँति कृपा करें कि वालि से मेरी लड़ाई सपने में भी न हो और सुख सम्पत्ति परिवार बड़ाई सब छोड़ कर आपको रात दिन सेवकाई करूँ। यह बात आपको कृपा से ही सम्भव है। कृपा से ही मन स्थिर हुआ। ज्ञान हुआ। अब भक्ति दीजिये। नीति शास्त्र भी कहता है : शतं विहाय भोक्तव्यं सहस्रं स्नानमाचरेत्। लक्षं विहाय दातव्यं सर्वं त्यक्त्वा हरिं भजेत्। सौ काम छोड़कर भोजन कर लेना चाहिए। हजार काम छोड़कर स्नान कर लेना चाहिए। लाख काम छोड़कर दे डालना चाहिए और सब कुछ छोड़कर हरि भजन करना चाहिए।

सुग्रीवजी की चञ्चलता पर प्रभु हँस पड़े कि पहले तो दुःख की कहानी सुना कर मुझसे प्रतिज्ञा करा ली और जब मैं प्रतिज्ञा कर चुका तो अब ज्ञान छाँटता है। स्वभावो दुरतिक्रमः। चञ्चलता कपि का स्वभाव है वह नहीं छूटता। इसी पर हँसे। यह ज्ञान नहीं है प्रज्ञावाद है। ज्ञानी तो मरे हुए और जीते हुए का सोच नहीं करता। यह अशोच्य को सोच रहा है और बुद्धिमानों की सी बात बोल रहा है। यथा : तमुवाच हृषीकेशः प्रहसन्निव भारत। सेनयोरुभयोर्मध्ये विषीदन्तमिदं वचः। अशोच्यानन्वशोचस्त्वं प्रज्ञावादांश्च भाषसे। गतासूनगतासूंश्च नानुशोचन्ति पण्डिताः। यहाँ रामजी का : धनुपाणि विशेषण देने का भाव यह है कि अपनी प्रतिज्ञा की पूर्ति के लिए धनुष उठा लिया है। उस समय सुग्रीवजी ऐसी विनती करने लगे।

जो कछु कहेउ सत्य सब सोई। सखा बचन मम मृषा न होई ॥
नट मरकट इव सबहि नचावत। रामु खगेस बेद अस गावत ॥१२॥

अर्थ : जो कुछ तुमने कहा वे सब बातें सच्ची हैं। परन्तु सखे! मेरी बातें मिथ्या नहीं हो सकतीं। भुसुण्डिजी कहते हैं : हे खगेश! वेद ऐसा कहते हैं कि रामजी सभी को इस भाँति नचाते हैं जैसे बन्दर को नट नचावे।

व्याख्या : प्रभु ने कहा कि तुम्हारा कहना बिल्कुल ठीक है। पारमार्थिक सत्य के सामने व्यावहारिक की स्थिति कुछ नहीं है। परन्तु शरीर से व्यवहार का सर्वथा त्याग भी नहीं होता। व्यवहार में भी तो सत्य मिथ्या होता है। जो व्यवहार में सत्य का निर्वाह नहीं कर सकता वह पारमार्थिक सत्य पर कितने दिन टिक सकता है। परमार्थ का बाध तो व्यवहार से नहीं होता है। अतः व्यवहार में भी सत्य का परित्याग नहीं किया जा सकता। मैंने जो कह दिया है वह तो होकर ही रहेगा। वह मिथ्या नहीं हो सकता।

उपासना घाट के वक्ता भुसुण्डिजी कहते हैं कि जैसे नट की प्रेरणा से बन्दर नाचते हैं उसी भाँति रामजी की प्रेरणा से सब कार्य हो रहे हैं। अहंकार से विमूढ़ात्मा अपने को कर्ता मानते हैं। वेद का प्रमाण देते हैं। उससे संवाद रूप में कहा गया है : किससे प्रेरित हुआ मन चलायमान होता है। किससे प्रेरित होकर प्राणी की हलचल आरम्भ होती है। किससे प्रेरित होकर वाणी अपना व्यवहार करती है और चक्षु श्रोत्र को कौन देवता प्रेरणा करता है। इस पर उत्तर रूप में कहा गया है : जो कान का भी कान है। मन का भी मन है। वाणी की भी वाणी है। वही प्राण का प्राण है। यथा : केनेषितं पतति प्रेषितं मनः। केन प्राणः प्रथमः प्रैति युक्तः। केनेषितां वाचमिमां वन्दति। चक्षुः श्रोत्रं कउ देवो युनक्ति। श्रोत्रस्य श्रोत्रं मनसो मनोयद्वाचोह वाचं सउ प्राणस्य प्राणः। उसी प्राण के प्राण जीवन के जीव की प्रेरणा से सब कुछ होता है। अतः कहते हैं रामजी तो नट हैं। मर्कट उनके प्रतिकूल कैसे जायगा। जीव सब उसी के मर्कट हैं। नट जैसा चाहता है वैसा नचाता है। प्रभु के कहते ही सुग्रीवजी मान गये। हँसकर बोलने से माया की प्रेरणा भी कही : माया हांस बाहु दिगपाला। उन्हें जैसा नाटक रचना है तदनुकूल चलायेंगे।

४७. बालि वध प्रसङ्ग

ले[1] सुग्रीव संग रघुनाथा। चले चाप सायक गहि हाथा॥
तब रघुपति सुग्रीव पठावा। गर्जेसि जाइ निकट बल पावा॥१३॥

अर्थ : सुग्रीव को साथ लेकर रघुनाथ धनुष बाण लेकर चले। तब रघुपति ने सुग्रीव को भेजा। वह सहायक : रामजी को निकट पाकर जाकर गर्जा।

व्याख्या : हाथ में धनुष था ही। तरकश में से वह बाण भी निकाल लिया। जिसके द्वारा बालि-बध होनेवाला था। रघुकुल के नाथ हैं। नीति के अनुसार आचरण करेंगे। सुग्रीव की चञ्चलता देखकर तुरन्त चल पड़े। कपि स्वभाव है। कब कौन सा पलटा खा जावे। क्या ठिकाना। मैं प्रतिज्ञाबद्ध हो चुका हूँ। उसे पहिले पूरा करना चाहिए। अतः सुग्रीव को साथ लेकर किष्किन्धा की ओर चल पड़े। पुरद्वार के निकट पहुँचने पर सुग्रीव को भेजा कि जाकर गर्जन करें। सुन चुके हैं कि वालि रिपु बल को नहीं सह सकता। वह गर्जना सुनकर अवश्य पुर के बाहर आजायगा। क्योंकि रामजी पुर में जा नहीं सकते। यथा : पुर न जाउँ दस चारि बरीसा। स्वयम् सुग्रीव के साथ नहीं गये। क्योंकि सामना पड़ने पर उपयुक्त दण्ड नहीं दिया जा सकेगा। इसके अपराध की अपेक्षा वध दण्ड बहुत न्यून है। इसे व्याध की भाँति मारना ही उपयुक्त दण्ड है। इसी से इसकी शुद्धि होगी और दण्ड कर्ता को पाप स्पर्श न करेगा। सरकार के भेजे हुए सुग्रीव गये और गरजे। समझते थे कि बलवान् सहायक सन्निकट है।

---

१. यहाँ से ४७वाँ प्रसङ्ग : वालि प्रान कर भङ्ग : प्रारम्भ हुआ।

सुनत बालि क्रोधातुर धावा । गहि कर चरन नारि समुझावा ॥
सुनु पति जिन्हहि मिला सुग्रीवा । तै द्वौ बंधु तेज बल सींवा ॥१४॥

अर्थ : सुनते ही वालि क्रोध से आतुर होकर दौड़ा । स्त्री ने चरण पकड़ लिया और समझाया । हे पति ! सुनो । जिन्हें सुग्रीव मिला है वे दोनों भाई तेज और बल की सीमा हैं ।

व्याख्या : सुग्रीव पर सबका प्रेम था । उनके गरजने पर कोई बाहर न निकला । सब जानते थे कि यह गरजना वालि के प्रति है । भाई भाई का झगड़ा है । हम लोगों के बोलने लायक नहीं है । स्वर से वालि ने पहिचान लिया कि सुग्रीव गरजता है । अतः क्रोध से आतुर होकर दौड़ा कि इसका इतना साहस कि गर्जने आया है । हाथ से निकल न जाय । इसे मैं कब से खोज रहा हूँ हाथ नहीं आता । भले ही स्वयं आया है । कहीं इस बार भी हाथ से निकलने न पावे । इसलिए दौड़ा । स्त्री ने पैर पकड़ लिया । दूसरा उपाय रोकने का नहीं था । समझाया कि सुग्रीव अपने बल पर यहाँ आकर गरज नहीं सकता । दुन्दुभी के गरजने पर एवं मायावी के गरजने पर मैंने तुम्हें नहीं रोका था । इस बार रोकती हूँ ।

पति : सम्बोधन का भाव यह कि आप मेरे स्वामी हो । रक्षा करनेवाले हो । मुझे तुम्हारा कुशल इष्ट है । अविचार से काम कर रहे हो । इसलिए रोकती हूँ । सुग्रीव की क्या शक्ति है कि यहाँ आकर गर्जे । जिनसे उसने मित्रता की है उनके बल पर गरजने आया है । वे दोनों भाई हैं और तेज बल की सीमा हैं । अङ्गद को यह पता लगा है वही मुझसे कहता था ।

कोसलेस सुत लछिमन रामा । कालहु जीति सकहिं संग्रामा ॥१५॥

दो. कह बाली सुनु भीरु प्रिय, समदरसी रघुनाथ ।
जौं कदाचि मोहि मारहिं, तौ पुनि होउँ सनाथ ॥७॥

अर्थ : वे कोसलाधीश के बेटे हैं । उनका नाम राम लक्ष्मण है । वे काल को भी संग्राम में जीत सकते हैं । वालि ने कहा कि प्रिये ! तू भीरू है । रघुनाथ से क्या डर है । वे समदर्शी हैं । जो कदाचित् मार भी देंगे तो भी सनाथ हो जाऊँगा ।

व्याख्या : सुग्रीव को मारने जाना उनसे संग्राम करना है । वे काल से भी अजेय हैं । यथा : जाके बल अतिकाल डेराई । जो सुर असुर चराचर खाई । उनसे युद्ध करनेवाले का कुशल नहीं हो सकता । कोसलेस सुत : कहकर आकाशवाणी की याद दिलाती है । यथा : कोसल पुरी प्रकट नर भूपा । तिनके गृह अवतरिहौ जाई । इस भाँति अवतार बतला रही है । काल पर विजय पाने का कारण कह रही है । लछिमन राम : कहकर उनका नाम कह रही है । उनसे लड़ना है सुग्रीव से नहीं । सुग्रीव को उन्होंने लड़ने के लिए आगे खड़ा किया है । तुमसे कोई बैर नहीं है निष्कारण कैसे लड़ें ?

वालि ने भी रावण की भाँति ही कहा : सभय सुभाउ नारि कर साँचा। मंगल महु भय मन अति काँचा। सनाथ होने के समय रोकती है। मेरा भाग्य कहाँ कि वे मुझे मारें। वे समदर्शी हैं। उन्हें जैसा सुग्रीव वैसा ही मैं। यदि कदाचित् मार ही दें क्योंकि भक्त के लिए विषम विहार भी कर बैठते हैं। यथा : तदपि करहिं सम बिषम बिहारा। भगत अभगत हृदय अनुसारा। तब तो मैं सनाथ हो जाऊँगा। समर में मरना और भगवान् के हाथ से। ऐसा अवसर क्या हाथ लगनेवाला है। अभी तो मैं अनाथ हूँ। सनाथ तो उनके हाथ से मर कर हूँगा। वे प्राण हरण करते हैं तो बदले में निजपद भी देते हैं।

अस कहि चला महा अभिमानी। तृन समान सुग्रीवहि जानी ॥
भिरे उभौ बाली अति तरजा। मुठिका मारि महा धुनि गरजा ॥१॥

अर्थ : ऐसा कह कर वह महा अभिमानी सुग्रीव को तृण समान जानकर चला। दोनों भिड़ गये। वालि अत्यन्त तड़पा और घूँसा मारकर बड़ी ध्वनि से गरजा।

वालि महा अभिमानी है। ईश्वर बुद्धि होने पर भी शरण में जाने की इच्छा नहीं करता। यदि मार देंगे तो मरने को तैयार है। झुकना उसे इष्ट नहीं है। भाई को निर्बल होने के कारण तिनका समझता है। भ्रातृ वध उसके लिए तृणच्छेदन के तुल्य है। समझता है कि सुग्रीव को तो मार ही डालूँगा। पीछे जो हो। समझने से क्रोध का वेग कुछ कम हुआ। पहिले तो क्रोधातुर होकर दौड़ा था। अब चला। पुर के बाहर आया। सुग्रीव को देखकर उस पर टूटा।

प्रभु को सन्निकट जानकर सुग्रीव भी भिड़ गये। एक दूसरे को देखकर तड़पे। परन्तु वालि बड़े वेग से तड़पा और सुग्रीव को एक घूँसा मारकर बड़ी ध्वनि से गर्जा। वालि इन्द्र का अंश है। अतः उसका प्रहार भी वज्र के समान होता है। वज्रप्रहार में चमक पहिले और शब्द पीछे होता है। उसी नियमानुसार बालि मुष्टि प्रहार के बाद गरजा। जानता था कि मेरा प्रहार सुग्रीव सह नहीं सकता।

तब सुग्रीव बिकल होई भागा। मुष्टि प्रहार बज्र सम लागा ॥
मैं जो कहा रघुबीर कृपाला। बन्धु न होइ मोर यह काला ॥२॥

अर्थ : तब सुग्रीव विकल हो कर भागा। घूँसे की चोट वज्र की चोट जान पड़ी। हे रघुबीर कृपाल ! मैं ने पहिले ही कहा था। यह भाई नहीं है मेरा काल है।

व्याख्या : वही बात हुई। सुग्रीव वालि का एक घूँसा भी नहीं सह सके। घूँसे की चोट क्या हुई मानों वज्र गिरा। सुग्रीव विकल होकर भाग निकले कि कहीं दूसरा घूँसा न चला दे। नहीं तो प्राण ही जाता रहेगा। वालि बड़ा बलवान् था। परन्तु सुग्रीव की गति बड़ी तीव्र थी। सम्पूर्ण भुवन में वालि इनका पीछा

करता रहा। पर इन्हें पाया नहीं। ये रामजी के पास पहुँच गये। बोले कि आप रघुवीर हैं। वालि पुर के बाहर आपके सामने आगया और आपने प्रतिज्ञा की थी कि एक बाण से ही मार दूँगा। सो कुछ न हुआ। आप कृपाल हैं। इतना बड़ा वज्र मुझ पर गिरा। आपने कृपा न की। यदि कहिये कि लड़ाई तो कुछ हुई ही नहीं। यदि तुम दुर्बल पड़ते तो मैं मारता। इस पर सुग्रीव कहते हैं कि वह भाई तो है नहीं। मेरा काल है। काल से कौन लड़ाई है। किसी भाँति उसके प्रहार से जीता बच गया। सुग्रीव के हृदय से : बालि परम हित जासु प्रसादा वाला भाव बिल्कुल मिट गया। अब वह अपनी बात को वापस लेते हैं और पहिले कही हुई बात को स्मरण दिलाते हैं और उसका वध चाहते हैं। यहाँ शुद्धापन्हुति अलङ्कार है। भाई होना सच्ची बात है। उसे काल के आरोप से छिपाते हैं।

एक रूप तुम भ्राता दोऊ। तेहि भ्रम ते नहिं मारेउँ सोऊ॥
कर परसा सुग्रीव सरीरा। तनु भा कुलिस गई सब पीरा॥३॥

अर्थ : तुम दोनों भाई एक रूप के हो। इसी भ्रम से मैंने नहीं मारा। सुग्रीव के शरीर पर हाथ फेरा। उनका शरीर वज्र हो गया। सब पीड़ा जाती रही।

व्याख्या : पहिले से ही राय निश्चित हो चुकी है कि सुग्रीव जाकर गरजें। जब वह सुग्रीव को मारने के लिए पुर के बाहर निकले और सुग्रीव को मारने लगे तब रामजी बाण मारें। अब इसी बात का उलाहना सुग्रीवजी देते हैं। प्रभु ने उत्तर दिया कि मैं नहीं जानता था कि तुम दोनों भाइयों में इतना सादृश्य है। मुझे मालूम न पड़ा कि इन दोनों में कौन तुम हो? कौन वालि है? इसी भ्रम से मैंने प्रहार न किया कि कहीं तुम्हें चोट न बैठ जाय। प्रभु अपराध करते समय ही अपराधी को दण्ड देना चाहते हैं। अतः सुग्रीव को फिर युद्ध के लिए भेजते हैं और मुष्टि प्रहार से इस समय भी पीड़ित हैं। अतः प्रभु ने सुग्रीव के शरीर पर हाथ फेरा। उसका प्रभाव कहते हैं कि सुग्रीव के शरीर में बड़ा भारी परिवर्तन हुआ। प्रकृति के आपूर से शरीर वज्र हो गया। सुग्रीवजी वालि के प्रहार को सहन करने में समर्थ हो गये। तृण को कुलिश और कुलिश को तृण करने का प्रभु को व्यसन है। यथा : अम्भोधिः स्थलतां स्थलं जलधितां धूलीलवः शैलतां शैलोमृत्कणतां तृणं कुलिशतां वज्रं तृणक्षीणताम्। अग्निः शीतलतां हिमो दहनतामायाति यस्येच्छया लीलादुर्ललिताद्भुतव्यसनिने तस्मै नमो ब्रह्मणे।

मेली कंठ सुमन कै माला। पठवा पुनि बल देइ बिसाला॥
पुनि नाना बिध भई लराई। बिटप ओट देखहिं रघुराई॥४॥

अर्थ : गले में फूलों की माला डाल दी और विशाल बल देकर फिर भेजा। तब तो नाना प्रकार से युद्ध हुआ। पेड़ की आड़ से रघुनाथ देख रहे थे।

व्याख्या : बालि के गले में इन्द्र की दी हुई माला रहती थी। जिससे उसकी

रक्षा होती थी। प्रभु ने सुग्रीव के गले में उसकी रक्षा तथा पहिचान के लिए फूल की माला डाल दी। इस भाँति सुग्रीव की प्राण रक्षा का उपाय तो हो गया। फिर भी बिना तुल्य बल हुए युद्ध कैसे हो सकता है। इसलिए बलप्रद भगवान् ने विशाल बल देकर सुग्रीव को युद्ध के लिए भेजा।

अब सुग्रीव लड़ने योग्य हुए। वज्र के समान मुष्टि प्रहार सहने लगे और वज्र के समान मुष्टि प्रहार करने लगे फिर तो नाना प्रकार से युद्ध हुआ। पत्थर से, वृक्ष से, दाँतों से, नखों से लड़ाई हुई : उमा बिभीषनु रावनहि सनमुख चितव कि काउ। सो अवभिरत काल ज्यों श्री रघुबीर प्रभाउ। वालि जिसे तृण समझते थे। आज वही वज्र समान होकर युद्ध कर रहा है। बालि को समझने के लिए यथेष्ट अवसर दिया गया। वालि को समझना चाहता था कि जो सुग्रीव मेरा एक घूँसा नहीं सह सका और भाग खड़ा हुआ। वही वहाँ से बल लेकर लौटा है। जो इस प्रकार से मुझसे युद्ध करने में समर्थ हो रहा है। पर उसने इस घटना से लाभ न उठाया। बड़ा भारी समरधीर था। एक महीने तक बराबर राक्षसों से गुफा में लड़ता रहा। अतः लड़ता चला गया। प्रभु विटप के ओट से इस संग्राम का दृश्य देख रहे हैं। दो बार विटप के ओट से देखने का प्रसङ्ग मानस में आया है। एक बार तो तरु ओट से सुतीक्ष्ण मुनि की प्रेमोन्मत्त चेष्टा देखा। तथा : अबिरल प्रेम भगति मुनि पाई। प्रभु देखहि तरु ओट लुकाई। और इस बार वालि का रण कौशल देख रहे हैं।

दो. बहु छलबल सुग्रीव करि, हिय हारा भय मानि।
मारा बालि राम तब, हृदय माँझ सर तानि ॥८॥

अर्थ : बहुत छल बल करके सुग्रीव ने भयभीत होकर साहस छोड़ दिया। तब रामजी ने बाण तानकर वालि के हृदय में मारा।

व्याख्या : सुग्रीव लड़े तो परन्तु वालि के महा बल और रणधीर होने की जो धाक सुग्रीव पर जमी थी वह न गयी। युद्ध में बल से अधिक छल से ही काम लेते रहे। इसी से कवि ने : बलछल न कहकर छलबल कहा। अन्त में साहस छोड़ दिया। गिर गये। वालि ने तुरन्त उनके सिर को दक्षिणवाम भुजमूल प्रविष्ट ग्रीवसंलग्न × गुणेचिह्नाकृतियुक्त अपने पैरों से बाँध लिया। इस दाँव को वालिबन्ध दाँव कहते हैं। तब से आज तक गुरु शिष्य परम्परा से इस दाँव को मल्ल लोग जानते हैं। इस दाँव से प्रतिभट को बाँधना निषिद्ध है। अखाड़े में यह दाँव नहीं होने पाता। इस दाँव से बँध जाने पर लड़ाई समाप्त हो जाती है। फिर तो प्रतिभट को कोई सूई से छेद छेद कर मार सकता है और उसका किया कुछ भी नहीं हो सकता। सुग्रीवजी जब इस प्रकार बँध गये तब रामजी ने वालि के हृदय में तान कर बाण मारा। क्योंकि एक ही बाण से मारने की प्रतिज्ञा थी। हृदय बड़ा भारी मर्म है। इस पर चोट आने से कोई बच नहीं सकता। वालि का हृदय कलुषित था।

सुग्रीव का वध करके उसकी स्त्री को अकण्टक होकर भोगना चाहता था। अतः उसके हृदय को शस्त्रपूत किया।

परा बिकल महि सर के लागें। पुनि उठि बैठ देखि प्रभु आगें॥
स्यामगात सिर जटा बनायें। अरुन नयन सरचाप चढ़ायें॥१॥

अर्थ : बाण के लगते ही पृथ्वी पर विकल होकर गिरा। फिर उठकर बैठा तो प्रभु को सामने देखा। श्याम शरीर जटा रक्खे हुए लाल नेत्र और बाण तथा चढ़ाया हुआ धनुष था।

व्याख्या : बाण के लगते ही विकल होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। परन्तु बड़ा धीर है। रामजी के बाण से हृदय छिद जाने पर भी धैर्य धारण करके उठ बैठा। इतने में तो रामजी सामने आगये। गोली लगने पर शेर की भयङ्करता बहुत बढ़ जाती है। बाण लगने पर कहीं सुग्रीव की कथा समाप्त न कर दे। इस शङ्का से प्रभु बाण के साथ ही वहाँ पहुँच गये। बालि देखता है कि प्रभु सामने खड़े हैं। प्रभु के बाण के आघात से हृदय शुद्ध हो गया। चोट भूलकर शोभा देखने लगा। स्याम सरीर सुभाय सुहावन हैं। सिर पर जटा बँधी है। कहीं युद्ध में आँख के सामने जटा न आजाय। नेत्र लाल हो रहे हैं। सुग्रीव के चोट खाने पर क्रोध है। हाथों में बाण है और चढ़ाया हुआ धनुष है। इस शङ्का से कि राजा का वध सुनकर वानरी सेना धावा न बोल दे। रौद्र रस की झांकी है।

पुनि पुनि चितै चरन चित दीन्हा। सुफल जन्म माना प्रभु चीन्हा॥
हृदय प्रीति मुख बचन कठोरा। बोला चितै राम की ओरा॥२॥

अर्थ : बार बार देखकर चरणों में चित्त लगाया। प्रभु को पहिचाना और अपने जन्म को सफल माना। हृदय में प्रीति है। पर रामजी की ओर देखकर कठोर वचन बोला।

व्याख्या : अपार शोभा को बालि बार बार देख रहा है। अन्त में चरणों में चित्त लगाया। क्योंकि वे ही भक्तों के परम ध्येय हैं। जौं कदाचि मोहिं मारहीं तौ पुनि होउँ सनाथ। वही बात सामने आयी। सनाथ हो जाने से अपने जन्म को सफल माना। हनुमान्जी ने उत्तर पाकर प्रभु को चीन्हा। सुग्रीवजी ने परीक्षा लेकर चीन्हा। बालि ने देखकर चीन्हा। दर्शन हो गया। शस्त्रपूत भी हो ही गया। अब दो दो बातें भी हो जायं। इसलिए हृदय में प्रीति रहते हुए भी कठोर वचन बोला। उसके साथ कठोर व्यवहार हुआ है। इसलिए कठोर वचन बोला। अथवा कठोर वचन से उत्तर पाने के लिए कठोर वचन बोला। प्रभु के कठोर वचन कहने से वाग्जनित सब पाप नष्ट हो जायँगे। बाण लगने से शारीरिक पाप नष्ट हुए। अरुण नयन करके देखने से मानसिक पाप नष्ट हो गये। यथा : निर्वान दायक क्रोध जाकर। अब कठोर वचन भी सुनकर सर्वथा निष्पाप हो जांय। अथवा मानी है इसलिए कठोर वचन बोला। सुग्रीव की ओर न देखा। रामजी की ओर देखकर बोला अर्थात् आप उत्तर दें।

धरम[1] हेतु अवतरेउ गोसाँई । मारेहु मोहि व्याध की नाँई ।।
मै बैरी सुग्रीव पियारा । अवगुन कवन नाथ मोहि मारा ।।३।।

अर्थ : हे गोस्वामिन् हे हृषीकेश ! धर्म के लिए तो आपने अवतार लिया और मुझे व्याध की भाँति मारा । मैं बैरी हूँ सुग्रीव प्यारा है ? मेरा कौन दोष है जो जो प्रभु ने मुझे मारा ?

व्याख्या : गोस्वामी अर्थात् हृषीकेश सम्बोधन करके द्योतित करता है कि मैं पहिचानता हूँ कि आप ईश्वर हैं । अतः आप की प्रीति जीवमात्र पर है । धर्मग्लान्य-धर्माभ्युत्थाननिवृत्तिपूर्वकधर्मसंस्थापनार्थं आप अवतीर्ण हुए हैं । निरपराध किसी को वध करना अधर्म है । तिस पर व्याध की भाँति औचट प्रहार करना वध के प्रकार में भी अत्यन्त घोरतर प्रकार है । जो धर्म के संस्थापन के लिए अवतीर्ण हो वही यदि ऐसा अधर्म करे तो क्या वह न्यायकारी कहा जा सकता है ? पुनः ईश्वर के लिए तो सब समान है । यथा : सब मम प्रिय सब मम उपजाये । तब मैं बैरी हो गया । सुग्रीव प्यारा कैसे हो गया । अर्थात् यह भी आप नहीं कह सकते कि सुग्रीव को तुम दुःख देते थे । इसलिए तुम्हें मारा, क्योंकि सुग्रीव मेरा प्यारा है । तब मालिक होकर आप ने किस दोष से मुझे मारा ?

अनुज बधू भगिनी सुत नारी । सुनु सठ कन्या सम ये चारी ।।
इन्हहि कुदृष्टि बिलोकै जोई । ताहि बधे कछु पाप न होई ।।४।।

अर्थ : रे शठ ! सुन । छोटे भाई की स्त्री, बहन, पतोहू और बेटी ये चारों समान है । इन्हें जो बुरी दृष्टि से देखता है उसके वध में अधर्म नहीं है ।

व्याख्या : भगवान् ने वालि की अभिलाषा को पूर्ण किया, कठोर वचन बोले । वालि को शठ कहते हैं । भाव यह कि यहाँ अधर्म करके अब तू धर्म की बातें करता है ? अच्छा धर्मशास्त्र सुन ले । धर्मशास्त्र ने अनुजवधू, भगिनी, सुतनारी और कन्या को समान बतलाया । इन पर कुदृष्टि कैसी ? कुदृष्टि रखनेवाले का दण्ड ही वध है । इसमें अधर्म कुछ नहीं । कुदृष्टि की बात दूर गयी । तू तो अनुजवधू में रत है और इसीलिए अनुज का वध चाहता है । ऐसे पापी को व्याध की भाँति मारना ही दण्ड है । अतः मैंने न्याय किया ।

मूढ तोहि अतिसय अभिमाना । नारि सिखावनु करसि न काना ।।
मम भुज बल आश्रित तेहि जानी । मारा चहसि अधम अभिमानी ।।५।।

अर्थ : रे मूढ़ ! तुम्हें बड़ा भारी अभिमान है । तुमने स्त्री की सीख भी नहीं सुनी । उसे मेरे भुजबल का आश्रित जानकर भी तुमने मार डालना चाहा ।

व्याख्या : धर्मशास्त्र विषयक प्रश्न किया था । उसका उत्तर हो चुका । अब

---

१. यह असंगति अलङ्कार है ।

श्री रामजी को ईश्वर मानकर जो प्रश्न किया था उसका उत्तर देते हैं। तुझको जानना चाहिए कि मैं श्रोत्र का भी श्रोत्र हूँ। जब स्त्री सिखावन तुम्हें देती थी मैं यहाँ से सुनता था। तुमने उस सिखावन पर ध्यान नहीं दिया। स्त्री ने तुमसे स्पष्ट कह दिया था कि वह राम लक्ष्मण के बल पर लड़ने को ललकार कर रहा है। तब तो तुम्हें समझना चाहता था कि अब सुग्रीव का अपमान करना ईश्वर के भुजबल का अपमान करना है। पर तुमने उसका कुछ ख्याल नहीं किया। तुमने उसे मार ही डालना चाहा। तुमने अपनी आँखों देखा कि सुग्रीव भागकर वृक्ष की ओट में गया और वहाँ से माला धारण करके युद्ध के लिए आया है। तब तुमने क्या नहीं जाना कि मैं वृक्ष के ओट में हूँ। फिर भी तुम शरण में नहीं आये। उसे मार डालना ही चाहा। तुमने मुझसे अभिमान किया। तुम अधम अभिमानी हो। तुमने मेरे आश्रित को मेरी आँखों के सामने मार डालना चाहा। इतनी बड़ी धृष्टता ?

दो. सुनहु राम स्वामी सन, चल न चातुरी मोरि।
प्रभु अजहूँ मैं पापी, अंतकाल गति तोरि ॥९॥

अर्थ : हे राम सुनो। स्वामी के साथ मेरी चतुराई नहीं चली। प्रभो ! क्या अब भी मैं पापी हूँ। जब कि अन्त समय आपकी ही गति प्राप्त हुई।

व्याख्या : वालि जैसे बलवान् थे वैसे चतुर भी थे। अपनी समझ से ऐसा प्रश्न किया था जिसका उत्तर न हो। परन्तु ऐसा पर्याप्त उत्तर मिला, जिसका प्रत्युत्तर नहीं है। अनुजवधू रत के लिए व्याध की नाईं वध ही यथार्थ दण्ड है। वध दण्ड तो कुदृष्टि से देखनेवाले के लिए है। यह हुआ भागवतापराध और भगवत् अपराध यह हुआ कि भगवान् के आश्रित को उनके सामने वध की चेष्टा करके भगवत् शक्ति का अनादर किया। यह उत्तर ऐसा सटीक था कि वालि को मान लेना पड़ा। अतः कहता है कि मेरी चतुराई स्वामी से नहीं चली। क्योंकि वे सर्वत्र रमण करनेवाले हैं। कोई गुप्त भेद उनसे छिपा नहीं है। स्त्री ने मुझे समझाया। वह भी इन्हें मालूम हो गया। ऐसे से चतुराई क्या चलेगी ? परन्तु एक प्रश्न और है। अभी प्रभु का क्रोध मेरे पर से गया नहीं है। आँखें लाल हैं। सो क्या अब भी मुझमें पाप शेष है। अन्त समय में तो अब आपकी ही गति हैं। क्या प्रभु के अस्त्र से भी मैं पवित्र न हो सका ? जब कि प्रभु प्रतिज्ञा है : सनमुख होइ जीव मोहि जबहीं। जन्म कोटि अघ नासहिं तबहीं।

सुनत राम अति कोमल बानी। बालि सीस परसेउ निज पानी ॥
अचल करौं तनु राखहु प्राना। बालि कहा सुनु कृपा निधाना ॥१॥

अर्थ : अति कोमल वाणी सुनते ही रामजी ने वालि के सिर पर हाथ फेरा। और कहा कि : तुम प्राण रक्खो। मैं तुम्हारे शरीर को अचल करता हूँ। बालि ने कहा कि कृपानिधान ! सुनो।

व्याख्या : हृदय में तो प्रीति थी। परन्तु चतुराई दिखलाता हुआ पहिले

कठोर वचन कहे। उत्तर भी कठोर मिला। कठोरता में भी पार नहीं पा सका। यहाँ तो। कुलिसहु चाहि कठोर अति कोमल कुसुमहु चाहि। परम बुद्धिमान् वालि ने तुरन्त अति कोमल वाणी का प्रयोग किया। तब उत्तर न मिलकर रक्षा का हाथ सिर पर फिरा। यथा : कर सरोज प्रभु मम सिर धरेऊ। दीन दयाल सकल दुख हरेऊ। सीतल सुखद छाँह जेहि कर की मेटति पाप ताप माया। निसि बासर तेहि कर सरोज की चाहत तुलसिदास छाया। प्रभु ने कहा कि तुमको मारे जाने का कष्ट है तो मैं तुम्हारे विदलित शरीर को अचल करता हूँ परन्तु तुम जीना चाहो। भाव यह कि तुमने सदा मेरे हाथ से वध चाहा। अब वध करने पर उलाहना देते हो। तो मैं तुम्हारे शरीर को अचल किये देता हूँ। पर तुम भी तो जीना चाहो। तुम्हें तो अब भी भीतर से मेरे हाथ से शरीर छोड़ने की अभिलाषा है। वालि ने कहा कि सरकार कृपानिधान हैं। अपनी प्रतिज्ञा मेरे लिए छोड़ना चाहते हैं। पर मेरी बात सुनिये।

जन्म जन्म मुनि जतन कराँही। अंत राम कहि आवत नाँही॥
जासु नाम बल संकर कासी। देत सबहि सम गति अबिनासी॥२॥
मम लोचन गोचर सोइ आवा। बहुरि कि प्रभु अस बनहि बनावा॥३॥

अर्थ : जन्म जन्म मुनि चेष्टा करते हैं। पर अन्त में राम कहते नहीं बनता। जिसके नाम के बल से शिवजी काशी में सबको समान अविनाशी गति देते हैं वही मेरे नेत्रों का विषय हो रहा है। प्रभो! क्या फिर ऐसा संयोग बनाने से बन सकेगा?

व्याख्या : भावनानुसार ही गति होती है। अन्तकाल में जिस भाव को स्मरण करता हुआ जीव शरीर त्याग करता है उसी को प्राप्त होता है। क्योंकि सदा वह वैसी भावना करता था। यथा : यं यं वापि स्मरन् भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम्। तन्तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भावभावितः। तदनुसार जन्म जन्म से मुनि यत्न करते हैं कि अन्त समय राम नाम स्मरण कर सकें। परन्तु अन्त में ईश्वर का स्मरण इतना कठिन है कि राम नाम मुख से नहीं निकलता। इसीलिए काशी की महा महिमा है कि काशी में मरण के समय मुमुक्षु के दक्षिण कर्ण में भगवान् शङ्कर राम नाम का उपदेश देते हैं। उस उपदेश के प्रभाव से प्राणी को ज्ञान हो जाता है और उसको अविनाशी गति अर्थात् मुक्ति प्राप्त होती है। यह मुक्ति का सदावर्त काशी में राम नाम के बल से ही चलता है। वही राम आज मरने के समय मेरी आँखों के सामने हैं। यदि मैं इस समय प्राण न त्याग करूँ तो फिर क्या मरने के समय आपका आँखों के सामने ला सकना किसी के वश की बात है?

छं. [1]सो नयन गोचर जासु गुन नित नेति कहि श्रुति गावहीं।
जिति पवन मन गो निरस करि मुनि ध्यान कबहुँक पावहीं॥१॥

---

१. यह हरिगीतिका छन्द है।

मोहि जानि अति अभिमान बस प्रभु कहेउ राखु स्ररीरही।
अस कवन सठ हठि काटि सुर तरु बारि करहि बबूरहीं ॥२॥

अब नाथ करि करुना बिलोकहु देहु जो बर माँगऊँ।
जेहि जोनि जनमउँ कर्म बस तह राम पद अनुरागऊँ ॥३॥

यह तनय मम सम बिनय बल कल्यानप्रद प्रभु लीजिए।
गहि बाँह सुर नर नाह आपन दास अंगद कीजिए ॥४॥

अर्थ : वह आँखों का विषय हो रहा है जिसके गुणों को सदा नेति नेति[1] कह कर वेद गान करता है। मन और प्राण को जीतकर तथा इन्द्रियों को नीरस करके जिसे मुनि कभी ध्यान में पा जाते हैं। मुझे अति अभिमान के वश जानकर प्रभु शरीर रखने के लिए कह रहे हैं। पर ऐसा शठ कौन होगा जो कल्पवृक्ष को काटकर हठपूर्वक बबूर के लिए उसकी बाड़ लगावे। हे नाथ! अब करुणा करके देखिये और जो माँगता हूँ वह वर दीजिये कि जिस योनि में मैं कर्मवश जन्म ग्रहण करूँ उसमें रामपद में अनुराग हो। यह मेरा बेटा विनय और बल में मेरे समान है। हे कल्याणप्रद प्रभो! इसे स्वीकार कीजिये और हे सुरनरनाथ! इसकी बाँह पकड़ कर अपना दास बनाइये।

व्याख्या : वेदने ब्रह्मको मूर्तामूर्त से परे बतलाया है। छिति जल पावक मूर्त द्रव्य हैं और गगन समीर अमूर्त द्रव्य हैं। ब्रह्मनित्य इन दोनों से परे हैं। अमूर्त द्रव्य ही नयनगोचर नहीं हो सकता। तब मूर्तामूर्त से परे के नयनगोचर होने की कथा ही क्या है। आज मेरा ऐसा भाग्योदय हुआ है कि वह ब्रह्म मेरे नयनगोचर हो रहा है। आज मुझ पर ईश अनुकूल हैं। यथा : नयन बिषय मों कहँ भयउ सो समस्त सुख मूल। सबइ सुलभ जगजीव कहँ भये ईस अनुकूल। वेद नेति नेति कह-कर यही बतलाता है कि न वह स्थूल है और न सूक्ष्म है। हठयोग में प्राण को जय करके मन का जय किया जाता है और राजयोग में मन का जय करके प्राण पर विजय पाते हैं। अर्थात् दोनों को मन और प्राण पर जय प्राप्त करना होता है। मन बड़ा चञ्चल और दुर्निग्रह है और प्राण को वश करना सिंह को वश करना है। सो इन दोनों को वश करके इन्द्रियों से हटाकर अन्तर्मुख होकर स्थितप्रज्ञ मुनि ध्यान करते हैं। फिर भी जो ध्यान में नहीं आते। कभी एक झलक आजाती है। यथा : मुनि जेहि ध्यान न पावहिं नेति नेति कह बेद। उनका मुझे प्रत्यक्ष दर्शन हो रहा है। फिर भी प्रभु जो मुझसे कह रहे हैं : अचल करौं तनु राखहु प्राना। सो मुझे अति अभिमानवश जानकर मुझमें देहाभिमान अत्यन्त प्ररूढ़ जानकर कह रहे हैं। मैं जैसा प्रभु ने कहा अभिमानी भी हूँ और शठ भी हूँ। पर ऐसा नहीं हूँ कि

---

१. यहाँ तुल्ययोगिता (द्वितीय) अलङ्कार है।

इतने बड़े हानि लाभ को न समझ सकूँ। संसार में यही नियम है कि बबूल को काटकर आम की रक्षा के लिए उसकी बाड़ बनाते हैं। क्योंकि आम काम की वस्तु है और बबूल किसी काम का नहीं होता। वह बाड़ लगाने के ही काम में आता है। जिससे आम के छोटे पौधों को पशु चर न जावें। यथा : आप नहीं कछु काम के डार पात फल फूल। औरन को रोकत फिरें रहिमन पेंड़ बबूल। सो आम क्या मुझे तो अन्त के समय आपका दर्शन हो रहा है यह सुयोग कल्पवृक्ष है। इससे यथार्थ लाभ न उठाकर इसका उपयोग मैं शरीर को रक्षा के लिए नहीं कर सकता। शरीर बबूल है किसी काम का नहीं। इसे तो एक दिन जाना ही है। यथा : रहिहि न अन्तहुँ अधम सरीरू। अतः ऐसे सुयोग को हाथ से शरीर रक्षा के लिए जाने देना कल्पवृक्ष को काटकर बबूल की बाड़ लगाना है।

आप नाथ हैं। आप जो शरीर रखने को कह रहे हैं। इससे मालूम होता है कि अभी मुझ पर पूरी करुणा नहीं हुई। इसलिए प्रार्थना करता हूँ कि करुणा की दृष्टि से मुझे देखिये। मैं इस शरीर को बचाने के लिए वर नहीं माँगूँगा। इस समय इसका परित्याग मुझे परम इष्ट है। परन्तु नाथ.वर देने को प्रस्तुत हैं। इसलिए दूसरा वर जो अभीष्ट है उसे माँगता हूँ। वह यह है कि जो जो कर्म मैंने किये हैं उनके फलों से मैं बचना नहीं चाहता। मुझे मुक्ति भी नहीं चाहिए। मुझे कर्मानुसार शरीर मिले। पर जो शरीर मिले उसमें मुझे आपके चरणों में अनुराग सदा बना रहे। भाव यह कि प्रभु तो अनेक प्रकार के शरीर धारण करते हैं। यथा : मीन कमठ सूकर नर हरी। वामन परसुराम वपुधरी। ईश्वर स्वतन्त्र है। वह माया द्वारा अपने इच्छानुकूल शरीर धारण करता है। जीव परतन्त्र है वह अपने कर्मानुसार अविद्या द्वारा शरीर धारण करता है। मेरा दूसरा जन्म कर्मानुसार किसी योनि में होगा। सम्भव है कि उस समय प्रभु भी अपने इच्छानुकूल कोई दूसरा शरीर धारण करें। पर मेरा अनुराग इस राममूर्ति में बना रहे। मेरी अव्यभिचरित भक्ति इस राममूर्ति में हो। अपना कल्याण कर लेने के बाद अङ्गद की ओर देखा।

उसे रोते हुए देखकर उसे सुरनरनाथ प्रभु को समर्पण कर रहा है। भाव यह कि सुग्रीव सेवा नहीं कर सकेगा। इसमें बल और विनय यथेष्ट नहीं है। यह मेरा बेटा बल और विनय में मेरे तुल्य है। मैं तो चला सेवा न कर सका। पर : आत्मा वै पुत्रनामासि। यह मेरी आत्मा है। यह सेवा करेगा। सुग्रीव से इसे भय है। इसकी बाँह पकड़कर अपना दास बनाइये। यह कहकर अङ्गद को रामजी के गोद में डाल दिया। यथा : मरती बेर नाथ मोहि बाली। गयउ तुम्हारेहिं कोंछे घाली।

दो. रामचरन दृढ़ प्रीति करि, बालि कीन्ह तनु त्याग।
सुमन माल जिमि कंठ ते, गिरत न जानै नाग ॥१०॥

अर्थ : रामजी के चरणों में दृढ़ प्रीति करके वालिने इस भाँति शरीर का

त्याग किया जैसे मतवाले हाथी को अपने गले की फूल की माला के गिरने का पता न चले।

व्याख्या : पहिले अपना कल्याण किया। तब पुत्र का कल्याण किया। फिर प्राणत्याग के समय पुत्र में मनोवृत्ति के जाने को अशुभ समझकर मन को फिर मोड़कर राम चरणों में लगा दिया और प्रेम उधर ही दृढ़ कर लिया। राम में प्रेम के दृढ़ कर लेने से मरने में कुछ भी आयास न हुआ। रामचरण के दृढ़ प्रेमी, स्नेहसुरा से छके हुए, मतवाले हाथी के समान हो जाते हैं। उनका देहाभिमान इतना मिट जाता है कि शरीर उनके लिए फूल की माला हो जाती है। जिस भाँति मतवाले हाथी को पता नहीं चलता कि उसके गले की फूल की माला कब और कहाँ गिरी। उसी भाँति प्रेमसुरा से छके हुए वालिको पता ही न चला कि उसका शरीर कब छूटा।

राम बालि निज धाम पठावा। नगर लोग सब व्याकुल धावा॥
नाना बिध बिलाप कर तारा। छुटे केस न देह सँभारा॥१॥

अर्थ : रामजी ने वालि को अपने धाम भेज दिया। नगर के लोग व्याकुल होकर दौड़े। नाना भाँति से तारा विलाप करने लगी। उसके बाल छूट गये। देह की सँभाल नहीं रह गयी।

व्याख्या : कल्पवृक्ष ने चाहा हुआ फल दिया। रामजीने वालि को अपने धाम भेज दिया। वालि ने माँगा था : जेहि जोनि जनमौ कर्म बस तहँ रामपद अनुरागऊँ। अतः सायुज्य मुक्ति नहीं हुई। पर कर्म बन्धन से मुक्त करके अपना धाम दिया, जहाँ जाकर कोई लौटता नहीं। यथा : यद् गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम।

१. सुनत बालि क्रोधातुर धावा : यह वालि की तेजस्विता है।

२. मुठिका मारि महा धुनि गर्जा : यह वालि का बल है।

३. बहु छलबल सुग्रीव करि हिय हारा भयमानि : यह वालि का रण पाण्डित्य है।

४. पुनि उठि बैठ देख प्रभु आगे : यह वालि का धैर्य है।

५. पुनि पुनि चितय चरन चित दीन्हा : यह वालि की भक्ति है।

६. सफल जनम माना प्रभु चीन्हा : यह वालि का ज्ञान है।

७. हृदय प्रीति मुख बचन कठोरा। बोला चितय राम की ओरा : यह वालि का प्रागल्भ्य है।

८. अस कवन सठ हठि काटि सुरतरु बारि करई बबूरहीं : यह वालि का विवेक है।

९. गहि बाँह सुर नर नाह आपन दास अंगद कीजिये : यह वालि की नीतिज्ञता है।

१०. राम चरन दृढ़ प्रीति करि बालि कीन्ह तन त्याग : यह बालि की सावधानता है।

११.१२. राम बालि निज धाम पठावा : यह बालि का भाग्य है। और नगर लोग सब व्याकुल धावा : यह बालि की प्रजापालकता है।

वालि के स्त्री का नाम तारा है। वध का समाचार पाकर वह चली आयी। नाना प्रकार से विलाप करने लगी। रोना, छाती पीटना, सिर पीटना, शव पर गिर पड़ना, उसको जीवित की भाँति सम्बोधन करना। रामजी से अपने वध के लिए प्रार्थना आदि नाना विध विलाप के अन्तर्गत है। नगर के लोग व्याकुल हैं। तारा अत्यन्त व्याकुल है। विलाप में ज्ञान धैर्य और लज्जा नहीं रह जाती। नाना विधि विलाप से ज्ञान का अभाव, केश के छूटने से धैर्य का अभाव और देंह के सँभाल न रहने से लज्जा का अभाव दिखलाया।

तारा बिकल देखि रघुराया। दीन्ह ज्ञान हरि लीन्ही माया ॥
छिति जल पावक गगन समीरा। पंच रचित यह अधम सरीरा ॥२॥

अर्थ : तारा को विकल देखकर रघुनाथ जीने उसे ज्ञान दिया और माया हर लिया। पृथ्वी जल तेज वायु और आकाश इन पाँचों से बना हुआ यह शरीर अत्यन्त अधम है।

व्याख्या : रघुनाथजी की कृपा अघानेवाली कृपा नहीं है। वालि पर कृपा किया। उसके पुत्र अङ्गद पर कृपा किया। अब विकल देखकर उसकी स्त्री तारा पर करते हैं। विषाद योग होने पर ही ज्ञानोपदेश की परिपाटी देखने में आती है। संसार का बीज शोक मोह है। यह ज्ञान से ही नष्ट होता है। अतः सरकार ने तारा को ज्ञान दिया और माया हरण कर लिया। यहाँ माया का अर्थ अविद्या है और ज्ञान का अर्थ विद्या है। अतस्मिन् तद्बुद्धिः अर्थात् जो वस्तु जैसी नहीं है उसे वैसी जानना अविद्या है और उसके ठीक स्वरूप को जानना : वस्तुस्वरूपावधारण विद्या है। यथा : चेतन और जड़ विरुद्ध स्वभाववाली दो पृथक् वस्तुएँ हैं। चेतन का धर्म दूसरा और जड़ का धर्म दूसरा है। अतः चेतन में जड़ का अवभास होना अथवा जड़ में चेतन का अवभास होना अविद्या है। विवेक पूर्वक दोनों के स्वरूप का ठीक ठीक ज्ञान होना विद्या है। सो सरकार की कृपा से तारा को अविद्या जाती रही और विद्या की प्राप्ति हुई। जिस उपदेश द्वारा तारा का कल्याण हुआ उसे कहते हैं—

पृथ्वी, अप्, तेज, वायु और आकाश से ही सृष्टि हुई है। अतः शब्द स्पर्श, रूप, रस और गन्ध की अनुभूति ही संसार की अनुभूति है। शरीर भी इन्हीं से बना है। इसमें जो कठिन है वह पृथ्वी है। जो द्रव है वह जल है। जो उष्ण है वह तेज है। जो सञ्चार करता है वह वायु है और जो पोला है वह आकाश है। ज्ञानेन्द्रियाँ और कर्मेन्द्रियाँ भी इन्हीं से उत्पन्न हैं। अस्थि, चर्म, नाड़ी, रोम, माँस,

पृथ्वी के अंश हैं। मूत्र, श्लेष्म, जल, शुक्र और स्वेद जल के अंश हैं। क्षुधा, तृषा, आलस्य, मोह और मैथुन अग्नि के अंश हैं। प्रचारण, विलेखन, उन्मेष, निमेषादि वायु के अंश हैं। काम, क्रोध, लोभ, मोह और भय आकाश के अंश हैं और शब्द स्पर्श, रूप, रस, गन्धादि भी आकाशादि भूतों के गुण हैं। अतः यह शरीर कृतक : बना हुआ होने से अनित्य है। मलायतन होने से अशुचि है। भोगायतन होने से दुःख रूप है। महाभूतों का समवाय होने से जड़ है। अतः इसे अति अधम कहा।

प्रगट सो तनु तव आगे सोवा। जीव नित्य केहि लगि तुम्ह रोवा॥
उपजा ज्ञान चरन तब लागी। लीन्हेसि परम भगति बर मागी॥३॥

अर्थ : यह शरीर प्रगट है। तुम्हारे आगे सोया हुआ है और जीव तो नित्य है। तुम किसके लिए रोयी। ज्ञान उपजा तब चरणों में सिर नवाया और परम भक्ति का वर माँग लिया।

व्याख्या : शरीर ही प्रकट है। जीव तो सदा अव्यक्त है। यथा : अव्यक्तोऽयम-चिन्त्योऽयमविकार्य्योऽयमुच्यते। सो वह अति अधम शरीर तुम्हारे सामने सोया : निश्चेष्ट पड़ा है। यही इसकी प्रकृति है। जीव तो इसके विरुद्ध स्वभाववाला है। वह तो नित्य शुचि आनन्दमय तथा चेतन है। अतः दोनों में से किसी के लिए भी शोक करना नहीं बनता : सरकार जब बोलने लगे तो तारा रोना बन्द करके सावधान होकर सुनने लगी। अतः रोवा भूतकाल की क्रिया का प्रयोग किया।

यह सरकार के वचन का सामर्थ्य है कि अति संक्षिप्त उपदेश से ही अज्ञान का नाश हो गया। अज्ञान का नाश ही ज्ञान का उपजना है। तब चरणों पर गिरना कहकर शिष्य की कृतकृत्यता दिखलाया। ज्ञान होने पर भी बहुत जन्मों के बाद कहीं ज्ञानी भगवत् शरण में जाते हैं। यथा : बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान् मां प्रपद्यते। अतः परम भक्ति का वर उसने सरकार से माँग लिया। क्योंकि : सबकर फल हरि भगति भवानी।

उमा दारु योषित की नाईं। सबहिं नचावत राम गोसाईं॥
तब सुग्रीवहि आयसु दीन्हा। मृतक कर्म बिधिवत सब कीन्हा॥४॥

अर्थ : हे उमा ! कठपुतली की भाँति सब को राम गोसाईं नचाते हैं। तब रामजी ने सुग्रीव को आज्ञा दी। उन्होंने विधिवत् सब मृतक कर्म किया।

व्याख्या : क्षण भर पहिले तारा शोक मोह से छाती कूटती थी और क्षण भर में भक्ति वरदान माँगकर कृतकृत्य हो गयी। इस पर महादेवजी उमा से कहते हैं कि जिस भाँति सूत्रधार जैसे चाहता है अपनी कठपुतलियों को नचाता है उसी भाँति राम गोसाई सबको नचाते हैं। शिवजी ज्ञान घाट के वक्ता हैं। दो ही विभाग

पदार्थों[1] का मानते हैं एक जड़ और दूसरा चेतन। उनके मत से चेतन एक है जिसे ब्रह्म कहते हैं। उससे अतिरिक्त सब जड़ हैं। यथा : मिलल भल एक भरोसवा। कठपुतली अस हम सब नाचीं करम जाल में फँस के। हम सब कहँ तो प्रगट नचावहुँ आप बैठि भलगोसवा। हम सबकै तो जड़ में गिनती चेतन तुमहीं एक। तब कैसे हमहन के प्रभु जी लागि सकै गुन दोसवा : देवस्वामी। अतः उन्होंने जीवों की जड़ कठपुतली से उपमा दी। उपासक आत्मा परमात्मा का भेद मानते हैं। इसलिए उपासना घाट केवल भुसुण्डीजी ने : नट मर्कट इव सबहि नचावत। राम खगेस वेद अस गावत। कहकर जीवों की उपमा चेतन मर्कट से दी। यथा : ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति। भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया। जड़चेतन के पृथक्त्व के ज्ञान होने पर तारा ने भगवदाश्रय ग्रहण किया।

तारा के शान्त हो जाने पर सुग्रीव को आज्ञा दिया कि विधिवत् मृतककर्म सब करो। सुग्रीव को आज्ञा देने का भाव ही यह है कि अब तुम राजा हो। मरणान्तानि वैराणि। मरने के साथ ही वैर समाप्त हो जाता है। अब वह बन्धु है। विधि के साथ उसके दाहादि संस्कार सम्पन्न करो। सुग्रीव ने वैसा ही किया।

४८. कपितिलक प्रसंग

रामु[2] कहा अनुजहि समुझाई। राजु देहु सुग्रीवहि जाई॥
रघुपति चरन नाइ करि माथा। चले सकल प्रेरित रघुनाथा॥५॥

अर्थ : रामजी ने छोटे भाई को समझाकर कहा कि जाकर सुग्रीव को राज दो। रघुपति के चरणों में माथा झुकाकर सब रघुनाथजी से प्रेरित होकर चले।

व्याख्या : युद्ध में मरे हुए के लिए सद्यः शौच है। इसलिए दाह संस्कार के बाद ही राज्य देने की आज्ञा दी। रामजी ने लक्ष्मणजी को समझाकर कहा।

सौंपि गयउ निज सुत हमहिं मरन समय कपिराज।
कीजिय नृप सुग्रीव कहँ अंगद कहँ जुवराज॥

राज काज सब कछु करिहि जब अंगद मतिमान।
प्रजा वर्ग में होयगो तब सन्तोष महान॥

बहुत दिन से सहिरह्यो दुख दुखिया सुग्रीव।
सुख विलसिहि निश्चन्त ह्वै पाइहि शान्ति अतीव॥

किये नीति अनुसरण यह सबही कह सुख होय।
विजयानँद सोइ कीजिये अनुचित कहै न कोय॥

---

१. चेत्यचितोर्नतृतीयम्—शा० सू० २ अ० ४० सू० चेत्य और चित् से भिन्न कोई तीसरा पदार्थ नहीं है।

२. ४८ वाँ प्रसङ्ग कपितिलक प्रारम्भ हुआ।

रामजी की आज्ञा पाकर उनके चरणों में सिर नवाकर उनकी प्रेरणा से सब चले। जो व्याकुल होकर दौड़े आये थे वे भी शान्त भाव से चले।

दो. लछिमन तुरत बोलाए, पुरजन बिप्र समाज।
राजु दीन्ह सुग्रीव कहँ, अंगद कहँ जुवराज ॥११॥

अर्थ : लक्ष्मणजी ने तुरन्त नगरवासियों को और ब्राह्मण समाज को बुलाया। सुग्रीव को राज्य और अङ्गद को युवराज पद दिया।

समझाने के अनुसार ही लक्ष्मणजी ने प्रजावर्ग को बुलाया : बिप्र समाज प्रजा वर्ग में नहीं है। अतः उनका पृथक् निर्देश किया : ब्राह्मण समाज की अभिषेक के कृत्य के लिए भी आवश्यकता थी। अतः उन्हें भी बुलाया। सुग्रीव को राजतिलक दिया और अङ्गद को यौवराज्य के लिए अभिषिक्त किया। लक्ष्मणजी ने सब कार्य शीघ्रता से किया। क्योंकि उस समय सरकार की सेवा में कोई नहीं था : वालि की भावना थी कि रघुनाथ समदर्शी हैं। सो विचार कर देखिये तो मालूम होता है कि रामजी ने दोनों के साथ एक सा व्यवहार किया।

सुग्रीव के साथ व्यवहार :	वालि के साथ व्यवहार :
जब सुग्रीव राम कहँ देखा।	पुनि पुनि चितै चरन चित दीन्हा।
अतिसय जन्म धन्य करि लेखा।	सफल जन्म माना प्रभु चीन्हा।
करपरसा सुग्रीव सरीरा।	बालि सीस परसा निज पानी।
तेहि सर हतौं मूढ़ कहँ काली।	सुनु सुग्रीव मैं मारिहौ बालिहि एकै बान।
अचल करौं तन राखहु प्राना।	भय देखाइ लै आवहु तात सखा सुग्रीव।
प्रतिज्ञा छोड़ रहे हैं।	यहाँ भी प्रतिज्ञा छोड़ा।
राज दीन्ह सुग्रीव कहँ।	अंगद कहँ जुवराज।

उमा राम समहित जगमाँहीं। गुरु पितु मातु बन्धु प्रभु नाँहीं ॥
सुर नर मुनि सबकै यह रीती। स्वारथ लागि करहिं सब प्रीती ॥१॥

अर्थ : हे उमा ! राम सा हित संसार में गुरु, पिता, माता, बन्धु या प्रभु कोई नहीं है। देवता मनुष्य और मुनि सबकी यह रीति है कि स्वार्थ के लिए प्रीति करते हैं।

व्याख्या : ये ही पांच कल्याण करनेवाले हैं। राखै गुरु जो कोप बिधाता। सेवक सुत पति मातु भरोसे। रहै असोच बनै प्रभु पोसे। तथा : होहिं कुठाय सुबन्धु सहाये। परन्तु वे भी राम के समान हित नहीं है। ये लोग भी अत्यन्त बहिर्मुख का परित्याग करते हैं। पर किसी अवस्था में जीव का रामजी परित्याग नहीं करते। यथा :

कानन भूधर बारि बयारि महा बिष ब्याधि दवा अरि घेरे।
संकट कोटि जहाँ तुलसी सुत मातु पिता हित बन्धु न नेरे ॥

राखिहैं राम कृपालु तहाँ हनुमान से सेवक हैं जेहि केरे।
नाक रसातल भूतल में रघुनायक एक सहायक मेरे॥
जबही जमराज रजायसु ते मोहि ले चलिहैं भट बाँधि नटैया।
तात न मात न स्वामी सखा सुत बन्धु बिसाल बिपत्ति बँटैया॥
साँसति घोर पुकारत आरत कौन सुनै चहुँ ओर डँटैया।
एक कृपालु तहाँ तुलसी दसरथ को नन्दन बंदि कटैया॥
जहाँ जमजातना घोर नदी भर कोटि जलच्चर दन्त टेवैया।
जहँ धार भयंकर वार न पार न बोहति नाव न मीत खेवैया॥
तुलसी जहँ मातु पिता न सखा नहि कोउ कहूँ अवलम्ब देवैया।
तहाँ बिनु कारन राम कृपालु बिसाल भुजा गहि काढ़ लेवैया॥
जहाँ हित स्वामि न संग सखा बनिता सुत बन्धु न बाप न भैया।
काय गिरा मन के जन के अपराध सबै छल छाड़ि छमैया॥
तुलसी तेहि राम कृपाल बिना दूजो कौन है दारुन दुःख दमैया।
जहाँ सब संकट दुर्घट सोच तहाँ मेरो साहिब राखै रमैया॥

यहाँ मातृ पितृ शब्द का तद्भव रूप पितु मातु दिया हुआ है। उहत्वादिषु इस सूत्र से ऋ का उत्त्व होकर मातु और पितु शब्द सिद्ध हुआ।

दैवी सम्पत्तिवाले तीन ही हैं सुर नर और मुनि। इनकी यह रीति है कि स्वार्थ के लिए ही प्रीति करते हैं। भुसुण्डिजी कहते हैं : जाते कछु निज स्वारथ होई। तापर ममता कर सब कोई। माता पिता भी स्वार्थ रत हैं। सबकी प्रीति अर्थ से है। व्यर्थ प्रीति कोई क्यों करे। परन्तु हेतु रहित जग जुग उपकारी। तुम तुम्हार सेवक असुरारी।

बालि त्रास ब्याकुल दिन राती। तन बहुब्रन चिन्ता जर छाती॥
सोइ सुग्रीव कीन्ह कपि राऊ। अति कृपाल रघुबीर सुभाऊ॥२॥

अर्थ : जो वालि के डर से दिन रात विकल रहता था। शरीर में अनेक घाव बने रहते थे और चिन्ता से छाती जला करती थी उस सुग्रीव को बन्दरों का राजा बना दिया। रघुवीर का स्वभाव बड़ा ही कृपालु है।

व्याख्या : जिस सुग्रीव की यह अवस्था थी कि वालि के डर से दिन रात व्याकुल रहते थे। ऐसा पाछे पड़ा रहता था कि जहाँ आप नहीं पहुँच सकता था वहाँ बलवान बन्दरों को सुग्रीव को मारने के लिए भेजता था। यद्यपि सुग्रीव ने उन सबों को मारा। पर प्रत्येक युद्ध में चोट तो आ ही जाती थी, एक चोट सूखने न पाया तब से दूसरा लगा तीसरा लगा। इस भाँति शरीर में बहुत से घाव बने रहते थे और चिन्ता से कलेजा जला करता था। शारीरिक और मानसिक दोनों प्रकार की वेदना से रात दिन कभी भी चैन नहीं रहता था। किसी ने तो सुग्रीव की सहायता नहीं की। किसी को तो उसकी दुरवस्था पर दया आती। पर नहीं आयी। रामजी ने उस

पर ऐसी दया की कि वही सुग्रीव बानरों का राजा हो गया। दुःख तो दूर कर ही दिया। राजा भी बना दिया। स्वभाव से ही सरकार अति कृपाल हैं।

जानतहू अस प्रभु परिहरहीं। काहें न बिपति जाल नर परहीं ॥
पुनि सुग्रीवहिं लीन्ह बोलाई। बहु प्रकार नृप नीति सिखाई ॥३॥

अर्थ : जानते हुए भी जो ऐसे प्रभु का परित्याग करते हैं ऐसे मनुष्य विपत्ति जाल में क्यों न पड़े। फिर सुग्रीव को बुला लिया और बहुत प्रकार से राजनीति सिखलाया।

व्याख्या : जो न जानता हो उसकी बात दूसरी है। अनजानत की चूक क्षमा की जाती है। परन्तु जो जानता है और जान बूझकर ऐसी चूक करता है कि ऐसे समर्थ और दयाल स्वामी को नहीं भजता उसका विपत्ति जाल में पड़ना प्राप्त : वाजिब है। उसके विपत्ति में न पड़ने का कोई कारण नहीं है। जो विपत्ति को काटने वाला है उसी का परित्याग कर दिया। अतः उनका विपत्ति जाल में सदा पड़ा रहना युक्तियुक्त है। राजतिलक पाने पर सुग्रीव को स्वयं प्रणाम करने के लिए आना उचित था। सो बुलवाने पर आये। प्रभु ने देखा कि सुग्रीव राजनीति में बड़े कच्चे हैं। इसलिए बुलाकर बहुत प्रकार से राजनीति सिखायी। पहिले मित्रधर्म सिखाया था। अब राजनीति सिखाते हैं। जिसमें सुग्रीव का राज अचल रहे। यथा : राज कि रहै नीति बिनु जाने।

कह प्रभु सुनु सुग्रीव हरीसा। पुर न जाउँ दस चारि बरीसा ॥
गत ग्रीषम बरषा रितु आई। रहिहौं निकट सैल पर छाई ॥४॥

अर्थ : प्रभु ने कहा कि कपिराज ! सुनो। मैं चौदह वर्ष पुर में नहीं जाता। गरमी का मौसम गया। बरसात आयी। यहीं निकट ही पर्वत पर टिक रहूँगा।

व्याख्या : आप ही कहते हैं कि हे कपिराज ! मैं स्वयं तुम्हारे पुर में चलकर सब कारबार तुम्हारा सँभाल देता। परन्तु पिता के वचन से मैं पुर में नहीं जाता। निषादराज ग्राम में रहते थे तो उनसे कहा : ग्राम बास नहिं उचित मोंहि। विभीषणजी नगर में रहते थे तो उनसे कहा : पिता बचन मैं नगर न जाऊँ। सुग्रीवजी पुर के रहनेवाले हैं। इसलिए इनसे कहते हैं कि पुर में चौदह वर्ष के लिए न जाने का मेरा व्रत है। गरमी के दिन बीत गये बरसात आ गयी। अब रास्ते बन्द हो जायँगे। सीताजी के खोजने का काम इस बीच में नहीं हो सकता। मैं यहीं निकट के पर्वत पर रहूँगा। आवश्यकता पड़ने पर मिल लेना। चौदह न कहकर दसचारि कहने का यह भाव है कि चौदह वर्ष में से अधिक दिन बीत गये हैं। थोड़े ही शेष हैं।

अंगद सहित करहु तुम राजू। संतत हृदय धरेहु मम काजू ॥
जब[1] सुग्रीव भवन फिरि आये। राम प्रवर्षन गिरि पर छाये ॥५॥

---

१. ४९वाँ प्रसङ्ग प्रवर्षण वास प्रारम्भ हुआ।

अर्थ : अङ्गद के साथ तुम राज करना और मेरे काम को सदा स्मरण रखना। तब सुग्रीव घर लौट आये और रामजी प्रवर्षण पर्वत पर ठिके।

व्याख्या : राज कार्य कोई ऐसा न करना जिससे अङ्गद की सम्मति न हो सब कार्यों में अङ्गद सम्मिलित रहें। जिसमें अङ्गद को पिता के मरने का अति कष्ट न हो। वर्षा समाप्त होते ही मेरे कार्य में हाथ लगा देना और मन में उसे सदा बनाये रहना। सम्भव है कि इस बीच में ही कुछ पता लग जाय : सुग्रीवजी बुलाने पर गये। बात समाप्त होते ही घर लौट आये। गृहसुख से बहुत दिन से वञ्चित हैं अतः घर लौटने की बड़ी उत्कण्ठा है। श्री रामजी अपने कथनानुसार प्रवर्षण पर्वत पर जाकर ठहर गये।

दो. प्रथमहि देवन्ह गिरिगुहा, राखी रुचिर बनाइ।
राम कृपानिधि कछु दिन, बास करहिंगे आइ ॥१२॥

अर्थ : पहिले ही से देवताओं ने पर्वत की गुफा को सुन्दर बना रक्खा था। यह जानकर कि कृपा के सागर रामजी कुछ दिनों तक यहाँ आकर वास करेंगे।

व्याख्या : जहाँ प्रभु जाते हैं देवता लोग वहाँ निवास स्थान की रचना कर देते हैं। केवल पञ्चवटी में राक्षसों के भय से नहीं बनाया। यहाँ गुफा तो पहिले से ही प्रवर्षण गिरि पर थी। पर देवताओं ने उसे सँवारकर सुन्दर सुखद बना दिया। वे जानते हैं कि रामजी कृपा के समुद्र हैं हमारी सेवा अवश्य स्वीकार करेंगे। कुछ दिन वर्षा में यहीं ठहरेंगे।

सुन्दर बन कुसुमित अति सोभा। गुंजत मधुप निकर मधु लोभा॥
कन्दमूल फलपत्र सुहाये। भये बहुत जबते प्रभु आये ॥१॥

अर्थ : फूला हुआ सुन्दर वन अत्यन्त शोभित हुआ। भौंरों का समूह मधु के लोभ से गुञ्जार कर रहा था। सुन्दर कन्दमूल फल और पत्र जब से प्रभु आये तब से बहुत पैदा होने लगे।

व्याख्या : वन जब कुसुमित हो और भौंरे मकरन्द लोभ से गुञ्जार करते हों तभी वन की शोभा है। वह वन स्वभाव से ही सुन्दर था। पर जब वह कुसुमित हुआ और भौंरे गुञ्जार करने लगे तब अत्यन्त शोभित हुआ। यथा : तहँ जाइ देखी बन शोभा। गुञ्जत चञ्चरीक मधु लोभा। ग्रीष्म ऋतु बीत चली परन्तु इस वन में अब भी वसन्त बरत रहा है। इस वन में कन्दमूल फल और पत्ते भी सुन्दर हैं। प्रभु के आ जाने से उनकी बहुतायत हो गयी। प्रभु के पदार्पण से स्थल में उर्वरा शक्ति बढ़ गयी। वृक्षादि में जीवनी शक्ति आगयी।

देखि मनोहर सैल अनूपा। रहे तहँ अनुज सहित सुर भूपा॥
मधुकर खग मृग तनु धरि देवा। करहिं सिद्ध मुनि प्रभु की सेवा ॥२॥

अर्थ : मन को हरण करनेवाले अनुपम पर्वत को देखकर सुरभूप रामजी

अपने अनुज लक्ष्मणजी के साथ वहाँ रहे। भौंरे पक्षी और मृग का रूप धरकर देवता सिद्ध और मुनि प्रभु की सेवा करने लगे।

व्याख्या : ऐसे सुन्दर बन में एक पर्वत था। उसी के गुफा को प्रभु के ठहरने योग्य समझकर देवताओं ने सँवार रक्खा था। इसीलिए उसे अनूप कहते हैं अथवा उस पर्वत पर झरने और सरोवर आदि बहुत थे। इसलिए उसे अनूप कहते हैं। वर्षा की ऋतु आयी थी। अतः प्रभु ने पर्वत पर ठहरना ही उचित माना। सुग्रीवजी से भी कह चुके हैं : रहिहौं निकट सैल परछाई। देवताओं की सेवा स्वीकार कर रहे हैं। इसलिए कवि ने : सुरभूपा कहा। सीताजी का हरण हो चुका है। इसलिए अनुज सहित रहना कहा।

देवता लोग भौंरे पक्षी और मृग का रूप धारण करके तथा सिद्ध और मुनि अपने स्वाभाविक रूप से प्रभु की सेवा कर रहे हैं अथवा भौंरे के रूप से देवता पक्षी के रूप से सिद्ध और मृग के रूप से मुनि प्रभु की सेवा करते हैं। देवता सिद्ध और मुनि पूज्य हैं। प्रभु ने नरावतार धारण कर रक्खा है। मर्यादा पुरुषोत्तम उन पर पूज्य दृष्टि रखते हैं। उनसे साक्षात् सेवा न लेंगे। इसलिए रूपान्तर से सेवा कर रहे हैं। यथा : मृग बिलोकि खग बोलि सुबानी। सेवहिं सकल राम प्रिय जानी। मधुकर निकर भेरि सहनाई।

मंगल रूप भयउ बन तबतें। कीन्ह निवास रमापति जबतें ॥
फटिक सिला अति सुभ्र सुहाई। सुख आसीन तहाँ द्वौ भाई ॥३॥

अर्थ : जब से रमानाथ ने वहाँ निवास किया तब से वन मङ्गल रूप हो गया। स्फटिक की शिला अत्यन्त स्वच्छ और सुन्दर थी। उस पर दोनों भाई सुखासन से बैठते थे।

व्याख्या : माता का आशीर्वाद है कि जौ पितु मातु कहेउ बन जाना। तौ कानन सत अवध समाना। उसी का साफल्य दिखाते हुए कहते हैं कि जहाँ प्रभु का विश्राम होता है वही वन मङ्गलमय हो जाता है। अथवा प्रभु रमानिवास हैं। जहाँ जाते हैं वहाँ लक्ष्मी छा जाती हैं। उस समय जिस वन के पर्वत पर प्रभु ने डेरा दिया वह वन मङ्गलमय हो गया।

जिस शिला पर प्रभु आसीन होते हैं उसी की शोभा स्फटिक शिला सी हो जाती है अथवा जब देवताओं ने पर्वत के गुफा को प्रभु के रहने के लिए सँवारा तो बाहर बैठने के लिए स्फटिक की शिला भी रख दी। बड़ा घोर निर्जन बन है। यहाँ मुनियों का भी आश्रय सन्निकट नहीं है। उन लोगों के भी आने जाने की कोई बात नहीं है। अतः चित्रकूट की भाँति वेदिका की आवश्यकता नहीं थी। भगवती भी साथ नहीं। केवल दोनों भाइयों को ही एक साथ बैठना है। इसलिए स्फटिक शिला ही यथेष्ट थी। जब नित्यकृत्य से निवृत्त होते थे तो दोनों भाई उसी पर आसीन होते थे।

५०. वर्षा शरद वर्णन प्रसङ्ग

कहत अनुज सन कथा अनेका। भगति बिरति नृप नीति बिबेका ॥
बरषा काल मेघ नभ छाये। गर्जत लागत परम सुहाये ॥४॥

अर्थ : भाई से भक्ति, वैराग्य, राजनीति और विवेक की अनेक कथाएँ कहा करते थे। वर्षाऋतु में मेघ आकाश मण्डल में घिर गये। गरजने के समय बड़े सोंहावने लगते थे।

व्याख्या : अनधिकार चर्चा शास्त्र से निषिद्ध ठहरायी गयी। पराये की चर्चा करना अथवा काम कथा जिसे गपशप कहते हैं पाप है। नियम यह है कि जब फुरसत रहे : कृतक्षण हों तब संस्कार को जाग्रत् रखने तथा दृढ़ करने के लिए शास्त्रीय चर्चा करे। तदनुसार प्रभु जब फुरसत से बैठते हैं तो शास्त्रीय चर्चा करते हैं। पञ्चवटी में जब ठहरे थे तब उस समय भी एहि बिधि गये कछुक दिन बीती कहत बिराग ग्यान गुन नीती। शास्त्र चर्चा ही होती थी इस समय भी वही हो रही है।

पहिले कह चुके हैं गत ग्रीषम बर्षा रितु आई। सो आगयी। आकाश में बादल घिर आये। वर्षा काल में मेघ की शोभा होती है। असमय के मेघ शोभित नहीं होते और जब वर्षा काल के मेघ गर्जन करने लगते हैं तो उनकी बड़ी शोभा बढ़ जाती है। यह कवि की उक्ति है। विरही को पावस ऋतु महा दुःखदायक हो जाता है। प्रभु इस समय विरही हैं। अतः उनके मुख से दूसरे प्रकार से वर्णन कराना है।

दो. लछिमन देखु मोरगन, नाचत बारिद पेखि।
गृही बिरति रत हरष जस, बिष्णु भगत कहुँ देखि ॥१३॥

अर्थ : हे लक्ष्मण ! देखो मोर लोग मेघ को देखकर नाच रहे हैं। जैसे वैराग्य में लगा हुआ गृहस्थ विष्णुभक्त को देखकर हर्षित हो उठता है !

व्याख्या : रामजी छोटे भाई लक्ष्मण से कहते हैं कि देखो लक्ष्मण मेघ को देखकर मोरगण ऐसे प्रसन्न हुए कि नाच उठे। दृढ़ आशा बँध गयी कि पानी पड़ेगा। जल ज्यों दादुर मोर भये पीन पावस प्रथम। इसी भाँति उदासीन गृहस्थ जिन्हें वैराग्य हो चला है और गृहस्थी का त्याग नहीं किया है उनकी शास्त्र में उदासीन संज्ञा है : भी विष्णु भक्त को देखकर हर्षातिरेक से नाचने लगते हैं। उन्हें भी दृढ़ आशा हो जाती है कि अब : राम चरित वर वारि की वर्षा होगी। वेद पुराण रूपी समुद्र से रामचरित रूपी श्रेष्ठ जल लेकर ये महात्मा गर्ज गर्ज कर वर्षा करेंगे।

भाव यह कि अपनी प्रिया से युक्त होने से मोरगण मेघागम से इस प्रकार हर्षित हैं। परन्तु वियोग के कारण मुझे हर्ष नहीं होता। यहाँ सांसारिक वस्तुओं

की अवस्तुता कही। वही वस्तु एक के लिए सुखदायक है दूसरे के लिए दुःखदायक है। अतः उसका वास्तविक रूप अनिर्वचनीय है। इससे विराग कहा और उदासीन गृही का विष्णु भक्त के दर्शन से हर्ष कहकर भक्ति दिखलाया।

घन घमंड नभ गर्जत घोरा। प्रिया हीन डरपत मन मोरा ॥
दामिनि दमक रह न घन माँही। खल कै प्रीति यथा थिर नाँही ॥१॥

अर्थ : आकाश में बादल घुमड़ कर घोर गर्जन कर रहे हैं। प्रियाहीन होने से मेरा मन डर रहा है। बिजली की चमक बादल में ठहरती नहीं। जैसे खल की प्रीति स्थिर नहीं रहती।

व्याख्या : घमण्ड होने से ही लोग गरजते हैं। ऊँचे चढ़ कर बैठते हैं। यहाँ बादल को भी जल का घमण्ड हो गया है। अतः आकाश पर चढ़कर घोर गर्जन कर रहा है। मोरगण तो नाचते हैं। पर मोर मन तो भयभीत हो रहा है। उसे डर है कि अब तप्त तेल की वर्षा होगी। यथा : बारिद तपत तेल जनु बरिसा।

बिजली की चमक से सारा आकाश चमक उठता है। पर वह चमक ठहरती नहीं। तुरन्त अलक्षित हो जाती है। यही दशा खल की प्रीति की है। कभी अनुराग का प्रकाश बड़े जोरों से हो जाता है पर वह ठहरता नहीं। स्वार्थ समाप्त होते ही समाप्त हो जाता है। घन और मोर दूर हैं। फिर भी प्रेम चिरस्थायी है। घन और दामिनि एकत्र हैं पर प्रीति स्थिर नहीं है। यथा : बहु विधि खल सीतहि समुझावा। पुनः सुनत वचन पुनि मारन धावा।

यहाँ प्रकृति की शोभा का वर्णन करते हुए कवि ने भौतिक जगत् की घटनाओं का इतना सुन्दर सादृश्य मानसिक जगत् की घटनाओं के साथ वर्णन किया है कि सहृदय व्यक्ति ही उसका ठीक रसास्वादन कर सकता है।

दामिनि दमक रह न घन माही से नीति कहा।

बरषहिं जलद भूमि नियराये। जथा नवहिं बुध बिद्या पाये ॥
बूंद अघात सहहिं गिरि कैसे। खल के बचन संत सह जैसें ॥२॥

अर्थ : भूमि के निकट आये हुए बादल बरसते हैं जैसे विद्या पाकर पण्डित नम्र हो जाते हैं। बूँदों की चोट पर्वत उसी भाँति सह रहे हैं जैसे खल के वचनों को सन्त सहते हैं।

व्याख्या : बादल आये बिजली चमकी। अब वर्षा होने लगी। तब कहते हैं कि बरसनेवाले बादल जलाधिक्य के कारण पृथ्वी की ओर लटक आये। दृष्टान्त देते हैं कि जैसे विद्या के अधिक हो जाने से पण्डित विनम्र हो जाते हैं। तभी उनसे जगत् का कल्याण होता है। कहा भी है : विद्या ददाति विनयम्। बिना विनय के विद्वान् को बिना जल का मेघ समझना चाहिए। यह नीति है।

पहली छूटी हुई बूँदों की चोट को कोई सह नहीं सकता। पर्वत ही उसे

आनन्दपूर्वक सहन कर सकते हैं। इसी भाँति खल के वचनों के सहने को किसी की सामर्थ्य नहीं। सन्त में ही इतनी क्षमा है कि उनके वचनों को आनन्दपूर्वक सहते हैं। क्षमा की परा सीमा सन्तों में है। खल वाक्य बाणों की झरी लगा देते हैं और वे उनका कल्याण मनाते हैं। यथा : आक्रुष्टः कुशलं वदेत्। यह सन्तों का विवेक है।

छुद्र नदी भरि चलीं तोराई। जस थोरेहु धन खल इतराई॥
भूमि परत भा ढाबर पानी। जनु जीवहि माया लपटानी॥३॥

अर्थ : छोटी नदियाँ भरकर बड़े वेग से चलीं। जैसे : थोड़े से धन में खल इतराकर चलता है। पृथ्वी पर पड़ते ही पानी मैला हो जाता है। जैसे जीव को माया लपट गयी हो।

व्याख्या : पहिले ही पानी में पहाड़ी नदियों में जो बारह महीने सूखी पड़ी रहती हैं बड़ी अनिष्टकारी बाढ़ आ जाती है। उस वेग में जो पड़ा उसका पता नहीं लगता। इसी भाँति थोड़े से धन की प्राप्ति होते ही खल की गति बड़ी विचित्र हो जाती है। उस समय जो उसके सामने पड़ा उसे वह समाप्त ही कर देना चाहता है। उसका पैर पृथ्वी पर नहीं पड़ता। खल तो सदा ही परपीड़ा का रसिक है। उसका वश नहीं चलता। इसी से संसार चल रहा है। थोड़ा सा धन मिलते ही प्रभुता बढ़ती है। फिर होश में नहीं रह जाता। कोई अन्याय ऐसा नहीं है जो वह न कर सके। अतः उससे सावधान रहना चाहिए। यह नीति है।

पृथ्वी पर पड़ते ही वर्षा का शुद्ध जल पृथ्वी के रज के संयोग से मटमैला हो जाता है। इसकी उपमा जीव से देते हैं। इसे भी भूमिस्थ होते ही माया लिपट जाती है। माता के गर्भ से जीव को दिव्य ज्ञान हो जाता है। उसे अनेक जन्म का स्मरण हो आता है। वह भगवद्भजन : सांख्ययोग के अभ्यास की प्रतिज्ञा करता है। परन्तु ज्योंही वह गर्भ के बाहर आया और वैष्णवी वायु ने उसके भीतर प्रवेश किया तहाँ सब भूलकर माया में लिपट जाता है। विवेक के लिए उपदेश है।

तू निज कर्मजाल जहँ घेरो। श्रीहरि संग तज्यौ नहिं तेरो॥
बहु बिधि प्रतिपालन प्रभु कीन्ह्यो। परम कृपाल ज्ञान तोहि दीन्ह्यो॥

तोहि दिया ज्ञान विवेक जनम अनेक की तब सुधि भई।
तेहि ईस की हौं सरन जाकी बिषम माया गुन भई॥
जेहि किये जीव निकाय बस रसहीन दिन दिन अति नई।
सो करौं बेगि सँभार श्रीपति बिपति महँ जेहि मति दई॥

पुनि बहुबिधि गलानि जिय मानी। अब जग जाइ भजौं चक्रपानी॥
ऐसेहि करि विचार चुप साधी। प्रसव पवन प्रेरेउ अपराधी॥

प्रेरेउ जो परम प्रचंड मारुत कष्ट नाना तैं सह्यो।
सो ग्यान ध्यान विराग अनुभव जातना पावक दह्यो॥

विनयपत्रिका : १३६

सिमिटि सिमिटि जल भरहिं तलावा। जिमि सदगुन सज्जन पहिं आवा ॥
सरिता जल जलनिधि महुँ जाई। होहिं अचल जिमि जिव हरि पाई ॥४॥

अर्थ : चारों तरफ से इकट्ठा होकर जल तालाब को भर देता है। जैसे : सद्‌गुण सज्जन के पास आते हैं। नदी का जल समुद्र में जाकर अचल होता है। जैसे हरि को पाकर जीव : अचल होता है।

व्याख्या : जल की स्वभाव से ही निम्नगति है। अतः वह आकाश से च्युत होकर जिधर ढार पाता है उधर से बहता हुआ तालाब जैसे गहरे स्थल में भरता जाता है। पहाड़ पर जो जल वर्षा का गिरा उसमें तो कुछ तो पहाड़ी नदियों द्वारा निकल गया। कुछ योंही चारो ओर से बह चला। वह तालाबों को भरने लगा। इसी भाँति तालाबों की तरह सज्जन लोग गम्भीर होते हैं। उनमें ग्रहण करने की शक्ति होती है। उनमें गुण आप से आप आकर इकट्ठे होते हैं। नीति का उपदेश है।

नदियों में जो जल प्राप्त होते हैं वे बहते बहते समुद्र में पहुँचते हैं। तब वे स्वयं होकर अचल हो जाते हैं। इस बात की उपमा जीव की गति से देते हैं। वह भव प्रवाह में पड़ा बहता चला जाता है और तब तक उसे विश्राम नहीं मिलता जब तक कि उसे भगवत् के चरणों की प्राप्ति नहीं होती। यह भक्ति का उपदेश है।

दो. हरित भूमि तृन संकुल, समुझि परहि नहि पंथ।
जिमि पाखंड वाद तें, गुप्त होहिं सदग्रन्थ ॥१॥

अर्थ : तृणों से भरी हुई भूमि हरी हो रही है। रास्ता समझ में नहीं आता है। जैसे : पाखण्डवाद से सद्‌ग्रन्थ लुप्त हो जाते हैं।

व्याख्या : सद्‌ग्रन्थ ही रास्ते हैं। उन्हीं के दिखाये लक्ष्य पर चलना है। उन्हें पाखण्डवाद रूपी हरा तृण ढक लेता है। अतः वे दिखाई नहीं पड़ते : गुप्त हो जाते हैं। तब आपत्ति में पड़े हुए पुरुषों को रास्ता समझ में नहीं आता। वेदादि शास्त्रों को प्रमाण न मानकर हेतुवाद करना ही पाखण्डवाद है। पाखण्डवाद का उपदेश है : नह्याप्तवादा नभसो निपतन्ति महासुराः। युक्तिमद्वचनं ग्राह्यं मयान्यैश्च भवद्विधैः। अर्थ : हे महा सुरगण! श्रुति आदि आप्तवाक्य कुछ आकाश से नहीं गिरा करते। हमको तुमको और सबको युक्तियुक्त वाक्यों को ग्रहण करना चाहिए। युक्तियुक्त वाक्य सुनिये। सत्य कभी सिद्ध हो नहीं सकता। प्रमाण के दुष्ट होने से प्रमिति अप्रमिति हो जाता है। प्रमाणों का दोषरहित होना प्रमाणान्तर से सिद्ध होगा और वह प्रमाणान्तर भी दूसरे प्रमाण से सिद्ध होगा। इस अनवस्था से कुछ भी प्रमिति नहीं हो सकती। प्रमाता, प्रमिति, प्रमाण सब असिद्ध हैं। अनेक प्रकार के सम्पूर्ण विकल्पों का शून्य ही अवलम्बन है। प्रमाण का अविषय होने से ही शून्य शून्यात्मता को प्राप्त हुआ है। इसलिए शून्य है। यही निर्णय है। वेदादि शास्त्रों को अपौरुषेय मानना मूर्खता है। वे सब मनुष्यों के मनगढ़न्त हैं। उस समय के लोगों के लिए वे काम के थे। अब वे दिन लद गये। अब हम लोग जो कहें वही वेद है। वही प्रमाण

है। हिंसा से भी धर्म होता है : यह बात किसी प्रकार युक्तिसंगत नहीं है। अग्नि में हवि जलाने से फल होगा यह भी बच्चों की सी बात है। अनेक यज्ञों द्वारा देवत्व लाभ करके यदि इन्द्र को शमी आदि काष्ठ ही भोजन करना पड़ता है तो इससे तो पत्ते खानेवाला पशु ही अच्छा है। यदि यज्ञ में बलि किये हुए पशु को स्वर्ग होता है तो यजमान अपने पिता को क्यों नहीं मारता। यदि किसी अन्य पुरुष के भोजन से अन्य की तृप्ति होती है तो विदेश जानेवाले पिता के लिए पुत्र श्राद्ध क्यों नहीं कर दिया करते। खाद्य पदार्थ के ढोने का परिश्रम क्यों किया जाता है ? यह सब अन्धश्रद्धा है इसकी उपेक्षा करनी चाहिए और अपने श्रेय साधन के लिए जो कुछ मैंने कहा है उसमें रुचि करना चाहिए एवं पाखण्डवाद हरी हरी घासों की भाँति सन्मार्ग को ढँक लेता है। अविवेकी पुरुष विषय के लोलुप पशु की भाँति उसी को चाह करते हैं। अन्त में ऐसी दुर्दशा की अवस्था को प्राप्त होते हैं कि उन्हें कोई रास्ता नहीं सूझता। आँखों देखते हैं कि इस रास्ते के कारण देश के देश का सर्वनाश हुआ चाहता है। पर वे ऐसी परिस्थिति में पड़ जाते हैं कि वे उसे छोड़ नहीं सकते। इस पाखण्डवाद के बढ़ जाने से प्रचाररहित होकर सद्ग्रन्थ गुप्त हो जाते हैं।

कवि कहते हैं कि यह बरसात भर की बात है। थोड़े ही दिनों में वे घास नष्ट हो जाती हैं। मार्ग स्वच्छ हो जाता है और सद्ग्रन्थ फिर प्रकट हो जाते हैं।

इस भाँति श्रावण का वर्णन समाप्त हुआ। एक दोहे में श्रावण का वर्णन करके अब दूसरे दोहे में भाद्रपद का वर्णन करते हैं। भक्ति, विरति, नृपनीति, विवेक की कथा कहते थे। बीच बीच में वर्षा की घटनाओं का उल्लेख दृष्टान्त रूप में करते जाते थे। कवि ने उनको एकत्रित करके एक साथ लिख दिया है।

दादुर धुनि चहुँ दिसाँ सोहाई। बेद पढ़हिं जनु बटु समुदाई ॥
नव पल्लव भये बिटप अनेका। साधक मन जस मिलें बिबेका ॥१॥

अर्थ : मेढकों की ध्वनि चारों दिशाओं में सुशोभित हो रही है। जैसे ब्रह्मचारियों का समूह वेद पढ़ रहा हो। अनेक वृक्ष नव पल्लव युक्त होकर सुशोभित हैं। जैसे विवेक के मिलने से साधक के मन की शोभा होती है।

व्याख्या : भाद्रपद में तीज के लगभग हस्त नक्षत्र में सामवेदियों का उपाकर्म होता है। तालाबों के चारों ओर वेद ध्वनि होती है। गुरुओं के साथ ब्रह्मचारी लोग वेद पढ़ते हैं। किसी ओर कोई मन्त्र पढ़ा जाता है किसी ओर दूसरा ही मन्त्र बोला जाता है। सब मिलकर एक ध्वनि हो रही है। उसी को मेढकों के बोलने से उपमित कर रहे हैं। नहीं तो मेढक तो पावस के आरम्भ में जल के गिरते ही बोलने लगते हैं। जहाँ केवल गुरु लोग ही एकत्र होकर वेद पढ़ते है : वहाँ कवि कहते हैं : भवन वेद धुनि अति मृदु बानी। जिमि खग मुखर समय जनु सानी। वेद में तथा पुराण में भी वेदध्वनि की उपमा दादुर ध्वनि से दी हुई है।

पानी पड़ने पर कुछ दिनों में बहुत से वृक्ष पल्लवित हो जाते हैं। उनकी शोभा हो जाती है। उसी की उपमा विवेकयुक्त साधक के मन से देते हैं। साधक अर्थार्थी भक्त को कहते हैं। यथा : साधक नाम जपहिं लय लाये। होहिं सिद्ध अनिमादिक पाये : अर्थार्थी को विवेक नहीं होता। वे तो अणिमादिक सिद्धि के लिए साधन करते हैं। उनकी शोभा नहीं क्योंकि उनका साधन फल के लिए होता है। यदि उन्हें विवेक की प्राप्ति हो जाय तो वे वही साधन ईश्वर प्रीत्यर्थ करने लगते हैं और तब उनके साधन की शोभा होती है। यथा : जो कछु करइ कर्म मन बानी।। वासुदेव अर्पित नृप ग्यानी। इससे विवेक का उपदेश दिया।

अर्क जवास पात बिनु भएऊ। जस सुराज खल उद्यम गएऊ ।।
खोजत कतहूँ मिलिइहि धूरी। करै क्रोध जिमि धर्महि दूरी ।।२।।

अर्थ : मदार और जवास : हिंगुआ : बिना पत्ता के हो गये। जैसे सुराज में खल के उद्यम नष्ट हो जाते हैं। खोजने से ही कहीं धूलि मिलेगी। जैसे क्रोध धर्म को दूर कर देता है।

व्याख्या : ग्रीष्म ऋतु कुराज रहा। राजा प्रजा का खूब शोषण कर रहा था। प्रजा के हित पर ध्यान नहीं करता था। उस समय मदार और जवास रूपी खल खूब हरे भरे हो रहे थे। यथा : बाढ़े खल बहु चोर जुआरा। जे लम्पट पर धन परदारा। इत्यादि। पावस की झरी लगते ही उनके पत्ते गिर गये। इस भाँति सुराज होते ही खल का उद्यम चला गया। यथा : अघ उलूक जहँ तहाँ लुकाने। काम क्रोध कैरव सकुचाने। मत्सर मान मोह मद चोरा। इनकर हुनर न कौनिउ ओरा। यह राजनीति विषयक उपदेश है।

पावस में धूलि सब कीचड़ में मिल जाती है। नगर में धूलि मिलनी कठिन हो जाती है वन में कहाँ मिले। कहीं पर्वत की गुफाओं में खोजने से मिल जाय तो सम्भव है। इसी भाँति क्रोध आ जाने पर धर्म का कहीं पता नहीं लगता। क्रुद्धः पापं न कुर्यात् कः क्रुद्धो हन्याद्गुरूनपि। क्रोधी कौन सा पाप नहीं करता। वह अपने गुरु को मार सकता है। ऐसे कोई ही महात्मा होते हैं जिनमें क्रोध आने पर भी कुछ धर्म बचा रहे। यथा : बहे न हाथु दहे रिसि छाती। भा कुठार कुंठित नृप घाती। यह विरति का उपदेश है।

ससि[1] संपन्न सोह महि कैसी। उपकारी कइ संपति जैसी ।।
निसि तम घन खद्योत बिराजा। जिमि दंभिन कर मिला समाजा ।।३।।

अर्थ : धान से युक्त पृथ्वी कैसी शोभित है। जैसे उपकारी की सम्पत्ति से शोभा होती है। रात के घने अन्धकार में जुगुनू विशेषरूप से चमक रहे हैं। जैसे दम्भियों का समाज जुट गया हो।

---

१. इः स्वप्नादौ इस सूत्र से स का इ होकर शस्य का ससि रूप सिद्ध हुआ।

पृथ्वी सबका उपकार करनेवाली है। यथा : संत बिटप सरिता गिरि धरनी। परहित हेतु सबनि कै करनी : परन्तु जब वह धान से लहलहाने लगती है तब उसकी शोभा अधिक हो जाती है। क्योंकि जगत् के उपकार की सामग्री उसके पास अधिक हो गयी। इसी भाँति उपकारी की शोभा उसके पास सम्पत्ति आने से होती है। क्योंकि तभी वह उपकार करने में यथेष्ट समर्थ हो सकता है। यहाँ देशवल से ससि का अर्थ शस्य : धान : हुआ। चन्द्रमा नहीं हुआ। शस्य का तद्भवरूप ससि होता है।

भादों के रात की अँधियारी प्रसिद्ध है। उसमें खद्योत विराजमान होते हैं। रात में राजते हैं और अँधेरी रात में विराजते हैं। जैसे अविद्यान्धकार में कहीं धर्म का नाम नहीं। केवल दाम्भिक समाज में धर्म की चमक उसी भाँति दिखाई पड़ती है जैसे जुगुनू की चमक हो। पेड़ों पर जब अँधेरी रात को जुगुनू का समाज चमकता है तो एक बार पेड़ भी स्पष्ट हो जाता है। परन्तु उससे अन्धकार ही बढ़ता है। उस प्रकाश को प्रकाश में गिनती नहीं है। इस भाँति अधार्मिक समाज अपने दम्भ से बार बार प्रकाशित होता है। पर उसका दम्भ धर्म नहीं है। केवल लोगों को धोखा हो जाता है कि धर्म हो रहा है।

महा बृष्टि चलि फूटि कियारी। जिमि सुतंत्र भये बिगरहिं नारी ॥
कृषी निरावहिं चतुर किसाना। जिमि बुध तजहिं मोह मद माना ॥४॥

अर्थ : जब बड़ी भारी वर्षा होती है तो मेंड़ : मर्यादा : टूट जाती है। जैसे अरक्षित होने से स्त्री बिगड़ जाती है। चतुर किसान खेती को निराते : घास पात दूर करते हैं। जैसे पण्डित मोह मद मान का परित्याग करते हैं।

व्याख्या : बड़ी भारी वृष्टि होने से किसान मेंड़ : कियारी : की रक्षा नहीं कर सकता। ऐसे पानी में बाहर निकलना कठिन होता है। खेत तक पहुँचना तो और भी कठिन है। अरक्षित होकर कियारी जल का वेग स्वभावतः नहीं सह सकती। इसी भाँति स्वतन्त्र होकर स्त्रियाँ बिगड़ जाती हैं।

स्त्री जाति का शारीरिक संगठन ही ऐसा है कि वे अपनी रक्षा स्वयं करने में सर्वथा असमर्थ हैं। जो आँखों के होने पर भी उससे काम न लेना चाहे और स्त्री तथा पुरुष को समान बतावे उसे कोई कैसे समझा सकता है। इसीलिए जगत् स्रष्टा का वचन है कि स्थान न होने से प्रार्थयिता न होने से स्त्री में सतीत्व उत्पन्न होता है। जब सतीत्व उत्पन्न हो गया तब तो वह उसके लिए परमगति तक सुलभ हो जाता है। यथा : बिनु श्रम नारि परम गति लहई। पतिव्रत धर्म छाड़ि छल गहई। पिता स्त्री की कुमारावस्था में रक्षा करे। भर्त्ता यौवन में रक्षा करे। वृद्धावस्था में पुत्र रक्षा करे। स्त्री में अरक्षित रहने की योग्यता नहीं है। उनकी परतन्त्र रूप से सृष्टि ही हुई है। उनका सच्चा सुख पिता पति तथा पुत्र पारतन्त्र्य में है। स्त्री हृदय के न जाननेवाले सुधारक इस विषय में भ्रान्त हैं। यथा :

पाया न समझ माली गँवार।

क्या प्रेम नेम था वेली में। क्या क्या गुन थे अलवेली में॥
वह तरु के ऊपर चढ़ती थी। फैलती फूलती फलती थी॥
जब प्रेम पाश उसने डाला। बँध गया पेड़ हो मतवाला॥
यह बेलि वृक्ष का दिव्य प्यार। पाया न समझ माली गँवार॥१॥

दोनों ही मिलकर हुए एक। रह गया नहीं कुछ भी विवेक॥
लू झंझा अन्धड़ बज्रपात। दोनों सहते थे एक साथ॥
तरु के सुख में बेली निहाल। बेली के दुख में तरु विहाल॥
दाम्पत्य प्रेम का यही सार। पाया न समझ माली गँवार॥२॥

देखिये बेलि तरु के अधीन। पर बात नहीं यह समीचीन॥
वस्तुतः वृक्ष ही पराधीन। बेली के बन्धन कठिन पीन॥
वह व्यापि रही है डार डार। तरु के उर पै करती विहार॥
क्या थी तरु को वह बेलिभार। पाया न समझ माली गँवार॥३॥

है जहाँ प्रेम का राज पाट। फिर कहाँ नेम का ठाट बाट॥
केवल भर्ता है अमित दानि। किस गिनती में है लाभ हानि॥
जब दुख सुख दो का हुआ एक। सह सके प्रेम क्या भेद नेक॥
है नहीं स्वार्थ का कुछ बिचार। पाया न समझ माली गँवार॥४॥

उसने बेली का किया पक्ष। समझा अपने को बड़ा दक्ष॥
जब स्वत्व बेलि का अलगाया। आपसी प्रेम को बिलगाया॥
यों बीज फूट का डाल दिया। प्रिय प्रेम पेज पामाल किया॥
कहता फिरता इसको सुधार। पाया न समझ माली गँवार॥५॥

बेली को तरु से हटा दिया। अपने पैरों पर खड़ा किया॥
उसको स्वतन्त्रता सिखलाया। पश्चिम का रास्ता बतलाया॥
वह भूल गई अपना स्वभाव। लायी अपने में वृक्ष भाव॥
पर रह सकती क्या निराधार। पाया न समझ माली गँवार॥६॥

फिर पतित हुई वह बार बार। कैसे कोई सकता सँभार॥
तब हुआ भूमि पर ही पसार। उस पर भी सबका पग प्रहार॥
दुर्दशा गर्त्त में गिरी जाय। स्वातन्त्र्य पाठ पढ़ निःसहाय॥
इस भाँति हुआ उपवन उजार। पाया न समझ माली गँवार॥७॥

जिस ओषधि का जो खेत हो उसमें से विजातीय ओषधि को दूर करने : न्यारा करने : को निराना कहते हैं। विजातीय ओषधियों के साथ से धान की उपज भारी पड़ती है और वह विजातीय ओषधि ऐसी होती है कि आरम्भ में उसका पहिचानना कठिन होता है। चतुर किसान ही उनके भेद को पहिचानते हैं। वे विजातीय ओषधि को अंकुरित होते ही उखाड़ कर दूर फेंकते हैं। यह शरीर ही

खेत है यथा : इदं शरीरं कौन्तेय क्षेत्रमित्यभिधीयते इसके किसान मन, वाणी और कर्म हैं। इसमें पाप और पुण्य दो प्रकार के बीज हैं। इनमें से पाप बीज की इतनी बहुतायत है कि वह स्वभाव से ही खेत में पहुँच जाता है और पुण्य का बीज बोने से जमता है। किसान अपने-अपने खेत में पुण्य बीज बोता है। विचार, क्षमा, सन्तोषादि पुण्य बीज हैं। जब ये बीज अङ्कुरित होते हैं तो इसके साथ ही मोह, मद, मानादि पाप बीज भी अङ्कुरित होते हैं। गँवार किसान अर्थात् असंस्कृत मन वाणी कर्म वाले को दोनों में भेद नहीं जान पड़ता। सभी प्रिय मालूम होते हैं। उन्हें साथ ही बढ़ने का सुभीता देने से विचार क्षमा सन्तोषादि पुण्यौ-षधियाँ मारी पड़ती हैं। बुध अर्थात् जिनके मन वाणी और कर्म सुसंस्कृत हैं वे इन विजातीय ओषधि मोह मद मान को अङ्कुरित होते ही उखाड़ फेंकते हैं। क्योंकि बड़े हो जाने पर इनका उखाड़ना भी कठिन हो जाता है और तब तक विचार क्षमा सन्तोषादि दुर्बल हो जाते हैं। यथा : करुणा निधि मन दीख विचारी। उर अंकुरेउ गर्व तरु भारी। वेगि सो मैं डारिहौं उखारी। पन हमार सेवक हितकारी। यह विवेकसम्बन्धी उपदेश है।

देखिअत चक्रवाक खग नांही। कलिहि पाइ जिमि धर्म परांही ॥
ऊसर बरषै तृन नहिं जामा। जिमि हरिजन हिय उपज न कामा ॥५॥

अर्थ : चक्रवाक पक्षी दिखायी नहीं पड़ रहे हैं। जैसे कलियुग को पा कर धर्म भाग जाते हैं। ऊसर में वर्षा होने से तृण नहीं जमता जैसे हरिजन के हृदय में काम नहीं उत्पन्न होता।

व्याख्या : पावस में सब पक्षी दिखायी पड़ते हैं। पर चक्रवाक : चकवा : नहीं दिखायी पड़ते। जैसे कलियुग के प्राप्त होने पर धर्म भाग जाते हैं। ऊसर में भी वर्षा होती है पर उसमें तृण नहीं जमता। जैसे भगवद्भक्त के हृदय में काम नहीं उपजता।

पावस में चक्रवाक दिखायी नहीं पड़ते। इसका मतलब यह नहीं कि वे मर जाते हैं। केवल उनका प्रचार विरल हो जाता है। वे यहाँ मैदान से कहीं हट जाते हैं। पर्वतादि पर चले जाते हैं। छिपे छिपाये रहते हैं। इसी भाँति कलियुग आने से भारतवर्ष में धर्म का विरल प्रचार रह जाता है। भारतवर्ष में ही चारों युगों की व्यवस्था है। अतः जहाँ जहाँ युगों की व्यवस्था है वे सभी देश भारतवर्ष के अन्तर्गत हैं। उन देशों में कलियुग के प्रचार के बढ़ने के साथ ही साथ धर्म की व्यवस्था घटती ही जाती है। कलियुग का पूर्ण प्रचार होने पर कहीं दिखायी नहीं पड़ता। पर धर्म नष्ट नहीं होता। जहाँ या जिस व्यक्ति में कलियुग का प्रभाव कम पड़ता है वहाँ और उस व्यक्ति में किसी रूप या किसी परिमाण में धर्म रह जाता है। खुले मैदान धर्म का प्रचार नहीं रह जाता।

हरिजन का अर्थ हरिभक्त है। आज यह कहना पड़ता है कि हरिजन का

अर्थ अन्त्यज जाति नहीं है। कुछ लोगों ने देश का कल्याण इसी में देखा है कि अन्त्यज जाति को हरिजन नाम देकर उस जाति की अस्पृश्यता को अमर कर दें और हरिजन शब्द को अपने मुख्य अर्थ से नीचे गिरा दें। वस्तुतः हरिजन शब्द का अर्थ बहुत उदार है। इससे जाति व्यवस्था से कोई सम्पर्क नहीं है। जो कोई प्राणी भगवद्भक्त हो वह हरिजन है। चाहे वह ब्राह्मण हो चाहे चमार हो। उस शब्द को इतना संकीर्ण कर देना कि वह केवल किसी जाति विशेष का बोधक रह जाय कलियुग के शासन की महिमा है।

हरिजन के मन में काम की उत्पत्ति नहीं होती। जिसके मन में काम की उत्पत्ति हो वह हरिजन नहीं है। श्री आचार्य चरण कहते हैं कि कामरूपी बीज के लिए हरिजनरूपी क्षेत्र ऊसर है। कैसा ही आलम्बन या उद्दीपन हो पर हरिजन के मन में काम बीज अङ्कुरित हो ही नहीं सकता। हरिजन के मन में काम के लिए उर्वरा शक्ति नहीं है। वह शक्ति भगवच्चरणों में लग गयी है।

विविध जन्तु संकुल महि भ्राजा। प्रजा बाढ़ जिमि पाइ सुराजा ॥
जहँ तहँ रहे पथिक थकि नाना। जिमि इन्द्रिय गन उपजे ग्याना ॥६॥

अर्थ : पृथ्वी अनेक प्रकार के जन्तुओं से भरी हुई शोभायमान है। जैसे अच्छे राजा को पाकर प्रजा बढ़ती है। जहाँ तहाँ अनेक पथिक थक कर ठहर गये। जैसे ज्ञान के उपजने पर इन्द्रिय गण थक कर अपना कार्य करने में असमर्थ हो जाते हैं।

व्याख्या : वर्षा होने से अनेक प्रकार के जीव उत्पन्न हो जाते हैं। पृथ्वी क्षुद्र जन्तुओं से भर उठती है। इसी भाँति अच्छे राजा के होने से प्रजा सुखी होती है। उनकी रक्षा होती है। इसीलिए उनको बढ़ोत्तरी होती है। सुख से ही प्राणी उत्पन्न होते हैं और सुख से हो जीते हैं। आनन्दाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते आनन्देन जातानि जीवन्ति। कुराज में प्रजा दुःखी होती है उनकी रक्षा नहीं होती। इसलिए प्रजा उजड़ जाती है। यह राजनीति का उपदेश है। बरसात में पथिक लोग जहाँ के तहाँ थक कर ठहर जाते थे, रास्ता चलना बन्द हो जाता था। नदी-नद के उमड़ने से और वर्षा की झरी लग जाने से रास्ता चलना कठिन हो जाता था। इस भौतिक उन्नति के समय जब कि इतने साधन बाधाओं के अतिक्रमण के लिए सुलभ हैं। वर्षा के समय तो रास्ता बन्द ही हो जाता है और जब वे साधन नहीं थे तब तो ग्राम सोमोल्लंघन करना भी अनुचित समझा जाता था। उस समय निरुपाय होकर पथिक जहाँ तक पहुँचे थे वहीं ठहर जाते थे।

ज्ञान के उत्पन्न होने पर वही गति इन्द्रियों की हो जाती है। नहीं भोजन करने से भी इन्द्रियाँ अपने अपने विषयों को नहीं ग्रहण करतीं। परन्तु उन उन विषयों के आनन्द का संस्करण उनमें बना रहता है। पर आत्मदर्शन से वह संस्करण भी जाता रहता है। तब वे विषय ग्रहण में असमर्थ भी हो जाती हैं। यथा : कर्म कि होहिं सरूपहिं चीन्हे।

दो. कबहुँ प्रबल वह मारुत, जहँ तहँ मेघ बिलाहिं।
जिमि कपूत के उपजें, कुल सद्धर्म नसाहिं ॥१५॥

अर्थ : कभी हवा जोर से चलती है और मेघ जहाँ तहाँ हट जाते हैं। जैसे कपूत के उपजने से कुल का सद्धर्म नष्ट हो जाता है।

व्याख्या : मेघ को सद्धर्म और कपूत के उपजने को प्रबल मारुत के बहने से उपमित किया है। हमारे यहाँ कपूत सपूत का निर्णय धनोपार्जन के तारतम्य से नहीं होता था। सब प्रकार से योग्य होने पर भी जिसने कुल धर्म का पालन न किया वह कपूत ही है। इसी से वर्ण सङ्कर की गणना कपूत में की गयी है। वर्ण सङ्कर पुत्र कुलघ्नों के कुल के नरक के लिए होते हैं। उनके पितरों का पिण्डोदक क्रिया के लुप्त हो जाने से पतन होता है। जिन लोगों द्वारा कुल धर्म और जाति धर्म नष्ट होता है वे सब कुपुत्र हैं। जो नरक से पितरों की रक्षा करे वही पुत्र है। जिस भाँति प्रबल वेग से वायु के बहने से मेघों का नाश होता है वैसे ही कपूतों के उपजने से कुल के सद्धर्मों का नाश होता है। जो धर्म दूसरे का नाश करते हैं वे धर्म नहीं हैं कुधर्म हैं। सद्धर्म वही है जो सबको अपने धर्म की मर्यादा पर दृढ़ करे। यथा : स्वधर्मो निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः। यह नीति का उपदेश है।

दो. कबहुँ दिवस महँ निविड़ तम, कबहुँक प्रगट पतंग।
बिनसै उपजै ग्यान जिमि, पाइ कुसंग सुसंग ॥१६॥

अर्थ : कभी दिन में घोर अन्धकार छा जाता है और कभी सूर्य नारायण प्रगट हो जाते हैं। जैसे कुसङ्ग और सुसङ्ग से ज्ञान उत्पन्न होता है और नष्ट हो जाता है।

व्याख्या : अविद्या निशा में तो अन्धकार रहता ही है। परन्तु विद्यारूपी दिन में भी कुसङ्ग से ज्ञान रवि ढँक जाया करते हैं। यथा : को न कुसंगति पाइ नसाई। रहै न नीच मते चतुराई। इसी भाँति बरसात में दिन के समय भी बादलों के घिरने से कभी घोर अन्धकार हो जाता है और कभी सूर्य के दर्शन में उजेला हो जाता है। यहाँ सूर्य के दर्शन को सुसङ्ग से बादल के घिर जाने को कुसङ्ग से उजेले को ज्ञान से और अँधेरे को अज्ञान से उपमित किया है। यह विवेकसम्बन्धी उपदेश है। यहाँ भादों का वर्णन समाप्त होता है।

बरषा बिगत सरद रितु आई। लछिमन देखहु परम सुहाई ॥
फूले कास सकल महि छाई। जनु बरषाकृत प्रगट बुढ़ाई ॥१॥

अर्थ : वर्षा बीत गयी। शरद ऋतु आ गयी। लक्ष्मण! देखो बड़ी शोभा हो रही है। फूले हुए कास समस्त पृथ्वी में छा गये। मानो वर्षा ने बुढ़ाई प्रगट कर दी।

व्याख्या : भाद्रपद का महीना बीत गया। सूर्य भगवान् कन्यागत हो गये। सो राम जी लक्ष्मण से कहते हैं कि यह ऋतु परम सोहायी है वर्षा को सोहायो नहीं कहा। क्योंकि प्रभु विरही हैं। विरहियों को वर्षा कष्टप्रद होती है। वहाँ लक्ष्मण को छोड़कर दूसरा कोई है नहीं। इसी से उन्हीं से कहते हैं। कुआर आते ही जब कासा फूलता है तब जंगल का जंगल श्वेत रंग का हो जाता है। उसी दृश्य को कहते हैं कि मानो वर्षा ने बुढ़ाई प्रगट कर दो। यहाँ काश के फूल का सादृश्य बृद्धों के श्वेत केश से दिया है।

उदित अगस्त पंथ जल सोखा। जिमि लोर्भाह सोखै संतोखा ॥
सरिता[1] सर निर्मल जल सोहा। संत हृदय जस गत मद मोहा ॥२॥

अर्थ : अगस्त्य ने उदय होकर रास्ते का जल सोख लिया जैसे लोभ को सन्तोष सोख लेता है। नदी और तालाब मलरहित जल से शोभित हुआ। जैसे सन्त का हृदय मद मोह से रहित होकर शोभित होता है।

व्याख्या : अगस्त्य ने समुद्र सोखा था। अतः उदित होने पर जो जल सूर्य के सोखने से बचा रहता है उसे वह सोख लेते हैं। जहाँ अगस्त्य का उदय हुआ तहाँ रास्ते का जल सूखा। इसी भाँति जहाँ सन्तोष का उदय हुआ वहाँ लोभ नहीं रह जाता। यथा :

वन के वृक्षों में लगते फल अनायास ही मिलते हैं। शीतल मधुर पुण्य सरिता जल सेतमेत के बहते हैं। कोमल पल्लव लतामयी बिस्तरे मुफ्त में बनते हैं। क्यों ये भुक्खड़ धनियों के द्वार पर धक्के सहते हैं ?

धन मिला कठिनता से अवश्य उसका भी।
या व्यय होगा या नाश वियोग व्यथा भी ॥
है लोप भला या उसका नहीं कमाना।
आया धन जावे दुख का नहीं ठिकाना ॥
जो नानामुख विजयी तीनों लोकों का।
जिसने चाहा था बन्धन द्विज देवों का ॥
दसशीश रूप है लोभ उसे मारूँगा।
श्री रामचन्द्र की समता मैं पाऊँगा ॥

इस भाँति जो लोभ ज्ञान सूर्य के सोखने से बच जाता है उसे सन्तोष सोखता है।

सरिता और तालाब में जल बरसात भर मिट्टी के मिलने से गँदला रहता है। आश्विन मास में ही मलरहित होकर शुद्ध होता है तब उसको शोभा होती है। यथा : संत हृदय जस निर्मल बारी। इस भाँति मोह मल से रहित होकर सन्त के हृदय की शोभा होती है।

---

१. यहाँ विनोक्ति : द्वितीय अलङ्कार है।

रस रस सूख सरित सर पानी । ममता त्याग करहिं जिमि ज्ञानी ।।
जानि शरद ऋतु खंजन आये । पाइ समय जिमि सुकृत सुहाये ।।३।।

अर्थ : नदी और तालाब का पानी धीरे धीरे सूख रहा है । जैसे ज्ञानी धीरे धीरे ममता त्याग करते हैं । शरद ऋतु जानकर खंजन आये जैसे समय जानकर सुन्दर पुण्य आजाते हैं ।

व्याख्या : नदी और तालाब का जल धीरे धीरे घटता है । इसी भाँति ज्ञानी धीरे धीरे ममता का त्याग करते हैं । अज्ञानी हठात् त्याग करके वान्ताशी होते हैं । यहाँ नदी तालाब की उपमा ज्ञानी से और जल की उपमा ममता से दी गयी है । जिस भाँति नदी तालाब में सर्वथा जल का अभाव नहीं होता उसी भाँति ज्ञानी में भी सर्वथा ममता का अभाव नहीं होता । उसकी ममता जड़ से छूटकर स्व स्वरूप शुद्ध चेतन में रह जाती है । बरसात में खञ्जन चले गये थे वे शरद का आगमन जान कर चले आये । जैसे अपने फल देने का अवसर जानकर पुण्य उदय हो जाते हैं । बिना पुण्य के सुख नहीं होता और बिना पाप के दुःख नहीं होता । जिस समय पाप के परिपाक का समय रहता है उस समय पुण्य नहीं दिखाई पड़ते । अपने फल देने के समय में आते हैं । इसीसे इनको खञ्जन से उपमित किया । भावार्थ यह कि शरद जानकर खञ्जन आये पर अभी तक सुग्रीव नहीं आये ।

पंक न रेनु सोह अस धरनी । नीति निपुन नृप के जसि करनी ।।
जल संकोच बिकल भइ मीना । अबुध कुटुम्बी जनु धन हीना ।।४।।

अर्थ : बिना कीचड़ और धूलि के पृथिवी ऐसा शोभा दे रही है जैसे नीति में निपुण राजा की करणी शोभित हो । पानी की कमी से मछलियाँ ऐसी विकल हैं जैसे मूर्ख कुटुम्बी धनहीन होने से विकल होता है ।

व्याख्या : पावस में लोगों को कीचड़ से कष्ट होता है । ग्रीष्म में धूल से कष्ट होता है । शरद में कीचड़ भी नहीं रह जाता और धूल भी नहीं उड़ती । इसलिए उसे सुखद कहते हैं । राजा के अत्यन्त दयार्द्र होने से व्यवस्था बिगड़ती है और निष्ठुर होने से प्रजा सन्तप्त हो उठती है । अतः मध्यममार्ग अवलम्बन करनेवाले नीतिनिपुण राजा की करणी से ही प्रजा सुखी रह सकती है । धन ही जीवन है : जल है कुटुम्बी मछली हैं । उसके घटने से अबुध कुटुम्बी विलग हो उठते हैं । बुध नहीं । यथा : दोउ सम धीर धरहिं मन माँही ।

बिनु घन निर्मल सोह अकासा । हरिजन इव परिहरि सब आसा ।।
कहुँ कहुँ दृष्टि सारदी थोरी । कोउ एक पाव भगति जिमि मोरी ।।५।।

अर्थ : बिना बादल का आकाश सब प्रकार की आशा छोड़े हुए हरिजन की भाँति शोभायमान है । शरद काल में कहीं कहीं वृष्टि होती है और सो भी अल्प परिमाण में होती है । जैसे कोई एक ही मेरी भक्ति पाता है ।

व्याख्या : शरद काल में आकाश बड़ा निर्मल हो जाता है। वर्षा के कारण धूल दब जाती है और शरद काल में जब मेघ हट जाते हैं तो आकाश ऐसा स्वच्छ हो जाता है कि सूक्ष्म तारे भी स्पष्ट दृष्टिगोचर होने लगते हैं। इसी भाँति भगवद्भक्त जब सब आशा छोड़ देता है तब उसके हृदयाकाश में भगवान् के सूक्ष्म गुण बहुत स्पष्ट प्रतिभात होने लगते हैं। यथा : जे पामर भये दास आस के ते सब ही के चेरे। रघुपति कृपा आस जीती जिन्ह ते सेवक हरि केरे।

शरत् काल में मण्डल बाँधकर वर्षा नहीं होती। कहीं कहीं होती है और फिर भी अल्प मात्रा में होती है। यही गति भक्ति की है। वह किसी एक को होती है और फिर भी यथेष्ट नहीं होती। यथा : धर्मसील विरक्त पुनि ज्ञानी। जीवन मुक्त ब्रह्म पर प्रानी। सब ते सो दुर्लभ सुरराया। राम भगति रत गत मद माया। यह भक्तिविषयक उपदेश है।

दो. चले हरषि तजि नगर नृप, तापस बनिक भिखारि।
जिमि हरि भगति पाइ श्रम, तजहि आश्रमी चारि ॥१७॥

अर्थ : राजा तपस्वी व्यापारी और भिक्षुक नगर छोड़कर हर्षित चले। जैसे हरि भक्ति की प्राप्ति से चारो आश्रमवाले श्रम का परित्याग करते हैं।

व्याख्या : बरसात के कारण रास्ता बन्द था। बरसात भी बीत गयी। विजयादशमी आगयी। इसी दिन राजाओं की विजय यात्रा होती है। सभी लोग उस दिन सीमोल्लंघन करते हैं और जिनकी यात्रा बरसात के कारण रुकी थी वे तो उसी दिन अपनी यात्रा आरम्भ कर देते हैं। ऊपर कह आये हैं : जहँ तहँ रहे पथिक थकि नाना। जिमि इन्द्रिय गन उपजे ग्याना। ज्ञान के उपजने से इन्द्रिय गण थककर रह गये थे। कवि कहते हैं कि भक्ति के आजाने से सभी थकावट : श्रम का परित्याग करते हैं और काम में लग जाते हैं। भाव यह कि सम्पूर्ण संसारी अपनी स्वार्थसिद्धि के लिए कार्य करते हैं। अतः इस भवाटवी में वे श्रमित हुए भटका करते हैं और ज्ञानी की इन्द्रिय आत्मसाक्षात्कार से श्रमित हो जाती है। वह श्रम बिना भक्ति के जाता नहीं। भक्त अपना सर्वस्व भगवान् को अर्पण कर देता है। उसका अपना स्वत्व किसी वस्तु पर नहीं रह जाता। वह स्वयं परमेश्वर का उसके लड़के बाले परमेश्वर के उसका धन धान्य परमेश्वर का वह जो कुछ करता है परमेश्वर प्रीत्यर्थ करता है। उसका निजी कोई हानि लाभ नहीं रह जाता। अतः : यद्यत् कर्म करोमि तत्तदखिलं शम्भो त्वदाराधनम् : उसका प्रत्येक हलचल भगवान् का आराधन है। अतः वह सब व्यापार आनन्दपूर्वक करता है। उसी ने श्रम का परित्याग किया है।

भावार्थ यह कि आज विजया दशमी को भी सुग्रीव ने सीमोल्लंघन न किया।

सुखी मीन जे नीर अगाधा। जिमि हरिसरन न एकौ बाधा ॥
फूले कमल सोह सर कैसा। निरगुन ब्रह्म सगुन भएँ जैसा ॥१॥

अर्थ : वे मछलियाँ सुखी हैं जो अथाह जल में हैं। जैसे हरिशरण में कोई बाधा नहीं होती। कमल फूलने से तालाब ऐसे शोभायमान हैं जैसे निर्गुण ब्रह्म सगुण हो गये हों।

व्याख्या : जो संसार से भयभीत होकर रक्षा के लिए निष्कपट भाव से भगवान् के शरण जाता है। यथा : श्रवन सुजस सुनि आयेउँ प्रभु भंजन भव भीर। त्राहि त्राहि आरत हरन सरन सुखद रघुबीर। उसकी रक्षा स्वयं भगवान् करते हैं। इसलिए उसे कोई बाधा नहीं होने पाती। यथा : सीम कि चाँपि सकै कोउ तासू। बड़ रखवार रमापति जासू। इसलिए हरिशरण ग्रहण करनेवाले को उन मछलियों से उपमित किया है जो अगाध जल में रहती हैं। मछली का जीवन जल है। उसके सङ्कोच से मछलियाँ विकल हो जाती हैं। अगाध जल में किसी प्रकार का सङ्कोच नहीं है। अतः स्वच्छन्द विचरण करती हैं। उनकी रक्षा अगाध जल करता है।

जिस तालाब में कमल फूले हों उसकी उपमा सगुण ब्रह्म से और जिसमें न फूले हों उसकी उपमा निर्गुण ब्रह्म से दिया है। कमल की लता तालाब के जल के आधार से रहती है और जल को ही आच्छादन करती है। इसी भाँति माया का आधार ब्रह्म है और वह माया ब्रह्म को ही ढकती है। इस प्रकार आच्छादित ब्रह्म सगुन कहलाते हैं। यथा : पुरइन सघन ओट जल बेगि न पाइअ मर्म। मायाछन्न न देखिये जैसे निर्गुण ब्रह्म। पुरइन से फूल निकलते हैं। इसी भाँति माया द्वारा ब्रह्म का अवतार होता है। उनके अवतीर्ण होने से ऐसी शोभा अधिक हो जाती है जैसे तालाब की कमल खिलने से हो जाती है। इसी से शरद में कमल के खिलने से निर्गुण ब्रह्म के सगुण होने का दृश्य स्मरण हो उठा।

गुंजत मधुकर मुखर अनूपा। सुन्दर खगरव नाना रूपा ॥
चक्रवाक मन दुख निसि पेखी। जिमि दुर्जन पर संपति देखी ॥२॥

अर्थ : बकवादी भौंरों के गूँजने की उपमा नहीं है। अनेक प्रकार की चिड़िया चहचहा रही हैं। रात को देखकर चकवे के मन में दुःख है। जैसे दूसरे की सम्पत्ति देखकर दुर्जन के मन में दुःख होता है।

व्याख्या : वसन्त के मधुकर के गुञ्जार की उपमा है पर शरद के गुञ्जार की उपमा नहीं है। इसलिए नहीं दिया : वसन्त वर्णन में मधुकर निकर भेरि सहनाई कह चुके हैं। सुन्दर खग गन गिरा सोहाई। जात पथिक जिमि लेत बोलाई। यह सब शोभा कमल के फूलने पर होती है।

शरत् काल की चन्द्रिका रात्रि की सम्पत्ति है। क्योंकि उससे उसकी बड़ी शोभा होती है। पर चक्रवाक को वह सम्पत्ति उसी भाँति सह्य नहीं है जैसे परायी सम्पत्ति दुर्जन को सह्य नहीं होती : सरद चन्द चन्दनि लगत जिमि चकई अकुलानि।

चातक रटत तृषा अति ओही। जिमि सुख लहइ न संकर द्रोही ॥
सरदातप निसि ससि अपहरई। संत दरस जिमि पातक टरई ॥३॥

अर्थ : पपीहा रट लगाये हुए है। उसे बड़ी प्यास है जैसे शिवद्रोही को सुख की प्राप्ति नहीं होती। शरत् की धूप का रात का चन्द्रमा हरण कर लेता है। जैसे सन्त के दर्शन से पाप मिट जाता है।

व्याख्या : बारह महीने पपीहा जल के लिए रट लगाये रहता है। बरसात भी बीत गयी उसे जल न मिला। उसकी उपमा कवि शङ्करद्रोही से देते हैं। उसके अनुकूल वेदनीय घटना घट जाने पर भी उसकी प्यास नहीं बुझती। उसे कल नहीं पड़ता। सुखानुभव शङ्कर की कृपा बिना होता नहीं। यथा : इच्छित फल बिनु सिव अवराधे। लहिअ न कोटि जोग जप साधे।

अति निर्मल और तापहर होने से सन्त की उपमा शरत् चन्द्र से दिया। शरत् चन्द्र ताप हरते हैं और सन्त पाप हरते हैं। यथा : मुख दीखत पातक हरैं, परसत कर्म बिलाहिं। बचन सुनत मन मोह गत पूरब भाग मिलाहिं।

देखि इंदु चकोर समुदाई। चितवहिं जिमि हरिजन हरि पाई॥
मसक दंस बीते हिम त्रासा। जिमि द्विज द्रोह किये कुल नासा॥४॥

अर्थ : चन्द्रमा को देखकर चकोर समूह इस भाँति देख रहे हैं जैसे हरिजन हरि को पाकर देखते हैं। मच्छर और डाँस ठण्डक के भय से नष्ट हो जाते हैं। जैसे ब्राह्मण के द्रोह से कुल का नाश हो जाता है।

व्याख्या : चकोर का समूह शरत् पूर्णिमा के चन्द्रमा को चारों ओर से एकटक देख रहे हैं। कवि कहते हैं कि इसी भाँति हरि को पाकर हरिजन एकटक होकर दर्शन करते हैं। यथा : एकटक सब सोहहि चहुँ ओरा। रामचन्द्र मुख चन्द्र चकोरा। तृप्ति नहीं होती।

नाश दो प्रकार का होता है। एक तो आत्यन्तिक और दूसरा व्याधि आदि द्वारा। अत्यन्त क्षीण होने को भी नाश कहते हैं। यहाँ पर दूसरे प्रकार का नाश अभिप्रेत है। हिम आया नहीं पर उसके निकट आने से ही मशक और दंश का विरल प्रचार हो जाता है। वे निर्बल पड़ जाते हैं। इसी भाँति ब्रह्मद्रोह की भावना से कुल की सुखसमृद्धि जाती रहती है और द्रोह करने से तो वंश ही नष्ट हो जाता है। यथा : बंस कि रह द्विज अनहित कीन्हें।

दो. भूमि जीव संकुल रहे, गये सरद रितु पाइ।
सदगुरु मिले जाहिं जिमि, संसय भ्रम समुदाइ॥१८॥

अर्थ : पृथ्वी में जीव भरे थे। वे शरद्ऋतु आने से नष्ट हो गये। जिस भाँति सद्गुरु के मिलने से संशय और भ्रम का समुदाय नष्ट हो जाते हैं।

व्याख्या : वर्षा काल में क्षुद्र जन्तुओं से पृथ्वी भर उठती है। पर वे शरद्-ऋतु के आगमन से नष्ट हो जाते हैं। उसी की उपमा देते हुए कहते हैं कि सद्गुरु के मिलने से जितने संशय और भ्रम हैं वे सब मिट जाते हैं। क्योंकि उनके वचन

महामोहतम पुञ्ज के नाश के लिए सूर्य को किरणों के तुल्य हैं। यथा : बंदौं गुरुपद कंज कृपासिंधु नररूप हर। महामोह तम पुंज जासु बचन रबिकर निकर। उनके नाश का दूसरा उपाय नहीं है।

बरषा गत निर्मल रितु आई। सुधि न तात सीता कर पाई ॥
एक बार कैसेहुँ सुधि जानौं। कालहु जीति निमिष महुँ आनौं ॥१॥

अर्थ : वर्षा बीत गयी और निर्मल ऋतु आगयी। हे भाई! सीता का पता न लगा। एक बार किसी भाँति सीता का पता लग जाय तो काल को जीतकर एक क्षण में ले आऊँ।

व्याख्या : वर्षा बिगत सरद ऋतु आयी से शरदऋतु के वर्णन का उपक्रम करके निर्मल रितु आयी कहकर उपसंहार करते हैं। अर्थात् वर्षा के कारण अन्वेषण में जो बाधाएँ उपस्थित हो गयी थीं वे सब हट गयीं। रास्ता चलता हो गया। वर्षा भर निर्मल ऋतु का भरोसा था सो भी आधे के ऊपर बीत गयी। फिर भी सीता की सुधि नहीं पायी। वर्षा भर सन्तोष किये बैठे रहे। पर उद्योग का काल उपस्थित होने पर उद्योग होते न देखकर उत्कण्ठा बहुत बढ़ गयी। इसलिए लक्ष्मणजी कहते हैं कि कार्यसिद्धि में एकमात्र बाधक पता का न लगना है। सो कुछ भी तो पता लगना चाहिए। यही पता लग जाय कि मर गयी तब निश्चय हो जाय कि काल के वश में हैं तो उसे जीतकर एक क्षण में ले आऊँ। राजा लोग जिनका उठाया पिनाक न उठा सीताजी के लिए काल को जीतने का साहस करने लगे। यथा : एक बार कालहु किन होई। सिय हित समर जितब हम सोई। मैं तो एक क्षण में काल के जीतने में समर्थ हूँ। यथा : काल ब्याल कर भक्षक जोई। उसे जीतकर सीता को लाऊँगा। गृहस्थ के जितने धर्मकृत्य हैं वे सब स्त्री के बिना निष्फल होते हैं। वह अपने धर्म से गिर जाता है। अतः उसकी स्त्री विषयक उपेक्षा अधर्म है।

५१. रामरोष प्रसंग

कतहुँ रहौ जौ जीवति होई। तात जतनु करि आनौं सोई ॥
सुग्रीवहु[1] सुधि मोरि बिसारी। पावा राज कोस पुर नारी ॥२॥

अर्थ : कहीं भी हो यदि हो तो हे भाई! उसे यत्न करके ले आऊँ। सुग्रीव ने भी मेरी याद भुला दी। उसे राज्य कोष पुर और स्त्री मिल गयी।

व्याख्या : यदि नहीं मरी तब तो उसका पता लगाना चाहिए। पता लगने के लिए यत्न होना चाहिए। इस कार्य का भार सुग्रीव ने अपने ऊपर ले रक्खा था। यथा : सब प्रकार करिहौं सेवकाई। जेहि बिधि मिलहि जानकी आई। वह भी

---

१. ५१वाँ प्रसङ्ग रामरोष प्रारम्भ हुआ।

हमारा काम भूल गया। मैंने उसका काम पहले कर दिया। मित्र का धर्म ही यह है : निज दुःख गिरि सम रज करि जाना। मित्रक दुख रज मेरु समाना। सो सुग्रीव ने मित्र धर्म का भङ्ग कर दिया। मेरे पर्वत ऐसे दुःख को भूल ही गया। जब राज कोष और नारी से हीन था तब मेरे दुःख को सुनकर दुःखी होता था। यथा : कह सुग्रीव नयन भरि बारी। मिलिहि नाथ मिथिलेस कुमारी। अब राज्य कोष पुर और नारी सब मिल गयी तो मुझे भूल गया। उचित तो यह था कि जिसके कारण से सबकी प्राप्ति हुई उसे न भूलता। मुझे तो इस समय उसी का भरोसा था सो वह कृतघ्न निकला।

हनुमान् तो भूल ही गया। जिसने कहा था : सो सीता कर खोज कराइहि। जहँ तहँ मरकट कोटि पठाइहि। पर उसने मुझसे पाया क्या था? सुग्रीव ने सब पाया। वह कैसे भूल गया। कृतघ्ने नास्ति निष्कृतिः। उसे अपने पूर्व अवस्था को और मेरे कष्ट को स्मरण करना चाहिए था।

जेहि सायक मारा मैं बाली। तेहि सर हतहुँ मूढ कहँ काली ॥
जासु कृपा छूटहिं मद मोहा। ताकहुँ उमा कि सपनेहु कोहा ॥३॥

अर्थ : जिस बाण से मैंने बालि को मारा था उसी से कल उस मूढ़ को मारूँगा। जिसकी कृपा से मद मोह छूटता है हे उमा! उसे क्या स्वप्न में भी क्रोध हो सकता है।

व्याख्या : आज भर और प्रतीक्षा करूँगा। यदि आज भी न आया तो कल मारूँगा। जिस बाण से वालि को मारा वह मेरा बाण खो नहीं गया है। उससे वालि न बच सका। यह क्या बचेगा? यह भी वालि की भाँति मूढ हो गया है। उसने तो स्त्री की शिक्षा न सुनी और इसने तो मेरी शिक्षा का अनादर किया। मैंने कह दिया था : अंगद सहित करहु तुम राजू। संतत हृदय धरेहु मम काजू। गत ग्रीषम बरषा रितु आई। रहिहौं निकट सैल पर छाई। सो मैं उसके सन्निकट ही हूँ। तीन महीने बीत गये। उसने मुँह न दिखलाया। अतः आज और प्रतीक्षा करूँगा। प्रतीक्षा की पराकाष्ठा हो गयी। यदि आज आजाय तो कुशल है नहीं तो कल उसे मारूँगा।

ज्ञानघाट के वक्ता ने उचित समझा कि इस अवसर पर अपने श्रोता को सावधान कर दें। वह यह न समझ लें कि रामजी को वस्तुतः क्रोध हो गया। क्योंकि मोहपूर्वक ही क्रोध होता है पर : इहाँ मोह कर कारन नाहीं। रबि सनमुख तम कबहुँ कि जाहीं। मोह ही नहीं हो सकता। क्रोध कैसे होगा? इनकी कृपा जिस पर हो जाय उसे मद मोह बाधा नहीं कर सकता। यथा : सीम कि चाँपि सकै कोउ तासू। बड़ रखवार रमापति जासू। अतः यहाँ स्वप्न में भी क्रोध की प्राप्ति नहीं है।

जानहि यह चरित्र मुनि ग्यानी। जिन्ह रघुबीर चरन रति मानी ॥
लछिमन क्रोधवंत प्रभु जाना। धनुष चढ़ाइ गहे कर बाना ॥४॥

अर्थ : इस चरित्र को ज्ञानी मुनि जानते हैं जिन्होंने रघुनाथ के चरणों में प्रेम लगा रक्खा है। लक्ष्मणजी ने समझ लिया कि प्रभु क्रुद्ध हैं तो धनुष पर प्रत्यञ्चा चढ़ा ली और तरकस से बाण निकालकर हाथ में लिया।

व्याख्या : कवि कहते हैं कि प्रभु के इस चरित्र को अज्ञानी नहीं समझ सकते। वे समझेंगे कि जिस भाँति इष्ट के अभिघात से मुझे क्रोध आया करता है उसी भाँति रामजी को भी आगया। परन्तु ज्ञानी जानते हैं कि परम ज्ञानी पुरुष अपना कुछ भी प्रयोजन नहीं रहने पर लोकसंग्रहार्थ कार्य किया करते हैं। शुष्क ज्ञानी भी इसे नहीं समझते। जो ज्ञानी रघुनाथ के चरणों में प्रेम रखते हैं अर्थात् जो ज्ञानी भक्त हैं वे ठीक समझते हैं। यथा : तुम जो कहहु करहु सब साँचा। जस काछिय तस चाहिअ नाचा।

लक्ष्मणजी तो परम ज्ञानी भक्त हैं। उन्होंने प्रभु को क्रोधवन्त कैसे जान लिया ? इसका उत्तर यही है : राम कीन्ह चाहहिं सोइ होई। करइ अन्यथा अस नहिं कोई। प्रभु ने चाहा कि लक्ष्मण उन्हें क्रोधवन्त जानें। इसलिए लक्ष्मणजी ने वैसा ही जाना। यहाँ पर रघुनाथजी ने जो कुछ दोष सुग्रीव का कहा वह इसीलिए कहा था। पर लक्ष्मणजी चुप रहे। सरकार की सहनशीलता को जानते हैं कि सुग्रीव से मैत्री हो चुकी है। प्रभु उनका सब कुछ सहन करेंगे। पर जब : तेहि सर हतौं मूढ़ कहँ काली : कहा तब लक्ष्मणजी ने जान लिया कि सरकार को रोष आगया। ऐसा सुन्दर नाट्य है कि लक्ष्मणजी को भ्रम हो गया कि क्रोध वास्तविक है। इसलिए धनुष चढ़ाकर बाण निकाल लिया कि वालि बड़ा भाई था वह आपके हिस्से में पड़ा था। सुग्रीव छोटा है यह मेरे हिस्से का है। उसे मैं आज मारता हूँ।

दो. तब अनुजहिं समुझावा, रघुपति करुना सींव।
भय देखाइ लै आवहु, तात सखा सुग्रीव ॥१८॥

अर्थ : तब करुणा की सीमा रघुपति ने छोटे भाई को समझाया कि हे भाई ! डर दिखलाकर ले आओ। सुग्रीव मेरा सखा है।

व्याख्या : लक्ष्मणजी अकेले किष्किन्धा के संहार में समर्थ हैं। यथा : जग महँ सखा निसाचर जेते। लछिमन हनहि निमिष महँ तेते। कहीं सचमुच जाकर सुग्रीव का वध न कर डालें। इसलिए करुणा की सीमा ने लक्ष्मणजी को समझाया :

सवैया : मीत को दोष सहै बिनु मीत को मीत बिना दुख कौन मिटावे।
मीत अनेक उपाय करै अरु मीत को लाइ सुपंथ लगावे ॥
मीत अनीत पै पाँव धरै तब मीतहिं कोपित ह्वै डरपावे।
पै कतहूँ कबहूं विजयानँद मीत की हानि हिये नहिं लावे ॥

कवित्त :
भोरी होत सुमति कविन्द औ मुनिनन्दन की विषय समीर की चपेटैं जबै चलतीं।
भूलि जात योग जप संयम समाधि नित्य नूतन अनङ्ग की उमङ्गें चित चढ़तीं ॥

कौन है कहाँ है हम बिसरि सुरत जाते माते मद सदियाँ निमेष की सी लगतीं।
दुखिया दिनों का आज सुखिया हुआ है ऐसे विषय बयारि में सुकण्ठ की क्या गिनती॥

अतः सुग्रीव को डराकर रास्ते पर ले आओ। यही मित्र धर्म है : कुपथ निवारि सुपंथ चलावा।

इहाँ[1] पवन सुत हृदय बिचारा। राम काजु सुग्रीव बिसारा॥
निकट जाइ चरनन्हि सिरु नावा। चारिहु बिधि तेहि कहि समुझावा॥१॥

अर्थ : यहाँ पवनसुत हनुमान्‌जी ने हृदय में विचार किया कि रामजी के कार्य को सुग्रीव ने भुला दिया। तब निकट जाकर चरणों में सिर झुकाया और चारों प्रकार से उसे कहकर समझाया।

व्याख्या : गोस्वामीजी हनुमान्‌जी के साथ हैं। इसलिए इहाँ कहते हैं। ग्रन्थ भर में इहाँ और उहाँ शब्द के प्रयोग ध्यान देने योग्य हैं। कवि रामचरितमानस का साक्षात्कार कर रहे हैं। स्वयं अपने को चरित में सम्मिलित देख रहे हैं। ये सदा भगवान् के साथ रहते हैं। पर यदि भक्त और भगवान् पृथक् पृथक् स्थान में हों तो भक्त के साथ रहेंगे। इसलिए किष्किन्धा को इहाँ और प्रवर्षण गिरि को उहाँ मान रहे हैं। वहाँ रामजी ने विचारा : सुग्रीवहु सुधि मोरि बिसारी। यहाँ पवनसुत ने विचारा : राम काज सुग्रीव बिसारा। यद्यपि हनुमान्‌जी सुग्रीव के साथ किष्किन्धा में हैं। पर मन उनका रघुनाथजी के चरणों में तन्मय है। शरत् की बाट जोह रहे हैं। बिना कुछ कार्य किये सामने जाने में सङ्कोच है। वर्षा ऋतु में खोजने का कार्य सुचारु रूप से सम्पन्न नहीं हो सकता। अतः सुग्रीव से भी कुछ नहीं कहा। पर जब विजया दशमीवाली यात्रा का मुहूर्त टल गया तो रामजी और हनुमान्‌जी दोनों के मन में एक साथ ही यह भाव उठा : राम काज सुग्रीव बिसारा। रामजी फिर भी प्रतीक्षा करते थे। पर हनुमान्‌जी सुग्रीव के निकट गये और रामजी के कहने से एक पखवारा : पक्ष पहिले ही जाकर सुग्रीव के चरणों में प्रणाम किया।

सुग्रीवजी विषय में आसक्त हो गये हैं। महल के बाहर नहीं निकलते। अतः हनुमान्‌जी उनके पास महल में गये। सुग्रीव राजा हैं। हनुमान्‌जी मन्त्री हैं। सुग्रीवजी सूर्यपुत्र होने से गुरुपुत्र और रामजी के सखा हैं। सर्वतोभाव से पूज्य हैं। अतः उनके चरणों में सिर नवाया और साम दान भय और भेद दिखलाकर समझाया। यथा :

साम : राम काज भूल्यौ तुमहिं, चली सरद रितु बीति।
कपि समूह सिय खोज हित, भेजि निबाहौ प्रीति॥

दान : जाको दीन्ह्यो राज लहि, करिय सकल सुख भोग।
तेहि सहायता देन को, आइ बन्यो संयोग॥

---

१. ५२वाँ प्रसङ्ग। कपित्रास प्रारम्भ हुआ।

भय : बालि बध्यो जेहि एक शर, भलो न तासु बिरोध।
उदासीनता देखि तब अबसि करैंगे क्रोध॥

भेद : अंगद को युवराज करि, भली करी नृप नीति।
सावधान होइय तुरत, जानि सीस पर भीति॥

सुनि सुग्रीव परम भय माना। बिषय मोर हरि लीन्हेउ ग्याना॥
अब मारुत सुत दूत समूहा। पठवहु जहँ तहँ बानर जूहा॥२॥

अर्थ : सुनकर सुग्रीवजी बहुत डर गये : पछताने लगे कि : विषय ने मेरे ज्ञान को हरण कर लिया। बोले : हे मारुतसुत ! अब तुम दूतों को जहाँ जहाँ बानरों का समाज है वहाँ वहाँ भेजो।

व्याख्या : सुनकर सुग्रीवजी बहुत डर गये। क्योंकि रामजी ही एकमात्र उनके शरण थे। उनके कार्य को भूलना बड़ा भारी अपराध है। सुग्रीवजी उन भक्तों में थे जो जागते सोते हर समय ही रामजी के शरण में रहते हैं। चूक सभी से होती है पर भले को पश्चात्ताप होता है। इन्हें पछतावा हुआ कि मेरे ज्ञान को विषय ने हरण कर लिया। मैंने प्रभु से कहा था : सुख संपति परिवार बड़ाई। सब परिहरि करिहौं सेवकाई। सो मैं सुख सम्पत्ति परिवार बड़ाई में मग्न हो गया। ये सब राम भक्ति के बाधक हैं। मेरी भक्ति में भी इन सबों ने भारी बाधा पहुँचाई। मैं रामजी के कार्य को ही भूल गया। अतः हनुमान्‌जी कहते हैं कि सम्पूर्ण विश्व में सीताजी को खोजवाया है। अतः विश्व भर के वानरों को बुलाना चाहिए और उन्हें खोज के लिए भेजना चाहिए। वे सम्पूर्ण विश्व में फैल जायँ और सीताजी को खोज निकालें। अतः तुम दूतों के समूह को जहाँ जहाँ बानर समूह हैं तुम्हारा सब जाना है वहाँ वहाँ भेजो।

कहहु पाख महुँ आव न जोई। मोरे कर ताकर बध होई॥
तब हनुमंत बोलाए दूता। सब कर करि सनमान बहूता॥३॥

अर्थ : कह देना कि जो पन्द्रह दिन में नहीं आयेगा उसका वध मेरे हाथ से होगा। तब हनुमान्‌जी ने दूतों को बुलाया और सबका बहुत सम्मान किया।

सुग्रीवजी कहते हैं कि उन दूतों से कह देना कि वे जाकर एक पक्ष के भीतर ही सबको लिये दिये चले आयें। यदि पक्ष के भीतर कोई नहीं आया चाहे वह दूत हो और चाहे वह व्यक्ति हो जिसके पास दूत भेजे जाते हैं तो उसका वध राजा अपने हाथ से करेगा : दूसरे का विश्वास न करेगा। अब सुग्रीवजी यह चाह रहे हैं कि कम से कम शरद के भीतर ही भीतर एक साथ खोज आरम्भ हो जानी चाहिए। सब ओर एक साथ खोज होने से स्थान परिवर्तन करनेवाले का भी पता लग जाता है।

यहाँ तो आज्ञा मिलने की देर थी। हनुमान्‌जी राजा के बड़े विश्वासपात्र

मन्त्री हैं। सभी जानते हैं। दूत लोग मन्त्री के शासन में रहते हैं। अतः उन्होंने सब दूतों को बुलाया और बहुत सम्मान किया। पहिले ही दान नीति का प्रयोग किया।

तुलसी कहत पुकारि के सुनहु सकल दै कान।
हेम दान गज दान ते बड़ो दान सम्मान॥

भय अरु प्रीति नीति देखराई। चले सकल चरनन्हि सिरु नाई॥
एहि अवसर लछिमनु पुर आए। क्रोध देखि जहँ तहँ कपि धाए॥४॥

अर्थ : हनुमान् जी ने भय प्रीति और नीति दिखलाई। सब चरणों में सिर नवाकर चले। उसी अवसर में लक्ष्मणजी पुर में आये। उनका क्रोध देखकर वानरगण जहाँ तहाँ दौड़ पड़े।

व्याख्या : सम्मान करने के बाद राजा की आज्ञा सुनायी : गिरि कानन जहँ तहँ भरि पूरी। रहे निज निज अनीक रचि रूरी। पृथक् पृथक् पर्वत और वनों में जाने के लिए पृथक् पृथक् दूतों को आदेश दिया कि तुम लोग वहाँ वहाँ जाकर सभी सरदारों को सेना सहित अपने साथ लेते आवो। पन्द्रह दिन बीतने न पावे। इसी बीच में तुमको भी और उनको भी आजाना चाहिए। इनमें किसी को देर हुई तो उसका वध स्वयं राजा अपने हाथ से करेगा। भय दिखलाकर फिर प्रीति दिखलाया कि देखो राजा कैसा कृतज्ञ है। जिस भाँति रामजी से प्रीति निर्वाह करता है उसी भाँति सबके किये हुए कार्य को स्मरण रक्खेगा। फिर नीति दिखलायी कि जिस स्वामी का सर्वस्व भोग करते हो उसके कार्य में धोखा न होना चाहिए।

दूत लोग भी बन्दर ही हैं। कोई सामान घर से लेना नहीं है। वे तुरन्त चरणों में सिर नवाकर चल पड़े। दूत बिदा हो गये और काम पूरा करके अभी नहीं लौटे उसी अवसर में लक्ष्मणजी किष्किन्धा में आये। ये ही सुग्रीव को राज्य देने आये थे। इनसे सब परिचित हैं। उन्हें क्रुद्ध देखकर बड़ी दौड़ धूप मची। कुछ समाचार देने दौड़े। कुछ सेना को सावधान करने दौड़े। कुछ इकट्ठे होने लगे।

५२. कपि त्रास प्रसङ्ग

दो. धनुष चढ़ाइ कहा तब, जारि करौं पुरछार।
ब्याकुल नगरु देखि तब, आयउ बालि कुमार॥१९॥

अर्थ : धनुष चढ़ाकर कहा कि पुर को जलाकर भस्म कर दूँगा। नगर को व्याकुल देखकर बालि के बेटा अङ्गद आये।

व्याख्या : तब लक्ष्मणजी ने धनुष चढ़ाया और बोले कि अग्निवाण से इस पुर को जलाकर भस्म कर दूँगा। इस भरोसे न रहना कि मैं अकेला हूँ। तुम लोग सब मिलकर भी मेरा कुछ बिगाड़ नहीं सकते। यह सेना का संयोजन नगर मात्र को मेरे कोप का भाजन बनायेगा। मैं पूरे नगर को भस्म कर दूँगा। लक्ष्मणजी का वचन सुनकर नगर व्याकुल हो उठा। पता लगते ही अङ्गद जी आये। लक्ष्मणजी

के ही बनाये·ये युवराज हैं। अपने का भाव यह है कि चाहे नगर भर सुग्रीव का हो पर मैं आपका हूँ। अथवा मैं युवराज हूँ राज कार्य में चलाता हूँ। नगरवासी निरपराध हैं। वे आपके क्रोध से व्याकुल हैं उनकी रक्षा कीजिए।

चरन नाइ सिरु बिनती कीन्ही। लछिमनु अभय बाँह तेहि दीन्ही ॥
क्रोधवंत लछिमनु सुनि काना। कह कपीस अतिभय अकुलाना ॥१॥

अर्थ : चरणों में सिर नवाकर विनती की। लक्ष्मणजी ने उसे अभय बाँह दिया। लक्ष्मण क्रुद्ध हैं ऐसा कान से सुनकर बन्दरों के राजा सुग्रीव भय से व्याकुल होकर कहने लगे।

व्याख्या : अङ्गदजी ने पहिले आकर प्रणाम किया। चरणों में सिर नवाया। तत्पश्चात् विनती की कि मुझे तो आप ही शरण हैं। मरती बार पिता ने रामजी को मेरी बाँह पकड़ा दिया है। मैं तो उन्हीं को शरण में हूँ। मेरे तो गुरु पिता माता वे ही हैं। मैं बालक हूँ। ज्ञान बुद्धि बल से हीन हूँ। मेरी रक्षा कीजिये।

अभय बाँह अर्थात् अभय हस्त से अङ्गद का परितोष किया। देवताओं की मूर्तियों में अभय और वरद हस्त कहीं-कहीं दिखलाया जाता है। उन्हें अभय मुद्रा और वरद मुद्रा कहते हैं। ऊपर उठा हुआ हाथ अभय दान का चिह्न है। सो लक्ष्मणजी ने अभयहस्त होकर अङ्गद का सन्तोष किया अथवा अभय करने के लिए उसके शिर पर हाथ रक्खा कि तुम्हारी रक्षा की जायगी। तुम्हें भय नहीं है। क्रोध का अभिनय हो रहा है। क्रोध से भरा हुआ पुरुष प्रेम से बात नहीं कर सकता। उस समय इङ्गित से ही अभयदान दिया जाता है जिसमें रौद्ररस का भङ्ग न हो।

नगर की व्याकुलता कहकर अब राजा की व्याकुलता कहते हैं। सुग्रीव के पास समाचार पहुँचा कि लक्ष्मणजी क्रुद्ध होकर आये हैं कि किष्किन्धा को जलाकर भस्म करेंगे। यह शब्द कान में पड़ते ही बानरराज अत्यन्त भय से व्याकुल हो उठे। प्रसङ्ग देखने से यही मालूम पड़ता है कि हनुमान्जी ने समाचार दिया। अङ्गदजी तो अपनी रक्षा के लिए लक्ष्मणजी के पास गये। पर हनुमान्जी मन्त्री हैं। राजा की रक्षा के लिए उनके पास गये। समाचार सुनाया। भाव यह कि जिस बात को मैं डरता था वही सामने आयो। लक्ष्मणजी क्रुद्ध होकर नगर में आगये। नगर को जला डालने के लिए कह रहे हैं। अङ्गदजी उनके पास पहुँच गये। भारी भय उपस्थित है। अब जैसा उचित हो कीजिये। लक्ष्मणजी के क्रोध का समाचार पाकर नगर व्याकुल हो उठा था। सुग्रीवजी अति व्याकुल हो उठे। हनुमान्जी के पहिले समझाने पर ही परम भयभीत हो गये थे। अब उस भय के उपस्थित होने पर तो भय से अत्यन्त व्याकुल हो गये। लक्ष्मणजी के क्रुद्ध होने का अर्थ ही यही है कि सरकार अप्रसन्न हैं। जिसके शरण में आकर ही सुग्रीव सुग्रीव हुए थे उस शरणद के ही क्रुद्ध होने पर ठिकाना कहाँ है। अतः हनुमान्जी से बोले :

सुनु हनुमन्त संग लै तारा। करि बिनती समुझाउ कुमारा ॥
तारा सहित जाइ हनुमाना। चरन बन्दि प्रभु सुजस बखाना ॥२॥

अर्थ : हे हनुमान् ! सुनो, तुम तारा को साथ लेकर जाओ और विनती करके कुमार लक्ष्मण को समझाओ। तारा सहित हनुमान्‌जो गये और चरण वन्दना करके प्रभु के सुयश की वर्णना की।

व्याख्या : इस व्याकुलता में भी सुग्रीव ने विचार से काम लिया। पुर ने तो कुछ बिगाड़ा नहीं है। मुझसे ही अपराध हुआ है। मैं ठीक समय से उनके कार्य का सम्पादन नहीं कर सका अतः मुझे दण्ड दिया चाहते हैं। क्रोध अधिक है इसलिए समाज के सहित दण्ड देने को कह रहे हैं। इस क्रोध के वेग में तुरन्त हमारा जाना ठीक नहीं। क्रोध के वेग के रुकने पर ही सामने जाना ठीक है। दया के उद्रेक के लिए तारा को साथ लेकर जाओ। अङ्गद गया है। उसकी माँ के जाने से उसकी बातें सुनेंगे। तुमने मैत्री जोड़ी है। यथा : तब हनुमन्त उभय दिसि की सब कथा सुनाइ। पावक साखी देइ करि जोरी प्रीति दृढाइ। अतः जो कुछ उन्हें कहना है वह तुमसे अवश्य कहेंगे और तुम्हारी बात सुनेंगे। इसलिए जाकर पहिले विनय करो। जब क्रोध का वेग कम हो जाय तब समझाओ। क्योंकि क्रोध का वेग सीधे सीधे समझाने से बढ़ता है। विनय से ही क्रोध का वेग घटता है और तब समझाना भी काम करता है।

तदनुसार हनुमान्‌जी तारा को साथ लेकर गये। लक्ष्मणजी के चरणों की और प्रभु के सुयश का बखान करने लगे। भक्त को प्रभु का सुयश बड़ा प्रिय होता है। उससे उसे तुरन्त शान्ति मिलती है। प्रभु के सुयश का वर्णन ही उसके लिए सच्ची विनती है। अतः हनुमान्‌जी ने सुयश वर्णन प्रारम्भ किया।

यथा : अपराध अगाध भए जन ते, अपने उर आनत नाहिं न जू।
गनिका गज गीध अजामिल के, गनि पातक पुंज सिराहिं न जू ॥
लिये बारक नाम सुधाम दियो, जेहि धाम महा मुनि जाहिं न जू।
तुलसी भजु दीनदयालुहि रे, रघुनाथ अनाथहि दाहिन जू ॥
दसरत्थ को दानि सिरोमनि राम, पुरान प्रसिद्ध सुन्यौ जसु मै।
नर नाग सुरासुर जाचक जो तुम सो मन भावत पायो न कै ॥
तुलसी कर जोरि करै विनती, जो कृपा करि दीन दयाल सुनै।
जेहि देह सनेह न रावरो सो, असि देह धराइ के जाय जियै ॥
को भरिहै हरि के रितये, रितवै पुनि को हरि जौ भरिहै।
उथपै तेहि को जेहि राम थपै थपिहै तेहि को हरि जौ टरिहै ॥
तुलसी यह जानि हिये अपने, सपने नहिं कालहु ते डरिहै।
कुमया कछु हानि न औरन की, जो पै जानकी नाथ कृपा करिहै ॥

करि बिनती मंदिर लै आये। चरन पखारि पलंग बैठाये ॥
तब कपीस चरनन्हि सिरु नावा। गहि भुज लछिमन कंठ लगावा ॥३॥

अर्थ : बिनती करके घर ले आये। चरणों को धोकर पलङ्ग पर बिठाया। तब सुग्रीवजी ने चरणों में सिर झुकाया। लक्ष्मणजी ने उनकी बाँहें पकड़कर गले से लगा लिया।

व्याख्या : रामजी के श्रवणामृत सुयश सुनने से जब क्रोध का वेग घटा तब बिनती किया कि अब गृह को पवित्र कीजिये। बानर राज बहुत भयभीत हैं। सामने नहीं आ रहे हैं। सरकार के प्रताप से ही निष्कण्टक राज्य पाकर सुखी हैं। उनके तो सर्वस्व आप ही हैं इत्यादि। इस भाँति लक्ष्मणजी को घर ले आये। पाद प्रक्षालन का विधान है तब पलङ्ग पर बिठाया। लक्ष्मणजी ने मित्र के पलङ्ग को अपनी समझकर स्वीकार किया और बैठ गये। पलङ्ग पर बैठने का अर्थ ही क्षमा करना है। तब सुग्रीवजी ने आकर चरणों में सिर झुकाया। रामजी की चेतावनी थी : तात सखा सुग्रीव। अतः लक्ष्मणजी ने उनकी भुजा पकड़ी और गले लगाया। समझा कि इनकी इतनी नम्रता बहुत है। भरतजी ने यह सुनकर कि निषादराज रामजी के सखा हैं उनके आने पर रथ पर से उतर पड़े थे। अतः उनका यथेष्ट सत्कार होना चाहिए।

नाथ बिषय सम मद कछु नाँही। मुनि मन मोह करै छन माँही ॥
सुनत बिनीत बचन सुख पावा। लछिमन तेहि बहु बिधि समुझावा ॥४॥

अर्थ : बोले हे नाथ ! विषय के समान कोई मद नहीं है। क्षण भर में मुनियों के मन में क्षोभ उत्पन्न करता है। विनययुक्त वचन सुनकर लक्ष्मणजी सुखी हुए और उन्हें बहुत प्रकार से समझाया।

व्याख्या : विनययुक्त वचन से ही सुख होता है। यथा : मुनि रघुबीर परस्पर नवहीं। बचन अगोचर सुख अनुभवहीं। सुग्रीवजी सत्य और प्रिय वचन विचारपूर्वक बोलते हैं और जागते सोते सदा रघुनाथजी की शरण में रहते हैं। स्वल्पाक्षरों में सब कुछ कह दिया। नाथ सम्बोधन से सेवक सेव्य भाव का अक्षुण्ण होना जनाया। विषय मद को सब मदों से बड़ा कहकर यह बात जनाया कि मैं अपने होश में नहीं था। समय का ज्ञान नहीं रहा। साक्षात् विश्वामित्रजी को अप्सरा के सामने दस वर्ष का दिन पल के समान बीत गया। मेरे मन में मोह उपजना कौन सी बात है ? तब लक्ष्मणजी ने उन्हें अनेक विधि से समझाया। यथा :

तुमते मीत पुनीत लहि भे सनाथ रघुनाथ।
ऐसइ भाव स्वभाव को होन चहिय कपिनाथ ॥

अवसि कृतारथ होहिगे, तव प्रताप बलराम।
धर्म धुरन्धर धीर सम बचन कहेहु अभिराम ॥

ह्वै समर्थ निज दोष गुनि कौन सकै अस भाषि।
कै रघुपति कै कीशपति और न शंकर साखि॥
बल बिक्रम मे राम के सरिस तुही कपिराय।
समुझि सुरन्ह दीन्ह्यौ हर्माहि तुम सन सबल सहाय॥
करिय वीर अब वेर नहि चलिय हमारे साथ।
धीरज दे समझाइये तिय बिरही रघुनाथ॥

पवन तनय सब कथा सुनाई। जेहि बिधि गये दूत समुदाई॥५॥

दो. हरखि चले सुग्रीव तब, अंगदादि कपि साथ।
रामानुज आगे करि, आये जहँ रघुनाथ॥२०॥

अर्थ : पवनसुत महावीरजी ने जिस भाँति दूतों के समूह भेजे गये वह सब कथा कह सुनाई। तब हर्षित होकर अङ्गदादि बन्दरों को साथ लेकर सुग्रीवजी चले और लक्ष्मणजी को आगे करके रघुनाथजी के पास आये।

व्याख्या : क्रोध का वेग देखकर अपराध स्वीकार कर लेना ही उपाय है। अतः हनुमान्‌जी ने पहिले दूतों का भेजा जाना नहीं कहा। सब प्रकार की शान्ति हो जाने पर हनुमान्‌जी ने दूतों के भेजे जाने की सब कथा लक्ष्मणजी को सुनायी। भाव यह कि आपका कार्य हो रहा है। वानरी सेना आना ही चाहती है। पन्द्रह दिन की अवधि देकर अमुक अमुक पर्वत और अमुक अमुक वनों में दूत भेजे गये हैं।

लक्ष्मणजी जब वृत्तान्त जान चुके तब राजा सुग्रीव हर्षित होकर चले। प्रभु के दर्शन को जा रहे हैं इसलिए हर्षित हैं। बड़े भारी भय के हट जाने और लक्ष्मणजी से समादृत होने से हर्षित हैं। राजा के चलते ही युवराज अङ्गद मन्त्री हनुमान्‌जी सेनापति नीलादि साथ हो लिये। लक्ष्मणजी को आगे कर लिया। जिसमें दूर से ही रघुनाथजी को विदित हो जाय कि हम लोग लक्ष्मणजी के वश में हैं अथवा शरण जाने में श्रीरामानुज को ही आगे करना चाहिए।

नाइ चरन सिरु कह कर जोरी। नाथ मोहि कछु नाहि न खोरी॥
अतिसय प्रबल देव तव माया। छूटै राम करहु जौ दाया॥१॥

अर्थ : चरणों में सिर झुकाकर और हाथ जोड़कर कहने लगे कि हे नाथ! मेरा कुछ भी दोष नहीं है। आपकी माया अत्यन्त ही प्रबल है। आप दया करें तो छूटे।

व्याख्या : श्रीरामजी किष्किन्धा के इतने सन्निकट ठहरे हुए हैं और इतने दिन हुए सुग्रीवजी कभी मिलने भी नहीं आये। प्रभु ने कहा था : संतत हृदय धरेहु मम काजू। उसे भी भुला दिया। जब लक्ष्मणजी जाकर नगर जलाने की धमकी दी तब आज मिलने आ रहे हैं। अतः अपने को सापराध मानते हुए चरणों में पड़े और इन सब चूकों का कारण बतलाते हुए हाथ जोड़कर सत्य और प्रिय

वचन विचारकर बोले कि नाथ ! मेरा कुछ भी दोष नहीं है। मैंने जानबूझकर कोई चूक नहीं किया। मैं अपने वश में नहीं था। माया के वश में पड़ गया। वह माया आपकी है। बड़ी ही प्रबल है। जीव में इतनी सामथ्य नहीं कि अपने को छुड़ा सकें। मैंने पहिले ही विनती की थी : अब प्रभु कृपा करहु एहि भाँती। सब तजि भजन करउँ दिन राती। सुख सम्पत्ति परिवार बड़ाई। आपकी भक्ति के बाधक हैं इन्हें मैं नहीं चाहता। पर मुझे राज्य दे दिया गया। मैं सुख सम्पत्ति परिवार बड़ाई में पड़ गया। भजन भूल गया। मैंने जानबूझकर भजन नहीं बिसारा। मैंने आपकी माया का बल देखा। वह अत्यन्त ही प्रबल है। जीव की उसके सामने कुछ नहीं चल सकती। आप ही कृपा करें तो छूट सकती है। मेरे ऊपर बड़ी कृपा हुई इसमें सन्देह नहीं। पर माया से छोड़ानेवाली कृपा नहीं हुई। क्रोध मनोज मोह मद माया। छूटहिं सकल राम की दाया।

बिषय बस्य सुर नर मुनि स्वामी। मैं पाँवर पसु कपि अति कामी ।।
नारि नयन सर जाहि न लागा। घोर क्रोध तम निसि जो जागा ।।२।।

अर्थ : हे स्वामी देवता मनुष्य और मुनि सब विषय के वश्य हैं। मैं तो नीच पशु अति कामी बन्दर हूँ। स्त्री के नयनरूपी बाण जिसे नहीं लगे और क्रोध के घोरान्धकार में जो रात को जागा।

व्याख्या : जो माया ज्ञानियों के चित्त को अपहरण करके बलपूर्वक विमोह के वश कर देती है उसके वश में देवता मनुष्य और मुनि सभी हैं। यथा : सिव बिरंचि कहँ मोहै को है बपुरा आन। कोई उसके अतिक्रमण में समर्थ नहीं है : दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया। उसके सामने मेरी गिनती क्या ? मैं तो नीच योनि पशु हूँ और पशुओं में भी अति कामी बन्दर हूँ। पशुओं में भी कुछ विचार पाया जाता है। जोड़ा जोड़ा साथ रहनेवाले अनेक जातिवाले पशु हैं। भैंसे मातृ-गमन नहीं करते। जाति विशेष के बैल दूसरे जाति के बैल का जूठा नहीं खाते। कितनी जाति के पशु ऋतुकालाभिगामी होते हैं। बन्दरों में कोई नियम किसी प्रकार का देखा नहीं जाता। इसलिए वे स्वभाव से अति कामी पामर पशु हैं। उनका माया वश में पड़ जाना कौन सी बात है ?

नारिनयन जगद्विजयी कामदेव का वाण है। शूल कुलिश और वज्र के सहनेवाले भी इस वाण को नहीं सह सकते। यथा : सूल कुलिस असि अंगवनि हारे। ते रति नाथ सुमन सर मारे। जड़ जीव का क्या सामर्थ्य है कि उसे सह जाय ? अविद्या रात्रि है उसमें क्रोधरूपी घोर अन्धकार है। उस अन्धकार में स्वभाव से ही सब सो जाते हैं अर्थात् मोह को प्राप्त होते हैं। रात्रि में भी कुछ रात्रियाँ ऐसी हैं जिसमें उँजेला भी रहता है। उनमें जागने का अवसर मिलता है। परन्तु घोर अन्धकारयुक्त रात्रि में तमाम सोता पड़ जाता है। दृष्टि के प्रसार न होने से सब सो जाते हैं। इसी भाँति क्रोधान्धकार के आने पर जगत् मूढ़ हो जाता है। उसमें जड़ जीव कैसे जाग सकते हैं।

लोभ पास जेहि गर न बँधाया। सो नर तुह्म समान रघुराया ॥
यह गुन साधन ते नहिं होई। तुम्हरी कृपा पाव कोइ कोई ॥३॥

अर्थ : जिसने लोभ के फन्दे से अपना गला नहीं बँधाया वह मनुष्य हे रघुराई ! तुम्हारे समान है। यह गुण साधन से नहीं होता। तुम्हारी कृपा से किसी-किसी को मिल जाता है।

व्याख्या : काम वाण है। यह प्राण हरण करता है। क्रोध अन्धकार है, इसमें विवेक दृष्टि लुप्त हो जाती है और लोभ पाश है। यह परवश कर देता है। लोभ से ही मनुष्य अपने को दूसरे के वश में कर देता है। दूसरे की गुलामी करता है। अनेक प्रकार का अपमान सहन करता है। लोभ के पाश में अपना गला मनुष्य स्वयं बँधाता है। उसे अपने को परवश करने में लज्जा नहीं होती। यथा : लोलुप भ्रमत गृह पसु ज्यौं जहँ तहँ सिरपद त्रान बजे। तदपि अधम विचरत तेहि मारग कबहुँ न मूढ़ लजे। केवल आप में ये तीनों नहीं हैं। काम नहीं है। यथा : मोरे अति प्रतीति जिय केरी। जेहि सपनेउ पर नारि न हेरी। क्रोध नहीं है। यथा : सिसुपन ते पितु मातु बंधु गुरु सेवक सचिव सखाउ। कहत राम बिधु बदन रिसौं हैं सपनेहुँ लख्यो न काउ। लोभ नहीं है। यथा : राजिव लोचन राम चले तजि बाप को राज बटाउ कि नाई। अतः जिनमें ये तीनों न हों वह मनुष्य तो तुम्हारे समान है। कामरहित होना क्रोधरहित होना और लोभरहित होना क्रियासाध्य नहीं हैं। कृपासाध्य हैं। काम क्रोध और लोभ के जय के लिए सभी साधक सचेष्ट होते हैं। पर इसमें कृतकार्य तो कोई एक ही होता है और वह तुम्हारी कृपा से होता है। यथा : तब लगि हृदय बसत खल नाना। लोभ मोह मत्सर मद माना। जब लगि उर न बसत रघुनाथा। धरे चाप सायक कटि भाथा।

तब रघुपति बोले मुसुकाई। तुम्ह प्रिय होहि भरत जिमि भाई ॥
अब सोइ जतनु करहु मन लाई। जेहि बिधि सीता कै सुधि पाई ॥४॥

अर्थ : तब रघुपति मुसकुराकर बोले कि तुम मुझे भाई भरत के समान प्रिय हो। अब मन लगाकर वैसा ही यत्न करो जिसमें सीताजी की सुधि मिले।

व्याख्या : मुसकुराने से अपराध का क्षमापन सूचित किया। क्रोध बनावटी था। मित्र का सामना पड़ते ही मुसकुरा पड़े। कहने लगे कि यह सन्देह न करो कि तुम्हारे ऊपर मेरी कृपा नहीं है। तुम भाई भरत के समान प्रिय हो। तुम्हारा स्मरण मुझे रात दिन बना रहता है। यथा : रामहि बन्धु सोच दिन राती। अंडन्हि कमठ हृदउ जेहि भाँती। प्रिय होने में हनुमानजी को लक्ष्मण की कोटि में गिना था। सुग्रीवजी को भरतजी की कोटि में गिन रहे हैं। अपराध अगाध भये जन ते अपने उर आनत नाहिन जू। कहते हैं कि अब मेरी अप्रसन्नता हटाने की चिन्ता न करो। अब सीता का पता लगाने की बिधि के लिए मन लगाकर यत्न करो। यत्न तुमने आरम्भ कर दिया। इसमें सन्देह नहीं है पर मन लगाकर यत्न नहीं किया।

हनुमान्जी के स्मरण कराने पर भी दूतों को स्वयं बुलाकर नहीं कहना। हनुमान्जी को उन्हें बुलाकर कहने की आज्ञा देना। इस बात का प्रमाण है कि तुमने मन लगाकर यत्न नहीं किया। अब मन लगाकर करो।

५३. सुग्रीव दूत प्रेषण प्रसंग

दो. एहि बिधि होत बतकही, आये बानर जूथ।
नाना बानर सकल दिसि, देखिअ कीस बरूथ ॥२१॥

अर्थ : इस प्रकार बातचीत होती ही रही कि बानरी सेना आगयी। सब दिशाएँ बानरी सेना के कारण नाना रङ्ग के दिखाई पड़ने लगीं अथवा नाना रङ्ग की बानरी सेना सब दिशाओं में दिखाई पड़ती थी।

व्याख्या : हनुमान्जी ने चारों ओर दूत भेजे थे। अतः वे दूत चारों दिशाओं के पर्वत वनों से बानरी सेनाओं को लिए हुए आ पहुँचे। पन्द्रह दिन का उनको समय दिया गया था। आज पन्द्रहवाँ दिन था। अतः चारों दिशाओं से सेना पहुँचने लगी। बन्दर अनेक रङ्ग के होते हैं। एक-एक रङ्ग के बन्दरों की अलग-अलग सेना है। अतः इतनी बड़ी बड़ी सेनाएँ पृथक् पृथक् रङ्ग के बन्दरों की जो चारों दिशाओं से आयीं तो उनके रङ्ग से दिशाएँ लाल, पीली, काली, नीली हो गयीं। इससे बानरी सेना की अपारता कहा।

बानर कटक उमा मैं देखा। सो मूरुख जो करन चह लेखा ॥
आइ राम पद नावहिं माथा। निरखि बदनु सब होहिं सनाथा ॥१॥

अर्थ : उमा! मैंने बानरी सेना देखी। जो उनकी लेखा करना चाहे वह मूर्ख है। आकर रामजी के चरणों में सिर नवाते हैं और मुख देखकर सब सनाथ होते हैं।

व्याख्या : बात मन में बैठने योग्य नहीं है। अतः शिवजी उमा से कहते हैं कि मेरी आँखों देखी बात है अथवा उमा अद्भुत दृश्य का स्मरण करके सेना की महत्ता बतलाने के लिए कहते हैं कि मैंने देखा पर यह अन्दाज न कर सका कि सब मिला कर कितने बन्दर होंगे। यथा : महा बली बानर बिसाल भालु काल से कराल हैं रहे कहाँ? समाहिं कहाँ मही? लेखा करना पण्डित का काम है। मूर्ख लेखा नहीं कर सकता। पर वहाँ तो असंख्य बन्दर थे। इनकी संख्या करने की इच्छा करनी ही मूर्खता थी।

सब के सब आकर रामजी के चरणों में सिर नवा रहे हैं सुग्रीव के चरणों में नहीं करते। सबको मालूम है कि महाप्रभु रामजी हैं सुग्रीव तो उनके बनाये हुए राजा हैं। सर्वे पदा हस्तिपदे निमग्नाः इन्हीं के प्रणाम से सुग्रीव को भी तुष्टि है अथवा सभी प्रणामों का पर्यवसान रामजी के चरणों में ही होता है। यथा : सर्वदेवनमस्कारः केशवं प्रति गच्छति। अतः उन्हीं को प्रणाम किया अथवा रामजी

के विद्यमान होने पर दूसरे को प्रणाम करना उचित नहीं समझा अथवा सुग्रीवजी का रुख है रामजी को ही प्रणाम करो।

प्रणाम करने के बाद सब मुख देखते हैं और सनाथ होते हैं। यही समय है अत्यन्त निकट आकर दर्शन करने का। अतः प्रणाम करके मुख देखते हैं और प्रभु को पहिचानकर सनाथ होते हैं। यथा : जो कछु आयसु ब्रह्मा दीन्हा। हरखे देव बिलंब न कीन्हा। बनचर देह धरी छिति माहीं। अतुलित बल प्रताप तिन्ह पाहीं। गिरि तरु नख आयुध सब धीरा। हरि मारग चितवहिं मति धीरा। जबतक प्रभु को नहीं देखा था अपने को अनाथ मानकर नाथ के आने की प्रतीक्षा कर रहे थे। अतः नाथ को पहिचानकर सनाथ हो रहे हैं अथवा प्रभु के दर्शन से कृतार्थ होकर सनाथ हो रहे हैं।

अस कपि एक न सेना माँहीं। राम कुसल जेहि पूछा नाँही ॥
यह कछु नहिं प्रभु कै अधिकाई। बिस्व रूप ब्यापक रघुराई ॥२॥

अर्थ : एक भी बन्दर सेना में ऐसा नहीं था जिससे रामजी ने कुशल न पूछा हो। यह प्रभु के लिए कोई विशेषता नहीं है। क्योंकि रघुराई तो विश्वरूप व्यापक हैं।

व्याख्या : सेवकों ने ही प्रभु को पहिचाना यह बात नहीं। प्रभु ने भी सेवकों को पहिचाना और सबसे कुशलप्रश्न किया। यह कुशलप्रश्न आदर का द्योतक है। शङ्का उठती है कि जब इतने असंख्य बन्दर थे तो सबसे कुशलप्रश्न करना कैसे सम्भव है? बात यह है कि जीव के लिए तो यह बात अवश्य असम्भव है पर रघुराई के लिए नहीं। वे तो व्यापक हैं सभी के साथ संयुक्त हैं और सर्वरूप हैं। जिमि घट कोटि एक रवि छाही। वे सबसे एक साथ मिल सकते हैं। उनके लिए सबसे कुशलप्रश्न करना बड़ी बात नहीं है। ब्रह्म का जीव पर सहज स्नेह होता है। यथा : ब्रह्म जीव इव सहज सनेहू। अतः स्नेही का कुशलप्रश्न न करना ही अनुचित है। यहाँ पर सरकार का स्वभाव कहते हैं। सामान्य राजा चाहे सेनापति से कुशल पूछ लें पर सैनिक से कुशल नहीं पूछते। यहाँ तो कोई बन्दर ऐसा बचा नहीं जिससे कुशल न पूछा गया हो। अस सुभाउ कहुँ सुनें न देखें। केहि खगेस रघुपति सम लेखे।

५४. सीता खोज

ठाढ़े[1] जहँ तहँ आयसु पाई। कह सुग्रीव सबहि समुझाई ॥
राम काजु अरु मोर निहोरा। बानर जूथ जाहु चहुँ ओरा ॥३॥

अर्थ : आज्ञा पाकर सब जहाँ तहाँ खड़े हो गये और सुग्रीव सबको समझा

---

१. ५३वाँ प्रसंग सीता खोज यहाँ से प्रारम्भ हुआ।

कर कहने लगे। एक तो रामजी का कार्य है और दूसरे मैं निहोरा करता हूँ। इससे हे बानर समूह ! चारो ओर जाओ।

व्याख्या : ज्यों सुग्रीवजी आज्ञा देने लगे सब के सब जहाँ के तहाँ खड़े हो गये। सुग्रीवजी सबको समझाकर कहने लगे कि अमुक यूथप अमुक दिशा में जायँ। और उनकी जानकारी के लिए उन उन दिशाओं के देश, पर्वत, नदी आदि का पता बतलाया और जहाँ तक गति है उन स्थानों की सीमा बतलायी। प्रयोजन बतलाते हुए कहा कि यह राज्यकार्य है इनके करने से तुम्हारा पारलौकिक कल्याण होगा और लोक में भी तुम्हारा भला होगा। मैं राजा होकर तुम्हारा कृतज्ञ हूँगा।

जनक सुता कहुँ खोजहु जाई। मास दिवस महुँ आयेहु भाई॥
अवधि मेंटि जो बिनु सुधि पाएँ। आवइ बनिहि सो मोहि मराएँ॥४॥

अर्थ : जाकर राजा जनक की बेटी को खोजो। एक महीने के भीतर लौट आना। यदि बिना पता लगाये कोई महीने भर के बाद लौटेगा उसे मेरे हाथ से मरना पड़ेगा।

व्याख्या : जनकसुता कहने से जगद्विख्यात रूप कहा। भाव यह कि अति-रूपवती स्त्री देखना तब पता लगाना कि यह किसकी बेटी है। जब मालूम हो जाय कि राजा जनक की बेटी है तब लौटकर मुझे समाचार देना। भाई ! सम्बोधन से अभिप्राय है कि तुम हमारे भाई हो। इस सङ्कट में सहायता करो। यथा : ओढ़िअहि हाथ असनिहुँ के छाए। होहिं कुठाय सुबंधु सहाये। मैंने प्रतिज्ञा की है कि : सब प्रकार करिहौं सेवकाई। जेहि बिधि मिलहि जानकी आई। सो तुम्हारे ही बल पर की है। अतः तुमलोग जानकीजी का पता लगाओ और महीने भर में अवश्य लौट आना। तुम्हारा किया न हो सके तो लौटकर समाचार देना कि पता नहीं लग सका।

यदि पता लग जाय तो स्वयं आँख से देखकर तब लौटना। इस प्रयत्न में देर भी हो जाय तो कोई चिन्ता नहीं। पर यदि पता भी न लगा और लौटने में भी देर हुई तो वह अपराध अक्षम्य समझा जायगा। उसका वध दण्ड है।

दो. बचन सुनत सब बानर, जहँ तहँ चले तुरंत।
तब सुग्रीव बोलाये, अंगद नल हनुमंत॥२२॥

अर्थ : वचन सुनते ही सब बानर जहाँ तहाँ तुरन्त चल पड़े। तब सुग्रीव ने अङ्गद नल और अनुमानजी को बुलाया।

व्याख्या : ऐसी आज्ञा पाने पर बन्दरों ने एक क्षण का भी देर करना उचित नहीं समझा। अपनी अपनी निर्दिष्ट दिशाओं में चल पड़े। पता पहले से ही था कि सीताजी का हरण करनेवाला उन्हें दक्षिण दिशा में ले गया है। अतः विशेष रूप

दक्षिण दिशा में ही खोज करना था। अतः अत्यन्त विश्वस्त तथा प्रख्यातपौरुष वीरों को उधर ही भेजना निश्चय करके बुलाया। सम्भव है कि हरण करनेवाले ने आगे जाकर मार्ग परिवर्तन कर दिया हो। इसलिए सभी ओर खोजने के लिए सेना भेजी : यह दोहारूपी कमल अगली चौपाईरूपी पुरइन से सम्बद्ध है : इस दोहा में तीन सुभटों का नाम गिनाया। अङ्गद हनुमान् और नल का। परन्तु कवि को चार का नाम गिनना इष्ट है। अतः शेष का अगली चौपाई में गिनावेंगे।

सुनहु नील अंगद हनुमाना। जामवंत मति धीर सुजाना ॥
सकल सुभट मिलि दच्छिन जाहू। सीता सुधि पूंछेहु सब काहू ॥१॥

अर्थ : हे नील ! अङ्गद युवराज है। हनुमान् और धीरमति सुजान जाम्बवान सुनो। सब वीर मिलकर दक्षिण दिशा में जाओ और सीताजी की सुधि सबसे पूछो।

व्याख्या : नील सेनापति हैं। अङ्गद युवराज है। हनुमान् और जामवन्त मन्त्री हैं। नल स्थपति : इन्जीनियर। इनमें जाम्ववान् सबसे वयोवृद्ध हैं। इन्हें मतिधीर और सुजान विशेषण देकर यह द्योतित किया कि इनकी सम्मति से शेष वीर लोग काम करें। यथा : जामवन्त मैं पूछौं तोही। उचित सिखावन दीजहु मोही। अन्य दिशाओं में एक ही एक सुभट भेजे गये। विनय पूर्व दिशा में भेजे गये थे। शतबलि उत्तर दिशा में। सुषेण पश्चिम दिशा में भेजे गये थे। दक्षिण दिशा में यद्यपि नाम पाँच का ही लेते हैं पर : सकल सुभट कह कर यह दिखलाते हैं कि शेष सभी सुभट : द्विविद मयंद नील नल अंगद गद विकटासि। दधिमुख केहरि निसठ सब जामवंत बलरासि। दक्षिण दिशा में ही मैथिली : सीताजी के ले जाने का पता चलता है। अतः इस ओर अधिक प्रयत्न किया गया। सुग्रीवजी उपदेश देते हैं कि सीता का पता सबसे पूछना। भाव यह कि यह महामन्त्र है कि जिसकी खोज हो उसके विषय में सबसे पूछे। यह विचार न करे कि अमुक व्यक्ति न जानता होगा उससे क्या पूछें अथवा बार बार निषेधात्मक उत्तर पाने से धैर्य न छोड़ें और पूछने में सङ्कुचित न हो। इसलिए सबसे पूछने का उपदेश दे रहे हैं।

मन क्रम बचन सो जतन बिचारेहु। रामचन्द्र कर काज संवारेहु ॥
भानु पीठ सेइअ उर आगी। स्वामिहि सर्बभाव छलत्यागी ॥२॥

अर्थ : मनसा वाचा कर्मणा वही उपाय सोचना जिसमें रामजी का काम बन जाय। सूर्य की पीठ पीछे और अग्नि को हृदय से सेवा करे। पर स्वामी की तो सर्वतोभाव से छल छोड़कर सेवा करनी चाहिए।

व्याख्या : अग्रे वह्निः पृष्ठे भानुः। यही नियम है कि अग्नि की सेवा आगे से और सूर्य की सेवा पीछे से करनी चाहिए। इसी में हित है। व्यतिक्रम होने से हानि की सम्भावना है। जाड़ा कलेजे में पैठ जाती है। यथा : जड़ता जाड़ विषम डर लागा। अतः अग्नि की सेवा डर से करनी चाहिए। सामने से सूर्य की सेवा करने से

नेत्रों में हानि पहुँचती है। पर स्वामी की सेवा सामने और पीठ पीछे भी सर्वतोभाव से करनी चाहिए। पीठ पीछे सेवा करनेवाले में छल की सम्भावना नहीं रहती। मुख के सामने सेवा करने में छल की सम्भावना रहती है। इसलिए सर्व भाव छल त्यागी कहा।

अथवा आगे से अग्नि और पीठ की ओर से सूर्य की सेवा करे तो जाड़ा चली जाय। पर जड़तारूपी जाड़ा तो स्वामी की छल छोड़कर सर्वतोभाव से भजन करने से ही जाती है। रामजी सबके स्वामी हैं। सौभाग्य से इनकी सेवा का अवसर प्राप्त हुआ है। अतः छल छोड़कर सर्वतोभाव से इनका कार्य करो।

तजि माया सेइअ परलोका। मिटहिं सकल भव संभव सोका ॥
देह धरे कर यह फलु भाई। भजिअ राम सब काम बिहाई ॥३॥

अर्थ : माया का परित्याग करके परलोक का काम जब करे तब संसार से उत्पन्न सब शोक मिटते हैं। हे भाई! देह धारण का यही फल है कि सब कामनाओं को छोड़कर राम को भजे।

व्याख्या : माया का सर्वथा परित्याग नहीं हो सकता। शब्द स्पर्श रूप रस गन्ध को छोड़कर कोई कहाँ जावेगा? गो गोचर जहाँ तक मन की दौड़ है वह सब माया ही तो है और बिना उसके त्यागे परलोक का सेवन हो नहीं सकता। शोक मोह संसार का बीज है। यह मैं और मेरा तैं और तेरा इन भावों के रहते हुए नष्ट नहीं हो सकता। अतः मन से अहंता और ममता का परित्याग करने से ही परलोक की सेवा सम्भव है। यथा : रस रस सूख सरित सर पानी। ममता त्याग करहिं जिमि ग्यानी। राम ब्रह्म ही परलोक रूप है। यथा : राम ब्रह्म परमारथ रूपा। अतः इनकी सेवा सब कोई अहंता ममता परित्याग करके करो। पहिले स्वामिहि सर्वभाव छल त्यागी जो कहा है सो माया ही छल है। भाव यह कि देह और गेह की ममता छोड़कर जगदम्बा जानकी के खोज में लग जाओ। यथा : सो जननी सो पिता सोइ माइ सो भामिनि सो सुत सो हित मेरो। सोइ सगो सो सखा सोइ सेवक सो गुरु सो सुर साहिब चेरो। सो तुलसीप्रिय प्रान समान कहाँ लो बनाइ कहौं बहु तेरो। सो तजि देह को गेह को नेह सनेह सों राम को होइ सवेरो।

देह धारण का फल कामभोग नहीं है। इससे तो इन्द्रियों का तेज नष्ट होता है। देह धारण का फल भजन है। क्योंकि बिना देह के राम भजन नहीं होता। देह में ममता इसलिए होनी चाहिए कि इसके द्वारा राम भजन होता है। यथा : तजौं न तनु निज इच्छा मरना। तनु बिनु बेद भजन नहिं बरना। जेहि ते कछु निज स्वारथ होई। तेहि पर ममता कर सब कोई। रामभगति यहि तन उर नामी। ताते मोहि परम प्रिय स्वामी। अर्थात् यह समय देह धारण के फल प्राप्त करने का आ गया है। अतः भाइयो! इस अवसर को न चूको। रामजी की सेवा में शरीर को लगा दो।

सोइ गुनज्ञ सोई बड़ भागी । जो रघुबीर चरन अनुरागी ॥
आयसु माँगि चरन सिरु नाई । चले हरषि सुमिरत रघुराई ॥४॥

अर्थ : वही गुणज्ञ है और वही बड़ा भाग्यशाली है जो रघुबीर के चरण का अनुरागी हो । आज्ञा माँगकर और चरणों में सिर नवाकर सब हर्षित होकर रामजी का स्मरण करते हुए चले ।

व्याख्या : कलाओं के ज्ञान से कोई गुणज्ञ नहीं होता और सुख सम्पत्ति के होने से कोई भाग्यशाली नहीं होता । कलाओं का ज्ञान और सुख सम्पत्ति तो पापी को भी होती है । जो प्रमादी वित्त मोह से मूढ़ हैं उन्हें परलोक प्रतिभात नहीं होता । वह इसी लोक को सब कुछ मान बैठता है परलोक नहीं मानता और बार बार यमराज के वश में जाता है । अतः भवभञ्जन के पद का जो अनुरागी है वही बड़भागी है । रमा बिलास राम अनुरागी । तजत बमन जिमि जन बड़ भागी । कहा भी गया है : कौपीनवन्तः खलु भाग्यवतः जिन्हें कौपीन : लंगोटी मात्र है वे ही भाग्यवान् हैं । जरउ सो सम्पति सदन सुख सुहृत मातु सुत भाइ । संनमुख होत जो रामपद करइ न सहस सहाइ ।

तीन दिशाओं में जो बन्दर सीताजी का समाचार लेने को भेजे गये उनका न तो प्रणाम करना और न हर्षित होकर चलना कहते हैं । अतः उनके द्वारा कार्य सिद्ध का न होना द्योतित किया । दक्षिण दिशा के यात्री वीरों ने प्रणाम किया । आज्ञा माँगी और रघुराई का स्मरण करते चले । उनके ऊपर सुग्रीवजी के उपदेश ने काम किया । सुग्रीवजी ने कहा : भजिअ राम सब काम बिहाई । सो वे रघुराई का स्मरण करते चल पड़े ।

पाछे पवन तनय सिरु नावा । जानि काज प्रभु निकट बोलावा ॥
परसा सीस सरोरुह पानी । कर मुद्रिका दीन्हि जन जानी ॥५॥

अर्थ : पीछे से हनुमान्‌जी ने सिर नवाया । इनके द्वारा : कार्यसिद्धि जानकर प्रभु ने समीप बोलाया । उनके सिर पर करकमल फेरा और भक्त जानकर हाथ की अँगूठी दी ।

व्याख्या : हनुमान्‌जी परम अमानी हैं । अतः सबके प्रणाम करने के बाद जाकर प्रणाम किया । सभी लोग दूर से प्रणाम करते हैं । उसी भाँति हनुमान्‌जी ने भी दूर से ही प्रणाम किया । सुग्रीवजी ने बार बार कहा है : कार्यसिद्धिर्हनुमति : कार्य सिद्धि तो हनुमान् में है और प्रभु स्वयं जानते हैं कि इस कार्य का सम्पादन हनुमान्‌जी करेंगे । इसलिए निकट बोलाया सन्देश कहने के लिए ।

रक्षा का हाथ सिर पर फेरा । जेहि कर सभय किये जन आरत वारक विवस नाम टेरे । शीतल सुखद छाँह जेहि कर की मेटत पाप ताप माया । हनुमान्‌जी को अभय किया और अपने हाथ की मुद्रिका दी सीताजी के पहिचान के लिए ।

यह मुद्रिका अदेय थी। परम विश्वस्त को ही यह दी जा सकती थी। अतः अपना जानकर हनुमान्‌जी को दिया कि इसे सीताजी को ले जाकर देना। इसे पाकर वह तुम्हारे विषय में सन्देह न करेंगी और जब तक वे विरह में रहेंगी तब तक के लिए यह अँगूठी उनको आधार होगी।

बहु प्रकार सीतहिं समुझायेहु। कहि बल बिरह बेगि तुम्ह आयेहु॥
हनुमत जनम सुफल करि माना। चले हृदय धरि कृपा निधाना॥६॥
जद्यपि प्रभु जानत सब बाता। राज नीति राखत सुरत्राता॥७॥

अर्थ : बहुत प्रकार से सीताजी को समझाना। मेरा बल और विरह कहना और जल्दी लौट आना। हनुमान्‌जी ने अपना जन्म सफल माना और हृदय में कृपानिधान को रखकर चले। यद्यपि प्रभु सब बात जानते हैं। परन्तु देवताओं के रक्षक रामजी राजनीति की रक्षा करते हैं।

व्याख्या : अब रामजी आदेश देते हैं कि सीताजी को बहुत प्रकार से समझाना। उनके हृदय में बड़ा विषाद होगा शीघ्र सान्त्वना न हो सकेगी। मेरा बल वर्णन करके उन्हें भरोसा देना और विरह वर्णन करके सान्त्वना देना। प्रेम पात्र को प्रेम है यह जानने से ही सान्त्वना होती है। मैं तुम्हारे लौटने की प्रतीक्षा करता रहूँगा। अतः लौटने में शीघ्रता करना। सीता को लेते न आना। प्रभु हनुमान्‌जी के स्वभाव को देख चुके हैं कि सुग्रीवजी ने उनके पास हनुमान्‌जी को केवल शत्रु मित्र की परीक्षा के लिए भेजा था। सो ये महात्मा रामजी को पीठ पर चढ़ाकर लेते आये। सो इसी भाँति सीताजी को लेते न आवें। हनुमान्‌जी के पराक्रम को भी जानते हैं कि ये लाने में समर्थ हैं। ऐसा होने से निशिचरहीन मही न हो सकेगी। इसलिए कहते हैं कि तुम जल्द लौट आना।

मुद्रिका प्राप्ति और सन्देश श्रवण से हनुमान्‌जी ने अपने जन्म को सफल माना। रूप से नाम की प्राप्ति हुई। समझ लिया कि इस कार्य का श्रेय सरकार मुझे देना चाहते हैं। यदि यह कार्य मेरे द्वारा न होना होता तो न मुझसे सन्देश कहते और न अँगूठी ही देते। सुग्रीवजी ने देह धारण का जो फल बतलाया था सो मुझे मिला और साथी लोग रघुराई को स्मरण करते चले। पर हनुमान्‌जी तो स्वयं कृपानिधान को हृदय में रखकर चले। भाव यह कि सरकार की मनोमय मूर्ति हृदय में धारण करके तब चले।

प्रश्न हो सकता है कि जब रामजी जानते ही थे कि कार्य हनुमान्‌जी द्वारा होगा तो इतने बन्दरों के भेजने का आडम्बर क्यों किया। इस पर कवि कहते हैं कि लोकशिक्षा के लिए राजनीति की रक्षा रामजी ने की। पता लगाने की जो विधि है उसका उल्लंघन नहीं किया।

दो. चले सकल बन खोजत सरिता सर गिरि खोह।
रामकाज लयलीन मन बिसरा तन कर छोह॥२३॥

अर्थ : सब वन, नदी, तालाब, पहाड़ की कन्दराओं को खोजते हुए चले। रामजी के कार्य में मन लीन हो गया सो देह की ममता जाती रही।

व्याख्या : सभी ने सुग्रीवजी की आज्ञा का ऐसा पालन किया कि रामजी के कार्य में तन्मय हो गये। वन खोजते चले। राक्षसी माया से सशङ्क होकर नदी तालाब और पर्वत के खोहों में भी घुसकर सीता को खोजते चले। ऐसे दत्तचित्त हुए कि उनको अपने शरीर की ममता नहीं रह गयी। स्वामिहि सर्ब भाव छल त्यागी : इस उपदेश का साफल्य दिखलाते हैं :

कतहुँ होइ निसिचर सैं भेटा। प्रान लेहिं एक एक चपेटा॥
बहु प्रकार गिरि कानन हेरहिं। कोउ मुनि मिलै ताहि सब घेरहिं॥१॥

अर्थ : यदि कहीं राक्षस से भेंट हुई तो एक एक चपेटा मारकर उसका प्राण ले लेते थे और यदि कोई मुनि मिल जाता था तो उसे सब घेर लेते थे।

व्याख्या : अब सुग्रीवजी की इस आज्ञा का पालन हो रहा है कि : सीता सुधि पूछेहु सब काहू। वन के खोजने में कहीं राक्षस मिल जाते थे। निसिचर निकर नारि नर चोरा। ये मनुष्यों को चोराते हैं। सीताजी को भी राक्षस ने ही हरण किया है। इनसे साम द्वारा काम निकल नहीं सकता। अतः चपेटा मार मारकर पूछते थे कि बता सीता कहाँ हैं? और उसका प्राण लेकर ही मानते थे और यदि कहीं मुनि मिल जाते थे तो उन्हें सब घेरते थे। अनुनय विनय से पूछते थे कि आप को जनकनन्दनी का कुछ समाचार ज्ञात है? वन और पर्वतों में अनेक प्रकार से खोजते हैं। कोई झाड़ी या गुफा ऐसी नहीं छूटती थी जहाँ इन लोगों ने न खोजा हो। कोई जंगली जाति ऐसी न रह गयी जिसमें इन लोगों ने पता न लगाया हो।

लागि तृषा अतिसय अकुलाने। मिलै न जल घन गहन भुलाने॥
मन हनुमान कीन्ह अनुमाना। मरन चहत सब बिनु जलपाना॥२॥

अर्थ : उन लोगों को प्यास लगी तो अत्यन्त व्याकुल हो गये। कहीं जल मिलता नहीं था और घने जंगल में रास्ता भूल गये। हनुमान्‌जी ने मन में अनुमान किया कि सब बिना पानी के मरा चाहते हैं।

व्याख्या : तुलसी जसि भवितव्यता तैसइ मिलै सहाइ। आपु न आवइ ताहि पहँ ताहि तहाँ लै जाइ। यही गति राजा भानु प्रताप की हुई। यथा : खेद खिन्न छुद्धित तृषित राजा बाजि समेत। ब्याकुल खोजत सरित सर जल बिनु भयउ अचेत। पर उनकी भवितव्यता खोटी थी। इनकी अच्छी है। भूख सही जाती है प्यास नहीं सही जाती। निर्जल बन था और ऐसा घना था कि दिशाओं का थाह नहीं लगता था। भूल गये कि किधर से आये और किस ओर जाना है। सबके कण्ठ ओठ और तालू सूख रहे हैं। भाव यह कि हनुमान्‌जी सिद्ध हैं। क्षुधातृषा की इन्हें बाधा नहीं हुई। पर दूसरों की गति देखकर इन्होंने अनुमान किया कि ये लक्षण मुमूर्षु के हैं। अब यदि इनको शीघ्र जल न मिलेगा तो सब के सब मर जावेंगे।

५४. विवर[1] प्रवेश प्रसंग

चढ़ि गिरि सिखर चहूँ दिसि देखा । भूमि बिबर एक कौतुक देखा ॥
चक्रवाक बक हंस उड़ाहीं । बहु तक खग प्रबिसहिं तेहि माहीं ॥३॥

अर्थ : पर्वत की चोटी पर चढ़कर चारो ओर देखा तो भूमि के एक बड़े बिल में एक अद्भुत बात दिखायी पड़ी कि चकवा, बगले और हंस उड़ रहे हैं और बहुत सी चिड़ियाँ उस बिल में घुसी जा रही हैं ।

व्याख्या : घने जंगल में यह पता नहीं लगता कि किस ओर कितनी दूर पर कोई आश्रय बस्ती तालाब या नदी है । बिना किसी उच्च स्थान पर चढ़े कुछ थाह नहीं लगता । जंगल इतना बड़ा है कि पेड़ों पर चढ़ने से काम चलनेवाला नहीं । हनुमान्जी बुद्धिमतां वरिष्ठ हैं : बड़े बुद्धिमान् हैं । एक पर्वत के शिखर पर चढ़ गये और चारों ओर देखने लगे कि किसी ओर कुछ जल का पता लगता है या नहीं । सो कोई तालाब या नदी तो नहीं दिखायी पड़ी । पर एक दरार के ऊपर चकवे बगले और हंस उतरे दिखायी पड़े । ये जल पक्षी हैं : जल के पास ही रहते हैं । अतः यह आशा हुई कि उस स्थान पर जल है । पक्षी बिल में घुसते कभी देखे नहीं गये । पर वहाँ यह कौतुक दिखायी पड़ा कि बहुत से पक्षी उसमें प्रवेश कर रहे हैं । इससे निश्चय हुआ कि उस बिल में जल है ।

गिरि ते उतरि पवन सुत आवा । सब कहुँ लेइ सोइ बिबर देखावा ॥
आगे कै हनुमंतहि लीन्हा । बैठे बिबर बिलंबु न कीन्हा ॥४॥

अर्थ : हनुमान्जी पर्वत पर से उतर आये और सबको ले जाकर वह विवर दिखलाया । सबने हनुमान्जी को आगे कर लिया और विवर के पैठने में देर न की ।

व्याख्या : पवन सुत हैं । इन्हें पर्वत पर चढ़ने उतरने में कोई आयास नहीं है । पर्वत से नीचे उतर आये सब हाल कहा और सबको ले जाकर वह विवर दिखला दिया कि इसी में पानी है । विवर के भीतर न जाने क्या है ? ऊपर गुल्म लताओं से ढका है । भीतर घोर अंधकार के सिवा कुछ दिखायी नहीं पड़ता है । अनजान स्थान में घुसना है और बिना घुसे दूसरी गति नहीं है । प्यास बढ़ती ही जा रही है । मरना ही है तो बिना पानी क्यों मरें तो भी हनुमान्जी को आगे कर लिया । सभी जानते थे कि संकटमोचन यही हैं । यदि कोई विघ्न उपस्थित होगा तो उसे वे ही दूर कर सकेंगे । तुरन्त एक दूसरे का हाथ पकड़े हुए बिल में घुसे । अधिक विचार के लिए समय नहीं था ।

दो. दीख जाइ उपवन बर सर बिगसित बहु कंज ।
मंदिर एक रुचिर तहँ बैठि नारि तप पुंज ॥२४॥

---

१. ५४वाँ विवर प्रवेश प्रसङ्ग आरम्भ हुआ ।

अर्थ : वहाँ जाकर उत्तम बाग देखा। तालाब था जिसमें बहुत से कमल खिले थे। एक सुन्दर मकान था जिसमें एक तपःपुंज स्त्री बैठी हुई थी।

व्याख्या : उसी अन्धकार में कुछ दूर घुसते चले गये तब दिखायी पड़ने लगा कि भीतर बड़ा अवकाश था। सुन्दर फल फूल से युक्त उपवन था। तालाब था जिसमें कमल फूले हुए थे। परन्तु वहाँ कोई मनुष्य नहीं था। केवल एक सुन्दर मकान था जिसमें एक तपोमूर्ति स्त्री बैठी हुई थी।

दूरि तें ताहि सबन्हि सिरु नावा। पूँछे निज वृत्तांत सुनावा॥
तेहि तब कहा करहु जल पाना। खाहु सुरस सुन्दर फल नाना॥१॥

अर्थ : दूर से ही सबने उसे सिर नवाया और पूछने पर अपना वृत्तान्त कह सुनाया। उसने कहा कि जलपान करो और सुन्दर स्वादवाले अनेक प्रकार के फल खाओ।

व्याख्या : इतने भूखे प्यासे होने पर भी जल और फल पर नहीं टूटे। उस उपवन के स्वामी को ढूँढ़ने लगे कि उसकी आज्ञा पा लें तो जल ग्रहण करें। उस मकान में गये तो वह मकान सब गुणों से युक्त मणि वस्त्रादि से पूर्ण था। दिव्य भोज्य पदार्थ रक्खे हुए थे पर कोई मनुष्य उसमें नहीं था। ये महात्मा वानर माँ की भाँति परनारी और विष से भी बड़ा विष पराये धन को माननेवाले थे। आश्चर्य में आकर उस घर को ढूँढ़ा तो उसमें सुवर्ण के आसन पर बैठी हुई ध्यान में निमग्न एक योगिनी को देखा। इन लोगों ने दूर से ही उसे प्रणाम किया।

उस योगिनी ने पूछा कि तुम लोग कौन हो? किसके दूत हो? मेरे स्थान में क्यों आये हो? तब हनुमान्‌जी ने कहा कि देवि! मैं तुमसे सब कहता हूँ सुनो। अयोध्या के राजा दशरथ के ज्येष्ठ पुत्र श्री रामचन्द्र हैं। वे पिता का वचन मानकर भाई और स्त्री के साथ वन में चले आये। उनकी स्त्री को दुष्ट रावण हरण कर ले गया। तब रामजी भाई के साथ सुग्रीव के यहाँ आये। सुग्रीव ने मित्र भाव से उनकी स्त्री को खोजने के लिए हम लोगों को भेजा है। सो इस घोर वन में उनकी स्त्री जानकी को खोजते खोजते जल के लिए इस घोर गह्वर में घुसे। दैवात् यहाँ आ पड़े। हे शुभे! तुम यहाँ किसलिए रहती हो? और कौन हो? सो बताओ।

योगिनी ने कहा कि पहिले तुम लोग जल पी लो और पेट भर सुस्वादु नाना प्रकार के फल खा लो तब मैं अपना वृत्तान्त सुना दूँगी।

मज्जन कीन्ह मधुर फल खाये। तासु निकट पुनि सब चलि आये॥
तेहि सब आपनि कथा सुनाई। मैं अब जाब जहाँ रघुराई॥२॥

अर्थ : वानरों ने मज्जन किये मीठे फल खाये और तब सब उनके पास

चले आये। उसने सब अपनी कथा सुनायी और कहा कि अब मैं वहाँ जाऊँगी जहाँ रघुपति रामचन्द्र हैं।

व्याख्या : मज्जन कीन्ह पंथ श्रम गयऊ। सुचि जल पियत मुदित मन भयऊ। बन्दरों ने थकावट मिटाने के लिए स्नान किया जलपान किया मीठे मीठे फल खाये। सब प्रकार से सन्तुष्ट होकर उसके पास चले गये। पहिले स्नान नहीं किया था अतः दूर से ही प्रणाम किया। अब स्नानादि से शुद्ध हैं अतः उसके निकट चले गये। तब उसने अपनी कथा सुनायी कि विश्वकर्मा की पुत्री दिव्यरूपिणी हेमा नामवाली थी। उसने नृत्य से महादेवजी को प्रसन्न कर लिया। शिवजी ने प्रसन्न होकर उसे यह दिव्य पुर दिया। यहाँ वह सहस्रों वर्ष रह चुकी है। उसी की मैं सखी हूँ। मोक्ष के लिए विष्णु भगवान् की उपासना करती हूँ। मेरा नाम स्वयंप्रभा है। हेमा जब ब्रह्मलोक को जाने लगी तब मुझसे कहा कि तुम यहीं तप करो। त्रेता में साक्षात् नारायण राजा दशरथ के पुत्र होंगे। वे भू भार के हरण करने के लिए वन में घूमेंगे। उनकी स्त्री को खोजते हुए बानर तेरी गुहा में आवेंगे। उनकी पूजा करके और रामजी की स्तुति करके तुम विष्णु के सनातन योगिगम्य लोक को प्राप्त होगी। अब मुझे श्रीरामचन्द्र के दर्शन की जल्दी है।

मूँदहु नयन बिवर तजि जाहू। पैहहु सीतहि जनि पछिताहू ॥
नयन मूँद पुनि देखहिं बीरा। ठाढ़े सकल सिन्धु के तीरा ॥३॥

अर्थ : आँख बन्द करो बिल के बाहर चले जाओगे। सीता की प्राप्ति होगी। पछतावा न करो। बीरों ने आँख बन्द करके खोला तो अपने को समुद्र के किनारे खड़ा पाया।

व्याख्या : तब बन्दर लोग पछताने लगे कि सीता के खोजने की अवधि तो यहाँ विवर में ही बीत गयी और अब तक हम लोगों को कोई पता न लगा। तब योगिनी ने कहा कि इस गुहा के भीतर आकर कोई बाहर नहीं जा सकता। मैं योगबल से तुम लोगों को बाहर भेजती हूँ। आँखें बन्द कर लो। गुफा के बाहर चले जाओगे। सीताजी मिलेंगी पछताओ मत। तदनुसार बन्दरों ने आँखें बन्द कर लीं और जब खोला तो अपने को समुद्र के किनारे खड़ा पाया। स्वयं न कहीं गये न आये। केवल आँखें बन्द कर लीं और खोलीं। पर योगिनी के योग के प्रभाव से वे गुफा के बाहर निकल गये और समुद्र के किनारे पहुँच गये। यहाँ योगबल से काल का अतिक्रमण करना दिखलाया।

सो पुनि गई जहाँ रघुनाथा। जाइ कमल पद नायेसि माथा ॥
नाना भाँति बिनय तेहि कीन्हीं। अनपायनी भगति प्रभु दीन्ही ॥४॥

अर्थ : फिर वह जहाँ रघुनाथ रामजी थे वहाँ गयी। जाकर कमल ऐसे चरणों में माथा नवाया। नाना भाँति से उसने विनती की। प्रभु ने उसे अविरल भक्ति दी।

व्याख्या : बन्दरों को गुफा के बाहर समुद्र किनारे खड़ा करके तब वह योगिनी प्रभु के पास गयी। हेमा के उपदेशानुसार उसने बन्दरों की पूजा की। फल और जल से उनका सत्कार किया। अपनी कथा सुनाकर उनको आश्वासन दिया कि तुम लोग दैवात् नहीं आगये। पहिले से ही जैसा नकसा बँधा हुआ है उसी के अनुसार आये हो। यह सब हेमा मुझसे पहिले ही कह चुकी है। उसी नकसे के अनुसार सीता तुम्हें मिलेंगी। फिर उनकी सहायता भी उन्हें गुफा के बाहर निकालकर की। लंका के सामने समुद्र तीर पर खड़ा कर दिया जहाँ से सम्पाती द्वारा उन्हें सब पता मिल सके। तत्पश्चात् वह हेमा के उपदेशानुसार ही प्रभु के पास गयी। बन्दरों से न पूछा कि प्रभु कहाँ हैं। अपनी योगविद्या से जानकर चली गयी। चरणों पर गिरी और बहुत विनती की। अपाय विघ्न को कहते हैं। अनपायिनी भक्ति से अभिप्राय उस भक्ति से है जिसमें विघ्न नहीं होता। वही भक्ति प्रभु ने उस योगिनी को दी।

दो. बदरीबन कहुँ सो गई प्रभु अग्या धरि सीस।
उर धरि राम चरन जुग जे बन्दत अज ईस ॥२५॥

अर्थ : प्रभु की आज्ञा सिर पर धारण करके रामजी के दोनों चरणों को जिन्हें ब्रह्मा और शङ्कर बन्दना करते हैं हृदय में धरकर बदरीबन को गयी।

व्याख्या : विन्ध्य आदि पर्वतों पर तपःसिद्धि होने के बाद हिमालय पर तपस्या करने के लिए आदेश मिलता है। ऐसी प्रसिद्धि आज भी महात्माओं में है। स्वयंप्रभा को बदरिकाश्रम जाने की आज्ञा हुई। जहाँ साक्षात् नरनारायण तपस्या करते हैं। वह श्री रामजी के चरणों को हृदय में धारण करके वहाँ चली गयी। उन चरणों की महिमा कहते हैं कि उन्हें ब्रह्मदेव और शिवजी वन्दना करते हैं। यथा : कोसलेन्द्रपदकंजमंजुलौ कोमलावजमहेशवंदितौ । जानकीकरसरोजलालितौ चिंतकस्य मनभृंगसंगिनौ ।

५५. सम्पाती मिलन प्रसङ्ग

इहाँ बिचारहिं कपि मन माँही। बीती अवधि काज कछु नाँही ॥
कह अंगद लोचन भरि बारी। दुहुँ प्रकार भइ मृत्यु हमारी ॥१॥

अर्थ : यहाँ बानर मन में विचार करते हैं कि अवधि बीत गयी और काम कुछ न हुआ। अङ्गद आँखों में आँसू भरकर कहने लगे कि हम लोगों की दोनों प्रकार से मृत्यु हुई।

व्याख्या : यह तो वहाँ का हाल कहा जहाँ रामजी हैं। अब यहाँ का हाल कहते हैं जहाँ बन्दर लोग हैं। कवि अपने समाज में भक्तों के साथ हैं इसीलिए इहाँ कहा। सभी बानर अपने मन में विचार करते हैं कि एक महीने की अवधि तो गुफा में ही बीत गयी और काम कुछ भी नहीं हुआ। सीताजी के दर्शन को कौन

कहे उनका पता भी कुछ न लग सका। सब समुद्र के किनारे खड़े हैं जहाँ तक जल बढ़कर भाद्रपद बदी चतुर्दशी तक पहुँचता है वहाँ तक तो गर्भसंज्ञा है उसके बाद तट कहलाता है। तीर तो और भी दूर तक रहता है। योगिनी ने समुद्र के तीर ले जाकर खड़ा कर दिया। अब आगे क्या किया जाय? कोई बात समझ में नहीं आती। निराश होकर अङ्गद आँखों में आँसू भर लाये। वे ही सबके नायक हैं। सो कहने लगे कि संसार में लोग एक ही मृत्यु से मरते हैं। कोई चर्म मांसमयी शरीर की रक्षा यशोमयी शरीर के नाश से करते हैं और कोई यशोमयी शरीर की रक्षा के लिए चर्ममांसमयी शरीर को न्यौछावर कर देते हैं। हमारी तो दोनों प्रकार की मृत्यु हुई।

इहाँ न सुधि सीता कै पाई। उहाँ गये मारिहि कपिराई ॥
पिता बधे पर मारत मोही। राखा राम निहोर न ओही ॥२॥

अर्थ : यहाँ तो सीताजी की सुधि न मिली और वहाँ जाने पर कपिराज सुग्रीव वध करेंगे। वे तो पिता के मरने पर ही मुझे मार डालते पर रामजी ने मेरी रक्षा की। इसमें उनका निहोरा नहीं है।

व्याख्या : सीता की सुधि न पाने से यशोमयी शरीर का हनन हुआ और वहाँ घर पर जाने से सुग्रीव इस चर्म मांसमयी शरीर का हनन करेगा। यथा : अवधि मेटि जो बिनु सुधि पाएँ। आवै बनिहि सो मोहि मराएँ : अतः हमारे ऐसा अभागा कौन होगा जिसका यश भी जाय और प्राण भी जाय। यदि कहो कि तुम्हें न मारेंगे सो बात भी नहीं। हमें तो पहिले ही मारेंगे। वे तो पिता के मारे जाने के बाद ही हमें मारते पर रामजी ने रक्षा कर ली। मुझे युवराज बना दिया। राजकार्य सब मेरे हाथ आगया। अब तो हम रामजी के भी अपराधी हो गये। सीताजी की बिना सुधि पाये अवधि बिता दी। अब हमारी रक्षा कैसे होगी।

असकहि लवन सिन्धुतट जाई। बैठे कपि सब दर्भ डसाई ॥
जामवंत अंगद दुख देखी। कही कथा उपदेस बिसेषी ॥३॥

अर्थ : ऐसा कहकर लवण सिन्धु के किनारे जाकर सब बानर कुश बिछा कर बैठे। जाम्बवान ने अङ्गद का दुःख देखकर विशेष उपदेश व कथा कही।

व्याख्या : ऐसा कहकर अङ्गद लवण सिन्धु के तट पर जाकर जहाँ का पानी भी पीने योग्य नहीं अनशन करने के लिए कुशा बिछाकर बैठ गये कि यहीं शरीर छोड़ेंगे। यश बच जायगा। संसार कहेगा कि पता न लगा तो लौटे भी नहीं। सभी बन्दरों ने अङ्गदजी का अनुसरण किया। इसीलिए कहते हैं कि बैठे कपि सब दर्भ डसाई। सबकी समवेदना अङ्गद के साथ है। यहाँ तीर और तट का भेद स्पष्ट है। पहिले समुद्र के तीर खड़े रहे। अब जाकर तट पर बैठे।

अङ्गद ही सबके नायक हैं। वे ही इस प्रकार से दुःखी हो रहे हैं। किसी का

साहस नहीं होता कि सान्त्वना दे और क्या कहकर दे। अङ्गद ठीक कहते हैं। जब मरना ही है तो यश की रक्षा क्यों न करें। अपराधी की भाँति क्यों मारे जायँ? जाम्बवान मतिधीर और सुजान हैं वे नहीं घबराये। अङ्गद को दुखी देखकर ऐसी कथा कही जिसमें विशेष उपदेश हो। परमेश्वर भलाई के लिए ही संकट उपस्थित करते हैं। इसमें साहस और धैर्य न छोड़ना चाहिए अथवा पृथ्वी के दुःखी होने की ब्रह्मदेव की स्तुति करने की आकाशवाणी की और देवताओं के अवतार की कथा कही। निशाचरों के दण्ड देने के लिए ही सीताहरण होने दिया है। उनका कार्य स्वयं सिद्ध है।

तात राम कहुँ नर जनि मानहु। निर्गुन ब्रह्म अजित अज जानहु॥
हम सब सेवक अति बड़ भागी। संतत सगुन ब्रह्म अनुरागी॥४॥

अर्थ : हे तात ! रामजी को मनुष्य न मानो। निर्गुण ब्रह्म अजित और अज जानो। हम सब सेवक अत्यन्त बड़भागी हैं। सदा सगुण ब्रह्म के अनुरागी बने रहते हैं।

व्याख्या : यह दुःख जो तुम्हें हो रहा है वह रामजी को मनुष्य मानने से हो रहा है। रामजी मनुष्य मानना ही बड़ा भारी अभाग है। वही तो सुगम मार्ग भवत्तरण का है। निर्गुण ब्रह्म में तो वाणी बुद्धि और मन का प्रवेश नहीं होता इसलिए देवता लोग भी अवतारों की ही उपासना करते हैं। अतः अवतार में मनुष्य बुद्धि रखनेवाले ब्रह्म की उपासना से ही वञ्चित हो जाते हैं। हीरा को पत्थर जाननेवाले अभागी हैं। वे उसका प्रस्तर बुद्धि से परित्याग करते हैं। राम निर्गुण ब्रह्म हैं। सगुण रूप में भी उनको निर्गुणता अक्षुण्ण बनी है। वे जायमान मालूम होने पर भी अज हैं। वे पराजित से जान पड़ने पर भी अजित हैं। तुम अपने को अभागी क्यों समझते हो? निर्गुण ब्रह्म के उपासक भाग्यवान् हैं और हम सब तो अति भाग्यवान् हैं। क्योंकि सगुण ब्रह्म में अनुराग रखते हैं। निर्गुण ब्रह्म के उपासकों को अधिक क्लेश है। हम लोगों को सगुण उपासना में आनन्द ही आनन्द है। अतः हम लोग अति भड़भागी हैं।

दो. निज इच्छा प्रभु अवतरइ, सुर महि गोद्विज लागि।
सगुन उपासक संग तहँ, रहहिं मोक्ष सुख त्यागि॥२६॥

अर्थ : प्रभु अपनी इच्छा से देवता, पृथ्वी, गाय और ब्रह्म के लिए अवतार धारण करते हैं। तब सगुण ब्रह्म की उपासना करनेवाले मोक्षसुख का परित्याग करके साथ रहते हैं।

व्याख्या : निर्गुण ब्रह्म का इच्छा द्वारा अवतार होता है। यथा : इच्छामय नर देत सँवारे। होइहों प्रकट निकेत तुम्हारे : उनका जीव की भाँति कर्म परवश जन्म नहीं होता। कारागार देखने जाने से सम्राट् कैदी नहीं कहा जाता। ये ही संसार के सार हैं, देवता, पृथ्वी, गौ और ब्राह्मण के लिए अवतार धारण करते हैं।

राजा अकेले नहीं जाते। दरबारी लोग उनके साथ हो लेते हैं। इसी भाँति प्रभु के उपासक भी उनके अवतीर्ण होते ही मोक्ष सुख त्याग कर प्रभु के सङ्ग हो जाते हैं। यथा : राउरबदि भलभव दुख दाहू। प्रभु बिनु बादि परमपद लाहू : भाव यह कि हम लोग भी मुक्त हैं। प्रभु के अवतीर्ण होने के साथ ही साथ मोक्ष सुख त्याग कर लगे हैं। हम लोगों का यश उत्तरोत्तर बढ़ेगा सीताजी की सुधि मिलेगी। इसलिए शोक मोह का परित्याग करो।

एहि[1] बिधि कथा कहहिं बहु भाँती। गिरि कन्दरा सुनी सम्पाती ॥
बाहेर होइ देखि बहु कीसा। मोहि अहारु दीन्ह जगदीसा ॥१॥

अर्थ : इस विधि से बहुत प्रकार की कथा कहने लगे। पर्वत की कन्दरा में से सम्पाती ने सुना। बाहर आकर उसने बहुत से बन्दर देखे। कहने लगा : मुझे जगदीश ने आहार दिया।

व्याख्या : शोक शमन तथा धैर्य सम्पादन के लिए बहुत भाँति की कथा कहने लगे। यथा : औरो कथा अनेक प्रसंगा। ते सुक पिक बहु बरन बिहंगा : नाना पुराण निगमागन की कथा कहने लगे। जांम्बवानजी ने कथा छेड़ी तो उसी के अनुकूल सभी कुछ न कुछ कह चले। इन लोगों को पता नहीं सम्पाती पहाड़ की कन्दरा में था। वहीं से सब कथा सुन रहा था। इससे यह मालूम होता है कि ये लोग समुद्र के किनारे पर्वत पर थे।

उसने ये सब कथाएँ सुनीं। उसे पता चल गया कि समुद्र के किनारे कुछ लोग अनशन कर रहे हैं। उन्हीं में बातचीत हो रही है। अतः बाहर आया तो देखा बहुत से बन्दर हैं। सम्पाती एक गृद्ध था। गृद्ध मुर्दे खाया करते हैं सो प्रसन्न हुआ। बोला मुझे ब्रह्मदेव ने आहार दिया। जगदीश ब्रह्मदेव को कहते हैं। यथा :

करि बिनती पद गहि दससीसा।
बोला बचन सुनहु जगदीसा ॥

डरपे गीध बचन सुनि काना। अब भा मरनु सत्य हम जाना ॥
कह अंगद बिचारि मन माहीं। धन्य जटायू सम कोउ नाहीं ॥२॥

अर्थ : गीध का वचन कान से सुनकर डरे : कहने लगे :-अब हमने जान लिया कि सचमुच हम लोगों की मौत आगयी। अङ्गद ने मन में विचारकर कहा कि जटायु की भाँति धन्य कोई न हुआ।

व्याख्या : सम्पाती का शरीर भी बड़ा है। साक्षात् गरुड़ का भतीजा अरुण का पुत्र है। इसके भाई जटायु को देखकर रावण डर गया। अनुमान करने लगा कि मैनाक पर्वत या गरुड़ ही तो नहीं हैं। सो इनका वचन सुनकर सब बन्दर डर

---

१. ५५ वाँ प्रसङ्ग सम्पाती मिलन प्रारम्भ हुआ।

गये कि जब हम ब्रह्मदेव की ओर से ही इसके आहार कल्पित हो गये तो मरना ही सत्य है। आशाविधायक कथाओं से जो आशा का सञ्चार हुआ है वह सत्य नहीं है।

अङ्गदजी ने मन में विचारकर कहा कि आप लोगों ने बहुत से धन्यों की कथा कही पर मेरे विचार से जटायु सा धन्य कोई नहीं था। क्योंकि जिनकी जिनकी कथाएँ कही गयी हैं उन सबको रामकार्य करते समय विघ्न के उपस्थित होने पर सहायता कहीं न कहीं से मिल गयी। किसी को रामकार्य के लिए शरीर त्यागने का सौभाग्य नहीं प्राप्त हुआ। प्रभु के काम में तो गीधराज जटायु आये। अतः अप्रतिम धन्य वे ही थे। दूसरे अङ्गदजी ने यह सोचा कि दूसरे गीध की कथा सुनने से इस पर प्रभाव पड़ेगा। कदाचित् यह जटायु को जानता हो तो इससे सहायता भी मिल सकती है। यथा : मुए मरत मरिहैं सकल घरी पहर के बीचु। लही न काहूँ आजु लौं गीधराज की मीचु। दोहावली २२२।

राम काज कारन तनु त्यागी। हरिपुर गयउ परम बड़ भागी॥
सुनि खग हरष सोक जुत बानी। आवा निकट कपिन्ह भय मानी॥३॥

अर्थ : राम के कार्य के लिए शरीर त्यागकर हरि के धाम को गये। वे बड़े भाग्यवान् थे : सम्पाती पक्षी हर्ष और शोक से युक्त वाणी सुनकर वानरों के समीप आया। बन्दर डरे।

व्याख्या : यह शरीर किसी न किसी दिन छूटे ही गा। परन्तु रामकार्य के लिए शरीर त्याग का सौभाग्य तो किसी का नहीं हुआ। अतः बड़भागी तो और भी हुए। पर परम बड़भागी गीधराज ही हुए। इन्होंने ही रामकाज के लिए तन त्यागकर इस लोक का जय किया और हरिपुर : रामधाम में प्रस्थान करके परलोक का जय किया।

सम्पाती को इस वाणी के सुनने से हर्ष और शोक दोनों हुआ। क्योंकि जटायु इसका भाई था। इसे नहीं मालूम था कि वह कहाँ है ? किस दशा में है। मर गया या जीता है ? सो उसका पता तथा दिव्य गति सुनकर हर्ष हुआ। पर भाई था। उसके मरने के समाचार से शोक भी हुआ। विशेष संवाद के लिए सन्निकट आया। बन्दर डरे कि खाने आरहा है।

तिन्हहि अभय करि पूछेसि जाई। कथा सकल तिन्ह ताहि सुनाई॥
सुनि संपाति बन्धु कै करनी। रघुपति महिमा बहु बिधि बरनी॥४॥

अर्थ : उनको अभय करके : उसने जाकर पूछा। उन लोगों ने सब कथा उसे सुनायी। सम्पाती ने भाई की करणी सुनकर रामजी की महिमा का बहुत प्रकार से वर्णन किया।

व्याख्या : सम्पाती ने देखा कि बन्दर लोग उसके आने से भयभीत हो उठे हैं। सम्भव है कि भाग निकलें तो विशेष समाचार कुछ न लग पायेगा। इसलिए उनसे कहा कि डरो मत। तुम लोगों का कोई अनिष्ट मेरे द्वारा न होगा। ऐसा

कहकर निकट गया और पूछा कि जटायु कैसे मरा ? किसने मारा ? क्या क्या हुआ ? सो सब बातें मुझे बतलाओ। बन्दरों ने जटायु की सब कथा जिसका वर्णन आरण्य काण्ड में हो चुका है : कह सुनायी।

काटेसि पंख परा खग धरनी। सुमिरि राम करि अद्भुत करनी। गीध देह तजि धरि हरि रूपा। भूषन बहु पट पीत अनूपा। स्याम गात बिसाल भुज चारी। इत्यादि। इस भाँति रामधाम प्रयाण सुनकर उसने रामजी की महिमा का बहुत भाँति से वर्णन किया। सम्पाती चन्द्रमा मुनि से रामजी की महिमा सुन चुका है। अतः वह महिमा का जानकार है। बन्दरों को आश्वासन देने तथा धैर्य बँधाने के लिए उसने बहुत विधि से रामजी की महिमा का वर्णन किया।

दो. मोहि लै जाहु सिन्धु तट, देउँ तिलांजलि ताहि।
बचन सहाइ करबि मैं, पैहहु खोजहु जाहि ॥२७॥

अर्थ : मुझे समुद्र तट पर ले चलो। उसे तिलाञ्जलि मुझे देना है। मैं तुम लोगों की सहायता वचन से करूँगा। जिसे तुम लोग खोज रहे हो उसे पाओगे।

व्याख्या : ताकी क्रिया जथोचित निज कर कीन्ही राम। उसकी क्रिया तो श्रीरामजी ने जैसा उचित था पुत्रवत् कर दिया। मैं भाई हूँ। उसे तिलाञ्जलि तो देऊँ। मैं पर्वत के नीचे नहीं उतर सकता। मुझे तुम लोग पर्वत के नीचे लाद ले चलो जिसमें समुद्र के जल से उसका तर्पण करूँ। जिसको तुम लोग खोज रहे हो उसका पता मैं जानता हूँ। तुम लोगों को बतलाऊँगा। मैं भाई की भाँति क्रियारूप से किसी प्रकार की सहायता करने का सामर्थ्य नहीं रखता। पर वचन से तुम लोगों की सहायता करूँगा। स्वयंप्रभा ने कहा था : पैहहु सीतहि जनि पछिताहू। यहाँ सम्पाती आश्वासन देता है : पैहहु खोजहु जाहि।

५६. [1]संपाती कथा श्रवण प्रसङ्ग

अनुज क्रिया करि सागर तीरा। कहि निज कथा सुनहु कपि बीरा॥
हम द्वौ बन्धु प्रथम तरुनाई। गगन गए रबि निकट उड़ाई ॥१॥

अर्थ : भाई की क्रिया समुद्र के किनारे करके अपनी कथा कहने लगा कि हे वीर बानरो ! सुनो ! हम दोनों भाई चढ़ती जवानी में आकाश में उड़ते सूर्य के निकट जा पहुँचे।

व्याख्या : पक्षियों में और कीटों में भी और्ध्वदैहिक कृत्य का विधान देखा गया है। चीटें और पक्षी विशेष को गङ्गाजी में शव का प्रवाह करते देखा गया है। यद्यपि जटायु की वीरगति प्राप्ति के बाद रामजी द्वारा उसका कृत्य किया जाना उसे अपने धाम भेजने की कथा सुन चुका है। फिर भी उसने समुद्र के किनारे भाई

---

[1] ५६ वाँ सम्पाती कथाश्रवण प्रसङ्ग प्रारम्भ हुआ।

की जल दानादि क्रिया कर्तव्य बुद्धि से की। तीर्थ में क्रिया करने का विशेष महत्त्व है। इसलिए समुद्र के किनारे जाकर क्रिया की। चेतना के तारतम्यानुसार कर्तव्य पालन का प्रातिभाव्य भी बढ़ता है। क्रिया कर लेने के बाद बन्दरों में उत्साह बढ़ाने के लिए अपनी कथा सुनाने लगा। बोला की बीर बन्दरो ! सुनते जाओ।

मैं और जटायु दोनों भाई थे। चढ़ती जवानी थी। दोनों को बल का अभिमान था। परीक्षा के लिए सूर्यमण्डल तक उड़ने का सङ्कल्प करके उड़ चले। हजारों योजन ऊपर उड़ते ही चले गये। जितना सूर्य के निकट पहुँचते गये ताप बढ़ता गया। इतने निकट पहुँचे कि ज्वालामाल का प्रभाव हम लोगों पर पड़ने लगा : इससे अपना वेग भी कहा कि एक ही दिन में सहस्रों योजन ऊपर चले गये।

तेज न सहि सक सो फिर आवा। मैं अभिमानी रबि नियरावा ॥
जरे पंख अति तेज अपारा। परेउ भूमि करि घोर चिकारा ॥२॥

अर्थ : वह तेज सह न सका लौट आया। मैं अभिमानी था। सूर्य के निकट चला गया। अत्यन्त अपार तेज से मेरे पक्ष जल गये और मैं चिग्घाड़ मारकर पृथ्वी पर गिरा।

व्याख्या : इतने ऊँचे उड़ने पर भी हम दोनों भाई थके नहीं। पर जटायु तेज न सह सका लौट आया। पर मैं अभिमानी था। अभिमान के कारण उस तेज की भी परवाह न करके ऊपर उड़ता ही चला। इतनी घोर वेदना सहन करके भी उस ज्वालामाल में घुसते ही चले जाने का : सिवा अपने उत्कर्ष प्रदर्शन के और कोई प्रयोजन नहीं था। अभिमानी अपने उत्कर्ष प्रदर्शन के लिए क्या नहीं करते।

सूर्यनारायण का तेज अत्यन्त अपार है। उसका उल्लङ्घन जीव के सामर्थ्य के बाहर की बात है। अधिक निकट जाने पर मेरे पङ्खों में आग लग गयी और वे जल उठे। पक्षी को तो पक्ष का ही सहारा होता है। उसके जलने पर फिर गति कहाँ ? मैं दीन होकर चिग्घाड़ता हुआ पृथ्वी पर गिरा।

मुनि एक नाम चंद्रमा ओही। लागी दया देखि करि मोही ॥
बहु प्रकार तेहि ग्यान सुनावा। देह जनित अभिमान छँड़ावा ॥३॥

अर्थ : एक चन्द्रमा नाम के मुनि थे। उन्हें मुझे देखकर दया आगयी। उन्होंने बहुत प्रकार से मुझे ज्ञान सिखाया और देह से उत्पन्न मेरा अभिमान छुड़ा दिया।

व्याख्या : तीन दिनों तक अचेतावस्था में पड़ा रहा। यही नहीं मालूम होता था कि मैं कहाँ हूँ। देखा तो मुझे बहुतों ने पर मुझपर चन्द्रमा नामक मुनि को ही दया आयी। उन्होंने बहुत प्रकार से ज्ञान सिखाया। जिससे मेरा देहाभिमान जाता रहा। उन्होंने कहा बेटा ! मेरी बातें सुनो। फिर जैसी तुम्हारी इच्छा हो वैसा करना। इस दुःख का देह ही मूल है और देह कर्म से हुआ है। देह में अहंबुद्धि होने से ही जीव कर्म में प्रवृत्त होता है। अहंकार का कारण अविद्या है। इस जड़ अहङ्कार में चेतन की छाया है। इसी के तादात्म्य से देह चेतनावाला हो जाता

है। तब आत्मा में मैं देह हूँ : ऐसी बुद्धि हो जाती है। यही संसार का मूल है। निर्विकार आत्मा का देह के साथ तादात्म्य मिथ्या है। मैं देह हूँ मैं कर्त्ता हूँ : यह सङ्कल्प करके ही जीव कर्म करता है और उसके फल से बँध जाता है। तब पुण्यात्मा और पापी बनकर उच्च और नीच योनियों को प्राप्त होता है। इसी भाँति संसार सागर में बहता फिरता है। मैंने बहुत पुण्य किया। मुझे स्वर्ग होगा। इस भावना से उसे स्वर्ग होता है। स्वर्ग भोगकर फिर नीचे गिरता है। माँ के गर्भ में आता है। उसमें बहुत दुःख पाता है। यथा :

आगे अनेक समूह संसृत उदरगत जान्यो सोऊ।
सिर हेठ ऊपर चरन संकट बात नहीं पूछै कोऊ॥
सोनित पुरीष जा मूत्र मल कृमि कर्दमावृत सोवई।
कोमल शरीर गँभीर वेदन सीस धुनि धुनि रोवई॥

तू निज करम जाल जहँ घेरो। श्रीहरी सङ्ग तज्यो नहि तेरो॥
बहु विधि प्रतिपालन प्रभु कीन्हों। परम कृपालु ज्ञान तोहि दीन्हों॥

तोहि दियो ग्यान विबेक जनम अनेक की तब सुधि भई।
तेहि इसकी ही सरन जाकी विषम माया गुन मई॥
जेहि किये जीवनिकाय वस रसहीन दिन दिन अति नई।
सो करौ वेगि सँभार श्रीपति विपति महँ जेहि मति दई॥

पुनि बहु विधि गलानि जिय मानी। अब जग जाइ भजौं चक्रपानी॥
ऐसहि करि विचार चुप साधी। प्रसवपवन प्रेरेउ अपराधी॥

प्रेरेउ जो परम प्रचण्ड मारुत कष्ट नाना तैं सह्यो।
सो ग्यान ध्यान विराग अनुभव जातना पावक दह्यो॥
अति खेद व्याकुल अल्प बल छिन एक बोलिन आवई।
तव तीव्र कष्ट न जान कोउ सब लोग हरषित गावई॥

इसी प्रकार से बालपन का दुःख सभी लोग भोगते हैं। तुमने सब अनुभव किया ही है। इसलिए यौवनादिक का दुःख मैं वर्णन नहीं करता। इस प्रकार से अभिनिवेश द्वारा ही मैं देह हूँ :-इस अभ्यास से नरक पतन गर्भवासादि दुःख होते हैं। स्थूल और सूक्ष्म देह से पृथक् प्रकृति से परे आत्मा को जानकर देहादि की ममता छोड़कर ज्ञानवान होओ। जाग्रदादि अवस्थाओं का त्याग करके सत्य ज्ञानादि लक्षण शुद्ध बुद्ध तथा सदा शान्त आत्मा को जानो। चिदात्मा के जान लेने पर और मोह के नष्ट हो जाने पर चाहे देह गिर जाय अथवा प्रारब्ध कर्म के वेग से ठहरा रहे। उससे कोई प्रयोजन नहीं रह जाता। इसलिए जबतक प्रारब्ध का नाश न हो तबतक तुम सुख से केंचलीवाले सर्प की भाँति बने रहो।

त्रेता ब्रह्म मनुज तनु धरिहीं। तासु नारि निसिचर पति हरिहीं॥
तासु खोज पठइहि प्रभु दूता। तिनहि मिले तैं होब पुनीता॥४॥

अर्थ : त्रेता में ब्रह्म मनुष्य शरीर धारण करेंगे। उनकी स्त्री को राक्षसराज हरण करेगा। उनके खोज के लिए प्रभु दूत भेजेंगे। उनसे मिलकर तुम पवित्र हो जाओगे।

व्याख्या : शोक मोह के नाश के लिए ही ज्ञानोपदेश दिया। देह में जो अहंबुद्धि थी सो जाती रही। शान्ति आयी। तब आशा भी देते हैं कि यदि देहाभिमान रहता तो इतने दिनों की प्रतीक्षा के लिए धैर्य न होता। मुनिजी त्रिकालदर्शी थे। यह कथा सत्ययुग की है। ब्रह्मदेव से कश्यप कश्यप से अरुण और अरुण से सम्पाती की उत्पत्ति हुई। अतः कहते हैं कि त्रेता में ब्रह्म मनुष्य शरीर धारण करेंगे। भाव यह कि सत्ययुग में तो मीन, कमठ, शूकरादि अवतार होते हैं। उनमें लीला अधिक नहीं होती। मनुष्य अवतार धारण करेंगे तब लीला करेंगे। उनकी स्त्री का हरण राक्षसों का राजा रावण करेगा। उसके खोजने के लिए प्रभु दूत भेजेंगे। इस भाँति चार काण्डों की कथा कही। पहली अर्धाली से बाल, अयोध्या और आरण्य की कथा कही और दूसरे से किष्किन्धाकाण्ड की कथा कहते हैं। उन्हें मिलने पर तुम पवित्र होगे। भाव यह कि दग्धाङ्ग होने से अभी तुम अपवित्र हो। तुम दीन न हो कि मैं कैसे जीऊँगा ? क्या मैं सदा पक्षहीन होकर ही रहूँगा ? इत्यादि। व उन दूतों के मिलने से तुम पवित्र होगे। भाव यह कि मैं तुम्हारे दर्शन से पवित्र हुआ। तुम लोग राम दूत हो। अपने को दीन हीन क्यों मानते हो ? सब बातें पहिले से ही निर्णीत हैं। वैसी ही होगी। तुम लोग नहीं जानते। इसी से दुःखी हो रहे हो।

जमिहहिं पंख करसि जनि चिंता। तिन्हहि देखाइ दिहेसु तैं सीता ॥
मुनि कइ गिरा सत्य भइ आजू। सुनि मम बचन करहु प्रभु काजू ॥५॥

अर्थ : तुम्हे पंख जम जावेंगे। तुम चिन्ता न करो। तुम उन्हें सीता दिखला देना। आज मुनिजी की वाणी सत्य हुई। अब मेरी बात सुनकर प्रभु का कार्य करो।

व्याख्या : देखो मुनिजी ने जो आश्वासन दिया था वह कैसा सत्य उतर रहा है। त्रेता में ब्रह्म ने रामावतार धारण किया। उनकी स्त्री को निशिचर पति ने हरण भी किया। रामजी ने तुम लोगों को दूत बनाकर भेजा है और मुझसे भेंट भी हो गयी। इसीलिए कहता हूँ कि मुनिजी ने जो बात सत्ययुत में कहा था वह आज त्रेता में सच्ची उतर रही है। अब मुझे तुम्हें सीताजी को दिखला देना है। मेरी बातों को सुनकर तुम लोग काम में लग जाओ। अकर्मण्य होकर चिन्ता न करो। मैं सीता को अब तुम्हें दिखलाता हूँ।

गिरि त्रिकूट ऊपर बस लंका। तहँ रह रावन सहज असंका ॥
तहँ असोक उपवन जहँ रहई। सीता बैठि सोच रत अहई ॥६॥

अर्थ : त्रिकूट पर्वत के ऊपर लङ्का बसी हुई है। वहाँ रावण रहता है। वह

स्वभाव से ही बेडर है। वहाँ अशोक बन है जहाँ सीताजी रहती हैं और बैठी हुई सोच में मग्न हैं।

व्याख्या : ये लोग इतने ऊँचे पर हैं कि वहाँ से देखनेवाले को सीता दिखायी पड़ सकती थीं। इसलिए सम्पाती उन्हें बतला रहा है कि ठीक इसके सामने समुद्र में त्रिकूटाचल पर्वत है। उसके ऊपर लङ्का पुरी बसी है। उसी में रावण रहता है। वह स्वभाव से ही निःशङ्क है। सीताजी का हरण करके लङ्का में ही रक्खे हुए हैं। किसी दूसरे स्थान में नहीं रक्खा है। उस लङ्का में अशोक उपवन है। वहीं बैठी सीता सोच रही हैं। अङ्गुल्या निर्देश करके बन्दरों को दिखला रहा है।

दो. मैं देखौं तुम्ह नाहीं, गीधहि दृष्टि अपार।
बूढ़ भयेउँ नत करतेउँ, कछुक सहाय तुह्मार ॥२८॥

अर्थ : मैं देख रहा हूँ। तुम्हें दिखायी नहीं पड़ रहा है। क्योंकि गृद्ध की दृष्टि का कोई पारावार नहीं। मैं बूढ़ा हो गया नहीं तो तुम्हारी कुछ सहायता भी करता।

व्याख्या : जब सम्पाती के बतलाने पर बन्दरों को पर्वत भी दिखायी न पड़ा सीता की कौन चलावे तब कहता है कि तुम नहीं देख सकते। बन्दरों की दृष्टि थोड़ी होती है। गृद्ध की दृष्टि प्रसिद्ध है : वह बहुत दूर तक देखती है। मैं सीताजी को देखता हूँ और उनके मुख विकार को देख रहा हूँ कि सोच में निमग्न बैठी हुई हैं। मैं बूढ़ा हुआ नहीं तो पीठ पर बिठाकर किसी एक को लङ्का में पहुँचाकर सीता को दिखला देता। अब उतना सन्निकट पहुँचना कि तुम्हें सीता दीखने लगें तुम्हारा काम है। मैंने चन्द्रमा मुनि की आज्ञानुसार अपना कार्य कर दिया।

जो नाँघइ सतयोजन सागर। करै सो राम काज मति आगर॥
मोहि बिलोकि धरहु मन धीरा। राम कृपा कस भयेउ सरीरा ॥१॥

अर्थ : जो सौ योजन समुद्र पार करेगा वही बुद्धिमान् रामजी का कार्य कर सकता है। मुझे देखकर हृदय में धैर्य धारण करो। रामजी की कृपा से मेरा शरीर कैसा हो गया।

व्याख्या : कार्य की दुष्करता कह रहा है। पहिले तहँ बस रावन सहज असंका : कहकर शत्रु की प्रबलता कही। अब समुद्र का पार : आयाम बतलाता है कि बीच में सौ योजन समुद्र है। अतः यहाँ बल और बुद्धि दोनों की बड़ी भारी परीक्षा है। अतः जिसकी बुद्धि अतीव पैनी हो इतने बलवान शत्रुओं में घुसकर कार्य कर सके और संकुल मकर उरग झख जाती। अति अगाध दुस्तर सब भाँती। समुद्र को पार कर सके। वही इस कार्य में हाथ लगावे अर्थात् तुम लोगों में जो अतीव बलवान और बुद्धिमान् हो उसी को इस कार्य में नियुक्त करो।

जब देखा कि कोई साहस नहीं कर रहा है तब धैर्य बँधाता है कि मुझे देखकर धैर्य धारण करो। देखो रामजी की कृपा से मेरा शरीर कैसा हो गया।

नये नये कोंपल पक्ष निकल आये। रामजी की कृपा से तुम लोगों से भेंट हुई और तुम्हारे दरस परस से मेरे जले हुए पंख फिर निकल आये। जिसने मुझे पंख दिया वही तुम लोगों की सहायता करेगा। बिना पंख के उड़कर समुद्र पार करोगे।

पापिउ जाकर नाम सुमिरहीं। अति अपार भवसागर तरहीं ॥
तासु दूत तुम तजि कदराई। राम हृदय धरि करहु उपाई ॥१॥

अर्थ : पापी भी जिसका नाम स्मरण करके अत्यन्त अपार भवसागर को पार करते हैं तुम तो उनके दूत हो। कादरपन को छोड़कर रामजी को हृदय में धारण करके उपाय करो।

व्याख्या : यह संसार सागर अत्यन्त अपार है। इसे पार करना पुण्यात्मा के लिए भी सुखसाध्य नहीं है। पापी क्या पार कर सकता है ? पापी भी उनके नाम के बल से भवसागर पार जाते हैं। यथा : सादर सुमिरन जे नर करहीं। भव वारिधि गोपद इव तरहीं। उनके नाम में ऐसा सामर्थ्य है कि वह पापी को भी ऐसी सन्तरणशक्ति प्रदान करता है। तुम लोग तो उस महामहिम नामी के दूत हो। तुम्हारे लिए इस शत योजन सागर के पार जाना कौनसी बात है ? तुम लोग वीर हो। आगन्तुक कातरता का परित्याग करो। सफलता का साधक महामन्त्र बतलाता है कि रामजी को हृदय में रखकर उपाय करो। उनके हृदय में रहने से सभी उद्यम सफल होते हैं।

अस कहि गरुड़ गीध जब गयेऊ। तिन्हके मन अति बिसमय भयऊ ॥

५६. हनुमत् द्वारा बलकथाश्रवण प्रसङ्ग

निज निज बल सब काहू भाषा। पार जाइ कै संसय राखा ॥२॥

अर्थ : हे गरुड़ ! जब ऐसा कहकर गीध गया तो उन लोगों के मन में बड़ा आश्चर्य हुआ। अपना अपना बल सब किसी ने कहा परन्तु पार जाने में सन्देह प्रकट किया।

व्याख्या : ऐसा कहकर गीध के चले जाने पर सबके मन में बड़ा भारी आश्चर्य हुआ। अभी यही गीध समुद्र तट तक जाने में असमर्थ था। हनुमान्‌जो ने उठाकर तट तक पहुँचाया और इतनी देर में ही इसे पंख निकल आये। बिना किसी की सहायता के ही चला गया। चलने में भी पक्षी के पंख सहायक होते हैं अथवा उड़कर चला गया।

अब सागर सन्तरण पर विचार होने लगा। सब के मन में यही बात है कि हम सब में बलवान और बुद्धिमान् हनुमान्‌जो हैं यही जायें। यथा : आगे कै हनुमन्तहि लीन्हा। पैठे बिबर बिलंबु न कीन्हा : अतः उन्हें आज्ञा देना उचित न समझकर अपना पूरा बल किसी ने प्रकट नहीं किया। किसी ने कहा मैं निःसन्देह बीस योजन जा सकता हूँ। किसी ने कहा कि मैं तीस योजन जा सकता हूँ। किसी

ने चालीस, किसी ने पचास, इसी भाँति नब्बे योजन तक बतलाते चले गये। किसी ने यह न कहा कि मैं निःसन्देह पार जा सकता हूँ।

जरठ भयेउँ अस कहइ रिछेसा। नहि तन रहा प्रथम बल लेसा॥
जबहि त्रिविक्रम भये खरारी। तब मैं तरुन रहेउँ बल भारी॥४॥

अर्थ : ऋक्षेश जाम्बवान ने कहा कि मैं बूढ़ा हो गया। अब जवानी के बल का लेश भी शरीर में नहीं है। जब खरारि : रामजी ने त्रिविक्रमावतार धारण किया था तब मेरी जवानी थी और भारी बल था।

व्याख्या : प्रख्यातपौरुष जाम्बवानजी क्या कहें? तब उन्होंने बुढ़ापा का ओट लिया। कहते हैं कि मेरे सामने तीन अवतार हो चुके। वामन परशुराम और दाशरथि राम। सो वामनावतार के समय मेरी जवानी थी। तब से कितनी चतुर्युगियाँ बीत गयीं। अब शरीर में उस बल का लेश भी नहीं रह गया जो पहिले था। उस समय मुझ में भारी बल था। त्रिविक्रम कहकर वामनावतार के शरीर की विशालता कही कि उस शरीर से उन्होंने तीन पादविक्षेप में तीनों लोक नाप लिया और फिर भी तीन पग पूरा न हुआ। खरारि कहने का भाव यह कि वह वामनावतार भी रामजी का ही था। ये मायावी असुरों को माया के बल से ही पराजित करते हैं। इनकी माया का थाह नहीं है। यह सब जो हो रहा है वह सब भी उनकी माया है। उनके लिए दुष्कर कुछ भी नहीं है। उनकी इच्छानुकूल ही सब कुछ हो रहा है। धैर्य छोड़ने की कोई बात नहीं है।

दो. बलि बाँधत प्रभु बाढ़ेउ, सो तनु बरनि न जाइ।
उभय घरी महँ दीन्ही, सात प्रदच्छिन धाइ॥२९॥

अर्थ : बलि के बांधते समय प्रभु बढ़े। उस शरीर का वर्णन नहीं किया जा सकता। मैंने दो घड़ी में दौड़कर उनकी सात प्रदक्षिणा की थी।

व्याख्या : उस समय इन्द्र को जीतकर राजा बलि तीनों लोक के स्वामी हो गये थे। बलि धर्मात्मा थे अतः प्रभु ने उनका बध न करके उनका बन्ध चाहा। अतः वामनावतार धारण करके बलि के यज्ञ में जाकर उनसे तीन पैर पृथ्वी की याचना की। बलि के सङ्कल्प दे देने पर प्रभु ने अपना शरीर बढ़ाया। बलि को विश्वरूप से दर्शन दिया। तीनों लोक तीन पद के लिए थोड़ा पड़ा। यथा : जेहि जग कियो तिहुँ पदहुँ ते थोरा : अतः पूरा करने के लिए शरीर को भी नाप लिया। प्रभु का वह विशाल शरीर दो घड़ी के लिए ही था। उसी के लिए कहते हैं कि उसका वर्णन नहीं हो सकता। परिक्रमा करने में दूर दूर उस शरीर के चारों ओर घूमना था। अतः शनैः शनैः चलकर उसकी परिक्रमा हो नहीं सकती। अतः दौड़कर परिक्रमा करनी पड़ी। अपना बल और वेग कहते हैं कि उस शरीर का जिसके अन्तर्गत कितने समुद्र और पर्वत थे दो घड़ी में मैंने सात प्रदक्षिणाएँ की

थी। प्रदक्षिणा करने में इस भाँति शनैः शनैः चलने का विधान है। जिस भाँति गर्भवती स्त्री सिर पर जल भरा घड़ा लेकर धीरे धीरे चलती है।

अंगद कहइ जाउँ मइ पारा। जिय संसय कछु फिरती बारा ॥
जामवंत कह तुम सब लायक। पठइअ किमि सबही कर नायक ॥१॥

अर्थ : अङ्गद ने कहा मैं पार जा सकता हूँ पर लौटती समय जी में कुछ संशय है। जाम्बवान ने कहा कि तुम सब लायक हो पर सब के नायक को कैसे भेजा जाय।

व्याख्या : जब जाम्बवान ने अपनी असमर्थता प्रकट की तब अङ्गदजी बोले। इनका भी पौरुष प्रख्यात है। स्वयं बालि ने कहा : यह तनय मम सम बिनय बल कल्याण प्रद प्रभु लीजिये। अतः इन्होंने कहा कि मैं पार तो जा सकता हूँ। पर लौटने में कुछ सन्देह जी में हो रहा है। भोगवती और अमरावती से भी अधिक बाँका है। उसमें प्रवेश करके जानकीजी को देखना और किसी के बिना जाने लौट आना साधारण व्यापार नहीं है। सम्भव है कि बात खुल जाय और युद्ध छिड़ जाय। युद्ध छिड़ जाने पर क्या होगा कौन कह सकता है : युद्धसिद्धिर्हि चञ्चला। अतः लौटने में कुछ सन्देह अवश्य है। हनुमान्‌जी साधु हैं। अब भी नहीं बोलते कि कदाचित् किसी को रामदूत पद प्राप्ति की अभिलाषा हो तो मैं उसमें बाधक क्यों होऊँ? ठीक विचार चल रहा है। यदि सब लोग मुझे इस योग्य समझेंगे तो आज्ञा देंगे ही।

जाम्बवान ने अङ्गदजी को उत्तर दिया कि तुम सब लायक हो पार भी जा सकते हो, मति आगर बुद्धिमान् भी हो। कार्यसिद्धि करके लौट आ सकते हो पर सबके सरदार हो। हम लोगों के रहते तुम कैसे जाओगे। अच्छा तो जो जाने योग्य है उसे भेजता हूँ।

घ. अथ हनुमत् चरित

कहइ रीछपति सुनु हनुमाना। का चुप साधि रहेउ बलवाना ॥
पवन तनय बल पवन समाना। बुधि बिबेक बिग्यान निधाना ॥१॥

अर्थ : ऋक्षपति जाम्बवान ने कहा कि हनुमान्! सुनो। हे बलवान्! तुमने चुप्पी क्यों साध रक्खी है? हे पवन के पुत्र! तुम्हें पवन के समान बल है। तुम बल विवेक और विज्ञान के निधान हो।

व्याख्या : हनुमान्‌जी को आज्ञा देने में अङ्गदजी को भी सङ्कोच है। अतः वयोवृद्ध जाम्बवानजी ने कहा कि वस्तुतः जो बलवान है वह तो चुप्पी साधे हुए है। चुप्पी साधने का करण क्या है? हनुमान्‌जी! तुम पवन के पुत्र हो। अतः तुम में पवन सा ही बल है। पवनदेव तो दिन रात समुद्र के आर पार जाया करते हैं। अतः तुम्हारे लिए समुद्रोल्लङ्घन खेल है और बुद्धि तुम्हारी संसार पारदर्शी है उभय लोकावगाहिनी है। तुम बुद्धि, विवेक और विज्ञान के निधान हो।

कवन सो काज कठिन जग माँहीं । जो नहि होय तात तुम्ह पाँहीं ।।
राम काज लगि तव अवतारा । सुनतहि भयेउ पर्वताकारा ।।२।।

अर्थ : संसार में कौन ऐसा कार्य कठिन है जो तुमसे न हो सके। तुम्हारा तो अवतार रामकार्य के लिए है। यह सुनते ही : हनुमान्‌जी पर्वताकार हो गये।

व्याख्या : जितने कार्य हैं उनको सिद्धि तो बल और बुद्धि से ही होती है। सो परमेश्वर ने तुमको सबसे अधिक दिया है। तुम्हारे बल बुद्धि का पारावार नहीं है। अतः संसार में कोई ऐसा कार्य नहीं है जिसे तुम न कर सको। किं पुनः रामकार्य जिसके लिए तुम्हारा अवतार है। ऐसी कथा है कि भगवान् ने शङ्कर की आराधना करके उनसे वरदान माँगा था कि आप मेरे सेवक होकर मेरा कार्य साधन करें। तदनुसार साक्षात् रुद्र भगवान् ही हनुमान् रूप से अवतीर्ण हुए। अतः कहते हैं कि हम लोग तो कौतुक के लिए साथ हैं। रामकाज के लिए अवतार तो तुम्हारा ही है। सुनते ही हनुमान्‌जी का आकार पर्वत सा हो गया।

कनक बरन तन तेज बिराजा । मानहु अपर गिरिन्ह कर राजा ।।
सिंहनाद करि बारहि बारा । लीलहिं नाघौं जलनिधि खारा ।।३।।

अर्थ : सोने के रंग के शरीर में तेज शोभायमान हुआ। मानो पर्वत के दूसरे राजा हैं। बार बार सिंहनाद करके कहा कि इस लवणसिंधु को तो खेल में ही डाक जाऊँगा।

हनुमान्‌जी का शरीर स्वभाव से ही सोने के रंग का है। सो जाम्बवानजी के कथन ने मानो मन्त्र का काम किया। उनके वचन से ऐसा उत्साह बढ़ा कि शरीर तेज से चमकने लगा। विशाल शरीर था ही। ऐसे मालूम होने लगे जैसे दूसरे सुमेरु हैं। जाम्बवानजी के इस कहने का कि चुप्पी क्यों साधे हो? बार बार सिंहनाद करके उत्तर दिया। कौन सो काज कठिन जगमाहीं। जो नहिं होय तात तुम पाहीं : का उत्तर देते हैं कि इस खारे समुद्र को तो खेल में डाक जाऊँगा। खारे समुद्र से उत्तरोत्तर छः समुद्र एक से एक आयाम में दुगुने हैं। कहिये तो उन्हें डाक जाऊँ। इस खारे समुद्र में रक्खा ही क्या है?

सहित सहाय रावनहि मारी । आनौं इहाँ त्रिकूट उपारी ।।
जामवंत मैं पूछौं तोहीं । उचित सिखावन दीजहु मोहीं ।।४।।

अर्थ : सहाय के सहित रावण को मारकर यहाँ त्रिकूट पर्वत उखाड़ लाऊँ। जाम्बवान ! मैं तुमसे पूछता हूँ। मुझे उचित शिक्षा दीजिये।

व्याख्या : यहाँ संशय को स्थान नहीं है। समुद्र पार करके सेना सहित रावण को मारकर यहाँ त्रिकूटाचल को जिस पर लङ्कापुरी बसी है उखाड़ लाऊँ। राम का कार्य ही पूरा कर दूँ। इस भाँति : राम काज लगि तव अवतारा का उत्तर

दिया। त्रिकूट उखाड़ लाने का भाव यह कि तब आप लोग खोज लें कि सीता कहाँ हैं ?

अब हनुमानूजी जाम्बवान से पूछते हैं कि आप सबसे वयोवृद्ध हैं। आप मुझे बतलाइये कि मैं क्या करूँ ? रामजी का सब कार्य ही पूरा कर दूँ कि केवल आज्ञा मात्र का पालन करूँ। मेरे लिए क्या उचित होगा ?

एतना करहु तात तुम जाई। सीतहिं देखि कहहु सुधि आई ॥
तब निज भुज बल राजिव नैना। कौतुक लागि संग कपि सैना ॥५॥

अर्थ : हे तात ! तुम इतना ही करो कि सीताजी को देखकर लौट आओ और समाचार कहो। तब कमलनयन : रामजी अपने भुजबल से बन्दरों की सेना खेलवाड़ के लिए साथ लेकर :

व्याख्या : जितनी आज्ञा तुम्हें हुई है उतना ही करो। आज्ञा इतनी ही है कि : कहि बल विरह बेगि तुम आएहु। सुग्रीव ने कहा है कि : सीता सुधि पूछेहु सब काहू। अतः न तो रामजी की न सुग्रीवजी की आज्ञा कुछ विशेष करने की है। रावण को सहाय सहित मारने और त्रिकूटाचल के लाने की आवश्यकता नहीं। इससे प्रभु की यशोहानि होगी। वे शेष कार्य अपने भुजबल से करेंगे। वानरी सेना कौतुक के लिए साथ रहेगी।

छं. कपि सेन संग संहारि निसिचर रामु सीतहिं आनिहैं।
त्रैलोक पावनु सुजसु सुर मुनि नारदादि बखानिहैं ॥
जो सुनत गावत कहत समुझत परम पद नर पावई।
रघुबीर पद पाथोज मधुकर दास तुलसी गावई ॥

अर्थ : वानरों की सेना के साथ राक्षसों को मारकर रामजी सीताजी को लावेंगे। त्रैलोक्य को पवित्र करनेवाला सुयश देवता और नारदादि मुनि वर्णन करेंगे। जिसे सुनते गाते कहते और समझते हुए मनुष्य परम पद प्राप्त करेंगे। रामजी के पद कमल का भ्रमर तुलसीदास गान कर रहा है।

व्याख्या : रावण वध से ही निशिचर संहार होगा। सो रामजी अपने हाथों करेंगे। प्रतिज्ञा कर चुके हैं : निसिचर हीन करौं महि भुज उठाइ प्रन कीन्ह। बन्दरों की सेना साथ रहेगी। उसमें हम लोग भी साथ रहेंगे। पर सीताजी को वे लावेंगे। इसी में शोभा है। तीनों लोक में उनका यश होगा। उस सुयश से तीनों लोक पवित्र होगा। यथा : अध्यात्मरागगंगेयं पुनाति भुवनत्रयम्। उसे शिव ब्रह्मादि देव तथा नारदादि महर्षि वर्णन करेंगे। इससे संसार का बड़ा भारी कल्याण होगा। संसार सागर सन्तरण करके परम पद की प्राप्ति अतीव दुस्तर कार्य है। सो अनायास साध्य हो जायगा। मनुष्य उस यश को कहकर गाकर सुनकर और समझकर परम पद के भागी होंगे। इसीलिए रघुबीर के चरण कमलों का भौंरा तुलसीदास

गान करता है। जिस भाँति मकरन्द पान करते हुए भौंरे गुनगुनाते जाते हैं। उसी भाँति प्रभु चरण कमल के मकरन्द का पान करता हुआ तुलसीदास भी गान करता है। यथा : पद कमल परागा रस अनुरागा मम मन मधुप करै पाना। यह काण्ड वैराग्य भक्तिप्रद है। अतः परम पद की प्राप्ति उपसंहार में कह रहे हैं।

दो. भव भेषज रघुनाथ जसु, सुनहि जे नर अरु नारि।
तिनकर सकल मनोरथ, सिद्ध करहिं त्रिसिरारि ॥३०॥

अर्थ : रघुनाथ यश संसाररूपी रोग की दवा है। इसे जो स्त्री पुरुष सुनते हैं। उनके सब मनोरथ को त्रिशिरारि : रामजी सिद्ध करते हैं।

व्याख्या : संसार ही एक बड़ा भारी रोग है। इसी से जगत् पीड़ित है। यथा : एहि विधि सकल जीवजग रोगी। हर्ष सोक भय प्रीति वियोगी। एक रोग वस नर मरहिं ये असाधि बहु व्याधि। पीड़हि संतत जीव कहुँ सो किमि लहै समाधि। इसकी अचूक औषधि रामजी का यश है। इसका सुनना ही सेवन करना है। अतः जो स्त्री पुरुष इसका सेवन करेगा उसके सब मनोरथों को रामजी सिद्ध करेंगे। मनोरथ सिद्धि के लिए उसे दूसरा अनुष्ठान न करना पड़ेगा।

सो. नीलोत्पल तन स्याम, काम कोटि सोभा अधिक।
सुनिअ तासु गुन ग्राम, जासु नाम अघ खग बधिक ॥३०॥

अर्थ : नीले कमल के सदृश श्याम रामजी की शोभा कोटि काम से अधिक है। उसके गुणग्राम को सुनो। जिसका नाम पापरूपी चिड़ियों के लिए बधिक है।

व्याख्या : नाम रूप लीला और धाम को महात्माओं ने रामजी का साक्षात् विग्रह माना है। यहाँ चारों के विषय में कहते हैं। नारदजी वरदान ले चुके हैं। राम सकल नामन्ह ते अधिका। होउ नाथ अघ खग गन बधिका। इससे नाम कहा। नीलोत्पल तनु स्याम : काम कोटि सोभा अधिक से रूप कहा। जेहि कहत गावत सुनत समुझत परम पद नर पावई। से धाम कह चुके हैं। अब कहते हैं कि उसको लीला गुणग्राम सुनिये। भाव यह कि ऐसे की ही लीला सुनने में सुख है तथा श्रवण की सार्थकता है। अथवा जिसका नाम अघ खग बधिक है। जिसका रूप नीलोत्पल तन स्याम कोटि काम सोभा अधिक है। उसी के गुणग्राम का मैं गान करता हूँ। यथा : रघुवीर पद पाथोज मधुकर दास तुलसी गावई। श्रोताओं को अभिमुख करके कहते हैं कि उसे सुनो। क्योंकि उसके सुनने से परम पद की प्राप्ति होती है। और सुननेवाले के सब मनोरथों को त्रिशिरारि सिद्ध करते हैं। उसका लोक परलोक दोनों बन जाता है। अध्यात्म जगत् में लोभ ही त्रिशिरा है। काम क्रोध और लोभ ये ही उसके शिर हैं। वध करनेवाले रामजी हैं। उसके वध से काम, क्रोध का भी साथ ही साथ वध हो जाता है। नरक का रास्ता बन्द हो जाता है। यथा : त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः। कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत्। इसलिए त्रिशिरारि का कृपा करना कहा।

इस काण्ड का पाठ मनोरथ सिद्धि के लिए करना चाहिए। लौकिक कार्य के आपड़ने पर हनुमान्‌जी के स्मरण का विधान है। सो इस काण्ड में हनुमान्‌जी का श्रीरामचन्द्र से मिलन, सुग्रीव की राज्य प्राप्ति तथा हनुमान्‌जी का रामकार्य के लिए उत्साह वर्णित है। इसके पाठ से रामजी की कृपा होती है। अतः अनुष्ठान करनेवाले के मनोरथ की सिद्धि होती है।

इति श्रीमद्रामचरितमानसे सकलकलिकलुषविध्वंसने
विशुद्धसन्तोषसम्पादनो नाम चतुर्थः सोपानः समाप्तः।

यह श्रीमद्रामचरितमानस की चौथी सीढ़ी पूरी हुई।

यह चौथी सीढ़ी काशी पुरी है। यथा : अयोध्या मथुरा माया काशी काञ्ची ह्यवन्तिका। पुरी द्वारावती ज्ञेया सप्तैता मोक्षदायिकाः। इनमें काशीपुरी भी चौथी है। काशी में ही भगवान् वृषभध्वज ने श्रीराम मन्त्र का जप करके श्रीरामजी की प्राप्ति की थी। इसी भाँति रुद्ररूप हनुमान्‌जी को रामजी की प्राप्ति किष्किन्धाकाण्ड में ही हुई है। अतः श्रीरामभक्त काशी बुद्धि से किष्किन्धाकाण्ड का सेवन करें।

मीतहि किष्किन्धा दई दानि सिरोमनि राम।
कांड नाम ताते परयो किष्किन्धा अभिराम॥

श्रीराम

श्रीगणेशाय नमः । श्रीगुरवे नमः

श्रीरामचरितमानस

सुन्दरकाण्ड : पंचम सोपान

सटीक

१. मन भावन २. कांचीपुरी ३. हनुमत चरित ललाम ।
४. सुन्दर सानुकथा ५. तथा ताते सुन्दर नाम ॥

इस काण्ड के सुन्दर नाम पड़ने के अनेक कारण हैं। यहाँ १. हनुमान्‌जी को अच्छे लगने से उपक्रम है। यथा : जामवंत के बचन सुहाए। सुनि हनुमंत हृदय अति भाए। और रामजी को अच्छे लगने से उपसंहार है। यथा : निज भवन गवनेउ सिंधु श्रीरघुपतिहि यह मत भायऊ : इससे सुन्दर नाम पड़ा। २. यह पाँचवाँ सोपान पाँचवीं मोक्षपुरी काञ्ची है। जिस भाँति काञ्ची के दो भाग हैं—शिव काञ्ची और विष्णु काञ्ची। इसी भाँति इस काण्ड में दो चरित हैं। हनुमत् चरित और रामचरित। अतः हरिहरात्मक होने से सुन्दर नाम पड़ा। ३. रामायण महामाला के रत्नरूप हनुमान्‌जी का चरित होने से सुन्दर नाम पड़ा। ४. त्रिकूटाचल के तीन शिखर सुने जाते हैं : नील, सुन्दर और सुवेल। सो इस काण्ड में प्रधानतः सुन्दर शिखर की कथा है। जिस पर अशोक वाटिका थी। इसलिए सुन्दर नाम पड़ा और ५. इस काण्ड में सभी कुछ सुन्दर हैं। इस पार : सिंधु तीर एक भूधर सुन्दर उस पार : लङ्का सुन्दर। यथा : कनक कोट बिचित्र मनिकृत सुन्दरायतना घना। मुद्रिका सुन्दर यथा : तब देखी मुद्रिका मनोहर। राम नाम अंकित अति सुन्दर। फल फूल सुन्दर यथा : सुनहु मातु मोहि अतिसय भूखा। लागि देखि सुंदर फल रूखा। कथा सुन्दर यथा : सावधान मन करि पुनि संकर। लागे कहन कथा अति सुन्दर। अतः सुन्दर नाम पड़ा।

मङ्गलाचरण

श्लो. शान्तं[1] शाश्वतमप्रमेयमनघं गीर्वाणशान्तिप्रदं
ब्रह्माशम्भुफणीन्द्रसेव्यमनिशं वेदांतवेद्यं विभुं ।

---

१. यह शार्दूलविक्रीडित छन्द है।

रामाख्यं जगदीश्वरं सुरगुरुं मायामनुष्यं हरिं
वंदेऽहं करुणाकरं रघुवरं भूपालचूडामणिं ॥१॥

अर्थ : शान्त, नित्य, अप्रमेय, निष्पाप, देवताओं को शान्ति देनेवाले, ब्रह्मा शम्भु और शेष द्वारा निरन्तर सेवित, वेदान्त से जानने योग्य, व्यापक जगत् के ईश्वर, देवताओं के गुरु, माया से मनुष्य रूप, दुःखों को हरण करनेवाले करुणा की खानि, भूपालों के चूड़ामणि राम नामवाले रघुवर की मैं वन्दना करता हूँ।

व्याख्या : जो निष्क्रिय होने से शान्त, आदि रहित होने से सनातन प्रमाण से परे अर्थात् स्वयंसिद्ध होने से अप्रमेय। पाप पुण्य से रहित होने से अनघ, दैवी सम्पत्तिवालों को अपना स्वरूप देने अथवा देवताओं की अशान्ति दूर करने से गीर्वाण शान्तिप्रद, ब्रह्मा शम्भु और शेष को भी स्व-स्वकार्य सम्पादन की शक्ति देने से अथवा उनके पूज्य होने से निरन्तर ब्रह्मा शम्भु फणीन्द्रसेव्य। औपनिषद पुरुष होने से वेदान्तवेद्य। अभिन्न-निमित्तोपादान कारण होने से विभु। सबके स्वामी होने से जगदीश्वर। वेदादि शास्त्रों के आदि उपदेष्टा होने से सुरगुरु। इच्छामय नररूप धारण करने से माया मनुष्य। दुःखों के दूर करनेवाले होने से रघुवर। राजाओं के आदर्श होने से भूपालचूड़ामणि। आनन्दसिन्धु, सुखराशि और सर्वसुखद होने से राम हैं। श्री गोस्वामीजी कहते हैं कि मैं उनकी वन्दना करता हूँ। इस श्लोक के पहिले दो पदों से निर्गुण रूप और पिछले दो पदों से सगुण रूप का वर्णन किया। इस भाँति सगुण निर्गुण रूप कहा और चूड़ामणि से इस काण्ड में चूड़ामणि प्राप्ति की कथा का होना भी ध्वनित किया।

श्लो.[1] नान्या स्पृहा रघुपते हृदयेऽस्मदीये
सत्यं वदामि च भवानखिलान्तरात्मा।
भक्तिं प्रयच्छ रघुपुंगव निर्भरां मे
कामादिदोषरहितं कुरु मानसं च ॥२॥

अर्थ : हे रघुपति ! मैं सत्य कहता हूँ। आप तो सबके अन्तरात्मा हैं। मेरे हृदय में दूसरी कोई लालसा नहीं है। हे रघुश्रेष्ठ ! मुझे पूर्ण भक्ति दीजिये और मेरे मन को कामादि दोषों से रहित कीजिये।

व्याख्या : दूसरी लालसा रहते भक्ति नहीं मिलती। यथा : बहुत कीन्ह प्रभु लषन सिय नहि कछु केवट लेइ। बिदा कीन्ह करुनायतन तव भगति बिमल बर देइ। अतः कहते हैं कि मुझे दूसरी लालसा नहीं है। जिसकी भक्ति चाहते हैं उसी से माँगते हैं। क्योंकि भक्ति कृपासाध्य है। क्रियासाध्य नहीं है। यथा :

---

१. यह वसन्ततिलका छन्द है।

रघुपति भगति करत कठिनाई ।
कहत सुगम करनी अपार जानै सोइ जेहि बनिआई ॥१॥
जो जेहि कला कुसलता कहँ सोइ सुलभ सदा सुखकारी ।
सफरी सनमुख जल प्रवाह सुरसरी बहै गज भारी ॥२॥
ज्यों सर्करा मिलै सिकता महँ बल ते न कोउ बिलगावै ।
अति रसज्ञ सूच्छम पिपीलिका बिनु प्रयास ही पावै ॥३॥
सकल दृश्य निज उदर मेलि सोवै निद्रा तजि जोगी ।
सोइ हरिपद अनुभवै परम सुख अतिसय द्वैत वियोगी ॥४॥
सोक मोह भय हरष दिवस निसि देस काल तहँ नाहीं ।
तुलसिदास यहि दसा हीन संसय निर्मूल न जाहीं ॥५॥

रघुपति सम्बोधन देकर भी यही बात दिखलायी। अपनी दृढ़ता दिखलाते हुए कहते हैं कि सत्य कहता हूँ। फिर यह बात भी है : तुमसे कछु न छिपीं करुना-निधि तुम हौ अन्तर्जामी। रघुवंशी के यहाँ से मंगन विमुख नहीं फिरते। इसलिए दूसरा सम्बोधन रघुपुङ्गव देते हैं और निर्भरा भक्ति माँगते हैं। इस काण्ड में हनुमान्‌जी और विभीषणजी को अनपायिनी भक्ति मिली है। इसीसे कवि भी माँगते हैं। भक्ति का बड़ा भारी बाधक : सुख सम्पत्ति परिवार बड़ाई हैं। यही कामादि दोष हैं। इन पर बल नहीं चलता। अतः इनके दूर करने के लिए भी प्रभु से प्रार्थना करते हैं।

श्लो. अतुलितबलधामं[1] स्वर्णशैलाभदेहं,
दनुजवनकृशानुं ज्ञानिनामग्रगण्यं ।
सकलगुणनिधानं वानराणामधीशं,
रघुपतिवरदूतं वातजातं नमामि[2] ॥३॥

अर्थ : अतुलित बल के धाम हैं। सोने के पर्वत की सी कान्ति देह में है। दानव के वन के लिए अग्नि रूप हैं और ज्ञानियों में अग्रगण्य हैं। सम्पूर्ण गुणों के स्वामी हैं। ऐसे रघुनाथजी के श्रेष्ठ दूत पवनसुत को मैं प्रणाम करता हूँ।

व्याख्या : रुद्र देह तजि नेह बस वानर भे हनुमान। इसलिए शिवजी के स्थान पर हनुमान्‌जी की स्तुति करते हैं। बालकाण्ड से यह नियम चला आता है कि रघुनाथजी से पहिले शिवजी की स्तुति ग्रन्थकार करते हैं। पर सुन्दरकाण्ड में शिवजी हनुमान् रूप से सेवक होकर उपस्थित हो गये। अतः यहाँ से स्तुति का

१. अन्त्यस्य हलो नित्यम् इस सूत्र द्वारा नकार का लोप होकर अकारान्त धाम शब्द सिद्ध हुआ।

२. यह मालिनीछन्द है। इसमें पन्द्रह अक्षरों का एक पाद होता है। इसमें दो नगण, एक मगण और दो यगण होते हैं।

क्रम पलट गया : रघुनाथजी की स्तुति पहिले होने लगी। इस श्लोक में हनुमत् चरित का बीज है। अतुलित बल धाम से समुद्रोल्लंघन सुरसा आदि का अतिक्रम कहा। स्वर्ण शैलाभदेहं से जानकीजी को भरोसा देना कहा। यथा : कनक भूधराकार सरीरा समर भयंकर अति बलबीरा। सीता मन भरोस तब भयऊ। दनुजवनकृशानुं से अक्षादि बध तथा लङ्कादाह कहा। ज्ञानिनामग्रगण्यं से रावण को उपदेशदान कहा : सकलगुणनिधानं से जानकीजी का आशीर्वाद मिलना कहा : वानराणामधीशं से बन्दरों की इनके द्वारा प्राणरक्षा कही। रघुपतिवरदूतं से सन्देश कहने की पण्डिताई तथा कहे हुए कार्य से तदविरोधी अधिक कार्य करना कहा। वातजातं से श्रमरहित होना कहा।

अब समुद्रोल्लङ्घन प्रकरण आरम्भ होता है। यहाँ दोहा या सोरठा काण्ड के आदि में नहीं दिया। क्योंकि हनुमान्जी को विश्राम नहीं है और सोरठा या दोहा पर विश्राम होता है। यथा : सुनि सब कथा समीरकुमारा। नांघत भयो पयोधि अपारा। इसलिए दोहा या सोरठा न देने का यथेष्ट कारण है।

५७. समुद्रोल्लंघन प्रसंग

जामवंत के बचन सुहाए। सुनि हनुमंत हृदय अति भाए॥
तब लगि मोहि परिखेहु तुम्ह भाई। सहि दुख कंद मूल फल खाई॥१॥

अर्थ : जाम्बवान् के सोहाए और हृदय में अच्छे लगनेवाले वचन सुनकर हनुमान्जी : बोले हे भाई! तुम लोग दुःख सहकर और कन्दमूल फल खाकर तब तक मेरी राह देखना।

व्याख्या : जाम्बवान्जी के वचन भाये तो सबको, पर हनुमान्जी को अति भाये। वचन यह था : कपिसेन सँग संहारि निसिचर रामु सीतहिं आनिहैं। त्रैलोक पावनु सुजस सुर मुनि नारदादि बखानिहैं। जो सुनत गावत कहत समुझत परम पद नर पावई। जिसे जो बात अच्छी लगती है, वह उसे दूसरों से ही कहता है। हनुमान्जी को ऐसा अच्छा लगा कि उन्होंने अक्षरशः इसी वाक्य को सीताजी से दोहराया है। यथा : कछुक दिवस जननी धरु धीरा। कपिन्ह सहित अइहैं रघुबीरा। निसिचर मारि तोहि लै जैहैं। तिहुँ पुर नारदादि जस गैहैं।

कार्य के गौरव का ध्यान करके समय कुछ नहीं देते, राह देखने को कहते हैं। कहीं घबराकर बन्दर लोग समुद्र पार करने का साहस न कर बैठें। अतः प्रतीक्षा करने का दुःख सहने और अनशन तोड़कर फल फूल खाने के लिए अनुरोध करते हैं।

जब लगि आवौं सीतहि देखी। होइहि काजु मोहि हरष बिसेषी॥
अस कहि नाइ सबन्हि कहुँ माथा। चलेउ हरषि हिय धरि रघुनाथा॥२॥

अर्थ : जबतक मैं सीता को देखकर लौट आऊँ। कार्य होगा : क्योंकि मुझे

विशेष हर्ष हो रहा है। यह कहकर सबको मस्तक नवाकर और हृदय में रघुनाथजी को रखकर हर्षित होकर चले।

व्याख्या : कहना चाहिए था कि जबतक लौटकर न आऊँ, परन्तु यह न कहकर : जबतक लौट आऊँ कहते हैं। कारण यह है कि सिद्ध पुरुष हैं न लौट आऊँ कहते तो लौटते नहीं। शङ्कर भगवान् भी इसी प्रकार के वाक्य का प्रयोग करते हैं। यथा : तब लगि बैठ अहौं बट छाहीं। जब लगि तुम अइहौ मोहि पाहीं। यहाँ भी नहि अइहौ मोहि पाहीं कहना चाहता था। परन्तु ऐसा नहीं कहा : यदि कह देते तो सती फिर लौटकर नहीं आतीं। उषः प्रशस्यते गर्गः शकुनश्च बृहस्पतिः। अङ्गिरा मन उत्साहं विप्रवाक्यं जनार्दनः। यात्रा में गर्ग ऋषि उषा काल की प्रशंसा करते हैं। बृहस्पति शकुन की प्रशंसा करते हैं। अङ्गिरा मन के उत्साह और जनार्दन ब्राह्मणों के वाक्य की प्रशंसा करते हैं। यहाँ कपि अङ्गिरा के वचन के आधार पर कहते हैं कि मुझे बड़ा उत्साह है। इसलिए कार्य का होना निश्चित है।

विदा होने के लिए सब को प्रणाम करते हैं। अथवा सबका आशीर्वाद सुनकर सबको प्रणाम करते हैं अथवा प्रभुका उपदेश स्मरण करके सबको प्रणाम करते हैं। यथा : सो अनन्य जाकें असि मति न टरइ हनुमंत। मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवंत। रामजी को हृदय में धारण करना कार्यसिद्धिका अमोघ उपाय है। चलेउ कहने से बोध होता है कि सिन्धुतीर होने पर भी जल से कुछ दूर पर थे।

सिंधुतीर एक भूधर सुंदर। कौतुक कूदि चढ़ेउ ता ऊपर॥
बार बार रघुबीर सँभारी। तरकेउ पवन तनय बलभारी॥३॥

अर्थ : समुद्र के किनारे एक सुन्दर पर्वत था। खेल से ही कूदकर उसके ऊपर जा चढ़े। बार बार श्रीरघुवीर को सँभालकर अत्यन्त बलवान हनुमान्जी बड़े वेग से उछले।

व्याख्या : समुद्र अपने किनारे से ऊँचा होता है। इसलिए विना ऊँचे पर चढ़े कूदना नहीं बनता। इस कारण से पर्वत पर कूदकर चढ़े। वाल्मीकीय में इस पर्वत का बड़ा वर्णन है। इसलिए सुन्दर कहा। प्रवर्षण गिरि पर से श्रीरघुवीर को हृदय में धारण करके चले थे। यथा : हनुमत जनम सफल करि जाना। चलेउ हृदय धरि कृपानिधाना। सो कहीं कूदते समय खिसक न जायँ। इसलिए पूँजो की भाँति रघुवीर को सँभालते हैं। यथा : मन माधव को नेकु निहारहि। सुन सठ सदा रंक के धन ज्यों छिन छिन प्रभुहि सँभारहि। पवन तनय कहकर वेगाधिक्य कहा। बल भारी से समुद्र में उथल-पुथल का होना कहा। इसका स्पष्टीकरण आगे चलकर करते हैं।

जेहि गिरि चरन देइ हनुमंता। चलेउ सो गा पाताल तुरंता॥
जिमि अमोघ रघुपति कर बाना। एही भाँति चला हनुमाना॥४॥

अर्थ : जिस पर्वत पर हनुमान्‌जी पैर रखकर चले वह तुरन्त ही पाताल चला गया। जिस भाँति रघुपति का अमोघ बाण चलता है उसी भाँति हनुमान्‌जी चले।

व्याख्या : उसी पर्वत के विषय में कहते हैं : जिसके ऊपर से हनुमान्‌जी कूदे कि वह उनके चरण के चपेट को नहीं सह सका। यथा : तुलसी रसातल को निकसि सलिल आयो कोल कलमल्यौ अहि कमठ को बलुगो। ताहिहु चरन के चपेट चाँप चिपिटिगो उचके उचकि चार अङ्गुल अचलुगो। क० रा०।

अमोघ से कार्यसिद्धि कहा। रघुपति कर बाना : कहकर वेग अन्तरिक्ष गमन तथा लौटकर आना द्योतित किया। रामजी के बाण कार्य करके लौट आते थे। यथा : प्रविसे सब निषंग महु आई। देखि सुरन्ह दुन्दुभी बजाई। स्वयं हनुमान्‌जी ने अपने वेग की उपमा रामबाण से दी है। यथा : जेहौं रामबाण की नाइँ। लङ्का पर रघुनाथजी का पहिला बाण छूटा।

जलनिधि रघुपति दूत बिचारी। तैं मैनाक होहि श्रमहारी ॥५॥

अर्थ : समुद्र ने उन्हें रघुपति का दूत विचारकर मैनाक पर्वत से कहा कि तू इनकी थकावट को हरण करनेवाला हो।

व्याख्या : समुद्र में बड़ा भारी उथल-पुथल देखकर समुद्र के अधिष्ठात्री देवता ने विचार किया कि यह कौन है ? उसने विचार से स्थिर किया कि यह रामदूत है। समुद्रजी को रामभक्त बड़े प्रिय हैं। अतः मैनाक से श्रमहारी होने के लिए कहा। पहिले पर्वतों को पक्ष होता था, इन्द्र ने काट डाला। पवन देव ने उस समय मैनाक को समुद्र में फेंककर बचा लिया। उसके पक्ष न कटे। अतः वह पवन देव का उपकृत था। इसलिए मैनाक से कहा। दूसरी बात यह कि इसी का पक्ष बच गया था। अतः विश्राम भूमि बनने में यही समर्थ था।

दो. हनूमान तेहि परसा, कर पुनि कीन्ह प्रनाम।
राम काजु कीन्हें बिनु, मोहि कहाँ विश्राम ॥१॥

अर्थ : हनुमान्‌जी ने उसे हाथ से छू दिया। फिर प्रणाम किया और कहा कि रामजी का कार्य विना किये मुझे विश्राम कहाँ ?

व्याख्या : आतिथ्य सत्कार की स्वीकृति द्योतन के लिए स्पर्श कर लिया। पहिले विघ्न समझा था : इसलिए प्रणाम नहीं किया। परिचय पाने पर प्रणाम किया। पिता के मित्र हैं। पार्वतीजी के भाई हैं। अतः सर्वथा प्रणम्य हैं। मेनया अपत्यं पुमान् मैनाकः। विश्राम न करने का कारण कहते हैं कि यदि मुझे रामकार्य के लिए त्वरा न होती तो अवश्य विश्राम करता।

जात पवन सुत देवन्ह देखा। जानै कहुँ बल बुद्धि बिसेषा ॥
सुरसा नाम अहिन कै माता। पठइन्हि आइ कही तेहि बाता ॥१॥

अर्थ : देवताओं ने पवनसुत को जाते हुए देखा। उनकी विशेष बल बुद्धि

जानने के लिए सुरसा नाम के सर्पों की माता को भेजा। उसने आकर यह बात कही।

व्याख्या : पवनसुत कहने का भाव यह कि अपने समाज के हैं। सूर्य मण्डल ग्रास की कथा जानते हैं। अतः हनुमान्‌जी के बल से देवता अपरिचित नहीं हैं। फिर भी उतना बल यथेष्ट न समझा गया। विशेष बल बुद्धि के जानने की इच्छा हुई। विशेष बुद्धि बल न होने से लङ्का में प्रविष्ट होने के समय पकड़े जा सकते हैं। यदि बात फूट गयी कि पवनपुत्र हैं तो देवताओं पर भारी विपत्ति आ पड़ेगी। दूसरी बात यह है कि वेगाधिक्य देखा। थोड़ी ही देर में पार पहुँचना चाहते हैं। अतः बहुत जल्द परीक्षा लेनी चाहिए। ऐसा विघ्न उपस्थित करना चाहिए कि उसके अतिक्रमण में सारी परीक्षा हो जाय। यदि असमर्थ ठहरें तो इनके न जाने में कुशल है। हनुमान्‌जी ने भी रावण को अपना परिचय पवनपुत्र कहकर नहीं दिया।

कद्रू भी सर्पों की माता हैं। इसलिए सुरसा नाम दिया। लङ्का तो मानो सर्पों का निवास ही है। यथा : भोगावति जस अहिकुल वासा। रावण स्वयं महासर्प है। यथा : जस पावन रावन नाग महा। राक्षसी भी सर्पिणी हैं। यथा : दुष्ट हृदय दारुन जिमि अहिनी। अतः सर्पों की माता को परीक्षा के लिए भेजा। दूसरी बात यह है कि पवन सर्पों का आहार है और हनुमान्‌जी पवनपुत्र हैं। वे सर्पों की माता सुरसा से ही दब सकेंगे। अतः परीक्षा के लिए उसी को भेजा। अब भगवती सुरसा का वेग कहते हैं। उधर देवताओं ने भेजा और इधर देखिये तो हनुमान्‌जी के सामने खड़ी हैं। इसलिए चलना नहीं कहा।

आजु सुरन्ह मोहि दीन्ह अहारा। सुनत बचन कह पवनकुमारा ॥
राम काजु करि फिरि मैं आवौं। सीता कर सुधि प्रभुहि सुनावौं ॥२॥

अर्थ : आज देवताओं ने मुझे भोजन दिया है। यह वचन सुनते ही पवनकुमार ने कहा कि रामजी का कार्य करके मैं लौट आऊँ और सीता का समाचार प्रभु को सुना दूँ।

व्याख्या : बनावटी बातों से ही बुद्धि की परीक्षा होती है। परीक्षा लेने में जो कहा जाता है उसकी असत्य में गणना नहीं होती। अतः सुरसा देवी ने कहा कि आज के लिए देवताओं ने तुमको मेरा आहार कल्पित किया है। सुरन्ह कहने से भाव यह कि सब देवताओं की सम्मति है। पवनकुमार कहने से भाव यह कि पिता की आज्ञा भङ्ग नहीं करेंगे। यथा : सेवक भयो पवन पूत साहिब अनुहरत : रामजी ने पिता की आज्ञा से राज्य छोड़ा। यह देह छोड़ने को तैयार हैं। हनुमान्‌जी बड़े प्रत्युत्पन्न मति हैं। तुरन्त बोले : रामकाज करि फिर मैं आवौं इत्यादि। भाव यह कि रामाज्ञा देवताओं की आज्ञा से बड़ी हैं क्योंकि रामजी सुरगुरु हैं। उनका कार्य देवकार्य से भी बड़ा है। सीता की सुधि प्रभु को सुनाने तक आज्ञा की पूर्ति हो जावेगी। प्रभु की आज्ञा है : कहि बल बिरह बेग तुम्ह आयेहु। सो तुम्हारे

हाथ सन्देश भेजने से भी काम न चलेगा, मुझे जाना पड़ेगा, तुम स्त्री हो, स्त्री पर दया करो।

तब तुअ बदन पइठिहउँ आई। सत्य कहउँ मोहि जान दे माई ॥
कवनेहुँ जतन देइ नहिं जाना। ग्रससि न मोहि कहेउ हनुमाना ॥३॥

अर्थ : तब मैं आकर तेरे मुख में घुस जाऊँगा। हे माता ! मैं सत्य कहता हूँ मुझे जाने दे। किसी उपाय से भी जाने नहीं देती तब हनुमान्‌जी ने कहा : तो फिर मुझे खा ले।

व्याख्या : रह गयी तुम्हारे खाने की बात। सो रामजी को सीता की सुधि सुनाने के बाद मैं स्वयं आकर तुम्हारे मुख में प्रवेश करूँगा। विश्वासोत्पादन के लिए कहते हैं सत्य कहौं। पहिले ही सुरसा देवी ने : आज सुरन्ह मोहि दीन्ह अहारा कहकर धर्मपाश से बाँध लिया है। हनुमान्‌जी अपना पराक्रम दिखला नहीं सकते। क्योंकि ऐसा करने से देवताओं की आज्ञा का उल्लंघन होगा। अतः दया उत्पादन के लिए माई कहा अथवा यह झलकाया कि मैं जान गया तुम देवी हो। अतः माँ हो तुम्हारे मुख में प्रवेश करने में मुझे कोई आपत्ति नहीं है। मैं अवश्य लौटकर मुख में प्रवेश करूँगा।

साम दिखलाया यथा : फिर मैं आवौं। सीता कै सुधि प्रभुहि सुनावौं। दान यथा : तब तुअ बदन पैठिहौं आई। राम काज कहकर भय भी दिखलाया और माई सम्बोधन से भेद भी दिखलाया। तुम सर्प की माता होने से चाहे बच्चे को खा जाओ पर यह कार्य कश्यपजी को प्रिय न होगा। इतने पर भी जब नहीं माना तो दाहिने बायें ऊपर नीचे से निकल जाना चाहते हैं। पर बड़ी सावधान हैं जाने नहीं देती। तब हनुमान्‌जी ने कहा कि मुझे खा न ले ! हनुमानजी को वाक् सिद्धि है। यदि खा ले कहें तो उसका आहार बनना पड़े।

जोजन भरि तेहिं बदनु पसारा। कपि तनु कीन्ह दुगुन बिस्तारा ॥
सोरह जोजन मुख तेहिं ठयऊ। तुरत पवनसुत बत्तिस भयऊ ॥४॥

अर्थ : उसने योजन भर मुँह फैलाया। तब हनुमान्‌जी ने अपने शरीर को उससे दूना कर लिया। उसने सोलह योजन का मुख किया। हनुमान्‌जी तुरन्त ही बत्तीस योजन के हो गये।

व्याख्या : ग्रससि न मोहि के उत्तर में सुरा ने मुँह फैलाया। मालूम होता है कि उस समय हनुमान्‌जी का शरीर अर्ध योजन का था। अतः उसने एक योजन भर मुख फैलाया। हनुमान्‌जी दो योजन के हो गये। सुरसा देवी ने समझ लिया कि यह दूना बढ़ेगा। मैं चार योजन मुख फैलाऊँगी तो यह आठ योजन बढ़ेगा। अतः धोखा देने के लिए सोलह योजन मुख फैलाया। हनुमान्‌जी धोखे में आकर बत्तीस योजन के हो गये। यहाँ भौतिक बल की परीक्षा न होकर दिव्यबल की परीक्षा हो रही है। महिमा सिद्धि का उत्कर्ष दिखलाया जा रहा है।

जस जस सुरसा बदन बढ़ावा । तासु दून कपि रूप देखावा ।।
सत जोजन तेहि आनन कीन्हा । अति लघु रूप पवनसुत लीन्हा ।।५।।

अर्थ : जैसे जैसे सुरसा ने मुख का विस्तार किया हनुमान्जी ने उसका दूना रूप दिखलाया । उसने सौ योजन का मुख फैलाया तब हनुमान्जी ने बहुत ही छोटा रूप धारण कर लिया ।

व्याख्या : सोलह का दूना बत्तीस होना है । अतः कहते हैं कि सुरसा ने कोई क्रम नहीं रक्खा । हनुमान्जी ने क्रम रक्खा दूने होते चले गये । सुरसा ने फिर धोखा देने के लिए सोलह योजन के बाद सौ योजन मुख फैला दिया । हनुमान्जी बढ़ने के बदले एकाएक अत्यन्त छोटे हो गये । सुरसा का चित्त बढ़ाव की ओर था । धोखा देना चाहा था सो स्वयं धोखा खा गयी । हनुमान्जी ने महिमा सिद्धि दिखलाते दिखलाते एकाएक लघिमा सिद्धि का उत्कर्ष दिखलाया ।

बदन पइठि पुनि बाहेर आवा । माँगा बिदा ताहि सिरु नावा ।।
मोहि सुरन्ह जेहि लागि पठावा । बुधि बल मरमु तोर मैं पावा ।।६।।

अर्थ : उसके मुँह में घुसकर फिर बाहर निकल आये और उससे सिर नवाकर विदा माँगा । उसने कहा मैंने तुम्हारे बुद्धि बल का मर्म पा लिया जिसके लिए कि देवताओं ने मुझे भेजा था ।

व्याख्या : सुरसा मुख समेट न सकी । जितनी देर में सुरसा ने महिमा सिद्धि दिखलायी उतनी देर में हनुमान्जी ने महिमा लघिमा दोनों सिद्धियाँ दिखलायीं । अपने को धर्मपाश से मुक्त कर लिया । देवताओं ने आहार कल्पना किया था सो उसके मुख में प्रविष्ट हो गये । देवताओं की बात रख ली । अब सुरसा यदि गले के नीचे उन्हें न उतार सकी तो यह उसकी त्रुटि थी । अब देवी समझकर उससे प्रणाम करके विदा माँगते हैं । इससे अपनी बड़ी भारी निर्भीकता तथा सज्जनता का परिचय देते हैं ।

दो. राम काजु सबु करिहहु, तुम्ह बल बुद्धि निधान ।
आसिष देइ गई सो, हर्षि चलेउ हनुमान ।।२।।

अर्थ : तुम बल बुद्धि के भण्डार हो । तुम सब कार्य करोगे । आशीर्वाद देकर वह चली गयी । हनुमान्जी हर्षित होकर चले ।

व्याख्या : यही मर्म पाया कि हनुमान्जी बल बुद्धि के निधान हैं । अतः आशीर्वाद देती है : राम काज करिहहु तुम्ह । देवताओं की भेजी आयी थी । परीक्षा लेकर देख लिया कि इसका लङ्का में कोई बाल बाँका नहीं कर सकता और यह बिना रावण को पता लगे लङ्का में प्रवेश करके सीताजी को देखकर लौट आ सकता है । अतः जाने की आज्ञा आशीर्वाद के मिस से देकर लौट गयी । हनुमान्जी फिर हर्षित होकर चले । क्योंकि सुरसादेवी से सब रामकार्य करने का आशीर्वाद पाया

है और रामकार्य करने में ही हनुमान्‌जी के जीवन का साफल्य है। यथा : रामकाज लगि तव अवतारा। सुनतहि भयउ पर्वताकारा। रामजी की कृपा से गरल : साँपों की माँ सुधा हो गयी। आशीर्वाद देकर गयी।

निसिचरि एक सिंधु महुँ रहई। करि माया नभ के खग गहई ॥
जीव जंतु जे गगन उड़ाहीं। जल बिलोकि तिन्हकै परिछाहीं ॥१॥

अर्थ : समुद्र में एक राक्षसी रहती थी। वह माया करके आकाश के चिड़ियों को पकड़ लेती थी। आकाश में जो जीव जन्तु उड़ा करते थे वह जल में उनकी परिछाहीं देखकर :

व्याख्या : निसिचरि एक सिन्धु महुँ रहई कहकर भगवती सुरसा का भी राक्षसीरूप धारण करना ध्वनित किया। वह स्वर्ग में रहती थी और यह सिन्धु में रहती थी। बातचीत का अवसर नहीं मिला इसलिए नाम नहीं दिया। अघटित घटना पटीयसी माया है। जो हो न सके उसे माया कर दिखाती है। वह रहती थी समुद्र में और चिड़िया आकाश की पकड़ती थी। पराक्रम का उसमें कोई उपयोग नहीं था। बड़े को जीव और छोटे को जन्तु कहते हैं जो आकाश में उड़ते थे। उन सबका प्रतिविम्ब जल में पड़ ही जाता था। वह उसे देख लेती थी। उसकी निगाह से कोई बच नहीं सकता था। सबको वह पकड़ लेती थी। थल पर उसका कोई अधिकार नहीं था। उसका नाम सिंहिका था। इसके बेटे राहु में इतना सामर्थ्य है कि गगनचारी सूर्य और चन्द्रमा को ग्रसता है।

गहै छाँह सक सो न उड़ाई। एहि बिधि सदा गगनचर खाई ॥
सोइ छल हनूमान कहँ कीन्हा। तासु कपटु कपि तुरतहि चीन्हा ॥२॥

अर्थ : उस परछाईं : प्रतिबिम्ब को पकड़ लेती थी जिससे वे उड़ नहीं सकते थे। इस प्रकार वह सदा आकाश में उड़नेवाले जीवों को खाया करती थी। उसने वही छल हनुमान्‌जी से किया। कपि ने तुरन्त ही उसका छल पहिचान लिया।

व्याख्या : छाया को कोई पकड़ नहीं सकता। पुरुष के पकड़ने से छाया पकड़ी जाती है। मायाबल से यह उलटा ही करती थी। छाया पकड़कर पुरुष को पकड़ती थी। जिस प्रकार डोरी पकड़कर पतङ्ग उतार ली जाती है उसी प्रकार से आकाशचारी जीवों को छाया पकड़कर खींच लेती थी। उनका कोई पुरुषार्थ नहीं चलता था। छाया के साथ खिंचे हुए उसके मुख में चले आते थे। गगनचरों के भक्षण की यही विचित्र विधि थी।

वही माया उसने हनुमान्‌जी से किया। किसी ने आज तक उसकी माया को पहिचान नहीं पाया था। पहिचान में आजाने पर माया का बल नहीं चलता। ये महात्मा कपि होने पर भी ऐसे प्रत्युत्पन्नमति हैं कि तुरन्त ही पहिचान गये कि

इसका बल छाया के मार्ग में ही है। जिधर यह खींच रही है उधर ही पराक्रम करने से काम चल सकता है। प्रतिकूल विधि से पराक्रम विफल होगा।

ताहि मारि मारुत सुत बीरा। वारिध पार गयउ मतिधीरा ॥
तहाँ जाइ देखी बन सोभा। गुंजत चंचरीक मधु लोभा ॥३॥

अर्थ : पवनपुत्र मतिधीर वीर हैं। उसे मारकर समुद्र पार गये। वहाँ जाकर वन की शोभा देखी। मधु के लोभ से भौंरे गुञ्जार कर रहे हैं।

व्याख्या : उसी के मुख में कूद पड़े और उसे फाड़ डाला। पहिले सात्त्विको माया स्वर्ग से विघ्न रूप होकर आयी। उससे मेल कर लिया। यह तामसी माया पाताल की विघ्नरूपा उपस्थित हुई। सो इसे मार ही डाला। मारुतसुत कहकर उनका वेग द्योतित किया। विघ्न के कारण दो स्थानों पर ठहरना पड़ा। फिर भी दिन रहते ही पार पहुँच गये। मारुत नंदन मारुत को मन को खगराज को बेग लजायो। वीर मतिधीर थे अतः पार जाने में समर्थ हुए। वीर मतिधीर कहकर बल बुद्धि का उत्कर्ष कहा। हनुमान्‌जी ने समुद्रोल्लंघन में अन्तरिक्ष मार्ग का भी आलम्बन किया था।

जलदुर्ग कहकर वनदुर्ग कहते हैं। पार जाने पर वन मिला जो बड़ा सोहावना और सरस था। मकरन्द से भरे फल फूल थे। अतः गुंजत अलि लै चल मकरंदा। बानर वन के जौहरी होते हैं। अतः शोभा देख रहे हैं।

नाना तरु फल फूल सुहाए। खग मृग बृंद देखि मन भाए ॥
सैल बिसाल देखि एक आगे। तापर धाइ चढ़े भय त्यागे ॥४॥

अर्थ : अनेक प्रकार के वृक्ष और सुन्दर फल फूल थे। पशु पक्षी के समूह को देखकर प्रसन्न हुए। सामने एक विशाल पर्वत देखा। भय त्यागकर उस पर दौड़कर जा चढ़े।

व्याख्या : अब गिरि दुर्ग कहते हैं। पर्वत तो बहुत थे पर उनमें एक विशाल पर्वत था। विशालता कहते हैं कि उस पर दौड़कर चढ़ना पड़ा। कूदकर नहीं चढ़े। भय त्यागे कहने से उसपर किसी भय विशेष का होना सूचित किया अथवा एकाएक ऊपर चढ़ जाने से राक्षसों द्वारा दिखाई पड़ जाने का भय था। लङ्का बड़े ऊँचे पर्वत पर है। उसका दृश्य देखने के लिए विशाल पर्वत पर चढ़े।

उमा न कछु कपि कै अधिकाई। प्रभु प्रताप जो कालहि खाई ॥
गिरि पर चढ़ि लंका तेंहि देखी। कहि न जाइ अति दुर्ग बिसेषी ॥५॥
अति उतंग जल निधि चहु पासा। कनक कोट कर परम प्रकासा ॥६॥

अर्थ : हे उमा ! इसमें वानर की कोई बड़ाई नहीं है। प्रभु का प्रताप ही ऐसा है जो काल को भी खा जाता है। पर्वत पर चढ़कर उन्होंने लङ्का देखी।

बहुत ही विकट किला था जिसका कुछ वर्णन नहीं हो सकता। उसके चारों ओर अत्यन्त ऊँचा समुद्र है। सोने के परकोटे का परम प्रकाश हो रहा है।

व्याख्या : इस पर्वत पर निर्भय चढ़ जाना इतना विकट कार्य था कि शिवजी ने इस अवसर पर प्रभु के प्रताप की प्रशंसा की कि वह काल को खा जाता है। इन बातों से महात्माओं ने यह अनुमान किया है कि उस पर्वत पर काल का पहरा था। हनुमान्जी के दौड़कर चढ़ने पर वह भी भागा। हनुमान्जी का पराक्रम ही ऐसा है। यथा : पटकउँ मीच नीच मूषक ज्यौं सबहिको पाप बहावों। गी.। ज्ञानघाट के वक्ता शिवजी उमा को सम्बोधन करके कहते हैं कि इसमें कपि की बड़ाई कुछ भी नहीं। क्योंकि स्वयं वानर रूप से पराक्रम दिखला रहे हैं। अपनी बड़ाई करना उचित नहीं है। वस्तुतः बल तो प्रभु का ही है। जिससे जीव का काम चलता है। इसमें जीव का अभिमान मिथ्या है। पर इसका अर्थ यों भी किया जा सकता है कि उस पर्वत पर चढ़ने से हनुमान्जी लङ्कावासियों से देखे जा सकते थे। अतः उस पर चढ़ना काल का सामना करना था। फिर भी हनुमान्जी उसपर दौड़कर चढ़ गये। प्रभु के सेवक सपने में भी काल से नहीं डरते। क्योंकि वे प्रभु ही ऐसे हैं। जिनका प्रताप काल को भी खा जानेवाला है। शत योजन विस्तीर्ण समुद्र है। इसलिए उसे अत्यन्त ऊँचा कहा। तट से ही समुद्र की ऊँचाई बढ़ने लगती है और बढ़ती ही चली जाती है। अपराह्ण का समय होने से लाल किरणों द्वारा सोने की लङ्का का परम प्रकाश हो रहा था। समुद्र और लङ्का किले के बीच में कोई जलाशय नहीं है। इससे धनु दुर्ग कहा।

छं. कनक कोट बिचित्र मनि कृति सुंदरायतना घना।
चउहट्ट हट्ट सुबट्ट बीथी चारु पुर बहु बिधि बना॥
गज बाजि खच्चर निकर पदचर रथ बरूथन्हि को गनै।
बहुरूप निसिचर जूथ अतिबल सेन बरनत नहि बनै॥१॥
बन बाग उपवन बाटिका सर कूप बापी सोहहीं।
नर नाग सुर गंधर्व कन्या रूप मुनि मन मोहहीं॥
कहुँ माल देह बिसाल सैल समान अतिबल गर्जहीं।
नाना अखारेन्ह भिरहिं बहुबिधि एक एकन्ह तर्जहीं॥२॥
करि जतन भट कोटिन्हि बिकट तन नगर चहुँ दिसि रच्छहीं।
कहुँ महिष मानुष धेनु खर अज खल निसाचर भच्छहीं॥
एहि लागि तुलसीदास इन्ह की कथा कछु एक है कही।
रघुबीर सर तीरथ सरीरन्हि त्यागि गति पैहहिं सही॥३॥

अर्थ : सोने का परकोटा है। उसके अन्दर विचित्र मणियों से जड़े हुए बहुत

सुन्दर सुन्दर घर हैं। चौराहे बाजार सुन्दर मार्ग और गलियाँ हैं। सुन्दर नगर बहुत प्रकार से बना हुआ है। हाथी घोड़े खच्चरों के समूह पैदल और रथों के समूहों को कौन गिन सकता है? अनेक रूपों के राक्षसों के दल और अत्यन्त बलवती सेना वर्णन करते नहीं बनती।

वन बाग उपवन फुलवारी तालाब कूएँ और बावलियाँ सुशोभित हैं। मनुष्य नाग[1] देवताओं और गन्धर्व की कन्यायें अपने सौन्दर्य से मुनियों के भी मनों को मोह लेती हैं। कहीं पर्वत के समान बड़े शरीरवाले बड़े ही बलवान् मल्ल गरज रहे हैं। ये अनेकों अखाड़ों में बहुत प्रकार से भिड़ते और एक दूसरे को डाँटते हैं।

भयङ्कर शरीरवाले करोड़ों योद्धा यत्न करके चारों दिशाओं से नगर की रखवारी करते हैं। कहीं दुष्ट राक्षस भैंसों मनुष्यों गायों गदहों और बकरों को खा रहे हैं। इसीलिए तुलसीदास ने इनकी कथा कुछ थोड़ी सी ही कही है। क्योंकि ये रघुवीर के तीररूपी तीर्थ में शरीरों को त्याग करके सच्ची गति को प्राप्त होंगे।

व्याख्या : जब सोने का परकोटा हुआ तब विचित्र मणि कृत भवन होने ही चाहिए। बहुत से मणिकृत भवन कहने से यह अर्थापत्ति हुई कि कुछ भवन साधारण भी थे। पहिले ही कह चुके हैं। गिरि त्रिकूट एक सिंधु मझारी। विधि निर्मित दुर्गम अति भारी। तेहि मय दानव बहुरि सँवारा। कनक रुचिर मनि भवन अपारा। मय दानव की कारीगरी प्रख्यात है। द्वापर में युधिष्ठिर की सभा बनायी थी। जिसमें जल में थल का और थल में जल का भ्रम होता था। इसलिए विचित्र कहते हैं। चौहट बाजार सड़कें और गली कमठ पृष्ठादि भूमिकाओं पर शास्त्र के विधानानुसार बनाये गये थे। जिस ओर जाइये मकान का पिछवाड़ा न दिखायी पड़े इत्यादि। अथवा नगर में अनेक पुर हैं। सबकी बनावट भिन्न भिन्न प्रकार की है। भीतर चतुरङ्गिणी सेना है। जिसमें खच्चरों का समूह भार वहन : वार बरदारी के लिए हैं। राक्षस अनेक रूप होते हैं। सो सभी प्रकार के राक्षसों के जूथ अलग अलग हैं। इसलिए बहुरूप निसिचर जूथ कहा। जूथ कहकर सेना कहते हैं। सेना में अनेक जूथ होते हैं। सो सेना अतिबल है। किसी के पास ऐसी बलवती सेना नहीं हैं। जूथ असंख्य हैं सेना का बल अवर्णनीय है। अतः को गनै बरनत नहि बनै कहा। यहाँ पर बार बार गोस्वामीजी वर्णनातीत कहते चले जावेंगे।

१: नाग का अर्थ सर्प भी होता है और नाग नाम की देवताओं की जाति विशेष है जिनमें मनुष्यों की अपेक्षा क्षेत्रज शक्ति का अधिक प्रकाश होता है। यथा : पशुभ्यो मनुजातिश्चाशक्तया पुंसः प्रभाविताः। तेभ्योऽपि नागगन्धर्वयक्षाद्या देवता नृप : वि. पु. ६.७.६६। अर्थ : पशुओं की अपेक्षा मनुष्य भगवान् की क्षेत्रज्ञ शक्ति से अधिक प्रभावित है और उनसे भी अधिक हे राजा! नाग गन्धर्व यक्षादिक देवता प्रभावित हैं। यहाँ नाग का अर्थ जाति विशेष के देवता हैं।

अब नगर के चारों ओर का दृश्य कहते हैं कि सब ओर वन बाग उपवन और बाटिकाएँ हैं। स्वतः सिद्ध वृक्ष समूह को वन कहते हैं। फलवाले वृक्षों के समूह को बाग कहते हैं। आरोपित वृक्ष समूह को उपवन कहते हैं। फुलवारी को वाटिका कहते हैं। वन में जल की व्यवस्था नहीं रहती। उसका सींचा जाना देवाधीन है। बाग में सर उपवन में कूप और बाटिकाओं में दावलियाँ हैं। सायंकाल का समय है। हवा खाने के लिए स्त्रियाँ नगर के बाहर बगीचों में आयी हुई हैं। देव यक्ष गन्धर्व नर किन्नर नाग कुमारि। जीति वरी निज बाहुबल बहु सुन्दर वर नारि। लङ्का में धर्म्य विवाह नहीं काम्य विवाह है। नसल ठीक रखने का कोई नियम नहीं है। सौन्दर्य की उपासना है चाहे कोई हो और बल की प्रधानता है। कहीं उपवनों में अखाड़े हैं। वहाँ मल्ल लोग बल के उमङ्ग में गर्जन कर रहे हैं। कुश्ती लड़ते हैं। शस्त्राभ्यास करते हैं। लड़ने में एक दूसरे को डाँटते है। अखाड़े नगर के बाहर हैं।

अब नर दुर्ग कहते हैं। अनेक यत्न करके विकट भट नगर को रक्षा करते हैं। इतना बल सम्पन्न होने पर भी नगर रक्षा में इतनी बड़ी सावधानी है। विना जाने वहाँ हवा भी नहीं बह सकती। भोजन की व्यवस्था कहते हैं। भैंसे, मनुष्य, गाय, बकरी, सब कुछ खा जाते हैं। इसीलिए खल कहा। अच्छहीं कहने का भाव यह कि कच्चा ही खा जाते हैं। मनुष्य कहकर यह दिखलाया कि बाहर से ये सब पकड़ पकड़कर लङ्का रसद की भाँति भेजे जाते हैं। नहीं तो लङ्का में मनुष्य की गन्ध कहाँ ? पापियों की क़था नहीं करनी चाहिए। यहाँ कुछ कहना पड़ा। उसे बहुत थोड़े में कहा। और यह समझकर कि अन्त में इनकी गति होगी। श्रीरामजी के तीर रूपी तीर्थ में ये शरीर त्याग करेंगे इसलिए क़हा। यदि इनकी गति भी अनिष्ट होती तो न कहते।

दो. पुर रखवारे देखि बहु, कपि मन कीन्ह बिचार।
अति लघु रूप धरौं निसि, नगर करौं पैसार ॥३॥

अर्थ : नगर में बहुत से रखवालों को देखकर हनुमानूजी ने मन में विचार किया कि अति लघुरूप धारण करूँ और रात को नगर में प्रवेश करूँ।

व्याख्या : करोड़ों राक्षसों का चारों ओर पहरा है। बिना सबका संहार किये लङ्का में प्रवेश करना असम्भव है। सीताजी का देखना तो दूर गया यहीं युद्ध ठन जायेगा। अंतः शैल समान शरीर से काम न चलेगा। अतः अति लघुरूप धारण करने का विचार किया। गगनचारियों में अति लघुरूप मशक का और अत्यन्त बड़ा गरुड़ का है। प्राकार डाकना है। अतः गगनचारी रूप धारण करना ही उपयुक्त है। सो भी रात को जब मच्छरों के विचरण का समय होता है। दिन को फ़िर भी सब लख जायँगे। चोरी रात को ही ठीक होती है।

५८. लङ्का प्रवेश प्रसङ्ग

मसक[1] समान रूप कपि धरी। लंकहि चलेउ सुमिरि नरहरी॥
नाम लंकिनी एक निसिचरी। सो कह चलेसि मोहि निदरी॥१॥

अर्थ : हनुमान्‌जी ने मच्छर के समान रूप छोटा धारण किया और नृसिंहजी का स्मरण करके लङ्का को चले। लङ्किनी नाम की एक राक्षसी थी। उसने कहा कि मेरा निरादर करके जा रहा है ?

व्याख्या : फिर लघिमा सिद्धि से काम लिया। अपना आकार मच्छर के समान छोटा बनाया। रूप बन्दर का ही रहा। अँगूठी भी जिसे मुख में लेकर चले थे उसी तारतम्य से छोटी हो गयी गयी। देवताओं के वसन भूषण अस्त्र वाहनादि उनके रूप से भिन्न नहीं होते। गीतावली में अँगूठी के बोलने का भी उल्लेख है। वे यथावसर छोटे बड़े हुआ करते हैं। अथवा जिस लघिमा सिद्धि से अपना शरीर छोटा किया उसी से अँगूठी भी छोटी कर ली। नरहरि शब्द नृसिंह के लिए प्रयुक्त हुआ है। यथा : मीन कमठ सूकर नरहरी। वामन परसुराम बपुधरी। सो नृसिंह का स्मरण किया। जहाँ कोई मार्ग न हो वहाँ मार्ग निकालनेवाले नृसिंहजी हैं। हिरण्यकश्यप ने मृत्यु का सब रास्ता रोक दिया था। नृसिंहजी ने उसमें भी रास्ता निकालकर उसका वध किया था। अतः अवसरानुकूल उन्हीं का स्मरण किया।

लङ्कापुरी की अधिष्ठात्री देवी लङ्किनी नाम से पुकारी जाती थी। राक्षसी रूप से रहती थी। इसलिए एक निसिचरी कहते हैं। यहाँ एक का अर्थ प्रधान है। इतने राक्षस थे किसी ने हनुमान्‌जी को नहीं देख पाया। पर उसने देख लिया। पहरे में धोखा देकर निकल जाना पहरेदार का अनादर है। उसने अपनी प्रधानता द्योतन करते हुए ललकारा। मालूम होता है कि और सब पहरेदारों को डाँककर हनुमान्‌जी वन बाग उपवन वाटिका डाँक रहे थे। तब इसने देखा : क्योंकि आगे कहेगी : प्रविसि नगर कीजे सब काजा। लङ्किनी को अभिमान है कि मेरा कोई निरादर नहीं कर सकता। यहाँ मृत्युलोकी राजसी बाधा उपस्थित हुई। अतः इसका वध न करेंगे दण्ड देंगे। प्रवृत्ति दुर्ग के विरोधी को पहिले सात्त्विक तामसी

---

१. हनुमंत तहाँ लघुरूप बने। अनिमा के परभाव जने।
अपुना जस के तस ही हैं पै लोगन छोट सरूप गने।
अनिमा के प्रभाव ही से तो निकट वस्तु में दूरपने।
कोउ बिडाल सम कोउ मसक सम कहत तहाँ संदेहु जने।
बड़ी नजर काहू की छोटी भये नजर में भेद घने।
घर घर लखत अलख बनि अपुना जस ईश्वर सब माहि सने।
मिलत जतन से वह पताल को पानी जैसे मिलत खनें।

—काष्ठजिह्व स्वामी

और राजसी माया से काम पड़ता ही है। अतः उसे सात्त्विक को अपनाना पड़ता है। तामसी का वध और राजसी का निग्रह करना पड़ता है।

जानेहि नहीं मरम सठ मोरा। मोर अहार जहाँ लगि चोरा ॥
मुठिका एक महा कपि हनी। रुधिर बमत धरनी ढनमनी ॥२॥

अर्थ : रे शठ ! तूने मेरा भेद नहीं जाना। जितने चोर हैं वे ही मेरे आहार हैं। महाकपि हनुमान्‌जी ने उसे एक घूँसा मारा। जिससे वह रक्त की उलटी करती हुई पृथ्वी पर लुढ़क गयी।

व्याख्या : लङ्किनी ने कहा कि तू शठ है चालाकी से अपने को छिपाना चाहता है। करि दुराव यह चातुरी सो सठ तुलसीदास। तू औरों का मर्म जानता है कि इतने छोटे रूप का ख्याल न करेंगे। पर मेरा मर्म नहीं जानता। जितने चोर हैं वे ही रावण द्वारा मेरे आहार कल्पित किये गये हैं। चोर पकड़ूँ तो पेट भरे न पकड़ूँ तो भूखी मरूँ। अतः मेरा ध्यान छोटे से छोटे चोर पर भी रहता है। औरों को तो बाहर से रसद आया करती है। यथा : कहुँ महिष मानुष धेनु अज खर खल निसाचर भच्छहीं। उन्हें क्या पड़ी है कि इतना ध्यान रक्खें। हनुमान्‌जी ने विचार किया कि इस रूप से इसका मैं कुछ नहीं कर सकता। इसलिए बड़े वानर का रूप धारण किया। स्त्री अवध्य है और इसे चुप करना आवश्यक है। अतः बायें हाथ से एक घूँसा मारा। इतना ही उसके लिए बहुत हो गया।

पुनि संभारि उठी सो लंका। जोरि पानि कर बिनय ससंका ॥
जब रावनहि ब्रह्म बर दीन्हा। चलत बिरंचि कहा मोहि चीन्हा ॥३॥

अर्थ : फिर वह लङ्का सँभालकर उठी और सशङ्क होकर हाथ जोड़ विनती करने लगी कि जब ब्रह्मदेव ने रावण को वर दिया तब चलते समय उन्होंने मुझे एक पहिचान बतला दी।

व्याख्या : यहाँ पर कवि ने लङ्का कहकर बात स्पष्ट कर दी कि वह स्वयं लङ्का थी : अधिष्ठात्री देवी थी। इसी से उठी नहीं तो न उठती। रावण की आज्ञा से निशिचरी बनी पहरा देती थी। उसने रात को छिपकर हनुमान्‌जी को जाते देखकर उन्हें शठ और चोर कहा। अब सशङ्क होकर विनय करती है कि शठ कहने के दण्डरूप में तो एक घूसा खाया अब चोर कहने के दण्डरूप में दूसरा घूसा न खाना पड़े। इस बार के घूसे से न बच सकूँगी। अतः कहने लगी कि मैं देवी हूँ। रावण का शासन मुझे पसन्द नहीं है। जब ब्रह्मदेव रावण को वर दे रहे थे उस समय मैं वहाँ उपस्थित थी। चलते समय ब्रह्मदेव मुझे चिह्न बतलाते गये। यहाँ कहा मोहि चीन्हा का दो अर्थ करना चाहिए : १. मुझे पहिचानकर कहा २. मुझे चिह्न बतलाया।

बिकल होसि तैं कपि कें मारें। तब जानेसु निसिचर संहारें ॥
तात मोर अति पुन्य बहूता। देखेउँ नयन राम कर दूता ॥४॥

अर्थ : जब तू बन्दर के मारने से व्याकुल हो जाय तब जान लेना कि राक्षसों का संहार अब हुआ ही चाहता है। हे तात ! मेरा अत्यन्त बड़ा पुण्य है। जो आँखों से रामदूत का दर्शन पाया।

व्याख्या : बन्दर अल्पवीर होते हैं। मेरे सामने क्या हैं। यथा : नर बानर केहि लेखे माहीं। जब कपि के मारने पर तुझे विकलता हो तब यह समझ लेना कि यह रामदूत है। रामावतार हो गया। अब राक्षसों का नाश होगा। सो आघात द्वारा जो विकलता हुई उससे मुझे हर्ष हुआ। मुझे आपसे महापुरुषों का दर्शन कहाँ ? सवेरे से साँझ तक राक्षस ही देखते देखते दिन जाता है। भले का दर्शन पुण्य का फल है। देवदूत का दर्शन बड़े पुण्य का फल है और रामदूत का दर्शन अति अधिक पुण्य का फल है। देखेऊं नयन का भाव यह कि यहाँ भले का नाम भी सुनने में नहीं आता। यहाँ आँखों से रामदूत के दर्शन की कौन आशा थी ?

दो. सात स्वर्ग अपवर्ग सुख, धरिअ तुला एक अंग।
तूल न[1] ताहि सकल मिलि, जो सुख लव सत संग ॥४॥

अर्थ : सात स्वर्ग और अपवर्ग के सुख को तराजू के एक पलरे पर रक्खा जाय तो भी वे सब मिलकर उस सुख के बराबर नहीं हो सकते जो सत्संग के लव मात्र से होता है।

व्याख्या : भू स्वर्ग से लेकर सत्यलोक तक की सात स्वर्ग में गिनती है। आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन। वहाँ से फिर लौटना होता है। अपवर्ग मोक्ष को कहते हैं। जहाँ से फिर लौटना नहीं होता। ब्रह्मलोक तक सुख का तारतम्य है और मोक्ष में निरतिशय सुख है। यह सब सुख तराजू के एक पलड़े पर रखा जाय और सत्संग के लव मात्र का सुख दूसरे पलड़े पर रक्खा जाय तो भी भारी सत्संग के लववाला पलड़ा भारी पड़ता है। नियम है कि गुरुता के तारतम्यानुसार भारी पलड़ा नीचे जाता है और हलका पलड़ा ऊपर उठता है। सो यहाँ इतना अन्तर पड़ा कि स्वर्गवाला पलड़ा तो आकाश में गया और सत्संगवाले पलड़े ने जमीन न छोड़ी।

प्रबिसि नगर कीजे सब काजा। हृदय राखि कोसल पुर राजा॥
गरल सुधा रिपु करइ मिताई। गोपद सिंधु अनल सितलाई ॥१॥

अर्थ : नगर में प्रवेश करके सब काम कीजिये। कोसलपुर के राजा को हृदय में रख लीजिये। उसके लिए विष अमृत हो जाता है। शत्रु मित्रता करने लगते हैं। समुद्र गाय के खुर के बराबर हो जाता है। अग्नि में शीतलता आजाती है।

व्याख्या : लङ्का ने कहा कि अब बेखटके नगर में प्रवेश करके सब काम

---

१. तुलयाम लवेनापि न स्वर्गं नापुनर्भवम्। भगवत्सङ्गिसङ्गस्य मर्त्यानां किमुताशिषः।
—श्रीमद्भा०।

कीजिये। आप को जान लेने का सामर्थ्य अब लङ्का में किसी को नहीं है। मेरी ओर से भी बेखटके रहिये मैं भी किसी से न कहूँगी। परन्तु भगवान् कोसलेश को हृदय में रख लीजिये। भाव यह कि कोसलेश को हृदय में रखकर चले थे। उस मूर्ति में क्या घाटा था कि उसके स्थान पर आप ने नृसिहमूर्ति को पधराया? ध्येय मूर्ति के परिवर्तन से कार्य में बाधा उपस्थित होती है। अतः जिस भाँति कोसलपुर के राजा को हृदय में रखकर चले थे फिर उसी भाँति उन्हें हृदय में रख लीजिये। इस भाँति लङ्का ने अच्छी सलाह देकर मित्रता का कार्य किया।

उपासनाघाट के वक्ता भुसुण्डीजी बोल उठे क्योंकि उपासना का महत्त्व कहने का अवसर आगया। भजन से भगवत्कृपा होती है। यथा : भजत कृपा करिहैं रघुराई और भगवत्कृपा से विष भी अमृत हो जाता है। सुरसा विषधरों की माँ है। सो राम कृपा से अमृत हो गयी। आशीर्वाद दिया : रामकाज सब करिहहु तुम बल बुद्धि निधान। रिपु ने मित्र का काम किया। लङ्किनी ने उत्तम परामर्श दिया। समुद्र तो गोष्पद हो ही गया था। यथा : गोष्पदीकृतवारीशम्। अनल में शीतलता आने की कथा आगे आयेगी। यथा : ताकर दूत अनल जेहि सिरजा। जरा न सो तेहि कारन गिरिजा।

गरुड़ सुमेरु रेनु समताही। राम कृपा करि चितवा जाही॥
अति लघु रूप धरेउ हनुमाना। पैठा नगर सुमिरि भगवाना॥२॥

अर्थ : हे गरुड़जी! सुमेरु पर्वत उसके लिए रज के समान हो जाता है जिसे रामजी ने कृपा करके देखा। हनुमान्जी ने अति लघुरूप धारण किया और भगवान् का स्मरण करके नगर में प्रवेश किया।

व्याख्या : यहाँ पर अनेक पुस्तकों में गरुअ पाठ है। परन्तु वह समीचीन नहीं है! उपासनाघाट की कथा हो रही है। अतः भुसुण्डिजी वक्ता हैं उनका गरुड़ सम्बोधन करना ही उपयुक्त है। ऐसे ही अवसर पर उदाहरण देते समय ठीक इसका उलटा कहने में भी गरुड़ सम्बोधन है। यथा : मातु मृत्यु पितु समन समाना। सुधा होइ विष सुनु हरिजाना। मित्र करइ सतरिपु कै करनी। ताकहुँ विबुध नदी वैतरनी। सब जग ताहि अनलहु ते ताता। जो रघुवीर विमुख सुनु भ्राता। अतः यहाँ भी गरुड़ सम्बोधन ही उपादेय है। रामजी जिसे कृपा करके देखते हैं। उसके लिए जड़ वस्तु भी अपना सहज स्वभाव त्यागकर सुखद हो जाता है। सुमेरु ऐसा दुरुल्लंघ्य पर्वत भी : जिसके उल्लंघन का निषेध भी शास्त्र में है। माला के भी सुमेरु का कोई उल्लंघन नहीं करता। उसके लिए रेनु की भाँति पद दलित होने योग्य हो जाता है। यथा : रज मग परी निरादर रहई। सब कर पग प्रहार नित सहई।

हनुमान्जी ने फिर अति लघु रूप धारण किया। यह तीसरा अवसर है। पहिले सुरसा के प्रसङ्ग में। यथा : अति लघु रूप पवन सुत लयउ। दूसरा लङ्का की ओर चलने के समय। यथा : मसक समान रूप कपि धरी और तीसरा इस

समय। लङ्किनी की उचित शिक्षा को हनुमान्‌जी ने मान लिया। अब भगवान् रामचन्द्र का स्मरण करके नगर में प्रवेश किया।

मंदिर मंदिर प्रति करि सोधा। देखे जहँ तहँ अगनित जोधा ॥
गयउ दसानन मंदिर माँही। अति विचित्र कहि जात सो नाँही ॥३॥

अर्थ : एक एक करके घरों को खोजा। जहाँ तहाँ असंख्य योद्धा देखे। रावण के मन्दिर में गये। वह अत्यन्त विचित्र था उसका वर्णन नहीं हो सकता।

व्याख्या : एक ओर से खोजना आरम्भ किया। सम्पाती ने उपवन में बतलाया था। यथा : तहँ असोक उपवन जहँ रहई। सीता बैठी सोचरत अहई। पर वह दिन की बात थी। रात को किस घर में हैं कौन कह सकता है ? चोर चोरी करके घर में नहीं रखता। अतः पहिले लङ्का भर की तलाशी ले ली। जिस मन्दिर में जाते हैं योद्धा ही दिखलायी पड़ते हैं। सीता के लक्षणवाली किसी स्त्री को नहीं देखा। इस भाँति असंख्य मकान खोजे।

नाम किसी का नहीं जानते। इसलिए उल्लेख नहीं किया। मालिक को दशमुख देखकर निश्चय हुआ कि यह दशानन का मन्दिर है। अथवा अतिविचित्र होने से अनुमान किया कि यही राजमन्दिर होगा। उसे देखकर हनुमान्‌जी को स्वर्गलोक और देवलोक का भ्रम हुआ। यथा : स्वर्गोऽयं देवलोकोऽयमिन्द्रस्यापि पुरी भवेत्। वा०। इसलिए अति विचित्र कहा। लौकिक रचना होती तो कहते बनता। वहाँ अलौकिक रचना थी। अतः कहते हैं : कहि जात सो नाहीं।

सयन किएँ देखा कपि तेही। मंदिर महुँ न दीखि बैदेही ॥
भवन एक पुनि दीख सुहावा। हरि मंदिर तहँ भिन्न बनावा ॥४॥

अर्थ : हनुमान्‌जी ने उसे शयन किये देखा। परन्तु उस घर में वैदेही को नहीं देखा। फिर एक सुन्दर घर दिखायी पड़ा। वहाँ भगवान् का एक अलग मन्दिर बना हुआ था।

व्याख्या : पहिले पहल निद्रितावस्था में रावण को देखा। पर वहाँ भी सीताजी का पता नहीं। सरकार ने रूप शील स्वभाव का ऐसा वर्णन कर दिया था कि हनुमान्‌जी ने निर्णय कर लिया कि इतनी रानियों में सीताजी कोई नहीं हैं।

भवन तो एक से एक देखे पर हनुमान्‌जी को सोहाये नहीं। क्योंकि भगवत् सम्बन्धी वस्तु कहीं कुछ भी नहीं थी। लङ्का भर में एक घर हनुमान्‌जी को सोहाया। क्योंकि उसमें हरिमन्दिर था और सो भी शास्त्रानुसार गृहस्थी से अलग बना हुआ था। गृहस्थी के भीतर भगवान् के विग्रह के पधारने का विधान नहीं है। उसके लिए पृथक् स्थान चाहिए। बाल बच्चों द्वारा रहने के स्थान में कुछ न कुछ अशुद्धि रहने की शङ्का बनी ही रहती है।

दो. रामायुध अंकित गृह, सोभा बरनि न जाइ।
नव तुलसिका बृंद तहँ, देखि हरख कपिराइ ॥५॥

अर्थ : वह घर श्रीरामजी के आयुध के चिह्नों से अंकित था। उसकी शोभा वर्णन नहीं की जा सकती। वहाँ नवीन नवीन तुलसी के समूहों को देखकर कपिराज हनुमान्‌जी हर्षित हुए।

व्याख्या : रहनेवाले घर में भी रामायुध धनु असि चर्म और शक्ति अङ्कित हैं। उससे घर की अवर्णनीय शोभा है। पवित्र शोभा तो यहीं दिखायी पड़ रही है। सम्राट् के छोटे भाई का घर है। ऐश्वर्य की कोई कमी नहीं। रावण के घर के बाद यही घर है। पवित्रता अधिक है। तुलसी के नये पौदे बहुत से लगे हैं। सहस्र नाम से तुलसीदल नित्य चढ़ता है। तुलसीवन हनुमान्‌जी को बड़ा प्यारा है। यह सब देखकर कपिराज हर्षित हुए। भक्तिरस के आलम्बन और उद्दीपन दोनों को देखकर सञ्चारी भाव हर्ष का उदय हुआ।

लंका निसिचर निकर निवासा। इहाँ कहाँ सज्जन कर बासा ॥
मन महुँ तरक करै कपि लागा। तेही समय बिभीषनु जागा ॥१॥

अर्थ : लङ्का तो निशिचर समूह का निवास है। इहाँ सज्जन का घर कहाँ? अथवा गन्ध कहाँ? हनुमान्‌जी मन में तर्क करने लगे। उसी समय विभीषन जागे।

व्याख्या : घर घर देख लिया लङ्का में सब निशिचर हैं। ऐसे दुष्टों का सङ्ग तो सज्जन भूलकर नहीं करते। सज्जन यहाँ रह कैसे सकता है? फिर क्या यह कोई निशाचरी माया है? या कोई सज्जन ही समय के हेरफेर से इन लोगों में फँसा पड़ा है। इन लोगों में से निकल नहीं सकता और ये लोग भी किसी कारण वश उसे प्राण से वियुक्त नहीं करते।

हनुमान्‌जी मन में तर्क करने लगे। किसी निश्चय पर नहीं पहुँच सके। उसी समय सरकारी सहायता हुई। विभीषणजी जागे। रात भर तो हनुमान्‌जी को खोजते बीता। उषःकाल आगया। यही समय महात्माओं के जागने का है। जब भक्त असमञ्जस में पड़ते हैं तब सरकार उनकी सहायता का संयोग जुटा देते हैं। बन्दर प्यासे मरते थे। तब तो तपस्विनी से भेंट हुई। उसने समुद्र तट तक पहुँचा दिया। वहाँ अनशन करके बैठे तो सम्पाती से भेंट हुई। उसने सीताजी का पता बतला दिया। यहाँ हनुमान्‌जी असमञ्जस में फँसे तो विभीषणजी जागे। उनकी बतलायी युक्ति से श्रीजनकनंन्दनी का साक्षात्कार होगा। इसी भाँति भक्तों की सहायता का योग जुटता ही जाता है। यथा : करहिं कृपानिधि सोइ संजोगा।

दो बार श्रीराम नाम लेने से विभीषण पर हर्षित होकर श्रीमारुति ने कृपा की तो जो निरन्तर श्रीराम नाम हनुमान्‌जी को सुनाते हैं उससे अञ्जनीनन्दन कितने अधिक प्रसन्न होंगे। दर्शन देते हैं।

राम राम तेहि सुमिरन कीन्हा । हृदय हरष कपि सज्जन चीन्हा ॥
एहि सनु हठि करिहौं पहिचानी । साधु ते होइ न कारज हानी ॥२॥

अर्थ : उसने राम राम सुमिरन किया । हनुमान्‌जी ने पहिचान लिया कि सज्जन हैं और हृदय में हर्षित हुए । इनसे हठ करके परिचय करूँगा । क्योंकि साधु से कार्य की हानि होती नहीं ।

व्याख्या : जो सोचता हुआ प्राणी सोता है वही विचार लिये जागता है । राम राम स्मरण करते जो सोयेगा वह राम राम कहते ही जागेगा । दम्भ के लिए जो नाम स्मरण करता है वह जागते ही नाम स्मरण नहीं कर सकता । वह जब अवसर देखेगा तब वह राम राम कहेगा । अतः हनुमान्‌जी के निर्णय के लिए अचूक प्रमाण मिल गया । निश्चय हो गया कि सज्जन है । अतः सज्जन के पहिचान लेने से मन में हर्ष हुआ । क्योंकि भगवती जनकनन्दिनी को तमाम खोज डाला । कहीं पता नहीं चला । लङ्का में किसी से पूछ सकते नहीं थे । बिना पूछे अब पता चलने की कोई आशा नहीं । कोई सज्जन मिले तो उससे पूछें । सो एक सज्जन तो मिला । इसे मेरा हाल क्या मालूम ? अतः मैं ही इससे हठपूर्वक जान पहिचान करूँगा । यह साधु है । इससे यदि काम बनेगा नहीं तो बिगड़ेगा भी नहीं । दूसरे के कार्य को साधन करनेवाले को ही साधु कहते हैं । फिर वह साधु कैसा जिससे दूसरे का कार्य बिगड़ जाय ।

बिप्र रूप धरि बचन सुनाए । सुनत बिभीषनु उठि तहँ आए ॥
करि प्रनाम पूछी कुसलाई । बिप्र कहहु निज कथा बुझाई ॥३॥

अर्थ : ब्राह्मण का रूप धरकर वचन सुनाया । सुनते ही विभीषणजी उठकर वहाँ आये । प्रणाम करके कुशल पूछी : ब्राह्मण देवता ! अपनी कथा समझाकर कहिये ।

व्याख्या : हनुमान्‌जी ने जो रूप धारण किया था उस रूप को भेंट करने के अनुपयुक्त समझकर त्याग दिया । प्रातःकाल बन्दर का दर्शन भी शुभ नहीं माना जाता । अतः विप्ररूप धारण किया । वेदपाठी भवेद्विप्रः । वेदपाठी की विप्र संज्ञा है । इससे यह ध्वनित किया कि वेद मन्त्र सुनाया । उस समय लङ्का में वेदध्वनि हो रही थी । ब्रह्मराक्षसों ने वेद पढ़ना आरम्भ कर दिया था । बुद्धिमान् हनुमान्‌जी ने ऐसे अवसर पर वेद मन्त्र ही सुनाया । विभीषणजी को ब्राह्मण बहुत प्रिय हैं । यथा : बिप्र धेनु हित संकट सहहीं । सो स्वयं उठकर आये । वेदध्वनि सुनकर आये । ब्राह्मण देखकर प्रणाम किया । कुशल पूछा । इतना ही नहीं कहने लगे कि अपनी कथा समझाकर कहो । यहाँ खल मनुजाद द्विजामिष भोगी बसते हैं । आप यहाँ क्यों आये ? यहाँ तक कैसे पहुँच पाये ? आपके ऊपर कौन सी विपत्ति है जो मौत के मुख में कूद पड़े ? मैं कौन सी सहायता करूँ ? इसलिए अपनी कथा समझाकर कहने के लिए प्रार्थना की । विभीषणजी को भी शङ्का हुई कि यहाँ सज्जन कैसे आया ?

की तुम्ह हरिदासन्ह महुँ कोई । मोरे हृदय प्रीति अति होई ॥
की तुम्ह रामु दीन अनुरागी । आयेहु मोहि करन बड़भागी ॥४॥

अर्थ : क्या आप हरिभक्तों में से कोई हैं ? मेरे हृदय में अत्यन्त प्रेम उमड़ रहा है । अथवा आप दीनों से प्रेम करनेवाले स्वयं रामजी हैं जो मुझे बड़भागी बनाने आये हैं ।

व्याख्या : मेरी स्वाभाविकी प्रीति हरिदासों में है और आपको देखकर मुझे अति प्रीति हो रही है । अतः आप हरिदासों में से कोई हैं । सतां हि सन्देहपदेषु वस्तुषु प्रमाणमन्तःकरणप्रवृत्तयः । सन्देहास्पद विषयों में सज्जनों के लिए उनके अन्तःकरण की वृत्ति ही प्रमाण है और हरिदास को छोड़कर अन्य को यहाँ तक आने का सामर्थ्य भी नहीं है ।

यदि दास नहीं तो आप स्वयं प्रभु हो । प्रभु दीनों पर अनुराग करके उसे बड़भागी बनाने चले आते हैं । भाग्य का निर्णय सम्पत्ति से नहीं होता । भगवच्च-रणानुराग से होता है । पहिले यथावसर हनुमान्‌जीने विभीषण के विषय में मन में ही तर्क किया था । अब विभीषणजी उनके विषय में उनके सामने तर्क कर रहे हैं । महात्माओं का तर्क भी अव्यर्थ होता है । कहते हैं कि दो में आप कौन हैं ? स्पष्ट कहिये जो आप दिखायी पड़ते हैं सो नहीं हैं ।

दो. तब हनुमंत कही सब, रामकथा निज नाम ।
सुनत जुगल तन पुलक मन, मगन सुमिरि गुनग्राम ॥६॥

अर्थ : तब हनुमान्‌जी ने श्रीरामजी की सारी कथा कही और अपना नाम बताया । सुनते ही दोनों के शरीर पुलकित हो गये और मन श्रीरामजी के गुण समूह का स्मरण करके मग्न हो गया ।

व्याख्या : सप्रेम वचन सुनकर विश्वास हुआ । यथा : कपि के बचन सप्रेम सुनि उपजा मन बिस्वास । पहिले सज्जन चीन्हा था । अब अभ्रान्त निश्चय हो गया । तब सब रामकथा कह सुनायी । जो लक्ष्मणजी से सुनी थी । यथा : लछिमन रामचरित सब भाषा । और जो स्वयं देखा था । चरित कहकर अन्त में अपना नाम कहा । भाव यह कि चरितसम्बन्धी सब पुरुषों का नाम लिया । अपने लिए मैं कहते थे । अन्त में अपना नाम कह देने से कथा पूर्ण हुई । कहनेवाले को भी पुलक और सुननेवाले को भी पुलक हुआ और गुणग्राम के स्मरण से मन आनन्द में मग्न हो गया । यथा : कहत सुनत हरखहिं पुलकाहीं । ते सुकृती मन मुदित नहाहीं ।

सुनहु पवन सुत रहनि हमारी । जिमि दसनन्हि महुँ जीभ बिचारी ॥
तात कबहुँ मोहि जानि अनाथा । करिहहिं कृपा भानुकुल नाथा ॥१॥

अर्थ : हे पवनसुत ! मेरी रहनी सुनो । जैसे दाँतों में बिचारी जीभ रहती है । हे तात ! मुझे अनाथ जानकर क्या कभी भानुकुलनाथ कृपा करेंगे ?

व्याख्या : यद्यपि रामजी का परिचय देने में ही अपना परिचय दिया। फिर भी अपने नाम के साथ पिता का नाम भी बतलाया। नहीं तो विभीषणजी पवनसुत कहकर कैसे सम्बोधित करते? लङ्किनी की भाँति ये भी अपनी सफाई दे रहे हैं कि मैं निशिचर निकर के साथ इच्छापूर्वक नहीं रहता हूँ। विधिवश कुसङ्गति में पड़ गया हूँ। जिह्वा मुख के साथ ही उत्पन्न है। वह उसे छोड़कर कहीं जा नहीं सकती। दिन रात दाँतों की सेवा किया करती है और सावधानी से अपने को बचाये रहती है। पर दाँतों को उसपर दया नहीं। अवसर पायें तो उसे चाब जायें। भाव यह कि इन दुष्टों के बीच मेरी वही दशा है जैसे पर दाँतों के बीच जिह्वा की। दशन शब्द का अर्थ ही काटनेवाला है। जीभ तो विचारी है। चाहने पर भी कुछ नहीं कर सकती।

इसी भाँति मैं भी अनाथ हूँ और सरकार अनाथ पर प्रीति करनेवाले हैं। यथा : सुंदर सुजान कृपा निधान अनाथ पर का प्रीति जो। भानु को कहीं कृपा करने में कोई परिश्रम नहीं। ये तो भानुकुल नाथ हैं। जहाँ हैं वहीं से बैठे कृपा कर सकते हैं। मुझे उन तक पहुँचने का सामर्थ्य नहीं है। अनाथनाथ ही कृपा करें तो बने। विभीषणजी इतना जानना चाहते हैं कि वे क्या कभी कृपा करेंगे? चाहे जब करें।

तामस तन कछु साधन नाँही। प्रीति न पद सरोज मन माँही ॥
अब मोहि भा भरोस हनुमंता। बिनु हरिकृपा मिलहिं नहि संता ॥२॥

अर्थ : मेरा शरीर तामसी है। इसलिए साधन कुछ भी नहीं है। चरण कमलों में प्रीति भी नहीं है। हे हनुमान्‌जी! अब मुझे भरोसा हुआ। क्योंकि हरि की कृपा के बिना सन्त मिलते नहीं।

व्याख्या : यहाँ साधन से कर्म और ज्ञान अभिप्रेत है। यथा : लोकेऽस्मिन् द्विविधा निष्ठा पुरा प्रोक्ता मयानघ। ज्ञानयोगेन सांख्यानां कर्मयोगेन योगिनाम्। कर्म और ज्ञान न होने पर भी केवल भक्ति से सब कुछ सध जाता है। इस पर कहते हैं कि चरण कमलों में प्रीति भी नहीं है। यही बात रावण ने भी कही : होइहि भजन न तामस देहा। तामस देह से वह भी दुःखी था। दोनों भाइयों को भजन पर आस्था थी।

विभीषणजी कहते हैं कि अभी तक तो मैं निराश था कि मुझपर कृपा कैसे हो सकती है? पर अब भरोसा हुआ। क्योंकि : संत विसुद्ध मिलहिं परितेही। चितवहिं रामकृपा करि जेही। मुझे आज विशुद्ध सन्त का दर्शन हुआ। इससे सिद्ध हुआ कि रामजी की कृपादृष्टि मुझ पर हुई। अतः भरोसा हुआ कि जब कृपादृष्टि मेरी ओर फिरी है तो कृपा भी करेंगे अर्थात् सनाथ करेंगे।

जौ रघुबीर अनुग्रह कीन्हा। तौ तुम्ह मोहि दरसु हठि दीन्हा ॥
सुनहु बिभीषण प्रभु कइ रीती। करहिं सदा सेवक पर प्रीती ॥३॥

अर्थ : जब रघुवीर ने कृपा की है तभी तो आपने हठ करके दर्शन दिये हैं। विभोषणजो सुनिये प्रभु की यही रीति है कि सेवक पर सदा प्रीति करते हैं।

व्याख्या : त्यागवीरो दयावीरो विद्यावीरो विचक्षणः। पराक्रममहावीरो धर्मवीरः सदा स्वतः। पञ्चवीराः समाख्याताः राम एव स पञ्चधा। रघुवीर इति ख्यातः सर्ववीरोपलक्षणः। त्यागवीर यथा : राजीव लोचन राम चले तजि बाप को राज बटाऊ की नाईं। दयावीर यथा : तुरत विभीषण पाछे मेला। सनमुख राम सहेउ सो सेला। विद्यावीर यथा : नीति प्रीति परमारथ स्वारथ। कोउ न रामसम जान जथारथ। पराक्रमवीर यथा : सक सर एक सोखि सतसागर। धर्मवीर यथा : मैं सोइ धर्म सुलभ करि पावा। तजे तिहूँपुर अपजस छावा। यहाँ दयावीर से प्रयोजन है। मुझ पर कृपा की यह प्रभु की दयावीरता है। सन्त के हठपूर्वक दर्शन देने से अनुग्रह का अनुमान करते हैं। यथा : एहिसन हठि करिहौं पहिचानी।

हनुमान्‌जो : तात कबहुँ मोहि जानि अनाथा। करिहैं कृपा भानुकुल नाथा। का उत्तर देते हैं कि प्रभु की रीति सुनो। वे तो सदा सेवक पर प्रीति करते हैं। पर कोई उनका वास्तविक सेवक भी तो बने। सेवा की पात्रता आने पर कृपा का अनुभव होगा। यहाँ यह ध्वनि निकलतो है कि आप कुछ वास्तविक सेवा कीजिये उनकी कृपा में सन्देह न कीजिये।

कहहु कवन मैं परम कुलीना। कपि चंचल सबही बिधि हीना ॥
प्रात लेइ जो नाम हमारा। तेहि दिन ताहि न मिलै अहारा ॥४॥

अर्थ : कहिये मैं ही कौन बड़ा कुलीन हूँ। चञ्चल बन्दर हूँ और सब विधि से हीन हूँ। प्रातःकाल जो हम बन्दरों का नाम ले लेवे तो उस दिन भोजन न मिले।

व्याख्या : तामस तन कछु साधन नाहीं। का उत्तर देते हैं कि आप तामस तन पाने पर भी कुलीन तो हैं। मेरा तो तन भी तामस है और मैं कुलोन भी नहीं। चञ्चल : क्षिप्त चित्त में साधन का अधिकार नहीं। अतः सबही विधिहीन बतलाते हैं। कपि कौन सा कर्म ज्ञान और उपासना करेगा ? सबेरे उसका कोई नाम नहीं लेता और आप तो प्रातःस्मरणीय हैं।

यथा : प्रह्लादनारदपराशरपुण्डरीकव्यासाम्बरीषशुकशौनकभीष्मदाल्भ्यान्।
रुक्माङ्गदार्जुनवसिष्ठविभीषणाद्यानेतानहं परमभागवतान् स्मरामि।

दो. अस मैं अधम सखा सुनु, मोहू पर रघुबीर।
कीन्ही कृपा सुमिरि गुन, भरे बिलोचन नीर ॥७॥

अर्थ : हे सखे ! सुनिये मैं ऐसा अधम हूँ। पर रघुवीर ने मुझ पर भी कृपा की। स्मरण करके आँखों में जल भर आया।

व्याख्या : विभीषणजी को रामानुरागी देखकर सखा का नाता जोड़ा। अब मोहि भा भरोस हनुमंता : का उत्तर देते हैं कि जो तुम मुझ से अधम को सन्त कह

रहे हो सो उन्हीं की कृपा का फल है। उन्होंने मुझ पर भी कृपा की। यथा : तब रघुपति उठाइ उर लावा। निज लोचन जल सींच जुड़ावा। अथवा : परसा सीस सरोरुह पानी। कर मुद्रिका दीन्ह जन जानी। आप पर वे क्यों न कृपा करेंगे ? सरकार के गुणों का स्मरण करके हनुमान्‌जी के नेत्रों में जल भर आया।

जानतहूँ अस स्वामि बिसारी। फिरहि ते काहें न होहि दुखारी ॥
एहि बिधि कहत राम गुनग्रामा। पावा अनिर्बाच्य बिश्रामा ॥१॥

अर्थ : जो जानते हुए भी ऐसे स्वामी को भूले हुए फिरते हैं वे दुःखी क्यों न हों ? इस भाँति श्रीरामजी के गुण समूहों को कहते हुए अनिर्वचनीय शान्ति प्राप्त की।

व्याख्या : सुनहु पवन सुत रहनि हमारी। का उत्तर देते हुए कहते हैं कि प्रभु ऐसे अधमोद्धारण हैं। ऐसे प्रभु को विसारने पर सुख न मिलना ही प्राप्त है। यथा : महामंद मन सुख चहसि ऐसे प्रभुहि बिसारि। राम सुमिरत सब बिधि ही को राज रे। राम को विसारिबो निषेध सिरताज रे। ध्वनि यह कि तुम जान बूझकर बिसारे हुए हो। यहाँ बैठे हुए अपना ही प्राण बचा रहे हो। रामजी के लिए तुमने क्या किया ? अतः बिसारे के समान ही हो।

गुन तुम्हार समुझइ निज दोषा। जेहि सब भाँति तुम्हार भरोसा। सो अपना कार्पण्य और सरकार का गुण कहा। यही विधि है। इस विधि से गुणग्राम कहने से ऐसा सुख होता है जो कहा नहीं जा सके। बिना राम काज किये हनुमान्‌जी विश्राम लेना नहीं चाहते। यथा : राम काज कीन्हें बिनु मोहि कहाँ विश्राम। सो अनिर्वाच्य विश्राम मिला। एवंभूतगुणोहरिः भगवान् के गुण ही ऐसे हैं।

पुनि सब कथा बिभीषन कही। जेहि बिधि जनकसुता तहँ रही ॥
तब हनुमंत कहा सुनु भ्राता। देखी चहौं जानकी माता ॥२॥

अर्थ : फिर विभीषणजी ने जिस प्रकार श्रीजानकीजी वहाँ रहती थीं वह सब कथा कही। तब हनुमान्‌जी ने कहा : हे भाई ! सुनो मैं जानकी माता को देखना चाहता हूँ।

व्याख्या : पहिले हनुमान्‌जी ने सब रामकथा कही। इसलिए विभीषणजी को सब सीताजी की कथा सुनाना प्राप्त हुआ। अथवा विभीषणजी ने यह उचित समझा कि श्रीजनकनन्दनी का समाचार दें और कोई सेवा न हो सकी तो यही सही। अतः रहने की विधि सब बतलाई। यथा : हारि परा खल बहु विधि भय अरु प्रीति देखाइ। तब असोक पादप तर राखिसि जतन कराइ। जेहि बिधि कपट कुरंग संग धाइ चले श्रीराम। सोइ छबि सीता राखि उर रटति रहति हरि नाम।

भक्त निश्चय होने पर सखा कहा था। अब माँ की कथा सुनकर अधिक प्रेम बढ़ा। तब भ्राता कहते हैं। अथवा इस कुअवसर पर सहायता चाहते हैं इसलिए

भ्राता कहा। यथा : होहिं कुठायँ सुबंधु सहाये। भाव यह कि अब तुम हमारे भ्राता हुए। रावण के नहीं रहे। तुम्हें पिता का दर्शन नहीं हुआ है। मुझे माताजी का दर्शन नहीं हुआ है। सो दर्शन करना चाहता हूँ। कैसे हो ?

जुगुति बिभीषन सकल सुनाई। चलेउ पवनसुत बिदा कराई ॥
करि सोइ रूप गयउ पुनि तहवाँ। बन असोक सीता रह जहवाँ ॥३॥

अर्थ : विभीषणजी ने सब युक्तियाँ कह सुनायीं। तब पवनसुत विदा लेकर चले। वही रूप धरकर वहाँ गये जहाँ अशोक वन में सीताजी रहती थीं।

व्याख्या : विभीषणजी ने वहाँ पहुँचने की सब युक्तियाँ बतलायीं। युक्ति मंजु मनि सीप सोहाई सीप की भाँति युक्ति समुद्र तल में छिपी रहती है। उसे वे ही जानते थे। पवनसुत हैं। ठहर नहीं सकते। विभीषणजी ठहराते थे। पर न ठहरे विदा लेकर चले।

सोइ रूप अर्थात् मशक समान रूप अथवा जो रूप कि विभीषणजी ने युक्ति कहते समय बतलाया था। अशोक वन जहाँ सीताजी रहती थीं वहाँ से कुछ दूर था। इसी से चलेउ कहा। असोक वन को चले। सम्पाती ने भी उपवन बतलाया था। यथा : तहँ अशोक उपवन जहँ रहई। सीता बैठि सोच रत अहई।

देखि मनहि महुँ कीन्ह प्रनामा। बैठेहि बीति जात निसि जामा ॥
कृस तनु सीस जटा एक बेनी। जपति हृदय रघुपति गुन श्रेनी ॥४॥

अर्थ : देखकर हनुमाजीन् ने मन ही मन प्रणाम किया। उन्हें बैठे ही बैठे रात के प्रहर बीत जाते थे। शरीर दुबला हो गया है। सिर पर जटा की एक लट हो गयी है और हृदय में रघुपति के गुण समूह का जप करती हैं।

व्याख्या : महात्माओं की युक्ति अचूक होती है। दर्शन हुआ। प्रकट प्रणाम नहीं कर सकते और बिना प्रणाम किये भी नहीं रह सकते। अतः मन ही मन प्रणाम किया। अद्भुत दृश्य देखा। माँ सोती नहीं। रात के पहर बैठे ही बीतते हैं। लेटती भी नहीं। दारुण तप कर रही हैं। देखि कहने का भाव यह कि रामजी के कथित गुण स्वभाव का मिलान नहीं करना पड़ा। देखते ही निश्चय हो गया कि यही माँ हैं।

अशन शयन के त्याग से तथा विरह यातना से शरीर कृश हो गया है। प्रोषितपतिका के लिए केश संस्कार निषिद्ध है। सो बाल सब मिलकर जटा के रूप से एक वेणी हो गयी है। रघुपति के गुणों की श्रेणी का मानसिक जप कर रही हैं। जगदम्बा का तपस्विनी रूप में दर्शन हुआ।

दो. निज पद नयन दिएँ मन, राम चरन महुँ लीन।
परम दुखी भा पवन सुत, देखि जानकी दीन ॥८॥

अर्थ : नेत्रों को अपने चरणों में लगाये हुए हैं और मन श्रीरामजी के चरणों में लीन हैं। जानकीजी को दीन देखकर पवनसुत परम दुःखी हुए।

व्याख्या : नयन का संयोग पद के साथ है, फिर भी देखती नहीं हैं, क्योंकि मन रामचरण में लीन है। यथा : चित्र से नयन अरु गढ़े से श्रवन नहि सुनति पुकारे। निर्वितर्क समाधि लग रही है। स्मृति के अच्छी तरह शुद्ध हो जाने पर स्वरूप शून्य की भाँति जब ध्येय मात्र का ही ध्यान रह जाय तब निर्वितर्क समाधि होती है। जिन चरणों की साक्षात् सेवा करती रहीं, अब उन्हीं के लिए समाधि लगा रही हैं। हम लोगों के लिए वह समाधि दुर्गम है, पर माँ के लिए वह महा दीनावस्था थी। पवनसुत हैं, बड़े बलवान् हैं, परन्तु पराक्रम का समय नहीं, इससे परम दुःखी हुए। बिना देखे दुःखी और देखने पर परम दुःखी यथा : देखी जानकी जब जाय, परम धीर समीर सुत के प्रेम हिय न समाय। कृस सरीर सुभाय सोभित लगी उड़ि उड़ि धूलि। मनहु मनसिंज मोहनी मनि गयउ भोरे भूलि। लङ्काप्रवेश प्रसङ्ग यहाँ तक है।

तरु पल्लव महुँ रहा लुकाई। करै बिचार करौं का भाई ॥
तेहि अवसर रावनु तहँ आवा। संग नारि बहु किएँ बनावा ॥१॥

अर्थ : वृक्ष के पत्तों में छिप रहे। विचार करने लगे कि भाई ! क्या करूँ। उसी समय सजधजकर बहुत सी स्त्रियों को साथ लिये वहाँ रावण आया।

व्याख्या : मशक समान रूप है, फिर भी पेड़ के एक पत्ते में छिपे हैं। राक्षसियों का बड़ा कड़ा पहरा पड़ रहा है कहीं कोई लख न ले। भाई सम्बोधन मन के लिए है। यथा : चली सती सिव आयसु पाई। करै विचार करौं का भाई। जग बहु नर सर सरिसम भाई। इत्यादि। असमञ्जस आ पड़ने पर विचार न करना चूक है। विचार ही सब कल्याणों का मूल है। हनुमानूजी विचार कर रहे हैं। कोई बात मन में जमती नहीं। ऐसे ही अवसर पर प्रभु संयोग जुटा देते हैं। उसी समय रावण आया। रावण का अर्थ ही रुलानेवाला है। रुलाने के लिए आया। अध्यात्म रामायण की कथा है कि रावण ने स्वप्न देखा कि रामजी का दूत एक बन्दर सीताजी को देखने आया है। रावण बड़ा पण्डित है। जान लिया कि स्वप्न सच्चा है। इस समय जाकर जानकी को वाक्यबाण से विद्ध करूँ। दूत जाकर कहेगा तब रामजी आने में शीघ्रता करेंगे। क्योंकि रावण ने सीताहरण ही अपनी सद्गति के लिए किया था। इसमें श्रुति प्रमाण है। यथा : रामपत्नीं वनस्थां यः स्वनिवृत्त्यर्थमाददे। १७ रा. ता.। रावण की सब बातें प्रायेण दोरुखी होती हैं। यथा : सुनत वचन दसकंठ रिसाना। मन महु चरन बंदि सुख माना। सो आप भी ठाटबाट से आया और रानियों को भी सजाकर ले आया। दिखाने के लिए कि रावण अपनी स्त्रियों को बड़ा सुख देता है।

बहु बिधि खल सीतहिं समुझावा। साम दान भय भेद देखावा ॥
कह रावनु सुनु सुमुखि सयानी। मंदोदरी आदि सब रानी ॥२॥

अर्थ : उस खल ने बहुत भाँति से सीताजी को समझाया। साम दान भय और भेद भी दिखाया। रावण ने कहा हे सुमुखि, सयानी ! सुनो, मन्दोदरी आदि सब रानियों को।

व्याख्या : उनकी प्रक्रिया में तथा समझाने में खलता भरी है। इसलिए उसे कवि खल कह रहे हैं। साम, दान, भय और भेद दिखलाकर समझाया इसलिए बहुविधि कहते हैं। मन्दोदरी आदि सब रानी। तव अनुचरी करौं प्रन मोरा। यह कहकर साम दिखलाया। नगर मालिनी पृथ्वी का आधिपत्य जनक राजा को दे देने का लोभ दिखलाया। यह दान है। न मानोगी तो वध करूँगा : यह भय दिखलाया। जिसके लिए तू मर रही है वह तुझे पूछता भी नहीं इत्यादि बातें कहकर भेदनीति का प्रयोग किया। सवैया :

प्रेमहि ते उपजै सुख सुन्दरि त्यागि सँदेह सनेह लगाओ।
पूरी महीपुर मालिनि आज विदेह को रावण ते दिलवाओ ॥
जो न सुनो हित की मम बात तो प्रेम निरादर को फल पाओ।
जो नहि पूछत है तुमको तिनके हित क्यों निज जन्म गँवाओ ॥

मुख पर ही पुरुष आसक्त होता है। इसलिए सुमुखि कहता है। सयानी कहकर विचार करने के लिए प्रोत्साहित करता है अपने हित को देखो इसीमें सयानापन है। ये जो मेरे साथ हैं सब रानियाँ हैं। मन्दोदरी इनमें मुख्य है। इनकी ओर देखो। मैं सबको कितने सुख से रखता हूँ और वह तपस्वी तुम्हारी भी रक्षा न कर सका।

तव अनुचरी करौं प्रन मोरा। एकबार बिलोकु मम ओरा ॥
तृन धरि ओट कहति बैदेही। सुमिरि अवधपति परम सनेही ॥३॥

अर्थ : तुम्हारी दासी बना दूँगा : यह मेरा प्रण है। तुम एकबार मेरी ओर देख दो। परम स्नेही अवधपति का स्मरण करके वैदेही तिनके के ओट से कहने लगीं।

व्याख्या : रावण कहने लगा कि मन्दोदरी समेत इन सब रानियों को तुम्हारी दासी बनाऊँगा। यह मेरा प्रण है। मैं इन सबों के सामने प्रण कर रहा हूँ। देखो किसी को दासी बनने में इनकार नहीं है। फिर भी भगवती ने न देखा तब कहता है कि इतनी बड़ी प्रतिज्ञा केवल इस बात पर है कि तुम मेरी ओर एकबार देख लो। भीतरी भाव यह है कि मैं पञ्चम लोकपाल कहलाता हूँ परन्तु वस्तुतः लोकपाल तो इनके देखने से होऊँगा। यथा : लोकप होहिं बिलोकत तोरे।

रावण ने बड़े असमञ्जस में सीताजी को डाल दिया। ऐसी बात कही कि न

उत्तर देने से स्वीकृति समझी जाय। अतः उत्तर देना ही पड़ा। साध्वी स्त्री को परपुरुष से बात करने में ओट लेना ही पड़ता है। वहाँ कोई ओट था नहीं; अतः तृण को ओट में रखकर बोलीं। यह भी द्योतित करती हैं कि जिससे मैं बोल रही हूँ उसे तृण समझती हूँ। अथवा अपना अन्तर्भाव द्योतित करती हैं कि अवधपति परम स्नेही के सामने तेरा ऐश्वर्य तेरा प्रेम और स्वयं तू तृण है।

सुनु दसमुख खद्योत प्रकासा। कबहुँ कि नलिनी करइ बिकासा ॥
अस मन समुझु कहति जानकी। खल सुधि नहि रघुबीर बान की ॥४॥
सठ सूने हरि आनेहि मोहीं। अधम निलज्ज लाज नहिं तोहीं ॥५॥

अर्थ : रे दशमुख ! सुन, जुगनू के प्रकाश से कभी कमलनी खिल सकती है ? ऐसा ही मन में समझ। रे खल ! तुझे रघुवीर के बाण की सुधि नहीं है। रे शठ ! तू मुझे सूने में हरण कर लाया। रे अधम निर्लज्ज ! तुझे लज्जा नहीं है।

व्याख्या : सुमुखि सम्बोधन के उत्तर में दशमुख शब्द से सम्बोधित किया। सयानी सम्बोधन के उत्तर में खद्योत कहा। खद्योत का प्रकाश घने अन्धकार में होता है। यथा : निसि तम घन खद्योत विराजा। मैं उस सूर्य की नलिनी हूँ जिसके सामने खद्योत का अस्तित्व ही लुप्त हो जाता है। तेरा कथन खद्योत का प्रकाश है। इससे नलिनी का विकसित होना प्रकृति के विरुद्ध है। इस उपमा से ही प्रभु की अनुपस्थिति में रावण की चोरी करना आदि सूचित किया। कहने लगीं कि रे खल ! परधन परदार लम्पट ! मेरी कही बात मन में समझ। रामजी सूर्य और तू जुगनू है कि नहीं। लङ्का में आकर रघुवीर के बाण की सुधि भूल गया। चोरी के समय तुझे सुधि थी। यथा : सो दससीस स्वान की नाईं। इत उत चितइ चला भड़िहाईं। तथा : चले गगन पथ आतुर भय रथ हाँकि न जाय।

मीठी बातें सठ करे करिके महा बिगार। अतः शठ सम्बोधन दिया। दो भाइयों के रहते तेरा साहस न पड़ा। राजा होकर परस्त्रीहरण की इच्छा ही लज्जा की बात है और सो भी सूने में हरण करना अधम निर्लज्जता है। इन बिचारी स्त्रियों के सामने भले ही तू सूर्य से स्पर्धा कर ले पर मैं जानती हूँ कि तू खद्योत है। कितना भी कोई निर्लज्ज हो पर उसमें भी लज्जा का लेश रहता है। पर तुझमें लज्जा का लेश भी नहीं है। इसी से कहा : लाज नहिं तोहीं।

दो. आपुहि सुनि खद्योत सम, रामहि भानु समान।
परुष बचन सुनि काढि असि, बोला अति खिसिआन ॥९॥

अर्थ : अपने को जुगनू के समान और रामजी को सूर्य के समान सुनकर और कठोर वचन सुनकर तलवार निकाला और झल्लाकर बोला।

व्याख्या : जिसका किन्नर गन्धर्व गुणगान किया करते हैं। दिक्पाल भृकुटी देखा करते हैं उसे सिवा जगदम्बा के खद्योत कौन कहे। इतना ही नहीं रामजी

को सूर्य भी कहा। रावण दूसरे की बड़ाई सुन नहीं सकता। वह भी सुनना पड़ा और परुष वचन भी सुना। यथा : अधम निलज्ज लाज नहिं तोहीं। उत्तर कुछ है नहीं। तब झल्लाया। झल्लाने पर रावण तलवार खींचता है। यथा : तब सकोप निसिचर खिसियाना। काढेसि परम कराल कृपाना : यहाँ लाचार होकर वह भय का प्रयोग कर रहा है।

सीता तैं मम कृत अपमाना। कटिहउँ तव सिर कठिन कृपाना ॥
नाहित सपदि मानु मम बानी। सुमुखि होत नत जीवन हानी ॥१॥

अर्थ : सीते ! तैने मेरा अपमान किया। मैं तेरे सिर को इस कठिन तलवार से काट डालूँगा। नहीं तो जल्दी मेरी बात मान ले। हे समुखि ! नहीं तो जान से हाथ धोना पड़ेगा।

व्याख्या : मेरा अपमान किसी ने न किया। किसकी सामर्थ्य जो मेरा अपमान करे ? मेरा तुझ पर इतना प्रेम और तूने अपमान किया। इसका दण्ड प्राणदण्ड है। अपनी कठोरता का आरोप कृपाण पर करता है। क्रुद्ध है इसलिए सीते सम्बोधन किया। स्वयंवर के समय से ही नाम जानता है। अतः कहता है कि एक विकल्प और है। उसी कारण से अभी तक मैंने तेरा सिर नहीं काटा और वह यह है कि यदि तू तुरन्त मेरी बात मान ले तो यह अपमान प्रणयकोप में परिगणित हो जायगा। प्रणयकोप अपमान नहीं है। इसीलिए वधदण्ड नहीं दिया जायगा। तू सयानी नहीं है। केवल सुमुखी है। सयानी होती तो इतने बड़े ऐश्वर्य को लात न मारती। अब से अच्छा है मेरी बात मान नहीं तो जीवन हानि हुआ ही चाहती है।

स्याम सरोज दाम सम सुंदर। प्रभु भुज करि कर सम दसकंधर ॥
सो भुज कंठ कि तव असिघोरा। सुनु सठ अस प्रबान पन मोरा ॥२॥

अर्थ : हे दशकण्ठ ! प्रभु की भुजा जो श्याम कमल की माला के समान सुन्दर और हाथी के शुण्ड के समान : सुन्दर : है। या तो वह भुजा ही मेरे कण्ठ में पड़ेगी या तेरी भयानक तलवार ! रे शठ ! सुन। यह मेरा प्रमाण प्रण है।

व्याख्या : प्रभु की भुजा श्यामल कमल की माला की भाँति सुन्दर धारण करने योग्य है। कमल की माला कहने से सुगन्ध कोमलता तथा सुखद होना कहा। करि कर सम : कहकर उसमें उतार चढ़ाव तथा बल का होना कहा। दशकन्धर : सम्बोधन से उसका : भुजा विटप सिर सृंग समाना। रोमावली लता तरु नाना। भयङ्कर होना कहा। भाव यह कि तेरी भुजाएँ तरु समान होने से भयङ्कर हैं और प्रभु की भुजा करि कर सम होनें से तरुभञ्जक हैं।

या तो वह भुजा गले में पड़ेगी या तेरी तलवार। भाव यह कि या तो प्रभु से मिलन होगा या तेरे हाथ वध होगा। तैने जो प्रण किया था कि : मंदोदरी आदि सब रानी। तव अनुचरी करौं पन मोरा। सो अप्रमाण है और मेरा प्रण

प्रमाण है। मेरा प्रण है। सो : भुजकंठ कि तव असि घोरा। रावण ने सुमुखि कहकर सम्बोधन किया। भगवती सठ कहकर सम्बोधन करती हैं।

चंद्रहास हरु मम परितापं। रघुपति बिरह अनल संजातं ॥
सीतल निसित बहसि बरधारा। कह सीता हरु मम दुख भारा ॥३॥

अर्थ : हे चन्द्रहास ! रघुपति विरहरूपी अग्नि से उत्पन्न मेरी जलन को तू हरण कर। तू शीतल तीव्र और श्रेष्ठ धार को वहन करता है। तू मेरे दुःख के बोझ को हरण कर ले।

व्याख्या : रावण ने अपना दो निश्चय कहा। दो में एक मानना होगा। भगवती ने भी अपना दो निश्चय कहा। उनमें से भी एक ही होगा। रावण का अति भयदायक निश्चय जो जीवनहानिवाला है। उसी को भगवती अत्यन्त सुखद मान रही हैं। क्योंकि उससे सद्यः विरह की शान्ति होगी। प्रभु के मिलन का तो अभी कोई निश्चय नहीं है। रावण अपने कृपाण में कठिनता का आरोप करके बोला था। अतः उसी को सम्बोधन करके कहती हैं। उन्होंने लङ्का में सुना है कि चन्द्रहास नाम की तलवार रावण ने शिवजी से पाया है। उसकी चोट से कोई बचता नहीं। अतः उसी से कहती हैं कि मेरा सन्ताप मरने से ही मिट जायगा। देह जल रही है। इससे कहती हैं कि तू चन्द्रहास है। चन्द्र ताप हरता है। तू मेरे ताप को हरण कर।

धारा नदी और तलवार दोनों में कही जाती है। सो कहती हैं कि तेरी धारा शीतल है। अतः स्पर्श सुख का अनुभव होगा। तीखी है शीघ्र ही दुःख काटेगी। भारी दुःख काटने में यही समर्थ है। शिरश्छेदन नहीं है। दुःखच्छेदन है। सीधे ललकारती है कि मार। रामजी के विरह के सामने मृत्यु क्या है ? मागु माथ अबहीं देउँ तोही। राम विरह जनि मारेसि मोही।

सुनत बचन पुनि मारन धावा। मयतनया कहि नीति बुझावा ॥
कहेसि सकल निसिचरिन्ह बोलाई। सीतहि बहुबिधि त्रासहु जाई ॥४॥
मास दिवस महुँ कहा न माना। तौ मैं मारबि काढ़ि कृपाना ॥५॥

अर्थ : वचन सुनते ही वह मारने दौड़ा। तब मय की पुत्री : मन्दोदरी ने नीति कहकर उसे समझाया। रावण ने सब राक्षसियों को बुलाकर कहा कि जाकर सीता को बहुत प्रकार से भय दिखलाओ। यदि महीने भर में उसने कहा न माना तो मैं उसे तलवार निकालकर मार डालूँगा।

व्याख्या : साम, दान, भेद और भय सब उपाय व्यर्थ गये। तब मार डालने का उपक्रम करता है। क्योंकि इतनी दूर पर नहीं था कि दौड़ना पड़े। तब मन्दोदरी ने शान्त किया। बड़ी नीति की पण्डिता है। मयदानव की बेटी और मेघनाद की माता है। रावण उसकी अधिक प्रतिष्ठा करता है। रावण के रोकने में यही समर्थ है। नीति बुझावा यथा : दुखित दोष गुन गनहि न साधू। दुःखिनी है। प्राण

पर खेले हुए है। उसको शान्ति के लिए और समय दीजिये। निःसहाय अवला के अपमान से अप्रतिष्ठा नहीं है। किसी वीर ने आपका अपमान नहीं किया।

त्यागहु दीना मानुषी कृपिणा कृशा दुखारि।
हैं केतिक गन्धर्वं सुर किन्नर नाग कुमारि।।
अनुरागिनी तुम पर सदा मदमाती सुकुमारि।
कामकला महँ कुसल अति तिनकहँ भजहु सुरारि।।
का न कहैं दुखिया तिया तन की ममता त्यागि।
ताहि कान नहि कीजिये जरत विरह की आगि।।
समय देहु जामे कछुक हिय की अगिन बुझाय।
तब अवसर कछु कहन को जब दुख घटत लखाय।।

बात समझ गया। वध से उपरत हुआ। रानियों के साथ उसके आने से पहरेदार राक्षसियाँ दूर हट गयी थीं। सो उन सबों को बुलाकर कहा: सीता को डरावो। मारना मत। तुम लोगों को स्पर्श का अधिकार नहीं है। त्रास दिखाने की जो जो विधि है सो सब करो। उठा कुछ न रक्खो। सीताजी को सुनाकर कहता है। एक महीने का समय और देता हूँ। तू उस तपस्वी के आने का आसरा एक महीने और देख ले। इतने दिन में भी न आया तो नहीं आयेगा। फिर भी तैंने न माना तो अपने हाथ से वध करूँगा। मन्दोदरी के समझाने पर तलवार कोष में रख ली थी। इसलिए काढ़ि कृपाना कहता है।

दो. भवन गयउ दसकंधर, इहाँ पिसाचिनि बृंद।
सीतहि त्रास दिखावहिं, धरहिं रूप बहु मंद ।।१०।।

अर्थ: रावण तो घर गया। यहाँ राक्षसियों का समूह बुरे बुरे रूप धारण करके सीताजी को भय दिखाने लगीं।

व्याख्या: दसकंधर कहकर उस भीषण मूर्ति का घर जाना कहा। अथवा हनुमान्‌जी के रहते भी दसो सिर सही सलामत लेकर घर गया। क्योंकि अकनि कटु वानी कुटिल की क्रोध बिंध्य बढोइ। सकुच सम भयो ईस आयसु कलस भव जिय जोइ। करत कछू न बनति हरि हिय हरष साक समोइ। कहत मन तुलसीस लंका करहुँ सघन घमोइ। मांस खानेवाले को पिशाच कहते हैं। सो पिशाचिनी सीताजी को डराने लगीं कि हम लोग तुम्हारा मांस खावेंगी और हिंसक जन्तुओं का रूप धारण करती हैं।

त्रिजटा नाम राच्छसी एका। राम चरन रति निपुन बिबेका।।
सबन्हौ बोलि सुनाएसि सपना। सीतहि सेइ करहु हित अपना ।।१।।

अर्थ: उनमें एक त्रिजटा नाम की राक्षसी थी। उसको रामजी के चरणों में प्रीति थी और विवेक में निपुण थी। उसने सबको बुलाकर अपना स्वप्न सुनाया। कहा कि सीताजी की सेवा करके अपना कल्याण करो।

व्याख्या : एक शब्द प्रायेण बेजोड़ : प्रधान : के अर्थ में आया है। यथा : निसिचरि एक सिंधु महु रहई। भवन एक पुनि दीख सुहावा। माल्यवंत अति जरठ निसाचर। मंदिर एक रुचिर तहँ बैठ नारि तप पुंज। इत्यादि। भाव यह कि त्रिजटा नाम की एक राक्षसी थी। शरीर तो उसका तामस था, पर गुण उसमें दिव्य थे। रामचरण रति से उपासना कहा और निपुण विवेका से ज्ञान कहा। ऐसी कोई राक्षसी लङ्का में न थी। सीताजी का दुःख वह न देख सकी। अन्याय उससे देखा नहीं जाता था। रावण की आज्ञा सबको हुई। पर वह डराने न गयी। जब औरों को देखा कि सीताजी को बहुत कष्ट दे रही हैं तो सबको अपना सपना सुनाने के लिए बुलाया। सब त्रिजटा के महत्त्व से परिचित थीं। उसने समझाया कि तुम लोग रावण की आज्ञा तो पालन करती हो पर अपना अहित कर रही हो। तुम्हारा हित सीताजी की सेवा में है। यद्यपि जगदम्बा की सेवा से इस लोक और परलोक दोनों प्रकार का हित था, पर पारलौकिक हित को राक्षसियाँ न समझेंगी। अतः उन्हें ऐहिक हित बतलाया। यह त्रिजटा की भक्ति की निपुणता है। उसने उन्हें अपना सपना सुनाया।

सपनें बानर लंका जारी। जातुधान सेना सब मारी ॥
खर आरूढ़ नगन दससीसा। मुंडित सिर खंडित भुज बीसा ॥२॥

अर्थ : मैंने सपने में देखा कि बन्दर ने लङ्का जला दी। राक्षसों की सेना मार डाली। रावण नङ्गा है और गधे पर सवार है। उसके सिर मुड़े हुए हैं और बीसो भुजाएँ कटी हुई हैं।

व्याख्या : शुद्धान्तःकरण लोगों का सपना सच्चा होता है। भगवती कैकेयी ने भी कहा था : दिन प्रति देखा रात कुसपने। भरतजी भी : देखहिं रात भयानक सपना। सीताजी : जागें सीय सपन अस देखा। सहित समाज भरत जनु आये। नाथ वियोग ताप तन ताये। ये सब सपने सच्चे उतरे। इसी भाँति इसके सपने भी सच्चे होते हैं। अतः उन्हें अपना सपना सुनाती है। सपने में बन्दर ने लङ्का जलाया। सन्देह उठता है कि तब राक्षसों की इतनी बड़ी सेना क्या करती थी? इस पर कहती है कि सब सेना मारी गयी। फिर भी रावण की भुजाओं से रक्षित लङ्कादुर्ग के जलाने की तो कोई विधि ही नहीं है। हिन्दी में कहावत है। खाने खराब गदहे असवार। सो नगन से खाने खराब और खर आरूढ़ से गदहे असवार कहा। मुण्डित सिर से राजचिह्न रहित कहा। खण्डित भुज बीसा से सर्वथा बन्धुहीन तथा असहाय कहा।

एहि बिधि सो दच्छिन दिसि जाई। लंका मनहु बिभीषन पाई ॥
नगर फिरी रघुबीर दोहाई। तब प्रभु सीता बोलि पठाई ॥३॥

अर्थ : इस विधि से वह दक्षिण दिशा की ओर जा रहा है और मानो लङ्का

विभीषण को मिली है। नगर में रघुवीर की दोहाई फिरी है। तब प्रभु ने सीताजा को बुला भेजा है।

व्याख्या : एहि विधि अर्थात् सर्वस्वनाश की विधि से रावण दक्षिण दिशा जिधर यमपुर है चला जा रहा है। ये सब लक्षण स्वप्नाध्यायी में मृत्युसूचक बतलाये गये हैं। तब शङ्का यह उठती है कि फिर लङ्का का राज्य किसे मिला ? इस पर कहती है : मनहु विभीषन पाई। स्वप्न होने से मनहु का सब घटनाओं के साथ संयोग है। राज्य विभीषण को मिला पर दोहाई रघुवीर की फिरी जिसके पराक्रम से लङ्का विभीषण को मिली। अर्थात् विभीषण प्रभु के मातहत राजा हुए और तब सीताजी बुलाई गयीं। वह कहती है कि मैंने तो इतना ही सपना देखा। बाद को नींद खुल गयी। सीता ने जाकर जब सब अपना दुःख सुनाया तब तुम लोगों की क्या दशा हुई। यह मैंने नहीं देखा।

यह सपना मैं कहौं पुकारी। होइहि सत्य गएँ दिन चारी ॥
तासु बचन सुनि ते सब डरीं। जनकसुता के चरनन्हि परीं ॥४॥

अर्थ : मैं पुकारकर कहती हूँ कि यह सपना चार दिनों बाद सत्य होगा। उसके वचन सुनकर सब डर गयीं और जानकीजी के चरणों में जाकर गिरीं।

व्याख्या : मैं पुकारकर कहती हूँ। यह सपना चार दिनों में सत्य होकर रहेगा। जाय सूपनखा रावण से कह दे : सत्य कहने में डर की कोई बात नहीं है। सूपनखा भी पहरे पर राक्षसियों में थी। चार दिन का अर्थ यहाँ कुछ दिन है। यथा : कछुक दिवस जननी धरु धीरा। कपिन्ह सहित अइहैं रघुबीरा। निसिचर मारि तोहि लै जैहैं। कछुक दिन के लिए चार दिन बोलने की रीति है। यथा : भयउ बहोरि रहव दिन चारी। रथ चढ़ाइ दिखराइव बन फिरेहु गये दिन चारि। आजकल भी कहते हैं : चार दिना की चाँदनी और फिर अँधेरा पाख। यह सपना सत्य होगा। यहाँ तक तो निश्चय हो गया। पर तुम्हारा दण्ड अभी तक निश्चित नहीं हुआ है। अभी तुम्हें अवसर है कि डराना बन्द करो और जो किया है उसके लिए क्षमा याचना करो। यह त्रिजटा का विवेक है।

त्रिजटा के वचन पर सबका विश्वास है। सब जानती हैं कि पहले भी जो जो सपना इसने देखा कोई झूठा न हुआ। अतः यह सपना भी सत्य होगा। तब हम लोगों की क्या दशा होगी ? यह सोचकर सब डर गयीं। जाकर भगवती जनकनन्दनी के पैरों पर पड़ीं। भाव यह कि अपराध क्षमा करा लिया।

दो. जहँ तहँ गईं सकल तब, सीता कर मन सोच।
मास दिवस बीते मोहि, मारिहि निसिचर पोच ॥११॥

अर्थ : तब वे सब जहाँ तहाँ चली गयीं। सीताजी मन में सोचने लगीं कि महीना दिन बीतने पर नीच राक्षस मुझे मारेगा।

व्याख्या : हम लोगों ने बहुत दुःख दिया। अब कहाँ से हम लोगों के हट जाने से ही इन्हें शान्ति मिल सकती है। इन्हें विश्वास हो जाय कि इन सबों ने पहरे की कड़ाई कम कर दी। इसलिए सब वहाँ से हट बढ़ गयीं। सीताजी को इतनी देर तक सोच नहीं था। चित्त उन राक्षसियों के भयानक बातों की ओर था। जब चित्त स्थिर हुआ तब यह सोच उत्पन्न हुआ कि एक महीने बाद नीच राक्षस के हाथ मेरी मृत्यु होगी। मरने का सोच नहीं। अधम के हाथों से मृत्यु होने का सोच है। यदि मृत्यु भी हो तो भले के हाथ हो। यथा : रघुबीर सर तीरथ सरीरन्हि त्यागि गति पैहैं सही। पापी के हाथ मरना कालिनेमि ने भी नहीं चाहा। यथा : रामदूत कर मरौं बस यह खल रत मलभार। मारीच ने भी ऐसा ही सोचा। यथा : उभय भाँति देखा निज मरना। तब ताकेसि रघुनायक सरना।

त्रिजटा सन बोलीं कर जोरी। मातु बिपति संगिनि तैं मोरी॥
तजौं देह करु बेगि उपाई। दुसह बिरहु अब नहि सहि जाई॥१॥

अर्थ : हाथ जोड़कर त्रिजटा से बोलीं कि हे माता! तू मेरी विपत्ति की सङ्गिनी है। जल्दी उपाय कर जिससे मैं शरीर छोड़ सकूँ। असह्य विरह अब नहीं सहा जाता।

व्याख्या : सब चली गयीं। केवल त्रिजटा रह गयी। जगदम्बा दुष्कर कार्य के लिए उससे कह रही हैं। अतः हाथ जोड़कर बोलती हैं। यथा : माँगउँ दूसर वर कर जोरी। अति आर्त हैं। इसलिए हाथ जोड़ रही हैं। विपत्ति की सङ्गिनी माँ होती है। मेरे लिए तैं रावण के क्रोध को भी अपने ऊपर लेने में न डरी। इसलिये तू माँ है। मैं देह छोड़ने के उपाय करने में भी परतन्त्र हूँ। अतः तू उपाय कर दे। मैं बेटी हूँ। तू दया करके मेरा संकट काट दे। बेगि कहने का भाव यह कि इस समय सब हट गयी हैं। न जाने कब आजायँ। अतः जल्दी कर। दुःसह विरह ज्वाला को बहुत दिनों तक सहा। अब सहा नहीं जाता। यथा : हा रघुनन्दन प्रान पिरीते। तुम बिनु जिअत बहुत दिन बीते।

आनि काठ रचु चिता बनाई। मातु अनल पुनि देहि लगाई॥
सत्य करहि मम प्रीति सयानी। सुनै को श्रवन सूल सम बानी॥२॥

अर्थ : काठ लाकर सजाकर चिता लगा दे। हे माता! फिर उसमें आग लगा दे। हे सयानी, तू मेरी प्रीति को सत्य कर दे। ऐसी शूल के समान वाणी कानों से कौन सुने।

व्याख्या : बाहर से लकड़ी लाना है। अशोकवाटिका में सूखी लकड़ी कहाँ से मिलेगी? यथा : समय पुराने पात परत डरत बात पालत रति भार को बिहार सो। क० रा०। सुख की वस्तु सँवारकर बनायी जाती है अथवा चिता को रचकर बनाने का विधान है। यथा : सरयु तीर रचि चिता बनाई। अग्नि बन्धु देते हैं। यहाँ कोई नहीं है। तू माँ है। तू अग्नि दे। विरहाग्नि के सामने यह अग्नि शीतल

है। तू सयानी है। इस बात को समझ सकती है। मेरी प्रीति झूठी हुई जा रही है। मैं अबतक मरी नहीं। मैंने कहा था : को तनु प्रान कि केवल प्राना। विधि करतब कछु जाइ न जाना। प्रभु को भी विश्वास हो गया : हठि राखे नहि राखिहि प्राना। सच्ची प्रीति की परीक्षा मरण से ही है। यथा : बंदौं अवध भुआल सत्य प्रेम जेहि राम पद। बिछुरत दीनदयाल प्रियतनु तृन इव परिहरेउ। तिसपर रावण शूल की सी वाणी बोलता है। इसने मुझे समझा क्या है? मैं प्राण दूँगी।

सुनत बचन पद गहि समुझाएसि। प्रभु प्रताप बल सुजस सुनाएसि ॥
निसि न अनल मिल सुनु सुकुमारी। अस कहि सो निज भवन सिधारी ॥३॥

अर्थ : सीताजी के वचन सुनकर चरण पकड़कर उन्हें समझाया। प्रभु का प्रताप बल और सुयश सुनाया। हे सुकुमारी! सुनो रात के समय आग नहीं मिलती। ऐसा कहकर वह अपने घर चली गयी।

व्याख्या : सीताजी ने हाथ जोड़कर कहा। त्रिजटा ने पैर पकड़कर समझाया कि धैर्य धारण करो। धैर्य के लिए ही प्रभु का प्रताप सुनाया कि विचारशील लोग त्रस्त हैं। लङ्का में असगुन हो रहा है। यथा : जब ते तुम सीता हरि आनी। असगुन होइ न जाइ बखानी। बल सुनाया कि बहन की नाक काटी गयी। खरदूषण ऐसे भाई मारे गये। फिर भी रावण का साहस नहीं है कि उनके सामने जा सके। सुयश सुनाया कि तीनों लोक में जिसका यश व्याप्त है। रावण जिसके घर चोरी करने गया। उसकी अपकीर्ति तुम्हारे प्राण देने से होगी।

सिर पै तुम्हारे रघुनाथ से नाथ अनाथ सी ह्वै किमि बैन उचारो।
दशकंठ को कुंठित साहस भो तब चोरन की करनी निरधारो।
जन के पन की जेहि लाज सदा विजयानद सो तुम्हरो रखवारो।
आय गये प्रभु देर नहीं यह जानि कै जानकी धीरज धारो।

निसि न अनल का भाव यह है कि रात को आग बनाये रखने की आज्ञा नहीं है। नियमित समय पर घण्टा बजता है आग बुझाने के लिए। फिर कोई आग नहीं रख सकता। हाथ जोड़कर की हुई प्रार्थना को अस्वीकार नहीं करती। पर उसका पालन करने में अपने को असमर्थ बतलाती है। सुकुमारी कहने का भाव यह कि स्वभाव भी सुकुमार हैं। बात नहीं सह सकती। यथा : मृदु मूरति सुकुमार सुभाऊ। त्रिजटा ने सोचा कि जबतक मैं यहाँ रहूँगी यह ऐसी ही बातें किया करेंगी। अतः वह घर चली गयी। अथवा स्वप्न पर उसे पूरा विश्वास है। हनुमान्‌जी का आना जानती है। बातचीत के लिए अवसर देने के लिए चली गयी।

कह सीता बिधि भा प्रतिकूला। मिलिहि न पावक मिटिहि न सूला ॥
देखिअत प्रगट गगन अँगारा। अवनि न आवत एकौ तारा ॥४॥

अर्थ : सीताजी कहने लगीं कि विधाता ही प्रतिकूल हो गया। न आग

मिलेगी न शूल मिटेगा। आकाश में अंगारे प्रकट दिखायी पड़ते हैं। पर पृथ्वी पर एक भी तारा नहीं आता।

व्याख्या : भगवती कहती हैं कि मुझे ब्रह्मा ही बायें हो गये। हा ! मुझे आज आग माँगे नहीं मिलती है। और बिना आग मिले शूल मिटने का कोई अन्य उपाय भी नहीं है। यह खल ऐसी शूल सी वाणी बोल गया है जो विरह से भी अधिक असह्य है। त्रिजटा कह गयी कि रात को आग नहीं मिलती। यहाँ तो आकाश में अंगारे ही अंगारे हैं। इनको ठहरने के लिए आधार भी नहीं है। इन सबों को नीचे गिरना चाहिए। पर एक भी पृथ्वी पर नहीं गिर रहा है। इस प्रकार का विचार ही प्रेमोन्माद है। विरहावस्था में तारे अङ्गार प्रतीत होते हैं।

पावकमय ससि स्रवत न आगी। मानहु मोहि जानि हतभागी ॥
सुनहि[1] बिनय मम बिटप असोका। सत्य नाम करु हरु मम सोका ॥५॥

अर्थ : चन्द्रमा अग्निमय है। किन्तु वह भी मानो मुझे हतभागिनी जानकर आग नहीं गिराता। हे अशोकवृक्ष ! मेरी विनती सुनो। अपना नाम सत्य करो। और मेरे शोक का हरण करो।

व्याख्या : भला अङ्गारे पृथ्वी पर नहीं आते तो नहीं सही पर यह चन्द्रमा तो अग्नि का पुञ्ज है। अग्निपुञ्ज से तो चिनगारियाँ निकला करती हैं। परन्तु इससे भी चिनगारी निकलकर पृथ्वी पर नहीं आ रही है। कारण की उपस्थिति में भी कार्य क्यों नहीं हो रहा है। प्रकृति के नियम में अन्तर पड़ने का कारण मेरा अभाग है। चन्द्रमा ने भी मुझे भवभंजन पद विमुख अभागी जान लिया।

तब से अशोकवृक्ष के लाल-लाल कोपलों पर दृष्टि पड़ी। अब उससे कह रही हैं। विटप अशोक ! मैं तो तुम्हारी छाया में हूँ। तुम मेरी विनय सुनो। मेरी विनय कोई नहीं सुनता। तुम सन्त के जोड़ीदार हो। संत विटप सरिता गिरि धरनी। परहित हेतु सबनि की करनी। तुम मेरी विनय सुनो। अपने अशोक नाम की लाज रक्खो। तुम अशोक हो और मैं तुम्हारी छाया में बैठी हुई सशोक हूँ। तुम्हारा नाम झूठा हुआ जा रहा है।

नूतन किसलय अनल समाना। देहि अगिनि तन करहि निदाना ॥
देखि परम बिरहाकुल सीता। सो छन कपिहि कलप सम बीता ॥६॥

अर्थ : तेरे नये पत्ते अग्नि के समान हैं। तू अग्नि दे और शरीर का नाश कर। सीताजी को विरह से परम व्याकुल देखकर वह क्षण हनुमान्‌जी को कल्प के समान बीता।

व्याख्या : यदि कहो कि मेरे पास अग्नि नहीं है कहाँ से दें। इस पर कहती हैं कि ये नये कोपल तो अग्नि के समान दाहक हैं। इन्हीं के द्वारा अग्नि देकर मेरे

---

१. यहाँ परिकराङ्कुर (अलङ्कार) है।

शरीर को समाप्त कर। निदानं त्वादिकारणम् आदि कारण को निदान कहते हैं। कार्य के कारण भाव की प्राप्ति से उसका नाश होता है। शरीर का कारण भाव की प्राप्ति शरीर का नाश है।

परम व्याकुल हैं। कहीं शरीर न छोड़दें। यही समय सँभालने का है। बड़ा नाजुक समय है। तनिक सा दिल पर ठेस लगने से ही शरीर छूटेगा। हनुमान्‌जी विचारते हैं कि इस समय में क्या करूँ? मेरे देखते इनका शरीर छूटा चाहता है। इस असामञ्जस्य में वह क्षण हनुमान्‌जी को कल्प के समान अपार हो गया। कल्प १००० चतुर्युगी का होता है। इसी समय का वर्णन करते हनुमान्‌जी ने रामजी से कहा: निमिष निमिष करुनानिधि जाहि कल्प सम बीति। अनुभव करनेवाले को निमिष कल्प सा और देखनेवाले को क्षण कल्प सा बीता।

५९. सीता धैर्यदान प्रसङ्ग

दो. कपि[1] करि हृदय बिचार, दीन्हि मुद्रिका डारि तब।
जनु असोक अंगार, दीन्ह हरषि उठि कर गहेउ ॥१२॥

अर्थ: तब हनुमान्‌जी ने हृदय में विचार करके अँगूठी डाल दी। मानो अशोक ने अङ्गारा गिराया सीता जी ने हर्षित होकर उसे हाथ में ले लिया।

व्याख्या: करै विचार करौं का भाई। तब से विचार चल रहा है। इस संकट में उपाय सूझ गया। मुँदरी गिरा दी। तरु पल्लव में छिपे थे। वहीं से मणि मुँदरी अङ्गार सी गिरी। सीताजी को भान हुआ कि लो अङ्गार तो गिरा। अशोक ने विनती सुन ली। प्रसन्न हो गयीं। आदर से मुँदरी उठा ली। उसमें लाल मणि जड़ी थी। उसी के चमक से अङ्गारे का भ्रम हुआ। यह बुद्धिमान् वरिष्ठ की बुद्धिमत्ता है। सीताजी को उस अवस्था से निकाल लेना इन्हीं का काम था। इस भाँति प्राण बचा लिया।

तब देखी मुद्रिका मनोहर। राम नाम अंकित अति सुंदर॥
चकित चितव मुदरी पहिचानी। हरष बिषाद हृदय अकुलानी ॥१॥

अर्थ: तब अत्यन्त सुन्दर राम नाम से अङ्कित मनोहर अँगूठी देखी। अँगूठी को पहिचानकर आश्चर्य से चकित होकर देखने लगी और हर्ष तथा विषाद से हृदय में आकुल हो उठीं।

व्याख्या: जब हर्षित होकर उठीं और हाथ से उठा लिया तो स्पर्श में शीतल जान पड़ी। तब देखा कि यह तो अङ्गार नहीं है। मुँदरी अंगूठी है। बड़ी सुन्दर मनोहर है। उस पर प्रभु का नाम खुदा हुआ है। हनुमन्नाटक में: सुवर्णस्य सुवर्णस्य सुवर्णस्याङ्गुलीयकम्। सोने की अँगूठी राम नाम से युक्त सोलह मासे की है।

---

१. यहाँ भ्रमालङ्कार है।

सोलह मासे की कहने से धार्मिक कृत्य के उपयुक्त कहा। अन्यानि च पवित्राणि कुशदूर्वात्मकानि च। हेमात्मकपवित्रस्य ह्येकां नार्हन्ति वै कलाम्। हेमाद्रि का मत है कि कुश और दूर्वा की पवित्री सुवर्ण की पवित्री के एक कला के बराबर नहीं है। धार्मिक कृत्योपयोगी होने से सरकार ने वन चलने के समय इनका त्याग नहीं किया।

पहिचानी हुई मुँदरी है। इसने व्याह के समय ही मन चुराया था। यथा : कर मुद्रिका चोर चित लेई। चकित होकर देखती हैं कि यह यहाँ कैसे आगयी? यह तो प्रभु के हाथ में थी। सो मुँदरी मिलने का हर्ष और यहाँ कैसे आयी। इस बात का विस्मय। द्विविध मनोगति होने से व्याकुलता हुई।

जीति को सकइ अजै रघुराई। माया ते असि रचि नहिं जाई ॥
सीता मन बिचार कर नाना। मधुर बचन बोलेउ हनुमाना ॥२॥

अर्थ : श्रीरघुनाथजी अजेय हैं। उन्हें कौन जीत सकता है? और माया से ऐसी अँगूठी बनायी नहीं जा सकती। सीताजी मन में अनेक विचार करने लगीं। हनुमान्‌जी मधुर वचन बोले।

व्याख्या : यह मुँदरी अदेय है। पुरस्कार रूप से नहीं दी जा सकती। बिना उन्हें जीते कोई इसे पा नहीं सकता। इससे मुँदरी की बड़ी भारी विशेषता दिखलायी। प्रभु किसी से जीते जा नहीं सकते। यथा : सकल सुरासुर जुरें जुझारा। रामहि समर न जीतनिहारा। दूसरा पक्ष यह है कि किसी ने माया से ऐसी बना ली हो। सो यह भी सम्भव नहीं। माया से कोई ऐसा बना नहीं सकता : माया सब सिय माया माहूँ। अतः ये ही निर्णय कर सकती हैं कि : माया ते असि रचि नहिं जाई। सरकार की अँगूठी बोलती है। दूसरी नहीं बोल सकती। दो ही रास्ता अँगूठी के यहाँ आने का है। या तो कोई प्रभु को जीतकर ले आवे या माया से दूसरी रच ली गयी हो। पर यह दोनों बातें असम्भव हैं।

श्री सीताजी के मन में नाना प्रकार के विचार उठे। अभी रावण भग्नमनोरथ होकर गया है और उसके बाद ही मुँदरी गिरी है। आज इस समय उसके आने का विशेष कारण होना चाहिए। आग माँगने के समय अँगूठी का गिरानेवाला अदृश्य क्यों है? इत्यादि। हनुमान्‌जी ने देख लिया कि उन्मादावस्था मिट गयी। अब ये विचार में स्थित हो गयीं। अतः यही बोलने का समय है। फिर चौंक न पड़ें इसलिए मधुर वचन बोले। जो सीताजी को ही सुनाई पड़े।

रामचंद्र गुन बरनइ लागा। सुनतहिं सीता कै दुख भागा ॥
लागी सुनै श्रवन मन लाई। आदिहु ते सब कथा सुनाई ॥३॥

अर्थ : रामचन्द्रजी के गुणों का वर्णन करने लगे। सुनते ही सीताजी का दुःख भाग गया। कान और मन लगाकर सुनने लगीं। आदि से लेकर सब कथा सुनायी।

व्याख्या : स्वरतः मधुर कहकर अब अर्थतः भी मधुर कहते हैं। रामचन्द्र ऐसे चन्द्र हैं कि उनके गुण वर्णन मात्र से परिताप की शान्ति होती है। रघुपति बिरहानल सञ्जात दुःख प्रभु के गुण श्रवण से भाग गया। दुःख के भागने का यह अचूक औषध है। यथा : मन करि विषय अनल वन जरई। होइ सुखी जौ एहि सर परई। कान और मन को बड़ा सुख हुआ। कान और मन लगाकर सुनने का भाव यह है कि अति सूक्ष्म स्वर है। हनुमान्‌जी ने देखा कि खूब मन लगाकर सुन रही हैं। तब तो भगवती के सामने रामायण पारायण ही आरम्भ कर दिया। जो लक्ष्मणजी से सुना है सो सब सुना दिया।

श्रवनामृत जेहि कथा सुहाई। कही सो प्रकट होत किन भाई ॥
तब हनुमन्त निकट चलि गयऊ। फिरि बैठी मन बिसमय भयउ ॥४॥

अर्थ : जिसने कानों के लिए अमृत के समान यह कथा कही है भाई! वह प्रकट क्यों नहीं होता? तब हनुमान्‌जी पास चले गये। फिर बैठीं क्योंकि उनके मन में विस्मय हुआ।

व्याख्या : श्रवणामृत कथा से श्रवणशूल मिटा : पहिले ही कहा था सुनै को श्रवन सूल सम बानी। और सुख भी हुआ। अतः चिकित्सक का दर्शन चाहती हैं। भगवती ने समझ लिया कि वक्ता प्रकट होना चाहता है। पर क्रम से काम कर रहा है। पहिले मुद्रिका गिराया। तब गुन वर्णन किया। तत्पश्चात् कथा सुनाया। मुझे अपने साक्षात्कार के लिए तैयार कर रहा है। अब मैं उसे देखने के लिए कहूँ। अब प्रगट होने का कारण नहीं है। अतः कहती हैं सो प्रकट होत किन भाई।

तब हनुमान्‌जी निकट चले गये। वानररूप देखकर मुँह फेरकर बैठ गयीं। मन में विस्मय हुआ कि बन्दर मनुष्य की बोली कैसे बोलता है। निश्चय यह रावण है। फिर मुझे दुःख देने आया है। अथवा : एक बार बिलोकु मम ओरा। यह जो अभिलाषा प्रकट की थी। उसी की पूर्ति के लिए आया है।

रामदूत मैं मातु जानकी। सत्य सपथ करुनानिधान की ॥
यह मुद्रिका मातु मैं आनी। दीन्हि राम तुम कह सहिदानी ॥५॥
नर बानरहि संग कहु कैसें। कही कथा भइ संगति जैसें ॥६॥

अर्थ : हे माता जानकी! मैं रामजी का दूत हूँ। करुणानिधान की शपथ है। मैं सच कहता हूँ। हे माता! इस अँगूठी को मैं लाया हूँ। रामजी ने आपके लिए यह निशानी दी है। प्रश्न किया : नर और वानर का साथ कैसे हुआ? तब वह सब कथा कही। जिस भाँति संगति हुई।

व्याख्या : हनुमान्‌जी ने कहा मैं रामदूत हूँ। तू मेरी माँ है। जनक राजा की बेटी है। उनके सामने दैवी आसुरी माया की कौन चलावे ईश्वरीय माया नहीं चलती। ईश्वरीय माया का न चलना यथा : ब्रह्म जो निगम नेति कहि गावा।

उभय वेष धरि सोइ कि आवा। देवी आसुरी माया का न चलना यथा : देव दनुज धरि मनुज सरीरा। विपुल बीर आये रनधीरा। हनुमान्‌जी सेवक सेव्य का नाता प्रभु से जोड़ चुके हैं। अब माँ बेटे का नाता भगवती से जोड़ रहे हैं। रामदूत होने की सचाई के लिए करुणानिधान की शपथ लेते हैं। अत्यन्त प्यार की शपथ ली जाती है। सो हनुमान्‌जी को करुणानिधान सा प्यारा कौन है ? अतः उन्हीं की शपथ लेते हैं। करुणानिधान की कृपा से क्या नहीं होता ? मैं बन्दर होकर विद्वान् की भाँति बोल रहा हूँ। यह मुद्रिका जो तुम्हारे हाथ में है : इसे मैं लाया हूँ। यही मेरे रामदूत होने का प्रमाण है। तुम शीघ्र विश्वास न करोगी। इसीलिए यह चिन्हानी मुझे प्रभु ने दी है। तुम्हें देने के लिए। जीति को सकै अजय रघुराई। इस तर्क को इधर लगाओ। यदि वह न देते तो मैं कैसे पाता ? यदि कहो कि अदेय है तो किसी दूसरे को तो नहीं मिली। तुम्हारे लिए दिया है। सत्य सपथ करुणानिधान की। यह पद यहाँ भी लगेगा। वहाँ शब्द सङ्केत है। गिरजा भगवती ने कहा था : करुनानिधान सुजान सील सनेह जानत रावरो। तब से भगवती सरकार को करुणानिधान कहती हैं। वस्तु की और शब्द की दोनों सहदानियाँ : पहिचान मिल गयीं। सहदानी चिह्न : पहिचान या निशानी को कहते हैं। यथा : मैं तैं मेट्यो मोहतम ऊग्यो आतम भानु। संत राज सोइ जानिये तुलसी या सहिदानु। वै० सं०।

अब एक शङ्का यह रह गयी कि नर वानर का साथ कैसे हुआ ? इस पर हनुमान्‌जी ने मारुति मिलन प्रसंग। पुनि सुग्रीव मिताई। बालि प्राण कर भंग। आदि कथा कह सुनाई। पहिले लक्ष्मणजी से सुनी हुई रामकथा कहा। यह प्रमाणित करने के लिए कि मैं भली भाँति सरकार से परिचित हूँ। इतना परिचय राक्षसों को नहीं हो सकता। वानर सङ्ग की कथा छेड़ने से अविश्वास हो जायगा। इसलिए पहिले नहीं कहा। अब पूछने पर सब कह सुनाया।

दो. कपि के बचन सप्रेम सुनि, उपजा मन बिस्वास।
जाना मन क्रम बचन यह, कृपासिंधु कर दास ॥१३॥

अर्थ : कपि का प्रेम से युक्त वचन सुनकर मन में विश्वास उपजा। जान लिया कि यह मनसा वाचा कर्मणा कृपासिन्धु का दास है।

व्याख्या : वैर प्रेम नहि दुरै दुराये। जो विश्वास अँगूठी से नहीं हुआ कथा से नहीं हुआ सो सप्रेम वचन से हुआ। जान लिया कि यह मनसा वाचा कर्मणा रामजी का दास है। सप्रेम वचन से मनसा दास जाना। अँगूठी देने से कर्मणा और कथा सुनकर वचन से दास जाना। तिन्हते पुनि मोहि प्रिय निज दासा। जेहि गति मोरि न दूसरि आसा। अतः समझ लिया कि यह कृपासिन्धु का परम प्रेमपात्र है।

हरिजन जानि प्रीति अति बाढ़ी। सजल नयन पुलकावलि ठाढ़ी ॥
बूड़त बिरह जलधि हनुमाना। भयहु तात मो कहुँ जलजाना ॥१॥

अर्थ : भगवान् का भक्त जानकर अत्यन्त प्रीति बढ़ी। नेत्रों में जल भर आया

ओर शरीर पुलकित हो उठा : बोलीं : हे तात ! मैं तो विरह के समुद्र में डूब रही थीं । तुम मेरे लिए जहाज हो गये ।

व्याख्या : कृपासिन्धु के दास को हरिजन कहते हैं । हरिजन बहुत बड़ा दर्जा है । प्रीति तो पहिले ही कथाश्रवण से हुई थी । अब हरिजन जानने से अत्यन्त प्रीति बढ़ी । सात्त्विक भाव हुआ ! सब शङ्काएँ जाती रहीं । तब कहती हैं कि मैं तो विरह समुद्र में डूबती थी । बेटा ! तुम जहाज की भाँति मेरे लिए आगये । डूबनेवाले को जहाज के दिखाई पड़ने से ऐसा साहस आ जाता है । ऐसी आशा बँध जाती है कि वह अपने बचाने के लिए नयी स्फूर्ति के साथ हाथ पैर मारने लगता है और जहाज की प्राप्ति से तो उसके प्राण की रक्षा ही हो जाती है ।

अब कहु कुसल जाउँ बलिहारी । अनुज सहित सुख भवन खरारी ॥
कोमलचित कृपालु रघुराई । कपि केहि हेतु धरी निठुराई ॥२॥

अर्थ : मैं बलिहारी जाती हूँ । अब कहो कि छोटे भाई के सहित सुखधाम खरारि कुशल तो हैं । रघुनाथ तो कोमल हृदय और कृपालु हैं । हे हनुमान् ! उन्होंने किस कारण से निष्ठुरता धारण कर ली है ?

व्याख्या : हनुमान्‌जी ने माता का नाता जोड़ा । इसलिए माँ की भाँति भगवती बोल रही हैं कि जब से विछोह हुआ तब से कुछ कुशल समाचार न मिला : बड़े असमय में विछोह हुआ था । जब मारीच ने कपट से मरती समय लक्ष्मण का नाम लेकर पुकारा और जगदम्बा ने श्रीरामजी पर सङ्कट समझकर लक्ष्मणजी को भेजा । उधर से कोई समाचार न आया । इधर सीताहरण हो गया । अब सीताजी यह भी नहीं जानती कि दोनों भाइयों पर क्या बीती ? अतः भाई सहित रामजी की कुशल पूछती हैं । यद्यपि विश्वास है कि सुखभवन का सदा कुशल है और खरारि का राक्षसी माया क्या कर सकती है ? तथापि पापशङ्की चित्त कुशल जानना चाहता है । दूसरा प्रश्न यह है कि कोमल चित्त के लिए निष्ठुरता स्वभाव विरुद्ध है । फिर भी यदि कादर हो तो कृपा करने में असमर्थ होता है । प्रभु तो कृपालु हैं । दया वीर हैं । तिसपर रघुराई हैं और रघुकुल की प्रतिष्ठा संशय में है । अतः निष्ठुरता धारण करने का कोई कारण नहीं है । इसलिए पूछती हैं ।

सहज बानि सेवक सुखदायक । कबहुँक सुरति करत रघुनायक ॥
कबहुँ नयन मम सीतल ताता । होइहहिं निरखि स्याम मृदु गाता ॥३॥

अर्थ : सेवक को सुख देने की उनकी स्वाभाविक वानि : प्रकृति है । वे रघुनाथजी क्या कभी स्मरण करते हैं ? क्या कभी उनके कोमल श्यामल शरीर देखकर मेरे तप्तनेत्र शीतल होंगे ?

व्याख्या : उनका तो सेवक को सुख देने का सहज स्वभाव है । यथा : पुनि पुनि सत्य कहौं तोहि पाहीं । मोहि सेवक सम प्रिय कोउ नाहीं । सो क्या इस

सेविका का कभी स्मरण करते हैं। प्रेमास्पद कभी स्मरण करता है: इतना ही सुनने से प्रेमी कृतकृत्य हो जाता है। इसलिए यह तीसरा प्रश्न है। अब चौथा प्रश्न करती हैं। मेरी आँखें उस श्याम मृदु गात के दर्शन की प्यासी हो रही हैं। क्या ऐसा दिन भी कभी होगा जो ये आँखें उनके दर्शन से शीतल हों? उस श्याम मृदु गात के दर्शन न होने से ही तारे अङ्गारमय, चन्द्रमा पावकमय और नूतन किशलय कृशानु से प्रतीत होते थे।

बचनु न आव नयन भरि बारी। अहह नाथ हौं निपट बिसारी ॥
देखि परम बिरहाकुल सीता। बोला कपि मृदु बचन बिनीता ॥४॥

अर्थ: बोली नहीं निकलती। नेत्रों में जल भर आया। हा नाथ! मैं बिल्कुल भुला दी गयी। सीताजी को परम विरहाकुल देखकर हनुमान्जी कोमल और विनीत वचन बोले।

व्याख्या: फिर वही दशा हो गयी जो मुद्रिका पाने के पहिले हुई थी। न मुख से बात निकलती न आँखों में आँसू भर जाने से दिखाई पड़ता है। भूल गयी कि मैं हनुमान्जी से बात कर रही हूँ। सरकार को सम्बोधन करके कहने लगीं। हा नाथ! मैं सर्वात्मना भुलायी गयी। यह असह्य है। तन मन वचन से दीन हो रही हैं। वचन से दीनता यथा: वचन न आव। तन से दीनता यथा: नयन भरि बारी और मन से दीनता यथा: अहह नाथ हौं निपट बिसारी।

अतः फिर वही पद ज्यों का त्यों रख दिया: देखि परम बिरहाकुल सीता। इस बार हनुमान्जी को क्षण कल्प के समान नहीं बीता क्योंकि उपाय करने में समर्थ हैं। हनुमान्जी समयोचित वचन बोलते हैं। सुखी करने के श्रवणामृत वचन बोले थे। यथा: श्रवणामृत जेहि कथा सुनाई: विश्वास उपजाने के लिए सप्रेम बोले। यथा: कपि के बचन सप्रेम सुनि उपजा मन बिस्वास। समझाने के लिए अब मृदु विनीत वचन बोल रहे हैं।

मातु कुसल प्रभु अनुज समेता। तव दुख दुखी सुकृपा निकेता ॥
जनि जननी मानहु जिय ऊना। तुम्हते प्रेमु राम कें दूना ॥५॥

अर्थ: हे माता! छोटे भाई के सहित प्रभु कुशल हैं। परन्तु सुन्दर कृपा के धाम आपके दुःख से दुःखी हैं। हे माता! मन में न्यूनता न मानो। श्रीरामजी का प्रेम आपके प्रेम से दूना है।

व्याख्या: मातु सम्बोधन करके सावधान करते हैं। अपनी उपस्थित का स्मरण दिलाते हैं। पहिला प्रश्न यह था: अब कहु कुसल जाउँ बलिहारी। अनुज सहित सुख भवन खरारी। उसका उत्तर देते हुए कहते हैं: कुसल प्रभु अनुज समेता। प्रेमी प्रेमास्पद को अपने दुःख से दुःखी सुनकर सन्तुष्ट होता है। अतः उनका दुःख भी सुना दिया कि आपके दुःख से दुःखी हैं। नहीं तो और कोई दुःख उन लोगों को नहीं है। क्योंकि दूसरा प्रश्न यह पूछा था: कपि केहि हेतु धरी निठुराई।

उसका भी उत्तर साथ ही हो गया कि निठुराई एकदम नहीं है। तुम्हारे दुःख से दुःखी हैं। तीसरा प्रश्न है : कबहुँक सुरति करत रघुनायक। भाव यह कि प्रिया के नाते न सही सेविका के नाते कभी स्मरण करते हैं ? इसके उत्तर में हनुमान्‌जी कहते हैं कि तुम अपने को छोटा मानती हो। समझती हो कि प्रभु भूल गये। प्रेम करना मैं ही जानती हूँ। सो ऐसा ख्याल न करना। मैंने दोनों व्यक्ति का प्रेम देखा है। उनको तुमसे दूना प्रेम है। हनुमान्‌जी ने उत्तर देने में सरकार का ही रास्ता पकड़ा। बिना दूना प्रेम सुने प्रेमी को सन्तोष नहीं। जब हनुमान्‌जी से रामजी ने कहा : सुनु कपि जनि मानेसि मन ऊना। तैं मम प्रिय लछिमन ते दूना। तब हनुमान्‌जी को सन्तोष हुआ था। अतः आप भी उसी भाँति बोले।

दो. रघुपति कर संदेस अब, सुनु जननी धरि धीर।
अस कहि कपि गदगद भयउ, भरे बिलोचन नीर ॥१४॥

अर्थ : हे माता ! अब धीरज धरकर रघुपति का सन्देश सुनिये। ऐसा कहकर हनुमान्‌जी प्रेम से गद्‌गद हो गये। उनके नेत्रों में जल भर आया।

व्याख्या : केवल सुरति ही नहीं करते सन्देश भी भेजा है। यहाँ तक तो मैंने अपने मन से बातें कही हैं। अब उनका सन्देशा कहता हूँ। दूतो वदति नान्यथा : दूत को ज्यों का त्यों कहना पड़ता है। यह रघुपति का सन्देश है। सुनने से धैर्य छूट जायगा। सो पहले धैर्य धारण कर लें। इनकी गति देखकर बार बार सम्बोधन करते हैं। यथा : मातु कुसल प्रभु अनुज समेता। जनि जननी मानेसि जिय ऊना। सुनु जननी धरि धीर। जब कहते हुए वक्ता का धैर्य छूटता है तब सुनने से श्रोता का धैर्य छूटेंहीगा। यहाँ वक्ता का धैर्य छूटा। हनुमान्‌जी गद्‌गद हो गये। वाणी नहीं निकलती। आँखों में आँसू भर आये।

कहेउ राम बियोग तव सीता। मो कहु सकल भये बिपरीता ॥
नव तरु किसलय मनहु कृसानू। काल निसा सम निसि ससि भानू ॥१॥

अर्थ : रामजी ने कहा है कि हे सीते ! तेरे वियोग में मेरे लिए सब कुछ प्रतिकूल हो गया। पेड़ के नये नये कोपल : पत्ते तो मानो आग हो गये। रात्रि काल रात्रि हो गयी और चन्द्रमा सूर्य हो गये।

व्याख्या : यहाँ पर हनुमान्‌जी रघुपति का सन्देश कहते हैं। उसमें ऐसे शब्द हैं जिसे रामजी ही कह सकते हैं हनुमान्‌जी नहीं कह सकते। परन्तु सन्देश कहनेवाले को उन शब्दों को दोहराना ही पड़ता है। दूतो वदति नान्यथा : दूत अन्यथा नहीं कहता। अतः ज्यों के त्यों रामजी के शब्दों को दोहराते हैं। चलते समय इन सब बातों को रामजी ने हनुमान्‌जी से कहा था। परन्तु कवि ने वहाँ पर अतिसंक्षेप में सङ्केत की भाँति जना दिया है। यथा : बहु प्रकार सीतहि समुझाएहु। कहि बल बिरह बेगि तुम आएहु। क्योंकि यहाँ पर उसे बिस्तार के साथ कहना था। हनुमान्‌जी ने

अवसर के अनुसार पहिले विरह ही कहा। इसलिए कहते हैं कि कहेउ राम ये रामजी के शब्द हैं कि हे सीते ! तेरे वियोग में सब सुख के साधन मेरे लिए प्रतिकूल हो गये। प्रिय प्रियजन के वियोग में तो केवल विषाद हुआ था। यथा : प्रभु सिय लखन बैठि बट छाहीं। प्रिय परिजन बियोग बिलखाहीं। परिस्थिति ने पलटा नहीं खाया था। पर तेरे वियोग में परिस्थिति पलट गयी। मेरे लिए संसार बदल गया सबके लिए ज्यों का त्यों है।

परिस्थिति परिवर्त्तन को स्पष्ट करते हैं कि पतझड़ : शिशिर के मौसम में पेड़ों के पुराने पत्ते गिर जाते हैं और नये लाल लाल पत्ते निकलते हैं। तुम्हारे संयोग के समय वे शीतल मालूम होते थे। अब वे आग के समान दाहक प्रतीत होते हैं। हिमऋतु की बड़ी रात्रि तुम्हारे संयोग से सुखद थी। अब वह काल रात्रि सी प्रतीत होती है। ग्रीष्म में रात को केवल शीतांशु : चन्द्रमा का भरोसा रहता है। सो वे भी तुम्हारे बिना सूर्य की भाँति आग उगलते हैं।

कुबलय बिपिन कुंत बन सरिसा। बारिद तपत तेल जनु बरिसा ॥
जे हित रहे करत तेइ पीरा। उरग स्वास सम त्रिबिध समीरा ॥२॥

अर्थ : कमल तथा कुमुद के वन भालों के वन के समान हो गये हैं। मेघ मानो खौलता हुआ तेल बरसाते हैं। जो हित करनेवाले थे वे ही पीड़ा देते हैं और शीतल मन्द सुगन्ध वायु सर्प के श्वास के समान हो गयी है।

व्याख्या : शरद में दिन को कमल फूलते हैं और रात को कुमुद वन विकसित होते हैं। उनकी छटा तुम्हारे रहने से बड़ी कमनीय प्रतीत होती थी। सो अब वे भालों के वन की भाँति भयावह मालूम होते हैं। कुवलय का अर्थ कमल भी है और कुमुद भी है। यहाँ दोनों के ग्रहण के लिए पङ्कजादि अनेक शब्दों के रहते हुए भी कुवलय शब्द का प्रयोग किया है। भाव यह है कि रात और दिन दोनों भयानक हो गये हैं। पावस ऋतु में मेघों का बरसना कितना आनन्ददायक था। सो तुम्हारे बिना मालूम होता है कि तप्त तेल बरस रहे हैं। ज्यों बादल गरजते हैं त्यों मैं डर उठता हूँ कि ये अब तप्त तेल बरसेंगे। यथा : घन घमण्ड नभ गर्जत घोरा। प्रियाहीन डरपत मन मोरा।

तुम्हारे न रहने से हित ही पीड़ा करनेवाले हो गये हैं। जिनका वर्णन हो रहा है वे सब जगत् के हित करनेवाले हैं। सो आज ये सब मेरे लिए दुःखदायक हो गये। यहाँ तक कि वसन्त की शीतल मन्द सुगन्ध वायु भी उरग श्वास की भाँति उष्ण-तीव्र और दुर्गन्धयुक्त प्रतीत होता है. एवं सुखदायक छवों ऋतुएँ मेरे लिए प्राण की गाहक हो गयीं। पहिले कह आये हैं : तुमसे प्रेम राम कर दूना। उसी का प्रमाण देते हैं कि तुम्हें तो तारा चन्द्र और किशलय केवल तीन दुःखदायक हैं और मुझे तो किशलय, निसि, शशि, कुवलय, विपिन, वारिद ये छवों दुःखदायक हुए। अतः दूना प्रेम सिद्ध है।

कहेहू तें कछु दुख घटि होई। काहि कहौं यह जान न कोई ॥
तत्व प्रेम कर मम अरु तोरा। जानत प्रिया एकु मनु मोरा ॥३॥

अर्थ : कह डालने से दुःख कुछ घटता है पर कहूँ किससे। इसे कोई जानता नहीं। मेरे और तेरे प्रेम के तत्त्व को केवल मेरा मन जानता है।

व्याख्या : दूसरे से कहने से अवश्य दुःख में कुछ कमी होती है। कहा भी है : सुहृदि निरन्तरचित्ते गुणवति भृत्येऽनुवर्तिनि कलत्रे। स्वामिनि शक्तिसमेते निवेद्य दुःखं सुखी भवति। पर कहूँ किससे कोई इसका जाननेवाला भी तो हो। जो उस दुःख को समझे जिसे सहानुभूति हो उसी से कहने से दुःख घटता है। सुख दुःख को संसार जानता है। जो अनुकूल वेदनीय हो सो सुख है। जो प्रतिकूल वेदनीय है वही दुःख है। पर जिस दुःख से सारे अनुकूल वेदनीय पदार्थ प्रतिकूल वेदनीय मालूम पड़ने लगे उस दुःख को सब नहीं जानते। संसार लौकिक प्रेम से परिचित है। वह कान्ताविरह से दुःखी होता है। क्योंकि उसको भोग की प्राप्ति बन्द हो जाती है। उसके प्रेम का तत्त्व स्वार्थ है। वह ऐसे दुःख को नहीं जान सकता जिसमें सब सुखमय पदार्थ दुःखदायक जान पड़ने लगे।

हम लोगों : दोनों का प्रेम अलौकिक है। पुनीत है। उसमें स्वार्थ का गन्ध नहीं है। वह भेद : अन्तर नहीं सहन कर सकता। उसे केवल मेरा मन जानता है। और लोगों के मन की वहाँ तक पहुँच नहीं है। यथा : सिय राम अवलोकनि परस्पर प्रेम काहु न लखि परै। मन बुद्धि बर बानी अगोचर प्रगट कवि कैसे करै। यह विषय रस रूखे दम्पती का प्रेम लोक में दिखायी नहीं पड़ता। यथा : तुम्हरे जान काम अब जारा। अब लगि संभु रहे सबिकारा''हमरे जान सदा सिव जोगी। अज अनवद्य अकाम अभोगी। जौ मैं सिव सेयेउ अस जानी। प्रेम समेत कर्म मन बानी। तौ हमार पन सुनहु मुनीसा। करिहैं सत्य कृपानिधि ईसा।

तथा : गिरा अर्थ जल बीचि सम कहिअत भिन्न न भिन्न। सिय राम अवलोकनि परस्पर प्रेम काहु न लखि परै। मन बुद्धि बर बानी अगोचर प्रकट कवि कैसे करै।

सो मनु सदा रहत तोहि पाहीं। जानु प्रीति रस इतनेहि माहीं ॥
प्रभु संदेसु सुनत बैदेही। मगन प्रेम तन सुधि नहि तेही ॥४॥

अर्थ : वह मन सदा तेरे ही पास रहता है। इतने में ही प्रीति रस को समझ ले। प्रभु का सन्देश सुनते ही वैदेही प्रेम में मग्न हो गयीं। उनको शरीर की सुधि नहीं रह गयी।

व्याख्या : वह : मेरा मन तुझे छोड़कर कहीं जाता ही नहीं। भावार्थ यह है कि मानसिक वियोग नहीं है। इतने में ही प्रेमरस को समझ लो। अधिक जो कुछ कहना है वह इसी का विस्तार है। जो तुम समझती हो : मोहि निपट बिसारी।

सो बात नहीं है। एक क्षण भी मेरे चित्त से तुम उतरती ही नहीं। मेरा शरीर केवल यहाँ है मन तुम्हारे पास है। आधिदैविक दृष्टि से भी यही बात है। वह मायावृत्ति माया में रहती है ब्रह्म में नहीं रहती। अतः कहते हैं कि वह मन तुम्हारे पास है मेरे पास नहीं है। अर्थात् तुम्हारे और मेरे बीच में एक ही मन है यही प्रीति का रस है। विरह में ही प्रेम तत्त्व का यथार्थ विकास होता है। अतः इतनी बातों में ही प्रेमरस के जान लेने के लिए प्रभु का सन्देशा है।

रघुपति कर सन्देस अब सुनु जननी धरि धीर : से उपक्रम और प्रभु सन्देस सुनत बैदेही : से उपसंहार दिखलाया। पहिले ही सावधान किया था : सुनु जननी धरि धीर। सो धीर न धर सकीं। ऐसी प्रेम में मग्न हुईं कि शरीर की सुधि न रह गयी। प्रभु का सन्देशा है : जानु प्रीति रस इतनेहि माँहीं। सो प्रीति रस का अनुभव दिखलाते हैं : मगन प्रेम तन सुधि नहि तेही।

कह कपि हृदय धीर धरु माता। सुमिरु राम सेवक सुखदाता॥
उर आनहु रघुपति प्रभुताई। सुनि मम बचन तजहु कदराई॥५॥

अर्थ : हनुमान्‌जी ने कहा कि हे माता! हृदय में धीरज धारण करो और सेवकों के सुख देनेवाले रामजी का स्मरण करो। श्री रघुनाथजी की प्रभुता को हृदय में लाओ और मेरे वचन को सुनकर कायरता छोड़ो।

व्याख्या : बार बार हनुमान्‌जी को धैर्य धारण करने के लिए कहना पड़ा। पहिले विरह कहा। अब धैर्य धारण करने के लिए बल कहेंगे। सुमिरु राम सेवक सुखदाता। यही दुःख हटाने का साधन है। यथा : जपहि नाम जन आरत भारी। मिटहि कुसंकट होहि सुखारी। रघुपति की प्रभुता आप जानती हो पर उसे हृदय में स्थान नहीं देती हो। कदराई को स्थान दिये हो। सो उसे हृदय से निकालकर बाहर करो और प्रभुता को स्थान दो। जो शिक्षा सम्पाती से पाकर आये हैं उसी के अनुसार भगवती से विनय करते हैं। यथा : तासु दूत तुम तजि कदराई। राम हृदय धरि करहु उपाई।

दो. निसिचर निकर पतंग सम, रघुपति बान कृसानु।
जननी हृदयँ धीर धरु, जरे निसाचर जानु॥१५॥

अर्थ : राक्षसों का समूह पतङ्गों के समान और रघुपति के बाण अग्नि के समान हैं। हे माता! हृदय में धैर्य धारण करो। राक्षसों को जला हुआ ही समझो।

व्याख्या : जलती हुई आग में पतङ्गे अपने नाश के लिए आप से आप बड़े वेग से जा कूदते हैं। यथा : प्रदीप्तं ज्वलनं पतङ्गा विशन्ति नाशाय सवृद्धवेगाः। सो यह राक्षसों का समूह भुनगों का समूह है और रघुपति के बाण धधकती हुई आग हैं। आग के पहुँचने की देर है। भुनगे आप से आप आग में आ पड़ेंगे। यथा : प्रभु सनमुख धाये खल कैसे। सलभ समूह अनल कहँ जैसे। अतः इन्हें जला हुआ ही

समझो। यह भाव ध्वनित है कि बाण रूप में आगया हूँ। इन सबों को अभी भस्म करता हूँ। अतः धैर्य धरो। भगवती के पता लगाने में बहुत देर लगी। देर के उपालम्भ में तीसरा प्रश्न है। इसलिए इस प्रश्न पर बहुत कहना पड़ा जिसमें भगवती को धैर्य हो।

जौ रघुबीर होति सुधि पाई। करते नहिं बिलंबु रघुराई ॥
राम बान रबि उएँ जानकी। तम बरूथ कहँ जातुधान की ॥१॥

अर्थ : यदि रघुवीर ने सुधि पायी होती तो रघुराई देर न करते। हे जानकी ! रामबाणरूपी सूर्य के उदय होने पर राक्षसों की सेना रूपी अन्धकार फिर कहाँ ?

व्याख्या : अब चौथे प्रश्न का उत्तर देते हैं। प्रश्न है : कबहुँ नयन मम सीतल ताता। ह्वै है निरखि स्याम मृदुगाता। कहते हैं अब दर्शन में विलम्ब नहीं है। तुम्हारा पता ही नहीं था। उनका कोई दोष नहीं। पता के लिए छटपटा रहे थे। लक्ष्मणजी से कहा : बर्षा बिगत सरद रितु आई। सुधि न तात सीता कर पाई। एक बार कैसहु सुधि जानौं। कालहुँ जीति निमिष महु आनौं। कतहुँ रहे जौ जीवत होई। तात जतन करि आनौं सोई। मित्र सुग्रीव पर बिगड़ गये। हम लोगों से कहा : सीता सुधि पूछेहु सब काहू। रघुराई हैं। नीति का पालन करते हैं। रघुकुल की प्रतिष्ठा रक्षा में कभी विलम्ब न करेंगे। यदि कहिये कि राक्षसों से युद्ध करना पड़ेगा तो उस पर कहते हैं। रामबाण सूर्य है। यातुधान बरूथ अन्धकार हैं। कितना ही अधिक अन्धकार क्यों न हो सूर्य के उदय होने पर रह नहीं जाता। यथा : जिमि रबि उदय जाहि तम फाटी। भाव यह कि जो भुनगे होकर मुझ पर गिरेंगे उनको तो मैं निपटा दूँगा और सरकार के आने पर राक्षस निःशेष ही हो जावेंगे अथवा सरकार के बाण रात को अग्निरूप और दिन को सूर्य रूप होकर राक्षसों का संहार करेंगे।

अबहिं मातु मैं जाउँ लवाई। प्रभु आयसु नहिं राम दोहाई ॥
कछुक दिवस जननी धरु धीरा। कपिन्ह सहित अइहहिं रघुबीरा ॥२॥

अर्थ : हे माता ! मैं आपको अभी लिवा जाता। परन्तु रामजीकी शपथ है मुझे आज्ञा नहीं है। हे माता ! कुछ दिन धीरज धरो। रघुवीर बन्दरों के साथ आवेंगे।

व्याख्या : तब क्या पहिला बाण असमर्थ है ? इस पर कहते हैं : अबहिं मातु मैं जाउँ लवाई। अथवा भगवती को दृढ़ धैर्य देने के लिए कहते हैं। लङ्का भर के राक्षस अकेले मेरा कुछ नहीं कर सकते। पर प्रभु की आज्ञा इतनी ही है : कहि बल बिरह बेगि तुम्ह आयेहु। बात की सत्यता द्योतन के लिए हनुमान्जी शपथ लेते हैं केवल सान्त्वना के लिए नहीं। वस्तुस्थिति कह रहे हैं। आपके लेनेके लिए वे स्वयं आवेंगे। अब महीनों की बात नहीं है दिनों की बात है। रघुवीर हैं स्वयं समर्थ हैं। तिस पर बानरी सेना साथ होगी। यह बात वानरों की प्रतिष्ठा रखने के

लिए कह रहे हैं। अथवा रावण ने जो वर माँगा है : हम काहू के मरैं न मारे। बानर मनुज जाति दुइ बारे। सो दोनों योग जुट जायगा।

निसिचर मारि तोहि लै जैहहिं। तिहुँ पुर नारदादि जसु गैहहिं ॥
हैं सुत कपि सब तुम्हहिं समाना। जातुधान अति भट बलवाना ॥३॥

अर्थ : राक्षसोंको मारकर आपको ले जावेंगे। तीनों लोक में नारद आदि यश का गान करेंगे। हे बेटा ! क्या सब बन्दर तुम्हारे ही ऐसे हैं। राक्षस लोग अतिभट और बलवान् हैं।

व्याख्या : अपनी प्रतिज्ञा भी पूरी करेंगे। यथा : निसिचर हीन करौं महि भुज उठाइ प्रन कीन्ह। आदर के लिए स्वयं आवेंगे और इससे लोकोपकार भी होगा। यथा : त्रैलोक्य पावन सुजस सुरमुनि नारदादि बखानिहैं। जो सुनत गावत कहत समुझत परम पद नर पावई। यहाँ हनुमान्जीने जाम्बवान के वचन को दोहराया। क्योंकि यह वचन हनुमान्जी को अत्यन्त प्यारा लगा था। इस भाँति लङ्का और उत्तरकाण्ड की भी कथा कही। पूरा रामायण भगवती को सुना दिया।

प्रत्यक्ष का बाध शपथ से भी नहीं होता। हनुमान्जी का आकार देखकर विश्वास न हुआ। आठ अङ्गुल का तो हनुमान्जी का देह था। बारह अङ्गुल की पूँछ थी। यथा : अष्टाङ्गुलमयः कायः पुच्छो मे द्वादशाङ्गुलः। माता ने समझा कि उत्साह तथा भक्ति के उमङ्ग में राक्षसों को कुछ नहीं गिन रहा है। इसका किया क्या होनेवाला है ? अतः कहती हैं कि तुम्हारे समान बन्दरों की सहायता से क्या उपकार होगा। जो कहते हो : कपिन्ह सहित अइहहिं रघुबीरा। यहाँ तो राक्षस अति भट हैं और बड़े बलवान् हैं। भट से अधिक को महाभट और उससे भी अधिक को अतिभट कहते हैं।

मोरे हृदय परम संदेहा। सुनि कपि प्रगट कीन्ह निज देहा ॥
कनक भूधराकार सरीरा। समर भयंकर अतिबल बीरा ॥४॥
सीता मन भरोस तब भएऊ। पुनि लघु रूप पवनसुत लएऊ ॥५॥

अर्थ : मेरे हृदय में बड़ा भारी सन्देह है। यह सुनकर हनुमान्जी ने अपना देह प्रकट किया। सुमेरु : सोने के पहाड़ के समान शरीर है। समर में भयंकर और अति बलवीर हैं। तब सीताजी के मन में भरोसा हुआ। फिर पवनसुत ने अत्यन्त छोटा रूप धारण कर लिया।

व्याख्या : सीताजी ने कहा कि मुझे तो उनके उपकारक होने में बड़ा भारी सन्देह है। हनुमान्जी को विश्वास दिलाना परम आवश्यक था। अब बिना अपना शरीर दिखलाये काम नहीं चलता। अतः जिस शरीर को छिपा रक्खा था उसे प्रकट किया। अब यदि राक्षस देख लें तो भी कोई हानि नहीं। बातचीत कर ही चुके हैं। ह्रस्वाकार से कनक भूधराकार हो गये। कनक कहकर वर्ण तथा तेज भी

कहा। मूर्ति सुहावनी है, पर समर भयङ्कर है। मूर्ति के दर्शन से पता चलता है कि अति बलवीर हैं। यह हनुमान्‌जी का स्वाभाविक शरीर है। इसी का वर्णन काण्ड के आदि में है। ऐसी शरीर देखकर भगवती जनकनन्दनी को भरोसा हुआ कि हाँ! यह मुझे अकेले लिवा जा सकता है। तब हनुमान्‌जी ने फिर शरीर समेट लिया। माँ के सामने अपना गौरव प्रदर्शन नहीं चाहते थे। लाचार होकर ऐसा करना पड़ा। अतः उसके सम्मार्जन के लिए कहते हैं।

दो. सुनु माता साखामृग, नहि बल बुद्धि बिसाल।
प्रभु प्रताप ते गरुड़हि, खाइ परम लघु व्याल ॥१६॥

अर्थ : माता सुनो! हम पेड़ के डाल पर रहनेवाले मृग हैं। हमें विशाल बल बुद्धि नहीं होती। परन्तु प्रभु के प्रताप से गरुड़ को अत्यन्त छोटा सा साँप खा सकता है।

व्याख्या : हनुमान्‌जी ने कहा कि माता! मेरी जाति का यही रूप है जो मेरा इस समय आप देख रही हैं। न बुद्धि ही बड़ी है और न बल ही अधिक है। मेरी जाति की बल बुद्धि की समाप्ति एक शाखा से दूसरे पर कूद जाने में ही है। इसीलिए लोग शाखामृग कहते हैं। ये लोग उसी भाँति राक्षसों के भक्ष्य हैं जिस भाँति सर्पगण गरुड़ के भक्ष्य हैं। परन्तु प्रभु के प्रताप के योग से मुझमें इतना सामर्थ्य आगया है कि अपनी जाति में औरों से छोटा होते हुए भी राक्षसों का नाश कर सकता हूँ। प्रभु का प्रताप ही वानरी सेना से सब कुछ करावेगा। यथा : धरि गाल फारहिं उर बिदारहिं गल अँतावरि मेलहीं। प्रहलादपति जनु त्रिबिध तन धरि समर अंगन खेलहीं। नहीं तो वानरी सेना अपने बूते से क्या कर सकती है?

मन संतोष सुनत कपि बानी। भगति प्रताप तेज बल सानी ॥
आसिष दीन्हि राम प्रिय जाना। होहु तात बल सील निधाना ॥१॥

अर्थ : भक्ति प्रताप तेज और बल से सनी हुई हनुमान्‌जी की वाणी सुनकर सीताजी के मन में सन्तोष हुआ। रामजी का प्रिय जानकर आशीर्वाद दिया कि हे तात! तुम बल और शील के निधान होओ।

व्याख्या : स्वरूप देखनेसे भरोसा हुआ। वाणी सुनने से सन्तोष हुआ। क्योंकि इतना होने पर भी वाणी दीनता द्योतक थी और प्रभु दीनबन्धु हैं। अतः यह रामजी को प्रिय है, अथवा जो रामजी को प्रिय हो उसे छोड़कर अन्य कोई इतना समर्थ और बुद्धिमान् होने पर भी गलित अभिमान हो नहीं सकता। अतः निश्चय कर लिया कि यह प्रभु को प्रिय है। उनकी भक्ति प्रताप तेज और बल सानी वाणी सुनकर मन में सन्तोष हुआ। भक्ति से सनी हुई यथा : सुमिरु राम सेवक सुख दाता। प्रताप से सनी हुई यथा : राम बान रबिउए जानकी। तम बरूथ कहँ जातुधान की। तेज से सनी हुई यथा : प्रभु प्रताप से गरुड़हि खाइ परम लघु व्याल। बल सानी यथा : अबहि मातु मैं जाउँ लवाई।

सन्तुष्ट होने पर आशीर्वाद देना प्राप्त है। यहाँ राम प्रिय शब्द का तत्पुरुष और बहुव्रीहि दोनों समासों से अर्थ करना होगा। अर्थ होगा राम का प्रिय या राम हैं प्रिय जिसको। सो मन सदा रहत तोहि पाही : का उदाहरण यहीं देखिये कि प्रिय हैं रामजी को और आशीर्वाद सीताजी से मिल रहा है। पहिला आशीर्वाद बल के लिए है। क्योंकि इस जगत् में बल ही सब कुछ है। निर्बल को आत्मलाभ भी नहीं होता। यथा : नायमात्मा व बलहीनेन लभ्यः। शील बिना बल अनर्थ का कारण होता है। इसलिए दूसरा आशीर्वाद शीलनिधान होने का दिया।

अजर अमर गुननिधि सुत होहू। करहुँ बहुत रघुनायक छोहू ॥
करहुँ कृपा प्रभु अस सुनि काना। निर्भर प्रेम मगन हनुमाना ॥२॥

अर्थ : हे पुत्र ! तुम अजर अमर और गुण के निधान होओ और श्रीरघुनाथजी तुम पर बहुत छोह करें। प्रभु कृपा करें : ऐसा कान से सुनते ही हनुमान्‌जी पूर्ण प्रेम में मग्न हो गये।

व्याख्या : जरावस्था आ जाने से बल शील का नाश हो जाता है। अतः तीसरा आशीर्वाद अजर होने का मिला। जरावस्था न आवे। ऐसा आशीर्वाद शाप का भी काम दे सकता है। जवानी में मर जाने से भी वह आशीर्वाद सफल हो सकता है। अतः अमर कहा है। गुणहीन का दीर्घजीवन भी व्यर्थ ही है। यथा : काकोऽपि जीवति चिराय बलिञ्च भुंक्ते। अतः गुणनिधि होने का आशीर्वाद मिला। इतने आशीर्वाद पर भी हनुमान्‌जी को हर्षित न देखकर छठा आशीर्वाद देती हैं : करहु बहुत रघुनायक छोहू। राम के प्रिय हैं। अतः छोह तो इन पर बना ही है। अतः बहुत छोह के लिए आशीर्वाद देती हैं। पहिले भगवती ने तात कहा था। परन्तु तात का बड़ा विस्तृत अर्थ है। पिता, पुत्र, मित्र और प्रिय सबके लिए तात शब्द का प्रयोग होता है। परन्तु इस बार सुत सम्बोधन करके बेटा मान लिया। हनुमान्‌जी को हर सेवाओं के पुरस्कार में छः आशीर्वाद मिले। पहिले विरहोन्माद के समय हर्षोत्पादन किया। यथा : कपि कर हृदय बिचार दीन्ह मुद्रिका डारि तब। जनु असोक अंगार दीन्ह हरखि उठ कर गहेउ। अब मुद्रिका देखकर हर्ष विषाद से हृदय में व्याकुलता हुई। तब राम गुण वर्णन करके दुःख भगाया। यह दूसरी सेवा हुई। माता ने खल की शूल सी वाणी सुनी थी। उसे मिटाने के लिए श्रवणामृत राम कथा सुनाई। यह तीसरी सेवा हुई। सीताजी का नैराश्य मिटाया। यह चौथी सेवा हुई। यथा : भयउ तात मोहक जल जाना। भरोसा देना पाँचवी सेवा है। यथा : सीता मन भरोस तब भयऊ। उन्हें सन्तुष्ट करना छठी सेवा थी। यथा : मन संतोष सुनत कपि बानी। दारुण तप करके जिस अमरत्व को असुर न प्राप्त कर सके उस अमरत्व की प्राप्ति पर भी हनुमान्‌जी को हर्ष नहीं हुआ। करहु बहुत रघुनायक छोहू। इस आशीर्वाद पर हर्ष हुआ।

प्रभु का सन्देश सुनाकर भगवती को हनुमान्‌जी ने प्रेम में मग्न कर दिया।

यथा : मगन प्रेम तन सुधि नहिं तेही। इधर आशीर्वाद देकर भगवती ने उन्हें प्रेम में मग्न कर दिया। यथा : निर्भर प्रेम मगन हनुमाना।

बार बार नाएसि पद सीसा। बोला बचन जोरि कर कीसा॥
अब कृतकृत्य भयउँ मैं माता। आसिष तव अमोघ बिख्याता॥३॥

अर्थ : हनुमान्‌जी बार बार सीताजी के चरणों में सिर नवाते हैं। हाथ जोड़कर हनुमान्‌जी बोले। हे माता! अब मैं कृतकृत्य हुआ। आपका आशीर्वाद अमोघ है। यह बात प्रसिद्ध है।

व्याख्या : बार बार सिर नवाना कृतकृत्यता का लक्षण है। आगे चलकर कृतकृत्यता कहेंगे। निर्भर प्रेम मगन हनुमाना से मनसा प्रेम कहा। बार बार नाएसि पद सीसा से कर्मणा प्रेम और बोला बचन जोरि कर कीसा : से वचसा प्रेम भी कहा। भगवत् प्रीत्यर्थं ही सब साधन किया जाता है। प्रीति और छोह पर्यायवाची शब्द हैं। अतः छोह की प्राप्ति से कृतकृत्यता हुई अमरत्व प्राप्ति से नहीं। प्रभु के बाण अमोघ हैं। भगवती का आशीर्वाद अमोघ है। यह बात विख्यात है। यथा : तब प्रभाव जगविदित न केही। जाकी कृपा कटाक्ष सुर चाहत चितवन सोइ। यहाँ तक : पुनि सीतहि धीरज जिमि दीन्हा प्रसङ्ग है।

६०. वनविध्वंस प्रसङ्ग

सुनहु मातु मोहि अतिसय भूखा। लागि देखि सुंदर फल रूखा॥
सुनु सुत करहिं बिपिन रखवारी। परम सुभट रजनीचर भारी॥४॥
तिन्ह कर भय माता मोहि नाँहीं। जौं तुम्ह सुख मानहु मन माँहीं॥५॥

अर्थ : माता! सुनो सुन्दर फल और देखकर मुझे तो अत्यन्त भूख लग गयी है। बेटा! सुनो बड़े सुभट भारी राक्षस इस वन की रखवाली करते हैं। माता! यदि आप सुख माने तो इनका भय तो मुझे कुछ भी नहीं है।

व्याख्या : अस कहि लवन सिंधु तट जाई। बैठे कपि सब दर्भ डसाई। तब से बन्दरों का अनशन चल रहा है। हनुमान्‌जी और बन्दरों को तो फल मूल कन्द खाने के लिए कह आये हैं। पर अपने लिए तो यह निश्चय किया है कि बिना जगदम्बा का दर्शन किये जल न ग्रहण करूँगा। सो दर्शन हो गया। अब पारण होना चाहिए। इधर सवेरा भी हो गया। फल फूल स्पष्ट दिखाई देने लगे : वासव वरुण विधि वन ते सुहावनो दसानन को कानन वसंत के सिंगार सो। उसे देखकर और भी जोरों से भूख लगी। चित्त चाहने लगा कि रूख भी खा जायँ। बेटा अपनी भूख माँ से कहता है और माँ सुनती है। अतः माँ से कहते हैं। बात यह है कि हनुमान्‌जी को युद्ध करना इष्ट है। प्रभु की आज्ञा लेकर नहीं चले हैं। अतः माँ से फल खाने की आज्ञा माँगते हैं। अपनी भूख सुनाते हैं। जिसमें माँ से आज्ञा अवश्य ही मिल जाय। उसी

व्याज से युद्ध छिड़ जाय। प्रतिज्ञा किये हुए हैं। कहौंगे मुख की समर सहि कालि कारिख धोई। उसे पूरी करनी है।

माँ ने सुत सम्बोधन में वात्सल्य दिखलाया। बोलीं फल और वृक्षों की रक्षा के लिए बड़े भारी भारी राक्षस नियत हैं। सो वे सब न खाने देवेंगे। युद्ध करेंगे। हनुमान्‌जी ने कहा कि माता उनका मुझे डर नहीं है। तुम्हारा डर है। कहीं यह न समझो कि मैं विपत्ति के दिन बैठी हुई इस वाटिका में काट रही हूँ। सो हनुमान् ऐसा अविनीत है कि यहाँ आकर उपद्रव मचा दिया। आप मन से सुख मानें। बाहर से मेरे फल खाने आदि पर भले ही नाराजगी दिखलावें।

दो. देखि बुद्धि बल निपुन कपि, कहेउ जानकी जाहु।
रघुपति चरन हृदय धरि, तात मधुर फल खाहु ॥१७॥

अर्थ : कपि को बुद्धि और बल में निपुण देखकर जानकीजी ने कहा कि जाओ और रघुपति के चरणों को हृदय में धारण करके मीठे फल खाओ।

व्याख्या : तिन्ह कर भय माता मोहि नाहीं से बल का परिचय पाया और जौं तुम सुख मानहु मन माही : से बुद्धि का परिचय पाया। तब आज्ञा दे दी और विजय का मन्त्र बतला दिया कि रघुपति के चरणों को हृदय में रख लो। सब कल्याण होगा। यथा : ध्येयं सदा परिभवघ्नमभीष्टदोहं तीर्थास्पदं शिवविरंचिनुतं शरण्यम्। भृत्यार्तिहं प्रणतपालभवाब्धिपोतम् वन्दे महापुरुष ते चरणारविन्दम्। माता है शिक्षा देती है कि मीठे फल खाना। भूख में कच्चे फल न खा जाना।

चलेउ नाइ सिरु पैठेउ बागा। फल खाएसि तरु तोरन लागा॥
रहे[1] तहाँ बहु भट रखवारे। कछु मारेसि कछु जाय पुकारे ॥१॥

अर्थ : सीताजी को : सिर नवाकर चले और बाग में घुस गये। फल खाये और वृक्ष तोड़ने लगे। वहाँ पर बहुत से भट रखवाले थे। उनमें से कुछ को मार डाला और कुछ ने जाकर पुकार की।

व्याख्या : आसिख आयसु पाइ कपि सीय चरन सिर नाइ। तुलसी रावन बाग फल खात बराइ बराइ। बाग में नहीं थे वाटिका में थे। फिर भी वहाँ से बाग दिखायी पड़ता था इसलिए : चलेउ नाइ सिर कहा। माता की आज्ञानुसार पका फल चुनकर खाते हैं। फल खाने तक शान्त रहे किसी ने न जाना। खा चुकने के बाद पेड़ तोड़ने लगे। तब बड़ा शब्द हुआ। इसलिए पहिले पेड़ नहीं तोड़ा कि युद्ध प्रारम्भ हो जायगा तो खाने नहीं पावेंगे। बाग में रखवारे तो बहुत थे पर उस समय वे ही थे जिनका पहरा था। फिर भी कम नहीं थे। उनमें से कुछ को

---

१. वर्षा घोर निसाचर रारी—आर्द्रादि दशतारक वर्षा के नक्षत्र हैं। उनमें से हनुमान्‌जी की : लङ्का में यह पहिली लड़ाई आर्द्रा नक्षत्र की वर्षा है।

मारा और कुछ को रावण के यहाँ खबर देने के लिए छोड़ दिया। यदि सबको मार देते तो लड़ाई वहीं समाप्त हो जाती। जिन्होंने चोट नहीं खायी थी उन्होंने जाकर रावण के यहाँ पुकार मचायी।

नाथ एक आवा कपि भारी। तेहिं असोक बाटिका उजारी ॥
खाएसि फल अरु बिटप उपारे। रच्छक मर्दि मर्दि महि डारे ॥२॥

अर्थ : हे नाथ ! एक भारी बन्दर आया है। उसने अशोक वाटिका उजाड़ डाली। फल खाये। वृक्षों को उखाड़ डाला और रक्षकों को मसल मसलकर पृथ्वी पर फेंक दिया।

व्याख्या : कपि भारी : कहने का भाव यह कि यदि सामान्य बन्दर होता तो हम लोग मार डाले होते। पर वह हम लोगों के बूते का नहीं है। बड़ा भारी है। नाथ कहने का भाव यह कि आप से नाथ के रहते हम लोग अनाथ की भाँति मारे गये। उस बन्दर की ढिठाई और बल दिखलाते हैं कि उसने अशोक वाटिका : प्राणन ते प्यारो मेघनाद ते दुलारो बाग : उजाड़ डाला। अब उजाड़ने की विधि कहते हैं कि फल सब खा गया और पेड़ उखाड़ डाले। पेड़ों का नाश ही उसने यथेष्ट नहीं समझा। टूटने के बाद कदाचित् फिर न पनपें इसलिए जड़ से उखाड़ फेंका। इतना बलवान् है कि राक्षसों को मसलकर फेंक दिया। तीन अपराध किये : १. खायेसि फल २. बिटप उपारे और ३. रक्षक मर्दि मर्दि महि डारे।

सुनि रावन पठएउ भट नाना। तिनहि देखि गर्जेउ हनुमाना ॥
सब रजनीचर कपि संहारे। गए पुकारत कछु अधमारे ॥३॥

अर्थ : सुनकर रावण ने नाना प्रकार के भट भेजे। उन्हें देखकर हनुमान्जी गर्जे। सब राक्षसों को हनुमान्जी ने मार डाला। कुछ अधमरे पुकार करते हुए गये।

व्याख्या : नाना भट अर्थात् मन्त्री पुत्र किङ्कर नामवाले और जम्बूमाली को भेजा। पहिली लड़ाई के भट हनुमान्जी को कुछ मालूम ही नहीं पड़े। इसलिए गर्जना नहीं की। ये नाना भट कुछ समझाई पड़े। अतः उन्हें देखकर गर्जे। रावण को पता चल गया है। इसलिए किसी को छोड़ने की आवश्यकता नहीं रह गयी। अतः सबको मार डाला। कुछ अधमरे बच गये। वे वहीं से ही रोते चिल्लाते रावण के यहाँ चले। हार जीत की खबर मालिक को देना चाहिए। हनुमान्जी के निसिचर संहार विधि का वर्णन अन्यत्र इस प्रकार से किया है। यथा—

हाथिन सो हाथी मारे घोर सो संघारे घोरे
रथनि सों रथ विदरनि बलवान की।
चंचल चपेट चोट चरन चकोट चाहें
हहरानी फौजें भहरानी जातुधान की ॥

बार बार सेवक सराहना करत राम
तुलसी सराहैं रीति साहेब सुजान की।
लांबी लूम लसत लपेटि पटकत भट
देखो देखो लखन लरनि हनुमान की॥

पुनि पठयउ तेहिं अच्छकुमारा। चला संग लै सुभट अपारा॥
आवत देखि बिटप गहि तर्जा। ताहि निपाति महा धुनि गर्जा॥४॥

अर्थ : फिर रावण ने अक्षकुमार को भेजा। वह असंख्य सुभटों को लेकर चला। आते देखकर हनुमान्‌जी ने पेड़ लेकर डाँटा और उसे मारकर महाध्वनि से गर्जना की।

व्याख्या : राजा के बेटे को कुमार कहते हैं। इससे अक्ष को रावण का पुत्र होना द्योतित किया। रावण ने समझा कि अब यहाँ अक्ष का काम है। अक्ष के बल पर भरोसा है। वह असंख्य सुभटों को साथ लेकर चला। पहिली लड़ाई के योद्धा भट थे। दूसरी लड़ाई में नाना भट भेजे गये। अब तीसरी लड़ाई में सुभट चले।

हनुमान्‌जी पेड़ पर चढ़े हुए लङ्का से कुमक आने का बाट जोह रहे थे। आते देखकर उखाड़े हुए पेड़ों में से एक को उठा लिया। हनुमान्‌जी आगे बढ़कर स्वागत करते हैं। ऐसी चोट की कि अक्ष समाप्त ही हो गया और तब महा धुनि से गर्जे जिससे रावण तक शब्द पहुँच जाय। पहिली लड़ाई में गर्जे ही नहीं। दूसरे में गर्जे और इस बार तो महाधुनि से गर्जे। जिस भाँति रावण की ओर से उत्तरोत्तर बलवत्तर सेना आ रही है उसी प्रकार महावीरजी का पुरुषार्थ उत्तरोत्तर बढ़ता चला जाता है। क्योंकि दनुज बन कृसानु हैं। पहिली लड़ाई से दूसरी दूनी हुई। क्योंकि पहिले का वर्णन आधे पद में है और दूसरे का पूरे पद में। यह लड़ाई दूसरी से भी पञ्चगुनी हुई। क्योंकि इसका वर्णन पाँच पदों में करते हैं।

दो. कछु मारेसि कछु मर्देसि, कछु मिलएसि धरि धूर।
कछु पुनि जाइ पुकारे, प्रभु मर्कट बल भूरि॥१८॥

अर्थ : कुछ को मारा। कुछ को मसल डाला और कुछ एक को पकड़कर धूल में मिला दिया और कुछ ने जाकर पुकार की कि बन्दर बड़ा बलवान् है।

व्याख्या : पहिले ही सरदार को मार दिया। अब सेना की ओर झुके तो कुछ एक तो मार डाला और कुछ एक को शरीर में मर्दन किया। यथा : कोटिन्ह गहि सरीर सन मर्दा। और कुछ एक को धूल में मिला दिया। उनके अवयवों का भी पता न चला। अपार सुभट आये थे पर यहाँ सब आकर कुछ हो गये। चार बार कुछ शब्द का प्रयोग है। इससे सिद्ध होता है कि एक चौथाई मारे गये। एक चौथाई मर्दे गये। एक चौथाई धूल में मिलाये गये और एक चौथाई भाग निकले। मारा पेड़ से मर्दा शरीर से और धूल में मिलाया हाथ से। किसी का

सामर्थ्य नहीं कि रावण से जाकर कहे कि अक्ष मारे गये। अतः उन सबों ने जाकर पुकार मचायी कि बन्दर बड़ा बलवान् है। जिसका अर्थ ही यही है कि अक्ष मारा गया।

सुनि सुत बध लंकेस रिसाना। पठएसि मेघनाद बलवाना ॥
मारेसि जनि सुत बाँधेसु ताहीं। देखिअ कपिहि कहाँ कर आहीं ॥१॥

अर्थ : पुत्रबध सुनकर रावण क्रोधित हो उठा। बलवान् मेघनाद को भेजा : कहा कि बेटा! उसे मार न डालना। उसे बाँध लेना। देखा जाय कि वह कहाँ का है।

व्याख्या : सुतवध सुनकर रावण ने विशेष क्रोध किया। विशेष क्रोध करने को ही रिसाना कहते हैं। अक्ष के भेजने तक महल में रहा। समय आ जाने से दरबार में चला गया। वहाँ अक्ष वध की खबर लगी। इसी से : लंकेस रिसाना कहते हैं। विभीषण और मन्दोदरी को राय थी कि जो हुआ सो हुआ बन्दर को निकल जाने दो। रावण के वर का स्मरण करके भय के लिए यथेष्ट कारण था। यथा : काहू कान कियो न मैं कह्यो हौं केतिक कालि है। बापुरो विभीषण पुकारि बार बार कह्यौ बानर बड़ी बलाय घने घर घालि है। रावण दरबार में चले गये। अक्ष से बड़ा वीर मेघनाद ही है। उसके बल पर रावण को बड़ा भरोसा है। अतः मेघनाद को भेजा। जानता है कि मेघनाद बन्दर को मार भी सकता है और बाँध भी सकता है। अतः उससे कहा कि भ्रातृहा समझकर मार न डालना। बाँध लेना। असली शत्रु तो वह है जिसने इसे भेजा है। इसके मारे जाने से उसका पता न चलेगा : बन्दरों का राजा बालि मेरा मित्र है। बन्दर मेरे प्रतिकूल आचरण नहीं कर सकते। यह कहाँ का बन्दर है जो बालि का अनुशासन नहीं मानता? अथवा यह इन्द्रादिक किसी देवता का भेजा हुआ है। ठीक पता लगाना ही चाहिए।

चला इंद्रजित अतुलित जोधा। बंधु निधन सुनि उपजा क्रोधा ॥
कपि देखा दारुन भट आवा। कटकटाइ गर्जा अरु धावा ॥२॥

अर्थ : इन्द्र को जीतनेवाला अतुल योद्धा चला। भाई का मरना सुनकर क्रुद्ध हो उठा। हनुमान्‌जी ने देखा कि दारुण भट आगया। सो कटकटार गर्जे और दौड़ पड़े।

व्याख्या : अतुलित योद्धा हैं : बारिद नाद जेठ सुत तासू। भट महँ प्रथम लीक जग जासू। जेहि न होइ रन सम्मुख कोई। सुरपुर नितहि परावन होई। केवल पिता की आज्ञा से वीररस के अधिष्ठाता इन्द्र को बाँध लाया था। इस पर ब्रह्मदेव ने उसे इन्द्रजीत की पदवी दी थी। इस बार तो पिता की आज्ञा भी है और भाई के मारे जाने से क्रुद्ध भी है। सो बाँध लाने के लिए चला। वीर दूसरे वीर को देखकर बल का अन्दाज कर लेते हैं। यथा : दुहु दिसि जय जयकार करि निज निज जोरी जानि। भिरे बीर इत रामहित उत रावनहि बखान। हनुमान्‌जी

ने देखा कि भट, नाना भट, सुभट हो चुके। अब दारुण भट आ रहा है। अतः कटकटाकर उसके स्वागत के लिए गर्जे और दौड़े। ध्यान रखने की बात है कि अक्ष की अगवानी में महाध्वनि से गर्जे थे। इसके आने पर कटकटाकर गर्जे। युद्ध का बड़ा उत्साह है। शत्रु से आगे जाकर मिलते हैं।

अति बिसाल तरु एक उपारा। बिरथ कीन्ह लंकेस कुमारा॥
रहे महा भट ताके संगा। गहि गहि कपि मर्दइ निज अंगा॥३॥

अर्थ : एक बड़ा भारी पेड़ उखाड़ लिया और लङ्कापति के बेटे के रथ को तोड़ डाला। उसके साथ में महा भट थे। उन्हें पकड़ पकड़कर हनुमान्‌जी अपने शरीर में मर्दन करने लगे।

व्याख्या : दारुण भट हैं। इसे रथी रहने देना ठीक नहीं। अतः उसके रथ के नष्ट करने के लिए एक बड़ा भारी पेड़ उखाड़ लिया और उसके चोट से मेघनाद के रथ को तोड़ डाला। भारी विजय हुई। इन्द्रजीत को विरथ करनेवाला दूसरा कौन है ?

अक्ष के साथ सुभट थे। इसके साथ महाभट हैं। उन्हें पकड़ पकड़कर हनुमान्‌जी शरीर से मर्दन करते हैं। इस समय कालरूप हो रहे हैं। राक्षसों के रुधिर वसा के पङ्क से शरीर लिप्त हो रहा है। मानों उबटन लगाकर कालिमा छुड़ा रहे हैं। भाव यह कि विरथ करके उसके सहायकों को मार करके उसे अपने बराबरी की परिस्थिति में लाना चाहते हैं। अक्ष के साथ अपार सेना थी। अक्ष के जीते जी उस सेना के पार पाने में कठिनता थी। अतः पहिले अक्ष को मारा तब सेना के संहार में सुभीता हुआ। यहाँ दारुण भट हैं। उसके ससहाय रहने से विजय में कठिनता थी। अतः उसे विरथ करके उसके सहाय का संहार करके उसे अपनी भाँति एकाकी बनाया।

तिनहि निपाति ताहि सन बाजा। भिरे जुगल मानहु गजराजा॥
मुठिका मारि चढ़ा तरु जाई। ताहि एकछन मुरुछा आई॥४॥

अर्थ : उन सबों को मारकर उससे भिड़ गये। मानों दो गजराज भिड़ गये हों। घूँसा मारकर पेड़ पर जा बैठे। उसे एक क्षण के लिए मूर्च्छा आगयी।

व्याख्या : मेघनाद बलदर्पित खड़ा है। दूसरे से संग्राम में लगे हुए वीर पर अस्त्र नहीं छोड़ता। हनुमान्‌जी सबको मारकर उससे जा भिड़े। मेघनाद ने भी अस्त्र नहीं चलाया। मल्लयुद्ध करने लगा। देखा कि बन्दर बिना अस्त्र के बाहुबल से युद्ध कर रहा है। इसके साथ बाहुबल से ही युद्ध करना चाहिए। अतः दोनों के भिड़ने का गजराजों के भिड़ने से उपमा देते हैं। गजराज सिर से सिर मिलाकर शुण्ड से शुण्ड लपेटकर युद्ध करते हैं। यहाँ भी सिर से सिर भुजा से भुजा मिलाकर युद्ध हुआ।

हनुमान्‌जी घूँसा मारकर पेड़ पर जा चढ़े कि देखें अब लङ्का से कौन आता है ? भीतर यह धारणा हुई कि इस घूँसे से यह न उठेगा। हनुमान्‌जी का घूँसा बड़ा दृढ़ है। यथा : लागेगी तापै दृढ़ मूकी हनुमान् की। रावण के साथ भी यही बात हुई। जब रावण इनका घूँसा खाकर गिरा और उठकर हनुमान्‌जी के बल की प्रशसा करने लगा तब कहते हैं : धिग धिग मम पौरुष धिग मोही। जो तैं जिअत रहेसि सुरद्रोही। यहाँ मेघनाद असाधारण वीर है। घूँसा लगने पर भी नहीं मरा। केवल क्षणभर के लिए मूर्च्छित हो गया।

उठि बहोरि कीन्हिस बहु माया। जीति न जाइ प्रभंजन जाया ॥५॥

अर्थ : फिर उठकर उसने बहुत सी माया की। पर प्रभञ्जन : वायु के पुत्र जीते नहीं जा सकते।

व्याख्या : मूर्च्छा बीत जाने पर उठ तो गया पर भिड़ने का साहस नहीं रह गया। दूर दूर से माया करने लगा। ऐसा घूँसा खाया है कि अब यावज्जीवन हनुमान्‌जी के निकट न जायगा। यथा : बार बार पचार हनुमाना। निकट न आव मरमु सो जाना। राक्षसों का परम बल माया है। पर ये प्रभञ्जन के पुत्र हैं। सबका भञ्जन कर दिया। तब मेघनाद समझ गया कि शत्रु अजेय है।

दो. ब्रह्मअस्त्र तेहि साधा, कपि मन कीन्ह बिचार।
जौं न ब्रह्मसर मानौं, महिमा मिटइ अपार ॥१९॥

अर्थ : अन्त में उसने ब्रह्मास्त्र का सन्धान किया। तब हनुमान्‌जी ने विचार किया कि यदि मैं इसे भी नहीं मानता तो अपार महिमा मिट जायगी।

व्याख्या : जब कोई बल नहीं चलता तभी ब्रह्मास्त्र का प्रयोग किया जाता है। मनुष्यों पर उसका चलाना मना है। सो प्राणकृच्छ्र उपस्थित होने पर उसने बन्दर पर चला दिया। हनुमान्‌जी धनुर्वेद के आचार्य हैं : रुक्मी के गुरु हैं। रुक्मी सम्पूर्ण कौरव वीरों या पाण्डव वीरों से सामना करने का साहस रखता था। तुरन्त पहिचान गये। विचार करने लगे कि यदि मैं ब्रह्मास्त्र न मानूँ तो वह भी मेरा कुछ नहीं कर सकता। परन्तु मेरे हाथों से ब्रह्मदेव की अपार महिमा न मिटनी चाहिए। अपार इसलिए कहा कि ब्रह्मदेव के वचन को सत्य करने के लिए रामावतार हुआ है। यथा : प्रभु बिधि बचन कीन्ह चह साँचा। उस मर्यादा की रक्षा करनी चाहिए और ब्रह्मदेव ने वर देने के समय कहा भी था कि एक बार राजदर्शन के लिए तुम्हें ब्रह्मास्त्र मानना पड़ेगा और मेरा यह महान् उद्यम भी रावण से बातचीत करने के लिए है। सो ब्रह्मास्त्र मान लेने से ये मुझे रावण के यहाँ ले जावेंगे। तब उसे समझाने का अवसर प्राप्त होगा। अतः हनुमान्‌जी ने ब्रह्मास्त्र मान लेना निश्चय कर लिया।

ब्रह्मबान कपि कहुँ तेहि मारा। परतिहु बार कटकु संघारा ॥
तेहि देखा कपि मुरुछित भयऊ। नागपास बाँधेसि लै गयऊ ॥१॥

अर्थ : उसने कपि को ब्रह्मास्त्र मारा : जिसके लगते ही नीचे गिर पड़े। गिरते हुए भी सेना मारी। उसने हनुमान्‌जी को मूर्च्छित देखा। नागपाश से बाँध ले गया।

व्याख्या : परतिहु बार : कहकर हनुमान्‌जी का ब्रह्मास्त्र मान लेना कहा। जो महाभट मेघनाद के साथ आये थे उनके मारे जाने पर नयी कुमक लङ्का से आयी है उसका संहार गिरते गिरते किया। ब्रह्मास्त्र लगने पर भी इतनी सावधानी है कि सेना में जाकर गिरे और ऐसा हाथ पैर पीटा और पलटा लिया कि कटक का संहार हो गया। मेघनाद निकट नहीं आता। दूर से देखता है कि सचमुच मूर्च्छित हुआ है कि दूसरा घूँसा मारने के लिए दम्मी साधे है। मेघनाद को इनका पराक्रम देखकर भय था कि कदाचित् इस पर ब्रह्मास्त्र भी काम न करे। अथवा यह देखा कि मर गया या मूर्च्छित है। देख लिया कि मूर्च्छित है तब चिन्ता हुई कि मूर्च्छा से जागने पर इसके लिए क्या उपाय किया जायगा ? अतः इसी समय बाँध लेना चाहिए। पर यह लौकिक बन्धन के वश का नहीं है। इसलिए नागपाश से बांधा और ले गया। पिता की आज्ञा थी : मारेसि जनि सुत बाँधेसु ताही। सो पूरी हुई।

जासु नाम जपि सुनहु भवानी। भव बंधन काटहिं नर ग्यानी ॥
तासु दूत कि बंधतर आवा। प्रभु कारज लगि कपिहि बँधावा ॥२॥

अर्थ : हे भवानी ! सुनो। जिसका नाम जपकर ज्ञानी भवबन्धन को काट डालते हैं उसका दूत कहीं बन्धन में आ सकता है ? प्रभु के कार्य के लिए कपि ने स्वयं अपने को बँधा लिया।

व्याख्या : भवानी के सन्देह की आशङ्का से ज्ञानघाट के वक्ता शङ्करजी बोले। यह बात भवानी सम्बोधन से स्पष्ट हुई। नाम जपने से ज्ञान होता है। यथा : ततः प्रत्यक् चेतनाधिगमोऽन्तरायाभावश्च। यो. सू.। नाम जपने से प्रत्यक् चेतन का ज्ञान होता है और विघ्न नष्ट होते हैं और : ज्ञान मोच्छप्रद बेद बखाना। अतः नाम के जप से भवबन्धन कटता है और नागपाश ब्रह्मपाश और वरुणपाशादि तो भवबन्धन के कार्य हैं। ये भवबन्धन के सामने कुछ भी नहीं हैं।

हरि सेवकहि न ब्याप अविद्या। जिसे अविद्या नहीं बांध सकती उसे नागपाश क्या बाँधेगा ? भाव यह कि नागपाश का प्रभाव मिट गया। मूर्ख निशाचरों ने बन्धन दृढ़ करने के लिए रस्सी सीकड़ आदि अन्य बन्धनों से भी बाँध दिया। नागपाश अन्य बन्धन को सहन नहीं कर सकता। इसलिए उसका प्रभाव जाता रहा जिसे जानकर मेघनाद बड़ा दुःखी हुआ। पर हनुमान्‌जी ने रावण को समझाने का अवसर पाने के लिए उन बन्धनों को मान लिया। नहीं तो वस्तुतः वे विनिर्मुक्त हो गये थे।

कपि बंधन सुनि निसिचर धाए। कौतुक लागि सभा सब आए ॥

६१. रावणप्रबोध प्रसङ्ग

दसमुख सभा दीखि कपि जाई। कहि न जाइ कछु अति प्रभुताई ॥३॥

अर्थ : बन्दर का बाँधा जाना सुनकर राक्षस दौड़े और तमाशा देखने के लिए सब सभा में आये। हनुमान्जी ने जाकर दशानन की सभा देखी। अत्यन्त प्रभुता कुछ कही नहीं जाती।

व्याख्या : बन्दर के देखने का कौतुक लङ्का भर को था। पर कोई देखने नहीं जाता था कि कहीं सैनिक के धोखे में मारे न जायँ। कपि का बन्धन बड़ा दुर्घट व्यापार था। सो बन्धन की खबर लङ्का भर में गूँज गयो। अतः सब दौड़े पर आये सभा में। रास्ते में नहीं मिले कि कहीं बन्धन छुड़ा न ले और दरबार में यदि तोड़ावेगा भी तो रावण रहेंगे। कोई हर्ज न होगा। इसलिए सब सभा में कौतुक देखने आये।

हनुमान्जी ने दशमुख को सोये तो देखा था। पर सभा में नहीं देखा था। सभा में रावण के सामने पेश हुए। दीख कपि जाई का भाव यह कि अपनी इच्छा से बँधे बँधाये गये। लङ्का की सभी बातें अलौकिक हैं। अतः कहते हैं : कहि न जाय कछु अति प्रभुताई। सैनिकों के लिए कहा : को गनै। सेना बल के लिए कहा : बरनत नहिं बनै। महल के लिए कहा : कहि जात सो नाहीं। अब प्रभुता के लिए कहते हैं : कहि न जाय कछु अति प्रभुताई।

कर जोरे सुर दिसिप बिनीता। भृकुटि बिलोकत सकल सभीता ॥
देखि प्रताप न कपि मन संका। जिमि अहिगन महु गरुड़ असंका ॥४॥

अर्थ : देवता और दिक्पाल बड़ी नम्रता से हाथ जोड़े सब रावण की भौंह भयभीत हुए ताक रहे हैं। प्रताप देखकर बन्दर के मन में कुछ भी शङ्का नहीं हुई जैसे सर्प समाज में गरुड़ निशङ्क हो।

व्याख्या : अति प्रभुताई को स्पष्ट करते हैं। दानव देव दयावने दीन दुखी दिन दूरहि ते सिर नावैं। आज्ञापालन के लिए भृकुटी देखते हैं। क्या आज्ञा कब होगी इसका ठीक नहीं। इसलिए सभीत हैं। इशारे पर काम न हुआ तो रावण नाराज हो जायँगे। इसलिए सभीत हो भृकुटी देखते हैं।

दिक्पाल सशङ्क हैं पर हनुमान्जी नहीं। साँपों की सभा में कौन सशङ्क न होगा ? विशेषतः रावणरूपी महानाग के सामने। यथा : जस पावन रावन नाग महा। पर गरुड़जी नहीं सभीत होते। प्रभु प्रताप से गरुड़ व्याल हो गये और परम लघु व्याल गरुड़ हो गया। यथा : प्रभु प्रताप ते गरुड़हि खाइ परम लघु व्याल। हनुमान्जी कहते हैं : देखो मैं दसकंठ सभा सब मोते कोउ न सबल तो।

दो. कपिहिं बिलोकि दसानन, बिहँसा कहि दुर्बाद।
सुतबध सुरति कीन्हि पुनि, उपजा हृदय बिषाद ॥२०॥

अर्थ : हनुमान्‌जी को देखकर दशानन दुर्वचन कहकर खूब हँसा ! फिर पुत्रवध का स्मरण करने से मन में विषाद उपजा।

व्याख्या : रावण ने पहिले हनुमान्‌जी को कभी नहीं देखा था। इनके बँध जाने की खुशी में सुतवध भूल गया। हँस पड़ा। दुर्वाद तो आसुरी प्रकृति के लिए स्वाभाविक ही है। यथा : रघुपति निकट गयउ घननादा। नाना भाँति करेसि दुर्वादा। दुर्वाक कहकर हँसा तो पर हँसी टिकी नहीं। सुतवध स्मरण हो आया तब विषण्ण हो गया।

कह लंकेस कवन तइ कीसा। केहि के बल घालेहि बनखीसा ॥
की धौं स्रवन सुनेहि नहिं मोही। देखउँ अति असंक सठ तोही ॥१॥

अर्थ : लङ्कापति ने कहा रे बानर तू कौन है और किसके बल से तूने वन उजाड़ा। क्या तूने मुझे कभी कान से भी नहीं सुना है। मैं तुझे बड़ा निडर देख रहा हूँ।

व्याख्या : लङ्का का राजा है। जो घटनाएँ वहाँ हों उनके निर्णय का अधिकार है। अतः पूछता है कि बन्दर ! तू कौन है ? यह पहिला प्रश्न है। हनुमान्‌जी चुप हैं कि सब प्रश्न हो जाने दो। यहाँ अङ्गदजी के और इनके स्वभावका अन्तर स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। अङ्गदजी प्रश्न समाप्त होते न होते ही उत्तर देते हैं। यथा : कह दसकंठ कौन तै बन्दर। मैं रघुबीर दूत दसकंधर। मम जनकहि तोहि रही मिताई। इत्यादि। हनुमान्‌जी सीताजी के प्रति दूत बनकर भेजे गये थे। इसलिए इन्हें रावण को प्रणाम करना आवश्यक नहीं था। अङ्गदजी तो सीधे सीधे रावण के प्रति दूत बनाकर भेजे गये थे। अतः उन्हें प्रणाम करना आवश्यक था। यथा : बैठ सभा सिर नाय। दूसरा प्रश्न है किसके बल से वन को उजाड़ा ? रावण के यहाँ उचित अनुचित का विचार नहीं है। बलाबल का विचार है। बली हो तो उसे उजाड़ने का अधिकार है। दूसरी बात यह कि शत्रु तो वह है जिसने तुम्हें पीठ ठोंककर भेजा है। जिसकी आँखों में मेरा उपवन गड़ता है। तुझसे कोई वैर नहीं है।

तीसरा प्रश्न है कि तू निडर दिखायी पड़ता है। मुझे प्रणाम भी नहीं किया। तुझे अभी भरोसा है कि भेजनेवाला तेरी सहायता करेगा। इससे यह अनुमान होता है कि तूने मुझे कान से भी नहीं सुना अर्थात् तुझे मेरे प्रभाव का सामान्य परिचय भी नहीं है। यदि होता तो तू इतना निःशङ्क कैसे होता ? किसका सामर्थ्य है कि मेरे सामने आवे। रावण नाम बिदित जग जाना। लोकप जाके बंदी खाना। मेरा नाम सुनकर संसार सशङ्क हो उठता है। यथा : भई सभय जब नाम सुनावा। रूप से ठीक परिचय नहीं होता। बड़े विशालकाय भी अल्पवीर्य होते हैं। अतः यथार्थ परिचय नाम से होता है। अति असंक का भाव यह कि इस भाँति मेरे प्रश्न को सुन रहा है जिस भाँति प्रभु लोग विनय सुनते हैं : फिर भी हनुमान्‌जी चुप रहे।

मारे निसिचर केहि अपराधा। कहु सठ तोहि न प्रान कै बाधा॥
सुनु रावन ब्रह्मांड निकाया। पाइ जासु बल बिरचति माया॥२॥

अर्थ : तूने राक्षसों को किस अपराध से मारा ? रे शठ ! बतला तुझे प्राण की बाधा नहीं है। हे रावण ! सुन जिसका बल पाकर माया सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड समूहों की रचना करती है।

व्याख्या : चौथा प्रश्न निशिचर वध विषयक है। बाग के उजाड़े जाने का निशिचर वध से अधिक कष्ट है। इसलिए निशिचर वध की बात सबके पीछे पूछता है। यथा : प्राणन ते प्यारो मेघनाद ते दुलारो बाग अति अनुराग हिय जातुधान धीर को। जो कारण निशिचर वध का है वही अक्ष वध का है। इसलिए अक्ष वध विषयक पृथक् प्रश्न नहीं किया। दूसरे यह कि अक्ष विषयक पृथक् प्रश्न न करके अपनी प्रजा पालकता दिखलाता है। तीसरे यह कि ऐसा प्रश्न करने में अप्रतिष्ठा है। इतना पूछने पर भी जब हनुमान्‌जी नहीं बोले तब समझा कि यह प्राण से निराश है। इसलिए नहीं बोलता है। तब कहा कि तेरा प्राण नहीं मारा जायगा। तू असली बतला दे कि क्या माजरा है ? इस भाँति रावण मुख्य शत्रु को जानना चाहता है। सठ सम्बोधन से निर्लज्जता ध्वनित है। भाव यह कि बन्ध से तुझे लज्जा नहीं है। वध के लिए मैं क्षमा प्रदान करता हूँ।

चारों प्रश्न सुनकर हनुमान्‌जी मुख्य अभिप्राय रावण का समझ गये। अतः दूसरे प्रश्न का उत्तर पहिले देना उचित समझा। रावण का बल पर बड़ा ध्यान है। इसलिए बल निरूपण द्वारा ही परिचय देते हैं। इसी व्याज से उपदेश भी करते हैं। ब्रह्माण्डों के समूहों की रचना माया जिसके बल से करती है। यथा : एक रचइ जग गुन बस जाके। प्रभु प्रेरित नहिं निज बल ताके। लव निमेष महु भुवन निकाया। रचइ जासु अनुसासन माया। अथवा राक्षसों का परम बल माया है। उस माया को भी प्रभु का ही बल है।

जाके बल बिरंचि हरि ईसा। पालत सृजत हरत दससीसा॥
जा बल सीस धरत सहसानन। अंडकोस समेत गिरि कानन॥३॥

अर्थ : हे दशशीश ! जिसके बल से ब्रह्मा विष्णु महेश सृष्टि का पालन सर्जन और संहार करते हैं। जिसके बल से सहस्रमुखवाले शेषजी पर्वत और वन के सहित समस्त ब्रह्माण्ड को सिर पर धारण करते हैं।

व्याख्या : माया का आधिपत्य सम्पूर्ण ब्रह्माण्डों पर है और विधि हरि हर का आधिपत्य एक ब्रह्माण्ड पर रहता है। यथा : लोक लोक प्रति भिन्न बिधाता। भिन्न विष्णु सिव मनु दिसि त्राता। सो वे भी उसी के बल पर अपना कार्य करने में समर्थ होते हैं। किसी कल्प में शिवजी से ही सृष्टि हुई। किसी कल्प में ब्रह्मदेव से और किसी में विष्णु से सृष्टि हुई। इसीलिए गोस्वामीजी क्रम नहीं देते। विरञ्चि

के लिए पालत और हरि के लिए सृजत कह दिया : सृष्टि की विचित्रता कहते हैं कि दस सिर वाले को भी बनाते हैं। माया ब्रह्माण्ड बनाती है। उन ब्रह्माण्डों में उत्पन्न होकर त्रिदेव सृष्ट्यादि करते हैं। ब्रह्माण्ड के अधिपतियों को कहकर उसके आधार का हाल कहते हैं : सहसानन के सामने दशानन क्या है। ब्रह्माण्ड भुवन बिराज जाके एक सिर जिमि रजकनी। वे भी प्रभु के बल से ही ब्रह्माण्ड उठाये हैं : तुम कैलास उठाकर ही कृत कृत्य बने बैठे हो।

धरै जो बिबिध देह सुरत्राता। तुम्ह से सठन सिखावनु दाता ॥
हर कोदंड कठिन जेहि भंजा। तोहि समेत नृप दल मद गंजा ॥४॥
खरदूषन त्रिसिरा अरु बाली। बधे सकल अतुलित बलसाली ॥५॥

अर्थ : जो देवताओं की रक्षा करनेवाला अनेक प्रकार के शरीरों को धारण करता है। जो तुमसे शठों को सिखावना देनेवाला है। शिवजी के कठिन धनुष को जिसने तोड़ा और तुम्हारे सहित राजसमाज के मद का भङ्ग किया। जिसने सब अतुलित बलशाली खरदूषण त्रिशिरा और वालि का वध किया।

व्याख्या : वे ही सुरत्राता हैं। देवताओं की रक्षा के लिए अनेक प्रकार का शरीर धारण करते हैं। यथा : मीन कमठ सूकर नर हरी। बामन परसुराम बपुधरी। जब जब नाथ सुरन्ह दुख पायो। नाना तनु धरि तुमहि नसायो। रावण ने शठ कहा था। उसी के उत्तर में कहते हैं : तुमसे सठन्ह सिखावन दाता। शठ विनय से नहीं मानते दण्ड से ही मानते हैं। सो तुम से शठों के लिए ही जो देवताओं का बुरा चाहते हैं। यथा : तिन्हकर मरन एक बिधि होई। कहौं बुझाइ सुनहु अब सोई। फिर शरीर धारण किया है। परशुरामावतार तक ऊपर कहा था। अब रामावतार कहते हैं। शिवजी का धनुष तोड़ना मानवी शक्ति के बाहर की बात थी। उसे भी जिसने तोड़ा। वहाँ तुम भी थे। तुम्हारा भी पराभव हो चुका है। तुम उन्हें भली प्रकार से जानते हो। यथा : जनक सभा अगनित भुवपाला। रहे तुम्हउ बल अतुल बिसाला। भंजि धनुष जानकी बिआही। तब संग्राम जितेहु किन ताही। और भी सुनो। खरदूषण रावण के समान बलवाले थे। बालि अधिक बलवाला था। तथा अतुलित बलशाली विराध आदि सबको मारा। अब केवल तुमहीं बच रहे हो। सो तुम्हारा भी योग आ गया है। उनसे विरोध कर बैठे हो और यह भी नहीं जानते कि—

दो. जाके बल लवलेश तें, जितेहु चराचर झारि।
तासु दूत मैं जा करि, हरि आनिहु प्रिय नारि ॥२१॥

अर्थ : जिनके बल के लवलेश मात्र से तुमने चराचर को जीत लिया और जिनकी प्रिय पत्नी को तुम हरण कर लाये हो उन्हीं का मैं दूत हूँ।

व्याख्या : उन्हीं के बल का लव ब्रह्मदेव और शिवजी में है। यथा : जेहि सुख सुधा सिंधु सीकर ते सिव बिरञ्चि प्रभुताई। और उनके बल का लेश तुम्हारे

में है। यथा : मैं ब्रह्मा मिलि तेहिं बर दीन्हा। इसीलिए लवलेश कहा। उससे तुमने चराचर को जीत लिया। -यहाँ तक द्वितीय प्रश्न का उत्तर देकर प्रसङ्ग प्राप्त प्रथम प्रश्न का उत्तर देते हैं कि जिसकी प्रिय स्त्री को हरण कर लाये हो : उसो का मैं दूत हूँ। भाव यह कि तुम्हारा अनुमान ठीक नहीं। मैं किसी का भेजा बाग उजाड़ने के लिए नहीं आया हूँ। जिसका तुमने इतना अपकार किया है उसी का भेजा हुआ सीताजी को देखने आया हूँ : इससे स्वयं राजा रावण का अपराधी होना सिद्ध किया।

जानउँ मैं तुम्हारि प्रभुताई। सहसबाहु सन परी लराई ॥
समर बालि सन करि जसु पावा। सुनि कपि बचन बिहँसि बहरावा ॥१॥

अर्थ : मैं तुम्हारी प्रभुता जानता हूँ। सहस्रबाहु से तुम्हारी लड़ाई हुई थी और वालि से भी युद्ध करके तुमने यश प्राप्त किया है। हनुमान्‌जी का वचन सुनकर उसने हँसकर बात उड़ा दी : वाह वाह कर दिया।

व्याख्या : कीधौं स्रवन सुनेहि नहिं मोही। देखउँ अति असंक सठ तोही। इस तीसरे प्रश्न का अब उत्तर देते हैं कि केवल कान से सुना हो नहीं है। मेरी व्यक्तिगत जानकारो है। सहस्रार्जुन से लड़ाई पड़ी थी। भाव यह कि जीतोगे क्या ? लड़ाई ठान देना ही तुम्हारो प्रभुता है। यह भी यश हुआ कि रावण वालि से लड़ गये थे। भाव यह कि तुम्हें बलाबल का परिज्ञान नहीं है। भला आज तक कोई योद्धा प्रतिद्वन्द्वी के कोंखतले रहा हो ? यह यश अकेले तुमने ही पाया है। तुम्हारो प्रभुताई जानकर हो मैं अशङ्क हूँ। इन बातों को रावण ने हँसकर उड़ा दिया। जिसमें जो न जानता हो वह यही समझे कि रावण द्वारा इनका पराभव हुआ होगा।

खायेउँ फल प्रभु लागी भूखा। कपि सुभाउ ते तोरेउँ रूखा ॥
सबके देह परम प्रिय स्वामी। मारहिं मोहि कुमारग गामी ॥२॥

अर्थ : हे प्रभो ! भूख लगी थी सो फल खा लिया। वानर स्वभाव के कारण वृक्ष तोड़ा। हे स्वामी ! देह सब को प्रिय है। कुमार्ग में चलनेवाले मुझे मारने लगे।

व्याख्या : चौथा प्रश्न मारे निसिचर केहि अपराधा का उत्तर देते हैं। जिस अशोक वाटिका का फल खाया उसका वह प्रभु है। इसलिए प्रभु सम्बोधन यहाँ दिया। अथवा जहाँ तक दूत सम्बन्धी बातें कहते रहे तहाँ तक शठ के उत्तर में शठ ही कहा। और जब व्यक्तिगत अपराध का उत्तर माल मालिक के सामने देना पड़ा : प्रभु कहते हैं। अत्यन्त भूख में फल तोड़कर खा लेना कोई अपराध नहीं है और न स्वभावानुसार आचरण ही अपराध है। पेड़ तोड़ना तो बन्दर का स्वभाव ही है। अतः इन दोनों प्रक्रियाओं में मेरा कोई अपराध नहीं है।

तुम्हारे निसिचर कुमार्गगामी हैं। हाँका भी नहीं सीधे सीधे मारना ही प्रारम्भ कर दिया। आप तो महिष मनुष धेनु खा जाते हैं। मुझे फल खाने पर मारने लगे। मैंने देखा कि न बोलूँगा तो ये मार ही डालेंगे। मुझ शस्त्र विहीन पर अस्त्र शस्त्र से प्रहार करने लगे। आत्मरक्षा तो सभी करते हैं। क्योंकि ब्रह्मदेव से लेकर स्तम्बपर्यन्त देह तो सबको परम प्रिय है। इससे सेना का अपराध कहा।

जिन्ह मोहि मारा ते मैं मारे। तेहि पर बाँधेउ तनय तुम्हारे ॥
मोहि न कछु बाँधे कइ लाजा। कीन्ह चहउँ निज प्रभुकर काजा ॥३॥

अर्थ : जिन्होंने मुझे मारा उन्हें मैंने भी मारा। तिसपर तुम्हारे पुत्र ने मुझे बांध लिया। मुझे अपने बाँधे जाने की कुछ भी लज्जा नहीं है। मैं तो अपने प्रभु का कार्य किया चाहता हूँ।

व्याख्या : फिर तो लड़ाई छिड़ गयी। जिन्होंने मुझे मारा उसे मैंने मारा। मैं निरपराध हूँ। आप प्रभु हैं। वेद के भाष्यकार हैं। स्वयं वेद कहता है। योऽस्मान् धूर्वयति तं वयं धूर्वयामः। जो हमें मारता है उसे हम मारते हैं। भला वे तो साधारण सैनिक थे। तुम्हारा बेटा तो राजकुमार है। उसे तो न्याय करना था। उसने उलटे मुझी को बाँध लिया। अपराध राजकुमार का है मेरा कुछ भी नहीं। इससे मेघनाद का अपराध कहा।

कहु सठ तोहि न प्रान कर बाधा का उत्तर देते हैं। पहिले सठ कहने का उत्तर। तोहि से सठन्ह सिखावन दाता कहकर दिया। अब दूसरी बार जो शठ शब्द का उपयोग किया उससे ध्वनि यह निकली कि तू निर्लज्ज है। बँधने पर भी बेपरवाह दिखायी पड़ता है। इस पर कहते हैं कि मुझे बँध जाने की लज्जा नहीं है। क्योंकि लज्जा तो जुगुप्सित कर्म करने से होती है। स्वामी के कार्य सम्पादन के प्रयत्न में बाँधा जाना शोभा है। भाव यह कि मैं नागपाश के बन्धन में नहीं हूँ। स्वामी का कार्य किया चाहता हूँ। इसलिए बँधा हुआ आया हूँ। दूसरे उपाय से तुम्हारे तक पहुँच न होती।

बिनती करउँ जोरि कर रावन। सुनहु मान तजि मोर सिखावन ॥
देखहु तुम्ह निज कुलहि बिचारी। भ्रम तजि भजहु भगत भय हारी ॥४॥

अर्थ : हे रावण! मैं हाथ जोड़कर विनती करता हूँ। अभिमान छोड़कर मेरी सीख सुनो। तुम अपने कुल को विचारकर देखो। भ्रम छोड़कर भक्त भयहारी भगवान् को भजो।

व्याख्या : अब निज प्रभु का काज कह रहे हैं। महात्मा लोग हाथ जोड़ विनती करके भी उपकार करते हैं। राम भक्ति से यन्त्रित साक्षात् शिवजी अपने भक्त के कल्याण के लिए हनुमान् रूप से हाथ जोड़कर विनती कर रहे हैं। मोर सिखावन सुनहु : कहकर अपना गुरु होना भी द्योतित कर रहे हैं। नहीं तो विनती

करतेवाला अपनी गरज कहता है। सिखावन नहीं देता। मान रहने से सिखावन काम नहीं करता। इसलिए पहिले मान छोड़ने को कहते हैं।

सिखावन यह है कि तुम विद्वान् हो। कुल धर्म न छोड़ो। जिस मार्ग से बड़े लोग चले हों उसी मार्ग से चलना चाहिए। तुम्हारे पितामह कैसे भजन करनेवाले हैं। तुम्हारे पिता कैसे भजन करते हैं। भाई कैसा भक्त है। सब भक्त भयहारी को भजते हैं। तुम भ्रम में पड़ गये हो। तुम में भजन करने की शक्ति है। यह बात गलत है कि : होइहि भजन न तामस देहा। तुम भजन करो। वैर करने से दुर्यश होगा। भजन करने से वे तुम्हारे वश हो जायँगे। अथवा जो तुम्हें इनके मनुष्य होने का भ्रम है उसे छोड़कर इनका भजन करो।

जाके डर अति काल डेराई। जो सुर असुर चराचर खाई ॥
तासों बयरु कबहुँ नहिं कीजे। मोरे कहें जानकी दीजे ॥५॥

अर्थ : जो देवता राक्षस चर अचर सबको खा जाता है। ऐसा काल भी जिसके डर से अत्यन्त डरता है। उससे कभी वैर न करना चाहिए। मेरे कहने से जानकी को दे दो।

व्याख्या : अगजग जीव नाग नर देवा। नाथ सकल जग काल कलेवा। काल का पेट कभी नहीं भरता।

ऊमरि तरु विसाल तव माया। फल ब्रह्मांड अनेक निकाया ॥
जीव चराचर जन्तु समाना। भीतर बसहिं न जानहिं आना ॥
ते फल भच्छक कठिन कराला। तव भय डरत सदा सोउ काला ॥

काल व्याल कर भच्छक जोई। विषम बली ते वादि वैर को बढ़ावनो। ऐसे विषम बलवान से तुम वैर बढ़ा रहे हो। वे तुमसे वैर नहीं करते। अभिमानी बात समझ जाने पर भी अभिमान के कारण से बात नहीं मानता। इसलिए हनुमान्जी कहते हैं : मेरे कहने से जानकी दे दो। भाव यह कि तुम्हारे ऐसे अभिमानी के लिए सुअवसर है। तुम कह सकते हो कि उनका दूत आकर हाथ जोड़ विनती करने लगा तो मैंने दे दिया। दूसरा भाव यह कि गुरुजी का अनुशासन है। अपने शिष्य से कह रहे हैं कि मोरे कहे जानकी दीजे। तीसरे यह भी द्योतित किया कि ये सब बातें मैं अपनी ओर से कहता हूँ। प्रभु ने तुमसे कहने के लिए नहीं भेजा है।

दो. प्रनतपाल रघुनायक, करुनासिंधु खरारि।
गए सरन प्रभु राखिहैं, तब अपराध बिसरारि ॥२२॥

अर्थ : खरारि रघुनायक प्रणतपाल और करुणासिन्धु हैं। शरण जाने पर तुम्हारे सब अपराधों को भूलकर तुम्हारी रक्षा करेंगे।

व्याख्या : यदि अपराध की गम्भीरता से तुम निराश होते हो तो मत हो। यद्यपि खरारि हैं। दुष्टों के नाश के लिए ही उनका प्रादुर्भाव है। तथापि रघुनायक

करुणासिन्धु हैं। एक बार के प्रणाम से अपना लेते हैं। रघुनायक से कुल का उत्कर्ष कहा। प्रणतपाल से व्रत कहा। करुणासिन्धु कहकर स्वभाव कहा। प्रभु कहकर उनका सामर्थ्य द्योतित किया। राखिहैं कहने से भाव यह कि तुम्हारी प्रभुता बनी रहेगी। अपराध तो क्षमा हो ही जायगा। वे तुम्हारे अपराध का स्मरण भी न करेंगे। यथा : बानि बिसमरन सील हैं मानद अमान की। निज गुन अरिकृत अनहितौ दास दोष सुरति चित रहत न दिये दान की।

राम चरन पंकज उर धरहू। लंका अचल राजु तुम करहू ॥
रिषि पुलस्ति जस बिमल मयंका। तेहि ससि महँ जनि होउ कलंका ॥१॥

अर्थ : रामजी के चरणों को हृदय में धारण करो और लङ्का का तुम अचल राज करो। पुलस्त्य ऋषि का यश निर्मल चन्द्रमा के समान है। उस चन्द्रमा में तुम कलङ्क न बनो।

व्याख्या : अभी तक लङ्का में तुम्हारा राज्य अचल नहीं हुआ। छीन छोर की वस्तु छीन छोर में ही चली जाती है। मैं तुम्हें राज्य को अचल करने का मन्त्र बतलाता हूँ। श्रीरामजी के चरण कमल को हृदय में धारण : अचल करो। उन चरणों से लक्ष्मी पृथक् नहीं हो सकतीं। यथा : यद्यपि परम चपल श्री सन्तत थिर न रहति कबहूँ। हरि पद पंकज पाइ अचल भइ करम वचन मनहूँ। अभी माँ से यही मन्त्र मिला है : रघुपति चरन हृदय धरि तात मधुर फल खाहु। सो ब्रह्मास्त्र ने काम न किया। नागपाश व्यर्थ हुआ। अतः वही उपदेश देते हैं। रावण के मन में बात बैठती न देखकर कहते हैं कि इस चन्द्र में कलङ्क है। ऋषि पुलस्त्य का यश ऐसा चन्द्र है कि उसमें कलङ्क नहीं है। कपूत के उत्पन्न होने से कुल में कलङ्क लगता है। जो अपयश भाजन प्रियजन द्रोही हो वही कुल कलङ्क है। यथा : कुल कलंक जेहि जनम्यो मोही। अपजस भाजन प्रिय जन द्रोही। स्त्री चोरी का अपयश भी होगा और तुम्हारे अपराध से सब प्रिय जन मारे जायँगे।

राम नाम बिनु गिरा न सोहा। देखु बिचारि त्यागि मद मोहा ॥
बसन हीन नहि सोह सुरारी। सब भूषन भूषित बर नारी ॥२॥

अर्थ : राम नाम के बिना वाणी की शोभा नहीं। मद मोह छोड़कर विचार कर देखो। हे देवताओं के शत्रु सब गहनों से आभूषित श्रेष्ठ स्त्री की शोभा बिना कपड़े के नहीं होती।

व्याख्या : आहार, निद्रा, भय और मैथुन का भाव पशु भी आपस में प्रकट कर ही लेते हैं। वाणी की विशेषता तो भगवन्नाम ग्रहण में ही है। मद मोह के परित्याग में पुरुषार्थ अपेक्षित है। भोग तो प्रारब्धाधीन है। तू पण्डित है। मद मोह का परित्याग कर। मोहनिशा है। उसमें मद : अभिमान ही अन्धकार है। यथा : त्यागहु तम अभिमान। इसी अन्धकार के कारण तुम्हें बीस आँख रहते दिखायी नहीं पड़ता।

वरनारी अर्थात् सौभाग्यवती चन्द्रवदनी गहनों से भली भाँति सजी हुई होने पर भी बिना सारी के अदर्शनीया होती है। इसी भाँति तुम्हारी वाणी में सभी उत्कर्ष विधायक गुण हैं। पर राम नाम की सारी नहीं है। अतः अमङ्गल रूपा है। रावण राम नाम नहीं लेता। आवश्यकता पड़ने पर अन्य कल्पित शब्दों से काम चलाता है। यथा : कह तपसिन कर बात बहोरी। हौं मारिहौं भूप दोउ भाई। जिनके बल कर गर्व तोहि इत्यादि। अतः पण्डिताई भी तुम्हारी व्यर्थ गयी। रह गयी सम्पत्ति प्रभुताई। उसकी भी गति सुनो।

राम बिमुख संपति प्रभुताई। जाइ रही पाई बिन पाई ॥
सजल मूल ज़िन्ह सरितन्ह नाहीं। बरषि गएँ पुनि तबहिं सुखाहीं ॥३॥

अर्थ : जो राम विमुख हैं उनकी सम्पत्ति और प्रभुताई ठहरती नहीं। उसका पाना न पाना बराबर हो जाता है। जिन नदियों के उद्गम स्थान में जल नहीं है वर्षा हो जाने पर वे सूख जाती हैं।

व्याख्या : बरसाती नदियों में भी कभी मेघ की वर्षा से बाढ़ आ जाती है। नहीं तो साल भर वे सूखी ही पड़ी रहती हैं। इसी भाँति सम्पत्ति और प्रभुताई कभी राम विमुख को भी हो जाती है पर ठहरती नहीं। उससे कोई वास्तविक लाभ नहीं होता। अर्थ का फल धर्म है काम नहीं है। वह तो अवान्तर प्रयोजन है। राम विमुख की सम्पत्ति और प्रभुताई का पर्यवसान काम में होता है। महा प्रयोजन सिद्ध नहीं होता। इसीलिए : पाई बिन पाई कहा। पाई बिना दिये केवल अङ्क लिखने से द्रव्य का बोध नहीं होता। पाई देने से सौ का अर्थ सौ रुपया है १००)। उसी पाई बिना १०० का कोई अर्थ नहीं होता। राम के सम्मुख होना पाई है। उसी से सम्पत्ति का बोध होता है। जाय रहीं का उदाहरण देते हैं।

राम विमुख में भी सुकृत मेघ की वर्षा से कभी सम्पत्ति प्रभुताई की बाढ़ आजाती है। यथा : छुद्र नदी भरि चली तोराई। जस थोरेहु धन खल इतराई। पर वह जल ठहरता नहीं। आता है और निकल जाता है। इसी भाँति तुम्हारी सम्पत्ति और प्रभुताई भी ठहरनेवाली नहीं है। भगवच्चारणारविन्द सजल मूल है। वहाँ से सम्बद्ध सम्पत्तिरूपी नदी कभी नहीं सूखती।

सुनु दसकंठ कहौं पन रोपी। बिमुख राम त्राता नहि कोपी ॥
संकर सहस बिस्नु अज तोही। सकहिं न राखि रामकर द्रोही ॥४॥

अर्थ : हे दशशीश ! सुनो। मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि रामविमुख होने से कोई रक्षक नहीं होता। हजार शङ्कर विष्णु और ब्रह्मा राम के द्रोही की रक्षा नहीं कर सकते।

व्याख्या : यदि कहो कि मेरे लिए यह नियम लागू नहीं है। मेरी सहायता शङ्करजी और ब्रह्मदेव करेंगे। यथा : साहिब महेस सदा संकित रमेस मोहि निज तप साहस बिरंचि लियों मोल है। इसपर कहते हैं कि मैं प्रणपूर्वक कहता हूँ। कोई इसे अन्यथा नहीं कर सकता। जबतक रामजी विमुख नहीं हैं तभी तक वे भी

रक्षा कर सकते हैं। रामजी के विमुख होने पर कोई रक्षा नहीं कर सकता। यथा : धरि निज रूप गयउ पितु पाहीं। रामबिमुख राखा तेहि नाहीं : जवाब दे देते हैं कि मेरी की हुई रक्षा नहीं हो सकती।

यदि कहो कि मैंने शिर चढ़ाया है रक्षा क्यों न करेंगे ? इसपर कहते हैं कि उनके सामर्थ्य की बात नहीं है। उनकी प्रभुता स्वतः सिद्ध नहीं है रामजी की दी हुई है। यथा : बिधिहि बिधिता, हरिहि हरिता, हरहि हरता जिन दई[1]। सो जानकी पति मधुर मूरति मोदमय मंगल मई : रामविमुख की रक्षा वे कर नहीं सकते। यथा : काहू बैठ न कहा न ओही। राखि को सकै रामकर द्रोही।

दो. मोह मूल बहु सूल प्रद, त्यागहु तम अभिमान।
भजहु राम रघुनायक, कृपासिंधु भगवान ॥२३॥

अर्थ : मोह ही जिसका मूल है और बहुत से शूलों का देनेवाला अभिमान अन्धकार रूप है। इसका त्याग करो और रघुनायक कृपासिन्धु भगवान् राम को भजो।

व्याख्या : मोह मानस व्याधि का मूल है और अति अभिमान संसार का मूल है। यथा : मोह सकल व्याधिन्ह कर मूला। तथा संसृत मूल सूल प्रद नाना। सकल सोक दायक अभिमाना : अथवा मोह रात्रि में अभिमान रूपी अन्धकार छाया रहता है। इस अभिमान को छोड़ो। पुरुषार्थ करके रामनाम रूपी चन्द्र को स्थान दो तो यह मोह रात्रि पलटकर राका रजनी रूपी भक्ति हो जावे। यथा : राका रजनी भगति तव रामनाम सोइ सोम : तब तुम्हें सूझ पड़ेगा। नहीं तो तुम्हें सूझता नहीं है। मानस व्याधि के मूल मोह और शूलप्रद अभिमान को भजते हो कृपासिन्धु भगवान् को नहीं भजते।

जदपि कही कपि अति हित बानी। भगति बिबेक बिरति नयसानी॥
बोला बिहँसि महा अभिमानी। मिला हमहि कपि गुरु बड़ ग्यानी ॥१॥

अर्थ : यद्यपि हनुमान्‌जी ने अत्यन्त हित की वाणी कही। जिसमें भक्ति, ज्ञान, वैराग्य और नीति सनी हुई थी। वह महा अभिमानी खूब हँसा और बोला कि मुझे तो यह बन्दर बड़ा ज्ञानी गुरु मिला।

व्याख्या : इस लोक या परलोक का उपदेश हित है और दोनों लोक के कल्याण का उपदेश अति हित है। संक्षेप से हनुमान्‌जी के उपदेश में ब्रह्म निरूपण, अवतार निरूपण, अवतार का कारण, रामकथा, दोष त्याग, गुण ग्रहण, रक्षा का उपाय शरणागति आदि का निरूपण था। अतः उसे अतिहित कहा तथा उपासना काण्ड, ज्ञानकाण्ड और कर्मकाण्ड की संमत बात कही। धर्मार्थ और काम का सामञ्जस्य जिसमें हो ऐसा मार्ग बतलाया। भजन से उपक्रम यथा : भ्रम तजि

---

१. कुछ प्रतियों में यह पाठ भेद है : हरिहि हरिता बिधिहि बिधिता सिवहिं सिवता जो दई।

भजहु और भजन से ही उपसंहार किया। यथा : भजहु राम रघुनायकहिं : अतः भक्तिरससानी वाणी हुई तथा मान तजि से उपक्रम और त्यागहु तम अभिमान से उपसंहार करके विवेकसानी वाणी कही। देखहु तुम निज कुलहिं बिचारी से उपक्रम और तेहि कुल महि जनि होहि कलंका से उपसंहार करते हुए विरत सानी वाणी कही तथा तासों बैर कबहुँ नहि कीजे से उपक्रम करके तथा बरखि गएँ पुनि तबहिं सुखाहीं से उपसंहार करके नयसानी वाणी कही।

जो उचित शिक्षा न सुने वह महा अभिमानी है। यथा : अस कहि चला महा अभियानी : इतनी देर तक हँसी रोके रहा। उपदेश समाप्त होते ही हँसा। मन में यह भाव है कि मैं पण्डित वेदों का भाष्यकर्ता मुझे यह बन्दर गुरु बनकर उपदेश करने चला है।

मृत्यु[1] निकट आई खल तोहीं। लागेसि अधम सिखावन मोहीं॥
उलटा होइहि कह हनुमाना। अति भ्रम तोहि प्रगट मैं जाना॥२॥

अर्थ : रे खल ! तेरे निकट मृत्यु आगयी है। तू अधम मुझे सिखाने चला है। हनुमान्‌जी ने कहा कि उलटा होगा। क्योंकि मति भ्रम तुझे है मैंने स्पष्ट जान लिया।

व्याख्या : रावण बोला कि तू खल है। साधु होता तो मुझसे सीखने आता। जिसकी मृत्यु निकट आती है उसी को मुझे सिखाने का साहस होता है। भला मुझे कोई क्या सिखावेगा ? तिस पर यह अधम है। यथा : अस मैं अधम सखा सुनु और मैं उत्तम हूँ। यथा : उत्तम कुल पुलस्त्य कर नाती : अधम का उत्तम को सिखावन देने का हौसला ही मृत्युसूचक है।

हनुमान्‌जी ने कहा कि उलटा होगा। भाव यह कि मृत्यु तेरे निकट है और बतलाता है कि मेरे निकट है यह उलटी बात है। क्योंकि मतिभ्रम तो तुझे हुआ है। मुझे तो मतिभ्रम है नहीं। यह बात मैं स्पष्ट देख रहा हूँ और जो कालवश हो जाता है उसे मतिभ्रम होता है। यथा : निकट काल जेहि आवत साईं। तेहि भ्रम होइ तुम्हारेहि नाईं। मैं हितोपदेश देता हूँ तुम्हें अविनय प्रतीत होता है अथवा तेरी खलता तो मेरी आँखों देखी हुई बात है। यथा : बहु बिधि खल सीतहिं समुझावा : सो तू अपने को साधु मानता है और मैं हाथ जोड़कर हित कर रहा हूँ। सो मुझे खल ठहराता है। यह स्पष्ट मतिभ्रम है।

सुनि कपि बचन बहुत खिसिआना। बेगि न हरहु मूढ़कर प्राना॥
सुनत निसाचर मारन धाए। सचिवन्ह सहित बिभीषनु आए॥३॥

अर्थ : हनुमान्‌जी का वचन सुनकर बड़ा झल्लाया : और आज्ञा दिया कि

---

१. यहाँ चित्रालङ्कार है।

इस मूढ़ का प्राण क्यों शीघ्र ही नहीं हरण कर लेते। सुनते ही राक्षस मारने दौड़े। तब तक मन्त्रियों के साथ विभीषणजी आगये।

व्याख्या : बात सच्ची थी। कोई उत्तर तो था ही नहीं अतः झल्लाया। रावण जब झल्लाते हैं तब प्राण लेने पर तैयार हो जाते हैं। यथा : परुष वचन सुनि काढ़ि असि बोला अति खिसिआन। तब सक्रोध निसिचर खिसियाना। काढ़ेसि परम कराल कृपाना : इसलिए प्राण हरण की आज्ञा देता है। हनुमान्‌जी को मूढ़ कहता है कि यह सच्ची बात नहीं समझता। पशु को शिक्षा देने का अधिकार क्या है?

हनुमान्‌जी रावण के सन्निकट खड़े हैं और जिनका वध दण्ड देने का काम है वे दूर खड़े हैं। दरबार भी बहुत बड़ा है। अतः निशाचरों का दौड़ना लिखते हैं। विभीषण का बहुत बड़ा दर्जा है। इनके सचिव अलग हैं इसी से रावण ने कहा कि करत राज लंका सठ त्यागी। इनके सचिवों के लिए भी दरबार में स्थान है। विभीषण के आते ही कार्य बन्द हो गया। क्योंकि इनको सम्मति से राय पलट सकती है अथवा विभीषण के इंगित से सब ठहर गये।

नाइ सीस कर बिनय बहूता। नीति बिरोध न मारिय दूता॥
आन दंड कछु करिय गोसांई। सबहीं कहा मंत्र भल भाई॥४॥
सुनत बिहँसि बोला दसकंधर। अंग भंग करि पठइअ बन्दर॥५॥

अर्थ : सिर नवाकर और बहुत विनय करके कहा कि दूत को मारना नहीं चाहिए। यह बात नीति के विरुद्ध है। हे गोसाईं! कोई दूसरा दण्ड दिया जाय। सबने कहा कि यह मन्त्र ठीक है। यह सुनकर रावण हँसकर बोला। अच्छा तो अङ्ग भङ्ग करके बन्दर को यहाँ से भेज दो।

व्याख्या : प्रणाम के पश्चात् बड़ी विनती की क्योंकि राजाज्ञा को रोक दिया और बिना पूछे सम्मति दे रहे हैं। विनय यथा : आप सम्राट् हैं। महापण्डित हैं। नीतिशास्त्र के आश्रय हैं। आप नीतिपालन नहीं करेंगे तो कौन करेगा? दूत अवध्य है। शस्त्रों के निकल पड़ने पर बन्धुओं के वध पर भी तथा कड़ी बात बोलता हुआ भी दूत अवध्य है। यथा : उद्यतेष्वपि शस्त्रेषु बन्धुवर्गवधेष्वपि। पौरुषाण्यपि जल्पन्तो वध्या दूता न भूभुजा। पं. तं.।

यदि वह वध्य ही हो तो कोई दूसरा दण्ड दीजिये। सबने कहा कि बात तो ठीक है। दूत अवध्य हैं। सबही अर्थात् उन सब लोगों ने जिनको मन्त्र देने का अधिकार है एक स्वर से यही बात कही। सभी चाहते हैं कि वध दण्ड न हो। यह अवध्य है बड़ी भारी विपत्ति आकर खड़ी हो जावेगी। दूसरे प्रकार के दण्ड के लिए बाहर जाना होगा। सभा में तो उपद्रव न होगा।

रावण सबके ऐकमत्य पर हँसे अथवा इस बात पर हँसे कि देखो सबको कैसा बेवकूफ बनाता हूँ। अथवा मेरा पुत्रवध हुआ। इनकी क्या हानि हुई? अथवा मेरे

घर के नीतिमूर्त्ति आगये। अब इनकी नीति चली। वध के बदले में बन्धन नहीं कहता। क्योंकि यह बँधने पर भी अपराध करता है। इसका अङ्ग भङ्ग कर दो। पर इस भाँति कि यह अङ्ग भङ्ग होने पर लौटकर मालिक के पास जाने लायक रहे।

दो. कपि कैं ममता पूँछ पर, सबहि कह्यौ समुझाइ।
तेल बोरि पट बाँधि पुनि, पावक देहु लगाइ ॥२४॥

अर्थ : सबको समझाकर कहता हूँ। देखो! बन्दर को ममता पूँछ पर होती है। सो तेल में कपड़ा डुबोकर उसे इसकी पूँछ में बाँधकर फिर आग लगा दो।

व्याख्या : बन्दर जाति मूर्ख होती है। बेकार अङ्ग जो पूँछ होती है उसी पर इनकी बड़ी ममता होती है। सो देखो कहीं पूँछ काट न लेना। इसकी पूँछ जलाओ। जलाने की विधि बतलाता है : इस भाँति वध का घोरतम उपाय अङ्ग भङ्ग के व्याज से बतला रहा है। रावण अपने मन्त्र से राज्य करता है। किसी की सुनता नहीं। राजा को मन्त्री चाहिए इसलिए मन्त्री है। मन्त्री भी समझे बैठे हैं कि हम लोग तो इनके कथन की पुष्टि करने के लिए इनकी सेवा में हैं। अतः अस्तुति करहिं सुनाइ सुनाई। पर यहाँ सब मन्त्रियों की सम्मति विरुद्ध हो गयी फिर भी वह अपनी ही बात रखता है। कहने के लिए अङ्ग भङ्ग की आज्ञा है। पर वस्तुतः वह अति यातनामय वध दण्ड दे रहा है।

पूँछहीन बानर तहँ जाइहि। तब सठ निज नाथहि लेइ आइहि ॥
जिन्ह कै कीन्हेसि बहुत बड़ाई। देखउँ मैं तिन्हकै प्रभुताई ॥१॥

अर्थ : बिना पूँछ का होकर जब बन्दर जायगा तब यह शठ अपने मालिक को ले आवेगा। जिनकी इसने बहुत बड़ाई की है उनका पुरुषार्थ मैं देखूँगा।

व्याख्या : रावण कहता है कि ऐसी पूँछ जलाओ कि कुछ भी शेष न रहे। जिस वस्तु पर ममता होती है उसके वियोग से प्राणी दुःखी होता है। इसे जब पूँछ हीन होने का दुःख होगा : तो यह स्वभाव से शठ है जाकर निश्चय अपने मालिक को लेकर अपनी पूँछ का बदला चुकाने के लिए आवेगा। इसका पुरुषार्थ तो देख लिया गया। अब इसके मालिक का पुरुषार्थ देखना है। उसे यह जाके डर अति काल डराई। पाइ जासु बल विरचित माया आदि कहकर बड़ी प्रशंसा करता है। अब उसका पुरुषार्थ देखना है। तुम लोग जानते ही हो कि मुझे सदा प्रतिभट से युद्ध करने की इच्छा रही पर कहीं कोई मिला नहीं। यथा : रन मद मत्त फिरइ जग धावा। प्रतिभट खोजत कतहुँ न पावा। यह एक प्रतिभट बतला रहा है। पर मैं उसे वनों में कहाँ खोजता फिरूँगा। भले यह उसे बुला लावेगा : यह सब बात रावण ने प्रवञ्चनामय कही है। वस्तुतः उसके हृदय का भाव यह है कि पूँछ के जलाने में ही यह पीड़ा सहन न कर सकने के कारण आप ही छटपटाकर मर जायगा नहीं तो वह पूँछ काट लेने की आज्ञा देता। जलाने में कौन सी फल सिद्धि विशेष थी? इस भाँति से बातें बनाकर वह अपनी प्रथम आज्ञा को ही और भी क्रूरतापूर्वक

स्थिर रखना चाहता है। सबको दिखाने के लिए और विशेषतः विभीषण को बेवकूफ बनाने के लिए दण्ड का रूप परिवर्तन करके केवल अङ्ग भङ्ग की आज्ञा दे रहा है।

बचन सुनत कपि मन मुसकाना। भइ सहाय सारद मैं जाना॥
जातुधान सुनि रावन बचना। लागे रचै मूढ़ सोइ रचना॥२॥

अर्थ : यह बात सुनकर हनुमान्‌जी मन ही मन मुसकुराये और कहने लगे कि मैं जान गया कि भगवती सरस्वती सहाय हुई हैं। मूढ़ राक्षस लोग रावण का वचन सुनकर वैसी ही रचना रचने लगे।

व्याख्या : हनुमान्‌जी यदि प्रत्यक्ष मुसकुराते तो राक्षस सावधान हो जाते कि कुछ दाल में काला है। नहीं तो जिसे इतना कठोर दण्ड दिया जाय उसके चेहरे पर मुसकुराहट कैसी ? हनुमान्‌जी की पहिले से ही इच्छा थी कि जिस नगर में जगदम्बा विरह ज्वाला में जल रही है। जहाँ उन्हें माँगने पर अग्नि नहीं मिलती है उस नगर को ज्वालमाल के सुपुर्द कर देना ही प्राप्त है। पर जलानेवाला आततायी कहलाता है। इसलिए जलाते नहीं थे। महालक्ष्मी के दो रूप और हैं : १. काली और २. सरस्वती। सो महाकाली रूप से तो लङ्का में निवास ही कर रही हैं। यथा : काल राति निसिचर कुल केरी। पर यहाँ सरस्वती रूप से मेरी सहायता करने पहुँच गयीं। इन्हें पूँछ जलाने की सूझी। अब मुझे अग्निद भी नहीं होना पड़ा पूँछ में आग लगने पर जिस भाँति बन्दर भागते हैं उस भाँति मुझे लङ्का में इधर उधर दौड़ना और पूँछ पटकना ही मेरे लिए शेष रहा। भागते समय स्वयं आग लग जावेगी। मैं जाना का भाव यह कि मैं तो जगदम्बा की कृपा से समझ गया। पर ये मूढ़ नहीं समझ रहे हैं।

राक्षसों ने रावण के वचन को सुना समझा कुछ नहीं। न यही बात समझी कि रावण वस्तुतः वध दण्ड दे रहा है और न यही समझ पाया कि बन्दर की पूँछ में आग लगाकर उसे छोड़ देने का अर्थ ही यह है कि वह अत्यन्त वेदना से नगर भर में भागता और पूँछ पटकता फिरे और नगर में आग लग जाय। इसीलिए कवि कहते हैं कि वे मूढ़ वही रचना रचने लगे। तेल में पुराने कपड़े भिगोने लगे और भिगा भिगाकर पूँछ में लपेटने लगे।

रहा न नगर बसन घृत तेला। बाढ़ी पूँछ कीन्ह कपि खेला॥
कौतुक कहँ आये पुरबासी। मारहिं चरन करहिं बहु हाँसी॥३॥

अर्थ : नगर में घी तेल और लत्ते : पुराने कपड़े : न रह गये। बन्दर ने खेल किया। पूँछ बढ़ने लगी। नागरिक तमाशा देखने के लिए आ पहुँचे। लातों से मारने और खूब हँसी करने लगे।

व्याख्या : यहाँ वसन का अर्थ जलाने योग्य पुराने कपड़े हैं। प्रसङ्ग बल से अर्थ करना पड़ा कि पहिले तेल में भिगो भिगोकर कपड़ा पूँछ में बाँधने लगे। पर जब हनुमान्‌जी ने खेल किया पूँछ बढ़ने लगी और नगर भर का तेल समाप्त

हो गया तब उसके स्थान में घी चुपड़ने लगे। तमाम नगर में घर घर से माँग माँगकर पुराने कपड़े जुटाये गये वे सब भी समाप्त हो गये। पर इन मूढ़ों ने पूँछ के बढ़ने पर ध्यान ही नहीं दिया। नगर में शोर मच गया कि ब्रन्दर की पूँछ जलायी जा रही है। अतः आनन्द में विभोर होकर नगरवासी इस क्रूरदृश्य के अवलोकन के लिए वहाँ चले आये। आकर हनुमान्जी को लात से मारते हैं और आनन्द मानते हैं। इन पापी कृपारहित हिंसक विश्व के परतापियों को वेदना के दृश्य के देखने में बड़े आनन्दानुभव की आशा थी। बँधे हुए प्राणी के ऊपर लात चलाने में उन्हें आनन्द विशेष का अनुभव हो रहा है।

बाजहिं ढोल देहिं सब तारी। नगर फेरि पुनि पूँछ प्रजारी ॥

६२. लङ्कादाह प्रसङ्ग

पावक जरत देखि हनुमंता। भयउ परम लघु रूप तुरंता ॥४॥
निबुक चढ़ेउ कपि कनक अटारी। भईं सभीत निसाचर नारी ॥५॥

अर्थ : ढोल बजते हैं, सबलोग तालियाँ पीटते हैं। हनुमान्जी को नगर में फिराकर फिर पूँछ में आग लगा दी। आग को जलती हुई देखकर हनुमान्जी तुरन्त बहुत छोटे रूप में हो गये। बन्धन से निकलकर वे सोने की अटारी पर चढ़ गये। उन्हें देखकर राक्षस की स्त्रियाँ भयभीत हो गयीं।

व्याख्या : अब राक्षसों के आनन्द का वर्णन हो रहा है कि लात मारते ही थे अब ढोल भी बजने लगा। मारे आनन्द के तालियाँ पीट रहे हैं। इस दुर्दशा से नगर में घुमाये गये। भाव यह कि सभी नगरवासी भागवतापराध में सम्मिलित हुए। यथा :

बसन बटोरि बोरि बोरि तेल तमीचर खोरि खोरि धाइ आइ बाँधत लंगूर हैं।
तै सोइ कपि कौतुकी डेरात ढीलो गात कै कै लात को अघात सहै जी में कहै कूर हैं॥
बाल किलकारी कै कै तारी दै दै गारी देत पाछें लागे बाजत निसान ढोल तूर हैं।
बालधी ब्रढ़न लागी ठौर ठौर दीन्ही आगी बिंधकी दवारि कैधों कोटिसत सूर हैं॥
क. रा.

इधर हनुमान्जी दिन को नगर देख रहे हैं कि किस ओर से धावा करने में सुभीता होगा। प्रजारी का भाव यह कि पूँछ में भली भाँति आग लगायी गयी जिसमें बुझे न। यथा : लाइ लाइ आग भागे बालजाल जहाँ तहाँ। हनुमान्जी ने देखा कि आग भलीभाँति लग गयी। आग पूँछ नहीं जला रही है, कपड़े मात्र जल रहे हैं। इसलिए हनुमानजी को दाह का अनुभव नहीं हो रहा है। देखकर जाना कि आग ने भलीभाँति पकड़ लिया। तब आप तुरन्त लघुरूप होकर बन्धन से निकल गये। पर पूँछ ज्यों की त्यों रही। वह लघु नहीं हुई। उसके लघु होने से जलते हुए कपड़े ढीले होकर गिर पड़ते। यथा : लघु ह्वै निबुकि गिरि मेरु तें बिसाल

भो। कौतुकी कपीस कूदि कनक कँगूरा चढ्यो रावन भवन चढ़ि ठाढ़ो तेहिकाल भो। तुलसी बिराज्यो व्योम बालधी पसारी भारी देखे हहरात भटकाल सो कराल भो। तेज को निधानु मानो कोटिक कृसानु भानु, नख बिकराल मुख तै सोइ रिसिलाल भो।

रावण का घर सबसे ऊँचा था। उसपर चढ़े हुए मेरु के समान हनुमान्जी ऊँचे और उनसे भी ऊँची उनकी जलती हुई पूँछ थी। यह दृश्य देखकर निशाचर की स्त्रियाँ डर गयीं। यथा :

बालधी बिसाल बिकराल ज्वाल माल मानो लंक लीलवे को काल रसना पसारी है।
कैधों व्योम वीथिका भरे हैं भूरि धूमकेतु वीररस वीर तरवारि सी उघारी है॥
तुलसी सुरेस चाप कैधों दामिनी कलाप कैधों चली मेरु ते कृसानु सरिभारी है।
देखे जातुधान जातुधानी अकुलानी कहै कानन उजारथो अब नगर प्रजारी है॥

दो. हरि[1] प्रेरित तेहि अवसर, चले मरुत उनचास।
अट्टहास करि गर्जा, कपि बढ़ि लाग अकास ॥२५॥

अर्थ : उस समय हरि की प्रेरणा से उनचासों पवन चले। हनुमान्जी अट्टहास करके गर्जे और आकाश में जा लगे।

व्याख्या : उनचासों : ४९ वायु प्रलय काल में चलते हैं। सो हरि की प्रेरणा से उस समय लङ्का में चले। इन्हीं वायु में से किसी की ग्रहगणों के घुमाने की शक्ति और किसी को मोक्ष तक पहुँचाने की शक्ति है। भाव यह कि गति मात्र ही वायु है। एक एक अणु की गति में भेद पड़ा। इतना बिना हुए लङ्का का दाह न होता। तब हनुमान्जी ने समझ लिया कि हरि की भी इच्छा हैं। अतः अमंगल सूचक अट्टहास करते हुए गर्जे और शरीर ऐसा बढ़ाया कि सिर आकाश में सटा हुआ मालूम होने लगा।

देह बिसाल परम हरुआई। मंदिर ते मंदिर चढ़ धाई॥
जरइ नगर भा लोग बिहाला। झपट लपट बहु कोटि कराला ॥१॥

अर्थ : देह परम विशाल है। परन्तु परम हलकी है। एक घर से दूसरे घर पर चढ़ते हुए दौड़ने लगे। नगर जलने लगा। लोग बेहाल हो गये। आग की करोड़ों लपटें झपट रही हैं।

व्याख्या : लङ्का में हनुमान्जी को आठो सिद्धियों से काम लेना पड़ा। ऐसे विशाल शरीर में बड़ी गुरुता होनी चाहिए थी। पर गुरुता एकदम नहीं थी। सामान्य बन्दरों की भाँति एक मकान से दूसरे पर कूदते चले जाते हैं। नगर भर में आग लग गयी। करोड़ों लपट की झपट लगने लगी। लोग विकल हो गये।

---

१. समाधि : अलङ्कार है।

लोगों की विकलता यथा : जरत निकेत धाओ धाओ लागी आगि रे। कहाँ तातु मातु भ्रात भगिनी भामिनी भाभी ढोटे छोटे छोहरा अभागे भोड़े भागि रे। क. रा.। पानी पानी पानी सब रानी अकुलानी कहें जात हैं परानी गति जानी गज चालिहै। बसन बिसारे तन भूषन संभारें नहिं आनन सुखाने कहें क्यौंहूँ कोऊ पालिहैं।

तात मातु हा सुनिअ पुकारा। एहि अवसर को हमहिं उबारा ॥
हम जो कहा यह कपि नहिं होई। बानर रूप धरे सुर कोई ॥२॥

अर्थ : हाय रे बाप हाय रे माँ ! इस अवसर पर हमें कौन बचावेगा ? चारों ओर यह पुकार सुनायी पड़ रही है। हमने तो पहिले हो कहा था कि यह बन्दर नहीं है। बानर का रूप धारण किये हुए कोई देवता है।

व्याख्या : पुकार का वर्णन करते हुए कवित्त रामायण में कहते हैं : प्रिया तू पराहि नाथ नाथ तू पराहि बाप बाप तू पराहि पूत पूत तू पराहि रे। एक परे गाढ़े एक डाढत ही काढ़े एक देखत हैं ठाढ़े कहैं पावक भयावनो। क. रा.। वीथिका बजारन प्रति अटनि अगारन प्रति पँवरि पगारन प्रति बानर विलोकिये। सब पुकार करते हैं कि इस अवसर पर हमें बचानेवाला कौन है ?

युद्ध के समय में ही लङ्कावालों में से कुछ ने निश्चय किया कि यह वानर नहीं है। वानर में इतना पराक्रम कहाँ ? इस रूप में कोई देव है। नहीं तो : नर कपि भालु अहार हमारा। सो बात ठीक निकली। यह कोई देवता है। सभी सिद्धियाँ इसमें हैं।

साधु अवग्या कर फल ऐसा। जरइ नगर अनाथ कर जैसा ॥
जारा नगरु निमिष एक माँहीं। एक बिभीषण कर गृह नाँही ॥३॥

अर्थ : साधु के अपमान का यह फल है कि नगर अनाथ के नगर की भाँति जल रहा है। हनुमान्‌जी ने पलक पड़ने में लङ्का जला दिया। एक विभीषण का घर नहीं जलाया।

व्याख्या : साधु अवग्या तुरत भवानी। कर कल्यान अखिल कर हानी। नगर भर में साधु की अवज्ञा की। पूँछ जलाने के लिए तेल घी और कपड़ा बड़े उत्साह से दिया। आनन्द मनाया। यथा : बाजहिं ढोल देहिं सब तारी। लात मारा यथा : मारहि चरन करहि बहु हाँसी। इसका फल यह हुआ कि सद्यः अखिल कल्याण की हानि हुई। रावण ऐसे नाथ के रहते अनाथ सा नगर जल रहा है। सब प्रयत्न निष्फल गये। यथा :

गाज्यो कपिराज ज्यौं विराज्यो ज्वाल जाल युत भाजे वीर धीर अकुलाइ उठ्यो रावनो।
धाओ धाओ धरौ सुनि धाए जातुधान धारि वारिधारा उलदे जलद ज्यौं न सावनो ॥
लपट झपट झहराने हहराने बात भहराने भट परयो प्रबल परावनो।
ढकनि ढकेलि पेलि सचिव चले लै ठेलि नाथ ना चलैगो बलु अनल भयावनो ॥

कोपि दसकंध तब प्रलय पयोद बोले रावन रजाइ धाइ आये जूथ जोरि कै।
कह्यो लंकपति लंक बरत बुताओ बेगि वानर बहाइ मारौ महावारि बोरि कै॥
भले नाथ! नाइ माथ चले पाथप्रदनाथ वरषें मुसलधार बार बार घोरि कै।
जीवन ते जागी आगी चपरि चौगुनी लागी तुलसी भभरि मेघ भागे मुख मोरिकै॥
इहाँ ज्वाल जरे जात उहाँ ग्लानि गरे गात सूखे सकुचात सब कहत पुकार हैं।
जुगषट भानु देखे प्रलय कृसानु देखे सेष मुख अगिन बिलोके बार बार हैं॥
तुलसी सुन्यौं न कान सलिल सर्पी समान अति अचरज कियो केसरी कुमार हैं।

अत्यल्प काल में देखते देखते लंका जल गयी। किसी का किया कुछ न हुआ। यह हनुमान्‌जी का बड़ा अलौकिक पुरुषार्थ है। जिनका घर जलाना चाहा वे ही घर जले। विभीषण का घर जलाना नहीं चाहा। वह बच गया। अग्नि वश में है।

ताकर दूत अनल जेहि सिरिजा। जरा न सो तेहि कारन गिरिजा॥
उलटि पलटि लंका सब जारी[1]। कूदि परा पुनि सिंधु मझारी॥४॥

अर्थ: हे गिरिजे! जिन्होंने अग्नि बनाया उन्हींका वह दूत था इसलिए नहीं जला। हनुमान्‌जी ने उलट पलटकर सारी लङ्का जला दी। फिर वे समुद्र में कूद पड़े।

व्याख्या: अपने सिरजनहार के दूत को अग्नि ने जलाना नहीं चाहा। यद्यपि पञ्चभूतों की जड़करणी है। ये विचारपूर्वक कार्य करते नहीं देखे जाते और इनके विचार पूर्वक कार्य न करने से ही सृष्टि चल रही है। परन्तु कहीं कहीं ये अपनी क्रिया नहीं करते हुए भी देखे गये हैं। और ऐसा होने के लिए कारण विशेष होना चाहिए। यहाँ रामजी का दूत होना कारण है। यथा: गोपद सिन्धु अनल सितलाई। गरुड़ सुमेरु रेनु समताही। रामकृपा करि चितवा जाही।

हनुमान्‌जी एक बार जलाते हुए चले गये। फिर उधर से उलटे और जलाते हुए चले। किनारे पर पहुँचकर फिर पलटे इस प्रकार तीन आवृत्ति की। जिसमें कोई घर बच न जाय और नगर के सम्पूर्ण भागों में एक साथ ही आग लगे। पहिली आवृत्ति का वर्णन कवित्त रामायण में सुन्दरकाण्ड के चौथे कवित्त से १४ तक है। यथा: लाइ लाइ आगि भागे बाल जला जहाँ तहाँ: से लेकर चित्रहू के कवि सों निसाचर न लागिहैं: तक है। दूसरी आवृत्ति का वर्णन १५वें कवित्त से लेकर २२वें कवित्त तक है। यथा: लागि लागि आगि भागि भागि चले जहाँ तहाँ। से लेकर जारत प्रचारि फेरि फेरि सो निसंक लंक जहाँ बाँको वीर तो सो सूर सिर ताजहैं: तक। तीसरी आवृत्ति का वर्णन २३वें कवित्त से २५वें तक। यथा:

---

१. कवि केशवदासजी लङ्कादाह विषयक विचित्र कथा कहते हैं। लंकिनी के रोकने पर हनुमंत बली तेहि थापर मारी। तजि देह भई तबही वर नारी। चलन लगौ जबहीं तब बीजौ। मृतक सरीरहिं पावक दीजौ। अतः उलटि पलटि लंका कपि जारी।

पान पकवान विधि नाना को. सँधानो सीधो : से लेकर रतन : जतन जारि किया है मृगांक सों : तक। तत्पश्चात् समुद्र में कूद पड़े। शरीर बड़ा भारी था इसलिए सिन्धु मझारी कहा।

दो. पूंछ बुझाइ खोइ श्रम, धरि लघुरूप बहोरि।
जनक सुता कें आगें, ठाढ़ भयउ कर जोरि ॥२६॥

अर्थ : पूँछ बुझाकर थकावट दूर करके और फिर छोटा सा रूप धारण करके श्री जानकीजी के सामने हाथ जोड़कर खड़े हो गये।

व्याख्या : पूँछ बुझाने से ही स्नान सूचित है। स्नान से श्रमापनोदन होता है। समुद्रजी का मनोरथ पूर्ण किया। उन्होंने मैनाक से कहा था कि मैं तो श्रमापनोदन में असमर्थ हूँ। तुम श्रमहारी हो। सो हनुमान्जी ने समुद्र को ही श्रमहारी बनाया। फिर हनुमान्जी ने छठी बार लघु रूप धारण किया। जिस रूप से लङ्कादहन किया था उस रूप से जानकीजी के सामने जाने में अभिमान सूचित होता। अतः जितने बड़े रूप से पहिले सामने आये थे उसी रूप से फिर सामने खड़े हुए। सीताजी ने सुना था कि बन्दर पकड़ा गया। उसकी पूँछ जलायी जा रही है सो बहुत दुःखी थीं। अतः उनके सामने खड़े हुए कि मैं कुशल हूँ। ये राक्षस मेरा कुछ न कर सके। पहिले ही कहा था : तिन्ह कर भय माता माहि नाहीं। जनकसुता का सब आशीर्वाद कार्य में परिणत हुआ।

मातु मोहि दीजे किछु चीन्हा। जैसें रघुनायक मोहि दीन्हा ॥
चूड़ामनि उतारि तब दयऊ। हरष समेत पवन सुत लयऊ ॥१॥

अर्थ : हे माता ! मुझे अब कोई चिह्न दीजिये। जैसे रघुनायक ने दिया था। तब चूड़ामणि उतार कर दिया। हनुमान्जी ने हर्षित होकर ले लिया।

व्याख्या : चिह्न का अर्थ इनाम न हो जाय इसलिए कहते हैं कि जैसे रघुनायक ने मुझे दिया था। आपके विश्वास के लिए चिह्न लेकर आये थे। अतः सरकार के विश्वास के लिए चिह्न चाहिए। अथवा चिह्न पाकर जो हर्ष आपको हुआ सो देखा। डूबते के लिए आधार हो गया। सो सरकार के आधार के लिए चिह्न चाहिए। यह मुद्रिका मातु मैं आनी। अतः मातु मोहि दीजै कछु चीन्हा। सरकार को मालूम हो जाय कि मुद्रिका ठीक पते पर पहुँच गयी।

और सब आभूषण अशोक वृक्ष पर लटका दिया था। पर चूड़ामणि केश में बँधा हुआ सिर पर था। रक्षा के लिए सरकार ने अँगूठी भेजी। प्रणाम के लिए माता चूड़ामणि भेज रही हैं। अथवा कन्यादान में सरकार को सीताजी और चूड़ामणि दोनों मिली थीं। अतः अपनी सखीरूप चूड़ामणि को उस समय की याद दिलाने के लिए भेजा। हनुमान्जी ने हर्ष के सहित लिया। क्योंकि जैसा चिह्न चाहते थे वैसा ही मिला।

कहेहु तात अस मोर प्रनामा । सब प्रकार प्रभु पूरनकामा ॥
दीन दयाल बिरदु संभारी । हरहु नाथ मम संकट भारी ॥२॥

अर्थ : हे तात ! मेरा इस प्रकार से प्रणाम निवेदन करना और कहना कि यद्यपि सब प्रकार से प्रभु पूर्णकाम हैं तथापि अपने दीनदयाल विरद को सँभालकर मेरे भारी सङ्कट को दूर कीजिये ।

व्याख्या : प्रणाम अभिनय करके वह परिपाटी भी बतला देती हैं जो कि महाराजों के आने पर अयोध्या में महारानियों के प्रणाम करने की थी । यह दूसरा चिह्न उसी प्रकार का है । जैसा हनुमान्‌जी ने करुणानिधान पद से ध्वनित किया था । विरह का सन्देश पाने पर भी पूर्णकाम कहती हैं । क्योंकि जानती हैं कि जदपि अकाम तदपि भगवाना । भगत विरह दुःख दुःखी सुजाना ।

विरद गरीबनेवाज राम को । सो वह विरद गिरा चाहता है । उसे सँभालिए । मुझे प्राणान्त सङ्कट है । एक तो दुःसह विरह अब नहिं सहि जाई । दूसरे सुनै को श्रवन सूल सम बानी । तीसरे यहाँ माँगने से आग नहीं मिलती । चूड़ामणि उतारि तब दयऊ यह : भेंट है । कहेतु तात अस मोर प्रनामा : यह पाँव पड़ना है । और हरहु नाथ मम संकट भारी : यह निवेदन है ।

तात सक्रसुत कथा सुनाएहु । बान प्रताप प्रभुहि समुझाएहु ॥
मास दिवस महुँ नाथ न आवा । तौ पुनि मोहि जिअत नहिं पावा ॥३॥

अर्थ : हे तात ! इन्द्र के पुत्र की कथा सुनाना और प्रभु को उनके बाण का प्रताप समझाना । महीने भर में नाथ न आये तो मुझे जीती न पायेंगे ।

व्याख्या : हनुमान्‌जी ने कहा था । तव वियोग संभव नाना दुःख बिसरि गयी महिमा सुवान की । अतः कहती हैं कि शक्रसुत की कथा सुनाना । यह कथा लक्ष्मणजी को भी नहीं मालूम है । एकान्त की कथा है । सरकार भगवती के गोद में सोये थे । यथा : ममाङ्के भरताग्रजः । हनुमान्‌जी के मुख से रामायण पारायण सुनने से भगवती जान गईं कि इतनी कथा हनुमान् नहीं जानता । अतः उसे सुनाकर हनुमान्‌जी की रामचरित की जानकारी भी पूरी की और प्रभु के लिए यह तीसरा चिह्न है । साथ ही साथ बाण की महिमा की द्योतक यह कथा है । तात्पर्य यह है कि जिस भाँति तुमने मुझे समझाया है उसी भाँति उन्हें भी समझाना ।

शर प्रताप जानत जगत कोउ न सामुहे होय ।
कारण मोर अभाग जो भूलि गये प्रभु सोय ॥
जगत रचत अरु संहरत अस समर्थ विधिरुद्र ।
सके न राखि जयन्त कहँ यद्यपि कृपासमुद्र ॥
रावण की गिनती कहा जो विधि हर बर पाय ।
प्रभु के कालानल सरिस शरहि सके समुहाय ॥

मम हित कीन्ह्यो काक पर प्रभु ब्रह्मास्त्र प्रयोग।
हरन हार को क्यों नहीं दससिर दलिबे जोग॥

शीघ्रता के लिए निवेदन करती हैं आज्ञा नहीं देतीं। एक बार आज्ञा दिया सत्य संघ प्रभु वध करि एही। आनहु चर्म कहति वैदेही। सो इतनी विरह-यातना भोगनी पड़ी। अतः न आने पर जो होगा उसे कहती हैं। मैं प्राण दे दूँगी। इस अधम के हाथ से मृत्यु स्वीकार नहीं।

कहु कपि केहि बिधि राखउँ प्राना। तुमहू तात कहत अब जाना॥
तोहि देखि सीतलि भइ छाती। पुनि मो कहुँ सोइ दिनु सोइ राती॥४॥

अर्थ : हे कपि ! कहो मैं किस प्रकार प्राण रक्खूँ। हे तात ! तुम भी जाने को कह रहे हो। तुमको देखकर छाती ठण्डी हुई। फिर मुझे वही दिन और वही रात है।

व्याख्या : अब हनुमान्‌जी को विदा करती हैं। अतः कहती हैं कि प्राण रखने की विधि बतलाते जाओ। तुम देख चुके हो कोई विधि नहीं है। पति के विरह में पुत्र को देखकर सन्तोष होता है। यथा : बूड़त विरह जलधि हनुमाना। भयउ तात मो कहँ जलजाना। तुम मेरे लिए जहाज हो गये थे। सो जहाज भी हटा चाहता है। विरह समुद्र में डूबता हुआ प्राणी कैसे जीये।

हरिजन जानि प्रीति अति बाढ़ी। सजल नयन पुलकावलि ठाढ़ी। अतः कहती हैं कि तुझे देखकर छाती ठण्ढी हुई। अब तेरे चले जाने पर उन्हीं रात और उन्हीं दिनों से सामना पड़ेगा जो काटे नहीं कटते। यथा : देखि परम बिरहाकुल सीता। सो छन कपिहि कलप सम बीता।

दो. जनकसुतहि समुझाइ करि, बहु बिधि धीरजु दीन्ह।
चरन कमल सिरु नाइ कपि, गवनु राम पहिं कीन्ह॥२७॥

अर्थ : हनुमान्‌जी ने जानकीजी को समझाकर बहुत प्रकार से धीरज दिया और उनके चरण कमलों में सिर नवाकर श्रीरामजी के पास गमन किया।

व्याख्या : दो. अब मोहि यहँ ते चलन में होइहि बेर जितेक।
प्रभु पयान में जानकी जननी देर तितेक॥
तेहि खोजन हित कपि कटक गयउ चहूँ दिसि धाय।
सीता सुधि पायो नहीं कहे होंयगे जाय॥
दच्छिन दिसि जे कपि गये, तिन पर आस लगाय।
बाट जोहते होंहिगे अति आरत रघुराय॥
समाचार तेरो सुनत प्रभु को धीरज होय।
घटे पीर रघुबीर हिय उचित करन अब सोय॥
मेरो लंक प्रवेश कोउ सके न निसिचर जानि।
ताते मम गति विधि समुझि रहिहैं ते भय मानि॥

लंक संक आतंक अति दसकंधर उरमाहिं।
अब तोको दुख देन हित कोई आइ है नाहिं॥
याते मोहि अब एक छन जनि रोके तू माय।
जाइ बेगि रघुबीर को आवौं तुरत लवाय॥

मुँदरी देखकर सन्तोष करना यह उनके स्वरूप से भिन्न नहीं है। यह अपने मुख से जाओ न कहेंगी। अतः प्रणाम करके चल पड़े। आशीर्वाद का भी इन्तजार न किया : मन असीस दीन्ह्यौं होइहैं तिहारोइ भायो। गी.।

चलत महा धुनि गर्जेसि भारी। गर्भ स्रवहिं सुनि निसिचर नारी॥

६३. पुनः समुद्रोल्लङ्घन प्रसङ्ग

नाघि सिंधु एहि पारहिं आवा। सबद किलिकिला कपिन्ह सुनावा॥१॥

अर्थ : चलते समय महा ध्वनि से भारी गर्जना किया। जिसे सुनकर राक्षसों के स्त्रियों के गर्भ गिर गये। समुद्रोल्लंघन करके इस पार आये और बन्दरों को किलकिला शब्द सुनाया।

व्याख्या : महाध्वनि से भारी गर्जना करने का अभिप्राय यह है कि जिसमें कोई यह न कह सके न जाने कब चोरी से बन्दर भाग गया। दूसरी बात यह भी हुई कि राक्षसियों को गर्भ गिरने का रोग हो गया। यथा : समुझत जासु दूत कर करनी। स्रवहिं गर्भ रजनीचर घरनी। अब उनका वंश नहीं बढ़ सकता। इस गर्जन से जो गर्भ थे वे गिर गये और भविष्य में हनुमान्‌जी की करणी के स्मरण से गिर जावेंगे। रावण के सभी कुकृत्यों का फल हनुमान्‌जी ने दिया। रावण ने सुरलोक उजाड़ा। यथा : बेद बिरुद्ध महीसुर साधु ससोक कियो सुरलोक उजार्‌यो : हनुमान्‌जी ने उसके प्राणों से प्रिय बाग को उजाड़ डाला। यथा : तेहि असोक बाटिका उजारी : रावण ने देवताओं का आहार बन्द किया। यथा : जाके डर सुर असुर डराहीं। निसि न नींद दिन अन्न न खाहीं। हनुमान्‌जी के भय से वही गति राक्षसों की हुई। यथा : लंक नहि खात कोउ भात रींधो। क. रा.। राक्षसों ने मुनियों को खाया। यथा : निसिचर निकर सकल मुनि खाये : हनुमान्‌जी ने कछु मारेसि कछु मर्देसि कछु मिलएसि धरि धूरि। रावण ने नगर ग्राम पुर में आग लगाया। यथा : नगर ग्राम पुर आग लगावहिं : हनुमान्‌जी ने जारा नगर निमिष एक माहीं केवल गर्जत गर्भ स्रवहि सुररवनी का बदला बाकी था सो उसे भी इस महाधुनि के भारी गर्जन से चुका दिया।

एहि पारहिं आवा का भाव यह कि जहाँ कवि कपि समाज के साथ बैठे हैं। हनुमान्‌जी ने कहा था : तब लगि मोहि परखेहु तुम्ह भाई। इसलिए कवि भी इस पार ही रह गये। इसलिए एहि पारहिं आवा कह रहे हैं। जहाँ से हनुमान्‌जी दृष्टिगोचर हो सकते हैं वहाँ तक इस पार में ही गिनती है। किलकिला शब्द हर्षसूचक है।

हरखे सब बिलोकि हनुमाना। नूतन जनम कपिन्ह तब जाना ॥
मुख प्रसन्न तन तेज बिराजा। कीन्हेसि रामचन्द्र कर काजा ॥२॥

अर्थ : हनुमान्‌जी को देखकर सब प्रसन्न हो गये। बन्दरों ने तब जाना कि हमारा नया जन्म हुआ है। हनुमान्‌जी का मुख प्रसन्न था। शरीर में तेज विराजमान हो रहा था : इससे मालूम हो गया कि इन्होंने रामचन्द्र का कार्य सम्पादन किया।

व्याख्या : शब्द सुनते ही वानर लोगों ने उधर देखा तो हनुमान्‌जी दिखायी पड़ गये। सब बड़े दुःखी थे कि इहाँ न सुधि सीता कर पाई। उहाँ गये मारिहि कपिराई। दोउ प्रकार भई मृत्यु हमारी। सो दोनों प्रकार से नया जन्म हुआ। अतः हनुमान्‌जी को देखकर हरखे। यथा : नाथ काज कीन्हेउ हनुमाना। राखेउ सकल कपिन्ह कर प्राना।

कृतकार्य होने का चिह्न बतलाते हैं। मुख प्रसन्न तन तेज बिराजा। दूर से प्रत्यक्ष करने में दो ही इन्द्रियाँ समर्थ हैं एक श्रोत्र और दूसरा चक्षु। दोनों से ही कृतकार्यता के ही लक्षण अनुभूत हुए। श्रोत्र से किलकिला शब्द का अनुभव किया और चक्षु से मुख की प्रसन्नता और शरीर के तेज का अनुभव हुआ। अतः सबको निश्चय हो गया कि कृतकार्य होकर आ रहे हैं। सुग्रीव का भी निहोरा पूरा हुआ। यथा : राम काज अरु मोर निहोरा। रामचन्द्र कर काज सँवारेहु।

मिले सकल अति भये सुखारी। तलफत मीन पाव जिमि बारी ॥
चले हरखि रघुनायक पासा। पूछत कहत नवल इतिहासा ॥३॥

अर्थ : सब मिले और ऐसे सुखी हुए जैसे तड़पती हुई मछली को जल मिल जाय। सब इस नये इतिवृत्त को पूछते और कहते रघुनाथजी के पास चले।

व्याख्या : आयो हनुमान प्रान हेतु अंक माल देत लेत पग धूरि एक चूमत लंगूर है। क. रा.। बिना हनुमान्‌जी के सब मछली की भाँति तड़पते थे। यानी एक मछली बहुत होती है। अकेला पानी सबसे मिलता है। इसी भाँति हनुमान्‌जी सबसे मिले। इससे हनुमान्‌जी का प्राणप्रिय होना दिखलाया। पवनसुत हैं।

राम काज करि फिरि मैं आवों। सीता के सुधि प्रभुहि सुनावों। इस बीच में हनुमान्‌जी विश्राम नहीं लेते। इसलिए सब रघुनाथजी के पास चल पड़े। हनुमान्‌जी से बड़े अविकत्थन स्वभाव के हैं। ब्यवरेवार सब बात कहने से अपना गौरव कहना पड़ेगा। अतः अत्यन्त संक्षेप में अपनी कृतकार्यता कह सुनायी। अब ब्योरेवार सब कथा सुनने के लिए बन्दर लोग एक एक बात को छेड़ छेड़कर पूछते हैं। तब हनुमान्‌जी को भी कहना पड़ता है। इस भाँति बन्दर लोग प्रश्न पर प्रश्न करते चले और हनुमान्‌जी समाचार सुनाते चले। राम काज किया है। अतः उन्हीं के पास चलना लिखते हैं। पुर दहि नाँघेउ बहुरि पयोधी : प्रसङ्ग समाप्त हुआ। अब आये कपि सब जहँ रघुराई : बैदेही की कुसल सुनाई : प्रसङ्ग आरम्भ होता है।

६४. रघुनाथ सन्निकट प्रसङ्ग

तब मधुबन भीतर सब आए। अंगद संमत मधु फल खाए ॥
रखवारे जब बरजइ लागे। मुष्टि प्रहार हनत सब भागे ॥४॥

अर्थ : तब सब मधुवन के भीतर घुस गये और अङ्गदजी की सम्मति से सबों ने मधु और फल खाये। जब रखवारी करनेवालों ने रोका तो उन पर घूसों की मार पड़ी वे भाग खड़े हुए।

व्याख्या : जैसे इन्द्र का नन्दन वन है। रावण का अशोक वन है। वैसे ही राजा सुग्रीव का मधुवन है। इसमें मधु बहुत होती है इसीसे इसका नाम मधुवन है। बन्दर लोग उसी उपवन में घुस गये और अङ्गदजी की सम्मति से मधु फल खाने लगे। हनुमान्‌जी के मुख से अशोक वन के फलों का स्वाद सुनते आ रहे हैं। सो फल के रसिकों का चित्त चलायमान हो रहा है। अतः अङ्गदजी ने आज्ञा दे दी।

वहाँ के मधु और फल खाने की किसी को आज्ञा नहीं है। अतः सब रखवालों ने मिलकर रोका। खानेवाले बहुत हैं। दो एक रखवालों के रोकने से काम चलनेवाला नहीं था। सो रोकने का उत्तर घूसों से मिला। अङ्गदजी के साथ रहने से सबों ने रोकने के रसम की तामीली मात्र की। घूँसा खाते ही भाग खड़े हुए।

दो. जाइ पुकारे ते सब, बन उजार जुवराज।
सुनि सुग्रीव हरख कपि, करि आये प्रभु काज ॥२८॥

अर्थ : उन सबों ने जाकर पुकार किया कि युवराज ने वन उखाड़ डाला। सुनकर सुग्रीवजी हर्षित हुए कि बन्दर प्रभु का कार्य करके आगये।

व्याख्या : सुग्रीव राजा के पास पुकार मचाया : वन उजार युवराज। सरदार का नाम ले रहे हैं। युवराज कहने का भाव यह है कि हम लोग मार खाकर भागे आ रहे हैं। युवराज के साथ होने से मार न सके। सुनकर सुग्रीवजी को क्रोध न होकर हर्ष हुआ। तुरन्त समझ गये कि बन्दर कृतकार्य होकर आगये। इस हर्ष से रखवारे चकित हैं। सुग्रीवजी प्रसन्न हो उठे कि मैंने प्रतिज्ञा की थी : सब प्रकार करिहौं सेवकाई। तो भला एक सेवा तो हुई।

जौं न होति सीता सुधि पाई। मधुबन के फल सकहिं कि खाई ॥
एहि[१] बिधि मन बिचार कर राजा। आइ गए कपि सहित समाजा ॥१॥

अर्थ : यदि सीताजी की सुधि न मिली होती तो क्या मधुवन के फल खा सकते थे ? इस प्रकार से मन में विचार करते ही थे कि बन्दर लोग समाज के साथ आगये।

---

१. प्रहर्षण : तृतीय अलङ्कार है।

व्याख्या : सीता की सुधि पानेवाली ही खुशी इतनी बड़ी है कि जिससे मधुवन की लूट माफ हो सकती है। यदि सुधि न पाये होते तो अपने प्राण का ही डर होता। मेरे क्रोध को और भी दीप्त न करते। अतः मधुवन के फल खाने के व्याज से अपने कृतकार्यता का समाचार पहिले ही भेजा है। राजा है मन में विचार कर रहा है। प्रकट नहीं कहता। पर प्रसन्नता मुख पर झलक आयी। इतने में सब लोग समाज सहित आगये। भाव यह कि मधुवन में भी अधिक नहीं ठहरे। फल खाया और चल दिये। चौदहों वीर अपने समाज सहित गये थे सो समाज सहित आगये।

आइ सबहि नावा पद सीसा। मिलेउ सबन्हि अति प्रीति कपीसा॥
पूँछी कुसल कुसल पद देखी। राम कृपा भा काजु बिसेषी॥२॥

अर्थ : आकर सबने चरणों में सिर नवाया। वानरराज सभी से बड़े प्रेम के साथ मिले। कुशल पूछा। उत्तर मिला कि चरणों के दर्शन से सब कुशल है। श्रीरामजी की कृपा से विशेष रूप से कार्य हुआ।

व्याख्या : जाते समय सुग्रीव को प्रणाम नहीं किया। सरकार की उपस्थिति में उन्हीं को प्रणाम किया जाता है और किसी को नहीं। यथा : आइ रामपद नावहिं माथा। निरखि बदन सब होहिं सनाथा। तथा : आयसु माँगि चरन सिर नाई। चले हरषि सुमिरत रघुराई। इस समय सरकार नहीं हैं। अतः सुग्रीवजी को प्रणाम करते हैं। पहिले कहा : चले हरखि रघुनायक पासा। पर यहाँ सुग्रीव के पास पहुँचना कह रहे हैं। भाव यह कि जिसने भेजा है उसी को खबर देना चाहिए। अब उन्हें आगे करके रघुनाथजी के पास जावेंगे। नमस्कार सबने आकर किया। पता न चला कि किसके द्वारा काम हुआ और सुग्रीवजी को अति हर्ष है। अतः सबसे मिले।

सुग्रीवजी तन मन वचन से वानरों के अनुकूल हैं। मन से यथा : एहि बिधि मन बिचार कर राजा। तन से यथा : मिले सबहि। वचन से यथा : पूछी कुसल। जिस भाँति बड़ों के कुसल प्रश्न की चाल है उसी भाँति कुशल पद देखी। उत्तर देने की भी चाल है। यथा : पूँछी कुसल नाथ अब कुसल देखि पदकंज। सीता की सुधि तो कार्य है। लङ्कादहन आदि विशेष कार्य है। सो विशेष कार्य ऐसा हुआ कि उसे कृपासाध्य ही कहना चाहिए। क्रिया से ऐसा नहीं हो सकता।

नाथ काज कीन्हेउ हनुमाना। राखे सकल कपिन्ह के प्राना॥
सुनि सुग्रीव बहुरि तेहि मिलेऊ। कपिन्ह सहित रघुपति पहिं चलेऊ॥३॥

अर्थ : हे नाथ ! हनुमान्‌जी ने कार्य किया। सब बन्दरों का प्राण बचाया। सुनकर सुग्रीव फिर उनसे मिले और वानरों के साथ रामजी के पास चले।

व्याख्या : अब स्वाभाविक प्रश्न यह उठता है कि कार्य किसने किया। अतः कहते हैं : कीन्हेउ हनुमाना। हम लोग तो व्यर्थ ही आदर के पात्र बन रहे हैं। हनुमान्‌जी के प्रति सब कृतज्ञ हैं। अतः उनके नाम लेने में उत्साह है। अवधि बीत

गयी सुधि न मिली। हम लोग तो वध्य हो गये थे। हनुमान् ने ही सबके प्राण की रक्षा की। अथवा हम लोग तो समुद्र के तट पर अनशन करने के लिए बैठ ही गये थे। परन्तु हनुमान्जी ने : तब लगि मोहि परिखेहु तुम्ह भाई। सहि दुःख कंदमूल फल खाई। कहकर सबके प्राणों की रक्षा की तथा रास्ते में : मरन चहत सब बिनु जलपाना : वहाँ भी इन्होंने ही सबके प्राणों की रक्षा की।

अब मालूम हो गया कि कार्य हनुमान् द्वारा हुआ। अतः कृतज्ञता प्रकाश के लिए पुनः मिलना समुचित हुआ। कार्य विशेष का ब्योरा सुनने के लिए ठहरे नहीं। जितनी जल्दी सरकार की पीड़ा मिट सके वही करते हैं। अतः सबके साथ तुरन्त रवाना हो गये। अब वहीं चलकर ब्योरेवार बात सुनी जाय।

राम कपिन्ह जब आवत देखा। किए काजु मन हरष बिसेषा॥
फटिक सिला बैठे द्वौ भाई। परे सकल कपि चरनन्हि जाई॥४॥

अर्थ : श्रीरामजी ने जब वानरों को कार्य किये प्रफुल्लित मन आते देखा तो दोनों भाई स्फटिक शिला पर जा बैठे। सब वानर जाकर उनके चरणों में गिरे।

व्याख्या : वानरों ने रामजी को न देखा। रामजी ने उनको आते देखा। हर्ष विशेष से कार्यसिद्धि का अनुमान हुआ। मन हर्ष का बाह्य लक्षण : मुख प्रसन्न तन तेज बिराजा है। गिरि गुहा में उस समय सरकार थे। अतः उन्होंने बन्दरों को देखा। वे सरकार को न देख सके।

तब बाहर निकलकर दोनों भाई स्फटिक शिला पर जा बैठे सबके सुभीते के लिए। सुग्रीव के यहाँ : आइ सबन्हि नावा पद सीसा। पर रामजी के यहाँ : परे सकल कपि चरनन्हि जाई।

दो. प्रीति सहित सब भेंटे, रघुपति करुना पुंज।
पूँछी कुसल नाथ अब, कुसल देखि पद कंज॥२९॥

अर्थ : कृपा के समूह रघुनाथजी सबसे प्रेम के साथ मिले और कुशल पूछी। वानरों ने कहा : नाथ! अब श्रीचरणों के दर्शन से कुशल है।

व्याख्या : परे सकल कपि चरनन्हि जाई। इसलिए प्रीति सहित सबसे मिले। क्योंकि रघुपति करुनापुञ्ज हैं। जानते हैं कि मेरे कार्य के लिए सब अनशन करके प्राण देने पर तुले हुए थे। दूसरी बात यह कि करुणापुञ्ज हैं। प्रेमाधिक्य से चरणों में पड़ते देखकर गले लगा लिया। कायदा बिलकुल एक सा चल रहा है। सुग्रीवजी मिले सबहि अति हरष और रामजी प्रीति सहित सब भेंटे। सुग्रीवजी के कुशल पूछने पर उत्तर दिया : कुसल पद देखी। रामजी के कुशल पूछने पर भी वही उत्तर देते है : नाथ अब कुसल देखि पद कंज। आये कपि सब जहँ रघुराई। प्रसङ्ग यहाँ तक है। आगे बैदेही की कुसल सुनाई : प्रसङ्ग चलेगा।

जामवंत कह सुनु रघुराया। जा पर नाथ करहु तुम दाया ॥
ताहि सदा सुभ कुसल निरंतर। सुर नर मुनि प्रसन्न ता ऊपर ॥१॥

अर्थ : जाम्बवान ने कहा हे रामजी ! सुनिये। हे नाथ ! जिस पर आप दया करते हैं उसे सदा मंगल और सर्वदा कुशल है। देवता मनुष्य और मुनि सभी उस पर प्रसन्न रहते हैं।

व्याख्या : बूढ़े जाम्बवान ने देखा कि कुशल कहने के प्रेम में बन्दर कार्यसिद्धि कहना भूल गये। अतः कुशल कथा का विस्तार करते हुए कहते हैं कि कुशल तो आपकी दया पर ही निर्भर है : जासु कृपा नहि कृपा अघाती। आपकी कृपा ही सुर नर मुनि की प्रसन्नता का कारण हैं। भाव यह कि सब ओर से उसे सहायता मिलती है और सबका स्वार्थ उसी से सिद्ध होता है। शुभ से मङ्गल का योग होना कहा। निरन्तर कुशल से बाधाओं का अतिक्रमण होना कहा। सुर नर मुनि स्वार्थ के लिए प्रीति करनेवाले हैं। वे भी आपके कृपापात्र पर प्रसन्न हो जाते हैं। सबका स्वार्थ भी उसी से सधता है। मैनाक मिलन सुरसा आशीर्वाद बिभीषण मिलन शुभ वृत्तान्त है और सिंहिका वध काल का हटना लङ्किनी पराभव आदि निरन्तर कुशल की कथा है।

सोइ बिजई बिनई गुन सागर। तासु सुजसु त्रैलोक्य उजागर ॥
प्रभु की कृपा भयउ सब काजू। जन्म हमार सुफल भा आजू ॥२॥

अर्थ : वही विजयी, वही विनयी है, वही गुणसागर है। उसी का सुन्दर यश तीनों लोक में प्रकाशित होता है। प्रभु की कृपा से सब कार्य हुआ और हम लोगों का जन्म सफल हुआ।

व्याख्या : विजय भी उसी की होती है और वही विजय पर अभिमान नहीं करता। विजय की शोभा विनय से है। उसी में सब गुण आ जाते हैं। वही यशस्वी होता है। गुण की शोभा यश से है। विजयी यथा : प्रभु मर्कट बल भूरि। विनय यथा : सुनु माता साखामृग नहिं बल बुद्धि बिसाल। गुनसागर यथा : अजर अमर गुननिधि सुत होहू। सुयश यथा : तासु चरित मन महुँ सब गावा। कार्य तो प्रभु की कृपा से हुआ और निमित्त होने से जन्म हम लोगों का सुफल हो गया। कार्य सबके सब असाध्य थे। मनुष्य जन्म का सफल होना महा कठिन हो जाता है। सो बन्दर भालुओं का जन्म सुफल हुआ। सरकार का कार्य सम्पादन करके आ रहे हैं : देह धरे कर यह फल भाई। भजिय राम सब काम बिहाई। सो सरकार की सेवा बन पड़ी।

६५. वैदेही कुशल कथन प्रसङ्ग

नाथ पवनसुत कीन्हि जो करनी। सहसहुँ मुख न जाइ सो बरनी ॥
पवनतनय के चरित सुहाए। जामवंत रघुपतिहि सुनाए ॥३॥

अर्थ : हे नाथ ! पवनसुत हनुमान्जी ने जो करणी की है वह सहस्रों मुख से वर्णन नहीं की जा सकती। तब जाम्बवान ने हनुमान्जी के सुन्दर चरित्र को श्रीरामजी से कह सुनाया।

व्याख्या : जान तो सबने लगाया। यथा : राम काज लयलीन मन बिसरा तन कर छोह : पर प्रशंसनीय करणी हनुमान्जी की ही है। उसका यथार्थ वर्णन सहस्र मुख से भी असम्भव है : भोगावति जस अहिकुल बासा। अमरावति जस सक्र निवासा। तिन्ह तें अधिक रम्य अति बंका। जग विख्यात नाम तेहि लंका। सहस्र मुख के पुर में ऐसा दुर्ग नहीं है : जिसका हनुमान्जी ने विनाश किया। इसलिए वे वर्णन नहीं कर सकते। अथवा हनुमान्जी साधु हैं। उनकी करणी का वर्णन सहस्र मुख नहीं कर सकते। यथा : कहि सक न नारद सेष सारद सुनत पद पंकज गहे।

हनुमान्जी अविकत्थन हैं। ब्यौरेवार न कहेंगे और सरकार को सब बातें ब्यौरेवार सुनाना चाहिए। इसलिए रास्ते भर छेड़ छेड़कर पूछते आये। यहाँ हनुमच्चरित का उपसंहार दिखलाया। वक्ता जाम्बवान श्रोता स्वयं रामचन्द्र। प्रवर्षण गिरि पर पहिले पहल हनुमच्चरित की कथा हुई।

सुनत कृपानिधि मन अति भाए। पुनि हनुमान हरषि हिय लाए ॥
कहहु तात केहि भाँति जानकी। रहति करति रच्छा स्वप्रान की ॥४॥

अर्थ : सुनते ही कृपानिधि के मन में बहुत अच्छे लगे। उन्होंने हर्षित होकर फिर हनुमान्जी को हृदय से लगा लिया : और कहा : हे तात ! कहो जानकी किस प्रकार से रहती और अपने प्राणों की रक्षा करती है।

व्याख्या : कृपानिधि हैं : इन्हें सेवक के सुहाए चरित अत्यन्त भाए। उस चरित्र का उपक्रम जाम्बवान के अति सुहाए वचन से है। यथा : जामवंत के बचन सुहाए। सुनि हनुमंत हृदय अति भाए और उपसंहार भी उन्हीं के वचन से है। यह अत्यन्त सुहाता है। इसलिए सुन्दरकांड की कथा प्रायेण सुनी जाती हैं। श्रीहनुमान्जी के चरित भाए सबको। परन्तु कृपानिधि को अत्यन्त भाए। अतः हरषि हिय लाए।

अब सरकार हनुमान्जी से पूछते हैं कि जानकी ने तो वन यात्रा के प्रसंग में कहा था राखिअ अवध जो अवधि लगि रहत जान अहि प्रान। और तदनुसार मैंने भी समक्ष लिया था कि हठि राखे नहिं राखिहि प्राना। सो लङ्का में वह कौन सी विधि है जिससे सीता के प्राणों की रक्षा हो रही है : बड़ा ही विकट प्रश्न सरकार ने हनुमान्जी से किया। हनुमान्जी उत्तर देते हैं :

दो. नाम पाहरु रात दिनु, ध्यान तुम्हार कपाट।
लोचन निज पद जंत्रित, जाहि प्रान केहि बाट ॥३०॥

अर्थ : आपका नाम रात दिन पहरा देता है। आपका ध्यान ही किवाड़ है। चरणों में नेत्रों का ताला लगा है। फिर प्राण किस रास्ते से जाय ?

व्याख्या : हनुमान्‌जी का कहना है कि शरीर पर रावण का पहरा है और प्राण पर तो सरकारी पहरा पड़ रहा है। प्राण तो निकल जाना चाहते हैं पर उन्हें रास्ता नहीं मिलता। सब वृत्तियों का अवरुद्ध होकर सरकार के आकार में आकारित होना ही ध्यान है। सो ध्यानरूपी किवाड़ में प्राण बन्द हैं। मन के रुकने से प्राण रुका हुआ है। यथा : चित्र से नयन अरु गढ़े से चरण कर मढ़े से नयन नहिं सुनत पुकारे : गी. :। चरणों में नयन के यंत्रित होने का कारण यह है कि चरण में विष्णु भगवान् का निवास है। तिस पर नाम का श्वास निःश्वासात्मक जय हो रहा है। इससे उसे रात दिन का पहरेदार बतलाया। इन्हीं पहरेदारों के बल पर काल का जय होता है। श्रीजानकीजी का शरीर ही नहीं प्राण भी कैद है। जो किवाड़ में बन्द हो, ताला लगा हो, उस पर भी पहरा पड़ता हो, वह बाहर निकले तो कैसे ?

चलत मोहि चूड़ामनि दीन्ही। रघुपति हृदय लाइ सोइ लीन्ही ॥
नाथ जुगल लोचन भरि बारी। बचन कहे कछु जनककुमारी ॥१॥

अर्थ : चलते समय मुझे चूड़ामणि दिया। श्रीरामजी ने उसे हृदय से लगा लिया। हनुमान्‌जी ने कहा : हे नाथ ! दोनों आँखों में आँसू भरकर कुछ वचन श्री जानकीजी ने कहा है।

व्याख्या : हनुमान्‌जी ने उत्तर समाप्त होते न होते दूसरी बात छेड़ दी। जिसमें इस प्रकार के दूसरे प्रश्न न उठने पावे। क्योंकि माता पिता के वियोग के निरूपण में पुत्र को बड़ी कठिनाई पड़ती है। यद्यपि माँगने पर चूड़ामणि मिली है पर यह बात हनुमान्‌जी नहीं कहते। हाथ में लेकर चूड़ामणि उपस्थित करते हैं। कहते हैं कि चलते समय मुझे चूड़ामणि दिया। भाव यह कि देखने से जब चित्त द्रवीभूत हो तो सन्देश कहें। अभी तो चित्त तर्क वितर्क पर आरूढ़ है। वही बात सामने आयी। रामजी ने चूड़ामणि को हृदय से लगा लिया। भगवती के चिह्न को हृदय से लगाते हैं। तब हनुमान्‌जी बोले कि जनकनन्दिनी की दोनों आँखें बात कहने में डबडबा आयीं। कहना उन्हें बहुत था पर कुछ ही कह सकीं। जनककुमारी कहकर दुःख सहने की अयोग्यता ध्वनित किया।

अनुज समेत गहेहु प्रभु चरना। दीन बंधु प्रनतारति हरना ॥
मन क्रम बचन चरन अनुरागी। केहि अपराध नाथ हौं त्यागी ॥२॥

अर्थ : जानकीजी ने कहा कि छोटे भाई समेत प्रभु का चरण पकड़ना और कहना कि आप दीनबन्धु हैं। शरणागत के दुःखों को हरनेवाले हैं। मैं मन वचन और कर्म से आपके चरणों की अनुरागिणी हूँ ? हे नाथ ! मैं किस अपराध से त्यागी हुई हूँ ?

व्याख्या : अति आर्त्त होने से लघुदेवर के भी चरण ग्रहण के लिए कह रही हैं अथवा उनके प्रति जो कटु वचन कहा था उसका बड़ा पश्चात्ताप हृदय में है। क्षमापन के लिए उनके चरण ग्रहण करने को कह रही हैं। दोनों भाई दीनबन्धु हैं, दोनों प्रणतार्ति हरण हैं और मैं दीन, आर्त तथा प्रणत हूँ। पहिला प्रश्न जानकीजी का यही था कि : कपि केहि हेतु धरी निठुराई। उसी का विवरण करते हैं कि मन क्रम वचन अनुरागी के त्याग का आप कारण बतलाइये। भगवती ने पहिले प्रणाम कहा तब सन्देश कहा। यथा : कहेहु तात अस मोर प्रणामा : उसी को स्पष्ट करते हैं। अनुज समेत गहेहु प्रभु चरना। इसके बाद सन्देश कहते हैं : पर जानकीजी के कहे हुए सन्देश से इस सन्देश के एक शब्द का मेल नहीं खाता। यही दूत की पण्डिताई है कि सन्देश के भावों को अवसरोचित रूप में व्यक्त करे। अतः वाक्यों में भेद होते हुए भी तात्पर्य ऐसे अवसरानुकूल शब्दों में कहा गया कि यदि सीताजी के वाक्य दोहरा दिये जाते तो वैसे प्रभावोत्पादक न होते।

अवगुन एक मोर मैं माना। बिछुरत प्रान न कीन्ह पयाना ॥
नाथ सो नयनन्हि कर अपराधा। निसरत प्रान करहिं हठि बाधा ॥३॥

अर्थ : एक दोष मैं अपना मानती हूँ कि वियोग होते ही प्राण नहीं चले गये। किन्तु हे नाथ ! यह तो नेत्रों का अपराध है जो प्राणों के निकलने में हठपूर्वक बाधा देते हैं।

व्याख्या : एक अवगुण मैं अपना मानती हूँ कि यदि प्राण नहीं जाने पाते तो विरह ज्वाला से शरीर तो भस्म हो जाना चाहिए। क्योंकि : अस कहि सीय विकल भइ भारी। वचन वियोग न सकी सँभारी। सो शारीरिक वियोग कैसे सँभला ?

इस पर कहती हैं कि प्राण का कोई अपराध नहीं। वह तो निकल जाना चाहता है। अपराधी तो ये आँखें हैं जो उसके निकलने में बाधा पहुँचाती हैं। अब मेरे अन्तःकरण प्राण और इन्द्रियों में सामञ्जस्य नहीं है। गड़बड़ी मच गयी है। कोई कुछ चाहता है कोई कुछ चाहता है।

बिरह अगिनि तनु तूल समीरा। स्वास जरै छन माहिं सरीरा ॥
नयन स्रवहिं जलु निज हित लागी। जरै न पाव देह बिरहागी ॥४॥

अर्थ : विरह अग्नि है। शरीर रूई है और श्वास पवन है। यह शरीर क्षणभर में भस्म हो सकता है। परन्तु नेत्र अपने हित के लिए जल बरसाते हैं। विरह की आग से देह जलने नहीं पाती।

व्याख्या : भाव यह कि शरीर के स्थिर रहने से ही ध्यान श्वास निःश्वासात्मक जप त्राटकादि क्रियायें बनती हैं तभी प्राण रुकता है। यदि शरीर ही विरह ज्वाला से जल जाय मकान ही न रहे तो किवाड़ पहरेदार और ताला क्या करेगा ? इसके उत्तर में कहती हैं कि शरीर के भस्म होने की सब सामग्री ठीक है। विरहाग्नि अति तीव्र है। जिसके आगे लौकिकाग्नि शीतल मालूम होती

है। यथा : देहि अगिनि तन करहि निदाना। इस आग के सामने देह रूई है। सती के जलने का विज्ञान इसी दोहे में है। और श्वास धौंकनी की भाँति इस अग्नि को बढ़ाता है। सती को पति के पुनर्दर्शन की आशा नहीं रहती। उसकी आँखें आँसू नहीं बहातीं। मेरी आँखों को दृढ़ आशा दर्शन की है। अतः वे शरीर को जलने देना नहीं चाहतीं। शरीर को भिगो देती हैं। भीगी हुई रूई नहीं जलती। अतः वे ही मेरे शरीर के दग्ध होने में बाधक हैं। वे सरकार के दर्शन की लालची हैं। इतना ही अवगुण है। अब सरकार ही विचार लें कि क्या इतना अवगुण अनुरागी के त्याग के लिए यथेष्ट कारण हो सकता है कि ग्रहण का? बड़े मार्के का उत्तर है कि आपके दर्शन की आशा से जी रही हैं। नहीं तो उस मूर्ति का मैं दर्शन कर चुका हूँ। जब वे प्रेमोन्माद में चन्द्र तारा और अशोक वृक्ष से अग्नि माँग रही थीं।

सीता कै अति बिपति बिसाला। बिनहि कहे भल दीनदयाला ॥५॥

अर्थ : सीताजी की अत्यन्त विशाल विपत्ति का हे दीनदयाल! न कहना ही अच्छा है।

व्याख्या : आप दीनदयाल हैं। दीन की विपत्ति देख नहीं सकते। और सीताजी ऐसी दीन हो रही हैं कि उनकी विपत्ति न कहने में ही कुशल है। सरकार बहुत दुःखी होंगे सह न सकेंगे। रावण की कही शूलसम वाणी की ओर लक्ष्य है : तृषित वारि बिनु जो तनु त्यागा। मुए करहि का सुधा तड़ागा। अतः शीघ्र चलिए।

दो. निमिष निमिष करुनानिधि, जाहिं कलप सम बीति।
वेगि चलिअ प्रभु आनिअ, भुज बल खल दल जीति ॥३१॥

अर्थ : हे करुणानिधान! एक एक पल कल्प के समान बीत रहा है। अतः हे प्रभु! तुरन्त चलिए और अपनी भुजाओंके बल से दुष्टों को जीतकर उन्हें ले आइये।

व्याख्या : सीताजी की विरह की दशा देखकर : सो छन कपिहि कलप सम बीता। अतः जो स्वयं अनुभव कर रहा है उसके एक पल के कल्प सम बीतने में क्या सन्देह है। भाव यह कि बातचीत में समय व्यर्थ बीत रहा है। एक निमेष इस समय कीमती : मूल्यवान् हैं। कौन कह सकता है कि कब उनका शरीर छूट जाय। अतः शीघ्रता कीजिये। हनुमान्जी जाम्बवान से सुन चुके हैं कि तब निज भुज बल राजिव नैना। कौतुक लागि संग कपि सेना। कपि संग सघारि निसिचर राम सीतहि आनिहैं। अतः कहते हैं भुजबल खल दल जीति। बिना युद्ध के सीता की प्राप्ति नहीं हो सकती।

सुनि सीता दुख प्रभु सुख अयना। भरि आए जल राजिव नयना ॥
बचन काय मन मम गति जाही। सपनेहु बूझिअ बिपति कि ताही ॥१॥

अर्थ : सीता का दुःख सुनकर सुखधाम प्रभु के नेत्रों में जल भर आया। वचन मन और तन से जिसे मेरी गति हो उसे क्या सपने में भी विपत्ति आ सकती है।

व्याख्या : जिस सीता का नाम सोने में भी उच्चरित होता है। जिसके ऊपर आघात करने से काग पर भी ऐषीकास्त्र का प्रयोग किया गया उसी सीता का दुःख सुनकर सुखधाम प्रभु की आँखों में आँसू भर आये। राजीव नयन शब्द का प्रयोग कृपाद्योतन के अर्थ में कवि करते हैं। यथा : चितइ कृपा करि राजिव नयना इत्यादि। उधर सन्देश कहने में भगवती के नयनों में जल भर आया था। यथा : नाथ जुगल लोचन भरि बारी। वचन कहे कछु जनककुमारी। इधर सन्देश सुनकर सरकार के नेत्रों में जल भर आया। यथा : भरि आये जल राजिव नयना।

प्रभु ने कहा अनन्य चिन्तन करनेवाले को विपत्ति कहाँ ? सीताजी ने अपने को कहा था मन क्रम वचन चरन अनुरागी। और हनुमान्‌जी कहते हैं सीता कै अति बिपति बिसाला। इन दोनों बातों का सामञ्जस्य नहीं बैठता। क्योंकि सरकार के अनुराग में विपत्ति हरण का सामर्थ्य है। रामानुरागी को विपत्ति कहाँ ? अतः कहते हैं : सपनेहु बूझिअ बिपति कि ताही।

कह हनुमंत बिपति प्रभु सोई। जब तव सुमिरन भजनु न होई ॥
केतिक बात प्रभु जातुधान की। रिपुहि जीति आनबी[1] जानकी ॥२॥

अर्थ : हनुमान्‌जी ने कहा कि हे प्रभो ! विपत्ति तो वही है जब कि तुम्हारा स्मरण और भजन न हो। हे प्रभो ! राक्षसों की बात ही कितनी है। आप शत्रु को जीतकर जानकी को ले आवेंगे।

व्याख्या : प्रभु का स्मरण भी निर्विघ्न नहीं होने पाता। राक्षस बाधक होते हैं। भजन तो दूर की बात है। सरकार का स्मरण भजन जब न हो तभी विपत्ति है। सांसारिक विपत्ति को तो भक्त स्वयं नहीं गिनते।

फिर हनुमान्‌जी ने उत्तर समाप्त होते ही दूसरी बात छेड़ दी। इन्हें सरकार के ले चलने की जल्दी है। चिन्ता को स्थान देना नहीं चाहते। चिन्ता कार्यविनाशिनी है अतः उत्साह बढ़ाते हैं। कहते हैं सरकार के सामने जातुधान क्या हैं ! ब्रह्म रुद्र को सरकार का भय रहता है। यथा : ब्रह्मधाम सिवपुर सबलोका। फिरा श्रमित व्याकुल भय सोका। अतः जीत निश्चय है। अकेला मैं सीता के लाने में समर्थ था।

सुनु कपि तोहि समान उपकारी। नहिं कोउ सुर नर मुनि तनुधारी ॥
प्रति उपकार करौं का तोरा। सनमुख होइ न सकत मन मोरा ॥३॥

अर्थ : हे हनुमान्‌जी ! सुनो तुम्हारे ऐसा उपकारी शरीरधारी देवता मनुष्य

---

१. बुन्देलखण्ड में आनिवी क्रिया का प्रयोग बहुवचन में होता है।

और मुनियों में कोई नहीं है। मैं तुम्हारे उपकार के बदले में क्या करूँ। मेरा तो मन भी सामने नहीं हो रहा है।

व्याख्या : सुर नर मुनि सबके यह रीती। स्वारथ लागि करहिं सब प्रीती। अतः उसके उऋण होने का उपाय शास्त्रों में लिखा है। उनके स्वार्थ साधन से मनुष्य उऋण हो जाता है। यज्ञ करके देव ऋण से तर्पण करके पितृऋण से शास्त्राध्ययन करके ऋषिऋण से उत्तीर्ण होता है। अध्ययन करनेवाला ही मन्त्रों के ऋषियों को जानता है। उनके नाम को बनाये रखनेवाला है। उनके दिये हुए दिव्य ज्ञान को जीता जागता रखनेवाला अध्येतृवर्ग ही है। पर तुम्हारा तो कोई स्वार्थ ही नहीं है। तुम्हारा प्रत्युपकार कोई कैसे करे? और उपकारी का प्रत्युपकार करना सनातन धर्म है। अथवा तुम्हारा उपकार इतना बड़ा है कि मेरी यही इच्छा होतो है कि तुम्हारा ऋणी ही बना रहूँ। क्योंकि उपकार का बदला जो देना चाहता है वह उपकारी के ऊपर विपत्ति आने की प्रतीक्षा करता है। नरः प्रत्युपकारार्थी विपत्तिमभिकांक्षति। अतः मेरा मन उस ओर जाता ही नहीं। प्रत्युपकार की बात ही सोचना नहीं चाहता।

सुनु सुत तोहि उरिन मैं नाही। देखेउँ करि विचार मन मांही ॥
पुनि पुनि कपिहिं चितव सुरत्राता। लोचन नीर पुलक अति गाता ॥४॥

अर्थ : हे पुत्र! मैंने मनमें विचार करके देख लिया कि मैं तुमसे उऋण नहीं हो सकता। देवताओं के रक्षक प्रभु बार बार हनुमान्‌जी को देखते हैं। नेत्रों में जल भरा है और शरीर में अत्यन्त पुलक है।

व्याख्या : सरकार ने भी बेटा का नाता मान लिया। अतः सुत सम्बोधन करते हैं। उऋण होने के लिए प्राण तक दिये जाते हैं। पर सीताजी की खोज उनकी सान्त्वना स्वयं प्रभु को सान्त्वना प्रस्थान के लिए प्रोत्साहन। अपने श्रम और प्राण को न गिनना। अति बुद्धिमत्ता ये सब एक एक बातें ऐसी हैं जिसके बदले में प्राण दिया जा सकता है। अतः प्राण देने पर भी शेष उपकारों के लिए ऋणी ही रहूँगी।

सीताजी के आशीर्वाद : करहुँ बहुत रघुनायक छोहू का साफल्य हो रहा है। पुनि पुनि कपिहिं चितव सुर त्राता। अति प्रेम होने से बार बार देखते हैं। यथा : कौसल्या पुनि पुनि रघुबीरहिं। चितवति कृपा सिंधु रनधीरहिं। बेटे के महान पुरुषार्थ कर आने पर जो अवस्था माता की होती है वही सरकार की इस समय हो रही है। सरकार सुरत्राता हैं। देवता लोग चाहा करते हैं कि मेरी ओर देखें। यथा : मामवलोकय पंकज लोचन। कृपा बिलोकनि सोच विमोचन। सो प्रभु बार बार हनुमान्‌जी की ओर देख रहे हैं। नेत्रों में जल भरा है। शरीर अत्यन्त पुलकित है : सात्त्विक भाव हो रहा है।

दो. सुनि प्रभु बचन बिलोकि मुख, गात हरषि हनुमंत।
चरन परेउ प्रेमाकुल, त्राहि त्राहि भगवंत ॥३२॥

अर्थ : प्रभु का वचन सुनकर और उनका मुख देखकर हनुमान्‌जी पुलकित शरीर हो गये और प्रेम से आकुल होकर हे भगवान् मेरी रक्षा करो रक्षा करो कहते हुए श्रीरामजी के चरणों में गिर गये।

व्याख्या : प्रभु का वचन सुना कि अपने को मेरा ऋणी मान रहे हैं। मुख देखा कि बार बार मेरी ओर देख रहे हैं। हनुमान्‌जी पुलकित हो उठे। चरणों पर गिर पड़े कि सरकार को सभी कहना और करना शोभा देता है। पर मुझे तो ऐसा कहने से मोह हो सकता है। सरकार ऐसा न कहें। अतः त्राहि त्राहि पुकारा। बड़ाई देने से हनुमान्‌जी सनेह सभीत हो गये। बड़ाई भजन में बाधक है। यथा : ए सब राम भगति के बाधक। यहाँ हनुमान्‌जी का मनसा वाचा कर्मणा शरण में आना कहा। मनसा प्रेमाकुल। वाचा त्राहि त्राहि भगवंत। कर्मणा चरण परेउ। प्रभो ! मेरे त्राहि त्राहि शब्द को सुनके आप उऋण हो जायँ।

बार बार प्रभु चहइ उठावा। प्रेम मगन तेहि उठव न भावा ॥
प्रभु कर पंकज कपि के सीसा। सुमिरि सो दसा मगन गौरीसा ॥१॥

अर्थ : प्रभु बार बार उठाना चाहते हैं। प्रेम में डूबे हुए हनुमान्‌जी को उठना नहीं सोहाता। प्रभु का करकमल हनुमान्‌जी के सिर पर है। उस दशा का स्मरण करके शिवजी मग्न हो गये।

व्याख्या : जो प्रेम में मग्न होता है वह चरणों में पड़े रहने के सुख को छोड़ना नहीं चाहता और मालिक के उठाने में विलम्ब होने से उपेक्षा सूचित होती है। अतः सरकार उठाना चाहते हैं हनुमान्‌जी उठना नहीं चाहते। यथा : परे भूमि नहिं उठत उठाये। जब त्राहि त्राहि करके चरणों में गिरे तब रक्षा का हाथ भगवान् ने सिर पर रक्खा और सिर पर हाथ रक्खे हुए ही उठाना भी चाहते हैं।

सरकार का हाथ सिर पर पड़े। इस बात को भक्त सदा चाहा करते हैं। यथा :

कबहुँ सो कर सरोज रघुनायक धरिहौं नाथ सीस मेरे।
जेहि कर अभय किये जन आरत बारक बिबस नाम टेरे ॥
सीतल सुखद छाँह जेहि करकी मेटत पाप ताप माया।
निसि बासर तेहि कर सरोज की चाहत तुलसिदास छाया ॥

हनुमान् शरीर से उस सुख का अनुभव किया है और गौरीश शरीर से उसका स्मरण करते हैं। जिसे अनुभव होता है वही स्मरण कर सकता है। अतः शिवजी मग्न हो गये। कथा बन्द हो गयी। यही एक अवसर है जहाँ शिवजी आनन्द में विभोर होकर कथा कहना भूल गये।

सावधान मन करि पुनि संकर। लागे कहन कथा अति सुंदर ॥
कपि उठाइ प्रभु हृदय लगावा। कर गहि परम निकट बैठावा ॥२॥

अर्थ : फिर मन को सावधान करके शिवजी अत्यन्त सुन्दर कथा कहने लगे।

हनुमान्‌जी को उठाकर प्रभु ने हृदय से लगाया और हाथ पकड़कर अत्यन्त समीप बिठलाया।

व्याख्या : सावधान कहने से ही पहिले की असावधानता सूचित हुई। यह अनवधानता सावधानता से भी कहीं अच्छी है। फिर भी मन के सावधान करने का भाव यह कि परोपकार का दर्जा ब्रह्मानन्द से भी अधिक है। यथा : परोपकारकैवल्ये तोलयित्वा जनार्दनः। गुर्वीमुपकृतिं मत्वा ह्यवतारान् दशाग्रहीत्। भगवान् जनार्दन ने परोपकार और कैवल्य को तोल डाला। परोपकार का पलड़ा भारी मानकर दश अवतार धारण किये। इस अवसर पर कवि भी असावधान हो गये। कथा को सुन्दरी कहना चाहिए सो सुन्दर लिख दिया।

बलकरि कृपासिंधु उर लाये। हनुमान्‌जी परम निकट बैठना नहीं चाहते थे पर सरकार ने जबरदस्ती हाथ पकड़ कर परम निकट बिठाया। हनुमान्‌जी ने बड़ा भारी कार्य किया है। इसलिए उन्हें बड़ा भारी आदर दिया जा रहा है। पुनि हनुमान् हरषि उर लाये से उपक्रम करके कपि उठाइ प्रभु हृदय लगावा से उपसंहार किया। सीता के सन्देश की कथा समाप्त हुई। अब हनुमान्‌जी की बहादुरी की बात चली।

कहु कपि रावन पालित लंका। केहि बिधि दहेउ दुर्ग अति बंका॥
प्रभु प्रसन्न जाना हनुमाना। बोला बचन बिगत अभिमाना॥३॥

अर्थ : हे कपि ! लङ्का तो रावण द्वारा रक्षित है। उस बड़े बाँके दुर्ग को तुमने किस भाँति जलाया ? हनुमान्‌जी ने प्रभु को प्रसन्न जाना अतः अभिमान रहित वचन बोले।

व्याख्या : सरकार अपना आश्चर्य प्रकट करते हैं कि अमरावती और भोगावती को जलाना सरल कार्य है पर लङ्का का जलाना कठिन है। तिसपर रावण ऐसा प्रतापी उसकी रक्षा कर रहा है जिसकी आज्ञा में प्रलय के बादल हैं। ऐसी सोने की लङ्का रावणपालित होने पर जली कैसे ?

जब सरकार प्रसन्न होते हैं तब ऐसी ही बात बोलते हैं। यह परीक्षा का समय है। यदि अभिमान आगया तो उन्नति रुक जाती है। यथा : करुणानिधि मन दीख बिचारी। उर अंकुरेउ गर्ब तरु भारी। बेगि सो मैं डारिहौं उखारी। पन हमार सेवक हितकारी। परन्तु सयाने भक्तों को अभिमान नहीं होता। ऐसा ही बर्ताव अंगद के साथ हुआ। सरकार पूछने लगे : रावन जातुधान कुलटीका। भुजबल अतुल जासु जगलीका। तासु मुकुट तुम चारि चलाये। कहहु तात कवनी बिधि पाये। उत्तर में अङ्गदजी अभिमान रहित बाणी बोले।

साखामृग कै बड़ि मनुसाई। साखा तें साखा पर जाई॥
नाघि[1] सिंधु हाटकपुर जारा। निसिचर गन बधि बिपिन उजारा॥४॥

---

1. यहाँ पर्यस्तालङ्कार है।

सो सब तव प्रताप रघुराई। नाथ न कछू मोरि प्रभुताई ॥५॥

अर्थ : शाखा के मृगों : बन्दरों की बड़ी भारी प्रभुताई यही है कि एक डाल पर से दूसरे पर चला जाय। जो समुद्रोल्लंघन किया सोने का पुर जलाया। राक्षसों को मारकर अशोक बन उजाड़ा। इसमें नाथ मेरी प्रभुताई कुछ भी नहीं सब आपके प्रताप से हुआ।

व्याख्या : यहाँ शाखामृग कहने का भाव यह कि मैं तो शाखा पर रहनेवाला पशु हूँ। एक डाल पर से दूसरे पर उछल जाऊँ और डाल न चूके। इतनी ही मेरी बहादुरी है। यह सामर्थ्य अन्य किसी पशु में नहीं है। अतः यह मेरी जाति की प्रभुताई है। न तो शाखामृग नदी लाँघ सकते हैं न आग लगा सकते हैं और न रक्षकों को मारकर फुलवाड़ी ही उजाड़ सकते हैं। समुद्र लाँघना ग्राहादि से भी अशक्य है। हाटक : सोना का जलाना स्वर्णकार से भी अशक्य है। निशिचरों को मारना देवताओं से भी अशक्य है और अशोक वन उजाड़ना इन्द्र से भी अशक्य है। इन सब कामों को मैंने किया तो क्या इनमें मेरी प्रभुता थी ?

यह सब सरकार की प्रभुता ने किया। यह कहकर हनुमान्‌जी ने बुद्धि में इन्द्रादिक को भी जीत लिया। वेद में कथा है कि एक बार देवों के द्वारा ब्रह्म ने असुरों को जीता। देवताओं को अभिमान हुआ कि यह हमारी विजय है। हमारी महिमा है। तब यज्ञ रूप से ब्रह्म का प्रादुर्भाव हुआ। देवताओं ने उनके जानने के लिए अग्नि को भेजा। यक्ष ने उनके सामने एक तृण रख दिया कि इसे जलावो। वे न जला सके। तब वायु भेजे गये। उनका उड़ाया वह तृण न उड़ा। तब इन्द्र स्वयं गये। उनके अभिमान को देखकर ब्रह्म अन्तर्धान हो गये। तब उमा ने उनका परिचय दिया कि यही ब्रह्म है। इन्हीं की सदा विजय होती है। इन्हीं को जीत से तुम्हारी पूजा हो रही है। हनुमान्‌जी जानते थे कि जीत में वस्तुतः करामात प्रभु की प्रभुता की है। अतः बुद्धि में हनुमान्‌जी इन सबसे बढ़ गये।

दो. ताकहुँ प्रभु कछु अगम नहि, जापर तुम्ह अनुकूल।
तव प्रताप बडवानलहि, जारि सकइ खलु तूल ॥३३॥

अर्थ : हे प्रभो ! जिस पर आप अनुकूल हों उसके लिए कोई भी बात कठिन नहीं है। आपके प्रभाव से रूई निश्चय करके बड़वानल को जला सकती है।

व्याख्या : सबइ लाभ जग जीव कहँ भये ईसु अनुकूल। बड़वानल में ऐसी दाहिका शक्ति है कि दिन रात एक योजन जल समुद्र का जलाया करता है और समुद्र उसे बुझा नहीं पाता। पर सरकार यदि रुई के अनुकूल हो जायें तो वह बड़वानल को जला सकती है। भाव यह कि एक अमोघ शक्ति करुनाकर अमोघ शक्ति केवल सरकार हैं। सरकार जिसके अनुकूल हो जाते हैं उसमें सरकारी शक्ति काम करने लगती है। फिर उससे कुछ भी असाध्य नहीं है।

नाथ भगति अति सुखदायनी। देहु कृपा करि अनपायनी ॥
सुनि प्रभु परम सरल कपिं बानी। एवमस्तु तब कहेउ भवानी ॥१॥

अर्थ : हे नाथ! अत्यन्त सुख देनेवाली अविरल भक्ति कृपा करके दीजिये। हनुमान्‌जी की अत्यन्त सरल वाणी सुनकर तब प्रभु ने कहा कि ऐसा ही हो।

व्याख्या : भक्त भगवान् के प्रताप से सब कुछ करता है और भगवान् ऐसे दयासागर हैं कि उसे उसका किया हुआ मान लेते हैं। यहाँ हनुमान्‌जी सोचते हैं कि मैंने क्या किया? सब सरकार के प्रताप ने किया और सरकार इस चिन्ता से क्षुब्ध हैं कि इसका प्रत्युपकार मैं कैसे करूँ। मैं अति बहुमूल्य वस्तु जो ज्ञान और विराग से भी अधिक सुख देनेवाली है माँगकर क्षोभ मिटाये देता हूँ। वह वस्तु है अनपायनी भक्ति। जिसमें अपाय अर्थात् विघ्न न उपस्थित हो सके उसे अनपायनी कहते हैं। मेरी सेवा में कुछ नहीं है। प्रभु कृपा करके दें तो सम्भव है।

सरकार को वाणी सरल थी। यथा : कहु कपि रावन पालित लंका। केहि बिधि दहेउ दुर्ग अति बंका : पर हनुमान्‌जी की वाणी परम सरल थी। यथा : साखामृग के बड़ि मनुसाई इत्यादि। बिना परम सरल हृदय हुए ऐसी सरल वाणो कोई बोल नहीं सकता और निर्मल मन जन सो मोहि पावा। अतः सरकार ने एवमस्तु कहा। हनुमान्‌जी को अविरल भक्ति की प्राप्ति हुई।

उमा राम सुभाउ जेहि जाना। ताहि भजनु तजि भाव न आना ॥
यह संबाद जासु उर आवा। रघुपति चरन भगति सोइ पावा ॥२॥

अर्थ : हे उमा! जिसने रामजी का स्वभाव जान लिया उसे भजन छोड़कर दूसरी बात ही नहीं सोहाती। यह संवाद जिसके हृदय में आगया वह रघुपति के चरणों की भक्ति पा जाता है।

व्याख्या : अस सुभाउ कहुँ सुनै न देखे। केहि खगेस रघुपति सम लेखे। सरकार का स्वभाव ही ऐसा है कि उसके जान लेने पर वे ही अच्छे लगते हैं। दूसरा कोई सुहाता ही नहीं। यथा : अब न आँखि तर आवत कोऊ। और न कोई दूसरी वस्तु ही अच्छी लगे। उसे फिर उनका भजन ही अच्छा लगता है। हनुमान्‌जी को प्रभु के स्वभाव का परिज्ञान था। यथा : तुम्ह जानहु कपि मोर सुभाऊँ : अतः उन्हें प्रभु की भक्ति ही अच्छी लगी।

अनपायिनी भक्ति तो हनुमान्‌जी ने पायी। पर उसे भी भक्ति की प्राप्ति होगी जिसके मन में यह सम्वाद बैठ जायगा। यथा : सकल सुकृत कर बड़ फल एहू। राम सीय पद सहज सनेहू। इस सम्वाद की महा महिमा है। प्रत्येक काण्ड की पृथक् फलश्रुति तो दी हुई है। पर प्रसङ्ग विशेष की भी जो बड़े महत्त्व के हैं पृथक् फ़लश्रुति दी गयी है।

सुनि प्रभु बचन कहहिं कपि बृंदा। जय जय जय कृपालु सुखकंदा ॥

६६. सेना समेत रघुवीर का समुद्रतट प्रस्थान प्रसङ्ग

तब रघुपति कपिपतिहि बोलावा। कहा चलै कर करहु बनावा ॥३॥

अर्थ : प्रभु के वचन सुनकर वानरगण कहने लगे कि कृपालु आनन्दकन्द रामजी की जय हो, जय हो, जय हो। तब रामजी ने कपिपति सुग्रीव को बुलाया और कहा कि चलने की तैयारी करो।

व्याख्या : अनपायिनी भक्ति की दुर्लभता का ज्ञान बानरों को है। यथा :

नर सहस्र महँ सुनहु पुरारी। कोउ एक होइ धर्म ब्रत धारी ॥
धर्मसील कोटिक मह कोई। विषय बिमुख बिराग रत होई ॥
कोटि बिरक्त मध्य श्रुति कहई। सम्यक् ज्ञान सकृत कोउ लहई ॥
ज्ञानवंत कोटिक मह कोऊ। जीवन मुक्त सकृत जग सोऊ ॥
तिन सहस्र महुँ सब सुख खानी। दुर्लभ ब्रह्म लीन बिज्ञानी ॥
सब ते सो दुर्लभ सुरराया। राम भगति रत गत मद माया ॥

अतः जब हनुमान्‌जी ने अनपायिनी भक्ति माँगी तब सभी सशङ्क हो गये कि देखें सरकार इस पर क्या कहते हैं। सो एवमस्तु सुनते ही सबों ने जय जयकार किया। यह भक्ति कृपासाध्य है इसलिए कृपा कहा। भक्ति सुखदायिनी है इसलिए सुखकन्द कहा अथवा हनुमान्‌जी के वर मिलने पर सब सुखी हुए। इसलिए सरकार को सुख का मेघ कह रहे हैं। उन लोगों के भी तापत्रय नष्ट हुए क्योंकि यह सम्वाद उनके सामने हुआ था। अतः तीन बार जय बोल रहे हैं।

सब वानरों पर कपिपति की आज्ञा चलती है और उन पर रघुपति की आज्ञा चलती है। इस समय सरकार के अति सन्निकट हनुमान्‌जी हैं और जाम्बवानजी हैं। सुग्रीवजी कुछ दूर पर हैं। इसलिए बुलावा कहते हैं। हनुमान्‌जी की विनती है कि बेगि चलिय प्रभु। अतः कहते हैं चलै कर करहु बनावा। सेना तैयार करो।

अब बिलंबु केहि कारन कीजे। तुरत कपिन्ह कहुँ आयसु दीजे ॥
कौतुक देखि सुमन बहु बरषी। नभ तें भवन चले सुर हरषी ॥४॥

अर्थ : अब विलम्ब क्यों किया जाय। वानरों को तुरन्त आज्ञा दीजिये। कौतुक देखकर बहुत से फूल बरसाकर और हर्षित होकर देवता आकाश से अपने अपने घर चले।

व्याख्या : विलम्ब का कारण पता का न लगना था सो तो लग ही गया। भाव यह कि जब तक यह बातचीत हो रही थी इसी बीच में सेना को तैयार होने के लिए आज्ञा दे देना प्राप्त था। वानरी सेना लेकर शत्रु पर चढ़ाई करना न कभी देखा गया था और न सुना गया था। ऐसे कौतुकी सरकार हैं कि लङ्का ऐसे दुर्ग पर चढ़ाई करने के लिए वानरी सेना तैयार करवा रहे हैं। यथा : कौतुक

लागि संग कपि सेना : नहीं तो सभी निशाचरों के संहार के लिए केवल लक्ष्मणजी यथेष्ट थे। यथा : जग महुँ सखा निसाचर जेते। लछिमन हनइ निमिष महुँ तेते। जिस लक्ष्मण की उपासना से अर्जुन ने अकेले ही उत्तर कुरु तक विजय किया उस लक्ष्मणजी के लिए केवल लङ्का विजय कुछ नहीं है। लक्ष्मणजी का अवतार ही राक्षसों के नाश के लिए हुआ है। यथा : जो अवतरेउ भूमि भय टारन।

यो जपेल्लक्ष्मणमनुं नित्यमेकान्त आस्थितः।
मुच्यते सर्वपापेभ्यः स कामानश्नुतेऽखिलान्॥
प्रयोगायैव मन्त्रोऽयमुपदिष्टोहि शार्ङ्गिणा।
अर्जुनस्य पुरा सम्यगनेनैव धनञ्जयः॥
दिशो विजित्य सकलाः स कुरूनेक एव हि।
प्रांतिष्ठिपत् धर्मराजं पैतृके राज्य उत्तमे॥

—रामार्चनचन्द्रिका

दो. कपिपति बेगि बोलाए, आए जूथप जूथ।
नाना बरन अतुल बल, बानर भालु बरूथ॥३४॥

अर्थ : वानरराज ने तुरन्त बोलाया। सेनापतियों का समूह आगया। अतुल बलवान् और वानर भालुओं की सेनाएँ अनेक रंग की हैं।

व्याख्या : बड़ी भारी वानरी सेना है। वानरराज के बुलाने पर यूथपों का यूथ आया। वानरों की अनेक जातियाँ हैं उनके रंग भी अलग अलग हैं और भालुओं की भी एकाधिक जातियाँ हैं। जिनके रङ्गों में भेद है। रामकृपा अतुलित बल तिनहीं। तृन समान त्रैलोकहि गिनहीं। अतः उनके बल का तौल नहीं है और रंग विरंगी सेना है।

पूरा हनुमच्चरित देवताओं ने आकाश से देखा। यथा : जात पवनसुत देवन्ह देखा : तब से अभी तक साथ हैं। सरकार की वानरी सेना के प्रस्थान का कौतुक देखकर तब घर चले। सेना के साथ तमाशा देखने न जावेंगे। नहीं तो रावण का कोप होगा कि मेरे ऊपर ये ही सब रामजी को चढ़ा लाये।

प्रभु पद पंकज नावहिं सीसा। गर्जहिं भालु महाबल कीसा॥
देखी राम सकल कपि सेना। चितइ कृपा करि राजिव नैना॥१॥

अर्थ : बड़े बलवान् रीछ और वानर प्रभु के चरणों में सिर नवाते हैं और गरज रहे हैं। श्री रामजी ने वानरों की सारी सेना देखी। कमल से नेत्रवाले राम ने कृपा करके उन्हें देखा।

व्याख्या : प्रभु वहीं हैं अतः वानर रीछ गण उन्हीं को नमस्कार कर रहे हैं। उनके सामने कोई भी नमस्य नहीं है। नावहिं सीसा भक्ति से और गर्जहिं उत्साह से। आने में वानर को पहिले कहा। गर्जने में रीछों को पहिले कह रहे

हैं। महाबल शब्द देहलीदीपक न्याय से बानर और रीछ दोनों के साथ अन्वित है। द्विविद मयंद नील नल अंगदगद बिकटासि। दधिमुख केहरि निसठ सठ जामवंत बलरासि। इन अतुल बलों का गर्जन नहीं कहते। इन लोगों का गर्जन शत्रु के सम्मुख ही होता है। रामजी का पहिला देखना सेना विस्तार दर्शन परक है। दुसरादेखना कृपापरक है। कृपा करके देख रहे हैं इसलिए राजिवनयन पद आया है। यह अवलोकन मौलिक परिवर्तन में समर्थ है। यथा : गरल सुधा रिपु करै मिताई। गोपद सिंधु अनल सितलाई। गरुड़ सुमेरु रेनु सम ताही। राम कृपा करि चितवा जाही। इस कृपावलोकन का सद्यः फल कहते हैं।

राम कृपा बलु पाइ कपिंदा। भए पच्छजुत मनहुँ गिरिंदा॥
हरषि राम तब कीन्ह पयाना। सगुन भए सुंदर सुभ नाना॥२॥

अर्थ : रामजी की कृपा का बल पाकर श्रेष्ठ वानर मानों पङ्खवाले बड़े बड़े पर्वत हो गये। तब श्रीरामजी ने हर्षित होकर प्रस्थान किया। अनेक सुन्दर और शुभ शकुन हुए।

व्याख्या : रामजी की कृपा से उड़ने में समर्थ हो गये। लङ्का पर चढ़ाई करना है जिसके प्राकार पर चिड़िया उड़कर नहीं बैठ सकती। हनुमान्‌जी कहते हैं कि सम्पूर्ण वानरी सेना में केवल चार लङ्का पर चढ़ सकते हैं। यथा : चतुर्णामिव हि गतिर्वानराणां तरस्विनाम्। अतः उड़ने की सामर्थ्य दी गयी और राम कृपा कपि दल बल बाढा। जिमि तृन पाइ लाग अति डाढा। अतः गगनचारित्व तथा अपूर्व बल पाने से पक्षयुत पर्वत के समान हो गये अर्थात् निशाचरों से युद्ध करने में समर्थ हो गये।

कृपादृष्टि करि वृष्टि प्रभु अभय किये सुर वृंद। सो वानरी सेना को पहिले ही अभय करके तब पयान किया। उस समय शकुन हुए जो देखने में सुन्दर और फल देने में शुभ थे। अनेक प्रकार के शुभ के विधान के लिए विधि नाना कहते हैं। यथा : मंगलमय कल्याणमय अभिमत फल दातार। सरकार के मन में उत्साह है। इसलिए हरषि कहते हैं। मन में उत्साह होना अङ्गिरा के मत से यात्रा में शुभ है।

जासु सकल मंगलमय कीती। तासु पयान सगुन यह नीती॥
प्रभु पयान जाना वैदेहीं। फरकि बाम अँग जनु कहि देहीं॥३॥

अर्थ : जिसकी सब कीर्ति मङ्गलमय है उसके प्रस्थान में शकुन होना यह नीति है। प्रभु का प्रस्थान जानकीजी ने जान लिया। उनके वाम अंग फड़क फड़ककर मानों कह देते थे।

व्याख्या : सरकार का रूप मङ्गलमय यथा : स्याम सरीर सुभाय सुहावन। नाम मङ्गलमय यथा : नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ। लीला मगलमय यथा : जासु सकल मगलमय कीती और धाम मंगलमय है : रामपुरी मंगलमय पावनि। ऐसे के

प्रस्थान में शकुन होना रीति है। अथवा उसका पयान ही सगुन है। सोभा कोटि मनोज लजावन। मंगलमय अति पावन पावन।

भगवती का वाम अंग बार बार फड़क रहा है। मानो कहे देता है कि सरकार चल पड़े। वैदेही हैं प्रभु के ध्यान में मग्न हैं। अतः उन्हें जानने के लिए बार बार सगुन हो रहा है। सरकार के मुख से सुन चुकी हैं कि सगुन प्रतीति भेंट प्रिय केरी। अतः बार बार सगुन होने से समझ लिया कि मिलने के लिए सरकार ने प्रस्थान किया।

जोइ जोइ सगुन जानकिहि होई। असगुन भयउ रावनहि सोई॥
चला कटकु को बरनै पारा। गर्जहि बानर भालु अपारा॥४॥

अर्थ : जानकीजी को जो जो सगुन हुए वही वही रावण के लिए अपशकुन हुए। सेना चली। उसका वर्णन कौन कर सकता है? वानर और रीछ अपार गर्जन कर रहे हैं।

व्याख्या : शकुन की कार्यकारिता दिखलाते हैं। विजय प्रस्थान में शकुन और जहाँ के लिए प्रस्थान हो वहाँ अपशकुन हो रहा है। सीताजी के इष्ट से ही रावण का अनिष्ट है अथवा रावण के अनिष्ट से ही सीताजी का इष्ट है। अतः सीताजी को शकुन और रावण को अपशकुन हो रहा है। सोई का भाव यह कि बाम अङ्ग का फड़कना स्त्री के लिए शुभ और पुरुष के लिए अशुभ है अथवा सीताजी को प्राणद शकुन और रावण को प्राणघातक अपशकुन हुए।

वानर कटक उमा मैं देखा। सो मूरख जो करन चह लेखा। गर्जहि भालु महाबल कीसा से गर्जन प्रारम्भ हुआ और गरजते ही चले जा रहे हैं। कुछ के गर्जन के समाप्त होने के पहिले दूसरों ने गर्जन प्रारम्भ कर दिये। अतः अपारा कहा। समुद्र की भाँति गर्जन करती सेना चली जा रही है।

नख आयुध गिरि पादपधारी। चले गगन महि इच्छाचारी॥
केहरिनाद भालु कपि करहीं। डगमगाहिं दिग्गज चिक्करहीं॥५॥

अर्थ : नख ही जिनके शस्त्र हैं वे इच्छानुसार चलनेवाले पर्वत और वृक्षों को धारण किये कोई आकाश मार्ग से और कोई पृथ्वी पर चले जा रहे हैं। वे सिंह के समान गर्जना कर रहे हैं। उनके चलने और गर्जने से दिशाओं के हाथी विचलित होकर चिग्घाड़ रहे हैं।

व्याख्या : आकाश में चलने की भी शक्ति सरकार के कृपावलोकन से हो गयी है। अतः इच्छाचारी हो गये। सो कोई कोई पाँव पाँव चल रहे हैं कोई कोई उड़ते जा रहे हैं। इस भाँति दो सेनायें चलीं। पृथ्वी से एक और आकाश से दूसरी। हथियार के नाम पर गिरि तरु और नख हैं। गिरि लेकर दूर से लड़ें। तरु लेकर निकट से और हाथ से हाथ मिलने पर नख से युद्ध करें। यथा : धरि गाल फारहि उर बिदारहिं गल अतावरि मेलहीं।

गर्जन के उपक्रम में वानरों की प्रधानता और उपसंहार में भालुओं की। इधर सेना का हलचल उधर घोर अपार गर्जन। अतः दिग्गजों को आतङ्क हुआ। वे भी चिग्घाड़ने लगे। शब्द और भी बढ़ा। सिंहनाद से गज को भय होता ही है।

छं. चिक्करहिं[1] दिग्गज डोल महि गिरि लोल सागर खरभरे।
मन हरष दिनकर सोम सुर मुनि नाग किंनर दुख टरे॥
कटकटहिं मर्कट बिकट भट बहु कोटि कोटिन्ह धावहीं।
जय राम प्रबल प्रताप कोसलनाथ गुन गन गावहीं॥१॥

अर्थ : दिशाओं के हाथी चिग्घाड़ने लगे। पृथ्वी डोलने लगी। पर्वत चञ्चल हो गये। समुद्र खलबला उठे। सूर्य चन्द्र के मन में हर्ष हुआ। देवता मुनि नाग और किन्नर के दुःख टल गये। अनेकों करोड़ भयानक वानर योद्धा कटकटा रहे हैं और दौड़ रहे हैं। प्रबल प्रताप कोशलनाथ रामजी की जय हो। ऐसा पुकारते हुए : उनके गुणगण का गान कर रहे हैं।

व्याख्या : दिग्गज का चिग्घाड़ पहले और भूकम्प उसके बाद होता है। भयानक भूकम्प में ऐसी बात होती है। पिछले भूकम्प में ऐसा ही देखा गया। पहिले बड़ा भारी शब्द पृथ्वी में हुआ। उसके बाद पृथ्वी डोली। पृथ्वी के डोलने पर पर्वतों का हिलना और समुद्र में खरभर होना स्वाभाविक है।

तव बलनाथ डोल नित धरनी। तेजहीन पावक ससि तरनी। अतः शशि तरणी : सूर्य को पुनः तेजस्विता प्राप्ति की आशा से हर्ष है। यहाँ सूर्य में ही अग्नि का अन्तर्भाव कर लिया। किन्नर सिद्ध मनुज सुर नागा। हठि सबही के पंथहिं लागा। अतः लिखते हैं कि इनके दुःख टल गये। पंथहिं लागा का अर्थ ही यह है कि अनेक प्रकार से दुःख देता था। निश्चय होनहार की आशा से भूतकाल का प्रयोग किया। पृथ्वी का डोलना आदि विपत्ति है। पर यह डोलना रामजी की सेना के उत्कर्ष का द्योतक है। अतः सुखद है।

अब भूकम्प आदि का कारण कहते हैं। पहाड़ ऐसे विशालकाय करोड़ों वीरों का एक साथ दौड़ना ही इसका कारण है। पहले गर्जन कहा था। अब कटकटाना कहते हैं। रावण के प्रति क्रोध बढ़ता जा रहा है। यथा : कटकटाइ गरजा अरु धावा। रास्ता जल्द तय करने के लिए सेना दौड़ती चली जा रही है। सेना बहुत थोड़ा रास्ता चलती है पर यहाँ यह बात नहीं है। क्योंकि वानर वीरों को अपने श्रान्त होने का भय नहीं है और लङ्का पहुँचने का बड़ा उत्साह है। जब से रावण का राज्य हुआ तब से लङ्का पर धावा करना देवताओं को भी मन से अशक्य था। सो वानरी सेना उस पर धावा करने के लिए घर से ही दौड़ती चली जा रही है।

---

१. यह हरिगीतिका छन्द है।

अपने में अटूट बल और उड़ने की शक्ति पाकर सरकार के प्रबल प्रताप का जय जयकार कर रहे हैं। कोसलनाथ कहकर सरकार को लोक विख्यात धनुर्धर कहा। यथा : कहँ कोसलाधीस दोउ भ्राता। धन्वी सकल लोक विख्याता। सरकार के वीरोचित गुणगणों का गान कर रहे हैं। सरकार और लक्ष्मणजी क्रमशः हनुमान्‌जी और अंगदजी के कन्धों पर चढ़े हुए सेना के मध्य भाग में चले जा रहे हैं और चारों ओर जय जयकार होता चला जा रहा है।

छं. सहि सक न भार उदार अहिपति बार बारहिं मोहई।
गह दसन पुनि पुनि कमठ पृष्ठ कठोर सो किमि सोहई ॥
रघुबीर रुचिर पयान प्रस्थिति जानि परम सुहावनी।
जनु कमठ खर्पर सर्पराज सो लिखत अबिचल पावनी ॥२॥

अर्थ : उदार सर्पराज शेष भी सेना का बोझ सह नहीं सकते। वे बार बार मोहित हो जाते हैं और पुनः पुनः कच्छप की कठोर पीठ को दाँतों से पकड़ते हैं। मानों रघुवीर की सुन्दर यात्रा के प्रस्थान को परम सुहावन जानकर उसकी अचल पवित्र कथा को सर्पराज शेषजी कच्छप की पीठ पर लिख रहे हों।

व्याख्या : सकल जगत् का आधार होने से अहिपति शेषजी को उदार कहा। अथवा असह्य भार को वहन कर रहे हैं इसलिए उदार हैं। उन्हें भी अति परिश्रम से बार बार चक्कर आ रहा है पर बड़े उदार हैं। उस समय भी लोकहित का ध्यान बना हुआ है। मेरे चक्कर आने से भी पृथ्वी क्यों अपने स्थान से विचलित हो। अतः अपने आधार कच्छप की पीठ को दाँत से पकड़ते हैं। पर वह पीठ बड़ी कड़ी है : मन्दर के पीठ पर घूमने से कच्छप भगवान् ने कण्डूयन का सुख अनुभव करके आँखें मीच ली थीं और चौरस है पकड़ में आती नहीं, दाँत छलक जाता है। फिर दूसरी जगह् पकड़ते हैं फिर छलकता है उसी की शोभा कहते हैं कि विजय प्रयाण तो बहुत हुए पर ऐसा रुचिर प्रयाण कोई नहीं हुआ। लङ्का सा अजेय दुर्ग और रावण से प्रबल शत्रु पर चढ़ाई हो रही है। वानरों को सेना साथ लेकर तीन लोक के आर्ति हरण के लिए यह प्रयाण है और वानरी सेना के बीच में हनुमान् अंगद के कन्धों पर सवार दोनों सरकारों की अद्भुत झाँकी है। इन कारणों से यह प्रयाण ऐसा अलौकिक है कि उसकी प्रस्थिति लिखी जानी चाहिए।

ऐसी पावनी प्रस्थिति के लिखने के लिए वैसी ही सामग्री चाहिए जिसमें वह प्रस्थिति टिकाऊ हो। इसीलिए ऐसी बातें लोग पत्थरों पर खुदवाते हैं। यहाँ कमठ की पीठ पर मानों सर्पराज अपने दाँतों से लिख रहे हैं। कमठ के पीठों पर जो लकीरें पाई जाती हैं वे मानों उसी लिखावट की छाप हैं। कमठ के पृष्ठ पर लिखा हुआ कभी मिटेगा नहीं और कच्छप कहीं जानेवाले भी नहीं हैं।

दो. एहि बिधि जाइ कृपानिधि, उतरे सागर तीर।
जहँ तहँ लागे खान फल, भालु बिपुल कपि बीर ॥३५॥

अर्थ : इस प्रकार कृपानिधि समुद्रतट पर जा उतरे। बहुत से वार रीछ और वानर जहाँ तहाँ फल खाने लगे।

व्याख्या : जो सेना चली तो उसने बीच में कहीं विश्राम नहीं किया। रात दिन कूच करती हुई प्रवर्षण गिरि से समुद्रतट तक चली गयी। कृपानिधि हैं : विभीषण तथा सागर पर कृपा करनी है। अतः समुद्र तीर पर उतरे। रसद साथ नहीं है पर फलों की बहुतायत है। यथा : सब तरु फरे राम हित लागी। रितु अरु कुरितु कालगति त्यागी। कपि फल खाने लगे। यह किसी ने ख्याल न किया कि मालिक ने कुछ खाया या नहीं। अथवा भालु कपि वीर हैं। समुद्र देखकर डरे नहीं कि इसे पार कैसे करेंगे ? लगे फल खाने। जहाँ से कथा उठायी थी वहीं पहुँचा दिया। नांघि सिंधु एहि पारहिं आवा से कथा उठी और उतरे सागरतीर जाकर रुकी।

उहाँ निसाचर रहहिं ससंका। जब से जारि गयउ कपि लंका॥
निज निज गृह सब करहिं बिचारा। नहिं निसिचर कुल केर उबारा॥१॥

अर्थ : जब से हनुमान्‌जी लङ्का जलाकर गये तब से वहाँ राक्षस सशंक रहने लगे। अपने अपने घरों में सब विचार करते हैं कि अब राक्षसकुल का कुशल नहीं है।

व्याख्या : यहाँ का हाल कहकर अब कवि वहाँ : जहाँ पर कवि नहीं है तहाँ : का हाल कहते हैं। ग्रन्थभर में यहाँ वहाँ शब्दों का प्रयोग इस बात को ध्यान रखकर किया गया है कि कवि की उपस्थिति कहाँ पर है। कवि अपने आराध्य देव रामजी के साथ हैं। अतः लङ्का के लिए वहाँ शब्द का प्रयोग किया।

चलत महाधुनि गर्जेसि भारी। गर्भ स्रवहिं सुनि निसिचर नारी। स्त्रियाँ इतनी डरी हुई हैं कि उन्हें गर्भ नहीं ठहरता। जो था वह गिर गया। अब पुरुषों का हाल कहते हैं कि वे सब भी लङ्का जलने के बाद से सशङ्क रहने लगे। इसके पहिले अशंक रहते थे कि यहाँ कौन आ सकता है। रावण ने सहज अगम जानकर ही उसे राजधानी बनाया था। यथा : सुन्दर सहज अगम अनुमानी। कीन्ह तहाँ रावन रजधानी। सशंक रहने का कारण यह कि हनुमान्‌जी को न किसी ने आते देखा न जाते। अकस्मात् अशोक वाटिका में प्रकट हो गये। फिर कब कहाँ प्रकट हो जावेंगे इसका क्या ठिकाना !

घर के बाहर रावण के डर से विचार नहीं करते। कहीं कोई गुप्तचर खबर न कर दे। क्योंकि लङ्का में रावण के अनेक गुप्तचर छूटे रहते हैं जो अनेक वेष धारण किये हुए नगर भर का भेद रावण तक पहुँचाया करते हैं। इन गुप्तचरों के भय से घर के बाहर कोई ऐसी बात नहीं करने पाता जो रावण को अप्रिय हो। अतः सभी राक्षस एक ही बात विचार करते हैं : पर घर के भीतर : कि रावण के अपराध से राक्षसकुल ही नष्ट हुआ चाहता है। बचने का कोई उपाय नहीं मालूम होता।

जासु दूत बल बरनि न जाई। तेहि आयें पुर कवनि भलाई ॥

मन्दोदरी का रावण को समझाना

दूतिन्ह सन सुनि पुरजन बानी। मंदोदरी अधिक अकुलानी ॥२॥

अर्थ : जिसके दूत के बल का वर्णन नहीं हो सकता उसके नगर में आने पर कौन भलाई है। दूतियों के मुख से नगरवासियों के वचन को सुनकर मन्दोदरी अधिक व्याकुल हो उठी।

व्याख्या : जिसके दूत के ही बल का पारावार नहीं है : बारिध नांघि एक कपि आवा। तासु चरित मन मह सब गावा : उसका पूरा वर्णन कोई कर नहीं सकता। वह सीता को देखकर यहाँ से गया है। अब उसका मालिक आवेगा। रावण की उत्कण्ठा पूरी हुए बिना न रहेगी : पूँछ हीन बानर तहँ जाइहि। तब सठ निज नार्थाह लै आइहि : तब न जाने क्या होगा ! सब दुर्दशा तो दूत ने ही कर डाली। भाव यह है कि लङ्का में कोई ऐसा नहीं जिसे ऐसे बलवान् से युद्ध के लिए उत्साह हो : लंका नहिं खात कोउ भात राँधो।

बाहर बातचीत नहीं हुई। इसलिए रावण के दूतों ने नहीं सुना। घर के भीतर की बात है। अतः दूतियों ने सब जानकर मन्दोदरी को खबर दे दी। रानी मन्दोदरी राजकार्य में हाथ बँटाती है। जिस भाँति रावण की ओर से दूत छूटे रहते हैं उसी भाँति रानी मन्दोदरी की दूतियाँ भेद लेने के लिए छूटी रहती हैं। स्त्रियों में बात बहुत जल्द फूटती है। आकुल तो सभी स्त्रियाँ हो गयी थीं। पर प्रजा मात्र की आकुलता सुनकर मन्दोदरी अधिक आकुल हो उठी। क्योंकि आपत्ति की धार तो सीधे उसी पर पड़नेवाली थी। उसी का लड़का अक्ष हनुमान्‌जी के हाथ से मारा गया था।

रहसि जोरि कर पति पद लागी। बोली बचन नीति रस पागी ॥
कंत करष हरिसन परिहरहू। मोर कहा अति हित हिय धरहू ॥३॥

अर्थ : एकान्त में हाथ जोड़कर पति के चरणों में गिरी और नीति रस में पगी हुई वाणी बोली। हे कन्त ! हरि से विरोध छोड़ दीजिये। मेरे अत्यन्त हितकर कहने को हृदय में धारण कीजिये।

व्याख्या : अभिमानी दस आदमी के बीच में तो किसी का सिखावन सुनेगा ही नहीं। एकान्त में भी सिखावन के रूप में किसी के बात को स्वीकार करना असम्भव है। अतः मन्दोदरी एकान्त में सिखावन न देकर विनय करती है। अतः हाथ जोड़कर पैर पर गिरी और अपने विनती के स्वीकृति के लिए प्रार्थना की। विनती करते हुए कहती है कि मैं जानती हूँ कि स्त्रीहरण तुमने आसक्ति के कारण नहीं किया है। सीताहरण का कारण वैर है। यथा : सूपनखहि समुझाइ करि बल बोलेसि बहु भाँति। गयउ भवन अति सोच बस नीद परी नहिं राति। सो उस

रात में रावण को नींद नहीं आना मन्दोदरी से छिपा नहीं है। उसी के दूसरे दिन सीताहरण होता है। स्पष्ट है कि सूर्पणखा नासिकाछेदन का बदला सीताहरण करके आप चुका रहे हैं। अतः मेरी विनती है। आप हरि से वैर छोड़ दीजिये। क्योंकि वे हरि हैं। सबके दुःखों का वही हरण करते हैं। साक्षात् भगवान् हैं : उनसे वैर छोड़ने में ही कल्याण है। दूसरा भाव यह है कि वे हरि हैं। सूर्पणखा को भी उन्होंने दुःख देना नहीं चाहा। इसमें सूर्पणखा का ही अपराध होगा। वे किसी से वैर करनेवाले नहीं हैं। आप उनसे वैर कर रहे हैं सो वैर छोड़ दीजिये।

अथवा रामजी हरि : सिंह हैं। उनका डर स्वयं रावण को ही कम नहीं है : जाके डर सुर असुर डेराहीं। निसि न नींद दिन अन्न न खाहीं। सो दससीस स्वान की नाईं। इत उत चितै चला भड़िहाईं। इसीलिए चोरी से हरण किया।

मन्दोदरी कहती है कि मेरी बात मुँह देखी कहनेवालों की बात नहीं है। मेरी बात अतिहित है। इससे दोनों लोकों का कल्याण सधेगा। इसे हृदय में धारण कर लो। बाहर से मेरे ऊपर चाहे अप्रसन्नता ही दिखलाओ। कहो कि मैं इसके रोने गाने से लाचार हो गया हूँ। ले जाओ सीता को उस तपस्वी के पास पहुँचा दो।

समुझत जासु दूत कइ करनी। स्रवहिं गर्भ रजनीचर घरनी॥
तासु नारि निज सचिव बोलाई। पठवहु कंत जो चहहु भलाई॥४॥

अर्थ : जिसके दूत की करणी समझकर राक्षसों की स्त्रियों का गर्भपात होता जा रहा है। हे कन्त! यदि भला चाहते हो तो अपने मन्त्री को बुलाकर उनको स्त्री को भेज दो।

व्याख्या : लङ्कादाह का स्मरण करके निशाचरियों के गर्भ गिरते जा रहे हैं। हनुमान् चलते समय जो गर्जा उससे बहुत गर्भ गिरे। तब से नित्य समाचार मिलता है कि आज नगर में इतने गर्भ गिरे। सम्पूर्ण लङ्का भयभीत है। उसके मालिक के आने के भय से सम्पूर्ण नगर विचलित हो उठा है। मन्दोदरी बड़ी बुद्धिमती है। गर्भ गिरने का आड़ लेकर नगर में भय के सञ्चार का हाल कहती है। यह नहीं कहती कि मुझे दूतियों से खबर मिली है। रावण के स्वभाव से परिचित है। जानती है कि तुरन्त वह दूती बुलायी जायगी और जिससे जिससे उसने सुना है उनकी न जाने कौन दुर्दशा रावण करेंगे। अतः नगर के भयभीत होने के प्रमाण में लङ्का में गर्भपात की बहुतायत बतला रही है और कहती है कि यहीं मेरे सामने अपने मन्त्री को बुलवाओ। संसार जाने कि रानी मन्दोदरी के अनुनय विनय पर रावण मान गये। मन्त्री के साथ सीता को भेज दो। सीता उनके पास चली जावेंगी तो वे क्यों आवेंगे। सीता के जाते ही नगर के लोग स्वस्थ हो जावेंगे। प्रजा के भय को दूर करना राजा का धर्म है।

तव कुल कमल बिपिन दुखदाई। सीता सीत निसा सम आई॥
सुनहु नाथ सीता बिनु दीन्हें। हित न तुम्हार संभु अज कीन्हें॥५॥

अर्थ : आपके कुलरूपी कमल वन को दुःख देनेवाली जाड़े की रात के समान सीता आयी है। हे नाथ ! सुनिये सीता को दिये विना शम्भु और ब्रह्मा के किये भी आपका भला नहीं हो सकता।

व्याख्या : आप समझते हैं कि सीता को मैं हरण करके लाया हूँ पर बात ऐसी नहीं है। आपका कुल इस समय कमल वन की भाँति विकसित हो रहा है। उसके नाश के लिए यह सीता हिम की रात्रि होकर स्वयं आयी है। यह केवल तुम्हारे ही निधान से तुष्ट नहीं है पूरे कुल का संहार चाहती है। यदि कहिए कि निज भुज बल मैं बैर बढ़ावा। इस पर कहती है कि आपके दो ही हितु हैं। इन्हीं का आपको बल है। शङ्कर और ब्रह्मा। सो बिना सीता के दिये वे भी आप का कल्याण नहीं कर सकते। सीता के दे देने पर ही आपकी ये रक्षा कर सकते हैं। दूसरों का किया क्या होगा ? यथा : संकर सहस विष्णु अज तोही। सकहि न राखि राम कर द्रोही। भाव यह कि आप अपनी रक्षा क्या करेंगे ? आपके इष्टदेव भी रक्षा नहीं कर सकते।

दो. राम बान अहि गन सरिस, निकर निसाचर भेक ॥
जब लगि ग्रसत न तब लगि, जतनु करहु तजि टेक ॥३६॥

अर्थ : रामजी के वाण सर्पों के समान और राक्षसों के समूह मेढकों के समान हैं। जब तक ये नहीं ग्रसते तब तक हठ छोड़कर यत्न कर लो।

निशाचर मेढक हैं। कभी राम गुन गान नहीं करते। यथा : जो नहिं करहि राम गुन गाना। जीह सो दादुर जीह समाना। इनके लिए राम वाण सर्प हैं। यथा : राम मारगन गन चले लहलहात जनु ब्याल। मेढक सर्प के भक्ष्य हैं। इसी भाँति ये राक्षस रामबाण की खुराक हैं। ये अपने भक्ष्य को खोजा करते हैं। सर्प के ग्रसने के पहिले ही मेढक को उचित है कि अपने बचने का उपाय कर ले। हठ करने से सर्प का ग्रास बनना पड़ेगा। अतः मैं यत्न बतलाती हूँ उसे अवश्य करना चाहिए। देखिये जन स्थान में अकेले ने कितने निशाचरों का संहार किया।

श्रवन सुनी सठ ता करि बानी। बिहँसा जगत विदित अभिमानी ॥
सभय सुभाव नारि कर साँचा। मंगल महु भय मन अति काँचा ॥१॥

अर्थ : शठ ने उसकी वाणी कान से सुनी। तो वह जगत् प्रसिद्ध अभिमानी खूब हँसा : बोला सचमुच स्त्रियों का स्वभाव बड़ा डरपोक होता है। मङ्गल में उन्हें भय होता है। क्योंकि उनका मन अत्यन्त कच्चा होता है।

व्याख्या : कान से बात सुन ली। मन में न लाया। क्योंकि शठ है और शठ से विनय करना व्यर्थ है। यथा :

सठ सन विनय कुटिल सन प्रीती।
सहज कृपिन सन सुन्दर नीती ॥

ममतारत सन ग्यान कहानी।
अति लोभी सन विरति बखानी॥
क्रोधिहि सम कामिहि हरिमथा।
ऊसर बीज बए फल जथा॥

लोग आजतक कहते हैं कि अमुक को रावण सा अभिमान है। अतः रावण का अभिमान जगत् प्रसिद्ध है। बड़े जोरों से हँसा कि यह जन्मभर मेरे साथ रही और मेरे प्रभाव को जान न सकी। कहता है कि सच्ची डरपोक स्त्रियाँ ही होती हैं। कहाँ लङ्का में मङ्गल उपस्थित है : गृह बैठे अहार विधि दीन्हा। जो आवै मरकट कटकाई। जिअँहि बिचारे निसिचर खाई और कहाँ यह अपना मन कच्चा कर रही है। झूठे डर से डरे वह कच्चा डरपोंक। सच्चा डरपोक तो वही है जो मङ्गल उपस्थित होने पर अधीर हो जाय। अति कांचा कहने का भाव यह कि केवल डरी ही नहीं है। नर वानर के न आने देने के लिए अनुनय विनय करती है। जब इसका यह हाल है तब अन्य स्त्रियों का गर्भ गिरना ही चाहिए।

जौ आवै मरकट कटकाई। जियहि बिचारे निसिचर खाई॥
कंपहिं लोकप जाकी त्रासा। तासु नारि सभीत बड़ि हासा॥२॥

अर्थ : जौं कहीं वानरों की सेना आजाय तो बिचारे राक्षस खाकर जी जायँ। जिसके डर से लोकपाल काँपते हैं उसकी स्त्री डरती हो यह बड़े हँसी की बात है।

व्याख्या : अब रावण अपने हँसने का कारण कहते हैं कि मेरे राक्षस भूखे पड़े हैं। यथा : क्षुधावन्त सव निसिचर मेरे। बाहर से रसद मँगाते मैं हैरान हूँ। इन्हें खाने के लिए नर वानर चाहिए। यहाँ नर वानर कहाँ ? इसलिए समुद्र पार से मँगाना पड़ता है। यथा : कहुँ महिष मानुष धेनु खर अज खल निसाचर भच्छहीं। यहाँ बन्दर की सेना के आने की कौन सी आशा है। यदि कहीं भाग्य से आगयी तो मेरे भुक्खड़ राक्षस खाकर जी जावेंगे। अतः मर्कट कटकाई का आना मङ्गल है।

लोकपालों का भयरूप तो मैं हूँ। यथा : जनि जल्पसि जड़ जन्तु कपि सठ बिलोकु मम बाहु। लोकपाल बल बिपुल ससि ग्रसन हेतु सब राहु। तू मेरी स्त्री है। मैं मौजूद हूँ। तेरे डरने का क्या कारण है ? भला दुनिया क्या कहेगी ? निशाचरियों का गर्भ गिरना ही हँसी की बात है। तेरा डर जाना तो बड़ी हँसी की बात है।

अस कहि बिहँसि ताहि उर लाई। चलेउ सभा ममता अधिकाई॥
मंदोदरी हृदय कर चिंता। भयउ कंत पर विधि विपरीता॥३॥

अर्थ : ऐसा कहकर और हँसकर उसे हृदय से लगा लिया और सभा में

चला। ममता और बढ़ गयी। मन्दोदरी चिन्ता करने लगी कि कन्त पर विधाता प्रतिकूल हो गये।

व्याख्या : रावण ने केवल शब्द से ही नहीं कहा कि तासु नारि सभीत बड़ि हाँसा। आप हँस भी पड़े। बिहँसा नारि बचन सुनि काना। से उपक्रम और अस कहि विहँसि से उपसंहार। वह पैर पड़ी थी। अतः आदर के लिए उसे हृदय से लगा लिया। स्त्री के आलिङ्गन से ममता की अभिवृद्धि हुई। यथा : पुनि ममता जवास बहुताई। पलुहइ नारि सिसिर रितु पाई।

रावण किसी की न सुनें पर मन्दोदरी की सुनते थे। आज उसकी भी नहीं सुन रहे हैं। अतः अनुमान करती है कि विधि विपरीत भलाई नाहीं। कं सुखं तनोतीति कन्तः। सुख देने वाले पर ब्रह्म के विपरीत होने की चिन्ता होना स्वाभाविक है। एक बन्दर ने यह दुर्दशा की सो बानरी सेना का आना प्रिय मालूम हो रहा है।

रावण की सभा

बैठेउ सभाँ खबरि असि पाई। सिन्धु पार सेना सब आई॥
बूझेसि सचिव उचित मत कहहू। ते सब हँसे मष्ट करि रहहू॥४॥
जितेहु [1]सुरासुर तव श्रम नाहीं। नर बानर केहि लेखे माहीं॥५॥

अर्थ : सभा में जाकर बैठा। समाचार मिला कि सारी सेना समुद्र के उस पार आगयी। मन्त्रियों से पूछा कि उचित सम्मति दो। तब वे सब हँसे और बोले कि चुप रहिये : उन्हें इस पर चले आने दीजिये : आपने देवता और असुरों को जीता तब तो कुछ श्रम हुआ ही नहीं। फिर मनुष्य और वानर किस गिनती में हैं ?

व्याख्या : रावण सभा की ओर चले। इस बीच में कवि ने मन्दोदरी का स्वगत विचार कहा। अब रावण का सभा में जाकर बैठना कहते हैं। जब से लंकादाह हुआ है तब से और राजकाज बन्द है। लंका की मरम्मत हो रही है और चरों द्वारा खबर ली जा रही है। सो सभा में आते ही समाचार मिला कि उस पार सारी वानरी सेना आगयी। कहने का अभिप्राय यह कि सेना बड़ी भारी है।

सेना आजाने पर दो ही मार्ग हैं। या तो स्वयं तैयार होकर उसके धावा की प्रतीक्षा की जाय या स्वयं उसपर धावा बोल दिया जाय। अतः रावण मन्त्रियों से पूछते हैं कि इन दोनों उपायों में कौन सा उचित है। सो तुम लोग बतलाओ : सरस्वती कहती हैं कि उचित मत कहहू : उचित न कहो। सो वहां हुआ। मन्त्रियों को पता है कि रावण वानरी सेना पर हँसते हैं। अतः उसको प्रिय लगने के लिए वे भी हँसे और कहा कि चुपके रहिये। यहां चले आने दीजिये। छेड़छाड़ करने से वे भाग जायंगे।

---

१. यहां काव्यार्थापत्ति : अलङ्कार है।

यदि यह कहा जाय कि उनके संमुद्र पार करने में ही बाधा करना प्राप्त है। थोड़े ही श्रम में काम चल जायगा तो इसपर कहते हैं कि आपने सुरासुर को जीता और श्रम न हुआ। इनके जीतने में कौन सा श्रम है ? नर कपि भालु अहार हमारा। यह सेना तो हमलोगों की भक्ष्य है। भक्ष्य आपसे आप मुँह में चला आ रहा है। उसे आने दीजिए।

दो. सचिव बैद गुर तीन जौं, प्रिय बोलहिं भय आस
राज धर्म तन तीनि कर, होइ बेगिही नास ॥३७॥

अर्थ : मन्त्री वैद्य और गुरु ये तीन यदि अप्रसन्नता के भय या लाभ की आशा से प्रिय बोलते हैं तो क्रमशः राज्य शरीर और धर्म का शीघ्र ही नाश हो जाता है।

व्याख्या : यहाँ प्रकरण केवल सचिव का है। रावण के यहाँ सचिव केवल राज्याङ्ग समझकर रक्खे गये हैं। उनकी सुनवाई कभी नहीं होती। मंडलीक मनि रावन राज करै निज मंत्र। अतः स्वतन्त्र मन्त्र देने का उन्हें साहस नहीं है। वे भयभीत रहते हैं कि उचित कहने पर रावण का कोपभाजन होना पड़ेगा। जबतक रामजी न आजायँ कम से कम तबतक तो जीने की आशा है। उचित कहने पर तो अभी मारेगा। रावण ने सम्मति पूछने के समय बहुत बड़ा अवकाश मन्त्रियों को दिया था कि जो उचित हो सो कहो। ऐसे अवसर पर वे सीताजी के देने की भी सम्मति दे सकते थे और यही उन सबों की रुचि भी थी। यथा : निज निज गृह सब करहिं बिचारा। नहिं निसिचर कुल केर उबारा। पर प्राणभय से उन सबों ने प्रकट नहीं कहा। राज धर्म और तन तीन में क्रम न होने से क्रम नहीं दिया। एक-एक के प्रिय बोलने से तीनों का नाश होता है।

सोइ रावन कहुँ बनी सहाई। अस्तुति करहिं सुनाइ सुनाई ॥
अवसर जानि बिभीषनु आवा। भ्राता चरन सीसु तेहिं नावा ॥१॥

अर्थ : रावण को वही सहायता आ मिली। सब उसे सुना सुनाकर स्तुति करते हैं। अवसर जानकर विभीषणजी आये। बड़े भाई के चरणों में सिर नवाया।

व्याख्या : तुलसी जसि भवितव्यता तैसइ मिलै सहाय। मन्त्री ऐसे मिले हैं। वैद्य सुषेणजी मिले हैं : जिन्होंने लक्ष्मणजी को औषध बतलाकर स्वस्थ किया और गुरुजी का यह हाल है कि करत राम विरोध तेहि सपनेहु न हटक्यो ईस। रावण सबके रुलाने वाले हैं। इनका नाश प्रिय वाणी से हुआ। सब मन्त्री सुना सुनाकर स्तुति करते हैं। अनसुनी स्तुति व्यर्थ समझते हैं। सुनेंगे तब रावण प्रसन्न होंगे।

पुलस्त्य ऋषि के सन्देश कहने का अवसर जानकर अथवा इस समय पर युद्ध के लिए विचार हो रहा है जाने पर अवश्य मुझसे राय पूछेंगे यह जानकर विभीषण रावण के पास आये। ज्येष्ठ भ्राता होने से प्रणाम किया, राजा-बुद्धि से नहीं। विभीषणजी दरबार में बराबर हाजिर नहीं रहते। पर खबर एक एक बात

को रखते हैं। बात बिगड़ती देखकर पहुँच जाते हैं। यथा : सुनत निसाचर मारन धाए। सचिवन्ह सहित बिभीषण आये। भ्राता शब्द से विभीषणजी की प्रीति कही।

पुनि सिरु नाइ बैठ निज आसन। बोला बचन पाइ अनुसासन ॥
जौं कृपाल पूछेहु मोहि बाता। मति अनुरूप कहौं हित ताता ॥२॥

अर्थ : फिर सिर नवाकर अपने आसन पर बैठे और आज्ञा पाकर वचन बोले : हे कृपालु ! जब आपने मुझसे बात पूछी है। तो हे तात ! तो मैं अपनी वुद्धि के अनुसार हित की बात कहता हूँ।

व्याख्या : आसन पर बैठने का दूसरा प्रणाम। दरबार में सबके लिए आसन नियत है। बिभीषणजी की अनुपस्थिति में उनका आसन खाली रहता है। बड़े का अनुशासन और छोटे का विनय करना यही रीति है। सबकी सम्मति ली जाने पर भी इनकी सम्मति पूछी गयी। मन्दोदरी के कथन से कुछ रावण प्रभावित हैं अतः मन्त्रियों से कहा उचित : मत कहहू। रावण जानते हैं कि मुँह देखी बात कहते हैं। इसलिए स्वच्छन्द सम्मति प्राप्त करने के लिए प्रोत्साहित करते हैं। फिर भी उन सबों की राय उसके मन में जमी नहीं। अतः विभीषणजी से भी राय पूछता है।

विभीषणजी के आने में बैठने में बोलने में सब में सज्जनता भरी है। छोटे से सम्मति पूछना बड़े की कृपा है। अतः विभीषणजी कृपाल सम्बोधन करते हैं। दूसरा भाव यह है कि जिस भाँति कृपा करके पूछा उसी भाँति कृपा करके मान भी जाइये। मति अनुरूप कहने का भाव यह कि मैं आपको उपदेश देने योग्य नहीं हूँ। जितनी वुद्धि है तदनुसार कहूँगा। कुछ त्रुटि हो जाय तो कृपा करके क्षमा कीजियेगा। भीतरी बात यह है कि मैं तो सुजस सुमति सुभगति सुख नानावाली सम्मति दूँगा। केवल शुभगतिवाली सम्मति नहीं। दोनों भाइयों की सम्मति में यही मौलिक भेद है। एक को सुजस सुमति शुभगति चाहिए। दूसरा किसी भाँति केवल सुगति चाहता है।

जो आपन चाहइ कल्याना। सुजसु सुमति सुभ गति सुख नाना ॥
सो पर नारि लिलारु गोसाईं। तजौ चौथि के चंद कि नाईं ॥३॥

अर्थ : जो मनुष्य अपना कल्याण, सुन्दरयश, सुबुद्धि, शुभगति और नाना प्रकार के सुख चाहता हो, वह हे स्वामी ! पर स्त्री के ललाट को चौथ के चन्द्रमा की भाँति त्याग दे।

व्याख्या : पुलस्त्यजी का संदेसा समयोचित होने से अपने शब्दोंमें कहते हैं। साधारण नियम यही है कि अपना अकल्याण चाहने वाला चाहे जैसा करे। पर जो कल्याण चाहता है उसके लिए चेतावनी है। कल्याण का ही विवरण करते हैं। सुयश से धर्म कहा। यथा : पावन जसु कि पुन्य बिनु होई : सुमति से अर्थ कहा। यथा : जहाँ सुमति तहँ संपति नाना : शुभगति से मोक्ष कहा और सुख नाना से काम कहा। ये ही चारों पदार्थ कल्याण हैं।

श्रीकृष्ण भगवान् ने चौथ का चन्दा देखा था। सो उन्हें झूठा कलङ्क लगा। स्त्री के ललाट की भी आकृति चौथ के चाँद सी होती है। सो परस्त्री के ललाट को ओर आँख उठाकर देखने से झूठा कलंक लगता है। अतः कल्याणेप्सु उस ओर आँख उठाकर न देखे। सुयश का नाश यथा : कामी पुनि कि होइ अकलंका। बुद्धि का नाश यथा : बुधिबल सील सत्य सब मीना। बन्सी सम तिय कहहिं प्रवीना। शुभगति का नाश यथा : सुभगति पावकि पर तियगामी। सुख का नाश यथा : अवगुन मूल सूल प्रद प्रमदा सब दुख खानि। इससे धर्मविरुद्ध काम का निषेध किया।

चौदह भुवन एक पति होई। भूत द्रोह तिष्ठैं नहिं सोई॥
गुन सागर नागर नर जोऊ। अलप लोभ भल कहइ न कोऊ॥४॥

अर्थ : चौदहों भुवनों का अकेला स्वामी हो। फिर भी वह जीवमात्र से द्रोह करके ठहर नहीं सकता। जो मनुष्य गुणों का समुद्र और चतुर हो उसे भी यदि अल्प लोभ हो तो कोई भला नहीं कहता।

व्याख्या : चौदहों भुवन का अकेला मालिक होना बड़ा दुर्लभ है। पर मान लीजिये कि यदि कोई ऐसा हो और वह मद में आकर भूतद्रोह में लग जाय तो इस पाप से वह ठहर नहीं सकता। क्योंकि भूत द्रोह बड़ा भारी पाप है। यथा : बिस्वद्रोह कृत अघ जेहि लागा। इधर किन्नर सिद्ध मनुज सुरनागा। हठि सबहीं के पंथहिं लागा। आप ने भूतद्रोह को अपना रखा है। रामजी से हठ करके वैर किया है। यह पतन का लक्षण है : इससे मद और क्रोध का निषेध किया।

कोई कोई दोष ऐसे हैं जो गुणाधिक्य के सामने गिने नहीं जाते। पर लोभ ऐसा दोष है कि गुणसागर नागर पुरुष भी अल्प लोभ से दुर्यश को प्राप्त होता है। यथा : लोभी जसु चह चार गुमानी। अतः कीर्ति के लिए लोभ विष है। तुम्हारा यह हाल है कि सोने की लंका से पेट न भरा। साक्षात् लक्ष्मी को ही उठा लाये। इससे लोभ का निषेध करते हैं।

दो. काम क्रोध मद लोभ सब, नाथ नरक के पंथ।
सब परिहरि रघुबीरहि, भजहु भजहिं जेहि संत॥३८॥

अर्थ : हे नाथ! काम क्रोध मद और लोभ ये सब नरक के मार्ग हैं। इन सबको छोड़कर श्री रघुवीर को भजिये जिन्हें सन्त भजते हैं।

व्याख्या : त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः। कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत् त्रयं त्यजेत्। नरक के तीन द्वार हैं : काम क्रोध और लोभ। इनसे अपना नाश होता है। इसलिए इनका परित्याग करना चाहिए। मद का क्रोध में अन्तर्भाव करके तीन ही कहा। नरकपथ छोड़कर भक्तिपथ ग्रहण का विभीषणजी उपदेश देते हैं कि सब ओर से चित्त को मोड़कर रघुवीर को भजो जिन्हें सन्त भजते हैं। सन्त कहने का भाव यह कि हमारे बाप दादा सन्त हैं उनके मार्ग का

अनुसरण करो। नगर के पंथ सन्त में वैषम्य के कारण तुकान्त में भी विषम हो दिया।

तात रामु नहिं नर भूपाला। भुवनेस्वर कालहु कर काला ॥
ब्रह्म अनामय अज भगवंता। व्यापक अजित अनादि अनंता ॥१॥

अर्थ : हे तात ! रामजी मनुष्य राजा नहीं हैं। ये भुवनेश्वर काल के भी काल हैं। ये ब्रह्म विकार रहित जन्म रहित भगवान् हैं। व्यापक अजित अनादि और अनन्त हैं।

व्याख्या : रावण को सरकार के प्रति संशयात्मिका बुद्धि थी। यथा : जो नर रूप भूप सुत कोऊ। हरिहौं नारि जीति रन दोऊ। उसी के हटाने के लिए बिभीषणजी कहते हैं कि नर की भाँति प्रतीत होते हैं पर हैं नहीं। भूपाल भी नहीं हैं। भुवनेश्वर हैं यथा : भुवन अनेक रोम प्रति जासू। यह प्रभुता कछु बहुत न तासू। काल के भी काल हैं। यथा : काल व्याल कर भच्छक जोई। इससे देश और काल दोनों का प्रभु कहा। अनामय ब्रह्म कहकर निरतिशय महत्ता कही। अजभगवन्त कहकर अवतार : दिव्य जन्म कहा। व्यापक कहकर सर्वाधार कहा। सर्वाधार को कोई कैसे जीत सकता है ? जिसका आदि अन्त हो वही बाधा देता है और बाधा पाता है। अनादि अनन्त पदार्थ न बाधा दे और न बाधा पावे। उसके जीतने के विषय में प्रश्न ही नहीं बन सकता। यहाँ अनेक विशेषणों से निर्गुण का निरूपण किया।

गो द्विज धेनु देव हितकारी। कृपासिंधु मानुष तनु धारी ॥
जन रंजन भंजन खल ब्राता। बेद धर्म रच्छक सुनु भ्राता ॥२॥

अर्थ : उन कृपा के समुद्र भगवान् ने पृथ्वी, ब्राह्मण, गो और देवताओं के हित के लिए ही मनुष्य शरीर धारण किया है। हे भाई ! सुनो। वे सेवकों के आनन्द देनेवाले दुष्टों के समूह के नाश करनेवाले और वैदिक धर्म की रक्षा करने वाले हैं।

व्याख्या : अब बिभीषणजी अवतार का कारण कहते हैं। तुमसे गो द्विज धेनु और देवताओं का अहित हो रहा है। गो : पृथ्वी : का अहित। यथा : अतिसय देखि धरम कै ग्लानी। परम सभीत धरा अकुलानी। द्विज धेनु का अहित यथा : जेहि जेहि देस धेनु द्विज पावहिं। नगर गाउँ पुर आगि लगावहिं। देवों का अहित। यथा : जपजोग बिरागा तप मख भागा श्रवन सुनै दससीसा। आपुनु उठि धावइ रहै न पावइ धरि सब घालेइ खीसा। सुभ आचरन कतहुँ नहिं होई। देव बिप्र गुरु मान न कोई। और वे गो द्विज धेनु देव हितकारी हैं। तुम्हारी मृत्यु मनुष्य के हाथ हैं। अतः उन्होंने मनुष्य शरीर धारण किया है। कृपासिन्धु कहने का भाव यह है कि इतनी कृपा दोनों पर है कि मनुष्य शरीर धारण में सङ्कोच न किया

अथवा यद्यपि तुम्हारे वध के लिए ही अवतार हुआ है पर ऐसे कृपासिन्धु हैं कि तुम्हारे ऊपर भी कृपा कर सकते हैं।

और भी अवतार के कारण बतलाते हैं। वे जनरञ्जन हैं। तुम भी उनके जन हो जाओ। भञ्जन खल व्राता से खलमण्डली का नाश उपस्थित है। राक्षस खल मनुजाद द्विजामिष भोगी हैं सो एक न बचेंगे। वे वेद धर्मरक्षक हैं और तुम्हारे यहाँ वेद के निर्मूल करने की विधि काम में लायी जाती है। अब यह न होने पावेगा। वेद धर्मरक्षक आगये। विभीषणजी भाई की दृष्टि से कहते हैं। सुनु भ्राता। भाव यह कि मैं भाई हूँ। आज लड़ूँगा। मेरी बात माननी होगी। मैं राजा के रोब से मुँहदेखी बात नहीं कह सकता।

ताहि बयरु तजि नाइअ माथा। प्रनतारति भंजन रघुनाथा॥
देहु नाथ प्रभु कहुँ बैदेही। भजहु राम बिनु हेतु सनेही॥३॥

अर्थ :/वैर त्यागकर उन्हें मस्तक नवाइये। वे रघुनाथजी शरणागत का दुःख मिटानेवाले हैं। हे नाथ! प्रभु को जानकीजी दे दीजिये और बिना कारण स्नेह करनेवाले रामजी को भजिये।

व्याख्या : तौ मैं जाइ वैर हठि करऊँ। प्रभु सर प्रान तजे भव तरऊँ। होइहि भजनु न तामस देहीं। यह सिद्धान्त ठीक नहीं। उनसे वैर छोड़ो। किसी के सामने माथा नहीं झुकाते पर उनके सामने झुकाओ। वे प्रणत की आर्ति के हरण करनेवाले हैं। तुम भी आर्त हो जाओ। आर्ति का कारण उपस्थित है। तुम्हें ज्ञान है कि मेरा तामस देह है। भजन नहीं हो सकता और सद्गति की इच्छा है। तुम्हें केवल प्रणत होने की देर है। इतने में ही सब कल्याण हो जायगा। व्यर्थ सर्वनाश क्यों करते हो?

वैर करने के लिए ही तुमने वैदेही हरण किया है। सो वैदेही देने से ही वैर समाप्त हो जायगा। उनकी ओर से तो प्रेम ही प्रेम है। वे तो निष्कारण प्रेम करते हैं। भजन करने से क्यों न करेंगे? परमेश्वर के भजन करने ही में शोभा है। उनसे वैर करना ही मूर्खता है। पहिले निर्गुण निरूपक विशेषण विभीषणजी ने दिये। अब सगुण निरूपक विशेषण दे रहे हैं। प्रभु को वैदेही दो। कहने का भाव यह कि : जनक सभा अगनित भुवपाला। रहे तुमहु बल अतुल बिसाला। भंजि धनुष जानकी बिआही। तब संग्राम जितेहु किन ताही।

सरन गएँ प्रभु ताहु न त्यागा। बिस्व द्रोह कृत अघ जेहि लागा॥
जासु नाम त्रय ताप नसावन। सोइ प्रभु प्रकट समुझु जिय रावन॥४॥

अर्थ : जिसे सम्पूर्ण जगत् से द्रोह करने का पाप लगा है। शरण जाने पर प्रभु उसका भी परित्याग नहीं करते। जिनका नाम तीनों तापों का नाश करने वाला है वे ही प्रभु प्रकट हुए हैं। हे रावण! हृदय में यह समझ लो।

व्याख्या : यदि अपने अपराध की गुरुता सोच करके निराश हो तो यह भी ठीक नहीं है। तुम्हारा अपराध निःसन्देह बहुत बड़ा है : किन्नर सिद्ध मनुज सुर नागा। हठि सबही के पंथहिं लागा। पर ऐसों को तो क्षमा वहीं से मिलती है जहाँ शरण गया तहाँ विश्वद्रोह कृत पाप भी क्षमा कर दिया जाता है। वह अपना लिया जाता है। वहाँ शरणागत का त्याग होता ही नहीं।

जिसके नाम से आध्यात्मिक : आधिदैविक और आधिभौतिक तापों का नाश होता है : आध्यात्मिक ताप का नाश यथा : ध्रुव सगलानि जप्येउ हरि नाऊँ। पायेउ अचल अनूपम ठाऊँ। आधिदैविक ताप का नाश यथा : नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ। आधिभौतिक ताप का नाश यथा : नाम प्रभाउ जान सिव नीको। कालकूट फल दीन्ह अमी को। यहाँ तो वे स्वयं प्रकट हैं। यह सन्देह ही नहीं किया जा सकता कि कोई गम्भीर पाप कैसे मिटेगा ? भाव यह कि तुम्हें ऐसा सुअवसर प्राप्त है कि नाम जपकर उन्हें प्रकट भी करना नहीं है। दूसरों ने बड़े-बड़े जप तप करके उन्हें प्रकट किया है। तुम केवल शरण में जाकर अपना काम बना लो। तुम रावण हो। सबको रुलानेवाले हो। समझ लो तुम्हारे वध के लिए अवतार हुआ है। देवताओं की रक्षा के लिए आये हुए हैं। सो वैरियों का मनोरथ पूरा न होने पावे। तुम हो उन्हें अपना लो।

दो. बार बार पद लागउँ, बिनय करउँ दससीस।
परिहरि मान मोह मद, भजहु कोसलाधीस ॥
मुनि पुलस्ति निज सिष्य सन, कहि पठई यहि बात।
तुरत सो मैं प्रभु सन कही, पाइ सुअवसरु तात ॥३९॥

अर्थ : हे दशशीश ! मैं बार-बार पैर पड़ता हूँ और विनती करता हूँ कि मान मोह और मद को छोड़कर कोसलपति रामजी का भजन करो। फिर पुलस्त्य ऋषि ने भी अपने शिष्य से यही बात कहला भेजी है। सुअवसर पाकर तुरन्त ही वह बात मैंने प्रभु से कही है।

व्याख्या : महात्मा लोग हाथ जोड़कर पैरों पर गिरकर भी दूसरों का भला चाहते हैं और करते हैं। सो विभीषणजी महात्मा हैं। कह रहे हैं कि मैं भाई हूँ। बार बार पैर पड़ता हूँ। हाथ जोड़ता हूँ। तुम जगत् विजयी होकर भी छवों रिपुओं के शरण में पड़े हो। काम क्रोध लोभ मद के लिए पहिले कह चुके हैं। यथा : काम क्रोध मद लोभ सब नाथ नरक के पंथ। और शेष दो : मान मोह को इस समय कह रहे हैं। रावण अधिक मदान्ध हैं। इसलिए दोनों बार के निषेध करने में मद की चर्चा की। इन छवों के रहते भजन हो नहीं सकता। तुम शत्रुओं को भज रहे हो। बिनु हेतु सनेही को नहीं भजते। दशशीश कहने का यह भाव कि किसी का दस प्रणाम और तुम्हारा एक प्रणाम। कोसलाधीस कहने का भाव

यह कि लोकप्रसिद्ध धन्वी हैं। यथा : कहँ कोसलाधीस दोउ भ्राता। धन्वी सकल लोक विख्याता। उनके भजन में ही कुशल है।

पुलस्त्यजी ने विभीषण के द्वारा रावण से सन्देश कहलाया। रावण से अप्रसन्न हैं। सीधे सीधे उसके पास सन्देश नहीं भेजते। निज शिष्य कहने का भाव यह कि विश्वस्त व्यक्ति है। मेरा पहिचाना हुआ है। उसे लङ्का में प्रवेश का अधिकार दिया हुआ है। अथवा पुलस्त्यजी का निज शिष्य है। वह सिद्ध है। लङ्का में आकर मुझसे बात भी कर गया। पता किसी को भी नहीं। ये बातें जो मैंने कही हैं वे मेरी नहीं हैं। पुलस्त्यजी ने कहला भेजा है। समयानुकूल होने से मैंने अपनी ओर से कहा क्योंकि मेरा भी यही मत है। ज्योंही मुझे सन्देशा मिला त्योंही मैं कहनेके लिए आया। यहाँ उसी विषय की चर्चा चल रही थी। मुझे सुअवसर मिल गया मैंने कह डाला। दूसरी बात यह कि तुम्हारे लिए भी सुअवसर है। पुलस्त्य ऋषि के कहने पर यदि तुम रामजी से मेल कर लोगे सीताजी को दे दोगे तो तुम्हारा बड़ा सुयश होगा। कोई यह भी नहीं कह सकेगा कि रावण ने डरकर मेल कर लिया। सब तुम्हारे गुरु आज्ञा पालन की प्रशंसा करेंगे। पुलस्त्य जी के संदेश में नाम रूप लीला और धाम चारों का वर्णन है। नाम यथा : जासु नाम त्रय ताप नसावन। लीला यथा : जन रंजन भंजन खल व्राता। वेद धर्म रक्षक सुनु भ्राता। रूप यथा : ब्रह्म अनामय अज भगवंता। धाम यथा : भजहु कोसलाधीस।

माल्यवंत अति सचिव सयाना। तासु बचन सुनि अति सुख माना॥
तात अनुज तव नीति बिभूषन। सो उर धरहु जो कहत बिभीषन॥१॥

अर्थ : माल्यवान् नाम का एक अति सयाना मन्त्री था। उसने उसकी : विभीषण की बात सुनकर बहुत सुख माना। उसने कहा : हे तात! आपका छोटा भाई नीतिविभूषण है। जो विभीषण कह रहे हैं उसे ही मनमें स्थान दो।

व्याख्या : माल्यवंत अति जरठ निसाचर। रावन मातु पिता मंत्री बर। अब रावण का मन्त्री है। इसीलिए अति सयाना कहा। अन्य मन्त्रियों की सम्मति पर दुःख माना था। अपना कोई अनुमोदक न देखकर मौन था। विभीषणजी के वचन पर फड़क उठा कि बड़े कल्याण की बात इसने कही। इधर विभीषण के प्रस्ताव का कोई अनुमोदक न था। अतः बोल उठा।

अति वृद्ध है। रावण के नाना का मन्त्री है। अतः तात सम्बोधन करता है। कहता है कि नीति विभूषण तो तुम्हारा भाई है। सचिव नीति विभूषण नहीं है। इनकी बातों को मन में न लाना विभीषण के वचन मानने योग्य हैं। अति प्रसन्न होकर विभीषण को नीतिविभूषण की पदवी प्रदान करता है।

रिपु उतकरष कहत सठ दोऊ। दूरि न करहु इहाँ है कोऊ॥
माल्यवंत गृह गयउ बहोरी। कहइ बिभीषनु पुनि कर जोरी॥२॥

अर्थ : ये दोनों शठ शत्रु की बड़ाई कर रहे हैं। यहाँ कोई है। इन्हें दूर क्यों नहीं करते ? माल्यवान् तो उठकर घर चले गये और विभीषण हाथ जोड़कर फिर कहने लगे।

व्याख्या : रिपु का उत्कर्ष तेजोवध के लिए कहा जाता है। विभीषणने अपनी बात के साथ पुलस्त्य ऋषि का नाम ले दिया था। इसलिए रावण को कुछ कहने का मौका नहीं मिला था। जब माल्यवान् बोले तब मौका मिल गया। उसे किसी का उपदेश पसन्द नहीं। इससे रिपु के उत्कर्ष कथन का दोषारोपण कर रहा है। गो कि मन्त्रणा के समय उत्कर्ष अपकर्ष सब कुछ कहा जाता है। 'सठ' कहने का भाव यह कि ये दोनों शत्रु से मिल गये हैं। यहाँ पर बातें बनाते हैं। इन दोनों को बिना आज्ञा पाये ही : कायदे के मुताबिक : दरबार के बाहर निकाल देना चाहता था। सो क्यों ये निकाले नहीं जाते ? फिर भी कोई निकालने के लिए नहीं उठा। तब कहता है : इहाँ है कोऊ : भाव यह कि क्या सब मर गये ?

माल्यवान् बड़े सयाने हैं। धीरे से घर की राह ली। कोई उठा ही देगा। तब क्या रह जायगा ? विभीषण के उठाने के लिए फिर भी कोई नहीं उठा। राजा का भाई है। एक प्रकार से राजा ही है। यथा : करत राज लंका सठ त्यागी। विभीषणजी सब कहने को तैयार हैं। अभिप्राय यह है कि आज न कहूँगा तो फिर कब कहूँगा ?

सुमति कुमति सबके उर बसहीं। नाथ पुरान निगम अस कहहीं ॥
जहाँ सुमति तहँ संपति नाना। जहाँ कुमति तहँ बिपति निदाना ॥३॥

अर्थ : सुमति और कुमति सबके हृदय में बसती है। हे नाथ ! पुराण और वेद ऐसा कहते हैं कि जहाँ सुमति है वहाँ नानाप्रकार की सम्पदाएँ बसती हैं और जहाँ कुमति है, वहाँ परिणाम में विपत्ति रहती है।

व्याख्या : सात्त्विकी बुद्धि को सुमति और राजसी तामसी बुद्धि को कुमति कहते हैं। ये सबके हृदय में रहती हैं। पुराण और वेदों ने इसका पृथक्करण करके बतलाया है। बुद्धि से ही पुरुष की पहिचान होती है और बुद्धि ही सम्पत्ति और विपत्ति का कारण है। जहाँ सुमति है वहाँ नाना प्रकार की सम्पत्ति रहती है और जहाँ कुमति है वहाँ चाहे पहिले सम्पत्ति दिखायी पड़े पर अन्त में बड़ी भारी विपत्ति आती है। प्रवृत्ति निवृत्ति कार्य अकार्य भय और अभय बन्ध और मोक्ष को जो जानती है उसे सात्त्विकी बुद्धि कहते हैं और जो धर्माधर्म कार्याकार्य को ठीक तरह से नहीं जानती उसे राजसी बुद्धि कहते हैं और जो बुद्धि तमोगुण से ढकी हुई अधर्म को ही धर्म मानती है वह बुद्धि तामसी है। यथा : प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च कार्याकार्ये भयाभये। बन्धं मोक्षं च या वेत्ति बुद्धिः सा पार्थ सात्त्विकी। यथा धर्ममधर्मंच कार्यञ्चाकार्यमेव च। अयथावत् प्रजानाति बुद्धिः सा पार्थ राजसी। अधर्मं धर्ममिति या मन्यते तमसावृता। सर्वार्थान् विपरीतांश्च बुद्धिः सा पार्थ तामसी : भगवद्गीता :

सात्त्विकी की ऊँची गति होती है। राजस बीच में रहते हैं और निन्दित गुणवाले तामस का अधःपतन होता है। यथा : ऊर्ध्वं गच्छन्ति सत्त्वस्था मध्ये तिष्ठन्ति राजसाः। जघन्यगुणवृत्तिस्था अधो गच्छन्ति तामसाः : भगवद्गीता :

तव उर कुमति बसी बिपरीता। हित अनहित मानहु रिपु प्रीता ॥
कालराति निसिचर कुल केरी। तेहि सीता पर प्रीति घनेरी ॥४॥

अर्थ : तुम्हारे मन में उलटी कुबुद्धि आ बसी है। हित को अहित और शत्रु को मित्र मान रहे हो। जो निशिचर कुल के लिए कालरात्रि तुल्या है उस सीता पर बड़ी प्रीति है।

व्याख्या : विपरीता कुमति अर्थात् तामसी बुद्धि तुम्हारे हृदय में बस गयी है। मैं और माल्यवान् तुम्हारा हित कह रहे हैं। सो तुम्हें रिपु का उत्कर्ष कथन मालूम पड़ रहा है और तुम्हारे सचिव जो मष्ट करि रहहू ऐसी अहित शिक्षा दे रहे हैं सो तुम्हें हित मालूम हो रहा है। हनुमान्‌जो तथा विभीषणजी की शिक्षाओं में बहुत साम्य है।

इतना ही नहीं यह सीता तुम्हारी बड़ी भारी शत्रु है। निशिचर मात्र का संहार चाहनेवाली साक्षात् कालरात्रि अर्थात् काली माई हैं। यथा : कालरात्रिर्महारात्रिर्मोहरात्रिश्च दारुणा। यह निशिचर कुलको खा जावेगी। उसपर तुम्हारी इतनी प्रीति कि उसे लाकर लङ्का में रख दिया। यह मानहु रिपु प्रीता का उदाहरण है। सीता के शब्दों का अर्थ भी मन में नहीं लाते। सो भुज कंठ कि तव असि घोरा। सुनु सठ अस प्रवान पन मोरा।

दो. तात चरन गहि माँगहु, राखहु मोर दुलार।
सीता देहु राम कहुँ, अहित न होइ तुम्हार ॥४०॥

अर्थ : हे तात ! मैं चरण पकड़कर आपसे माँगता हूँ। मेरा दुलार रख लो। रामजी को सीता दो। तुम्हारा अकल्याण न हो।

व्याख्या : भ्राता चरन सीस तेहि नावा से उपक्रम तात चरन गहि माँगौं राखहु मोर दुलार से उपसंहार। मोर दुलार कहने का भाव यह कि मेरी सम्मति बुरी सही मैं छोटा भाई हूँ। मेरी रुचि है कि सीता लङ्का में न रहे। मेरी रुचि रख लो। अपने मन में यह समझ लो कि मैं छोटा भाई का दुलार रख रहा हूँ और सीताजी को दे दो। सीता के न देने से निश्चय अकल्याण है। चरन गहि माँगौ का भाव यह कि जो माँगता हूँ वही लूँगा। सन्त लोग चरण पकड़कर विनयपूर्वक भी दूसरे का कल्याण चाहते हैं। सुनहु पवनसुत रहनि हमारी। जिमि दसनन्हि महुँ जीभ बिचारी का यह बड़ा सुन्दर उदाहरण है। जीभ की भाँति विभीषणजी दाँत रूप रावण के हित में रत हैं। दाँत के अन्तर में तिनका आ पड़ा। सीता शीतनिशा की भाँति आगयी। विभीषण वहाँ से सीता

को बिना हटाये न मानेंगे। दशानन दशन रूप है। वे बल पड़ते ही चाभ जाने में आगापीछा न करेगा। फिर भी उसका कल्याण ही करेंगे।

बुध पुरान श्रुति संमत बानी। कही बिभीषन नीति बखानी ॥
सुनत दसानन उठा रिसाई। खल तोहि निकट मृत्यु अब आई ॥१॥

अर्थ : पण्डित पुराण और वेदसम्मत वाणी से बिभीषण ने नीति का प्रतिपादन किया। किन्तु सुनते ही दशानन खिझला उठा बोला खल तेरी मौत निकट आगयी।

व्याख्या : विभीषण ने स्वयं कहा है। नाथ पुराण निगम अस कहहीं और उसका कहा हुआ स्वयं पुलस्त्य ऋषि के कथनानुकूल था। यथा : रिषि पुलस्त्य निज सिष्य सन कहि पठई यह बात। अतः विभीषणजी की उक्ति बुध पुराण श्रुति सम्मत थी। इसमें सन्देह नहीं है। श्रुति ही परम प्रमाण है उसके अर्थ का उपबृंहण करनेवाले पुराण हैं। फिर भी शिष्टों द्वारा परिगृहीत होने की आवश्यकता रहती है। श्रुति पुराण सम्मत भी यदि शिष्टों द्वारा परिगृहीत न हो तो आचरण योग्य नहीं रहता। इसलिए कवि कहते हैं कि विभीषणजी की वाणी तो सर्वथा उपादेय थी। उसमें नीति का प्रतिपादन था। धर्मार्थ काम का भी अविरोध था। अथवा सुमति कुमति सबके उर बसहीं। नाथ पुरान निगम अस कहहीं। जहाँ सुमति तहँ संपति नाना। जहाँ कुमति तहँ बिपति निदाना इत्यादि वाणी वेद पुराण सम्मत थी। बार बार पद लागउँ बिनय करउँ दससीस परिहरि मान मोह मद भजहु कोसलाधीस। पुनि पुलस्ति निज सिष्य सन कहि पठई यह बात इत्यादि उक्ति बुधसम्मत थी और जो आपन चाहै कल्याना। सुजसु सुमति सुभगति सुख नाना। सो परनारि लिलार गोसाईं। तजउ चउथि के चंद की नाईं इत्यादि उक्तियों में नीति का प्रतिपादन था। ऐसी वाणी का राजसभा में आदर होना चाहिए था।

परन्तु रावण सीताजी का देना कान से सुनना नहीं चाहता। अतः सुनते ही खिझला उठा। दूरि न करौं इहाँ है कोऊ कहने पर भी किसी को उठते न देखकर स्वयं उठ पड़ा। क्रोध को रोक न सका। रावण को शिक्षा देना अपनी मृत्यु का आह्वान करना है। उसके दरबार में शिक्षा देनेवाले के लिए मृत्युदण्ड है। यथा : मृत्यु निकट आई खल तोही। लागेसि अधम सिखावन मोही। नियम भी यही है कि मूर्ख को उपदेश से क्रोध होता है शान्ति नहीं होती। उपदेशो हि मूर्खाणां प्रकोपाय न शान्तये। पुलस्त्यजी का सँदेसा कहा। तभी रावण ने निकाल देने की आज्ञा दी। फिर भी विभीषणजी नहीं माने। नीति का प्रतिपादन करने लगे। तात चरन गहि माँगौं राखहु मोर दुलार। सीता देहु राम कहँ अहित न होइ तुम्हार। तब रावण मारे क्रोध के सिंहासन छोड़कर विभीषणजी को मारने उठा। भाव यह कि मेरी पहिली आज्ञा न मानकर अब तू हठ करता है। इसलिए अब मृत्यु ही तेरे निकट आगयी। यह विपरीत कुमति का उदाहरण है।

जियसि सदा सठ मोर जियावा । रिपुकर पच्छ मूढ़ तोहि भावा ॥
कहसि न खल अस को जगमाही । भुजबल जाहि [1]जिता मैं नाही ॥२॥

अर्थ : रे शठ ! सदा तू मेरा जिलाया हुआ जीता है । रे मूढ़ ! पक्ष तुझे शत्रु का ही अच्छा लगता है । अरे दुष्ट ! बता न जगत् में ऐसा कौन है जिसे मैंने अपनी भुजाओं के बल से न जीता हो ।

व्याख्या : जिसका खावे उसका गावे यही संसार की नीति है । खिलाया जिलाया मैंने । शादी ब्याह मैंने किया 'झोपड़ी में से निकालकर सोने की लङ्का में बिठा दिया । शत्रु से इसे कोई भी लाभ नहीं । उसका पक्ष इसे पसन्द क्यों है ?' यह मूढ़ है शत्रु की ओर से पैर पड़ता है । दुलार रखने को कहता है । इसे शत्रु का पक्ष कितना प्रिय है । यह विचित्र बात है । यह भी विपरीत कुमति का उदाहरण है । रावण का जो कुछ विजय विभव है वह विभीषण के कारण है । यथा : रावन जबहि विभीषण त्यागा । भयउ विभव बिनु तबहि अभागा । और रावण समझ रहा है कि मेरे विजय और विभव का विभोषण उपभोग कर रहा है ।

रह गयी यह बात कि विभीषण रावण के अहित न होने के लिए इतना हठ कर रहे हैं । इसपर रावण कहते हैं कि यह इसकी साधुता नहीं है खलता है । मेरे अहित का तो कोई प्रश्न ही नहीं है । यह मेरे शत्रु की भलाई के लिए मेरे हिताहित का प्रश्न उठा रहा है । मेरा अहित तो तभी सम्भव है जब शत्रु मुझसे अधिक बलवान् हो । अतः पूछते हैं कि तू नाम बतला किसको मैंने भुजबल से नहीं जीता । यथा : भुजबल विश्ववस्य करि राखेसि कोउ न स्वतंत्र । भुजबल जितेउ काल जम साईं : भाव यह है कि विश्व के जय करने में मैंने तपोबल, वरदान बल या अस्त्रबल से तो काम ही नहीं लिया । केवल भुजबल से जगत् जीत लिया । मेरे अहित का कौन प्रश्न है ।

मम पुर बसि तपसिन्ह पर प्रीती । सठ मिलु जाइ तिन्हहि कहु नीती ॥
अस कहि कीन्हेसि चरन प्रहारा । [2]अनुज गहे पद बारहिं बारा ॥३॥

अर्थ : मेरे पुर में रहकर तपस्वियों से प्रीति करता है । रे शठ ! तू जाकर उन्हीं से मिल और उन्हीं को नीति बतला ऐसा कहकर रावण ने लात मारी । विभीषण ने बार बार उनका चरण पकड़ा ।

व्याख्या : रावण कहते हैं कि तू मेरे पुर में बसता है और मेरा तपस्वियों से वैर है । यथा : निसिचर निकर सकल मुनि खाये : और तू तपस्वियों से प्रेम करता है । तू दगा करेगा । तेरी नीति से मैं हैरान हूं । लङ्का जली तेरी नीति से ।

---

१. दीर्घह्रस्वौ मिथो वृत्तौ : दीर्घ का ह्रस्व और ह्रस्व का दीर्घ होता है : इस प्राकृत सूत्र से जीता शब्द का जिता रूप हुआ ।

२. यहाँ विकस्वरालंकार है ।

तेरा मेल उस तपस्वी से ही मिलता है। वह भी नीति के पीछे पागल है। यथा : नीति विरोध सोहाइ न मोही : नीति के पीछे राजपाट छोड़े बैठा है। वही तेरी नीति सुनेगा और अपना अनभल करेगा। तू मेरे पुर में रहने लायक नहीं है। तू लङ्का छोड़ दे : भलाई करनेवाले को लात मारना खल का असाधारण लक्षण है : ऐसा कहकर चरण प्रहार किया अर्थात् कसकर लात हृदय में शत्रु की भाँति मारा। यथा : तुलसी हुमुकि हिये हन्यो लात। भले तात चल्यौ सुरतरु ताकि तजि घोर घामै : गी.।

पहिले दरबार से निकालने की आज्ञा दी। अब लात मारकर लङ्का से बाहर निकाल रहा है। यह शत्रु के हित के लिए मेरा चरण पकड़ रहा है। ऐसा समझकर रावण ने चरण प्रहार किया। भरी सभा में भाई को चरण प्रहार करना अत्यन्त अप्रतिष्ठा के लिए भी है। जिसमें यदि जीता बचे तो भी लङ्का छोड़कर चला जाय। रावण ने देखा कि विभीषण की इतनी प्रतिष्ठा यहाँ है कि मेरी आज्ञा पर भी कोई इसे सभा के बाहर निकालने का साहस नहीं करता। यह मानधन है इसका मानमर्दन भरी सभा में करना चाहिए। तभी यह लङ्का छोड़ेगा। इसके लङ्का में रहने से शत्रुपक्ष की वृद्धि होगी। विभीषणजी बार बार चरण ग्रहण कर रहे हैं। जिसमें अब भी इसके हृदय में दया आवे। अथवा अभिमानी को अवसर देते हैं कि वह इससे लाभ उठावे और कहे कि विभीषण से मैं लाचार हो गया। ले जाओ उस तपस्वी को उसकी स्त्री दे आओ। अथवा यह भाव है कि मुझे और भी दण्ड दे लो। पर सीता को लौटा दो अथवा मैं चरण नहीं छोड़ना चाहता। क्योंकि छोड़ाते हो। यह रघुनाथजी की बड़ी भारी कृपा है कि रावण के चरण का प्रहार हृदय पर होने पर भी विभीषण को चोट न आयी। जिसके पादविक्षेप से पृथ्वी डोलती थी उसके हृदय में लात मारने पर विभीषणजी को मूर्च्छा तक नहीं हुई।

उमा संत कइ इहै बड़ाई। मंद करत जो करै भलाई॥
तुम्ह पितु सरिस भलेहिं मोहि मारा। रामु भजे हित होइ तुम्हारा॥४॥

अर्थ : हे उमा ! सन्त की यही बड़ाई है जो बुराई करने पर भी भलाई ही करते हैं। तुम पिता के समान हो। मुझे मारा सो अच्छा किया। परन्तु नाथ ! राम के भजने में ही तुम्हारा भला है।

व्याख्या : शिवजी उमा से कहते हैं कि खल लोग सन्त के वेष वचन आदि सभी बातों की नकल कर लेते हैं। यथा : लखि सुवेष जग वंचक जेऊ। वेष प्रताप पूजि अहि तेऊ। पर सन्त की जो विशेष बड़ाई है उसकी नकल खल क्या करेंगे। कोई भी नहीं कर सकता। जो अपनी बुराई करता हो उसकी भी भलाई करना यह सन्त का ही काम है। दूसरे का किया यह नहीं हो सकता। भला करनेवाले के साथ भलाई तो सब करते हैं। पर बुरा करनेवाले के साथ भलाई करना सन्तों से ही बन सकता है : क्रुद्धयन्तं न प्रतिक्रुध्येत आक्रुष्टः कुशलं वदेत् :

सो रावण के क्रोध करने पर भी विभीषणजी ने क्रोध नहीं किया। लात खाने पर भी कल्याण ही बोलते हैं।

रावण ने कहा जिएसि सदा सठ मोर जिआवा उसके उत्तर में कहते हैं: तुम पितु सरिस भलेहि मोहि मारा। जेठे भाई हो, बाप के समान हो, मुझे मारा सो अच्छा ही किया। परन्तु हित करने में मैं भी नहीं रुक सकता। तुम्हारा हित राम भजन में है। सीता के न देने में नहीं है। अपनी बात में मुझे दृढ़ता है। यह विभीषणजी का सत्याग्रह है।

सचिव संग लै नभ पथ गएऊ। सबहि सुनाइ कहत अस भएऊ ॥५॥

दो. रामु सत्यसंकल्प प्रभु, सभा कालबस तोरि।
मैं रघुबीर सरन अब, जाउँ देहु जनि खोरि ॥४१॥

अर्थ : बिभीषण अपने मन्त्रियों को साथ लेकर आकाश मार्ग में गये और सबको सुना करके ऐसा कहने लगे कि रामजी सत्यसंकल्प एवं प्रभु हैं। तुम्हारी सभा काल के वश है। मैं अब रघुवीर के शरण में जाता हूँ, मुझे दोष न देना।

व्याख्या : जब देख लिया कि इतने पर भी रावण नहीं सुनते, कोई सभा में उनका साथी नहीं है। न कोई सहारा देनेवाला है। मन्त्रणा की सभा में इतना बड़ा अन्याय हुआ। कोई बोलनेवाला नहीं। अब लंका में मेरा निर्वाह नहीं हो सकता। क्योंकि रावण ने : वधो वा त्यागो वा वाली नीति को अपना कर मेरा परित्याग कर दिया। अतः विभीषणजी ने केवल अपने मन्त्रियों को अपने साथ लिया और सारे कुटुम्ब को छोड़कर आकाश मार्ग में चले गये। करत राज लंका सठ त्यागी। सो सब राज्याङ्गों का परित्याग किया। केवल मन्त्रियों को नहीं छोड़ा। सबको सुनाकर कहते हैं—

सठ मिलु जाइ तिनहि कहु नीती का उत्तर विभीषणजी देते हैं कि रामजी सत्यसंकल्प हैं। उन्होंने निसिचरहीन महि करने का संकल्प कर लिया है। अतः तुम लोग अपने वश में नहीं हो। कालवश हो गये हो। यथा : हित मत तोहि न लागत कैसे। काल विवस कहँ भेषज जैसे : मैं डंके की चोट के साथ रामजी के शरण में जाता हूँ। चोरी से नहीं। भाव यह है कि अब भी मेरे साथ चले चलो। नहीं चलते तो मेरा दोष नहीं अथवा मुझे लौटाना चाहते हो तो लौटा लो। यदि सभी की इच्छा है कि मैं चला जाऊँ तो मैं जा रहा हूँ। जब शरण में चला जाऊँगा तो सर्वात्मना उनका हो जाऊँगा। फिर मेरा दोष न देना।

अस कहि चला बिभीषनु जबहीं। आयूहीन भए सब तबहीं ॥
साधु अवग्या तुरत भवानी। कर कल्यान अखिल कै हानी ॥१॥

अर्थ : ऐसा कहकर विभीषणजी ज्यों ही चले त्यों ही सब राक्षस आयुहीन हो गये। हे भवानी! साधु का अपमान तुरन्त ही सम्पूर्ण कल्याण को हानि कर देता है।

व्याख्या : सन्त ने : सभा कालवस तोरि कह दिया। अतः तत्काल सब आयुहीन हो गये। दूसरी बात यह कि बिभीषण ही उन सबकी आयुरूप रहे। यथा : जीव भवदंघ्रिसेवक विभीषन बसत मध्य दुष्टाटवीग्रसित चिंता। एक साधु पुरुष के रहने से सम्पूर्ण कुटुम्ब तथा नगर की रक्षा रहती है। लङ्का में केवल विभीषन ही सन्त थे। नहीं तो इहाँ कहाँ सज्जन कर बासा। केवल इन्हीं के लिए कवि कहते हैं कि हृदय हरख कपि सज्जन चीन्हा। विभीषणजी ने सबको सुनाकर कहा और सबके सामने चले। किसी ने उन्हें लौटाने के लिए रावण से विनय तक न की। सबको विभीषणजी का आचरण अप्रिय था। सुनहु पवन सुत रहनि हमारी। जिमि दसनन्हि महु जीभ बिचारी। साधु के अपमान से जिस प्रकार हित की हानि होती है उसका उदाहरण लङ्कादाह प्रकरण में दे चुके हैं। यथा : साधु अवज्ञा कर फल ऐसा। जरै नगर अनाथ कर जैसा। हनुमान्‌जी का भी अनादर लात मारकर लङ्का में किया गया था। यथा : मारहिं चरन करहिं बहु हाँसी। यहाँ विभीषण को लात मारा गया। उस बार नगर जरा इस बार सब आयुहीन हुए। दूसरे पाप देर में फैलते हैं। साधु के अपमान का तुरन्त फल होता है। जहाँ सबके देखते हुए अधर्म से धर्म और झूठ से सत्य मारा जाता है उस सभा के सभासद् मारे पड़ते हैं। यथा : यत्र धर्मो ह्यधर्मेण सत्यं यत्रानृतेन च। हन्यते प्रेक्षमाणानां हतास्तत्र सभासदः।

रावन जबहि बिभीषनु त्यागा। भयउ बिभव बिनु तबहिं अभागा ॥

विभीषण मिलन विधि प्रसङ्ग

चलेउ हरषि रघुनायक पाहीं। करत मनोरथ बहु मन माहीं ॥२॥

अर्थ : रावण ने जब विभीषण को त्यागा तभी वह अभागा वैभव से हीन हो गया। विभीषणजी हर्षित होकर मन में अनेकों मनोरथ करते हुए श्रीरघुनाथजी के पास चले। सबलायक के समीप जा रहे हैं।

व्याख्या : वेद विरुद्ध महीसुर साधु ससोक कियो सुरलोक उजारो। और कहा कहौं तीय हरी तबहूँ करुनाकर कोप न धारो। सेवक छोह ते छाड़ी छमा तुलसी लख्यो राम सुभाउ तिहारो। तौ लौं न दापु दल्यो दसकंधर जौ लौं बिभीषन लात न मारो। कवि०। रावण ने विभीषण को त्यागा। विभीषण ने नहीं त्यागा। रावण का धर्मरथ टूट गया। उसमें से दो पहिया और एक घोड़ा रह गया। यथा : सौरज धीरज जेहि रथ चाका। सत्य सील दृढ़ ध्वजा पताका। बल विवेक दम परहित घोरे। बड़े भाग से सतसङ्ग मिलता है। सो उस अभागे ने लात मारकर सन्त को बाहर निकाल दिया। अतः ऐश्वर्यहीन और अभागा हो गया।

विभीषणजी कहते थे। तात कबहुँ मोहि जानि अनाथा। करिहहि कृपा भानुकुल नाथा। सो भानुकुल नाथ ने कृपा कर दी। भइ कूबर की लात विधाता राखी बात बनाइके गीतावली :। सरस्वती सहाय हो गयीं। रावण ने स्वयं निकाल बाहर किया। इससे विभीषणजी को हर्ष है। सरकार के दर्शन का मनोरथ था।

मनोरथ करते-करते रास्ता कट जाता है। यथा : लागि नहिं विधि करत मनोरथ जात बहु बार। बहु मनोरथ का भाव यह कि यथा : महाराज राम पहुँ जाऊँगो। सुख स्वारथ परिहरि करिहौं सोइ ज्यों साहिबहिं सोहाऊँगो। सरनागत सुनि वेग बोलिहौं निपटहिं सकुचाऊँगो। इत्यादि। गीतावली ५.३०।

देखिहौं जाइ चरन जलजाता। अरुन मृदुल सेवक सुखदाता॥
जे पद परसि तरी रिषिनारी। दंडक कानन पावनकारी॥३॥

अर्थ : मैं जाकर कोमल और लाल वर्ण के सुन्दर चरण कमलों का दर्शन करूँगा। जो सेवकों के सुख देनेवाले हैं जिन चरणों का स्पर्श करके ऋषिपत्नी अहल्या तर गयीं और जो दण्डक वन को पवित्र करनेवाले हैं।

व्याख्या : जिस चरण का अनुराग तपस्या करके माँगा था। यथा : तेहि माँग्यौ भगवंत पद कमल अमल अनुराग। आज उस चरण कमल का दर्शन होगा। अरुण होने से दर्शनीय मृदुल होने से स्पर्शनीय है। इसलिए सुखदाता हैं। जा को चरन बिरंचि सेइ सिधि पाइ संकरहूँ। सुक सनकादि मुकुत बिचरत तेउ भजन करत अजहूँ।

ऋषिनारी अहल्या पाषाणरूप होने से देख नहीं सकती थी। अतः स्पर्श से पार हो गयी। यथा : परसि जासु पद पंकज धूरी। तरी अहल्या कृत अघ भूरी। परसि चरन रज अचर सुखारी। भये परम गति के अधिकारी। इससे स्पर्श कहा। दण्डकारण्य भी इसी प्रकार ब्रह्मशाप से विनिर्मुक्त हुआ। यथा : दंडक वन पुनीत प्रभु करहू। उग्र साप मुनिवर कर हरहू। सुखदातृत्व का उदाहरण देते हैं कि न ऋषिनारी सेविका थी न दण्डकारण्य सेवक था। पर दोनों ब्रह्मशाप से केवल स्पर्श द्वारा मुक्त हुए। मैं भी मृदुल चरणों के स्पर्श द्वारा विप्रशाप निसाचर योनि से मुक्त होऊँगा। यथा : उपजे जदपि पुलस्त्यकुल पावन अमल अनूप। तदपि महीसुर साप बस भये सकल अघरूप।

जे पद जनकसुता उर लाए। कपट कुरंग संग धर धाए॥
हर उर सर सरोज पद जेई। अहोभाग्य मैं देखिहौं तेई॥४॥

अर्थ : जिन चरणों को जानकीजी ने हृदय में धारण कर रक्खा है जो कपट-मृग को पकड़ने के लिए दौड़े थे और जो चरणकमल साक्षात् शिवजी के हृदयरूपी सरोवर में विराजते हैं। मेरा अहोभाग्य है कि उन्हीं को आज मैं देखूँगा।

व्याख्या : मायामृगं दयितयेप्सितमन्वधावत् वन्दे महापुरुष ते चरणारविन्दम्। जेहि विधि कपट कुरंग संग धाइ चले श्रीराम। सोइ छबि सीता राखि उर रटति रहति हरिनाम। अरुण मृदुल से रूप पद परसि से स्पर्श जनकसुता उर लाये से रस और पदसरोज से गन्ध कहा। शब्द आगे कहेंगे।

इसमें से किसी को चरण प्रत्यक्ष नहीं है। चरण की सरोज से उपमा दी है। अब वह सर भी बतलाते हैं जहाँ कि वे खिले हुए हैं। वह सर हरका हृदय है। वे चरण मेरे नयन के विषय होंगे। अतः विभीषणजी अपने भाग्य की प्रशंसा करते हैं।

दो. जिन पायन्ह के पादुकन्हि, भरतु रहे मन लाइ।
ते पद आज बिलोकिहौं, इन नयनन्हि अब जाइ ॥४२॥

अर्थ : जिन चरण के पादुकाओं में भरतजी ने अपना मन लगा रक्खा है आज मैं उन्हीं चरणों को जाकर इन नेत्रों से देखूँगा।

व्याख्या : चरण बोलते नहीं पादुका बोलते हैं। यथा : माँगि माँगि आयसु करत राज काज बहु भाँति। इससे शब्द कहा। इन नयनन्हि कहने का भाव यह कि जो दिनरात राक्षस ही देखते रहे जिन चरणों का दर्शन आज भरतजी को प्राप्त नहीं हैं वे पादुका पर ही सन्तोष किये बैठे हैं। उन चरणों का दर्शन मेरी इन आँखों द्वारा होगा। अतः मेरे अहोभाग्य में सन्देह नहीं।

एहि बिधि करत सप्रेम बिचारा। आयउ सपदि सिंधु के पारा ॥
कपिन्ह बिभीषनु आवत देखा। जाना कोउ रिपुदूत बिसेषा ॥१॥

अर्थ : इस प्रकार प्रेम सहित विचार करते हुए शीघ्र ही समुद्र के पार आ गये। वानरों ने विभीषण को आते हुए देखा। समझा कि शत्रु का कोई विशेष दूत है।

व्याख्या : सब विचार नहीं लिखा। प्रादेशमात्र दिखलाकर कहते हैं कि इस प्रकार विचार करते करते समुद्र के इस पार आ गये। इस पार कहने का भाव यह है कि जिस तट पर वानरी सेना के साथ कवि की उपस्थिति है। विचार समाप्त न न हुआ। समुद्र समाप्त हो गया। सप्रेम विचार और मनोरथ एक ही बात है। करत मनोरथ बहु मन माही से उपक्रम करके एहि विधि करत सप्रेम विचारा से प्रकरण का उपसंहार दिखलाते हैं। मनोरथ करने में रास्ता कट गया। समय का भान ही न हुआ। इसलिए कहते हैं कि तुरन्त इस पार आ गये। अथवा जासु नाम सुमिरत इकबारा। उतरत नर भवसिन्धु अपारा। उसी के दर्शन के मनोरथ में इस सिन्धु का पार पा जाना क्या कठिन है? अतः तुरन्त आना लिखा।

विभीषणजी ने कपिसेना न देखी। अपने धुन में चले आते रहे। वानरों ने विभीषणजी को देखा आकृति से : वेषभूषा से। मन्त्रियों के साथ होने से जाना कि यह कोई रावण का भेजा हुआ विशेष दूत है। उस पार से आने से निर्भीकता से तथा वेष के अपरिवर्तन से दूत होने का अनुमान हुआ।

ताहि राखि कपीस पहिं आए। समाचार सब ताहि सुनाए ॥
कह सुग्रीव सुनहु रघुराई। आवा मिलन दसानन भाई ॥२॥

अर्थ : उसे ठहरा करके सुग्रीव के पास आये और उनको सब समाचार कह सुनाया। सुग्रीवजी ने कहा हे रघुनाथजी ! सुनिये रावण का भाई मिलने आया है।

व्याख्या : ताहि राखि से विभीषणजी का अपना परिचय देना और प्रयोजन कहना ध्वनित है। सेना के नियमानुसार उन्हें पड़ाव से बाहर ही ठहरा दिया।

बिना सुग्रीवजी की आज्ञा के कोई पड़ाव के भीतर प्रवेश नहीं कर सकता। चारों ओर से बन्दरों का पहरा पड़ रहा है। शत्रु के देश के सन्निकट आ जाने से बड़ी सावधानी की जा रही है। अतः सुग्रीवजी के पास आये और विभीषणजी का समाचार जो उनसे मालूम हुआ था सुग्रीवजी से कह सुनाया। रामजी भी वहीं हैं पर उनसे नहीं कहते। कायदे से काम हो रहा है। जिसे जो कहना हो सुग्रीवजी से कहे। सुग्रीवजी को यदि कुछ पूछना है तो सरकार से पूछेंगे। अथवा वे केवल किष्किन्धा की भाषा बोल सकते हैं। इसलिए सुग्रीवजी से कहा।

नाम रावण का ही प्रख्यात है। अतः विभीषणजी ने उसी के नाम से अपना परिचय दिया था। तदनुसार ही सुग्रीवजी कहते हैं अथवा बन्दरों के वचन का अनुवाद संस्कृत अथवा अवधी भाषा में करते हैं। उनके कहने का भाव यह कि दशानन स्वयं नहीं आया। अपने भाई को भेजा है। दशानन है। पहिले भी यह ऐसा ही कर चुका है। स्वयं यती बना हुआ कहीं छिपा बैठा था और मारीच को मृग बनाकर भेज दिया। उसी का भाई है। मिलने का स्वाँग रचकर आया है। उसने दगा किया। यह भी वैसा ही करेगा। यही ध्वनितार्थ है।

कह प्रभु सखा बूझिए काहा। कहैं कपीस सुनहु नरनाहा ॥
जानि न जाइ निसाचर माया। कामरूप केहि कारन आया ॥३॥

अर्थ : प्रभु ने कहा : हे सखा ! इसमें पूछने की कौन सी बात है ? सुग्रीव ने कहा हे नरनाथ ! सुनिये राक्षस की माया जानी नहीं जाती। यह इच्छानुसार रूप बदलनेवाला न जाने किस कारण से आया है।

व्याख्या : प्रभु ने कहा कि तुम सखा हो। तुम्हें मिलने देने का अधिकार है और यहाँ अवारित द्वार है। किसी को मिलने में रोक नहीं है। इसमें विचार की कौन सी बात है ? आना चाहता है आने दो। यहाँ कपीश कहने का भाव यह है कि कपियों के कल्याण के विषय में सशङ्क है। अतः नरनाह सम्बोधन देकर बोलते हैं। भाव यह कि आप नरनाह हैं। मनुष्यों के साथ जैसा बरताव करना चाहिए उसे भलीभाँति जानते हैं। पर यह राक्षस है। मायावी है। यहाँ आकर न जाने कौन सी माया रचे। अतः मैं इस विचार में पड़ा हूँ कि इसे आपके सामने आने दिया जाय या नहीं।

देवमाया या नरमाया चाहे जानी भी जाय पर निशाचरों की माया जानी नहीं जाती। यथा : करहि उपद्रव असुर निकाया। नाना रूप धरहिं करि माया। कामरूप जानहिं बहु माया। सपनेहुँ जिनके धरम न दाया। ये कामरूप हैं। जैसा चाहते हैं अपना रूप बना लेते हैं। मेरी सेना में आकर न जाने कौन रूप बनाकर किससे क्या कहेगा। कहाँ क्या करेगा। इस बात का कौन ठिकाना और उसका परिणाम भयङ्कर हो सकता है। लङ्का में क्या घाटा है जो मिलने आया है। जो यह कहेगा वह बात तो होगी नहीं। हम लोग सब धोखा खा जायँगे। ये स्वयं सरकार को धोखा देकर जानकी अपहरण कर ले गये। इनका विश्वास क्या ?

भेद हमार लेन सठ आवा। राखिअ बाँधि मोहि अस भावा ॥
सखा नीति तुम नीकि बिचारी। मम पन सरनागत भयहारी ॥४॥
सुनि प्रभु बचन हरख हनुमाना। सरनागत बच्छल भगवाना ॥५॥

अर्थ : यह शठ हमारा भेद लेने आया है। इसलिए मुझे तो यही अच्छा लगता है कि इसे बाँधकर रक्खा जाय। रामजी ने कहा कि सखा ! तुमने नीति तो अच्छी विचारी। परन्तु शरणागत के भय का हरण करना मेरा प्रण है। प्रभु के वचन सुनकर हनुमान्‌जी हर्षित हुए कि भगवान् शरणागतवत्सल हैं।

व्याख्या : शठ है यहाँ आकर मीठी मीठी बातें करेगा और हमारा भेद लेगा। छिद्र देखकर कोई भारी उपद्रव कर बैठेगा। मेरी राय है कि इसे बाँधकर रक्खा जाय। शरणागत अवध्य हैं। मार सकते तो नहीं। बाँध रखना ही ठीक है। अथवा रावण ने हम लोगों को धोखा देने के लिए भाई को मिलने के व्याज से भेजा है तो यदि हम इसे बाँध रक्खेंगे तो उसकी चाल उलटी पड़ जायगी। उसके भाई को जान हमारे हाथ में आ जायगी। इससे हम लोग बहुत लाभ उठा सकेंगे। रावण के यहाँ स्वयं जानकीजी बन्दी हैं तो हमारे यहाँ कम से कम उसका भाई तो बन्दी रहे।

सरकार ने सुग्रीव से कहा कि तुम्हारी नीति बहुत अच्छी है। इसमें कोई दोष नहीं। संशयावस्था में बन्धन ही उचित है और लाभ की भी बहुत कुछ सम्भावना है। पर प्रण के सामने नीति कुछ नहीं। मेरा प्रण दूसरे प्रकार का है। जो शरण में आवे उसके भय को दूर करने का मेरा प्रण है। उसे अन्यथा कैसे करें ? प्रण पालन ही प्रधान धर्म है। उसके सामने अन्य धर्म अर्थ और काम की कोई गणना नहीं है।

यहाँ हनुमान्‌जी ही विभीषण से परिचित हैं। उसे मिलने के लिए प्रोत्साहन भी दे चुके हैं। यथा : अस मैं अधम सखा सुनु मोहूँ पर रघुवीर। कीन्हीं कृपा सुमिरि गुन भरे बिलोचन नीर। सो हनुमान्‌जी सुग्रीव का वचन सुनकर के असमञ्जस में पड़ गये थे। इनसे कुछ पूछा भी न गया कि हनुमान्‌जी ! तुम लङ्का हो आये हो। इसके बारे में कुछ जानते हो कि नहीं। केवल रामजी और सुग्रीवजी में बात हो रही है। अतः सरकार की बातें सुनकर हनुमान्‌जी हर्षित हो उठे। अथवा हानि लाभ का कोई विचार न करके शरणागत पर प्रेम देखकर हर्षित हुए। हनुमान्‌जी ने घोषणा की : वात्सल्य भाव से श्रीराम अपने शरणागत के दोषों को साफ कर देंगे। यथा : आश्रितदोषे भोक्तृत्वं वात्सल्यमिति केचन।

मालूम होता है कि विभीषण मिलन की बात बन्दर लोग छेड़ छेड़कर पूछने पर भी हनुमान्‌जी से नहीं निकाल सके। अतः उन्होंने कहा भी नहीं। बन्दरों ने हनुमान्‌जी यह नहीं पूछा कि लङ्का में जाकर किसी को अपनी ओर फोड़ने का प्रयत्न किया कि नहीं। क्योंकि वे इसे असम्भव समझते थे। इधर सब असम्भवों

को सम्भव कर देनेवाले हनुमान्‌जी हैं। ये विभीषण को सिद्ध कर आये थे। अविकत्थन है। अतः बिना पूछे उस विषय पर कुछ नहीं कहा अथवा मानापमान न कहना चाहिए। ऐसी नीति है। अतः लङ्किनी द्वारा अपना अपमान और विभीषण द्वारा मान की चर्चा किसी से न की।

दो. सरनागत कहुँ जे तजहि, निज अनहित अनुमानि।
ते नर पाँवर पापमय, तिन्हहि बिलोकत हानि ॥४३॥

अर्थ : जो अपने अकल्याण का अनुमान करके शरण में आये हुए का त्याग करते हैं। वे नर पामर हैं। पापमय हैं। उनके दर्शन में अकल्याण है।

व्याख्या : वेदविहित कर्म ही धर्म है। उसका अनुमान से बाध नहीं होता। अतः अनहित के अनुमान से शरणागत का त्याग उचित नहीं है। जो ऐसा करता है वह अनार्य है। परमार्थ है। महापातकी के संसर्ग से दोष होता है और इसके दर्शन में दोष है। अतः शरणागत का किसी अवस्था में भी परित्याग नहीं करना चाहिए। यह असाधारण धर्म है और रामजी कहते हैं कि मेरा तो यह प्रण है। जिसके त्याग में इतना बड़ा प्रायश्चित है उसका बन्ध कैसे किया जा सकता है। वह केवल मिलने नहीं आया है। शरणागत है। रावण से विमुख होकर केवल चार अनुचरों के साथ। बिना किसी छिपाव के तुम्हारी सेना में चला आया है। इससे उसका शरण में आना स्पष्ट है।

कोटि बिप्र बध लागहि जाहू। आवें सरन तजउँ नहि ताहू ॥
सनमुख होइ जीव मोहि जबहीं। जन्म कोटि अघ नासहिं तबहीं ॥१॥

अर्थ : जिसे करोड़ हत्या लगी हो। शरण में आने पर मैं उसे भी नहीं त्यागता। ज्योंही मेरे सन्मुख होता है त्योंही उसके करोड़ों जन्म के पाप नष्ट हो जाते हैं।

व्याख्या : यदि कहा जाय कि खल मनुजाद द्विजामिष भोगी हैं। यह तो राजा का भाई है। न जाने कितने ब्राह्मणों को खाया होगा। अतः सर्वथा त्याज्य हैं। ऐसों का संसर्ग भी महापाप है। यथा : तत्संसर्गी तु पञ्चमः। इस पर कहते हैं कि एक नहीं करोड़ ब्रह्महत्या लगी हो मैं ऐसे को शरण आने पर नहीं त्यागता अर्थात् अपना ही लेता हूँ।

मैं तो न किसी के सम्मुख हूँ न विमुख हूँ। सम्मुख होना न होना जीव का काम है। ज्यों ही संसार से उसका मन लौटकर मेरी ओर आता है त्योंही उसके करोड़ जन्म के पाप : आप से आप नष्ट हो जाते हैं। यह शरण सम्मुख होने का माहात्म्य है। शरण आने पर उसे पाप कहाँ। सूर्य के सम्मुख होते ही अन्धकार का नाश हो जाता है। इसमें सूर्य को कुछ करना नहीं पड़ता।

पापवंत कर सहज सुभाऊ। भजनु मोर तेहि भाव न काऊ ॥
जौ पै दुष्ट हृदे सोइ होई। मोरें सनमुख आव कि सोई ॥२॥

अर्थ : पापी का सहज स्वभाव होता है कि मेरा भजन उसे कभी नहीं सोहाता। यदि उसका हृदय दुष्ट होता तो क्या वह मेरे सन्मुख आता ?

व्याख्या : भगवद्गीता में भगवान् ने कहा है कि पापी अधम नर मेरी शरण में नहीं आते। पापी को भजन अच्छा ही नहीं लगता। उसके सामने भजन होने लगे तो वह वहाँ से उठकर चला जाता है। उसकी पापीयसी वृत्ति भजन की ओर अग्रसर नहीं हो सकती। तुलसी राम भजन कर बाधक पाप। पापीयसी वृत्ति अपनी विरोधिनी वृत्ति को उत्पन्न नहीं होने देती। मेरी ओर से पापियों के लिए रोक नहीं है। पर पापियों को ही मेरे सम्मुख होना पसन्द नहीं है। उसे वे सामयिक सभ्यता के प्रतिकूल ठहराते हैं।

भेद हमार लेन सठ आवा का उत्तर देते हैं। विभीषण दुष्ट हृदय नहीं है। यदि दुष्ट हृदय होता तो मेरे सामने ही न आता। दुष्टहृदय को मेरी प्राप्ति ही नहीं होती। हृदय ही एक स्थान है। जहाँ से भगवत्साक्षात्कार होता है उसके सदोष होने से भगवत्साक्षात्कार हो नहीं सकता और उसके निर्मल होने पर भगवत्साक्षात्कार न क्यों होगा ? अवश्य होगा।

निर्मल मन जन सो मोहि पावा। मोहि कपट छल छिद्र न भावा ॥
भेद लेन पठवा दससीसा। तबहुँ न कछु भय हानि कपीसा ॥३॥

अर्थ : जो मनुष्य निर्मल मन का होता है वही मुझे पाता है। मुझे कपट छलछिद्र नहीं सुहाते। यदि दशशीश ने भेद लेने के लिए भेजा हो हे कपीश ! तो भी कोई भय या हानि नहीं है।

व्याख्या : मन का मल कपट छल छिद्र है। परदा देने या बात छिपाने को कपट कहते हैं। यथा : कीन्ह्यो कपट लाग भल मोहो। धोखा देने को छल कहते हैं। यथा : होहु कपट मृग तुम छलकारी। पोल या दोष को छिद्र कहते हैं। यथा : सहि दुख परछिद्र दुरावा। इन तीनों को मन का मल कहते हैं। इन्हीं के कारण मन मलिन हो जाता है। जहाँ कपट छल छिद्र नहीं है वही मन निर्मल है। निर्मल हृदय में मेरे प्रतिबिम्ब को कोई रोक नहीं सकता। मलिन हृदय में वह पड़ सकता नहीं। इसीलिए साक्षात्कार नहीं होता।

भेद हमार लेन सठ आवा का उत्तर। यदि मान भी लिया जाय कि हमारे भेद लेने के लिए रावण का भेजा हुआ आया है। अर्थात् विभीषणजी के कथन के एकदम विपरीत मान लिया जाय तो भी न कोई भय है न हानि है। अनिष्ट को हानि और भावी अनिष्ट को भय कहते हैं। यहाँ दोनों सम्भव नहीं। कपीश सम्बोधन का भाव यह कि अपने बन्दरों के विषय में शङ्का न करो। उनका कोई अनिष्ट न होगा। दशशीश है। अनेक प्रकार के प्रपञ्च सोचता है। उसका भेद लेने के लिए किसी को भेजना बहुत सम्भव है।

जग महुँ सखा निसाचर जेते। लछिमनु हनइ निमिष महुँ तेते ।।
जौं सभीत आवा सरनाईं। रखिहौं ताहि प्रान की नाईं ।।४।।

अर्थ : हे सखा ! जगत् में जितने राक्षस हैं लक्ष्मण क्षणभर में उन सबको मार सकते हैं और यदि वह भयभीत होकर मेरे शरण में आया है तो मैं उसें प्राण की भाँति रक्खूँगा।

व्याख्या : भेद लगाने में हानि और भय वहाँ होता है जहाँ कोई कचाई हो। यहाँ तो भेद पाने से उसे और महत्व का ज्ञान होगा। अविकत्थन हैं। अपना बल नहीं करते। अतः लक्ष्मण का बल कहते हैं : वस्तुतः कपि सेना कौतुक के लिए ही है अथवा मुझे कुछ करना नहीं है। संसार में जितने राक्षस हैं उनके लिए अकेले लक्ष्मण यथेष्ट हैं। भू भार हरण के लिए इन्हीं का अवतार है : जो अवतरेउ भूमि भय टारन और मेरा अवतार तो सन्तों पर अनुग्रह के लिए है। यथा : तुम सारिखे सन्त प्रिय मोरे। धरौं देह नहि आन निहोरे।

यदि वह सच्चे भाव से शरण में आया है तो उसकी रक्षा प्राण के समान करूँगा। प्राण के समान रक्षा करने का प्रण कर रहे हैं और प्राण से अधिक मानकर रक्षा किया। यथा :

आवत देखि सक्ति खर धारा। प्रणतारतिहर विरद सँभारा ।।
तुरत विभीषण पाछे मेला। सनमुख राम सह्यौ सो सेला ।।

दो. उभय भाँति तेहि आनहु, हँसि कह कृपानिकेत।
जय कृपाल कहि कपि चले, अंगद हनू समेत ।।४४।।

अर्थ : कृपा के धाम श्रीरामजी ने हँसकर कहा कि दोनों ही विधि से उसे ले आओ। तब अङ्गद और हनुमान् के सहित बानरगण जय कृपाल कहकर चल पड़े।

व्याख्या : दोनों प्राण के समान प्रिय की भाँति तथा बद्ध की भाँति : दानों भाँति से उसे ले आओ। ऐसी विचित्र आज्ञा हुई। कृपानिकेतन हैं। विभीषण पर भी कृपा किया और सुग्रीवजी का मनोभङ्ग नहीं होने दिया। अपनी विचित्र आज्ञा पर हँसते हैं। सरकार के सान्निध्य से बन्दर सब गुणआगर हो गये हैं। परन्तु अभिप्राय समझ लिया। अतः बन्दर चले। पर हनुमान् और अङ्गदजी आज्ञा की ठीक पूर्ति के लिए साथ हो गये। यहाँ छन्द के अनुरोध से हनू नाम दिया। नाम के एकदेश का ग्रहण किया अथवा सन्त के पास जाने में नाम के लिए भी मान रखना उचित नहीं। अतः कवि ने मान शब्द न दिया।

सादर तेहि आगे करि बानर। चले जहाँ रघुपति करुनाकर ।।
दूरिहि ते देखे द्वौ भ्राता। नयनानंद दान के दाता ।।१।।

अर्थ : आदर के साथ बन्दर उसे आगे करके करुणाकर रघुनाथ के पास चले। दूर से ही नयनानन्द दान के देनेवाले दोनों भाइयों को देखा।

व्याख्या : पहरे में कर लेना ही बन्ध है और जो प्राणप्रिय होता है उसका भी पहरा ही दिया जाता है। अतः विभीषणजी को आदर से आगे कर लिया। प्रेम द्योतन के लिए आदर है। हनुमान्‌जी मन्त्री हैं। अङ्गदजी युवराज हैं। विभीषणजी इनके आगे आगे चल रहे हैं। फिर भी पहरे में हैं। अथवा वानरों के बीच में आगे आगे चल रहे हैं। इसलिए पहरे में हैं। युवराज और मन्त्री लेने आये। इसलिए बड़ा आदर है। एक दृष्टि से लंकेश के भाई हैं। मिलने आये हैं। इसलिए स्वयं युवराज और मन्त्री लेने गये। दूसरी दृष्टि से शत्रु के बन्धु हैं। निशाचर हैं। कोई भारी उपद्रव न कर बैठे। इसलिए अङ्गद हनुमान् साथ हैं एवं उभय भाँति से ले चले। रघुपति हैं। करुणा करके इसे लंकेश बनावेंगे। इसलिए उनका रघुपति करुणाकर विशेषण दिया।

दोनों सरकार मध्य सेना में हैं और सेना बहुत बड़ी है। इसलिए बाहर से दिखाई नहीं पड़ते थे। जब कुछ दूर चले और दृष्टि फैलाई तो दूर से ही दिखाई पड़े। दोनों सरकार का उच्चासन है। देखने में और बैठने के अन्दाज से भी भाई मालूम पड़ रहे हैं। विभीषणजी दर्शन के भिखारी हैं। रास्ते भर मनोरथ करते चले आ रहे हैं। सो नयनानन्द दान के दाता को देखा। दोनों भाई दाता हैं।

बहुरि राम छबिधाम बिलोकी। रहेउ ठठुकि एकटक पल रोकी ॥
भुज प्रलंब कंजारुन लोचन। स्यामल गात प्रनत भय मोचन ॥२॥

अर्थ : फिर शोभा के धाम रामजी को देखकर पलक गिरना रोके हुए स्तब्ध होकर एकटक देखते ही रह गये। भगवान् की विशाल भुजाएँ हैं। लाल कमल के समान नेत्र हैं और शरणागत के भय का नाश करनेवाला साँवला शरीर है।

व्याख्या : सभी जगह देखनेवाले पहले दोनों भाइयों की शोभा पर मुग्ध होते हैं। पर अन्त में रामजी की शोभा पर जा ठहरते हैं। यथा : तदपि अधिक सुख सागर रामा। राम देखि मुनि बिरति बिसारी। साँवर कुँवर सखी सुठि लोना। रामहिं चितइ रहे थकि लोचन। इत्यादि। स्तब्ध होना : एकटक देखना : सात्त्विक भाव का उदय है। विभीषणजी वहीं स्तब्ध होकर खड़े रह गये।

चरण दर्शन का मनोरथ करते चले हैं। पर यहाँ चरण का वर्णन नहीं है। कारण यह कि सरकार अभी दूर हैं बानरों से घिरे हैं। निचले भाग का दर्शन नहीं हो रहा है। वहाँ से कहकर चले हैं : मैं रघुबीर सरन अब जाऊँ। अतः वीररस प्रधान झाँकी मिली। पहिले दृष्टि भुजाओं पर गयी। वीरों के बाँहों की ही पहिले पूजा होती है। यथा : सकल भुवन मंगल मंदिर के द्वार बिसाल सुहाई सा हैं। जे पूजे कौसिक मख रिषि यनि जनक गनप संकर गिरिजा हैं। सो विक्रम द्योतक लम्बी भुजाएँ हैं। इन्हीं से रक्षा की आशा है। फिर दृष्टि कंजारुण लोचन पर गयी। यहीं से कृपादृष्टि की वृष्टि होती है। अब सम्पूर्ण शरीर का रंग कहते हैं।

विचित्र श्यामलता है। नीलसरोरुह नीलमनि नील नीरधर स्याम। सरकार की मूर्ति ही प्रणत भयमोचन है। यथा : दूरि ते दीनबंधु देखे जनु देत अभय वरदान हैं। गीता.।

सिंह कंध आयत उर सोहा। आनन अमित मदन मनु मोहा ॥
नयन नीर पुलकित अति गाता। मन धरि धीर कही मृदु बाता ॥३॥

अर्थ : सिंह सा कन्धा विशाल वक्षःस्थल अत्यन्त शोभा दे रहा है। असंख्य कामदेवों के मन को मोहित करनेवाला मुख है। : देखकर नेत्रों में जल भर आया और शरीर अत्यन्त पुलकित हो उठा। मन में धैर्य धारण करके : विभीषणजी मृदु वचन बोले।

व्याख्या : वीरोचित अवयव संस्थान कहते हैं। परशुरामजी को : वृषभ कंध उर बाहु बिसाला कहा था। श्रीरामजी को : सिंह कंध आयत उर सोहा कहते हैं। वीररस और श्रृंगाररस का अद्भुत सम्मिश्रण है। मुख छवि कहि न जात मोहि पाहीं। जो बिलोकि बहु काम लजाहीं। कटि वसन चरणादि का वर्णन नहीं है। इन्हें विभीषणजी नहीं देख रहे हैं। वानर समूह से घिरे रहने के कारण निचले अङ्ग दिखाई नहीं पड़ रहे हैं।

इतना देखते देखते आँखें आँसू से भर गयीं। लोचन सजल डीठि भइ थोरी। सात्त्विक भाव बढ़ गया। अत्यन्त पुलक हो उठा। प्रेमाधिक्य से धैर्य छूट रहा है। उसे बलपूर्वक धारण करके मधुर वचन बोले। सामने होते ही शरणागत को पुकार करनी चाहिए। यथा : कहेसि पुकारि प्रणत हित पाही। नयन नीर पुलकित अति गाता से तन की दशा कही। मन धरि धीर से मन की तथा कही मृदु बाता से वचन की दशा कही।

नाथ दसानन कर मैं भ्राता। निसिचर बंस जनम सुरत्राता ॥
सहज पापप्रिय तामस देहा। जथा उलूकहि तम पर नेहा ॥४॥

अर्थ : हे नाथ ! मैं दसानन का भाई हूँ। हे देवों के रक्षक मेरा जन्म राक्षसकुल में हुआ है। अतः तामसी शरीर है। स्वभाव से ही पापप्रिय हूँ। जैसे उल्लू का प्रेम अन्धकार पर होता है।

व्याख्या : जो परिचय कहला भेजा था उसी को मुख से भी निवेदन करते हैं। वह आया था:आवा मिलन दसानन भाई। अतः कहते हैं :नाथ दसानन कर मैं भ्राता। दसानन का भाई होने से मैं भी दोषी हूँ। संसार चोर के भाई को गिरहकट मानता है अथवा कम से कम शङ्कनीय अवश्य हूँ। निसिचर वंश जन्म कहकर अपने को वध्य होना स्वीकार किया। किस मुँह से पुलस्त्य वंश कहें। अतः मातृकुल से अपना परिचय देते हैं। यथा : काल पाइ मुनि सुनु सोइ राजा। भयउ निसाचर सहित समाजा : भाई भतीजे निशाचर, माँ बहन निशाचरी, बाल बच्चे निशाचर, स्वयं निशाचर, अतः निसिचर वंश जन्म कहा। मुनि पिता और

दानवकन्या माता : इनसे सङ्कर सृष्टि निशाचरी चली। विभीषणजी प्रणाम करना चाहते हैं। अतः पुलस्त्य वंश नहीं कहा निसिचर वंस कहा।

जो देह मुझे मिली है उसका स्वभाव पाप प्रिय है भजन प्रिय नहीं है। यथा : मोह निसा प्रिय ग्यान भानु गत : इसी से उलूक का दृष्टान्त देते हैं। अपने स्वभाव का परिचय देते हैं कि अधम स्वभाव है। जन्म संग स्वभाव और करणी से मनुष्य की पहिचान होती है। यथा : जन्म सिंधु पुनि बंधु बिष दिन मलीन सकलंक : वही सब दिखला रहे हैं। जन्म यथा : निसिचर वंस जन्म। संग यथा : दशानन कर मैं भ्राता स्वभाव यथा : सहज पाप प्रिय। करणी यथा : उलूकहि तम पर नेहा। इससे सब प्रकार से अपनी हीनता कही।

दो. श्रवन सुजसु सुनि आयउँ, प्रभु भंजन भव भीर।
त्राहि त्राहि आरति हरन, सरन सुखद रघुबीर ॥४५॥

अर्थ : मैं कानों से सुयश सुनकर आया हूँ कि प्रभु भवभय का नाश करनेवाले हैं। हे आर्त्ति के हरण करनेवाले शरणागत को सुख देनेवाले रघुवीर ! मेरी रक्षा कीजिये रक्षा कीजिये।

व्याख्या : सुयश सुनि श्रवन हौ नाथ आयों सरन।
उपल केवट गीध सबरी संसृति समन, सोक श्रमसीव सुग्रीव आरति हरन॥
राम सजीव लोचन बिमोचन बिपति, स्याम नवतामरस दाम बारिद बरन।
लसत जटाजूट सिर चारु मुनिचीर कटि, धीर रघुबीर तूनीर सर धनु धरन॥
जातुधानेस भ्राता बिभीषण नाम, बंधु अपमान गुर ग्लानि चाहत गरन।
पतित पावन प्रनतपाल ! करुनासिंधु ! राखिये मोहि सौमित्रि सेवित चरन॥

प्रभु का सुयश बिभीषन ने हनुमान्‌जी से सुना। यथा : एहि बिधि कहत राम गुन ग्रामा। पावा अनिर्वाच्य विश्रामा : अतः कहते हैं कि मैं भवभय से डरा हुआ हूँ और प्रभु भंजन भवभीर हैं, मैं आर्त्त हूँ, प्रभु आर्तिहरण हैं, मैं शरण हूँ और प्रभु शरणसुखद हैं। मैं त्राहि त्राहि पुकारता हूँ और प्रभु रघुवीर हैं। यथा : मैं पतित तुम पतिपावन दोऊ बानक बने।

भक्ति रूपी राका रजनी में यह पन्द्रहवाँ गुणग्राम स्वातीनक्षत्र है। आवे सभय सरन तकि मोही। विभीषणजी को एक मात्र रघुवीर शरण हैं। यही एक तारा चमकता है। सरकार को भी विभीषण के प्रति राग है। यथा : रखिहौं ताहि प्रान की नाईं। राग का रंग कविसम्प्रदाय में लाल माना जाता है। इसलिए तारा का आकार विद्रुम : मूँगा के ऐसा कहा। फलश्रुति हैं : कामद घन दारिद दवारिके।

अस कहि करत दंडवत देखा। तुरत उठे प्रभु हरख बिसेषा॥
दीन बचन सुनि प्रभु मन भावा। भुज बिसाल गहि हृदय लगावा॥१॥

अर्थ : ऐसा कहकर दण्डवत् करते देखा तो प्रभु हर्षित होकर तुरंत उठे। दीन वचन सुनकर : विभीषणजी प्रभु को अच्छे लगे। विशाल भुजाओं से पकड़कर हृदय से लगा लिया।

व्याख्या : कहना सुना दण्डवत् करते देखा। अनादर पाकर आरहा है। अतः आदर के लिए प्रभु तुरन्त उठे। विभीषण को सरकार के दर्शन से हर्ष हुआ। यथा : नयनानंद दान के दाता और प्रभु को विभीषणजी के देखने से अति हर्ष हुआ। भक्त को भगवान् जितने प्रिय हैं उससे अधिक भगवान् को भक्त प्रिय हैं। प्रभु ने विभीषणजी का आदर किया। स्वयं उठकर खड़े हो गये।

तुलसी राम कृपाल से कहि सुनाउ गुन दोष। होय दूबरी दीनता परम पीन संतोष। उपर्युक्त दीन वचन प्रभु के प्रसन्न करने के लिए महामन्त्र हैं। रावण ने कहा था कि रिपु कर पक्ष मूढ़ तोहि भावा। रावण को विभीषणजी के वचन अच्छे नहीं लगे परन्तु प्रभु को अच्छे लगे। यथा : दीन बचन सुनि प्रभु मन भावा : दीन वचन ऐसे प्रिय लगे कि कञ्जारुण लोचन से देखा। प्रलम्ब भुजाओं से पकड़ा। श्यामलगात से मिले और हृदय से लगा लिया। रखिहौं ताहि प्रान की नाईं का साफल्य दिखलाया।

अनुज सहित मिलि ढिग बैठारी। बोले बचन भगत भयहारी ॥
कहु लंकेस सहित परिवारा। कुसल कुठाहर बास तुम्हारा ॥२॥

अर्थ : छोटे भाई के साथ मिलकर उनको अपने पास बिठाया और भक्तों के भय को हरण करनेवाले वचन बोले। हे लंकेश ! परिवार सहित अपनी कुशल कहो तुम्हारा निवास स्थान बेढंगा है।

व्याख्या : सरकार सुग्रीव से भी अनुज के सहित मिले थे। यथा : भेटेउ अनुज सहित रघुनाथा। विभीषण से भी उसी भाँति मिले। रावण ने कहा था सठ मिलु जाइ तिनहि कहु नीती। सो अनुज सहित मिले। अनुज सहित मिलने का भाव यह कि अब तुम हमारे भाई हो। समीप बैठाना अति आदरसूचक है। यथा : अति आदर समीप बैठारी। करगहि परम निकट बैठाये इत्यादि। विभीषणजी ने त्राहि त्राहि आरति हरण कहा था। अतः भयहारक वचन बोले।

लङ्केश सम्बोधन से ही भय हरण कर लिया। लङ्का के राज्य की मंजूरी हो गयी। सहित परिवार यथा : प्रनत कुटुम्ब पाल रघुराई। कुशल पूछते हैं। क्योंकि विभीषणजी अपना परिवार लङ्का में ही छोड़ आये थे। कुशल में सन्देह मालूम होता है। सन्देह का कारण कहते हैं कि तुम्हारा निवास स्थान बुरी जगह है। यथा : जिमि दसनन्ह महँ जीभ बिचारी।

खल मंडली बसहु दिन राती। सखा धरम निबहै केहि भाँती ॥
मैं जानउँ तुम्हारि सब रीती। अति नय निपुन न भाव अनीती ॥३॥

अर्थ : दिन रात दुष्टों की मण्डली में रहते हो। हे सखे ! तुम्हारा धर्म कैसे निभता है ? मैं तुम्हारी सब रीति जानता हूँ। तुम अत्यन्त नीतिनिपुण हो। तुम्हें अनीति अच्छी नहीं लगती।

व्याख्या : विभीषणजी ने कहा था कि कुल भी मेरा खोटा है। सङ्ग भी खोटा है। स्वभाव भी खोटा है और करणी भी खोटी है। इस पर स्वभाव और करणी को खोटी न मानते हुए विभीषणजी की अलौकिक करणी द्योतन करते हुए प्रश्न करते हैं। आश्चर्य प्रकट करते हैं कि तुम अपने धर्म का निर्वाह कैसे कर पाते थे। जो खलमण्डली में दिन को बसे उसे रात को धर्म निर्वाह का अवसर है जो रात को बसे उसे दिन को धर्म निर्वाह का अवसर है। पर तुमने तो रात दिन खलमण्डली में ही बिताया। तुमने धर्म कैसे निबाहा ? वह विधि कौन सी थी जिस पर सरकार प्रसन्न होते हैं ? उससे इसी प्रकार का प्रश्न करते हैं। यथा : कहु कपि रावन पालित लंका। केहि बिधि दहेउ दुर्ग अति बंका। प्रभु प्रसन्न जाना हनुमाना। तथा : अंगद के प्रति कहा : तासु मुकुट तुम चारि चलाए। कहहु तात कवनी बिधि पाए। यहाँ भी विभीषणजी से धर्म निर्वाह की विधि पूछते हैं।

हनुमान्‌जी की भाँति विभीषण भी उपालम्भ न करें कि पुनि प्रभु मोहि बिसारेहु दीनबन्धु भगवान। अतः उनके स्वभाव को खोटा न मानते हुए कहते हैं : मैं जानौं तुम्हारि सब रीती। अति नय निपुन न भाव अनीती अथवा हनुमान्‌जी ने कहा था : सुनहु बिभीषन प्रभु की रीती। करहिं सदा सेवक पर प्रीती। उसी का साफल्य दिखला रहे हैं। न भाव अनीती का तात्पर्य यह है कि लङ्का में सब सुख रहते हुए भी तुम दिनरात दुःखी थे। क्योंकि वहाँ की अनीति तुमसे देखी नहीं जाती थी। तुम अतिनय निपुण हो। तुम्हारा अनादर भी वहाँ नीतिप्रियता के कारण हुआ। यथा : सठ मिलु जाइ तिनहि कहु नीती। सरकार भक्त को पाकर ऐश्वर्य नहीं छिपाते। कहते हैं कि मैं यहीं से तुम्हारे गुणों को जानता हूँ।

बरु भल बास नरक कर ताता। दुष्ट संग जनि देइ बिधाता ॥
अब पद देखि कुसल रघुराया। जो तुम कीन्हि जानि जन दाया ॥५॥

अर्थ : हे तात ! नरक में निवास करना बल्कि अच्छा है पर विधाता दुष्ट का सङ्ग न दे। विभीषण बोले : हे रघुनाथ ! अब आपके चरणों के दर्शन से कुशल है जो आपने अपना सेवक जानकर मुझ पर दया की है।

व्याख्या : नरक का वास भला क्योंकि उससे पाप क्षय होता है और दुष्ट का सङ्ग बुरा क्योंकि उससे दारुण दुःख भी उपजता है और पाप की भी वृद्धि होती है। दुष्ट सङ्ग सज्जन चाहता नहीं पर विधिवश ऐसे सङ्ग में पड़ जाता है। सो तुम दुष्ट सङ्ग से छूटे यह बड़ा काम हुआ।

कहु लङ्केश कुसल का उत्तर विभीषणजी देते हैं : अब पद देखि कुसल। भाव यह कि इससे पहले कुशल कहाँ ? क्योंकि कुशल के मूल तो ये चरण हैं। यथा : कुसल

मूल पद पंकज पेखी। सहित परिवारा का उत्तर है कि उनकी कुशल प्रभु की कृपा पर अवलम्बित है। यथा : अब प्रभु परम अनुग्रह तोरे। सहित कोटि कुल मंगल मोरे। अथवा जीवमात्र की कुशल प्रभु की कृपा पर अवलम्बित है। अब प्रभु ने जन जानकर कृपा की है तो अब मेरा भी कुशल है। परिवार का भी कुशल है। तुम्हारी दया बिना चरणदर्शन नहीं होता और दर्शन बिना कुशल नहीं।

दो. तब लगि कुसल न जीव कहुँ, सपनेहु मन विश्राम।
जब लगि भजत न राम कहुँ, सोक धाम तजि काम ॥४६॥

अर्थ : तब तक जीव कुशल नहीं और न सपने में भी मन को विश्राम है। जब तक वह शोकधाम काम को त्यागकर रामजी को नहीं भजता।

व्याख्या : अब अवान्तर प्रक्रिया कहते हैं। भजत कृपा करिहहिं रघुराई। काम के रहते कुशल हो नहीं सकती। यथा : काम अछत सुख सपनेहुँ नाहीं। न मनको विश्राम मिल सकता है। यथा : नाचत ही निसि दिवस मर्यो। तबही ते न भयो थिर जब ते जिव नाम धर्यों। वहु वासना विविध कंचुकि भूषन लोभादि भर्यों। चर अरु अचर गगन जल थल में कौन न स्वाँग कर्यों। देव दनुज मुनि नाग मनुज नहि जाचत कोउ उबर्यो। मेरो दुसह दरिद्र दोष दुख काहू तो न हर्यों। थके नयन पदपानि सुमति जल संग सकल बिछुर्यो। अब रघुनाथ सरन आयो जन भवभय विकल डर्यो। राम और काम दोनों का भजन एक साथ हो नहीं सकता। अतः काम त्यागपूर्वक राम के भजन करने से ही मनमें विश्राम होता है। काम को शोकधाम समझकर जब भजन करे तो विश्राम पावे। यथा : इहै कह्यो सुत वेद चहूँ। श्री रघुवीर चरन चिन्तन तजि नाहि न ठौर कहूँ। और जब मन में विश्राम हो तब कुशल है। सुख सम्पत्ति परिवार बड़ाई। ये सब काम के ही चेष्टित हैं। इन्हें छोड़कर जब सरकार के शरण आये तो मन को विश्राम मिला नहीं तो सपने में भी मुझे विश्राम दुर्लभ था।

तब लगि हृदय बसत खल नाना। लोभ मोह मच्छर मद माना ॥
जब लगि उर न बसत रघुनाथा। धरे चाप सायक कटि भाथा ॥१॥

अर्थ : लोभ मोह मत्सर मद मानादिक अनेक खल तभीतक हृदय में बसते हैं जबतक धनुष बाण और कमर में तरकस धारण किये हुए श्रीरघुनाथजी हृदय में नहीं बसते।

व्याख्या : जब सब कामनाओं का त्याग करके जीव भगवान् के सम्मुख होता है तब उसे भीतरी शत्रुओं का परिज्ञान होता है। इससे पहले तो वह इन्हें मित्र मानता था अब समझा कि ये खल हैं। क्योंकि निष्कारण अपकार करते हैं यथा : खल बिनु कारण पर अपकारी। अहिमूषक इव सुनु उरगारी। तब वह प्रार्थना करता है : मम हृदय भवन प्रभु तोरा। तहँ बसे आइ बहु चोरा। अति कठिन करहिं बरजोरा। मानहि नहि विनय निहोरा। तम मोह लोभ अहंकारा। मद क्रोध बोध

रिपु मारा। अति करहिं उपद्रव नाथा। मर्दहिं मोहि जानि अनाथा। भागेहु नहिं नाथ उबारा। रघुनायक करहु सँभारा। सगुण ब्रह्म के हृदय बसते ही ये भाग खड़े होते हैं। निर्गुण ब्रह्म तो सदा बसते हैं। पर वे निरुपाधि निष्क्रिय हैं। यथा : अस प्रभु हृदयँ अछत अविकारी। सकल जीव जग दीन दुखारी। नाम निरूपन नाम जतन ते। सोउ प्रगटत जिमि मोल रतन ते।

वचन करम मन मोरि गति भजनु करहिं निहकाम। तिन्हके हृदय कमल महुँ करें सदा विश्राम। ऐसे भक्तों के हृदय में विश्राम होता है। अतः वहीं सरकार भी विश्राम करते हैं। धनुषबाण देखते ही खल भाग जाते हैं। भाव यह कि बाहर भी खलमण्डली और भीतर भी खलमण्डली थी। सो बाहर की खलमण्डली से तो रक्षा हुई अब हृदय में बसकर भीतर की खलमण्डली से भी रक्षा कीजिये।

ममता तरुन तमी अँधियारी। राग द्वेष उलूक सुखकारी॥
तब लगि बसत जीव मनमाहीं। जब लगि प्रभु प्रताप रबि नाहीं॥२॥

अर्थ : ममता पूर्ण अँधेरी रात है। जो राग द्वेष रूपी उल्लुओं को सुख देनेवाली है। वह तभी तक जीव के मन में बसती है जबतक प्रभु प्रतापरूपी सूर्य नहीं हैं।

व्याख्या : चोर का उपद्रव रात को रहता है। अविद्या निशा में आधी रात ममता है। इसमें कुछ नहीं सूझता। राग द्वेष रूपी उलूक का इसमें सञ्चार होता है। भक्ति उँजेली रात है। इसलिए ममता को अँधियारी कहा। उँजेली रात में भी उल्लू का सुखसञ्चार नहीं होता। ज्ञान विराग सुख सन्तोष विज्ञान विवेक को यह अँधियारी रात दुःखद है।

राम कृपा बिनु सुनु खगराई। जानि न जाइ राम प्रभुताई। रामजी की प्रभुता का ज्ञान ही रामप्रताप रवि का उदय है। यथा : जब ते रामप्रताप खगेसा। उदित भयउ अति प्रबल दिनेसा। तब तो आधी रात से मध्याह्न हो जाता है। फिर तो कहीं न चोर और न कहीं उलूक।

अब मैं कुसल मिटें भयभारे। देखि राम पदकमल तुम्हारे॥
तुम्ह कृपाल जापर अनुकूला। ताहि न ब्याप त्रिबिध भवसूला॥३॥

अर्थ : हे रामजी! आपके चरणकमल के दर्शन से अब मैं कुशल से हूँ। मेरे भारी भय मिट गये। हे कृपालु! आप जिसपर अनुकूल होते हैं उन्हें तीनों प्रकार के भवशूल नहीं व्यापते।

व्याख्या : विभीषणजी अब पद देखि कुसल रघुराया से उपक्रम करके अब मैं कुसल कहकर इस प्रसङ्ग का उपसंहार करते हैं। भारी भय मिट गया। भवरात्रि ही चली गई : नयन विषय मोकहु भयऊ सो समस्त सुखमूल : कुशल के तीन कारण हैं : १. निष्काम भजन २. रामजी का हृदय में वास और ३. प्रताप रवि का उदय। अब तीनों की प्राप्ति हुई। अतः अब से कुशल है।

खल मण्डली बसहु दिन राती। सखा धर्म निबहै केहि भाँती। इस प्रश्न का उत्तर विभीषणजी देते हैं। कहते हैं कि :

मैं निसिचर अति अधम सुभाऊ। सुभ आचरनु कीन्ह नहि काऊ ॥
जासु रूप मुनि ध्यान न आवा। तेहिं प्रभु हरषि हृदयँ मोहि लावा ॥४॥

अर्थ : मैं अत्यन्त नीच स्वभाव का राक्षस हूँ। मैंने कभी शुभ आचरण किया नहीं जिसका रूप मुनियों के ध्यान में नहीं आता। उस प्रभु ने हर्षित होकर मुझे हृदय से लगा लिया।

व्याख्या : आनुकूल्यस्य संकल्पः प्रातिकूल्यस्य वर्जनम्। रक्षिष्यतीति विश्वासो गोप्तृत्ववरणं तथा। आत्मनिक्षेपकार्पण्ये षड्विधा शरणागतिः। संकल्प यथा : देखिहौं जाइ चरन जल जाता। प्रातिकूल्यका वर्जन यथा : अस कहि चला विभीषण जबहीं। विश्वास : सरन गये प्रभु ताहु न त्यागा। वरण। यथा : श्रवन सुजसु सुनि आयेउँ प्रभु भंजन भवभीर। आत्मनिवेदन। यथा : अस कहि करत दंडवत देखा। इस भाँति पाँच का वर्णन ऊपर हो चुका अब छठे कार्पण्य का वर्णन करते हैं। स्वभाव से कपि अधम होते हैं। परहिंसक होने से निशिचर अत्यन्त अधम होते हैं। मैं धर्मनिर्वाह क्या करूँगा। सुभ आचरन कीन्ह नहि काऊ। विभीषणजी अपने को तीनों काण्ड का अनधिकारी बतलाते हैं। अपने को निशिचर कहकर भजन का अनधिकारी कहा। अपना अधम स्वभाव बतलाकर ज्ञान का अनधिकारी कहा। सुभ आचरन कीन्ह नहि काऊ बतलाकर कर्म का अनधिकारी कहा।

जिति पवन मनगो निरसकरि मुनि ध्यान कबहुँक पावहीं। योगसाधन करने पर कभी एक झलक सरकार की मिल जाती है। ध्यान में आते नहीं। सो सरकार की रीति देखी। तीनों काण्ड के अनधिकारी : मुझ : को हृदय से लगाया। सरकार के अभिष्वङ्ग से बढ़कर कुछ प्राप्तव्य नहीं है। सरकार प्रतिज्ञा कर चुके हैं। निसिचर हीन करौं महि भुज उठाइ प्रन कीन्ह। सो मुझे हृदय से लगाया। मेरे लिए प्रतिज्ञा भी छोड़ी।

दो. अहोभाग्य मम अमित अति, राम कृपासुख पुंज।
देखेउँ नयन बिरंचि सिव, सेव्य जुगल पदकंज ॥४७॥

अर्थ : हे कृपा और सुख के पुञ्ज रामजी ! मेरा अत्यन्त असीम सौभाग्य है जो मैंने ब्रह्मा और शिवजी के सेवनीय दोनों चरणों को आँखों से देखा।

व्याख्या : हर उर सर सरोज पद जेई। अहोभाग्य मैं देखिहौं तेई। चरण दर्शन से विभीषणजी ने अहोभाग्य माना। पर यहाँ तो दर्शन के साथ ही साथ अत्यन्त कृपा करके परिष्वङ्ग सुख का सौभाग्य प्राप्त कराया। अतः अति अमित अहोभाग्य है। तीन बार दर्शन का मनोरथ किया था। यथा : १. देखिहौं जाइ चरन जलजाता २. अहोभाग्य मैं देखिहौं सोई ३. ते पद आज बिलोकिहौं। अतः

तीन बार मनोरथ की पूर्ति स्वीकार करते हैं : १. अब पद देखि २. देखि रामपद कमल तुम्हारे और ३. देखेउँ नयन विरंचि सिव सेव्य जुगल पद कंज। १. भजन का फल : कुशल तथा विश्राम है २. ध्यान का फल : लोभ मोह मत्सरादि का नाश है ३. चरण दर्शन का फल भवभय का नाश और रामकृपा का फल : त्रयशूल का नाश है।

अथवा अमित अहोभाग्य होने से विरञ्चि शिव का दर्शन होता है। सो मुझे विरञ्चि शिव सेव्य युगल पद कञ्ज का दर्शन हुआ। अतः मेरा अति अमित अहोभाग्य है।

सुनहु सखा निज कहहुँ सुभाऊ। जान भुसुण्डि संभु गिरिजाऊ ॥
जौं नर होइ चराचर द्रोही। आवै सभय सरन तकि मोही ॥१॥

अर्थ : रामजी बोले : हे सखे! सुनो मैं अपना स्वभाव कहता हूँ। जिसे काकभुसुण्डि शिवजी और पार्वतीजी भी जानती हैं। यदि कोई सम्पूर्ण जड़चेतन जगत् का द्रोही हो और वह भयभीत होकर मेरे शरण में आ जाय।

व्याख्या : विभीषणजी से सरकार ने सखा का नाता कायम किया। सखित्व में स्वभाव का परिचय आवश्यक है। अतः अपना स्वभाव कहते हैं : भुसुण्डि की जानकारी। यथा : अस सुभाव कहुँ सुनै न देखै। केहि खगेस रघुपति सम लेखै। उमा शम्भु की जानकारी यथा : उमा राम सुभाउ जेहि जाना। ताहि भजन तजि भाव न आना। भुसुण्डिजी जीवकोटि में हैं, इनका सम्पर्क पाप से रह चुका है। इसलिए पहिले इन्हीं का नाम लिया। क्योंकि इन्हें साक्षात् अनुभव है।

चराचर मात्र के द्रोह करने की सामर्थ्य ही मनुष्य में नहीं है। यह पाप रावणादि अति सामर्थ्यवान् से ही सम्भव है। यथा : बिस्व द्रोह रत यह खल कामी। निज अघ गयउ कुमारग गामी। चराचर मात्र के द्रोह से बड़ा पाप भी कोई नहीं। यथा : बिस्व द्रोह कृत अघ जेहि लागा है ऐसा व्यक्ति भी यदि शरण में आवे तो उसके लिए रोक नहीं है। यहाँ पर शरणागत के तीन अङ्ग भी कहे गये हैं : १. भयभीत होना २. अन्य साधन पर भरोसा न रखना और ३. अन्य आश्रय का न होना। आवै सभय सरन तकि मोही से ये ही तीन बातें कहीं।

तजि मद मोह कपट छल नाना। करौं सद्य तेंहि साधु समाना ॥
जननी जनक बंधु सुत दारा। तनु धनु भवन सुहृद परिवारा ॥२॥

अर्थ : मद मोह तथा नाना प्रकार के कपट छल त्याग दे तो मैं उसे तुरन्त साधु के समान बनाता हूँ। माता पिता भाई पुत्र स्त्री शरीर धन घर मित्र और परिवार।

व्याख्या : ४. मद के रहते शरणागति नहीं होती। यथा : अजहुँ तात त्यागहु अभिमाना। भजहु राम होइहि कल्याना। ५. न मोह के रहते स्वरूप ज्ञान होता है और जिसके शरण में जाना है उसके स्वरूप का ज्ञान न होना शरणागति में

प्रतिबन्धक है। ६. कपट छल शरणागति धर्म का विरोधी है। यथा : मोहि कपट छल छिद्र न भावा।

ममता के पात्रों में प्रथम परिचय जननी से तब जनक से तत्पश्चात् बन्धु से। पुत्रप्रयोजना भार्या है। अतः पुत्र के बाद भार्या कहा। तत्पश्चात् शरीर कहा। यथा : सबके देह परम प्रिय स्वामी। धन और भवन शारीरिक सुख के साधन हैं, अतः जड़ होने पर भी अतिप्रिय हैं। सुहृद के लिए तो स्वयं सरकार ने कहा है कि अनुज राज संपति बैदेही। देह गेह परिवार सनेही। सब मम प्रिय नहि तुमहि समाना। परिवार भी प्रिय है। यथा : होइहि प्रिय परिवार दुखारी। भाव यह कि इतने ही प्रेम के पात्र हैं, इन्हीं पर ममता होती है कि ये मेरे हैं।

सबकै ममता ताग बटोरी। मम पद मनहि बाँध बर डोरी॥
समदरसी इच्छा कछु नाहीं। हरष सोक भय नहि मन माहीं॥३॥

अर्थ : सबके ममता के तागों को बटोरकर और उन सबकी एक डोरी बटकर मेरे चरणों में बाँध देवे। समदर्शी हो जावे। उसे कुछ इच्छा न रहे और न मन में हर्ष शोक या भय रहे।

व्याख्या : मन से वृत्तियाँ निकल कर इन्हीं सबों में बँधी हुई हैं। इन्हीं वृत्तियों को ममता ताग कहा गया है। सो सब जगह से मनोवृत्तियों को हटाकर एकत्रित करके उनकी डोरी बट ले। यथा : गुरु पितु मातु बंधु पति देवा। सब मोहि कहँ जानै दृढ़ सेवा। त्वमेव माता च पिता त्वमेव त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव। त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव त्वमेव सर्वं मम देवदेव। और उस डोरी को मेरे चरणों में बाँध दे।

ममता की डोरी चरण में बँधते ही वह सब ओर से स्नेहशून्य होकर समदर्शी हो जायगा। तब उसे मालूम होगा कि सब जगत् प्रभुमय है। वह प्रभु से पृथक् कुछ देखता ही नहीं। इच्छा किसकी करे। जब कोई इष्ट अनिष्ट ही न रहा तब हर्ष भय शोक भी नहीं रह जाता। ये सब डोरी लग जाने के स्वाभाविक फल हैं। इस बात को पहचान के लिए कहा : यदि कुछ इच्छा शेष हो हर्ष शोक भय मन में हो तो समझना चाहिए कि डोरी ठीक बँधी नहीं और बँधी भी तो दृढ़ नहीं बँधी।

अस सज्जन मम उर बस कैसें। लोभी हृदय बसइ धन जैसें॥
तुम सारिखे संत प्रिय मोरे। धरउँ देह नहि आन निहोरे॥४॥

अर्थ : ऐसा सज्जन मेरे हृदय में कैसे बसता है, जैसे लोभी के हृदय में धन बसता है। तुम सरीखे सन्त ही मुझे प्रिय हैं। मैं और किसी के निहोरे से देह धारण नहीं करता।

व्याख्या : स्वयं सरकार मुनिजन धन हैं। पर ऐसे सज्जन सरकार के भी धन हैं। लोभी प्राण जाने पर भी धन नहीं छोड़ता। इसी भाँति सरकार भी किसी

अवस्था में ऐसे सज्जन का परित्याग नहीं करते। हृदय बसै कहने का भाव यह कि मुझे उनका ध्यान करने में आनन्द होता है। सदा उनका ध्यान बना रहता है।

तुम सन्तों के लिए उदाहरण रूप हो। ऐसे ही सन्त हैं तजि मम चरनसरोज प्रिय तिन्ह कहुँ देह न गेह। ये ही मुझे प्रिय हैं। इन्हींके लिए मैं देह धारण करता हूँ। अन्य कारण गौण है। भावार्थ यह कि तुम्हारे से सन्तों के लिए मेरा अवतार हुआ। पृथ्वी का भार उतारने के लिए तो लक्ष्मण का अवतार है। यथा : जो सहस सीस अहीस महिधर लषन सचराचर धनी। सुरकाज धरि नरराज तनु चले दलन खल निसिचर अनी।

दो. सगुन उपासक परहित, निरत नीति दृढ़ नेम।
ते नर प्रान समान मम, जिन्हके द्विज पद प्रेम ॥४८॥

अर्थ : जो सगुण उपासक हैं। दूसरे के हित में लगे रहते हैं। नीति में निरत हैं और नियम उनका दृढ़ है और जिन्हें ब्राह्मणों के चरण में प्रेम है वे मनुष्य मेरे प्राणों के समान हैं।

व्याख्या : मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवन्त। सगुणोपासक चराचररूप विश्व को स्वामी रूप से मानते हैं। अतः वे विश्व की सेवा में दृढ़संकल्प होते हैं। इसलिए परहित कहा। निर्गुण ब्रह्म के उपासक तो अपने उपास्य की भाँति निष्क्रिय होकर बैठ जाते हैं। वे परहित के लिए यत्नशील नहीं हो सकते। परहित करने में किसी का अहित भी हो जाता है। अतः निरत नीति कहा। नीति के अनुसार बर्तने में ही सबका हित है। कष्ट के भय से अपने नियम से विचलित नहीं होते। अतः दृढ़ नेम कहा : ये पाँचों गुण पाँचों प्राण के समान हैं। अतः कहते हैं ते नर प्राण समान मम।

सुनु लंकेस सकल गुन तोरे। ताते तुम्ह अतिसय प्रिय मोरे॥
राम बचन सुनि बानरजूथा। सकल कहहिं जय कृपाबरूथा ॥१॥

अर्थ : हे लंकेश! सुनो तुममें सब गुण हैं इससे तुम मुझे अत्यन्त प्रिय हो। रामजी का वचन सुनकर सब वानरों के समूह कहने लगे : कृपा के समूह रामजी की जय हो।

व्याख्या : पहिले अपना स्वभाव कहा कि कौन कौन से गुण प्रिय होने के कारण हैं। अब विभीषणजी की ग्लानि मिटाने के लिए कहते हैं कि वे सब गुण तुममें हैं। तुम शरणागत भी हो तुम्हारी ममता की डोरी भी मेरे चरणो में लग गयी है। सगुणोपासन तथा परहितादि गुण भी तुममें हैं। इसलिए अतिप्रिय हो। अतः हर्षित होकर हृदय से लगाया। मैं निसिचर अति अधम सुभाऊ। सुभ आचरन कीन्ह नहि काऊ। ऐसा मत कहो। मेरा स्वभाव तुम्हारे स्वभाव से मिलता है। जो जो गुण मुझे प्रिय हैं वे सब तुम में हैं : सुनु लंकेस सकल गुन तोरे।

सरकार का ध्यान कुल पर नहीं है प्रीति पर है। यथा : रीझत राम सनेह निसोते। यह बात वानरों के अनुकूल है। वानर कुलीन नहीं होते। उन्हें प्रेम का ही भरोसा था। उसी प्रेम की विजय देखकर जय जयकार कर रहे हैं। अथवा : देखि दोष कबहुँ न उर आने। सुनि गुन साधु समाज बखाने। इस स्वभाव पर जय जयकार करते हैं।

सुनत बिभीषनु प्रभु कै बानी। नहिं अघात श्रवनामृत जानी ॥
पद अंबुज गहि बारहिं बारा। हृदय समात न प्रेमु अपारा ॥२॥

अर्थ : विभीषणजी प्रभु की वाणी सुनकर उसे श्रवणामृत जानकर अघाते नहीं। वे बार बार रामजी के चरण कमलों को पकड़ते हैं। अपार प्रेम हृदय में समाता नहीं।

व्याख्या : श्रवणशूल के समान लङ्का के प्रभु रावण की वाणी सुनते रहे। यथा : रिपु उत्कर्ष कहत सठ दोऊ। दूरि न करउ इहाँ है कोऊ। मम पुर बसि तपसिन्ह सन प्रीती। सठ मिलु जाइ तिन्हहि कहु नीती। इत्यादि। अब कवि कहते हैं कि मेरे प्रभु की श्रवणामृत वाणी सुनकर विभीषणजी अघाते नहीं। यथा : प्रभु वचनामृत सुनि न अघाऊँ।

परिमित हृदय में अपरिमित प्रेम नहीं समाता तब बाह्य क्रिया में व्यक्त होता है। यथा : पद अम्बुज गहि बारहि बारा। अथवा अन्तःकरण प्रेमानन्द से परिपूर्ण हैं। तब शरीर भी ब्रह्म संस्पर्श रूप अत्यन्त सुख के लिए चरण का आश्रयण करता है। अथवा अपने प्रेम का अपने को ही पार नहीं मिल रहा है। अतः बार बार चरणरूपी नौका का आश्रयण करते हैं।

सुनहु देव सचराचर स्वामी। प्रनतपाल उर अंतरजामी ॥
उर कछु प्रथम बासना रही। प्रभुपद प्रीति सरिस सो बही ॥३॥

अर्थ : हे देव ! चराचर जगत् के स्वामी ! हे प्रणतपाल ! हे अन्तर के प्रेरक ! सुनिए मेरे हृदय में पहले कुछ वासना रही। अब प्रभु के चरण की प्रीति की नदी में वह बह गयी।

व्याख्या : देवो भूत्वा देवं यजेत्। जिस देव की पूजा करना चाहे उसके ऐसा होकर उसकी पूजा करे। सरकार बड़े सरल हैं। अतः परम सरल होकर ही सरकार की पूजा करनी चाहिए। विभीषणजी परम चतुर हैं। समझते हैं कि सरकार से छिपाव उचित नहीं। मेरे हृदय में परिवर्तन हुआ है। पहिले रावण की यह बात सुनकर कि : मम पुर बसि तपसिन्ह सन प्रीती। राज्य की वासना हो गयी कि पुर इनका है। मैं कोई नहीं हूँ। सो सरकार अन्तर्यामी हैं। सब जान गये। देव हैं : रावण का संहार करेंगे ही। सचराचर स्वामी हैं : जिसे चाहें राजा बनावें। जिसे चाहे रंक बनावें तिस पर प्रणतपाल हैं। और मैं शरण में आया

हूँ। ये मेरे पूर्व वासनानुसार लङ्का का राज्य देना चाहते हैं। अतः बार बार लंकेश सम्बोधन कर रहे हैं।

अतः स्पष्ट कह देना चाहिए कि सरकार ! पहले अवश्य लङ्का की वासना रही। पर इस समय प्रेम की अविच्छिन्न धारा हृदय में बह रही है। यह धारा उस वासना को कहाँ बहा ले गयी कुछ पता नहीं। अब मुझे इच्छा नहीं है।

अब कृपाल निज भगति पावनी। देहु सदा सिव मन भावनी ॥
एवमस्तु कहि प्रभु रनधीरा। माँगा तुरत सिंधु कर नीरा ॥४॥

अर्थ : अब हे कृपालु ! सदा शिव के मन को सदा प्रिय लगनेवाली अपनी पवित्र भक्ति मुझे दीजिये। एवमस्तु : बहुत अच्छा कहकर रणधीर प्रभु ने तुरन्त ही समुद्र का जल माँगा।

व्याख्या : प्रभु के वचनामृत सुनने के पहिले कुछ : उपर्युक्त वासना थी। अतः कहते हैं कि आप कृपाल हैं। पहिली बात का ख्याल न करें अब जो चाहते हैं सो दें। अपावनी लङ्का अब मुझे न चाहिए। पावनी भक्ति चाहिए। सो भी सदा शिव मन भावनी भक्ति चाहिए अर्थात् सिद्धि भक्ति चाहिए। अविरल भक्ति कृपासाध्य है क्रियासाध्य नहीं है।

प्रभु हैं : रणधीर हैं अतः विजय के पहिले ही अभिषेक करते हैं। सुग्रीवजी को पहिले अभिषिक्त नहीं किया। क्योंकि उन्हें प्रभुता में सन्देह उठ गया था। यथा : कह सुग्रीव सुनहु रघुबीरा। बालि महा बल अति रनधीरा। दुंदुभि अस्थि ताल दिखराये। बिनु प्रयास रघुनाथ ढहाये। परन्तु विभीषण को प्रभु की प्रभुता पर सन्देह नहीं हुआ। यथा : राम सत्य संकल्प प्रभु सभा कालबस तोरि। अतः प्रभु ने इन्हें रावण वध से पहिले ही अभिषिक्त किया। अभिषेक में सिन्धु का जल प्रशस्त है। समुद्र सर्वतीर्थमय है। अतः सिन्धु का जल अभिषेक करने के लिए माँगा। वही हुई वासना और प्रस्तुत वासना दोनों की पूर्ति की। प्रस्तुत वासना की पूर्ति एवमस्तु : ऐसा ही हो : कहकर किया और वही हुई वासना की पूर्ति के लिए अभिषेकार्थ सिन्धु जल माँगा।

जदपि सखा तव इच्छा नाहीं। मोर दरसु अमोघ जग माहीं ॥
अस कहि राम तिलक तेहि सारा। सुमन बृष्टि नभ भई अपारा ॥५॥

अर्थ : हे सखे ! यद्यपि तुम्हें इच्छा नहीं है पर जगत् में मेरा दर्शन अमोघ है। वह व्यर्थ जा नहीं सकता। ऐसा कहकर रामजी ने उन्हें तिलक कर दिया। आकाश से पुष्पों की अपार वृष्टि हुई।

व्याख्या : सरकार के जल माँगने की देर थी। समुद्र पास ही था। जल आने में देर न हुई। जिस इच्छा को हृदय में रखकर भाग्यवान जीव ईश्वर का दर्शन करता है वह इच्छा चाहे दर्शन के बाद नष्ट भी हो जाय पर सरकारी दर्शन अमोघ है। वह फल दिये बिना नहीं रहता। सुग्रीव की भी बालिवध की इच्छा

दर्शनोपरान्त जाती रही। परं सरकार ने यही कहा— जो कछु कहेहु सत्य सब सोई। सखा वचन मम मृषा न होई। उस इच्छा में परिवर्तन देखकर सरकार जल्दी करते हैं। तुरन्त : लै सुग्रीव संग रघुनाथा। चले चाप सायक गहि हाथा। इसी भाँति यहाँ भी शीघ्रता की। रावण वध में देर है अतः अभिषेक तुरन्त कर दिया। विभीषण साधु हैं कहीं राज्यप्राप्ति : राज्य न मिलने का वर न माँगे।

दो. रावन क्रोध अनल निज, स्वास समीर प्रचंड।
जरत बिभीषनु राखेउ, दीन्हेउ राजु अखंड ॥
जो संपति सिव रावनहि, दीन्हि दियें दसमाथ।
सो संपदा बिभीषनहि, सकुचि दीन्ह रघुनाथ ॥४९॥

अर्थ : श्रीरामजी ने रावण के क्रोधरूपी अग्नि से जो अपनी स्वासरूपी पवन से प्रचण्ड हो रही थी जलते हुए विभीषण की रक्षा की और उसे अखण्ड राज्य दिया।

शिवजी ने जो सम्पत्ति रावण को दस सिर देने पर दी थी वही सम्पत्ति श्रीरघुनाथजी ने विभीषण को सकुचते हुए दी।

व्याख्या : रावण का क्रोध साक्षात् अग्नि ही था। वह क्रोध के पात्र को बिना जलाये नहीं छोड़ता था। सो विभीषण पर भारी क्रोध हुआ। यथा : सुनत दसानन उठा रिसाई। खल तोहि मृत्यु निकट अब आई। बिभीषणजी को अपने अनादर से तथा मरणान्त कष्ट से दीर्घ निःश्वास चलने लगा। इससे रावण का क्रोध और बढ़ा। यथा : अस कहि कीन्हेसि चरन प्रहारा। लात मारकर लङ्का से निकाल दिया। खूब समझता है कि रामजी के यहाँ भी जाकर यह बाँधा या मारा जायगा। इस सन्दिग्धावस्था में शत्रु के भाई पर कौन विश्वास करेगा। और दूसरे किसी का साहस नहीं है कि विभीषण को शरण में रख सके। सो रामजी ने विभीषण की रक्षा रावण के बढ़े हुए क्रोध से की। रावण की चलाई हुई शक्ति को जिसे उसने विभीषण के ऊपर फेंका था अपने ऊपर ली। इस भाँति भी रावण के क्रोध से जलते हुए विभीषण की रक्षा की और अखण्ड राज्य दिया। यथा : करेहु कल्प भर राज्य तुम मोहि सुमिरेहु मन माहि। वैवस्वत मन्वन्तर की चौबीसवीं चतुर्युगी में विभीषण को राज्य मिला। अतः कल्प पूरा होने तक सात मन्वन्तर और अड़तालीस चतुर्युगी विभीषण राज्य करेंगे। इस बीच में सात बार इन्द्र देवगणों के साथ बदले जावेंगे। अतः विभीषण के राज्य को अखण्ड कहा।

या विभूतिर्दशग्रीवे शिरश्छेदेन शङ्करात्। दर्शनात् रामभद्रस्य सा विभूतिर्विभीषणे : ह. ना.। रावण ने जिस सम्पत्ति के लिए दस सिर दिये विभीषण को उसकी इच्छा नहीं। यथा : तेहि माँगेउ भगवंत पद कमल अमल अनुराग। अतः भगवान् को उस सम्पत्ति के देने में सङ्कोच है। अथवा आत्मनिवेदन के सामने लङ्का की सम्पत्ति कोई वस्तु नहीं है। अतः सरकार को सङ्कोच है। रावण ने सिर

दिया पर आत्मनिवेदन न कर सका। विभीषण ने दो बार त्राहि किया। सो राज्य देकर रावण के भय से रक्षा की और भक्ति देकर भवभय से रक्षा की। यहाँ रामजी की कृपालुता तथा उदारता का अत्यन्त उत्कर्ष दिखलाया। शिवजी के ऐसा उदार कोई नहीं है। उन्होंने भी जो सम्पत्ति रावण के सिर चढ़ाने पर दी थी, उसी सम्पत्ति को शरण में आने से रामजी ने विभीषण को सङ्कुचित होकर दी। भावार्थ यह कि दाता को देय के यथेष्ट न होने से संकोच है। यथा : बार कोटि सिर काटि साटि लटि रावन संकर पै लई। सोइ लंका लखि अतिथि अनवसर राम तृनाश्रम ज्यौं दई। विनय.।

अस प्रभु छाड़ि भजहिं जे आना। ते नर पसु बिनु पूँछ बिसाना॥
निज जन जानि ताहि अपनावा। प्रभु सुभाव कपि कुल मन भावा॥१॥

अर्थ : ऐसे प्रभु को छोड़कर जो दूसरे को भजते हैं वे मनुष्य में पशु हैं। केवल सींग पूछ उन्हें नहीं। अपना सेवक जानकर उसे अपना लिया। प्रभु का स्वभाव बानर कुल के मन को अच्छा लगा।

व्याख्या : ऐसे भक्ति और मुक्ति देने वाले प्रभु, ऐसे आशुतोष महादानी को भजना चाहिए : बिनु सेवा जो द्रवै दीन पर राम सरिस कोउ नाहीं। अन्य तो सामर्थ्यहीन जीव हैं। उन्हें छोड़कर इन्हें भजना चाहिए और जो इसके विपरीत करता है राम को छोड़कर जीव को भजता है वह नर नहीं है पशु है। यथा : मनुज देह सुर साधु सराहत सो सनेह सियं पी के। पशु यावज्जीवन दूसरे को ही भजते हैं। पशुओं को विधाता ने लज्जा निवारण के लिए तथा मक्खी आदि बाधक जीवों के हटाने के लिए पूँछ और आत्मरक्षा के लिए सींग दो है। इन नर-पशुओं को वह भी नहीं है। यथा : लोलुप भ्रमत गृहपशु ज्यौं जहँ तहँ सिर पदत्रान बजे। तदपि अधम विचरत तेहि मारग कबहुँ न मूढ़ लजे। विनय.।

रिपु को बंधु बिभीषन निसिचर। कवन भजन अधिकारी। यहाँ जाति पाँति धन धर्म बड़ाई की पूछ नहीं है। यहाँ तो केवल प्रेम को पूछ है। यथा : रामहिं केवल प्रेम पियारा। अतः प्रभु का स्वभाव कपिकुल के मन में अच्छा मालूम हुआ कि ऐसे ही प्रभु की हम लोगों को आवश्यकता है। जहाँ जाति पाँति धन धर्म बड़ाई की पूछ है वहाँ हम लोगों का निर्वाह कहाँ? अतः वानरों के चरवाहे सरकार ही थे। दूसरा कोई न ऐसा हुआ न होगा। इसलिए बानर के चरवाहे को भजो।

पुनि सर्वग्य सर्व उर बासी। सर्व रूप सब रहित उदासी॥
बोले बचन नीति प्रति पालक। कारन मनुज दनुज कुल घालक॥२॥

अर्थ : फिर सब कुछ जाननेवाले सबके हृदय में बसनेवाले सर्वरूप सबसे रहित उदासीन तथा नीति की रक्षा करनेवाले वचन बोले। कारण यह कि राक्षसों के कुल का नाश करनेवाले मनुज बने हुए हैं।

व्याख्या : श्रोता की सावधानी के लिए जिसमें कि उसे मोह न हो वक्ता ने पाँच विशेषण सरकार को दिये। क्योंकि यहाँ पर सरकार माधुर्य प्रदर्शन करते हुए अल्पज्ञ वनवासी मनुष्य संसारी तथा लिप्त की भाँति पूछेंगे। स्वरूप ज्ञान रहने से माधुर्य का आनन्द आवेगा नहीं तो मोह होगा। यहाँ से मिला : बिभीषण जेहि बिधि आई : प्रसङ्ग समाप्त हुआ।

मन्त्रियों से मन्त्रणा करके ही कार्य करना चाहिए। स्वयं नीति पालन करके उदाहरण खड़ा करते हैं। नीति पालन से ही दनुज कुल का नाश होता है। अनीति से दनुज कुल की वृद्धि होती है। यथा : निसिचर छल बल करैं अनीती।

सुनु कपीस लंकापति बीरा। केहि बिधि तरिअ जलधि गंभीरा ॥
संकुल मकर उरग झख जाती। अति अगाध दुस्तर सब भाँती ॥३॥

अर्थ : हे वीर वानरराज और लङ्कापति सुनो ! इस गम्भीर समुद्र को किस प्रकार पार किया जाय ? अनेक जाति के मगर सर्प और मछलियों से भरा हुआ है। अत्यन्त अथाह है और सब भाँति से इसका तरना कठिन है।

व्याख्या : कपोश और लङ्केश दोनों सखा हैं अतः दोनों से पूछा। कपोश अपनी सेना के पराक्रम को जानते हैं। लङ्कापति अपने पड़ोसी समुद्र से परिचित हैं। अतः दोनों से पूछना प्राप्त था। बीर अधीर न होहिं इस न्याय से वैक्लव्य छोड़कर उत्साहपूर्वक उपाय सोचें। अतः वीर शब्द से सम्बोधित किया। पावत नाव न बोहित बेरा। इसलिए सन्तरण की विधि पूछते हैं। वणिक् पोत को श्रीरामजी ऐसे शासक छीन सकते नहीं। पैर से हल करके पार किया नहीं जा सकता। क्योंकि गम्भीर जलधि है देखने से साहस छूटता है।

वाहु सन्तरण में भी बड़ी बाधा है। मकर उरग तिमिङ्गिल आदि मत्स्यों से भरा पड़ा है। यथा : मकर नक्र नाना झख ब्याला। सत जोजन तनु परम बिसाला। ऐसेउ एक तिनहि जे खाहीं। एकन के डर तेऽपि डराहीं। अतः अति अगाध है। सन्तरण की कोई विधि दृष्टिगोचर नहीं होती। सर्वज्ञ सर्व उरग्रासी होकर दूसरों से पूछते हैं। सर्वरूप होकर भी मकर उरग झख से भयभीत हैं। सर्व रहित होकर भी समुद्र को अगाध कह रहे हैं। उदासीन होकर भी सन्तरण की विधि के लिए लालायित हैं।

कह लंकेस सुनहु रघुनायक। कोटि सिंधु सोषक तव सायक ॥
जद्यपि तदपि नीति असि गाई। बिनय करिय सागर सन जाई ॥४॥

अर्थ : लंकेश ने कहा हे रघुनायक सुनो। करोड़ समुद्र का शोषण करनेवाला यद्यपि आपका बाण है तथापि नीतिशास्त्र कहता है कि जाकर समुद्र से विनय कीजिये।

व्याख्या : बड़ी भारी परीक्षा विभीषण की हो रही है। अभी राज्य दिया है और अब कह रहे हैं कि समुद्र तरने की तो कोई विधि ही नहीं मालूम होती।

लङ्केश ने समझ लिया कि यद्यपि मान रखने के- लिए सुग्रीवजी से भी पूछा गया है पर प्रधान लक्ष्य मैं ही हूँ। सुग्रीवजी चुप हैं। समझते हैं कि विभीषणजी इस विषय के विशेष जानकार हैं। दिन रात उन्हें समुद्र से काम पड़ता है। अतः ये ही कहें। विभीषणजी सरकार के वाणों का प्रताप जानते हैं। परन्तु उनसे काम लेना चौथा उपाय है। अतः प्रथम साम के लिये ही मन्त्र देते हैं कि सामर्थ्य रहते भी नीति का पालन कीजिये।

साम प्रथम नीति है अतः उसी का प्रयोग पहिले होना चाहिए। परन्तु यह प्रयोग दूत द्वारा भी हो सकता है। पर यह राजा सगर का खनाया : खुदाया : हुआ है। सगर आपके पूर्वज हैं। अतः स्वयं जाकर विनय करना उचित है। रावण के वचन का साफल्य हो रहा है। उसने पहिले ही कहा था : सठ मिलु जाइ तिनहि कहुं नीती। सरकार सेना के मध्य में हैं। अतः विभीषण समुद्र के किनारे विनय करने के लिये भेज रहे हैं। नीति यही है कि निर्बल से भी पहिले विनय करो।

दो. प्रभु तुम्हार कुलगुरु जलधि, कहिहि उपाय बिचारि।
बिनु प्रयास सागर तरहि, सकल भालु कपि धारि ॥५०॥

अर्थ : हे प्रभो ! समुद्र आपका कुल गुरु हैं। वह विचारकर उपाय बतला देगा और बन्दर भालुओं की सब सेना बिना श्रम के समुद्र के पार उतर जायगी।

व्याख्या : सगरस्यायम् सागरः यह सगर का खुदाया हुआ उनके पुत्र स्थानीय है। सारा संसार इसे सागर अर्थात् सगर का पुत्र कहता है। अतः यह आपका कुलगुरु : पूर्वज : हैं। कुल का कल्याण चाहनेवाला है। यथा : जलनिधि रघुपति दूत बिचारी। तै मैनाक होहि श्रम हारी। अतः यह नीति निष्फल न होगी। वह ऐसा उपाय बिचारकर बतलायेगा कि यह महान् कार्य अल्पयास में सिद्ध हो जायगा। बड़े बड़े के सन्तरण में सन्देह है। यथा : निज निज बल सब काहू भाषा। पार जाइ के संशय राखा। सो छोटे बड़े सब पार चले जायँगे।

सखा कही तुम्ह नीकि उपाई। करिअ दैव जौं होय सहाई ॥
मंत्र न येह लछिमन मन भावा। राम बचन सुनि अति दुख पावा ॥१॥

अर्थ : रामजी ने कहा : सखे ! तुमने उपाय तो अच्छा बताया। यदि दैव सहाय हों तो किया जाय। यह मन्त्र लछिमनजी को नहीं अच्छा लगा और रामजी का वचन सुनकर बहुत ही दुःख हुआ।

पहिले निकाई की प्रशंसा तत्पश्चात् मतभेद कथन की रीति है। यथा : सखा नीति तुम नीक बिचारी। मम प्रण सरनागत भयहारी। सरकार पहिले उपाय की उपादेयता की प्रशंसा करते हैं। १. साम सब उपायों में श्रेष्ठ है। २. अपने मर्म को समुद्र ही ठीक जानता है। ३. इसमें हिंसा भी नहीं है। पर यह उपाय निश्चित फलप्रसू नहीं है। दैव सानुकूल होने से कृतकार्यता हो सकती है। पूर्वजन्मकृतं कर्म तद्दैवमिति कथ्यते : पूर्वजन्म के किये हुए कर्म को ही दैव कहते हैं। प्रार्थना की

कृतकार्यता प्रार्थित्त की दया पर अवलम्बित है। उत्तम उपाय संशयास्पद होने पर भी करना चाहिए।

किसी ने विरोध न किया पर शत्रु की सीमा पर पहुँचकर विनय करना ठीक नहीं। ऐसी ही बात हुई। रावण को कहने का अवसर मिल गया : सहज भीरु कर बचन दृढ़ाई। सागर सन ठानी मचलाई। जो पुरुषार्थ से साध्य है उसके लिए विनय करना ठीक नहीं। अतः लक्ष्मणजी के मन में विभीषण का मन्त्र अच्छा न लगा। रामजी के स्वीकारात्मक उत्तर से तो लक्ष्मणजी अति दुःखी हुए। मन में सोचा कि पहिले भी इन्हें दैव का रोग लगा था। सो वसिष्ठजी के उपदेश से नष्ट हुआ : योगवासिष्ठ देखिये अब यहाँ कौन उपदेश देगा ? यह सोचकर लक्ष्मणजी को अत्यन्त दुःख हुआ।

नाथ दैव कर कवन भरोसा। सोखिअ सिंधु करिअ मन रोसा ॥
कादर मन कहुँ एकु अधारा। दैव दैव आलसी पुकारा ॥२॥

अर्थ : लक्ष्मणजी बोले : हे नाथ ! दैव का कौन सा भरोसा है ? मन में क्रोध कीजिये और समुद्र को सुखा डालिये। यह दैव तो कादर के मन का एकमात्र आधार है। आलसी दैव दैव पुकारते हैं।

व्याख्या : पूर्वजन्म के अनुकूल होने या न होने का कौन ठिकाना है। दैवं निहत्य कुरु पौरुषमात्मशक्त्या पूर्वजन्म के कर्म का भरोसा छोड़कर यावद्‌बुद्धिबलोदय पुरुषार्थ करना चाहिए। बिना पूछे भी लक्ष्मणजी समय आने पर बोल बैठते हैं। यथा : बिनु पूछे कछु कहहुँ गोसाईं। सेवकु समयँ न ढीठ ढिठाई। इसी भाँति यहाँ भी मन्त्र कहते हैं कि मन में विनय को स्थान न देकर क्रोध को स्थान देना चाहिए। समुद्र को सुखा दीजिये। बानरी सेना पैदल पार हो जायगी।

तातस्य कूपोऽयमिति ब्रुवाणाः क्षारं जलं कापुरुषाः पिबन्ति। बाप का बनाया हुआ कुँआ है। यह सोचकर खारा पानी कादर लोग पीया करते हैं। सागर महाराज सगर का खुदाया हुआ है तो क्या हुआ ! यह कार्य में बाधक है। इसे सोखिये। पूर्वजन्म का पुण्य समुद्र को सलाह देने के लिए लाचार न करेगा। दैवेन देयमिति कापुरुषा वदन्ति : दैव देगा यह धारणा ही कादरोचित है। सरकार के स्वरूपानुकूल नहीं है। सरकार ने वीर सम्बोधन करके सम्मति माँगी सो कादरोचित सम्मति दी गयी। आलसी और कादर दोनों शब्द यहाँ समानार्थक माने गये।

सुनत बिहँसि बोले रघुबीरा। ऐसेइ करब धरहु मन धीरा ॥
अस कहि प्रभु अनुजहि समुझाई। सिंधु समीप गए रघुराई ॥३॥

अर्थ : यह सुनकर रघुवीर हँसकर बोले : ऐसा ही करूँगा। मन में धैर्य रक्खो। ऐसा कहकर छोटे भाई को समझाकर रघुनाथजी समुद्र के पास गये।

व्याख्या : रघुवीर हैं। वीरता के मन्त्र पर प्रसन्न हुए। लक्ष्मणजी की प्रकृति समझकर हँस पड़े। इन्हें विभीषण कादर जँचा। उसके मन्त्र को कादरतासूचक

बतलाते हैं। यहाँ से सरकार का विहँसना प्रारम्भ हुआ। लक्ष्मणजी से कहते हैं कि धैर्य धरो। तुम्हारा ही कहा करूँगा। हमारे यहाँ से विभीषण मन्त्र का अनादर न होना चाहिए नहीं तो संसार कहेगा कि विभीषण का मन्त्र ही ठीक नहीं होता था।

लक्ष्मणजी को अति दुःख हुआ था। अतः पहिले उन्हें समझाया। यथा :

सिंधु सोखिवे ते यथा, विश्व नाश नहिं होय।
अपनो कारजहू सधै, जतन कीजिये सोय ॥१॥
यद्यपि एहि थल सामते, सरै न अपनो काज।
दण्डनीति धारण तदपि, उचित होय नहि आज ॥२॥
यहाँ बिभीषण मन्त्र को, जो आदर नहि होय।
यह न नीति जानै कछू, अवसि कहिहि सब कोय ॥३॥
रहिहि बिभीषण मान अरु, बनिहि नीति मर्याद।
सरिहि आपनो काजहू, ताते तजिअ बिषाद ॥४॥

तब अकेले समुद्र के निकट गये। तीर पर तो उतरे ही थे अब जल के निकट गये। सेवकों ने जहाँ अनशन ठाना था आज कृपालु स्वामी भी वहीं अनशन कर रहे हैं।

प्रथम प्रनामु कीन्ह सिरु नाई। बैठे पुनि तट दर्भ डसाई ॥

शुकसारण की कथा

जबहिं बिभीषनु प्रभु पहिं आए। पाछे रावन दूत पठाए ॥४॥

अर्थ : पहिले सिर नवाकर प्रणाम किया। फिर किनारे पर कुशा बिछाकर बैठ गये। ज्योंही विभीषण प्रभु के पास आये थे त्योंही रावण ने उनके पीछे दूत भेजे थे।

व्याख्या : कुलगुरु भाव से सिर झुकाकर प्रणाम किया। अनशन के लिए अथवा मुनिवृत्ति के लिए कुशा बिछाकर बैठ गये। तीन दिन तक सरकार ने अनशन किया। यथा : तीसरे उपाय वनवास सिंधु पास सो समाज महराज जू के एक दिन दान भो। मुझे सन्तरण का उपाय बताइये। मार्ग दीजिये : यही विनय है।

रावण ने यह सोचकर कि ऐसे समय में विभीषण को निकाला है कि कोई नीतिज्ञ इसको स्थान नहीं दे सकता। देखना चाहिए कि इसके साथ कैसा व्यवहार उस ओर से होता है ? सेना कैसी है ? राम लक्ष्मण की क्या दशा है ? इस पार कैसे आते हैं ? विभीषण के जाने पर सबका ध्यान उसी की ओर आकर्षित होगा। ऐसे समय सेना में प्रवेश करने में दूत को भी सुभीता होगा। अतः रावण ने दूत भेजा।

दो. सकल चरित तिन्ह देखे, धरे कपट कपि देह।
प्रभु गुन हृदय सराहहिं, सरनागत पर नेह ॥५१॥

अर्थ : कपट से वानर का शरीर धारणकर उन्होंने सब चरित्र देखे। प्रभु के गुण हृदय से सराहने लगे कि शरणागत पर इतना प्रेम है।

व्याख्या : कृपारहित हिंसक सब पापी लङ्का में बसते थे। अतः रावण के दूत बन्दर बन गये। बानरी सेना में मिलेजुले सब चरित्र देख रहे हैं। शरणागत विभीषण पर इतना स्नेह कि उसके आने पर स्वागत के लिए स्वयं प्रभु उठ खड़े होते हैं हृदय लगाते हैं। भक्ति वरदान देते हैं। लङ्का का राज्य देते हैं। अब भाई की बात हटाकर विभीषण की बात रक्खी जा रही है। मन में सराहना करते हैं कि मालिक हो तो ऐसा हो। बोलते नहीं कि कहीं स्वरभेद से बन्दर पहिचान न लें।

प्रगट बखानहिं राम सुभाऊ। अति सप्रेम गा बिसरि दुराऊ ॥
रिपु के दूत कपिन्ह तब जाने। सकल बाँधि कपीस पहिं आने ॥१॥

अर्थ : रामजी के स्वभाव की प्रशंसा प्रकट रूप से करने लगे। अत्यन्त प्रेम में छिपाव भूल गये। तब बन्दरों ने पहिचाना कि ये शत्रु के दूत हैं। उन्हें बाँधकर बन्दरों के राजा के पास ले आये।

व्याख्या : पहिले गुण का बखान हृदय में करते थे। प्रेम बढ़ा तब स्वभाव का बखान स्पष्ट रूप से करने लगे। पर वानरी भाषा में बखान कर रहे थे। अब प्रेम और अधिक बढ़ा तो कपट जाता रहा। कपट के हटते ही राक्षसी शरीर प्रकट हो गया और वही भाषा भी बोलने लगे। रामजी के स्वभाव के जानकार में कपट रह नहीं सकता। यथा : उमा राम सुभाउ जेहि जाना। ताहि भजन तजि भाव न आना। प्रेमाधिक्य में भी कपट नहीं रह जाता। यथा : निज तनु प्रगटि प्रीति उर छाई।

पहिले बन्दरों ने उन्हें अपना ही भाई बन्धु समझा था। जब वे दुराव भूल गये और उनका असली देह प्रकट हो गया तब बन्दर जान पाये कि ये शत्रु के भेदिया हैं। यहाँ दूत शब्द भेदिया के अर्थ में प्रयुक्त है। अपराधी को बाँधकर ले जाने की प्रथा है। फिर कहीं बन्दर बनकर सेना में घुस जाय तो इस सेना समुद्र में पता चलना कठिन हो जायगा। इसलिए भी उन्हें बाँधकर राजा सुग्रीव के पास ले गये।

कह सुग्रीव सुनहु सब बानर। अंग भंग करि पठवहु निसिचर ॥
सुनि सुग्रीव बचन कपि धाए। बाँधि कटक चहुँ पास फिराए ॥२॥

अर्थ : सुग्रीव ने कहा सब बानरो ! सुनो राक्षस को अंग भंग करके भेज दो। सुग्रीव के वचन सुनकर बानर दौड़े। उन्हें बाँधकर सेना के चारों ओर घुमाया।

व्याख्या : सुग्रीवजी ने निश्चय किया कि जैसा व्यवहार शत्रु की ओर से मेरे दूत हनुमान्‌जी के साथ हुआ है वैसा ही उसके दूत के साथ होना चाहिए। रावण

ने आज्ञा दी थी कि अंग भंग करि पठवहु बन्दर। अतः सुग्रीवजी आज्ञा देते हैं कि अंग भंग करि पठवहु निसिचर। सुग्रीवजी की उसके वध की इच्छा नहीं थी। इसलिए उसके किसी अंग विशेष के जलाने की आज्ञा नहीं दी। दूसरी बात यह थी कि रावण ने कहा था कि पूँछहीन बानर तहँ जाइहि। तब सठ निज नाथहि लेई आइहि। सो वह तो अपने नाथ को यहाँ तक ले आया। अब यह अंगहीन होकर जाय और अपने मालिक को इस पार ले आवे।

पुलिस के काम करनेवाले वन्दर दूसरे थे और दण्ड देनेवाले वन्दर दूसरे थे। आज्ञा सुनते ही दण्ड देनेवाले दौड़ आये। अतः फिर से बाँधना कहते हैं। पहिले का बन्धन ऐसा था जिसमें भाग न जाय। दूसरा बन्धन ऐसा हुआ जिसमें दण्ड देते समय बाधा न दे सके। हनुमान्‌जी के लिए कहा गया है कि नगर फेरि पुनि पूँछ प्रचारी। अतः इन्हें बाँधि कटक चहुँ पास फिराए। जिसमें कटक सावधान हो जाय कि रावण की ओर से गुप्तचर छूटे हुए हैं।

बहु प्रकार मारन कपि लागे। दीन पुकारत तदपि न त्यागे ॥
जो हमार हर नासाकाना। तेहि कोसलाधीस कै आना ॥३॥

अर्थ : वानर उन्हें अनेक प्रकार से मारने लगे। वे दीन होकर पुकारते थे। फिर भी उन्हें नहीं छोड़ा। दूत चिल्लाये जो हमारा नाक कान काटेगा उसे कोसलाधीश की सौगन्ध।

व्याख्या : यद्यपि सुग्रीवजी की स्पष्ट आज्ञा नहीं है तथापि सब वानर हनुमान्‌जी का बदला ले रहे हैं। हनुमान्‌जी के साथ लंका में यह बरताव हुआ था कि कौतुक कहँ आए पुरबासी। मारहिं चरन करहिं बहु हाँसी। अतः इधर बन्दर लोग बहुत प्रकार से मारने लगे। थप्पड़ घूँसा लात और पूँछों की ऐसी मार पड़ी कि गुप्तचर दीन होकर चिल्लाने लगे फिर भी छोड़ा नहीं। आज्ञापित दण्ड के लिए विचार करने लगे कौन सा अंग ऐसा भंग किया जाय कि जिसमें इनके लंका लौटने में बाधा न हो। निश्चय हुआ कि राक्षसों को पूँछ तो होती नहीं। इनके नाक कान बेकार अंग हैं और इन्हें प्रिय भी अधिक हैं। अतः इनके नाक कान काट लेना चाहिए।

महाजनो येन गतः सः पन्थाः। बड़े लोग जिधर से गये हों वही रास्ता है। सो लक्ष्मणजी ने सूर्पणखा का नाक कान काटा था। वही रास्ता हम लोगों को भी ग्रहण करना चाहिए। यही सम्मति स्थिर हुई। दूतों ने सोचा कि किष्किन्धाधीश की आज्ञा यदि टल सकती है तो कोसलाधीश की ही आज्ञा से टल सकती है और कोसलाधीश का स्वभाव अति कोमल है। वे निश्चित कृपा करेंगे अथवा उन्हें यह भी आशा है कि बन्दरों में ऐसी भक्ति है कि वे कोसलाधीश की शपथ दिलाने पर सम्भव है कि नाक कान न काटें। उन गुप्तचरों को अंग भंग स्वीकार है नाक कटाना स्वीकार नहीं। अतः उन सबों ने कोसलाधीश की दोहाई मचायी।

सुनि लछिमन सब निकट बोलाए। दया लागि हँसि तुरत छोड़ाए ॥
रावन कर दीजेहु यह पाती। लछिमन बचन बाँचु कुलघाती ॥४॥

अर्थ : सुनकर लक्ष्मणजी ने सबको निकट बुलाया। दया लगी इसलिए हँसकर तुरन्त छुड़ा दिया : उनसे कहा यह चिट्ठी रावण के हाथ देना। कहना कि रे कुलघातक ! लक्ष्मण के शब्दों को बाँच।

व्याख्या : दीन पुकार सुनकर लक्ष्मणजी को दया आयी। दूतों को छुड़ाना चाहते हैं। उसी समय चिट्ठी लिखा तब से दूतों ने कोसलाधीश की दुहाई दी। सरकार संयम में हैं बोलेंगे नहीं। उनकी दोहाई देनेवाले को दण्ड नहीं मिलना चाहिए। अन्य पर दया आने से करुणा और शत्रु पर दया आने से हँसी आती है। सो लक्ष्मणजी ने मारनेवालों और मार खानेवालों सभी को बुलाया। दोहाई देनेवालों का बन्धन देख नहीं सकते। अतः बन्ध और दण्ड दोनों से छुड़ा दिया। बन्दर लोग कपीश की आज्ञा से लक्ष्मणजी की आज्ञा को बड़ी मानते हैं। उनकी आज्ञा से उन दूतों को बन्धन से मुक्त कर दिया और उनका नाक कान भी न काटा। उधर से छोटा भाई शरण आया। इस नाते इधर छोटे भाई की ओर से पत्र दिया जा रहा है। यद्यपि पत्र बहुत ही छोटा है फिर भी उसका तात्पर्य जबानी भी कहला भेजते है कि तू कुलघाती है। तेरे अपराध से सम्पूर्ण राक्षसकुल का संहार हुआ चाहता है। लछिमन वचन का भाव यह है कि चुनौती देनेवाला तो मैं हूँ। यथा : ताके कर रावन कहुँ मनौ चुनौती दीन्ह। सो मेरा कुछ न बिगाड़ कर तू सरकार का अपराध कर बैठा।

दो. कहेहु मुखागर मूढ़ सन, मम संदेह उदार।
सीता देइ मिलहु न त, आवा कालु तुम्हार ॥५२॥

अर्थ : मेरा उदार सन्देश उस मूढ़ से जबानी कहना कि सीताजी को देकर मिलो नहीं तो तुम्हारा काल आगया।

व्याख्या : मूढ़ है कदाचित् चिट्ठी न पढ़े तो जबानी संदेसा कह देना। यह सन्देश उदारता के कारण भेजा जा रहा है भय के कारण नहीं। हरण करने का अपराध क्षमा कर दिया जावेगा। केवल सीता को देकर मिलो। लक्ष्मण तुम्हारा काल है सो आ गया। यथा : मोहि बिलोकु तोर मैं कालू। छोटे भाई के शरण आने से तुम्हें अवसर दिया जाता है। नहीं तो मैं चुनौती देनेवाला तुम्हारा काल हूँ। काल संदेश दे के नहीं आता।

तुरत नाइ लछिमन पद माथा। चले दूत बरनत गुन गाथा ॥
कहत राम जसु लंका आए। रावन चरन सीस तिन्ह नाए ॥१॥

अर्थ : लक्ष्मण के चरणों में मस्तक नवाकर गुणों की गाथा वर्णन करते हुए

दूत तुरन्त ही चल पड़े। रामजी का यश कहते हुए लंका में आये और रावण के चरणों में सिर नवाये।

व्याख्या : छुट्टी मिली, प्राण बचा, इसलिए कहते हैं कि तुरत चले अथवा उपकारी लक्ष्मणजी की आज्ञा पालन में तत्परता दिखलाते हैं। विदाई का प्रणाम है अथवा इन्हीं की कृपा से सकुशल घर जा रहे हैं। इसलिए कृतज्ञतासूचक प्रणाम है। कई दूत हैं अतः गुणगाथा आपस में वर्णन करते चले। सरकार के गुण ऐसे चित्त पर चढ़े हुए हैं कि कितनी मार खाने पर भी चित्त से नहीं उतरते अथवा लक्ष्मणजी ने छुड़ा दिया है। अतः दोनों भाइयों का गुणगाथा वर्णन करते चले।

अति प्रेम है। अतः लक्ष्मणजी की गुणगाथा कहकर फिर राम गुणगान करने लगे अथवा प्राण बचानेवाले का वर्णन करके जिसकी दोहाई के कारण रक्षा हुई उस रामजी के यश का वर्णन करने लगे। यश कथन समाप्त न हुआ और लंका पहुँच गये। हृदय में तो राम प्रेम है पर प्रभु हैं इसलिए रावण को प्रणाम किया।

बिहँसि दसानन पूछी बाता। कहसि न सुक आपनि कुसलाता ॥
पुनि कहु खबरि बिभीषन केरी। जाहि मृत्यु आई अति नेरी ॥२॥

अर्थ : दशानन ने हँसकर बात पूछी कि शुक! तू अपनी कुशल क्यों नहीं कहता? फिर विभीषण का समाचार सुना जिसके अत्यन्त निकट मृत्यु आगयी है।

व्याख्या : दसों मुखों से हँसे। इसलिए यहाँ दसानन कहा। चकित देखकर रावण हँसे कि एक : विभीषण तो यहाँ से उल्लू बनकर गया है और यह वहाँ से उल्लू बनकर आ रहा है। दूतों में प्रधान शुक से उसकी कुशल पूछता है। जिस कार्य के लिए भेजा था उसे पहिले न पूछ कर कुशल पहिले पूछने का अभिप्राय कि अपने कार्य से मुझे तुम्हारा कुशल अधिक प्रिय है। रावण के यहाँ नियम था कि आनेवाला स्वयं ही अपना कुशलादि कह दिया करता था। पर शुक प्रणाम करके चुप रह गया। अतः पूछता है कि तू अपनी कुशल क्यों नहीं कहता है? रूप पलटने पर भी कहीं पहिचाना तो नहीं गया?

दूसरा प्रश्न विभीषण विषयक है। वह तो शत्रु से जा मिला इसलिए उसकी खबर पूछता हूँ। शत्रु पक्ष की बात कहता था। तभी मृत्यु उसके निकट आ गयी थी। अब तो शत्रु से जा मिला है अतः अति निकट मृत्यु आ गयी है।

करत राजु लंका सठ त्यागी। होइहि जब कर कीट अभागी ॥
पुनि कहु भालु कीस कटकाई। कठिन काल प्रेरित चलि आई ॥३॥

अर्थ : शठ ने राज्य करते हुए लंका को त्याग दिया। अभागा अब जव का कीड़ा बनेगा फिर भालु और वानरों की सेना का हाल कह जो कठिन काल की प्रेरणा से यहाँ चली आयी है।

व्याख्या : वह लंका में राज्य भोगता था। पर ऐसा शठ है कि उसे छोड़कर चला गया। पर शत्रु पक्ष की गीत गाता ही गया। शत्रु पक्ष की बात कहने का तात्पर्य ही यही था कि उसे लंका में रहना मंजूर नहीं था। वह अभागी है। सम्पत्ति छोड़कर विपत्ति भोगने गया है। कोई घुन पीसने नहीं जाता। पर जव के पीसने के समय घुन आप ही पिस जाता है। जब हम लोग शत्रु का संहार करने लगेंगे तो शत्रु मध्यवर्ती होने से वह भी मारा जायगा।

तीसरा प्रश्न भालु कीस की सेना विषयक है। उनके सामने कैसा उत्तर देना चाहिए इसका इशारा रावण स्वयं देते जा रहे हैं। कहते हैं कि देखो काल कैसा कठिन है कि उन्हें हम लोगों के पास हांके लिए चला आ रहा है। यथा : आए कीस काल के प्रेरे। छुधावन्त सब निसिचर मेरे।

जिन्हके जीवन कर रखवारा। भएउ मृदुल चित सिंधु बिचारा ॥
कहु तपसिन्ह कै बात बहोरी। जिन्हके हृदयँ त्रास अति मोरी ॥४॥

अर्थ : जिन्हके जीवन का रक्षक कोमल चित्तवाला समुद्र बन गया है। फिर उन तपस्वियों की बात बता जिनके हृदय में मेरा बड़ा डर है।

व्याख्या : जितने बिचारे दुखिया होते हैं वे मृदुलचित्त होते हैं। समुद्र का हटने बढ़ने में कोई चारा नहीं। अतः बिचारा है। कठोर चित्त होता तो वानरों को यहाँ आगे के लिए रास्ता देता और उन्हें राक्षस खा जाते। अतः वही बिचारा मृदुलचित्त रक्षक हो गया।

चौथा प्रश्न राम लक्ष्मण विषयक है। जिनका नाम रावण नहीं लेते तपसी कहते हैं। भालु कीश तो पशु हैं। जिधर हांक दो उधर चले जाँय। उन्हें समझ भी नहीं। इसलिए त्रास भी नहीं। अत्यन्त त्रास तो तपस्वियों को है। फिर स्त्री तो हरण कर ही लिया। अब कहीं मरवा न डाले। अतः कुछ न हो सका तो बन्दर भालु ही बटोरे हैं।

दो. की भइ भेंट कि फिर गये, श्रवन सुजसु सुनि मोर।
कहसि न रिपु दल तेज बल, बहुत चकित चित तोर ॥५३॥

अर्थ : उनसे तेरी भेंट भी हुई या वे मेरा सुयश सुनकर ही लौट गये? शत्रु सेना का तेज और बल बतलाता क्यों नहीं? तेरा चित्त चकित हो रहा है।

व्याख्या : विभीषण से उन लोगों की भेंट हुई कि वे सब मेरा सुयश सुनकर ही भाग गये। यदि नहीं भागे तो शत्रु सेना का तेज और बल बतला। शुक कुछ उत्तर नहीं देता। इस पर पूछता है कि तू कुछ कहता क्यों नहीं? तू बहुत चकित मालूम होता है। मालूम होता है कि यहाँ सुना कि : सिन्धु पार सेना सब आई। वहाँ जाकर देखा कि कहीं कुछ भी नहीं। सब भाग गये थे। इसलिए तू चकित है कि वे सब गये कहाँ? रावण ने चार प्रश्न पूछे। हनुमान्‌जी से भी चार ही प्रश्न पूछा था।

नाथ कृपा करि पूँछेहु जैसें। मानहु कहा क्रोध तजि तैसें ॥
मिला जाइ जब अनुज तुम्हारा। जातहिं रामतिलक तेहि सारा ॥१॥

अर्थ : दूत ने कहा : हे नाथ ! आपने जिस भाँति कृपा करके पूछा उसी भाँति क्रोध छोड़कर मेरा कहना मानिये। जब आपका छोटा भाई जाकर रामजी से मिला। पहुँचते ही रामजी ने उसे राजतिलक कर दिया।

व्याख्या : रावण चार प्रश्न पूछते हैं। हनुमान्‌जी से भी चार ही प्रश्न पूछे थे। दूत से भी चार ही प्रश्न किये। अङ्गद के जाने पर भी चार ही प्रश्न करेंगे। यहाँ कहसि न सुक आपन कुसलाता से उपक्रम करके बहुत चकित चित्त तोर से प्रश्नों का उपसंहार किया। इससे दूत को परिज्ञात हुआ कि स्वामी की सेवक पर बड़ी कृपा है। सब कार्य पीछे पड़ गये। मेरी कुशल प्रधान हो गयी। उसने कहा कि मुझे भी आपके कुशल की बड़ी चिन्ता है। मैं कुशल के लिए कुछ कहूँगा। उसे भी क्रोध छोड़कर मानिये। भाव यह कि वह अप्रिय सत्य है। पर हित की बात है। सुनने पर आपको क्रोध आ जाना सम्भव है : शुक मन्त्री था। दूत होकर गया था। अतः मानौ कहा। ऐसा कहने का अधिकार था।

पहिले प्रश्न का उत्तर न देकर दूसरे प्रश्न का उत्तर पहिले देता है। स्वामी की बड़ाई है कि पहले कुशल पूछते हैं। पर मुख्य प्रयोजन को ही पहिले निवेदन करना चाहिए। दूसरी बात यह कि कुशल का अन्दाज तो इन्हें मिल ही गया। स्वयं ही कहते हैं कि : बहुत चकित चित तोर। अब जिसका अन्दाज इन्हें नहीं है वही पहले सुनाना चाहिए। मिला जाइ जब अनुज तुम्हारा। कहने का भाव यह कि उसकी ओर से भेद नीति का प्रयोग न होने पर भी तुम्हारा अनुज जाकर मिला। शत्रुपक्ष के लिए कैसी वाञ्छनीय घटना थी और अपनी ओर से कैसी कच्ची बात हुई। यह आप ही समझिये। जातहि कहने का भाव यह कि न कोई बातचीत हुई न परस्पर में कोई समय : करार स्थिर हुआ और रामजी ने उन्हें तिलक कर दिया। अब तुम्हारा भाई ही संग्राम में अग्रणी हुआ। रामजी की उदार और नीति निपुणता का परिचय देता है।

रावन दूत हमहि सुनि काना। कपिन्ह बाँधि दीन्हें दुख नाना ॥
श्रवन नासिका काटइ लागे। राम सपथ दीन्हे हम त्यागे ॥२॥

अर्थ : हम रावण के दूत हैं। ऐसा कानों से सुनकर बन्दरों ने हमें बाँधकर बहुत कष्ट दिये। नाक कान काटने लगे। रामजी की शपथ दी तब जाकर मुझे छोड़ा।

व्याख्या : बन्दरों ने मुझे पकड़ लिया। पर रावण का दूत है यह बात विभीषणजी ने बतलायी। विभीषण का आपके विरोध में कार्य आरम्भ हो गया। अब अपनी कुशल कहता है : बहु प्रकार मारन कपि लागे। दीन पुकारत तदपि न त्यागे। किसी ने मारने की आज्ञा न दी : रावण दूत सुनते ही मार पड़ने लगी।

उन्हें मालूम है कि दूत की हमारे यहाँ क्या गति होती है। वही व्यवहार वे मेरे साथ करने लगे।

उग्रदण्ड देने को प्रस्तुत हुए। पर राम की शपथ का इतना मान है कि हम छूट गये। वानरों की स्वामिभक्ति और विपक्ष की उदारता पर चकित हूँ। आपके नाम से नाक कटती थी। रामजी के नाम से बच गयी। इतने ही से उसके सुयश का परिचय जान लीजिये। जिसके विषय में आप कहते हैं कि : की भइ भेट कि फिरि गये श्रवण सुजस सुनि मोर।

पूँछिहु नाथ राम कटकाई। बदन कोटि सत बरनि न जाई॥
नाना बरन भालु कपि धारी। बिकटानन बिसाल भयकारी॥३॥

अर्थ : हे नाथ ! आपने श्री रामजी की सेना पूछी। सो वह तो सौ करोड़ मुख से भी वर्णन नहीं की जा सकती। वानर और भालुओं की सेना अनेक रंग की है। उनके मुख विकट और शरीर विशाल और भयानक हैं।

व्याख्या : तीसरे प्रश्न पुनि कहु भालु कीस कटकाई का उत्तर देते हैं कि सौ कोटि मुख से वर्णन नहीं की जा सकती। विभीषण का समाचार कहा। अपनी कुशल सुनायी। पर भालु कीस कटकाई वर्णनातीत है। निशिचर सेना तो उसके सामने नगण्य हैं। यही सब समझकर चकित हूँ।

रंग बिरंगी सेना है। मेरे यहाँ केवल काली सेना है। यथा : वीर तमीचर सब अति कारे। नाना बरन बलीमुख भारे। यहाँ के राक्षस क्या विकटानन विशाल भयकारी होंगे जैसे वे सब विकटानन विशाल भयकारी हैं। योद्धाओं का ऐसा होना गुण है। विपक्षी देखकर ही डर जाते हैं। इसी से सेना की भयंकरता कहा।

जेहि पुर दहेउ हतेउ सुत तोरा। सकल कपिन्ह महँ तेहि बलु थोरा॥
अमित नाम भट कठिन कराला। अमित नाग बलु बिपुल बिसाला॥४॥

अर्थ : जिसने नगर को जलाया और आपके पुत्र को मारा उसका बल तो सब वानरों की अपेक्षा कम है। असंख्य नामवाले बड़े ही कठोर और भयंकर योद्धा हैं। उन्हें असंख्य हाथियों का बल है और वे बड़े ही विशाल हैं।

व्याख्या : असाध्य रोग देखकर तीव्रातितीव्र मात्रा का प्रयोग उपयुक्त है। लंका जलानेवाले और अक्षहन्ता के पुरुषार्थ में तो सन्देह को स्थान नहीं है। परन्तु उसको तो वहाँ गिनती ही नहीं है। न उससे कोई राय पूछी जाती है न वह किसी काम में आगे दिखाई पड़ता है। चुप्पी साधे बैठा रहता है। यहाँ निर्बलों में वह अपना पराक्रम दिखला गया। वहाँ बलवानों में उसकी एक नहीं चलती।

थोड़े होते तो नाम याद कर लेता। पहिले दूत ने सैनिकों का वर्णन किया। बिकटानन विसाल भयकारी। अब सेनापतियों का वर्णन करता है कि भट कठिन कराल हैं। वहाँ बल की नाप हस्तिबल से है अश्वबल से नहीं। सैनिक विशाल भयकारी हैं और सेनापति बल विपुल बिसाला हैं। इससे बल कहा।

दो. द्विबिद मयंद नील नलु, अंगद गद बिकटासि ।
दधिमुख केहरि निसठ सठ, जामवंत बलरासि ॥५४॥

अर्थ : द्विविद मयन्त नील नल अंगद गद विकटास्य दधिमुख केसरी निशठ शठ और जामवन्त ये बल की राशि हैं ।

व्याख्या : सेनापतियों में भी अतिबलवालों का पता लाया हूँ । वे बारह हैं : द्विविद मयन्द नील नल इत्यादि । हमारे यहाँ पाँच ही हैं : कुमुख अकंपन कुलिसरद धूम्रकेतु अतिकाय । एक एक जग जीति सक ऐसे सुभट निकाय । इन बारहो में हनुमान्‌जी को नहीं गिनाया । उनके विषय में कह चुका है कि सकल कपिन्ह मह तेहि बल थोरा ।

ए कपि सब सुग्रीव समाना । इन्ह सम कोटिन्ह गनइ को नाना ॥
रामकृपा अतुलित बल तिनही । तृन समान त्रैलोकहि गनहीं ॥१॥

अर्थ : ये सब बन्दर बल में सुग्रीव के समान हैं और इनके जैसे करोड़ों हैं । कहाँ तक गिना जा सकता है । रामजी की कृपा से उन्हें बेतौल बल है । वे तीनों लोक को तृण के समान गिन रहे हैं ।

व्याख्या : समान शब्द का प्रयोग ईषत् न्यून के अर्थ में होता है अर्थात् ये सुग्रीव से बल में कुछ ही कम हैं और इनसे ईषत्न्यून करोड़ों हैं । इसलिए नाना कहा : अतः गिने नहीं जा सकते । यथा : बानर कटक उमा मैं देखा । सो मूरख जो करन चह लेखा ।

यदि कहा जाय कि बन्दरों में अमित नागबल कहाँ से आया ? इस पर कहता है कि रामकृपा से सब कुछ सम्भव है । यथा : रामकृपा बल पाइ कपिंदा । भए पक्षजुत मनहु गिरिंदा । कुमुख अकंपनादि तो एक एक जग जीत सकते हैं । पर ये तो त्रैलोक्य को तिनका गिन रहे हैं । यहाँ तक दल का बल कहा । अब तेज कहते हैं ।

अस मैं श्रवन सुना दसकंधर । पदुम अठारह जूथप बंदर ॥
नाथ कटक महँ सो कपि नाहीं । जो न तुम्हैं जीतै रन माहीं ॥२॥

अर्थ : हे दशकन्धर ! मैंने ऐसा कानों से सुना है कि अठारह पद्म तो केवल बानरों के यूथपति हैं । हे नाथ ! उस सेना में ऐसा कोई नहीं है जो आपको रण में न जीत लें ।

व्याख्या : अब संख्या बतलाता है कि मैं गिन तो न सका पर उन लोगों ने अपनी गिनती कर रक्खी है । बातचीत करने पर पता चला कि व्यक्तियों की तो गणना नहीं है पर यूथपों की गणना है । वे अठारह पद्म हैं । श्रवण सुना कहने का भाव यह है कि कहने सुनने में भूल हो सकती है पर जो सुना है सो कहता हूँ :

एतेषां गणना नवद्वयमहापद्मावधिर्वर्णिता : अग्निवेशरामायणे। सचमुच कहने सुनने में भूल हो गयी। अग्निवेश रामायण में अठारह महापद्म संख्या दी हुई है।

कठिन काल प्रेरित चलि आई का उत्तर देते हुए कहता है कि हम लोगों का जीतना कौन सी बड़ी बात है। तृण को कुलिश और कुलिश को तृण बनानेवाले रामजी की कृपा से उनमें इतना बल आगया है कि तुम्हें युद्ध में जीत लें। कठिन काल प्रेरित चलि आई कहना ठीक है। पर वह काल राक्षस कुल का विरोधी हो गया है।

परम क्रोध मीजहिं सब हाथा। आयसु पै न देहिं रघुनाथा॥
सोखहिं सिंधु सहित झष ब्याला। पूरहिं नत भरि कुधर बिसाला॥३॥

अर्थ : सबके सब क्रोध से हाथ मीजते हैं पर श्रीरघुनाथजी आज्ञा नहीं देते। वे मछलियों और सर्पों के साथ समुद्र सोख लेंगे नहीं तो बड़े बड़े पर्वतों को लेकर पाट देंगे।

व्याख्या : तिसपर वे परम क्रुद्ध हैं। प्रश्न उठता है कि तब वे समुद्र के किनारे ठहरे क्यों हैं। आते क्यों नहीं ? इस पर कहता है कि आने के लिए हाथ मीजते हैं। सामर्थ्य रहते जब बड़े की आज्ञा से रुकना पड़ता है तब लोग हाथ मीजते हैं। वहाँ अभी रघुनाथजी की आज्ञा नहीं है।

यदि कहिये कि आज्ञा होकर ही क्या होगा ? जिन्हके जीवन कर रखवारा। भयउ मृदुल चित सिंधु बिचारा। समुद्र कैसे तरेंगे ? इस पर कहता है कि मछली और सर्पों के सहित वे समुद्र को ही पी जावेंगे। मछली और सर्पों को दाँत से भी न कुचलेंगे। इतने भारी-भारी हैं और यदि इस भाँति पूरा शोषण न कर सके तो शेष को पर्वतों से पाट देंगे। समुद्र उन्हें नहीं रोक सकता।

मर्दि गर्द मिलवहिं दससीसा। ऐसेइ बचन कहहिं सब कीसा॥
गर्जहिं तर्जहिं सहज असंका। मानहुँ ग्रसन चहत हहिं लंका॥४॥

अर्थ : रावण को मसलकर धूल में मिला देंगे। सब बानर ऐसा ही वचन बोल रहे हैं। सब सहज हो निडर हैं। गरजते हैं और डपटते हैं मानो लङ्का ही निगल जाना चाहते हैं।

व्याख्या : उत्साह कहता है कि ऐसा साहस बढ़ा हुआ है कि प्रत्येक यही कहते हैं कि मैं ही दसशीश को रगड़कर मिट्टी में मिला दूँगा। एक शीश का भी पता न चलेगा। यहाँ तो केवल आप ही अशङ्क हैं। यथा : तहँ रह रावण सहज असंका। वहाँ सभी सहज अशङ्क हैं। यथा : गूलर फल समान तव लंका। बसहु मध्य तुम जंतु असंका। मैं बानर फल खात न बारा। आयसु दीन्ह न राम उदारा। जो भाव अंगदजी का है वही सब बन्दरों का है। प्रत्येक बन्दर आपको जय करने का साहस कर रहा है। राक्षसी सेना को वे क्या गिनते हैं। आपके सुयश सुनने से वे लौटनेवाले नहीं हैं।

उत्साह इतना बढ़ा हुआ है कि उस पार से ही सब गरजते तड़पते हैं।

दो. सहज सूर कपि भालु सब, पुनि सिरपर प्रभु राम।
रावन काल कोटि कहुँ, जीति सकहिं संग्राम ॥५५॥

अर्थ : सब बानर भालू सहज शूरवीर हैं। फिर उनके सिरपर प्रभु श्रीरामजी हैं। हे रावण ! वे संग्राम में करोड़ों काल को भी जीत सकते हैं।

व्याख्या : गिरि तरु नख आयुध सब बीरा। हरि मारग चितवहिं मति धीरा। अतः सहज शूर हैं। रामजी ऐसे प्रभु की उनपर छाया है। अपने जीते जाने पर आश्चर्य न करिये। वे कोटि कोटि काल को जीत सकते हैं। उन्हें काल प्रेरित न समझिये। संग्राम करने का भाव यह कि जीव मात्र ही काल के वश हैं। अंड कटाह अमित लयकारी। काल सदा दुरतिक्रम भारी सो कभी न कभी काल के वश सभी को होना है। मैं उस समय की बात नहीं कहता। इस समय संग्राम में वे रामकृपा से काल को जीत सकते हैं। यहाँ तक दलका तेज कहा।

राम तेज बल बुधि बिपुलाई। सेष सहस सत सकहिं न गाई ॥
सक सर एक सोषि सत सागर। तव भ्रातहि पूछेउ नय नागर ॥१॥

अर्थ : श्रीरामचन्द्र के तेज बल और बुद्धि की अधिकता को लाखों शेष भी नहीं गा सकते। वे एक ही बाण में सौ समुद्रों का शोषण कर सकते हैं। परन्तु नीतिनिपुण रामजी ने तुम्हारे भाई से उपाय पूछा।

व्याख्या : कहु तपसिन्ह कै बात बहोरी का उत्तर देते हुए केवल रामजी का वृत्तान्त कहता है। लक्ष्मणजी का वृत्तान्त चिट्ठी कहेगी। रावण ने केवल तेज बल पूछा, क्योंकि रावण के यहाँ केवल बल की ही प्रधानता मानी जाती है। परन्तु यह पहिले उनकी बुद्धि की प्रशंसा करता है। सरकार की बुद्धि देखकर चकित है। जितनी बातें उसने रामदल में देखीं वे सब चकित करनेवाली थीं। सरकार के अहोरात्र के द्रष्टा तो शेष ही हैं। अतः अन्य वर्णन करनेवालों का नाम न लेकर शेष का ही नाम लेता है। शेष को सहस्रमुख हैं। अतः वर्णन करने की सामग्री बेजोड़ है। सौ लाख शेष भी अपने हजारों मुख से वर्णन नहीं कर सकते अर्थात् रामजी की बुद्धि सर्वथा अवर्णनीय है।

अब तेज और बल कहता है। एक बाण सौ समुद्र सोख सकता है। यथा : कोटि सिंधु सोषक तव सायक। यहाँ सायक बहुवचन के अर्थ में प्रयुक्त है। अतः विभीषण तथा शुक की उक्तियों में कोई भेद नहीं है। फिर भी ऐसे नयनागर हैं कि तुम्हारे भाई से सम्मति पूछते हैं।

तासु बचन सुनि सागर पाहीं। मागत पंथ कृपा मन माहीं ॥
सुनत बचन बिहँसा दससीसा। जौं असि मति सहाय कृत कीसा ॥२॥

अर्थ : उसके वचन सुनकर वे समुद्र से मार्ग माँग रहे हैं। उनके मन में कृपा

है। दूत के ये वचन सुनते ही रावण हँसा कि जब ऐसी बुद्धि है तभी तो बानरों को सहायक बनाया है।

व्याख्या : वहाँ विभीषणजी के वचन का आदर है। तुम्हारे यहाँ उनकी सुनवाई नहीं होती थी। उनका वचन मानकर जिसे एक बाण से सोख सकते हैं उससे विनय कर रहे हैं। उनके सैनिक तो झख ब्याल के सहित समुद्र सोखने को तैयार हैं। पर सरकार के मन में कृपा है अतः रास्ता माँग रहे हैं। वे भय से विनय नहीं करते। कृपा से विनय कर रहे हैं।

रावण बात सुनकर समझने का यत्न नहीं करते। छिद्रान्वेषण करते हैं। इतनी बातें शुक ने ऐसी सावधानता से कही कि कहीं छिद्र न मिला। पर मागत पंथ कहते ही उसे बोलने का अवसर मिल गया। हँसकर सब बातें उड़ा दीं। कहता है कि बन्दर न किसी की सहायता कर सकते हैं और उनसे कोई सहायता चाहता भी नहीं। क्योंकि किसी से उनका मेल नहीं खाता। पर तपस्वी की बुद्धि बन्दरों की बुद्धि से मेल खा गयी तभी बन्दर सहायक हुए। समानशीलव्यसनेषु मैत्री अथवा समुद्र जड़ है। उससे पन्थ माँगना भी उतना ही मूर्खतापूर्ण कार्य है जितना कि बन्दरों की सेना इकट्ठा करना है। न तो समुद्र रास्ता ही देगा और न बन्दरों की सेना युद्ध ही कर सकेगी।

सहज भीरु कर बचन दिढाई। सागर सन ठानी मचलाई॥
मूढ मृषा का करसि बड़ाई। रिपु बल बुद्धि थाह मैं पाई॥३॥

अर्थ : स्वाभाविक डरपोक के वचन को पुष्ट करके समुद्र से ही मचल बैठा है। अरे मूर्ख ! तू झूठी बड़ाई क्या करता है। शत्रु के बल बुद्धि का थाह मुझे लग गया।

व्याख्या : बुद्धि की निन्दा करके अब तेज बल की निन्दा करता है। एक भीरु वह जो समुद्र से मचलने की सम्मति दे और दूसरा भीरु वह है जो उसकी पुष्टि करे। मेरे यहाँ इसीलिए विभीषण की राय नहीं मानी जाती थी। क्योंकि सदा वह भीरुता की सम्मति देता था।

रावण ने कहा : तू तो है मूढ़। तुझे उसके बल बुद्धि का थाह न लगा। कहता है कि शेष सहस सत सकहिं न गाई अतः तेरी की हुई बड़ाई भी झूठी है। मुझे तो केवल तेरी बातों से थाह लग गया। थाह मैं लगाता हूँ। तू क्या लगावेगा ? तूने यही समझ लिया कि जलजन्तुओं पर दया करके रास्ता माँग रहे हैं।

सचिव सभीत बिभीषनु जाकें। बिजय बिभूति कहाँ जग ताकें॥
सुनि खल बचन दूत रिसि बाढ़ी। समय बिचारि पत्रिका काढ़ी॥४॥

अर्थ : जिसे विभीषण सा डरपोक मन्त्री हो, उसे जगत में विजय और विभूति कहाँ ? खल के वचन को सुनकर दूत का क्रोध बढ़ा। अवसर जानकर उसने चिट्ठी निकाली।

व्याख्या : विभीषण के साचिव्य से मेरा बड़ा नुकसान हुआ। लङ्का जल गयी। वह सभीत होकर यहाँ से भागा है, जो राय देगा कादरता ही की देगा। जिस राजा का मन्त्री कादर हो उसकी जीत हो ही नहीं सकती। विजय विभूति तो निर्भय का वरण करती हैं। वहाँ मालिक मन्त्री दोनों बेकाम हैं।

दूत को क्रोध तो रावण के हँसने पर ही आया था। अब खलता की बातें सुनकर क्रोध बढ़ा। खल का लक्षण ही यह है कि वचन वज्र जेहि सदा पियारो। सहस नयन परदोष निहारा। सरकार की निन्दा के वचन वज्र से लगे। देखा कि यह बातों से मन को रिझा रहा है। यही समय पत्र देने का है। अतः उत्तर न देकर चिट्ठी निकाली और उसे बँचवाकर सुनाने के लिए कहता है। जिसमें सारो सभा सुन ले कि इस बात का यही उत्तर है।

रामानुज दीन्ही यह पाती। नाथ बँचाइ जुड़ावहु छाती॥
बिहँसि बाम कर लीन्हीं रावन। सचिव बोलि सठ लाग बचावन॥५॥

अर्थ : रामजी के छोटे भाई ने यह चिट्ठी दी है। हे नाथ! इसे बँचवाकर छाती ठण्ढी कीजिये। रावण ने हँसकर उसे बायें हाथ से लिया और वह शठ मन्त्री को बुलाकर बँचवाने लगा।

व्याख्या : तासु अनुज काटे श्रुति नासा। सुनि तव भगिनि करहिं परिहासा। यहाँ रामानुज कहने से यही भाव है कि जिसने तुम्हारी बहन को नाक काटी है। रावण का क्रोध बढ़ा हुआ है। इसीलिए जुड़ावहु छातो कहता है। अथवा आपके अनुज वहाँ पधारे तो उनके अनुज ने भी मेल के लिए चिट्ठी भेजी है। यह हृदय को शीतल करनेवाली बातें हैं।

लक्ष्मणजी ने कहा था : रावण कर दीजेउ यह पाती। सो उसने रावण के हाथ में चिट्ठी दी। रावण हँसा कि समुद्र पार करने का कोई उपाय नहीं मिलता तब मेल करने चला है। वाम कर से लेना अनादर सूचक है। शठ है : मन्त्री से पढ़वाता है। जिसमें सब लोग सुनें कि उनका भाई भी डर गया है। समुद्र के व्यवधान से स्वयं न आ सका तो मेरे दूत के हाथ से चिट्ठी भेजता है।

दो. बातन्ह मनहि रिझाइ सठ, जनि घालसि कुल खीस।
राम बिरोध न उबरसि, सरन बिष्नु अज ईस॥
की तजि[1] मान अनुज इव, प्रभुपद पंकज भृंग।
होइ कि राम सरानल, खल कुल सहित पतंग॥५६॥

अर्थ : रे खल! केवल बातों से मन को रिझाकर कुल का नाश न कर। तू रामजी से विरोध करके विष्णु ब्रह्मा और महेश का शरण ग्रहण करके भी नहीं

१. यहाँ विकल्प अलङ्कार है।

बच सकेगा। या तो अभिमान छोड़कर छोटे भाई की भाँति प्रभु के चरण कमलों का भ्रमर बन नहीं तो रे खल! रामजी के बाणरूपी आग में परिवार सहित पतङ्ग हो।

व्याख्या : बातें बना बनाकर अपनी आत्मा को धोखा देना शठता की पराकाष्ठा है। इस दोष से तेरे कुल का सर्वनाश होगा। लक्ष्मणजी हनुमान्‌जी से सुन चुके हैं कि रावण ऐसी ही बातें किया करते हैं। अतः लिखकर चेतावनी देते हैं कि यह समय बातें बनाकर मन के रिझाने का नहीं है। तुम सबसे विरोध करके बच गये पर राम का विरोध कर बैठे अब नहीं बच सकते। केवल तुम्हारा ही नहीं सम्पूर्ण कुल का नाश उपस्थित है! यदि ब्रह्मा रुद्र का भरोसा हो तो उसे भी छोड़ो। दो की कौन कहे तीनों देव मिलकर भी तेरी रक्षा नहीं कर सकते। यथा : काहू बैठन कहा न ओही। राखि को सकै राम कर द्रोही।

अब तुम्हें दो गति हैं। भृङ्ग बनो या पतङ्ग बनो। यदि अभिमान नहीं छोड़ सकते तो कुल के सहित पतङ्ग बनोगे। यथा : निसिचर निकर पतंग सम रघुपति बान कृसानु। जननी हृदय धीर धरु जरे निसाचर जानु। आसक्त दोनों हैं भृङ्ग भी और पतङ्ग भी। सो भृङ्ग आनन्द से रस लेते हैं और पतङ्ग काल के मुख में पड़ते हैं। सो यथेच्छसि तथा कुरु : जैसी इच्छा हो वैसा करो।

सुनत सभय मन मुख मुसुकाई। कहत दसानन सबहि सुनाई॥
भूमि परा कर गहत अकासा। लघु तापस कर बाग बिलासा॥१॥

अर्थ : सुनते ही मन में भय हुआ। पर मुख से मुसकुराता हुआ दशानन सबको सुनाकर कहने लगा कि भूमि पर तो गिरा हुआ है और आकाश पकड़ना है। यह छोटे तपस्वी की बातचीत है।

व्याख्या : समय विचारि पत्रिका काढ़ी। सो समय की बात ऐसी बैठ गयी कि रावण भीतर से डर गया। बात सच्ची थी। रावण असली बात छिपाकर अपनी आत्मा को धोखा देता था। बड़ा अभिमानी है। फिर भी इस बार हँस न सका। नहीं तो हर एक बातों पर हँसता था। यथा : बिहँसि दसानन पूछी बाता। सुनत बचन बिहँसा दससीसा। बिहँसि बाम कर लीन्ही रावन। इस बार चेष्टा करने पर भी ओष्ठ विकास हुआ हृदय विकास न हो सका। यह मनस्यन्यत् वचस्यन्यत् कर्मण्यन्यत् दुरात्मनाम् का उदाहरण है। मनस्यन्यत् यथा : सुनत सभय मन कर्मण्यन्यत् यथा : मुख मुसुकाई और वचस्यन्यत् यथा : कहत दसानन सबहि सुनाई। सबके ऊपर अपनी निर्भयता का सिक्का जमाये रखना चाहता है। अतः सबको सुनाकर कहता है।

कोठे पर चढ़कर भी कोई आकाश नहीं पकड़ सकता। क्योंकि आकाश स्पर्श की वस्तु ही नहीं है। इसी भाँति सिंहासनासीन पुरुष भी मुझसे युद्ध करने में समर्थ नहीं है। क्योंकि मैं सर्वथा अजेय हूँ और यह तो भूमि पर पड़ा है। राज्य से भी

पतित है निकाला हुआ है। आकाश की भाँति मुझ अजेय को युद्ध करने का भय दिखला रहा है। और सबसे बढ़कर बात यह है कि यह छोटे तपस्वी का वाग्विलास है। जिसे न कभी राज्याधिकार था न है। रावण सदा तपस्वियों को दाम्भिक ही समझते हैं। यथा : मिलि तपसिन्ह तें भएसि लबारा।

कह सुक नाथ सत्य सब बानी। समझहु छाड़ि प्रकृति अभिमानी ॥
सुनहु बचन मम परिहरि क्रोधा। नाथ राम सनं तजहु बिरोधा ॥२॥

अर्थ : शुक ने कहा कि हे नाथ ! यह सभी वाणी सत्य है। आप अभिमानी प्रकृति का परित्याग करके समझिये। हे नाथ मेरा वचन क्रोध छोड़कर सुनिये। रामजी से विरोध छोड़ दीजिये।

व्याख्या : शुक ने कहा वाग्विलास नहीं अक्षरशः सत्य है। बात के समझने में अभिमान बड़ा भारी बाधक है। राम गीता का उपदेश करते हुए रामजी ने इसी से लक्ष्मणजी से कहा : सुनहु तात मन मति चित लाई। अन्तःकरण चार हैं। मन बुद्धि चित्त और अहङ्कार। अतः रामजी ने कहा कि मन बुद्धि और चित्त लगाकर सुनो। अहङ्कार को स्थान मत दो नहीं तो बात समझ में नहीं आवेगी। अतः दूत कहता है कि अभिमानी प्रकृति को दूर रखकर समझो तो बात समझ में आ जावेगी। लक्ष्मणजी ने दूत से कहा था कि कहेहु मुखागर मूढ़ सन मम संदेस उदार। सीता देइ मिलहु नत आवा काल तुम्हार। इस सन्देश का निर्वाह दूत ने सत्य सब वाणी कहकर किया। जब सब सभा ने चिट्ठी सुन ली तब उसी बात के दोहराने की आवश्यकता न रह गयी।

दूत मानहु कहा क्रोध तजि तैसे से उपक्रम करके सुनहु वचन मम परिहरि क्रोधा से उपसंहार करता है। जानता है कि अभिमानी है। शिक्षा सुनते ही क्रोध करेगा। अतः भूमिका पूरी करके तब कहता है कि रामजी से विरोध छोड़ो। भाव यह कि वे किसी के विरोधी नहीं। तुमने नाहक उनसे विरोध कर रक्खा है। उनसे विरोध करने में कल्याण नहीं है। देवता तुम्हारे वैरी थे। उनसे विरोध किया तो एक बात थी। रामजी तो किसी के वैरी नहीं।

अति कोमल रघुबीर सुभाऊ। जद्यपि अखिल लोक कर राऊ ॥
मिलत कृपा तुम्ह पर प्रभु करिहीं। उर अपराध न एकउ धरिहीं ॥३॥

अर्थ : रघुवीर का स्वभाव अखिल लोक के स्वामी होने पर भी अत्यन्त कोमल है। मिलते ही प्रभु तुम पर कृपा करेंगे और तुम्हारे एक अपराध को भी हृदय में स्थान नहीं देंगे।

व्याख्या : भूमि परा कर गहत अकासा। नहीं वे अखिल लोक के नाथ हैं। मनुष्य ऐसे होते नहीं। प्रमाण देता है कि अखिल लोक के नाथ होने पर भी उनका स्वभाव अत्यन्त कोमल है। श्रीमद वक्र न कीन्ह केहि। प्रभुता बधिर न

काहिं। जीव तो थोड़ी सी प्रभुता पाकर कठोर स्वभाववाला हो जाता है। उनमें जीवधर्म अहमिति अभिमाना नहीं है।

वे मिलते ही कृपा करेंगे। तुम पर का भाव यह कि तुमने उनका कितना बड़ा अपराध किया है। सो ऐसा कोमल स्वभाव है कि विभीषण पर ही कृपा किया यह बात नहीं। तुम पर भी कृपा करेंगे। निःसन्देह तुमसे भगवदपराध तथा भागवतापराध असाधारण रूप से हो पड़े हैं। परन्तु तुम्हारे सब अपराध मिलकर भी उनकी दया से बड़े नहीं हैं। सब क्षमा हो जायगा।

जनकसुता रघुनाथहि दीजे। एतना कहा मोर प्रभु कीजे॥
जब तेहि कहा देन बैदेही। चरन प्रहार कीन्ह सठ तेही॥४॥

अर्थ : जानकीजी रघुनाथजी को दे दीजिये। हे प्रभो! इतना मेरा कहा करिये। जब उसने जानकीजी को देने के लिए कहा तो उस शठ ने लात मारी।

व्याख्या : यावज्जीवन मैंने आपका कहा किया है। कोई बात सेवक की स्वामी भी मान जाता है। अतः इतना मेरा कहा कीजिये। भाव यह कि शत्रु के कहने से नहीं मेरी बात मानकर जानकीजी रघुनाथजी को दे दीजिये। ऐसी ही बात हनुमान्जी ने कही थी : मोरे कहे जानकी दीजे। विभीषण ने कहा : तात चरन गहि मागौं राखो मोर दुलार। सीता देहु राम कहँ अहित न होइ तुम्हार।

जिस बात में राय नहीं पूछी जाती उसमें राय देने से रावण क्रुद्ध हो जाते हैं। रावण अपनी निजी बातों में राय नहीं चाहते। तिसपर सीता का देना तो वह कान से सुनना नहीं चाहते। इसी बात पर उन्होंने विभीषण को लात मारा था। क्योंकि शठ है विनय नहीं सुनता। यथा : सठ सन विनय कुटिल सन प्रीती। लात मारने का अर्थ ही यही है कि लङ्का से निकल जाओ। वध नहीं करता त्याग करता है।

नाइ चरन सिरु चला सो तहाँ। कृपासिंधु रघुनायक जहाँ॥
करि प्रनामु निज कथा सुनाई। रामकृपा आपनि गति पाई॥५॥

अर्थ : वह सिर नवाकर वहाँ चला जहाँ कृपासागर रघुनाथजी थे। प्रणाम करके उसने अपनी कथा सुनाई और रामजी की कृपा से अपनी गति को प्राप्त हुआ।

व्याख्या : रावन चरन सीस तिन्ह नाए से उपक्रम और नाइ चरन सिर से उपसंहार। विदा होने का प्रणाम है। विभीषणजी का ही रास्ता इसने भी पकड़ा। जिसे राम प्रेम होता है वह मोह दसकण्ठ की सभा से लात मारकर निकाला ही जाता है। क्रोधसिन्धु को छोड़कर कृपासिन्धु की शरण में चला।

सरकार समुद्र तट पर दर्भ डसाए बैठे हुए हैं। वहीं पहुँचा प्रणाम किया और अपनी कथा कह चला कि किस भाँति रावण द्वारा दूत बनाकर रामदल

में भेजा गया। किस भाँति पकड़ा गया कैसे छूटा। किस भाँति लक्ष्मणजी की चिट्ठी लेकर गया और किस भाँति निकाला गया। और कहने लगा कि मैं अनन्य शरण हूँ। रावण के क्रोधपात्र की रक्षा कौन त्रिभुवन में कर सकता है अथवा मोह की सभा से निकाले जाने के कारण दिव्य ज्ञान हो गया। सो अपने शाप की कथा सुनाई। प्रभु मौन थे न बोले।

रिषि अगस्ति की साप भवानी। राक्षस भएउ रहा मुनि ग्यानी ॥
बंदि रामपद बारहिं बारा। मुनि निज आश्रम कहुँ पगु धारा ॥६॥

अर्थ : हे भवानी ! वह ज्ञानी मुनि था। अगस्त्य ऋषि के शाप से राक्षस हो गया था। बार बार श्रीरामचन्द्र के चरणों को वन्दना करके वह मुनि अपने आश्रम को चला गया।

व्याख्या : आपनि गति पाई इस पद को कवि स्पष्ट करते हैं। पहिले मुनि ज्ञानी था। अगस्त्यजी के शाप से सद्यः राक्षस हो गया था। सो सरकार की कृपा से ब्रह्म शाप से विनिर्मुक्त होकर फिर जैसा का तैसा मुनि हो गया।

कृतज्ञता प्रकाशन के लिए वारम्बार वन्दना करता है। अब मुनि का जाना कहते हैं। यथा : गई पति लोक अनन्द भरी। इस भाँति यह भी अपने आश्रम को चला गया। जब तक यह राक्षस था तब तक उसका आश्रम सूना पड़ा था। ज्ञानीभक्त की बाधा सरकार दूर करते हैं। अतः ज्ञानघाट के वक्ता भवानी सम्बोधन करके अपने वक्ता को सावधान करते हैं। भक्त अवश्य होना चाहिए।

सागरनिग्रह प्रसङ्ग

दो. बिनय न मानत जलधि जड़, गए तीनि दिन बीति।
बोले राम सकोप तब, भय बिनु होइ न प्रीति ॥५७॥

अर्थ : जड़ समुद्र विनय नहीं मानता। तीन दिन बीत गये। रामजी क्रोध के साथ बोले कि बिना भय के प्रीति नहीं होती।

व्याख्या : विनय न मानत कहने का भाव यह कि विभीषणजी ने कहा था कि : प्रभु तुम्हार कुल गुरु जलधि कहिहि उपाय विचारि। सो तीन दिन विनय करते बीत गये। सिन्धु के सिर पर जूँ न रेंगी। इसलिए उसे जड़ कह रहे हैं। विभीषणजी की सम्मति से काम न चला तब लक्ष्मणजी के सम्मति के अनुकूल कार्य किया। यथा : सोखिअ सिंधु करिय मन रोसा। अतः रामजी सकोप बोले। सिन्धु रावण के कृपापात्र थे। इन्हीं के कारण लङ्का अगम्य थी। रावण इन्हीं के लिए प्रीति युक्त वचन बोले थे। यथा : भयउ मृदुल चित सिन्धु बिचारा। सो ये विना भय प्रेम न करेंगे। सुर नर मुनि सबकै यह रीती। स्वारथ लागि करहिं

सब प्रीती। जब कोई स्वार्थ नहीं है तब भय के अतिरिक्त अन्य उपाय भी नहीं है।

लछिमन बान सरासन आनू। सोखौं बारिधि बिसिख कृसानू ॥
सठ सन बिनय कुटिल सन प्रीती। सहज कृपिन सन सुंदर नीती ॥१॥

अर्थ : हे लक्ष्मण ! धनुष बाण लाओ। मैं अग्नि वाण से समुद्र सोख डालूँ। शठ से विनय कुटिल के साथ प्रीति और स्वभाव से जो कृपण हैं उससे सुन्दर नीति :

व्याख्या : सरकार मुनिवृत्ति में थे। इसलिए धनुष वाण लक्ष्मण के पास था। और लक्ष्मणजी स्वयं पहरे पर थे तथा लक्ष्मणजी से जो कहा था कि : ऐसेइ करब धरहु मन धीरा वही करने को प्रस्तुत हैं। अतः लक्ष्मणजी से कहते हैं धनुष बाण लाओ। तूणीर नहीं माँगा क्योंकि : द्विः शरं नाभिसन्धत्ते दो बार वाण चढ़ाते नहीं। तब कौन सा वाण चाहिए। अतः कहते हैं कि समुद्र सोखना है आग्नेयास्त्र की आवश्यकता है।

यह समुद्र शठ है। इसकी जड़ करणी है। इससे विनय करना ऊसर में बीज वपन की भाँति निष्फल है। यह कुटिल है। डुबोनेवाला है। इससे प्रीति कैसी ? प्रीति सरल पुरुष से की जाती है। यह सहज कृपण है। लेना ही जानता है देना जानता ही नहीं। इससे सब नीतियों से सुन्दर नीति साम का प्रयोग निष्फल है। साम का पात्र उदार पुरुष है।

ममता रत सन ग्यान कहानी। अति लोभी सन बिरति बखानी ॥
क्रोधिहिं सम कामिहि हरि कथा। ऊसर बीज बए फल जथा ॥२॥

अर्थ : ममता में फँसे हुए मनुष्य से ज्ञान की कथा अन्यन्त लोभी से वैराग्य का वर्णन क्रोधी से शम : शान्ति को बात और कामी से भगवान् की कथा ऊसर में बीज बोने के समान निष्फल है।

व्याख्या : यह सिन्धु ममता रत है। जल पर इसकी बड़ी ममता है। सम्पूर्ण जल को नमकीन बनाये रहता है जिसमें कोई पी न सके। इसके लिए ज्ञान : समता का उपदेश कि जिस भाँति बलवान् लंघन करनेवालों को मार्ग देते हो उसी भाँति निर्बल कपि भालु को भी मार्ग दो निष्फल है। यह रास्ते भर जमीन भी अपने अधिकार के बाहर नहीं किया चाहता। निर्लोभ पुरुष ही वैराग्य की महिमा को समझ सकता है।

यह समुद्र क्रोधी है। दिनरात गर्जन किया करता है। इससे शान्ति की कथा निष्फल है। यह कभी क्षीणकल्लोल नहीं हो सकता। बिना थपेड़ा दिये नहीं मान सकता। क्रोधरहित पुरुष ही शान्ति कथा का अधिकारी है। यह सिन्धु कामी है। सहस्रों नदियों का पति है। इसका चित्त विषय पराङ्मुख होकर भगवत् कथा में नहीं लगता। अतः इसके सामने हरिकथा निष्फल है। रावण वध होकर हरि

: रामजी अथवा कपि की कथा पूर्ण हो। इस बात की रुचि इसे नहीं है। सन्त ही हरि कथा के सहायक होते हैं। इस भाँति सात अवगुणों को हरिभक्ति का बाधक तथा तद्विपरीत सात गुणों को साधक बतलाया। अथवा सठ सन विनय प्रसङ्ग प्राप्त है। शेष छः केवल उदाहरण हैं।

अस कहि रघुपति चाप चढ़ावा। यह मत लछिमन के मन भावा॥
संधानेउ प्रभु बिसिख कराला। उठी उदधि उर अंतर ज्वाला॥३॥

अर्थ : ऐसा कहकर श्रीरघुनाथजी ने धनुष चढ़ाया। यह मत लक्ष्मणजी को पसन्द आया। प्रभु ने कराल बाण का सन्धान किया तो समुद्र के हृदय में ज्वाला उठी।

व्याख्या : बोले राम से उपक्रम और अस कहि से वचन का उपसंहार करते हैं। कहने मात्र की देर थी। लक्ष्मणजी ने धनुष तथा आग्नेयास्त्र ला दिया। ऊसर बीज बए फल जथा कहकर धनुष पर गुण आरोपित किया। पहिला मन्त्र लक्ष्मण को नहीं भाया था। इसलिए कहते हैं कि यह मत लछिमन के मन भावा।

इतने पर भी समुद्र ने कुछ ख्याल न किया। तब कालानल के सदृश बाण का सन्धान किया। छोड़ा नहीं। लक्ष्यमात्र के स्थिर करते ही समुद्र के हृदय में ज्वाला उठी। आग या ऊपर से लगती है या नीचे से लगती है। यहाँ बीच से आग उठी।

मकर उरग झख गन अकुलाने। जरत जंतु जलनिधि जब जाने॥
कनक थार भरि मनि गन नाना। बिप्ररूप आएउ तजि माना॥४॥

अर्थ : मगर सर्प तथा मछलियों के समूह व्याकुल हो उठे। जब समुद्र ने जीवों को जलते हुए जाना तब सोने के थाल में मणियों को भरकर ब्राह्मण का रूप धारण किये हुए मान छोड़कर आया।

व्याख्या : जल खौलने लगा। जलजन्तु विकल हो उठे। जब समुद्र ने जाना कि जो जलजन्तु बड़वानल से नहीं जले इस ज्वाला से जल रहे हैं। सम्पूर्ण प्रजा का संहार उपस्थित है। भय देने की सीमा का अतिक्रमण हो चुका अब दण्डपात हुआ ही चाहता है।

भय बिनु होउ न प्रीति इस नीति का साफल्य दिखलाते हैं। उपहार की तैयारी हुई। रिक्तपाणि न पश्येत् राजानं भिषजं गुरुम्। राजा वैद्य और गुरु का दर्शन खाली हाथ नहीं करना चाहिये। यह नीति है। और ये रत्नाकार हैं अतः सोने का थाल भरकर मणि लिये हुए आये। बाण छूट न जाय इसलिए विप्ररूप धारण किया। प्रभु ब्रह्मण्य देव हैं। ब्राह्मण पर अस्त्र न छोड़ेंगे। जिसकी विभूति है उन्हीं से मान किये बैठे थे। उसे छोड़कर आये। इसपर कवि की उक्ति है कि :

दो. काटेहि पै कदली फरै, कोटि जतन कोउ सींच।
बिनय न मान खगेस सुनु, डाटहिं पइ नवै नीच॥५८॥

अर्थ : हे गरुड़ ! सुनो । काटने पर केला फलता है । चाहे कोई करोड़ों उपाय करके सींचे । नीच विनय से नहीं मानता । वह डाटने से ही झुकता है ।

व्याख्या : जल की सदा नीच गति होती है । इसलिए समुद्र को नीच कहा । और है भी समुद्र संसार भर से नीचा । इसीलिए ऊँचाई की नाप समुद्र से ही की जाती है । नीच विनती करने से और भी आसमान पर चढ़ जाता है । श्री ग्रन्थकार ने यहाँ नीच की परिभाषा दे दी । नीच से विनती करते जाइये वह सुनेगा ही नहीं । मानो उसे श्रवणेन्द्रिय है ही नहीं । और जहाँ उसने किसी पुरुषार्थी का सिंहगर्जन सुना तहाँ उसके सामने पानी पानी हो जाता है । यथा : फला हुआ केला दोबारा फल नहीं देता । कितना ही सींचिये कोई नतीजा नहीं । उसका एकमात्र उपाय उसे काट डालना है । कट जाने पर वह फिर फल देता है । कदली को भी जलबाहुल्य से नीच कहा । भुसुण्डिजी ने गरुड़ से कहा कि आप तो समुद्र का हाल जानते ही हो । जब आपने डाँटा तब उसने टिट्टिभ का अंडा दे दिया । नहीं तो टिट्टिभि बिचारी कितना आर्त्तनाद करती रही । पक्षी समाज ने कितना प्रयत्न किया । सभी तो निष्फल गये । महाभारते ।

सभय सिंधु गहि पद प्रभु केरे । छमहु नाथ सब अवगुन मेरे ॥
गगन समीर अनल जल धरनी । इन्हकइ नाथ सहज जड़ करनी ॥१॥

अर्थ : समुद्र ने सभीत होकर प्रभु का चरण पकड़कर कहा : हे नाथ ! मेरे सब अवगुण क्षमा करो । हे नाथ ! आकाश वायु अग्नि जल और पृथ्वी इन सबकी करणी स्वभाव से ही जड़ है ।

व्याख्या : भय बिनु होइ न प्रीति सो भय से प्रीति हुई । समुद्र ने आकर चरण पकड़ लिया । सात अवगुण जो सरकार ने कहा था उन सबको स्वीकार करके क्षमा चाहता है । और भी जो अवगुण हैं जिसका पता पीछे से चलेगा उसके लिए भी क्षमा चाह रहा है ।

पञ्च महाभूत यद्यपि चेतन है पर इनकी करणी स्वभाव से ही जड़ है । सदा जड़ की भाँति वर्तते हैं । ये पञ्च महाभूत विवेक से काम नहीं लेते । केवल मैं ही नहीं चार और भी ऐसे हैं जिनसे मैं उत्पन्न हूँ : अग्नि और जो मुझसे उत्पन्न है : पृथिवी सब ऐसे ही हैं : आकाशाद्वायुः । वायोरग्निः अग्नेरापः । अद्भ्यः पृथिवी ।

तव प्रेरित माया उपजाए । सृष्टि हेतु सब ग्रंथनि गाए ॥
प्रभु आयसु जेहि कहँ जो अहई । सो तेहि भाँति रहें सुख लहई ॥२॥

अर्थ : तुम्हारी प्रेरणा से माया ने इन्हें सृष्टि के लिए उत्पन्न किया है । सब ग्रन्थों ने ऐसा ही वर्णन किया है । जिसके लिए प्रभु की जैसी आज्ञा है वह उसी भाँति रहने में सुख पाता है ।

व्याख्या : जड़ता का कारण कहते हैं । भूत माया से उत्पन्न हैं और माया

जड़ है। प्रेरणा सरकारी : चेतन की। हमारी उत्पत्ति ही सृष्टि के लिए है इस बात में किसी शास्त्र का मतभेद नहीं है। यदि कहिए कि तुम चेतन होकर अपनी करणी जड़ सी क्यों बनाये हो ? तो इसपर कहते हैं कि मेरे लिए सरकारी आज्ञा ही ऐसी है। इसीलिए यह हमारा धर्म है। हम साधु असाधु दोनों को शीतलता पहुँचाते हैं। दोनों को डुबाते हैं। इससे विपरीत करना मेरे अधिकार के बाहर की बात है। इसी भाँति रहने में मुझे सुख है। यही मेरा स्वभाव है। प्रभु की आज्ञा ही धर्म है : चोदनालक्षणोऽर्थो धर्मः। अतः अपने धर्मानुसार चलने में ही सुख है।

प्रभु भल कीन्ह मोहि सिख दीन्ही। मरजादा पुनि तुम्हरिअ कीन्ही ॥
ढोल गँवार सूद्र पसु नारी। सकल ताड़ना के अधिकारी ॥३॥

अर्थ : प्रभु ने अच्छा ही किया जो मुझे शिक्षा दी। परन्तु मर्यादा भी आपकी ही बनाई हुई है। ढोल गँवार शूद्र पशु और स्त्री ये सब दण्ड के अधिकारी हैं।

व्याख्या : यद्यपि स्थूल दृष्टि से मेरा दोष नहीं प्रतीत होता पर वस्तुतः मैं दोषी हूँ। सरकार ने मुझे भय दिखलाया सो बहुत ही अच्छा किया। इससे मेरा बड़ा कल्याण होगा। आपकी बनाई हुई मर्यादा है। आपको अधिकार है कि उसे हटाकर दूसरी मर्यादा स्थापन करें। जब आपने पहिली बार मार्ग माँगा तभी मुझे हाजिर हो जाना चाहिए था।

चार दण्ड के अधिकारी हैं। इसमें ढोल को पहिले कहा। यही चौपाई लगने की किल्ली है। जिस भाँति हिसाब से : ढीला पड़ जाने से ठीक काम न देने से ढोल को ठोंक ठाँककर ठीक कर लेते हैं इसी भाँति गँवार शूद्र पशु और नारी का भी ठोंक ठाँक उनके सुधार की दृष्टि से होना चाहिए। नहीं तो ये ढोल की भाँति ढीला पड़कर बेकार हो जाते हैं। विशेषता यह है कि ताड़न[1] का अधिकार तीन रात्रि उपवास के बाद प्राप्त होता है। अर्थात् जब सुधार के सब उपाय करके हार जाय तो इस मात्रा से दण्ड दें। जिससे वह कार्य लायक हो जाय। यहाँ ताड़न का अर्थ शिक्षा देना है। यथा : दशवर्षाणि ताडयेत्। दण्ड का अर्थ लाठी लेकर पीटना ही नहीं है वाग्दण्ड भी दण्ड है। श्रीरामचरितमानस में कहीं स्त्रियों के शारीरिक दण्ड का उदाहरण नहीं है। कूबरी और सूर्पणखा ऐसी स्त्रियाँ निःसन्देह

---

१. शास्त्र स्त्री-स्वातन्त्र्य का पक्षपाती नहीं है। उनको पिता पति और पुत्र के वशवर्ती रहने की आज्ञा है। उनका शरीर संघटन भी ऐसा है कि उनके शील की रक्षा के लिए दूसरे की आवश्यकता है। सत्य से आँख मींचना उचित नहीं। पति परिस्थिति विशेष में ताड़न कर सकता है। इसमें वेद प्रमाण है : सा चेदस्मै न दद्यात् काममेनामवक्रीणीयात् सा चेदस्मै नैव दद्यात् काममेनां यष्टया वा पाणिनावोपहत्यातिक्रामेमदिन्द्रियेण ते यशसा यश आदद इत्ययशा एव भवति। वृ. छ. ब्रा. ७। दण्ड एवहि मूर्खाणां सन्मार्गप्रापकः प्रभो। अध्यात्मरामायणे।

शारीरिक दण्ड की भागिनी थीं। समुद्र ने अपनी गणना गँवारों में किया। यदि चतुर होते तो पहिले ही उपस्थित हो जाते।

प्रभुप्रताप मैं जाब सुखाई। उतरिहि कटकु न मोरि बड़ाई ॥
प्रभु अग्या अपेल श्रुति गाई। करउँ सो बेगि जो तुम्हहि सोहाई ॥४॥

अर्थ : प्रभु के प्रताप से मैं सूख जाऊँगा। सेना पार हो जायगी। पर मेरी बड़ाई : सरसामस्मि सागरः न रह जायगी। वेद कहते हैं कि प्रभु की आज्ञा अपेल है। अतः तुरन्त वही करिये जो आपको अच्छा लगे।

व्याख्या : आग्नेयास्त्र से मैं नहीं सूख सकता। कितनों के पास आग्नेयास्त्र है पर कोई सुखा न सका। मैं सरकार के प्रताप से निःसन्देह सूख जाऊँगा और ऐसा सूख जाऊँगा कि सेना पैदल पार चली जायगी। पर सरकार तो दासों को बड़ाई देनेवाले हैं। श्रीमुख से कहा है कि सरों में मैं सागर हूँ। सो मेरी बड़ाई जाती रहेगी।

रामरजाइ मेटि मन माँही। देखा सुना कतहुँ कोउ नाहीं। अतः निग्रहानुग्रह जो हो मैं प्रस्तुत हूँ। सरकार बाण सन्धान करके रोके हुए हैं सो इतना कष्ट न सहें। जो उचित हो शीघ्र करें। जिसमें सरकार को कष्ट न हो अथवा हृदय की ज्वाला सहने में असमर्थ हैं। अतः शीघ्रता के लिए अनुरोध करता है अथवा देर होने में मेरी प्रजा सब मर जायगी।

दो. सुनत बिनीत बचन अति, कह कृपाल मुसुकाइ।
जेहि बिधि उतरै कपि कटकु, तात सो कहहु उपाइ ॥५९॥

अर्थ : अति विनीत वचन सुनकर कृपाल ने मुसुकराकर कहा। हे तात ! जिस प्रकार बानरी सेना पार उतर जाय। हे तात ! वह उपाय बतलाओ।

व्याख्या : गुन तुम्हार समुझइ निज दोषा। जेहि सब भाँति तुम्हार भरोसा। ऐसे ही पुरुष विनीत वचन कहने में समर्थ हैं। प्रभु कृपाल हैं। तुरन्त दया आगयी। मुसकुरा पड़े। भाव यह कि मैं तो उपाय बतलाने के लिए विनय कर रहा हूँ। मर्यादा भङ्ग चाहता तो विनय क्यों करता। जिसने तीन दिन तक विनय करने पर न माना उसके विनय पर तुरन्त दया किया। इसलिए कृपालु कहते हैं। मुसकुराने का भाव यह कि मेरी तो बानरी सेना है। यह तो नाव पर भी नहीं उतर सकती है। जिस नाव पर बन्दर रहें उसे बिना डुबाये नहीं छोड़ते। विभीषणजी ने भी उपाय के लिए ही सम्मति दी थी। यथा : प्रभु तुम्हार कुलगुरु जलधि कहिहि उपाय विचारि।

नाथ नील नल कपि द्वौ भाई। लरिकाईं रिषि आसिष पाई ॥
तिनके परस किएँ गिरि भारे। तरिहहिं जलधि प्रताप तुम्हारे ॥१॥

अर्थ : हे नाथ ! नील और नल दोनों वानर भाइयों ने बचपन में ऋषि से

आशीर्वाद पाया था। उनके स्पर्श करने से भारी भारी पहाड़ भी आप के प्रताप से समुद्र तर जायँगे।

व्याख्या : समुद्र ने कहा कि जिनके छूने से पहाड़ समुद्र तरेंगे वे दोनों भाई तो आपके सेना में ही हैं। उनके नाम हैं नल और नील। ये दोनों बन्दर बचपन में किसी ऋषि की पाषाणमयी वस्तु जल में फेंक देते थे। ऋषिजी को इससे कष्ट होता था। परन्तु ऋषिजी को उन बन्दरों पर क्रोध न हुआ। उन्हें आशीर्वाद दे दिया कि इनके फेंके हुए पाषाण जल में न डूबें।

उनका आशीर्वाद तो अपनी वस्तुओं की रक्षा के लिए था। अब उसी आशीर्वाद के सहारे काम होगा। सरकार के प्रताप से उसी गुण का उत्कर्ष बहुत वढ़ जायगा। उनके छूने से बड़े बड़े पर्वत तरने लगेंगे। भाव यह कि जिस प्रताप के बल से आग्नेयास्त्र द्वारा मेरा शोषण होता था वही प्रताप नल नील को निमित्त बनाकर कार्य करेगा।

मैं पुनि उर धरि प्रभु प्रभुताई। करिहौं बल अनुमान सहाई॥
एहि बिधि नाथ पयोधि बँधाइअ। जेहि यह सुजसु लोक तिहुँ गाइअ॥२॥

अर्थ : मैं भी प्रभु की प्रभुता को हृदय में धारण करके यावच्छक्य सहायता करूँगा। हे नाथ! इस प्रकार से समुद्र बँधाइये जिससे यह सुयश तीनों लोक में गाया जाय।

व्याख्या : उपाय बतलाकर ही चुप न रह जाऊँगा यथाशक्ति सहायता भी करूँगा। जड़ होने से नियमों से अत्यन्त नियन्त्रित हूँ। फिर भी प्रवाहादि द्वारा बालू रेत आदि इकट्ठा करके पर्वतों को स्थिर करूँगा। धारण करूँगा। प्रभु की प्रभुताई को हृदय में धारण करने से सहायतानुकूल सामर्थ्य का प्रादुर्भाव होगा।

जेहि बिधि उतरै कपि कटकु का उत्तर देते हुए कहते हैं कि बिना पुल के यह सेना पार नहीं हो सकती और पुल बाँधने की विधि यही है। सरकार यशोधन हैं। सो यश की भी वृद्धि होगी। जगत् में आज तक कोई समुद्र पर पुल न बाँध सका। इससे तीनों लोक का कल्याण होगा। सब इस सुयश का गान करके बिना नौका आदि के ही भवसिन्धु तर जायेंगे।

एहि सर मम उत्तर [1]तट बासी। हतहु नाथ खल नर अघरासी॥
सुनि कृपाल सागर मम पीरा। तुरतहिं हरी राम रनधीरा॥३॥

अर्थ : इस बाण से मेरे उत्तर तट के रहनेवालों का वध कीजिये। हे नाथ! वे मनुष्य पाप की राशि हैं। रणधीर कृपाल रामजी ने समुद्र के मन की पीड़ा सुनकर तुरन्त हरण कर ली।

---

१. द्रुमकुल्यनिवासी आभीर।

व्याख्या : सत्यसन्ध हैं। शर सन्धान कर चुके अब उसके लिए लक्ष्य बतलाना चाहिए। वह खाली नहीं जा सकता। अतः कहते हैं कि मेरे उत्तर तट के रहनेवाले पापमय हैं। उनका वध कीजिये। क्योंकि पापियों का वध उनके कल्याण का कारण होता है। जिस भाँति पापियों का पाप पृथ्वी नहीं सह सकती उसी भाँति तटवासियों का पाप तीर्थ नहीं सह सकता।

कृपाल ने केवल अपराध ही नहीं क्षमा किया चिरस्थायिनी पीड़ा भी हरन की। उस शर को चलाकर उन पापियों का वध किया। इतना नहीं वह स्थल मरुभूमि हो गया। उसे ढोलढमक्का कहते हैं। वहाँ आज भी सरकार के शर की पूजा होती है। सरकार किसी का वध नहीं करते। वे सज्जनों की पीड़ा हरण करते हैं। उसी पीड़ा हरण में खलों की मृत्यु होती है। उन्हें स्वयं किसी का वध इष्ट नहीं है। रणधीर शब्द से शर प्रक्षेप का पाण्डित्य कहा। कृपाल हैं : तुरन्त पीड़ा हर ली। समुद्र ने तुरन्त ही पीड़ा निवृत्ति अनुभव की।

देखि राम बल पौरुष भारी। हरखि पयोनिधि भएउ सुखारी ॥
सकल चरित कहि प्रभुहि सुनावा। चरन बंदि पाथोधि सिधावा ॥३॥

अर्थ : श्रीरामजी का भारी बल और पौरुष देखकर समुद्र हर्षित होकर सुखी हो गये। सब चरित्र प्रभु को कह सुनाया और चरण वन्दना करके समुद्र घर गये।

व्याख्या : सैकड़ों कोस पर वाण प्रक्षेप करना बल है। इतनी दूर जाकर वाण ने महा पुरुषार्थ दिखलाया। यह पौरुष है अथवा वल से अस्त्रबल तथा पौरुष से शारीरिक बल कहा।

इस समय सरकार लङ्का पर धावा करने चले हैं। यह अवसर उत्तर तट वासी के वध के लिए प्रार्थना करने का नहीं है और लौटते समय भरत मिलन की शीघ्रता में रहेंगे। और फिर मुझे कब समय मिलेगा इसका क्या ठिकाना ? उपाय कहने के बदले भी उत्तर तटवासियों के वध की प्रार्थना अनुपयुक्त थी। अतः मैंने इतनी अवज्ञा की कि सरकार शर सन्धान करें। शरसन्धान होने पर शरण आया। अब उसी शर से उन खलों का वध हुआ। सरकारी प्रतिज्ञा है। मम प्रण सरनागत भयहारी। अतः भयहरण द्वारा सरकारी प्रतिज्ञा की भी पूर्ति हो गयी। यह अपना चरित्र समुद्र ने सुना दिया। इसका सुनाना आवश्यक था। भगवत् शरण में मद मोह कपट छल का परित्याग अपरिहार्य है।

छं. निज भवन गवनेउ सिंधु श्रीरघुपतिहि यह मत भाएऊ।
येह चरित कलि मलहर जथामति दास तुलसी गाएऊ ॥
सुख भवन संसय समन दवन बिषाद रघुपति गुन गना।
तजि सकल आस भरोस गावहि सुनहि संतत सठ मना ॥

अर्थ : समुद्र अपने घर चला गया। श्रीरघुनाथजी को यह मत अच्छा लगा। इस कलिमल के हरण करनेवाले चरित्र को यथाबुद्धि तुलसीदास ने गान किया है। रघुनाथजी के गुण समूह सुख के धाम, सन्देह के नाश करनेवाले और विषाद के दमन करनेवाले हैं। रे शठ मन ! तू संसार की सब आशा भरोसा छोड़कर निरन्तर इन गुणसमूह का गानकर और सुन।

व्याख्या : सिन्धु जलराशि के अधिष्ठात्री देवता हैं। अतः उनका घर जाना कहते हैं। सुयश वाला मन्त्र प्रिय लगा। अतः श्रीरघुपति कहते हैं कि अविद्या की तीन शक्तियाँ हैं : १. मल २. आवरण और ३. विक्षेप। सो मल के विषय में पहिले ही कह आये हैं। यथा : यह चरित कलिमल हर दमन विषाद कहकर आवरण शक्ति का नाश कहा और संशय शमन कहकर विक्षेप शक्ति का नाश कहा और सुखभवन कहकर परमानन्द की प्राप्ति कहा। सांसारिक आशा भरोसा छोड़कर गान करने का विधान है।

दो. सकल सुमंगल दायक, रघुनायक गुनगान।
सादर सुनहिं ते तरहिं भव, सिंधु बिना जलयान ॥६०॥

अर्थ : श्रीरघुनाथजी का गुणगान सभी सुन्दर मङ्गलों का देनेवाला है। जो इसे आदर सहित सुनेंगे वे बिना किसी जहाज के भवसागर को तर जायेंगे।

व्याख्या : प्रेय-श्रेयदायक अथवा सकल धर्म के फल का देनेवाला रामजी का गुणग्राम है। अतः बिना वेद के भी सादर सुननेवाला भवसागर तर जाता है। क्योंकि वेद ही जलयान माना गया है : बंदउँ चारिउ वेद भव वारिधि बोहित सरिस। जिनहिं न सपनेहुँ खेद बरनत रघुबर बिसद जस। रघुबर यश साक्षात् वेदावतार है : वेदः प्राचेतसादासीत् साक्षाद् रामायणात्मना। वेद की प्राप्ति न होने पर भी वेदावतार से काम निकल जाता है।

शुभम्।

इति श्रीरामचरितमानसे सकलकलिकलुषविध्वंसने
विमलज्ञानसम्पादनो नाम पञ्चमः सोपानः।

श्रीराम

श्रीगणेशाय नमः । श्रीगुरवे नमः

श्रीरामचरितमानस

लंकाकाण्ड : षष्ठ सोपान

सटीक

मङ्गलाचरण

दो. लव निमेष परवानु जुग, बरष कलप सर चंड ।
भजसि न मन तेहि राम कहुँ, काल जासु कोदंड ॥

अर्थ : हे मन ! तू उस राम को क्यों नहीं भजता जिसका धनुष काल है और लव निमेष परमाणु युग वर्ष और कल्प जिसके तीखे भयानक बाण हैं ।

व्याख्या : काल के सबसे छोटे अंश को परमाणु कहते हैं । कमल के पत्ते को सूई से छेदने में जो समय लगता है लव कहलाता है और ये लवों का एक निमेष होता है । ये ही काल के सूक्ष्मातिसूक्ष्म अवयव हैं । सत्य त्रेता आदि युग हैं । प्रभव आदि वर्ष हैं । ब्राह्मादि कल्प हैं । ये काल के बड़े बड़े विभाग हैं । इन्हीं से आयु की इयत्ता नापी जाती है । प्राणी की क्षुद्रता और महत्ता के तारतम्यानुसार उनकी आयु की इयत्ता का भी तारतम्य है । कितने जीव इतने क्षुद्र हैं कि उनकी आयु को इयत्ता का नाप परमाणु से होता है । किसी का लव से होता है । किसी का निमेष से होता है । देवता आदि ऐसे महान् जीव हैं कि उनकी आयु की इयत्ता युग से नापी जाती है । जैसे इन्द्र की आयु लगभग बहत्तर चतुर्युगी है । मनुष्यों की आयु की इयत्ता वर्ष से नापी जाती है । ब्रह्मदेव की आयु की इयत्ता कल्प से नापी जाती है ।

मनुष्य का एक वर्ष देवताओं का एक दिन होता है । इस हिसाब से देवताओं के हजार वर्ष की एक चतुर्युगी होता है । ४०० वर्ष का सत्ययुग, ३०० वर्ष का त्रेता, २०० वर्ष का द्वापर और १०० वर्ष का कलियुग होता है । १००० चतुर्युगी का एक कल्प होता है ।

ये ही खण्ड काल रामजी के अमोघ बाण हैं । इनसे कोई बच नहीं सकता । जो उत्पन्न हुआ है वह एक न एक दिन अवश्य मरेगा । ब्रह्मा से लेकर स्तम्ब

अति सूक्ष्म जीव तक खण्ड काल के वशीभूत हैं। यथा : अग जग जीव नाग नर देवा। नाथ सकल जगु काल कलेवा।

खण्ड काल से अतिरिक्त एक अखण्ड दण्डायमान काल है जो इन खण्ड कालों का प्रेरक है। वह रामजी के हाथ का धनुष है। गोस्वामीजी अपने मनको समझाते हैं कि तू ऐसे समर्थ राम को क्यों नहीं भजता। जिसकी कृपा से ही काल के अधिकार का अतिक्रमण हो सकता है। जब तक काल का अधिकार बना है तब तक संसार से छुट्टी नहीं।

इस काण्ड को श्री गोस्वामीजी ने दोहे से ही प्रारम्भ किया। श्री गोस्वामीजी में यह विचित्रता है कि ये महात्मा किसी नियम को निभने नहीं देते। अतः श्लोक से प्रारम्भ करने के नियम को लङ्काकाण्ड में निभने नहीं दिया। हिन्दी में मङ्गलाचरण पहले किया और उसके पीछे संस्कृत में मङ्गलाचरण किया। आरण्य सुन्दर और उत्तर इन तीन काण्डों में हिन्दी में मङ्गलाचरण ही नहीं है। बाल अयोध्या और किष्किन्धा इन तीन काण्डों में संस्कृत में मङ्गलाचरण पहिले और हिन्दी में पीछे से मङ्गलाचरण किया। और भी बहुत से स्थल दिखाये जा सकते हैं जिससे यही सिद्ध होता है कि कवि जानबूझकर क्रम नहीं निभने देते।

दूसरी बात यह है कि लङ्काकाण्ड की कथा में राम के न भजनेवालों को दण्ड मिलता है। यथा : काहुहि लात चपेटन्हि केहू। भजेहु न रामहि सो फल लेहू। अतः गोस्वामीजी मङ्गलाचरण करने के पहिले ही अपने मनको रामभजन के लिए समझा रहे हैं। प्रबोध दे रहे हैं कि कहीं दण्डभागी न हो जाय और प्रबोध मातृभाषा में ही ठीक बनता है। यथा : भाषा बद्ध करब मैं सोई। मोरे मन प्रबोध जेहि होई।

श्लो. रामं[1] कामारिसेव्यं भवभयहरणं कालमत्तेभसिंहं
योगीन्द्रं ज्ञानगम्यं गुणनिधिमजितं निर्गुणं निर्विकारं।
मायातीतं सुरेशं खलबधनिरतं ब्रह्मवृंदैकदेवं
वंदे कंदावदातं सरसिजनयनं देवमुर्वीशरूपं ॥१॥

अर्थ : कामारि से सेवित संसार के भय को हरण करनेवाले कालरूपी मतवाले हाथी के लिए सिंह योगेश्वर ज्ञान से प्राप्य गुणों के भण्डार अजित निर्गुण निर्विकार माया से परे देवताओं के स्वामी दुष्टों के वध में लगे हुए ब्राह्मण समूह के एकमात्र देवता मेघ के समान सुन्दर कमल से नेत्रवाले पृथ्वीपति रूप देवता राम की मैं वन्दना करता हूँ।

व्याख्या : यहाँ राम के सोलह विशेषण हुए हैं। भाव यह कि षोडशकल पुरुष हैं। पूर्णावतार हैं। काम से बलवान् हैं। रावणादिक ने सब देवताओं को वश

१, यह स्रग्धरा छन्द है। इसमें २१ अक्षरों का एक पाद होता है। इसमें एक मगण एक रगण एक भगण एक नगण और तीन यगण होते हैं।

कर रक्खा था। पर वह भी काम का दासानुदास था। उस काम के भी नाश करनेवाले भगवान् रुद्र भी जिसकी सेवा करते हैं उससे बड़ा और कौन हो सकता है। संसार का भय : जन्म मरण जिसका लक्षण है जो किसी का छुड़ाया नहीं छूटता। यदि राम छुड़ावें तभी छूटे। यथा :

साधक सिद्ध विमुक्त उदासी। कवि कोविद कृतज्ञ संन्यासी॥
जोगी सूर सुतापस ग्यानी। धर्म निरत पंडित विग्यानी॥
तरहिं न बिनु सेए मम स्वामी। राम नमामि नमामि नमामी॥

उसके हरण करनेवाले हैं। काल रूपी मतवाले हाथी के लिए सिंह हैं। यथा :

जाके डर अति काल डराई। जो सुर असुर चराचर खाई॥

रामजी तो सच्चिदानन्द दिनेश हैं तब उनमें हरणादि क्रिया तथा सिंहादि के गुणों का होना कैसे बनेगा ? इसके उत्तर में कहते हैं कि वे योगीन्द्र हैं। भगद्गीता में कहते हैं मया ततमिदं सर्वं जगदव्यक्तमूर्तिना। मत्स्थानि सर्वभूतानि न चाहं तेष्ववस्थितः। न च मत्स्थानि भूतानि पश्य मे योगमैश्वरम्। मेरी अव्यक्त मूर्ति से यह सब संसार व्याप्त है। ये सब भूत मेरे में हैं। मैं उनमें नहीं हूँ। फिर भी ये भूत मेरे में नहीं हैं : हे अर्जुन ! मेरे ऐश्वर योग को देख। अर्थात् महायोगेश्वर में सब कुछ सम्भव है। वे प्रभु ज्ञान से पाये जा सकते हैं। यथा : वेदान्ते सुप्रतिष्ठोऽहं वेदान्तं समुपाश्रय। मुक्तिकोपनिषद् में स्वयं भगवान् ने अञ्जनीनन्दन से कहा कि हे हनुमान्‌जी ! मैं वेदान्त में सुप्रतिष्ठित हूँ। तुम वेदान्त का समाश्रयण करो। श्री गोस्वामीजी स्वयं कहते हैं : वेदान्तवेद्यं विभुम्। श्रीरामजी निर्गुण होने पर भी गुणनिधि हैं। क्योंकि सर्वाधिष्ठान हैं। निरतिशय उत्कर्ष होने से अजित हैं। यथा : जीति को सकै अजय रघुराई। एकरस होने से निर्विकार हैं। क्योंकि माया से परे निर्माय हैं। यथा : रवि सनमुख तम कबहुँ कि जाही। सुरेश कहकर दैवी सम्पत् वालों का रक्षक कहा : खलबधनिरत कहकर अवतार कहा। तथा : हम छत्री मृगया बन करहीं। तुमसे खल मृग खोजत फिरहीं। ब्रह्मवृन्दैकदेव कहकर सूर्यरूप कहा : क्योंकि कुर्यादन्यं नवा कुर्यान् मैत्रो ब्राह्मण उच्यते। और कुछ करे या न करे सूर्यभक्त को ब्राह्मण कहते हैं। बृहत्पाराशर में श्रीरामचन्द्र को सूर्य का और श्रीकृष्ण को चन्द्र का अवतार कहा है। कन्दावदात कहकर नीलनीरद वर्ण कहा : सरसिज नयन कहकर शोकविमोचन कहा। यथा :

मामवलोकय पंकजलोचन। कृपा विलोकनि सोक बिमोचन॥

और देवमुर्वीशरूपं कहकर रामवतार की वन्दना कर रहे हैं।

इस श्लोक द्वारा पूरे लङ्काकाण्ड की कथाओं के प्रतीक भी दे दिये। कामारिः सेव्यो यस्य स कामारिः। बहुव्रीहिसमास से अर्थ निकलेगा कि कामारि सेव्य हैं जिसके। इस भाँति रामजी के द्वारा रामेश्वर की स्थापना द्योतित की। भवभयहरणं से सेतुबन्ध लक्षित किया। यथा : मम कृत सेतु जे दरसन करहीं। सो बिनु श्रम भवसागर तरहीं। कालमत्तेभसिंह आदि आठ विशेषण कहकर मन्दोदरी का समझाना

इङ्गित किया। यथा : अति बल मधुकैटभ जेहि मारे। महावीर दितिसुत संहारे। जेहि बल बाँधि सहसभुज मारा। सोइ अवतरेउ हरन महिभारा। तासु बिरोध न कीजिअ नाथा। काल कर्म जिव जाके हाथा। इससे काल का भी नियन्ता कहा : तासु भजन कीजिअ तहँ भरता। जो करता पालक संहरता। इससे योगीन्द्र कहा : सोइ रघुबीर प्रनत अनुरागी। भजहु नाथ ममता सब त्यागी। इससे ज्ञानगम्य कहा। मुनिवर जतन करहिं जेहि लागी। भूप राजु तजि होहिं बिरागी। सोइ कोसलाधीस रघुराया। आयेउ करन तोहि पर दाया। इससे गुणनिधि कहा। पिय तुम ताहि जितव संग्रामा। जाके दूर केर यह कामा। इससे अजित कहा। तेहि कहँ पिय पुनि पुनि नर कहहू। मुधा मान ममता मद बहहू। इससे निर्गुण निर्विकार तथा मायातीत कहा। सुरेश और खलवधनिरत इन दो विशेषणों से देवताओं की रक्षा के लिए रावणादि निशाचरों का वध द्योतित किया। यथा : जब जब नाथ सुरन्ह दुख पायो। नाना तनु धरि तुम्हहिं नसायो। ब्रह्मवृंदैकदेव कहकर ब्रह्मादिक कृत स्तुति लक्षित की। कन्दावदात तथा सरजिसनयन कहकर श्रीरामजी की समराङ्गण की शोभा द्योतित की। सिर जटा मुकुट प्रसून बिच बिच अति मनोहर राजहीं। जनु नीलगिरि पर तड़ित पटल समेत उड़गन भ्राजहीं। कृपादृष्टि करि वृष्टि प्रभु अभय किये सुरवृन्द। भालु कीस सब हरखे जय सुखधाम मुकुंद। देशमुर्वीशरूपम् कहकर श्रीरामजी का अपने राज्य पर लौटना दिखलाया। यथा : मन महुँ विप्र चरन सिर नाये। उत्तर दिसिहि बिमान चलाये।

श्लो. [1]शंखेन्द्वाभमतीवसुन्दरतनुं शार्दूलचर्माम्बरं
कालव्यालकरालभूषणधरं गंगाशशांकप्रियं।
काशीशं कलिकल्मषौघशमनं कल्याणकल्पद्रुमं
नौमीड्यं गिरिजापतिं गुणनिधिं कन्दर्पहं शंकरं ॥२॥

अर्थ : शङ्ख तथा चन्द्रमा के समान आभायुक्त अत्यन्त सुन्दर शरीरवाले सिंह के चर्म का कपड़ा पहने हुए कालसर्प का भयानक गहना पहने हुए गङ्गा और चन्द्रमा से प्रीति रखनेवाले काशीपति कलियुग के पापों के समूह को नष्ट करनेवाले कल्याण के कल्पवृक्ष पार्वती के पति गुण के निधान काम के शत्रु पूज्य शङ्करजी को मैं नमस्कार करता हूँ।

व्याख्या : शङ्ख से श्वेत रङ्ग तथा कठोरता कहा। इन्दु से चमक तथा आह्लादकत्व कहा। श्याम रङ्ग में अतीव सुन्दर रामजी और श्वेत रङ्ग में अतीव सुन्दर शङ्करजी हैं। शार्दूलचर्माम्बरं से क्रोध का जय कहा। कालव्यालकरालभूषणधर से सर्वाभिभावक कहा। गङ्गाशशाङ्कप्रिय से पापताप का नाशक कहा। काशीश कहने से मोक्षदायक कहा। कलिकल्मषौघशमन कहकर काल के प्रभाव

---

1. यह शार्दूलविक्रीडित छन्द है।

का मिटानेवाला कहा। कल्याणकल्पद्रुम कहकर सर्वाभीष्टप्रद कहा। ईड्य से जगद्वन्द्य और गिरिजापति से मायापति द्योतित किया। गुणनिधि कहकर भजनीय होना कहा। काम का शत्रु कहकर भगवच्चरणारविन्दों में अगाध प्रेम दिखलाया अथवा अमोघ सामर्थ्य सूचित किया। ऐसे गुणवाले महादेव को श्री ग्रन्थकार प्रणाम करते हैं।

सुन्दरकाण्ड में भगवान् रुद्र हनुमान्‌जी के रूप से सेवक बने। अतः शिवजी की वन्दना रामजी की वन्दना के बाद की गयी।

श्लो. [1]यो ददाति सतां शम्भुः कैवल्यमपि दुर्लभम्।
खलानां दण्डकृद्योऽसौ शङ्करः शं तनोतु माम्॥

अर्थ : जो शम्भु भलों को दुर्लभ कैवल्य भी दे देते हैं और जो दुष्टों को दण्ड देनेवाले हैं ऐसे शङ्कर मेरा कल्याण करें।

व्याख्या : अति दुर्लभ कैवल्य परम पद। संत पुराण निगम आगम बद। जिसके प्रसाद से सज्जनों को ऐसा दुर्लभ पद प्राप्त होता है। यथा : जोग कोटि करि जो गति हरि सों मुनि माँगत सकुचाहीं। बेद बिदित तेहि पद पुरारिपुर कीट पतंग समाँही। वही शिवजी दुष्टों को दण्ड देनेवाले हैं। यथा : जौं नहिं दंड करौं खल तोरा। भ्रष्ट होइ श्रुति मारग मोरा। श्री गोस्वामीजी कहते हैं कि मैं तो साधु और खल दोनों की वन्दना करनेवाला हूँ। यथा : बन्दौं संत असज्जन चरना। न साधु में ही मेरी गिनती है न खल में ही। मैं तो उपेक्षणीय हो गया। अतः प्रार्थना करता हूँ कि आपका नाम शङ्कर है। इस बात पर ध्यान रखते हुए मेरा कल्याण कीजिये :

६९. सेतुबन्ध प्रसंग

सो. सिंधु बचन सुनि राम, सचिव बोलि प्रभु अस कहेउ।
अब बिलंबु केहि काम[2], करहु सेतु उतरै कटकु॥
सुनहु भानुकुलकेतु, जामवंत कर जोरि कह।
नाथ नाम तव सेतु, नर चढ़ि भवसागर तरहिं॥

अर्थ : समुद्र के वचन सुनकर प्रभु रामजी ने मन्त्री को बुलाकर ऐसा कहा कि अब देर का क्या काम है। सेतु बनाओ जिसमें सेना पार उतरे। जाम्बवान ने

---

१. यह अनुष्टुप् छन्द है।

२. हनुमान्‌जी ने सीताजी से कहा था कि जौ रघुबीर होत सुधि पाई। करते नहिं विलम्ब रघुराई। सो जब से सीताजी की सुधि मिली है। अतः कहते हैं कि अब विलम्ब केहि काम।

हाथ जोड़कर कहा कि हे सूर्यकुल की पताका रूपी रामजी सुनिये। आपका नाम ही सेतु है। जिस पर चढ़कर मनुष्य भवसागर पार होता है।

व्याख्या : सिन्धुवचन। यथा : एहि विधि नाथ पयोधि बँधाइअ। जेहि यह सुजस लोक तिहुँ गाइअ। इसे सुनकर रामजी ने मन्त्रियों जाम्बवान हनुमान् आदि को बुलाकर कहा। कहना नहीं होगा कि रामजी के मन्त्री बन्दर भालु थे। यथा : उपल कीन्ह जल यान जेहि, सचिव सुमति कपि भालु। सीताजी का पता लग जाने पर सरकार को विलम्ब सह्य नहीं है। पहिले सुग्रीवजी से कहा था : अब विलम्ब केहि कारन कीजे। तुरत कपिन्ह कहँ आयसु दीजे। और अब समुद्र के चले जाने के बाद मन्त्रियों से कहते हैं कि अब विलम्ब किसलिए हो रहा है। भाव यह है कि किष्किन्धा से धावा मारती हुई वानरी सेना समुद्र के किनारे तक चली आई और समुद्र के उतरने का कोई साधन न होने से सेना को रुक जाना पड़ा। तब से यहीं रुकी पड़ी हैं। अब समुद्र में सेतुबन्ध का उपाय बतला दिया। अतः उपाय को कार्य में परिणत करना चाहिए। बानरी सेना सेतु से ही पार जा सकती है।

उत्साह बढ़ाते हुए वृद्ध मन्त्री जाम्बवानजी ने कहा कि आपका नामरूपी सेतु तो बँधा बँधाया है जिसपर चढ़कर मनुष्य भवसागर के पार हो जाते हैं। उस पुल के सामने नील क्या पुल बाँधेंगे। फिर भी सरकार की आज्ञा है तो पुल बाँधा जायगा। देर करने का यही अभिप्राय था कि कदाचित् उसी पुल से काम लिया जाय।

यह लघु जलधि तरत कति बारा। अस सुनि पुनि कह पवनकुमारा ॥
प्रभु प्रताप बड़वानल भारी। सोखेउ प्रथम पयोनिधि बारी ॥१॥

अर्थ : इस छोटे से समुद्र को पार करने में क्या देर लगेगी। ऐसा सुनकर फिर हनुमान्जी ने कहा कि प्रभुप्रताप रूपी भारी बड़वानल ने पहिले समुद्र का पानी सोख लिया था।

व्याख्या : क्षार समुद्र सातो समुद्रों से छोटा है और भवसागर में ऐसे न जाने कितने समुद्र हैं। यथा : अगनित सरित सिन्धु महि कानन। भवसागर के लिए भले ही जहाज या पुल की आवश्यकता पड़े परन्तु इस समुद्र के तरने में क्या देरी है। यह तो बिना पुल के भी तरा जा सकता है। बेफिक्री के कारण विलम्ब हुआ। सरकारी काम न रुकेगा।

जब समुद्र के आ जाने से सेना को रुकना पड़ा था उस समय सरकार ने सुग्रीव और विभीषण केवल दो से प्रश्न किया था। यथा : सुनु कपीश लङ्कापति बीरा। केहि विधि तरिअ जलधि गंभीरा। यहाँ जाम्बवान और हनुमान्जी से प्रश्न हो रहा है। सो जाम्बवानजी के उत्तर दे देने पर पवनकुमार हनुमान्जी बोले। हनुमान्जी का वेग प्रख्यात है। मारुतनंदनमारुत को मनको खगराज को वेग लजायो। गोष्पदीकृतवारीशं मशकीकृतराक्षसं। इन्हें समुद्र आँसू का जल मालूम

पड़ता है। बोले कि यह बड़वानल तो कब से समुद्र में पड़ा है। पर उसका कुछ भी बिगाड़ न सका। पर भारी बड़वानल सरकार का प्रताप है। पहिले समुद्र गम्भीर था। यथा : केहि बिधि तरिअ जलधि गंभीरा। उसे तो आपके प्रताप ने सोख लिया। समुद्रजी भी कह गये कि प्रभु प्रताप मैं जाब सुखाई। अब जो समुद्र में पानी है सो शत्रुओं के स्त्रियों की आँसू की धारा का जल है।

तव रिपु नारि रुदन जल धारा। भरेउ बहोरि भयेउ तेहि खारा॥
सुनि अति उक्ति पवनसुत केरी। हरषे कपि रघुपति तन हेरी ॥२॥

अर्थ : आपके शत्रुओं की स्त्रियों के रोने से जो जल की धारा बही उसीसे यह समुद्र भर गया और उसी कारण से खारा हो गया। हनुमान्‌जी की अत्युक्ति सुनकर बन्दर लोग रघुपति की ओर देखकर हर्षित हो गये।

व्याख्या : प्रमाण यह है कि यह समुद्र खारा होता है आँसू भी खारा होता है। आँसू पर कवियों ने जल प्रलय तक का वर्णन किया है। यथा : अहो पथिक कहियो तुरत गिरधारी सन टेरि। दृग झरि लाई राधिका अब बूड़त वृज फेरि। गोपिन के अँसुआन के धार पनारे वहे बहि ह्वै गये नारे। नारे ते नद केते भये नद ते नदियाँ भईं काटि करारे। वेगि चलो मिलिये जदुनन्दन नेक सुनो यह बैन हमारे। वे नद चाहत सिन्धु भयो अरु सिन्धु तै ह्वै है जलाहल सारे।

सो ऐसा अद्भुत वर्णन रोचकता के लिए है। इसे अत्यन्तातिशयोक्ति अलङ्कार कहते हैं। यहाँ रावण वध से पहिले ही स्त्री रुदन के आँसू से समुद्र का भर उठना अत्यन्तातिशयोक्ति है। अलङ्कार की कथा कहकर यदि कोई उसे इतिहास की भाँति साधु सिद्ध करने का प्रयत्न करे तो यह उसकी स्वादु पराङ्मुखता है। यथा : आनन्दनिष्यन्दनरूपकेषु व्युत्पत्तिमात्रं फलमल्पबुद्धेः। योऽपीतिहासादिवदाह साधु तस्मै नमः स्वादुपराङ्मुखाय। सुजान शिरोमणि को प्रसन्न करने के लिए भगवान् मारुति ने अत्यन्तातिशयोक्ति से जिसके प्रति अत्युक्ति की गयी उसे देखकर कपिगण हर्षे। कपियों को भी अत्युक्ति का आनन्द मिला। यही काव्य का चमत्कार है।

जामवंत बोले दोउ भाई। नल नीलहिं सब कथा सुनाई॥
राम प्रताप सुमिरि मन माँही। करहु सेतु प्रयास कछु नाँही ॥३॥

अर्थ : जाम्बवान ने नल नील दोनों भाइयों को बुलाकर सारी कथा सुनाई। कहा कि रामजी के प्रताप का मन में स्मरण करके सेतु बनाओ कुछ परिश्रम नहीं होगा।

व्याख्या : सरकार से विलम्ब का कारण कहकर अब आज्ञा पालन करते हैं। समुद्र से बातचीत के समय केवल मन्त्रिमण्डल वहाँ था। नलनील केवल सेनापति होने के कारण सेना में थे। उन्हें ये सब बातें नहीं मालूम थीं। अतः जाम्बवानजी ने उन्हें बुलाकर सब इतिवृत्ति सुनाया कि लड़कपन में तुम दोनों भाइयों को ऋषि

का आशीर्वाद मिला है। तुम्हारे फेंके हुए सिल लोढ़ा पथरी आदि जल में नहीं डूबती। अब राम प्रताप से तुम्हारे छूए हुए बड़े बड़े पर्वत तरेंगे। समुद्र भी यथाशक्ति तुम लोगों की सहायता करेगा। रामजी का प्रताप सेतु बाँधेगा। तुम निमित्त मात्र हो जाओ। तुम लोगों को यश मिलना है। परिश्रम कुछ भी न पड़ेगा। सरकार का प्रताप काम करेगा।

बोलि लिए कपि निकर बहोरी। सकल सुनहु बिनती कछु मोरी ॥
राम चरन पंकज उर धरहू। कौतुक एक भालु कपि करहू ॥४॥

अर्थ : फिर उन्होंने बानरों के समूह को बुला लिया और कहा कि सब लोग मेरी थोड़ी सी बिनती सुनो। रामजी के चरण कमल को हृदय में धारण कर सब भालू और बन्दर एक खेल करो।

व्याख्या : कारीगर ठीक करके सामग्री सञ्चय का उपाय कर रहे हैं। समस्त बानरी सेना बुलायी गयी। आज्ञा नहीं देते विनती करते हैं। सिपाही का काम बोझा ढोना नहीं है और इस समय इनसे बोझा ढोने का ही काम लिया जावेगा इसलिए विनती करते हैं। युद्ध में भेजने के समय बिनती नहीं करेंगे। यथा : प्रभु प्रताप सब कहि समुझाये। सुनि कपि सिंहनाद करि धाए।

सेनापति स्थपति हो गये। सुभट भारवाही हो गये। विटप गिरि मसाला हो गया। इसलिए जाम्बवानजी कहते हैं कि अब करने योग्य कार्य इतना ही रह गया कि रामचरण को हृदय में धरो। उसके हृदय में धारण करने से वक्ष्यमाण कार्य कौतुक हो जावेगा और कौतुक में आलस्य को स्थान नहीं है। यथा : तौ कौतुकिअन्ह आलस नाही।

धावहु मरकट बिकट बरूथा। आनहु बिटप गिरिन्ह के जूथा ॥
सुनि कपि भालु चले करि हूहा। जय रघुबीर प्रताप समूहा ॥५॥

अर्थ : हे मरकट विकट वरूथ ! तुम लोग दौड़ जाओ। वृक्षों और पर्वतों का समूह उठा लाओ। सुनकर बन्दर भालू हुहा करते चले और बोले कि रघुवीर के प्रताप समूह की जय हो।

व्याख्या : जाम्बवानजी ने कहा कि तुम लोग विकट वरूथ हो। प्राण को भी गिननेवाले नहीं हो। तुम्हें एक खेल बतलाता हूँ। तुम लोग दौड़ जाओ और पर्वत या वृक्ष जो जिस योग्य हो उठा लाओ। जाने के समय में ही दौड़ना कहते हैं। लाने के समय दौड़ना नहीं कहते। क्योंकि बोझा भारी रहेगा।

कहा कि कौतुक एक भालु कपि करहू सो भालु कपि ने कौतूक ही माना। हूहा करते बड़े उमंग से चले। पर्वत लाकर समुद्र पाटना कठिन नहीं मालूम पड़ा। अतः कवि कहता है कि उत्कर्ष राम प्रताप में है अथवा राम प्रताप के भरोसे से राम प्रताप की जय बोलते चले।

दो. अति उतंग गिरिपादप, लीलहि लेहिं उठाइ।
आन देहिं नल नीलहिं, रचहिं ते सेतु बनाइ ॥१॥

अर्थ : अत्यन्त ऊँचे ऊँचे पर्वत और वृक्ष बन्दर भालू खेल में ही उठा लेते थे। लाकर नल नील को देते थे और वे रचकर सेतु बनाते थे।

व्याख्या : रामचरण के हृदय में ध्यान रखने का साफल्य दिखाते हैं कि बन्दर भालुओं को बोझा मालूम ही नहीं पड़ता। इतने बन्दर ला ला कर देनेवाले हैं पर लेनेवाले केवल दो नील और नल। लाकर कहीं ढेर नहीं लगाया जाता। हाथो हाथ काम हो रहा है और वे कारीगरी के साथ सेतु बना रहे हैं। लहरों द्वारा यथाशक्ति समुद्र सहायता भी कर रहे हैं। गारे की आवश्यकता नहीं है। जहाँ के तहाँ पर्वत दृढ़ होते चले जा रहे हैं। श्रीरामनाम एवं श्रीरामप्रताप ही गारा मसाला हुआ।

सैल बिसाल आनि कपि देहीं। कंदुक इव नल नील ते लेहीं ॥
देखि सेतु अति सुंदर रचना। बिहँसि कृपानिधि बोले बचना ॥१॥

अर्थ : वानर बड़े बड़े पहाड़ लाकर देते थे और नल नील उन्हें गेंद की भाँति लेते थे। सेतु की अति सुन्दर रचना देखकर कृपासिन्धु रामजी हँस कर बोले।

व्याख्या : अति उतंग पर्वतों का उठा लाना कहा। अब नल नील का लेना कहते हैं। उन्हें भी प्रयास नहीं है। बन्दर पर्वतों को नल नील तक पहुँचाने के लिए उछाल देते हैं और वे उन्हें गेंद की भाँति लोक लेते हैं। पाँच दिनों तक यही क्रम चलता रहा। पहले दिन चौदह योजन। दूसरे दिन बीस योजन। तीसरे दिन इक्कीस योजन। चौथे दिन बाईस योजन और पाँचवें दिन तेईस योजन पुल बँधकर तैयार हो गया।

रामजी ने देखा कि सेतु की रचना बड़ी सुन्दर हुई है। केवल काम चलाने की दृष्टि से नहीं बना है। सो हँस पड़े कि हमारी बानरी सेना सेतु रचना में भी बड़ी कुशल है। कृपानिधि हैं। इन्हीं की कृपा से सब काम होता है और स्वयं उसे भक्त का किया हुआ मानकर बड़े प्रसन्न भी होते हैं। पाँच ही दिन में सौ योजन सेतुबन्ध होना और फिर भी रचना का सुन्दर होना अनोखी बात है। अब सेतुबन्ध को सनाथ करने के लिए प्रमाण युक्त वचन बोले।

परमरम्य उत्तम येह धरनी। महिमा अमित जाइ नहि बरनी ॥
करिहौं इहाँ संभु थापना। मोरें हृदय परम कलपना ॥२॥

अर्थ : यह भूमि अत्यन्त रमणीय और उत्तम है। इसकी अपार महिमा कही नहीं जा सकती। मैं यहाँ शिवजी की स्थापना करूँगा। मेरे हृदय में यह एक बड़ी भावना है।

व्याख्या : यह भूमि कैलास की भाँति परमरम्य है। यथा : परमरम्य गिरवर कैलासू। सदा जहाँ सिव-उमा निवासू। अतः शिव उमा निवास योग्य है। पर्वतों में उत्तम कैलास और स्थलों में उत्तम यह धरणी। कैलास की भी अमित महिमा अवर्णनीय है। यथा : सिद्ध तपोधन योगिजन सुर किन्नर मुनिवृंद। बसहिं तहाँ सुकृती सकल सेवहिं सिव सुखकंद। हरि हर विमुख धर्म रति नाहीं। ते नर तहँ सपनेहुँ नहिं जाहीं। इस धरणी की भी अमित महिमा अवर्णनीय है। यथा : मम कृत सेतु जो दरसन करिहीं। सो बिनु श्रम भवसागर तरिहीं। समुद्र पाटकर सेतु बँधा। इसलिए धरणी कहा।

रामजी कहते हैं कि शंकर की स्थापना का मेरे हृदय में सुदृढ़ विचार है। सो इस परमरम्य उत्तम धरणी में स्थापन करूँगा।

सुनि कपीस बहु दूत पठाए। मुनिवर सकल बोलि लै आए॥
लिंग थापि बिधिवत करि पूजा। सिव समान प्रिय मोहि न दूजा॥३॥

अर्थ : सुनकर राजा सुग्रीव ने बहुत से दूत भेजे जो सब श्रेष्ठ मुनियों को वुला लाये। लिङ्ग की स्थापना करके और विधिपूर्वक पूजन करके : रामजी ने कहा कि शिवजी के समान मुझे दूसरा कोई प्रिय नहीं है।

व्याख्या : श्रीरामजी ने इतना ही कहा कि : करिहौं इहाँ सम्भु स्थापना शेष कार्य कपिराज सुग्रीव का है। सुनते ही कपिराज ने बहुत से दूत भेजे। उस प्रान्त के सब मुनियों को बुलाने के लिए। स्थापनासम्बन्धी अन्य सामग्री सम्पादन के लिए। उसी समय की कथा है कि शिवलिङ्ग लाने के लिए हनुमान्जी काशी भेजे गये। यहाँ से लिङ्ग लेकर हनुमान्जी चले। पर भैरवनाथ ने उन्हें ऐसा करने से रोका। फलतः हनुमानजी और भैरवजी में बड़ा संग्राम हो पड़ा। शिवजी के स्वयं बीच में पड़ने से युद्ध रुका। हनुमान्जी लिङ्ग लेकर चले पर वहाँ बहुत देरी हो जाने के कारण रामजी वालुका का लिङ्ग बनाकर स्थापन कर चुके थे। अतः उस लिङ्ग को वहीं पर हनुमान्जी ने स्थापित किया जो काशी विश्वनाथ कहलाते हैं। सब मुनि बुलाये गये जिसमें कोई विधि शेष न रह जाय। चारों वेद के सभी शाखावाले मुनि बुलाये गये।

लिङ्ग[1] स्थापन के अन्तर्गत ही उमा स्थापन भी है। क्योंकि जलधरी उमा का प्रतीक है। सावयव मूर्ति से लिंग का अधिक महत्त्व है। महाभारत के युद्ध में महानारायण अस्त्र के निष्फल जाने पर जब अश्वत्थामा शास्त्र को दोष देते युद्ध

---

१. मूले ब्रह्मा तथा मध्ये विष्णुस्त्रिभुवनेश्वरः। रुद्रोपरि महादेवः प्रणवाख्यः सदाशिवः। लिङ्गवेदी महादेवी लिङ्गं साक्षान्महेश्वरः। तयोः सम्पूजनान्नित्यं देवी देवश्च पूजितौ। लिं. पू.।

अर्थ : लिङ्ग के मूल में ब्रह्माजी मध्य में विष्णु उपरिभाग में प्रणव नामवाले शङ्करजी स्थित हैं। लिङ्गवेदी महादेवी है लिङ्ग साक्षात् महेश्वर हैं। वेदी और लिङ्ग के पूजन से देवी और देवता का पूजन हो जाता है।

त्यागकर चले तब व्यासजी ने उन्हें समझाया कि तुम अर्जुन और श्रीकृष्ण जन्मजन्मान्तर के शिवोपासक हो। तुमने शिवजी की सावयव मूर्ति की पूजा की है और कृष्णार्जुन ने लिंग मूर्ति की पूजा की है। अतः तुम कृष्णार्जुन को छोड़कर और सबको जीत सकते हो। इनके सामने तुम्हारी कुछ नहीं चल सकती। विजय लिंगोपासक की ही होगी। स्थापना के बाद प्रथम पूजा बड़े समारोह और विधि से होती है। यह पूजा होने पर स्थापना की समाप्ति मानी जाती है। अतः स्थापना समाप्त होने पर श्रीरामजी ने जगत् के कल्याण के लिए उपदेश दिया कि शिवजी के समान मुझे कोई प्रिय नहीं है। यथा : कोउ नहिं सिव समान प्रिय मोरे। अस परतीति तजहु जनि भोरे। इतने प्रिय हैं कि उन्हीं के हाथ भक्ति का भण्डार सौंप दिया है। यथा : औरौ एक गुपुत मत सबहि कहउ कर जोरि। संकर भजन बिना नर भगति न पावै मोरि। तथा : सिव सेवा कर फल सुत सोई। अबिरल भगति रामपद होई।

सिव द्रोही मम भगत कहावा। सो नर सपनेहुँ मोहि न पावा ॥
संकर बिमुख भगति चह मोरी। सो नारकी मूढ़ मति थोरी ॥४॥

अर्थ : शिवद्रोही है और मेरा भक्त कहलाता है ऐसा मनुष्य स्वप्न में भी मुझे नहीं पाता। शिवविरोधी होकर जो मेरी भक्ति चाहता है वह नरक का अधिकारी मूढ़ थोड़ी बुद्धिवाला है।

व्याख्या : शिवद्रोही मेरा भक्त हो नहीं सकता भले हो वह अपने को मेरा भक्त कहा करे। मेरा भक्त कहलावे और मेरे परम प्रिय से वैर करे उसे मेरी प्राप्ति कैसे होगी। यहाँ पर श्रीकृष्ण गीतावली का एक पद जो कि गोपियों ने उद्धवजी से कहा है मनन करने योग्य है यथा :

कही है भली बात सबके मनमानी।
प्रिय सम प्रिय सनेह भाजन सखि, प्रीति रीति जग जानी ॥
भूषन भूति गरल परिहरि के हरमूरति उर आनी।
मज्जन पान किये के सुरसरि कर्म नाश जल छानी ॥
पूँछ सो प्रेम विरोध सींग सो यह विचार हित हानी।
कीजे कान्हकूबरी सो नित नेह करम मन बानी ॥
तुलसी तजिअ कुचालि आलि सब सुधरै सबै नसानी।
आगे करि मधुकर मधुरा कहँ सोधिय सुदिन सपानी ॥

शिव राम का अभेद दर्शन ही पूर्ण दर्शन है। परम स्नेहभाजन के विमुख होना मूढ़ मन्दमति का काम है यथा : सीता चरन चोंच हति भागा। मूढ़ मंदमति कारन कागा। इतना ही नहीं रामजी के परम स्नेह भाजन शिवजी का द्रोही रामभक्ति चाहता हुआ भी नरकगामी होता है।

दो. संकर प्रिय मम द्रोही, सिवद्रोही मम दास।
ते नर करहिं कलप भरि, घोर नरक महुँ बास ॥२॥

अर्थ : जो शिव के भक्त और मेरे द्रोही हैं और जो शिव के द्रोही और मेरे दास हैं वे नर कल्प भर घोर नरक में निवास करते हैं।

व्याख्या : श्री रामजी कहते हैं कि वही गति उनकी भी है जिन्हें शंकर प्रिय हैं और मुझसे द्रोह है वे भी शिवद्रोही मेरे दास की भाँति एक कल्प घोर नरक में निवास करते हैं। इससे शिव राम में भेददर्शी को अधोगति का होना ध्रुव बतलाया। उभयोरेका प्रकृतिः प्रत्ययभेदात् पृथग्वद् भाति। कलयति कश्चन मूढः हरिहरभेदं विनाशास्त्रभ्। दोनों की प्रकृति एक है। प्रत्यय के भेद से अलग अलग मालूम पड़ते हैं। कोई मूढ़ ही हरिहर में भेद की कल्पना शास्त्र के विरुद्ध किया करते हैं अथवा अपने विनाश का अस्त्र तैयार करते हैं।

ये नमस्यन्ति गोविन्दं ते नमस्यन्ति शङ्करम्।
येऽर्चयन्ति हरिं भक्त्या तेऽर्चयन्ति वृषध्वजम्॥
ये द्विषन्ति विरूपाक्षं ते द्विषन्ति जनार्दनम्।
ये रुद्रं नाभिजानन्ति ते न जानन्ति केशवम्॥

: रुद्रहृदयोपनिषदि।

ममैषा परमा मूर्तिर्नारायणसमाह्वया।
सर्वभूतात्मभूतस्था शान्ता चाक्षरसंस्थिता॥
येऽन्यथा मां प्रपश्यन्ति लोके भेददृशो जनाः।
न ते मुक्ति प्रपश्यन्ति जायन्ते च पुनः पुनः॥ : कूर्मपुराणे।

जो गोविन्द को नमस्कार करते हैं वे शंकर को नमस्कार करते हैं। जो भक्ति से हरि की पूजा करते हैं वे वृषध्वज की पूजा करते हैं : रुद्रहृदय ईश्वरगीता में कहा है कि यह जो नारायण नामवाली मूर्ति है वह मेरी परम मूर्ति है। सब भूतों के आत्मभूत होकर जो स्थित है शान्त है जिसे अक्षर कहते हैं जो भेद देखनेवाले हैं और मुझे अन्यथा देखते हैं उन्हें मुक्ति का दर्शन नहीं होता। वे बार बार जन्म लेते हैं।

जे रामेस्वर दरसनु करिहहिं। ते तनु तजि मम लोक सिधरिहहिं॥
जो गंगाजलु आनि चढ़ाइहि। सो सायुज्य मुक्ति नर पाइहि॥१॥

अर्थ : जो लोग रामेश्वर का दर्शन करेंगे वे शरीर छोड़कर मेरे लोक को जावेंगे और जो गङ्गाजल लाकर चढ़ायेगा वह मनुष्य सायुज्यमुक्ति पावेगा।

व्याख्या : अपने नाम से नामकरण करते हैं। प्रश्न उठा कि फिर रामेश्वर शब्द का क्या अर्थ होगा? श्रीरामजी ने कहा : सीधा सीधा षष्ठीसमास है : रामस्य ईश्वरः रामेश्वरः। रामके स्वामी रामेश्वर हैं। लिङ्ग से शब्द हुआ कि यहाँ बहुव्रीहि समास हैं। राम ईश्वरो यस्य जिसके स्वामी राम हैं वह रामेश्वर हैं। मुनियों ने विचार किया कि दोनों वचन प्रमाण हैं। पर हम लोग क्या मानें? सो यह निर्णय किया

कि यहाँ कर्मधारय समास है रामश्चासौ ईश्वरश्च रामेश्वरः जो राम हैं वही ईश्वर हैं।

नामकरण करने के बाद श्रीरामजी श्रीमुख से दर्शन की महामहिमा कहते हैं। एक बार चाक्षुष सम्बन्ध हो जाने से मनुष्य सालोक्य मुक्ति का अधिकारी हो जाता है अर्थात् साकेत लोक को प्राप्त होता है।

शिवजी को गङ्गा बड़ी प्रिय हैं। यथा : गंगाशशांकप्रियम्। सो जो गङ्गाजल लाकर चढ़ावेगा वह सायुज्यमुक्ति पावेगा। स्वयं शिवजी में लीन हो जायगा। लाकर चढ़ाने का भाव यह कि दर्शनोपरान्त संकल्प करे कि मैं गङ्गाजल लाकर चढ़ाऊँगा। तब वहाँ से वाराणसी पुरी जावे और वहाँ से गङ्गाजल लाकर श्रीरामेश्वरजो को चढ़ावे और भार को समुद्र में डाल दे। इस विधान से गङ्गाजल चढ़ाने से सायुज्य मुक्ति होती है। तपस्या बड़ी है इसलिए सर्वोत्तम फल भी मिलता है।

होइ अकाम जो छलु तजि सेइहि। भगति मोर तेहि संकर देइहि॥
मम कृत सेतु जो दरसनु करिहीं। सो बिनु श्रम भव सागर तरिहीं॥२॥

अर्थ : जो निष्काम बुद्धि से छल छोड़कर सेवा करेगा उसे शिवजी मेरी भक्ति देंगे। मेरे किये हुए सेतु का जो दर्शन करेगा वह बिना परिश्रम के ही संसार सागर के पार हो जायगा।

व्याख्या : शिव सेवा कर फल सुत सोई। अविरल भगति राम पद होई। यहाँ शिवसेवा शब्द से कामनारहित और छलरहित होकर भजन करना इङ्गित किया। यथा : सिरभर जाउँ उचित अस मोरा। सबते सेवक धर्म कठोरा। सकाम सेवन करनेवाले को भक्ति नहीं मिलती। क्योंकि उसके हृदय में अन्य कामना है। यथा : नान्या स्पृहा रघुपते हृदयेऽस्मदीये सत्यं वदामि च भवानखिलान्तरात्मा। भक्ति प्रयच्छ रघुपुंगव निर्भरां मे और छल से सेवन करनेवाले को तो भक्ति स्वप्न में भी दुर्लभ है। क्योंकि कपट छल छिद्र भगवान् को नापसन्द है। यथा : मोहि कपट छल छिद्र न भावा। शङ्कर भगवान् रामभक्ति के भण्डारी हैं। बिना इनकी कृपा रामभक्ति मिलती ही नहीं। यथा : औरउ एक गुपुत मत सबहि कहौं कर जोरि। संकर भजन बिना नर भगति न पावइ मोरि। रामेश्वर लिङ्ग साक्षात् प्रभु के कर कमल से स्थापित है। अतः इसकी सेवा से शीघ्र ही निश्चित फल की प्राप्ति होगी।

शङ्कर भगवान् के दर्शन और भजन की फलश्रुति कहकर अब सेतु के दर्शन का माहात्म्य कहते हैं कि इसके दर्शन से मनुष्य बिना परिश्रम के भवसागर पार हो जायगा। भाव यह कि नामरूपी सेतु तो भवसागर सन्तरण के लिए अनादि काल से बँधा है। यथा : नाथ नाम तव सेतु नर चढ़ि भवसागर तरहिं। परन्तु अब जो सेतु बँधा है उसमें विशेषता यह है कि इस पर चढ़कर पार करने के श्रम की

भी आवश्यकता नहीं है। केवल दर्शन से ही भवपार पहुँच जाता है। विश्वास अवश्य करे।

राम बचन सबके जिय भाए। मुनिवर निज निज आश्रम आए ॥
गिरिजा रघुपति कै यह रीती। संतत करहिं प्रनत पर प्रीती ॥३॥

अर्थ : रामजी के वचन सबके जी में अच्छे लगे। श्रेष्ठ मुनि लोग अपने अपने आश्रमों में आये। हे गिरिजे! रघुपति की यह रीति है कि सदा प्रणत पर प्रीति करते हैं।

व्याख्या : कर्मठ उपासक और ज्ञानी सभी का हित प्रभु के वचन में निहित था। ज्ञानी की चाही हुई सायुज्य मुक्ति का भी इसमें उपाय कहा गया। भक्ति मिलने का भी रास्ता बतलाया गया और कर्मठ के लिए धाम की प्राप्ति अथवा संसार-सागर तरण का भी सरल मार्ग दिखलाया गया। स्थापना का कार्य समाप्त हुआ। जिन जिन मुनियों को बुला लाये थे वे अपने आश्रमों पर आये। गये नहीं कहते क्योंकि वे अपने अपने आश्रमों पर आये तो सही पर मन उनका भगवान् के चरणों में ही रहा।

इस कथा के कहने में शिवजी को अपना महत्त्व कहना पड़ा। अपना महत्त्व स्वयं कथन करना बड़ी लघुता है। अतः शिवजी अपने श्रोता गिरिजाजी से कहते हैं कि इसमें मेरा महत्त्व कुछ भी नहीं। रामजी की यह रीति है कि सदा प्रणत पर प्रीति करते हैं। मैं प्रणत हूँ। इससे सदा मुझपर प्रीति करते हैं। परमरम्य उत्तम धरणी देखकर मेरी स्थापना की और अपने मुख से मेरी मूर्ति के दर्शन का महत्त्व कहा। अपने में और मुझमें अभेद प्रतिपादन किया। यह सब उनके प्रणतपालकता का उदाहरण है।

बाँधा सेतु नील नल नागर। राम कृपा जसु भयेउ उजागर ॥
बूड़हिं[1] आनहि बोरहिं जेई। भए उपल बोहित सम तेई ॥४॥
महिमा यह न जलधि कै बरनी। पाहन गुन न कपिन्ह कै करनी ॥५॥

अर्थ : चतुर नील नल ने राम की कृपा से सेतु बाँधा। उन्हें उज्ज्वल यश मिला। जो पत्थर स्वयं डूबते हैं और दूसरे को भी ले बैठते हैं वे जहाज के सदृश स्वयं तीर्ण होकर दूसरे के भी तारक हुए। यह न तो समुद्र की महिमा है न पत्थर के गुण हैं और न बन्दरों की करणी है।

---

१. यहाँ विभावना : चतुर्थ अलंकार है। हनुमन्नाटक में ठीक इसी आशय का श्लोक है। यथा : ये मज्जन्ति निमज्जन्ति च परांस्ते प्रस्तरा दुस्तरे वार्धौ वीर तरन्ति वानरभटान् सन्तारयन्तेऽपि च। नैते ग्रावगुणा न वारिधिगुणा नो वानराणां गुणाः श्रीमद्दाशरथेः प्रतापमहिमारम्भः समुज्जृम्भते।

व्याख्या : सैल बिसाल आनि कपि देहीं। कंदुक इव नल नील सो लेहीं। यहाँ से नल नील का प्रसङ्ग छोड़ा था। अब कहते हैं कि नल नील ने रामकृपा से समुद्र में सेतु बाँधा। उनका यश जगत् में प्रकाशमान हो गया। रामकृपा यह कि दूसरों को भी ले डूबनेवाले पत्थर दूसरों के उद्धार के लिए जहाज हो गये। रामकृपा से वस्तु का स्वाभाविक गुण बदल गया। न समुद्र में सेतु बाँधने में सहायक होता है न पत्थर तरते हैं और न बन्दर शिल्पी होते हैं और यहाँ सब हुआ। इस पर गोस्वामीजी कहते हैं।

दो. श्रीरघुबीर प्रताप तें, सिंधु तरे पाखान।
ते मतिमंद जे राम तजि, भजहि जाइ प्रभु आन ॥३॥

अर्थ : श्रीरघुवीर के प्रताप से पत्थर समुद्र में तर गये। ऐसे स्वामी राम को छोड़कर जो दूसरे प्रभु को भजते हैं वे मतिमन्द हैं।

व्याख्या : श्रीरामजी के प्रताप से पर्वत : पत्थर समुद्र तर गये। अर्थात् उस प्रताप में असम्भव को सम्भव करने की शक्ति है। बुद्धिमान् का कर्त्तव्य है कि प्रतापी का भजन करे। असमर्थ के भजन से क्या लाभ है ? सो श्रीरामजी सा समर्थ प्रभु कोई नहीं है। यथा : जो चेतन कहँ जड़ करै जड़हिं करै चैतन्य। अस समर्थ रघुनायकहि भजहिं जीव ते धन्य। अतः जो रामजी को छोड़कर दूसरे प्रभु देव दनुज नर नाग मनुज को भजते हैं वे मतिमन्द हैं। यथा : देव दनुज नर नाग मनुज खग माया बिबस बिचारे। तिनके हाथ दास तुलसी प्रभु कहा अपनपो हारे। रामजी महामाया के पति हैं। उन्हें छोड़कर दूसरे के भजनेवाले नर पशु हैं। यथा : अस प्रभु छाड़ि भजहिं जे आना। ते नर पसु बिनु पूछ बिषाना। भजहिं जाइ कहने का भाव यह कि रामजी को भजने के लिए कहीं जाना नहीं है। वे तो सबके हृदय में विराजमान हैं। यथा : सबके उर अन्तर बसहु जानहु भाउ कुभाउ। दूसरे के भजने में उनके पास जाना पड़ेगा।

बाँधि सेतु अति सुदृढ़ बनावा। देखि कृपानिधि के मन भावा ॥
चली सेन कछु बरनि न जाई। गरजहिं मरकट भट समुदाई ॥१॥

अर्थ : सेतु बाँधकर उसे खूब मजबूत बनाया। देखकर कृपानिधि रामजी को बहुत प्रिय लगा। सेना चली जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता। योद्धा बन्दरों का समाज गर्जन कर रहा है।

व्याख्या : बड़ी भारी सेना को उस पर से जाना है इसलिए अत्यन्त दृढ़ बनाया। इधर शङ्कर की स्थापना हो रही थी उधर सेतु को बाँधने के बाद भी सब प्रकार से उसे दृढ़ कर रहे थे। सेना के पार जाने के समय पुल के टूटने का डर रहता है। सैनिकों के एक साथ पादप्रक्षेप से ऐसा स्पन्दन होता है जिससे पुल टूट जाता है। अतः पुल पार करने के लिए सेना को अव्यवस्थित रूप से चलने की आज्ञा दी जाती है।

सरकार कृपानिधि हैं। उन्हीं की कृपा से कार्यसिद्धि होती है और वे सेवक को बड़ाई देने के लिए कार्यसिद्धि पर प्रसन्न होते हैं। इसीलिए सेतु बँधने पर जब प्रभु ने उसे देखा तब भी कवि ने कृपानिधि कहा था और जब सुदृढ़ किया गया तब भी उसको देखकर सन्तुष्ट होने पर कवि कृपानिधि ही विशेषण देते हैं। यथा : देखि कृपानिधि के मन भावा।

वानर कटक उमा मैं देखा। सो मूरख जो करन चह लेखा। अतः कवि कहते हैं कि : सेन कछु बरनि न जाई। उधर समुद्र का गर्जन इधर सेना का गर्जन। वानरी सेना को बड़ा उत्साह है। अतः गर्जन करती हुई सेतु पर से चली जा रही है। सेना भी समुद्र है।

सेतुबंध ढिग चढ़ि रघुराई। चितव कृपाल सिंधु बहुताई ॥
देखन कहुँ प्रभु करुना कंदा। प्रगट भये सब जलचर बृंदा ॥२॥

अर्थ : सेतुबन्ध के पास चढ़कर रघुराई रामजी समुद्र का विस्तार देख रहे हैं। करुणा के मेघरूप रामजी के दर्शन के लिए जलचरों का समूह सब का सब जल के ऊपर आगया।

व्याख्या : सिन्धु का विस्तार बिना ऊँचे चढ़े दृष्टिगोचर नहीं होता। बेला से ही समुद्र ऊँचा होता चला जाता है। अतः तट से उसके विस्तार का पता नहीं चलता। समुद्र दर्शन का आनन्द लेनेवाले किसी ऊँचे स्थल पर चढ़कर समुद्र का विस्तार देखते हैं। जहाँ से चढ़कर सरकार ने समुद्र का विस्तार देखा था उस स्थान को आज भी लोग राम झरोखा के नाम से अभिहित करते हैं। वस्तुतः विस्तार देखने के व्याज से कृपालु रामजी को अपना दर्शन देकर जलचरों को सुखी करना इष्ट था। हृदय में बड़ी करुणा है कि मेरे वाण सन्धान से विचारे जलने लगे थे विकल हो गये थे।

जलचर वृन्द जल में छिपे रहते हैं। कभी कभी साँस लेने के लिए उछल कर फिर गोता लगा लेते हैं। सो सब प्रभु के दर्शन के लिए जल के ऊपर प्रकट हो गये। उन्हें प्रभु के दर्शन में बड़ा आनन्द मिलता था। प्रभु की करुणा से उनके हृदय में जल के बाहर आने की प्रेरणा हुई। इसीलिए करुणाकन्द विशेषण दिया। करुणा की वर्षा सब जलचरों पर हो रही है। खारे समुद्र में रहनेवाले जलचर आज मीठे समुद्र श्रीराम का रस ले रहे हैं।

मकर नक्र नाना झख ब्याला। सत जोजन तनु परम बिसाला ॥
ऐसेउ एक तिन्हहिं जे खाहीं। एकन के डरतेपि डेराहीं ॥३॥

अर्थ : अनेक प्रकार के मगर नाक मछली सर्प जिनके शरीर बड़े विशाल सौ योजन तक के थे। कोई ऐसे विशाल भी थे जो उन्हें खा सकते थे और वे भी अपने से बड़े के डर से डरते थे।

व्याख्या : हनुमन्नाटक में कहा है : अस्ति मत्स्यस्तिमिर्नाम शतयोजन-विस्तरः। तिमिङ्गिलगिलोप्यस्ति तद्गिलोप्यस्ति राघवः। एक मछली ऐसी होती है जिसका विस्तार सौ योजन का होता है उसे तिमि कहते हैं। परन्तु उसे भी निगलनेवाली मछली होती है जिसे तिमिङ्गिल कहते हैं और जो मछली तिमिङ्गिल को निगल जाती है उसे राघव कहते हैं। इससे यह दिखलाया कि शरीरधारियों में मछली सबसे बड़ी होती है जिसका पता भी लोगों को नहीं है। अथाह जल में रहती हैं वे सब भी प्रकट हो गईं।

प्रभुहि बिलोकहिं टरहिं न टारे। मन हरखित सब भयें सुखारे ॥
तिन्हकी ओट न देखिअ बारी। मगन भए हरि रूप निहारी ॥४॥
चला कटकु प्रभु आयसु पाई। को कहि सक कपिदल बिपुलाई ॥५॥

अर्थ : प्रभु को देखते हुए वे टालने से नहीं टलते थे। सब के मन हर्षित और सब सुखी हो गये। उनकी आड़ में पानी नहीं दिखलायी पड़ता था। वे हरि का रूप देखकर मग्न हो गये। प्रभु की आज्ञा पाकर सेना चली। वानरी सेना के दल का कौन वर्णन कर सकता है। दोहावली ४०४ :

व्याख्या : जलचर एक दूसरे से भयभीत रहते हैं। एक दूसरे के भय से भागते फिरते हैं। यथा : सहवासी काँचों गिलहिं पुरजन पाक प्रवीन। कालछेप केहि मिलि करेंहिं तुलसी खग मृग मीन। सो ये जलचर प्रभु को देखकर दर्शन में ऐसे तल्लीन हो गये कि उनको सुधबुध न रह गयी। इस समय वे एक दूसरे के हटाये नहीं हटते। पहिले व्याकुल और दुःखी हो गये थे। यथा : मकर उरग झख गन अकुलाने। जरत जन्तु जलनिधि जब जाने। सो हर्षित और सुखारे हो गये। आज उन्हें जल के ऊपर रहने में सुख मिल रहा है। सिन्धु में मग्न न होकर रूपसुधा सिन्धु में मग्न हैं। छोटे बड़े सब जलचरों के बाहर आजाने से जल बिलकुल ढक गया। अति विचित्र दृश्य उपस्थित हो गया।

प्रभु सिन्धु का विस्तार देख रहे हैं। जल जन्तु प्रभु की रूप सुधामृत का आनन्द ले रहे हैं। सेना सेतु पर से पार चली जा रही है। चली सेन कछु बरनि न जाई से प्रसङ्ग छोड़ा था अब फिर वहीं से प्रसङ्ग उठाते हैं। यथा : चला कटक कछु बरनि न जाई। को कहि सक कपि दल विपुलाई। भाव यह कि जब शिवजी ने कह दिया है कि : सो मूरख जो करन चह लेखा तब दूसरा कौन कह सकता है।

दो. सेतुबंध भई भीर अति, कपि नभ पंथ उड़ाहिं।
अपर जलचरन्हि ऊपर, चढि चढि पारहि जाहिं ॥४॥

अर्थ : सेतु बन्ध पर बड़ी भीड़ हुई। वानर आकाश मार्ग से उड़ रहे हैं। अन्य जलचरों के ऊपर चढ़ चढ़कर पार जा रहे हैं।

व्याख्या : इतने विस्तृत सेतु पर भी सेना समाती नहीं है। अतः दो रास्ते और बन गये एक आकाश मार्ग और दूसरा जलचर मय मार्ग। बन्दर ही तो ठहरे जलचरों के ऊपर कूदते हुए पार चले जा रहे हैं : आकाश मार्ग से जानेवाले विहंगमार्गी ज्ञानी सेतु पर जानेवाले उपासक और जलचर मय मार्ग से जानेवाले कर्मठ हैं।

अस कौतुक बिलोकि दोउ भाई। बिहँसि चले कृपाल रघुराई ॥
सेन सहित उतरे रघुबीरा। कहि न जाइ कपि जूथप भीरा ॥१॥

अर्थ : ऐसा कौतुक दोनों भाइयों ने देखा। कृपाल रघुराई हँसकर चल पड़े। सेना के सहित रघुबीर रामजी उतरे। वानर यूथपों की भीड़ कही नहीं जा सकती।

व्याख्या : पहिले बन्दरों द्वारा सेतु की ऐसी रचना देखकर हँसे थे अब जलचर मय सेतु पर बन्दरों को जाते देखकर विहँस रहे हैं। अब स्वयं प्रभु का प्रयाण लिखते हैं। भाव यह कि प्रभु सेना के मध्य में चल रहे हैं। कृपाल रघुराई कहने का भाव यह है कि सेना की रक्षा के लिए चले अथवा भक्तों पर कृपा करने के लिए चले।

इस भाँति शत योजन चले गये। समुद्र पार जाकर उतरे। भाव यह कि हनुमान्‌जी के कन्धे पर रामजी और अङ्गद के कन्धे पर लक्ष्मणजी थे। चारो ओर से बन्दरों के यूथप चारो ओर से घेरे हुए हैं। इस भाँति समुद्र पार जाकर उतरे। इन यूथपों की भीड़ अकथनीय है।

सिंधु पार प्रभु डेरा कीन्हा। सकल कपिन्ह कहुँ आयसु दीन्हा ॥
खाहु जाइ फल मूल सोहाए। सुनत भालु कपि जहँ तहँ धाए ॥२॥

अर्थ : प्रभु ने समुद्र पार डेरा डाला और सब बानरों को आज्ञा दी कि जाकर अच्छे अच्छे फल और फूल खाओ। सुनते ही भालू और बन्दर जहाँ तहाँ दौड़ पड़े।

व्याख्या : सौ योजन से सेतु पर बीच में कहीं डेरा नहीं डाला। धावा मारते चले ही गये। बीच में मीठे जल तथा फल मूल के मिलने का योग नहीं था। अतः डेरा डालना उचित भी नहीं था। वानरी सेना भी बिना खाये पीये सौ योजन बराबर चली गयी। अतः डेरा देते ही प्रभु ने भालू बन्दरों को सुन्दर सुन्दर फल मूल खाने की आज्ञा दी। बन्दर भालू भी भूखे थे जहाँ तहाँ दौड़ पड़े। हनुमान्‌जी उस वन की शोभा देख गये थे। यथा : तहाँ जाइ देखी बन सोभा। गुंजत चंचरीक मधु लोभा। नाना तरु फल फूल सोहाए। इसलिए आज्ञा हुई : खाहु जाइ फल मूल सोहाए। आज्ञा मिलने की देर थी सब दौड़ पड़े। फूल खाने की आज्ञा नहीं हुई। फूल के नष्ट होने से फल का आगम मारा जाता है।

सब तरु फरे राम हित लागी । रितु अरु कुरितु काल गति त्यागी ॥
खाहिं मधुर फल बिटप हलावहिं । लंका संमुख सिखर चलावहिं ॥३॥

अर्थ : रामजी के प्रीत्यर्थ सब पेड़ फले । ऋतु और कुऋतु तथा कालगति का त्याग किया । बन्दर भालु : मीठे फल खाते हैं पेड़ों को झकझोरते हैं और लंका की ओर पर्वत शिखर फेंकते हैं ।

व्याख्या : कालगत्ति के अनुकूल पेड़ों में फल लगते हैं । आम में पाँच बरस पर फल लगता है । महुआ पचीस वर्ष में फलता है । इमली तीस वर्ष में फलती है । सरसोई में फल लगने में महीनों लगते हैं । इसी भाँति सब पेड़ों में फल आने का काल है । इसी भाँति सब पेड़ों में फल आने का ऋतु है । दूसरे ऋतु उसके लिए कुऋतु है । जैसे आम के फलने का ऋतु ग्रीष्म तथा पावस है । शरद हेमन्तादि उसके लिए कुऋतु है । महुआ के फलने के अनुकूल ऋतु वसन्त है । पावस आदि उसके लिए कुऋतु है । सो रामजी के प्रीत्यर्थ सभी पेड़ फल उठे । ऋतु का कोई नियम न रह गया । इसी भाँति छोटे बड़े सभी पेड़ों में फल लग गया ।

बन्दर भालु कच्चे पक्के फल का विचार नहीं करते । काट काटकर गिरा देते हैं । पेड़ों को तोड़ डालते हैं । पर वे ऐसा नहीं कर रहे हैं । मीठे फल खाते हैं और पेड़ को हिलाते हैं जिसमें पके पके फल टपक पड़े । दूसरे भी लाभ उठावें । लंका के सम्मुख शिखर फेंकना एक प्रकार से ललकार है ।

जहँ कहुँ फिरत निसाचर पावहिं । घेरि सकल बहु नाँच नचावहिं ॥
दसनन्हि काटि नासिका काना । कहि प्रभु सुजसु देहिं तब जाना ॥४॥

अर्थ : वे जहाँ कहीं घूमते फिरते राक्षसों को पाते हैं तो उन्हें घेरकर अनेक प्रकार का नाच नचाते हैं । उनके नाक कान दाँत से काट लेते हैं और प्रभु का सुयश बोलवाकर तब उन्हें जाने देते हैं ।

व्याख्या : निशाचर लोगों का निवास तो लंका में है पर वन में भी घूमने का उनका स्वभाव है । यथा : व्याल कराल बिहंग वन घोरा । निसिचर निकर नारि नर चोरा । बन्दर लोग फल मूल के लिए वन में घुसे तो कहीं कहीं उनको घूमते फिरते राक्षस भी हाथ लग गये तो सब मिलकर उसे घेर लेते हैं । बन्दर जानते हैं कि परवश पड़ जाने पर नाचना पड़ता है अतः उस राक्षस को नचाते हैं । उसकी भलीभाँति दुर्गति करते हैं । पास में कोई हथियार तो है नहीं । अतः दाँत से ही उनके नाक कान काटकर रावण को चुनौती देते हैं । सूर्पणखा के नासिकाच्छेदन से लक्ष्मण की ओर से तो चुनौती दे दी गयी है अब सैनिकों की ओर से चुनौती दी जा रही है । उससे राजा रामचन्द्र की जय इत्यादि रामजी के सुयशसूचक घोषणा कराकर तब जाने देते हैं जिसमें वे जाकर बानरी सेना के आजाने का शुभ समाचार दें ।

मन्दोदरी का रावण को समझाना : दूसरी बार

जिनकर नासा कान निपाता। तिन्ह रावनहि कही सब बाता ॥
सुनत श्रवन वारिधि बंधाना। दसमुख बोलि उठा अकुलाना ॥५॥

अर्थ : जिनके नाक कान काटे गये उन्होंने रावण से सब बातें कहीं। समुद्र का बाँधा जाना सुनते ही दसों मुख से व्याकुल होकर बोल उठा।

व्याख्या : रावण को दूतों से पता चला : फरयादियों से पता चला कि समुद्र बँध गया और सेना इस पार चली आयी। प्रमाद की पराकाष्ठा है। जब से विभीषण गये हैं और शुकसारन की दुर्दशा देख चुके हैं तब से दूत रामदल के सन्निकट जाते हुए डरते हैं। रावण भी किसी को भेजकर छेड़छाड़ नहीं करता। समझे बैठा है कि सेना इस पार कैसे आ सकती है। शत्रु सेना यदि किसी भाँति आ भी जाय तो आ जाने दो। सभा में यही निश्चित हुआ है। यथा : पूछेसि सचिव उचित मत कहहू। ते सब हँसे मष्ट करि रहहू। जितेहु सुरासुर तब श्रम नाही। नर बानर केहि लेखे माही। तथा : जो आवै मरकट कटकाई। जियहिं बिचारे निसिचर खाई।

रावण बड़े स्वार्थी हैं। उन विचारों के नाक कान कटने से उन्हें व्याकुलता नहीं है सेतु के बँध जाने से व्याकुता है। जो इनका किया जन्म भर नहीं हुआ उसे शत्रु ने कई एक दिनों में कैसे कर लिया ? शत्रु उपेक्षा करने योग्य नहीं है। वह असम्भव का सम्भव करनेवाला है। इसलिए व्याकुलता है। पहिले भी बहन के नाक कान कटने पर इन्हें व्याकुलता नहीं हुई। खरदूषण वध सुनने पर शरीर में आग लगी। यथा : खरदूष त्रिसिरा कर घाता। सुनि दससीस जरे सब गाता।

दो. बाँध्यो बननिधि नीर निधि, जलधि सिंधु बारीस।
सत्य तोयनिधि कंपति, उदधि पयोधि नदीस ॥५॥

अर्थ : क्या सचमुच १. वननिधि २. नीरनिधि ३. जलधि ४. सिंधु ५. वारीस ६. तोयनिधि ७. कंपति ८. उदधि ९. पयोधि १०. नदीस बाँध लिया।

व्याख्या : जब यह रावणु जनमियो दह मुहु इक्कु सरीरु। जणणि वियम्भी चिन्तवइ कवणु पियावउँ खीरु। जब यह रावण दसमुख और एक शरीरवाला जन्मा तो माँ आश्चर्य में आकर चिन्ता करने लगी कि किसे दूध पिलाऊँ। सो रावण की शक्ति तो दसों मुख से बोलने की थी पर वे किसी एक मुख से ही बोला करते थे। कई मुखों से एक साथ बोलने से सुननेवाले को बात समझ में नहीं आ सकती थी। अतः रावण ध्यान रखते थे कि एक मुख से ही बोले। समुद्र बन्धन का समाचार लगते ही अधीर हो उठे। अतः दसों मुख से बोल उठे। इस दोहे में केवल दश नाम समुद्र के ही गिनाये गये हैं : वन नीर जल तोय कं उद पय : ये सब

पर्यायवाची शब्द हैं। भाव यह कि समुद्र का बँधना इतने आश्चर्य की बात थी कि रावण ने चकित होकर दसों मुख से समुद्र शब्द का उच्चारण[1] किया।

निज बिकलता बिचारि बहोरी। बिहँसि गयउ गृह करि भय भोरी ॥
मंदोदरी सुनेउ प्रभु आयो। कौतुकही पाथोधि बँधायो ॥१॥

अर्थ : फिर अपनी व्याकुलता को समझकर हँसकर और भय को भुलाकर घर चला। मन्दोदरी ने सुना कि प्रभु आगये और उन्होंने खेलवाड़ में ही समुद्र को बाँध लिया।

व्याख्या : एक बार तो रावण व्याकुल होकर दसों मुख से समुद्र बोल उठे। पीछे से समझा कि मेरी कमजोरी : व्याकुलता सब पर प्रकट हो गयी अतः हँसकर उसे छिपाया। भय सिर पर उपस्थित है। इसे जानकर भी भुलाया और सभागृह से घर चला। वहाँ रहने से हृद्गत भावों के अधिक प्रकट होने का भय था।

मन्दादरी रानियों में बड़ी कुशल है। राजकाज में हाथ बँटाती है। उसकी दूतियाँ हैं जो नगर भर का समाचार उसे दिया करती हैं। पहिले भी दूतिन्ह सन सुनि पुरजन बानी। मन्दोदरी अधिक अकुलानी। पुरजन को डर पैठ गया था कि : जासु दूत बल बरनि न जाई। तेहि आये पुर कवनि भलाई। उस समय मन्दोदरी ने रावण को समझाया था पर उसने न माना। अब मन्दोदरी ने सुना कि प्रभु आगये। भाव यह कि जिसके दूत के बल का वर्णन नहीं हो सकता था वह प्रभु स्वयं आगये। शंका यह उठती है कि समुद्र के उस पार आये होंगे। समुद्रोल्लंघन का तो कोई सामान ही नहीं है। इस पर कहते हैं कि समुद्र पर सेतु बाँधकर आये पर समुद्र पर सेतु बाँधना हँसी खेल नहीं है। इतने बड़े राजा प्रतापी हो गये पर किसी ने आज तक समुद्र पर सेतु बाँधने का मन से भी साहस नहीं किया पर प्रभु ने हँसी खेल में ही उसपर पुल बाँध दिया। पहिले ही महापुरुषार्थ का अद्भुत प्रदर्शन किया।

करगहि पतिहि भवन निज आनी। बोली परम मनोहर बानी ॥
चरन नाइ सिरु अंचल रोपा। सुनहु बचन पिय परिहरि कोपा ॥२॥

अर्थ : हाथ पकड़कर पति को अपने घर ले गयी और बड़ी ही मन हरण करनेवाली वाणी बोली। चरण में सिर नवाकर अञ्चल फैलाकर और कहा कि हे प्रिय ! क्रोध छोड़कर मेरी बात सुनो।

व्याख्या : सुनना का अर्थ बात पर ध्यान देना है। रावण किसी की सुनते नहीं। अतः उन्हें सुनाने का प्रयत्न रानी मन्दोदरी कर रही है। अन्तःपुर में रानियों

---

१. यथा श्रुत्वा सागरबन्धनं दशशिराः सर्वैर्मुखैरेकदा तूर्णं पृच्छति वार्तिकान् स चकितो भीत्या परं सम्भ्रमात्। बद्धः सत्यमपां निधिर्जलनिधिः कीलालधिस्तोयधिः पाथोधिर्जलधिः पयोधिरुदधिर्वारांनिधिर्वारिधिः।

के अलग अलग महल होते हैं। महाराज अपनी रुचि के अनुसार किसी महल में शयन के लिए चले आते हैं। मन्दोदरी जानती है कि आज रामजी के आने का समाचार पाकर रावण आरहे हैं। मेरे महल में न आवेंगे। ऐसे महल में जाना चाहेंगे जिसे सीताजी के देने की चर्चा करने का साहस न हो। अतः अन्तःपुर में प्रवेश करते ही रावण का हाथ पकड़कर मन्दोदरी अपने महल में ले गयी। स्त्री का हाथ पकड़ने पर प्रत्याख्यान नहीं किया जा सकता। शत्रु सिर पर आगया। इनसे एकान्त में कब मिलना होगा इसका क्या ठिकाना? बात ऐसे मर्म की है कि एकान्त में ही कही जा सकती है। पहिले भी जो कुछ कहा था एकान्त में ही कहा था। इस बार इसलिए हाथ पकड़कर अपने घर ले गयी। पति के अनुकूल करने की जो क्रियाएँ हैं उन सब से काम लिया। मनोहर वाणी ही सब सुनना चाहता है सो परम मनोहर वाणी बोली।

पहिली बार तो रहसि जोरि कर पति पद लागी। पर उससे काम न हुआ। अतः इस बार चरण में सिर रखकर अञ्चल फैलाया कि मैं माँगती हूँ मुझे दो। और माँग यह कि क्रोध छोड़कर मेरा वचन सुनो। मन्दोदरी जानती है कि जो कुछ वह कहने वाली है उस विषय पर रावण सुनना नहीं चाहते। उलटे कहनेवाले पर क्रोध करते हैं। विभीषण और शुकसारण को लात मारकर निकाल दिया। इसीलिए क्रोध छोड़कर ध्यान देने के लिए याचना करती है।

नाथ बैर कीजै ताही सों। बुधिबल सकिअ जीति जाहीं सों॥
तुम्हहि रघुपतिहि अंतरु कैसा। खलु खद्योत दिनकरहि जैसा॥३॥

अर्थ : हे नाथ! वैर उसी से कीजिए जिसे बुद्धिबल से जीत सकिये। आप में और रघुवर रामजी में निश्चय उतना ही अन्तर है जितना कि जुगुनू और सूर्य में है।

व्याख्या : रावण के स्वभाव को जानती है कि ये हठ करके दूसरों के मार्ग में बाधक होते हैं। यथा : किंनर सिद्ध मनुज सुर नागा। हठि सब ही के पंथहि लागा। वचन की परम मनोहरता यही है कि उनको स्वाभावानुसार चलने से नहीं रोकती। कहती है आप वैर कीजिये और अवश्य कीजिये पर ऐसों से वैर कीजिये जो बुद्धि और बल से जीते जा सकें। आपने आज तक कितने लोगों से वैर किया पर मैंने कभी आपको रोका नहीं। जानती थी कि आप इन्हें बुद्धि बल में जीत सकते हैं पर इस बार ऐसी बात नहीं है। आपने रघुपति से इस बार वैर ठाना है। जानकीजी ने कहा था : सुनु दसमुख खद्योत प्रकासा। कबहुँ कि नलिनी करइ विकासा। सो उन्होंने ठीक कहा था। निश्चय उनमें और आप में बड़ा अन्तर है जितना कि सूर्य और खद्योत में होता है। खद्योत का सूर्य से वैर ठीक नहीं। निसि तम घन खद्योत विराजा। दिनकर दिन करनेवाले हैं। उनके उदर में खद्योत का पता ही नहीं चल सकता।

अति बल मधुकैटभ जेहि मारे। महाबीर दिति सुत संहारे ॥
जेहि बलि बाँधि सहज भुज मारा। सोइ अवतरेउ हरन महि भारा ॥४॥
तासु बिरोध न कीजिअ नाथा। काल करम जिव जाके हाथा ॥५॥

अर्थ : जिन्होंने अतिबल मधुकैटभ को मारा। महावीर दिति के पुत्रों : हिरण्याक्ष हिरण्यकशिपु का संहार किया। जिसने बलि को बाँधा। सहस्रबाहु का वध किया। वही पृथिवी का भार हरण करने के लिए अवतीर्ण हुए हैं। हे नाथ! जिसके हाथ में काल कर्म और जीव हैं उससे वैर न कीजिये।

व्याख्या : रामजी और रावण में सूर्य और जुगुनू का अन्तर दिखाते हुए रामजी की प्रभुता कहती है। जब त्रिलोकी का प्रलय करके भगवान् शेष की शय्या पर शयन किया था उस समय उनके कर्णमल से मधु और कैटभ का जन्म हुआ। ये दोनों ऐसे बलवान थे कि स्वयं ब्रह्मदेव को भी ग्रहण करने को उद्यत हुए। ब्रह्मदेव का कोई बल उनके सामने न चला। भगवान् योगनिद्रा में सो रहे थे। अतः उनके जगाने के लिए ब्रह्माजी योगनिद्रा की स्तुति की। भगवान् जागे और पाँच सहस्र वर्ष तक मधुकैटभ से युद्ध करके उनको मारा। आपका बल तो ब्रह्मदेव का दिया हुआ है। आपकी उनको कौन सी समता है।

दिति के पुत्र हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु थे। हिरण्याक्ष पृथिवी को ही पाताल में ले गया था। ब्रह्मदेव की स्तुति से प्रसन्न होकर वही क्षीरशायी भगवान् वाराह रूप से उसका वध करके अपने एक दाँत पर पृथिवी को लिए हुए प्रकट हुए। उनकी और आपकी कौन समता है।

हिरण्यकशिपु के कान का कुण्डल आप नहीं उठा सके। उस हिरण्यकशिपु का उदर इन्होंने नृसिंह अवतार धारण करके उसे गोद में लिटाकर विदारण किया। उनका और आपका कौन जोड़ है।

त्रिविक्रमावतार धारण कर जिसने तीन पाद प्रक्षेप में तीनों लोक नाप लिया और पूरा न हुआ तब बलि को बाँध लिया। जिस बलि के सामने जाते ही आप तेजहत हो गये उनसे वैर करने की आपमें क्षमता कहाँ है।

जिस कार्तवीर्यार्जुन : सहस्रबाहु ने आप को बाँध लिया था उसका वध जिसने परशुरामावतार धारण करके किया उस अवतारी का आप किस भरोसे पर सामना करना चाहते हैं। क्षीरशायी भगवान् ही नाना अवतारों के निधान और अव्यय बीज हैं। यथा : एतन्नानावताराणां निधानं बीजमव्ययम्। वे ही पृथिवी के भार हरण के लिए अवतीर्ण हुए हैं। उनसे बहुत बचकर रहना चाहिए। क्योंकि आप भी पृथिवी के भारभूत हैं सो आप उनसे वैर ठाने हुए हैं।

वे ईश्वर हैं। आप जीव हैं। जीव काल कर्म के वश में रहता है। जीव का जन्म मरण दुःख सुख का भोग प्रिय मिलन और वियोग काल कर्म के अनुसार होता है। उसमें जीव का कोई चारा नहीं है। यथा : जनम मरन सब दुख सुख

भोगा। हानि लाभु प्रिय मिलन वियोगा। काल कर्म बस होहिं गोसाईं। बरबस राति दिवस की नाईं। ईश्वर के हाथ में काल कर्म की बागडोर है। यथा : काल कर्म गति अगति जीव की सब हरि हाथ तुम्हारे। विनय०। अतः उनसे वैर न कीजिये।

दो. रामहि सौंपि जानकी, नाइ कमल पद माथ।
सुत कहुँ राज समर्पि बन, जाइ भजिय रघुनाथ ॥६॥

अर्थ : चरण कमल में सिर नवाकर रामजी को जानकी सौंपकर और राज्य बेटे को सौंपकर वन में जाकर रघुनाथ का भजन कीजिये।

व्याख्या : यदि कहो कि मैं तो इसी तरह से रहता चला आया हूँ। जिसका छीना उसका कभी लौटाया नहीं। अतः कहते कि अपना रास्ता बदलो। अब सब कुछ छोड़ो। मधुकैटभ हन्ता को जानकी सौंपो। क्योंकि यह योगमाया हैं। उन्हीं के वक्षःस्थल पर निवास करती हैं। दितिसुत हन्ता को प्रणाम करो। ये बलि को बाँध कर त्रैलोक्य ले लेनेवाले हैं। अतः राज्य अपने हाथ में न रक्खो। बेटे को दे दो और सहस्रभुजहन्ता को तुम बीस भुजावाले भजो। क्योंकि भजन करनेवाला रमाविलास का त्याग विना किये रह नहीं सकता। यथा : रमा विलास राम अनुरागी। तजत बमन जिमि नर बड़ भागी। अतः उसे वन में ही विश्राम मिलता है।

नाथ दीन दयाल रघुराई। बाघौ सनमुख गये न खाई ॥
चाहिअ करन सो सबु करि बीते। तुम सुर असुर चराचर जीते ॥१॥

अर्थ : हे नाथ ! रघुराई तो दीन दयाल हैं। बाघ भी सामने जाने पर नहीं खाता। जो करना चाहता था सो सब आप कर चुके। आपने सुर असुर चर अचर सबको जीत लिया।

व्याख्या : यदि कहो कि वे पृथ्वी का भार हरण के लिए अवतार लिया है और मैं पृथ्वी के लिए भारभूत हूँ तो मुझे वे कभी नहीं छोड़ेंगे। तो मैं अपनी सी क्यों न करूँ ? तो इसका उत्तर यही है कि वे दीनदयाल हैं। वेद उनको ऐसा ही बतलाता है। यथा : जौ प्रभु दीनदयाल कहावा। आरति हरन वेद जस गावा। तुम्हें शरण सम्मुख देखकर तुमपर विशेष कृपा करेंगे। व्याघ्र बड़ा क्रूर जन्तु है। गुर्राने पर अपने बच्चे को मार डालता है। पर सामने चले जाने पर वह चोट नहीं करता। व्याघ्र का स्वभाव है कि सामने से चोट नहीं करता। उसके आँख से आँख मिली रहे तो कभी नहीं मारता। जो रघुराई हैं : जिसके यहाँ मञ्जन : याचक को नहीं नहीं किया जाता। जो दीन दयाल हैं : आर्त्ति हरण हैं वह शरण सम्मुख प्रणत को कैसे मारेंगे ?

आप राजधर्म में स्थित हैं। राजाओं के लिए जो कर्तव्य हैं वह सब कर चुके। शैशव में विद्या का अच्छा अभ्यास किया। यहाँ तक कि वेदों पर भाष्य

बनाया। युवावस्था में विषयोपभोग भी यथेष्ट किया। यहाँ : सुनासीर सत सरिस सो संतत करत विलास। राजा लोग दिग्विजय करके अपने को कृतकृत्य मानते हैं और आपने तो तीनों लोक को जीत लिया। देवताओं के जीतने से स्वर्ग का जीतना कहा। असुरों के जीतने से पाताल का जीतना कहा। चराचर के जीतने से मृत्युलोक का जय कहा। अचर का जय कुहकविद्या से होता है जिसे आजकल साइन्स कहते हैं।

संत कहहिं अस नीति दसानन। चौथेपन जाइहि नृप कानन॥
तासु भजन कीजिअ तहँ भर्त्ता। जो कर्त्ता पालक संहर्त्ता॥२॥

अर्थ : हे दशानन ! सन्त लोग ऐसी नीति कहते हैं कि चौथेपन में राजा वन में चले जायँ। हे भर्ता ! वहाँ उसका भजन कीजिए। जो कि संसार का कर्ता पालक और संहार करनेवाला है।

व्याख्या : राज कि रहै नीति बिनु जाने। अतः राजा की नीति का पालन अवश्य करना चाहिए। सो सन्त की कही हुई नीति श्रुतिपुराणस्मृति सम्मत होती है। यथा : संत कहहिं अस नीति प्रभु श्रुति पुरान मुनि गाव। और आप तो सन्त के वंशज हैं। आपको उनकी कही नीति का अवश्य पालन करना चाहिए। वह नीति यह है कि सब प्रकार से कृतकृत्य होकर वृद्धावस्था में राजा वानप्रस्थ होकर वन में चला जाय। यथा : शैशवेऽभ्यस्तविद्यानां यौवने विषयैषिणाम्। वार्धकेव मुनिवृत्तीनां योगेनान्ते तनुत्यजाम् : रघुवंश।

यदि विषय से विराग न हो तो भी साहस करके राज्य बेटे को दे दे और स्वयं जाकर जगत् के उत्पत्ति स्थिति लयकर्ता को भजे। यथा : होइ न बिषय बिराग भवन बसत भा चौथपन। हृदय बहुत दुख लाग जन्म गयउ हरि भगति बिनु। बरबस राज सुतहिं तब दीन्हा। नारि समेत गवन बन कीन्हा। आपने कर्ता और संहर्ता अर्थात् ब्रह्मा और रुद्र का भजन करके यह ऐश्वर्य प्राप्त किया। अब उसका भजन करिये जो कर्ता पालन और संहर्त्ता तीनों हैं अर्थात् रामजी का भजन कीजिए। क्योंकि जन्म का साफल्य उन्हीं के भजन से है। यथा : जो पै रहनि राम सो नाहीं। तौ नर खर कूकर सूकर सों समवृथा जाय जियत जग माहीं। काम क्रोध मद लोभ नींद भय भूख प्यास सबही के। मनुज देह सुर साधु सराहत सो सनेह सिय पी के। सूर सुजान सपूत सुलच्छन गनियत गुन गरुआई। बिनु हरि भजन इंदारुन के फल तजत नहीं करुआई। कीरति कुल करतूति भूति भलि सील सरूप सलोने। तुलसी प्रभु अनुराग रहित जस सीलन साक अलोने। विनय १७५ पद।

सोइ रघुबीर प्रनत अनुरागी। भजहु नाथ ममता सब त्यागी॥
मुनिवर जतनु करहि जेहि लागी। भूप राजु तजि होहिं बिरागी॥३॥

अर्थ : वह प्रणत पर अनुराग करनेवाले रघुवीर हैं। हे नाथ ! सब ममता

त्यागकर उन्हीं को भजिए जिसके लिए मुनीश्वर यत्न करते हैं। राजा राज्य छोड़कर विरागी होते हैं।

व्याख्या : सोइ रघुवीर कहकर मन्दोदरी रामजी को कर्ता पालक संहर्ता बतला रही है। रघुवीर कहकर श्रुतिसिद्ध रघुकुल में अवतार ग्रहण कह रही है। यथा : रघोः कुले खिलं राति राजते यो महीस्थितः। : तापनीयाश्रुति। प्रणत अनुरागी कहकर स्वभाव कह रही है। भजहु ममता सब त्यागी कहकर भजन का मार्ग प्रदर्शित कर रही है। यथा : सबकै ममता ताग बटोरी। मम पद मनहि बाँध वर डोरी।

जन्म जन्म मुनि लोग यत्न करते हैं पर प्राप्ति दुलभ है। अन्त में उनका नाम भी मुख से नहीं निकलता। यथा : जनम जनम मुनि जतन कराहीं। अन्त राम कहि आवत नाहीं। और जिसके लिए राजा लोग राज्य छोड़कर वैराग्य धारण करते हैं। क्योंकि राजपाट रामभक्ति का बाधक है। यथा : सुख सम्पति परिवार बड़ाई। सब परिहरि करिहौं सेवकाई। ये सब राम भगति के बाधक। कहहि संत तव पद अवराधक।

सोइ कोसलाधीस रघुराया। आयउ करन तोहि पर दाया॥
जौं पिय मानहु मोर सिखावन। सुजसु होइ तिहु पुर अतिपावन॥४॥

अर्थ : वही अयोध्यापति रघुराई आप पर दया करने आये हैं। हे प्रिय! यदि मेरी शिक्षा मानो तो तीनों लोको में तुम्हारा अत्यन्त निर्मल यश होगा।

व्याख्या : वे ही दुराराध्य और दुष्प्राप्य रामजी अयोध्या का राज्य छोड़कर वहाँ से चलते चलते आपके द्वार तक आपके ऊपर दया करने चले आये। आपका भाग्य बहुत बड़ा है। यह अवसर चूकने लायक नहीं है। आपकी प्रसिद्धि तो है पर दुर्यश है। सुयश नहीं है। यदि मेरी बात मान लो तो तीनों लोक में आपका अति पावन सुयश हो जाय कि रामजी को अपने यहाँ तक बुलाकर रावण ने अपना अन्त भी बना लिया।

दो. अस कहि नयन नीर भरि, गहि पद कंपित गात।
नाथ भजहु रघुनाथहि, अचल होइ अहिवात॥७॥

अर्थ : ऐसा कहकर आँखों में जल भरे हुए काँपते हुए शरीर से चरण पकड़ कर : माँगा कि हे नाथ! रघुवीर पद को भजो। मेरा अहिवात अचल हो जाय।

व्याख्या : रावण का रुख बात मानने का न देखकर अपने सौभाग्य के चले जाने के भय से काँपने लगी। आँखों में आँसू भर आये। चरण पकड़ लिया और जो आँचल पहिले से पसारे हुए है उसी मुद्रा से सौभाग्य भिक्षा माँगती है कि आप रामचरण का भजन करें तो मेरा अहिवात अचल हो। मैं वैधव्य से भयभीत हूँ। मेरी रक्षा करो।

तब रावन मयसुता उठाई। कहै लाग खल निज प्रभुताई ॥
सुनु तैं प्रिया बृथा भय माना। जग जोधा को मोहि समाना ॥१॥

अर्थ : तब रावण ने मय की बेटी को उठा लिया और वह खल अपनी प्रभुता कहने लगा। हे प्रिये! सुन। तू व्यर्थ ही डर गई। संसार में मेरे समान योद्धा कौन है ?

व्याख्या : मयतनया मंदोदरि नामा। मयतनया कहने का भाव यह कि असुरों के विश्वकर्मा की बेटी है। इसलिए रावण उसका बड़ा मान करते हैं। उसे अत्यन्त सभीत होकर काँपते हुए चरण पर गिरी देखकर उठा लिया। पर स्वभाव से खल है। हरिहर यशराकेश के लिए राहु के सदृश है। मन्दोदरी के मुख से हरियश सुनकर उसे अपनी प्रभुता सुनाने लगा। मन्दोदरी ने प्रार्थना की थी कि सुनहु बचन पिय परिहरि क्रोधा : अतः उसकी बातें चुपचाप सुनता रहा। बात समाप्त होते ही अपनी प्रभुताई का वर्णन प्रारम्भ कर दिया। अपने मुख से अपनी बड़ाई करना शिष्टसमाज में निन्दित है पर खलों को ऐसा विचार नहीं होता।

मन्दोदरी ने कहा था : जौं प्रिय मानहु मोर सिखावन। उसी के उत्तर में कहता है कि तू मेरी बात सुन। तू व्यर्थ ही डर रही है। जितनी बातें तू कर गयी उन सबका एकमात्र कारण भय है। तू मेरे लिए डर रही है। उस डर का कोई कारण नहीं है। डर तो जब हो जब किसी समबल योद्धा से काम पड़े। पहिले चाहे कोई रहा भी हो पर बतला इस समय मेरे समान योद्धा कौन है ?

बरुन कुबेर पवन जम काला। भुजबल जितेउँ सकल दिगपाला ॥
देव दनुज नर सब बस मोरें। कवन हेतु उपजा भय तोरें ॥२॥

अर्थ : वरुण कुवेर पवन यम काल और सब दिक्पालों को मैंने भुजा के बल से जीत लिया। देवता दानव और मानव सब मेरे वश में हैं। किस कारण से तुम्हारे मन में भय उपजा है ?

व्याख्या : यह बात भी नहीं कि मेरे बल की परीक्षा न हुई हो। बरुन कुबेर सुरेस समीरा। रन सनमुख धरि काहु न धीरा। भुज बल जितेउ काल यम साई। इन सब दिक्पालों को अस्त्रबल शस्त्रबल तपबल वरदानबल सैन्य बल आदि की अपेक्षा न करके मैंने केवल भुजबल से जीत लिया। यथा : लोकपाल बल विपुल ससि ग्रसन हेतु सब राहु। लोकपालों से बढ़कर और कौन है। मैंने काल को भी जीत लिया। आयु मेरी चाहे जितनी हो वृद्धावस्था मुझे स्पर्श नहीं कर सकती। इसलिए चौथापन आ ही नहीं सकता। वन जाने की चर्चा ही क्या है ?

कभी किसी ने किसी को मार दिया हो यह दूसरी बात है। पर कोई देव दनुज नर को वश न कर सका। न तो विष्णु न नृसिंह ने न वामन ने न परशुराम ने ही कभी राज किया और यहाँ तो ब्रह्म सृष्टि जहँ लगि तनु धारी। दसमुख बसवर्ती

नर नारी। कोई मेरी आज्ञा के बाहर नहीं है। तब तेरे भय का क्या कारण है जो अहिवात चिल्ला रही है।

नाना बिधि तेहि कहेसि बुझाई। सभा बहोरि बैठ सो जाई॥
मंदोदरी हृदय अस जाना। काल बस्य उपजा अभिमाना॥३॥

अर्थ : अनेक प्रकार से उसे समझाकर कहा। फिर जाकर सभा में बैठा। मन्दोदरी ने मनमें समझ लिया कि काल विवश होने से इन्हें अभिमान उत्पन्न हो गया।

व्याख्या : उसे अनेक विधि से समझाया। मुझसे संग्राम करने के लिए मेरे इतना तपोबल चाहिए। उपासना बल चाहिए। वरदान बल चाहिए। फिर सेना बल दुर्गबल बन्धुबल भी मेरे ऐसा किसमें है। अतः खतरे की कोई बात हो नहीं है। यथा :

तपबल भुजबल सेनबल कोष दुर्ग अरु राज।
मेरो वरबल छदम बल सब विधि सुदृढ़ समाज॥
मुण्डमाल निज सिरन्ह को को सक शिवहिं चढ़ाय।
वीर धीर दसकण्ठ तजि जग में जन्यो न माय॥
सहित शिवा शिवको सकै गिरि कैलास उठाय।
जानि बूझि सामर्थ्य मम तू नाहक घबराय॥
रह्यो महाबल कीश एक गयो अन्त में हारि।
धोखा देकै धूर्त कपि सक्यो लंक को जारि॥
कै दिनको तपसी बसी कहा तपस्या कीन्ह।
काहि पूजि केहि देव ते कहा महाबर लीन्ह॥
तिय बियोग दुःख ते विकल राज कोष ते हीन।
बैर असन बलकल वसन सब प्रकार ते छीन॥
ऐसे नर ते कौन भय जाके कीश सहाय।
नहिं मानुष गुन लेश लखि दीन्ह पिता बहिराय॥

उसे तो अनेक प्रकार से समझाया पर स्वयं विचलित हो गये। वहाँ से उठकर सभा में फिर जाकर बैठे। इधर मन्दोदरी ने मन में समझ लिया कि ऐसा अभिमान इन्हें नहीं था। सदा बातों को समझते बूझते थे। यह प्रकृति विपर्यय कालविवश होने से हुआ है अर्थात् रावण के वचनों का प्रभाव मन्दोदरी पर कुछ भी न हुआ।

रावण सभा

सभा आइ मंत्रिन्ह तेहि बूझा। करब कवन बिधि रिपु सैं जूझा॥
कहहिं सचिव सुनु निसिचर नाहा। बार बार प्रभु बूझहु काहा॥४॥

कहहु कवन भय करिअ बिचारा। नर कपि भालु अहार हमारा ॥५॥

अर्थ : सभा में आकर उसने मन्त्रियों से पूछा कि शत्रु से किस प्रकार युद्ध किया जायगा ? मन्त्री लोग कहने लगे हे निशिचर नाथ ! हे प्रभो आप बार बार क्या पूछते हैं। कहिये कौन सा डर है जिसका विचार करें। नर कपि और भालु तो हमारे आहार ही ठहरे।

व्याख्या : जब सिन्धु पार सेना आयी थी उसी समय एक बार और रावण ने मन्त्रियों से पूछा था। तब उन लोगों ने कहा था कि चुप रहा जाय जिसमें बन्दर और निकट चले आवें। इस समय छेड़ छाड़ करने से सब भाग जावेंगे। मुख में आया हुआ आहार जाता रहेगा। तदनुसार सब चुप रह गये। अब तो सेतु बाँधकर सेना इस पार आगयी। युद्ध हुआ ही चाहता है। अतः रावण फिर मन्त्रियों से पूछते हैं कि युद्ध का नक्शा ठीक कर लिया जाय कि युद्ध किया जायगा ?

मन्त्री लोग राजा का पूरा पता रखते थे। राज्य का पता चाहे उन्हें न भी हो। उन्हें पता लग गया था कि रावण महल से यह कहकर आ रहे हैं कि भय का कोई कारण नहीं है। अतः वे भी ठकुरसोहाती सम्मति दे रहे हैं कि कहहु कवन भय करिय बिचारा। यदि कोई भय उपस्थित हो तब तो पूछना भी और विचार करना भी शोभा देता है। आहार मुख में चला आ रहा है तो इसे कैसे उदरस्थ कर लेंगे इसमें बार बार पूछने की न तो कोई आवश्यकता है और न विचार करने से कोई प्रयोजन सिद्धि है। नर अहार रजनीचर करहीं। अतः पहिले नर का ही नाम लेते हैं। कपि का दूसरा नम्बर है। वे नर की भाँति स्वादु नहीं हैं। भालु तो अधिक कठिन होते हैं। अतः उनका तीसरा नम्बर है।

दो. सबके बचन स्रवन सुनि, कह प्रहस्त कर जोरि।
नीति बिरोध न करिअ प्रभु, मंत्रिन्ह मति अति थोरि ॥८॥

अर्थ : सबके वचन कान से सुनकर प्रहस्त ने हाथ जोड़कर कहा कि हे प्रभो ! नीतिविरोध न कीजिये। इन मन्त्रियों की बड़ी अल्प बुद्धि है।

व्याख्या : सेनापति प्रहस्त ने सबकी बातें सुनीं। देखा कि सब ठकुरसोहाती बोलनेवाले हैं। अब रावण की सभा में कोई हित कहनेवाला नहीं है। तब हाथ जोड़कर बोले कि नीति विरोध हो रहा है। ये मन्त्री पूछने पर हित और परिणाम में सुखावह सम्मति नहीं दे रहे हैं। ये प्रियवक्ता हैं। ये मित्र रूप में शत्रु हैं। यथा : यो न पृष्टो हितं ब्रूते परिणामे सुखावहम्। स मन्त्री प्रियवक्ता च केवलं स रिपुः स्मृतः। प्रहस्त स्पष्ट शब्द में उन्हें रिपु न कहकर अल्पबुद्धि कह रहा है। आगे चलकर प्रियवक्ता भी कहेगा।

कहहिं सचिव सठ ठकुरसोहाती। नाथ न पूर आव एहि भाँती ॥
बारिधि नाँघि एकु कपि आवा। तासु चरित मन महुँ सबु गावा ॥१॥

अर्थ : ये मन्त्री शठ हैं। ठकुरसोहाती कहते हैं। हे नाथ ! इस भाँति पूरा न पड़ेगा। समुद्रोल्लंघन करके एक बन्दर आया था। उसका चरित मन ही मन सब ने गान किया।

व्याख्या : ये बड़ी भारी हानि कर रहे हैं जो सच्ची बात छिपा रहे हैं और मीठी मीठी बातें बनाते हैं। जो आपको अच्छा लगता है वही ये सब कहते हैं। मालिक का पूरा ठकुरसोहाती कहने से नहीं पड़ता। इससे मालिक को धोखा होता है और वह बड़े संकट में पड़ जाता है। अब मन्त्रियों की बातों का खोखलापन दिखलाता है।

इस समय तो अगणित बन्दर सेतु बाँधकर आगये हैं। इसके पहिले अकेला बन्दर समुद्र उल्लंघन करके आगया था। उसने क्या क्या किया। उन करणियों की बड़ाई सब लोगों ने मन ही मन की। यथा : उहाँ निसाचर रहहिं ससंका। जबसे जारि गयउ कपि लंका। निज निज गृह सब करहिं विचारा। नहि निसिचर कुल केर उबारा। जासु दूत बल बरनि न जाई। तेहि आये पुर कौनि भलाई। आपके भय से प्रकट किसी ने कुछ नहीं कहा। राक्षस लोग हनुमच्चरित्र का मानसिक गान करके मोक्ष के पात्र हो गये। जो सानन्द वाणी से गाता है उसके लिए कहना ही क्या ? तुलसी फल चारो करतल जस गावत गई बहोर की। विनय. पद ३१।

छुधा न रही तुमहि तब काहू। जारत नगरु कस न धरि खाहू ॥
सुनत नीक आगे दुखु पावा। सचिवन्ह अस मत प्रभुहिं सुनावा ॥२॥

अर्थ : तब क्या तुम लोगों को भूख नहीं थी ? नगर जलाने के समय उसे पकड़कर खा क्यों नहीं लिया ? सुनने में अच्छी लगे पर पीछे जिससे दुःख हो ऐसी सम्मति मन्त्रियों ने प्रभु को दी है।

व्याख्या : अब मन्त्रियों से पूछते हैं कि क्या उस समय किसी को भूख नहीं थी। आप लोग इतने हैं किसी को तो उस समय भूख रही ही होगी। जब वह बन्दर नगर जला रहा था तो उसे पकड़कर खा क्यों नहीं गये ? भाव यह कि जिन बन्दरों को राक्षस खाया करते हैं वे बन्दर ये नहीं हैं। जब किसी ने उत्तर नहीं दिया तब रावण से कहता है कि विषसम्पृक्त मधु की भाँति मन्त्रियों की सम्मति है। जो सुनने में मीठी लगे और परिणाम उसका घोर हो।

जेहि बारीस बँधायेउ हेला। उतरे सेन समेत सुबेला ॥
सोभनु मनुज खाब हम भाई। बचन कहहिं सब गाल फुलाई ॥३॥

अर्थ : जिसने खेल में समुद्र बाँध लिया और सेना सहित जो सुबेल पर्वत पर उतरा हुआ है उस सुन्दर मनुष्य को हम खायेंगे। यह वचन सब गाल फुलाकर कह रहे हैं।

व्याख्या : इस संसार में बड़े बड़े पराक्रमी हुए पर आज तक समुद्र पर सेतु किसी ने नहीं बाँधा। जिसका ऐसा पराक्रम है कि खेल में समुद्र पर सेतु बाँध दिया और साहस ऐसा है कि ठीक लंका के सामने सुवेल पर्वत पर सेना के सहित उतर पड़ा है।

उसके लिए कहते हो कि सुन्दर मनुष्य को हम खायेंगे। उसका खा जाना इतना सरल है कि यहाँ सभी लोग उसके खा जाने का हौसला अभिमान के साथ कर रहे हैं। मानो वह कोई सुन्दर फल है जिसके खाने के लिए सबका मन ललच उठा है।

तात बचन मम सुनु अति आदर। जनि मन गुनहु मोहि करि कादर ॥
प्रिय बानी जे सुनहि जे कहहीं। ऐसे नर निकाय जग अहहीं ॥४॥

अर्थ : हे तात ! मेरी बात अत्यन्त आदर के साथ सुनिये। मनमें मुझे कादर न समझ लीजियेगा। ऐसे मनुष्य बहुत हैं जो प्रिय वाणी कहते हैं और सुनते हैं।

व्याख्या : आपने इस ठकुरसोहती कहनेवाले मन्त्रियों की बात आदर के साथ सुनी। पर मेरी बात अत्यन्त आदर के साथ सुनिये अर्थात् तदनुसार कार्य कीजिये। मैं युद्ध से भयभीत होकर ऐसा नहीं कह रहा हूँ। मैं कादर नहीं हूँ। कादर समझकर मेरी वाणी की उपेक्षा न कीजिये। मैं उचितवक्ता हूँ। मेरी वाणी अप्रिय है परन्तु हित है।

प्रियवाणी लोग इसलिए कहते हैं कि सुननेवाला रुष्ट न हो और प्रियवाणी इसलिए सुनना चाहते हैं कि इससे उन्हें सुख होता है। लाभ हानि का वाणी की प्रियता के साथ कोई सरोकार नहीं है। अतः प्रिय बोलने और सुननेवालों से संसार भरा पड़ा है।

बचन परम हित सुनत कठोरे। सुनहिं जे कहहिं ते नर प्रभु थोरे ॥
प्रथम बसीठ पठउ सुनु नीती। सीता देइ करहु पुनि प्रीती ॥५॥

अर्थ : बड़े कल्याण की बात जो सुनने में कठोर हो उसके कहने और सुननेवाले थोड़े हैं। नीति सुनिये। पहिले सुलह के लिए दूत भेजिये। तत्पश्चात् सीता देकर के उनसे प्रीति कर लीजिये।

व्याख्या : अप्रियस्य च पथ्यस्य श्रोता वक्ता सुदुर्लभः। कल्याण की बात कहकर शत्रुता कौन मोल ले। इसलिए सब लोग प्रिय बात कहते हैं। सुननेवाला भी प्रिय बात सुनना चाहता है। कल्याण के सुननेवाले परम दुर्लभ हैं। अर्थात् मैं ऐसे दुर्लभ व्यक्तियों में से हूँ और आपको भी उसी भाँति दुर्लभ होने की आशा करता हूँ। पहिले साम का प्रयोग करना ही नीति है। दूत भेजिये और सीता देकर प्रीति कर लीजिये। युद्ध तो वहाँ किया जाता है जहाँ साम और दान से काम न चले। पहिले युद्ध ही करना नीति विरोध है।

दो. नारि पाइ फिरि जाहिं जौ, तौ न बढ़ाइअ रारि।
नाहित सनमुख समर महि, तात करिअ हठि मारि ॥९॥

अर्थ : यदि स्त्री पाकर फिर जाँय तो झगड़ा न बढ़ाइये। नहीं तो हे तात! सामने होकर रणाङ्गण में हठ करके युद्ध कीजिये।

व्याख्या : साम का प्रयोग भी अपनी प्रतिष्ठा रखते हुए कीजिये। उनकी स्त्री है उसे लौटा देने में अप्रतिष्ठा नहीं है। यदि वे इतने में ही सन्तुष्ट हों तो झगड़ा न बढ़ायें और यदि उनकी इच्छा बदला लेने को हो दण्ड देना चाहते हों तो उनके आक्रमण करने का बाट न जोहकर स्वयं उनपर धावा बोलिये और सम्मुख होकर संग्राम भूमि में युद्ध कीजिये। इन मन्त्रियों की नीति में कादरता है। ये दुर्ग में रहकर युद्ध करना चाहते हैं।

यह मत जौं मानहु प्रभु मोरा। उभय प्रकार सुजसु जग तोरा ॥
सुत सन कह दसकंठ रिसाई। अस मति सठ केहि तोहि सिखाई ॥१॥

अर्थ : हे प्रभो! मेरी यह सम्मति यदि आप मानें तो दोनों तरह से आपका सुन्दर यश संसार में होगा। रावण क्रुद्ध होकर पुत्र से बोला कि रे शठ! यह बुद्धि तुझे किसने सिखलाई?

व्याख्या : रावण अपनी छोड़कर दूसरी बात सुनेंगे : इस बात में सबको सन्देह है। मन्दोदरी ने भी यही कहा कि : जौ पिय मानहु मोर सिखावन। प्रहस्त भी यही कहता है : यह मत जौ मानहु प्रभु मोरा। दोनों ने सुयश का लोभ दिखलाया। मन्दोदरी ने कहा : होय सुजसु तिहु पुर अति पावन। और प्रहस्त कहता है : उभय प्रकार सुजसु जग तोरा। प्रहस्त के कहने का भाव यह है कि मेरा मत न मानकर युद्ध करने से संसार में तुम्हारा दुर्यश होगा और मेरे मत के मानने पर यदि युद्ध भी करना पड़े तो भी तुम्हारा सुयश होगा।

गोस्वामीजी के मत से प्रहस्त रावण का बेटा था। सुत सन कह का भाव यह कि रावण इस बात पर बहुत चिढ़े हुए हैं कि मेरा बेटा होकर इसको ऐसी बुद्धि कैसे हुई। अतः कहता है कि यह तेरी उपज नहीं है। तुझे किसी ने सिखा-पढ़ाकर दरबार में भेजा है। मन्दोदरी अभी यही बात कहती रही। सम्भव है उसीने यह सब इसे सिखाया हो। प्रहस्त ने मन्त्रियों को शठ कहा था। रावण कहता है कि मन्त्री मेरे शठ नहीं हैं। तू शठ है : सर्वनाशकारी बात बोलता है। कौन कौन वस्तु दूसरों की मैं लौटाऊँगा। यहाँ तो जो कुछ है सो सब दूसरों से ही छीना हुआ है। लोग जान पावेंगे कि रावण चढ़ाई करने पर छीनी वस्तु लौटा देते हैं तो नित्य चढ़ाई लङ्का पर हुआ करेगी।

अबहीं तें उर संसय होई। बेनु मूल सुत भयेउ घमोई ॥
सुनि पितु गिरा परुष अति घोरा। चला भवन कहि बचन कठोरा ॥२॥

अर्थ : अभी से तेरे हृदय में संशय होने लगा। तू बाँस के जड़ में घमोई : भड़भाँड़ हुआ। पिता का अति घोर कटु वचन सुनकर कठोर वचन कहकर घर चला।

व्याख्या : संशय का ध्यान तो संग्राम में सावधानी के लिए है। यथा : युद्धसिद्धिर्हि चंचला। तुझे संग्राम की चर्चा चलने से जय में सन्देह उठ रहा है। यही कादर का लक्षण है। बाँस के जड़ में बाँस ही होता है। दूसरा कोई पेड़ बाँस के जड़ में नहीं जम सकता। क्योंकि उसके चारों ओर की भूमि उसके जड़ से ऐसी व्याप्त हो जाती है कि दूसरा वृक्ष उग ही नहीं सकता। भँड़भाँड़ को जड़ बहुत नीचे नहीं जाती। अतः यदि उसका बीज बाँस के क्षेत्र में जा पड़े तो भँड़भाँड़ उग सकता है पर बाँस के कोई गुण नहीं होते। वह छूते ही टूट जाता है। भाव यह कि तू मेरे वीर्य से नहीं है तू कादर है।

इसी भावार्थ पर दृष्टि रखते हुए कहते हैं कि पिता का अतिघोर परुष गिरा सुनकर कठोर बोलता घर चला। दूसरा कोई ऐसी बात नहीं बोल सकता। बोलने से सिर काटता है। पर पिता ने कहा सो पिता का अपमान ही उसका वध है। अतः प्रहस्त ने कठोर वचन कहा। वैसा ही कठोर वचन कहा जैसा पुत्र ऐसे समय पिता को कह सकता है।

हित मत तोहि न लागत कैसें। काल बिबस कहु भेषज जैसें॥
संध्या समय जानि दससीसा। भवन चलेउ निरखत भुजबीसा॥३॥

अर्थ : भलाई की बात तुझ पर इस भाँति कोई प्रभाव नहीं करती जैसे काल विवश पर दवा का प्रभाव नहीं पड़ता। सन्ध्या का काल जानकर दशग्रीव बीसों भुजाओं को देखते घर चले।

व्याख्या : भलाई की बात भगवान् पुलस्त्य ने कहलाया। बराबर के भाई विभीषण ने कहा पट्टमहिषी मन्दोदरी ने कहा। पुत्र होकर मैं कह रहा हूँ पर तेरे ऊपर कोई प्रभाव ही नहीं पड़ता। सौ रोग की दवा है एक की नहीं : वह रोग काल है। उसके विवश जो हो जाता है उस पर कोई ओषधि काम नहीं करती अर्थात् तू काल के वश हो गया है। तेरी बुद्धि भ्रष्ट हो गयी। हित की बात मनमें नहीं बैठती।

रावण दरबार करने में आलस्य नहीं करते। दोनों समय दरबार होता है। सन्ध्या करने का समय आया हुआ देखकर रावण घर चले। अग्निहोत्री हैं। नित्य नैमित्तिक कर्म का निर्वाह करते हैं। अपने भुजाओं का बड़ा गर्व है। अंगद से कहेंगे : हरगिरि मथन निरखि मम बाहू। पुनि कपि सठ निज प्रभुहि सराहू। इत्यादि। सो उन भुजाओं को देखते हुए चले कि : मम भुज सागर बल जल पूरा। जहँ बूड़े बहु सुर नर सूरा। बीस पयोधि अगाध अपारा। को अस बीर जो पाइहि पारा।

लंका सिखर उपर आगारा। अति बिचित्र तहँ होइ अखारा ॥
बैठि जाइ तेहि मंदिर रावन। लागे किन्नर गुन गन गावन ॥४॥
बाजहिं ताल पखाउज बीना। नृत्य करहिं अपछरा प्रवीना ॥५॥

अर्थ : लंका में चोटी पर एक बंगला था। उसमें अति अद्भुत अखाड़ा हुआ करता था। रावण उसी घर में जाकर बैठा। किन्नर उसके गुणगण गाने लगे। ताल पखाउज और वीणा बज रही थी। नृत्यकला में चतुर अप्सराएँ नाच रही थीं।

व्याख्या : राजाओं के बहुत से महल होते हैं पर पर्वत के शिखर पर का आगार बड़ा मनोरंजक होता है। जैसा वह आगार था वैसा ही वहाँ अखाड़ा होता था। जहाँ गुणी जन एकत्र होकर अपना अपना हुनर दिखावें वही अखाड़ा कहा जाता है। आजकल केवल मल्लविद्या के प्रदर्शन स्थान को ही अखाड़ा कहते हैं। वहाँ सङ्गीत का अखाड़ा था। रावण सङ्गीत शास्त्र के प्रधान आचार्य हैं।

आज रावण उसी सर्वोच्च मन्दिर में जाकर विराजमान हुए जिसमें शत्रु देख सकें कि रावण को उनका रत्ती भर भय नहीं। वे यथापूर्व अपने भोग विलास में आसक्त हैं। वहाँ देवयोनि विशेष किन्नरों का गान होता था। मण्डलीक मणि रावण के गुणगण गाये जाते थे। किन्नर गन्धर्व गान में बड़े निपुण होते हैं।

मजोरा आदि की ताल में गणना है। पखाउज मृदंग को कहते हैं और वीणा बज रही थी। वीणा पर गान करने की सामर्थ्य किन्नरों को ही है। मनुष्यों के गले में इतना माधुर्य नहीं कि वीणा पर गान कर सकें और प्रवीण अप्सरा मेनका उर्वशी रम्भा आदि का नृत्य होता था। सामान्य अप्सराओं की भी सामर्थ्य नहीं कि रावण के सामनेनृत्य कर सकें। मन्दोदरी साथ बैठी है। अप्सराओं से भी अधिक सुन्दरी है।

दो. सुनासीर सत सरिस सो, संतत करै बिलास।
परम प्रबल रिपु सीस पर, तद्यपि सोच न त्रास ॥१०॥

अर्थ : सौ इन्द्र के समान वह सदा भोग विलास किया करता था। अत्यन्त प्रबल शत्रु सिर पर है फिर भी उसे कुछ भी डर नहीं है।

व्याख्या : रावण बड़ा भारी व्यसनी है। सौ इन्द्र के बराबर भोग विलास नित्य करता है। भानु प्रताप के रूप में इन्द्र से सौ गुना अधिक यज्ञ भी कर चुका है। इन्द्र तो शतक्रतु है। सौ अश्वमेध यज्ञ कर चुके हैं पर भानुप्रताप के शरीर से रावण अगणित यज्ञ किये हुए हैं। यथा : जहँ लगि कहे पुरान स्रुति एक एक सब जाग। बार सहस्र सहस्र नृप किए सहित अनुराग। उसी पुण्य का फल सुनासीर सत सरिस विलास करके ले रहा है। सहज अशङ्क है। अतः श्रीरामचन्द्र से प्रबल शत्रु के चढ़ आने पर भी उसे तनिक भी भय नहीं है। भाव यह है कि कितना बलवान राजा

क्यों न हो भोग विलास में पड़कर मारा पड़ता है और शत्रु की उपेक्षा करनेवाले की भी ऐसी गति होती है। रावण में पराभव के दोनों लक्षण अत्यन्त स्पष्ट हैं।

सुवेली की झाँकी

इहाँ सुवेल सैल रघुबीरा। उतरे सेन सहित अति भीरा॥
सिखर एक उतंग अति देखी। परम रम्य सम सुभ्र बिसेखी॥१॥

अर्थ : यहाँ रघुवीर रामजी सुवेल पर्वत पर सेना सहित उतरे। बड़ी भारी भीड़ हुई उस पर्वत की एक चोटी को सुन्दर देखकर जो कि अत्यन्त ऊँची समतल और स्वच्छ थी।

व्याख्या : सिन्धु पार प्रभु डेरा कीन्हा। सकल कपिन्ह कहँ आयसु दीन्हा से प्रसङ्ग छूटा हुआ है। अब उसी प्रसङ्ग को उठाते हैं। प्रहस्त रावण की सभा में कह चुका है कि : उतरे सेन समेत सुवेला। इससे पता चलता है कि बन्दरों के फल खा लेने के बाद सुवेल पर बड़ी भीड़ हुई। तब सरकार के ठहरने के लिए एक सुन्दर शृङ्ग तजबीज किया गया। पर्वत का आनन्द उसके शृङ्ग पर से ही मिलता है। जितना ऊँचा शृङ्ग हो उतना ही प्राकृत दृश्य अधिक दृष्टिगोचर होता है। पर्वतों के पथिक इस बात से परिचित हैं कि वहाँ समतल भूमि की प्राप्ति अत्यन्त दुर्लभ होती है। सो वह शृङ्ग अत्यन्त ऊँचा था और समतल था। अन्य शृंगों से रमणीय भी अधिक था। दूसरी बात यह है कि शत्रु से युद्ध करना है। अतः अपनी तथा सेना की रक्षा के लिए गिरि दुर्ग का आश्रयण किया गया।

तहँ तरु किसलय सुमन सुहाए। लछिमन रचि निज हाथ डसाये॥
तापर रुचिर मृदुल मृगछाला तेहि आसन आसीन कृपाला॥२॥

अर्थ : वहाँ पेड़ों के पत्तों और सुन्दर फूलों को लक्ष्मणजी ने अपने हाथ से बिछाये। उसपर सुन्दर और कोमल मृगछाला बिछाया गया। उसी आसन पर कृपाल रामजी विराजमान हुए।

व्याख्या : लक्ष्मणजी राजकुमार हैं। पुष्प शय्या रचना जानते हैं। अतः उन्होंने अपने हाथों पत्ते और फूलों की शय्या तैयार की। पहिले ही कह आये हैं : नाना तरु फल फूल सुहाये सो फल बन्दरों के काम आये। फूलों से शय्या की रचना की गई।

वीर रस के बढ़ाने के लिए लक्ष्मणजी ने उसपर कपट मृग का चर्म बिछाया। उसे लक्ष्मणजी साथ लाये थे। यथा : हेम कों हरिन हनि फिरे रघुकुल मनि लखन ललित कर लिए मृगछाल। वह कपट मृग परम रुचिर था। यथा : सीता परम रुचिर मृग देखा। कपट कुरंग कनक मनि मय लखि प्रिय सों कहति हँसि बाला। पाए पालिबे जोग मंजु मृग मारेहु मंजुल छाला। यहाँ रुचिर मृग छाला कहकर उसी मृग के चर्म को लक्षित करते हैं। विश्राम के लिए सरकार उसी आसन पर

बैठे। इस भाँति बैठे हुए भी शत्रु पर कृपा करना है। अतः गोस्वामीजी कृपाल विशेषण दे रहे हैं। वहाँ बैठ जाइ तेहि मन्दिर रावन यहाँ तेहि आसन आसीन कृपाला।

प्रभु कृत सीस कपीस उछंगा। वाम दहिन दिसि चाप निषंगा॥
दुहुँ कर कमल सुधारत बाना। कह लंकेस मंत्र लगि काना॥३॥

अर्थ : प्रभु ने अपना सिर सुग्रीव की गोद में रक्खा। बाईं ओर दाहिनी ओर धनुष और तरकस था। दोनों हाथों से बाणों को सुधार रहे थे और विभीषणजी कान में लगे हुए सम्मति दे रहे थे।

व्याख्या : कपीश सुग्रीव सरकार के सखा हैं। पहिले मृगछाला पर रामजी विराजमान हुए। अब कृपालु सुग्रीवजी की गोद में सिर रखकर लेट गये। दिखाने के लिए तो कपीश की गोद में सिर है पर बाईं ओर धनुष रक्खा हुआ है। क्योंकि उसमें काम बाएँ हाथ से लिया जाता है और निषंग दाहिनी ओर है। क्योंकि दाएँ हाथ से ही बाण से काम लिया जाता है। विश्राम के समय भी अनवधान नहीं है।

बाणों में गृध्र आदि के पक्ष लगाये जाते हैं। सन्तुलन ठीक रखने के लिए सरकार उसे सुधार रहे हैं। झाँवा लेकर उन बाणों के धार को तीक्ष्ण बना रहे हैं। युद्ध की तैयारी में लगे हैं अथवा योद्धाओं का स्वभाव हो जाता है कि शस्त्रों के सुधारने में ही उन्हें विश्राम मिलता है। जिस भाँति पण्डित को पुस्तकावलोकन में विश्राम मिलता है। यथा : कर कमलन्हि धनु सायक फेरत। जियकी जरनि हरत हँसि हेरत।

यहाँ सभी विश्वस्त लोग हैं। पर नीति का पालन करते हुए लंकेश विभीषणजी कान में ही मन्त्र कहते हैं। क्योंकि छ कान में पड़ने से मन्त्र में भेद आ जाता है। यथा : षट्कर्णो भिद्यते मन्त्रः। लङ्केश कहने का भाव यह कि ये लङ्का के सम्पूर्ण मर्मों को जानते हैं। वहाँ किन्नरों का गान और अप्सराओं का नाच हो रहा है और यहाँ लेटे लेटे भी मन्त्रणा हो रही है। शस्त्र सुधारे जा रहे हैं। यहाँ गोस्वामीजी ने जीतनेवाले और हारनेवालों के लक्षण दिखला दिये। श्रीराम ब्रह्म हो के सावधान हैं। जीव रावण असावधान हैं।

बड़भागी अंगद हनुमाना। चरन कमल चाँपत बिधि नाना॥
प्रभु पाछे लछिमन बीरासन। कटि निषंग कर बान सरासन॥४॥

अर्थ : बड़े भाग्यवान अङ्गद और हनुमान्‌जी अनेक प्रकार से प्रभु के चरण-कमलों को दबा रहे थे। प्रभु के पीछे लक्ष्मणजी कमर में तरकस कसे और हाथों में धनुष बाण लिए वीरासन में थे।

व्याख्या : श्री गोस्वामीजी कहते हैं कि बड़भागी तो अङ्गद हनुमान् हैं जो चरणकमलों की सेवा अनेक प्रकार से कर रहे हैं। अंगों के दबाने की विद्या है। उन

उन विधियों से दबाने से ही पीड़ा जाती है और सुख मिलता है। आज गुरुपूर्णिमा है। कोदण्ड दीक्षा गुरु की आराधना हो रही है। ग्रीष्मऋतु समाप्त हो रही है।

लक्ष्मणजी वीरासन से बैठे हुए हैं जिसमें निद्रा की बाधा न हो। निषाद के आश्रम से ही रात का पहरा लक्ष्मणजी का प्रारम्भ हो जाता है। यथा : कछुक दूर सजि बाण सरासन। जानत लगे बैठि बीरासन। जगदम्बा साथ नहीं हैं। इसलिए लक्ष्मणजी सन्निकट ही हैं। प्रभु के अयोध्या से बाहर जाने पर लक्ष्मणजी नहीं सोते। यथा : पुनि पुनि प्रभु कह सोवहु ताता। पौढे धरि उर पद जलजाता। यह जनकपुर की बात है जब विश्वामित्रजी के साथ गये थे। बार बार बार रामजी के कहने पर भी लेटे : सोये नहीं। यथा : उठे लखन निसि बिगत सुनि अरुनसिखा धुनि कान। गुरु ते पहिलेहिं जगत पति जागे रामु सुजान। लक्ष्मणजी लेटे थे। इसलिए कवि ने उनके लिए उठना और रामजी सोए थे इसलिए उनके लिए जागना कहा।

दो. एहि बिधि कृपा रूप, गुनधाम रामु आसीन।
धन्य ते नर एहि ध्यान जे, रहत सदा लयलीन ॥११क॥

अर्थ : इस भाँति कृपा रूप और गुण के धाम रामजी विराजमान थे। वे मनुष्य धन्य हैं जो इस ध्यान में सदा लवलीन रहते हैं।

व्याख्या : तेहि आसन आसीन कृपाला से उपक्रम करके आसीन होने की विधि कहा। अब उपसंहार करते हैं : एहि बिधि कृपारूप गुनधाम राम आसीन। कपीश और विभीषण को बड़ाई दे रहे हैं। अतः करुणारूप कहा। विश्राम के समय भी मन्त्रणा हो रही है इसलिए गुणधाम कहा। यहाँ पर बड़ी अद्भुत झाँकी है। सुवेल पर्वत बन्दरों से गुँथा हुआ है। उसके सर्वोच्च शिखर पर सरकार सुग्रीव की गोद में सिर रक्खे हुए लेटे हुए हैं। दोनों हाथों से बाण सुधार रहे हैं। अङ्गद हनुमान् चरणों की सेवा कर रहे हैं। विभीषणजी सम्मति कान में झुककर दे रहे हैं। पीछे लक्ष्मणजी सुसज्जित होकर वीरासन से बैठे हैं। यह अखिल रसामृत मूर्ति भगवान् का रसमय ध्यान है। तहँ तरु किसलय सुमन सुहाए। लछिमन रचि निज हाथ डसाए। से श्रृंगार रस कहा। तेहि पर रुचिर मृदुल मृगछाला। मारीच के खालवाली मृगछाला होने से बीभत्सरस कहा। प्रभु कृत सीस कपीस उछंगा। से हास्यरस कहा। वाम दहिन दिसि चाप निषंगा। से भयानक रस कहा। दुहुकर कमल सुधारत बाना। से रौद्र रस कहा। कह लंकेस मन्त्र लगि काना। से अद्भुत रस कहा। बड़ भागी अंगद हनुमाना। चरन कमल चाँपत विधि नाना। से भक्ति रस कहा। प्रभु पाछे लछिमन वीरासन। से वीररस कहा। एहि विधि कृपा गुनधाम राम आसीन। से शान्ति रस कहा। अतः इस ध्यान में सदा लवलीन होनेवाले को धन्य कहा। अन्य किसी स्थान में ध्यान की ऐसी महिमा नहीं कही। यह सरकार की मित्रगोष्ठी है। या यों कहिए कि पाँच महाभागवत

भगवान् की सेवा कर रहे हैं और करुणाकर भगवान् सेवा स्वीकार कर रहे हैं। अतः इस मित्रगोष्ठी में स्थित भगवान् के ध्यान की विशेष महिमा कही। जीव का हृदयस्थल श्रीरामराज्य होने के पहले लङ्का ही है। अतः लङ्का का ध्यानकर विशेष माहात्म्य कहा गया।

दो. पूरब दिसा बिलोकि प्रभु, देखा उदित मयंक।
कहत सबहि देखउ ससिहि, मृगपति सरिस असंक ॥११ख॥

अर्थ : रामजी ने पूर्व दिशा में देखकर चन्द्रमा को उदय हुआ देखा। सबसे कहने लगे चन्द्रमा को देखो। यह सिंह की तरह निःशङ्क है।

व्याख्या : सरकार पश्चिम की ओर पैर किये लेटे थे। पूर्व और दक्षिण की ओर पैर करके सोना निषिद्ध है। यथा : पश्चिमोत्तरशायी च हन्ति पुण्यं पुराकृतम्। जब चन्द्रोदय होने से प्रकाश मालूम हुआ तो उधर देखा। चन्द्रमा के देखने से जो भाव हृदय में आया उसी को व्यक्त करने के लिए सबसे कहते हैं। सबसे उत्प्रेक्षा करने के लिए कहेंगे। अतः सबको दिखलाते हैं। मयङ्क शब्द मृगाङ्क का प्राकृत रूप है। यहाँ मयङ्क और शशि दोनों शब्द चन्द्रमा के लिए ऐसे कहे जिससे उसका सकलंक होना सूचित होता है।

काव्यशास्त्रविनोदेन कालो गच्छति धीमताम्। व्यसनेन च मूर्खाणां निद्रया-कलहेन वा। बुद्धिमान् का समय काव्यशास्त्र के विनोद में व्यतीत होता है। मूर्खों का समय व्यसन में निद्रा में अथवा कलह में व्यतीत होता।

यहाँ कवि दिखला रहे हैं कि सरकार के विश्रामके समय में काव्यशास्त्र का विनोद होगा। इसके बाद ही यह दिखलावेंगे कि रावण के विश्राम का समय व्यसन में बीतता है। सरकार अपनी वाणी का प्रारम्भ ही रूपकालङ्कार से कर रहे हैं। चन्द्रमा का रूपक सिंह से बाँधा गया है।

पूरब दिसि गिरिगुहा निवासी। परम प्रताप तेज बलरासी ॥
मत्त नाग तम कुंभ बिदारी। ससि केसरी गगन बनचारी ॥२॥

अर्थ : पूर्व दिशा रूपी पर्वत की गुहा में रहनेवाला अत्यन्त प्रताप तेज और बल की राशि यह चन्द्ररूपी सिंह अन्धकाररूपी मतवाले हाथी का सिर विदीर्ण करके आकाशरूपी वन में विचरण कर रहा है।

व्याख्या : यहाँ सुवेलाचल पर सरकार हैं। त्रिकूटाचल पर रावण है और उदयाचल पर चन्द्रमा है। सुवेलाचल पर पहिले उदयाचल की चर्चा चली : सिंह पर्वत की गुफा में रहता है और यह चन्द्रमारूपी सिंह उदयाचल है। सिंह प्रताप तेज और बल की राशि है और यह चन्द्रमारूपी सिंह परम प्रताप तेज और बल की राशि है। ऊपर दोहे में प्रताप का सूचक मृगपति विशेषण दिया और तेज का सूचक अशंक विशेषण दिया। बल आगे कहेंगे।

गुफा से निकलते ही यह चन्द्ररूपी सिंह अन्धकाररूपी मत्तनाग पर टूट पड़ा और उसके मस्तक को विदीर्ण कर दिया। अन्धकाररूपी हाथी मारा गया। दिशा रक्त से लाल हो गयी। अब आगे गगनरूपी वन में बढ़ रहा है।

बिथुरे नभ मुकताहल तारा। निसि सुंदरी केर सिंगारा॥
कह प्रभु ससि महुँ मेचकताई। कहहु काह निज निज मति भाई॥२॥

अर्थ : ताराख्पी मोतियाँ आकाश में बिखरी हैं। वे ही रात्रिरूपी सुन्दरी के शृङ्गार रूप हैं। प्रभु ने कहा : भाई ! चन्द्रमा में जो कालापन है वह क्या है ? अपनी अपनी बुद्धि से कहो।

व्याख्या : जब हाथी का मस्तक विदीर्ण हुआ तो गजमुक्ता छलककर वन में बिखर गयी। इसी भाँति अन्धकाररूपी हाथी के मस्तक के मुक्तारूप ये तारे हैं। उसके मारे जाने पर वनरूपी गगन में बिखर गये हैं।

यहाँ स्मरणालङ्कार है। चन्द्रमा में कलङ्क देखकर पुलस्त्य वंश में रावण का स्मरण हुआ। यथा : रिषि पुलस्त्य जस विमल मयंका। तेहि ससि महु जनि होहु कलंका। अतः सबको अपनी अपनी बुद्धि के अनुकूल उत्प्रेक्षा के लिए आज्ञा हो रही है। जिस भाँति सरकार ने पूछा उसी भाँति उत्प्रेक्षा में ही कलङ्क के विषय में अपना अपना मत सब लोग कहेंगे।

कह सुग्रीव सुनहु रघुराई। ससि महुँ प्रगट भूमि कै झाई॥
मारेहु राहु ससिहि कह कोई। उर महँ परी स्यामता सोई॥३॥

अर्थ : सुग्रीव ने कहा हे रघुराई ! सुनिये। चन्द्रमा में पृथिवी का प्रतिबिम्ब दिखाई पड़ रहा है। किसी ने कहा कि राहु ने चन्द्रमा को मारा। उसके हृदय में वही कालापन पड़ गया है।

व्याख्या : राजा सुग्रीव सम्पूर्ण भुवन के जानकार हैं। बड़े भूगोलवेत्ता हैं। सबकी यात्रा कर चुके हैं। यथा : ताके भय रघुवीर कृपाला। सकल भुवन मैं फिरेउँ बिहाला। यह कहते हैं कि चन्द्रमा में भूमि की परिछाईं पड़ी हुई है। सुन्दर उत्प्रेक्षा है। भूगोल में जलांश और स्थलांश दोनों हैं। यदि सम्पूर्ण स्थलांश को सामने करके भूगोल को देखा जाय तो सचमुच जल के बीच में स्थलांश चन्द्र की कालिमा के आकार का ही मालूम होता है। इसलिए चन्द्र के कलङ्क को पृथिवी की छाया बतला रहे हैं एवं यह लक्षित करा रहे हैं कि यह पृथिवीपति होने का अभिमान है। पृथिवीपति अपने को रत्नभुक् मानते हैं। अतः रावण ने स्त्रीरत्न सीता का हरण किया। इसी प्रकार की बात शुम्भ-निशुम्भ ने भी जगदम्बा पार्वतीजी से कहलाया था। यथा : मां वा ममानुजं वापि निशुम्भमुरुविक्रमम्। भज त्वं चञ्चलापाङ्गि रत्नभूतासि वै यतः। परमैश्वर्य्यमतुलं प्राप्स्यसे मत्परिग्रहात्। एतद्बुध्या समालोच्य मत्परिग्रहतां व्रज। हे चञ्चल नेत्रवाली ! तू मुझे या बड़े पराक्रमी मेरे भाई निशुम्भ को स्वीकार कर। क्योंकि तू स्त्रियों में रत्न है। मुझे

स्वीकार करने से अतुल महा ऐश्वर्य तुझे प्राप्त होगा। ऐसा मन में समझकर मेरी स्त्री होना स्वीकार कर ले।

शरीर के जिस अङ्ग पर चोट कड़ी पड़ जाती है वहाँ काला दाग पड़ जाता है। चन्द्रमा को राहु प्रायेण ग्रसा करता है। सो ग्रास करने के समय चन्द्रमा के उर में जो राहु ने प्रहार किया है वही काला दाग चन्द्रमा के उर में है।

लक्ष्य यह है कि राहु तम है : अन्धकार है। तम अन्धकार अज्ञान पर्यायवाची शब्द हैं अर्थात् यह कलङ्क अज्ञानकृत है। अङ्गदजी ने भी सीताहरण का कारण कहते हुए दो पक्ष रावण के सामने उपस्थित किया था कि : नृप अभिमान मोह बस किंबा। हरि आनेहु सीता जगदंबा। वे ही दोनों पक्ष यहाँ क्रम से दिखाये गये हैं।

यद्यपि यहाँ अनिश्चयात्मक सर्वनाम कोई का प्रयोग कवि ने किया है। नाम नहीं दिया फिर भी मानस के रहस्यज्ञों का यही निश्चय है कि यह उत्प्रेक्षा विभीषणजी की है रावण के चरण प्रहार से ये व्यथित हैं। अतः इन्हें वही उत्प्रेक्षा सूझ रही है। यथा : यातुधानेस भ्राता विभीषन नाम बन्धु अपमान गुरु ग्लानि चाहत गरन। गीतावली।

कोउ कह जब बिधि रतिमुख कीन्हा। सार भाग ससि कर हरि लीन्हा॥
छिद्र सो प्रगट इंदु उर माहीं। तेहि मग देखिअ नभ परिछाहीं॥४॥

अर्थ : किसी ने कहा कि जब ब्रह्मदेव ने रति का मुख बनाया तो चन्द्रमा का सार भाग हरण कर लिया। वही छेद चन्द्रमा के हृदय में स्पष्ट है। उसी मार्ग से आकाश की परिछाहीं दिखाई पड़ती है।

व्याख्या : यहाँ भी कोऊ शब्द का प्रयोग है नाम नहीं दिया गया। पर महात्माओं का अनुमान है कि यह उक्ति अङ्गदजी की है। अङ्गदजी नवयुवक हैं। शृङ्गार रस लिए हुए उत्तर देते हैं। सौन्दर्य में काम की शक्ति रति को ही प्रधानता है। सो अङ्गदजी उत्प्रेक्षा करते हैं कि ब्रह्मदेव जब रति के मुख का निर्माण करने लगे तो चन्द्रमा के सारांश को लेकर ही निर्माण किया। अतः चन्द्रमा के हृदय में छिद्र हो गया है। वहाँ शून्य है और कुछ नहीं। उसी मार्ग से आकाश की नीलिमा झलकती है।

लक्ष्य यह है कि वरदान देने के समय ब्रह्मदेव ने इस रावण की बुद्धि हरण कर ली और उसी से सरकार की विजयलक्ष्मी का मुख बनाया। यथा : रावन कुंभकरण वर माँगत सिव बिरंचि वाचा छल्यो। अतः इसका हृदय शून्य हो गया है। मूर्खस्य हृदयं शून्यं। वह शून्यता ही कलङ्क सी दीख रही है। कहा भी है कि फूलै फरै न बेंत जदपि सुधा बरखहिं जलद। मूरख हृदय न चेत जौ गुरु मिलहिं बिरंचि सिव।

प्रभु कह गरल बंधु ससि केरा। अति प्रिय निज उर दीन्ह बसेरा॥
बिष संजुत कर निकर पसारी। जारत बिरहवंत नर नारी॥५॥

अर्थ : सरकार ने कहा कि विष चन्द्रमा का भाई है और ऐसा प्रिय है कि उसे हृदय में बसाया है। अब उसी विष से संयुक्त किरनों को फैलाकर यह विरही नर नारियों को जलाया करता है।

व्याख्या : सरकार विरही हैं। अतः चन्द्रमा इन्हें दाहक मालूम होता है। अतः ये यह उत्प्रेक्षा करते हैं कि चन्द्रमा को भाई तो अनेक हैं। पर चन्द्रमा को कोई भी इतने प्रिय नहीं हैं जितना कि विष प्रिय है और जो अतिप्रिय होता है। वही हृदय में बसता है। सो चन्द्रमा के हृदय में विष बसा हुआ है। उसी गरल की झाग किरनों से मानो झरता है। जिससे विरहवन्त नर नारी जले जा रहे हैं। लक्षित यह कर रहे हैं कि दशशीश बन्धु प्रेम के कारण हमारा दाहक हो रहा है। खरदूषन त्रिसिरा कर घाता। सुनि दससीस जरे सब गाता। खर उसका भाई था उसको बहुत प्रिय था। उसके वध का बदला लेने के लिए ही रावण ने सीताहरण किया जो सरकार के विरहजन्य दाह का कारण है।

दो. कह हनुमंत सुनहु प्रभु, ससि तुम्हार प्रिय दास।
तव मूरति बिधु उर बसति, सोइ स्यामता अभास ॥१२॥

अर्थ : हनुमान्‌जी ने कहा हे प्रभो ! सुनो चन्द्रमा तुम्हारा प्रिय दास है। तुम्हारी मूर्ति उसके हृदय में बसती है वही श्यामता की झलक है।

व्याख्या : हनुमान्‌जी परम भक्त हैं। सरकार के दासों पर हनुमान्‌जी की सदा कृपादृष्टि रहती है। अतः चन्द्रमा के ऊपर किये हुए आक्षेपों को न सहन करते हुए सरकार की उक्ति हो जाने पर भी बोल बैठे कि चन्द्रमा आपका प्रियदास है और दास के हृदय में सरकार का निवास रहता है। यथा : सरगु नरकु अपबरगु समाना। जहँ तहँ दीख धरे धनुबाना। करम बचन मन राउर चेरा। राम करहु तेहि के उर डेरा। अतः जो श्यामता चन्द्र के हृदय में झलकती है वह सरकार के शरीर की श्यामता है।

लक्ष्य यह है कि : द्वारपाल हरि के प्रिय दोऊ। जय अरु विजय जान सब कोऊ। बिप्र साप ते दूनौ भाई। तामस असुर देह तिन पाई। भये निसाचर जाइ ते महाबीर बलवान। कुंभकरन रावन सुभट सुर बिजई जग जान। यह श्यामता कलङ्क नहीं सरकारी प्रेम ही इस रूप से प्रादुर्भूत हुआ है। यथा : सुर रंजन भंजन महि भारा। जौ भगवंत लीन्ह अवतारा। तउ मैं जाइ बयरु हठि करऊँ। प्रभुसर प्रान तजे भव तरऊँ। होइहि भजन न तामस देहा। मन क्रम बचन मन्त्र दृढ़ एहा। तामस शरीर से दशशीश भजन करने में असमर्थ है। अतः प्रभु की प्राप्ति के लिए प्रभु के बाणों द्वारा शरीर त्यागने का यह उपाय निकाला है।

दो. पवनतनय के बचन सुनि, बिहँसे राम सुजान।
दच्छिन दिसि अवलोकि प्रभु, बोले कृपानिधान ॥१२॥

अर्थ : पवनसुत के वचन सुनकर सुजान रामजी हँस पड़े। फिर दक्षिण दिशा की ओर देखकर कृपानिधान प्रभु बोले।

व्याख्या : हनुमान्‌जी बड़ी दूर की बात कहते हैं। इसपर रामजी प्रसन्न हो गये क्योंकि सुजान हैं। यथा : यह प्राकृत महिपाल सुभाऊ। जान सिरोमनि कोसल राऊ। रीझत राम सनेह निसोते। को जग मंद मलिन मन मोते। सुजानता दिखला कर कृपानिधित्व दिखलाते हैं। शत्रु को भी सावधान करना है कि अब भी चेत जावे। पहिले पूर्व की ओर देखकर सब से बोले। अब दक्षिण की ओर देखकर केवल विभीषण से कहेंगे। इधर जो दृश्य दिखाई दे रहा है वह भी अद्भुत है। अतः उसे देखकर मानो रामजी को मोह हो रहा है। यथार्थ ज्ञान के लिए विभीषणजी को दिखला रहे हैं।

देखु बिभीषन दच्छिन आसा। घन घमंड दामिनी बिलासा ॥
मधुर मधुर गरजै घन घोरा। होइ बृष्टि जनु उपल कठोरा ॥१॥

अर्थ : विभीषण ! दक्षिण की ओर देखो बादल घुमड़ आया है। बिजली चमक रही है। बादल मीठे मीठे घोर ध्वनि से गर्जन कर रहे हैं। मानो पत्थरों की कठोर वर्षा हो रही है।

व्याख्या : दक्षिण आशा कहकर दूरी द्योतित करते हैं। मालूम होता है कि दक्षिण ओर से बादल उमड़ आया है। परन्तु दूर से पर्वत शृङ्ग भी बादल से ही दिखाई पड़ते हैं। अतः बादल होने की पुष्टि करते हुए कहते हैं कि बिजली भी चमकती है। इतना ही नहीं मधुर मधुर गर्जन करते करते घोर ध्वनि से भी गर्जन कर बैठता है। ऐसी तड़तड़ाहट हो रही है मानो कठोर पत्थर पड़ रहा हो। अतः यही सिद्ध होता है कि यह बादल ही है।

कहत बिभीषन सुनहु कृपाला। होइ न तड़ित न बारिद माला ॥
लंका सिखर उपर आगारा। तहँ दसकंधर देख अखारा ॥२॥

अर्थ : विभीषणजी बोले कि हे कृपाल ! सुनिये। न तो बिजली है और न घन घमण्ड है। लङ्का के शिखर पर सुन्दर बँगला है। उसमें रावण अखाड़ा : नाच रंग देख रहा है।

व्याख्या : सरकार ने कहा था कि : घन घमंड दामिनी बिलासा। उसी का उत्तर देते हुए विभीषणजी कहते हैं कि न तो घन घमण्ड है और न बिजली ही चमक रही है। वहाँ दृश्य ही दूसरा है। वह लङ्का की चोटी पर वाला बँगला है। रावण वहीं बैठे बैठे नाच रंग देख रहे हैं। मूर्खों का समय इसी भाँति व्यसन में व्यतीत होता है। अखाड़ा उस स्थान को कहते हैं जहाँ गुणीजन अपना कलाकौशल दिखाते हैं।

छत्र मेघ डंबर सिरधारी। सोइ जनु जलद घटा अतिकारी ॥
मंदोदरी स्रवन ताटंका। सोइ प्रभु जनु दामिनी दमंका ॥३॥

अर्थ : जो मेघडम्बर छत्र सिर पर धारण किये हुए हैं वही मानो अति काली घटा है। मन्दोदरी के कान में कुण्डल है वही मानो बिजली चमक रही है।

व्याख्या : रावण के सिर पर जो काला छत्र है वह इतना विस्तृत है कि उसे देखकर मेघपटल का भ्रम होता है। उस छत्र का नाम भी मेघाडम्बर है। रावण के साथ रानी मन्दोदरी भी विराजमान है। उनके कानों के कुण्डल की झलक यहाँ बिजली की चमक सी दिखायी पड़ रही है। भाव यह कि ऐसा अद्भुत लोल कुण्डल रावण के ही पास है जिसकी झलक इतनी दूर से बिजली की चमक मालूम पड़ रही है।

बाजहि ताल मृदंग अनूपा। सोइ रव मधुर सुनहु सुरभूपा॥
प्रभु मुसुकान समुझि अभिमाना। चाप चढ़ाइ बान संधाना॥४॥

अर्थ : अनुपम ताल और मृदङ्ग बज रहे हैं। हे देवताओं के स्वामी सुनिये! वही मधुर ध्वनि है। सरकार अभिमान समझकर मुसकुराये और धनुष चढ़ाकर बाण सन्धान किया।

व्याख्या : जैसे मृदङ्ग और ताल रावण के यहाँ बज रहे हैं वैसे लोक में नहीं पाये जाते इसलिए अनूप कहा। जिससे बादल के गर्जने और पत्थर पड़ने सा शब्द होने पर भी सरस है अथवा मृदङ्ग से मधुर मधुर शब्द होता है। बीच बीच में ताल आ जाने पर थाप पड़ता है। उसी का घोर शब्द होता है और जो ताल बज रहे हैं उनका शब्द पत्थर पड़ने सा हो रहा है। सब मिलकर जो ध्वनि हो रही है वह सरस है।

सरकार के यहाँ अवकाश में काव्यशास्त्र का विनोद होता है। रावण के यहाँ अवकाश के समय व्यसन होता है : यही मूर्ख का लक्षण है। सरकार अवकाश के समय शस्त्रास्त्र सुधारा करते हैं। रावण नाच देखते हैं। अतः सरकार की विजय निश्चित है।

रावण ने इस समय जो नाच गाने का आयोजन किया है वह यह दिखलाने के लिए किया है कि मुझे कोई भय नहीं है। मैं ऐसी ऐसी सेनाओं को किसी गिनती में नहीं मानता। ऐसा रावण का अभिमान देखकर गर्वप्रहारी प्रभु ने भी अपने पराक्रम प्रदर्शन के लिए धनुष चढ़ाकर बाण सन्धान किया।

दो. छत्र मुकुट ताटंक तब, हते एकही बान।
सबके देखत महि परे, मरमु न कोऊ जान॥
अस कौतुक करि राम सर, प्रबिसेउ आइ निषंग।
रावन सभा ससंक सब, देखि महा रस भंग॥१३॥

अर्थ : तब एक ही बाण से छत्र मुकुट और कुण्डल काट दिया। सबके देखते वे पृथ्वी पर गिरे। मर्म किसीने न जाना। ऐसा खेल करके रामजी का बाण

लौटकर तरकस में प्रविष्ट हो गया। बड़ा भारी रङ्ग में भङ्ग देखकर रावण की सभा की सभा डर उठी।

व्याख्या : एक ही बाण ने मेघाडम्बर छत्र को काट गिराया। रावण के सिर पर से मुकुट को नीचे गिरा दिया। मन्दोदरी के दोनों कानों में कुण्डलों को भी काट गिराया। बनैती की पराकाष्ठा है। न तो रावण को चोट आयी न मन्दोदरी के शरीर का बाण ने स्पर्श किया और न किसी ने बाण को आते जाते देखा। यह तो रावण मन्दोदरी तथा सम्पूर्ण सभा ने देखा कि छत्र मुकुट और कुण्डल गिर गये पर कैसे गिरे यह कोई समझ न सका।

इसी बाण से सरकार रावण का सिर गिरा सकते थे पर ऐसा करना उन्हें इष्ट न था। सरकार बड़े कौतुकी हैं। कौतुक के लिए बाण छोड़ा था। इसीलिए बाण ने तो किसी पर आघात नहीं किया। अभिमान तोड़ने के लिए छत्र मुकुट ताटंक गिरा दिया और लौटकर हाथ में भी नहीं आया। तरकस में प्रवेश कर गया। यहाँ की सभा ज्यों की त्यों बनी है पर रावण की सभा सशङ्क हो गयी। नाच गाना बन्द हो गया। यहाँ से सब लोग देख रहे हैं कि घन घमण्ड दामिनी अन्तर्धान हो गये और मधुर मधुर घोर गर्जन भी मेघ का बन्द हो गया।

कंप न भूमि न मरुत बिसेखा। अस्त्र सस्त्र कछु नयन न देखा॥
सोचहिं सब निज हृदय मँझारी। असगुन भयउ भयंकर भारी॥१॥

अर्थ : न भूकम्प हुआ न हवा ही विशेष रूप से चली। अस्त्र शस्त्र कोई आँख से दिखाई न पड़ा। सब अपने में सोचने लगे कि यह तो भारी भयङ्कर अपशकुन हुआ।

व्याख्या : ऐसी घटना के निर्धारण में तीन विकल्प उठते हैं। यदि भूकम्प आवे तो ऐसा हो सकता है। अति तीव्र वायु के झोंके से भी ऐसा होना सम्भव है या हथियार फेंककर भी ऐसा किया जा सकता है। सो तीनों में कोई बात न हुई। न भूकम्प हुआ न हवा का कोई ऐसा झोंका आया और हथियार कोई दिखायी न पड़ा। तब हुआ क्या ?

इसी बात को सभा के लोग मन में विचारने लगे। सब इसी निर्णय पर पहुँचे कि अकस्मात् राजचिह्न छत्र मुकुट गिरना तथा सौभाग्यसूचक ताटङ्क का भी उसी समय गिर पड़ना असाधारण घटना है। जब रावण सीता हरण कर ले आये हैं तभी से लङ्का में भयङ्कर असगुन हो रहे हैं। यथा : जब ते तुम सीता हरि आनी। असगुन होहिं न जाहिं बखानी। पर यह असगुन तो सबसे भारी भयङ्कर हुआ। शत्रु की सेना सिर पर है। इस समय ऐसा अपशकुन हुआ सो क्या होनेवाला है ? बोलता कोई नहीं पर मन में सब यही एक बात सोच रहे हैं।

दसमुख देखि सभा भय पाई। बिहँसि बचन कह जुगुति बनाई॥
सिरौ गिरे संतत सुभ जाही। मुकुट परे कस असगुन ताही॥२॥

अर्थ : दशानन ने देखा कि सभा डर गयी। तब वह हँसकर युक्ति रचकर कहने लगा कि सिर का गिरना भी जिसके लिए सदा शुभ है उसके लिए मुकुट का गिरना अपशकुन कैसे है ?

व्याख्या : दशमुख हैं। बिना सिर घुमाये सबका मुख देख रहे हैं। सबके भय निवारणार्थ हँस पड़े और युक्ति की रचना करके ऐसी बात कही जिसमें सबका भय जाता रहे और सब लोग इसे सगुन समझने लगें। हँसने से उसी भाव को दृढ़ किया।

रावण कहते हैं कि सामान्य लोगों के लिए मुकुट का गिरना अवश्य असगुन है। परन्तु सिर गिरने से बढ़कर असगुन क्या होगा ? सो मेरा जब सिर गिरा तो मुझे वरदान मिला। मेरे ऊपर सामान्य नियम लागू नहीं हो सकता। मुकुट का गिरना भले ही दूसरों के लिए असगुन हो पर मेरे लिए तो सगुन ही है। ऐसा कहकर सभा विसर्जन करता है।

सयन करहु निज निज गृह जाई। गवने भवन सकल सिर नाई ॥
मंदोदरी सोच उर बसेऊ। जबतें स्रवनपूर महि खसेऊ ॥३॥

अर्थ : तुम सब अपने अपने घर जाकर सोओ। सब निशाचर सिर नवाकर अपने अपने घर गये पर जब से कान का कुण्डल पृथ्वी पर गिरा तब से मन्दोदरी के हृदय में चिन्ता बस गयी।

व्याख्या : रावण ने कहा कि भय की कोई बात नहीं है। तुम लोग अपने अपने घर जाकर सोओ। लङ्का की सावधानी से रक्षा करने को भी नहीं कहता है। उनकी बातें सुनकर सब सिर झुकाकर चले। सिर झुकाने से रावण को प्रणाम करना कहा तथा यह भी द्योतित किया कि रावण की बात सभासदों के गले नहीं उतरी। वे सब सिर झुकाये हुए अति चिन्तित होकर घर गये।

मन्दोदरी को कभी कभी विशेष घटना घटित होने पर सोच हो जाता था। लङ्कादाह पर सोच हुआ था। समुद्र पर सेतुबन्ध हो जाने पर सोच हुआ था और तब तब उसने रावण को समझाया भी। अपने अहिवात : सौभाग्य की भिक्षा भी उसने माँगी पर रावण ने बात अनसुनी कर दी। पर इस बार सौभाग्य का चिह्न ताटङ्क के भूमि पर गिरने से उसके हृदय में सोच ने डेरा कर लिया।

मन्दोदरी का रावण को समझाना : तीसरी बार

सजल नयन कह जुग कर जोरी। सुनहु प्रानपति बिनती मोरी ॥
कंत राम बिरोध परिहरहू। जानि मनुज जनि हठ मन धरहू ॥४॥

अर्थ : आँखों में आँसू भरकर दोनों हाथ जोड़कर कहने लगी। हे प्राणनाथ ! मेरी विनती सुनो। हे कन्त ! रामजी से विरोध छोड़ दो। उन्हें मनुष्य जानकर मन में हठ न पकड़ो।

व्याख्या : जब सब चले गये एकान्त हो गया। तब रावण से विनती करने लगी। इसके पहिले चरन नाइ सिर अंचल रोपा। इस भाँति विनती की थी। पर आज तो और भी दीन हो गयी है। आँखों में आँसू भरकर दोनों हाथ जोड़कर विनती कर रही है कि आप प्राणपति हैं। आपके ही कल्याण से मेरा कुशल है। स्त्री को प्राणपति को छोड़कर दूसरी गति नहीं होती। आपने औरों की विनती नहीं सुनी पर मेरी सुनिये।

कं सुखं तनोति इति कन्तः। सुख देनेवाले को कन्त कहते हैं। आप कन्त हैं, मैं दुःखी हूँ, मुझे सुखी कीजिये। सुखी करने का उपाय कहती है। रामजी से विरोध करना आप छोड़ दें। रामजी किसी का विरोध नहीं करते। विरोध आप कर रहे हैं। राम विरोध कहने का भाव यह है कि राम विरोध से कुशल नहीं होता। यथा : कहुधौं कंत कुशल बीती केहि किये राम अपराधु। आप रामजी को मनुष्य मानने का हठ छोड़ दें। मनुष्य क्या ऐसे होते हैं। मनुष्य शरीर धारण किये हुए भगवान् की अवहेलना करना उन्हें न पहिचानना मूढ़ता है : अवजानन्ति मां मूढा मानुषीं तनुमाश्रितम्। परं भावमजानन्तो मम लोकमहेश्वरम्। गीतायाम्। श्री राम वाण का स्पर्श मन्दोदरी के कानों से हो गया है। अतः उसे इतना ज्ञान हो गया कि प्रभु के विश्वरूप का वर्णन कितना सुन्दर कर रही है।

दो. बिस्वरूप रघुबंस मनि, करहु बचन बिस्वासु।
लोक कल्पना बेद कर, अंग अंग प्रति जासु ॥१४॥

अर्थ : रघुकुल मणि रामजी सर्वरूप हैं। मेरी बात का विश्वास करो। जिसके प्रत्येक अंग में लोकों की कल्पना वेद करता है।

व्याख्या : उसी परम महेश्वर भाव को जनाती हुई मन्दोदरी कहती है कि रघुवंशमणि रामजी विश्वरूप हैं। यह सम्पूर्ण चराचरात्मक जगत् उन्हीं का रूप है। रामजी के अन्य नाम न लेकर रघुवंशमणि कहने से सूचित करती है कि तापनीयश्रुतियों में उनका रघुकुल में अवतार ग्रहण करना वर्णित है। यथा : रघोः कुलेऽखिलं राति राजते यो महीस्थितः। मेरा कहना वेदानुमोदित है अतः विश्वास करो। वेद उनके अंग अंग में लोकों की कल्पना करता है। यथा :

नाभ्या आसीदन्तरिक्षं शीर्ष्णोः द्यौः समवर्तत।
पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रांस्तथा लोकानकल्पयन् ॥

इसी का उपबृंहण करता हुआ श्रीमद्भागवत कहता है :

पातालमेतस्य हि पादमूलं पठन्ति पार्ष्णिप्रपदे रसातलम्।
महातलं विश्वसृजोऽथ गुल्फौ तलातलं वै पुरुषस्य जङ्घे ॥
द्वे जानुनी सुतलं विश्वमूर्तेरूरुद्वयं वितलं चातलञ्च।
महीतलं तज्जघनं महीपते नभस्तलं नाभिसरो गृणन्ति ॥
उरःस्थलं ज्योतिरनीकमस्य ग्रीवामहर्वदनं वै जनोऽस्य।
तपोरराटी विदुरादिपुंसः सत्यं तु शीर्षाणि सहस्रशीर्ष्णः ॥

उस सहस्रशीर्षा पुरुष का पाद मूल पाताल है। रसातल उसका चौवा है। महातल टखना : गुल्फ है। तलातल पिंडली है वितल और अतल दोनों जंघे हैं। पृथ्वी उसका जघन है आकाश उसकी नाभि है। तारागण उसके वक्षःस्थल हैं। महर्लोक उसकी ग्रीवा है। जनलोक उसका चेहरा है। तपोलोक उसका ललाट है और ब्रह्म : सत्य लोक उसका सिर है।

पद पाताल सीस अज धामा। अपर लोक अँग अँग बिश्रामा ॥
भृकुटि बिलास भयंकर काला। नयन दिवाकर कच घन माला ॥१॥

अर्थ : पाताल जिसके चरण हैं। ब्रह्मलोक जिसका सिर है अन्य लोक जिसके अङ्ग अङ्ग में बसते हैं। जिसका भ्रूसञ्चालन भयङ्कर काल है। सूर्य नेत्र हैं, और बादल केश हैं।

व्याख्या : पातालादि सात लोक नीचे हैं। और ब्रह्मलोकादि सात ऊपर हैं। अतः सबसे नीचे पाताल है सबसे ऊपर ब्रह्मलोक है। यहाँ मन्दोदरी ने रावण ऐसे पण्डित को जताने के लिए पद पाताल सीस अजधाम कह देना ही यथेष्ट समझा। अन्य लोकों के लिए कह दिया कि बीच के अंग हैं। भाव यह विश्वरूप भगवान् के शरीर ही में चौदहों लोक हैं। वे चौदहों लोकों की आत्मा हैं। हम लोग उनके जघन : कटि भाग पृथिवीतल के कीट स्थानीय हैं। हमारा उनका वैर कैसा ?

उनके भृकुटिविलास से सृष्टि और लय होता है। यथा : भृकुटि बिलास सृष्टि लय होई। सपनेहुँ संकट परइ कि सोई। इसलिए भृकुटिविलास को भयंकर काल कहा : क्योंकि अंड कटाह अमित लयकारी। काल सदा दुरतिक्रम भारी।

सूर्य ही चक्षुमात्र के अनुग्राहक हैं। इसलिए सूर्य को उनका नेत्र बतलाया। कहा भी है : द्यौरक्षिणी चक्षुरभूत् पतङ्गः। भाग.। बड़े बड़े बाल कभी आँखों पर आ जाते हैं और उन्हें ढक लेते हैं। इसलिए बालों को मेघमाल कहा। यथा : ईशस्य केशान् विदुरम्बुवाहान्। भाग.।

जासु घ्रान अस्विनीकुमारा। निसि अरु दिवसु निमेष अपारा ॥
स्रवन दिसा दस बेद बखानी। मरुत स्वास निगम निज बानी ॥२॥

अर्थ : अश्विनीकुमार जिसकी नाक : घ्राणेन्द्रिय हैं। जिसका पलक पड़ना ही अपार रात और दिन है। दसों दिशाएँ जिसके कान हैं ऐसा वेद वर्णन करते हैं। वायु जिसका श्वास है और वेद उनकी निजवाणी है।

व्याख्या : अश्विनीकुमार दो हैं। दोनों साथ ही रहते और साथ ही सब व्यापार करते हैं। इसी से उनकी उपमा घ्राणेन्द्रिय से दी गयी। यथा : नासत्यदस्रौ परमोऽस्य नासे। भाग.। अपार रात दिन तो कल्प और कल्पान्त है। भगवद्गीता में उसी को यथार्थ रात दिन माना है। यथा : सहस्रयुगपर्यन्तमहर्यद् ब्रह्मणो विदुः। रात्रिं युगसहस्रान्तां तेऽहोरात्रविदो जनाः। अर्थ : ब्रह्मदेव का दिन एक सहस्र युग :

चतुर्युगी का और रात्रि भी एक सहस्र युग की होती है। जो इस रात दिन को जानता है वही अहोरात्रविद् है।

दशो दिशाएँ श्रवणेन्द्रिय के अनुग्राहक हैं। इसलिए उन्हें सरकार का श्रवण कहा। दिशः श्रोत्राः। यजु. ऐसा स्वयं वेद कहते हैं। वेद उनकी निजी वाणी है अर्थात् ब्रह्मा की शक्ति जो वाणी है उस वाणी से यहाँ अभिप्राय नहीं है। यहाँ उस वाणी से अभिप्राय है जो परमेश्वर द्वारा ब्रह्माजी के हृदय में पहुँचाई गयी। यथा : यो ब्राह्मणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै। तहं देव मात्म-बुद्धिप्रकाशं मुमुक्षुर्वै शरणमहं प्रपद्ये। श्वेताश्वतरोपनिषदि। जो परमेश्वर पहिले ब्रह्मा को बनाता है और ब्रह्मा के हृदय में पहिले वेदों को पहुँचाता है मोक्ष के लिए मैं उसके शरण में जाता हूँ। अर्थात् वेद स्वयं सरकार की वाणी है। यह किसी के बनाये हुए नहीं हैं। वे अपौरुषेय हैं।

अधर लोभ जम दसन कराला। माया हास बाहु दिगपाला ॥
आनन अनल अंबुपति जीहा। उतपति पालन प्रलय समीहा ॥३॥

अर्थ : लोभ जिसके होठ हैं, यम जिसके कराल दाँत है, माया जिसकी हँसी, दिक्पाल जिसकी भुजाएँ अग्नि मुख वरुण जिह्वा जगत् की उत्पत्ति पालन और प्रलय जिसकी इच्छा है।

व्याख्या : नीचे के होठ को लोभ कहा है। दोनों में ग्रहण करना साधारण धर्म है। कहा भी है कि : व्रीडोत्तरोष्ठोऽधर एव लोभः। भाग.। यम को कराल-दंष्ट्रा कहा है। चर्वण करना साधारण धर्म है। यथा : दंष्ट्रा यमः स्नेहकला द्विजानि। माया उनकी हँसी है। इसी में पड़ा हुआ मनुष्य उन्मत्तसा हुआ फिरता है। यथा : हासो जनोन्मादकरी च माया। और दिक्पाल लोग उनके बाहुस्थानीय हैं। क्योंकि सब दिशाओं का पालन करते हैं। यथा : इन्द्राद्यो बाहव आहुरुस्राः। अग्नि को मुख कहा है। क्योंकि उसी से यज्ञ पुरुष भगवान् आहुति ग्रहण करते हैं। यथा : मुखमग्निरिद्धः जिह्वा को वरुण कहा रसमय होने से। यथा : रस एव जिह्वा। भा०। उत्पत्ति पालन और प्रलय को उनकी इच्छा बतलाया। क्योंकि उन्हीं से इस जगत् की उत्पत्ति स्थिति और भङ्ग होता है। यथा : जन्माद्यस्य यतः। वेदान्तसूत्र।

रोमराजि अष्टादस भारा। अस्थि सैल सरिता नस जारा ॥
उदर उदधि अधगो जातना। जगमय प्रभु की बहु कलपना ॥४॥

अर्थ : अठारह धान्यों का समूह जिसके रोम की पंक्तियाँ हैं। पर्वत हड्डी है। नदियाँ नसों का जाल हैं। समुद्र पेट है। नीचे की इन्द्रिय नरक है। इस प्रकार विश्वरूप प्रभु की अनेक कल्पनाएँ हैं। भृञ्+घञ्=भारः।

व्याख्या : सम्पूर्ण पृथिवी अठारह प्रकार के धान्यों के समूह से भरी है। यथा : यवगोधूमधान्यानि तिलाः कङ्गुकुलत्थकाः। माषा मुद्गा मसूराश्च निष्पावाः

श्यामसर्षपाः। गवेधुकाश्च नीवारा ओढक्योऽथ सतीनकाः। चणकाश्चीनकाश्चैव धान्यान्यष्टादशैव तु।

१. जव, २. गेहूँ, ३. धान, ४. तिल, ५. कंगुनी, ६. कुथली, ६. उड़द, ८. मूग, ९. मसूर, १०. वाकला, ११. सांवा, १२. सरसो, १३. गवेधुका : मुनि अन्न, १४. तिन्नी, १५. ओढक्य, १६. केराव, १७. चना, १८. चीना ये अठारह धान्य हैं। विश्वम्भर के रोम से विश्वका पोषण होता है : भृञ् धारणपोषणयोः। भ्रियते अनेनेति भारो धान्यम्। कारण में घञ् प्रत्यय होता है। शैल को अस्थि कहा। क्योंकि पहाड़ भी अस्थि की भाँति पृथिवी को धारण किये हैं। यथा : गिरयोऽस्थि-संघाः। नदिय़ों को नस जाल कहा। क्योंकि नदियाँ नसों की भाँति पृथिवी का सिञ्चन करती हैं। यथा : नद्योऽस्यनाड्यः। उदर को उदधि कहा भण्डार होने से। यथा : कुक्षिः समुद्राः। नीचे की इन्द्रिय को यातना कहा शुद्धि का कारण होने से। इस भाँति विश्वरूप भगवान् की अनेक प्रकार की कल्पनाएँ हैं। यथा : ब्राह्मानन क्षत्रभुजो महात्मा विडूरुरङ्घ्रिः श्रितकृष्णवर्णः। ब्राह्मण मुख है, क्षत्रिय भुजा है, वैश्य जंघा है और शूद्र चरण हैं इत्यादि। इससे भगवान् का सगुण साकार रूप स्वयंसिद्ध हो जाता है।

दो. अहंकार सिव बुद्धि अज, मन ससि चित्त महान।
मनुज बास सचराचर, रूप राम भगवान ॥१५॥

अर्थ : अहंकार शिव बुद्धि ब्रह्मा मन चन्द्रमा और चित्त महत् तत्व है। मनुष्य का निवासस्थान चर अचरमय रूप भगवान् राम हैं।

व्याख्या : बाह्य करणों का वर्णन करके अब अन्तःकरण का वर्णन करते हैं। अन्तःकरण चार हैं : मन, बुद्धि, चित्त अहङ्कार। यजमान रूप होने से भगवान् अष्टमूर्ति शिवजी को अहङ्कार कहा। गिरापति होने से ब्रह्मदेव को बुद्धि कहा। सब विकार कोष होने से मन को चन्द्रमा कहा। यथा : अव्यक्तमाहुर्हृदयं मनश्च सचन्द्रमाः सर्वविकारकोशः और सत्वप्रधान होने से महत् तत्व को चित्त कहा।

दो. अस बिचारि सुनु प्रानपति, प्रभु सन बैरु बिहाइ।
प्रीति करहु रघुबीर पद, मम अहिवात न जाइ ॥१५॥

अर्थ : ऐसा विचार कर हे प्राणपति ! सुनो वैर छोड़कर प्रभु रघुवीर के चरणों में प्रीति करो जिसमें मेरा सुहाग न जाय।

व्याख्या : आपने ऐसे प्रभु से वैर ठान रक्खा है जो कुशल का परम आश्रय है। उससे विरोध करने से कैसे कुशल होगा ? विचार तो करो विश्वरूप से वैर करनेवाले को स्थान कहाँ है। आप मेरे प्राणपति हैं। आपके कुशल से मेरा सुहाग है। आप यदि अपने ऊपर दया न करें तो मेरे ऊपर दया करके चरणों में प्रेम करिये। विरोध करने से आप अपनी गति तो बना लेंगे पर मेरा सुहाग चला जायगा और प्रेम करने से आपकी भी सद्गति निश्चित है और मेरा सुहाग भी

बना रहेगा। सुनहु प्रान पति से उपक्रम और अस विचार सुनु प्रानपति से उपसंहार। कन्त राम विरोध परिहरहू से उपक्रम और प्रभु सन बैर बिहाइ से उपसंहार। मन्दोदरी के कहने का भाव यह कि मेरे सुहाग के अक्षुण्ण रहने का एक ही उपाय है : प्रीति करहु रघुवीर पद। क्योंकि वे विश्वरूप होने से तुम्हारी भी आत्मा है। ब्रह्म प्रभु जीव सेवक प्रभु सेवकहि समरु कस।

बिहँसा नारि बचन सुनि काना। अहो मोह महिमा बलवाना॥
नारि सुभाउ सत्य सब कहहीं। अवगुन आठ सदा उर रहहीं॥१॥

अर्थ : स्त्री का वचन कान से सुनकर जोर से हँसा। कहने लगा : अहो मोह की महिमा बड़ी बलवती है। सब लोग स्त्री का स्वभाव जो कहते हैं सो सत्य ही कहते हैं कि उनके हृदय में सदा आठ अवगुण रहते हैं।

व्याख्या : मन्दोदरी नारायण की महिमा कहती है। रावण मोह की महिमा की स्तुति कर रहे हैं। स्तुति का भाव यह कि जिसके ऊपर ममता रहती है उसके प्रति सदा मन पापशङ्को बना रहता है। इसकी मेरे ऊपर ममता है। अतः युद्ध में मेरे लिए अनिष्ट की शङ्का कर रही है। अथवा मेरी स्त्री होते हुए भी इसे मेरे पराक्रम का ज्ञान नहीं है। यही मोहमहिमा है। नारि बचन कहने का भाव यह कि स्त्री है। अतः सुहाग के भय से व्याकुल है। सुनि काना का भाव यह कि कान से सुना पर मन में स्थान न दिया। मन्दोदरी इस स्वभाव से परिचित थी। अतः उसने सुनहु करके ही उपक्रम किया और सुनु कहके ही उपसंहार करती है। पर रावण हँस पड़े कि यह इतनी बड़ी बेवकूफ है कि मुझे उपदेश देने का साहस करती है। मोह की महिमा देखो कि उस तपस्वो को भगवान् बतला रही है और मुझे निर्बल समझती है।

पहिले मैंने समझा था कि स्त्रियों से चिढ़कर लोगों ने अनृतं साहसं माया इत्यादि श्लोक गढ़ लिये हैं पर इसकी बातें सुनकर तो मालूम होता है कि उन लोगों ने सत्य ही कहा है। ये बातें चाहे कितनी भी बुद्धिमानी की करें पर इनके हृदय में आठ अवगुण सदा डेरा जमाये रहते हैं। यथा :

साहस अनृत चपलता माया। भय अबिबेक असौच अदाया॥
रिपु कर रूप सकल तैं गावा। अति बिसाल भय मोहि सुनावा॥२॥

अर्थ : १. साहस २. झूठ ३. चपलता ४. माया ५. भय ६. अविवेक ७. अपवित्रता और ८. निर्दयता ये ही आठो अवगुण हैं। तू ने शत्रु का सब रूप वर्णन किया और मुझे बड़ा भारी भय सुनाया।

व्याख्या : १. मुझे सिखाने चली है यह इसका साहस है। २. शत्रु तो सुवेल के एक शृङ्ग पर सुग्रीव के गोद में सिर डाले पड़ा है। उसे पद पाताल सीस अज धामा बतला रही है। यह इसका अनृत है। ३. इसे अपने वचन की पुष्टि के लिए

युक्ति तो कोई मिलती नहीं तो : तुरन्त करहु वचन विश्वास कह रही है। यह इसकी चपलता है। ४. सजल नयन कह जुग कर जोरी। यह इसकी माया है। ५. विरोध त्याग के लिए प्रार्थना करती है। यह इसका भय है। ६. प्रीति करहु रघुबीर पद कहकर मनुष्य के चरणों में प्रीति करने को कहती है। यह इसका अविवेक है। मेरे ऐसा वीर कौन है : सूर कवन रावन सरिस स्वकर काटि जेहि सीस। हुने अनल अति हरष बहु बार साखि गिरीस। सो उसे अविवेक से रघुवीरपद प्रीति करने को कहती है। रघुबीर ने भी कभी अपना सिर काटकर हवन किया है ? ७. अपना ही स्वार्थ देखती है। मेरी प्रतिष्ठा की ओर दृष्टि ही नहीं है। बस मम अहिवात न जाइ। एकमात्र यही लक्ष्य है। यह इसका आभ्यन्तर अशौच है। ८. इसे अपनी प्रजा पर भी दया नहीं है। जो आवै मरकट कटलाई। जियहिं बिचारे निसिचर खाई। सो इसमें बाधा कर रही है। यह इसकी निर्दयता है।

रूप सकल का भाव यह कि पाताल से लेकर ब्रह्मलोक तक सबको शत्रु का रूप बतला दिया। इस भाँति अपने समझ में बड़ा भारी भय मुझे सुनाया। अथवा सब भयों से बड़ा प्राण भय है। सो शत्रु से तूने मुझे निश्चित प्राणभय बतलाया।

सो सबु प्रिया सहज बस मोरे। समुझि परा प्रसाद अब तोरे॥
जानेउ प्रिया तोरि चतुराई। एहि बिधि कहेउ मोरि प्रभुताई॥३॥

अर्थ : हे प्रिये ! वह सब तो स्वभाव से ही मेरे वश में है। तुम्हारे प्रसाद से यह बात अब समझ में आयी है। हे प्रिये ! तुम्हारी चतुराई मैंने जान ली। इस विधि से तुम मेरी प्रभुता कह रही हो।

व्याख्या : पाताल से ब्रह्मलोक तक तो हमारे वश में है। इस भाँति शत्रु के अङ्ग प्रत्यङ्ग पर मेरा अधिकार है। मैं समझा था कि उसे अभी जीतना है। तेरे प्रसाद से अब बात समझ में आयी है कि उसे जीतना नहीं है वह जीता जिताया ही ठहरा। तू प्रिया है। सदा प्रिय आचरण किया करती है। तू शत्रु वर्णन के व्याज से मेरी प्रभुता का वर्णन कर रही है : अत्यन्त अभिमानियों का यह स्वभाव होता है कि प्रत्येक बातों में अपनी बड़ाई का अर्थ बड़े प्रयत्न से लगाया करते हैं और अपने विरुद्ध बातों को भी अपनी बड़ाई के अनुकूल सिद्ध करने का प्रयत्न किया करते हैं। रावण महा अभिमानियों के अग्रगण्य हैं। अतः बैठकबाजी से मन्दोदरी की बातें उड़ाना चाहते हैं।

तव बतकही गूढ़ मृगलोचनि। समुझत सुखद सुनत भय सोचनि॥
मंदोदरि मन महुँ अस ठयऊ। पियहि कालबस मति भ्रम भयऊ॥४॥

अर्थ : हे मृगनयनी ! तेरी गूढ़ बातें समझने में सुख देनेवाली और सुनने में भय सूचित करनेवाली है। मन्दोदरी ने मन में निश्चय कर लिया कि प्रियतम का कालवश होने से मतिभ्रम हो गया है।

व्याख्या : गूढ़ का अर्थ ही छिपा हुआ है। रावण मन्दोदरी की बातों को गूढ़ बतलाते हैं। क्योंकि उसका भेद छिपा हुआ है। सुनने में तो उससे भय की सूचना मिलती है पर यदि डूबकर समझे तो उससे बड़ा सुख मिलता है। भावार्थ यह कि तुम्हारी बात सुनने में तो ऐसी मालूम होती है कि तुम शत्रु की महिमा कह रही हो और मुझे भय की सूचना दे रही हो। पर उसी बात को जब डूबकर समझे तो मालूम होता है कि तुम हमारी प्रशंसा कर रही हो और निर्भय रहने के लिए उत्साह बढ़ा रही हो।

रावण के इस उत्तर सुनने से मन्दोदरी को निश्चय हो गया कि इन्हें मतिभ्रम हो गया। यह सीधी बात को उलटी समझने लगे। यही काल के निकट आने का चिह्न है। भाव यह है कि रावण को ऐसा मतिभ्रम पहिले नहीं होता था। मन्दोदरी की सम्मति पर ध्यान देता था। सो ध्यान तो अब भी देता है। पर अर्थ उलटा लगाता है।

दो. एहि बिधि करत बिनोद बहु, प्रात प्रगट दसकंध।
सहज असंक लंकपति, सभा गयउ मदअंध॥
फूलै फरै न बेंत, जदपि सुधा बरषहिं जलद।
मूरुख हृदय न चेत, जौ गुरु मिलहिं बिरंचि सिव॥१६॥

अर्थ : इस विधि से अनेक प्रकार से विनोद करते हुए पौ फटने पर स्वाभाविक ही अशङ्क मदान्ध लङ्कापति दशकन्धर सभा में गये।

यदि बादल से अमृत बरसे तो भी बेंत फूलता फलता नहीं। इसी भाँति यदि शिव या ब्रह्मदेव गुरु मिलें तो भी मूर्ख के हृदय में चेत नहीं होता।

व्याख्या : मद से अन्ध है। इसलिए इतने बड़े अपशकुन होने को भी कुछ नहीं गिनता। यथा : अतिगर्व गनइ न सगुन असगुन सहज अशङ्क है। अतः मन्दोदरी के अति विशाल भय दिखलाने पर भी कुछ भी प्रभावित नहीं हुआ। सारी रात उसकी बातों को टालता और विनोद करता गया। जब रात बीत गयी प्रातः काल हो गया तब सभा में गया। लंकापति है। अतः नित्य समय से सभा में जाना अपना कर्त्तव्य समझता है।

जिस भाँति जल की वर्षा होने से वृक्ष फूलने फलने लगते हैं पर बेंत नहीं फूलता फलता। बंगाल के बेंतों में फल और फूल देखे भी गये हैं पर वे भी नहीं के बराबर। न तो उससे फूल में कोई गुण : फूल के सौन्दर्य सुगन्ध आदि देखे जाते हैं और न उसके फल में फल के गुण : स्वाद प्रभावादि होते हैं। अतः उस फूलने फलने को फूलना फलना नहीं कह सकते। यदि कहिए कि अमृत की वर्षा से उसके फूल फल में रसोत्पत्ति होकर उसे फूल फल कहलाने योग्य बना देवेंगे तो यह भी सम्भव नहीं है। क्योंकि जिसमें जो गुण स्वभाव से नहीं है उसे अमृत का सिञ्चन भी नहीं ला सकता। पर्वत पर के बेंतों में तो फल फूल एकबारगी नहीं होते।

फारसी के महाकवि शेख सादी ने अपने प्रख्यात रचना गुलिस्ताँ में कहा है कि : अब्र गर आवे जिन्दगी वारद। हरगिज अज शाखे बेद बर नखुरी। यदि अभ्र : मेघ अमृत की वर्षा करे तब भी तुम बेंत की शाखा से फल नहीं खा सकते। यहाँ पर नहीं खा सकते शब्द ध्यान देने योग्य है। फल खाया जाता है। फूल सूँघा जाता है। जो खाया न जा सके या सूँघा न जा सके उसकी गणना फूल फल में नहीं। वह नगण्य है। इसीसे गोस्वामीजी कहते हैं कि फूलै फलै न बेंत।

यहाँ मूर्ख की उपमा बेंत से उसके चेत होने की उपमा फूलने फलने से और शिव ब्रह्मदेव के गुरु मिलने की उपमा अमृत बरसनेवाले मेघ से है। यहाँ विचार करने की बात है कि चेत से अभिप्राय ऐसे चेत से है जिसमें विवेक की सामर्थ्य हो खाने पीने आदि का स्वाभाविक चेत तो मूर्ख को भी रहता है। अतः स्पष्ट है कि फूलने फलने से अभिप्राय ऐसे फूल फल देने से हो जिससे कुछ काम निकल सके।

कहा भी है कि : सर्वस्यौषधमस्ति शास्त्रविहितं मूर्खस्य नास्त्यौषधम्। सबकी दवा शास्त्र में कही गयी है पर मूर्ख की दवा नहीं है। यहाँ गोस्वामीजी ने रावण को मूर्ख कहा है। यद्यपि महात्मा रावण बड़े पण्डित थे। इनके रचे हुए वेदभाष्य के अंश अब भी जहाँ तहाँ पाये जाते हैं। फिर भी जो विचार से काम न ले वह पण्डित होने पर मूर्ख है।

७०. अंगददूतप्रसंग

इहाँ प्रात जागे रघुराई। पूछा मत सब सचिव बोलाई॥
कहहु बेगि का करिअ उपाई। जामवंत कह पद सिरु नाई॥१॥

अर्थ : यहाँ रामजी प्रातःकाल जागे और सब मन्त्रियों को बुलाकर सलाह पूछी कि बतलाओ शीघ्र कौन उपाय किया जाय। चरणों में सिर नवाकर जाम्बवानजी बोले।

व्याख्या : वहाँ का हाल कहकर अब यहाँ : जहाँ कवि की उपस्थिति है का हाल कहते हैं। वहाँ तो अशङ्क लंकापति रात भर स्त्री से विनोद करते रहे। यहाँ भी शङ्का नहीं है। सरकार रात भर सोते रहे। प्रातःकाल रावण मदान्ध होकर सभा में जाकर विराजमान हुए सभा की शोभा बढ़ाने के लिए : मन्त्र के लिए नहीं और सरकार ने जागते ही सब मन्त्रियों को बुलाया। मन्त्रियों से सम्मति लेकर तब नीति का निर्णय करते हैं। नीति है कि : अचिरं कुरु राजेन्द्र भोजने शयने रणे। हे राजन्! भोजन शयन और रण में शीघ्रता करनी चाहिए। अतः जो कुछ करना है उसमें शीघ्रता होनी चाहिए। उपाय चार हैं : साम दान भेद और दण्ड। इनमें से किस उपाय का अवलम्बन करना चाहिए।

सब मन्त्रियों से प्रश्न किया गया। पर जाम्बवानजी चरणों में सिर नवाकर बोले। ये मन्त्रियों में वृद्ध हैं। अतः इनका अधिकार बड़ा है। यथा : जामवंत मंत्री अति बूढ़ा।

सुनु सर्बग्य सकल उर बासी । बुधि बल तेज धरम गुन रासी ॥
मंत्र कहहुँ निज मति अनुसारा । दूत पठाइअ बालिकुमारा ॥२॥

अर्थ : हे सर्वज्ञ ! सबके हृदय में रहनेवाले ! बुद्धि बल तेज धर्म और गुन के राशि ! मैं अपनी बुद्धि के अनुसार सम्मति देता हूँ। बालि के बेटे अंगद को : अपना दूत बनाकर भेजिये।

व्याख्या : हम लोग अल्पज्ञ हैं : अल्पगुण हैं। आप मोघसंकल्प और पराग्दर्शी हैं। सर्वज्ञ सकलगुण राशि सत्यसन्ध और सब उरवासी को क्या सलाह दे सकते हैं। जो प्रभु निर्णय करें वही ठीक है। पर जब मुझसे मन्त्र पूछा गया तो अपनी मति के अनुसार कहूँगा। मेरे मन में यही बात ठीक जँचती है कि बालि के बेटे को दूत बनाकर भेजा जाय। पहिली बात यह कि चारो उपायों में प्रथम साम है। विशेषतः जब शत्रु की ओर से न सेतुबन्ध में कोई बाधा उपस्थित की गयी और न हम लोगों के यहाँ ठहरने में ही कोई रोक-टोक की गयी। अतः दूत भेजकर उससे सन्धि की वार्त्ता की जाय। हनुमान्‌जी न भेजे जायँ नहीं तो शत्रु समझेगा कि रामदल में केवल एक वीर हनुमान् ही है। उसी को बार-बार भेजते हैं। दूसरी बात यह कि रामदूत का पद हनुमान्‌जी को मिल चुका है अङ्गद को नहीं मिला है। अङ्गद के मन में इस पद की अभिलाषा है। सीताजी का समाचार लेने के लिए अङ्गदजी तैयार हो गये थे। परन्तु मेरे रोकने से रुक गये। यथा : जामवंत कह तुम सब लायक। पठइअ किमि सबही कर नायक। अतः इस बार अङ्गद का ही जाना प्राप्त है। और भी बात है : अङ्गद बल और नियम में बालि के तुल्य हैं। यदि रावण अपने स्वाभाविक अभिमान से अङ्गद का निरादर करना चाहेगा तो ये बल के मन्थन में भी समर्थ हैं। रावण अपने भाई को सँभाल न सका। वह आकर हमारे दल में मिल गया। उसे दिखाना है कि मैं उसको अपना दूत बनाकर भेज रहा हूँ। जिसके पिता का मैंने वध किया है यदि तुम में सामर्थ्य हो तो तुम इसे अपनी ओर मिला लो। यदि इतना भी नहीं कर सके तो मेरा सामना करने का व्यर्थ प्रयास क्यों करते हो। यह भी बात है कि अङ्गद बालि के पुत्र हैं। रावण बालि का सखा था। अतः रावण किसी की बात सुन सकता है तो अङ्गद की ही बात सुन सकता है। अङ्गद में प्रशस्त दूत के सब गुण भी हैं। यथा : साकारो निःस्पृहो वाग्मी नानाशास्त्रविचक्षणः। परचित्तावगन्ता च राज्ञो दूतः प्रशस्यते। शारीरिक सम्पत्तिवाला इच्छारहित बोलनेवाला नानाशास्त्र का जानकार दूसरे के मन की बात जाननेवाला पुरुष का ही राजदूत होना प्रशंसित है। अतः सब जगह से विचार करने पर अङ्गद को ही दूत बनाकर भेजना ठीक जँचता है।

नीक मंत्र सबके मन माना । अंगद सन कह कृपानिधाना ॥
बालितनय बुधि बल गुन धामा । लंका जाहु तात मम कामा ॥३॥

अर्थ : यह राय सबको जँच गयी। कृपानिधान रामजी ने अङ्गद से कहा कि

हे वालिपुत्र ! तुम बल बुद्धि और गुण के धाम हो। हे तात ! तुम मेरे काम से लंका जाओ।

व्याख्या : जामवन्तजी की सम्मति सबको जँच गयी। सरकार ने भी ठीक समझा। कृपानिधान हैं। अङ्गदजी को रामदूत की पदवी देना चाहते हैं। अतः अङ्गदजी को बालिपुत्र ऐसा सम्बोधन करके बोले। भाव यह कि बालि ने अङ्गद को सुपुर्द करते हुए प्रभु से कहा था : यह तनय मम सम विनय बल कल्याण प्रद प्रभु लीजिये। गहि बाँह सुरनरनाह अङ्गद दास आपन कीजिये। सो अङ्गदजी वस्तुतः विनय बल में बालि के सदृश हैं।

सरकार अङ्गदजी के गुणों को बल देते हुए कहते हैं कि तुम बुद्धि बल और गुणों के धाम हो और लंका जाने में विशेष बुद्धि बल की आवश्यकता देवताओं ने माना है। यथा : जानै कहँ बल बुद्धि बिसेषा। यहाँ गुण से स्वामिभक्ति शौर्यादि गुण अभिप्रेत है। मेरे काम से लंका जाओ। कहने का भाव यह है कि रामकाज की बड़ी प्रतिष्ठा अङ्गदजी के हृदय में है। अङ्गदजी जटायु के विषय में कहते हैं कि : राम काज कारन तन त्यागी। हरिपुर गयउ परम बड़ भागी।

बहुत बुझाइ तुम्हहि का कहऊँ। परम चतुर मैं जानत अहऊँ॥
काजु हमार तासु हित होई। रिपु सन करेहु बतकही सोई॥४॥

अर्थ : तुमको बहुत समझाकर क्या कहूँ। मैं जानता हूँ कि तुम परम चतुर हो। जिसमें मेरा काम हो और उसका भला हो : ऐसी ही बातचीत शत्रु से करना।

व्याख्या : बुद्धिमान् व्यक्ति को बहुत कहने की आवश्यकता नहीं रहती। उसे सूत्ररूप से अपना अभिप्राय जता देना ही यथेष्ट होता है। फिर तो वह जैसा अवसर देखता है वैसा कहता करता है। तुम परम चतुर हो। इससे मैं सूत्ररूप में अपना अभिप्राय बताये देता हूँ। शत्रु से ऐसी बातचीत करना जिससे मेरा काम हो और उस शत्रु का भी हित हो। यथा : अरिहुँक अनभल कीन्ह न रामा। यहाँ पर परम चतुर से अङ्गदजी का परचित्तावगन्तृत्व गुण कहा।

दूत बातचीत के लिए ही भेजा जाता है। दूत मालिक का प्रतिनिधि बनकर जाता है। अतः उसे सन्धिविग्रह का अधिकार होता है। जो बात वह हार आता है उसे मालिक को मानना पड़ता है : रावण चतुर है। उसकी चतुरता स्वार्थसाधनी है और अङ्गदजी परम चतुर हैं। इनकी चतुरता लोकद्वयसाधनी है।

सो. प्रभु आज्ञा धरि सीस, चरन बंदि अंगद उठेउ।
सोइ गुन सागर ईस, राम कृपा जापर करहु॥
स्वयं सिद्ध सब काज, नाथ मोहि आदर दिएउ।
अस बिचारि जुवराज, तनु पुलकित हरषित हियेउ॥१७॥

अर्थ : प्रभु की आज्ञा को सिर चढ़ाकर अङ्गदजी ने चरणों की बन्दना

की ओर उठ पड़े और कहा कि हे ईश ! वही गुणों का समुद्र है जिसपर तुम कृपा करो।

सब कार्य तो स्वयंसिद्ध है। नाथ ने केवल मुझे आदर दिया है। ऐसा विचार कर युवराज अङ्गद का शरीर पुलकित और हृदय हर्षित हो उठा।

व्याख्या : अङ्गदजी के हृदय में महादेवजी का सिद्धान्त जमा हुआ है। यथा : बोले बिहँसि महेस तब ग्यानी मूढ़ न कोइ। जेहि जस रघुपति करहिं जब सो तस तेहि छन होइ। अतः कहते हैं कि आपकी कृपा में बड़ी सामर्थ्य है। वह कृपापात्र को गुणसागर बना देती है।

आज्ञा होते ही अङ्गदजी ने शिरोधार्य करके प्रणाम किया और तुरन्त उठ खड़े हुए। चलते समय गलित अभिमान होकर सरकार की कृपा का आश्रय ग्रहण किया और कहा कि आपका कार्य तो स्वयंसिद्ध है। भाव यह कि मैं जाता हूँ रावण को चरणों पर गिरने के लिए समझाने। सो रावण का सिर सरकार के सामने पृथिवी पर बिना गिरे नहीं रह सकता। चाहे कटकर गिरे चाहे बिना कटे गिरे। यदि शरण में आया तो स्वयं गिरेगा नहीं तो बाण काटकर गिरा ही देवेंगे। यथा : सन्धौ वा विग्रहे वापि मयि दूते दशाननी। अक्षता माक्षता वापि क्षितिपीठे लुठिष्यति। (दूताङ्गद)। विचारा कि नाथ ने मुझे आदर दिया है। सरकारी इच्छा है कि बतकही में मैं रावण को निरुत्तर कर दूँ कि युद्ध करने में तेरी भलाई नहीं है। सो रामकृपा से मेरे द्वारा सुसाध्य होगा और मेरी बड़ाई होगी कि रावण की सभा में अङ्गद ने बड़ी पण्डिताई से काम लिया। रामदूत पद प्राप्ति से अङ्गदजी को सात्त्विक भाव हो उठा।

बंदि चरन उर धरि प्रभुताई। अंगद चलेउ सबहि सिरु नाई॥
प्रभु प्रताप उर सहज असंका। रन बाँकुरा बालिसुत बंका॥१॥

अर्थ : चरणों की वन्दना करके और प्रभुता को हृदय में धारण करके अङ्गद सबको सिर नवाकर चले। प्रभु का प्रताप हृदय में और स्वभाव से ही निर्भय रण में विकट बालि का पुत्र बाँका था।

व्याख्या : प्रभु अग्या धरि सीस चरन बंदि अंगद उठेउ। इस कमल की पुरइन है : बंदि चरन उर धरि प्रभुताई। स्वयंसिद्ध तव काज। इस कमल की पुरइन है : काज हमार तासु हित होई। प्रभु की प्रभुता को हृदय में धारण करने से असाध्य साधन होता है। यथा : मैं पुनि उरधरि प्रभु प्रभुताई। करिहौं बल अनुमान सहाई। और चरणों की वन्दना से सिद्धि प्राप्त होती है। यथा : जाको चरन बिरंचि सेइ सिधिपाई संकरहु। अङ्गदजी ने यहाँ चरण-वन्दन भी किया और प्रभु की प्रभुताई को भी हृदय में स्थान दिया। हनुमान्‌जी ने जिस भाँति लंका की ओर चलते समय सबको माथ नवाया था उसी भाँति अङ्गदजी ने भी सबको सिर नवाया। ध्येयं सदा ''श्रीमद्भागवत के दो श्लोकों का नित्य प्रातः पाठ कर लेना चाहिए।

लंका में जो कि सर्पों से भरी हुई गुफा सी भयङ्कर है जाते हुए अङ्गदजी को भय नहीं है। क्योंकि बालि के बेटे हैं। बालि के ऐसा ही इनका पराक्रम है। स्वभाव से ही अशङ्क हैं। स्वभाव से ही अशङ्क हैं। युद्धविद्या में बड़े प्रवीण और आनशानवाले : बाँके हैं। रावण सहज अशङ्क है। यथा : तहँ रह रावन सहज अशंका। उसके यहाँ दूत बनाकर रामजी ने सहज अशङ्क अङ्गदजी को भेजा है। अंगदजी में विशेषता यह है कि इनके हृदय में राम प्रताप है। वानरी सेना में चार रणबाँकुरे हैं। उनमें एक अङ्गदजी भी हैं। यथा : हनुमन्त अंगद नील नल अति बल लरत रन बाँकुरे। बाँका से उठती जवानी कहा।

पुर पैंठत रावन कर बेटा। खेलत रहा होइ गइ भेंटा ॥
बातहिं बात करष बढ़ि आई। जुगल अतुल बल पुनि तरुनाई ॥२॥

अर्थ : पुर में प्रवेश करते ही रावण के बेटे से भेंट हो गयी। रावण का बेटा खेल रहा था। बात ही बात में बैर बढ़ गया। एक तो दोनों के बल का तौल नहीं था और दूसरे दोनों की युवावस्था थी।

व्याख्या : रावण का बेटा पुर के द्वार पर जवानों का खेल चौगान आदि खेल रहा था। अङ्गद के प्रवेश करते ही उससे भेंट हुई। रावण कर बेटा। कहने का भाव यह कि रावण के ऐसा यह भी महा अभिमानी तथा तामसी प्रकृति का था।

नये व्यक्ति के लंका प्रवेश करते देखकर उसका पूछना स्वाभाविक था। अतः यह मालूम होता है कि छेड़छाड़ उसी की ओर से हुई। उसका मुँहतोड़ उत्तर अङ्गद की ओर से दिया गया। प्रत्युत्तर में असमर्थ होकर उसने खिझलाकर लात चलाना चाहा। अब प्रश्न उठता है : दोनों में क्या बातचीत हुई ? निश्चय वे बातें असभ्यता से भरी थीं। इसीलिए ये महात्मा ऐसी बातें नही लिखते। यथा : तेहि कारन करुना निधि कहे कछुक दुर्बाद। अथवा : लखन कहे कछु वचन कठोरा। परन्तु रामायणी लोगों ने अनुमान किया है और बात बैठती सी है। रावण के पुत्र ने कहा तू कौन है ? अंगद ने कहा मैं राम दूत हूँ। रावण के बेटे ने कहा कौन राम जिसकी स्त्री मेरे पिता हर लाये हैं। अंगदजी ने कहा : हाँ वही राम जिसने तुम्हारे बूआ का नाक कान काट लिया। यदि वस्तुतः ऐसी बात न भी हुई हो तो भी कहा जा सकता है कि इसी प्रकार की कोई बात हुई दोनों असहनशील थे। क्योंकि दोनों तरुण थे और अपने समाज में अतुल बल माने जाते थे।

तेहि अंगद कहुँ लात उठाई। गहि पद पटकेहु भूमि भँआई ॥
निसिचर निकर देखि भट भारी। जहँ तहँ चले न सकहिं पुकारी ॥३॥

अर्थ : उसने अंगद को लात उठाया। अंगद ने उसका पैर पकड़कर घुमाया और पृथिवी पर पटक दिया। राक्षसों के समूह ने देखा कि भारी योद्धा है। जा यहाँ था वह वहीं से खिसका। पुकार तक न मचा सके।

व्याख्या : अङ्गदजी ने देखा कि यह पैर उठा रहा है मेरे प्रति चलाने के

लिए। तुरन्त लपककर उसका वही पैर पकड़ लिया और पैर पकड़कर उसे आसमान में घुमाकर जमीन में पटका। कहना नहीं होगा कि अपने समाज में अतुलबल होने पर भी अंगदजी के सामने वह कुछ नहीं था। इस तरह से घुमाकर जो जमीन पर पटका जायगा उसकी मृत्यु के लिए कहने की आवश्यकता नहीं है। रावण का बेटा है। खेल रहा है। अतः वहाँ राक्षसों का समूह जुटा था। उसके मारे जाने पर उन्हें लड़ना चाहिए। पर अंगदजी के इस पराक्रम को देखकर वे इस नतीजे तक पहुँच गये कि यह बन्दर हमलोगों की मान का नहीं है। इससे बोलना काल का आवाहन करना है। इसलिए जो जहाँ था वह वहीं से खिसका। उनका इतना साहस भी न हुआ कि पुकार मचाते। उन्होंने समझ लिया कि लंका से सहायता आने के पहिले ही हम लोग मारे जावेंगे। अतः पुकार भी न मचाया।

एक एक सन मरमु न कहहीं। समुझि तासु बध चुप करि रहहीं ॥
भयउ कोलाहलु नगर मँझारी। आवा कपि लंका जेहि जारी ॥४॥

अर्थ : एक दूसरे से भेद नहीं कहते। उसका बध समझकर चुप रह जाते हैं। नगर में बड़ा कोलाहल हुआ कि वही बन्दर फिर आया जिसने लंका जलायी थी।

व्याख्या : एक दूसरे से यह भेद नहीं बतलाते कि रावण का बेटा मारा गया। बतलाने से यह सिद्ध हो जाता कि यह भी उस समय वहाँ थे। ऐसा होने से रावण के कोपभाजन होने का भय था। रावण कुपित हो उठते कि लड़का मारा गया यह वहीं था और कुछ न बोला। अतः भगदड़ मच गयी पर यह कोई नहीं कहता कि हुआ क्या?

हनुमान्जी का आतङ्क छाया हुआ है। पुर में प्रवेश करते ही खबर फैल गयी। एक दूसरे से पुकार कर कह रहे हैं कि जिसने लंका जलायी थी वही बन्दर फिर आया है। बड़ी भारी आपत्ति आयी चाहती है। अङ्गदजी का आकार तेज आदि देखकर सबको हनुमान्जी का भ्रम हुआ। अतः नगर भर में खलबली पैठ गयी। लोग अपना माल असबाब घर के बाहर निकालने लगे कि पहिले बार के लङ्कादाह में बड़ा नुकसान हुआ। सब असबाब घर में ही जल गया। क्या जाने बन्दर फिर लंका दाह करे। अतः पहिले से ही सावधान रहना चाहिए। यथा : आया आयो आयो सोई बानर बहोरि भयो सोर चहुँओर लंका आए जुबराज के। एक काढ़ै सौज एक धौज करै कहा ह्वै है पोच भई महा सोच सुभट समाज के। गाज्यौ कपिराज रघुराज की सपथ करि मूदे कान जातुधान मानो गाजे गाज के। सहमि सुखात बात जात की सुरति करि लवा ज्यौं लुकात तुलसी झपेटे बाज के। कविता०।

अब धौं काह करिहि करतारा। अति सभीत सब करहिं बिचारा ॥
बिनु पूछे मगु देहिं देखाई। जेहि बिलोक सोइ जाइ सुखाई ॥५॥

अर्थ : हे करतार! अब न जाने क्या करेगा? ऐसा विचारकर सब लोग

अत्यन्त भयभीत होकर विचार करने लगे। बिना पूछे ही सब रास्ता बतला देते हैं। जिसे अङ्गदजी देखते हैं वही सूख जाता है।

व्याख्या : सब लंकावासी अङ्गदजी को हनुमान् समझकर अत्यन्त डर गये। आपस में विचार करते हैं। विपत्ति में सबको भगवान् याद पड़ते हैं। अतः इस समय राक्षस भी करतार को सम्बोधन या स्मरण करके कहते हैं अथवा रावण के वरदाता ब्रह्मदेव की ही दोहाई लङ्का में चलती है। अतः करतार शब्द से ब्रह्मदेव का स्मरण करके कहते हैं कि पहिले बार आया था तो सारी लंका जला डाली थी। अब इस बार क्या करेगा? भाव यह कि इसे रोकनेवाला कोई लंका में है नहीं। पहिले से यदि अन्दाज लग जाय कि क्या करनेवाला है तो बचने का उपाय सोचा जाय। पर कोई बात मन में ठहरती नहीं।

अङ्गदजी का रास्ता देखा नहीं है। वे नहीं जानते कि रावण इस समय कहाँ है, अतः पूछने की आवश्यकता है। फिर भी अङ्गदजी को पूछना न पड़ा। जिस किसी को ओर वे रास्ता पूछने के लिए देखते हैं वह तो सूख ही जाता है। तब से दूसरे बतला देते हैं कि इस रास्ते से चले जाने से आप रावण के पास पहुँच जायँगे। उन्हें डर है कि कहीं रास्ता भूलकर यह मेरे मुहल्ले में न चला जाय।

दो. गयउ सभा दरबार तब, सुमिरि राम पद कंज।
सिंह ठवनि इत उत चितव, धीर बीर बल पुंज ॥१८॥

अर्थ : रामजी के चरण कमलों को स्मरण करके सभा के द्वार पर गये और सिंह के ठाट से उस धीर वीर और बल के समूह ने इधर उधर देखा।

व्याख्या : राक्षसों के बतलाये हुए रास्ते से चलते हुए अङ्गदजी राजसभा के द्वार पर पहुँच गये। गोस्वामीजी दरबार शब्द का प्रयोग द्वार के अर्थ में करते हैं। यथा : एक प्रविसहिं एक निर्गमहि भीर भूप दरबार। रामजी के चरण कमलों का ध्यान करके फाटक पर पहुँच गये। रामजी के चरणों के ध्यान से असाध्य कार्य भी सुसाध्य हो जाता है। यथा : राम चरन पंकज उर धरहू। कौतुक एक भालु कपि करहू। धावहू मरकट विकट बरूथा। आनहु विटप गिरिन के जूथा। राजसभा में आज्ञा पाकर प्रवेश करना चाहिए। अतः रावण के पास समाचार किसके द्वारा भेजें। इस बात के निश्चय के लिए इधर उधर देखा। अङ्गदजी वीरों में धीर हैं और बल के तो मानो राशि ही हैं। अतः सिंह की भाँति निःशङ्क भाव से निगाह घुमाते हैं।

तुरित निसाचर एक पठावा। समाचार रावनहि जनावा॥
सुनत बिहँसि बोला दससीसा। आनहु बोलि कहाँ कर कीसा॥१॥

अर्थ : तुरन्त एक निशाचर को भेजकर रावण को समाचार दिलाया। सुनते ही दसशीश रावण हँसकर बोले : बुला लाओ कहाँ का बन्दर है?

व्याख्या : देखकर समझ लिया कि ये चोबदार लोग हैं। उन्हीं में से एक को भेजा कि लंकेश्वर को मेरे आने का समाचार दो। अङ्गदजी को रोकने का किसी को साहस नहीं। दुर्गद्वार पर भी इन्हें किसी ने न रोका। दूतधर्म का पालन करते हुए ये यहाँ पर स्वयं रुक गये और रावण की आज्ञा की प्रतीक्षा करने लगे। सुनते ही हँसा कि यह छोकड़ा : प्रहस्त मुझे नीति सिखाता था कि पहिले वसीठी : सुलह के लिए दूत भेजो। मैं क्या निर्बल हूँ कि वसीठ : दूत भेजूँ। देखो शत्रु की ओर से वसोठ आया। पहिली विजय तो हमारी यही हुई। मालूम होता है कि उस राक्षस ने आकर कहा कि एक बन्दर आया है। द्वार पर खड़ा है। आपके सामने आना चाहता है। सुनकर हँसने के बाद रावण बोले। उसको बुला लाओ। मैं देखना चाहता हूँ कि वह बन्दर कहाँ से आया है। अति अभिमान की बातें करता है। बन्दरों ने लंकापुरी घेर रक्खा है। फिर भी पूछता है कहाँ कर कीसा।

आयसु पाइ दूत बहु धाए। कपि कुंजरहि बोलि लइ आए ॥
अंगद दीख दसानन वैसे। सहित प्रान कज्जल गिरि जैसे ॥२॥

अर्थ : आज्ञा पाकर बहुत से दूत दौड़े और हाथी के समान बन्दर को बुला ले गये। अङ्गद ने रावण को बैठा हुआ देखा। जैसे जीता जागता अञ्जन का पहाड़ हो।

व्याख्या : बड़ा भारी सभाभवन है। जहाँ बाहर जाने के लिए दूत को दौड़ना भी पड़ता है। आदर के लिए बहुत से दूत दौड़े अथवा बन्दरों से सशङ्क हैं। अतः अकेले का जाना उचित नहीं समझा। अङ्गदजी का विशाल आकार होने से उन्हें कपिकुञ्जर कहा अथवा कुञ्जर हैं। यह रावण के विटपरूपी भुजा के भंजन में समर्थ हैं। इसलिए कुंजर कहा।

अंगदजी ने पहिले पहल रावण को देखा है। इसलिए वर्णन करते हैं कि बैठे हुए रावण कज्जल के पहाड़ से दीख पड़ते हैं। भेद इतना ही है कि कज्जल के पहाड़ में प्राण नहीं है। इसमें प्राण है। हनुमान्‌जी के सभाभवन जाने के समय रावण के आकार का वर्णन नहीं है। क्योंकि हनुमान्‌जी उसको पहिले भी देख चुके हैं। यथा : सयन किये देखा कपि तेही। मंदिर महँ न दीख वैदेही।

भुजा बिटप सिर सृङ्ग समाना। रोमावली लता जनु नाना ॥
मुख नासिका नयन अरु काना। गिरि कंदरा खोह अनुमाना ॥३॥

अर्थ : भुजा मानो पेड़ है। सिर मानो पहाड़ की चोटियाँ है। रोमावली मानो लता और पेड़ हैं। मुख नाक आँख और कान तो मालूम होता है कि पर्वत की कन्दराएँ हैं।

व्याख्या : पर्वतों पर पेड़ होते हैं। उनमें लताएँ लिपटी रहती हैं। पर्वतों के अनेक शृंग होते हैं। यहाँ भी सब कुछ है। रावण को बहुत सी भुजाएँ पेड़ की

पंक्तियाँ हैं। उसकी रोमावली ही लताएँ हैं। उसके दस सिर पर्वत के शृंग से प्रतीत होते हैं।

पर्वत में कन्दराएँ होती हैं। खोह होते हैं। कन्दराएँ बड़ी होती हैं। खोह छोटे होते हैं। रावण रूपी पर्वत में उसके मुख कन्दराकार हैं। नासिका नयन और कान के गोलक खोह के समान हैं। ऐसा विशाल भयानक राक्षसराज है। उसकी सभा है।

गयउ सभा मन नेकु न मुरा। बालितनय अति बल बाँकुरा ॥
उठे सभासद कपि कहुँ देखी। रावन उर भा क्रोध बिसेखी ॥४॥

अर्थ : सभा में गये मन में तनिक सा भी क्षोभ न हुआ। बालि का बेटा अत्यन्त बलवान् और बाँका है। बन्दर को देखकर सभासद उठ खड़े हुए। रावण के मन में विशेष क्रोध हुआ।

व्याख्या : जिस भाँति हनुमान्जी के लिए कवि ने कहा था कि देखि प्रताप न कपि मन संका वही बात अंगदजी के लिए कह रहे हैं कि ऐसी भयानक सभा में भी अङ्गदजी को क्षोभ न हुआ। कारण कहते हैं कि क्षोभ निर्बल और कादर को होता है। अथवा कुलहीन को होता है। अङ्गदजी तो वानरराज बालि के बेटे हैं। अतिबल हैं और बाँके वीर हैं। इन्हें क्षोभ कैसे हो ?

शत्रु के दूत के आने पर राजा के सभासदों का खड़ा होना बड़ी भारी कचायी है। पर अङ्गदजी का व्यक्तित्व ऐसा है। साकारता ऐसी है कि उनके प्रवेश करने से सभासद बैठे न रह सके। जब अङ्गदजी को बुलाने बहुत से दूत गये तभी रावण को क्रोध हुआ और सभासदों के खड़े हो जाने पर तो विशेष क्रोध हुआ। पर क्रोध को उनने अनवसर जानकर प्रकट नहीं किया। मनमें ही छिपाये रहा।

दो. जथा मत्त गज जूथ महुँ, पंचानन चलि जाइ।
राम प्रताप सुमिरि मन, बैठ सभा सिरु नाइ ॥१९॥

अर्थ : जैसे मतवाले हाथियों के समूह में सिंह चला जाय। राम प्रताप को हृदय में सुमिरन कर सिर नवाकर सभा में बैठ गये।

व्याख्या : भाव यह कि जैसे मतवाले हाथियों के समूह में सिंह चला जाय तो हाथी बैठे नहीं रह सकते। स्वभाव से ही खड़े हो जाते हैं। उसी भाँति राक्षस अङ्गदजी को देखकर बैठे न रह सके। खड़े हो गये। जिस भाँति हनुमान्जी रामजी को हृदय में लेकर चले थे और समुद्रोल्लङ्घन के समय सँभाला था। यथा : बार बार रघुबीर सँभारी। तरकेउ पवनतनय बल भारी। उसी भाँति अङ्गदजी प्रभु की प्रभुता को हृदय में रखकर चले थे। उसी को इस समय फिर सँभालते हैं। सिर नवाकर सभा में जा बैठे। दूत हैं अतः शत्रु राजा को भी प्रणाम करना उचित हो पड़ा।

कह दसकंठ कवन तैं बंदर। मैं रघुबीर दूत दसकंधर ॥
मम जनकहि तोहि रही मिताई। तव हित कारन आयेउँ भाई ॥१॥

अर्थ : दशकन्धर ने कहा कि बन्दर ! तू कौन है ? उत्तर दिया : दशकन्धर ! मैं रघुबीर का दूत हूँ। मेरे बाप से और तुमसे मित्रता थी। तुम्हारी भलाई के लिए हे भाई ! मैं आया हूँ।

व्याख्या : दशकण्ठ कहने से कण्ठध्वनि की प्रखरता कही। बन्दर सम्बोधन कुरूपता द्योतक है और बन्दर कहने पर कौन कहकर पूछना परिचय और प्रयोजन की जिज्ञासा सूचित करता है। अङ्गदजी प्रश्न समाप्त होते न होते उत्तर देते हैं। हनुमान्‌जी उत्तर देने के पहिले यह देख लेते हैं कि एक मात्र यही प्रश्न है कि और भी है। यदि और हो तो सब प्रश्न सुनकर तब उत्तर देते हैं सो अङ्गदजी ने तुरन्त उत्तर दिया। रावण उन्हें बन्दर कहता है तो यह उसे दशकन्धर कहते हैं। भाव यह कि तुम ही कौन बहुत सुन्दर हो। रघुवीर कहने का भाव यह कि अतिवीर होने पर भी नीति का पालन करते हैं। साम के लिए दूत भेजा। अन्य दूतों के रहते हुए भी मुझे भेजने का कारण यह है कि तुम्हारा मेरा सम्बन्ध है। तुम मेरे पिता के मित्र हो। तुम्हारे हित के लिए आया हूँ। तुम संसार के सामने अपनी अभिमानी प्रकृति के अनुसार कह सकते हो कि क्या करें : लड़का मचल गया। इसलिए मुझे मानना पड़ा। मैंने रामजी से मैत्री कर ली और सीता दे दी। दूत मालिक के हित के लिए आता है पर मैं तुम्हारे हित के लिए आया हूँ। तुम्हारा हित सीता देने में ही है। भाई कहने का भाव यह कि दूत तो मैं राम का हूँ पर हितचिन्तक तुम्हारा हूँ। यथा : होहिं कुठायँ सुबन्धु सहाए।

उत्तम कुल पुलस्ति कर नाती। सिव बिरंचि पूजेउ बहु भाँती ॥
बर पायेउ कीन्हेहु सब काजा। जीतेहु लोकपाल सब राजा ॥२॥

अर्थ : तुम श्रेष्ठ कुल के हो। पुलस्त्य के पौत्र हो। शिव और ब्रह्मा की बहुत प्रकार से तुमने पूजा की है और वर पाकर तुमने सब कुछ किया। लोकपालों को तथा सब राजाओं को जीत लिया।

व्याख्या : श्रेष्ठ कुल से श्रेष्ठ करणी की आशा की जाती है। आकारे पद्म-रागाणां जन्म काचमणेः कुतः। सो तुम प्रजापति पुलस्त्य के पौत्र हो। पुलस्त्य कुल पावन निर्मल और अनूप है। यथा : उपजे जदपि पुलस्त्य कुल पावन अमल अनूप। इस भाँति अङ्गदजी ने कुल की श्रेष्ठता कही। अब करणी की श्रेष्ठता कहते हैं कि शिवजी और ब्रह्माजी की अनेक भाँति पूजा की। संसार गन्धाक्षत से पूजा करता है तुमने सिर सुमन चढ़ाकर पूजा की। सफलता भी प्राप्त की। उन लोगों ने सन्तुष्ट होकर वर दिया। अब तुम कृतकृत्य हो। तुमने चराचर को जीत लिया। लोकपाल और इन्द्र भी तुम्हारे वशवर्ती हुए। यथा : चाहिय करन सो सब करि बीते। तुम सुर असुर चराचर जीते।

नृप अभिमान मोह बस किंबा। हरि आनिहु सीता जगदंबा ॥
अब सुभ कहा सुनहु तुम्ह मोरा। सब अपराध छमिहि प्रभु तोरा ॥३॥

अर्थ : राज्याभिमान अथवा मोहवश तुम जगत् माता सीता को हरण कर लाये। अब तुम मेरा शुभ वचन सुनो : प्रभु तुम्हारा सब अपराध क्षमा कर देंगे।

व्याख्या : हनुमन्नाटक तथा दूताङ्गद नामक नाटकों में लिखा है कि रामजी ने संक्षेप रूप में यह सन्देश रावण से कहलाया था। यथा : अज्ञानादथवाधिपत्यरभसादस्मत्परोक्षे हृता सीतेयं प्रविमुच्यतामिति वचो गत्वा दशास्यं वद। नोचेल्लक्ष्मणमुक्तमार्गणगणच्छेदोच्छलच्छोणितच्छत्रच्छन्नदिगन्तमन्तकपुरं पुत्रैर्वृतो यास्यसि।

अर्थ : अज्ञान से अथवा राजमद से तुमने मेरे परोक्ष में सीता का अपहरण किया है। उसे दे दो। यह बात : हे अङ्गद तुम रावण से जाकर कहो नहीं तो लक्ष्मण के बाणों से क्षत विक्षत होकर पुत्र पौत्रों के सहित तुम्हें यमपुर जाना होगा।

परन्तु अङ्गदजी ने पहिले आधा संदेसा कहना ही उचित समझा नहीं तो लक्ष्मणजी के बाणों से क्षत विक्षत होकर यमपुर जाना होगा। इस बात को प्रारम्भ में ही कह देना उचित नहीं समझा। अतः सीताजी के लौटाने का विधान रावण को समझाते हैं। कहते हैं कि तुम मन में ऐसा न समझो कि मेरा अपराध अक्षम्य है। तुम्हारा सब अपराध क्षमा हो जायगा। यह जो अशुभ आचरण तुमसे हुआ है उसके अपाकरण के लिए तुम्हें मेरे शुभ उपदेश के अनुसार कार्य करना पड़ेगा। प्रभु कहने का भाव यह कि सरकार सब कुछ करने में समर्थ हैं। दण्ड दे सकते हैं और क्षमा भी कर सकते हैं। पर क्षमा के लिए तदनुकूल मार्ग को ग्रहण करना पड़ेगा। वह मार्ग मैं तुम्हें बतलाता हूँ।

दसन गहहु तृन कंठ कुठारी। परिजन सहित संग निज नारी ॥
सादर जनकसुता करि आगे। एहि बिधि चलहु सकल भय त्यागे ॥४॥

अर्थ : दाँतो में तृण दबाकर गले में कुल्हाड़ी : परशु डालकर भाई बन्धु और मन्दोदरी के साथ आदर के सहित जानकी को आगे करके इस विधि से सब भय छोड़कर चलो।

व्याख्या : भागवतापराध क्षमापन का विधान कहते हैं। प्राचीन काल में यदि शत्रु दाँत से तिनका पकड़ ले तो उसे नहीं मारते थे। क्षमा कर देते थे। उसके वध में गोहत्या का पाप समझते थे। दाँत तले तृण दाबना गाय बनने का प्रतीक है। यथा : अरिहु दंत तृन धरत ताहि नहि मारि सकत कोई। हम संतत तृन चरहिं बचन उच्चरहिं दीन होई। नरहरि। गले में कुल्हाड़ी धारण करने का भाव यह कि यदि क्षमा न करो तो दण्ड मुझे स्वीकार है। यथा : कर कुठार आगे यह सीसा। परिजन साथ में लेने का भाव यह कि मैं बन्धु बान्धवों के सहित शरण में हूँ। स्त्री साथ मे लेने का भाव यह कि सीताजी की शुद्धि के विषय में इससे बढ़कर कोई

प्रमाण नहीं है। यथा : तेहि अवसर रावन तहँ आवा। संग नारि बहु किये बनावा। अतः इनका साथ ले चलना परम आवश्यक है।

जानकीजी को आगे करने का भाव यह कि ये मेरी बड़ी हैं। माँ के सदृश हैं। इस विधि का पालन करने से फिर भय का कोई कारण नहीं है। मैं दूत होकर उधर से आया हूँ। मैं बचनबद्ध होता हूँ। अन्यथा न होगा।

दो. प्रनतपाल रघुबंस मनि, त्राहि त्राहि अब मोहि।
आरत गिरा सुनत प्रभु, अभय करैगो तोहि ॥२०॥

अर्थ : हे प्रणतपाल ! रघुवंशमणि ! मेरी रक्षा करो। ऐसा आर्त्त वचन सुनते ही प्रभु तुम्हें अभय कर देंगे।

व्याख्या : सरकार प्रणतपाल हैं। उनकी प्रतिज्ञा है : सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते। अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम। भगवान् कहते हैं कि मेरी शरण में आकर एक बार भी : मैं तुम्हारी शरण हूँ : ऐसी याचना करता है तो उसे मैं प्राणिमात्र से निर्भय कर देता हूँ। यह मेरा व्रत है।

अङ्गदजी कहते हैं कि उनके सामने जहाँ त्राहि त्राहि किया। तहाँ आर्त्त वचन के सुनते ही तुम्हें वे अभय कर देंगे। अपने व्रत को वे कभी न छोड़ेंगे।

रे कपिपोत बोलु संभारी। मूढ न जानेहि मोहि सुरारी ॥
कहु निज नामु जनक कर भाई। केहि नाते मानिये मिताई ॥१॥

अर्थ : अरे बन्दर के बच्चे ! सँभालकर बोल। मूढ़ ! तू मुझे नहीं जानता मैं देवताओं का शत्रु हूँ। अरे भाई ! अपना और अपने बाप का नाम तो बतला। जिस नाते से मित्रता मान रहा है।

व्याख्या : पहिले तो बन्दर ही महा अज्ञानी होते हैं तिसपर तू अभी बच्चा है। नहीं समझता कि किसके सामने कैसा बोला जाता है। तू मूढ़ है क्योंकि मालूम होता है कि तू मुझे भी नहीं जानता। कोई जानकार ऐसा नहीं हो सकता जा मुझे न जाने। अपनी प्रसिद्धि का कारण कहते हैं। मैं देवताओं का शत्रु हूँ। देवता भले ही अपमान सह लें दीन हो जायँ पर मैं नहीं हो सकता। इस भाँति दसन गहहु तृन कंठ कुठारी का उत्तर दे रहा है। देवता हरण की हुई वस्तु लौटा सकते हैं। मैं सुरारि हूँ मैं नहीं लौटा सकता।

अब : मम जनकहि तोहि रही मिताई का. उत्तर देते हुए कहता है कि बिना नाम बतलाये कैसे पता लग सकता है कि वस्तुतस्तु उस व्यक्ति से मैत्री थी या नहीं। अपना नाम भी तुमने नहीं बतलाया। मैं रघुबीर दूत कह देना पूरा परिचय नहीं है। अङ्गदजी ने कहा था : तव हित कारन आयेउँ भाई। अतः रावण भी कहते हैं : कहु निज नाम जनक कर भाई। भाव यह कि अपना और अपने बाप का नाम बतलाओ। बन्दर और राक्षस में मैत्री कैसी ? ऐसी कौन घटना हुई जिसके सम्बन्ध से मित्रता मानी जाय ?

अंगद नाम बालि कर बेटा। तासों कबहुँ भई ही भेटा ॥
अंगद बचन सुनत सकुचाना। हाँ बाली बानर मैं जाना ॥२॥

अर्थ : मेरा नाम अङ्गद है मैं बालि का बेटा हूँ। उनसे कभी तुम्हारी भेंट हुई थी। अङ्गद का वचन सुनकर कुछ संकुचित हुआ। कहने लगा : हाँ बालि नामक बन्दर को मैं जानता हूँ।

व्याख्या : रे कपिपोत बोल सँभारी। मूढ़ न जानेहि मोहि सुरारी का उत्तर अंगद नाम बालि कर बेटा। भाव यह है कि मैं बालि का बेटा हूँ। जानता हूँ कि तुममें कितना पानी है। अतः जो कुछ कहा है बहुत समुझबूझकर कहा है। अब नाता भी सुन लो। तुम से बालि से कभी भेंट हुई थी। उसी समागम के नाते मैं तुमको उनका मित्र मानता हूँ। भाव यह कि उस समागम में ही ऐसी घटना हुई कि तुम्हें उनसे अग्निसाक्षिक मैत्री करनी पड़ी।

रावण ने जान लिया कि इसने अपने पिता के मुख से मेरे पराभव की कथा सुन रक्खा है और उसी ओर लक्ष्य करके उत्तर दे रहा है। अतः कुछ सङ्कुचित हुआ। मित्रता तो नहीं पर परिचय स्वीकार करता है कि हाँ मैं उसे जानता हूँ। अब अङ्गद के वचन से लाभ उठाकर बाप के परिचित होने के नाते नाराज होता है।

अंगद तहीं बालि कर बालक। उपुजेउ बंस अनल कुल घालक ॥
गर्भ न गयहु व्यर्थ तुम जायेहु। निज मुख तापस दूत कहायेहु ॥३॥

अर्थ : हे अङ्गद ! तू ही बालि का बेटा है। तुम तो बाँस की आग की भाँति कुलघालक पैदा हुए। गर्भ में ही क्यों नहीं नष्ट हो गये। तुम व्यर्थ हो पैदा हुए। अपने ही मुख से तुम तपस्वी के दूत कहलाते हो।

व्याख्या : तू ही बालि का बेटा है ? तेरी क्या दशा है ? राजा का बेटा होकर तपस्वी का दूतत्व करता है। अरे कुलघालक नालायक तेरी उत्पत्ति से वंश का नाश हुआ। राज्य कुल से चला गया। तुम गर्भ में ही नष्ट हो गये होते तो सन्तोष की बात थी कि बालि को पुत्र ही नहीं हुआ। तुम्हारा जन्म लेना व्यर्थ हुआ : गुणिजनगणनारम्भे न पतति कठिनी ससंभ्रमाद्यस्य। तेनाम्वा यदि सुतिनी वद वन्ध्या कीदृशी नाम। जब गुणियों की गणना होने लगे उस समय संभ्रम के साथ जिसकी ओर उँगली न उठे उससे यदि माँ बेटेवाली होती हो तो बतलाओ बन्ध्या किसे कहते हैं ?

तुम इतना नीचे गिरे कि तुम्हें पूर्व गौरव का स्मरण भी नहीं है। यदि तुम्हें कोई किसी का दूत कहता तो तुम्हें उसे गाली समझना था न कि तुम स्वयं अपने को दूत कहते हो और सो भी एक तपस्वी का।

अब कहु कुसल बालि कहँ अहई। बिहँसि बचन तब अंगद कहई ॥
दिन दस गये बालि पहिं जाई। बूझेउ कुसल सखा उर लाई ॥४॥

अर्थ : कुशल तो बता बालि कहाँ है ? अङ्गद ने हँसकर कहा : दस दिन के बाद बालि के पास जाओगे तब सखा को हृदय से लगाकर कुशल पूछना।

व्याख्या : जानबूझकर कि बालि मारा गया है अङ्गद से कुशल पूछता है कि बालि सकुशल तो हैं ? और आजकल कहाँ हैं ? जो तुम्हारी यह दशा हो रही है। उनसे बहुत दिन से भेंट भी नहीं हुई। रावण समझता है कि इस तरह पूछने से अङ्गद रो पड़ेगा। कहेगा कि चाचा ! उन्हें तो राम ने मार डाला। तब इसे अपनी ओर मिला लेंगे। इसके मिलने से वानरी सेना भी छूट जावेगी। रावण अङ्गद के रो पड़ने की आशा करते थे सो अङ्गदजी हँस पड़े। रावण के भेदनीति प्रयोग पर हँसे अथवा रामविरोधी के कुशल पूछने पर हँसे। अथवा हँसकर उसे बतला दिया कि हम तदीय हो गये। रामविरोधी जो हो गया। वह मेरे स्नेह या आदर का पात्र नहीं रह गया।

उसके भेद नीति के प्रयोग से अङ्गदजी समझ गये कि यह बात नहीं मानेगा। अतः कहते हैं कि जब इतने दिन तक कुशल नहीं पूछा तो दस दिन और ठहर जाओ। तुम्हें भी बहुत शीघ्र वहीं जाना है जहाँ बालि गये हैं। तब स्वयं उन्हीं से कुशल पूछ लेना। वे तुम्हारे प्यारे सखा हैं। उन्हीं के रास्ते पर तुम चल रहे हो। अतः तुम लोगों में बड़ा प्रेम है। अतः हृदय लगाकर पूछने का अवसर प्राप्त होगा। मेरा उनका रास्ता दो है। अतः मैं ठीक कुशल न सुना सकूँगा।

राम बिरोध कुसल जसि होई। सो सब तोहि सुनाइहि सोई ॥
सुनु सठ भेद होइ मन ताके। श्रीरघुबीर हृदय नहि जाके ॥५॥

अर्थ : राम का विरोध करने पर जैसा कुशल होता है वह सब तुमको वे ही सुनावेंगे। हे शठ ! सुन भेद उसके मन में होता है। जिसके मन में रघुवीर न हों।

व्याख्या : तुमने विरोध किया है। उन्होंने भी विरोध किया था। मेरे कहने पर तो नाराज होते हो क्योंकि मैं छोटा हूँ। पर वे सखा हैं भुक्तभोग हैं। वे तुम्हें जैसा कुशल रामविरोध से होता है सो सब सुनावेंगे।

तुमने मुझ पर भेदनीति का प्रयोग किया। पर मेरे हृदय में सरकार हैं। यहाँ भेदनीति काम नहीं कर सकती। यथा : तब लगि हृदय बसत खल नाना। लोभ मोह मत्सर मद माना। जब लगि उर न बसत रघुनाथा। धरे चाप सायक कटि भाथा। रावण को अङ्गदजी ने शठ कहा। भाव यह कि तुमको मैंने परम हित का उपदेश दिया। उसका अनादर करके तुम भेदनीति द्वारा अपने पक्ष में लाकर राम विरोधी बनाना चाहते हो सो होना नहीं है।

दो. हम कुल घालक सत्य तुम्ह, कुल पालक दससीस।
अंधौं बधिर न अस कहहि, नयन कान तव बीस ॥२१॥

अर्थ : तुम सच कहते हो हम तो कुलघालक हैं और तुम दसशीश कुलपालक हो। ऐसी बात तो कोई अन्धा बहरा भी नहीं कहेगा। तुम्हें तो बीस आँख कान हैं।

व्याख्या : यहाँ सत्य आक्षेप के अर्थ में प्रयुक्त है। अङ्गदजी कहते हैं मेरे हृदय में रघुवीर हैं। मैं धर्मपरायण कुलत्राता हूँ। यथा : धर्मपरायन सोइ कुलत्राता। रामचरन जाकर मन राता। मैं कुलघालक कैसे हुआ। तुम रामविरोधी हो। तुम मुनि वंशज होकर मुनियों का संहार करते हो। यथा : निसिचर निकर सकल मुनि खाये। तुम्हारे ऐसा कुलघालक संसार में कहाँ मिलेगा। जो अन्धा होगा वह भी सुना होगा कि तुम कितने बड़े कुलघालक हो और जो बहिरा होगा उसने तुम्हारी कुलघालकता देखी होगी। अतः अन्धे बहिरे करणहीन पुरुष भी ऐसा नहीं कहेंगे। तुम्हें तो बीस आँख कान दिखाई पड़ते हैं। क्या उनसे दिखाई सुनाई नहीं पड़ता? बीस नयन मंदिर के से मोखे। अर्थात् तुम्हारी कुलघालकता तो जगद्विख्यात है।

सिव बिरंचि सुर मुनि समुदाई। चाहत जासु चरन सेवकाई॥
तासु दूत होइ हम कुल बोरा। ऐसिहु मति उर बिहर न तोरा॥१॥

अर्थ : शिव ब्रह्म और देवता तथा मुनिराज जिसके चरण की सेवकाई चाहते हैं। उसका दूत होकर मैं कुल को डुबोनेवाला हूँ। ऐसी बुद्धि होने पर तुम्हारा हृदय विदीर्ण क्यों नहीं होता?

व्याख्या : कुलपालक दससीस का उत्तर देकर कुलघालक का उत्तर देते हैं। जितने महान् हैं चाहे शिव हों चाहे ब्रह्मा हों चाहे देवसमाज हो चाहे मुनिसमाज हो : सभी चरण सेवकाई का अवसर ढूँढ़ते हैं मिलता नहीं। जिसके शरण में जाने से कुल धन्य हो जाता है। यथा : सो कुल धन्य उमा सुनु जगत पूज्य सुपुनीत। श्रीरघुवीर परायन जेहि नर उपज विनीत। उनके दूत होने से तुम मुझे कुलघालक बतला रहे हो। ऐसी बुद्धिवाले का तो हृदय फट जाना चाहिए। यथा : हिय फाटउ फूटउ नयन जरौ सो तन केहि काम। द्रवै स्रवै पुलकै नहीं तुलसी सुमिरत राम।

सुनि कठोर बानी कपि केरी। कहत दसानन नयन तरेरी॥
खल तव कठिन बचन सब सहऊँ। नीति धर्म मैं जानत अहऊँ॥२॥

अर्थ : कपि की कठोर वाणी सुनकर रावण आँख तरेर कर बोला। रे खल! मैं तेरे कठिन शब्दों को इसलिए सुनता हूँ कि मैं धर्मनीति को जानता हूँ।

व्याख्या : जिसके सुनने से चित्त को चोट लगे उसे कठोर वाणी कहते हैं। यदि कोई बड़ा होकर कठोर बोले तो किसी प्रकार सह्य भी हो सकता है। रावण नर वानर को किसी लेखे में नहीं समझते। पहले सन्देश सुनते ही रावण बिगड़ उठे। कहने लगे : रे कपिपोत बोल सँभारी। सो सँभालकर बोलना तो दूर गया बन्दर कठोर वाणी बोलने लगा। अतः रावण बीसो आँखों से टेढ़ा देखते हुए बोले। इसीलिए दशानन कहा। रावण नाराज होकर अङ्गदजी को खल कहते हैं। पर दण्ड देने का साहस नहीं है कि कहीं यह भी हनुमान् की भाँति उपद्रव

न कर बैठे। वहाँ तजवीजकर दूत भेजे जाते हैं। अतः बैठकबाजी से काम लेते हैं। अपनी दुर्बलता को पण्डिताई से छिपाते हैं। अतः कहते हैं कि तेरे अविनय का सहन मैं धर्म नीतिज्ञता के कारण कर रहा हूँ। क्योंकि अपराधी दूत का वध भी धर्मनीति के विरुद्ध है।

कह कपि धर्मसीलता तोरी। हमहु सुनी कृत परतिय चोरी ॥
देखी नयन दूत रखवारी। बूड़ि न मरहु धर्मव्रत धारी ॥३॥

अर्थ : अङ्गदजी ने कहा कि तुम्हारी धर्मशीलता मैंने सुनी है। तुमने परायी स्त्री चुराया और आँख से दूत की रक्षा देखो। हे धर्मव्रतधारी डूब नहीं मरते।

व्याख्या : अङ्गदजी उसकी धर्मशीलता पर आक्षेप करते हुए कहते हैं कि तुम्हारी धर्मशीलता की प्रसिद्धि तो मेरे कानों तक पहुँची है कि आपने परायी स्त्री चुरायी। चोरी : जारी रोकने के लिए ही राजा की सृष्टि हुई है। सो तुमने राजा होकर परायी स्त्री चुरायी। भाव यह कि केवल पापी ही नहीं : कादर भी हो। और हनुमान्‌जी की जली हुई पूँछ तो मैंने आँख से देखी है। तुमने अपने समझ में मारने में कोई कसर नहीं रखी। ऐसे धर्म व्रतधारी को तो डूब मरना चाहिए। अर्थात् ऐसे जीवन से आत्मघात अच्छा।

नाक कान बिनु भगिनि निहारी। छमा कीन्ह तुम धर्म बिचारी ॥
धर्मसीलता[1] तव जग जागी। पावा दरसु हमहु बड़ भागी ॥४॥

अर्थ : अपनी बहन को बिना नाक और कान की देखकर तुमने धर्म बिचार कर ही तो क्षमा किया था। तुम्हारी धर्मशीलता संसार में जग रही है। मैं बड़ा भाग्यवान् हूँ जिसने ऐसे धर्मशील का दर्शन पाया।

व्याख्या : नीति धर्म में जानत अहहूँ का उत्तर हो चुका। अब तब कठिन बचन मैं सहहूँ का उत्तर देते हैं। सहना अर्थात् क्षमा भी तुममें अत्यन्त अधिक है। क्योंकि क्षमा बड़न को धर्म है। तुम बहिन का नाक कान कटना क्षमा कर गये। खर दूषण नहीं क्षमा कर सके। तुमने क्षमा किया इसी से बचे हो। सो वह क्षमा नहीं है कादरता और असमर्थता है। वैसी ही क्षमा तुम यहाँ भी कर रहे हो।

तुम्हारी धर्मशीलता संसार विख्यात है। मैं भी भाग्यवान् हूँ जो दर्शन पाया : कहने से ध्वनि यह निकलती है कि तुम जगद्विख्यात पापी हो। तुम्हारा मुख देखने से प्रायश्चित्त है। यह मेरा अभाग्य है कि तुम्हारा मुख देखना पड़ा। सो तुम धर्मात्मा बन रहे हो।

दो. जनि जल्पसि जड़ जंतु कपि, सठ बिलोकु मम बाहु।
लोकपाल बल बिपुल ससि, ग्रसन हेतु सब राहु ॥२२॥

---

१. यहाँ वक्रोक्ति अलङ्कार है।

अर्थ : रे जड़जन्तु बन्दर ! बक बक न कर। रे शठ ! मेरी भुजाएँ तो देख। लोकपालों के विशाल बलरूपी चन्द्रमा को ग्रास करने के लिए जो राहु रूप हैं।

व्याख्या : जन्तुओं में भी बन्दर जड़ होते हैं अथवा कपि की गणना पशु में है। उनमें भी तू जड़ है। इसलिए निरर्थक बात बोलता है। मुझे किसका भय है ? मैंने धर्म नीति का ही ख्याल किया है। प्रमाण में मेरी भुजा देख ले। है तेरे कटक में किसी को ऐसी भुजा ? भुजा विपट सिर सृंग समाना। ये भुजाएँ पोली नहीं हैं। ये लोकपालों के बलों को इस प्रकार निस्तेज कर देती हैं जैसे राहु चन्द्रमा को निस्तेज कर देते हैं। दस दिक्पाल हैं और मुझे बीस भुजाएं हैं। अतः दशों दिक्पालों को एक साथ निस्तेज करती हैं।

दो. पुनि नभ सर मम कर निकर, कमलन्हि पर करि बास।
सोभित भयउ मराल इव, संभु सहित कैलास ॥२२॥

अर्थ : फिर आकाशरूपी तालाब में मेरे बाहुरूपी कमलों पर बैठकर शम्भु के सहित कैलास हंस की तरह शोभित हुआ।

व्याख्या : एक एक भुजाओं का पृथक् पृथक् बल कहकर अब सबका एक साथ बल कहता है कि जब मैंने बीसों भुजाओं से कैलास उठाया जिस पर स्वयं शङ्कर भगवान् विराजमान थे तो ऐसी शोभा हुई जैसे आकाशरूपी सरोवर में कमलों के ऊपर हंस आकर विराजमान हुआ हो। भाव यह कि एक तो कैलास पर्वत ही बड़ा भारी है उसे कोई हिला नहीं सकता। उस पर लोकसंहार कर्त्ता साक्षात् शङ्कर भगवान् विराजमान थे। उसे मेरी इन भुजाओं ने उठा लिया। अतः इनकी बराबरी करनेवाला संसार में कौन है जिससे मुझे भय हो सके ?

तुम्हरे कटक माँझ सुनु अंगद। मोसन भिरिहि कवन जोधा बद ॥
तव प्रभु नारि बिरह बल हीना। अनुज तासु दुख दुखी मलीना ॥१॥

अर्थ : सुनो अङ्गद ! तुम्हारी सेना में ऐसा कौन योद्धा है जो मुझसे भिड़ सके। तुम्हारा मालिक तो स्त्री के विरह से निर्बल हो रहा है। उसका छोटा भाई उसके दुःख से दुःखी और मलिन हो गया है।

व्याख्या : रावण अङ्गद से कह रहे हैं कि लोकपालों की सेना में तथा स्वयं शङ्करजी की सेना में तो कोई ऐसा मिला ही नहीं जो मुझसे लड़ सके। तुम्हारी बन्दरों की सेना किस गिनती में है जो उसमें मेरा जोड़ मिल सके। रावण को अपने भुज बल पर बड़ी आस्था है। उसी के भरोसे वैर बढ़ाया था। यथा : निज भुज बल मैं बेर बढ़ावा। अतः कहता है कि सिवा धर्मनीति के और कोई वस्तु मेरे दण्डपात करने में बाधक हो नहीं सकता।

रावण सरकार का नाम कभी नहीं लेता। पहिले तापस कहा था। यथा : निज मुख तापस दूत कहावा। अब तव प्रभु कह रहा है। शङ्कर के धनुष भङ्ग करनेवाले तथा खरदूषण के वध करनेवाले को अल्पबल किस मुँह से कहें। और

विना अल्पबल प्रमाणित किये उनकी बात बैठती नहीं। अतः कहते हैं कि पहिले चाहे बल रहा हो पर जब से उनकी स्त्री हरण हो गयी है तब से उनके प्रेम की उत्कट विकलता से अब बलहीन हो गये हैं। युद्ध करने की योग्यता नहीं रह गयी।

यदि कहो कि उनके छोटे भाई तो स्वस्थ हैं। उन्होंने धनुष भङ्ग के समय तथा खरदूषण वध के समय उत्साह दिखलाया था। वे तुम से लड़ सकते हैं। इस पर कहता है कि वह भी वड़े भाई के दुःख से दुःखी रहते हैं। मन के विकृत होने का प्रभाव निःसन्देह शरीर पर पड़ता है। अतः वह भी चाहे पहले युद्ध में समर्थ रहे हों इस समय तो नहीं है।

तुम्ह सुग्रीव कूल द्रुम दोऊ। अनुज हमार भीरु अति सोऊ ॥
जामवंत मंत्री अति बूढ़ा। सो कि होइ अब समरारूढ़ा ॥२॥

अर्थ : तुम और सुग्रीव दोनों तट पर के वृक्ष हो। मेरा छोटा भाई है वह भी बड़ा कादर है। जामवन्त मन्त्री है वह भी बहुत बूढ़ा हो गया। भला अब क्या वह युद्ध में प्रवृत्त होगा ?

व्याख्या : रावण कहते हैं कि यदि तुम कहो कि मेरे चचा सुग्रीव हैं और मैं हूँ। तो तुम लोगों की भी स्थिति बहुत खराब है। घर की लड़ाई ने तुम लोगों को निर्बल बना रक्खा है। तुम लोगों की दशा नदीतट के वृक्षों की सी है। जो देखने में तो बड़े मालूम होते हैं पर दृढ़मूलक नहीं होते। नदी के वेग को नहीं सह सकते। इसी भाँति तुम लोग समर सरिता का वेग न सह सकोगे तुरन्त जा पड़ोगे।

मेरा छोटा भाई बलवान् तो है। पर उसे साहस नहीं है। और जिसे साहस नहीं उसका बल युद्ध के समय व्यर्थ पड़ जाता है। वह भी लड़ने योग्य नहीं है।

जामवन्त पहिले लड़ने लायक था। देवासुर संग्राम में इन्द्र की ओर से लड़ा भी था। पर अब बहुत बूढ़ा हो गया। उस बल का अब लेश भी उसमें नहीं है। यथा : जरठ भयउँ अब कहै रिछेसा। नहि तन रहा प्रथम बल लेसा। लड़ना तो दूर की बात है। अब उसके मन में युद्ध की प्रवृत्ति भी नहीं हो सकती।

सिल्पि कर्म जानहिं नल नीला। है कपि एक महाबल सीला ॥
आवा प्रथम नगरु जेहिं जारा। सुनत बचन कह बालि कुमारा ॥३॥

अर्थ : नल नील तो शिल्प कर्म जानते हैं। पर एक कपि महाबलशील है। जो पहिले आया था जिसने नगर जला दिया। सुनते ही बालि का बेटा बोला।

व्याख्या : रावण कहते हैं कि नल और नील तो कारीगर हैं। इनसे युद्ध से क्या सम्बन्ध ? अतः तुम्हारी सेना देखने मात्र को है। इस में मुझसा पराक्रमी कोई नहीं। हाँ एक बन्दर महाबलशील है। रावण को भी हनुमान्‌जी का लोहा मानना पड़ा। रावण से हनुमान्‌जी ने अपना नाम नहीं बतलाया था। केवल इतना

ही कहा था : तासु दूत मैं जाकर हरि आनेहु प्रिय नारि। इसलिए : आवा प्रथम नगर जेहि जारा। कहकर परिचय देता है।

हनुमान्जी के पराक्रम से रावण इनकार भी नहीं कर सकते थे। क्योंकि वे सबकी जानी हुई बात है। अतः रावण स्वीकार करते हैं कि तुम्हारी सेना भर में केवल एक बन्दर है जिसे महा बलवान् कह सकते हैं। उसे न किसी का विरह है न वह कादर है न बूढ़ा है और न शिल्पी है। मैं उसके बल की कदर करता हूँ। यह कहकर रावण अपनी सभा को धैर्य बँधाते हैं कि वही एक बन्दर बलवान् है। शेष सब शत्रु की सेना में निर्बल हैं। प्रहस्त ने कहा था : बारिधि लाँघि एक कपि आवा। तासु चरित मन महँ सब गावा। अतः यहाँ रावण कहते हैं : है कपि एक महाबल सीला।

सत्य बचन कहु निसिचर नाहा। साँचेहु कीस कीन्ह पुर दाहा॥
रावन नगर अलप कपि दहई। सुनि अस बचन सत्य को कहई॥४॥

अर्थ : हे निशाचरराज ! सच बताना। क्या सचमुच बन्दर ने लंका जला दी ? रावण के नगर को एक छोटा सा बन्दर जला दे ऐसी बात को सुनकर कौन इसे सच कहेगा ?

व्याख्या : अपने स्वामी का बलहीन कहना तथा सेना के सभी प्रतिष्ठित वीरों में बलहीनता का आरोप करना तथा हनुमान्जी को बन्दर बतलाना अङ्गदजी सह न सके। अतः जिसे रावण ने बड़ा बलशील मान लिया उसी में निबलता का आरोप करके रावण द्वारा निन्दित सभी वीरों की प्रतिष्ठा का स्थापन कर रहे हैं और हनुमान्जी को बन्दर बतलाने के उत्तर रूप में आश्चर्य प्रकट करते हुए कहते हैं कि तुम निशाचरों के राजा हो और राजा को परिनिष्ठित वचन कहना चाहिए। नीतिशास्त्र कहता है : असम्भाव्यं न वक्तव्यं साक्षाद् दृष्टिगतं यदि। शिला तरति पानीयं गीतं गायति वानरः। यदि अपने आँखों की देखी भी बात हो तो भी असम्भव होने से नहीं कहनी चाहिए। जैसे पानी पर पत्थर का तरना और बन्दर का गीत गाना। तुम असम्भव बात कह रहे हो। बन्दर अग्नि का स्पर्श नहीं करते। बन्दरों का उत्पात करना तो जगत् में प्रसिद्ध है। पर बन्दर ने कहीं आग लगाया हो यह बात तो संसार में कहीं सुनी नहीं गयी। तिसपर जो रावण कि दूसरों के नगर और पुरों में आग लगानेवाले हैं यथा : जेहि जेहि देस धेनु द्विज पावहिं। नगर ग्राम पुर आग लगावहिं। उस रावण से पालित नगर को वह छोटा बन्दर जला डाले यह बात किसी के मन में बैठ नहीं सकती। कहनेवाले पर असत्य भाषण का सन्देह होगा। मुझे भी सन्देह हो रहा है। अतः पूछता हूँ कि तुम सत्य कहते हो कि हँसी करते हो ?

जो अति सुभट सराहेहु रावन। सो सुग्रीव केर लघु धावन॥
चले बहुत सो बीरन होई। पठवा खबरि लेन हम सोई॥५॥

अर्थ : हे रावण ! जिसको बड़ा भारी योद्धा कहकर तुम प्रशंसा करते हो वह तो सुग्रीव का छोटे दर्जे का हरकारा है। वह चलता बहुत है पर सुभटों में उसकी गिनती नहीं है। उसे तो हम लोगों ने समाचार लेने के लिए भेजा था।

व्याख्या : अङ्गदजी उसी निर्बलता के आरोप को पुष्ट करते हुए कहते हैं कि तुम्हें हमारी सेना के बल का कुछ पता नहीं है। जिसको महाबलशील कहते हो वह सुग्रीव के हरकारों में छोटे दर्जे का है। वह बहुत चलता है। हम लोग उतना नहीं चल सकते। पर वीर में उसकी गणना नहीं है। भाव यह कि जिसका हरकारा इतना बलवान् है उस सुग्रीव को कूलद्रुम कहना तुम्हारा अज्ञान है। सुग्रीव तो बड़े दर्जे के हरकारों को भेजते हैं। उससे तो हम लोग काम लिया करते हैं। उसे हम लोगों ने सीताजी का समाचार लेने को भेजा था। हम लोगों ने इससे अधिक कुछ करने की आज्ञा नहीं दी थी।

दो. सत्य नगरु कपि जारेउ, बिनु प्रभु आयसु पाइ।
फिरि न[1] गयउ सुग्रीव पहिं, तेहि भय रहा लुकाइ ॥

अर्थ : सचमुच बन्दर ने स्वामी की आज्ञा बिना ही नगर जला दिया। वह सुग्रीव के पास वापस नहीं गया। इसी डर से छिपा रहा।

व्याख्या : यहाँ रावण की झुठाई सिद्ध करने के लिए अङ्गदजी ने हनुमान्जी के न लौटने और डर से छिप रहने की कथा गढ़ ली। अर्थात् रावण ने राम लक्ष्मण सुग्रीव अङ्गद जाम्बवान नल नील सबको निर्बल बतलाया। एक हनुमान्जी की प्रशंसा की जिसमें सभासद् समझें कि रावण सच कहते हैं। यदि हनुमान्जी को भी निर्बल कह देते तो सभासद् राम लक्ष्मण सुग्रीवादि के निर्बल बतानेवाली बात को भी झूठी समझ लेते। क्योंकि हनुमान्जी के पराक्रम को तो सभी देख चुके हैं।

रावण की इस धूर्तता को समझकर अङ्गदजी ने कहा कि जिसे तुम इतना बलवान् समझते हो वह अपनी सेना में सबसे दुर्बल है। बिना आज्ञा ही उसने नगर जला तो दिया पर डरा कि स्वामी सुग्रीव सुनकर अप्रसन्न होंगे और दण्ड देंगे। इसलिए उनके पास लौटकर नहीं गया। कहीं छिप बैठा है। तात्पर्य कि हनुमान् की मेरी सेना में कोई गणना नहीं। अतः राम लक्ष्मणादि को निर्बल बतलानेवाली तुम्हारी उक्ति झूठी है।

ऐसे झूठ को झूठ नहीं कहते। क्योंकि वह सत्य के प्रकाशन में सहायक होता है। यह तो वाक्य का अलङ्कार है। काव्यशास्त्र में इसे मिथ्याध्यवसित कहते हैं। यथा : एक झुठाई सिद्ध को झूठो वरने और। सो मिथ्याध्यवसाय है भूषन कविसिरमौर।

---

१. यहाँ मिथ्याध्यवसित अलङ्कार है।

दो. सत्य कहहि दसकंठ सब, मोहि न सुनि कछु कोह ।
कोउ न हमारे कटक अस, तो सन लरत जो सोह ।।

अर्थ : दसकण्ठ ! तुमने सच कहा । मुझे सुनकर कुछ भी क्रोध न हुआ । मेरी सेना में कोई भी ऐसा नहीं है जिसकी शोभा तुमसे लड़ने में हो ।

व्याख्या : रावण ने कहा था : तुम्हरे कटक माझ सुनु अंगद । मो सन भिरहि कौन जोधा बद । वह अङ्गद से नाम पूछता है कि तू नाम बतला । मुझसे लड़ने योग्य तेरी सेना में कौन है ? अङ्गदजी उत्तर में उसी की बात को उलटकर कहते हैं कि तुम्हारी बात सच है । मेरी सेना में कोई ऐसा नहीं है जिसकी शोभा तुमसे लड़ने में हो । इसी को वक्रोक्ति कहते हैं । यथा : द्वयर्थकाकुते अर्थ को फेरि लगावे तर्क । वक्र उक्ति तासो कहैं जे बुधि अम्बुज अर्क । क० नि० । अर्थात् सभी तुमसे बलवान् हैं । यथा : नाथ कटक महँ सो कपि नाहीं । जो न तुम्हें जीतै रन माहीं । यहाँ अङ्गदजी का अभिप्राय यह है कि तुम झूठ कहते हो । मुझे सुनकर बड़ा क्रोध होता है । जिनको तुमने निर्बल बतलाया है वे सब बड़े बलवान् हैं ।

दो. प्रीति बिरोध समान सन, करिअ नीति अस आहि ।
जौं मृगपति बध मेडुकन्हि, भल कि कहै कोउ ताहि ।।

अर्थ : अपने समान से प्रीति और विरोध करने की नीति है । यदि सिंह मेढकी का वध करे तो उसे कौन भला कहेगा ।

व्याख्या : रावण से युद्ध करने में शोभा न होने का कारण कहते हैं कि प्रीति विरोध तो समान से किया जाता है । यही नीति है । तुममें हमारे वीरों के बल की समता नहीं है । वे लोग सिंह हैं तुम मेढक हो । तुम्हारे मारने में उनको अपयश है । सिंह और मेढक की कौन लड़ाई ?

दो. जद्यपि लघुता राम कहुँ, तोहि बधे बड़ दोष ।
तदपि कठिन दसकंठ सुनु, छत्र जाति कर रोष ।।

अर्थ : यद्यपि तुम्हारे मारने में रामजी की छोटाई है और दोष भी बड़ा है । फिर भी हे दसकण्ठ ! सुनो । क्षत्रिय जाति का क्रोध बड़ा कठिन होता है ।

व्याख्या : यहाँ पर अंगदजी ने नाम भी बता दिया कि तेरा वध रामजी करेंगे । दो कारण उपस्थित हैं जिससे वे तेरे वध करने में हिचकते हैं । एक तो यह कि तुम उनकी समानता के नहीं हो । तुम्हारे वध करने में उनकी छोटाई है । दूसरी बात यह है कि तुम ब्रह्मबन्धु हो । अधम ब्राह्मण हो । अधम ब्राह्मण के भी शारीरक वध की शास्त्र में आज्ञा नहीं है । यथा : वपनं द्रविणादानं स्थानान्निर्यापणं तथा । एषो हि ब्रह्मबन्धूनां वधो नान्योऽस्ति दैहिकः । भाग. । सिर मुड़वा देना

धन छीन लेना देश से निकाल देना यही अधम ब्राह्मण का वध है। उसके शरीर का वध नहीं होता। इसलिए तेरे वध में बड़ा दोष भी है। इसी से तुम अब तक बचे हो और इसीलिए उन्होंने साम का प्रयोग किया है। तुम्हारे पास सन्धि के लिए दूत भेजा है। नहीं तो तुम्हारे ऐसे अपराधी का तो एकमात्र वध ही दण्ड है। यदि नहीं मानोगे तो वे क्षत्रिय हैं। लघुता या दोष का विचार न करके तुम्हारा वध करेंगे।

दो. वक्र उक्ति धनु बचन सर, हृदय दहेउ रिपु कीस।
प्रति उत्तर सड़सिन्ह मनहुँ, काढ़त भट दससीस ॥

अर्थ : वक्रोक्तिरूपी धनुष और वचनरूपी बाण से अङ्गद ने शत्रु के हृदय में दाह उत्पन्न कर दिया। सो प्रत्युत्तररूपी सड़सियों से वीर रावण उसे निकाल रहा है।

व्याख्या : भाव यह है कि इस वक्रोक्तिरूपी बाण ने रावण के हृदय पर चोट किया और उसके हृदय में दाह उत्पन्न हुआ। परन्तु रावण भट है। युद्ध में वाण लगने पर धैर्य से उसे सँड़सी से निकालकर शरीर के बाहर फेंक देता है। उसी स्वभाव से इस समय भी काम ले रहा है। अङ्गदजी की बातों से मर्माहत होने पर भी प्रत्युत्तर देकर उस पीड़ा को शान्त किया चाहता है।

दो. हँसि बोलेउ दसमौलि तब, कपि कर बड़ गुन एक।
जो प्रतिपालै तासु हित, करै उपाय अनेक ॥२३॥

अर्थ : रावण ने हँसकर कहा कि बन्दर में एक बड़ा गुण होता है कि जो उनका प्रतिपालन करे उसकी भलाई के लिए अनेक उपाय करते हैं।

व्याख्या : रावण के मर्म में अङ्गदजी का वाक्य वाण लगा है और हृदय जल रहा है पर बाहर से हँसता है। हँस करके पीड़ा को छिपाता है। यथा : ऐसिउ पीर बिहँसि तेहि गोई और कहता है कि बन्दरों में तो दोष ही दोष है। सदा दूसरों का नुकसान किया करते हैं। पर एक गुण भी बड़ा है कि अपने पालनेवाले के हित के लिए अनेक उपाय करते हैं। देखो इस बन्दर ने अपने स्वामी की बड़ाई के लिए कितनी बातें गढ़ लीं। हनुमान् को सेनाभर से निर्बल बतलाने के लिए उसका न लौटना और डरकर कहीं छिप रहना आदि बातें बना लीं। अब उसी के हित के लिए क्षत्रिय जाति का रोष कहकर मुझे डराना चाहता है। मैं इसके गुण को समझ रहा हूँ।

धन्य कीस जो निज प्रभु काजा। जहँ तहँ नाचै परिहरि लाजा ॥
नाचि कूदि करि लोग रिझाई। पति हित करै धर्म निपुनाई ॥१॥

अर्थ : वानर धन्य हैं जो अपने स्वामी के लिए लज्जा छोड़कर जहाँ तहाँ

नाचते हैं। नाच कूदकर लोगों को प्रसन्न करके अपने स्वामी का कल्याण करते हैं। यही धर्म में निपुणता है।

व्याख्या : अब धर्मात्मा तथा नीतिवेत्ता होनेवाली बात ओखी पड़ी। तब रावण सुजान गुणग्राहक होने की आड़ पकड़ रहे हैं। वस्तुतः अङ्गदजी इस बात पर तुल गये हैं कि रावण उन्हें दण्ड दे। जिसमें उन्हें पराक्रम प्रकट करने का अवसर मिले और सारी सभा देख ले कि रामदल में कैसे कैसे पराक्रमी वीर हैं और रावण की भी आँख खुले। रामजी का काम भी हो जाय और रावण का भी हित हो। पर रावण ऐसा नहीं चाहता। अतः दण्ड न देने की कमजोरी को बातों की चतुरता से छिपाना चाहता है। अतः रावण अपनी गुणग्राहकता प्रकट करता हुआ कहता है कि वानर जाति ही पुण्यवान है। ये लोग अपने स्वामी के लिए जहाँ नचाना चाहे नाचने लगते हैं। नाचने में उनका स्वार्थ कुछ भी नहीं होता। तमाशा देखनेवाले जो पैसे देते हैं वह स्वामी के जेब में जाते हैं। सब लोग उसके नाचने पर हँसते हैं पर उसे लाज नहीं। हनुमान् जब पकड़कर आया था तो उसने यह स्वीकार किया था। यथा : मोहि न कछु बाँधे कर लाजा। कीन्ह चहौं निज प्रभु कर काजा।

बन्दरों का नाचना यही है कि सलाम करते हैं। गौना लेकर चलते हैं। सूम की नकल करते हैं इत्यादि। इसलिए तुम भी अङ्गद ! स्वामी के हित के लिए नाच कूद कर रहे हो। यह तुम्हारी धर्मनिपुणता है।

अंगद स्वामिभक्त तव जाती। प्रभु गुन कस न कहसि एहि भाँती ॥
मैं गुनग्राहक परम सुजाना। तव कटु रटनि करौं नहि काना ॥२॥

अर्थ : हे अङ्गद ! तुम्हारी जाति स्वामिभक्त है तो तुम अपने स्वामी का गुण इस भाँति क्यों न कहो। मैं गुणग्राहक हूँ। बड़ा सुजान हूँ। तुम्हारे कटू वचनों पर ध्यान नहीं देता।

व्याख्या : जो जाति स्वामिभक्त है उसी जाति के तुम एक व्यक्ति हो। अतः अपने प्रभु को सिंह बतलाना अन्य महाभटों को मेढक बतलाना इत्यादि बातें कहना तुम्हारे लिए स्वभाव सिद्ध है। अङ्गदजी ने कहा था कि : मोहि न सुनि कछु कोह। वही रास्ता पकड़े हुए रावण कहता है कि : तव कटु रटनि करहु नहि काना। भाव यह कि सुनता तो हूँ पर ध्यान नहीं देता। कारण यह कि मैं परम सुजान हूँ। सुजान लोग मूर्खों की बातों पर ध्यान नहीं देते। यथा : सुनहु नाथ तुम्ह सहज सुजाना। बालक बचन करिअ जनि काना। इतना ही नहीं मैं गुणग्राहक हूँ। तेरी कटु रटनि में मुझे स्वामिभक्ति का परिचय मिलता है। इसलिए दूत की रक्षा कर रहा हूँ। कुछ असमर्थ होने से नहीं।

कह कपि तव गुन गाहकताई। सत्य पवनसुत मोहि सुनाई ॥
बन बिधंसि सुत बधि पुर जारा। तदपि न तेहिं कछु कृत अपकारा ॥३॥

अर्थ : अङ्गद ने कहा तुम्हारी गुणग्राहकता जो हनुमान्‌जी ने सुनायी थी सो सच है। उसने बाग को उजाड़ा बेटा को मारा और नगर को जलाया फिर भी तुमने उसका कोई अपकार नहीं किया।

व्याख्या : अङ्गदजी का भाव यह है कि पुरुषार्थ दिखाने के समय बगल दे जाना गुणग्राहकता नहीं है। असमर्थता है। उसी बात को व्यंग में कहते हैं कि चलते समय हनुमान्‌जी ने मुझसे कहा कि रावण बड़े गुणग्राहक हैं। गुण प्रदर्शन में उनका बाग भी उजड़े, बेटा भी मारा जाय, नगर भी जल जाय तब भी वे बुरा नहीं मानते। अपकारी के गुण पर ही लुब्ध रहते हैं। मैंने यह सब किया। अशोक बाटिका को उजाड़ा उनके बेटे अक्ष को मारा और लंका जला दी फिर भी रावण ने मेरा कुछ अपकार नहीं किया। तुम्हारे व्यवहार के देखने से मुझे मालूम हो गया कि हनुमान्‌जी ने अक्षरशः सत्य कहा था।

सोइ बिचारि तव प्रकृति सोहाई। दसकंधर मैं कीन्ह ढिठाई॥
देखेउँ आइ जो कछु कपि भाखा। तुम्हरे लाज न रोष न माखा॥४॥

अर्थ : हे रावण ! तुम्हारा वही सुन्दर स्वभाव समझकर मैंने भी ढिठाई की है। हनुमान्‌जी ने जो कहा था मैंने वही आकर देखा। न तो तुम्हें लज्जा है न क्रोध है और न अपमान बोध होता है।

व्याख्या : तुम्हारी ऐसी सुन्दर प्रकृति का विचार करके मुझे भी इच्छा हुई कि कुछ अपना गुण दिखाऊँ। अतः मैंने ढिठाई की है। ध्वनि है कि मैंने भी तुम्हारे पुत्र का वध किया है और प्रत्यक्ष बात यह है कि कठोर वाणी का प्रयोग किया है। जी में आया कि देखें तो रावण अप्रसन्न होते हैं कि नहीं। सो देख लिया हनुमान्‌जी ने सत्य ही कहा है। न तो तुम्हें लाज है न रोष है न माख है : तुम्हरे कटक माझ सुनु अंगद। मो सन भिरिहि कवन जोधा बद। यह कहते हुए तुम्हें लज्जा होनी चाहिए थी सो नहीं हुई। और मैंने जो उत्तर दिया कि : कोउ न हमरे कटक मह तुम सन लरत जो सोह। इस बात पर तुम्हें रोष होना चाहिए था सो भी न हुआ। मैंने कहा : जौ मृगपति वध मेढुकहि भल कि कहै कोउ ताहि। इस बात पर तुम्हें माष : क्रोध होना चाहिए पर नहीं हुआ।

जौ असि मति पितु खायेहु कीसा। कहि अस बचन हँसा दससीसा॥
पितहि खाइ खातेउँ पुनि तोहीं। अबही समुझि परा कछु मोहीं॥५॥

अर्थ : हे बानर ! यदि ऐसी बुद्धि है तभी तो बाप को खा डाला। ऐसा कहकर दसशीश हँसा। मैं तो पिता के खाने के बाद तुम्हें भी खा जाता। पर अभी मेरे मन में एक बात आयी है।

व्याख्या : ऐसे अवसर पर खाना शब्द का प्रयोग देहात में प्रिय मरण इष्ट होने के अर्थ में करते हैं। रावण कहता है कि यदि तुम्हारी ऐसी बुद्धि है कि लाज रोष और माख के न होने को गुणग्राहकता मानते हो तभी अपने पिता का मरण

तुम्हें इष्ट हुआ : बाप के मारनेवाले के सेवक होकर तुम अपने को बड़ा मानी समझ रहे हो। मेरी ऐसी मति नहीं है। मैं तो नाक कान विहीन भगिनी को देखकर कुरूप करनेवाले की स्त्री को हर लाया।

इस पर अङ्गदजी का कहना है : जाके प्रिय न राम बैदेही। तजिये ताहि कोटि बैरी सम जद्यपि परम सनेही। रामविरोधी पिता भी हो तो वह वैरी ही है। अतः सचमुच मैंने उसे खाया और यहाँ तुम्हें खाने के लिए आया था। पर एक बात अभी मन में आगयी इसलिए तुम्हें छोड़ देता हूँ।

बालि बिमल जस भाजनु जानी। हतौं न तोहि अधम अभिमानी ॥
कहु रावन रावन जग केते। मैं निज स्रवन सुने सुनु जेते ॥६॥

अर्थ : रे अधम अभिमानी ! बालि के निर्मल यश का पात्र समझकर मैं तुझे नहीं मारता हूँ। हे रावण ! कह तो इस संसार में कितने रावण हैं ? जितनों को मैंने सुन रक्खा है उन्हें सुन।

व्याख्या : तुम सरकार के भुजबल का अपमान करते हो। अतः अधम अभिमानी हो। यथा : मम भुजबल आस्रित तेहि जानी। मारा चहसि अधम अभिमानी। तुम वधयोग हो पर तुम बालि के निर्मल यश के पात्र हो। बालि ने तुम्हें पकड़कर छोड़ दिया। न मारा और न राज्य लिया। यह बालि का निर्मल यश है। जब तक तुम जीते हो बालि के निर्मल यश का चिह्न बना हुआ है। मैं अपने हाथ से उस चिह्न को मिटाना नहीं चाहता। यही तुम्हारे न मारने का कारण है।

रावण ने कहा है : सठ बिलोकु मम बाहु। लोकपाल बल बिपुल ससि ग्रसन हेतु जिमि राहु इत्यादि। इसका उत्तर देते हुए अङ्गदजी कहते हैं कि तुमने अपनी इतनी बड़ाई की। पर रावण का चरित मैंने इससे विपरीत सुना है सो क्या वे दूसरे रावण हैं ? अतः पूछते हैं कि यदि तुम्हें ठीक न मालूम हो कि तुम्हारे नामराशी कितने हैं तो मैंने जितने सुने हैं उन्हें सुनाये देता हूँ। उनमें से यदि कोई तुम हो तो बोल देना।

बलिहि जितन एकु गयउ पताला। राखेउ बाँधि सिसुन हयसाला ॥
खेलहिं बालक मारहिं जाई। दया लागि बलि दीन्ह छोड़ाई ॥७॥

अर्थ : बलि को जीतने एक पाताल गया था। उसे लड़कों ने अश्वशाला में बांध रक्खा था। लड़के उससे खेलते थे और मारते थे। दया लगी तो बलि ने उसे छुड़ा दिया।

व्याख्या : उस रावण को भी बड़ा अभिमान था। राजा बलि पाताल में रहते हैं। किसी से उनका सम्बन्ध नहीं। सो उन्हें जीतने को पाताल में गया। वहाँ के निवासी बालकों ने देखा कि दसशिर और बीस बाहु का यह कोई विचित्र पशु

है सो उसे पशु समझकर घोड़सार में बालकों ने बाँधा कि दोनों शाम इस पर सवारी करेंगे।

लड़कों का खेल आरम्भ हुआ। कभी एक सवार होता है कभी दूसरा। और उन सबों ने ऐसी पिटाई की कि बलि महाराज को दया आगयी। उसे छुड़ा दिया। जिसको जीतने गये थे उन्हीं की कृपा से बन्धनमुक्त हुए और तुम कहते हो कि बिलोकु मम बाहु। लोकपाल बल बिपुल ससि ग्रसन हेतु जिमि राहु। यह सामञ्जस्य कैसे बैठेगा।

एकु बहोरि सहसभुज देखा। धाइ धरा जिमि जंतु बिसेखा ॥
कौतुक लागि भवन लै आवा। सो पुलस्ति मुनि जाइ छोड़ावा ॥८॥

अर्थ : एक रावण को कीर्तवीर्यार्जुन ने देख पाया। सो जन्तु विशेष समझकर दौड़कर उसे पकड़ लिया। तमाशा के लिए घर ले आया। उसे पुलस्त्य मुनि ने जाकर छोड़ा दिया।

व्याख्या : एक और रावण था जो सहस्र भुजावाले अर्जुन की दृष्टि में पड़ गया। उन्होंने समझा कि यह कोई विशेष जन्तु है। हाथ से निकल न जाय। इसलिए दौड़कर पकड़ लिया कि मेरे अजायबखाने में ऐसा जन्तु नहीं है। इसी कौतुक से घर ले गया। उसके छोड़ाने के लिए स्वयं पुलस्त्यजी को कष्ट करना पड़ा। उनके गौरव का ध्यान करके उसने छोड़ दिया। लंकाभर के योद्धा मेघनाद कुम्भकरण आदि की एक न चली तब बूढ़े बाबा गये और छुड़ा लाये।

दो. एकु कहत मोहि सकुच अति, रहा बालि की काँख।
इन्ह महु रावण तैं कवन, सत्य बदहि तजि माँख ॥२४॥

अर्थ : एक रावण की बात कहने में मुझे बड़ी लज्जा लगती है कि वह बालि के काँख में रहा। इनमें तू कौन रावण है? माँख छोड़कर सत्य बतला दे।

व्याख्या : एक बात को मुझे कहते लज्जा आती है। उस रावण को न आयी। वह बालि के काँख में दबा रहा। भला एक शत्रु दूसरे की काँख में कैसे दबा रहता है? यह मेरे समझ में बात नहीं आती। शत्रु के हाथ से मर जाने में लज्जा नहीं है। पर इस प्रकार से अपमानित होकर जीना ऐसी लज्जा की बात है कि कहनेवाले को लज्जा आती है। इन्हीं तीन रावणों की प्रसिद्धि है। इन्हीं में से तुम कोई होगे सो अपमान की भावना छोड़कर सत्य बतला दो। मुझे उस रावण पर ध्यान रखना है जो बालि के काँख में रहा।

सुनु सठ सोइ रावन बलसीला। हरगिरि जान जासु भुज लीला ॥
जान उमापति जासु सुराई। पूजेउँ जेहि सिर सुमन चढ़ाई ॥१॥

अर्थ : रावण ने कहा रे शठ सुन! मैं वही बलवान रावण हूँ जिसके भुजाओं

की लीला कैलास जानता है। जिसकी शूरता को उमापति जानते हैं जिनको मैंने सिररूपी फूल चढ़ाकर पूजा है।

व्याख्या : रावण ने कहा तुझे अपने हृदय में अपना बड़ा पक्ष है इसलिए तू शठ है। यथा : सठ स्वपच्छ तव हृदय बिसाला। तेरी सब बातें अप्रमाण हैं। क्योंकि वे सुनी सुनायी हैं। उनका कोई साक्षी नहीं है। मैं जो बातें कहता हूँ उसके साक्षी हैं। इसलिए सब प्रमाण हैं। रावण अङ्गद के तीन आक्षेपों के उत्तर पाँच घटनाएँ अपनी महिमा को द्योतक वर्णन करते हैं। पहिले तो अपना कहते हैं और साक्षी में कैलास पर्वत को देते हैं। यथा : कौतुक ही कैलास पुनि लीन्हेसि जाइ उठाइ। मनहु तौलि निज बाहु बल चला बहुत सुख पाइ।

दूसरे अपना शौर्य वर्णन करते हैं और उसके साक्षी उमापति को बतलाते हैं कि मैंने जब उनकी पूजा की थी तो फूल के स्थान पर सिर उतार उतारकर चढ़ाये थे। सिर को काटकर चढ़ाने में न तो विकलता का अनुभव किया न अश्रद्धा का।

सिर सरोज निज करन्हि उतारी। पूजेउँ अमित बार त्रिपुरारी ॥
भुज बिक्रम जानहि दिगपाला। सठ अजहूँ जिनके उर साला ॥२॥

अर्थ : सिररूपी कमलों को अपने हाथों से उतारकर उनसे मैंने असंख्य बार शिवजी की पूजा की। दिक्पाल मेरे भुजाओं के पराक्रम को जानते हैं। रे शठ ! आज भी जिनके हृदय में शाल मौजूद है।

व्याख्या : अब लंकेश अपना धैर्य और श्रद्धा कहते हैं। पूजन के लिए फूल अपने हाथ से उतारना चाहिए। सो अपने सिरों को मैंने अपने हाथ से काटा। युद्ध में भले हो दूसरा कोई सिर काट ले पर अपने हाथ से अपना सिर काटनेवाला कौन है ? इससे अपना वीरतातिशय कहा और इस भाँति असंख्य बार त्रिपुरारि की पूजा की। यथा : सादर सिव कहँ सीस चढ़ाये। इससे पूजातिशय कहा ऐसा पूजन करनेवाला कौन है ? जैसे एक बार फूल लेने पर फिर फूल निकलते हैं। इस भाँति मेरे सिरों में भी बाढ़ आती है। यह बात भी संसार में कहाँ है ? इससे सिर कटने पर भी दूसरे सिर निकलने से अपना अजेयत्व कहा। ऐसे रावणको क्या लड़कर जीत सकते हैं ?

मेरे भुजाओं का विक्रम कैलास जानता है। यदि जड़ समझकर उसे साक्षी रूप से स्वीकार न करो तो दिक्पालों से पूछ लो। उनसे युद्ध हुआ है। ऐसी चोट लगी कि कलेजे में साल पड़ गयी। साँस लेते नहीं बनता। लड़ाई के समय उनकी क्या दशा हुई थी यह इसी से समझ लो।

जानहि दिग्गज उर कठिनाई। जब जब भिरेउँ जाइ बरिआई ॥
जिन्हके दसन कराल न फूटे। उर लागत मूलक इव टूटे ॥३॥

अर्थ : दिग्गज मेरी छाती की कठोरता को जानते हैं। जब जब मैं उनसे

जाकर जबरदस्ती भिड़ा उनके दाँत बड़े कराल हैं। कभी फूटे नहीं थे। पर मेरी छाती में लगने से मूली की भाँति टूट गये।

व्याख्या : वीरों के भुजा और वक्षःस्थल की प्रशंसा होती है। सो अपना बल और शौर्य कहकर भुजाओं की प्रशंसा की। अब वक्षःस्थल की प्रशंसा करता है कि वक्षःस्थल की कठिनाई के साक्षी दिग्गज हैं जो सब दिशाओं से पृथिवी को सँभाले हुए हैं। उनसे युद्ध करने का प्रयोजन नहीं था और न वे मुझसे लड़ना चाहते थे। पर मैं बल परीक्षा के लिए जबरदस्ती जाकर उनसे लड़ा। उनके दाँत बड़े कराल हैं। हाथियों के दाँत बड़े हो जाने पर किसी न किसी आघात से फूट जाया करते हैं। नहीं तो हाथी वृक्ष की सन्धियों में डालकर उनको फोड़ देते हैं। पर उनके दाँत ऐसे कराल हैं कि वे फूट न सके। उन दाँतों से उन्होंने पीछे हटकर चोट की। मैंने उस चोट को अपनी छाती पर ली और वे दाँत टूट गये। मेरी भुजाएँ ऐसी, वक्षःस्थल ऐसा मुझे पकड़नेवाला कौन है ?

जासु चलत डोलत इमि धरनी। चढ़त मत्त गज जिमि लघु तरनी ॥
सोइ रावन जग बिदित प्रतापी। सुनेहि न स्रवन अलीक प्रलापी ॥४॥

अर्थ : जिसके चलने से इस भाँति पृथिवी डोल उठती है जैसे मतवाले हाथी के चढ़ने से छोटी नाव डोल उठती है। वही संसारप्रसिद्ध प्रतापी रावण मैं हूँ। रे बेसिर पैर की हाँकनेवाला ! क्या तूने इसको कभी कान से भी नहीं सुना ?

व्याख्या : अङ्गदजी ने रावण के तीन पराभवों का वर्णन किया था। एक तो पाताल लोक निवासी बालकों से एक सहस्रबाहु से और एक बालि से। सो दो उदाहरणों से रावण ने पहिले पराभव को असम्भव बतलाया। फिर तीसरा और चौथा उदाहरण देकर दूसरे पराभव का असम्भाव्य होना सिद्ध किया। अब तीसरे पराभव बालि के काँख में रहनेवाली कथा को असम्भवत्ता सिद्ध करते हैं कि मेरे भार से नित्य ही भूकम्प होता है। इसे तो सभी जानता है। साक्षी देने की आवश्यकता नहीं। सो ऐसा भूडोल आता है जैसे मत्त हाथी के चढ़ने से छोटी नाव डोल उठती है। हाथी के चढ़ने से बड़ी से बड़ी नाव भी डोल उठती है। छोटी नाव डूब नहीं जाती यही बहुत है। ऐसे महान् गौरवशाली को काँख में लेनेवाला कौन है ?

जिसे कैलास जानता है उमापति जानते हैं दिग्पाल जानते हैं दिग्गज जानते हैं संसार जानता है। जो जग विदित प्रतापी है। यथा : रावन आवत सुनेउ सकोहा। देवन तकेउ मेरु गिरि खोहा। ऐसे को तूने सुना ही नहीं और कहता है : मैं निज स्रवन सुना सुनु जेते। तू अलीक प्रलापी बिना समझे बकता है। तेरी बातें सब असाक्षिक होने से अप्रमाण हैं।

दो. तेहि रावन कहँ लघु कहसि, नर कर करसि बखान।
रे कपि बर्बर खर्ब खल, अब जाना तव ग्यान ॥२५॥

अर्थ : उस रावण को तू छोटा कहता है और नर की प्रशंसा करता है। रे बन्दर ! तू असभ्य तुच्छ और खल है। अब तेरी बुद्धि को मैंने जान लिया।

व्याख्या : अब अपने कथन का उपसंहार करते हुए रावण कहते हैं कि संसार में नर की कोई गिनती नहीं है। ये तो कीट हैं। यथा : कहा कीट बपुरे नर नारी। सो तू नर की प्रशंसा करता है और ऐसा जग विदित प्रतापी मैं हूँ। सो मेरी निन्दा करता है। मुझे छोटा बतलाता है। बतला तो उस नर ने कभी कैलास उठाया था ? सिर को काटकर कभी शंकर पर चढ़ाया था ? दिक्पाल और दिग्गजों से कभी लड़ा था ? उसके चलने से कभी भूचाल आती है ? फिर वह बड़ा कैसे हुआ ? बन्दरों में भी तू असभ्य है तुच्छ है और खल है। (१) कोउ न हमरे कटक महँ (२) जो मृगपति बध मेढुकहि (३) जद्यपि लघुता राम कह तोहि वधे बड़ दोष। ये तीन बातें अङ्गद ने कही हैं। इन्हीं तीनों वाक्य के लिए तीन गालियाँ अङ्गदजी को सुनाता है। बर्बर खर्व और खल। और कहता है कि तेरी बुद्धि का अब मुझे पता लग गया कि वह तामसी है। उल्टी बात समझती है। मैं तो धर्म का विचार करके तुझ दूत को छोड़ देता हूँ और तू उसे मेरी निर्बलता समझता है। तेरी समझ में दूत का वध धर्म है और मुझे निर्बल समझना और उस तपस्वी को बलवान समझना ठीक है। अतः कहता हूँ कि तेरी बुद्धि तामसी है और तू उलटा समझता है।

सुनि अंगदु सकोप कह बानी। बोलु सँभारि अधम अभिमानी ।।
सहसबाहु भुज गहन अपारा। दहन अनल सम जासु कुठारा ।।१।।

अर्थ : यह सुनकर अङ्गदजी क्रोध के सहित बोले कि रे अधम अभिमानी ! सँभालकर बोल। सहस्रबाहु की भुजाओं के अपार वन के जलाने के लिए जिसका कुठार अग्नि हुआ।

व्याख्या : जिस भाँति : आरत गिरा सुनत प्रभु अभय करैंगे तोहि। सुनकर रावण को क्रोध हुआ और उसने : रे कपिपोत बोल संभारी। कहा उसी भाँति : नर कर करनि बखान। सुनकर अङ्गदजी को क्रोध हुआ और बोले कि रे अधम अभिमानी सँभालकर बोल। सरकार के बल का अनादर करता है। तू अधम अभिमानी है।

तुम्हारी भुजाएँ विटप हैं। यथा : भुजा बिटप सिर सृङ्ग समाना। गिनती में बीस हैं। पर जिसकी भुजाएँ जंगल थी। नाम ही सहस्रबाहु था। जंगल को तो कितने लोग पार कर जाते हैं पर उस जंगल को कोई पार नहीं कर सकता था। तुमने भी पार नहीं पाया था। यथा : धाइ धरा जिमि जन्तु बिसेखा। एक पुरुष ऐसा है कि जिसके परशुरूपी अग्नि को पाकर पूरा जंगल ही समाप्त हो गया अर्थात् उसे परशुरामजी ने मारा।

जासु परसु सागर खर धारा। बूड़े नृप अगनित बहु बारा ।।
तासु गर्ब जेहि देखत भागा। सो नर क्यों दससीस अभागा ।।२।।

अर्थ : जिसके परशुरूपी समुद्र के तीखे धार में असंख्य राजा अनेक बार डूब गये। उनका गर्व जिसके देखते ही दूर हो गया। अरे अभागा दससीश ! वे मनुष्य कैसे हैं ?

व्याख्या : परशुरामजी का क्रोध सहस्रबाहु को मारकर ही शान्त नहीं हुआ। इक्कीस बार पृथिवी को निःक्षत्र किया। यथा : जिसने बार इकीस लहू की नदी बहाया। नृपति मांस मस्तिष्क पङ्क मय कूल बनाया। किया तहाँ असनान दिया पितरों को पानी। जिसके कठिन कुठार धार की विदित कहानी। बाल वृद्ध वनिता निधन में भी जो निर्दय महा। कन्द कूट नृप यूथ के काटन में अति पटु रहा। प्र० चं०। उन्हें बड़ा गर्व था और ठीक था। पर जिसके दर्शन से उनका गर्व दूर हुआ। यथा : अनुचित बहुत कहेउँ अग्याता। छमहु छमा मन्दिर दोउ भ्राता। उस महापुरुष को तुम नर कहते हो। तुम्हें सिर तो दस हैं पर भाग्य किसी में नहीं है। तुम भवभञ्जन पद विमुख हो। इसलिए तुम अभागी हो।

साहिब सीतानाथ सों, जब धरिहैं अनुराग।
तुलसी तबहीं भाल ते, भभरि भागिहै भाग ॥ दोहावली ७०॥

रामु मनुज कस रे सठ बंगा। धन्वी कामु नदी पुनि गंगा ॥
पसु सुरधेनु कल्पतरु रूखा। अन्न दान अरु रस पीयूखा ॥३॥

अर्थ : अरे नटखट ! रामजी मनुष्य कैसे हैं ? कामदेव क्या धन्वी है या गंगा नदी हैं ? क्या कामधेनु पशु है। कल्पवृक्ष पेड़ है। अन्न दान है और अमृत रस है ?

व्याख्या : जो किसी का उपदेश न मानकर मनमाना करे उसी को बंगा कहते हैं। अंगदजी कहते हैं कि तू शठ है और बंगा है। विनय नहीं सुनता इसलिए शठ है और शिक्षा नहीं सुनता इसलिए बंगा है। यहाँ पर अङ्गदजी ने उसे व्याज से विभूतियोग का उपदेश किया।

रामजी माया से मनुष्य रूप धारण किये हैं। अतः मूढ़ लोग उन्हें मनुष्य ही मानते हैं। मारीच ने भी रावण को समझाया था। यथा : तेहि पुनि कहा सुनहु दससीसा। ते नर रूप चराचर ईसा। तासों तात बयर नहि कीजे। मारे मरिय जियाये जीजे। पर रावण सठ बंगा है। किसी की नहीं सुनता। अतः आक्षेप करते हुए अङ्गदजी कहते हैं। यहाँ बारह विभूतियों का वर्णन है। जिन भावों से भगवान् चिन्ता करने योग्य हैं :

१. मनुष्यों में रामरूप से चिन्त्य हैं। यथा : रामः शस्त्रभृतामहम्। भगवद्गीता।

२. काम कुसुम धनुसायक लीन्हें। सकल लोक अपने बस कीन्हें। उसे गीता में धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ। भगवान् कहते हैं कि धर्माविरोधी काम स्वयं मैं हूँ। उसे लौकिक धन्वी कहना अनर्थ है। सुख के चाहनेवाले कामरूप से भगवान् की उपासना करते हैं। यथा : सुखार्थी कामरूपेण स्मरेदङ्गजमीश्वरम्।

३. गङ्गा : गंगाजी तो निराकार ब्रह्म ही मानी जाती हैं। यथा : करहिं प्रनाम नगर नर नारी। मुदित ब्रह्ममय वारि निहारी। श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान् ने कहा है कि नदियों में गंगा मैं हूँ। स्रसामस्मि जाह्नवी। उनमें नदी की दृष्टि रखना परम मूढ़ता का परिचायक है।

४. सुरधेनु : कामधेनु के लिए गीता में भगवान् ने कहा है कि गायों में मैं कामधेनु हूँ; यथा : धेनूनामस्मि कामधुक्। स्वयम् भगवान् की उपमा कामधेनु से दी जाती है। यथा : सुनु सेवक सुरतरु सुरधेनू। उसमें पशु की दृष्टि करना अविवेक की पराकाष्ठा है।

५. कल्पतरु : सबके मनोरथ का पूर्ण करनेवाला कल्पवृक्ष है। यथा : जाइ निकट पहिचानि तरु छाँह समनि सब सोच। माँगते अभिमत पाव जग राउ रंक भल पोच। उस कल्पवृक्ष को केवल रूप के साम्य से पेड़ माननेवाला नितान्त बुद्धिहीन है।

६. अन्नदान : अन्न से ही जीवन है। जो अन्न देता है वह जीवन दान करता है। अतः अन्नदान सरकार की विशेष विभूति है। अन्न की ब्रह्मदृष्टि से उपासना का विधान है। अन्न की निन्दा न करने का व्रत है। अन्नदाता पिता समझा जाता है। उस अन्न का दान क्या अन्य वस्तुओं के दान के समकक्ष समझा जायगा ?

७. पीयूष : जिसके लिए सम्पूर्ण सुर और असुरों ने मिलकर समुद्र मन्थन किया। जिसके लिए देवासुर संग्राम हुआ और जिसके पीने से तुरन्त बलवान् होकर देवताओं ने असुरों पर विजय पाया। जो सम्पूर्ण स्वादु पदार्थ का सिरमौर है। जो सम्पूर्ण रोगों की अव्यर्थ औषध है। जिसे पान करने से जरा मरण टल जाता है। जिसके निवास से चन्द्र की इतनी शोभा है। जो जगत् का जीवन है। जिसकी उपमा रामनाम से दी जाती है। उस अमृत को द्रवरूप होने से रस : शर्बत समझना कितना बड़ा अविवेक है।

वैनतेय खग अहि सहसानन। चिंतामनि पुनि उपल दसानन ॥
सुनु मतिमंद लोक बैकुंठा। लाभ कि रघुपति भगति अकुंठा ॥४॥

अर्थ : क्या गरुड़ पक्षी हैं शेषजी सर्प हैं या चिन्तामणि पत्थर है ? रे मतिमन्द सुन; क्या बैकुण्ठ लोक है और रामजी की तीव्रभक्ति भी क्या लाभ है ?

व्याख्या : ८. गरुड़जी ज्ञानी हैं, भक्तशिरोमणि हैं ? त्रिभुवनपति की सवारी हैं। साक्षात् नारायण की विभूति विशेष हैं। यथा : वैनतेयश्च पक्षिणाम्। सामध्वनि जिसका शरीर है। यथा : सामध्वनिशरीरस्त्वं वाहनः परमेष्ठिनः। मात्स्ये। वे गरुड़ भगवान् केवल पक्षधर होने से चिड़िया कहे जायेंगे ?

९. सहसानन : शेषजी ! जिसके सहस्र सिरों में से एक पर यह ब्रह्माण्ड धूलि के कण सा रक्खा हुआ है। यथा : ब्रह्मांड भुवन बिराज जाके एक सिर जिमि रज कनी। उस त्रिभुवनधनी को केवल सर्प सा आकार धारण करने से क्या साँप कहा जायगा ?

१०. चिन्तामणि : जिस चिन्तामणि के प्रभाव से दरिद्रता का नाश होता है। अन्धकार दूर होता है। खल निकट नहीं जाते। विष नष्ट होता है। रोग दूर होते हैं। सब सुखों की प्राप्ति होती है। जिसकी उपमा भक्ति से दी जाती है। उसका रूप पत्थर सा होने से क्या वह पत्थर कहा जायगा ?

११. बैकुण्ठ : जद्यपि सब बैकुंठ बखाना। वेद पुरान बिदित जग जाना। जिस बैकुण्ठ की प्रशंसा वेद पुराण करते हैं। जो संसार में प्रसिद्ध है। जो साक्षात् भगवद्-विग्रह है। साक्षात् लक्ष्मीनारायण का जहाँ निवास है। जो ब्रह्मलोक से भी परे हैं। उसे जीव का निवास स्थान कहना बुद्धिमान्द्य का ही परिचायक है।

१२. भक्ति : जितने साधन वेद ने बतलाये हैं : तीर्थाटन साधन समुदाई। जोग बिराग ग्यान निपुनाई। नाना कर्म धर्म व्रत दाना। संजम दम जप तप मख नाना। जहँ लगि साधन वेद बखानी। सबका फल हरिभक्ति है। उस भक्ति की गणना फायदा : लाभ में करना सामान्य मूढ़ता नहीं है।

दो. सेन सहित तव मान मथि, बन उजारि पुर जारि।
कस रे सठ हनुमान कपि, गयेउ जो तव सुत मारि ॥२६॥

अर्थ : सेना के सहित तेरे अभिमान को मथकर वन उजाड़कर नगर जलाकर तेरे बेटे को मारकर जो चल गया। वह हनुमान् क्यों रे शठ ! बन्दर है ?

व्याख्या : जिसने सेना के सहित तेरे मान का मर्दन किया। यथा :

मत्तभट मुकुट दसकंठ साहस सैल स्रृंग बिद्दरनि जनु बज्र टाँकी।
दसनधरि धरनि चिक्करत दिग्गज कमठ शेष संकुचित शंकित पिनाकी ॥
चलत महि मेरु उच्छलत सागर सकल बिकल बिधि बधिर दिसि बिदिस झाँकी।
रजनिचर घरनि घर गर्भ अर्भक स्रवत सुनत हनुमान को हाँक बाँकी ॥

क० रा०

बड़ो बिकराल बेष देखि सुनि सिंहनाद डरयो मेघनाद सबिषाद कहै रावनो।
बेग जीत्यौ मारुत प्रताप मारतंड कोटि कालऊ करालता बड़ाई जित्यो बावनो ॥
तुलसी सयाने जातुधान पछिताने मन जाको ऐसो दूत सोतो साहिब अबै आवनो।
काहे को कुसल रोषे राम बामदेवहू की बिषम बली ते वादि बैर को बढ़ावनो ॥

तेरे प्राण से प्यारे अशोक वन को उजाड़ा। यथा :

बासव बरुन बिधि बन ते सुहावनो दसानन को कानन बसंत के सिंगारु सो।
समय पुराने पात परत डरत बात पालत लालत रति मार के बिहारु सो ॥
देखे बर वापिका तड़ाग बाग को बनाव रागबस भो बिरागी पवनकुमार सो।
सीय की दसा बिलोकि बिटप असोक तर तुलसी बिलोक्यो सो तिलोक सोक सारसो ॥
मालो मेघमाल बनपाल बिकराल भट नीके सब काल सींचे सुधासार नीर को।
मेघनाद तें दुलारो प्रान ते पियारो बाग, अति अनुराग जिय जातुधान धीर को ॥
तुलसी सो जानि सुनि सीयको दरस पाइ पैठो वाटिका बजाइ बल रघुबीर को।
विद्यमान देखत दसानन को कानन सो तहस नहस कियो साहसी समीर को ॥

तेरे नगर को जलाया। यथा :

पात्र पकवान विधि नाना को सँधानो सीधो विविध विधान धानवरत बखारहीं।
कनक किरीट कोटि पलंग पिटारे पीठ काढत कंहार सब जरे भरे भारहीं॥
प्रबल अनल बाढे, जहाँ काढ़े तहाँ डाढ़े झपट लपट भरे भवन भंडारहीं।
तुलसी अगारु न पगारु न बजार बंच्यो हाथी हथिसार जरे घोर घोरसारहीं॥

तेरे बेटे को मारा। यथा :

आवत देखि बिटप गहि तर्जा। ताहि निपाति महाधुनि गर्जा॥
देखत तोहि अच्छ जेहि मारा। तासु पंथ को रोकनि हारा॥

उसे बन्दर कहते तुम्हें लज्जा नहीं आती। जो तूने कह डाला कि : है कपि एक महा बलसीला। यहाँ पर अंगदजी ने संक्षेप से विभूतियोग कहा।

सुनु रावन परिहरि चतुराई। भजसि न कृपासिंधु रघुराई॥
जौ खल भयेसि रामकर द्रोही। ब्रह्म रुद्र सक राखि न तोही॥१॥

अर्थ : हे रावण ! सुनो तुम चालाकी छोड़कर कृपासिन्धु रघुपति को क्यों नहीं भजते। रे खल ! यदि तू राम का द्रोही हुआ तो ब्रह्मा और शंकर तेरी रक्षा न कर सकेंगे।

व्याख्या : भाव यह कि तुम तथ्य पर नहीं जा रहे हो। चालाकी से बातें बना बनाकर आत्मा और आत्मीय को धोखा दे रहे हो। तुम चालाकी छोड़ दो। क्योंकि चालाकी भजन में बड़ी भारी बाधक है। यथा : मन क्रम वचन छाड़ि चतुराई। भजन कृपा करिहहिं रघुराई। भजन में सरलता की अनिवार्य आवश्यकता है। दो गुण हैं। जिनका होना भजनीय में आवश्यक है। एक सामर्थ्य और दूसरी दया। सो रघुपति में दोनों गुणों का अत्यन्त उत्कर्ष है। कृपा के तो वे समुद्र ही हैं। और सामर्थ्य ऐसा है कि ब्रह्मा और रुद्र की भी वहाँ एक नहीं चलती। इन्हीं दो देवों का तुम्हें भरोसा है। इन्हीं के बल पर तुमने इन्द्रादि का द्रोह किया और ये तुम्हारी रक्षा करते आये। पर राम का द्रोह करने से ये चाहने पर भी रक्षा न कर सकेंगे। जयन्त की रक्षा नहीं कर सके। क्योंकि इन्हीं के बनाये ये ब्रह्मा रुद्र बने हैं। तू खल है। खल बिनु कारन पर अपकारी। निष्कारण वैर करता फिरता है। रामजी से भी तू निष्कारण विरोध कर रहा है।

मूढ़ बृथा जनि मारसि गाला। राम बयर अस होइहि हाला॥
तब सिर निकर कपिन्ह के आगे। परिहरि धरनि राम सर लागे॥२॥

अर्थ : रे मूढ़ ! व्यर्थ डींग न हाँक। राम के वैर से तेरी गति ऐसी गति होगी कि तेरे सिर रामजी के बाणों के लगने से बन्दरों के आगे पृथ्वी पर गिरेंगे।

व्याख्या : नर कर करेसि बखान का उत्तर देकर अब अङ्गदजी : सुनु सठ सोइ रावन बल सीला। हर गिरि जान जासु भुज लीला। आदि उक्तियों का उत्तर देते हुए कहते हैं कि तू मूढ़ है। बात नहीं समझता। तेरा डींग हाँकना व्यर्थ है।

रामजी ही बल के मूल स्रोत हैं। उन्हीं के बल से ब्रह्मा विष्णु रुद्र उत्पत्ति पालन और संहार करते हैं, तुमने भी जो कुछ किया है सो उन्हीं के बल के लवलेश से किया है। मूढ़ता से तुम अपने को कर्ता मान रहे हो। उसी मूल स्रोत से विरोध करने पर बल कहाँ से आयेगा ? फिर तो तुम्हारी बुरी गति होगी।

बखसीस ईस जू की खीस होत देखियत। ये जो तेरे सिर शङ्करजी पर चढ़े थे वे रामजी के बाण लगने से बन्दरों के आगे पृथ्वी पर गिरेंगे। लोकपालों के गिराये ये सिर नहीं गिरे पर रामजी के बाण के आगे ये न ठहर सकेंगे।

ते तव सिर कंदुक सम नाना। खेलिहहिं भालु कीस चौगाना ॥
जबहि समर कोपिहि रघुनायक। छुटिहहिं अति कराल बहु सायक ॥३॥

अर्थ : तुम्हारे सिरों को अनेक गेंदों की भाँति वे भालू और बन्दर चौगान खेलेंगे। जब रघुनायक युद्ध में क्रोध करेंगे तो अत्यन्त कराल बहुत से बाण छूटेंगे।

व्याख्या : वे भालू बन्दर यह विचार न करेंगे कि यह सिर शिव निर्माल्य है। वे उसे गेंद बनाकर चौगान खेलेंगे। छोटा होने से हाथों से खेला जाता है और बड़ा होने से लात की ठोकर देकर खेलते हैं।

रघुनायक कभी कोप नहीं करते। इनका कोप समराङ्गण में ही व्यक्त होता है। : तब चले बान कराल। फुंकरत जनु बहु व्याल। कोपे समर श्रीराम। चले बिसिख निसित निकाम। अवलोकि खरतर तीर। मुरि चले निसिचर बीर। उन खरतर तीर का सामना खरदूषण नहीं कर सके। वे ही कराल बाण जब बहुत से छूटेंगे तब तुम्हें समझ में आवेगा। रावण ने पहिले अपने सिर की कथा कही थी और तत्पश्चात् शेष अङ्गों का पराक्रम कहा था। अतः अङ्गदजी सिर की दुर्दशा पहिले कहके तब शेष अङ्गों की दुर्गति कहते हैं।

तबकि चलिहि अस गाल तुम्हारा। अस बिचारि भजु राम उदारा ॥
सुनत बचन रावनु पर जरा। जरत महानल जनु घृत परा ॥४॥

अर्थ : तब तुम्हारा क्या ऐसा गाल चलेगा ? ऐसा विचारकर उदार राम को भज। वचन सुनते ही रावण भभक उठा। जैसे जलती हुई आग में घी पड़े।

व्याख्या : घर बैठे ही गाल चलता है। जो चाहते हो बोलते हो चले जा रहे हो। जब सरकार के अति कराल बाण चलेंगे। तब तुम्हारा गाल बजाना बन्द हो जायगा। तुम विकल हो जाओगे। करते धरते कुछ न बनेगा। तुम्हारे समान कोटि के तथा तुमसे बड़े वीरों से भी करते कुछ न बना। ऐसा विचार कर राम को भजो। वे बड़े उदार हैं। उनके सामने दीनता स्वीकार करने मात्र की आवश्यकता है। उनके द्रवीभूत होते देर नहीं लगती। यथा : ऐसो को उदार जगमाहीं। बिनु सेवा जो द्रवै दीन पर राम सरिस कोउ नाहीं। रावण बोलु संभारि अधम अभिमानी : आदि उक्तियों पर पहले से ही जल रहे थे। परन्तु अपनी दुर्दशावाली बात पर तो

एक दम भभक उठे, जिस भाँति जलती हुई भारी आग में घी पड़ने से वह भभक उठती है।

दो. कुंभकरन अस बंधु मम, सुत प्रसिद्ध सक्रारि।
मोर पराक्रम नहि सुनहि, जितेउँ चराचर झारि ॥२७॥

अर्थ : कुम्भकर्ण जैसा मुझे भाई है। बेटा मेरा शक्रारि : इन्द्रशत्रु नाम से प्रसिद्ध है। तूने मेरा पराक्रम नहीं सुना। मैंने सम्पूर्ण चर और अचर को जीत रक्खा है।

व्याख्या : रावण ने कहा कि तू तो ऐसा बोल रहा है जैसे कोई किसी अनाथ की दुर्दशा कह रहा हो। जो सब तरह से सनाथ है उसके लिए ऐसी बात कैसे सम्भव है। कुसमय में भाई काम आते हैं। यथा : ओडिअहि हाथ अस निहुँके घाए। होहि कुठाँय सुबंधु सहाए। सो मुझे अतिबल कुंभकरन अस भ्राता। जेहि कहुँ नहि प्रतिभट जगजाता। मेरे भाई का जोड़ संसार में पैदा ही नहीं हुआ। ब्रह्मदेव देखकर स्वयं आश्चर्य में आ गये कि उसे रहते मुझे भय कहाँ। संसार जानता है कि मेरा आज्ञाकारी बेटा इन्द्र को जीतनेवाला है। यथा : जे सुर समर धीर बलवाना। जिहके लरिबे कर अभिमाना। तिहहि जीति रन आनेसु बाँधी। उठि सुत पितु अनुसासन काँधी। वारिदनाद जेठ सुत तासू। भट महुँ प्रथम लीक जग जासू। जेहि न होइ रन सनमुख कोई। सुरपुर नितहि परावन होई है जिसे ऐसा बेटा हो उसे भय के लिए स्थान कहाँ। तिस पर अकेला मैं चराचर को जीत चुका हूँ। मुझे किसी की सहायता की आवश्यकता नहीं है। मालूम होता है तूने मेरा पराक्रम सुना नहीं है। इसी से ऐसा बोलता है।

सठ साखामृग जोरि सहाई। बाँधा सिंधु इहै प्रभुताई॥
नाघहि खग अनेक बारीसा। सूर न होहि ते सुनु सब कीसा ॥१॥

अर्थ : रे शठ ! बानरों की सेना जुटाकर समुद्र बाँध लिया यही प्रभुता है। अनेक पक्षी समुद्र लाँघा करते हैं। इसलिए वे शूर नहीं हो जाते।

व्याख्या : भाव यह है कि तीन लोक में उस तपस्वी को मेरे भय से सहायक तो कहीं मिले नहीं। बन्दर की जाति मूर्ख होती है। वे ही सहायता के लिए तैयार हुए। वे भी शाखामृग हैं। उनकी इतनी ही प्रभुता है कि एक शाखा पर से दूसरी पर जा रहें और चूके नहीं। उनकी सेना जोड़कर समुद्र पर सेतु बाँधा, यही उनकी प्रभुता है। इसके अतिरिक्त और कोई प्रभुता तुम उनकी बतला नहीं सकते। पर इसमें भी उस तपस्वी ने क्या किया : राम वैर अस होइहि हाला का यह उत्तर रावण ने दिया।

तुम लोग तो समुद्र में सेतु बाँधकर पार आये हो। कितनी चिड़ियाएँ बिना सेतु के ही समुद्र लाँघा करती हैं। कार्य करने का पौरुष पृथक् सामग्री है। तू जड़ है

समझ नहीं सकता। समुद्र के बन्धन पर ही रीझा है। अजी! समुद्रोल्लंघन से चिड़िया वीर नहीं हो जाती।

मम भुज सागर बल जल पूरा। जहँ बूड़े बहु सुर नर सूरा॥
बीस पयोधि अगाध अपारा। को अस बीर जो पाइहि पारा॥२॥

अर्थ : मेरी भुजारूपी समुद्र बलरूपी जल से पूर्ण है। जिसमें अनेक देवता और मनुष्य डूब गये हैं। ये बीस समुद्र अथाह और अपार हैं। ऐसा कौन वीर है जो इनका पार पा जाय।

व्याख्या : तव सिर निकर कपिन्ह के आगे। परिहहि धरनि राम सर लागे। का उत्तर रावण देते हैं। इस समुद्र में तो उड़नेवाले की सामर्थ्य देखी जाती है। पर मेरे भुजसागर में तो वीरों की परीक्षा है। ये बलरूपी जल से भरे हुए बीस समुद्र इकट्ठे हैं। इनमें कितने सुर नर शूर डूब मरे—उनकी गिनती नहीं पर किसी ने पार न पाया क्योंकि न तो इनके आयाम का पता न गहराई का पता। अतः एक का पार होना दुस्तर है। बीसों को पार करनेवाला वीर है कौन ?

दिगपालन्ह मैं नीरु भरावा। भूप सुजसु खल मोहि सुनावा॥
जौ पै समर सुभट तव नाथा। पुनि पुनि कहसि जासु गुनगाथा॥३॥

अर्थ : मैंने दिक्पालों से पानी भराया है और तू शठ मुझे राजा का सुयश सुनाने चला है। यदि तेरा नाथ जिसके गुण गाथा का तू बार बार वर्णन करता है युद्धवीर है :

व्याख्या : अस विचारि भनु राम उदारा। का उत्तर देते हुए रावण कहते हैं कि दिक्पालों से मैंने नीच टहल करवाया। यह देखने के लिए कि देखें इनमें कुछ स्वात्माभिमान शेष है कि नहीं। तो मालूम हुआ कि कुछ भी शेष नहीं है। लगे पानी भरने। सेतु बाँधना तो प्राकृत राजाओं का सुयश है। यथा : अति अपार जे सरित वर जे नृप सेतु कराहिं। तासु गर्व जेहि देखत भागा। सो नर क्यों दस सीस अभागा। का उत्तर देते हुए रावण कहते हैं कि तेरा नाथ तो वाक्वीर है युद्धवीर तो है नहीं। तू उसके गुणगाथा को बार बार कह रहा है। इस कारण यदि मान भी लें तो भी सामञ्जस्य नहीं बैठता।

तौ बसीठ पठवत केहि काजा। रिपु सन प्रीति करत नहि लाजा॥
हरगिरि मथन निरखि मम बाहू। पुनि सठ कपि निज प्रभुहि सराहू॥४॥

अर्थ : तो सन्धि के लिए दूत क्यों भेजता है। शत्रु से प्रीति करते हुए उसे लज्जा नहीं लगती? कैलास के मथनेवाले मेरे बाहु को देख ले। तब शठ बन्दर! तू अपने प्रभु की प्रशंसा कर।

व्याख्या : युद्धवीर तो प्रतिभट खोजते फिरते हैं। यथा : रन मद मत्त फिरइ जग धावा। प्रति भट खोजत कतहुँ न पावा। यदि वह युद्धवीर है तो उसने

दूत क्यों भेजा। दूत तो सन्धि चाहनेवाले भेजते हैं। मैं उसका दारापहर्ता परम शत्रु मुझसे प्रीति करने के लिए दूत भेजते उसे लज्जा नहीं आयी।

तब कि चलिहि अस गाल तुम्हारा। का उत्तर मेरी भुजाएँ देख ले। है तेरी सेना में किसी की भुजा ऐसी? इन भुजाओं ने शिवजी के पर्वत का मन्थन किया है। अर्थात् पर्वत सहित शिवजी को भी उठा लिया। इनके देखने से फिर तुझे अपने प्रभु के सराहने का साहस न रह जायगा।

दो. सूर कवन रावन सरिस, स्वकर काटि जेहि सीस।
हुने अनल अति हरख बहु, बार साखि गौरीस ॥२८॥

अर्थ : रावण के ऐसा शूर कौन है जिसने अपने हाथ से अपना सिर काट डाला और अति हर्षित होकर अनेक बार अग्नि में हवन कर दिया। शिवजी इसके साक्षी हैं।

व्याख्या : अब रावण अपनी शूरता कहते हैं। मैंने अपना सिर अपने हाथ से काटा। कोई काटे तो हम उसे शूर माने। शूरों की अन्तिम परीक्षा सिर का काटना ही है। सो अपने हाथ से अपना सिर नहीं काटा जा सकता। सो मैंने कर दिखाया। अतः मुझसा शूर कोई नहीं। सिर कटते ही तो शूर की इतिश्री हो जाती है। उसे अग्नि में हवन करने की किसे सामर्थ्य? तिस पर हर्षित होकर बार बार सिर काटकर चढ़नेवाला कौन है? चढ़ाना तो दूर की बात है: इस बात पर विश्वास होना कठिन है। परन्तु इसके महादेवजी साक्षी हैं कि सब बातें सच्ची हैं। मूढ़ मृषा जनि मारेसि गाला। इत्यादि का उत्तर देते हुए रावण कहते हैं कि तेरी सब बातें झूठी हैं। मैं मृषा गाल बजानेवाला नहीं हूँ।

जरत बिलोकेउँ जबहि कपाला। बिधि के लिखे अंक निज भाला ॥
नर के कर आपन बध बाँची। हँसेउ जानि बिधि गिरा असाँची ॥१॥

अर्थ : जब मैंने अपनी जलती हुई खोपड़ी देखी और उसमें ब्रह्मदेव के लिखे अङ्क देखे तो मनुष्य के हाथ से अपना वध बाँचकर ब्रह्मा का लिखा हुआ झूठा समझकर मैं हँसा।

व्याख्या : एक सिर जल रहा है और दूसरा सिर तमाशा देख रहा है। विधि ने जो कपाल में लिख रक्खा है उसे बाँच रहा है। विधि के अङ्क सभी के कपाल में रहते हैं। पर सब कोई उसे पढ़ नहीं सकता। उस विषय के पण्डित उसे पढ़ सकते हैं। अतः हस्तरेखा से काम चलाया जाता है। यथा : अस स्वामी एहि कहँ मिलिहि, परी हस्त अस रेख। हाथ में रेखा रहती है और कपाल में अङ्क रहता है। जब सिर जलने लगा तब रावण को ख्याल पड़ा कि ऐसा अवसर फिर न मिलेगा। देखें तो ब्रह्मदेव ने क्या लिखा है। तो उसमें देखा तो उसकी मौत मनुष्य के हाथ लिखी थी। रावण को उस पर हँसी आ गयी कि देखो ब्रह्मा भी

झूठ लिख गये। भाव यह कि इस विषय में रावण ब्रह्मदेव का कहना भी प्रमाण नहीं मानते। अङ्गद का कहना कि : तव सिर निकर कपिन के आगे। परिहैं धरनि राम सर लागे। किस गिनती में है।

सोउ मन समुझि त्रास नहि मोरें। लिखा बिरंचि जरठ मति भोरें ॥
आन बीर बल सठ मम आगें। पुनि पुनि कहसि लाज पति त्यागें ॥२॥

अर्थ : उसे समझकर भी मुझे भय नहीं है। क्योंकि बूढ़े ब्रह्मदेव ने भूल से ऐसा लिख दिया। रे दुष्ट! तू दूसरे वीर का बल मेरे सामने लज्जा और मर्यादा छोड़कर बार बार कहता है।

व्याख्या : अस विचारि भजु राम उदारा। का उत्तर देते हुए रावण कहते हैं कि स्वयं ब्रह्मदेव का लेख देखकर तो मैं डरा ही नहीं। मुझे तो हँसी आ गयी कि बूढ़े होने से ब्रह्मा की भी अकल : बुद्धि मारी गयी। तू चला है मुझे डराने। मेरी धारणा के प्रतिकूल यदि ब्रह्मा कहें तो भी नहीं मानता।

रामजी का नाम तो रावण लेते नहीं। इसलिए कहते हैं कि दूसरे वीर का बल मेरे सामने नहीं कहना चाहिए। मुझसे यदि कोई अधिक हो तो उसका बल मेरे सामने कहना प्राप्त हो सकता है। सो मुझसे अधिक तो कोई है नहीं। ऐसा कौन है जो अपने हाथ से अपना सिर काटे। सिर कटने पर विचार करने की शक्ति रक्खे। ब्रह्मदेव का लिखा बाँचे और हँसे? अतः दूसरे वीर की प्रशंसा मेरे सामने करनेवालों को लज्जा होनी चाहिए। क्योंकि ऐसा करके वह अपनी ही अप्रतिष्ठा कर रहा है।

कह अंगद सलज्ज जग माहीं। रावन तोहि समान कोउ नाहीं ॥
लाजवंत तव सहज सुभाऊ। निजमुख निजगुन कहसि न काऊ ॥३॥

अर्थ : अङ्गद ने कहा : हे रावण! तेरे समान लज्जाशील संसार में दूसरा कोई नहीं है। लज्जाशीलता तुम्हारा जन्मसिद्ध स्वभाव है। अपने मुख से तुम अपनी प्रशंसा कभी नहीं करते।

व्याख्या : ध्वनि यह है कि तुम्हारे सा निर्लज्ज कोई संसार में नहीं है। आत्मप्रशंसा का तुम्हारा सहज स्वभाव है। बैठे बैठे दिन रात शेखी बघाड़ा करते हो। आत्मप्रशंसा करना महा निर्लज्जता का काम है : सो तुम निरन्तर किया करते हो और मैंने तो रामजी की प्रशंसा की अपनी प्रशंसा नहीं की। सो मुझे निर्लज्ज बतला रहे हो। निर्लज्ज तो वह है जो आत्मप्रशंसा करे।

सिर अरु सैल कथा चित रही। ताते बार बीस तैं कही ॥
सो भुजबल राखे उर घाली। जीतेउ सहसबाहु बलि बाली ॥४॥

अर्थ : सिर और पर्वत की कथा याद रही। इससे तुमने बीस बार कहा।

भुजाओं के उस बल को तुमने हृदय में रख छोड़ा था। जब कि सहस्रबाहु बलि और बाली को जीता था।

व्याख्या : भाव यह कि सहस्रबाहु बलि और बालि तीनों से रावण का पराभव हुआ था। वे सब बातें तो तुम्हें सब भूल गयी। बस सिर और शैल की कथा याद रह गयी। इसलिए तुम इन कथाओं को बीस बार दोहरा चुके। जब सहस्रबाहु बलि और बालि से काम पड़ा तब तुम्हारा वह बल कहाँ रहा। क्या अपने लज्जाशील स्वभाव के कारण उसे हृदय में छिपाये रहे।

सुनु मतिमंद देहि अब पूरा। काटे सीस कि होइअ सूरा॥
इन्द्रजालि कहुँ कहिअ न बीरा। काटइ निज कर सकल सरीरा॥५॥

अर्थ : रे मतिमन्द ! यहीं से बात समाप्त कर। क्या कोई अपना सिर काटने से वीर होता है ? बाजीगर को वीर नहीं कहा जा सकता। वह अपने हाथ से अपना सम्पूर्ण शरीर काट डालता है।

व्याख्या : अपने हाथ से अपना सिर काटना दूसरी बात है और युद्ध करना दूसरी बात है। बाजीगर लोग अपने हाथ से अपना सारा शरीर काट डालते हैं। उस समय बाजीगरी की विद्या यहाँ तक बढ़ी थी कि सूत पकड़कर आकाश में चढ़ जाते थे और वहाँ से उनका अङ्ग प्रत्यङ्ग कटकर गिरता था। इस समय भी ऐसा दृश्य दिखलानेवाले हैं कि टेबुल पर कटा हुआ सिर रक्खा हुआ है और वह बोलता है। अतः अपने हाथ से सिर काटने में बाजीगरी की प्रशंसा है शौर्य की नहीं।

दो. जरहिं पतंग मोह बस, भार बहहिं खरबृंद।
ते नहिं सूर कहावहि, समुझि देखु मतिमंद॥२९॥

अर्थ : पतंग मोहवश जलते हैं। गधे बोझा ढोते हैं। पर वे शूर नहीं कहलाते। रे मतिमन्द समझकर देख।

व्याख्या : बाजीगर का सिर काटना तो झूठा है केवल बाजीगरी मात्र है। क्योंकि उससे वह मरता नहीं फिर सिरवाला हो जाता है। पर पतङ्ग तो सचमुच अपने प्राणों को दीप की लौ पर निछावर कर देता है। इसमें उसका अज्ञान कारण है। शौर्य नहीं। अतः तुम्हारा सिर काटने का कोई मूल्य नहीं है। इसी प्रकार बहुत बड़ा बोझा उठाने में भी कोई वीरता नहीं है। गधे जैसा बोझा ढोते हैं ताजी घोड़े नहीं ढो सकते। अतः कोई पतङ्ग और गधे को वीर नहीं कह सकता। अतः तुम्हारा कैलास उठा लेना तुम्हारे बोझा उठाने का परिचायक है : वीरता का नहीं।

अब जनि बत बढ़ाव खल करही। सुनु मम बचन मान परिहरही॥
दसमुख मैं न बसीठी आयेउँ। अस बिचारि रघुबीर पठायेउँ॥१॥

अर्थ : रे खल ! अब बतबढ़ाव न कर। मेरी बात सुनकर अभिमान छोड़।

रे दसमुख ! मैं सन्धि का प्रस्ताव करनेवाला दूत होकर नहीं आया हूँ। रघुवीर ने ऐसा विचारकर मुझे भेजा है।

व्याख्या : अङ्गदजी रावण के कहे हुए वाक्य : रिपु सन प्रीति करत नहि लाजा। का उत्तर देते हुए कहते हैं कि व्यर्थ बात को न बढ़ाओ नहीं तो यहीं युद्ध प्रारम्भ होगा। तुम खल हो सद्भाव को नहीं समझ सकते। बतबढ़ाव का फल मैं तुरन्त देता हूँ। यथा : बातहि बात करष बढ़ि आई। जुगल अतुल बल पुनि तरुनाई। तेहि अगद कह लात उठाई। गहि पद पटक्यो भूमि भँवाई। तुम मेरी बात सुनकर मान छोड़ दो। मान रहने से बात समझ में नहीं आती।

बार बार अस कहइ कृपाला। नहि गजारि जसु बधे सृगाला॥
मन महुँ समुझि बचन प्रभु केरे। सहेउँ कठोर बचन सठ तेरे॥२॥

अर्थ : कृपाल ने बार बार ऐसा कहा है कि शृगाल के मारने में सिंह का यश नहीं होता। रे शठ ! प्रभु के वचन को मन में समझकर मैंने तेरे कठोर वचन सह लिये।

व्याख्या : तौ बसीठ पठवत केहि काजा। का उत्तर देते हुए अङ्गदजी कहते हैं कि मैं प्रीति के लिए दूत बनकर नहीं आया हूँ। मैंने प्रीति करने के लिए कहा भी नहीं। शरण जाने के लिए कहा है। यथा : दसन गहहु तृन कंठ कुठारी। परिजन सहित संग निज नारी। सादर जनकसुता करि आगे। एहि विधि चलहु सकल भय त्यागे। प्रनतपाल रघुवंसमनि त्राहि त्राहि अब मोहिं। आरत गिरा सुनत प्रभु अभय करैगो तोहिं। वे काम क्रोध मद गज पंचानन हैं। तू काम क्रोध का दासानुदास शृगाल है। चोरी करके स्त्री हरण करता है। बार बार अस कहेउ : का भाव यह है कि शृगाल के मारने में कीर्ति नहीं है। तुम्हें उसके पास भेज रहे हैं। वह अपनी बोली बिना बोले न रहेगा। तुम क्रोध करके उसे मार न देना। मालिक के वचन पर ध्यान देकर मैंने तेरे कठोर वचन को सहा। नहीं तो इस प्रकार कटुभाषी का दण्ड वध ही है।

नाहि त करि मुखभंजन तोरा। लै जातेउँ सीतहि बरजोरा॥
जानेउँ तव बलु अधम सुरारी। सूने हरि आनिसि पर नारी॥३॥

अर्थ : नहीं तो तेरे मुँह को तोड़कर सीता को अपने बल से ले जाता। रे अधम देवशत्रु ! तेरा बल जान गया। जब कि तू पराई स्त्री को अकेला पाकर हरण कर लाया।

व्याख्या : श्रीरामजी के समरसुभट होने की बात तो दूर है मैं अकेला तेरा मुख तोड़कर सीताजी को अपने भुजबल से ले जाता। खीरा सिर से काटिये दीजे नमक भराय। रहिमन कडुए मुखन को चहियत इहै सजाय। इसी से अङ्गदजी ने मुखभंजन कहा। जिस मुख से यह बात निकली : रिपु सन प्रीति करत नहि लाजा।

उसे तोड़ डालता और जिस सीता को तू चुराकर लाया उसे मैं भुजबल से ले जाता।

अब दिगपालन मैं नीर भरावा। का उत्तर देते हुए कहते हैं कि तुम अपने को सुरारि कहने में बड़ी प्रतिष्ठा मानते हो। उसे अपने बल का परिचायक समझते हो और पराई स्त्री की चोरी करते हो। यदि तुममें बल होता तो सामने से न ले जाते। सुरारि तो खरदूषण भी थे पर वे अधम नहीं थे। तू अधम है।

तै निसिचरपति गर्ब बहूता। मैं रघुपति सेवक कर दूता॥
जौं न राम अपमानहिं डरऊँ। तोहि देखत अस कौतुक करऊँ॥४॥

अर्थ : तुम राक्षसों के राजा हो। घमण्ड बहुत है। मैं तो रघुपति के सेवक का दूत हूँ। यदि मैं रामजी के अपमान का भय न करूँ तो तुम्हारे देखते हुए ऐसा खेल करूँ।

व्याख्या : मम भुज सागर बल जल पूरा। का उत्तर देते हुए अङ्गदजी कहते हैं कि तुम अपने समाज में सबसे महान् हो और मेरी गणना अपने समाज में तीसरी श्रेणी में है। सबसे महान् रामजी दूसरी श्रेणी राजा सुग्रीव और मैं तो उनका दूत हूँ। इस समय रामजी का दूत बनकर आया हूँ। यदि मैं तुम्हारी दुर्दशा कर दूँ तो रामजी का अपमान होगा। क्योंकि वे तुझे अपने हाथ से दण्ड देंगे। तब लोग कहेंगे कि जिसकी अङ्गद ने दुर्दशा कर डाली थी उसे रामजी ने मारा तो कौन बड़ा पुरुषार्थ किया? इस भाँति उनका अपमान होगा और उस अपमान को मैं डरता हूँ तुम्हें नहीं। तुम्हारे लिए तो मैं ऐसा कर सकता हूँ कि तुम देखते ही रह जाओ और मैं खेल कर जाऊँ।

दो. तोहि पटकि महि सेन हति, चौपट करि तव गाउँ।
तव युवतिन समेत सठ, जनकसुता लै जाउँ॥३०॥

अर्थ : रे शठ! तुम्हें पृथ्वीपर पटककर तेरी सेना मारकर तेरे गाँव को चौपट करके तुम्हारे युवतियों सहित मैं जानकीजी को ले जाऊँ।

व्याख्या : पलक गिरने के पहिले मैं तुझे सिंहासन के नीचे गिरा दूँगा। जब से तू सँभालकर उठे उठे तब तक तेरी सेना निपटा दूँगा। जब तक तू सेना सँभाले तब तक लङ्का उजाड़ दूँगा। तुम लंका सँभालने के फेर में फँसे रहोगे तब तक मैं जानकीजी को लेकर चला जाऊँगा और साथ में सीताजी की तपस्या वर्णन करने के लिए मन्दोदरी को भी बलपूर्वक ले जाऊँगा। जिसमें जगत् देख ले कि जो दूसरे की स्त्री चुराकर लाता है। उसकी स्त्री बलपूर्वक हरण की जाती है।

जौं अस करउँ तदपि न बड़ाई। मुयेहि बधे नहिं कछु मनुसाई॥
कौल कामबस कृपिन बिमूढ़ा। अति दरिद्र अजसी अति बूढ़ा॥१॥

अर्थ : यदि ऐसा करूँ तो भी कोई बड़ाई की बात नहीं है। क्योंकि मरे हुए

को मारने में कोई बड़ाई नहीं है। १. कौल २. कामी ३. कृपिण ४. विमूढ़ ५. अतिदरिद्र ६. ऐसा पुरुष जिसकी अकीर्ति हो। ७. अत्यन्त वृद्ध।

व्याख्या : अब अङ्गदजी : कुंभकरन सम बंधु मम सुत प्रसिद्ध सक्रारि। मोर पराक्रम सुनेसि नहिं जितेउँ चराचर झारि। का उत्तर दे रहे हैं कि ये सब के सब मृतकतुल्य हैं। इनके पाप ने इनको पहिले मार दिया है। इनके मारनेवाले को निमित्तमात्र होने की देर है। क्योंकि निम्नलिखित प्राणियों की गणना मृतकों में है :

१. पहिले कौल जिन्हें वाममार्गी कहते हैं। स्वयं कवि ने कहा है : तजि स्रुतिपंथु वाम पथ चरुहीं। बंचक बिरचि बेष जगु छरुहीं। तन्त्र शास्त्रों में दो मार्गों की चर्चा है : १. दक्षिण मार्ग और २. वाम मार्ग। वाम मार्ग में पञ्च मकार : १. मद्य २. मांस ३. मत्स्य ४. मुद्रा और ५. मैथुन का प्रचार है। इसी के अनुयायी अपने को कौल कहते हैं। यथा :

नर कपाल को पात्र बनाया मरघट में आवास लिया।
पहना गले हार हाड़ों का ईश बेष स्वीकार किया॥
योगाञ्जन से शुद्ध हुई हैं आँख देखता हूँ अब मैं।
आपस में ये जगत भिन्न है, भेद रहित ईश्वर से हैं॥
मेद आँत चरबी मनुष्य का मांस मनोहर।
लेकर के देते हैं पावक में आहुतिवर॥
ब्राह्मण की खोपड़ी वही है मेरा चुक्कड़।
भरके दुधुआ पारण करते हैं नित अक्खड़॥
बिप्रमुण्ड ताजा कटा लोहू को धारा गरम।
देव महाभैरव निकट देते हैं बलि नित्य हम॥
देखा है न कहीं बिना बिषय के आनन्द होवै जुदा।
मुक्ति पत्थर है भला यह गती क्यों तू लिया चाहता॥
देवी सी रमणी गले लपटती है शम्भु तू भी बना।
ऐसी अद्भुत मौज ही मुकुति है भूतेश ने यों कहा॥

: प्रबोध चन्द्रोदय

पीत्वा पीत्वा पुनः पीत्वा पीत्वा पतति भूतले। पुनरुत्थाय वै पीत्वा पुनर्जन्म न विद्यते।

सब आचारों से जो भ्रष्ट हो जाता है वही कौल होता है और उससे भी पतित होकर रौरव नरक में जाता है। यथा : सर्वाचारपरिभ्रष्टः कुलाचारं समाश्रयेत्। कुलाचारपरिभ्रष्टो रौरवं नरकं व्रजेत्। मेरुतन्त्रे। ऐसे आचारवाले प्राणियों को मृतक ही समझना चाहिए।

२. कामवश : धर्म से अविरुद्ध काम की तो प्रशंसा है। यथा : धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ। परन्तु जो काम के वश हो जाता है वह धर्माधर्म नहीं देख सकता। अतः काम के वशीभूत पुरुष भी मृतक तुल्य ही है।

३. कृपण : कृपिण का प्राण धन में बसता है और उस धन का नाश अवश्यम्भावी है। क्योंकि न वह उसे खावेगा न खर्च करेगा। अतः उसकी तृतीय गति अवश्य ही होती है। यथा : दानं भोगो नाशस्तिस्रो गतयो भवन्ति वित्तस्य। यो न ददाति न भुंक्ते तस्य तृतीया गतिर्भवति। अतः कृपिण को भी जीते ही मृतक समझना चाहिए।

४. विमूढ : मूढ अज्ञानी को कहते हैं जो कि माया के विवश हो। यथा : माया बिबस भये मुनि मूढ़ा। और विमूढ़ में तो मूढ़ता का और भी अधिक उत्कर्ष है। उसका कल्याण भगवच्चरित से भी नहीं होता। यथा : उमा रामगुन गूढ़ पंडित मुनि पावहिं बिरति। पावहिं मोह विमूढ़ जे हरि बिमुख न धर्म रति। भावार्थ यह कि धर्म तथा ईश्वर से विमुख व्यक्ति विमूढ़ है। उनका जीवन नरकरूप है। अतः मृतक तुल्य हैं। यथा : ते नर नरकरूप जीवत जग भवभंजन पद विमुख अभागी।

५. अतिदरिद्र : जो कौल कामवश कृपिण या विमूढ़ नहीं भी है परन्तु अतिदरिद्र है। ऐसा भी पुरुष मृतक के समान ही है। क्योंकि अतिदरिद्र कुछ नहीं कर सकता। उसके लिए चार रोटी ही चारो पुरुषार्थ है। वह जीवन को कृतार्थ कैसे कर सकता है ? जिसके पास धन, पुण्य, ज्ञान तीनों का अभाव है वही अति दरिद्र है।

६. अजसी : कीर्तिर्यस्य स जीवति। जिसकी कीर्ति है वही जीता है। बिना पुण्य के पावन यश होता नहीं और पाप से ही दुर्यश होता है। जिसका यश नहीं उसकी स्वर्ग में गति नहीं होती। अतः अयशस्वी पुरुष मृतक के ही तुल्य है।

७. अतिबूढ़ा : अत्यन्त वृद्ध पुरुष की न तो इन्द्रियाँ ठीक काम करे न बुद्धि ठीक काम करे। अतः उसका जीवन संसार का भारभूत रूप होता है। अति वृद्ध से न अपना ही कोई उपकार होता है न दूसरे का ही। अतः वह भी मृतक तुल्य ही है।

सदा रोग बस संतत क्रोधी। बिस्नु बिमुख स्रुति संत बिरोधी ॥
तनु पोषक निंदक अघखानी। जीवत सव सम चौदह प्रानी ॥२॥

अर्थ : सदा रोगवश और निरन्तर क्रोध करनेवाला। विष्णु के विमुख और वेद तथा सन्त की निन्दा करनेवाला। ये चौदह प्राणी मुर्दे की भाँति जीते हैं।

व्याख्या : ८. सदा रोग वश : जो पुरुष सदा रुग्ण रहता है वह श्रीमान् होने पर भी सब भोगों से वञ्चित रहता है। उसे इस लोक का कोई सुख नहीं। परलोक के लिए कोई अनुष्ठान नहीं कर सकता। उसका जीवन केवल दुःख भोगने के लिए है। मरना तो उसके लिए अच्छी बात है।

९. सन्तत क्रोधी : क्रोध पाप कर मूल। क्रुद्धः पापं न कुर्यात्कः क्रुद्धो हन्यात् गुरूनपि। क्रोधी कौन सा पाप नहीं करता ? वह अपने गुरु को भी मार सकता है।

जो सन्तत क्रोधी हैं वे सदा क्रोध से जला करते हैं। उनको कभी सुख नहीं। वह यदि और कुछ न करे तो साधु पुरुषों पर आक्षेप किया करता है। भावार्थ यह कि वह व्यर्थ पाप कमाता रहेगा। उसके दोनों लोक नष्ट होते हैं। अतः वह भी मृतकतुल्य है।

१०. विष्णु विमुख : मनुज देह सुर साधु सराहत सो सनेह सिय पी के। आहार निद्रा भय और मैथुन तो पशु और मनुष्य में समान ही हैं। मनुष्य में विशेषता यही है कि वह ईश्वर को पहिचानता और जानता है। परमेश्वर का भजन करता है और जो मनुष्य शरीर धारण करके परमेश्वर का विरोध हुआ उससे पशु अच्छे हैं। यथा :

तिनते खर सूकर स्वान भले जड़ता बस ते न कहै कछु वै।
तुलसी जेहि राम सो नेह नहीं सो सही पसु पूछ विषान न द्वै॥
जननी कत भार मुई दस मास भई किन बाँझ गई किन च्वै।
जरि जाहु सो जीवन जानकि नाथ जियै जग में तुम्हरो बिनु ह्वै॥

: कवित्त रामायण

११. श्रुति सन्त विरोधी : अद्भुत महिमा वेद की तुलसी कियो विचार। जेहि निन्दत निन्दित भयो विदित बुद्ध अवतार। वेद के विरोधी ही पाखण्डी और नग्नक : नंगे कहे गये हैं। सम्पूर्ण ज्ञान विज्ञान की प्रसूति वेद का जिसने विरोध किया वही ईश्वर का विरोधो है वही धर्म का विरोधी है। ईश्वर और धर्म के विरोध करनेवाले का कल्याण कैसे होगा। इसी भाँति सन्त विरोधी का भी कल्याण नहीं हो सकता। यथा : साधु अवज्ञा तुरत भवानी। कर कल्याण अखिल कर हानी।

१२. तन पोषक : देहात्मवादी : जिनका मत है कि जब तक जीवे सुख से जीवे। ऋण करके भी घी खाय। भस्म हुए देह का फिर से लौटना कैसे हो सकता है। जिसने अनात्मा देह को आत्मा मान लिया उस चोर आत्मापहारी ने कौन सा पाप नहीं किया ? अतः ऐसे पापी का जीवन भी व्यर्थ है। यथा : सब विधि सोचिअ पर अपकारी। निज तन पोषक निर्दय भारी।

१३. निन्दक : दूसरों की कीर्तिमयी देहों पर प्रहार करने का स्वभाव रखने वाले के बराबर पापी कौन है ? क्योंकि : सम्भावित कहूँ अपजस लाहू। मरन कोटि सम दारुन दाहू। अतः निन्दक स्वभाव से ही व्यर्थ पाप संचय किया करता है। उसका जीवन निष्फल है।

१४. अघखानी : जो पापमय जीवन व्यतीत करता है और दूसरों में भी पाप का प्रचार करता है वह स्वयं भी दुःख उठाता है और दूसरों को भी दुःखगर्त के उन्मुख करता है। यथा : करहिं पाप पावहिं दुख, भवरुज सोक वियोग। इनका जीवन स्पष्ट ही व्यर्थ है।

ये चौदह प्राणी शव के समान जीते हैं। अर्थात् इनका शरीर मात्र अक्षुण्ण बना है। उससे न स्वयं उनका कोई उपकार हो : न दूसरों का। वे संसार के लिए भारभूत हैं। अमङ्गलमय हैं। शव की भाँति अस्पृश्य हैं।

अस बिचारि खल बधउँ न तोहीं । अब जनि रिस उपजावसि मोहीं ।।
सुनि सकोप कह निसिचर नाथा । अधर दसन दसि मींजत हाथा ।।३।।

अर्थ : रे खल ! ऐसा विचारकर मैं तुझे नहीं मारता । अब तू मुझमें क्रोध न पैदा कर । यह सुनकर राक्षसेश्वर दाँतों से होठ चबाता हुआ और हाथ मलता हुआ बोला ।

व्याख्या : खल मेरे वध्य हैं और तू खल है । पर तुझे शव के समान समझकर नहीं मारता । क्योंकि मरे हुए के मारने में कोई बहादुरी नहीं है । अब तक तो मैं क्रोध रोक सका । पर इससे अधिक क्रोध का वेग मैं नहीं रोक सकूँगा । अतः अब ऐसी बात न बोलना जिसमें मेरा क्रोध अधिक बढ़े ।

निशिचरनाथ है बड़ा गर्व है । अङ्गदजी की ऐसी वाणी सुनकर क्रोध से होठ चाबता है । पर कुछ किया नहीं हो सकता । इसलिए हाथ मलता है । रावण बातों से ही डरा धमकाकर चतुरता से काम निकालना चाहता है । हनुमान्‌जी का पराक्रम देख चुका है इसलिए सशङ्क है । अतः फिर बोला ।

रे कपि अधम मरन अब चहसी । छोटे बदन बात बड़ि कहसी ।।
कटु जल्पसि जड़ कपि बल जाकें । बल प्रताप बुधि तेज न ताकें ।।४।।

अर्थ : रे अधम बन्दर ! अब तू मरना चाहता है । छोटे मुँह बड़ी बात कहता है । जिसके बल पर तू ऐसा कटु : कडुआ बोल रहा है उसे बल प्रताप बुद्धि और तेज नहीं है ।

व्याख्या : सब विधि से हीन हो उसे अधम कहते हैं । यथा : कपि चञ्चल सबही विधि हीना । अस मैं अधम सखा सुनु । रावण अङ्गदजी से कहता है कि तू तपस्वी का दास है । इसलिए सब विधि से हीन है । बन्दरों में भी अधम है और बड़ी बड़ी बातें करता है । यथा : तोहि पटकि महि सैन हति चौपट करि तव गाँव । इत्यादि । दूत होने के कारण मैं तुझे नहीं मारना चाहता था पर अब स्वयं मरना चाहता है तो मैं क्या करूँ । इस प्रकार की बात मेरे सामने वही कर सकता है । जिसे मृत्यु इष्ट हो । तूने समझ रक्खा है कि मेरा स्वामी बड़ा बलवान् है । वह मेरी रक्षा करेगा । इसी बल पर तू कटु बोल रहा है । पर तू यह नहीं जानता कि उसे बल प्रताप बुद्धि और तेज नहीं है । बलवान् प्रतापी बुद्धिमान् और तेजस्वी ही अपने आश्रित की रक्षा में समर्थ होता है ।

दो. अगुन अमान जानि तेहि, दीन्ह पिता बनबास ।
सो दुख अरु जुवती बिरह, पुनि निसि दिन मम त्रास ।।
जिन्हके[1] बल कर गर्व तोहि, ऐसे मनुज अनेक ।
खाहि निसाचर दिवस निसि, मूढ़ समुझु तजि टेक ।।२१।।

---

१. यहाँ प्रतीप : द्वितीय अलङ्कार है ।

अर्थ : गुण रहित और मान रहित जानकर उसे पिता ने वनवास दिया। वह दुःख और स्त्री का विरह और दिन रात मेरा डर उसे बना रहता है।

जिनके बल का तुझे अभिमान है ऐसे मनुष्य बहुत से पड़े हैं। उन्हें रात दिन राक्षस खाया करते हैं। रे मूढ़ ! इस बात को तू हठ छोड़कर समझ।

व्याख्या : अब रावण इस बात का प्रमाण देते हैं कि रामजी में बल प्रताप बुद्धि और तेज नहीं है। कहते हैं कि यदि उनमें गुण होता तो जेठे पुत्र थे। बाप राज देता। उसने देख लिया कि न तो इसमें राजोचित गुण है न मान है। यह वंश परम्परागत प्रतिष्ठा की रक्षा न कर सकेगा यह तो तपस्वी होने योग्य है। इसलिए पिता ने वनवास दे दिया। भला कहीं पिता भी पुत्र को वनवास देता है ? इसकी अयोग्यता इतनी है कि पिता ने वनवास दे दिया। इससे सिद्ध है कि इसमें बल नहीं है। यदि इसमें बल होता तो पिता के कहने मात्र से यह राज्य कैसे छोड़ देता ? इसमें बल तो था नहीं इसलिए इसे राज्य छोड़ना पड़ा।

छोड़ने को राज्य तो छोड़ दिया पर उस बात का दुःख सदा बना रहता है। ऐसे राज्यभ्रष्ट दुःखी के प्रताप की चर्चा ही क्या है। स्त्री के विरह से उसकी बुद्धि भी मारी पड़ी और रात दिन मुझसे भयभीत रहता है : क्योंकि मेरा अपराध किया है। सूर्पनखा का नाक कान काटा है : भयभीत को तेज कहाँ ? अतः राम को बल प्रताप बुद्धि और तेज नहीं है।

अब राम मनुज कस रे सठ बंगा। आदि का उत्तर देते हुए कहता है कि तुझे ऐसे ही बल प्रताप बुद्धि तेजहीन मनुष्य का गर्व है। ऐसे मनुष्यों से तो संसार भरा पड़ा है और राक्षस रात दिन ऐसे मनुष्यों को खाया करते हैं। यथा : कहुँ महिष मानुष धेनु अज खर खल निसाचर भच्छहीं तथा खल मनुजाद द्विजामिष भोगी। तुझे हठ हो गया है कि राम मनुष्य नहीं है। सो इस हठ को छोड़कर यदि तू समझना चाहेगा तो मेरी बात तेरी समझ में आ जावेगी।

जब तेहि कीन्ह राम कइ निंदा। क्रोधवंत अति भयउ कपिंदा ॥
हरिहर निंदा सुनै जो काना। होइ पाप गोघात समाना ॥१॥

अर्थ : जब उसने रामजी की निन्दा की तब कपीन्द्र अङ्गदजी अतिक्रुद्ध हो गये। विष्णु और शिव की निन्दा जो कान से सुनता है उसे गोवध का पाप होता है।

व्याख्या : यथार्थ दोष कथन को परिवाद और असत्य दोष कथन को निन्दा कहते हैं। निन्दा करने से कीर्तिरूपी देह का वध होता है। अतः निन्दा करने से वध से अधिक पाप होता है। जितनी अधिक पुण्यवान् की निन्दा हो उतना ही अधिक पाप निन्दक को होता है। जिस भाँति निन्दा करना पाप है उसी भाँति निन्दा सुनना भी पाप है। इसमें भी विष्णु और शिव की निन्दा सुननेवाले को गोहत्या के समान पाप लगता है। सुनहि जो काना का भाव यह कि जो सुनने की इच्छा से सुनता है अथवा विना विरोध किये सुनता है। भाव यह कि संत संभु श्रीपति

अपवादा। सुनिय जहाँ तहँ असि मरजादा। काटिय तासु जीभ जो बसाई। स्रवन मूँदि नत चलिअ पराई।

अतः जब उसने रामजी की निन्दा की। रामजी साक्षात् महाविष्णु हैं। अतः अङ्गदजी क्रुद्ध हुए। विना विरोध प्रदर्शन के सुनने से गोघात का पातक लगता है और परिस्थिति ऐसी है कि जिसके यहाँ दूत बनकर आये हैं वही निन्दा करता है। अतः न तो उसकी जिह्वा काट सकते हैं और न वहाँ से कान बन्द करके भाग सकते हैं अतः :

कटकटान कपिकुंजर भारी। दुहु भुजदंड तमकि महि मारी॥
डोलत धरनि सभासद खसे। चले भाजि भयमारुत ग्रसे॥२॥

अर्थ : बन्दरों में हाथी के समान अङ्गदजी ने अत्यन्त कटकटाकर दोनों भुजाओं को क्रोध करके जमीन पर पटक दिया। पृथ्वी डोल उठी। सभासद् गिर पड़े और उन्हें भय की बाई चढ़ गयी सबके सब भाग चले।

व्याख्या : बन्दर जब क्रोध करते हैं तो कटकटाते हैं। प्रसन्न होते हैं तो किलकिला शब्द करते हैं। यथा : कटकटाइ गर्जा अरु धावा यहाँ पर भारी कपि कुंजर कहकर अङ्गदजी का विशालाकार होना द्योतित करते हैं। भारी शब्द देहलीदीपक न्याय से कटकटान के साथ भी लगेगा अर्थात् भारी कपि कुंजर भारी कटकटाया। क्रोध के वेग में दोनों हाथ पृथ्वी पर पटका। पृथ्वी डोल उठी और ऐसी डाली कि सभासद् मुँह के बल आ पड़े। डरे तो पहिले से ही थे। यथा : अबधौं कहा करिहि करतारा। अति सभीत सब करहि विचारा। अङ्गदजी के आने से ही उठ खड़े हो गये थे। यथा : उठे सभासद कपि कहँ देखी। अब अङ्गदजी के कटकटा कर हाथ पटकने के साथ ही पृथ्वी के डोलने से सब गिरे तो उठकर भाग चले कि यह कौन सी बला आयी। सबको मानो भय की बाई चढ़ गयी। जिस भाँति व्याघ्र से आहत पुरुष को भय की बाई चढ़ जाती है और वह अस्पताल में पड़ा हुआ भी अपने को व्याघ्र के वश में मानता है। इस भाँति उन सभासदों की गति हुई। वे लौटकर देखते भी नहीं कि हुआ क्या ? बस भागते ही चले जाते हैं।

गिरत सँभारि उठा दसकंधर। भूतल परे मुकुट अति सुन्दर॥
कछु तेहि लै निज सिरन्हि सँवारे। कछु अंगद प्रभु पास पँवारे॥३॥

अर्थ : दशानन गिरते गिरते सँभलकर उठे। उसके अतिसुन्दर मुकुट पृथ्वी पर गिर पड़े। कुछ तो उसने उठाकर अपने सिरों पर रख लिया और कुछ को अङ्गदजी ने प्रभु के पास फेंक दिया।

व्याख्या : दशानन हैं। चारों ओर एक साथ देखते हैं। झुक तो वे भी गये। पर गिरते गिरते सँभल गये। वे तो सँभले पर दसों मुकुट पृथ्वी पर गिर गये। यहाँ दो बार कछु शब्द आया है तो पहिले कछु से छः मुकुटों का अभिप्राय है और दूसरे कछु से चार मुकुटों का। रावण ने चाहा कि जल्दी से मुकुटों को सिर पर

रख लें। सो बीस हाथ होने पर भी जब से वह छः मुकुट उठावे तब से दो हाथवाले अङ्गद ने चार मुकुट रघुनाथजी के पास फेंक दिये।

आवत मुकुट देखि कपि भागे। दिनहिं लूक परन बिधि लागे ॥
की रावन करि कोपु चलाये। कुलिस चारि आवत अति धाये ॥४॥

अर्थ : मुकुटों को आता हुआ देखकर बन्दर भागे। हे विधाता! क्या दिन को ही लूक गिरने लगा अथवा रावण ने क्रोध करके ये चार वज्र चलाये हैं जो बड़े वेग से चले आ रहे हैं।

व्याख्या : पहिले कह चुके हैं कि अङ्गदजी ने चार मुकुट प्रभु के पास फेंके। उन मुकुटों को आते हुए बन्दरों ने देखा तो वे भी चले। क्योंकि लङ्का के ऊपर वे उन्हीं की ओर चले आ रहे थे। मुकुटों में चमक ऐसी है कि दिन में भी वे ऐसे चमक रहे हैं जैसे रात को लूक चमकता है। दिन में लूक गिरता भी है तो किसी को मालूम नहीं होता। सूर्य की ज्योति में उनकी ज्योति का पता नहीं चलता। अतः रात के लूक से ही संसार परिचित है। दिन को लूक का गिरना अनहोनी बात है। इससे बन्दर डर के भागे। वे कुछ स्थिर न कर सके कि यह क्या है? उन्हें यह भी भय हुआ कि कहीं रावण ने क्रोध करके चार वज्र चलाये हों जो हमारे ऊपर गिरा चाहते हैं। इस भय से सभी भागे अथवा पहिले लूक का भ्रम हुआ। कुछ और निकट आनेपर वज्र की धारणा हुई। जब और निकट आये तो बन्दरों को राहु केतु का भ्रम हुआ कि ये चन्द्र सूर्य के ग्रास करनेवाले हम लोगों का ग्रास करेंगे।

कह प्रभु हँसि जनि हृदय डराहू। लूक न असनि केतु नहिं राहू ॥
ए [1]किरीट दसकंधर केरे। आवत बालितनय के प्रेरे ॥५॥

अर्थ : प्रभु ने हँसकर कहा कि मन में डरो मत। न तो ये लूक हैं न वज्र हैं न राहु केतु हैं ये रावण के मुकुट हैं। बालि के बेटे के फेंके हुए आ रहे हैं।

व्याख्या : सब लोग तो डरे पर सरकार हँस पड़े। ठीक समझ लिया कि अङ्गद ने अपना पराक्रम दिखलाया और साथ ही साथ वहाँ की परिस्थिति का भी परिचय दे दिया कि रावण बात नहीं मान रहा है। बात बढ़ चली है पर विजय सरकार की है। तब सरकार ने बन्दरों से कहा कि मन में भय न मानो। तुमलोगों का अनुमान ठीक नहीं है। यह लूक वज्र अथवा राहु केतु नहीं हैं। ये रावण के मुकुट हैं। बालि के बेटे के फेंके हुए आ रहे हैं। बालितनय कहने का भाव है कि अङ्गद ने बालि की भाँति अपना पराक्रम रावण पर प्रकट किया है।

दो॰ तरकि पवनसुत कर गहेउ, आनि धरे प्रभु पास।
कौतुक देखहिं भालु कपि, दिनकर सरिस प्रकास ॥३२॥

---

१. यहाँ भ्रान्त्यापह्नुति अलङ्कार है।

अर्थ : हनुमान्‌जी ने कूदकर उन्हें हाथ से पकड़ लिया और लाकर प्रभु के पास रख दिया। बन्दर और भालु तमाशा देखने लगे कि इनका प्रकाश तो सूर्य के प्रकाश सा है।

व्याख्या : पवनसुत हैं बड़ा लाघव है। उछले तो दो ही हाथ से चारों को पकड़ लिया। पृथ्वी पर नहीं गिरने दिया कि कहीं टूट न जाय। लाकर प्रभु के सामने रख दिया। क्योंकि अङ्गदजी ने प्रभु के पास ही फेंका था। दूसरी बात यह है कि प्रभु के पास रखने से सब दूर दूर से देखेंगे। नहीं तो इन बन्दरों के देखने में ही मुकुट का विध्वंस हो जायगा। मुकुट के रख देने पर भालु और बन्दर लगे तमाशा देखने। क्योंकि वह मुकुट सूर्य की भाँति प्रकाशमान था। ऐसा दिव्य मुकुट था कि उसपर आँख नहीं ठहरती थी।

दो. उहाँ सकोप दसानन, सब सन कहत रिसाइ।
धरहु कपिहि धरि मारहु, सुनि अंगद मुसुकाइ ॥३२॥

अर्थ : वहाँ क्रुद्ध रावण सबसे नाराज होकर कहता है कि पकड़ लो बन्दर को और पकड़कर मारो। उपर्युक्त दोहे के स्थान में किसी किसी प्रति में यह अर्धाली है। यथा : उहाँ कहत दसकंध रिसाई। धरि मारहु कपि भागि न जाई। अर्थ में कुछ अधिक भेद नहीं है। धरि मारहु कहने का अभिप्राय ही यह है कि भागने न पावे।

व्याख्या : रावण क्रुद्ध होकर आज्ञा देते हैं कि देखो बन्दर कहीं कूदकर निकल न जाय। पहिले इसे सब लोग मिलकर पकड़ लो तब मारो। सब को आज्ञा देता है। क्योंकि जानता है कि अकेले यह किसी के वश का नहीं है। इस आज्ञा को सुनकर अङ्गदजी मुसकुरा रहे हैं कि वे तो भागे जाते हैं और ये उन्हें मुझे पकड़ने की आज्ञा देते हैं।

एहि बिधि बेगि सुभट सब धावहु। खाहु भालु कपि जहँ तहँ पावहु ॥
मरकट हीन करहु महि जाई। जिअत धरहु तापस दोउ भाई ॥१॥

अर्थ : इसी विधि से शीघ्रता के साथ सब सुभट लोग दौड़ते चले जाओ और जहाँ जहाँ भालु बन्दर मिले उन्हें खा जाओ। पृथिवी को बिना बन्दर का कर दो और दोनों भाई तपस्वियों को जीता ही पकड़ लो।

व्याख्या : रावण बात बनाने में बड़े चतुर हैं। सबका भागना और अङ्गद का मुसकुराना देख कर कहते हैं कि बस इसी भाँति शीघ्रता से तुम लोग दौड़ते चले जाओ। लंका दुर्ग के बाहर जहाँ तहाँ बहुत से बन्दर भालू पड़े हुए हैं उन सब को खा जाओ। और देखो लंका में आये हुए बन्दरों को खाकर ही मत लौट आना। संसार भर में फेरा लगा दो। सब बन्दरों को खा जाओ। इनकी नसल न रह जाय। पर इसका ध्यान रखना कि इस वेग में कहीं उन दोनों तपस्वियों को

न मार डालना। उन्हें जीता ही पकड़ लेना। वे तापस दोनों भाई बड़े वीर बने हुए हैं। क्योंकि जीते हुए पकड़े जाने से मारा जाना उनके लिए बहुत अच्छा है।

यह सब रावण अपने सुभटों की कमजोरी छिपाने के लिए कह रहे हैं। मानो वे सब राजा के मुकुट गिरने से क्रुद्ध होकर बानरी सेना पर धावा करने के अभिप्राय से दौड़ पड़े हैं।

पुनि सकोप बोलेउ जुवराजा। गाल बजावत तोहि न लाजा ॥
मरु गर काटि निलज कुलघाती। बल बिलोकि बिहरति नहि छाती ॥२॥

अर्थ : फिर युवराज अङ्गदजी क्रोध करके बोले कि तुझे गाल बजाते लज्जा नहीं आती। रे निर्लज्ज कुलघाती ! तू गला काटकर मर जा। बल देखकर तेरी छाती नहीं फटी।

व्याख्या : इसी को गाल बजाना कहते हैं कि वे तो मारे डर के भागे चले जाते हैं और आप कह रहे हैं : एहि बिधि बेगि सुभट सब धावहु। खाहु भालु कपि जहँ तहँ पावहु। राजा होकर ऐसी बात बोलता है। इसी पर अङ्गदजी कहते हैं कि गाल बजाते तुझे लज्जा नहीं लगती। मेरा बल देखकर तेरी छाती फट जानी चाहती थी। इतने बड़े पराभव को तू कैसे सह रहा है। यदि छाती नहीं फटी तो गला काटकर प्राण दे दे। अब कौन सा मुख संसार में दिखलावेगा। जिसे छोटे बदन बात बड़ कहसी कहता था उसने पराक्रम करके दिखला दिया। तेरी सारी सभा भाग खड़ी हुई और स्वयं तुम छः सिरों पर मुकुट लगाये बैठे हो। चार सिर नङ्गे ही हैं।

रे तियचोर कुमारग गामी। खल मलरासि मंदमति कामी ॥
संन्यपात जल्पसि दुर्बादा। भयेसि कालबस खल मनुजादा ॥३॥

अर्थ : रे स्त्रीचोर ! कुमार्गी खल मल की ढेर मन्दबुद्धि कामी ! तुझे मानसिक सन्निपात हो गया है। उसी में दुर्वाद बक रहा है। रे मनुष्यों का भक्षण करनेवाला खल ! तू काल के वश हो गया है।

व्याख्या : अङ्गदजी ने रावण के कहे हुए रामजी के प्रति छः निन्दासूचक वचनों के बदले उतने ही कठोर शब्द कहे। वस्तुतः यह कठोर शब्द नहीं है। रावण के कथन का उत्तर है। अङ्गदजी कहते हैं तू स्त्रीचोर सरकार को बलहीन बतलाया है। तू कुमार्गगामी उन्हें गुणहीन कहता है। तू खल है और उन्हें प्रतापहीन कहता है। तू मलराशि होकर उन्हें तेजहीन बतलाता है। स्वयं तू मन्दमति है और सरकार को बुद्धिहीन कह रहा है। तू कामी सरकार की निन्दा अमान कहकर कर रहा है। तुझे मानसिक सन्निपात हो गया है। यथा : काम वात कफ लोभ अपारा। क्रोध पित्त नित छाती जारा। प्रीति करहिं जो तीनों भाई। उपजै सन्निपात दुखदाई। जैसे सन्निपात में लोग दुर्वाद कहते हैं वैसे ही मानसिक सन्निपातवश तू दुर्वाद कह रहा है। कालदंड गहि काहु न मारा। हरै धर्म बल

बुद्धि विचारा। सो तू कालवश हो गया है। यह : रे कपि अधम मरन अब चहसी। का उत्तर है।

याको फल पावहुगे आगे। बानर भालु चपेटन्हि लागे ॥
राम मनुज बोलत असि बानी। गिरहिं न तव रसना अभिमानी ॥४॥
गिरिहहिं रसना संसय नाहीं। सिरन्हि समेत समर महि माहीं ॥५॥

अर्थ : इसका फल तुमको बन्दर भालु के चपेटा लगने से आगे चलकर मिलेगा। राम मनुष्य हैं : ऐसी वाणी बोलते हुए रे अभिमानी! तुम्हारी जीभ नहीं गिर पड़ती? तुम्हारी जीभ गिरेगी इसमें सन्देह नहीं। पर सिरों के साथ रणांगण में गिरेगी।

व्याख्या : दुर्वाद का फल चपेटा है। सो इस समय नहीं मिल रहा है। क्योंकि यह अनुकूल देशकाल नहीं है। आगे चलकर मिलेगा। यथा : चहुँ दिसि चपेटन्हि मारि नखन्हि बिदारि तेहि ब्याकुल कियो।

अब अङ्गदजी ऐसे मनुज अनेक का उत्तर देते हुए कहते हैं कि तुम जान करके भी अभिमान वश उनको मनुज कहते हो। इसका फल तो यही है कि ऐसी अकल्याणकर बात बोलनेवाली जीभ गिर जाय। क्योंकि जिह्वा का फल तो सरकार की स्तुति है। यथा : रसना साँपिनि बदन बिल, जे न जपहिं हरि नाम। तुलसी प्रेम न राम सों, ताहि बिधाता बाम। सो जीभ गिरने में जो देर हो रही है वह इसलिए कि वह जीभ समरांगण में सिरों के समेत गिरेगी। यह अपराध इतना बड़ा है कि खाली नहीं जा सकता।

सो. सो[1] नर क्यों दसकंध, बालि बधेउ जेहि एक सर।
बीसहु लोचन अंध, धिग तव जनम कुजाति जड़ ॥२३॥

अर्थ : हे दसकण्ठ! जिसने एक बाण से बालि को मारा वह मनुष्य कैसे है? तुम बीसों आँखों से अन्धे हो। तुम कुजाति हो जड़ हो। तुम्हारे जन्म को धिक्कार है।

व्याख्या : अमानुष कर्म दिखलाते हुए अङ्गदजी कहते हैं कि उन्होंने बालि को एक बाण से मारा। रामजी ने जब प्रतिज्ञा की कि : सुनु सुग्रीव मैं मारिहौं बालिहि एकहि बान। तब सुग्रीव को विश्वास नहीं हुआ कि एक बाण से बालि मारा जा सकता है। बोल बैठे कि : बालि महाबल अति रनधीरा। जब परीक्षा लेने पर विश्वास हुआ तो साथ ही साथ यह ज्ञान भी हुआ कि ये मनुष्य नहीं हैं। ईश्वर हैं। यथा : देखि अमित बल बाढ़ी प्रीती। बालि बधब इन्ह भइ परतीती। उपजा ज्ञान बचन तब बोला। नाथ कृपा मन भयउ अलोला। अतः रामजी मनुष्य

---

१. यहाँ काव्यलिङ्ग अलङ्कार है।

नहीं हैं। सुग्रीव को दो आँखें हैं। उन्होंने पहिचान लिया। तुम्हें बीस आँखें हैं। तुम नहीं पहिचान सकते। क्या किसी आँख से कुछ नहीं सूझता ?

साधु समाज न जाकर लेखा। राम भगत महु जासु न रेखा। जाय जिअत जग सो महि भारू। जननी जौबन बिटप कुठारू। अतः तुम्हारे जीवन को धिक्कार है। तू पितृ पितामह क्रम में न पड़के मातामह के क्रम में पड़ा। अतः तू कुजाति है और तू जड़मति है। इसलिए जड़ है।

दो. तव सोनित की प्यास, तृषित राम सायक निकर।
तजौं तोहि तेहि त्रास, कटु जल्पक निसिचर अधम ॥३३.क॥

अर्थ : रामजी के बाण तेरे रक्त के प्यासे हो रहे हैं। रे कटुवादी अधम राक्षस ! उसी भय से मैं तुम्हें छोड़ देता हूँ।

व्याख्या : प्यासे का पेय यदि कोई हरण कर ले तो वे उसपर अत्यन्त क्रुद्ध हो जाते हैं। रामजी के बाणों को तेरे रक्त की पिपासा है। यदि मैं तुम्हें मार डालूँ तो वे मुझपर बड़े क्रुद्ध हो जावेंगे और मैं उनके क्रोध से डरता हूँ। इससे तुझे नहीं मारता। नहीं तो निशिचर होने से अधम होने से तथा कटु जल्पक होने से तू सब प्रकार से वध्य है।

मैं तव दसन तोरिबे लायक। आयसु मोहि न दीन्ह रघुनायक ॥
अस रिसि होत दसौं मुख तोरौं। लंका गहि समुद्र महँ बोरौं ॥१॥

अर्थ : मैं तेरे दाँत तोड़ने में समर्थ हूँ। पर मुझे रघुनायक ने आज्ञा नहीं दी। ऐसा क्रोध होता है कि तेरे दसों मुख को तोड़ डालूँ और लंका को उठाकर समुद्र में डुबा दूँ।

व्याख्या : मरकट हीन करहु महि जाई। जिअत धरहुँ तापस दोउ भाई। का उत्तर देते हुए अङ्गदजी कहते हैं कि ये जो भागे जाते हैं इनकी गिनती क्या है। मैं तेरे दाँत तोड़ने में समर्थ हूँ। सरकार ने मुझे केवल बतकही की आज्ञा दी है। यथा : काज हमार तासु हित होई। रिपुसन करेहु बतकही सोई। इसका अभिप्राय ही यही है कि कोई उपद्रव न कर बैठना।

मैं समर्थ भी हूँ और मुझे क्रोध भी ऐसा है कि तेरे सब मुखों को खण्डित कर दूँ जिन मुखों से तेरे ऐसी बेतुकी बातें निकली हैं और मही को राक्षसहीन करने के लिए लंका को उठाकर समुद्र में डुबा दूँ। तेरे एक मुख ने राम की निन्दा की है। पर मेरा क्रोध इतना है कि उसी एक को तोड़कर शान्त न होगा। दसों को तोड़ डालूँ और लंका को समुद्र में डुबा दूँ तो शान्त होगा।

गूलरि फल समान तव लंका। बसहु मध्य तुम जंतु असंका ॥
मैं बानर फल खात न बारा। आयसु दीन्ह न राम उदारा ॥२॥

अर्थ : गूलर के फल के समान तेरी लंका है। उसी में तुमलोग कीटों की

भाँति निःशङ्क होकर बसते हो। मैं बानर ठहरा। मुझे फल खाने में देर नहीं। पर उदार रामजी ने आज्ञा न दी।

व्याख्या : गूलर के फल के भीतर जन्तुओं को बाह्य जगत् से कोई सम्बन्ध नहीं रहता। वे निडर होकर उसी गूलर फल में बसते हैं। इसी भाँति लंकापुरी भी संसार भर से असम्बद्ध है। यथा : खाईं सिंधु गंभीर अति चारिहिं दिसि फिरि आव। मैं ऐसा बन्दर हूँ कि इस लंका को गूलर के फल के समान भक्षण कर सकता हूँ अर्थात् लंका के लिए मैं कालस्वरूप हूँ। यथा : ऊमरि तरु बिसाल तव माया। फल ब्रह्मांड अनेक निकाया। जीव चराचर जन्तु समाना। भीतर बसहिं न जानहिं आना। ते फल भच्छक कठिन कराला। तव भय डरत सदा सोउ काला। मैं ऐसा बन्दर नहीं हूँ कि तुम्हारे राक्षस मुझे पकड़कर मार डालें। निर्गलितार्थ यह कि सम्पूर्ण लंका को विध्वंस करना मेरे लिए खेल है और तेरी उक्तियों से मुझे क्रोध भी ऐसा ही है। पर स्वामी हमारा बड़ा उदार है। शत्रु का भी अहित नहीं चाहता। यदि तुम सीताजी को देकर मिल जाओ तो तुम्हारा अपराध क्षमा हो सकता है। उन्होंने आज्ञा नहीं दी और बिना उनकी आज्ञा हम फल नहीं खाते। यथा : सिंधु पार प्रभु डेरा कीन्हा। सकल कपिन्ह कहँ आयसु दीन्हा। खाहु जाइ फल मूल सुहाये। सुनत भालु कपि जहँ तहँ धाये।

जुगुति सुनत रावन मुसुकाई। मूढ़ सिखिहि कहँ बहुत झुठाई॥
बालि न कबहुँ गालु अस मारा। मिलि तपसिन्ह तैं भयेसि लबारा॥३॥

अर्थ : युक्ति सुनते ही रावण मुसुकराया। कहने लगा कि मूढ़! तूने ऐसी झुठाई कहाँ सीखी? बालि ने तो कभी ऐसी शेखी नहीं बघाड़ी। तपस्वियों के साथ से तू भी झूठा हो गया।

व्याख्या : अङ्गदजी ने जानबूझकर ऐसी बात कही जिसमें रावण उन्हें झूठा कहे और तब उन्हें बल प्रदर्शन का अवसर मिले। इससे अधिक उसे निरुत्तर करने का कोई उपाय नहीं था। अङ्गदजी की युक्ति काम कर गयी। रावण मुसकुरा पड़े। कहने लगे कि तूने इतना झूठ कहाँ से सीखा? तू मूढ़ है। तुझे इतना परिज्ञान नहीं है कि मैं तेरी धमकी में नहीं आ सकता। यदि कहो कि बालि से सीखा तो बालि ऐसा गप्प नहीं हाँकता था। भाव यह कि वह भी गप्प हाँकता था। कहता था कि मैंने रावण को काँख में दाब रक्खा था। पर इतना गप्प नहीं हाँकता था जितना कि तू हाँकता है।

ये तपस्वी झूठ बहुत बोला करते हैं और न हो तो अपनी आयु ही बहुत बड़ी बतलाते हैं। अथवा श्रीरामजी तथा लक्ष्मणजी पर आक्षेप करता है कि ये लोग झूठ बोलते हैं। उनका साथ करते करते तू भी झूठा हो गया।

साँचेहु मैं लबार भुज बीहा। जौ न उपारिउँ तव दस जीहा॥
समुझि राम प्रताप कपि कोपा। सभा माँझ पन करि पद रोपा॥४॥

अर्थ : यदि मैं तेरी दसों जीभ न उखाड़ लूँ तो सचमुच ही मैं झूठा हूँ। श्रीरामजी के प्रताप को स्मरण कर अङ्गदजी ने क्रोध किया और सभा में प्रण करके पैर रोप दिया।

व्याख्या : अङ्गदजी कहते हैं कि तुझे बीस भुजा होने का अभिमान है तो मेरी प्रतिज्ञा सुन। मैं तेरी दसों जीभ उखाड़ लूँगा अर्थात् तुझे चुप कर दूँगा। ऐसी प्रतिज्ञा करके अङ्गदजी ने प्रभु के प्रताप का स्मरण किया और क्रोध करके सभा के बीच में पैर रोप दिया। सभा के बीच में पैर रोपने का भाव यह कि सम्पूर्ण लंका के निवासियों को ललकार है। और तब तक जो राक्षस भागे थे वे लौटकर आ गये थे।

जौ मम चरन सकसि सठ टारी। फिरहि राम सीता मैं हारी॥
सुनहु सुभट सब कह दससीसा। पद गहि धरनि पछारहु कीसा॥५॥

अर्थ : अङ्गदजी ने कहा कि रे शठ! यदि तू मेरा चरण हटा सके तो रामजी लौट जायँगे। मैं सीता को हारता हूँ। रावण ने कहा : सब वीरो! सुनो इस बन्दर का पैर पकड़कर पृथ्वी पर पटक दो।

व्याख्या : भाव यह कि अभी झूठ सच की परीक्षा हुई जाती है। मैं दूत हूँ तुझे सन्धि विग्रह आदि करने का अधिकार है। मैं स्वामी की ओर से हार जीत कर सकता हूँ। मैं पैर रोपे हुए हूँ। इस पैर को यदि तुम हटा दो तो रामजी विना युद्ध किये लौट जायँगे। मैं उनकी ओर से सीता को हारता हूँ। यह स्वामी की महा महिमा और सेवक के वज्र विश्वास का उदाहरण है। यथा : तेहि समाज कियो कठिन पन जेहि तौल्यो कैलास। तुलसी प्रभु महिमा कहौं सेवक को विस्वास।

जिस भाँति अङ्गदजी अपने स्वामी के प्रतिनिधि होकर हार जीत की प्रतिज्ञा करते हैं उसी भाँति रावण स्वयं न उठकर अपने प्रतिनिधि रूप से लङ्का के वीरों को आज्ञा देता है कि लो! सब झगड़ा खतम हुआ जाता है। बस इस बन्दर का पैर पकड़कर पृथ्वी पर पछाड़ दो।

इन्द्रजीत आदिक बलवाना। हरषि उठ जहँ तहँ भट नाना॥
झपटहिं करि बल बिपुल उपाई। पद न टरै बैठहिं सिरु नाई॥६॥

अर्थ : इन्द्र के जीतनेवाले मेघनाद आदि योद्धा होकर उठ खड़े हुए तथा अन्य नाना भट भी खड़े हुए। वे बहुत बल लगाकर अनेक उपाय करके झपटते थे। पर जब पैर न टला तो सिर नीचे करके बैठ गये।

व्याख्या : बारिदनाद जेठ सुत तासू। भट महँ प्रथम लीक जग जासू। सो पहिले ही मेघनाद उठ पड़े। मन में सोचा कि यह कौन सी बड़ी बात है और उसके समकक्ष और भी वीर कुमुख अकंपन कुलिसरद धूम्रकेतु अतिकाय। एक एक जग जीत सक ऐसे सुभट निकाय। उठ खड़े हुए। इनके अतिरिक्त नाना भट भी हर्षित

होकर उठ खड़े हुए कि बिना युद्ध किये पैर पकड़ कर गिरा देना कौन सी बड़ी बात है। यह तो हम भी कर सकते हैं। बड़ी प्रसन्नता है कि सहज में ही बड़ी भारी बला टली जिसकी चिन्ता हम लोगों को रात दिन थी।

झपेटा में ही गिरा देना चाहते हैं। फिर पूरी शक्ति लगा देते हैं। फिर भी काम होते न देखकर नखक्षत आदि करते हैं। पैर नहीं टलता तो सिर नीचा करके बैठते हैं। एक अङ्गद द्वारा सबका पराभव हुआ। अङ्गद ने दिखला दिया : मैं बानर फल खात न बारा।

पुनि उठि झपटहिं सुर आराती। टरै न कीस चरन एहि भाँती॥
पुरुष कुजोगी जिमि उरगारी। मोह बिटप नहि सकै उपारी॥७॥

अर्थ : देवशत्रु फिर उठ उठकर झपटते हैं। परन्तु अङ्गदजी का चरण इस भाँति नहीं हिलता जिस भाँति कुयोगी पुरुष मोह के वृक्ष को नहीं उखाड़ सकते।

व्याख्या : जब बल करके खूब थक जाते थे तब आकर बैठ जाते थे। दम ले लेकर फिर उठते थे यह समझकर कि इतने वीर बल लगा चुके। अब तो अङ्गद थक ही गये होंगे। पर उनका चलाया अङ्गद का पैर नहीं चलता। यहाँ कवि उपमा देते हैं कि जैसे जिन योगियों के हृदय में रामप्रेम नहीं है वे योग करते करते मर जाते हैं पर उनका मोह नहीं जाता। यथा : जोग कुजोग ज्ञान अज्ञानू। जहँ नहीं राम प्रेम परधानू।

दो. भूमि न छाड़त कपि चरन, देखत रिपु मद भाग।
कोटि बिघ्न ते संत कर, मन जिमि नीति न त्याग॥३४॥

अर्थ : अङ्गदजी का पैर पृथ्वी नहीं छोड़ता। यह देखकर शत्रु का अभिमान दूर हो गया। जैसे कठोर विघ्न होने पर भी सन्त का मन नीति को नहीं त्यागता।

व्याख्या : यहाँ पृथ्वी की उपमा नीति से है और सन्त की उपमा कपिचरण से है और सुर आराती के झपट की उपमा कोटि विघ्न से है। इतने वीर उठे और थककर बैठ गये। अङ्गदजी का पैर हटा न सके। यह देखकर रावण का अभिमान दूर हो गया। रावण कहते थे : तुम सुग्रीव कूलद्रुम दोऊ। सो जिसे कूलद्रुम समझते थे वह तो कैलास से भी अधिक अचल प्रमाणित हो रहा है। जिसका पैर उठाया नहीं उठता उससे युद्ध करने की कौन सी कथा है। वह ठीक कहता है : आयसु पै न दीन्ह रघुनाथा। इस भाँति रावण का अभिमान दूर हुआ।

अब कपि के चरण के पृथ्वी न छोड़ने की उपमा सन्त के मन का नीति के न त्यागने से देते हैं। नीति पथ पर चलने में अनेकानेक बाधाएँ उपस्थित होती हैं। जिनसे अभिभूत होकर सामान्य लोग नीति छोड़ देते हैं पर सन्त की यही परीक्षा है कि चाहे कितने विघ्न आवें पर वे कभी नीति पथ का परित्याग नहीं कर सकते। यदि नीतिपथ से विचलित हो गये तो वे सन्त नहीं। न्याय्यात् पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः।

कपि बलु देखि सकल हिय हारे। उठा आप कपि के परचारे ॥
गहत चरन कह बालि कुमारा। मम पद गहे न तोर उबारा ॥१॥

अर्थ : बन्दर का बल देखकर सबकी हिम्मत छूट गयी। तब अङ्गदजी के ललकारने पर स्वयं उठा। पर पकड़ते समय वालि के बेटे ने कहा कि मेरे पैर पकड़ने से तेरी रक्षा न होगी।

व्याख्या : जब किसी उपाय से पैर न उठा तब सबका साहस जाता रहा। अब कोई पैर उठाने नहीं आ रहा है। अङ्गदजी ने यह दिखला देना चाहा कि तू केवल निर्भयता का दिखावा करता है। वस्तुतस्तु तू श्रीरामजी के आगमन से भयभीत है। यदि भयभीत न होता तो सबको मेरा चरण पकड़ने को क्यों कहता ? कह सकता था कि सीता लंका में कैद है। तुम उसे हारने क्या आये हो ? बात तो यह है कि राम किसी भाँति फिर जायँ। हम लोगों की रक्षा हो। इसी भावना से रावण ने चरण पकड़ने की आज्ञा दी और इसी अभिलाषा से इन्द्रजीत आदिक योद्धा तैयार हो गये। जब अङ्गदजी ने देख लिया कि अब कोई पैर उठाने नहीं आता है तब रावण को ललकारा कि बहुत कहते थे कि मैंने कैसे कैलास उठाया है। आज तुम्हारा कैलास उठाना देखा जायगा। आओ उठाओ।

रावण रामजी के लौट जाने के इतने इच्छुक थे कि स्वयं राज सिंहासन छोड़कर दूत का पैर पकड़ने चले। साहस तो उनका भी छूटा हुआ था पर ललकार पर उठ ही गये। रावण अङ्गदजी के पास पहुँच गये और झुके पैर उठाने को। अङ्गदजी ज्यों का त्यों पैर रोपे हुए उससे बोले कि मेरे पैर पकड़ने से तेरी रक्षा न होगी। तू पैर नहीं उठा सकेगा। जब तू इतना आर्त्त है कि अपनी रक्षा के लिए उठकर मेरा पैर पकड़ने आया तो :

गहसि न रामचरन सठ जाई। सुनत फिरा मन अति सकुचाई ॥
भजेउ तेजहत श्री सब गई। मध्य दिवस जिमि ससि सोहई ॥२॥

अर्थ : रे शठ ! तू रामजी का चरण क्यों नहीं पकड़ता। सुनते ही मन से बहुत लज्जित होकर लौट आया : वह तेज हत हो गया। उसकी श्री चली गयी। जैसे मध्याह्न के समय चन्द्रमा की गति हो जाती है।

व्याख्या : अङ्गदजी जानते हैं कि यहाँ रामप्रताप काम कर रहा है। रावण भी मेरा पैर नहीं उठा सकता। परन्तु यह नहीं चाहते थे कि वह पैर उठावे और उनका पैर उससे न उठे। क्योंकि ऐसा होने से रावण वध का यश जो रामजी को मिलनेवाला है बहुत कुछ कम हो जायगा। लोग कहेंगे कि जो रावण अङ्गद का पैर नहीं उठा सका उसके मारने से रामजी का कौन सा पुरुषार्थ है। अतः अङ्गदजी ने ऐसी बात कही जिससे रावण का परम हित हो और रामजी का भी कार्य हो। उन्होंने कहा कि जब रामजी के लौट जाने के लिए तुम मुझ दूत का भी चरण ग्रहण कर रहे हो तो इसी भाँति रामजी का चरण ग्रहण करो। जब यहाँ तक के

लिए तुम तैयार हो गये तब भी रामजी के चरणग्रहण करने में पराङ्मुख होना तुम्हारी शठता है।

रावण यह बात सुनते ही अति सङ्कुचित हुए और तुरन्त लौट गये : सम्भावित सम्राट् होकर दूत के ललकार पर पैर पकड़ने उठे और वह मजाक करता है। रावण यदि समझते कि वे पैर उठा सकते हैं तो वे ऐसे जीव नहीं थे कि अङ्गदजी के ऐसा कहने पर सङ्कुचित होकर लौट जाते। उन्होंने समझ लिया कि जब इन्द्रजीत इसे नहीं उठा सकता तो मुझसे भी नहीं उठेगा; मुझसे बड़ी चूक हुई जो मैं दूत के पैर पकड़ने उठ पड़ा। अब जो कुछ वह कहता है ठीक है।

यहाँ रावण ऐसे चूके कि उनके पास कोई उत्तर नहीं है। उनका तेज जाता रहा। बड़ा भारी पराभव होने से मुखपर से राज्यश्री जाती रही। रामजी प्रबल प्रताप मध्याह्न के सूर्य की भाँति ऐसे चमके कि रावण की दशा उस समय के चाँद की भाँति हो गयी। अङ्गदजी ने रामप्रताप का स्मरण करके प्रतिज्ञा की सो रामप्रताप ने पूरा कर दिया।

सिंहासन बैठेउ सिर नाई। मानहु संपति सकल गँवाई॥
जगदातमा प्रानपति रामा। तासु बिमुख किमि लह बिश्रामा॥३॥

अर्थ : वह सिर नवाकर सिंहासन पर जा बैठा। मानो उसने सारी सम्पत्ति गँवा दी। रामजी जगत् के आत्मा और प्राणपति हैं। उनके विमुख को विश्राम कैसे मिलेगा ?

व्याख्या : रावण का गाल बजाना बन्द हो गया। दसों जिह्वाएँ स्तम्भित हो गयीं। अङ्गद का प्रण पूरा हुआ। यही दसों जिह्वाओं का उखाड़ना है। जिस तरह पैर न उठा सकने पर सब सिर नीचा करके बैठे थे उसी भाँति रावण भी सिंहासन पर सिर नीचा करके बैठे[1]। अतः भयेउ तेज हत कहा। अब मानहु संपति सकल गँवाई से श्री सब गयी इस उक्ति को स्पष्ट करते हैं।

अब श्री गोस्वामीजी कहते हैं कि रामजी जगत् की आत्मा हैं। अतः रावण की भी आत्मा हैं। उसके भी प्राण के पति हैं। संसार को विश्राम आत्मा में ही मिलता है। क्योंकि वही अत्यन्त प्यारा है। उस जगदम्बा से जो विमुख हुआ उसे विश्राम कहाँ ?

उमा राम की भृकुटि बिलासा। होइ बिस्व पुनि पावै नासा॥
तृन ते कुलिस कुलिस तृन करई। तासु दूत पन कहु किमि टरई॥४॥

---

१. दो प्रकार की चतुराई होती है। एक हरि सम्मुख ले जानेवाली और दूसरी विमुख ले जानेवाली। रावण अङ्गद संवाद में दोनों का सामना पड़ गया। अन्त में पहिली चतुराई की विजय हुई। रावण सिर झुकाकर बैठे।

अर्थ : हे उमा ! रामजी के भृकुटि विलास से विश्व उत्पन्न होता है। और लय हो जाता है जो तृण को वज्र और वज्र को तृण बनाता है उसके दूत का पैर कैसे टल सकता है।

व्याख्या : संशय का अवसर देखकर शिवजी स्वयं समाधान किये देते हैं। कहते हैं कि विश्व की उत्पत्ति स्थिति और संहार रामजी के भृकुटि विलास से होता है। अर्थात् जगत् की उत्पत्ति स्थिति तथा लय ऐसा महान् कार्य उनके द्वारा आनायासेन होता है और यह भी भाव है कि एक कल्प जो ब्रह्मदेव का एक दिन है वह रामजी का एक निमिष है। अतः वे ब्रह्मदेव से भी अत्यन्त महान् हैं। तृण को वज्र और वज्र को तृण वे दिन रात बनाया करते हैं। बन्दर तृण से वज्र और राक्षस वज्र से तृण बना रहे हैं। ऐसे समर्थ का जो दूत है उसका पैर कैसे टलेगा। ऐसे समय पर शिवजी उमा को बराबर सावधान किया करते हैं। यथा : उमा न कछु कपि कै अधिकाई। प्रभुप्रताप जो कालहि खाई।

पुनि कपि कही नीति बिधि नाना। मान न ताहि कालु नियराना ॥
रिपुमद मथि प्रभु सुजस सुनायो। यह कहि चल्यो बालि नृपजायो ॥५॥

अर्थ : फिर अङ्गदजी ने नाना प्रकार की नीति कही। पर उसकी मृत्यु निकट थी। उसने एक न मानी। शत्रु के मद का मन्थन करके प्रभु का सुयश सुनाया और वालि का राजकुमार यह कहकर चला।

व्याख्या : अब अभिमान भंग हो गया है। सम्भव है कि इसे श्रवण का अधिकार प्राप्त हो गया हो। अतः ऊँचा नीचा दिखाते हुए उसे अनेक प्रकार की नीति कह कहकर समझाया। पर रावण का काल सन्निकट था। उसने न माना : कालदंड गहि काहु न मारा। हरै धर्म बल बुद्धि बिचारा।

भूमि न छाड़त कपि चरन देखत रिपु मद भाग। इसलिए कहते हैं कि अङ्गदजी ने पहिले शत्रु के मद का मन्थन किया तत्पश्चात् प्रभु का सुयश सुनाया। पहिले तो रावण सुयश सुनता ही नहीं था। उत्तर देने लग जाता था। परन्तु अब निरुत्तर होकर सुन तो लिया पर माना एक नहीं। तब अङ्गदजी अन्त में यह कहकर वहाँ से चले कि :

हतउँ न खेत खेलाइ खेलाई। तोहि अबहिं का करौं बड़ाई ॥
प्रथमहि तासु तनय कपि मारा। सो सुनि रावन भयउ दुखारा ॥६॥
जातुधान अंगद पन देखी। भय व्याकुल सब भये बिसेखी ॥७॥

अर्थ : तुझे रणक्षेत्र में खेल खेलाकर न मारूँ तो अभी तुझसे क्या बड़ाई करूँ। अङ्गदजी ने पहिले ही उसके पुत्र का वध किया था। यह सुनकर रावण और भी दुःखी हुआ। राक्षस लोग अङ्गद का प्रण देखकर विशेषरूप से व्याकुल हुए।

व्याख्या : थकाकर मारना तथा युद्ध करने के लिए अवसर देते जाना इसी

को खेलाना कहते हैं। शत्रु को अवसर पाते ही वध कर देने का नियम है। परन्तु अत्यन्त बलवान् लोग शत्रु को अवसर पाने पर भी कई बार छोड़ देते हैं। जिसमें उसको युद्ध का हौसला बाकी न रहे। अङ्गदजी कहते हैं कि हम लोग तुम्हें खेला खेलाकर मारेंगे। यथा : गहि भूमि पारेउ लात मारेउ बालिसुत प्रभु पहँ गयो। यथा : अस कहि अंगद मारेउ लात। अङ्गदजी कहते हैं कि इस समय बड़ाई क्या करूँ। भाव यह कि समरांगण में कहूँगा। यथा : रन ते निलज भाजि गृह आवा। इहाँ आइ बक ध्यान लगावा। इत्यादि।

अङ्गदजी के चले जाने पर राक्षसों ने प्रशस्तकुमार के मारे जाने का वृत्तान्त सुनाया। पहिले कहने से रावण पूछते कि कौन कौन उस समय थे और उन्होंने बन्दर को क्यों नहीं मारा। समाचार देनेवाले का बड़ा उत्तरदायित्व था। अब ऐसे प्रश्न के लिए किसी का मुँह नहीं रह गया। तब राक्षसों ने समाचार सुना दिया। रावण ने भी चुपके से सुन लिया और बहुत दुःखी हुआ।

हनुमान्जी का बल देखकर तो सब विकल थे। पर रावण अपनी उक्तियों से धैर्य देता जाता था कि सेनाभर में एक वही बन्दर बलवान् है। पर आज वह धारणा भी जाती रही। दूसरा बन्दर जो आया। उसके बल का भी वारापार किसी को न मिला। अतः वे सब विशेषरूप से भयव्याकुल हुए।

दो. रिपु बल धरषि हरषि कपि, बालितनय बलपुंज।
पुलक सरीर नयन जल, गहे रामपद कंज॥

मन्दोदरी का रावण को समझाना : चौथी बार

दो. साँझ जानि दसकंधर, भवन गये बिलखाइ।
मंदोदरी रावनहिं, बहुरि कहा समुझाइ॥३५॥

अर्थ : शत्रु के बल को रगड़कर बालि के पुत्र बलपुंज अङ्गद ने प्रसन्न होकर रामजी के चरणकमल को पकड़ा। सन्ध्या समय जानकर रावण बिलखकर महल में आये। तब मन्दोदरी ने उस राक्षस को फिर समझाकर कहा।

व्याख्या : बल का अर्थ सेना भी होता है। अङ्गदजी ने रावण को और उनके सम्पूर्ण सुभटों को अच्छी तरह से रगड़ दिया। उनको बतकही के लिए आज्ञा हुई थी। यथा : काज हमार तासु हित होई। रिपुसन करेहु बतकही सोई। सो बतकही में रावण की जिह्वा स्तम्भित कर दिया। इस सफलता पर हर्षित हैं। चलने के समय : स्वयं सिद्ध तब काज नाथ मोहि आदर दयउ। अस बिचारि जुवराज तन पुलकित हरखित हिये। और आये तब भी पुलक तन होकर आये। चलने के समय रामदूत के पद प्राप्ति के आनन्द से पुलक उठ रहा था और लौटे तो सरकार के कृपाकटाक्ष के प्रभाव की असीम महिमा का ध्यान करके आनन्द से सजल नयन और पुलकतन हो रहे थे। पूरा दिन रावण की सभा में बीता।

रावण सन्ध्या समय सभा से घर जाते थे। यथा : सन्ध्या समय जानि दससीसा। भवन चलेउ निरखत भुज बीसा। सो आज भी सन्ध्या समय घर चले। परन्तु विलखाकर घर गये। भुज बीस का भरोसा जाता रहा। लड़का मारा गया इस बात का भी बड़ा दुःख है। सभा के बीच में मानमर्दन हुआ यह ऊपर से। मन्दोदरी तीन बार समझा चुकी है। अन्तिम बार फिर समझाने चली है कि इतनी दुर्दशा पर सम्भव है कि मेरी बातों का कोई प्रभाव पड़े। पर वह निशाचर है। भली बात मान नहीं सकता।

कंत समुझि मन तजहु कुमतिही। सोह न समर तुमहि रघुपतिही॥
रामानुज लघु रेख खँचाई। सोउ नहिं नाघेहु असि मनुसाई॥१॥

अर्थ : हे कन्त ! मन में समझकर कुमति को छोड़ दो। तुम्हारे और रघुपति के बीच की लड़ाई शोभा नहीं देती। रामजी के छोटे भाई ने छोटी सी रेखा खेंच दी। उसका उल्लंघन न कर सके। ऐसा तो तुम्हारा पुरुषार्थ है।

व्याख्या : मन्दोदरी को सभा में जो जो दुर्गति हुई है उसका अक्षरशः पता है। आज सभा सहित रावण का पराभव अङ्गद द्वारा हुआ है। किसी में इतना पुरुषार्थ नहीं था कि अङ्गद का पैर हटा सके। अतः आज रावण को यह उत्तर देने का मुँह नहीं है कि : जौ आवै मरकट कटकाई। जियहि बिचारे निसिचर खाई। कंपहि लोकप जाकी त्रासा। तासु नारि सभीत बड़ि हाँसा। जानेउँ प्रिया तोरि चतुराई। एहि विधि कहेउ मोर प्रभुताई। इत्यादि। अतः मन्दोदरी बोली। यहाँ कन्त सम्बोधन का भाव यह कि केवल स्त्री ही भाग्य की संगिनी है। अतः उसे भले बुरे में सम्मति देने का अधिकार है। स्थिति बड़ी गम्भीर है। गाल बजाकर बात टालने से काम न चलेगा। तुमने कुमति का आश्रयण कर रक्खा है उसका परित्याग करो। विभीषण ने ठीक कहा था कि : तव उर कुमति बसी विपरीता। तुम अनीति कर रहे हो। प्रीति विरोध समान सन करिअ नीति अस आहि। श्रीरामचन्द्र में और तुम में बड़ा भारी अन्तर है। उनसे वैर बढ़ाना बड़ो भारी कुबुद्धि है। अनीति है। अब उस अन्तर को स्पष्ट करती हुई कहती है कि तुम्हारा पुरुषार्थ तो इतना अल्प है कि रामजी की बात तो दूर रहे उनके छोटे भाई ने सीताजी के चारों ओर रक्षा के लिए एक रेखा खेंच दी थी। उसका उल्लंघन करके सीताजी का हरण न कर सके। वहाँ जाकर भिक्षा माँगना पड़ा। जब सीताजी रेखा के बाहर आयीं तब तुम हरण कर सके। जिसकी खेंची हुई रेखा का उल्लङ्घन करना तुम्हारे सामर्थ्य के बाहर की बात है उससे युद्ध करने की बात मन में लाना भी अकल्याणकर है। ऐसे बलवान् से युद्ध करने में शोभा नहीं है। सूर्य के साथ खद्योत का युद्ध कैसा ?

पिय तुम ताहि जितब संग्रामा। जाके दूत केर यह कामा॥
कौतुक सिंधु नाँघि तव लंका। आयेउ कपि केहरी असंका॥२॥

अर्थ : हे प्रिय ! तुम उसे युद्ध में जीतोगे ? जिसके दूत की ऐसी करणी है।

खेल में ही समुद्र का उल्लङ्घन करके तुम्हारी लंका में वह कपि केसरी वेडर चला आया।

व्याख्या : तुम प्रिय हो। तुम्हारा अनिष्ट न हो इसलिए कहती हूँ कि विचारो तो तुम सीता को जो नहीं देते हो। वह जीत की आशा से ही नहीं दे रहे हो। सो क्या तुम उन्हें जीत सकोगे ? : पीड़ा बढ़ाने के लिए पुत्रवध तथा पैर न उठा सकने का नाम नहीं लेती है। केवल इंगित किये देती है : जिसके दूत की ऐसी करणी है। दूत के योद्धा होने का नियम नहीं है। उसके सुभट सेनापति और स्वयं उसके सामने तुम क्या कर सकोगे ? यह बात भी नहीं कि सेनाभर में केवल अङ्गद ही बलवान् है। इसके पहिले भी दूत के ही रूप से कपिकेसरी आया था। शौर्य क्रौर्य आदि गुणों से हनुमान्‌जी को कपिकेसरी कहती है। अथवा केसरी के पुत्र होने से कपि केसरी कह रही है। अङ्गद तो सेतु बँधने पर आया है और वह कपि केसरी तो समुद्र लांघकर आया। समुद्रोल्लंघन उसके लिए खेल था। यथा : लीलहि लाँघउँ जलनिधि खारा। उसके पराक्रम और साहस को देखो कि अकेला तुमसे रक्षित जो लङ्कापुरी है उसमें घुस आया।

रखवारे हति बिपिन उजारा। देखत[1] तोहि अच्छ तेहि मारा ॥
जारि सकल पुर कीन्हेहि छारा। कहाँ रहा बल गर्व तुम्हारा ॥३॥

अर्थ : रखवालों को मारकर वन को उजाड़ डाला। तुम्हारे आंखों के सामने अक्षकुमार को मारा नगर को जलाकर छार कर दिया। तब तुम्हारे बल का अभिमान कहाँ रह गया ?

व्याख्या : इतनी जबरदस्ती उसने तुम्हारे साथ की। प्राणों से प्यारा मेघनाद सा दुलारा बाग उसने उजाड़ा रक्षकों को मार डाला। तुम्हारे सामने अक्षकुमार का वध किया। सोने की लङ्का जलाकर छार कर दिया। थोड़े से सोने का जलाना कठिन होता है। उसने तुम्हारी सोने की लङ्का जलाई। बेटा मारा सेना का संहार किया और तुम उसका कुछ न कर सके। तुम्हारा बल का अभिमान तो उसी ने तोड़ डाला अब क्या बल का अभिमान करते हो।

अब पति मृषा गाल जनि मारहु। मोर कहा कछु हृदय बिचारहु ॥
पति रघुपतिहि नृपति जनि मानहु। अगजगनाथ अतुल बल जानहु ॥४॥

अर्थ : हे पति ! अब झूठी डींग न हाँको मेरा कहा कुछ मन में विचारो। हे स्वामी ! रामजी को राजा न मानो। उन्हें चराचर का स्वामी और अतुल बल जानो।

व्याख्या : पति हो। तुम से ही मेरा सौभाग्य है। तुमने किसी के कहने का विचार नहीं किया। न बेटे का सुना न भाई का सुना न दादा : पुलस्त्य का सुना।

---

१. यहाँ विभावना : तृतीय : अलङ्कार है।

मैं तुम्हारी अर्धाङ्गिनी हूँ। मेरी बात को तो मन में विचारो। झूठे गाल बजाने में कुछ रक्खा नहीं है। हे स्वामिन्! रघुपति को कोरा नरपति न समझ रक्खो। मनुष्य कहीं ऐसे होते हैं? जो घटना घट रही है वह मनुष्य के सामर्थ्य की बात नहीं है। बन्दर समुद्रोल्लंघन करके तुम्हारी लङ्का में प्रविष्ट होकर अशोक वन विध्वंस और अक्ष का वध नहीं कर सकता। बन्दर में इतना सामर्थ्य नहीं हो सकता कि उसका पैर कोई न हटा सके। यहाँ परमेश्वरी शक्ति काम कर रही है। जिसके सामने तुम्हारे ऐसे की कुछ नहीं चल रही है। यह विचारने की बात है। अतः रामजी चराचर के नाथ हैं। तुमने चराचर से द्रोह कर रक्खा है। अतः चराचर की रक्षा के लिए वे आये हुए हैं उनके बल से ही सब बलवान् हैं उनके बल का नाप तौल नहीं है। उनका अपमान न करो।

बान प्रताप जान मारीचा। तासु कहा नहि मानेहि नीचा॥
जनक सभा अगनित भुव पाला। रहे तुम्हउ बल अतुल बिसाला॥५॥

अर्थ : बाण का प्रताप मारीच जानता था। तुमने नीचता करके उसका कहना नहीं माना। जनक की सभा में असंख्य राजा थे और बड़े अतुल बलवाले तुम भी थे।

व्याख्या : उनके बाण का प्रताप मारीच जानता था। उसने तुमसे कहा मुनि मख राखन गयउ कुमारा। बिनु फरसर रघुपति मोहि मारा। सत जोजन आयउँ छन माहीं। तिन सन बैर किये भल नाहीं। पर तुमने ऐसी नीचता की कि उस हितवादी को गालियाँ दीं और अन्त में उसका प्राण लेकर छोड़ा। यथा : जाहु भवन कुल कुसल बिचारी। सुनत जरा दीन्हिसि बहु गारी।: इस भाँति मन्दोदरी ने मुनिमख रक्षण की कथा कही अब सीता स्वयम्बर कह रही हैं।

जनक की सभा में द्वीप द्वीप के राजा इकट्ठे थे। यथा : दीप दीप के भूपति नाना। आये सुनि हम जो पन ठाना। देव दनुज धरि मनुज सरीरा। बिपुल बीर आये रनधीरा। तुम भी अपने को बड़ा अतुल बल माननेवाले वहीं थे। भाव यह कि उस सभा में पुरुषार्थ प्रकट करने का अवसर था।

भंजि धनुष जानकी बिआही। तब संग्राम जितेउ किन ताही॥
सुरपति सुत जानइ बल थोरा। राखा जियत आँखि गहि फोरा॥६॥
सूपनखा कै गति तुम्ह देखी। तदपि हृदय नहि लाज बिसेखी॥७॥

अर्थ : वहाँ रामजी ने धनुष तोड़कर जानकी को ब्याहा। तब तुमने उन्हें युद्ध में क्यों नहीं जीता। इन्द्र के पुत्र ने उनके बल को थोड़ा समझा। उसे जीता तो छोड़ा पर पकड़कर आँख फोड़ दी। सूर्पणखा की दशा तुमने देखी तो भी तुम्हारे हृदय में विशेष लज्जा नहीं है।

व्याख्या : इतने लोग वहाँ एकत्रित थे। पर किसी का तोड़ा धनुष न टूटा।

रामजी ने अपने पुरुषार्थ का आश्रयण करके धनुष तोड़कर जानकी ब्याहा। यदि जानकी की इच्छा थी तो तुमने धनुष क्यों नहीं तोड़ा ? यदि कहो कि गुरु का धनुष था इसलिए नहीं तोड़ा तो मैं पूछती हूँ कि उस समय रामजी को संग्राम में जीतने से तुम्हें किसने रोक रक्खा था ? बात यह थी कि तुम्हारा कुछ किया उस समय भी नहीं हुआ तो इस समय क्या करोगे ? इस भाँति बालकाण्ड की कथा मन्दोदरी ने सुनायी। अयोध्या में सरकार ने अपना पराक्रम कहीं नहीं दिखलाया और यहाँ पराक्रम की चर्चा चल रही है। इसलिए अयोध्या न कहकर आरण्य की कथा कहती हैं।

उनके बल के देखने की इच्छा ही उनके बल को थोड़ा समझना है। उनमें इतना अपरिमित बल है कि उसे कोई देख नहीं सकता। इन्द्र के बेटे ने परिमित बल माना। इसलिए उसने देखने की इच्छा की। उसकी यह गति हुई कि उसके प्राण पर आ बनी। सारे लोकपालों के यहाँ भागता फिरा। कहीं शरण न मिली तो फिर उन्हीं के शरण गया। सो प्राण तो छोड़ दिया। पर एक आँख फोड़ दो। कोई देवता हिल न सके। तुम्हें देवताओं के विजय का अभिमान है। तुमने युद्ध करके देवताओं पर विजय पायी है। उनके एक बाण के सामना का साहस सम्पूर्ण देवमण्डल न कर सका।

बल विक्रम सम्पन्न कामगा कामरूपिणी तुम्हारी बहन सूर्पणखा का उन लोगों ने नाक कान काट लिया। न वही कुछ कर सकी न खर दूषण कुछ कर सके। बहन के नाक कान कटने की लज्जा तो तुम्हें आनी थी पर वह भी तुम्हें विशेष रूप से न आयी। विशेष रूप से आती तो खरदूषण की भाँति धावा बोल देते। चोरो करके बदला चुकाने न चलते।

दो. बधि बिराध खरदूखनहि, लीला हतेउ कबंध।
बालि एक सर मारयो, तेहि जानहु दसकंध ॥३६॥

अर्थ : विराध और खरदूषण को मारकर जिसने खेल में कबंध को मारा। एक बाण से जिसने बालि को मारा हे दसकंठ ! उसे जानो।

व्याख्या : जब से होश सँभाला है निशाचरों का सहार कर रहे हैं और विशेष रूप से जब से वन में आये हैं। विराध अमर था। खरदूषण तुम्हारे तुल्य बलवान् थे उन्हें मारा। कबंध इन्द्र के वज्र से नहीं मरा। उसे इन लोगों ने खेल में मारा। यहाँ तक आरण्यकाण्ड की कथा हुई। अब किष्किन्धा काण्ड की कथा कहती है।

बालि तुमसे अधिक बलवान् था उसे एक बाण से मारा। हे दसकण्ठ ! उसे जानों कि वह कौन है। उसका मनुष्य का रूप देखकर न भूलो। सुन्दर और लङ्का-काण्ड के उनके दूतों का पुरुषार्थ है सो सब मन्दोदरी ऊपर कह आयो है।

जेहि जलनाथ बँधायेउ हेला। उतरे प्रभु दल सहित सुवेला ॥
कारुनीक दिनकर कुलकेतू। दूत पठायेउ तव हित हेतू ॥१॥

अर्थ : जिसने खेल में समुद्र बाँध लिया और जो प्रभु सेना के सहित सुवेल पर उतरे उन्हीं कारुनीक सूर्यकुल के पताका ने तुम्हारे कल्याण के लिए दूत भेजा।

व्याख्या : सरकार की प्रभुता मन्दोदरी कहती है कि जब से सृष्टि हुई तब से और आज तक किसी ने समुद्र पर पुल नहीं बाँधा। सो इन्होंने पाँच दिनों में ऐसा पुल बाँधा जिस पर से इतनी बड़ी सेना चढ़कर पार हो गयी। यथा : रामचरन पंकज उर धरहू। कौतुक एक भालु कपि करहू। करहु सेतु प्रयास कछु नाहीं। और सेना सहित सुवेल पर उतरे। यथा : इहाँ सुवेल सैल रघुबीरा। उतरे सेन सहित अति भीरा। सुवेल लंका की छाती पर है। इस से निर्भयता कहा।

परन्तु बात यह है कि रघुवीर युद्धवीर दानवीर तो हैं ही। साथ ही दयावीर भी हैं। बड़ी करुणा है। शत्रु का भी अनभल नहीं करते। यथा : अरिहुँ के अनभल कीन्ह न रामा। दूत भेजने की कोई आवश्यकता नहीं रही। फिर भी तुम्हारे हित के लिए दूत भेजा।

सभा मांझ जेहि तव बल मथा। करि बरूथ महुँ मृगपति जथा ॥
अंगद हनुमत अनुचर जाके। रनबाँकुरे बीर अति बाँके ॥२॥

अर्थ : जिसने सभा के बीच में तुम्हारे बल को मथ डाला। जैसे हाथियों के झुण्ड में सिंह। अङ्गद और हनुमान् जिसके सेवक हैं। जो रण में तीखे और बाँके वीर हैं।

व्याख्या : उस दूत ने भरी सभा में हाथ पटककर तुम्हारा मुकुट गिराया। और अपने स्वामी के पास फेंक दिया। तुम्हारे सब सुभट भाग चले। पैर रोप दिया जो किसी का हटाया नहीं हटा। इस भाँति सेना सहित सबके बल का मन्थन किया। किसी का किया कुछ न हुआ। इतने बड़े डीलडौलवाले मुँह देखते रह गये। जैसे हाथियों की सभा में सिंह जा पड़े वही तुम लोगों की गति हुई। यथा : मत्तगज जुत्थ महँ पंचानन चलि जाइ।

जिनके सेवक अङ्गद और हनुमान् हैं। जिनका पुरुषार्थ देख ही चुके हो ये रण में बड़े कुशल हैं। और अत्यन्त बाँके वीर हैं। उन स्वामी के रण कौशल और शौर्यातिशय का कहना ही क्या है।

तेहि कहुँ पिअ पुनि पुनि नर कहहू। मुधा मान ममता मद बहहू ॥
अहह कंत कृत राम बिरोधा। काल बिबस मन उपज न बोधा ॥३॥

अर्थ : हे पति। उसे तुम बार बार नर कहते हो। तुम व्यर्थ ही मान और ममता के अभिमान को ढो रहे हो। हाय ! तुमने रामजी से विरोध किया। कालवश हो जाने से मन में ज्ञान नहीं उत्पन्न हो रहा है।

व्याख्या : मन्दोदरी अङ्गद सम्बाद सुन चुकी है। रावण को नर कर करेसि बखान। ऐसे मनुज अनेक : इत्यादि कहते सुन चुकी है। इसलिए कहती है कि ऐसे

महान् को तुम बार बार मनुष्य कहकर अपमान करते हो। जिस मान को तुम प्रधानता देते हो। यथा : मोर पराक्रम नहि सुनेहि जितेउँ चराचर झारि। और जिस ममता का तुम्हें भरोसा है। यथा : कुंभकरन अस बन्धु मम सुत प्रसिद्ध सकारि। वह सब व्यर्थ है मिथ्या है। रामजी के सामने ये कुछ नहीं हैं। इन्हें तुम व्यर्थ लिये फिरते हो।

कालुदंड गहि काहु न मारा। हरै धर्म बल बुद्धि बिचारा ॥
निकट काल जेहि आवत सांईं। तेहि भ्रम होइ तुम्हारेहि नाईं ॥४॥

अर्थ ; काल किसी को लाठी लेकर नहीं मारता। वह धर्म बल बुद्धि और विचार को हरण कर लेता है। हे स्वामी! जिसके निकट काल आता है उसे तुम्हारी ही भाँति भ्रम हो जाता है।

व्याख्या : काल अदृश्य पदार्थ है। वह किसी का दृश्य अस्त्र शस्त्र का प्रयोग करके किसी को नहीं मारता। फिर भी लक्षणों से जाना जाता है अर्थात् जिसके वह निकट आता है उसके धर्म बल बुद्धि और विचार को वह हरण कर लेता है। उसके निकट आने का लक्षण यही है कि उसे भ्रम हो जाता है। किसी का कहना वह नहीं सुनता। हित कहनेवाले को वह शत्रु समझता है। वह तुम्हारे ऐसा हो जाता है। भाव यह कि ऐसे पुरुषों के तुम आदर्शरूप हो गये हो। उनके ऐसे तुम नहीं हुए हो। तुम्हारे ऐसे वे हो जाते हैं।

शिशुपाल जब कृष्ण भगवान् को गाली देने लगा। समझाने पर स्वयं भीष्मजी को खरी खोटी सुनाने लगा तो उन्होंने यही कहा कि जिसको ये कृष्ण मारना चाहते हैं उनकी ऐसी ही बुद्धि हो जाती है। जैसी कि शिशुपाल! तुम्हारी हो गयी है।

दो. दुइ सुत मरे दहेउ पुर, अजहुँ पूर प्रिय देहु।
कृपासिन्धु रघुनाथ भजि, नाथ बिमल जसु लेहु ॥३७॥

अर्थ : दो बेटे मारे नगर जलाया। हे प्रिय! अब भी बात समाप्त करो। हे नाथ! कृपा के समुद्र राम को भजकर निर्मल कीर्ति लो।

व्याख्या : तुम्हारे इस रार के कारण दो बेटे मारे गये। नगर जल गया। अर्थात् धन जन दोनों का नाश हुआ। सो जो हुआ सो हुआ यहीं से इतिश्री करो। पूर देहु का प्रयोग ऐसे ही अर्थ में हुआ है। यथा सुनु मतिमन्द देहि अब पूरा। उनसे रार न करो उनको भजो। इससे तुम्हारी निर्मल कीर्ति होगी। तुम्हारी प्रसिद्धि तो है परन्तु दुर्यश है। निर्मल यश तो राम भजन से होता है। तुम्हारा हित लक्ष्य करके दूत भेजा। ऐसे कृपासिन्धु को भजो। वे निश्चय कृपा करेंगे सन्देह न करो। कारुनीक शब्द से उपक्रम करके कृपासिन्धु शब्द से उपसंहार करती हैं।

नारि बचन सुनि बिसिख समाना । सभा गयउ उठि होत बिहाना ॥
बैठ जाइ सिंहासन फूली । अति अभिमान त्रास सब भूली ॥१॥

अर्थ : बाण के समान स्त्री के वचन सुनकर सबेरा होते ही सभा में चला गया । अति अभिमान से सब भय भूल गया और सिंहासन पर फूलकर बैठा ।

व्याख्या : आज रावण के पास उत्तर देने के लिए शब्द नहीं है । पर भीतर अपने संकल्प पर ही दृढ़ है । जब जब किसी ने समझाया तो रावण ने बुरा ही माना । भाई को तो लात मारकर निकाल दिया । आज स्त्री बाण सा वचन बोल रही है और रावण सह रहे हैं । जगद् विजयी रावण काम के तो दासानुदास ही ठहरे । अतः बाण से वचन सुनते रहे । सबेरा कब होगा इसी की प्रतीक्षा रही । रात को सोये नहीं इसीलिए जागना नहीं कहते । केवल लेटे रहे इसलिए उठना कहते हैं । सबेरा होते ही उठकर सभाभवन पहुँचे । किसी की बात एकान्त में सुनने का अवसर जिस में न मिले ।

सिंहासन पर आसीन हुए । सभासद् हाथ जोड़े खड़े हैं । अत्यन्त अभिमान के वेग में त्रास भूल गये । कल त्रस्त हो गये थे । यथा : भवन गयेउ बिलखाइ । आज सब भूल गया । कवि रावण का स्मृतिभ्रंश दिखला रहे हैं ।

७१. निशाचर कीस लड़ाई प्रसंग

इहाँ राम अंगदहिं बोलावा । आइ चरन पंकज सिरु नावा ॥
अति आदर समीप बैठारी । बोले बिहँसि कृपाल खरारी ॥२॥

अर्थ : यहाँ रामजी ने अङ्गद को बुलाया । उन्होंने आकर चरणकमल में सिर नवाया । कृपालु खरारि रामजी अङ्गद को बड़े आदर से पास बिठाकर हँसकर बोले ।

व्याख्या : वहाँ लंका का हाल कहकर यहाँ रामजी के यहाँ का हाल कहते हैं कि प्रातःकाल होने पर अङ्गदजी बुलवाये गये । इसके पहिले दिन जब अङ्गद लौटे थे तब सन्ध्या हो गयी । इसलिए बातचीत नहीं हुई । दिवा निरीक्ष्य वक्तव्यं रात्रौ नैव च नैव च । जब लंका से लौटे थे तो : सजल नयन अति पुलक तन गहे रालपद कंज । रात बीत जाने पर वह बात नहीं रह गयी । इसलिए : सजल नयन अति पुलक तन नहीं लिखते ।

सरकार जब आदर देते हैं तो अपने निकट बिठाते हैं । हनुमान्जी जब लंका से लौटे थे उस समय की बात कवि कहते हैं कि : कर गहि परम निकट बैठावा । आज अङ्गदजी को अति आदर से समीप बैठाते हैं । पहिले दिन के कौतुक का स्मरण करके हँसकर बोलते हैं । कृपाल शब्द का प्रयोग कौतुक के प्रसंग में आया है । यथा : कौतुक कीन्ह कृपाल खरारी । यहाँ भी कौतुक कर रहे हैं । अतः कृपाल खरारी विशेषण दिया ।

बालितनय कौतुक अति मोही । तात सत्य कहु पूछउ तोही ॥
रावनु जातुधान कुल टीका । भुजबल अतुल जासु जग लीका ॥३॥

अर्थ : हे बालिपुत्र ! मुझे बड़ा कौतूहल है । हे तात ! मैं तुमसे पूछता हूँ । सच बतलाना । रावण राक्षस कुल का टीका है । उसके बेतौल बल की संसार में धाक है ।

व्याख्या : लंका भेजने के समय सरकार ने कहा था : बालितनय बुधि बल गुन धामा । इस समय भी बालितनय सम्बोधन से बुधि बल गुणधाम होना अभिप्रेत है । मुझे कौतुक ही नहीं बड़ा भारी कौतुक है । क्योंकि जो कार्य हुआ है वह महा असम्भव है । जो कौतुक करता है वह पूछने पर कौतुक का पोषक उत्तर भी देता है । इसलिए कहता हूँ कि सच बताना । सरकार को इतना कौतुक है कि सम्वाद का समाचार न पूछकर पहिले मुकुट का ही प्रश्न करते हैं ।

जितने राक्षस हैं उनका सरदार रावण है । सभी राक्षस उसके अधीन है । उसकी आज्ञा पर प्राण निछावर करनेवाले हैं और वह स्वयं अतुल बल प्रसिद्ध है । सबको रुलाता है इसलिए रावण कहलाता है । अतः सब प्रकार से दुराधर्ष है ।

तासु मुकुट तुम चारि चलाए । कहहु तात कवनी बिधि पाए ॥
सुनु सर्वज्ञ प्रनत सुखकारी । मुकुट[1] न होहिं भूप गुन चारी ॥४॥

अर्थ : उसके चार मुकुट तुमने फेंके । हे तात ! बताओ तुमने कैसे पाये ? हे सर्वज्ञ ! हे प्रणत को सुख देनेवाले ! वे मुकुट नहीं हैं राजा के चारो गुण हैं ।

व्याख्या : ऐसे दुराधर्ष रावण का मुकुट तुमने कैसे पाया ? मुकुट तो राजा के सिर पर रहता है । सिर रहते उसकी ओर कोई आँख उठाकर देख नहीं सकता । तुम दूत होकर गये थे । सो दूत को राजा के चार मुकुट कैसे हाथ लगे ? यह विधि समझ में नहीं आती । सरकार प्रसन्न होते हैं तो ऐसे ही प्रश्न करते हैं । हनुमान्जी से भी ऐसा ही पूछा : कहु कपि रावन पालित लंका । केहि बिधि दहेउ दुर्ग अति बंका ।

अङ्गदजी उत्तर का उपक्रम करते हुए कहते हैं कि आप सर्वज्ञ हैं । आपसे क्या छिपा है । परन्तु प्रणत को यशोभाजन बनाना चाहते हैं । इसलिए इस भाँति पूछ रहे हैं । अतः सुनिये : वे चार मुकुट नहीं हैं । वे राजा के चार गुण हैं । यहाँ अपह्नुति अलङ्कार है । उपमेय का निषेध करके उपमान का आरोप करते हैं ।

साम दान अरु दंड बिभेदा । नृप उर बसहिं नाथ कह बेदा ॥
नीति धर्म के चरन सुहाए । अस जिअ जानि नाथ पहिं आए ॥५॥

अर्थ : साम, दान, दण्ड और भेद ये चार राजा के हृदय में बसते हैं । ऐसा

---

१. यहाँ हेतु अपह्नुति अलङ्कार है ।

वेद ने कहा है। ये नीति धर्म के सुन्दर चरण हैं। ऐसा मन में समझकर नाथ के पास आये हैं।

व्याख्या : राजनीति का जो धर्म है उसके चार चरण हैं अर्थात् इन्हीं चारों को एकत्र करने से राजनीति का धर्म पूरा होता है। ऐसा वेद ने कहा है। कहने का भाव यह है कि इस बात में सन्देह को स्थान नहीं है। वे चारो चरण हैं : साम दान दण्ड और भेद। इनका निवास राजाओं के हृदय में रहता है। इन्हीं के समयोचित बर्ताव से सारी राजनीति चलती है। पहिले ये रावण में थे। यथा : बहु विधि खल सीतहि समुझावा। साम दान भय भेद देखावा। अब इन सबों ने रावण को छोड़कर सरकार का आश्रय ग्रहण किया है।

दो. धर्म हीन प्रभु पद बिमुख, काल बिबस दससीस।
तेहि परिहरि गुन आये, सुनहु कोसलाधीस ॥३८॥

अर्थ : दसशीश धर्म से रहित प्रभुपद के विमुख और काल के वश हो गया है। हे कोसलेश ! सुनिये। इसलिए गुण गण रावण को छोड़कर आपके पास आये हैं।

व्याख्या : इन तीन लक्षणवालों को चारो गुण साम दान दण्ड और भेद परित्याग करते हैं। वे लक्षण हैं : १. धर्म से रहित होना २. प्रभुपद के विमुख होना और ३. काल के वश होना। सो रावण में ये तीनों लक्षण आगये हैं। धर्महीन भी यदि प्रभुपद विमुख न हो तो उसका सब बन जाता है। यथा : अपि चेत् सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्। साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवहितो हि सः। जो नर होइ चराचर द्रोही। आवै सभय सरन तकि मोही। तजि मद मोह कपट छल नाना। करौं सद्य तेहि साधु समाना। और यदि धर्महीन और प्रभुपद विमुख भी है तो उसे काल विवश ही समझना चाहिए। सो रावण काल विवश है। चारो गुण उसे त्याग करके प्रभु के पास चले आये। वृणुते हि विमृश्यकारिणं गुणलुब्धाः स्वयमेव सम्पदः। इतने में ही संक्षेप में अङ्गदजी ने सब कह दिया।

दो. परम चतुरता स्रवन सुनि, बिहँसे राम उदार।
समाचार पुनि सब कहे, गढ़ के बालिकुमार ॥३८क॥

अर्थ : राम उदार परम चतुरता सुनते ही हँस पड़े। तब बालि के बेटे ने सब समाचार गढ़ के कह सुनाये।

व्याख्या : तुमने रावण के चारो मुकुट कहाँ से पाये। इस प्रश्न के उत्तर में ही अङ्गदजी ने सब कुछ कह दिया। रावण के यहाँ साम और दान का अभाव है। भेद और दण्ड में वह असमर्थ है धर्म उसमें छूकर नहीं है। स्त्री हरण करके भी लौटाना नहीं चाहता। सरकार के विमुख है। उसके सिर पर काल सवार है। वह बिना युद्ध नहीं मानेगा। उसके सम्वाद का इतना ही तत्त्व है। सो अङ्गदजी ने युक्ति से अपह्नुति अलंकार से उत्तर देने में कह डाला। यह अङ्गदजी की परम

चतुरता है। रावण में साम का अभाव यथा : तौ बसीठ पठवत केहि काजा। रिपुसन प्रीति करत नहि लाजा। दान का अभाव यथा : मूढ़ न जानेसि मोहि सुरारी। भेद में असमर्थ यथा : सुनु सठ भेद होइ मन ताके। श्रीरघुवीर हृदय नहिं जाके। दण्ड में असमर्थ यथा : उहाँ सकोप दसानन सब सन कहत रिसाइ। धरहु कपिहि धरि मारहु सुनि अंगद मुसुकाइ। रावण कालवश यथा : पुनि कपि कही नीति बिधि नाना। मान न ताहि काल निअराना। तत्पश्चात् अङ्गदजी ने लंका का सब समाचार कह सुनाया। अर्थात् वहाँ जो बातचीत हुई थी और गढ़ की जो मरम्मत इत्यादि हुई थी सब अङ्गदजी ने वर्णन किया।

रिपु के समाचार जब पाए। राम सचिव सब निकट बुलाए ॥
लंका बाँके चारि दुआरा। केहि बिधि लागिअ करहुँ बिचारा ॥१॥

अर्थ : जब शत्रु का समाचार पा लिया तब रामजी ने मन्त्रियों को निकट बुलाया और कहा कि लंका के बाँके चार द्वार हैं। सो किस विधि से धावा किया जाय इस बात का विचार करो।

व्याख्या : रावण शत्रु से प्रीति करना लज्जा समझता है। उसने कहा भी कि : रिपुसन प्रीति करत नहिं लाजा। अतः अब तो युद्ध ही शेष रहा। अतः मन्त्रणा के लिए रामजी ने मन्त्रियों को अपने पास बुलाया और कहा कि लंका पर धावा करना अब अपरिहार्य है। अतः अब यह विचार होना चाहिए कि किस विधि से लंका पर धावा किया जाय। किसी एक फाटक पर धावा हो या चारों फाटक पर एक साथ धावा बोला जाय। सेना की व्यवस्था क्या होगी ? किसके सेनापतित्व में धावा किया जायगा ? देखरेख किसके जिम्मे रहेगी ? इत्यादि सभी बातें पहले ही विचार कर लेनी चाहिए।

तब कपीस रिच्छेस बिभीषन। सुमिरि हृदय दिनकर कुल भूषन ॥
करि बिचार तिन्ह मंत्र दृढ़ावा। चारि अनी कपि कटकु बनावा ॥२॥

अर्थ : तब बानर के राजा भालू के राजा और विभीषण ने हृदय में सूर्यकुल भूषण का स्मरण करके विचारपूर्वक उन लोगों ने मन्त्र दृढ़ किया और वानरी सेना का चार अनीक सेनामुख बनाया।

व्याख्या : वानरराज और रीछराज तो वस्तुतः सेना के स्वामी हैं। और विभीषण लंका के राज्य के लिए अभिषिक्त हैं। अतः तीनों राजा ही मन्त्र के लिए एकत्रित हुए : लंका का भेद तो विभीषण से ही लगेगा। विभीषणजी लंका का सब हाल जानते हैं। अतः उनकी सम्मति का मूल्य अधिक है। इन लोगों ने विघ्न निवारणार्थ तथा निशाचर संहारार्थ सूर्यकुल भूषण का स्मरण किया। श्रीरामजी की साक्षात् उपस्थिति होने पर भी हृदय में उनके स्मरण की आवश्यकता प्रतीत हुई। उन्होंने विचार किया कि अपने पास जब सेना यथेष्ट है तो चारों फाटक पर एक साथ धावा बोलना चाहिए। अतः चार सेनामुख बनाया। मुख्य सेना पृथक्

थी। जहाँ से चार अनी चारों फाटक पर धावा करेगी। आवश्यकता जहाँ पड़ती जावेगी वहाँ वीर लोग मुख्य सेना से भेजे जावेंगे।

जथाजोग सेनापति कीन्हे। जूथप सकल बोलि तब लीन्हे ॥
प्रभु प्रताप कहि सब समुझाए। सुनि कपि सिंहनाद करि धाए ॥३॥

अर्थ : उन अनीकों के लिए जैसा चाहिए वैसे सेनापति नियत किये। तत्पश्चात् यूथपतियों को बुलाया और सबको प्रभु का प्रताप कहकर समझाया। सुनकर बन्दर लोग सिंहनाद : गर्जन करके दौड़ पड़े।

व्याख्या : उत्तर फाटक की स्वयं रावण रक्षा करते हैं। पूर्व फाटक की रक्षा सेनापति प्रहस्त करते हैं। दक्षिण फाटक की रक्षा महोदर और पश्चिम की मेघनाद करते हैं। अतः उत्तर पर धावा करनेवाली अनीक की रक्षा का भार स्वयं सरकार दोनों भाइयों ने अपने ऊपर लिया। सेनापति प्रहस्त के जोड़ में सेनापति नील रक्खे गये। महोदर की जोड़ में अङ्गद और मेघनाद की जोड़ में हनुमान्‌जी रक्खे गये।

सेनापति के चुनाव के पश्चात् यूथपति बुलाये गये जो उपर्युक्त सेनापतियों के आदेशानुसार सेना सञ्चालन करेंगे। उन्हें समझाया गया कि :

प्रभुप्रताप सम्भव करत, सकल असम्भव काम।
ललकि लीजिये लंकगढ़, राखि हृदय श्रीराम ॥१॥
पाहन बन बाहन कियो, जाको प्रबल प्रताप।
करिहि घरौंदा लंक सोइ, सुजस लीजिये आप ॥२॥
पाइ जासु बल आप सब, पाट्यौ सिन्धु गभीर।
कहा शंक तब लंक की, रक्षक श्रीरघुवीर ॥३॥
दुर्गति लंका को कियो, एक वीर हनुमान।
हरयौ अकेलेइ बालिसुत, दसकन्धर को मान ॥४॥
आज वीर सिगरे जुटे, लीन्हें कटक अपार।
तापर सर कोदण्ड धर, साथ युगल सरकार ॥५॥
सिंहनाद सुनि आपको, होइ लंक आतंक।
गरजि परौ रिपु कटक पर, बीर होइ निःशंक ॥६॥

अब सेना का उत्साह कहते हैं कि बन्दर वीर सिंह की भाँति गरजकर दौड़े।

गर्जहिं तर्जहिं भालु कपीसा। जय रघुबीर कोसलाधीसा ॥
जानत परम दुर्ग अति लंका। प्रभु प्रताप कपि चले असंका ॥४॥
घटाटोप करि चहुँ दिसि घेरी। मुखहि निसान बजावहिं भेरी ॥५॥

अर्थ : जय रघुवीर कोसलाधीश का जयकार लगाते हुए भालु और बन्दर गरजते हैं और डाँटते हैं। लंका के किला को अत्यन्त बीहड़ जानते हुए प्रभु के प्रताप से बन्दर निःशङ्क होकर चले।

उमड़ घुमड़कर चारो ओर से घेर लिया और मुख से ही डंका और भेरी सा शब्द करने लगे।

व्याख्या : भालु और बन्दर रणोत्साह से गर्जन करते हैं। गर्जन के साथ तर्जन भी होता है। शत्रु के प्रति डाँटने में जो शब्द उच्चरित होते हैं उसे तर्जन कहते हैं। अब राम दल का जयकार नारा कहते हैं : जय रघुवीर कोसलाधीस। रघुवीर शब्द से सरकार के पराक्रम और कोसलाधीश पद से प्रताप की घोषणा करते हैं। यथा : सुमिरि कोसलाधीस प्रतापा।

एक तो दुर्ग पर धावा करना बड़ा कठिन कार्य है। दुर्ग पर से एक धनुर्धर नीचे के सौ धनुर्धर का सामना कर सकता है। दुर्ग शब्द का अर्थ ही यह है कि जहाँ कठिनता से जाया जा सके। सो लंका दुर्ग अत्यन्त विकट है। जिसके परकोटा पर चिड़िया उड़कर नहीं बैठ सकती। त्रिकूटाचल के ऊपर यह दुर्ग बना है। ब्रह्मदेव ने ही उसे अति दुर्गम बनाया है। तिसपर मय दानव ने उसे सँवारा है। यथा : विधि निर्मित दुर्गम अति भारी। तेहि मय दानव बहुरि सवारा। उसके निवासियों पर दृष्टि देते हुए कवियों ने कहा है कि लंका सर्पों से भरी गुफा है और महा नाग रावण से रक्षित है। यथा : जस पावन रावन नाग महा।

परन्तु प्रभु के प्रताप का बड़ा प्रभाव बन्दरों पर पड़ा हुआ है। वे लंका के स्वरूप को जानते हुए भी निःशङ्क होकर चल पड़े। वानरी सेना ने धावा बोल दिया पर यहाँ निशान भेरी कहाँ? कौतुकी बन्दर लोग मुख से ही भेरी निशान बजाते चले। इससे कवि ने धावा करनेवालों की साधन विहीनता का दिग्दर्शन कराया।

जैसे घटा आकाश में घिर आती है और सम्पूर्ण आकाश को घेर लेती है। उसी भाँति बन्दरों ने लंका घेर ली। बाहर से लंका का सम्बन्ध विच्छेद हो गया। राक्षसों की ओर से कोई विरोध नहीं हुआ। रावण की सभा में यही निर्णय हुआ था कि चुपके रहो। बन्दरों को आजाने दो। यथा : ते सब हँसे मष्ट करि रहहू। कहहु कवन भय करिअ विचारा। नर कपि भालु अहार हमारा। बिल्ली चूहा से घिर जाने का विरोध क्यों करे?

दो. जयति राम जय लछिमन, जय कपीस सुग्रीव।
गरजहि सिंहनाद कपि, भालु महाबल सीव ॥३९॥

अर्थ : सिंहनाद करते हुए महा बलसींव भालु और बन्दर कहते हैं कि रामजी की जय हो लक्ष्मणजी की जय हो और बन्दरों के राजा सुग्रीव की जय हो।

व्याख्या : जो शत्रुञ्जय सिंहनाद महावीरजी ने लंका दहन के समय किया था : जयत्यतिबलो रामो लक्ष्मणश्च महाबलः। राजा जयति सुग्रीवो राघवेणाभिपालितः। वही सिंहनाद आज सारी वानरी सेना कर रही है। रामजी का नाम सर्व प्रथम लेने से ही उन्हें अतिबल कहा। उसके बाद महाबल लक्ष्मणजी का नाम

लेते हैं। तत्पश्चात् अपने राजा सुग्रीव का नाम लेते हैं जो श्रीराम द्वारा पालित हैं। अतः उनका नाम पीछे लिया। पहिले कह आये हैं : गर्जहिं तर्जहिं भालु कपीसा। पहिले भालु का नाम लिया तब बन्दर का नाम लिया। अब कहते हैं : गर्जहिं केहरि नाद कपि भालु। पहिले बन्दर का तत्पश्चात् भालु का नाम लेते हैं। भाव यह कि एक बार भालु की प्रधानता कहते हैं। दूसरी बार बन्दर की प्रधानता कहते हैं अर्थात् दोनों प्रधान हैं।

लंका भयउ कोलाहलु भारी। सुना दसानन अति अहँकारी ॥
देखहु बनरन्ह केरि ढिठाई। बिहँसि निसाचर सेन बोलाई ॥१॥

अर्थ : लंका में भारी कोलाहल हुआ। अत्यन्त अहंकारी रावण ने सुना। बोले कि बन्दरों की ढिठाई देखो और हँसकर सैना बुलायी।

व्याख्या : अङ्गदजी के जाने से ही कोलाहल मच गया था। यथा : भयउ कोलाहल नगर मझारी। आवा कपि लंका जेहि जारी। आज तो लङ्का बन्दरों से घिर गयी अतः भारी कोलहल मचा। रावण अति अहंकारी है। यथा : बैठ जाइ सिंहासन फूली। अति अभिमान त्रास सब भूली। मारे अभिमान के त्रास भूल जाते हैं। इतना बड़ा भय उपस्थित है पर आप त्रास को भूले हुए हैं। जब समाचार मिला कि लंका बन्दरों से घिर गयी तब कहते हैं कि देखो बन्दरों की ढिठाई। मानो ये पहिली बार ढिठाई देख रहे हैं। लंका का जलाना। वन का विध्वंस। राक्षसी सेना का विनाश। पुत्रों का मरण। मुकुट का गिरना। अङ्गद का पैर रोपना आदि सब भूल बैठे हैं। समाचार सुनकर बन्दरों की ढिठाई पर ठहाका लगाकर हँसते हैं। पहिले ही सभा में मन्त्रणा होकर निश्चय हो चुका है कि नर वानर किसी गिनती में नहीं हैं। अतः उनके लिए कुछ नहीं करना चाहिए। उन्हें चले आने देना चाहिए। यथा : ते सब हँसे मष्ट करि रहहू। जितेउ सुरासुर तव स्रम नाही। नर बानर केहि लेखे माही। कहहु बचन भय करिअ बिचारा। नर कपि भालु अहार हमारा। सो वे सब आगये। अब भागकर भी नहीं बच सकते। अतः उन्हें खा जाने के लिए राक्षसी सेना बुलायी गयी।

आये कीस काल के प्रेरे। छुधावंत सब निसिचर मेरे ॥
अस कहि अट्टहास सठ कीन्हा। गृह बैठें अहार बिधि दीन्हा ॥२॥

अर्थ : बन्दर काल की प्रेरणा से आगये हैं और मेरे राक्षस भूखे हैं। ऐसा कहकर उस शठ ने अट्टहास किया कि घर बैठे ब्रह्मा ने आहार भेज दिया।

व्याख्या : रावण कहते हैं कि काल की प्रेरणा इसे कहते हैं कि मेरी पुरी में इतने बन्दर मरने के लिए चले आये। मेरे राक्षस सब बड़े भुक्खड़ हैं इनका पेट ही नहीं भरता। यथा : कहुँ महिष मानुष धेनु खर अज खल निसाचर भच्छहीं। ये गधे तक को नहीं छोड़ते। सो इनके पेट भरने का बड़ा भारी संयोग आप से आप जुट गया। यह कहकर आप खूब हँसे। बड़ी खुशी है कि ब्रह्मदेव हमारा बड़ा ख्याल

रखते हैं। घर बैठे भोजन पहुँचा दिया। रसद के लिए समुद्र पार से व्यवस्था करनी पड़ती थी। यह संयोग ब्रह्मदेव ने बिठाया। नहीं तो नर बानर तो राक्षस का नाम सुनकर भागते हैं। वे मेरी पुरी में कैसे आते।

सुभट सकल चारिहु दिसि जाहू। धरि धरि भालु कीस सब खाहू ॥
उमा रावनहि अस अभिमाना। जिमि टिट्टिभ खग सूत उताना ॥३॥

अर्थ : योद्धाओ! चारो दिशाओं में चले जाओ और पकड़ पकड़कर भालु बन्दरों को खा जाओ। शिवजी कहते हैं कि उमा! रावण को ऐसा अभिमान है जैसे टिटिहरी पक्षी उतान शयन करती है।

व्याख्या : सेना के आ जाने पर रावण उन योद्धाओं को रणोपयोगी कोई परामर्श नहीं देते। प्रत्युत उन्हें असावधानता का उपदेश देते हैं कि यह कोई युद्धयात्रा नहीं है। यहाँ तो मानो भोज में जाना है। सो चारो दिशाओं में तुम लोग फैल जाओ। बन्दर तो तुम्हारे आहार ही ठहरे उन्हें पकड़ पकड़कर खा जाओ। भागकर बच न जायँ।

शङ्कर भगवान् कहते हैं कि उमा! रावण को कैसा अभिमान है। उसके ऊपर आकाश फटा चाहता है। स्वयं सरकार भाई के साथ उत्तर फाटक पर आ गये हैं और वह इस भयानक आपत्ति का रोकना सैन्यबल से सुकर मान रहा है। पक्षी मात्र छोटे बड़े सब पेट के बल सोते हैं कि आवश्यकता पड़ने पर अपने पक्षों से काम ले सकें। पर टिटिहरी पक्षी छोटे होने पर भी पीठ के बल सोता है कि यदि आकाश भी ऊपर आजाय तो पञ्जों पर रोक रक्खेंगे। संस्कृत में कहावत है कि उत्क्षिप्य टिट्टिभः पादावास्ते भङ्गभयाद्दिवः।

चले निसाचर आयसु माँगी। गहि कर भिंडिपाल बर साँगी ॥
तोमर मुद्गर परस प्रचंडा। सूल कृपान परिघि गिरिखंडा ॥४॥

अर्थ : राक्षस लोग आज्ञा माँगकर हाथों में भिण्डिपाल : ढेलवाँस साँगी तोमर मुद्गर प्रचण्ड परिघ शूल कृपाण परशु और गिरिखण्ड ले लेकर चले।

व्याख्या : रावण के कह चुकने पर राक्षस आज्ञा माँगकर चले। जाने की आज्ञा हो जाने पर भी आज्ञा माँगने का भाव यह कि संग्राम के विषय में कुछ और आज्ञा तो नहीं है। यद्यपि रावण की आज्ञा तो गढ़ के बाहर निकलकर बन्दरों को पकड़ पकड़कर खा जाने के लिए थी। परन्तु राक्षसों ने दूर से प्रहार करने के लिए ढेलवाँस लिये और सन्निकट से प्रहार के लिए साँगी ली। कुछ एक ने तोमर लोहे की गदा मुँगड़ा और भारी वेवँड़ा लिया और कुछ लोगों ने शूल दुधारी तलवार परशु लिया तथा मतवाला लिया। जिस प्रस्तरखंड को आक्रमणकारी सेना के वध के लिए ऊपर से ढकेलते हैं उसे मतवाला कहते हैं।

जिमि अरुनोपल निकर निहारी। धावहि सठ खग मांस अहारी ॥
चोच भंग दुख तिनहि न सूझा। तिमि धाये मनुजाद अबूझा ॥५॥

अर्थ : जिस भाँति लाल पत्थर का समूह देखकर शठ मांसाहारी पक्षी उस पर टूट पड़ते हैं उन्हें चोंच भंग का दुःख सूझता हो नहीं। उसी भाँति वे नरभक्षक मूर्ख दौड़ पड़े।

व्याख्या : रावण भलीभाँति इन राक्षसों के स्वभाव को जानते हैं कि इन्हें जहाँ मांसभक्षण का लोभ दिखाया गया तहाँ इन्हें आगा पीछा का विचार नहीं रहता। वही बात हुई। रावण की आज्ञा पाते ही सब खाने के लिए दौड़ पड़े। जैसे लाल पत्थर के समूह को देखकर बाज आदि शिकारी चिड़ियों को मांस का भ्रम हो जाता है और वे उसपर टूटते हैं पर वे तो पत्थर ठहरे! उनका चोंच तोड़ डालते हैं। उन मूर्ख पक्षियों को इतना ज्ञान कहाँ? इसी भाँति इन अज्ञानी राक्षसों ने रामदल के योद्धाओं को बन्दर समझ लिया। यह न जाना : राम कृपा अतुलित बल तिनही। तृन समान त्रैलोकहिं गिनही। इनका हम कुछ नहीं बिगाड़ सकते। हमारी ही हानि होगी।

दो. नानायुध सर चाप धर, जातुधान बलबीर।
कोट कंगूरन्ह चढ़ि गये, कोटि कोटि रनधीर ॥४०॥

अर्थ : अनेक प्रकार के हथियार और धनुष बाण लेकर करोड़ों वीर बलवान् राक्षस किले के कंगूरों पर चढ़ गये।

व्याख्या : ऊपर राक्षसों की उपमा मांसाहारी खगों से दिया। क्योंकि वे दुर्ग के कंगूरों पर हैं और बन्दरों की उपमा अरुणोपल निकर से दिया। क्योंकि ये नीचे हैं। उपर्युक्त आयुधों के अतिरिक्त भी अनेक प्रकार के अस्त्र शस्त्र लेकर बलवीर राक्षस किले के कंगूरों पर चढ़ गये। किले का फाटक बन्द है। बन्दर लोग उसे तोड़ने और प्राकार के उल्लङ्घन कर जाने की झांक में हैं। अतः किले के कंगूरों पर से प्रहार करने के लिए धनुष बाण धारण किया। प्राकार पर चढ़ने के समय चोट करने के लिए अन्य प्रकार के अस्त्र शस्त्र लिये। राक्षस बलवीर रणधीर हैं। अस्त्र शस्त्र से सुसज्जित हैं। दुर्ग के कंगूरों पर स्थित हैं और बानर अस्त्रहीन शस्त्रहीन दुर्ग के नीचे खड़े हैं। ऐसी विषम स्थिति इन लोगों की है।

कोटि कंगूरन्हि सोहहिं कैसे। मेरु के सृंगनि जनु घन बैसे ॥
बाजहिं ढोल निसान जुझाऊ। सुनि धुनि होइ भटन्हि मन चाऊ ॥१॥

अर्थ : किले के कंगूरों पर वे ऐसे शोभायमान हुए जैसे मेरु के शृंगों पर बादल बैठे हों। जुझाऊ ढोल और डंके बज रहे थे। जिनकी ध्वनि को सुनकर वीरों के मन में उत्साह हो रहा था।

व्याख्या : राक्षस लोग चले थे तो बड़े चाव से पर बानरी सेना देखकर

उतरकर लड़ने का साहस न हुआ। कोट के कंगूरों पर सुरक्षित स्थान जानकर बैठे। बन्दरों के आक्रमण के रोकने के प्रयत्न में लगे। कोट सोने का है अतः उसकी उपमा मेरु पर्वत से दी गयी। उसके कंगूरे शृङ्ग की भाँति शोभित थे। उनपर काले काले राक्षसों का समूह जो इकट्ठा हुआ उनकी शोभा बादल सी हुई। स्वभाव से ही बादल पर्वत शृङ्ग पर जमा होते हैं। वानरी सेना में तो मुख से ही निशान और भेरी बज रही थी। पर राक्षस लोग तो साधन सम्पन्न हैं। उनकी सेना में जुझाऊ बाजे बजे। जुझाऊ बाजे की कार्यकारिता कहते हैं कि उनकी ध्वनि के सुनने से वीरों में रणोत्साह उत्पन्न होता है।

बार्जाहि भेरि नफीरि अपारा। सुनि कादर उर जाँहि दरारा॥
देखि न जाइ कपिन्ह कै ठट्टा। अति बिसाल तनु भालु सुभट्टा॥२॥

अर्थ : कितनी नफ़ीरी और भेरी बजने लगी इसका ठिकाना नहीं। उनके शब्द से कादरों का कलेजा फटा जाता था। बन्दरों का समूह देखा नहीं जाता था। सुभट भालु बड़े विशाल शरीर वाले थे।

व्याख्या : नफीरी मुख से बजायी जाती है। उन नफीरियों में वीरों को सुखद मारू राग बज रहा है। यथा : मारू राग सुभट सुखदायी : लोकोक्ति है कि : कौरव पाण्डव जे दल साजे। ते रावण घर बाजे बाजे। अतः अपार कहा। जो ध्वनि वीरों का उत्साहवर्धक वही कादरों के कलेजे को दहलानेवाली है। भेरी तुरही के समान मुख से बजनेवाला बाजा है। राजपुताना में आज भी बजाया जाता है। नफीरी के साथ भेरी भी बजने लगी। राक्षस लोगों ने रावण के कथनानुसार बन्दरों को भक्ष्य पदार्थ समझ लिया था और बाझ की भाँति झपटे पर बन्दरों को देखकर ऐसे ठण्ढे पड़े कि उनकी ओर देखते नहीं बनता। शुक ने ठीक कहा था : अमित नाम भट कठिन कराला। अमित नाग बल बिपुल बिसाला। और भालु तो आकार में बन्दरों से विशाल होते हैं। उनके बालों से उनमें और भी विशालता तथा भयङ्करता आजाती है।

धावहिं गनहि न अवघट घाटा। पर्वत फोरि करहि गहि बाटा॥
कटकटाहिं कोटिन्ह भट गर्जहिं। दसन ओठ काटहि अति तर्जहिं॥३॥

अर्थ : वे दौड़ते थे। खन्दक और उतार की परवाह नहीं करते थे। पहाड़ को फोड़कर राह बना लेते थे। करोड़ों वीर कटकटाते ओर गर्जते थे। दाँतों से होठ चबाते हुए डाँटते थे।

व्याख्या : बन्दर भालुओं का यह हाल है कि खन्दक या उतार से उनका वेग रुकता नहीं है। पहिले से ही ठट्ट लगा है। फिर भी सेना चलती ही चली आ रही है। उत्साह इतना बढ़ गया है कि खन्दक खाइं डाँकते पर्वत को फोड़कर रास्ता बनाते हुए आगे बढ़े चले आते हैं जिसमें पीछे की सेना को आने में बाधा न हो। करोड़ों बन्दर बलाभिमान से गर्जते हैं। साथ ही साथ क्रोध भी बढ़ा हुआ

है इसलिए कटकटाकर गर्जते हैं। बन्दर क्रोध करते हैं तब कटकटाते हैं। क्रोध से भरे हुए दाँतों से होठों को चबा रहे हैं और शत्रुओं को देखकर उन्हें नीचे से ही डाँटते हैं। लंका के ऊपर और नीचे का दृश्य कहकर युद्धारम्भ का निश्चित चिह्न लड़ाई के बाजों का बजना भी कहा।

उत रावन इत राम दोहाई। जयति जयति जय परी लराई[1] ॥
निसिचर सिखर समूह ढहावहिं। कूदि धरहि कपि फेरि चलावहिं ॥४॥

अर्थ : उधर से रावण और इधर से राम की दोहाई देते हुए जय जयकार करके लड़ाई प्रारम्भ हो गयी। राक्षसों ने मतवाले छोड़े। बन्दरों ने कूदकर उन्हें पकड़ लिया और फिर उन्हें उन्हीं पर फेंका।

व्याख्या : लड़ाई के बाजे बजे। वीरों ने गर्जना की। लंका के ऊपर से रावण का जय जयकार हुआ। इधर वानरी सेना से रामजी का जयकार हुआ और लड़ाई हो पड़ी। पत्थर के बड़े बड़े कोल्हू बने होते हैं। वे ही मतवाला कहलाते हैं। शत्रु की सेना कुचलने के लिए वे चढ़ती हुई सेना पर छोड़े जाते हैं। यहाँ : सिखर समूह से वे ही मतवाले अभिप्रेत हैं। बन्दरों ने जब धावा बोल दिया और लंका पर चढ़ जाने का प्रयत्न करने लगे तब राक्षसों ने मतवाले छोड़े। बन्दरों का पराक्रम और लाघव ऐसा बढ़ा चढ़ा है कि उन्हें कूदकर बीच ही से पकड़ लेते हैं और लंका के ऊपर फेंकते हैं।

छं. [2]धरि कुधर खंड प्रचंड मरकट भालु गढ़ पर डारहीं।
झपटहिं चरन गहि पटकि महि भजि चलत बहुरि प्रचारहीं ॥
अति तरल तरुन प्रताप तरपहिं तमकि गढ़ चढ़ि चढ़ि गये।
कपि भालु चढ़ि मंदिरन्ह जहँ तहँ राम जसु गावत भये ॥

अर्थ : उन पर्वत के प्रचण्ड खण्डों को लेकर बन्दर भालु गढ़ के ऊपर फेंकने लगे। झपटकर पैर पकड़ते हैं और पृथ्वी पर गिरा देते हैं। भाग चलने पर ललकारते हैं। अति तीखे और प्रचण्ड प्रतापवाले डाँटते थे। वे क्रोध से उबल करके किले पर चढ़ गये। बन्दर भालु मकानों पर चढ़कर जहाँ तहाँ रामयश का गान करने लगे।

व्याख्या : पहिली लड़ाई तो यही हुई कि ऊपर से मतवाले छूटे और नीचे से बन्दरों ने उन्हें उलटकर राक्षसों पर फेंका। अब बन्दर उछलकर राक्षसों का पैर पकड़कर पृथ्वी पर पटक देते हैं। भाव यह कि पहाड़ पर चढ़ गये। अब प्राकार के नीचे से झपटकर ऊपर खड़े हुए। राक्षसों को नीचे फेंक देते हैं। वे भी

---

१. यह चारो फाटक की लड़ाई पुनर्वसु नक्षत्र की वर्षा है।

२. यह हरिगीतिका छन्द है।

इतने बलवान् हैं कि इतने नीचे गिरने पर फिर उठकर भागते हैं। पर बन्दर फिर उन्हें ललकारते हैं। अब तीसरे धावा में प्रचण्ड प्रतापवाले भालु कपि क्रोध करके चढ़ गये और सन्निकट के मकानों पर चढ़कर राम सुयश सुनाने लगे।

दो. एकु एक निसिचर गहि, पुनि कपि चले पराइ।
ऊपर आपुन हेठ भट, गिरहि धरनि पर आइ ॥४१॥

अर्थ : एक एक राक्षस को पकड़कर बन्दर भाग चले और किले के नीचे पृथ्वी पर गिरते थे। परन्तु स्वयं ऊपर होते थे और राक्षसों को नीचे कर लेते थे।

व्याख्या : तीसरे धावा में गढ़ पर तो चढ़ गये पर थोड़े ही चढ़ पाये। अतः ऊपर अधिक देर तक ठहर न सके। भागते समय एक एक राक्षस को पकड़कर ऊपर से नीचे गिरते थे। पर उस गिरने में बन्दरों का यह कौशल होता था कि आप ऊपर होते थे और राक्षस नीचे पड़ जाते थे।

राम प्रताप प्रबल कपि जूथा। मर्दहिं निसिचर सुभट बरूथा॥
चढ़े दुर्ग पुनि कहँ तहँ बानर। जय रघुबीर प्रताप दिवाकर ॥१॥

अर्थ : रामजी के प्रताप से बन्दरों का जुत्था प्रबल हैं। वे राक्षसों के झुण्डों के समूहों को मर्दन कर रहे थे। बन्दर फिर जहाँ तहाँ किले पर चढ़ गये : जयकार लगाया कि रामजी के प्रतापरूपी सूर्य की जय हो।

व्याख्या : एक लड़के को लेकर भागना कठिन होता है। बन्दर लोग एक एक राक्षस को लेकर कैसे भागे ? इसपर कहते हैं कि बन्दरों में राम के प्रताप का बल है। इसलिए राक्षसों के झुण्डों के समूहों का मर्दन करते हैं। नहीं तो कहाँ राक्षस अग्नि और कहाँ बन्दर तिनके। तिनके और आग की कौन लड़ाई। फिर बन्दरों ने धावा किया और इस बार : जय रघुवीर प्रताप दिवाकर का जयकार लगाते हुए किले पर चारों ओर से चढ़ गये। प्रभु प्रताप सब कहि समुझाये। अतः उन लोगों ने प्रभु प्रताप को हृदय में धारण कर रक्खा है और उसी की दोहाई देते हैं। उसे सूर्य कह रहे हैं। क्योंकि उसके उदय के अन्धकाररूपी राक्षस भाग गये।

चले निसाचर निकर पराई। प्रबल पवन जिमि घन समुदाई॥
हाहाकार भयउ पुर भारी। रोवहिं बालक आतुर नारी ॥२॥

अर्थ : राक्षसों का समूह ऐसा भागा जैसे प्रबल वायु के चलने पर घन का समूह भाग चलता है। पुर में भारी हाहाकर हुआ। बीमार बालक और स्त्रियाँ रो रही हैं।

व्याख्या : पहिले राक्षस लोग बादल की भाँति घिर आये थे। यथा : मेरु के सृंगन्हि जिमि घन वैसे। सो ऐसे भगे जैसे प्रबल वायु चलने से मेघ भागते हैं। यथा : कबहुँ प्रबल वह मारुत जहँ तहँ मेघ बिलाहिं।

बन्दरों द्वारा लंका के घिर जाने से ही : लंका भयउ कोलाहल भारी। अब तो बन्दर भीतर घुस आये। राजसेना भी भाग खड़ी हुई। अब रक्षा का कौन उपाय है और न जाने कितने राक्षस लड़ाई में काम आ गये। अतः बीमार अनाथा स्त्रियाँ और अबोध बालक चारों ओर से रोने लगे। तमाम हाहाकार मच गया।

सब मिलि देहिं रावनहि गारी। राजु करत एहि मृत्यु हंकारी ॥
निज दल बिचल सुनी तेहि काना। फेरि सुभट लंकेसु रिसाना ॥३॥

अर्थ : सब मिलकर रावण को गाली देने लगे कि राज्य करते हुए यह मृत्यु को आह्वान लाया। अपने दल का भागना सुनकर रावण बिगड़ा तो भागते हुए योद्धा लौट पड़े।

व्याख्या : रावण की धाक इतनी थी कि जो बात उसको नापसन्द हो उसकी चर्चा करने में लोग भयभीत होते थे। परन्तु आज स्त्री बच्चे सब मिलकर रावण को गाली दे रहे हैं कि इसी के अपराध से आज हम लोगों पर इतनी बड़ी विपत्ति आयी है। यह राजा है रक्षक है इसे रक्षा करनी चाहिए। सो यह सुख से राज करता था। निष्कारण इसने मौत को बुला भेजा। यथा : पूँछ हीन वानर जहँ जाइहि। तब सठ निज नाथहि लइ आइहि। सोई हुआ उसका नाथ आगया। अब राक्षसों का संहार हो रहा है। अथवा इसने राक्षसों को कालरात्रिरूपी सीता को लाकर मृत्यु को नेवता दिया। यथा : काल राति निसिचर कुल केरी। तेहि सीता पर प्रीति घनेरी।

पर रावण ने जब सुना कि राक्षसी सेना भाग रही है तब बिगड़ा। यह सुनकर राक्षस लौट पड़े। क्योंकि अब भागकर बचने का भी रास्ता बन्द हो गया।

जो रनबिमुख सुना मैं काना। सो मैं हतब कराल कृपाना ॥
सरबसु खाइ भोग करि नाना। समरभूमि भये बल्लभ प्राना ॥४॥

अर्थ : जो लड़ाई से भागा और मैंने सुना उसे मैं स्वयं कराल कृपाण से मारूँगा। सर्वस्व खाकर और नाना प्रकार का भोग करके समरभूमि में प्राण प्यारा लगने लगा।

व्याख्या : रावण ने संसार को दुःख दिया पर राक्षसों को सुखी कर रक्खा था। यथा : सुखी सकल रजनीचर कीन्हें। कहुँ महिष मानुष धेनु खर अज खल निसाचर भच्छहीं। राजा लोग इसीलिए सेना का भरण करते हैं कि युद्ध में काम आवें। दूसरी बात यह कि रावण वीर है। उसे कादर नापसन्द हैं। अतः कहता है जो रण से भागेगा उसे मैं मारूँगा। भागना था तो रण में गया क्यों? बन्दरों को खाने गये सो उन्हीं के भय से भागते हैं। पहिले तो मैंने इस बात का लेखा नहीं रक्खा था। पर अब रक्खूँगा। मुझे पता लग जायगा कि अमुक रण छोड़कर भागा। उसे मैं अपने हाथ से चन्द्रहास द्वारा वध करूँगा। जिस प्राण के बचाने के लिए भागते हैं वह न बचने पावेगा।

जो कुछ मैंने अर्जन किया सब सेना को खिला दिया और सब भोग इन्हें सुलभ कर दिया। इसलिए कि समरभूमि में प्राण निछावर करें। सो इन्हें प्राणप्रिय मालूम होने लगा।

उग्र बचन सुनि सकल डेराने। चले क्रोध करि सुभट लजाने ॥
सनमुख मरन बीर कै सोभा। तब तिन्ह तजा प्रानकर लोभा ॥५॥

अर्थ : रावण के भयदायक वचन सुनकर सब डरे। योद्धा लज्जित हुए और क्रोध करके चल पड़े। सामने मरने में ही वीर की शोभा है। तब उन लोगों ने प्राण का लोभ छोड़ दिया।

व्याख्या : सो मैं हतब कराल कृपाना : यह उग्र वचन है। सब डर उठे कि घर में भी नहीं बचने पावेंगे। यहाँ रावण मारेगा और : सर्बस खाइ भोग करि नाना। समरभूमि भये बल्लभ प्राना। यह सुनकर लजाये। भय क्रोध में पलट गया। सब लौट पड़े कि घर में घुसे हुए का रावण के हाथ से मरने में शोभा नहीं है। समर सम्मुख शत्रु द्वारा मरने में शोभा है। प्राण देना ही है तो शोभा के साथ देंगे। ऐसा निश्चय करके उन्होंने प्राण का लोभ छोड़ा अर्थात् प्राण पर खेल गये।

दो. बहु आयुध धर सुभट सब, भिरहिं पचारि पचारि।
व्याकुल किये भालु कपि, परिघ त्रिसूलन्हि मारि ॥४२॥

अर्थ : बहुत से हथियार लिये हुए वीरगण ललकार ललकार कर भिड़ने लगे। उन्होंने परिघ और त्रिशूलों से मारकर भालुओं और बन्दरों को व्याकुल कर दिया।

व्याख्या : वही निसिचर हैं जो हवा के प्रबल झोंके के सामने मेघ की भाँति भाग चले थे। अब प्राण का लोभ छोड़ने से दूसरे ही हो गये। पहले बन्दर उन्हें ललकारते थे। यथ. : भजि चलत बहुरि प्रचारहीं। अब राक्षस प्रचार प्रचारकर बन्दरों से भिड़ रहे हैं और परिघ तथा त्रिशूलों से ऐसे लड़े कि भालू बन्दर व्याकुल हो गये। बन्दर लोग किले पर चढ़ गये हैं। अतः अति निकट से लड़ाई हो रही है। राक्षस लोग परिघ और त्रिशूल से काम ले रहे हैं। बन्दर निःशस्त्र हैं। वृक्षादि भी किले के ऊपर सुलभ नहीं है।

भय आतुर कपि भागन लागे। जद्यपि उमा जीतिहहिं आगे ॥
कोउ कह कहँ अंगद हनुमंता। कहँ नल नील द्विविद बलवंता ॥१॥

अर्थ : हे उमा ! भय से आतुर होकर बन्दर भागने लगे। यद्यपि आगे चलकर इनकी जीत होगी। कोई कहने लगा कि अङ्गद हनुमान् कहाँ हैं ? बलवान् नल नील और द्विविद कहाँ हैं ?

व्याख्या : परिघ त्रिशूल के चोट से बन्दर गिरने लगे। उनके पास प्रतिकार के योग्य कोई शस्त्र नहीं था। असहाय होकर साथियों को गिरते देखकर शेष

सेना व्याकुल हो गयी। बानरी सेना जो बढ़ी चढ़ी आती थी सो रुक गयी। इतना ही नहीं भगेड़ भी मच गयी। जिस स्थल में उमा को शंका होने का योग रहता है वहाँ शिवजी सँभालते हैं। उमा को सम्बोधन करके कहते हैं कि यह शंका न करो कि रामजी की कृपा रहते हुए बन्दर हारे क्यों? हार जीत का निर्णय अन्त में होता है सो अन्त में जीत बन्दरों की ही होगी।

जो भाग रहे हैं वे भी बलवान् के बुलाने के लिए दौड़े चले जा रहे हैं। जिनसे आशा है उन्हीं को पूछ रहे हैं। कोई हनुमान् अङ्गद को पूछता है। कोई नल नील द्विविद को पूछता है अर्थात् प्रख्यात पौरुष वीरों के लिए पुकार मची। इस समय ऐसे वीरों का काम है जो परिघ और त्रिशूल के प्रहार को न गिनें।

निज दल बिकल सुना हनुमाना। पच्छिम द्वार रहा बलवाना॥
मेघनादु तहँ करै लराई। टूट न द्वार परम कठिनाई॥२॥

अर्थ : हनुमान् ने सुना कि हमारी सेना भाग रही है। ये बलवान् पश्चिम फाटक पर रहे। वहाँ मेघनाद युद्ध कर रहा था। फाटक टूटता नहीं था। बड़ी कठिनता थी।

व्याख्या : उधर निज दल विचल सुनी तेहि काना। फेरि सुभट लंकेस रिसाना। यह आसुरो सम्पत्ति है कि भीत भगोड़ों को तीव्रतर भय दिखलाकर लड़ने के लिए विवश करना। यथा : भये क्रुद्ध तीनउ भाइ। जो भाजि रन ते जाइ। तेहि हतव हम निज पानि। फिरे मरन मन मह ठानि। इत्यादि। दैवी सम्पत्ति ऐसी नहीं होती। हनुमान्‌जी ने भी निज दल विकल सुना। पर बन्दरों को डराकर फेरना नहीं चाहा। स्वयं पुरुषार्थ के लिए उद्यत हुए। जब समय आया रामजी ने भी ऐसा ही किया। यथा : राम सैन निज पाछे घाली। चले सकोप महा बलसाली।

जिस समय यह समाचार लगा हनुमान्‌जी पश्चिम फाटक पर थे। वहाँ का सेनापतित्व उन्हीं के जिम्मे था। वहाँ की दशा और भी भयानक थी। तीनों ओर के फाटक टूट गये थे। पर जहाँ हनुमान्‌जी थे वह फाटक ही अभीतक टूटा न था। क्योंकि मेघनाद वहाँ युद्ध कर रहा था। सामर्थ्य किसकी कि फाटक तक पहुँच जाय।

पवनतनय मन भा अति क्रोधा। गर्जेउ प्रबल काल सम जोधा॥
कूदि लंकगढ़ ऊपर आवा। गहि गिरि मेघनाद कहुँ धावा॥३॥

अर्थ : हनुमान्‌जी के मन में बड़ा क्रोध हुआ। योद्धा हनुमान् प्रबल काल के समान गर्जे। कूदकर गढ़ के ऊपर चढ़ गये और पहाड़ लेकर मेघनाद पर दौड़े।

व्याख्या : हनुमान्‌जी को फाटक न टूटने पर क्रोध हो ही रहा था कि बानरी सेना के भागने का समाचार लगा। अतः अत्यन्त क्रुद्ध हो गये। तब तो प्रबल काल

के समान गर्जे। जिस काल की प्रतिक्रिया न हो वही प्रबल काल है। काल का गर्जन प्राण हरण के लिए ही होता है। मेघनाद पर चोट करना है जो मेघ की भाँति गर्जन करता है। उसका गर्जन प्रबल काल के गर्जन के सामने फीका पड़ गया। केवल गर्जे ही नहीं पराक्रम भी वैसा ही किया। पर्वत लिये हुए लंका ऐसे दुर्ग पर जिस पर चिड़िया उड़कर नहीं बैठ सकती थी कूदकर चढ़ गये। और वही पर्वत लिए मेघनाद पर दौड़े कि जिसके कारण से फाटक नहीं टूटता है उसी को मारना है।

भंजेउ रथ सारथी निपाता। ताहि हृदय महुँ मारेसि लाता॥
दुसरे सूत बिकल तेहि जाना। स्यंदन घालि तुरत गृह आना॥४॥

अर्थ : रथ को तोड़ा सारथी को मारा और मेघनाद के हृदय में लात मारी। दूसरा सारथी उसे विकल जानकर रथ में डालकर घर ले आया।

व्याख्या : ऐसा पहाड़ फेंका कि रथ चूर हो गया और सारथी पिस गया। परन्तु मेघनाथ अति लाघव से रथ पर से कूद गया। हनुमान्‌जी का लाघव और भी बढ़ा चढ़ा है। उसके कूदने के समय में ही उसके हृदय में लात मारी। हनुमान्‌जी की मुष्टिका से वह मूर्च्छित हो चुका था। यथा : मुठिका मारि चढ़ा तरु जाई। ताहि एक छन मुरछा आई। इस समय तो लात लगी है। अतः केवल मूर्च्छा ही नहीं हुई। उसके साथ विकलता के चिह्न भी दृष्टिगोचर हुए। राजकुमार है उसके साथ अनेकों रथ हैं। पहिला सारथी तो पहिले ही मर गया था। दूसरे ने मेघनाद को विकल देखकर उसे रथ पर डालकर घर पहुँचा दिया। जिससे ऐसी अवस्था में बन्दरों की चपलता से रक्षा हो।

दो. अंगद सुनेउ पवनसुत, गढ़ पर गये अकेल।
रन बाँकुरा बालिसुत, तरकि चढ़ेउ कपि खेल॥४३॥

अर्थ : अङ्गदजी ने सुना कि हनुमान्‌जी किले पर अकेले ही गये तो युद्ध में तीखा वालि का बेटा उछलकर बन्दर के खेल की तरह किले पर चढ़ गया।

व्याख्या : वानरी सेना में अङ्गद हनुमान् की पुकार मची थी। हनुमान्‌जी को पहिले समाचार मिला कि वानरी सेना विचलित हो गयी। सो वे तो पहाड़ लेकर कूदे। अङ्गदजी को पता लगा कि हनुमान्‌जी गढ़ पर अकेले गये। अकेले जाना अच्छा न समझकर अङ्गदजी अनायासेन कूदकर चढ़ गये। अङ्गद का हनुमान्‌जी पर बड़ा प्रेम है। रावण ने बन्दर कहा। इसपर अङ्गदजी बिगड़कर कहते हैं : कस रे सठ हनुमान् कपि गयउ जो तव सुत मारि। अतः हनुमान्‌जी की सहायता के लिए गये। अङ्गदजी का पराक्रम कहते हैं कि लंका के प्राकार पर इस भाँति कूदकर चढ़ गये जैसे बन्दर खेल में उछल कूद करते हों।

जुद्ध बिरुद्ध क्रुद्ध दोउ बन्दर। राम प्रताप सुमिरि उर अंतर॥
रावन भवन चढ़े द्वौ धाई। करहिं कोसलाधीस दोहाई॥१॥

अर्थ : युद्ध में विरुद्ध दोनों बन्दर क्रुद्ध होकर राम के प्रताप को हृदय में स्मरण करके रावण महल पर दौड़कर चढ़ गये और कोसलाधीश की दोहाई बोलने लगे।

व्याख्या : अङ्गदजी गढ़ पर चढ़ जाने के बाद हनुमान्‌जी से मिल गये। अपनी सेना के पराभव से क्रुद्ध हैं। युद्ध में विरुद्ध होकर पराक्रम दिखाना चाहिए। अतः हृदय में रामजी के प्रताप को स्मरण किया। असाध्य साधन उसी से होता है। यथा : राम समुझि प्रताप कपि कोपा। सभा माँझ करि पन पद रोपा। विचार किया कि सभी ओर सेना में गड़बड़ी मची हुई है। कहाँ सँभालें। अतः ऐसा उपाय किया कि सब शत्रुओं का ध्यान आक्रमण करने से हटकर घर सँभालने की ओर आकृष्ट हो जाय। अतः दौड़कर रावण के घर पर चढ़ गये। राजमहल है। सबसे ऊँचा है। उस पर चढ़ने से लंकाभर देख सकेगा कि राजमहल शत्रु के हाथ आगया। अब प्राकार पर युद्ध व्यर्थ है। सब लोग देख लें इसलिए कोसलाधीश की दोहाई की घोषणा कर रहे हैं।

कलस सहित गहि भवन ढहावा। देखि निसाचरपति भय पावा ॥
नारि बृंद कर पीटहिं छाती। अब दुइ कपि आये उतपाती ॥२॥

अर्थ : उन्होंने कलश के सहित महल को पकड़कर गिरा दिया देखकर राक्षसों के स्वामी डर गये। स्त्रियाँ लगीं छाती पीटने कि अब तो दोनों उत्पाती बन्दर आ गये।

व्याख्या : राजमहल ही धराशायी हो गया। लंकाभर देखे कि जब राजमहल ही गिरा दिया गया तब हार में शेष क्या है ? कलश सहित भवन गिरना तो ढकेल कर गिराने से ही सम्भव है। एक झोपड़ी ढकेल कर गिरायी नहीं जा सकती। यहाँ तो राजप्रासाद ढकेलकर गिराया जा रहा है। अतः इस पौरुष को देखकर दूसरे की कौन कहे स्वयं लंकापति डर गये। सबका ध्यान इधर खिंच गया उधर युद्ध में स्वभावतः ढिलाई आ गयी।

राजमहल गिरते देखकर स्त्रियाँ छाती पीटती हैं कि जब राजमहल का यह हाल है तो हमलोगों का क्या होनेवाला है ? क्योंकि दोनों उत्पाती बन्दर एक साथ आ गये हैं। पहिले एक के आने से नगर जला और दूसरे के आने पर भूकंप आया। आज तो दोनों एक साथ आये हैं। कौन सा उत्पात करेंगे। क्या ठिकाना है ?

कपि लीला करि तिनहि डेरावहि। रामचंद्र कर सुजसु सुनावहि ॥
पुनि करगहि कंचन के खंभा। कहेन्हि करिअ उतपात अरंभा ॥३॥

अर्थ : वे बन्दरों की लीला करके उनको डराने लगे और रामचन्द्र का सुयश सुनाने लगे। तत्पश्चात् सोने के खम्भों को हाथ से उठा लिया और कहा कि अब उत्पात का आरम्भ करना चाहिए।

व्याख्या : स्त्री अवध्य हैं। अतः उन्हें बन्दरों की लीला करके डराते हैं :

छाती मत पीट राम सुयश सुन। अथवा जयघोष से नगर में आतङ्क फैलाना चाहते हैं। लंका सोने की है। राजमहल में सोने के ठोस खम्मे लगे थे सो सब गिर गये। इन दोनों महात्माओं ने उनमें से एक एक उठा लिया। परिघ तो बहुत से राक्षसों ने ले रक्खा है। पर सोने का खम्भा उठानेवाला कौन है? दोनों महात्माओं में सम्मति हो गयी कि ये हमें उत्पाती बतला रही हैं तो इन्हें उत्पात दिखला देना चाहिए। दूसरी बात यह है कि रावण का महल गिर गया। पर कोई इनसे युद्ध करने नहीं आया। अतः सेना में खरभर उत्पन्न करने के लिए उत्पात करना चाहते हैं।

गर्जि परे रिपु कटक मँझारी। लागे मर्दै भुजबल भारी॥
काहुहि लात चपेटन्हि केहू। भजहु न रामहि सो फलु लेहू॥४॥

अर्थ : शत्रु की सेना के मध्यभाग में गरजकर जा पड़े और भारी भुज बल हैं। मर्दन करने लगे किसो को लात से और किसी को चपेट से। राम को नहीं भजते उसका फल लो।

व्याख्या : मध्य सेना से कुमक चारो ओर भेजी जाती है। यहाँ उत्पात मचे तो सारी सेना में अव्यवस्था हो जायगी। अतः उसी में कूदे। दोही व्यक्ति हैं पर भारी भुजबल है लगे राक्षसों का मर्दन करने। किसी को लात से मार देते हैं और किसी को चपेटे से मारते हैं। खम्भे से काम नहीं लेते। उसे डराने के लिए उठाया था। काम भुजबल से ले रहे हैं। मानो रामजी के न भजने का दण्ड देने आये हैं। सो उन्हें उत्तम गति दे रहे हैं। राक्षस लोगों का शस्त्र इन पर काम नहीं करता। लात मारते हैं तो भी कहते हैं कि भजेहु न रामहि सो फल लेहू। और चपेटा मारते समय भी कहते हैं। राक्षसों का मर्दन लात चपेटे से हो रहा था। इसीलिए : भुजबल भारी कहा।

दो. एक एक सो मर्दहि, तोरि चलावहि मुंड।
रावन आगे परहि ते, जनु फूटहि दधि कुंड॥४४॥

अर्थ : वे एक से दूसरे को मर्दन करके उनका सिर तोड़कर फेंकते हैं। वे रावण के आगे जाकर इस भाँति गिरकर फूटते हैं जैसे दही का कुंडा फूटे।

व्याख्या : सैनिकों के लिए तो लात और चपेटा ही यथेष्ट था। पर महा मुखियों को पकड़कर एक दूसरे से ऐसा टक्कर देते थे कि वे चल बसते थे। अटूट बल है। फल की भाँति उनका सिर तोड़ लेते हैं और उसे रावण के पास फेंकते हैं। मानो उसे युद्ध के लिए ललकारते हैं। वे महामुखियों के सिर हैं आकार में कुण्ड के समान हैं। रावण के सामने गिरकर इस भाँति फूटते हैं जैसे दही का कुण्डा फूटे। दही के कुण्डे के फूटने से सब दही बह चलती है। इसी भाँति सिर के फूटने से मज्जा बाहर निकलकर छितरा जाता था। इस व्याज से रावण को युद्ध के लिए चुनौती भी देते थे।

महा महा मुखिया जे पावहिं। ते पद गहि प्रभु पास चलावहिं ॥
कहइ बिभीषनु तिन्ह के नामा। देहिं राम तिन्हहू निज धामा ॥१॥

अर्थ : बड़े से बड़े मुखिया को पाते थे तो उनका पैर पकड़कर सरकार के पास फेंक देते थे। विभीषण उनका नाम बतलाते थे और रामजी उनको भी अपना धाम देते थे।

व्याख्या : शत्रुसेना में जो बड़े से बड़े मुखिया थे वे बड़े से बड़े पापी भी थे। क्योंकि पाप करना भी सामर्थ्य पर निर्भर है। सामान्य राक्षस के वर्णन में कहा गया है कि : देखत भीमरूप सब पापी। निसिचर निकर देव परितापी। करहिं उपद्रव असुर निकाया। नाना रूप धरहिं करि माया। जेहि बिधि होइ धर्म निरमूला। सो सब करहिं वेद प्रतिकूला। अतः महा महामुखिया अपने सामर्थ्यानुसार उपद्रव भी अधिक करते थे। वेद प्रतिकूलाचरण भी अधिक करते थे। ऐसों को हनुमान्जी और अङ्गदजी पैर पकड़कर सरकार के पास फेंक देते थे कि हम लोग इन्हें गति देने में असमर्थ हैं। इन पर सरकार ख्याल करें।

वे महा महामुखिया थे। उनका नाम सब जानते थे। विभीषणजी भी जानते थे। अतः उनका नाम बोलते थे। जिसमें चित्रगुप्त की बही से नाम कट जाय और सरकार उन्हें अपना धाम देते थे जहाँ से फिर लौटना नहीं होता : यद् गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम।

खल मनुजाद द्विजामिष भोगी। पावहिं गति जो जाँचत जोगी ॥
उमा राम मृदु चित करुनाकर। बैर भाव सुमिरत मोहि निसिचर ॥२॥

अर्थ : नरभक्षी तथा ब्राह्मणों के मांस को भोग माननेवाले वह गति पाते थे जिसकी याचना योगी लोग करते हैं। हे उमा! रामजी कोमलचित्त और करुणा की खानि है। मुझे वैर भाव से राक्षस स्मरण करते हैं।

व्याख्या : उन बड़े से बड़े मुखियाओं के लिए कहते हैं कि वे मनुष्यभक्षी थे। मांस का व्यसन यहाँ तक बढ़ता है कि मनुष्य खाने लगते हैं। मनुष्य का मांस अन्य सभी मांसों से अधिक स्वादु होता है। अतः राक्षसों का प्रधान भोजन मनुष्य है। उसमें भी यदि ब्राह्मण मिल जायँ तब तो मानो बड़ा ही दुर्लभ पदार्थ मिल गया। अतः कहते हैं : खल मनुजाद द्विजामिष भोगी। ऐसों को नरक में भी स्थान नहीं। सो उन्हें ऐसी गति मिल रही है जो योगियों को भी नहीं मिलती। योगी उस गति के लिए याचना करते हैं।

यहाँ सन्देह का स्थल है कि यदि ऐसे पापियों को ऐसी दुर्लभ गति मिली जो योगियों को नहीं मिलती तो न्याय के लिए स्थान कहाँ है? इसलिए सन्देह निवारण के लिए शिवजी उमा से कहते हैं कि करुणा न्याय से भी बड़ी है। सरकार का स्वभाव कोमल है और करुणा की खानि है। यहाँ पर भगवत् स्मरण का माहात्म्य कहते हैं। भगवान् अपनेवाले पर दया करते हैं। चाहे वह वैरभाव से ही क्यों न

स्मरण करे। ये राक्षस वैरभाव से स्मरण करते हैं। सरकार से कोई सम्बन्ध स्थिर कर लेना चाहिए और न हो तो वैरभाव ही सही। उपेक्षा न होनी चाहिए।

देंहि परमगति सो जिअ जानी। अस कृपालु को कहहु भवानी ॥
अस प्रभु सुनि न भजहिं भ्रम त्यागी। नर मति मंद ते परम अभागी ॥३॥

अर्थ : ऐसा जी में जानकर उन्हें परम गति देते थे। हे भवानी ! बताओ तो ऐसा कृपालु कौन है। ऐसा सुनकर ऐसे स्वामी को जो भ्रम छोड़कर नहीं भजते वे मनुष्य मतिमन्द और बड़े अभागे हैं।

व्याख्या : भाव कुभाव अनख आलसहूँ। नाम जपत मंगल दसि दिसिहूँ। ये अनख से भजते थे। नारदजी का मत है कि : कामक्रोधादयः तस्मिन्नेव करणीयाः। उसी पर काम क्रोधादि करे। भजन से परम गति मिलेगी ही चाहे रीझकर करे चाहे खीझकर करे। यथा : तुलसी अपने ईस को रीझि भजै या खीझ। खेत पड़ेते जामिहैं उलटो सीधो बीज। चित्तरूपी लाख को द्रवीभूत करने के लिए द्वेष भी तापक वस्तु है। भगवान् से द्वेष करनेवाले का चित्त भी द्रवीभूत होकर भगवदाकार से आकारित हो जाता है। बड़ा दृढ़ छाप चित्त पर पड़ जाता है। इससे उसका कल्याण हो जाता है। उस छाप से उसे इस देह से सुख नहीं मिलता जैसा भक्तों को मिलता है। पर सद्गति में उनके भेद नहीं पड़ता। शिवजी भवानी से आक्षेपार्थक प्रश्न करते हैं कि हे भवानी ! बतलाओ ऐसा कृपाल कौन है जो द्वेष पूर्वक स्मरण करनेवाले को परमगति दें ? स्मरण करने का तो ख्याल करे और द्वेषभाव पर ध्यान न दे। अर्थात् कोई नहीं है।

भजनीय में दो गुण होना चाहिए। एक तो वह समर्थ हो और दूसरे कृपाल हो। सो दोनों गुणों की सरकार में पराकाष्ठा है। समर्थ ऐसे हैं कि परमगति दे सकते हैं और कृपालु ऐसे हैं कि द्रोह भाव पर ध्यान नहीं देते। केवल स्मरण करने पर रीझ जाते हैं ऐसे प्रभु के भजन में जिसे भ्रान्ति होती है वह मतिमन्द है। जो अवसर चूक जाय वह मतिमन्द है। यथा : अहह मन्द मति अवसर चूका। मनुष्य शरीर पाकर उसने रामजी को नहीं भजा इसलिए मतिमन्द है और बड़ा भारी अभागा है। क्योंकि सेवा के समय देव ने उसे भ्रम में डाल दिया। वह इस भ्रम में रह गया कि कदाचित् कोई दूसरा इनसे अधिक समर्थ और दयालु प्रभु हो।

काय न कलेस लेस लेत मानि मनकी।
सुमिरे सकुचि रुचि जोगवत जनकी ॥
रीझे बस होत खीझे देत निजधाम रे।
फलत सकल फल कामतरु नाम रे ॥ विनय० पद ७१

अंगद अरु हनुमंत प्रवेसा। कीन्ह दुर्ग अस कह अवधेसा ॥
लंका द्वौ कपि सोहहिं कैसे। मथहिं सिंधु दुइ मंदर जैसे ॥४॥

अर्थ : अवधेश रामजी कहने लगे कि हनुमान् अङ्गद ने दुर्ग में प्रवेश किया। सो लंका में उन दोनों बन्दरों की कैसी शोभा हुई। जैसे दो बन्दर समुद्र मथ रहे हों।

व्याख्या : लंका में प्रविष्ट तो वानरी सेना कब की ही हो गयी थी पर यथेष्ट फल न हुआ। अङ्गद और हनुमान् के प्रवेश से अद्भुत दृश्य आँख के सामने आ गया। समुद्र मन्थन के समय बन्दर के घुसने से समुद्र का जल उथल पुथल होने लगा। अतः बड़ा घोर शब्द हुआ। यहाँ लंकारूपी समुद्र में हनुमान् अङ्गद भी दो मन्दर घूम रहे हैं। सो उलथ पुलथ मचा हुआ है। राक्षसों से हाहाकार का बड़ा घोर शब्द हो रहा है। दो मन्दर कहने का भाव यह कि समुद्र मन्थन में अकेला मन्दर यथेष्ट है और यदि दो मन्दर हों तो कहना ही क्या है। इसी भाँति लंका के मन्थन में दोनों में से एक ही यथेष्ट थे। इस समय तो दोनों अङ्गद हनुमान् मन्थन कर रहे हैं। अस कह अवधेसा का भाव यह कि सरकार श्रीमुख से इन दोनों वीरों का प्रशंसा कर रहे हैं।

दो. भुजबल रिपुदल दल मलि, देखि दिवस कर अंत।
कूदे जुगल बिगत स्रम, आये जहँ भगवंत ॥४५॥

अर्थ : भुजा के बल से शत्रु की सेना का मर्दन करके सन्ध्या का समय जानकर दोनों बिना थकावट के कूदे और जहाँ भगवान् थे वहाँ आये।

व्याख्या : शत्रु की सेना शस्त्रास्त्र से सुसज्जित है। इन दोनों वीरों के पास कोई अस्त्र शस्त्र भी नहीं है। केवल भुजा के बल से उस सेना का ऐसा मर्दन किया कि नितान्त शिथिल हो गयी। इधर सन्ध्या भी हो गयी अतः युद्ध समाप्त करते हैं। कुछ थकावट आने से नहीं। कूदकर ही चढ़े थे और कूदकर ही उतरे। शत्रु के गृह में बेरास्ते जाने का विधान है। मित्र के घर में रास्ते से ही जाने का विधान है। अतः ये लोग कूदकर लंका में गये थे और कूदकर सरकार के पास आ गये।

प्रभु पद कमल सीस तिन्ह नाए। देखि सुभट रघुपति मन भाए॥
राम कृपा करि जुगल निहारे। भये बिगत स्रम परम सुखारे ॥१॥

अर्थ : उन लोगों ने प्रभु चरण कमल में सिर नवाया। योद्धा देखकर रघुपति के मन में अच्छे लगे। रामजी ने कृपा करके दोनों को देखा तो उनकी थकावट मिट गयी और परम सुखी हो गये।

व्याख्या : विजय करके आ रहे हैं। अतः प्रभु के चरण कमलों में प्रणाम करते हैं। सरकार रघुपति हैं। रघुवंशी स्वभाव से वीर होते हैं। वीर के गुण को ठीक ठीक वीर ही समझते हैं। सरकार इनकी करणी वहीं से देख रहे थे कि लंका की समस्त सेना को केवल इन दो महात्माओं ने मन्थन कर डाला। अतः मालिक को प्रिय लगे।

रामजी ने कृपादृष्टि से उन दोनों सुभटों को देखा। उनकी कृपादृष्टि से शक्ति की वृद्धि होती है। यथा : कृपा दृष्टि कपि भालु बिलोके। भये प्रबल रन रुकहिं न रोके। तथा : राम कृपा कपिदल बल बाढ़ा। अतः बल के बढ़ने से थकावट जाती रही और बड़ा सुख प्राप्त हुआ। सुख का कारण मालिक की कृपादृष्टि है।

गये जानि अंगद हनुमाना। फिरे भालु मर्कट भट नाना॥
जातुधान प्रदोष बल पाई। धाए करि दससीस दोहाई॥२॥

अर्थ : अङ्गद और हनुमान् को गया हुआ जानकर नाना भट भालू और बन्दर लौट चले। राक्षस लोग सन्ध्याकाल का बल पाकर रावण की दोहाई बोलते हुए दौड़ पड़े।

व्याख्या : जब भालू बन्दर को मालूम हो गया कि अङ्गद हनुमान् चले गये तो निश्चय हो गया कि लड़ाई बन्द करने की आज्ञा हो गयी। अतः वे लोग भी लड़ना बन्द करके लौट चले। दिन का अन्त ही प्रदोष का समय है। प्रदोष के समय राक्षसों का बल बहुत बढ़ जाता है। काल का बल बड़ा भारी बल है। वह राक्षसों को मिला और अङ्गद हनुमान् उनका संहार करते थे। सो चले गये इसी समय भालू बन्दर की सेना लौटी तो राक्षस लोग रावण का जयकार करते हुए लौटती सेना के पीछे पीछा करने को दौड़े। गढ़ के नीचे तक चले आये।

निसिचर अनी देखि कपि फिरे। जहँ तहँ कटकटाइ भट भिरे॥
द्वौ दल प्रबल प्रचारि प्रचारी। लरत सुभट नहिं मानहिं हारी॥३॥

अर्थ : राक्षसों की सेना देखकर बन्दर लौट पड़े और जहाँ तहाँ कटकटाकर वीर लोग भिड़ गये। दोनों प्रबल सेना ललकार ललकार लड़ती है और सुभट लोग हार नहीं मान रहे हैं।

व्याख्या : जब बन्दरों ने देखा कि राक्षसी सेना पीछा कर रही है तो लौट पड़े। उन्हें क्रोध हुआ कि हमलोग तो लड़ाई को बन्द मानकर लौट रहे है और ये पीछा करके उसे पराङ्मुख होने का रूप देना चाहते हैं। इसलिए कटकटाकर भिड़ गये।

वानरी सेना रामजी के बल से प्रबल है और राक्षसी सेना इस समय काल बल से प्रबल हो उठी है। अतः ललकार ललकारकर बड़े उत्साह से लड़ने लगे। हार नहीं मानते। क्योंकि हार न मानने के लिए ही तो पीछा करना सहन न करके बन्दर लौटे हैं और उनकी हार ख्यापन के लिए ही राक्षसों ने पीछा किया था। अतः हार मानने को कोई तैयार नहीं। सुभट हैं ललकार ललकारकर लड़ रहे हैं।

बीर तमीचर सब अति कारे। नाना बरन बलीमुख भारे॥
सबल जुगल दल समबल जोधा। कौतुक करत लरत करि क्रोधा॥४॥

अर्थ : राक्षस योद्धा सभी अत्यन्त काले हैं और भारी बन्दर सब रंग रंग के

हैं। दोनों सेनाएँ बलवान् हैं। बराबर के योद्धा लोग क्रोध करके अनेक प्रकार से भिड़ रहे हैं।

व्याख्या : रात हो गयी। रंग से पहिचान हो रही है। काले तो भालू भी हैं। पर राक्षस अत्यन्त काले हैं और बन्दर अनेक रंग के हैं। अत्यन्त काला देखकर ही राक्षस का निश्चय और रंग बिरंगा देखकर बन्दर का निश्चय हो रहा है। अन्धकार में इतनी ही पहिचान सम्भव है।

दोनों सेनाएँ प्रबल हैं और बराबर के जोड़ों में लड़ाई हो रही है। योद्धा लोग अनेक प्रकार से लड़ रहे हैं। वृक्षों से पत्थरों से अस्त्र शस्त्र से नखों से और दाँतों से लड़ाई हो रही है।

प्रावृट सरद पयोद घनेरे। लरत मनहु मारुत के प्रेरे ॥
अनिप अकंपन अरु अति काया। बिचलत सेन कीन्हि इन्ह माया ॥५॥
भयेउ निमिष महुँ अति अँधियारा। वृष्टि होइ रुधिरोपल छारा ॥६॥

अर्थ : वर्षा और शरद के बहुत से बादल मानो वायु की प्रेरणा से लड़ रहे हैं। अकम्पन और अतिकाय नामी सेनापतियों ने सेना को भागते हुए देखकर माया किया। क्षण भर में घोर अन्धकार हो गया और रुधिर पत्थर और राख की वृष्टि होने लगी।

व्याख्या : वर्षा के बादल काले होते हैं और शरद के बादल अनेक रङ्ग के होते हैं। सो उस युद्ध की शोभा वर्णन करते हुए कवि कहते हैं कि बन्दर लोग तो मानो शरद के बादल हैं और राक्षस मानो वर्षा के बादल हैं। दोनों में लड़ाई होती है। बादल तो पङ्गु हैं। चल फिर नहीं सकते। फिर वे लड़ते कैसे हैं। इस पर कवि कहते हैं मानो वायु की प्रेरणा से लड़ रहे हैं।

फिर भी राक्षसों के पैर उखड़ गये। बन्दर भालुओं के सामने टिक न सके। तब अकम्पन और अतिकाय ने माया की। ये दोनों राक्षसी सेना के सेनापति थे। शारीरिक बल के न चलने पर राक्षस माया से काम लेते हैं। वही इन लोगों ने भी किया। बादल आते किसी ने न देखा और तमाम अँधेरा हो गया। वर्षा जल की होती है। यहाँ रुधिर पत्थर और छार की वर्षा हो रही है।

दो. देखि निबिड़तम दसहु दिसि, कपिदल भयउ खभार।
एकहि एकु न देखई, जहँ तहँ करहिं पुकार ॥४६॥

अर्थ : दसो दिशाओं में घोर अन्धकार देखकर बानरी सेना में बिषाद छा गया। एक दूसरे को देख नहीं पा रहे हैं। जहाँ तहाँ से पुकार कर रहे हैं।

व्याख्या : किसी ओर भी कुछ प्रकाश हो तो उधर ही चले जायँ। पर यहाँ तो दसो दिसाओं में अन्धकार छाया हुआ है। रात में बन्दरों को दिखाता नहीं। उजेली रात हो तो कुछ दिखाई पड़े। यहाँ तो घोर अन्धेरा में आ फँसे। पता नहीं

कि मैं कहाँ हूँ और साथी कहाँ हैं। युद्ध में साथी से बड़ी सहायता मिलती है और उधर राक्षसों की दृष्टि का अन्धकार में भी सञ्चार होता है। अतः वे सुभीते में हैं। अतः वानरी सेना में हाय हाय मची। जो जहाँ है वह वहीं से सहायता के लिए पुकार कर रहा है।

सकल मरमु रघुनायक जाना। लिये बोलि अंगद हनुमाना ॥
समाचार सब कहि समुझाए। सुनत कोपि कपिकुंजर धाए ॥१॥

अर्थ : रघुनाथजी ने सब रहस्य जान लिया। उन्होंने अङ्गद और हनुमान्‌जी को बुला लिया। उन्हें सब समाचार कहकर समझा दिया। सुनते ही बन्दरों में हाथी के समान अङ्गद और हनुमान् क्रोध करके दौड़े।

व्याख्या : रघुनायक कहकर अमानुष शक्तिसम्पन्न अवतार कहा। यथा : हैं दससीस मनुज रघुनायक। अर्थात् सुरनायक का रघुनायक होना कहा। सर्वज्ञ है सब जान गये। केवल वृत्तान्त ही नहीं जाना। उसका मर्म भी जाना कि उस अन्धकार उपद्रव का कारण आसुरी माया है। यदि सहायता न पहुँची तो सारी सेना मारी जायगी। इसलिए अङ्गद हनुमान् को बुलाया और सेना का सब इतिवृत्त कहा। यथा :

जानि दिवस को अन्त जब, आयो इत तुम दोय।
लौट चली बानर चमू, बिरत युद्ध ते होय ॥ ॥
ताहि प्रचारयो दुर्ग ते, उतरि निसाचर सेन।
लरति करति माया जबहि, जीति न सक्यौ बलेन ॥२॥
एहि छन कपिदल अति बिकल, दशदिशि लखि अधियार।
जाइ सँभारो सेन निज अङ्गद पवन कुमार ॥३॥

सुनते ही क्रुद्ध होकर दोनों वीर दौड़ पड़े। बड़े बलवान् होने से अङ्गद हनुमान् को कपिकुञ्जर कहा। ये दोनों सुनते ही सहायता के लिए दौड़ पड़े। राक्षसों की नीचता पर क्रुद्ध हैं। शीघ्र पहुँचने के लिए दौड़े।

पुनि कृपाल हँसि चाप चढ़ावा। पावक सायक सपदि चलावा ॥
भयउ प्रकास कतहुँ तम नाहीं। ग्यान उदय जिमि संसय जाहीं ॥२॥

अर्थ : फिर कृपाल ने हँसकर धनुष चढ़ाया और तुरन्त अग्निबाण चला दिया। तमाम उँजेला हो गया। अंधकार कहीं नहीं रह गया। जैसे ज्ञान के उदय होने से संशय नहीं रह जाता।

व्याख्या : पहिले बन्दरों की सहायता के लिए अङ्गद हनुमान् को भेजा और माया नाश के लिए हँसकर धनुष चढ़ाया। अग्निबाण का प्रयोग किया। उसके प्रकाश से तमाम उँजेला हो गया। उपमा देते हैं कि ज्ञान के उदय से जैसे संशय नष्ट हो जाता है। संशय महा दुःखद है। यथा : संसय सर्प ग्रसेउ मोहि ताता। दुखद

लहर कुतर्क बहु व्राता। ज्ञान के उदय से वह नष्ट होता है और परमानन्द की प्राप्ति होती है। सो अन्धकार दूर हुआ और बन्दरों को परमानन्द हुआ। अङ्गद हनुमान् के पहुँचने के पहिले ही माया भी नष्ट हो गयी और उजेला भी हो गया।

भालु बलीमुख पाइ प्रकासा। धाए हरखि बिगत स्रम त्रासा ॥
हनूमान अंगदु रन गाजे। हाँक सुनत रजनीचर भाजे ॥३॥

अर्थ : भालू और बन्दर प्रकाश पाकर दौड़े। उनकी थकावट और डर जाता रहा। हनुमान् और अङ्गद रण में गर्जे। उनकी हांक सुनते ही राक्षस भाग खड़े हुए।

व्याख्या : पहले कपिदल में खंभार पड़ा था। अब प्रकाश पाते ही उनका श्रम और भय जाता रहा। राक्षसी सेना को देखा कि दूर खड़ी है। सो उन पर दौड़ पड़े। तब तक इधर हनुमान् और अङ्गदजी भी पहुँच गये। उनकी गर्जना को राक्षस पहचानते हैं। उन्हें बिना देखे ही उनकी गर्जना से उनके आने का अनुमान करके भागे। एक तो प्रकाश होने से ही हिम्मत छूट गयी थी कि अब तो बन्दर भालू बिना लड़े न मानेंगे और बन्दर भालू दौड़ भी पड़े। तब से जो हनुमान् अङ्गद का गर्जन कान तक पहुँचा तो भागते ही बन पड़ा।

भागत भट पटकहिं धरि धरनी। करहिं भालु कपि अद्भुत करनी ॥
गहि पद डारहि सागर माहीं। मकर उरग झख धरि धरि खाहीं ॥४॥

अर्थ : भागते हुए वीरों को पकड़कर पृथ्वी पर पटकते हैं। इस भाँति भालु कपि अद्भुत करणी कर रहे हैं। उनका पैर पकड़कर समुद्र में फेंक देते हैं। मगर सर्प और मछलियाँ पकड़ पकड़कर खा रही हैं।

व्याख्या : बन्दर भालू बहुत दु:ख पा चुके थे। अत: भागते हुए को भी नहीं छोड़ते। पकड़कर पृथिवी पर पटक देते हैं। इतना ही नहीं अद्भुत करणी भी करते हैं। उनका पैर पकड़कर समुद्र में फेंक देते हैं। जलजन्तु उन्हें पकड़ पकड़कर खा रहे हैं।

दो. कछु मारे कछु घायल, कछु गढ़ चले पराइ।
गर्जहि भालु बलीमुख, रिपुदल बल बिचलाइ ॥४७॥

अर्थ : कुछ घायल हुए। कुछ रण में मारे गये। कुछ गढ़ पर भाग चले। शत्रु के दलबल को विचल करके भालू और वानर वीर गरजने लगे।

व्याख्या : अब भागते हुओं की दुर्दशा कहते हैं। हनुमान् और अङ्गद को कुछ करना न पड़ा। उनका गर्जना ही यथेष्ट था। वानरी सेना ने ही आसुरी सेना की सब दुर्दशा कर दी। कुछ तो घायल होकर रणभूमि में गिर गये कुछ मारे गये और कुछ भागकर किले पर चढ़ गये। अब बन्दर खड़े नीचे से गर्ज रहे हैं कि आओ नीचे तो तुम लोगों की खबर लें और वे नहीं उतरते।

निसा जानि कपि चारिउ अनी । आए जहाँ कोसला धनी ॥
राम कृपा करि चितवा सबहीं । भए बिगत स्रम बानर तबहीं ॥१॥

अर्थ : रात जानकर चारों सेना के बन्दर कोशलेश के पास आये। रामजी ने कृपा करके ज्यों ही देखा त्यों ही बन्दरों की थकावट जाती रही।

व्याख्या : पहिले ही चारो फाटक पर धावा करने के लिए चार सेना बनायी गयी थी। यथा : चार अनी कपि कटक बनावा। सो चारो सेना के बन्दर लोग सरकार के पास आये। राक्षसों की सेना को भगाकर गर्जन करते थे। पर राक्षसी सेना रात होने पर भी युद्ध के लिए नहीं आयी तब वहाँ से लौट कर सरकार के पास आये।

वीर लोग दिन भर युद्ध करके लौटे हैं। उनके श्रमापनोदन का उपाय होना चाहिए। सो सरकार ने जैसे अङ्गद हनुमान् के श्रमापनोदन का उपाय किया था वही सेवा के लिए भी किया। अर्थात् कृपादृष्टि से देखा। कृपादृष्टि में बड़ी सामार्थ्यं है। देखते ही सबकी थकावट दूर हो गयी। क्योंकि सबके सब निहाल हो गये। यथा :

नाथ हाथ माया प्रपंच सब जीव दोष गुनकाम कालु।
तुलसिदास भलो पाँच रावरो नेकु निरखि कीजिये निहालु ॥

विनय० पद १५४

रावण की सभा

उहाँ दसानन सचिव हँकारे। सब सन कहेसि सुभट जे मारे ॥
आधा कटकु कपिन्ह संहारा। कहहु बेगि का करिअ बिचारा ॥२॥

अर्थ : वहाँ रावण ने मन्त्रियों को बुलाया और सबसे कहा कि इतने वीर मारे गये। बन्दरों ने आधी सेना मार दी। जल्दी विचार कहो कि क्या करना चाहिए।

व्याख्या : यहाँ का हाल कहकर अब कवि वहाँ अर्थात् रावण के यहाँ का हाल कहते हैं। रावण के पास जितने वीर मारे गये उनकी नामावली और हताहत सैनिकों की सूची पेश हुई। जानकर रावण चिन्तित हुए। तुरन्त मन्त्री बुलाये गये। रावण ने सबको बतलाया कि अमुक वीर मारे गये और आधी सेना बन्दरों ने मार गिराया। भाव यह कि तुम लोग कहते थे कि : कहहु कवन भय करिअ बिचारा। नर कपि भालु अहार हमारा। सो तुम लोग कुछ न कर सके और राक्षसों का इतना संहार पहिले ही लड़ाई में हो गया। बन्दरों के प्रधान वीर कोई नहीं मारे गये। सेना भी कुशल से लौट गयी। सो तुम लोगों के उस विचार से तो बहुत हानि हुई। अब विचारकर बतलाओ कि क्या करना चाहिए।

माल्यवंत अति जरठ निसाचर। रावन मातु पिता मंत्री बर ॥
बोला बचन नीति अति पावन। सुनहु तात कछु मोर सिखावन ॥३॥

अर्थ : माल्यवन्त नाम का राक्षस बड़ा बूढ़ा था। वह रावण के नाना का श्रेष्ठ मन्त्री था। वह अत्यन्त पवित्र नीति का वचन बोला। कहने लगा कि हे तात ! कुछ मेरा भी कहना मानो।

व्याख्या : रावण के पूछने पर अब किसी मन्त्री के मुख से कोई बात नहीं निकलती। कोई भी यह कहने को तैयार न हुआ कि मैं सब बन्दरों को मारूँगा। वे तो भय और आशा से प्रिय बोलनेवाले थे। घर पर तो वे भी यही विचार करते थे कि : नहिं निसिचर कुल केर उबारा। परन्तु यह बात रावण को प्रिय न थी। अतः कह नहीं सकते थे सब के सब चुप हैं। तब माल्यवान् बोले। ये बड़े बुढ़े थे। रावण के नाना का मन्त्रित्व कर चुके थे। रावण को गोद खिलाये हुए हैं। इस समय रावण का मन्त्रित्व कर रहे हैं। इन्हीं ने विभीषण का समर्थन किया था।

सबको चुप देखकर धर्मनीति का वचन बोले कि यह समय विचार करने का नहीं है। मेरे सिखावन सुनने का समय है। तुम किसी का सिखावन नहीं सुनते पर मेरी तो सुनो। तुम्हारे नाना मेरी सुनते थे।

जब ते तुम सीता हरि आनी। असगुन होहिं न जाहिं बखानी ॥
बेद पुरान जासु जस गायो। राम बिमुख काहु न सुख पायो ॥४॥

अर्थ : जब से तुम सीताहरण कर लाये तब से ऐसे अपशकुन हो रहे हैं जो वर्णन नहीं किये जा सकते। जिसके यश का गान वेद पुराण करता है उस राम के विमुख होने से किसी को सुख न मिला।

व्याख्या : माल्यवान् कहते हैं कि तुम लोगों को कुछ होश नहीं है। मैं बैठे बैठे देखा करता हूँ। लंका सदा निरापद रही है। परन्तु जब से तुम सीता को हरण करके ले आये हो तब से ऐसे असगुन लंका में हो रहे हैं कि मैं उनका वर्णन नहीं कर सकता। पहिले अधर्म से प्रकृति में विकार आता है। पीछे अनिष्ट होता है। वही प्रकृति का विकार ही असगुन है। अतः असगुन से अशुभ फल होना निश्चय है। असगुन भविष्य घटना का द्योतक है। कभी खाली नहीं जाता।

तुमने बड़ा भारी अधर्म किया है। राम का यश वेद पुराण गान करते हैं। यथा : वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यः। उनकी आज्ञा ही धर्म है। उनकी आज्ञा का उल्लंघन अधर्म है। सो तुम उनके विमुख हो गये हो। राम जगदात्मा हैं। उनके विमुख होना अपनी आत्मा के विमुख होना है। अतः उनके विमुख जो हुआ उसे विश्राम मिल नहीं सकता। यथा : जगदातमा प्राणपति रामा। तासु विमुख किमि लह विश्रामा। पहिले भी जो उनसे विमुख हुए हैं उन्हें सुख नहीं मिला है।

दो. हिरण्याक्ष भ्राता सहित, मधुकैटभ बलवान।
जेहि मारे सोइ अवतरेउ, कृपासिंधु भगवान ॥
कालरूप खल बन दहन, गुनागार घनबोध।
सिव बिरंचि जेहि सेवहि, तासों कवन बिरोध ॥४८॥

अर्थ : भाई के सहित हिरण्याक्ष को तथा बलवान् मधुकैटभ को जिसने मारा था वही कृपासिंधु भगवान् अवतीर्ण हुए हैं। वे कालरूप हैं। खलवन के लिए दावानल हैं। गुणागार और ज्ञानघन हैं। जिसकी शिव ब्रह्म सेवन करते हैं उससे विरोध कैसा ?

व्याख्या : रामविमुख सुख काहु न पावा। इसी बात को स्पष्ट करते हुए माल्यवान कहते हैं कि उनके विरोधी चाहे कैसे ही पुरुषार्थी हों पर वे बच नहीं सकते।

हिरण्याक्ष के ऐसा पुरुषार्थी कौन होगा जो एकाकी गदा लिए हुए त्रैलोक्य में अपना जोड़ खोजता फिरता था। पर उसे कोई न मिला। वह जिसके हाथ से मारा गया। फिर उसके भाई हिरण्यकश्यप सा वरदान से सुरक्षित वीर कौन होगा। जो न रात को मरे न दिन को मरे। न घर के भीतर मरे न बाहर मरे। वह भी जिनके हाथ से मारा गया तथा बलवान मधुकैटभ जिन से डर के स्वयं ब्रह्मदेव जगदम्बा की स्तुति करने लगे। जिनके हाथ से मारे गये। यथा : अतिबल मधुकैटभ जिन मारे। महाबीर चिति सुत संहारे। जेहि बलि बाँधि सहजभुज मारा। सोइ अवतरेउ हरन महि भारा। वे ही कृपासिन्धु भगवान् अवतीर्ण हुए हैं इस बात को मैं जानता हूँ और राक्षस नहीं जानते। इनसे मन्त्रणा करना व्यर्थ है। मैं जानता हूँ। मेरी शिक्षा ग्रहण करो।

उन्हें मनुष्य न जानो। वे कालरूप हैं। यथा : कलोऽस्मि लोकक्षयकृत् प्रवृद्धः लोकान् समाहर्तुमिह प्रवृत्तः। कालरूप तिन कर मैं ताता। सुभ अरु असुभ कर्मफल दाता। खल के वन के लिए दावानल ही हैं। भस्म करके ही छोड़ते हैं। जैसा खलवन हो तदनुसार ही आकार करके उसका दाह करते हैं। जितने सद्गुण हैं उनके वे ही आश्रय हैं। अतः उनसे विरोध करना उचित नहीं। वे किसी से विरोध करते नहीं और विज्ञानघन हैं। अतः शिव विरञ्चि से सेवित हैं। अन्य जीव उनके सामने क्या हैं ? ता सों तात बैर नहि कीजै। मारे मरिअ जिआये जीजै। जिसके जिलाने से सब जीते हैं और मारने से सब मर जाते हैं उनसे विरोध कैसा ? प्रीति विरोध समान सन, करिअ नीति अस आहि। गरुड़ से मच्छड़ विरोध क्या करेगा।

क से कालरूप ख से खलवनदहन ग से गुनागार घ से घनबोध। मानो माल्यवान रावण को ककहरा पढ़ा रहे हैं।

परिहरि बैरु देहु बैदेही। भजहु कृपानिधि परम सनेही ॥
ताके बचन बान सम लागे। करिया मुँह करि जाहि अभागे ॥१॥

अर्थ : बैर छोड़कर वैदेही को दे दो। परम स्नेही कृपानिधि को भजो। उसके वचन बाण के समान लगे। बोला कि रे अभागा ! काला मुख करके चला जा।

व्याख्या : भाव यह कि तुम्हारा जो निश्चय है कि : तउ मैं जाइ बैर हठि करऊँ। उसे छोड़ो और वैर का मूल वैदेही हरण है सो उन्हें दे दो। तुमने कृपाल

और स्नेही ब्रह्मरुद्र का भजन किया था। अब कृपानिधि और परम स्नेही का भजन करो। भाव यह कि तुम कृपानिधि और परम स्नेही से वैर करते हो। सरकार कृपानिधि हैं। यथा : बिगरी सुधारै कृपानिधि की कृपा नई। वे बिगड़ी बात बना देते हैं। तुमसे जो कुछ बिगड़ा है सब बना देवेंगे। वे ब्रह्म हैं जीव पर उनका सहज स्नेह है। यथा : ब्रह्म जीव इव सहज सनेहू। तुम्हारे ऐसे आचरण पर भी तुम्हारे ऊपर उनका स्नेह बना ही हुआ है। कारुनीक दिनकर कुलकेतू। दूत पठायेउ तव हित हेतू।

माल्यवान के वचन परम हितकर थे। पर रावण को बड़े बुरे लगे। जैसे किसी ने बाण मारा हो। मन्दोदरी ने भी ऐसे ही वचन कहे थे। उन वचनों का भी चोट बाण सा ही लगा था। यथा : नारि वचन सुनि बिसिख समाना। सभा गयउ उठि होत बिहाना। पर उसे रावण सहन कर गये। मन्त्री के वचन न सह सके। बोले रे अभागा ! तू काला मुँह करके यहाँ से चला जा। हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम्। इस क्षात्र धर्म के तू विरुद्ध बोलता है। तू अभागा है। इतने सुभट मारे गये। आधी सेना समाप्त हो गयी। अब सुलह कैसा ? अब तो सुलह करके मुँह में कालिख पोतना है। इस प्रकार का मन्त्र देनेवाला तू है। तू अपने मुँह में कालिख पोत ले। और यहाँ से चला जा मेरा क्रोध बढ़ रहा है।

बूढ़ भयेसि नत मरतेउँ तोही। अब जनि नयन देखावसि मोही॥
तेहि अपने मन अस अनुमाना। बध्यौ चहत एहि कृपानिधाना॥२॥

अर्थ : तू बूढ़ा हुआ नहीं तो मैं तुझे वध दण्ड देता। अब मुझे आँख न दिखाना। उसने अपने मन में यह अनुमान किया कि इसे कृपानिधान मारना चाहते हैं।

व्याख्या : समर मन्त्रणा में ऐसी कच्ची बात बोलनेवाला वध्य है। तू मुझे सिखावन देने चला है। बच्चों की भाँति मुझे ककहरा पढ़ाता है : काल रूप खल वन दहन गुनागार घनबोध। हम लोग खल हैं ? वृद्धावस्था में बुद्धि मारी जाती है। यथा : लिखा विरंचि जरठ मति भोरे। तेरी बुद्धि बूढ़े होने से मारी गयी। अतः तुझे वध दण्ड तो नहीं देता पर तू यहाँ से निकल जा और फिर मेरे सामने कभी न आना। नयन देखावसि पाठ प्राचीन मिलता है। वहाँ यह अर्थ करना पड़ेगा कि रावण के : करिया मुख करि जाहि अभागे कहने पर माल्यवान के नेत्रों से क्रोध का भाव प्रकट हुआ। इसपर रावण कहता है कि तू वयोवृद्ध है। नहीं तो मेरे हाथ से तेरा वध हो जायगा।

तब माल्यवान ने अनुमान किया कि मैं इसके नाना का मन्त्री हूँ। मैंने इसे गोद खिलाया है। मैं इसके भले की बात कहता हूँ। यह मुझे गाली देता है। निश्चय इसकी मृत्यु निकट है। रामजी कृपानिधान हैं। इसका वध करके संसार पर और स्वयं इसपर कृपा करना चाहते है।

सो उठि गयउ कहत दुर्बादा। तब सकोप बोलेउ घननादा ॥
कौतुक प्रात देखिअहु मोरा। करिहौं बहुत कहौं का थोरा ॥३॥

अर्थ—वह तो दुर्वाद कहता चला गया। तब क्रुद्ध होकर मेघनाद ने कहा कि सबेरे मेरा तमाशा देखना। मैं बहुत कुछ करूँगा थोड़ा क्या कहूँ।

व्याख्या : पहिले तो नेत्रों में ही क्रोध का भाव व्यक्त हुआ। अब वचन से भी व्यक्त हो रहा है। माल्यवान इतना बड़ा अपमान नहीं सह सकता। जैसे बड़े लोग छोटे से अपमानित होने पर दुर्वाद कहते हुए उठकर चले जाते हैं उसी भाँति माल्यवान भी असाध्य व्याधि देखकर मतिमंद अभागा आदि दुर्वचन बोलता चला गया। माल्यवान् ही थे जिसका रावण इतना सह गया।

रावण ने यह समझकर प्रश्न किया था कि इसपर वीर लोग खड़े होंगे कि मैं युद्ध करूँगा मैं युद्ध करूँगा पर माल्यवान के चले जाने पर भी कोई न बोला। इस पर क्रुद्ध होकर जिसका भटों में प्रथम गणना है वह मेघनाद बोला।

सबेरा होने दीजिए। मैं कौतुक दिखलाऊँगा सब सेना खड़ी तमाशा देखे। देखिए मैं क्या करता हूँ। मेरे लिए वह खेलवाड़ होगा। शत्रु के लिए बहुत हो जायगा। यदि मैं इस समय कहूँ तो थोड़ा ही कह सकूँगा। अर्थात् अवर्णनीय पुरुषार्थ प्रकट करूँगा।

सुनि सुत बचन भरोसा आवा। प्रीति समेत अंक बैठावा ॥

[1]मेघनाद का गढ़ से उतरकर युद्ध करना

करत बिचार भयउ भिनुसारा। लागे कपि पुनि चहूँ दुआरा ॥४॥

अर्थ—बेटे की बात सुनकर रावण को भरोसा हुआ। प्रेम के साथ गोद में बिठाया। विचार करते ही करते सबेरा हो गया। बानरों ने फिर चारो फाटक पर धावा बोल दिया।

व्याख्या : किसी ने भरोसा नहीं दिया। रावण निराश हो गये थे। बेटे पर बड़ा नाज है सुत प्रसिद्ध सक्रारि। अतः भरोसा हुआ। मानदान के लिए अपनी गोद में बिठा लिया अथवा प्रेम के वशीभूत होकर अंक में स्थान दिया।

तत्पश्चात् विचार होने लगा कि क्या करना चाहिए। समस्या ऐसी कठिन थी कि विचार करने में ही रात व्यतीत हो गयी विचार समाप्त न हुआ। स्थिर यह हुआ कि उपेक्षा करना ठीक नहीं हुआ। किले पर से तोप चलनी चाहिए। इतना सबेरा हो गया कि बन्दर लोगों ने चारो फाटक पर धावा बोल दिया।

कोपि कपिन्ह दुर्घट गढु घेरा। नगर कोलाहलु भयउ घनेरा ॥
बिबिधायुध धरि निसिचर धाये। गढ़ ते पर्बत सिखर ढहाये ॥५॥

---

१. यह युद्ध पुष्यनक्षत्र की वर्षा है।

अर्थ : क्रोध करके बन्दरों ने दुर्घट गढ़ को घेर लिया। नगर में बड़ा भारी कोलाहल हुआ। अनेक प्रकार के अस्त्र-शस्त्र लेकर राक्षस दौड़े और किले पर से पर्वत के शिखर गिराये।

व्याख्या : पहिले बन्दर लोग चारो फाटक पर आये फिर क्रोध करके पूरी लंका घेर ली जिसमें सब ओर से युद्ध हो। जहाँ से अवसर मिले चढ़ जायँ। फिर नगर में भारी कोलाहल हुआ। शब्द सभा तक पहुँचा। राक्षस अस्त्र शस्त्र से सुसज्जित होकर दौड़ पड़े कि जिसमें ऊपर बन्दर चढ़ने न पावें। आकर देखा कि चढ़ रहे हैं तो किले पर से पहाड़ के शिखर ढकेलने लगे।

छं. [1]ढाहे महीधर सिखर कोटिन्ह बिबिध बिधि गोला चले।
घहरात जिमि पविपात गर्जत जनु प्रलय के बादले॥
मर्कट बिकट भट जुटत कटत न लटत तन जर्जर भये।
गहि सैल तेहि गढ़ पर चलावहिं जहँ सो तहँ निसिचर हये॥

अर्थ : राक्षसों ने करोड़ों शिखर ढकेले और अनेक प्रकार के गोले चलने लगे। जो ऐसा वज्रपात के समान घहराते थे और प्रलय के बादल के समान गर्जन करते हैं। विकट वीर वानर जुटते थे कटते थे शरीर जर्जर हो जाता था। तब भी वे शिथिल नहीं पड़ते थे। उन्हीं पहाड़ों को लेकर वे गढ़पर फेंकते थे। जिससे जहाँ के तहाँ राक्षस मारे गये।

व्याख्या : असंख्य पर्वत शिखर प्राकार के सन्निकट पहुँची हुई सेना से संहार के लिए ढकेले गये। दूरपर स्थित सेना के विनाश के लिए अनेक प्रकार के गोला चले। अर्थात् तोप की मार आरम्भ हुई। यहाँ यह सन्देह न करना चाहिए कि उस समय तोप नहीं थी। बारूद का प्रयोग बहुत प्राचीन काल से चला आता है। शुक्रनीति आदि ग्रन्थ द्रष्टव्य हैं। गोला चलने के समय ऐसा घोर शब्द होता था जैसे प्रलय के बादलों द्वारा वज्रपात के समय होता है। राक्षसी सेना की उपमा बादल से प्रथम दिन के युद्ध में दे चुके हैं। यथा : मेरु के सृंगन जिमि घन बैसे। आज भारी सेना आयी है। तोपों के चलने से धुआँ भी उठा हुआ है। इससे प्रलय के बादल से उपमा देते हैं। तोपों से अग्नि की लपक निकलती है। उसके बाद गड़गड़ाहट होती है। अतः उसकी उपमा वज्रपात से दे रहे हैं। मर्कट भी विकट भट हैं। पर्वत और गोलों की मार से छितर-बितर हो जाते हैं पर फिर जुट जाते हैं। चोट से कट जाते हैं। शरीर चिथड़ा हो जाता है पर हार नहीं मानते। रामजी की कृपा से उन्हें अतुलित बल है। राक्षसों के फेंके हुए पर्वतों को बीच में से ही पकड़कर उन्हें ऊपर इस भाँति फेंकना आरम्भ किया कि राक्षसी सेना जहाँ की तहाँ ही मारी पड़ी।

---

१. यह हरिगति छंद है।

दो. मेघनाद सुनि स्रवन अस, गढ़ पुनि छेंका आइ ।
उतरेउ बीर दुर्ग ते, सनमुख चलेउ बजाइ ॥४९॥

अर्थ : मेघनाथ ने कान से सुन पाया कि फिर किला घेर लिया । तब वह श्रेष्ठ वीर किले से उतरकर सामने डंका देकर चला ।

व्याख्या : मेघनाथ के पास समाचार पहुँचा कि मोरचे पर की सेना मारी गयी । तोप से भी काम न चला । वानरी सेना ने लंका घेर रक्खा है । मेघनाथ बड़ा वीर है । योद्धाओं में उसकी प्रथम गणना है । उसे किले के भीतर से युद्ध करना पसन्द नहीं । किले के भीतर से कमजोर लड़ाई करते हैं । अतः किले से नीचे उतर आया और लंका देकर सरकार के सामने चला । उसने निश्चय किया कि जब हम उन पर धावा बोल देवेंगे तो आप से आप वानरी सेना लंका का घेरा छोड़ देगी । नहीं तो चारो ओर युद्ध हो रहा है किधर किधर हम सँमाले । भाव यह कि जो चाल अङ्गद और हनुमान्‌जी प्रथम दिवस के युद्ध में चले थे वही चाल आज मेघनाथ चल रहा है ।

कहँ कोसलाधीस दोउ भ्राता । धन्वी सकल लोक बिख्याता ॥
कहँ नल नील द्विविद सुग्रीवा । अंगद हनूमंत बलसींवा ॥१॥

अर्थ : कहाँ हैं कोसलाधीश दोनों भाई जो कि लोकप्रसिद्ध धनुर्धर हैं कहाँ हैं ? नल नील द्विविद सुग्रीव और बल की सीमा अङ्गद और हनुमान् कहाँ हैं ?

व्याख्या : मेघनाथ ललकारता है कि मैं आज उन दोनों भाइयों से युद्ध करूँगा जिनके धनुर्धर होने की प्रशंसा सम्पूर्ण संसार में है । आज मैं उनकी धनुर्विद्या देखूँगा । तुम लोग हट जाओ क्यों प्राण देने आते हो । उन्हें बुलावो या दिखला दो कल की लड़ाई में तुम लोग नल नील द्विविद अङ्गद और हनुमान् को सेना विचलित होने के समय खोजते थे । वे ही मालूम होता है तुम्हारी सेना में बलवान् हैं । आज मैं उन्हीं लोगों को खोज रहा हूँ । सो उन लोगों को मेरा सामना करने को बुलाओ या मुझे उन लोगों को दिखला दो कि वे कहाँ हैं ?

कहाँ बिभीषनु भ्राता द्रोही । आजु सबहि हठि मारौं ओही ॥
अस कहि कठिन बान संधाने । अतिसय क्रोध स्रवन लगि ताने ॥२॥

अर्थ : भाई से विरोध करनेवाला विभीषण कहाँ है । आज मैं उस शठ को हठ करके मारूँगा । ऐसा कहकर उसने कठिन बाण चढ़ाये और अत्यन्त क्रोध से धनुष को कान तक खैंचा ।

व्याख्या : विभीषण भ्राता-द्रोही है । लंकेश बनकर आया है । वह शठ है । भाई से मीठी मीठी बातें करता था । परन्तु हृदय में उसके लंकेश बनने की अभिरुचि रही । प्रधान विरोधी होकर तो वही आया है । आज उसे तो हठ करके मार ही

डालूँगा। और लोग तो भागकर बच सकते हैं पर वह भागकर भी मेरे हाथ से न बचेगा। बतला दो उसको कि कहाँ है? मुझे तुम लोगों के मारने से प्रयोजन नहीं है।

उसकी चेतावनी का जब कोई प्रभाव वानरी सेना पर न पड़ा तो उसने कठिन बाणों को चढ़ाया। जिसका रोक न हो सके और अत्यन्त क्रुद्ध होकर कान तक प्रत्यञ्चा खैंचकर बाण छोड़े जिससे दूर तक चोट हो और चोट दबाकर कोई बच न सके।

सरसमूह सो छाड़ै लागा। जनु सपच्छ धावहिं बहु नागा॥
जहँ तहँ परत देखिअहि बानर। सनमुख होइ न सके तेहि अवसर॥३॥

अर्थ : वह बाणों का समूह छोड़ने लगा। मानो बहुत से पङ्खवाले सर्प दौड़ रहे हो। बानर जहाँ तहाँ गिरते हुए दिखाई पड़ने लगे। उस अवसर में कोई उसके सामने न हो सका।

व्याख्या : कमनेती की कुशलता दिखाते हैं। एक एक बाण नहीं मारता। समूह के समूह छोड़ता है। वे पक्षसहित सर्प मालूम पड़ते हैं। बाण में पंख लगाये जाते हैं इसलिए सपक्ष कहा। विष से बुझाये हुए हैं इसलिए नाग कहा। अथवा फुंकार करते चलते हैं इसलिए नाग कहा। यथा : फुंकरत जनु बहु व्याल बन्दरों का किया कुछ नहीं हो रहा है। जो जहाँ हैं वे वहीं गिर रहे हैं। किसी की सामर्थ्य नहीं जो मेघनाथ के सामने जा सके।

जह तहँ भागि चले कपि रीछा। बिसरी सबहिं युद्ध कै ईछा॥
सो कपि भालु न रन महँ देखा। कीन्हेसि जेहि न प्रान अबसेखा॥४॥

अर्थ : वानर और भालू जहाँ तहाँ भाग चले। लड़ाई की इच्छा सबको भूल गयी। रण में ऐसा कोई भालू या वानर न दिखाई पड़ा जिसे उसने प्राणावशेष न कर दिया हो।

व्याख्या : वानरी सेना भाग चली। जिन बन्दरों को युद्ध को ऐसी इच्छा थी कि परम क्रोध मीजहिं सब हाथा। आयसु पै न देहिं रघुनाथा। मर्दि गर्द मिलवहिं दससीसा। ऐसइ बचन कहहिं सब कीसा। उनके मन से युद्ध की इच्छा जाती रही। उन्हें स्मरण भी नहीं है कि कभी उनको युद्ध की इच्छा थी।

मेघनाथ की बाणवर्षा ऐसी भयानक हुई कि जो जीते रहे वे भी प्राणविशेष रह गये। मेघनाथ उत्तर फाटक से बाहर आया है। वहीं युद्ध कर रहा है वहीं की यह व्यवस्था हुई।

दो. दसदस सर सब मारेसि, परे भूमि कपि बीर।
सिंहनाद करि गर्जा, मेघनाद बलधीर॥५०॥

अर्थ : उसने सबको दस दस बाण मारे सब वीर धराशायी हुए। बलधीर मेघनाथ सिंहनाद करके गर्जा।

व्याख्या : सेना की यह दुर्दशा सुनकर चारों ओर से वीर उधर ही दौड़ पड़े। उन्हें सहायता करने के लिए आते देखकर सबको दस दस बाण मारे। धनुर्वेद में दस दस बाण मारने की कोई विधि है जिससे समूह पर प्रहार करने में सबको दस दस बाण लगते हैं। यथा : दसदस विसिष उरमाझ, मारे सकल निसिचर नायकाँ। वे सबके सब वीर पृथ्वी पर गिर गये। तब सेना और वीरों का पराजय करके मेघनाद सिंहनाद करके गरजा। यह विजयसूचक गर्जन है।

देखि पवनसुत कटकु बिहाला। क्रोधवंत जनु धायेउ काला ॥
महासैल एक तुरत उपारा। अतिरिसि मेघनाद पर डारा ॥१॥

अर्थ : हनुमान्‌जी सेना को बिहाल देखकर क्रुद्ध हो काल की भाँति दौड़े। तमककर बड़ा भारी पर्वत उखाड़ लिया और अत्यन्त क्रोध से मेघनाद पर फेंका।

व्याख्या : हनुमान्‌जी पवनतनय हैं। पवन सा ही इनको बल है। पहिले तो विचलित होना सुना था। यथा : निज दल विकल सुना हनुमाना। पर इस बार तो आँखों देखा कि हमारी सेना विहाल है। देखा तो बहुतों ने पर किसी का किया कुछ हो न सका। पवनसुत काल की भाँति दौड़े : अंडकटाह अमित लय कारी। काल सदा दुरतिक्रम भारी। हनुमान्‌जी का भी अतिक्रमण नहीं हो सकता। अतः काल के ऐसा कहा। काल अपने वेग से ही मारता है। अतः धावा जिमि काला कहा।

महा महीधर अर्थात् ऐसा पहाड़ जो बाण से तोड़ा न जा सके क्रोध से उखाड़ लिया। और सेना को बेहाल देखने से क्रोध बहुत बढ़ा हुआ है। इसलिए बड़े वेग से मेघनाद पर फेंका। मेघनाद उस समय कठिन बाण चला रहा था। उसी समय हनुमान्‌जी ने अप्रतिक्रिय चोट महीधर द्वारा की।

आवत देखि गयो नभ सोई। रथ सारथी तुरग सब खोई ॥
बार बार पचार हनुमाना। निकट न आव मरमु सो जाना ॥२॥

अर्थ : पहाड़ आते देखकर वह आकाश में चला गया पर रथ सारथी और घोड़े समाप्त हो गये। हनुमान्‌जी बार बार ललकारते हैं पर वह मर्म जानता है। इसलिए निकट नहीं आता।

व्याख्या : पहाड़ सिर पर आते देखकर मेघनाद समझ गया कि इससे न बचेंगे। अतः आकाश में चला गया। नीचे नहीं कूदा उसे भय था कि कल की भाँति हनुमान्‌जी लात से मारेंगे। पहाड़ रथपर गिरा सो रथ सारथि और घोड़े पिस गये। यह मेघनाद की दूसरी पराजय हनुमान्‌जी द्वारा हुई।

मेघनाद आकाश में ही स्थित है। हनुमान्‌जी नीचे से बार बार ललकारते हैं। वह पहिले बार बार ललकार चुका है। उसके जवाब में इधर से भी ललकार हो रही है। कहँ नल नील द्विविद सुग्रीवा। अंगद हनूमन्त बलसीवा। सो हनुमन्त आ

गये और बार बार ललकार रहे हैं। यह समय भिड़ जाने का है पर वह इनके निकट नहीं आता। मर्म जाना हुआ है कि एक मुक्का में मूर्च्छित हो गये थे और कल ही लात खानेपर लादकर घर पहुँचाये गये थे और इस समय परम क्रुद्ध हैं। निकट जाने में कल्याण नहीं है।

रघुपति निकट गयउ घननादा। नाना भाँति कहेसि दुर्बादा ॥
अस्त्र सस्त्र आयुध सब डारे। कौतुकही प्रभु काटि निवारे ॥३॥

अर्थ : मेघनाद तब रामजी के पास गया और अनेक प्रकार के दुर्वचन कहे। अस्त्र-शस्त्र तथा बहुत से हथियार चलाये। सरकार ने खेल में ही सब काट डाले।

व्याख्या : तब तो हनुमान्‌जी को वहीं छोड़ा और सरकार के पास पहुँचा। नाना भाँति से गालियाँ दीं। इस भाँति अपना पुण्य क्षीण कर रहा है। क्योंकि भगवदपराध से पुण्य क्षीण होता है। मेघनाद शुभाशुभ कर्म का नाश करके मोक्ष चाहता है। सीताहरण में इसका अपराध कुछ भी नहीं अथवा आसुरी प्रकृति है। अतः इसने वैर का नाता जोड़ रक्खा है। संसार स्तुति करता है। यह गाली देता है कि जानबूझकर तुमने झगड़ा मोल लिया है। तुम्हारी स्त्री हरण की गयो तो इतना क्रोध है सूर्पणखा अनाथा की नाक कटी सो कुछ नहीं हुआ ?

दुर्वाद का कोई उत्तर न पाकर अस्त्र शस्त्र चलाने लगा। अब सरकार का कौतुक आरम्भ हुआ। अस्त्र शस्त्र काटते हैं पर उसे नहीं मारते जिसमें उसके जी में लड़ाई का हौसला न रह जाय। सरकार तो इसके बाणपर प्रहार करते हैं।

देखि प्रताप मूढ खिसिआना। करैं लाग माया बिधि नाना ॥
जिमि कोउ करै गरुड़ से खेला। डर पावै गहि स्वल्प सँपेला ॥

अर्थ : सरकार का प्रताप देखकर वह मूढ़ खिसिया गया। तब नाना प्रकार की माया करने लगा। जैसे कोई गरुड़ से खेलवाड़ करे और छोटा सा साँप का बच्चा लेकर उसे डरावे।

व्याख्या : जिन अस्त्रों को अप्रतिक्रिय समझता था वे सब काटे गये। धन्वी होने का अभिमान टूटा। सामर्थ्य नहीं चलने पर खिसियाया। प्रभाव देख लेनेपर शरण जाना चाहिए था परन्तु मूढ़ है। उसे चिढ़ हुई तब अनेक प्रकार की माया दिखलाने लगा।

उसका भी प्रभाव सरकार पर कुछ न हुआ। यदि गरुड़ को कोई साँप का बच्चा दिखाकर डरावे तो गरुड़ पर क्या प्रभाव पड़ेगा ? साँप का बच्चा भी उपेक्षा की वस्तु नहीं है। पर हम लोगों के लिए गरुड़ के लिए नहीं। क्योंकि गरुड़जी तो बड़े बड़े सर्पों का ही आहार करते हैं। सर्प का विष उनके मन्त्र से उतर जाता है। साँप के बच्चे से गरुड़ को क्या भय हो सकता है ? इसी भाँति माया का प्रभाव जीव पर पड़ सकता है। मायानाथ के सामने माया क्या करेगी ?

दो. जासु प्रबल माया बस, सिव बिरंचि बड़ छोट।
ताहि देखावै निसिचर, निज माया मति खोट ॥५१॥

अर्थ : जिसकी प्रबल माया के विवश शिव विरञ्चि तथा सभी छोटे बड़े हैं उसे मन्दबुद्धि निशाचर अपनी आसुरी माया दिखा रहा है।

व्याख्या : जिसकी माया जगत् के कर्ता धर्ता शिव विरञ्चि को मोहन करती है तथा सम्पूर्ण संसार जिसके वश में है यथा : यन्मायावशवर्ति विश्वमखिलं ब्रह्मादिदेवा सुराः। शिव विरंचि कहँ मोहै को है बपुरा आन। उस प्रभु को यह निशाचर अपनी माया दिखाने चला। यह उसकी मतिमन्दता है। अथवा जब देख लिया कि सच्चे हानिकारक अप्रतिक्रिय अस्त्र शस्त्र का बल जिसपर नहीं चलता। उसपर माया क्या काम करेगी जो स्वयं तत्त्वरहित हैं। अतः उसके माया दिखाने का प्रयास उसके बुद्धिमान्द्य का ही परिचायक है।

नभ चढि बरष बिपुल अंगारा। महि ते प्रगट होहि जलधारा॥
नाना भाँति पिसाच पिसाची। मारु काटु धुनि बोलहिं नाची ॥१॥

अर्थ : वह आकाश चढ़कर अंगारों : गोलों की बड़ी वृष्टि करता था। पृथ्वी से पानी की धारा फूट निकलती थी। अनेक प्रकार के पिशाच और पिशाचिनियाँ नाच नाचकर मारो काटो की ध्वनि करती थीं।

व्याख्या : आकाश अत्यन्त सूक्ष्म भूत है। वह ऐसी वस्तु नहीं है जिसपर चढ़ा जा सके। परन्तु मेघनाद आकाश पर चढ़ जाता है और वहाँ से अङ्गारे बरसाता है। जल बरसते तो सब ने देखा है पर अंगारों का बरसना तो किसी ने सुना भी नहीं। इस वैज्ञानिक युग में अंगारों : गोलों का बरसाना सुना जाता है। असुरों में कुहक विद्या प्राचीन काल से चली आती है। बीच में लोप हो गया था। अब फिर वह विद्या प्रकट हुई है और वे अंगारे इतने वेग से गिरते थे कि पृथ्वी से फूटकर जलधारा निकल पड़ती थी। सिनेमा का दृश्य दिनदहाड़े रणांगण में दिखला देता था। अकम्पन और अतिकाय ने तो दिन की लड़ाई में पहिले अन्धकार उत्पन्न करके तब सिनेमाभवन की भाँति माया के दृश्य दिखाये थे पर मेघनाद उँजेले में दिखा रहा है। पिशाच पिशाची आदि उग्रजीवों का नाच हो रहा है। भयानक नाच है। ताल टूटने के साथ मारो काटो की धुनि की जाती है।

बिष्टा पूय रुधिर कच हाड़ा। बरषै कबहूँ उपल बहु छाड़ा॥
बरषि धूरि कीन्हेसि अँधियारा। सूझ न आपन हाथु पसारा ॥२॥

अर्थ : विष्ठा पीव रक्त बाल हड्डियाँ और कभी बहुत से पत्थर और वान्त : उलटी बरसाता था। उसने धूलि वर्षा करके ऐसा अँधियारा कर दिया कि अपना फैलाया हुआ हाथ नहीं सूझता था।

व्याख्या : बन्दर रीछ लोग देवांश हैं यथा : जो कुछ आयसु ब्रह्मा दीन्हा।

हरखे देव विलंब न कीन्हा। वनचर देह धरी छिति माहीं। अतुलित बल प्रताप तिन पाहीं। सो उनका तेज नष्ट करने के लिए अपवित्र वस्तुओं की वर्षा करता है।

बन्दर लोग तब तक तो भला किसी भाँति सहन कर सकते थे जब तक कि दिखलाई देता था। पर जब धूल की वर्षा उसने की और उससे ऐसा अन्धकार हो गया कि अपना ही हाथ फैलाने पर नहीं दिखाई पड़ने लगा।

कपि अकुलाने माया देखें। सबकर मरनु बना एहि लेखें॥
कौतुक देखि राम मुसुकाने। भये सभीत सकल कपि जाने॥३॥

अर्थ : माया देखकर बन्दर घबराये कि इस भाँति तो हम लोग सभी मर जायँगे। यह खेल देखकर रामजी मुसुकुराए। समझ लिया कि सभी बन्दर त्रस्त हो गये हैं।

व्याख्या : सबके लिए तो यह अपार माया थी पर रामजी के लिए कौतुक था। वे मुसुकुराए कि इसी लिये यह बाप से कह आया है : कि कौतुक प्रात देखिअहु मोरा। करिहौं बहुत कहौं का थोरा। परन्तु यह मेरे बन्दरों के डराने के लिए बहुत है। वे तो इस दृश्य को सच्चा मानेंगे।

एक बान काटी सब माया। जिमि दिनकर हर तिमिर निकाया॥
कृपादृष्टि कपि भालु बिलोकें। भए प्रबल रन रहहिं न रोकें॥४॥

अर्थ : एक ही बाण से सारी माया काट दी जैसे सूर्य अन्धकार के समूह को नष्ट कर देता है। रामजी ने बानर भालुओं को कृपादृष्टि से देखा जिससे वे इतने हो गये कि रोके नहीं रुकते थे।

व्याख्या : यहाँ बाण से माया काटी जाती है। सिनेमा का यन्त्र ही तोड़ दिया गया। एक बाण से सब माया वैसी ही कटी जैसे एक सूर्य से सब अन्धकार का नाश हो जाता है। विष्ठा पूय रुधिर कच हड्डी आदि का पता ही नहीं कि क्या हो गये। न कहीं अंगारे : गोले गिरे थे न पृथ्वी फटी थी। पर सेना प्राणावशेष हो गयी थी। सो सरकार की कृपादृष्टि के देखने से ऐसी प्रबल हो उठी कि रोकने से नहीं रुकती थी। नहीं तो सबकी युद्ध की इच्छा ही समाप्त हो गयी थी यथा : बिसरी सबहिं युद्ध की इच्छा।

दो. आयसु माँगि राम पहि, अंगदादि कपि साथ।
लछिमन चले क्रुद्ध होइ, बान सरासन हाथ॥५२॥

अर्थ : तब रामजी से आज्ञा माँगकर अङ्गद आदि बन्दरों के साथ अत्यन्त क्रुद्ध होकर लक्ष्मणजी धनुष बाण हाथ में लिये हुए चले।

व्याख्या : मेघनाद के अन्याय को नहीं सह सके। अतः लक्ष्मणजी ने उठकर युद्ध करने की आज्ञा माँगी। क्योंकि मेघनाद सरकार से युद्ध कर रहा था और सरकार उसके ऊपर प्रहार नहीं करते थे। केवल उसके प्रहारों को व्यर्थ कर देते

थे। अतः लक्ष्मणजी ने स्वयं युद्ध करना चाहा। आज्ञा मिलने पर अङ्गद आदि वीरों के साथ बहुत क्रुद्ध होकर चले। उसने नाना भाँति से सरकार को दुर्वाद कहा है। इसलिए लक्ष्मणजी को बड़ा क्रोध है। उसने ललकारा भी है : कि कहँ कोसलाधीस दोउ भ्राता। इस कारण से भी लक्ष्मणजी का उसके सामने जाना प्राप्त था : क्रोध के वेग में सरकार को प्रणाम करना विस्मरण हो गया।

छतज नयन उर बाहु बिसाला। हिमगिरि निभ तनु कछु एक लाला ॥
इहाँ दसानन सुभट पठाए। नाना शस्त्र अस्त्र गहि धाये ॥१॥

अर्थ : लक्ष्मणजी की आँखें रक्त की तरह लाल छाती और भुजायें विशाल और शरीर हिमाचल पर्वत की आभावाला है। पर कुछ लाली भी है। इधर रावण ने योद्धाओं को भेजा। वे अनेक प्रकार के अस्त्र-शस्त्र लेकर दौड़े।

व्याख्या : मेघनाद ने सरकार को दुर्वाद कहा है। इससे क्रोध विशेष होने से आँखें रक्त की भाँति लाल हो गई हैं। अवयव संस्थान वीरोचित आकारवाला है अर्थात् छाती और वक्षःस्थल विशाल है। स्वभाव से लक्ष्मणजी का वर्ण हिमालय की भाँति श्वेत है। पर इस समय उस श्वेत वर्ण में कुछ ललाई क्रोध के कारण आ गयी यथा : सीस जटा ससि बदन सुहावा। रिसिबस कछुक अरुन होइ आवा। मेघनाद ने रावण से कहा था : कौतुक प्रात देखि अहु मोरा। सो रावण कौतुक देख रहे थे। जब देखा कि सब माया समाप्त हो गई। वानरी सेना की कोई विशेष क्षति नहीं हुई। तब रावण ने सहायता के लिए योद्धाओं को भेजा। दशानन है : सब ओर दृष्टि रखता है। रत्ती-रत्ती का समाचार लगाये रहता है। लक्ष्मणजी युद्ध के लिए उठे हैं। अङ्गदादि बड़े बड़े वीर साथ हैं। अतः लंका के प्रायः सभी वीरों को सहायतार्थ भेजा।

भूधर नख बिटपायुध धारी। धाए कपि जयराम पुकारी ॥
भिरे सकल जोरिहि सनजोरी। इतउत जयइच्छा नहिं थोरी ॥२॥

अर्थ : पर्वत नख और विटपरूपी हथियार धारण किये हुए जयरामजी की ऐसा पुकारकर बन्दर दौड़ पड़े। जोड़ो से जोड़ो भिड़ गयी। इधर और उधर दोनों ओर से जय की थोड़ी इच्छा नहीं है।

व्याख्या : अस्त्र-शस्त्र लिये निशाचरी सेना का धावा देखकर वानरी सेना भी दौड़ पड़ी। इनके पास हथियार के नाम से पहाड़ नख और पेड़ थे। सात्त्विक कर्त्ता है : ईश्वर प्रीत्यर्थ युद्ध करते हैं। अपना स्वार्थ उनका कुछ भी नहीं है। जयराम के पुकार से अपना उत्साह बढ़ाते हैं तथा शत्रु को सावधान करते हैं। अपनी जोड़ी खोजने में कठिनता नहीं है। स्वामी के साथ वीर लोग योग्यता के क्रम से आ रहे हैं। धर्मयुद्ध हो रहा है। जोड़ी से जोड़ी भिड़ी हुई है। निर्बलों की हत्या नहीं हो रही है। आज सम्पूर्ण भट लंका के और रामदल के उतर पड़े हैं। हनुमान् अङ्गद सुग्रीव नील नल द्विविद मयंद आदि तथा दुर्मुख सुररिपु अतिकाय अकम्पन आदि

सब वीर युद्ध में प्रवृत्त हैं। दोनों ओर से जीत की प्रवल इच्छा है। प्राणपण से युद्ध हो रहा है। श्रीराम जय राम जय जय राम : यह महामन्त्र तृण को भी वज्र बनाता है।

मुठिकन्ह लातन्ह दांतन्ह काटहिं। कपि जयसील मारि पुनि डाटहिं॥
मारु मारु धरु ध धरु मारू। सीस तोरि गहि भुजा उपारू॥३॥

अर्थ : वानर राक्षसों को पंजे लात और दाँतों से काटते हैं। जीत बन्दरों की होती थी। वे मारकर फिर दूसरों को डाँटते थे। मारो मारो धरो धरो पकड़ो मारो सिर तोड़कर पकड़कर भुजा उखाड़ लो।

व्याख्या : बन्दरों को पैर नहीं होते। चारो हाथ ही होते हैं। अतः वे जिस भाँति अगले पंजों से नख प्रहार करते थे उसी भाँति पिछले पंजों से भी जिन्हें लात कहा गया है नख प्रहार करते थे। नख भी शस्त्र की भाँति काट कर रहे हैं। इसलिए मुष्टि लात और दाँत से भी काटना कहा गया है। केवल काटने मारने में वीर रस नहीं है। वीररस डाँटने में है। जब जयशील होकर वीर डाँटता है कि अन्यायी फिर तू लड़ने का साहस करेगा : तब वीर रस का परिपाक होता है।

जो सामने आता है उसे मारू जो अपने साथी को पीछे से प्रहार किया चाहता है उसे धरू और जो साथी को मार रहा हो उसे धरूँ मारूँ। मारने की विधि कहते हैं कि शीश तोरू नहीं टूटता हो तो भुजा उपारू। संग्राम भूमि में वीरों की इस प्रकार की चिल्लाहट हो रही है।

असि रव पूरि रही नवखंडा। धावहिं जहँ तहँ रुंड प्रचंडा॥
देखहिं कौतुक नभसुर बृंदा। कबहुँक बिसमय कबहुँ अनंदा॥४॥

अर्थ : नवो खण्डों में ऐसी ध्वनि भर रही है। जहाँ तहाँ प्रचण्ड रुण्ड दौड़ने लगे। आकाश में देवगण यह कौतुक देख रहे थे। कभी तो उन्हें विस्मय हो जाता था और कभी आनन्दित हो जाते थे।

व्याख्या : यहाँ अत्युक्ति अलङ्कार है। भाव यह कि ऐसी ध्वनि दिगन्त में व्याप्त हो रही थीं। बड़ा भारी संग्राम हुआ। अभी तक युद्ध में रुण्ड नहीं उठे थे। सो जिधर देखिए उधर ही रुण्ड दौड़ते दिखाई पड़ते हैं। जब तलवार की लड़ाई थी उस समय रण रस में मत्त वीर सिर कटने पर भी कुछ देर तक तलवार चलाते हुए लड़ते थे। बहुत से वीरों के कटने पर कोई रुण्ड उठता है : लोग कहते हैं कि अन्तिम रुण्ड ऊदल का महाराज पृथ्वीराज की लड़ाई में उठा था। फिर रुण्ड नहीं उठा। वैसा युद्ध यज्ञ ही नहीं हुआ कि रुण्ड उठे। अब तो युद्ध यज्ञ ही बन्द है, युद्ध के नाम पर नर हत्या होती है।

देवता लोग जिनके लिए यह सब हो रहा है आकाश में दूर से तमाशा देख रहे हैं। जब निशाचर दल बीस पड़ता है तब उन्हें विस्मय होता है और जब

वानरी सेना बीस पड़ती है तब आनन्द होता है। आनन्द के जोड़ में विस्मय शब्द के प्रयोग से उसका अर्थ दुःख करना पड़ा।

दो. रुधिर गाड़ भरि भरि जमेउ, ऊपर धूरि उड़ाइ।
जनु अंगार रासिन्ह पर, मृतक धूम रह्यो छाइ ॥५२॥

अर्थ : गड्ढों में भरकर रक्त इकट्ठा हो गया। उस पर धूल उड़कर पड़ी जैसे अङ्गार की राशियों पर राख छा जाय।

व्याख्या : रुधिर गाढ़ा होता है और बहुत शीघ्र जम जाता है। सो युद्ध में सद्यः रक्त प्रवाह ऐसा बहा कि गड्ढे भर गये और अधिक ऊँचे हो गये। युद्ध में जो धूलि उठी उससे ढक जाने पर भी लाली चमकती है। उसकी उपमा देते हुए कहते हैं जैसे अङ्गार राशि पर हलकी राख स्वभाव से ही हो जाती है। इस भाँति रणाङ्गण का वर्णन करके वीरों का वर्णन करते हैं।

घायल बीर बिराजहि कैसे। कुसुमित किंसुक के तरु जैसे॥
लछिमन मेघनाद द्वौ जोधा। भिरहिं परसपर करि अति क्रोधा ॥१॥

अर्थ : घायल वीर ऐसी शोभा दे रहे हैं जैसे फूला हुआ टेसू का वृक्ष हो। लक्ष्मण और मेघनाद दोनों योद्धा अत्यन्त क्रोध से एक दूसरे पर प्रहार कर रहे हैं।

व्याख्या : जब टेसू फूलता है तो सम्पूर्ण जङ्गल लाल हो जाता है। एक एक पेड़ लाल फूलों से भर उठता है। इसी भाँति घायल वीर लोग घाव के बहुतायत से लाल हो उठे हैं। रणाङ्गण टेसू का वन हो रहा है। सब जोड़ियों का इस भाँति वर्णन करके प्रधान जोड़ी लक्ष्मण और मेघनाद के युद्ध का वर्णन करते हैं। बिना क्रोध का युद्ध हत्या है। युद्धयज्ञ में क्रोधाग्नि का प्रज्वलित होना अत्यन्त आवश्यक है। यथा : चाप स्रुवा सर आहुति जानू। कोप मोर अति घोर कृसानू। समिध सेन चतुरंग सोहाई। महा महीप भये पसु आई। मै एहि परसु काटि बलि दीन्हे। समर जग्य जप कोटिन्ह कीन्हे। अतः सभी जोड़ियों में क्रोध हो रहा है। पर लक्ष्मण मेघनाद की जोड़ी में क्रोध अधिक है। ये दोनों ओर के सिरे के वीर हैं। मेघनाद के विषय में कहा गया है : बारिदनाद जेठ सुत तासू। भट महँ प्रथम लीक जग जासू। जेहि न होइ रन सनमुख कोई। सुरपुर नितहि परावन होई। और लक्ष्मणजी के लिए स्वयं सरकार कहते हैं : जग महुँ सखा निसाचर जेते। लछिमन हनइ निमिष महुँ तेते।

एकहि एक सकै नहि जीती। निसिचर छल बल करै अनीती॥
क्रोधवंत तब भयउ अनंता। भंजेउ रथ सारथी तुरंता ॥२॥

अर्थ : एक दूसरे को जीत नहीं पा रहे हैं। राक्षस छल के बल से अनीति करता है। तब अनन्त क्रुद्ध हुए उसके रथ और सारथी का विध्वंस किया।

व्याख्या : लक्ष्मणजी के जीतने में मेघनाद सर्वथा असमर्थ है। लक्ष्मणजी

अनन्त हैं : इनका पराभव हो नहीं सकता। पर मेघनाद राक्षस है उसे छल के बल से अनीति करने में कोई हिचक नहीं है। अतः उसका जीतना लक्ष्मणजी के लिए भी कठिन हो रहा है अथवा लक्ष्मणजी उसे खेला रहे हैं। जिसमें उसका हौसला बाकी न रहे। देखने में यह मालूम हो रहा है कि : सकहिं नहिं जीती।

मेघनाद रथ पर से युद्ध करता था और लक्ष्मणजी पदाती थे। फिर भी उसे अनीति करते देखकर क्रोध किया अर्थात् वध करने की इच्छा की। अतः पहिले उसे विरथ किया। रथ तोड़ दिया। सारथी को मार दिया। मेघनाद रक्षा न कर सका। अभी तक रथ रहने दिया था कि तू रथ पर से लड़ मैं पैदल ही तेरा सामना करूँगा।

नाना बिधि प्रहार कर सेषा। राक्षस भयउ प्रान अवसेषा॥
रावनसुत निज मन अनुमाना। संकट भयउ हरिहि मम प्राना॥३॥

अर्थः : लक्ष्मणजी ने अनेक प्रकार से उसपर प्रहार किया। तब तो राक्षस प्राणावशेष हो गया। रावण के बेटे ने मन में अनुमान किया कि संकट आ पड़ा है। अब यह मेरा प्राण हरण करेगा।

व्याख्या : लक्ष्मणजी शेष हैं। जैसे शेषजी सहस्रफण से प्रहार करें उस भाँति अति लाघव से नाना प्रकार से ऐसा प्रहार किया कि उसमें प्राणमात्र शेष रह गया। वह अपने को बचा न सका। उसे मालूम होता था कि सहस्रों प्रहार एक साथ हो रहे हैं। मेघनाद ने बन्दरों की सेना को प्राणावशेष कर दिया था यथा : सो कपि भालु न रन महँ देखा। कीन्हेसि जेहि न प्रान अवसेषा। लक्ष्मणजी ने उसके बदले में इसे प्राणावशेष कर दिया।

रावण का बेटा युद्ध विद्या में बड़ा चतुर है। तुरन्त समझ गया कि पहिले विरथ करके मुझे संकटापन्न अवस्था में ले आये अब मेरा प्राण लिया चाहते हैं। वह वीरघातिनी साँगी साथ लाया था पर उसे छोड़ता न था। चाहता था कि अन्य उपाय से काम निकल जायगा। पर जब देखा कि मरा चाहते हैं तो निश्चय किया कि अब साँगी किस दिन काम आयेगी।

बीर घातिनी छाड़ेसि सांगी। तेजपुंज लछिमन उर लागी॥
मुरछा भई सक्ति के लागें। तब चलि गयउ निकट भय त्यागें॥४॥

अर्थ : तब उसने वीरघातिनी शक्ति चलायी। वह तेज की पुञ्ज थी। लक्ष्मणजी के हृदय में लगी। शक्ति के लगने से मूर्च्छा हुई तब भय छोड़कर उनके पास चला गया।

व्याख्या : वीरघातिनी शक्ति प्रख्यातप्रभावा है। जब मेघनाद के चलाने से वह चली तो मालूम हुआ कि तेज का पुञ्ज ऊपर आ गया। वह शक्ति लक्ष्मणजी के हृदय में लगी। इतना तो उसने कर ही दिया कि लक्ष्मणजी मूर्च्छित हो गये। मेघनाथ लक्ष्मणजी से बहुत भयभीत हो गया था पर मूर्च्छित देखकर लंका में उठा ले

जाने के लिए निकट चला गया। उसने समझ लिया कि लक्ष्मणजी अजेय हैं। वीरघातिनी शक्ति भी इनका घात नहीं कर सकी। अतः मूर्च्छा छूटने से पहिले इन्हें लंका में ले जाकर बन्दी कर लेना चाहिए।

दो. मेघनाद सम कोटि सत, जोधा रहे उठाइ।
जगदाधार सेष किमि, उठइ चले खिसिआइ ॥५४॥

अर्थ : मेघनाद के समान सौ करोड़ योद्धा लक्ष्मणजी को उठाने लगे। पर जगत् के आधार अनन्त कैसे उठ सकते हैं। अतः खिसियाकर सब लौट चले।

व्याख्या : यहाँ सम शब्द ईषत् न्यून के अर्थ में आया है। कोटिशत का अर्थ बहुत है। भाव यह कि मेघनाद ने अकेले ही उठाना चाहा पर जब न उठे तो और भी वीर लोग उसकी सहायता में लग गये। पर लक्ष्मणजी को हिला न सके। सरकार का प्रभाव देखकर मेघनाद खिसियाकर रह गया। यथा : देखि प्रभाव मूढ़ खिसिआना। इस समय लक्ष्मणजी का प्रभाव देख खिसियाकर चला गया। कवि कहते हैं कि लक्ष्मणजी जगदाधार हैं। अनन्त हैं। वे उठ नहीं सकते। शान्त पदार्थ ही हिलडोल सकता है। लक्ष्मणजी अवतारावस्था में भी स्वरूप में ही स्थित हैं।

सुनु गिरिजा क्रोधानल जासू। जारै भुवन चारिदस आसू ॥
सक संग्राम जीति को ताही। सेवहिं सुरनर अगजग जाही ॥१॥

अर्थ : हे गिरिजा! सुनो जिसके क्रोध की आग चौदहो भुवन को तुरन्त भस्म कर देती है। जिसकी देवता मनुष्य चर-अचर सब सेवा करते हैं उसे युद्ध में कौन जीत सकता है?

व्याख्या : कथा कहते कहते महादेवजी गिरिजा को सावधान करते चले जाते हैं। सरकार के : अति नर अनुहारी चरित देखने या सुनने से मोह हो जाने की बड़ी सम्भावना रहती है। अतः बार बार श्रोता को सावधान करते रहना चाहिए। अतः जब जब अति नर अनुहारी चरित का प्रकरण आ जाता है तब तब शिवजी उमा को सावधान करते हैं।

अग्नि लगने से सम्पूर्ण भुवन नहीं जल सकता। दीवार आदि शेष रह ही जाता। पर शेष भगवान् की कोपाग्नि इतनी प्रबल है कि सारा संसार तुरन्त भस्म हो जाता है। वही शेष लक्ष्मणजी हैं, इनका क्रोध ही सारे जगत् को भस्म करता है और कुछ करने की आवश्यकता नहीं। ये यदि संग्राम करें तो इन्हें कौन जीत सकता है? ये सबके स्वामी हैं। जड़ चेतन मनुष्य देवता सब इनकी सेवा करते हैं। लड़ने की तो कोई बात ही नहीं।

यह कौतूहल जानै सोई। जापर कृपा राम कै होई ॥
संध्या भई फिरी दोउ बाहिनी। लगे सँभारन निजनिज अनी ॥२॥

अर्थ : यह कौतुक वही जान सकता है जिसपर रामजी की कृपा हो। सन्ध्या हुई दोनों सेनाएँ लौटीं। सब अपनी अपनी सेना को सँभालने लगे।

व्याख्या : यहाँ प्रश्न यह उठता है कि जब ऐसा पराक्रम है तो मूर्च्छा कैसे हुई ? यदि अलौकिक पराक्रमी हैं तो मूर्च्छित कैसे हुए और यदि मूर्च्छित हुए तो उन्हें अलौकिक पराक्रमी कैसे मानें ? इस पर कहते हैं कि इसके जानने का कौतूहल होना बहुत सम्भव है। पर इसका रहस्य वही जानता है जिसपर रामकृपा हो। प्रभु के कृपापात्र वाल्मीकिजी ने कहा : तुम जो कहहु करहु सब साँचा। जस काछिय तस चाहिय नाचा। जो स्वाँग लावे तदनुसार ही अभिनय करना चाहिए। अन्यत्र भी कहा है : नट कृत विकट कपट खगराया। नट सेवकहि न व्यापै माया। सो नर इन्द्रजाल नहि भूला। जापर होइ सो नट अनुकूला। दिन भर युद्ध होता था। सायं काल को समाप्त हो जाता था। उस दिन भी सन्ध्या होने पर दोनों सेनाएँ लौट गयीं। यूथप लोग अपने अपने यूथ को सँभालने लगे। कौन मारा गया कौन घायल हुआ। कितना घायल हुआ : इत्यादि।

लक्ष्मण का उपचार

व्यापक ब्रह्म अजित भुवनेश्वर। लछिमन कहाँ बूझ करुनाकर ॥
तब लगि लै आयउ हनुमाना। अनुज देखि प्रभु अति दुखु माना ॥३॥

अर्थ : व्यापक ब्रह्म अजेय सम्पूर्ण भुवनों के ईश्वर करुणाकर पूछते हैं कि लक्ष्मण कहाँ हैं। तब तक हनुमान्जी उन्हें ले आये। भाई को देखकर सरकार ने बहुत दुःख माना।

व्याख्या : व्यापक उसे कहते हैं जो सर्वत्र हो। पर आकाश भी व्यापक हैं। अतः ब्रह्म कहते हैं। जिसकी व्यापकता आकाश से भी बढ़कर है और चेतन हैं। अतः अजेय हैं। व्याप्य से व्यापक नहीं जीता जाता। वही भुवनेश्वर हैं। उसका आज्ञा अपेल है और जो इतना होने पर भी कारुणीक है। अपने भक्तों पर बड़ी करुणा करता है ऐसे प्रभु रामजी हैं।

अब दूसरा कौतुक सुनिये। रामजी अपने स्वरूप को छिपाये हुए सामान्य मनुष्य की भाँति पूछते हैं। लक्ष्मण युद्ध करने गये थे सो अबतक नहीं लौटे। वे कहाँ हैं ? पर कोई उत्तर नहीं देता। इस अप्रिय समाचार को कोई कहना नहीं चाहता। तब तक हनुमान्जी उन्हें उठा लाये। क्योंकि हनुमान्जी सरकार के बड़े कृपापात्र हैं। यथा : तैं मम प्रिय लछिमनते दूना। इन्द्रजाल के जाननेवाले हैं। छोटे भाई की दशा मृतप्राय देखकर सरकार बहुत दुःखी दिखाई पड़े।

जामवंत कह बैद सुखेना। लंका रहै को पठई लेना ॥
धरि लघुरूप गयउ हनुमंता। आनेउ भवन समेत तुरंता ॥४॥

अर्थ : जाम्बवान् ने कहा : सुषेण वैद्य लंका में रहता है उसे ले आने के

लिए किसी को भेजा जाय। हनुमान्‌जी छोटा रूप करके गये और तुरन्त उसे घर के सहित उठा लाये।

व्याख्या : इस समय विभीषण को कहना प्राप्त था परन्तु नहीं कहते। सोचते हैं कि यदि सुषेण की चिकित्सा से भी लक्ष्मण नहीं अच्छे हुए तो मेरी क्या परिस्थिति होगी ? सुग्रीवजी की ही बात ठीक पड़ जायगी : जानि न जाइ निसाचर माया। कामरूप केहि कारण आया। सभी कहेंगे : इस भाँति सुषेण द्वारा लक्ष्मण का प्राण विभीषण ने लिया। परन्तु जाम्बवान्‌जी भेद जानते हैं। वह वैद्य है। जान बूझकर कभी हानि नहीं पहुँचा सकता। अतः जाम्बनान्‌जी ने कहा कि मैं जानता हूँ। लंका का वैद्य सुषेण बड़ा प्रवीण है। उसे लिवा आना चाहिए। पर सुषेण का घर कौन जानता है। लंका में जाकर सुषेण को लिवा लाने में समर्थ कौन है ? यह बात विचारणीय थी। हनुमान्‌जी यह सुनते ही आप से आप चल पड़े। इनका घर घर देखा हुआ है। इन्हें सुषेण का औषधालय स्मरण है। जैसा छोटा रूप धारण करके पहिले लंका में गये थे उसी रूप से गये और सुषेण को घर के सहित उठा लाये। इससे रावण से सुषेण की रक्षा भी हो गयी और सुषेण को यह कहने का अवसर न मिले कि दवा तो घर पर ही छूट गयी।

दो. राम पदारबिन्द सिरु, नायउ आइ सुषेन।
कहा नाम गिरि ओषधी, जाहु पवनसुत लेन ॥५५॥

अर्थ : सुषेण ने आकर रामजी के चरण कमलों में सिर नवाया। उसने पहाड़ और औषध का नाम बतलाया : आज्ञा हुई कि पवनपुत्र जाओ ले आवो।

व्याख्या : सुषेण भक्ति से प्रभु को प्रणाम करते हैं। यहाँ सब कुछ बड़ी जल्दी से हो रहा है। इसलिए कवि भी बड़ी जल्दी में है। कथा को अति संक्षेप में कह रहे हैं। सुषेण द्वारा लक्ष्मण का देखना आदि न कहकर सुषेण का वाक्य भी अति संक्षेप में कह रहे हैं कि उसने पर्वत का नाम जिसपर वह ओषधि होती है और उस ओषधि का भी नाम बतला दिया। कहा कि सूर्योदय के पहिले यह ओषधि आ जानी चाहिए। यहाँ सबसे पूछा गया। कौन कितनी देर में जा सकता है ? सबने अपना वेग कहा। पर रात भर में लाने का साहस किसी को भी नहीं हुआ। केवल राजा सुग्रीव ने कहा कि मैं चार पहर में ला सकता हूँ। अङ्गदजी ने कहा तीन पहर में मैं ला सकता हूँ। हनुमान्‌जी ने कहा खौलते हुए तेल में राई छोड़िये। जितने देर में फूटेगी उतनी देर में मैं ला दूँगा। अतः पवनसुत को आज्ञा हुई।

रामचरन सरसिज उर राखी। चला प्रभंजनसुत बल भाषी॥
उहाँ दूत एकु मरमु जनावा। रावनु कालिनेमि गृह आवा॥१॥

अर्थ : रामजी के चरण कमलों को हृदय में रखकर प्रभञ्जन : पवन कुमार अपना बल कथन करके चले। वहाँ एक दूत ने जाकर भेद कहा। रावण कालिनेमि के घर आये।

व्याख्या : रामजी के चरणकमलों को हृदय में धारण करना ही सब सिद्धियों का अमोघ साधन है। यह ध्यान असाध्यसाधन करता है। अतः हनुमान्‌जी ने पहिले उन चरणों को हृदय में स्थान दिया। यहाँ प्रभञ्जनतनय कहने का यह भाव है कि माया को ये भञ्जन कर डालनेवाले हैं। इन्हें कोई मायावी जीत नहीं सकता। यथा : उठि बहोरि कीन्हेसि बहु माया। जीति न जाय प्रभंजन जाया। तत्पश्चात् आश्वासन देने के लिए अपना बल कहा। यथा :

जौ हौं अब अनुसासन पावौं।
तौ चन्द्रमहि निचोरि चैल ज्यौं आनि सुधा सिर नावौं॥
कै पाताल दलौं व्यालावलि अमृत कुंड महि लावौं।
भेदि भुवन करि भानु बाहिरो तुरत राहुदे तावौं॥
बिबुध बेद बरबस आनौं धरितौं प्रभु अनुग कहावौं।
पटकौं मीचनीच मूषक ज्यौं सबहि को पापु बहावौं॥
तुम्हरिहिं कृपा प्रताप तिहारेहि नेकु विलम्ब न लावौं।
दीजै सोइ आयसु तुलसी प्रभु जेहि तुम्हरे मन भावौं॥

: गीतावली ८. ८

इस गड़बड़ में रावण का एक भेदिया दूत वानरी सेना में प्रविष्ट हो गया। उसने यह सब बातें देखी सुनीं। उसने वहाँ : रावण के यहाँ जाकर सब भेद बतला दिया कि सूर्योदय के पहिले यदि सञ्जीवनी बूटी मिल जाय तो लक्ष्मण जी सकते हैं। यथा : जिऍं कुँअर निसि मिलै मूलिका कीन्हीं विनय सुखेन। सो हनुमान्‌जी मूलिका लेने चल पड़े। रावण ने देखा कि इस समय कालनेमि का काम है। इसके ऐसा मायावी लंका में कोई है नहीं। यथा : कालनेमि कलिकपट निधानू। पर इस समय उसका झुकाव निवृत्ति की ओर है। वह इच्छापूर्वक प्रवञ्चनादि कर्म में प्रवृत्त नहीं होगा। यदि मैं स्वयं उसके पास जाऊँ तभी उसका इस काम में हाथ लगाना सम्भव है। अतः रावण स्वयं उठकर कालनेमि के पास गये। अपने स्वार्थ के लिए जब किसी के बलि की आवश्यकता होती है तब रावण स्वयं उसके पास जाते हैं। मारीच के पास भी इसी भाँति गये थे।

दसमुख कहा मरमु तेहिं सुना। पुनि पुनि कालनेमि सिरु धुना॥
देखत तुमहि नगरु जेहिं जारा। तासु पंथ को रोकन पारा॥२॥

अर्थ : रावण ने कहा उसने मर्म सुना। लगा बार बार सिर पीटने : बोला कि तुम्हारे देखते जिसने नगर जला दिया उसके रास्ते को कौन रोक सकता है।

व्याख्या : रावण ने वही भेद कालनेमि से कहा जो दूत से सुना था। अभिप्राय यह कि तुम हनुमान्‌जी का रास्ता रोको। पहाड़ तक रात में जाने न पावे। बस इतने ही में शत्रु का पराजय निश्चित है।

कालनेमि अपनी बेवसी पर सिर पीटने लगा। समझा कि कार्य सिद्धि असम्भव है। हनुमान् किसी के वश में नहीं। लंका से मकान सहित वैद्य को उठा ले गया।

इनका किया कुछ हुआ नहीं। मुझे उसका रास्ता रोकने को कहते हैं। रावण उत्तर दे सकता है कि मुझे पता नहीं लगा। इसलिए कालनेमि नगर का उदाहरण देते हैं कि मैं हनुमान् के सामने क्या हूँ। आप देखते रह गये। उसने नगर जला दिया। मेरा भी घर जल गया। न आपका किया कुछ हुआ न मेरा किया कुछ हुआ न किसी का किया कुछ हुआ। वह मूलिका लेने चला है। उसका रास्ता कौन रोक सकता है ? इस प्रयत्न में मृत्यु तो ध्रुव है। कार्य होना नहीं है। भाव यह कि स्वयं आप भी नहीं रोक सकते तो मेरी क्या गिनती है ?

भजि रघुपति करु हित आपना। छाड़हु नाथ मृषा जलपना ॥
नीलकंज तनु सुन्दर स्यामा। हृदय राखु लोचन अभिरामा ॥३॥

अर्थ : रघुपति का भजन करके अपना कल्याण कीजिये। इस निस्तत्त्व कथा को छोड़िये। नीलकमल के समान श्यामसुन्दर नयनाभिराम को हृदय में धारण कीजिये।

व्याख्या : रघुपति कहकर रघुकुल में अवतार होना जो तापनीय श्रुति में कहा गया है उसी ओर लक्ष्य करता है। देवता लोग भी निर्विशेष ब्रह्म के जानने में असमर्थ हैं। वे भी अवतार का ही भजन करते हैं। आप अपना अनहित रघुपति से विरोध करके कर रहे हैं। उनकी सेवकाई में ही जीव का हित है। यथा : हित हमार सियपति सेवकाई। जो बातें आप कह रहे हैं वे सब निस्तत्त्व हैं। कभी होनेवाली नहीं हैं झूठी हैं। इन्हें सत्य कोई कर नहीं सकता। आप नाथ हैं अतः आपके भले की बात कह रहा हूँ।

राम लोचनाभिराम हैं। उनका नीलकमल सा सुन्दर शरीर हृदय में स्थान देने योग्य है। वह मङ्गलमय अतिपावन पावन हैं। उन्हें हृदय में धारण करने से सुख भी है और परम कल्याण भी है।

मैं तैं मोर मूढ़ता त्यागू। महामोह निसि सूतत जागू ॥
काल व्याल कर भच्छक जोई। सपनेहुँ समर कि जीतिअ सोई ॥४॥

अर्थ : मैं तें और मेरा यही मूढ़ता है। इसे छोड़िये। महामोह रूपी रात्रि में सो रहे हो सो जागो। जो कालरूपी व्याल का भक्षक है वह क्या स्वप्न में भी रण में जीता जायगा।

व्याख्या : कालनेमि कपट निधान होनेपर भी मारीच के ढंग का भक्त तथा ज्ञानी भी था। उसने रावण को दिव्य ज्ञान का उपदेश दिया। उसने पहिले माया के स्वरूप का निरूपण किया कि मैं तैं और मोर यही मूढ़ता है। यथा : अहं ममेत्यविद्येयं व्यवहारस्तथानयोः। मैं और मेरा ऐसी बुद्धि तथा इनका व्यवहार अविद्या है जबकि आत्मा आकाश वायु अग्नि जल और पृथ्वी से सर्वथा पृथक् है तो कौन बुद्धिमान् व्यक्ति शरीर में आत्मबुद्धि करेगा। फिर देह के उपभोग्य गृहक्षेत्रादि में तथा पुत्र पौत्रादि में कौन विद्वान् अपनापन मानेगा ? देह में आत्म बुद्धि तथा पुत्र

कलत्रादि से ममता मूढ़ता : बेवकूफी है यह त्यागना योग्य है। मोह निसा सब सोवनिहारा। देखहिं सपन अनेक प्रकारा। आप जागिये आप सोये हुए हैं। वस्तुतस्तु स्वप्न देख रहे हैं और अपने को जगा हुआ मान रहे हैं। विषय विलास में जिसका चित्त है वह सो रहा है। उससे विराग होना ही जागना है। यथा : जानिअ तबहिं जीव जग जागा। जब सब विषय बिलास बिरागा।

अगजग जीव नाग नर देवा। नाथ सकल जगु काल कलेवा। अड कटाह अमित लयकारी। काल सदा दुरतिक्रम भारी। इस जगत् में सब काल के वश है। रामजी कालव्याल के भक्षक हैं। काल के भी काल हैं। उन्हें जीतने के स्वप्न देखने का भी प्रश्न नहीं है। आप जीत नहीं सकते। व्यर्थ में परिजन परिवार का संहार क्यों करा रहे हैं।

दो. सुनि दसकंठ रिसान अति, तेहि मन कीन्ह बिचार।
रामदूत कर मरौं वरु, यह खल रत मलभार ॥५६॥

अर्थ : यह सुनकर रावण बहुत बिगड़ा। तब कालिनेमि ने मन में विचार किया कि राम के दूत के हाथ से मरना अच्छा है। यह खल तो पाप के भार में अनुरक्त है।

व्याख्या : उपदेशो हि मूर्खाणां प्रकोपाय न शान्तये। उपदेश सुनकर मूढ़ को क्रोध आता है शान्ति नहीं होती। सो रावण उपदेश सुनकर बिगड़ खड़े हुए। मारने को तैयार हुए जैसे मारीच पर बिगड़े थे। यथा : गुरु जिमि मूढ करसि मम बोधा। कहु जग मोहि समान को जोधा। कालनेमि ने देखा कि यदि इसकी बात नहीं मानते तो यह मारता है और मानते हैं तो हनुमान्‌जी के हाथ से मरते हैं। मैं तो बँचता नहीं। तब रामदूत के हाथ से मरना भला है। मार खाकर लंकिनी कहती है : तात मोर अति पुन्य बहूता। देखेउँ नयन राम कर दूता। इसके हाथ से मरना अच्छा नहीं है। यह रामजी के विमुख है। अतः मल भार में रत है।

यथा : मोह जनित मल लाग बिबिध कोटिउ जतन न जाई।
जनम जनम अभ्यास निरत चित अधिक अधिक अधिकाई॥
नयन मलिन परनारि निरखि मन मलिन विषय संग लागे।
हृदय मलिन वासना मान मद जीव सहज सुख त्यागे॥
पर निन्दा सुनि श्रवण मलिन भए बचन दोष पर गाए।
सब प्रकार मलभार लाग निज नाथ चरन बिसराये॥

अस कहि चला रचिसि मग माया। सर मंदिर वर बाग बनाया॥
मारुत सुत देखा सुभ आस्रम। मुनिहि बूझि जलु पिअउँ जाइ स्रम ॥१॥

अर्थ : ऐसा कहकर चला रास्ते में माया रची। तालाब श्रेष्ठ मन्दिर और बाग बनाया। पवनपुत्र ने देखा कि आश्रम अच्छा है। मुनिजी से आज्ञा लेकर जल पीवें तो थकावट मिटे।

व्याख्या : यह कहकर चला कि अच्छा रामदूत के हाथ से मरने जाता हूँ। अघटित घटना पटीयसी माया का लक्षण है। उसने माया रची। अघटित घटना की पटुता देखिये। हनुमान्‌जी से पीछे चला और आगे निकल गया। क्षण भर में तालाब मन्दिर और श्रेष्ठ बाग लगाया और उसी रास्ते में ऐसे स्थान पर बनाया जहाँ पहुँचने पर हनुमान्‌जी को प्यास लग जाय और खेल में समुद्रोल्लङ्घन करनेवाले को थकावट आ जाय। ये सब अघटित घटना है। उसने माया का प्रयोग सर मन्दिर बाग बनाने में ही नहीं किया। उसने माया का प्रभाव हनुमान्‌जी पर भी डाला। उनके वेग को स्तम्भनी विद्या से रोका। हनुमान्‌जी को उस स्तम्भनी विद्या का अतिक्रमण करते हुए आगे बढ़ना पड़ा। इससे श्रम भी हुआ और जहाँ उसने चाहा वहाँ प्यास भी लगी। सर मन्दिर वर बाग बनाया का अर्थ इतना ही करना चाहिए कि सर मन्दिर बाग को ऐसा सँवारा कि शुभ मालूम पड़े। बनाना का अर्थ सँवारना होता है। यथा : बसन भरत निज हाथ बनाये। आज भी इसका प्रयोग सँवारने के अर्थ में होता है। यथा : खूब बना बनाकर लिखो। अर्थात् पहिले के बने हुए सर मन्दिर और बाग को मुनि के आश्रम का रूप दे दिया। देखनेवाले समझें कि मुनिजी सर में स्नान करते हैं। बाग का फल फूल खाते हैं। मन्दिर में पूजा करते हैं। इनका संसार से कोई सम्बन्ध नहीं है।

मारुतसुत कहने का भाव यह कि देवांश हैं। शुद्ध स्थल का ही जल ग्रहण करते हैं। माया के अवरोध से चलने में श्रम अधिक हुआ। उसी के प्रभाव से प्यास भी लगी। शुभ आश्रम का तालाब है। मुनिजी से रक्षित है। इसके जल के शुद्ध होने में संदेह नहीं। बिना स्वामी की आज्ञा तालाब का भी जल हनुमान्‌जी पीना नहीं चाहते। अतः प्यास और श्रम निवारण के लिए मुनिजी से आज्ञा लेना निश्चय किया और मुनिजी के पास गये।

राच्छस कपट वेष तहँ सोहा। मायापति दूतहि चह मोहा॥
जाइ पवनसुत नायेउ माथा। लाग सो कहै रामगुन गाथा॥२॥

अर्थ : राक्षस वहाँ कपटवेष में विराजमान था। मायापति के दूत को मोहना चाहता था। पवनसुत ने जाकर प्रणाम किया। वह लगा रामजी की गुणगाथा का वर्णन करने।

व्याख्या : आश्रम बनाकर कालनेमि स्वयं मुनि बनकर बैठा हनुमान्‌जी को मोह में डालने के लिए। मुनि का स्वांग बिना लिए हनुमान्‌जी के मोहन का अन्य उपाय न था। स्रक् चन्दन वनितादिक पर हनुमान्‌जी मोहित होनेवाले न थे वह इस बात को खूब समझता था। मायापति सेवक सन माया। करिअत उलटि परइ सुरराया। यह नहीं समझा। उसने मायापति के सेवक का वध चाहा। अतः स्वयं मारा जायगा।

हनुमान्‌जी ने उसे मुनि समझ जाकर प्रणाम किया। लखि सुवेष जग वंचक जेऊ। वेष प्रताप पूजिअहि तेऊ। उसने देखा कि माया काम कर गयी। हनुमान् ने

मुझे नहीं पहिचाना। अतः उसने और माया फैलाया। जानता था कि रामगुण-गाथा के ये बड़े रसिक हैं : यत्र यत्र रघुनाथकीर्तनं तत्र तत्र कृतमस्तकाञ्जलिम्। बाष्पवारिपरिपूर्णलोचनं मारुतिं नमत राक्षासन्तकम्। अतः रामजी की गुणगाथा कहना आरम्भ किया। यह समझकर कि यदि ये सुनने लगेंगे तो कार्य में देर होगी और देर होना हमारा इष्ट है। यदि जल्दी में होंगे तब भी मुझ पर इनकी श्रद्धा होगी।

होत महा रन रावन रामहि। जितिहहिं रामु न संसय यामहि॥
इहाँ भये मैं देखौं भाई। ग्यान दृष्टि बलु मोहि अधिकाई॥३॥

अर्थ : रावण और राम में बड़ा भारी संग्राम हो रहा है। रामजी की जीत निश्चय है। इसमें संशय को स्थान नहीं। मैं यहीं से देख रहा हूँ। मुझमें ज्ञानदृष्टि का बल बढ़ा हुआ है।

व्याख्या : कालनेमि ने कहा कि इस समय सरकार के चरित्र में राम रावण संग्राम चल रहा है। रामजी जीतेंगे इसमें संशय नहीं। भाव यह कि मैं मुनि हूँ। त्रिकालज्ञ हूँ। वर्तमान भी जानता हूँ और भविष्य भी जानता हूँ। लक्ष्यार्थ यह कि तुम्हें संशय है। इसलिए जल्दी में हो। अभिमानवश समझते हो कि मेरे ओषधि लाने पर ही उनकी विजय निर्भर करती है : अहङ्कारविमूढात्मा कर्ताहमिति मन्यते।

फिर कहता है कि ज्ञान होने से देश काल की बाधा मेरी हट गयी है। यहाँ से ही बैठे बैठे मैं सब देख रहा हूँ। लक्ष्यार्थ यह कि तुम अज्ञानी हो। तुम्हें व्यवधान बाधा कर रहा है। यदि तुम्हें भी ज्ञान होता तो इतने दौड़ने की आवश्यकता न पड़ती। जहाँ के तहाँ रहते हुए भी सब कुछ की प्राप्ति हो जाती।

माँगा जल तेहि दीन्ह कमंडल। कह कपि नहि अघाउँ थोरे जल॥
सर मंज्जन करि आतुर आवहु। दीक्षा देउँ ग्यान जेहि पावहु॥४॥

अर्थ : पानी माँगा तो उसने कमण्डल दिया। हनुमान्‌जी ने कहा कि थोड़े जल से मेरी तृप्ति न होगी। बोला कि तालाब में स्नान करके शीघ्र आवो। तुम्हें मैं दीक्षा दूँ जिससे ज्ञान हो जाय।

व्याख्या : हनुमान्‌जी प्यासे थे कहा पानी चाहिए। इस समय ज्ञान से अधिक मुझे पानी की आवश्यकता है। उसने कमण्डल दिया कि लो पीओ। जल विषाक्त था पर भगवान् की इच्छा। हनुमान्‌जी ने कहा कि इतने जल से मेरा काम न चलेगा। तब उसने मज्जन की आज्ञा दी। यथा : मज्जन कीन्ह पंथ श्रम गयऊ। सुचि जल पियत मुदित मन भयऊ। बोला कि जल्दी करो तुम्हें देशकृत बाधा का अतिक्रमण करना है। लौटने पर तुम्हें दीक्षा[1] दे दूँ जिसमें तुम्हें ज्ञान हो जाय। फिर तो कार्य साधन सरल हो जायगा। यहीं से ओषधि प्राप्ति कर सकोगे।

---

१. दीक्षा में सिद्ध गुरु द्वारा शक्तिपात होने से सद्यः कल्याण होता है।

दो. सर पैंठत कपि पद गहा, मकरी तब अकुलान ।
मारी सो धरि दिव्य मनु, चली गगन चढ़ि जान ॥५७॥

अर्थ : तालाब में घुसते ही हनुमान्‌जी के पैर को मकरी ने पकड़ लिया तब अकुला गयी। जब मारी गयी तब दिव्य तन पाकर विमान में चढ़कर आकाश को चली।

व्याख्या : उस तालाब में मगरी थी। इसलिए उसने केवल पानी पीने को नहीं कहा स्नान करने को कहा। क्योंकि दीक्षा देना है। जिसमें स्नान करने के समय मगरी उन्हें निगल जाय। हनुमान्‌जी मुनि के वचन पालन के लिए तालाब में स्नान करने को प्रविष्ट हुए। मगरी वहाँ थी ही। उसने निगलने के लिए पैर पकड़ा। हनुमान्‌जी ने उसी पैर को उसके पेट में घुसेड़कर मार डाला। मगरी ने पैर पकड़ा। निगल न सकी। अतः आकुल हुई। मारे जाने पर सुखी हुई। उसका : मकरी का शरीर छूट गया। उसे दिव्य शरीर मिला और उसके लिए विमान आया जिस पर चढ़कर वह स्वर्ग चली।

कपि तव दरस भइउँ निःपापा। मिटा तात मुनिवर कर सापा ॥
मुनि न होइ यह निसिचर घोरा। मानेहु सत्य बचन कपि मोरा ॥१॥

अर्थ : हे कपि ! तुम्हारे दर्शन से मैं पाप रहित हुई। हे तात ! मुनि श्रेष्ठ का शाप मिट गया। यह मुनि नहीं है। यह घोर निशाचर है। हे कपि ! मेरे वचन को सत्य मानो।

व्याख्या : दिव्य शरीर धारण करने से उसे दिव्य ज्ञान भी हो गया। हनुमान्‌जी ने उसका वध किया इसका उसे क्रोध नहीं है। मकर की योनि से हनुमान्‌जी द्वारा वह मुक्त हुई इसलिए वह कृतज्ञा है। हनुमान्‌जी को खतरे से आगाह कर रही है तथा उस राक्षस को भी राक्षस योनि से मुक्ति पाने का उपाय कर रही है। उसने संक्षेप में पूर्व जन्म की कथा सुनायी। कहने लगी मुनि के शाप से मुझे मकर योनि प्राप्त हुई थी। मैं मुनि की अवज्ञा रूपी पाप का फल भोग रही थी। सो हे कपि ! तुम्हारे दर्शन से वह पाप छूट गया। जिसे तुम मुनि समझ रहे हो यह मुनि नहीं है घोर राक्षस है। ऐसा मायावी है कि तुम भी उसे नहीं लख पा रहे हो। हे कपि ! मैं विमान पर आरूढ़ हूँ। स्वर्ग जा रही हूँ। मैं झूठ नहीं बोल सकती। झूठ बोलने से सद्यः पतन होगा। अतः मेरी बात को सत्य मानो।

अस कहि गई अपछरा जबहीं। निसिचर निकट गयउ कपि तबहीं ॥
कह कपि मुनि गुरु दछिना लेहू। पाछें हमहि मंत्र तुम्ह देहू ॥२॥

अर्थ : ऐसा कहकर ज्यों ही वह अप्सरा गयी त्यों ही उस राक्षस के निकट हनुमान्‌जी गये और बोले कि मुनिजी ! पहिले गुरुदक्षिणा ले लो मन्त्र मुझे पीछे देना।

व्याख्या : पहिले दिव्य तन कहा था। अब उसी बात को स्पष्ट करते हैं कि मारे जाने के बाद वह मकरी अप्सरा हो गयी। अर्थात् थोड़े दिनों के लिए वह शाप के कारण मकरी हो गयी थी। वस्तुतः वह पहिले भी अप्सरा थी। अब फिर अप्सरा होकर राम कार्य में विघ्न न हो तथा इस राक्षस का भी उद्धार हो : इसलिए भेद बतलाती हुई विमानारूढ़ हो चली गयी। तब हनुमान्‌जी उस राक्षस के पास चले गये जिसमें उसके भाग जाने का अवसर न मिले। उसने हनुमान्‌जी को निकट आते देखकर समझा कि उसके आज्ञानुसार नहा धोकर आ रहे हैं। अतः मन्त्र प्रदान का उपक्रम करने लगा। निश्चय कर लिया कि मकरी से भी यह बच गया। अब इसे चेला मूँड़कर बातों में फँसाना चाहिए। हनुमान्‌जी बड़े बुद्धिमान् हैं। उसे यह नहीं मालूम होने दिया कि भेद खुल गया। उससे बोले कि पहिले गुरु दक्षिणा ले लो मन्त्र पीछे देना।

सिर लंगूर लपेटि पछारा। निज तनु प्रगटेसि मरती बारा ॥
राम राम कहि छाँड़ेसि प्राना। सुनि मन हरखि चलेउ हनुमाना ॥३॥

अर्थ : उसके सिर को पूँछ में लपेटकर उसे पृथ्वी पर पटक दिया। उसने मरने के समय अपना शरीर प्रकट कर दिया। राम राम कहकर उसने प्राण छोड़ा। सुनकर मनमें हर्षित हो हनुमान्‌जी चले।

व्याख्या : मन्त्र ग्रहण के पीछे गुरुदक्षिणा दी जाती है और यह कहता है कि पहिले ही ले लो मन्त्र पीछे ग्रहण करूँगा। इसलिए उसने समझा कि कोई बहुमूल्य भूषण युद्ध में इसके हाथ लगा है। उसी के देने के लिए लालायित है। तब से तो हनुमान्‌जी की पूँछ ऊपर से आकर उसके गले में लिपट गयी और पूँछ ने ही उसे उठाकर ऐसा पटका कि उसके प्राण पखेरू उड़ गये। हनुमान्‌जी ने देखा कि यह बड़ा मायावी है। यदि यह जान जायगा कि मेरा भेद खुल गया तो न जाने कौन सी माया करेगा। अतः कोई दूसरी माया करने का उसे अवसर ही न दिया। उससे बात करने लगे और पूँछ द्वारा उसे कब्जे में कर लिया। फिर वह कर ही क्या सकता था। हनुमान्‌जी सब भाँति समर्थ थे। यथा : नाम सुमति समरथ हनुमानू। बिना हाथ लगाये पूँछ द्वारा ही उसका काम तमाम कर दिया।

पर कालनेमि बड़ा सयाना था। कपट निधान होने पर भी मन में कपट रखकर उसने मरना न चाहा। मुनि का शरीर त्याग दिया। अपने असली रूप : राक्षस रूप में आगया और मरने के समय राम राम उच्चारण किया : जाकर नाम मरत मुख आवा। अधमौ मुकुत होई स्रुति गावा। सो मरते समय उसने परलोक बना लिया। रामनाम के रसिक हनुमान्‌जी उसके मुख से अन्त समय रामनाम निकलते सुनकर हर्षित होकर चल पड़े। अब चलने में आयास नहीं है।

देखा सैल न औषध चीन्हा। सहसा कपि उपारि गिरि लीन्हा ॥
गहि गिरि निसि नभधावत भयऊ। अवधपुरी ऊपर कपि गयऊ ॥४॥

अर्थ : पर्वत तो देखा पर औषध का पहिचान न हुआ तो एकाएक पर्वत को ही उखाड़ लिया। पर्वत लिये हुए रात को जो आकाश में दौड़े तो अयोध्यापुरी के ऊपर चले गये।

व्याख्या : हनुमान्‌जी पर्वत के पास पहुँचे। पर्वत पहिचान लिया पर औषध न पहिचान सके। वैद्य ने बताया था कि वह औषधि रात को प्रकाशमान हो जाती है। यही पहिचान थी। अब वहाँ देखते हैं तो जितनी औषधियाँ हैं वे सभी प्रकाशमान हैं। रावण के अनुचरों ने वहाँ पहुँचकर पहिले ही सब औषधियों को माया से प्रकाशमान बना दिया था। तब हनुमान्‌जी ने निश्चय किया कि पर्वत ही उठा ले चलो। वैद्यजी खोज लेंगे। कालनेमिवाली घटना के कारण देर हो रही थी। रात का समय था। पर्वत लिये हुए आकाश मार्ग से उड़े। आकाश में कोई निश्चित मार्ग तो है नहीं। शाहजहाँपुर : जहाँ कालनेमि मारा गया था और अयोध्या में कुछ बहुत अन्तर नहीं है। भगवदिच्छा हनुमान्‌जी अयोध्यापुरी के ऊपर से चले। यह श्रीराम का कौतूहल है। श्री हनुमान्‌जी को भरत बाहुबल दिखलाना है।

दो. देखा भरत बिसाल अति, निसिचर मन अनुमानि।
बिनु फर सायक मारेउ, चाप श्रवन लगि तानि ॥५८॥

अर्थ : भरतजी ने अति विशाल देखकर अनुमान किया कि कोई राक्षस है। उन्होंने कान तक धनुष चढ़ाकर निशाना बांधकर तुक्का : बिना फूल का बाण चला दिया।

व्याख्या : अति विशाल राक्षस होते हैं और वे ही रात को चलते हैं। यह जो अयोध्या के ऊपर चला आरहा है यह अति विशालकाय है और रात के समय में आरहा है। अतः अनुमान यही है कि यह राक्षस है। ऐसा हनुमान्‌जी को अयोध्या के ऊपर आते देखकर भरतलाल ने सोचा। अभी तक इसने कोई अपराध नहीं किया है। अतः इसको मार देना भी ठीक नहीं। पर ठीक ऊपर आकर भारी उपद्रव कर सकता है। अतः इसका आने देना भी ठीक नहीं। यह सब सोच विचारकर भरतजी ने यह निश्चय किया कि इसे नीचे गिरा देना चाहिए। पर मरे भी नहीं। इसलिए बिना फरके बाण अर्थात् तुक्का से मारा। धनुष को कान तक खींचकर मारा। यह निश्चय करके कि हलका चोट से यह गिरनेवाला भी नहीं है।

परेउ मुरुछि महि लागत सायक। सुमिरत राम राम रघुनायक ॥
सुनि प्रिय बचन भरतु तब धाए। कपि समीप अति आतुर आए ॥१॥

अर्थ : बाण के लगते ही राम राम रघुनायक स्मरण करते हुए मूर्च्छित होकर गिरे। प्रिय वचन सुनकर भरतजी तब दौड़ पड़े और बन्दर के पास अत्यन्त आतुर होकर आये।

व्याख्या : बाण लग गया। आकाश से पृथ्वी पर गिरे। चोट गहरी लगी।

मूर्च्छा का प्रभाव आकाश से ही काम करने लगा। पर पूरी अचेतना पृथ्वी पर गिरने से हुई। हनुमान्‌जी का नाम स्मरण किसी दशा में बन्द नहीं होता। चोट लगने पर भी : राम राम रघुनायक कहते हैं। पूर्णतः अचेतन होने पर ही नामोच्चारण बन्द हुआ। इस नामोच्चारण ने बड़ा काम किया। सरकार से हनुमान्‌जी का सम्बन्ध भरतजी को व्यक्त हो गया। हनुमान्‌जी गिरे। पर्वत न गिरा। यथा : पवन राख्यौ गिरि पुर तेहि तेज पियो। हनुमान्‌जी के ऊपर पर्वत न गिरे अथवा सरकारी प्रजाओं की हानि न हो। इसलिए वायु ने गिरने न दिया और अयोध्यापुरी ने उसके तेज को पी लिया।

भरतजी नाम के बड़े प्रेमी हैं। यथा : जबहिं राम कहि लेहि उसासा। उमगत प्रेम मनहुँ चहुँ पासा। द्रवहिं बचन सुनि कुलिस पखाना। पुरजन प्रेम न जाइ बखाना। राम राम रघुनायक : यह वचन बड़ा प्रिय है। इससे यह भी पता चलता है कि हनुमान्‌जी श्रीराम राम राम इस तारक मन्त्र का जप सदा किया करते हैं। रघुनायक का अर्थ भी राम ही है। सायक के अनुप्रास बैठने के लिए रघुनायक लिखा। अभिप्राय राम शब्द से ही है। यह वचन सुनकर भरतजी दौड़े कि हुई तो मुझसे बड़ी चूक। यह राक्षस नहीं है। राम भक्त जान पड़ता है। सन्निकट पहुँचकर रुके। देखा राक्षस नहीं है कपि है। तब उसे सँभालने के लिए अत्यन्त आतुर होकर आये।

बिकल बिलोकि कीस उर लावा। जागत नहिं बहु भाँति जगावा ॥
मुख मलीन मन भये दुखारी। कहत बचन भरि लोचन बारी ॥२॥

अर्थ : विकल देखकर वानर को हृदय से लगा लिया। बहुत भाँति से जगाया पर जागे नहीं। भरतजी का मुख मलीन हो गया। बड़े दुःखी हुए। आँखों में आँसू भरकर कहने लगे।

व्याख्या : देखा मरा नहीं है पर विकलता बड़ी है। हाथ पैर पीटता है। कलेजे से लगाया। प्रिय होने से तथा सान्त्वना के लिए भक्त लोग रूप नहीं देखते। हृदय देखते हैं। वानर को भी भक्त होने से हृदय लगाते हैं। अब हनुमान्‌जी को मूर्च्छा से जगाने का उपाय करने लगे। मूर्च्छा का अन्तर्भाव सुषुप्ति में है। इसलिए जगाना कहते हैं। चोट के स्थान को हाथ से सहलाया। पानी का छींटा मुख पर दिया। पंखा किया। फिर भी हनुमान्‌जी नहीं जागे। इससे भरतजी का मुख मलीन हो गया। मूर्च्छा में मृत्यु भी हो जाती है। इससे दुःखी हुए कि मेरे हाथ से यह क्या हो पड़ा ? मुख मलीन : से कायेन। भये दुखारी : से मनसा। कहत बचन भरि लोचन बारी : से वाचा दुःखी होना दिखलाया।

जेहिं बिधि रामबिमुख मोहि कीन्हा। तेहि पुनि यह दारुन दुख दीन्हा ॥
जौं मोरे मन बच अरु काया। प्रीति रामपदकमल अमाया ॥३॥

अर्थ : जिस ब्रह्मा ने मुझे रामजी के विमुख किया। उसी ने यह दारुण दुःख

भी मुझे दिया। यदि रामजी के चरणकमलों में मेरी माया रहित प्रीति मनसा वाचा कर्मणा हो।

व्याख्या : कल्याण के लिए कुछ करते हुए यदि अनर्थ हो पड़े तो वहाँ ब्रह्मा की मर्जी मानी जाती है कि मैंने तो यह सोचा भी नहीं था। होनहार बलवान् है। मैंने विमुख होना स्वप्न में भी नहीं चाहा था पर विधि ने कर दिया। माँ पगली हो गयी। उसी विधि ने मेरे हाथ से बाण भी छोड़वाया। मैंने तो राक्षस समझा था। रामभक्त नहीं समझा था।

आज ऐसा समय आगया कि भरतजी को अपनी भक्ति का फल माँगना पड़ा। नहीं तो महाराज जनक कहते हैं : साधन सिद्धि रामपग नेहू। मोहि लखि परत भरत मत एहू। कार्पण्य छोड़कर अपनी भक्ति की दृढ़ता पर विश्वास करते हैं। इसी से पता लगा कि भरतजी में कैसी प्रीति है। भरतजी की प्रीति रामजी में माया रहित है। मैं अरु मोर तोर तैं माया : वह माया उस प्रीति में नहीं है। सबके ममता का तागा सरकार के चरणों में बाँध रक्खा है। उसी प्रीति में असाध्य साधन का सामर्थ्य है।

तौ कपि होउ बिगत स्रमसूला। जौं मोपर रघुपति अनुकूला॥
सुनत[1] बचन उठि बैठ कपीसा। कहि जय जयति कोसलाधीसा॥४॥

अर्थ : तो यह बानर श्रम और शूल से रहित हो। यदि मुझ पर श्रीरामजी अनुकूल हों। वचन सुनते ही बानरों के स्वामी अयोध्यापति का जय जयकार करते हुए उठ बैठे।

व्याख्या : कपि को श्रम और शूल दोनों है। श्रम का अर्थ मूर्च्छा है। यथा : देखि बिभीषन प्रभु श्रम पायेउ। बाण के प्रहार से शूल हो गया है। भरतजी कहते हैं कि यदि मेरी भक्ति में कचाई हो तो सरकार की अनुकूलता में तो सन्देह नहीं है। यथा : गुरु गोसाईं साहिब अनुकूला। अतः सरकार की अनुकूलता के बल पर कपि के श्रम शूल से रहित होने की इच्छा कर रहे हैं। सरकार की अनुकूलता से शूल नहीं रह जाता। यथा : तुम्ह कृपाल जापर अनुकूला। ताहि न ब्याप त्रिबिध भव सूला।

वचन सुनते ही मूर्च्छा चली गयी। जो मूर्च्छा विविध उपाय से न गयी वह इस वचन से चली गयी। जागे तो जय जय कोसलाधीश कहते जगे। मूर्च्छित होने के पहिले राम राम रघुनायक कहकर मूर्च्छा हुई और जागे तो कोसलाधीश की जयकार करते जागे।

दो. लीन्ह कपिहि उर लाइ, पुलकित तन लोचन सजल।
प्रीति न हृदय समाइ, सुमिरि राम रघुकुल तिलक॥५९॥

---

१. यह चपलात्युक्ति है।

अर्थ : पुलकित शरीर और सजल नेत्र होकर बानर को हृदय से लगाया। रघुकुल तिलक रामजी को स्मरण करके प्रीति हृदय में नहीं समाती थी।

व्याख्या : बानर को हृदय लगाने के समय भरतजी का अतिप्रेम से शरीर पुलकित और नयन सजल है। मूर्च्छा होने पर आतुर होकर हृदय से लगाया और जागने पर गद्‌गद होकर हृदय से लगाया। सरकार की कृपा से मूर्च्छा गयी। सरकार भक्त पर अनुकूल हैं। ऐसा समझकर भरतजी के हृदय में प्रीति अत्यन्त बढ़ गयी है। रघुकुल तिलक कहने का भाव यह कि मेरी चूक से कुल में कालिमा लगती। यथा : सुरमहिसुर हरिजन अरु गाई। हमरे कुल इन्ह पर न सुराई। यह विरद मिट जाता। सो सरकार की कृपा से नहीं मिटा।

अथवा भरतजी ने समझ लिया कि यह रामजी का दूत है। मूर्च्छित होते समय और मूर्च्छा से जागने के समय भी रामजी का ही स्मरण इसने किया। इतनी रात को अयोध्या आया तो अवश्य सरकार के पास से आरहा है। बात कुछ बिगड़ी हुई है। आजतक अपने से कोई समाचार नहीं भेजा। आज इतनी रात को दूत भेजते हैं। कारण क्या है ? अतः पूछते हैं :

तात कुसल कहु सुख निधान की। सहित अनुज अरु मातु जानकी ॥
कपि सब चरित समास बखाने। भए दुखी मन महुँ पछिताने ॥१॥

अर्थ : हे तात ! सुख के धाम रामजी की छोटे भाई और माँ जानकीजी की कुशल कहो। कपि ने संक्षेप में सब चरित कह सुनाया। भरतजी दुःखी हुए और मन में पछताये।

व्याख्या : भरतजी पहिले सुखनिधान रामजी को कुशल पूछते हैं। यद्यपि सुखनिधान की सदा ही कुशल है। फिर भी दूत के मुख से सुनना चाहते हैं। चुप देखकर लक्ष्मणजो और माँ जानकी की कुशल पूछते हैं। हनुमान्‌जी : सब कुशल है ऐसा नहीं कह सकते। अतः उन्हें सब चरित्र सीताहरण सुग्रीव मैत्री वालिवध लङ्का पर आक्रमण तथा लक्ष्मणजी को शक्ति लगने का वृत्तान्त संक्षेप में कहना पड़ा। सुनकर भरतजी दुःखी हुए और मन में पछताये। यथा : स्वामि संकट हेतु हौ जड़ जननि जनम्यो जाय। समौ पाइ कहाइ सेवक घट्‌यो तो न सहाय।

अहह दैव मैं कत जग जायेउँ। प्रभु के एकहु काज न आयेउँ ॥
जानि कुअवसरु मन धरि धीरा। पुनि कपि सन बोले बलबीरा ॥२॥

अर्थ : हा दैव मैंने क्यों संसार में जन्म लिया। प्रभु के एक काम भी मैं न आया। कुअवसर जानकर मन में धैर्य्य धारण करके बलवान् वीर भरतजी हनुमान्‌जी से बोले।

व्याख्या : प्रभु भाई तथा माँ जानकी के सहित कष्ट में हैं। यह सुनकर दैव को उपालम्भ देते हैं। अपने को धिक्कारते हैं। अहह धन्य लछिमन बड़ भागी। राम

पदारबिंद अनुरागी। लक्ष्मण काम आया और मैं न आ सका। लक्ष्मण का जीवन सफल और मेरा निष्फल है। जाय जिअत जग सो महि भारू। जननी जौवन बिटप कुठारू। मैं सरकार के किसी काम न आया। न तो सेवा कर सका न विरह के समय सान्त्वना दे सका। न संग्राम में सहायता कर सका। इस प्रकार भरतजी मन ही मन पछताये। परन्तु पछताने का भी अवसर नहीं है। भरतजी का धैर्य छूट रहा था। उसे सँभाला। बल से जो सहायता हो सकती है उसके लिए बद्धपरिकर हुए : चला प्रभंजनसुत बलभाखी। उस मान का उन्मूलन हो रहा है।

तात गहरु होइहि तोहि जाता। काजु नसाइहि होत प्रभाता ॥
चढ़ु मम सायक सैल समेता। पठवौं तोहि जहँ कृपानिकेता ॥३॥

अर्थ : हे तात ! तुम्हें जाने में देर लगेगी और सवेरा होते काम बिगड़ जायगा। पर्वत सहित मेरे बाण पर चढ़ो। मैं तुम्हें जहाँ कृपानिकेत रामजी हैं वहाँ भेज देता हूँ।

व्याख्या : भरतजी कहते हैं कि तुम थके हो। चोट खाये हो। अभी मूर्च्छा से जगे हो और रात में ही तुम्हें वहाँ पहुँचना है। वैद्य ने जैसा कहा है वैसा ही होना चाहिए। यदि जाने में सबेरा हो गया तो जाकर ही क्या होगा ? बाण से अधिक तीव्र गति किसी की नहीं हो सकती। अतः तुम्हें बाण पर बिठलाकर सरकार के पास भेजे देता हूँ। तुम चढ़ो मेरे बाण पर और इस पर्वत को भी ले लो। मैं अभी लंका तुम्हें पहुँचाता हूँ। श्रीभरतजी की कृपा से श्रीराम के पास पहुँचा जाता है। जीवमात्र प्रभु को प्राप्त कर सकते हैं।

सुनि कपि मन उपजा अभिमाना। मोरे भार चलिहि किमि बाना ॥
राम प्रभाव बिचारि बहोरी। बंदि चरन कह कपि करजोरी ॥४॥

अर्थ : यह सुनकर हनुमान्‌जी को अभिमान उत्पन्न हुआ कि मेरे बोझ से बाण कैसे चलेगा ? फिर रामजी का प्रभाव सोचकर चरण वन्दना करके बोले।

व्याख्या : अभिमान उपजा नष्ट होने के लिए। पर्वत के बोझ से बाण न चलेगा। यह प्रश्न नहीं उठा। प्रश्न यह उठा कि मेरे बोझ से बाण कैसे चलेगा। बाण थोड़ा सा भी बोझ नहीं सह सकता। पर्वत सहित मुझे बाण पर रखकर फेंक देना क्या साधारण व्यापार है। मेरे बोझ के सामने पर्वत का बोझा कुछ नहीं है। भरतजी कैसे बाण पर चढ़ाकर फेंकने में समर्थ होंगे ? फिर हनुमान्‌जी ने विचार से काम लिया। रामजी के प्रभाव से क्या नहीं हो सकता। गरुड सुमेरु रेनु सम ताहीं। रामकृपा करि चितवा जाहीं। अतः निरभिमान होकर भरतजी की वन्दना करते हैं और हाथ जोड़कर अति विनम्र भाव से बोलते हैं।

तव प्रताप उर राखि गोसाईं। जैहौं रामबान की नाईं ॥
भरत हरखि तब आयसु दयऊ। पद सिरनाइ चलत कपि भयऊ ॥५॥

अर्थ : हे स्वामी ! मैं आपका प्रताप हृदय में रखकर रामजी के बाण की भाँति जाऊँगा। भरतजी ने हर्षित होकर आज्ञा दी और चरणों में सिर नवाकर हनुमान्‌जी चले।

व्याख्या : हनुमान्‌जी ने कहा कि बाण पर न चढ़कर आपका प्रताप ही हृदय में रखे लेता हूँ। क्योंकि मुख्य काम करनेवाला आपका प्रताप है। नहीं तो बोझा ले जाने का काम बाण का नहीं है। आपके प्रताप के बल से मैं रामबाण की भाँति जाऊँगा। यथा : जिमि अमोघ रघुपति कर बाना। एही भाँति चला हनुमाना।

हनुमान्‌जी की प्रताप पर इतनी श्रद्धा देखकर हर्षित हुए। आज्ञा दे दी। समझ लिया कि अवश्य कार्य होगा। हनुमान्‌जी विदाई के लिए दूसरा प्रणाम करते हैं।

दो. भरत बाहुबल सीलगुन, प्रभुपद प्रीति अपार।
मन महुँ जात सराहत, पुनिपुनि पवन कुमार ॥६०॥

अर्थ : पवनपुत्र भरतजी का बाहुबल शील गुण और प्रभु के चरणों में अपार प्रीति की मन ही मन प्रशंसा करते हुए चले जाते हैं।

व्याख्या : बाहुबल यथा : चढ़ु मम सायक सैल समेता।
पठवौं तोहि जहँ कृपानिकेता॥
शील यथा : सुनि प्रिय बचन भरत उठि धाए।
कपि समीप अति आतुर आए॥
गुण यथा : अहह दैव मै कत जग जायेउँ।
प्रभु के एकहु काज न आयेउँ॥
जानि कुअवसरु मन धरि धीरा।
पुनि कपि सन बोले बल बीरा॥
प्रभुपद प्रीति यथा : जौं मोरे मन वच अरु काया।
प्रीति रामपद कमल अमाया॥
तौ कपि होउ बिगत स्रमसूला।
जौं मोपर रघुपति अनुकूला॥

ये चार बातें जो हनुमान्‌जी ने भरतजी में पायीं वे अप्रतिम थीं। अतः हृदय में उन्हीं की प्रशंसा करते हुए हनुमान्‌जी चले। यहाँ हनुमान्‌जी की मुदिता कवि ने दिखलाई।

उहाँ राम लछिमनहि निहारी। बोले बचन मनुज अनुसारी॥
अर्ध रात्रि गइ कपि नहिं आयउ। राम उठाइ अनुज उर लायउ॥१॥

अर्थ : वहाँ रामजी लक्ष्मण को देखकर मनुष्यों की तरह वचन कहने लगे। आधी रात बीत गयी। हनुमान्‌जी नहीं आये। यह कहकर छोटे भाई को उठाकर हृदय से लगा लिया।

व्याख्या : कवि अपने मन से हनुमान्‌जी के साथ हैं। अतः रामजी का समाचार कहते समय उहाँ कह रहे हैं। लक्ष्मण लाल सरकार को अतिप्रिय हैं। यथा : जोगवहिं प्रभु सिय लखनहिं कैसे। पलक बिलोचन गोलक जैसे। उनको एक बारगी संज्ञाशून्य देखकर चेतना के लौटने का कोई लक्षण न देखकर इस भाँति बोलने लगे जैसे सामान्य मनुष्य बोलते हैं। मनुज चरित कर अज अविनासी : का उदाहरण है।

रामजी कहते हैं कि आधी रात तो बीत गयी और अभी हनुमान् नहीं आया। कहा था : तैलाग्नेः सर्षपस्य स्फुटनरवपरस्तत्र गत्वात्र चैमि : हनुमन्नाटके। खौलते हुए तेल में सर्षप के फूटने में जो शब्द होता है उतनी देर में वहाँ जाकर लौट आऊँगा। सो अभी तक नहीं आया। क्या बाधा उपस्थित हुई। हनुमान् के आने में यदि अधिक विलम्ब हुआ तो लक्ष्मण के प्राण नहीं बचेंगे। यह भावना मन में उठते ही शोकसागर उमग उठा। रामजी ने छोटे भाई को उठाया और हृदय से लगा लिया।

सकहु न दुखित देखि मोहि काऊ। बंधु सदा तव मृदुल सुभाऊ॥
मम हित लागि तजेहु पितु माता। सहेहु बिपिन हिम आतप बाता॥२॥

अर्थ : हे भाई! तुम मुझे कभी दुःखित नहीं देख सके। तुम्हारा स्वभाव सदा से ही कोमल है। तुमने मेरे लिए माता पिता को छोड़ा और वन में पाला और लू सहा।

व्याख्या : शोक के वेग में मूर्च्छित भाई से इस भाँति बातें कर रहे हैं मानो वह सचेत हैं। उन्हें बन्धु कहकर सम्बोधन करते हैं। भाव यह : होंहि कुठाँयसु बंधु सहाए। ओड़िअहि हाथ असनिहु के घाए। तुम मेरे विपत्ति के सहायक हो। तुम्हारा ऐसा मृदुल स्वभाव है और मेरे प्रति ऐसा स्नेह है कि तुम मुझे दुःखित नहीं देख सकते। इसके प्रमाण के लिए दूर नहीं जाना है। तुमने मेरे लिए माता पिता का परित्याग किया। यथा : गुरु पितु मातु न जानहुँ काहू। कहहुँ सुभाउ नाथ पतिआहू। सुरदुर्लभ सुख छोड़कर मेरे लिए वन में आकर हिमपात, आतप, बात, झंझावात आदि सहन किया।

सो अनुराग कहाँ अब भाई। उठहु न सुनि मम बच बिकलाई॥
जौं जनत्यौं बन बंधु बिछोहू। पिता बचन मनत्यौं नहिं ओहू॥३॥

अर्थ : हे भाई! वह प्रेम कहाँ गया। मेरे वचन की व्याकुलता सुनकर उठते क्यों नहीं? यदि मैं जानता कि वन में भाई का वियोग होगा तो मैं पिता का वह वचन भी नहीं मानता।

व्याख्या : श्री रामजी इस भाँति बोल रहे हैं मानो लक्ष्मणजी सुन रहे हैं। कहते हैं कि तुम भाई हो। तुम्हें प्रेम बनाये रखना चाहिए। तुम मुझे दुःखित नहीं देख सके। जब कभी मैं विकल हो जाता था तो तुम्हीं प्रेम से समझाते थे। यथा :

लछिमन समुझाये बहुभाँती। पूछत चले लता तरु पाँती। इस समय मेरी विकलता की वाणी सुनकर क्यों नहीं उठते ?

तो क्या तुम न बोलोगे ? तुम्हारा विछोह ही हो गया ? मैं नहीं जानता था कि वन में जाने से बन्धु विछोह होगा। यदि मैं जानता तो मैं वन न आता। पिता का वचन मानकर ही मैं चौदह वर्ष के लिए वन में आया। पीछे से पिताजी ने उस अवधि का सङ्कोच कर दिया और सुमन्त्र से कहा : रथ चढ़ाइ देखराइ बन फिरेउ गये दिन चारि। यदि मुझे मालूम होता कि वन में जाने से तुम्हारा विछोह होगा तो चौदह वर्ष की कौन कहे मैं चार दिनवाला भी वचन न मानता। मुझे तो पिता के वचन से अधिक भाई का सङ्कोच प्रतीत होता है। यथा : तासु बचन मेटत मन सोचू। तेहि ते अधिक तुम्हार संकोचू। फिर भाई के विछोह के सामने मेरे लिए पिता का वचन न मानना ही उपादेय था। अब प्रश्न यह उठता है कि भाई पर इतना प्रेम क्यों ? इस पर कहते हैं :

सुत बित नारि भवन परिवारा। होहिं जाहिं जग बारहिं बारा॥
अस बिचारि जिय जागहु ताता। मिलइ न जगत सहोदर भ्राता॥४॥

अर्थ : पुत्र धन स्त्री घर और परिवार ये तो बार बार जगत् में होते जाते हैं। हे तात ! ऐसा विचार करके जाग जाओ कि संसार में सहोदर भाई नहीं मिलते।

व्याख्या : संसार में तीन एषणाएँ प्रबल होती हैं। यथा : सुत बित नारि ईषणा तीनी। इनका छूटना कठिन कार्य है। घर और परिवार का सुख भी बड़ा सुख है। यह छोड़ा नहीं जाता। यथा : मम हित लागि भवन सुख त्यागे। पर ये पाँचो आगमापायी हैं। आते जाते रहते हैं। इन सबको मैं छोड़ सकता हूँ। पर सहोदर भाई नहीं छोड़े जा सकते क्योंकि सबसे दुर्लभ हैं। अर्थात् तुम मुझे परम दुर्लभ हो। मुझे तुम्हारा सा भाई कहाँ मिलेगा ? यहाँ सरकार लक्ष्मणजी को सहोदर न होने पर भी सहोदर कहते हैं।

यथा पंख बिनु खग अति दीना। मनि बिनु फनि करिवर कर हीना॥
अस मम जीवनबंधु बिनु तोही। जौं जड़ दैव जियावै मोही॥५॥

अर्थ : जैसे पक्ष के बिना पक्षी मणि के बिना सर्प और शुण्ड के बिना हाथी अत्यन्त दीन होता है वैसा ही मेरा जीवन तुम्हारे बिना है। यदि जड़ दैव मुझे जीवित रक्खे तो।

व्याख्या : पक्ष के बिना पक्षी असहाय है। वह किसी समय हिंस्र जन्तु का ग्रास हो सकता है। ऐसा ही मैं तुम्हारे बिना असहाय हूँ। यथा : मेरो सब पुरुषारथ थाको। बिपति बँटावनिहार बंधु बिनु करौं भरोसो काको। सुनु सुग्रीव साँचेहू मोपर फेर्‌यो बदन बिधाता। ऐसे समय समर संकट हौं तज्यौं लखन सो भ्राता। जैसे मणि के बिना सर्प विहाल हो जाता है वैसे ही मैं तुम्हारे बिना विहाल हूँ। हाथी का शुण्ड ही सर्वस्व है। बिना शुण्ड के हाथी जल भी नहीं पी सकता और काम करना तो

दूर की बात है। भाव यह कि बिना पक्ष के पक्षी बिना मणि के सर्प और बिना शुण्ड के हाथी का जीवन हो नहीं सकता। इसी भाँति तुम्हारे बिना मैं जीवित न रहूँगा। परन्तु दैव जड़ है। पूर्वजन्मकृतं कर्म तद्दैवमिति कथ्यते। उसे दया नहीं है। कदाचित् वह मुझे मरने न दे तो भी मेरा जीवन तुम्हारे बिना अति दीनावस्था में बीतेगा।

जैहौं अवध कवन मुँहु लाई। नारिहेतु प्रिय भाइ गँवाई ॥
वरु अपजसु सहत्यौं जगमांही। नारि हानि बिसेष छति नांही ॥६॥

अर्थ : स्त्री के लिए प्रिय भाई को खोकर मैं किस मुँह से अयोध्या जाऊँगा। चाहे संसार में अपयश ही सहता। क्योंकि स्त्री की हानि कोई बड़ी भारी हानि नहीं है।

व्याख्या : यदि जड़ दैव ने मुझे मरने न दिया तो कौन मुँह लेकर अयोध्या जायेंगे। जहाँ भरत सा भाई बैठा है। जिसने भाईपन के लिए राज्य ठुकरा दिया और प्राण निछावर करने के लिए तैयार बैठा है। सुमित्रा ऐसी माँ बैठी है जिसने : तात तुम्हार मातु बैदेही। पिता राम सब भाँति सनेही। कहकर अपने पुत्र को मेरे साथ वन भेज दिया। प्रजावर्ग मुझे विचारमूढ कहेंगे। क्योंकि स्त्री के लिए मैंने प्रिय भाई खो दिया है : अल्पस्य हेतोर्बहु हातुमिच्छन् विचारमूढः प्रतिभासि मे त्वम्।

मृत्यु से अधिक कष्टदायक अपयश है। उसे मैं सह जाता। क्योंकि तुम्हारा विछोह उससे भी अधिक कष्टदायक है। स्त्रीसम्बन्धिनी क्षति पूरी की जा सकती है। क्योंकि पुत्रप्रयोजना भार्या सो पुत्रोत्पत्ति दूसरी स्त्री से भी हो सकती है। अतः स्त्री की हानि विशेष हानि नहीं है। भाव यह कि जानकी सी स्त्री नहीं मिल सकती। फिर भी स्त्री मिल सकती है। भाई तो नहीं मिल सकता।

अब अपलोकु सोकु सुत तोरा। सहिहि निठुर कठोर उर मोरा ॥
निज जननी के एकु कुमारा। तात तासु तुम प्रान अधारा ॥७॥

अर्थ : हे सुत ! मेरा निष्ठुर कठोर हृदय अब यह अपयश और तुम्हारा शोक सहन करेगा। तुम अपनी माता के एक ही पुत्र हो। इसलिए हे तात ! तुम उसके प्राण के आधार हो।

व्याख्या : अब तो अपयश और शोक दोनों सहना पड़ा। स्त्री हरण का अपयश सब अपयशों से बड़ा है और पुत्र शोक सब शोकों से बड़ा है। सरकार का लक्ष्मणजी पर पुत्र सा प्रेम था। मेरा हृदय ऐसा निष्ठुर है कि उस अपयश को भी सह जायेगा और ऐसा कठोर है कि उस शोक को भी सह जायगा। मेरा हृदय विदीर्ण होनेवाला नहीं है।

तुमसे ही सुमित्रा माता अपने को पुत्रवती मानती है। यथा : पुत्रवती जुवती जग सोई। रघुपति भगत जासु सुत होई। नतरु बांझ भलि बादि बिआनी। राम

बिमुख सुत ते हित जानी······भूरिभाग भाजन भयेउ मोहि समेत बलि जाउँ। जौ तुम्हरे मन छाड़ि छल कीन्ह रामपद ठाउँ। प्रिय शत्रुघ्न भी हैं। पर प्राणाधार तुम ही हो। अर्थ ठीक बिठाने के लिए यहाँ एक का अर्थ प्रधान किया जा सकता है। यथा : एकै धर्म एक ब्रत नेमा। काय बचन मन पति पद प्रेमा।

सौंपेसि मोहि तुमहि गहि पानी। सब बिधि सुखद परम हित जानी॥
उतरु काह दैहौं तेहि जाई। उठि किन मोहि सिखावहु भाई॥८॥

अर्थ : मुझे सब विधि से सुख देनेवाला और हितचिन्तक समझकर तुम्हें हाथ पकड़कर मुझे सौंपा था। मैं अब जाकर उसे क्या उत्तर दूँगा। हे भाई! तुम उठकर मुझे सिखाते क्यों नहीं।

व्याख्या : तात तुम्हार मातु बैदेही। पिता राम सब भाँति सनेही। तुम कहँ बन सब भाँति सुपासू। संग पितु मातु राम सिय जासू। यह कहना ही सुमित्राजी का हाथ पकड़कर सौंपना है। सरकार ने कहा था : बिदा मातु सन आवहुँ माँगी। लक्ष्मणजी माता के पास विदा माँगने गये। माँ ने सहर्ष विदा कर दिया। कहने लगी : जौं पै सीय राम बन जाहीं। अवध तुम्हार काजु कछु नाहीं। तुम्हरेहिं भाग रामु बन जाहीं। दूसर हेतु तात कछु नाहीं। इससे अधिक हाथ पकड़कर सौंपना और क्या होता है ?

वहाँ जायेंगे तो उस माँ को क्या उत्तर देंगे। जहाँ मुझसे उत्तर नहीं फुरता था वहाँ तुम मेरी ओर से उत्तर देते थे। परशुरामजी ने जब पूछा : सेवक सो जो करै सेवकाई। अरि करनी करि करिअ लराई। तो इस बात का उत्तर तुम्हीं ने दिया। माँ के पूछने का क्या उत्तर दूँगा। मुझे नहीं सूझता। तुम उठकर मुझे उत्तर समझा दो।

बहु बिधि सोचत सोच बिमोचन। स्रवत सलिल राजिव दल लोचन॥
उमा एक अखंड रघुराई। नरगति भगत कृपालु देखाई॥९॥

अर्थ : सोच विमोचन राम बहुत प्रकार से सोचने लगे। उनके कमलदल से नेत्रों से आँसू गिर रहे थे। हे उमा! रघुराई तो एक और अखण्ड हैं। भक्तों पर कृपा करनेवाले रामजी ने मनुष्यों की दशा दिखलायी।

व्याख्या : जो सोचविमोचन है। संसार के सोच को दूर करनेवाले हैं। वे बहुत प्रकार से सोच रहे हैं। यहाँ प्रादेशमात्र दिखलाया गया है। वस्तुतः इस प्रकार सोचना भी मनुष्य दशा का अभिनय है। सरकार भक्त पर कृपा करनेवाले हैं। अभिनय भी उनकी भक्तवत्सलता से पूर्ण होता है। नहीं तो सरकार एक और अखण्ड हैं। उनसे पृथक् कुछ है नहीं। उन्हें संयोग वियोग कैसा ?

दो. प्रभु प्रलाप सुनि कान, बिकल भए बानर निकर।
आइ गयउ हनुमान, जिमि करुणा महुँ बीर रस॥६१॥

अर्थ : प्रभु के अनर्थक वचन कान से सुनकर बानरसमूह विकल हो गया। तबतक हनुमान्जी आगये। जिस भाँति करुणारस में वीररस का प्रवेश हो जाय।

व्याख्या : प्रलाप अनर्थक वचन को कहते हैं। प्रलापोऽनर्थकं वचः इत्यमरः। यहाँ : पिता बचन मनत्यौं नहिं ओहू। मिलैं न जगत सहोदर भ्राता। निज जननी के एक कुमारा। सौंपेसि मोहि तुमहि गहि पानी। ये सब वचन अनर्थक हैं। इनके अर्थ करने में खींचातानी करनी पड़ती है। वस्तुतः यहाँ प्रलापका अभिनय है। कवि स्पष्ट किये देते हैं : प्रभु प्रलाप सुनि कान।

प्रभु के मुख से अनर्थक वचन सुनकर बानरगण विकल हो उठे। सरकार के चरणों में वानरों का इतना प्रेम है कि सरकार को दुःख में वे नहीं देख सकते। सो इस समय लक्ष्मणजी की संशयावस्था है। औषध लेने हनुमान्जी गये। वे लौटे नहीं। शोक में सरकार की यह अवस्था है कि अनर्थक वचन बोल रहे हैं। क्या होनेवाला है इसे सोचकर बानरगण विकल हो गये। इतने ही में हनुमान्जी आगये। इनके आते ही बात दूसरी हो गयी। सब में आशा का संचार तथा उत्साह हो उठा। कवि उपमा देते हैं कि जैसे करुणारस में एकाएक वीररस का उदय हो जाय तो तुरन्त परिस्थिति पलटा खा जाती है।

हरखि राम भेंटेउ हनुमाना। अति कृतग्य प्रभु परम सुजाना ॥
तुरत बैद तब कीन्हि उपाई। उठि बैठे लछिमनु हरखाई ॥१॥

अर्थ : रामजी हर्षित होकर हनुमान्जी से मिले। परम सुजान प्रभु अति कृतज्ञ हैं। वैद्य ने तुरन्त उपाय किया और लक्ष्मणजी प्रसन्न होकर उठ बैठे।

व्याख्या : कवि सरकार की अतिकृतज्ञता और परम सुजानता दिखलाते हैं। अभी लक्ष्मणजी अच्छे भी नहीं हुए पर सरकार ने हनुमान्जी को गले लगा लिया। दवा देने पर ध्यान उतना नहीं हनुमान्जी के सत्कार पर जितना ध्यान है। परिष्वङ्ग से अधिक सरकार के पास कुछ देने को नहीं है। क्योंकि ब्रह्मसंस्पर्श का सुख ही आत्यन्तिक सुख है। इसके साथ यह भी बात है कि लक्ष्मणजी के अच्छे हो जाने पर उन्हें भेंटना अनिवार्य हो पड़ता। तत्पश्चात् हनुमान्जी से मिलने में अतिकृतज्ञता का भाव न रह जाता। इसलिये परम सुजान प्रभु ने पहिले हनुमान्जी को ही गले लगाया।

इधर वैद्यजी की तत्परता दिखलाते हैं कि उपाय करने में उन्होंने तनिक भी विलम्ब न किया। हनुमान्जी औषधि नहीं लाये पर्वत ही उखाड़ लाये थे। अतः वैद्यजी पर्वत पर चढ़कर तुरन्त औषधि लाकर जैसा उपचार करना चाहिए ठीक ठीक किया। कवि को भी जल्दी है। अतः अति संक्षेप में कहते हैं : तुरत वैद तब कीन्ह उपाई। अब उस दिव्य औषधि का चमत्कार कहते हैं कि उपचार होते देर नहीं और लक्ष्मणजी हर्षित होकर उठ बैठे। इतने गहिरे घाव की पीड़ा भी शेष नहीं रही।

हृदय लाइ प्रभु भेटेउ भ्राता। हरषे सकल भालु कपिब्राता ॥
कपि पुनि बैद तहाँ पहुँचावा। जेहि बिधि तबहि ताहि लै आवा ॥२॥

अर्थ : प्रभु ने भाई को हृदय से लगाकर आलिङ्गन किया। तब हनुमान्‌जी वैदराज को उसी भाँति वहाँ पहुँचा दिया जिस भाँति कि उसे उठा लाये थे।

व्याख्या : भाई को उठाने के लिए कितना विलाप किया था। मूर्च्छितावस्था में उठाकर हृदय से लगाया था। यथा : राम उठाइ अनुज उर लायउ। विलाप करते करते प्रलाप करने लगे : उतर ताहि देहों का जाई। उठि किन मोहि समुझावहु भाई। सो भाई उठ बैठे। अतः सरकार ने आनन्द से हृदय लगाकार आलिङ्गन किया। प्रभु का विलाप सुनकर बन्दर समाज विकल हो उठा था। वह इस दृश्य को देखकर हर्षित हो उठा। घोर जय जय ध्वनि हुई।

अब वैद्यजी से मिलने का समय आया। पर ग्रन्थ में वैद्य से मिलने या कृतज्ञता प्रकाशन भी नहीं लिखा। क्योंकि इसी बीच हनुमान्‌जी जिस विधि से उन्हें लाये थे उसी विधि से अर्थात् भवन सहित लङ्का पहुँचा दिया। हनुमान्‌जी जानते थे कि वैद्यजी का किसी प्रकार का यहाँ सत्कार होना उनके लिए बहुत ही बुरा होगा। रावण उन्हें जीता न छोड़ेगा। वैद्य का पवित्र कर्तव्य है कि शत्रु-मित्र का ध्यान न करके आर्त की पीड़ा का हरण करना। यहाँ तक तो रावण के यहाँ भी क्षम्य समझा जायगा पर शत्रु के दिये हुए सम्मान को स्वीकार करना रावण न सह सकेगा और सरकार कृतज्ञ हैं। अवश्य ही सत्कार करेंगे। अतः जब तक दोनों भाई मिलें तब तक हनुमान्‌जी उसे लङ्का पहुँचा आये।

७२. कुम्भकर्ण बल पौरुष संहार प्रसंग

यह वृत्तान्त दसानत सुनेउ। अति बिषाद पुनि पुनि सिर धुनेउ ॥
ब्याकुल कुंभकरन पहिं आवा। बिबिध जतन करि ताहि जगावा ॥३॥

अर्थ : यह समाचार रावण को लगा। उसने अत्यन्त विषाद से सिर पीटा। व्याकुल होकर कुम्भकर्ण के पास गया और बहुत प्रकार के यत्न करके उसे जगाया।

व्याख्या : लक्ष्मणजी के अच्छे होते ही वानरी सेना का जय जयकार और सिंहनाद सुनाई पड़ा। पूछा क्या बात है। दूतों ने लक्ष्मणजी के जी उठने का समाचार दिया। सुनते ही रावण को बड़ा विषाद हुआ। जय की आशा पर पानी फिर गया। इतने वीरों के वध के बाद उस ओर का एक बड़ा वीर गिरा वह भी उठ खड़ा हुआ। मेघनाद का सब पुरुषार्थ समाप्त हुआ। वीरघातिनी साँगो भी हाथ से जाती रही। सचमुच लक्ष्मण काल है अब इसके हाथ से रक्षा नहीं। वैद्य हमारा और काम आगया उन लोगों के। हम लोग वैद्य का ले जाना भी नहीं रोक सके। मालूम होता है कालनेमि भी हनुमान् के हाथ से मारा गया। यह सब सोचकर रावण को बड़ा विषाद हुआ। लगा बीसो हाथ से दसों सिर पिटने। इसीलिए यहाँ रावण न कहकर दशानन कहा। रावण वैद्य पर नाराज नहीं हुआ।

सबेरा होते ही फिर वानरी सेना से काम पड़ेगा। अब कौन वीर है। जिसे भेजें इस चिन्ता से व्याकुल होकर कुम्भकर्ण के पास गया। कुम्भकर्ण का बड़ा भरोसा रावण को है। यथा : कुम्भ करण सम बंधु मम। कुम्भकर्ण की कच्ची नींद थी। अभी सोने का काल पूरा नहीं हुआ था। उनको जगाना साधारण व्यापार नहीं था। पुकारकर उन्हें कोई नहीं जगा सकता था। अतः उनके जगाने के लिए अनेक यत्न करने पड़े। अनेक प्रकार के बाजे बजाये गये। मुद्गर गदा आदि से उसे मारने लगे। फिर भी वह न जगा तो उसके ऊपर सहस्रों हाथी घुमाये गये। भगवान् वाल्मीकि कहते हैं वानरणानां सहस्रञ्च शरीरेऽस्य प्रधावितम्। कुम्भकर्णस्तदा बुद्ध्वा स्पर्शं परमबुध्यत। तब कहीं कुम्भकर्ण जागे। श्रीगोस्वामीजी ने संक्षेप में कहा कि बहुत यत्न करके उसे जगाया।

जागा निसिचरु देखिअ कैसा। मानहु काल देह धरि बैसा ॥
कुंभकरन बूझा कहु भाई। काहें तव मुख रहे सुखाई ॥४॥

अर्थ : वह राक्षस जगा तो ऐसा मालूम पड़ा कि मानो काल देह धारण करके बैठा हुआ। कुम्भकर्ण ने पूछा कि भाई ! तुम्हारे मुख सूख क्यों रहे हैं।

व्याख्या : जब जागकर कुम्भकर्ण उठ बैठा तब वह कैसा मालूम पड़ा। इस पर कवि कहते हैं कि मानों बीभत्स रस के अधिष्ठाता स्वयं काल ही शरीर धारण करके आकर बैठ गये हों। लंकाकाण्ड में दो के ही शरीर का वर्णन मिलता है। यथा : अंगद दीख दसानन बैसे। सहित प्रान कज्जल गिरि जैसे। भुजा विटप सिर सृंग समाना। रोमावली लता तरु नाना। उसमें रावण तो सहित प्राण कज्जल गिरि के समान थे। पर कुम्भकर्ण तो साक्षात् क लरूप दिखाई पड़ रहा था। कच्ची नींद से उठा है। अतः अधिक भयानक मालूम पड़ता है।

कुम्भकर्ण ने जब रावण को देखा तो विषाद के लक्षण स्पष्ट दिखाई पड़े तो पूछता है कि तुम्हारे मुख सूखे हुए क्यों हैं ? देव दानव का मुख तो तुम्हारे भय से सूखा करता है। वह कौन सा भय है जिसके कारण से तुम्हारा मुख सूखा हुआ है। आज तक मैंने तुम्हारा मुख सूखा हुआ नहीं देखा। अपने जगाये जाने और रावण के सूखे चेहरे से किसी भारी भय के उपस्थित होने का अनुमान करता है।

कथा कही सब तेहि अभिमानी। जेहि प्रकार सीता हरि आनी ॥
तात कपिन्ह सब निसिचर मारे। महा महा जोधा संहारे ॥५॥

अर्थ : तब उस अभिमानी ने सब कथा कह सुनायी : जिस प्रकार से सीता को हर लाया था। हे तात ! बन्दरों ने सब राक्षसों को मार डाला। बड़े बड़े योद्धाओं का संहार कर दिया।

व्याख्या : रावण ने कुम्भकर्ण से सूर्पणखा नासिकाच्छेदन, खरदूषण वध सीताहरण लङ्कादाह सेतुबन्ध आदि सब कथा सुनाई। परन्तु रावण स्वभाव से

अभिमानी है। यद्यपि ये कथाएँ उसके अपकर्ष से भरी हैं। फिर भी उसने इन कथाओं को इस ढंग से कहा। जिसमें अपना गौरव बना रहे।

अब आश्चर्य करता है कि मैंने तो यह सोचा था कि यदि बानरी सेना आ जायगी तो ये भूखे राक्षस उन्हें खाकर तृप्त होंगे। सो बात उलटी पड़ गई। बानरों ने ही राक्षसों को मार डाला। सामान्य राक्षसों को ही नहीं महा महा योद्धाओं को मार डाला। यथा : महा महा मुखिया जे पावहिं। ते पद गहि प्रभु पास चलावहिं। कहहिं बिभीषन तिहके नामा। देहिं राम तिनहूँ निज धामा।

दुर्मुख सुररिपु मनुज अहारी। भट अतिकाय अकंपन भारी ॥
अपर महोदर आदिक बीरा। परे समर महि सब रनधीरा ॥६॥

अर्थ : दुर्मुख देवशत्रु नरान्तक अतिकाय और अकम्पन भारी भट थे और दूसरे महोदर आदिक रणधीर वीर सब खेत रहे।

व्याख्या : बड़े बड़े योद्धाओं का मारा जाना कहकर अब जगद्विख्यात योद्धाओं का निधान कहता है। दुर्मुख देवान्तक नरान्तक अतिकाय इन चार को रावण महाभट मानता है। इसके अतिरिक्त महोदर को रणधीर वीर मानता है। आदिक से वज्रदंष्ट्र धूम्रकेतु आदि का ग्रहण है। यथा : कुमुख अकंपन कुलिसरद धूम्रकेतु अतिकाय। एक एक जग जीत सक ऐसे सुभट निकाय। रावण के कहने का तात्पर्य यह कि अब लंका वीरों से शून्य सी हो रही है। युद्ध ठन गया है। अब तुम्हारी अतीव आवश्यकता पड़ गई। अतः तुम्हारी नींद पूरी होने के पहिले तुम्हें जगाया है। इस भाँति रावण ने अपने मुख सूखने तथा चिन्ता का कारण कह सुनाया।

दो. सुनि दसकंधर बचन तव, कुंभकरनु बिलखान।
जगदंबा हरि आन अब, सठ चाहत कल्यान ॥६२॥

अर्थ : दसशीष की वाणी सुनकर कुम्भकर्ण रो पड़ा। बोला : शठ! तू जगदम्बा का हरण करके अब कल्याण चाहता है।

व्याख्या : अपने स्वजन महा महा सुभटों का निधन सुनकर कुम्भकर्ण रो पड़ा। क्योंकि एक साथ ही उसे इतने आत्मीयों के मरण का समाचार मिला। वह एकदम स्थिति को समझ गया। रावण को कुल संहार का कारण समझकर बिगड़ उठा और शठ सम्बोधन करके बोला। जिस भाँति साधु राजाओं ने सीताजी को पहचान लिया। यथा : सिख हमार सुनि परम पुनीता। जगदम्बा जानहु जिअ सीता। उसी भाँति नारदजीके उपदेश से उसने समझ लिया कि रामजी की स्त्री जगदम्बा सीताको इसने हरण किया। श्रीरामावतार हम लोगों के वध के लिए हुआ है। सो इसने सीता हरण करके राक्षसों के संहार का मार्ग निरर्गल कर दिया। इसलिए कहता है कि जगदम्बा को हरण करके कल्याण चाहना शठता है। पूर्व में

भी शुम्भ निशुम्भादि की ऐसी ही भावना हुई थी। 'मां वा ममानुजं वापि निशुम्भ-मुरुविक्रमम्। भज त्वं चञ्चलापाङ्गि रत्नभूतासि वै यतः। इत्यादि शुम्भ ने भी जगदम्बा से यही कहलाया था कि हे चञ्चल नेत्रवाली! तू मुझे या मेरे भाई को जैसी तेरी इच्छा हो स्वीकार कर ले। क्योंकि तू स्त्रियों में रत्न है और हम लोग रत्नभुक् हैं और इसी प्रयत्न में शुम्भ निशुम्भ का संहार हो गया और तुमने तो जगदम्बा को हरण करके लंका में लाकर बिठा दिया है। तुम्हारा कल्याण कैसे होगा? तुम्हारा कल्याण का चाहना असाध्य साधन है।

भल न कीन्ह तैं निसिचर नाहा। अब मोहि आइ जगाएहि काहा॥
अजहूँ तात त्यागि अभिमाना। भजहु राम होइहि कल्याना॥१॥

अर्थ : हे राक्षसों के राजा! तुमने अच्छा नहीं किया। अब आकर मुझे क्या जगाया। हे तात! अब भी अभिमान को छोड़ो और राम को भजो तो कल्याण होगा।

व्याख्या : तुम राक्षसों के नाथ हो। तुम्हें ऐसा कर्म न करना चाहिए जिससे सब राक्षसों का नाश हो जाय। देखो तुम्हारे अपराध से राक्षस मात्र का संहार हो रहा है। मुझे जगाया तो तुमने पर काम बिगड़ने पर। अब मेरे जागने से क्या होगा। जगदम्बा का हरण हो गया है। इस समय जो खड़ा होगा सो सब मारा जायगा।

तुमने सीताहरण की जो कथा सुनाई तथा अब तक की कथा कही : उसमें अभिमान भरा है। अभिमान के कारण न तो यथार्थ बात समझ में आती है और न भजन हो सकता है। तुम्हारे अभिमान ने तुम्हें इस दर्जे तक पहुँचाया। अपने कल्याण के लिए तुमने हमें जगाया। सो कल्याण तो हमारे जागकर युद्ध करने से नहीं होगा। अभिमान के परित्याग करने और राम के भजने से अब भी सम्भव है।

है दससीस मनुज रघुनायक। जाकें हनूमान से पायक॥
अहह बंधु तैं कीन्हि खोटाई। प्रथमहि मोहि न सुनायेहि आई॥२॥

अर्थ : हे दसशीश! राम क्या मनुष्य हैं जिन्हें हनुमान् ऐसे दूत हैं, शोक है कि बन्धु होकर तुमने खोटापान किया जो पहिले ही आकर मुझे ये सब बातें न सुनायां।

व्याख्या : सिर तो तुम्हें कहने को दस हैं पर मोटी सी बात समझ में नहीं आयो। हनुमान् की करणी तुमने आँखों देखी : कौतुक सिंधु बाँधि तब लंका। आयेउ कपि केसरी असंका। रखवारे हति विपिन उजारा। देखत तोहि अच्छ तेहि मारा। जारि सकलपुर कीन्हेसि छारा। ऐसा हनुमान् जिसका दासत्व करता है वह क्या मनुष्य है। अभिमानके कारण ही तुम्हें अब भी हनुमान् बन्दर और राम नर मालूम हो रहे हैं।

—— तुम बन्धु हो, ऐसे कार्यके ठाननेके पहिले तुम्हें मुझसे सम्मति लेनी चाहिए

थी सो तुमने नहीं कया। जब हनुमान् दूत होकर आया था भला तब तो आकर मुझे सब बातें सुनाते। यह न करना तुम्हारा खोटापन है। तुमने बन्धु के योग्य कार्य न किया। इस बात का शोक है। अथवा तुम बन्धु हो, कुठाहर में सहायता करना मेरा कर्तव्य है। यदि दूसरे ने ऐसा कार्य किया होता तो वह मेरे द्वारा दण्डनीय होता।

कीन्हेहु प्रभु बिरोध तेहि देवक। सिव बिरंचि सुर जाके सेवक ।।
नारद मुनि मोहि ग्यान जो कहा। कहतेउँ तोहि समय निरबहा ।।३।।

अर्थ : तुमने उस समर्थ देवता का विरोध किया जिसके शिव ब्रह्मादि देव सेवक हैं। नारद मुनि ने जो ज्ञान मुझसे कहा था वह मैं तुम्हें सुनाता। पर अब उसका समय निकल गया।

व्याख्या : तुम देवताओंका विरोध तो करते ही थे पर करते करते तुमने यहाँ तक कर डाला कि उस समर्थ देव से विरोध कर लिया। जिसके शिव और ब्रह्मादि सेवक हैं। शिव और ब्रह्मा का ही तुम्हें बल है। मैं नहीं समझता था कि तुमसे ऐसी मूर्खता होगी कि उनके स्वामी से तुम बैर मोल लोगे। यदि तुम मुझसे पहिले कहे होते तो मैं वह ज्ञान तुम्हें सुनाता जो नारद[1] मुनि ने मुझसे कहा था पर वह समय तो हाथ से निकल गया। अब तो युद्ध छिड़ गया और इतने आत्मीय मारे गये। अब उस ज्ञानका प्रकाश करना व्यर्थ है।

अब भरि अंक भेटु मोहि भाई। लोचन सुफल करौं मैं जाई ।।
स्यामगात सरसीरुह लोचन। देखौं जाइ तापत्रय मोचन ।।४।।

अर्थ : हे भाई! अब अङ्क भर के मुझसे मिल लो। मैं जाकर अपने नेत्रों को सफल करूँ। श्याम शरीर और कमल लोचन तीनों तापों के मिटानेवाले का दर्शन करूँ।

व्याख्या : तुम भाई हो। मेरी तुम्हारी अन्तिम भेंट है। इसलिए जी भरकर भेंट लो फिर मिलना नहीं होगा। अब तो मैं अपने नेत्रों को सफल करने जा रहा हूँ। सरकार का ध्यान कह रहा है कि श्याम शरीर है और कमल ऐसी आँखें हैं

---

१. एक दिन रात के समय कुम्भकर्ण विशालापुरी के पर्वत पर बैठे थे कि नारदजी को आते हुए देखा। कुम्भकर्ण ने पूछा कि महात्मा! कहाँ से आ रहे हो? उन्होंने कहा कि मैं देवताओं की सभा से आ रहा हूँ। वहाँ की व्यवस्था सुनो। तुम दोनों भाइयों से बहुत दुःखी होकर देवता लोग विष्णु के शरण गये और प्रार्थना किया कि आप त्रैलोक्य के कण्टक रावण को मारिये। ब्रह्मदेव ने उसका निधन मनुष्य के हाथों निश्चित किया है। अतः उसके मारने के लिए आप नरावतार धारण कीजिये। विष्णु ने कहा : ऐसा ही होगा। सो महाविष्णु सत्यसङ्कल्प ईश्वर रघुकुल में राम होकर अवतीर्ण होंगे। वह तुम लोगों का बध करेंगे। यह कहकर मुनिजी चले गये।

जिससे आधिभौतिक आधिदैविक और आध्यात्मिक ताप मिट जाता है। तथा : मामवलोकय पंकज लोचनं। कृपा बिलोकन सोच विमोचन। कुम्भकर्ण के वाक्यों में सरकार की भक्ति भरी है। पहले के राक्षस भी जानते थे कि नेत्रों को सफलता हरिदर्शन में ही है।

दो. रामरूप गुन सुमिरत, मगन भयेउ छन एक।
रावन माँगेहु कोटि घट, मद अरु महिष अनेक ॥६३॥

अर्थ : रामजी के रूप और गुण को स्मरण करके एक क्षण के लिए मग्न हो गया। तब रावण ने करोड़ों घड़ा मद्य और बहुत से भैंसे माँगे।

व्याख्या : सरकार का रूप और गुण दोनों का स्मरण किया। बिना अनुभव के स्मरण होता नहीं है। अतः मालूम होता है कि नारदजी से सुनकर ध्यान में उसने अनुभव किया था। केवल रूप के स्मरण से काष्ठ पाषाणमयी मूर्ति की भाँति मूर्ति ध्यान में आती है। यदि साथ साथ गुणों का भी स्मरण हो तब जीती जागती मूर्ति ध्यान में आ सकती है। अतः दोनों का स्मरण किया और स्मरण करते ही एक क्षण के लिए मग्न हो गया। देहाध्यास जाता रहा। रावण ने देखा कि काम तो बिगड़ा चाहता है। वह इनकी प्रकृति से खूब वाकिफ : परिचित था जानता था कि जहाँ इनके सामने इनका प्रिय भक्ष्य और पेय आया तहाँ इनका ज्ञान ध्यान सब गया। अतः उसने तुरन्त कोटिघट मद्य माँगा। इतने से कम में कुम्भकर्ण की तृप्ति नहीं हो सकती थी। मद्य पीनेवालों के लिए चिखना चाहिए। जिसे वे बीच बीच में खाते जायँ। अतः चिखना के स्थान में अनेक महिष माँगे।

महिष खाइ करि मदिरा पाना। गर्जा बज्राघात समाना ॥
कुम्भकरन दुर्मद रन रंगा। चला दुर्ग तजि सेन न संगा ॥१॥

अर्थ : भैंसे खाकर और मद्य पीकर वह वज्रपात की भाँति गरजा। कुम्भकर्ण रणरङ्ग में दुर्मद था। वह बिना सेना साथ लिये किले के बाहर निकलकर चला।

व्याख्या : सामग्री पहिले से प्रस्तुत थी। रावण के इशारे की देर थी। सब सामान आ गया। कुम्भकर्ण की दृष्टि बहिर्मुख होते ही खाद्य पेय पर पड़ी। खाना पीना आरम्भ कर दिया। जब खा पी चुका तो मस्त होकर गर्जा। मालूम हुआ कि बिजली गिरी। गर्जकर आप चल पड़े। भाई से मिलना भूल गये। रणरङ्ग में उसका मद आज तक कोई चूर्ण न कर सका। इसलिए दुर्मद है। दुर्ग से रक्षा होती है। उसके बाहर निकल पड़ा और सेना भी साथ न ली। किसी को कुछ गिनता नहीं। मुझे किसी रक्षा की क्या आवश्यकता है? वानर भालु के लङ्का घेरने के पहिले ही बाहर निकल पड़ा।

देखि बिभीषनु आगे आयेउ। परेउ चरन निज नाम सुनायेउ ॥
अनुज उठाइ हृदय तेहि लायो। रघुपति भगत जानि मन भायो ॥२॥

अर्थ : देख करके विभीषण आगे आया। चरणों पर गिरा और अपना नाम सुनाया। उसने उठाकर भाई को कलेजे से लगा लिया। रामजी का भक्त जान करके मनमें अच्छा लगा।

व्याख्या : विभीषण ने देखा कि बड़े भाई साहब चले आ रहे हैं। इनसे विदा नहीं हुए थे। लङ्का छोड़ने के समय ये सो रहे थे। उस समय जगाये भी नहीं जा सकते थे। अतः इस समय उनके सामने गये। उनके चरणों पर गिरे। वह मद से मत्त था। उसका पहिचानना कठिन था। अतः अपना नाम सुनाया कि मैं विभीषण आपको प्रणाम करता हूँ।

छोटा भाई है। इस लिए कुम्भकर्ण ने उसे उठाकर हृदय से लगा लिया। समझता था कि यह अन्तिम भेंट है। रावण मन में नहीं भाया था। यथा : भल न कीन्ह तैं निसिचर नाहा। अब मोहि आइ जगाएहि काहा। क्योंकि रामजी का वैरी था। वैरभाव से भजन करनेवाले को रसोत्पत्ति नहीं होती। अतः उनकी भागवतों में गणना नहीं है। विभीषण पर कुम्भकर्ण का प्रेम है। क्योंकि महाभागवत हैं।

तात लात रावण मोहि मारा। कहत परमहित मन्त्र बिचारा॥
तेहि गलानि रघुपति पहिं आयेउँ। देखि दीन प्रभु के मन भायेउँ॥३॥

अर्थ : हे तात ! रावण ने मन्त्र विचार के समय परमहित करते हुए मुझे लात से मारा। उसी ग्लानि से रामजी के पास आया। दीन जानकर मैं सरकार को प्रिय लगा।

व्याख्या : विभीषण जानते हैं कि कुम्भकर्ण कम से कम अपने घर के लिए वाजिब पसन्द है। यद्यपि मुझसे प्रेम है। फिर भी रावण के सङ्कोच से सरकार से लड़ने जा रहा है। अतः अपने विरोधी दल में आने का कारण कह रहे हैं।

मुझे रावण ने लात मारा : शूल मारता गदा मारता खड्ग मारता तो मुझे कष्ट नहीं था। किन्तु मुझे लात मारा। मैं तपस्या में शरीक यथा : कीन्ह बिबिध तप तीनिउ भाई। राज्य में शरीक यथा : करत राज लंका सठ त्यागी। सेवा में शरीक यथा : सुनहु पवनसुत रहनि हमारी। जिमि दसनन्ह महँ जीभ बिचारी। सो मुझे लात मारा। वह भी भरी सभा में जबकि मन्त्र विचार हो रहा था। उस समय सबको सब कुछ कहने का अधिकार होता है और मैंने तो परमहित कहा था।

विभीषण कहते हैं कि वही ग्लानि मेरे हृदय में बैठ गयी। संभावित कहँ अपजस लाहू। मरन कोटि सम दारुन दाहू। मैं संसार में मुख दिखलाने लायक नहीं रह गया। 'जिअसि सदा सठ मोर जिआवा। रिपु कर पच्छ मूढ तोहि भावा। सठ मिलु जाइ तिन्हहि कहु नीती। इस भाँति मेरी भर्त्सना करके मेरा त्याग किया। दूसरी जगह कहीं शरण नहीं थी। यथा : नाहिन मोहि और कतहुँ कछु जैसे काग जहाज को। अतः मैं दीन होकर प्रभु के शरण आया। मेरी दशा पर उन्होंने दया की। उनको दीन प्यारे होते हैं। यह उनका स्वभाव है। यथा : बंदौं सीताराम पद जिनहि परम प्रिय खिन्न।

सुनु सुत भयउ काल बस रावन । सो कि मान अब परम सिखावन ॥
धन्य धन्य तैं धन्य बिभीषन । भयेउ तात निसिचर कुल भूषन ॥४॥
बंधु बंस तैं कीन्ह उजागर । भजेहु राम सोभा सुखसागर ॥५॥

अर्थ : बेटा ! सुनो रावण काल के वश हो गया । वह क्या अब परम शिक्षा मान सकता है ? हे विभीषण तुम धन्य हो धन्य हो धन्य हो । हे तात ! तुम निशिचर कुल में भूषण हुए । हे बन्धु ! तुमने वंश को उजागर कर दिया । तुमने शोभा और सुख के सागर रामजी का भजन किया ।

व्याख्या : कुम्भकर्ण अत्यन्त प्रेम से विभीषण को पुत्र कहता है । अथवा उसी को नरक से उद्धार करनेवाला समझकर पुत्र कह रहा है । जब कोई अत्यन्तहित सिखावन न सुने तो समझ लेना चाहिए कि इसका बड़ा अनिष्ट होनेवाला है । यह भवितव्यता के वश है । नहीं तो हितवचन किसे अच्छा नहीं लगता । जो काल के वश हो जाते हैं वे दीप बुझने का गन्ध नहीं सूँघ सकते । ध्रुव को नहीं देख सकते और न अतिहित वचन सुन सकते हैं । यथा : दीपनिर्वाणगन्धञ्च ध्रुवञ्चातिहितं वचः । न जिघ्रन्ति न पश्यन्ति न शृण्वन्ति गतायुषः । सो रावण कालवश हो गया है । मैंने भी कहा : अजहूँ तात त्यागि अभिमाना । भजहु राम होइहि कल्याना । इसके उत्तर में जब मद्य और महिष आया तब मैं समझ गया कि मेरी बात मन में नहीं बैठी । युद्ध की तैयारी के लिए यह सब हो रहा है ।

भूयोर्थ में तीन बार धन्य शब्द का प्रयोग किया । अथवा निशिचरकुल-भूषण होने के लिए प्रथम बार धन्य कहा । वंश उजागर करने के कारण दूसरी बार धन्य कहा । रामजी के भजन करने के कारण तीसरी बार धन्य कहा । भाव यह कि तुम निशिचरकुल-भूषण हुए । निशिचर का नाम कोई सबेरे उठकर नहीं लेता । सो तुम पुण्यश्लोक हो गये । अब सब लोग सबेरे उठकर तुम्हारा नाम लेवेंगे । तुम्हारे कारण वंश उजागर हुआ । यथा : सो कुल धन्य उमा सुनु जगत पूज्य सुपुनीत । श्रीरघुबीर परायन जेहि नर उपज विनीत । कारण देता है कि तुमने शोभासुखसागर रामजी का भजन किया और सबने तो द्रोह किया । मैं भी द्रोह करने ही जा रहा हूँ । अतः तुम्हीं अकेले भजन करनेवाले निकले । शोभासागर के भजन करते समय भी सुख और सुखसागर की प्राप्ति ही जीवमात्र का इष्ट है ।

दो. वचन कर्म मन कपटु तजि, भजेहु राम रनधीर ।
जाहु न निजपर सूझ मोहि, भयेउँ काल बस बीर ॥६४॥

अर्थ : मनसा वाचा कर्मणा कपट छोड़कर रणधीर रामजी का भजन करना । अब जाओ मुझे अपना पराया नहीं सूझ रहा है । हे वीर ! मैं काल के वश हो गया हूँ ।

व्याख्या : कुम्भकर्ण ने देखा कि जब वह ग्लानि के कारण रामजी के पास गया है तो ग्लानि के कारण के हट जाने से पलट भी सकता है । अतः शिक्षा दे रहे

हैं कि राक्षसी प्रकृति से सावधान रहना। रणधीर राम के भजन में मनसा वाचा कर्मणा कपट को स्थान न मिलने पावे। वे रणधीर हैं। मुझको रावण को सबको मारेंगे। तुम सच्चे हृदय से सहायता करना। अब मेरा या रावण का कोई सङ्कोच नहीं। यथा : करइ स्वामि हित सेवक सोई। दूषन कोटि देइ किन कोई। अब मैं भी कालवश हो गया। क्योंकि मुझे भी अपना पराया नहीं सूझ रहा है। यही काल विवश का लक्षण है। यथा : निकट काल जेहि आवत साईं। तेहि भ्रम होइ तुम्हारहि नाईं। मैं बहुत अपने को सँभाले हूँ। फिर भी मेरी तबियत मेरे हाथ में नहीं है। नहीं जानता किस समय क्या कर बैठूँ। अतः तुम भी मेरे सामने से चले जाओ। मेरा ठिकाना नहीं। कहीं तुम्हारे ऊपर ही चोट न कर बैठूँ।

बंधुवचन सुनि चला बिभीषन। आयेउ जहँ त्रैलोक बिभूषन ॥
नाथ भूधराकार सरीरा। कुम्भकरन आवत रनधीरा ॥१॥

अर्थ : भाई का वचन सुनकर विभीषणजी चले। और जहाँ त्रैलोक्य विभूषण रामजी थे वहाँ आये। : बोले हे नाथ ! पर्वताकार शरीरवाला रणधीर कुम्भकर्ण आरहा है।

व्याख्या : जो कुम्भकर्ण ने कहा कि : जाहु न निज पर सूझ मोहि। विभीषणजी तुरन्त लौट पड़े कि बात ठीक है। इनका क्या ठिकाना। भयेउ काल बस बीर। कहकर उन्होंने स्पष्ट ही कह दिया कि मैं युद्ध करके मरूँगा। अब मेरा प्रहार आरम्भ होगा। उस समय तुम भी मिल जाओगे तो मार ही डालूँगा। इसलिए चले जाओ। अतः विभीषण ने प्रणाम भी न किया और तुरन्त लौट पड़े, और सीधे सरकार के पास आये। निशिचर कुलभूषण त्रैलोक्य विभूषण के पास आये। भाव यह कि यह बड़ा वीर है। यह दूसरे के मान का नहीं है।

सरकार को सूचना देते हैं कि आप मेरे नाथ हैं अथवा सारे समाज के नाथ हैं। सो समाज पर भारी संकट उपस्थित है। यह देखिये जो पर्वताकार दिखलाई पड़ता है। यह रणधीर कुम्भकर्ण है। सरकार को ही लक्ष्य करके चला आरहा है। पर्वताकार शरीर से उसका पराक्रम और रणधीर से उसका युद्ध कौशल भी द्योतित किया।

एतना कपिन सुना जब काना। किलकिलाइ धाए बलवाना ॥
लिये उठाइ बिटप अरु भूधर। कटकटाइ डारहिं ता ऊपर ॥२॥

अर्थ : इतनी बात कान से सुनते ही बलवान् बन्दर लोग किलकारी देते हुए दौड़े। पेड़ और पर्वत उखाड़ लिया और कटकटाकर उसके ऊपर डालने लगे।

व्याख्या : विभीषण ने तो सरकार से अर्ज किया। परन्तु वहाँ पर प्रधान बन्दर थे, उन लोगों ने सुन लिया कि सरकार को लक्ष्य करके आरहा है। अतः इसे रास्ते में ही मार गिराना चाहिए। यह निश्चय करके बड़े उत्साह से दौड़े। देखा कि सचमुच वह तो साक्षात् पर्वत ही है। अतः इसकी सेवा पर्वत और वृक्ष से ही

करनी चाहिए। अतः रास्ते में उखाड़ते हुए चले और उसके ऊपर क्रोध करके फेंकने लगे।

कोटि कोटि गिरि सिखर प्रहारा। करहिं भालुकपि एक एक बारा[1] ॥
मुरयो न मन तन टरयो न टारयो। जिमि गज अर्क फलन्हि को मारयो ॥३॥

अर्थ : करोड़ों पर्वत के शिखरों का प्रहार बन्दर और भालु एक एक बार कर रहे हैं। न उसका मन मुरता है और न शरीर टाले टलता है। जैसे हाथी मदार के फल से मारा जा रहा हो।

व्याख्या : जब देखा कि इसका कुछ नहीं हो रहा है और आगे बढ़ता ही चला आरहा है तो बन्दर भालुओं ने हजारों शिखर के समूहों का प्रहार किया और अनेक बार किया। पर इन प्रहारों का कोई प्रभाव न उसके मन पर पड़ा। न शरीर पर। उसके शरीर से टक्कर खाकर शिखर समूह चूर चूर होकर गिरते जा रहे हैं। यहाँ कवि उपमा देते हैं कि जैसे हाथी को करोड़ों मदार के फल से मारा जाय तो उससे हाथी का क्या बिगड़ेगा। मदार के फल ही फूटेंगे और उनके घूए बाहर छितरा जायँगे। गिरि शिखर की यही गति कुम्भकर्ण को पाकर हुई।

तब मारुतसुत मुठिका हन्यो। परेउ धरनि ब्याकुल सिर धुन्यो ॥
पुनि उठि तेहि मारेउ हनुमंता। घुर्मित भूतल परेउ तुरंता ॥४॥

अर्थ : तब मारुतसुत हनुमान्‌जी ने उसे घूसा मारा। वह पृथिवी पर गिर गया और अपना सिर पीटने लगा। फिर उठकर उसने हनुमान्‌जी को मारा। वे चक्कर खाकर तुरन्त पृथिवी पर गिर गये।

व्याख्या : हनुमान्‌जी की मुष्टिका बड़ी दृढ़ है। जब पर्वत से काम नहीं चलता तब इनकी मुष्टिका काम करती है। यह पहिली चोट कुम्भकर्ण पर ऐसी हुई कि कुम्भकर्ण पृथिवी पर गिर पड़े और ऐसे विकल हुए कि अपना सिर कूटने लगे। परन्तु कुम्भकर्ण महाबली था। फिर उठा। हनुमान्‌जी की मुष्टिका से मेघनाद, कुम्भकर्ण और रावण तीनों गिरे। मेघनाद यथा : मुठिका मारि चढ़ा तरु जाई। ताहि एक छन मूर्च्छा आई। कुम्भकर्ण का गिरना यहाँ कहा ही गया है। रावण यथा : मुठिका एक ताहि कपि मारा। परेउ सैल जिमि बज्र प्रहारा।

फिर कुम्भकर्ण ने भी उन्हें मारा। यहाँ कुम्भकर्ण के पराक्रम को देखिये कि उसके प्रहार से हनुमान्‌जी ऐसे वीर को चक्कर आगया और वे तुरन्त पृथिवी पर गिर गये।

पुनि नल नीलहि अवनि पछारिसि। जहँ तहँ पटकि पटकि भट डारिसि ॥
चली बलीमुख सेन पराई। अति भय त्रसित न कोउ समुहाई ॥५॥

---

१. यह लड़ाई आश्लेषा नक्षत्र की वर्षा है।

अर्थ : फिर उसने नल नील को पृथिवी पर पछाड़ दिया और भी योद्धाओं को जहाँ तहाँ पटककर डाल दिया। बन्दरों की सेना भाग चली। अत्यन्त भय से सन्त्रस्त हो गयी। कोई सामने नहीं आरहा है।

व्याख्या : अभी तक तो कुम्भकर्ण ने वानरी सेना पर प्रहार ही नहीं किया था। उनके चोटों को कुछ न गिनता हुआ लोचन सुफल करने के लिए बढ़ता ही चला जाता था। पर हनुमान्‌जी के घूँसे से वह समझ गया कि शत्रु उपेक्षा करने लायक नहीं है। अतः प्रधान प्रधान बन्दरों पर चोट करने लगा। सेनापति नील तथा नल को पृथिवी पर पटक दिया। घर से कोई शस्त्र लेकर चला नहीं है। शस्त्र की आवश्यकता नहीं समझता था कि भुजबल ही यथेष्ट है। जिसे पाया उसे पृथिवी पर पटका। ऐसे बड़े बड़े वीरों के गिरने से वानरी सेना में भगदड़ मच गयी। सब बन्दर भालु अत्यन्त डर गये। किसी का साहस सामने जाने का नहीं रहा।

दो. अंगदादि कपि मुरछित, करि समेत सुग्रीव।
काँख दाबि कपिराज कहुँ, चला अमित बलसीव ॥६५॥

अर्थ : अङ्गदादि बन्दरों को सुग्रीव के सहित मूर्च्छित कर दिया और सुग्रीव को काँख में दबाकर अमित बलसींव चल पड़ा।

व्याख्या : अब वानरी सेना में अङ्गद और सुग्रीव दो ही रह गये थे। सो इनको भी मूर्च्छित किया। सुग्रीव को पहिचानता था। इन्हें काँख में दबाकर लंका की ओर चला। सुग्रीव के पकड़े जाने से उसने अपनी जीत मान ली। रावण ने कहा था कि बन्दरों ने राक्षसों को मारा और बड़े बड़े योद्धाओं का संहार किया। कुम्भकर्ण रावण के पास सुग्रीव का शरीर लेकर चले। इस प्रमाण में कि वानरी सेना का सत्यानाश हो गया। कुम्भकर्ण अमित बलसीव है। सुग्रीव ऐसे योद्धा को काँख में दाबे चला जा रहा है। मानों बाली द्वारा रावण के काँख में दाबे जाने का बदला चुका रहा है।

उमा करत रघुपति नरलीला। खेल गरुड़ जिमि अहिगन मीला॥
भृकुटि भंग जो कालहिं खाई। ताहि कि सोहै ऐसि लराई ॥१॥

अर्थ : हे उमा ! रघुपति नरलीला करते हैं। जैसे गरुड़ साँपों में मिलकर खेल करे। जिसका भृकुटि विलास काल को खा जाता है। उसे क्या ऐसी लड़ाई शोभा देती है ?

व्याख्या : जहाँ किसी प्रकार की कच्चाई सरकार की ओर से दिखायी पड़ती है तुरन्त वहीं शिवजी अपने श्रोता को सावधान करते जाते हैं। यहाँ सरकार सीधे सीधे नरलीला कर रहे हैं। सेना मारी जा रही है। सेनापति लोग घायल मूर्च्छित हैं। मित्र राजा जिसकी सेना लेकर चढ़ाई हुई है शत्रु द्वारा पकड़ा गया। सरकार का किया कुछ हो नहीं रहा है। ऐसे स्थलों में ही लोगों को मोह होता है। अतः शिवजी कहते हैं कि यह सरकार की नरलीला है। यथा : जस काछिअ तस चाहिअ

नाचा । अतः मनुष्य का अनुकरण करते हुए खेल कर रहे हैं । उन्हें किसी प्रकार का कुछ भी न भय है न अनिष्ट की शङ्का है । बिगड़ती हुई बात को जहाँ से चाहें सँभाल सकते हैं । जैसे गरुड़ कौतुकवश साँपों में मिलकर खेले । साँपों को पता नहीं कि यह गरुड़ हैं । उसे सामान्य जीव समझकर उस पर अपना पौरुष दिखलावें और गरुड़ कौतुक वश उस पौरुष से अपने को पराभूत सा दिखलावें । यह गरुड़ का विनोद है । सर्प तो उनके भक्ष्य हैं । सर्पों से उन्हें भय कैसा ।

भृकुटि मध्य में आज्ञाचक्र है । वहीं से आज्ञा होती है । प्रभु लोगों के इच्छानुरूप अनुचर केवल भृकुटि विलास देखकर आचरण करते हैं । यहां तो भृकुटि विलास में ही यह सामर्थ्य है कि काल को खा जावे । संकल्पमात्र से काल की इतिश्री हो जाय । यथा : उमा काल मर जाकी इच्छा । ऐसे प्रभु को क्या ऐसी लड़ाई शोभा देती है ? भाव यह कि रावणादि ने तो काल के भय से तप करके ब्याज से अमरत्व माँगा । फिर भी अमरत्व नहीं मिला । काल के वश में ही रह गये । उस काल की स्थिति भी जिसकी इच्छा पर निर्भर करती है । उसकी लड़ाई काल से तो शोभा देती ही नहीं । कुम्भकर्णादि तो काल के कलेवा हैं । इनके साथ क्या शोभा देगी । युद्ध की शोभा तो बराबरवाले से है और सरकार के बराबर कोई है नहीं । न हो सकता है । अतः रणशोभा के लिए कभी पराभूत से हो जाते हैं । यथा : रनसोभा लगि आपु बँधावा ।

जगपावनि कीरति बिस्तरिहहिं । गाइ गाइ भवनिधि नर तरिहहिं ॥
मुरुछा गइ मारुतसुत जागा । सुग्रीवहि तब खोजन लागा ॥२॥

अर्थ : संसार को पवित्र करनेवाली कीर्ति का लोग विस्तार करेंगे । जिसका गान करके संसार सागर का लोग सन्तरण करेंगे । मूर्च्छा गयी । हनुमान्‌जी जागे । तब सुग्रीव को खोजने लगे ।

व्याख्या : प्रश्न उठेगा कि सरकार तब ऐसा युद्ध क्यों करते हैं कि जिसमें उनकी शोभा नहीं ? उसी का उत्तर देते हुए कवि कहते हैं कि लोकोपकार के लिए भक्तों को अभय करने के लिए। परम पद की प्राप्ति बड़ी कठिन है । बड़े-बड़े साधनाओं से भी दुष्प्राप्य है । उसकी प्राप्ति भगवद्यश के गान और श्रवण से अनायासेन होती है । उसके गान और श्रवण से पुण्यसंस्कार अन्तःकरण में होता है और उससे अन्तःकरण पवित्र हो जाता है । इसलिए सरकार की कीर्ति को जगपावन कहा है । यथा : तब निज भुजबल राजिव नैना । कौतुक लागि संग कपि सैना । कपिसेन संग संघारि निसिचर राम सीतहि आनिहैं । त्रैलोक पावन सुजस सुर मुनि नारदादि बखानिहैं । जो सुनत गावत कहत समुझत परम पद नर पावई । रघुवीर पद पाथोज मधुकर दास तुलसी गावई ।

हनुमान्‌जी के मूर्च्छित होने से कपिसेना पर आपत्ति आगयी । वैराग्य के मूर्च्छित होते ही साधन समूह अनाथ हो गये । जब मूर्च्छा बीती तो देखा कि सब वानर वीर रणक्षेत्र में पड़े हैं । कुम्भकर्ण चला गया । पर राजा सुग्रीव नहीं दिखाई

पड़ रहे हैं। अतः उन्हें खोजने लगे। कहीं उन्हें कुम्भकर्ण ले तो नहीं गया। यदि राजा बन्दी हो गये तो युद्ध ही समाप्त हो जायगा।

सुग्रीवहु कै मुरुछा बीती। निबुक गयेउ तेहि मृतक प्रतीती ॥
काटेसि दसन नासिका काना। गरजि अकास चलेउ तेहि जाना ॥३॥

अर्थ : सुग्रीव भी मूर्च्छा से जागे तो वे : काँख से निकल गये। कुम्भकर्ण ने समझ रक्खा था कि मर गया। उन्होंने कुम्भकर्ण के नाक और कान को दाँत से काट लिया और गर्जन करके आकाश की ओर चले तब उसने जाना।

व्याख्या : इधर हनुमानजी सुग्रीव को खोज रहे हैं। उधर सुग्रीवजी भी मूर्च्छा से जग गये तो अपने को शत्रु के काँख में दबा पाया। उसने समझ रक्खा था कि सुग्रीव मर गया। इसलिए उसने सावधानी से नहीं दबा रक्खा था। अतः सुग्रीवजी उसकी काँख से निकल गये।

सुग्रीवजी अपने इस पराभव को न सह सके। अतः उसे जीत में परिणत करने के लिए उसके नाक कान को दाँत से काट लिया। अति लाघव से काटा बहिन की भाँति भाई भी धोखे में रह गये। नाक कान कट जाने पर सूर्पणखा को पता चला और सुग्रीव जब गर्जन करके आकाश की ओर चले तब कुम्भकर्ण जान पाया।

गहेउ चरन धरि भूमि पछारा। अति लाघव उठि पुनि तेहि मारा ॥
पुनि आयेउ प्रभु पहिं बलवाना। जयति जयति जय कृपानिधाना ॥४॥

अर्थ : उसने सुग्रीव का पैर पकड़कर पृथ्वी पर पछाड़ा पर सुग्रीव ने अत्यन्त फुरती से उठकर फिर उसे मारा। तत्पश्चात् बलवान् सुग्रीव सरकार के पास कृपानिधान की जय हो जय हो जय हो करते हुए आगये।

व्याख्या : कुम्भकर्ण समझ न सके कि क्या हुआ ? देखते हैं कि शत्रु आकाश की ओर मेरे पहुँच से बाहर होने के लिए जा रहा है। पकड़ने को झपटे तो टाँग पकड़ पाये। उसने पृथ्वी पर पटका परन्तु राजा सुग्रीव में बड़ी फुरती है। पृथ्वी पर पहुँचते न पहुँचते उठ गये और फिर उसे मारा और वहाँ से सरकार के पास निकल गये। सुग्रीव के लाघव से स्वयं वालि हैरान था। वालि ने बहुत सुग्रीव का पीछा किया था। पर सुग्रीव हाथ न आये। सो यहाँ भी कुम्भकर्ण के हाथ से निकल गये। बड़ी भारी जीत हुई है। कुम्भकर्ण की नाक और कान काटकर आ रहे हैं। अतः सरकार का जयघोष करते उनके पास आये।

नाक कान काटे जिय जानी। फिरा क्रोध करि भै मन ग्लानी ॥
सहज भीम पुनि बिनु स्रुति नासा। देखत कपिदल उपजी त्रासा ॥५॥

अर्थ : नाक कान कट गया। यह जानकर उसके मन में बड़ी ग्लानि हुई

और वह क्रुद्ध होकर लौट पड़ा। एक तो वह स्वभाव से ही भयंकर था। तिसपर नाक कान भी नहीं। उसे देखते ही वानरी सेना त्रस्त हो गयी।

व्याख्या : जब कुम्भकर्ण को मालूम हुआ कि नाक कान कट गये तो उसके मन में बड़ी ग्लानि हुई। बड़े प्रसन्न होकर लंका जा रहे थे कि जीतकर आ रहा हूँ। वानरराज का शव उपहार रूप में रावण को देने के लिए कांख में दाबे लिये जा रहे थे। एकाएक नाक कान कट जाने से सब बात ही बिगड़ गयी। अब कौन मुँह लेकर लङ्का जाँय। अब तो मर जाना ही ठीक है। अतः क्रुद्ध होकर वानरी सेना की ओर लौटा।

सौम्य स्वरूप भी बिना नाक कान के भयानक हो जाता है। नासिका मुखमण्डनम्। नाक ही मुख की शोभा है। कुम्भकर्ण तो स्वभाव से ही भयंकर थे। अब नाक-कान बिना तो महा भयंकर हो गये। उसे देखकर ही वानरी सेना सन्त्रस्त हो उठी।

दो. जय जय जय रघुबंस मनि, धाये कपि दै हूह।
एकहि बार तासु पर, छाड़ेन्हि गिरि तरु जूह ॥६६॥

अर्थ : रघुवंशमणि की जय हो जय हो जय हो ऐसा जयकार लगाकर बन्दर हूह करके दौड़े। एक साथ ही उस पर पर्वत और पेड़ का समूह फेंका।

व्याख्या : सन्त्रस्त होने पर रघुवंशमणि रामजी के नाम का जयकारा लगाया और बानर लोग पर्वत और वृक्ष लिये हुए दौड़ पड़े। चारो ओर से हूह करके दौड़े और सबने एक साथ ही उसपर पर्वत और पेड़ फेंके। वानरी सेना समुद्र की भाँति उमड़ी हुई चारों ओर से चली आ रही है और सब ओर से पर्वत और वृक्ष के प्रहार हो रहे हैं। भयानक रूप कुम्भकर्ण उस सेना समुद्र के बीच में पहाड़ की भाँति दिखाई पड़ रहे हैं।

कुंभकरन रनरंग बिरुद्धा। सनमुख चला काल जिमि क्रुद्धा ॥
कोटि कोटि कपि धरि धरि खाई। जनु टिड्डी गिरि गुहाँ समाई ॥१॥

अर्थ : कुम्भकर्ण रणरङ्ग में विरुद्ध होकर सन्मुख चला मानो क्रुद्ध काल है। करोड़ों बन्दरों को पकड़ पकड़कर खाये जाता है। मानों टिड्डी पर्वत की कन्दरा में समाई जाती हैं।

व्याख्या : कुम्भकर्ण रणरङ्ग में दुर्मद है। सो रणरङ्ग में विरुद्ध हुआ। जब सोकर जागा था तब कवि ने उपमा दी थी कि : जागा निसिचर देखिय कैसा। मानहु काल देह धरि बैसा। इस समय रणरङ्ग विरुद्ध है तो कपि कहते हैं कि क्रुद्ध काल की भाँति मालूम पड़ रहा है। काल तो यों ही प्राणियों को खाया करता है और यदि क्रुद्ध हो तो संहार उपस्थित हो जाय। यहाँ बन्दरों का संहार उपस्थित हो गया। करोड़ों बन्दरों को पकड़ पकड़कर खा गया। फाँकता चला जाता है। मुँह चलाने की फुरसत नहीं। इसीलिए उसके मुख की उपमा गिरिगुहा से दिया और

बन्दरों की टिड्डी के दल से। सामने बढ़ता बन्दरों का संहार करता चला जाता है। कोई रोकने में समर्थ नहीं है।

कोटिन्ह गहि सरीर सन मर्दा। कोटिन्ह मीजि मिलव महि गर्दा ॥
मुख नासा स्रवनन्हि की बाटा। निसरि पराहिं भालु कपि ठाटा ॥२॥

अर्थ : करोड़ों को पकड़कर शरीर में मसल डाला और करोड़ों को मीजकर पृथ्वी के गर्दे में मिला दिया। मुँह नाक और कानों के रास्ते से बन्दर और भालुओं के ठट्ट निकलकर भागे जा रहे हैं।

व्याख्या : उसका रणमदमत्त होना वर्णन कर रहे हैं। करोड़ों बन्दरों को पकड़कर शरीर में मसल रहा है। मानो उबटन : अभ्यङ्ग लग रहा है। करोड़ों को पकड़कर पृथ्वी के गर्दे में मिला रहा है। उनके अस्थिपञ्जर चूर्ण होकर धूलि में मिल गये। अद्भुत काण्ड उपस्थित है। कुम्भकर्ण का शरीर इतना विस्तृत है कि बहुत बातों का तो उसे स्वयं पता नहीं लगता है। वह बन्दरों को मुँह में तो डालता चला जाता है पर इस बात का उसे पता नहीं कि वे पेट में जाते हैं कि नहीं। वे मुख नासिका और कान के रास्ते से बाहर निकलकर भागे जा रहे हैं।

रन मदमत्त निसाचर दर्पा। बिस्व ग्रसिहि जनु एहि बिधि अर्पा ॥
मुरे सुभट सब फिरहिं न फेरे। सूझ न नयन सुनहि नहि टेरे ॥३॥

अर्थ : रणमद में मत्त होकर राक्षस ने ऐसा दर्प किया कि संसार को ही निगल जायगा। मानो ब्रह्मा ने उसे अर्पण कर दिया है कि तुम खा जाओ। सुभट लोग ऐसे भागे कि लौटाने से नहीं लौटते हैं। उन्हें न आँख से दिखायी पड़ता है और न पुकारने पर सुनाई पड़ता है।

व्याख्या : रण मदमत्त होकर कुम्भकर्ण वानरी सेना का ऐसा संहार कर रहा है और कोई उसे रोकनेवाला नहीं है। मानो ब्रह्मा ने उसे संसार ही दे डाला कि वह जिस भाँति चाहे वैसे नाश करे। किसी की सामर्थ्य नहीं कि हस्तक्षेप कर सके। प्रश्न उठेगा कि बड़े बड़े वीर कहाँ हैं तो उनकी दशा कहते हैं कि वे सब भाग निकले। यदि कोई उन्हें प्रोत्साहन करके फेरना चाहे तो वे फिरते नहीं। क्योंकि त्रासातिरेक से न तो उन्हें सुझाई पड़ता है और न पुकारने पर उन्हें सुनाई देता है। त्रास से इन्द्रियाँ व्याकुल हैं। काम नहीं करतीं। केवल किसी प्रकार से भागकर प्राण बचाने के सिवा कुछ सूझ नहीं रहा है।

कुंभकरन कपि फौज बिदारी। सुनि धाई रजनीचर धारी ॥
देखी राम बिकल कटकाई। रिपु अनीक नाना बिधि आई ॥४॥

अर्थ : 'कुम्भकर्ण ने शत्रु सेना को तितर बितर कर दिया' यह सुनकर राक्षसी सेना दौड़ पड़ी। रामजी ने देखा कि अपनी सेना विकल है। तिसपर शत्रु की सेना अनेक प्रकार की आ पहुँची।

व्याख्या : वानरी सेना के इस प्रकार संहार का हाल जब लंका पहुँचा तो राक्षसी सेना दौड़ पड़ी कि वानरी सेना को निर्मूल करनेका इससे अच्छा समय न मिलेगा। कुम्भकर्ण ने जो अकेले कर सकता था किया। सेना का व्यूह टूट गया। भगदड़ मची हुई है। अब उन तितर बितर हुए सैनिकों को कहीं जमने न देने के लिए सेना की आवश्यकता है। इस भगदड़ के समय यदि हमलोग धावा करके उन्हें खदेड़ते और मारते जांय तो निःसन्देह निर्मूल कर देने में हमलोग समर्थ हो जावेंगे। नहीं तो यह छितराई हुई सेना समय पाकर फिर इकट्ठी हो जायगी। अतः राक्षसी सेना दौड़ आयी।

रामजी ने देखा कि यह चाल वानरी सेना को निर्मूल करने के लिए चली गयी है। अतः इस नयी आयी हुई सेना का सामना करना चाहिए और अपनी भागती हुई सेना को सँभालना चाहिए। इस समय वानरी सेना बड़े संकट में है। कुछ कर नहीं सकती।

दो. सुनु सुग्रीव विभीषन, अनुज सँभारेहु सैन।
मैं देखौं खल बल दलहि, बोले राजिवनैन ॥६७॥

अर्थ : सुग्रीव विभीषण और लक्ष्मण सुनो। तुम लोग वानरी सेना को सँभालो। मैं इस खल के बल और सेना को देखूँगा। यह बात राजीवनयन रामजी ने कहा।

व्याख्या : यहाँ दो भिन्न भिन्न कार्य हैं : एक तो अपनी सेना को सम्भालना और दूसरा कुम्भकर्ण का तथा नयी आयी हुई अनेक प्रकार की राक्षसी सेना का सामना करना। अतः पहिला काम तो रामजी ने सुग्रीव विभीषण और लक्ष्मणजी के सुपुर्द किया और दूसरा काम अपने ऊपर लिया। भाव यह कि कुम्भकर्ण तथा नयी आयी हुई राक्षसी सेना का वध करने का भार स्वयं अपने ऊपर लिया।

कर सारंग साजि कटि भाथा। अरिदल दलन चले रघुनाथा॥
प्रथम कीन्ह प्रभु धनुष टंकोरा। रिपुदल बधिर भएउ सुनि सोरा॥१॥

अर्थ : हाथ में सारङ्ग और कमर में तरकस साजकर शत्रु सेना का संहार करने रघुनाथजी चले। प्रभु ने पहिले धनुष का टङ्कोर किया। जिसके शब्द से शत्रु की सेना बहरी हो गयी।

व्याख्या : सारङ्ग दिव्य धनुष है। यह शत्रु के आघात से कट नहीं सकता और इससे छूटे हुए बाण बहुत दूर तक काम करते हैं, यह धनुष सरकार को परशुरामजी से मिला था। यथा : देखि राम बल निज धनु दीन्हा। सरकार ने उस धनुष को साजा अर्थात् प्रत्यञ्चा चढ़ाया और कमर में अक्षय तूणीर बाँधा। तब शत्रु सेना के संहार के लिए रघुनाथजी चले। कुम्भकर्ण युद्ध करने चले थे तो सेना साथ नहीं लिया। अकेले चले थे। इधर सरकार भी कुम्भकर्ण और उसकी सेना का सामना करने के लिए अकेले ही चले।

जब सरकार अकेले शत्रु की सेना का सामना करने चलते हैं तो सेना में गड़बड़ पैदा करने के लिए ऐसा धनुष का टङ्कार करते हैं कि उसके शब्द से शत्रु सेना बधिर हो जाती है। यथा : 'प्रभु कीन्ह धनुष टंकोर प्रथम कठोर घोर भयावहा। भये बधिर व्याकुल जातुधान न ज्ञान तेहि अवसर रहा।' यह खरदूषण के युद्धका हाल है। वैसे ही इस बार भी ज्याघोष किया। जिससे राक्षसी सेना बहरी हो गयी।

सत्यसंध छाड़े सरलक्षा। काल सर्प जनु चले सपक्षा ॥
जहँ तहँ चले बिपुल नाराचा। लगे कटन भट बिकट पिसाचा ॥२॥

अर्थ : सत्यप्रतिज्ञ रामजी ने लाख बाण छोड़े। वे पक्षवाले काल सर्प की भाँति चले। जहाँ तहाँ बहुत से नाराच छूटे जिनसे विकट पिशाच भट कटने लगे।

व्याख्या : सरकार सत्यसन्ध हैं। कहकर चले हैं कि मैं देखउँ खलबल दलहि तो अकेले ही सबका सामना करेंगे। अतः एक लाख बाण चलाया अथवा निशाना ऐसा अचूक है कि लाख बाण छोड़े खाली कोई न गया। वे बाण काल सर्प के समान थे। जिसे छू लिया वह नहीं बच सकता। बाण अन्तरिक्ष मार्ग से चलते हैं। अतः सप क्षकालसर्प से उपमा दिया। लोहे के बने बाण को नाराच करते हैं। ये नाराच जिधर जिधर से राक्षसी सेना आ रही थी उधर उधर चलाये गये। सो विकटभट पिशाच कटने लगे। पिशितमाचामति इति पिशाचः। मांस खाते हैं इसलिए उनका नाम पिशाच है। अर्थात् खल मनुजाद द्विजामिष भोगी कटने लगे। ये बन्दरों को खाने आये थे इसलिए पिशाच कहा।

कटहि चरन उर सिर भुज दंडा। बहु तक बीर होहि सत खंडा ॥
घुर्मि घुर्मि घायल महि परहीं। उठि सँभारि सुभट पुनि लरहीं ॥३॥

अर्थ : पैर छाती सिर और भुजाएँ कट रही थीं और बहुत से वीर तो सौ टुकड़े हो जाते थे। चक्कर खा खाकर घायल हो पृथिवी पर गिरते थे। सँभालकर वीर फिर उठ जाते थे और लड़ते थे।

व्याख्या : पहिले कहा कि 'लगे कटन भट बिकट पिसाचा' अब उनके कटने की विधि कहते हैं कि पाँच पाँच टुकड़े होकर गिर रहे हैं। ठीक इसी प्रकार का खरदूषण युद्ध हुआ था। यथा : कर सीस उर भुज चरन। जहँ तहँ लगे महि परन। बाणों का वेग और बढ़ा तो वीर लोग सौ सौ टुकड़े होने लगे। यथा खरदूषण के संग्राम में : भटकटत तन सत खंड। पुनि उठत करि पाखंड।

बन्दर वीर कुम्भकर्ण के प्रहार से चक्कर खाकर गिरे थे। यथा : घुर्मित घायल परेउ तुरंता। अब राक्षस सरकार के प्रहार से चक्कर खाकर गिरे हैं परन्तु सुभट हैं। सँभालकर उठते हैं और फिर लड़ते हैं।

लागत बान जलद जिमि गाजहि। बहु तक देखि कठिन सर भाजहि ॥
रुंड प्रचंड मुंड बिनु धावहि। धरु धरु मारु मारु धुनि गावहि ॥४॥

अर्थ : बाण लगने पर बादल की भाँति गर्जते हैं। बहुत से कठिन बाण देखकर भागते हैं। कितने कबन्ध बिना सिर के दौड़ने लगे और पकड़ो पकड़ो मारो मारो यही धुन चढ़ी है। सो यही गा रहे है।

व्याख्या : बाणवर्षा हो रही है। 'वर्षा घोर निसाचर रारी।' सो घन गर्जन भी होना चाहिए। इसलिए कहते हैं कि बाण लगते ही ऐसा चिल्लाते हैं मानो बादल गरज रहा है। यथा : चिक्करहिं लागत बान। घरपत कुधर समान। कितने तो कठिन बाणों को देखकर ही भाग चले। यथा : अवलोकि खरतर तीर। मुरि चले निसिचर वीर। अब राक्षसी सेना में भगदड़ पड़ी। सरकार के बाण का लाघव दिखलाते हैं कि बाण लगते ही सिर उड़ गया। वह अलग पड़ा हुआ धरु धरु मारु मारु कह रहा है और धड़ दौड़ता चला जा रहा है। यथा : नभ उड़हिं बहु भुज मुंड। बिनु मौलि धावहिं रुंड। शरीर में इतना प्राण भरा हुआ है कि सिर कटने पर भी दोनों भाग पृथक् पृथक् काम कर रहे हैं। सिर धरु धरु मारु मारु धुन से गान कर रहा है और रुण्ड अलग तलवार चलाते चले जाते हैं। उन्हें शत्रु मित्र की पहिचान नहीं। मुण्ड गाते चले जा रहे हैं। उन्हें और कोई सुधि नहीं। बार बार उसी बात के कहने को गाना कहते हैं।

दो, छन महु प्रभु के सायकन्हि, काटे बिकट पिसाच।
पुनि रघुबीर निषंग महु, प्रबिसे सब नाराच ॥६८॥

अर्थ : क्षण भर में प्रभु के बाणों ने विकट पिशाचों को काट गिराया और तब सब बाण रामजी के तरकस में प्रवेश कर गये।

व्याख्या : लाख बाण छूटे थे। उन्होंने क्षण भर में नाना विधि रिपु अनीक का संहार कर दिया इस सेना में विकट पिशाच थे, ये किसी भाँति मरनेवाले नहीं थे। टुकड़े हो होकर गिरे फिर माया से उठ खड़े होते थे। परन्तु इन बाणों ने उनकी इतिश्री करके ही छोड़ा। सरकार के अस्त्र-शस्त्र सब सजीव हैं। अपना काम करके सब के सब लौट आये और तरकस में प्रवेश कर गये। वह अक्षय तूणीर था। बाणों के निकालने पर वह खाली नहीं होता था। सदा पूर्ण रहता था। इसी भाँति प्रवेश करने से उसमें बाणों की संख्या बढ़ती नहीं थी।

कुंभकरन मन दीख बिचारी। हति छन माझ निसाचर धारी ॥
भा अति क्रुद्ध महा बल बीरा। करयो मृगनायकनाद गंभीरा ॥१॥

अर्थ : कुम्भकर्ण ने मन में विचारकर देखा कि एक पलमें राक्षसी सेना मारी गयी। दारुणबल वीर क्रुद्ध हुआ और गम्भीर सिंहनाद करके :

व्याख्या : इतनी शीघ्रता से राक्षसी सेना का संहार हो गया कि कुम्भकर्ण देखते ही रह गये। कुछ करते-धरते न बना। जब सब सेना मारी गयी तब विचार किया कि मेरी सेना तो पूरी की पूरी मारी गयी। इनकी सेना तो फिर इकट्ठी हो गयी। अतः इसी भाँति इनकी सेना को भी क्षण मात्र में ही नष्ट करना चाहिए।

अपने पराजय से क्रुद्ध हुआ। बली वीरोंमें दारुण है। पराक्रम से काम लेना चाहता है। अतः गम्भीर सिंहनाद किया। और

कोपि महीधर लेइ उपारी। डारै जहँ मरकट भट भारी॥
आवत देखि सैल प्रभु भारे। सरन्हि काटि रज सम करि डारे॥२॥

अर्थ: वह क्रोध करके पर्वत उखाड़ लेता था और जहाँ भारी बानर भट थे वहाँ फेंकता था। सरकार ने बड़े पर्वतों को आते देखकर बाणोंसे काटकर उन्हें धूलि के समान कर डाला।

व्याख्या: कुम्भकर्ण क्रोध करके पर्वत उखाड़ता है और वहाँ फेंकता है जहाँ बड़े बड़े सुभट बन्दर सुग्रीव अङ्गदादि इकट्ठे हैं। उसने यह निश्चय किया कि जो काम इन्होंने लाख बाण से किया वही काम मैं पर्वतों के प्रहार से करूँगा। मैं भी बानरी सेना को इसी भाँति क्षण भर में पीस दूँगा। अतः पर्वत उखाड़ता है और उसे निशाना ठीक करके वहाँ फेंकता है जहाँ सुग्रीव, अङ्गद, जाम्बवानादि एकत्रित है। भाव यह कि पहले सुभटों का ही सफाया करो।

सरकार ने देखा बड़े-बड़े पर्वत चले आ रहे हैं। ये बन्दरों के मान के नहीं। इनके नीचे तो मेरी वानरी सेना पिस जायगी। अतः अपनी सेना की रक्षा के लिए सरकार ने बनैती दिखाई। ऐसी शरवर्षा की कि पर्वत धूल होकर उड़ गये। रामजी की चोट से कुम्भकर्ण अपनी सेना की रक्षा न कर सके। पर कुम्भकर्ण की चोट से सरकार ने अपनी सेना बचा ली।

पुनि धनु तानि कोपि रघुनायक। छाड़े अति कराल बहुसायक॥
तनमहु प्रबिसि निसरि सर जाहीं। जिमि दामिनि घनमाझ समाहीं॥३॥

अर्थ: फिर धनुष तानकर क्रुद्ध होकर रामजी ने बहुत से अत्यन्त कराल बाण छोड़े। वे बाण शरीर में प्रवेश करके पार निकल जाते थे। जैसे बिजली बादल में समा जाती है।

व्याख्या: शत्रु की सेना का संहार करके अपनी सेना की रक्षा करके कुम्भकर्ण पर सरकार टूटे। कहा था: मैं देखौं खलबल दलहि। सो खल दल को तो देख चुके। अब खल केवल को देखते हैं। एक तो रघुनायक हैं। दूसरे क्रुद्ध हैं। तीसरे धनुष को ताना है। चौथे बहुत से अति कराल बाण छोड़ रहे हैं। भाव यह है कि सामान्य बाण कुम्भकर्ण पर काम नहीं कर सकते। इसलिए अति कराल बाण छोड़े। तानने का भाव यह है कि धनुष को कान तक खेंचा जिसमें चोट गहरी हो।

कुम्भकर्ण का शरीर बड़ा दृढ़ है। पत्थर की चोट उसे मंदार के फल की चोट मालूम होती है। यथा: जिमि गज अर्क फलन्हि को मारयो उस कुम्भकर्ण के शरीर में ये अति कराल बाण घुसकर पार निकले जा रहे हैं। जैसे बिजली चमककर

बादल में प्रवेश करती है। उस पार निकलकर बाण बिजली की भाँति अदृश्य हो जाते हैं।

सोनित स्रवत सोह तन कारे। जनु कज्जलगिरि गेरु पनारे ॥
बिकल बिलोकि भालु कपि धाए। बिहँसा जबहिं निकट कपि आए ॥४॥

अर्थ : खून बहता हुआ उस काले शरीर पर ऐसा शोभायमान हुआ जैसे काजल के पहाड़ पर गेरू के पनाले शोभित हों। उसे विकल देखकर बन्दर भालू दौड़े पर जब वे निकट आगये तब हँसा।

व्याख्या : काली देह में शोणित स्राव की शोभा हुई। कज्जल के पर्वत के समान कुम्भकर्ण का शरीर : उनमें बाणों के किये हुए क्षतों से जो रक्त की धाराएँ बह निकलीं उनकी उपमा कवि गेरू के पनाले से दे रहे हैं। वीर की शोभा घायल होने पर अधिक हो जाती है। यथा : घायल वीर विराजहिं कैसे। इस समय कुम्भकर्ण बाणों की चोट से पर्वत न फेंक सका।

उसे विकल देखकर बन्दरों ने धावा बोल दिया। समझा कि इसने हम लोगों का बड़ा संहार किया है। इसका संहार हम लोगों के हाथ होना चाहिए। अब इसे हमलोग मार लेंगे। सरकार को बड़ा परिश्रम पड़ रहा है। सो अब अधिक परिश्रम की आवश्यकता नहीं। अब हमलोग काम बना लेंगे। बन्दरों का धावा देखकर सरकारने बाण चलाना बन्द कर दिया। उसने भी बन्दरों का धावा देखा। चुप रह गया कि इन सबों को निकट आने दो। जब निकट आगये तब जोर से हँसा।

दो. महानाद करि गर्जा, कोटि कोटि गहि कीस।
महि पटकै गजराज इव, सपथ करै दससीस ॥६९॥

अर्थ : गर्जन करता हुआ बड़े वेग से दौड़ा। वह करोड़ों बन्दरों को पृथिवी पर इस भाँति पटकता था जैसे हाथी पटकता है और रावण की दोहाई देता था।

व्याख्या : दर्प से गर्जन करता है। इतना बड़ा वीर है कि इतना घायल होने पर भी बड़े वेग से दौड़ा। अब तीसरे प्रकार का युद्ध आरम्भ किया। न तो बन्दरों को खाता है न मर्दन करता है। उन्हें पकड़-पकड़कर हाथी की भाँति घुमाकर जमीन पर पटकता है। जिसमें शरीरके चिथड़े उड़ जायँ और रावण की दोहाई देता है कि एक को जीता न छोड़ूँगा। इस भाँति उसने करोड़ों बन्दरों को पटका। पहिले से ही कवि इसकी गजराज से उपमा देते हैं। पहिले कहा था : जिमि गज आक फलन्हि के मारे अब कहते हैं : महि पटकै गजराज इव।

भागे भालु बलीमुख जूथा। वृकु बिलोकि जिमि मेष बरूथा ॥
चले भागि कपि भालु भवानी। बिकल पुकारत आरत बानी ॥१॥

अर्थ : भालु और बन्दरों का जूथ भाग चला। जिस भाँति भेड़िये के देखने

से भेंड़ भागे। हे भवानी !. बन्दर भालु विकल होकर आर्त्तवाणी से पुकार करते हुए भाग चले।

व्याख्या : कहाँ तो भालु कपि उसे विकल देखकर उसे मारने के लिए आये थे कहाँ ये ही लोग विकल होकर भाग चले। भेड़िया कितना ही घायल हो पर लाख भेंड़ उसका कुछ नहीं कर सकतीं। सो भेड़िया में सामर्थ्य है दौड़कर भेंड़ों पर चोट करता है। फिर भेंड़ कैसे ठहर सकती हैं। वे जिस भाँति में-में करती हुई भागती हैं उसी भाँति बन्दर भालु भी भाग चले।

आगे-आगे भेंड़ में-में करती भागी जाती हैं और पीछे भयानक भेड़िया पीछा करता चला जाता है। वही दशा बन्दर भालुओं की हुई कि वे आर्त्तनाद करते भागे जा रहे हैं। पीछे कुम्भकर्ण दौड़ा आ रहा है। एक बार : भागे भालु बलीमुख कहा था। अब चले भागि कपि भालु कहते हैं। अर्थात् भागने में कोई गौण नहीं है। दोनों की प्रधानता है। इसलिए कवि ने एक स्थल पर कपि को पहिले कहा। दूसरे स्थल पर भालु का नाम पहिले ले रहे हैं। सरकारी सेना का पराजय हो रहा है। इसलिए शिवजी भवानी को सावधान करते हैं। जैसा ऐसे अवसरों पर करते चले आये हैं।

यह निसिचर दुकालसम अहई। कपिकुल देस परन अब चहई ॥
कृपा बारिधर राम खरारी। पाहि पाहि प्रनतारत हारी ॥२॥

अर्थ : यह राक्षस तो दुर्भिक्ष की भाँति है। बन्दरों के कुलरूपी देश पर पड़ा चाहता है। हे कृपा वारिवाह खरारि रामजी ! हे प्रणत के आर्त्ति के हरण करनेवाले ! रक्षा करो रक्षा करो।

व्याख्या : दुर्भिक्ष ऐसी विपत्ति है जो देश के देश पर एक साथ ही पड़ती है और उसका संहार कर डालती है। अन्य राक्षस भी विपत्ति रूप थे। पर यह तो दुर्भिक्ष रूप है। दुर्भिक्ष किसी देश विशेष में पड़ता है यह बन्दर-कुलरूपी देश पर पड़ना चाहता है। दुर्भिक्ष पर किसी का बल नहीं चलता। इसी भाँति इस पर किसी का बल नहीं चल सकता। बादल यदि कृपा करें तो दुर्भिक्ष दूर हो। इस भाँति खरारि राम जो कृपा वारिधर हैं रक्षा करें तो हमारी रक्षा हो सकती है। खरारि कहने का भाव यह कि अकेले शत्रु सेना के संहार में समर्थ हैं।

सकरुन बचन सुनत भगवाना। चले सुधारि सरासन बाना ॥
राम सेन निज पाछे घाली। चले सकोप महा बलसाली ॥३॥

अर्थ : करुणा युक्त वचन सुनते ही भगवान् धनुष और बाण सुधारकर चले। रामजी ने अपनी सेना को पीछे कर लिया और महाबलशाली क्रुद्ध होकर चले।

व्याख्या : भगवान् षडैश्वर्य सम्पन्न हैं। सकरुण वचन सुनने से विचलित हो उठे। धनुष और बाणों को सुधार लिया जिसमें ठीक काम दे सकें। इतने बड़े

शरीर के छेदने में बाण के पक्ष आदि अस्त-व्यस्त हो गये थे। उन्हें सुधारने की आवश्यकता थी। धनुष पर भी प्रत्यञ्चा चढ़ाना था। सब ठीक करके चले।

कुम्भकर्ण के प्रहार से रक्षा पाने के लिये सेना को अपने पीछे कर लिया। कुम्भकर्ण महाबलवीर है तो सरकार भी महाबलशाली हैं। वह क्रुद्ध है। यथा : कोपि महीधर लेइ उपारी। सरकार भी क्रुद्ध हैं। यथा चले सकोप। यहाँ राम कहने से भाव यह है कि इनका नाम ही राक्षस मर्दन है। राक्षस शब्द का पहिला अक्षर रा और मर्दन शब्द का पहिला अक्षर म को लेकर ही राम नाम पड़ा है : तापनीये।

खैंचि धनुष सरसत संधाने। छूटे तीर सरीर समाने ॥
लागत सर धावा रिस भरा। कुधर डगमगत डोलति धरा ॥४॥

अर्थ : धनुष खैंचकर सौ बाणों को चढ़ाया। जो तीर छूटे तो देह में समा गये। बाण लगने पर क्रोध में भरा दौड़ा तो पहाड़ डगमगाने लगे। पृथिवी डोलने लगी।

व्याख्या : सौ बाण शरीर में घुस गये। तब तो कुम्भकर्ण क्रोध से भरा हुआ दौड़ा। जिसमें शीघ्र ही पास पहुँच जाय। देर होने में मारे पड़ने का भय है। बाण बड़े भयानक हैं और ऐसे वेग से चलाये जा रहे हैं कि शरीर में घुस जाते हैं। इन बाणों से प्राण की रक्षा नहीं है। अतः शीघ्रता करनी चाहिए। अचिरं कुरु राजेन्द्र भोजने शयने रणे। हे राजेन्द्र ! भोजन शयन और रण में फुर्ती करनी चाहिए। शरीर उसका इतना भारी है कि उसके दौड़ने से भूकम्प आजाता है। पहाड़ डगमगाने लगते हैं।

लीन्ह एक तेहि सैल उपाटी। रघुकुल तिलक भुजा सोइ काटी ॥
धावा बाम बाहु गिरधारी। प्रभु सोउ भुजा काटि महि पारी ॥५॥

अर्थ : उसने एक पहाड़ उखाड़ लिया। रघुकुल तिलक ने उस भुजा को ही काट दिया। तब वह बायें हाथ से पर्वत लेकर दौड़ा प्रभु ने उस भुजा को भी काटकर पृथिवी पर गिरा दिया।

व्याख्या : निशाचर समाज में कुम्भकर्ण ही ऐसा है जो वीर बानरों की भाँति पर्वत से काम लेता है। अतः सरकार पर प्रहार करने के लिए उसने एक पहाड़ उखाड़ लिया। सरकार ने देखा कि यदि इसे भुजा रहेगी तो पर्वत फेंकता ही जायेगा। अतः पर्वत पर प्रहार न करके भुजा को ही काट गिराया। पर्वत के सहित भुजा नीचे आ पड़ी। दहिना हाथ ही कट गया। पर कुम्भकर्ण ऐसा वीर धीर है कि उस पर्वत को उसने बायें हाथ से उठा लिया और सरकार पर फेंकने के लिए दौड़ा। सरकार ने उस भुजा को काट गिराया। जिन भुजाओं से बानर वीरों को गजराज की भाँति पटकता था वे भुजा ही निर्मूल हो गयीं।

काटे भुजा सोह खल कैसा। पक्ष हीन मंदर गिरि जैसा ॥
उग्र बिलोकनि प्रभुहि बिलोका। ग्रसन चहत मानहु त्रैलोका ॥६॥

अर्थ : उन भुजाओं के कट जाने पर वह खल कैसा शोभित हुआ जैसे पक्ष छेदन के बाद मन्दरगिरि की शोभा हुई। उग्र भयानक दृष्टि से सरकार को उसने देखा। मानो तीनों लोक को निगलना चाहता है।

व्याख्या : खल की शोभा भुजाछेदन पर ही होती है। क्योंकि वे : पर अकाज भट सहसबाहु से होते हैं। अब पर अकाज की सामग्री गयी। अतः वह खल शोभित हुआ। सुना जाता है कि पहिले पर्वतों को पक्ष थे। वे उड़ा करते थे। जहाँ पर जा बैठते थे वहाँ के ग्रामादि का संहार हो जाता था। मन्दर भारी पर्वत था। इसके बैठने से भारी संहार होता था। इन्द्र भगवान् ने पर्वतों के पक्षों को काटा। मन्दर के भी दोनों पक्ष काट डाले। तब जैसी मन्दर की शोभा हुई वैसे ही दोनों हाथ कटने पर कुम्भकर्ण की शोभा हुई।

कुम्भकर्ण ने उग्रदृष्टि से तब रामजी को देखा। इस भाँति लोचन सफल कर रहा है। यही तामसी रीति है। लोचन सफल करौं मैं जाई। यह बात रावण से कही थी। उसका साफल्य यों हो रहा है। दोनों हाथ कटने पर भी विकलता नहीं क्रोध की अभिवृद्धि मात्र हो रही है। उसके देखने में निगल जाने का भाव है। केवल रामजी को ही नहीं मानो लोक को निगलना चाहता है।

दो. करि चिक्कार घोर अति, धावा बदन पसारि।
गगन सिद्ध सुर त्रासित, हा हा हेति पुकार ॥७०॥

अर्थ : अत्यन्त घोर चिग्घाड़ करके मुँह फैलाकर दौड़ा। आकाश में सिद्ध और देवता डर गये। हाय हाय पुकारने लगे।

व्याख्या : फिर उसने अत्यन्त घोर चिग्घाड़ किया। अति वेदना होने से चिग्घाड़ किया और रामजी के निगलने के लिए मुख को फैलाकर दौड़ा। हाथ न होने पर भी मुख से काम लिया चाहता है। रामजी पर यह बड़ी भारी विपत्ति पड़ती देखकर आकाश से रणक्रीडा देखनेवाले सिद्ध और देवता हाय हाय हाय करने लगे। समझा कि रामजी इसके ग्रास से अब नहीं बचेंगे।

सभय देव करुना निधि जान्यो। स्रवन प्रजंत सरासनु तान्यो॥
बिसिख निकर निसिचर मुख भरेऊ। तदपि महाबल भूमि न परेऊ॥१॥

अर्थ : करुणानिधि ने जान लिया कि देवता डर गये। सो कान तक धनुष का सन्धान किया और बाणों के समूह से उन्होंने राक्षस के मुख को भर दिया। फिर भी महाबल पृथ्वी पर नहीं गिरा।

व्याख्या : देवताओं का हाहाकार सुना। इसस जाना कि देवता लोग त्रस्त हो गये। सरकार करुणानिधि हैं। उनकी आर्त्ति को दूर करने के लिए धनुष को कान तक खैंचा। कान ही धनुष के खींचने की सीमा है। अभी तक तो बाणों को कुम्भकर्ण की त्वचा से काम पड़ा था। अब उसके वज्र से दाँतों से काम पड़ेगा। इसलिये धनुष को कान तक खैंचा। ओठ से लेकर, दाँत, मसूढ़, जिह्वा, लम्बिका

आदि मुख के भीतरी भाग सब बाणों से भर गये। मुख बाणों का पञ्जर हो गया। फिर भी कुम्भकर्ण इस महावेदना को सह गया। पृथिवी पर नहीं गिरा।

सरन्हि भरा मुख सनमुख धावा। कालत्रोन सजीव जनु आवा ॥
तब प्रभु कोपि तीव्र सर लीन्हा। धर ते भिन्न तासु सिर कीन्हा ॥२॥

अर्थ : मुख बाणों से भरा हुआ वह सन्मुख दौड़ा। जैसे काल का तरकस सजीव होकर चला आता हो। तब प्रभु ने क्रोध करके तीखा बाण लिया और उसके सिर को धड़ से जुदा कर दिया।

व्याख्या : मुख बाणों से भरा हुआ है। ऐसा मालूम पड़ा कि यह काल का तरकस है। तरकस जड़ होता है। चल नहीं सकता। परन्तु यह तरकस सजीव है और दौड़ता चला आ रहा है। यह राक्षस इतना भयानक है कि कवि इसकी उपमा प्रायेण कालसम्बन्धी ही देते हैं। इसके बैठने की उपमा : मानहु काल देह धरि बैसा। चलने की उपमा : सनमुख चला काल जिमि क्रुद्धा। पड़ने की उपमा : यह निसिचर दुकाल सम अहई। दौड़ने की उपमा : कालत्रोन सजीव जनु धावा।

उसके पराक्रम को देखकर सरकार को क्रोध हुआ। अतः तीक्ष्ण बाण ऐन्द्रास्त्र उठाया और उसके सिर को धड़ से अलग कर दिया।

सो सिरु परेउ दसानन आगे। बिकल भयेउ जिमि फनि मनि त्यागे ॥
धरनि धसै धर धाव प्रचंडा। तब प्रभु काटि कीन्ह दुइ खंडा ॥३॥
परे भूमि जिमि नभ ते भूधर। हेठ दाबि कपि भालु निसाचर ॥

अर्थ : वह सिर जाकर रावण के आगे गिरा। वह ऐसा विकल हुआ जैसे मणि के बिना सर्प। उसका प्रचण्ड धड़ दौड़ने लगा और उससे पृथिवी दबने लगी। तब प्रभु ने काट कर दो टुकड़े कर दिये। वे पृथिवी पर ऐसे गिरे जैसे आकाश से पहाड़ गिरे और बन्दर भालू तथा निशाचरों को नीचे दबा दिया।

व्याख्या : बाण ने केवल सिर ही नहीं काटा उसे ले जाकर रावण के आगे गिरा दिया। सरकार के अस्त्र शस्त्र सब सजीव हैं। यह रावण को उपहार रूप में भेजा गया। रावण को बड़ा अभिमान था कि : कुम्भकर्ण अस बन्धु मम सुत प्रसिद्ध सक्रारि। सो कुम्भकर्ण तो गये। अब शक्रारि की पारी है। हनुमान्‌जी और अङ्गदजी भी ऐसे ही उपहार रावण को दे चुके हैं। यथा : रावन आगे परहिं ते जनु फूटहिं दधिकुण्ड। पर यह सरकार का भेजा हुआ उपहार बेजोड़ था। इसे देखने पर रावण का हाल बिना मणि के सर्प सा हो गया। यथा : मनि बिन फनि जियै व्याकुल बेहाल रे। कुम्भकर्ण के बाद भी रावण जीवे। पर उसकी व्याकुलता और बेहालता नहीं गयी।

कुम्भकर्ण का रुण्ड उठा और वह दौड़ने लगा। उसके बोझ से पृथिवी दबने लगी। इस उपद्रव की शान्ति के लिए सरकार ने उस धड़ के भी दो टुकड़े किये।

वे टुकड़े इतने विशाल थे कि उनके गिरने से दोनों पक्ष की हानि हुई। बन्दर भालु भी दबे और राक्षस भी दबे।

तासु तेज प्रभु बदन समाना। सुरमुनि सबहि अचंभव माना ॥
सुर दुन्दुभी बजावहिं हरखहिं। असतुति करहिं सुमन बहु वर्षहि ॥४॥

अर्थ : उसका तेज सरकार के मुख में समा गया। देवताओं और मुनियों ने आश्चर्य माना। आकाश में दुन्दुभी बजाते हैं और हर्षित होते हैं। देवता लोग स्तुति करके फूल बरसाते हैं।

व्याख्या : कुम्भकर्ण के शरीर से तब तेज निकला और सरकार के मुख में चला गया अर्थात् सरकारी तेज में उसका तेज लीन हो गया। कुम्भकर्ण को सायुज्य मुक्ति हुई। ऐसे बड़े खल को ऐसी सद्गति कैसे मिली? इस बात पर देवताओं को भी आश्चर्य हुआ और मुनियों को भी आश्चर्य हुआ।

आज लंका के ऊपर देवताओं की दुन्दुभी बज रही है। जो सभीत होकर भृकुटी देखते रहे वे आज रावण के इतने बड़े अनिष्ट पर निर्भय होकर दुन्दुभी बजा रहे हैं। रावण ने भय के द्वारा देवताओं को अपनाना चाहा। यथा : तब मारिहौं कि छाड़िहौं भली भाँति अपनाइ। पर भय से कोई अपनाया नहीं जा सकता। ऊपर से आज्ञाकारी भी हो जायँ। पर भीतर से वैर ही बढ़ता है।

करि बिनती सुर सकल सिधाए। तेही समय देवरिषि आए ॥
गगनोपरि हरि गुन गन गाये। रुचिर बीररस प्रभु मन भाये ॥५॥
बेगि हतहु खल कहि मुनि गए। राम समर महि सोहत भए ॥६॥

अर्थ : बिनती करके सब देवता चले गये। उसी समय नारदजी आये। आकाश पर से ही रामजी के गुणगण का गान किया। जो कि सुन्दर वीररस में होने से सरकार के मन में अच्छे लगे : खल को जल्दी मारिये। यह कहकर मुनिजी चले गये और रामजी रणभूमि में शोभित हुए।

व्याख्या : विजय स्तुति करके देवता लोग चले गये। युद्ध देखने आये थे। कुम्भकर्ण का वध हो जाने से उस दिन का युद्ध समाप्त हुआ। अतः स्तुति करके चले गये। उसी समय भगवान् वीणापाणि नारदजी आगये। शिष्य की सद्गति से हर्षित होकर आये हैं और यह कहने आये हैं कि खल का शीघ्र वध कीजिये। भाव यह कि इस खल के वध के बाद मेघनाद खल आयेगा। इष्टदेव के बल पर युद्ध करेगा। इष्टदेव की मानरक्षा के लिए। रणशोभा के लिए आप बँध जायँगे। इतना ही बहुत है। इन्द्र की भाँति यदि बन्दी करके लंका ले जायगा तो कथा बहुत बढ़ेगी। अतः जल्दी कीजियेगा। नारदजी नीचे नहीं आये। आकाश मार्ग से ही सरकार के गुणगणों का गान किया। समयोपयोगी राग और पद्य में गान किया। वह वीररस से भरी हुई स्तुति सरकार को प्रिय लगी। साहित्य और सङ्गीत के योग से सरकार प्रसन्न हो गये। यथा : मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद।

तेजोवर्धक गान के बाद सरकार को प्रसन्न देखकर मुनिजी यह कहकर चले गये कि : खल को शीघ्र मारिये। रणशोभा के लिए अधिक न खेलाइये। रामजी रणभूमि में शोभित हुए। इस खल के वध के बाद जो शोभा सरकार की रणभूमि में हुई उसे अब वर्णन करते हैं। विजय के पश्चात् तुरन्त ही देवताओं की स्तुति होने लगी। उसके बाद नारदजी आगये। कवि को वर्णन का अवसर ही नहीं मिला। अतः अब उस झाँकी का वर्णन कर रहे हैं।

[1]छं. संग्राम भूमि बिराज रघुपति अतुल बल कोसलधनी।
स्रमबिंदु मुख राजीव लोचन रुचिर तन सोनितकनी ॥
भुजबल जुगल फेरत सर सरासन भालु कपि चहुँदिसि बने।
कह दास तुलसी कहि न सक छबि सेष जेहि आनन घने ॥

अर्थ : जिसके बल का तौल नहीं है ऐसे कोसलाधीश रघुपति संग्रामभूमि में शोभित हुए। कमल से नेत्रवाले मुख पर पसीने की बूँद और सुन्दर शरीर पर रक्त के कण शोभायमान थे। दोनों हाथों से धनुष और बाण फेर रहे हैं और बानर भालु चारो ओर से घेरे हुए हैं। तुलसीदासजी कहते हैं कि इस छवि को शेष भी वर्णन नहीं कर सकते जिन्हें बहुत से मुख हैं।

व्याख्या : लंका पर चढ़ाई करने में समर्थ कोशलधनी ही हैं। रघुनाथ से उपक्रम करके। यथा : कर सारंग साजि कटि भाथा। अरि दल दलन चले रघुनाथा। रघुपति से उपसंहार करते हैं। पहिले महा बलशाली कहा था। अब अतुलबल कहते हैं। क्योंकि महाबल वीर का वध किया है। मुख पर श्रमविन्दु आ जाने से सरकार के मुखकमल की बड़ी शोभा हो जाती है। कुम्भकर्ण रक्त के छींटे श्याम शरीर पर पड़े हुए हैं। इससे शरीर की अधिक शोभा हो रही है। दोनों हाथों से धनुष बाण फेर रहे हैं। बन्दर और भालू चारो ओर से घेरकर शोभा देख रहे हैं। इस रणाङ्गन में वानरी सेना के बीच जैसी शोभा सरकार की हुई उसे सहस्र मुखवाले शेष भी नहीं कह सकते। कवि को तो एक ही मुख है। कैसे कहे ? यहाँ कहने में मुख की अधिकता पर लक्ष्य है। इसलिए श्रुति शारदा का उल्लेख नहीं किया अथवा श्रुति शारदा ने तो देखा ही नहीं। शेष का तो : लक्ष्मणरूप से देखा हुआ है। फिर भी वे नहीं कह सकते।

दो. निसिचर अधम मलाकर, ताहि दीन्ह निज धाम।
गिरिजा ते नर मंदमति, जे न भजहिं श्रीराम ॥७१॥

अर्थ : राक्षस अधम और पाप का घर था। उसे अपना धाम दिया। हे गिरिजे ! वे मनुष्य मन्दमति हैं जो श्रीराम को नहीं भजते।

---

१. यह हरिगीतिका छन्द है।

व्याख्या : जन्म से राक्षस जिससे कोई साधन नहीं हो सकता उसमें भी यह अधम था। यथा : करै पान सोवै षट मासा। जागत होइ तिहूँ पुर त्रासा। पाप का तो घर ही था। यथा : सहज पाप प्रिय तामस देहा। यथा उलूकहिं तम पर नेहा। ऐसे पापी को अपना धाम दिया। यद् गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम। जहाँ जाकर फिर लौटना नहीं होता वह धाम सरकार का है। भाव यह कि श्रीराम ऐसे कृपालु और ऐसे समर्थ हैं कि अपने से वैर का सम्बन्ध रखनेवाले को निज धाम दिया। ऐसे श्रीराम का जिसने नरतन पाकर भजन नं किया उसके मन्दमति होने में सन्देह नहीं। यथा : नरतन भवसागर कहँ बेरो। सनमुख मरुत अनुग्रह मेरो। कर्णधार सद्गुरु दृढ नावा। दुर्लभ साज सुलभ करि पावा। जो न तरै भवसागर नर समाज अस पाइ। सो कृतनिन्दक मंदमति आतमहन गति जाइ। पहिले कुम्भकर्ण की सायुज्यमुक्ति कहा। यहाँ सालोक्य मुक्ति कह रहे हैं। यहाँ कल्पभेद होने से मुक्ति में भेद कहा। यह कथा शिवजी पार्वतीजी से कह रहे हैं। इसलिए ज्ञानघाट के वक्ता बोले।

दिन के अंत फिरी दोउ अनी। समर भई सुभटन्ह स्रम घनी॥
रामकृपा कपिदल बलु बाढ़ा। जिमि तृन पाइ लाग अति डाढ़ा॥१॥

अर्थ : दिन के अन्त में दोनों सेनाएँ लौटीं। युद्ध में सुभटों को बड़ी थकावट हुई। रामजी की कृपा से वानरी सेना का बल बढ़ गया। जैसे तृण पाकर वन की आग अधिक बढ़ जाती है।

व्याख्या : कुम्भकर्ण का युद्ध कई दिन तक चलता रहा। सायंकाल को लड़ाई समाप्त हुई तब दोनों सेनाएँ लौटीं। यद्यपि दोनों सेनाओं का संहार बहुत हुआ था पर निःशेष कोई भी नहीं हुई थी। राक्षस भी बहुत से भागकर बच गये थे। यथा : बहुतक देखि कठिन सर भाजहिं और सरकार की प्रतिज्ञा है कि : समर विमुख मैं हतौं न काहू। वे ही सब लौटे। जो लौटे वे भी दिनभर युद्ध करते करते क्षीणबल हो गये थे। यहाँ वानरी सेना का बल रामजी की कृपा से बहुत बढ़ गया। जैसे क्षीण अग्नि भी तृण पाकर दावानल हो जाती है। जिन्हें थोड़ा भी प्राण था वे कूदते हुए रणांगन से चले आये।

छीजहिं निसिचर दिन अरु राती। निजमुख कहे सुकृति जेहि भाँती॥

७३. मेघनाद बल पौरुष संहार प्रसंग

बहु बिलाप दसकंधर करई। बंधुसीस पुनि पुनि उर धरई॥२॥

अर्थ : राक्षस दिन रात घटते जाते हैं। जैसे अपने मुख कहने से पुण्य घटता है। रावण ने बड़ा विलाप किया। बार बार भाई के सिर को हृदय से लगाया।

व्याख्या : परन्तु राक्षस दिन रात छीजते जाते हैं। दिन में युद्ध में मारे जाते हैं और जो घायल हैं वे रात को मर जाते हैं। कवि उपमा देते हैं कि जैसे

अपने मुख से कहने से अपना पुण्य छीज जाता है : अपने मुख से कहने से बढ़कर पुण्य निर्मूल करने का सरल मार्ग दूसरा नहीं। राजा ययाति का इन्द्रपद के अतिक्रमण करने योग्य महापुण्य कथनमात्र से तत्क्षण नष्ट हो गया।

सो सिर परेउ दसानन आगे। विकल भयउ जिमि फनिमनि त्यागे : से प्रसङ्ग छोड़ा था। अब फिर वहीं से आरम्भ करते हैं। आज रावण सबसे अधिक विलाप करते हैं। दशकन्धर है : दसो मुँह से रोते हैं। अतिप्रिय था। इसलिए उसके सिर को बार-बार छाती से लगाते हैं। होहिं कुठाँय सुबंधु सहाए। सोचते हैं कि मेरे लिए इसकी यह दशा हुई। नहीं तो यह लड़ना नहीं चाहता था। कह दिया : अजहुँ तात त्यागहु अभिमाना। भजहु राम होइहि कल्याना। मेरी इच्छा में विघात न हो इसलिए इसने जान-बूझकर प्राण दे दिया। ऐसा भाई कहाँ मिलेगा इत्यादि।

रोवहिं नारि हृदय हति पानी। तासु तेज बल बिपुल बखानी ॥
मेघनाद तेहि अवसर आएउ। कहि बहु कथा पिता समझाएउ ॥३॥

अर्थ : स्त्रियाँ हाथ से छाती पीटकर रो रही हैं और उसके तेज बल का बड़ा बखान कर रही हैं। उसी अवसर पर मेघनाद आया। उसने बहुत सी कथाएँ कहकर बाप को समझाया।

व्याख्या : रावण सिर को छाती में लगाकर रोते हैं। स्त्रियाँ अपनी छाती पीट-पीटकर रो रही थीं। राजमहल में कोहराम मचा था। रोने के समय मृत व्यक्ति के गुण का वर्णन भी स्त्रियाँ करती हैं। सो कुम्भकर्ण के बल तेज का वर्णन करती हुई विलाप करती हैं। कुम्भकर्ण राजा नहीं थे। अतः रानियाँ न कहकर स्त्रियाँ लिखते हैं। कुम्भकर्ण में रूप गुण शीलादि सद्गुण तो कोई थे नहीं। अतः उसके तेज बल का वर्णन हो रहा था।

अब लङ्का में रावण को दिलासा देनेवाला कोई न रहा। कोई क्या कहके रावण को समझावे। उस अवसर पर मेघनाद आया। इसका भी रावण को बड़ा गर्व था। यथा : कुम्भकर्ण अस बंधु मम सुत प्रसिद्ध सक्रारि। सो कुम्भकर्ण तो गये। अब तो शक्रारि मेघनाद का ही भरोसा है। सो मेघनाद आया। उसने बहुत सी कथाएँ कहकर बाप को समझाया। हिरण्याक्ष हिरण्यकशिपु के सामने ही मारा गया। पर हिरण्यकशिपु ने सब स्त्रियों को दिलासा दिया और भाई का वैर लिया। आप सबको समझाइये और शत्रु से वैर चुकाइये। आपके विलाप करने पर तो सबकी हिम्मत ही छूट जायगी। आपको चिन्ता करने के लिए स्थान कहाँ है। मैं चाचा का वैर चुकाऊँगा। आपको कुछ करना धरना नहीं पड़ेगा। यद्यपि मध्यम तात बध अनरथ भयउ महान। करहिं विलाप तथापि नहिं तुमसे धीर सुजान। एकाकी तुमहो सको तीनि लोक कहँ जीति। याते चिन्ता जनि करो क्षुद्र जनन की रीति। विधि की दीन्ही शक्ति तोहि कवच धनुष अरु बान। खर सहस्र संयुक्त रथ घन इव शब्द महान। देव दनुज भुज बल जिते तुमने केतिक बार। क्यों न होइगो अस्त्र

बलते राघव संहार। बैठि रहहु तुम करब हम सदल शत्रु को नास। जैसे करैं विहँगपति सब विधि व्याल विनास। इस भाँति मेघनाद के समझाने पर रावण को दिलासा हो गयी।

देखेहु कालि मोरि मनुसाई। अबहिं बहुत का करौं बड़ाई ॥
इष्टदेव सें बर रथ पाएउँ। सो बलु तात न तोहि देखाएउँ ॥४॥

अर्थ : कल मेरा पुरुषार्थ देखियेगा। अभी बहुत बड़ाई क्या करूँ। इष्टदेव से मैंने वरदान पाया है और रथ पाया है। उस बल को तो मैंने आपको दिखाया ही नहीं।

व्याख्या : पहिले कहा था कि कौतुक तात देखियहु मोरा। सो उस दिन लक्ष्मण को शक्ति लगी: वह तो मेरा कौतुक था। कल मैं अपना पुरुषार्थ दिखलाऊँगा। वह पुरुषार्थ बहुत बड़ा है। उसकी बड़ाई इस समय न करूँगा। दिखला देने पर संसार बड़ाई करेगा।

मेघनाद रावणादि सभी आस्तिक थे। मेघनाद की इष्ट देवता निकुम्भिला देवी थीं। उन्हीं से उसे वरदान मिला था और रथ मिला था। उसी की चर्चा करता है। कहता है कि उस इष्टदेव से मिले पुरुषार्थ के दिखाने का आजतक अवसर ही नहीं आया। इसलिए आपको न दिखा सका। अब अवसर आगया है : कल दिखलाऊँगा। उस दिन की लड़ाई इसके सामने खेल थी। क्योंकि मैं अपने बल से लड़ रहा था। कल इष्टदेव के बल से उन्हीं के दिये हुए रथ पर चढ़कर लड़ूँगा।

एहि बिधि जलपत भयउ बिहाना। चहुँ दुआर लागे कपि नाना ॥
इत कपि भालु काल सम बीरा। उत रजनीचर अति रनधीरा ॥५॥
लरहिं सुभट निज निज जय हेतू। बरनि न जाइ समर खगकेतू ॥

अर्थ : इस भाँति बकवाद करते-करते सबेरा हो गया। चारो फाटकों पर अनेक बन्दरों ने धावा किया। इधर बन्दर और भालु काल के समान वीर थे। उधर राक्षस युद्ध में अत्यन्त दक्ष थे। अपनी-अपनी जीत के लिए वीर लोग लड़ रहे हैं। हे गरुड़जी ! उस युद्ध का वर्णन नहीं हो सकता।

व्याख्या : इस विधि से पिता के समझाने में अपना पुरुषार्थ वर्णन करने लगा कि सबेरा हो गया। कवि ने इसको बकवाद : जल्पना कहा। अपने पुरुषार्थ का वर्णन बकवाद ही है। यथा : जनि जल्पना करि सुयस नासहि। इतनी देर हुई कि बन्दर चारो फाटक पर आगये। केवल कुम्भकर्ण की लड़ाई में बन्दर फाटक तक नहीं पहुँच सके थे।

रामजी की कृपा से बन्दरों का बल बढ़ा हुआ है। इसलिए कवि उन्हें कालसम वीर कह रहे हैं। ये बिना प्राण लिये न मानेंगे। उधर राक्षस वीर रणकौशल में बड़े पण्डित हैं। जल्दी काबू में आते नहीं।

फिर चारो फाटक पर युद्ध आरम्भ हुआ। फाटक बन्द नहीं है। बन्दर निकलकर राक्षस लड़ रहे हैं। भुसुण्डिजी गरुड़ से कहते हैं कि वह युद्ध वर्णन नहीं किया जा सकता है। इसी युद्ध में गरुड़ को मोह हुआ है। इसलिए भुसुण्डिजी बोल रहे हैं।

दो. मेघनाद मायामय रथ चढ़ि गएउ अकास।
गर्जेउ अट्टहास करि भा कपि कटकहि त्रास ॥७२॥

अर्थ : मेघनाद माया के रचे हुए रथ पर चढ़कर आकाश में चला गया और प्रलयकाल के बादल के समान गरजा। वानरी सेना सन्त्रस्त हो उठी।

व्याख्या : जो मेघनाद ने कहा था तदनुसार वह इष्टदेव से मिले हुए मायामय रथ पर चढ़कर आकाश में चला गया। मायामय रथ है। आकाश में चलता है। न किसी को वह रथ दिखाई पड़े और न रथी। जब आकाश में पहुँचा तब गरजा। वैसे ही उसका गर्जन मेघ की भाँति होता था। आज तो वह प्रलयकाल के मेघ की भाँति गरजा। सब बन्दर भालु चौकन्ने होकर ऊपर आकाश में देखते हैं। वहाँ कहीं कुछ नहीं और गर्जन इतना घोर सुनाई पड़ता है। इस गर्जन से राक्षस नहीं डरे क्योंकि यह गर्जन उन्हीं के पक्ष से था। डरे बन्दर जिनके प्रतिकूल गर्जन हो रहा था। सन्त्रस्त इसलिए हुए कि गर्जनेवाला अदृश्य है। अदृश्य रहकर जो चाहे सो कोई भी कर सकता है। यह अप्राकृत दृश्य सर्वथा भयजनक था।

सक्ति सूल तरवारि कृपाना। अस्त्र सस्त्र कुलिसायुध नाना ॥
डारै परसु परिघ पाषाना। लागेउ वृष्टि करै बहु बाना ॥१॥

अर्थ : वह बरछी, शूल, तलवार, कृपाण, अस्त्र, शस्त्र, वज्र और अनेक प्रकार के हथियार फरसा, बेंवड़ा, पत्थर और अगणित बाणों की वर्षा करने लगा।

व्याख्या : पहिली लड़ाई में विष्ठा पूय रुधिर कच हाड़ बरसा था। अब अस्त्र शस्त्र बरस रहा है। शक्ति बरछी को कहते हैं। त्रिशूल को शूल भी कहते हैं। यथा : शिवजी को शूलपाणि कहते हैं। एक ओर धार जिसमें रहती है उसे तलवार कहते हैं और दुधारी तलवार को कृपाण कहते हैं। फेंककर मारनेवाले हथियार को अस्त्र और हाथ से चलाया जानेवाला शस्त्र कहलाता है। कुलिश वज्र को कहते हैं। परशु गँडासा को कहते हैं। परिघ बेंवड़े को कहते हैं। इन सब हथियारों की वर्षा मेघनाद करने लगा और बाणों को तो झड़ी लगा दी। प्रलय पयोद की भाँति गरजा था। अतः प्रलय करनेवाली वृष्टि भी कर रहा है।

दस दिसि रहे बान नभ छाई। मानहु मघा[1] मेघ झरि लाई ॥
धरु धरु मारु सुनिअ धुनि काना। जो मारै तेहि कोउ न जाना ॥२॥

---

१. यह लड़ाई मघानक्षत्र की वर्षा है।

अर्थ : दसो दिशाओंमें बाण छा गये। मानो मघा नक्षत्र का मेघ झरी लगाये हुए है। धरो धरो मारो कान में शब्द सुनाई पड़ता है। पर जो मारता है उसे कोई नहीं जानता।

व्याख्या : अन्यत्र कहा हुआ है कि : बरसा घोर निसाचर रारी। सो दो महीने सावन और भादों वर्षा के हैं। पर वर्षा आषाढ़ से ही प्रारम्भ हो जाती है। इस समय मघा बरस रही है। इससे मालूम होता है कि सावन खतम हो गया। चार नक्षत्र बरस चुके। आषाढ़ की गिनती ग्रीष्म ऋतु में है। सो मृगशिरा की वर्षा : दवँगरा तो खरदूषण का संग्राम है। आर्द्रा की वर्षा लङ्कादाह में हुई। पुनर्वसु की वर्षा चारो फाटक की लड़ाई है। पुष्य की वर्षा मेघनाद युद्ध है। जिसमें लक्ष्मण को शक्ति लगी थी। आश्लेषा की वर्षा कुम्भकर्ण का वध था। इस समय मानो मघा की वर्षा हो रही है। दसो दिशाओं में बाणों का झर लगा हुआ है। जैसे मघा नक्षत्र में झर लगता है।

दसो दिशाओं में पकड़ो पकड़ो मारो मारो का शब्द सुनाई पड़ रहा है। मार भी पड़ रही है। परन्तु मारनेवाला कहीं दिखलाई नहीं पड़ता। मारनेवाला ही पकड़ो पकड़ो मारो मारो बोलता है। सो यह शब्द तो सब ओर से आ रहा है। अतः यह निश्चय नहीं हो पाता कि मारनेवाला कहाँ है? वर्षा के जल की बूँद की चोट सही नहीं जाती। क्योंकि इतने ऊपर से गिरती है। यहाँ अस्त्र गिर रहे हैं। उनके चोट के असह्य होने में सन्देह ही क्या है। इससे बढ़कर कपट युद्ध और क्या होगा कि मारनेवाले का ही पता नहीं।

गहि गिरितरु अकास कपि धावहिं। देखहिं तेहि न दुखित फिरि आवहिं॥
अवघट घाट बाट गिरि कंदर। माया बल कीन्हेसि सर पंजर॥३॥

अर्थ : वानर पर्वत और वृक्ष लेकर आकाश में दौड़ते हैं पर उसे नहीं देख पाते। दुखी होकर लौट आते हैं। खड्ढा घाट रास्तों और गुफाओं को माया के बल से उसने बाणों का पिंजड़ा बना दिया।

व्याख्या : एक बात से निश्चय होता है कि शत्रु आकाश में है। क्योंकि वहीं से अस्त्र शस्त्र गिर रहे हैं। रामजी की कृपा से बन्दरों को आकाश मार्ग में उड़ने की शक्ति है। यथा : रामकृपा बल पाइ कपिंदा। भये पक्ष जुत मनहु गिरिंदा। सो शत्रु की खोज में पर्वत वृक्ष लेकर शस्त्र की बौछार सहते हुए भी बन्दर आकाश में दौड़ते हैं कि यदि मिल जाय तो उस पर चोट करें। परन्तु वह तो मायामय रथ पर चढ़ा हुआ अदृश्य हो रहा है। किसी को दिखाई नहीं पड़ रहा है। बन्दर घायल हो होकर लौट रहे हैं। यहाँ यह हाल है कि रास्तों में खड़े बाण लगे हैं। ऐसे समय गिरिकन्दर शरण है। गड्ढे शरण हैं, सो उनमें भी बाण ही बाण खोंसे हुए हैं। मानो रणाङ्गन बाणों का पिंजड़ा बना हुआ है। यह मेघनाद का मायाबल है। जो इष्ट देवता से प्राप्त हुआ है।

जाहिं कहाँ व्याकुल भये बंदर । सुरपति बंदि परेउ जनु मंदर ॥
मारुत सुत अंगद नल नीला । कीन्हेसि बिकल सकल बलसीला ॥४॥

अर्थ : अब बन्दर जाते कहाँ ? व्याकुल हो गये। जैसे इन्द्र के बन्दी में मन्दर पड़े हों । हनुमान् अङ्गद नल नील आदि सभी बलवानों को व्याकुल कर दिया।

व्याख्या : भागने के लिए भी रास्ता नहीं। अतः वानरी सेना व्याकुल हो गयी। जैसे मन्दर इन्द्र की कैद में पड़ गये हों। यहाँ मन्दर शब्द पर्वत मात्र का उपलक्षण है। हनुमान् अङ्गद नल और नील सिरे के वीर हैं। जो सङ्कट के समय सहाय होते हैं। और भी इनके सदृश जितने वीर हैं सब विकल हो गये। यह इष्टदेव का बल है। इसके सामने कोई बल काम नहीं दे रहा है। अतः चारों अतिबल रणबाँकुरे भी विकल हो गये। हनुमंत अंगद नील नल अति बल लरत रन बाँकुरे।

पुनि लछिमन सुग्रीव बिभीषन । सरन्हि मारि कीन्हेसि जर्जर तन ॥
पुनि रघुपति सैं जूझै लागा । सर छाड़ै होइ लागहिं नागा ॥५॥

अर्थ : तब लक्ष्मण सुग्रीव और विभीषण को बाणोंसे मारकर उनके शरीर को जर्जर कर दिया। तत्पश्चात् रामजी से युद्ध करने लगा। मारता था बाण वे साँप होकर लगते थे।

व्याख्या : पहिले सेना को घायल किया। परन्तु उस बाणवर्षा को सहकर भी जिन रणबाँकुरे वीरों ने आकाश में उसे खोजने का प्रयत्न किया उन्हें भी उसने विकल कर दिया। उन लोगों को बेकाम करने के बाद सिरे के तीनों सरदार सुग्रीव विभीषण और लक्ष्मण को ऐसा घायल किया कि उनके शरीर क्षत विक्षत हो गये। अन्त में सरकार पर प्रहार करना आरम्भ किया। उन प्रहारों में यह विचित्रता थी कि उसके बाण सर्प होकर सरकार को बाँधते चले जाते थे। सर्वथा अवध्य देखकर उसने उन्हें नागपाश में बाँधने की चेष्टा की। स्वयं युद्ध करते समय अलक्ष्य रहने से वह सभी को घायल करने में कृतकार्य हुआ।

ब्याल पास बस भयउ खरारी। स्ववस अनंत एक अबिकारी ॥
नट इव कपट चरित कर नाना । सदा स्वतन्त्र एक भगवाना ॥६॥
रन सोभा लगि प्रभुहि बँधायो । देखि दसा देवन्ह भय पायो ॥७॥

अर्थ : जो स्ववश हैं अनन्त हैं एक हैं अविकारी हैं ऐसे खर के शत्रु नागपाश से बँध गये। नट की भाँति अनेक चरित्र करते हैं। भगवान् राम सदा स्वतन्त्र हैं। युद्ध की शोभा के लिए अपने को बँधवा लिया। उनकी दशा देखकर देवता तो डर गये।

व्याख्या : सरकार खरारि हैं अर्थात् मायानाथ हैं। यथा : मायानाथ अस कौतुक करयो देखत परसपर राम करि संग्राम रिपुदल लरि मरयो। सो आसुरी माया से पराभूत हुए। जो स्ववश हैं सर्वेश्वर हैं वे ब्यालपाशवश हुए। जो

अनन्त हैं वे बन्धनगत हुए। जो अद्वैत हैं वे द्वैत में आ फँसे। जो अविकारी हैं वे अत्यन्त घायल होकर मूर्च्छित हो गये। ऐसी असंभाव्य घटना कैसे हुई? इसके उत्तर में कवि कहते हैं कि मेघनाद समझता है कि मैंने बाँध लिया। पर बँध जाना उनका कपट चरित माया है। नट की भाँति उन्होंने बँध जानें का अभिनय किया। यथा: अनेक वेष धरि नृत्य करै नट कोई। सोइ सोइ भाव दिखावे आपुन होइ न सोई। अस रघुपति लीला उरगारी। दनुज विमोह निज जन सुखकारी। नहीं तो भगवान् राम सदा षडैश्वर्य सम्पन्न हैं। सदा स्वतन्त्र हैं। उन्हें बन्धन हो नहीं सकता। परन्तु बिना कारण कार्य नहीं होता। सो कारण यह है कि अब रण की शोभा हुई है। यदि वैरी हुंकार करने से ही भस्म हो जाय। तो पुरुषार्थ का परिचय तो होता है। रण की शोभा नहीं होती। जब तक रण में संशय न दिखाई पड़े तबतक रण ही क्या हुआ? देवता डर गये कि इसी भाँति इसने इन्द्र को बाँध लिया और इन्द्र सदा के लिए इसके अधीन हो गये।

दो. गिरिजा जासु नाम जपि, नर काटहिं भव पास।
सो कि बंध तर आवइ, व्यापक बिस्व निवास ॥७३॥

अर्थ: हे गिरिजे! जिसका नाम जपकर नर संसारपाश को काट डालते हैं क्या वह प्रभु बन्ध में आसकता है जो व्यापक है और विश्व का निवासस्थल है।

व्याख्या: शिवजी अपने श्रोता को सावधान करते हैं। क्योंकि इसी अवसर पर गरुड़जी को मोह हुआ था और सरकार की महिमा की ओर ध्यान आकर्षित करते हैं। कहते हैं कि यह संसारपाश ही बड़ा भारी पाश है। जिसके भीतर ऐसे कितने नागपाश पड़े हुए हैं। उस संसारपाश को जिसके नाम का स्मरण करके मनुष्य काट डालता है। यथा: सेवक सुमिरत नाम सप्रीती। बिनु स्रम प्रबल मोह दल जीती। फिरत सनेह मगन सुख अपने। नाम प्रसाद सोच नहीं सपने। यह जन्म मरण ही संसारपाश है। यथा: जनम मरन जहँ लगि जगजालू। वह जाल रामनाम के स्मरण से कट जाता है। यथा: जाकर नाम मरत मुख आवा। अधमौ मुकुत होत स्रुति गावा। उस नामी के बद्ध होने की क्या कथा है क्योंकि वह व्यापक है और विश्वनिवास है। श्री रामजी के मूर्तिमान होने पर भी उसकी व्यापकता तथा अनन्तादि गुणों में अन्तर नहीं पड़ता। यथा: राम उदर देखेउँ जग नाना। इत्यादि। बन्ध तो परिच्छिन्न पदार्थ का सम्भव है। आकाश का ही बन्ध नहीं हो सकता चिदाकाश के बन्ध की क्या कथा है।

चरित राम के सगुन भवानी। तरकि न जाहिं बुद्धि बल बानी ॥
अस बिचारि जे तज्ञ बिरागी। रामहि भजहिं तर्क सब त्यागी ॥१॥

अर्थ: हे भवानी! रामजी के सगुण चरित्र बुद्धि मन वाणी के तर्क में नहीं आ सकते। ऐसा विचार करके तत् पद के जाननेवाले विरागी सब तर्क का त्याग करके राम को भजते हैं।

व्याख्या : निर्गुण रूप सुलभ अति सगुन न जानै कोइ। सुगम अगम नाना चरित सुनि मुनि मन भ्रम होइ। त्रिगुणात्मिका माया है। सगुण चरित्र मायामय है और माया अघटितघटनापटीयसी है। जो घटना न घट सके उसे घटाकर दिखा देती है। यहाँ ही व्यापक विश्वनिवासको बँधा हुआ दिखला दिया। यदि बुद्धि के बाहर की बात न हो तो माया ही नहीं। तिसपर राम की माया अत्यन्त प्रबल है। यथा : सुनु खग प्रबल राम की माया। जो ज्ञानिन्ह कर चित अपहरई। बरिआई विमोह बस करई। राम स्वयं बुद्धि मन वाणी से अतर्क्य हैं। उनके चरित भी उसी भाँति अतर्क्य हैं। यहाँ तर्क नहीं चल सकता।

रामजी का चरित अतर्क्य है। ऐसा तज्ञ और वैराग्यवान् जानते हैं। जो तामसी माया को वे उपाधिरूपेण स्वीकार करके जगत् का उपादान कारण होता है और विशुद्ध सत्त्वमयी माया का आश्रयण करके निमित्त कारण होता है उस ब्रह्म को तत् कहा जाता है। उसे जो जाने उसे तज्ञ कहते हैं। जो तज्ञ भी है और वैराग्यवान् है ब्रह्मलोक तक के ऐश्वर्य को तुच्छ माननेवाले हैं राम को वे भजते हैं। यथा : रमन्ते योगिनो यस्मिन् नित्यानन्दे चितात्मनि अतः रामपदेनासौ परब्रह्माभिधीयते। चिदात्मा में योगी लोग रमण करते हैं। इसलिए रामपद से पर ब्रह्म कहा जाता है और सब तर्क छोड़ देते हैं। क्योंकि तर्क की वहाँ गति नहीं। यस्यावताररूपाणि समर्चन्ति दिवौकसः। अपश्यन्तः परं रूपं नमस्तस्मै महात्मने। विष्णुपुराण। देवतालोग सरकार के अवतार रूप का ही भजन करते हैं। क्योंकि उनका परम रूप बुद्धि मन वाणी के परे है।

ब्याकुल कटकु कीन्ह घननादा। पुनिभा प्रकट कहै दुर्बादा॥
जामवंत कह खलु रहु ठाढ़ा। सुनिकर ताहि क्रोध अति बाढ़ा॥२॥

अर्थ : मेघनाद ने सेना को व्याकुल कर दिया। फिर वह प्रकट हुआ और दुर्वचन कहने लगा। जामवन्त ने कहा कि खल! खड़ा रह। सुनकर उसे बड़ा क्रोध बढ़ा।

व्याख्या : रामजी के विषय में कहकर अब कटक के विषय में कह रहे हैं कि सारी सेना को मेघनाद ने व्याकुल कर दिया। ऐसी परिस्थिति में कटक का व्याकुल होना आश्चर्य नहीं है। अब तक जीता रहना ही आश्चर्य है। जब मेघनाद ने देख लिया कि अब सेना में कहीं कुछ भी नहीं है तब मायामय रथ को छोड़कर और अन्तर्धान होने की माया छोड़कर निर्भय होकर प्रकट हुआ। गाली देना राक्षसी प्रकृति है। पहिले रामजी के सामने गया था तब भी दुर्वचन बोलता था। यथा : रघुपति निकट गयउ घननादा। नाना भाँति कहेसि दुर्बादा। इस समय सारी सेना को असमर्थ देखकर गालियाँ दे रहा है। अब जो वध्य है उन्हें बध करने के लिए तथा अवध्य को बाँधकर लंका ले जाने के लिए प्रकट हुआ है।

सरकार को दुर्वचन कह रहा है। इस बात को जाम्बवान् न सह सके। क्योंकि सारी सेना में ये ही सचेत थे। जिसे रावण कहता था। यथा : जामवंत

मन्त्री अति बूढ़ा। सो कि होई अब समरारूढ़ा। उस बूढ़े ने उठकर मेघनाद को ललकारा। यह सरकार की माया है कि इस समय काम करने के लिए जाम्बवान् बचे रहे। इन्हें उतनी चोट नहीं आयी थी। इनकी ललकार सुनकर मेघनाद आगबबूला हो गया।

बूढ़ जानि सठ छाड़ेउ तोहीं। लागेसि अधम प्रचारै मोहीं ॥
अस कहि तरल त्रिसूल चलायो। जामवंत कर गहि सोइ धायो ॥३॥

अर्थ : रे शठ ! तुझे मैंने बूढ़ा समझकर छोड़ दिया था। सो अधम तू मुझे ही ललकारने लगा ? ऐसा कहकर तीखा त्रिशूल उसने चलाया। जाम्बवान् उसे हाथ में पकड़कर दौड़े।

व्याख्या : मेघनाद कहता है कि जिस समय मैंने हनुमदादि अङ्गद नल नील आदि बलवानों को मारकर विकल कर दिया था उस समय तुझे बूढ़ा असमर्थ समझकर छोड़ दिया था। जैसी चोट उन लोगों पर हुई वैसी तुझ पर नहीं किया। तुझे मेरा कृतज्ञ होना चाहिए। पर तू अधम है। यह नहीं सोचता कि तू मेरी कृपा से सचेत बना हुआ है। उलटा मुझे ललकारता है। अच्छा तो ले : ऐसा कहकर तीखा त्रिशूल चलाया जिससे जाम्बवान् समाप्त ही हो जायँ। पर जाम्बवान् ने फुरती से उस त्रिशूल को रास्ते में ही पकड़ लिया। अब त्रिशूल जाम्बवान् के हाथ आगया। सो उसी को लेकर जाम्बवान् दौड़े।

मारेसि मेघनाद कै छाती। परा धरनि घुर्मित सुरघाती ॥
पुनि रिसान गहि चरन फिरायो। महि पछारि निज बल दिखरायो ॥४॥

अर्थ : मेघनाद की छाती में मारा। देवताओं का शत्रु चक्कर खाकर गिरा। फिर क्रुद्ध होकर उसका पैर पकड़कर घुमाया और पृथिवी पर पछाड़कर अपना बल दिखलाया।

व्याख्या : मेघनाद का त्रिशूल लेकर मेघनाद की ही छाती में मारा। यह जाम्बवान्‌जी का रणकौशल है। वानर वीर लोग जिस देवशत्रु के चोट से घुर्मित होकर गिरते थे वही मेघनाद इस समय जाम्बवान्‌जी के चोट से वहीं चक्कर खाकर गिर रहा है।

मेघनाद की बात से जाम्बवान्‌जी को क्रोध हुआ कि यह बूढ़ा कहकर मेरे बल का अपमान करता है। इसलिए उसका पैर पकड़कर उठा लिया और घुमाकर पृथिवी पर पटका कि देख ले मेरा बल।

बरप्रसाद सो मरै न मारा। तब गहि पद लंका पर डारा ॥
इहाँ देवरिषि गरुड़ पठायो। राम समीप सपदि सो आयो ॥५॥

अर्थ : वर के प्रसाद से वह मारे नहीं मरा। तब उसका पैर पकड़कर लंका पर फेंक दिया। यहाँ नारदजी ने गरुड़जी को भेजा। वह तुरन्त रामजी के पास आये।

व्याख्या : जाम्बवान्‌जी ने मेघनाद को मार डालना चाहा। उसके हृदय में तीखा त्रिशूल मारा। पैर पकड़कर घुमाकर पृथिवी पर पटका। मार डालने में कोई कसर न रक्खा। फिर भी वह न मरा। जाम्बवान्‌जी ने समझ लिया कि उनके हाथ से उसकी मृत्यु नहीं है। इसकी रक्षा वरदान द्वारा हो रही है। यथा : इष्टदेव सन बर रथ पायेउँ। तब उसका पैर पकड़कर लंका पर फेंक दिया। यह जाम्बवान्‌जी का निज बल है कि मेघनाद ऐसे योद्धा को जिसकी वीरों में प्रथम गणना है पैर पकड़कर लंका पर फेंक देते हैं।

नारदजी का ध्यान इस युद्ध पर है। इसके पहिले हो कह गये हैं कि वेग हतहु खल। अतः उस खल के वध में शीघ्रता के लिए गरुड़जी को भेजा। गरुड़जी तुरन्त रामजी के पास आये। यहाँ आने पर जो दशा रामजी की देखा वही देखकर गरुड़जी को मोह हुआ। यथा : प्रभु बंधन समझत बहु भाँती। करत बिचार उरग आराती। ब्यापक ब्रह्म बिरज बागीसा। माया मोह पार परमीसा। सो अवतरा सुनेउँ जग माहीं। देखेउँ सो प्रभाव कछु नाहीं। भव बन्धन ते छूटहि नर जपि जाकर नाम। खर्ब निसाचर बाँधेउ नागपास सोइ राम।

दो. खगपति सब धरि खाए, माया नाग बरूथ।
माया बिगत भये सब, हरखे बानर जूथ॥
गहि गिरि पादप उपल नख, धाये कीस रिसाइ।
चले तमीचर बिकलतर, गढ़ पर चले पराइ॥७४॥

अर्थ : गरुड़ ने साँपों के समूह को पकड़कर खा लिया। सरकार : माया से मुक्त हो गये। माया से मुक्त सम्पूर्ण बानरी सेना हर्षित हो उठो। वानर क्रुद्ध होकर पर्वत, पेड़, पत्थर और नख धारण करके दौड़े। राक्षस अति विकल होकर भाग चले और किले पर चढ़ गये।

व्याख्या : गरुड़जी पन्नगारि ठहरे। सब साँपों को खा गये। उनके आगमन के दिव्य प्रभाव से माया भी निवृत्त हो गयी। सबका खेद जाता रहा। माया विनिर्मुक्त होकर बन्दर लोग हर्षित हुए। उनके पक्ष की वायु लगने से सबके घाव पूरे हो गये। वहाँ ऐसा आनन्द हुआ मानो कुछ हुआ ही न था।

अतः बन्दर लोग अपने आयुध से सुसज्जित होकर दौड़े युद्ध के लिए। उनका आयुध पर्वत, पेड़, पत्थर और नख था। जो पीड़ा उनको इस माया युद्ध में हुई है इससे बड़े क्रुद्ध हैं। राक्षस लोग माया के नष्ट हो जाने से ही विकल थे। अब बन्दर भालुओं के धावे से अधिक विकल हुए। अतः भागकर क़िले पर चढ़ गये।

मेघनाद कै मुरुछा जागी। पितहि बिलोकि लाज अति लागी॥
तुरत गयउ गिरिवर कंदरा। करौं अजयमख अस मन धरा॥१॥

अर्थ : मेघनाद जब मूर्च्छा से जागे तो पिता को देखकर बड़ी लज्जा लगी।

तुरन्त वह पर्वत की कन्दरा में चला गया। मन में ठान लिया कि अजय यज्ञ करूँगा।

व्याख्या : मेघनाद ने इष्टदेव के बल का आश्रयण करके जिन लोगों को मूर्च्छित किया था वे लोग तो चङ्गे हो गये पर मेघनाद मूर्च्छित ही पड़े हैं। रावण को समाचार मिला। वे भी दौड़े वहाँ चले आये। अनेक प्रकार के उपचार होने लगे। अन्ततो गत्वा उन्हें होश हुआ तो देखा लोग घेरे हुए हैं। उपचार हो रहा है। अतः मेघनाद लज्जित हुआ और बाप को देखकर तो अत्यन्त लज्जित हुआ। क्योंकि उनसे कहकर चला था कि : देखेउ कालि मोरि मनुसाई। सो यही मनुसाई देख रहे हैं कि बुड्ढे ने टाँग पकड़कर लंका पर फेंक दिया। जहाँ मृत व्यक्ति की भाँति पड़े थे।

लज्जा के मारे उठकर घर नहीं गया। पर्वत की गुफा में चला गया। जिसमें किसी को पता न लगे। किसी से कुछ कहा नहीं। मन में यह निश्चय किया कि अजय यज्ञ करूँगा। जिसके सिद्ध होने से यजमान अजेय हो जाता है। निर्विघ्न सिद्धि के लिए लंका छोड़कर पर्वत की कन्दरा में चला गया। यज्ञ विद्या में मेघनाद की पटुता कवि दिखला रहे हैं।

इहाँ बिभीषन मंत्र बिचारा। सुनहु नाथ बल अतुल उदारा॥
मेघनाद मख करै अपावन। खल मायावी देव सतावन॥२॥

अर्थ : यहाँ विभीषण ने सलाह दी। कहने लगे कि हे अतुलबल उदार नाथ! सुनिये। ऐसा समाचार है कि दुष्ट मायावी देवताओं को सतानेवाला मेघनाद अपावन यज्ञ कर रहा है।

व्याख्या : विभीषणजी बराबर इस बात की खबर रखते हैं कि लंका में क्या हो रहा है। उनके चारो मन्त्री कपोत होकर लंका में जाते हैं और सब समाचार दिया करते हैं। उन लोगों ने मेघनाद के पर्वत की गुफा में जाने का समाचार दे दिया। विभीषणजी समझ गये कि गुफा में जाकर क्या करेगा? अथवा पूरा समाचार उन्हें मिला। उन्होंने जाकर सरकार से सब हाल सुनाया कि मेघनाद यज्ञ कर रहा है। मेघनाद के लिए कहते हैं कि वह खल है। दुष्टहृदय है। बड़ा मयावी है। उसके गतिविधि का थाह नहीं लगता और देवताओं को सतानेवाला है। उसका यज्ञ भी देवताओं का तृप्तिकारक नहीं होता। बल्कि उनके तेज का हरण करनेवाला होता है। संसार पावन यज्ञ करता है। मेघनाद अपावन यज्ञ करता है।

जौ प्रभु सिद्ध होइ सो पाइहि। नाथ बेगि रिपु जीति न जाइहि॥
सुनि रघुपति अतिसय सुख माना। बोले अंगदादि कपि नाना॥३॥

अर्थ : हे प्रभो! यदि वह सिद्ध हो पावेगा तो हे नाथ! शत्रु का शीघ्र जीतना कठिन हो जायगा। सुनकर रामजी ने बहुत सुख माना और अङ्गद आदि अनेक बानरों को बुलाकर कहा।

व्याख्या : विभीषणजी का कहना है कि यह यज्ञ विध्वंस करने योग्य है। क्योंकि इसका यजमान मेघनाद खल है। वह यज्ञ भी परोपकार के लिए नहीं करता। उसके यज्ञ से माया का बल ही बढ़ेगा। उस देव सतावन की आहुति से देवताओं को दुःख होगा। क्योंकि मन्त्र बल से उन्हें आहुति ग्रहण करना पड़ेगा और उससे निस्तेज होते चले जायँगे। इसमें हवि की आहुति न होगी। अपावन द्रव्य की आहुति होगी। इसलिए यह यज्ञ अपावन है। इसका विध्वंस करना ही प्राप्त है। यह सब विभीषणजी इसलिए कहते हैं कि सरकार यज्ञ के रक्षक हैं। कदाचित् यज्ञ विध्वंस के लिए आज्ञा न दें। और उस यज्ञ का फल कह रहे हैं कि ,यदि यह यज्ञ उसका सिद्ध हो गया तो वह शीघ्र नहीं जीता जायगा। नारदजी कह गये हैं कि खल को शीघ्र मारिये। अतः यज्ञ विध्वंस के लिए आज्ञा होनी चाहिए।

यह बात सुनकर सरकार को अत्यन्त सुख हुआ। विभीषण की राय ठीक जँची। यज्ञविध्वंस से उसकी सिद्धि न होकर उलटा नाश होगा। तुरन्त अङ्गद आदि वीर वानरों को बुलाया। नहि यज्ञसमो रिपुः।

लछिमन संग जाहु सब भाई। करहु बिधंस जग्य कर जाई॥
तुम्ह लछिमन मारेहु रन ओही। देखि सभय सुर दुख अति मोही॥४॥

अर्थ : सब भाई लक्ष्मण के साथ जाओ और यज्ञ का विध्वंस जाकर करो। लक्ष्मण! तुम उसे युद्ध में मारना। देवताओं को भयभीत देखकर मुझे अत्यन्त दुःख है।

व्याख्या : सरकार कहते हैं कि तुम लोग भाई हो। क्योंकि कुठाहर सहाय होते हो। तुम लोग लक्ष्मण के साथ जाओ। भाव यह कि लक्ष्मण के साथ रहने से तुम लोग उसके वध में समर्थ होगे अथवा तुम लोग तो यज्ञ का विध्वंस करना। उसका वध लक्ष्मण करेंगे।

लक्ष्मण को आज्ञा हो रही है कि तुम उसका वध करना। उसके कारण देवता अत्यन्त सभीत हैं। उनको मैंने अभय दिया। यथा : जनि डरपहु मुनि सिद्ध सुरेसा। अथवा प्रभु प्रनाम करि दीन्ह भरोसो। चले मुदित मन भय न खरोसो। उनके सभीत होने से मुझे दुःख हो रहा है। भाव यह कि खेल आगे न बढ़ाना। सरकार लक्ष्मणजी का पुरुषार्थ जानते हैं। वर्णन भी कर चुके हैं। जगमहुँ सखा निसाचर जेते। लछिमन हनइ निमिष महुँ तेते। सरकार का रुख देखकर ही युद्ध लीला को शीघ्र समाप्त नहीं करते। इसलिए स्पष्ट आज्ञा हो रही है कि उसे मारकर आना।

जामवंत सुग्रीव बिभीषन। सेन समेत रहहुँ तीनिउँ जन॥
जब रघुबीर दीन्ह अनुसासन। कटि निषंग कसि साजि सरासन॥५॥

अर्थ : जामवंत सुग्रीव और विभीषण! तुम तीनों व्यक्ति सेना के सहित साथ रहो। जब रामजी ने आज्ञा दी तब कमर में तरकस कसकर और धनुष को चढ़ाकर :

व्याख्या : ऋक्षराज कपिराज और राक्षसराज तीनों राजाओं को आज्ञा हुई कि सेना के साथ रहें। भाव यह कि अङ्गदादि वीरों को तो यज्ञ विध्वंस करने का कार्य सौंपा गया और मेघनाद वध का कार्य लक्ष्मणजी को सौंपा गया। ऋक्षेश कपीश और लंकेश को सेना सहित साथ रहने का कार्य सौंपा गया कि यदि लंका से कुमक मेघनाद की सहायता के लिए आवे तो उसे ये लोग रोकें।

जब रामजी की आज्ञा हो गयी तो लक्ष्मणजी ने कमर में तरकस कसा और धनुष को चढ़ाया। भाव यह कि लक्ष्मणजी पहिले से ही तैयार हैं। आज्ञा की देर थी।

प्रभु प्रताप उर धरि रनधीरा। बोले घन इव गिरा गँभीरा ॥
जौं तेहि आज बधे बिनु आवौं। तौ रघुपति सेवक न कहावौं ॥६॥
जौं सत संकर करहिं सहाई। तदपि हतौं रन राम दोहाई ॥७॥

अर्थ : प्रभु के प्रताप को हृदय में रखकर रणधीर लक्ष्मण बादल की भाँति गम्भीर शब्द से बोले। यदि मैं आज उसे बिना मारे आऊँ तो सरकार का सेवक न कहलाऊँ। यदि सौ शङ्कर भी उसकी सहायता करें तो राम दोहाई : उसे तो लड़ाई में मार ही डालूँगा।

व्याख्या : भक्तों का परम बल प्रभु प्रताप है। अतः प्रभु प्रताप को हृदय में धारण किया। पहिले भी लक्ष्मणजी जब कुछ कहते हैं तो प्रभु प्रताप के बल से ही कहते हैं। यथा : तोरौं छत्रक दण्ड जिमि तव प्रताप बलनाथ। मेघनाद के वध के लिए जा रहे हैं। अतः मेघ के समान गम्भीर शब्द से बोले।

शपथ लेते हैं : क्योंकि पहिली बार युद्ध करने गये थे तो शक्ति लग गयी। हनुमान्जी उठाकर लाये। यथा : तब लागि लै आये हनुमाना। अतः साथियों के विश्वास के लिए शपथ लेते हैं कि इस बार वह मेरे हाथ से बच नहीं सकता। निश्चय मारूँगा। शपथ भी साधारण नहीं है। सरकार की आज्ञा वध के लिए इस बार हो चुकी है। अतः यदि मैंने वध न किया तो मानो सरकार की आज्ञा भङ्ग की और जो आज्ञा भङ्ग करे वह सेवक कैसा? अतः उसके न मारने पर सेवक न कहलाने की शपथ लेते हैं।

यदि इस पर सन्देह हो कि वह इष्टदेव के बल से युद्ध करेगा इस पर लक्ष्मणजी कहते हैं कि संहार करनेवाले शङ्कर हैं। इनसे बलवान् कोई नहीं है। सो यदि सौ शङ्कर भी सहायता करें तो भी उसे युद्ध में निश्चय मारूँगा। क्योंकि मैं भी अपने इष्टदेव का बल पाकर चल रहा हूँ जिससे विधि को विधिता हर को हरता और हरि को हरिता मिलती है। यथा : बिधिहि बिधिता हरिहि हरिता हरहिं हरता जिन दई। सो जानकीपति मधुर मूरति मोदमय मंगलमई।

दो. रघुपति चरन नाइ सिरु चलेउ तुरंत अनंत।
अंगद नील मयंद नल संग सुभट हनुमंत ॥७५॥

अर्थ : रामजी के दोनों चरणों की वन्दना करके अनन्त तुरन्त चले। साथ साथ में अङ्गद नील मयन्द और नल सुभट हनुमान्‌जी थे।

व्याख्या : पहिली लड़ाई में जिसमें शक्ति लगी थी लक्ष्मणजी सरकार को प्रणाम करके नहीं चले थे। यथा : आयसु माँगि राम पहिं अंगदादि कपि साथ। लछिमन चले क्रुद्ध होइ बान सरासन हाथ। इस बार प्रणाम करके चले हैं। निश्चय कृतकार्य होंगे। सरकार के लिए कहा गया है : बोले अंगदादि कपि नाना। उसी आदि शब्द को यहाँ स्पष्ट करते हैं : अंगद नील मयंद नल संग सुभट हनुमंत।

जाइ कपिन्ह देखा सो बैसा। आहुति देत रुधिर अरु भैंसा॥
कीन्ह कपिन्ह सब जज्ञ बिधंसा। जब न उठइ तब करहिं प्रसंसा॥१॥

अर्थ : बन्दरों ने जाकर उसे बैठा हुआ देखा। रक्त और भैंसे की आहुति दे रहा था। बन्दरों ने सब यज्ञ विध्वंस कर डाला। फिर भी जब नहीं उठा तो प्रशंसा करने लगे।

व्याख्या : बन्दरों ने जाकर उसे बैठा देखा। उसने बन्दरों को नहीं देखा। स्वार्थ में एकाग्र है। इधर उधर नहीं देख रहा है। यज्ञ में दत्तचित्त है। अब यज्ञ की अपावनता कहते हैं। गोघृत के स्थान पर तो रुधिर से काम लेता है और साकल्य के स्थान में भैंसे की आहुति दे रहा है। मैं इस अर्धाली को प्रक्षिप्त मानता हूँ।

बन्दरों ने सब यज्ञ विध्वंस कर दिया। पर मेघनाद उठा नहीं। इस विचार से बैठा है कि ये सब विध्वंस करके चले जायँ तो फिर सम्पन्न कर लूँगा। पर बन्दर भी बड़े जानकर हैं। उसकी आसन सिद्धि को भी नष्ट करना चाहते हैं। जब उन्होंने देखा कि यज्ञ को तो हम लोगों ने पूरी तरह से विध्वंस कर दिया फिर भी यह उठता नहीं है तब उसकी प्रशंसा करने लगे कि मेघनाद बड़े क्षमाशील हैं। साधु हैं। इनका चाहे कोई कितना भी अपकार करे पर तनिक भी क्रोध नहीं करते। देखो कैसा ध्यान लगाये बैठे हैं। इत्यादि।

तदपि न उठै धरेन्हि कच जाई। लातन्हि हति हति चले पराई॥
लै त्रिसूल धावा[1] कपि भागे। आए जहँ रामानुज आगे॥२॥

अर्थ : फिर भी न उठा तो जाकर उसकी शिखा पकड़ ली और लात मार मारकर भागने लगे। तब त्रिशूल लेकर दौड़ा। तो बन्दर भागे और लक्ष्मणजी के आगे आगये।

व्याख्या : जब उनकी व्यङ्ग्योक्ति से भी मेघनाद नहीं उठा तब जाकर उसकी शिखा पकड़ ली कि उठ। फिर भी न उठा तो बन्दरों ने पद्मलत्ती आरम्भ कर दी। लात मार मारकर भागने लगे। सरकारी आज्ञा है : जग्य बिधंस करहु तुम जाई। सो जब तक यह आसन परित्याग नहीं करता तब तक विध्वस्त हुआ भी यज्ञ फिर

---

१. यह लड़ाई पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्र की वर्षा है।

से सम्पन्न किया जा सकता है। अतः उसके उठाने के उपाय में लगे। निश्चय किया कि जगद्विख्यात मानी वीर है। यह लात न सह सकेगा। अस्त्र शस्त्र सब सह लेगा। अतः इस पर पच्चलत्ती उड़नी चाहिए।

वही बात हुई। मेघनाद लात न सह सका। त्रिशूल लेकर दौड़ा। बन्दर भागकर लक्ष्मणजी के आगे गये। बन्दर चाहते भी यही थे कि इसे लक्ष्मणजी तक पहुँचा दें। लक्ष्मणजी उस स्थान पर खड़े हैं जहाँ पहुँचकर मेघनाद अन्तर्धान होता है। इसलिए लक्ष्मणजी के आगे पहुँचे और पीछा करता हुआ मेघनाद भी वहाँ पहुँच गया।

आवा परम क्रोध कर मारा। गर्ज घोर रव बारहिं बारा॥
कोपि मरुत सुत अंगद धाए। हति त्रिसूल उर धरनि गिराए॥३॥

अर्थ : परम क्रोध का मारा हुआ आया। घोर रव से बार बार गरजता था। क्रुद्ध होकर हनुमान् और अङ्गदजी दौड़े। उसने त्रिशूल से मारकर पृथिवी पर गिरा दिया।

व्याख्या : लात का मारा नहीं आया। परम क्रोध का मारा आया। लात लगने से उसे बड़ा क्रोध हुआ था। बार बार घोर गर्जता करता है कि जिस वीर को आना हो आवे। ये लात मारनेवाले तो भाग जाते हैं। हनुमान्जी तथा अङ्गदजी ललकार के सहनेवाले नहीं। अतः ये लोग क्रोध करके दौड़े। पर उसने त्रिशूल से मारकर धराशायी कर दिया। यज्ञ लगभग पूरा हो चला था। अतः उसमें इस समय इष्टदेव के बल का आवेश है।

प्रभु कहँ छाड़ेसि सूल प्रचंडा। सरहति कृत अनंत जुग खंडा॥
उठि बहोरि मारुति जुबराजा। हतहिं कोपि तेहि घाउ न बाजा॥४॥

अर्थ : प्रभु के ऊपर उसने प्रचण्ड शूल फेंका। अनन्त ने उसे बाण मारकर दो टुकड़े कर दिया। फिर उठकर हनुमान् और अङ्गदजी उसे क्रोध करके मारते हैं। पर उसपर चोट चढ़ती ही नहीं।

व्याख्या : हनुमान् और अङ्गदको गिराकर अब लक्ष्मणजी पर चोट करता है। उनपर उसने प्रचण्ड शूल छोड़ा। जानता है कि वीरघातिनी सांगो के सहन करनेवाले पर सामान्य शूल का क्या प्रभाव होगा। अतः प्रचण्ड शूल छोड़ा। पर लक्ष्मणजी अनन्त हैं। प्रभु हैं। इन्होंने इसे बीचमें ही काट दिया। इस युद्धमें कवि बार बार लक्ष्मणजो को अनन्त कह रहे हैं। जिसका अन्त ही नहीं उसके अन्त को कोई कैसे पा सकता है।

यद्यपि यज्ञ पूरा नहीं हुआ है। फिर भी इसका बल इतना बढ़ गया है कि जिसके एक घूँसे से मेघनाद मूर्च्छित हो गया था। वे हनुमान् तथा उनके समकक्ष वीर अङ्गद उठकर उसपर क्रुद्ध होकर प्रहार कर रहे हैं। पर उसे घाव नहीं लग रहा है।

फिरे बीर रिपु मरै न मारा। तब धावा करि घोर चिकारा ॥
आवत देखि क्रुद्ध जनु काला। लछिमन छाड़े बिसिख कराला ॥५॥

अर्थ : शत्रु मारने से नहीं मरता है। इसलिए वीर लौट पड़े। तब घोर चिक्कार करके दौड़ा। लक्ष्मणजी ने देखा कि यह काल के समान क्रुद्ध होकर आ रहा है। अतः उन्होंने कराल बाण छोड़ा।

व्याख्या : जाम्बवान्‌जी की भाँति अङ्गद और हनुमान्‌जी ने भी समझ लिया कि यह अवध्य है। यथा : बर प्रसाद सो मरै न मारा। तब लौट पड़े। हनुमान् और अङ्गद से पिण्ड छूटते ही वह कुम्भकर्ण की भाँति चिक्कार करके दौड़ा। यथा : करि चिक्कार घोर अति धावा बदन पसार। तब लक्ष्मणजी ने उसपर कराल बाण का प्रयोग किया। आगे चलकर उस बाण की करालता कहते हैं।

देखिसि आवत पबिसम बाना। तुरत भयउ खल अंतरधाना ॥
बिबिध वेष धरि करै लराई। कबहुँक प्रगट कबहुँ दुरि जाई ॥६॥

अर्थ : वज्र के समान बाण को आता देखकर वह खल तुरन्त अन्तर्धान हो गया। अनेक प्रकार का वेष धारण करके युद्ध करने लगा। कभी प्रकट हो जाता था कभी छिप जाता था।

व्याख्या : उसने देखा कि यह बाण तो वज्र के समान कराल है। इसकी प्रतिक्रिया नहीं हो सकती तो अन्तर्धान हो गया। जिसमें लक्ष्य ही ठीक न हो सके। माया से युद्ध कर रहा है। इसी से कवि उसे खल कह रहे हैं। लक्ष्मणजी के नानाविध प्रहार करने के कौशल जानता है। अतः अनेक प्रकार के वेष धारण करके धोखा देता है। कभी बन्दर या भालु बनकर चोट कर बैठता है। कभी व्याघ्र सिंह बनकर झपट पड़ता है। कभी प्रकट हो जाता है। कभी छिप जाता है। पता ही नहीं चलने पाता कि वह कहाँ है और किधर से क्या करना चाहता है और किधर से कब प्रकट होकर चोट कर बैठेगा ?

देखि अजय रिपु डरपे कीसा। परम क्रुद्ध तब भएउ अहीसा ॥
लछिमन मन अस मंत्र दृढ़ावा। एहि पापिहि मैं बहुत खेलावा ॥७॥

अर्थ : शत्रु को अजय देखकर बन्दर डर गये। तब तो सर्पराज परम क्रुद्ध हो गये। इस पापी को मैं बहुत खेला चुका। ऐसा मन्त्र लक्ष्मणजी ने अपने मन में दृढ़ किया।

व्याख्या : बन्दरों ने देखा कि अजय यज्ञ पूरा नहीं होने पाया। हम लोगों ने विध्वंस कर दिया। फिर भी यह अजय हो ही गया। अतः डर गये कि यह न मरेगा और सबको मार डालेगा। अपने आश्रितों को डरा हुआ देखकर लक्ष्मणजी परम क्रुद्ध हुए। सर्प जब क्रोध करता है तो प्राण लेता है। लक्ष्मणजी तो सर्पराज हैं। परम क्रुद्ध हुए हैं। अब मेघनाद को बिना प्राण लिये नहीं छोड़ सकते।

मन में विचार किया कि यह पापी है। धर्मयुद्ध नहीं करेगा। कपट करता ही चला जायगा। बड़े योद्धा छोटे योद्धाओं को युद्ध में खेलाते हैं जिसमें उसका हौसला बाकी न रह जाय। सो मैं इसे बहुत खेला चुका। अब इसे मार देना ही उचित है। क्योंकि बन्दर बहुत डर गये हैं।

सुमिरि कोसलाधीस प्रतापा। सर संधान कीन्ह करि दापा ॥
छाड़ा बान माँझ उर लागा। मरती बार कपटु सबु त्यागा ॥८॥

अर्थ : कोशलाधीश के प्रताप को स्मरण करके दर्प के साथ बाण का सन्धान किया और बाण छोड़ा जो बीच कलेजे में लगा। मरती समय उसने सब कपट छोड़ दिया।

व्याख्या : रामजी के प्रताप का स्मरण किया। जिसके द्वारा कार्यसिद्धि होती है और उसी का दर्प करके बाण चलाथा। धर्मात्मा सत्यसन्धश्च रामो दाशरथिर्यदि। पौरुषेणाप्रतिद्वन्द्वः तदेभं जहि रावणिम्। यदि दाशरथि राम धर्मात्मा और सत्यसन्ध हैं और पौरुष में कोई उनके समान नहीं है तो हे बाण ! तुम रावण के इस बेटे को मारो। यही लक्ष्मणजी का रामप्रताप का स्मरण और दर्प है। यही रामास्त्र है। इस मन्त्र के उच्चारण से वह बाण रामास्त्र हो गया। उसने उसका कलेजा वेध दिया। मेघनाद समझ गया कि मर रहा हूँ। यावज्जीवन कपट किया है। कपट रखते हुए मरना ठीक नहीं। अतः सब कपट छोड़कर अपने स्वरूप में आगया।

दो. रामानुज कहँ रामु कहँ, अस कहि छाड़ेसि प्रान।
धन्य धन्य तव जननी, कह अंगद हनुमान ॥७६॥

अर्थ : रामानुज कहाँ है। राम कहाँ है ऐसा कहकर प्राण छोड़ दिया। अङ्गद हनुमान् ने कहा कि इन्द्रजित् ! तेरी माँ धन्य धन्य है।

व्याख्या : राम के भाई कहाँ हैं। राम कहाँ हैं। ऐसा कहकर प्राण छोड़ा। मरने के समय कुल परिवार किसी का स्मरण नहीं किया। रामानुज और राम का स्मरण किया और वीररस को भी हृदय से जाने न दिया। भगवान्नाम स्मरण करते हुए प्राणत्याग किया। जाकर नाम मरत मुख आवा। अधमौ मुक्त होत स्रुति गावा। सो मेघनाद ने तो जानबूझकर उच्चारण किया। इसलिए अङ्गद हनुमान् ने उसकी माँ की प्रशंसा की कि तुम्हारे कारण तुम्हारी माँ पुत्रवती हुई। यथा : पुत्रवती युवती जग सोई। रघुपति भक्त जासु सुत होई। अथवा उन लोगों ने उस माता की प्रशंसा की कि जिसके गर्भ से ऐसा पराक्रमी पुत्र हुआ जिसने इन्द्र को जीता और अन्त समय में मुनिगण से भी दुःसाध्य रामनामोच्चारण किया। यथा : जन्म जन्म मुनि जतन कराही। अन्त राम कहि आवत नाही। तथा आरम्भ से अन्त तक वीरता का निर्वाह किया। कहँ कोसलाधीस दोउ भ्राता। कहता हुआ लंका से पहिले पहल बाहर निकला और अन्त तक उसी भाव का निर्वाह किया। प्राण त्यागते समय भी

रामानुज कहँ राम कहँ कहकर ललकारा। हनुमान् अङ्गद के जन्म से ही उसकी परम गति दिखलायी।

बिनु प्रयास हनुमान उठायो। लंका द्वार राखि पुनि आयो ॥
तासु मरन सुनि सुर गंधर्बा। चढ़ि बिमान आए नभ सर्बा ॥१॥

अर्थ : हनुमान्‌जी ने उसे अनायास ही उठा लिया और लंका के फाटक पर उसे रख आये। उसका मरना सुनकर देवता और गन्धर्व सब विमान पर चढ़कर आकाश में आगये।

व्याख्या : लक्ष्मणजी को मेजनाद ने उठा ले जाने का प्रयत्न किया था पर उठा न सका। पर मेघनाद को हनुमान्‌जी ने अनायास ही उठा लिया और लंका के फाटक पर रख आये। भाव यह कि सुषेण आदि को बुलाकर यदि चिकित्सा योग्य हो तो यत्न करो। हम लोग मूर्च्छित या मृत वीर को उठा नहीं ले जाते। घर पहुँचा देते हैं।

देवता लोग रणाङ्गन देखने नहीं आये थे। रात को अकस्मात् संग्राम हो गया अथवा मेघनाद के भय से नहीं आये। जब तक मेघनाद जीता था तब तक लंका अजेय थी। अतः मेघनाद के वध से भय भी कम हो गया और बड़ी खुशी हुई। सभी देवता और गन्धर्व विमान पर चढ़कर आकाश में आगये।

बरषि सुमन दुंदुभी बजावहिं। श्री रघुनाथ विमल जस गावहिं ॥
जय अनंत जय जगदाधारा। तुम प्रभु सब देवन्हि निस्तारा ॥२॥

अर्थ : फूलों की वर्षा करके दुन्दुभी बजाते हैं और श्रीरघुनाथ के निर्मल यश का गान करते हैं। अनन्त की जय हो। जगदाधार की जय हो। हे प्रभु ! तुमने सब देवताओं का उद्धार किया।

व्याख्या : देवता लोग पुष्पवृष्टि करके दुन्दुभी बजा रहे हैं और गन्धर्व लोग श्रीरघुबीर के निर्मल यश का गान करते हैं। रावण के जीते ही उसके लड़के के मारे जाने पर गान हो रहा है। सरकार का यश त्रैलोक्य पावन है। इसलिए विमल जस कहा। पहले सरकार का यशोगान करके तब लक्ष्मणजी की स्तुति करते हैं।

कहते हैं कि हे अनन्त तुम्हारी जय हो। आपका अन्त है नहीं। इसलिए मेघनाद अन्त नहीं पा सका। सब कुछ लय हो जाने पर भी आप रह जाते हैं। इसीलिए शेष कहलाते हैं। यः शिष्यते स शेषः। जो बच जाय उसे शेष कहते हैं। अतः आप ब्रह्मरूप हैं। आप जगत् के आधार हैं। यथा : लच्छन धाम राम प्रिय सकल जगत् आधार। गुरु वसिष्ठ तेहि राखा लछिमन नाम उदार। आपने सब देवताओं का उद्धार कर लिया। इस मेघनाद के कारण देवता कभी कल नहीं पाते थे। यथा : जेहि न होय रन सनमुख कोई। सुरपुर नितहि परावन होई।

अस्तुति करि सुर सिद्ध सिधाए। लछिमन कृपासिंधु पहि आए॥

७४. निशिचर निकर मरण प्रसंग (रावण का प्रथम युद्ध)

सुत बध सुनेउ दसानन जबहीं। मुरुछित भयउ परेउ महि तबहीं॥३॥

अर्थ : जब स्तुति करके सुरसिद्ध चले गये तब लक्ष्मणजी कृपासिन्धु के पास आये। दशानन ने जब पुत्र का मारा जाना सुना तभी वह मूर्च्छित होकर पृथिवी पर गिर पड़ा।

व्याख्या : जब तक देवता लोग स्तुति करते थे लक्ष्मणजी उनके सम्मान के लिए वहीं खड़े रहे। जब वे लोग चले गये तब लक्ष्मणजी कृपासिन्धु के पास आये। उन्हीं के अनुशासन से और उन्हीं की कृपा से मेघनाद वध हुआ है।

पहिले समाचार देवताओं को लगा। वे लोग अपावन आहुति पाकर विकल थे। तुरन्त देवदूतों ने समाचार दिया कि लंका द्वार पर मेघनाद का शव रक्खा गया है। उस शव को देखकर राक्षसोंने रावण को समाचार दिया। उसे ऐसी मानसिक चोट हुई कि मूर्च्छित होकर भूमि पर गिर गया। कुम्भकर्ण के वध पर मणि बिना फणि की भाँति विकल हुआ था। पर इस बार तो ऐसा मूर्च्छित हुआ कि पृथिवी पर जा पड़ा।

मन्दोदरी रुदनु कर भारी। उर ताड़न बहु भाँति पुकारी॥
नगर लोग सब ब्याकुल सोचा। सकल कहहिं दसकंधरु पोचा॥४॥

अर्थ : मन्दोदरी बड़ी रोई। छाती पीटकर अनेक प्रकार से पुकारने लगी। नगर के लोग व्याकुल होकर सोचने लगे। सब कहते थे कि रावण नीच है।

व्याख्या : मेघनाद के मरने पर अन्तःपुर में हाहाकार मच गया। पर मन्दोदरी बहुत रोई; क्योंकि यह उसी का औरस पुत्र था। अक्षय पहले ही मारा गया था। आज यह भी मारा गया। अक्षय के मरने पर रुदन नहीं कहा। पर इस बार तो उसने भारी रुदन किया। छाती पीटने लगी और मेघनाद को अनेक प्रकार से पुकारने लगी जैसे कोई जीते हुए को। आर्त होकर पुकार करे।

नगर के लोग व्याकुल होकर सोचने लगे कि अब नगर की रक्षा कौन करेगा। मेघनाद का बड़ा बल लंका भर को था। आज उसके मरने से सब अनाथ हो गये। सब कहते हैं कि रावण बड़ा नीच है। इसी को नीचता का यह परिणाम है कि राक्षस कुल का संहार उपस्थित है। यह नीच अब भी नहीं मानेगा। किसी की सुनता ही नहीं।

दो. तब दसकंठ बिबिध बिधि, समुझाई सब नारि।
नस्वर रूप जगत सब, देखहु हृदय बिचारि॥७७॥

अर्थ : तब रावण ने अनेक प्रकार से सब स्त्रियों को समझाया कि यह प्रपञ्च ही नश्वररूप है। हृदय में विचारकर देखो।

व्याख्या : आज रावण को कोई समझानेवाला नहीं है। अतः स्वयं धैर्य धर कर उठा और स्त्रियों को समझाने लगा कि यह जितना संसार है सभी नाशवान् है। जो पैदा हुआ है वह मरेगा ही। अतः विनशनशील के लिए दुःख करना व्यर्थ है। यह मर्त्यलोक है। यहाँ आकर सभी को मरना पड़ता है। तुम्हें भी मरना पड़ेगा। हमे भी मरना पड़ेगा। सभी मृत्यु के मुख में पड़े हैं। अज्ञान से दूसरे के लिए रोते हैं। यथा :

ब्रह्मा इन्द्र मुनीश सागर मही मन्वादि दीर्घायु हैं,
वे भी लाख करोड़ होकर मरे ये जीव अल्पायु हैं।
कोहै मोह अहो ! प्रकाश करता जो शोक को लोक में,
बुदबुद से तन के मरे मिलन है जो पाँच का पाँच में ॥१॥

बोते हैं विषवल्लि बीज दुख को जो प्रेम के नाम से,
होते हैं अँसुए भरे अनल के जो नेह के धाम से।
शोकारण्य बढ़ा विशाल इनसे सो लाख शाखा धरे,
देहों को दहता तुषानल यथा निर्धूम ज्वाला भरे ॥२॥

उत्पन्न होय तन में बहु कीट भाई।
काढे निकारि तन से उनको सदाई ॥
बेटे जिन्हें कहत वे सब भी वही है।
सोखै शरीर यह मोह महत्व ही है ॥३॥
पिता या बेटा या सुहृद यदि हो जायगत जो।
पड़ा छाती पीटै दुसह दुखसे बुद्धिहत सो ॥
बुधोंको है झूठे भवजलधि में नित्य कटुता।
बिछोहों से होता समसुख दृढाती बिराजता ॥४॥
और सभी कुछ कल्पना एक ब्रह्म ही सत्त।
कौन मोह को शोक है लखै एक अलबत्त ॥५॥

तिनहि ज्ञान उपदेसा रावन। आपुन मंद कथा सुभ पावन ॥
पर उपदेस कुसल बहुतेरे। जे आचरहिं ते नर न घनेरे ॥१॥

अर्थ : उन्हें तो रावण ने ज्ञान का उपदेश किया। आप तो मन्द थे पर उनकी कथा शुभ पावन थी। दूसरों के उपदेश में बहुतेरे लोग कुशल होते हैं। परन्तु जो आचरण करते हैं ऐसे लोग बहुत नहीं होते।

व्याख्या : प्रपञ्च को नश्वर समझकर विचार करने से ही ज्ञान होता है। सो ज्ञान का उपदेश रावण ने दे डाला। यह उपदेश शुभ है और पावन है। परन्तु इसके उपदेष्टा रावण स्वयं इस सिद्धान्त को चरितार्थ करनेवाले नहीं हैं। वे स्वयं मन्द हैं। जिसे नश्वर कहते हैं उसी में लिप्त हैं। कालनेमि ने कहा : मैं तैं मोर मूढता त्यागू। महा मोह निसि सोवत जागू। सो उस पर बड़े नाराज हुए।

कवि कहते हैं कि परोपदेशे पण्डित्यम् तो बहुत लोगों को है पर तदनुसार आचरण करनेवाले कितने हैं। जिन्हें शास्त्र ज्ञान है वे सभी दूसरों को ऐसा उपदेश किया करते हैं। परन्तु यह पण्डिताई उनके किसी काम की नहीं। वे तो तोते और बन्दर की भाँति बँधे हुए हैं। बँध्यौ कीर मरकट की नाईं। अपना स्वार्थ सिद्ध करने के लिए दूसरे को उपदेश देते हैं। स्त्रियों के रोने से रावण की पीड़ा बढ़ती थी। इसलिए उन्हें समझा-बुझाकर किसी भाँति चुप किया।

निसा सिरानि भएउ भिनुसारा। लगे भालु कपि चारिहुँ द्वारा ॥
सुभट बोलाइ दसानन बोला। रन सनमुख जाकर मन डोला ॥२॥

अर्थ : रात बीती सबेरा हुआ और भालु बन्दरों ने चारो फाटकों पर धावा बोल दिया। सुभटों को बुलाकर रावण बोला : लड़ाई में सामने जाने पर जिसका मन डाँवाडोल हो।

व्याख्या : विपत्तिकरी रात्रि समाप्त नहीं होती। यथा : जुग सम भइ सिराति न राती। सो वह रात्रि भी समाप्त हुई। सबेरा हुआ। भाव यह कि रात्रि को युद्ध बन्द रहता था। उँजेला होने पर फिर आरम्भ होता था। उँजेला हो गया। युद्धकाल उपस्थित हुआ। वानरों की ओर से बड़ी मुस्तैदी है। बन्दर भालुओं ने चारों फाटक पर धावा बोल दिया। यहाँ लगने का अर्थ आक्रमण करना है। यथा : लंका बाँके चार दुआरा। केहि विधि लागिअ करिअ विचारा।

अब तो रावण की सेना : शाही फौज शेष है। सो उसमें से सुभटों : सरदारों को बुलाकर रावण ने कहा। जिसमें वे लोग सारे सैनिकों तक समाचार पहुँचा दें कि जिसका मन लड़ाई से डरता हो। जो कुछ भी कदराता हो या शत्रु का सामना पड़ने पर : घोर आघात होने पर जिसके विमुख होने की सम्भावना हो।

सो अबहीं बरु जाउ पराई। संजुग विमुख भए न भलाई ॥
निजभुज बल मइँ बयरु बढ़ावा। देहौं उतरु जो रिपु चढ़ि आवा ॥३॥

अर्थ : वह अभी बल्कि भाग जाय। युद्ध में पराङ्मुख होने में भलाई नहीं है। मैंने अपनी भुजाओं के बल पर वैर बढ़ाया है। जो शत्रु चढ़ आया है उसका उत्तर मैं दूँगा।

व्याख्या : वह इसी समय भाग जाय। पहिले मैं भागने पर नाराज हुआ था। यथा : जो रन विमुख सुना मैं काना। सो मैं हतब कराल कृपाना। [illegible] भोग करि नाना। समर भूमि भयो बल्लभ प्राना। अब मैं छुट्टी देता हूँ। भागना बुरा है। परन्तु समरभूमि से भागना और भी बुरा है। तथा : एकेनापि सुधीरेण सोत्साहेन रणं प्रति। सोत्साहं जायते सैन्यं भग्ने भङ्गमवाप्नुयात्। : पं० तं० : एक भी वीर के रण के लिए उत्साह देखकर सेना में उत्साह हो जाता है। और भागने से सेना भाग खड़ी होती है। इसलिए अभी से भाग जाना ही अच्छा है।

यदि कहा जाय हि इस भाँति छुट्टी आप दे रहे हैं तो अकेले आप क्या कर लेंगे ? इस पर रावण कहते कि वैर मैंने बढ़ाया है। सो कुम्भकर्ण या मेघनाद या किसी और के बल पर नहीं बढ़ाया है। जो शत्रु चढ़ आया उसका उत्तर मैं दूँगा। मैंने वैर अपने बल के भरोसे बढ़ाया। इसीलिए वैर बढ़ाने में किसी की सम्मति मैंने नहीं ली। जिसको प्रसन्नतापूर्वक मेरा साथ देना हो तो वह चले नहीं तो घर बैठे रहे। मैं छुट्टी देता हूँ। रावण को अपने भुजबल का बड़ा गर्व है। यथा : मम भुज सागर बल जल पूरा। जहँ बूड़े बहु सुर नर सूरा। बीस पयोधि अगाध अपारा। को अस बीर जो पाइहि पारा।

अस कहि मरुत बेग रथु साजा। बाजे सकल जुझाऊ बाजा ॥
चले बीर सब अतुलित बली। जनु कज्जल कै आँधी चली ॥४॥
असगुन अमित होहिं तेहि काला। गनै न भुजबल गर्ब बिसाला ॥५॥

अर्थ : ऐसा कहकर उसने वायुवेगवाला रथ सजाया। सब जुझाऊ बाजा बजने लगे। बेतौल बलवाले वीर चले। जैसे काजल की आँधी बह उठी। उस समय असंख्य असगुन होने लगे। पर भुजबल का बड़ा भारी गर्व था। इसलिए वह उन्हें गिनता न था।

व्याख्या : आज सर्वोत्तम रथ जिसमें वायु के समान वेग है साजा गया। जिसमें उस पर सवार होकर सम्पूर्ण वानरी सेना में विचरण कर सके। रावण के रथारूढ़ होते ही सब जुझाऊ बाजा बजने लगे। युद्ध का बड़ा उत्साह है। पहिले चारो फाटक की लड़ाई में जुझाऊ बाजे बजे थे। पर बार बार पराभव से उत्साह जाता रहा। कुम्भकर्ण मेघनाद के युद्ध में बाजे न बजे। आज स्वयं लंकेश युद्ध के लिए चल रहे हैं। अतः जुझाऊ बाजे बजे।

सेना चल पड़ी। सम्राट् की सेना : शाही फौज है। इसमें छँटे हुए वीर हैं। जो देवसेना से युद्ध कर चुके हैं। इसलिए कवि अतुलितबली लिख रहे हैं। रणोत्साह विशेष है अतः बड़े वेग से सेना चली। सभी राक्षस काले हैं। इसलिए राक्षसी सेना की उपमा काजल की आँधी से दे रहे हैं। भविष्य के अनुकूल प्रकृति में परिवर्तन पहिले ही होने लगता है। इसलिए उस समय असंख्य अपशकुन हुए। रावण महा पण्डित थे। शकुन अपशकुन को उन्हें पूरी जानकारी थी। पर उन्हें अपने भुजबल का इतना अभिमान है कि वे समझते हैं कि अल्पबल लोगों पर ही परिस्थिति की प्रतिकूलता का प्रभाव पड़ता है। मेरे ऐसे बलवान् तो प्रतिकूल परिस्थिति को अनुकूल बना लेते हैं। यथा : सिरो गिरे सन्तत सुभ जाही। मुकुट गिरे कस असगुन ताही।

छं. अति गर्ब गनै न सगुन असगुन स्रवहिं आयुध हाथ ते।
भट गिरत रथ तें बाजिगज चिक्करत भाजहिं साथ ते ॥

गोमायु गीध करार खर रव स्वान बोलहिं अति घने ।
जनु काल दूत उलूक बोलहिं बचन परम भयावने ॥

अर्थ : अत्यन्त अभिमान से सगुन असगुन नहीं गिनता । हथियार हाथ से छूटे जाते हैं । वीर रथ से नीचे गिर पड़ते हैं । घोड़े हाथी चिग्घाड़ करके साथ छोड़कर भागते हैं । शृगाल और गीध अत्यन्त भयानक शब्द कर रहे हैं । कुत्ते बहुत से रो रहे हैं । काल के दूत की भाँति उल्लू बड़े भयानक शब्द कर रहे हैं ।

व्याख्या : रावण को इतना गर्व है कि जब उसे सगुन हुआ तो भी उसने कुछ न गिना । आज असगुन हो रहे हैं तो उन्हें भी नहीं गिनता । अपशकुन ऐसे स्पष्ट हो रहे हैं जो किसी को बिना खटके नहीं रह सकते । वीर युद्ध के लिए चल रहे हैं और हाथ से हथियार गिरा जाता है । ये क्या लड़ेंगे । रथ पर से रथी नीचे गिर पड़ते हैं । शत्रु के प्रहार पर ये कैसे जमेंगे । घोड़े हाथी बिना प्रहार के ही चिग्घाड़कर भागे जाते हैं । संग्राम भूमि में ये कैसे अड़ेंगे । शृगाल गीध मांसाहारी जन्तु भयानक शब्द करते हैं । मांस की प्राप्ति उन्हें सुलभ दिखायी पड़ रही है । कुत्ते असमय में रो रहे हैं । दिन में उल्लू परम भयावन शब्द करते हैं । उल्लू का शब्द भयावन होता ही है । पर वे रात को बोलते हैं । सो इस समय तो ऐसा शब्द कर रहे हैं कि मालूम होता है कि ये काल के दूत हैं । सेना की मृत्यु के लिए आह्वान कर रहे हैं ।

इस भाँति रावण के प्रयाण में कवि अपशकुन का होना दिखला रहे हैं । रामजी के प्रयाण में कह चुके हैं कि : हरखि राम तब कीन्ह पयाना । सगुन भये सुंदर सुभ नाना । बारात के प्रयाण के समय उन्हें गिना चुके हैं । इसलिए यहाँ नहीं गिनाया । रावण के प्रयाण के समय प्रधान प्रधान अपशकुन गिनाये गये ।

दो. ताहि कि संपति सगुन सुभ, सपनेहुँ मन बिस्राम ।
भूत द्रोह रत मोह बस, राम बिमुख रत काम ॥७८॥

अर्थ : जो भूत द्रोहरत हो मोहवश हो राम विमुख हो और काम में रत हो उसे क्या सम्पत्ति शुभ शकुन और स्वप्न में भी मन में विश्राम हो सकता है ।

व्याख्या : जो राम विमुख है । वही भूत द्रोहरत मोहवश और कामरत होता है । उसे सम्पत्ति शुभ शकुन और विश्राम हो नहीं सकता । यथा : राम बिमुख संपति प्रभुताई । जाइ रही पाई बिनु पाई । रामविरोध कुसल चह सठ हठ बस अति अग्य । जगदातमा प्रानपति रामा । तासु बिमुख किमि लह बिस्रामा ।

चलेउ निसाचर कटकु अपारा । चतुरंगिनी अनी बहु धारा ॥
बिबिध भाँति बाहन रथ जाना । बिपुल बरन पताक ध्वज नाना ॥१॥

अर्थ : राक्षसों की अपार सेना चली । चतुरङ्गिनी सेना अनेक प्रकार की पंक्तियों से व्यूढ़ थी । अनेक प्रकार के वाहन रथ और यान अनेक रङ्ग की ध्वजाएँ और पताके थे ।

व्याख्या : श्रावण की वर्षा समाप्त हुई। अब भादों आरम्भ हुआ। वर्षा घोर निसाचर रारी। पहिले कह आये हैं। जितने पदों में अभी तक युद्ध कह आये हैं उतने पदों में रावण युद्ध कहेंगे। राक्षसों की अपार सेना चल पड़ी। अपार इसलिए कह रहे हैं कि इस सेना का पार आज तक कोई नहीं पा सका था। सेना में रथ, हाथी, घोड़ा और पैदल हैं इसलिए चतुरङ्गिनी कहा। सेना व्यूहबद्ध है। बहुधारा इसलिए कहा कि ऐसी पण्डिताई से व्यूढ़ है कि जिधर से काम पड़े उधर से ही चोट कर सके। चलते ही पहिला असगुन हुआ। बीरों के हाथ से शस्त्र गिरने लगे। यथा : स्रवहिं आयुध हाथते।

पहिले पैदल सेना थी। उसके बाद सवार थे। कुछ राक्षस गर्धभ वृषभ आदि वाहनों पर भी थे। इसलिए विविध भाँति वाहन लिखते हैं। पीछे रथ थे तथा अन्य सवारियाँ थीं। रथों पर ध्वजा पताका रहता है। सो रथियों के रुचि के अनुसार उनके ध्वजा पताकाओं का रङ्ग था। इसलिए उनके विपुल वर्ण होने का वर्णन करते हैं। इनके चलने पर दूसरा असगुन हुआ। भट गिरहि रथते।

चले मत्त गज जूथ घनेरे। प्राबिट जलद मरुत जनु प्रेरे ॥
बरन बरन बिरदैत निकाया। समर सूर जानहिं बहु माया ॥२॥

अर्थ : मतवाले हाथियों के बहुत से समूह चले। मानो वायु के उड़ाये हुए बरसात के बादल हैं। अनेक वर्ण के विरुदवाले वीरों का समूह था। जो युद्ध में बड़े लड़ाके और बहुत सी माया जानते थे।

व्याख्या : तत्पश्चात् हाथियों की सेना चली। मालूम पड़ा कि भादों की घटा उमड़ आई है। बादल जड़ है। उनमें गति नहीं। इसलिए कहते हैं कि मरुत जनु प्रेरे। अब तीसरा अपशकुन हुआ। बाजि गज चिक्करहि भाजहिं साथ ते।

असुरों की भी अनेक जातियाँ होती हैं। यथा : काल का दौहृदा मौर्याः कालकेयास्तथाऽसुराः शतं कुलानि धौम्राणां निर्गच्छन्तु ममाज्ञया : सप्तशती। अथवा अनेकांग के ये सब बीर विरुदवाले थे। ये वाक् शूर नहीं शमशूर थे और विशेषता यह थी कि बहुत सी माया जानते थे। इनके चलने में चौथा अपशकुन हुआ। गोमायु गीध कराल खर रव स्वान बोलहिं अति घने। जनु काल दूत उलूक बोलहि बचन परम भयावने।

अति बिचित्र बाहनी बिराजी। बीर बसंत सेन जनु साजी ॥
चलत कटकु दिगसिंधुर डिगहीं। छुभित पयोधि कुधर डगमगहीं ॥३॥

अर्थ : अत्यन्त विचित्र सेना शोभायमान हुई। जैसे वीर बसन्त ने सेना सजाई हो। सेना के चलते हुए दिग्गज डगमगाते थे। समुद्र क्षुब्ध हो उठा और पहाड़ हिलने लगे।

व्याख्या : यद्यपि अति विकट सेना थी। परन्तु व्यूहबद्ध होने से और सर्वाङ्ग सम्पन्न होने से उसकी भी शोभा हो रही थी। अति विचित्र इसलिए कहा कि

कज्जल की आँधी सी होने पर भी सुशोभित है। इसीलिए उपमा देते हैं कि वीर वसन्त ने मानो सेना सजा रक्खी हो। वसन्तऋतु काम का सहायक है। उसकी सेना भी शृंगार रस के उद्दीपन का काम करती है। परन्तु यह सेना वीर वसन्त की है जो शोभायमान होकर वीर रस के उद्दीपन का काम करती है।

जब रामजी ने प्रयाण किया था उस समय का वर्णन करते हुए कवि ने कहा है : चिक्करहिं दिग्गज डोल महि गिरि लोल सागर खरभरे। लगभग वैसा ही वर्णन रावण के प्रयाण में भी कर रहे हैं। दिग्गज हिल रहे हैं। समुद्र क्षुब्ध हो रहा है और पहाड़ डगमगा रहे हैं। भाव यह कि यह प्रधान सेना : शाही फौज बड़ी भारी है। अभीतक यह बिल्कुल अछूती थी। इसके भार से पृथिवी कम्पमान है।

उठी रेनु रबि गयउ छपाई। मरुत थकित बसुधा अकुलाई ॥
पनव निसान घोर रव बाजहिं। प्रलय समय के घन जनु गाजहिं ॥४॥

अर्थ : धूलि उड़ी तो सूर्य छिप गये। वायु रुक गयो पृथिवी व्याकुल हो गयो। ढोल और डंकों का घोर शब्द हो रहा है मानो महाप्रलय के बादल गरज रहे हैं।

व्याख्या : चतुरङ्गिनी सेना जब चलती है तो आकाश में धूलि छा जाती है। यथा : नभ धूरि खगमृग भूरि भागे बिकल प्रभु आस्रम गये। धूरि पूरि नभमंडल रहा। राम बोलाइ अनुज सन कहा। लै जानकिहि जाहु गिरिकंदर। आवा निसिचर कटक भयंकर। यह सेना इतनी बड़ी थी कि ऐसी धूलि उठी कि रविमंडल का पता नहीं लग रहा है। रज के कण इतने अधिक हवा में भर गये कि वायु की गति मन्थर हो गयी। भाव यह कि आकाश से लेकर पृथिवी तक धूलि भर उठी। श्वास-प्रश्वास लेना कठिन हो गया। इससे कहते हैं : बसुधा अकुलाई लक्षणा से अर्थ करना पड़ेगा कि लोग व्याकुल हो उठे।

सेना में ढोल और डङ्के बज रहे हैं। उत्सव में ढोल डंके मधुर स्वर में बजाये जाते हैं पर यहाँ तो वीर रस के अनुकूल बजाये जा रहे हैं। अतः उनका ऐसा शब्द हो रहा है मानो महाप्रलय के बादल गरज रहे हैं। महाप्रलय अत्यन्त सन्निकट है। चारो फाटक की लड़ाई में लिखते हैं : बाजहिं ढोल निसान जुझाऊ। सुनि धुनि होइ भटन्ह मन चाऊ।

भेरि नफीरि बाज सहनाई। मारू राग सुभट सुखदाई ॥
केहरिनाद बीर सब करहीं। निज निज बल पौरुष उच्चरहीं ॥५॥

अर्थ : भेरी नफीरी और शहनाई बज रही है। मारू राग वीरों को सुख दे रहा है। बीर लोग सिंहनाद कर रहे हैं और अपना-अपना बल पौरुष उद्घोषित कर रहे हैं।

व्याख्या : भेरी नफीरी और शहनाई फूँक से बजनेवाले बाजे हैं। अतः इनमें राग बजते हैं। समयानुकूल यहाँ मारू राग बज रहा है जिसके सुनने से वीर को

सुख होता है। भाव यह कि कादरों का तो कलेजा दहल उठता है। यथा : बाजहिं भेरि नफीरि अपारा। सुनि कादर उर जाहिं दरारा।

मारू राग सुनने से जब वीरों को आनन्द हुआ तो वे लोग सिंहनाद करने लगे और दर्प से अपने बल पौरुष का उद्घोषण करने लगे जिससे जोश बढ़ चला। यथा : एकहिं एक बढ़ावहिं कर्षा। वीर सब करहीं कहने का भाव यह है कि रावण के आज्ञानुसार सेना में ऐसा कोई नहीं है जिसका मन रण सन्मुख क्षुब्ध हो।

कहै दसानन सुनहु सुभट्टा। मर्दहु भालु कपिन्ह के ठट्टा॥
हौं मारिहौं भूप दोउ भाई। अस कहि सनमुख फौज रेंगाई॥६॥
यह सुधि सकल कपिन्ह जब पाई। धाये करि रघुबीर दोहाई॥७॥

अर्थ : रावण ने कहा कि वीरो सुनो। तुम लोग बन्दर और भालुओं की भीड़ का मर्दन करो। दोनों भाई राजा को मैं मारूँगा। ऐसा कहकर सेना को सामने चलाया। यह समाचार जब बन्दरों ने पाया तो रामजी की दोहाई करते हुए दौड़े।

व्याख्या : जब रावण ने देखा कि सैनिकों में वीर रस भर गया। अब और आगे बढ़ने पर युद्ध आरम्भ होगा। तब कार्य विभाग की घोषणा करता हुआ बोला कि वीरो! तुम लोग अपना लक्ष्य भालु बन्दरों के वध पर रक्खो। तुम लोग एक-एक भालु बन्दर के झुण्डों के नाश में समर्थ हो। रामजी का नाम[1] नहीं लेता इसलिए कह रहा है कि दोनों भाई राजा जिन्होंने कुम्भकर्ण मेघनाद का वध किया उनकी चिन्ता छोड़ दो। उन दोनों को मैं अपना भाग कल्पित करता हूँ। उन दोनों को अकेले मैं करूँगा। ऐसी आज्ञा देकर फौज को आगे बढ़ाया।

जब बन्दरों को यह समाचार मिला कि स्वयं रावण बड़ी विशाल सेना लेकर लड़ने आ रहे हैं और सरकार दोनों भाइयों से स्वयं लड़ेंगे। राक्षसी सेना को बन्दरों के संहार के लिए आज्ञा दे दी है। तब उन लोगों ने तुरन्त समझ लिया कि इस अवसर पर उत्तर फाटक पर जो सेना भेजी गयी है उससे काम नहीं चल सकता। अतः प्रधान सेना के बन्दर लोग राजा रामचन्द्र की दोहाई देते दौड़े। यही दोहाई अन्त में लङ्का में फिरनेवाली है। यथा : नगर फिरी रघुवीर दोहाई। दौड़ने का भाव यह कि रास्ते ही में मिलकर स्वागत करना चाहिए।

छं.[2] धाए बिसाल कराल मरकट भालु काल समान ते।
मानहु सपक्ष उड़ाहिं भूधर बृंद नाना बान ते॥
नख दसन सैल महाद्रुमायुध सकल संक न मानहीं।
जयराम रावन मत्त गज मृगराज सुजस बखानहीं॥

---

१. आज भी रावणी सम्प्रदायवाले रामनगर को नामनगर कहते हैं।

२. हरिगीतिका छन्द है।

अर्थ : विशाल और कराल बन्दर और भालु दौड़े। वे काल के समान थे। मानो पक्ष के सहित पहाड़ों के समूह उड़ रहे हैं और वे अनेक रङ्ग के हैं। नख दांत पर्वत और बड़े-बड़े पेड़ ये ही उनके हथियार हैं और सभी निःशङ्क हैं। रावणरूपी मत्तगजराज के लिए सिंह : रामजी की जय हो ऐसा कहकर सुयश का वर्णन कर रहे हैं।

व्याख्या : यहां न कोई व्यूह है न ध्वजा पताका है न बाजा है न गज रथ तुरंग है न अस्त्र शस्त्र है फिर भी बन्दर भालु काल के समान कराल हैं और ऐसे विशाल हैं कि उनके दौड़ने से ऐसी शोभा हो रही है कि मानो अनेक रङ्ग के पहाड़ों को पंख मिल गया है और वे उड़े चले जाते हैं। हथियार के नाम से उन्हें नख है पर्वत हैं बड़े-बड़े पेड़ हैं फिर भी वे ऐसे सबल हैं कि ऐसी भयानक सेना का उन्हें कुछ भी परवाह नहीं है। राक्षस लोग अपना अपना बल पौरुष उद्घोषित करते हैं पर ये लोग रामयश का उद्घोष कर रहे हैं कि रावणरूपी मत्तगज के लिए मृगराज रामजी हैं उनकी जय हो। भाव यह कि इन लोगों ने भी कार्य विभाग कर लिया रावण को रामजी के भाग में कल्पना कर दिया और राक्षसी सेना का सामना करने स्वयं दौड़े।

दो. दुहु दिसि जय जयकार करि, निज निज जोरी जानि।
भिरे बीर इत रामहित, उत रावनहिं बखानि ॥७९॥

अर्थ : दोनों ओर से जय जयकार करके अपनी-अपनी जोड़ी जानकर इधर 'रामजी का और उधर रावण का बखान करके वीर भिड़ गये।

व्याख्या : दोनों सेनाओं की ओर से जय जयकार पहिले हुआ। अब अत्यन्त निकट आने पर भिड़ने का समय आ गया तब वीरों ने अपनी-अपनी जोड़ी तजबीज कर लिया दुर्बल पर टूट न पड़े। युद्धारम्भ के पहिले वीरों ने अपने-अपने स्वामी का बखान किया तब भिड़ गये। रणाङ्गन भर में जोड़ी से जोड़ी भिड़ गई। यथा : भिरे सकल जोरिहि सन जोरी। इत उत जयइच्छा नहिं थोरी। राम रावण की जोड़ी है। अतः सरकार उठ पड़े।

रावनु रथी बिरथ रघुबीरा। देखि बिभीषनु भएउ अधीरा ॥
अधिक प्रीति मन भा संदेहा। बंदि चरन कह सहित सनेहा ॥१॥

अर्थ : रावण रथ पर चढ़ा है और रघुवीर के पास रथ नहीं यह देखकर विभीषणजी अधीर हो उठे अधिक प्रीति होने से मन में सन्देह हुआ। चरण वन्दना करके स्नेह के साथ कहा।

व्याख्या : रुलानेवाले को रावण कहते हैं। दशानन ऐसे बलवान् अत्याचारी

---

१. यह लड़ाई उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र की वर्षा है।

थे कि उनका नाम ही रावण पड़ गया था। कवि कहते हैं कि एक तो स्वयं रावण तिस पर आज रथ पर चढ़ा हुआ है। पैदल ही प्रतिभट के खोज में दौड़ता था। यथा : रन मद मत्त फिरइ जग धावा। प्रति भट खोजत कतहुँ न पावा। आज तो रथ पर सवार है। उसका सामना कौन करेगा। यद्यपि रामजी भी रघुकुल में वीर हैं। युद्ध से हट नहीं सकते। पर पैदल हैं। इन्हें रथ नहीं। रथी पैदल का क्या जोड़ है? विभीषणजी यह देखकर अधीर हो उठे। जानते तो पहिले ही से थे कि यहाँ सेना में टुटही घोड़ियाँ भी किसी के पास नहीं। पर जानना और देखना दो बात है। रावण को देखकर धैर्य छूट गया। विभीषण युद्ध के मर्म को जानते हैं। रथ के सुभीते को समझते हैं। इसलिए वे ही अधीर हुए। बन्दर न हुए। क्योंकि उनमें पदाती रहकर ही युद्ध करने की चाल है। उन्हें रथ के सुभीते का पता ही नहीं। इसलिए अधीर भी नहीं हुए।

विभीषणजी को कभी रामजी के विषय में सन्देह नहीं था। ललकारकर रावण से कह दिया था : राम सत्य संकल्प प्रभु सभा काल बस तोरि। पर प्रेमी का मन पापशंकी होता है। विभीषणजी को अधिक स्नेह के कारण सन्देह उठ गया। अतः प्रेमी के साथ चरण वन्दना करके कहते हैं : बन्दि चरण से शिष्य की शुश्रूषा कहा।

नाथ न रथु नहि तन पदत्राना। केहि विधि जितब वीर बलवाना॥
सुनहु सखा कह कृपा निधाना। जेहि जय होइ सो स्यंदन आना॥२॥

अर्थ : नाथ को न तनत्राण : वर्म है न पदत्राण जूते हैं। किस विधि से वीर बलवान् को जीतेंगे। कृपानिधान ने कहा कि सखा सुनो। जिससे जीत होती है वह रथ ही दूसरा है।

व्याख्या : विभीषणजी कहते हैं कि सरकार के पास रथ नहीं और शत्रु के पास मरुत वेग रथ है। सरकार के पास तनत्राण वर्म नहीं है जो शरीर की रक्षा कर सके और न पैर में जूती है जो गिरे हुए शस्त्र के पैर में गड़ने से रक्षा कर सके। यदि कहिये कि बिना रथ के ही कुम्भकर्ण और मेघनाद को जीता तो उनमें से एक बलवान् और दूसरा वीर था। यह रावण तो वीर भी है और बलवान् भी है। इसके बराबर की सामग्री बिना हुए इसके जीतने की कोई विधि ही नहीं। अतः पहिले विधि बतला दीजिये तब जाइये। आप हम लोगों के नाथ हैं। ऐसी अवस्था में हम नहीं जाने दे सकते।

उत्तर देने में सरकार ने सखा कहकर सम्बोधन किया। भाव यह कि तुम सखा हो। रहस्य बतलाने के पात्र हो। यथा : भक्तोऽसि मे सखा चेति रहस्यं चैतदुत्तमम्। दूसरा कोई वीर होता तो चिढ़ जाता। ठीक युद्ध के समय तेजोवध की बात कहनेवाला शत्रु समझा जाता। परन्तु सरकार कृपानिधान हैं। विभीषण तो रावण के जय की विधि पूछते थे। सरकार ने उन्हें संसार के जय की विधि बतला दी। कहने लगे कि : मरुत वेग रथ से जय नहीं होता। जयप्रद रथ दूसरा

है। भाव यह कि वह रथ अब रावण के पास नहीं रह गया। तुम्हारे चले आने के पहिले कुछ टूटी फूटी अवस्था में था। जिससे उसने सुरासुर का विजय किया था। अब तो उसके पास रथ के दो चक्र शौर्य धैर्य तथा एक घोड़ा बल मात्र रह गया। उस रथ का शेष भाग तो तुम्हारे गुणगण थे। यथा : तुम सारिखे सन्त प्रिय मोरे। धरहुँ देह नहिं आन निहोरे। तुम्हारे त्याग से उसका विजय रथ ही टूट गया। यथा : रावन जबहिं बिभीषन त्यागा। भयउ बिभव बिनु तबहिं अभागा। अब उस जयप्रद रथ का वर्णन करते हैं।

सौरज धीरज तेहि रथ चाका। सत्य सील दृढ़ ध्वजा पताका ॥
बल बिबेक दम परहित घोरे। छमा कृपा समता रजु जोरे ॥३॥

अर्थ : १ शौर्य और २ धैर्य उस रथ के पहिये हैं। ३ सत्य और ४ शील उसके दृढ़ ध्वजापताका हैं। ५ बल ६ विवेक ७ दम और परहित ८ घोड़े हैं। क्षमा कृपा और समतारूपी ९ रस्सी से जोड़े हुए हैं।

व्याख्या : सरकार कहते हैं कि उस रथ के काष्ठ लोहमय चक्र नहीं होते। उसके चक्र हैं शौर्य और धैर्य। जैसे बिना चक्र के इस रथ में गति नहीं होती उसी भाँति बिना शौर्य धैर्य के उस रथ में गति नहीं होती। जिसे शौर्य धैर्य नहीं उसके भाग्य में विजय नहीं है। कादर को परलोक की प्राप्ति भी नहीं होती। ध्वजापताका का दर्शन दूर से ही होता है। उनका बना रहना रथी के सकुशल होने का चिह्न है। सो उस रथ में वस्त्र धातुमय ध्वजापताका नहीं लगते। सत्य और शील उस रथ का ध्वजा और पताका है। यदि सत्य शील बना हुआ है तो उस रथ का रथी सुरक्षित है। इसलिए दृढ़ ध्वजापताका कहा। अथवा यह ध्वजापताका तो शत्रु के काटे कट जाता है। पर सत्य शील ऐसा दृढ़ ध्वजापताका है जिसे शत्रु काट नहीं सकता और जो रथ दर्शन से पूर्व ही दृष्टिगोचर होता है। यथा : राम सत्य संकल्प प्रभु सभा कालबस तोर।

प्राचीनकाल के रथों में चक्र तो दो रहते थे। पर घोड़े चार जोते जाते थे। सो उस रथ के घोड़े भी दूसरे हैं। उन घोड़ों का नाम है बल, विवेक, दम और परोपकार। रथ के घोड़ों की भाँति इन्हें परोपकारक तथा सुशिक्षित होना चाहिए। बिना इसके शौर्य और धैर्यरूपी चक्र में गति नहीं आती। केवल बलरूपी घोड़ा भी शौर्य और धैर्यरूपी चक्र को गति दे सकता है। परन्तु विवेक दम और परहित का सहयोग न होने से वह शौर्य और धैर्य का विनियोग महा अनर्थ में करेगा। जिस भाँति रावण के शौर्य और धैर्य का विनियोग हो रहा है।

इन घोड़ों को जोड़ने के लिए रस्सी चाहिए तो क्षमा कृपा समता रस्सी है। क्षमा कृपा और समतारूपी लड़ियों को बटकर रस्सी बनी है। वही बल विवेक दम और परहित रूपी घोड़ों को एक में जोड़ने में समर्थ है।

ईस भजन सारथी सुजाना। बिरति चर्म संतोष कृपाना ॥
दान परसु बुधि सक्ति प्रचंडा। बर बिग्यान कठिन कोदंडा ॥४॥

अर्थ : १०. महादेव की सेवा सुजान सारथी है। ११. विरति ढाल है और १२. सन्तोष तलवार है। १३. दान गँड़ासा है और १४. बुद्धि प्रचण्ड शक्ति है और श्रेष्ठ १५. विज्ञान ही कठिन धनुष है।

व्याख्या : यह सब होने पर भी सुजान सारथी होना चाहिए। क्योंकि सारथी ही रथ को लक्ष्य तक पहुँचाता है। सब विघ्नों का अतिक्रमण करता है। घोड़ों का नियमन करता है। रथी की रक्षा करता है। सो उस रथ में ईशभजन ही सुजान सारथी है। वही धर्म रथ को लक्ष्य की ओर ले जायगा। समस्त विघ्न बाधाओं से रथ को बचाता हुआ घोड़ों में सामञ्जस्य बनाये रखेगा और रथी की सब प्रकार से रक्षा करेगा। उस रथ का बागडोर ईश भजन के हाथ में है। यथा : औरउ एक गुपुत मत सबहि कहौं कर जोरि। संकर भजन बिना नर भक्ति न पावइ मोरि। अब रथ का रूपक पूरा हुआ। पर रथ दो प्रकार का होता है। एक विहार रथ और दूसरा युद्ध रथ। युद्ध रथ सब शास्त्रास्त्र से सुसज्जित रहता है। क्योंकि सब कुछ होने पर भी युद्ध तो रथी को ही करना है। यदि रथ पर सब उपकरण न रहेंगे तो रथी युद्ध कैसे करेगा ? विजय रथ तो स्पष्ट ही युद्ध के लिए है। अतः उसके उपकरणों का वर्णन करते हैं।

युद्धरथ में ढाल, तलवार, परशु, शक्ति, धनुष, तरकस, बाण और कवच ये सब यथास्थान रक्खे रहते हैं। यहाँ वैराग्य ही ढाल है। यथा : वैराग्यमेवाभयम् वैराग्य ही अभय है। क्योंकि काम क्रोधादिक शत्रुओं की चोट को वैराग्य ही रोकता है। अतः रथी की रक्षा के लिए पहिले वैराग्यरूपी ढाल ही कहा। युद्ध में केवल बचाने से ही काम नहीं चलता। शत्रु के वध के लिए अस्त्र शस्त्र चाहिए। इसलिए कहते हैं कि सन्तोष तलवार है। अत्यन्त निकट आये हुए शत्रु का वध तलवार से ही होता है। जो कुछ प्राप्त है उसी में सन्तोष करना। यह ऐसी पैनी तलवार है कि इसके काट से काम क्रोधादि शत्रु बच नहीं सकते। यथा : बिनु संतोष न लाम नसाहीं। जिमि लोभहिं सोखै सतोषा। नहि सन्तोष त पुनि कछु कहहू।

जो शत्रु तलवार की पहुँच के बाहर हैं उन पर परशु का वार होना चाहिए। यहाँ दान ही परशु है। यथा : दानं दुर्गतिनाशनम्। दुर्गति सन्तोष के पहुँच के बाहर की वस्तु है। इसका नाशरूपी परशु से करना चाहिए। परन्तु जाड्य : अज्ञान दानरूपी परशु के भी पहुँच के बाहर को वस्तु है। उसके नाश के लिए बुद्धि प्रचण्ड शक्ति है। बुद्धि को बरछी कहने का भाव यह है कि उसके अग्र भाग में लोहा लगा रहता है। उसी भाँति धीवृत्ति के अग्र भाग में चिदाभास रहता है। उसी को ज्ञान कहते हैं। जो जाड्य का नाश करता है। यथा : चिदाभासान्तधीवृत्तिर्ज्ञानं लोहान्त कुन्तवत् : पं० द०। इससे परोक्ष आत्मज्ञान हो सकता है।

परन्तु संसार के मूल अविद्या तक उस ज्ञान की भी पहुँच नहीं है। अतः उसके लिए वर विज्ञानरूपी कठिन धनुष की आवश्यकता है। अपरोक्ष ज्ञान ही वर विज्ञान है। यही संसार के कारणभूत अज्ञान का नाश करता है। यथा : अपरोक्षात्मविज्ञानं

शाब्दं देशिकपूर्वकम्। संसारकारणाज्ञानतमसश्चण्डभास्करः। पं० द०। अपरोक्ष आत्मविज्ञान गुरुमुख से पाया हुआ संसार के कारण अज्ञानरूपी अन्धकार के लिए प्रचण्ड सूर्य है। यह अपरोक्षज्ञान अत्यन्त दृढ़ होना चाहिए। अतः वर विज्ञान कठिन को दंडा कहा।

अमल अचल मन त्रोन समाना। सम जम नियम सिलीमुख नाना ॥
कवच अभेद बिप्र गुरुपूजा। एहि सम बिजय उपाय न दूजा ॥५॥
सखा धर्ममय अस रथ जाके। जीतन कहँ न कतहुँ रिपु ताके ॥६॥

अर्थ : १६. निर्मल और निश्चल मन तरकस के समान है और १७. शम यम नियम अनेक प्रकार के बाण हैं। ब्राह्मण और गुरु की पूजा १८. अभेद्य कवच है। इसके समान विजय का दूसरा उपाय नहीं है। हे सखे! जिसके पास ऐसा धर्ममय रथ हो उसके लिए जीतने को कहीं शत्रु नहीं है।

व्याख्या : वासनाहीन तथा स्थिरीकृत मन ही तरकस है, उसीमें शम-यम-नियमरूपी बाणों के धारण की क्षमता है। चञ्चल मन में इसकी योग्यता ही नहीं होती। शम शान्ति को कहते हैं। यह मोह के जड़ को जला देती है। यथा : जहाँ शान्ति सद्गुरु की हई। तहाँ मोह की जरि जर गई। यम पाँच हैं : ब्रह्मचर्य अहिंसा सत्य अस्तेय और अपरिग्रह। नियम भी पाँच हैं। शौच सन्तोष तप स्वाध्याय और ईश्वरप्रणिधान। इन सब के अलग अलग फल कहे गये हैं। ब्रह्मचर्य से वीर्य लाभ होता है। अहिंसा से उसके पास में वैर त्याग हो जाता है। अस्तेय से सर्वरत्नोपस्थान होता है। अपरिग्रह से जन्मकथन्ता का सम्बोधन होता है। शौच से अपने शरीर में घृणा और दूसरे से असंसर्ग होता है। सन्तोष से अत्युत्तम सुख लाभ होता है। तप से कार्य सिद्धि होती है। स्वाध्याय से इष्ट देवता संप्रयोग होता है और ईश्वरप्रणिधान से समाधि सिद्धि होती है। परन्तु ज्ञानपूर्वक इनके अनुष्ठान से प्रकाश के आवरण का नाश होता है। सत्य से ख्याति भी होती है और सन्तोष से कामादि का नाश भी होता है। अतः सत्य को ध्वजा और सन्तोष को तलवार भी कहा गया है। अतः अङ्ग की गणना में इन्हें दो बार नहीं गिना गया।

इस पर भी युद्ध में यदि शत्रु की चोट आ पहुँचे तो उसकी रक्षा के लिए विप्र गुरु पूजा रूपी अभेद्य कवच है जो किसी के काटे नहीं कट सकता। इस कवच को जो धारण करता है वह सर्वथा शत्रु के प्रहार से निर्भय हो जाता है। विप्र की पूजा कवच है और विप्र गुरु पूजा अभेद्य कवच है। विजय के उपाय तो और भी दूसरे हैं पर इसके समान दूसरा कोई उपाय नहीं है। किसी उपाय से इस लोक में जय की प्राप्ति होती है और किसी उपाय से परलोक में जय की प्राप्ति होती है। परन्तु इससे दोनों लोकों का जय होता है। काष्ठमय रथ से क्या होगा! इस धर्ममय रथ के पास होने से जीतने के लिए कहीं शत्रु ही नहीं होते। सब शत्रु जीते ही जिताये हैं। सखा सम्बोधन का भाव ही यही है कि तुम्हें दैवी सम्पत् की प्राप्ति है।

तुम पुलस्त्यवंशोचित स्वधर्म पर आरूढ़ हो। स्वधर्म ही धर्ममय रथ का ढाँचा है। उसे दृढ़ करो। अठारह अंगों से युक्त करो। यथा : चलहि स्वधर्म निरत स्रुति नीती। नीति भी यही है कि इष्टं धर्मेण योजयेत्। अपने प्रिय को धर्म में लगा देना चाहिए। लक्ष्मणजी ने सखा निषादराज को धर्म में लगाया। यथा : सखा परम परमारथ एहू। मन क्रम वचन राम पद नेहू। रामजी ने सखा विभीषण को इस अठारह अंगवाले उपदेश द्वारा धर्ममें लगाया। जिस भाँति कृष्ण भगवान् ने अर्जुन को अठारह अध्यायवाली गीता द्वारा धर्ममें लगाया।

दो. महा अजय संसार रिपु, जीत सकै सो बीर।
जाके अस रथ होइ दृढ़, सुनहु सखा मतिधीर ॥८०॥

अर्थ : यह संसार रूपी शत्रु बड़ा अजय है। इसको वही वीर जीत सकता है। जिसके पास ऐसा दृढ़ रथ हो। हे मतिधीर सखा ! सुनो।

व्याख्या : यह संसार बन्धन का कारण है इसलिए शत्रु है। सारा दुःख इसी के कारण से भोगना पड़ता है। यथा : तब से जीव भयेउ संसारी। छूट न ग्रन्थि न होइ सुखारी। और यह महा अजय है। अनादि काल से प्राणी दुःख उठा रहा है पर इससे छूट नहीं सकता। जिन्होंने इन्द्रादिक को जीता वे भी इसके जीतने में समर्थ नहीं हुए। इसे तो वही जीत सकता है जिसके पास ऐसा रथ हो और वह हलचल न हो खूब दृढ हो। फिर भी रथी को वीर होना चाहिए।

रावण अजय है पर संसाररिपु महा अजय है। जब वह इस अठारह अंगवाले धर्ममय रथ से जीता जा सकता है तो रावण की बात ही क्या है ? वह तो कामादिक का दास है। सखा सम्बोधन से उपक्रम उसी से अभ्यास और उसी से उपसंहार करते हैं। भाव यह कि यह बड़े हित की बात है। निर्गलितार्थ यह कि तुम चिन्ता न करो। रावण के पास यदि मारुतवेग रथ है तो मेरे पास धर्ममय रथ है। शौर्य यथा : जौ नर तात तदपि अति सूरा। धैर्य यथा : जौ नहि फिरैं धीर दोउ भाई। सत्यसील यथा : सत्यसंध दृढ़ ब्रत रघुराई। बल यथा : देखि राम बल पौरुष भारी। विवेक यथा : प्रभु करुणामय परम बिबेकी। दम यथा : राम पुनीत बिषय रस रूखे। परहित यथा : बिप्र धेनु सुर संत हित लीन्ह मनुज अवतार। क्षमा यथा : सब अपराध छमिहि प्रभु तोरा। कृपा यथा : को कृपाल रघुबीर सम। समता यथा : जद्यपि राम सीम समता की। ईश भजन यथा : पूजि पारथिव नायउ माथा। विरति यथा : नव गयंद रघुबीर मन राज अलान समान। छूटि जानि बन गमन सुनि उर अनंद अधिकान। सन्तोष यथा : भरत प्रान प्रिय पावहि राजू। बिधि सब बिधि मोहि सम्मुख आजू। दान यथा : जो संपति सिव रावनहि दीन्ह दिये दसमाथ। सो संपदा बिभीषनहि सकुचि दीन्ह रघुनाथ। बुद्धि यथा : राम तेज बल बुधि बिपुलाई। सेष सहस सत सकहिं न गाई। विज्ञान यथा : विज्ञानधामावुभौ। शम यम नियम यथा : राम पुनीत बिषय रस रूखे। तथा : भये राम सब बिधि सब लायक। विप्रपद पूजा यथा : बिप्र चरन पंकज

सिर नावा। गुरुपद पूजा यथा : गुरुपद कमल पलोटत प्रीते। युद्धोपस्थिति का समय ही संशयोच्छेदक ज्ञान के उपदेश के लिए उपयुक्त समय है।

दो. सुनि प्रभु बचन बिभीषनु, हरषि गहे पदकंज।
एहि मिस मोहि उपदेसेहु, राम कृपा सुख पुंज ॥८०क॥

अर्थ : विभीषण ने प्रभु का वचन सुनकर हर्षित होकर चरण कमल पकड़ लिया। समझा : कि इस व्याज से कृपा तथा आनन्द की राशि रामजी ने मुझे उपदेश किया।

व्याख्या : विभीषण अधीर हो उठे थे। सो प्रभु के वचन सुनकर हर्षित हो गये। चरण कमल को पकड़ लिया। इससे शिष्य की कृतकृत्यता दिखलायी। रामजी कृपा की राशि हैं। मैंने रावण के जीतने की विधि पूछा सो उसे बतलाते हुए सरकार ने मुझे संसार सागर सन्तरण का उपाय बतला दिया। कृपा निधान हैं : उत्तर के व्याज से मुझे उपदेश दिया। आनन्द की राशि हैं : मेरे दुःख को दूर करके आनन्दित कर दिया।

दो. उत पचार दसकंधर, इत अंगद हनुमान।
लरत निसाचर भालुकपि, करि निजनिज प्रभु आन ॥८०ख॥

अर्थ : उधर रावण के वीर ललकारते थे और इधर अङ्गद हनुमान् ललकारते थे और राक्षस तथा भालु बन्दर अपने अपने मालिक की दोहाई देकर लड़ रहे थे।

व्याख्या : उत अर्थात् विरोधी पक्ष में रावण के सुभट लोग अपनी सेना के उत्साह वर्धन के लिए ललकारते हैं और इत अर्थात् अपने पक्ष में अङ्गद और हनुमान् उत्साह वर्धन कर रहे हैं। दसकंठभट-पाठ में यदि भट शब्द को दसकंठ का विशेषण मान लिया तो यह अर्थ करना पड़ेगा कि उधर से वीर दसकंठ ललकार रहा था। दसकन्धर शब्द हेतु गर्भ है। भाव यह कि दसो कण्ठ से ललकारता है। इस समय अपने सेना का सेनापतित्व स्वयं रावण कर रहा है क्योंकि उसके प्रधान सेनापति सब मारे गये हैं और इधर प्रधान सेनापति सब बचे हैं। इसलिए अङ्गद हनुमान् सेना का उत्साह वर्धन कर रहे हैं। दोनों ओर की सेना अपने अपने प्रभुओं की दोहाई देकर उनके लिए प्राण निछावर कर रही हैं।

सुर ब्रह्मादि सिद्ध मुनि नाना। देखत रन नभ चढ़े बिमाना ॥
हमहू उमा रहे तेहि संगा। देखत रामचरित रनरंगा ॥१॥

अर्थ : ब्रह्मादि देवता और अनेक सिद्ध मुनि विमान पर चढ़े हुए थे। हे उमा ! मैं भी उसी साथ में था और रण रङ्गवाला रामचरित देख रहा था।

व्याख्या : बड़ा भारी युद्ध हो रहा था। अतः ब्रह्मादि देवता सिद्ध मुनि लोग जिस भाँति यज्ञों के देखने के लिए आते हैं उसी भाँति आये थे। शङ्कर भगवान् कहते हैं कि मैं भी उसी समाज में था। यह कहने का भाव यह है कि तुम यह न समझना

कि उस समय १०८७ वर्ष की समाधि लगाये में बैठा था। इसलिए वहाँ उपस्थित नहीं था। एक शरीर से समाधि लगी थी और दूसरे शरीर से जिस भाँति सब यज्ञों में उपस्थित होता था : सब भक्तों को उनकी पूजा ग्रहण करके अनुगृहीत करता था उसी भाँति उस युद्ध यज्ञ में उपस्थित था। बड़ा भारी लाभ तो वहाँ यह था कि सरकार युद्ध में कैसा चरित करते हैं यह देखने का अवसर मिला था। उसे देखने के लिए रामचरित रसिक सभी देवगण सिद्धगण मुनिगण विमानों पर चढ़कर आये थे। क्योंकि उसी भाँति युद्ध का पूरा दृश्य दृष्टिगोचर होता था। उमा : सम्बोधन का भाव यह कि तुम उस समय सती शरीर से कैलास में थी। रामरावणयोर्युद्ध रामरावणयोरिव।

सुभट समर रस दुहु दिसि माते। कपि जयसील राम बल ताते ॥
एक एक सन भिरहिं प्रचारहिं। एकन्ह एक मर्दि महि पारहिं ॥२॥

अर्थ : दोनों ओर वीर रणरस में मत्त हो रहे थे। पर जीत बन्दरों की होती थी। क्योंकि उन्हें रामजी का बल था। एक एक से भिड़ते थे और ललकारते थे और एक दूसरे का मर्दन करके पृथिवी पर फेंक देते थे।

व्याख्या : वीर लोगों को युद्ध का चाव तो बाजे की ध्वनि सुनकर ही हो उठा था। इस समय तो वे रणमद से मत्त हो रहे थे। रण में वीरों को नशा सा चढ़ जाता है। वे अपने होश में नहीं रहते। गहरा चोट खाकर शत्रु की प्रशंसा करते हैं। मनस्विनामिव सत्संप्रहारः। यथा : कपि बल बिपुल सराहन लागा। सो दोनों ओर के वीर रणमदमत्त होकर युद्ध कर रहे हैं। पर जीत बन्दरों की होती है। क्योंकि उन्हें रामजी का बल है। रामो राक्षसमर्दनः। श्रुति में रामनाम की यह व्युत्पत्ति भी दी हुई है। राम कृपा कपि दल बल बाढ़ा। जिमि तृन पाइ लाग अति डाढ़ा। अनेक प्रकार से युद्ध हो रहा है। एक दूसरे से भिड़ते हैं और दूसरे को ललकारते हैं कि चलाओ चोट। एक दूसरे को आटे की भाँति मर्दन करके उसे एक पिण्ड की भाँति बनाकर पृथिवी पर डाल देते हैं।

मारहिं काटहिं धरहिं पछारहिं। सीस तोरि सीसन्ह सन मारहिं ॥
उदर बिदारहिं भुजा उपारहिं। गहि पद अवनि पटकि भट डारहिं ॥३॥

अर्थ : मारते हैं। काटते हैं। पृथिवी पर पछाड़ देते हैं। सिर तोड़कर सिरों से मारते हैं। पेट फाड़ते हैं। भुजा उखाड़ते हैं। पैर पकड़कर पृथिवी पर पटक देते हैं और डाँटते हैं।

व्याख्या : दाँत से काटते हैं। पेड़ पत्थर से मारते पूँछ में लपेटकर पटक देते हैं। यहाँ पर राक्षसों की युद्ध विधि का वर्णन नहीं करते हैं क्योंकि वे अस्त्र शस्त्रादि साधन से सम्पन्न हैं। वर्णन तो करना है बन्दरों के युद्ध विधि का। जिनके पास युद्ध का कोई साधन नहीं है और जीत रहे हैं। रामबल दिखलाते हुए कहते हैं कि फल तोड़ने की भाँति राक्षसों के सिरों को तोड़ लेते हैं और उन्हीं सिरों को लेकर दूसरे

पर प्रहार करते हैं। नख से पेट फाड़ डालते हैं। बल के उत्कर्ष से भुजा उखाड़ लेते हैं। हाथ से पैर पकड़कर पृथिवी पर पटक देते हैं और डाँटते हैं कि फिर लड़ोगे।

निसिचर भट महि गाड़हिं भालू। ऊपर ढारि देहि बहु बालू॥
बीर बलीमुख जुद्ध बिरुद्धे। देखिअत बिपुल काल जनु क्रुद्धे॥४॥

अर्थ : राक्षस वीरों को भालू पृथिवी में गाड़ देते थे और उनके ऊपर बालू की ढेरी लगा देते थे। वीर वानर गण युद्ध में विरुद्ध ऐसे दिखाई पड़ते हैं मानो बहुत से क्रुद्ध काल हैं।

व्याख्या : भालू अपने भोजन का बन्दोबस्त करते हैं। क्योंकि ये माँस खाते हैं। अतः सवेरे कलेवा के लिए निसिचर भट को पृथ्वी में गाड़ देते हैं और निशान के लिए उस पर बालू का टीला बना देते हैं। रावण ने जो जो अत्याचार किये थे सबका बदला हनुमान्‌जी ने फेरा। रावण : जेहि जेहि देस धेनु द्विज पावहिं। नगर ग्राम पुर आग लगावहिं। हनुमान्‌जी : उलटि पलटि कपि लंका जारी। कूदि परा पुनि सिंधु मझारी। रावण : गर्जंत गर्भ स्रवहिं सुर रवनी। हनुमान्‌जी : गर्भ स्रवहिं सुनि निसिचर नारी। रावण : देइ देवतन्ह गारि प्रचारी। हनुमान्‌जी : बार बार प्रचार हनुमाना। रावण : क्रोधवंत तब रावन लीन्हेसि रथ बैठाइ। हनुमान्‌जी : धरि केस नारि निकारि बाहर तेति दीन पुकारहीं। इत्यादि। परन्तु निसिचर निकर सकल मुनि खाए। इस बात का बदला हनुमान्‌जी नहीं ले सके थे। वह बदला भालु चुका रहे हैं। राक्षसों को खाते हैं और दूसरे दिन के कलेवा के लिए पृथिवी में गाड़कर उनके ऊपर बालू का टीला बना देते थे।

छं.[1] क्रुद्धे कृतांत समान कपि तनु स्रवत सोनित राजहीं।
मर्दहिं निसाचर कटकु भट बलवंत घन जिमि गाजहीं॥
मारहिं चपेटन्हि डाँटि दातन्ह काटि लातन्ह मीजहीं।
चिक्करहिं मर्कट भालु छल बल करहिं जेहि खल छीजहीं॥
धरि गाल फारहिं उर बिदारहिं गल अंतावरि मेलहीं।
प्रहलाद पति जनु बिबिध तन धरि समर अंगनि खेलहीं॥
धरु मारु काटु पछारु घोर गिरा गगन महि भरि रही।
जय राम जो तृन ते कुलिस कर कुलिस ते कर तृन सही॥

अर्थ : काल के समान बन्दर क्रुद्ध हैं। उनके शरीर से रक्त बह रहा है। उससे उनकी शोभा हो रही है। राक्षसी सेना के वीरों का मर्दन करते हैं और वे बलवान् बादल की भाँति सिंहनाद करते हैं। चपेटा मारते हैं। दाँत से काट लेते हैं और पैरों

---

१. यह हरिगीतिका छन्द है।

से रौंद देते हैं। बन्दर भालू चीत्कार करते हैं और ऐसा छलबल करते हैं जिससे खल मारे जाते हैं। पकड़कर गाल फाड़ते हैं। छाती चीर डालते हैं। आँतों को गले में पहन लेते हैं। मानो नृसिंह भगवान् अनेक रूप धारण करके रणाङ्गण में क्रीड़ा कर रहे हैं। पकड़ो मारो काटो पछाड़ो : यही ध्वनि आकाश और पृथिवी में भर रही है। रामजी की जय हो। जो तृण को वज्र और वज्र को तृण निश्चय करके कर देते हैं।

व्याख्या : काल बीभत्स रस के अधिष्ठाता हैं। क्रुद्ध बन्दरों की उपमा काल से दी है। अतः यहाँ बीभत्स दृश्य का वर्णन करते हैं। राक्षसों के शस्त्राघात से बन्दरों के शरीर से रक्तस्राव हो रहा है। रक्तस्राव से वीरों की शोभा अधिक बढ़ जाती है। राक्षसों के शस्त्राघात से बन्दर पीड़ित नहीं हैं। क्रुद्ध हैं। अतः राक्षसी सेना का मर्दन कर रहे हैं। बन्दर होकर सिंहनाद कर रहे हैं। क्योंकि रामकृपा से बल बढ़ा हुआ है। हाथ से राक्षसों को चपेटा मारते हैं। दाँतों से काट लेते हैं और लातों से रौंद डालते हैं। बन्दर भालु चीत्कार करते हैं और मायावी राक्षसों के साथ ऐसा छलबल करते हैं जिसमें वे मारे जायँ। व्रजन्ति ते मूढधियः पराभवं भवन्ति मायाविषु ये न मायिनः। वे बेवकूफ हार जाते हैं जो कपटियों के साथ कपट नहीं करते। अतः बन्दर लोग उन मायावियों के साथ छलबल से युद्ध करते हैं।

युद्ध करते करते रणरस भी बढ़ा और बल भी बढ़ा। तब तो एक एक बन्दर भगवान् नृसिंह की प्रतिमूर्ति से दिखाई पड़ने लगे। वे नखों से राक्षसों का गाल फाड़ डालते हैं। कलेजा चीरकर आँत निकाल लेते हैं और उसे माला की भाँति पहन लेते हैं। मानों नृसिंह भगवान् का आवेश उनमें आगया है। युद्ध में घोर शब्द हो रहा है। पृथिवी मण्डल से आकाश मण्डल तक पकड़ो मारो काटो पछाड़ो यही ध्वनि व्याप्त हो रही है। कवि कहते हैं कि रामजी की जय हो। जिनका यह बाना[1] है : तृन से कुलिस कुलिस तृन करई। तृण को वज्र और वज्र को तृण बनाया करते हैं। दुर्बल के हाथ से सबल का पराजय कराते हैं। कहाँ राक्षस वज्र के तुल्य उनके सामने बन्दर भालू तृण के समान हैं। सो आज वे रामकृपा से वज्र हो गये और राक्षस तृण हो गये। बन्दरों के हाथ से राक्षस मारे जा रहे हैं।

दो. निजदल बिचलत देखेसि, बीस भुजा दस चाप।
रथ चढ़ि चलेउ दसानन, फिरहु फिरहु करि दाप ॥८१॥

अर्थ : अपनी सेना को विचलित देखकर बीस भुजा और दस धनुषवाले दसानन रथ पर चढ़कर दर्प के साथ लौटो लौटो : कहते हुए चले।

व्याख्या : बन्दरों ने ऐसा भयङ्कर युद्ध किया कि राक्षसी सेना के पैर उखड़

---

१. अम्भोधिः स्थलतां स्थलं जलधिताम् धूलीलवः शैलताम् शैलो मृत्कणतां तृणं कुलिशतां वज्रं तृणक्षीणताम्। अग्निः शीतलतां हिमो दहनतामायाति यस्येच्छया लीलादुर्ललिताद्भुतव्यसनिने तस्मै नमो ब्रह्मणे।

गये। जब रावण ने यह देखा तो उसने बीसों भुजाओं से काम लेने के लिए दस धनुष सँभाले। दसों दिसाओं में दृष्टि रखने के लिए दसमुख हैं ही। अब दसों दिशा में प्रहार करने के लिए दस धनुष भी उठाये। रथ पर तो पहिले से ही सवार थे। फिर भी कवि उसकी प्रबलता द्योतित करने के लिए कहते हैं: रथ चढ़ि चलेउ दसानन। रावन ने पहिले ही आज्ञा दे दी थी: रन सनमुख जाकर मन डोला। सो अबहीं बरु जाउ पराई। संयुग बिमुख भये न भलाई। फिर भी सेना भाग चली। इस पर रावण ने क्रोध नहीं किया। दर्प करके कहता है कि भागो मत। लौटो देखो कि भालु कपिठट्ट का कैसे मर्दन किया जाता है। मैंने अपनी भुजा के बल के भरोसे बैर बढ़ाया है। सो देखा मेरे भुजा का बल। मैं बानरी सेना को भी मारूँगा और उन दोनों तपस्वियों को भी।

धाएउ परम क्रुद्ध दसकंधर। सनमुख चले हूह दै बंदर॥
गहिकर पादप उपल पहारा। डारेन्हि तापर एकहिं बारा॥१॥

अर्थ: रावण अत्यन्त क्रुद्ध होकर दौड़े। बन्दर लोग हूह करके सामने आये और पेड़ पत्थर और पहाड़ हाथों में लेकर उसके ऊपर एक साथ फेंकने लगे।

व्याख्या: रावण ने अपनी सेना को विचलित देखकर परम क्रोध के साथ रथ दौड़ाया। सेना का निरीक्षण पीछे से करता था। सो आगे आकर युद्ध करने के लिए वेग से रथ चलाया। बन्दर ऐसे ढीठ हैं कि रावण को आते देखकर उन भागते हुओं का पीछा छोड़ा और उसका सामना करने के लिए हूह देकर चले। जिस भाँति कुम्भकर्ण से युद्ध किया था उसी भाँति इससे युद्ध करना ठानकर पेड़ पत्थर पहाड़ लेकर सब एक ही साथ उसके ऊपर फेंकने लगे। बन्दरों ने देख लिया कि यह भी एक के मान का नहीं है। क्योंकि यह भी पर्वताकार है। यथा: अंगद दीख दसानन बैसे। सहित प्रान कज्जल गिरि जैसे।

लागहिं सैल बज्र तनु तासू। खंड खंड होइ फूटहिं आसू॥
चला न अचल रहा रथ रोपी। रन दुर्मद रावन अति कोपी॥२॥

अर्थ: उसके वज्र शरीर में पहाड़ टक्कर खाकर शीघ्र टुकड़े टुकड़े होकर गिर जाते हैं। वह दुर्मद रावण बड़ा क्रोधी था। वह रथ को रोककर अचल हो गया। चलायमान न हुआ।

व्याख्या: चाहे वज्र पर पत्थर गिरे चाहे वज्र पत्थर पर गिरे बात एक ही है। पत्थर ही टूटेंगे। वज्र का कुछ नहीं बिगड़ सकता। सो जितने पत्थर पहाड़ बड़े वेग से बन्दरों ने फेंके वे रावण के वज्र से शरीर में टक्कर खाकर टुकड़े टुकड़े हो गये। रावण ने बन्दर भालुओं को आते देखकर रथ रोक दिया कि जिनसे संघर्ष के लिए रथ दौड़ाया वे स्वयं चले आरहे हैं और उनके प्रहार करने पर भी अचल रह गया। क्योंकि युद्ध में उसका मद और भी बढ़ जाता है महाक्रोधी भी है। क्रोधी प्राण दे देते हैं हटते नहीं।

इत उत झपटि दपटि कपि जोधा। मर्दइ लाग भएउ अति क्रोधा ॥
चले पराइ भालु कपि नाना। त्राहि त्राहि अंगद हनुमाना ॥३॥

अर्थ : इधर उधर झपटकर और दपटकर बन्दर योद्धाओं का मर्दन करने लगा। क्योंकि उसे अत्यन्त क्रोध आगया। बन्दर और भालुगण भाग चले। कहने लगे कि हे अङ्गद ! हे हनुमान् ! रक्षा करो। रक्षा करो।

व्याख्या : कुम्भकर्ण और रावण दोनों भाई रण में दुर्मद थे। कुम्भकर्ण के लिए पहिले कह आये हैं। कुम्भकर्ण दुर्मद रन रंगा। रावण के लिए यहाँ कह रहे हैं। रावण अतिक्रोधी है। उसने धनुष रख दिया कि इनसे खाली हाथ लड़ेंगे। देखें तो इनका बल कितना है। मैं तो सदा से प्रति भट के खोज में रहा। यथा : प्रतिभट खोजत कतहुँ न पावा। सो इधर उधर जिधर अवसर हाथ लगता है झपटकर बन्दर योद्धाओं का मर्दन करने लगा। कितने तो उसके झपट से और कितने उसके दपट से मरने लगे। अपनी सेना को दिखलाता है कि ऐसे मर्दन किया जाता है। प्रहार से अत्यन्त क्रुद्ध हो गया है।

अब तो बन्दर भालुगण भाग चले। लगे अङ्गद हनुमान् को पुकारने। क्योंकि इन्हीं के ललकार पर लड़ रहे थे। उधर का ललकारनेवाला तो सामने आगया। अब आप लोगों की आवश्यकता है। यथा : उत प्रचार दसकंठ भट इत अंगद हनुमान्। आप लोग रक्षा कीजिये। हम लोगों के पेड़ और पत्थर का प्रहार तो इसके शरीर पर काम नहीं करते। टूट टूटकर गिर जाते हैं।

पाहि पाहि रघुबीर गोसाईं। यह खल खाइ काल की नाईं ॥
तेहि देखे कपि सकल पराने। दसहु चाप सायक संधाने ॥४॥

अर्थ : हे रघुवीर गोसाईं ! रक्षा करो। रक्षा करो। यह खल तो काल की भाँति खाये जाता है। उसने देखा कि सब बन्दर भाग गये। तब दसों धनुषों पर बाण चढ़ाये।

व्याख्या : कुम्भकर्ण तो दुकाल था। उसके पंजे से हम निकल भी जाते थे। यथा : मुख नासा स्रवनन की बाटा। निकसि पराहिं भालु कपि ठाटा। दुकाल यथा : यह निसिचर दुकाल सम अहई। कपिकुल देस परन अब चहई। पर रावन तो साक्षात् काल है। इसके हाथ से तो कोई बचता ही नहीं। अतः हे रघुवीर गोसाईं ! जिस भाँति आपने दुकाल से रक्षा की उसी भाँति काल से भी बचाइये।

रावण ने देखा कि सब बन्दर भाग गये। किसके पीछे रथ दौड़ायें। ये भाग जाते हैं और फिर जुट जाते हैं। इसलिए इन्हें मार ही डालना चाहिए। रावण की आसुरी बुद्धि है। भागते हुए पर भी शस्त्र चलाना चाहता है। सो उसने दसो धनुषों पर बाण चढ़ाये। बन्दर सब दिशाओं में भाग रहे हैं। सो किसी ओर से बचने न पावें।

छं.[1] संधानि धनुसर निकर छाडेसि उरग जिमि उड़ि लागही ।
रहे पूरि सर धरनी गगन दिसि बिदिसि कहँ कपि भागहीं ॥
भयो अति कोलाहलु बिकल कपिदल भालु बोलहि आतुरे ।
रघुबीर करुनासिंधु आरतबंधु जनरक्षक हरे ॥

अर्थ : धनुष चढ़ाकर उसने बाणों के समूह छोड़े जो उड़कर सर्प की भाँति लगते थे । पृथिवी आकाश दिशा और विदिशा सर्वत्र बाण भर गये । बन्दर भागें तो कहाँ भागें । बड़ा भारी कोलाहल हुआ । बन्दर और भालु की सेना विकल होकर पुकार रही है । हे रघुवीर ! हे करुणासिन्धु ! हे आर्त्तबन्धु ! हे जनरक्षक ! हे दुःखों को हरण करनेवाले !

व्याख्या : दसो धनुष सन्धान करके दसो दिशाओं में बाणों का प्रहार करने लगा । वे उड़ उड़कर साँप की तरह लग रहे थे । साँप की उपमा बाणों से दे रहे हैं । क्योंकि वे विष से बुझाये हुए थे । रावण के बाण चलने में इतना लाघव है कि दसो दिशायें बाण से भर गयीं । ऊपर नीचे अगल बगल तमाम बाण ही बाण हो गया । हाहाकार मच गया । भालु बन्दर सेना. अति विकल हो उठी । बन्दर भालु आतुर होकर बोलने लगे हे हरे ! हम लोग दुःखी हैं । आप करुणासिन्धु हैं । हम आरत हैं । आप आरतबन्धु हैं । हम मारे जाते हैं । आप जनरक्षक हैं । इससे युद्ध वीर, दया वीर, दानवीर कहकर रघुवीर होना सार्थक द्योतित किया ।

दो. निजदल बिकल देखि कटि, कसि निषंग धनु हाथ ।
लछिमन चले सकोप तब, नाइ रामपद माथ ॥८२॥

अर्थ : अपनी सेना को विचलित देखकर कमर में तरकस और हाथ में धनुष लेकर लक्ष्मण रामजी के चरणों में सिर नवाकर क्रोध करके चले ।

व्याख्या : अपना कटक विचलित देखकर रावण चला था और अपना कटक विचलित देखकर लक्ष्मणजी चले । रावण रथपर चले । लक्ष्मणजी पैदल चले । सरकार को बन्दरों ने पुकारा । लक्ष्मण को तरकस कसते देखकर सरकार चुप रह गये । रावण क्रुद्ध होकर चले थे । इधर लक्ष्मण क्रुद्ध होकर चले । रावण के अस्त्र शस्त्र सब रथ पर हैं । लक्ष्मणजी तरकस कमर में कसे हुए हैं । चलने के पहिले रामजी के चरणों में प्रणाम किया ।

रे खल का मारेसि कपि भालू । मोहि बिलोकु तोर मैं कालू ॥
खोजत[2] रहेउँ तोहि सुतघाती । आजु निपाति जुड़ावौं छाती ॥१॥

अर्थ : अरे शठ ! बानर भालुओं को क्या मारता है । मुझे देख । मैं तेरा काल

१. हरिगीतिका छन्द है ।
२. यहाँ भाविकालंकार है ।

हूँ। रे पुत्रघाती ! तुझी को तो मैं खोजता रहा। आज तुझे मारकर छाती ठण्ढो करूँगा।

व्याख्या : लक्ष्मणजी बोले। तू शठ है। समेर विमुख के ऊपर प्रहार करता है। बन्दर और भालु अल्पवीर्य हैं। उन पर पुरुषार्थ दिखला रहा है। मुझे देख। भाव यह कि मैंने तेरी बहन का नाक कान काटा, तेरे बेटे को मारा और तुझे मारने को प्रस्तुत हूँ। अथवा जिसने चिट्ठी भेजी थी : सीता देइ मिलहु नत आवा काल तुम्हार। सो मैं तेरा कालरूप आ पहुँचा। अथवा बन्दर भालुओं के लिए तू काल हो रहा है। यथा : यह खल खाइ काल को नाईं। सो तेरा काल मैं हूँ। मुझे देख : कहने का भाव यह कि मुझसे युद्ध कर। रावण को बन्दरों से हटाकर अपनी ओर उन्मुख करते हैं। रावण ने कहा था : हौं मारिहौं भूप दोउ भाई। उसीका उत्तर लक्ष्मणजी की ओर से हो रहा है। रावणसे युद्ध के लिए सरकार स्वयं उठे थे। परन्तु समय पाते ही लक्ष्मणजी आगे आगये।

रावण ने कहा कि तूने मेरा पुत्र मारा है। मैं तो तुझी को खोजता था। बानरों को इसलिए मारता था कि ये हटें तो तेरा पता चले। जब से लड़का मरा है तब से कलेजा जल रहा है। वह बिना तेरे मारे ठण्ढा हो नहीं सकता। अतः तुझे आज ही मारूँगा।

अस कहि छाडेसि बान प्रचंडा। लछिमन किए सकल सत खंडा ॥
कोटिन्ह आयुध रावन डारे। तिल प्रवान करि काटि निवारे ॥२॥

अर्थ : ऐसा कहकर उसने प्रचण्ड बाण चलाये। लक्ष्मणने उन सबों के सौ सौ टुकड़े कर दिये। करोड़ों हथियार रावण ने चलाये। परन्तु प्रभु ने : उनको तिल के बराबर करके काट डाला।

व्याख्या : तुझे मारकर छाती ठण्ढो करूँगा। ऐसा कहकर प्रचण्ड बाण चलाये लक्ष्मणजी के वध के लिए। लक्ष्मणजी ने उन्हें काट काटकर सौ-सौ टुकड़े कर दिये। बीस हाथवाले बाण मार रहे हैं और दो हाथवाले उनके सौ सौ टुकड़े कर रहे हैं। यह लक्ष्मणजी की बनैती है। रावणने देखा कि इन पर बाण काम नहीं करते तो दूसरे हथियार फेंकने लगे। इधर लक्ष्मणजी के बाणों का वेग बढ़ा तो उन हथियारों को तिल के बराबर टुकड़े करके गिराने लगे।

पुनि निज बानन्ह कीन्ह प्रहारा। स्यंदनु भंजि सारथी मारा ॥
सत सत सर मारे दस भाला। गिरिसृंगन्हि जनु प्रविसहिं ब्याला ॥३॥

अर्थ : तत्पश्चात् अपने बाणों का प्रहार किया। रथ को तोड़ डाला और सारथी को मार दिया। दसो सिरों में सौ सौ बाण मारे। वे इस भाँति घुस गये जैसे पर्वतकी चोटियों में साँप घुसते हैं।

व्याख्या : लक्ष्मणजी वीरव्रत हैं। पहिले स्वयं प्रहार नहीं करते। जब रावण के अनेक प्रहार सह चुके रावण भी देख चुके कि उनके प्रहार का कोई फल नहीं

हो रहा है तब लक्ष्मणजी बाणों से चोट करने लगे। वह मारुत वेग रथ भी तोड़ दिया और सारथी को भी मार गिराया। रथारूढ रावण अपने रथ और सारथी की रक्षा न कर सके और विरथ हो गये। तब सौ सौ बाण दसो सिरों में मारे। जो उनमें प्रवेश करके उन्हीं में रह गये। रावण पहाड़ की भाँति है। उनके सिर पहाड़ की चोटियों के से हैं। उनमें बाणों के घुसने की उपमा कवि सर्पों के घुसने से देते हैं। पर रावण की खोपड़ी न जाने कैसी थी कि फिर भी धराशायी नहीं हुआ।

पुनि सत सर मारा उर मांही। परेउ धरनि तल सुधि कछु नांही ॥
उठा प्रबल पुनि मुरछा जागी। छाँडेसि ब्रह्म दीन्ह जो सांगी ॥४॥

अर्थ : फिर सौ बाण छाती में मारे। पृथिवी पर एकदम अचेत होकर गिरा। प्रबल फिर उठा। मूर्च्छा जाती रही। तब ब्रह्माजी की दी हुई जो सांगी थी उसे चला दिया।

व्याख्या : तब सौ बाण हृदय में मारे। रावण लक्ष्मणजी के बाणों के काटने में समर्थ न हुए। पृथिवी पर ऐसे गिरे कि कुछ भी चेत न रहा। लक्ष्मणजी ने प्रहार करना बन्द कर दिया।

इतना चोट खाने पर कोई उठ नहीं सकता। पर रावण बड़ा बलवान् था। मरा नहीं उसे केवल मूर्च्छा हो गयी थी। मूर्च्छा गयी। रावण उठ गये। देख लिया कि सचमुच लक्ष्मण काल ही है। यह तो प्राण ले लेगा। तब ब्रह्मदेब की दी हुई सांगी छोड़ी थी। ये तपस्या के प्राप्त अस्त्र उसी समय छोड़े जाते हैं जब कि शत्रु से रक्षा का कोई उपाय नहीं रह जाता और वे शत्रु को ले बीतते हैं।

छं. सो[1] ब्रह्मदत्त प्रचंड शक्ति अनन्त उर लागी सही।
परयो बीर विकल उठाव दसमुख अतुलबल महिमा रही ॥
ब्रह्माण्ड भुवन बिराज जाके एक सिर जिमि रज कनी।
तेहि चह उठावन मूढ़ रावन जान नहि त्रिभुवन धनी ॥

अर्थ : वह ब्रह्मदेव की दी हुई प्रचण्ड शक्ति अनन्त की छाती में ठीक लगी। वीर विकल होकर गिरे तो रावण उठाने लगे। बेतौलवाले लक्ष्मणजी की महिमा को न डगा सके : बनी रह गयी। भुवन और ब्रह्माण्ड जिसके सिर पर धूल के कण की भाँति शोभित है उसे मूढ रावण उठाने लगा। त्रिभुवन धनी को जाना नहीं।

व्याख्या : ब्रह्मदेव की दी हुई अमोघ शक्ति और रावण के हाथ से चली हुई ठीक कलेजे में जाकर लगी। पर अनन्त का अन्त उसे भी न लगा। लक्ष्मणजी विकल होकर गिरे। प्रधान वीर के मूर्च्छित होने पर रावण की ओर से बराबर प्रयत्न उठा ले जाने का होता है। जिसमें उसे बन्दी करके अपना काम निकाल लें। मेघनाद की

१. हरिगीतिका छन्द है।

शक्ति लगने पर लक्ष्मणजी गिरे थे। तब मेघनाद ने यही प्रयत्न किया। सुग्रीव के मूर्च्छित होने पर कुम्भकर्ण ने भी ऐसा ही प्रयत्न किया था। इस बार लक्ष्मणजी के मूर्च्छित होने पर रावण भी उसी प्रयत्न में लगा। पर लक्ष्मणजी न तो मेघनाद के उठाये उठे और न कैलाश उठानेवाले रावण के ही उठाये उठे। लक्ष्मणजी ने केवल ब्रह्मदेव की महिमा की रक्षा के लिए सांगी के प्रहार को स्वीकार कर लिया है, नहीं तो उनका बल अतुल है, महिमा अतुल है। रावण यदि उन्हें उठा लेता तो वह महिमा न रह जाती। लक्ष्मणजी की महिमा कहते हुए कवि कहते हैं कि चौदहो भुवन सहित ब्रह्माण्ड जिस शेष भगवान् के एक सिर पर धूलि के कणों के समान सुशोभित है। लक्ष्मणजी वही शेष हैं। किसकी सामर्थ्य है कि उनकी इच्छा के विरुद्ध उन्हें उठा ले। इस महिमा को रावण ने न जाना। इसलिए उठाने का प्रयत्न किया।

दो. देखत पवन सुत धाये, बोलत बचन कठोर।
आवत कपिहि हनेउ तेहि, मुष्टि प्रहार प्रघोर ॥८३॥

अर्थ : देखते ही हनुमान्जी कठोर वचन बोलते दौड़े। परन्तु आते ही उनके हृदय पर उसने अत्यन्त घोर मुष्टि प्रहार किया।

व्याख्या : देखा सबने पर दौड़े हनुमान्जी। वायु वेग से दौड़े इसलिए पवनसुत लिखा। कठोर वचन बोलते हुए कि तू मूढ है, शठ है, खल है, मूर्च्छित वीर को उठा ले जाना चाहता है। अभी तू मूर्च्छित हुआ था। तब हम लोगों ने कुछ न किया। तू पापी है इत्यादि। रावण ने उत्तर न देकर हनुमान्जी के हृदय में यावद्बल घोर मुष्टिका प्रहार किया। क्योंकि लक्ष्मणजी के उठाने के समय हथियार रख दिया था।

जानु टेकि कपि भूमि न गिरा। उठा सँभारि बहुत रिस भरा ॥
मुठिका एक ताहि कपि मारा। परेउ सैल जनु बज्र प्रहारा ॥१॥

अर्थ : घुटना टेककर हनुमान्जी पृथिवी पर नहीं गिरे। अत्यन्त क्रोध में भरे हुए सँभालकर उठे। हनुमान्जी ने उसे एक घूसा मारा। तो ऐसा गिरा जैसे वज्र के प्रहार से पर्वत गिरे।

व्याख्या : रावण के मुष्टि प्रहार से हनुमान्जी घुटने के बल आगये। भूमि में नहीं गिरे। रावण ने समझा था कि मेरी मुष्टिका न सह सकेंगे। हनुमान्जी ने सँभालकर क्रोध से भरे उठकर जब घूसा मारा तब तो रावण ऐसे गिरे जैसे वज्र के प्रहार से पर्वत गिरे। रावण का शरीर वज्र का था। उससे टक्कर खाकर पहाड़ टूट जाते थे। पर हनुमान्जी का शरीर ऐसा वज्र है कि उसके मुष्टि प्रहार से रावण पहाड़ की भाँति पृथिवी पर आपड़े।

मुरुछा गै बहोरि सो जागा। कपिबल बिपुल सराहन लागा ॥
धिग धिग मम पौरुष धिग मोही। जौं तैं जियत रहेसि सुरद्रोही ॥२॥

अर्थ : मूर्च्छा जब बीती तो वह जागा। हनुमान्‌जी के विशाल बल की प्रशंसा करने लगा। हनुमान्‌जी ने कहा कि मेरे पौरुष को बार बार धिक्कार और मुझे धिक्कार है जो हे देवद्रोही ! तू जीता उठ खड़ा हुआ।

व्याख्या : इस दूसरी मूर्च्छा से भी वह जग गया। ऐसा घूसा कभी खाया नहीं था। इसलिए हनुमान्‌जी के बल की विपुलता की प्रशंसा करने लगा। रावण वीर है। हनुमान्‌जी के बल पर ऐसा प्रसन्न हुआ कि अपनी चोट भूल गया। साथ ही साथ यह भाव है कि रावण बड़ा चतुर है। समझता है कि कल की प्रशंसा करने पर दूसरा घूसा न मारेंगे। हनुमान्‌जी के घूसे से मेघनाद भी मूर्च्छित हुआ था। कुम्भकर्ण भी धराशायी हुए थे। आज रावण भी मूर्च्छित हुए।

रावण की प्रशंसा से हनुमान्‌जी को तुष्टि नहीं हुई। परन्तु ग्लानि हुई। कहने लगे कि तू सुरद्रोही है। मैं पवनपुत्र हूँ। तू बाप का वैरी ठहरा। मैंने तुझे घूसा मारा और तू बच गया, तो मेरे पुरुषार्थ को और मुझको भी धिक्कार है। वह बल ही क्या जिसके द्वारा बाप का वैरी नहीं मारा गया। हनुमान्‌जी ने देख लिया कि रावण अब लड़ना नहीं चाहता।

अस कहि लछिमन कहुँ कपि ल्यायो। देखि दसानन बिसमय पायो॥
कह रघुबीर समुझु जिय भ्राता। तुम्ह कृतांत भच्छक सुरत्राता॥३॥

अर्थ : ऐसा कहकर हनुमान्‌जी लक्ष्मण को ले आये। देखकर रावण को आश्चर्य हो गया। रामजी ने कहा कि भाई। हृदय में समझो तुम तो काल के भी भक्षण करनेवाले देवरक्षक हो।

व्याख्या : सरकार ने लक्ष्मणजी की पहले बार की मूर्च्छा में माधुर्य दिखलाया। इस बार ऐश्वर्य दिखलाते हैं। हनुमान्‌जी लक्ष्मण को उठा लाये। हनुमान्‌जी के बल को देखकर रावण चकित रह गये। जो रावण के हिलाये न हिले। उसे हनुमान्‌जी अनायास उठाये लिये जा रहे हैं। लक्ष्मणजी को मूर्च्छित देखकर सरकार ने उनके स्वरूप का स्मरण दिलाया। कहा कि भाई ! चेतो। तुम तो कृतान्त भक्षक हो। प्रलयकाल में सब कुछ संहार करने के बाद जब काल और काली का नृत्य होने लगता है तब नृत्य करते करते काली काल में लीन हो जाती हैं। तब काल भी नृत्य करते करते जिस अनन्त वस्तु में लीन हो जाते हैं वही शेष रह जाता है। उसी को शेष कहते हैं। वही सर्वाधार सृष्टि होने पर सबको धारण करते हैं। सुरशक्ति असुरद्दक् परमेश्वर भी उसी पर शयन करते हैं। वही तुम हो। देवताओं की रक्षा के लिए अवतीर्ण हो।

सुनत बचन उठि बैठ कृपाला। गई गगन सो सक्ति कराला॥
पुनि कोदंड बान गहि धाए। रिपु समीप अति आतुर आए॥४॥

अर्थ : वचन सुनते ही कृपाल उठ बैठे। वह करालशक्ति आकाश में

चली गयी। फिर धनुष बाण लेकर दौड़े और अत्यन्त आतुर होकर शत्रु के पास आये।

व्याख्या : सरकार के वचन के सुनते ही स्वरूप का स्मरण हो गया। लक्ष्मणजी बड़े कृपालु हैं। कृपा करके ब्रह्मदेव की मर्यादा की रक्षा के लिए विकलता को स्वीकार किया है। सरकार के वचन को सुनते ही उसका त्याग किया। जानते हैं कि उनकी मूर्च्छा से सरकार को बड़ा कष्ट होता है। अतः तुरन्त उठ बैठे। वह कराल शक्ति आकाश में लय हो गयी। रावण के काम की न रह गयी।

रावण कहीं अपनी जीत मानकर चला न जाय। इसलिए धनुष बाण लेकर दौड़ पड़े। तरकस पहिले से ही कसा है। आतुरता ब्रह्मदत्त शक्ति के उत्तर देने के लिए है।

छं.[1] आतुर बहोरि बिभंजि स्यंदनु सूत हति ब्याकुल कियो।
गिरचौ धरनि दसकंधर बिकलतर बानसत बेध्यो हियो॥
सारथी दूसर घालि रथ तेहि तुरत लंका लै गयो।
रघुबीर बंधु प्रताप पुंज बहोरि प्रभु चरनन नयो॥

अर्थ : आतुरता से फिर रथ को तोड़कर सूत को मारकर रावण को व्याकुल कर दिया। रावण अत्यन्त विकल होकर सौ बाणों से कलेजा छिदा हुआ पृथिवी पर गिरा। दूसरे सारथी ने उसे रथ पर लाद लिया और तुरन्त लंका ले गया। रघुवीर के भाई प्रताप के पुञ्ज हैं। उन्होंने आकर फिर सरकार के चरणों में प्रणाम किया।

व्याख्या : लक्ष्मणजी चोट सह चुके हैं। इसलिए जाते ही चोट करते हैं। मरुतवेग रथ को पहिले ही तोड़ चुके हैं। रावण दूसरे रथ पर है। ऐसे वेग से प्रहार किया कि रथ भी टूटा सारथी भी मरा। रावण का किया कुछ भी न हुआ। घायल होकर पृथिवी पर गिरे। तब देखा गया कि उनका हृदय सौ बाणों से छिदा हुआ है। हालत बहुत खराब है। दूसरा सारथी उन्हें दूसरे रथ पर लादकर लंका ले गया। जो रावण इतने ठाटबाट से युद्ध के लिए निकले थे। जिन्हें अकेले दोनों भाइयों के मारने का हौसला था। आज छोटे भाई के मारे अधमरे होकर रथ पर लदे हुए लंका लाये जा रहे हैं। इधर लक्ष्मणजी ने आकर सरकार के चरणों में नमस्कर किया। चले थे तब नमस्कर करके चले थे। लौट के आने पर फिर नमस्कार करते हैं। इसलिए कवि ने बहोरि कहा। जैसा सरकार का पुरुषार्थ है वैसा ही लक्ष्मणजी का है। यह बात रघुवीर बन्धु पद से द्योतित करते हैं और वैसा ही प्रताप है। यह बात प्रताप पद से दिखलाते हैं। यथा : जिनके जस प्रताप के आगे। ससि मलीन रवि सीतल लागे।

---

१. हरिगीतिका छन्द है।

रावन यज्ञ विध्वंस

दो. उहाँ दसानन जागि करि करै लाग कछु जग्य।
राम बिरोधी बिजय चह सठ हठ बस अति अग्य ॥८४॥

अर्थ : वहाँ रावण जगकर कोई यज्ञ करने लगा। रामजी के विमुख होकर जीत चाहता है। ऐसा शठ हठी और मूढ़ है।

व्याख्या : यहाँ का हाल कहकर अब वहाँ का हाल कहते हैं। रावण मूर्च्छा से जागे। आसुर बल से काम चलते न देखकर देवबल का आश्रयण किया। जो यज्ञ को अनिष्टकर समझते थे। जिनके कारण संसार में यज्ञ करना दुष्कर व्यापार था : जप जोग बिरागा तप मख भागा स्रवन सुनै दससीसा। आपुन उठि धावै रहै न पावै धरि सब घालै खीसा। आज संकट में पड़ने पर स्वयं यज्ञ करने चले। जो जीत देनेवाले हैं। जिनके नाम स्मरण से अत्यन्त प्रबल मोहदल जीता जाता है। उससे विरोध करके विजय चाहता है। शठ है : यज्ञपुरुष की आराधना उन्हीं को जीतने के लिए कर रहा है। बड़ा हठी है। सर्वस्व नाश हुआ जाता है। पर हठ नहीं छोड़ता। इतना बड़ा पण्डित होकर ऐसी मूर्खता कर रहा है। इसलिए कवि उसे : अतिअग्य कह रहे हैं।

इहाँ बिभीषन सब सुधि पाई। सपदि जाइ रघुपतिहि सुनाई ॥
नाथ करै रावन एक जागा। सिद्ध भए नहि मरिहि अभागा ॥१॥

अर्थ : यहाँ विभीषण को सब पता लग गया। तुरन्त जाकर रामजी को सुनाया कि : नाथ ! रावण एक यज्ञ कर रहा है। उसके सिद्ध होने पर अभागा न मरेगा।

व्याख्या : उधर रावण यज्ञ करने लगे। इधर विभीषण को सब पता लग गया। लंका का पता रखना विभीषण के जिम्मे है। मेघनाद के यज्ञ का भी पता इन्होंने ही दिया था। आज रावण के यज्ञ का भी पता इन्हें लग गया। पहिले कहा भी जा चुका है कि इनके चार मन्त्री कबूतर बनकर लंका का पता लगाया करते हैं : आज भी युद्ध के समय शिक्षित कबूतरों द्वारा युद्ध के सन्देश आया जाया करते हैं। उसकी प्रतिक्रिया के लिए विभीषणजी ने जाकर रामजी को सुनाया कि रावण कोई एक ऐसा यज्ञ कर रहा है जिसका नाम नहीं मालूम। पर इतना पता चला है कि उसके सिद्ध हो जाने पर वह मारा नहीं जा सकेगा। यह अभागा है। इतने दिनों तक इसे यज्ञ करने की फुरसत न मिली। जब सारे कुटुम्ब का नाश हो गया तब अपने जीने के लिए अब यज्ञ करने चला है।

पाठवहु नाथ बेगि भट बंदर। करहिं विधंस आव दसकंधर ॥
प्रात होत प्रभु सुभट पठाए। हनुमदादि अंगद सब धाए ॥२॥

अर्थ : हे देव ! वीर बन्दरों को शीघ्र भेजिये। वे यज्ञ विध्वंस कर दें और

रावण आवे। सबेरा होते ही प्रभु ने सुभटों को भेजा। हनुमान् अङ्गदादि सब दौड़ पड़े।

व्याख्या : आप देव हैं। आप आज्ञा दीजिये। वीर बन्दर लोग जाकर यज्ञ विध्वंस कर दें। यह यज्ञ लंका के भीतर तहखाने में हो रहा है। वहाँ लक्ष्मणजी की आवश्यकता नहीं है। केवल इतना ही काम है कि यज्ञ विध्वंस हो जाय। सो इतना वीर बानर लोग भली भाँति सम्पन्न कर सकते हैं। जहाँ यज्ञ विध्वंस हुआ कि रावण यहाँ आया। मैं उनके स्वभाव से भली भाँति परिचित हूँ। यहाँ आने पर सरकार उसका वध कर सकेंगे।

रात भर में यज्ञ सम्पन्न हो नहीं सकता था। इसलिए रात को ही बन्दर लोग नहीं भेजे गये। प्रातःकाल होते ही सरकार ने हनुमान् अङ्गदादि वीरों को भेजा और वे लोग दौड़ पड़े कि जितना शीघ्र यज्ञ विध्वंस हो जाय उतना ही अच्छा अथवा बड़े उत्साह से दौड़ पड़े। हनुमान् और अङ्गद लंका के भीतरी भाग से अधिक परिचित थे। अतः मुखिया बनाकर ये ही भेजे गये।

कौतुक कूदि चढ़े कपि लंका। पैठे रावन भवन असंका॥
जग्य करत जबही सो देखा। सकल कपिन्ह भा क्रोध बिसेखा॥३॥

अर्थ : खेल में ही बन्दर कूदकर लंका पर चढ़ गये और रावण के महल में निःशङ्क घुस गये। जब उसे यज्ञ करते बन्दरों ने देखा तो उन लोगों को विशेष क्रोध हुआ।

व्याख्या : लंका का प्राकार इतना ऊँचा था कि उस पर उड़कर चिड़िया नहीं बैठ सकती थीं। सो उस प्राकार पर खेल में ही कूदकर चढ़ गये। फाटक से प्रवेश नहीं किया। शत्रु के घर में युद्ध के लिए रास्ते से नहीं जाने की नीति शास्त्र की आज्ञा है। रावण का महल जहाँ पर प्रवेश करने में ब्रह्मादिक देव सशङ्क रहते थे : ब्रह्मन्नध्ययनस्य नैष समयस्तूष्णीं बहिः स्थीयताम् स्वल्पं जल्प बृहस्पते जडमते नैषा सभा वज्रिणः। स्तोत्रं संहर नारद स्तुतिकथालापैरलं तुम्बुरो सीतारल्लकभल्लभग्न-हृदयः स्वस्थो न लंकेश्वरः। प्रतीहारी कहता है कि : ब्रह्मा! यह वेद पढ़ने का समय नहीं है। चुप होकर बाहर बैठो। और हे जड़मति बृहस्पति! तुम थोड़ा बोलो। यह इन्द्र की सभा नहीं है। नारद तुम अपनी स्तुति समाप्त करो। तुम्बुर तुम अपना अलाप बन्द करो। सीता के अलक से भग्न हो गया है हृदय जिसका ऐसे लङ्केश्वर की तबीयत ठीक नहीं है। उस महल में वीर बन्दर निःशङ्क घुस गये।

जब उसे यज्ञ करते देखा। भाव यह कि पता नहीं लगता था कि कहाँ यज्ञ कर रहा है। विभीषण की स्त्री के इङ्गित से पता लगा कि तहखाने में यज्ञ कर रहा है। तब शिला तोड़कर भीतर घुसे और वहाँ उसे यज्ञ करते देखकर बन्दरों को विशेष क्रोध हुआ कि यहाँ छिपा हुआ यह कार्य साधन कर रहा है। इसी उद्गार को स्पष्ट रूप से कहते हैं।

रन तें निलज भाजि गृह आवा । इहाँ आइ बक ध्यान लगावा ॥
अस कहि अंगद मारेउ लाता । चितव न सठ स्वारथ मन राता ॥४॥

अर्थ : रे निर्लज्ज ! तू रण से भागकर घर आया और यहाँ आकर बगुलाभक्त बन बैठा है। ऐसा कहकर अङ्गद ने लात मारा। परन्तु उस शठ ने देखा भी नहीं। अपने स्वार्थ में ही मन लगाये रहा।

व्याख्या : जिसे लज्जा होती है पर यदि रण से विमुख भी होता है तो अपने घर में मुख नहीं दिखलाता। यथा : समर सैन तजि गयउ पराई। गयउ न गृह मन बहुत गलानी। तू निर्लज्ज है। रण से भागकर घर आया और यहाँ आकर ध्यान लगाकर बैठा है। सो यह तेरा ध्यान बगलेवाला ध्यान है। बगुला मछली पर ध्यान लगाये एक पैर से खड़ा रहता है। उसका ध्यान पाखण्डमात्र है। इसी भाँति तेरा यज्ञ ध्यानादि भी पाखण्ड मात्र है। यह भगवद् आराधना नहीं है। ऐसा कहकर अङ्गद ने लात मारा। जिसमें अपमान न सहकर उठ पड़े। पर उसने देखा भी नहीं कि कौन है। अपने स्वार्थ में ही मन लगाये रहा कि भला लात मार के चले जायें। शठ है : हठ के वश दुर्गति सहन कर रहा है।

छं.[1] नहि चितव जब करि कोप कपि गहि दसन लातन्ह मारहीं ।
धरि केस [2]नारि निकारि बाहेर तेऽतिदीन पुकारहीं ॥
तब उठेउ क्रुद्ध कृतांत सम गहि चरन बानर डारई ।
एहि बीच कपिन्ह बिधंस कृत मख देखि मनमहुँ हारई ॥

अर्थ : जब नहीं देखा तब बन्दर क्रोध करके दाँत से पकड़ते और लातों से मारते हैं। बाल पकड़कर स्त्रियों को बाहर खेंच ले आये। वे अत्यन्त दीन होकर पुकारने लगीं। तब क्रोध करके काल के समान उठा। पकड़कर बन्दरों को फेंकने लगा। इसी बीच में बन्दरों ने यज्ञ विध्वंस कर दिया। यह देखकर मन में उसने हार माना।

व्याख्या : जब उसने न देखा तब बन्दर उसे दाँत से पकड़कर काटने और लात से मारने लगे। मेघनाद की चोटी पकड़कर लात से मारा था। रावण को दाँत काटते हैं। अङ्गदजी ने यह कहा था कि युद्ध में जब तेरे सिर गिरेंगे तो बन्दर उससे गेंद का खेल करेंगे। तेरे सिर को लात का ठोकर लगावेंगे। सो रावण को जीते ही लात मारते हैं। फिर भी नहीं उठा। यजमान को आसन से विचलित करना भी यज्ञविध्वंस का अङ्ग है। मेघनाद का पहिले यज्ञ ही विध्वंस किया। फिर भी वह न उठा। तब बन्दरों ने समझ लिया कि जब तक यजमान आसन न

---

१. हरिगीतिका छन्द है।

२. यह लड़ाई हस्तनक्षत्र की वर्षा है।

छोड़े तब तक यज्ञ की क्षति पूर्ति की जा सकती है। अतः यजमान को आसन छोड़ाने के लिए लाचार करने का प्रयत्न यहाँ पहिले ही करने लगे। जब किसी प्रकार से नहीं उठा तो हनुमान्‌जी मन्दोदरी का केश पकड़कर वहाँ खैंच लाये। यथा : जयति मन्दोदरी केश कर्षण निपुण विद्यमान दसकंठ भट मुकुटमानी। जगदम्बा का केश पकड़कर रथ पर बिठाया था। उसी कर्म का यह परिपाक था। इन लोगों के कर्म के फल देनेवाले हनुमान्‌जी थे। यथा : जयति दुष्ट रावन कुम्भकरन पाकारिजित् मर्मभित् कर्मपरिपाकदाता। सम्भव है कि अन्य बन्दरों ने और रानियों की यही गति की हो। सो वे सब पुकार करने लगीं। यह रावण नहीं सह सके। काल की भाँति क्रुद्ध होकर उठा तो बन्दरों का पैर पकड़कर फेंकने लगा। इतने ही देर में हनुमान् अङ्गद ने यज्ञ विध्वंस कर दिया। देखकर रावण ने मन में हार मान लिया। इसी यज्ञ का भरोसा था। सो नष्ट हो गया। नष्ट हुआ यज्ञ यजमान का नाश करेगा। अतः उपाय उलटा पड़ गया।

७५. रघुपति रावण समर प्रसंग

दो. जग्य बिधंसि कुसल कपि, आये रघुपति पास।
चलेउ निसाचर क्रुद्ध होइ, त्यागि जिवन कै आस ॥८५॥

अर्थ : यज्ञ विध्वंस करके सब बन्दर सकुशल रामजी के पास आये। लङ्कापति जीने की आशा छोड़कर क्रुद्ध होकर चले।

व्याख्या : सब बन्दर यज्ञ विध्वंस करके सरकार के पास आगये। एक बन्दर भी मारा न गया। तब लंका के स्वामी रावण क्रुद्ध होकर चले। बन्दरों से बड़ा भारी मानभङ्ग हुआ। इससे क्रुद्ध हैं और यज्ञ विध्वंस हो गया इसलिए अपने जीवन से हताश हो गये हैं। लङ्कापति पाठ में कहने का भाव यह कि फिर भी बड़े ठाटबाट से चले।

चलत होहिं असि असुभ भयंकर। बैठहि गीध उड़ाइ सिरन्ह पर॥
भयेउ कालबस काहु न माना। कहेसि बजावहु जुद्ध निसाना॥१॥

अर्थ : चलने के समय अत्यन्त भयङ्कर अशुभ हो रहा है। उड़ उड़कर गिद्ध सिरों पर बैठते हैं। वह कालवश हो गया था। उसने एक न माना। आज्ञा दे दी कि जुझाऊ डङ्का बजे।

व्याख्या : पहिली ही युद्धयात्रा में बहुत से असगुन हुए। गोमायु गीध कराल खर रव स्वान रोवहिं अति घने। परन्तु इस बार तो अत्यन्त भयंकर अपशकुन हुए। गीध उड़कर सिरों पर बैठने लगे। परमेश्वर के दिये दस सिर हैं। एक सिर पर से गीध को उड़ाते हैं तो दूसरे पर जाकर बैठते हैं। सैनिकों के सिर पर भी गीध उड़ उड़कर बैठ रहे हैं।

रावण अत्यन्त अभिमानी हैं। न शकुन को गिनते हैं। न अपशकुन को गिनते

हैं। परन्तु वह अपशकुन तो ऐसा भयंकर है कि अति अभिमानी भी इसकी उपेक्षा नहीं कर सकता। पर रावण कालवश हैं। जो कालवश हो जाता है वह कुछ नहीं मानता। यथा : जाहु न निजपर सूझ मोहि भयउँ कालबस बीर। रावण ने आज्ञा दे दी कि जुझाऊ डङ्का बजे। सब सेना तैयार होकर चले।

चली तमीचर अनी अपारा। बहु गज रथ पदाति असवारा ॥
प्रभु सनमुख धाये खल कैसे। सलभ समूह अनल कहुँ जैसे ॥२॥

अर्थ : निसाचरों की अपार सेना चली। बहुत से हाथी रथ पैदल और असवार थे। प्रभु के सामने खल कैसे दौड़े। जैसे बड़ी भारी चतुरङ्गिनी सेना थी। पहिली बार भी लगभग इस आशय की अर्धाली कवि ने लिखी है। चलेउ निसाचर कटक अपारा। चतुरंगिनो अनी बहुधारा। अर्थात् पहिले युद्ध में जो कमी हुई थी वह पूरी हो गयी। सारी सेना चल पड़ी।

राक्षसों में उत्साह की कमी नहीं है। जैसे पतङ्गों का दल अग्नि पर टूटता है। इस भाँति वे खल बड़े वेग से उड़ चले। प्रज्वलित अग्नि की ओर फ़नगे अपने नाश के लिए बड़े वेग से दौड़ते हैं। यथा प्रदीप्तं ज्वलनं पतङ्गा विशन्ति नाशाय समृद्धवेगाः। हनुमान्‌जी ने जो भविष्य वाणी की थी वह चरितार्थ होने जा रही है। निसिचर निकर पतंग सम रघुपति बान कृसानु। जननी हृदय धीर धीरु जरे निसाचर जानु। शलभ समूह की भाँति राक्षस उड़ते चले आते हैं। इसलिए : उठी रेनु रबि गयउ छपाई। मरुत थकित वसुधा अकुलाई। आदि वर्णन नहीं किया।

इहाँ देवतन्ह बिनती कीन्ही। दारुन बिपति हमहिं एहि दीन्ही ॥
अब जनि राम खेलावहु एही। अतिसय दुखित होति बैदेही ॥३॥

अर्थ : यहाँ देवताओं ने विनती की कि इसने हमें दारुण दुःख दिया है। रामजी ! अब इसे न खेलाइये। वैदेही अत्यन्त दुःखी हो रही हैं।

व्याख्या : अब कवि अपने पक्ष का ब्यौरा सुनाते हैं कि यहाँ देवता लोग पहुँचे। सरकार से बड़ी विनती की कि इस खल के वध में शीघ्रता कीजिये। इसे खेलाइये मत। मेघनाद वध के लिए शीघ्रता करने को नारदजी कह गये थे और रावणवध में शीघ्रता कराने के लिए देवता आये। पहिले अपना दुःख सुनाया। ललकार ललकारकर गाली देता है। कन्या हरण करता है। हम लोगों को मेरु पर्वत के खोह में छिपाकर प्राण बचाना पड़ता है। कुछ लोगों को उसके दरबार में हाजिरी बजानी पड़ती है। तिस पर अपावन यज्ञ करता है। जिससे हम लोगों को अशुद्ध हवि ग्रहण करना पड़ता और उससे सद्यः तेज नष्ट होता है। पावन यज्ञ होने नहीं देता इत्यादि। हम लोग तो बहुत दिन से दुःख पा ही रहे हैं। अब वैदेही का दुःख हम लोगों से नहीं देखा जाता। सरकार कहते थे : एक बार कैसेहुँ सुधि जानौं। कालहु जीति निमिष महुँ आनौं। सो उसका समय आगया।

देव बचन सुनि प्रभु मुसकाना। उठि रघुबीर सुधारे बाना ॥
जटाजूट दृढ़ बाँधे माथे। सोहहिं सुमन बीच बिच गाँथे ॥४॥

अर्थ : देवताओं के वचन सुनकर प्रभु मुसकुराये और उठकर बाण सुधारा। जटा का जूट माथे पर कस करके बाँधा। बीच बीच में उसके फूल गुँथे थे। उनकी शोभा हो रही थी।

व्याख्या : देवताओं का वचन : अतिसय दुखित होति वैदेही। सुनकर मुसकुराये। वैदेही हरण के लिए ही तो वनवास का प्रपञ्च इन लोगों ने रचा। सो आज वैदेही के दु.ख से इतने दुःखित हो गये। परन्तु देवताओं की विनती सुनकर रामजी उठ गये और बाण सुधारने लगे। अथवा वीरों के अट्टाहास की भाँति उनका मुसकुराना भी भय सूचक है।

युद्ध के समय मुख के सामने जटा न आजाय इसलिए उसका जूड़ा बनाकर सिर में दृढ़ करके बाँधा। राजकुमार हैं। अतः निर्वेद और वीर रस में भी शृङ्गार की झलक कुछ आ ही जाती है। जटा में भी बीच बीच में फूल गुँथे हैं। सरकार के जटाजूट में होने से उन फूलों की अधिक शोभा हो रही है।

अरुन नयन बारिद तनु स्यामा। अखिल लोक लोचनाभिरामा ॥
कटितट परिकर कस्यो निषंगा। कर कोदंड कठिन सारंगा ॥५॥

अर्थ : अरुणारे नयन हैं। शरीर मेघ की भाँति श्याम है जो सम्पूर्ण लोक के नेत्रों को सुख देनेवाला है। कमर में फेटा और तरकस कसा हुआ है और हाथ में कठोर सारङ्ग धनुष है।

व्याख्या : जैसे सावन घन की घटा देखकर सम्पूर्ण लोक की आँखें तृप्त हो जाती हैं उसी भाँति सरकार के श्याम शरीर के दर्शन से संसार कृतार्थ होता है। अतः उसकी उपमा मेघ से दी। देवताओं की विपत्ति सुनने से क्रोध भी है। अतः गुलाबी नेत्र लाल हो रहे हैं। कमरे में फेटा बाँधा और तरकस कस लिये। निषङ्गा बहुवचन है और हाथ में वही सारङ्ग धनुष लिया जिसके द्वारा कुम्भकर्ण वध हुआ था। निर्गलितार्थ यह कि सरकार स्वयं युद्ध के लिए खड़े हो गये।

छं.[1] सारंग कर सुंदर निषंग सिलीमुखाकर कटि कस्यो।
भुजदंड पीन मनोहरायत उर धरासुरपद लस्यो ॥
कह दास तुलसी जबहिं प्रभु सर चाप कर फेरन लगे।
ब्रह्मांड दिग्गज कमठ अहिमहि सिंधु भूधर डगमगे ॥

अर्थ : सुन्दर शार्ङ्ग धनुष हाथ में है और बाण का खान अक्षय तुणीर

---

१. हरिगीतिका छन्द है।

कमर में कसे हुए हैं। सुन्दर मोटी भुजाएँ और चौड़ी छाती में ब्राह्मण का चरण चिह्न शोभायमान है। तुलसीदासजी कहते हैं कि जिस समय प्रभु हाथ से धनुष बाण फेरने लगे तो ब्रह्माण्ड, दिग्गज, कच्छप, शेष, समुद्र, पृथिवी और पहाड़ इत्यादि सब डगमगाने लगे।

व्याख्या : शार्ङ्ग धनुष दिव्य है और बाणों की खानि तरकस से अक्षय तूणीर अभिप्रेत है। वह भी दिव्य है और उस दिव्य धनुष के सञ्चालन के लिए दिव्य बल से पूर्ण पीन भुजदण्ड है और आयत वक्षःस्थल में ब्राह्मण के चरण चिह्न होने से दिव्य कवच की सूचना देता है। यथा : कवच अभेद विप्र गुरु पूजा। ऐसी दिव्य मूर्ति के पराक्रमोन्मुख होने से चाप शर के फेरने से १. ब्रह्माण्ड २. दिग्गज ३. कच्छप ४. शेष ५. पृथिवी ६. समुद्र और ७. पहाड़ हिलने लगे।

अथवा यहाँ सात क्रिया सरकार ने की। १. मुसकुराने से ब्रह्माण्ड हिला २. उठने से दिग्गज हिले। ३. बाण सुधारने से कच्छप हिले। ४. जटाजूट बाँधने से शेष हिले। ५. कटितट में निषङ्ग कसने से पृथिवी हिली। ६. हाथ में शार्ङ्ग लेने से समुद्र हिला। ७. और फेरने से पहाड़ हिले।

दो. सोभा देखि हरखि सुर बरषहिं सुमन अपार।
जय जय जय करुनानिधि छबि बल गुन अगार ॥८६॥

अर्थ : यह छवि देखकर देवता लोग हर्षित हुए। अपार पुष्पों की वर्षा हुई और बोले कि करुणानिधि और छवि बल तथा गुण के आगार प्रभु को जय हो।

व्याख्या : इस छवि को देखकर देवता लोग हर्षित हैं। क्योंकि यह वीर रस की अपूर्व झाँकी है। इसी से मनोरथ पूर्ण होगा। अतः अपार फूलों की वर्षा की। राक्षसों की अपार सेना का नाश करेंगे। अतः यदि एक निशाचर वध के उपलक्ष में एक फूल भी चढ़ावें तो अपार फूल चढ़ाना प्राप्त था। कहते हैं कि प्रभो! आप गुणों के धाम हैं। यथा : देव बचन सुनि प्रभु मुसुकाना। उठि रघुबीर सुधारे बाना। आप ज्ञान के धाम हैं। यथा : उर धरासुर पद लस्यौ। यह आपके ज्ञान धाम होने का चिह्न है। आप बलधाम हैं। आपके युद्ध के लिए प्रस्तुत होने में ब्रह्माण्ड आदि हिल रहे हैं। आपकी जय हो। जय हो : कहकर स्तुति करते हैं।

एही बीच निसाचर अनी। कसमसात आई अति घनी॥
देखि चले सनमुख कपि भट्टा। प्रलयकाल के जनु घनघट्टा ॥१॥

अर्थ : इसी बीच में अतिघनी निशाचरी सेना कसमस करती हुई आयी। देख करके बानर वीर सामने चले जैसे प्रलय काल की घनघटा हो।

व्याख्या : पुष्पवर्षा और स्तुति हो रही थी कि निशाचरी सेना आगयी। युद्ध का बड़ा उत्साह है। बड़े प्रातःकाल ही आगयी। बानरी सेना को चारों फाटक पर पहुँचने का अवसर न मिला। सेना बहुत बड़ी है फिर भी इतनी घनी है कि

सैनिक एक दूसरे से सटे हुए आ रहे हैं। पहिले उपमा दे चुके हैं। सेना तो कज्जल की आँधी सी आ रही है और हाथी का समूह वर्षा के बादल सा है। ऐसी सेना को आती देखकर इधर से वानरी सेना चली जैसे प्रलयकाल की घनघटा उठी हो। प्रलयकाल की घनघटा लाल पीली हरी आदि अनेक रंग की होती है। इधर बन्दर अनेक रङ्ग के हैं। अतः उनका समूह प्रलयकाल के घनघटा से उपमित किया गया। यथा : महाबली निसिचर सब कारे। नाना रंग भालु कपि भारे।

बहु कृपान तरवारि चमंकहिं। जनु दहदिसि दामिनी दमंकहिं ॥
गज रथ तुरग चिकार कठोरा। गर्जहि मनहुँ बलाहक घोरा ॥२॥

अर्थ : बहुत सी तलवारें तथा कृपाण चमक रहे हैं। मानो दसों दिशाओं में बिजली चमक रही है हाथी और रथ के घोड़े कठोर चिग्घाड़ कर रहे हैं, मानों बादल घोर गर्जन कर रहे हैं।

व्याख्या : नंगी तलवार लिये योद्धा चले आ रहे हैं। पंक्ति की पंक्ति नंगी तलवार लिये हुए है। उन पर प्रातःकाल के सूर्य की किरणें पड़ रही हैं। इसलिए चमक अधिक है। सेना के चलने से चमक स्थिर नहीं है। अतः उस चमक की उपमा बिजली की दमक से दे रहे हैं जो दिशाओं में चमक रही है।

पहिली सेना जब आयी थी उसमें भी बाजि गज चिक्कार करते थे। इस बार की अवाई में कठोर चिक्कार कर रहे हैं। यह भी महा अशुभ है। नहीं तो : गर्जहि गजघंटा धुनि घोरा। रथरव बाजि हिंस चहुओरा। यहाँ रथतुरग का अर्थ रथ का घोड़ा किया गया। यदि रथ और घोड़ा किया जाय तो यह अर्थ करना पड़ेगा कि रथ से भी चिक्कार के शब्द सुनाई पड़ रहे हैं। इनकी उपमा घोर बादल के गर्जन से दे रहे हैं।

कपि लंगूर बिपुल नभ छाए। मनहुँ इंद्रधनु उए सुहाए ॥
उठै धूरि मानहु जलधारा। बान बुंद भै वृष्टि[1] अपारा ॥३॥

अर्थ : बन्दरों की बहुत सी पूँछे आकाश में छायी हुई हैं। जैसे सुन्दर इन्द्रधनु उदय हुआ हो। धूलि ऐसी उठी मानो जल की धारा है और बाणरूपी बूँदों की अपार वृष्टि हुई।

व्याख्या : वर्षा का रूपक बिना इन्द्रधनुष के वर्णन किये पूरा नहीं होगा। सो कहते हैं कि आवेश से बन्दरों ने पूँछे उठा रक्खी हैं। जिस जिस रङ्ग के बन्दर हैं उसी उसी रङ्ग की उनकी पूछें हैं। सतरंगे बन्दर हैं। अतः उनके पूछों के समूह की इन्द्रधनु ऐसी शोभा है। प्रलय घन के समान बानरी सेना चली है। सो पंक्तिबद्ध पूँछों की शोभा कह रहे हैं। सेना के चलने से जो धूलि उठी उसने पृथिवी आकाश को

---

१. यह लड़ाई चित्रानछत्र की बर्षा है।

एक कर दिया। जिस भाँति मेघों से जलधारा छूटने से आकाश और पृथिवी एक हो जाती है। कवि युद्ध से अलग खड़े होकर दृश्य देख रहे हैं। जहाँ वृष्टि न होती हो वहाँ से ही देखने से जलधारा की शोभा दिखाई पड़ती है। अब आती हुई जलधारा की बूँदें पृथिवी पर पड़नी चाहिए। सो जैसे पहिली बूँदे फट् फट् शब्द करती हुई पृथिवी पर पड़ती हैं इसी भाँति ऊपर से बाण पड़ने लगे। दोनों सेनाएँ बाण के चोट की दूरी पर आगयी।

दुहुँ दिसि पर्वत करहिं प्रहारा। बज्रपात जनु बारहिं बारा॥
रघुपति कोपि बान झरि लाई। घायल भे निसिचर समुदाई॥४॥

अर्थ : दोनों ओर से पर्वत की चोट चलने लगी। मानो बार बार वज्रपात हो रहा है। रामजी ने क्रोध करके बाणों की झरी लगा दी। राक्षसों का समूह घायल हो गया।

व्याख्या : अब सेनाएँ और निकट आगयीं। पत्थर के चोट की दूरी पर आगयी। तो दोनों ओर से पत्थर का प्रहार प्रारम्भ हुआ। आज राक्षसी दल से भी पत्थर चल रहा है। देख लिया कि युद्ध में पत्थर की चोट के सामने हथियार काम नहीं करते। अतः राक्षस भी आज पर्वत लेकर आये हैं। पर्वत से पर्वत टक्कर खा रहे हैं। अतः बार बार वज्रपात होने से उपमा दे रहे हैं। वज्रपात का शब्द गर्जन के शब्द से अधिक होता है।

उधर राक्षसी सेना की ओर से बाण चलने लगे। पहिली लड़ाई में रावण ने अपनी बनैती दिखायी थी। यथा : सन्धानि धनु सर निकर छाड़े उरग जिमि उड़ि लागहीं। रहे पूरि सर धरनी गगन दिसि बिदिसि कहँ कपि भागहीं। अतः इस बार सरकार स्वयं खड़े होकर बाणों की झर लगा दिया। केवल बाण बाण दिखाई पड़ रहे हैं। न धनुष न तरकस न सन्धान न खैंचना न छोड़ना कुछ दिखाई नहीं पड़ रहा है। एक कदम राक्षसी सेना आगे नहीं बढ़ सकती। बन्दरों की सेना भी जहाँ की तहाँ रह गयी। रावण भी मुँह देखते रह गये। किसी का किया कुछ हुआ नहीं। निशाचरी सेना की सेना घायल हो गयी।

लागत बान बीर चिक्करहीं। घुर्मि घुर्मि जहँ तहँ महि परहीं॥
स्रवहि सैल जनु निर्झर बारी। सोनित सरि कादर भयकारी॥५॥

अर्थ : बाण लगते ही वीर चिग्घाड़ने लगते थे। घूम घूमकर जो जहाँ सो तहाँ ही पृथिवी पर गिरने लगे। जैसे पर्वत झरना द्वारा पानी बहता है वैसे ही कायरों को भयभीत करनेवाली रक्त की नदी बह चली।

व्याख्या : यद्यपि बाणों की झरी लगी थी फिर भी बाणों का वेग हलका नहीं है। बाण लगते ही वीर चिग्घाड़ उठते हैं। जिसे बाण लगा वह वहीं घूमकर गिरा। रावण के बाण साँप की भाँति उड़कर लगते थे। साँप में विष चाहे जैसा हो पर घाव गहरा नहीं कर सकता। यहाँ तो झरने की भाँति रक्त की धार बह चली।

अगणित वीर गिरे हैं। सबके शरीर से झरने के जल की भाँति रक्तस्राव हो रहा है। बहुत से झरने के जल एकत्रित होकर ही नदी बहती है सो रक्त की नदी बह चली। सबके शरीर से झरने के ज़ल की बह चली। रक्त जब तक गरम रहता है तभी तक उसमें द्रवता रहती है। जहाँ ठण्ढा पड़ा तहाँ जम जाता है। यहाँ एक साथ इतना रक्त बहा कि उसकी नदी बह चली। उसे देखकर कादर के तो प्राणपखेरू उड़ जायँ।

छं.[1] कादर भयंकर रुधिर सरिता चली परम अपावनी।
दोउ कूल दल रथ रेत चक्र अवर्त बहति भयावनी॥
जल जंतु गज पदचर तुरग खर बिबिध बाहन को गने।
सर सक्ति तोमर सर्प चाप तरंग चर्म कमठ घने॥

अर्थ : कादरों को भय उपजानेवाली रक्त की परम अपावन नदी बह चली। दोनों दल उसके दोनों किनारे थे। रथ बालू और पहिये भँवर थे। भयानकरूप से नदी बह रही थी। हाथी पैदल घोड़े गधे और अगणित वाहन ही उसमें जलजन्तु रूप थे। बाण बरछी और तोमर सर्प रूप थे। धनुष लहर और ढाल कछुए थे।

व्याख्या : कादर को तो रक्त देखते ही चक्कर आता है। रक्तनदी के देखने में तो वे सर्वथा असमर्थ हैं। नदी पावनी होती है पर रक्तनदी परम अपावनी है। भीभत्स रस की पराकाष्ठा है। ऐसी नदी इतने बड़े संग्राम में न बही और न बहेगी। अतः भाद्रपद कृष्ण त्रयोदशी की बाढ़ है। भाद्रकृष्णत्रयोदश्यां श्रीगङ्गा यत्र तिष्ठति। गंगागर्भः स विज्ञेयस्ततस्तु तदनन्तरम्। भादों बदी तेरस की जहाँ तक गङ्गा रहें तहाँ तक गङ्गागर्भ समझना चाहिए। किनारा तो उसके बाद है। अतः भादों बदी तेरस तक की बाढ़ को बाढ़ की सीमा माना गया है। वह रक्त की नदी दोनों दल के बीच से बही। इसलिए दोनों दल उसके किनारे हुए युद्ध में टूटे हुए रथ मानो किनारे के बालू हैं। रथ के चक्र मानो नदी के भँवर हैं। मरे हुए हाथी घोड़ा पैदल गधे आदि वाहन मानो उस नदी के जलजन्तु हैं। बाण बरछा तोमर आदि शस्त्र सीधे-सीधे होते हैं। वे वीरों के हाथ से छूटे हुए पड़े हैं। वे ही मानो सर्प हैं और गोलाकार ढाल ही मानो कछुवे हैं।

दो. बीर परहिं जनु तीरतरु, मज्जा बह जनु फेन।
कादर देखत डरहिं तेहि, सुभटन के मन चैन॥८७॥

अर्थ : वीर लोग तीर के पेड़ों की भाँति गिर रहे हैं। चरबी फेन की भाँति बह रही है। कायर तो उसे देखकर डरते हैं। पर वीरों के मन में चैन है।

व्याख्या : जब नदी बढ़ती है तो तट के वृक्ष गिरने लगते हैं। इसीलिये तट के वृक्ष सदा मृत्यु के मुख में रहते हैं। रावण ने कहा : तुम सुग्रीव कूलद्रुम दोऊ। नदी में बाढ़ आने से फेंन बहने लगता है। यहाँ रक्तनदी में चर्बी बह रही है।

---

१. हरिगीतिका छन्द।

सोनित सरि कादर भयकारी : से उपक्रम करके : कादर देखि डरहिं तेहि कहकर उपसंहार करते हैं। ऐसी नदी को देखकर वीरों को प्रसन्नता होती है। क्योंकि उनकी वीरता की परख तो उसी समय है। उन्हें वहाँ युद्धयज्ञ की दृष्टि होती है। कादर को हिंसा ही हिंसा दिखाई पड़ती है।

मज्जहिं भूत पिसाच बेताला। प्रमथ महा झोंटिंग कराला ॥
काक कंक लै भुजा उड़ाहीं। एक ते छीनि एक धरि खाहीं ॥१॥

अर्थ : भूत, पिशाच, बेताल, रुद्रगण तथा कराल महाभैरव वहाँ स्नान कर रहे हैं। कौवे और चील्ह भुजा लेकर उड़ते हैं। एक से छीनकर दूसरे पकड़कर खा जाते हैं।

व्याख्या : भूत नीचे दर्जे के देवगण हैं। पिशाच मांस खानेवाले प्रेतगण हैं। छाया सा रूप रखनेवाले प्रेत को बेताल कहते हैं। ये लोग तथा रुद्रगण और कराल महाभैरव उसमें नहाने वाले हैं। इन्द्रद्युम्न पर्व लग गया है। गङ्गाजी जब बहुत बढ़ जाती हैं तब यह पर्व लगता है। काशी के लोग ही इस पर्व से परिचित हैं।

बिना महाभैरव के इतना बड़ा संहार हो नहीं सकता। सो वे भी आगये। सद्यः शोणित के प्रेमी रुद्रगण भी पहुँच गये। यथा : भूषण कराल कपाल कर सब सद्य सोनित तन भरे। इन्हें ताजा शोणित इतना प्रिय है कि उसीमें इनका स्नान होता है। युद्धमें इनका आगमन होता है। स्थूल दृष्टि से नहीं देखे जाते।

चील्ह और कौवे मांसभक्षी पक्षी हैं, जहाँ कसाइयों की दूकान होती है वहाँ ये बहुत से उड़ते दिखाई पड़ते हैं। संग्राम में ही इनकी इच्छा पूर्ति होती है। सो बहुत से काककङ्क आये हुए हैं। उन्होंने पेट भर लिया और संग्रह के लिए कटी हुई भुजा लेकर उड़ चले। पता पाकर नये काककङ्क चले आ रहे थे। उन्हें ये रास्ते में मिले। वे इनसे भुजाओं को छीनने लगे।

एक कहहिं ऐसिउ सौंघाई। सठहु तुम्हार दरिद्रु न जाई ॥
कहँरत भट घायलतट गिरे। जहँ तहँ मनहु अर्ध जल परे ॥२॥

अर्थ : एक ने कहा कि इतनी बहुतायतमें भी दुष्ट ! तुम्हारा दारिद्र्य नहीं दूर होता। घायल वीर कराहते हुए तट पर गिरे हैं। जहाँ तहाँ मानों : मृतक आधे जल में पड़े हुए हैं।

व्याख्या : उनमें कुछ समझदार काककङ्क रहे। वे उन छीनछोर करनेवालों से बोले कि दुष्टो ! इतनी बहुतायत यहाँ मांस की है। क्या घाटा है जो छीनछोर करते हो। तुम्हारा दरिद्र स्वभाव पड़ गया है जो नहीं छूटता। भाव यह कि ऊपर मांसभक्षी पक्षी आपस में मांस के लिए लड़ रहे थे। इससे यह न समझना कि उस रणभूमि में मांस की कमी थी। उनका स्वभाव ही ऐसा है। इसलिए लड़ रहे थे।

पहले कह आये हैं कि वीर परहिं जनु तीरतरु। सो उनमें से कुछ एक के प्राण बाकी हैं। वे कराहते हुए गिरे हैं। आधे बाहर और आधे रक्तनदी के भीतर पड़े हुए

हैं। उनकी उपमा नदी किनारे लाये हुए आसन्न मरण की भाँति जो कि आधा जल में और आधा जल के बाहर रख दिये जाते हैं।

खेंचहि गीध आँत तट भएँ। जनु बंसी खेलत चित दएँ॥
बहुँ भट बहहिं चढ़े खग जाहीं। जनु नावरि खेलहिं सरि माहीं॥३॥

अर्थ : कहीं गीध किनारे पर से आँत खैंच रहे हैं। जैसे मन लगाकर मछली का शिकार खेलते हों। बहुत से योद्धा बहे जा रहे हैं। उन पर पक्षी बैठे हुए हैं मानो नदी में नावरि खेल रहे हैं।

व्याख्या : कुछ मर गये हैं और नदी में आ पड़े हैं। उनकी आँत गीध तट पर से खैंच रहे हैं। उनकी उपमा उन मछली मारनेवालों से है जो पानी में बंसी डालकर मछली फँसाते हैं।

कविने नदी का पूरा रूपक खैंचा है। जब नदीमें बाढ़ आती है तो उसकी सैर करने के लिए लोग नावों पर विहार करते हैं। जिसे नावरि खेलना कहा जाता है। उन मुर्दों में से जो नदी के वेग में आ पड़े वे बहे जा रहे हैं। पक्षी आकर उन पर बैठ जाते हैं। उनकी उपमा नावरि खेलनेवालों से है।

जोगिनि भरि भरि खप्पर संचहिं। भूत पिसाच बधू नभ नंचहिं॥
भट कपाल करताल बजावहिं। चामुंडा नाना बिधि गावहिं॥४॥

अर्थ : योगिनियाँ खप्पर भर भरकर सञ्चय कर रही हैं। भूत पिशाच की वधू आकाश में नाच रही हैं। वीर लोगों के कपाल को बजाकर ताल दे रही हैं और चामुण्डा अनेक प्रकार का गान कर रही हैं।

व्याख्या : प्रेतयोनि विशेष को योगिनी कहते हैं। उन्होंने जी भरकर रक्त पान तो कर लिया। अब कल के लिए खप्पर में रक्त भर भरकर सञ्चित कर रही हैं। भूत पिशाच की वधू आनन्द के आकाश में नृत्य कर रही हैं। इतना ही नहीं चण्ड मुण्ड की वध करनेवाली काली भी प्रकट हो गयीं। यस्माच्चण्डञ्च मुण्डञ्च गृहीत्वा त्वमुपागता। चामुण्डेति ततो लोके ख्याता देवी भविष्यति। देवी ने काली से कहा कि तुम चण्ड और मुण्ड का सिर लेकर आयीं। इसलिए तुम्हारा नाम चामुण्डा होगा। सो चामुण्डा भी प्रकट होकर आनन्द से वीरों के मुण्डको बजा बजाकर अनेक प्रकार से गान करने लगीं। पार्ष्णिग्राहाङ्कुशग्राहियोधघण्टासमन्वितान्। समादायैक-हस्तेन मुखे चिक्षेप वारणान्। तथैव योधं तुरगैः रथं सारथिना सह। निक्षिप्य वक्त्रे दशनैः चर्वयन्त्यतिभैरवम्। उन काली देवी का यह हाल था कि एक हाथ से हाथी घण्टा हाथीवान् और योधा को पकड़कर मुख में डाल लेती थीं। उसी भाँति सारथी, रथी, रथ और घोड़ों को मुख में डालकर बड़े भयंकर रीति से चबाती थीं। वे भी आज सन्तुष्ट होकर गान कर रही हैं। इससे आश्विन के नवरात्र में ब्रह्मदेव द्वारा रावण वध के लिए देवी के जगाने का जो कथा है उसका भी इङ्गित मिलता है कि कालिका भगवती लंका में आगयीं।

जंबुक निकर कटक्कट कट्टहिं । खाहिं हुहाहिं अघाहिं दपट्टहिं ॥
कोटिन्ह रुण्ड मुंड बिनु डोल्लहिं । सीस परे महि जय जय बोल्लहिं ॥५॥

अर्थ : गीदड़ोंका झुण्ड कटाकट काट रहा है । खा रहा है । हुआं हुआं करता है । डपटता है । करोड़ों धड़ बिना सिर के चल रहे हैं और सिर पृथिवी पर पड़े हुए जय जय बोल रहे हैं ।

व्याख्या : शृगालों का समूह भी पहुँच गया । ये शवोंको काट काटकर खाने लगे और आनन्द से हुआँ हुआँ करने लगे । पेट भर जाने पर नवागन्तुकों को डपटने लगे । भाव यह कि आकाश में पृथिवी पर सर्वत्र अति भयानक और बीभत्स दृश्य है ।

रुण्ड तो कुम्भकर्ण के युद्ध में भी उठे थे । लाखों सेना के मारे जाने पर कहीं एक रुण्ड उठता है । इस काल में सुनते हैं कि ऊदल का रुण्ड उठा था । सो यहाँ करोड़ों रुण्ड उठे । जीत की धुन उनके सिर पर ऐसी सवार है कि सिर कटने पर भी युद्ध के लिए बढ़ते चले जाते हैं और उनका मुण्ड पृथिवी पर पड़ा जय जय बोल रहा है ।

छं.[1] बोल्लहिं जों जय जय मुंड रुंड प्रचंड सिर बिनु धावहीं ।
खप्परन्हि खग्ग अलुज्झि जुज्झहिं सुभट भटन्ह ढहावहीं ॥
बानर निसाचर निकर मर्दहिं रामबल दर्पित भए ।
संग्राम अंगन सुभट सोवहिं रामसर निकरन्हि हए ॥

अर्थ : कहीं मुण्ड जय जय बोलते थे । कहीं प्रचण्ड रुण्ड बिना सिर के दौड़ते थे । वे खोपड़ियों में तथा खड्ग से उलझकर जूझते थे । कहीं अच्छे योद्धा दूसरे योद्धा को गिरा रहे थे । राक्षसों के समूह को मर्दन करके घमण्ड से भालू और बन्दर गरजते थे । रामजी के बाणों से मारे हुए योद्धा रणाङ्गन में सो रहे थे ।

व्याख्या : रुण्ड अन्धों की भाँति दौड़ते हैं । क्योंकि सिर तो उन्हें है नहीं । वह तो पृथिवी पर पड़ा हुआ अलग जय जय कर रहा है । अतः वे रुण्ड योगिनियों के खप्पर अथवा वीरों के खड्ग से उलझकर जूझ जाते हैं अर्थात् गिर जाते हैं । अथवा सुभट लोग भटों को गिरा देते हैं । रुण्ड यदि गिरा तो फिर नहीं उठ सकता । मर ही जायगा । बचे बचाये निशाचरों को भालु कपि मर्दन कर रहे हैं । उनका दर्प बढ़ गया है कि हम लोगों ने राक्षसों का संहार कर दिया । संग्राम भूमि में जहाँ देखिये तहाँ रामजी के बाणों के मारे हुए वीर सो रहे हैं । अर्थात् मरे पड़े हैं ।

दो. रावन हृदय बिचारा भा निसिचर संघार ।
मैं अकेल कपि भालु बहु, माया करौं अपार ॥८८॥

---

१. हरिगीतिका छन्द ।

अर्थ : रावण ने हृदय में विचार किया कि राक्षसों का तो संहार हो गया। मैं अकेला हूँ। भालु बन्दर बहुत हैं। ऐसी माया रचूँ कि जिसका पार न हो।

व्याख्या : निसिचर हीन करउँ महि : यह प्रतिज्ञा पूरी हुई। रावण के मन ने कह दिया कि राक्षसों का संहार हो गया। अकेला मैं बचा हूँ। बन्दर भालु बहुत हैं। इनसे लड़ना मुझसे साध्य नहीं है। जो सेना बची है वह नहीं के बराबर है। रावण अपने को अकेला समझ रहे हैं। अतः अब ऐसी ऐसी माया करनी चाहिए कि इन सबों को उसका पार हाथ न लगे। इनके समझ में न आवे कि असली मालिक कौन है। कुम्भकर्ण ने भी सेना का संहार देखा था। यथा : कुंभकरन मन दीख बिचारी। हतौ छन मांझ निसाचर धारी। पर उसने बल से काम लिया। रावण माया से काम लेना चाहते हैं।

देवन्ह प्रभुहि पयादे देखा। उपजा उर अति छोभ बिसेखा ॥
सुरपति निज रथु तुरत पठावा। हरख सहित मातलि लै आवा ॥१॥

अर्थ : देवताओं ने सरकार को पैदल देखा। हृदय में अत्यन्त विशेष क्षोभ उत्पन्न हुआ। इन्द्र ने अपना रथ तुरन्त भेज दिया। मातलि हर्षित होकर ले आया।

व्याख्या : पहिले कहा जा चुका है कि देवता लोग विनती करने आये थे। उसी समय निशाचरी सेना आयी। सरकार पैदल ही लड़ने चले। इस बात को देवताओं ने देखा। इधर रावण को रथ पर देखा। विभीषण की भाँति देवताओं के हृदय में भी अति विशेष क्षोभ हुआ। अर्थात् वे भी अत्यन्त अधीर हो उठे। रावण का पराक्रम जानते हैं। सो इस समय रथारूढ़ है। देखा तो देवताओं ने उसी समय पर कवि को उस कथा के लिखने का अवसर अब मिला।

सुरपति हैं। इनका रथ भी सब देवताओंके रथ से उत्तम है। उसे उन्होंने तुरन्त भेजा। जल्दी इस बात की है कि सरकार बड़ी फुरती से निशाचरी सेना का संहार कर रहे हैं। अब राम रावण युद्ध हुआ ही चाहता है। सो उस युद्ध के आरम्भ होने के पहिले ही रथ पहुँच जाना चाहिए। इन्द्र भगवान् ने मातलि : अपने सारथी को आज्ञा दी कि तुरन्त रथ लेकर जाओ। मातलि बड़े हर्षित हुए कि अभी तक तो मुझे इन्द्र के सारथी होने का गौरव प्राप्त था। अब स्वयं रामजी के सारथी होने जा रहे हैं। अतः बहुत प्रसन्न होकर रथ ले आये।

तेज पुंज रथ दिब्य अनूपा। बिहँसि चढ़े कोसलपुर भूपा ॥
चंचल तुरग मनोहर चारी। अजर अमर मन सम गति कारी ॥२॥

अर्थ : वह तेज पुंज रथ दिव्य था। कोशलपुर भूप उस पर हँसकर चढ़ गये। उसमें मन के हरण करनेवाले चार चञ्चल घोड़े थे जो अजर अमर और मन के सदृश वेगवाले थे।

व्याख्या : अब कवि उस रथ का वर्णन करते हैं। साक्षात् देवराज का रथ है। अतः लौकिक रथ नहीं हो सकता। उसकी गति स्वर्ग से मृत्युलोक तक है।

इसलिए दिव्य कहा। तेजपुञ्ज से काष्ठादि का अभाव कहा। उसका उपादान कारण तेज था। अतः संग्राम में तोड़ा नहीं जा सकता था। अतः दूसरा कोई रथ ऐसा नहीं था जिससे उसकी उपमा दी जा सके।

घोड़े के चञ्चल होने की ही प्रशंसा है। यथा : अपइ वजरत धरत पग धरनी और सुन्दर होने की प्रशंसा है। सो इस रथ के घोड़े सर्वलक्षण सम्पन्न हैं। देखने में मनोहर हैं। चञ्चल हैं। रावण मरुत वेग रथ पर बैठते हैं। ये घोड़े मन के समान गतिवाले हैं। अतः रथ की भी गति मन के समान हुई। रावण के रथ को लक्ष्मणजी ने कई बार तोड़ा था। घोड़े भी मारे थे। पर यह रथ शत्रु द्वारा न तो तोड़ा जा सकता था। न घोड़े मारे जा सकते थे। क्योंकि अजर अमर थे।

रथारूढ़ रघुनाथहिं देखी। धाए कपि बल पाइ बिसेखी ॥
सही न जाइ कपिन्ह कै मारी। तब रावन माया बिस्तारी ॥३॥

अर्थ : रामजी को रथारूढ़ देखकर बन्दर लोग विशेष बल पाकर दौड़े। बन्दरों की चोट रावण सह न सके। तब उन्होंने माया का विस्तार किया।

व्याख्या : रामजी ने पैदल ही सम्पूर्ण राक्षसी सेना का संहार किया। अब तो रथारूढ़ हैं। अब इन्हें कौन पा सकता है। अतः मालिक के उत्कर्ष से सेवकों का बल बढ़ गया। सेवकों को मालिक का बल रहता है। अब बन्दर रावण को मारने दौड़े। क्योंकि वे ही बच रहे थे। सो खूब पर्वत वृक्षादि से आघात किया।

पहिले बन्दरों ने जो आघात किया उसे रावण सह गये। लागहिं सैल वज्र तृन तासू। खंड खंड होइ फूटहिं आँसू। चला न अचल रहा रथ रोपी। रन दुर्मद रावन अति कोपी। पर इस बार बन्दरों ने ऐसा पिटान पीटा कि शरीर ढीला पड़ गया। अब चोट नहीं सही जाती। तब रावण ने माया फैलायी। कौन सी माया फैलाना चाहिए इस बात का निश्चय उसने पहिले ही कर रक्खा है कि अमुक माया का कोई पार न पा सकेगा।

सो माया रघुबीरहि बाँची। लछिमन कपिन्ह सो मानी साँची ॥
देखी कपिन्ह निसाचर अनी। अनुज सहित बहु कोसलधनी ॥४॥

अर्थ : उस माया को रघुवीर ने ही समझा। वानरों ने और लक्ष्मण ने उसे सच्चा ही समझा। बन्दरों ने राक्षसों की सेना में लक्ष्मण के सहित बहुत से रामचन्द्र को देखा।

व्याख्या : जिस वर्णमाला से जो परिचित होता है उस वर्णमाला के लेख को वहीं बाँच सकता है। इसी भाँति जिस माया से जो परिचित होता है वही उसके मर्म को समझ सकता है। सरकार मायापति हैं। उनकी माया के वशवर्ती ब्रह्मादिक देवता और असुर सभी हैं। वे सभी माया को जानते हैं। उन्होंने तो समझ लिया कि यह माया है। उसका भेद उनके सामने तो खुला ही खुलाया

था। लक्ष्मणजी और बन्दर उस माया को नहीं समझ सके। उन लोगों ने उसे सच्ची ही मान लिया। रज्जु के सर्प से तभी तक भय रहता है जब तक यह ज्ञान नहीं होता कि यह रज्जु है। ज्ञान होने पर सर्प दिखाई पड़ने पर भी भय नहीं होता। सो लक्ष्मणजी और बानरी सेना रज्जु को नहीं पहिचान सके। यह रज्जुस्थानीय राक्षसों की बची बचाई सेना थी। माया द्वारा वे ही राक्षस लक्ष्मणजी तथा बन्दरों को राम और लक्ष्मण दिखायी पड़ने लगे।

छं.[1] बहु राम लछिमन देखि मर्कट भालु मन अति अपडरे।
जनु चित्रलिखित समेत लछिमन जहँ सो तहँ चितवहिं खरे॥
निज सेन चकित बिलोकि हँसि सर चाप सजि कोसलधनी।
माया हरी हरि निमिष महुँ हरषी सकल मरकट अनी॥

अर्थ : बहुत से राम और लक्ष्मण को देखकर बन्दर और भालु मिथ्या भय से डर गये। लक्ष्मण के सहित वे मानो चित्र में लिखे हुए हैं। इस भाँति खड़े देखने लगे। अपनी सेना को चकित देखकर हँसकर कोशलाधीश ने धनुष बाण चढ़ाकर एक निमिष में माया हरण कर ली। तब तो बानरी सेना प्रसन्न हो गयी।

व्याख्या : अब बन्दर भालु राक्षसों को राम लक्ष्मण देख रहे हैं। किस पर प्रहार करें। अथवा राम और लक्ष्मण की आज्ञा से ही वे सब काम करते थे। सो इतने राम लक्ष्मण हो गये कि पता नहीं चलता कि जिनकी हम आज्ञा मानते थे वे इनमें से कौन हैं ? अब किसकी आज्ञा मानें। यह अद्भुत दृश्य देखकर वे सब स्तब्ध हो गये। लक्ष्मणजी बन्दरों के सहित इस भाँति खड़े देख रहे हैं। जैसे चित्र में लिखा हुआ व्यक्ति बिना पलक गिराये निश्चल रहता है। अपनी सेना को चकित देखकर सरकार हँस पड़े कि लक्ष्मण भी धोखा खा गये। रावण ने दर्पणास्त्र का प्रयोग किया था। जिससे राम लक्ष्मण के प्रतिबिम्ब का आवरण राक्षसों पर पड़ रहा था। सो सरकार ने धनुष बाण सन्धान करके उस दर्पणास्त्र को काट दिया। प्रतिबिम्ब का आवरण दूर हो गया। पलक पड़ते पड़ते माया दूर हो गयी। बानरी सेना प्रसन्न हो उठी।

दो. बहुरि राम सब तन चितइ बोले बचन गँभीर।
द्वंदजुद्ध देखहु सकल स्रमित भए अति बीर॥८९॥

अर्थ : फिर रामजी सबकी ओर देखकर गम्भीर वाणी बोले कि सब कोई अब द्वन्द्व युद्ध देखो। वीर लोग अत्यन्त थक गये हैं।

व्याख्या : तब रामजी ने सबकी ओर देखा। जान गये कि वीर लोग युद्ध करते करते अत्यन्त थक गये हैं। दूसरा भाव सबकी ओर देखकर बोलने का यह

---

१. हरिगीतिका छन्द है।

है कि यह आज्ञा सबके लिए है कि तुम लोग तमाशा देखो। द्वन्द्व युद्ध मेरे और रावण के बीच होने दो। तुम लोग इतने थक गये हो कि लड़ने लायक नहीं हो। सरकार का वचन ऐसा गम्भीर था कि सारी सेना ने सुना और तात्पर्य की दृष्टि से भी गम्भीर था। रावण के मनोरथ को भी पूर्ण करना चाहते हैं। वह अब अकेले लड़ना चाहता है। यथा : मैं अकेल कपि भालु बहु। और अकेले उस मायावी से कोई लड़ नहीं सकता। अतः मैं उससे अकेले लड़ूँगा।

अस कहि रथ रघुनाथ चलावा। बिप्रचरन पंकज सिर नावा ॥
तब लंकेस क्रोध उर छावा। गर्जत तर्जत सनमुख आवा ॥१॥

अर्थ : ऐसा कहकर रामजी ने रथ चलाया। ब्राह्मण के चरण कमलों में सिर नवाया। तब तो लंकेश के हृदय में क्रोध छा गया। गरजता हुआ और डाँटता हुआ सामने आया।

व्याख्या : सबको युद्ध से विरत करके रामजी ने मातलि को आज्ञा दी कि रावण के सामने रथ ले चलो। यह रथ उस धर्मरथ का मानो प्रतीक होकर आया जिसका वर्णन विभीषण से कर चुके हैं। कवच के स्थान पर रामजी ने ब्राह्मण के चरण कमलों को प्रणाम किया : कवच अभेद बिप्र गुरु पूजा। अर्थात् गुरु वसिष्ठजी के चरण कमलों को प्रणाम किया। आगे कहेंगे भी : गुरु बसिष्ठ कुलपूज्य हमारे। इनकी कृपा दनुज रन मारे।

श्री रामजी को युद्ध के लिए आते देखकर रावण को बड़ा क्रोध हुआ कि इसने जानबूझकर मुझसे लड़ाई मोल ली। मेरे कुल का संहार किया। अब मेरे प्राण लेने के लिए रथारूढ़ हुआ चला आरहा है। रथ देखकर और भी क्रोध बढ़ा। मातलि को पहिचानता है। देखो इन्द्र ने दगा किया। अपना रथ भेज दिया। जब उसे मेघनाद ने बाँध लिया था तब ब्रह्मदेव ने यह कहकर उसे छोड़ाया था कि यह तुम्हारी आज्ञा में रहेगा। सो इस गाढ़े समय में शत्रु के पास अपना रथ भेज दिया। गर्जता है डराने के लिए। डाँटता है कि मँगनी के रथ पर चढ़कर रथवाले बने हो। उसने भी सारथी को आज्ञा दी कि शत्रु के सम्मुख रथ ले चलो।

जीतेहु[1] जेभट संजुग माँही। सुनु तापस मै तिन्ह सम नाँही ॥
रावन नाम जगत जस जाना। लोकप जाके बंदीखाना ॥२॥

अर्थ : जिन वीरों को तुमने लड़ाई में जीता है। तपस्वी ! सुन। मैं उनके समान नहीं हूँ। मेरा नाम रावण है। मेरा यश संसार जानता है कि मेरे जेलखाने में लोकपाल बन्द रहते हैं।

व्याख्या : तापस सम्बोधन करने से रावण का भाव यह कि तू अपने धर्म का अतिक्रमण कर रहा है : तापस बेष बिसेष उदासी रहने का मुझे वचन है।

---

१. यहाँ प्रतिषेधा लंकार है।

तुझसे युद्ध से क्या सम्बन्ध। युद्ध करके तू पिता के वचन का उल्लंघन कर रहा है। तू खरदूषणादि के धोखे से मेरे सामने आरहा है। सो मुझे वैसा न समझना। जिनको तूने रण में जीता है उन्हें कौन जानता है। मैं रावण हूँ। मेरा यश संसार जानता है कि मैं रुलाकर छोड़ता हूँ : रावयतीति रावणः। मेरे बन्दी गृह में लोकपाल पड़े रोया करते हैं। साधारण लोगों की गिनती ही क्या है।

खरदूषन कबंध तुम्ह मारा। बधेहु ब्याध इव बालि बिचारा ॥
निसिचर निकर सुभट सँघारेहु। कुंभकरन घननादहिं मारेहु ॥३॥

अर्थ : तुमने खरदूषण और कबन्ध को मारा। बाली बिचारे को ब्याध की भाँति मारा। निशिचर समूह तथा सुभटों का संहार किया। कुम्भकर्ण मेघनाद को मारा।

व्याख्या : तुमसे मेरा बड़ा भारी वैर है। तुमने मेरा बड़ा अनिष्ट किया है। तुम मुझसे वैर पर वैर करते ही चले आते हो। पहिला वैर तो यही किया कि खरदूषण को मारा। दूसरा वैर यह किया कि मेरे मित्र बाली बिचारे को ब्याध की भाँति छिपकर मार डाला। तीसरा वैर यह कि तुमने राक्षसों का संहार कर दिया। चौथा यह कि कुम्भकर्ण और मेघनाद को मारा। मेघनाद को यद्यपि लक्ष्मणजी ने मारा पर उन्होंने रामजी की आज्ञा से मारा। यथा : तुम लछिमन रन मारेहु ओही। देखि सभय सुर दुख अति मोही। अतः उसके वध के भी प्रयोजक कर्ता रामजी ही हुए। इतने वैरों का बदला मुझे चुकाना है : ऐसी हो बात लक्ष्मणजी से भी कही थी। यथा : खोजत रहेउँ तोहि सुतघाती।

आजु बयरु सब लेउँ निबाही। जौं रन भूप भाजि नहिं जाही ॥
आजु करौं खलु काल हवाले। परेहु कठिन रावन के पाले ॥४॥

अर्थ : हे राजा ! यदि आज तू लड़ाई से भाग न गया तो मैं सब वैर चुका लूँगा। आज निश्चय तुम्हें काल के सुपुर्द कर दूँगा। अब तो कठिन रावण के पाले पड़ गये हो।

व्याख्या : इन सब वैरों से कलेजा जल रहा था। आज तू सामने पड़ गया है। सो सब वैरों का बदला चुका लूँगा। यदि भाग गया तो दूसरी बात है। जिस भाँति सरकार ने खरदूषण से कहा था : जो न होइ बल घर फिरि जाहू। समर बिमुख मैं हतौ न काहू। वैसी ही बात आज रावण कह रहा है। उसके कहने का भाव यह है कि यदि अब भी तुम भाग जाओ तो यह भय मत करो कि रावण पीछा करेगा। मैं छोड़ दूँगा।

नहीं तो आज निश्चय ही तुम्हें काल के सुपुर्द कर दूँगा। अर्थात् मार ही डालूँगा। काल मेरे वश में है। यथाः भुजबल जितेउ काल जमसाईं। रावण कठिन है। वह शत्रु पर दया करना जानता ही नहीं। उसके पाले जो पड़ा वह किसी

भाँति बच नहीं सकता। खल कहने का भाव यह कि तू खल है। निष्कारण दूसरे का अपकार करता है। मेरा अपकार तुमने निष्कारण किया। सूर्पणखा के नाक कान काटने का कोई कारण नहीं था।

सुनि दुर्बचन कालबस जाना। बिहँसि बचन कह कृपानिधाना ॥
सत्य सत्य सब तव प्रभुताई। जल्पसि जनि देखाउ मनुसाई ॥५॥

अर्थ : दुर्वचन सुनकर उसे काल के वश जान लिया। कृपानिधान ने हँसकर कहा कि तेरी सब प्रभुता सच्ची है सच्ची पर बक मत पौरुष दिखला।

व्याख्या : उसके दुर्वचन को सुनकर सरकार ने समझ लिया कि इसे मानसिक सन्निपात हो गया है। इसलिए दुर्वचन कह रहा है। यथा : सन्नपात जल्पसि दुर्बादा। भयेसि कालबस खल मनुजादा। रावण दुर्वचन कहकर भी क्रुद्ध है। सरकार दुर्वचन सुनकर भी हँसते हैं। हँसने का कारण उसका डराना है। कृपानिधान हैं। उसके दुर्वचन पर भी क्रोध नहीं है। उसे उपदेश करने की कृपा करते हैं।

अर्धाङ्गीकार में सत्य सत्य कहते हैं। दसमुख सभा दीखि कपि जाई। कहि न जाइ कछु अति प्रभुताई। कर जोरे सुर दिसिप बिनीता। भृकुटि बिलोकत सकल सभीता। अतः सरकार कहते हैं कि जो अपनी दो प्रभुताई तुमने कही है १. रावन नाम जगत जस जाना और २. लोकप जाके बन्दीखाना। सो दोनों सत्य हैं। पर यहाँ तो युद्ध करना है। सूर समर करनी करहिं कहि न जनावहिं आप। बिद्यमान रन पाइ रिपु कायर कथहिं प्रताप। अतः समर में प्रताप कथन जल्पना : बकवाद मात्र है। वहाँ तो पुरुषार्थ दिखाना चाहिए। अतः बकबक मत कर पुरुषार्थ दिखला।

छं.[१] जनि जल्पना करि सुजसु नासहि नीति सुनहि करहि छमा।
संसार महु पूरुष त्रिबिध पाटल रसाल पनस समा ॥
एक सुमन प्रद एक सुमन फल एक फलहि केवल लागहीं।
एक कहहिं कहहिं करहिं अपर एक करहिं कहत न बागहीं ॥

अर्थ : जल्पना करके अपनी कीर्ति का नाश न कर। क्षमा करके नीति सुन। संसार में तीन प्रकार के पुरुष होते हैं। गुलाब आम और कटहल के सदृश। एक फूल देते हैं। एक फूल फल दोनों देते हैं और एक केवल फल ही देते हैं। एक कहते हैं। एक कहते भी हैं और करते भी हैं। एक कर देते हैं। कहते नहीं फिरते।

व्याख्या : समर में जल्पना करने से सुयश का नाश होता है। लोग समझते हैं कि यह कादर है कुछ कर नहीं सकता। इसलिए प्रताप कथन कर रहा है। क्रोध को रोको क्षमा करो और नीति सुनो। संसार में तीन प्रकार के पुरुष होते हैं। कोई गुलाब सा होता है। कोई आम सा और कोई कटहल सा। गुलाब केवल सुन्दर

---

१. यहाँ गूढ़ोत्तर अलंकार है।

सुन्दर फूल देता है। फल के नाम से वहाँ कुछ भी नहीं। अतः जिन लोगों की उपमा गुलाब से दी गयी है उनसे बड़ी बड़ी बातें सुन लो करना धरना कुछ नहीं। आम का फूल भी बड़ा सुगन्धित होता है और फल तो जगद्विख्यात है। अतः जिनकी आम से उपमा दी गयी है वे कहते भी हैं और कर भी दिखाते हैं। कटहल का पेड़ सीधे सीधे फल देता है। फूल उसमें होता ही नहीं। अतः जिनकी कटहल से उपमा दी गयी है वे कर दिखाते हैं। कहते कुछ नहीं। निर्गलितार्थ यह कि मैं कटहल की भाँति हूँ कर दिखाऊँगा कहूँगा कुछ भी नहीं। मेरा भाई आम की भाँति है। वह कहता भी है और कर भी दिखलाता है। तुम गुलाब के से हो। बड़ी बड़ी बात करते हो पर कर कुछ न सकोगे।

दो. राम बचन सुनि बिहंसा, मोहि सिखावत ज्ञान।
बैर करत तब नहि डरे, अब लागे प्रिय प्रान॥९०॥

अर्थ : रामजी का वचन सुनकर हँसा कि मुझे ज्ञान सिखाता है। वैर करते तो नहीं डरा। अब प्राण प्रिय लग रहा है।

व्याख्या : रावण भी रामजी की बात सुनकर हँसे। पर यहाँ हँसी भी क्रोध की हँसी है कि कल का छोकड़ा मुझे ज्ञान सिखाने चला है। संसार को तो मैं ज्ञान सिखलाऊँ। यह क्षत्रिय अल्पवयस्क अल्पश्रुत मुझ महापण्डित को ज्ञान सिखाता है। कहता है क्षमा करो। नहीं क्षमा करूँगा। तेरा अपराध क्षमा योग्य नहीं है। सूर्पणखा का नाक कान काटना मुझसे वैर मोल लेना है। सो वैर मोल ले लेने में ही डरने का समय था। जिसे प्राणप्रिय हो वह मेरा अनिष्टाचरण न करे। सो तब तो न डरे। अनिष्टाचरण कर बैठे। तब प्राण प्रिय न लगा। अब फलकाल उपस्थित है। इस समय प्राणप्रिय लगने से तुम बच नहीं सकते।

कहि दुर्बचन क्रुद्ध दसकंधर। कुलिस समान लाग छाडै सर॥
नानाकार सिलीमुख धाये। दिसि अरु बिदिसि गगन महि छाये॥१॥

अर्थ : दुर्वचन कहकर क्रुद्ध रावण वज्र के समान बाण छोड़ने लगा। अनेक प्रकार के आकारवाले बाण वेग से चले। वे दिशा विदिशा आकाश और पृथिवी पर छा गये।

व्याख्या : वैर करते समय तो न डरे मुझे चुनौती दिया। ऐसा कहकर सूर्पणखा नासिकाच्छेदन की ओर इङ्गित करके उस विषय पर उत्तर प्रत्युत्तर न चाहकर वह वज्र समान बाण क्रुद्ध होकर छोड़ने लगा। रावण ने अपने मुख से स्पष्ट कभी सूर्पणखा नासिकाच्छेदन की चर्चा नहीं की। अङ्गदजी ने ताना भी दिया : नाक कान बिनु भगिनि निहारी। छमा कीन्ह तुम धर्म बिचारी। तब भी उसने उस विषय पर कुछ नहीं कहा। यह ऐसी मार्मिक चोट रावण पर बैठी है कि उसके स्मरण से ही वह लज्जा का अनुभव करता है। सरकार ने दुर्वचन सुनकर उसे कालवश जाना और हँस दिया। यह दुर्वचन कहकर भी क्रुद्ध है। बन्दरों पर शर

निकर छोड़ा। लक्ष्मणजी पर प्रचण्ड बाण छोड़ा। अब सरकार पर वज्र के तुल्य बाण छोड़ रहा है। बाण के अर्धचन्द्र आदि अनेक आकार होते हैं। सो अनेक प्रकार के बाण छोड़ने से अपना लाघव दिखला रहा है कि चारों दिशाओं और चारों विदिशाओं तथा ऊपर और नीचे बाण ही बाण दिखाई पड़ने लगे।

पावक सर छाड़े रघुबीरा। छन महुँ जरे निसाचर तीरा ॥
छाडिसि तीव्र सक्ति खिसिआई। बान संग प्रभु फेरि पठाई ॥२॥

अर्थ : सरकार ने आग्नेयास्त्र छोड़ा। राक्षस के सब तीर जल गये। तब खीझकर उसने तीव्र शक्ति चलायी प्रभु ने बाण के साथ उसे लौटा दिया।

व्याख्या : इन सब बाणों के उत्तर में सरकार ने आग्नेयास्त्र का प्रयोग कर दिया। उस अस्त्र ने उसके चलाये हुए सब तीरों को जला दिया। उसने देखा कि बाण की वर्षा निष्फल गयी। इसी भाँति और भी वर्षा निष्फल जायगी। अतः उसने अमोघशक्ति जो जल न सके : न निष्फल जा सके : उसे चला दिया। सरकार ने बनैती की पराकाष्ठा दिखला दी। बाण के चोट से उसका रुख फेर दिया और दूसरे बाणों द्वारा रावण के पास लौटा दिया कि इसे किसी अनजान पर चलाना।

कोटिन्ह चक्र त्रिसूल पँवारइ। बिनु प्रयास प्रभु काटि निवारइ ॥
निफल होहिं रावन सर कैसे। खल के सकल मनोरथ जैसे ॥३॥

अर्थ : उसने करोड़ों चक्र और त्रिशूल चलाये। सबों को सरकार ने अनायास ही काट गिराया। राक्षस के बाण किस भाँति निष्फल हो रहे हैं जैसे खल के सब मनोरथ।

व्याख्या : बाणवर्षा भी निष्फल गयी। शक्ति ने भी काम नहीं किया तो अन्य अस्त्रों से काम लेने लगा। चक्र चलाने लगा तो करोड़ों चक्र चलाया। उससे भी काम न होते देखकर त्रिशूल चलाना आरम्भ किया। तो करोड़ों त्रिशूल ही चलाता चला जा रहा है। परन्तु सरकार ने उनमें से एक एक को काट गिराया और उन्हें कुछ भी आयास न हुआ।

कवि कहते हैं कि रावण के अस्त्र इस भाँति निष्फल हो रहे हैं जैसे खल के सभी मनोरथ निष्फल होते हैं। यहाँ पर शर शब्द अस्त्र मात्र का उपलक्षण है। खल के मनोरथ यदि कहीं सफल हों तो संसार का ही नाश हो जाय। अतः यह नियम है कि खल के सभी मनोरथ निष्फल होते हैं। मनोरथ तो सभी के कुछ न कुछ निष्फल होते हैं। पर सफल भी होते हैं। खल में यह विशेषता है कि उसका कोई भी मनोरथ पूर्ण नहीं होता।

तब सत बान सारथी मारेसि। परेउ भूमि जय राम पुकारेसि ॥
राम कृपाकरि सूत उठावा। तब प्रभु परम क्रोध कहुँ पावा ॥४॥

अर्थ : तब उसने सौ बाण सारथी को मारा। वह पृथिवी पर गिर गया और

उसने रामजी की जय पुकारा। रामजी ने कृपा करके सारथी को उठाया तब प्रभु परमक्रोध को प्राप्त हुए।

व्याख्या : रावण ने जब देखा कि रथी पर कोई बल नहीं चल रहा है। तो एकाएक सारथि पर चोट कर दिया। जानता है कि मातलि इन्द्र का सारथि है। बड़े बड़े संग्राम में इसने असुरों के अस्त्रों को सहन किया है। दश पाँच बाण से इसका कुछ न होगा। इसलिए उस पर सौ बाण से एक साथ चोट कर बैठा। मातलि पृथिवी पर जा गिरे और रामजी की जय पुकारा। भाव यह कि मृत्युकाल उपस्थित समझकर रामजी का स्मरण किया। अथवा सहायता के लिए रामजी को पुकारा। अमर भी अवध्य नहीं होते। इतनी ही विशेषता है कि उनकी मृत्यु कठिनता से होती है। यथा : सकौं तोर अरि अमरहु मारी।

रामजी ने कृपा करके सारथि को उठाया। उनके कृपापूर्वक स्पर्श से उसकी पीड़ा जाती रही। यथा : कर परस सुग्रीव सरीरा। तनु भा कुलिस गयी सब पीरा। सारथि पर चोट आ जाना रथी की असावधानी का द्योतक है। अतः सरकार ने परम क्रोध दिखलाया। उन्हें क्रोध नहीं आया। बल्कि वे ही क्रोध को प्राप्त हुए।

छं.[1] भए क्रुद्ध जुद्ध बिरुद्ध रघुपति त्रोन सायक कसमसे।
कोदंड धुनि अतिचंड सुनि मनुजाद भय मारुत ग्रसे॥
मंदोदरी उर कंप कंपित कमठ भू भूधर त्रसे।
चिक्करहिं दिग्गज दसन गहि महि देखि कौतुक सुर हँसे॥

अर्थ : विरुद्ध युद्ध से रामजी क्रुद्ध हुए तो तरकस में बाण कसमस करने लगे। धनुष की टङ्कार अत्यन्त तीव्र सुनकर राक्षसों को तो डर की बाई चढ़ गयी। मन्दोदरी का कलेजा काँपने लगा। समुद्र कमठ पृथिवी और पर्वत डर गये। दिग्गज लोग दाँत से पृथिवी को पकड़कर चिग्घाड़ने लगे यह कौतुक देखकर देवता हँसे।

व्याख्या : यहाँ विरुद्ध युद्ध का अर्थ है रथी को छोड़ सारथि को मारा है। सारथि के आहत होने से क्रुद्ध हुए हैं। सरकार को क्रुद्ध जानकर अग्रसर होने के लिए तरकस के बाण कसमस करने लगे। पहिले निशाचर सेना कसमस करती आयी। उन्हें समाप्त करके बाण अब रावण का रक्त पीने के लिए कसमस कर रहे हैं। यथा : तव सोनित की प्यास तृषित राम सायक निकर। तब सरकार ने धनुष का टंकार किया। उसका ऐसा शब्द हुआ कि मन्दोदरी का कलेजा काँपने लगा। समुद्र क्षुब्ध हो गया। पृथिवी हिल गयी और पर्वत डगमगाने लगे। कमठ भी स्थिर न रह सके। अथवा समुद्रादि के अधिष्ठातृदेवता डर गये। ब्रह्माण्ड खण्ड समझकर दिग्गजों ने पृथिवी दाँत से पकड़ ली फिर भी नहीं सँभलती तो चिक्कार करने लगे।

---

१. यह हरिगीतिका छन्द है।

यह कौतुक देवताओं ने देखा तो प्रसन्नता से हँसे कि अब रावण को अच्छे से काम पड़ा है। श्रीरामजी के पाले स्वयं पड़ गया।

दो. तानेउ चाप स्त्रवन लगि, छाड़े बिसिख कराल।
राम मार्गन गन चले, लहलहात जनु ब्याल ॥९१॥

अर्थ : कान तक धनुष खैंचकर कराल बाण छोड़े। रामजी के बाण ऐसे लहलहाते हुए चले जैसे साँप।

व्याख्या : सरकार क्रुद्ध हैं। इसलिए गहरी चोट करने के लिए कान तक धनुष खैंचा। यहीं तक धनुष खैंचने की अवधि है। शार्ङ्गधनुष इतना अधिक खैंचा गया और उस पर कराल बाण चढ़ाये गये। छूटने पर वे बाण लहलहाते हुए आकाश मार्ग से ऐसे चले जैसे साँप उड़ चलते हैं। अनेक बाणों के साथ चलने से लहलहाना कहा।

चले बान सपच्छ जनु उरगा। प्रथमहि हत्यो सारथी तुरगा ॥
रथ बिभंजि हति केतु पताका। गर्जा अति अंतर बलु थाका ॥१॥

अर्थ : पंखवाले सर्प की भाँति बाण चले तो पहिले उन्होंने सारथि और घोड़े मारे। रथ को तोड़ा। ध्वजा पताका काटा। रावण भीतर से थक गया। पर बाहर से अत्यन्त गर्जन किया।

व्याख्या : बाणों की साँपों से उपमा दिया कि ये प्राण लेकर छोड़ेंगे। साँप उड़ते नहीं। अतः बाणों की उपमा सपक्ष सर्प से दिया। दूसरा भाव यह कि बाणों का आकार सर्प सा होता है और उसमें मयूर चील्ह आदि के पक्ष भी लगाये जाते हैं। इसलिए सपक्ष सर्प की उपमा दी। रावण ने सारथि पर चोट की थी। यहाँ सारथि घोड़ा रथ ध्वजा और पताका सब पर चोट हुआ। सारथि भी मर गया। घोड़े भी मर गये। रथ टुकड़े टुकड़े हो गया। ध्वजा पताका धराशायी हुआ। रावण विरथ हुए। कुछ किया न हुआ। ध्वजा पताका की भी रक्षा न कर सके। पृथिवी पर आ पड़े। भीतर से तो तबीयत ने हार मान ली। पर अपना दर्प द्योतन के लिए अत्यन्त गर्जन करने लगे कि मैं थका नहीं हूँ। ध्वजा पताका गिरने से रथी पर विपत्ति सूचित होती है। अतः आप अत्यन्त गरजे जिसमें सब जान जायँ कि कोई विपत्ति नहीं है।

तुरत आन रथ चढ़ि खिसिआना। अस्त्र सस्त्र छाड़ेसि बिधि नाना ॥
बिफल होइ सब उद्यम ताके। जिमि परद्रोह निरत मनसाके ॥२॥

अर्थ : तुरन्त दूसरे रथ पर चढ़ गया और खीझकर अनेक प्रकार के अस्त्र शस्त्र छोड़ने लगा। उसके सब प्रयत्न व्यर्थ जा रहे हैं जैसे दूसरे के द्रोह में मन लगानेवाले का मनोरथ निष्फल हो जाता है।

व्याख्या : एक रथ टूटा। दूसरा तैयार है। लंका में रथों की कमी नहीं है। युद्ध के समय अनेक अस्त्र शस्त्र से सुसज्जित रथ प्रस्तुत रहते हैं। रावण दूसरे रथ पर सवार हो गये। नाना प्रकार के अस्त्र शस्त्र छोड़ने लगे। सरकार के स्वभाव से परिचित हो गये हैं कि जब तक शत्रु अस्त्र शस्त्र चलाता रहे तब तक उन्हें काटते ही रहते हैं। जब वह चलाना बन्द कर दे तब समझते हैं कि वीर ने मुझे प्रहार के लिए अवसर दिया। तब अपने अस्त्र छोड़ते हैं। अतः रावण चोट पर चोट करते ही जाते हैं।

जिसका मन परद्रोह में निरत रहता है उसके सब यत्न निष्फल होते हैं। उसी भाँति रावण के सब यत्न निष्फल जा रहे हैं। पहिले भी लगभग ऐसी ही बात कह आये हैं। यथा : विफल होहिं रावन सर कैसे। खल के सकल मनोरथ जैसे। परद्रोह निरत और खल पर्यायवाची शब्द हैं। दोनों उपमाओं में भेद इतना ही है कि पहिले मनोरथ होता है और उद्यम उसके बाद आरम्भ होता है। अतः पहिले मनोरथ का विफल होना कहा। अब उद्यम का निष्फल होना कह रहे हैं। रावण के मनोरथ पहिले आप से आप सिद्ध होते थे। यथा : सुख संपति सुत सेन सहाई। जय प्रताप बलबुद्धि बड़ाई। नित नूतन सब बाढ़त जाई। जिमि प्रतिलाभ लोभ अधिकाई। सो इस युद्ध में नहीं हुआ। मनोरथ सब निष्फल गये। तब उद्यम आरम्भ हुआ। वे भी व्यर्थ पड़ते जाते हैं।

तब रावन दस सूल चलावा। बाजि चारि महि मारि गिरावा॥
तुरत उठाइ कोपि रघुनायक। खैंचि सरासन छाड़े सायक॥३॥

अर्थ : तब रावण ने दश शूल चलाये और चारों घोड़ों को मारकर पृथिवी पर गिरा दिया। रामजी ने तुरन्त घोड़ों को उठाया और धनुष को खैंचकर बाण चलाये।

व्याख्या : रावण अपने रथ टूटने का बदला लेना चाहता है। पहिले उसने सारथि को मारा। पर वह नहीं मरा। रामजी के कर स्पर्श से स्वस्थ हो गया। फिर अवसर पाकर उसने घोड़ों पर दस शूल चला दिये। तीन तीन अगले और दो दो पिछले घोड़ों पर। घोड़े चारो पृथिवी पर गिर गये। सरकार ने तुरन्त उन्हें भी उठाया। वे भी स्वस्थ हो गये। देख लिया कि शत्रु का यह भी उद्यम व्यर्थ गया। तब धनुष को खैंचकर प्रहार के लिए बाण छोड़ने लगे।

रावन सिर सरोज बनचारी। चलि रघुबीर [1]सिलीमुख धारी॥
दस दस बान भाल दस मारे। निसरि गये चले रुधिर पनारे॥४॥

अर्थ : रावण के सिररूपी कमलवन में विचरण करनेवाले रघुवीर के बाण

---

१. यहाँ श्लेषालंकार है।

रूपी भौंरो की पंक्ति चली। दस दस बाण दसो सिर में मारे। वे पार हो गये और रक्त के पनाले बह चले।

व्याख्या : फिर सरकार को रथ पर से कूदकर घोड़े उठाने पड़े। अब फिर क्रुद्ध होकर बाण चलाये। अभी तक रावण पर बाण नहीं चलाया था। रात के प्यासे भौंरों की पंक्ति प्रात:काल कमलवन में मकरन्द पान के लिए वेग से जाती है। इसी भाँति रघुनाथजी के बाणोंकी पंक्ति रावण के मस्तकों के रक्त से अपनी प्यास बुझाने के लिये चली। अङ्गदजी ने पहिले कहा था कि रामजी के बाण तेरे रक्त के प्यासे हो रहे हैं। उसी का साफल्य दिखला रहे हैं। सिलीमुख शब्द में श्लेष है। इसका अर्थ बाण भी है और भौंरा भी है। यहाँ कमलवन के पक्ष में भौंरा अर्थ होगा और रावण सिर के पक्ष में बाण अर्थ होगा। ये बाण उसके सिरों में घुसकर रक्त पीने लगे। फिर भी रावण न गिरा।

तब एक एक सिर में दस दस बाण मारे। इस भाँति सौ बाण चलाये जो कि सिर में छेदकर पार निकल गये। सौ पनाले रक्त के बह चले। यथेष्ट समझकर सरकार ने बाण मारना बन्द कर दिया। यहाँ यह भी देखने लायक है कि सरकार के बाणों के काटने में रावण असमर्थ है।

स्रवत रुधिर धावा बलवाना। प्रभु पुनि कृत धनु सर संधाना॥
तीस तीर रघुबीर पवारे। भुजन्ह समेत सीस महि पारे॥५॥

अर्थ : बलवान् रावण रक्त बह रहा है फिर भी दौड़ा। तब फिर सरकार ने धनुष बाण चढ़ाये और तीस बाण मारा। भुजा के समेत सिर पृथिवी पर गिर गये।

व्याख्या : रावण महा बलवान् है। उन चोटों की परवाह न करता हुआ रुधिर बहता हुआ ही दौड़ा। तब तो और भी कड़ी मात्रा देने के लिए सरकार ने धनुष पर बाण सन्धान किया। इस बार तीस बाण ऐसे मारे कि उनमें से दस बाणों ने दस सिर काटे और बीस बाणों ने बीसों भुजायें काटीं और ऐसा काटा कि तस्मा बाकी न रहा। सिर और भुजायें कटकर पृथिवी पर गिर गयीं।

काटत ही पुनि भये नबीने। राम बहोरि भुजा सिर छीने॥
कटत झटिति पुनि नूतन भए। प्रभु बहु बार बाहु सिर हए॥६॥

अर्थ : काटते ही फिर नये सिर और भुजायें हो गयीं। रामजी ने फिर सिर और भुजायें काटीं। कटते ही फिर नये निकल पड़े। सरकार ने बार बार सिर और भुजाओं को काटा।

व्याख्या : महा आश्चर्य हो गया। सिर कटने पर कोई जीता नहीं। एक सामान्य क्षत के अच्छे होने में समय लगता है। यहाँ देखिये तो नये सिर और नई भुजायें निकल आईं। रामजी ने आश्चर्य न करके फिर सिर और भुजाओं को काटा।

तो कटते ही तुरन्त दूसरे सिर और दूसरी भुजायें निकल आयीं। इस भाँति सरकार ने अनेकों बार सिर और भुजायें काटीं। रावण बड़े धैर्य से सिर और भुजाओं के कटने की वेदना सहन कर रहे हैं। शङ्कर की अपूर्व आराधना का अद्भुत चमत्कार प्रकट हुआ है।

पुनि पुनि प्रभु काटत भुज सीसा। अति कौतुकी कोसलाधीसा ॥
रहे[1] छाइ नभ सिर अरु बाहू। मानहु अमित केतु अरु राहू ॥७॥

अर्थ : बार बार सरकार सिर और भुजायें काटते हैं। कोशलाधीश भी बड़े कौतुकी हैं। आकाश सिर और भुजाओं से पट गया। मानो अगणित राहु और केतु प्रकट हो गये।

व्याख्या : सिर और बाहु नये निकलते ही चले जा रहे हैं और सरकार काटते ही चले जा रहे हैं। उन्हें आश्चर्य न हुआ। बड़ा कौतुक न हुआ कि देखो कैसे नये सिर और नये बाहु निकलते चले आ रहे हैं। कवि कहते हैं कि कोशलाधीश बड़े कौतुकी हैं। तौ कौतुकिअन्ह आलस नाही। कौतुकी को आलस्य नहीं होता। यह नहीं ख्याल करते कि जब यही हाल है तो कहाँ तक सिर भुजा काटेंगे। अति कौतुकी हैं। काटते ही चले जाते हैं। संग्राम ने भी कौतुक करना इन्हीं का काम है। इनके सेना संग्रह में भी कौतुक था। यथा : कौतुक लागि संग कपि सेना। सेना प्रयाण में भी कौतुक था। यथा : कौतुक देखि सुमन बहु बरखी। सेतुबन्ध में भी कौतुक यथा : कौतुक एक भालु कपि करहू। बाण चलाने में कौतुक यथा : अस कौतुक करि राम सर प्रविसेउ आइ निषंग। धनुष टङ्कार में कौतुक यथा : देखि कौतुक सुर हँसे। इस समय सिर-भुजच्छेदन में कौतुक हो रहा है। अब और कौतुक देखिये। वे काटे हुए सिर और भुजा पृथिवी पर नहीं गिरते। आकाश में चले जाते हैं और वहाँ ऐसी शोभा दे रहे हैं जैसे अगणित राहु केतुओं से आकाश भरा हुआ है। सिर राहु की भाँति और बाहु केतु की भाँति शोभित हो रहे हैं।

छं.[2] जनु राहु केतु अनेक नभ पथ स्रवत सोनित धावहीं।
रघुबीर तीर प्रचंड लागहिं भूमि गिरन न पावहीं ॥
एक एक सर सिर निकर छेदे नभ उड़त इमि सोहहीं।
जनु कोपि दिनकर कर निकर जहँ तहँ बिधुतुद पोहहीं ॥

अर्थ : मानो अनेक राहु और केतु आकाशमार्ग में रक्त बहाते हुए दौड़ते हैं। रामजी के प्रचण्ड बाण जा लगते हैं। इसलिए पृथिवी पर गिरने नहीं पाते। एक एक बाण से सिर समूहों को वेधा। वे आकाश में उड़ते ऐसे शोभित हैं जैसे क्रोध करके सूर्य की किरणें जहाँ तहाँ राहुओं को गूँथ रही हों।

---

१. यहाँ विशेषालंकार है।
२. हरिगीतिका छन्द है।

व्याख्या : बड़ा ही अद्भुत भयानक दृश्य है। बाणों के वेग से सिर और बाहु उड़ उड़कर राहु केतु की भाँति तमाम आकाश में छाये हुए हैं। उनमें से रक्त गिर रहा है। साथ ही साथ बनैती की अद्भुत कला का भी प्रदर्शन हो रहा है। बाणों के चोट से वे सिर पृथिवी पर गिरने नही पा रहे हैं। तत्पश्चात् एक एक बाण से वे सिर एक दूसरे में गुँथे जा रहे हैं। उसकी उपमा कवि देते हैं कि मानो सूर्य की किरणें क्रोध करके जहाँ जहाँ राहु मिलते हैं उन्हें गूँथती चली जा रही हैं।

दो. जिमि जिमि प्रभु हर तासु सिर, तिमि तिमि होहिं अपार।
सेवत विषय बिबर्ध जिमि, नित नित नूतन मार ॥९२॥

अर्थ : जैसे जैसे सरकार उसके सिरों को काटते हैं वैसे ही वे अपार होते चले जाते हैं। विषय की सेवा करते करते जैसे नित्य नया काम बढ़ता जाता है।

व्याख्या : इधर सिर कटता है उधर कटे हुए सिरों की संख्या अपार होती जाती है। न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति। हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एव विवर्धते। कामों के उपभोग से काम का कभी शमन नहीं होता। हवि से अग्नि की भाँति बढ़ता ही जाता है। इसी भाँति जितना सिर काटा जाता है उतना ही सिर संख्या बढ़ती ही जाती है। जैसे अग्नि में जितना हवि डाला जाता है। उतना ही बढ़ता जाता है।

दसमुख देखि सिरन्ह कै बाढ़ी। बिसरा मरन भई रिस गाढ़ी ॥
गर्जेउ मूढ़ महा अभिमानी। धाएउ दसहु सरासन तानी ॥१॥

अर्थ : रावण सिरों की बढ़ती देखकर मरना भूल गया। उसे बड़ा क्रोध हुआ। महा अभिमानी मूढ़ गर्जा और दसो धनुष तानकर दौड़ा।

व्याख्या : पहिले तो रावण गड़बड़ा गया। सिर बाहु बराबर कटते जाते हैं। बेबसी की हालत में पड़ गया। पर है बड़ा धीर। देखा कि सिर और बाहु निकलते ही जाते हैं और निकलते ही जावेंगे। इसके पहिले उसे भी मालूम नहीं था कि मुझमें यह शक्ति है कि सिर बाहु कटने पर नये निकलते जावेंगे। सो उसे बड़ा भरोसा हो गया। पहिले जो मृत्यु सिर पर खड़ी थी उसका स्मरण भी जाता रहा। समझा कि मैं इनका मारा नहीं मर सकता। सिर काटनेवाले के बराबर कोई शत्रु नहीं है। सो यह सिर काटता ही चला जाता है। मुझे तो नये सिर निकल रहे हैं। इसका सिर यदि मैं काट सका तो इसको तो सिर न निकलेगा। यदि एक बार भी सिर काट सकें तो जीत मेरी है। शत्रु भी थका ही होगा।

कवि कहते हैं कि रावण मूढ़ है। नहीं समझता है कि सिर काटने में कोई मतलब नहीं है। यह तो उनका कौतुक है। विभीषण इस बात को समझते हैं। रावण महा अभिमानी है। उसे तुरन्त अभिमान उपजा कि अब मुझे कौन मार सकता है। तपस्वी को मैं मारूँगा। उसका एक धनुष मेरे दस धनुष का सामना नहीं कर सकता। अतः दसो धनुष तानकर दौड़ा।

समर भूमि दसकंधर कोप्यो । बरषि बान रघुपति रथ तोप्यो ॥
दंड एक रथु देखि न परेऊ । जनु निहार महु दिनकर दुरेऊ ॥२॥

अर्थ : रणभूमि में रावण ने क्रोध किया और बाणों की वर्षा से रामजी का रथ तोप दिया । एक दण्ड तक रथ दिखायी न पड़ा । जैसे कुहरे में सूर्य छिप जायँ ।

व्याख्या : सिर कटने के समय बड़े विपत्ति में पकड़कर दुःखी हो गया था । अपनी अद्भुत शक्ति देखकर उत्साह बढ़ा । अतः क्रोध करके दसो धनुषों से बाण बरसाने लगा । रथ को ढक दिया । घोड़ा और रथ समेत रामचन्द्रजी का पता नहीं । सरकार को सबकी रक्षा करना कठिन हो पड़ा ।

चौबीस मिनट तक यही दशा रही । रथ घोड़े सारथि और रथी सभी सुरक्षित थे । पर दिखायी नहीं पड़ते थे । सूर्य ज्यों की त्यों रथ सारथि के साथ सुरक्षित रहते हैं । पर कोहरे की ओट से दिखायी नहीं पड़ते । इसी भाँति रामजी दिखायी न पड़े । बाण ही बाण चारों ओर दिखायी पड़ते थे ।

हाहाकार सुरन्ह जब कीन्हा । तब प्रभु कोपि कारमुक लीन्हा ॥
सर निवारि रिपु के सिर काटे । ते दिसि बिदिसि गगन महि पाटे ॥३॥

अर्थ : जब देवताओं में हाहाकार मचा तब सरकार ने क्रोध करके धनुष उठाया और बाणों को काटकर शत्रु के सिर काटे । उनसे दिशा विदिशा आकाश और पृथिवी पट गयी ।

व्याख्या : ऐसे ही बाण वर्षा में वीर मारे जाते । अतः देवताओं में हायहाय मच गयी । तब प्रभु कोपि कारमुक लीन्हा । इससे अगस्त्य ऋषि द्वारा आदित्यहृदय के उपदेश की ओर इङ्गित किया । धनुष यदि रक्खा नहीं तो लेने का प्रसङ्ग कहाँ से आ पड़ा ?

ततो युद्धपरिश्रान्तं समरे चिन्तया स्थितम् । रावणं चाग्रतो दृष्ट्वा युद्धाय समुपस्थितम् । सरकार ने लाघव दिखाते हुए शत्रु के बाणों को नष्ट करके शत्रु के सिर काटे । सिर निकलते ही गये । सरकार उसे काटते ही गये । इतने सिर काटे कि दसों दिशाओं में सिर ही सिर भर गये ।

काटे सिर नभ मारग धावहिं । जय जय धुनि करि भय उपजावहिं ॥
कहँ लछिमनु सुग्रीव कपीसा । कहँ रघुबीर कोसलाधीसा ॥४॥

अर्थ : कटे हुए सिर आकाश मार्ग से दौड़ रहे हैं । जय जय शब्द बोलकर भय उत्पन्न करते हैं और कहते हैं कि कहाँ लक्ष्मण हैं । कहाँ हनुमान् हैं । कहाँ सुग्रीव हैं और कोशलाधीश राम कहाँ हैं ?

व्याख्या : अब रावण ने नया रास्ता पकड़ा । उसके कटे सिर पक्षियों की भाँति आकाश में दौड़ने लगे और जयजय बोलने लगे । यह दृश्य और भी भयावना हुआ जब वे सिर कहने लगे कि कहाँ हैं लक्ष्मण ? हनुमान् कहाँ हैं ? सुग्रीव कहाँ हैं ?

और कौशलाधीश राम कहाँ हैं ? जहाँ सिर काटने को दौड़ रहे हैं और नाम ले लेकर खोज रहे हैं वहाँ की भयानकता का कौन वर्णन कर सकता है ?

छं.[1] कहँ राम कहि सिर निकर धाये देखि मरकट भजि चले ।
संधानि धनु रघुबंसमनि हँसि सरन्हि सिर बेधे भले ।।
सिर मालिका कर कालिका गहि बृंद बृंदन्हि बहु मिलीं ।
करि रुधिर सर मज्जन मनहु संग्राम बट पूजन चलीं ।।

अर्थ : राम कहाँ हैं ऐसा कहकर सिर समूह दौड़े । देखकर बन्दर भाग चले । धनुष सन्धान करके तब रघुवंशमणि ने हँसकर बाणों से सिरों को भली भाँति वेध डाला । कालिकाएँ हाथों में सिरों की माला लेकर एक झुण्ड दूसरे से मिलीं । मानो रुधिर की नदी में स्नान करके संग्राम बट को पूजने जाती हैं ।

व्याख्या : रावण के मुण्डों का दौड़ना और उनका कहाँ हैं राम ? इत्यादि बोलना सुनकर बन्दर डर गये और भाग चले । उनका भागना देखकर सरकार हँसे और बाणों से सिरों को ऐसा बेधा कि सिरों की मालाएँ हो गयीं । या यों कहिये कि मुण्डमाल बन गये । रावण के मुण्डमाल कालिका देवी को अर्पण हुए । वे रुधिर की नदी में स्नान तो पहले ही कर चुकी थीं । अब मुण्डमाल ले लेकर एक दूसरे से मिलकर कालिकाओं का झुण्ड हो गया और वे जब समराङ्गण में आयीं तो ऐसी शोभा हुई जैसे स्त्रियाँ स्नान करके माला लेकर वटसावित्री व्रत में बट का पूजन करने चलती हैं । यहाँ कालिकाओं की उपमा स्त्रियों से मुण्डमाल की उपमा पुष्पमाल से और रणाङ्गण की उपमा वट से दी गयी ।

दो. पुनि [2]दसकंठ क्रुद्ध होइ, छांड़ी सक्ति प्रचंड ।
चली बिभीषन सनमुख, मनहु काल को दंड ।।९३।।

अर्थ : फिर रावण ने अति कोप करने प्रचण्ड शक्ति छोड़ी । जो विभीषण के सामने चली जैसे काल का दण्ड चलता है ।

व्याख्या : मालूम होता है कि जब से मातलि गिरे हैं तब से सारथि का काम विभीषण कर रहे हैं । रावण ने देखा कि प्रचण्ड शक्ति लक्ष्मण को मारी गयी । फिर भी लक्ष्मण बच गये । यथा : सो ब्रह्मदत्त प्रचंड सक्ति अनन्त उर लागी सही । यदि राम पर चलायी जावेगी तो निःसन्देह बच जायँगे । इस समय विभीषण मेरा बड़ा भारी शत्रु हुआ है । शत्रु का सारथि बना हुआ है । इसी को मारना चाहिए । यह तो निश्चय मर जायगा । जिसकी शरण में यह गया है उसी के सामने इसका तो वध कर ही डालना चाहिए । मैं कह भी चुका हूँ : होइहि जब कर कोट

---

१. हरिगीतिका छन्द है ।

२. प्रत्यनीकालंकार है ।

अभागी। अतः रावण ने क्रोध करके प्रचण्ड शक्ति छोड़ी। उसके लक्ष्य विभीषण थे। इसलिए कवि कहते हैं कि काल के दण्ड की भाँति विभीषण के सन्मुख चली। जैसे काल के दण्ड से कोई नहीं बच सकता उसी भाँति विभीषण भी नहीं बच सकते।

आवत देखि सक्ति खर घोरा। प्रनतारति भंजन पन मोरा॥
तुरत बिभीषनु पाछें मेला। सनमुख राम सहेउ सोइ सेला॥१॥

अर्थ : तीखे धार की शक्ति को आते देखकर सरकार ने अपने प्रणतार्तिहर विरद को सँभाला। तुरन्त विभीषण को पीछे ढकेल दिया और स्वयं रामजी ने उस शक्ति को अपने ऊपर ले लिया।

व्याख्या : सरकार ने देखा कि इस तीखी शक्ति से विभीषण तो नहीं बचते और यदि विभीषण मरे तो मेरा प्रणतार्तिहर बाना भी गिर जायगा। अतः सरकार ने अपना बाना सँभाला उसे गिरने न दिया। विभीषण से कहने का भी अवसर नहीं है कि हट जाओ। अतः उसे पीछे ढकेल दिया और उस अमोघ शक्ति को अपने ऊपर लिया। कह चुके थे : जौ सभीत आवा सरनाई। रखिहौं ताहि प्रान की नाई। सो प्राण से अधिक मानकर रक्षा की।

लागि सक्ति मुरुछा कछु भई। प्रभुकृत खेलु सुरन्ह बिकलई॥
देखि बिभीषनु प्रभु स्रम पायो। गहि कर गदा क्रुद्ध होइ धायो॥२॥

अर्थ : शक्ति के लगने से सरकार को कुछ मूर्च्छा आ गयी। सरकार के इस खेल ने देवताओं को विकल कर दिया। विभीषण ने देखा कि सरकार को कुछ मूर्च्छा हो गयी तो हाथ में गदा लिये हुए क्रुद्ध होकर दौड़ा।

व्याख्या : अमोघ शक्ति है। अतः उसे व्यर्थ न जाना चाहिए। सरकार ने शक्ति की मर्यादा सुरक्षित रखने के लिए उसे मान लिया। मूर्च्छा सी आगयी। यह उनके लिए खेल था। पर देवता लोग तो विकल हो गये।

रथी की रक्षा सारथि का परम कर्तव्य है। यहाँ कोई उपाय रक्षा का नहीं। रावण पापी है। मूर्च्छित वीर पर भी प्रहार कर सकता है। अतः यदि इससे युद्ध करूँ तो बहुत सम्भव है कि इस बीच में सरकार सचेत हो जायँ। अथवा मेरे लिये सरकार ने चोट सहा है। मैं प्राण देकर भी इसकी रक्षा करूँगा। विभीषणजी का जहाँ तहाँ गदापाणिर्विभीषणः करके वर्णन हुआ है। गदा इनके पास सदा रहती थी उसी को लेकर दौड़े।

रे कुभाग्य सठ मंद कुबुद्धे। तैं सुर नर मुनि नाग बिरुद्धे॥
सादर सिव कहुँ सीस चढ़ाए। एक एक के कोटिन्ह पाए॥३॥

अर्थ : अरे अभागा, शठ, मन्द, दुर्बुद्धि, तूने देवता मनुष्य मुनि और नागों का विरोध किया। आदर के साथ शिवजी को सिर चढ़ाया। सो एक एक के बदले करोड़ों पा चुका।

व्याख्या : तू अभागा है। जो देवता यज्ञ से पूजित होकर इष्ट कामना की पूर्ति करते हैं उनसे तूने विरोध किया। यथा : इष्टान् भोगान् हि वो देवा दास्यन्ते यज्ञभाविताः। तू शठ है। मनुष्य के हाथ अपना वध जानकर भी तूने मनुष्य से विरोध किया। नर के कर आपन बध बाँची। हँस्यो जानि बिधि गिरा असाँची। तू मन्द है। उदासोन तपस्वी बन में रहनेवाले मुनियों से विरोध किया जो संसार से कोई सम्बन्ध नहीं रखना चाहते। तू दुर्बुद्धि है : जिन नागों को शिवजी भूषण बनाये रहते हैं उनसे तूने विरोध किया। वे लोग तुझसे विरोध करने नहीं आये। तू नाहक उनके पीछे पड़ा। यथा : किन्नर सिद्ध मनुज सुर नागा। हठि सबही के पंथहि लागा। इस भाँति तूने भूतद्रोह किया। चौदह भुवन एक पति होई। भूतद्रोह तिष्ठै नहि सोई। अतः तुम्हारा वध तो कितना पहिले ही हो गया होता।

तू ने एक महान् पुण्य किया था कि आदर के साथ शिवजी को सिर चढ़ाया था। शिवार्पण की हुई वस्तु अनन्त गुणित होकर प्राप्त होती है। सो एक एक सिर के बदले करोड़ों पा चुका।

तेहि कारन खल अब लगि बाँच्यो। अब तव काल सीस पर नाच्यो॥
रामबिमुख सठ चहसि संपदा। अस कहि हनेसि माँझ उर गदा॥४॥

अर्थ : रे खल! उसी कारण से तू अब तक बचता आया। पर अब तेरा काल तेरे सिर पर नाच रहा है। रे शठ! राम के विमुख होकर सम्पदा चाहता है। ऐसा कहकर बीच हृदय में गदा मारा।

व्याख्या : उसी शिवार्पण के प्रसाद से तू आज तक बचता आया है और अब तक बचा हुआ है। नहीं तो पहिले बार के सिर कटने पर ही मर गया होता। पर अब तेरा सब पुण्य समाप्त हो गया। क्योंकि तूने सरकार पर शक्ति प्रहार कर दिया। जीव ईश्वर का प्रतिबिम्ब है। बिम्ब पर प्रहार होने से प्रतिबिम्ब कैसे बचेगा। अथवा : मुनिजन धनसर्वस सिव प्राणा को तेरी शक्ति लग गयी। अतः सिर चढ़ानेवाला पुण्य समाप्त हो गया। अब तेरे सिर पर काल नाच रहा है। तेरे मरने में देर नहीं है। वध की इच्छा से ही हृदय के मध्य भाग पर विभीषण ने गदा प्रहार किया।

छं.[1] उरमाझ गदा प्रहार घोर कठोर लागत महि परयो।
दसबदन सोनित स्रवत पुनि सँभारि धायो रिसि भरयो॥
दोउ भिरे अतिबल मल्ल जुद्ध बिरुद्ध एकु एकहि हनै।
रघुबीर बल दर्पित बिभीषनु घालि नहि ताकहुँ गनै॥

अर्थ : हृदय के बीच में गदा का घोर और कठोर प्रहार लगते ही पृथिवी पर

१. हरिगीतिका छन्द है।

जा पड़ा। दसोमुख से रुधिर उगलते हुए सँभालकर क्रोध से भरा दौड़ा। दोनों अति बलवान् मल्लयुद्ध में भिड़ गये। विरुद्ध होकर एक दूसरे को मार रहे हैं। रघुवीर के बल से गर्वित विभीषण उसे पासङ्ग के बराबर भी नहीं गिनता।

व्याख्या : हृदय के मध्य में मुष्टिका का प्रहार भी बहुत है। यहाँ गदा का प्रहार कठोर प्रहार है। सो विभीषण ने कसकर मारा है। इसलिए घोर कहा। ऐसे प्रहार के लगते ही रावण रथ से पृथिवी पर आ पड़े। दसोमुख से रुधिर उगलने लगे। पहिले तो चकरा गये। फिर सँभालकर क्रोध से भरे हुए दौड़े। विभीषणजी भी भिड़ गये। दोनों भाई अति बलवान् है। पहिले भी रावण ने विभीषण में निर्बलता का दोष कभी नहीं दिया। विभीषणजी को वह भीरु समझता था। यथा : बन्धु हमार भीरु अति सोऊ। दोनों में मल्लयुद्ध हो गया और दोनों एक दूसरे के विरुद्ध होकर प्रहार करते थे। सो यद्यपि रावण दसगुणित सामग्री से सम्पन्न थे। बीस हाथ और दस सिर था। पर विभीषण को सरकार का बल था। यथा : जनहि मोर बल निज बल ताही। अतः विभीषण ने उसे पासंग बराबर भी नहीं माना। कवि ने यहाँ पर घालि शब्द का प्रयोग किया है। जिसका अर्थ घेलुआ कहा जा सकता है : सौदे के अन्त में कुछ ऊपर से जो देते हैं उसे घेलुआ कहते हैं। मुहावरे का ख्याल करके मैंने पासंग अर्थ किया।

दो. उमा बिभीषनु रावनहि सनमुख चितव कि काउ।
सो अब भिरत काल ज्यौं श्रीरघुबीर प्रभाउ ॥९४॥

अर्थ : शिवजी कहते हैं कि उमा! विभीषण कभी रावण के सम्मुख आँख उठाकर न देख सके। वह जो काल समान भिड़ रहा है : यह रघुवीर का प्रभाव है।

व्याख्या : विभीषणजी ने स्वयं हनुमान्‌जी से कहा था : सुनहु पवनसुत रहनि हमारी। जिमि दसनन्ह महुँ जीभ बिचारी। विभीषण सामान्य राक्षसों से भी दबकर रहते थे। रावण के सामने आँख उठाकर देखने की कथा ही क्या है। वही विभीषण जो लात खाकर लंका से निकाले गये थे आज रावण से किस बूते पर लड़ रहे हैं? शिवजी कहते हैं कि विभीषण रामजी के प्रभाव से काल के समान लड़ रहे हैं। भाव यह कि विभीषण का साहस इतना बढ़ा हुआ है कि समझते हैं कि यह मेरा कुछ नहीं कर सकता। मैं इसे मार डालूँगा। यथा : राम प्रताप प्रबल कपि जूथा। मर्दहि निसिचर निकर बरूथा। उमा को सन्देह हुआ कि विभीषण का साहस रावण से लड़ने का कैसे हुआ। इस पर शिवजी ने यह उत्तर दिया।

देखा स्रमित बिभीषनु भारी। धावा हनूमान गिरिधारी॥
रथ तुरंग सारथी निपाता। हृदय माँझ तेहि मारेसि लाता॥१॥

अर्थ : हनुमान्‌जी ने देखा कि विभीषण बहुत थक गये हैं। तो हनुमान्‌जी पर्वत लेकर दौड़े। रथ, घोड़ा और सारथि को मारा और रावण के हृदय में लात मारा।

व्याख्या : सरकार के मूच्छित होते ही हनुमान्‌जी दौड़नेवाले थे। तब तक देखा कि विभीषण लड़ गये। वे ही उस समय निकट थे। सारथि का काम करते थे। अतः हनुमान्‌जी खड़े होकर युद्ध की गतिविधि देखते रहे। देखा कि विभीषण थक गये। अब रावण प्रबल पड़ रहा है। कहीं विभीषण का वध न हो जाय। अतः पहाड़ लेकर दौड़े। उसे तो रावण के रथ पर फेंका। जिससे दबकर रथ चूर हो गया। सारथि और घोड़े पिस गये और स्वयं पहुँचकर रावण को लात मारा। रावण के लिए कवि कह आये हैं : बिसरा मरण भई रिसि गाढ़ी। अतः रावण का पराक्रम इस समय बहुत बढ़ा हुआ है। यह निश्चय हो जाता कि मुझे कोई मार नहीं सकता और साथ ही साथ गाढ़ी रिसि होने से मानसिक स्थिति बड़ी बलवती हो जाती है और मानसिक स्थिति पर ही बहुत कुछ जय पराजय निर्भर करता है।

ठाढ़ रहा अति कंपित गाता। गएउ बिभीषनु जहँ जनत्राता ॥
पुनि रावन कपि हतेउ पचारी। चलेउ गगन कपि पूँछ पसारी ॥२॥

अर्थ : शरीर अत्यन्त काँपने लगा। पर खड़ा रह गया। विभीषणजी भक्त-रक्षक रामजी के पास गये। फिर रावण ने उन्हें ललकारकर मारा। हनुमान्‌जी पूँछ फैलाकर आकाश में चले।

व्याख्या : जो रावण हनुमान्‌जी की मुष्टिका न सहकर धराशायी हुआ था वही इस समय हृदय में लात मारने से भी नहीं गिरता है। यद्यपि उसका शरीर अत्यन्त काँपने लगा। पर खड़ा रह गया। विभीषणजी ने देखा कि हनुमान्‌जी आगये। अब मेरी आवश्यकता नहीं। तो सरकार के पास उन्हें सँभालने के लिए चले गये।

कम्प शान्त होते ही रावण ने हनुमान्‌जी को ललकारकर मारा। हनुमान्‌जी पर उस प्रहार का कोई प्रभाव न पड़ा। उन्होंने चाहा कि रावण को वहाँ से हटा ले जायँ। सरकार मूर्च्छित हैं। इस समय रावण का यहाँ रहना अच्छा नहीं। अतः आप आकाश में चले। प्रहार होने पर दूसरी जगह हटने का अर्थ भागना है। जिसमें रावण भागना समझकर पीछा करे। तिस पर आप ने पूँछ फैला दो। जिसमें क्रोधावेश में उसी को पकड़कर मेरे साथ ही जहाँ मैं जा रहा हूँ वहीं चला आवे।

गहेसि पूँछ कपि सहित उड़ाना। पुनि फिरि भिरेउ प्रबल हनुमाना ॥
लरत अकास जुगल सम जोधा। एकहि एकु हनत करि क्रोधा ॥३॥

अर्थ : पूँछ पकड़कर हनुमान्‌जी के साथ ही उड़ चला। तब तो प्रबल हनुमान्‌जी घूमकर लड़ गये। दोनों बराबरी के योद्धा आकाश में भिड़ गये। एक दूसरे पर क्रोध करके प्रहार करने लगे।

व्याख्या : हनुमान्‌जी बुद्धिमतांवरिष्ठ हैं। उनकी युक्ति काम कर गयी। रावण अत्यन्त क्रुद्धावस्था में हनुमान्‌जी की चाल को न समझ सका। पकड़ ली पूँछ कि कहाँ जाता है और हनुमान्‌जी के साथ ही उड़ा। हनुमान्‌जी प्रबल हैं। निर्बलता

के कारण भागे नहीं हैं। जब देख लिया कि जितनी दूर इसे लाना चहते थे उतनी दूर यह चला आया तो घूमकर भिड़ गये। रावण उन्हें भागता हुआ समझकर जोश में पीछा करते ही चले गये।

अब आकाश में युद्ध आरम्भ हुआ। दोनो योद्धाओं में बराबरी का युद्ध होने लगा। एक दूसरे पर क्रोध करके प्रहार कर रहे हैं। गिरता कोई नहीं है। यह आकाश युद्ध अद्भुत हुआ।

सोहहिं नभ छल बल बहु करहीं। कज्जलगिरि सुमेरु जनु लरहीं ॥
बुधि बल निसिचरु परै न पारचो। तब मारुत सुत प्रभु संभारचो ॥४॥

अर्थ : बहुत से दांवपेंच करते हुए आकाश में ऐसे शोभित हुए जैसे कज्जलगिरि और सुमेरु लड़ रहे हों। वुद्धिवल से वह राक्षस गिराये न गिरा तव हनुमान्‌जी ने सरकार को सँभाला।

व्याख्या : दोनों वीर आकाश में दाँवपेंच कर रहे हैं। रावण कज्जल के पर्वत के समान काले और भारी हैं। इधर हनुमान्‌जी सुमेरु पर्वत की भाँति विशाल और सोने के रङ्ग के हैं। यथा : पोतस्ताम्रमुखः कपिः। अतः ऐसी शोभा हो रही है मान्नो कज्जलगिरि और सुमेरु में युद्ध आकाश मण्डल में हो रहा है।

इस समय रावण ऐसा युद्ध कर रहा है कि न तो दाँवपेंच से और न बल से ही गिराया जा सकता है। तब हनुमान्‌जी ने सरकार को सँभाला। हनुमान्‌जी सरकार की मानसी मूर्ति सदा हृदय में रखते हैं और समय समय पर दरिद्र के धन को भाँति उसे सँभाला करते हैं कि कहीं गिर न जाय। यथा : मन माधव को नेकु निहारहि। सुनु सठ सदा रंक के धन ज्यौं पुनि पुनि प्रभुहि सँभारहि। रावण के न गिरने पर हनुमान्‌जी को सन्देह हुआ कि क्या बात है। यह गिरता क्यों नहीं ? क्या सरकार मेरे हृदय से निकल गये। अतः हनुमान्‌जी ने सरकार को सँभाला।

छं.[1] संभारि श्रीरघुबीर धीर प्रचारि कपि रावन हन्यौ।
महिपरत पुनि उठि लरत देवन्ह जुगल कहुँ जयजय भन्यौ ॥
हनुमंत संकट देखि मर्कट भालु क्रोधातुर चले।
रनमत्त रावन सकल सुभट प्रचंड भुजबल दलमले ॥

अर्थ : श्रीरघुवीर धीर को सँभालकर हनुमान्‌जी ने ललकारकर रावण को मारा। पृथिवी पर गिरते और फिर उठकर लड़ते हुए दोनों की जय जयकार देवताओं ने की। हनुमान्‌जी का संकट देखकर बन्दर और भालु क्रुद्ध होकर चले। रण में मत्त रावण ने सभी सुभटों को प्रचण्ड भुजाओं के बल से छिन्न भिन्न कर दिया।

व्याख्या : सरकार के वीर धीर भाव की मूर्ति को हृदय में धारण करके

१. हरिगीतिका छन्द।

ललकारकर हनुमान्‌जी ने रावण को मारा। तो इस बार रावण पृथिवी पर गिर गया। परन्तु फिर उठकर लड़ने लगा। यह लड़ाई ऐसी बराबरी की हुई कि देवताओं को दोनों का जयकार बोलना पड़ा। देवता हैं : असत्य भाषण नहीं कर सकते। जब बराबरी का युद्ध होने लगता है तब दोनों ओर सङ्कट उपस्थित होता है। रावण के पक्ष में तो इस समय कोई ऐसा है नहीं जो सहायता कर सके। पर हनुमान्‌जी के पक्षवाले सभी हैं। सो बन्दर और भालु क्रोध में आतुर होकर चले। जब बन्दर भालु रावण पर टूट पड़े तब हनुमान्‌जी युद्ध से विरत हो गये। रावण को भी दम लेने का अवकाश मिला। बन्दर भालु उसका क्या कर सकते थे। सो उन्हें उसने भुजाओं के बल से ही छिन्न भिन्न कर दिया।

दो. तब रघुबीर प्रचारे, धाये कीस प्रचंड।
कपिदल प्रबल देखि तेहि, कीन्ह प्रगट पाखंड ॥९५॥

अर्थ : तब श्रीरघुवीर के ललकारने पर प्रचण्ड वीर बानर दौड़े। बानरों के प्रबल दल को देखकर रावण ने माया प्रकट की।

व्याख्या : सरकार मूर्च्छा से जागे तो बन्दर भालुओं का रावण के हाथ से विध्वंस होते देखा। तब रामजी ने ललकारा। इनकी आज्ञा पर बन्दरों में जो प्रचण्ड वीर थे अङ्गद नीलादि वे दौड़े। रावण ने देखा कि यह दल जो युद्ध के लिए आ रहा है मेरे मान का नहीं है। तब उसने माया प्रकट की। राक्षस जब देखते हैं कि बल काम न करेगा तब अपने परम बल माया का आश्रयण करते हैं।

अंतरधान भएउ छन एका। पुनि प्रगटे खल रूप अनेका ॥
रघुपति कटक भालु कपि जेते। जहँ तहँ प्रगट दसानन तेते ॥१॥

अर्थ : वह खल एक क्षण के लिए अन्तर्धान हो गया और तब अनेक रूप प्रकट किया। रामजी की सेना में जितने बन्दर भालु थे जहाँ तहाँ उतने ही दशानन प्रकट हो गये।

व्याख्या : प्रचण्ड बानर वीर तो दौड़े पर रावण का पता नहीं। वह अन्तर्धान हो गया। वीर लोग इधर उधर देखते हैं कि वह गया कहाँ? तब तक सबके सामने एक एक रावण मौजूद हो गये या तो कहीं रावण नहीं। क्षणभर बाद सम्पूर्ण रणाङ्गन में रावण ही रावण हो गये।

देखे कपिन्ह अमित दससीसा। जहँ तहँ भजे भालु अरु कीसा ॥
भागे बानर धरहिं न धीरा। त्राहि त्राहि लछिमन रघुबीरा ॥२॥

अर्थ : बन्दरों ने अगणित रावण देखे तब तो भालु भी भागे और विकट बीर बन्दर भी भागे। बन्दर ऐसे भागे कि धैर्य धारण ही नहीं करते। पुकारते हैं कि हे लक्ष्मण ! हे रघुबीर रक्षा करो, रक्षा करो।

व्याख्या : अपने सामने एकाएक रावण को देखकर जो चौंके तो जिधर देखते

हैं उधर रावण ही रावण। इस दृश्य के देखते ही बन्दर भालु ऐसे भयभीत हुए कि प्राण लेकर भागे। धैर्य धारण करके कोई यह नहीं देख रहा है कि आखिर इतने रावण कर क्या रहे हैं। किसी को मारते काटते हैं या नहीं। उनका धैर्य ऐसा छूटा कि भागते ही चले जाते हैं। कोई लौटकर देखता ही नहीं। रक्षा के लिए लक्ष्मणजी और रामजी को पुकारते हैं। क्योंकि अप्रतिक्रिय सङ्कट के समय वे ही सहाय होते और उन्हीं का बल बन्दर भालुओं को है।

दह दिसि धावहि कोटिन्ह रावन। गर्जहिं घोर कठोर भयावन॥
डरे सकल सुर चले पराई। जय कै आस तजहु अब भाई॥३॥

अर्थ : दसो दिशाओं में करोड़ों रावण दौड़ते हैं। घोर कठोर और भयावन गर्जन कर रहे हैं। सब देवता डर गये और भाग चले। कहने लगे कि भाई! अब जीत की आशा छोड़ दो।

व्याख्या : चारो दिशा चारो विदिशा ऊपर और नीचे करोड़ों रावण दौड़ रहे हैं। सेना को तितर बितर करके ऐसा भगाना चाहते हैं कि फिर इकट्ठी न हो सके। प्रधान ज्ञानेन्द्रिय चक्षु और श्रोत्र ही हैं। सो दोनों पर आसुरी माया का अधिकार हो गया है। नेत्र करोड़ों रावण देख रहे हैं और कान उनका घोर कठोर और भयावन गर्जन सुन रहे हैं। उच्च स्वर होने से घोर कर्णकर्कश होने से कठोर और हृदय को कँपानेवाला होने से भयावन कहा। इस शब्द से सभी भालु बन्दर समझते हैं कि आया मेरे सिर पर। अतः अधिक वेग से भागते हैं।

माया साधारण नहीं है। वह बन्दर भालु पर ही नहीं देवताओं पर भी काम कर गयी। वे भी ऐसा ही दृश्य देखते और ऐसे ही शब्द सुनते हैं। टाकी बायस्कोप में भी अनेक रावण दौड़ सकते हैं। भयानक शब्द कर सकते हैं। पर किसी को मार काट नहीं सकते। रावण की माया टाकी बायस्कोप की माया से कहीं बढ़कर थी। वह दिन दहाड़े रणाङ्गन में काम करती थी। देवताओं पर उसने काम किया। वे भी डर गये। नीचे बन्दर भालु भागे। ऊपर आकाश में देवता भाग चले। आपस में कहने लगे कि अब जीतने की आशा छोड़ो।

सब सुर जिते[1] एक दसकंधर। अब बहु भए तकहु गिरिकंदर॥
रहे बिरंचि संभु मुनि ज्ञानी। जिन्ह जिन्ह प्रभु महिमा कछु जानी॥४॥

अर्थ : सब देवताओं को एक रावण ने जीत लिया। अब तो बहुत हुए। अब पहाड़ की कन्दरा ताको। ब्रह्मा शम्भु और मुनि ज्ञानी रह गये। जिन लोगों ने प्रभु की कुछ महिमा जानी थी।

व्याख्या : जीत की आशा छोड़ने का कारण कहते हैं कि अकेले रावण ने तो सब देवताओं को जीत लिया था। अब तो असंख्य रावण हो गये। इतने रावण

---

१. यहाँ मीलितालंकार है।

कैसे जीते जायेंगे। अतः जैसे पहिले वचे थे वही रास्ता पकड़ना चाहिए। रावन आवत सुनउ सकोहा। देवन्ह तकेउ मेरु गिरि खोहा। अतः हम लोगों को मेरुगिरि का खोह ही शरण है। यहाँ से जितनी जल्दी हो निकल जाना ही ठीक है।

ये देवता लोग सरकार की महिमा से वस्तुतः अनभिज्ञ थे। ज्ञानी देवता शम्भु और ब्रह्मा तथा ज्ञानी मुनि सरकार की अनन्त महिमा से थोड़ा बहुत परिचित थे। वे समझते थे कि यह माया है। वस्तुस्थिति नहीं है, यह सरकार के सामने कितने देर तक ठहरेगी।

छं.[1] जाना प्रताप ते रहे निर्भय कपिन्ह रिपु माने फुरे।
चले बिचलि मर्कट भालु सकल कृपालु पाहि भयातुरे॥
हनुमंत अंगद नील नल अति बल लरत रन बांकुरे।
मर्दहिं दसानन कोटि कोटिन्ह कपटभू भट अंकुरे॥

अर्थ : जो प्रताप जानते थे वे निर्भय थे। बन्दरों ने शत्रुओं को सच्चा माना। भय से विकल होकर हे कृपाल! रक्षा करो पुकारते हुए भाग चले। हनुमान् अंगद नील और नल ये रणबांकुरे अत्यन्त बली लड़ रहे हैं। करोड़ों रावणों को पकड़ पकड़कर रगड़ रहे हैं। पर ये माया से उत्पन्न होनेवाले योद्धा अंकुर की भाँति निकल पड़ते थे।

व्याख्या : उन ज्ञानियों ने सरकार के प्रताप को जान पाया था। इसलिए निर्भय थे। पर वन्दरों ने तो उन रावणों को सच्चा जाना। अतः वे भयातुर होकर हे कृपाल! रक्षा करो ऐसा पुकारते हुए भाग चले। परन्तु उनमें भी रणबांकुरे अति बलवान् वीर थे। जैसे हनुमान् अङ्गद नील और नल। ये भागनेवाले नहीं। इन्होंने उन रावणों से लड़ना आरम्भ किया तो वे कुछ ठहरते नहीं। एक को कौन कहे वे करोड़ों रावण पर झपटते हैं और उन्हें रगड़ देते हैं। मानो हवा से लड़ रहे हैं। अपने समझ में मर्दन करते हैं पर जहाँ पर मर्दन करते हैं वहीं से दूसरे रावण निकल पड़ते हैं। भाव यह कि वे रावणों को मर्दन करते-करते हैरान हैं।

दो. सुर बानर देखे बिकल, हँस्यो कोसलाधीस।
सजि सारंग एक सर, हते सकल दससीस॥९६॥

अर्थ : देवताओं और बानरों को विकल देखकर कोशलाधीश हँसे और धनुष को सज्जित करके एक बाण से सब रावणों को मार दिया।

व्याख्या : सरकार ने देखा कि देवता लोग चुपके चुपके भागे जाते हैं। बन्दर लोग त्राहि त्राहि चिल्लाते भागे जा रहे हैं। सुभट लोग हवा से लड़ रहे हैं पर विकल सब हैं। इस पर सरकार हँसे कि देवता भी धोखा खा गये। तब धनुष सन्धान

---

१. हरिगीतिका छन्द है।

करके एक वाण से उन सब माया से बने हुए रावणों को मार दिया। जिस भाँति एक रावण से अगणित रावणों का प्रकट होना अद्भुत हुआ उसी भाँति एक बाण से सबका मारा जाना भी महा अद्भुत हुआ।

प्रभु छन महुँ माया सब काटी। जिमि रबि उए जाहिं तम फाटी ॥
रावनु एक देखि सुर हरखे। फिरे सुमन बहु प्रभु पर बरखे ॥१॥

अर्थ : सरकार ने एक क्षण में सब माया काट दी। जैसे सूर्योदय होने से अन्धकार फट जाता है। रावण को अकेला देखकर देवता प्रसन्न हुए लौट पड़े और सरकार पर बड़ी पुष्पवृष्टि की।

व्याख्या : जिस भाँति रावण को माया प्रकट करने में एक क्षण लगा था। यथा : अन्तरधान भयउ छन एका। पुनि प्रगटेउ खल रूप अनेका। उसी भाँति माया के कटने में भी एक ही क्षण लगा। सरकार ने अनायास ही सब माया दूर कर दी। जिस भाँति सूर्योदय होने पर अन्धकार आपसे आप फट जाता है। सूर्यनारायण को कोई आयास नहीं करना पड़ता। नारायण तो अपने ही को प्रकाशित करते हैं। उनका किया हुआ अन्धकार दूर नहीं होता। चन्द्रमा को अन्धकार दूर करने में पराक्रम करना पड़ता है। यथा : मत्त नाग तम कुंभ बिदारी। ससि केसरी गगन बन चारी। सूर्य उदय हुए और अन्धकार आपसे आप नष्ट हो जाता है। इसी भाँति सरकार के बाणरूपी सूर्य के उदय होते ही मायान्धकार जिसमें ये भ्रमात्मक दृश्य दिखाई पड़ते थे आपसे आप ही नष्ट हो गया नहीं तो हनुमान् अङ्गद नील नल बड़ा पराक्रम करके उस माया से लड़ रहे थे पर वह दूर नहीं होती थी।

बन्दरों ने तो उलटकर भी नहीं देखा कि क्या हो रहा है पर देवता उलटकर देखते थे कि कहीं हमारा पीछा तो कोई रावण नहीं कर रहा है क्योंकि ऊपर भी बहुत से रावण दौड़ रहे थे। उन्होंने देखा कि अकस्मात् सब रावण बेपता हो गये। रणाङ्गन में केवल एक ही रावण रह गया। तब तो देवता लोग लौट आये और मारे खुशी के सरकार पर पुष्प वृष्टि करने लगे।

भुज उठाइ रघुपति कपि फेरे। फिरे एक एकन्ह तब टेरे ॥
प्रभु बल पाइ भालु कपि धाए। तरल तमकि संजुग महि आए ॥२॥

अर्थ : भुजा उठाकर सरकार ने बन्दरों को लौटाया। वे सब एक दूसरे के पुकारने पर लौटे। सरकार का बल पाकर भालु बन्दर दौड़ पड़े और फुरती से क्रुद्ध हुए रणाङ्गन में आये।

व्याख्या : बन्दरों को लौटाने में सरकार को भुजा उठाकर बुलाना पड़ा। जिन बन्दरों ने सरकार का भुजा उठाना देखा उन्होंने आगे के भागते हुओं को पुकारकर लौटने को कहा और उन लोगों ने आगेवालों को पुकारा। इस भाँति बानरी सेना लौट पड़ी।

बन्दरों ने देखा कि मैदान खाली है सब रावण नष्ट हो गये। तब तो वे दौड़ पड़े और बड़ी तेजी से अमर्षयुक्त होकर समराङ्गन में आये। एक रावण से लड़ने के लिए उन्हें उत्साह है। उन्हें रामजी का बल है। उन्हीं को सङ्कट के समय पुकारते हैं और वे ही सहाय होते हैं। भुजा के उठाने का तात्पर्य भी अभयदान है। अतः उनके बल पाने से बन्दर भालुओं में नवीन प्राण का सञ्चार हुआ।

अस्तुति करत देवतन्हि देखे। भएउ एक मै इन्हके लेखे ॥
सठहु सदा तुम्ह मोर मरायल। अस कहि कोपि गगन पर धायल ॥३॥

अर्थ : देवताओं को स्तुति करते देखा। क्या मैं इनके लिए भी अकेला हो गया। हे शठो ! तुम सदा मेरे पीटे हुए हो ऐसा कहकर आकाश मार्ग में दौड़ा।

व्याख्या : देवताओं ने सरकार के ऊपर पुष्पवृष्टि की। तत्पश्चात् स्तुति करने लगे। रावण इसे सहन नहीं कर सके। ये सब सदा मेरी स्तुति करते थे सो आज मेरा पराभव देखकर शत्रु की स्तुति मेरे सामने कर रहे हैं। मैं भले ही राम के लिए बन्दर भालुओं के लिए अकेला हो गया हूँ तो फिर क्या इनके लिए भी अकेला हो गया ? इनके लिए अकेला ही मैं बहुत हूँ।

रावण ने ललकारा कि दुष्टो ! तुम तो सदा मुझसे पीटे गये हो। अतः मेरी ही स्तुति करनी तुम्हें प्राप्त है। इस तपस्वी ने तुम्हें कब पीटा जो इसकी स्तुति करते हो। रावण उचित अनुचित की परख बल के तारतम्य से करते हैं। अतः देवताओं को दण्ड देने के लिए क्रुद्ध होकर आकाश मार्ग में दौड़े।

हाहाकार करत सुर भागे। खलहु जाहु कहँ मोरे आगे ॥
देखि बिकल सुर अंगद धायो। कूदि चरन गहि भूमि गिरायो ॥४॥

अर्थ : देवता लोग हाहाकार करते हुए भागे। दुष्टों ! मेरे सामने से कहाँ भागकर जा सकोगे। देवताओं को विकल देखकर अङ्गदजी दौड़े और कूदकर उसकी टाँग पकड़कर पृथिवी पर गिरा दिया।

व्याख्या : रावण को अपनी ओर आग बबूला होकर आते देखकर देवता लोग उत्तर की ओर भाग चले। रावण से बचने के लिए एक मात्र शरण मेरु पर्वत की गुफाएँ थीं। जहाँ पापियों की गति नहीं हैं। रावण ने ललकारा कि दुष्टों ! मेरे सामने से तुम भागकर भी नहीं बच सकते। दिग्विजय के समय तुम लोग मेरा सामना पड़ने के पहले ही भाग गये थे। यथा : दिगपालन के लोक सुहाये। सूने सकल दसानन पाये।

अङ्गदजी ने देखा कि देवता लोग विकल हैं। इनकी सहायता करनी चाहिए। मैंने कह भी रक्खा है : हतौं न खेत खेलाइ खेलाई। सो खेलाने के लिए दौड़े। उड़े नहीं। कूदकर उसकी टाँग पकड़ ली और पृथिवी पर गिरा दिया। हनुमान्‌जी को इसने पूँछ पकड़ी थी। अतः अङ्गदजी ने उसकी टाँग पकड़कर पटका।

छं.[1] गहि भूमि पार्‌यो लात मार्‌यो बालिसुत प्रभुपहिं गयो।
संभारि उठि दसकंठ घोर कठोर रव गर्जत भयो॥
करि दाप चाप चढ़ाइ दस संधानि सर बहु बरषई।
किए सकल भट घायल भयाकुल देखि निज बल हरषई॥

अर्थ : अङ्गद ने उसे पकड़कर : पृथिवी पर गिराया। लात मारा और रामजी के पास चले गये। सँभालकर रावण उठा और घोर कठोर ध्वनि से गर्जा। दर्प करके दस धनुष चढ़ाकर और बाण सन्धान करके बाण वर्षा करने लगा। सब वीरों को घायल और भयाकुल कर दिया और अपने बल को देखकर हर्षित होने लगा।

व्याख्या : विभीषण को इसने लात मारकर निकाला है। उसका फल यह मिल रहा है कि बराबर लात खाता ही जाता है। यज्ञ विध्वंस के समय अङ्गद ने लात मारा था फिर हनुमान्‌जी ने रणाङ्गन में लात मारी। इस समय फिर अङ्गद ने लात मारी। इसीलिए कवि अङ्गद न कहकर बालिसुत कह रहे हैं। दूसरा किसे यह सामर्थ्य है कि रावण को पैर पकड़कर पटके और लात मारे। मारकर प्रभु के पास चले गये। समझा कि यह जल्दी नहीं उठेगा।

पर रावण सँभालकर उठे। लज्जित नहीं हुए। घोर कठोर ध्वनि से गर्जन करने लगे। दर्प से दसो धनुओं से बाण की वर्षा आरम्भ की और सब बन्दरों को घायल और भय से आकुल कर दिया। तब अपना बल देखकर बड़े प्रसन्न हुए कि ठीक है : बीस पयोधि अगाध अपारा। को अस बीर जो पाइहि पारा।

दो. तब रघुपति रावन के सीस भुजा सर चाप।
काटे बहुत बढ़े पुनि जिमि तीरथ कर पाप॥९७॥

अर्थ : तब रामजी ने रावण के सिर भुजा और दसो धनुषों को काटा और वे फिर बहुत से हो गये जैसे तीर्थ में किया हुआ पाप।

व्याख्या : रामजी ने सेना को अभय देकर लौटाया था। अतः त्राहि त्राहि होने के पहिले ही रावण पर टूटे और एक साथ ही उसके सिर भुजा बाण और धनुष को काट दिया। बाण वर्षा बन्द हो गयी। परन्तु फिर सब ठीक हो गया। सिर बाहु दूसरे निकल आये और धनुष बाण तो बहुत से रथ पर रक्खे ही होते हैं। बार बार काटने पर भी सिर और भुजायें फिर ज्यों की त्यों हो जाती हैं। जैसे तीर्थ पाप को काट देता है। पर तीर्थ मे किया हुआ पाप बहुत बढ़ जाता है। तनिक सी असावधानी में फिर पाप ज्यों का त्यों हो जाता है। तीर्थ उपजाऊ भूमि है। उसमें पाप पुण्य दोनों बीज अत्यधिक पनप जाते हैं।

---

१. हरिगोतिका छन्द है।

सिर भुज बाढ़ि देखि रिपु केरी । भालु कपिन्ह रिसि भई घनेरी ॥
मरत न मूढ़ कटेहुँ भुज सीसा । धाए कोपि भालु भट कीसा ॥१॥

अर्थ : शत्रु के सिर और भुजा की बढ़ती देखकर भालु और बन्दरों को बड़ा क्रोध हुआ कि यह मूढ़ सिर के कटने पर भी नहीं मरता है। अतः भालु और वीर बन्दर क्रोध करके दोड़े।

व्याख्या : शत्रु की इस प्रकार की बढ़ोत्तरी बन्दर भालुओं से न देखा गया। कार्य में सफलता होते न देखकर रिसि हुई और सरकार को सिर भुजा छेदन में कितना परिश्रम पड़ता है इसे सोचकर घनेरी रिसि हुई। जिसका संसार में चित्त लगा रहता है वह जल्दी नहीं मरता है और मर भी जाय तो प्रेत होकर यहीं रहता है। यह जीवित प्रेत है। सिर कटने पर भी नहीं मरता। बालि ज्ञानी था। जो : अचल करौं तन राखहु प्राना। सरकार के ऐसा कहने पर भी जीना न चाहा। यह मूढ है। इतनी दुर्दशा और इतनी पीड़ा पाने पर भी जीना चाहता है। मरणान्त कष्ट अगणित बार भोग चुका और भोगता जाता है। फिर भी जीने के लिए लड़ रहा है। यह सिर भुज काटने से नहीं मरेगा। इसे कुचल डालना चाहिए। ऐसा विचारकर क्रुद्ध होकर वीर भालु और बन्दर दौड़े। सरकार ने बाण चलाना बन्द कर दिया।

बालि तनय मारुति नल नीला । बानरराज दुबिद बलसीला ॥
बिटप महीधरु करहिं प्रहारा । सोइ गिरितरु गहि कपिन्ह सो मारा ॥२॥

अर्थ : बालि का बेटा, पवनतनय, नल, नील, द्विविद आदि बलवान् पेड़ और पहाड़ों से प्रहार कर रहे हैं। उन्हीं पहाड़ों और पेड़ों से उसने बन्दरों को मारा।

व्याख्या : इस बार मन्त्र दृढ़ करके स्वयं राजा सुग्रीव सुभटों के साथ झपटे और पेड़ तथा पहाड़ों का प्रहार करने लगे। इस प्रहार करने में सुग्रीव के साथ प्रधान वीर थे। अङ्गद हनुमान् नल नील द्विविद आदि। वीर प्रहार कर रहे हैं। पर रावण को दस सिर और बीस भुजाएँ हैं। अतः सबके फेंके हुए पत्थर और पेड़ों को वह रोक लेता है और उन्हीं को उन सुभटों पर फेंकता है।

एक नखन्हि रिपु बपुष बिदारी । भागि चलहिं एक लातन्ह मारी ॥
तब नल नील सिरन्हि चढ़ि गयेऊ । नखन्हि लिलार बिदारत भयेऊ ॥३॥

अर्थ : कोई उसके देह को नखों से फाड़कर और कोई लात मारकर भागते हैं। तब नल नील उसके सिरों पर चढ़ गये और नखों से उसका माथा फाड़ डाला।

व्याख्या : पत्थर पेड़ से लड़नेवाली विधि ठीक न पड़ी। तब बन्दरों ने दूसरा रास्ता पकड़ा। कोई नख से उसके शरीर में क्षत करके भागता है। जब वह उस पर झपटता है तब से दूसरा उसे लात मार कर भागता है। इस प्रकार से चारों ओर से उस पर चोट लगने लगी। तब तक नल नील कूद करके उसके सिर पर

चढ़ गये। रावण रणमदमत्त है। उसे पता नहीं। उन लोगों ने इसके ललाट को फाड़ डाला। युद्ध की गरमी में उसे इस बात का भी पता नहीं।

रुधिर देखि बिषाद उर भारी। तिन्हहिं धरन कहुँ भुजा पसारी॥
गहे न जाँहि करन्हि पर फिरहीं। जनु जुग मधुप कमलबन चरहीं॥४॥

अर्थ : रुधिर देखकर उस देवशत्रु ने उनके पकड़ने के लिए भुजा फैलायी। वे पकड़ में नहीं आते। सिरों के ऊपर घूम रहे हैं। जैसे दो भौंरे कमलवन में विचरते हों।

व्याख्या : जब रक्त बहकर आँखों में आया तब उसे पता चला। देखा कि रक्त है पसीना नहीं है। तब उनको पकड़ने के लिए उसने हाथ बढ़ाये। ये महात्मा एक सिर से दूसरे पर कूद गये। उधर हाथ पहुँचा तो तीसरे पर कूद गये। जिस भाँति जैसे एक शिखर से बन्दर दूसरे पर और दूसरे से तीसरे पर कूद जाते हैं उसी भाँति ये सिरों पर चौकड़ी लगाने लगे। कवि उपमा देते हैं कि जैसे दो भौंरे कमलवन में विहार करते हों। रावण का सिर कमलवन हुआ और नल नील भौंरे की भाँति शोभित हुए। रावण के हाथ नहीं लग रहे हैं।

कोपि कूदि द्वौ धरेसि बहोरी। महि पटकत भजे भुजा मरोरी॥
पुनि सकोप दस धनु कर लीन्हे। सरन्ह मारि घायल कपि कीन्हे॥५॥

अर्थ : उसने क्रोध करके कूदकर दोनों को पकड़ा। पृथिवी पर पटकते समय वे भुजाओं को मरोड़ कर भागे। तब तो क्रोध करके उसने दसो धनुष उठाये और बाणों के आघात से बन्दरों को घायल कर दिया।

व्याख्या : रावण ने देखा कि ये तो यों ही सिर पर कूदा करेंगे। सिर के ऊपर में देख नहीं सकता। अतः ये इस भाँति हाथ न लगेंगे। इसलिए उछला। नल नील नीचे पड़ गये। तुरन्त उसने पकड़ लिया। चाहा कि दोनों को पृथिवी पर पटक दूँ। तबतक वे दोनों उसके हाथों को मरोड़कर निकल भागे। इस युद्ध में भालु सम्मिलित नहीं थे।

तब तो उसे बड़ा क्रोध हुआ कि ये यों न मानेंगे। मैं तो चाहता था कि जो जिस शस्त्र से लड़े उससे उसी शस्त्र से लड़ूँ। पर ये अन्यायी हैं। इन्हें बाण से मारूँ। अतः दस धनुष उसने दसों हाथों से उठाये और बाणों के अघात से बन्दरों को घायल कर दिया।

हनुमदादि मुरुछित करि बंदर। पाइ प्रदोष हरष दसकंधर॥
मुरुछित देखि सकल कपि बीरा। जामवंत धाएउ रनधीरा॥६॥

अर्थ : हनुमान् आदिक वीरों को मूर्च्छित करके प्रदोष का समय पाकर रावण हर्षित हुआ। सब वीर बन्दरों को मूर्च्छित देखकर रणधीर जामवन्त दौड़े।

व्याख्या : रावण के बाणों के आघात से हनुमान् आदिक वीर मूर्च्छित हो

गये। तब से सन्ध्या हो चली। प्रदोष काल के आते ही राक्षसों का बल बढ़ता है। इसलिए रावण हर्षित हुए। बूढ़े जाम्बवान् तबतक नहीं बोलते जबतक देखते हैं कि अपने ओर के वीर लड़ रहे हैं। जब देखते हैं कि अपनी ओर से कोई लड़नेवाला नहीं रह गया तब उठते हैं और करामात कर दिखाते हैं। मेघनाद द्वारा सबके मूर्च्छित होने पर जाम्बवान् जी उठे थे। अब रावण द्वारा सबके मूर्च्छित होने पर रणधीर जाम्बवान्जी दौड़े।

संग भालु भूधर तरु धारी। मारन लगे पचार पचारी ॥
भयेउ क्रुद्ध रावनु बलवाना। गहि पदि महि पटकै भट नाना ॥७॥
देखि भालुपति निजदल घाता। कोपि माझ उर मारेसि लाता ॥८॥

अर्थ : साथ में भालु पहाड़ और पेड़ लिये हुए उसे ललकारकर मारने लगे। रावण बलवान् क्रुद्ध हुआ और पैर पकड़कर बहुत से भटों को पटकने लगा। भालुपति ने अपनी सेना का वध देखकर क्रुद्ध होकर बीच हृदय में लात मारी।

व्याख्या : जाम्बवान्जी के साथ भालुओं की सेना पहाड़ और वृक्ष लिये चली। जाम्बवान्जी की सेना अलग है। उसमें भालु ही भालु हैं। बन्दर एक नहीं। ये बाणों की परवाह न करके रावण के पास पहुँच गये। भालु लोग ललकार ललकारकर रावण को वृक्षों और पर्वतों से मारने लगे। बाण दूर से चलता है। निकट आ जाने पर बाण नहीं चल सकता। रावण बड़ा बलवान् है उसने धनुष रख दिया और क्रुद्ध होकर भालुओं का पैर पकड़ पकड़कर पृथिवी पर पटकने लगा। जाम्बवान् ने देखा कि यह मेरी सेना का संहार ही कर डालेगा। सो क्रोध करके उसके रथ पर चढ़ गये और उसके बीच हृदय में लात मारा।

छं.[1] उर लात घात प्रचंड लागत बिकल रथ ते महि परा।
गहे भालु बीसहु कर मनहु कमलन्ह बसे निसि मधुकरा ॥
मुरुछित बिलोकि बहोरि पदहति भालुपति प्रभु पहि गयो।
निसि जानि स्यंदन घालि तेहि तब सूत जतनु करत भयो ॥

अर्थ : लात का प्रचण्ड आघात लगते ही विकल होकर रथ से पृथिवी पर गिरा। बीसों हाथों में भालुओं को पकड़े हुए जैसे भौंरे रात के समय कमल में बस गये हों। मूर्च्छित देखकर फिर लात मारकर जाम्बवान्जी प्रभु के पास चले गये। रात आयी देखकर सारथि उसे रथ पर लादकर उपाय करने लगा।

व्याख्या : जाम्बवान्जी के लात का आघात ऐसा प्रचण्ड लगा कि रावण छटपटाता हुआ रथ से पृथिवी पर आ पड़ा। फिर भी भालुओं को बीसों हाथों से पकड़े हुए था। भालू की सेना उसके रथ पर आक्रमण कर रही थी और वह बीसों

---

१. हरिगीतिका छन्द है।

हाथों से भालुओं को पकड़ पकड़कर पृथिवी पर पटक रहा था। उसी समय उसे लात लगी और वह भालुओं को पकड़े हुए गिरा। उसी की उपमा कवि देते हैं कि मानों कमलों में रात को भौंरे बस गये हों। रावण के हाथ कमल वन से उपमित है और भालु भौंरों से।

रावण के गिरने पर जाम्बवान् ने दूसरी लात फिर लगायी। जिसमें ये कुछ देर के लिए लेटे रहें और सेना विश्राम करे तब जाम्बवान् सरकारके पास चले गये। इधर से मूर्च्छित वीर के बन्दी करने का यत्न कभी नहीं किया जाता। रावण के सारथि ने देखा कि रात हो गयी। अतः उसने रावण को रथ पर लाद लिया और उसकी रक्षा का उपाय करने लगा।

दो. मुरुछा बिगत भालु कपि सब आये प्रभु पास।
निसिचर सकल रावनहिं घेरि रहे अति त्रास ॥९८॥

अर्थ : मूर्च्छा बीत जाने पर सब बन्दर भालु प्रभु के पास आये सब राक्षस रावण को अत्यन्त त्रस्त होकर घेरे रहे।

व्याख्या : सब बन्दर भालुओं की मूर्च्छा गयी और वे सरकार के पास आगये पर रावण की मूर्च्छा नहीं गयी। सूत उन्हें उसी दशा में लंका ले गया। अब राक्षसों के आधार एक मात्र रावण रह गये हैं। उनकी दशा चिन्तनीय है। क्या जाने मूर्च्छा से उठते हैं या नहीं। अतः अत्यन्त त्रस्त होकर राक्षस लोग रावण को घेरे रहे।

सीता विलाप

तेही निसि सीता पहिं जाई। त्रिजटा कहि सब कथा सुनाई ॥
सिर भुज बाढ़ि सुनत रिपु केरी। सीता उर भै त्रास घनेरी ॥१॥

अर्थ : उसी रात को सीताजी के पास जाकर त्रिजटा ने सब कथा कह सुनायी। शत्रु के सिर और भुजा की वृद्धि की बात सुनने से सीताजी के हृदय में बड़ा भय उत्पन्न हुआ।

व्याख्या : त्रिजटा ने ही सपना सुनाया था। यथा : यह सपना मैं कहौं पुकारी। होइहि सत्य गये दिन चारी। उसी की पूर्ति होते देखकर उसी रात को जिसमें रावण मूर्च्छित पड़ा था और राक्षस लोग उसे घेरे खड़े थे। त्रिजटा सीताजी के पास गयी और युद्ध की सब कथा सुनायी कि कुम्भकर्ण मारा गया। मेघनाद मारा गया। अब रावण स्वयं युद्ध कर रहा है। रामजी उसके सिर और भुजाओं को काटे जा रहे हैं और उसे नये सिर और भुजाएँ निकलती जा रही हैं। इस समय तो जाम्बवान् के आघात से मृतप्राय लङ्का में पड़ा हुआ है। उपचार हो रहा है। इत्यादि सब बातें सुनायीं।

सीताजी ने जब सुना कि शत्रु के सिर भुजा कटने पर नयी सिर भुजाएँ

निकल रही हैं। तब तो सीताजी बहुत डर गयीं। जिसे सिर कटने पर नया सिर निकले उसकी मूर्च्छा से क्या हानि होगी ? और वह मर ही कैसे सकता है।

मुख मलीन उपजी मन चिंता। त्रिजटा सन बोली तब सीता ॥
होइहि काह कहसि किन माता। केहि बिधि मरिहि बिस्वदुखदाता ॥२॥

अर्थ : उनका मुख मलीन हो गया और मन में चिन्ता उत्पन्न हो गयी। तब सीताजी त्रिजटा से बोलीं कि हे माता ! क्या होगा ? यह तू क्यों नहीं बतलाती। यह विश्व दु:खदाता किस विधि से मरेगा ?

व्याख्या : कुम्भकर्ण मेघनाद वध कथा से मुखकमल खिल उठा था। सो रावण के सिर भुजा बढ़ने की कथा सुनने से मलीन हो गया। हृद्गत भाव का प्रभाव तुरन्त मुख पर पड़ता है। मन में चिन्ता उत्पन्न हुई। इसी से मुख मलीन हो गया। तब संशय निवारण के लिए सीताजी ने त्रिजटा से कहा।

त्रिजटा से उन्होंने माता का नाता मान रक्खा है और उसकी भविष्यद् वाणी पर विश्वास करती है इसलिए उसे माता सम्बोधन करके पूछती हैं कि तूने जो कथा कही उससे इतना ही मालूम हुआ कि युद्ध में क्या क्या हुआ। पर तूने यह नहीं बतलाया कि होगा क्या ? यह रावण मुझ ही को नहीं दुःख देता यह विश्वभर को दुःख देता है। भूतद्रोही है। यह कैसे मरेगा ?

रघुपति सर सिर कटेहु न मरई। बिधि बिपरीत चरित सब करई ॥
मोर अभाग्य जियावत ओही। जेहि हौं हरिपद कमल बिछोही ॥३॥

अर्थ : रघुपति के बाणों से सिर कटने पर नहीं मरता है। ब्रह्मदेव विपरीत ही सब चरित्र करता है। मेरा अभाग्य उसे जिला रहा है जिसने मेरा हरिचरणों से विछोह करा रक्खा है।

व्याख्या : सिर कटने पर कोई जी नहीं सकता। यही ब्रह्मदेव का बनाया नियम है। तिस पर रघुपति के बाण अमोघ हैं जिस काम के लिए प्रयुक्त होते हैं उसे बिना किये नहीं लौटते। यह भी ब्रह्मदेव का नियम है। बिना सिर काटे ही उन्होंने कितने राक्षस मारे। सो उनके बाण के कटने से नहीं मरता। इसके तो सब चरित्र ही विधि के विपरीत हो रहे हैं। स्वयं देवता लोग जब अनेक रावण देखकर भागे तो कहना ही पड़ेगा कि इसके सब चरित विधि विपरीत हैं।

सामर्थ्य रहते कोई अपना सिर नहीं कटने देता। जब उसका बल न चला तभी सरकार ने उसका सिर काटा और कोई जिलानेवाला दिखाई नहीं पड़ता। तब प्रश्न यह है कि उसे जिलाता कौन है ? कौन ऐसा सामर्थ्यवान् है जो सिर कटे हुए को दूसरा सिर प्रदान करके जिला दे ? तो मुझे तो ऐसा सामर्थ्यवान् अपना अभाग्य ही दिखलाई पड़ता है जिसने सरकार के चरण से मेरा विछोह करा दिया। सूर्य से प्रभा को पृथक् कर दिया। चन्द्रिका को चन्द्र से बिछोह करा दिया।

जेहिकृत कपट कनक मृग झूठा । अजहुँ सो दैव मोहिपर रूठा ॥
जेहि बिधि मोहि दुख दुसह सहाए । लछिमन कहुँ कटु बचन कहाए ॥४॥

अर्थ : जिसने सोने का झूठा कपट मृग बनाया वह दैव अब भी रूठा हुआ है । जिस विधि ने मुझे दुःसह दुःख सहाये । लक्ष्मण को कटु वचन कहलाया ।

व्याख्या : पूर्व जन्म के किये हुए कर्म को ही दैव कहते हैं । वही भाग्य कहलाता है । उसी ने सोने का झूठा मायामृग बनाया । नहीं तो कहीं सोने का मृग होता है ? असम्भवं हेममृगस्य जन्म । उसे जिस दैव ने कर दिखलाया मालूम होता है कि इतना दुख देने पर भी वह सन्तुष्ट नहीं हुआ । अब भी मुझ से रूठा हुआ है ।

कर्म तो जड़ है स्वयं फल देने में असमर्थ है । सुभ अरु असुभ कर्म अनुहारी । ईस देइ फल हृदय बिचारी । अतः जिस कर्म फ़लदाता विधि ने मुझ से ऐसे बड़े दुःख को सहवाया । मैं वियोग के बचन नहीं सह सकती थी । सो मैंने इतने दिन का वियोग कैसे सहा ? विधि में ही यह सामर्थ्य है कि इतना दुःख मुझसे भोगवाया । इतना ही नहीं लक्ष्मण ऐसे देवर क्या क़टु वचन कहने के पात्र हैं । क्या मैंने अपने होश में लक्ष्मण को कटु वचन कहा ? केवल उस बलवान् दैव की प्रेरणा से ही मेरे मुख से ऐसे वचन निकल पड़े ।

रघुपति[1] बिरह सबिष सरमारी । तकि तकि मार बार बहु मारी ॥
ऐसहु दुख जो राखु मम प्राना । सोइ बिधि ताहि जिआव न आना ॥५॥

अर्थ : रघुपति विरहरूपी भारी विषैले बाण ताक ताककर मुझे कामदेव ने अनेक बार मारे । ऐसे दुःख में भी जो मुझे जिला रहा है वही विधाता रावण को जिलाता है दूसरा नहीं ।

व्याख्या : रघुपति विरहरूपी बाण बड़े विषैले हैं । वे सच्चे प्रेमी का प्राण लेकर ही मानते हैं । सो बाण ऐसा विषम और काम ऐसे अद्वितीय धन्वीने निशाना बाँधकर मुझे बार बार मारा और मैं नहीं मरी । उस बाण के मर्मभेदी दुःख में जिसने मेरे प्राण नहीं निकलने दिया । यथा : विरह अगिनि तनु तूल सरीरा । स्वास जरै छन माहि सरीरा । सो शरीर जलने न दिया । मुझे जिलाया । उस विधाता में ऐसी जिलाने की शक्ति है । दूसरे में नहीं है । अतः वही विधाता उसे जिला रहा है ।

बहु बिधि करति बिलाप जानकी । करि करि सुरति कृपानिधान की ॥
कह त्रिजटा सुनु राजकुमारी । उर सर लागत मरै सुरारी ॥६॥
प्रभु ताते उर हतै न तेही । एहि के हृदय बसत बैदेही ॥७॥

अर्थ : कृपानिधान की याद करके जानकी जी बहुत प्रकार से विलाप करने

---

१. यहाँ निदर्शना द्वितीय अलंकार है ।

लगीं। त्रिजटा ने कहा कि राजकुमारी ! सुनो यह देवशत्रु कलेजे में बाण लगने से मरेगा। प्रभु इस कारण से हृदय में बाण नहीं मारते कि इसके हृदय में वैदेही बसती हैं।

व्याख्या : देवता लोग वैदेही के अतिशय दुःखित होने का समाचार सरकार को दे चुके हैं। उसी बात को कवि यहाँ दिखला रहे हैं कि वैदेही अनेक प्रकार से विलाप करने लगीं। जो ऊपर दिखलाया गया है वह तो प्रादेशमात्र है। जितना कृपानिधानका स्मरण करती हैं उतनी ही व्यथा बढ़ती है और उतना ही विलाप करती हैं।

तब त्रिजटा ने : केहि बिधि मरिहि बिस्व दुखदाता। इसका उत्तर देते हुए कहा कि सिर काटने से वह नहीं मरेगा। कलेजे में बाण मारने से मरेगा। सिर कटने पर न मरने का कारण है। उसका सिर तो कभी कट चुका है। ये सिर तो शिवनिर्माल्य हैं ; ये नहीं घटेंगे। अतः इसके मरने की विधि यही है कि इसके कलेजे में बाण मारें। तब प्रश्न यह उठता है कि फिर सरकार उसके कलेजे में बाण क्यों नहीं मारते ? इसके उत्तर में कहती है कि उसके हृदय में जानकी बसती हैं। सरकार इस बात को जानते हैं। इसीलिए हृदय में नहीं मारते।

छं.[1] एहि के हृदय बस जानकी जानकी उर मम बास है।
मम उदर भुवन अनेक लागत बान सबको नास है॥
सुनि बचन हरष बिषाद मन अति देखि पुनि त्रिजटा कहा।
अब मरिहि रिपु एहि बिधि सुनहि सुंदरि तजहि संसय महा॥

अर्थ : इसके हृदय में जानकी बसती हैं और जानकी के हृदयमें मेरा बास है और मेरे हृदय में भुवननिकाय है। बाण लगने से सब नष्ट हो जायँगे। वचन सुन करके मन में बड़ा हर्ष विषाद हुआ। यह देखकर त्रिजटाने कहा कि अब इस विधि से रावण मरेगा। हे सुन्दरि ! सुनो और बडे भारी संशय का त्याग करो।

व्याख्या : तुम्हारा अभाग्य उसे नहीं जिला रहा है। बल्कि तुम्हारे कारण से वह जी रहा है। सरकार उसके हृदय में बाण नहीं मारते कि कहीं असमय में ही महा प्रलय न हो जाय। क्योंकि वे जानते हैं कि इसके हृदय में जानकी का निवास है। जिस जानकी के लिए उसका कुम्भकर्ण ऐसा भाई मारा गया। मेघनाद ऐसा बेटा मारा गया। स्वयं उसका अगणित बार सिर कटा और फिर उन्हें देना नहीं चाहता। अतः स्पष्ट है कि उसके हृदय में जानकी बसती हैं। मनोमय मूर्ति की भावना ऐसी दृढ़ हो गयी है कि उस मनोमय मूर्ति में और जानकी में भेद नहीं रह गया और उसी भाँति जानकी के हृदय में मेरा वास है और मेरे उदर में असंख्य ब्रह्माण्ड हैं। यथा : राम उदर देखेउ जग नाना। यदि मैं बाण मारूँगा तो ये नश्वर

---

१. हरिगीतिका छन्द है।

ब्रह्माण्ड सब के सभी नष्ट हो जायँगे : राम जानकी तो अनादि मिथुन हैं। इनका तो बाण से कुछ होना नहीं है। नश्वर हैं रावण और ब्रह्माण्ड निकाय। सो रावण के साथ ब्रह्माण्डों का नाश हो जायगा। जानकीजी को उसके मरने की सम्भावना सुनकर अतिहर्ष हुआ। पर साथ ही विषाद भी बड़ा भारी हुआ कि तब तो उसके मरने का उपाय नहीं के बराबर है। सीताजी को अतिविषण्ण देखकर त्रिजटा फिर बोली कि हे सुन्दरी! अब शत्रु के मरने की विधि सुन लो और बड़े भारी संशय को छोड़ दो। रावण निःसन्देह मारा जायगा!

दो. काटत सिर होइहि बिकल, छुटि जाइहि तब ध्यान।
तब रावनहि हृदय महुँ, मरिहहिं राम सुजान ॥९९॥

अर्थ : सिर काटते काटते जब विकल होगा तब ध्यान छूट जायगा और तब रामसुजान उसके हृदय में मारेंगे।

व्याख्या : इस बात पर भी ध्यान करो कि रावण को कितनी भारी वेदना हो रही है। सिर भुज कटने पर दूसरा सिर भुज तो निकलता जाता है। पर सिर भुज कटने की जो अतीव तीव्र वेदना है वह तो हर बार हो ही रही है। यह तो उसी का अपूर्व धैर्य है कि ऐसी दशा में भी उसके हृदय से तुम्हारा ध्यान नहीं छूटता। परन्तु यह धैर्य कितने दिनों तक चलेगा। अन्त में वेदना सहते सहते यह विकल हो जायगा। तब ध्यान भी छूट जायगा। रामजी बड़े सुजान हैं। वे जो सिर भुज काटते ही चले जाते हैं इसका भी कुछ तात्पर्य है। जब वे जान लेंगे कि ध्यान छूट गया। तब हृदय में बाण मारेंगे।

अस कहि बहुत भाँति समुझाई। पुनि त्रिजटा निज भवन सिधाई॥
राम सुभाउ सुमिरि बैदेही। उपजी बिरह बिथा अति तेही॥१॥

अर्थ : ऐसा कहकर और बहुत प्रकार से समझाकर फिर त्रिजटा अपने घर चली गयी। रामजी के स्वभाव को स्मरण करके वैदेही को अत्यन्त विरह की व्यथा हुई।

व्याख्या : त्रिजटा रामचरण रत थी और विवेक में निपुण थी। उसने रावण के वध की विधि बतलाने के बाद सीताजी को अनेक प्रकार से समझाया। यथा :

हिय नहि मानहु ग्लानि तुम अब बिधि नहि प्रतिकूल।
बैदेही मो कह भयउ सपन सुमंगल मूल॥
मृषा होइ नहि सपन मम यह जानै सब कोय।
सोई मोहि दिखात जब जैसी होनी होय॥
लंक दहन निसिचर मरन भई बात सब साँच।
रावन वध की बातहू होइ सकत नहिं काँच॥
बड़े बड़े जोधा जिते रहे लंकगढ़ माहि।
सब के सब मारे गये जिमि दिन रैन नसाहि॥

कपिदल के योधा कुसल जिसके रक्षक राम।
सो कैसे दसकंठ को नहि जीतिहि संग्राम।।
द्वै भुजसे दससीस अरु बारबार भुज बीस।
हरत करत कौतुक समर कुसल कोसलाधीस।।
करि न सकत रावन कछू राम सामुहे आय।
रावन वध अब होइगो बेटी जनि घबराय।।

तत्पश्चात् त्रिजटा अपने घर चली गयी। यह यथावश्यक सीताजी के पास ठहरती थी फिर घर चली जाती थी। पहिले भी यह इसी भाँति घर चली गयी थी। यथा : निसि न अनल मिल सुनु सुकुमारी। अस कहि सो निज भवन सिधारी। वह आश्वासन देने के लिए आजाती थी।

त्रिजटा ने रावण वध की विधि बतलाते हुए रामजी के स्वभाव की चर्चा कर दी। जगत् के हित के लिए वध में विलम्ब कर रहे हैं और स्वयं संकट सह रहे हैं। अब जगदम्बा की मनोवृत्ति रामजी के स्वभाव की ओर लग गयी। अस सुभाउ कहुँ सुनौं न देखौं। केहि खगेस रघुपति सम लेखौं। अतः उनकी विरह व्यथा अधिक बढ़ गयी।

निसिहि ससिहि निंदति बहु भाँति। जुग सम भई सिराति न राती।।
करति बिलाप मनहि मन भारी। राम बिरह जानकी दुखारी।।२।।

अर्थ : रात्रि की और चन्द्रमा की बहुत भाँति निन्दा करती है। रात्रि युग के समान हो गयी। बीतती ही नहीं। मन ही मन भारी विलाप कर रही हैं। रामजी के विरह में जानकीजी दुखी हैं।

व्याख्या : बिरही को रात्रि कालरात्रि के समान हो जाती है काटे नहीं कटती। मानो वह युग के समान हो गयी। मन की अवस्था के अनुकूल अल्पकाल भी बहुत बड़ा और बहुत काल भी अल्प सा प्रतीत होता है। बन्दरों को अयोध्या में छः महीने का समय कुछ मालूम ही न हुआ। जात न जान्यो दिवस निसि गये मास षट बीति। और लंका में सीताजी को एक रात्रि युग के समान हो गयी। अतः रात्रि की निन्दा करती हैं। इसी भाँति चन्द्रमा भी विरह में अति दुःखद है। इसलिए उसकी भी निन्दा करती हैं। यथा : संतत दुखद सखी रजनीकर। यद्यपि है दारुन बड़वानल राख्यो है जलधि गँभीर धीर तर। ताहू ते परम कठिन जान्यो ससि तज्यो पिता तब भएउ व्योमचर। सकल बिकार कोष बिरहिन रिपु काहें याहि सराहत सुरनर। तुलसिदास त्रैलोक्य मान्य भयो, कारन इहै गह्यो गिरिजा वर। कृ० गी० : ३१

पास में सहानुभूति करनेवाला नहीं है। जिससे विरहव्यथा कहे। कहेहू ते कछु दुःख घटि होई। काहि कहौं यह जान न कोई। अतः मन ही मन भारी विलाप कर रही हैं। जिसका क्षणभर का विरह सह्य नहीं था। यथा : चालति न भुजबल्ली

विलोकनि बिरह भय बस जानकी । उसी प्रभु से इतने दीर्घकाल का विरह हुआ। अतः जानकी दुःखी हैं । अतिसय दुखित होत वैदेही । जो देवताओं ने निवेदन किया था उसे यहाँ स्पष्ट करके कवि ने दिखला दिया ।

जब अति भएउ बिरह उर दाहू । फरकेउ बाम नयन अरु बाहू ॥
सगुन बिचारि धरी मन धीरा । अब मिलिहहिं कृपालु रघुबीरा ॥३॥

अर्थ : जब हृदय में अत्यन्त विरह का दाह उठा तब बायीं आँख और भुजा फरकी । सगुन विचारकर मन में धीरज धारण किया कि अब कृपाल रघुबीर मिलेंगे ।

व्याख्या : इस भाँति विरह का दाह जब हृदय में बहुत बढ़ा उसी समय सगुन हुआ । जब से भगवती लङ्का में आयी हैं तब से यह दूसरी बार सगुन हो रहा है । पहिला सगुन सरकार के प्रस्थान के समय हुआ था । यथा : फरकि बाम अंग जनु कह देई । आज वाम नेत्र और बाहु फड़क रहे हैं । स्त्रियों का वाम अंग फड़कना शुभ है और : सगुन प्रतीति भेंट प्रियकेरी । सगुन से प्रिय के भेंट का विश्वास होता है ।

अतः सगुन का विचार करके धैर्य धारण किया । नहीं तो धैर्य छूट गया था । मन में विश्वास हुआ कि अब सरकार से भेंट होगी ।

७६. रावण वध प्रसंग

इहाँ अर्ध निसि रावनु जागा । निज सारथि सन खीझन लागा ॥
सठ रन भूमि छड़ायसि मोही । धिग धिग अधम मंदमति तोही ॥४॥

अर्थ : यहाँ आधी रात को रावण जगा । तब अपने सारथि पर बिगड़ा कि शठ ! तैने मुझसे रणभूमि छोड़ा दी । रे अधम । मन्दमति तुझे धिक्कार है ।

व्याख्या : कवि इस समय लङ्का में जानकीजी के पास हैं । अतः लंका को इहाँ कहते हैं । लंका में रावण की मूर्च्छा आधी रात को बीती । दोपहर तक मूर्च्छित पड़ा रहा । होश में आने पर अपने को लंका में पाया । समझ गया कि यहाँ सारथि ले आया । अब उसे जीने की आशा तो है नहीं पर अपनी वीरता पर धब्बा नहीं लगने देना चाहता । अतः सारथि पर बिगड़ा । कहने लगा कि तू शठ है । मेरा मुख्य काम बिगाड़ दिया । दिखावावाला काम किया । रणभूमि न छोड़ना ही वीर का मुख्य काम है । वीर को रणभूमि इतनी प्रिय होती है कि उसी का आलिङ्गन करके महानिद्रा को प्राप्त होते हैं । उसे तूने छुड़ा दिया । तू अधम और मन्दमति दोनों है । इसलिए तुझे बार बार धिक्कार है । तू अधम है । क्योंकि इस क्षणभंगुर जीवन को ही सब कुछ मानता है । तू मन्दमति है । अवसर चूक गया । प्राण संशय के समय रथी को मरने के लिए घर लाना मन्दमति का काम है । तुझे अपना प्राण प्यारा था तो तू चला आता । मुझे रणभूमि से यहाँ क्यों लाया ?

तेहिं पद गहि बहु बिधि समुझावा । भोर भए रथ चढ़ि पुनि धावा ॥
सुनि आगवनु दसानन केरा । कपिदल खरभर भएउ घनेरा ॥५॥
जहँ तहँ भूधर बिटप उपारी । धाए कटकटाइ भट भारी ॥६॥

अर्थ : उसने रावण का पैर पकड़कर बहुत प्रकार से समझाया । सवेरा होते ही रथ पर चढ़कर दौड़ा । रावण का आगमन सुनकर वानरी सेना में बड़ी खलबली मची । जहाँ तहाँ से पर्वत और पेड़ उखाड़कर कटकटाकर भारी भट दौड़े ।

व्याख्या : अपराध के क्षमापन के लिए सारथि ने रावण के पैर पकड़ लिये । शान्त होने पर उसे अनेक प्रकार से समझाया । यथा : मूर्च्छित प्रभुहिं बिलोकि सो अन्यायी रीछेस । कीन्हेसि कठिन प्रहार पुनि करन हेतु निःशेष । ये अनीतिरत भालु कपि चपल बिगत मर्याद । समर धर्म लंघन करत इनहि न हर्ष बिषाद । याते प्रभुहि चढ़ाइ रथ ले आयों में लंक । करहिं उचित उपचार सब जामे होइ निशंक । रक्षा मूर्च्छित पीर को मुख्य सारथी धर्म । ले आयों प्रभु को इहाँ जानिबूझि सब मर्म । रावण ने उसके विनय के औचित्य को मान लिया । पर इस इन्तज़ार में रहा कि कब सवेरा हो और मैं रणभूमि में जाऊँ । सवेरा होते ही रथ पर सवार होकर दौड़ा । अभी बन्दर तैयार भी नहीं थे । इतने सवेरे कभी धावा नहीं हुआ था । यह नहीं समझा था कि रावण की ओर से इतनी मुस्तैदी होगी । कल बानरों का बड़ा भारी मर्दन हुआ था । इसलिए खलबली मची । आज रावण के साथ बड़ी सेना नहीं है । फिर भी : निज भुजबल मैं बैर बढ़ावा । इसी बात पर दृढ़ता किये हुए रथ पर चला आरहा है । भारी भट बन्दर क्रोध करके पर्वत और वृक्ष उखाड़कर दौड़े ।

छं.[1] धाए जो मर्कट बिकट भालु कराल कर भूधर धरा ।
अति कोप करहिं प्रहार मारत भजि चले रजनीचरा ॥
बिचलाइ दल बलवंत कीसन्ह घेरि पुनि रावन लियो ।
चहुदिसि चपेटन्हि मारि नखन्हि बिदारि तेहिं ब्याकुल कियो ॥

अर्थ : कराल भालु और विकट बन्दर जो पर्वत लेकर दौड़े तो अत्यन्त क्रोध करके मारने लगे । राक्षस भाग निकले । तब सेना को भगाकर बलवान् बन्दरों ने रावण को घेर लिया । चारों ओर से चपेटा मारकर और नखों से खरोंचकर उसे व्याकुल कर दिया ।

व्याख्या : पहिले जो भट भारी कहा था उसीको स्पष्ट करते हैं कि विकट बन्दर और कराल भालु पहाड़ हाथ में लेकर दौड़े । उन्होंने निश्चय कर लिया कि पहिले इसकी जो कुछ बची बचायी सेना है इसे मार भगाया जाय । तब रावण पर प्रहार किया जाय । अतः पहिले सेना पर टूटे और पत्थरों का ऐसा प्रहार किया कि

१. हरिगीतिका छन्द । यह लड़ाई वर्षा का अन्तिम नक्षत्र स्वाती है ।

निसाचरी सेना भाग चली। तब बलवान् बन्दरों ने रावण को घेर लिया। समझ लिया था कि पर्वत पेड़ की वृष्टि इस पर काम न करेगी। तब चारों ओर से चपेटा मारने लगे। अङ्गदजी के वचन की पूर्त्ति हो रही है कि याको फल पावहुगे। आगे बानर भालु चपेटन्ह लागे। चारों ओर से चपेटा चलने लगा और नखों से उसके शरीर को विदीर्ण करने लगे। यहाँ तक कि रावण व्याकुल हो गये। पञ्चलत्ती सहन न हो सकी।

दो. देखि महा मर्कट प्रबल, रावन कीन्ह बिचार।
अंतरहित होइ निमिष महुँ, कृत माया बिस्तार ॥१००॥

अर्थ : बन्दरों को महा प्रबल देखकर रावण ने विचार किया तो निमेष भर के लिए अन्तर्धान होकर उसने माया फैलायी।

व्याख्या : रावण ने देखा कि बन्दर महा प्रबल हैं। इनका चपेटा सहन नहीं होता। शरीर को नखों से विदीर्ण करते हैं। इससे भी बड़ी पीड़ा होती है। ये बल द्वारा दबाये नहीं जा सकते। अल्पबल बन्दरों ने इस आक्रमण में भाग नहीं लिया है। अतः उसने मन में विचार किया कि इनके गोल को तोड़कर निकल जाना भी सम्भव नहीं है। तब अन्तर्धान होकर इनके बीच से निकला जा सकता है और तब माया से इन्हें बेहाल : विकल भी किया जा सकता है। सो एक पल के लिए अन्तर्धान हो गया। सब लोग देखते ही रह गये और तब माया फैलाया।

छं.[1] जब कीन्ह तेहि पाखंड। भये प्रकट जंतु प्रचंड ॥
बेताल भूत पिसाच। कर धरें धनु नाराच ॥
जोगिनि गहे करवाल। एक हाथ मनुज कपाल ॥
कर सद्य सोनित पान। नाचहिं करहिं गुनगान ॥

अर्थ : जब उसने माया फैलायी तब प्रचण्ड जीव प्रकट हुए। वेताल भूत पिशाच हाथ में धनुष और बाण लिये हुए थे। योगिनियाँ तलवार लिये और एक हाथ में मनुष्य का कपाल लिये हुए ताजा रक्तपान करती थीं। नाचती थीं और गुणगान करती थीं।

व्याख्या : प्रचण्ड जन्तु अन्तर्धान रहते हैं प्रकट नहीं होते। दिन का प्रकाश वे सहन नहीं कर सकते। घोर तामस होने से उनका सञ्चार अन्धकार में होता है। रावण ने माया द्वारा वहाँ ऐसे तमोगुण का सञ्चार किया कि वे प्रकट हो गये। स्थूल शरीर न होने से उनका निश्चित आकार भी नहीं होता। वासनानुसार उनके अङ्ग स्थूल कृश छोटे बड़े हुआ करते हैं। उन प्रचण्ड जन्तुओं का नाम गिनाते हैं। वेताल भूत और पिशाच उनका दर्शन ही प्राण हरण के लिए यथेष्ट है। तिसपर हाथ

---

१. यह तोमर छन्द है।

में धनुष बाण लिये हुए हैं जिसमें उनसे कोई भाग कर भी न बच सके। योगिनियाँ प्रकट हुईं। वे मार-काट के लिए तलवार और एक हाथ में नरकपाल लिये हुए थीं। उसमें भर भरकर ताजा खून पीती और आनन्द से नृत्य कर रही थीं और रावण का गुणगान करती थीं कि बड़े उपकारी हैं। हम लोगों को आवाहन करके बुलाया है। यहाँ खान पान का बड़ा सुभीता है। रक्त मांस की बहुतायत है।

[1]छं. धरु मारु बोलहिं घोर। रहि पूरि धुनि चहुँ ओर ॥
मुख बाइ धावहिं खान। तब लगे कीस परान ॥
जहँ जाहिं मर्कट भागि। तहँ बरत देखहिं आगि ॥
भए बिकल बानर भालु। पुनि लाग बरखै बालु ॥

अर्थ : घोर शब्द में धरो मारो बोलती थीं। यह ध्वनि चारो ओर भर गयी। जहाँ बन्दर भागकर जाते हैं वहाँ आग जलती देखते हैं। वानर भालु विकल हो गये। फिर बालू बरसने लगा।

व्याख्या : पहिले तो बन्दरों को देखकर गायीं नाचीं। अब लगीं : धरु मारु बोलने सो बड़े घोर रव से सब दिशायें प्रतिध्वनित हो उठीं। अब बन्दरों की ओर उन्मुख हुईं। अब तक बन्दर लोग हिम्मत किये हुए डटे रहे। तलवार लिये हैं परन्तु मारती नहीं। धरु मारु धुनि कर रहीं हैं पर न किसी को मारती हैं न काटती हैं। दृश्य भयानक अवश्य है पर वास्तविक हानि कुछ नहीं थी। अतः बन्दर भागे नहीं पर जब मुख फैलाकर खाने दौडीं तब तो बन्दर भागे। इतना बड़ा मुख फैलाया कि एक ही ग्रास कर जायँ। माया से सबके आँखों पर पट्टी बँधी हुई है। जहाँ बन्दर भालु भागकर जाते हैं वहाँ आग जलती हुई देखते हैं। बन्दर कभी आग छूते नहीं बहुत डरते हैं। भालु को तो बड़े बड़े बाल होते हैं। वे भी बहुत डरते हैं। बन्दर भालु विकल हुए कि कहाँ जायँ। तब से बालू : रेत की वर्षा होने लगी। आँख नहीं खोल सकते दम घुटा जाता है। पता नहीं कि सेना का क्या हाल है। सबको योगिनियाँ खा गयीं कि कोई बचा भी है। अभी तक तो मैं बचा हूँ पर कितने देर तक बच सकूँगा। यह दशा बन्दर भालुओं की हुई।

छं. जहँ तहँ थकित करि कीस। गर्जेउ बहुरि दससीस ॥
लछिमन कपीस समेत। भए सकल बीर अचेत ॥
हा राम हा रघुनाथ। कहि सुभट मीजहिं हाथ ॥
एहि बिधि सकल बल तोरि। तेंहि कीन्ह कपट बहोरि ॥

अर्थ : बन्दरों को जहाँ तहाँ स्थगित करके फिर रावण गर्जा। लक्ष्मण और

---

१. यह तोमर छन्द है।

सुग्रीव के सहित सब वीर अचेत हो गये। हा राम! हा रघुनाथ! कहकर सब वीर हाथ मलते थे। इस प्रकार से सबका बल तोड़कर उसने फिर माया की।

व्याख्या : जो बन्दर जहाँ थे वे वहीं थककर बैठ गये। तब रावण गर्जे कि है किसी में दम? कहाँ गये चपेटा मारनेवाले? और किसकी बात कही जाय। सभी वीर अचेत हो गये। लक्ष्मण और सुग्रीव की भी वही दशा हो गयी। हा राम! हा रघुनाथ! कह रहे हैं। मरती समय सरकार का दर्शन भी नहीं पा सकते। क्या करें आँखों में बालू भरा हुआ है। यदि देख पाते तो इस गर्जन का उत्तर देते। कुछ करते नहीं बन रहा है। इसलिए हाथ मलते हैं। इस भाँति सब सेना भंग कर दिया। सबका बल तोड़ दिया। पर सरकार पर माया कुछ काम नहीं कर रही है। अतः उसने फिर माया की।

छं. प्रगटेसि बिपुल हनुमान। धाए गहे पाखान॥
तिन्ह रामु घेरे जाइ। चहुँ दिसि बरूथ बनाइ॥
मारहु धरहु जनि जाइ। कटकटहिं पूछ उठाइ॥
दह दिसि लंगूर बिराज। तेहि मध्य कोसलराज॥

अर्थ : उसने बहुत से हनुमान् प्रकट किये जो पत्थर लेकर दौड़े। उन्होंने रामजी को जाकर घेर लिया। चारो ओर सेना बना ली। मारो पकड़ो भाग न जाने पावे ऐसा कहते हैं और पूँछ उठाकर कटकटाते हैं। दसो दिशाओं में पूँछें शोभा दे रही थीं। उनके मध्य में रामजी थे।

व्याख्या : यह समझकर कि हनुमान्‌जी ही वानरी सेना के प्राण है। इन्हीं का रामजी को भी बड़ा भरोसा है। जब बहुत से हनुमान् को अपना विरोध करते देखेंगे तो इनका भी साहस छूट जायगा। अतः उसने बहुत से हनुमान् प्रगट किये। वे पत्थर ले लेकर दौड़े और अपनी सेना बनाकर रामजी को चारो ओर से घेर लिया। भाव यह कि तुम्हारा एक हनुमान् इतने हनुमानों के सामने क्या करेगा? और वे हनुमान् पूँछ उठाकर कटकटा रहे हैं और कहते हैं कि पकड़ों मारो भागकर निकल न जाने पावे। सरकार रथ पर हैं। अतः दशो दिशायें हनुमानों के पूँछों से घिर गयीं। बीच में रामजी हैं और चारो ओर पूँछ ही पूँछ है।

[1]छं. तेहि मध्य कोसलराज सुंदर स्याम तन सोभा लही।
जनु इंद्रधनुष अनेक की वर बारि तुंग तमालही॥
प्रभु देखि हरष बिषाद उर सुर बदत जय जय जय करी।
रघुबीर एकहि तीर कोपि निमेष महुँ माया हरी॥

अर्थ : उसके बीच में कोशलाधीश के सुन्दर श्याम शरीर ने ऐसी शोभा पायी

---

१. यह हरिगीतिका छन्द है।

जैसे ऊँचे तमाल वृक्ष को इन्द्रधनुष की बाड़ लगी हो। सरकार को देखकर देवताओं के हृदय में हर्ष और विषाद है। वे जय जय जय कर रहे हैं। रघुवीर ने क्रोध करके एक ही तीर से माया हरण कर ली।

व्याख्या : चारो ओर पूँछों का वर्तुलाकार घेरा है और उसके बीच में भी सरकार के श्यामसुन्दर शरीर की शोभा हो रही है। कवि उपमा देते हैं कि जैसे ऊँचे तमाल वृक्ष के चारो ओर इन्द्रधनुष की बाड़ लगी हो। वृक्षों के फल को सुरक्षित रखने के लिए उनके चारों ओर काँटों का घेरा बनाया जाता है जिसे बाड़ कहते हैं। यहाँ सरकार का श्यामसुन्दर शरीर ऊँचे तमाल वृक्ष सा शोभायमान है। ऊँचे रथ पर आरूढ़ होने से ऊँचे तमाल से उपमित किया और पूँछों के घेरे का इन्द्रधनुष की बाड़ से उपमित किया।

देवताओं को उस झाँकी के दर्शन से हर्ष हुआ। पर सरकार के घिर जाने से विषाद हुआ। संशयावस्था में पड़े हुए देवताओं ने जय जयकार किया। जिसमें सरकार को अपने स्वरूप का स्मरण हो आवे। इतनी बड़ी घनी माया हुई है और ये मानों अपने स्वरूप को भूले बैठे हैं। रावण के माया की कार्यकारिता पूरी हो जाने पर सरकार ने एक तीर से क्रोध करके पलक पड़ने मात्र में माया हरण कर ली। सरकार के तीर दिव्य हैं ये माया हरण में भी समर्थ हैं।

[1]छं. माया बिगत कपि भालु हरषे बिटप गिरि गहि सब फिरे।
सर निकर छाँडि राम रावन बाहुँ सिर पुनि महि गिरे॥
श्रीराम रावन समर चरित अनेक कल्प जे गावहीं।
सतसेष सारद निगम कबि तेउ तदपि पार न पावहीं॥

अर्थ : माया के दूर हो जाने से बन्दर भालु हर्षित हुए और पेड़ तथा पर्वत लेकर सब लौटे। रामजी ने बाणों के समूह छोड़े जिससे रावण के बाहु और सिर फिर पृथ्वी पर गिरे। श्रीराम रावण का समर चरित्र अनेक कल्पतक जो गान करते हैं बेचारे शेष हों, चाहे शारदा हों, चाहे वेद हों, चाहे कवि हों तथापि वे भी पार नहीं पाते।

व्याख्या : माया जो हटी तो कहीं कुछ नहीं। जैसे कोई घोर दुःस्वप्न देखते देखते जाग पड़े वैसे हर्षित हुए। जहाँ तक भागे थे वहीं से लौट पड़े और युद्ध की इच्छा से लौटे। अतः पर्वत वृक्ष लिये हुए लौटे।

अब सरकार बाण मारने लगे। रावण के सिर और भुजा फिर पृथिवी में गिरे। भाव यह कि राम रावण युद्ध फिर आरम्भ हुआ। कवि कहते हैं कि राम रावण युद्ध में जो जो घटनाएँ हुईं उनका वर्णन यदि शेष शारदा वेद तथा कवि सब लोग अनेक कल्प तक करें फिर भी पार नहीं पा सकते। रामरावणयोर्युद्धं

---

१. यह हरिगीतिका छन्द है।

रामरावणयोरिव। भाव यह कि राम रावण के युद्ध का अन्त नहीं, वह प्रत्येक ब्रह्माण्ड और प्रत्येक पिण्ड में होता रहता है और अनेक प्रकार से होता रहता है। अतः उसका पार है ही नहीं। सभी गान करनेवाले अपने सामर्थ्यानुरूप ही गान करेंगे और सबको कहना पड़ेगा कि इसका अन्त नहीं चाहे वे शेष शारदा निगम कवि ही क्यों न हों। यथा :

वपुष ब्रह्मांड सुप्रवृत्ति लंका दुर्गरचित मन दनुजमय रूपधारी।
विविध कोषौघ अति रुचिर मन्दिर निकर सत्व गुन प्रमुख त्रैकटककारी॥
कुनप अभिमान सागर भयंकर घोर विपुल अवगाह दुस्तर अपारं।
नक्र रागादि संकुल मनोरथ सकल संग संकल्प बीची विकारं॥
मोहदसमौलि तद्भ्रात अहंकार पाकारिजित काम विश्रामहारी।
लोभ अतिकाय मत्सर महोदर दुष्ट क्रोध पापिष्ट विबुधांतकारी॥
द्वेष दुर्मुख दंभ खर अकंपन कपट दर्प मनुजाद मद सूलपानी।
अमित बल परम दुर्जय निसाचर निकर सहित षड्वर्ग गोजातुधानी॥
जीव भवदंघ्रि सेवक विभीषन बसत मध्य दुष्टाटवी ग्रसित चिंता।
नियम यम सकल सुरलोक लोकेस लंकेस बसनाथ अत्यंत भीता॥
ग्यान अवधेस गृह गेहनी भक्ति शुभ तत्र अवतार भूभार हर्ता।
भक्त संकष्ट अवलोकि पितु वाक्य कृत गवन किया गहन वैदेहिभर्ता॥
कैवल्य साधन अखिल भालु मर्कट विकट ग्यान सुग्रीव कृतजलधि सेतू।
प्रबल वैराग्य दारुन प्रभंजनतनय विषम वन भवन इव धूमकेतू॥
दुष्ट दनुजेस निर्वंसकृत दासहित विस्व दुख हरन बोधैकरासी।
अनुज जानकी सहित हरि सर्वदा दास तुलसी हृदय कमलवासी॥

विनय० पद ५८

दो. ताके गुनगन कछु कहे, जड़मति तुलसीदास।
जिमि निज बल अनुरूप ते, माछी उड़ै अकास॥१०१॥
काटे सिर भुज बार बहु, मरत न भट लंकेस।
प्रभु क्रीडत मुनि सिद्ध सुर, ब्याकुल देखि कलेस॥

अर्थ : उनके कुछ गुण जड़मति तुलसीदास ने कहे जैसे अपने बल के अनुरूप मक्खी आकाश में उड़ती है। बहुत बार सिर भुज कटने पर भी वीर लङ्कापति मरता नहीं। प्रभु तो खेल करते हैं। पर सिद्ध देवता और मुनि क्लेश देखकर व्याकुल हैं।

व्याख्या : जिसके गुण गण का वर्णन शेष शारदा वेद तथा कवि ये बिमलमति नहीं कर सकते उसके कुछ गुणगण जड़मति तुलसीदास ने कहे। आकाश अपार है उसका पार गरुड़ आदि महापराक्रमी भी नहीं पा सकते। तथापि अल्प पराक्रम मक्खी उड़ना नहीं बन्द करती अपने उड़ान भर उड़ती है। कवि कहते हैं कि राम के

गुण आकाश की भाँति अनन्त है। उसका पार शेष शारदारूपी गरुड़ को नहीं मिलता। फिर भी मक्खी की भाँति अपने उड़ान भर उड़ा जो वर्णन कर सका सो मैंने वर्णन किया।

त्रिजटा ने कहा था कि सिर काटते काटते जब विकल होगा तब ध्यान छूटेगा परन्तु रावण ऐसा योद्धा है कि उसके सिर कटते जाते हैं असह्य वेदना सहता जाता है पर ऐसा विकल नहीं होता कि ध्यान छूट जाय। अतः मरता नहीं। सरकार के लिए तो इतने वार का घोर परिश्रम खेल है। पर सुर सिद्ध मुनि सरकार का कठोर श्रम जो सिर काटने में पड़ रहा है देखकर व्याकुल हो गये। रावण के कष्ट पर किसी का ध्यान नहीं है क्योंकि उसने कितने सिर अन्यायपूर्वक काटे हैं। उन्हीं का फल भोग रहा है।

काटत बढ़हिं सीस समुदाई। जिमि प्रति लाभ लोभ अधिकाई ॥
मरै न रिपुस्रम भएउ बिसेखा। राम बिभीषन तन तब देखा ॥१॥

अर्थ : काटने पर सिर का समूह बढ़ता ही जाता है। जैसे लाभ प्रति लाभ लोभ बढ़ता है। शत्रु मरता नहीं और परिश्रम बहुत हुआ। तब रामजी ने विभीषण की ओर देखा।

व्याख्या : लाभ के लिए ही लोभ होता है। अतः लाभ होने पर लोभ शान्त होना चाहिए पर ऐसा नहीं होता। जितना लाभ द्वारा लोभ शान्त का प्रयत्न करता जाय उतनी लोभ में अभिवृद्धि होती ही जाती है। लोभ समाप्त नहीं होता। वही गति रावण के सिरों की है। उसे सरकार काटते हैं समाप्ति के लिए। पर उनकी समाप्ति नहीं होती वृद्धि होती ही जाती है।

रावण का शरीर वज्र है। जिस पर टक्कर खाकर पर्वत चूर हो जाते हैं। उसके सिर काटने में बड़ा परिश्रम है। सो सरकार काटते काटते थक गये। सिर कटा तहाँ वह व्यक्ति मरा। यहाँ असंख्य बार सिर काटा गया पर शत्रु मरता नहीं है। तब रामजी ने विभीषण की ओर देखा। भाव यह कि विभीषण से सलाह पूछते हैं।

उमा कालु मर जाकी ईछा। सोइ प्रभु जन कर प्रीती परीछा ॥
सुनु सर्बग्य चराचर नायक। प्रनतपाल सुरमुनि सुखदायक ॥२॥

अर्थ : हे उमा ! जिसके संकल्प मात्र से काल मर जाता है। सो प्रभु भक्त की प्रीति की परीक्षा करते हैं। हे सर्वज्ञ, चराचरनायक, प्रणतपाल, सुरमुनिसुखदायक ! सुनो।

व्याख्या : विशेष विशेष अवसर पर शिवजी अपने श्रोता को सरकार का उत्कर्ष कहकर सावधान करते जाते हैं। यहाँ संशय को स्थान है कि रावण ऐसे कीट के वध के लिए स्वयं महाप्रभु को विभीषण से उपाय पूछने की आवश्यकता क्यों पड़ी ? क्या उनकी सर्वज्ञता में कोई त्रुटि है ? चराचर नायक सर्वशक्तिमान्

रावणवध में असमर्थ क्यों हो रहे हैं ? अतः शिवजी कहते हैं कि उमा ! सर्वभक्षक काल भी जिसके संकल्पमात्र से मर जाता है। जो काल काल है उसके सामने रावण क्या है ? यहाँ सरकार भक्त की प्रीति की परीक्षा कर रहे हैं कि विभीषण की सर्वात्मना प्रीति मुझ पर है या नहीं। भाई पर प्रीति हृदय में कहीं छिपी तो नहीं पड़ी हुई है ? क्योंकि इसे मालूम है कि रावण सिर कटने से नहीं मरेगा। जिस भाँति वह मरेगा सो उपाय यह जानता है। मुझे कितनी बार सिर काटते हो गया पर यह कुछ नहीं कहता है। अतः पूछकर देख लें कि बतलाता है या नहीं। जिसके ऊपर भक्त की कुछ भी प्रीति हो उसका वध कैसे करें ? सुग्रीव ने भी जब कह दिया : बन्धु न होइ मोर यह काला। तब बालिबध किया। यहाँ भी जब विभीषण स्वयं वध का उपाय बतलावेंगे तब रावण का वध करेंगे। अतः विभीषणजी की ओर देखा।

विभीषणजी आशय समझ गये। उत्तर देते हैं कि सरकार सर्वज्ञ हैं। चराचर नायक हैं। सर्वशक्तिमान् हैं। सब कुछ जानते हैं। सब कुछ कर सकते हैं। मुझे कष्ट न हो इस बात पर इतना ध्यान है। क्योंकि मैं प्रणत हूँ और साथ ही साथ सुरमुनि-सुखदायक है सुरमुनि का धैर्य छूट जा रहा है। यथा : प्रभु क्रीडत सुरसिद्ध मुनि व्याकुल देखि कलेस। अतः क्रीडा को अधिक नहीं बढ़ाना चाहते हैं। अतः सुनिये।

नाभिकुंड पियूष बस जाके। नाथ जियत रावन बल ताके॥
सुनत बिभीषन बचन कृपाला। हरषि गहे कर बान कराला॥३॥

अर्थ : इसके नाभिकुण्ड में अमृत बसता है उसी के बल से रावण जीता है। विभीषण के वचन को सुनते ही कृपाल ने हर्षित होकर कराल बाण हाथ में लिये।

व्याख्या : विभीषण साधु हैं। मरने की विधि न बतलाकर रावण के जीने का कारण बतला रहे हैं। कहते हैं कि रावण के नाभिकुण्ड में अमृत बसता है। सभी के शरीर के भीतर के चन्द्रमण्डल से जो सहस्रार में है अमृतस्राव होता है। उसे नाभि में स्थित सूर्य पीते जाते हैं। फिर भी उसी स्राव से मनुष्य जीता है। रावण ने योग्य के विपरीत क्रिया द्वारा सूर्य को ऊपर और चन्द्र को नीचे कर रक्खा है। इसलिए इसके अमृत को सूर्य पी नहीं पाते। वह नाभि देश में इकट्ठा होता जाता है। उसी के बल से रावण जीता है।

सरकार कृपाल हैं। तीनों लोकों पर कृपा करना चाहते हैं। स्वयं रावण पर भी कृपा करना चाहते हैं। क्योंकि अन्यायी का वध उसके कल्याण का कारण होता है। विभीषणजी की सलाह से हर्षित हुए और कराल बाण को हाथ में लिया। जिसके द्वारा रावणवध किया चाहते हैं।

असगुन होन लगे तब नाना। रोवहिं खर सृगाल बहु स्वाना॥
बोलहिं खग जग आरति हेतू। प्रगट भए नभ जहँ तहँ केतू॥४॥

दस दिसि दाह होन अति लागा। भएउ पर्ब बिनु रबि उपरागा॥
मंदोदरि उर कंपति भारी। प्रतिमा स्रवहिं नयन मग बारी॥५॥

अर्थ : तब नाना प्रकार के अपशकुन होने लगे। बहुत से गीदड़ गधे और कुत्ते रोने लगे। जिनका बोलना अत्यन्त आर्त्ति का कारण है वे पक्षी बोलने लगे। आकाश में जहाँ तहाँ केतु प्रकट हो गये। दसों दिशाओं में दाह होने लगा। बिना अमावस्या के ही सूर्य ग्रहण लग गया। मन्दोदरी का हृदय बहुत कांपने लगा। देवमूर्त्तियों के आंख से जल बह चला।

व्याख्या : सरकार ने इधर हाथ में कराल बाण लिया और उधर अपशकुन प्रकट हुए। रावण अत्यन्त अत्याचारी होने पर भी बड़े महान् व्यक्ति थे। ब्रह्मसृष्टि जहँ लगि तनुधारी। दसमुख बसवर्ती नरनारी। उनका मृत्युरूप जो बाण था उसके प्रयोग के समय महा उत्पात सूचक अपशकुन हुए। बहुत से शृगाल खर और श्वान रोने लगे। रावण की युद्धयात्रा के समय भी अपशकुन हुए। पर इतने नहीं। अत्यन्त आर्त्ति के हेतु जिन खगों का बोलना है। यथा : गीध उलूक आदि। वे भी बोलने लगे : जनु काल दूत उलूक बोलहि बचन परम भयावने। दिन के समय आकाश में केतुओं का उदय हुआ। केतु अनेक हैं। उनकी संख्या लगभग सौके हैं। उनमें से कोई कभी उदय होते हैं। सो बहुत से प्रकट हो गये। दसो दिशाओं में दिग्दाह होने लगा। आश्विन सुदी नवमी को रावण वध हुआ। न तो उस दिन अमावस्या थी न पूर्णिमा। अतः किसी ग्रहण का योग नहीं था। सो सूर्य ग्रहण लग गया। प्रकृति में विक्षोभ हो गया। सरकार के धनुष के टङ्कार पर ही मन्दोदरी का हृदय कांपा था। सो इस समय अत्यन्त कम्पित हो रहा है। देवता प्रतिमाओं के आंख से जल बह रहा है। यह वैष्णव उत्पात है।

[1]छं. प्रतिमा स्रवहिं पबिपात नभ अति बात बहु डोलति मही।
बरषहिं बलाहक रुधिर कचरज असुभ अति सक को कही॥
उतपात अमित बिलोकि नभ सुर बिकल बोलहिं जयजये।
सुर सभय जानि कृपाल रघुपति चाप सर जोरत भये॥

अर्थ : देवप्रतिमाएँ रोती हैं। आकाश से वज्रपात होता है। बड़े वेग से हवा बहती है। पृथिवी कांप रही है। मेघ रक्त बाल और धूलि की वर्षा कर रहे हैं। अत्यन्त अवर्णनीय अशुभ हो रहे हैं। अगणित उत्पात देख करके आकाश में देवतालोग जय जय बोलने लगे। देवताओं को भयभीत जानकर कृपाल रामजी धनुष पर बाणों को जोड़ने लगे।

व्याख्या : इतने उत्पात एक साथ ही बाण हाथ में लेते ही हुए। आकाश से

---

१. हरिगीतिका छन्द है।

वज्रपात हुआ। अन्तरिक्ष में वायु अति वेग से बह उठी। पृथिवी पर बादलों ने रक्त बालू और धूलि की वर्षा कर दी। असंख्य उत्पात को एक साथ होते देखकर आकाश में देवता विकल हो उठे कि पृथिवी अराम या अरावण हुआ चाहती है। अतः रामजी के कल्याण के लिए जय जय किया। अथवा सरकार को सूचना देने के लिए जय जय किया कि यही समय है रावणवध का। सो इसे जीतिये। सरकार ने देखा कि देवता भयभीत हो गये। अतः उस बाण को धनुष पर चढ़ाया और उसके साथ अन्य बाणों को भी जोड़ा।

दो. खैंचि सरासन स्रवन लगि, छाड़े सर एकतीस।
रघुनायक सायक चले, मानहु काल फनीस ॥१०२॥

अर्थ : कान तक धनुष खैंचकर एकतीस वाण चलाये। रामजी के बाण कालसर्प की भाँति चले।

व्याख्या : कान तक धनुष को खैंचा बाण को अधिक गति देने के लिए। पहिले तीस बाण चलाते थे। अब उस कराल बाण के साथ तीस और जोड़े। सब बाणों से पृथक् पृथक् काम लेना है। इसलिए जोड़ने में विधि से काम लेना पड़ा। जब बाण छूटे तो ऐसे चले जैसे कालसर्प चले। ये प्राण लेवेंगे। इसलिए कालसर्प से उपमित किया।

सायक एक नाभि सर सोखा। अपर लगे सिर भुज करि रोषा ॥
लै सिर बाहु चले नाराचा। सिर भुज हीन रुण्ड महि नाचा ॥१॥

अर्थ : एक बाण ने नाभि में के कुण्ड को सोख लिया और क्रोध करके शेष तीस में से दस सिर में लगे और बीस बीस बाण बाहु में लगे। सिर और बाहु को लेकर नाराच चले। सिर और भुजा से हीन होकर धड़ पृथिवी पर नाचने लगा।

व्याख्या : विभीषणजी ने बतलाया था कि : नाभि कुण्ड पियूष बस जाके। नाथ जियत रावण बल ताके। सो उस कुण्ड को उस कराल बाण ने सोख लिया। शेष तीस सिर और बाहों में लगे और उन्हें काटकर ले चले। शरीर में प्राण भरा हुआ है गिरा नहीं और युद्ध का प्रयत्न कर रहा है। अतः बिना सिर भुजा के रुण्ड पृथिवी पर नाच रहा है। सरकार के बाण सजीव हैं। सरकारी प्रेरणानुसार कार्य करते हैं।

धरनि धसै धर धाव प्रचंडा। तब प्रभु सर हति कृत जुग खंडा ॥
गर्जेउ मरत घोर रव भारी। कहाँ रामु रन हतौं प्रचारी ॥२॥

अर्थ : प्रचण्ड धड़ के दौड़ने से पृथिवी धँसने लगी। तब प्रभु ने बाण मार कर दो टुकड़े कर दिये। मरते समय घोर ध्वनि से गर्जन किया। राम कहाँ हैं ? ललकारकर रण में मारूँगा।

व्याख्या : पहिले धड़ नाचा फिर दौड़ने लगा। पूर्वाभ्यासानुसार कार्य हो रहा है। प्रचण्ड धड़ है : सेषकमठ सहि सकें न भारा। सो पृथिवी धँसने लगी। तब सरकार ने उसे काटकर दो टुकड़े कर दिया। जिसमें बोझ हलका हो जाय। तब जाकर धड़ गिरा और दौड़ना रुका।

अब दूसरे प्रकार का मरण कहते हैं। जहाँ सिर नहीं कटता हृदय में बाण लगता है वही वीर चिक्कार करते हैं। अतः जिस कल्प के रावण के सिर न कटे केवल हृदय या नाभि में बाण लगा। वह मरने के समय घोर रव से गर्जा कि कहाँ हैं राम। अभी लड़ाई में ललकार कर मारता हूँ। मरण के समय दृष्टि धुँधली हो गयी है। अतः कहाँ हैं राम कहता है। हृदय में भाव भरा है कि : आज बैर सब लेउँ निबाही। वही मरती समय कहता है : रन हतौं प्रचारी। अन्त समय भगवन्नाम उच्चारण किया। नहीं तो रावण कभी राम ऐसा उच्चारण करते ही नहीं थे।

डोली भूमि गिरत दसकंधर। छुभित सिंधु सरि दिग्गज भूधर ॥
धरनि परेउ द्वौ खण्ड बढ़ाई। चापि भालु मर्कट समुदाई ॥३॥

अर्थ : रावण के गिरने से पृथिवी डोल गयी। समुद्र, नदियाँ, दिग्गज और पहाड़ क्षुब्ध हो उठे। दोनों खण्डों को बढ़ाता हुआ बन्दर भालु के समूह को दबाकर वह पृथिवी पर गिरा।

व्याख्या : रावण के चलने पर नित्य ही भूकम्प होता था। यथा : तब बलनाथ डोल नित धरनी। अतः उसके धड़ गिरने से पृथिवी डोल गयी और इतने जोर से डोली कि समुद्र, नदी, दिग्गज, पहाड़, सभी चञ्चल हो गये।

धड़ के दो टुकड़े होने पर भी उनमें बढ़ने का सामर्थ्य है। वे बहुत बड़े होकर गिरे। जिससे बन्दर और भालु के समूह दब गये। जिस भाँति हनुमान्‌जी ने मूच्छित होते हुए शत्रु सेना का नाश किया था। यथा : परतिहुँ बार कटकु संहारा।

मंदोदरि आगे भुज सीसा। धरि सर चले जहाँ जगदीसा ॥
प्रविसे सब निषंग महु जाई। देखि सुरन्ह दुंदुभी बजाई ॥४॥

अर्थ : मन्दोदरी के आगे भुजा और सिर रखकर बाण जगदीश के पास चले। सब तरकस में प्रवेश कर गये। देखकर देवताओं ने दुन्दुभी बजायी।

व्याख्या : लै सिर बाहु चले नाराचा। पहिले कह आये हैं। अब उन्हीं की कथा कहते हैं कि वे उन सिर और बाहुओं को ले जाकर मन्दोदरी के आगे रख दिया और फिर वहाँ से लौट पड़े। सो जहाँ सरकार थे वहाँ आये और निषङ्ग में प्रवेश कर गये। उनका कार्य समाप्त हो गया। सरकार ने इसी भाँति कुम्भकर्ण का सिर रावण के पास भेज दिया था। यथा : सो सिर परा दसानन आगे।' भाव यह कि वैर मरणान्त रहता है। मरणान्तानि वैराणि। अतः सिर को और्ध्वदेहिक कृत्य के लिए उसके अधिकारी के पास भेज देते हैं। यदि कोई सती होना चाहे तो उसके लिए सिर मौजूद है। समर भूमि में उसकी रक्षा नहीं हो सकती।

बाणों ने चार क्रियायें कीं। पहली यह कि उन्होंने सिर काटे। दूसरी यह कि लेजाकर मन्दोदरी के पास रख आये। तीसरी यह कि वहाँ से रामजी के पास लौट आये और चौथे यह कि आप से आप निषङ्ग में प्रवेश कर गये। देवताओं ने तब समझा कि इसकी वध क्रिया पूरी हो गयी। बाणों के निषङ्ग प्रवेश के समय देवताओं ने दुन्दुभी बजाई कि अब जीत पूरी हुई।

तासु तेजु समान प्रभु आनन। हरषे देखि संभु चतुरानन॥
जय जय धुनि पूरी ब्रह्मंडा। जय रघुबीर प्रबल भुजदंडा॥५॥
बरषहिं सुमन देव मुनि बृंदा। जय कृपाल जय जयति मुकुंदा॥६॥

अर्थ : उसका तेज सरकार के मुख में समा गया। देखकर शिवजी तथा ब्रह्माजी हर्षित हुए। जय जय ध्वनि ब्रह्माण्ड में भर उठी। प्रबल भुजदण्डवाले रघुवीर की जय। देवता और मुनिगण फूल बरसा रहे हैं। कहते हैं कृपाल की जय हो। मुक्ति देनेवाले की जय हो। जय हो।

व्याख्या : रावण शम्भु चतुरानन का भक्त था। उसके तेज को प्रभु के मुख में समाते देखकर ये देवता प्रसन्न हो गये कि भक्त को परम गति की प्राप्ति हुई और देवता तथा मुनियों का हर्षित होना नहीं कहते। वे लोग तो आश्चर्य में आगये। यथा : अधम सिरोमनि तव पद पावा। यह हमरे मन बिसमय आवा।

चारों ओर से जयध्वनि हुई। रघुवीर के प्रबल भुजदण्ड का उत्कर्ष है। नहीं तो रावण के भुजदण्ड के सामने कोई टिकता न था। यथा : भुजबल बिस्व बस्य करि राखेसि कोउ न स्वतंत्र। देवता और मुनि आकाश में हैं। वहीं से फूल बरसाते हैं और कहते हैं :

[1]छं. जय कृपाकंद मुकुंद द्वंद हरन सरन सुखप्रद प्रभो।
खलदल बिदारन परम कारन कारुनीक सदा बिभो॥
सुर सुमन बरखहिं हरष संकुल बाज दुंदुभि गह गही।
संग्राम अंगन राम अंग अनंग बहु सोभा लही॥

अर्थ : कृपा के बादल मुक्ति के देनेवाले, द्वन्द्व के हरण करनेवाले, शरणागत को सुख देनेवाले समर्थ, खल दल के नाश करनेवाले, परम कारण, कारुणीक और सदा व्यापक की जय हो। देवता सिद्ध मुनि और गन्धर्व हर्षित हुए। गहगही दुन्दुभी बजी। संग्राम भूमि में रामजी के अङ्गों ने अनेक कामदेव की शोभा प्राप्त की।

व्याख्या : सरकार कृपा के बादल हैं। कृपा की वृष्टि सब पर करते हैं। प्रेय तो देते ही हैं। श्रेय : मुक्ति भी देते हैं। अभी रावण ऐसे अधम को मुक्ति दिया और संसार सुखी हो गया। सरकार द्वन्द्व का हरण करते हैं। सुख दुःखादि जोड़े

१. हरिगीतिका छन्द है।

ही द्वन्द्व हैं। दुःख के साथ में रहनेवाला सुख भी दुःख रूप ही है। महात्माओं का कथन है कि दुःख दुःख नहीं है। स्वल्प सुख ही दुःख है। नाल्पे सुखमस्ति यद्वै भूमा तत्सुखम्। अल्प में सुख नहीं है। जो टिकाऊ हो उसमें सुख है। अतः भूमा सुख देने के लिए द्वन्द्व का हरण करते हैं। सरकार शरणागतवत्सल हैं और समर्थ हैं। असमर्थ शरणागतवत्सल होने पर भी सुखप्रद नहीं हो सकता। शरणागत विभीषण को लङ्का का राजतिलक दिया। उसे रावण वध करके पूरा किया। इतना कहकर अवतार का प्रथम कारण साधु परित्राण दिखलाया। अब दूसरा कारण दुष्कृत विनाश दिखलाते हैं कि सरकार खल और उसके दल के विदारण के परम कारण हैं। खलदल का विदारण तो लक्ष्मणजी तथा हनुमदादि बीरों ने भी किया। अतः वे कारण हुए। परन्तु परम कारण आप ही हैं। यथा : कपि जयसील राम बल ताते। सरकार कारुणीक हैं। करुणा करके आप ने ही प्रतिज्ञा की थी : निसिचर हीन करौं महि। सो पूरा किया और उन्हें भी करुणा करके परम गति दिया। यथा : उमा राम मृदुचित करुणाकर। बैर भाव सुमिरत मोहि निसिचर। देहि परम गति सो जिअ जानी। अस कृपाल को कहहु भवानी। और यह सब होते हुए भी आपकी व्यापकता में कोई अन्तर न पड़ा। व्यापक न बाधा देता है, न बाधा पाता है। वह स्थिति सरकार की ज्यों की त्यों बनी रही और अचिन्त्य दिव्यलीला शक्ति द्वारा सब कार्य सम्पादन हो गया।

इस भाँति आकाश में देवता सिद्ध मुनि और गन्धर्व हर्षित हुए और खूब दुन्दुभी बजी और संग्राम भूमि में सरकार की ऐसी शोभा हुई कि अङ्ग अङ्ग में अनेक कामदेवों की छवि छायी हुई थी। यथा : अंग अंग पर वारि अहि कोटि कोटि सत काम।

[1]छं. सिर जटा मुकुट प्रसून बिच बिच अति मनोहर राजहीं।
जनु नील गिरिपर तडितपटल समेत उडुगन भ्राजहीं॥
भुजदंड सर कोदंड फेरत रुधिर कन तन अति बने।
जनु रायमुनी तमाल पर बैठीं बिपुल सुख आपने॥

अर्थ : सिर पर जटा मुकुट है। जिसके बीच बीच में फूल अत्यन्त सुन्दर शोभायमान हैं मानो नील पर्वत पर बिजलियों का समूह तारागणों के साथ शोभायमान हैं। भुजदण्डों से धनुष बाण फेर रहे हैं। शरीर में रक्त के बिन्दु ऐसी शोभा दे रहे हैं जैसे बहुत सी रायमुनी पक्षी तमोल वृक्ष पर अपने सुख से बैठी हुई हों।

व्याख्या : अब सरकार की शोभा कहते हैं कि सिर पर जटा का ही मुकुट बना हुआ है और उसमें जहाँ तहाँ सुन्दर फूल गुथे हुए हैं। कवि उपमा देते हैं कि

१. यह हरिगीतिका छन्द है।

जैसे नीलमणि पर्वत पर बिजली का समूह इकट्ठा हो गया हो और बहुत से तारे उतर आये हों। यहाँ सरकार के शरीरकी उपमा नीलमणिके पर्वत से दी गयी है और जटामुकुट की उपमा तडित पटल से दी गयी और मनोहर फूलों की उपमा तारागण से दी गयी। जटा में ऐसी चमक है कि उसकी उपमा सर्वत्र तडित पटल से ही दी गयी है। यथा : मरकत सैल पर लरत दामिनि कोटि सों जुग भुजग ज्यों।

भुजदण्ड से धनुष बाण फेर रहे हैं। सरकार का स्वभाव है। धनुष बाण को सदा ठीक रखने के लिए फेरा करते हैं। यथा : कर कमलन्हि धनु सायक फेरत। जिय की जरनि हरत हँसि हेरत। और क्या कहा जाय सरकार के शरीर पर आजाने से फूलों की शोभा आकाश मण्डल के तारे सी हो गयी। अभी युद्ध समाप्त किया है। अतः शरीर रक्त रंजित है। श्याम शरीर पर उन रक्त बिन्दुओं की भी ऐसी शोभा हुई कि जैसे रायमुनी चिड़ियायें तमाल वृक्ष पर सुख से बैठी हों। हिलती डोलती नहीं। सरकार के शरीर की उपमा तमाल वृक्ष से और रक्त बिन्दुओं की उपमा रायमुनी से दी गयी।

दो. कृपा दृष्टि करि बृष्टि, प्रभु अभय किये सुर बृंद।
भालु कीस सब हरखे, जय सुखधाम मुकुंद ॥१०३॥

अर्थ : कृपादृष्टि की वृष्टि करके प्रभु ने देवगण को अभय किया। बन्दर भालु हर्षित हुए। सुखधाम मुकुन्द की जय हो।

व्याख्या : देवताओं ने सरकार की स्तुति : कृपा वारिधर रूप में की। सो कृपादृष्टि की वृष्टि की। सरकार ने उनकी ओर कृपा करके देखा। सरकार का अवलोकन शोक विमोचन है। यथा : मामवलोकय पंकजलोचन। कृपा बिलोकनि सोच बिमोचन। सो देवता लोग अभय हो गये कि जब सरकार की हम पर कृपा है तो फिर भय किसका ? इधर रावण वध के बाद सरकार की वीर रस की झांकी का दर्शन और उसपर देवताओं द्वारा पुष्पवृष्टि और जय जयकार से बन्दर भालु हर्षित हुए। उन्होंने भी सुखधाम मुकुन्द की जय जयकार किया। बन्दर भालु हैं। बड़ी स्तुति नहीं कर सकते। फिर भी सारभूत बात कह दिया कि सुखदाता और मोक्षदाता की जय हो।

७७. मन्दोदरी शोक प्रसंग

पति सिर देखत मंदोदरी। मुरुछित बिकल धरनि खसि परी॥
जुबति बृंद रोवत उठि धाईं। तेहि उठाय रावन पहिं आईं॥१॥

अर्थ : पति का सिर देखते ही मन्दोदरी विकल और मूच्छित होकर पृथिवी पर गिर गयी। स्त्रियाँ रोती हुई दौड़ीं। उसे उठाकर रावण के पास आयीं।

व्याख्या : मन्दोदरि आगे भुज सीसा। धरि सर चले जहाँ जगदीसा। यहीं से प्रसङ्ग छूटा हुआ है। फिर वहीं से उठाते हैं। भुजा से पहिचान नहीं हुआ। पर

सिर से पहिचान हुआ कि यह तो मेरे पति का सिर है। देखते ही वह विकल हो गयी। मूर्च्छा आगयी। पृथिवी पर गिर गयी। यह रावण की पट्टाभिषिक्ता महिषी थी और प्रेम भी इसका अधिक था। रावण भी इसको बहुत मानता था। अनिष्ट के भय से इसी के हृदय कंप को कवि ने एकाधिक बार कहा है।

अब बात फैल गयी। जो स्त्री समाचार सुनती हैं वहाँ से ही रोती हुई आती हैं। स्त्रियाँ दौड़ पड़ीं और किसी को मूर्च्छा नहीं हुई। उन सबों ने मन्दोदरी को उठाया। अर्थात् उसे होश में ले आयी और तब रावण के पास आयीं।

पति गति देखि ते करहिं पुकारा। छूटे कच नहि बपुष सँभारा॥
उर ताड़ना करहिं बिधि नाना। रोवत करहिं प्रताप बखाना॥२॥

अर्थ : पति की दशा देखकर वे चिल्लाने लगीं। उनके बाल खुल गये। देह का सँभाल न रहा। अनेक प्रकार से छाती पीटती हैं और रोते हुए प्रताप का वर्णन करती हैं।

व्याख्या : उन्होंने आकर देखा कि पति के शव के खाने में जम्बुकगण लगे हुए हैं। रक्त और धूलि के कर्दम से लिप्त धड़ दो टुकड़े होकर जमीन पर पड़ा हुआ है। जो बहुमूल्य शय्या पर स्त्री माला में ग्रथित की भाँति शयन करता था। आज उसकी ऐसी गति है। उन्हें अत्यन्त वेदना हुई। वे चिल्लाने लगीं। बाल उनके छूट गये। शरीर की सुधि न रही।

वे अनेक प्रकार से छाती पीटने लगीं। स्त्रियाँ रोने के साथ कुछ गाया भी करती हैं और उस रोने गाने में मृत व्यक्ति के गुणों की प्रशंसा करती हैं। रावण में जो गुण रहे उसका वे भी बखान करने लगीं। परोपकार धर्मपरायणता आदि का तो बखान हो नहीं सकता था। उसके प्रताप का बखान करने लगीं।

तव बल नाथ डोल नित धरनी। तेज हीन पावक ससि तरनी॥
सेष कमठ सहि सकहिं न भारा। सोइ तनु भूमि परेउ भरि छारा॥३॥

अर्थ : हे नाथ! तुम्हारे बल से नित्य पृथिवी हिलती थी। अग्नि चन्द्र और सूर्य तेजहीन हो जाते थे। शेष कमठ बोझ नहीं सह सकते थे। आज वही शरीर धूलि से भरा हुआ पृथिवी पर पड़ा है।

व्याख्या : रावण को मानो सम्बोधन करती हुई कहती हैं कि हे नाथ! तुम्हारा बल ऐसा था कि चरण चाँप को पृथिवी नहीं सह सकती थी। तेज ऐसा था कि अग्नि सूर्य और चन्द्र दब जाते थे। अग्नि सूर्य और चन्द्र ही इस त्रैलोक्य की ज्योति हैं। जब वे दब गये तो दूसरे की गिनती क्या? और बोझा तुम्हारा ऐसा था कि शेष और कमठ नहीं सह सकते थे। यदि सह सकते तो पृथिवी कैसे डोलती। ऐसी शारीरिक सम्पत्ति बढ़ी चढ़ी थी। वही शरीर आज धूलि में लिपटा हुआ पृथिवी पर पड़ा हुआ है। अथवा जो विमान पर चला करता था उसका शरीर पृथिवी पर गिरा है।

बरुन कुबेर सुरेस समीरा । रन सनमुख धरि काहु न धीरा ॥
भुज बल जितेउ काल जम साई । आजु परेउ अनाथ की नाई ॥४॥

अर्थ : वरुण कुबेर इन्द्र और वायु युद्ध में सम्मुख होकर कोई धैर्य धारण न कर सका। भुजा के बल से हे स्वामिन् ! तुमने काल और यम को जीता। सो आज अनाथ की भाँति पड़े हो।

व्याख्या : पश्चिम के दिक्पाल पाशपाणि वरुणदेव, उत्तर दिशा के दिक्पाल गदापाणि कुबेर, पूर्व दिशा दिक्पाल वज्रपाणि इन्द्र, वायव्यकोण के दिक्पाल अंकुशपाणि वायुदेव भी युद्ध में जिसके सामने न टिक सके। हे स्वामिन्। कोई अस्त्र शस्त्र तुम्हारे ऊपर काम न कर सका। सर्वभक्षक काल और दक्षिण दिशा के दिक्पाल दण्डपाणि यमराज को तुमने तपबल वरबल या अस्त्र शस्त्र से नहीं केवल भुजबल से जीत लिया था। तुम्हारा बल ऐसा, तुम्हारा तेज ऐसा, तुम्हारी गुरुता ऐसी, तुम्हारा पराक्रम ऐसा। सो तुम आज अनाथ की भाँति पड़े हो। जिसके ब्रह्मदेव और शिवजी नाथ थे वह व्यक्ति अनाथ की भाँति पड़ा है। यहाँ तक अन्य युवतियों का विलाप है। इसके बाद मन्दोदरी का विलाप कहते हैं :

जगत बिदित तुम्हारि प्रभुताई । सुत परिजन बल बरनि न जाई ॥
राम बिमुख अस हाल तुम्हारा । रहा न कोउ कुल रोवनिहारा ॥५॥

अर्थ : तुम्हारी प्रभुता तो संसार में प्रसिद्ध थी : बेटे और कुटुम्बियों का बल नहीं वर्णन किया जा सकता था। पर रामजी के विमुख तुम्हारी ऐसी दशा हुई कि कुल में कोई रोनेवाला न रहा।

व्याख्या : रावन नाम जगत जस जाना। लोकप जाके बंदीखाना। यह स्वयं रावण कहते थे और सत्य कहते थे। ब्रह्मसृष्टि जहँ लगि तन धारी। दसमुख बसवर्त्ती नर नारी। अतः रावण की प्रभुता के जगत् प्रसिद्ध होने में सन्देह नहीं। बेटे और परिजन के बल का वर्णन नहीं किया जा सकता था। यथा : बारिदनाद जेठ सुत तासू। भट महँ प्रथम लीक जग जासू। जेहि न होइ रन सनमुख कोई। सुरपुर नितहिं परावन होई। कुमुख अकंपन कुलिसरद धूम्रकेतु अतिकाय। एक एक जग जीत सक ऐसे सुभट निकाय। सो ऐसे प्रभुता सम्पन्न ऐसे सहाय सम्पन्न होने पर भी रामजी के विरोध करने से इस गति को तुम पहुँच गये कि तुम्हारे वंश का नाश हो गया। ऐसा भी कोई न बचा जो तुम्हारे नाम पर रोता।

तव बस बिधि प्रपंच सब नाथा । सभय दिसिप नित नावहि माथा ॥
अब तव सिर भुज जंबुक खाहीं । राम बिमुख यह अनुचित नाहीं ॥६॥
काल बिबस पति कहा न माना । अग जग नाथु मनुज करि जाना ॥७॥

अर्थ : हे नाथ ! तुम्हारे वश में ब्रह्मा का सब प्रपञ्च था। दिक्पाल लोग भी भयभीत होकर नित्य सिर झुकाते थे। अब तुम्हारे सिर और भुजाओं को गीदड़

खाते हैं। राम विरोधी के लिए यह अनुचित नहीं है। हे पति ! कालविवश होने से तुमने कहना नहीं माना। चराचर के नाथ को तुमने मनुष्य जान लिया।

व्याख्या : ब्रह्मा का सब प्रपञ्च ईश्वराधीन है। यथा : ईस अधीन जीव गति जानी। सब तुम्हारे अधीन हो गया था। क्योंकि दिक्पाल ईश्वर के बाहुरूप हैं। सो वे ही तुमसे भयभीत होकर सिर झुकाते थे। यथा : दानव देव दयावने दीन दुखी दिन दूरहिं ते सिर नावें। तब तिनके के सदृश अन्य जीवों की क्या गिनती थी। तुम्हारा ऐश्वर्य ऐसा था। अब तुम्हारे सिर और भुजाओं को जम्बुक खाते हैं। भाव यह कि अति दीन हीन के शव को लोग जम्बुक का आहार नहीं बनने देते। कफन में लपेटकर सुरक्षित रूप से उसे श्मशान पहुँचाते हैं। तुम्हारे ऐसे ऐश्वर्यशाली की यह गति नहीं होनी चाहिए थी। पर तुम रामविमुख हो गये। इसलिए इसे अनुचित नहीं कह सकते : जेहि तन दियो ताहि बिसरायेउ ऐसो निमक हरामी। हे पति ! तुम तो सदा मेरा कहना मान जाते थे। परन्तु कालविवश होने से मेरा कहना भी नहीं माना। मैंने बार बार समझाया : बिस्वरूप रघुबंस मनि करहु बचन बिस्वास। हिरण्याक्ष भ्राता सहित मधुकैटभ बलवान। जेहि मारे सोइ अवतरेउ कृपासिंधु भगवान। परन्तु तुमने नहीं माना। मोहवश तुमने चराचर नाथ को मनुष्य जान लिया। उनका अपमान किया।

छं.[1] जान्यो मनुज करि दनुज कानन दहन पावक हरि स्वयं।
जेहि नमत सिव ब्रह्मादि सुर पिय भजेहु नहि करुनामयं॥
आजन्म ते परद्रोह रत पापौघमय तव तनु अयं।
तुम्हहू दियो निजधाम राम नमामि ब्रह्म निरामयं॥

अर्थ : राक्षसों के कुल के दहन करवेवाले अग्नि स्वयं हरि को तुमने मनुष्य जान लिया। जिसे शिव ब्रह्मादि देवता नमस्कार करते हैं उस करुणामय को तुमने नहीं भजा। जन्म से ही परद्रोह में तुम रत थे। तुम्हारी यह देह पाप समूहमय है। सो तुम्हें भी अपना धाम दिया। ऐसे निर्विकार ब्रह्म राम को मैं नमस्कार करती हूँ।

व्याख्या : राक्षस वन के लिए जो दावानल हैं। जब से अवतीर्ण हुए राक्षस वध करते ही चले आते हैं। खरदूषण बध के समय कह ही दिया : यद्यपि मनुज दनुज कुल घालक। उस अशेष कारण से परे स्वयं हरि को तुमने मनुष्य जान लिया। वन का महा वृक्ष जैसे दावानल से खेल करने चले तो उसकी जो गति होती है वही तुम्हारी भी हुई। वे भस्म करनेवाले अग्नि ही नहीं हैं वे बड़े करुणामय हैं। ऐसे प्रभु हैं कि उनका शिव ब्रह्मादि देवता भजन करते हैं। सो तुमने उनका भजन नहीं किया। मैं कहती ही रह गयी : तासु भजन कीजिय तँह भर्ता। जो कर्त्ता

---

१. हरिगीतिका छन्द है।

पालक संहर्ता । सुत कहँ राज समर्पि बन जाइ भजिय रघुनाथ । फिर भी वे ऐसे करुणामय हैं कि तुम्हारे सरीखे व्यक्ति को भी जिसका शरीर ही पापमय है जिसने जन्म से ही परद्रोह ही किया उसे भी अपना धाम दिया । ऐसे निर्विकार ब्रह्म को मैं नमस्कार करती हूँ ।

दो. अहह नाथ रघुनाथ सम, कृपासिंधु नहिं आन ।
जोगि बृंद दुर्लभ गति, तोहि दीन्ह भगवान ॥१०४॥

अर्थ : अहो नाथ ! रघुनाथ के समान दूसरा कौन है । क्योंकि जो योगियों को दुर्लभ परमगति है वही भगवान् ने तुम्हें दिया ।

व्याख्या : कृपासिन्धु को रावण ने नहीं भजा । इसलिए खेद प्रकट करती है । कहती है कि ऐसा कृपासिन्धु कौन होगा ? तुम क्या ऊर्ध्वगति के पात्र थे ? तुम्हें गति देने की इच्छा या सामर्थ्य किसे हो सकती थी ? सो भगवान् ने तुम्हें मुनि दुर्लभ परमगति दिया । परमगति की प्राप्ति तो तुम्हें हुई । फिर भी यह पछतावा मुझे रह गया कि ऐसे प्रभु को तुमने भजा नहीं ।

मन्दोदरी बचन सुनि काना । सुरमुनि सिद्ध सबन्हि सुख माना ॥
अज महेस नारद सनकादी । जे मुनिबर परमारथबादी ॥१॥

अर्थ : मन्दोदरी के वचन कान से सुनकर देवता मुनि और सिद्धों ने सुख माना । ब्रह्मा शिव नारद और सनक आदि जो श्रेष्ठ मुनि ब्रह्मवादी थे ।

व्याख्या : मन्दोदरी का विलाप भी नहीं पुकार भी नहीं बल्कि प्रामाणिक वचन थे । ऐसा वचन कभी ऐसी स्त्री के मुख से नहीं सुने गये जिसका पति मारा गया हो । दूसरे से सुनते तो विश्वास न होता । इसलिए कहते हैं कि अपने कानों से सुनकर सुर मुनि सिद्ध जो विमान पर बैठे रण देख रहे थे सबके हृदय में सुख उपजा ।

अज साक्षात् ब्रह्मदेव, नारद अज्ञान के खण्डव करनेवाले, महेश्वर साक्षात् दक्षिणामूर्ति और सनकादि सिद्ध निवृत्त मार्ग के प्रवर्तक और भी जो मुनि परमार्थ कथन करनेवाले थे । एक ब्रह्म ही परमार्थ है और सब स्वप्न के तुल्य मिथ्या हैं । इस सिद्धान्तवाले :

भरि लोचन रघुपतिहि निहारी । प्रेम मगन सब भएउ सुखारी ॥
रुदनु करत बिलोकि सब नारी । गयउ बिभीषनु मन दुख भारी ॥२॥

अर्थ : सब लोग छविसमुद्र रामजी को देखकर प्रेम में मग्न होकर सुखी हुए । सब स्त्रियों को रोती देखकर विभीषण के मन में बड़ा दुःख हुआ और वहाँ गये ।

व्याख्या : अरूप अस्पर्श अगन्ध का ध्यान करनेवाले छविसमुद्र हरि के रूप को देखकर प्रेम में मग्न होकर सुखी हुए । सुनि गुनगान समाधि बिसारी । सादर

सुनहि परम अधिकारी। जिसके गुणगान को परम अधिकारी लोग समाधि छोड़कर सुना करते हैं। आज उसी प्रभु के वीर रस की झांकी देखकर वे परम अधिकारी प्रेम में मग्न हो गये और आनन्द में आगये।

विभीषण रावण वध होने पर शव के पास नहीं गये। कुछ भी नाता न रक्खा। सो स्त्रियों के रुदन में इतना सामर्थ्य है कि पत्थर हिला देती है। रहा न कुल कोउ रोवनिहारा : शब्द ने उनका कलेजा हिला दिया। विभीषण ने देखा कि सचमुच निर्वंश हो गया। निशिचर कुल का शिरोमणि आज जगत् में नहीं है। अतः मन में भारी दुःख हुआ और उन स्त्रियों के पास चले गये।

बंधुदसा बिलोकि दुख कीन्हा। तब प्रभु अनुजहि आयेसु दीन्हा॥
लछिमनु जाइ ताहि समुझायो। बहुरि बिभीषन प्रभु पहिं आयो॥२॥

अर्थ : भाई की दशा देखकर दुःखी हुए। रामजी ने भाई को आज्ञा दी। लक्ष्मण ने जाकर उसे समझाया। फिर विभीषण प्रभु के पास आये।

व्याख्या : विभीषण भी वहाँ जाकर रोने लगे कि आवें राम मुझे भी मार डालें। मैं बिना भाई के न जीऊँगा। सरकार लक्ष्मणजी को आज्ञा दी कि जाओ और विभीषण को समझा बुझाकर ले आओ। लक्ष्मण गये और उसे समझाया :

क. : उन्नत उमंग जाको रण में सदा ही रह्यौ,
परम निशङ्क लङ्कपति सो प्रचण्ड वीर।
भिरत प्रचारि युधि मानत न हारि आज,
सोई सरदार सोयो चूमि रणभूमि धीर॥
वीरगति पायो औ बनायो परलोक ताको,
शोक नहिं कीजै उर आनि ममता की पीर।
सहित उछाह बाह बाह तिहुलोक धन्य,
त्यागत शरीर जे सुधीर रणरङ्ग तीर॥

सकत समर समुहाइ नहिं इंद्र सहित त्रैलोक।
जाके ताके हेतु कोउ भूलि करै जनि शोक॥
युद्ध सिद्धि चंचल सदा यही नियम दरसाय।
या मारै निज शत्रु या शत्रु हाथ मरि जाय॥
क्षात्र धर्म जे संचरत परत समरमहि माहि।
तिनकहँ भूलि न सोचिये सीधे स्वर्गहि जाहिं॥
तजिय सोच धीरज भजिय अस सिद्धान्त दृढ़ाइ।
उचित कृत्य एहि समय जो सोइ करिअ मन लाइ॥

लक्ष्मणजी के समझाने पर विभीषण का मोह गया और उनके साथ प्रभु के पास आये।

कृपादृष्टि प्रभु ताहि बिलोका । करहु क्रिया परिहरि सब सोका ॥[१]
कीन्हि क्रिया प्रभु आएसु मानी । बिधिवत देसकाल जिय जानी ॥४॥

अर्थ : सरकार ने कृपादृष्टि से उसे देखा । कहा कि सब शोक छोड़कर क्रिया करो । सरकार की आज्ञा मानकर देश और काल का मन में विचार करके विधिवत् क्रिया किया ।

व्याख्या : जब विभीषण का मोह दूर हुआ तब रावण ऐसे प्रायश्चित्ती की क्रिया करने को तैयार नहीं हुए । परन्तु सरकार की आज्ञा हटायी नहीं जा सकती । इसलिए क्रिया की । देशकाल का ध्यान रखकर विधिवत् क्रिया सम्पादन किया । वीरगति प्राप्त हुए व्यक्ति का सद्यःशौच होता है । इत्यादि बातों का विचार करके काम किया ।

दो. मंदोदरी आदि सब देइ तिलांजलि ताहि ।
भवन गई रघुपति गुनगन बरनत मन माहि ॥१०५॥

अर्थ : मन्दोदरी आदि रानियाँ उसे तिलाञ्जलि देकर रामजी के गुणगणों का मन में वर्णन करती हुई घर गयीं ।

व्याख्या : रावण को बहुत सी रानियाँ थीं । पर मन्दोदरी उनमें प्रधान थी । राक्षसों में सती होने की व्यवस्था नहीं है । अतः सती कोई न हुई । सब तिलाञ्जलि देकर घर गयीं । प्रभु के गुणगणों का ऐसा छापा उन सबों के हृदय पर पड़ा हुआ है कि मन ही मन उनका वर्णन करती गयीं । यथा : बैरिउ राम बड़ाई करहीं । बोलनि मिलनि बिनय मन हरहीं ।

७८. बिभीषण राज्य प्रसंग

आइ बिभीषनु पुनि सिर नायो । कृपासिंधु तब अनुज बोलायो ॥
तुम्ह कपीस अंगद नल नीला । जामवंत मारुति नयसीला ॥१॥

अर्थ : फिर विभीषण ने आकर सिर नवाया कृपासिन्धु ने तब छोटे भाई को बुलाया और कहा कि तुम और सुग्रीव तथा अङ्गद और नल नील जाम्बवान् तथा नीति निपुण हनुमान् ।

व्याख्या : सरकार की आज्ञा रावण को और्ध्वदैहिक क्रिया करने के लिए हुई थी । उसे करके विभीषणजी ने आकर प्रणाम किया । भाव यह कि मैं आज्ञा पालन कर चुका । कृपा सिन्धु हैं । कृपा करते नहीं अघाते । विभीषण को तो पहिले ही तिलक कर चुके हैं । यथा : अस कहि राम तिलक तेहि सारा : परन्तु तिलक की

---

१. मरणान्तानि वैराणि निवृत्तं नः प्रयोजनम् ।
क्रियतामस्य संस्कारो ममाप्येष यथा तव ॥

रसम लंका में नहीं हुई। अतः लंका में तिलक देने के लिए लक्ष्मणजी को बुलाया। अपना प्रतिनिधि बनाकर लक्ष्मणजी को भेजते हैं।

लक्ष्मणजी को आज्ञा हो रही है और साथ ही साथ राजा सुग्रीव युवराज अङ्गद सेनापति नील नल ऋक्षेश जाम्बवान् तथा नीतिनिपुण हनुमान्जी को भी आज्ञा हो रही है। इन्हीं सात में अपनी ओर के सब बड़े बड़े सरदार आगये। अथवा नयशील शब्द का अन्वय सबके साथ है।

सब मिलि जाहु बिभीषन साथा। सारेहु तिलक कहेउ रघुनाथा॥
पिता बचन मैं नगर न आवौं। आपु सरिस कपि अनुज पठावौं॥२॥

अर्थ : सब लोग मिलकर विभीषण के साथ जाओ और इनको तिलक दो। पिता के वचन से मैं नगर में नहीं जाता। अतः अपने समान बानर तथा छोटे भाई को भेजता हूँ।

व्याख्या : उपर्युक्त छः व्यक्तियों तथा अनुज को सरकार अपने समान मानते हैं। अतः इनको आज्ञा देते हैं कि तुम लोग नीति में निपुण हो। ऐसी नीति बर्तना जिसमें लंका निवासी इन्हें राजा मानें। रावण वध हो जाने से लंका तुम लोगों का विक्रमार्जित राज्य है। जब से तुम लोग जाकर गद्दी न दोगे तब तक प्रजा का सन्देह न जायगा। चलता तो मैं स्वयं इन्हें गद्दी देने परन्तु पिताजी का वचन ऐसा है जिसके कारण मैं नगर में नहीं जा सकता। अतः तिलक देने के लिए अपने प्रतिनिधि रूप से अपने सखा तुम लोगों को भेज रहा हूँ। तुम लोग विभीषणजी को आगे करके लंका जाओ।

तुरत चले कपि सुनि प्रभु बचना। कीन्ही जाइ तिलक के रचना॥
सादर सिंघासन बैठारी। तिलकु सारि अस्तुति अनुसारी॥३॥

अर्थ : बानर सरकार का वचन सुनकर तुरन्त चल पड़े और जाकर तिलक का आयोजन किया। आदर के सहित सिंहासन पर विभीषणजी को बिठाया। तिलक दिया और स्तुति करने लगे।

व्याख्या : यद्यपि आज्ञा लक्ष्मणजी को हुई पर सब सरदार वहाँ पर थे। उन्होंने बात सुन ली। लक्ष्मणजी को सरकार की आज्ञा सुनानी न पड़ी। वे लोग चल पड़े। नीतिनिपुण हनुमदादि सरदारों ने अभिषेकोत्सव किया। नगरवासियो को बुलवाया। बड़े सम्मान के साथ विभीषणजी को रावण के सिंहासन पर बिठलाया और सब लोगों ने उनकी स्तुति की। विभीषणजी का भाग्य है कि लक्ष्मण सुग्रीव हनुमदादि उनकी स्तुति करते हैं। अतः विभीषण की सभा रावण की सभा से भी बढ़कर हुई।

जोरि पानि सबही सिर नाए। सहित बिभीषन प्रभु पहि आए॥
तब रघुबीर बोलि कपि लीन्हे। कहि प्रिय बचन सुखी सब कीन्हे॥४॥

अर्थ : हाथ जोड़कर सबने सिर झुकाये और विभीषण के साथ सरकार के पास आये। तब रामजी ने बन्दरों को बुलाया और प्रिय वचन कहकर सबको सुखी किया।

व्याख्या : सबने हाथ जोड़कर सिर नवाया। भाव यह कि हम लोग तुम्हारी आज्ञा में हैं। हम लोग लंका के स्वामी नहीं स्वामी आप हैं। वह सिंहासन विश्व-प्रणम्य है। आज उस पर साधु विभीषण विराजमान हैं। विभीषणजी ने भी रसम मात्र अदा किया। वहाँ ठहरे नहीं। सबको साथ लिये सरकार के पास आये। रावण वध के बाद पहिला कार्य सरकार ने यह किया कि विभीषण को राज्य दिया।

अब दूसरा कार्य यह कर रहे हैं कि धन्यवाद देने के लिए बानरों को बुलाया और ऐसा प्रिय वचन कहा जिसे सुनकर वे कृतकृत्य हो गये। तुलसी कहत पुकार के सुनौ सकल दे कान। हेमदान गजदान ते बड़ो दान सनमान।

[1]छं. किये सुखी कहि बानी सुधासम बल तुम्हारे रिपु हयो।
पायो बिभीषनु राज तिहुँपुर जस तुम्हारो नित नयो॥
मोहि सहित सुभ कीरति तुम्हारी परमप्रीति जे गाइहैं।
संसार सिंधु अपारपार प्रयास बिनु नर पाइहैं॥

अर्थ : अमृत के समान बातें कहकर सबको सुखी कर दिया। कहा कि तुम्हारे बल से मैंने शत्रु को मारा और विभीषण ने राज्य पाया। तीनों लोक में तुम्हारा यश नित्य नया रहेगा। मेरे साथ जो तुम्हारी शुभ कीर्ति परम प्रेम से गान करेगा वह इस अपार संसारसमुद्र का पार बिना प्रयास ही पा जायगा।

व्याख्या : अमृतं राजसम्मानम्। राजा का सम्मान अमृत है। सो सरकार इतना बड़ा सम्मान करते हैं। कह रहे हैं कि तुम्हारे बल से मैंने शत्रु को मारा। तुम यदि मेरा साथ न देते तो मेरे किये क्या हो सकता था। सो तुम्हारी सहायता से मैं समर सागर पार ही नहीं गया अपनी प्रतिज्ञा पूरी करने में भी समर्थ हुआ। विभीषण ने राज्य पाया। यह यश तुम्हारा इस संसार में नित्य नया रहेगा। अथवा अपूर्व होगा जो न पहिले हुआ था न पीछे सम्भव है।

अब कीर्तिगान की फलश्रुति कहते हैं कि समुद्र पार होना कठिन व्यापार है। बड़े प्रयास से साध्य है और संसारसागर के पार होना तो महा दुस्तर है। महाप्रयास से भी अशक्य है। सो तुम्हारी कीर्ति गान करने से : साथ साथ मेरी भी कीर्ति रहेगी : बिना प्रयास लोग पार पा जावेंगे। सरकार के श्रीमुख से ऐसा कथन करने से यशोगान की महिमा अचल हो गयी।

दो. प्रभु के बचन स्रवन सुनि, नहि अघाहिं कपि पुंज।
बार बार सिर नावहिं, गहहिं सकल पदकंज॥१०६॥

---

१. हरिगीतिका छन्द है।

अर्थ : सरकार के वचन कान से सुनकर बन्दर समूह अघाते नहीं। बार बार सिर झुकाते हैं और चरणकमल पकड़ते हैं।

व्याख्या : श्रवणामृत वचन है। इससे बन्दर सुनकर अघाते नहीं हैं। मालिक ऐसे वचन सेवक से नहीं कहते। कृतकृत्य होकर बन्दर बार बार प्रणाम करते हैं। सोचते हैं कि प्रातःकाल मेरा कोई नाम नहीं लेता। सो हमारे कीर्तिगान से संसार भवसागर से पार होगा। अब हमारे पार होने में तो सन्देह ही नहीं है।

७९. सीता रघुपति मिलन प्रसङ्ग

पुनि प्रभु बोलि लिएउ हनुमाना। लंका जाहु कहेउ भगवाना ॥
समाचार जानकिहि सुनावहु। तासु कुसल लै तुम चलि आवहु ॥१॥

अर्थ : फिर रामजी ने हनुमान्‌जी को बुला लिया और कहा कि लंका जाओ। समाचार जानकी को सुनाओ और उनकी कुशल जानकर तुम चले आओ।

व्याख्या : वानरों को भी कृतकृत्य करने के बाद प्रभु ने हनुमान्‌जी को बुलाया सीताजी का समाचार लेने के लिए। हनुमान्‌जी भी वचनबद्ध हो चुके हैं : कछुक दिवस जननी धरु धीरा। कपिन्ह सहित अइहहिं रघुबीरा। निसिचर मारि तोहि लै जैहहिं। अतः हनुमान्‌जी को आज्ञा हो रही है और ये ही जानते भी हैं कि सीताजी कहाँ हैं। आज्ञा हुई कि लंका जाओ और विजय का समाचार जानकीजी को सुनाओ। विजय का समाचार मेरी ओर से जाना चाहिए। जब से हमारी ओर से समाचार न जायगा जानकी विश्वास न करेंगी। इतने बड़े आनन्द समाचार सुनाने का श्रेय तुमको ही मिलना चाहिए। साथ न लेते आना। केवल कुशल समाचार लेकर आओ। पहिले भी हनुमान्‌जी को भेजने के समय ऐसी ही आज्ञा हुई थी। यथा : कहि बल बिरह बेगि तुम्ह आयेहु। रावण ने कहा था : मास दिवस महँ कहा न माना। तौ मैं मारब काढि कृपाना। सो युद्ध में अधिक समय लग गया। अतः कुशल जानने की आवश्यकता है। सरकार ने सीताजी की कुशल जानने के पहिले विभीषण को राज्य और बन्दरों को धन्यवाद देने की आवश्यकता समझी।

तब हनुमंत नगर महुँ आए। सुनि निसिचरी निसाचर धाए ॥
बहु प्रकार तिन्ह पूजा कीन्ही। जनकसुता दिखाइ पुनि दीन्ही ॥२॥

अर्थ : तब हनुमान्‌जी नगर में आये। सुनकर राक्षसी राक्षस दौड़े। बहुत प्रकार से उन लोगों ने पूजा की और तब जानकीजी को ले जाकर दिखला दिया।

व्याख्या : आज हनुमान्‌जी प्रच्छन्न वेष से नहीं गये। हनुमान्‌जी का लंका में जाना घटना विशेष है। इनका नाम लंकाभयंकर है। इसके भ्रम से अंगद के जाने पर कोलाहल मच गया। भयउ कोलाहल नगर मझारी। आवा कपि लंका जेहि जारी। सो कोलाहल तो अब भी हुआ। पर परिस्थिति बदल गयी। कहाँ तो : मारहिं चरन करहिं बहु हाँसी। और कहाँ पूजन के लिए दौड़े। राक्षसियाँ अलग दौड़ीं

आ रही हैं। राक्षस अलग दौड़े आ रहे हैं। पूजन के लिए होड़ लगी हुई है। पूजक श्रद्धा सामग्री तथा विधि भेद से अनेक प्रकार से पूजा हुई। हनुमान्‌जी को पूछना न पड़ा। वे सब समझ गये कि सीताजी के लिए आये हैं। सो सीधे मार्ग से ले जाकर दर्शन करा दिया।

दूरहिं ते प्रनामु कपि कीन्हा। रघुपति दूत जानकी चीन्हा॥
कहहु तात प्रभु कृपानिकेता। कुसल अनुज कपि सेन समेता॥३॥

अर्थ : हनुमान्‌जी ने दूर से ही प्रणाम किया। जानकीजी ने पहिचान लिया कि रामजी का दूत है। बोली हे तात! बतलाओ कृपानिकेत प्रभु भाई और वानरी सेना के साथ सकुशल तो हैं?

व्याख्या : पहिले दर्शन में प्रणाम तक करने का अवसर नहीं था। देखि मनहि मन कीन्ह प्रनामा। आज सब बाधायें दूर हो गयी हैं। दूर से ही हनुमान्‌जी प्रणाम करते हैं। भगवती ने दूतरूप से परिचय पाया था। अतः प्रणाम करते ही पहिचान गयीं कि यह सरकारी दूत है। अतः पूछती हैं। पहिले कपिसेना का पता नहीं था। अतः दो की कुशल पूछा था। यथा : अब कहु कुसल जाउँ बलिहारी। अनुज सहित सुखभवन खरारी। आज तीन का कुशल पूछती हैं : कृपानिकेतकी अनुज की तथा कपिसेना की।

सब बिधि कुसल कोसलाधीसा। मातु समर जीत्यो दससीसा॥
अबिचल राजु बिभीषनु पायो। सुनि कपि बचन हरष उर छायो॥४॥

अर्थ : कोशलाधीश सब विधि से कुशल हैं। माता! सरकार ने युद्ध में रावण को जीता। विभीषण ने अटल राज्य पाया। हनुमान्‌जी का वचन सुनकर हृदय में आनन्द छा गया।

व्याख्या : पहिले कुशल पूछने पर कहा था : मातु कुसल प्रभु अनुज समेता। तव दुख दुखी सुकृपानिकेता। एक दुःख था। इसलिए सब विधि कुशल नहीं कहा। आज किसी प्रकार की चिन्ता या दुःख नहीं है। इसलिए सब विधि कुशल कह रहे हैं। सेना तथा अनुज की कुशल भी सब विधि के अन्तर्गत है। भगवती को रावण के सिर भुज के बढ़ने के समाचार से बड़ी चिन्ता थी : केहि बिधि मरिहि बिस्व दुखदाता। अतः कहते हैं : मातु समर जीतेउ दससीसा। और यही समाचार सुनाना भी था। साथ ही साथ हनुमान्‌जी ने यह भी कहा कि विभीषण को अटल राज्य मिला। भाव यह कि रावण का राज्य अटल नहीं था। उसने छीन छोर कर लिया था। विभीषण को तो सरकार राज्य दे रहे हैं। किसकी सामर्थ्य है कि उसे चलायमान कर सके। विभीषण के हृदय में सरकार के चरण हैं। ये बातें भगवती ने औरों के मुख से भी सुना था। पर पूरा विश्वास नहीं था। न जाने किस अभिप्राय से कह रहे हैं। पर हनुमान्‌जी पर पूरा विश्वास है। अतः हृदय में हर्ष भर गया।

छं.[1] अति हरष मन तन पुलक लोचन सजल कह पुनि पुनि रमा ।
का देउँ तोहि त्रैलोक महुँ कपि किमपि नहि बानी समा ॥
सुनु मातु मैं पायों अखिल जगराज आजु न संसयं ।
रनजीति रिपुदल बंधु जुत पस्यामि राममनामयं ॥

अर्थ : मन में अत्यन्त हर्ष है। शरीर में रोमाञ्च हैं। आँखों में आनन्दाश्रु भरे हुए रमा बार बार कह रही हैं कि त्रैलोक्य में मैं तुझे क्या दूँ। हनुमान् तुम्हारी बाणी के समान तो कुछ भी नहीं है। माता सुनो मैं सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का राज्य आज पा गया। इसमें सन्देह नहीं है। क्योंकि युद्ध में शत्रु को जीतकर तथा उसकी सेना को जीतकर भाई सहित रामजी को मैं सकुशल देख रहा हूँ।

व्याख्या : कवि ने यहाँ जानकीजी का हर्ष तन मन वचन तीनों से दिखलाया। सात्त्विक भाव होने से तन में पुलक है। लोचन सजल है। यहाँ पर भगवती जनकनन्दिनी को रमा कहकर उनका ऐश्वर्याधिष्ठात्री देवी होना द्योतित किया। उन्हें त्रैलोक्य के ऐश्वर्य पर अधिकार है। अतः वे कहती हैं कि क्या दूँ। शुभ समाचार देनेवाले को पुरस्कार देने की विधि है। समाचार के सुखद होने के तारतम्यानुकूल पुरस्कार में भी तारतम्य होता है। अतः कहती हैं कि इस समाचार समान तो त्रैलोक्य में कुछ भी नहीं है। अतः जो तुम्हें रुचे सो बोलो।

हनुमान् ने कहा कि माँ ! आज तो मुझे तीनों लोकों का राज्य मिल गया। त्रैलोक्य की सब वस्तुयें उसी के अन्तर्गत हैं। मेरे तो सर्वस्व सरकार हैं। उन्होंने रिपुदल जीता इससे मैंने इस लोक का राज्य पा लिया। बन्धुयुत हैं इसलिए पाताल का राज्य पाया और सरकार को अनामय देख रहा हूँ इसलिए स्वर्ग का राज्य पा लिया।

दो. सुन सुत सदगुन सकल तब हृदय बसहुँ हनुमंत ।
सानुकूल कोसलपति रहहुँ समेत अनंत ॥१०७॥

अर्थ : हे पुत्र हनुमान् ! सुनो सब सद्गुण तुम्हारे हृदय में बसें और अनन्त सहित रामजी तुम पर प्रसन्न रहें।

व्याख्या : हनुमान् की बात सुनकर जगदम्बा ने विचार किया कि अखिल जगत् से बढ़कर तो अखिल सद्गुण है। अतः हनुमान् को अखिल सद्गुण देना चाहिए। बोलीं कि सब सद्गुण तुम्हारे हृदय में निवास करें और भक्तों के सुख देनेवाले लक्ष्मणजी तथा त्रिविध भवशूल के निवारण करनेवाले रामजी की अनुकूलता सदा तुम पर बनी रहे। यथा : तुम्ह कृपाल जापर अनुकूला। ताहि न ब्याप त्रिबिध भवसूला।

---

१. हरिगीतिका छन्द है।

अब सोइ जतनु करहु तुम्ह ताता । देखौं नयन स्याम मृदुगाता ॥
तब हनुमान रामपहिं जाई । जनकसुता कै कुसल सुनाई ॥१॥

अर्थ : हे तात ! अब तुम वही उपाय करो जिसमें श्याम और कोमल शरीर रामजी को आँख से देखूँ । तब हनुमान्‌जी ने रामजी के पास जाकर जानकीजी की कुशल सुनायी ।

व्याख्या : भाव यह कि यह यत्न भी तुम्हारे ही किये होगा । कार्यं सिद्धिर्हनूमति । कार्यं सिद्धि तो हनुमान्‌जी में ही प्रतिष्ठित है । तुम्हारे यत्न से ही सब हुआ है । कबहुँ नयन मम सीतल ताता । होइहहिं निरखि स्याम मृदु गाता । मैंने तुमसे कहा था । सो वह समय तुमने ला दिया । कण्टक दूर हो गया । अब आँख से भी दिखला दो ।

सुनकर हनुमान्‌जी चल पड़े । प्रणाम भी नहीं किया । इससे यह द्योतन किया कि अभी लौटता हूँ । आज्ञा हुई थी : तासु कुसल लै तुम चलि आवहु । सो जाकर रामजी से कुशल सुनाया । सन्देश भी सुनाया कि अविलम्ब दर्शन चाहती हैं ।

सुनि संदेसु भानुकुल भूषन । बोलि लिए युवराज बिभीषन ॥
मारुतसुत के संग सिधावहु । सादर जनकसुतहि लै आवहु ॥२॥

अर्थ : सन्देश सुनकर सूर्यकुल भूषण ने युवराज अङ्गदजी और विभीषण को बुला लिया और कहा कि हनुमान्‌जी के साथ चले जाओ और आदर के साथ श्रीजनकनन्दिनी को ले आवो ।

व्याख्या : कार्य करने में प्रधानता माँ ने हनुमान्‌जी को ही दिया था । अतः इधर रामजी भी इन्हीं को प्रधानता देते हैं । अङ्गद और विभीषण को बुलाकर हनुमान्‌जी के साथ जाने को कहते हैं । कपिसेना को ओर से प्रतिनिधि युवराज अङ्गदजी हैं और राक्षस समाज के राजा विभीषणजी हैं । इनके लेने जाने से आदर सूचित होगा । सरकार भानुकुल भूषण हैं । कुल की मर्यादा के अनुसार कार्य किया चाहते हैं । अतः आज्ञा देते हैं कि आदर के साथ लाओ अर्थात् कृसतन सीस जटा एक बेनी : इस वेष में न लाना । असंस्कृत रूप में पति के पास जाना निषिद्ध है । राजा जनक की बेटी हैं । अतः उसी ठाट बाट से ले आवो ।

तुरतहिं सकल गए जहँ सीता । सेवहिं सब निसिचरी बिनीता ॥
बेगि बिभीषण तिन्हहि सिखायो । तिन्ह बहुबिधि मज्जन करवायो ॥३॥

अर्थ : सब तुरन्त ही सीता जहाँ थी वहाँ गये । देखा कि सब राक्षसी विनय से सेवा कर रही हैं । विभीषण ने जल्दी से उन्हें सिखाया और उन्होंने आदर के साथ सीताजी को नहलाया ।

व्याख्या : आज्ञा की देर थी । सबको भगवतीजी के दर्शन की उत्सुकता है । तुरन्त ये लोग सीताजी के यहाँ गये । वहाँ जाकर देखा कि राक्षसी सब बड़े विनय

से सीताजी की सेवा कर रही हैं। त्रिजटा ने पहिले ही कहा था : सीतहिं सेइ करी हित अपना। तब से सब सेवा में लगी हैं।

भगवती को मज्जन कराना है। अतः निशिचरियों को समझाकर आज्ञा दी। वे सब भी राजमहल की परिचारिकायें हैं। मज्जन शृङ्गारादि कराना जानती हैं।

बहु प्रकार भूषन पहिराए। सिविका रुचिर साजि पुनि लाए ॥
तापर हरषि चढ़ी बैदेही। सुमिरि राम सुखधाम सनेही ॥४॥

अर्थ : बहुत प्रकार से गहने पहनाये और फिर सुन्दर पालकी साजकर लाये। उस पर वैदेही सुखधाम और स्नेही रामजी को स्मरण करके हर्षित होकर चढ़ीं।

व्याख्या : भूषण पहनाने का भी अनेक प्रकार है। उसे सब नहीं जानते। राजमहल की सेविकायें ही जानती हैं। मज्जन के बाद भूषण का विधान है। सो अनेक प्रकार से भूषण पहिराये। तब सरकार के पास ले जाने के लिए सुन्दर पालकी मँगायी।

उस पर सीताजी हर्षित होकर चढ़ीं। सरकार के पास जा रही हैं। जब रावण ने मारने के लिए तलवार निकाली थी उस समय परम स्नेही रामजी का स्मरण किया था। यथा : सुमिरि अवधपति परम सनेही। आज वह दिन आया है कि मिलने जा रही है। अतः पुनः सुखधाम स्नेही को स्मरण किया।

बेतपानि रक्षक चहुँ पासा। चले सकल मन परम हुलासा ॥
देखन भालु कीस सब आये। रक्षक कोपि निवारन धाये ॥५॥

अर्थ : चारो ओर छड़ी लिये परम उल्लास के साथ रक्षक चले। रीछ बानर दर्शन के लिए आये। तब रक्षक क्रोध से रोकने दौड़े।

व्याख्या : चारो ओर वेत्रपाणि : चोबदार रक्षक चले। उनके मन में भी परम हुलास है कि जन्म भर तो राक्षसियों की सेवा में बीता। भला इतनी सेवा भगवती के भी करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। इनका कार्य है कि कोई उचित दूरी से अधिक सवारी के निकट न आने पावे। इधर जगज्जननी के दर्शन की भालु बन्दरों को बड़ी अभिलाषा है। सो सवारी आते देखकर भगवती के दर्शन के लिए पालकी के निकट चले गये। रक्षक लोग उनके सन्निकट आने से क्रुद्ध हुए। उन्हें रोकने के लिए दौड़े। जिन भालु बन्दरों ने राक्षसों का संहार किया वे आज वेत्रपाणि रक्षकों के क्रोध करने पर हट रहे हैं।

कह रघुबीर कहा मम मानहु। सीतहिं सखा पयादे आनहु ॥
देखहु कपि जननी की नाईं। बिहँसि कहा रघुबीर गोसाईं ॥६॥

अर्थ : रामजी ने कहा कि मेरा कहना मानो। सखा ! सीता को पैदल ही

ले आवो। बन्दर लोग माता की भाँति दर्शन करें। ऐसा रघुवीर गोसाईं ने हँसकर कहा।

व्याख्या : बात पर जोर देने के लिए सरकार कहते हैं कि मेरा कहना मानो। सीता को पैदल लाओ। सीता को पैदल लाना अति अनुचित समझकर सरकार के प्रथम कथन की उपेक्षा की थी। क्योंकि सखा हैं। कुछ अपने मन की कर ही सकते हैं और ऐसा करने के लिए कारण सुनना चाहते हैं। केवल आज्ञा नहीं चल सकती।

सरकार हँसे कि मेरी आज्ञा पर प्राण निछावर करनेवाले लोग सीता के पैदल लाने की आज्ञा मानने के अनिच्छुक हैं। अतः कहते हैं कि मेरा कहना मानो। बन्दरों को माँ की भाँति देखने का अवसर दो। इनके निकट जाने में रोक क्यों ?

सुनि प्रभु बचन भालु कपि हरषे। नभते सुरन्ह सुमन बहु बरषे ॥
सीता प्रथम अनल महु राखी। प्रगट कीन्हि चह अंतर साखी ॥७॥

अर्थ : प्रभु का वचन सुनकर भालु बन्दर हर्षित हुए। आकाश से देवताओं ने फूल बरसाये। सीताजी को पहिले अग्नि में रक्खा था सो अन्तःसाक्षी भगवान् उन्हें प्रकट करना चाहते हैं।

व्याख्या : बन्दर भालुओं के मन की बात सरकार ने कही। इसलिए वे हरषे और देवताओं ने स्वामी के सेवक मनोरञ्जन स्वभाव पर प्रसन्न होकर पुष्पवृष्टि की। सीता हरण के पहिले ही सरकार ने सीताजी को अग्नि में रख दिया था। यथा : तुम्ह पावक महुँ करहु निवासा। जौं लगि करौं निसाचर नासा। उस आज्ञा को मानकर सीताजी अपना प्रतिबिम्ब वहाँ रखकर अग्नि में समा गयीं। अतः रावण ने प्रतिबिम्ब रूपा सीता का हरण किया। वही प्रतिबिम्ब रूपा सीताजी आगयीं। सरकार सबके अन्तःसाक्षी हैं। उनसे कुछ छिपी नहीं है। उन्हें बिम्बरूपी सीता को अग्नि से बाहर निकालना है और प्रतिबिम्ब को बिम्ब में लय करना है तथा लौकिक कलङ्क का प्रक्षालन करना है। इसलिए जो शत्रु ऐसे समय कह सकते थे वे बातें स्वयं कहने लगे।

दो. तेहि कारन करुनानिधि कहे कछुक दुरबाद।
सुनत जातुधानी सब लागीं करै बिषाद ॥१०८॥

अर्थ : उस कारण से करुणायतन ने कुछ दुर्वाद[1] कहे। जिसे सुनकर सब राक्षसियाँ विषाद करने लगीं।

व्याख्या : प्रकट करने के लिए दुर्वाद कह रहे हैं। करुणायतन हैं। कोई दुर्वाद न कह सके। इसलिए अग्नि परीक्षा ले रहे हैं। राक्षसियाँ विषाद करने लगीं

१. किसी प्रतिष्ठित व्यक्ति से तुम अपनी सफाई दो : कहना ही दुर्वाद है।

कि ऐसी साध्वी को कह क्या रहे हैं। भगवती के गुण ऐसे हैं कि उनपर राक्षसियाँ मुग्ध हैं।

प्रभुके बचन सीस धरि सीता। बोली मन क्रम बचन पुनीता ॥
लछिमन होहु धरम के नेगी। पावक प्रगट करहु तुम्ह बेगी ॥१॥

अर्थ : प्रभु के वचन को सीताजी ने सिर पर धारण किया। मनसा वाचा कर्मणा पुनीत जनकनन्दनी बोलीं : लक्ष्मण ! तुम धर्म के नेगी बनो और शीघ्र अग्नि प्रकट करो।

व्याख्या : प्रभु के वचन सुनकर राक्षसियाँ जो साथ पहुँचाने आयी थीं विषाद करने लगीं। पर सीताजी ने उनके वचन को सिर पर धारण किया। उन वचनों से ज्ञात हुआ कि यदि तुम शुद्ध हो तो सबके सामने परीक्षा दो। तभी मैं तुम्हें ग्रहण कर सकता हूँ। अशुद्ध होने का आक्षेप ही दुर्वाद है। पराये घर में इतने दिनों तक रही हुई स्त्री को मैं नहीं ग्रहण कर सकता। सीताजी ने प्रभु के ऐसे आक्षेप को उचित समझा। प्रभु हैं : इन्हें मेरी परीक्षा लेने का अधिकार है। मैं मनसा वाचा कर्मणा पवित्र हूँ। मुझे परीक्षा लेने से भय क्या ? और बिना परीक्षा दिये लौकिक कलङ्क कैसे मिटेगा ? अतः लक्ष्मणजी से बोलीं। यह सीताजी का विवेक है।

लक्ष्मणजी से कहने का भाव यह कि तुम देवर हो। तुम्हें अग्नि देने का अधिकार है। तुम अरणि मन्थन करके अग्नि शीघ्र प्रकट करो। अग्नि प्रकट करने का नेग होता है सो नेग तुम्हें क्या दूँ। तुम्हें धर्म होगा यही नेग है। यह सीताजी की धर्मनिष्ठा है। जल्दी प्रकट करो। इस आज्ञा में विरह भरा हुआ है। जबतक अग्नि परीक्षा नहीं हो जाती तबतक संयोग होने पर भी वियोग ही है। सरकार से कुछ न कहकर लक्ष्मणजी से कहना सीताजी की विनम्रता है।

सुनि लछिमन सीता कै बानी। बिरह बिबेक धर्म निति सानी ॥
लोचन सजल जोरि कर दोऊ। प्रभु सन कछु कहि सकत न ओऊ ॥२॥

अर्थ : लक्ष्मणजी ने सीता की विरह विवेक धर्म और नम्रता युक्त वाणी सुनी। उनके नेत्रों में जल भर आया। हाथ जोड़ा। पर प्रभु से वे भी कुछ कह न सके।

व्याख्या : सीताजी की विरह विवेक धर्म नीति सानी वाणी सुनकर लक्ष्मणजी समझ गये कि ये अग्नि परीक्षा दिया चाहती हैं। उनकी आँखों में आँसू भर आया कि क्या सीताजी को अग्नि परीक्षा देनी होगी ? हनुमान्‌जी से तथा राक्षसियों से सीताजी की सब बातें मालूम होने पर भी क्या अग्नि परीक्षा की आवश्यकता है ? अतः कुछ कहना चाहते हैं। परन्तु प्रभु से उन्हें भी कुछ कहने का साहस नहीं होता। भाव यह कि हनुमान् सुग्रीव आदि भी कहना चाहते थे। पर कह नहीं सकते थे।

देखि राम रुख लछिमनु धाए। पावक प्रकटि काठ बहु लाए ॥
पावक प्रबल देखि बैदेही। हृदय हरष नहि भय कछु तेही ॥३॥

अर्थ : रामजी का रुख देखकर लक्ष्मण दौड़े। अग्नि प्रकट करके बहुत सा काठ ले आये। वैदेही ने जब देखा कि अग्नि प्रज्वलित हो गयी तो उनके हृदय में हर्ष हुआ। भय कुछ भी न हुआ।

व्याख्या : लक्ष्मणजी ने रामजी का रुख देखा कि इनकी भी इच्छा है। तब दौड़े। क्योंकि भगवती की आज्ञा शीघ्रता के लिए है। पहिले अग्नि प्रकट किया। परन्तु यहाँ थोड़े काठ से काम नहीं चलनेवाला था। अतः बहुत सा काठ लाये। यहाँ ख्याल करने की बात है कि काठतक लाने के लिए बन्दरों को आज्ञा नहीं दी जा रही है। लक्ष्मणजी ही सब कार्य अपने हाथ कर रहे हैं।

पावक प्रबल अर्थात् भस्म करने योग्य अग्नि को प्रज्वलित देखकर सीताजी को भय नहीं है : हर्ष है। दोष युक्त व्यक्ति का अग्नि के समीप जाने का साहस नहीं होता। एकदम निर्दोष व्यक्ति ही को प्रवेश का साहस हो सकता है। सो यहाँ प्रवेश करने के लिए उत्साह है। जो अशोक वाटिका में अङ्गार के लिए लालायित थीं और न मिला। अङ्गार के सदृश अङ्गुलीयक को देखकर हर्ष हुआ था। यथा : जनु असोक अंगार दीन्ह हरषि उठि कर गहेउ। उसे अग्निराशि की प्राप्ति से भय न होकर हर्ष होने का पर्याप्त कारण है। इस अग्नि से कलङ्क नष्ट होगा। इसलिए हर्ष है। निर्दोष हैं। इसलिए भय नहीं है।

जौं मन बच क्रम मम उर माहीं। तजि रघुबीर आन गति नाहीं ॥
तौ कृसानु सबकै गति जाना। मो कहँ होहु श्रीखंड समाना ॥४॥

अर्थ : यदि मनसा वाचा कर्मणा मेरे हृदय में रामजी को छोड़कर अन्यगति न हो तो हे अग्नि! तुम सबकी गति जानते हो मेरे लिए चन्दन हो जाओ।

व्याख्या : अग्निप्रवेश के पूर्व संकल्प लेना पड़ता है और उस संकल्प की रचना बड़ी सावधानी से की जाती है। जिसमें उससे न्यूनातिरिक्त भाव का द्योतन न हो। अतः भगवती संकल्प लेती हैं कि मनसा वाचा कर्मणा रामजी को छोड़कर मेरे हृदय में अन्यगति नहीं है। मनसा यथा : सुनु दसमुख खद्योत प्रकासा। कबहु कि नलनी करइ बिकासा। वचसा यथा : सो भुज कंठ कि तब असि घोरा। सुनु सठ अस प्रवान पन मोरा। कर्मणा यथा : तृन धरि ओट कहति बैदेही।

हे कृशानु! तुम्हारे कृश अणु होने से तुम सर्वत्र व्याप्त हो। तुम सबकी गति जानते हो। तुम सबको जलानेवाले हो। यदि मनसा वाचा कर्मणा रघुवीर को छोड़कर दूसरी गति न हो तो मेरे लिए चन्दन के समान शीतल हो जाओ। तुम्हारा मेरे लिए शीतल होना ही मेरी शुद्धि में प्रमाण है।

छं.[1] श्रीखंड सम पावक प्रबेसु कियो सुमिरि प्रभु मैथिली।
जय कोसलेस महेस बंदित चरनरति अति निर्मली ॥

---

१. हरिगीतिका छन्द है।

प्रतिबिम्ब अरु लौकिक कलंक प्रचंड पावक महु जरे।
प्रभु चरित काहु न लखे नभ सुरसिद्ध मुनि देखहि खरे ।।

अर्थ : मैथिली जानकीजी प्रभु का स्मरण करके चन्दन की भाँति अग्नि में प्रवेश कर गयीं। शिवजी से वन्दित कोशलेश के चरण की अति निर्मल रति की जय हो। प्रतिबिम्ब और लौकिक कलङ्क तो प्रचण्ड अग्नि में जल गये। प्रभु के चरित को कोई लख न पाया। आकाश में देवता सिद्ध मुनि खड़े देखते ही रह गये।

व्याख्या : प्रभु के चरणों में जगदम्बा का इतना प्रेम है कि अग्निप्रवेश के समय भी प्रभु का स्मरण करती हैं। तत्पश्चात् अग्नि में उसी भाँति प्रविष्ट हुईं जैसे चन्दन में कोई प्रवेश करे। भाव यह कि कुछ भी उष्णता का अनुभव नहीं हुआ और अग्निराशि के भीतर चली गयीं। चारों ओर ज्वालामाल है और बीच में सीताजी खड़ी हैं। अग्नि का कोई प्रभाव नहीं पड़ रहा है। ऐसे समय कवि कहते हैं अथवा चारो ओर से सब लोग कहते हैं कि रामजी के महेश वन्दित चरणों के प्रेम की जय हो। चारों ओर से जयजयकार हो रहा है। अब यहाँ पर प्रभु ने चरित्र किया। जिसे किसी ने न लखा। देवता सिद्ध मुनि जो आकाश में थे और अति उत्सुकता से खड़े होकर यह दृश्य देखते थे वे भी न लख सके। वह चरित्र क्या है उसे वर्णन करते हुए कवि कहते हैं कि यह अद्भुत चरित्र हुआ। यदि प्रतिबिम्ब जल जाय तो कलङ्क नहीं जलता और यदि कलङ्क जल जाय तो प्रतिबिम्ब नहीं जलता। यहाँ दोनों ही जल गये और किसी को पता न चला।

बात यह है कि प्रतिबिम्ब और कलङ्क जलनेवाली वस्तु नहीं है। यथा : घृतपूरन कराह अन्तर्गत ससि प्रतिबिंब लखावे। इंधन अनल लगाइ कल्पसत औटत नास न पावे। अतः लक्षणा से यह अर्थ करना पड़ेगा कि नष्ट हो गये। यहाँ जलने का अर्थ लक्षणा से नष्ट होना करना ही पड़ेगा। प्रतिबिम्ब का बिम्ब में लय हो जाना ही नष्ट होना है और किसी भाँति प्रतिबिम्ब नष्ट नहीं होता। बिम्बभूता सीता पहिले से ही अग्नि में थी। उन्हीं में यह प्रतिबिम्बभूता सीता लय हो गयी। अतः प्रतिबिम्ब की पृथक् स्थिति भी नहीं रह गयी और कलङ्क भी धुल गया। यह प्रभु का चरित्र है : नीति प्रीति परमारथ स्वारथ। कोउ न रामसम जान जथारथ।

छं.[1] धरि रूप पावक पानि गहि स्री सत्य स्रुति जग बिदित जो।
जिमि छीर सागर इंदिरा रामहि समर्पी आनि सो ।।
सो राम बाम बिभाग राजति रुचिर अति सोभा भली।
नवनील नीरज निकट मानहुँ कनकपंकज की कली ।।

अर्थ : तब अग्निदेव ब्राह्मण का रूप धारण करके श्रुति विदित सत्य श्री को

१. हरिगीतिका छन्द है।

हाथ पकड़े हुए लाकर श्री रामजी को इस प्रकार समर्पित किया जैसे क्षीरसागर ने विष्णु भगवान् को लक्ष्मी समर्पित की थी। सो रामजी के वामभाग में ऐसी सुशोभित हुईं जैसे नये नीले कमल के पास स्वर्णकमल की कली हो।

व्याख्या : ब्राह्मण का रूप धारण किये हुए अग्निदेव निकले। जो लंका में गयी थीं वह सत्य श्रुतिविदित लक्ष्मी नहीं थीं। उनका अपहरण हो नहीं सकता था। अतः जो अपहृत हुई थीं वे प्रतिबिम्बभूता थीं। अब अग्निदेव उन श्रुतिविदित सत्यलक्ष्मी को लिये हुए निकले। इन्दिरा : लक्ष्मी तो सनातनी वैष्णवी शक्ति हैं। फिर भी क्षीरसागर ने जिस भाँति इन्दिरा को विष्णु भगवान् को सुपुर्द किया उसी भाँति अग्निदेव ने भी श्रुतिविदित श्री जनकनन्दिनी को रामजी के सुपुर्द किया। रामजी ने स्वीकार किया। वामभाग में आसन दिया। भगवती की श्रृंगारित मूर्ति हैं। इसलिए : रुचिर अति सोभा भली : कहते हैं। उपमा देते हैं कि श्याम गौर जोड़ी ऐसी विराजमान हुई जैसे श्याम कमल के साथ स्वर्णकमल की कली विराजमान हो। सरकार खिले हुए हैं। इसलिए नवनील नीरज से उपमा दी। भगवती संकुचित हैं। इसलिए कली से उपमा देते हैं।

दो. बरषहिं सुमन हरषि सुर, बाजहिं गगन निसान।
गावहिं किन्नर सुरबधू, नाचहिं चढ़ी बिमान॥
जनकसुता समेत प्रभु, सोभा अमित अपार।
देखि भालु कपि हरषे, जय रघुपति सुखसार॥१०९॥

अर्थ : देवता हर्षित होकर फूल बरसाते हैं। आकाश में डङ्के बज रहे हैं। किन्नर लोग गा रहे हैं और अप्सरायें विमान पर चढ़ी नाच रही हैं। श्री जानकी के सहित प्रभु की अमित अपार शोभा है। देखकर बन्दर भालु आनन्दित हो उठे। बोले सुखसार रघुपति की जय हो।

व्याख्या : जगदम्बा जानकीजी को सरकार के सहित विराजमान देखकर देवता हर्षित होकर फूल बरसाने लगे। पहिले जानकीजी के दुःख से दुःखित थे। सरकार से निवेदन भी किया था : अब जनि नाथ खेलावहु एही। अतिसय दुखित होत बैदेही। पुष्पवर्षा से युगल मूर्ति की पूजा है। किन्नर गन्धर्व गानेवाले देवयोनि हैं। सो उन्होंने आनन्दातिरेक से गान आरम्भ किया और स्वर्वेश्या उर्वशी आदि विमान पर ही नाचने लगीं। भावार्थ यह कि इस समय आकाश में भी आमोद प्रमोद हो रहा है।

सरकार की शोभा अपार है। एक एक अंग में अनेक कामदेव की छबि है। यथा : संग्राम अंगन राम अंग अनंग बहु सोभा लही। इस समय साक्षात् लक्ष्मी जानकीजी के साथ होने से अमित अपार शोभा हो गयी। भालु बन्दरों ने युगल मूर्त्ति की झाँकी नहीं देखी थी। आज पहिली बार देख रहे हैं। अतः हर्षित हुए। कहने लगे कि सुख के भी सारभूत आनन्द के भी आनन्द देनेवाले रघुपति की जय हो।

तब रघुपति अनुसासन पाई। मातलि चलेउ चरन सिरु नाई॥

८०. देवस्तुति प्रसंग

आये देव सदा स्वारथी। बचन कहहिं जनु परमारथी॥१॥

अर्थ : तब रामजी की आज्ञा पाकर मातलि चरणों में सिर झुकाकर चले। सदा स्वारथी देवता लोग आये और ऐसी बात बोलते हैं मानों परमार्थी हैं।

व्याख्या : जब सरकार वैदेहीजी के साथ विराजमान हो गये तब मातलि ने जाने के लिए आज्ञा माँगी। इन्द्र का सारथि है। समझता है कि जबतक जानकीजी न आजायँ तबतक कार्य पूरा हुआ नहीं मानना चाहिए। युद्ध की आशंका बनी ही है। पर अब वह आगयीं। अब सब पूर्ण हो गया। अतः जाना चाहता है। सरकार ने भी आज्ञा दे दी। मातलि रथ लेकर चले। यद्यपि कृतकार्य होकर जा रहे हैं फिर भी हर्षित नहीं हैं। आने के समय हर्षित थे। यथा : हरष सहित मातलि लै आवा। सरकार का साथ छोड़ना उसे भी अखरता है। अतः प्रणाम करके चला।

स्वार्थी तो सब संसार है। पर देवलोक में सदा स्वार्थ बना रहता है। परमार्थ की ओर इनकी दृष्टि ही नहीं जाती। भोगातिरेक से उन्हें ज्ञान होता ही नहीं। अतः सदा स्वार्थ परायण रहते हैं। स्वार्थ पूरा हुआ तो आपहुँचे। नहीं तो : तिन्हहि सोहाइ न अवध बधावा। चोरहिं चंदिनि रात न भावा। सारद बोलि बिनय सुर करहीं। बारहिं बार पाँव लै परहीं। बिपति हमारि बिलोकि बड़ि मातु करिअ सोइ आजु। रामु जाहिं बन राजु तजि होइ सकल सुर काज। इनका स्वार्थ ही सर्वस्व है। मित्र शत्रु कोई नहीं। पर बात परमार्थी की भाँति बोलते हैं।

दीनबंधु दयाल रघुराया। देव कीन्हि देवन्ह पर दाया॥
बिस्व द्रोह रत यह खल कामी। निज अघ गएउ कुमारग गामी॥२॥

अर्थ : हे दीनबन्धु! हे दीनदयाल! हे रघुराया! हे देव! आपने देवों पर दया की। यह खल विश्वद्रोहरत और कामी था। कुमार्गगामी अपने ही पाप से गया।

व्याख्या : हे रघुराया! आप दीनबन्धु हैं। संकट के समय उनके सहाय होते हैं। यथा : होहिं कुठाँय सुबन्धु सहायें। आप दयालु हैं। दूसरे के दुःख से दुःखी होते हैं। हम लोग रावण के कारण दीन हो रहे थे। यथा : मुनि सिद्ध सकल सुर परम भयातुर नमत नाथ पदकंजा। सरकार ने भूमि भार हरण करके हम लोगों को निर्भय किया। आप दयालु देव हैं। आपने हम लोगों पर दया की।

यह रावण ऐसा खल था कि विश्व के द्रोह में सदा लगा रहता था। यह पृथिवी के लिए महारोग रूप हो गया था। दससीस बिनासन बीस भुजा। कृत दूरि महामहि भूरि रुजा। तिस पर कामी था : देव यक्ष गन्धर्व नर किन्नर नाग कुमारि। जीति बरी निज बाहुबल बहु सुंदर बर नारि। सो अपने पाप से गया। सीताहरण किया और माँगने से दिया नहीं। कुमार्गगामी इसी भाँति अपने पाप से ही मारे

जाते हैं। उनके मारने के लिए कोई पृथक् प्रयत्न करना नहीं पड़ता। सरकार ने उसे नहीं मारा। उसी ने ही सरकार को मारने के लिए लाचार किया।

तुम्ह समरूप ब्रह्म अबिनासी। सदा एकरस सहज उदासी॥
अकल अगुन अज अनघ अनामय। अजित अमोघसक्ति करुनामय॥३॥

अर्थ : आप समरूप, ब्रह्म, अविनाशी, सदा एकरस, स्वभाव से ही उदासीन, निष्कल, निर्गुण, जन्मरहित, दोषरहित निर्विकार, अजेय, निष्फल न जानेवाली शक्ति और करुणामय हैं।

व्याख्या : आप तो समरूप हैं। न आपको कोई द्वेष्य है न प्रिय है। देश से काल से आपका परिच्छेद नहीं है। आप में कभी कोई परिवर्तन नहीं होता। इसलिए सदा एकरस हैं। अतः अजन्मा हैं। स्वभाव से ही उदासीन हैं। संसार से सम्पर्क नहीं रखते। आप निरवयव हैं। गुणातीत हैं। आपका जन्म नहीं होता। न आप में कोई दोष है न विकार है। आप जीते नहीं जा सकते क्योंकि आप अमोघ शक्तिरूप हैं। सत्य संकल्प हैं फिर भी करुणामय हैं। भक्तों के लिए अपनी अचिन्त्य लीलाशक्ति द्वारा अवतीर्ण होते हैं।

मीन कमठ सूकर नरहरी। बामन परसुराम बपुधरी॥
जब जब नाथ सुरन्ह दुख पायो। नाना तनु धरि तुमहि नसायो॥४॥

अर्थ : मत्स्य, कच्छप, वाराह, नृसिंह, वामन और परशुराम रूप धारण किया। जब जब हे नाथ! देवताओं ने दुःख पाया तब तब अनेक शरीर धारण करके तुमने ही उनका नाश किया।

व्याख्या : आपने मत्स्यावतार धारण करके वेदों का उद्धार किया। कच्छपावतार धारण करके आपने अपने पीठ पर मन्दराचल धारण किया। जिससे समुद्र मन्थन हो सका और देवताओं ने अमृत पाया। वाराहावतार धारण करके आपने देवतापी महा बलवान् हिरण्याक्ष को मारा। नृसिंहावतार धारण करके महा प्रतापी हिरण्यकशिपु का संहार किया। परशुरामावतार धारण करके अन्यायी क्षत्रियों का संहार किया। रामावतार के पूर्व के छः अवतारों का वर्णन करके कहते हैं कि इनके अतिरिक्त सरकार के आवेशावतार विभवावतार आदि सहस्रों अवतार होते हैं। निदान सरकार ही देवताओं के शरण हैं। जब जब देवताओं को दुःख पड़ा तब तब अनेक शरीर धारण करके आपने ही उन्हें दुःख विनिर्मुक्त किया।

यह खल मलिन सदा सुरद्रोही। काम लोभ मद रत अति कोही॥
अधम सिरोमनि तव पद पावा। यह हमरे मन बिसमय आवा॥५॥

अर्थ : यह मलिन खल सदा देवताओं का द्रोही था। काम लोभ मद में रत था और बड़ा क्रोधी था। वह भी हे कृपालु : आपके धाम में चला गया। इस बात का हम लोगों को बड़ा आश्चर्य हुआ।

व्याख्या : अब प्रसक्त सातवाँ अवतार कहते हैं। यद्यपि हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु भी सुरद्रोही थे। पर रावण तो पापमूल सुरद्रोही था। इसकी आज्ञा से धर्म निर्मूल की विधि निर्णय करके शासन चलता था। यथा : जेहि बिधि होइ धर्म निर्मूला। सो सब करहिं बेद प्रतिकूला। और सुरद्रोही तो इतना बड़ा था कि देवताओं को क्षुधाक्षीण बलहीन करके मारना चाहता था। और नरक के चार रास्ते हैं। यथा : काम क्रोध मद लोभ सब नाथ नरक के पंथ। सो इसने चारों को अपनाया था। अतः इसे सद्यः नरक प्राप्ति होनी चहिए थी। सो वह सीधे आपके धाम में चला गया। जहाँ से फिर लौटना नहीं होता। यह बड़े भारी आश्चर्य की बात हुई। आप कृपालु हैं। आपकी करुणा की शक्ति अचिन्त्य है। आप करुणा परवश होकर ही वध करते हैं। जिसमें आपके शररूपी तीर्थ में शरीर त्यागकर सच्ची गति को प्राप्त हों।

हम देवता परम अधिकारी। स्वारथ रत तव भगति बिसारी ॥
भव प्रवाह संतत हम परे। अब प्रभु पाहि सरन अनुसरे ॥६॥

अर्थ : हम देवता परम अधिकारी हैं। स्वार्थपरायण होकर आपकी भक्ति को भूले हुए हैं। हम सदा संसार के प्रवाह में पड़े हैं। हे प्रभो अब रक्षा करो। हम शरण आये हुए हैं।

व्याख्या : रावण तो राक्षस था इसलिए अनधिकारी था। उससे यदि बिगड़ गया तो कोई बड़ी बात नहीं हुई। हम तो देवता हैं। परम अधिकारी हैं। हमें तो ब्रह्मज्ञानी होना चाहिए। सो हम स्वार्थ में ऐसे फँसे कि आपकी भक्ति भूल बैठे। स्वार्थान्ध होकर हम लोग वस्तुतः सरकार के वनवास के कारण हुए। जिससे अत्यन्त कष्ट सरकार को हुआ : अपनी चूक स्पष्ट दिखाई पड़ती है कि हम भव प्रवाह में पड़े हैं। अतः हम लोग शरण में आये हैं। अब रक्षा कीजिये। पहिले तो स्वार्थवश अपराध किया। अब काम निकलने पर फिर स्वार्थ वशीभूत होकर अपराध क्षमापन के लिए शरण में पहुँच गये।

यह गुणग्राम विशाखा नक्षत्र हैं। इसमें चार तारे तोरण की भाँति चमकते हैं। इसी भाँति इस स्तुति में भी चार बातें हैं। १. सरकार ने दया की। २. पहिले भी जब दुःख पड़ा सरकार सहाय हुए। ३. महा पापी रावण को निज धाम दिया और ४. हम भव प्रवाह में पड़े हैं हमारी रक्षा हो। ये चार बातें अलग अलग दयारूपी तागे में गुथी हुई तोरणाकार हैं। अतः विशाखा से उपमित हैं। इसकी फलश्रुति है : मन्त्र महामनि विषय व्यालके।

दो. करि बिनती सुरसिद्ध सब, रहे जहँ तहँ कर जोरि।
अति सप्रेम तन पुलकि बिधि, अस्तुति करत बहोरि ॥११०॥

अर्थ : विनती करके देवता और सिद्ध लोग जहाँ के तहाँ खड़े रहे। अत्यन्त प्रेम से ब्रह्मदेव फिर से स्तुति करने लगे।

व्याख्या : विनती करने के बाद स्तोता लोग हाथ बाँधे जहाँ के तहाँ खड़े हैं। कोई हिल नहीं रहा है। इस स्तुति में ब्रह्मदेव भी सम्मिलित थे पर इन स्वार्थियों की की हुई स्तुति से सन्तुष्ट न होकर ब्रह्मदेव अत्यन्त प्रेम से फिर स्तुति करने लगे। पाठान्तर में सरोजभव कहकर ब्रह्मदेव का दिव्य जन्म दिखलाया।

छं.[1] जय राम सदा सुखधाम हरे। रघुनायक सायक चाप धरे ॥
भवबारनु दारन सिंह प्रभो। गुन सागर नागर नाथ बिभो ॥१॥

अर्थ : सदा सुखधाम दुःखों के हरण करनेवाले रघुकुल के नायक धनुष बाण धारण करनेवाले की जय हो। हे प्रभो आप संसाररूपी हाथी के विदारण के लिए सिंह हो। आप गुणों के सागर नागर नाथ और विभु हो।

व्याख्या : गुरुजी ने नामकरण करते समय कहा : सो सुख धाम राम अस नामा। राम नाम का अर्थ ही यह है कि जिस चिदात्मा नित्यानन्द में योगी लोग रमण करते हैं उस पर ब्रह्म को राम कहते हैं। ब्रह्मदेव कह रहे हैं कि उस सदा सुखधाम राम की जय हो। वहो राम : सकल लोक दायक बिस्रामा हैं। अतः उन्हें हरि कहते हैं। रघुनायक कहकर उनका रघुकुल में अवतीर्ण होना कहा। सायक चाप धरे : कहकर लोभ मोह मत्सर मद मानादि खलों के लिए भयदायक बतलाया। यथा : तब लगि हृदय बसत खल नाना। लोभ मोह मत्सर मद माना। जब लगि उर न बसत रघुनाथा। धरे चाप सायक कटि भाथा। संसाररूपी हस्ती के विदारण के लिए सिंह हैं। संसार बड़ा विशाल तथा बलवान् है। सभी इससे भयभीत रहते हैं। पर सरकार उसके विदारण के लिए सिंह हैं। सिंह का गन्ध पाकर हस्ती पलायन कर जाते हैं। भाव यह कि सरकार का पराक्रम भववारण के दारण में है। प्रभु कहकर कर्तुंमकर्तुंमन्यथाकर्तुं समर्थ कहा। गुणसागर कहकर पारावार रहित गुणों का आश्रय कहा। नाथ कहकर सबसे प्रार्थनीय बतलाया और विभु कहकर व्यापक कहा।

तन काम अनेक अनूप छबी। गुन गावत सिद्ध मुनीन्द्र कबी ॥
जसु पावन रावन नाग महा। खगनाथ जथा करि कोप गहा ॥२॥

अर्थ : शरीर में अनेक कामों की अनुपम शोभा है। आपके गुणों को सिद्ध मुनीन्द्र और कवि गान करते हैं। हे पावन यशवाले! रावणरूपी बड़ा भारी सर्प था उसे आपने क्रोध करके गरुड़ की भाँति पकड़ लिया।

व्याख्या : सरकार इतने सुन्दर हैं : अंग अंग पर वारिअहिं कोटि कोटि सत काम। अतः सरकार की छवि की उपमा नहीं है और सरकार के गुणगान की ऐसी महिमा है कि उसे सिद्ध मुनीश तथा कवि सदा गान किया करते हैं। अथवा

१. यह तोटक छन्द है। इसके एक चरण में बारह अक्षर आते हैं। इसमें चार यगण है।

सरकार के गुणगण ही ऐसे हैं कि सिद्ध मुनीन्द्र कवि को उन्हीं के गान करने में विश्राम मिलता है। यथा : विश्रामस्थानमेकं कविवरवचसाम्।

सरकार का यश पावन है इसका गान करके मनुष्य भवसागर पार हो जाते हैं। यह रावण बड़ा भारी क्रूर दुष्ट सर्प था जो प्राणियों के प्राण का नाशक था। जो उद्वेग करनेवाले हैं वे साँप ही हैं। यथा : ये नृशंसा दुरात्मानः प्राणिनां प्राणनाशकाः। उद्वेजकाश्चभूतानां व्याला इव भवन्ति ते। उसे कोई काबू में न ला सका था। सरकार ने उसे सर्प भक्षक गरुड़ की भाँति पकड़ लिया। ऐसी शोभा ऐसा गुण और ऐसा पराक्रम सरकार में ही है।

जनरंजन भंजन सोक भयं। गत क्रोध सदा प्रभु बोध मयं ॥
अवतार उदार अपारगुनं। महिभार बिभंजन ज्ञानघनं ॥३॥

अर्थ : भक्तों को सुख देनेवाले शोक और भय को दूर करनेवाले क्रोध रहित और सदा बोधमय प्रभु हैं। आपका उदार अवतार है। आपके गुण अपार हैं। आप पृथिवी के भार को दूर करनेवाले और ज्ञानघन हैं।

व्याख्या : भक्त भगवान् को प्रिय हैं। अतः भगवान् जनरञ्जन हैं। आगत और अनागत दुःखों के दूर करनेवाले हैं। क्रोध तो कभी करते ही नहीं। यथा : जेहि करुनाकर कीन्ह न कोहू : क्योंकि सदा बोधमय हैं। जिस काम क्रोध से प्रेरित होकर मनुष्य पापाचरण नहीं करता वह काम क्रोध नहीं है। वह काम क्रोधाभास है। अतः जहाँ जहाँ पर सरकार का क्रोध दिखलाया गया है वहाँ क्रोधाभास ही समझना चाहिए। क्योंकि सरकार बोधमय हैं। वहाँ क्रोध को स्थान कहाँ ? सरकार के ही अवतार तो अनेक हुए। पर जैसी उदारता इस अवतार में देखी जाती है वैसी अन्यत्र नहीं देखी जाती। ब्रह्मदेव को भी सरकार के गुणों का पारावार नहीं मिलता। अतः कहते हैं : अपारगुनं। परद्रोही पृथिवी के भार हैं। पृथिवी कहती है : गिरिसर सिंधु भार नहिं मोही। जस मोहि गरुअ एक परद्रोही। उनका संहार करके पृथिवी का भार उतारा। अब सरकार का मुख्यरूप कहते हैं कि ज्ञानघन हैं। ठोस ज्ञानरूप हैं। जिसमें किसी अन्य वस्तु को स्थान नहीं है।

अज ब्यापकमेकमनादि सदा। करुनाकर राम नमामि मुदा ॥
रघुबंस बिभूषन दूषनहा। कृतभूप बिभीषनु दीन रहा ॥४॥

अर्थ : आप अज हैं, व्यापक हैं, एक हैं, अनादि हैं, सदा करुणा करनेवाले हैं, मैं प्रसन्न होकर नमस्कार करता हूँ। हे रघुवंश विभूषण ! आप दूषण के नाश करनेवाले हैं। आपने विभीषण को जो दीन था राजा बना दिया।

व्याख्या : आपका जन्म नहीं होता। क्योंकि आप सर्वव्यापक हैं। अद्वैत हैं और अनादि हैं। जन्म परिच्छिन्न सद्वय और सादि का होता है। हे राम ! आप सदा करुणाकर हैं। आपकी करुणा में कभी अन्तर नहीं पड़ता। क्रोध करते दिखाई पड़ने पर भी चित से करुणा कभी नहीं हटती। मैं आपको प्रसन्न होकर नमस्कार करता

हूँ। सभीत होकर देवता रावण को भी नमस्कार करते थे। यथा : दानव देव दयावने दीन दुखी दिन दूरहि ते सिर नाव। परन्तु आपको आनन्द परिप्लुत होकर मैं नमस्कार करता हूँ।

हे रघुकुल के भूषण आप दूषण के नाश करनेवाले हैं : यहाँ दूषण शब्द श्लिष्ट है। दूषण नामी राक्षस का भी सरकार ने वध किया और दूषण अर्थात् दोष को भी हरण करनेवाले हैं। आपने विभीषण के दीनतारूपी दोष का हरण करके राजा बना दिया।

गुन ग्यान निधान अमान अजं। नित राम नमामि बिभुं बिरजं॥
भुजदंड प्रचंड प्रताप बलं। खलबृंद निकंद महा कुसलं॥५॥

अर्थ : गुण और ज्ञान के निधान, अमान, अज, विभु और विरज राम को मैं नित्य नमस्कार करता हूँ। आपके भुजदण्ड का प्रताप और बल प्रचण्ड है। खल वृन्द के नाश में आप बड़े कुशल हैं।

व्याख्या : गुण अर्थात् कल्याण गुणगणों के निधान हैं और सम्पूर्ण विद्याओं के निधान हैं तथा आप अमान हैं। आप में इयत्ता नहीं है : मीयते इति मानम्। अथवा अभिमान नहीं है। अभिमान जीव को होता है ईश्वर को नहीं। यथा : माया वस्य जीव अभिमानी। ईस वस्य माया गुन खानी। आप अजन्मा हैं। व्यापक हैं तथा निर्माय हैं। आपके भुजदण्ड का प्रचण्ड प्रताप और बल है : यथा : असरव पूरि रही नव खंडा। जय रघुवीर प्रबल भुज दंडा। और खलवृन्द के संहार में बड़े निपुण हैं। ऐसी युक्ति किया कि खलवृन्द आपसे आप आ आकर आपके शरानल में पतङ्ग हो गये। यथा : कहा अनुज सन सैन बुझाई। लछिमन अति लाघव सो नाक कान बिनु कीन्ह। ताके कर रावन कहँ मनहुं चुनौती दीन्ह। जिस युक्ति से खल मारे जायँ वैसी युक्ति करके आप उन्हें मार ही डालते हैं। यथा : खरदूषन बिराघ वध पंडित। रावण सिर कटने पर भी नहीं मरता था। उसके नाभि कुण्ड सुधा को सर से शोषण करके मारा।

बिनु कारन दीन दयाल हितं। छबिधाम नमामि रमासहितं॥
भवतारन कारन काज परं। मन संभव दारुन दोष हरं॥६॥

अर्थ : आप बिना कारण हो दीन पर दया करते हैं और कल्याण करते हैं और शोभा के धाम हैं। आपको लक्ष्मी के सहित नमस्कार है। आप संसार से पार करनेवाले हैं और कार्य कारण से परे हैं और मन से उत्पन्न होनेवाले दारुण दोष के हरण करनेवाले हैं।

व्याख्या : बिना कारण ही दीन पर दया करते हैं और उनका हिताचरण करते हैं। यथा : कबहुँक करि करुना नरदेही। देइ ईस बिनु हेतु सनेही। आप शोभाधाम हैं। राक्षसी सूर्पणखा नाक कटने पर भी कहती है : सोभा धाम राम अस नामा। लक्ष्मी के सहित आपको मैं नमस्कार करता हूँ। अथवा छविधाम लक्ष्मी के साथ मैं

आपको नमस्कार करता हूँ। भावार्थ यह कि आप भी छविधाम हैं और रमारूप सीताजी भी छविधाम हैं। यथा : बिष्णु चारि भुज बिधि मुख चारी। त्रिकट बेष मुख पंच पुरारी। अपर देव अस कोउ न आही। एहि छबि सखि पटतरिए जाही। तथा : गिरा मुखर तन अर्ध भवानी। रति अति दुखित अतनु पति जानी। बिष बारुनी बंधु प्रिय जेही। कहिय रमा सम किमि बैदेही।

भवाम्भोधि के सन्तरण चाहनेवाले के लिए आपका चरण हीं एकमात्र नौका है। यथा : यत्पादप्लवमेकमेव हि भवाम्भोधेस्तितीर्षावताम्। अतः आप भवतारण हैं। आप अशेष कारण से परे हैं। संसार में कार्य कारण की परम्परा चलती है। घट कार्य है। उसका कारण पृथिवी है। पर पृथिवी भी कार्य है। उसका कारण जल है। पर जल भी कार्य है। उसका कारण अग्नि है। इस भाँति कार्य कारण की परम्परा प्रकृति तक चली जाती है। आप उससे भी परे हैं। यथा : प्रकृति पार प्रभु सब उरबासी।

दुःख का मूल मनोमय जगत् है। ईश्वरकृत द्वैत बन्ध का कारण नहीं है। जीव ने जो उसमें द्वैत की मानसिक सृष्टि की है वही बन्ध का कारण होती है। ईश्वरकृत स्त्री बन्ध का कारण नहीं है मनोमयी स्त्री ही बन्ध का कारण है। उस बन्ध से आप ही मुक्ति देने में समर्थ हैं। इसलिए कहते हैं : मन संभव दारुण दुःख हरं। अथवा मानस रोग बड़े दारुण हैं। वे किसी भाँति नष्ट नहीं होते। रघुपति भगति सजीवन मूरी। अनूपान श्रद्धा अतिरूरी। एहि बिधि भलेहि सो रोग नसाही। नाहित कोटि जतन नहिं जाहीं।

सर चाप मनोहर त्रोन धरं। जलजारुन लोचन भूपवरं॥
सुख मंदिर सुंदर श्रीरमन। मदमार मुधा ममता समनं॥७॥

अर्थ : मन के हरण करनेवाले धनुष बाण और तरकस धारण करनेवाले हैं। लाल कमल से आपके नेत्र हैं। राजाओं में आप श्रेष्ठ हैं। आप सुख के घर हैं। सुन्दर हैं। लक्ष्मी के पति हैं। मद मार और झूठी ममता के शमन करनेवाले हैं।

व्याख्या : आपका अच्छेद्य धनुष कराल बाण तथा अक्षय तूणीर सब मन के हरण करनेवाले हैं। भक्त लोग तूण बाण धनुधारी राम को हृदय में बसाना चाहते हैं। आपके लाल कमल से सुन्दर नेत्र चक्रवर्ती के चिन्ह हैं। आप राजाओं में श्रेष्ठ हैं। अपने चरित्र से राजाओं को धर्मोपदेश करते हैं। संसार सुख का भिखारी है और आप सुख के मन्दिर हैं। संसार लक्ष्मी का कृपाकटाक्ष चाहता है और आप उनके पति हैं। मोहप्रद मद शोकप्रद काम और बन्धप्रद मिथ्या ममता इन्हें आप नाश करके परम पद देते हैं।

अनवद्य अखंड न गोचर गो। सब रूप सदा सब होइ न गो॥
इति बेद्र बदंति न दंतकथा। रबि आतप भिन्न न भिन्न जथा॥८॥

अर्थ : आप अनिन्दित हैं। अखण्ड हैं। इन्द्रियों के विषय नहीं हैं। आप सदा

सर्वरूप हैं फिर भी सब हो नहीं गये हैं ऐसा वेद कहते हैं। दन्त कथा : बकवाद नहीं है। जैसे सूर्य और सूर्य का प्रकाश अलग भी है नहीं भी है।

व्याख्या : संसार अवद्य है। सखण्ड है। इन्द्रिय का विषय है। सरकार अनवद्य हैं अखण्ड हैं। इन्द्रियातीत हैं। एकरस होने से अनवद्य हैं। परिपूर्ण होने से अखण्ड हैं। स्थूल सूक्ष्म से परे होनेसे इन्द्रियातीत हैं। सर्वरूप होने पर भी अरूप हैं। अपने चिद्वपु का उल्लङ्घन नहीं करते। यह बात मन में जल्दी नहीं बैठती। क्योंकि दोनों विरुद्ध हैं। इसलिए कहते हैं कि इसे दन्तकथा न समझना चाहिए। यह बात वेद कहते हैं। फिर भी समझने के लिए दृष्टान्त चाहिए। इसलिए दृष्टान्त भी देते हैं। जैसे सूर्य धूप से अभिन्न भी है और भिन्न भी है। सूर्य से पृथक् धूप क्या है? फिर भी धूप सूर्य नहीं है। वेद सरकार को अरूपमस्पर्शमगन्धम् कहकर भी वर्णन करता है और सर्वरूप सर्वरस सर्वगन्ध कहकर भी वर्णन करता है।

कृतकृत्य विभो सब बानर ए। निरखंति तवानन सादर ए ॥
धिग जीवन देवसरीर हरे। तव भक्ति बिना भव भूलि परे ॥९॥

अर्थ : हे विभो! ये बन्दर कृतकृत्य हैं जो आपका मुख आदर के साथ देख रहे हैं। हे हरे! देव शरीर के जीवन को धिक्कार है। जो तुम्हारी भक्ति बिना संसार में भूले पड़े हैं।

व्याख्या : हे प्रभो! ये बन्दर कृतकृत्य हो गये। इनका कर्तव्य समाप्त हो गया। जीवन धारण करके उसे इन्होंने सरकार की सेवा में लगाया और अब कृतकृत्य होकर आपके मुख का दर्शन कर रहे हैं। इतने देवता आये हुए हैं पर उनकी ओर देखने के लिए इन्हें अवकाश नहीं है। ये भवदीय मुखावलोकन में ही दत्तचित्त हैं। अतः ये कृतकृत्य हैं। देव शरीर पाकर ही क्या हुआ? यदि हरि में भक्ति नहीं हुई और देवसुलभ ऐश्वर्य में ही भूले रह गये। बानरों ने सरकार की सेवा की और देवताओं ने सरकार से सेवा ली। इसलिए बानरों को धन्यवाद और देवताओं को धिक्कार है।

अब दीनदयाल दया करिए। मति मोरि बिभेदकरी हरिए ॥
जेहि तें बिपरीत क्रिया करिए। दुख सो सुख मानि सुखी चरिए ॥१०॥

अर्थ : हे दीनदयाल! अब दया करिये। मेरी विभेदकरी बुद्धि को हरण कर लीजिये जिससे मैं विपरीत क्रिया करूँ। दुःख से सुख मानकर सुखी हो विचरूँ।

व्याख्या : ब्रह्मदेव कहते हैं कि मैं दीन हूँ आप दीनदयाल हैं। मुझ दीन पर दया कीजिये। विभेदकारी बुद्धि होने से मैं ब्रह्मपद पाकर भी दीन हूँ। क्योंकि द्वितीयाद्वै भयं भवति दूसरे से भय होता ही है। मुझे अभय कर दीजिये। ब्रह्मपद देने पर भी भय बना ही है। बुद्धि के प्रेरक आप हैं। आपके हो हरण करने से विभेदकरी बुद्धि दूर होगी। तब विपरीत क्रिया करने में समर्थ हूँगा। जिसे लोग दुःख कहते हैं उसी को सुख मान सकूँगा और तब सुखी होकर विचरण करूँगा।

छं. खल खंडन मंडन रम्य छमा । पदपंकंज सेवित संभु उमा ॥
नृपनायक दे बरदानमिदं । चरनांबुज प्रेमु सदा सुभदं ॥१॥

अर्थ : आप खलों के खण्डन करनेवाले और पृथिवी के सुन्दर अलङ्कार हैं। आपके चरण कमल शिव पार्वती द्वारा सेवित हैं। हे नृपनायक ! यह वरदान दीजिये कि आपके सदा शुभ देनेवाले चरण कमल में प्रेम हो।

व्याख्या : यहाँ पर अवतार के दोनों कृत्य दिखलाये खल खण्डन कहकर दुष्कृतों का विनाश कहा और मण्डन रम्य छमा कहकर साधुपरित्राण दिखलाया। सबसे बड़े महादेव हैं सो सस्त्रीक होकर चरणों की सेवा करते हैं। सरकार ने रावण वध किया है अतः नृपनायक कह रहे हैं। अथवा माधुर्य के उपासक है अतः नृप नायक कहते हैं। ऐसी खुशी के समय स्तुति करनेवाले राजाओं के यहाँ से पुरस्कार पाते हैं। सरकार नृपनायक हैं। मुँह माँगा दीजिये। यही वरदान है कि सदा शुभ देनेवाले चरण कमल का प्रेम मुझे हो।

दो. बिनय कीन्हि चतुरानन, प्रेम पुलक अति गात।
सोभासिंधु बिलोकत, लोचन नहीं अघात ॥१११॥

अर्थ : बहुत भाँति से अति पुलकित शरीर होकर ब्रह्मदेव ने विनय किया। रामजी का मुख देखते हुए आँखें नहीं अघाती थीं।

व्याख्या : अति सप्रेम तनु पुलकि बिधि अस्तुति करत बहोरि से उपक्रम करके बिनय कीन्हि चतुरानन कहकर उपसंहार करते हैं। बिनय कीन्हि चतुरानन से वचन द्वारा प्रेम कहा। प्रेम पुलकि अति गात से तन से प्रेम कहा। सोभासिंधु बिलोकत लोचन नहि अघात से मन से प्रेम कहा।

यह अनुराधा नक्षत्र है। इसमें चार तारे चमकते हैं। भक्तपुंज सा आकार है। इस गुणग्राम में एक बार जयकार और तीन बार नमस्कार है। यही चार तारों की चमक है। बिना क्रम के भात के ढेर की भाँति गुणगण कहे गये हैं। पूर्वापर क्रम भी नहीं है। द्विरुक्तियाँ भी हैं। इसलिए भक्त पुंजाकार समझा गया। मेटत कठिन कुअंक भाल के। यही फलश्रुति है।

तेहि अवसर दसरथ तहँ आए। तनय बिलोकि नयन जल छाए ॥
अनुज सहित प्रभु बंदन कीन्हा। आसिरबाद पिता तब दीन्हा ॥१॥

अर्थ : उसी अवसर पर वहाँ दशरथजी आये। बेटों को देखकर आँख में आँसू भर आया। भाई के सहित सरकार ने वन्दना की। तब पिता ने आशीर्वाद दिया।

व्याख्या : सरकार ने जटायु से कहा था : सीताहरन तात जनि कहेहु पिता सन जाइ। जौ मैं राम त कुल सहित कहिहि दसानन आइ। सो वह वचन चरितार्थ हुआ। दशरथजी को समाचार मिल गया। वे ब्रह्मदेव की स्तुति के समय आये। हा जानकी लखन हा रघुबर। हा पितु हित चित चातक जलधर : कहते हुए जिसने

प्राण त्याग किया था आज उसे देखकर आँख में आँसू क्यों न भर आये। देवता रामजी को ब्रह्म देखते हैं। हाथ बाँधे खड़े हैं। पर चक्रवर्तीजी उन्हें बेटा ही देखते हैं। चौदह वर्ष के बाद आज दृष्टिगोचर हुए हैं। अतः आँखों में आनन्दाश्रु भर आया।

बेटों को देखा बहू को नहीं। पूर्व जन्म में भी इनकी यही गति थी। सरकार का प्रादुर्भाव जगदम्बा के साथ हुआ था। पर उन्होंने सरकार को ही देखा। सरकार ने कहा भी : आदि सक्ति जेहि जग उपजाया। सोउ अवतरिहि मोरि यह माया। फिर भी कुछ नहीं। सरकार के देखने पर इनकी वृत्ति दूसरी ओर जाती ही नहीं। जगदम्बा की ओर से वन्दना भी नहीं हुई। दोनों बेटों को प्रणाम करते हुए देखकर पिता ने आशीर्वाद दिया। इन्द्रलोक जाने पर भी देवताओं तथा महर्षियों का साथ होने पर भी चक्रवर्तीजी का वात्सल्य भाव ज्यों का त्यों बना हुआ है।

तात सकल तव पुन्य प्रभाऊ। जीत्यों अजय निसाचर राऊ॥
सुनि सुत बचन प्रीति अति बाढ़ी। नयन सलिल रोमावलि ठाढ़ी॥२॥

अर्थ : हे तात! यह सब आपके पुण्य का प्रभाव है जो मैंने अजेय निशाचरराज को जीता। बेटे का वचन सुन करके अत्यन्त प्रीति बढ़ी। आँखों में आँसू भर आये। रोंगटे खड़े हो गये।

व्याख्या : पिता के पुण्य से पुत्र की अभिवृद्धि होती है। इसी भाव को मन में रखकर सरकार कहते हैं कि आपके पुण्य के प्रभाव से मेरे लिए असम्भव सम्भव हो गया। निशाचरराज अजेय था। सिर काटने पर उसे नये सिर निकल आते थे। उसे मैंने मारा। उसमें मेरा पुरुषार्थ नहीं। आपके पुण्य का प्रभाव ही ऐसा है। यथा : सखि सब करब पुरारि पुन्य पयोनिधि भूप दोउ।

चक्रवर्तीजी को अत्यन्त प्रीति तो थी ही बेटे का वचन सुनकर वह और बढ़ गयी। सात्त्विक भाव हुआ। मेरे बेटे ने रावण को मारा। उसे अपना पराक्रम न मानकर मेरे पुण्य का प्रभाव मान रहा है। कैसी पितृभक्ति है। राउ सुनाइ दीन्ह बनबासू। सुनि मन भयउ न हरष हरासू : चक्रवर्तीजी वात्सल्य में लीन हैं।

रघुपति प्रथम प्रेम अनुमाना। चितै पितहि दीन्हेउ दृढ़ ज्ञाना॥
तातें उमा मोच्छ नहि पायो। दसरथ भेद भगति मन लायो॥३॥

अर्थ : रामजी ने पहिले के प्रेम का अनुमान करके देखने के द्वारा पिताजी को दृढ़ ज्ञान दिया। हे उमा! दशरथजी ने भेद भक्ति में मन लगाया था। इसलिए मोक्ष नहीं पाया।

व्याख्या : सरकार ने अनुमान किया कि इन्हें पूर्व जन्म का प्रेम बना हुआ है। मुझे ये अब भी पुत्र ही मान रहे हैं। यद्यपि ये : धर्म धुरंधर नृप ऋषि ज्ञानी हैं। पर वरदान के प्रभाव से वह ज्ञान आवृत हो जाता है। यथा : सुत बिषेक तव पद रति होऊ। मोहि बड़ मूढ़ कहौ किन कोऊ। अतः पश्यन्ती द्वारा पिता को दृढ़ ज्ञान

दिया जिसके आवृत होने की सम्भावना नहीं। वाणी की चार अवस्थायें हैं। परा पश्यन्ती मध्यमा और वैखरी। पश्यन्ती नाम ही इसलिए पड़ा है कि देखने के द्वारा अपना हृद्गतभाव पूरा का पूरा दूसरे को अवगत कराया जा सकता है। पुत्र द्वारा पिता को उपदेश मिलने में शोभा नहीं। इससे वैखरी में उपदेश नहीं दिया।

शिवजी शङ्का उठने का अवसर जानकर उमा से कहते हैं कि उमा! चक्रवर्तीजी को मोक्ष नहीं मिला। क्योंकि उन्होंने भेद भक्ति में मन लगाया था। भेदाभेद की दृष्टि से भक्ति के दो भेद हैं। एक अभेदभक्ति और दूसरी भेदभक्ति। जिन्हें तत्त्वज्ञान नहीं हुआ और शास्त्र से जानकर अहं ब्रह्मास्मि ऐसी उपासना करते हैं उनकी उपासना अभेदभक्ति है। वह फलकाल में तत्त्वज्ञान में परिणत हो जाती है और जो भेद मानकर सम्बन्धविशेष की कल्पना करके उपासना करते हैं उनकी उपासना भेदभक्ति कहलाती है। उन्हें मोक्ष नहीं मिलता। उन्हें धाम मिलता है।

सगुनोपासक मोच्छ न लेहीं। तिन्ह कहुँ रामभगति निज देहीं॥
बार बार करि प्रभुहि प्रनामा। दसरथ हरषि गए सुरधामा॥४॥

अर्थ: सगुण उपासना करनेवाले मोक्ष नहीं लेते। उन्हें रामजी अपनी भक्ति देते हैं। बार बार सरकार को प्रणाम करके दशरथजी हर्षित होकर सुरधाम गये।

व्याख्या: ब्रह्म के सगुण और निर्गुण दो रूप हैं। दोनों रूपों के पृथक् पृथक् भजन करनेवाले हैं। फलकाल में दोनों के सामने मुक्ति उपस्थित होती है। निर्गुणोपासक को मुमुक्षा होती है। अतः वे मुक्त हो जाते हैं। पर सगुणोपासक को मुमुक्षा नहीं होती। वे मुक्ति को स्वीकार नहीं करते तथापि मुक्ति बलपूर्वक आती है। यथा: राम भजत सोइ मुक्ति गोसाईं। अन इच्छित आवै बरिआईं। सगुणोपासक फिर भी मुक्ति का निरादर करते हैं। उन्हें भक्ति ही अच्छी लगती है। यथा: अस बिचारि हरि भगत सयाने। मुक्ति निरादर भगति लोभाने। तब रामजी उन्हें सिद्धा भक्ति प्रदान करते हैं। दृढ़ ज्ञान हो जाने से दशरथजी के यहाँ भी मुक्ति उपस्थित हुई। पर उन्होंने स्वीकार नहीं किया। वे सयाने भक्त थे। तब रामजी ने उन्हें सिद्धाभक्ति दी।

दृढ़ ज्ञान न मिला होता तो दशरथजी को जाने में बड़ा कष्ट होता। अब जाने के समय रामजी प्रणाम नहीं करते। क्योंकि दृढ़ ज्ञान होने से सामर्थ्य हट गया है। ऐश्वर्य का ज्ञान हो गया है। अब बेटा की दृष्टि नहीं है। प्रभु की दृष्टि है। इसलिए दशरथजी ही बार बार प्रणाम करते हैं। सिद्धाभक्ति की प्राप्ति से हर्षित होकर जहाँ से आये थे वहीं चले गये। प्रभु ने स्वयं कहा है: एह बिचारि पंडित मोहि भजहीं। पायेहुँ ज्ञान भगति नहिं तजहीं। ऐसी भक्ति अद्वैत से भी सुन्दर है।

दो. अनुज जानकी सहित प्रभु, कुसल कोसलाधीस।
सोभा देखि हरषि मन, अस्तुति कर सुर ईस॥११२॥

अर्थ : छोटे भाई तथा जानकी के सहित कोशलाधीश को कुशल देखकर तथा उनकी शोभा देखकर देवराज मन में आनन्दित होकर स्तुति करने लगे।

व्याख्या : रावण का सामना पड़ने पर कुशल रहना असाध्य व्यापार है। उसी कुशल के लिए रथ भेजा था। अब अनुज जानकी सहित सरकार को कुशल देखकर छवि देखते हैं। बारात के समय में छवि देखकर कृतकृत्य हुए हैं। यथा : रामहिं चितव सुरेस सुजाना। गौतम साप परम हित माना। इस समय युगल मूर्ति की छवि देखकर अत्यन्त हर्षित होकर स्तुति करते हैं। सोभा देखि : कर्मणा। हरषि मन : मनसा। अस्तुति कर : वाचा हर्ष है।

छं.[1] जय राम सोभा धाम। दायक प्रनत बिस्राम॥
धृत त्रोनबर सर चाप। भुज दंड प्रबल प्रताप॥१॥
जय दूषनारि खरारि। मर्दन निसाचर धारि॥
यह दुष्ट मारेउ नाथ। भए देव सकल सनाथ॥२॥

अर्थ : शोभा के धाम प्रणत को विश्राम देनेवाले रामजी की जय हो। तरकस और श्रेष्ठ धनुष और बाण धारण करनेवाले, प्रबल भुजदण्ड और प्रतापवाले हो। हे खर और दूषण के शत्रु और राक्षसी सेना के मर्दन करनेवाले! तुम्हारी जय हो। हे नाथ! आपने इस दुष्ट को मारा तो सब देवता सनाथ हो गये।

व्याख्या : देवराज को छवि देखने से बड़ा हर्ष हुआ। अतः पहिले उसी का वर्णन करते हुए जयकार करते हैं। जो सरकार को देखता है उसके मन में उनके शोभा धाम होने की भावना उठती है। देवराज भी शोभाधाम कहते हैं और राक्षसी सूर्पणखा भी : सोभा धाम राम अस नामा कहती है। सरकार एक बार भी प्रणाम करनेवाले को अपना लेते हैं। यथा : सकृत प्रणाम किये अपनाये। विभीषण के एक प्रणाम पर ही प्रसन्न होकर लंका का राज्य दे दिया। इसलिए कहते हैं कि प्रणत को विश्राम देनेवाले की जय हो।

जय राम सोभा धाम : से रूप कहा। दायक प्रनत बिस्राम : से गुण कहा। अब शौर्य कहते हैं कि युद्ध के लिए सदा सन्नद्ध रहते हैं। शर चाप तूणीर सहित ही आपका ध्यान भक्त लोग करते हैं। अब वीर्य कहते हैं कि भुजदण्ड का प्रताप बड़ा प्रबल है। तीनों लोक में ध्वनि हो रहो है : जय रघुबीर प्रबल भुजदंडा।

सरकार का व्यक्ति विशेष से कोई वैर नहीं है। उनकी कठोरता और दूषण से वैर है। यहाँ खर और दूषण शब्द में श्लेष है। खर और दूषण नाम के राक्षस को मारा। इसलिए दूषणारि खरारि हैं अथवा खर : कठोरता और दोष को नाश करनेवाले हैं। इसलिए दूषणारि खरारि कहा। अथवा खर और दूषण से देवता भयभीत रहते थे। उनके वध से सुख की प्राप्ति हुई। इसलिए दूषणारि खरारि कहा।

---

१. यह तोमर छन्द है।

ये माता पिता और देवता के न माननेवाले, साधुओं से सेवा करानेवाले निसिचर हैं। उनकी सेना का आपने मर्दन कर दिया। भाव यह कि उनका जोर टूट गया। अब रावण की ओर इङ्गित करके कहते हैं कि इस दुष्ट को जो आपने मारा इससे तो सब देवता सनाथ हो गये। भाव यह कि इसके मारे देवता अनाथ हो रहे थे। इसके ऊपर ब्रह्मदेव की भी कुछ चलती नहीं थी। यथा : ब्रह्मा सब जाना मन अनुमाना मोर कछू न बसाई। सो इसके मारे जाने से देवता लोगों ने समझ लिया कि हमारे ऊपर भी एक नाथ है जिसने हमारे भय को दूर किया।

छं. जय हरन धरनी भार। महिमा उदार अपार ॥
जय रावनारि कृपाल। किए जातुधान बिहाल ॥३॥
लंकेस अति बल गर्ब। किए बस्य सुर गंधर्ब ॥
मुनि सिद्ध खग नर नाग। हठि पंथ सबके लाग ॥४॥

अर्थ : पृथिवी के भार के हरण करनेवाले तथा उदार और अपार महिमावाले की जय हो। हे रावण के शत्रु, हे कृपालु, आपकी जय हो। आपने राक्षसों को बेहाल कर दिया। रावण को अत्यन्त बल का अभिमान था। उसने देवता और गन्धर्व सबको वश कर रक्खा था। मुनि सिद्ध मनुष्य पक्षी और नाग सबके पीछे हठ करके पड़ा था।

व्याख्या : रावण की दुष्टता को ही स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि इसके कारण अतिशय धर्म की हानि हुई। पाप के बोझ से पृथिवी दब चली। व्याकुल होकर वह देवता मुनियों के यहाँ गयी। उनका भी किया कुछ न हुआ। तब सब मिलकर ब्रह्मा के पास गये। शिवजी भी उस समाज में रहे। पर किसी का कुछ वश न चला। तब सबों ने आपको पुकारा। आपने पृथिवी का भार हरण किया। आपकी जय हो। आपकी महिमा ऐसी उदार अपार है कि किसी व्यक्ति को किसी काल में उसका थाह न मिला। यथा : अस रघुपति महिमा अवगाहा। तात कबहुँ कोउ पाव कि थाहा। यह आपकी बड़ी कृपा हुई कि आपने जगत् के रुलानेवाले रावण का वध किया। इसके कारण संसार बेहाल था। राक्षस सब सुखी थे। जैसा चाहते थे अत्याचार करते थे। जेहि बिधि होइ धर्म निर्मूला। सो सब करहिं बेद प्रतिकूला। सो कृपाल आपने ऐसी कृपा की कि संसार सुखी हो गया और निसाचर गण बेहाल हो गये। उनका कोई रक्षक न रह गया।

लङ्केश को अपने बल का बड़ा गर्व था। विभीषण से कहने लगा : कहसि न सठ अस को जग माही। भुज बल जाहि जिता मैं नाहीं। अङ्गदजी से कहने लगा : हरगिरि मथन निरखि मम बाहू। पुनि सठ कपि निज प्रभुहि सराहू। देवता गन्धर्वादि सबको वश कर रक्खा था। बेद पढ़ैं बिधि संभु सभीत पुजावन रावन सों नित आवैं। दानव देव दयावने दीन दुखी दिन दूरिहिं ते सिर नावैं। मुनि सिद्ध खग नाग सभी उससे अपनी रक्षा चाहते थे। पर वह सबके पीछे पड़ा रहता था। यथा : किन्नर सिद्ध मनुज सुर नागा। हठि सबही के पंथहि लागा।

छं. पर द्रोह रत अति दुष्ट । पायो सो फलु पापिष्ट ॥
अब सुनहु दीन दयाल । राजीव नयन बिसाल ॥५॥
मोहि रहा अति अभिमान । नहि कोउ मोहि समान ॥
अब देखि प्रभु पद कंज । गत मान प्रद दुख पुंज ॥६॥

अर्थ : वह परद्रोह में लगा रहनेवाला बड़ा दुष्ट था। उस पापी ने उसका फल पाया। हे दीनदयाल ! हे विशाल राजीवनयन ! मुझे बड़ा अभिमान था कि मेरे समान कोई नहीं है। सो सरकार के चरणकमलों के दर्शन से वह दुःख समूह का देनेवाला मान चला गया।

व्याख्या : यह रावण ऐसा दुष्ट था कि इसकी स्त्रियों ने उसके लिए रोते समय कहा : आजन्मते परद्रोहरत पापौघमय तव तनुअयं। उसका फल इस पापी ने पाया कि उसके कुल में कोई उसके लिए रोनेवाला न रह गया। यथा : रामविमुख अस हाल तुम्हारा। रहा न कुल कोउ रोवनहारा। सरकार दीनदयाल हैं। मैं अब दीन हूँ। अतः कहता हूँ। यथा : जब लगि मैं न दीन दयाल तें मैं न दास तैं स्वामी। तब लगि सब दुख सह्यौं कह्यौं नहि जद्यपि अन्तरयामी। संसार में दो बड़े अभिमानी थे : एक मैं दूसरा रावण। रावण को अपने बल का बड़ा गर्व था और मुझे शतक्रतु होने का गर्व था। संसार में मुझे छोड़कर दूसरा कोई शतक्रतु नहीं है। मेरा अमरावती में निवास है। मुझे देवताओं की सेना है। वज्र आयुध है। इत्यादि।

अब सरकार के दर्शन से वह महादुखद अभिमान चला गया। निज स्वरूप की प्राप्ति हुई। यथा : मम दर्सन फल परम अनूपा। जीव पाव निज सहज सरूपा।

छं. कोउ ब्रह्म निर्गुन ध्याव। अव्यक्त जेहि स्रुति गाव ॥
मोहि भाव कोसल भूप। श्रीराम सगुन सरूप ॥७॥
बैदेहि अनुज समेत। मम हृदय करहु निकेत ॥
मोहि जानिये निज दास। दे भक्ति रमानिवास ॥८॥

अर्थ : कोई निर्गुण ब्रह्म का ध्यान करता है। जिसे वेद अव्यक्त कहकर गान करता है। पर मुझे तो कोशलेन्द्र श्रीराम का सगुण रूप अच्छा लगता है। वैदेही और लक्ष्मण सहित मेरे हृदय में रहिये। मुझे निजदास करके जानिये। हे रमानिवास भक्ति दीजिये।

व्याख्या : चित्त का आश्रय ब्रह्म है। वह स्वभाव से ही दो प्रकार का है। मूर्त और अमूर्त। अथवा अपर और पर। यथा : आश्रयश्चेतसो ब्रह्म द्विधा तच्च स्वभावतः। भूप मूर्तममूर्तंच परंचापरमेव च : वि. ७.४७। अर्थात् निर्गुण ब्रह्म पर रूप है और सगुण ब्रह्म अपर रूप है। इन्द्र भगवान् कहते हैं कि कोई निर्गुण ब्रह्म का ध्यान करते हैं क्योंकि अव्यक्त में आसक्त चित्तवाले पुरुष को क्लेश अधिक है।

देहवालों को अव्यक्त विषयक गति दुःखपूर्वक होती है। क्लेशोऽधिकतरस्तेषामव्यक्तासक्तचेतसाम्। अव्यक्ता हि गतिर्दुःखं देहवद्भिरवाप्यते। गीता। इसलिए बहुत कम लोग निर्गुण ब्रह्म का ध्यान करते हैं। भावार्थ यह कि इन्द्र भी निर्गुण ब्रह्म का ध्यान नहीं करते। क्योंकि अव्यक्त रूप वेदमात्र से ही जाना जाता है : तं त्वौपनिषदं पुरुषं पृच्छामि। वे कहते हैं कि मुझे तो कोसलभूप श्रीराम का सगुण स्वरूप ही अच्छा लगता है : यस्यावतार रूपाणि समर्चन्ति दिवौकसः। अपश्यन्तः परं रूपं नमस्तस्मै महात्मने। विष्णु पुराणे। जिसके अवतार रूपों का देवता पूजा करते हैं क्योंकि उनके रूप को नहीं देख सकते। उस महात्मा को नमस्कार है। श्रीराम कहने से परशुराम और बलराम का व्यावर्तन किया। इन्द्र को अवतारों में भी श्रीरामावतार का स्वरूप प्रिय है। प्रार्थना करते हैं कि वैदेही और लक्ष्मण सहित मेरे हृदय को घर बनाइये। मुझे निज दास जानिये। क्योंकि आपको निज दास अत्यन्त ही प्रिय हैं। यथा : तेहि ते पुनि मोहि प्रिय निज दासा। जेहि गति मोरि न दूसरि आसा। अन्त में भक्ति प्राप्ति के लिए प्रार्थना करते हैं।

छं.[१] दे भक्ति रमानिवास त्रासहरन सरन सुख दायकं।
सुखधाम राम नमामि काम अनेक छबि रघुनायकं॥
सुरबृंद रंजन द्वंद भंजन मनुजतनु अतुलित बलं।
ब्रह्मादि संकरसेव्य राम नमामि करुना कोमलं॥

अर्थ : हे रमा निवास! भक्ति दीजिये। आप त्रास के हरण करनेवाले शरण में आये हुए को सुख देनेवाले हैं। सुखधाम हैं। आप में अनेकों काम की छवि है। ऐसे राम रघुनायक को मैं नमस्कार करता हूँ। आप सुर गण को सुख देनेवाले द्वन्द के नाश करनेवाले और मनुष्य शरीर में भी अतुलित बलवाले हैं। ब्रह्मा और शंकर से सेव्य हैं और करुणा से कोमल हैं। ऐसे राम को मैं नमस्कार करता हूँ।

व्याख्या : जाकी कृपा कटाक्ष सुर चाहत चितव न सोइ। राम पदारविंदति करति सुभावहिं खोइ। अतः रमा निवास कहकर महा ऐश्वर्य कहा। भजनीय के गुण कहते हैं कि आप त्रासहरण हैं। आर्तजनों के आश्रय हैं। शरणागत को सुख देनेवाले हैं। आपने आर्त बिभीषण का त्रास भी हरण किया और उसे लंकापति बना दिया। सुख के धाम तो आप ही हैं। आपके ही सुख के लेश से संसार सुखी होता है। आपका सौन्दर्य ऐसा है कि जिसके सामने कोटि काम का भी सौन्दर्य फीका है। आप देवताओं की विपत्ति टारनेवाले हैं। आप द्वन्द्व के नाश करनेवाले हैं। द्वन्द ही बड़ी भारी विपत्ति है। मैं स्वयं मान के नाश का सुख अनुभव कर रहा हूँ। शरीर मनुष्य का धारण किये हुए हैं और बल का तौल नहीं। आपकी करुणा ऐसी कोमल है कि सर्वशक्तिमान् होने पर भी अपने भक्तों के लिए मनुष्य शरीर धारण किया।

---

१. हरिगीतिका छन्द है।

आप शंकर और ब्रह्मा से भी सेवित हैं। मैं आपको नमस्कार करता हूँ। भाव यह है कि शरण्य में जो गुण ईप्सित हैं सरकार में वे सब पूर्ण उत्कर्ष रूप से हैं।

दो. अब करि कृपा बिलोकि मोहि आएसु देहु कृपाल।
काह करौं सुनि प्रिय बचन बोले दीन दयाल ॥११३॥

अर्थ : हे कृपालु ! अब कृपा करके मुझे देखकर आज्ञा दीजिये कि मैं क्या करूँ ? इस प्रिय वचन को सुनकर दीनदयाल बोले।

व्याख्या : इन्द्रजी ने अपनी स्तुति में कहा : अब सुनहु दीनदयाल। सो दीन दयाल ने इन्द्र को दीन देखकर दया की। अर्थात् उनके प्रार्थनानुसार उनकी ओर कृपा दृष्टि से देखा और उनको सेवा की स्वीकृति के रूप से उन्हें आज्ञा दे रहे हैं। क्योंकि : आज्ञा सम न सुसाहिब सेवा।

यह गुणग्राम ज्येष्ठा नक्षत्र है। इसमें तीन तारे चमकते हैं। आकार कुण्डल सा है। इस स्तुति में १. प्रभु का हृदय में निवास माँगना २. भक्ति माँगना ३. आज्ञा माँगना। ये ही तीन तारे हैं। राम शोभाधाम से स्तुति प्रारम्भ करके राम नमामि से उपसंहार करने से कुण्डलाकार कहा। आदि अन्त के मिलने से वर्तुल रूप हो जाता है। इसमें अपने मान का नाश कहा। यथा : गत मान प्रद दुख पुंज। इससे : हरन मोह तम दिनकर कर से। यह फलस्तुति सार्थक हुई।

सुनु सुरपति कपि भालु हमारे। परे भूमि निसिचरन्ह जे मारे ॥
मम हित लागि तजे इन्ह प्राना। सकल जिआउ सुरेस सुजाना ॥१॥

अर्थ : हे देवराज सुनो। हमारे बन्दर और भालु जिन्हें राक्षसों ने मार डाला है भूमि पर पड़े हुए हैं। मेरे हित के लिए इन्होंने प्राण त्याग किया है। हे सुरेश सुजान इन सबको जिलाओ।

व्याख्या : सुरपति सम्बोधन का भाव यह कि आप अमरों के राजा हैं। अमृत पर अधिकार है। आपके योग्य कार्य दिया जाता है। संग्राम में राक्षसों के मारे हुए हमारे बन्दर भालु खेत आये हैं : राम कहैं जेहि आपनो तेहि भजु तुलसीदास। हम सम पुन्य पुंज जग थोरे। जिन्हहि रामु जानत करि मोरे। इत्यादि उक्तियों से उन महा भाग्यवानों की महा महिमा कहा है। जिन्हें रामजी अपना समझते हैं। ऐसे भाग्यवान् वे बानर भालु हैं जो संग्राम में काम आये हैं।

मदीय होने का कारण कहते हैं कि इन्होंने मेरे लिए प्राण परित्याग किया। पत्र, पुष्प, फल, तोय अर्पण करनेवाले तो बहुत हैं। पर प्राण अर्पण करनेवाले तो ये बन्दर भालु हैं। इन्हें मेरा हित प्रिय था। अपना प्राण प्रिय नहीं था।

अतः इन्हें प्राण प्रसाद रूप से मिलना चाहिए। आप सुरेश हैं : इन्हें जिलाने में समर्थ हैं और सुजान हैं। समझ सकते हैं कि अपने आश्रितों की रक्षा मेरा परम कर्तव्य है।

सुनु खगेस प्रभु कै यह बानी । अति अगाध जानहि मुनि ग्यानी ॥
प्रभु सक त्रिभुवन मारि जियाई । केवल सक्रहिं दीन्हि बड़ाई ॥२॥

अर्थ : हे गरुड़जी ! प्रभु की यह वाणी अत्यन्त अगाध है । इसे ज्ञानी मुनि जानते हैं । प्रभु तीनों भुवन को मारकर जिला सकते हैं । उन्होंने केवल इन्द्र को बड़ाई दी ।

व्याख्या : भुसुण्डिजी गरुड़ से कहते हैं कि प्रभु होकर ऐसी वाणी बोलते हैं मानो उन्हें मारने जिलाने की शक्ति ही नहीं है । अतः इन्द्र से वरदान माँगकर बन्दर भालुओं को जिलाकर बन्दर भालुओं के ऋण से उऋण होना चाहते हैं । परन्तु इसका बड़ा गहरा अर्थ है । जिसे ज्ञानी मुनि ही समझ सकते हैं । जितना प्रसङ्ग से जाना जाता है । उतना लिखा जा रहा है । सरकार अपने मारने जिलाने की शक्ति को जनाना नहीं चाहते । जिसमें बन्दर भालुओं का यश फीका न पड़ने पावे । रावण वध से इन्द्र कृतज्ञ हैं । अतः उनसे बन्दर भालुओं के जिलाने का कार्य लेकर उन्हें ऋणी होने के संकोच से मुक्त करना चाहते हैं । इन्द्र की महिमा बढ़ाना चाहते हैं । बन्दर और रीछ देवताओं के अंश थे । अतः उनका उपकार देवराज के हाथ से कराना चाहते हैं । ज्ञानी मुनि ही समझ सकते हैं : यथा अनेक भेष धरि नृत्य करे नट कोइ । सोइ सोइ भाव दिखावै आपुन होइ न सोइ । यह भी सरकार का अभिनय है । सरकार तीनों भुवन को मार सकते हैं और फिर उसे जिला सकते हैं । इसमें उन्हें कोई आयास नहीं है । बन्दर भालुओं को जिलाना उनके लिए कौन सी बड़ी बात थी ? सरकार की इच्छा केवल इन्द्र को बड़ाई देने की थी ।

सुधा बरषि कपि भालु जिआए । हरषि उठे सब प्रभु पहिं आए ॥
सुधा बृष्टि भै दुहु दल ऊपर । जिए भालु कपि नहि रजनीचर ॥३॥

अर्थ : अमृत की वर्षा करके बन्दर भालुओं को जिला दिया । सब हर्षित होकर उठे और प्रभु के पास आये । अमृत की वर्षा तो दोनों दलों पर हुई पर बन्दर भालु ही जीये । राक्षस नहीं जीये ।

व्याख्या : इन्द्र ने अमृत की वर्षा कर दी और बन्दर भालु जी उठे पूरे स्वस्थ होकर । जैसे कोई सोकर उठता हो । सब बड़े प्रसन्न होकर प्रभु के पास आगये । जितनी बड़ी वानरी सेना आयी थी फिर उतनी ही बड़ी हो गयी । एक बन्दर या भालु कम न हुए । पूरे समराङ्गन में अमृत की वर्षा हुई । क्योंकि जहाँ राक्षस गिरे थे वही बन्दर भालु भी गिरे थे । परन्तु अमृत की शक्ति ने बन्दर भालुओं पर काम किया राक्षसों पर नहीं काम किया । अतः बन्दर भालु जी उठे । राक्षस मरे ही पड़े रह गये ।

रामाकार भए तिन्हके मन । मुक्त भए छूटे भव बंधन ॥
सुर अंसिक सब कपि अरु रीछा । जिए सकल रघुपति की ईछा ॥४॥

अर्थ : उनके मन रामाकार हो गये थे। वे रण में शरीर त्यागकर मुक्त हो गये। उनका भव बन्धन छूट गया। बन्दर भालु देवताओं के अंश थे। वे रामजी की इच्छा से जी गये।

व्याख्या : राक्षस सरकार को वैर भाव से स्मरण करते थे। इस भांति उनका मन रामाकार हो गया था। तिस पर संग्राम में वे शस्त्रपूत होकर मरे थे। अतः वे ब्रह्मपद को प्राप्त हो गये थे। अब वे लौट नहीं सकते। अतः नहीं जी सके।

बन्दर भालु भी प्रेम से स्मरण करनेवाले थे। उनके मन भी रामाकार थे। उन्होंने भी रण में शरीर छोड़ा था। पर वे ब्रह्मपद को नहीं प्राप्त हुए। क्योंकि देवांश थे। यावदधिकार अधिकारी की मुक्ति नहीं होती। तिसपर सरकार की इच्छा थी कि मेरे सैनिक एक भी कम न होने पावें। इसलिए जो उठे। भाव यह कि जिलाने मारने में अमृत या विष समर्थ नहीं है। भगवदिच्छा से अमृत भी विष हो जाता है और विष भी अमृत हो जाता है।

राम सरिस को दीन हितकारी। कीन्हे मुकुत निसाचर झारी ॥
खल मलधाम कामरत रावन। गति पाई जो मुनिबर पावन ॥५॥

अर्थ : रामजी के समान दीनहितकारी कौन होगा जिसने समस्त निशाचरों को मुक्त कर दिया। यह रावण खल मलधाम और कामरत था। सो उसने ऐसी गति पायी जिसे मुनि नहीं पाते अथवा जिसे पवित्र मुनि पाते।

व्याख्या : उमा राम सम हित जग माहीं। गुरु पितु मातु बंधु प्रभु नाहीं। सरकार सबके हित हैं और विशेष करके दीनहित हैं। जितने राक्षस युद्ध में मारे गये सभी को सरकार ने मुक्ति दी। उमा राम मृदुचित करुनाकर। बैर भाव सुमिरत मोहि निसिचर। देहि परम भगति सो जिय जानी। अस कृपालु को कहहु भवानी।

तिनमें रावण तो सबसे बढ़कर था। खल होने से कर्मकाण्ड से विमुख था। मलधाम होनेसे ज्ञान काण्ड से विमुख था। कामरत होने से उपासना काण्ड से विमुख था। इसके सन्तरण का कोई उपाय ही नहीं था। उसे सरकार ने ऐसी गति दी जो श्रेष्ठ मुनियों को दुर्लभ है। यथा : तासु तेज समान प्रभु आनन। हरषे देखि संभु चतुरानन।

दो. सुमन बरखि सब सुर चले, चढ़ि चढ़ि रुचिर बिमान।
देखि सुअवसर राम पहिं, आए संभु सुजान ॥

अर्थ : फूलों की वर्षा करके सब देवता लोग सुन्दर सुन्दर विमानों पर चढ़कर चले। तब सुजान शिवजी सुअवसर देखकर रामजी के पास आये।

व्याख्या : आए देव सदा स्वारथी : कहकर कवि ने यह दिखलाया था कि देवता लोग आकाश से उतरकर पृथिवी पर सरकार के पास आये। स्तुति की। फूलों की वर्षा की। अब फिर अपने अपने सुन्दर सुन्दर विमानों पर चढ़कर जाने

लगे। तब सुजान शिवजी सुअवसर देखकर आये। सीताहरण के समय कुअवसर जानकर, सन्निकट पहुँच जानेपर भी भेंट नहीं की। रावण ने मनुष्य के हाथ से अपना मरण माँगा था। शिवजी के जाने से सरकार ने गुप्तरूपसे अवतीर्ण होने का भेद खुल जाता। अतः भेंट करने का वह उपयुक्त समय नहीं था। अब रावणवध हो चुका। ब्रह्मादि देवता प्रत्यक्ष करके स्तुति कर रहे हैं। अतः अब गोपन का कारण न रह गया और परमानन्द का अवसर प्राप्त है। अतः सुजान शम्भु सुअवसर देखकर आये।

दो. परम प्रीति कर जोरि जुग, नलिन नयन भरि बारि।
पुलकित तन गदगद गिरा, बिनय करत त्रिपुरारि ॥११४॥

अर्थ : बड़ी भारी प्रति से दोनों हाथ जोड़कर और कमल से आँखों में आँसू भरकर पुलकित शरीर और गद्‌गद कण्ठ से त्रिपुरारि स्तुति करते हैं।

व्याख्या : परम प्रीति : द्वारा मन से, कर जोरि जुग नलिननयन भरि वारि पुलकित तन : द्वारा तन से : तथा गदगद गिरा विनय करत द्वारा वचन से प्रेम कवि ने वर्णन किया। त्रिपुर को जिस देवाधिदेव महादेव ने वध किया वे स्तुति कर रहे हैं।

मामभिरक्षय रघुकुल नायक। धृत बर चाप रुचिर कर सायक॥
मोह महा धन पटल प्रभंजन। संसय बिपिन अनल सुर रंजन ॥१॥

अर्थ : हे रघुकुलनायक ! हाथ में श्रेष्ठ धनुष और सुन्दर बाण धारण किये महामोह रूपी घन समूह के लिए वायुरूप, संशयरूपी वन के लिए अग्निरूप मेरी रक्षा कीजिये।

व्याख्या : रघुकुलनायक कहने का भाव यह कि रघुकुल में माँगनेवाले को नहीं : नहीं करते और आप उस कुल के नायक हैं। जो माँगता हूँ उसे दीजिये। आपने रावण वध करके देवताओं की रक्षा की। पर मेरे लिए मोहरूपी रावण है। उससे मेरी रक्षा कीजिये। यथा : मोहदसमौलि : विनय०। यदि कहिये कि अभी युद्ध करके श्रान्त हैं। इस पर कहते हैं कि युद्ध के लिए सन्नद्ध तो हैं। सुन्दर धनुष बाण धारण किये हुए हैं। दशानन को एक सिर और दो बाहु थे। पर प्रभाव विस्तार के समय दस सिर और बीस भुजा हो जाते थे। इसी भाँति प्रभाव विस्तार के समय मोह को भी संशयादि अनेक सिर भुज हो जाते हैं। महामोह महाघन पटल है। ज्ञान रवि को ढकने में समर्थ है। घनपटल का नाश वायु द्वारा ही होता है। इसी भाँति महामोहरूपी घन समूह के नाश में आप ही समर्थ हैं। उभय कोटि अवलम्बी ज्ञान को संशय कहते हैं। संशय बड़ा दुःखदायी है : नायं लोकोस्ति न परो न सुखं संशयात्मनः। अतः संशय को वन कहा। इसमें पड़कर पथिक पथभ्रष्ट होकर महा दुःख पाता है। इस संशयरूपी वन के नाश के लिए आप दावानल हैं।

सगुन अगुन गुन मंदिर सुंदर। भ्रम तम प्रबल प्रताप दिवाकर ॥
काम क्रोध मद गज पंचानन। बसहु निरंतर जन मन कानन ॥२॥

अर्थ : सगुण, निर्गुण, गुणों के घर, सुन्दर, भ्रमरूपी अन्धकार के लिए प्रबल प्रतापवाले सूर्य, काम, क्रोध, मदरूपी हाथियों के लिए सिंह रूप, सदा भक्तों के मन रूपी वन में निवास कीजिये।

व्याख्या : आप सगुण ब्रह्म होते हुए भी निर्गुण हैं। सुन्दर अर्थात् कल्याण विधायक गुणों के घर हैं। सगुण ब्रह्म में तीनों गुणों का समावेश है। परन्तु शुद्ध सत्त्व गुण का आश्रय होने से सरकार सम्पूर्ण कल्याण गुणगण के मन्दिर हैं। भ्रम ज्ञानका आवरक है। इसलिए उसकी उपमा तम से दिया गया। उसके लिए आप प्रबल प्रतापवाले सूर्य हैं। प्रबल प्रताप दिवाकर कहने का भाव यह है कि वहाँ भ्रम के लेश का भी ठहरना असम्भव है। भक्तों का मन वन है। इसमें काम क्रोध और मदरूपी हाथी रहते हैं। इस वन में आप सिंहरूप से सदा बसिये। भाव यह कि जिस वन में सिंह बसता है उसे हाथी छोड़ देते हैं। काम क्रोधादि दोष हाथीरूप हैं। क्योंकि बड़े बलवान् हैं। ये भक्तों के हृदय को दूषित कर देते हैं। इनके लिए आप सिंह हैं। आपके निरन्तर निवास से भक्त काम क्रोधादि से सदा के लिए निर्भय हो जाता है।

बिषय मनोरथ पुंज कंज बन। प्रबल तुषार उदार पारमन ॥
भव बारिधि मंदर परमं दर। वारय तारय संसृति दुस्तर ॥३॥

अर्थ : विषय मनोरथ समूह कमल का वन है। हे मन से परे! उसके लिए आप उदार तुषार : पाला हैं। हे संसार समुद्र मन्थन के लिए मन्दररूप! बड़े भारी भय को निवारण कीजिये और अपार संसार से पार कीजिये।

व्याख्या : विषय के मनोरथ देखने में बड़े रमणीय हैं। इसलिए उसे कमल वन कहा। आप मन से परे हैं। आप तक मनोरथ की गन्ध नहीं। इतना ही नहीं आप ऐसे उदार हैं कि आपकी कृपा से सम्पूर्ण विषय मनोरथों का ऐसा नाश होता है जैसा पाला पड़ने से सम्पूर्ण कुञ्ज वनों का नाश हो जाता है।

संसार समुद्र है। इसमें अमृत विष सन्त खल आदि मिले जुले हैं। यथा : बंदौं बिधिपद रेनु भव बारिधि जेहि कीन्ह जहँ। संत सुधा ससि धेनु प्रगटे खल विष बारुनी। बिना मन्थन के सार निकल नहीं सकता। अतः सागर का मन्थन किया गया। सागर के मन्थन योग्य मन्थनदण्ड मन्दर पर्वत था। उसी के द्वारा मन्थन करने से अमृत प्रकट हुआ। इसी भाँति संसार सागर का मन्थन करके मुक्तिरूपी अमृत प्रकट करने में सरकार ही समर्थ हैं। जब देवताओं को असुरों से बड़ा भय उत्पन्न हुआ तब समुद्र मन्थन की योजना उठायी गयी। उसी से अन्ततः देवताओं का भय दूर हुआ। अतः संसार सागर के मन्दर रूप भगवान् से प्रार्थना करते हैं कि महाभय को दूर कीजिये।

उसीको स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि संसृति सन्निपातका दुःख अत्यन्त दारुण है। उसे कृपा करके नष्ट कीजिये। यथा : संसृति सन्निपात दारुन दुख बिनु हरि कृपा न नासै।

स्याम गात राजीव बिलोचन। दीनबंधु प्रनतारति मोचन ॥
अनुज जानकी सहित निरंतर। बसहु राम नृप मम उर अंतर ॥४॥
मुनि रंजन महिमंडल मंडन। तुलसिदास प्रभु त्रास बिखंडन ॥५॥

अर्थ : श्याम शरीरवाले, कमल ऐसे नेत्रवाले, दीनबन्धु प्रणत की आर्ति को हरण करनेवाले राजा राम मेरे हृदय में छोटे भाई और जानकी के सहित सदा बसो। हे तुलसिदास के प्रभु ! आप मुनिगणको सुख देनेवाले हैं और पृथिवी की शोभा हैं तथा भय के दूर करनेवाले हैं।

व्याख्या : श्याम शरीर स्वभाव से ही सुन्दर है। मङ्गलमय है। अति पावन को भी पवित्रता देनेवाला है। इसी भाँति सरकारका राजीव : कमल नयन में कृपा दृष्टि रहती है। यह दृष्टि महा असम्भवको सम्भव करनेवाली है। यथा : कृपा दृष्टि कपि भालु बिलोके। भये प्रबलरन रहहिं न रोके। आप दोनोंके कुअवसर पर सहाय होते हैं। आपके नमस्कार करनेवाले की आर्ति नहीं रह जाती। आपके प्रणाम की महा महिमा है। अब सरकार वन छोड़कर राज्य पर जानेवाले हैं। अतः कहते हैं कि हे राजा राम ! आप लक्ष्मण और जानकी सहित मेरे हृदयमें बास कीजिये। भाव यह कि जिस त्रिकोण की प्रार्थना करके देवता रावण के भय से विनिर्मुक्त हुए उसी त्रिकोण को शंकर भगवान् हृदय में बसाने की प्रार्थना करते हैं। यथा :

हेमाभया द्विभुजया सर्वालंकृतया चिता।
श्लिष्टः कमलधारिण्या पुष्टः कोशलजात्मजः॥
दक्षिणे लक्ष्मणेनाथ सधनुष्पाणिना पुनः।
हेमाभेनानुजेनैव तदा कोणत्रयं भवेत्॥
एवं त्रिकोणरूपं स्यात् तं देवा ये समाययुः।
स्तुतिं चक्रुश्च जगतः पतिं कल्पतरौ स्थितम्॥

अर्थ : सुवर्ण के रंगवाली, दो भुजावाली, सब आभूषणों से आभूषित, कमल धारण किये हुए चित् शक्तिसे आश्लिष्ट कौसल्याके पुत्र पुष्ट रामजी। उनके दक्षिण में स्वर्ण वर्ण धनुष हाथ में लिये हुए उनके छोटे भाई लक्ष्मणजी। इस भाँति त्रिकोण हुआ। उसी के देवता शरण में गये। मुनिरंजन महि मण्डल मण्डन। तुलसीदास प्रभु त्रास विखंडन। इस अर्धाली का अन्वय आगे के दोहे के साथ है। रावण वध से मुनि सुखी हुए। उनका त्रास जाता रहा और पृथिवी का बड़ा भारी रोग दूर हो गया। अतः महिमण्डल शोभित हो गया। रोगी की सुन्दरता नष्ट हो जाती है। स्वस्थ होने पर फिर लौट आती है। अथवा सरकार पृथिवी के हाररूप हैं। यथा : इंद्रनील हाटक मुकतामनि जनु पहिरे महि हार। इसलिए महिमण्डल मण्डन हैं। इन विशेषणों से सम्बोधन करके कहते हैं।

दो. नाथ जबहि कोसलपुरी, होइहि तिलकु तुम्हार ।
कृपासिंधु मैं आउब, देखन चरित उदार ॥११५॥

अर्थ : हे नाथ ! जब अयोध्या में आपका राज्याभिषेक होगा तब हे कृपा-सिन्धु मैं उस उदार चरित को देखने आऊँगा ।

व्याख्या : आप अखिल लोक के नाथ हैं । मुनिरंजन हैं । महिमण्डल मण्डन हैं । त्रास विखण्डन हैं । आप कृपासिन्धु हैं । इतनी कृपा है कि ऐसे महामहिम होने पर भी अयोध्यामें अपना राज्याभिषेक स्वीकार करेंगे । अखिल लोकाधिपति होकर भी अयोध्याधिपति बनेंगे । इस उदार चरित को देखने की मुझे बड़ी लालसा है । सो उसे देखने के लिए मैं आऊँगा । और देवताओं की स्तुति हो चुकी । वे अभिषेक के समय नहीं आवेंगे । परन्तु शंकर भगवान् उस समय आने की आज्ञा माँगते हैं ।

यह शिवजी की स्तुति मूल नक्षत्र है । इसमें दश तारे चमकते हैं । १. महामोह २. संशय ३. भ्रम ४. कामादि ५. विषय मनोरथ ६. भव ७. भय ८. संसृति ९. आर्ति १०. त्रास का नाश ही दसों तारों की चमक है । इस स्तुति में फिर आने की पूँछ लगी हुई है । इसलिए यह पुच्छाकार है । सम्पूर्ण स्तुति में सेवक की रक्षा ही कही गयी है । इसलिए इसकी फलस्तुति : सेवकसालि पाल जलधर से कही गयी है ।

करि बिनती जब संभु सिधाये । तब प्रभु निकट बिभीषनु आये ॥
नाइ चरन सिरु कह मृदु बानी । बिनय सुनहु प्रभु सारंगपानी ॥१॥

अर्थ : विनती करके जब शिवजी चले गये । तब सरकार के पास विभीषणजी आये । चरणोंमें सिर झुकाया और कोमल वाणी बोले कि शार्ङ्गपाणि प्रभु मेरी विनती सुनो ।

व्याख्या : शिवजी की स्तुति अन्त में होती है । शिवजी के स्तुति करके चले जाने पर स्पष्ट हो गया कि देवताओं की स्तुति समाप्त हो गयी । तब सरकार के निकट विभीषणजी गये । जब तक देवता स्तुति करते थे तब तक दूर खड़े थे । कुछ कहना है इसलिए प्रणाम किया और कहा कि मेरी विनती सुनिये । शार्ङ्गपाणि सम्बोधन का भाव यह कि अभी तक आप धनुष धारण किये हुए हैं । युद्ध के लिए सन्नद्ध हैं । मेरी विनय सुनिये । अब विश्राम करिये । अथवा शार्ङ्गपाणि से साक्षात् महा विष्णु होना कहा । अपना घर पवित्र करने की प्रार्थना करनेवाले हैं ।

सकुल सदल प्रभु रावन मार्यो । पावन जसु त्रिभुवन बिस्तार्यो ॥
दीन मलीन हीन मति जाती । मो पर कृपा कीन्हि बहु भाँती ॥२॥

अर्थ : कुल और सेना के सहित आपने रावण को मारा और अपने पवित्र यश का तीनो भुवन में फैला दिया । मुझ दीन मलिन बुद्धहीन और जातिहीन पर बहुत प्रकार से कृपा किया ।

व्याख्या : जो कुछ करना था। सो आप सब कर चुके। रावण को कुल और सेना सहित मार चुके। इस भाँति निसिचर हीन करउँ महि : इस प्रतिज्ञा को पूरी कर चुके। विभीषणजी अपने को रावण के कुल का नहीं मानते। क्योंकि तदीय हो चुके हैं। विभीषणजी कहते हैं कि आपके इस अद्भुत पराक्रम का पवित्र यश तीनों लोक में फैल गया। यथा : जय जय धुनि पूरी ब्रह्मांडा। जय रघुवीर प्रबल भुजदंडा। यह यश पावन है : क्योंकि इसे सुनने से गाने से कहने से और समझने से परमपद की प्राप्ति होती है। विभीषणजी कार्पण्य दिखाते हुए अपने को मन से दीन कर्म से मलिन और बुद्धि तथा जाति से हीन कहते हैं। ऐसे के ऊपर कोई कृपा नहीं करता। सो सरकार ने मुझ पर बहुत भाँति से कृपा की। मुझे अपना सखा बनाया। मेरे लिये साँगी सहा। भक्ति का वरदान दिया। लंका का राजा बनाया। इस भाँति बहुत प्रकार से कृपा की। अब तो लका मेरा घर हुआ। रावण का नहीं रह गया। अब इतनी कृपा और कीजिये कि उसे अपने चरणरज से पवित्र कीजिये और वहाँ राजोपचार के साथ स्नान कीजिये। जिसमें लड़ाई की थकावट मिट जाय। विभीषणजी को वह समय याद है जब कि सरकार ने विशेष रूप से श्रान्त होकर उनकी ओर देखा था।

अब जन गृह पुनीत प्रभु कीजे। मज्जन करिअ समर स्रम छीजै ॥
देखि कोस मंदिर संपदा। देहु कृपाल कपिन्ह कहुँ मुदा ॥३॥

अर्थ : अब इस दास के घर को सरकार पवित्र करें और समर के श्रमापनोदनार्थ मङ्गल स्नान करें। कोष सम्पदा और घरों को देखकर प्रसन्न होकर बन्दरों को दीजिये।

व्याख्या : लंका मेरा घर तो हुआ। पर उसको अपवित्रता न गयी। कहुँ महिष मानुष धेनु अज खर खल निसाचर भच्छहीं। सरकार के चरणों के चले जाने से वह पवित्र हो जायगा। सरकार थके हुए हैं : बिना मङ्गल स्नान के थकावट शीघ्र दूर न होगी और यथार्थ रूप से मङ्गल स्नान तो वहीं पर चलने से होना सम्भव है। वहाँ स्नानगृह आदि सब सामग्री प्रस्तुत है। तीसरी बात यह है कि सरकार ने न अभी कोष का निरीक्षण किया न वहाँ के घरों को ही देखा न वह सम्पदा ही देखी जो रावण ने तीनों लोकों से ला-लाकर इकट्ठी कर रक्खी है। अतः उनका निरीक्षण करें और उन्हें वानरी सेना में वितरण करें। बन्दर लोग घर जायगें तो लोग पूछेंगे कि लंका विजय में तुम्हें क्या मिला ? अतः वे खाली हाथ घर न जाँय। यहाँ सम्पदा का कोई घाटा नहीं।

सब बिधि नाथ मोहि अपनाइअ। पुनि मोहि सहित अवधपुर जाइअ ॥
सुनत बचन मृदु दीन दयाला। सजल भये द्वौ नयन बिसाला ॥४॥

अर्थ : हे नाथ ! मुझे सब प्रकार से अपनाइये और फिर मेरे साथ अयोध्या

जाइये। कोमल वचन सुनते ही दीन दयाल रामजी की दोनों बड़ी-बड़ी आँखों में जल भर आया।

व्याख्या : सरकार ने बहुत प्रकार से अपनाया पर सब भाँति नहीं अपनाया। जब मेरी सम्पत्ति का उपयोग अपनी सम्पत्ति की भाँति नहीं किया तब मैं अपने को पूरी तरह से अपनाया हुआ कैसे मानूँ। तत्पश्चात् अपने साथ मुझे अयोध्या ले चलिये जिसमें वहाँ भी मेरा सबसे परिचय हो जाय तब सम्बन्ध दृढ़ होगा।

नाइ चरन सिर कह मृदुबानी से उपक्रम और सुनत बचन मृदु से उपसंहार। सरकार दीन दयाल हैं। नेत्रों में जल भर आया। सरकार विभीषण का सब कहा करते हैं पर यह नहीं कर सकते। एक इनसे भी बड़ा प्रेमी दुःखी है महादीन हो रहा है। उसके स्मरण से सरकार के नेत्रों में जल आ गया।

दो. तोर कोस गृह मोर सब सत्य वचन सुनु भ्रात।
भरत दसा सुमिरत मोहि निमिष कलप समजात॥
तापस वेष गात कृस जपत निरंतर मोहि।
देखौं बेगि सो जतनु करु सखा निहोरौं तोहि॥
बीते अवधि जाउँ जौं जियत न पावौं बीर।
सुमिरत अनुज प्रीति प्रभु पुनि पुनि पुलक सरीर॥११६॥
करेहु कलप भर राजु तुम्ह मोहि सुमिरेहु मन माँहि।
पुनि मम धाम पाइहहु जहाँ संत सब जाहि॥

अर्थ : हे भाई ! तेरा कोष और घर सब मेरा है। यह बात सच है पर भरत की दशा का स्मरण करके मुझे एक पल कल्प के समान बीत रहा है। तपस्वी का वेष धारण किये हुए और दुर्बल शरीर जो मेरा निरन्तर जप कर रहा है : ऐसे भरत को मैं जल्दी देखूँ ऐसा उपाय करो। मैं तुम्हारा निहोरा करता हूँ। अवधि बीतने पर यदि जाऊँगा तो भाई को जीता न पाऊँगा। भरत की प्रीति को स्मरण कर प्रभु बार बार पुलकायमान हो रहे हैं। तुम पूरे कल्प भर राज्य करना और मुझे मन में स्मरण करना तत्पश्चात् तुम मेरे धाम को प्राप्त होगे। जहाँ सब सन्त लोग जाते हैं।

व्याख्या : सरकार कहते हैं कि सब प्रकार से अपनाने में जो त्रुटि है, उसे मैं मिटाये देता हूँ। तुम्हारा घर और सम्पत्ति सब मेरी है। मैंने सब स्वीकार कर लिया। मैं तुम्हें भाई मानता हूँ। मेरा वचन सत्य है। रामो द्विर्नैव भाषते। परन्तु तुम्हारे घर जाना मङ्गल स्नान करना नहीं हो सकता। मुझे भरत की दशा का स्मरण हो रहा है। मुझे समय एकदम नहीं है। एक पल मेरे लिए कल्प हो रहा है मुझे भाई के दर्शन की प्यास है। भरतजी का दैन्य कहते हैं : भरतजी ने सब भोग त्याग रक्खा है। तपस्वी वेष बनाये विरह व्यथा से दुर्बल मेरा ही स्मरण रात

दिन कर रहे हैं। यथा : बैठे देखि कुसासन जटामुकुट कृसगात। राम राम रघुपति जपत स्रवत नयन जलजात। मुझे विश्राम भरत के शीघ्र दर्शन में है और मैं इतना शीघ्र वहाँ पहुँच नहीं सकता। अतः तुम्हारा निहोरा मुझ पर है : ऐसा उपाय करो कि मैं भरत को शीघ्रातिशीघ्र देख सकूँ।

देर करके पहुँचने में बड़ा भारी अनर्थ है वह भाई मेरा ऐसा है कि अवधि बीतते ही प्राण त्याग करेगा। वीर भाई को भी कहते हैं शूर को भी कहते हैं। वह भाई वीर है उसे शरीर छोड़ने में भी कुछ आगा पीछा न होगा। यथा : तुलसी बीते अवध प्रथम दिन जौ रघुबीर न ऐहौ। तौ प्रभु चरन सरोज सपथ जीवत परिजनहि न पैहौ। इस भाँति कहते हुए भरत की प्रीति का स्मरण करके सरकार को बार बार पुलक हो रहा है।

अब विभीषण को आज्ञा तथा शिक्षा देते हैं। तुम कल्पान्त तक राज्य करना। अर्थात् जबतक चन्द्र सूर्य हैं तबतक करना। बाहर से राजा बने रहना और मन से मेरा स्मरण करना। लोग यह न समझें कि विभीषण सब छोड़कर साधु हो गया पर रहना भीतर से साधु होकर मुझे विस्मरण न करना। राजा बने रहने से गति में भेद न होगी। अन्त में तुम्हें मेरा धाम प्राप्त होगा : जहाँ सन्त लोग जाते हैं जहां जाने से फिर लौटना नही होता। यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम।

सुनत बिभीषन बचन रामके। हरषि गहे पद कृपाधाम के ॥
बानर भालु सकल हरखाने। गहि प्रभुपद गुन बिमल बखाने ॥१॥

अर्थ : विभीषण रामजी के वचन सुनकर हर्षित होकर कृपाधाम के चरण पकड़ लिये। सब बन्दर भालु हर्षित हो गये और प्रभु के चरणों को पकड़कर निर्मल गुणों का वर्णन करने लगे।

व्याख्या : रामजी के ऐसे वचन मानो रघुकुल की रक्षा अब विभीषण के ही हाथ में है। स्वयं जो कुछ किया वह कुछ नहीं। अब विभीषण का निहोरा अपने ऊपर ले रहे हैं अथवा सब भाँति अपनाने की प्रार्थना स्वीकृत हो गयी : इससे हर्षित हो रहे हैं अथवा अन्त में अपने धाम देने की प्रतिज्ञा से हर्षित होकर प्रभु के चरण पकड़ लिये। इधर बन्दर भालु अलग हर्षित हुए कि परमपद में जब विभीषण का प्रवेश हुआ तो हम लोगों का रोक कैसे होगा। अथवा सरकार के सन्निधान से भालु बन्दरों की ऐसी साधुवृत्ति हुई कि विभीषणजी के अभ्युदय से आनन्दित होकर सरकार के चरणों को पकड़कर निर्मल गुण गणों का गान करने लगे। हर्षित सब हुए पर जिनकी योग्यता थी उन्होंने ही चरणों को पकड़कर गुणगान किया। प्रभु गुणगान के पहले श्रीचरणों का ध्यान स्मरण अवश्य कर लेना चाहिए।

बहुरि बिभीषन भवन सिधाये। मनि गन बसन बिमान भराये ॥
लै पुष्पक प्रभु आगे राखा। हँसि करि कृपासिंधु अस भाखा ॥२॥

अर्थ : विभीषणजी फिर घर गये विमान को मणिगण से भराया। पुष्पक को लेकर सरकार के सामने रक्खा। कृपासिन्धु हँसकर यह बोले।

व्याख्या : तब विभीषण घर गये। सरकार को अयोध्या पहुँचाने के उपाय के लिए विभीषणजी ने निश्चय किया कि पुष्पक विमान सरकार को उपहार रूप में देना चाहिए। केवल विमान ही नहीं उसे मणिगणों से भर भी दिया। सरकार ने स्वीकार कर लिया है कि तुम्हारा सब कोषादि मेरा है। अतः उस स्वीकृति के साफल्य के लिए मणिगण विमान में भरे गये। सोने की लङ्का है वहाँ सोने का कौन मूल्य है।

इस भाँति पुष्पक को पूर्ण करके सरकार के आगे रक्खा। भाव यह है कि इसमें से जो इच्छा हो बन्दर भालुओं को दिया जाय। अयोध्या पहुँचाने में यह पुष्पक विमान समर्थ है। यह सरकार के नजर है। सरकार हँसकर बोले। भरत के शीघ्रातिशीघ्र दर्शन की चिन्ता मिटी इससे हँसे। अथवा इन मणिगणों के ग्राहक न हम हैं और न हमारी सेना है पर विभीषण का मन रखना है। इसलिए हँसकर बोल रहे हैं। यथा : हृदय अनुग्रह इन्दु प्रकासा। सूचत किरन मनोहर हासा।

चढ़ि बिमान सुनु सखा बिभीषन। गगन जाइ बरषहु पट भूषन ॥
नभ पर जाइ बिभीषन तबहीं। बरषि दिये मनि अंबर सबहीं ॥३॥

अर्थ : हे सखा विभीषण! विमान पर चढ़कर आकाश में जाकर मणि वस्त्र की वर्षा करो तब विभीषण ने आकाश में जाकर सब मणि और वस्त्रों को बरस दिया।

व्याख्या : सरकार ने आज्ञा दी कि सखा विभीषण इसी विमान पर चढ़कर आकाश में चले जाओ और वहाँ से पट भूषणों को वर्षा वानरी सेना पर करो। अस्त्र शस्त्र की तो वर्षा कितनी बार वानरी सेना पर हो चुकी है। अब मणि भूषण की वर्षा होने दो। इतनी बड़ी सेना में मणि भूषण इसी भाँति वितरण भी किया जा सकता है। एक एक बन्दर को बुला बुलाकर मणि भूषण देना असाध्य व्यापार है।

तदनुसार विभीषणजी ने आकाश में जाकर सब भूषण वसनों को बरस दिया। विभीषणजी ये मणि भूषण वसन बानरी सेना के ही लिए लाये थे उन्हीं को देना चाहते थे सरकार को नहीं। पूर्णकाम को कोई क्या दे सकता है। उनके लिए तो स्वयं पुष्पक था।

जोइ जोइ मन भावै सोइ लेहीं। मनि मुख मेलि डारि कपि देहीं ॥
हँसे राम श्री अनुजसमेता। परम कौतुकी कृपानिकेता ॥४॥

अर्थ : जिसे जो देखने में अच्छा लगता है। वही बन्दर लेते हैं और मणि को मुख में डालकर उगल देते हैं। रामजी सीताजी तथा छोटे भाई के सहित हँस रहे हैं। कृपानिकेत परम कौतुकी हैं।

व्याख्या : वर्षा होने से मणि भूषण वसन तमाम पृथिवी पर बिखर गये। रुचि की विचित्रता के अनुरूप बन्दर लोग पसन्द करके ले रहे हैं। फल समझकर मणियोंको मुख में डालते हैं और स्वाद हीन तथा कठोर मालूम होने पर उगल देते हैं। यह दृश्य देखकर सरकार भी हँस रहे हैं। जानकीजी और लक्ष्मणजी भी हँस रहे हैं। सरकार कृपा के घर हैं और बड़े कौतुकी हैं। विभीषण पर कृपा है, उनकी सम्पत्ति स्वीकार की जा रही है और जिन्हें दी जा रही है उन्हें उसके उपयोग का ही ज्ञान नहीं है। उनके विकृत आचरण से सबको हँसी आरही है। यह सरकार का विनोद है।

दो. मुनि जेहि ध्यान न पावहिं, नेति नेति कह वेद।
कृपासिंधु सोइ कपिन्ह सन, करत अनेक बिनोद ॥
उमा जोग जप दान तप, नाना मख व्रत नेम।
रामु कृपा नहि करहि तस, जसि निःकेवल प्रेम ॥११७॥

अर्थ : जिसे मुनि ध्यान में नहीं पाते और जिसे वेद नेति नेति कहता है। वही कृपासिन्धु बन्दरों के साथ अनेक विनोद करते हैं। हे उमा ! योग जप दान तप नाना व्रत यज्ञ और नियम से रामजो वैसी कृपा नहीं करते जैसी कि विशुद्ध प्रेम से करते हैं।

व्याख्या : इन्द्रियगोचर होना तो बड़ी दूर की बात है। ध्यान में भी जो मुनि लोगों के नहीं आते सामान्य लोगों की गणना क्या है और वेद भी यह नहीं यह नहीं कहकर निरूपण करता है। अर्थात् जो मन वाणी के अगोचर है वह प्रभु कृपासिन्धु हैं। कृपा करके इन्द्रियगोचर होकर बन्दरों के साथ अनेक प्रकार का विनोद कर रहे हैं। बन्दरों से पूछते हैं कि मणि कैसा है ? वे कहते हैं कि सरकार देखने में ही सुन्दर हैं पर किसी काम का नहीं है। न इसमें स्वाद है न गन्ध है इत्यादि। वेद और विनोद का जोड़ नहीं। इसलिए तुक नहीं बैठने दिया।

शंकर भगवान् उमा से सरकार का स्वभाव कहते हैं : योग जप दान तप व्रत और नियम ये ही छः कारण भगवत् कृपा के हैं। इन्हें मुनि लोग वेद विधि से आचरण करते हैं। अतः उन पर सरकार की कृपा होती है पर ऐसी नहीं होती कि प्रत्यक्ष होकर उनसे विनोद करें। ऐसी कृपा तो जप योग नेम व्रत वर्जित प्रेम से ही होती है। बन्दर कर्म के अनधिकारी हैं। इनमें सिवा प्रेम के और क्या है ? पर उसी प्रेम के सरकार परवश हैं। उनके साथ बैठकर विनोद कर रहे हैं।

भालु कपिन्ह पट भूषन पाए। पहिरि पहिरि रघुपति पहिं आए ॥
नाना जिनिस देखि प्र भु कीसा। पुनि पुनि हँसत कोसलाधीसा ॥१॥

अर्थ : भालु और बन्दरों ने गहने कपड़े पाये तो उन्हें पहनकर रामजी के

पास आये। अनेक रूप में बन्दरों को देखकर कोशलाधीश रामजी बार बार हँसते हैं।

व्याख्या : बन्दर भालु का गहने कपड़े से क्या सम्बन्ध? वे न स्वयं रक्खें न दूसरे का रहने दें। यदि देवात् उनके हाथ गहना कपड़ा लग जाय तो उसे नष्ट करके ही मानें। परन्तु यह गहना कपड़ा की वर्षा तो उनके लिए सरकारी आज्ञा से हो रही है। अतः उनके प्रति आदर है। लोगों को गहना कपड़ा पहने देखा है इसलिए उन्हें महाप्रसाद समझकर धारण किया। राजा के यहाँ से जो कुछ वस्त्राभूषण पुरस्कार रूप से मिले उसे धारण करके राजा के सामने उनकी प्रसन्नता के लिए जाने का नियम है। अथवा कृतज्ञता प्रकाश के लिए पहन पहनकर सरकार के पास आये।

बन्दर भालु के वस्त्राभूषण धारण करने से विचित्र शोभा हुई। धारण तो उन लोगों ने कर लिया पर धारण करना आता नहीं। अतः और भी अद्भुत मूर्ति हो गये हैं। इनके दर्शन से हँसी रोके नहीं रुकती। सरकार तो कोशलाधीश हैं। वस्त्राभूषण धारण की बारीकी को जानते हैं। अतः बार बार हँसते हैं।

चितै सबन्ह पर कीन्ही दाया। बोले मृदुल बचन रघुराया॥
तुम्हरे बल मैं रावनु मारचो। तिलकु बिभीषन कहुँ पुनि सारचो॥२॥

अर्थ : देखकर सब पर दया की और रघुपति कोमल वचन बोले। तुम्हारे बल से मैंने रावण को मारा और फिर विभीषण को तिलक भी कर दिया।

व्याख्या : सरकार की कृपादृष्टि से श्रमापनोदन होता है। यथा : राम कृपा करि चितवा सबहीं। भये बिगतस्रम बानर तबहीं। अपना श्रमापनोदन न किया पर बन्दरों का कृपावलोकन से कर दिया। सरकार की कृपा से निरन्तर कुशल होता है। देवता मनुष्य और मुनियों पर कृपा होती है। सो भालु बन्दर के निरन्तर कुशल के लिए उनपर दया की।

उनको बड़ाई देते हुए बोले कि रावणवध जो मैंने किया वह तुम लोगों के बल से हुआ नहीं तो अकेले मेरा किया क्या होता। इसी भाँति विभीषण को राज्य देकर जो अपनी प्रतिज्ञा पूरी की वह भी तुम लोगों के बल से ही सम्पन्न हुआ। तुम लोगों द्वारा मेरा बड़ा उपकार हुआ। मेरे कार्य करने के लिए तुम लोगों ने अपना घर छोड़ रक्खा है सो अब मेरा सब कार्य तुम लोगों की सहायता से सम्पन्न हो गया।

निज निज गृह अब तुम्ह सब जाहू। सुमिरेहु मोहि डरपहु जनि काहू॥
बचन सुनत प्रेमाकुल बानर। जोरि पानि बोले सब सादर॥३॥

अर्थ : अब तुम लोग अपने घर चले जाओ। मेरा स्मरण करते रहना और किसी से नहीं डरना। वचन सुनते ही बन्दर लोग प्रेम से आकुल हो उठे। सब हाथ जोड़कर आदर के साथ बोले।

व्याख्या : अब तुम लोग अपने अपने घर जाओ। अब जिस भाँति आये हो उसी भाँति किष्किन्धा लौटने की अवश्यकता नहीं जहाँ से जिसका घर सीधा पड़े उसी रास्ते चले जाओ। संगठन का कार्य समाप्त हो गया। तुम लोग अपने घर की ओर रवाना हो जाओ तब हम अपने घर की ओर प्रस्थान करें। सरकार पुरस्कार रूप में उन्हें अभय दान दे रहे हैं और शिक्षा रूप में सदा अपने स्मरण के लिए कह रहे हैं। भावार्थ यह कि बन्दर भालु का न तो धन से कोई उपकार हो सकता है और न किसी सूक्ष्मतत्त्व के उपदेश की उनमें पात्रता है। अतः सब उपदेशों का सार उन्हें दो मोटी मोटी बातों में बतला दिया कि मुझे स्मरण करते रहना और किसी से डरना नहीं। मेरा वरद हस्त सदा तुम्हारे सिर पर रहेगा।

सरकार द्वारा अपनी इतनी बड़ाई के वचन को वे सँभाल न सके। प्रेम के आवेग से व्याकुल हो उठे। मन से प्रेमाकुल तन से पानि जोरि और वचन से बोले सब सादर। एक ही भाव सबके हृदय से उठा। अतः सबका एक साथ एक ही वचन बोलना कहते हैं।

प्रभु जोइ कहहु तुम्हहि सब सोहा। हमरे होत बचन सुनि मोहा॥
दीन जानि कपि किए सनाथा। तुम्ह त्रैलोक ईस रघुनाथा॥४॥

अर्थ : प्रभो ! आप जो कुछ कहें सभी आपको शोभा देता है पर ऐसा वचन सुनकर हम लोगों को मोह होता है। हे रघुनाथ ! आप त्रैलोक्य के ईश हैं हम लोगों को दीन जानकर आपने सनाथ किया।

व्याख्या : भाव यह कि कैसे कहें कि सरकार का कहना ठीक नहीं है हम तो सरकार के बल से निशाचरों से लड़े नहीं तो कहाँ हम तृणराशि और कहाँ निशाचर अग्नि ! हमारी उनकी लड़ाई कैसी पर हम जयशील सरकारी बल से हुए। यथा : कपि जयसील राम बल ताते। स्वामी को सभी कुछ शोभा देता है वह यदि अपने पुरुषार्थ का सेवक पर आरोप करे तब भी शोभा है। पर हम लोगों को तो ऐसे वचन से मोह होता है। यथा : सुनि प्रभु बचन मोह मति करषी।

हम सरकार के स्वरूप को जानते हैं। सरकार त्रैलोक्य के स्वामी हैं। अवतार धारण करके रघुकुल को सनाथ किया है। सरकार दीनानाथ हैं : दीन जानकर हम लोगों को सनाथ किया है। नहीं तो बन्दरों का नाथ कोई बनना नहीं चाहता। त्रैलोक्य के नाथ होने से आप सबके नाथ हैं। तब निज भुजबल राजिव नैना। कौतुक लागि संग कपि सैना। आपको राक्षसों का रणमद हम लोगों के हाथ से चूर्ण कराना था।

सुनि प्रभु बचन लाज हम मरहीं। मसक कहूँ खगपति हित करहीं॥
देखि रामरुख बानर रीछा। प्रेम मगन नहि गृह कै ईछा॥५॥

अर्थ : प्रभु का वचन सुनकर हम लज्जा से मरे जाते हैं। मच्छर कहीं गरुड़

की सहायता कर सकता है। रामजी का रुख देखकर बन्दर भालु प्रेम में मग्न हो गये। उन्हें घर की इच्छा नहीं रह गयी।

व्याख्या : बन्दर भालु कहते हैं कि प्रभु के वचन से हम तो लज्जा से मरे जाते हैं। बड़े की स्तुति से छोटे को लज्जा होती है। स्तुति के गुणों की हमारे में सम्भावना नहीं। अतः हमारे लिए सरकार द्वारा स्तुति अतीव लज्जाजनक है। गरुड़ यदि कहे कि वाताशन नागों को मैंने मच्छरों की सहायता से वध किया तो गरुड़ की तो बड़ाई है कि वह मच्छरों को महिमा प्रदान कर रहा है। पर मच्छरों को तो कहीं डूबने को स्थान नहीं है।

सरकार का रुख है कि बन्दर भालु घर जायँ। उनको घर की इच्छा नहीं। वे सरकार के प्रेम में मग्न हैं। सरकार को छोड़ना नहीं चाहते। घर की ओर चित्त की वृत्ति जाती ही नहीं : बिसरे गृह सपनेहु सुधि नाहीं। जिमि परद्रोह सन्त मन माहीं। रुख देख लिया कि इन्होंने विदा कर दिया। क्योंकि ऐसा कहकर सरकार विमान पर सवार हो गये।

दो. प्रभु प्रेरित कपि भालु सब, रामरूप उर राखि।
हरष बिषाद सहित चले, बिनय बिबिध बिधि भाखि ॥
कपिपति नील रीछपति, अंगद नल हनुमान।
सहित बिभीषन अपर जे, जूथप कपि बलवान ॥
कहि न सकहि कछु प्रेम बस, भरि भरि लोचन बारि।
सनमुख चितवहिं रामतन, नयन निमेष निबारि ॥११८॥

अर्थ : प्रभु से प्रेरित होकर सब बन्दर भालु रामजी के रूप को हृदय में रखकर अनेक प्रकार से विनती करके हर्ष विषाद सहित चले। जामवन्त, सुग्रीव, नल, अङ्गद आदि और हनुमान्‌जी तथा विभीषण के सहित और जितने बलवान् यूथपति बन्दर थे वे सब प्रेमवश कुछ नहीं कह सकते थे। आँखों में आँसू भरा हुआ रामजी की ओर निर्निमेष नेत्र से देख रहे थे।

व्याख्या : अन्तर्यामी की प्रेरणा बड़ी बलवती है। इतना प्रेम होने पर भी चलने को तैयार हो गये। परन्तु प्रस्थान होने के पहिले रामजी के रूप को हृदय में रख लिया और अनेक प्रकार की विनती करके चल पड़े। घर जाने का हर्ष और प्रभु के वियोग का विषाद भी है। बन्दरों को घर जाने की इच्छा ही नहीं थी। पर अन्तर्यामी की प्रेरणा से घर जाने की इच्छा हो गयी।

परन्तु जाम्बवान्, सुग्रीव, नल, अङ्गद, हनुमान् और विभीषण तथा अन्य बलवान् यूथप नहीं गये। बलवान् यूथपों में भी तो बल सरकारी है। उन पर विशेष कृपा है। अतः विशेष बलवान् हैं।

अन्य बन्दरों ने विविध प्रकार से विनय भी की। पर ये लोग तो बोलने में

भी समर्थ नहीं हुए। प्रेम के वश में हो गये हैं। प्रेमातिशय से वे सरकार को आँख से ओट करना नहीं चाहते। अतः निर्निमेष नेत्रों से दर्शन कर रहे हैं।

अतिसय प्रीति देखि रघुराई। लीन्हे सकल बिमान चढ़ाई ॥
मन महु विप्र चरन सिर नाये। उत्तर दिसिहिं बिमान चलाये ॥१॥

अर्थ : रघुराई रामजी ने अत्यन्त प्रीति देखकर सबको विमान पर चढ़ा लिया। मन में ब्राह्मण के चरण को नमस्कार किया और विमान को उत्तर की ओर चलाया।

व्याख्या : सामान्य वानर सैनिकों से बड़े बड़े सरदारों की प्रीति कहीं बढ़ी चढ़ी है। सरकार ने देखा इन्हें अत्यन्त प्रीति है। उनको तो घर जाने की दबी हुई इच्छा भी थी। इन्हें वह भी नहीं। ये लोग विभीषण की भाँति अयोध्या जाना चाहते हैं। अतः सरकार ने सबको विमान पर चढ़ा लिया। मन में ब्रह्मकुल को प्रणाम किया। क्योंकि पहिले सरकार वहीं जाना चाहते हैं। यह ब्रह्मकुल दण्डकारण्य में था। आरण्यकाण्ड का मङ्गलाचरण करते हुए कवि ने ब्रह्मकुल को प्रणाम किया है। यथा : मूलं धर्मतरोर्विवेकजलधेः पूर्णेन्दुमानन्ददं। वैराग्याम्बुजभास्करं ह्यघघन-ध्वान्तापहं तापहं। मोहाम्भोधरपूगपाटनविधौ स्वः सम्भवं संकरं वंदे ब्रह्मकुलं कलंकसमनं श्रीरामभूपप्रियं। आरण्यकाण्ड की टीका में इस श्लोक का अर्थ दिया गया है। भावार्थ यह है कि ब्रह्मकुल अष्टमूर्ति शङ्कररूप है। अयोध्या की सीमा तमसा से चलते समय सरकार ने शङ्करजी को प्रणाम करके यात्रा की। यथा : राम लखन सिय जान चढ़ि संभु चरन सिरु नाइ। सचिव चलायेउ तुरत रथ इत उत खोज दुराइ। अब घर लौटते समय ब्रह्मकुलरूप शङ्कर को प्रणाम करते हैं। ब्रह्मकुल के लिए ही निशाचर हीन पृथिवी करने की प्रतिज्ञा की थी। वह प्रतिज्ञा पूर्ण हुई। ब्रह्मकुल से ही सुरद्रोहियों के वध का मन्त्र लिया था। अतः पहिले उसी ब्रह्मकुल में जाना चाहते हैं। यथा : कुंभजादि मुनि नायक नाना। गये राम सबके अस्थाना। अतः प्रस्थान के समय शंकररूप ब्रह्मकुल को प्रणाम करते हैं। विमान को भी अयोध्या चलने का आदेश न देकर केवल इतना ही आदेश दिया कि उत्तर की ओर चलो।

चलत बिमान कोलाहलु होई। जय रघुबीर कहै सब कोई ॥
सिंहासनु अति उच्च मनोहर। श्री समेत प्रभु बैठे तापर ॥२॥

विमान चलते समय बड़ा शब्द हुआ। सब लोग : रघुवीर की जय। ऐसा बोल रहे हैं। अत्यन्त ऊँचा और मनोहर सिंहासन है। उस पर सरकार सीताजी के साथ बैठे।

व्याख्या : आज तो सबका अनुभूत विषय है कि वायुयान चलते समय बड़ा शब्द होता है। तिसपर स्वयं विमानारूढ बानरवीर जयध्वनि कर रहे हैं। नीचे से बानरी सेना सरकार को विमान पर जाते हुए देखकर जयकार कर रही है। सबको अत्यन्त उत्साह है। अतः जयकार पर जयकार लगता ही जा रहा है।

उस विमान पर स्वामी के बैठने के लिए अत्यन्त ऊँचा और सुन्दर सिंहासन बना हुआ है जिससे कि नीचे का सब दृश्य दिखाई पड़े। उस सिंहासन पर सरकार सीता के सहित बैठे।

८१ अवध प्रयाण प्रसंग

राजत रामु सहित भामिनी। मेरु श्रृंग जनु घनदामिनी ॥
रुचिर बिमानु चलेउ अति आतुर। कीन्ही सुमन वृष्टि हरषे सुर ॥३॥

अर्थ : भामिनी स्त्री के सहित रामजी शोभित हुए। जैसे मेरु के श्रृङ्ग पर बादल बिजली सहित हो। सुन्दर विमान अत्यन्त आतुर होकर चला। देवताओं ने फूल बरसाया और हर्षित हुए।

व्याख्या : राम शब्द का अर्थ ही यही है कि : राजते यो महीस्थितः। बिना सीताजी के रामजी की वैसी शोभा नहीं थी। आज भगवती के साथ बड़ी शोभा हुई। श्री गोस्वामीजी उपमा देते हैं कि जैसे मेरु के श्रृङ्ग पर घन दामिनी की शोभा हो। पुष्पक की उपमा मेरु से है और अति उच्च मनोहर सिंहासन की उपमा शिखर से है। उसके ऊपर रामजी मेघ श्याम सुशोभित हैं और उनके अङ्क में भगवती जनक नन्दिनी की दामिनी की सी शोभा है। भगवती इस समय संकुचित नहीं जब कि कनक पङ्कज की कली की उपमा दी गयी थी। वे इधर उधर देख रही हैं। इसलिए चञ्चलता को लक्ष्य में रखकर दामिनी की उपमा दी गयी और वर्ण भी उनका बिजली सा है।

वह सुन्दर विमान जिसका नाम पुष्पक है। आकाश में ऐसा मालूम होता है मानो आकाशरूपी सरोवर में फूल खिला हो। वह आतुर होकर चला। वह मनोजव विमान है। स्वामी के मन की गति के अनुसार उसकी गति होती है। सरकार को अत्यन्त उत्सुकता है। अतः वह आतुर होकर चला। देवता लोग भी शोभा देखकर हर्षित हुए और मङ्गल के लिए पुष्पवृष्टि की।

परम सुखद चलि त्रिविध बयारी। सागर सर सरि निर्मल बारी ॥
सगुन होहि सुंदर चहुँ पासा। मन प्रसन्न निर्मल नभ आसा ॥४॥

अर्थ : परम सुख देनेवाली शीतल मन्द सुगन्ध वायु चली। समुद्र तालाब नदी का जल निर्मल हो गया। चारो ओर सुन्दर सगुन होने लगे। मन प्रसन्न है और आकाश की दिशाएँ निर्मल हैं।

व्याख्या : शीतल मन्द सुगन्ध वायु सुखद होती ही है। पर उस समय की त्रिविध वायु परम सुखद थी। समुद्र तालाब तथा नदी में निर्मल जल हो गया। भाव यह कि प्रकृति में सुखावह परिवर्तन हुआ : परम सुखद चलि त्रिविध बयारी : से वायु में परिवर्तन कहा। सागर सर सरि निर्मल बारी : से जल में परिवर्तन कहा। सगुन होहि सुन्दर चहुँ पासा : से पृथिवी कहा। निर्मल नभ आसा : से तेज तथा

आकाश में परिवर्तन कहा और सबसे बड़ी बात यह कहा कि : मन प्रसन्न। यह बड़ा भारी सगुन है। यथा : सगुन होइ सुंदर सकल मन प्रसन्न सब केर। प्रभु आगमन जनाव जनु नगर रम्य चहुँ फेर।

कह रघुबीर देखु रन सीता। लछिमन इहाँ हत्यो इंद्रजीता ॥
हनूमान अंगद के मारे। रन महि परे निसाचर भारे ॥
कुंभकरन रावन द्वौ भाई। इहाँ हते सुरमुनि दुखदाई ॥५॥

अर्थ : रामजी ने कहा सीते ! रणभूमि को देखो यहाँ लक्ष्मण ने इन्द्रजीत को मारा है। यहाँ हनुमान् और अङ्गद के मारे रण में बड़े बड़े राक्षस पड़े हुए हैं। सुर मुनि के दुःख देनेवाले दोनों भाई कुम्भकर्ण और रावण को यहाँ मारा है।

व्याख्या : सरकार इतने ऊँचे पर हैं कि वहाँ से सम्पूर्ण रणभूमि दिखायी पड़ रही है। जहाँ कहीं कोई घटना विशेष हो पड़ती है वह भूमि ऐतिहासिक स्थल हो जाता है और विशेषतः यह रणभूमि तो ऐसी है। जहाँ रामजी ने युद्ध यज्ञ सम्पादन किया है। अतः उस पुण्य भूमि को सीताजी को दिखला रहे हैं। अङ्गुल्या निर्देश करके बतला रहे हैं कि यहाँ इन्द्र के जीतनेवाले मेघनाद को लक्ष्मणजी ने मारा है। विमान ऊपर चढ़कर एक बार मण्डलाकार गति किया। उसी समय सरकार दिखला रहे हैं। महा महा मुखिया जे पावहिं। ते पद गहि प्रभु पास चलावहिं। उस युद्ध स्थल को दिखलाते हुए सरकार कहते हैं कि यहाँ महा मुखियों को हनुमान् अङ्गद ने मारा है। तब से वह स्थल आगया जहाँ रावण कुम्भकर्ण मरे थे। ये दोनों भाई एक ही स्थान में मारे गये थे। अतः उसे दिखाते हुए कहते हैं कि : सुर मुनि दुखदाई : दोनों भाई कुम्भकर्ण और रावण को मैंने मारा।

दो. इहाँ सेतु बाँधेउ अरु, थापेउँ सिव सुखधाम।
सीता सहित कृपानिधि, संभुहि कीन्ह प्रनाम ॥
जहँ तहँ कृपासिंधु बन, कीन्ह बास बिस्राम।
सकल देखाए जानकिहि, कहें सबन्हि के नाम ॥११९॥

अर्थ : यहाँ सेतु बाँधा और यहाँ सुखधाम शिवजी की स्थापना की। सीता के सहित कृपायतन ने शिवजी को प्रणाम किया। जहाँ जहाँ करुणासिन्धु बसे थे या विश्राम किया था। वह सब जानकीजी को दिखाया और सबका नाम बताया।

व्याख्या : दिखलाने के व्याज से सरकार वह सब कथाएँ भी कह रहे हैं जो जो जानकीजी की अनुपस्थिति में हुई थीं। विमान का वेग दिखलाते हैं कि बात की बात में विमान सौ योजन आ गया। तब सरकार कहते हैं कि यहीं सेतु बाँधा और सुखधाम शिवजी की स्थापना की। स्थापना में जानकीजी नहीं थीं। अतः विधि को पूरी करने के लिए सरकार सस्त्रीक प्रणाम कर रहे हैं।

सरकार करुणासिन्धु हैं। सीताजी के विरह में एक वन से दूसरे में भटकते फिरे हैं। कहीं बस गये तो कहीं विश्राम ही किया। उन सब स्थलों को जानकीजी को दिखलाया। जानकीजी उन स्थलों को नहीं जानती थीं और उनका नाम बतलाया। यथा : यह पम्पासर है। यह ऋष्यमूक है। यह प्रवर्षणगिरि है। बिना नाम जाने जानना न जानना बराबर हो जाता है।

तुरत बिमान तहाँ चलि आवा। दंडक बन जहँ परम सुहावा॥
कुंभजादि मुनि नायक नाना। गए राम सबके असथाना॥१॥

अर्थ : विमान तुरन्त वहाँ चला आया। जहाँ कि परम सुहावन दण्डक वन था। अगस्त्य आदि अनेक मुनीश वहाँ थे। रामजी सबके स्थानों पर गये।

व्याख्या : विमान में बड़ा वेग है। बात की बात में दण्डक वन पहुँच गया। दण्डक वन को सरकार ने सुहावन किया था। इसलिए वह परम सोहावा हो गया था। अगस्त्यजी ने कहा था : दण्डक बन पुनीत प्रभु करहू। उग्र साप मुनिवर कर हरहू। अगस्त्यजी का आश्रम दण्डक वन के सन्निकट था। दण्डक वन में उस समय ऋषि नहीं रहते थे। सरकार के निवास करने पर आने जाने लगे थे। अगस्त्यादि मुनि अर्थात् अगस्त्यजी के भाई तथा सुतीक्ष्ण आदि शरभंग ऋषि के आश्रम से लेकर अगस्त्यजी के आश्रम के बीच में रामजी ने बहुत दिनों तक अनेक ऋषियों के आश्रमों में निवास किया था। यथा : सकल मुनिन्ह के आस्रमन्हि जाइ जाइ सुख दीन्ह। सो रामजी सबके आश्रमों पर विदा लेने गये। इस प्रान्त में अगस्त्य मुनि सबसे प्रधान थे। अतः प्रधानतः उन्हीं का नाम लेते हैं।

सकल रिषिन्ह सन पाइ असीसा। चित्रकूट आएउ जगदीसा॥
तहँ करि मुनिन्ह केर संतोषा। चला बिमान तहाँ ते चोखा॥२॥

अर्थ : सब मुनियों से आशीर्वाद पाकर जगदीश चित्रकूट आये। वहाँ मुनियों का सन्तोष किया। वहाँ से चोखा विमान चला।

व्याख्या : सब मुनियों ने सरकार से फरियाद किया था। यथा : निसिचर निकर सकल मुनि खाये। इसपर सरकार ने प्रतिज्ञा की थी : निसिचर हीन करउँ महि। सो पूरी करके आ रहे हैं। अब मुनियों को राक्षसों से कोई भय नहीं रह गया। अतः सन्तुष्ट होकर आशीर्वाद दे रहे हैं। अथवा आशीर्वाद देकर विदा कर रहे हैं।

जगदीश हैं। नरतन सन्त सुर के हितार्थ धारण कर रक्खा है। यथा : नर तन धरेउ सन्त सुर काजा। कहहु करहु जस प्राकृत राजा। स्तुति सेतु पालक राम तुम जगदीस माया जानकी। वहा मुनियों का सन्तोष किया। चित्रकूट से चलते समय अति प्रसन्न मुनियों ने विदा नहीं किया था। यथा : केहि बिधि कहौं जाहु अब स्वामी। सब दरसी तुम अंतरयामी। अतः उन्होंने लौटते समय

मिलकर सन्तोष किया। तब वहाँ से विमान पर चढ़कर चले। विमान का वेग और बढ़ा इसलिए चोखा कहते हैं।

बहुरि राम जानकिहि देखाई। जमुना कलिमल हरनि सोहाई ॥
पुनि देखी सुरसरी पुनीता। राम कहा प्रनामु करु सीता ॥३॥

अर्थ : फिर रामजी ने कलिमल को हरण करनेवाली सुन्दर यमुनाजी का सीताजी को दर्शन कराया। फिर पवित्र गंगाजी को देखा। रामजी ने कहा कि सीते ! प्रणाम करो।

व्याख्या : जितने पुण्य स्थल रास्ते में पड़ते जाते हैं उन सबको रामजी दिखलाते जाते हैं। पहिले युद्ध यज्ञभूमि दिखलायी। सेतुसिन्धु दिखलाया। रामेश्वर दिखलाया। जिन जिन स्थानों पर विश्राम और निवास करके उन्हें तीर्थीभूत बनाया था उन्हें दिखलाया। अब चित्रकूट से विमान के ऊपर उठते ही कलियुग के मल की हरण करनेवाली यमुना दिखायी पड़ीं। यमुना का माहात्म्य कहते हैं कि ये कलियुग के मल को हरण करती हैं। अन्यमलों की गणना ही क्या है। जब से सीताजी को यमुना दिखलाते हैं तब से गंगाजी दिखायी पड़ गयी। अतः रामजी कहते हैं कि सीते ! प्रणाम करो। यहाँ दोनों को एक साथ ही प्रणाम है। गंगाजी पवित्रता की सीमा हैं। अतः सुरसरी पुनीता कहते हैं।

तीरथ पति पुनि देखु प्रयागा। देखत जनम कोटि अघ भागा ॥
देखु परम पावनि पुनि बेनी। हरनि सोक हरि लोक निसेनी ॥४॥
पुनि देखु अवधपुरी अति पावनि। त्रिविध ताप भवरोग नसावनि ॥५॥

अर्थ : फिर तीर्थराज प्रयाग को देखो जिसके दर्शन से करोड़ जन्म के पाप भागते हैं। फिर परम पवित्र त्रिवेणीजी का दर्शन करो जो शोक का हरण करनेवाली और हरिलोक के लिए सीढ़ी रूप हैं। फिर अति पवित्र अयोध्यापुरी देखो जो तीनों ताप और भवरोग को नाश करनेवाली है।

व्याख्या : विमान इतने ऊँचे पर है और उसका वेग इतना है कि तब से प्रयागराज की प्रान्तभूमि दिखायी पड़ी। प्रयागराज तीर्थों के राजा हैं। कलुष पुञ्ज के लिए मृगराज है। अतः वे अमिट पाप जो कोटिजन्म से पीछा नहीं छोड़ते इनके दर्शन से भाग निकलते हैं। प्रयाग में भी त्रिवेणी का बड़ा माहात्म्य है। वह आध्यात्मिक आधिदैविक और और आधिभौतिक ताप को नाश करती हैं। इस भाँति दोषापनोदन करके कल्याण का विधान करती है। आप स्वयं विष्णु लोक के लिए निसेनी : सीढ़ी रूप हो जाती हैं। अर्थात् उनका आश्रयण करने से विष्णु लोक की प्राप्ति होती है। इतनी ऊँचाई पर विमान है कि त्रिवेणी पहुँचने के पहिले ही अयोध्यापुरी दिखायी पड़ी। उसका माहात्म्य कहते हैं कि वह तीनों ताप के नाश के साथ साथ भवरोग का ही नाश कर देती है। यथा : अवध तजे तन नहि संसारा।

दो. सीता सहित अवध कहुँ कीन्ह कृपाल प्रनाम ।
सजल नयन तन पुलकित पुनि पुनि हरषित राम ॥
पुनि प्रभु आइ त्रिवेनी हरषित मज्जनु कीन्हि ।
कपिन्ह सहित बिप्रन्ह कहुँ दान बिबिध बिधि दीन्हि ॥१२०॥

अर्थ : तब कृपाल रामजी ने सीता के साथ योध्या को प्रणाम किया। सजल नयन और पुलकित होकर बार-बार हर्षित होने लगे। फिर हर्षित होकर सरकार ने त्रिवेणी में मज्जन किया और बन्दरोंके सहित ब्राह्मणोंको अनेक प्रकार के दान दिये।

व्याख्या : अयोध्या के दृष्टिगोचर होते ही लक्ष्मण और सीताजी के सहित रामजी ने अवध को प्रणाम किया। वन जाते समय भी प्रणाम किया था। यथा : चले हृदय अवधहिं सिरु नाई। अब लौटते समय भी प्रणाम करते हैं। अयोध्या पर सरकार का बड़ा प्रेम है। उसे जन्मभूमि मानते हैं। चौदह वर्ष के बाद उसका दर्शन हो रहा है। अतः हर्षातिरेक से सात्त्विक भाव हो गया। नेत्रों में जल भर आया और शरीर में पुलक हो गया।

प्रयागराज के प्रति सरकार की बड़ी श्रद्धा है। वन जाते समय चित्रकूट का सीधा रास्ता छोड़कर प्रयागराज गये। लौटते समय तो आकाश मार्ग से आ रहे हैं। अतः अत्यन्त त्वरा होने पर भी यहाँ उतरे। प्रयागराज में भी त्रिवेणी का बड़ा माहात्म्य है। क्योंकि यही तीर्थराज का सिंहासन है। आज त्रिवेणी स्नान कर रहे हैं। इस बात का हर्ष है। स्नान के बाद दान का विधान है। अतः सरकार ने अनेक विधान से ब्राह्मणों को दान दिया और सरकार के साथ बन्दरों ने भी दान दिया। वन जाते समय जब सरकार ने प्रयाग स्नान किया उस समय दान की चर्चा कवि ने नहीं की। यथा : मुदित नहाइ कीन्हि सिव सेवा। पूजि यथा बिधि तीरथ देवा। सरकार लंका विजय करके आ रहे हैं कम से कम समुद्र से उपहार में मिले हुए रत्न तो पास में हैं ही। यथा : कनक थार भरि मनिगन नाना। बिप्ररूप आये तजि माना। बन्दरों के पास भी मणि भूषण का घाटा नहीं। अतः सबका विविध प्रकार से दान करना कहा।

प्रभु हनुमंतहि कहा बुझाई। धरि बटु रूप अवधपुर जाई ॥
भरतहि कुसल हमारि सुनाएहु। समाचार लै तुम्ह चलि आएहु ॥१॥

अर्थ : सरकार ने हनुमान्‌जी को समझाकर कहा कि ब्रह्मचारी का वेष धारण करके अयोध्या जाओ। भरतजी को हमारी कुशल सुनाओ और समाचार लेकर तुम चले आओ।

व्याख्या : सरकार जानते हैं कि समाचार सुनाने में हनुमान्‌जी बड़े कुशल हैं। बुद्धिमतां वरिष्ठ हैं। अतः उन्हीं को भरतजी के पास भेजते हैं और समझाकर कहते हैं :

आइ कहो मोते बहुरि भरत हृदय की बात।
मुख बिकार आकार ते जो कछु तुमहि लखात॥
भरथो सकल सुख भोगते हयगम रथ सब साज।
काको मन डोलत नहीं पाइ बपौती राज॥
जो कछुहू रुचि भरत के मन में होवैं आज।
सारी बसुधा को वही करैं अकंटक राज॥

और यह भी कहते हैं कि तुम ब्रह्मचारी वेष से जाना। अर्थात् जिस वेष से मुझसे मिले थे उसी वेष से भरतजी से मिलना जिसमें भरतजी से मिलने में सुभीता हो और यह समाचार भरतजी पहिले तुम्हारे मुँह से सुने। तभी उनके आकार चेष्टा से हृद्गत भाव का ठीक थाह लग सकेगा। भरतजी को हम लोगों का समाचार सुनकर घर का सब समाचार: माँ लोग सब जीवित हैं कि नहीं? प्रजावर्ग सब सुखी तो हैं? इत्यादि लेकर तुम चले आना। यह न समझना कि विमान आता ही होगा। व्यर्थ क्यों जायँ? हम तुम्हारी बाट शृंगवेरपुर में जोहते रहेंगे।

तुरत पवनसुत गवनत भएऊ। तब प्रभु भरद्वाज पहिं गएऊ॥
नाना बिधि मुनि पूजा कीन्ही। अस्तुति करि पुनि आसिष दीन्ही॥२॥

अर्थ: हनुमान्‌जी तुरन्त चल पड़े। तब सरकार भरद्वाजजी के पास गये। नाना प्रकार से मुनिजी ने पूजा की स्तुति की और तब आशीर्वाद दिया।

व्याख्या: हनुमान्‌जी तुरन्त बड़े वेग से चले। इसलिए पवनसुत शब्द का प्रयोग किया। तब सरकार जंगम तीर्थराज भरद्वाजजी के आश्रम पर गये। सरकार बड़ी शीघ्रता में हैं। अतः कवि भी शीघ्रता कर रहे हैं। अत्यन्त संक्षेप में कथा कह रहे हैं। वन जाने के समय जब उनके पास गये थे तब भी उन्होंने पूजा की थी। यथा: कुसल प्रस्न करि आसिष दीन्हे। पूजि प्रेम परिपूरन कीन्हे। अब वन से लौटने के समय नाना प्रकार से पूजा की। स्तुति करके आशीर्वाद दिया।

मुनिपद बंदि जुगल कर जोरी। चढ़ि बिमान प्रभु चले बहोरी॥
इहाँ निषाद सुना हरि आएउ। नाव नाव कहँ लोग बुलाएउ॥३॥

अर्थ: मुनि के चरणकमलों की वन्दना दोनों हाथों को जोड़कर की और विमान पर चढ़कर प्रभु फिर चले। यहाँ निषाद ने सुना कि सरकार आगये वह नाव नाव कहकर लोगों को पुकारने लगा।

व्याख्या: निषादराज के दूत चित्रकूट फैले हुए हैं। प्रयागराज के दूत ने समाचार दिया कि सरकार आ गये। निषादराज नाव नाव कहकर पुकार रहे हैं। अपने पास बुलाकर नाव लाने को नहीं कहते। इतनो उत्सुकता बढ़ी हुई है अपने पार जाने के लिए नाव चाहते हैं।

सुरसरि नांघि जान जब आयो। उतरेउ तट प्रभु आयसु पायो॥
तब सीता पूजी सुरसरी। बहु प्रकार पुनि चरनन्हि परी॥४॥

अर्थ : गंगा पार करके जब विमान आया तब सरकार की आज्ञा पाकर किनारे पर उतरा। तब सीताजी ने गंगाजी की पूजा की और अनेक प्रकार से चरणों में गिरीं।

व्याख्या : तब तक पुष्पक विमान गंगा पार आगया। सरकार प्रयागराज में उतरे। त्रिवेणी स्नान किया।. भरद्वाजजी से मिले। इतनी देर में शृंगवेरपुर खबर पहुँच गयी। सरकार भी विमान द्वारा तबतक पहुँच गये। गंगा पार करने पर सरकार की आज्ञा से पुष्पक तट पर उतर पड़ा। सीताजी ने मनौती की थी : पति देवर संग कुसल बहोरी। आइ करौं जेहि पूजा तोरी। सो बात पूरी हुई। पति देवर के साथ सकुशल लौटी। अतः फिर गंगाजी का पूजन किया और कृतज्ञता प्रकाश के लिए बहुत प्रकार से दण्डवत प्रणाम किया।

दीन्हि असीस हरषि मन गंगा। सुंदरि तव अहिवात अभंगा॥
सुनत गुहा धाएउ प्रेमाकुल। आएउ निकट परम सुख संकुल॥५॥

अर्थ : गङ्गाजी ने प्रसन्नमन से आशीर्वाद दिया कि सुन्दरी ! तेरा सौभाग्य अचल हो। सुनते ही निषादराज प्रेम से आकुल होकर दौड़ा और अत्यन्त सुख से भरा हुआ निकट आया।

व्याख्या : वन जाते समय सीताजी के विनय पर गङ्गाजी ने आशीर्वाद दिया था। उस वाणी का प्रादुर्भाव गङ्गा जल से हुआ कि : प्राननाथ देवर सहित कुसल कोसला आय। पूजहि सब मन कामना सुजस रहिहि जग छाय। वह आशीर्वाद अक्षरशः पूरा हुआ। अब लौटने पर सीताजी से पूजा पाकर सौभाग्य विषयक आशीर्वाद देती हैं। क्योंकि यही आशीर्वाद शेष था।

यह आशीर्वाद भी विमल वारि द्वारा वैखरी वाणी में प्रकट हुआ। निषादराज ने सुना। समझ लिया कि सरकार पार आगये। गङ्गापूजा हो गयी। गङ्गाजी आशीर्वाद दे रही हैं। अतः निषादराज दौड़ पड़े। प्रेम में आकुल हो उठे। न तो प्रिय बन्धुओं को समाचार दिया न भेंट के लिए कुछ लिया।

प्रभुहि सहित बिलोकि बैदेही। परेउ अवनि तन सुधि नहि तेही॥
प्रीति परम बिलोकि रघुराई। हरषि उठाइ लियेउ उर लाई॥६॥

अर्थ : सरकार को विदेहराज की पुत्री के साथ देखकर वह पृथिवी पर गिर पड़ा। उसे शरीर की सुधि नहीं रही। उसकी परम प्रीति देखकर रामजी ने प्रसन्न होकर उसे हृदय से लगा लिया।

व्याख्या : वैदेही हरण तथा लंका पर चढ़ाई का हाल सुन चुका था। हनुमान्‌जी ने जो कुछ भरत से कहा है वह सब उसे मालूम है। आज वैदेही के साथ सरकार को देखकर वह लंका विजय का अनुमान करके आनन्द के वेग को न सहकर पृथिवी पर गिर जाता है।

रघुराई रामजी ने निषादराज की परम प्रीति की व्याकुलता देखी तो उसे उठाकर हृदय से लगाते हैं। परिष्वङ्ग प्रदान करते हैं। बिना इतनी प्रीति के परिष्वङ्ग प्रदान होता नहीं। आनन्दातिरेक में भी मृत्यु होती है। अतः आश्वासन के लिए उठाकर हृदय से लगा लिया।

छं. लिये हृदय लाइ कृपानिधान सुजान राम रमापती।
बैठारि परम समीप बूझी कुसल सो कर बीनती॥
अब कुसल पदपंकज बिलोकि बिरंचि संकर सेव्य जे।
सुखधाम पूरन काम राम नमामि राम नमामि ते॥

अर्थ : सुजान रमापति कृपानिधान राम ने उसे हृदय से लगा लिया और अत्यन्त निकट बैठाकर उसका कुशल मङ्गल पूछा। वह विनती करने लगा : वह विनय करने लगा कि ब्रह्मा और शिव से सेवित इन चरण कमलों को देखकर अब कुशल है। हे सुखधाम पूर्णकाम राम आपको नमस्कार है नमस्कार है।

व्याख्या : रामजी कृपानिधान हैं : उसे हृदय लगाकर कृपा किया। सुजान हैं : गुणग्राहकता दिखलाया। रमापति हैं : सौशील्य दिखलाया : अब जानी मैं श्री चतुराई। भजी तुमहि सब देव बिहाई। उसे अत्यन्त आदर दिया। अपने सन्निकट बिठाया और कुशल पूछा। उसने बिनती की कि ब्रह्मदेव और शिव से सेव्य जो चरणकमल हैं उनके दर्शन से अब कुशल है। जब दर्शन नहीं होते थे तब की दशा इस समय याद करना नहीं चाहता। कहता है कि हे सुखधाम पूर्णकाम राम आपको बारम्बार नमस्कार है।

छं.[1] सब भाँति अधम निषाद सो हरि भरत ज्यौं उर लाइयो।
मतिमंद तुलसीदास सो प्रभु मोहबस बिसराइयो॥
यह रावनारि चरित्र पावन रामपद रतिप्रद सदा।
कामादि हर बिग्यान कर सुरसिद्ध मुनि गावहिं मुदा॥

अर्थ : निषाद सब भाँति से अधम था। उसे हरि ने भरत की भाँति हृदय से लगा लिया। तुलसीदासजी कहते हैं कि रे मतिमन्द : मन ऐसे प्रभु को मोह के वश भुलवा दिया। यह रावणारि रामजी का चरित्र सदा रामजी के चरणों में रति देनेवाला है। कामादिकों का हरण करनेवाला है। विज्ञान करनेवाला है। इसे देवता सिद्ध और मुनि प्रसन्न होकर गान करते हैं।

व्याख्या : सरकार अधमोद्धारण है। निषादराज तो सभी प्रकार से अधम था। यथा : लोक बेद सब भाँतिहि नीचा। जासु छाँह छुइ लेइअ सींचा। सो उसे

---

१. हरिगीतिका छन्द है।

भरत ऐसे भाई की भाँति हृदय से लगा लिया। ऐसे मालिक का तो दिन रात चिन्तन करना चाहिए। जो अज्ञानवश उसे भुलावे वह मतिमन्द है। अब सम्पूर्ण लंकाकाण्ड की फलस्तुति कहते हैं। सरकार अधमोद्धारण हैं। परन्तु विश्वकण्टक के नाश करनेवाले हैं। रावण भूतद्रोही विश्वकण्टक था। उसका कुल और दल के साथ वध किया। इसलिए प्रभु को रावणारि कहते हैं। अतः रावणारि चरित्र से लंकाकाण्ड की कथा अभिप्रेत है। यह कथा पवित्र है। पाप को हरण करती है। रामजी के चरणों में भक्ति देती है। कामादि दोषों को दूर करके विज्ञान सम्पादन करती है। अतः वेद के काण्डत्रय का इसमें समावेश है। अतः सुरसिद्ध और मुनि हर्षित होकर गान करते हैं। क्योंकि इसमें अल्पायास से महाफल है। अथवा पावन है। इसलिए सुरगान करते हैं। रामपद रतिप्रद है। इसलिए सिद्ध गान करते हैं। कामादि हर विज्ञानकर हैं। इसलिए मुनि गान करते हैं।

दो. समर बिजय रघुबीर के, चरित जे सुनहिं सुजान।
बिजय बिबेक बिभूति नित, तिन्हहि देहि भगवान॥
यह कलिकाल मलायतन, मन करि देखु बिचार।
श्री रघुनाथ नामु तजि, नाहिन आन अधार॥१२१॥

अर्थ : जो सुजान सरकार के समरविजय चरित को सुनते हैं उन्हें भगवान् नित्य विजय विवेक और विभूति देते हैं। हे मन ! विचार करके देख। यह कलियुग मल : पाप का घर है। इसमें सिवा राम नाम के कोई दूसरा आधार नहीं है।

व्याख्या : इस काण्ड की कथा में श्रीरघुनाथ के समरविजय चरित्र का वर्णन है। इसके श्रवण का सम्यक् फल सुजान को ही मिलता है। जो पिण्ड तथा ब्रह्माण्ड में रामजी के समर विजय का जानकार है उस श्रोता पर प्रसन्न होकर भगवान् उसे दोनों प्रकार की विजय देते हैं। शत्रु पर भी वह विजय पाता है और संसार शत्रु पर भी विजय पाता है। अतः उसे नित्य विभूति की प्राप्ति होती है।

यह कलियुग बड़ा कराल है। इसमें स्वभाव से चित्त का झुकाव पाप की ओर होता है और जितने साधन हैं वे निर्मल चित्त से ही साध्य हैं। अतः सब साधन करते हुए भी उन पर भरोसा नहीं किया जा सकता। यथा : एहि कलिकाल सकल साधन तरु है श्रम फलनि फरोसो। नाहिन आवत आन भरोसो। इस काल में एकमात्र आधार एकमात्र भरोसा रामनाम का है। यथा : बहुमत मुनि बहु पंथ पुराननि जहाँ तहाँ झगरो सो। गुरु कह्यौ रामभजन नीको मोहि लागत राजडगरो सो। सियावर रामचन्द्र की जय !

इति श्रीरामचरितमानसे सकलकलिकलुषविध्वंसने
विमलविज्ञानसंपादनो नाम
षष्ठः सोपानः समाप्तः।

श्रीराम

श्रीगणेशाय नमः । श्रीगुरवे नमः

श्रीरामचरितमानस

उत्तरकाण्ड : सप्तम सोपान

सटीक

मङ्गलाचरण

श्लो. [1]केकीकंठाभ[2] नीलं [3]उरवरविलसद्विप्रपादाब्जचिह्नं[4]
शोभाढ्यं पीतवस्त्रं सरसिजनयनं सर्वदा सुप्रसन्नं ।
पाणौ नाराचचापं कपिनिकरयुतं बन्धुना सेव्यमानं
नौमीड्यं जानकीशं रघुवरमनिशं पुष्पकारूढरामं ।।

अर्थ : मोर के कण्ठ की दीप्ति सा जिनका वर्ण नील है। श्रेष्ठ वक्षःस्थल पर जिनके ब्राह्मण के चरण की छाप विराजमान है। जो शोभा के धनी हैं। पीताम्बर धारण किये हुए हैं। कमल से नेत्रवाले हैं। सदा सुप्रसन्न हैं। हाथ में धनुष बाण धारण किये हैं और जो बानरों के समूह से युक्त भाई से सेवित और पुष्पक विमान पर सवार हैं। ऐसे जानकी के पति पूज्य रघुवर राम को मैं निरन्तर नमस्कार करता हूँ।

व्याख्या : उत्तरकाण्ड को सातवीं मोक्षपुरी द्वारावती माना गया है। द्वारावती में श्रीकृष्ण भगवान् ने राज्य किया है। इसी भाँति उत्तरकाण्ड में सरकार ने गुणातीत अरु भोग पुरन्दर होकर राज्य भोग किया है। द्वारका सोने की थी और उत्तरकाण्ड में अयोध्या का वर्णन करते हुए भी कवि लिखते हैं : मनि खंभ भीति

---

१. यह स्रग्धरा छन्द है। २. इह छन्दानुरोधेन वर्णान्तं गुरुलाघवम्। प्राकृत में छन्द के अनुरोध से वर्ण गुरु या लघु कर दिये जाते हैं। ३. उरवर पाठ भी माना गया है। ४. भो विन्दुः उस प्राकृतसूत्र से चिह्नम् आदि का चिह्नं रूप हुआ।

बिरंचि बिरची कनक मनि मरकत खँची : द्वारका श्रीकृष्ण भगवान् के साथ गयी। यहाँ अयोध्या के विषय में भी कहा जाता है कि सारी अयोध्या रामजी के साथ परम धाम चली गयी। अतः उत्तरकाण्ड को द्वारावती माना।

सरकार रावण वध करके पुष्पकारूढ होकर अयोध्या आरहे हैं। कवि उसी दृश्य को आँख के सामने रखता हुआ वन्दना कर रहा है। अश्वारूढ, रथारूढ रघुनायक का वर्णन हो चुका है। अतः अब पुष्पकारूढ का वर्णन किया जा रहा है। पुष्पकारूढ रूप से सरकार का दर्शन श्रीगोस्वामीजी को श्रीअवध में होने की जनश्रुति है। अतः पुष्पकारूढ राम रघुवर की नित्य वन्दना श्रीगोस्वामीजी करते हैं। जानकीश और बन्धुना सेव्यमानं कहकर प्रधान त्रिकोण का वर्णन किया। यथा : रामतापनीये : हेमाभया द्विभुजया सर्वालंकृतया चिता। श्लिष्टः कमलधारिण्या पुष्टः कोशलजात्मजः। दक्षिणे लक्ष्मणेनाथ सधनुष्पाणिना पुनः। हेमाभेनानुजेनैव तदा कोणत्रयं भवेत्‌ ''एवं त्रिकोणरूपः स्यात् तं देवा ये समाययुः। सब अलङ्कारों से युक्त दो भुजावाली स्वर्ण वर्णवाली चिद्रूपिणी सीताजी से समाश्लिष्ट कौसल्या के पुत्र रामजी हैं। उनके दक्षिण स्वर्णवर्ण हाथ में धनुष धारण किये हुए लक्ष्मणजी हैं। इस भाँति त्रिकोण हुआ ''उसी के शरण में देवता लोग रावण वध के लिए गये थे। अतः रावण के वध के पश्चात् उसी त्रिकोण रूप से श्रीगोस्वामीजी लौटना कहते हैं और उसे पूज्य कहते हैं। अब झाँकी का वर्णन करते हैं कि मोर के गले के रंग सी नीलिमा सरकार की है। मोर के गले की नीलिमा में एक प्रकार की चमक भी रहती है। सौन्दर्यातिशय द्योतन के लिए उसकी उपमा देते हैं। वररूप से बारात में चलते समय भी उपमा दी थी। केकिकंठद्युति स्यामल अंगा। तडित विनिन्दक बसन सुरंगा। विप्रचरण का वर्णन भी बहुत दिनों के बाद आया है। शैशवरूप की झाँकी के समय कहा था : बिप्रचरण देखत मन लोभा। लङ्का के युद्ध में भी कहा : उर धरासुर पद लस्यो या आज कहते हैं : उरवर विलसद्विप्रपादाब्जचिह्नं इतने बीच में ऐश्वर्य छिपाया गया। अतः विप्रचरण चिह्न अव्यक्त रूप में था। अब छिपाने की आवश्यकता नहीं है। अतः चरणचिह्न व्यक्त हो गया। अतः कवि भी वर्णन करते हैं। क्योंकि विप्रचरणचिह्न ही सरकार के सब देवताओं से उत्कृष्ट होने का तमगा है। यद्यपि अभी तक सरकार वल्कल ही धारण किये हुए हैं पर सरकार के धारण करने से उसकी ऐसी शोभा बढ़ गयी है कि पीताम्बर मालूम पड़ता है। नयन कमल सौन्दर्य का निधान है। ऐसी आँखे किसी की नहीं और सदा की भाँति प्रसन्न हैं। इनकी प्रसन्नता में विकार आता ही नहीं। वनवास मिलने पर प्रसन्न। यथा : मुख प्रसन्न चित चौगुन चाऊ। मिटा सोचु जनि राखै राऊ। राज्य पर लौटते हैं तो भी प्रसन्न। इसलिए गोस्वामीजी कहते हैं : सर्वदा सुप्रसन्नं। धनुषबाण श्रीरामावतार का विशेष चिह्न है। जिस भाँति श्रीकृष्णजी मुरलीधर हैं उसी भाँति श्रीरामजी धनुर्धर हैं। अवकाश में भी धनुर्बाण सुधारा करते हैं। यथा : कर कमलन्हि धनुसायक फेरत। जियकी जरनि हरत हँसि हेरत। यथा : दुहुँकर कमल सुधारत बाना। यह लंकेस मंत्र लगि काना। विजयी वानर सेना को साथ लिए

हुए हैं। अतः वानरी सेना के बीच में पुष्पक पर शोभायमान तीनों मूर्ति की अपूर्व शोभा हो रही है। इसी झाँकी को नित्य श्रीगोस्वामीजी प्रणाम करते हैं।

श्लो. कोशलेन्द्रपदकंजमंजुलौ कोमलावजमहेशवन्दितौ।
जानकीकरसरोजलालितौ चिन्तकस्य मनभृङ्गसङ्गिनौ ॥२॥

अर्थ : कोशल के स्वामी के सुन्दर कमल से दोनों चरण जो कि कोमल हैं। और ब्रह्मा तथा महादेवजी से वन्दित हैं। जानकीजी के करकमलों से सेवित हैं। वे ध्यान करनेवालों के मनरूपी भौरों के साथी हों।

व्याख्या : कोशलेन्द्र कहकर इस काण्ड में जैसे सरकार का कोशलपुर की राजगद्दी पर बैठना कहा। इन्द्र के समान राजभोगों की स्वीकृति कहा। यथा : गुनातीत अरु भोग पुरंदर। सुन्दर कोमल चरणकमलों को ब्रह्मा और शिव से वन्दित कहकर दिव्य ऐश्वर्य कहा। कोई यह न समझ ले कि प्राकृत राजा की भाँति केवल पृथिवी के ही राजा थे। राज्य स्वीकार करने के बाद बड़ी भीड़भाड़ रहती है। सभी चरणसेवा के लिए उत्सुक रहते हैं। सेवा के लिए ब्रह्मा और शिवजी को भी अवसर मिलना कठिन रहता है। वन्दना मात्र कर लेते हैं। जानकीजी बड़ी सावधानी से उन कोमल चरणों की सेवा करती हैं कि कहीं कड़ा हाथ उन चरणों पर न पड़ जाय। यथा : गुर्वर्थं त्यक्तराज्यो व्यचरदनुवनं पद्मपद्भ्यां प्रियायाः पाणिस्पर्शाक्षमाभ्यां मृजितपथिरुजो यो हरीन्द्रानुजाभ्याम्। श्रीमद्भागवत में शुकदेवजी कहते हैं कि जिसने पिता की आज्ञा से राज्य छोड़ा और उन चरणों से बन बन फिरे। जो कि जानकीजी के करकमल के स्पर्श को नहीं सह सकते थे उन चरणों तक मन से भी गति होना कठिन है। अतः श्रीगोस्वामीजी प्रार्थना करते हैं वे चरणकमल ही कृपा करके ध्यान करनेवाले के मनरूपी भौंरे के साथ साथ रहे। मनरूपी भौंरे में यह सामर्थ्य नहीं कि उन कमलों तक पहुँच सके। श्रीचरण जब वन बन फिरते रहे तो जन मन के पास भी आजायँ यही अभिलाषा है।

श्लो. कुंदु[1] इंदुदर गौर सुन्दरं अम्बिकापतिमभीष्टसिद्धिदं।
कारुणीककलकंजलोचनं नौमि शङ्करमनङ्गमोचनं ॥३॥

अर्थ : कुन्द के फूल, चन्द्रमा और शंख की भाँति गोरे और सुन्दर, अम्बिका के पति को, मनोवाञ्छित सिद्धि देनेवाले, कारुणीक तथा सुन्दर कमल ऐसे नयनवाले कामदेव से छोड़नेवाले शङ्कर को मैं नमस्कार करता हूँ।

व्याख्या : सरकार नीलसरोरुह नीलमणिनील नीरधर श्याम हैं और शङ्कर भगवान् कुन्द इन्दु दर गौर हैं। कुन्द से गन्ध कहा। इन्दु से आह्लादकत्व कहा और शङ्ख से गौरवर्ण होना कहा। अम्बिकापति कहकर जगत्पिता होना कहा। यथा : जगत मातु पितु संभु भवानी। तेहि सृंगार न कहौं बखानी। अभीष्ट सिद्धिदं

---

१. नयुवर्णस्यास्वे। प्रा. सू.। इ या उ की सन्धि भिन्न वर्ण से नहीं होती।

कहकर उदारता कहा। यथा : इच्छित फल बिनु सिव अवराधे। लहिय न कोटि जोग जप साधे। कारुणीक कहकर दीनदयालुता कहा। यथा : दीन दयालु द्रवत सुठि थोरे। सकत न देखि दीन कर जोरे। सुन्दर कमल नेत्र कहकर सुन्दरता कहा। कामदेव को इन्हीं ने अनङ्ग किया है। यथा : अब ते रति तव नाथ कर होइहि नाम अनंग। अतः उससे पिण्ड छुड़ाने में भी यही समर्थ हैं। इनकी कृपा जिस पर हो जाय काम उसके पास नहीं जा सकता। इनका नाम प्रणतकल्पतरु है। इसलिए शङ्कर कहे जाते हैं। अतः गोस्वामीजी वन्दना करते हैं कि कृपा कीजिये।

८२. नगर निकट आगमन विधि प्रसंग

दो. रहा[1] एक दिन अवधि कर, अति आरत पुर लोग।
जहँ तहँ सोचहिं नारिनर, कृस तन राम वियोग॥
सगुन होंहि सुन्दर सकल, मन प्रसन्न सब केर।
प्रभु आगमन जनाव जनु, नगर रम्य चहुँ फेर॥
कौसल्यादि मातु सब, मन अनंद अस होइ।
आयउ प्रभु सिय अनुज जुत, कहन चहत अब कोइ॥
भरत नयन भुज दच्छिन, फरकत बारहिं बार।
जानि सगुन मन हरख अति, लागे करन विचार॥१॥

अर्थ : अवधि का एक दिन शेष रहा। अतएव नगर के लोग अत्यन्त आतुर हो उठे। रामजी के वियोग में दुबले हुए स्त्री पुरुष जहाँ तहाँ सोच करने लगे। तब तक सुन्दर शकुन होने लगे। सबका मन प्रसन्न हो उठा। नगर चारों ओर से रमणीक होकर मानो प्रभु के आगमन को सूचित कर रहा था।

कौसल्या आदि सब माताओं के मन में ऐसा आनन्द हो रहा था मानो कोई अभी आकर कहना चाहता था कि प्रभु सीताजी और लक्ष्मणजी के साथ आ गये। भरतजी की दाहिनी आँख और दाहिनी भुजा बार बार फड़क रही थी। शकुन जानकर मनमें बड़ा हर्ष हुआ। तब विचार करने लगे।

व्याख्या : यह चौदह वर्ष की अवधि का अन्तिम दिन है। दूसरे दिन रामजी को आ जाना चाहिए। दूर दूर तक चर छूटे हैं। पर आने की खबर कहीं से नहीं आ रही है। जब अभी तक कहीं पता नहीं है तब कल कैसे आ जायेंगे। यह समझकर पुर के लोग अत्यन्त आर्त हो रहे हैं। जैसे जल के अत्यन्त कम हो जाने पर मछलियाँ अत्यन्त आर्त हो जाती हैं। कौसल्याम्बाने पहिले ही कहा था : अवधि अंबु प्रिय परिजन मीना। तुम करुनाकर धरम धुरीना। अस बिचारि सोइ

---

१. यहाँ से उमा के सातवें प्रश्न : राज बैठि कीन्ही बहु लीला। सकल कहहु संकर सुख लीला : का उत्तर आरम्भ होता है।

करेहु उपाई। सबहि जिअत जेहि भेंटेहु आई। सब नरनारी जहाँ तहाँ सोच रहे हैं। निदहिं आपु सराहहिं मीना। धिग जीवन रघुबीर बिहीना। जौं पै प्रिय बियोगु बिधि कीन्हा। तौ कस मरनु न माँगे दीन्हा। दशा उनकी यह है कि रामजी के वियोग में दुबले हो गये हैं।

अभी तक प्रभु का समाचार तो नहीं मिला और लोग सोच रहे हैं पर भीतर से मन प्रसन्न होता चला आ रहा है। अयोध्या सरकार के वियोग में भयानक दिखायी पड़ी थी। यथा : लागति अवध भयावनि भारी। मानहुँ काल राति अँधियारी। अब रमणीय दिखायी पड़ती है मानो प्रभु के आगमन की सूचना दे रही अयोध्यापुरी सनाथ होने जा रही है। इसी से प्रभु शब्द का प्रयोग किया।

चौदह वर्ष के बाद आज कौसल्या आदि माताओं के मन में आप से आप आनन्द का उद्रेक हो रहा है। ऐसा बोध हो रहा है कि सीताजी और लक्ष्मणजी के सहित सरकार के आगमन की कोई सूचना दिया ही चाहता है। जिस भाँति विपत्ति के आने के पहिले उसकी छाया आ जाती है। ग्रहण लगने के पहिले ही वेध लग जाता है। उसी भाँति आनन्द के आगमन के पहिले उसका प्रकाश आ जाता है।

भरतजी को सुधबुध नहीं है। सरकार के ध्यान में मग्न हैं। पुलकगात हिय सिय रघुबीरू। जीह नाम जप लोचन नीरू। जब उनकी दक्षिण भुजाएँ और नेत्र बार बार फड़कने लगे तब ख्याल हुआ कि यह तो सगुन हो रहा है। मन में अत्यन्त हर्ष हुआ। क्योंकि सगुन प्रतीति भेंट प्रिय केरी। तब विचार करने लगे।

रहेउ एकु दिनु अवधि अधारा। समुझत मन दुख भएउ अपारा ॥
कारन कवन नाथु नहि आएउ। जानि कुटिल किधौं मोहि बिसराएउ ॥१॥

अर्थ : अवधि का आधारभूत एक दिन रह गया। यह समझते हुए मन में अपार दुःख हुआ कि क्या कारण है कि नाथ नहीं आये। क्या मुझे कुटिल जानकर उन्होंने भुला दिया।

व्याख्या : सरकार के वनवास की अवधि और अवधवासियों के जीवन की एक ही है। यथा : विषम बियोग न जाइ बखाना। अवधि आस सब राखहिं प्राना। अवधि पूरी होने के पहिले ही कम से कम यह समाचार तो मिल जाना ही चाहिए कि सरकार आ गये और इतनी दूरी पर हैं। पर ऐसा कोई समाचार नहीं मिला। अतः यही सिद्ध है कि नहीं आये। ऐसा समझते ही मन में ऐसा दुःख हुआ जिसका पारावार नहीं।

भरतजी अपने मन में कारण ढूँढ़ रहे हैं कि न आने का क्या कारण हुआ। क्या लक्ष्मणजी नहीं अच्छे हुए? क्या लंका में अभी युद्ध चल ही रहा है पर प्रभु के प्रताप के जानकार भरतजी के मन में ये कारण यथेष्ट नहीं प्रतीत हुए। तब कहते हैं कि क्या मुझे कुटिल जानकर उन्होंने भुला दिया। मैंने कहा था : तुलसी

बीते अवधि प्रथम दिन जौ रघुबीर न आइहौ। तौ प्रभु चरन सरोज सपथ जीवत परिजनहि न पइहौ। सो मेरी प्रतिज्ञा भूलने योग्य नहीं थी। क्या सरकार ने मुझे कुटिल समझकर उस प्रतिज्ञा को दम्भ मात्र समझा। इसलिए मुझे भुला दिया? भरतजी को बड़ी आस्था है कि सरकार कम से कम मुझे तो नहीं भूल सकते और बात भी ऐसी ही थी। यथा : भरत दसा सुमिरत मोहि निमिष कलप सम जात। भरतजी सोचते हैं कि देखो कैसे कुअवसर में मैंने हनुमान् को बाण मारा। मुझे कुटिल समझने के लिए यथेष्ट कारण है तो क्या इससे मुझे भुला देना ही उचित समझा?

अहह धन्य लछिमनु बड़ भागी। राम पदारबिंद अनुरागी॥
कपटी कुटिल मोहि प्रभु चीन्हा। ताते नाथ संग नहि लीन्हा॥२॥

अर्थ : अहो! बड़भागी तो लक्ष्मण हैं जो रामजी के चरण कमलों के अनुरागी हैं। प्रभु ने मुझे कपटी कुटिल पहिचाना। इसलिए नाथ ने सङ्ग नहीं लिया।

व्याख्या : धन्य तो लक्ष्मणजी हैं। जिन्होंने स्वामी के कार्य के लिए ललकार कर शत्रुओं से लोहा लिया। मेरे भाग्य में यह सेवा नहीं थी। अतः लक्ष्मणजी छोटे होने पर भी भाग्य में बड़े हैं। उन्हें रामजी के चरणों में सच्चा अनुराग है। मेरा अनुराग झूठा है। मैं कपटी और कुटिल हूँ। मैं सठ सब अनरथ कर हेतू। बैठि बात सब सुनहुँ सचेतू। सो सरकार ने मुझे ठीक पहिचान लिया। मैं कहता रहा : न तरु फेरिअहिं बंधु दोउ नाथ चलौ मैं साथ। पर सरकार ने साथ न लिया।

जौं करनी समुझै प्रभु मोरी। नहि निस्तार कलप सत कोरी॥
जन अवगुन प्रभु मान न काऊ। दीन बंधु अति मृदुल सुभाऊ॥३॥

अर्थ : यदि प्रभु मेरी करणी पर ध्यान दें तो मेरा निस्तार करोड़ कल्प में भी नहीं हो सकता। पर प्रभु अपने जन के अवगुण को गिनते ही नहीं। क्योंकि दीनबन्धु हैं और स्वभाव उनका अत्यन्त कोमल है।

व्याख्या : भरतजी मन में कहते हैं कि सरकार का मुझे कपटी कुटिल समझना ठीक है। मेरी करणी ही ऐसी है। मेरे कारण राज्याभिषेक रुका। चौदह वर्ष का बनवास हुआ। पिता की मृत्यु हुई। वन में सीताहरण हुआ। राक्षसों से संग्राम ठना। लक्ष्मणजी घायल हुए। हनुमान्जी सञ्जीवनी बूटी लाने के लिए भेजे गये। सो उन्हें मैंने बाण मारा। मेरी इन करणियों पर सरकार यदि ध्यान दें तो मेरा निस्तार अनन्त काल तक नहीं हो सकता।

परन्तु मुझे सरकार के स्वभाव का भरोसा है। मैं उनका जन : तदीय हूँ और वे जन के अवगुण को भी मानते नहीं। यथा : अपराध अगाध भये जन ते अपने उर आनत नाहिन जू। इत्यादि। मैं दीन हूँ और वे दीनबन्धु हैं। अत्यन्त कोमल स्वभाव हैं। तुरन्त द्रवीभूत हो जाते हैं।

मोरें जिअ भरोस दृढ़ सोई। मिलिहहिं रामु सगुन सुभ होई॥
बीते अवधि रहहि जौ प्राना। अधम कवन जग मोहि समाना॥४॥

अर्थ : उसी का पक्का भरोसा मेरे मन में है। रामजी मिलेंगे शुभ शकुन हो रहा है। यदि अवधि बीतने पर भी मैं जीता रह गया तब तो मेरे समान अधम जगत् में कौन होगा ?

व्याख्या : अपनी करनी को सोचकर रामजी के स्वभाव में विकार कल्पना करना ठीक नहीं जँचता। सरकार दीनबन्धु हैं। अत्यन्त मृदुल स्वभाव हैं। मेरी करनी पर ध्यान देकर मेरा परित्याग नहीं करेंगे। मैं दीन हूँ और वे दीनदयाल हैं। निश्चय दया करेंगे। दृढ़ भरोसा यही है और इसी की पुष्टि शुभ सकुन से हो रहा है। अतः रामजी मिलेंगे। यथा : यद्यपि मम अवगुन अपार संसार योग्य रघुराया। तुलसिदास निज गुन बिचार करुनानिधान करु दाया।

प्रेमी का चित्त सदा पापशङ्की होता है। अतः भरतजी फिर सोचते हैं कि मिलना निश्चय होने पर भी अवधि के भीतर ही मिलाप होना चाहिए। अवधि बीतने के साथ ही मेरे प्राणों का विसर्जन होना चाहिए। परन्तु मुझे अपने प्राणों का विश्वास नहीं। यह कई बार धोखा दे चुका है। सरकार का बनबास सुनने पर भी यह नहीं गया। यथा : बिनु पनहिन्ह पयादेहि पाँये। संकर साखि रहेउँ एहिघाये। जब आँखों से बल्कल बसन पहिने देखा उस समय भी इन्हें चला जाना था पर ये नहीं गये। यथा : अब सबु आँखिन्ह देखेउँ आई। जिअत जीव जड़ सबइ सहाई। अतः इसका क्या ठिकाना है। सम्भव है कि अवधि बीतने पर भी यह न जाय। तब तो मेरे सा अधम कौन होगा ? सरकार के चरण की शपथ भी झूठ ही पड़ जायगी। यथा : तौ प्रभु चरन सरोज सपथ जिवत परिजनहिं न पैहौं।

दो. राम बिरह सागर महुँ, भरतु मगन मन होत।
बिप्र रूप धरि पवन सुत, आइ गयउ जनु पोत॥
बैठे देखि कुसासन, जटा मुकुट कृस गात।
राम राम रघुपति जपत, स्रवत नयन जल जात॥१॥

अर्थ : रामजी के बिरह सागर में भरतजी डूब रहे थे। इतने में ब्राह्मण का रूप धारण करके पवन पुत्र हनुमान्जी जहाज की भांति आगये। देखा कि भरतजी कुशा के आसन पर बैठे हुए हैं। शरीर दुर्बल हो रहा है। सिर पर जटा का ही मुकुट है। राम राम रघुपति : ऐसा जप कर रहे हैं और उनको आँख से आँसू बह रहे हैं।

व्याख्या : भरतजी के दुःख का पारावार नहीं है। प्राण संकट उपस्थित है। इसीसे बिरह सागर में भरतजी का डूबना कहते हैं। तब से जहाज आगया। सरकार की आज्ञा हनुमान्जी को हुई थी कि : धरि बटुरूप अवध पुर जाई। भरतहिं कुसल हमारि सुनायेहु। अतः विप्ररूप धारण करके हनुमान्जी आगये। मानो डूबते हुए

को जहाज का सहारा मिल गया। इसी भाँति हनुमान्जी द्वारा सीताजी की भी रक्षा हुई। यथा : बूड़त बिरह जलधि हनुमाना। भयउ तात मो कहँ जल जाना। हनुमान्जी ने जाकर भरतजी को देखा। जिस अवस्था में चौदह वर्ष पहिले नन्दि ग्राम में ठहरे थे ठीक वही अवस्था चली जा रही है। यथा : पहिले : महि खनि कुस साथरी सँवारी। सो : बैठे देखि कुसासन। पहिले : जटा जूट सिर मुनि पट धारी··· देह दिनहि दिन दूबरि होई। सो अब : जटा मुकुट कृस गात। पहिले : पुलक गात हिय सिय रघुबीरू। जीह नाम जप लोचन नीरू। सो अब राम राम रघुपति जपत स्रवत नयन जल जात।

देखत हनूमान अति हरषेउ। पुलक गात लोचन जलु बरषेउ ॥
मन महुँ बहुत भाँति सुख मानी। बोलेउ स्रवन सुधा सम बानी ॥१॥

अर्थ : देखते ही हनुमान्जी को बड़ा आनन्द हुआ। उनके रोंगटे खड़े हो गये। आँख से आँसू की झर लग गयी। मन में बहुत प्रकार से सुख माना और श्रवणामृत वाणी बोले।

व्याख्या : हनुमान्जी भरतजी की ऐसी दशा देखकर बड़े हर्षित हुए। मैत्री करुणा मुदिता और उपेक्षा का नित्य वास महात्माओं के हृदय में रहता है। सो भरतजी का रामानुराग देखकर हनुमान्जी के हृदय में मुदिता का उदय हुआ। हनुमान्जी को रघुनाथ कीर्तन बड़ा प्रिय है। यथा : यत्र यत्र रघुनाथकीर्तनं तत्र तत्र कृतमस्तकाञ्जलिम्। बाष्पवारिपरिपूर्णलोचनं मारुतिं नमत राक्षसान्तकम्। जहाँ जहाँ रघुनाथजी का कीर्तन होता है वहाँ वहाँ मस्तक पर अञ्जुलि बाँधे हुए आँखों में आँसू भरे हुए उपस्थित हो जाते हैं। सो यहाँ परम भक्त भरतजी को : राम राम रघुपति : नामका कीर्तन करते हुए देखकर सात्त्विक भाव हुआ। रोमाञ्च हो गया और आँसू की झर लग गयी। : श्री मारुति को राम नाम सुना के प्रसन्न कर लेना चाहिए।

हनुमान्जी को भरतजी के देखने से बहुत प्रकार से सुख हुआ। भरतजी सरकार के विरह से अतिव्याकुल हैं। अतः आशा बँधी कि अब राज्याभिषेक भी देखेंगे। ऐसे परम भक्त को ऐसे अवसर पर परमानन्द का समाचार देने का सुअवसर भी मिला। अतः भरत के श्रवण के लिए अमृत सी वाणी बोले। ऐसे अवसर पर हनुमान्जी श्रवणामृत वाणी बोलते ही हैं। सीताजी के विरह सागर में मग्न होते समय भी ऐसी ही वाणी बोले। भगवती कहती हैं कि : स्रवनामृत जेहि कथा सुनाई। कही सो प्रगट होत किन भाई।

जासु बिरह सोचहु दिन राती। रटहु निरंतर गुनगन पाँती ॥
रघुकुल[1] तिलक सुजन सुखदाता। आयेउ कुसल देव मुनित्राता ॥२॥

---

१. यहाँ हेतु अलंकार है।

अर्थ : जिसके विरह में दिन रात सोचा करते हो और जिसके गुण गण की पंक्तियों को निरन्तर रटा करते हो वही रघुकुल के तिलक सुजन के सुख देनेवाले और देवता तथा मुनियों के रक्षक कुशल पूर्वक आगये।

व्याख्या : रामजी आगये ऐसा हनुमान्‌जी ने नहीं कहा। जिस भाँति अकस्मात् शोक के समाचार का धक्का मन में लगता है उसी भाँति अति आनन्द के समाचार का भी धक्का लगता है। अतः आकांक्षा पूर्वक अभिमुख करने के लिए कहते हैं कि : जिसके विरह में दिन रात सोचते हो। इससे यह भी सूचित किया कि वक्ता उनके हृद्‌गत भावों से भली भाँति परिचित है। बात को और भी स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि जिसके गुण गणों का निरन्तर रट लगाये रहते हो। अब उनके गुणगण कहते हैं कि वे रघुकुल तिलक सुजन सुखदाता और देव मुनि त्राता हैं। इससे राक्षसों का विनाश भी सूचित किया। इस भाँति परोक्षरूप से रामजी को कहकर बतलाते हैं कि वे कुशल से आगये। आकांक्षा बनी रहने देने के लिए पूरा समाचार नहीं दिया।

रिपुरन जीति सुजस सुर गावत। सीता सहित अनुज प्रभु आवत॥
सुनत[1] बचन बिसरे सब दूषा। तृषावंत जिमि पाइ पियूषा॥३॥

अर्थ : देवताओं द्वारा यश गाया जा रहा रहा है। शत्रु को जीतकर सीताजी और छोटे भाई के साथ सरकार आरहे हैं। यह बात सुनते ही भरतजी को सब दुःख भूल गया है। जैसे प्यासे को अमृत मिलने से सब दुःख भूल जाता है।

व्याख्या : हनुमान्‌जी से ही भरतजी को राक्षसों से संग्राम का पता चला था। यथा : कपि सब चरित समास बखाने। भये दुखी मनमँहु पछिताने। अतः पहिले रण का ही समाचार देते हैं : रिपुरन जीति सुजस सुर गावत। रावण बध के बाद देवताओं की स्तुति देख चुके हैं। उसीका वर्णन कर रहे हैं। अब पूरा समाचार से आकांक्षा पूरी करते हुए कहते हैं : सीता सहित अनुज प्रभु आवत।

विरह व्यथा हानि ग्लानि आदि जितने दुःख थे ये सब भरतजी इस बचन के सुनते ही भूल गये। आयेउ कुसल देव मुनि त्राता : इस बचन से सब दुःख नहीं गया था। क्योंकि सीताजी और लक्ष्मणजी विषयक उसमें कोई चर्चा नहीं थी और सुनि रन घायल लखन परे हैं आदि समाचार सुन चुके हैं। अतः सीताजी तथा लक्ष्मण के विषय में बड़ी चिन्ता थी। सीता सहित अनुज प्रभु आवत : इस बचन से सब दुःख से ऐसा भूला जैसे प्यासे को अमृत मिलने से सब दुःख भूल जाता है। प्यासा महा कष्ट में रहता है। उसका कण्ठ सूख जाता है। शरीर में आग लगी रहती है। उसे पानी चाहिए सो अमृत मिला। भरतजी को राम लक्ष्मण जानकी के आगमन के समाचार सुनने को प्यास है। सो यह समाचार मिला कि शत्रुओं पर विजय प्राप्त हुई। देवता लोग सुयश गा रहे हैं और राम लक्ष्मण जानकी आरहे हैं।

---

१. यहाँ प्रहर्षण द्वितीय अलंकार है।

अतः इस समाचार में स्वाद और तोष चाहे हुए समाचार से अधिक था। इसलिए अमृत प्राप्ति से उपमा दी।

को तुम तात कहाँ तें आए। मोहि परम प्रिय बचन सुनाए ॥
मारुत सुत मैं कपि हनुमाना। नाम मोर सुनु कृपा निधाना ॥४॥

अर्थ : हे तात ! तुम कौन हो ? कहाँ से आये हो ? मुझे तुमने परम प्रिय वचन सुनाया है। मैं पवन पुत्र हनुमान् नामी बन्दर हूँ। हे कृपानिधान ! सुनिये मेरा यही नाम है

व्याख्या : परमप्रिय समाचार देनेवाला भी परमप्रिय हो जाता है। इससे भरतजी तात सम्बोधन करते हैं। ब्राह्मण रूप में हनुमान्‌जी को देखकर नहीं पहिचान सके। अपने भेजे हुए दूतों में से भी नहीं मालूम होते। इसलिए भरतजी दो प्रश्न करते हैं। १. तुम कौन हो ? २. कहाँ से आये हो ? प्रश्न पूछने का कारण देते हैं कि मोहि परम प्रिय बचन सुनाये। ऐसे वचन सुनानेवाले का परिचय पाना आवश्यक है। तुम्हे निषादराज ने भेजा है या भरद्वाज मुनि ने भेजा है या और किसी मेरे भेजे हुए दूतों में से किसी ने भेजा है या सरकार ने ही भेजा है ? भेजनेवाले का भी पता लगने से दृढ़ विश्वास होगा।

पहिले प्रश्न का उत्तर देते हुए हनुमान्‌जी कहते हैं कि मैं पवन का पुत्र हूँ। भाव यह कि मेरा पवन के समान वेग है। बहुत दूर से भी क्षण भर में आ सकता हूँ। दूसरी बात यह है कि जो रूप आप मेरा देख रहे हैं वह मेरा यथार्थ रूप नहीं है। मैं कपि हूँ हनुमान् मेरा नाम है। इतना कहने से हनुमान्‌जी ने वह परिचय दे दिया जो कि भरतजी के बाण से मूर्च्छित होने पर जागने के बाद दिया था। अब दूसरे प्रश्न का भी उत्तर देते हैं।

दीन बन्धु रघुपति कर किंकर। सुनत भरत भेंटे उठि सादर ॥
मिलत प्रेमु नहि हृदय समाता। नयन स्रवत जल पुलकित गाता ॥५॥

अर्थ : मैं दीनबन्धु रघुपति का सेवक हूँ। सुनते ही भरतजी उठकर आदर के साथ मिले। मिलने में प्रेम हृदय में समाता नहीं था। आँखों से आँसू बह रहे थे और रोमाञ्च हो रहा था।

व्याख्या : सरकार की आज्ञा थी इसलिए हनुमान्‌जी ब्राह्मण के रूप में आये पर महात्मा से दुराव नहीं होना चाहिए। इसलिए अपना कपि होना प्रकट किया। बड़े के सामने पिता के नाम के साथ अपने नाम लेने की विधि है इसलिए पिता का भी नाम लिया। भरतजी ने तात सम्बोधन किया था। इसलिए हनुमान्‌जी उन्हें कृपानिधान कहकर सम्बोधन कर रहे हैं। अब दूसरे प्रश्न कहाँ ते आये का उत्तर देते कहते हैं। बन्दर को सेवक रूप में स्वीकार करनेवाला दूसरा दीनबन्धु कौन है सिवा रघुपति के ? मैं उन्हीं का किंकर हूँ। भाव यह है कि उन्हीं का भेजा आ रहा हूँ। सुनते ही आदर के लिए भरतजी उठकर खड़े हो गये और हनुमान्‌जी से

गले मिले। या यों कहिये कि प्रेमाधिक्य के कारण हनुमान्‌जी से चिपक गये। प्रेम इतना बढ़ा हुआ है कि हृदय में उसके लिए यथेष्ट स्थान नहीं है। अतः वह अश्रु के मिस से तथा पुलक के मिस से बाहर व्यक्त होकर रोम रोम से निकल रहा है।

कपि तव[1] दरस सकल दुख बीते। मिले आजु मोहि राम पिरीते ॥
बार बार बूझी कुसलाता। तो कहुँ देउँ काह सुनु भ्राता ॥६॥

अर्थ : हे कपि ! तुम्हारे दर्शन से सब दुःख समाप्त हो गये। आज मुझे प्यारे रामजी ही मिल गये। बार बार कुशल पूछा। सुनो तुम्हें क्या दूँ ?

व्याख्या : हनुमान्‌जी का वचन सुनने से ही भरतजी का सब दुख भूल गया। यथा : सुनत बचन बिसरे सब दूखा। अतः कहते हैं कि कपि तव दरस सकल दुख बीते। भरतजी का वचन सबके ध्यान देने योग्य है। हनुमान्‌जी के दर्शन से सब दुःखों का नाश होता है। भरतजी कहते हैं कि सब दुःख तो रामजी के दर्शन से मटता है। यथा : सब दुख मिटिहि राम पद पेखी सो तुम्हारे दर्शन से मिट गया। अतः तुम्हारा मिलना और प्यारे राम का मिलना एक ही बात है। भाव यह कि तुम्हारे द्वारा रामजी कल मिलने के बदले आज ही मिल गये। अतः तुम्हारे द्वारा प्राण की रक्षा हुई तुम्हारा दर्शन रामजी के दर्शन के तुल्य है। प्यारे का पत्र प्यारा होता है। प्यारे का दूत प्यारा होता है।

भरतजी को एक बार कुशल पूछने में सन्तोष नहीं। बार बार कुशल पूछते हैं। प्रेमी को प्रेमपात्र के कुशल सुनने में इतना सुख है कि बार बार सुनना चाहता है। शुभ समाचार देनेवाले को राजाओं के यहाँ से पुरस्कार मिलता है। यथा : प्रथम जाइ जिन बचन सुनाये। भूषन बसन भूरि तिन पाये। अतः भाई का सम्बन्ध जोड़ते हुए पूछते हैं कि तुम्हें क्या दें ? जो माँगो सो दें।

यह संदेस सरिस जगमाहीं। करि बिचार देखेंउ कछु नाहीं ॥
नाहिन तात उरिन मैं तोही। अब प्रभु चरित सुनावहु मोही ॥७॥

अर्थ : इस सन्देश के सदृश संसार में कुछ है नहीं। मैंने विचार करके देख लिया। हे तात ! मैं तुमसे उऋण नहीं हूँ अब मुझे प्रभु का चरित सुनावो।

व्याख्या : यदि कहा जाय कि पूछते क्यों हो ? अपने मन से समझकर जो उचित समझो सो दो। इस पर कहते हैं कि बदले में समान मूल्य वस्तु देनी चाहिए। सो मैंने विचार करके देख लिया कि संसार में तो कोई ऐसा पदार्थ नहीं है जो इस सन्देश के तुल्य हो। अतः तुम्हारी जो इच्छा हो सो बतलाओ वही दूँ। हनुमान्‌जी को चुप देखकर भरतजी ने समझ लिया कि यह रामकिङ्कर है। ब्रह्मपद के वैभव का विरागी है इसे कोई क्या दे सकता है ? इसलिए कहते हैं कि मैं तुमसे

---

१. यहाँ विशेष : द्वितीय : अलंकार है।

उऋण नहीं। हनुमान्‌जी ने घर भर को ऋणी बनाया। रामजी ऋणी थे लक्ष्मणजी थे ही सीताजी थी ही आज भरतजी भी ऋणी हो रहे हैं। हनुमान्‌जी ने प्रथम मिलन में प्रभु का चरित्र संक्षेप में कहा था। क्योंकि बड़ी जल्दी में थे अब कोई जल्दी नहीं है। अतः प्रभु चरित के रसिक भरतजी सब चरित व्यौरेवार सुनना चाहते हैं। भरतजी श्रोता हनुमान्‌जी वक्ता नन्दिग्राम में राम कथा हो रही है।

तब हनुमंत नाइ पद माथा। कहे सकल रघुपति गुन गाथा ॥
कहु कपि कबहुँ कृपाल गुसाईं। सुमिरहि मोहि निज दास की नाईं ॥८॥

अर्थ : तब हनुमान्‌जी ने चरणों में सिर नवाकर रामजी के सब गुणों की गाथा कह सुनायी। हे कपि ! कहो कि कभी कृपाल स्वामी रामजी मुझे निज दास की भाँति स्मरण करते हैं ?

व्याख्या : यहाँ वक्ता ही श्रोता को प्रणाम करके रामचरित्र का कथन कर रहा है। क्योंकि हनुमान्‌जी सन्देशहर की भाँति चरित्र वर्णन करते हैं। यहाँ सब चरित्र वर्णन से अभिप्राय व्यौरेवार वर्णन से है। नहीं तो लक्ष्मणजी के लिए संजोवनी बूटो लाने के समय भरतजी से संक्षेप में प्रभु चरित कह चुके हैं। यथा : कपि सब चरित समास बखाने।

चरित्र सुनने पर भरतजी प्रश्न करते हैं कि हनुमान्‌जी ! कभी सरकार भी मेरा स्मरण निज दास की भाँति करते हैं ? भाव यह कि प्रेमी को इस बात के सुनने की बड़ी उत्सुकता रहती है कि उसका प्रेम पात्र भी उसे स्मरण करता है। अतः भरतजी पूछते हैं। निज दास कहने का भाव यह कि सरकार को निज दास बड़े प्रिय होते हैं। यथा : तेहि ते पुनि मोहि प्रिय निज दासा। जेहि गति मोरि न दूसरि आसा। भरतजी कहते हैं कि सरकार कृपाल हैं। अन्तर्यामी भो प्रभु हैं। सम्भव है कि कभी निजदास की भाँति स्मरण किया हो।

छं. निज दास ज्यौं रघुबंस भूषन कबहु मम सुमिरन करयौ।
सुनि भरत बचन बिनीत अति कपि पुलक तन चरनन्हि परयौ ॥
रघुबीर निज मुख जासु गुनगन कहत अगजगनाथ जो।
काहे न होइ बिनीत परम पुनीत सद्‌गुन सिंधु सो ॥

अर्थ : अपने दास की भाँति रघुवंश भूषण ने क्या कभी मेरा भी स्मरण किया है ? भरतजी का ऐसा अत्यन्त विनोत वचन सुनकर हनुमान्‌जी को रोमाञ्च हो गया और वे चरणों पर गिर गये। जो रघुवीर चराचर के स्वामी हैं। वे जिसके गुण गण का अपने मुख से वर्णन करते हैं वह ऐसा विनीत परम पुनीत और सद्‌गुण का सिन्धु क्यों न हो ?

व्याख्या : सुमिरहिं मोहि निज दास की नाईं : इस पुरइन का कमल है : निज दास ज्यौं रघुवंश भूषन कबहुँ मम सुमिरन करयो। भरतजी को प्रभु द्वारा निजदास

की भाँति स्मरण किये जाने की बड़ी उत्कण्ठा है। भाई की भाँति स्मरण किये जाने की नहीं। दास का पद कितना बड़ा है यह बात इतने से ही समझ लेना चाहिए। क्योंकि प्रभु निजदास में और अपने में अन्तर नहीं मानते। आगे कहेंगे कि : भरतहि मोहि कछु अन्तर काऊ। यह अति विनीत वचन है जिसमें अभिमान का कहीं गन्ध भी नहीं है और प्रेम भरा पड़ा है। ऐसे वचन को सुनने से हनुमान्‌जी को पुलक हो गया और वे भरतजी की महत्ता का अनुभव करते हुए उनके चरणों पर गिर पड़े और बोले कि सरकार चराचर के नाथ हैं। जिसके गुणगण का अपने मुख से बखान करते हैं उसे परम विनीत परम पुनीत और सद्‌गुण सिन्धु होना ही चाहिए। भाव यह है कि आप के इसी विनय पावनता और गुणों पर प्रभु आसक्त हैं। और आप के गुणगणों की अपने मुख से प्रशंसा किया करते हैं। यथा : भरत दसा सुमिरत मोहि निमिष कल्प सम जात। तापस वेष गात कृस जपत निरन्तर मोहि। देखै वेगि सो जतनु करु सखा निहोरौं तोहि। बीते अवधि जाउँ जौं जिअत न पावौं वीर। सुमिरत अनुज प्रीति प्रभु पुनि पुनि पुलक सरीर। निज दास ज्यों रघुवंश भूषन कबहुँ मम सुमिरन करयो। यह प्रश्न हो भरतजी की परम विनीतता का द्योतक है। सुनत बचन विसरे सब दूखा। तृषावन्त जिमि पाइ पियूखा। यह उनके परम पावनता का द्योतक है। और बैठे देखि कुसासन जटामुकुट कृसगात। राम राम रघुपति जपत स्रवत नयन जलजात। यह उनके सद्‌गुणों का द्योतक है। यथा : यस्यातिभक्ति।

दो. राम प्रानप्रिय नाथ तुम्ह, सत्य बचन मम तात।
पुनि पुनि मिलत भरत सुनि, हर्ष न हृदय समात ॥२॥

अर्थ : हे नाथ ! तुम रामजी को प्राण के समान प्यारे हो। हे तात मेरा वचन सत्य है। यह सुनकर भरतजी बार बार मिलते हैं और हर्ष हृदय में समाता नहीं।

व्याख्या : वाक्य के तात्पर्यार्थं के ग्रहण करनेवाले हनुमान्‌जी ने तुरन्त समझ लिया कि भरतजो के प्रश्न का यह अभिप्राय है कि सरकार को मैं प्रिय हूँ या नहीं ? इस पर कहते हैं : आप रामजी को प्राण से प्यारे हैं। इसीलिए हनुमान्‌जी नाथ कहकर सम्बोधन करते हैं कि मैं आप में उन में अन्तर नहीं देखता : जैसे वे मेरे नाथ हैं वैसे ही आप भी हैं। सत्य बचन मम तात : कहने का भाव यह है कि मैं हनुमान् हूँ। मेरा वचन सदा सत्य होता है। अथवा प्रेम से कातर चित्त को विश्वास दिलाने के लिए कहते हैं कि मैं आप के सन्तोष के लिए नहीं कहता हूँ। जो वस्तु स्थिति है सो कहता हूँ। भरतजी ने हनुमान्‌जी से भाई का नाता जोड़ रक्खा है। इसलिए हनुमान्‌जी तात सम्बोधन करते हैं। यह सुनकर भरतजी प्रेमोद्रेक में हनुमान्‌जी को बार बार हृदय लगाते हैं। क्योंकि उन्हें हनुमान्‌जी के वचन से ऐसा हर्ष हुआ है जो हृदय में समाता नहीं।

सो. भरत चरन सिरु नाइ, तुरित गयउ कपि राम पहिं।
कही कुसल सब जाइ, हरषि चलेउ प्रभु जान चढ़ि ॥२॥

अर्थ : भरतजी के चरणों में सिर नवाकर तुरन्त हनुमान्‌जी रामजी के पास गये और जाकर सब कुशल कहा। और प्रभु हर्षित होकर विमानारूढ होकर चले।

व्याख्या : प्रेमियों के प्रेम की गाथा समाप्त नहीं होती। अतः हनुमान्‌जी ने बिदाई के लिए भरतजी के चरणों में प्रणाम किया। सरकार हनुमान्‌जी के आसरे : इन्तजार ठहरे हुए हैं। अतः हनुमान्‌जी को त्वरा है। तुरन्त रामजी के पास पहुँच गये। रामजी के पास जाने में कवि कपि शब्द का प्रयोग करते हैं भाव यह कि ब्राह्मण का रूप त्याग करके अपने स्वरूप से रामजी के पास गये और जाकरके सब कुशल कहा। यद्यपि हनुमान्‌जी ने राजकुल का कोई कुशल नहीं पूछा और न भरतजी ने उस विषय में कुछ कहा। तथापि भरतजी के सरकार के बार बार कुशल पूछने से ही राजकुल का कुशल ध्वनित था अथवा : तब लगि कुसल न जीव कहँ सपनेहुँ मन बिस्राम। जब लगि भजत न राम कहँ सोक धाम तजि काम। यहाँ सम्पूर्ण नगर भजन में दत्तचित्त है। जहँ तहँ सोचहिं नारिनर कृसतन राम वियोग। भरतजी के लिए कहना ही क्या है? अतः सब कुशल के रास्ते में लगे हैं। यहाँ अकुशल कहाँ से हो सकता है? यह सब बात रामजी से कही। सरकार ने देख लिया कि सब लोग मेरे आगमन के लिए आर्त हैं। अतः यान पर चढ़कर चले। नहीं तो निषाद के आश्रम से आगे न बढ़ते।

हरषि भरत कोसलपुर आए। समाचार सब गुरहि सुनाए॥
पुनि मंदिर महँ बात जनाई। आवत नगर कुसल रघुराई ॥१॥

अर्थ : हर्षित होकर भरतजी अयोध्यापुरी में आये। सब समाचार गुरुजी को सुनाया। तत्पश्चात् घर में खबर दी कि सरकार सकुशल नगर में आ रहे हैं।

व्याख्या : नन्दिगाँव करि परन कुटीरा। कीन्ह निवासु धरमधुर धीरा। चौदह वर्ष से भरतजी नन्दिग्राम में ठहरे हुए हैं। जब से सरकार नगर छोड़े हुए हैं तब से भरतजी भी छोड़े बैठे हैं। सरकार का आना सुनकर हर्षित होकर नगर में आये तो पहिले गुरुजी के पास गये। रघुकुल की गुरुचरणों में अपार भक्ति है। महाराज चक्रवर्तीजी का यही रास्ता था कि जो बात हो पहिले गुरुजी को सुनायी जाय। उसी मार्ग का अनुसरण करते हुए भरतजी ने गुरुजी के पास जाकर हनुमान्‌जी का आना और समाचार देना आदि सब बातें सुनायीं। तत्पश्चात् घर गये। जाते ही समाचार कहलाया कि सरकार सकुशल नगर में आ रहे हैं। कौसल्यादि मातु सब मन अनन्द अस होइ। आयेउ प्रभु सिय अनुज जुत कहन चहत अब कोइ। तब से समाचार आ ही तो गया।

सुनत सकल जननी उठि धाईं। कहि प्रभु कुसल भरत समुझाईं ॥
समाचार पुरबासिन्ह पाए। नर अरु नारि हरषि सब धाए ॥२॥

अर्थ : सुनते ही सब माताएँ उठकर दौड़ पड़ीं। तब सब कुशल कहकर भरतजी ने समझाया। पुरवासियों ने समाचार पाया तो सब स्त्री और पुरुष हर्षित होकर दौड़े।

अति उत्कण्ठा से कौसल्यादि माताएँ समाचार सुनते ही भरतजी के मुख से सुसंवाद सुनने के लिए उठकर दौड़ पड़ीं। भरतजी ने प्रभु का कुशल कहकर समझाया। यथा :

जीति गढ़लंक बंक लखन सिय के संग, कुशल अनन्द सब भाँति रघुराई हैं।
वृन्दारक वृन्दनते वंदित अमन्द कलकीरति सुछन्द तिहुँलोक सरसाई हैं ॥
विजयी विमान चढ़े आवत सुजान, आइ दूत हनुमान् ऐसी खबर जनाई हैं।
वेगि साजो आरती सुमंगल कलस साजि आज महाराज रघुराज की अवाई है ॥

इतने में तमाम नगर में बात फैल गयी। जैसे वनवास की बात नगर में फैल गयी किसी घोषणा विशेष की आवश्यकता न हुई। नगर व्यापि गई बात सुतीछी। छुवत चढ़ी जनु सब तन बीछी। उसी भाँति नगर में आने की बात भी तमाम नगर में व्याप गयी। क्या स्त्री क्या पुरुष सब हर्षित होकर सरकार के दर्शन के लिए दौड़ पड़े।

दधि दुर्बा रोचन फल फूला। नव तुलसीदल मंगल मूला ॥
भरि भरि हेमथार भामिनी। गावत चलीं सिंधुरगामिनी ॥३॥

अर्थ : दही दूब गोरोचन फल फूल और मङ्गलमूल ताजा तुलसीदल सोने के थारों में गजगामिनी स्त्रियाँ भर भर के चलीं।

व्याख्या : स्त्री लोग मङ्गल थार साजने के लिए दौड़ीं। बिना मङ्गलथार के महाराज का स्वागत कैसे करें। ये उपर्युक्त छः वस्तुएँ मङ्गल हैं। उनमें नवीन तुलसीदल मङ्गलमूल है। नवीन तुलसीदल कहने का भाव यह है कि पत्रों में बिल्वदल और तुलसीदल ऐसे हैं जो सूखे हुए भी देवार्पण के योग्य होते हैं। पर मङ्गल में सूखे का ग्रहण नहीं है। अतः नव तुलसीदल कहा : इन छः वस्तुओं को थार में साजती नहीं हैं। शीघ्रता के कारण भर लेती हैं। थार भरकर मङ्गलगान करती हुई घर से चलीं इतना उत्साह स्त्रियों का कहा। वे गजगामिनी स्वाभाविक चाल उनकी गज की भाँति है। भामिनी से शरीर का सौन्दर्य और गजगामिनी से गति का सौन्दर्य कहा।

जे जैसेहि तैसेहिं उठि धावहिं। बाल बृद्ध कहुँ संग न लावहिं ॥
एक एकन्ह कहुँ बूझहि भाई। तुम्ह देखे दयाल रघुराई ॥४॥

अर्थ : जो जिस दशा में है वह वैसे ही उठकर दौड़ता है। बूढ़ों और

बच्चों को कोई साथ नहीं ले रहा है। एक दूसरे से पूछते हैं कि भाई तुमने दयाल रघुराई को देखा है ?

व्याख्या : स्त्रियों का हाल कहकर अब पुरुषों का हाल कहते है कि जो जिस अवस्था में था वह उसी भाँति दौड़ पड़ा। सामान्य रीति है कि घर के बाहर निकलते समय लोग वस्त्रादि को धारण करके ही बाहर निकलते हैं। पर सरकार के दर्शन के लिए ऐसे आर्त्त हैं कि किसी को कपड़ा पहन लेने की सुधि नहीं। अथवा इतनी त्वरा है कि वस्त्रादि धारण में जो बिलम्ब होगा वह उन्हें सह्य नहीं है। जैसी दशा में हैं उसी दशा में दौड़ पड़े। अथवा जिस काम में लगे हैं। उस काम को वैसे ही अधूरा छोड़कर दौड़ पड़े। सम्पत्ति अरक्षित छोड़कर ही घर से निकल गये।

दौड़े तो सब पर किसी को पता नहीं कि सरकार किधर से आ रहे हैं। अतः सभी पूछनेवाले हैं कि तुमने सरकार को देखा। पर यह कहनेवाला कोई नहीं कि मैं देखकर आ रहा हूँ। इस रास्ते चले जाओ। ऐसे अवसर का गोलमाल भी शोभा की वृद्धि करता है। यथा : पुर खरभर सोभा अधिकाई।

अवधपुरी प्रभु आवत जानी। भई सकल सोभा कै खानी॥
बहइ सुहावन त्रिबिध समीरा। भइ सरजू अति निर्मल नीरा॥५॥

अर्थ : अवधपुरी सरकार को आते जानकर सब शोभा की खानि हो गयी। त्रिविध वायु सुहावनी बहने लगी और सरयू अत्यन्त निर्मल जलवाली हो गयी।

व्याख्या : पुरी की अधिष्ठात्री देवता ने जान लिया कि सरकार आ रहे हैं। अतः शोभा की खानि हो गयी। सरकार के बिना वह भयावन हो गयी थी। यथा : लागति अवध भयावन भारी। मानहुँ काल राति अँधियारी। हाट बाट नहि जाइ निहारी। जनु पुर दहँ दिसि लागि दवारी। घर मसान परिजन जनु भूता। सुत हित मीत मनहुँ जमदूता। भरतजी से सब प्रकार से पालित होने पर भी अनाथ सी थी। आज सनाथ हो रही है।

अवध की शोभा सरयू से और सरयू की शोभा अवध से है। अतः दोनों का वर्णन साथ ही आता है। सरकार के न रहने के समय : सरित सरोवर देखि न जाहीं। सो सरयू का जल अत्यन्त निर्मल हो गया। त्रिविध समीर अर्थात् शीतल, मन्द, सुगन्ध वायु का चलना मङ्गल है। सो वह भी चल पड़ा।

दो. हरषित गुर परिजन अनुज, भूसुर बृंद समेत।
चले भरत मन प्रेम अति, सनमुख कृपा निकेत॥२ क॥

अर्थ : अत्यन्त आनन्द से गुरुजी कुटुम्बी छोटे भाई तथा ब्राह्मणों के समूह के साथ भरतजी अति प्रेमयुक्त मन से कृपानिकेत की ओर चले।

व्याख्या : भरतजी ने साथ में गुरुजी को कुटुम्बियों को शत्रुघ्नजी को और ब्राह्मणों को लिया। इन्हें मालूम है कि सरकार विमान द्वारा आकाश मार्ग से आ

रहे हैं। अतः दक्षिण की ओर चले। क्योंकि उधर से ही सरकार आवेंगे। सनमुख स्वामि बिमुख दुख दोषू। इसलिए सबको हर्षित लिखते हैं और अत्यन्त प्रेम मन में है। यथा : भरत प्रेम तेहि समय जस तस कहि सकहिं न सेषु। कबिहि अगम जिमि ब्रह्मसुख अह मम मलिन जनेषु।

दो. बहुतक चढ़ी अटारिन्ह, निरखहि गगन बिमान।
देखि मधुर सुर हरषित, करहिं सुमंगल गान ॥३ ख॥
राका ससि रघुपति पुर, सिंधु देखि हरषान।
बढ़ेउ कोलाहल करत जनु, नारि तरंग समान ॥३॥

अर्थ : बहुत सी स्त्रियाँ अटारियों पर चढ़ी हुई आकाश में विमान देखती थीं, और देखकर हर्षित हो मधुर स्वर से सुमङ्गल गान करती थीं। पूर्णचन्द्र के समान रामचन्द्र को देखकर समुद्र के समान पुर हर्षित हो उठा और अटारियों पर चढ़ी हुई स्त्रियों के गाने से ऐसी शोभा हुई मानो समुद्र में तरंग उठ रही हो और उसके कारण कोलाहल होता हो।

व्याख्या : कुलवधुएँ जो बाहर नहीं निकल सकती थीं अटारी पर चढ़ गयीं और विमान देखने लगीं। जब विमान दृष्टिगोचर हुआ तो हर्षित होकर सुमङ्गल गान करने लगीं। इस भाँति अवधपुरी की अपूर्व शोभा हुई। प्रत्येक अटारियों पर गान करती हुई कुलवधुओं के कारण मानो अयोध्या अधिक ऊँची हो गयी और प्रत्येक अटारियों पर मङ्गलगान होने से ऊपर कोलाहल होने लगा। कवि कहते हैं कि पुष्पकारूढ़ रामचन्द्र मानो पूर्णचन्द्र उदय हो गये। पूर्णचन्द्र के उदय होने पर समुद्र बढ़ता है। उसमें कोलाहल करती हुई तरंगें उठती हैं। सो रामचन्द्ररूपी पूर्णचन्द्र को देखकर अवधपुररूपी समुद्र बढ़ा और उसके ऊपरी भाग में लहरों की भाँति स्त्रियाँ कोलाहल करती हुई शोभित हुईं।

इहाँ भानुकुल कमल दिवाकर। कपिन्ह देखावत नगरु मनोहर॥
सुनु कपीस अंगद लंकेसा। पावन पुरी रुचिर एह ऐसा ॥१॥

अर्थ : यहाँ सूर्यकुल कमल के सूर्य रामजी बन्दरों को सुन्दर नगर दिखला रहे हैं। हे सुग्रीव, अङ्गद और विभीषण सुनो : यह पुरी पवित्र और यह देश सुन्दर है।

व्याख्या : यहाँ कवि सरकार के साथ पुष्पक पर अपने को मान रहे हैं। इसलिए इहाँ कहते हैं। क्योंकि भक्त भगवान् दोनों यहाँ एकत्रित हैं। नहीं तो नियम यह है कि कवि अपने को भक्तों के साथ मानते हैं। सूर्यकुल कमल के सूर्य कहने का भाव यह कि इनके उदय से सूर्यकुल खिल उठता है। जब पुष्पक पर चले थे तब सीताजी को न देखा हुआ दृश्य उन्हें दिखलाते थे। यथा : इहाँ सेतु बाँधेउ अरु थापेउँ सिव सुखधाम। इत्यादि। पर जब अवधपुरी दिखलायी पड़ी तब बन्दरों को दिखलाने लगे। क्योंकि उनका नहीं देखा हुआ था। सीताजी तो अवध में सरकार के साथ बारह वर्ष रह चुकी थीं।

कपीश सुग्रीव बन्दरों के राजा हैं। अङ्गदजी युवराज हैं। लङ्केश विभीषण निशाचरों के राजा हैं। ये लोग अपने अपने राज्य के शासक हैं। ये पुरी और देश के बनावट के जानने में चतुर हैं। अतः पुरी के दिखलाने में इन्हीं को सम्बोधन करते हैं। अथवा इनके सम्बोधन से सम्पूर्ण वानरों के सम्बोधन का अन्तर्भाव है। सरकार कहते हैं कि यह देश मनका हरण करनेवाला है। समतल और उपजाऊ है। पर्वतादि के कारण बीहड़ नहीं है और यह राजधानी पावन है। मोक्षदायिका पुरियों में प्रथम है। अयोध्यापुरी मस्तके।

जद्यपि सब बैकुण्ठ बखाना। बेद पुरान बिदित जग जाना॥
अवधपुरी सम प्रिय नहि सोऊ। यह प्रसंग जानइ कोउ कोऊ॥२।

अर्थ : यद्यपि सबने बैकुण्ठ की प्रशंसा की है। वह वेद और पुराणों में विदित है और सभी जानते भी हैं। पर अवधपुरी के समान मुझे वह भी प्रिय नहीं है। इस प्रसङ्ग को बिरले जानते हैं।

व्याख्या : सभी वक्ताओं ने बैकुण्ठ की प्रशंसा की है। क्योंकि सब लोकों से उसका उत्कर्ष सबसे अधिक है। यथा : सुनु भति मंद लोक बैकुंठा। बैकुण्ठ के अत्यन्त मनोहर होने से उसकी सब लोग प्रशसा करते हैं और यह बात प्रसिद्ध है कि परम पुनीत होने से वेद और पुराणों ने भी उसका यश गान किया है। मुझे भी वह प्रिय है। वहाँ मैं निवास करता हूँ और : श्रीपतिपुर बैकुण्ठ निवासी : कहलाता हूँ। पर अयोध्या के समान मुझे बैकुण्ठ भी प्यारा नहीं। इस बात को अधिकारी ही जानते हैं सब लोग नहीं जानते हैं। इस गुप्त रहस्य को सब जान भी नहीं सकते। क्योंकि : अवध प्रभाव जान तब प्रानी। जब उर बसहि राम धनुपानी। कवनेउँ जनम अवध बस जोई। राम परायण सो परि होई। अवध अति दुर्लभा राम भक्ति देनेवाला है। अतः अति प्यारा है।

जनमभूमि मम पुरी सुहावनि। उत्तर दिसि बह सरयू पावनि॥
जा मज्जन तें बिनहि प्रयासा। मम समीप नर पावहि बासा॥३॥

अर्थ : यह सुहावनी पुरी मेरी जन्म-भूमि है। इसके उत्तर पुनीत सरयू नदी बहती हैं। जिसमें स्नान करने से बिना परिश्रम ही मनुष्य मेरे समीप निवास पाता है।

व्याख्या : अब अयोध्यापुरी के बैकुण्ठ से भी अधिक प्रिय होने का कारण कहते हैं। बैकुण्ठ मेरी जन्म भूमि नहीं है। उसमें सरयू नहीं बहती। सुहावनी अयोध्या मेरी जन्म भूमि है। माँ कौसल्या के समक्ष है। बन्दी कौसल्या दिसि प्राची। कीरति जासु सकल जग माची। प्रगटेउ जहँ रघुपति ससि चारू। बिस्व सुखद खल कमल तुषारू। मेरा जब अवतार होता है तब अयोध्या में ही होता है। दूसरो बड़ो भारी बात यह है कि इसके उत्तर की ओर सरयू नदी बहती है। मेरे सन्निकट निवास बड़े भारो पुण्य का फल है। उसके सम्पादन में बड़ा भारी आयास करना पड़ता है।

पर सरयू में स्नान करने से मेरा सन्निधान बिना आयास के ही प्राप्त होता है। अर्थात् सरयू स्नायी को सामीप्य मुक्ति बिना परिश्रम होती है।

अति प्रिय मोहि इहाँ के बासी। मम धामदा पुरी सुखरासी ॥
हरषे सब कपि सुनि प्रभु बानी। धन्य अवध जो राम बखानी ॥४॥

अर्थ : यहाँ के निवासी मुझे अत्यन्त प्यारे हैं। यह सुखराशि पुरी मेरे धाम को देनेवाली है। सब बन्दर सरकार की वाणी सुनकर प्रसन्न हो गये कि अवध धन्य है। जिसकी प्रशंसा स्वयं रामजी करते हैं।

व्याख्या : सरकार के कहने का भाव यह है कि वैकुण्ठ के निवासी भी मुझे उतने प्रिय नहीं जितने कि अवधवासी मुझे प्रिय हैं। ब्राह्मण का अपमान करने से वैकुण्ठवासी जय और विजय का वहाँ से पतन हो गया और साक्षात् जगदम्बिका सीताजी के निन्दा करनेवाले को अयोध्यावासी होने के कारण उत्कर्ष की प्राप्ति हुई। यथा : सिय निन्दक अघओघ नसाये। लोक बिसोक बनाइ बसाये। यह पुरी मेरे धाम को देती है और देय वस्तु से दाता के बड़े होने का नियम है।

सरकार की वाणी कभी अन्यथा हो नहीं सकती। उसे सुनकर सब बन्दर हर्षित हुए कि अब तो हमें कुछ दिनों के लिए अवधवास की भी प्राप्ति होगी। सरयू स्नान भी सुलभ होगा। अयोध्या को धन्य धन्य कहने लगे। क्योंकि इस पुरी की महिमा स्वयं सरकार ने हम लोगों को वर्णन करके सुनाया।

दो. आवत देखि लोग सब, कृपासिन्धु भगवान।
नगर निकट प्रभु प्रेरेउ, उतरेउ भूमि बिमान ॥४ क.
उतरि कहेउ प्रभु पुष्पकहि, तुम्ह कुबेर पहिं जाहु।
प्रेरित राम चलेउ सो, हरष बिरह अति ताहु ॥४ ख.

अर्थ : सब लोगों को आते देखकर कृपासिन्धु भगवान् ने नगर के निकट पुष्पक को प्रेरणा की और वह पृथिवी पर उतर पड़ा। प्रभु ने उतरकर पुष्पक से कहा कि तुम कुबेर के पास जाओ। रामजी से प्रेरित होकर वह चला। उसे भी अत्यन्त हर्ष और विरह हुआ।

व्याख्या : सरकार कृपासिन्धु हैं। उन्होंने देखा कि मेरे स्वागत के लिए सब लोग पैदल चले आ रहे हैं। अतः नगर के पास ही विमान को रोक दिया। वहीं विमान पृथिवी पर उतर आया। सरकार समाज के साथ वहीं उतर पड़े और उतरते ही पुष्पक को आज्ञा हुई कि तुम कुबेर के पास जाओ। सरकार ने विमान का अयोध्या या लङ्का में रहना पसन्द नहीं किया। मर्त्यलोक का अकल्याण ही वायुयान से होगा। कल्याण नहीं होगा। इसलिए उसे नहीं रक्खा। दूसरा कारण यह भी था कि वह तप द्वारा कुबेर से ही अर्जित था। रावण ने उसे बलपूर्वक हरण किया था। अतः उसे उसके स्वामी के पास भेज दिया। इससे पुष्पक को हर्ष हुआ। पर जाते समय रामजी के वियोग का उसे अत्यन्त विरह व्यथा भी हुई।

आए भरत संग सब लोगा। कृस तन श्रीरघुबीर बियोगा॥
बामदेव बसिष्ठ मुनि नायक। देखे प्रभु महि धरि धनु सायक॥१॥

अर्थ : भरतजी के साथ सब लोग आये। श्रीरघुबीर के वियोग से दुबले हो रहे थे। वामदेव और वसिष्ठ मुनिनायक का दर्शन सरकार ने पृथिवी पर धनुष बाण रखकर किया।

व्याख्या : हरषित गुरुपरिजन अनुज भूसुर बृन्द समेत। चले भरत मन प्रेम अति सनमुख कृपा निकेत। सो सब लोग आगये। सरकार ने देखा कि सब लोग कृशतनु हैं। कोई घाटा किसी को नहीं। पर मेरे वियोग से दुर्बल हो रहे हैं। पहिले कहा गया है : पय अहार फल असन एक निसि भोजन एक लोग। जहँ तहँ सोचत नारि नर कृसतन रामवियोग।

वामदेव ऋषि गर्भज्ञानी और वसिष्ठजी गुरु थे। श्रीरामयन्त्र के आवरण में बारह ऋषि हैं। उनमें पहिले वसिष्ठ, वामदेव हैं। वसिष्ठ, वामदेव का साथ देखा जाता है। काशी में वसिष्ट वामदेव के नाम से एक ही स्थान में दो लिङ्ग स्थापित हैं। समाज के आगे आगे ये ही दोनों महात्मा थे। अतः सरकार की दृष्टि पहले इन्हीं दोनों महात्माओं पर पड़ी। इन्हें देखते ही सरकार ने धनुष बाण को पृथिवी पर रख दिया।

धाइ धरे गुरु चरन सरोरुह। अनुज सहित अति पुलक तनोरुह॥
भेंटि कुसल बूझी मुनिराया। हमरे कुसल तुम्हारिहि दाया॥२॥

अर्थ : भाई के साथ दौड़कर गुरुजी का चरण पकड़ लिया। शरीर अत्यन्त पुलकित हो रहा था। मुनिराज ने गले लगाकर कुशल पूछा बोले : कि आपकी ही दया से सब कुशल है।

व्याख्या : चित्रकूट में भी गुरुजी से मिले थे। पर वहाँ तो दण्ड प्रणाम करते चले थे। यथा : गुरुहि देखि सानुज अनुरागे। दंड प्रनाम करन प्रभु लागे। मुनिवर धाइ लिये उर लाई। दण्ड प्रणाम करते आते देखकर वसिष्ठजी दौड़ पड़े। इस बार भी दौड़ पड़ेंगे। इस भय से सरकार ने स्वयं दौड़कर गुरुजी का चरण पकड़ लिया। अति प्रेम से सरकार और लक्ष्मणजी को अत्यन्त पुलक हो रहा था। रामहिं सुमिरत रन भिरत देत परत गुरुपाय। तुलसी जाहि न पुलक तन सो जग जीवत जाय। गुरुजी ने प्रेम से गले लगा लिया और कुशल पूछा। सरकार उत्तर देते हैं कि हम लोगों की कुशल तो आपकी दया से होती है। भरतजी ने वसिष्ठजी से कहा था : भानु बंस भये भूप घनेरे। अधिक एक ते एक बड़ेरे। जनम हेतु सब कहँ पितु माता। करम सुभासुभ देइ बिधाता। दलिदुख सजइ सकल कल्याना। असि असीस राउरि जग-जाना। वही भाव रामजी का : हमरी कुसल तुम्हारिहि दाया कहने से है।

सकल द्विजन्ह मिलि नायेउ माथा। धरम धुरंधर रघुकुल नाथा॥
गहे भरत पुनि प्रभुपद पंकज। नमत जिनहि सुर मुनि संकर अज॥३॥

अर्थ : सब ब्राह्मणों से मिलकर प्रणाम किया। रघुकुल नाथ धर्म की धुरी के धारण करनेवाले हैं। तब भरतजी ने सरकार के चरण पकड़े। जिनको शिव ब्रह्मा देवता और मुनि नमस्कार किया करते हैं।

व्याख्या : गुरुजी के बाद ब्राह्मणों की पारी थी। सरकार ने सब ब्राह्मणों से मिलकर प्रणाम किया। पहिले मिलते हैं। पीछे प्रणाम करते हैं। क्योंकि ब्राह्मण लोग प्रणाम का अवसर नहीं दे रहे हैं और गले लगा लेते हैं। इतना अधिक प्रेम भरतजी से है पर उसे रोके हुए हैं। धर्माचरण के प्रधान अङ्ग गौ और ब्राह्मण हैं। सरकार धर्म धुरन्धर है। अतः सब कृत्यों को रोककर पहिले उनसे मिलकर मर्यादा पालन कर रहे हैं।

सब ब्राह्मणों से सरकार जब मिल चुके तब भरतजी ने चरण पकड़े। हृदय में यह भाव है कि इन्हीं चरणों को शिव ब्रह्मादि देवगण तथा मुनिगण नमस्कार किया करते हैं। भरतजी के चरण पकड़ने में प्रणाम के अतिरिक्त भाव भी है। भरतजी ने चरण पकड़े हुए ही दण्डवत् किया। स्नेह के कारण भयभीत हैं कि कहीं फिर इन चरणों का वियोग न हो जाय। जैसे : मनु सतरूपा पड़े दंडइव गहि पद पानी।

परे भूमि नहि उठत उठाए। बर करि कृपासिंधु उर लाए ॥
स्यामल गात रोम भए ठाढ़े। नव राजीव नयन जल बाढ़े ॥४॥

अर्थ : भरतजी पृथिवी पर लोटे हुए हैं। उठाने से उठते नहीं। तब कृपासिन्धु ने बल लगाकर उन्हें उठाकर हृदय से लगाया। श्याम शरीर में पुलक हो गया। नवीन कमल से नेत्र में जल भर आया।

व्याख्या : भरतजी भूमि पर पड़े रहने में सुखी हैं। सरकार उठने के लिए इङ्गित करते हैं। पर नहीं उठते। यथा : प्रेम मगन तेहि उठब न भावा। सरकार का उनका पृथिवी पर पड़ा रहना सह्य नहीं। अतः बल करके उन्हें उठा लिया और हृदय से लगाया। भावुक कवि को भरत के प्रति बल प्रयोग का लिखना भी सह्य नहीं है। अतः बर लिखा। र और ल में भेद नहीं माना गया है। हृदय में लगाने से सरकार को सात्त्विक भाव हुआ। रोंगटे खड़े हो गये और कमल ऐसे नेत्रों में जल भर आया। श्यामलगात की रोमाञ्च हो आने से अधिक शोभा हो जाती है। उसी भाँति कमलनयन में जल भर जाने से नेत्रों की अधिक शोभा हो जाती है। अतः कवि शोभा वर्णन करने लगे।

छं. राजीव लोचन स्रवत जल तन ललित पुलकावलि बनी।
अति प्रेम हृदय लगाइ अनुजहि मिले प्रभु त्रिभुवन धनी ॥
प्रभु मिलत अनुजहि सोह मोपहिं जाति नहि उपमा कही।
जनु प्रेम अरु सिंगार तनु धरि मिले बर सुषमा लही ॥

अर्थ : कमल ऐसे नेत्र से जल गिर रहा था। शरीर में सुन्दर रोमाञ्च हो रहा

था। त्रिभुवनधनी सरकार अत्यन्त प्रेम से हृदय लगाकर छोटे भाई से मिले। सरकार छोटे भाई से मिलते हुए शोभित हुए। मुझसे उपमा नहीं कही जाती। मानो प्रेम और शृङ्गार शरीर धारण करके मिलते हुए परम शोभा पा रहे हैं।

व्याख्या : स्यामल गात रोम भये ठाढ़े। नव राजीव नयन जल बाढ़े। इस पुरइन का यह कमल है। पुरइन में नयन जल बाढ़े यह कली लगी थी। उसी का विकास कमल रूप में हुआ। बढ़ा हुआ जल बह चला। सरकार त्रिभुवन के मालिक हैं। परन्तु भाई से मिलने में उस ऐश्वर्य का कोई ध्यान नहीं है। अत्यन्त प्रेम से हृदय लगकर भाई से मिले। पहिले कह चुके हैं : परम प्रेम पूरन दोउ भाई। मन बुधि चित अहमिति बिसराई। कहहु सुप्रेम प्रकट को करई। केहि छाया कवि मति अनुसरई। अतः यहाँ समास से कहते हैं अति प्रेम से मिले। यहाँ प्रभु के मिलने में जो शोभा हुई उसकी उपमा कवि कहते हैं कि मुझसे कहते नहीं बनता। क्योंकि शरीरी की उपमा अशरीरी के साथ देना ठीक नहीं है। परन्तु दूसरी उपमा भी कोई नहीं। इसलिए कहते हैं कि मानो प्रेम और शृङ्गार शरीर धारण करके मिल रहे हैं। प्रेम शृङ्गार रस के हिस्से की चीज है। प्रेम से शृङ्गार की और शृङ्गार से प्रेम की शोभा है। अतः दोनों के मिलने में बड़ी भारी शोभा हुई।

छं. बूझत कृपा निधि कुसल भरतहि बचन बेगि न आवई।
सुनु सिवा सो सुख बचन मन तें भिन्न जान जो पावई॥
अब कुसल कोसल नाथ आरत जानि जन दरसन दियो।
बूड़त बिरह बारीस कृपानिधान मोहि कर गहि लियो॥

अर्थ : कृपानिधि रामजी कुशल पूछते हैं। भरतजी के मुख से बात शीघ्र नहीं निकलती। हे शिवा ! वह सुख वचन और मन से भिन्न है। उसे जो पाता है वही जानता है। हे कोशलनाथ ! अब कुशल है जो आपने आर्त्त जानकर अपने भक्त को दर्शन दिया। विरह के समुद्र में मुझ डूबते हुए को आपने हाथ पकड़कर बचा लिया।

व्याख्या : सरकार कृपानिधि हैं। हनुमान्‌जी द्वारा कुशल समाचार मिल जाने पर भी आदर के लिए कुशल पूछते हैं। भरतजी का यह हाल है कि तुरन्त उत्तर देनेका यत्न करते हैं। परन्तु वाणी ठीक काम नहीं कर रही है। शङ्कर भगवान् उमा से कहते हैं कि वह सुख ही ऐसा है कि उसमें मग्न हुआ पुरुष ऐसा शिथिल हो जाता है कि जल्दी उसके मुखसे बात नहीं निकलती। वह सुख वचन मन से भिन्न है। अर्थात् अनिर्वचनीय है। उसे केवल पानेवाला जानता है। अन्त में अपने को सँभालकर भरतजी ने कोशलनाथ कहकर सम्बोधन किया। आपके बिना कोशलपुरी अनाथ थी। आप पूर्णकाम हैं। आपके आगमन का कारण जन का आर्तिभञ्जन है। यथा : बीते अवधि रहहिं जो प्राना। अधम कवन जग मोहि समाना। अब अपनी आर्त्ति कहते हैं कि मैं तो विरहसागर में डूब रहा था। जहाज

रूप हनुमान्जी आये। हाथ पकड़कर सरकार ने उबार लिया। हाथ पकड़कर उबारनेवाले के सामने जहाज की कृतज्ञता नहीं प्रकाशित की जाती। अतः हनुमान्जी को चर्चा नहीं की।

दो. पुनि प्रभु हरषि सत्रुहन, भेटें हृदय लगाय।
लछिमनु भरत मिले तब, परम प्रेम दोउ भाइ ॥५॥

अर्थ : फिर प्रभु ने हर्षित होकर शत्रुघ्न को हृदय से लगा लिया तब लक्ष्मण भरत दोनों भाई अत्यन्त प्रेम पूर्वक मिले।

व्याख्या : भरतजी के मिलने के बाद सरकार हर्षित होकर शत्रुघ्नजी को हृदय से लगाकर मिले। भरतजी के साथ ही शत्रुघ्नजी का प्रणाम करना मान लेना चाहिए। क्योंकि सरकार का सामना होते ही प्रणाम प्राप्त हो गया था। जब तक रामजी भरत से मिल रहे थे तबतक कोई किसी से नहीं मिला। जब उनसे मिलकर सरकार शत्रुघ्नजी से मिले तब भरतजी लक्ष्मणजी से मिले। परम प्रेम से दोनों भाइयों का मिलाप हुआ। जब तक भरतजी से नहीं मिले तब तक अवसर रहते भी लक्ष्मणजी शत्रुघ्न से नहीं मिले। भरतजी से मिलने की प्रतीक्षा में थे।

भरतानुज लछिमनु पुनि भेंटे। दुसह बिरह संभव दुख मेंटे ॥
सीता चरन भरत सिरु नावा। अनुज समेत परम सुख पावा ॥१॥

अर्थ : फिर लक्ष्मणजी भरतजी के छोटे भाई से मिले और विरह से उत्पन्न दुःसह ताप को मिटाया। सीताजीके चरण में भरतजी ने भाई के साथ सिर नवाया और परम सुख पाया।

व्याख्या : जब भरतजी से मिल चुके तब उनके छोटे भाई से मिले। यद्यपि शत्रुघ्नजी सहोदर भाई लक्ष्मणजी के हैं। परन्तु साथ रहने से जैसे रामानुज लक्ष्मणजी कहलाये उसी भाँति शत्रुघ्नजी भरतानुज कहलाये। अलग अलग साथ रहने से दोनों भाइयों के प्रेम में कोई घाटा नहीं था। इसी बात को दिखलाते हुए कवि लिखते हैं कि विरहसम्भव दुःसह दुःख को मिटाया। फिर भाई शत्रुघ्न के साथ भरतजीने सीताजी के चरणों में सिर झुकाया। जगदम्बा के चरण में प्रणत होने में ही दोनों भाइयों ने परम सुख पाया। क्योंकि देखा कि भगवती स्नेह में मग्न हैं। यथा : सीय असीस दीन्ह मन माहीं। मगन सनेह देह सुधि नाहीं।

प्रभु बिलोकि हरषे पुरबासी। जनित बियोग बिपति सब नासी ॥
प्रेमातुर सब लोग निहारी। कौतुक कीन्ह कृपाल खरारी ॥२॥

अर्थ : सरकार को देखकर पुरवासी हर्षित हुए। वियोग से उत्पन्न विपत्ति उनकी नष्ट हो गयी। सब लोगों को प्रेमातुर देखकर खर के शत्रु कृपालु ने कौतुक किया।

व्याख्या : सरकार के दर्शन से पुरवासी सनाथ हो गये। अतः हर्षित हो उठे। सरकार के वियोग से जो दुःख उनपर आ पड़ा था यथा : राम बियोग कुरोग बिगोए। यथा : परिहरि भूषन भोग सुख जिअत अवधि की आस : सो दुःख उनका दूर हुआ। अव ये लोग प्रेमातुर हैं। सरकार से मिलना चाहते हैं। इतने बड़े जन समूह से मिलना अल्पकाल में हो नहीं सकता और विलम्ब उन लोगों को असह्य हो रहा है। सरकार बड़े कृपालु हैं। अतः उस समय एक कौतुक किया। अघटित घटना का सम्भव करना उनके लिए कौतुक है। कौतुक करने के प्रसङ्ग में कवि खरारि विशेषण देते हैं। भाव यह कि जैसा कौतुक खर के वध में किया था। यथा : सुरमुनि सभय प्रभु देखि मायानाथ अस कौतुक कर्यो। देखत परस्पर राम करि संग्राम रिपुदल लरि मर्यो। उसी प्रकार का कौतुक इस समय भी किया।

अमित रूप प्रकटे तेहि काला। जथाजोग मिले सबहि कृपाला॥
कृपादृष्टि रघुबीर बिलोकी। किए सकल नरनारि बिसोकी॥३॥

अर्थ : असंख्य रूप उस समय प्रकट किया और कृपाल यथायोग्य सबसे मिले। रघुवीर ने कृपा दृष्टि से देखकर सब नरनारियों को विशोक कर दिया।

व्याख्या : सरकार ने उस समय अपना असंख्यरूप प्रकट किया और यथायोग्य सबसे मिले। किसी के गले मिले। किसी को हाथ से स्पर्श किया। किसी को प्रेमपूर्वक देखा। किसी से कुछ बोल दिया। इस भाँति जिसके साथ जिस तरह से मिलना उचित था उस तरह सबसे मिले। सूर्य के बिना जैसे कमल कोक और कोकी दीन हो जाते हैं उसी भाँति प्रजावर्ग सरकार के बिना शोकाकुल हो रहे थे। सो सबको कृपादृष्टि से देखकर विशोक किया। देवता लोग भयभीत थे। उन्हें कृपादृष्टि से अभय करते चले आ रहे हैं। यथा : कृपादृष्टि करि बृष्टि प्रभु अभय किये सुर बृन्द। यहाँ लोग शोकाकुल थे। अतः इन्हें कृपादृष्टि से विशोक करते हैं।

छनमहि सबहि मिले भगवाना। उमा मरमु यह काहु न जाना॥
एहि बिधि सबहि सुखी करि रामा। आगे चले सीलगुन धामा॥४॥
कौसल्यादि मातु सब धाई। निरखि बच्छ जनु धेनु लवाई॥५॥

अर्थ : भगवान् क्षण भर में सबसे मिले। हे उमा! यह मर्म किसी ने नहीं जाना। इस प्रकार से शील गुण धाम रामजी सबको सुखी करके आगे चले। कौसल्या आदिक सब माताएँ दौड़ीं जैसे बच्चे को देखकर नयी ब्याई हुई गाय दौड़े।

व्याख्या : अमित रूप प्रकट करके सरकार एक ही समय में सबसे मिले। जिस कार्य का होना दीर्घकाल में भी सम्भव नहीं था वह क्षण भर में हुआ। भगवान् हैं। सभी ऐश्वर्य इनमें हैं। इच्छामात्र से अनेक रूप हो गये : लंका के संग्राम में रावण ने जब असंख्य रूप अपना प्रकट किया था यथा : रघुपति कटक भालु कपि जेते। जहँ तहँ प्रकट दसानन तेते। तब रामजी का अमित रूप धारण करना

आश्चर्य नहीं है। ईश्वरी माया को कोई जान नहीं सकता। जिस पर उनकी कृपा महादेवजी की भाँति हो वही जान सकता है।

इस विधि से सबको सुखी कर लिया तब माताओं से मिलने के लिए आगे बढ़े। माताओं की सवारी प्रजावर्ग के पीछे थी। बिना सबको सुखी किये आगे न बढ़ना सरकार का शील है और अमित रूप होकर सबको सुखी करना गुण है। इसलिए शील गुण धाम विशेषण दिया।

सरकार के आगमन का समाचार सुनकर कौसल्यादि माताएँ उठकर दौड़ी थीं। अब देखकर जिस प्रेम से उठकर दौड़ीं उसका उदाहरण देते हुए गोस्वामीजी कहते हैं कि जैसे बछड़े को देखकर नयी ब्याई हुई गाय दौड़ती है। नयी ब्याई हुई गाय बछड़े पर बड़ा ही प्रेम करती है। वैसा प्रेम अन्य जीवों में नहीं देखा जाता। अतः कवि ने उसी की उपमा दी।

छं. जनु धेनु बालक बच्छ तजि गृह चरन बन पर बस गईं।
दिन अन्त पुररुख स्रवत थन हुंकार करि धावत भईं॥
अति प्रेम प्रभु सब मातु भेटी बचन मृदु बहुबिधि कहे।
गइ बिषम बिपति बियोग भव तिन्ह हरष सुख अगनित लहे॥

अर्थ : जैसे नयी ब्याई हुई गाय बछड़े को घर पर छोड़कर चरने के लिए वन में पराये बस में पड़ी होने से गयी हो और दिन के अन्त होने पर पुर की ओर थन से दूध गिराती हुई हुँकार करके दौड़े। अत्यन्त प्रेम से सरकार सब माताओं से मिले और बहुत प्रकार से कोमल वचन बोले। वियोग से उत्पन्न विषम विपत्ति दूर हुई और सबको हर्ष हुआ और अगणित सुख मिला।

व्याख्या : यह छन्द निरखि बच्छ जनु धेनु लवाई। इस पुरइन का कमल है। इसमें नई ब्याई हुई अर्थात् लवाई शब्द का प्रयोग छन्द के अनुरोध से नहीं किया। पर बालक बच्छ कहकर वही भाव प्रकट कर दिया। यही नियम है कि बछड़े को लोग घर पर रख लेते हैं और गाय को वन में चरने के लिए हाँक ले जाते हैं। वन में गाय चरती तो है पर मन उसका अपने छोटे बच्चे पर लगा रहता है। उसका दिन कटना कठिन हो जाता है। ज्योंही दिन समाप्त होकर गोधूलि वेला आती है वह घर की ओर अत्यन्त प्रेम से थनों से दूध टपकाती हुई हुँकार करके दौड़ती है। यही दशा माताओं की हुई। जैसे गाय बछड़े का वियोग नहीं चाहती परन्तु परवश है। मालिक उसे वनमें चरने के लिए हाँक देता है और उसे जाना पड़ता है और बछड़े से वियोग हो जाता है। इसी भाँति महाराज चक्रवर्तीजी के वरदान के कारण माताओं का रामजी से वियोग हो गया था। वियोग की अवधि समाप्त होने पर रामजी को देखकर वे भी अत्यन्त वात्सल्य से थन से दूध गिराती हुई: और रुलाई रोकती हुई हुङ्कार करके दौड़ पड़ीं। उपमा में समानधर्म लिया जाता है। यहाँ गौ और बछड़े के वियोग मात्र में समानता है। वन जाने में समानता नहीं है। अतः उसी

अंश का ग्रहण किया गया। अथवा अयोध्या तो रामजी के साथ रहती है। जहाँ राम नहीं वहाँ अयोध्या कहाँ। यथा : अवध तहाँ जहँ राम निवासू। तहँइ दिवस जहँ भानु प्रकासू। अतः रामजी वन जाने पर भी अयोध्या में ही रहे और माँ लोग घर रहती हुई भी मानो वन में रहीं। अतः रामजी को देखकर उनका उसी भाँति दौड़ना कहा। अत्यन्त प्रेम से उनकी छातियों में दूध आ गया और इतने दिन के वियोग के दुःख सहन करने से संयोग में रुलाई आगयी। मङ्गल जानकर उसे रोका। फिर भी हुँकार निकल ही पड़ा। सरकार अत्यन्त प्रेम के साथ सब माताओं से मिले। जैसे माँ वात्सल्य से भरी हुई बच्चे को अनेक प्यार के शब्दों से सम्बोधन करती है। यथा : बहुरि बच्छ कहि लाल कहि रघुपति रघुबर तात। उसी भाँति अत्यन्त प्रेम से बच्चा भी माँ को, माँ मेरी माँ, अम्ब, जननी आदि मृदु वचनों से सम्बोधन करता है। यहाँ रामजी ने उसी भाँति बहुत प्रकार के मृदु वचन कहे। सरकार के वियोग में विपत्ति तो सबको थी। पर माताओं को तो बड़ी भारी विपत्ति थी। सो सब दूर हो गयी। उनके हर्ष और सुख का अन्त नहीं रह गया।

दो. भेटेउ तनय सुमित्रा, राम चरन रति जानि।
रामहि मिलत कइकई, हृदय बहुत सकुचानि ॥६ क.

अर्थ : रामजी के चरणों में प्रेम है। यह जानकर सुमित्राजी बेटे लक्ष्मणजी से मिलीं। रामजी से मिलते हुए कैकेयी मन में बड़ी सङ्कुचित हुई।

व्याख्या : माँ सुमित्रा लक्ष्मणजी से मिलीं। हृदय में यह भाव था कि इसके कारण मैं पुत्रवती हुई। उनका यह सिद्धान्त है : पुत्रवती युवती जग सोई। रघुपति भगत जासु सुत होई। नतरु बाँझ भलि बादि बियानी। राम बिमुख सुत से हित जानी। इस भाँति रामजी में सुमित्राजी का अत्यन्त प्रेम दिखलाया। प्रेम के विवश माँ कैकेयी भी दौड़ीं। परन्तु मिलते समय उन्हें बड़ा सङ्कोच हुआ कि मैंने किसी का कहना नहीं माना। मैंने ही हठ करके इन्हें वन भेजा। मैं किस मुँह से मिलूँ। यथा : होत प्रात मुनि वेष धरि, जौ न राम बन जाहिं। मोर मरन राउर अजस नृप समुझिय मन माहीं। सखी लोग कहती ही रह गयीं : भरतहि अवसि देहु युवराजू। कानन काह राम कर काजू। पर कैकेयी ने एक भी न सुना। अतः मिलने के समय अपनी करणी विचारकर सङ्कुचित हो गयीं।

दो. लछिमनु सब मातन्ह मिलि, हरखे आसिष पाइ।
कैकइ कहँ पुनि पुनि मिले, मनकर छोभ न जाइ ॥६ ख.

अर्थ : लक्ष्मणजी सब माताओं से मिले और आशीर्वाद पाकर हर्षित हुए। पर कैकेयी से तो बार बार मिले। परन्तु मन का क्षोभ नहीं जा रहा है।

व्याख्या : सुमित्राजी से मिलने के बाद लक्ष्मणजी सब माताओं से मिले। सबने उन्हें आशीर्वाद दिया। इसलिए हर्षित हुए। आशीर्वाद पाना लिखने से ही प्रणाम अनुमित है। परन्तु कैकेयी से बार बार मिले मन का क्षोभ मिटाने के लिए।

सो नहीं मिट रहा है। भाव यह है कि चित्रकूट में जब माताएँ गयी थीं तब लक्ष्मणजी कैकेयी से नहीं मिले। यथा : प्रथम राम भेटी कैकेई। सरल सुभाय भगति मति भेई। इस बात का पश्चात्ताप लक्ष्मणजी के हृदय में था। अतः हृदय का क्षोभ मिटाने के लिए बार बार कैकेयी से मिले। फिर भी क्षोभ नहीं गया।

सासुन्ह सबन्हि मिली बैदेही। चरनन्हि लागि हरष अति तेही॥
देहिं असीस बूझि कुसलाता। होइ अचल तुम्हार अहिवाता॥१॥

अर्थ : सब सासों से वैदेही चरणों पर गिरकर मिली। उन्हें अत्यन्त हर्ष था। सास सब कुशल पूछकर आशीर्वाद देती थीं कि तुम्हारा सौभाग्य अचल हो।

व्याख्या : दोनों भाइयों के मिलने के बाद जानकीजी सास लोगों के चरणों की वन्दना करके मिलीं। सासों पर बड़ा प्रेम है। पहिले कह भी चुकी हैं : प्रिय परिवार मातु सम सासू। अतः उनसे मिलने में सीताजी को बड़ा हर्ष है। अथवा वन जाने के समय सीताजी ने कहा था : सेवा समय दैव बन दीन्हा। मोर मनोरथ सफल न कीन्हा। सो मनोरथ सफल का अवसर प्राप्त होने से अत्यन्त हर्ष है।

सास लोग कुशल पूछती हैं और प्रसन्न होकर आशीर्वाद देती हैं। हिन्दू समाज में आज भी यही स्त्रियों के लिए एक आशीर्वाद है कि तुम्हारा सोहाग बना रहे : वही आशीर्वाद दे रही हैं।

सब रघुपति मुख कमल बिलोकहिं। मंगल जानि नयन जल रोकहिं॥
कनक थार आरती उतारहिं। बार बार प्रभु गात निहारहिं॥२॥

अर्थ : सब रामजी के मुख कमल को देखती हैं और मङ्गल समय समझकर आँसू रोक रही हैं। सोने के थार में आरती कर रही हैं। बार बार सरकार के शरीर को निहारती हैं।

व्याख्या : सब माताएँ रामजी के मुख कमल को देख रही हैं। प्रजा वर्ग दूर से दर्शन करते हैं। अतः उनके लिए मुख की उपमा चन्द्रमा से देते हैं। यथा : रामचन्द मुखचन्द निहारी। पर माता लोग तो निकट से देख रही हैं। इसलिए कमल से उपमा दे रहे हैं। इतने दिनों के बाद प्रिय पुत्र के दर्शन से आँखों में आँसू भरा चला आता है। पर उसे गिरने से रोकती हैं। क्योंकि आँसू गिरना अमङ्गल का चिह्न है और इस समय महामङ्गल उपस्थित है।

सरकार इतने दिनों के बाद घर लौटे हैं और लंका विजय करके आ रहे हैं। अतः माताएँ सोने के थारों में आरती उतार रही हैं और सरकार के शरीर को बार बार देखती हैं। वात्सल्य रस का उत्कर्ष है। पुत्र सभी के प्रियदर्शन होते हैं। यहाँ तो प्राणाराम राम पुत्र रूप से प्राप्त हैं।

नाना भाँति निछावरि करहीं। परमानंद हरष उर भरहीं॥
कौसल्या पुनि पुनि रघुबीरहि। चितवत कृपासिंधु रनधीरहि॥३॥

अर्थ : नाना प्रकार की निछावर करती हैं। परम आनन्द और हर्ष को हृदय में भर रही हैं। कौसल्या माता बार बार कृपा सिन्धु रणधीर रघुवीर को देखती हैं।

व्याख्या : महाराज के घर का निछावर है। भूषण, वसन, हाथी, घोड़ा, हेम, गो, हीरा आदि सभी प्रकार की वस्तुओं का निछावर हो रहा है। बहुत दिनों से हृदय में दुःख भरा हुआ है। अतः उसे हटाकर हर्ष और परमानन्द भर रही हैं। पुत्र के दर्शन से हर्ष और भगवद्दर्शन से परमानन्द हो रहा है। बीर जननी कौसल्याम्बा बार बार अपने वीर रणधीर पुत्र को देखती हैं जो कृपासिन्धु भी हैं। पुत्र के गुणों का उत्कर्ष जानकर माता को बड़ा आनन्द हो रहा है। अतः बार बार देख रही हैं।

हृदयँ बिचारति बारहिं बारा। कौन भाँति लंकापति मारा ॥
अति सुकुमार[1] जुगल मेरे बारे। निसिचर सुभट महाबल भारे ॥४॥

अर्थ : मनमें बार बार विचार करती हैं कि किस प्रकार इन्होंने लंकेश रावण का वध किया। मेरे दोनों बेटे अत्यन्त सुकुमार हैं। राक्षस बड़े योद्धा और भारी महाबल थे।

व्याख्या : माँ मुख से नहीं कहती पर हृदय में विचार करती है। फिर भी मन में बात बैठती नहीं। इनके द्वारा लंकेश्वर रावण का वध कैसे हुआ ? ऐसे मृदु शरीर से संग्राम में रावणकृत आघातों का सहन कैसे हुआ। जिसे पूर्व पुरुष अनरण्य नहीं सह सके। मेरे दोनों लड़के अत्यन्त सुकुमार हैं। इन्हें काम पड़ा राक्षसों से जो कि बड़े योद्धा और बलवान् थे। कुमुख अकंपन कुलिसरद धूम्रकेतु अतिकाय। एक एक जग जीत सक ऐसे सुभट निकाय। बारिदनाद जेठ सुत तासू। भट महुँ प्रथम लीक जग जासू। दस सिर ताहि बीस भुज दंडा। रावन नाम बीर बरिबंडा। इत्यादि इन सबों को अति सुकुमार दोनों भाइयों ने कैसे वध किया ?

दो. लछिमन अरु सीता सहित, प्रभुहि बिलोकति मातु।
परमानंद मगन मन, पुनि पुनि पुलकित गात ॥७॥

अर्थ : लक्ष्मणजी और सीताजी के सहित प्रभु को माता देखती हैं। परमानन्द से उनका मन मग्न है और बार बार शरीर में पुलकावली उठ रही है।

व्याख्या : ये ही तीनों मूर्तियाँ वन में गयी थीं। इनका दर्शन दुर्लभ था। यथा : सुदिन सुघरी तात कब होइहि। जननी जिअत बदन बिधु जोइहि। फिरिहि दसा बिधि बहुरि कि मोरी। देखिहौं नयन मनोहर जोरी। सो दशा फिरी। मनोहर जोड़ी आँख के सामने है। वह सुदिन और सुघड़ी आगयी। माता विधु वदन

---

१. यहाँ असम्भव अलंकार है।

देखने के लिए जीवित हैं। अतः मन में परमानन्द है। शरीर में सात्त्विक भाव होने से पुलकावली छायी हुई है।

लंकापति कपीस नल नीला। जामवंत अंगन सुभ सीला ॥
हनुमदादि सब बानर बीरा। धरे मनोहर मनुज सरीरा ॥१॥

अर्थ : शुभ शील लङ्कापति विभीषण, कपीस सुग्रीव, नल, नील, और अङ्गद तथा हनुमान् आदिक सब वीर सुन्दर मनुष्य का शरीर धारण किये हुए हैं।

व्याख्या : १. विभीषण २. सुग्रीव ३. नल ४. नील ५. अङ्गद ६. जामवन्त ये शुभशील हैं तथा ७. हनुमान् आदिक वीर बन्दर भी शुभशील हैं। क्योंकि इनका सरकार पर अतिशय प्रेम है। लङ्काविजय के बाद सब बन्दरों को सरकार ने बिदा कर दिया। पर ये लोग नहीं गये। यथा : १. कपिपति २. नील ३. रीछ पति ४. अंगद ५. नल ६. हनुमान् सहित ७. विभीषन। अपर जे जूथप कपि बलवान। कहि न सकहिं कछु प्रेम बस भरि भरि लोचन बारि। सनमुख चितवहिं राम तन नयन निमेष निबारि। अतिसय प्रीति देखि रघुराई। लीन्हें सकल बिमान चढ़ाई। अत्यन्त बलवान् वीरों में भी ये ही सात प्रधान थे। रावण ने भी निर्बल सिद्ध करने लिए इन्हीं सातों का नाम लेकर दोष दिखलाया था। यथा : १.२. तुम सुग्रीव कूल द्रुम दोऊ। ३. अनुज हमार भीरु अति सोऊ। सिल्प कर्म जानत ४.५. नल नील। ६. जामवन्त मन्त्री अति बूढ़ा। ७. है कपि एक महा बलसीला। इनका अतिशय प्रेम सरकार पर था। ये महाबलवान् थे और इनमें यथेप्सित रूप धारण करने की भी शक्ति थी। इन लोगों ने सुन्दर मनुष्य का शरीर धारण कर लिया था। फिर भी अपने पूर्व रूप से मेल खाता था कि ये मनुष्य रूप में भी पहिचाने जाते थे। सरकार का रुख देखकर ही इन लोगों ने मनुष्य रूप धारण किया। भरतजी के पास हनुमान्जी को भेजते समय सरकार ने कहा कि बटु रूप धारण करके भरतजी के पास जाओ। बानर रूप से जाने में प्रजा में उद्वेग होगा। बात समझकर इन महात्माओं ने मनोहर मनुज रूप धारण कर लिया।

भरत सनेहु सील ब्रत नेमा। सादर सब बरनहिं अति प्रेमा ॥
देखि नगरबासिन्ह के रीती। सकल सराहहिं प्रभुपद प्रीती ॥२॥

अर्थ : भरतजी के स्नेह शील व्रत और नेम का सब आदर और अति प्रेम के साथ वर्णन करते हैं। नगरवासियों की रीति देखकर सब प्रभु के चरणों की प्रीति की प्रशंसा करते हैं।

व्याख्या : भरत का स्नेह यथा : बूड़त बिरह बारीस कृपानिधान मोहि करगहि लियो। भरत का शील यथा : अब कुसल कोसल नाथ आरत जानि जन दरसन दियो। भरत का व्रत नेम यथा : बैठे देखि कुसासन जटा मुकुट कृसगात। इत्यादि। ये बानर वीर लोगों ने भरत के स्नेह, शील, व्रत और नेम को आँखों से देखा। अतः सब लोग उनके इन गुणों का वर्णन अत्यन्त प्रेम से कर रहे हैं। ये लोग

महात्मा हैं। इनके हृदय में मैत्री, मुदिता, करुणा और उपेक्षा वास करती है ईर्ष्या नहीं। इन लोगों ने नगरवासियों की रीति भी आँखों से देखी। यथा : प्रभु बिलोकि हरखे पुरवासी। जनित बियोग बिपति सब नासी। प्रेमातुर सब लोग निहारी। अतः उनके प्रभु पद प्रीति की सब लोग सराहना करते हैं कि प्रजावर्ग में राजा पर ऐसी प्रीति कहीं देखी नहीं जाती।

पुनि रघुपति सब सखा बोलाए। मुनि पद लागहु सकल सिखाए ॥
गुरुबसिष्ठ कुल पूज्य हमारे। इन्हकी कृपा दनुज रन मारे ॥३॥

अर्थ : फिर रामजी ने सब सखाओं को बुलाया और सबको सिखाया कि मुनिजी के चरणों की वन्दना करो। ये मुनि वसिष्ठ हैं। हमारे कुल के पूज्य हैं। इनकी कृपा से मैंने राक्षसों को रण में मारा है।

व्याख्या : भेंट मिलाप के बाद इस बात की आवश्यकता पड़ी कि जो लोग लंका से साथ आये हैं उनका परिचय दें। गुरुजी को परिचय देने से ही सबको परिचय मिल जायगा। अतः पहिले सखाओं को सिखाया कि गुरुजी के चरणों की वन्दना करो। ये ही गुरु वसिष्ठ हैं। ये हमारे कुल पूज्य हैं। हमारे कुल में इनकी पूजा होती आयी है। इस कहने से सरकार ने गुरुजी का अत्यन्त चिरंजीवी होना बतलाया। अब महिमा कहते हैं कि इनके आशीर्वाद से ही हम लोगों का अशुभ दूर होकर कल्याण होता है। तथा : इन्हकी कृपा दनुज रन मारे।

ए सब सखा सुनहु मुनि मेरे। भए समर सागर कहँ बेरे ॥
मम हित लागि जनम इन हारे। भरतहुँ ते मोहि अधिक पिआरे ॥४॥
सुनि प्रभु बचन मगन सब भए। निमिषि निमिषि उपजत सुख नए ॥५॥

अर्थ : हे मुनिजी ! सुनो। ये सब मेरे सखा हैं। ये ही युद्ध समुद्र में मेरे लिये बेड़ा हुए। मेरे लिये इन लोगों ने अपना जन्म हार दिया। ये मुझे भरतजी से भी अधिक प्यारे हैं। प्रभु के वचन सुनकर सब मग्न हो गये। प्रत्येक क्षण में अपूर्व सुख उत्पन्न होने लगे।

व्याख्या : सरकार बन्दरों का परिचय मुनिजी को देते हैं। कहते हैं कि ये सब मेरे सखा हैं। इनका मेरा बराबरी का दर्जा है। इनका सखित्व सुनिये। लंका की लड़ाई मेरे लिए तो समुद्र हो गयी। उस समुद्र के लिए ये जहाजी बेड़ा हो गये और आपकी कृपा अनुकूल मारुत हो गयी। मेरे लिए इन लोगों ने प्राण निछावर कर दिया। समझ लिया कि हमारा जन्म ही इनकी ओर से जूझने के लिए हुआ है। अतः ये लोग भरतजी से भी अधिक प्यारे हैं। भरतजी तो मेरे भाई हैं। होहिं कुठायँ सुबन्धु सहायें। उनका मेरे लिए कष्ट उठाना प्राप्त था। पर इनसे तो कोई सम्बन्ध नहीं था। मैं नर और ये बानर। नर बानर का सङ्ग कैसा ? सो इन लोगों ने मेरा ऐसा साथ दिया अतः भरतजी से भी प्यारे हैं।

सरकार का वचन सुनकर सब मग्न हो गये कि सरकार हमारी इतनी बड़ाई गुरुजी से करते हैं। सुख समुद्र में मग्न हैं। नयी नयी आनन्द की लहरें आरही हैं। इन लोगों ने सरकार को समर सागर से पार किया और सरकार ने इन्हें सुख सागर में डुबा दिया।

दो. कौसल्या के चरनन्हि, पुनि तिन्ह नाएउ माथ।
आसिष दीन्हे हरखि तुम्ह, प्रिय मम जिमि रघुनाथ ॥८ क.
सुमन बृष्टि नभ संकुल, भवन चले सुखकंद।
चढ़ी अटारिन्ह देखहिं, नगर नारि बर बृंद ॥८॥

अर्थ : कौसल्याजी के चरणों में फिर उन्होंने सिर झुकाया। आशीर्वाद दिया और कहा कि तुम लोग मुझे वैसे ही प्रिय हो जैसे रामजी प्रिय हैं। फूलों की वर्षा से आकाश भर गया। सुख के मेघ श्रीरामजी घर चले। नगर की श्रेष्ठ स्त्रियाँ अटारियों पर चढ़ी हुई देख रही हैं।

व्याख्या : पहिले महाराज की आज्ञा से वसिष्ठजी के चरणों में सिर नावाया था। अब कौसल्याजी के चरणों में सिर नवा रहे हैं। परिचय देने की आवश्यकता नहीं है। गुरुजी के परिचय देने से ही सबको सखाओं का परिचय हो गया और सखा लोग मिलने की रीति से ही भगवती कौसल्या को पहिचान गये। उनके प्रणाम करने पर कौसल्याम्बा ने आशीर्वाद दिया और : तुम्ह प्रियमम जिमि रघुनाथ। कह कर उन पर अपनी प्रीति दिखलायी।

यहाँ का कार्य पूरा करके सरकार घर चले। कवि यहाँ पर सुखकन्द विशेषण देकर दिखला रहे हैं कि रास्ते में आनन्द की वर्षा होती जारही है। उसी को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि ऐसे फूलों की वर्षा हुई कि आकाश पुष्पमय हो गया। इस शोभा को नगरके लोग अटारियों पर चढ़कर देख रहे हैं। नीचे से शोभा देखने के लिए यथेष्ट स्थान नहीं है। यह पुष्पवृष्टि नगरवासियों की ओर से है।

कंचन कलस बिचित्र सँवारे। सबहिं धरे सजि निज निज द्वारे ॥
बंदनवार पताका केतू। सबन्हि बनाए मंगल हेतू ॥१॥

अर्थ : सोने के कलश विचित्र रूप से सँवार कर सबने अपने अपने द्वार पर सजाकर रख छोड़ा था। सबने बन्दनवार ध्वजा और पताका मङ्गल के कारण लगा रक्खा था।

व्याख्या : अवध की सम्पत्ति का दिग्दर्शन कराते हुए कहते हैं कि सबके द्वार पर स्वागत के लिए सुवर्ण के मङ्गल घट रक्खे हुए हैं। उस पर सिन्दूरादि का लेप किया हुआ है। जिससे उनकी विचित्र शोभा हो रही है। यथा : छुहे पुरट घट सहज सुहाए। मदन सकुचि जनु नीड बनाए।

द्वार पर नीचे सुवर्ण घट रक्खा हुआ है। ऊपर अनेक प्रकार के बन्दनवार

बांधे गये हैं। यथा : रचे बिबिध बिधि बंदनबारे। मनहुँ पाकरिपु चाप सँवारे। मकान के ऊपर केतु पताका शोभायमान है। राज्य की ओर से क़ोई घोषणा नहीं है। प्रजावर्ग को स्नेह इतना है कि प्रत्येक व्यक्ति समझ रहा है कि मेरे घर मङ्गल उपस्थित है।

बीथी सकल सुगंध सिंचाई। गजमनि रचि बहु चौक पुराई ॥
नाना भाँति सुमंगल साजे। हरखि नगर निसान बहु बाजे ॥२॥

अर्थ : सब गलियाँ सुगन्धित द्रव्य से सींची गयीं। गजमुक्ताओं से सजाकर बहुत से चौके पुराये गये। अनेक भाँति के सुन्दर मङ्गल साज सजाये गये। हर्षित होकर नगर में बहुत से डङ्के बजने लगे।

व्याख्या : नगर की छोटी बड़ी सभी गलियाँ सुगन्ध से सींची गयीं केवल जल से नहीं। राज मार्ग का छिड़काव नहीं कहते। क्योंकि वह तो राजा की प्रसन्नताके लिए दिखावा मात्र है। आँटे या पत्थर के चूरों से चौक नहीं पूरे गये। गजमणि को ऐसा सजाया मानो चौक पूरा हुआ हो। नानाभाँति के सुमङ्गल साजे गये : दधि दुर्वा रोचन फल फूला। नव तुलसीदल मंगल मूला। ये सब द्रव्य हेमथार में भरकर रक्खे गये। केले के खम्भे रोपे गये। वितान ताने गये। आम के पल्लव आदि लटकाये गये और नगर में बहुत स्थानों पर हर्षोद्रेक से निशान बजने का प्रबन्ध था।

यहाँ पर ध्यान रखने की बात है कि स्वर्ण के मङ्गल कलश तो कम से कम सबके द्वार पर हैं। परन्तु गजमणि का चौक तथा निशान का बजना सबके यहाँ नहीं है। जो समर्थ हैं उन्हीं के यहाँ ऐसी योजनाएँ हैं। पर उसकी भी संख्या थोड़ी नहीं है।

जहँ तहँ नारि निछावरि करहीं। देहिं असीस हरष उर भरहीं ॥
कंचन थार आरती नाना। जुवती सजें करहिं सुभ गाना ॥३॥

अर्थ : जहाँ तहाँ स्त्रियाँ निछावर कर रही हैं। आशीर्वाद देती हैं और हृदय को हर्ष से पूरित कर रहीं हैं। सोने के थारों में अनेक प्रकार की आरती साजे हुए युवतियाँ मङ्गलगान कर रही हैं।

व्याख्या : रानी लोग तो नाना भाँति से निछावर करती हैं। सब लोग इस भाँति निछावर नहीं कर सकते। फिर भी रास्ते में निछावर होती जाती है। स्त्रियाँ निछावर करती हैं। आशीर्वाद भी देती हैं। माँ लोग : परमानन्द हरष उर भरहीं। और प्रजावर्ग : देहिं असीस हरष उर भरहीं। भाव यह कि चौदह वर्ष तक हृदय सुख से रीता था। अतः उसमें हर्ष भर रहो हैं।

सोने के थारों में अनेक प्रकार की आरतियाँ साजे हुए युवतियाँ मङ्गलगान कर रही हैं। तात्पर्य यह है कि अयोध्या में चारों ओर उत्साह दिखायी पड़ रहा है। उत्साह से स्त्रियाँ नाना प्रकार से आरती साज रक्खी हैं। बत्तियों की संख्या के भेद से तथा सजावट के भेद से आर्तियों में भेद होता है। इसलिए नाना भाँति कहा।

करहिं आरती आरतिहरकें। रघुकुल कमल बिपिन दिनकर कें ॥
पुर सोभा संपति कल्याना। निगम सेष सारदा बखाना ॥४॥
तेउ यह चरित देख ठगि रहहीं। उमा तासु गुन नर किमि करहीं ॥५॥

अर्थ : आर्त्ति के हरनेवाले सूर्यकुलरूपी कमल वन के सूर्य की वे आरती करती हैं। पुर की शोभा सम्पत्ति और कल्याण का बखान वेद शेष और सरस्वती ने किया है। वे भी यह चरित्र देखकर ठगे से रह जाते हैं। हे उमा! तब उसके गुण को मनुष्य कैसे कहें।

व्याख्या : आर्तिहार जो भगवान् हैं उनकी आरती हो रही है। सरकार स्वयं रघुकुल कमल के सूर्य हैं। उनकी आरती करना सूर्य को दीपक दिखाना है। पर भक्त अपने हृदय के उत्साह को व्यक्त कैसे करें। अतः आरती कर रहे हैं। यथा : हरति सब आरती आरती रामकी। विनयपद ४८.

यद्यपि अवध सदैव सुहावनि। रामपुरी मंगलमय पावनि है। अवधपुरी का वर्णन तीनों लोक के वक्ताओं ने किया है। सदैव सोहावनि : शब्द से शोभा कहा। मङ्गलमय : से सुख सम्पत्ति कहा। पावनि : कहकर कल्याणमय कहा। अथवा पुर की शोभा का वर्णन निगम ने किया। सम्पत्ति का शेष ने किया और कल्याण क शारदा ने किया।

वे भी सरकार के पुर प्रवेश का चरित्र देखकर स्तब्ध रह गये। मानो उनका मन किसी ने ठग लिया। कुछ कहते नहीं बनता। शंकर भगवान् कहते हैं कि उनका वर्णन मनुष्य कैसे कर सकते हैं। मनुष्य तो सब प्रकार से अल्पवीर्य हैं। भाव यह कि मनुष्य लोक में यह चरित्र हुआ है। अतः मनुष्य उसका वर्णन करना चाहेंगे। पर उनके वर्णन में वह बात आ नहीं सकती। उनके वर्णन से कोई यह न समझ ले कि अयोध्या में इतना ही और ऐसा ही उत्साह हुआ।

दो. नारि कुमुदिनी अवध सर, रघुपति बिरह दिनेस।
अस्त भये बिगसत भईं, निरखि रामु राकेस ॥९ क.
होहिं सगुन सुभ बिबिध बिधि, बाजहिं गगन निसान।
पुरनर नारि सनाथ करि, भवन चले भगवान ॥९ ख.

अर्थ : अयोध्यारूपी सरोवर में स्त्रियाँरूपी कुमुदिनी थीं। रामजी के विरह रूपी सूर्य के अस्त होने पर रामचन्द्ररूपी पूर्ण चन्द्र को देखकर विकसित हो गयीं। अनेक प्रकार के शुभ सगुन होते थे। आकाश में डके बज रहे थे। पुर के पुरुष और स्त्रियों को सनाथ करके भगवान् रामचन्द्र महल में चले।

व्याख्या : रघुपति विरह दिनेश के उदय से अवध सर की कुमुदिनी स्त्रियाँ दीन हो रही थीं। चौदह वर्ष तक उसी दशा में रहीं। आज वह सूर्य अस्त हो

गये और रामचन्द्ररूपी पूर्णचन्द्र का उदय हुआ। उनके दर्शनमात्र से वे सब की सब खिल उठीं। सूर्यास्त और पूर्णचन्द्र का उदय एक साथ ही होता है। कुमुदिनियों के खिलने का संसार में अन्य कोई उपाय नहीं है जब चन्द्रोदय हो तभी वे खिलती हैं।

विवाह प्रकरण में सगुनों का विस्तृत वर्णन कर चुके हैं। इसलिए यहाँ नहीं करते। इतना ही कर रहे हैं कि अनेक प्रकार के शुभ शकुन हो रहे हैं। भगवती प्रकृति शकुनों द्वारा अपने उत्साह को पृथिवी पर प्रकट कर रही हैं और डङ्का बजाकर देवता लोग आकाश में उत्साह प्रकट कर रहे हैं। इस भाँति सरकारी सवारी जा रही है। दर्शन करके पुर के नरनारी सनाथ हो रहे हैं। सवारी महल तक पहुँची तब भगवान् महल में चले।

प्रभु जानी कैकई लजानी। प्रथम तासु गृह गए भवानी॥
ताहि प्रबोधि बहुत सुख दीन्हा। पुनि निज भवन गवनु हरि कीन्हा॥१॥

अर्थ : सरकार ने जान लिया था कि कैकेयी लज्जित हो रही हैं। सो पहिले उन्हीं के महल में गये। उन्हें समझाबुझाकर बहुत सुख दिया। तत्पश्चात् अपने भवन में प्रवेश किया।

व्याख्या : लक्ष्मणजी ने कैकेयी के सङ्कोच को जाना। अतः उनके सन्तोष के लिए बार बार मिले। सरकार ने भी उसी समय जाना था पर बार बार मिलना ही उनकी सन्तुष्टि के लिए यथेष्ट नहीं समझा। अतः उनके सङ्कोच को मिटाने के लिए उनके महल में गये। कैकेयी ने जो कहा था : मोपर करहिं सनेह बिसेखी। मैं करि प्रीति परीछा देखी। सो सरकार इस विकट परीक्षा में भी उत्तीर्ण हुए। उसी महल से वन जाने के लिए बाहर निकले थे। आज लौटकर भी पहिले उसी महल में गये। नीति प्रीति परमारथ स्वारथ। कोउ न राम सम जान जथारथ। संसार जान ले कि महारानी कैकेयी का वही सत्कार है जो महाराज के समय में था। कैकेयी को भी सन्तोष हो कि राजमाता होने की प्रतिष्ठा उसी को प्राप्त है। जिसे पाने के लिए उसने वन भेजा था। पग परि कीन्ह प्रबोध बहोरी। काल कर्म बिधि सिर धरि खोरी। उसी को सफल करके दिखला दिया। फिर भगवती कैकेयी को समझा बुझाकर बहुत सुख दिया। बोले :

सुख सोहाग सम्पति सुजस त्यागि अंगइ अपमान।
जननि कियो तैं लोक हित तो सम कौन महान॥

विधि दीन्हे यह काज तोहि मैं जानत सो बात।
निज जननी ते अधिक तू याते मोहि सोहात॥

छं. तेरे ही प्रताप वध भयउ दसानन को,
तेरे ही प्रसाद भार भूमि को उतरिगो।
जमि गयो शासन बहोरि पाकशासन को,
श्रुति अनुशासन पूताल लों पसरिगो॥

तेरे ही प्रताप विजय आनन्द निहाल आज,
विषम विषाद सुर संतन को टरिगो।
पूरि महिमंडल अखण्डलपुरी लौं जस,
तेरे ही प्रसाद रघुवंशिन्ह को भरिगो॥
पितहि दियौं जो ज्ञान सो अम्ब देत हौं तोहि।
पूरण ब्रह्म अनादि अज अस विचारि भजु मोहि॥

कृपासिंधु तब मंदिर गए। पुर नर नारि सुखी सब भए॥

रामाभिषेक प्रसङ्ग

गुरु बसिष्ठ द्विज लिए बोलाई। आजु सुघरी सुदिन समुदाई॥२॥

अर्थ : कृपासिन्धु रामजी घर गये तब पुर के नरनारी सब सुखी हुए। गुरु वसिष्ठजी ने ब्राह्मणों को बुला लिया। बोले कि आज सुघड़ी और सुदिन का समुदाय है।

व्याख्या : सरकार के कैकेयी के महल में जाने से प्रजावर्ग में खलबली पड़ गयी कि इसी महल से वनवास का व्रत लेकर निकले थे। फिर आते ही उसी महल में गये। कैकेयी फिर कोई कुचाल न चले। बहुत से लोग संशय में पड़ गये। कृपासिन्धु के आशय को न समझ सके। पर जब कैकेयी के महल से निकलकर अपने मन्दिर में गये तब सब पुर के नर नारि सुखी हुए।

गुरु वसिष्ठ ने ब्राह्मणों को बुलवा लिया। ब्राह्मण वचनात् कार्य करना है और उनसे कहा कि आज का मुहूर्त बहुत अच्छा है। पुष्य नक्षत्र भी है और भी योग लग्न ग्रह सब अच्छे हैं। राज्याभिषेक ऐसे ही मुहूर्त में करना चाहिए। गुरुजी बिना पूछे मुहूर्त बतलाते हैं। चक्रवर्तीजी के पूछने पर भी नहीं बतलाया कह दिया : सुदिन सुमंगल तबहि जब राम होहिं जुवराज।

सब द्विज देहु हरखि अनुसासन। रामचन्द्र बैठहिं सिंघासन॥
मुनि बसिष्ठ के बचन सुहाए। सुनत सकल बिप्रन्ह अति भाए॥३॥

अर्थ : सब ब्राह्मण लोग हर्षित होकर आज्ञा दो रामचन्द्र सिंहासन पर बैठें। वसिष्ठ मुनिजी के सोहाये वचन सुनते ही सब ब्राह्मणों को बड़ा अच्छा लगा।

व्याख्या : वसिष्ठजी बोले कि सब ब्राह्मण हर्षित होकर आज्ञा दो। मेरे दबाव से नहीं। महाराज दशरथ ने भरत को राज्य दिया। यथा : देहु भरत कहँ राज बजाई। भरत को राज्य स्वीकार नहीं। रामजी के नहीं रहने पर चौदह वर्ष तक रामजी की पादुका को सिंहासनासीन करके भरतजी ने राज्य चलाया। अतः भरत तो अपनी ओर से रामजी को राजा बना चुके हैं और रावण वध से भी सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के राजा हो चुके। क्योंकि रावण का शासन सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड पर था। यथा : ब्रह्म सृष्टि जहँ लगि तनुधारी। दसमुख बसवर्ती नर नारी। अब रामचन्द्र का सिंहासन पर बैठना मात्र शेष है। सो रामचन्द्र ब्राह्मणों की आज्ञा न टालेंगे। अतः

आप लोगों की आज्ञा प्रार्थनीय है। रामचन्द्र के मन से पाप स्पर्श की शङ्का दूर होनी चाहिए। आप लोगों की आज्ञा से वह दूर हो जायगी। शिवजी के धनुष तोड़ने के समय भी ऐसी शङ्का की निवृत्ति के लिए ब्राह्मणों की आज्ञा से ही धनुषभंग किया। यथा : राम मुनिन्ह सन आयसु माँगा।

सभी ब्राह्मण लोग रामजी पर वसिष्ठजी सा ही प्रेम करते थे। यथा : बिप्र सहित परिवार गोसाईं। करहिं छोह सब रौरेहि नाईं। अतः उन लोगों को रामजी के अभिषेक विषयक वचन बहुत ही अच्छा लगा। सबकी यही सम्मति हुई कि आज ही अभिषेक होना चाहिए।

कहहिं बचन मृदु बिप्र अनेका। जग अभिराम राम अभिषेका॥
अब मुनिवर बिलम्बु नहि कीजै। महाराज कहुँ तिलक करीजै॥४॥

अर्थ : अनेक मृदु वचन ब्राह्मण लोग कहने लगे कि रामजी का अभिषेक जगत् के लिए सुखद है। अब मुनिराज! देर न कीजिये। महाराज को तिलक कर दीजिये।

व्याख्या : ब्राह्मण लोग अनेक मृदु वचन कहने लगे। उन वचनों का आशय यह था कि रामजी के अभिषेक से संसार का कल्याण है। सबको सोहाता है। यथा : रामराज अभिषेक सुनि हिय हरखे नरनारि। लगे सुमंगल सजन सब बिधि अनुकूल बिचारी। कनक सिंहासन सीय समेता। बैठहिं रामु होइ चितचेता। इत्यादि।

ब्राह्मणों ने कहा कि अब अभिषेक में विलम्ब न होना चाहिए। पहले अभिषेक में आपने कहा था : बेग बिलम्ब न करिअ नृप साजिय सकल समाज। यदि महाराज उसी दिन रामजी को राज्य दे दिये होते तो विघ्न को अवसर न मिलता। एक दिन के विलम्ब में विघ्न हो गया। अतः इस बार विलम्ब न होने पावे। महाराज तो वे हैं ही तिलक मात्र शेष है। सो आप कुलगुरु हैं। आप तिलक कर दीजिये। महाराज दशरथजी भी कह चुके हैं : सुवस बसिहि फिरि अवध सोहाई। सब गुनधाम राम प्रभुताई। करिहहिं भाइ सकल सेवकाई। होइहि तिहुँ पुर राम बड़ाई।

दो. तब मुनि कहेउ सुमंत्र सन, सुनत चलेउ हरखाइ।
रथ अनेक बहु बाजि गज, तुरत सँवारे जाइ॥१० क.
जहँ तहँ धावन पठइ पुनि, मंगल द्रव्य मँगाइ।
हरख समेत बसिष्ठ पद, पुनि सिरु नायेउ आइ॥१० ख.

अर्थ : तब मुनिजी ने सुमन्त्र से कहा। वे सुनते ही हर्षित होकर चले। अनेक रथ और बहुत से हाथी घोड़े तुरन्त सजाये। जहाँ तहाँ हरकारों को भेजकर मङ्गल द्रव्य मँगाया और हर्ष समेत वसिष्ठजी के चरणों में फिर सिर झुकाया।

व्याख्या : रामजी के न लौटने का सन्देश राजा को देने के बाद से सुमन्त्रजी का पता नहीं है। घर से बाहर नहीं निकलते। महाराज का देहावसान हुआ। भरतजी आये। और्ध्वदेहिक क्रिया हुई। भरत सभा हुई। सब लोग चित्रकूट गये। लौटे। जनकजी आये। भरतजी नन्दिग्राम में रहने लगे। पर कहीं सुमन्त्र का नाम नहीं है : अस कहि सचिव बचन रहि गयऊ। हानि गलानि सोच बस भयऊ। उसी समय से सुमन्त्रजी हानि ग्लानि और सोच वश हो गये। चौदह वर्ष तक किसी को मुख न दिखलाया। आज सरकार बन से लौटे हैं तो सुमन्त्रजी भी घर के बाहर निकले। मुनिजी ने सुमन्त्रजी को रथ बाजि गज सँवारने के लिए तथा मङ्गल द्रव्य लाने की आज्ञा दी। तुरन्त नमस्कार करके चले।

सब अभिषेक का सामान महाराज चक्रवर्तीजी के समय का एकत्रित किया हुआ रक्खा है। जो वस्तुएँ चौदह वर्ष तक टिक नहीं सकतीं उन्हीं को मँगाना है। औषध मूल फूल फल पाना। तथा सुतीर्थों के जल इत्यादि को मँगाना था। सुग्रीव अंगद जाम्बवान् और हनुमान्जी चारों समुद्र का जल ले आये। जहाँ तहाँ शेष मङ्गल द्रव्य के लिए हरकारे भेजे गये। रथ अनेक बहु बाजि गज सँवारने के लिए तो आज्ञा मात्र की देर थी। सब सामान प्रस्तुत करके प्रसन्नता के साथ लौटकर फिर वसिष्ठजी को नमस्कार किया। भाव यह कि सब सामान ठीक है।

अवध पुरी अति रुचिर बनाई। देवन्ह सुमन बृष्टि झरलाई ॥
राम कहा सेवकन्ह बुलाई। प्रथम सखन्ह अन्हवावहु जाई ॥१॥

अर्थ : अयोध्यापुरी को अत्यन्त सुन्दर सजाया गया। देवताओं ने फूलों की वर्षा की झर लगा दी। रामजी ने सेवकों को बुलाकर कहा कि पहिले जाकर सखाओं को नहलाओ।

व्याख्या : इस समय तिलक के लिए जल्दी है। उसी दिन तिलक होना है। सामान बहुत कुछ करना है। कवि भी जल्दी में है। वसिष्ठजी ने सुमन्त्र से कहा। बस इतना ही लिखा। क्या कहा ? इसे बाद के साज सामान से अनुमान करना होगा : रथ अनेक बहु बाजि गज तुरत सँवारेउ जाइ : से लेकर अवध पुरी अति रुचिर बनाई : तक उसी का वर्णन है। यद्यपि अवध सदैव सोहावनि। रामपुरी मंगल मय पावनि। तदपि प्रीति कै रीति सुहाई। मंगल रचना रची बनाई। अतः कहते हैं कि अयोध्या पुरी अति सुन्दर साजी गयी। देवताओं ने फूलों के वर्षा की झर बाँध दी। इससे शोभा और भी बढ़ गयी।

सरकार ने देखा कि सेवक लोग मेरे मज्जन की व्यवस्था कर रहे हैं। विभीषणजी ने प्रार्थना की थी कि : मज्जन करिय समर स्रम छीजे। परन्तु सरकार ने बिना भरतजी से मिले मज्जन करना स्वीकार नहीं किया। अब भरत मिलाप हो चुका। अभिषेक के पहिले मज्जन करना आवश्यक है। इसलिए सेवकों को मज्जन करने की व्यवस्था करते देखकर बुलाया और आज्ञा दी कि पहिले जाकर मेरे सखाओं को मज्जन कराओ। उसके बाद मैं मज्जन करूँगा।

सुनत बचन जहँ तहँ जन धाए। सुग्रीवादि तुरत अन्हवाए ॥
पुनि करुना निधि भरतु हँकारे। निजकर राम जटा निरुआरे ॥२॥

अर्थ : वचन सुनते ही सेवक लोग दौड़े और सुग्रीवादि को तुरन्त मज्जन कराया। तत्पश्चात् करुणानिधि ने भरतजी को बुलाया और अपने हाथ से उनकी जटा को सुलझाया।

व्याख्या : सरकार के सखा हैं। उन्हें पृथक् पृथक् महलों में ठहराया गया। स्वयं रामजी के महल में सुग्रीव ठहराये गये हैं। अतः जहाँ जहाँ वे लोग ठहरे थे वहाँ वहाँ मङ्गल स्नान कराने के लिए सेवक दौड़ गये और तुरन्त उन लोगों को मज्जन करवाया : नीति प्रीति परमारथ स्वारथ। कोउ न राम सम जान जथारथ। अपने मज्जन करने के पहिले सखाओं के मज्जन कराने में नीति प्रीति परमार्थ और स्वार्थ का चमत्कृत संमिश्रण है।

सरकार करुणानिधि हैं। भरतजी अभिषेक की तैयारी में लगे हैं। सो उन्हें बुला लिया और उनके मङ्गल स्नान कराने के लिए अपने हाथ से उनकी जटा को सुलझाया। जिसमें एक भी बाल भरतजी का बाँका न हो और सुलझाने में किसी प्रकार का कष्ट बोध न हो। सरकार के लिए ही भरतजी ने जटा धारण की। अतः सरकार के हाथ से उस जटा का सुलझाना शोभा देता है। यहाँ पर यह अनुमान कर लेना होगा कि भरतजी की जटा को सरकार द्वारा सुलझाते देखकर लक्ष्मणजी ने अपनी जटा स्वयं सुलझा ली। अथवा मन्त्रियों ने सुलझा दिया। अथवा श्रीभरतजी ने गोद में बैठाकर सुलझा दिया। अतः लालन योग लखन लघु लोने।

अन्हवाए प्रभु तीनिउ भाई। भगत बछल कृपाल रघुराई ॥
भरत भाग्य प्रभु कोमलताई। सेष कोटिसत सकहिं न गाई ॥३॥

अर्थ : सरकार ने तीनों भाइयों को नहलाया। क्योंकि रघुराई कृपाल और भक्तवत्सल हैं। भरतजी के भाग्य और सरकार को कोमलता को सौ कोटि शेष भी वर्णन नहीं कर सकते।

व्याख्या : स्वयं सरकार ने तीनों भाइयों को मङ्गल स्नान करवाया। तीनों भाई सरकार के भक्त हैं। सरकार से छोटे हैं। अतः सरकार का उन पर स्नेह है। कृपा है और नीति भी यही है। इसलिए कवि ने यहाँ सरकार के लिए तीन विशेषण दिये : भक्त वत्सल, कृपाल और रघुराई। गोस्वामीजी कहते हैं कि सरकार का हाथ सिर पर पड़ना बड़े भाग्य की बात है। यथा : प्रभु कर पंकज कपि के सीसा। सुमिरि सो दसा मगन गौरीसा। सो सरकार भरतजी की जटा अपने हाथ से सुलझा रहे हैं। भरत के भाग्य का और सरकार की कोमलता का वर्णन सौ कोटि शेष से भी नहीं हो सकता। जिन्हें सहस्र मुख हैं और दो सहस्र जिह्वाएँ हैं। उसे एक जिह्वावाला मनुष्य क्या वर्णन कर सकता है।

पुनि निज जटा राम बिबराए । गुरु अनुसासन माँगि नहाए ॥
करि मज्जन प्रभु भूषन साजे । अंग अनंग देखि सत लाजे ॥४॥

अर्थ : फिर रामजी ने अपनी जटा को फोड़ा और गुरुजी की आज्ञा पाकर स्नान किया । स्नान के बाद सरकार ने आभूषण सजाया । अङ्गों को देखकर सैकड़ों काम लज्जित हो गये ।

व्याख्या : तीनों भाइयों के स्नान कराने के बाद सरकार ने अपनी जटा को विवराया । अर्थात् उलझे हुए बालों को खैंचकर अलग किया । भरतजी की जटा की भाँति सुलझाया नहीं । सरकार की प्रसन्नता भाइयों को सुख देने में है अपने आराम में नहीं । स्वयं मङ्गल स्नान के लिए गुरुजी से आज्ञा माँगी । मिलने पर स्नान किया । यह मङ्गल स्नान काम्य था । अतः इसके बाद नित्य कृत्य नहीं कहते । भूषणों का साजाना कहते हैं । चौदह वर्ष के बाद मङ्गल स्नान हो रहा है और भूषण साजा जा रहा है । भूषण धारण करने का विधान शास्त्र में है कि पुनः राजा के लिए । तथापि अभिषेक के अवसर पर तो अनिवार्य है । अतः सरकार ने भूषण सजाये । यहाँ दिखावा का लेश भी नहीं है । जब उचित नहीं था तब किसी के कहने पर भी अभिषेक के लिए तैयार नहीं हुए और जब अभिषेक का स्वीकार करना उचित बोध हुआ तब उसके स्वीकार करने में टालमटोल भी नहीं किया । सरकार के शरीर को भूषित देखकर कोटि काम की छवि फीकी पड़ गयी । क्योंकि रामजी की शोभा शत कोटि काम से देना वैसा ही है जैसे सूर्य की शोभा की शत कोटि जुगनू की शोभा के साथ उपमा देना । यथा : उपमा न कोउ कह दास तुलसी कतहु कवि कोविद कहैं । जिमि कोटिसत खद्योत सम रवि कहत अति लघुता लहैं ।

दो. सासुन्ह सादर जानकिहि, मज्जन तुरत कराइ ।
दिब्य बसन बर भूषन, अंग अंग सजे बनाइ ॥११ क.

राम बाम दिसि सोभति, रमा रूप गुन खानि ।
देखि मातु सब हरखीं, जनम सुफल निज जानि ॥११ ख.

सुनु खगेस तेहि अवसर, ब्रह्मा सिव मुनि बृंद ।
चढ़ि बिमान आए सब, सुर देखन्ह सुखकंद ॥११॥

अर्थ : सासुओं ने आदर के साथ तुरन्त जानकीजी का मज्जन कराया और दिव्य कपड़े और श्रेष्ठ गहने प्रत्येक अङ्ग में सँवारकर सजाया ।

रूप और गुण की खानि लक्ष्मी रामजी की बायीं ओर शोभित हुईं । देखकर सब माता लोग अपना जन्म सुफल जानकर हर्षित हुईं ।

हे पक्षिराज ! उस समय ब्रह्माजी शिवजी मुनि लोग तथा सब देवता लोग विमानों पर चढ़कर सुख की वर्षा करनेवाले रामजी को देखने के लिए आये ।

व्याख्या : वसिष्ठजी की आज्ञा सबको विदित हो गयी। सरकार का मज्जन सुनकर अभिषेक में भगवती की अनिवार्य आवश्यकता जानकर सब सास लोग लिपट गयीं। दासियों की वहाँ गति नहीं है। सरकार ने स्वयं मज्जन करके भूषण साजा। वीर हैं : विशेष शृंगार नहीं करते। पर भगवती की दूसरी बात है। महारानियाँ मज्जन कराके स्वयं उनका शृंगार कर रही हैं। अतः अंग अंग में सँवार सँवारकर गहने साज रही हैं।

शृङ्गार कर लेने के बाद ले जाकर रामजी के वाम भाग में बिठा दिया। अभिषेके पत्नी वामतः ऐसा शास्त्र का वचन है। रामजी के वाम दिशा में रमा की ही शोभा हो सकती है। यह वह रमा हैं जिन्हें आदि शक्ति कहा गया है। यथा : वाम भाग सोहति अनुकूला। आदि सक्ति छबि निधि जग मूला। उपजहिं जासु अंस गुन खानी। अगनित लच्छि उमा ब्रह्मानी। सो ऐसी शोभा हुई जिसे देखकर माताओं ने अपना जन्म सफल समझा। यही एक अभिलाष शेष रहा था। जिसकी पूर्ति चक्रवर्तीजी न देख सके। उसकी पूर्ति माताएँ देख रही हैं।

देवताओं की भक्ति दिखलाते हुए उपासना घाट के वक्ता भुसुण्डिजी अपने श्रोता गरुड़जी को सम्बोधन करते हुए कहते हैं कि सरकार के सिंहासनारूढ़ होने का समय जानकर स्वयं ब्रह्मदेव तथा शङ्करजी अन्य देवताओं तथा मुनियों के सहित विमानों पर सवार होकर आये। सरकार आनन्द वारिवाह हैं। आनन्द की वर्षा होगी। उस आनन्द से हम वञ्चित न रह जायँ : इस आशय से उपस्थित हुए।

प्रभु बिलोकि मनिमनु अनुरागा। तुरत दिब्य सिंघासनु माँगा॥
रबि सम तेज सो बरनि न जाई। बैठे रामु द्विजन्ह सिर नाई॥१॥

अर्थ : सरकार को देखकर मुनि वशिष्ठ के मन में अनुराग हुआ। तुरन्त ही दिव्य सिंहासन माँगा। उसका तेज सूर्य के समान था। उसका वर्णन नहीं हो सकता। ब्राह्मणों को प्रणाम करके रामजी उस पर बैठे।

व्याख्या : माताओं का देखना कहकर अब गुरुजी का देखना कवि कहते हैं। गुरुजी के हृदय में भी प्रभु को देखकर अनुराग हुआ। सोचने लगे कि इस मूर्ति के लिए भौतिक सिंहासन उपयुक्त नहीं है। अतः गुरुजी ने दिव्य सिंहासन माँगा। गुरुजी का तपोबल कहते हैं कि दिव्य लोक से दिव्य सिंहासन आ गया। उस सिंहासन का तेज सूर्य के समान था और ऐसा अलौकिक था कि उसका वर्णन नहीं हो सकता। ब्रह्मण्य देव ने ब्राह्मणों को प्रणाम किया और उस सिंहासन पर बैठे। लंका के संग्राम में दिव्य रथ आया था। यथा : तेज पुंज रथ दिव्य अनूपा। हरखि चढ़े कोसलपुर भूपा। उसी कोशलपुर भूप का दिव्य सिंहासनारूढ़ होना कहते हैं।

जनक सुता समेत रघुराई। पेखि प्रहरषे मुनि समुदाई॥
बेद मंत्र तब द्विजन्ह उचारे। नभ सुर मुनि जय जयति पुकारे॥२॥

अर्थ : जनकसुता के साथ रामजी को देखकर मुनि समाज अत्यन्त हर्षित

हुआ। तब ब्राह्मणोंने वेद मन्त्र का उच्चारण किया और आकाश में देवता और मुनियों ने जय जयकार किया।

व्याख्या : जनकसुता कहने का भाव यह कि मुनियों का बड़ा स्नेह जनकजी पर है। मुनि लोग भी उनसे ज्ञान अर्जन करते हैं। यथा : जासु ज्ञान रवि भव निसि नासा। बचन किरन मुनि कमल बिकासा। सो जनक सुता समेत रामजी को सिंहासनारूढ़ देखकर मुनि समाज को बड़ा आनन्द हुआ। पहिले माताओं का देखना कहा। फिर गुरुजी का देखना कहा। तत्पश्चात् मुनिसमाज का देखना कहते हैं। माताओं ने देखकर जन्म सफल माना। गुरुजी ने देखकर तपोबल से दिव्य सिंहासन मँगाया। मुनि लोगों ने देखकर वेद मन्त्रों का उच्चारण जो समयोपयुक्त था किया। अब देवताओंका देखना कहते हैं। वे लोग विमानों पर आकाश में थे। वहीं से ऐसा जय जयकार किया जो पृथिवी तक गूँज उठा। नीचे स्वस्त्ययन की ध्वनि हुई। ऊपर आकाश में जयध्वनि हुई।

प्रथम तिलक बसिष्ठ मुनि कीन्हा। पुनि सब बिप्रन्ह आयसु दीन्हा॥
सुत बिलोकि हरखीं महतारी। बार बार आरती उतारी॥३॥

अर्थ : पहिले वसिष्ठ मुनिजी ने तिलक किया। तत्पश्चात् अन्य ब्राह्मणों को आज्ञा दी। बेटे को देखकर माताएँ हर्षित हुईं और बार बार आरती उतारीं।

व्याख्या : इस प्रकार वेद ध्वनि और जय ध्वनि के बीच में वसिष्ठ मुनिजी ने जो कि रघुकुल के कुल पूज्य थे पहिले तिलक किया। वसिष्ठजी कुलपूज्य होने के अतिरिक्त मुनियों में श्रेष्ठ और ब्राह्मणों में अग्रगण्य थे। साक्षात् ब्रह्मदेव के पुत्र थे। उनकी आज्ञा हुई तब और ब्राह्मणों ने तिलक किया।

जिस अभिषेक के लिए इतनी आकुलता थी : इस अभिषेक से अभिषिक्त बेटे को देखकर माँ हर्षित हुई। माँ लोगों की पुत्र भावना ही दृढ़ है। वे बेटे को अभिषिक्त देखकर फूली नहीं समातीं। किसी को सपत्नी के पुत्र का भाव नहीं है। एक बार की आरती में किसी को सन्तोष नहीं। अतः बार बार आरती उतार रही हैं। पहिली बार जो आरती हुई थी वह तो स्वागत विषयक थी। इस बार की आरती अभिषेक के उपलक्ष्य में है।

बिप्रन्ह दान बिबिध बिधि दीन्हे। जाचक सकल अजाचक कीन्हे॥
सिंघासन पर त्रिभुवन साईं। देखि सुरन्ह दुन्दुभी बजाईं॥४॥

अर्थ : माताओं ने ब्राह्मणों को अनेक प्रकार का दान दिया। समस्त याचकों को अयाचक कर दिया। सिंहासन पर त्रिभुवन के स्वामी को देखकर देवताओं ने नगाड़े बजाये।

व्याख्या : यहाँ देय के भेद से दान विधि का भेद कह रहे हैं। यहाँ दान भिक्षा नहीं है। यजमान अपने कल्याण के लिए अभिषेक के समय अनेक प्रकार का दान करता है। माताएँ उसी प्रथा का अनुसरण कर रही हैं। याचक ब्राह्मणों से

पृथक् हैं। उन्हें इतना दिया गया कि उनकी भिक्षावृत्ति छूट गयी। वे अपने पैरों पर खड़े हो गये।

अवध के सिंहासन पर त्रिभुवन के स्वामी को आसीन देखकर देवताओं ने हर्षित होकर डङ्के बजाये। जिस प्रभु के लिए इतनी उत्कण्ठा थी कि : कहँ पाइय प्रभु करिअ पुकारा। वही प्रभु आज अवध के राज्य पर सिंहासनारूढ़ हो रहे हैं। देवताओं के मनोरथ का साफल्य इससे अधिक और क्या हो सकता है।

छं. नभ दुंदुभी बाजहिं बिपुल गंधर्ब किन्नर गावहीं।
नाचहिं अपरछराबृंद परमानंद सुरमुनि पावहीं॥
भरतादि अनुज बिभीषनांगद हनुमदादि समेत ते।
गहे छत्र चामर ब्यजनधनु असि चर्म सक्ति बिराजते॥
श्री सहित दिनकर बंस भूषन काम बहु छबि सोहई।
नव अंबुधर बरगात अंबर पीत सुर मन मोहई॥
मुकुटांगदादि बिचित्र भूषन अंग अंगन्हि प्रति सजे।
अंभोजनयन बिसाल उर भुज धन्य नर निरखंति जे॥

अर्थ : आकाश में बहुत से नगाड़े बज रहे हैं गन्धर्व और किन्नर गा रहे हैं। अप्सराएँ नाच रहीं हैं देवता और मुनि आनन्द पा रहे हैं। भरतजी आदि छोटे भाई विभीषण अङ्गद और हनुमान् आदि छत्र चामर पंखा तलवार ढाल और शक्ति धारण किये शोभायमान हैं।

सीताजी के साथ सूर्यकुल के भूषण रामजी में बहुत से कामदेव की शोभा हो रही है तथा नये बादल की भाँति श्रेष्ठ शरीर और पीत वस्त्र देवताओं के मन को मोहित कर रहा है। मुकुट, विजायठ आदि विचित्र गहने प्रत्येक अङ्ग में शोभायमान है। कमल सी आँखे हैं। छाती और भुजायें विशाल हैं। वे पुरुष धन्य हैं जो ऐसे स्वरूप का दर्शन करते हैं।

व्याख्या : आकाश में बड़ा उत्सव है देवता लोग दुन्दुभी बजा रहे हैं। गन्धर्व और किन्नर देवयोनि हैं सङ्गीत के पंडित होते हैं। वे लोग इस उत्सव में गान करने लगे। जब गान और वाद्य दोनों होने लगा तो उसकी पूर्ति के लिए स्वर्वेश्या उर्वशी इत्यादि ने नृत्य आरम्भ कर दिया। देवता और मुनि भी परमानन्द प्राप्त करने लगे। क्योंकि यह सङ्गीत भगवद्विषयक था।

सरकार के अस्त्र शस्त्र के धारण करने के लिए दिव्य सामर्थ्य अपेक्षित है। अतः लङ्कापति ने धनुष अङ्गद ने ढाल तलवार और हनुमान्जी ने शक्ति धारण कर रक्खा है। ये ही रामायुध हैं। सरकार की खवासी में स्वयं भाई लोग खड़े हो गये। भरतजी छत्र लगाये हैं। लक्ष्मणजी चँवर कर रहे हैं। शत्रुघ्नजी पंखा झल रहे हैं।

आज सबकी अभिलाषा पूरी हो रही है। चौदह वर्ष पहले से ही यह अभिलाषा हो रही है कि : कनक सिंहासन सीय समेता। बैठहिं राम होइ चित चेता। सो सूर्यकूल के भूषण सीताजी के सहित दिव्य सिंहासनपर विराजमान हैं। छबि को पराकाष्ठा कामदेव में मानी जाती है। सो : राम काम सत कोटि सुभग तन। करोड़ों काम की छवि से शोभायमान हैं। काम सबको मोहित करता है। पर मुनियों पर उसका बल नहीं चलता। पर सरकार की सांवली मूर्ति और दामिनीवर्ण वस्त्र तो मुनियों के मन को भी मोहित कर रहा है। सिर पर मुकुट भुजाओं में अङ्गद और गले में पदिकहार आदि आभूषण एक से एक अपूर्व सजे हुए हैं। अङ्ग के उदार होने से गहने भी खिलते हैं। अतः गोस्वामीजी कहते हैं कि कमल सी आँखें और विशाल वक्षःस्थल की ऐसी शोभा हो रही है। उस छवि के दर्शन करनेवाले मनुष्यों का बड़ा पुण्य था। इसमें सन्देह नहीं है। सुकृती, पुण्यवान् और धन्य ये सब शब्द पर्यायवाची हैं।

दो. वह सोभा समाज सुख, कहत न बनै खगेस।
बरनै सारद सेष स्रुति, सो रस जान महेस ॥१२ क.

अर्थ : हे पक्षिराज ! वह शोभा वह समाज और वह आनन्द कहते नहीं बनता। उसका वर्णन शेष और वेद करते हैं। पर उस रस को महादेवजी जानते हैं।

दो. भिन्न भिन्न अस्तुति करि, गए सुर निज निज धाम।
बंदी बेष बेद सब, आए जहँ श्रीराम ॥१२ ख.
प्रभु सर्वज्ञ कीन्ह अति, आदर कृपा निधान।
लखेउ न काहूँ मरमु कछु, लगे करन गुन गान ॥१२॥

अर्थ : अलग अलग स्तुति करके देवता लोग अपने अपने लोक को गये। तब बन्दीजन का वेष धारण करके वेद लोग श्रीरामजी के पास आये।

कृपा निधान सर्वज्ञ प्रभु ने अत्यन्त आदर किया। किसी ने इस मर्म को कुछ भी नहीं लखा और वे गुण गान करने लगे।

व्याख्या : सिय सहित दिनकर बंस भूषन काम बहु छबि सोहई। इत्यादि से शोभा कहा। भरतादि अनुज बिभीषनांगद हनुमदादि समेत ते। से समाज कहा और नाचहि अपछरावृंद परमानंद सुर मुनि पावहीं। से सुख कहा। भुसुण्डिजी कहते हैं कि मुझसे कहते नहीं बनता। शारदा शेष और श्रुति स्वर्गलोक पाताललोक और मृत्युलोक के प्रधान वक्ता हैं। वे वर्णन करते हैं पर वे भी उस रस को नहीं जानते। उस महारस को महादेवजी जानते हैं। यथा : जेहि सुभ लागि पुरारि असुभ बेष कृतसिव सुखद।

तत्पश्चात् देवताओंने जो कि विमान पर चढ़ चढ़कर आये थे स्तुति की। सबने भिन्न भिन्न स्तुति की। रुचि वैचित्र्य के कारण स्तुतियाँ एक सी नहीं हो

सकतीं। सरकार की मूर्ति का दर्शन भावनानुसार पृथक् पृथक् रूप में होता है फिर स्तुति में साम्य सम्भव नहीं है। दूसरी बात यह भी है कि अवर्णनीय पदार्थ की स्तुति भिन्न भिन्न प्रकार की ही होगी। सरकार इस समग्र नरभूपाल का अभिनय कर रहे हैं। इसलिए वेद लोग भी बन्दी के रूप में यश वर्णन करने के लिए आये।

सरकार सर्वज्ञ हैं। जान गये कि इस वेष में वेद लोग आये हुए हैं। अतः अत्यन्त आदर किया। उठकर खड़े हो गये। ऊँचे दर्जे के बन्दियों की अब भी ताजीम राजदरबार से होती है। वेद सरकार के वाक्य हैं। अपने वाक्य का अत्यन्त आदर करना ही धर्म है। यथा : रामो द्विर्नाभिभाषते। और लोग इस बात को न लख सके। समझा कि बन्दीजन यशोगान के लिए आये हैं। अब उनका किया हुआ गुणगान कहते हैं।

छं. जय सगुन निर्गुन रूप रूप अनूप भूप सिरोमने।
दसकंधरादि प्रचंड निसिचर प्रबल खल भुजबल हने॥
अवतार नर संसार भार बिभंजि दारुन दुख दहे।
जय प्रनतपाल दयाल प्रभु संजुक्त सक्ति नमामहे[1]॥

अर्थ : हे[2] सगुणरूप निर्गुणरूप अनूपरूप वाले राजाओं के शिरोमणि आपकी जय हो! आपने दशकन्धर आदि प्रचण्ड निशिचर प्रबल खलों को भुजाओं के बल से मारा। आपने मनुष्य का अवतार धारण करके संसार के भार को दूर करके दारुण दुःख को भस्म कर दिया। ऐसे प्रणतपाल कृपाल की जय हो, शक्ति के सहित मैं आपको नमस्कार करता हूँ।

व्याख्या : ब्रह्म के दो रूप हैं। एक निर्गुण और दूसरा सगुण। सर्वैश्वर्यमय विभु परमेश्वर में ही सम्भव है कि वे सगुण और निर्गुण रूप से एककालावच्छेदेन अवस्थान करते हैं। भगवान् गीता में अर्जुन से कहते हैं : मत्स्थानि सर्वभूतानि न चाहं तेष्ववस्थितः। न च मत्स्थानि भूतानि पश्य मे योगमैश्वरम्। सब भूत मेरे में स्थित नहीं भी हैं। मेरे ऐश्वर योग को देखो। अतः सरकार का अनूप रूप है। अथवा निरुपम न उपमा आन राम समान राम निगम कहै। जिमि कोटि सत खद्योत सम रवि कहत अति लघुता लहै। सरकार के लिए जो उपमाएँ दी जा सकती हैं वे अत्यन्त लघु हैं। इसीलिए भी सरकार का रूप अनूप है। तापनीय श्रुति में राम

---

१. आनुकूल्यस्य संकल्पः।

२. आश्रयश्चेतसो ब्रह्म द्विधा तच्च स्वभावतः। भूप मूर्तममूर्तं च परञ्चापरमेव च।
वि. पु. ६.७.४७

अर्थ : हे राजन्! चित्त का आश्रय ब्रह्म है जो कि स्वभाव से ही मूर्त अमूर्त अथवा पर अपर रूप से दो प्रकार है।

नाम की व्युत्पत्ति करते हुए कहा गया है : राज्यार्हाणां महीभृताम् धर्ममार्गं चरित्रेण राति इति रामः। अर्थात् राज्य के योग्य राजाओं को जो धर्ममार्ग अपने चरित्र द्वारा प्रदान करते हैं उसे राम कहते हैं। अतः श्रीरामावतार को भूपशिरोमणि कहा। अब उसी अवतार का दिव्य कर्म कहते हैं कि दशकन्धर आदि प्रचण्ड निशिचर जो कि अजेय थे और कुम्भकर्ण खरदूषण विराधादि प्रबल खलों को भुजाओं के बल से मारा। यथा : तब निज भुज बल राजिव नैना। कौतुक लागि संग कपि सैना। कपि सैन संग सँघारि निसिचर राम सीतहि आनिहैं। श्रीरामावतार में माया से मनुष्य का रूप धारण करके संसार का भार उतारकर सज्जनों के दारुण दुःख को दूर किया। इससे दुष्कृतों का विनाश तथा साधुपरित्राण रूपी अवतार के प्रयोजन की सिद्धि भी दिखलाया। प्रणतपाल कृपाल कहकर विभीषण को लङ्का के राज्य का दान तथा देवताओं को अभय दान का दिया जाना भी द्योतित किया। इस समय आह्लादिनी शक्ति जगदम्बा जानकीजी के साथ सिंहासनारूढ़ हैं। अतः दोनों की जय जयकार करते हुए वेद वन्दना करते हैं। प्रभु का उत्कर्ष ख्यापन करते हुए उनके अनुकूलाचरण की इच्छा प्रकट करते हैं।

छं. तव बिषम माया बस सुरासुर नाग नर अग जग हरे।
भवपंथ भ्रमत अमित दिवस निसिकाल कर्म गुननि भरे॥
जे नाथ करि करुना बिलोके त्रिबिध दुख ते निर्बहे।
भव खेद छेदन दक्ष हम कर रक्ष राम नमाम हे[1]॥

अर्थ : हे हरे ! आपकी विषम माया के वश में देवता असुर नाग मनुष्य तथा चराचर हैं। काल कर्म और गुणों से भरे हुए अगणित रात दिन संसार के रास्ते में घूमा करते हैं। जिसको नाथ ने करुणा करके देखा वे तीनों प्रकार के दुःख के पार हो गये। हे संसार के दुःख के नाश करने में दक्ष राम हम लोगों की रक्षा कीजिये। हम आपको नमस्कार करते हैं।

व्याख्या : परमेश्वरी माया बड़ी विषम है। उसका पार पाना किसी के सामर्थ्य के भीतर की बात नहीं है। गीता में भगवान् कहते हैं : दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया। भुसुण्डीजी कहते हैं : सुनु खग प्रबल राम कै माया। जो ज्ञानिन्ह कर चित अपहरई। बरिआई बिमोह बस करई। वन्दना में भी कह आये हैं। यन्मायावशवर्तिविश्वमखिलं ब्रह्मादिदेवासुराः। वही बात यहाँ कही जा रही है : तव विषम माया बस सुरासुर नाग नर अग जग हरे। ये सुरासुर नाग नर चराचर माया से प्रेरित होकर काल कर्म स्वभाव गुण से घिरे हुए चक्कर खाया करते हैं। यथा : फिरत सदा माया कर प्रेरा। काल कर्म स्वभाव गुन घेरा। फिर मरते हैं फिर जनमते हैं। इसी भाँति संसार चक्र में पड़े हुए कष्ट पाते हैं। यथा :

---

१. रक्षिष्यतीति विश्वासः।

आकर चारि लाख चौरासी। जोनि भ्रमत यह जिव अविनासी। अपने पुरुषार्थ से कोई इस चक्कर से निकल नहीं सकता। जिसके ऊपर सरकार की कृपा होती है वही इन त्रिविध दैहिक दैविक भौतिक तापों का पार पाता है। यथा : मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते। भगवान् कहते हैं कि जो मेरे ही शरण में आ जाते हैं वे ही माया का पार पाते हैं अर्थात् शरण में आने से सरकार की उनपर कृपादृष्टि होती है। फिर उन्हें तीनों ताप पीड़ा नहीं पहुँचा सकते। सरकार ही संसार के दुःख के विनाश करने में दक्ष हैं, अतः वेद कहते हैं कि हे रामजी ! हम लोगों की रक्षा कीजिये। हम आपके शरण हैं। इस भाँति प्रभु के द्वारा रक्षा प्राप्ति का विश्वास प्रकट करते हैं।

छं. जे ग्यान मान बिमत्त तव भय हरनि भगति न आदरी।
ते पाइ सुर दुर्लभ पदादपि परत हम देखत हरी॥
बिस्वास करि सब आस परिहरि दास तव जे होइ रहे।
जपि नाम तव बिनु स्रम तरहिं भव नाथ सो समरामहे[1]॥

अर्थ : जो ज्ञान के अभिमान में मतवाले होकर आपकी भय हरनेवाली भक्ति का आदर नहीं करते हे हरे ! उनका सुरदुर्लभ पद पाकर भी पतन होता है। हम इस बात को देखते हैं और जो विश्वास करके सब आशा छोड़कर, आपके दास होकर रहते हैं वे आपका नाम जपकर बिना परिश्रम के संसार को तर जाते हैं। नाथ ! हम लोग आपका स्मरण करते हैं।

व्याख्या : कुछ लोग ऐसे हैं, जिन्हें अपने ज्ञान का अभिमान हो जाता है। वे यह नहीं समझते कि मान तो अज्ञान का लक्षण है। मान का अभाव ही तो ज्ञान है। यथा : ज्ञान मान जहँ एकौ नाही। अतः वे विमत्त हैं मतवाले हैं वे भक्ति का आदर नहीं करते। वे नहीं जानते कि निरुपास्ति ज्ञान से पतन होता है। वे सुरदुर्लभ पद पाकर भी गिर जाते हैं। अर्थात् विज्ञान दीप के प्रज्वलित करने में समर्थ भी हो जाते हैं। फिर भी उपासना रहित होने से उनका पतन हो जाता है। वे चिद् जड़ ग्रन्थि खोलने में समर्थ नहीं होते और विज्ञान दीप भी बुझ जाता है। यथा :

छोरत ग्रन्थि जानि खगराया। विघ्न अनेक करै तब माया॥
कलबल छल करि जाहिं समीपा। अंचल बात बुझावहिं दीपा॥
जौ तेहि बिघ्न बुद्धि नहिं बाधी। तब बहोरि सुर करहिं उपाधी॥
इन्द्री द्वार झरोखा नाना। तहँ तहँ सुर बैठे करि थाना॥
आवत देखहिं बिषय बयारी। ते हठि देहिं कपाट उघारी॥

---

१. प्रातिकूल्यस्य वर्जनम्।

जब सो प्रभंजन उरगृह जाई। तबहि दीप बिज्ञान बुझाई॥
ग्रन्थि न छूटि मिटा सो प्रकासा। बुद्धि बिकल भइ बिषय बतासा॥

दो. तब फिरि जीव बिबिध बिधि पावइ संसृत क्लेस।
हरि माया अति दुस्तर तरि न जाइ बिहगेस॥

परन्तु जो विश्वास करते हैं कि रामजी मेरी रक्षा करेंगे। रक्षिष्यतीति विश्वास: अन्य साधनों की आशा छोड़कर आप के दास होकर रहते हैं। जैसे दास को मात्र स्वामी की ही आशा रहती है उसी भाँति जिसे केवल सरकार की ही आशा रहती है। यथा : बनै तो रघुबर ते बनै या बिगरै भरपूर। तुलसी बनै जो और ते ता बनिवे महँ धूर। ऐसे विश्वासी दास केवल सरकार का नाम जप करके संसार सागर के पार हो जाते हैं। यथा : नाम लेत भव सिन्धु सुखाहीं। करहु बिचार सुजन मन माहीं। अत: वेद लोग कहते हैं कि संसार के दु:ख के मिटाने में केवल सरकार ही दक्ष हैं। अत: हम लोगों की रक्षा कीजिये, हम आपको नमस्कार करते हैं। इस भाँति भक्ति के अनादर का कुपरिणाम दिखलाकर प्रतिकूलाचरण की निन्दा करते हैं।

छं. जे चरन सिव अज पूज्य रज सुभ परसि मुनि पतिनी तरी।
नख निर्गता मुनि बन्दिता त्रैलोक पावन सुरसरी॥
ध्वज कुलिस अंकुस कंज जुत बन फिरत कंटक किन लहे।
पद कंज द्वंद मुकुन्द राम रमेस नित्य भजामहे[1]॥

अर्थ : जो चरण शिवजी और ब्रह्मदेव से पूज्य हैं। जिसके रज को स्पर्श करके मुनि की स्त्री तर गयी। जिसके नख से निकली हुई त्रैलोक्य पावनी गंगाजी की वन्दना मुनि लोग करते हैं। ध्वज वज्र अंकुश और कमल से युक्त किन चरणों में वन में फिरते हुए काँटे चुभे हैं? अर्थात् कोई नहीं। इसलिए ऐसे रमा के पति मुकुन्द रामजी के दोनों पद कमलों को हम नित्य नमस्कार करते हैं।

व्याख्या : पहिले छन्द में स्वरूप वर्णन किया। दूसरे में माया का वर्णन किया। तीसरे में नाम की महिमा कही। अब चरणों की महिमा कहते हैं कि सृष्टिकर्ता ब्रह्मदेव और देवदेव महादेव सबके पूज्य हैं। पर ये चरण उनके भी पूज्य हैं। जिसके एक बार सम्बन्ध होने से रज में ऐसी महिमा आगयी कि उसके स्पर्श से बड़ा भारी पाप करनेवाली अहल्या तर गयी। यथा : परसि जासु पद पंकज धूरी। तरी अहल्या कृत अघभूरी। जिन चरणों के नख से गंगाजी उत्पन्न हुई। जिनकी मुनि लोग वन्दना करते हैं। और जो तीनों लोक को पवित्र कर रही हैं। जिन चरणों ने भक्तों के लिए इतने कष्ट उठाये कि वन में फिरते हुए उनमें काँटे चुभे।

---

१. गोप्तृत्ववरणं तथा।

सिवा इन चरणों के ध्वज कुलिश अङ्कुश और कञ्ज के चिन्हों के धारण करनेवाले[1] किन चरणों ने भक्तों के लिए ऐसे कष्ट स्वीकार किये हैं। अतः ऐसे पूज्य ऐसे पावन ऐसे भक्तवत्सल चरण मुक्ति दाता लक्ष्मीपति रामजी के हैं। वेद लोग कहते हैं कि हम लोग उनका नित्य भजन करते हैं। ऐसे प्रभु से शीघ्रातिशीघ्र रक्षा की आशा की जाती है। अतः गोप्तारूप से वेद प्रभु का ही वरण करते हैं।

छं. अब्यक्त मूलमनादि तरु त्वच चारि निगमागम भने।
षट्कंध शाखा पंचबीस अनेक पर्न सुमन घने॥
फल जुगल बिधि कटु मधुर बेलि अकेलि जेहि आस्रित रहे।
पल्लवत फूलत नवल नित संसार बिटप नमाम हे[2]॥

अर्थ : अव्यक्त जिसकी जड़ है वह पेड़ अनादि है। वेदों और शास्त्रों ने कहा है कि उसकी चार त्वचाएँ हैं। छः तने हैं पचीस शाखाएँ। अनेक पत्ते और बहुत से फूल हैं। उसमें दो प्रकार के फल हैं। एक कटु है और दूसरा मधुर है। और वेलि केवल उसी के आश्रित हैं जो नित्य पत्र फूल से युक्त नया बना रहता है। ऐसे संसार वृक्ष को हम लोग नमस्कार करते हैं।

व्याख्या : संसार के अभिन्न निमित्तोपादान होने से सरकार को संसार वृक्ष रूप से वर्णन करते हैं। वृक्ष को मूल होता है। उसके वपन का काल होता है। उसको त्वचाएँ होती हैं। उसका तना होता है। शाखाएँ होती हैं। पत्ते होते हैं। समय पर फूल होते हैं। फल होते हैं। उस पर बेलि भी चढ़ती है।

इस संसार वृक्ष का अव्यक्त प्रकृति मूल है और यह वृक्ष सनातन है। चार अवस्थाएँ : जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति तुरीय चार त्वचाएँ हैं और षडूर्मि : अस्ति जायते वर्धते विपरिणमते अपक्षीयते विनश्यति। ये ही छः स्कन्ध तने हैं। पचीस तत्त्व[3] इसकी पचीस शाखाएँ हैं। विविध वासनाएँ उसके अनेक पत्ते और बहुत से कर्म उसके फूल हैं। उसके दुःख दो प्रकार के फल हैं। जो कि क्रम से मधुर और कटु हैं। और अनादि शक्ति रूपी वेलि सदा उसके आश्रित रहती हैं। वह नित्य पत्ते और फूल से युक्त रहता है। और प्रतिक्षण परिवर्तनशील होने से

---

१. कुछ लोग किन का अर्थ घट्ठा करते हैं। पर काँटों के चुभने पर भी घठ्ठे का न पड़ना उन चरणों की विशेषता है। यथा : कठिन भूमि कोमल पद गामी। कवन हेतु विचारहु बन स्वामी।

२. आत्मनिक्षेपः।

३. मूलप्रकृतिरविकृतिर्महदाद्याः प्रकृतिविकृतयः सप्त।
षोडशकस्तु विकारः न प्रकृतिर्न विकृतिः पुरुषः।

मूलप्रकृति, महत्, अहंकार, पञ्च तन्मात्रा, पञ्च महाभूत, दश इन्द्रिय और मन एवं पुरुष ये २५ तत्त्व हैं।

वह सदा नया ही रहता है। वेद लोग कहते हैं कि ऐसे संसार वृक्ष को हम लोग नमस्कार करते हैं। विश्वरूप प्रभु का वर्णन करके आत्मनिवेदन द्योतित करते हैं।

छं. जे ब्रह्म अजमद्वैतमनुभवगम्यमनपर ध्यावहीं।
ते कहहुँ जानहुँ नाथ हम तव सगुन जसु नित गावहीं॥
करुनायतन प्रभु सदगुनाकर देव येह बर माँगहीं।
मन बचन कर्म बिकार तजि तव चरन हम अनुरागहीं[1]॥

अर्थ : जो अजन्मा अद्वैत अनुभवगम्य और मन से परे ब्रह्म का ध्यान करते हैं हे नाथ! वे कहें और जानें। हम तो आपके सगुण यश का नित्य गान करते हैं। हे करुणा के धाम प्रभु! सद्गुणों के आकर देव यह वर हम माँगते हैं कि मनसा वाचा कर्मणा विकार को त्यागकर हम आप के चरणों में अनुराग करें।

व्याख्या : यस्यावताररूपाणि समर्चन्ति दिवौकसः। अपश्यन्तः परं रूपम् नमस्तस्मै महात्मने। विष्णुपुराणे। जिसके अवतार के रूपों की देवता लोग पूजा करते हैं उसके परं रूप को नहीं जान सकते उस महात्मा को नमस्कार।

ब्रह्म के दो रूप हैं पर और अपर। अज अद्वैत अनुभवगम्य मनगोतीत रूप पर है। सगुण रूप अपर है। पर रूप देवताओं से भी नहीं जाना जाता। अतः वेद कहते हैं कि जो पर रूप का ध्यान करते हैं वे पररूप को कहें और जानें। न तत्र चक्षुर्गच्छति न वाग्गच्छति न मनो न विद्मो न विजानीमो अन्यदेव तद्विदितादथोऽविदितादधि। न वहाँ आँख जाती है न वाणी जाती है। न मन जाता है, उसे हमलोग नहीं जानते हैं। वह विदित से भी भिन्न है और अविदित से भी भिन्न है। इसलिए वेद कहते हैं कि हम तो सगुण यश का नित्य गान करते हैं। करुणायतन और सद्गुणाकर होना तो अपर रूप में ही बनता है। अतः हम उनसे यह वर माँगते हैं कि आप सबके हृदय के प्रेरक हैं। आप ऐसी प्रेरणा कीजिये कि हम मनसा वाचा कर्मणा विकारों का काम क्रोधादि त्याग करके आप के चरणों में अनुराग करें। भक्ति को कृपासाध्य मानकर अपना कार्पण्य प्रकट करते हैं।

दो. सबके देखत बेदन्ह, बिनती कीन्हि उदार।
अन्तरधान भये सुनि, गए ब्रह्म आगार॥१३ क.
बैनतेय सुनु संभु तब, आए जहँ रघुबीर।
बिनय करत गदगद गिरा, पूरित पुलक सरीर॥१३ ख.

अर्थ : सबके देखते हुए वेदों ने उदार विनती की फिर वे अन्तर्धान हो गये और ब्रह्मलोक चले गये। हे गरुड़जी! सुनो तब शिवजी रघुवीर रामजी के पास आये। गद्गद वाणी से स्तुति करने लगे। उनके शरीर पुलक से पूर्ण थे।

---

१. कार्पण्यम्।

व्याख्या : यह वेद स्तुति पूर्वाषाढ नक्षत्र है। इसमें दो तारे चमकते हैं—सगुण और निर्गुण इसकी गजदन्त ऐसी आकृति है। जो मुख से बाहर निकलने पर फिर भीतर नहीं जाता। अर्थात् वही प्रमाण है। वेदवाणी है : अतः उसकी फलश्रुति है : अभिमत दानि देव तरुवर से : देव यह वर माँगहीं : कहकर अभिमत ही माँग रहे हैं। अतः इनकी स्तुति देव तरुवर सी उदार है। सब लोग वेदों को स्तुति करते देख रहे थे पर स्तुति समाप्त होते ही वे अन्तर्धान हो गये। अर्थात् आते और स्तुति करते सबने देखा जाते किसी ने नहीं देखा। वे लोग ब्रह्मलोक से आये थे और वहीं चले गये। ब्रह्मलोक में ही शरीरधारी वेदों का रहना सुना जाता है। स्तुति में छः छन्द हैं। प्रत्येक छन्द में एक एक विधि शरणागति की है। यथा : १. आनुकूल्यस्य संकल्पः २. प्रातिकूल्यस्य वर्जनम् ३. रक्षिष्यतीति विश्वासो ४. गोप्तृत्ववरणं तथा ५. आत्मनिक्षेप ६. कार्पण्ये षड्विधा शरणागतिः। प्रायेण एक एक छन्द एक वेद का कथित तथा पीछे के दो छन्द सब वेदों के कथित माने जाते हैं। पर ऐसी बात तो नहीं मालूम होती। जिस भाँति पिछले दो छन्दों में नमाम है तथा अनुरागहीं उत्तम पुरुष के बहुवचन की क्रिया आई है वैसे ही पहिले चार छन्दों में भी नमामहे स्मरामहे आदि क्रिया आई हैं।

अभिषेक की कथा के प्रधान वक्ता भुसुण्डिजी हैं। अतः इस प्रसङ्ग में बार बार गरुड़ सम्बोधन आ रहा है। उपासनाघाट के वक्ता होने से इस प्रसङ्ग में उनकी प्रधानता है। वेदों के ब्रह्मलोक चले जाने के बाद सबके अन्त में शिवजी आये। आये तो सबके पहिले से हैं पर आकाश में विमान पर थे। स्तुति करने के लिए पास में सबसे पीछे आये। क्योंकि इस आनन्द के वे ही जौहरी हैं। पहिले से ही आने के लिए आदेश प्राप्त कर चुके हैं। यथा : नाथ जबहिं कोसलपुरी होइहि तिलकु तुम्हार। कृपासिन्धु में आउब देखन्ह चरित उदार। अतः आये और प्रेमाधिक्य के कारण उन्हें सम्पूर्ण शरीर में पुलक हो रहा था और गला भर आया था। ऐसी दशा में स्तुति करने लगे।

छं. जयराम[1] रमारमनं समनं, भवताप भयाकुल पाहि जनं।
अवधेस सुरेस रमेस बिभो, सरनागत माँगत पाहि प्रभो ॥
दससीस बिनासन बीस भुजा, कृत दूरि महा महि भूरि रुजा।
रजनीचर बृंद पतंग रहे, सर पावक तेज प्रचंड दहे ॥

अर्थ : हे रमा रमन भव ताप शमन राम आपकी जय हो। भवताप के भय से व्याकुल इस जनकी रक्षा कीजिये। हे अवधेश ! हे सुरेश ! हे रमेश ! हे प्रभो ! मैं शरणागत माँगता हूँ—मेरी रक्षा कीजिये। आप दस सिर और बीस भुजावाले का

---

१. यह तोटक छन्द है। इसमें १२ अक्षरों का एक पाद होता है। चार सगण आते हैं।

नाश करनेवाले हैं। पृथिवी के बड़े भारी रोग को आपने दूर किया। राक्षसों के समूह फनगे थे। वे आपके बाण के प्रचण्ड तेज से जल गये।

व्याख्या : शङ्कर भगवान् ने आते ही रामजी का जय जयकार किया। देखा कि : राम बाम दिसि सोभित रमारूप गुन खानि। अतः रमारमन कहा। स्तुति में भगवती को भी सम्मिलित करते हैं। क्योंकि उस रस को महादेवजी जानते हैं। शृंगार रस के संमिश्रण से भक्ति रस का बड़ा भारी उत्कर्ष होता है। इस बात के पूरे जानकार भक्तिशास्त्र के मूल प्रवर्तक शङ्कर भगवान् हैं। कह भी आये हैं कि : सो रस जान महेस : संसार के ताप का भय युगल मूर्ति की उपासना से ही नष्ट होता है। शिवजी को संसार का ताप नहीं है। पर लोकशिक्षा के लिए अपने को भयाकुल मान रहे हैं। अभी वेदों ने कहा है कि : ते पाइ सुरदुर्लभ पदादपि परत हम देखत हरी। अतः प्रार्थना है कि उस भय से निर्भय कीजिये। आपके नाम के प्रताप से भव भय भंजन होता है। यथा : भव भय भंजन नाम प्रतापू। आप अवधेश हैं। परन्तु : सो महिमा समुझत प्रभु केरी। यह बरनत हीनता घनेरी। अतः सुरेश कहा पर वह भी छोटा जँचा तब रमेश कहा। पर यह भी ठीक नहीं मालूम हुआ। क्योंकि : देखे सिव विधि विष्णु अनेका। अमित प्रभाव एक ते एका। अनेक विष्णु हैं। उनकी शक्ति रमा भी अनेक हैं तब विभु कहा। सभीत होकर शरण आये हैं। अतः कहते हैं पाहि प्रभो। यथा : कहेसि पुकारि प्रनत हित पाही।

अब श्रीरामावतार के दुष्कृत विनाश रूपी दिव्य कर्म का वर्णन करते हैं कि पिण्ड में रोग होता है। उससे क्रमशः शरीर ही नष्ट हो जाता है। उन रोगों में ज्वर बहुत बड़ा है। कहा है कि ज्वरस्त्रिपादस्त्रिशिराः सर्वरोगाग्रजो बली। ज्वर के तीन पैर हैं, तीन सिर हैं। वह सब रोगोंका बड़ा भाई है और बलवान् है। सज्वरा एव जायन्ते सज्वरा एव म्रियन्ते। लोग ज्वर के साथ ही उत्पन्न होते हैं और ज्वर के सहित ही मरते हैं। सो जिस भाँति पिण्ड में रोग होता है उसी भाँति ब्रह्माण्ड में भी रोग हो जाता है। यह रावणरूपी बड़ा भारी रोग ब्रह्माण्ड में हो गया था। यदि इसका नाश न किया जाता तो यह ब्रह्माण्ड को ही ले बढ़ता। इस रोग को दस सिर और बीस हाथ थे। इसे मारकर महामहि जो ब्रह्माण्ड है उसके बड़े भारी रोग को दूर किया। और ब्रह्माण्ड में राक्षसों का समूह फनगों की भाँति बहुत हो गया था। इन राक्षसों ने मुनियों को खा डाला था। उनके लिए आपका बाण अग्नि हो गया। जिसमें सभी राक्षस शलभ हो गये। कहा भी है : निसिचर निकर पतंग सम रघुपति बान कृसानु। जननी हृदय धीर धरु जरे निसाचर जानु।

छं. महि मंडल मंडन चारु तरं, घृत सायक चाप निषंग वरं।
मद मोह महा ममता रजनी, तम पुंज दिवाकर तेज अनी ॥
मनजात किरात निपात किए, मृग लोग कुभोग सरेन हिए।
हतिनाथ अनाथन्हि पाहि हरे, बिषयावन पाँवर भूलि परे ॥

अर्थ : आप पृथिवी के अति सुन्दर शृङ्गार हैं। आपने बाण धनुष और निषंग धारण कर रक्खा है। मद महामोह और ममता रूपी रात्रि के अन्धकार समूह के लिए आप तेजःपुंज सूर्य हैं। कामदेव रूपी किरात ने मनुष्य रूपी हिरणों के हृदय में कुभोग रूपी बाण मारकर उनका नाश किया है। उसे मारकर हे नाथ ! अनाथों की रक्षा कीजिये। ये नीच विषयरूपी वन में भूले पड़े हैं।

व्याख्या : आप महिमण्डल को रोगहीन करके उसके चारुत्तर मण्डन करनेवाले हैं। यथा : इन्द्र नील हाटक मुकुतामणि जगु पहिरे महि हार। आपके पदार्पण से महि मण्डल सुशोभित हुआ। धनुष बाण तूणीर धारण से शोभा और भी अधिक बढ़ गयी। मीन कमठ सूकर नर हरी। वामन परसुराम बपु धरी। सो सबने पृथिवी का मण्डन किया। पर ऐसी शोभा नहीं हुई। चक्रधर से भी शोभा अधिक कोदण्ड धर में हैं। यथा : तुलसी मस्तक तब नवै जब धनुष बान ल्यौ हाथ। मोहरूपी रात्रि है। उसमें भी ममता अँधियारी रात है। यथा : मोह निसा सब सोवनि हारा। ममता तरुन तमी अँधियारी। राग द्वेष उलूक सुखकारी। इस रात में मद अन्धकार है। यथा : त्यागहु तम अभिमान। और मोह अन्धा बनाता है। यथा : मोह न अन्ध कीन्ह केहि केही। अतः दोनों मिलकर तमपुञ्ज हो गये। सरकार तेज समूहवाले सूर्य हैं। अन्धकार का तो आपके द्वारा नाश होता ही है। मोह रात्रि भी नष्ट हो जाती है। यथा : प्रथम अविद्या निसा सिरानी।

उक्त रावण से भी बड़ा बटमार : डकैत है। जिसे काम कहते हैं इसके सामने लोग कैसे हो जाते हैं जैसे किरात के सामने मृग। मृग किरात का कुछ बिगाड़ नहीं सकता और किरात उनको बाण से वेध देता है। इसी भाँति यह काम लोगों को कुभोग रूपी बाण से हृदय में मारता है। सरकार ! उस किरात का वध करके लोगों की रक्षा करें। ये लोग विषय वन के वासी नहीं हैं। आनन्दसिन्धु के वासी हैं। विषय वन में भूल के पड़ गये हैं।

छं. बहुरोग बियोगन्हि लोग हए, भवदंघ्रि निरादर के फल ए।
भव सिंधु अगाध परे नरते, पद पंकज प्रेमु न जे करते ॥
अति दीन मलीन दुखी नितही,जिन्हके पद पंकज प्रीति नही।
अवलंब भवंत कथा जिन्हकें, प्रिय संत अनंत सदा तिन्हकें ॥

अर्थ : बहुत से रोग वियोग से लोग मारे हुए हैं। आपके चरणों के निरादर का यह फल है। जो लोग चरण कमल से प्रेम नहीं करते वे अपार भव सिन्धु में पड़े हुए हैं। वे अति दीन मलिन और नित्य दुखी रहते हैं जिन्हें प्रभु चरण कमल में प्रीति नहीं है। जिन्हें आपकी कथा आधार होती है उन्हें सन्त और अनन्त सदा प्रिय होते हैं।

व्याख्या : तीनों दोषों में काम प्रधान है। क्योंकि यह बात स्थानीय है। यथा : काम बात कफ लोभ अपारा। क्रोध पित्त नित छाती जारा। पित्तं पंगुः कफः

पंगुः पंगवो मलधातवः। वायुना यत्र नीयन्ते तत्र वर्षन्ति मेघवत्। क्रोध और लोभ पित्त और कफ की भाँति वायुरूपी काम के प्रेरणा से ही काम करते हैं। अन्य रोग भी काम के ही कारण से हैं। संयोग से रोग होता है और संयोग न रहने पर वियोग होता है। इसी चक्र में पड़े हुए लोग मारे पड़ रहे हैं। सरकारी चरण के निरादर का फल पा रहे हैं।

शरीर और मन का हाल कह के पुरुषार्थ का हाल कहते हैं कि भवप्रवाह में लोग पड़े हुए उसी में बहे चले जा रहे हैं। उससे निकलने का प्रयत्न नहीं करते। बहे जाने में ही पुरुषार्थ मान रहे हैं। देवताओं ने कहा : भवप्रवाह सन्तत हम परे। यह सरकारी चरणों में प्रेम न होने का फल है।

लोग आशा से दीन पाप से मलिन और कर्मों से नित्य दुःखी हैं कभी सुखी न हुए। क्योंकि उनका सरकारी चरणों में प्रेम नहीं है। चरणों में प्रेम होता तो काम का किया कुछ न होता।

इस प्रकार भवसागर में पड़े। दुःख झेलनेवालों के लिए क्या अवलम्ब है? इस पर कहते हैं कि सरकार की कथा एकमात्र अवलम्ब है। जिसने कथा का अवलम्ब ग्रहण किया उसे विषय सीठा हो जाता है। तब सन्त तथा भगवान् उसे प्रिय हो जाते हैं।

छं. नहि राग न लोभ न मान मदा, तिन्हकें सम बैभव वा बिपदा।
एहितें तव सेवक होत मुदा, मुनि त्यागत जोग भरोस सदा॥
करि प्रेमु निरन्तर नेमु लिये, पदपंकज सेवत सुद्ध हिए।
सम मानि निरादर आदरही, सब संत सुखी बिचरंति मही॥

अर्थ : उन्हें न राग है न लोभ है। न मान है और न मद है। उन्हें वैभव और विपत्ति समान हैं। इसीलिए मुनि लोग बड़ी प्रसन्नता से आप के सेवक हो जाते हैं और सदा योग का भरोसा छोड़े रहते हैं। वे प्रेम करते हुए नियम के साथ सदा शुद्ध हृदय से आपके चरण कमलों की सेवा करते हैं। आदर और निरादर को समान मानकर सब सन्त सुखी होकर पृथिवी पर विचरते हैं।

व्याख्या : जिसे सन्त और अनन्त प्रिय लगने लगें उसका राग, लोभ, मान और मद दूर हो जाता है। इनके दूर हो जाने से फिर सम्पदा से हर्ष और विपत्ति से विषाद नहीं होता। दोनों उसके लिए समान हो जाता है। वह प्रसन्नतापूर्वक आपका सेवक हो जाता है। आपकी सेवा में ही उसको सुख मिलता है। अन्तराय के अधिक्य से वह योग का भरोसा नहीं करता। क्योंकि बिना रामप्रेम के योग भी कुयोग हो जाता है। अतः जिसके कारण से योग की कुयोगता जाती रहती है। उसी भक्ति को प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार करते हैं। वे सदा प्रेम करते हुए नियम के साथ आपके चरण कमलों की सेवा शुद्ध हृदय से करते हैं। यथा : स्वामिहि सर्वभाव छल त्यागी। लोक के आदर और निरादर की वे परवाह नहीं करते।

यथा : भलो कहत बिनु जानही, बिनु जाने अपवाद। ते नर गादुर जानि जिय, करिअ न हर्ष विषाद। प्रभु जानत सब बिनहि जनाये। कहहु कवनि सिधि लोक रिझाये।

छं. मुनि मानस पंकज भृंग भजे। रघुबीर महारन धीर अजे ॥
तव नाम जपामि नमामि हरीं। भव रोग महामद मान अरीं ॥
गुन सील कृपा परमायतनं। प्रनमामि निरंतर श्रीरमनं ॥
रघुनंद निकंदय द्वंद घनं। महिपाल बिलोकय दीनजनं ॥

अर्थ : मुनि के मानसरूपी कमल के भौंरे को मैं भजता हूँ। रघुबीर महारणधीर और अजय हैं। हे हरि ! मैं आप के नाम को जपता हूँ और नमस्कार करता हूँ। आप भवरोग महामद और मान के शत्रु हैं। गुणशील और कृपा के परम आयतन श्रीरमण को मैं निरन्तर प्रणाम करता हूँ। हे रघुनन्दन ! घने द्वन्द्व का नाश कीजिये। हे महिपाल ! दीनजन पर दृष्टि डालिये।

व्याख्या : सरकार रघुकुल में वीर हैं। कालहुँ डरहिं न रन रघुबंसी। उनमें भी आपका महान् उत्कर्ष है। आप महारणधीर हैं और अजय है। यथा : जीति को सकै अजय रघुराई। इतने पर भी आप मुनिमानस रूपी पङ्कज के भौंरे हैं। रस लेने के लिए आप से आप पहुँच जाते हैं। शिवजी कहते हैं कि मैं तो ऐसे भौंरे को भजता हूँ। सरकार भव रोग महामद और मान के अरि हैं। उन्हें रहने नहीं देते। यथा : तुम कृपाल जापर अनुकूला। ताहि न व्याप त्रिविध भवसूला। जन अभिमान न राखहिं काऊ। दीन बंधु अति मृदुल सुभाऊ। अतः शिवजी कहते हैं कि ऐसे प्रभु का मैं नाम जपता हूँ और उसे प्रणाम करता हूँ जिसमें भवरोग मान और मद पास न फटकने पावे। सरकार गुणशील और कृपा के परम आयतन हैं। क्योंकि श्रीरमण हैं। यथा : अब जानी मैं श्री चतुराई। भजी तुमहि सब देव बिहाई। सरकार के ऐसे गुणों पर मुग्ध होकर ही भगवती श्री ने उनका वरण किया। अतः शिवजी कहते हैं कि मैं निरन्तर आपको प्रणाम करता हूँ। क्योंकि इतनी ही सेवा आपकी सम्भव है। यथा : मोपहिं होइ न प्रति उपकारा। बंदौं तव पद बारहिं बारा। दुःख सुख शीतोष्ण आदि द्वन्द्व ही विपत्ति है और संसार का फन्दा है। हे रघुनन्दन ! उसका नाश कीजिये और दीन जनकी ओर देखिये। क्योंकि वेद भगवान् अभी कह गये हैं कि : जे नाथ करि करुना बिलोके दुख तिन निर्वहे। भवखेद छेदन दच्छ हम कहँ रच्छ राम नमामहे।

दो. बार बार बर माँगौ, हरखि देहु श्रीरंग।
पद सरोज अनपायिनी, भगति सदा सतसंग ॥१४ क.

बरनि उमापति राम गुन, हरखि गए कैलास।
तब प्रभु कपिन्ह दिवाये, सब बिधि सुख प्रद बास ॥१४॥

अर्थ : हे श्रीपति ! मैं बार बार वर माँगता हूँ। आप हर्षित होकर दीजिये कि मुझे आपके पद कमल में विघ्न रहित भक्ति हो और सदा सत्सङ्ग मिलता रहे।

उमापत्ति महादेवजी रामजी के गुण वर्णन करके हर्षित होकर कैलास गये। तब प्रभु ने बन्दरों को सब प्रकार का आनन्दप्रद निवास स्थान दिलवाया।

व्याख्या : सरकार से स्तुति करके भक्ति तो सभी माँगते हैं। पर शिवजी भक्ति और सत्सङ्ग दोनों माँगते हैं अर्थात् कारण और कार्य दोनों माँगते हैं। सत्सङ्ग के कारण ही भक्ति होती है। यथा : अस बिचारि जो कर सतसंगा। राम भगति तेहि सुलभ बिहंगा। और सत्सङ्ग से अलौकिक सुख को प्राप्ति होती है। यथा : तात स्वर्ग अपवर्ग सुख, धरिअ तुला एक अंग। तूल न ताहि सकल मिलि, जो सुख लव सतसंग। यह स्तुति उत्तराषाढ नक्षत्र है। दो तारे चमकते हैं श्रीरमण से उपक्रम करके श्रीरंग से ही उपसंहार करते हैं। चार पावे की भाँति चार लोट् लकार का प्रयोग है। दो बार पाहि तीसरे निकन्दय और चौथे विलोकय। इस स्तुति में सत्सङ्ग माँगा गया है। अतः इसकी फलश्रुति : सेवत सुलभ सुखद हरि हरसे। हरिहर को कुछ नहीं करना पड़ता। उनकी सेवा में ही सब सामर्थ्य है। इसी भाँति इस स्तुति में सब सामर्थ्य है।

उपामत्ति कहने का भाव यह कि उमा साथ नहीं हैं। शिवजी गृहस्थी स्वीकार किये हुए हैं। गृह कैलास है। वहाँ ज़ाना है। उदार चरित देखकर हर्षित हैं। अतः हर्षित होकर कैलास जाना कहा। शङ्करजी की स्तुति के बाद उस दिन का कार्य समाप्त हुआ। तब सरकार ने कपियों के सब भाँति के सुखप्रद वास की व्यवस्था की। सुख प्रद वास तो पहिले से ही मिला हुआ है। पर अब ऐसे वास की व्यवस्था की गयी जहाँ से सरकार के दर्शन में अधिक सुविधा है।

सुनु खगपति यह कथा पावनी। त्रिबिध ताप भवभय दावनी ॥
महाराज कर सुभ अभिषेका। सुनत लहहिं नर बिरति बिबेका ॥१॥

अर्थ : हे पक्षिराट् ! यह कथा पवित्र करनेवाली है। तीनों प्रकार के ताप और भव भय को दमन करनेवाली है। महाराज के शुभ अभिषेक को सुनने से मनुष्य वैराग्य और विवेक को प्राप्त होता है।

व्याख्या : केवल रामाभिषेक की फलश्रुति कहते हैं कि यह कथा सञ्चित प्रारब्ध और क्रियमाण तीनों प्रकार के कर्मों के दुष्परिणाम को नाश करती है। अतः अन्य में कथाओं से इसके फल में विशेषता कहा। पावनी से सञ्चित पापों का नाश कहा। आध्यात्मिक आधिदैविक तथा आधिभौतिक इन तीनों प्रकार के ताप के नाश से प्रारब्ध दुःखों का भी नाश कहा। भव भय दावनी : कहकर भावी कष्टों का : जन्म मरण के दुःखों का भी नाश दिखलाया।

महाराज रामचन्द्र के अभिषेक से जगत् का मङ्गल हुआ। इसलिए शुभ कहा। जो लोग निष्काम भाव से इसे सुनते हैं उन्हें वैराग्य और विवेक होता है। आगे चलकर सकाम भाव से सुनने गानेवाले का फल कहेंगे।

जे सकाम नर सुनहिं जे गावहिं । सुख संपति नाना बिधि पावहिं ॥
सुर दुर्लभ सुख करि जग माहीं । अंतकाल रघुपति पुर जाहीं ॥२॥

अर्थ : जो पुरुष कामना मन में रखकर सुनते या गान करते हैं वे नाना प्रकार के सुख और सम्पत्ति के भागी होते हैं। संसार में सुर दुर्लभ सुख करके मरने पर साकेत धाम को प्राप्त होते हैं।

व्याख्या : यह कथा नाना प्रकार की सुख सम्पत्ति देनेवाली है। भिन्नरुचिर्हि लोकः। सबकी कामना एक सी नहीं होती। यह कथा सब पूरी कर देती है। यद्यपि वक्ता और श्रोता को सांसारिक ही कामना रही फिर भी इस कथा का इतना प्रताप है कि मरने के बाद उन्हें साकेत धाम की प्राप्ति होती है। अर्थात् सकाम सुननेवाले के भी सब पाप नष्ट हो जाते हैं और ऐसा अलौकिक पुण्य होता है जिससे सरकार के धाम साकेत की प्राप्ति होती है।

सुनहिं बिमुक्त बिरत अरु बिषई । लहहिं भगति गति संपति नई ॥
खगपति राम कथा मैं बरनी । स्वमति बिलास त्रास दुख हरनी ॥३॥

अर्थ : इस कथा को यदि विमुक्त विरत या विषयी सुनते हैं तो उन्हें भक्ति गति और अपूर्व सम्पत्ति की प्राप्ति होती है। हे पक्षिराट् ! मैंने यह त्रास दुःख हरणी राम कथा अपनी बुद्धि के अनुसार वर्णन की।

व्याख्या : संसार में तीन प्रकार के जीव हैं। यथा : विषयी साधक सिद्ध सयाने। त्रिबिध जीव जग बेद बखाने। सो इस कथा से तीनों का कल्याण होता है। विमुक्त से यहाँ जीवन्मुक्त अभिप्रेत है। जीवन्मुक्त को कुछ कर्तव्य शेष नहीं है। फिर भी वे कथा सुनते हैं। यथा : जीवन्मुक्त महा मुनि जेऊ। हरि गुन सुनहिं निरंतर तेऊ। सुनि गुनगान समाधि बिसारी। सादर सुनहिं परम अधिकारी। ऐसे सुननेवाले को भक्ति की प्राप्ति होती है : आत्मारामाश्च मुनयो निर्ग्रन्था अप्युरुक्रमे। कुर्वन्त्य-हैतुकीं भक्तिमित्थंभूतगुणो हरिः। यहाँ विरत से साधक का ग्रहण है। उन्हें गति अर्थात् सिद्धि की प्राप्ति होती है और विषयी जीव तो सदा सम्पत्ति के भूखे रहते हैं। अतः उनका भी मनोरथ पूरा होता है। उन्हें ऐसी सम्पत्ति मिलती है जिससे राम पद सम्मुख होने में उन्हें सहायता मिले। क्योंकि : जरउ सो संपति सदन सुख सुहृत मातु पितु भाइ। सनमुख होत जो राम पद करइ न सहस सहाइ। सुनु खगपति यह कथा पावनी से उपक्रम और : खगपति राम कथा मैं बरनी से उपसंहार किया। भुसुण्डिजी कहते हैं कि यह कथा पूरी तरह से नहीं कही जा सकती। अपनी बुद्धि के अनुसार ही इसका लोग वर्णन करते हैं। सो मैंने स्वमति के अनुसार वर्णन की। यह कथा भविष्य पीड़ा के त्रास और वर्तमान पीड़ा के दुःख को हरण करनेवाली है।

बिरति बिबेक भगति दृढ़ करनी । मोह नदी कहँ सुन्दर तरनी ॥
नित नव मंगल कोसल पुरी । हर्षित रहहिं लोग सब कुरी ॥४॥

अर्थ : यह कथा विरति विवेक और भक्ति की दृढ़ करनेवाली है और मोहनदी के लिए तो सुन्दर नाव है। कोसलपुरी में नित्य नया मंगल होने लगा और सब जाति के लोग हर्षित रहने लगे।

व्याख्या : जिसे विरति विवेक और भक्ति पहिले से हो उसकी विरति विवेक और भक्ति इस कथा के कहने सुनने से दृढ़भूमिक हो जाती है। राम कथा ही ऐसी है कि इसके सामने भव सागर सङ्कुचित होकर मोह नदी हो जाता है। उसे राम कथा नाव की भाँति पार उतारनेवाली है। पर सरकार के अभिषेक की कथा तो सुन्दर नाव है अर्थात् अन्य कथाओं की अपेक्षा अधिक सुखद है।

सरकार के अभिषेक के बाद से फिर नये नये मङ्गल अवध में होने आरम्भ हो गये जैसे ब्याह करके आने पर होते थे। यथा : जब ते राम ब्याहि घर आये। नित नव मंगल मोद बधाये। सब जाति के लोग सुखी रहते थे। जाति व्यवस्था सब पृथक् पृथक् थी और सब लोग सुखी थे। जबतक चौदह वर्ष सरकार का वनवास था तबतक लोग दीन मलिन थे : कोक कोकी कमल दीन विहीन तमारि।

नित नइ प्रीति राम पद पंकज। सबके जिअहि नमत सिव मुनि अज॥
मंगन बहु प्रकार पहिराए। द्विजन्ह दान नाना बिधि पाए॥५॥

अर्थ : सबको रामजी के चरणों में जिन्हें शिव मुनि और ब्रह्मा नमस्कार करते हैं। नित्य नयी प्रीति हो रही थी। याचकों को बहुत प्रकार से कपड़े पहनाये गये और ब्राह्मणों ने अनेक प्रकार के दान पाये।

व्याख्या : हर्षित रहने का कारण कहते हैं कि सरकार के चरणों में प्रीति पुरानी नहीं होने पाती। नित्य नवीन होती जाती है। उन चरणों का प्रभाव ही ऐसा है कि उनमें एक बार चित्त लग जाने से फिर हटता ही नहीं। शिव मुनि और ब्रह्मा नित्य नमस्कार किया करते हैं।

पहिले माताओं ने याचकों को अयाचक कर दिया था। सरकारी आज्ञा हुई उन्हें नाना प्रकार के कपड़े भी पहिना दो। जिसमें दरिद्र वेष से घर न जायें और ब्राह्मणों को अनेक प्रकार के दान दिये गये। यह दान सरकार की ओर से हुआ।

दो. ब्रह्मानंद मगन कपि, सबके प्रभु पद प्रीती।
जात न जाने दिवस तिन्ह, गये मास षट बीती॥१५॥[1]

अर्थ : बन्दर सब ब्रह्मानन्द में मग्न थे। सबको प्रभु के चरणों में प्रीति थी। उन्हें रात दिन के बीतने का पता न चला। छः महीने बीत गये।

व्याख्या : क्या अद्भुत लीला है। बन्दर ब्रह्मानन्द में मग्न हैं। बन्दरों में ब्रह्मानन्द की पात्रता के आने का कारण कहते हैं कि सबको प्रभु के चरणों में प्रीति

---

१. उत्तरकाण्ड प्रारम्भ से यहाँ तक १५ दोहापर्यन्त नित्य नियम से पाठ करने पर आशातीत लाभ अवश्य होता है।

थी। सरकार के चरणों में प्रीति होने से मोक्ष सुख सुलभ हो जाता है। यथा : तथा मोक्षु सुख सुनु खगराई। रहि न सकै हरि भगति बिहाई। उस ब्रह्मानन्द में सब ऐसे मग्न हुए कि उन्हें दिन रात के बीतने का पता नहीं। आनन्दातिरेक में छः महीने बीत गये।

बिसरे गृह सपनेहुँ सुधि नाहीं। जिमि पर द्रोह संत मन नाहीं ॥
तब रघुपति सब सखा बोलाए। आइ सबन्हि सादर सिरु नाए ॥१॥

अर्थ : घर भूल गया। सपने में भी याद नहीं पड़ता। जिस भाँति सन्त के मन में पर द्रोह की याद नहीं आती। तब रामजी ने सब सखाओं को बुलाया। सबने आदर के साथ आकर सिर नवाया।

व्याख्या : मदिरा मन्दान्ध की भाँति ब्रह्मानन्द में मग्न कपि लोग खाते पीते सोते थे। उन्हें सपने में भी घर की याद न आयी। इसकी उपमा देते हुए श्री गोस्वामीजी कहते हैं कि जिस भाँति सन्त को कभी पर द्रोह का सपना भी नहीं होता। मनसा वाचा कर्मणा परोपकार करना सन्त का सहज स्वभाव है। उन्हें परद्रोह का संस्कार ही नहीं। इसलिए सपने में भी परद्रोह की याद नहीं आती। यहाँ बानरों की उपमा सन्तों से दी और घर की उपमा परद्रोह से और ब्रह्मानन्द साधारण धर्म बतलाया जो ब्रह्मानन्द में मग्न हैं। उसे देह की सुधि भी नहीं रहती। घर उसे क्यों याद पड़ने लगा। अथवा ऐसा सत्कार उनका अवध में हुआ कि वे घर भूल गये। प्रवास में असुविधा का अनुभव होने से ही घर याद आता है।

छः महीना बीतने पर सबकी तलबी एक साथ हुई। पहिले मुनिपद लगने के लिए बुलाया था। फिर बीच में बुलाहट नहीं हुई। अपनी खुशी से जब चाहते थे आ जाते थे। सबकी बुलाहट एक साथ हुई। अतः सब आये। सरकार का व्यवहार उनके साथ सखा की भाँति था। पर वे स्वामी सेवक सा व्यवहार रखते थे। आकर सादर प्रणाम करते हैं।

परम प्रीति समीप बैठारे। भगत सुखद मृदु बचन उचारे ॥
तुम्ह अति कीन्हि मोरि सेवकाई। मुख पर केहि बिधि करौं बड़ाई ॥२॥

अर्थ : परम प्रीति के साथ अपने पास बिठाया। भक्तों को सुख देनेवाले रामजी ने सब मृदु वचन कहा। तुम लोगों ने मेरी बड़ी ही सेवा की। मुख पर किस प्रकार से बड़ाई करूँ।

व्याख्या : सखाओं पर प्रेम तो है ही पर इस समय उन्हें विदा करना है। अतः परम प्रीति के साथ पास बिठाना कहते हैं। अथवा सरकार ने छः महीने तक आसरा देखा कि अब ये लोग घर जाने के लिए कहेंगे। अब कहेंगे। जब देख लिया कि ये लोग तो घर ही भूल गये तो सरकार का उन पर परम प्रेम हुआ। सरकार ने ऐसा मृदु वचन कहा जिससे उन्हें सुख उपजे। सरकार को उन्हे घर भेजना है। उनके बाल बच्चे उत्सुकता के साथ उनका रास्ता देखते होंगे।

सरकार ने कहा कि तुम लोगों ने मेरी बड़ी भारी सेवा की। सरकार के प्रेम में घर भूल जाना यह सरकार की बड़ी भारी सेवा है। साधुओं में यह एक बड़ी भारी बड़ाई है : जो गृहस्थों में हो नहीं सकती : कि वे घर का परित्याग करके भूले रहते हैं। अतः कहते हैं कि जो जो सेवा तुम लोगों ने की उसकी बड़ाई करनी चाहिए। बड़ाई की शोभा पीठ पीछे करने में है। सामने बड़ाई की गिनती मुँह देखी बात में हो जाती है।

ताते मोहिं तुम अति प्रिय लागे। मम हित लागि भवन सुख त्यागे ॥
अनुज राज संपति बैदेही। देह गेह परिवार सनेही ॥३॥

अर्थ : मेरे लिए तुम लोगों ने घर का सुख छोड़ा। इसलिए तुम लोग मुझे अत्यन्त प्रिय लगे। छोटे भाई, राज्य, सम्पत्ति, वैदेही, देह, घर, परिवार और प्रेमी।

व्याख्या : सब सुखों में घर का सुख सबसे बड़ा है। गृह सुख के लिए मनुष्य क्या नहीं करता। दिवसस्याष्टमे भागे शाकं पचति यद्गृहे। अनृणी चाऽप्रवासी च स वारिचर मोदते। दिन के आठवें भाग में जिसके घर में शाक बन जाता है उसे यदि ऋण नहीं है और वह परदेश में नहीं है तो वह सुखी है। अतः सरकार कहते हैं कि मैं तुम लोगों को इतना प्रिय हूँ कि मेरे लिये तुम लोगों ने घर का सुख छोड़ दिया। अतः तुम लोग मुझे अत्यन्त प्रिय हो। भाई, राज्य, सम्पत्ति, स्त्री, देह, घर परिवार और प्रेमी ये ही प्रेमास्पद हैं। सरकार कहते हैं कि मुझे भी ये प्रिय हैं। भाई प्रिय यथा : राम करहिं भ्रातन्ह पर प्रीती। राज्य प्रिय यथा : अवधपुरी सम प्रिय नहिं सोऊ। सम्पत्ति प्रिय यथा : संपति सब रघुपति के आहीं। जो बिनु जतन चलौं तजि ताही। तौ परिनाम न मोरि भलाई। वैदेही प्रिय यथा : अतिसय प्रिय करुना निधान की। देह प्रिय यथा : सब के देह परम प्रिय स्वामी। गेह प्रिय यथा : मम हित लागि भवन सुख त्यागे। परिवार प्रिय यथा : कहहुँ सुभाव न कुलहिं प्रसंसी।

सब मम प्रिय नहि तुमहि समाना। मृषा न कहौं मोर यह बाना ॥
सब के प्रिय सेवक यह नीती। मोरें अधिक दास पर प्रीती ॥४॥

अर्थ : मुझे सब प्रिय हैं। परन्तु तुम्हारे समान नहीं। मेरा यह बाना है कि मैं झूठ नहीं कहता। ऐसी नीति है कि सबको सेवक प्रिय होते हैं पर मुझे दास पर अधिक प्रीति होती है।

व्याख्या : सरकार कहते हैं कि तुम लोग मुझे : अनुज राज संपति बैदेही। देह गेह परिवार सनेही। सबसे अधिक प्रिय हो। भाव यह है कि सखाओं के मन में यह बात न आवे कि हम लोग सरकार को अधिक प्रिय नहीं हैं। सभी प्रेमास्पदों का तो संग्रह कर रक्खा है। हमारा ही त्याग क्यों करते हैं। अतः सरकार कहते हैं कि तुम लोग सबसे अधिक प्रिय हो। घर जाने को कहूँगा। इसलिए प्रेम में न्यूनता न समझना और यह भी न समझना कि मैं तुम लोगों की प्रसन्नता के लिए

मुँहदेखी कह रहा हूँ। मैं असत्य कहता ही नहीं। यह मेरा प्रण है। फिर भी अधिक प्रिय होने का कारण होना चाहिए। इस पर कहते हैं कि सम्बन्धियों से अधिक प्रीति सेवा करनेवालों पर सबको होती है। ऐसी नीति है। यथा : सुखदाई सोई सगो सगो शत्रु बिनु हेत। दुखदाई तन की व्यथा बन बूटी सुख देत। पर मुझे तो दास पर अधिक प्रीति होती है। यथा : तिन्हते पुनि मोहि प्रिय निज दासा। जेहि गति मोरि न दूसरि आसा। तुम लोगों को मेरी ही गति है दूसरी आशा नहीं है। अतः मुझे अत्यन्त प्रिय हो।

दो. अब गृह जाहु सखा सब, भजेहु मोहि दृढ़ नेम।
सदा सर्वगत सब हित, जानि करेहु अति प्रेम ॥१६॥

अर्थ : हे सखा लोग! अब तुम लोग घर जाओ और दृढ़ नियम करके मेरा भजन करना। सब काल में सब देश में और सबके हित में मुझे जानकर अत्यन्त प्रेम मुझ पर करना।

व्याख्या : सरकार का कहना है कि तुम लोगों ने अत्यन्त सेवकाई मेरी की। इससे अधिक सेवकाई मुझसे सहन नहीं होती। अतः तुम लोग अपने घर जाओ। मेरा भजन घर में भी हो सकता है। पर उसके लिए दृढ़ नियम की आवश्यकता है। नहीं तो : गृह कारज नाना जंजाला में लोग भूल जाते हैं और यह न समझना कि मैं इस समय केवल अयोध्या में हूँ। मैं सब काल में सब देश में रहता हूँ। सबका हित किया करता हूँ। ऐसा समझकर जहाँ हो वहीं से अत्यन्त प्रेम करना। प्रेम से हम घर में भी प्रकट हो जायँगे।

सुनि प्रभु बचन मगन सब भए। को हम कहाँ बिसरि तन गए ॥
एकटक रहे जोरि कर आगे। सकहिं न कछु कहि अति अनुरागे ॥१॥

अर्थ : प्रभु का वचन सुनकर सब मग्न हो गये। वे शरीर की सुधबुध भूल गये। उन्हें इस बात का पता न रह गया कि हम कौन हैं और कहाँ हैं। हाथ जोड़कर आगे खड़े एकटक से देखा किये। अत्यन्त प्रेम के कारण कुछ कहने में भी असमर्थ हो गये।

व्याख्या : प्रभु की ऐसी वाणी जो कि भक्तसुखद और मृदु थी सुनकर सब मग्न हो गये। पहिले तो घर ही भूला था। अब तो देह भी भूल गया। न अपनी सुधि रह गयी न दूसरे की। हम कौन हैं यह भी पता न रहा और न यह ख्याल रह गया कि हम कहाँ है। कहि न सकहिं कछु प्रेम बस भरि भरि लोचन बारि। सनमुख चितवहि राम तन नयन निमेष निवारि। हाथ जोड़े सामने खड़े हैं। कहना चाहते हैं परन्तु प्रेम में इतने विह्वल हैं कि कह नहीं सकते।

परम प्रेमु तिन्ह कर प्रभु देखा। कहा बिबिध बिधि ग्यान बिसेखा ॥
प्रभु सनमुख कछु कहन न पारहिं। पुनि पुनि चरन सरोज निहारहिं ॥२॥

अर्थ : सरकार ने उनका परम प्रेम देखा तो अनेक प्रकार से विशेष ज्ञान कहा। सरकार के सामने कुछ कह नहीं सकते। बार बार चरण कमल देखते हैं।

व्याख्या : लंका से चलने के समय : अतिसय प्रीति देखि रघुराई। लीन्हे सकल बिमान चढ़ाई। परन्तु इस बार परम प्रेम देखकर ज्ञानोपदेश किया। क्योंकि प्रेम का वेग ज्ञान से ही रुकता है और प्रेम की पराकाष्ठा भी ज्ञान है जहाँ प्रेमी और प्रेमास्पद में भेद नहीं रह जाता। जी में बात के बिठाने के लिए अनेक प्रकार से कहा। विशेष ज्ञान से यहाँ विज्ञान अभिप्रेत है। शत्रु भी : प्रभु बिलोकि सर सकहिं न डारी। बन्धु भी : प्रभु सन कछु कहि सकत न ओऊ। इस भाँति सखा भी प्रभु के सन्मुख कुछ भी कहने में असमर्थ हुए। बहुत कुछ कहना चाहते हैं पर वाणी खुलती नहीं। ऐसी प्रभुता है कि सामने देखा नहीं जाता। बार बार चरण कमल का दर्शन कर रहे हैं। भाव यह कि अब इन चरणों का दर्शन दुर्लभ होनेवाला है।

तब प्रभु भूषन बसन मगाए। नाना रंग अनूप सोहाए ॥
सुग्रीवहि प्रथमहि पहिराए। बसन भरत निज हाथ बनाए ॥३॥

अर्थ : तब सरकार ने गहने कपड़े मँगवाये जो कि अनेक रङ्ग के थे। बेजोड़ थे और सुन्दर थे। पहिले सुग्रीव को पहिनाया। कपड़े को भरतजी अपने हाथ से सँवारे।

व्याख्या : समझाने के बाद बिदाई की तैयारी कर दी। बिदाई में महाराजों के यहाँ से कपड़े मिलते हैं। जिन्हें सरोपाव कहते हैं। आभूषण भी मिलते हैं। सो अनेक रंग के कपड़े मँगाये। यहाँ बानर सरदार भी अनेक रङ्ग के थे। सो जिस रंग का कपड़ा जिसे खिले उस रंग का उसे दिया जाय। इसलिए अनेक रंग के कपड़े मँगाये। वे ऐसे सुन्दर थे कि उनकी उपमा नहीं है। वैसे ही गहने भी बेजोड़ थे। सुग्रीव कपिराज थे और सरकार से उनकी अग्नि साक्षिक मैत्री थी। उन्होंने कहा भी था : सब प्रकार करिहौं सेवकाई। जेहि बिधि मिलिहिं जानकी आई। और तदनुसार सेवकाई भी की थी और सरकार ने इन्हें अपने हाथ से तिलक नहीं दिया था। इसलिए पहिले अपने हाथ से सुग्रीव को ही गहना कपड़ा पहनाया। राजाओं का पहनाना ऐसा ही होता है कि कपड़ों को शरीर से स्पर्श मात्र करा देते हैं। शेष कार्य तो कामदार लोग कर देते हैं। इसी भाँति सरकार ने पहना दिया और उसे भरतजी ने अपने हाथ से ठीक ठीक साज दिया।

प्रभु प्रेरित लछिमन पहिराए। लंकापति रघुपति मन भाए ॥
अंगदि बैठ रहा नहि डोला। प्रीति देखि प्रभु ताहि न बोला ॥४॥

अर्थ : सरकार की प्रेरणा से रघुपति के मन में अच्छे मालूम होनेवाले लङ्कापति को लक्ष्मणजी ने पहनाया। अङ्गद बैठे ही रह गये बोले नहीं। उनकी प्रीति देखकर सरकार ने उनसे कुछ नहीं कहा।

व्याख्या : जिस समय सरकार कपिपति को पहनाने लगे उसी समय लक्ष्मणजी को प्रेरणा की कि लङ्कापति विभीषण को पहनावें। ये सरकार के मन भाये लङ्कापति थे। इन्हें सरकार ने अपने हाथ से तिलक किया था। यथा : अस कहि राम तिलक तेहि सारा। सुमन बृष्टि नभ भयउ अपारा। अतः लक्ष्मणजी ने इन्हें पहनाया और अपने हाथ से कपड़े को सजा भी दिया। इसीलिए किसी दूसरे द्वारा जाना नहीं कहते। अङ्गदजी उठे ही नहीं। बैठे ही रह गये। प्रभु ने उनकी प्रीति समझ ली। अतः उन्हें छेड़ना उचित नहीं समझा। दूसरे लोग भी कहीं अङ्गद का ही रास्ता न पकड़ें।

दो. जामवंत नीलादि सब, पहिराये रघुनाथ।
हिय धरि राम रूप सब, चले नाइ पद माथ ॥१७ क.

अर्थ : जामवन्त और नीलादि को रामजी ने अपने हाथ से पहनाया। रामजी के रूप को हृदय में रखकर सब लोक सिर नवाकर चले।

व्याख्या : तत्पश्चात् ऋक्षराज जाम्बवान् सेनापति नील तथा अन्य बानर सरदारों को सरकार ने अपने हाथ से पहनाया। सामान्य बानर लोग तो लङ्का में ही आकाश से वर्षा किये गये गहने कपड़े पा गये थे। यथा : भालु कपिन्ह पट भूषन पाये। पहिरि पहिरि रघुपति पहँ आये। उनकी लङ्का से ही बिदाई हो गयी थी। यहाँ तो केवल सरदार लोग साथ आये थे। इनकी बिदाई सरकार अपने हाथ से अनूप भूषण बसन पहनाकर कर रहे हैं। बिदाई होने पर सब लोग प्रणाम करके चले। पर प्रभु रूप को हृदय में ध्यान करने के लिए रख लिया। आज्ञा भी पा चुके हैं : भजेहु मोहि दृढ़ नेम। सो बिना ध्यान किये दूर से भजन कैसे हो सकता था।

दो. तब अंगद उठि नाइ सिरु, सजल नयन कर जोरि।
अति बिनीत बोले बचन, मनहु प्रेम रस बोरि ॥१७ ख.

अर्थ : तब अङ्गद ने उठकर सिर नवाया। उनकी आँखों में जल भरा था। हाथ जोड़कर अत्यन्त विनययुक्त वचन बोले। मानों वह प्रेम रस में डुबाया हुआ था।

व्याख्या : सबके चले जाने पर अङ्गदजी उठे। सबके चले जाने पर उठने का भाव ही यही है कि अङ्गदजी को कुछ कहना है। उन्होंने उठकर प्रणाम किया। उनकी आँखों में जल भरा था। हाथ जोड़कर वचन बोले। वह बचन कैसा था इस पर कवि कहते हैं मानो प्रेम सुधा से पागा हुआ था। यहाँ : तब अंगद उठि नाइ सिर कहने से अङ्गदजी का कर्मणा प्रेम कहा। अति विनीत बोले बचन : से वाचा प्रेम कहा। मनहु प्रेम रस बोरि : से मनसा प्रेम कहा। विनीत वचन भी प्रेम रस से भरा न हो तो उसमें मधुरता नहीं आती।

सुनु सर्वज्ञ कृपा सुख सिंधो । दीन दयाकर आरत बंधो ॥
मरती बेर नाथ मोहि बाली । गयउ तुम्हारेहिं कोछें घाली ॥१॥

अर्थ : हे सर्वज्ञ ! हे कृपा और सुख के सिन्धु ! हे दीनों पर दया करनेवाले ! आर्तों के बन्धु सुनो । मरने के समय बालि मुझे आपके ही गोद में डाल गया ।

व्याख्या : सर्वज्ञ को क्या जनावें । कृपा सुखसिन्धु से कृपा करने की प्रार्थना क्या करें ? आप दीनदयाल हैं मैं दीन हूँ । आप आर्त्तबन्धु हैं मैं आर्त्त हूँ । अतः मेरी बात सुनिये । और लोगों में और मुझ में बड़ा अन्तर है । मरते समय वालि ने मुझे आप की ही गोद में डाला । यथा : यह तनय मम सम विनय बल कल्यानप्रद प्रभु लीजिये । गहि बाँह सुर नरनाह आपन दास अंगद कीजिये । सुग्रीव की गोद में नहीं डाला और आप ने अस्वीकार नहीं किया । मरती बार के विनय को कोई सामान्य पुरुष भी यथासाध्य उपेक्षित नहीं करता । आप तो दीन दयाकर हैं । आपको सुपुर्द करके तब प्राण त्याग किया । इसलिए मैं अनन्यगतिक हूँ आर्त्त हूँ और आप आर्त्तबन्धु हैं ।

असरन सरन बिरद संभारी । मोहि जनि तजहु भगत हितकारी ॥
मोरे तुम्ह प्रभु गुर पितु माता । जाउँ कहाँ तजि पद जलजाता ॥२॥

अर्थ : अशरण शरण विरद का सँभाल करते हुए मेरा परित्याग न कीजिये । आप भक्त के हित करनेवाले हैं । मेरे तो आप ही गुरु पिता और माता हैं । आपके पदकमल को छोड़कर मैं कहाँ जाऊँ ?

व्याख्या : अङ्गदजी कहते हैं कि आपका बिरद अशरणशरण है और मुझे कहीं शरण नहीं है । मेरे परित्याग से सरकारी विरद गिर जायगा । और लोगों को तो शरण है । घर बार सब कुछ है । हमें तो कुछ नहीं है । मुझे जाने को कहियेगा तो मैं कहाँ जाऊँ ? मेरे तो आप ही प्रभु हैं । जो लोग गये हैं उनमें किसी के प्रभु घर पर हैं । किसी के गुरु घर पर हैं । किसी के माता पिता घर पर हैं । मेरे तो आप ही सब कुछ हैं । पिताजी मुझे आपका दास बना गये हैं । अतः आप ही मेरे प्रभु और माता पिता हैं । अनेक प्रकार के ज्ञान का उपदेश भी अभी मिला है । अतः गुरु भी आप ही हैं । सो आप यहाँ हैं मैं कहाँ जाऊँ ?

तुम्हइ बिचारि कहहु नरनाहा । प्रभु तजि भवन काजु मम काहा ॥
बालक ज्ञान बुद्धि बल हीना । राखहु सरन नाथ जनदीना ॥३॥

अर्थ : हे नरनाथ ! आप ही विचारकर कहिये कि सरकार को छोड़कर घर में मेरा क्या काम है ? मैं बालक हूँ । मुझे ज्ञान बुद्धि और बल नहीं है । मुझे दीन जन जानकर शरण में रख लीजिये ।

व्याख्या : मैं बालक हूँ । अल्प वयस्क हूँ । मुझे संसार का अनुभव नहीं है । मैं ज्ञानी भी नहीं हूँ कि मानापमान को समान समझूँ । बुद्धि बल भी नहीं । अपना

भी कोई नहीं। राज्य सुग्रीव का है सो बाप का वैरी है। माँ भी उसी के हाथ में है। आप ही विचार करिये कि वहाँ मेरा कौन है? वहाँ मेरी कुशल कैसे हो सकती है? मैं दीन हूँ। मुझे कहीं ठिकाना नहीं। ऐसा जानकर मुझे शरण में रख लीजिये।

नीच टहल गृह कै सब करिहौं। पद पंकज बिलोकि भव तरिहौं॥
अस कहि चरन परेउ प्रभु पाही। अब जनि नाथ कहहु गृह जाही॥४॥

अर्थ: मैं घर की छोटी से छोटी सेवा करूँगा। और चरणकमल का दर्शन करते हुए संसार सागर से पार हो जाऊँगा। ऐसा कहकर चरण पर गिर गये कि सरकार रक्षा करें और अब घर जाने को न कहें।

व्याख्या: यदि कहा जाय कि यहाँ रहकर क्या करोगे? तो इस पर कहते हैं कि घर का झाड़ू बहारू दिया करूँगा। सरकार की सेवा करने के लिए बहुत लोग हैं। मैं तो चरण दर्शन करते करते संसार सागर के पार हो जाऊँगा। इस भाँति लोक परलोक दोनों बन जायगा। ऐसा कहकर अङ्गदजी पाहि पाहि करते हुए चरणों में गिर गये और कहा कि अब मुझे घर जाने के लिए आज्ञा न दी जाय। आज्ञा मिलने पर मानना ही पड़ेगा। यथा: रामरजाइ मेटि मन माँहीं। देखा सुना कतहुँ कोउ नाहीं।

दो. अंगद बचन बिनीत सुनि, रघुपति करुना सीव।
प्रभु उठाइ उर लाएउ, सजल नयन राजीव॥१८ क.

अर्थ: अङ्गद की विनीत वचन सुनकर करुणासीव रामजी प्रभु ने उठाकर हृदय से लगा लिया और सरकार के कमल ऐसी आँखों में जल भर आया।

व्याख्या: अङ्गद पर सरकार का बड़ा प्रेम है: राज दीन्ह सुग्रीव कहँ अंगद कहँ जुवराज। बड़ी आस्था है। रावण के यहाँ इन्हीं को दूत बनाकर भेजा था। सो अङ्गद का ऐसा वचन सुनकर: सरकार करुणा की सीमा हैं। बालि द्वारा गोद में डाला हुआ स्मरण करके बड़ी करुणा हुई। कमल ऐसे नेत्रों में जल भर आया। पैर गिरे हुए अङ्गद को उठाकर हृदय से लगा लिया।

दो. निज उरमाल बसन मनि, बालि तनय पहिराइ।
बिदा कीन्हि भगवान तब, बहु प्रकार समुझाइ॥१८ ख.

अर्थ: अपने गले की माला कपड़ा तथा मणि बालि के बेटे को पहिनाकर बहुत प्रकार से समझाकर भगवान् ने बिदा किया।

व्याख्या: सीधे सीधे प्रसाद अङ्गदजी को सरकार के हाथ से प्राप्त हो रहा है। अपने गले की माला पहना दी। कपड़े पहनाये। अपने गले की मणि पहना दी। अङ्गद का बड़ा भारी सम्मान हुआ और बड़ी भारी रक्षा की व्यवस्था की गयी। और तब सरकार ने बहुत प्रकार से समझाया। यथा:

राज काज सब तुम करत सब बिधि तब अधिकार।
मन वच क्रम पालिय प्रजहिं कीजिय राज सँभार ॥

राजा द्रष्टा ह्वै रहत काज करत युवराज।
राज सँभारो आपनो होय सुखी कपिराज ॥

अंगद तुमहिं कुदृष्टि से ताकि सकै नहि कोय।
मैं दीन्ह्यो युवराज पद सो न अन्यथा होय ॥

हेम हार बालिहिं दयो रक्षा हित सुरराज।
तब हित निज उर माल मणि पहिरावत हौं आज ॥

भरत अनुज सौमित्रि समेता। पठवन चले भगत कृत चेता ॥
अंगद हृदय प्रेमु नहिं थोरा। फिरि फिरि चितव राम की ओरा ॥१॥

अर्थ : भक्तों पर ध्यान रखनेवाले : रामजी भरत शत्रुघ्न और लक्ष्मणजी के साथ पहुँचाने चले। अङ्गद के हृदय में थोड़ा प्रेम नहीं है। घूम घूमकर रामजी की ओर देखते जा रहे हैं।

व्याख्या : भरत और उनके अनुज से शत्रुघ्न को बोध है अथवा अनुज से लक्ष्मण और सौमित्रि से शत्रुघ्न का बोध है। यहाँ पर स्पष्ट है कि भक्त कृत चेता से भगवान् का अभिप्राय है। अतएव भगतकृत चेता शब्द यहाँ रामजी पर ही घटाना उचित है। भक्त का कृत उन्हीं पर है। अतः भक्त के कृत का ध्यान करके स्वयं पहुँचाने चले।

थोड़ा प्रेम होने से बिदाई के बाद सीधे घर का रास्ता पकड़ते। परन्तु अङ्गदजी घूम घूमकर सरकार की ओर देखते हैं। दर्शन की प्यास जाती नहीं। बड़ा भारी सभा भवन है। इसके बाहर जाने के लिए कुछ दूर चलना पड़ा है।

बार बार कर दंड प्रनामा। मन अस रहन कहहिं मोहिं रामा ॥
राम बिलोकनि बोलनि चलनी। सुमिरि सुमिरि सोचत हँसि मिलनी ॥२॥

अर्थ : बार बार दण्डवत् प्रणाम करते हैं। मन में यह भाव है कि रामजी हमें रहने के लिए कह दें। रामजी का देखना बोलना चलना और हँसकर मिलना स्मरण करके अङ्गदजी सोचते हैं।

व्याख्या : जब जब घूमकर देखते हैं तब तब दण्डवत् प्रणाम करते हैं। मन के भीतर यह आशा लगाये हुए हैं कि इस बार रामजी कह देंगे कि अच्छा तुम रह जाओ। सरकार का सन्निधान अङ्गदजी से छोड़ते नहीं बनता। सभी देखते हैं, बोलते हैं, चलते हैं, मिलते हैं, पर रामजी का देखना बोलना चलना और मिलना कुछ दूसरा ही है। इनकी एक एक क्रिया में अङ्गविक्षेप में शोभा है। अलौकिकता है : वियुक्त होने के समय सब स्मरण हो रही हैं। सोचते हैं कि अब ऐसी शोभाओं का दर्शन कहाँ मिलेगा।

प्रभु रुख देखि बिनय बहु भाखी । चलेउ हृदय पद पकंज राखी ॥
अति आदर सब करि पहुँचाए । भाइन्ह सहित भरत पुनि आए ॥३॥

अर्थ : सरकार का रुख देखकर बहुत कुछ विनय किया और चरण कमल को हृदय में रखकर चले। अत्यन्त आदर के साथ सब बन्दरों को पहुँचाकर भाइयों के साथ भरतजी लौटकर आगये।

व्याख्या : अङ्गदजी ने सरकार का रुख देख लिया कि नहीं रक्खेंगे तब ठहर गये। बहुत कुछ विनती की। यह विनती कृपा बनाये रखने के लिए है। इससे स्पष्ट है कि रामजी पहुँचाने चल रहे हैं। सब लोग रामजी के रूप को हृदय में रखकर चले। पर अङ्गदजी चरण कमल को हृदय में रखकर चले। सरकार वहीं से लौट गये। पर भरतजी छोटे भाइयों के साथ सब बन्दरों को राजधानी की सीमा तक पहुँचाया और तब लौट आये।

तब सुग्रीव चरन गहि नाना। भाँति बिनय कीन्हे हनुमाना ॥
दिन दस करि रघुपति पद सेवा। मुनि तब चरन देखिहौं देवा ॥४॥

अर्थ : तब सुग्रीव का चरण पकड़कर हनुमान्‌जी ने नाना प्रकार से विनती की और कहा कि दस दिन और रामजी की सेवा करके हे देव ! तब आपके चरणों का दर्शन करूँगा।

व्याख्या : भरतजी के लौटने पर हनुमान्‌जी ने राजा सुग्रीव का चरण पकड़ा। वे बन्दरों के राजा हैं। सरकार के मित्र हैं। सूर्य के अंश होने से गुरुपुत्र हैं। अतः सब भाँति पूज्य हैं। अतः रामजी की सेवा में ठहर जाने के लिए इनसे छुट्टी ले रहे हैं। यहाँ दस दिन से अभिप्राय थोड़े दिनों से है। सरकार की सेवा से तृप्ति नहीं होती। अतः और ठहरना चाहते हैं। रामजी की ओर से इनकी बिदाई भी नहीं हुई है। हनुमान्‌जी का कहना है कि थोड़े दिन अयोध्या में और ठहरकर मैं किष्किन्धा में आ जाऊँगा।

पुन्यपुंज तुम पवन कुमारा। सेवहु जाइ कृपा आगारा ॥
अस कहि कपि सब चले तुरंता। अंगद कहै सुनहु हनुमंता ॥५॥

अर्थ : हे पवनकुमार ! तुम पुण्यपुंज हो। जाकर कृपा निधान की सेवा करो। ऐसा कहकर बन्दर लोग तुरन्त चल पड़े। पर अङ्गद ने कहा कि हनुमान्‌जी ! सुनो।

व्याख्या : राजा सुग्रीव ने कहा कि हनुमान्‌जी पुण्यपुञ्ज तुम्हीं हो। तुम्हारी बिदाई सरकार की ओर से नहीं हुई। वे तुम्हें छोड़ना नहीं चाहते और तुम्हारा मन उन्हें छोड़ने को नहीं चाहता। अतः तुम्हारी सदा के लिए छुट्टी है जाओ। कृपानिधान की सेवा करो। सुग्रीव की यह आज्ञा हुई और सब बन्दरों ने इसका अनुमोदन किया और सब तुरन्त चल पड़े। पर अङ्गदजी ठहर गये। हनुमान्‌जी से कहने लगे :

दो. कहेहु दंडवत प्रभु सें, तुमहि कहौं कर जोरि।
बार बार रघुनायकहिं, सुरति करायहु मोरि ॥१९ क.

अर्थ : सरकार से मेरी दण्डवत् कहना यह मैं आप से हाथ जोड़ कर कहता हूँ और बार बार रघुनायक को मेरी याद दिलाना।

व्याख्या : अङ्गदजी कहते हैं कि मेरी दण्डवत् सरकार से कहना। यह परोक्ष की दण्डवत् है। प्रणाम करने में अङ्गदजी अघाते नहीं और हनुमान्‌जी से हाथ जोड़कर विनय करते हैं कि राजकार्य का भार बड़ा गुरु : भारी होता है। सरकार मुझे भूल जायँगे। सो तुम मेरी याद दिलाते रहना जिसमें सरकार की दृष्टि मुझ पर बनी रहे। ज़ीवका निस्तार सरकार के छोह से ही सम्भव है। यथा : नाथ जीव तव माया मोहा। सो निस्तरै तुम्हारेहि छोहा।

अस कहि चलेहु बालि सुत, फिरि आएउ हनुमंत।
तासु प्रीति प्रभु सन कही, मगन भए भगवंत ॥१९ ख.
कुलिसहु[1] चाहि कठोर अति, कोमल कुसुमहु चाहि।
चित्त खगेस राम कर, समुझि परै कहु काहि ॥१९ ग.

अर्थ : ऐसा कहकर बालिपुत्र अङ्गदजी चले और हनुमान्‌जी लौट आये और उनका प्रेम प्रभु से कहा तो भगवान् मग्न हो गये।

वज्र से भी कठिन और कुसुम से भी कोमल चित्त रामजी का है। हे पक्षिराट्! क्या किसी के समझ में आ सकता है?

व्याख्या : साथी लोग आगे बढ़ गये। साथ जाना है। इसलिए अङ्गदजी ऐसा कहकर चल पड़े। यहाँ अङ्गदजी को बालिसुत कहने से उनका बुद्धि बल गुण धाम होना कहा। अङ्गदजी की बात सुनकर हनुमान्‌जी लौट आये। कवि सरकार के साथ थे। इसलिए कहते हैं : फिरि आयेउ हनुमंत। अङ्गदजी ने कहा था : बार बार रघुनायकहिं सुरति कराएउ मोरि। सो हनुमान्‌जीने कार्य प्रारम्भ कर दिया। आते ही अङ्गदजी के प्रेम की कथा प्रभु को सुनायी। सरकार सुनकर प्रेम में मग्न हो गये।

सरकार के चरित्र लोकोत्तर हैं। श्रीगोस्वामीजी कहते हैं कि यहाँ मनुष्य की गति नहीं। कहीं तो उनका चित्त वज्रसे भी कठोर और कहीं फूल से भी अधिक कोमल मालूम पड़ता है। अङ्गद का विनय सुनकर अस्मदादि का हृदय द्रवीभूत हो जाता है। परन्तु सरकार द्रवीभूत नहीं हुए। मोहि जनि तजहु भगत हितकारी। अब जनि नाथ कहहु गृह जाहीं। आदि बहुत कुछ कहा। पर प्रभु का रुख नहीं बदला। यथा : प्रभु रुख देखि बिनय बहु भाषी। चलेउ हृदय पद पंकज राखी। यहाँ वज्र से भी अधिक कठोर मालूम होता है। पर जब हनुमान्‌जी ने उनकी प्रीति

१: यहाँ प्रतीप : तृतीय अलंकार है।

कही तो आप प्रेम में डूबाडूब हो गये। यहाँ कुसुम से भी अधिक कोमल मालूम होता है। अतः इस लोकोत्तर चरित्र का किसी के समझ में आ जाना ही आश्चर्य है।

पुनि कृपालु लियो बोलि निषादा। दीन्हें भूषन बसन प्रसादा ॥
जानु भवन मम सुमिरन करेहू। मन क्रम बचन धर्म अनुसरेहू ॥१॥

अर्थ : फिर कृपाल ने निषादराज को बुला भेजा। उसे प्रसाद रूप से गहने कपड़े दिये। कहा कि घर जाओ मेरा स्मरण करना और मनसा वाचा कर्मणा धर्माचरण करना।

व्याख्या : सखाओं की बिदाई के बाद निषादराज की बुलाहट हुई। इसकी बिदाई नहीं हो रही है। अति सन्निकट का रहनेवाला है। इसे गहने कपड़े प्रसाद रूप से मिले। सरकार कृपाल हैं। बन्दरों को कहा : अब गृह जाहु सखा सब। इसी भाँति इसे भी कहते हैं। निषादराज भी छः महीने बीत गये अयोध्या से सिंगरौर न गये।

अतः रामजी कहते हैं कि घर जाओ। मेरा स्मरण करना। मेरे स्मरण से ही सब कल्याण है। परन्तु मनसा वाचा कर्मणा धर्म पालन करना। राज मैत्री से प्रमाद न करना यही अनुशासन है। इस उपदेश का पालन करने से जीव कल्याणभागी होता है।

तुम मम सखा भरत सम भ्राता। सदा रहेहु पुर आवत जाता ॥
बचन सुनत उपजा सुख भारी। परेउ चरन भरि लोचन बारी ॥२॥

अर्थ : तुम मेरे सखा हो। भरत के समान भाई हो। राजधानी में सदा आते जाते रहना। वचन सुनते ही बड़ा भारी सुख हुआ। आँखों में आँसू भरकर चरणों में गिरा।

व्याख्या : तुम सखा हो और भाइयों में भरत के समान हो। भरत के समान ही मेरे वियोग के ताप से तप्त रहे हो। तुम तो बहुत निकट ही रहते हो। सदा यहाँ आते जाते रहना। जब इच्छा हो चले आना और जब इच्छा हो चले जाना। निषादराज को सरकार का वचन सुनकर बड़ा आनन्द हुआ कि मेरी गिनती भाइयों में हुई और भरतजी का दर्जा मिला। मेरे लिए अवारितद्वार है। आनन्द से उसे सात्त्विक भाव हुआ। प्रेमाश्रु से आँखें भर गयीं और चरणों पर गिर पड़ा।

चरन नलिन उर धरि गृह आवा। प्रभु सुभाउ परिजनन्हि सुनावा ॥
रघुपति चरित देखि पुरबासी। पुनि पुनि कहहि धन्य सुखरासी ॥३॥

अर्थ : चरण कमल को हृदय में धारण करके घर आया और सरकार का स्वभाव अपने कुटुम्बियों को सुनाया। रामजी के चरित को देखकर पुरवासी बार बार कहते हैं कि सुख की राशि रामजी धन्य हैं।

व्याख्या : अङ्गदजी को भाँति इसने भी प्रभु के चरण को हृदय में धारण किया और घर आया। सरकार के स्वभाव पर इतना अनुरक्त है कि कुटुम्बियों को इकट्ठा करके प्रभु के स्वभाव का वर्णन किया। पुरवासी लोग सरकार का चरित्र देखते हैं कि बन्दरों की विदाई हो रही है। निषाद की बिदाई हो रही है। अतः सब कहते हैं कि सरकार धन्य हैं : धन्य हैं। सुख की राशि हैं। छोटों को इतनी बड़ाई देते हैं।

राम राज बैठे त्रैलोका। हरषित भए गए सब सोका ॥
बयरु न कर काहू सन कोई। राम प्रताप बिषमता खोई ॥४॥

अर्थ : रामजी राज्य पर बैठे। तीनों लोक हर्षित हुए और सब शोक गया। कोई किसी से बैर नहीं करता था। रामजी के प्रताप से विषमता जाती रही।

व्याख्या : सरकार के सिंहासनारूढ होते ही तीनों लोक आनन्दित हो उठा। क्योंकि सबका शोक दूर हो गया। कालस्य कारणं राजा कालो वा राजकारणम्। इति ते संशयो मा भूद् राजा कालस्य कारणम्। काल का कारण राजा है या राजा का काल कारण है इस विषय में सन्देह नहीं करना चाहिए। राजा ही काल का कारण है। राजा के बुरे भले होने के साथ काल पलटा खा जाता है। अतः त्रिलोक हर्षित हुआ। उसका शोक जाता रहा। अर्थात् भूमा आनन्द में निमग्न हुआ।

उनकी विषमता रामजी के प्रताप से नष्ट हो गयी। अतः सब में समता आगयी। अतः किसी से कोई बैर नहीं करता था। विषमता ही शोक का मूल है। उसके नष्ट होते ही शोक नष्ट हो गया।

८४. पुरवर्णन तथा : अनेक : नृपनीतिप्रसङ्ग

दो. बरनाश्रम निज निज धरम, निरत बेद पथ लोग।
चलहिं सदा पावहिं सुखहिं, नहि भय सोक न रोग ॥२०॥

अर्थ : सब लोग अप.. वर्ण और अपने आश्रम धर्म में लगे हुए वेद के अनुसार आचरण करते थे। सदा सुख ही पाते थे। उन्हें भय शोक और रोग नहीं होता था।

व्याख्या : वैषम्य सृष्टि है और साम्य ही प्रलय है। जबतक संसार को बना रहना है तबतक उसमें ऊँचा नीचा का व्यवहार बना ही रहेगा। इसे कोई मिटा नहीं सकता। अतः भगवान् ने उच्च नीच भेदवाली सृष्टि रचकर : उनके हिताहित के परिज्ञान के लिए वेदों का निर्माण किया। जिस भाँति पिता पुत्रों को उत्पन्न करके : उन्हें कर्तव्याकर्तव्य का ज्ञान कराने के लिए शिक्षा की व्यवस्था करता है। आज भी वेद को छोड़कर कोई आदि उपदेष्टा उपलब्ध नहीं है। अतः वेदादि शास्त्र के अनुसरण से ही संसार को सुख होगा। उसके अनादर से भय शोक और रोग अवश्यम्भावी है। जिस मात्रा से जो जाने या बिना जाने वेदादि शास्त्रों का अनुसरण करता है या विरोध करता है उसी मात्रा से वह सुखी या दुःखी होता है।

भगवान् शाण्डिल्य ने यही बात : निर्मायोच्चावचं श्रुतींश्च निर्ममे पितृवत् । इस सूत्र में कही है ।

[1]वेद में जिसकी विधि है उसे धर्म और जिसका निषेध है उसे अधर्म कहते हैं । उस धर्म के भी दो भेद हैं एक [2]सनातन धर्म और वर्णाश्रम धर्म । सनातन धर्म मनुष्य मात्र के लिए है । वही मनुष्य में मनुष्यता है । इसका वर्णन स्वयं नारायण ने अपने मुख से किया है । सत्य, दया, तप, शौच, तितिक्षा, विचार, शम, दम, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, त्याग, स्वाध्याय, सीधापन, सन्तोष, समदृष्टि, सेवा, ग्राम्य सुखों से क्रमशः उपरम, मनुष्यों के विपरीत भावना पर विचार, मौन, आत्मविचार, यथायोग्य प्राणियों में अन्नादि का विभाग, उनमें आत्म देवता बुद्धि और विशेषतः मनुष्यों में भगवान् का श्रवण, कीर्तन, स्मरण, बड़ों के पथ का अनुसरण, पूजा, नमस्कार, दास्य, सखा, आत्मसमर्पण, यही तीस लक्षणवाला धर्म सभी मनुष्यों के लिए है । इसी से सर्वात्मा भगवान् तुष्ट होते हैं । ये लक्षण जितने ही अधिक मनुष्य में मिलें उतनी ही अधिक मनुष्यता उसमें समझनी चाहिए । कोई भी इसकी सचाई परख सकता है । यही सनातन धर्म है । आजकल सनातन धर्म और वर्णाश्रम धर्म शब्द के प्रयोग में बड़ा गोलमाल हो रहा है ।

सनातन धर्म मनुष्य मात्र के लिए है और वर्णाश्रम धर्म केवल उनके लिए है जिनके संस्कार अविच्छिन्न चले आते हैं तथा जिनके जन्म और कर्म शुद्ध हैं । यथा : संस्कारा यत्राविच्छिन्नाः स द्विजोऽजो जगादयम् । इज्याध्ययनदानानि विहितानि द्विजन्मनाम् । जन्मकर्मावदातानां क्रियाश्चाश्रमचोदिताः । भाग० स्कन्ध ७ अ० ११. ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्र ये ही चार वर्ण हैं और ब्रह्मचर्य गार्हस्थ्य वानप्रस्थ और संन्यास ये ही चार आश्रम हैं । ये अपने अपने कर्म में अभिरत होने से सिद्धि को प्राप्त होते हैं । दूसरे के धर्म में अभिरत होना पाप है । यथा : श्रेयान् स्वधर्मो विगुणः परधर्मो भयावहः । अपना गुणहीन धर्म भी अच्छा है । क्योंकि पर धर्म भयावह होता है । राजा दण्डधरो गुरुः है । उसका कर्तव्य है कि किसी को अपने धर्म से डिगने न दें । श्रीरामचन्द्र ने ऐसा किया । अतः उनके राज्य में सुख ही सुख रहा । किसी को भय शोक या रोग नहीं होने पाया । वर्णाश्रम धर्म में निरत लोग वेद पथ से चलते थे । अर्थात् त्रिंशल्लक्षणवाले सनातन धर्म का पालन करते थे ।

---

१. चोदनालक्षणोऽर्थो धर्मः ।

२. वक्ष्ये सनातनं धर्मं नारायणमुखाच्छ्रुतम्""सत्यं दया तपः शौचम् तितिक्षेक्षाशमो दमः । अहिंसा ब्रह्मचर्यंश्चत्यागः स्वाध्याय आर्जवम् । सन्तोषः समदृक् सेवा ग्राम्येहोपरमः शनैः । नृणां विपर्ययेहेक्षा मौनमात्मविमर्शनम् । अन्नाद्यादेः संविभागो भूतेभ्यश्च यथार्हतः । तेष्वात्म-देवताबुद्धिः सुतरां नृषु पाण्डव । श्रवणं कीर्तनं चास्य स्मरणं महतां गतेः । सेवेज्यावनतिर्दास्यं सख्यमात्मसमर्पणम् । नृणामयम् परो धर्मः सर्वेषां समुदाहृतः । त्रिंशल्लक्षणवान् राजन् सर्वात्मा येन तुष्यति । भा० ७ स्कं० ११ अ० ।

दैहिक दैविक भौतिक तापा। रामराज नहि काहुहि ब्यापा ॥
सब नर करहिं परसपर प्रीती। चलहिं स्वधर्म निरत स्रुति नीती ॥१॥

अर्थ : राम राज्य में आध्यात्मिक आधिभौतिक और आधिदैविक ताप किसी को नहीं व्यापा। सब लोग एक दूसरे से प्रीति करते थे। वेद की रीति से अपने धर्मानुसार चलते थे।

व्याख्या : ऊपर कह आये हैं : बैर न कर काहू सन कोई। परन्तु राम राज्य में इतना ही नहीं था। इतना तो उपेक्षा से भी होता है। यहाँ तो सब आपस में प्रेम करते थे। अतः दैहिक ताप नहीं होता था : राग द्वेष से धातुवैषम्य होकर ही दैहिक ताप होता है : और स्वधर्म निरत होकर यज्ञ यागादिक करने से दैविक ताप नहीं होता था। यथा : इष्टान् भोगान् हि वो देवा दास्यन्ते यज्ञभाविताः। यज्ञ से पूजित होकर देवता लोग इष्ट भोग प्रदान करते हैं। श्रुति रीति में निरत होने से भौतिक ताप नहीं होता। पञ्चभूत अधर्माचरण के न होने से दूषित नहीं होते। अतः भौतिक ताप नहीं होता था। अथवा अधर्माचरण के अभाव से उसका फल दुःख नहीं होता था।

चारिहु चरन धरम जग माँही। पूरि रहा सपनेहु अघ नाँही ॥
राम भगति रत नर अरु नारी। सकल परम गति के अधिकारी ॥२॥

अर्थ : संसार में धर्म चारों चरणों से पूर्ण हो रहा था। पाप का सपना भी नहीं था। स्त्री पुरुष सब राम भक्ति में लगे हुए थे। सब परमगति के अधिकारी थे।

व्याख्या : धर्म के चार चरण कहे गये हैं। तपः शौचं दया सत्यम् इति पादाः प्रकीर्तिताः। एक तप दूसरा शौच तीसरी दया और चौथा सत्य। युग के ह्रास के साथ धर्म का ह्रास भी होता है। रामावतार त्रेता के अन्त में होता है। अतः नियम यह है कि उस समय एक चरण अर्थात् तप का ह्रास हो जाय। परन्तु ऐसा नहीं हुआ। क्योंकि राजा ही युग है। राजा हि युगम् : राजा के पूर्ण धर्मात्मा होने से प्रजा आप से आप धर्मात्मा हो जाती है। पाप का संस्कार भी किसी को नहीं। अतः किसी को पाप का सपना भी नहीं होता था। स्त्री और पुरुष सब रामजी की भक्ति में रत थे। इसलिए मोक्ष के अधिकारी हो गये थे। मोक्ष लेते न थे। यथा : सगुन उपासक मोक्ष न लेहीं। तिन कहँ राम भगति निज देहीं। चारिहु चरन पूरि जग माही से कर्मकाण्ड कहा। राम भगति रत से उपासनाकाण्ड कहा और परमगति के अधिकारी से ज्ञानकाण्ड कहा।

अल्प मृत्यु नहि कवनिउ पीरा। सब सुंदर सब बिरुज सरीरा ॥
नहि दरिद्र कोउ दुखी न दीना। नहि कोउ अबुध न लच्छन हीना ॥३॥

अर्थ : न कोई अल्पायु होता था न किसी को कोई पीड़ा थी। सब सुन्दर

और सब निरोग थे। न कोई दरिद्र था न दीन था। न कोई मूर्ख था और न कोई कुलक्षण था।

व्याख्या : अल्पायु होना पीड़ित होना कुरूप होना रोगी होना दरिद्र होना दीन होना मूर्ख होना कुलक्षण होना : यह सब पाप का फल है। सो ये सब कोई बातें अवधवासियों में दिखाई नहीं पड़ती थीं। भाव यह कि सब पुण्यात्माओं ने ही उस समय अवध में जन्म ग्रहण किया था और पुण्याचरण करते थे। अतः दुःखी होने का कोई योग ही नहीं था। जाम्बवानजी ने जो कहा वही न्याय यहाँ समझ लेना चाहिए : हम सब सेवक अति बड़ भागी। संतत सगुन ब्रह्म अनुरागी। निज इच्छा प्रभु अवतरइ सुर महि गोद्विज लागि। सगुन उपासक संग तहँ रहहि मोक्ष सुख त्यागि।

सब निर्दंभ धर्मरत पुनी। नर अरु नारि चतुर सब गुनी॥
सब गुनज्ञ पंडित सब ज्ञानी। सब कृतज्ञ नहि कपट सयानी॥४॥

अर्थ : सब दम्भ से रहित धर्म में रत और दयावान थे। सब स्त्री और पुरुष चतुर और गुणी थे। सब गुणों के जाननेवाले पण्डित और ज्ञानी थे। सब उपकार माननेवाले थे। कपट की चतुरता किसी में नहीं थी।

व्याख्या : अब लोगों के वर्तमान जन्म का पुण्य कहते हैं। दम्भ धर्म का नाशक है। यथा : करउँ जो कछु धरउँ रचि पचि सुकृत सिला बटोरि। पैठि उर बरबस कृपानिधि दंभ लेत अँजोरि। स्त्री पुरुष सब लोग दम्भ रहित होकर धर्माचरण करते थे। वे पुण्यात्मा लोक द्वय के साधन में चतुर थे। गुण दूषक नहीं थे। गुणों के जाननेवाले थे। गतासूनगतासूंश्च नानुशोचन्ति पण्डिताः। अथवा क्रियावान् स च पण्डितः। जो मर गये और जो नहीं मरे हैं उनका सोच न करनेवाले को पण्डित कहते हैं। अथवा क्रियावान् को पण्डित कहते हैं। जो सब में ब्रह्म को समान देखते हैं उन्हें ज्ञानी कहते हैं। कृतेषु प्रतिकर्तव्यं ह्येष धर्मः सनातनः। जो उपकार करे उसका प्रत्युपकार करना सनातन धर्म है। ये सब गुण उन लोगों में थे। कपट करने में चतुर कोई नहीं था। अल्प मृत्यु नहिं कवनिउ पीरा से कालकृत दुःख का न होना कहा। नहिं दरिद्र कोउ दुखी न दीना से कर्म कृत दुःख न होना कहा। सब निर्दम्भ धर्मरत पुनी से स्वभाव कृत दुःख का न होना कहा। तथा : सब गुनज्ञ पंडित सब ज्ञानी से गुण कृत दुःख का न होना कहा।

दो. रामराज नभगेस सुनु, सचराचर जग माँहि।
काल कर्म सुभाव गुन, कृत दुख काहुहि नाँहि॥२१॥

अर्थ : हे पक्षिराट् सुनो! रामजी के राज्य में चर अचर सहित जगत् में काल कर्म गुण और स्वभाव का किया हुआ दुःख किसी को नहीं था।

व्याख्या : आकर चारि लाख चौरासी। जोनि भ्रमत यह जिव अविनासी। फिरत सदा माया कर फेरा। काल कर्म स्वभाव गुन घेरा। काल कर्म स्वभाव और

गुण के घेरे में तो लोग थे। पर उनके होने से जो दु:ख होता है वह किसी को नहीं था। यथा : उमा अवध बासी नर नारि कृतारथ रूप। ब्रह्म सच्चिदानंद घन रघुनायक जहँ भूप।

भूमि सप्त सागर मेखला। एक भूप रघुपति कोसला ॥
भुअन अनेक रोम प्रति जासू। यह प्रभुता कछु बहुत न तासू ॥१॥

अर्थ : सातो समुद्र मेखला हैं जिसकी ऐसी भूमि के एक राजा कोशल के रघुपति रामजी थे। जिसके एक एक रोम में अनेक भुवन हैं। उसके लिए यह प्रभुता कुछ बड़ी नहीं है।

व्याख्या : श्रीरामजी का शासन केवल जम्बूद्वीप पर ही नहीं था। अन्य छः द्वीप भी उन्हीं के शासन में थे। जम्बूद्वीप के चारो ओर लवण समुद्र है। उसी का पूरा पूरा पता हम लोगों को नहीं है। हम लोग जम्बूद्वीप के कुछ अंश को ही पृथिवी जानते हैं। शेष छः द्वीप पृथिवी के खण्ड होते हुए भी दिव्य हैं। वे स्थूल दृष्टि से देखे नहीं जा सकते। सूर्य में संयम करने से ही सम्पूर्ण भुवन का ज्ञान होता है। यथा : सूर्ये संयमात् भुवनज्ञानम् : यो. सू. : शेष छः समुद्र और द्वीप स्थूल दृष्टि से देखे नहीं जाते। सो सरकार सातो द्वीप के सम्राट् थे।

सरकार के अखण्ड रूप का वर्णन करते हुए कहा गया है : दिखरावा मातहि निज अद्भुत रूप अखंड। रोम रोम प्रति लागे कोटि कोटि ब्रह्मंड। ऐसे प्रभु को एक ब्रह्माण्ड का अधिपति बतलाना तो उसकी महिमा को घटाना है। इस प्रकार बड़ाई यदि जीव के लिए करते तो उसकी महिमा का बढ़ाना कहा जा सकता है।

सो महिमा समुझत प्रभु केरी। यह बरनत हीनता घनेरी ॥
सो महिमा खगेस जिन जानी। फिर एहि चरित तिनहु रति मानी ॥२॥

अर्थ : सरकार की उस महिमा पर ध्यान देने से ऐसे वर्णन करने में तो बड़ी हीनता है। पर हे पक्षिराट् ! जिसने वह महिमा जान रक्खी है वह भी इस चरित्र में प्रेम करता है।

व्याख्या : सरकार की उस महिमा पर ध्यान देने से निस्सन्देह ऐसे वर्णन में उनकी हीनता है। जैसे किसी सम्राट् को कोई ग्रामपति कहकर वर्णन करे तो सम्राट् की उसमें हीनता होगी। परन्तु कवि कहते हैं कि मैं तो ऐश्वर्य वर्णन करने नहीं चला हूँ। मैं तो माधुर्य वर्णन करनेवाला हूँ। पर माधुर्य में ऐसा ऐश्वर्य लक्षित होता है जिसका वर्णन किया गया है।

भुसुण्डिजी कहते हैं कि उस महिमा के जानकर भी तो इस चरित्र में प्रेम करते हैं। भाव यह है कि जो सम्राट् की महिमा को जानता है उसी को सम्राट् के साधारण मनुष्यों में मिलकर व्यवहार करने के गौरव का पता चलेगा। अतः कहा गया है : जीवन्मुक्त ब्रह्म पर चरित सुनहि तजि ध्यान। जे हरि कथा न करहिं रति तिनके हिय पाखान।

सोउ जानेकर फल येह लीला। कहहिं महा मुनिबर दमसीला ॥
राम राज कर सुख संपदा। बरनि न सकै फनीस सारदा ॥३॥

अर्थ : उस जानने का फल यह लीला है। इस बात को दमशील महामुनि कहते हैं। रामराज्य के सुख सम्पदा को शेष शारदा नहीं कह सकते।

व्याख्या : उस महिमा के जाननेवालों के भी इस चरित में रति मानने का कारण देते हैं कि यह लीला उस महिमा के जानने का फल है। उस महिमा के जाननेवाले ब्रह्मादिक की प्रार्थना पर ही सरकार ने अवतार ग्रहण करके यह लीला की। जिस महिमा को वे जानते थे उस महिमावाली मूर्ति से काम न चला। जिस भाँति वृक्ष से काम नहीं चलता उसके फल से काम चलता है उसी भाँति भुवन अनेक रोम प्रति जासू से काम न चला। उन्होंने राम रूप से अवतीर्ण होकर लीला की। तब संसार कृतकृत्य हो सका। अतः तब तब कथा मुनी सन्ह गाई। जो सुनत गावत कहत समुझत परम पद नर पावई।

रामराज्य के सुख सम्पदा का वर्णन करते हुए गोस्वामीजी ने कहा है कि कामधुक् महि कामतरु तरु उपल मनिगन लाल : हो गये। फिर भी कहते हैं कि उसे स्वर्ग की वक्ता सरस्वती तथा पाताल लोक के वक्ता शेष भी वर्णन नहीं कर सकते। मनुष्य लोक के वक्ता क्या कह सकेंगे। भाव यह कि माधुर्य में भी अपूर्व ऐश्वर्य है।

सब उदार सब पर उपकारी। बिप्र चरन सेवक नरनारी ॥
एक नारि ब्रतरत सब झारी। ते मन बच क्रम पति हितकारी ॥४॥

अर्थ : सब लोग उदार थे सब पर उपकारी थे। स्त्री पुरुष ब्राह्मण के चरणों के सेवक थे। सब एक नारीव्रत थे और सब नारी मनसा वाचा कर्मण पति की हितकारिणी थीं।

व्याख्या : इतनी सम्पदा थी और उसे लोग सार्थक करते थे। क्योंकि सब उदार और परोपकारी थे। उनकी सम्पत्ति का विनियोग दान में होता था। यथा : सो धन धन्य प्रथम गति जाकी। और दूसरी बात यह थी कि ब्राह्मण के चरणों के सेवक स्त्री पुरुष सब थे। पुण्य एक जग महँ नहि दूजा। मन क्रम बचन बिप्र पद पूजा। यथा राजा तथा प्रजा। सरकार एक नारीव्रत थे। अतः सम्पूर्ण प्रजा एक नारीव्रत हो गयी। स्त्रियाँ सब पतिव्रता थीं। यथा : एकइ धर्म एक व्रत नेमा। काय बचन मन पति पद प्रेमा। एवं सारी प्रजा पुण्यवान् थी।

दो. दंड[1] जतिन्हकर भेद जहँ, नर्तक नृत्य समाज।
जीतहु मनहि सुनिअ अस, रामचन्द्र कें राज ॥२२॥

---

१. यहाँ परिसंख्या अलंकार है।

अर्थ : यतियों के हाथ में दण्ड था। नर्तक नृत्य समाज में ही भेद था तथा जीतने की वस्तु केवल मन था। ऐसा रामराज्य में सुना जाता है।

व्याख्या : कवि कहते हैं कि रामराज्य के विषय में सुना जाता है कि उसमें दण्ड का व्यवहार ही नहीं था। क्योंकि कोई अपराधी ही नहीं था। दण्ड नामक वस्तु सन्यासियों के हाथ में था कि अमुक एकदण्डी हैं और अमुक त्रिदण्डी हैं। भेद बुद्धि नर्तक नृत्य समाज में ही थी। यहाँ सूक्ष्मातिसूक्ष्म भेद में ही पण्डिताई है। जीतने के लिए कोई शत्रु नहीं था। केवल मन के जीतने की ही वहाँ चर्चा थी।

फूलहिं फरहिं सदा तरु कानन। रहहिं एक संग गज पंचानन ॥
खग मृग सहज बयरु बिसराई। सबन्हि परसपर प्रीति बढ़ाई ॥२॥

अर्थ : वन के वृक्ष सदा फूलते फलते थे। हाथी और सिंह एक साथ रहते थे। पशु पक्षी स्वाभाविक वैर भूलकर सबों ने आपस में प्रीति बढ़ा ली थी।

व्याख्या : अब वन की समृद्धि कहते हैं। पहिले सरकार जहाँ जहाँ निवास करते थे वहाँ वन के पेड़ कालगति का परित्याग करके फलने लगते थे। यथा : सब तरु फरे राम हित लागी। रितु अरु कुरितु काल गति त्यागी। अब तो सरकार सिंहासनारूढ़ हो गये। अतः वनों के वृक्ष सदा फूलने फलने लगे। धर्म राज्य में पृथिवी कामधेनु हो जाती है। खग और मृग स्वाभाविक वैर भूल गये। जैसे काक और उलूक में सहज वैर है। अश्व और महिष में सहज वैर है। इन सबों ने आपस में प्रेम कर लिया। इसी भाँति हाथी और सिंह एक साथ रहने लगे। जिस वन में सिंह आजाता है उस वन को हाथी छोड़ देते हैं। सो एक साथ रहने लगे। शङ्का उठती है कि तब सिंह क्या घास खाते थे? उत्तर दिया जा सकता है कि दूध पीते थे।

कूजहिं खग मृग नाना बृंदा। अभय चरहिं बन करहिं अनंदा ॥
सीतल सुरभि पवन बह मन्दा। गुंजत अलि लै चलि मकरंदा ॥३॥

अर्थ : पक्षी कलरव करते थे। मृगों के समूह वनों में निर्भय चरते थे और आनन्द करते थे। शीतल मन्द सुगन्ध वायु बहती थी और भौंरे फूलों का रस लेकर गुञ्जार करते चलते थे।

व्याख्या : सरस वन में ही पक्षी और मृग रहते हैं। पर ये सदा सशङ्क रहते हैं। कहा है कि सहंवासी काचो गिलैं पुरजन पाक प्रबीन। कालछेप केहि मिलि करहिं तुलसी खग मृग मीन। अब किसी को किसी से भय नहीं रह गया। अतः पक्षी चहचहा रहे हैं। मृग वन में कलोल करते हैं। किसी को किसी से भय नहीं है। वन का हिम आतप वात दुःसह होता है। परन्तु रामराज्य में उसका बहना बन्द हो गया। शीतल मन्द सुगन्ध पवन बहता है। भौंरे स्वयं तो तृप्त हो गये। तत्पश्चात् मकरन्द लेकर इकट्ठा करने के लिए आनन्द से गुञ्जार करते चलते थे।

लता बिटप माँगे मधु चवहीं । मन भावतो धेनु पय स्रवहीं ॥
ससि संपन्न सदा रह धरनी । त्रेता भै सतजुग कै करनी ॥४॥

अर्थ : लता और विटप माँगने से मधु शहद गिराते थे । और जितना चाहे उतना दूध गाय देती थी । पृथिवी सदा धान्य से पूर्ण रहती थी । त्रेता में सत्ययुग का हाल हो गया ।

व्याख्या : जो सिद्धियाँ मधु विद्या से होती थीं वे आप से आप होने लगीं । वृक्ष प्रार्थना सुनते थे माँगने पर यथेप्सित मधु गिरा देते थे और गाय से जितने दूध की आवश्यकता होती थी दूध लेते थे । पृथिवी कभी धान्य से खाली नहीं रहती थी । यह सब सत्ययुग में होता था । एक पाद का ह्रास होने से त्रेता में यह बात नहीं होती थी । अतः चारो चरण धर्म के होने से त्रेता में सत्यगुण आगया । इसलिए कहते हैं : राजा हि युगमुच्यते ।

प्रकटी गिरिन्ह बिबिध मनि खानी । जगदातमा भूप जग जानी ॥
सरिता सकल बहहिं बरबारी । सीतल अमल स्वादु सुख कारी ॥५॥

अर्थ : जगदात्मा को जगत् का राजा जानकर पर्वतों ने अनेक प्रकार की खानें प्रकट करदीं । नदियाँ उत्तम जल बहने लगीं । जो शीतल निर्मल स्वादिष्ट और सुखकारी था ।

व्याख्या : पर्वतों में से आप से आप नाना की मणियों की खानें प्रकट होने लगीं । पर्वतों की ओर से यह सेवा सरकार की होने लगी । खानें राजा की सम्पत्ति मानी जाती हैं । जगदात्मा ही जब राजा है तो उन्हीं की सब वस्तुएँ हैं । यह जानकर : त्वदीयं वस्तु गोविन्द तुभ्यमेव समर्पये : इसी न्याय से पर्वत खानों को प्रकट करने लगे ।

नदियों के जल में भेद होता है किसी का जल उत्तम होता है किसी का नहीं । शीतल निर्मल स्वादिष्ट और सुखकारो होना ही जल की श्रेष्ठता है । सो ये गुण सभी नदियों के जलों में पाया जाने लगा । यह नदियों की सरकार के प्रति सेवा है । भावार्थ यह कि प्रकृति की कल्याणवहा प्रवृत्ति हो गयी ।

सागर निज मरजादा रहहीं । डारहिं रतन तटन्हि नर लहहीं ॥
सरसिज संकुल सकल तड़ागा । अति प्रसन्न दस दिसा बिभागा ॥६॥

अर्थ : समुद्र अपनी मर्यादा में रहने लगे । वे किनारो पर रत्न फेंक देते थे जो लोगों को मिलते थे । दशो दिशाओं के विभाग अत्यन्त प्रसन्न थे ।

व्याख्या : समुद्र के मर्यादा त्याग से खण्ड प्रलय हो जाता है सो समुद्र अपनी मर्यादा का कभी अतिक्रमण नहीं करते थे । उनका नाम ही रत्नाकर है । आजकल जिस भाँति समुद्र के ज्वारभाटा में जब पानी घटता बढ़ता है तो अगणित घोंघे,

सीपियाँ और शङ्ख तट पर आजाते हैं। उस समय उसी भाँति रत्न तट पर आजाते थे। जो लोगों को अनायास ही प्राप्त होते थे।

जितने तालाब थे सब कमलों से सुशोभित थे। तालाब की शोभा कमलों से ही होती है। वायु की मलिनता से ही दिशा के विभाग स्पष्ट नहीं मालूम होते। जब वायु शुद्ध रहती है तो दसो दिशायें स्पष्ट दृष्टिगोचर होती हैं।

दो. बिधु महि पूर मयूखन्हि, रबि तप जेतनहि काज।
मागें बारिद देहिं जल, रामचंद्र कें राज ॥२३॥

अर्थ : चन्द्रमा पृथ्वी को अपने किरणों से आप्लावित करते थे। और सूर्य भी आवश्यकतानुसार ही तपते थे। रामचन्द्र के राज में माँगने से मेघ वर्षा करते थे।

व्याख्या : सारा संसार सरस हो उठा। सुधाकर सुधा से पृथिवी को पूर्ण करते थे। सूर्यनारायण भी पूषण होकर पोषण करते थे : शोषण नहीं आवश्यकतानुसार ही तपते थे। अतिवृष्टि अनावृष्टि का नाम नहीं। जब लोग जल माँगते थे तब वर्षा होती थी : चारो चरण से धर्म के बर्ते जाने से सारी प्रकृति अनुकूल हो गयी। पञ्च महाभूत की प्रवृत्ति सुखमय हो गयी : पृथिवी यथा : ससि सम्पन्न सदा रह धरनी। इत्यादि। जल यथा : सरिता सकल बहहिं बरवारी। इत्यादि। तेज यथा : रवि तप जेतनहिं काज। वायु यथा : सीतल सुरभि पवन बह मंदा। आकाश यथा : अति प्रसन्न दस दिसा विभागा।

कोटिन्ह बाजिमेध प्रभु कीन्हे। दान अनेक द्विजन्ह कहुँ दीन्हे॥
स्रुतिपथ पालक धर्म धुरंधर। गुनातीत अरु भोग पुरंदर ॥१॥

अर्थ : सरकार ने करोड़ों अश्वमेघ किये। ब्राह्मणों को अनेक दान दिये। सरकार वेदमार्ग के पालन करनेवाले धर्म की धुरी धारण करनेवाले गुणों से परे और भोग में तो साक्षात् इन्द्र हैं।

व्याख्या : सरकार ने करोड़ों अश्वमेघ यज्ञ किये। अश्वमेघ पुण्य की अवधि है। अश्वमेघ यज्ञ में साल भर तो घोड़ा ही घूमता है। फिर करोड़ों अश्वमेघ कैसे सम्भव है ? यह शङ्का उठ सकती है। एक अश्वमेघ करके जो दक्षिणा ब्राह्मणों को दी जाती है उसको जितना गुणा अधिक करके दिया जाता है उतने अश्वमेघ का फल होता है। अतः करोड़ों अश्वमेघ करना असम्भव नहीं था। भरतजी की सम्मति न होने से राजसूय नहीं किया। बहिर्वेदी दान भी बहुत किया। सरकार ने वेदमार्ग से सबको चलाया अतः उन्हें श्रुतिपथ पालक कहते हैं और स्वयं धर्म का कभी परित्याग नहीं किया इसलिए धर्मधुरन्धर कहते हैं। भोग में इन्द्र के समान होने पर भी सदा गुणातीतावस्था में ही रहे। ९९ रास तो रामावतार में ही हुए। सौवाँ रास कृष्णावतार में किया। यह सब राम रहस्य के अन्तर्गत है।

पति अनुकूल सदा रह सीता। सोभाखानि सुसील बिनीता ॥
जानति कृपासिंधु प्रभुताई। सेवति चरनकमल मनु लाई ॥२॥

अर्थ : शोभा की खानि सुशील और विनीत सीताजी सदा पति के अनुकूल रहती थीं। कृपासिन्धु की प्रभुताई जानती थीं। मन लगाकर चरण कमल की सेवा करती थीं।

व्याख्या : राज्य का हाल कहकर राजा का हाल कहा। अब महारानी का हाल कहते हैं कि महारानी सीताजी सदा पति के अनुकूल रहती थीं। अपने धर्म पर दृढ़ थीं। भगवती शोभा की खानि हैं। जासु अंस उपजहिं गुनखानी। अगनित लच्छि उमा ब्रह्मानी। वय से शोभा में अन्तर नहीं आता। क्योंकि शोभा खानि हैं। सम्राज्ञी होने से शील और विनय में अन्त नहीं। जैसी पहिले थीं वैसी ही पट्टाभिषिक्ता महिषी होने पर भी बनी हैं। शील और विनय में कोई अन्तर नहीं हुआ।

सरकार की माधुर्य लीला में उन्हें ऐश्वर्य का विस्मरण नहीं है। अतः उनकी कृपा और प्रभुता दोनों को जानती हैं। अतः मन लगाकर चरण कमल की सेवा करती हैं। चरणकमल की सेवा की पूरी अधिकारिणी जगदम्बा ही हैं। यथा : जानकी करसरोजलालितौ।

यद्यपि गृह सेवक सेवकिनी। बिपुल सकल सेवाबिधि गुनी ॥
निजकर गृह परिचर्या करई। रामचन्द्र आयसु अनुसरई ॥३॥

अर्थ : यद्यपि घर में सेवक और दासियाँ बहुत थीं और वे सब सेवाविधि की जानकर थीं। फिर भी सीताजी घर का कार्य स्वयं करती थीं। और रामजी की आज्ञा का पालन करती थीं।

व्याख्या : सम्राट् का महल है। दास दासियों का घाटा नहीं है और यह भी नहीं कि वे सेवा विधि से अनभिज्ञ हों। फिर भी स्त्री धर्म को देखते हुए भगवती अपने हाथों से घर का कार्य करती थीं। स्त्रियों को पाक बनाने से अग्निहोत्र का फल होता है। इसी भाँति गृह मार्जनादि के अनेक फल धर्मशास्त्र बतलाते हैं। अतः गृह कार्य करना स्त्रियों का धर्म है। इसे दूसरे पर नहीं छोड़ना चाहिए। सो जगदम्बा घर का कार्य स्वयं करती थीं और सरकार का आज्ञापालन करती थीं।

जेहि बिधि कृपासिंधु सुख मानइ। सोइ कर श्री सेवा बिधि जानइ ॥
कौसल्यादि सासु गृह माँहीं। सेवइ सबन्हि मान मद नाहीं ॥४॥
उमा रमा ब्रह्मादि बंदिता। जगदम्बा संततमनिंदिता ॥५॥

अर्थ : जिस विधि से कृपासिन्धु रामजी सुख मानते थे लक्ष्मी वही करती थीं। वे सेवा की विधि जानती थीं। घर में कौसल्या आदि सास थीं। सब की सेवा करती थीं। उन्हे मान या मद नहीं था। उमा रमा और ब्रह्माणी से वन्दित जगत् जननी सदा ही अनिन्दिता हैं।

व्याख्या : सीताजी को अपना सुख सुख ही नहीं है। सरकार के सुख से हो वे सुखी हैं। वह सेवा की विधि जानती हैं। सेव्य के स्वभाव को पहिचानकर उसके रुख को देखकर तदनुकूल करना ही सेवा विधि है। अतः जिस प्रकार से सरकार सुखी होते थे वही सीताजी करती थीं।

केवल पति ही की सेवा नहीं। घर में कौसल्या आदि सास हैं। सीताजी उनकी सेवा में भी सुख मानती थीं। अपना परम कर्तव्य समझती थीं। बनवास के समय इन्हें यही दुःख था कि सासों की सेवा छूटी जाती है। यथा : सेवा समय दैव बन दीन्हा। मोर मनोरथ सफल न कीन्हा। अतः उनकी सेवा करके अपना मनोरथ सफल करती थीं। पट्टाभिषिक्ता महिषी होने का न मान था न मद था।

उमा रमा ब्रह्माणी इनके अंश से उत्पन्न हुई हैं। अतः अंशी की सदा वन्दना करती हैं। महिमा इतनी अधिक है : जगत् की जननी हैं। उनको सास कौन हो सकती है यदि सेवा न करें तो भी उनको निन्दा नहीं हो सकती। आदि सक्ति जेहि जग उपजाया। सो अवतरिहि मोरि यह माया।

दो. जासु कृपा कटाक्ष सुर, चाहत चितव न सोइ।
राम पदारबिंद रति, रहत सुभावहि खोइ ॥२४॥

अर्थ : जिनके कृपा कटाक्ष को देवता चाहते हैं और वह नहीं देखतीं। वे अपने स्वभाव को छोड़कर रामजी के चरण कमलों में रत हैं।

व्याख्या : जगदम्बा का कृपाकटाक्ष देवता चाहते हैं। लोकपाल होने के लिए उनकी कृपाकटाक्ष के लिए बड़ा भारी पुण्यसमूह होना चाहिए। वह भगवती महालक्ष्मी अपने स्वाभाविक चाञ्चल्य को छोड़कर रामजी के चरणविन्द की सेवा कर रही हैं। यद्यपि परम चपल श्री संतत थिर न रहति कतहूँ। हरिपद पंकज पाइ अचल भइ करम बचन मनहूँ। सीता परित्याग विषयक प्रश्न ही उमा ने नहीं किया। अतः वह कथा मानस में नहीं कही गयी। प्रश्न नहीं करने का कारण यह था कि उमा ने सती शरीर से परीक्षा करके देख लिया था कि वस्तुतः सीताराम इस अनादि मिथुन में वियोग सम्भव ही नहीं है।

सेवहिं सानुकूल सब भाई। रामचरण रति अति अधिकाई ॥
प्रभु मुख कमल बिलोकत रहहीं। कबहुँ कृपालु हमहि कछु कहहीं ॥१॥

अर्थ : सब भाई सानुकूल रहकर सेवा करते थे। रामचरण में उनकी प्रीति अत्यन्त बढ़ी हुई थी। सरकार के मुख कमल को देखा करते थे कि कभी मेरे लिए कोई आज्ञा हो।

व्याख्या : चक्रवर्तीजी ने पहिले ही कहा था : करिहहिं भाइ सकल सेवकाई। वैसा ही यहाँ हो रहा है। भय या आशा से सेवा नहीं करते अपने को कृतार्थ करने के लिए सेवा करते हैं। इसीलिए सानुकूल कहा। रामजी के चरणों में उनकी प्रीति इतनी बढ़ी चढ़ी है कि उनकी सेवा मे ही उन्हें सुखबोध होता है।

सेवा करनेवालों का घाटा नहीं है। रामजी के ध्यान में भाइयों की ही सेवा का उल्लेख है। इससे यह सिद्ध होता है कि भाई लोग सदा साथ रहते थे।

भाई लोग सदा मुँह जोहा करते थे कि कौन जाने किस समय मुझे आज्ञा देने की सरकार कृपा करें। अथवा आज्ञा पाने की उत्कण्ठा थी कि कभी कृपा करके मुझे भी किसी काम के लिए आज्ञा दें। क्योंकि आज्ञा सम न सुसाहिब सेवा। सो ऐसी सेवा का भी अवसर प्राप्त हो। सरकार पूर्णकाम हैं। उन्हें कोई आवश्यकता नहीं। उनको आज्ञा देना कृपा करना है। इसीलिए यहाँ कृपाल विशेषण दिया।

राम करहि भ्रातन्ह पर प्रीती। नाना भाँति सिखावहिं नीती॥
हरखित रहहि नगर के लोगा। करहि सकल सुर दुर्लभ भोगा॥२॥

अर्थ : रामजी भाइयों पर प्रीति करते थे। उन्हें अनेक प्रकार की नीति सिखलाते थे। नगर के लोग हर्षित रहते थे और सब सुरदुर्लभ भोग करते थे।

व्याख्या : भाई लोग तो रामजी से प्रीति करते ही थे पर रामजी भी उनसे प्रीति करते थे। यह बात भी नहीं थी कि कम बोलते हों। उन्हें सदा नीति की शिक्षा दिया करते थे। नीतिशास्त्र बड़ा गहन है। इसकी शिक्षा की सदा आवश्यकता रहती है। यथा : सचिव धर्म रुचि हरि पद प्रीति। नृप हित हेतु सिखब नित नीति। भाइयों की हित कामना से नीति की शिक्षा दिया करते थे।

महारानी का हाल कहकर भाइयों का हाल कहा। अब नगरवासियों का हाल कहते हैं कि मनःकामना की पूर्ति से हर्षित रहते हैं। ये लोग पञ्चदेव की उपासना करके यही माँगते थे कि : राजा राम जानकी रानी। आनंद अवधि अवध रजधानी। इत्यादि। उन्हें रामजी के राज्य में ऐसा सुखभोग मिलता था जो कि सुरपुर में भी दुर्लभ है। यथा : जे सुख सुरपुर सपनेहुँ नाही। क्योंकि : रिधि सिधि संपति नदी सुहाई। उमगि अवध अंबुधि कहुँ आई।

अहनिसि बिधिहि मनावत रहहीं। श्रीरघुबीर चरन रति चहहीं॥
दुइ सुत सुंदर सीता जाये। लवकुस बेद पुरानन्हि गाये॥३॥

अर्थ : रात दिन ब्रह्मदेव को मनाते रहते थे। उन्हें श्रीरघुबीर के चरणों में प्रेम की चाह थी। सीताजी को दो सुन्दर बेटे हुए। जिनका नाम लव कुश वेद पुराणों में विदित है।

व्याख्या : अयोध्या के वासी सब प्रेमा भक्तिवाले हैं। उन्हें दूसरी किसी वस्तु की चाह नहीं है। उन्हें केवल सरकार के चरण रति की चाह है। इसलिए ब्रह्मदेव से उसी के मिलने की प्रार्थना रात दिन करते हैं। दूसरी वस्तु की चाह रहने से भक्ति की प्राप्ति भी नहीं होती। यथा : नान्यास्पृहा रघुपते हृदयेऽस्मदीये सत्यं वदामि च भवानखिलान्तरात्मा। भक्तिं प्रयच्छ रघुपुंगवनिर्भरां मे कामादिदोषरहितं कुरु मानसञ्च।

अब अपत्य का उल्लेख करते हैं। सीताजो को दो बेटे हुए। जिनका नाम लव कुश था। सीताजाये : से बनवासावस्था में उनका जन्मा कहा। अयोध्या में जन्मोत्सव नहीं हुआ। अतः जन्मोत्सव का उल्लेख नहीं करते। उन्हें कुछ दिनों तक पिता का नाम भी नहीं मालूम था। इसलिए : सीताजाये कहते हैं। सीताजाये : से उन्हें शक्ति पुत्र कहा। उनका माहात्म्य वेद पुराणों में वर्णित है।

दोउ बिजई बिनई गुन मंदिर। हरि प्रतिबिम्ब मनहु अति सुंदर ॥
दुइ दुइ सुत सब भ्रातन्ह केरें। भये रूप गुन सील घनेरे ॥४॥

अर्थ : दोनों विजयी विनयी और गुण के मन्दिर मानो भगवान् के अति सुन्दर प्रतिबिम्ब थे। दो दो बेटे सब भाइयों को हुए। उन्हें रूप गुण और शील भी बहुत था।

व्याख्या : लव और कुश के विजय की गाथा रामाश्वमेध प्रकरण पद्मपुराण पातालखण्ड में हैं। इतने बड़े बीर होने पर भी वे बड़े विनयी थे। भावार्थ यह कि विद्या पाकर विनययुक्त थे। विद्या से विनय और विनय से पात्रता होती है। यथा : विद्या ददाति विनयं विनयाद् याति पात्रताम्। अतः गुनमन्दिर कहा। उनका स्वरूप ठीक रामजी का सा था। इसलिए अति सुन्दर प्रतिबिम्ब कहा।

भरतजी लक्ष्मणजी और शत्रुघ्न को भी दो दो बेटे हुए। इनमें भी रूप गुण और शील की कमी नहीं थी। इन लोगों का वर्णन करते हुए केशव कवि कहते हैं : लव कुश अपने भरत के नंदन पुष्कर तक्ष। लछिमन के अंगद भये चित्रकेतु रण दक्ष।
भले पुत्र शत्रुघ्न द्वै दीप जाए। सदा साधु पूरे भले भाग पाए।
सदा शत्रुहन्ता हनै शत्रु छाती। सुबाहू बड़ो दूसरो शत्रुघाती।

दो. ग्यान गिरा गोतीत अज, माया गुन मन पार।
सोइ सच्चिदानंद घन, कर नर चरित उदार ॥२५॥

अर्थ : जो ज्ञान वाणी और इन्द्रिय से परे हैं अजन्मा हैं माया मन और गुणों से अतीत हैं वे ही सच्चिदानन्द उदार नर चरित्र कर रहे हैं।

व्याख्या : जिसके लिए वेद कहते हैं कि : न तत्र चुक्षुर्गच्छति न वाग् गच्छति नो मनो न विद्मो न विजानीमो यथैतदनुशिष्यादन्यदेव तद्विदितादथोऽविदितादधि। उस प्रभु तक न आँख की पहुँच है न वाणी की पहुँच न मन की पहुँच है। इसलिए उसे न कोई जानता है न बतला सकता है। वही सच्चिदानन्द घन उदार नर चरित्र कर रहे हैं। अतः जो सुख सम्पत्ति का वर्णन इस प्रसङ्ग में हो रहा है उसके असम्भव होने की कल्पना नहीं करनी चाहिए।

प्रात काल सरऊ करि मज्जन। बैठहि सभा संग द्विज सज्जन ॥
बेद पुरान बसिष्ठ बखानहि। सुनहि राम जद्यपि सब जानहि ॥१॥

अर्थ : प्रातःकाल सरयू स्नान करके सभा में ब्राह्मणों और सज्जनों के साथ

बैठ जाते थे। वसिष्ठजी वेद और पुराण का व्याख्यान करते थे। यद्यपि जानते सब थे फिर भी रामजी सुनते थे।

व्याख्या : प्रातःकाल सरयू में स्नान करते थे : पुण्य काल में पुण्य तीर्थ स्नान। अवगाह स्नान का विधान है। प्रातः स्नान के अन्तर्गत नित्यकृत्य भी है। राजकार्य देखने के लिए नित्यकृत्य के बाद सभा में आजाते थे। धर्मशास्त्र की आज्ञा है कि ब्राह्मणों और सज्जनों के साथ सभागृह में प्रवेश करे। सभा में किस वर्ण के कितने लोग रहें इसका भी नियम है। अतः संग द्विज सज्जन कहा। जिनसे राज कार्य में सहायता मिले।

सभा में कोई फिरियादी नहीं है। कोई मुकदमा नहीं है। शासन की प्रशंसा यही है कि न्यायालय हो पर उसमें मुकदमे न हों। बन्दीगृह हो पर उसमें बन्दी न हों। अतः सभागृह में वेद पुराण की व्याख्या हो रही है। वसिष्ठजी वक्ता हैं। रामजी श्रोता हैं। यह बात नहीं है कि रामजी जानते न हों। फिर भी गुरुजी का किया हुआ व्याख्यान चित्त देकर सुनते हैं। शास्त्र का व्यसन सरकार को बचपन से है। यथा : वेद पुराण सुनहि मनलाई। आपु कहहिं अनुजन्ह समुझाई। सरकार के नित्य प्रति वेद पुराण सुनने से प्रजा की रुचि भी वेद पुराण सुनने की होती थी। इस भाँति धर्मका स्रोत वहाँ से ही बहता था।

अनुजन्ह संजुत भोजनु करहीं। देखि सकल जननी सुख भरहीं ॥
भरत शत्रुहन दोनो भाई। सहित पवन सुत उपबन जाई ॥२॥

अर्थ : छोटे भाइयों के साथ भोजन करते हैं। देखकर सब माताएँ सुख से भर जाती हैं। भरत और शत्रुघ्न दोनों भाई हनुमान्‌जी के साथ बाग में जाकर :

व्याख्या : साथ में भोजन करना प्रेम का लक्षण है। इष्टजन के साथ भोजन करने में आनन्द विशेष है। यथा : इष्टजनैः सह भुक्तं भुक्तम्। जहाँ प्रीति नहीं वहाँ भोजन भी साथ नहीं होता। भोजन के समय माताएँ आजाती हैं। वे सब बेटों में परस्पर प्रीति देखकर आनन्द से भर उठती थीं। अपराह्न में भरत शत्रुघ्न दोनों भाई हनुमान्‌जी को साथ लेकर बाग में चले जाते थे। सरकार ने जो चरित्र बन में किया वह भरत शत्रुघ्न पूरी तरह नहीं जानते। अतः वह सब चरित्र सुनने के लिए हनुमान्‌जी को साथ ले जाते थे।

बूझहिं बैठि राम गुन गाहा। कह हनुमान सुमति अवगाहा ॥
सुनत बिमल गुन अति सुख पावहिं। बहुरि बहुरि करि बिनय कहावहिं ॥३॥

अर्थ : बैठकर रामजी की गुणगाथा पूछते थे और अथाह सुमतिवाले हनुमान्‌जी कहते थे। निर्मल गुणों को सुनकर अत्यन्त सुख पाते थे और बार बार विनय करके कहते थे।

व्याख्या : बाग में बैठकर दोनों भाई हनुमान्‌जी से सरकार के किष्किन्धाकाण्ड से लंकाकाण्ड तक की कथा के विषय में प्रश्न करते थे। क्योंकि चरित्र के उक्त भागों

के हनुमान्जी प्रत्यक्ष द्रष्टा थे। हनुमान्जी की सुमति का थाह नहीं था। वे सरकार के गुणगणों के सच्चे जौहरी थे। अतः गुणों की गाथा का ठीक ठीक वर्णन करते थे। हनुमान्जी वक्ता और भरत शत्रुघ्न श्रोता। अवध के बाग में भी रामचरित की कथा हो रही है।

सरकार द्वारा सुग्रीव की आर्त्ति का हरण विभीषण को राज्य प्रदानादि निर्मल गुणों को सुनकर दोनों भाइयों को अत्यन्त सुख होता था। ये लोग कथा के ऐसे रसिक थे कि हनुमान्जी से सुनकर तृप्त नहीं होते थे। बार बार उनसे विनय करके कथा कहलाते थे और श्रवण का आनन्द लूटते थे। यथा : रामचरित जे सुनत अघाहीं। रस बिसेष जाना तिन नाहीं।

सबके गृह गृह होहिं पुराना। रामचरित पावन बिधि नाना॥
नर अरु नारि राम गुन गानहिं। करहिं दिवसनिसि जात न जानहिं॥४॥

अर्थ : सब के यहाँ घर घर पुराण होता था। नाना प्रकार के पवित्र राम चरित्र होते थे। स्त्री पुरुष रामजी के गुणों का ही गान करते थे। वे रात दिन का बीतना नहीं जानते थे।

व्याख्या : तीसरे पहर पुराण सुनने की विधि है। अतः सबके घरों के पुराण की कथाएँ होती थीं। सभी पुराणों में रामचरित्र है। यथा : पावन पर्वत वेद पुराना। राम कथा रुचिराकर नाना। अथवा भगवद् चरित्र से ही पुराण भरे पड़े हैं। वे सभी रामचरित्र ही हैं। राजा तथा प्रजा का यह ज्वलन्त उदाहरण है। यथा : वेद पुराण वसिष्ठ बखानहिं। सुनहिं राम जद्यपि सब जानहिं। अतः सबके गृह गृह होहिं पुराना। पुराण के सुनने के सभी अधिकारी हैं। अतः सबके घरों में पुराण का होना कहते हैं। धर्म के प्रचार का यह बड़ा भारी साधन है। महाराज ने कोई आज्ञा नहीं निकाली कि सब कोई पुराण सुना करें। स्वयं सुनना आरम्भ कर दिया। प्रजा उनका आप से आप अनुकरण करने लगी।

प्रजा सरकार की इतनी अनुरक्त है कि दिन रात उन्हीं का गुणगान करती है। अपना काम भी करते हैं और गुणगान भी हो रहा है। एवं उनका ऐसा सुखमय जीवन व्यतीत हो रहा है कि उन्हें दिन रात के बीतने का भान भी नहीं है।

दो. अवध पुरी बासिन्ह कर, सुख सम्पदा समाज।
सहस सेष नहिं कहि सकहिं, जहँ नृप राम बिराज॥२६॥

अर्थ : अवधपुरी के रहनेवालों का सुख सम्पदा और समाज ऐसा था कि उसका वर्णन सहस्र शेष नहीं कर सकते। क्योंकि वहाँ स्वयं राजा रामचन्द्र विराजमान थे।

व्याख्या : सरकार के सिंहासनारूढ होने से तीनों लोक में से शोक भाग गया पर अवधपुरी की बात तो कही ही नहीं जा सकती। सहस्र शेष नहीं कर सकते ऐसा कहने का तात्पर्य ही यही है। अवधपुरी तो स्वयं राजधानी ठहरी वहाँ स्वयं

सरकार विराजमान हैं। अतः वहाँ के सुखसम्पदा समाज का कौन वर्णन कर सकता है। सुख यथा : करहिं सकल सुर दुर्लभ भोगा। सम्पदा यथा : कामधुक महि कामतरु तरु उपल मनि गन लाल। समाज यथा : वह सोभा समाज सुख कहत न बनै खगेस।

नारदादि सनकादि मुनीसा। दरसन लागि कोसलाधीसा ॥
दिन प्रति सकल अयोध्या आवहिं। देखि नगरु बिरागु बिसरावहिं ॥१॥

अर्थ : नारद आदि और सनकादि मुनीश्वर कोशलाधीश के दर्शन के लिए प्रतिदिन अयोध्या आते थे। नगर देखकर उनका विराग भूल जाता था।

व्याख्या : नारदादि देवर्षि और सनक सनन्दन सनातन सनत्कुमारादि सिद्ध सरकार के दर्शन के लिए नित्य ब्रह्मलोक से अयोध्या आते हैं। जनकजी ने कहा है : इन्हहि बिलोकत अति अनुरागा। बरबस ब्रह्म सुखहिं मन त्यागा। सो उन लोगों का ऐसा अनुराग बढ़ा हुआ है कि ब्रह्मलोक से नित्य सरकार के दर्शन के लिए अयोध्या आते हैं। यथा : सोई सुख लवलेस जिन बारक सपनेहुँ लहेउ। ते नहि गनहि खगेस ब्रह्म सुखहि सज्जन सुमति। नगर ऐसा सुन्दर बना है कि उसे देखने से उन्हें विराग भूल जाता है इच्छा नहीं होती जाने की। तब दूसरों की क्या गिनती है।

जातरूप मनि रचित अटारी। नाना रंग रुचिर गच ढारी ॥
पुर चहुँ पास कोट अति सुंदर। रचे कंगूरा रंग रंग बर ॥२॥

अर्थ : सोना और मणि जड़ी हुई अटारियाँ थीं। नाना रङ्ग के सुन्दर ढले हुए गच्च थे। पुर के चारों ओर अत्यन्त सुन्दर किलाबन्दी थी। जिसमें रङ्ग रङ्ग के श्रेष्ठ कंगूरे बने हुए थे।

व्याख्या : अब सुन्दरता कहते हैं : सोने की अटारियाँ थीं जिनमें मणि जड़े हुए थे। ढले हुए फर्श थे। प्राचीन काल में पत्थर गलाकर ढालने की विद्या मालूम थी। दक्षिण के मन्दिरों में ऐसे ऐसे विशाल पत्थर मन्दिरों में लगे हुए हैं जिन्हें देखकर मानना पड़ता है कि ये ढले हुए हैं : यह तो हुई नगर के भीतर के मकानों की बात। राजधानी के चारो ओर रक्षा के लिए किलाबन्दी थी और उसकी सुन्दरता बढ़ाने के लिए उसमें अनेक रङ्ग के कंगूरे बने हुए थे।

नव गृह निकर अनीक बनाई। जनु घेरी अमरावति आई ॥
महि बहु रंग रचित गच काँचा। जो बिलोकि मुनिबर मनु नाँचा ॥३॥

अर्थ : नवग्रह के समूहों ने मानो सेना बनाकर अमरावती को घेर रक्खा है। पृथिवी अनेक रंग के काँचों के फर्श से सँवारकर सजाई गयी थी। जिन्हें देखकर श्रेष्ठ मुनियों का मन नाच उठता था।

व्याख्या : अब राजधानी के चारों ओर किलाबन्दी के बुर्ज : कंगूरे : कैसी

शोभा दे रहे हैं। उसकी उपमा कवि देते हैं कि मानो इन्द्रपुरी को नवग्रहों के समूह सेना रूप से रक्षा कर रहे हैं। कंगूरे अनेक रङ्ग के थे। इसलिए उनकी उपमा नवग्रहों के समूह से दिया गया क्योंकि नवग्रहों के रङ्ग पृथक् पृथक् हैं। नगरी की उपमा इन्द्रपुरी से दी गयी। क्योंकि संसार में ऐसी सुन्दर दूसरी पुरी है नहीं। इन्द्रपुरी की रक्षा करना नवग्रहों के लिए उचित कार्य भी है।

धवल धाम ऊपर नभ चुंबत। कलस मनहु रबि ससि दुति निंदत ॥
बहु मनि रचित झरोखा भ्राजहिं। गृह गृह प्रति मनि दीप बिराजहिं ॥४॥

अर्थ : श्वेत रङ्ग के घर ऊपर से आकाश चूम रहे हैं। कलश मानों सूर्य चन्द्र के ज्योति की निन्दा कर रहे हैं। मणियों की बनी हुई खिड़कियाँ शोभा पा रही हैं। घर घर में मणि के दीप जल रहे हैं।

व्याख्या : घरों की शोभा सफेदी से ही है। सो सफद घर इतने ऊँचे हैं कि आकाश से लगे हुए दिखाई देते हैं। आकाश में तो सूर्य चन्द्र हैं तो इन घरों के कलश भी ऐसे चमकीले हैं कि सूर्यचन्द्र की ज्योति उनके सामने दबती हैं।

खिड़कियों में शोभा के लिए मणियाँ जड़ी हुई हैं और प्रत्येक घरों में मणि के दीप विराजमान हैं। भाव यह कि अयोध्या की सम्पत्ति का वर्णन नहीं हो सकता।

छं. मनि दीप राजहिं भवन भ्राजहिं देहली बिद्रुम रचीं।
मनि खंभ भीति बिरंचि बिरची कनक मनि मरकत खचीं ॥
सुंदर मनोहर मंदिरायत अजिर रुचिर फटिक रचे।
प्रति द्वार द्वार कपाट पुरट बनाइ बहु बज्रन्हि खँचे ॥

अर्थ : घरों में मणि के दीपक शोभा दे रहे थे। देहलियाँ मूँगें की बनी हुई थीं। मणि के खम्भे थे। सोने को दीवारों को ब्रह्मदेव ने मणि और मरकत का काम बनाकर विरचा था। सुन्दर मनोहर लम्बे चौड़े घर थे। जिनमें स्फटिक के सुन्दर आँगन थे। प्रत्येक द्वारों में सोने के किवाड़ बनाकर बहुत से हीरे जड़ दिये गये थे।

व्याख्या : मणि के दीपों से घर जगमगा रहे थे। उनकी देहलियाँ भी मूँगे की बनी थीं। मणि के खम्भों और सोने की दीवारें जो कि मरकत और मणि से जटित थीं मणि के दीपों से जगमगा रही थीं। इन खम्भों और दीवारों को ब्रह्मदेव ने बनाया था। भाव यह कि अयोध्यापुरी ने अपने दिव्य रूप को भली भाँति प्रकट कर दिया था। यहाँ सब दिव्य रचनायें थीं। मानुषी रचना ही नहीं थी। उसी का वर्णन करते हुए कहते हैं। इतने बहुमूल्य पदार्थों से बने हुए होने पर भी सब घर लम्बे चौड़े थे। जिसमें रहनेवालों को सङ्कीर्णता का अनुभव न हो। आँगन स्फटिक मणि के थे। द्वार में सुवर्ण के कपाट लगे थे : जिनमें हीरे का काम किया हुआ था।

दो. चारु चित्र साला गृह, गृह प्रति लखे बनाइ।
राम चरित जे निरख मुनि, ते मन लेहिं चोराइ ॥२७॥

अर्थ : घर घर में सुन्दर चित्रशाला सँवारकर लिखे गये थे। वहाँ लिखा हुआ राम चरित जो मुनि देखते हैं उनके मन को चुरा लेता है।

व्याख्या : इतने पर भी घर का श्रृङ्गार पूरा नहीं हुआ। सबके घरों में चित्रशालायें हैं। जिनमें सुन्दर सुन्दर चित्र बने हुए हैं और वे चित्र सब रामजी की लीला सम्बन्धी हैं। आजकल भी लोग चित्रों से कमरा सुसज्जित करते हैं और उन चित्रों से मालिक मकान की रुचि का पता लगता है। इस प्रकार के चित्रों का प्रभाव गृहनिवासियों पर बिना जाने पड़ता है। यहाँ तो प्रजा सब सरकार की एक एक बातों पर आसक्त है। चित्रशालाओं में सब राम चरित्र चित्रित है और ऐसे खूबी से चित्रित है कि जिन्हें देखने से मुनि का भी मन मोहित हो जाय। राम चरित्र के मुनिगण रसिक होते हैं।

सुमन बाटिका सबहिं लगाई। बिबिध भाँति करि जतन बनाई ॥
लता ललित बहु जाति सोहाई। फूलहि सदा बसन्त की नाई ॥१॥

अर्थ : सबने फुलवारियाँ लगा रक्खी थीं। वे अनेक प्रकार की थीं। बड़े यत्न से लगायी गयी थीं। अनेक प्रकार की लतायें सुन्दर थीं जो कि वसन्तऋतु की भाँति फूल रही थीं।

व्याख्या : गरीब से गरीब के घर में भी फुलवारी है और वह अनेक प्रकार के यत्न करके बनाई गयी है। पूजा के लिए स्वास्थ्यवर्धन के लिए तथा शोभा के लिए फुलवारी की बड़ी आवश्यकता है। इससे यह भी कहा कि सबका काम अल्पायास से ही चलता था। पुलवारी लगाने तथा उसकी रक्षा करने में सब समर्थ थे।

अनेक रङ्ग के फूलों की लतायें लगायी गयी थीं। जिनसे लतामण्डप बन गये थे। लतायें वसन्तऋतु में फूलती हैं पर ये सदा फूली रहती थीं। अतः सब ऋतुओं में शोभा बनी रहती थी।

गुंजत मधुकर मुखर मनोहर। मारुत त्रिबिध सदा वह सुंदर ॥
नाना खग बालकन्ह जिआये। बोलत मधुर उड़ात सुहाये ॥२॥

अर्थ : मनोहर शब्द करनेवाले भौंरे गूंजते थे और तीनों प्रकार का सुन्दर वायु सदा बहता था। बच्चों ने अनेक प्रकार के पक्षियों को जिला रक्खा था। जिनकी बोली मधुर और उड़ान सुन्दर थी।

व्याख्या : लताओं के फूलने से फुलवारी में भौंरों की भीड़ लगी रहती थी। मकरन्द पान करते समय तथा उसे लेकर चलते समय भौंरे गूँजा करते हैं। इनकी गूंज सबको प्रिय है। वन के प्रसङ्ग में भी कह आये हैं : सीतल सुरभि पवन बह

मन्दा । परन्तु यह तो फुलवारी है । इसमें कुछ विशेषता होनी चाहिए । अतः कवि ने सुन्दर शब्द और जोड़ दिया । भाव यह कि वन के त्रिविध मारुत से फुलवारी का त्रिविध मारुत अधिक सुहावना है ।

बच्चों ने ऐसे पक्षियों को जिला रक्खा था जिनकी उड़ान भी सुन्दर होती है और बोली भी मधुर होती है । कबूतरों के उड़ान की कलाबाजी के रसिक आज भी कबूतर जिलाते हैं । यह तो पिंजरे या दरबे में रहनेवाले पक्षियों का वृत्तान्त हुआ । अब बाहर के पक्षियों का वृतान्त सुनिये ।

मोर हंस सारस पारावत । भवनन्हि पर सोभा अति पावत ॥
जहँ तहँ देखहिं निज परछाहीं । बहु बिधि कूजहिं नृत्य कराहीं ॥३॥

अर्थ : मोर हंस सारस और कबूतर घरों के ऊपर अत्यन्त शोभा पा रहे थे । जहाँ तहाँ अपनी परछाहीं : छाया देखते और बहुत प्रकार से कूदते और नृत्य करते थे ।

व्याख्या : मयूर हंस सारस और पारावत पक्षी स्वभाव से ही शोभायमान हैं पर जब ये मकानों पर जा बैठते हैं तो इनकी शोभा और भी बढ़ जाती है । इनकी बहुतायत थी । अतः ये मकानों के ऊपर अटारियों पर प्रायेण बैठे दिखाई पड़ते थे । जातरूप मनि रचित अटारी । नाना रंग रुचिर गच ढारी । अतः वहाँ उनका प्रतिबिम्ब पड़ता था । जिन्हें देखकर उन्हें अपना साथी मिल जाने का भ्रम होता था और वे हर्ष से कूदने और नाचने लगते थे ।

सुक सारिका पढ़ावहिं बालक । कहहु राम रघुपति जन पालक ॥
राजदुआर सकल बिधि चारू । बीथी चौहट रुचिर बजारू ॥४॥

अर्थ : बालक लोग तोता और मैना पढ़ाते थे कि राम रघुपति जन पालक कहो । राजद्वार सब प्रकार से सुन्दर था । गलियाँ चौराहे और बाजार सब सुन्दर थे ।

व्याख्या : पिंजरे में जो शुक सारिका हैं उन्हें बालक पढ़ाते हैं । बाप का पढ़ाना देखकर उनका अनुकरण करते हैं । उनका पढ़ाना यही है कि बोलो : राम रघुपति जन पालक । आज भी तोता मैना भारत में इसी भाँति पढ़ाये जाते हैं । भृगुपति परशुरामजी का भी नाम राम ही है पर वे तो रघुपति राम के गुणों पर मुग्ध थे । जिनसे उनका पालन होता था । अतः राम रघुपति जन पालक शब्द ही उन्हें प्रिय था ।

अब राजद्वार का वर्णन करते हैं । उसे सब प्रकार से सुन्दर होना चाहिए । अतः कहते हैं : राज दुआर सकल बिधि चारू । अच्छे मकानात होते हुए भी यदि राजद्वार शानदार न हुआ तो सब फीका हो जाता है । गली चौराहे और बाजार सब ऐसे सुन्दर हैं कि कहे नहीं जा सकते ।

छं. बाजार रुचिर न बनै बरनत बस्तु बिनु गथ पाइये ।
जहँ भूप रमा निवास तहँ की संपदा किमि गाइये ॥
बैठे बजाज सराफ बनिक अनेक मनहु कुबेर ते ।
सब सुखी सब सच्चरित सुन्दर नारि नर सिसु जरठ जे ॥

अर्थ : बाजार ऐसे सुन्दर थे कि उनका वर्णन नहीं हो सकता । वहाँ वस्तुयें बिना मूल्य की मिलती थीं । जहाँ लक्ष्मीपति ही राजा हैं वहाँ की सम्पदा का कैसे वर्णन किया जाय । अनेक बजाज सराफ और बनिये वहाँ कुबेर की भाँति बैठते थे और स्त्री पुरुष बालक वृद्ध जितने थे वे सब के सब सुन्दर सुखी और सच्चरित्र थे ।

व्याख्या : बाजार ऐसा सुन्दर कि वर्णन नहीं हो सकता । वहाँ बिना मूल्य दिये ही वस्तु मिलती थी । जिसको जो आवश्यकता हो बाजार से ले आवे । मूल्य देने की आवश्यकता नहीं । इसलिए कहते हैं कि कुबेर की भाँति बैठे हुए बजाज सराफ और बनिये सब वस्तुयें बिना मूल्य बाँटा करते थे । वर्णाश्रम अपने अपने धर्म पर चले तभी ऐसा सम्भव है । जब सब लोग अपना कर्तव्य ईश्वर प्रीत्यर्थ पालन करेंगे और अपना निर्वाह यज्ञशिष्ट से करेंगे तभी बजाज सराफ बनियों के पास बिना मूल्य वस्तुएँ पहुँचा करेंगी और वे बिना मूल्य वितरण कर सकेंगे । जिस नगर में स्वयं लक्ष्मीपति राजा हैं, वहाँ लक्ष्मी स्वयं विराजमान रहेगी । कुबेर की ही आज्ञा से सम्पत्ति का वितरण संसार में होता है । उसी प्रकार बजाज सराफ बनियों के यहाँ से सब लोगों को ईप्सित वस्तुएँ प्राप्त होती थीं । अतः सब सुखी थे । राजा के सच्चरित्र होने से सब सच्चरित्र थे । देवताओं की पुष्पों से पूजा करने के प्रताप से सब सुन्दर थे अथवा श्रीरामजी की प्रजा होने से उन्हें सब सुख प्राप्त था ।

दो. उत्तर दिसि सरयू बह, निर्मल जल गंभीर ।
बाँधे घाट मनोहर, स्वल्प पंक नहिं तीर ॥२८॥

अर्थ : उत्तर दिशा में सरयू नदी बहती थीं । जिनका जल निर्मल और गम्भीर था सुन्दर सुन्दर घाट बँधे थे तीर पर तनिक भी कीचड़ न था ।

व्याख्या : उत्तर दिशा में सरयू नदी बहती है । वह गहरी है और जल उसका निर्मल है । राम राज्य में सरिता सकल बहहिं बरवारी । सीतल अमल स्वादु सुखकारी । फिर सरयू के लिए कहना ही क्या है । प्रजा के सुभीते के लिए घाट बँधा हुआ था और राज्य की ओर से ऐसी व्यवस्था थी कि तीर पर कीचड़ न रहने पावे ।

दूरि फराक रुचिर सो घाटा । जहँ जल पिअहिं बाजि गज ठाटा ॥
पनिघट परम मनोहर नाना । तहाँ न पुरुष करहिं असनाना ॥१॥

अर्थ : वह घाट सुन्दर लम्बा चौड़ा अलग दूर पर था । जहाँ घोड़ों और

हाथियों के झुण्ड पानी पीया करते थे। अनेक प्रकार के अत्यन्त सुन्दर पनिघट थे। जहाँ पुरुष स्नान नहीं करते थे।

व्याख्या : हाथी घोड़ों के पानी पीने के लिए नगर से दूर अलग गो घाट बना था। जिसमें नदी का जल गन्दा न हो। वह घाट बड़ा लम्बा चौड़ा था। क्योंकि वहाँ हाथी और घोड़ों के झुण्ड के झुण्ड जल पीते थे तथा नहलाये जाते थे। वह घाट भी सुन्दर बना था। उपयोगिता के साथ ही साथ सुन्दरता का भी पूरा ध्यान रक्खा जाता था।

और घाट तो सभी मनोहर थे पर पनिघट परम सुन्दर बनाये गये थे। क्योंकि वहाँ सुन्दरियाँ स्नान करती थीं पुरुष वहाँ नहीं नहाते थे। राजाज्ञा की आवश्यकता नहीं थी स्वयं पुरुष लोग वहाँ स्नान करने नहीं जाते थे। पनिघट भी अनेक थे जिसमें किसी को दूर न पड़े।

राजघाट सब बिधि सुन्दर बर। मज्जहिं तहाँ बरन चारिउ नर ॥
तीर तीर देवन्ह के मंदिर। चहुँ दिसि तिन्हके उपबन सुन्दर ॥२॥

अर्थ : राजघाट सब प्रकार से सुन्दर था। वहाँ चारो वर्ण के पुरुष नहाया करते थे। किनारे किनारे देवताओं के मन्दिर थे जिनके चारों ओर सुन्दर उपवन लगे थे।

व्याख्या : जहाँ चारों वर्ण के लोग स्नान करते थे। उसका नाम राजघाट था। यह सरकारी घाट समझा जाता था। यहाँ स्वयं सरकार स्नान करने आते थे। अतः सभी प्रकार से सुन्दर बना था। अर्थात् शोभा में तथा कारीगरी में सब घाटों से अच्छा था।

स्नान सन्ध्या के बाद पूजन तथा यात्रा की आवश्यकता पड़ती है। इसलिए नदी के किनारे देवताओं के मन्दिर बने थे। जिसमें स्नान करने के बाद लोग जल चढ़ाने जाते थे। अनेक मन्दिर थे जिसमें जिसका जो इष्टदेव हो उसकी पूजा आराधना करे। मन्दिर के चारो ओर उपवन लगे थे जहाँ से पूजन करनेवाले पत्र पुष्प और फल प्राप्त कर सकें।

कहुँ कहुँ सरिता तीर उदासी। बसहिं ग्यान रत मुनि संन्यासी ॥
तीर तीर तुलसिका सुहाई। बृंद बृंद बहु मुनिन्ह लगाई ॥३॥

अर्थ : कहीं कहीं नदी के तीर पर उदासी और ज्ञानरत मुनि तथा संन्यासी बसते थे। किनारे किनारे सुन्दर तुलसी के झुण्ड मुनियों ने लगा रक्खे थे।

व्याख्या : उदासी विरक्त गृहस्थ को कहते हैं। अथवा कुटीचक बहूदक आदि तीर में कुटियाँ बनाये हैं। इनकी संख्या थोड़ी है इसलिए कहीं कहीं कहा। मुनियों ने तुलसी के समूह तीर तीर पर लगा रक्खे हैं। पूजन में तुलसी का बहुत काम पड़ता है। लोग सहस्रदल तुलसी से भगवान् का पूजन करते हैं।

पुर सोभा कछु बरनि न जाई। बाहिर नगर परम रुचिराई ॥
देखत पुरी अखिल अघ भागा। बन उपबन बापिका तडागा ॥४॥

अर्थ : पुर की शोभा कुछ वर्णन नहीं की जा सकती। नगर के बाहर भी बड़ी सुन्दरता थी। पुरी के दर्शन से सम्पूर्ण पाप भाग जाते थे। वन उपवन बावली और तालाब थे।

व्याख्या : नारदादि सनकादि मुनीसा। दर्शन लागि कोसलाधीसा। दिन प्रति सकल अजोध्या आवहिं। देखि नगर विराग बिसरावहिं। पहले कह आये हैं उसी प्रकरण का उपसंहार करते हुए कहते हैं कि पुर की शोभा अवर्णनीय है। नगर के बाहर भी बड़ी मनोहरता है। वह दृश्य अन्य प्रकार का है जहाँ लोग हवा खाने जाते हैं।

केवल सुन्दरता ही नहीं परम पावनी पुरी है। दर्शन से सब पाप भाग जाते हैं। जिन्होंने पुरी में प्रवेश नहीं किया केवल दर्शन किया उनके सब पाप नष्ट हो गये। पुरी में प्रवेश करनेवाले के पुण्य का क्या कहना है। वहाँ के वन उपवन बावली और तालाब सब परम पावन हैं।

छं. बापी तडाग अनूप कूप मनोहरायत सोहहीं।
सोपान सुन्दर नीर निरमल देखि सुर मुनि मोहहीं ॥
बहुरंग कंज अनेक खग कूजहि मधुप गुंजारहीं।
आराम रम्य पिकादि खगरव जनु पथिक हँकारहीं ॥

अर्थ : बावली और तालाब ऐसे हैं जिनकी उपमा नहीं। बड़े बड़े कूएँ मन के हरण करनेवाले शोभायमान हैं। जिनकी सीढ़ियाँ सुन्दर हैं और जल निर्मल हैं। उन्हें देखकर देवताओं और मुनियों का मन मोहित हो जाता है। बहुत रंग के कमल हैं। बहुत सी चिड़िया कूजती हैं। भौंरे गूँज रहे हैं। सुन्दर बागों में कोयल आदि पक्षी के शब्द मानो पथिक को पुकार रहे हैं।

व्याख्या : पुरी के बाहरी भाग का वर्णन हो रहा है। नगर वन उपवन बावली और तालाबों से घिरा हुआ है। वे बावली और तालाब बेजोड़ हैं ऐसे कहीं देखे नहीं जाते। कूएँ भी बड़े बड़े और मनोहर हैं। उनमें भी सुन्दर सीढ़ियाँ बनायी हुई हैं। सब में निर्मल जल है इनकी पावनता पहले ही कह चुके हैं। इन्हें देखकर मनुष्य तो मोहित हो ही जाते हैं। स्वर्ग के देवता और विगतस्पृह मुनि लोगों का चित्त मोहित हो जाता है। मज्जन पान की इच्छा हो जाती है। वहाँ से जाने की इच्छा नहीं होती। जलाशयों की शोभा अनेक रंग के कमलों से बढ़ रही है। चिड़ियों के चहचहाहट और भौंरों के गुञ्जार से शब्दायमान हो रहे हैं। सुन्दर बगीचों में कोयल आदि पक्षियों का बोलना इतना सुहावन है कि मानों वे आतिथ्य सत्कार के लिए पथिकों को बुला रहे हैं। भाव यह कि उनके शब्द सुनने से पथिक का चित्त चाह जाता है कि यहाँ विश्राम कर लें।

दो. रमानाथ जहँ राजा, सो पुर बरनि कि जाइ।
अनिमादिक सुख संपदा, रहीं अवध सब छाइ ॥२९॥

जहाँ स्वयं लक्ष्मीपति राजा हैं। क्या उस पुर का वर्णन किया जा सकता है। अणिमादिक सुख और सम्पदा अवध में छा रही है।

व्याख्या : अवध के उस समय का वैभव वर्णनातीत था। साक्षात् लक्ष्मीपति वहाँ राजा के रूप में विराजमान थे। अतः लक्ष्मीजी का वह मुख्य निवासस्थान था और जहाँ लक्ष्मी रहेंगी वहीं अणिमादिक सिद्धियाँ हाथ जोड़े उपस्थित रहेंगी। यथा : तोहि सेवहिं सब सिधि कर जोरे। वहीं सब सुख और सम्पदा रहेगी। क्योंकि लक्ष्मी ही उनकी अधिष्ठात्री देवी हैं। भावार्थ यह कि आलौकिक वैभव था। अवधपुरी वासिन्ह कर सुख सम्पदा समाज। सहस सेष नहि कहि सकहिं नर नृप राम बिराज। से जिस प्रकरण का उपक्रम किया था उसका इस दोहे से उपसंहार कर रहे हैं।

जह तहँ नर रघुपति गुन गावहिं। बैठि परसपर इहै सिखावहिं ॥
भजहु प्रनत प्रतिपालक रामहिं। सोभा सील रूप गुन धामहिं ॥१॥

अर्थ : जहाँ तहाँ मनुष्य रघुपति का गुणगान करते हैं। बैठकर आपस में यही उपदेश देते हैं कि शरणागत के पालन करनेवाले राम को भजो। जो कि शोभा शील रूप और गुणों के धाम हैं।

व्याख्या : पहिले कह आये हैं कि : नर अरु नारि राम गुन गानहि। करहिं दिवस निसि जात न जानहि। उसी बात को स्पष्ट करते हुए कवि कहते हैं कि जहाँ है वह वहीं सरकार के गुणों का गान करता है। उसी में उन्हें सुखबोध होता है। यदि कहीं दो चार आदमी इकट्ठे बैठ गये तो एक दूसरे को उपदेश देते हैं। अर्थ काम की शिक्षा नहीं देते न मोक्ष की शिक्षा देते हैं। यही सिखाते हैं कि रामजी को भजो। रामजी में ही भजनीय के सब गुण हैं। रामजी प्रणतपाल हैं। एक प्रणाम में प्रसन्न हो जाते हैं। यथा : सकृत प्रनाम प्रनत जस बरनत सुनत कहत फिरि गाउ। रामजी शोभाधाम है उनके भजन में आनन्द है। शीलधाम हैं। प्रणत जन के अपराध पर ध्यान नहीं देते। यथा : अपराध अगाध भये जन ते अपने उर आनत नाहिन जू। रूप धाम पर आसक्ति होते देर नहीं लगती। गुणधाम के भजन से सुख का लाभ होता है। भजन में साधन सौकर्य है उसमें भी रामजी के भजन में उसका और भी उत्कर्ष है।

जलज बिलोचन स्यामल गातहिं। पलक नयन इव सेवक त्रातहिं ॥
धृत सर रुचिर चाप तूनीरहिं। संत कंज बन रबि रन धीरहिं ॥२॥

अर्थ : कमल नेत्र और श्याम शरीरवाले को आँख के पलक की भाँति सेवक की रक्षा करनेवाले को बाण सुन्दर धनुष और तरकस धारण करनेवाले को सन्तरूपी कमल वन के लिए तथा रणधीर को।

व्याख्या : ऊपर सोभा सील रूप गुन धामहि : कह आये हैं उसी को क्रम से दिखलाते हैं। शोभा यथा : जलज विलोचन स्यामल गातहि। शील यथा : पलक नयन इव सेवक त्रातहि। रूप यथा : धृत सर रुचिर चाप तूनीरहि। गुण यथा : सन्त कंज वन रवि रन धीरहि। सरकार का श्यामल रूप ऐसा मङ्गलमय है कि उसी पर भक्त लोग अपने चित्तरूपी सोने को कसौटी की भाँति कसते हैं। यथा : स्याम रूप सुचि रुचिर कसौटी चित्त कंचनहि कसैहौं। और कमल से नयन भक्तों के सोच के हरनेवाले हैं यथा : मामवलोकय पंकजलोचन। कृपा विलोकनि सोच विमोचन। इसलिए उन्हें भजने के लिए उपदेश दे रहे हैं। सरकार का स्वभाव वर्णन करके भी भजन पर ही अधिक बल देते हैं। कहते हैं कि रामजी इस भाँति सेवक की रक्षा करते हैं जैसे पलक नयन की रक्षा करता है। सुन्दर धनुष बाण और तरकस बाँधने से रूप में अधिक उत्कर्ष आजाता है। धनुष बाण भक्तों की रक्षा तथा दुष्ट के नाश का प्रतीक है। सरकार के उदय से सन्तरूपी कमल वन खिल उठता है। जिस भाँति रणधीर सूर्य मन्देह नामी राक्षसों का बध करके कमल वन को प्रसन्न करते हैं। उसी भाँति रामजी भी खलों का विनाश करके सन्तों को अभय करते हैं।

काल कराल ब्याल खगराजहि। नमत राम अकाम मम ताजहि ॥
लोभ मोह मृग जूथ किरातहि। मनसिज करिहरि जन सुख दातहि ॥३॥

अर्थ : कराल काल रूपी सर्प के लिए गरूड़ रूप को मेरे मुकुट रूप अकाम रामको लोभ मोह रूपी मृगों के लिए किरातरूप को कामरूपी हाथी के लिए सिंहरूप को तथा सुखदाता को नमस्कार करो।

व्याख्या : काल सर्प की भाँति चुपके से आकर प्राण हरण करता है। वह भारी दुरतिक्रम है। इसलिए कराल कहा। रामजी उसके भी भक्षक हैं। इसलिए गरुड़ रूप कहा। यथा : काल व्याल कर भक्षक जोई। यहाँ पर नमत के स्थान पर नमामि होता तो दूसरे प्रकार से अर्थ किया जाता कि : ममता जहि। ममता का हनन करो। परन्तु नमत पाठ होने से : मम ताजहि का अर्थ : मेरे मुकुट को : सिरताज को यही अर्थ करना प्रसंगानुकूल है। सरकार लोभ मोह आदि मृगों के लिए किरात रूप हैं। किरात का काम ही मृगों का बध है। यथा : हम जड़ जीव जीव गनघाती। सब से बलवान् काम है। इसलिए इसकी उपमा हाथी से दिया। उसके लिए सरकार सिंह हैं। इनका नाश करके भक्त को सुख देते हैं।

संसय सोक निबिड़तम भानुहि। दनुज गहन बन दहन कृसानुहि ॥
जनकसुता समेत रघुबीरहि। कस न भजहु भंजन भवभीरहि ॥४॥

अर्थ : संशय और शोक रूपी घोर अन्धकार के लिए सूर्य रूप को तथा राक्षस रूपी घने वन के जलाने के लिए अग्निरूप को। जानकीजी के सहित रघुवीर को क्यों नहीं भजते। संसार के दुःख के नाश करनेवाले हैं।

व्याख्या : संशय से यह लोक और परलोक दोनों नष्ट हो जाते हैं। सुख कहीं नहीं मिलता। यथा : नायं लोकोऽस्ति न परो न सुखं संशयात्मनः। शोक सद्यः बुद्धि का हरण करनेवाला है। यथा : सोक कनक लोचन मति छोनी। हरी बिमल गुन गन जग जोनी। अतः इन्हें अदर्शन रूप घोर अन्धकार कहा गया है। इसके लिए रामजी सूर्य रूप हैं। अनायासेन नाश कर देते हैं। अविद्या निशा ही नष्ट हो जाती है। भाव यह कि रामजी के भजन से संशय और शोक का नाश हो जाता है।

राक्षसों को तो रामजी ऐसा नाश करते हैं जैसे घने बन को आग जला देती है। बन के नाश करने में अग्नि सा सामर्थ्य किसी को नहीं है। पहिले पद में भीतरी शत्रु का नाश कहा। अब इस पद से बाहरी शत्रु का नाश कहते हैं। जनकसुता के साथ श्रीरघुबीर संसार के दुःख को नाश करते हैं। जनकसुता क्लेशहारिणी और सर्वश्रेयस्करी हैं और सरकार की वल्लभा है। अतः उनके साथ रामजी को क्यों नहीं भजते ? जहाँ पर श्री रामजी का ध्यान कहा गया है वहाँ जनकसुता के साथ ही कहा गया है। यथा : सीतां पार्श्वगतां सरोरुहकरां विद्युन्निभां राघवम्। पश्यन्तीं मुकुटाङ्गदादिविविधाकल्पोज्ज्वलांगं भजे।

बहु बासनामसक हिमरासिहि। सदा एक रस अज अबिनासिहि ॥
मुनि रंजन भंजन महि भारहिं। तुलसिदास के प्रभुहिं उदारहिं ॥५॥

अर्थ : बहुत सी वासना रूपी मच्छड़ों के लिए पालारूप को सदा एक रस। अजन्मा और अविनाशी को मुनियों को सुख देनेवाले तथा पृथिवी के भार के हरण करनेवाले को तथा तुलसीदास के उदार प्रभु की क्यों नहीं भजते।

व्याख्या : जिस भाँति मच्छड़ पीड़ा देते हैं उसी भाँति वासना सदा पीड़ा दिया करती है। हिम पाला के त्रास से उनका बल बहुत कुछ कम हो जाता है। यथा : मसक दंस बीते हिम त्रासा। सरकार तो उनके लिए हिमराशि हैं। जहाँ सरकार हैं वहाँ वासना पास नहीं फटक सकती।

अब सरकार का स्वरूप कहते हैं कि वे ही एक ऐसे हैं जो सदा एकरस रहते हैं। शेष सभी कुछ परिवर्तनशील है। इसलिए इनका जन्म नहीं होता। जिनका जन्म नहीं होता उनका नाश भी नहीं होता। भाव यह कि जलज बिलोचन स्यामल गात आदि कहने से इन्हें मनुष्य न समझ लेना। यह तो उनका मायिक रूप हैं। वस्तुतः ये सदा एकरस अज अविनाशी हैं।

इनका अवतार ही : परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्। हुआ करता है। ऐसे उदार हैं कि तुलसीदास के प्रभु हो गये। नहीं तो ऐसे जड़मति का प्रभु होना कौन स्वीकार करेगा ?

दो. एहि बिधि नगर नारि नर, करहिं राम गुनगान।
सानुकूल सब पर रहहिं, संतत कृपानिधान ॥३०॥

अर्थ : इस विधि से नगर के नारी नर सदा रामजी के गुणों का गान करते थे और कृपानिधान भी सब पर सदा सानुकूल रहते थे।

व्याख्या : गान करने की विधि दिखाने के लिए कवि ने यहाँ प्रादेश मात्र कहा। स्त्री पुरुष सबको राम गुनगान में सुख बोध होता है। सरकार कृपानिधान हैं। उनके गान पर रीझे हुए हैं। अयोध्या भर गवैया नहीं है। पर रोना गाना सभी को आता है। जैसा जो गा सकता है वैसा गाता है। पर सरकार कृपानिधान हैं। सदा सब पर सानुकूल रहते हैं। कहा भी है कि : नाहं वसामि वैकुण्ठे योगिनां हृदये न च। मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद।

यह स्तुति अभिजित् नक्षत्र है। अभिजित् को मिलाकर २८ नक्षत्र माने गाये हैं। नहीं तो नक्षत्र की संख्या २७ की ही है। अभिजित् में तीन तारे चमकते हैं। इस स्तुति में भी तीन बातें चमकती हैं। १. भजहु २. नमत और ३. कसन भजहु। इसका त्रिभुज रूप है। तीन अर्धालियों का एक भुज है। नौ अर्धालियों में स्तुति समाप्त है : सुकबि सरद नभ मन उडगन से। यह फलश्रुति है।

जबते राम प्रताप खगेसा। उदित भयउ अति प्रबल दिनेसा॥
पूरि प्रकास रहेउ तिहुँलोका। बहुतेन्ह सुख बहुतन्ह मन सोका॥१॥

अर्थ : हे पक्षिराट्! जब से रामजी के प्रताप का अति प्रबल सूर्य उदय हुआ तब से तीनों लोक में प्रकाश भर गया। बहुतों को सुख हुआ और बहुतों के मन में शोक हुआ।

व्याख्या : श्रीरामजी के प्रताप का सूर्य तो मिथिलापुरी में ही उदय हो गया था। यथा : उदित उदय गिरि मंच पर रघुवर बाल पतंग। पर बढ़ते बढ़ते वह सरकार के सिंहासनारूढ़ होने पर अति प्रबल हो गया। ऐसा कभी नहीं होता कि किसी के प्रताप के बढ़ने से सबको सुख हो। यदि भले का प्रताप बढ़ा तो भलों को सुख और बुरों को दुःख होता है। यदि बुरे का प्रताप बढ़ा तो बुरों को सुख और भलों को दुःख होता है। पर सुख दुःख की परख सज्जनों के ही सुख दुःख से है। अधिक मनुष्यों के अधिक सुख को लक्ष्य माननेवाला सिद्धान्त ठीक नहीं। यदि दुष्ट की ही संख्या अधिक हुई तो सज्जनों का कोई ठिकाना न रह जायगा।

श्रीरामजी के प्रतापरूपी सूर्य के अतिप्रबल होने से तीनों लोक में प्रकाश भर गया। इससे बहुतों को सुख हुआ और बहुतों के मन में शोक हुआ।

जिन्हहि सोकते कहहुँ बखानी। प्रथम अबिद्या निसा नसानी॥
अघ उलूक जहँ तहाँ लुकाने। काम क्रोध कैरव सकुचाने॥२॥

अर्थ : जिन्हें शोक हुआ उन्हें बखान कर कहता हूँ। पहिले तो अविद्या रात्रि नष्ट हो गयी। पापरूपी उल्लू जहाँ तहाँ छिप गये और काम क्रोधरूपी कोईं के फूल सङ्कुचित हो गये।

व्याख्या : राम प्रतापरूपी सूर्य के उदय से जिन्हें शोक हुआ पहिले उन्हीं का

वर्णन करते हैं। क्योंकि यह सुनने पर जानने के लिए उत्सुकता होती है कि रामजी के प्रताप से किसको दुःख हुआ ? सूर्योदय से पहिली बात यह होती है कि रात्रि नष्ट होती है। अदर्शनात्मक होने से अविद्या को रात्रि कहा गया है। सो राम प्रतापरूपी सूर्य के अति प्रबल होने से अविद्या रूपी रात्रि नष्ट हो गयी। उल्लू को रात्रि में ही सूझता है। दिन में सूझता ही नहीं। इसी भाँति पाप रूपी उल्लू का प्रचार अविद्या निशा में ही होता है। दिन के प्रखर प्रकाश में वह किसी अँधेरे कन्दरा आदिक स्थानों में छिप जाते हैं। कहीं पता नहीं चलता। इसी भाँति रामराज्य में पाप बेपता हो गये। काम क्रोध वस्तुतः एक ही वस्तु है। काम पर आघात होने से वही क्रोधरूप में परिणत हो जाता है। यथा : काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः। महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम्। उसकी उपमा कैरव : कोईं से दिया। यह फूल रात को ही खिलता है। सूर्योदय होने पर सिकुड़ जाता है। इस भाँति अविद्या निशा में काम क्रोध खिले रहते हैं। रामराज्य में सङ्कुचित हो जाते हैं।

बिबिध कर्म गुन काल सुभाऊ। ए चकोर सुख लहहिं न काऊ॥
मत्सर मोह मान मद चोरा। इन्हकर हुनर न कवनिहुं ओरा॥३॥

अर्थ : अनेक प्रकार के कर्म गुण काल और स्वभाव ये चकोर हैं। इन्हें कभी सुख न मिला। मत्सर मोह मान मद चोर हैं। इनका हुनर किसी ओर नहीं चलता।

व्याख्या : कर्मों के अनेक भेद हैं। यथा : कायिक वाचिक मानसिक अथवा सञ्चित प्रारब्ध और क्रियमाण तथा गुण काल और स्वभाव। इन्हीं द्वारा जीव जन्म मरण के चक्र में पड़ा घूमता है। यथा : फिरत सदा माया कर प्रेरा। काल कर्म सुभाव गुन घेरा। इनकी उपमा चकोर से दिया। क्योंकि इनको अविद्या निशा में ही सुख मिलना सम्भव है। विज्ञान दिन में इन्हें कभी सुख नहीं मिलता।

मत्सर मान मोह मद इन चारों को चोर कहा। क्योंकि चोर की भाँति ये अविद्या निशा में अपना हुनर दिखाते हैं। हृदय रूपी घर में पैठकर सद्गुण रूपी धन का अपहरण करते हैं। यथा : मम हृदय भवन प्रभु तोरा। तहँ बसे आइ बहु चोरा। अति कठिन करहिं बर जोरा। मानहिं नहि बिनय निहोरा। तम मोह लोभ अँहकारा। इत्यादि। सो रामराज्य में अविद्या के नाश से इनको कला नहीं चलती। लोक और वेद कहीं भी इनकी दाल नहीं गलती।

धर्म तड़ाग ग्यान बिग्याना। ए पंकज बिकसे बिधिनाना॥
सुख संतोष बिराग बिबेका। बिगत सोक ए कोक अनेका॥४॥

अर्थ : धर्म रूपी तालाब में ज्ञान विज्ञान रूपी अनेक प्रकार के कमल खिल उठे। सुख सन्तोष विराग विवेक रूपी अनेक चक्रवाक शोकरहित हो गये।

व्याख्या : अब जिन्हें सुख है उनका वर्णन करते हैं। जहाँ धर्म है वहीं ज्ञान विज्ञान के होने की भी सम्भावना है। जहाँ धर्म नहीं वहाँ ज्ञान विज्ञान की चर्चा ही क्या है। यथा : धर्म ते बिरति योग ते ज्ञाना। इसीलिए धर्म को तालाब और

ज्ञान विज्ञान को कमल कहा। अविद्या निशा में ये सङ्कुचितावस्था में पड़े रहते हैं। रामप्रताप रवि के उदय होते ही ये खिल उठे।

सुख सन्तोष विराग और विवेक की उपमा कोक से दी। कोक जलपक्षी है। जल के किनारे ही रहता है। इसी भाँति सन्तोष सुख विराग विवेक ये भी धर्म तड़ाग का आश्रयण करके रहते हैं। अविद्या निशा में इनका अपने अधिकारियों से वियोग रहता है। राम प्रताप सूर्य के उदय होने से इनका संयोग अधिकारियों से हो जाता है। अतः इनका शोक चला गया। हर्षित हो उठे।

दो. यह प्रताप रबि जाके, उर जब करै प्रकास।
पछिले बाढ़हिं प्रथम जे, कहे ते पावहिं नास ॥३१॥

अर्थ : यह प्रताप सूर्य जब जिसके हृदय में प्रकाश करता है तो जिनका वर्णन पीछे किया गया वे बढ़ते हैं और जिनका वर्णन पहिले किया गया उनका नाश होता है।

व्याख्या : जब राम राज्य हुआ और रामजी का प्रताप सूर्य चमका तब उपर्युक्त बातें हुईं। पर यह बात नहीं कि वे बातें अब नहीं। इस समय भी जिसके हृदय में जब राम प्रताप रूपी सूर्य का उदय होता है उस समय विविध कर्म, गुण, काल, स्वभाव, मत्सर, मान मोह मद का नाश होता है और धर्म ज्ञान, विज्ञान, सुख, सन्तोष विराग विवेक की बढ़ोत्तरी होती है। नाम एवं श्रीराम चरित का आश्रय लेने से राम प्रताप हृदय में अवश्य आ जाता है।

भ्रातन्ह सहित रामु एक बारा। संग परम प्रिय पवन कुमारा ॥
सुन्दर उपबन देखन गये। सब तरु कुसुमित पल्लव नये ॥१॥

अर्थ : भाइयों के सहित रामजी सङ्ग में परम प्रिय हनुमान्‌जी को लिये हुए सुन्दर उपवन देखने गये। सब पेड़ फूले और नये पत्ते लग गये थे।

व्याख्या : रामजी चाहे कार्य के समय भाइयों को साथ न रक्खें पर आमोद प्रमोद के समय उन्हें अवश्य साथ रखते थे। कह भी आये हैं : बैठहिं सभा संग द्विज सज्जन। पर : अनुजन्ह संजुत भोजन करहीं। सभा का कार्य करते समय चाहे भाई साथ न रहें पर भोजन के समय अवश्य रहें। क्योंकि भाइयों पर प्रीति रही। यथा : राम करहिं भ्रातन्ह पर प्रीती। परन्तु हनुमान्‌जी पर बड़ी प्रीति थी। यथा : तैं मम प्रिय लछिमन ते दूना। अतः उपवन में जाने के समय भाइयों और हनुमान्‌जी को साथ ले लिया। वसन्त ऋतु के कारण उपवन की अधिक शोभा हो रही थी। पेड़ो में फूल लग रहे थे। नये पत्ते निकल आये थे।

जानि समय सनकादिक आये। तेज पुंज गुन सील सोहाये ॥
ब्रह्मानन्द सदालय लीना। देखत बालक बहुकालीना ॥२॥

अर्थ : अवसर जानकर सनकादिक आये। मानो तेज के पुञ्ज ही थे और

उनके गुण और शील भी सुन्दर थे। वे ब्रह्मानन्द में सदा लीन रहते थे। देखने में तो बालक मालूम होते थे परन्तु थे बहुत दिन के।

व्याख्या : सनकादि से सनक सनन्दन सनातन सनत्कुमार चारो महात्माओं का आना कहा। प्रायः ये लोग साथ ही रहते हैं। ये लोग सरकार के दर्शन के लिए नित्य ही ब्रह्मलोक से अयोध्या आया करते थे। यथा : नारदादि सनकादि मुनीसा। दरसन लागि कोसलाधीसा। दिन प्रति सकल अयोध्या आवहिं। पर दर्शन करके चले जाते थे। कुछ कहने सुनने का अवसर नहीं मिलता था। अवकाश होने पर ही उपवन जाना होता है। अतः सरकार को उपवन में देखकर निश्चय किया कि यही अवसर है। अतः प्रभु के पास गये।

उनका वर्णन करते हुए कवि कहते हैं कि ये लोग ऐसे तेजस्वी थे कि मालूम होता था कि चार तेजोराशियाँ चली आ रही हैं। ये सन्तों के सिरताज थे। इसलिए इनमें सुहाये गुण भी थे। आचरण भी सुन्दर थे। ये सदा ब्रह्मानन्द में निमग्न रहा करते थे। इनकी सदा पाँच वर्ष के बालक की सी अवस्था बनी रहती है। परन्तु ये ब्रह्मा के प्रथम मानस पुत्र हैं। हरिः शरणम् : मन्त्र जप प्रभाव से सदा बालक रूप में ही रहते हैं।

रूप धरें जनु चारिउ बेदा। समदरसी मुनि बिगत बिभेदा॥
आसा बसन ब्यसन यह तिनहीं। रघुपति चरित होहिं तहँ सुनहीं॥३॥

अर्थ : मानों मूर्तिमान चारों वेद हों। वे समदर्शी और भेदभाव रहित हैं। उनका दिगम्बर वेष है और यही एक व्यसन है कि जहाँ रामजी का चरित कहा जाता हो वहाँ जाकर सुना करते हैं।

व्याख्या : चारो ऐसे ज्ञान के निधान हैं कि उन्हें मूर्तिमान् वेद कहा जा सकता है। वे सब में ब्रह्म को समान देखते हैं। उन्हें भेदभाव है ही नहीं। भाव यह कि निवृत्ति मार्ग के ये ही चारो परम गुरु हैं। सृष्टि के आदि में नारायण ने इन्हें ही निवृत्ति मार्ग का उपदेश किया था और इन्हीं से निवृत्ति मार्ग का प्रचार हुआ।

ये सदा दिगम्बर : नग्न रहते हैं और देखने में ये पाँच वर्ष के बालक जान पड़ते हैं। इन लोगों ने तपस्या करके यही वरदान प्राप्त किया है कि हम लोगों की अवस्था सदा पाँच वर्ष के बालकों सी बनी रहे। अतः सृष्टि के आदि में उत्पन्न होने पर भी ये वैवस्वतमनु के २४वीं चतुर्युगी में पाँच वर्ष के बालक ही जान पड़ते थे फिर भी इनमें एक व्यसन था। अनावश्यक बात में लग्न होने को ही व्यसन कहते हैं : जो ब्रह्मादन्द में लवलीन रहे। उसे चरित्र श्रवण की कोई आवश्यकता नहीं। पर ये जहाँ रामजी का चरित्र वर्णन हो वहीं सुनने चले जाते हैं। इसलिए कवि कहते हैं कि उनमें इस बात का व्यसन तो अवश्य था। भाव यह कि सबके लिये रामचरित्र का श्रवण उपयोगी है। यथा : जीवन मुकुत महामुनि जेऊ। हरिगुन सुनहि निरंतर तेऊ। विषयिन्ह कहँ पुनि हरिगुन ग्रामा। स्रवन सुखद अरु मन अभिरामा। ते जड़ जीव निजात्मक घाती। जिनहि न रघुपति कथा सोहाती।

तहाँ रहे सनकादि भवानी। जहँ घट संभव मुनिवर ग्यानी ॥
राम कथा मुनिवर बहु बरनी। ग्यानजोनि पावक जिमि अरनी ॥४॥

अर्थ : हे भवानी ! सनकादि वहाँ थे जहाँ विज्ञानी मुनि अगस्त्यजी रहते हैं। श्रेष्ठ मुनि ने रामजी की बहुत सी कथायें कहीं जो कि ज्ञानाग्नि की उत्पत्ति के लिए अरणी के समान हैं।

व्याख्या : इस समय सनकादिक ब्रह्मलोक से नहीं आ रहे हैं। रामचरित सुनने के व्यसनी हैं। अगस्त्यजी के यहाँ रामचरित होता था। उसीको सुनने के लिए गये थे। अगस्त्यजी रामचरित्र के बहुत बड़े आचार्य हैं। स्वयं शिवजी उनकी कही कथा सुनने जाते हैं। यथा : राम कथा मुनिवर्य बखानी। सुनी महेस परम सुख मानी। यहाँ यह भी ध्यान देने योग्य बात है कि साक्षात् सरकार का दर्शन छोड़कर सनकादि महर्षि सरकार का चरित्र सुनने गये। अतः सिद्ध है कि कथा श्रवण साक्षात् दर्शन से कम नहीं है।

अब रामकथा की महिमा कहते हैं कि इसके मन्थन से अर्थात् श्रवण मनन निदिध्यासन से ज्ञान प्रकट होता है। जैसे अरणी के मन्थन से अग्नि प्रकट होती है। जिस भाँति अरणी में अग्नि अव्यक्तरूप से नखानख भरी है। मन्थन से उसका प्राकट्य होता है। इसी भाँति रामकथा में ज्ञान अव्यक्त रूप से भरा पड़ा है। श्रवण मनन निदिध्यासन से प्रकट होता है। दूसरी बात यह है कि अग्नि के प्रकट होने के अन्य उपाय भी हैं। पर उन उपायों से प्रकट हुई अग्नि अशुद्ध होती है। अरणी के मन्थन से प्रकटी हुई अग्नि ही शुद्ध मानी जाती है। यज्ञादि क्रिया उसी से सम्पन्न होती है। इसी भाँति शुद्ध ज्ञान तो रामचरित्र से ही प्रकट होता है। यथा : ज्ञानमार्गं चरित्रेण रातीति रामः। ऐसी भी व्युत्पत्ति तापनीय श्रुति में पायी जाती है।

दो. देखि राम मुनि आवत, हरखि दण्डवत कीन्ह।
स्वागत पूछि पीतपट, प्रभु बैठन कहँ दीन्ह ॥३२॥

अर्थ : रामजी ने मुनियों को आते देखकर हर्षित होकर दण्डवत् किया और स्वागत पूछकर स्वयं अपना पीताम्बर बैठने के लिए दिया।

व्याख्या : जिस भाँति विरतिरत गृहस्थ विष्णुभक्त को देखकर मारे आनन्द के नाच उठता है। यथा : लछिमन देखु मोरगन नाचत वारिद पेखि। गृही विरतरत हरख जस विष्णु भगतु कहुँ देखि। उसी भाँति सरकार भी सनकादिक को आते देखकर हर्षित हुए और दण्डवत प्रणाम किया। ऐसी प्रतिष्ठा सरकार ने किसी की नहीं की। स्वागत पूजा और अपना उत्तरीय उतारकर उनके आसन के लिए बिछा दिया। सम्राट् के यहाँ आसनों का घाटा नहीं रहता। यहाँ उत्तरीय वस्त्र को आसन कल्पना करना सनकादिक की अत्यन्त प्रतिष्ठा है।

कीन्ह दंडवत तीनिउ भाई। सहित पवनसुत सुख अधिकाई ॥
मुनि रघुपति छबि अतुल बिलोकी। भए मगन मन सके न रोकी ॥१॥

अर्थ : तीनों भाइयों ने उन्हें हनुमान्‌जी के सहित दण्डवत् प्रणाम किया। सबको बड़ा सुख हुआ। मुनि सरकार की अतुलित छवि देखकर मग्न हो गये और मन को रोक न सके।

व्याख्या : सरकार के दण्डवत् करने और आसन देने के बाद भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न और हनुमान्‌जी ने दण्डवत् किया। इन लोगों को भी बड़ा सुख हुआ। सात सर्ग अपवर्ग सुख धरिय तुला एक अंग। तूल न ताहि सकल मिलि जो सुख लव सत संग।

सनकादि मुनि हैं। दुःख में इनका मन उद्विग्न नहीं होता। सुख चाहते नहीं बीतराग भय क्रोध स्थितप्रज्ञ हैं। सुरूप कुरूप सब इनके लिए समान हैं। पर सरकार की छवि ऐसी अनुपम है कि उनके देखने से मग्न हो गये। मन के रोकने का अभ्यास है। अतः सरकार के दर्शन करने पर मन को क्षुब्ध जानकर रोकना चाहा। पर रुक न सका। यहाँ न रुकने में ही मन की प्रशंसा है। यथा : अवलोकिहौं सोच बिमोचन को ठगि सी रही जे न ठगे धिकसे।

स्यामलगात सरोरुह लोचन। सुन्दरता मंदिर भव मोचन॥
एकटक रहे निमेष न लावहिं। प्रभु कर जोरे सीस नवावहिं॥२॥

अर्थ : श्याम शरीर कमल से नेत्र सुन्दरता के निवास संसार से छुड़ानेवाले को एकटक देखने लगे। पलक नहीं पड़ती। सरकार हाथ जोड़े प्रणाम कर रहे हैं।

व्याख्या : स्याम सरीर सुभाय सुहावन। सोभा कोटि मनोज लजावन। सो उस श्याम स्वरूप को देखते हैं जो कि सुन्दरता का घर है। तथा : कहहु सखी अस को तनु धारी। जो न मोह यह रूप निहारी। और कमल से नेत्र संसार पाश से छुड़ानेवाले हैं। यथा : मामवलोकय पंकज लोचन कृपा बिलोकनि सोच विमोचन। ऐसी मूर्ति का सनकादिक एकटक होकर दर्शन कर रहे हैं। पलक भी नहीं गिराते जिसमें निमिष मात्र का भी व्यवधान दर्शन में पड़े और सरकार अत्यन्त श्रद्धा होने के कारण हाथ जोड़े हुए पुनः पुनः नमस्कार कर रहे हैं।

तिन्हकै दसा देखि रघुबीरा। स्रवत नयन जल पुलक सरीरा॥
कर गहि प्रभु मुनिवर बैठारे। परम मनोहर बचन उचारे॥३॥

अर्थ : उनकी दशा सरकार ने देखी कि आँखों से आँसू बह रहा है और शरीर में पुलकावली व्याप्त है। सरकार ने हाथ पकड़ पकड़कर श्रेष्ठ मुनियों को बिठाया। और परम मनोहर बचन बोले।

व्याख्या : सरकार ने उनकी दशा देखी कि आँखों से अश्रु की धारा बह रही है। सात्त्विक भाव हुआ है। शरीर में रोमाञ्च है। इससे उनके आन्तरिक दशा का अनुभव हुआ कि इतने प्रेम में मग्न हैं कि इन्हें इस बात की भी सुधि नहीं है कि उनके लिए सरकार ने अपना उत्तरीय बैठने को बिछा दिया है। न उन्हें बैठने की सुधि है। अतः हाथ पकड़ पकड़कर उन्हें आसन पर बिठाया। तब परम मनोहर

वचन बोले जिसमें मन का सङ्ग श्रवण के साथ हो जाय। रूप से ध्यान खिंचकर बातचीत पर आजायँ।

आजु धन्य मैं सुनहु मुनीसा। तुम्हरे दरस जाहिं अघ खीसा ॥
बड़े भाग पाइब सत संगा। बिनहि प्रयास होइ भव भंगा ॥४॥

अर्थ : हे मुनीश ! सुनिये आज मैं धन्य हुआ। क्योंकि आपके दर्शन से पाप कट जाते हैं। बड़े भाग्य से सत्संग की प्राप्ति होती है। उससे अनायास ही संसार मिट जाता है।

व्याख्या : मुख दीखत पातक हरै परसत कर्म बिलाहिं। बचन सुनत मन मोहगत पूरब भाग मिलाहिं। अतः सरकार कहते हैं कि आज मैं धन्य हुआ। उसका कारण भी स्वयं ही देते हैं कि आप लोगों के दर्शन से पाप नष्ट हो जाते हैं और पुण्य की वृद्धि होती। क्योंकि सत्सङ्ग की प्राप्ति थोड़े पुण्यवालों को नहीं होती। सन्त तो सभी जगह सदा सुलभ हैं। यथा : सबहिं सुलभ सब दिन सब देसा। सेवत सादर समन कलेसा। फिर भी सत्सङ्ग की प्राप्ति नहीं होती। सन्त विभीषणजी सदा लंका में ही रहे पर राक्षसों को सत्सङ्ग की प्राप्ति न हुई। अतः जब सत्सङ्ग हो वही घड़ी धन्य है। यथा : धन्य घरी सोई जब सत संगा। सत्सङ्ग का माहात्म्य कहते हुए सरकार बतलाते हैं कि सत्सङ्ग द्वारा आवागमन के नष्ट होने में प्रयास नहीं होता। अन्य साधनों से भी भव भङ्ग होता है। पर वह अधिक प्रयाससाध्य है।

दो. संत संग अपवर्ग कर, कामी भव कर पंथ।
कहहिं संत कबि कोबिद, स्रुति पुरान सद ग्रंथ ॥३३॥

अर्थ : पण्डित कवि वेद पुराण और सद् ग्रन्थ सभी कहते हैं कि सन्त मोक्ष के पन्थ हैं और कामी संसार के पन्थ हैं।

व्याख्या : सन्त कवि कोविद आप्त हैं। श्रुति पुराण सद्ग्रन्थ आप्तवाक्य हैं। अतः परम प्रमाण हैं। इन सबका यह मत है कि सन्त लोग मोक्ष के मार्गरूप हैं। यथा : मति कीरति गति भूति भलाई। जब जेहि जतन जहाँ जेहि पाई। सो जानब सत संग प्रभाऊ। लोकहुँ वेद न आन उपाऊ। इसी भाँति कामी भव के पन्थ रूप हैं। यथा : काम क्रोध मद लोभ सब नाथ नरक के पन्थ। सब परिहरि रघुबीरहिं भजहु भजहिं जेहि सन्त।

सुनि प्रभु बचन हरख मुनि चारी। पुलकित तन अस्तुति अनुसारी ॥
जय भगवंत अनंत अनामय। अनघ अनेक एक करुनामय ॥१॥

अर्थ : प्रभु के बचन सुनकर चारो मुनि हर्षित हुए। पुलकित शरीर होकर स्तुति करने लगे। हे भगवान् ! आप की जय हो। आप अन्तर्हित दोष रहित और पाप रहित हैं। एक हैं और करुणामय हैं।

व्याख्या : प्रभु के बचन सुनकर चारो मुनि हर्षित हो गये कि जब सरकार ने

श्रीमुख से हमें सन्त कह दिया तो अब हम लोग सचमुच सन्त हो गये। हर्ष से सारे शरीर में पुलक हो गया और लगे स्तुति करने। मन से हर्षित हुए। तन से पुलकित हुए। वचन से स्तुति करने लगे। उत्कर्ष वस्तुतः आपका ही है क्योंकि आप भगवान् नित्य षडैश्वर्य सम्पन्न हैं। अनादि तो छः पदार्थ हैं। पर उनमें से पाँच सान्त हैं। एक आप ही अनन्त हैं। अतः निर्विकार भी आप ही हैं। विकारवान् कभी न कभी अवश्य नाश को प्राप्त होता है। आप ही अनघ हैं अर्थात् शुद्ध सच्चिदानन्द हैं। आप में विजातीय पदार्थ का मेल नहीं है। आप सजातीय विजातीय तथा स्वगत भेद से शून्य हैं। फिर भी माया से अनेक रूप धारण करते हैं इसलिए अनेक भी हैं। आप करुणावतार हैं। यथा : करुणामय मृदु राम सुभाऊ।

जय निर्गुन जय जय गुन सागर। सुख मंदिर सुन्दर अति नागर ॥
जय इंदिरा रमन जय भूधर। अनुपम अज अनादि सोभाकर ॥२॥

अर्थ : हे निर्गुण ! आप की जय हो। हे गुण के समुद्र ! आप की जय हो ! जय जय हो ! सुख के घर सुन्दर और अत्यन्त चतुर लक्ष्मीपति आप की जय हो। हे पृथिवी के धारण करनेवाले आप की जय हो। हे अनुपम, अजन्मा, अनादि और शोभा की खानि !

व्याख्या : आप सत्त्व रजस् तमस् से परे होने से निर्गुण हैं और गुणों के अधिष्ठान होने से गुणसागर है। स्वयं आनन्द सिन्धु होने से सुख मन्दिर हैं। सब कुछ करते हुए भी आप सदा निष्क्रिय बने रहते हैं। इसलिए अति नागर हैं अथवा कोसलकुमार होने से अति नागर हैं। यथा : जल सीकर महि रज गनि जाहीं। रघुपति चरित न बरनि सिराहीं। आप इन्दिरा रमण हैं ?आपके शीलादि गुणको देखकर ही लक्ष्मी ने आपका वरण किया है। यथा : अब जानी मैं श्री चतुराई। भजी तुमहि सब देव बिहाई। आप ही शेष कमठ अथवा वाराह रूप से पृथिवी को धारण किये हुए हैं। अतः आप ही भूधर हैं। यथा : न तस्य प्रतिमा अस्ति यस्य नाम महद्यशः। आपका जन्म नहीं होता आप माया मानुष रूप हैं। क्योंकि आप अनादि हैं। आपके रूप के लेश को पाकर ही अति सुन्दर कहलानेवालों की शोभा है। यथाः संभु बिरञ्चि विष्णु भगवाना। उपजहिं जासु अंस ते नाना भगवाना। अतः आप शोभाकर हैं।

ग्यान निधान अमान मान प्रद। पावन सुजस पुरान बेद बद ॥
तज्ञ कृतज्ञ अज्ञता भंजन। नाम अनेक अनाम निरंजन ॥३॥

अर्थ : आप ज्ञान के निधान मान रहित हैं। पर अमान को मान के देनेवाले हैं आपके पावन सुयश का वेद वर्णन करता है। आप तत्त्व के ज्ञाता उपकार के माननेवाले और अज्ञता के नाश करनेवाले हैं। आपके अनेक नाम हे फिर भी आप नाम रहित तथा लेप रहित हैं।

व्याख्या : आप ज्ञान के निधान हैं क्योंकि सबके प्रकाशक हैं। यथा : सहज

प्रकास रूप भगवाना। आप अपरिच्छिन्न हैं इसलिए अमान हैं और अमान अर्थात् अहङ्कार रहित सन्तों को मान देनेवाले हैं। यह सुयश ऐसा पवित्र है कि इसका वर्णन वेद और पुराण करता है। यथा : कृत भूप विभीषन दीन रहा।

आप ही तत्पद के जानकार हैं। दूसरे को उस पद की जानकारी आप ही की कृपा से होती है। यथा : सोइ जानै जेहि देहु जनाई और आप कृतज्ञ हैं। यथा : अति कृतज्ञ प्रभु परम सुजाना। आप ही भक्तों से कार्य कराते हैं और आप ही कृतज्ञ होते हैं। आप ही अज्ञानका नाश करते हैं। सर्वनाम होने से आप के अनेक नाम हैं। फिर भी आप अनाम हैं क्योंकि सर्व रूप हैं और निर्लेप हैं।

सर्व सर्व[1] गत सर्व उरालय। बससि सदा हम कहुँ परिपालय॥
द्वंद बिपति भव फंद बिभंजय। हृदि बसि राम काम मद गंजय॥४॥

अर्थ : आप ही सब हैं सबमें व्याप्त हैं और सबके हृदय रूपी घर में वास करते हैं। अतः १. हमारा पालन कीजिये। द्वन्द्व विपत्ति और २. संसार के जाल को काट दीजिये। हे रामजी ! हृदय में वस कर काम और मद को नष्ट कीजिये। भावार्थ यह कि सरकार के हृदय में निवास करने से ही काम भाग जायगा। सगुण रूप से प्रकट होने से ही कामादिक का नाश होता है।

व्याख्या : आप ही व्यापक हैं और आप ही व्याप्य हैं। अतः आप ही सर्व हैं और आप ही सर्वगत हैं और आप ही अन्तर्यामी होकर सबके हृदय में बसते हैं। यथा : ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति। अतः हमारा पालन भी आप ही करिये दूसरा कोई पालक हो नहीं सकता। अब पालन करने की विधि कहते हैं कि सुख दुःख शीतोष्ण में ही द्वन्द्व हैं विपत्ति रूप हैं। १. सो द्वन्द्व को दूर कीजिये और २. संसार का दुस्तर जाल है। इसका नाश हृदय में बसकर करिये। भावार्थ यह कि सगुण रूप से हृदय में बसकर हमारा पालन कीजिये।

दो. परमानंद कृपायतन, मनपर पूरन काम।
प्रेम भगति अनपायनी, देहु हमहिं श्रीराम॥३४॥

अर्थ : हे परमानन्द कृपाके भवन मन से परे और पूर्ण काम श्रीराम अनपायिनी प्रेमाभक्ति हमें कृपा करके दीजिये।

व्याख्या : दुःखाननुविद्ध सुख रूप आप हैं। आप कृपा के घर हैं। कृपायतन से ही याचना करने से मनःकामना पूर्ण होती है। आप मनसे भी परे हैं। अतः आप में ही मनोभिलाष पूर्ण करने का सामर्थ्य है। आप पूर्णकाम हैं जिसकी कामना स्वयं पूर्ण न हुई हो, वह दूसरे की कामना क्या पूर्ण करेगा ? प्रेमाभक्ति जिसमें विघ्न न हो उसे कृपा करके दीजिये क्योंकि वह क्रियासाध्य नहीं है कृपासाध्य है। यह दोहा

१. दीपकावृत्ति प्रथम अलंकार है।

रूपी कमल : देहु भगति रघुपति अति पावनि। इस पुरइन से निकला है। अतः अनपायिनी भक्ति के गुण पुरइन से ही जाने जायँगे।

देहु भगति रघुपति अति पावनि। त्रिबिध ताप भवदाप नसावनि ॥
प्रनत काम सुर धेनु कलप तरु। होइ प्रसन्न दीजै प्रभु यह बरु ॥१॥

अर्थ : हे रघुपते ! अति पवित्र भक्ति दीजिये जो कि तीनों ताप और संसार के अभिमान को दूर करनेवाली है। हे प्रणतकी कामना के लिए कामधेनु तथा कल्पवृक्ष ! प्रसन्न होकर प्रभो ! यह वर दीजिये।

व्याख्या : अति पावनी भक्ति प्रेमाभक्ति है। यथा : प्रेम भगति जल बिनु रघुराई। अभ्यन्तर मल कबहुँ कि जाई। उसी प्रेमा भक्ति से त्रिविध ताप दूर होता है। क्योंकि : भगति करत बिनु जतन प्रयासा। संसृति मूल अबिद्या नासा। उसीसे भवदाप दूर होता है। यथा : तेहि बिलोकि माया सकुचाई। करि न सकै कछु निज प्रभुताई।

सरकार प्रणत के लिए कामधेनु भी हैं और कल्पवृक्ष भी हैं। अर्थात् जगदम्बा तथा जगत्पिता के रूप से कामना पूर्ण करते हैं। यथा : सुनु सेवक सुरतरु सुरधेनू। केवल सेवक के लिए हो सुखद नहीं प्रणत के लिए भी आप कामधेनु और कल्पवृक्ष हैं। मैं प्रणत हूँ और वर माँगता हूँ। आप अभिमत देनेवाले हैं। यथा : मागत अभिमत पाव जग राउ रंक भल पोच। अनपायिनी भक्ति की बड़ी चाह है। इसलिए तोन वार देहु कहा। पहिली स्तुति समाप्त हुई।

भव बारिधि कुंभज रघुनायक। सेवत सुलभ सकल सुखदायक ॥
मन संभव दारुन दुख दारय। दीनबंधु समता बिसतारय ॥२॥

अर्थ : हे रघुनायक ! आप संसार सागर के लिए अगस्त्य हैं। सेवक को सुलभ हैं और सब सुख देनेवाले हैं। मनसे उत्पन्न हुए दारुण दुःखका नाश कीजिये। हे दीनबन्धो ! समताका विस्तार कोजिये।

व्याख्या : यद्यपि मनुष्यरूप सरकार का है परन्तु अति विस्तृत भवसागर के सोखने के लिए आप अगस्त्यरूप हैं। यद्यपि आपकी प्राप्ति अतिदुर्लभ है। यथा : अति दुर्लभ कैवल्य परम पद। तथापि आप सेवक को सुलभ हैं। यथा : सेवत सुलभ सकल सुखदायक। प्रनत पाल सचराचर नायक। सेवक सुखद सुभग सब अंगा। और उसे सब प्रकार से सुख देते हैं। यथा : सहज बानि सेवक सुखदायक।

मन से जो दुःख उत्पन्न होते हैं वे बड़े कठिन है। यथा : जाने ते छीजहिं कछु पापो। नास न पावहिं जन परितापो। एक ब्याधि बस नर मरहिं ए असाधि बहु ब्याधि। पीडहिं संतत जीव कहँ सो किमि लहै समाधि। सो आप इस दुःख का नाश कीजिये। आप दीनबन्धु हैं। मैं दीन हो रहा हूँ। आप समता का विस्तार कीजिये। भाव यह कि विषमता के कारण ही मानस रोग पीड़ा दे रहे हैं। समता के विस्तार से इनका आपही आप नाश हो जायगा।

आस त्रास इरषादि निबारक। बिनय बिबेक बिरति बिसतारक ॥
भूप मौलि मनि मंडन धरनी। देहि भगति संसृति सरि तरनी ॥३॥

अर्थ : हे आशा त्रास तथा ईर्ष्यादि के निवारण करनेवाले ! विनय विवेक और विरति के विस्तार करनेवाले ! पृथिवी को अलंकृत करनेवाले राजाओं के शिरोमणि ! संसार नदी के लिए नाव रूप भक्ति हमें दीजिये।

व्याख्या : आप ईर्ष्यादि मनोविकार को दूर करनेवाले हैं। इष्ट प्राप्ति की आशा और अनिष्ट प्राप्ति का त्रास होता है। दूसरे के उत्कर्ष से ईर्ष्या होती है। जे पामर भये दास आस के ते सबही के चेरे। रघुपति कृपा आस जीति जिन ते सेवक हरि केरे। उत्थायोत्थाय बोद्धव्यं महद्भयमुपस्थितम्। मरणव्याधिशोकानां किमद्य निपतिष्यति। मरण व्याधि और शोक किस समय आ पड़ेगा। इसका त्रास सभी को रहता है। ईर्ष्या के कारण विना आग के ही मनुष्य जला करता है। सरकार की कृपा से ये सब दोष दूर हो जाते हैं। केवल दोषापनयन ही नहीं होता गुणाधान भी होता है। विनय विवेक और विरति का विस्तार होता है। बिनय बड़ा भारी गुण है। इसी से पात्रता होती है। यथा : विनयात् याति पात्रताम्। विना विवेक के तो मनुष्य आँख रहते अन्धा होता है। यथा : तेहि करि विमल बिबेक बिलोचन। और विरति तो ज्ञान और योग का प्रधान साधन है। इन सब गुणों का विस्तार होता है। राम शब्द का व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ तापनीय श्रुति में किया गया है : राजते यो महीस्थितः। इसी बात को : भूप मौलि मनि मंडन धरनी कहकर स्पष्ट किया गया। अपने चरित्र से राजाओं को धर्ममार्ग का उपदेश देते हैं। यथा : राज्यार्हाणां महीभृतां धर्ममार्गं चरित्रेण रातीति रामः। सो हे रामजी ! भक्ति दीजिये जो कि संसार सरिता के लिए तरणी रूप है। नाव पर आरूढ होकर मनुष्य नदी में विहार करता फिरता है और उसे जल का स्पर्श नहीं होता। इसी प्रकार भक्त संसार में रहते हुए भी निर्लेप रहता है। यहाँ तक दूसरी स्तुति है। तीसरी में हाथ लगाते हैं।

मुनि मन मानस हंस निरंतर। चरन कमल बंदित अज संकर ॥
रघुकुल केतु सेतु स्रुति रक्षक। कालकर्म सुभाउ गुन भक्षक ॥४॥
तारन तरन हरन सब दूषन। तुलसिदास प्रभु त्रिभुवन भूषन ॥५॥

अर्थ : हे मुनियों के मन रूपी मानससर के हंस ! आपके चरण कमल ब्रह्मदेव और शङ्कर से वन्दित हैं। आप रघुकुल की पताका हैं वेद रूपी पुल के रक्षक हैं काल कर्म स्वभाव और गुण के भक्षक हैं आप तारण तरण हैं और सब एषणा के हरण करनेवाले हैं। तुलसीदास के प्रभु तीनों लोक के भूषण हैं।

व्याख्या : सरकार मुनियों के मन रूपी मानससरोवर के हंस हैं। निरन्तर वहीं निवास करते हैं। मुनियों के मानस की शोभा आप से है और स्वयं आपको उसमें

विहार करने में सुख है। चरणकमल की ऐसी महिमा है कि जगत् के कल्याण करनेवाले ब्रह्मदेव और शङ्कर अपने कल्याण के लिए उनकी वन्दना किया करते हैं।

रघुकुलकेतु कहने से रघुकुल में अवतार कहा। चिन्मयेऽस्मिन् महाविष्णौ जाते दाशरथे हरौ। रघोः कुलेऽखिलं राति राजते यो महीस्थितः। सेतु स्रुति रक्षक कहने से अवतार का कारण कहा और काल कर्म स्वभाव गुन भक्षक कहने से भव बन्धन का नाश करनेवाला कहा। काल कर्म गुण स्वभाव ही बन्धन है। इन्हीं से बँधा हुआ जीव चौरासी लक्ष योनि में फिरा करता है। इसके आप भक्षक हैं। अतः जो तर गये हैं उनके तारनेवाले आप ही हैं। इसलिए तारण-तरण कहा। सरकार की कृपा से दूषण भूषण हो जाते हैं। यथा : दूषन मे भूषन सरिस सुजस चारु चहुँ ओर। और ऐसे कृपा निधान हैं किन्तु आपको तुलसीदास ऐसे शठ की भी सेवा स्वीकार है। सरकार से ही तीनों लोक की शोभा है। अथवा तीनों लोक चरणचिह्न से अंकित हैं। अतः त्रिभुवन भूषण कहा। तीसरी स्तुति अधूरी ही रह गयी। आकांक्षा नहीं प्रकट कर सके। अतः इसका स्वरूप त्रिविक्रम सा है। जिन्होंने सम्पूर्ण जगत् दो पैर से नाप लिया। तीसरा अधूरा ही रह गगा। उससे राजा बलि को नापा।

दो. बार बार अस्तुति करि, प्रेमु सहित सिरु नाइ।
ब्रह्मलोक सनकादि गे, अति अभीष्ट बर पाइ ॥३५॥

अर्थ : बार बार स्तुति करके और प्रेम के सहित वन्दना करके सनकादि मुनि अति अभीष्ट वर पाकर ब्रह्म लोक गये।

व्याख्या : यह स्तुति सनकादि चारो भाइयों की है क्योंकि बार बार स्तुति करना कहते हैं। स्तुति भी प्रेम सहित किया और प्रेम सहित प्रणाम किया। सरकार ने एवमस्तु नहीं कहा पर अति अभीष्ट वर जो प्रेमाभक्ति थी वह मिल गयी। अतः ब्रह्मलोक चले गये। यह श्रवण नक्षत्र है। इसमें तीन तारे चमकते हैं १. प्रेम भगति अनपायिनी देहु २. देहु भगति और ३. देहि भगति ये तीन तारे हैं। सेवक सुलभ सकल सुखदायक से फलश्रुति कहा। यथा : राम भगतजन जीवन धन से।

सनकादिक बिबिधि लोक सिधाये। भ्रातन्ह राम चरन सिर नाये ॥
पूछत प्रभुहि सकल सकुचाहीं। चितवहिं सब मारुत सुत पाहीं ॥१॥

अर्थ : सनकादिक तो ब्रह्मलोक गये। भाइयों ने रामजी के चरणों में सिर नवाया। प्रभु से पूछते हुए सब सङ्कोच करते थे। सब हनुमान्जी की ओर देखने लगे।

व्याख्या : पूर्व के दोहा का यह पद पुरइन है : सनकादिक विधि लोक सिधाये। सरकार ने सनकादिक के आने पर उनका बड़ा मान किया और उन्हें सन्त सहकर सन्त की स्तुति भी की। इसी से भाइयों के हृदय में सन्त के लक्षण जानने की उत्कण्ठा हुई। अतः तद्विषयक प्रश्न करने के लिए भाइयों ने प्रणाम किया। सरकार

ने जब उन लोगों की ओर देखा तो नीचे देखने लगे। पूछने में सङ्कोच है क्योंकि सन्त शब्द इतना प्रसिद्ध है कि उसके लक्षण पूछने में ढिठाई समझी जा सकती है। हनुमान्‌जी के लिए सब माफ है। अतः सब लोग हनुमान्‌जी की ओर देखते हैं कि हम लोगों की ओर से तुम उत्तर दो।

सुनी चहै प्रभु मुख कै बानी। जो सुनि होइ सकल भ्रमहानी ॥
अंतरजामी प्रभु मुख सभ जाना। बूझत कहहु काह हनुमाना ॥२॥

अर्थ : प्रभु के श्रीमुख की वाणी सुनना चाहते हैं जिसके सुनने से सम्पूर्ण भ्रम की हानि होती है अन्तर्यामी प्रभु ने सब जान लिया। बोले हनुमान्‌जी ! कहो क्या बात है।

व्याख्या : प्रभु मुख कमल विलोकत रहहीं। कबहुँ कृपाल हमहिं कछु कहहीं। अतः सबको श्रीमुख के वचन सुनने की अभिलाषा रहती है। इस समय चित्त में जिज्ञासा भी उत्पन्न हो गयी है। सकल भ्रम की हानि तो प्रभु की वाणी से ही होगी। उस वाणी में ही ऐसा प्रभाव है। उपदेश वैचित्र्य नहीं। वह तो वैसा ही होता है जैसा शास्त्र में लिखा है।

अन्तर्यामी ईश्वर से कुछ छिपा नहीं है। यथा : तुम से कछु न छिपी करुना निधि तुम हो अंतरजामी। यह जान लिया कि सबको इच्छा है कि हनुमान्‌जी वार्तारम्भ करें। अतः हनुमान्‌जी से पूछते हैं कि तुम ही कहो कि ये लोग क्या कहना चाहते हैं : बड़े भाई और छोटे भाइयों में इतना प्रश्रय : अदब होना। यह भारत की संस्कृति है।

जोरि पानि कह तब हनुमंता। सुनहु दीन दयाल भगवंता ॥
नाथ भरत कछु पूछन चहहीं। प्रस्न करत मन सकुचत अहहीं ॥३॥

अर्थ : हनुमान्‌जी ने तब हाथ जोड़कर कहा कि हे दीनदयाल भगवान् सुनो। हे नाथ ! भरतजी कुछ पूछना चाहते हैं पर प्रश्न करने में मन सङ्कुचित हो रहा है।

व्याख्या : हनुमान्‌जी हाथ जोड़कर बोले। साक्षात् प्रश्न करने पर चुप नहीं रह सकते। दीनदयाल भगवान् कहकर सम्बोधन किया। सोचा कि मेरे ऊपर इतनी कृपा कि जहाँ भाई नहीं बोल सकते वहाँ मेरे बोलने का अधिकार हुआ। निदरि गनी आदर गरीब पै रीति सदा चलि आई। अतः दीनदयाल कहा और अन्तर्यामी होने से भगवान् कहा।

हनुमान्‌जी ज्ञानिनामग्रगण्य हैं। तुरन्त समझ गये कि सब भाइयों का प्रष्टव्यविषयक एक ही है। अभी सन्त का आगमन हुआ है और सरकार ने इतना आदर किया है। अतः सन्त के विषय में ही सबकी जिज्ञासा है। ऐसे अवसर में मुख्य प्रश्नकर्ता भरतजी हैं। अतः कहते हैं कि नाथ ! भरतजी कुछ पूछना चाहते हैं पर प्रश्न करने में सङ्कोच कर रहे हैं। कारण यह है कि वह प्रश्न ऐसा है कि जिसे

सुनकर सरकार कह सकते हैं कि इसे तो तुम जानते हो। फिर व्यर्थ प्रश्न क्यों कर रहे हो।

तुम्ह जानहु कपि मोर सुभाऊ। भरतहि मोहि कछु अंतर काऊ ॥
सुनि प्रभु बचन भरत गहे चरना। सुनहु नाथ प्रनतारति हरना ॥४॥

अर्थ : हनुमान्‌जी ! तुम तो मेरे स्वभाव को जानते हो। क्या भरत में और मेरे में कोई अन्तर है। प्रभु का वचन सुनकर भरतजी ने चरण पकड़ लिया और बोले हे प्रणतार्तिहरण नाथ !

व्याख्या : सरकार ने कहा कि हनुमान्‌जी ! तुम मेरे स्वभाव को जानते हो कि मुझे भरत स्वभाव से ही प्रिय हैं। यथा : राम प्रान प्रिय नाथ तुम्ह सत्य बचन मम तात। जो हनुमान्‌जी ने भरतजी से कहा था उसी की पुष्टि हो रही है। प्राणप्रिय से क्या अन्तर है। सङ्कोच तो अन्तर होने से होता है। जब अन्तर ही नहीं तब जो चाहो सो बोलो। दूसरी बात यह है कि जब भरत में और मुझमें अन्तर ही नहीं तब प्रश्न का उद्‌गम शोक मोह सन्देह कहाँ से होगा।

भरतजी ने यह वचन सुनकर सरकार का चरण पकड़ लिया। भाव यह कि इन चरणों के आश्रय से ही मेरा कल्याण है अथवा चरण पकड़ने से प्रणाम अभिप्रेत है। भाव यह कि मैं प्रणत हूँ और सरकार प्रणतार्तिनाशन स्वामी हैं।

दो. नाथ न मोहि संदेह कछु, सपनेहु सोक न मोह।
केवल कृपा तुम्हारिहि, कृपानंद संदोह ॥३६॥

अर्थ : हे नाथ ! मुझे कुछ भी सन्देह नहीं है और शोक मोह तो सपने में भी नहीं है। हे कृपानन्द सन्दोह ! यह केवल आपकी कृपा का फल है।

व्याख्या : शोक मोह संसारवृक्ष का बीज है। इन्हीं के होने से सन्देह भी होता है। सो भरतजी कहते हैं कि ये सब मुझे कुछ भी नहीं है। बिना सन्देह हो बोध की दृढ़ता के लिए पूछता हूँ। मुझ में कोई साधन नहीं है पर सरकार के कृपा की सामर्थ्य ऐसी है कि मुझे संसार की बाँधा नहीं है। सब लोग सरकार को चिदानन्द सन्दोह कहते हैं। पर भरतजी कृपानन्द सन्दोह कहते हैं। निर्गुण ब्रह्म चिदानन्द सन्दोह हैं। पर सगुण ब्रह्म तो कृपानन्द हैं। परोपकारकैवल्ये तोलयित्वा जनार्दनः। गुर्वीमुपकृतिं मत्वा अवतारान् दशाग्रहीत्।

करौं कृपानिधि एक ढिठाई। मैं सेवक तुम्ह जन सुखदाई ॥
संतन कै महिमा रघुराई। बहुबिधि बेद पुरानन्ह गाई ॥१॥

अर्थ : हे कृपानिधे ! मैं एक ढिठाई करता हूँ। मैं सेवक हूँ और आप भक्तों के सुख देनेवाले हैं। हे रघुराई ! सन्तों की महिमा बहुत भाँति से वेद पुराणों में गायी गयी है।

व्याख्या : भरतजी कहते हैं मैं ढिठाई करता हूँ। आप क्षमा करेंगे। आप कृपा के समुद्र हैं। कृपा की तरङ्गें उठा करती हैं। मेरी ढिठाई को उन्हीं तरङ्गों से ढक लेंगे। जन सुखदायी स्वामी से सेवक ढिठाई कर बैठता हूँ। यथा : आरति मोर नाथ कर छोहू। दुहु मिलि कीन्ह ढीठ हठि मोहू।

वेद पुराणों में सन्तों की महिमा अनेक प्रकार से वर्णित है। क्योंकि : खल अघ अगुन साधु गुन गाहा। उभय अपार उदधि अवगाहा। जितने सद्‌गुण हैं सो सब सब साधु के हैं। अतः वेद पुराणों ने उन्हीं का गान किया है।

श्री मुख तुम्ह पुनि कीन्हि बड़ाई। तिन्ह पर प्रभुहि प्रीति अधिकाई ॥
सुना चहौं प्रभु तिन्ह कर लक्षन। कृपासिंधु गुन ग्यान बिचक्षन ॥२॥

अर्थ : तिस पर आपने श्रीमुख से उनकी बड़ाई की है। उनपर सरकार की प्रीति भी अधिक है। हे प्रभो ! मैं उनका लक्षण सुनना चाहता हूँ। आप कृपा के समुद्र और गुण तथा ज्ञान में निपुण हैं।

व्याख्या : वेद पुराण में तो महिमा कथित ही है। तिसपर सरकार ने अभी उनकी कितनी बड़ाई की है। उनके आने से अपने को धन्य माना। उनके दर्शन से पाप का नाश कहा। उन्हें अपवर्ग का द्वार कहा। उनके बैठने के लिए अपना उत्तरीय बिछा दिया।

अव्याप्ति अतिव्याप्ति और असम्भव दोष वर्जित जो वर्णन है उसी को लक्षण कहते हैं। भरतजी कहते हैं कि मैं सन्तों का लक्षण सुनना चाहता हूँ जिसमें सन्तों की पहिचान में भ्रम न हो। सरकार कृपासिन्धु हैं। कृपा करके बतलाइये। सरकार गुणज्ञान में विचक्षण हैं। दूसरा इस बात को कैसे कहेगा। क्योंकि नीति प्रीति परमारथ स्वारथ। कोउ न राम सम जान जथारथ।

संत असंत भेद बिलगाई। प्रनतपाल मोहि कहहु बुझाई ॥
संतन्ह के लच्छन सुनु भ्राता। अगिनित स्रुति पुरान बिख्याता ॥३॥

अर्थ : सन्त और असन्त के भेद को अलग अलग करके हे प्रणतपाल मुझे समझाकर कहिये। हे भाई सन्तन के लक्षण सुनो जो कि असंख्य श्रुति तथा पुराणों में प्रसिद्ध है।

व्याख्या : विधि प्रपञ्च गुण और अवगुण मिलाकर बना है। अतः गुण दोष का विवेचन बड़ा कठिन है। भरतजी कहते हैं कि सन्त और असन्त का भेद अलग अलग समझाकर मुझे बतलाइये। आप उसका विवेक कर सकते हैं। अलग अलग गुण दोष को किसी ने देखा नहीं। जहाँ देखिये वहाँ गुण में दोष का अनुवेध और दोष में गुण का अनुवेध देखा जाता है। अतः शीघ्र समझ में नहीं आता। सरकार प्रणतपाल हैं। मैं प्रणत हूँ मुझे समझाकर कहिये।

भरतजी स्वामीभाव रखते हैं। सरकार भ्रातृभाव रखते हैं। अतः उत्तर देते हुए भाई सम्बोधन देते हैं। वेदों का कोई अन्त नहीं है। यथा : अनन्ता वै वेदाः

भरद्वाज। भगवान् इन्द्र ने कहा कि भरद्वाज वेद का तो अन्त नहीं है। सो सब में साक्षात् या परम्परा करके सन्त का ही निरूपण है। पुराणों में भी वही बात है पुराण श्रुति के उपोद्बलक हैं।

संत असंतन्हि कै असि करनी। जिमि कुठार चंदन आचरनी॥
काटै परसु मलय सुनु भाई। निज गुन देइ सुगंध बसाई॥४॥

अर्थ : सन्त और असन्त की ऐसी करनी है जैसा कुठार और चन्दन आचरण करते हैं। हे भाई! परशु चन्दन को काटता है और वह अपना गुण सुगन्ध उसमें बसा देता है।

व्याख्या : सन्त और असन्त का पहिचान उनकी करणी से होता है। कुठार की भाँति असन्त आचरण करते हैं और चन्दन की भाँति सन्त का आचरण होता है। कुठार चन्दन को काटता है। काटना कष्ट देने की पराकाष्ठा है। सन्त और असन्त दोनों की जड़ से उपमा दिया। भाव यह कि दोनों जड़ को भाँति आचरण करते हैं मानो दुःख सुख इन्हें है ही नहीं। अथवा भाव यह है कि सन्त असन्त के किसी जाति विशेष में होने का नियम नहीं है। जड़ में भी हो सकते हैं। सन्त वेष सन्त होने का अव्यभिचारी लक्षण नहीं हैं। सन्त की करणी होना अव्यभिचारी लक्षण है। यथा : उमा संत कै इहै बड़ाई। मंद करत जो करै भलाई।

कुठार चन्दन को काटता है। चन्दन काटना जानता ही नहीं। चन्दन ने कुठार का कुछ बिगाड़ा नहीं। चन्दन सबको प्रिय है। इसलिए कुठार उसे काटता है। अपने स्वभाव को कुठार नहीं छोड़ता और न चन्दन अपने स्वभाव को छोड़ता है। अपना गुण कुठार को यथासम्भव दे देता है। कुठार अपना दोष चन्दन को नहीं दे सकता।

दो. तातें सुर सीसन्ह चढ़त, जग बल्लभ श्री खंड।
अनल दाहि पीटत घनहि, परसु बदनु यह दंड॥३७॥

अर्थ : इसलिए 'देवताओं के सिर पर चढ़ता है। चन्दन जगत् को प्यारा है और आग में तपाकर हथौड़े से पोटते हैं। कुल्हाड़े के मुख : फल को यह दण्ड जाता है।

व्याख्या : चन्दन में ऐसी शान्ति सहनशीलता और परोपकार है। इस कारण देवताओं के सिर पर चढ़ता है। उसके सिर पर चढ़ाने से देवता प्रसन्न होते हैं। संसार को प्यारा है। लक्ष्मी का अंश कहा जाता है। कुठार की करणी कुठार की दुर्दशा का कारण है। उसके मुख : फल को पहिले आग में तपाया जाता है। पीछे निहाई पर रखकर हथौड़े से पीटते हैं। यह दण्ड कुठार को मिलता है।

बिषय अलंपट सील गुनाकर। पर दुख दुख सुख सुख देखे पर॥
सम अभूत रिपु बिमद बिरागी। लोभामरष भय त्यागी॥१॥

अर्थ : विषय से तृष्णा रहित शील और गुणों की खान है। पराया दुःख देखकर दुःखी और सुख देखकर सुखी होते हैं। समान भाव रखनेवाले अजातशत्रु मद से रहित और वैराग्यवान् होते हैं तथा लोभ, अमर्ष, हर्ष और भय को त्यागे रहते हैं।

व्याख्या : उमा सन्त कै इहैं बड़ाई। मंद करत जो करै भलाई। यह सन्त का पहिला लक्षण है। अब दूसरा करते हैं। सन्त लोग भी जीवन धारण के लिए कुछ विषय का सेवन करते ही हैं। पर उसमें आसक्त नहीं होते। इसलिए विषय अलम्पट कहा। सेवन बिषय विवर्ध जिमि नित नित नूतन मार। यह बात उसमें नहीं होती। सदाचार और सद्गुण के तो वे खानि ही होते हैं। खान में कितनी वस्तु होती है, सो गिनायी नहीं जा सकती। इसी भाँति सन्त के गुणों की संख्या नहीं है। यथा : सुनु मुनि साधुन के गुन जेते। कहि न सकहिं सारद स्रुति तेते। दुःशील निर्गुणो ऐसे नहीं हो सकते। वे अपने दुःख सुख को नहीं गिनते। पराये सुख से सुखी और पराये दुःख से दुःखी होते हैं। यथा : पर दुःख द्रवहिं संत सुपुनीता।

सम से शान्ति कहा। यथा : तुलसी जो पानी भया, बहुरि न पावक होय। वे अजातशत्रु होते हैं उनका कोई शत्रु नहीं होता। वे सारे संसार को निज प्रभुमय देखते हैं। यथा : निज प्रभु मय देखहिं जगत, कासन करहिं बिरोध। न उन्हें मद होता है न राग होता है। उन्हें विराग का भी मद नहीं। वे सभी विकार से रहित होते हैं। लोभ अमर्ष हर्ष और भय को उन लोगों ने त्याग किया है।

कोमल चित दीनन्ह पर दाया। मन बच क्रम मम भगति अमाया ॥
सबहि मान प्रद आपु अमानी। भरत प्रान सम मम ते प्रानी ॥२॥

अर्थ : उनका चित्त कोमल होता है। दीन पर दया करते हैं। मनसा वाचा कर्मणा मुझमें निष्कपट भक्ति करते हैं। सबको मान देते हैं और स्वयं मान से दूर रहते हैं। हे भरतजी ! ऐसे प्राणी मुझे प्राण के समान हैं।

व्याख्या : उनका ऐसा कोमल चित्त होता है कि दूसरे का दुःख देख नहीं सकते। यथा : संत हृदय नवनीत समाना। कहा कविन्ह परि कहै न जाना। निज परिताप द्रवै नवनीता। पर दुःख द्रवहिं संत सुपुनीता। अतः दीनों पर उनकी सदा दया रहती है। कहा गया है कि कपट रहित प्रेम मनुष्य लोक में नहीं होता। यथा : कैतवरहितं प्रेम न भवति मानुषे लोके। यदि भवति कस्य विरहो विरहे सत्यपि को जीवति। पर सन्तों के भगवच्चरणाविन्द में मनसा वाचा कर्मणा कैतव रहित प्रेम होता है।

वे लोग सबके सम्मान करनेवाले होते हैं। स्वयं मान नहीं चाहते। यथा : मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवंत। भरतजी ने कहा था : तिन पर प्रभुहि कृपा अधिकाई। उसी बात की पुष्टि करते हुए सरकार कहते हैं कि ऐसे लोग मुझे प्राण के समान प्रिय हैं।

बिगत काम मम नाम परायन । सान्ति बिरति बिनती मुदितायन ॥
सीतलता सरलता मयत्री । द्विज पद प्रेम धरम जनयित्री ॥३॥

अर्थ : कामना रहित होकर मेरे नाम में लगे रहते हैं। शान्ति वैराग्य विनय और मुदिता के तो मानो घर ही है। शीतलता सरलता मैत्री और धर्म की उत्पन्न करनेवाली ब्राह्मणों के चरणों में प्रीति ।

व्याख्या : अब तीसरा प्रकार कहते हैं। विगत काम से विषय अलम्पट कहा। ये नाम के उपासक हैं। इनका सिद्धान्त है ब्रह्म राम ते नाम बड़ बरदायक बरदानि। रामचरित सत कोटि मँह लिय महेस जिय जानि। शान्ति से शम विरति से वैराग्य कहा। विनती से सबहि मान प्रद आपु अमानी कहा। मुदितायन से पर दुःख दुःख सुख सुख देखे पर कहा।

शीतलता से : तुलसी जो पानी भया बहुरि न पावक होइ कहा। सरलता से महात्मा होना कहा। यथा : मनस्येकं वचस्येकं कर्मण्येकं महात्मनाम्। मैत्री से धर्मात्माओं पर प्रेम कहा। द्विजपद प्रीति से हरितोषण व्रत कहा। यथा : हरितोषन व्रत द्विज सेवकाई। पुन्य एक जग मह नहीं दूजा। मन क्रम बचन बिप्रपद पूजा। जिसे ब्राह्मण के चरण में प्रीति ही नहीं वह धर्मात्मा हो नहीं सकता।

ये सब लच्छन बसहिं जासु उर। जानहु तात संत संतत फुर ॥
सम दम नियम नीति नहिं डोलहिं। परुष बचन कबहूँ नहि बोलहिं ॥४॥

अर्थ : ये सब लक्षण जिनके हृदय में बसते हैं हे तात ! उसे सच्चा सन्त जानना। शम दम नियम और नीति से कभी चलायमान नहीं होते और कठोर वचन कभी बोलते नहीं।

व्याख्या : ये आठो सब सन्त के लक्षण हैं। असन्त इनकी नकल नहीं कर सकता। तिलक छाप तो वह भी लगा लेता है। सन्तों के हृदय में उपर्युक्त लक्षण बसते हैं। कभी इनका वियोग नहीं होता। नीके हैं साधु सबै तुलसी पै तेइ रघुबीर के सेवक साँचे। कवितावली ७.११८ :

अब चौथा प्रकार कहते हैं। शम अन्तरिन्द्रिय दमन को कहते हैं। दम बाह्येन्द्रिय दमन को कहते हैं। शौचसन्तोषतपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः। नीति से सदाचार अथवा न्यायप्रियता कहा। यथा : नीति बिरोध सोहाय न मोही। कठोर वचन तो बोलते ही नहीं। क्रुद्ध्यन्तं न प्रतिक्रुध्येत् आक्रुष्टः कुशलं वदेत्। क्रोध के बदले में क्रोध न करे। गाली देनेवाले का भी कल्याण मनावे।

दो. निंदा अस्तुति उभय सम, ममता मम पद कंज ।
ते सज्जन मम प्रान प्रिय, गुन मंदिर सुख पुंज ॥३८॥

अर्थ : जिन्हें निन्दा और स्तुति दोनों बराबर और जिनकी मेरे चरणकमलों में ममता है। ऐसे गुणमन्दिर सुखपुञ्ज सज्जन मुझे प्राण प्रिय होते हैं।

व्याख्या : जिन्हें निन्दा या स्तुति सुनकर चित्त पर किसी प्रकार का प्रभाव नहीं पड़ता। संसार में कहीं ममता नहीं केवल सरकार के चरणों में जिन्हें ममता है। यथा : सब कर ममता ताग बटोरी। मम पद मनहिं बाँध बरि डोरी। ऐसे सज्जन गुणमन्दिर सुखपुञ्ज भगवान् में ममता करने से स्वयं गुणमन्दिर सुखपुञ्ज हो जाते हैं। उन पर भगवान् की प्राण के समान ममता होती है।

इस प्रकरण में भगवान् ने तीनों प्रकार के सन्तों अर्थात् भक्तियोगी ज्ञानयोगी और कर्मयोगियों के लक्षण कहे। बिषय अलंपट सील गुनाकर से लेकर भरत प्रानसम मम ते प्रानी तक भक्तियोगियों का वर्णन है। उसमें कहा भी गया है कि : मम बच क्रम मम भगति अमाया। और बिगत काम मम नाम परायन से लेकर : सन्त संतत फुर तक ज्ञानी भक्त का वर्णन है। क्योंकि उनका परम शरण नाम बतलाया गया है और नाम से ज्ञानमार्ग की प्राप्ति होती है। यथा : ज्ञानमार्गं तु नामतः। रामतापनीये। तथा संत संतत फुर कहकर वही भाव द्योतित किया। जो कि : ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम् कहकर प्रकाशित किया गया है। इसी भाँति: सम दम नियम नीति नहि डोलहिं। से : गुन मंदिर सुख पुंज कर्मयोगी भक्त का वर्णन है। क्योंकि नीति नहि डोलहिं तथा गुणमन्दिर शब्दों से उनका क्रियाकौशल द्योतित करते हैं। योगः कर्मसु कौशलम्।

सुनहु असंतन केर सुभाऊ। भूलेहु संगति करिअ न काऊ ॥
तिन्हकर संग सदा सुखदाई। जिमि कपिलहि घालै हरहाई ॥१॥

अर्थ : असन्तों का स्वभाव सुनो। भूलकर भी उनका साथ कभी न करना। उनका साथ सदा दुःखदायी है। जैसे हड़हा गाय कपिला का नाश करती है।

व्याख्या : यहाँ तक सन्तों का लक्षण कहा। अबः संत असंत भेद बिलगाई। प्रनतपाल मोहि कहहु बुझाई। इस प्रश्न का उत्तर दे रहे हैं। यहाँ स्वभाव ही लक्षण है। लक्षण कहने के पहले सावधान करते हैं कि लक्षण घटता है या नहीं इस बात के जानने के लिए भी साथ न करना। चूक से संगति हो जाय तो लक्षण मिलते दूर हो जाना।

असन्तों का संग सदा अर्थात् दोनों लोकों में दुःख देनेवाला है। संग करने से उनके साथ रहना ही होगा। तब वे उसी भाँति विपत्ति में डालेंगे जैसे हड़हा के साथ कपिला का नाश होता है। हड़हा दुष्ट गाय दूध न दे। लात भी मारे। रात को दूसरों का खेत चरे। यह कथा प्रसिद्ध है कि हड़हा फुसलाकर कपिला को खेत चरने ले गयी। खेत के मालिक को आते देखकर हड़हा तो भाग गयी और कपिला बिचारी भाग न सकी और पकड़ी गयी।

खलन्ह[1] हृदय अति ताप बिसेखी। जरहिं सदा पर संपति देखी ॥
जहँ कहुँ निंदा सुनहि पराई। हरषहिं मनहु परी निधि पाई ॥२॥

१. यहाँ उल्लासः गुण से दोष अलङ्कार है।

अर्थ : खलों के हृदय में अत्यन्त विशेष ताप रहता है। सदा परायी सम्पत्ति देखकर जला करते हैं। जहाँ कहीं परायी निन्दा सुनते हैं तो ऐसे हर्षित होते हैं मानों पड़ी हुई निधि मिल गयी।

व्याख्या : संसार का ताप तो सभी को सन्तप्त करता है। पर उनमें विशेषता है वे परायी सम्पत्ति देखकर जला करते हैं। संसार में सम्पत्तिवालों की कमी नहीं है। इसलिए खलों को अति विशेष ताप होता है। उनके दुःख का पारावार नहीं।

बड़े परिश्रम करने पर भी निधि का इकट्ठा होना दुर्लभ है। सो यदि अनायास पड़ी हुई निधि किसी को मिल जाय तो उसे बड़ा भारी हर्ष होता है। परिश्रम कुछ न पड़ा और चिराभीप्सित पदार्थ की प्राप्ति हो गयी। वैसी ही प्रसन्नता खलों को परायी निन्दा सुनने से होती है। दूसरे को अपयश देने में उन्हें बड़ा परिश्रम करना पड़ता है। तब जाकर कहीं उसकी निन्दा प्रख्यात होती है। सो उन्हे परिश्रम भी कुछ नहीं करना पड़ा और दूसरे की निन्दा सुनने में आगयी। इससे उनके आनन्द का ठिकाना नहीं।

काम क्रोध मद लोभ परायन। निर्दय कपटी कुटिल मलायन॥
बयरु अकारन सब काहू सों। जो कर हित अनहित ताहू सों॥३॥

अर्थ : काम क्रोध मद और लोभ ही उनका परम शरण है। वे निर्दयी कपटी कुटिल और मल के घर हैं। निष्कारण वैर सबसे रखते हैं। जो हित करता है उससे भी वैर रखते हैं।

व्याख्या : खलों का परम शरण काम क्रोध और लोभ है : जे ताकहिं पर धन पर दारा। पर धन और परदारा ही उनका परम लक्ष्य है। दया के समान दूसरा धर्म नहीं। सो दया उनके पास नहीं फटक सकती। परधन परदारा की प्राप्ति सरलता से नहीं होती। जिससे उनकी प्राप्ति होती है वह कपट है। कपट सरल पुरुष कर नहीं सकता। वह तो कुटिल से ही सम्भव है। सो उन्हें कपट और कुटिलता का घाटा नहीं है। लोभ परायण होने से मलायन हैं। लोभी क्या नहीं करता।

उनको वैर करने के लिए कारण नहीं ढूँढ़ना पड़ता। प्राणीमात्र उन्हें वैरी मालूम पड़ते हैं। वे आजन्मते परद्रोहरत हैं। वे सहज सुहृद से भी वैर करते हैं। दुःख देने का उनका स्वभाव है। उसमें उन्हें आनन्द मिलता है। बिना कारण कार्य होता नहीं। पर वे ऐसे समर्थ हैं कि बिना कारण वैर पैदा कर लेते हैं।

झूठइ लेना झूठइ देना। झूठहि भोजन झूठ चबेना॥
बोलहिं मधुर बचन जिमि मोरा। खाहिं महा अहि हृदय कठोरा॥४॥

अर्थ : झूठ ही ग्रहण करते हैं। झूठ ही देते हैं। झूठ ही उनका भोजन है और चर्वण भी झूठ ही है। मोर की भाँति मीठी वाणी बोलते हैं और हृदय ऐसा कठोर है कि बड़ा साँप भी खा जाते हैं।

व्याख्या : लेना देना का अर्थ व्यवहार है। सब व्यवहार उनका झूठा है। सत्य के निकट ही नहीं जाते। बिना झूठ के उनका पेट नहीं भरता। न मनोविनोद होता है। लेंगे तो झूठ कहकर। कभी सच्ची बात न कहेंगे। देंगे तब भी झूठ बात कहकर। झूठ से ही जीते हैं झूठ से ही तोष है।

सम्पूर्ण शरीर पर सज्जन के चिह्न हैं। देखे सो मोहित हो जायँ और बोली भी बड़ी मीठी परन्तु मन घोर है। उनकी उपमा मोर से दी गयी है। जिसका ऊपरी स्वरूप बड़ा सुन्दर होता है। पर हृदय ऐसा कठोर है कि विषधर सर्प खाकर पचा जाता है।

दो. परद्रोही परदार रत, परधन पर अपवाद।
ते नर पावर पापमय, देह धरे मनुजाद ॥३९॥

अर्थ : जो परद्रोही, परदार, परधन और पर अपवाद में रत हैं। वे मनुष्य पामर पापमय हैं। वे मनुष्य रूप में राक्षस हैं।

व्याख्या : मनुष्य के खानेवाले को मनुजाद कहते हैं। यथा : खल मनुजाद द्विजामिष भोगी। वे यदि मनुष्य रूप धारण कर लें तो उनका पहिचानना कठिन है। सरकार उनकी पहिचान बतलाते हैं कि ये लक्षण जिनमें हो उनसे सावधान रहना। वे ही नरदेह धरे मनुजाद हैं। जो दूसरे के द्रोह में दत्तचित्त रहता हो। दूसरे की स्त्री और धन में जो रत हो। जो दूसरे की निन्दा करने में सुख मानता हो। वह वस्तुतः मनुजाद है। राक्षस है। केवल शरीर उसका मनुष्य सा है। यथा : करहिं उपद्रव असुर निकाया। नाना रूप धरहिं कर माया।

लोभइ ओढ़न लोभइ डासन। सिस्नोदर पर जमपुर त्रास न॥
काहू के जो सुनहि बड़ाई। स्वास लेहिं जनु जूड़ी आई ॥१॥

अर्थ : उनका लोभ ही ओढ़ना और लोभ ही बिछौना है। वे लिङ्ग और पेट में ही लगे रहते हैं। उन्हें यमपुर का डर नहीं होता। यदि किसी की बड़ाई सुने तो ऐसा श्वास लेते हैं मानों उन्हें जड़ैया : बोखार आगया हो।

व्याख्या : शयन काल में भी उन्हें लोभ नहीं छोड़ता। लोभ में ही उन्हें विश्राम मिलता है। सब बातें ही उनकी विलक्षण हैं। उनका भोजन विचित्र। उनका विश्राम विचित्र। दिन रात जिह्वा और उपस्थ के फेर में पड़े रहते हैं। उन्हें यमपुर का भय नहीं है। वे कहते हैं कि यमपुर की कल्पना झूठी है। मानों उनके न मानने से यमपुर का अस्तित्व ही लुप्त हो जायगा।

दूसरे की निन्दा सुनने से उन्हें बड़ा हर्ष होता है। यदि कहीं उन्हें दूसरे की प्रशंसा सुनायी पड़े तो उन्हें बड़ा दाह होता है। कुछ कर सकते नहीं। बड़ाई करनेवाले का पक्ष प्रबल होता है तो लम्बी लम्बी साँस लेने लगते हैं। विकल हो जाते हैं। उनकी दशा ऐसी हो जाती है मानों उन्हें जड़ैया : बोखार आगया हो।

जब काहू कै देखैं बिपती । सुखी भये मानहुँ जग नृपती ॥
स्वारथ रत परिवार बिरोधी । लम्पट काम लोभ अति क्रोधी ॥२॥

अर्थ : यदि किसी की विपत्ति देखें तो ऐसे सुखी हों मानों उन्हें संसार भर का राज्य मिल गया हो। वे स्वार्थ में लगे हुए परिवार के विरोधी होते हैं। वे काम लोभ में आसक्त अत्यन्त क्रोधी होते हैं।

व्याख्या : निन्दा सुनने से तो निधिप्राप्ति का उन्हें सुख होता है और यदि कहीं किसी की विपत्ति देखने का सौभाग्य हो जाय तो ऐसे कृतकृत्य हो जाते हैं मानों उनको संसार का एकच्छत्र राज्य मिल गया। अपने सुख से सुखी नहीं दूसरे के दुःख से ही उन्हें सुख मिलता है। विचित्र जीव होते हैं।

वे सीधे सीधे अपना स्वार्थ देखते हैं। परिवार का स्वार्थ एक दूसरे पर निर्भर रहता है। इसलिए वे परिवार के विरोधी होते हैं। परिवार के भी धन और स्त्री हरण में उन्हें हिचक : आगा पीछा नहीं होता। तनिक सी भी अपनी हानि उन्हें सह्य नहीं है। अत: क्रोध की अति मात्रा उनमें होती है।

मातु पिता गुरु बिप्र न मानहि । आपु गये अरु घालहिं आनहि ॥
करहिं मोहबस द्रोह परावा । संत संग हरि कथा न भावा ॥३॥

अर्थ : माँ बाप गुरु और ब्राह्मण को नहीं मानते। आप तो नष्ट ही हैं दूसरे को भी नष्ट करते हैं। मोहवश दूसरे से द्रोह करते हैं। उन्हें अच्छों का साथ और भगवान् की कथा अच्छी नहीं लगती।

व्याख्या : माता पिता और आचार्य ये तीनों गुरु हैं। इन्हें देवता मानना चाहिए। वेद कहते हैं : मातृ देवो भव। पितृ देवो भव। आचार्य देवो भव। सब वर्णों के ब्राह्मण गुरु होते हैं। उनकी सेवा करना हरितोषण व्रत है। सो वे किसी को नहीं मानते। सन्मार्ग से पतित हो गये हैं और अनेक युक्तियाँ देकर दूसरों को भी ऐसा पाठ पढ़ाते हैं कि वह भी उन्हीं की भाँति पतित हो जाय।

दूसरे का द्रोह अज्ञान के वश होकर करते हैं। उन्हें इस बात का ज्ञान नहीं है कि परद्रोह बड़ा पाप है। अथवा निष्काम द्रोह करते हैं विचार नहीं करते कि द्रोह का कोई कारण नहीं है। खलों का यह प्रधान लक्षण है कि उन्हें सन्त का सङ्ग और भगवान् की कथा अच्छी नहीं लगती। जिन्हें सन्त का सङ्ग न रुचे भगवत्कथा में जिसकी प्रीति न हो वे असन्त हैं। इसमें सन्देह नहीं। यथा : जौ करि कष्ट जाइ पुनि कोई। जातहिं नींद जुड़ाई होई। जड़ता जाड़ बिषम उर लागा। गयेहुँ न मज्जन पाव अभागा।

अवगुन सिंधु मंद मति कामी । बेद बिदूषक पर धन स्वामी ॥
बिप्र द्रोह सुर द्रोह बिसेषा । दंभ कपट जिअ धरे सुवेषा ॥४॥

अर्थ : वे अवगुण के समुद्र होते हैं। उनकी बुद्धि मन्द होती है। वे कामी वेदों

की खिल्ली उड़ानेवाले पराये धन के स्वामी होते हैं। वे विशेष रूप से ब्राह्मण द्रोह और देव द्रोह करते हैं। उनके हृदय में तो दम्भ कपट रहता है। पर वेष अच्छा बनाये रहते हैं।

व्याख्या : अवगुण के तो समुद्र ही हैं। उन्हीं से निकलकर अवगुण संसार में फैला है। वे मन्दमति हैं। अवसर चूक रहे हैं। फिर मनुष्य देह नहीं मिलने की। विषयी हैं। विषय सुख को ही सुख सर्वस्व मान रक्खा है। भाँड़ों की भाँति वेद की दिल्लगी उड़ाया करते हैं। वेद पाठ का नकल करते हैं और दूसरे का धन तो मानो उन्हीं का है। वे द्रोही तो सबके होते हैं पर ब्राह्मण और देवता पर उनकी अधिक चोट होती है। ब्राह्मण और देवता पर श्रद्धा रहने से ही संसार अधोगति प्राप्ति से बच सकता है। ब्राह्मण द्रोह और देव द्रोह करना और विश्व द्रोह करना एक ही बात है। क्योंकि ऐसा करने से दैवी सहायता मिलनी बन्द हो जाती है और संसार विपत्ति के गर्त में जा पड़ता है। बाहर से साधु वेष बनाये हुए हैं। पर भीतर उनके दम्भ और कपट भरा हुआ है।

दो. ऐसे अधम मनुज खल, कृत जुग त्रेता नांहि।
द्वापर कछुक बृंद बहु, होइहहिं कलिजुग मांहि ॥४०॥

अर्थ : ऐसे अधम खल मनुष्य सत्ययुग और त्रेता में नहीं होते। द्वापर में थोड़े से ऐसे होते हैं और इनकी बहुतायत कलियुग में होती है।

व्याख्या : ऐसे अधम खल राक्षसों में भले ही हों पर मनुष्यों में ऐसे सत्ययुग और त्रेता में नहीं होते। क्योंकि ये दोनों युग उनकी उत्पत्ति के अनुकूल नहीं है। यथा : सुद्ध सत्त्व समता बिग्याना। कृत प्रभाव प्रसन्न मन जाना। सत्व बहुत रज कछु रति कर्मा। सब बिधि सुख त्रेता कर धर्मा। द्वापर में मनुष्य जाति में ऐसे अधम खल उत्पन्न हो जाते हैं क्योंकि : बहुरज स्वल्प सत्व कछु तामस। द्वापर हर्ष सोक भय मानस। पर कलियुग में ऐसे मनुष्य बहुत होते हैं क्योंकि : तामस बहुत रजोगुन थोरा। कलिसुभाव बिरोध चहुँ ओरा।

परहित सरिस धरम नहि भाई। परपीड़ा सम नहि अधमाई ॥
निरनय सकल पुरान बेद कर। कहेउ तात जानहि कोबिद नर ॥१॥

अर्थ : दूसरे के हित करने के समान कोई धर्म नहीं है। दूसरे को पीड़ा देने के समान कोई पाप नहीं है। सब वेद और पुराण का यही निर्णय है सो मैंने कहा। इसे पण्डित लोग जानते हैं।

व्याख्या : सब धर्मों से बड़ा धर्म है परोपकार। परम धर्म स्रुति बिदित अहिंसा। धर्म कि दया सरिस हरिजाना। इत्यादि वचन इसी के पोषक हैं। दयावन्त प्राणी ही परोपकार कर सकता है। निर्दय से क्या उपकार होगा। इसी भाँति : नर सरीर धरि जे पर पीरा। करहिं ते सहहिं महाभव भीरा। हिंसा पर अति प्रीति तिन

के पापहिं कौन मिति इत्यादि वचन परपीड़ा की अधमाई के द्योतक हैं। निर्दय पुरुष ही परपीड़ा कर सकता है।

श्रीरामजी कहते हैं कि सब पुराण और वेदों का यही निर्णय है। यथा : अष्टादशपुराणेषु व्यासस्य वचनद्वयम्। परोपकारः पुण्याय पापाय परपीडनम्। वेदों के विभाग करनेवाले तथा सब पुराणों के रचयिता व्यासजी ने यही निर्णय किया। इसीलिए यही वेद और पुराण का निर्णय है। व्यासजी मुनियों में श्रेष्ठ हैं। यथा : मुनीनामप्यहं व्यासः। अतः इनसे बड़ा पण्डित भी कौन है? यह सरकार की मर्यादापालकता है कि अपने वचन के प्रमाण में वेद पुराण और पण्डितों का मत उद्धृत करते हैं।

नर सरीर धरि जे पर पीरा। करहिं ते सहहिं महा भव भीरा ॥
करहि मोह बस नर अघ नाना। स्वारथ रत पर लोक नसाना ॥२॥

अर्थ : मनुष्य का शरीर धारणकर जो दूसरे को पीड़ा देते हैं वे संसार का महाकष्ट भोगते हैं। मोहवश होकर मनुष्य अनेक प्रकार के पाप करते हैं। स्वार्थ में लोक का नाश कर डालते हैं।

व्याख्या : पशु आदि स्वभाव से परपीड़ा करते हैं। उन्हें उसका प्रत्यवाय नहीं होता। क्योंकि उन्हें ज्ञान नहीं है। उनका शरीर संसार सागर के सन्तरण का साधन नहीं है। मनुष्य शरीर तो बड़े भाग्य से मिलता है। कभी ईश्वर करुणा करके नरशरीर दे देते हैं। यह शरीर साधन धाम और मोक्ष का द्वार है। इसे पाकर भी जो परपीड़ा में रत हुआ वह तो आत्मघाती की गति को प्राप्त होगा। अर्थात् उसे कुत्ते शूकर आदि की योनि प्राप्त होगी। यथा : जो न तरै भव सागर नर समाज अस पाइ। सो कृत निंदक मंद मति आतम हन गति जाइ।

जितनी मानसिक व्याधियाँ हैं उनका मूल मोह है। नर शरीर में सब सामान संसार सन्तरण का भगवान् जुटा देते हैं। यथा : नर तन भव बारिधि कहँ बेरो। सनमुख मरुत अनुग्रह मेरो। कर्णधार सद्गुरु दृढ़ नावा। दुर्लभ साज सुलभ करि पावा। सो सबका निरादर करके पाप करते हैं। स्वार्थ के लिए परमार्थ बिगाड़ते हैं।

काल रूप तिन कहँ मैं भ्राता। सुभ अरु असुभ कर्म फल दाता ॥
अस बिचारि जे परम सयाने। भजहिं मोहि संसृति दुख जाने ॥३॥

अर्थ : उनके लिए मैं काल रूप हूँ। शुभ और अशुभ कर्मों का फल देता हूँ। ऐसा विचारकर बड़े सयाने लोग संसार को दुःखरूप जानकर मुझे भजते हैं।

व्याख्या : जो नर शरीर धारण करके संसार सागर में ही पड़े हैं पार जाने का यत्न करते ही नहीं उनसे शुभाशुभ कर्म होते ही रहते हैं। उनके कर्मों का मैं कालरूप होकर फल देता हूँ। जिस भाँति वृक्ष काल पाकर फलते हैं उसी भाँति काल पाकर कर्म भी फल देते हैं। उस फल भोगने में फिर कर्म होता है। फिर उसका फल भोगना पड़ता है। इस भाँति उन्हें कभी शान्ति की प्राप्ति नहीं होती।

परमेश्वर ही फलदाता काल है। काल कोई दूसरी वस्तु नहीं है। यथा : कालोऽस्मि लोकक्षयकृत् प्रवृद्धः लोकान् समाहर्तुमिह प्रवृत्तः। जब विश्वरूप के दर्शन से अर्जुन विस्मयाविष्ट हुए। पूछने लगे कि हे उग्ररूप आप कौन हैं ? तो भगवान् ने कहा मैं काल हूँ लोक के संहार करने में प्रवृत्त हुआ हूँ।

इसलिए सयाने लोग तो स्वार्थ के वशीभूत नहीं होते। पाप नहीं करते पुण्य करते हैं। पर पुण्य भी तो बन्धन का कारण है। उसका भी फल तो भोगना ही पड़ेगा। सोने की बेड़ी भी तो बेड़ी है। इसलिए परम सयाने लोग संसार को दुःखमय जानकर परमेश्वर को भजते हैं जिसमें बन्धन से विनिर्मुक्त हो जाय।

त्यागहिं कर्म सुभासुभ दायक। भजहिं मोहि सुर नर मुनि नायक ॥
संत असंतन के गुन भाखे। ते न परहिं भव जिन्ह लखि राखे ॥४॥

अर्थ : शुभ और अशुभ देनेवाले कर्म को छोड़कर मुझ सुरनर मुनि नायक को भजते हैं। मैंने सन्त और असन्तों के गुण कहे। जिन्होंने इन्हें जान रक्खा है ये संसार में नहीं पड़ते।

व्याख्या : सरकार के भजन करनेवाले काम्य कर्म और निषिद्ध कर्मों का त्याग करते हैं। सरकार सुर नर और मुनि के स्वामी हैं। सब के अभीष्ट की पूर्ति करते हैं। उनके भजन से अभीष्ट की पूर्ति भी होती है और संसार सागर का सन्तरण भी होता है।

श्रीरामजी कहते है कि मैंने सन्त और असन्तों के गुण कहे। इन गुणों से सन्त और असन्त का पहिचान हो जायगा। जो लोग इन गुणों को पृथक् पृथक् मन में बिठा लेंगे वे खल के लक्षण से बचेंगे। अतः संसार सागर में गिरने से बच जायँगे।

दो. सुनहु तात माया कृत, गुन अरु दोष अनेक।
गुन यह उभय न देखिअहिं, देखिय सो अबिबेक ॥४१॥

अर्थ : हे तात सुनो माया के किये हुए गुण और दोष बहुत हैं। विवेक यही है कि गुण और दोष दोनों न देखे जायँ। उनका देखा जाना ही अविवेक है।

व्याख्या : न सब गुण ही कहे जा सकते हैं और न दोष ही कहे जा सकते हैं। ये दोनों माया के कार्य हैं। इनकी संख्या नहीं है। मिथ्या माया के कार्य भी मिथ्या ही हैं। मिथ्या मृगजल का वर्णन भी मिथ्या है। वे माया के कार्य हैं। अतः इन पर दृष्टिपात न करना ही विवेक है। माया के कार्य में संलग्न होना अविवेक है। यहाँ अविवेक के विरुद्ध प्रयुक्त होने से गुण का अर्थ विवेक करना चाहिए। जिसे नित्यानित्य वस्तु का विवेक है वह माया के कार्य अनित्य गुण दोष पर दृष्टिपात नहीं कर सकता। यथा : ग्यान मान जहँ एकौ नाहीं। देख ब्रह्म समान सब माहीं।

श्रीमुख बचन सुनत सब भाई। हरषे प्रेमु न हृदय समाई ॥
करहिं बिनय अति बारहि बारा। हनूमान हिय हरष अपारा ॥१॥

अर्थ : सरकार के श्रीमुख के वचन सुनकर सब भाई हर्षित हुए। उनके हृदय प्रेम समाता नहीं बार बार विनय करते हैं। हनुमान्‌जी के हृदय में अपार हर्ष है।

व्याख्या : तीनों भाई प्रभु के मुख की वाणी सुनना चाहते थे। यथा : सुनी चहैं प्रभु मुख कै बानी। जो सुनि होइ सकल भ्रम हानी। सो सुना। बात जानी हुई पर प्रभु के मुख से सुनकर उसी बात से ऐसा हर्ष हुआ कि हृदय में समाता नहीं। यदि हृदय में समाता तो चुप रह जाते। नहीं समाया। इसलिए अति विनय बारम्बार कर रहे हैं। अति विनय से श्रोता की कृतकृत्यता कहा और बारम्बार से कृतज्ञता कहा। हनुमान्‌जी के हर्ष का पारावार नहीं है। वे आनन्द में मग्न हैं। हनुमान्‌जी अति प्रेमी हैं। अतः उन्हें अपार हर्ष हुआ। साधु सन्त के रखवारे रामदुलारे हैं। अतः अपार हर्ष है।

पुनि रघुपति निज मंदिर गये। एहि बिधि चरित करत नित नये ॥
बार बार नारद मुनि आवहिं। चरित पुनीत राम के गावहिं ॥२॥

अर्थ : तब रामजी अपने महल में गये। इस भाँति नित्य नये चरित्र करते हैं। नारद मुनि बार बार आते हैं और रामजी के पवित्र चरित्र का गान करते हैं।

व्याख्या : सनकादि मिलन और सन्त असन्त गुण वर्णन के बाद सरकार महल में पधारे। गुणातीत अरु भोग पुरंदर हैं। सो चरित्र में दोनों बातें दिखलायीं। सायंकाल का समय है। अतः घर गये। इस विधि से नित्य नये सुखदायक चरित्र करते हैं। यहाँ प्रादेशमात्र दिखला दिया।

नारद मुनिजी तो बार बार आते हैं। पर वह आना दूसरा है और मिलने के लिए आना दूसरी बात है। सनकादि तो एक बार मिलने के लिए आये। उन्हें अनपायिनी भक्ति माँगना था। सो मिल गयी। पर नारदजी बार बार आते थे। सरकार के सामने उनका चरित्र गान करते थे। क्योंकि जानते हैं कि सरकार को अपने भक्तों का गान बड़ा प्रिय है और उसके गान से अपनी वाणी भी पुनीत और सुफल होती है।

नित नव चरित देखि मुनि जांही। ब्रह्मलोक सब कथा कहांहीं ॥
सुनि बिरंचि अतिसय सुख मानहि। पुनि पुनि तात करहि गुन गानहि ॥३॥

अर्थ : मुनिजी नित्य नये चरित्र देखकर जाते हैं और ब्रह्मलोक में सब कथा सुनाते हैं। सुनकर ब्रह्मदेव को बड़ा सुख होता है। कहते हैं : हे तात ! बार बार गुणों का गान करो।

व्याख्या : पहिले कह आये हैं : एहि बिधि चरित करत नित नये। उन चरित्रों को देखकर मुनिजी ब्रह्मलोक जाते हैं और वे चरित्र ऐसे हैं कि ब्रह्मलोक में उनके सुनने की उत्सुकता है। नारदजी नित्य जा जाकर वे चरित्र ब्रह्मलोक में वर्णन करते हैं। सुनकर ब्रह्मलोक निवासी निहाल होते हैं और ब्रह्मदेव को तो

अत्यन्त सुख होता है। क्योंकि जो जितना बड़ा है उसे उतना ही अधिक आनन्द आता है। अतः ब्रह्मदेव की नारदजी को बारम्बार उन चरित्रों के गान करने के लिए आज्ञा होती है।

सनकादिक नारदहि सराहहिं। यद्यपि ब्रह्म निरत मुनि आहहिं ॥
सुनि गुन गान समाधि बिसारी। सादर सुनहि परम अधिकारी ॥४॥

अर्थ : सनकादिक यद्यपि ब्रह्मनिष्ठ हैं तथापि नारदजी की प्रशंसा करते हैं। वे परम अधिकारी हैं। गुणगान सुनकर समाधि भूल जाते थे और आदर के साथ सुनते थे।

व्याख्या : सनकादि नारदजी के भी गुरु हैं। नारदजी को उन्होंने ब्रह्मविद्या का उपदेश किया है। ब्रह्मानन्द में लयलीन मुनि को श्रवण की कोई आवश्यकता नहीं है। फिर भी भगवद् गुण कीर्तन में इतना आनन्द है कि वे नारदजी के सङ्कीर्तन की प्रशंसा करते हैं। ब्रह्मनिष्ठ होने से वे परम अधिकारी हैं। उनकी ससाधि लगी ही रहती है। पर नारदजी के सङ्कीर्तन से वे समाधि भूल जाते हैं और आदर के साथ श्रवण करते हैं। समाधि भङ्ग से क्रोध नहीं करते बल्कि उपकार मानते हैं।

दो. जीवन्मुक्त ब्रह्म पर, चरित सुनहि तजि ध्यान।
जे हरि कथा न करहिं रति, तिनके हिय पाषान ॥४२॥

अर्थ : जीवन्मुक्त ब्रह्मनिष्ठ ध्यान छोड़कर कथा सुनते हैं। अतः जिन्हें हरिकथा में प्रेम नहीं होता उनका हृदय पत्थर है।

व्याख्या : राम कथा में ऐसा रस है कि उससे तृप्ति होती नहीं। यथा : राम चरित जे सुनत अघाहीं। रस बिसेष जाना तिन नाहीं। सो उस कथा से जीवन्मुक्त ब्रह्मनिष्ठ हृदय विगलित हो उठता है। वे ध्यान छोड़कर कथा सुनने लगते हैं। जो भगवत्कथा में प्रेम नहीं करते उनका हृदय पत्थर है। भाव यह कि वे स्थावरों के तुल्य हैं।

एक बार रघुनाथ बोलाये। गुर द्विज पुरबासी सब आये ॥
बैठे गुरु मुनि अरु द्विज सज्जन। बोले बचन भगत भव भंजन ॥१॥

अर्थ : एक बार रामजी ने बुलवाया। गुरु ब्राह्मण और सब पुरवासी आये। सभा में गुरु मुनि ब्राह्मण और सज्जन बैठे। तब भक्त के भव को दूर करनेवाले रामजी बोले।

व्याख्या : राजा दण्डधरो गुरुः। जिस भाँति गुरु को शिष्य के परलोक की जिम्मेदारी रहती है उसी भाँति राजा को प्रजा के लोक परलोक दोनों की जिम्मेदारी रहती है। वह दण्ड देकर भी प्रजा को सन्मार्ग पर चलाता है। अयोध्या लौकिक सुखों से परिपूर्ण है। धर्म भी चारो चरण से हैं। तथापि श्रीमुख द्वारा उपदेश देने के लिए बुलवाया। गुरु और ब्राह्मण भी बुलवाये गये। जिसमें जो बात कही

जाय उसके विषय में किसी को अनौचित्य की शङ्का न हो। क्योंकि राजा विशाम्पति है। वैश्य जाति तक उसका शासन चलता है। यथा : अथो परीक्षिद् द्विजवर्य शिक्षया महीं महाभागवतो शशास ह।

छोटे भाई मुनि और सज्जन पहिले से ही बैठे थे। जो लोग बुलवाने पर आये वे भी आकर सभा में बैठ गये। तब भक्तों के भय को दूर करनेवाले रामजी बोले। भाव यह कि भक्तों के जन्म मरण रूपी भय को नष्ट करने के लिए।

सुनहु सकल पुरजन मम बानी। कहौं न कछु ममता उर आनी॥
नहि अनीति नहि कछु प्रभुताई। सुनहु करहु जौ तुमहि सोहाई॥२॥

अर्थ : सब पुरजनो ! मेरी बात सुनो। मैं कुछ ममता मन में लाकर नहीं कह रहा हूँ। न इसमें अनीति है न प्रभुता है। मेरी बातें सुन लो फिर जैसी इच्छा हो वैसा करो।

व्याख्या : सरकार सब पुरजनों को सम्बोधन करके कहते हैं। गुरु और द्विज साक्षी के लिए हैं। जिसमें यदि अधर्म से धर्म को पीड़ा हो तो रोकें। मम वाणी से उपदेश का सङ्केत करते हैं आज्ञा नहीं देते। और यह भी कहे देते हैं कि यह न समझना कि मैं अपने किसी प्रयोजन की सिद्धि के लिए कह रहा हूँ।

मैं कोई अनुचित बात न कहूँगा और राजा होने के नाते प्रभुता के बल से भी कोई कार्य कराना नहीं चाहता। मैं जो कहता हूँ उसे सुन लो। फिर जैसी इच्छा हो वैसा करो। मैं यह नहीं कहता कि जैसा मैं कहता हूँ वैसा ही करो। विचार लो जिसमें हित बोध हो सो करो।

सोइ सेवक प्रियतम मम सोई। मम अनुसासन मानै जोई॥
जौं अनीति कछु भाखौं भाई। तौ मोहि बरजेहु भय बिसराई॥३॥

अर्थ : वही मेरा सेवक है और वही मुझे बहुत प्यारा है जो मेरी आज्ञा मानता है। हे भाई ! यदि मैं अनीति कहूँ तो भय छोड़कर मुझे रोकना।

व्याख्या : सरकार कहते हैं कि जो तुम्हारे जी में आवे सो करो। परन्तु मेरा सेवक वही और मुझे सबसे प्यारा वही है जो मेरी आज्ञा मानता हो। यदि कोई मेरी पूजा तो बड़ी भारी करे और आज्ञा न मानता हो तब वह न तो मेरा सेवक है न प्रियतम है। वेदादि शास्त्र ही सरकार के वचन हैं। यथा : मारुत स्वास निगम निज बानी। श्रुतिस्मृती ममैवाज्ञे।

यह कोई अनुचित बात नहीं है। सबको अपना आज्ञापालक प्रिय लगता है। अब सरकार सबको बोलने का अवसर देते हैं कि मेरी बातों में यदि किसी को कोई बात अनुचित मालूम हो तो वह निर्भय होकर मुझे रोके। मैं बुरा न मानूँगा। यह न डरे कि राजा की बात को मैं कैसे काटूँ। सभा में जाकर अनुचित बोलनेवाला और न बोलनेवाला दोनों पापी होते हैं। अब्रुवन् विब्रुवन् वापि नरो भवति किल्विषी।

बड़े भाग मानुष तन पावा। सुर दुर्लभ सब ग्रन्थन्हि गावा ॥
साधन धाम मोक्ष कर द्वारा। पाइ न जेहिं परलोक सँवारा ॥४॥

अर्थ : बड़े भाग्य से मनुष्य शरीर मिलता है। सद्ग्रन्थों ने कहा है कि यह देवताओं को दुर्लभ है। यह साधनों का धाम है और मोक्ष का द्वार है। इसे पाकर जिसने परलोक न संवारा।

व्याख्या : बड़े भाग मानुष तन पावा : से भाव यह कि मौका चूकने लायक नहीं है। बार बार यह शरीर नहीं मिलता। अन्य शरीरों में तो प्रकृति के परवश हो काम करना पड़ता है। व्याघ्र लाख वर्ष पहिले जैसे रहते थे वैसे ही अब भी रहते हैं। मनुष्य बीस वर्ष पहिले जैसे रहता था वैसे अब नहीं रहता। यह प्रकृति के शासन के अतिक्रमण का सामर्थ्य रखता है। देवता लोग इसे चाहते हैं पर मिलती नहीं। अज्ञातार्थ ज्ञापक उत्तम जितने ग्रन्थ हैं उनमें यही वर्णन है। इस विषय में मतभेद नहीं है।

सुरदुर्लभ इसलिए कहते हैं कि देव शरीर में दिव्य भोग से पुण्य क्षीण होता है और नया पुण्य कमाया नहीं जा सकता। मनुष्य देह से ही पुण्य की कमायी हो सकती है। इसीलिए इसे साधन धाम कहा। इसी देह से साधन चतुष्टय सम्पादन करके ब्रह्म जिज्ञासा से मोक्ष भी सम्भव है। इसी से मोक्ष द्वार कहा। इस लोक को तो यथासाध्य सब जीव सँवारते हैं। आहार निद्रा भय मैथुन इन्हीं में इस लोक की उन्नति सीमित है। उसी की उन्नति ही इह लोक सँवारना है। पर आहार निद्रा भय मैथुन सब योनियों में सुलभ हैं। परलोक का ख्याल तो मनुष्य योनि में ही होता है। अतः परलोक का सँवारना मनुष्य योनि के हिस्से की बात है। सो इस योनि को पाकर जिसने परलोक न सँवारा।

दो. सो परत्र दुख पावै, सिर धुनि धुनि पछिताइ।
कालहि कर्महि ईस्वरहि, मिथ्या दोष लगाइ ॥४३॥

अर्थ : वह परलोक में दुःख पाता है और सिर पीटकर पछताता है और काल को कर्म को और ईश्वर को झूठमूठ दोष लगाता है।

व्याख्या : वह परलोक में दुःख पाता है। वहाँ सिवा भोगने के दूसरा उपाय नहीं है। पछताने की पराकाष्ठा सिर पीटना है। काल को दोष लगता है कि समय बड़ा बुरा आया है। भाग्य को दोष देता है कि मेरा भाग्य बड़ा खोटा था। ईश्वर को दोष देता है कि मेरा सत्यानाश ईश्वर ने किया। अपना दोष नहीं देता। काहु न कोउ दुख सुख कर दाता। निज कृत कर्म भोग सब भ्राता।

एहि तन कर फल बिषय न भाई। स्वर्गौ स्वल्प अंत दुखदाई ॥
नरतनु पाइ बिषय मनु देंही। पलटि सुधा ते सठ बिष लेंही ॥१॥

अर्थ : हे भाई! इस शरीर का फल विषय नहीं है। स्वर्ग भी थोड़े दिन के

लिए है। अन्त में दुःख ही देता है। जो नरशरीर पाकर विषय में मन देते हैं वे शठ हैं। अमृत देकर पलटे में विष लेते हैं।

व्याख्या : कूकर शूकर आदि देहों का फल विषय हैं। क्योंकि उनकी पहुँच विषयानन्द ही तक है। मनुष्य शरीर का फल विषय नहीं है। क्योकि उसको पहुँच ब्रह्मानन्द तक हो सकती है। स्वर्ग में दिव्य भोग है। पर स्वर्ग सुख टिकाऊ नहीं। मनुष्य शरीर के किये हुए पुण्य का भोग मात्र है। जिस भाँति खेती से उत्पन्न किया हुआ अन्न खाने पीने से नित्य छीजता जाता है। उसी प्रकार उपार्जित किया हुआ पुण्य विषयभोग से छीजने लगता है। पुण्य क्षीण होने पर एक क्षण भी स्वर्ग में स्थिति नहीं रह सकती। वह तुरन्त वहाँ से गिरा दिया जाता है। अतः वह स्वर्ग सुख भी अल्प होने से दुःखरूप ही है। सुख तो वही है जो टिकाऊ है : यद्वै भूमा तत्सुखम् नाल्पे सुखमस्ति।

नरतन सुधा है। क्योंकि उससे अमृत पद की प्राप्ति हो सकती है। उसी के लिए यत्न करना मनुष्य शरीर का सद्व्यय है। विषय में लगकर मनुष्य शरीर को खोना उसका अपव्यय है। अतः जिसने मनुष्य शरीर पाकर विषय में मन लगाया उसने मानो अमृत देखकर पलटे में विष लिया। क्योंकि जिससे आत्मज्ञान सध सकता था उससे उसने कूकर शूकर योनि का रास्ता साफ किया। यथा : असुर्या नामते लोका अन्धेन तमसावृता। तांस्ते प्रेत्याभिगच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः।

ताहि कबहुँ भल कहै न कोई। गुंजा ग्रहै परस मनि खोई ॥
आकर चारि लच्छ चौरासी। जोनि भ्रमत यह जिव अबिनासी ॥२॥

अर्थ : उसे क्या कोई भला कह सकता है जो पारसमणि को खोकर गुञ्जा प्राप्त करता है। यह अविनाशी जीव चार खानि और चौरासी लाख योनियों में घूमता फिरता है।

व्याख्या : यह नर शरीर पारस है। जिस भाँति पारस निकृष्ट धातु : लोहे को सोना बना देता है उसी भाँति इसे पाकर जीव शिव हो सकता है। गुञ्जा अर्थात् घुँघँची देखने में बड़ी सुन्दर है। पर है विष। इसी भाँति विषयोपभोग आपातमधुर हैं। पर है बड़ा हानिकर। पारस को फेंककर गुञ्जा ग्रहण करनेवाले ने अपनी समझ में तो ठीक ही किया। बेढंगे पारस को देकर रंगीले गुञ्जों की प्राप्ति की। केवल बाह्यरूप देखा गुण न पहिचाना। वह भले ही अपने मन से भला बना रहे। पर कोई भी उसे भला नहीं कहेगा। अपनी हानि करनेवालों को कोई भला नहीं कहता। अपनी हानि भी की और दुर्यश का भागी भी बना। अमृत को पलटकर विष लेनेवाला जानबूझकर अनर्थ में गिरनेवाला है और पारस देकर गुञ्जा लेनेवाला अनजान है। रूप पर आसक्त हो गया।

यह जीव तो अविनाशी है और शरीर नाशवान् है। इस शरीर के नाश होने पर दूसरी देह मिलेगी। पर कौन देह मिलेगी इसका ठिकाना नहीं। उद्भिज स्वेदज

अण्डज और जरायुज : ये चार खानि है। इन चारों में अवान्तर भेद करके चौरासी लाख योनियाँ हैं। उन्हीं में यह जीव भटकता फिरता है। कभी देवता होता है, कभी राक्षस होता है, कभी पशु होता है, कभी पक्षी होता है, कभी कीट पतङ्ग होता है, कभी स्थावर योनि को प्राप्त होता है।

फिरत सदा माया कर प्रेरा। काल कर्म स्वभाव गुन घेरा ॥
कबहुँक करि करुना नर देही। देत ईस बिनु हेतु सनेही ॥३॥

अर्थ : वह सदा माया की प्रेरणा से काल कर्म स्वभाव और गुणों से घिरा हुआ घूमा करता है। कभी करुणा करके निष्कारण प्रेम करनेवाले ईश्वर मनुष्य शरीर दे देते हैं।

व्याख्या : नाचत ही निसि दिवस मरयौ। तब ही ते न भयो हरि थिर जब ते जिव नाम धरयौ। बहुवासना बिबिध कंचुकि भूषन लोभादि भरयौ। चर अरु अचर गगन जल थल में कौन स्वांग न करयौ। यहाँ अनेक योनियों में जन्म लेना ही नाचना है। इसकी प्रेरणा करनेवाली माया है। यथा : जो माया सब जगहि नचावा। जासु चरित लखि काहु न पावा। यह जीव स्वेच्छा से नहीं नाचता। अत्यन्त दुःखी होकर नाचता है। इसीलिए कहा : निसि दिवस मरयौ। माया ने उसे काल कर्म स्वभाव और गुण से बाँध रक्खा है। काल कर्म गुण स्वभाव के घेरा के भीतर नाचा करता है। इसका उल्लङ्घन नहीं कर सकता।

ईश्वर बड़ा कृपालु है। यथा : हेतु रहित जुग जग उपकारी। तुम तुम्हार सेवक असुरारी। वह बिना कारण कृपा करता है। पशु पक्षी कीटादि देह से तो कोई कर्म ऐसा हो नहीं सकता जिससे मनुष्य शरीर मिले। ईश्वर ही कृपा करके कभी जीव को मनुष्य शरीर दे देता है। यह जानकर कि इसे कष्ट उठाते बहुत दिन हुए। एक अवसर इसे देना चाहिए जिससे ऊपर उठ सके। चार कृपा से कल्याण कहा गया है। उनमें से पहिली कृपा हुई ईश्वर कृपा। मनुष्य शरीर मिल गया।

नर तन भव बारिधि कहुँ बेरो। सनमुख मरुत अनुग्रह मेरो ॥
करनधार सदगुरु दृढ़ नावा। दुर्लभ साजु सुलभ करि पावा ॥४॥

अर्थ : मनुष्य शरीर भवसागर के लिए बेड़ा है। मेरी कृपा उसके लिए अनुकूल पवन है। उस दृढ़ नाव का सद्गुरु कर्णधार है। इस भाँति दुर्लभ साज अनायास प्राप्त हो गया।

व्याख्या : भवसागर सन्तरण के लिए प्रधान साधन नरतन ईश्वर की कृपा से मिल गया। सन्तरण चाहनेवाले पर सरकार की ओर भी कृपा होती है। वह अनुकूल वायु रूप हो जाती है। सद्गुरु भी मिल ही जाते हैं। यथा : सबहि सुलभ सब दिन सब देसा। अतः यह दुर्लभ साज मनुष्य शरीर पाने से सुलभ हो गया। यथा :

नृदेहमाद्यं सुलभं सुदुर्लभं प्लवं सुकल्पं गुरुकर्णधारम्।
मयानुकूलेन नभस्वतेरितम् पुमान् भवाब्धिं न तरेत् स आत्महा ॥

दो. जो न तरै भव सागर, नर समाज अस पाइ।
सो कृतनिंदक मंदमति, आत्मा हन गति जाय ॥४४॥

अर्थ : जो ऐसा नर समाज पाकर भी भवसागर पार नहीं होता। वह कृतघ्न मन्दबुद्धि आत्मघाती की गति को प्राप्त होता है।

व्याख्या : गुरुकृपा से शास्त्रकृपा भी हो जाती है अब केवल आत्म कृपा की आवश्यकता है। इतना होने पर भी यदि उसने संसार सन्तरण नहीं चाहा और जिस ईश्वर ने इतनी कृपा की उसे मिथ्या दोष लगाया वह कृतनिन्दक मन्दमति है। इतना बड़ा सुअवसर चूक गया। ऐसे को शूकर कूकर की योनि मिलती है। आत्मघाती के लिए यही दण्ड है।

जौ परलोक इहाँ सुख चहहू। सुनि मम बचन हृदय दृढ़ गहहू॥
सुलभ सुखद मारग यह भाई। भगति मोरि पुरान स्रुति गाई॥१॥

अर्थ : यदि इस लोक और परलोक में सुख चाहते हो तो मेरे वचन को सुनकर मन में खूब बैठा लो। यह रास्ता सुलभ और सुखद है। मेरी भक्ति का वर्णन पुराण श्रुतियों में है।

व्याख्या : सुख सब चाहता है दुःख कोई नहीं चाहता। इस लोक में जिन बातों से सुख मिलता है परलोक में उनसे दुःख होता है। जो लोग यहाँ दुःख उठाकर परलोक सँवारते हैं उन्हें परलोक में तो सुख मिलता है पर इस लोक में कष्ट उठाना पड़ता है। परन्तु ऐसा भी एक रास्ता है जिससे यहाँ भी सुख हो और परलोक में भी सुख हो। और वह रास्ता भक्ति का है। यह रास्ता सुलभ है और सुखद भी है। यथा : कहहु भगति पथ कवन प्रयासा। जोग न मख जप तप उपवासा। बैर न बिग्रह आसन त्रासा। सुखमय ताहि सदा सब आसा। मेरे इस बात को खूब मन में बिठा लो और यह रास्ता शास्त्रानुमोदित भी है। यथा : स्रुति सम्मत हरि भगति पथ संजुत बिरति बिबेक। तेहि न चलहिं नर मोह बस कल्पहि पंथ अनेक।

ग्यान अगम प्रत्यूह अनेका। साधन कठिन न मन कहुँ टेका॥
करत कष्ट बहु पावै कोऊ। भगतिहीन मोहि प्रिय नहि सोऊ॥२॥

अर्थ : ज्ञान अगम है और उसमें अनेक विघ्न हैं। साधन भी कठिन है और मन को आधार नहीं है। अनुष्ठान में उसके बड़ा कष्ट है। फिर भी किसी किसी को प्राप्त होता है। भक्ति के बिना वह भी मुझे प्रिय नहीं है।

व्याख्या : ज्ञान की बड़ी महिमा है। यथा : नहि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते। ज्ञान के ऐसा पवित्र यहाँ कुछ भी नहीं है। परन्तु वह बड़ा कठिन है और उसके अनुष्ठान में विघ्न भी बहुत हैं। यथा : कहत कठिन समुझत कठिन साधन विवेक। होइ घुनाच्छर न्याय जौं पुनि प्रत्यूह अनेक। इसे तलवार की धार

महात्माओं ने बतलाया है। यथा : ग्यान पंथ कृपान कै धारा। परत खगेस होइ नहि बारा। निरालम्ब पथ है। इसलिए महात्मा सूरदास के शब्दों में : निराधार मन चकरित धावत।

उसके अनुष्ठान में बड़ा कष्ट है। यथा : सात्विक श्रद्धा धेनु सुहाई। जौ हरि कृपा हृदय बस आई। जप तप ब्रत यम नियम अपारा। जे स्रुति कह सुभ धरम अचारा। तेइ तृन हरि त चरै जब गाई। इत्यादि। हरि माया अति दुस्तर तरनि जाइ बिहगेस। मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद् यतति सिद्धये। यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वतः। यत्न करनेवाले सिद्धों में से भी किसी को ही ज्ञान की दशा की प्राप्ति होती है। कोटि बिरक्त मध्य स्रुति कहई। सम्यक ग्यान सकृत कोउ लहई। फिर भी वह भक्त के समान प्रिय नहीं। यथा : मोरे प्रौढ़ तनय सम ग्यानी। बालक सुत सम दास अमानी।

भगति सुतंत्र सकल सुख खानी। बिनु सत संग न पावहिं प्रानी ॥
पुन्य पुंज बिनु मिलहिं न संता। सत संगति संसृति कर अंता ॥३॥

अर्थ : भक्ति स्वतन्त्र है और सब सुखों की खानि है। उसे बिना सत्सङ्ग के प्राणी पा नहीं सकता। बिना पुण्य पुञ्ज के सन्त मिलते नहीं। उनके सङ्ग से संसार का अन्त हो जाता है।

व्याख्या : कर्म और ज्ञान को भक्ति की सहायता की आवश्यकता है। यथा : सो सब कर्म धर्म जरि जाऊ। जहाँ न राम पद पंकज भाऊ। जोग कुजोग ज्ञान अग्यानू। जँह नहि राम प्रेम परधानू। और भक्ति को किसी की सहायता की आवश्यकता नहीं। यथा : रीझत राम सनेह निसीते। रामहि केवल प्रेम पियारा। अतः भक्ति स्वतन्त्र है और सब सुख की खानि है। यथा : राम भगति मनि उर बस जाके। दुख लवलेस न सपनेहुँ ताके। परन्तु भक्ति की प्राप्ति बिना सत्सङ्ग के होती नहीं। यथा : बिनु सत्संग न हरि कथा तेहि बिनु मोह न भाग। मोह गये बिनु राम पद होइ न दृढ़ अनुराग।

सत संगति मुद मंगल मूला। सोइ फल सिधि सब साधन फूला। सब साधन से पुण्य पुञ्ज अभिप्रेत है। पुण्य पुञ्ज के उदय से सन्त का सङ्ग होता है। सन्त सङ्ग से संसार का अन्त होता है। क्योंकि वही मोक्ष का मार्ग है। यथा : संत संग अपवर्ग कर कामी भव कर पन्थ।

पुन्य एक जग महु नहि दूजा। मन क्रम बचन बिप्रपद पूजा ॥
सानुकूल तेहि पर मुनि देवा। जो तजि कपटु करै द्विज सेवा ॥४॥

अर्थ। संसार में एक ही पुण्य है दूसरा नहीं। वह यह कि मनसा वाचा कर्मणा ब्राह्मण की सेवा करे। उस पर मुनि और देवता प्रसन्न रहते हैं जो कपट छोड़कर ब्राह्मण की सेवा करता है।

व्याख्या : सत्सङ्ग के लिए पुण्य समूह की आवश्यकता है। अतः सर्वोत्कृष्ट

पुण्य बतलाते हैं : ब्राह्मण की सेवा से बढ़कर दूसरा पुण्य नहीं है : वर्णानां ब्राह्मणो गुरुः । वेदपाठी भवेद् विप्रः । इसलिए गोस्वामीजी ने प्रायेण विप्र पद का ही व्यवहार किया है । पुण्य कर्म में विप्र पूजन अनिवार्य है । विप्र सेवा भी कपट रहित होकर करे । कपट सहित सेवा करना वर्जित है । कपट सहित सेवा अपने शूद्र जन्म में भुशुण्डिजी ने किया । तेहि सेवौं मैं कपट समेता । द्विज दयाल अति नीति निकेता । गुरुजी से विद्या तो ले ली । पर बाद इसके गुरुजी का द्रोह करने लगे । यथा : गुरुं कर द्रोह करौं दिन राती । सो ऐसा न होना चाहिए ।

दो. औरउ एक गुपुत मत, सबहि कहउँ कर जोरि ।
संकर भजन बिना नर, भगति न पावै मोरि ॥४५॥

अर्थ : और भी एक गुप्त मत है । उसे मैं सबसे हाथ जोड़कर कहता हूँ कि शङ्कर के भजन बिना मनुष्य मेरी भक्ति नहीं पाता ।

व्याख्या : शङ्कर के भजन के बिना राम भक्ति नहीं होती । यथा : सिव सेवा कर फल सुत सोई । अबिरल भक्ति राम पद होई । जेहि पर कृपा न करहिं पुरारी । सो न पाव मुनि भगति हमारी । इस गुप्त मत को सरकार ने प्रकट कर दिया और तदनुसार कार्य करने के लिए सबसे हाथ जोड़कर कहते हैं । हाथ जोड़कर भी हित की बात समझायी जाती है । यथा : बिनती करौं जोरि कर रावन । सुनहु मान तजि मोर सिखावन । परन्तु देखने में यही आता है कि चौड़े : स्पष्ट कह देने पर भी यह बात गुप्त ही रह गयी । आग्रही लोग रामायण को प्रमाण मानते हुए भी यह मानने को तैयार नहीं होते कि बिना शिवसेवा के राम भक्ति नहीं होती । शङ्कर भगवान् भक्तिपथ के आचार्य हैं । आचार्योपासन बिना भक्ति पथ में प्रवेश कैसे होगा ? स्वयं मानस आचार्य ही कई बार विनय पद में शिवजी से भक्ति माँगते हैं । मानस में कृपा प्रसाद प्राप्त करते हैं ।

कहहु भगति पथ कवन प्रयासा । जोग न मख जप तप उपवासा ॥
सरल सुभाव न मन कुटिलाई । जथालाभ संतोष सदाई ॥१॥

अर्थ : बतलाओ तो भक्ति पथ में क्या परिश्रम है । उसमें न योग करना पड़ता है न यज्ञ करना पड़ता है न तप करना पड़ता है और न उपवास करना पड़ता है । सरल स्वभाव हो । मन में कुटिलता न हो । जो मिले उसी में सन्तोष करे ।

व्याख्या : पहिले कह आये हैं : सुलभ सुखद मारग यह भाई । भगति मोरि पुरान स्रुति गाई । उसी की यहाँ व्याख्या करते हैं कि भक्तिपथ में कोई आयास नहीं है । योगपथ में जिस भाँति मन को मारना पड़ता है । इस पथ में मन को मारना नहीं पड़ता । तप की भाँति कोई बड़ा आयोजन नहीं करना पड़ता । तप की भाँति शरीर को सुखाना नहीं पड़ता । जप की भाँति अनुष्ठान के नियमों को पालन नहीं करना पड़ता । उपवास की भाँति भूखों नहीं मरना पड़ता । कपट करने में बुद्धि को आयास होता है । कुटिलता के सँभालने में मन को आयास होता है ।

इसमें कोई आयास नहीं है और सुख बहुत है : सन्तोषादनुत्तमसुखलाभः । सन्तोष से ऐसे सुख का लाभ होता है जिससे उत्तम सुख ही नहीं है।

भावार्थ यह है कि भक्तिपथ में योग यज्ञ जप तप उपवास की आवश्यकता ही नहीं है। अपना स्वभाव सरल बनाये रहे। मन में कुटिलता को स्थान न दे। और जो मिल जाय उसी में सदा सन्तोष करे।

मोर दास कहाइ नर आसा। करै तौ कहहु कहाँ बिस्वासा ॥
बहुत कहौ का कथा बड़ाई। एहि आचरन वस्य मै भाई ॥२॥

अर्थ : मेरा दास कहलाकर यदि मनुष्य की आशा करता है तो कहो उसे विश्वास कहाँ है। बहुत कथा बढ़ाकर क्या कहूँ। हे भाई ! मैं इस आचरण से उसके वश में रहता हूँ।

व्याख्या : जिसने भक्ति मार्ग का अवलम्बन किया उसे मेरा ही भरोसा करना चाहिए। दूसरे की आशा न रखना चाहिए। क्योंकि दूसरे की आशा रखनेवाले को सबका दास बनकर रहना पड़ता है। यथा : जे पामर भये दास आसके ते सबही के चेरे। रघुपति कृपा आस जीती जिन ते सेवक हरि केरे। जो दूसरे की आशा रखता है वह मेरा दास नहीं। क्योंकि उसे मुझ पर विश्वास नहीं है और जिसे मुझ पर विश्वास ही नहीं वह मेरा दास कैसे है। वह केवल दास का स्वाँग बनाये है जिसमें उसे लोग मेरा दास समझें। उसे तो मनुष्यों की आशा बँधी हुई है। वह उन्हीं का दास है।

यह : यथा लाभ सन्तोष सदाई। इस पद की व्याख्या है। अब : सरल सुभाव न मन कुटिलाई की व्याख्या करते हैं। कहते हैं कि मैं बात को बढ़ाकर नहीं कहता। संक्षेप में कहता हूँ कि निम्नलिखित रीति से चलनेवाले के मैं वश में हो जाता हूँ। मैं भाई : कहने का भाव यह है कि मैं स्ववंश हूँ। यथा : परबस जीव स्वबस भगवंता। सो मैं ऐसे आचरण करनेवाले के वश में हो जाता हूँ। अब वह आचरण बतलाते हैं—

बैर न बिग्रह आस न त्रासा। सुखमय ताहि सदा सब आसा ॥
अनारंभ अनिकेत अमानी। अनघ अरोष दक्ष बिज्ञानी ॥३॥

अर्थ : न किसी से वैर है न झगड़ा है न किसी की आशा है और न किसी का डर है। ऐसे पुरुष को सब दिशाएँ सुखमय हो जाती हैं। जो सर्वारम्भपरित्यागी है, आश्रयहीन है, मानहीन, पापहीन, रोषहीन है, निपुण और विज्ञानवान् है।

व्याख्या : निज प्रभुमय जो जगत् को देखता है। वह किसी से वैर नहीं कर सकता। झगड़ा फिर किससे हो। वह किसी व्यक्ति विशेष से न आशा कर सकता है और न डर सकता है। ऐसे पुरुष को तो चारो ओर सुख ही सुख है।

वह किसी कार्य का आरम्भ नहीं करता। जिसमें प्रवृत्त है उस कार्य से द्वेष नहीं करता है और निवृत्ति की कांक्षा नहीं रखता। न द्वेष्टि संप्रवृत्तानि न

निवृत्तानि कांक्षति । उसे मानापमान भी नहीं है । वह किसी घर को अपना नहीं समझता । पाप और रोष वह कर नहीं सकता । वह तो दक्ष और विज्ञानी हो जाता है । क्योंकि वह ईश्वरमय सब जग को देख रहा है ।

प्रीति सदा सज्जन संसर्गा । तृन सम बिषय स्वर्ग अपवर्गा ।।
भगति पक्षहठ नहि सठताई । दुष्ट तर्क सब दूरि बहाई ।।४।।

अर्थ : सज्जनों के संसर्ग में उसे सदा प्रेम रहता है । विषय स्वर्ग और अपवर्ग को वह तृण समान मानता है । उसे भक्ति पक्ष का हठ तो है पर शठता नहीं है और दुष्ट तर्कों को तो पास नहीं फटकने देता ।

व्याख्या : उसकी प्रीति सदा सज्जन संसर्ग में है । उसीसे उसी में ऐसा सुख मिलता है कि उसे विषय सुख स्वर्ग सुख तथा अपवर्ग सुख तृण के समान मालूम होता है । यथा : सात स्वर्ग अपवर्ग सुख धरिअ तुला इक अंग । तूल न ताहि सकल मिलि जो सुख लव सत संग ।

वह भक्ति पक्ष को दृढ़ करके पकड़े रहता है । क्योंकि भक्ति में ही ऐसा सामर्थ्य है कि वह शाप को भी वरदान बना देती है । यथा : भगति पक्ष हठ करि रहेउँ दीन्ह महा ऋषि शाप । मुनि दुर्लभ बर पायेउँ देखहु भजन प्रताप । परन्तु वह ज्ञानादि साधनों का विरोध नहीं करता । अपने मन में शठता को स्थान नहीं देता । अर्थात् कपट चतुराई से बात नहीं छिपाता । वेद विरुद्ध तर्क के निकट नहीं जाता । कर्कश तर्क विषाद से दूर रहता है ।

दो. मम गुन ग्राम नाम रत, गत ममता मद मोह ।
ताकर सुख सोइ जानै, परानंद संदोह ।।४६।।

अर्थ : जो मेरे गुण ग्राम और नाम में रत है । जिसे ममता मद और मोह नहीं है । वही इस बात के सुख को जानता है । जो सुख परानन्द का समूह है ।

व्याख्या : जो संसार की चर्चा में न लगकर मेरे गुणग्राम और नाम में लगे रहते हैं । मेरा नाम लेते हैं । मेरी स्तुति करते हैं । उनकी ममता मेरे में हो जाती है । उन्हें न तो मद होता है न मोह होता है । ऐसा होने से उसे ऐसे परमानन्द सुख समूह की प्राप्ति होती है जिसे वही जानता है : मोह दरिद्र निकट नहि आवा । लोभ वात नहि ताहि बुझावा । हारिहि सकल सलभ समुदाई । जातहि जासु समीप जरहिं मदादिक सलभ सब ।

सुनत सुधा सम बचन राम के । गहे सबन्हि पद कृपा धाम के ।।
जननि जनक गुरु बंधु हमारे । कृपानिधान प्रान ते प्यारे ।।१।।

अर्थ : रामजी के अमृत के समान बचन सुनकर सबने कृपाधाम के चरण पकड़ लिये । बोले कि आप ही हमारे माता पिता गुरु और बन्धु हैं । आप ही कृपानिधान है और प्राण से भी प्यारे हैं ।

व्याख्या : जब सरकार का उपदेश समाप्त हुआ तब पुरजन बोले। जब तक उपदेश होता रहा तब तक अमृत सी वाणी का श्रवण पुट से पान करते रहे। स्वाद और तोष से तृप्त हो रहे थे। कृतज्ञता प्रकाश के लिए सबों ने चरण पकड़ लिया। मन में यह बात उठी कि सरकार कृपा के धाम हैं। कितनी बड़ी कृपा हम लोगों पर है। बुलाकर हम लोगों के लिए कैसा हितकर उपदेश दिया।

सभी सरकार के भक्त हैं। सबने अपनी ममता की वृत्तियों को इकट्ठी करके और उसे बटकर सरकार के चरणों में बाँध रक्खा है। इसलिए कहते हैं कि सरकार ही हमारे सब कुछ हैं। माता पिता गुरु और बन्धु सबको प्यारे होते हैं और सबसे प्यारा प्राण होता है। सो सरकार ही मेरे पिता माता गुरु और बन्धु हैं : चारो नाते सरकार से ही हैं। अव्यक्त रूप से माता हैं। पुरुष रूप से पिता हैं। राजा रूप से गुरु हैं। कुठाहर सहाय होने से बन्धु हैं अपनी ओर से कृपा निधान हैं और हमारी ओर से प्राण से प्यारे हैं। मोहि तोहि नाते अनेक मानिये जो भावे। सो प्रेम सभी नातों को सरकार ने मान रक्खा है।

तनु धनु धाम राम हितकारी। सब बिधि तुम प्रनतारतहारी॥
अस सिख तुम्ह बिनु देइ न कोऊ। मातु पिता स्वारथ रत ओऊ॥१॥

अर्थ : आप ही हमारे तन धन और धाम हैं। हे प्रणत के आर्ति के हरण करनेवाले ! आप ही सब प्रकार से हितकारी हैं। ऐसी शिक्षा आप के बिना कोई देता नहीं। माता पिता हैं पर वे भी स्वार्थ में रत हैं।

व्याख्या : चैतन्य जीवों में माता पिता गुरु और बन्धु हितकारी होने से प्यारे होते हैं और जड़ पदार्थ में तन धन और धाम हितकारी होने से प्यारे हैं। इतने ही प्रेमपात्र हैं। सो आप हमारे लिए सर्वस्व हैं। आप ही माता पिता गुरु और बन्धु हैं तथा आप ही तन धन और धाम हैं।

आप ही हमें दोनों लोक के कल्याण का मार्ग बतला रहे हैं। यथा : जो न तरै भवसागर नर समाज अस पाइ। सो कृतनिंदक मंदमति आतमहन गति जाइ। तथा : जौ परलोक इहाँ सुख चहहू। इत्यादि उपदेश देते हैं ऐसी शिक्षा देनेवाला कौन है ? सब अपने स्वार्थ को लक्ष्य करके शिक्षा देनेवाले हैं। माता पिता भी जो शिक्षा देते हैं उसका कारण यही है कि वे बेटे के लिए साभिलाष हैं। उनके द्वारा बड़े होने पर उन्हें सेवा की आशा है। अतः मातु पिता बालकन्हि बुलावहिं। उदर भरै सोई धर्म सिखावहिं। उनके परलोक की चिन्ता माता पिता भी नहीं करते। सरकार हमारे पालने में तो दत्तचित्त हैं ही हमारे परलोक की भी सरकार को चिन्ता है।

हेतु रहित जग जुग उपकारी। तुम्ह तुम्हार सेवक असुरारी॥
स्वारथ मीत सकल जग माँहीं। सपनेहु प्रभु परमारथ नाहीं॥२॥

अर्थ : हे असुरारि निष्कारण दोनों लोकों के उपकार करनेवाले दो ही हैं :

आप और आपके सेवक। सम्पूर्ण संसार में सब स्वार्थ के मित्र हैं। परमार्थ का सहायक कोई सपने में भी नहीं है।

व्याख्या : माता पिता की शिक्षा सहेतुक है। उन्हें अपने बच्चों से प्रत्युपकार की आशा है। इसलिए इस लोक के कल्याण की शिक्षा देते हैं। शिक्षा देनेवाले का लक्ष्य सदा स्वार्थ रहता है। परन्तु अपना स्वार्थ न रखकर दोनों लोक के उपकार करनेवाले तो दो ही हैं तीसरा हो नहीं सकता। एक आप और दूसरा आपका सेवक। क्योंकि आपका सेवक आपका ही अनुसरण करता है। यथा : सेवक भयो पवन पूत साहिब अनुहरत। श्री हनुमान्‌जी भी चारों युग में अपना प्रताप प्रकटकर जीवों का उपकार करते हैं।

हे प्रभो ! सुर नर मुनि सबके यह रीती। स्वारथ लागि करहिं सब प्रीती। परमार्थ के लिए कोई प्रीति नहीं करता। जहाँ स्वार्थ में भेद पड़ा वहाँ प्रीति गयी। परमार्थ के लिए प्रीति का कोई स्वप्न भी नहीं देखता। कोई समझ भी नहीं सकता कि परमार्थ के लिए प्रीति कैसी होती है।

सबके बचन प्रेमरस साने। सुनि रघुनाथ हृदय हरषाने॥
निज निज गृह गए आयसु पाई। बरनत प्रभु बतकही सुहाई॥३॥

अर्थ : प्रेम रस से सना हुआ सबका वचन सुनकर रामजी प्रसन्न हो गये। आज्ञा पाकर सब लोग अपने घर गये और प्रभु की बातचीत का वर्णन आपस में करते गये।

व्याख्या : सरकार का स्वभाव है कि प्रेमरस साने वचन से ही प्रसन्न होते हैं। यथा : रामहि केवल प्रेम पियारा। जानि लेहु जो जाननिहारा। अतः प्रजाओं की प्रेम परिप्लुत वाणी सुनकर सरकार प्रसन्न हो गये। गुरु की प्रसन्नता शिष्य की कृतकृत्यता पर होती है। प्रजा कृतकृत्य हो गयी। इससे सरकार को हर्ष हुआ क्योंकि राजा दण्डधर गुरु हैं।

सब लोग आज्ञा पाकर आये थे। अब कृतकृत्य होकर आज्ञा पाकर ही अपने अपने घर जा रहे हैं। अतः प्रभु से जो बातचीत हुई उसका वर्णन आपस में करते जा रहे हैं। कथन का अनुकथन करने से सिद्ध है कि उपदेश का प्रभाव सब पर पड़ा। यथा : सुनि अनुकथन परसपर होई। पथिक समाज सोह सरि सोई।

दो. उमा अवधबासी नर, नारि कृतारथ रूप।
ब्रह्म सच्चिदानंद घन, रघुनायक जहँ भूप॥४७॥

अर्थ : हे उमा ! अयोध्यावासी नर नारी सब कृतार्थ रूप हैं। जहाँ सच्चिदानन्दघन स्वयं रामजी राजा हैं।

व्याख्या : यहाँ पर शिवजी पार्वती से कहते हैं कि राजा सच्चिदानन्द घन ब्रह्म राम राजा हैं वहाँ प्रजा कृतार्थरूप क्यों न हो। राज्ञि धर्मिणि धर्मिष्ठाः पापे पापाः समे समाः। राजानमनुवर्तन्ते यथा राजा तथा प्रजा। राजा के धर्मात्मा होने

पर प्रजा धर्मात्मा होती है। पापी होने पर पापी होती है। सम होने पर सम होती है। राजा का ही अनुसरण प्रजा करती है। जैसा राजा होता है वैसी ही प्रजा होती है। यहाँ ब्रह्म राम राजा हैं। अतः प्रजा भी ब्रह्ममय है। अतः कृतकृत्य है।

यहाँ शिवजी के उमा को सावधान करने का कारण यह है कि उनका प्रश्न है : प्रजा सहित रघुबंस मनि किमि गवने निज धाम। अतः ग्रन्थकार बतलाये देते हैं कि अयोध्या में राजा प्रजा में भेद नहीं रह गया। प्रजा भी सब ब्रह्ममय हो गयी। अतः राजा के साथ ही उनके धाम में चली गयी। इसमें कोई आश्चर्य न मानना।

एक बार बसिष्ठ मुनि आए। जहाँ रामु सुखधाम सुहाए॥
अति आदर रघुनायक कीन्हा। पद पखारि पादोदक लीन्हा॥१॥

अर्थ : एक बार जहाँ सुख के धाम नयनाभिराम रामजी थे वहाँ वसिष्ठ मुनि आये। सरकार ने अत्यन्त आदर किया। चरण धोकर चरणामृत लिया।

व्याख्या : वसिष्ठजी ने जान लिया कि सरकार की साकेतयात्रा निकट है। वसिष्ठजी नित्य ही वेद पुराण की कथा कहने आते थे। अतः यहाँ एकान्त में आने में कुछ अभिप्राय है। यहाँ ग्रन्थकार ने रामजी को दो विशेषण दिया : सुखधाम और सुहाये। सो सुखधाम से कमनीय गुणगणों का होना तथा सुहाये से कमनीय रूप का होना कहा। इन्हीं वसिष्ठजी ने नामकरण के अवसर पर कहा था : सो सुख धाम राम अस नामा। अखिल लोक दायक बिस्रामा। अतः विश्राम के लिए सुखधाम के यहाँ आये।

सरकार रघुनायक हैं। मुनियों का इनके यहाँ बड़ा आदर है। उनमें वसिष्ठजी सबसे श्रेष्ठ हैं और गुरु हैं। इनका अत्यन्त आदर किया। पम्पासर में नारद मुनि आये तो लक्ष्मणजी ने पैर धोया था। यथा : लछिमन सादर चरन पखारे। यहाँ सरकार ने स्वयं चरण धोये और चरणामृत लिया।

राम सुनहु मुनि कह कर जोरी। कृपासिन्धु बिनती कछु मोरी॥
देखि देखि आचरन तुम्हारा। होत मोह मम हृदयँ अपारा॥२॥

अर्थ : मुनि ने हाथ जोड़कर कहा कि हे कृपा के समुद्र रामजी! मेरी कुछ विनती सुनिये। आपका आचरण देखकर मेरे मनमें अपार मोह होता है।

व्याख्या : इस प्रकार के आदर को मुनिजी बहुत दिन से सह रहे थे। आज नहीं सह सके। खुल पड़े। हाथ जोड़कर बोले। मुनिजी सदा राम ही सम्बोधन करते थे। आज कृपासिन्धु कहने का भाव यह कि मेरे ऊपर भी कृपा हो। पुरजन पर तो कृपा किया स्वयं उनके सामने अपने स्वरूप का वर्णन कर दिया। यथा : भगति मोरि पुरान स्तुति गाई। परन्तु मेरे साथ वैसा अपनाइत का व्यवहार नहीं किया। अब इस आदर से काम न चलेगा। जब होता है आप ही विनती करते हैं। मुझे विनती का अवसर ही नहीं देते। सो आज मेरी विनती सुनिये।

सत् शिष्य की भाँति जो आचरण आप मेरे साथ करते हैं गुरुचरण प्रक्षालन चरणोदक ग्रहण आदि करते हैं। इससे मेरे मन में अपार मोह होता है। बार बार प्रयत्न करने पर भी हठात् तुम्हारे ऊपर नरबुद्धि होने लगती है। यही अपार मोह है जिसका पार पाना मेरे लिए कठिन हो रहा है और मोह से कभी कल्याण हो नहीं सकता।

महिमा अमित बेद नहिं जाना। मैं केहि भाँति कहौं भगवाना ॥
उपरोहित्य कर्म अति मंदा। बेद पुरान सुमृति कर निंदा ॥३॥

अर्थ : आपकी अपार महिमा को वेद भी नहीं जानते। हे भगवान् ! मैं उसे कैसे वर्णन कर सकता हूँ। पौरोहित्यकर्म अत्यन्त नीच है। वेद पुराण और स्मृति में उसकी निन्दा की गयी है।

व्याख्या : आपके आचरण से मुझे बलात् नरबुद्धि होती है। पर महिमा आपकी ऐसी है जिसे वेद भी नहीं जानता कहें कैसे ? जिसे वेद नहीं कह सकते जो साक्षात् आपकी वाणी है उसे मैं कैसे कहूँ। मैं तो जीव हूं। ऐसे महामहिम का इतना आदर करना मेरे सहन शक्ति से ब़ाहर की बात हुई जाती है। यदि इस पर कहिये कि जब तुम यह बात जानते ही थे तो पुरोहित क्यों हुए ? पुरोहिती में सब प्रकार का आदर स्वीकार करना पड़ता है और जब पुरोहित हुए तब पाद प्रक्षालनादि से क्यों घबराते हो।

इस पर कहते हैं कि मैं जानता था कि पौरोहित्य कर्म अत्यन्त मन्द है। मैं इसे ब्रह्मदेव के देने पर भी स्वीकार नहीं करता था। क्योंकि वेद पुराण और स्मृतियों में इसकी निन्दा लिखी है। ब्राह्मण को अपरिग्रहवृत्ति होना चाहिए। शिलोञ्छादि से ही निर्वाह करना चाहिए।

जब न लेउ मैं तब बिधि मोही। कहा लाभ आगे सुत तोही ॥
परमातमा ब्रह्म नर रूपा। होइहि रघुकुल भूषन भूपा ॥४॥

अर्थ : जब मैंने अस्वीकार किया तब ब्रह्मदेव ने मुझसे कहा बेटे ! आगे चलकर तुम्हें इससे लाभ होगा। परमात्मा ब्रह्म नर रूप धारण करके रघुकुल भूषण राजा होंगे।

व्याख्या : जब ब्रह्मदेव मुझे रघुकुल को पुरोहिती देने लगे तब मैंने उसे अस्वीकार किया कि आप पिता होकर मुझे ऐसे गर्हित कार्य में क्यों नियुक्त कर रहे हैं। तब वह ब्रह्मदेव ने प्रेम से मुझे समझाया कि इस समय तो कार्य तुम्हें मन्द जान पड़ता है। क्योंकि इसमें सब प्रकार का प्रतिग्रह लेना पड़ता है। जिससे तप का क्षय होता है। जो जिसका अन्न खाता है वह उसका पाप खाता है। परन्तु इसके स्वीकार करने से आगे चलकर बड़ा लाभ तुम्हें होगा। जब रघुकुल में परमात्मा ब्रह्म का अवतार होगा तब उनकी प्राप्ति तुम्हें यजमान के रूप से होगी। रघुकुल के राजा लोग दान में तुम्हें क्या नहीं देंगे। पर उसमें तुम लाभ नहीं देखते

हो। ब्रह्मप्राप्ति को ही लाभ मानते हो। वह लाभ तुम्हें इसी मन्द कर्म के स्वीकार करने से होगा।

दो. तब मैं हृदय बिचारा, जोग जग्य ब्रत दान।
जा कहुँ करिअ सो पैहौं, धर्म न एहि सम आन ॥४८॥

अर्थ : तब मैंने हृदय में बिचारा कि योग यज्ञ व्रत और दान जिसके पाने के निमित्त किया जाता है उसकी प्राप्ति जिस कर्म से हो उसके बराबर धर्म और कुछ नहीं है।

व्याख्या : योग यज्ञ तप और दान इसलिए किया जाता है कि इससे भगवत्प्राप्ति होगी। पौरोहित्य इसलिए गर्हित है कि इससे योग और व्रत में बाधा पड़ती है और याजन तथा प्रतिग्रह स्वीकार करना पड़ता है। जिससे तप नष्ट हो जाता है। अतः पौरोहित्य ब्रह्मप्राप्ति का साधक न होकर बाधक है। मुझे जब इसके द्वारा ब्रह्म प्राप्ति होनेवाली है तो मेरे लिए पौरोहित्य ही साधन है। ऐसा विचार करके मैंने पौरोहित्य को ही सबसे बड़ा धर्म मान लिया। अर्थात् मैंने आपके प्रीत्यर्थ पौरोहित्य स्वीकार किया।

जप तप नियम जोग निज धर्मा। स्रुति सम्भव नाना सुभ कर्मा ॥
ग्यान दया दम तीरथ मज्जन। जहँ लगि धरम कहत स्रुति सज्जन ॥१॥

अर्थ : जप, तप, नियम, योग, स्वधर्म, वेद विहित अनेक विधि के कर्म, ज्ञान, दया, दम, तीर्थावगाहन और जहाँतक धर्म वेद और सज्जनों ने बतलाया है।

व्याख्या : सभी यज्ञों में १. जप यज्ञ उत्तम बतलाया गया है। यथा : यज्ञानां जपयज्ञोस्मि। २. तप तो मानो सब सिद्धियों का मूल स्रोत है। यथा : तप बल रचै प्रपंच बिधाता। तप बल बिष्णु सकल जगत्राता। तप बल संभु करहिं संहारा। तप बल सेष धरहिं महि भारा। इत्यादि ३. नियम अर्थात् शौच सन्तोष तपः स्वाध्याय ईश्वरप्रणिधानानि नियमाः। अथवा अपना स्वीकृत नियम। यथा : आयसु होय तो रहहूँ सनेमा। तथा : संजम नियम नीति नहि डोलहिं। काष्ठजिह्व स्वामी कहते हैं : जगत् में उन्ह ही को है रंग जिनके नेम अभंग। ४. वेद विहित नाना प्रकार के शुभ कर्म अर्थात् श्येन यागादि नहीं। वेद ने तो श्येनयाग की भी विधि बतलायी है। पर वह शुभ नहीं है। उससे नरक होता है। अतः वेद विहित वे कर्म जो शुभ फल दाता हों ५. योग से सिद्धियाँ होती हैं। यथा : जन्ममन्त्रौषधसमाधिजाः सिद्धयः। इनमें से समाधिज सिद्धि को ही सर्वश्रेष्ठ माना गया है। ६. स्वधर्म जिसके लिए कहा गया है कि सदोष होने पर भी उसका परित्याग न करे। स्वधर्म में मर जाना भी श्रेष्ठ है। क्योंकि परधर्म भयावह होता है। ७. ज्ञान जिसके बराबर पवित्र कुछ है नहीं : सर्वं ज्ञानप्लवेनैव वृजिनं सन्तरिष्यति। ज्ञानमयी नौका से ही सब पापों के पार जाया जाता है। ज्ञानाग्नि से ही सब कर्म भस्म होते हैं। ८. दया जिसके बराबर कोई धर्म नहीं है। ९. दम अर्थात् इन्द्रिय निग्रह। जिसके बिना सत्पथ में चलने की

योग्यता ही नहीं होती। १०. तीर्थावगाहन तारने से ही उसका तीर्थ नाम पड़ा है। इसका बड़ा प्रभाव शास्त्रों में वर्णित है और भी ११. जितना धर्म वेद और सज्जन लोग कहते हैं अर्थात् सज्जनों की स्थापित की हुई मर्यादाओं और वेद की मर्यादा का पालन।

आगम निगम पुरान अनेका। पढ़े सुने कर फल प्रभु एका॥
तव पद पंकज प्रीति निरंतर। सब साधन कर यह फल सुंदर॥२॥

अर्थ : शास्त्र वेद और अनेक पुराणों के पढ़ने सुनने का एक ही फल है। आपके चरणारविन्दों में निरन्तर प्रेम हो। सब साधनों का यही सुन्दर फल है।

व्याख्या : अज्ञातार्थं ज्ञापक १२. शास्त्र १३. वेद तथा १४. पुराण और उप पुराण हैं इनके पढ़ने का फल अलग है और सुनने का फल अलग है। इसी भाँति उपर्युक्त चौदहो साधन के फल पृथक् वर्णित हैं। पर वसिष्ठजी कहते हैं कि वे सब सुन्दर नहीं हैं। क्योंकि वे वास्तविक फल नहीं हैं। सुन्दर फल तो आपके चरणरविन्दों में निरन्तर प्रीति का होना ही है। यथा : सबकर फल हरि भगति भवानी। लाभ कि रघुपति भगति अकुंठा इत्यादि।

छूटै मल कि मलहि के धोएँ। घृत कि पाव कोइ बारि बिलोएँ॥
प्रेम भगति जल बिनु रघुराई। अभि अंतर मल कबहुँ कि जाई॥३॥

अर्थ : क्या मल मल के धोने से छूट सकता है। क्या किसी को जल के मन्थन करने से घी मिल सकता है। हे रघुराई! क्या प्रेम भक्ति के बिना अन्तःकरण का मालिन्य कभी दूर हो सकता है? कर्मणा कर्मनिर्हारो न ह्यात्यन्तिक इष्यते। भाग०।

व्याख्या : भाव यह है कि कर्म से कर्म का नाश कभी नहीं हो सकता। उससे तो कर्म की शृङ्खला और भी दृढ़ होती है। ज्ञान घृत की प्राप्ति नहीं होती। यथा : मोह जनित मल लाग बिबिध बिधि कोटिहु जतन न जाई। जनम जनम अभ्यास निरत चित अधिक अधिक लपटाई। नयन मलिन पर नारि निरखि मन मलिन बिषय सँग लागे। हृदय मलिन वासना मान मद जीव सहज सुख त्यागे। परनिंदा सुनि स्रवन मलिन भे बचन दोष परगाये। सब प्रकार मल भार लाग निज नाथ चरन बिसराये। तुलसिदास ब्रत दान ज्ञान तप सुद्धि हेतु स्रुति गावै। रामचरन अनुराग नीर बिनु मल अति नास न पावै। विनय पद ८२.

प्रेमा भक्ति से ही भीतर का मल दूर हो सकता है और साधनों से स्थूल मल मात्र दूर होते हैं। पर सूक्ष्म मल जिसे अन्तःकरण की मलिनता कहते हैं। वह प्रेमा भक्ति बिना दूर होती नहीं। यथा : कथं बिना रोमहर्षं द्रवता चेतसा बिना। बिनानन्दाश्रुकलया शुद्धयेत् भक्त्या विनाशयः। और भक्ति से ही ज्ञान होता है। भक्तिर्ज्ञानाय कल्पते। बिना भजन के भव सन्तरण चाहना वारि मन्थन करके घृत चाहना है। यथा : बारि मथे बरु होय घृत सिकता ते बरु तेल। बिनु हरि भजन न भव तरिय यह सिद्धान्त अपेल।

सोइ सर्वज्ञ तज्ञ सोइ पंडित । सोइ गुन गृह बिज्ञान अखंडित ।।
दक्ष सकल लक्षन जुत सोई । जाके पद सरोज रति होई ।।४।।

अर्थ : वही सर्वज्ञ है वही पण्डित है वही गुणों का घर और अखण्ड विज्ञानी है वही निपुण और वही सब लक्षणों से युक्त है जिसे आपके चरणों में प्रीति हो ।

व्याख्या : हृदय के मल दूर होने से आप से आप ब्रह्म भासित होता है । अतः बिना योग साधन के ही वह सर्वज्ञ है । बिना श्रवण मनन निदिध्यासन के ही उसे तत्पद का ज्ञान हो जाता है । बिना शास्त्र पढ़े ही वह पण्डित हो जाता है । यथा : समुझत कहब करब तुम्ह जोई । धर्म सारु जग होइहि सोई । बिना शिक्षा पाये ही वह गुण गृह है । उसी का विज्ञान अखण्डित है । क्योंकि उसका पतन नहीं होता ।

वही दक्ष है क्रिया कुशल है क्योंकि वह आविर्भूत प्रकाश हो जाता है । वही सब लक्षणों से युक्त भाग्यवान् है । क्योंकि भगवत् प्राप्ति उसी को होगी । अन्य सुलक्षणवाले भी कुलक्षणी हैं । दक्ष होने पर भी गँवार है । आपके चरणकमल की भक्ति ही सब कुछ है । यथा : यस्यास्ति भक्तिर्भगवत्यकिंचना सर्वै गुणेस्तत्र समासते सुराः ।

दो. नाथ एक बर माँगौं, राम कृपा करि देहु ।
जन्म जन्म प्रभुपद कमल, कबहुँ घटै जनि नेहु ।।४९।।

अर्थ : हे नाथ राम ! एक वर माँगता हूँ । सो कृपा करके दीजिये कि सरकार के चरणकमलों की प्रीति किसी जन्म में घटने न पावे ।

व्याख्या : यहाँ वसिष्ठजी नाथ कहकर सम्बोधन करते हैं । एकान्त में भेंट हुई । इसी से वर माँग रहे हैं । जो वह माँगना है वह तो वसिष्ठजी को प्राप्त है । अतः कहते हैं कि मेरा प्रेम जो आप पर है वह किसी जन्म में न घटे । मुक्ति नहीं माँगते । भक्त होकर जन्म होना माँगते हैं । अधिकारी हैं : जन्म लेकर जगत् का कल्याण करना चाहते हैं । यहाँ सीताजी का उल्लेख नहीं है । पहिले गुरुजी के आने पर कहा था : गहे चरन सिय सहित बहोरी । चारो भाई हनुमान्जी के साथ उपवन देखने गये । उसी समय से सीताजी का उल्लेख ग्रन्थकर्ता नहीं करते । अतः यह मालूम होता है कि ये कथाएँ सीता वनवास के बाद की हैं ।

अस कहि पुनि बसिष्ट गृह आये । कृपासिंधु कें मन अति भाये ।।
हनूमान भरतादिक भ्राता । संग लिए सेवक सुखदाता ।।१।।

अर्थ : ऐसा कहकर वसिष्ठ मुनि घर आये । कृपासिन्धु रामजी के मन में बहुत अच्छे लगे । हनुमान्जी और भरतादि भाइयों को साथ में लिए हुए सेवकों को सुख देनेवाले रामजी ।

व्याख्या : सरकार ने सब सुन लिया परन्तु बोले कुछ नहीं । बड़ों के वरदान माँगने पर सरकार एवमस्तु ऐसा नहीं कहते । मौन रह जाना ही स्वीकृति है ।

वसिष्ठजी यह बात जानते हैं। अतः जो कहना था सो कहकर घर आये। उनकी बातें कृपासिन्धु को बड़ी अच्छी लगी। क्योंकि वसिष्ठजी की बातें प्रेम से भरी हुई थीं ! इतने बड़े ज्ञानी होकर भी भक्ति का ही वर माँगते हैं।

महा प्रस्थान का उपक्रम है। सरकार का स्वभाव है कि सेवक को सुख दिया करते हैं। यथा : सहज बानि सेवक सुखदायक। जिसमें सेवकों को सुख हो वैसा ही करते हैं। अतः हनुमान्‌जी तथा भरत आदि भाइयों को साथ लिये हुए हैं : जनमें एक संग सब भाई। भोजन सयन केलि लरिकाई। कनंबेध उपवीत बिबाहू। संग संग सब भयहु उछाहू। अतः महा प्रस्थान भी साथ ही होगा।

उमा के आठवें प्रश्न का उत्तर

पुनि कृपाल पुर बाहेर गए। गज रथ तुरग मँगावत भये ॥
देखि कृपा करि सकल सराहे। दिये उचित निज निज तेइँ चाहे ॥१॥

अर्थ : तत्पश्चात् कृपाल रामजी पुर से बाहर गये। हाथी घोड़ा और रथ सब वहीं मँगवाया। रामजी ने कृपा करके सबकी प्रशंसा की और जिन्होंने जो चाहा उन्हें वही उचित समझकर दिया।

व्याख्या : तत्पश्चात् कृपाल अयोध्या नगर के बाहर चले गये। कृपाल कहने का भाव यह कि कृपा के कारण ही सरकार के मन में यह भाव था : बिमल बंस यह अनुचित एकू। बन्धु बिहाइ बड़ेहि अभिषेकू। अतः आठों पुत्रों को राज्य देंगे। यहाँ जानबूझकर कवि वियोग वर्णन नहीं करते जिसमें लोग कठोर कवि उन्हें न कहें। इतना ही लिखते हैं कि नगर के बाहर जाकर गज रथ[1] तुरंग मँगाये। बड़ी भारी सेना है। अतः सब गज तुरंग का जमाव नगर के भीतर नहीं हो सकता। सरकार ने कृपा करके सबकी सराहना की। जिनको देना है उनकी सराहना की और देय वस्तु गज रथ तुरंग की सराहना की। सरकार की सराहना करने से सब धन्य हो गये। यथा : धन्य अवध जो राम बखानी। पुत्रों और भ्रातुष्पुत्रों में उनका विभाग कर दिया। यह विभाग उन लोगों की इच्छा के अनुसार हुआ और उन लोगों ने भी उचित माँग की। यहाँ गज रथ तुरंग उपलक्षण है। सम्पूर्ण राज्य का विभाग हुआ। सबको यथेप्सित सेना दे दी गयी।

हरन सकल स्रम प्रभु स्रम पाई। गए जहाँ सीतल अँवराई ॥
भरत दीन्ह निज बसन डसाई। बैठे प्रभु सेवहिं सब भाई ॥२॥

अर्थ : सकल श्रम के हरण करनेवाले प्रभु थक गये तब शीतल आम की

---

१. अभिषिक्तौ सुतावङ्के प्रतिष्ठाप्य पुरे ततः। रथानान्तु सहस्राणि नागानामयुतानि च। दश चाश्वसहस्राणि एकैकस्य धनं ददौ। इत्यादि वाल्मीकीये। अभिषेक करके दोनों पुत्रों को गोद में बिठाया और पुर में स्थापन करके हजार रथ दस हजार हाथी दस हजार घोड़े एक एक को दिये। इत्यादि।

बारी में चले गये। भरतजी ने अपना उत्तरीय बिछा दिया। प्रभु बैठ गये और सब भाई लोग सेवा करने लगे।

व्याख्या : सरकार ही सबके विश्राम देनेवाले हैं। सो लौकिक व्यवहार ऐसा है कि उनकी थकावट का वर्णन किया जाता है। सामान्य गृहस्थी का विभाग बड़ा कठिन होता है। यहाँ तो साम्राज्य का विभाग था। अतः थकावट का वर्णन करते हैं। थकावट होने पर ठण्ढी जगह की आवश्यकता है। अतः शीतल अमराई में जाना कहते हैं। नगर के बाहर गये हुए हैं। अतः वहाँ शीतल स्थान अमराई है। अब यहाँ से पुर में लौटना नहीं कहेंगे।

अति प्रेम से भरतजी ने अपना उत्तरीय वसन बिछा दिया। सरकार बैठ गये और सब भाई सेवा में लग गये। पाद संवाहनादि क्रिया में दत्तचित्त हुए। यहाँ सरकार का सेवा स्वीकार करना ही बड़ी भारी कृपा है।

मारुतसुत तब मारुत करई। पुलक बपुष लोचन जल बहई ॥
हनूमान सम नहि बड़भागी। नहि कोउ रामचरन अनुरागी ॥
गिरिजा जासु प्रीति सेवकाई। बार बार प्रभु निज मुख गाई ॥४॥

अर्थ : तब हनुमान्‌जी हवा करने लगे। उन्हें रोमाञ्च हो गया और प्रेमाश्रु का प्रवाह चला। हनुमान्‌जी के समान न तो कोई बड़भागी है और न कोई रामचरन का अनुरागी है। शिवजी कहते हैं कि हे गिरजे! जिसकी प्रीति और सेवकाई का गान बार बार प्रभु ने श्रीमुख से किया।

व्याख्या : सब भाई सेवा में लग गये। तब हनुमान्‌जी हवा करने लगे। सरकार की सेवा में हनुमान्‌जी को इतना प्रेम उमगता है कि शरीर पुलकित हो उठता है और नेत्र से अश्रु की धारा चलती है। अवधवासी सभी रामानुरागी हैं। अतः सभी बड़भागी हैं। परन्तु हनुमान्‌जी सा न कोई रामानुरागी है और न कोई बड़भागी है। सरकार ने किसी की सेवकाई का वर्णन नहीं किया। जब वर्णन किया तो हनुमान्‌जी के प्रेम और सेवकाई का वर्णन किया। भाव यह है कि अवध की सम्पूर्ण प्रजा कृतार्थ रूप है। सभी सरकार के साथ ही प्रस्थान करेंगे। सगुन उपासक संग तब रहहिं मोक्ष सुख त्यागि। सो मोक्ष सुखानुभूति के लिए सरकार के साथ ही प्रयाण करेंगे। परन्तु हनुमान्‌जी को मोक्ष सुख प्रिय नहीं है। सरकार का भजन प्रिय है और बिना शरीर के भजन होता नहीं। अतः हनुमान्‌जी भजन के लिए यहीं ठहर जावेंगे।[1]

---

१. हनूमानपि तं प्राह नत्वा रामं प्रहृष्टधीः। त्वन्नाम स्मरतो राम न तृप्यति मनो मम। अतस्त्वन्नाम सततं स्मरन् स्थास्यामि भूतले। यावत्स्थास्यति ते नाम लोके तावत्कलेवरम्। अध्यात्मरामायण। पुनश्च : इस धरातल पर एक भी जीव जबतक रामनाम लेनेवाला कथावाचक रहेगा श्रीमारुति यहीं रहेंगे। ऐसा वर श्रीरघुनाथजी से हनुमान्‌जी ने माँगा है।

दो. तेहि अवसर मुनि नारद, आए करतल बीन।
गावन लगे राम कल, कीरति सदा नवीन ॥५०॥

अर्थ : उस समय नारदमुनि वीणा लिये पहुँच गये और रामजी की सदा नवीन सुन्दर कीर्ति का गान करने लगे।

व्याख्या : नारदजी तो नित्य ही अवध आया करते हैं। परन्तु इस समय नारदजी का आना दूसरे ही अभिप्राय से है। वीणा भी बज रही है। कीर्ति का गान भी हो रहा है। नारदजी ऐसे गान करनेवाले गान कर रहे हैं और वीणा सा वाद्य बज रहा है और गान का विषय रामजी की सुन्दर कीर्ति है जो कभी पुरानी होती ही नहीं। जब गान की जावे तभी नवीन मालूम होती है। अतः वह प्रस्थान का समय अलौकिक आनन्दमय था।

मामवलोकय पंकज लोचन। कृपा बिलोकनि सोकबिमोचन॥
नील तामरस स्याम काम अरि। हृदय कंज मकरंद मधुप हरि ॥१॥

अर्थ : हे कमलनयन ! हे शोक विमोचन ! कृपादृष्टि से मुझे देखिये। नील कमल के समान श्याम राम ! आप काम के शत्रु हैं। हे हरि ! हृदय कमल के मकरन्द के लिए आप भौंरे हैं।

व्याख्या : नारदजी ने जो गान किया उसे कवि यहाँ पर लिखते हैं। पहिले ही उनकी प्रार्थना हुई कि मुझे कृपादृष्टि से देखिये। कृपादृष्टि आपकी भक्तों को अभय करनेवाली है। यथा : कृपादृष्टि करि वृष्टि प्रभु अभय किये सुरवृन्द और पङ्कजलोचन की दृष्टि अपनी ओर होने से देखने में भी बड़ा आनन्द है। इसलिए इस अवलोकन को शोकविमोचन कह रहे हैं।

काम के शत्रु दो हैं : एक गौर वर्ण और एक श्याम वर्ण। सो यहाँ नीलतामरस स्याम काम अरि को सम्बोधन कर रहे हैं : पद कमल परागा रस अनुरागा। जैसे कमल में मकरन्द होता है उसी भाँति हृत्कमल का मकरन्द अनुराग है। उस अनुरागरूपी मकरन्द के ग्राहक आप भ्रमररूप हैं। अर्थात् जिस हृदय में अनुराग होता है उस हृदय में आप सदा विराजमान रहते हैं।

जातुधान बरूथ बल भंजन। मुनि सज्जन रंजन अघ गंजन॥
भूसुर ससि नव बृंद बलाहक। असरन सरन दीन जन गाहक ॥२॥

अर्थ : आप राक्षसों के सेना के बल के तोड़नेवाले हैं। मुनि और सज्जन को सुख देनेवाले तथा पाप के नाश करनेवाले हैं। आप ब्राह्मण समूहरूपी नये धान के लिए बादल रूप हैं। आप अशरण के शरण और दीन जनों के ग्राहक हैं।

व्याख्या : आपने राक्षसों की सेना का नाश कर दिया। मुनि और सज्जनों की रक्षा कर ली तथा पृथिवी का भार हरण कर लिया। अर्थात् अवतार ग्रहण के दोनों प्रयोजन : साधु परित्राण और दुष्कृतों का विनाश पूरे हो गये।

धान के पौदों की जल की बड़ी प्यास रहती हैं। उन्हें तृप्त करनेवाला बादल ही है। इसी भाँति ब्राह्मणों को सरकार की प्यास रहती है। उनके पालन के लिए आप कृपावारिधर हैं। जिसे कोई शरण नहीं उसके शरण आप हैं। दीनों को कौन पूछता है उनके ग्राहक तो आप ही हैं। अर्थात् : मुनि सिद्ध सकल सुर परम भयातुर नमत नाथ पदकंजा। सो सरकार ने सबके दु:ख को दूर किया।

भुज बल बिपुल भार महि खंडित। खरदूषन बिराध बध पंडित ॥
रावनादि सुखरूप भूप बर। जय दसरथ कुल कुमुद सुधाकर ॥२॥

अर्थ : भुजाओं के बड़े भारी बल से आपने पृथिवी के भार का खण्डन किया। आप खरदूषण और विराध के वध में पंडित हैं। हे रावण के शत्रु सुख के रूप श्रेष्ठ भूपाल दशरथ कुलरूपी कुमुद के लिए चन्द्र रूप आपकी जय हो।

व्याख्या : आपने अपनी भुजाओं के बल से पृथिवी का भार उतार दिया। भाव यह कि जिस कार्य के लिए अवतार धारण किया था सो हो गया। वानरों की सेना जो आपने साथ में ली थी वह तो कौतुक के लिए थी। यथा : तव निज भुज बल राजिव नैना। कौतुक लागि संग कपि सैना। राक्षसों के संहार में आपने भुज बल से काम लिया और जहाँ आवश्यक पड़ा वहाँ पंडिताई भी दिखलाया। खरदूषण तथा विराध के वध में बल से काम चलनेवाला नहीं था। खरदूषण शस्त्रों से छिन्न भिन्न होकर भी नहीं मरते थे। यथा : महि परत पुनि उठि लरत मरत न करत माया अति घनी। विराध भी अस्थि मात्र अवशेष होने पर भी नहीं मरता था। इन दोनों के वध में सरकार ने पण्डिताई दिखलायी। यथा : सुर मुनि सभय प्रभु देखि माया नाथ अति कौतुक करयौ। देखहिं परसपर राम करि संग्राम रिपुदल लरि मरयौ। तथा : खनिगर्त गोपित बिराधा: विनय।

रावण सबको रुलानेवाला था। उसका वध करके सरकार ने संसार को सुखी कर दिया। अतः आप राजाओं में श्रेष्ठ हैं। आप साक्षात् सुख रूप हैं। सभी को आप से सुख मिलता है पर दशरथ कुल तो विशेष रूप से सुखी है। जैसे सुधाकर से संसार सुखी होता है पर कुमुद कुल तो चन्द्रोदय होने से ही खिलता है। चन्द्रमा का पक्षपात कुमुद कुल के खिल उठने का कारण नहीं है। चन्द्रमा तो समान रूप से अमृत की वर्षा सब पर करते हैं। पर कुमुद कुल का चन्द्रके प्रति अधिक प्रेम ही उसके खिलने का कारण है।

सुजसु पुरान बिदित निगमागम। गावंत सुरमुनि संत समागम ॥
कारुनीक ब्यलीक मद खंडन। सब बिधि कुसल कोसला मंडन ॥
कलिमल मथन नाम ममताहन। तुलसिदास प्रभु पाहि प्रनत जन ॥३॥

अर्थ : आपका सुयश पुराण वेद और शास्त्रों में विदित है। देवता मुनि और सन्त एकत्र होकर उसका गान करते हैं। हे कारुणीक मिथ्याभिमान के खण्डन करने-वाले अथवा बालिके मदके खण्डन करनेवाले हे कोसलपुर के भूषण आप सब प्रकार

से निपुण हैं। आपका नाम कलियुग के मलका नाश करनेवाला तथा ममता को दूर करनेवाला है। यह जन प्रणत हैं। हे तुलसीदास के प्रभु ! रक्षा करो।

व्याख्या : गावत ब्रह्मादिक मुनि नारद। बालमीकि बिज्ञान बिसारद। सुक सनकादि सम्भु अरु सारद। बरनि पवन सुत कीरति नीको। गावत बेद पुरान अष्टदस। इत्यादि सभी आप के सुयश का गान करते हैं। आप के गुणों की घोषणा करते हैं कि आप करुणाकर हैं। आप मिथ्याभिमान को दूर करनेवाले हैं। मैं सेवक रघुपति पति मोरे। यह अभिमान सच्चा है। इसके बने रहने के लिए भक्तों की प्रार्थना रहती है। हे कोसलपुर के राजा आप सभी प्रकार से कुशल हैं। ज्ञान मार्ग की प्राप्ति आपके नाम से होती है। क्योंकि वह कलियुग के मल को दूर करता है और ममता को नष्ट करता है। नारदजी कहते हैं कि मैं आपको नमस्कार करता हूँ। आप मेरी रक्षा कीजिये।

इस स्तुति में नाम रूप लीला और धाम ये चार तारे चमकते हैं। यह घनिष्ठा नक्षत्र है। इसमें कलि मल मथन नाम ममता हन : कहकर नाम कहा। स्याम तामरस कहकर रूप कहा। जातुधान बरूथ बलभंजन : कहकर लीला कहा। तथा कोसलामंडन कहकर धाम कहा। ये ही चार तारे इसमें चमकते हैं। इस स्तुति में सरकार के गुणों की घोषणा है। यथा : सुजसु पुरान बिदित निगमागम। गावत सुर मुनि संत समागम। इसलिए इसको मर्दलाकार माना। इसकी फलश्रुति है : सकल सुकृत फल भूरि भोग से।

दो. प्रेम सहित मुनि नारद, बरनि राम गुन ग्राम।
सोभासिंधु हृदयँ धरि, गये जहाँ बिधि धाम ॥५१॥

अर्थ : प्रेम सहित नारद मुनि रामजी के गुण ग्राम का वर्णन करके और शोभासिन्धु रामजी को अपने हृदय में रखकर ब्रह्मलोक चले गये।

व्याख्या : यही सरकार को हृदय में रखने की कुञ्जी है कि उनके गुणग्रामों को प्रेम सहित गावे। नारदजी ने प्रेम के सहित सरकार के गुणों का गान किया। तो सरकार उनके हृदय में चले गये और नारदजी उन्हें लिये हुए ब्रह्मलोक चले गये। भक्त के हृदय से ही बाहर निकलकर अवतार धारण किया था। यथा : बंचेहु मोहि जवनि धरि देहा। सोइ तनु धरहु स्राप मम एहा। और भक्त हृदय ही उनका निज धाम है। यथा : जाहि न चाहिअ कबहुँ कछु तुम्ह सन सहज सनेहु। बसहु निरन्तर तासु मन सो राउर निज गेहु। उसी में चले गये। प्रजा सहित रघुबंश मनि किमि गवने निज धाम। इस प्रश्न का यही उत्तर महादेवजी देते हैं : सगुणोपासक प्रजा मोक्ष सुख को छोड़कर सरकार के मर्त्य धाम में पधारने से आई थी। सो अब मोक्ष सुख प्राप्ति के लिए सरकार के साथ चली गयी। यथा : निज इच्छा अवतरइ प्रभु सुर महि गो द्विज लागि। सगुन उपासक सँग तब रहहिं मोक्ष सुख त्यागि। और तब नारदजी ब्रह्मलोक चले गये। बैकुण्ठ साकेत गोलोक महा कैलास आदि ब्रह्म-लोक के ही भेद हैं।

कथोपसंहार

गिरिजा सुनहु बिसद यह कथा । मैं सब कही मोरि मति जथा ॥
राम चरित सत कोटि अपारा । स्रुति सारदा न बरनै पारा ॥१॥

अर्थ : हे पार्वति ! सुनो इस निर्मल कथा को अपनी बुद्धि के अनुसार मैंने सब कह दी । राम चरित्र सौ करोड़ है और अपार है । वेद और शारदा भी वर्णन नहीं कर सकती ।

व्याख्या : कथा विषयक अन्तिम प्रश्न के उत्तर की समाप्ति दिखलाते हैं । कथा को निर्मल कहते हैं क्योंकि यह अभ्यन्तर मल को धोनेवाली है । सब कह दिया कहने का भाव यह है : प्रजा सहित रघुबंस मनि किमि गवने निज धाम । इस प्रश्न का भी उत्तर कह दिया । यह कथा ही ऐसी है कि यथामति कही जाती है । क्योंकि इस कथा की सीमा नहीं है । अब सीमा न होने का कारण कहते हैं कि राम चरित्र एक तो है नहीं सौ करोड़ हैं और उनमें एक एक का पारावार नहीं है । न वेद ही सब वर्णन कर सकते हैं न शारदा ही सब वर्णन कर सकती हैं । जो आकाश की भाँति असीम हो उसका पार कोई कैसे पा सकता है ।

रामु अनंत अनंत गुनानी । जनम करम अनंत नामानी ॥
जलसीकर महिरज गनि जाहीं । रघुपति चरित न बरनि सिराहीं ॥२॥

अर्थ : राम अनन्त हैं । उनके गुण अनन्त हैं । उनके जन्म कर्म और नाम अनन्त हैं । जल की बूँदे और पृथिवी के कण चाहे गिन लिये जायँ पर रामजी के चरित्र वर्णन करके समाप्त नहीं किये जा सकते ।

व्याख्या : रामजी का अन्त नहीं है । यथा : नभ सत कोटि अमित अवकासा । राम के गुणों का भी अन्त नहीं है । यथा : राम अमित गुन सागर थाह कि पावै कोइ । राम के अवतार भी अनन्त है । यथा : कल्प कल्प प्रति प्रभु अवतरहीं । चारु चरित नाना बिधि करहीं । अथवा : अवतारा ह्यसंख्येयाः हरेः सत्त्वनिधेर्द्विजाः । और प्रत्येक अवतार में नाना विधि से चरित करते हैं । अतः कर्म भी अनन्त हैं और उसके नामों का भी अन्त नहीं है । क्योंकि प्रत्येक अभिधान के वही एक अभिधेय है । अतः उसके नाम का भी अन्त नहीं है । उनका गरीबनेवाज भी नाम है । गईबहोरी भी नाम है साहब भी नाम है : इत्यादि ।

जल सीकर की गिनती कौन कर सकता है । पृथिवी के कणों की गणना कैसे सम्भव है । पर यदि वह भी सम्भव हो जाय तो भी रामजी के गुणों की गणना असम्भव है । एक एक अणु परमाणु में विशेषता है । इसीलिए विशेष को अनन्त माना गया है । वे सब विशेषता भी तो रामजी की ही कृति है । अतः उनके चरित की गिनती कैसे हो सकती है ।

बिमल कथा हरिपद दायनी । भगति होइ सुनि अनपायनी ॥
उमा कहेउं सब कथा सुहाई । जो भसुंडि खगपतिहि सुनाई ॥३॥

अर्थ : यह निर्मल कथा हरिपद की देनेवाली है। इसके सुनने से अनपायिनी भक्ति होती है। हे उमा ! मैंने वह सब सुहाई कथा कही। जो भुसुंडि ने गरुड़ को सुनायी थी।

व्याख्या : रामजी की कथा में मल नहीं है। क्योंकि यह पापनाशिनी है। यह कथा हरिपद दायिनी है। सरयूजी भी हरिपददायिनी हैं। यथा : जा मज्जन ते बिनहि प्रयासा। मम समीप नर पावहिं बासा। इसी भाँति यह सरयू काव्य की कथा भी हरिपद दायिनी है। इसके सुनने से अनपायिनी भक्ति होती है। उसी भक्ति में अपाय : विघ्न नहीं होता। जो अनपायिनी भक्ति बड़े साधनों के करने पर मुनियों को मिली है वह इस कथा के सुनने से प्राप्त होती।

उपक्रम में कहा था : सुनु सुभ कथा भवानि रामचरित मानस बिमल। कहा भुसुंडि बखानि सुना विहग नायक गरुड़। अतः उपसंहार में भी वही बात कह रहे हैं। जो भुसुंडि खगपतिहि सुनाई। स्वयं मानस के रचयिता कह रहे हैं कि भुसुण्डि से कही हुई कथा मैंने तुम्हें सुनाया। यह सनातन रीति है कि अहंकार से विमूढ़ होकर अपने को कर्ता नहीं मानना चाहिए। ज्ञान विज्ञान सब सनातन है। अतः पहिले के कहे हुए संवाद को प्रमाण में देकर तब उपदेश देना उचित है। भगवान् आदि गुरु श्रीकृष्णजी भी गीता की परम्परा कहते हुए अपने ही प्रथम कथन को प्रमाण में देकर गीता का उपदेश करते हैं। यथा : इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहमव्ययम्। विवस्वान् मनवे प्राह मनुरिक्ष्वाकवेऽब्रवीत्। एवं परम्पराप्राप्तमिमं राजर्षयो विदुः। इत्यादि।

कछुक रामगुन कहेउँ बखानी। अब का कहउँ सो कहहु भवानी॥
सुनि सुभ कथा उमा हरषानी। बोलीं अति बिनीत मृदु बानी॥४॥
धन्य धन्य मैं धन्य पुरारी। सुनेउँ रामगुन भव भयहारी॥५॥

अर्थ : थोड़ा सा रामजी के गुणों को बखानकर कहा। अब क्या कहें उसे हे भवानी बतलाओ। शुभ कथा सुनकर उमा प्रसन्न हो गयी और अति विनीत मृदु वाणी बोली। हे पुरारी ! मैं धन्य हूँ धन्य हूँ। धन्य हूँ। मैंने संसार के भय को नाश करनेवाले राम गुणों को सुना।

व्याख्या : रामजी की कथा जो हो सका सो सब कहा और प्रसङ्गात् कुछ रामजी के गुणों का भी वर्णन किया। मैंने पहिले कहा था : सो सम्वाद उदार जेहि विधि भा आगे कहब : उसे कहना है और तुमने राम रहस्य विषयक भी प्रश्न किया है। सो इनमें से अब क्या कहें सो तुम्हीं बतलाओ।

अब श्रोता का कृतकृत्य होना कहते हैं। पार्वतीजी कथा सुनकर कृतकृत्य हो गयीं। इसी बात को गोस्वामीजी उमा हरखानी कहकर द्योतित करते हैं। कृतज्ञता प्रकाश के लिए अति विनीत मृदु वाणी बोली। वक्ता को धन्य कहना विनीत वाणी है और सुनने से अपने को धन्य कहना अति विनीत वाणी है। धन्य होने का

कारण कहती हैं कि रामजी के गुणों को सुना : जिनके श्रवण मात्र से संसार का भय नष्ट होता है। जिसने रामजी के गुणों को सुना उसे संसार का भय नहीं रह जाता।

दो. तुम्हरी कृपा कृपायतन, अब कृतकृत्य न मोह।
जानेउँ रामप्रताप प्रभु, चितानंद संदोह ॥५२॥

अर्थ : हे कृपायतन तुम्हारी कृपा से अब मैं कृतकृत्य हो गयी। अब मुझे मोह नहीं है। मैंने चिदानन्द सन्दोह रामजी के प्रताप का जाना।

व्याख्या : शङ्कर भगवान् ने कहा : अजहुँ न छाया मिटत तुम्हारी। स्वयं भी स्वीकार किया था : अजहूँ कछु संशय मन मोरे। अब कहती हैं कि आप की कृपा से मोह चला गया। अतः मैं कृतकृत्य हो गयी। मन में जो संशय उठा था : तिन्ह नृप सुतहि कीन्ह परनामा। कहि सच्चिदानन्द परधामा। वह संशय बिलकुल दूर हो गया। चिदानन्द सन्दोह राम हैं। उनके प्रताप की मुझे जानकारी हो गयी। इसी प्रकार का सन्देह गरुड़जी को हुआ था कि सो अवतरा सुनेउ जगमाहीं। देखेउँ सो अभाव कछु नाहीं।

दो. नाथ तवानन ससि स्रवत, कथा सुधा रघुबीर।
स्रवन पुटन्हि मन पान करि, नहि अघात मति धीर ॥५२॥

अर्थ : हे नाथ ! आप के मुखचन्द्र से रघुवीर के कथामृत की झरी को कान रूपी दोने से पीकर हे मतिधीर ! मेरा मन नहीं अघाता।

व्याख्या : कथा सुधा के लिए सुधाकर महेश का मुखचन्द्र है। जगदम्बा महेशमुखचन्द्र की चकोरी हैं। रूप सुधा का नयनपुट से सदा पान किया करती हैं। इस समय तो कथा सुधा का भी श्रवणपुट से पान कर रही थीं। कथा समाप्त होने पर अपनी कृतकृत्यता तो कही पर उसके साथ साथ यह भी कह रही हैं कि मेरा मन कथा सुधा के पान से भरा नहीं और भी कथा सुनना चाहता है। आप मतिधीर हैं। आप इसे समझ सकते हैं। मुझे और भी कथा सुनाइये।

राम चरित जे सुनत अघाहीं। रस बिसेष जाना तिन्ह नाहीं ॥
जीवन मुकुत महा मुनि जेऊ। हरि गुन सुनहि निरंतर तेऊ ॥१॥

अर्थ : जिसका मन राम चरित्र सुनने से ऊब उठता है उसने रस विशेष को जान नहीं पाया। जो जीवन्मुक्त महामुनि हैं वे भी श्रीहरि के गुणों को निरन्तर सुना करते हैं।

व्याख्या : भगवती स्वयं रामचरित सुनते सुनते नहीं अघाईं और दूसरे के लिए कहती हैं कि सुनते सुनते जो अघा जाते हैं उन्हें इस चरित्र का रस मिला नहीं। रामचरित्र में एक विशेष रस है जिसके आस्वादन करनेवाले की प्यास नित्य बढ़ती जाती है। कभी उससे जी ऊबता ही नहीं। ऐसा स्वाद और कहीं

नहीं है। दो एक बार सुनने से ही मन भर जाता है कि वह तो वही बात है जिसे मैं सुन चुका हूँ। रामचरित्र सुनने में भी जो यही बात कहे तो समझ लीजिये कि इसे उस रस विशेष का अनुभव ही नहीं हुआ। सूक्ष्म रस का स्वाद लेने के लिए परिष्कृत ग्रहण शक्ति चाहिए। जिस भाँति गुड़ खानेवाले को अंगूर फीका लगता है। उसी भाँति पापात्मा को रामचरित्र का स्वाद नहीं मिलता।

महामुनि जो जीवन्मुक्त हैं उन्हें कोई कामना नहीं है। निवृत्ततर्ष हैं जो दुःख से घबराते नहीं। जिसे सुख को इच्छा नहीं जिन्हें राग द्वेष और भय नहीं है। जिनका चित्त स्थिर हो गया है उन्हें मुनि कहते हैं। उनमें भी जो श्रेष्ठ हैं जीवन्मुक्त है। उन्हें महामुनि कहते हैं। वे भी बराबर हरिगुण सुना करते हैं कभी ऊब्रते नहीं। यथा : सुनि गुनगान समाधि बिसारी। सारद सुनहि परम अधिकारी।

भवसागर चह पार जो पावा। रामकथा ताकहुँ दृढ नावा॥
बिषइन्ह कहँ पुनि हरि गुनग्रामा। स्रवन सुखद अरु मन अभिरामा॥२॥

अर्थ : जो संसार सागर के पार जाना चाहता है उसके लिए राम कथा दृढ़ नाव है। जो विषय में ही लुब्ध हैं उन्हें भी श्रीहरि के गुणग्राम सुनने से कानों को सुख मिलता है और मन को प्रिय लगता है।

व्याख्या : बिषयी साधक सिद्ध सयाने। त्रिबिध जीव जग बेद बखाने। तोन प्रकार के जीव वेद ने कहे हैं। चौथा कोई प्रकार नहीं है। सो सिद्ध सयाने का वृत्तान्त तो ऊपर की चौपाई में कह आये हैं। अब साधक का वृत्तान्त कहते हैं। जीवन्मुक्त तो संसार सागर के पार पहुँच चुके हैं। परन्तु जो पार नहीं पहुंचे हैं किन्तु पार जाना चाहते हैं वे साधक हैं। उनके लिए रामकथा दृढ़ नाव है। इसके आश्रयण करनेवाला डूबता नहीं पार पहुँच ही जाता है। कर्म कथा को वेदों ने अदृढ़ नौका कहा है। वह पार पहुँचाने में असमर्थ हैं। अतः साधक लोग इसका परित्याग कर नहीं सकते। यथा : जो सुनत गावत कहत समुझत परम पद नर पावई।

अब रह गये विषयी लोग। जो न तो पार पहुँचे हैं और न पार जाना चाहते हैं। उनका मन विषय में ही शब्द स्पर्श रूप रस गन्ध में ही लगा है। वे विषय कथा में ही सुख पाते हैं उनके लिए ग्रन्थकार कहते हैं कि रामकथा में उनका भी मन लगता है। क्योंकि इसमें दिव्यातिदिव्यविषयों का वर्णन है और यह कथा मीठी है। सुनने में सुख उपजता है और मन को शान्ति प्रदान करती है।

स्रवनवंत अस को जग माहीं। जाहि न रघुपति चरित सोहाहीं॥
ते जड़ जीव निजात्मक घाती। जिन्हहि न रघुपति कथा सोहाती॥३॥

अर्थ : ऐसा कानवाला संसार में कौन है जिसे रामजी की कथा अच्छी नहीं लगती। वे जड़ जीव अपना आतमघात करनेवाले हैं जिन्हें रामजी की कथा अच्छी नहीं लगती।

व्याख्या : जिन्हें कान है उन्हें तो राम कथा अच्छी लगेगी ही। जिन्हें अच्छी नहीं लगती उन्हें समझना चाहिए कि श्रवणेन्द्रिय है ही नहीं। वे जड़ हैं। उनके कान कठपुतली के कान से बने हुए हैं। उन्होंने अपनी आत्मा का हवन कर दिया। घोर हिंसक हैं। पाप से उनकी बुद्धि अत्यन्त कलुषित हो गयी है। उन्हें कूकर सूकर की योनि प्राप्त होनेवाली है। यथा : १. निवृत्ततर्षैरुपगीयमानात् २. भवौषधात् ३. श्रोत्रमनोभिरामात्। क उत्तमश्लोकगुणानुवादात् पुमान् विरज्येत विना पशुघ्नात्।

हरि चरित्र मानस तुम्ह गावा। सुनि मैं नाथ अमित सुख पावा ॥

उमा के छः प्रश्न

तुम्ह जो कही यह कथा सुहाई। कागभसुंडि गरुड़ प्रति गाई ॥४॥

अर्थ : हे नाथ ! आपने रामचरित्र का गान किया। उसे सुनकर मैंने असीम सुख पाया। आपने जो यह कहा कि इस कथा को कागभुसुण्डि ने गरुड़जी से कही थी।

व्याख्या : उमा कहती हैं कि आपने कथा के उपक्रम में जो कहा था : रामचरित मानस एहि नामा। सुनत स्रवन पाइअ बिस्रामा। मनकरि बिषय अनल बन जरई। होय सुखी जो एहि सर परई। सो वैसा ही हुआ। मुझे ऐसा सुख हुआ जिसकी सीमा नहीं। परन्तु आपने यह कहा : उमा कहेउँ सब कथा सुहाई। जो भुसुंडि खगपतिहि सुनाई। पहिले भी कहा था : सुनु सुभ कथा भवानि रामचरित मानस बिमल। कहा भुसुंडि बखानि सुना बिहग नायक गरुड़। सो संवाद उदार जेहि बिधि भा आगे कहब। उसी के बारे में शंका करती हैं। भाव यह कि शिवजी ने पूछा था : अबका कहौं सो कहहु भवानी। उसी के उत्तर में कह रही हैं कि इस शंका का समाधान कर दीजिये।

दो. बिरति ज्ञान बिज्ञान दृढ़, रामचरित अति नेह।
बायस तन रघुपति भगति, मोहि परम संदेह ॥५३॥

अर्थ : वैराग्य ज्ञान और विज्ञान में जो दृढ़ है और जिसका रामजी के चरणों में अत्यन्त स्नेह है उसे काम शरीर प्राप्ति और उस शरीर में भी रामजी की भक्ति की प्राप्ति। इस विषय में मुझे बड़ा भारी सन्देह है।

व्याख्या : जिसे वैराग्य ज्ञान विज्ञान दृढ़ हो। उसकी मुक्ति होनी चाहिए। जिसे रामचरित में अति प्रेम हो उसे कृतकृत्य होना चाहिए। उसे चाण्डाल पक्षी काक की शरीर कैसे मिली : सनमुख होई जीव मोहिं जबहीं। जन्मकोटि अघ नासहिं तबहीं। जो नर होई चराचर द्रोही। आवै सभय सरन तकि मोही। तजि मद मोह कपट छल नाना। करौं सद्य तेहि साधु समाना। कोटि बिप्र बध लागहि जाहू। आए सरन तजौं नहि ताहू। सो जिसे रामचरण में अतिस्नेह है। उसे पाप रह कहाँ गया जिससे उसे काक शरीर की प्राप्ति हुई ? यदि काक शरीर मिला तो भी काक

शरीर में राम भक्ति कैसे हुई। राम भक्ति तो सब पुण्यों का फल है। काक शरीर उस फल के सर्वथा अयोग्य है। अतः इस विषय में तो मुझे परम सन्देह है।

नर सहस्र महँ सुनहु पुरारी। कोउ एक होइ धर्म ब्रत धारी ॥
धर्म सील कोटिक महँ कोई। बिषय बिमुख बिरागरत होई ॥१॥

अर्थ : हे पुरारि ! सहस्रों मनुष्यों में कोई एक धर्म व्रत धारण करनेवाला होता है। करोड़ों धर्मशीलों में कोई एक विषय से हटकर वैराग्यवान् होता है।

व्याख्या : पहिले तो धर्मव्रत होना कठिन है। स्वाभाविकी प्रवृत्ति को शास्त्रीया बनाने में हजारों मनुष्यों में से कोई एक सफल होता है। जिसकी प्रवृत्ति शास्त्रीया हो गयी वही धर्मशील है। वही धर्माचरण का व्रत निबाह सकता है। शेष आरूढपतित हो जाते हैं। धर्म व्रत निवाह नहीं सकते।

धर्माचरण का मुख्य फल यही है कि उसको वैराग्य हो गया। यथा : धर्म ते बिरति योग ते ज्ञाना। सो उस मुख्य फल की प्राप्ति करोड़ों में से किसी एक को होती है। करोड़ों धर्मशीलों में से कोई एक ही विरक्त होने में समर्थ होता है।

कोटि बिरक्त मध्य स्रुति कहई। सम्यक ज्ञान सकृत कोउ लहई ॥
ज्ञानवंत कोटिक महँ कोऊ। जीवन मुक्त सकृत जग सोऊ ॥२॥

अर्थ : वेद कहता है कि करोड़ों वैराग्यवानों में से सम्यक् ज्ञान किसी एक को ही होता है और करोड़ों ज्ञानियों में से जीवन्मुक्त तो कोई एक ही होता है।

व्याख्या : ऐसा ही नियम है। इसलिए कहते हैं कि वेद ऐसा कहता है कि करोड़ों वैराग्यवानों में से किसी एक को ही सम्यक् ज्ञान होता है। वैराग्य से योग की सिद्धि होती है और योग सिद्धि से सम्यक् ज्ञान होता है। यथा : धर्म ते बिरति योग ते ज्ञाना। सम्यक् ज्ञान से अभिप्राय है अभ्रान्त ज्ञान का। ऐसे अभ्रान्त ज्ञानवालों में जीवन्मुक्ति की दशा तो करोड़ों में किसी एक को ही प्राप्त होती है। जिनका भोजनाच्छादनादि व्यवहार भी लोगों की दृष्टि में है अपनी दृष्टि से वे कुछ नहीं करते। उनका शरीर प्रारब्ध बल से चलता है।

तिन्ह सहस्र महुँ सब सुख खानी। दुर्लभ ब्रह्म लीन बिज्ञानी ॥
धर्म सील बिरक्त अरु ज्ञानी। जीवनमुक्त ब्रह्म पर प्रानी ॥३॥

अर्थ : ऐसे सहस्रों में से सब सुख की खानि ब्रह्मलीन विज्ञानी दुर्लभ हैं। धर्मशील, विरक्त, ज्ञानी, जीवन्मुक्त और ब्रह्मलीन प्राणी।

व्याख्या : हजारों जीवन्मुक्तों में से कोई ही ब्रह्मलीन विज्ञानी होता है। जो सदा ब्रह्मानन्द में ही लवलीन रहता है उन्हें ब्रह्मलीन विज्ञानी कहते हैं। यथा : ब्रह्मानंद सदा लयलीना। देखत बालक बहु कालीना। इस भाँति दुर्लभ साधनों के भी पाँच दर्जे हुए : १. धर्मशील २. विरक्त ३. ज्ञानी ४ जीवनमुक्त और ५. विज्ञानी।

सब ते सो दुर्लभ सुरराया । राम भगति रत गत मद माया ॥
सो हरि भगति काग किमि पाई । बिस्वनाथ मोहि कहहु बुझाई ॥४॥

अर्थ : हे महादेव ! इन सबसे वह दुर्लभ है जो राम भक्ति में रत हो और मद माया जिसकी छूट गयी हो। उस हरिभक्ति को काक ने कहाँ से पायी ? हे विश्वनाथ मुझे समझाकर कहो।

व्याख्या : परन्तु वेदोदित समस्त साधनों का फल तो हरिभक्ति है। यथा : तीर्थाटन साधन समुदाई। योग बिराग ज्ञान निपुनाई। नाना कर्म धर्म व्रत दाना। संजम दम जप तप व्रत नाना। भूत दया द्विज गुरु सेवकाई। बिद्या बिनय बिबेक बड़ाई। जहँ लगि साधन बेद बखानी। सब कर फल हरि भगति भवानी। यहाँ भक्ति से अभिप्राय मद माया रहित हरिभक्ति अर्थात् प्रेमा भक्ति से है। उमा को इसलिए परम सन्देह हुआ कि जो हरिभक्ति ब्रह्मलीन विज्ञानियों को दुर्लभ है उसे चाण्डाल पक्षी ने कैसे पाया ? भाव यह कि यह प्रेमा भक्ति काग में होने की कोई सम्भावना नहीं। यह भक्ति या तो उसे काग शरीर में ही उपजी हो या पूर्व जन्म से ही हो। पूर्वजन्म से हो नहीं सकती। क्योंकि प्रेमा भक्तिवाले को काग शरीर नहीं मिल सकता। अतः यही मानना पड़ेगा कि इसी शरीर में प्रेमा भक्ति प्राप्त हुई। पर यह भी असम्भव है। जो नारकी जीव नरक भोग के उपरान्त उस संस्कार से काक जन्म पाया उसे काक शरीर में जिससे कोई पुरुषार्थ नहीं हो सकता प्रेमा भक्ति का उपजना महा असम्भव से भी असम्भव है। इसलिए कहती हैं कि हे विश्वनाथ ! मुझे समझाकर कहो। परम सन्देह समझाकर कहने से ही जाता है।

दो. राम परायन ज्ञान रत, गुनागार मति धीर।
नाथ कहहु केहि कारन, पाएउ काक सरीर ॥५४॥

अर्थ : राम ही जिसके परम शरण हैं। जो ज्ञान में रत है। गुणों का भण्डार है और मति धीर अर्थात् स्थितप्रज्ञ हैं उसे काक शरीर किस कारण से मिला।

व्याख्या : राम परायण को साकेत लोक की प्राप्ति होनी चाहिए। ज्ञानरत को मोक्ष होना चाहिए। गुणागार मतिधीर को यदि किसी कारण से जन्म भी हो तो पवित्र श्रीमान् के घर में या योगी के घर में जन्म होना चाहिए। उसका जन्म काक योनि में कैसे हुआ ? भुसुण्डिजी में ये सब भी गुण विद्यमान हैं और उनका काक शरीर भी है। इन दोनों बातों में सामञ्जस्य नहीं बैठता। यह पहला प्रश्न है।

यह प्रभु चरित पवित्र सोहावा। कहहु कृपाल काग कहँ पावा ॥
तुम्ह केहि भाँति सुना मदनारी। कहहु मोहि अति कौतुक भारी ॥१॥

अर्थ : यह प्रभु का पवित्र और सुन्दर चरित्र हे कृपाल ! कौए ने कहाँ पाया ? और हेमदनारि तुमने कैसे सुना ? यह अति भारी कौतुक है। मुझे बताइये।

व्याख्या : यह प्रभु का चरित्र है। सुन्दर है और पवित्र है। यथा : पुण्यं पापहरं

सदाशिवकरं विज्ञानभक्तिप्रदं मायामोहमलापहं सुविमलं प्रेमाम्बुपूरं शुभम् । श्रीमद्राम-चरित्रमानसमिदं भक्त्यावगाहन्ति ये । ते संसारपतङ्गघोरकिरणैर्दह्यन्ति नो मानवाः। ऐसे सुन्दर पवित्र वस्तु के सन्निकट कोई काक को जाने नहीं देता और उनकी स्वयं प्रवृत्ति इस ओर नहीं होती । यथा : अति खल जे बिषयी बक कागा । एहि सर निकट न जाहिं अभागा । अतः काक इसका पात्र किसी भाँति नहीं हो सकता । उसे मिला कहाँ से : यह दूसरा प्रश्न है । और सबसे बड़ा कौतुक तो यह है कि काग जब कहता था तो आप कैसे जाकर उसके श्रोता बने । आप कामारि हैं और काक कामी पक्षी है । यथा : कामी काक बलाक बिचारे । सो कामी वक्ता हो और कामारि श्रोता हो इससे बढ़कर आश्चर्य क्या होगा ? यह तीसरा प्रश्न है ।

गरुड़ महाज्ञानी गुनरासी । हरिसेवक अति निकट बिनासी ॥
तेहि केहि हेतु कागसन जाई । सुनी कथा मुनि निकर बिहाई ॥२॥

अर्थ : गरुड़ महाज्ञानी हैं । गुण की राशि हैं । हरि के सेवक हैं । उनके अत्यन्त निकट रहते हैं । वे किस कारण से मुनि समूह को छोड़कर कौए से कथा सुनने गये ।

व्याख्या : अब चौथा प्रश्न करती हैं कि नियम तो यही है कि अपने से उत्कृष्ट के यहाँ ही लोग कथा सुनने जाते हैं। यहाँ तो गरुड़जी श्रोता हैं । कहाँ महाज्ञानी गरुड़ कहाँ मति मन्द काक । कहाँ वे गुणों की राशि और कहाँ यह छली मलिन । कहाँ वह बैकुण्ठ में भगवान् के अति निकट रहनेवाले और कहाँ यह नारकी पक्षी अपवित्र स्थलों में बिचरनेवाला । सो ऐसे के यहाँ गरुड़जी कथा सुनने क्यों गये ? क्या बैकुण्ठ में मुनि उन्हें नहीं मिले ?

कहहु कवन बिधि भा संबादा । दोउ हरि भगत काग उरगादा ॥
गौरि गिरा सुनि सरल सुहाई । बोले सिव सादर सुख पाई ॥३॥

अर्थ : बताइये उनमें संवाद किस विधि से हुआ । काग और गरुड़ दोनों हरिभक्त थे । गौरीजो की सरल और सुन्दर वाणी सुनकर शिवजी सुख पाकर आदर के साथ बोले ।

व्याख्या : यह पाँचवाँ प्रश्न विधि विषयक है । सम्वाद होने में भी विधि है । यथा : सादर चरन सरोज पखारे । अति पुनीत आसन बैठारे । करि पूजा मुनि सुयस बखानी । बोले अति पुनीत मृदुबानी । नाथ एक संसउ बड़ मोरे । करगत बेद तत्त्व सब तोरे । इत्यादि । सो गरुड़ ने क्या काक का पूजन किया ? और स्तुति की कि वेद के तत्त्व सब आपको हस्तामलक हैं ? कथा प्रारम्भ के पहिले कुछ विधि का पालन तो हुआ ही होगा । उसे भी मैं सुनना चाहती हूँ ।

धर्मशास्त्र की आज्ञा है : नापृष्टः कस्यचिद् ब्रूयात् न चान्यायेन पृच्छतः । बिना पूछे किसी से कुछ न कहना चाहिए और अन्याय से पूछने पर भी कुछ न कहना चाहिए । उसी बात को यहाँ दिखलाते हैं कि उमा की वाणी सुन्दर और सरल सुनकर शिवजी को सुख हुआ और आदर से बोले । उमा ने विनीत भाव से

और ऐसे सरल हृदय से प्रश्न किया कि वक्ता का मन प्रसन्न हो गया और बिना वक्ता के प्रसन्न हुए वह आदर से कथा नहीं कह सकता।

उमा के तीसरे प्रश्न का उत्तर

धन्य सती पावनि मति तोरी। रघुपति चरन प्रीति नहि थोरी ॥
सुनहु परम पुनीत इतिहासा। जो सुनि सकल सोक भ्रम नासा ॥४॥
उपजै राम चरन बिस्वासा। भवनिधि तर नर बिनहि प्रयासा ॥५॥

अर्थ : हे सती ! तुम धन्य हो। तुम्हारी मति अतिपवित्र है। तुम्हें रामजी के चरणों में थोड़ी प्रीति नहीं है। अब परम पवित्र इतिहास सुनो जिसे सुनने से सब शोक और भ्रमों का नाश होता है। रामजी के चरणों में विश्वास होता है और बिना प्रयास के मनुष्य संसार सागर के पार हो जाता है।

व्याख्या : पावन मति द्योतित करने के लिए यहाँ पहिले ही सती सम्बोधन दिया। जिसकी पावन मति होगी उसी के मन में ऐसी अधिकार विषयक शङ्का उठेगी। जिसे रामजी के चरणों में अधिक प्रीति होगी उसी के हृदय में कथा की इतनी महिमा का ध्यान आवेगा। महेश मुखचन्द्र चकोरी होने से सतीत्व भी स्पष्ट है। यथा : नाथ तवानन ससि स्रवत कथा सुधा रघुबीर। स्रवन पुटन्हि मन पान करि नहि अघात मति धीर। अथवा उमा के पूर्व जन्म की याद दिलाने के लिए उस जन्म के नाम से सम्बोधन किया। क्योंकि उत्तर देने में उस जन्म की कथा भी थोड़ी सी कहनी है।

अब इस कथा की महिमा कहते हैं कि यह इतिहास परम पुनीत है। क्योंकि परम भागवत भुसुण्डिजी का इतिहास है। यथा : या निर्वृतिस्तनुभृतां तव पादपद्मध्यानाद् भवज्जनकथा श्रवणेन वास्यात्। सा ब्रह्मणि स्वमहिमन्यपि नाथ मा भूत् किं त्वन्तकासि लुलितात् पततां विमानात्। इसके सुनने से सभी शोक और भ्रम का नाश होता है। शोक और भ्रम का कारण कहते हैं कि इसके सुनने से श्रीरामजी के चरणों में विश्वास उपजता है और विश्वास उपजने से शोक और भ्रम का ऐसा नाश होता है कि बिना प्रयास ही मनुष्य संसार सागर के पार हो जाता है। क्योंकि शोक और मोह दो ही संसार के बीज हैं। इनके नष्ट होने से फिर संसार बाधा नहीं कर सकता।

दो. ऐसिअ प्रस्न बिहंग पति, कीन्ह काग सन जाइ।
सो सब सादर कहिहौं, सुनहु उमा मन लाइ ॥५५॥

अर्थ : ऐसा ही प्रश्न गरुड़ ने काग से जाकर किया। वह सब आदर के साथ कहूँगा। हे उमा ! इसे मन लगाकर सुनो।

व्याख्या : ऐसा ही प्रश्न तुम्हें काग देह कैसे मिला यथा : काग देह केहि कारण पाई। तात सकल मोहि कहहु बुझाई : गरुड़जी ने भुसुण्डिजी से किया था।

इस प्रसङ्ग को आदर के साथ में कहूँगा क्योंकि यह परम पवित्र है। तुम भी मन लगाकर सुनो। भाव यह कि पवित्र चरित्र श्रोता को तभी पवित्र करता है जब कि वह मन लगाकर सुनता है।

मैं जिमि कथा सुनी भव मोचनि। सो प्रसंग सुनु सुमुखि सुलोचनि ॥
प्रथम दक्ष गृह तव अवतारा। सती नाम तब रहा तुम्हारा ॥१॥

अर्थ : मैंने जिस भाँति यह भवमोचनी कथा सुनी हे सुमुखि हे सुलोचनि! वह प्रसङ्ग अब सुनो। पहिले दक्ष के घर तुम्हारा अवतार हुआ था। उस समय तुम्हारा नाम सती था।

व्याख्या : उमा के पाँच प्रश्नों में से तीसरे का उत्तर पहिले देते हैं। इसी प्रश्न के विषय में उमा ने कहा था कि मुझे अति भारी कौतुक है। अतः पहिले उसी का उत्तर देते हैं। उमा ने प्रश्न करते हुए शिवजी के मुख तथा वाणी की सुन्दरता सूचक शब्द कहे थे। यथा : नाथ तवानन ससि स्रवत कथा सुधा रघुबीर। अतः उत्तर देते समय शिवजी भी उमा के मुख और नेत्र के शोभा सूचक सम्बोधन दे रहे हैं। यथा : सो प्रसंग सुनु सुमुखि सुलोचनि। जिस भाँति भगवत्कथा भवसागर पार करने के लिए नौका रूप है उसी भाँति भागवत की कथा भी है।

भगवती उमा यद्यपि नित्या है। जगन्मूर्ति हैं। उन्हीं से यह संसार व्याप्त है। फिर भी उनके अवतार हुआ करते हैं। सो शिवजी उनके पूर्व अवतार की याद दिलाते हैं। कहते हैं कि इसके पहिले तुम्हारा अवतार दक्ष प्रजापति के यहाँ हुआ था। उस अवतार में तुम्हारा नाम उमा नहीं था। माँ बाप ने सती नाम रक्खा था।

दक्ष जज्ञ तव भा अपमाना। तुम्ह अति क्रोध तजे तब प्राना ॥
मम अनुचरन्ह कीन्ह मख भंगा। जानहु तुम्ह सो सकल प्रसंगा ॥२॥

अर्थ : दक्ष के यज्ञ में तुम्हारा अपमान हुआ। तुमने अत्यन्त क्रोध से प्राण परित्याग किया। मेरे गणों ने दक्ष का यज्ञ विध्वंस किया तुमको वह सब बातें मालूम ही हैं।

व्याख्या : अपने कथा सुनने की घटना का समय निर्धारित करते हुए कहते हैं कि उस अवतार में जब दक्ष के यज्ञ में तुम्हारा अपमान हुआ। यथा : दक्ष न कछु पूछी कुसलाता। सतिहि बिलोकि जरे सब गाता। पति का अपमान साध्वी के लिए : उसका इतना बड़ा अपमान है कि उसे वह नहीं सह सकती। यथा : सिव अपमान न जाइ सहि हृदय न होइ प्रबोध। सकल सभहि हठि हटकि पुनि बोली बचन सक्रोध : इत्यादि। अस कहि योग अगिनि तनु जारा। भयउ सकल मख हाहाकारा। तथा : वीरभद्र करि कोप पठाये। जज्ञ विधंस जाइ तिन कीन्हा। शिवजी कहते हैं कि तुम्हारी सब बातें जानी हुई हैं। जीवों की भाँति मोह से घिरी बुद्धि न होने के कारण पूर्वजन्म का तुम्हें ठीक ठीक स्मरण है।

तब अति सोच भयो मन मोरे। दुखी भएउँ बियोग प्रिय तोरे ॥
सुंदर बन गिरि सरित तड़ागा। कौतुक देखत फिरों बेरागा ॥३॥

अर्थ : तब मेरे मन में अत्यन्त सोच हुआ और हे प्रिये! मैं तेरे वियोग में दुःखी हुआ। सुन्दर वन पर्वत सरित और तालाबों का कौतुक राग रहित होकर देखता फिरता था।

व्याख्या : पहिले याज्ञवल्क्यजी कह आये हैं : जदपि अकाम तदपि भगवाना। भगत बिरह दुख दुखित सुजाना। सो ऐसे दुःखी हुए कि सती के शरीर को सिरपर धारण किये हुए घूमने लगे। सूर्य की किरणों में सुदर्शन को प्रविष्ट करके विष्णु भगवान् ने उस शरीर को टुकड़े टुकड़े करके गिरा दिया। यह कथा पुराणों में है।

अब अपनी लीला कहते हैं। जबते सती जाइ तनु त्यागा। तब से सिव मन भयउ बिरागा। जपहिं सदा रघुनायक नामा। जहँ तहँ सुनहि राम गुन ग्रामा। अतः कैलास में रहना कुछ दिनों तक छोड़ दिया था। परिव्राजक होकर प्रकृति की शोभा देखते फिरते थे। अथवा जगन्मूर्ति भगवती की ही शोभा देखते फिरते थे।

गिरिसुमेर उत्तर दिसि दूरी। नील सैल एक सुंदर भूरी ॥
तासु कनकमय सिखर सुहाए। चारि चारु मोरे मन भाए ॥४॥

अर्थ : उत्तर दिशा में बहुत दूर पर सुमेरु पर्वत है। वहाँ एक नील पर्वत है जो अत्यन्त सुन्दर है। उस पर्वत पर चार सुवर्णमय शिखर हैं। वे ऐसे सुन्दर हैं कि मुझे बहुत अच्छे लगे।

व्याख्या : जिस सुमेरु पर्वत की चर्चा शिवजी कर रहे हैं वह हिमालय की शृंखला में नहीं है। वह कैलास से भी बहुत दूर उत्तर में है। सुमेरु पर्वत उत्तर दिशा की परम सीमा है। उसी के अन्तर्गत एक पर्वत है जिसे नीलगिरि कहते हैं। वह सुमेरुगिरि देवताओं का निवास स्थान है। वहाँ उच्च कोटि के महात्मा ही जा सकते हैं। उस नीलगिरि के चार शिखर थे जो बड़े सुन्दर और सुवर्णमय थे।

भौगोलिक स्थिति यह है कि भारत वर्ष के उत्तर किंपुरुषवर्ष है और उसके भी उत्तर हरिवर्ष है। हरिवर्ष के उत्तर इलावृतवर्ष है जिसके मध्य में मेरुपर्वत है। यह उत्तर की परा सीमा है। यह निरंश देश है। मेरु के भी उस पार इलावृतवर्ष और रम्यकवर्ष की सीमाभूत नीलगिरि पर्वत है।

तिन्ह पर एक एक बिटप बिसाला। बट पीपर पाकरी रसाला ॥
सैलोपरि सर सुन्दर सोहा। मनि सोपान देखि मन मोहा ॥५॥

अर्थ : उन पर क्रम से बरगद पीपल पाकर और आम के एक एक वृक्ष हैं। पर्वत पर सुन्दर तालाब शोभायमान हैं। जिसमें मणि की सीढ़ियाँ लगी हैं। जिन्हें देखकर मन मोह जाता है।

व्याख्या : यह दिव्य सृष्टि का वर्णन है। उसका वर्णन लौकिक भाषा में इसी भाँति किया जाता है। उस शिखरों पर एक एक दिव्य वृक्ष हैं। एक पर वट का पेड़ है। दूसरे पर अश्वत्थ वृक्ष है। तीसरे पर पाकर का पेड़ है और चौथे पर आम का पेड़ है। उस पर्वत पर मानससर की भाँति सुन्दर सर हैं। यह सरोवर भी दिव्य है। इसकी मणिमय दिव्य सीढ़ियाँ हैं। यह भुसुण्डिजी के आश्रम का वर्णन है कि शिवजी को भी मनोहर मालूम होता है। श्रीगुरु भगवान् के वरदान का प्रभाव है।

दो. सीतल अमल मधुर जल, जलज बिपुल बहु रंग।
कूजत कलरव हंस गन, गुंजत मंजुल भृंग ॥५६॥

अर्थ : उसका जल शीतल निर्मल और मधुर है। उसमें अनेक रंग के कमल हैं। हंस लोग मीठे शब्द से कूज रहे हैं और भँवरें सुन्दर गूँज रहे हैं।

व्याख्या : शीतल से सुख स्पर्श कहा। अमल से निर्मल रूप कहा। जलज से गन्ध कहा। मधुर से रस कहा कूजत और गूँजत से शब्द कहा। इस भाँति उस तालाब को सर्वेन्द्रिय तर्पक बतलाया।

तेहि गिरि रुचिर बसै खग सोई। तासु नास कल्पांत न होइ॥
माया कृत गुन दोष अनेका। मोह मनोज आदि अबिबेका ॥१॥

अर्थ : उस सुन्दर पर्वत पर वह पक्षी बसता है जिसका कल्प के अन्त में भी नाश नहीं होता। मायाकृत गुण दोष बहुत से हैं : मोह काम अविवेक आदि।

व्याख्या : शिवजी कहते हैं कि उस नीलगिरि पर वह पक्षी बसता है। जिसका वर्णन पहिले कर चुके हैं। ऐसे पवित्र स्थल में रहनेवाले को काक कैसे कहें। दूसरी बात यह है कि इन्द्र आदि देवता की भी आयु एक मन्वन्तर है और चौदह मन्वन्तर का एक कल्प होता है। एक कल्प में चौदह इन्द्र बदलते हैं। कल्पान्त में सूर्य चन्द्र भी नहीं रह जाते। तमाम प्रलय हो जाता है। तीन लोक का नाश हो जाता है पर उस पक्षी का नाश नहीं होता।

पहिले कह आये हैं : सुनहु तात माया कृत गुन अरु दोष अनेक। गुन यह उभय न देखिअहिं देखिअ सो अबिबेक। उन मायाकृत गुण और दोष को न देखना चाहिए। इस बात की शिक्षा दी जाती है। सो वे गुण दोष तथा मोह काम अविवेक आदि।

रहे ब्यापि समस्त जग माहीं। तेहि गिरि निकट कबहु नहिं जाहीं॥
तहँ बसि हरिहि भजै जिमि कागा। सो सुनु उमा सहित अनुरागा ॥२॥

अर्थ : समस्त संसार में व्याप्त हो रहे हैं। परन्तु उस पर्वत के सन्निकट नहीं जाते। वहाँ बसकर कौआ जिस भाँति हरि का भजन करता है उसे उमा अनुराग के सहित सुनो।

व्याख्या : संसार में कोई स्थल ही ऐसा नहीं है जहाँ मायाकृत गुण दोष

तथा काम क्रोध मोह अविवेकादि का प्रवेश न हो। परन्तु वहाँ इन सबकी गति ही नहीं है। वे उस पर्वत के निकट नहीं जा सकते। भाव यह कि वह स्थल संसार से निराला है।

वहाँ रहकर जिस भाँति वह पक्षी भगवान् को भजता है वह सुनने योग्य है। जिसका कल्पान्त में नाश नहीं होता। उसका दिन भी सामान्य नहीं हो सकता। जब मन्वन्तर से कम आयुवाले पितरों का दिन एक पक्ष का होता है और देवताओं का दिन छः महीने का होता है। तब कल्पान्त में नाश न होनेवाले का दिन भी तदनुसार बड़ा होना चाहिए। प्रसङ्ग देखने से पता चलता है कि भुसुण्डिजी का दिन एक चतुर्युगी के बराबर होता है। अतः प्रत्येक चतुर्युगी के भुसुण्डिजी के हरि भंजन की दिन चर्या शिवजी कहते हैं और उसे अनुराग के साथ श्रवण करने के लिए श्रोता को सावधान करते हैं।

पीपर तरु तर ध्यान सो धरई। जाप जज्ञ पाकरि तर करई ॥
आँव छाँह कर मानस पूजा। तजि हरि भजन काज नहिं दूजा ॥३॥

अर्थ : पीपल के वृक्ष के नीचे वह ध्यान करता था। पाकर के तले जप यज्ञ करता था। आम के तले मानस पूजन करता था। हरि भजन छोड़कर उसे दूसरा काम ही न था।

व्याख्या : ध्यान प्रथम जुग मख बिधि दूजे। द्वापर परितोषत प्रभु पूजे। कलि केवल मल मूल मलीना। पाप पयोनिधि जनमन मीना। कलियुग केवल हरिगुन गाहा। गावत नर पावहिं भव थाहा। सो सत्ययुग भर वह पीपल के तले ध्यान करता था। त्रेता में यज्ञ की विधि है और उसे यज्ञ का अधिकार नहीं। अतः पाकर के तले जपयज्ञ करता था। द्वापर में पूजा का विधान है और पूजा में भी काक का अधिकार नहीं। अतः आम तले मानस पूजा करता था। उसे सिवा हरिभजन के दूसरा काम ही नहीं।

बर तर कह हरि कथा प्रसंगा। आवहिं सुनहिं अनेक बिहंगा ॥
राम चरित बिचित्र बिधि नाना। प्रेम सहित कर सादर गाना ॥४॥

अर्थ : बरगद के तले वह भगवान का कथा प्रसङ्ग कहता था और अनेक पक्षी सुनने आते थे। रामजी के विचित्र चरित्रों को नाना प्रकार से प्रेम के सहित सादर गान करता था।

व्याख्या : कलियुग में हरिगुण गाथा गान का विधान है। अतः कलियुग में वह बरगद तले भगवान् की कथा कहता था। कथा पक्षी भाषा में होती थी। अतः अनेक पक्षी सुनने आते थे। राम चरित कल्प भेद के कारण विचित्र हैं। यथा : कल्प भेद हरिचरित सोहाये। भाँति अनेक मुनीसन्ह गाये। उन्हीं चरित्रों को भुसुण्डिजी नाना प्रकार से आदर के साथ साथ बड़े प्रेम से गान करते थे।

सुनहिं सकल मति बिमल मराला। बसहिं निरंतर जो तेहि ताला ।।
जब मैं जाइ सो कौतुक देखा। उर उपजा आनंद बिसेखा ।।५।।

अर्थ : उसे निर्मल बुद्धिवाले सब हंस सुनते थे जो सदा उसी ताल में रहते थे। जब मैंने जाकर वह कौतुक देखा तो मेरे मन में विशेष आनन्द हुआ।

व्याख्या : शिवजी कहते हैं कि जिन हंसों के बारे में मैं कह आया हूँ : कूजत कलरव हंस गन। वे सब हंस बड़े निर्मल बुद्धिवाले थे। वे सदा उस ताल में बसते थे और भुसुण्डिजी की कही हुई राम कथा सुनते थे। जब मैंने यह कौतुक देखा कि वक्ता काक और श्रोता हंस : कथा रामजी की हो रही है। तो मेरे मन में विशेष आनन्द हुआ। विरह जन्य दुःख जाता रहा। इतना घूमे परन्तु दुःखी ही रहे शान्ति यहाँ जाने पर हुई।

दो. तब कछु काल मराल तनु, धरि तहँ कीन्ह निवास।
सादर सुनि रघुपति गुन, पुनि आयेउँ कैलास ।।५७।।

अर्थ : तब कुछ समय तक मैंने हंस रूप धारण करके वहीं निवास किया। आदर के साथ राम गुण का श्रवण करके फिर कैलास चला आया।

व्याख्या : मैंने यह कौतुक देखा। उन लोगों ने मुझे नहीं देखा। मैं भी हंस रूप धारण करके उनमें जा मिला। अपने रूप से जाने में रस भङ्ग हो जाता। कथा बन्द हो जाती। भुसुण्डिजी मेरे सामने वक्ता बनकर व्यासासन पर न बैठते। मैं उसी रूप से वहाँ कुछ दिनों तक ठहरा रहा। कथा सम्पूर्ण होने पर कैलास लौट आया। घूमना बन्द कर दिया क्योंकि चित्त में शान्ति आगयी। कथा महाप्रभावा है।

गिरिजा कहेउँ सो सब इतिहासा। मैं जेहि समय गएउ खग पासा ।।
अब सो कथा सुनहु जेहिं हेतू। गएउ काग पहँ खगकुलकेतू ।।१।।

अर्थ : हे पार्वती मैंने वह सब इतिहास कहा कि मैं जिस समय उस पक्षी के पास गया। अब वह कथा सुनो जिस कारण से पक्षिराट् गरुड़ काक के पास गये।

व्याख्या : सुनहु परम पुनीत इतिहासा से उपक्रम करके यहाँ उपसंहार करते हैं। यह परमपावन इतिहास है। इसमें जगदम्बा का दक्ष गृह में अवतार, शिवजी यज्ञ भाग न मिलने पर सती का क्रोध, सती के शरीर त्याग पर शिवजी का बिराग, नील शैल पर जाना, भुसुण्डि द्वारा कथित कथा श्रवण, शान्ति लाभ वर्णन है। यहाँ गिरिजा के तीसरे प्रश्न का उत्तर समाप्त हुआ।

सो केहि हेतु काग सन जाई। सुनी कथा मुनि निकर बिहाई। इस चौथे प्रश्न का उत्तर आरम्भ होता है। गरुड़जी का नीलगिरि पर जाना निर्हेतुक नहीं हुआ। खग कुल केतु ने काग के पास जाना सोचा भी नहीं था। वे मुनि के पास हो गये। पर कार्य कारण ऐसा आ पड़ा कि उन्हें जाना पड़ा।

उमा के चौथे प्रश्न उत्तर

जब रघुनाथ कीन्ह रण क्रीडा । समुझत चरित होत मोहि व्रीड़ा ॥
इन्द्रजीत कर आपु बँधायो । तब नारद मुनि गरुड़ पठायो ॥२॥

अर्थ : जब रामजी ने रण लीला की उस चरित को स्मरण करके मुझे सङ्कोच होता है। इन्द्रजीत के हाथ से आपने अपने को बँधवा लिया। तब नारद मुनि ने गरुड़ को भेजा।

व्याख्या : ब्याल पास बस भयउ खरारी। स्वबस अनंत एक अविकारी। रन सोभा लगि प्रभुहिं बँधायो। देखि दसा देवन्ह भय पायो। अपने आप इन्द्रजीत के हाथ से बँधवा लेना यह सरकार की रणक्रीड़ा थी। नहीं तो मेघनाद का क्या सामर्थ्य था कि सरकार को बाँध लेता। उस चरित्र को स्मरण करके मुझे सङ्कोच होता है कि मेरे स्वामी उस निशिचर के हाथ से बँध गये।

अपने को बँधवा लेने का कारण कहते हैं कि उसने इन्द्र को जीता था और इन्द्र कुछ न कर सके। उसी भाँति अपने को एक बार बँधवा लेने से इन्द्र के मान की रक्षा होगी। अतः अपने को बाँध लेने दिया। ऐसे बँधे कि कोई छुड़ानेवाला नहीं। तब नारद मुनि ने गरुड़ को भेजा कि जाओ अपने स्वामी को छुड़ाओ। नारदजी को विशेष चिन्ता हुई : मोर साप करि अंगीकारा। सहत राम नाना दुख भारा। अतः तुरन्त गरुड़ लोक पहुँचे और वहाँ से गरुड़जी को भेजा कि तुम्हारे स्वामी युद्ध में बँध गये हैं जाकर उन्हें छुड़ाओ।

बंधन काटि गये उरगादा। उपजा हृदय प्रचंड बिषादा ॥
प्रभु बंधन समुझत बहु भाँती। करत बिचार उरग आराती ॥३॥

अर्थ : गरुड़जी बन्धन काटकर गये। पर उनके हृदय में प्रचण्ड बिषाद उपजा। प्रभुके बन्धन को बहुत भाँति से मन में बिठाते हुए सर्पों के शत्रु विचार करने लगे।

व्याख्या : यदि बन्धन काटकर न जाते तो बिषाद न होता। जो बन्धन रामजी का काटा न कटा उसे उन्होंने काटा। इस बात पर हर्ष होना चाहता था। पर उन्हें बिषाद हुआ। बिषाद का कारण यह हुआ कि उनके मनमें अनेक तर्क उठने लगे। यथा : संसय सर्प ग्रसेउ मोहि ताता। दुखद लहरि कुतर्क बहु व्राता। सर्प से ग्रसे हुए प्राणी की सी दशा हो गयी। मन में बात बिठाते हैं कि प्रभु का बन्धन किसी भाँति सम्भव है पर बात बैठती नहीं। मुनिजी ने कहा है कि प्रभु का अवतार हुआ है। वह अन्यथा हो नहीं सकता। वे उरग आराती हैं। उनके विचार में सर्प की कोई महत्ता ही नहीं है।

ब्यापक ब्रह्म बिरज बागीसा। माया मोह पार परमीसा ॥
सो अवतरा सुनेउ जगमाहीं। देखेउँ सो प्रभाव कछु नाहीं ॥४॥

अर्थ : व्यापक ब्रह्म रज से रहित वाणी के प्रभु माया मोह से परे परमेश्वर ने संसार में अवतार धारण किया। ऐसा सुना पर वैसा प्रभाव तो कुछ भी दिखाई न पड़ा।

व्याख्या : जितनी बातें हैं वे सब न बँधने के ही पोषक हैं। व्यापक को बन्धन कैसे ? ब्रह्म बद्ध कैसे होगा ? रजोगुण बन्धन का कारण है। विरज के बन्धन का कारण ही नहीं। वाक्पति को मोह कैसे ? जो मोह माया पार है वह सीमित कैसे हो सकता है। बन्धन जीव को होता है परमेश्वर को बन्धन कैसे सम्भव है।

अवतार उसी का हुआ ऐसा सुना। वह अप्रमाण नहीं है। बरु पावक प्रगटै ससि माही। नारद बचन अन्यथा नाहीं। परन्तु वह प्रभाव कुछ भी न देखा। जीव की बधने पर जो दशा होती है वही देखा।

दो. भव बंधन ते छूटहिं नर, जपि जाकर नाम।
खर्ब निसाचर बाँधेउ, नाग पास सोइ राम ॥५८॥

अर्थ : जिसका नाम जपकर मनुष्य भव बन्धन से छूट जाते हैं। उसी राम को तुच्छ निशाचर ने नागपाश में बाँध लिया।

व्याख्या : नामरूप दुइ ईस उपाधी। सो उपाधि के आश्रयण से जब भवबन्धन से मुक्ति होती है तब उस प्रभु को बन्धन कैसे सम्भव है। बन्धन असम्भव जिसे बँधा हुआ पाया उसका बांधा जाना असम्भव। जिसने बांधा उसमें बांधने का सामर्थ्य असम्भव। अत: बन्धन हुआ कैसे। उस राम को क्षुद्र राक्षस बांधे यह किसी भाँति सम्भव नहीं।

नाना भाँति मनहि समुझावा। प्रगट न ज्ञान हृदय भ्रम छावा ॥
खेद खिन्न मन तर्क बढाई। भयउ मोहबस तुम्हरिहि नाई ॥१॥

अर्थ : अनेक प्रकार से मन को समझाया। परन्तु ज्ञान प्रकट नहीं हुआ हृदय में भ्रम छाया हुआ था। खेद से खिन्न मन में तर्क बढ़ाकर तुम्हारी ही भाँति मोहवश हो गये।

व्याख्या : बड़े लोग किसी वेष में छिपते नहीं। नृसिंह वाराहादि अवतार हुए तो क्या वे किसी भाँति छिप सके ? उनका प्रभाव प्रकट हो ही गया। उस नीच निशाचर द्वारा बाँधे जाने पर जो दशा सामान्य जीव की होती है वही दशा रामजी की थी। कुछ भी अन्तर नहीं था तब कैसे कहें कि अवतार हुआ है ?

लीन्हे नर अवतारहू, ब्रह्म कि नर होइ जाय।
ढकी राखहूँ में अगिनि कानन सकै जराय ॥
जहाँ छवो ऐश्वर्य को अति महान उत्कर्ष।
तहाँ बंध की क्या कथा सदा मुक्ति निष्कर्ष ॥
मृषा होइ नहि कह्यो जो मुनि सुजान सर्वज्ञ।
पै परिपूरण ब्रह्म किमि होइ सकै अल्पज्ञ ॥

इस भाँति मन को बहुत समझाया। परन्तु प्रत्यक्ष के सामने आप्तवाक्य का बल नहीं चला। हृदय में तो भ्रम छाया हुआ था। अतः ज्ञान ढँक गया था। भ्रम की निवृत्ति हो तो ज्ञान का प्रकाश हो।

मन में तर्क के बढ़ाने से खेद उत्पन्न हुआ। उससे गरुड़जी खिन्न हो गये। कर्कश तर्क करने से विषाद होता ही है। अमर्यादित तर्क से बड़ी भारी हानि होती है। गरुड़जी ऐसे महात्मा मोह के वश हो गये। शिवजी उमा से कहते हैं कि जैसे तुम मोह के वश हो गयी थी। तुम पर उपदेश काम नहीं करता था उसी भाँति गरुड़जी पर भी उनके मन के उपदेश ने काम न किया।

ब्याकुल गएउ देवरिषि पाहीं। कहेसि जो संसय निज मन माहीं ॥
सुनि नारदहि लागि अति दाया। सुनु खग प्रबल राम कै माया ॥२॥

अर्थ : प्रसन्न होकर नारदजी के पास जाकर मङ्गलमय समाचार सुनाना था। सो व्याकुल होकर नारदजी के पास गया और जो संशय अपने मन में था उसे कह सुनाया। सुनकर नारदजी को बड़ी दया आयी। बोले : हे खग ! रामजी की माया बड़ी प्रबल है।

व्याख्या : गरुड़जी महात्मा हैं। संशय सहन नहीं कर सकते। उसके मिटाने के लिए तुरन्त कटिबद्ध हो गये। व्याकुल होकर उन्हीं नारदजी के पास गये। जिन्होंने अवतार बतलाकर बन्धन काटने के लिए भेजा था। देवरिषि कहने का भाव यह कि गरुड़जी देवता हैं। अतः देवयोनि में जो ऋषि हैं उन्हीं के पास जाना उनका स्वभाव से ही प्राप्त था। होइ न बिमल बिराग उर गुरुसन किये दुराव। अतः अपने मन का संशय उनसे कह डाला।

व्याख्या : नारदजी सन्त हैं। भुक्तभोग हैं। दूसरे के दुःख को देख नहीं सकते। गरुड़जी को दुःखी देखकर उन्हें बड़ी दया आयी। गरुड़जी को खग सम्बोधन करते हैं। क्योंकि रामजी की माया के सामने गरुड़जी भी एक साधारण खग के ही तुल्य हैं। कहने लगे कि जिस राम के प्रभाव को देखने की तुम्हें इच्छा है इस समय तुम उसी की माया से मोहित हो।

जो ज्ञानिन्ह कर चित अपहरई। बरिआईं बिमोह बस करई ॥
जेहि बहु बार नचावा मोही। सोइ ब्यापी बिहँग पति तोही ॥३॥

अर्थ : जो ज्ञानियों के ज्ञान को हरण करती है और बलपूर्वक उसे विशेष मोह में डाल देती है। जिसने अनेक बार मुझे नचाया है। वही हे विहङ्गपति ! तुम्हें व्याप्त हो गयी।

व्याख्या : सरकार की माया में बड़ा सामर्थ्य है। उसके सामने किसी ज्ञानी का ज्ञान ध्यान नहीं चलता। ज्ञानी ज्ञानबल लगाते ही रहते हैं और मोहवश हो जाते हैं। यथा : ज्ञानिनामपि चेतांसि देवी भगवती हि सा। बलादाकृष्य मोहाय महामाया प्रयच्छति। गरुड़ महाज्ञानी गुनरासी। हरि सेवक अति निकट निवासी।

इन्हें माया कहाँ ? पर राम की माया ऐसी है कि जिसने इन्हें भी मोह में डाल दिया। गरुड़जी प्रभाव देखने के लिए उत्सुक थे। सो उनका प्रभाव उनकी माया ही है। अतः माया अपना बल दिखला रही है।

इस माया ने अनेक बार मेरे : नारद के चित्त का अपहरण किया जो नाच नचाना चाहा मुझे नाचना पड़ा। हे पक्षिराट् वही तुम्हें व्याप्त हो गयी है।

महा मोह उपजा उर तोरे। मिटिहि न बेगि कहे खग मोरे ॥
चतुरानन पहँ जाहु खगेसा। सोइ करेहु जेहि होइ निदेसा ॥४॥

अर्थ : तुम्हारे हृदय में महामोह उत्पन्न हुआ है वह मेरे कहने से जल्दी नहीं मिटेगा। तुम ब्रह्मदेव के पास जाओ। वे जो आज्ञा दें वही करो।

व्याख्या : नारदजी समझ रहे हैं कि गरुड़जी के मोह होने में कोई रहस्य है। अतः समझाने बुझाने से यह नहीं जा सकता। वह रहस्य क्या है : यह मैं नहीं जानता। ब्रह्मदेव जिनके चारमुखों से चारों वेदों का प्रादुर्भाव हुआ है अवश्य जानते होंगे। अतः वे ही उपाय बतला सकते हैं। अतः नारदजी कहते हैं कि मैं तो स्वयं इस माया के वश पड़कर नाच चुका हूँ। अतः मेरे कहने से यह जल्दी छूटने-वाली नहीं। ब्रह्मदेव इसके छूटने का उयाय बतलायेंगे। तुम उन्हीं के पास चले जाओ। मैं तो एक स्थान पर बहुत देर रहता नहीं और सब संशयों का भङ्ग बिना बहुत काल तक सत्सङ्ग किये होता नहीं।

दो. अस कहि चले देव रिषि, करत राम गुन गान।
हरि माया बल बरनत, पुनि पुनि परम सुजान ॥५९॥

अर्थ : ऐसा कहकर नारदजी रामगुन गान करते चले। परम सुजान मुनिजी हरिमाया के बल का बार बार वर्णन करते जाते थे।

व्याख्या : इतना कहकर नारदजी गरुड़ लोक से चल दिये। समाचार सुनने के लिए ही वहाँ ठहर गये थे। गरुड़जी खड़े ही रह गये। देवऋषिजी बड़े सुजान हैं। दिन रात हरिगुन गान किया करते हैं। जिनता आवश्यक है उतनी ही बातचीत करते हैं। गरुड़जी से उन्हें उतना ही कहना रहा। शापवश एक स्थान में अधिक ठहरना नहीं होता। अतः गुनगान करते चले। निर्गुण का कौन सा गुण गावें ? अतः सरकार की माया का प्रभाव वर्णन ही सरकार का गुणगान है। अतः उसी का वर्णन करते चले।

तब खगपति बिरंचि पहिं गएऊ। निज संदेह सुनावत भएऊ ॥
सुनि बिरंचि रामहि सिरु नावा। समुझि प्रताप प्रेम अति छावा ॥१॥

अर्थ : तब गरुड़जी ब्रह्मदेव के पास गये और अपना सन्देह कह सुनाया। सुन करके ब्रह्मदेव ने रामजी की माया को सिर नवाया। प्रताप समझकर प्रेम हृदय में छा गया।

व्याख्या : देवऋषिजी के चले जाने के बाद उनके उपदेशानुसार गरुड़जी ब्रह्मदेव के पास गये। खगेश हैं। इनकी सर्वत्र गति है और सबसे परिचय हैं। गरुड़जी का ब्रह्मलोक में जाना एक घटना विशेष है। ये हरि सेवक अति निकट निवासी हैं। सरकार की सेवा छोड़कर आने का विशेष प्रयोजन होना चाहिए। अतः ब्रह्मदेव को आगमन के कारण जानने की आकांक्षा हुई। तब उन्होंने अपना सन्देह कह सुनाया। जो बातें नारदजी से कही थीं वही ब्रह्मदेव से कहीं।

सुनकर ब्रह्मदेव ने उत्तर न देकर पहिले रामजी की माया को प्रणाम किया। जिसने गरुड़जी को मोहित कर दिया। उन्होंने कहा : देखेउँ सो प्रभाव कछु नांही। यह सुनते ही ब्रह्मदेव को सरकार का प्रभाव स्मरण हो गया। अतः तुरन्त प्रणाम किया। हृदय में प्रेम छा गया कि ऐसे प्रभावशाली होने पर भी इन्द्र को मानरक्षा के लिए इन्द्रजीत के हाथ से बँधे गये। इससे रणशोभा भी हो गयी। नहीं तो परमेश्वर को मेघनाद वध में क्या आयास था। इस बात को गरुड़जी मोहवश नहीं समझ रहे हैं।

मन महुँ करइ बिचार बिधाता। मायाबस कबि कोबिद ज्ञाता॥
हरि मायाकर अमित प्रभावा। बिपुल बार जेहि मोहि नचावा॥२॥

अर्थ : विधाता मन में विचार करने लगे कि कवि पण्डित और ज्ञाता सभी माया के वश में हैं। हरिमाया के प्रभाव की सीमा नहीं। उसने अनेक बार मुझे नचाया है।

व्याख्या : गरुड़जी के प्रश्न का उत्तर तो हरिमाया के प्रणाम से ही हो गया। पर माया वश होने के कारण उन्होंने समझा नहीं। तब ब्रह्मदेव विचार करने लगे कि हरिमाया के प्रभाव का कोई अन्त नहीं। इसके एक एक ब्रह्माण्ड एक एक परमाणु हैं। कवि कोविद ज्ञानी सभी माया के वश में हैं। जो माया के वश में नहीं हैं उसे इस संसार में रहने को आवश्यकता ही क्या है जो माया के वश में नहीं है उससे कोई भी व्यापार कैसे होगा ? किसी में किसी प्रकार के गुण के होने से ही वह कवि कोविद ज्ञाता कहलाता है। वह मैं अरु मोर की परिधि के भीतर है। मैं स्रष्टा हूँ। सो मुझे ही यह माया कितनी बार नचा चुकी है। यथा : जाको माया बस बिरंचि सिव नाचत पार न पायो।

अगजगमय जग मम उपराजा। नहि आचरजु मोह खगराजा॥
तब बोले बिधि गिरा सुहाई। जान महेस राम प्रभुताई॥३॥

अर्थ : चराचर विश्व सब मेरा पैदा किया हुआ है। खगराज के मोहित होने में कोई आश्चर्य नहीं है। तब ब्रह्मदेव सुन्दर वाणी बोले कि महादेवजी रामजी की प्रभुता को जानते हैं।

व्याख्या : ब्रह्माजी अपने हृदय में आश्चर्य का निराकरण करते हैं कि गरुड़जी के मोह होने पर जो मुझे आश्चर्य हो रहा है सो होना नहीं चाहिए। गरुड़जी तो

मेरे बनाये हुए हैं। मैं चराचर विश्व का स्रष्टा हूँ। तो जब मैं ही मोहित हो गया तो मेरे सृष्ट जीव के मोहित होने में क्या आश्चर्य है। तब ब्रह्मदेवजी ने सुन्दर वाणी कही कि रामजी की प्रभुता तो शङ्करजी जानते हैं मैं नहीं जानता। जिस बात का जो जानकार हो, उस विषय का प्रश्न उसी से करना चाहिए। मैं तो यही नहीं जानता कि तुम्हें मोह होने का कारण क्या है ? इस बात को वही जाने जो सरकारी प्रभुता जानता हो और उसके जानकर शिवजी हैं। उन्होंने सरकार को विरहावस्था में देखा। फिर भी उन्हें मोह नहीं हुआ। जय सच्चिदानन्द जग पावन। अस कहि चले मनोज नसावन।

बैनतेय संकर पहिं जाहू। तात अनत पूछहु जनि काहू ॥
तहँ होइहि तव संसय हानी। चलेउ बिहँग सुनत बिधि बानी ॥४॥

अर्थ : गरुड़जी ! शङ्कर के पास जाओ। हे तात अन्यत्र किसी से न पूछना। वहीं सब संशय की हानि होगी। गरुड़जी ब्रह्माजी की वाणी सुनकर चल पड़े।

व्याख्या : वे ही शङ्कर कल्याण करनेवाले हैं। वे ही प्रभु की प्रभुता जानते हैं। तुम्हारे रोग का निदान वे ही करेंगे। उन्हीं के पास जाओ। ब्रह्मलोक से कैलास जाने में बहुत से सिद्ध मुनि मिलेंगे। उनमें से किसी से न पूछना। कहीं तुम्हारा रोग और न बढ़ जाय। जब मेरी बुद्धि नहीं काम कर रही है तो दूसरों की बुद्धि क्या काम करेगी ? स्वयं बिना समझे जो उपाय बतलावेंगे उससे अनिष्ट की ही अधिक सम्भावना है : ब्रह्मवाक्य अन्यथा नहीं हो सकता। अतः गरुड़जी तुरन्त चल पड़े।

दो. परमातुर बिहंगपति, आएउ तब मो पास।
जात रहेउँ कुबेर गृह, रहिहु उमा कैलास ॥६०॥

अर्थ : परम आतुर होकर पक्षिराट् मेरे पास आये। मैं कुबेर के घर जा रहा था। उमा ! तुम कैलास में थी।

व्याख्या : संशय के निरसन के लिए गरुड़जी अत्यन्त व्याकुल हो रहे थे। नारदजी ने भी उपाय नहीं बतलाया। ब्रह्मदेव भी नहीं बतला सके। वस्तुतस्तु मुझे भारी रोग हो गया है। इसकी निवृत्ति शीघ्र होनी चाहिए। अतः अत्यन्त आतुर होकर शिवजी के पास गये। उमा को शंका के लिए स्थान है कि तब मैं कहाँ रही ? मुझे तो गरुड़जी के आने का पता नहीं। उसके निरसन के लिए शिवजी कहते हैं कि तुम कैलास में थी और मैं कुबेर के पास जा रहा था। सो गरुड़जी मुझे रास्ते में मिले। भाव यह कि वैकुण्ठ का समय ब्रह्मलोक के समय से भी बड़ा है। गरुड़जी को अपने मन के समझाने में घड़ी दो घड़ी लगी होगी। तब से मर्त्यलोक में कई युग बीत गये। शिवजी की १०८७ वर्ष की समाधि, दक्षयज्ञ विध्वंस, सती का पुनर्जन्म, शिवजी से व्याह, पुत्रोत्पत्ति आदि घटनाएँ सम्पन्न हो गयीं।

तेहि मम पद सादर सिरु नावा। पुनि आपन संदेहु सुनावा॥
सुनि ताकरि बिनीत मृदु बानी। प्रेम सहित मैं कहेउँ भवानी॥१॥

अर्थ : उसने मेरे चरणों में आदर के सहित सिर नवाया और तब अपना सन्देह सुनाया। उसकी विनीत मृदु वाणी सुनकर हे भवानी! मैंने प्रेम के साथ कहा।

व्याख्या : यद्यपि गरुड़जी अत्यन्त आतुर थे। फिर भी जिज्ञासु में जो गुण होना चाहिए उसमें भेद नहीं पड़ा। शिवजी कहते हैं कि उन्होंने आदर के साथ प्रणाम किया और तत्पश्चात् अपना सन्देह कह सुनाया। गरुड़जी जहाँ जाते हैं निःसङ्कोच अपना सन्देह कह डालते हैं। क्योंकि उन्हें मालूम है : होइ न बिमल बिबेक उर गुरुसन किये दुराव। नारदजी के पास गये तब : कहेसि जो संसय निज मन मांही। ब्रह्मा के पास गये तब : निज संदेह सुनावत भयऊ। अब शिवजी से : पुनि आपन संदेह सुनावा।

नियम यही है कि प्रश्नकर्ता विनीत मृदु वाणी में अपना सन्देह कहे। विनीत मृदु वाणी से ही वक्ता को प्रेम होता है और वह श्रोता की अभिलाषा पूर्ण करता है। शिवजी को समाधान नहीं करना है दूसरी जगह भेजना है। गरुड़जी के उत्साह भङ्ग होने की सम्भावना है कि जिसके पास में जाता हूँ वह अपनी बला टालता है। दूसरी जगह भेजता है। ये भी दूसरी जगह भेज रहे हैं। अतः शिवजी प्रेम के सहित बोले जिसमें विश्वास मन में उपजे। यथा : कपि के बचन सप्रेम सुनि उपजा मन बिस्वास। यहाँ पर शिवजी द्वारा भवानी के सम्बोधन करने का यह भाव है कि तुम जानती हो कि ऐसे समय में उपदेश निष्फल जाता है। मुख्य कारण हटना चाहिए।

मिलेहु गरुड़ मारग महँ मोही। कवन भाँति समुझावौं तोही॥
तबहि होइ सब संसय भंगा। जब बहु काल करिअ सतसंगा॥२॥

अर्थ : गरुड़जी! तुम मुझे रास्ते में मिले : किस प्रकार से तुम्हें समझाऊँ। जब बहुत दिनों तक सत्सङ्ग किया जाय तब सब संशय दूर होते हैं।

व्याख्या : शिवजी कहते हैं कि यदि घर पर मिले होते तो तुम्हें समझाते। वक्ता जब एकाग्र बैठा हुआ हो तब अवसर देखकर प्रश्न करने का विधान है। इस समय मैं रास्ता चल रहा हूँ। तुम भी चञ्चल हो मैं भी चञ्चल हूँ तुम्हें कैसे समझाऊँ। दो टप्पी बात से संशय दूर नहीं होता। जिसे अपना सब संशय दूर करना हो वह बहुत काल तक सत्सङ्ग करे।

सुनिअ तहाँ हरि कथा सुहाई। नाना भाँति मुनिन्ह जो गाई॥
जेहि महुँ आदि मध्य अवसाना। प्रभु प्रतिपाद्य राम भगवाना॥३॥

अर्थ : वहाँ हरि की सुन्दर कथा सुने जिसे मुनियों ने नाना भाँति से गान

किया है। जिसके आदि मध्य और अन्त में प्रभु भगवान् राम का प्रतिपादन होता है।

व्याख्या : संशय का निरसन केवल उत्तर दे देने से ठीक ठीक नहीं होता। जब भगवान् की कथा सुने और नाना भाँति की कथा जो मुनियों ने गाई है उन्हें सुने तब संशय दूर होता है। इसलिए शिवजी ने अपने मानस में चार कल्पों की राम कथा को स्थान दिया है।

श्रीराम कथा के आदि मध्य और अन्त में प्रभु राम भगवान् का प्रतिपादन रहता है। जब जब वेदान्त वेद्य पुरुष अवतीर्ण होते हैं तब तब उनकी यश कथा का भी रामायण रूप से मुनियों द्वारा प्रादुर्भाव होता है। वह कथा वेद के तुल्य होती है। जिस भाँति सम्पूर्ण वेद में एक मात्र भगवान् वेद्य हैं। यथा : वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यः। उसी भाँति रामकथा में भी सर्वत्र राम ही वेद्य हैं।

नित हरि कथा होति जहँ भाई। पठवौं तहाँ सुनहु तुम्ह जाई ॥
जाइहि सुनत सकल संदेहा। रामचरन होइहि अतिनेहा ॥४॥

अर्थ : हे भाई जहाँ सदा हरि की कथा होती है मैं तुमको वहीं भेजता हूँ। तुम जाकर सुनो। सुनते ही सारा सन्देह जाता रहेगा और रामजी के चरणों में अत्यन्त प्रेम होगा।

व्याख्या : तुम्हें वहाँ जाना चाहिए जहाँ नित्य राम कथा होती हो। न तो नारदजी नित्य कथा कहते हैं न ब्रह्माजी कहते हैं और न मैं नित्य कथा कहता हूँ। मैं तुम्हें वहाँ भेजता हूँ जहाँ नित्य कथा होती है। वहाँ से तुम्हें दूसरी जगह जाना न होगा। वहाँ जाकर कुछ कहना सुनना नहीं है। कथा नित्य होती है तुम भी जाकर श्रोता बन जाओ। कथा सुनने से ही सन्देह जाता है और रामजी के चरणों में अत्यन्त स्नेह उपजता है। मैं आशीर्वाद भी देता हूँ।

दो. बिनु सत संग न हरि कथा, तेहि बिनु मोह न भाग।
मोह गए बिनु रामपद, होइ न दृढ़ अनुराग ॥६१॥

अर्थ : बिना सत्सङ्ग के हरिकथा होती नहीं और उसके बिना मोह भागता नहीं और बिना मोह के भागे रामचरण में दृढ़ अनुराग होता नहीं।

व्याख्या : हरिकथा सत्सङ्ग में ही होती है। सत्सङ्ग में तो कामकथा चला ही करती है। जहाँ हरि भक्ति नहीं है वहाँ हरि कथा होती भी नहीं। अतः हरिकथा श्रवण करना चाहनेवाले को सत्सङ्ग करना चाहिए। हरिकथा से ही मोह भागता है दूसरा उपाय मोह भगाने का कोई है नहीं। हरि कथा में ही ऐसा सामर्थ्य है कि उसके सुनने से सब मानसिक व्याधियों का मूल तथा सब प्रकार शूलों का देनेवाला मोह वहाँ ठहर नहीं सकता और जब तक मोह बना हुआ है तब तक रामचरण में दृढ़ अनुराग होता नहीं। अतः रामचरणों में दृढ़ अनुराग चाहनेवाले को सत्सङ्ग ढूँढ़ना चाहिए।

मिलहिं न रघुपति बिनु अनुरागा । किए जोग तप ज्ञान बिरागा ॥
उत्तर दिसि सुन्दर गिरि नीला । तहँ रह काग भुसुण्डि सुसीला ॥१॥

अर्थ : रामजी बिना अनुराग के नहीं मिलते । चाहे योग जप ज्ञान विराग कितना भी किये जायँ । उत्तर दिशा में एक सुन्दर पर्वत है जिसे नीलगिरि कहते हैं । वहाँ भुसुण्डि नाम का एक सुशील काग रहता है ।

व्याख्या : रामजी का राग तो जीव मात्र पर सदा रहता है । यथा : सब मम प्रिय सब मम उपजाये । जीव को भी उचित है कि ऐसे सहज सनेही से अनुराग करे । बिना अनुराग के उसका सब किया हुआ व्यर्थ है । सो सब करम धरम जरि जाऊ । जहँ न राम पद पंकज भाऊ । जोग कुजोग ज्ञान अज्ञानू । जहँ नहि राम प्रेम परधानू । योग जप ज्ञान विराग सबकी उपयोगिता है । इनके फल अलग हैं । ये यदि भक्ति के साथ किये जायँ तो भगवत् प्राप्ति के कारण भी होते हैं । पर बिना भक्ति के केवल इनके भरोसे भगवत् प्राप्ति असम्भव है ।

गरुड़जी के लिए केवल इतना कह देना ही यथेष्ट है कि उत्तर दिशा में एक पर्वत है जिसको नीलगिरि कहते हैं । दक्षिण भारत में भी एक नीलगिरि है । इसलिए उत्तर कहा । वहाँ भुसुण्डि नाम का एक काग रहता है । वह बड़ा सुशील है सदाचारी है । वह भजन करता ही रहता है दूसरा काम ही उसे नहीं है ।

राम भगति पथ परम प्रबीना । ज्ञानी गुन गृह बहु कालीना ॥
रामकथा सो कहइ निरंतर । सादर सुनहिं बिबिध बिहंग बर ॥२॥

अर्थ : राम भक्ति के पथ में तो वह बड़ा प्रवीण है । ज्ञानी है । गुणों का घर है और बहुत दिनों का है । वह सदा रामकथा कहा करता है और अनेक प्रकार के श्रेष्ठ पक्षी आदर के साथ सुना करते हैं ।

व्याख्या : काक का शरीर मात्र है । उसमें काक के किसी दोष का स्पर्श भी नहीं है और गुण का तो वह आगार है । भक्ति पथ का बड़ा भारी जानकार है । केवल भक्त ही नहीं ज्ञानी भी है और चिरञ्जीवी है । वह सदा रामकथा कहता है किसी दिन कथा बन्द नहीं होती । वहाँ जाकर खाली न लौटोगे । तुम्हारी प्रजा वहाँ कथा सुनने जाती है । तुम्हारे जाने से वे सब भी सनाथ होंगे । पक्षी समाज में उसका बड़ा आदर है । श्रेष्ठ पक्षी हंस लोग वहाँ के नित्य के श्रोता हैं ।

जाइ सुनहु तहँ हरि गुन भूरी । होइहि मोह जनित दुख दूरी ॥
मैं जब तेहि सब कथा बुझाई । चलेउ हरषि ममपद सिरु नाई ॥३॥

अर्थ : जाकर वहीं भगवान् के गुण समूह सुनो । मोह से उत्पन्न तुम्हारा दुःख दूर होगा । मैंने जब उसे सब कथा सुनायी तो वह हर्षित होकर मेरे चरणों में नमस्कार कर के चला ।

व्याख्या : वहाँ जाकर तुम भगवान् के गुणों को भली भाँति सुनो । वह

सत्ताईस कल्प से कथा कहता है। भगवान् के गुण वर्णन में अघाता नहीं। भगवद् गुण श्रवण से मोह छूटेगा। जब कोई भगवान् की कथा सुनता है तो स्वयं प्रभु उसके हृदय में आकर उसके अकल्याणों को दूर करते हैं। अतः तुम्हारा मोहजन्य दुःख वहीं दूर होगा। बहुत गुण सुनने पर यह बात मन में बैठेगी कि प्रभाव गोपन भी उनका गुण ही है।

शिवजी कहते हैं कि जब मैंने यह सब बात गरुड़जी को समझाकर कहा : तब तो गरुड़जी ने प्रसन्न होकर मेरे चरणों में नमस्कार किया और चल पड़े। प्रयाण के समय हर्ष होना कार्य सिद्धि का लक्षण है। भाव यह कि गरुड़जी को विश्वास हो गया कि अब मेरा मोह छूटेगा।

तातें उमा न मैं समुझावा। रघुपति कृपा मरमु मैं पावा॥
होइहि कीन्ह कबहुँ अभिमाना। सो खोवै चह कृपानिधाना॥४॥

अर्थ : हे उमा ! मैंने उसे इस कारण से नहीं समझाया क्योंकि रामजी की कृपा से मुझे मर्म मालूम हो गया था कि कभी इसने अभिमान किया होगा। उसी को कृपानिधान ने नष्ट करना चाहा।

व्याख्या : शिवजी यदि चाहते तो कैलास लौट आते या अलकापुरी में ही कथा होती। पर उन्हें मर्म मालूम हो गया था। गरुड़जी को मोह हुआ इसका कारण केवल प्रभु बन्धन का दर्शन ही नहीं है। इसका कारण यह है कि कभी इन्होंने अभिमान किया होगा। पक्षिराट् होने के कारण भुसुण्डि को तुच्छ समझा होगा। भुसुण्डिजी की कथा में पधारने में अपने गौरव को हानि समझा होगा। उसी अभिमान के संस्कार को सरकार ने मिटाना चाहा है। इसलिए इन्हें मोह हुआ है। यथा : उर अंकुरेउ गर्ब तरु भारी। तुरत सो मैं डारिहौं उपारी। मम पन सरनागत भय हारी। वह कारण नारद ब्रह्मदेव या मेरे समझाने से दूर नहीं हो सकता : यहाँ पर अनेक प्रकार के आख्यान सुने जाते हैं। पर मूल न मिलने से उन्हें स्थान नहीं दिया गया।

कछु तेहि तें पुनि मैं नहिं राखा। समुझै खग खगही कै भाषा॥
प्रभु माया बलवंत भवानी। जाहि न मोह कवन अस ज्ञानी॥३॥

अर्थ : कुछ इस कारण से भी मैंने उसे अपने पास नहीं रखा कि चिड़िया चिड़िया की ही बोली समझती है। हे भवानी ! प्रभु की माया बलवती है। कौन ऐसा ज्ञानी है जिसे वह नहीं मोह लेती।

व्याख्या : एक कारण यह भी था कि श्रोता वक्ता की भाषा एक होनी चाहिए। पक्षी भाषा की कथा में गरुड़जी को विशेष आनन्द आवेगा। यद्यपि गरुड़जी संस्कृत जानते हैं पर पक्षी होने से भाषा तो उनकी पक्षी भाषा ही है। पक्षी भाषा में चेष्टा इङ्गित आदि से विशेष काम लिया जाता है। भुसुण्डिजी अपने

श्रोता हंसों के प्रबोध के लिए इसी भाषा का प्रयोग करते हैं : यह रहस्य विभाग की भाषा है। रहस्य पक्षी भाषा में ही कहा जाता है।

राम की माया अति प्रबल है। ऐसा कोई ज्ञानी है ही नहीं जिसे वह मोह न सकती हो। मोहन न करे यह उसकी कृपा है। पर जब मोहन करना चाहेगी तो कोई बच नहीं सकता। क्योंकि वह प्रभु की माया है। जब जगत् के स्रष्टा ब्रह्मा को मोह हुआ : नारं अज्ञानं द्यति खण्डयतीति नारदः अज्ञान का खण्डन करते हैं। इसलिए नारद कहलाते हैं : जब उन्हें मोह हुआ तो सामान्य जीव की गिनती ही क्या है।

दो. ज्ञानी भगत सिरोमनि, त्रिभुवनपति कर जान।
ताहि मोह माया नर, पावँर करहिं गुमान ॥६२ क.

अर्थ : ज्ञानी भक्तों में शिरोमणि और त्रिभुवनपति के वाहन को माया ने मोह लिया। अतः नीच मनुष्य ही अभिमान करते हैं।

व्याख्या : जो ज्ञान कर्म भक्ति तीनों काण्डों में बेजोड़ तिस पर सरकार के ऐसे कृपापात्र कि उन्हें वाहन होने का पद प्राप्त है। जब उन्हें माया ने मोह लिया तब मनुष्य के लिए अभिमान को स्थान कहाँ है। ऐसी अवस्था में नीच मनुष्य ही अभिमान करते हैं।

दो. सिव बिरंचि कहुँ मोहै, को है बपुरा आन।
अस जिय जानि भजहिं मुनि, माया पति भगवान ॥६२ ख.

अर्थ : शिव और ब्रह्मदेव को मोह लेती है दूसरे बिचारे क्या हैं ? ऐसा मन में जानकर मुनि लोग मायापति भगवान् को भजते हैं।

व्याख्या : शिव और ब्रह्मा ईश्वरकोटि में हैं। माया उनको भी मोह लेती है। औरों की तो जीव में गणना है उनकी क्या गिनती है। इसलिए मुनि लोग मायापति को भजते हैं क्योंकि मायापति का कथन है : मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते। जो मेरे ही शरण आते हैं वे माया को तर जाते हैं। नहीं तो मेरी माया गुणमयी है यह उल्लङ्घन नहीं की जा सकती। अतः मुनि लोग अपने स्थितप्रज्ञता का भरोसा नहीं करते।

उमा के छठे प्रश्न का उत्तर

गयउ गरुड़ जहँ बसै भुसुंडी। मति अकुंठ हरि भगति अखंडी ॥
देखि सैल प्रसन्न मन भयऊ। माया मोह सोच सब गयऊ ॥१॥

अर्थ : गरुड़जी वहाँ गये जहाँ भुसुण्डी बसते थे। जिसे तीव्रबुद्धि और अखण्ड हरि भक्ति थी। पर्वत के देखते ही प्रसन्न मन हो गया। माया मोह और सब सोच जाता रहा।

व्याख्या : शिवजी के चरणों में प्रणाम करके गरुड़जी चले और जहाँ भुसुण्डिजी रहते थे वहाँ पहुँचे। काग मति मन्द होते हैं। यथा : महामन्द मति कारण कागा। पर भुसुण्डिजी की बुद्धि बड़ी तीव्र थी। बक काग की गणना अति खल और विषयियों में है। पर भुसुण्डिजी को अखण्ड भक्ति थी। जिसकी धारा टूटती ही नहीं।

पहिले कह आये हैं कि भुसुण्डिजी नील पर्वत पर रहते थे। सो पर्वत के दर्शन मात्र से गरुड़जी का मन प्रसन्न हो गया। जो माया मोह सोच ब्रह्मलोक में जाने से नहीं गया कैलास में नहीं गया। वह नील पर्वत के दर्शन मात्र से चला गया। परमभक्त के आश्रम की महिमा है।

करि तड़ाग मज्जन जल पाना। बट तर गयउ हृदय हरषाना ॥
बृद्ध बृद्ध बिहंग तहँ आए। सुनै राम के चरित सुहाए ॥२॥

अर्थ : तड़ाग में मज्जन किया और जलपान किया। तब हर्षित मन होकर बरगद के तले गये। वहाँ रामजी के सुन्दर चरित्र सुनने के लिए बूढ़े बूढ़े पक्षी आये थे।

व्याख्या : गरुड़जी उड़ते हुए ऊपर ऊपर जा रहे हैं। अतः पर्वत पर चढ़ना नहीं कहते। शैलोपरि सर सुंदर सोहा। मनि सोपान देखि मन मोहा। उस तड़ाग को देखकर गरुड़जी ने पहिले उसमें स्नान किया और उस पवित्र जल का पान किया। क्योंकि हरिचरित्र सुनने जा रहे हैं। गरुड़जी ने देखा कि वट वृक्ष के नीचे पक्षियों की भीड़ जुटी हुई है। समझ लिया कि यहीं कथा हो रही है। अतः हर्षित होकर वहीं गये। कथा पर लालसा है। इसलिए हर्षित होकर सुनने जा रहे हैं।

बूढ़े बूढ़े पक्षी वहाँ एकत्रित हुए थे। चिरञ्जीवी वक्ता के श्रोता भी सब दीर्घजीवी थे। कथा के ऐसे रसिक हैं कि सुनते सुनते बूढ़े हो गये। पर जी न भरा। सुनने के लिए नित्य प्रस्तुत हो जाते हैं। रामजी के चरित्र ही ऐसे सुहावने हैं कि श्रवणवन्त मात्र को प्रिय लगते हैं। पक्षियों को भी सरकार के चरित्र प्रिय हैं : क उत्तमश्लोकगुणानुवादात् पुमान् विरज्येत विना पशुघ्नात्।

कथा अरम्भ करइ सोइ चाहा। तेही समय गएउ खगनाहा ॥
आवत देखि सकल खग राजा। हरषेउ बायस सहित समाजा ॥३॥

अर्थ : उसने कथा आरम्भ करना चाहा उसी समय गरुड़जी गये। सबने देखा कि पक्षिराट् चले आरहे हैं। तो भुसुण्डिजी समाज के सहित हर्षित हो उठे।

व्याख्या : भुसुण्डिजी व्यासासन पर बैठ गये थे। मङ्गलाचरण हो चुका था। कथा प्रारम्भ हुआ ही चाहती थी कि गरुड़जी जा पहुँचे। जब काम बनने को होता है तो ऐसा ही अवसर आजाता है। नहीं तो रास्ते में भेंट होती है। गरुड़जी पक्षिराट् हैं। उनके जाने से पक्षियों में सनसनी फैल गयी।

सबने देखा कि पक्षिराट् चले आरहे हैं। साक्षात् भगवद् विभूति हैं यथा : वैनतेयश्च पक्षिणाम्। सत्ताइस कल्प कथा कहते हुआ। कभी इनका आगमन नहीं हुआ। अतः भुसुण्डिजी भी हर्षित हो उठे : सेवक सदन स्वामि आगमनू। मंगल मूल अमंगल दमनू। अतः पक्षि समाज भी हर्षित हो उठा।

अति आदर खगपति कर कीन्हा। स्वागत पूँछि सुआसन दीन्हा ॥
करि पूजा समेत अनुरागा। मधुर बचन बोलेउ तब कागा ॥४॥

अर्थ : पक्षिराट् का बड़ा आदर किया। स्वागत पूछकर सुन्दर आसन दिया। अनुराग के सहित गरुड़जी का पूजन किया। तब कागभुसुण्डिजी मधुर वचन बोले।

व्याख्या : भुसुण्डिजी बड़े सुशील हैं। सभी श्रोताओं का आदर करते हैं। आसन देते हैं। गरुड़जी का तो अत्यन्त आदर किया। समाज के सहित अभ्युत्थान किया और स्वागत पूछा। तत्पश्चात् सुन्दर आसन दिया। तृण भूमि जल मीठी वाणी का अभाव भले के घरों में कभी नहीं होता। सो राजा दण्डधर गुरु हैं। इसलिए उनकी पूजा की। भगवान् के प्रिय दास हैं। इसलिए अनुराग के साथ पूजा की। यद्यपि काग थे। फिर भी मधुर वचन बोले। क्योंकि सत्सङ्ग के कारण वाणी में ऐसा परिवर्तन हो गया था कि पिकवत् मधुर वचन बोले।

दो. नाथ कृतारथ भएउँ मइ, तव दरसन खगराज।
आएसु देहु सो करौं अब, प्रभु आयेहु केहि काज ॥६३ क.
सदा कृतारथ रूप तुम्ह, कह मृदु बचन खगेस।
जेहि कै अस्तुति सादर, निज मुख कीन्हि महेस ॥६३ ख.

अर्थ : हे नाथ ! मैं आप के दर्शन से कृतकृत्य हो गया। अब जो आप आज्ञा दें सो करूँ। आप प्रभु होकर आये। अतः प्रयोजन कहिये।

गरुड़जी ने मीठी वाणी से कहा कि आप सदा कृतार्थ रूप हैं। जिसकी स्तुति महादेव ने श्रीमुख से आदर के साथ की।

व्याख्या : भुसुण्डिजी ने गरुड़जी को नाथ कहकर सम्बोधन करते हुए कहा कि आपके शुभागमन से तथा दर्शन देने से आज मैं कृतकृत्य हो गया। आप हम लोगों के राजा हैं। प्रभु हैं। अब यहाँ का सब काम बन्द करता हूँ। शिष्टागमने अनध्यायः। शिष्ट के पधारने पर अनध्याय होना प्राप्त है। आपका आगमन किस प्रयोजन से हुआ उसकी पूर्ति मेरा पहला काम है। अतः आप जो आज्ञा दें वही मैं करूँ। भुसुण्डिजी को यह ख्याल भी नहीं है कि ये कथा सुनने आये हैं।

काग ने मधुर वचन कहा। उत्तर देते हुए पक्षिराट् मृदु वचन कहते हैं कि आप अपने को इस समय कृतकृत्य होना कहते हैं। पर वस्तुस्थिति यह है कि आप तो सदा कृतार्थ रूप हैं। संसार महादेवजी की स्तुति करता है। महादेवजी किसी की

स्तुति नहीं करते। सो महादेवजी ने श्रीमुख से बड़े आदर के साथ आपकी स्तुति की। अतः आप सा कृतकृत्य जगतीतल में कौन है।

सुनहु तात जेहि कारन आयेउँ। सो सब भयेउ दरस तव पाएउँ ॥
देखि परम पावन तव आश्रम। गएउ मोह संसय नाना भ्रम ॥१॥

अर्थ : हे तात ! सुनो जिस लिये मैं आया सो सब हो गया। आपका दर्शन मुझे मिला। आपका परम पवित्र आश्रय देखकर मेरा मोह संशय और नाना प्रकार के भ्रम सब दूर हो गये।

व्याख्या : यहाँ कारण का अर्थ प्रयोजन है। भुसुण्डिजी पूछते हैं : प्रभु आयेउ केहि काज ? गरुड़जी कहते हैं कि जिस प्रयोजन से आये थे वह प्रयोजन सिद्ध हो गया। मुझे मोह संशय और नाना प्रकार का भ्रम हो गया था। मोह यथा : बंधन काटि गयउ उरगादा। उपजा हृदय प्रचंड बिषादा। संशय यथा : सो अवतरा सुनेउँ जगमाहीं। देखेउँ सो प्रभाव कछु नाहीं। नाना भ्रम यथा : खर्ब निसाचर बांधेउ नागपास सोइ राम। सो सब दूर हो गया। अतः आप के परम पवित्र आश्रम के केवल दर्शन से प्रयोजन तो सिद्ध हो गया। इन्हीं के दूर करने के लिए मैं आपका दर्शन चाहता था। सो अब दर्शन भी पा लिया। आपका माहात्म्य अद्भुत है। आपके दर्शन को कौन चलावे आपके आश्रम के दर्शन से मनोरथ की सिद्धि हो गयी।

अब श्रीराम कथा अति पावनि। सदा सुखद दुखपुंज नसावनि ॥
सादर तात सुनावहु मोहीं। बार बार बिनवौं प्रभु तोही ॥२॥

अर्थ : अब श्रीरामजी की अतिपवित्र कथा जो सदा सुख देनेवाली तथा दुःखपुञ्ज का नाश करनेवाली है आदर के साथ मुझे सुनाइये। यही मेरी बारम्बार विनती है।

व्याख्या : सरकार के सभी अवतारों की कथा पावनी है। पर श्रीरामावतार की कथा अति पावनी है। क्योंकि यह अवतार साक्षात् चिन्मय महाविष्णु का है। यह कथा दुःख के समूहों को नाश करनेवाली है। यथा : जाइहि सुनत सकल संदेहा। और सदा सुख देनेवाली है। यथा : राम चरन उपजिहि नव नेहा। अथवा : जेहि सुनत गावत कहत समुझत परम पद नर पावई। रघुबीर पदपाथोज मधुकर दासतुलसी गावई।

महादेवजी की आज्ञा है : सुनिअ तहाँ हरिकथा सुहाई। नाना भाँति मुनिन्ह जो गाई। अतः मैं बार बार विनय करता हूँ कि आदर के साथ मुझे सुनाइये। बार बार विनय से गुरु शुश्रूषा कहा। राम कथा बड़े आदर की वस्तु है। इसे आदर के साथ ही कहने और सुनने का विधान है। भाव यह है कि इस बात को मन में स्थान न दीजियेगा कि गरुड़जी : हरि सेवक अति निकट निवासी हैं। इन्हें तो सब मालूम ही होगा। सुनना चाहते हैं तो संक्षेप में थोड़ा बहुत कह दो।

सुनत गरुड़ कै गिरा बिनीता। सरल सुप्रेम सुखद सुपुनीता ॥
भयउ तासु मन परम उछाहा। लाग कहै रघुपति गुनगाहा ॥३॥

अर्थ : गरुड़जी की विनती, सरल, सप्रेम, सुखद और सुपुनीत वाणी सुनकर उसके मन में बड़ा उछाह हुआ। रामजी की गुणों की गाथा कहने लगा।

व्याख्या : विनय आदि पाँचों वाणी के गुण हैं। ऐसी हो वाणी सुनकर कहनेवाले का जी उमगता है। १. विनीत यथा : सदा कृतारथ रूप तुम कह मृदु बचन खगेस। २. सरल यथा : जेहि कर अस्तुति सादर निज मुख कीन्ह महेस। ३. सप्रेम यथा : सुनहु तात जेहि कारन आयेउ। सो सब भयेउ दरस तव पायेउँ। ४. सुखद यथा : देखि परम पावन तव आश्रम। गयउ मोह संसय नाना भ्रम। ५. सुपुनीता यथा : अब श्रीरामकथा अति पावनि। सादर तात सुनावहु मोही। बार बार बिनवौं प्रभु तोही। गरुड़जी की ऐसी विनती सुनने से भुसुण्डिजी के हृदय में रामचरित का आविर्भाव हुआ। स्वयं रामजी का रूप हृदय में आगया। अतः आनन्दातिरेक से परम उछाह हुआ। यथा : उमा के पूछने पर : हरहिय रामचरित सब आये। प्रेम पुलक लोचन जल छाये। श्रीरघुनाथ रूप उर आवा। परमानन्द अमित सुख पावा। अतः भुसुण्डिजी ने कहना प्रारम्भ कर दिया।

प्रथमहिं अति अनुराग भवानी। रामचरित सर कहेसि बखानी ॥
पुनि नारद कर मोह अपारा। कहेसि बहुरि रावन अवतारा ॥४॥
प्रभु अवतार कथा पुनि गाई। तब सिसु चरित कहेसि मन लाई ॥५॥

अर्थ : हे भवानी! पहिले उसने :१: अति अनुराग से रामचरित सर को बखान कर कहा। तत्पश्चात् :२: नारदजी के अपार मोह की कथा कही। फिर :३: रावण का अवतार कहा। तत्पश्चात् :४: प्रभु के अवतार की कथा का गान किया। तब :५: शिशु चरित्र को मन लगाकरकहा।

व्याख्या : प्रयोजन सुनने के पहिले ही अनुराग था। यथा : करि पूजा समेत अनुरागा। अब प्रयोजन सुनने के बाद तो परम अनुराग हुआ। अथवा कथा के प्रारम्भ में ही कथा माहात्म्य कहने का विधान है। रामचरित सर का बखान ही माहात्म्य कथन है। शिवजी भवानी को सम्बोधन करके कहते हैं कि पहिले उसने मानस का बखान किया। जिसके हंस स्वयं सरकार हैं। यथा : जय महेस मन मानस हंसा। जो भुसुण्डि मन मानस हंसा। मुनि मन मानस हंस निरंतर। श्रीगोस्वामीजी का मत है कि शिवजी के मानस को अविकल रूप से ग्रहण करने में भुसुण्डिजी तथा याज्ञवल्क्यजी समर्थ थे। अपने को समर्थ नहीं मानते। अतः अपने मानस का हंस ज्ञान विराग विचार को बतलाते हैं। यथा : ज्ञान बिराग बिचार मराला।

माहात्म्य कथनानन्तर श्रीरामावतार का कारण कहते हुए पहिले नारदजी के मोह का प्रसङ्ग कहा। जिसमें नारदजी को काम जय का अभिमान हुआ। उसके उन्मूलन के लिए सरकार ने अपनी माया को प्रेरणा की। जिसने उन्हें ऐसा नचाया

कि ब्रह्मचर्य व्रत स्थितप्रज्ञता सब भूल गये और विश्वमोहिनी के न मिलने पर क्रुद्ध होकर स्वयं अपने स्वामी और रुद्रगण को शाप दे डाला।

तत्पश्चात् रावण का अवतार कहा। राम की भाँति रावण भी अवतीर्ण होते हैं। रावण साक्षात् रुद्रगण था। नारदजी के शाप से उसे राक्षस रूप में अवतीर्ण होना पड़ा। प्रभु भी ऐसे भक्तवत्सल हैं कि भक्त के शाप को प्रमाण मानकर अवतीर्ण हुए। अतः ऐसे प्रभु की अवतार कथा का गान भुसुंडिजो करने लगे। भक्त महोत्सव में ये स्वयं सम्मिलित थे। यथा : कागभुसुंडि संग हम दोऊ। मनुजरूप जानै नहि कोऊ। परमानन्द प्रेम सुख फूले। विथिन्ह फिरहिं मगन मन भूले।

तत्पश्चात् शिशु चरित मन लगाकर कहा। शिशु चरित में स्वयं इन्हें मोह हो गया था। बालक राम ही इनके इष्टदेव हैं। पाँच वर्ष तक बालक राम की सेवा में भुसुण्डिजी रहते हैं। शिशु चरित में ही इन्हें दुर्लभ वर मिले हैं। प्रभु की माया का दर्शन किया है। अतः उस चरित को मन लगाकर कहा।

दो. बाल चरित कहि बिबिध बिधि, मन महुँ परम उछाह।
रिषि आगमन कहेसि पुनि, श्रीरघुबीर बिबाह ॥६४॥

अर्थ : तत्पश्चात् :६: अनेक प्रकार से बाल चरित कहा। इसके कहने में मन में बड़ा उत्साह था। फिर :७: ऋषि का आगमन कहकर :८: श्रीरघुबीर का विवाह कहा।

व्याख्या : बाल चरित्र बड़ा आनन्दमय है। अतः उसे तो अनेक विधि से वर्णन किया। उनके वर्णन में भुसुण्डिजी को बड़ा उत्साह था। उसी चरित्र में लुब्ध होकर तो ये नील पर्वत छोड़कर अयोध्या में पाँच वर्ष रह जाते हैं। सरकार के पन्द्रह वर्ष के हो जाने पर विश्वामित्रजी का आगमन हुआ और मुनिजी राक्षसों से अपने यज्ञ की रक्षा के बहाने रघुवीर को : श्रीसीताजी से व्याह कराने के लिए माँग ले गये और जनकपुर में धनुष भङ्ग के बाद सीताजी से उनका विवाह अगहन सुदी पञ्चमी को हुआ।

बहुरि राम अभिषेक प्रसंगा। पुनि नृप बचन राज रस भंगा॥
पुरबासिन्ह कर बिरह बिषादा। कहेसि राम लछिमन संबादा ॥१॥

अर्थ : फिर :९: रामजी के अभिषेक का प्रसङ्ग तत्पश्चात् :१०: राजा के वचन से राज रस का भंग :११: पुरवासियों का विरह विषाद और :१२: राम लक्ष्मण का संवाद कहा।

व्याख्या : रामजी के अभिषेक का प्रसङ्ग व्याह करने के बारह वर्ष बाद उनके वर्ष गाँठ के समय आया। रामजी के सत्ताइसवीं वर्षगाँठ के उपलक्ष्य में चक्रवर्तीजी का दरबार हुआ। उस दिन रामनवमी को पुनर्वसु नक्षत्र था। चक्रवर्तीजी ने दूसरे ही दिन पुष्य नक्षत्र में रामजी का अभिषेक करना चाहा। रात को ही महारानी कैकेयी ने भरत को राज्य और रामजी को चौदह वर्ष के लिए वनवास माँगा। राजा वचनबद्ध हो चुके थे। अतः राजरस भङ्ग हुआ।

दूसरे दिन दशमी को सवेरा होते ही यह समाचार पुरवासियों को मिला। यथा : नगर ब्यापि गई बात सुतीछी। छुअत चढ़ी जनु सब तन बीछी। रामजी के विरह से पुरवासियों को बड़ा विषाद हुआ। लक्ष्मणजी भी साथ वन जाने को तैयार हुए। सरकार ने बहुत चाहा कि लक्ष्मणजी न जायँ पर वे रुके नहीं।

बिपिन गवनु केवट अनुरागा। सुरसरि उतरि निवास प्रयागा॥
बालमीकि प्रभु मिलन बखाना। चित्रकूट जिमि बसे भगवाना॥२॥

अर्थ :१३: वन गमन केवट का प्रेम :१४: गङ्गा पार उतरकर प्रयाग में निवास। :१५: वाल्मीकि और प्रभु का मिलन तथा :१६: जिस भाँति चित्रकूट में भगवान् बसे वह सब उसने बखानकर कहा।

व्याख्या : दशमी के दिन सरकार वन चले। उस दिन तमसा तीर निवास किया। आधी रात को वहाँ से रथ पर रवाना होकर एकादशी को शृङ्गवेरपुर पहुँचे। द्वादशी के दिन गङ्गापार जाने के लिए केवट से नाव माँगी। वह नहीं लाया। उसके आज्ञा न मानने में इतना अनुराग भरा था कि आजतक वह प्रसंग बड़े प्रेम से गान किया जाता है। उस दिन गङ्गा पार जाकर सरकार ने मार्ग में एक पेड़ तले विश्राम किया। त्रयोदशी को प्रयागराज पहुँचे और उस रात को भरद्वाज के आश्रम में विश्राम किया। चतुर्दशी को यमुना पार जाकर निषादराज को बिदा किया और रास्ते में ही रात को टिक गये। पूर्णिमा को वाल्मीकिजी से मिलकर चित्रकूट में निवास किया।

सचिवागमनु नगर नृप मरना। भरतागवनु प्रेम बहु बरना॥
करि नृपक्रिया संग पुरबासी। भरतु गए जहँ प्रभु सुखरासी॥३॥

अर्थ :१७: मन्त्री का नगर को लौटना राजा का मरना :१८: भरतजी का आना तथा उनके प्रेम का वर्णन बहुत प्रकार से किया। :१९: राजा की क्रिया करके पुरवासिय्रों के साथ :२०: भरतजी जहाँ सुखराशि प्रभु थे वहाँ गये।

व्याख्या : उसी पूर्णिमा को सुमन्तजी अयोध्या लौटे। समाचार सुनकर महाराज दशरथ ने प्राणत्याग किया। भरतजी को कैकयदेश में समाचार भेजने और उनके अयोध्या आने में पूरा पखवारा लग गया। वैशाख चढ़ते ही भरतजी अयोध्या आये। चक्रवर्तीजी की और्ध्वदैहिक क्रिया की। ज्येष्ठ लगते ही भरतजी पुरवासियों के साथ चित्रकूट चले। एकादशी के लगभग रामजी से भेंट हुई।

पुनि रघुपति बहु बिधि समुझाए। लै पादुका अवधपुर आए॥
भरत रहनि सुरपति सुत करनी। प्रभु अरु अत्रि भेंट पुनि बरनी॥४॥

अर्थ :२१: फिर रामजी ने भरतजी को बहुत तरह से समझाया। :२२: भरतजी उनकी पादुका लेकर अयोध्या आये। :२३: भरतजी का आचरण :२४. इन्द्र के बेटे की करनी तत्पश्चात् :२५: प्रभु और अत्रिजी का मिलना उसने वर्णन किया।

व्याख्या : भरतजी का बहुत बड़ा आग्रह था कि रामजी अयोध्या लौट चलें। परन्तु रामजी ने नहीं लौटना चाहा और बहुत कुछ समझा बुझाकर भरतजी को लौटाया और वे प्रभु को चरणपादुका लेकर अयोध्या आये। आषाढ़ चढ़ते भरतजी का अयोध्या लौटना हुआ। वहाँ आकर उन्होंने सरकार की चरणपादुका को सिंहासनारूढ़ किया। उसी से आज्ञा माँग माँगकर पुर का कार्य करने लगे। नन्दिग्राम में पर्णकुटी बनाकर वहीं निवास किया। उनके नेम व्रत को देखकर मुनि लोगों को भी सङ्कोच होता था। इधर रामजी पर्णशाला में लक्ष्मण और सीता सहित सानन्द निवास करने लगे। चार चातुर्मास उनका चित्रकूट में ही बीता। इन्द्र के बेटे जयन्त ने रामजी का बल देखने के लिए काक रूप धारण करके सीताजी के चरण में चोंच मारा। रामजी के बाण चलाने पर भागा। इन्द्रलोक ब्रह्मलोक आदि में भागता फिरा। पर बाण ने पीछा न छोड़ा। अन्त में नारदजी के उपदेश से रामजी के ही शरण में गया। सरकार ने उसकी एक आँख फोड़कर उसे जीता छोड़ दिया। तत्पश्चात् रामजी चित्रकूट छोड़कर चलते समय अत्रिजी से मिले। अनसूयाजी ने सीताजी को स्त्रीधर्म का उपदेश दिया।

दो. कहि बिराध बध जेहि बिधि, देइ तजी सरभंग।
बरनि सुतींछन प्रीति पुनि, प्रभु अगस्ति सन संग ॥६५॥

अर्थ :२६: विराध वध करके जिस भाँति :२७: शरभङ्ग ने शरीर त्याग किया वह भी कहा। :२८: सुतीक्ष्ण की प्रीति वर्णन करके तत्पश्चात् :२९: प्रभु का अगस्त्यजी से सत्सङ्ग कहा।

व्याख्या : रास्ते में विराध असुर मिला। सरकार ने उसका वध किया और उसे पृथिवी खोदकर गाड़ दिया। तत्पश्चात् शरभङ्ग से मिले। वे ब्रह्मलोक जाते थे। सरकार का आना सुनकर रुक गये। सरकार का दर्शन होने पर चिता बनाकर योगाग्निसे शरीर भस्म किया। शरभङ्ग के आश्रम में सरकार के बनवास के चार वर्ष पूरे हुए। आगे बढ़ने पर मुनियों के अस्थि समूह को देखकर निशिचरहीन महि करने की प्रतिज्ञा की। तत्पश्चात् छः वर्ष तक मुनियों के आश्रमों में घूमते रहे। तत्पश्चात् सुतीक्ष्णजी के आश्रम में आये। उनकी प्रीति देखकर बड़े सन्तुष्ट हुए और उनके साथ अगस्त्यजी के आश्रम में गये। वहाँ लगभग एक वर्ष रहे।

कहि दंडकबन पावनताई। गीध मइत्री पुनि तेहि गाई ॥
पुनि प्रभु पंचबटी कृतबासा। भंजी सकल मुनिन्ह की त्रासा ॥१॥

अर्थ :३०: दण्डक वन का पवित्र होना कहकर उसने :३१: गीध मैत्री का गान किया। तत्पश्चात् :३२: प्रभु पञ्चवटी में बसे और :३३: सब मुनियों के त्रास को दूर किया।

व्याख्या : अगस्त्यजी की प्रार्थना थी : दंडक बन पुनीत प्रभु करहू। उग्र साप मुनिवर कर हरहू। सरकार के पधारने से शुक्राचार्य का शाप दूर हुआ और

दण्डक वन पवित्र हो गया। रास्ते में गीधराज जटायु से भेंट हुई। ये चक्रवर्त्तीजी के मित्र थे। इनसे सरकार ने मिलकर उस प्राचीन प्रीति को और भी बढ़ाया। इसलिए उसका गान करना कहते हैं।

सम्भवतः आश्विन मास में सरकार पञ्चवटी आये। अश्वत्थ, वट, पाकर, आम्र और आँवले के पेड़ के एकत्र स्थापन से पञ्चवटी बनती है। वहीं सरकार ने निवास किया। इनके निवास से मुनि लोग निर्भय हो गये। किसी राक्षस का सामर्थ्य नहीं कि उनसे बोल सके। सूर्पणखा रावण से शिकायत करती है: जिन्हकर भुजबल पाइ दसानन। अभय भये विचरत मुनि कानन।

पुनि लछिमन उपदेस अपा। सूपनखा जिमि कीन्हि कुरूपा ॥
खरदूषन बध बहुरि बखाना। जिमि सबु मरमु दसानन जाना ॥२॥

अर्थ : फिर :३४: लक्ष्मणजी को अनूप उपदेश दिया तथा :३५: जिस भाँति सूर्पणखा को कुरूप किया और :३६: खरदूषण का वध किया इसे बखानकर कहा और :३७: जिस भाँति सब मर्म का पता रावण को चला।

व्याख्या : लक्ष्मण को उपदेश सरकार ने दिया जिसे रामगीता कहते हैं। सम्भवतः इस गीता का उपदेश भी भगवद्गीता के उपदेश की भाँति अगहन में ही हुआ। इस गीता के उपदेश का ही विस्तार सम्पूर्ण मानस में है इसलिए अनूप कहा। सूर्पणखा का विरूप करण माघशुक्ल त्रयोदशी को हुआ। नासिका मुखमण्डनम्। मुख की शोभा नाक है। उसे सरकार से प्रेरित होकर लक्ष्मणजी ने काटा। इन्द्र का इतना सामर्थ्य नहीं था कि सूर्पणखा की नाक काट सकें। यह समाचार पाकर खर-दूषण ने फाल्गुन कृष्ण द्वितीया को रामजी पर चढ़ाई की और तीसरे दिन फाल्गुन कृष्ण चतुर्थी को सब मारे गये। पञ्चमी को सूर्पणखा विलाप करती हुई लंका गयी और सब इतिवृत्त रावण को सुनाया।

दसकंधर मारीच बतकही। जेहि बिधि भई सो सब तेहि कही ॥
पुनि माया सीता कर हरना। श्रीरघुबीर बिरह कछु बरना ॥३॥

अर्थ :३८: रावण और मारीच में जो बातचीत हुई सो सब भुसुण्डिजी ने कही। तत्पश्चात् :३९: माया की सीता का हरण तथा :४०: श्रीरघुवीर का थोड़ा विरह वर्णन किया।

व्याख्या : सूर्पणखा से सब कथा सुनकर रावण मारीच के पास सप्तमी को गये। मारीच ने बहुत समझाया पर रावण ने नहीं माना। मारीच को मारने के लिए तैयार हो गया। तब मारीच माया का मृग बनकर रामजी को दूर ले गया। मरते समय लक्ष्मण को रामजी के स्वर से पुकारा। लक्ष्मणजी के भी चले जाने पर रावण ने फाल्गुन कृष्ण अष्टमी को मायासीता का हरण किया। तत्पश्चात् भुसुण्डिजी ने सीताजी के तथा रामजी के विरह का थोड़ा बहुत वर्णन किया।

पुनि प्रभु गीध क्रिया जिमि कीन्ही । बधि कबंध सबरिहि गति दीन्ही ॥
बहुरि बिरह करनत रघुबीरा । जेहि बिधि गए सरोवर तीरा ॥४॥

अर्थ :४१: फिर प्रभु ने जैसे गीध की क्रिया की और :४२: कबन्ध का वध करके शवरी को गति दी। तत्पश्चात् :४३: विरह वर्णन करते हुए रघुवीर जिस भाँति सरोवर के तीर पहुँचे।

व्याख्या : सीताजी का विलाप सुनकर जटायु ने रावण से युद्ध किया। अन्त में पक्षच्छेदन कर देने से गीधराज घायल होकर पृथिवी पर गिरे। इन्होंने ही रामजी को सीता हरण का पता दिया। तत्पश्चात् परलोकगामी हुए। रामजी ने उनकी और्ध्वदेहिक क्रिया अपने हाथ से की। रास्ते में कबन्ध राक्षस को मारा। तत्पश्चात् शवरी के आश्रम में गये। उसका सत्कार ग्रहण किया और उसे मोक्ष दिया। तत्पश्चात् सीताजी को खोजते हुए दोनों भाई नासिक से कर्नाटक देश और क्रौञ्चारण्य का उल्लंघन करते हुए तीन महीने में पम्पासर पहुँचे।

चो. प्रभु नारद संबाद कहि, मारुति मिलन प्रसंग ।
पुनि सुग्रीव मिताई, बालि प्रान कर भंग ॥६६॥
कपिहि तिलक करि प्रभुकृत, सैल प्रवरषन बास ।
बरनत बरखा सरदरितु, राम रोष कपि त्रास ॥६६ क.

अर्थ :४४: सरकार और नारद का संवाद कहकर :४५: हनुमान्जी से भेंट होने की कथा कही। तत्पश्चात् :४६: सुग्रीव से मित्रता और :४७: बालिवध कहा। :४८: सुग्रीव को तिलक देकर सरकार ने प्रवर्षणगिरि पर वास किया। :४९: शरद और :५०: वर्षा का वर्णन करना तथा :५१: रामजी का रोष करना और :५२: सुग्रीव का त्रस्त हो उठना कहा।

व्याख्या : सरकार को विरहवन्त देखकर नारदजी को बड़ा कष्ट हुआ। उन्हीं का शाप था : मम अपकार कीन्ह तुम भारी। नारि बिरह तुम होब दुखारी। सरकार उसी को अङ्गीकार करके कष्ट उठा रहे थे। उसी बात का स्मरण करके नारदजी को सरकार के दर्शन की बड़ी उत्कण्ठा हुई। सो पम्पासर पर जाकर मिले। राम नाम की श्रेष्ठता का वरदान माँगा। अपनी शङ्का का समाधान पूछा और सन्त का लक्षण सुना। रामजी ज्येष्ठ के अन्त में हनुमान्जी से मिले। सुग्रीव से अग्निसाक्षिक मैत्री हुई। तत्पश्चात् उन्होंने बालि को मारा और सुग्रीव को राज्य दिया। चातुर्मास आजाने से सरकार प्रवर्षणगिरि पर ठहर गये। वर्षा बीती शरद आया। पर सुग्रीव ने कोई खबर न ली। इसलिए रामजी ने रोष किया। लक्ष्मणजी किष्किन्धा गये : धनुष चढ़ाइ कहा तब जारि करौं पुर छार। सुग्रीव भयभीत हुए और कार्तिक कृष्ण दशमी को लक्ष्मणजी के साथ साथ रामजी के पास गये।

जेहि बिधि कपिपति कीस पठाए । सीता खोज सकल दिसि धाए ॥
बिबर प्रबेस कीन्ह जेहि भाँती । कपिन्ह बहोरि मिला संपाती ॥१॥

अर्थ :५३: जिस प्रकार सुग्रीव ने बन्दरों को भेजा और वे सीताजी के खोजने के लिए सब दिशाओं में दौड़े। :५४: जिस भाँति विवर में प्रवेश किया और :५५: बन्दरों से सम्पाती मिला।

व्याख्या : एक महीने का समय देकर सुग्रीवजी ने बन्दरों को चारों दिशाओं में सीताजी के खोजने के लिए भेजा। ताकीद कर दी कि जो महीने भर में न लौटा और सीताजी का समाचार भी न लाया उसे मैं अपने हाथ से मारूँगा। उसी दिन कार्तिक कृष्ण दशमी को ही बन्दर लोग रवाना हो गये। सीताजी के खोज में शरीर की सुधि भूल गये। घने जंगल में रास्ता भूल गये और बिना जल के मरने लगे। हनुमान्‌जी ने पहाड़ पर चढ़कर देखा कि एक स्थान में विवर के भीतर जलपक्षी प्रवेश कर रहे हैं। जल का अनुमान करके सब बन्दरों ने उसमें प्रवेश किया। वहाँ तपस्विनी से भेंट हुई। सब ने सर में जल पिया फल खाया। उसी विवर में एक महीने की अवधि बीत गयी। तपस्विनी ने सबको दिलासा दिया और तपोबल से समुद्र के किनारे पहुँचा दिया। वहाँ सम्पाती : जटायु के बड़े भाई से भेंट हुई। उसने सीताजी का पता बतलाया।

सुनि सब कथा समीर कुमारा। नाघत भयो पयोधि अपारा॥
लंका कपि प्रबेस जिमि कीन्हा। पुनि सीतहि धीरजु जिमि दीन्हा॥२॥

अर्थ :५६: सब कथा सुनकर हनुमान्‌जी :५७: अपार समुद्र का उल्लंघन कर गये। :५८: फिर लंका में जैसे हनुमान्‌जी ने प्रवेश किया और :५९: जिस भाँति सीताजी को धीरज दिया।

व्याख्या : सम्पाती ने बतला दिया कि समुद्र के उसपार लंका के उपवन में सीताजी बैठी सोच रही हैं। जो सौ योजन समुद्र का उल्लंघन करे वह रामकार्य कर सकता है। पर किसी का साहस नहीं हुआ। हनुमान्‌जी ने अगहन वदी एकादशी को समुद्रोल्लंघन किया। द्वादशी को सीताजी का दर्शन करके उन्हें धैर्य बँधाया तब अशोक वाटिका के फलों से पारण किया।

बन उजारि रावनहि प्रबोधी। पुरदहि नाँघेउ बहुरि पयोधी॥
आये कपि सब जहँ रघुराई। बैदेही की कुसल सुनाई॥३॥

अर्थ :६०: अशोक वन को उजाड़कर और :६१: रावण को समझाकर :६२: लंका जलाकर हनुमान्‌जी फिर :६३: समुद्र डाँक गये। :६४: सब बन्दर रामजी के पास आये और :६५: सीताजी की कुशल सुनायी।

व्याख्या : फल खाने में हनुमान्‌जी का राक्षसों से युद्ध हुआ। मेघनाद उन्हें बाँधकर रावण की सभा में ले गया। रावण से वार्तालाप हुआ। हनुमान्‌जी ने उसे बहुत समझाया। उसने हनुमान्‌जी के पूँछ जलाने की आज्ञा दी। पूँछमें आग लगने पर हनुमान्‌जी ने त्रयोदशी को लंका जलायी। चतुर्दशी को हनुमान्‌जी समुद्र पार करके अपने साथियों से भेंट की। सबके सब रामजी के पास चले। सात दिन रास्ते

में लगे। अगहन सुदी सप्तमी को रामजी का दर्शन किया और सीताजी का कुशल सुनाया।

सेन समेत जथा रघुबीरा। उतरे जाइ बारिनिधि तीरा॥
मिला बिभीषनु जेहि बिधि आई। सागर निग्रह कथा सुनाई॥४॥

अर्थ :६६: सेना के समेत जिस भाँति रामजी जाकर समुद्र के तीर पर उतरे। :६७: जिस भाँति विभीषण जाकर मिला और :६८: समुद्र पर रामजी के रोष करने की कथा सुनायी।

व्याख्या : अगहन सुदी अष्टमी को रामजी ने बानरी सेना के साथ विजय यात्रा की। सात दिन तक बराबर सेना चलती गयी और पूर्णिमा के दिन समुद्र के तट पर जा पहुँची। इसके आगे सेना की गति नहीं थी। यह समाचार रावण को मिला। मन्त्रणा के लिए सभा हुई। विभीषण ने सीता के लौटा देने का मन्त्र दिया। रावण ने क्रुद्ध होकर उसे लात मारकर निकाल दिया। तब विभीषण आकर रामजी से मिला। रामजी ने उसे लंका का तिलक दे दिया। विभीषण की राय से रामजी ने समुद्र से सत्याग्रह किया। तीन दिन बीत गया तब रामजी रुष्ट हुए और समुद्र को अग्निबाण से शोषण करने को तैयार हुए। समुद्र सन्तरण के लिए मन्त्रिमण्डल की बैठक पूस बदी पञ्चमी को हुई। रामजी षष्ठी को विनय करने समुद्र तट पर गये। नवमी को समुद्रजी शरण आये।

दो. सेतु बाँधि कपि सेन जिमि, उतरी सागर पार।
गयउ बसीठी बीर बर, जेहि बिधि बालिकुमार॥६७॥
निसिचर कीस लराई बर, निसि बिबिध प्रकार।
कुंभकरन घननाद कर, बल पौरुष संघार॥६७ क.

अर्थ :६९: सेतु बाँधकर जिस भाँति बानरी सेना समुद्र पार उतरी और :७०: अङ्गदजी जिस भाँति दूत होकर गये। :७१: राक्षस और बन्दरों की लड़ाई अनेक प्रकार से भुसुण्डिजी ने वर्णन किया तथा :७२: कुम्भकर्ण और :७३: मेघनाद के बल पौरुष और संहार का वर्णन किया।

व्याख्या : चार दिनों में सेतुबन्धन का कार्य समाप्त हुआ। पूस वदी त्रयोदशी को सेतु तैयार हो गया। पूस सुदी १२ को रामजी ने प्रयाण किया और पूर्णमासी को सुवेल पर्वत पर उतरे। माघ सुदी प्रतिपदा को अङ्गद दूत बनकर गये। छः महीने तक चारो फाटक की लड़ाई होती रही। श्रावण सुदी प्रतिपदा को लक्ष्मणजी को शक्ति लगी। श्रावण सुदी ६ और सप्तमी दो दिन कुम्भकर्ण के जगाने में लगा। कुम्भकर्ण अष्टमी को रणाङ्गण में आये। सात दिन युद्ध करके पूर्णिमा को मारे गये। भाद्रपद वदी द्वादशी को मेघनाद वध दो दिन के युद्ध के बाद हुआ।

निसिचर निकर मरन बिधि नाना। रघुपति रावन समर बखाना ॥
रावन बध मंदोदरि सोका। राजु बिभीषन देव असोका ॥

अर्थ :७४: नाना प्रकार से राक्षसों का मरना :७५: राम रावण का युद्ध होना वर्णन किया। :७६: रावण का मारा जाना :७७: मन्दोदरी का विलाप :७८: विभीषण को राज्य और देवताओं का शोक रहित होना।

व्याख्या : बड़ी भारी सेना लेकर रावण युद्ध के लिए भाद्रपक्ष कृष्ण अमावस्या को निकले। इस युद्ध में बड़ा भारी संहार राक्षसों का हुआ। आश्विन शुक्ल प्रतिपदा को दूसरी बार रावण सेना लेकर आये। द्वितीया से राम रावण का द्वन्द्व युद्ध प्रारम्भ हुआ। नवमी को रावण का वध हुआ। रानी मन्दोदरी ने समराङ्गण में आकर विलाप किया। विजयोत्सव दशमी के दिन मनाया गया। त्रयोदशी को विभीषण का राज्याभिषेक हुआ। तब देवता शोकरहित हो गये।

सीता रघुपति मिलन बहोरी। सुरन्ह कीन्ह अस्तुति कर जोरी ॥
पुनि पुष्पक चढ़ि कपिन्ह समेता। अवध चले प्रभु कृपानिकेता ॥२॥

अर्थ :७९: तत्पश्चात् सीता और रामजी का मिलना :८०: देवताओं का हाथ जोड़कर स्तुति करना :८१: तत्श्चात् सेना सहित पुष्पक पर चढ़कर सरकार की अवध यात्रा हुई।

व्याख्या : आश्विन शुक्ला चतुर्दशी को सीता का रामजी के साथ मिलन हुआ। देवता लोगों की स्तुति शरत् पूर्णिमा को हुई। कार्तिक वदी प्रतिपदा को विभीषणजी मणि भूषण से भरकर पुष्पक विमान लाये और सरकार की आज्ञा से आकाश में जाकर बानरी सेना में मणि भूषण की वर्षा की। द्वितीया को सरकार पुष्पक पर सेना सहित सवार होकर अयोध्या चले।

जेहि बिधि राम नगर निज आए। बायस बिसद चरित सब गाए ॥
कहेसि बहोरि राम अभिषेका। पुर बरनन नृपनीति अनेका ॥३॥

अर्थ :८२: जिस विधि से रामजी नगर के निकट पहुँचे। उस निर्मल चरित का भुसुण्डिजी ने गान किया। :८३: तत्पश्चात् रामजी का अभिषेक :८४: पुर वर्णन और अनेक राजनीति का वर्णन किया।

व्याख्या : वरदान आदि से तिथिवद्ध मास माना जाता है। पाण्डवों के बनवास में भी तिथिवद्ध मास ही माना गया। सौर वर्ष तिथिवद्ध मासवाले साल से बारह दिन बड़ा होता है। इस भाँति चौदह वर्ष में एक सौ असंठ दिन का फरक पड़ता है। इसलिए चौदह वर्ष चैत सुदी नवमी को पूरा न होकर कार्तिक वदी पञ्चमी को ही पूरा हो गया। सो ठीक पञ्चमी के दिन सरकार भरद्वाज के आश्रम पर पहुँच गये। सप्तमी को भरत मिलाप हुआ। अष्टमी को पुष्ययोग में रामजी का अभिषेक हुआ।

तत्पश्चात् अयोध्या की कैसी शोभा हुई। रामराज्य में किस भाँति सत्ययुग की भाँति चारों चरण से धर्म का स्थापन हुआ। यह सब भुसुण्डिजी ने वर्णन किया।

कथा समस्त भुसुंडि बखानी। जो मैं तुम सन कही भवानी ॥
सुनि सब रामकथा खगनाहा। कहत बचन मन परम उछाहा ॥४॥

अर्थ : भुसुण्डिजी ने वह सब कथा कह डाली जो कि मैंने हे भवानी ! तुमने कहा है। रामजी की कथा सुनकर गरुड़जी ने बड़े उछाह से भरे हुए मन से वचन कहे।

व्याख्या : शिवजी ने उमा से कहा कि यहाँ समास से मैंने कथा कही। पर भुसुण्डिजी ने उसी भाँति से विस्तार पूर्वक कथा गरुड़जी को सुनायी जैसा कि मैंने तुम्हें सुनाया था। व्यास समास दोनों भाँति से कहने से ही बात मन में बैठती है। अतः दोनों भाँति से मैंने तुम्हें कथा सुनायी दी।

भुसुण्डिजी को कथा प्रारम्भ करने के पहिले ही उछाह हुआ। यथा : भयउ तासु मन परम उछाहा। लाग कहै रघुपति गुन गाहा। गरुड़जी को कथा सुनने पर उछाह हुआ। शिवजी ने कहा था : जाइहि सुनत सकल संदेहा। राम चरन उपजहि दृढ़ नेहा। सो ठीक ठीक वैसा ही हुआ : गरुड़जी कहते हैं।

सो. गएउ मोर संदेह सुनेउँ सकल रघुपति चरित।
भयउ रामपद नेह तव प्रसाद बायस तिलक ॥६८ क.

अर्थ : मेरा सन्देह जाता रहा। मैंने सब रामचरित सुना। रामजी के चरणों में हे वायसतिलक ! तुम्हारे प्रसाद से प्रेम हुआ।

व्याख्या : नारदजी ने सब सुनकर कहा था : महामोह उपजा उर तोरे। मिटिहि न बेगि कहे खग मोरे। सो भुसुण्डिजी के प्रसाद से वह मोह मिट गया। रामजी का सब चरित्र श्रवण किया। उसका फल यह हुआ कि गरुड़जी को रामजी के चरणों में प्रेम हुआ। भावार्थ यह कि महात्माओं की कृपा से ही मोह मिटता है और कथा श्रवण से भगवद्भक्ति होती है। यथा : बिनु सत्संग न हरि कथा तेहि बिनु मोह न भाग। मोह गये बिनु रामपद होइ न दृढ़ अनुराग।

सो. मोहि भयेउ अति मोह प्रभु बंधन रन महु निरखि।
चिदानन्द संदोह राम बिकल कारन कवन ॥६८॥

अर्थ : प्रभु का रण में बन्धन देखकर मुझे अत्यन्त मोह हुआ। चिदानन्द की राशि राम विकल हैं इसका क्या कारण है।

व्याख्या : नारदजी ने कहा था : महा मोह उपजा उर तोरे। उसी बात को स्वीकार करते हुए गरुड़जी कहते हैं कि मोह के चले जाने पर मुझे मालूम हो रहा है कि मुझे अति मोह हो गया था। अपने स्वरूप का अज्ञान मोह है और ईश्वर के स्वरूप के प्रति अज्ञान को महा मोह कहते हैं। अहमिति अभिमान तो जीव में होता

है। ईश्वर में अभिमान कहाँ ? बन्ध और मोक्ष तो जीव के लिए हैं। नित्यमुक्त ईश्वर को बन्ध कहाँ ? सभी शरीर उनका है। उन्हें जैसा अपना शरीर वैसा ही दूसरा शरीर। शरीर के बन्ध से उनका सम्बन्ध क्या ? जीव जिस भाँति अपने को बँध जाने से परतन्त्र मानता है वैसी ही व्याकुलता की कल्पना ईश्वर में भी करता है। दिग्भ्रम उसे हुआ है। कहता है कि सूर्य ही पश्चिम में उदय हुआ है। देहाभिमान उसे है। उसी देहाभिमान की कल्पना ईश्वर में करता है। देह की विकलता से चिदानन्द सन्दोह को विकल मान रहा है और उस विकलता का कारण तलाश कर रहा है। यही महामोह है।

देखि चरित अति नर अनुसारी। भयउ हृदयँ मम संसय भारी ॥
सोई भ्रम अब हितकरि मैं माना। कीन्ह अनुग्रह कृपा निधाना ॥१॥

अर्थ : एकदम मनुष्य का सा चरित्र देखकर मेरे मन में भारी संशय हुआ। उसी भ्रम को अब मैं कल्याणकारी समझता हूँ। कृपानिधान ने बड़ा अनुग्रह किया।

व्याख्या : वह चरित्र मिश्रब्रह्मा का सा नहीं था। एकदम मनुष्य का सा था। युद्ध में बँध जाने से जैसे विकल हो जाते हैं ठीक वैसा ही अभिनय सरकार ने किया था। यथा : एक बार अतिसै सब चरित किये रघुबीर। जब चरित्र में अत्यन्त नरानुकरण करते हैं उस समय देखनेवाले को बिना मोह हुए नहीं रहता। उमा को मोह हुआ। गरुड़जी को मोह हुआ। स्वयं भुसुण्डिजी को मोह हुआ। नर अनुहारी चरित्र से संशय होता है और अति नर अनुहारी से भारी संशय होता है।

अब मालूम होता है कि वह भ्रम भी हितकर था। कृपानिधान के अनुग्रह से हुआ था। कृपानिधान हैं : भ्रम भी उत्पन्न कर देते हैं भलाई के लिए। यह रामचरण में दृढ़ नेह होने का उदाहरण है। कहते हैं कि जब भ्रम छूटा तब मालूम कि यह हितकर था। नहीं तो पहले प्रचण्ड विषाद उपजा था।

जो अति आतप ब्याकुल होई। तरु छाया सुख जानै सोई ॥
जौं [1]नहि होत मोह अति मोही। मिलतेउँ तात कवन बिधि तोही ॥२॥

अर्थ : जो धूप से अत्यन्त विकल होता है उसी को पेड़ की छाया का सुख अनुभूत होता है। यदि मुझे मोह न हुआ होता तो तुमसे कैसे मिलता ?

व्याख्या : तरु छाया में सुख है पर मालूम नहीं होता। जल में मिठास है पर मालूम नहीं होती। रसना स्वयं जलीय पदार्थ है। इससे जल की मिठास का पता नहीं चलता। पर जब हरीतकी सेवन से उसमें रूखापन आजाता है तब उसे जल की मिठास का पता चलता है। इसो भाँति मनुष्य में शीतलता है। इसलिए

---

१. यहाँ लेशालङ्कार है।

तरु छाया का सुख अभिव्यक्त नहीं होता। जब अति आतप से शीतलता तिरोहित होती है तब तरुछाया के सुख का अनुभव होता है।

गरुड़जी का भुसुण्डिजी से भेंट होने की कोई विधि ही नहीं थी। होइहि कीन्ह कबहुँ अभिमाना। सो खोवै चह कृपानिधाना। मन में अभिमान था कि मैं पक्षिराट् हूँ। भुसुण्डि शकुनाधम सब भाँति अपावन हैं। उसी अभिमान के नाश के लिए ऐसा भ्रम हुआ। गरुड़जी कहते हैं कि संसाररूपी पतंग के घोर किरणों से मैं जल रहा था। आप सन्त हैं। विटप स्थानीय हैं। यथा : संत बिटप सरिता गिरि धरनी। परहित हेतु सबन्ह कै करनी। आपकी छाया में मेरी रक्षा हुई। आतप से विकल होने से ही तरुछाया की खोज हुई और तब आप मिले।

सुनतेउँ किमि हरिकथा सुहाई। अति बिचित्र बहुबिधि तुम्ह गाई ॥
निगमागम पुरान मत एहा। कहहिं सिद्ध मुनि नहि संदेहा ॥३॥

अर्थ : उस सुन्दर हरिकथा को मैं कैसे सुनता जिस अति विचित्र कथा का गान बहुत विधि से आपने किया है। वेद शास्त्र का यही मत है। सिद्ध मुनि भी कहते हैं इसमें सन्देह नहीं।

व्याख्या : हरिकथा श्रवण ही संसार पतंग के घोर किरणों से सन्तप्त पुरुषों के लिए एकमात्र शरणप्रद तरुछाया है। आप वृक्ष हैं। हरि कथा आपकी छाया है। भ्रम होने से ही आपकी प्राप्ति हुई और हरिकथा सुनने का सौभाग्य हुआ। यह छाया अति विचित्र है। शीतल होने पर भी प्रकाशमय है। उसके द्वारा अनेक प्रकार से आप ने मेरी रक्षा की।

गरुड़जी कहते हैं कि स्वतःप्रमाण वेद और परतःप्रमाण शास्त्र और पुराण तथा शिष्ट सिद्ध मुनि सबका इस विषय में ऐकमत्य है। इसलिए सन्देह नहीं है :

संत बिसुद्ध मिलहिं परि तेही। चितवहिं रामु कृपा करि जेही ॥
राम कृपा तव दरसन भएऊ। तव प्रसाद सब संसय गएऊ ॥४॥

अर्थ : उसे विशुद्ध सन्त की संगति मिलती है जिसे रामजी कृपा करके देखते हैं। रामकृपा से आपका दर्शन हुआ और आपके प्रसाद से मेरा संशय गया।

व्याख्या : संशय निवारण का सद्यः कारण रामकृपा नहीं है। सद्यः कारण तो आपकी कृपा है। रामकृपा संशय निरसन का परम्परागत कारण है। यथा : बिनु हरि कृपा मिलहिं नहिं संता। सत संगति संसृति कर अंता। सन्त सर्वत्र हैं। परन्तु बिना हरि की कृपा के उनकी प्राप्ति नहीं होती। यथा : सबहिं सुलभ सब दिन सब देसा। फिर भी मिलते नहीं। राम कृपा हो तब मिले। बिधि प्रपंच गुन अवगुन साना। साधु असाधु सुजाति कुजाती। सन्तों में भी कुछ न कुछ दोष दिखायी पड़ता है। अतः विशुद्ध सन्त का मिलना हरिकृपा से ही सम्भव है। वर्णाश्रम धर्म का आश्रय करके श्रीभगवान् का परमभक्त ही विशुद्ध सन्त है।

दो. सुनि बिहँग पति बानी, सहित बिनय अनुराग ।
पुलकि गात लोचन सजल, मन हरषेउ अति काग ॥६९ क.

अर्थ : पक्षिराट् की विनय और अनुराग युक्त वाणी सुनकर भुसुण्डिजी को पुलक हो गया और नेत्र में जल भर आया और वे मन में बड़े प्रसन्न हुए ।

व्याख्या : विनय और अनुराग सहित वाणी सुनने से ही सन्त महात्माओं की प्रसन्नता होती है । गरुड़जी विहंगपति हैं । उनकी प्रेम भरी विगताभिमान वाणी सुनने से भुसुण्डजी को ऐसा हर्ष हुआ कि वह पुलक और आनन्दाश्रु के मिस से प्रकट हो गया । विनय के सहित यथा : राम कृपा तव दरसन भयऊ । अनुराग के सहित यथा : मिलतेउँ तात कवन बिधि तोही । गरुड़जी महासाधु हैं । अतः उनके सत्सङ्ग से भुसुण्डिजी को भी बड़ा हर्ष हुआ ।

दो. स्रोता सुमति सुसील सुचि, कथा रसिक हरिदास ।
पाइ उमा अति गोप्यमपि, सज्जन करहिं प्रकास ॥६९॥

अर्थ : हे उमा ! श्रोता यदि सुमति, सुशील, शुचि, कथारसिक और हरिदास मिल जाय तो सज्जन अत्यन्त : गोप्य छिपायी जाने योग्य बात को भी कह डालते हैं ।

व्याख्या : गरुड़जी से बहुत कुछ राम रहस्य भुसुण्डिजी वर्णन करनेवाले हैं । इसीका उपक्रम करते हुए शिवजी पार्वती को सम्बोधन करते हुए कहते हैं कि गुणवान् श्रोता के मिलने पर सज्जन लोग रहस्य की बात भी प्रकट कर देते हैं । तुमने पूछा था : औरौ राम रहस्य अनेका । कहहु नाथ अति बिमल बिबेका । सो भुसुण्डिजी राम रहस्य का वर्णन अब करेंगे । क्योंकि गरुड़जी गुणवान् श्रोता थे । गरुड़जी की १. सुमति का तो इसी से पता चलता है कि मोह होते ही उसके निवारण के उपाय में तुरन्त लग गये । नारदजी के पास गये । ब्रह्म लोक गये । मेरे पास आये और मेरे कहने पर भुसुण्डिजी के यहाँ प्रसन्न होकर गये । २. सुशील हैं । कहते हैं : 'सोइ भ्रम अब हित करि मैं जाना । कीन्ह अनुग्रह कृपानिधाना । ३. शुचि हैं । इसलिए कहते हैं : जौ नहिं होत मोह अति मोही । मिलतेउँ तात कवन बिधि तोही । ४. कथा रसिक हैं । इसलिए कहते हैं : सुनतेउँ किमि हरि कथा सोहाई । अति बिचित्र बहु बिधि तुम्ह गाई । और ५. हरिदास हैं । इसलिए उनके मन में यह बात उठी : संत बिसुद्ध मिलहिं परि तेही । चितवहिं रामकृपा करि जेही । राम कृपा तव दरसन भयऊ । तव प्रसाद सब संसय गयऊ ।

बोलेउ कागभुसुंडि बहोरी । नभगनाथ पर प्रीति न थोरी ॥
सब बिधि नाथ पूज्य तुम्ह मेरे । कृपापाल रघुनायक केरे ॥१॥

अर्थ : तत्पश्चात् भुसुण्डिजी बोले । क्योंकि पक्षिराट् पर उनकी बड़ी प्रीति

थी। कहा कि हे नाथ ! सब प्रकार से आप मेरे पूज्य हैं। क्योंकि रघुनायक के कृपापात्र हैं।

व्याख्या : विहंगपति की विनय अनुरागयुक्त वाणी सुनकर भुसुण्डिजी कहते हैं कि आप तो सबके पूज्य हैं। जो विष्णु भगवान् का अर्चन करता है उसे आपकी पूजा करनी पड़ती है। क्योंकि आप भगवान् के कृपापात्र हैं। सदा भगवान् के सम्मुख आपकी स्थिति रहती है। हरि मन्दिर के सामने ही गरुड़ स्तम्भ रहता है और मेरे तो सब विधि से पूज्य हैं। १. पक्षियों के राजा होने से २. जाति में श्रेष्ठ होने से ३. अतिथि होने से और ४. सरकार के बन्धन काटने के निमित्त होने से। महात्मा लोग कभी अन्यथा नहीं कहते। भुसुण्डिजी को वस्तुतः इन कारणों से गरुड़जी पर बड़ी प्रीति थी।

तुमहि न संसय मोह न माया। मो पर नाथ कीन्हि तुम दाया ॥
पठै मोह[1] मिस खगपति तोही। रघुपति दीन्ह बड़ाई मोही ॥२॥

अर्थ : तुम्हें न संशय है न मोह है और न माया है। हे नाथ ! मुझ पर आपने दया की। रामजी ने मोह के बहाने से तुम्हें भेज कर मुझे बड़ाई दी।

व्याख्या : भुसुण्डिजी कहते हैं कि आप तो नित्ययुक्त हो। आपको संशय मोह और माया कहाँ ? जिसे मोह होता है उसे इतना ज्ञान कहाँ कि मुझे मोह हुआ है। आपके मोह छुड़ाने के प्रयत्न से ही सिद्ध है कि वह मोह आगन्तुक था। आपने मुझ पर दया की जो स्वयं चले आये। उचित तो यह था कि आप मुझे बुला भेजते। यथा : तदपि उचित जन बोलि सप्रीती। पठिइअ काज नाथ अस नीती। बात यह है कि सरकार को मुझे बड़ाई देना था। इसलिए उनकी प्रेरणा से मोहाभास आपको हो गया। जो बात शिवजी ने कहा था : होइहि कीन्ह कबहुँ अभिमाना। सोइ खोवै चह कृपानिधाना। उसी बातको भुसुण्डिजी दूसरे शब्दों में कह रहे हैं।

तुम निज मोह कही खगसाईं। सो नहिं कछु आचरज गोसाईं ॥
नारद भव बिरंचि सनकादी। जे मुनिनायक आतमवादी ॥३॥

अर्थ : हे पक्षिराट् ! आपने जो अपना मोह कहा है वह कोई आश्चर्य की बात नहीं हैं। नारद, शिव, ब्रह्मा, सनकादिक मुनि तथा और भी मुनियों में श्रेष्ठ आत्मवादी हैं।

व्याख्या : भुसुण्डिजी कहते हैं कि आपने जो कहा : मोहि भयो अति मोह प्रभु बंधन रन महु निरखि। सो कोई आश्चर्य की बात नहीं है। क्योंकि : जौं सब के रह ज्ञान एक रस। ईस्वर जीवहिं भेद कहहु कस। आप बहुत बड़ होने पर भी पक्षी हैं। मैं मुनियों की बात कहता हूँ और उनकी जो आत्मवादी हैं। जिन्हें संसार शशशृंग

---

१. यहाँ लेशालङ्कार है।

की भाँति असत् प्रतीत होता है तथा सनकादिक की बात कहता हूँ जो ब्रह्मानन्द में सदा लवलीन रहते हैं। नारदजी की बात कहता हूँ जो हरिहर को प्रिय हैं। तथा स्वयं सृष्टिकर्ता ब्रह्मा और संहारकर्त्ता शिवजी की बात कहता हूँ।

मोह न अंध कीन्ह केहि केही। को जग काम नचाव न जेही ॥
तृष्णा केहि न कीन्ह बौराहा। केहि कर हृदय क्रोध नहि दाहा ॥४॥

अर्थ : मोह ने किसे अन्धा नहीं कर दिया। काम ने किसे नहीं नचाया। तृष्णा ने किसे पागल नहीं बनाया। किसके हृदय को क्रोधने नहीं जलाया।

व्याख्या : संसार में जो है उस पर कभी न कभी काम क्रोधादि का दौरा हो जाता है : ब्यापि रह्यौ संसार मँह माया कटक प्रचंड। संसार में तो ये सदा व्याप्त रहते हैं। बड़े लोगों को ये वश में नहीं रख सकते। पर कभी कभी उन पर भी इनका प्रभाव चल जाता है। इससे उनकी बड़ाई में भेद नहीं पड़ता। जिन बड़ों बड़ों का मैंने उल्लेख किया है उन पर भी कभी न कभी इनका प्रभाव पड़ चुका है और भविष्य में भी पड़ने का भय है। यथा : सिव चतुरानन जाहि डेराहीं। अतः ऐसा ही आगन्तुक प्रभाव आप पर भी पड़ गया।

मोह अन्धकार का रूप ही है। इसके प्राबल्य के समय ज्ञान विरागरूपी आँखों का प्रचार रुक जाता है। अतः यह कभी न कभी सब पर प्रभाव डाल देता हैं। काम के कारण ही संसार जन्म मरण के जाल में पड़ा हुआ है। यथा : नाचत ही निसि दिवस मर्यो। तबही ते न भये हरि थिर जब ते जिव नाम धर्यो। बहु वासना बिबिध कंचुकि भूषन लोभादि भर्यो। चर अरु अचर गगन जल थल में कौन न स्वाँग कर्यो। तृष्णा से उन्माद हो जाता है। वह अपने होश में ही नहीं रहता। संसार उस पर हँसता है। पर वह कुछ ख्याल नहीं करता : लोलुप भ्रमत गृह पसु ज्यौं जहँ तहँ सिर पदत्रान बजे। तदपि अधम बिचरत तेहि मारग कबहु न मूढ लँजे। क्रोध कलेजा जलाता है। जिस पर क्रोध होता है उसको हानि तो पीछे पहुँचावेगा। पहिले तो उसी का कलेजा जलाता है। क्रुद्धः पापं न कुर्यात् कः क्रुद्धो हन्याद् गुरूनपि। क्रोध से जीव कौन सा पाप नहीं करता? क्रोधी अपने गुरु को भी मारता है। क्रोध पाप का मूल।

दो. ग्यानी तापस सूर कबि, कोबिद गुन आगार।
केहि कै लोभ बिडंबना, कीन्हि न येहि संसार ॥७० क.

श्रीमद बक्र न कीन्ह केहि, प्रभुता बधिर न काहि।
मृगलोचनि के नयन सर, को अस लाग न जाहि ॥७०॥

अर्थ : ज्ञानी, तपस्वी, शूर, कवि, पण्डित और गुणनिधान में ऐसा कौन है जिसकी दुर्दशा इस संसार में लोभ ने न की हो। धन मद ने किसे टेढ़ा नहीं बनाया।

प्रभुता ने किसे बहरा नहीं बनाया तथा मृगनयनी के नयन का बाण ऐसा कौन है जिसे न लगा हो।

व्याख्या : आशा की डोरी गले में बँधी हुई पशु की भाँति लोभी कहाँ कहाँ नाचता नहीं फिरता। धूम समूह निरखि चातक ज्यौं तृषित जाति मति घन की। नहि तहँ सीतलता न बारि पुनि हानि होत लोचन की। ज्यों गच कांच बिलोकि स्येन जड़ छाँह आपने तनकी। टूटत अति आतुर अहार बस छति बिसारि आनन की। सो इस लोभ से बँचा कौन है? साधन चतुष्टयसम्पन्न ज्ञानी विषयविमुख तपस्वी मरण को तृण मानने वाले शूर क्रान्तिदर्शी कवि, जीवन मरण को न सोचने वाले पण्डित और आदरणीय गुणागार सभी इसके फन्दे में फँस जाते हैं।

धनमद होते ही सरल पुरुष भी कुटिल हो जाता है। वह समझने लगता है कि जो कोई मुझसे मिलता है वह मुझसे ऐंठने आता है। अतः वह सबसे कुटिलता का व्यवहार करता है। जबतक मनुष्य को प्रभुता की प्राप्ति नहीं होती तबतक वह सबकी बातें सुनता है। प्रभुता हाथ में आते ही उसकी सुनने की शक्ति हो जाती रहती है। दोनों की पुकार उसके कानतक पहुँचती ही नहीं और सब बाणों से कराल मृगनयनी के नयन बाण है। इसका मारा हुआ तुरन्त सुध बुध खो बैठता है। इससे भी बचनेवाला कोई दिखायी नहीं पड़ता। भावार्थ यह : नारि नयन सर जाहि न लागा। घोर क्रोध तब निसि जो जागा। लोभ पास जेहि गर न बँधाया। सो नर तुम्ह समान रघुराया।

गुनकृत सन्यपात नहि केही। कोउ न मान मद तजेउ निबेही ॥
जौवन ज्वर केहि नहि बलकावा। ममता केहि कर जसु न नसावा ॥१॥

अर्थ : गुण से उत्पन्न सन्निपात किसे नहीं हुआ। मान मद ने किसे निर्दोष छोड़ दिया? जवानी के ज्वर ने किसे नहीं कम्पमान किया। ममता ने किसकी कीर्ति नहीं नष्ट की।

व्याख्या : गुण से काम क्रोध लोभ तीनों का योग है। काम वात कफ लोभ अपारा। क्रोध पित्त नित छाती जारा। प्रीति करैं जो तिनिउ भाई। उपजै सन्निपात दुःख दाई। तथा : सन्यपात जल्पसि दुर्बादा। भयेसि कालबस खल मनजादा। गुण होने से उसका मद बिना हुए नहीं रहता। मत्सर मान मोह मद को चोर कहा है। यथा : मत्सर मान मोह मद चोरा। ये सद्गुणों को चुरा लेते हैं। सद्गुणों का नाश मान मद द्वारा होता है। निबेही अर्थात् निश्छिद्र निर्दोष भावार्थ यह कि मान मद के कारण सभी में दोष आ जाते हैं।

यौवन ज्वर है। सर्वरोगाग्रजो बली। यह सब रोगों से बलवान् है और यह यह सबको होता है। सज्वरा एव जायन्ते। सज्वरा एव म्रियन्ते। यह मानसिक ज्वर दो प्रकार का होता हैं। यथा : जुग बिधि ज्वर मत्सर अबिबेका। इससे तो कोई बचता नहीं।

यश परोपकार से होता है। रागद्वेष से परोपकार तो दूर गया परोपकार ही हो पड़ता है और ममतारूपी तमिस्रा में राग द्वेष का बोलबाला सदा रहता है। यथा : ममता तरुन तमी अँधियारी। राग द्वेष उलूक सुखकारी। अतः ममता से यश का नाश होता ही है और ममता से कोई बचा भी नहीं है।

मच्छर काहि कलंक न लावा। काहि न सोक समीर डोलावा ॥
चिन्ता साँपिनि को न खाया। को जग जाहि न ब्यापी माया ॥२॥

अर्थ : मत्सर ने किसे कलङ्क नहीं लगाया और शोकरूपी वायु ने किसे चलायमान नहीं किया। चिन्ता सांपिनी ने किसे नहीं दंशन किया। संसार में कौन है जिसे माया नहीं व्यापी ?

व्याख्या : जिसे मत्सर है वह उदार हो नहीं सकता। उसका स्वभाव निश्चय कार्पण्य से उपहत हो जाता है। फलतः उसे कलङ्क लगता है। शोक से धैर्य छूट जाता है। शोकसन्तप्त पुरुष विचलित हो उठता है। शोक संसार वृक्ष का बीज है। जब तक शोक है तब तक ब्रह्म ज्ञान हो नहीं सकता। उस शोक ने किसे विचलित नहीं किया। चिन्ता सांपिनी है। चुपके आकर दंशन कर लेती है। उससे कुतर्क की लहर उठती है जो महा दुःखद है। यह प्राण लेकर ही छोड़ती है। जो संसार में आया उसे माया व्यापती ही है। यथा : भूमि परत भा ढाबर पानी। जिमि जीवहिं माया लपटानी। पानी जब जमीन में गिरा तो ढावर होगा ही। इसी भाँति जो संसार में आया उसे माया व्यापेगी ही।

कीट मनोरथ दारु सरीरा। जेहि न लाग घुन को अस धीरा ॥
सुत बित लोक ईषना तीनी। केहिकै मति इन्ह कुत न मलीनी ॥३॥

अर्थ : मनोरथ कीट है। शरीर लकड़ी है। ऐसा धीर कौन है जिसे घुन नहीं लगा। पुत्रैषणा वित्तैषणा और लोकैषणा ये तीन एषणायें हैं। किसकी बुद्धि को इनने मलिन नहीं किया।

व्याख्या : मनोराज्य करते करते शरीर निस्सार हो जाता है। मनोरथ शरीर के सार को खा जाता है। ऊपर से ज्यों का त्यों बने रहने पर भी भीतर से पोला पड़ जाता है। धीर मनोरथ नहीं करते। फिर भी मनोरथ उनके शरीर को निःसार करके ही मानता है।

जितनी सांसारिक इच्छाएं हैं वे पुत्र धन और लोक के ही अन्तर्गत हैं। इनके चाह से बुद्धि मलिन हो जाती है। सो कोई भी इन एषणाओं से नहीं बचा है। अतः सबकी बुद्धि में मलिनता आ ही जाती है।

यह सब माया कर परिवारा। प्रबल अमित को बरनै पारा ॥
सिव चतुरानन जाहि डेराहीं। अपर जीव केहि लेखे माँहीं ॥४॥

अर्थ : यह सब माया का परिवार है। प्रबल है और असंख्य है। इसका कौन

वर्णन कर सकता है। शिव और ब्रह्मा जिनसे डरते हैं दूसरे जीव किस गिनती में हैं।

व्याख्या : अठारह जो बहुत प्रसिद्ध हैं उनका नाम गिना दिया पर ये गिने नहीं जा सकते। एक एक के असंख्य भेद हैं और सब के सब बड़े प्रबल हैं। जीते नहीं जा सकते। इन सबका वर्णन कौन कर सकता है। ये सब माया के बाल बच्चे हैं : तस्य हेतुरविद्या। सब पर प्रभाव डालकर माया के वश में रखते हैं।

सबके बड़े शिव और ब्रह्मा हैं। ये ईश्वर कोटि में हैं। फिर भी माया के परिवार से सदा सावधान रहते हैं। क्योंकि ये उन पर भी प्रभाव डालने में समर्थ हैं। फिर जीवों की क्या गिनती है। यथा : माया बस्य जीव अभिमानी।

दो. ब्यापि रहेउ संसार महु, माया कटक प्रचंड।
सेनापति कामादि भट, दंभ कपट पाखंड ॥७१ क.
सो दासी रघुबीर कै, समुझे मिथ्या सोपि।
छूट न रामकृपा बिनु, नाथ कहौं पद रोपि ॥७१॥

अर्थ : माया की प्रचण्ड सेना संसार में व्याप्त रही है। उनके सेनापति कामादि हैं और दम्भ कपट पाखण्ड आदि योद्धा हैं। वह रामजी की दासी है और वह भी विचार करने पर मिथ्या ही ठहरती है। वह बिना रामकृपा के छूट नहीं सकती। इस बात की मैं प्रतिज्ञा करके कहता हूँ।

व्याख्या : यह माया की सेना किसी विशेष स्थल में नहीं रहती। सम्पूर्ण संसार में व्याप्त होकर स्थित है। और बलवती ऐसी है कि सबको वश में किये हुए स्थित है। काम क्रोध और लोभ इसके सेनापति हैं। ये सेना का सञ्चालन करते हैं। दम्भ कपट पाखण्ड योद्धा हैं। ऐसी महाप्रभावा माया रामजी की दासी है। यथा : माया खलु नर्तकी बिचारी। और वह अविचार से सिद्ध है। विचार करने पर वह नहीं ठहरती। इसलिए उसे मिथ्या कहते हैं फिर भी उससे रक्षा नहीं। रामजी की कृपा हो तो छूटे अन्यथा इसका छूटना असम्भव है। भुसुण्डिजी प्रतिज्ञा करते हैं कि अन्य कोई उपाय इससे बचने का नहीं है।

जो माया सब जगहि नचावा। जासु चरित लखि काहु न पावा ॥
सोइ प्रभु भ्रूबिलास खगराजा। नाच नटी इव सहित समाजा ॥१॥

अर्थ : जिस माया ने सम्पूर्ण संसार को नचाया और जिसके चरित्र को कोई लख नहीं पाया। वही सरकार के भौंह के इशारे पर हे खगराज! समाज के सहित नटी की भाँति नाचती है।

व्याख्या : जिसकी सेना ऐसी प्रबल जिसके सेनापति ऐसे प्रचण्ड। जो स्वयं ऐसी प्रभावशालिनी कि सम्पूर्ण संसार को नचाया करती है। उसके चरित्र को कोई जान नहीं सकता। कैसा भी कोई पण्डित हो पर कहीं न कहीं उसे भ्रम रह

ही जाता है। यथा : अज्ञानं पुरतस्तेषां भाति कक्षासु कासु च। अतः मानना पड़ेगा कि उसके चरित्र को कोई लख नहीं पाता। एक दुष्ट अतिसय दुःख रूपा। जा बस जीव परा भव कूपा।

भुसुण्डिजी कहते हैं कि हे गरुड़जी वह महा प्रभावा माया सरकार के भ्रूविलास से अपने समाज के साथ नटी की भाँति नाचती है। वह स्वयं नटी सी हो जाती है और उसके योद्धा तथा सेनापति समाजी की भाँति उसके नाचने में योग देते हैं। कहा है : माया खलु नर्तकी बिचारी। माया स्वयं असती है और मिथ्या भाव दिखाकर लोगों को ठगा करती है। यथा : लव निमेष महँ भुवन निकाया। रचै जासु अनुसासन माया। श्रीपति निज माया तब प्रेरी। सुनहु कठिन करनी तेहि केरी। बिरचेउ मगमहुँ नगर तेहि, सत जोजन बिस्तार। श्रीनिवास पुर ते अधिक रचना बिबिध प्रकार। तेहि पुर बसै सीलनिधि राजा। अगनित हयगय सेन समाजा। बिस्व मोहिनी तासु कुमारी। श्रीबिमोह जिसु रूप निहारी। सोइ हरि माया सब गुन खानी। सोभा तासु कि जाइ बखानी। करै स्वयंबर सो नृप बाला। आये तहँ अगनित महिपाला। इत्यादि जिस पर सरकार सानुकूल हो जाते हैं। उससे माया अत्यन्त डरा करती है। यथा : भगतिहि सानुकूल रघुराया। ताते तेहि डरपति अति माया।

सोइ सच्चिदानंद घन रामा। अज बिज्ञान रूप बल धामा॥
ब्यापक ब्याप्य अखंड अनंता। अखिल अमोघ सक्ति भगवंता॥२॥

अर्थ : रामजी वही सच्चिदानन्दघन हैं। अज हैं। विज्ञानरूप हैं और बलधाम हैं। वही व्यापक हैं। वही व्याप्य हैं। वही अखण्ड हैं। अनन्त हैं। पूर्ण हैं। अमोघ शक्ति हैं।

व्याख्या : जीवकी मायापरतन्त्रता तथा माया की ईश्वरपरतन्त्रता वर्णन करके अब कहते हैं कि वही मायी राम हैं। उनके ऊपर माया का कोई प्रभाव नहीं पड़ सकता। इसी बात को दिखलाने के लिए उनका यथार्थ रूप वर्णन करते हैं। माया तो असत् जड़ दुःखरूपा है और रामजी सत् चित् आनन्द घनरूप हैं। घन कहने का भाव यह कि माया के प्रवेश के लिए सूक्ष्मातिसूक्ष्म छिद्र भी नहीं है अथवा रामजी सच्चिदानन्द दिनेश हैं। उनके सम्मुख मोह तम जा नहीं सकता। रामजी अजन्मा है। उनका जन्म होता ही नहीं। हुआ भी नहीं। उनके जन्म कर्म दिव्य हैं। उनकी योगमाया द्वारा जन्म हुआ सा प्रतीत होता है। वे विज्ञानरूप हैं। अज्ञान को वहाँ पहुँच कहाँ? वे बलधाम हैं। उन्हीं से बल पाकर माया संसार की सृष्टि करती है। उनसे पृथक् माया कुछ ठहरती ही नहीं। उन पर प्रभाव क्या डालेगी? वही व्यापक हैं और वही व्याप्य हैं। वे सर्वरूप हैं। बन्ध भी उनसे पृथक् कोई वस्तु नहीं है। वे निरंश होते हुए भी अनन्त हैं। बन्ध तो परिच्छिन्न पदार्थ का होता है। वे पूर्ण हैं। अमोघ शक्ति रूप हैं। उनसे पृथक् जो कुछ है सब मोघ है :

व्यर्थ है। वे ही भगवान् हैं, समस्त ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री, ज्ञान, वैराग्य के अक्षय भण्डार हैं।

अगुन अदभ्र गिरा गोतीता। सब दरसी अनबद्य अजीता ॥
निर्मम निराकार निर्मोहा। नित्य निरंजन सुख संदोहा ॥३॥

अर्थ : निर्गुण, अनल्प, वाणी और इन्द्रियों से परे, सर्वद्रष्टा, दोषरहित, अजित, निर्मल, निराकार, मोहरहित, नित्य निर्लेप और सुखराशि हैं।

व्याख्या : वे गुणत्रय सत्त्व रज तम से परे हैं। ब्रह्म हैं, सम्पूर्ण हैं। अतः : न तत्र चक्षुर्गच्छति न वाक् गच्छति नो मनः। वहाँ मन वाणी की गति नहीं है। वे सबके देखनेवाले हैं। अतः वे जाने नहीं जा सकते। यथा : विज्ञातारं वा अरे केन विजानीयात्। सदा ब्रह्म की ही जय है। क्योंकि वही उत्कृष्ट है। अतः वे अजित हैं। निर्मल भी वही हैं। उनमें विजातीय द्रव्य का प्रवेश नहीं है। अपरिच्छिन्न होने से वे आकाश की भाँति निराकार हैं। अतः उन तक मोह की गति नहीं है। विकलता तो मोह से होती है। वे तो नित्यनिर्लेप हैं और सुख की राशि हैं।

प्रकृति पार प्रभु सब उरबासी। ब्रह्म निरीह बिरज अबिनासी ॥
इहाँ मोह कर कारन नांही। रबि सनमुख तम कबहुँक कि जाँहीं ॥४॥

अर्थ : प्रभु प्रकृति से परे हैं। सबके उर में वास करनेवाले हैं। ब्रह्म हैं। चेष्टा रहित हैं। रज रहित तथा नाश रहित हैं। यहाँ मोह का कारण नहीं है। क्या सूर्य के सामने कभी अन्धकार जा सकता है?

व्याख्या : सत्त्व रज और तम की साम्यावस्था को प्रकृति कहते हैं। यही सृष्टि का मूल है। परन्तु सरकार तो इससे भी परे हैं। फिर भी सभी का हृदयदेश उनके आविर्भाव का स्थान है। यथा : ईश्वर : सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति। वही ब्रह्म हैं। वही निरीह हैं। क्योंकि चेष्टा तो परिच्छिन्न पदार्थ में होती है। वे ही दुःख से रहित अविनाशी हैं। शेष सब कुछ विनाशी है।

मोह का कारण है अभिमान। यथा : संसृति मूल सूल प्रद नाना। सकल सोक दायक अभिमाना। राम ब्रह्म में अभिमान ही नहीं है। अहमिति अभिमान जीव का धर्म है। अभिमान अन्धकार है। यथा : त्यागहु तम अभिमान। यह राम सच्चिदानन्द दिनेश के सामने जा नहीं सकता। अतः कहते हैं कि यहाँ मोह का कारण नहीं है। और सब जगह मोह का कारण : अभिमान है। अतः वहाँ मोह का प्रभाव चल सकता है।

दो. भगत हेतु भगवान प्रभु, राम धरेउ तनु भूप।
किये चरित पावन परम, प्राकृत नर अनुरूप ॥७२ क.
जथा अनेक बेष धरि, नृत्य करै नट कोइ।
सोइ सोइ भाव देखावै, आपु न होइ न सोइ ॥७२॥

अर्थ : भक्तों के लिए भगवान् प्रभु रामजी ने राजा का रूप धारण किया और साधारण मनुष्यों के अनुरूप परम पावन चरित्र किये। जिस भाँति कोई नट अनेक वेष धर कर अभिनय करता है और जैसा वैसा दिखलता है। पर आप वैसा नहीं हो जाता।

व्याख्या : सरकार ने भूपरूप भक्त के लिए धारण किया। भाव यह कि जीवों की भाँति कर्म के परतन्त्र होकर देह नहीं धारण किया। जन्म ग्रहण करने में उनकी स्वतन्त्रता है। उन्होंने अपने भक्तों पर अनुग्रह करने के लिए देह धारण किया और प्राकृत नरों की भाँति चरित्र किया। पर वे परम पावन थे। भक्त नारद ने शाप दिया : बंचेउ मोहि जवन धरि देहा। सोइ तनु धरहु श्राप मम एहा। मम अपकार कीन्ह तुम भारी। नारि बिरह तुम होब दुखारी। अतः तदनुसार देह धारण करके नारी विरह में दुःखारी होने का अभिनय किया।

नट अनेक वेष धारण करके नृत्य करता है। जिस समय जैसा वेष धारण करता है उस समय वैसा ही अभिनय करता है। पर जैसा वह अभिनय करता है वैसा वह नहीं हो जाता। इसीलिए यहाँ पर उस प्रभु की उपमा नट से दी गयी है। वह अनेक अवतार धारण करता है। यथा : मीन कमठ सूकर नर हरी। बामन परसुराम बपुधरी। जिस समय जैसा वेष धारण करता है वैसा ही अभिनय करता है। रामावतार में तो एक ही समय दो वेष धारण करके एकदम एक दूसरे से विरुद्ध भाव के अभिनय का उदाहरण राम परशुराम सम्वाद में पाया जाता है। ऐसे सभी प्रकार के अभिनय उसकी लीला है। इसी भाँति युद्ध के अभिनय में शत्रु के हाथ बँध जाना और तदनुकूल विकलता प्रदर्शन लोलामात्र है। वस्तुतः विकलता से उस समय भी उनका कोई सम्बन्ध नहीं था। क्योंकि वे तो सहज आनन्द के निधान हैं।

असि रघुपति लीला उरगारी। दनुज बिमोहनि जन सुखकारी॥
जें मति मलिन बिषय बस कामी। प्रभु पर मोह धरहिं इमि स्वामी॥१॥

अर्थ : हे गरुड़जी ! रामजी की ऐसी लीला है कि वह दानवों को मोह डालती है और भक्तों का कल्याण करती है। जो मलिन बुद्धिवाले विषयवश्य कामी हैं हे स्वामी ! वे प्रभु पर इस प्रकार से मोह का आरोप करते हैं।

व्याख्या : रघुपति से श्री रामावतार कहा। सरकार का प्राकृत नर के अनुरूप चरित्र करना वैसा ही भाव दिखलाना और स्वयं वैसा न होना लीला है। यथा : उमा राम गुन गूढ पंडित मुनि पावहिं बिरति। पावहिं मोह बिमूढ जे हरि बिमुख न धर्म रति। रघुपति को लीला ऐसो हो गूढ़ है कि आसुरी सम्पत्तिवालों को उससे मोह होता है और जो भगवान् के भक्त हैं दैवो सम्पत्तिवाले हैं उन्हें सुख होता है।

कारण कहते हैं कि आसुरो सम्पत्तिवाले विषयवश कामी होते हैं। उनकी बुद्धि मलिन होती है। उस बुद्धि मालिन्य के तीन भेद हैं : १. बुद्धि मान्द्य २. कुतर्क और ३. विपर्यय दुराग्रह। इन्हीं कारणों से मनुष्य विमूढ हो जाता है। भगवान् की

लीला में उसे मोह होता है। अर्थात् वर्तमान ज्ञान के चार प्रतिबन्ध कहे : १. विषयासक्ति २. बुद्धिमान्द्य ३. कुतर्क और ४. विपर्यय दुराग्रह। इनमें से विषयासक्ति ही सबका मूल है।

नयन दोष जाकहु जब होई। पीत बरन ससि कहुँ कह सोई॥
जब जेहि दिसि भ्रम होइ खगेसा। सो कह पच्छिम उएउ दिनेसा॥२॥

अर्थ : जब जिनकी आँखों में दोष होता है तो वह कहता है कि चन्द्रमा का रंग पीला है और जब जिसको दिग् भ्रम होता है तो हे गरुड़जी ! वह कहता है कि सूर्य पश्चिम में उदय हुए हैं।

व्याख्या : विषयासक्त स्वयं विषय में लगा हुआ है। सरकार की प्राकृत नर अनुरूप लीला को देखकर उन्हें अपनी भाँति विषयासक्त मान बैठता है। उसमें इतनी घोर आसक्ति है कि वह उनकी लीला पर अभिनय की दृष्टि कर नहीं सकता। उदाहरण देते हैं कि काच कामलादि दोषवाले को पित्त के दोष से चन्द्र पीले मालूम पड़ते हैं। चन्द्र श्वेत हैं। दोष उसकी दृष्टि में हैं : जिसके कारण से वह चन्द्र को पीला देख रहा है। इसी भाँति विषयासक्त पुरुष लोकसंग्रही पूर्ण ज्ञानी के कर्मों को आसक्तिरहित नहीं मान सकता।

बुद्धिमान्द्यवालों की उपमा दिग्भ्रमवालों से दी गयी है। यह दिग्भ्रम बुद्धिमान्द्य से कभी हो जाता है तो उसे मालूम पड़ता है कि सूर्य पश्चिम दिशा से उदय हो रहे हैं। वह स्वयं जानता है कि सूर्य जब उदय होंगे तब पूर्व से ही होंगे। लोग भी उसकी मूढ़ता पर हँस रहे हैं। पर वह अपने अनुभव को क्या करे उसे वैसा ही मालूम हो रहा है। इसी भाँति मन्दबुद्धि सरकार की लीला का उलटा अर्थ लगाता है। वे तो कामियों की दीनता का अभिनय करते हैं। पर वह समझता है कि इन्हें स्त्री विरह का पार नहीं मिल रहा है।

नौकारूढ चलत जग देखा। अचल मोह बस आपुहि लेखा॥
बालक भ्रमहि न भ्रमहि गृहादी। कहहिं परसपर मिथ्या बादी॥३॥

अर्थ : नाव पर सवार संसार को तो चलता हुआ देखता है और अज्ञान वश अपने को निश्चल समझता है। बालक नहीं घूमते घर आदि ही घूम रहे हैं ऐसी बातें झूठे आपस में कहा करते हैं।

व्याख्या : जो कोई नाव पर सवार होता है उसे संसार चलता हुआ दिखायी पड़ता है और स्वयं स्थिरता का अनुभव करता है। फिर भी वही अपने अनुभव को सत्य नहीं मानता। उसे वह भ्रम समझता है। परन्तु कुतर्की कहते हैं कि प्रत्यक्ष ही सब प्रमाणों में ज्येष्ठ और श्रेष्ठ है। प्रत्यक्ष पूर्वक ही अनुमानादि की प्रवृत्ति होती है। अतः किसी अवस्था में प्रत्यक्ष का अवहेलन नहीं किया जा सकता। हम लोग हाथ पैर बिना हिलाये हुए बैठे हैं और प्रत्यक्ष देखते हैं कि संसार चलता है। इसे अप्रमाण कैसे माना जा सकता है। इसी भाँति प्रत्यक्ष नागपाश में बँधे हुए

रामजी को वे नित्यमुक्त नहीं मान सकते। यथा : खेद खिन्न मन तर्क बढ़ाई। भयउ मोह बस तुम्हरिहि नाई। खर्व निसाचर बाँधेउ नाग पास सोई राम।

विपर्यय दुराग्रहवाले तो नाहक झगड़ा खड़ा करते हैं। स्वयं जानते हैं कि बात ऐसी नहीं है। फिर भी दुराग्रह वश वही गीत गाये जाते हैं। लड़के घुमरी खेलते हैं तो गृह वृक्षादि जो उनके एक ओर थे दूसरी ओर हो जाते हैं। जो विपर्यय दुराग्रही कहते हैं कि लड़के नहीं घूम रहे हैं। गृह आदिक ही घूम रहे हैं। वे मिथ्यावादी हैं। उन्हें मिथ्या प्रिय है। अतः परस्पर ऐसी ही बातें करते हैं। वे प्रमाण में उन लड़कों को देंगे जो घुमरी खेल रहे थे। उन्हें तो स्पष्ट ही गृह आदिक घूमता प्रतीत होता है। इसी भाँति बातें बनाया करते हैं : मिथ्या माहुर सज्जनहि खलहि गरल सम साँच। यथा : तेहि रावन कहँ लघु कहसि नर कर करसि बखान। रे कपि बर्बर खर्व खल अब जाना तव ज्ञान।

हरि बिषइक अस मोह बिहंगा। सपनेहु नहि अग्यान प्रसंगा॥
माया बस मतिमंद अभागी। हृदय जबनिका बहु बिधि लागी॥४॥
ते सठ हठबस संसय करहीं। निज अग्यान राम पर धरहीं॥५॥

अर्थ : हे गरुड़जी ! हरि विषयक ऐसा ही मोह होता है। वहाँ तो स्वप्न में भी अज्ञान का प्रसङ्ग नहीं है। माया के वश मतिमन्द अभागी लोग जिनके हृदय पर अनेक प्रकार से पर्दा पड़ा हुआ है वे ही शठ हठ के वश होकर संशय करते हैं और अपने अज्ञान का आरोप रामजी पर करते हैं।

व्याख्या : हरि विषयक मोह भी वैसा ही है। जैसा कि काच कामलादि दोषवाले को, दिग्भ्रमवाले को, नौकारूढ को तथा विपर्यय दुराग्रही को होता है। रामजी में तो मोह का कोई प्रसंग ही नहीं है। यथा : राम सच्चिदानन्द दिनेसा। नहि तहँ मोह निसा लवलेसा। यदि स्वप्न में भी ऐसा प्रसंग आपड़े तो समझना चाहिए कि वह स्वप्न हरिविषयक था ही नहीं।

जो भवभंजन पदविमुख अभागी हैं वे माया के वश में पड़े हुए हैं। मतिमन्द हैं। उनके हृदय में अनेक प्रकार के आवरण पड़े हुए हैं। उन्हें रामरूप का ज्ञान नहीं हो सकता। अज्ञानेनावृतं ज्ञानं तेन मुह्यन्ति जन्तवः। वे अपने संशय के दूर करने का प्रयत्न नहीं करते। यत्नपूर्वक उस संशय को बनाये रखते हैं। अतः उन्हें शठ कहा। शठ को अपने हृदय में अपने पक्ष का बहुत बड़ा आग्रह होता है। उसे वह छोड़ना नहीं चाहता। वह अपने अज्ञान का आरोप राम पर करता है। जिस भाँति स्वयं अज्ञानी होकर दुःख भोगता है उसी भाँति रामजी को भी जानता है।

दो. काम क्रोध मद लोभ रत, गृहासक्त दुख रूप।
ते किमि जानहि रघुपतिहि, मूढ परे तम कूप॥७३ क.
निर्गुन रूप सुलभ अति, सगुन जानि नहि कोइ।
सुगम अगम नाना चरित, सुनि मुनि मन भ्रम होइ॥७३॥

अर्थ : जो काम क्रोध मद और लोभ में लगे हुए हैं। घर में लिप्त हैं। दुःख के रूप हैं। वे रघुपति को कैसे जानेंगे। वे मूढ़ तो अन्धकार के कुएँ में पड़े हुए हैं। निर्गुण रूप अत्यन्त सुलभ है। सगुण को ही कोई नहीं जानता। सगुण चरित्र ऐसे सुगम और अगम है कि उन्हें सुनकर मुनि के भी मन में भ्रम होता है।

व्याख्या : काम क्रोध मद और लोभ तो चारों नरक के पन्थ हैं। सो जो उस रास्ते पर लगे हुए हैं वे गृह में लिप्त रहते हैं। उन्हें संसाररूपी कूप के मण्डूक समझना चाहिए। वह प्रकृति पार पुरुष को जान नहीं सकते।

प्रकृति पार पुरुष को जानना अत्यन्त सुलभ है। क्योंकि उसमें कुछ करना धरना नहीं है। केवल चुप होकर बैठ जाने से वह जाना जाता है। यथा : सद्वस्तु शुद्धं त्वस्माभिर्निश्चितैरनुभूयते। तूष्णीं स्थितौ न शून्यत्वं शून्यबुद्धेश्च वर्जनात्। पञ्चदशी। अतः उसे अत्यन्त सुलभ कहा। परन्तु सगुण ब्रह्म को कोई नहीं जानता। वह तो मायी है। बिना माया को जाने वह जाना नहीं जा सकता और माया सत्त्वासत्त्व से अनिर्वचनीया है। उसे कोई कैसे जान सकता है। अतः उन मायी का चरित्र ऐसा है कि समझ में ही नहीं आता। यथा : कुलिसहु चाहि कठोर अति कोमल कुसुमहु चाहि। चित खगेस अस राम कर समुझि परै कहु काहि।

राम रहस्य : उमा के ग्यारहवें प्रश्न का उत्तर

सुनु खगेस रघुपति प्रभुताई। कहौं जथामति कथा सुहाई॥
जेहि बिधि मोह भयउ प्रभु मोही। सोउ सब कथा सुनावौं तोही॥१॥

अर्थ : हे पक्षिराट्। रघुपति की प्रभुता सुनिये। मैं बुद्धि के अनुसार सुन्दर कथा कहता हूँ। हे प्रभो! जिस प्रकार मुझे मोह हुआ है वह सब कथा तुम्हें सुनाता हूँ।

व्याख्या : ऊपर कह आये हैं : अस रघुपति लीला उरगारी। दनुज बिमोहनि जन सुखकारी। सो दनुज विमोहनि का निरूपण करके अब सुखकारित्व दिखलाते हैं। सरकार की प्रभुता का वर्णन करते हैं। उसका वर्णन यथामति ही हो सकता है। कहते हैं कि यह न समझना कि मुझ ही को मोह हुआ। नहीं मुझे भी मोह हुआ था। मैं भी उससे बचा नहीं हूँ। उसके सुनाने में सरकार की प्रभुता का वर्णन है। यह तुम्हारे ऐसे पात्र से ही कहा जा सकता है।

रामकृपा भाजन तुम ताता। हरिगुन प्रीति मोहि सुखदाता॥
ताते नहि कछु तुमहि दुरावौं। परम रहस्य मनोहर गावौं॥२॥

अर्थ : हे तात! तुम रामजी के कृपापात्र हो। तुम्हें हरि के गुणों पर प्रीति है। मुझे सुख देनेवाले हो। इसलिए तुम से कुछ छिपाता नहीं। मनोहर परम रहस्य का वर्णन कर रहा हूँ।

व्याख्या : रहस्य सबसे नहीं कहा जाता। मैं जो इस समय वर्णन करूँगा वह रहस्य ही नहीं परम रहस्य है। अत्यन्त गोप्य है। परन्तु आप से छिपाया नहीं

जा सकता। क्योंकि आपमें उसके जानने की पात्रता है। रहस्य जानने के वे ही पात्र हैं जिन पर भगवत्कृपा हो। आप पर भगवत्कृपा है। क्योंकि आप रघुनायक के प्रिय दास हैं। जिन्हें सरकार के गुणगण प्रिय लगें उनसे भी रहस्य नहीं छिपाया जाता। यथा : श्रोता सुमति सुसील सुचि कथा रसिक हरिदास। पाइ उमा अतिगोप्यमपि सज्जन करहिं प्रकास। तीसरी बात यह है कि जो अपने को सुख दे उससे भी रहस्य नहीं छिपाया जाता। आपने मेरे यहाँ आकर मुझ पर दया की। मुझे सन्तसंग का सुख हुआ। अतः आप से रहस्य नहीं छिपाया जा सकता।

सुनहु राम कर सहज सुभाऊ। जन अभिमान न राखहिं काऊ ॥
संसृत मूल सूल प्रद नाना। सकल सोक दायक अभिमाना ॥३॥

अर्थ : रामजी का सहज स्वभाव सुनो। वे भक्त का अभिमान कभी रहने नहीं देते। अभिमान संसार का मूल है और नाना प्रकार के शूल का देनेवाला है। सभी शोकों का भी देनेवाला है।

व्याख्या : भुसुण्डिजी रामजी का स्वभाव जानते हैं क्योंकि उन्हें रामभजन छोड़कर दूसरी बात अच्छी नहीं लगती। यथा : तजि हरिभजन काज नहीं दूजा। शिवजी ने उमा से कहा : उमा राम सुभाव जेहि जाना। ताहि भजन तजि भाव न आना। अतः यह सिद्ध है कि भुसुण्डिजी रामजी के स्वभाव के जानकार हैं। अतः भुसुण्डिजी जैसा रामजी का स्वभाव बतलावें वही ठीक है नहीं तो राम के स्वभाव को पहिचानना बड़ा कठिन कार्य है। सो भुसुण्डिजी रामजी का स्वभाव गरुड़जी को बतलाते हैं कि वे भक्त के अभिमान को तो कभी रहने ही नहीं देते। यथा : करुनानिधि मन दीख बिचारी। उर अंकुरेउ गर्ब तरु भारी। बेगि सो मैं डारिहौं उखारी। पन हमार सेवक हितकारी। भक्त के हित के लिए उसका अभिमान भङ्ग करते हैं। क्योंकि अभिमान से बड़ा अनिष्ट होता है। अभिमान ही संसार का मूल है। इसी के कारण अनेक प्रकार के शूल होते हैं। अनेक प्रकार का शोक होता है।

तातें करहिं कृपानिधि दूरी। सेवक पर ममता अतिभूरी ॥
जिमि सिसु तन ब्रन होइ गोसाईं। मातु चिराव कठिन की नाईं ॥४॥

अर्थ : इसलिए कृपानिधि उसे दूर करते हैं। उन्हें सेवक पर बड़ी कृपा है। जैसे बच्चे के शरीर में फोड़ा हो जाय तो माता उसको कठिन चित्त करके चिरवा देती है।

व्याख्या : सरकार भक्त का मङ्गल चाहते हैं। उसे शूल तथा शोक से बचाना चाहते हैं। अतः उसके अभिमान को भङ्ग कर देते हैं। मान भङ्ग से बड़ा दुःख होता है। पर उस दुःख को सरकार नहीं गिनते। उसके भविष्य के सुख पर उनकी दृष्टि रहती है। मान भङ्ग होने से भक्त दुःखी होता है। रो पड़ता है। अधीर हो जाता है। पर जब तक उसका अभिमान निर्मूल न हो जाय तब तक सरकार निष्ठुर होकर उसमें से अभिमान के लेश को भी बिना निकाले नहीं छोड़ते। वह निष्ठुरता नहीं है

परम कृपा है। जैसे छोटे बच्चे को फोड़ा होने पर माँ छाती कड़ी करके उसपर छुरी चलवाती है। नहीं तो उस बच्चे के एक रक्तबिन्दु के लिए वह अपना जीवन निछावर कर देती। परन्तु उस समय बच्चे के रोने धोने को और उसके धैर्य त्याग का कुछ भी ध्यान नहीं करती। बच्चा यदि प्रौढ़ हो जाय तो उसका फोड़ा नहीं चिरवाती। जानती है कि यह समझदार हो गया। अपना फोड़ा स्वयं चिरवा लेगा।

दो. जदपि प्रथम दुख पावै, रोवै बाल अधीर।
ब्याधि नास हित जननी, गनति न सो सिसु पीर ॥७४ क.

तिमि रघुपति निज दासकर, हरहिं मान हित लागि।
तुलसिदास ऐसे प्रभुहि, कस न भजहु भ्रम त्यागि ॥७४॥

अर्थ : यद्यपि पहिले दुःख पाता है और अधीर होकर बच्चा रोता है। परन्तु व्याधि के नाश के लिए माँ उसके दुःख को गिनती नहीं। इसी भाँति रामजी अपने दास के मान को उसके हित के लिए हरण करते हैं। तुलसीदास ऐसे प्रभु को भ्रम छोड़कर क्यों नहीं भजता।

व्याख्या : जिस भाँति फोड़ा होने से वेदना होती है और वह बढ़ती ही जाती है। यदि वह फोड़ा न चीरा जाय तो घातक सिद्ध होता है और कई फोड़े तो ऐसे विषैले होते हैं कि उन्हें पैदा होते ही चीर देना चाहिए। माता यह समझती है छोटा बच्चा उसे नहीं समझता। वह नहीं चाहता उसके फोड़ेको कोई स्पर्श करे। परन्तु माता बलपूर्वक उसके फोड़े को चिरवाती है। बच्चे के रोने धोने पर कुछ भी ध्यान नहीं देती। उस समय की उसकी कठोरता वस्तुतः कृपालुता है। इसी भाँति परमेश्वर अपने भक्त के अभिमान का छेदन करते हैं। तब उसे बड़ा कष्ट होता है। वह बहुत दुःखी होता है। विलाप करता है। परन्तु प्रभु कठोर होकर उसका अभिमान छेदन कर देते हैं। वह कठोरता नहीं है दयालुता है। गोस्वामीजी कहते है कि ऐसे माता के समान प्रेम करनेवाले प्रभु को तू भ्रम छोड़कर क्यों नहीं भजता ? जब कष्ट आवे तो समझना चाहिए कि परमेश्वर की ओर से उसके भले के लिए कष्ट आया हुआ है और उसे उनकी कृपा समझकर सहन करे और भजन में अधिक दत्तचित्त हो।

रामकृपा आपनि जड़ताई। कहौं खगेस सुनहु मन लाई ॥
जब जब राम मनुज तनु धरही। भक्त हेतु लीला बहु करहीं ॥१॥

अर्थ : हे पक्षिराट् ! मैं रामजी की कृपा और अपनी जड़ता का हाल कहता हूँ। मन लगाकर सुनिये। जब जब रामजी मनुष्य शरीर धारण करते हैं और भक्तों के लिए बहुत सी लीला करते हैं।

व्याख्या : भुसुण्डिजी कहते हैं कि रामजी की कृपा और अपनी जड़ताई अर्थात् मोह का वर्णन करता हूँ। सरकार जड़ता पर क्रोध नहीं करते। कृपा करते हैं।

रामजी की कृपा की महत्ता तो मेरी जड़ता सुनने पर ही मालूम पड़ेगी। अतः मेरी जड़ता भी रामकृपा के सम्बन्ध से एकाग्रचित्त द्वारा सुनने योग्य है।

रामजी अनेक शरीर धारण करते हैं। कभी मीन का कभी कमठ का कभी शूकरादि का भी शरीर धारण करते हैं। परन्तु जब मनुजशरीर धारण करते हैं तब भक्त के लिए अनेक लीला करते हैं। भाव यह कि सभी अवतार भक्त के लिए ही होते हैं। परन्तु मीन कमठादि अवतार में बहुत लीला नहीं होती। बहुत सी लीलाओं का समावेश मनुष्य अवतार में ही सम्भव है। सरकार की जितनी चेष्टाएँ होती हैं सब भक्तों के लिए होती हैं। अपना कोई प्रयोजन नहीं रहता। क्योंकि रामजी पूर्णकाम हैं।

तब तब अवध पुरी में जाऊँ। बाल चरित बिलोकि हरषाऊँ॥
जनम महोत्सव देखौं जाई। वर्ष पाँच तहँ रहउ लुभाई॥२॥

अर्थ : तब तब मैं अवधपुरी जाता हूँ और बालचरित्र देखकर हर्षित होता हूँ। वहाँ जाकर जन्म महोत्सव देखता हूँ और पाँच वर्ष तक वहीं लुभाया हुआ रह जाता हूँ।

व्याख्या : नरलीला तो सरकार की वामन परशुरामादि अवतारों में भी होती है पर मैं नहीं जाता। मैं तो तब जाता हूँ जब अवधपुरी में अवतार होता है। अर्थात् श्रीरामावतार का बालचरित्र देखने जाता हूँ। उस चरित्र को देखकर मुझे बड़ा हर्ष होता है। अन्य अवतारों के बालचरित्र में उतना आनन्द कहाँ। चक्रवर्ती के राजकुमार में जितना बालचरित्र का अवकाश है उतना अन्य बालकों के चरित्र में नहीं होता।

जन्म महोत्सव के समय ही मैं पहुंच जाता हूँ। यथा : कागभुसुंडि संग हम दोऊ। मनुज रूप जानै नहि कोऊ। परमानंद प्रेम सुख फूले। बीथिन्ह फिरहिं मगन मन भूले। भुसुण्डिजी कहते हैं कि मैं शङ्करजी के चले आने पर भी पाँच वर्ष वहाँ ठहर जाता हूँ। मैं ऐसा लुब्ध हो जाता हूँ कि वे चरण मुझसे छूटते ही नहीं।

श्रीरामावतार कल्प में एक ही बार होता है। उसे देखने भुसुण्डिजी बराबर जाया करते हैं। जैसे लोग हर साल रामलीला देखने जाया करते हैं।

इष्ट देव मम बालक रामा। सोभा बपुष कोटिसत कामा॥
निज प्रभु बदन निहारि निहारी। लोचन सुफल करौं उरगारी॥३॥
लघुबायस बपु धरि हरि संगा। देखौं बाल चरित बहुरंगा॥४॥

अर्थ : मेरे इष्टदेव बालमुकुन्द हैं। जिनकी शरीर में सौ करोड़ कामदेव की शोभा है। हे गरुड़जी! मैं अपने प्रभु का वदन देख देखकर अपनी आँखों को सफल किया करता हूँ। छोटे कौए का रूप बनाकर हरि के साथ साथ उनके बहुरंगी चरित्र को देखा करता हूँ।

व्याख्या : भुसुण्डिजी कहते हैं कि बालक राम ही मेरे इष्टदेव हैं। क्योंकि गुरुजी से उन्हीं की उपासना मुझे मिली थी। यथा : बालक रूप राम कर ध्याना। कहेउ मोहि मुनि कृपानिधाना। अतः पाँच वर्ष तक मैं अपने इष्टमूर्तिका दर्शन करता रहा। बालरूप में जो शोभा रहती है बड़े होने पर वह बात नहीं रह जाती। अतः पाँच वर्ष तक ही मैं रहता हूँ। सरकार का सौन्दर्य सौ करोड़ कामदेव से भी कहीं बढ़कर है। पाँच वर्ष तक उसी शोभा को देखता हूँ और नेत्रों को सुफल करता हूँ। मैं भी अपना रूप छोटे काग सा बना लेता हूँ जहाँ जहाँ सरकार जाते हैं वहाँ वहाँ मैं भी पहुँच जाता हूँ और बहुरङ्गा बालचरित्र देखता हूँ। यथा :

कबहूँ ससि माँगत आरि करैं कबहुँ प्रतिबिम्ब निहारि डरैं।
कबहूँ करताल बजाइ के नाचत मातु सबै मन मोद भरैं॥
कबहूँ रिसिआइ कहैं हठिके पुनि लेत सोई जेहि लागि अरैं।
अवधेस के बालक चारि सदा तुलसी मन मंदिर में बिहरैं॥

दो. लरिकाई जहँ जहँ फिरहिं, तहँ तहँ संग उड़ाउँ।
जूठन परे अजिर महुँ, सो उठाइ कर खाउँ॥७५ क.
एक बार अति सै सब, चरित किये रघुबीर।
सुमिरत प्रभु लीला सोइ, पुलकित भयउ सरीर॥७५॥

अर्थ : बचपन में जहाँ जहाँ फिरते हैं वहाँ वहाँ मैं भी साथ साथ उड़ता जाता हूँ। आँगन में जो जूठा गिरता है उसे उठाकर खा जाता हूँ। एक बार रघुवीर ने सभी चरित्र अत्यन्त अधिकता से किया। अथवा शिशु चरित्र अति अधिकता से किया। प्रभु की वह लीला स्मरण करके भुसुण्डिजी का शरीर पुलकित हो उठा।

व्याख्या : बचपन में स्थिरता कहाँ ? बच्चे फिरा ही करते हैं। नीचे वे घूमते फिरते थे ऊपर ऊपर मैं उड़ता था। जिसमें मुख का सामना बना रहे। यथा : निज प्रभु बदन निहारि निहारी। लोचन सुफल करौं उरगारी। घूम घूमकर खाना लड़कपन में ही होता है। अतः आँगन में जूठन गिरता था उसी को मैं चुगकर खाता था। यज्ञोच्छिष्ट ग्रहण की बड़ी महिमा है और यह तो साक्षात् यज्ञपुरुष का उच्छिष्ट था।

अति सैसव पाठ मानने से यह अर्थ करना पड़ेगा कि बचपन की लीला में अत्यन्त अधिकता हुई और अति सय सब : पाठ मानने से यह अर्थ करना होगा कि सभी लीला में अतिशयता हुई। श्रीवल्लभसम्प्रदाय भी एक रामावतार को पूर्णावतार मानता है। श्रीगोस्वामीजी भी एक रामावतार को ब्रह्म का अवतार मानते हैं। अतः उसी अवतार में लीला की अतिशयता कही जा सकती है। उसी का वर्णन यहाँ भुसुण्डिजी कर रहे हैं। वह लीला ऐसी हुई कि उसके स्मरण से भुसुण्डिजी को पुलक हो गया।

कहै भुसुण्डि सुनहु खगनायक। रामचरित सेवक सुखदायक॥
नृप मंदिर सुन्दर सब भाँती। खचित कनक मनि नाना जाती॥१॥

अर्थ : भुसुण्डिजी कहने लगे कि हे पक्षिराट् ! सुनो। रामजी का चरित सेवक को सुख देनेवाला है। राजा का घर सब प्रकार से सुन्दर है। सोने के भवन बने हुए हैं। उनमें अनेक जाति की मणियाँ लगी हुई हैं।

व्याख्या : प्रभु की लीला का स्मरण करते ही भुसुण्डिजी आनन्द में मग्न हो गये। तत्पश्चात् गरुड़जी को सम्बोधन करके कहने लगे कि रामजी का चरित्र सेवक के सुख देने के लिए है। जो जो चरित्र करते हैं सो सब सेवक के सुख के लिए करते हैं। यथा :

राज मराल बिराजत बिहरत जे हर हृदय तड़ाग।
ते नृप अजिर जानु कर धावत धरन चटक चल काग॥
सिद्ध सिहात सराहत मुनिगन कहैं सुर किन्नर नाग।
ह्वै वरु बिहँग बिलोकिय बालक बसि पुर उपबन बाग॥
परिजन सहित राय रानिन्ह कियो मज्जन प्रेम प्रयाग।
तुलसी फल ताके चारो मनि मरकत पंकज राग॥ गीता०

अयोध्या में सभी मन्दिर सुन्दर हैं परन्तु महाराज का भवन सब भाँति सुन्दर है। सोने में अनेक प्रकार के मणि जड़े हुए हैं। बैकुण्ठ की भाँति है। मानो उसे ब्रह्मदेव ने लक्ष्मीजी के विलास के लिए सँवार कर बनाया है। यथा : हाटक मनि रत्न खचित रचित इन्द्र मंदिराभ इंदिरा निवास सदन बिधि रच्यो सँवारी।

बरनि न जाइ रुचिर अंगनाई। जहँ खेलहिं नित चारिउ भाई॥
बाल बिनोद करत रघुराई। बिचरत अजिर जननि सुखदाई॥२॥

अर्थ : सुन्दर आँगन का वर्णन नहीं किया जा सकता जहाँ नित्य चारो भाई खेलते थे। बाल क्रीड़ा करते हुए रामजी आँगन में विचरते थे। जिससे माताओं को सुख होता था।

व्याख्या : कवि कहते हैं कि भवन का वर्णन किया। पर आँगन का वर्णन करते नहीं बनता। यह चारो भाइयों के खेलने के लिए सजाया गया है। चारो भाई तीनों महारानियों के महलों से आकर नित्य यहीं खेलते हैं। सरकार का बाल विनोद माताओं के सुख के लिए है। सखी कहती हैं :

नेकु बिलोकु री रघुवरनि।
चारि फल त्रिपुरारि तोको दियो कर नृपघरनि॥
बाल भूषन बसन तन सुंदर रुचिर रज भरनि।
परसपर खेलनि अजिर उठि चलनि गिरि गिरिपरनि॥
झुकनि झाँकनि छाँह सो किलकनि नटनि हठि लरनि।
तोतरी बोलनि बिलोकनि मोहनी मन हरनि॥
सखि बचन सुनि कौसिला लखि सुढर पासे ढरनि।
लेति भरि भरि अंक सैंतति पैंत जनु दुहु करनि॥

चरित निरखत बिबुध तुलसी ओट दे जल धरनि ।
चहत सुर सुरपति भयो सुरपति भयो चहै तरनि ॥

मरकत मृदुल कलेवर स्यामा । अंग अंग प्रति छबि बहु कामा ॥
नव राजीव अरुन मृदु चरना । पदज रुचिर नख ससि दुति हरना ॥३॥

अर्थ : नीलमणि की भाँति श्यामल शरीर कोमल था । अङ्ग अङ्ग में अनेक कामदेवों की छवि थी । नये कमल से लाल और कोमल चरण थे । उँगलियाँ सुन्दर थीं और नख चन्द्र की द्युति को हरण करते थे ।

व्याख्या : शरीर की उपमा नीलमणि से देते हैं परन्तु वह मृदुल नहीं है । शरीर तो मृदुल भी है । पहिले कहा था : सोभा बपुष कोटि सत कामा । इसलिए एक एक अङ्ग पर अनेक काम की छवि बतला रहे हैं । यहाँ नखशिख वर्णन है । मनु शतरूपा के प्रसंग में कह आये हैं : नील सरोरुह नीलमनि नील नीर धर स्याम । यहाँ केवल नीलमणि से उपमा दिया । सरोरुह और नीरधर से उपमा बालकाण्ड में दे आये हैं । यथा : काम कोटि छबि धाम सरीरा । नीलकंज बारिद गंभीरा ।

चरणों की उपमा कमल से दी । परन्तु उसमें इतनी मृदुता और अरुणिमा कहाँ ? जिनकी हाथों से सेवा करते स्वयं जनकनन्दनी के कर कमल कड़े मालूम होते थे । यथा : गुर्वर्थे त्यक्तराज्यो व्यचरदनुवनं पद पद्भ्यां प्रियायाः पाणिस्पर्शाक्षमाभ्याम् । इत्यादि तथा : बसी मानहु चरन कमलनि अरुनता तजि तरनि । सुन्दर उँगलियाँ और नखों की शोभा चन्द्र की द्युति को हरण करनेवाली हैं । इसी से भक्तों के हृदय का अन्धकार दूर होगा ।

ललित अंक कुलिसादिक चारी । नूपुर चारु मधुर रवकारी ॥
चारु पुरट मनि रचित बनाई । कटि किंकिनि कल मुखर सुहाई ॥४॥

अर्थ : कुलिश आदिक चारों के सुन्दर चिह्न हैं । मधुर शब्द करनेवाला नूपुर है । सुन्दर सोना और मणि द्वारा रचकर बनायी हुई कमर की करधनी शब्द करनेवाली शोभित थी ।

व्याख्या : यहाँ अङ्क से चरणों की रेखा ही समझनी चाहिए । बालकाण्ड में : रेख कुलिस ध्वज अंकुस सोहै । एक कंज छूट गया था । सो यहाँ चार कहकर पूरा करते हैं । उत्तर में चारों को गिनाया है । यथा : ध्वज कुलिस अंकुस कंज जुत बन फिरत कंटक किन लहे । नूपुर की ध्वनि ऐसी मधुर है कि मुनि के मन को मोहती है ।

कटिकिंकिणी भी शब्द करती है पर नूपुर इतनी नहीं । नूपुर रवकारी है । किंकिणी कल मधुर है । स्वायम्भू मनु के प्रकरण में जो शिख नख वर्णन आया है । उसमें किंकिणी का वर्णन नहीं है । क्योंकि वह बालरूप का वर्णन नहीं था ।

दो. रेखा त्रय सुन्दर उदर, नाभी रुचिर गंभीर ।
उर आयत भ्राजत बिबिध, बाल बिभूषण चीर ॥७६॥

अर्थ : पेट में सुन्दर तीन रेखाएँ हैं। नाभि सुन्दर और गहरी है और चौड़ी छाती पर अनेक गहने बच्चों के लायक और कपड़े शोभित हैं।

व्याख्या : उदर त्रय रेखा का सभी जगह वर्णन है। बालकाण्ड में : नाभि गभीर जान जिन देखा कहा। मनु के प्रकरण में : नाभि मनोहर लेत जनु जमुनभवर छबि छीन कहा। बालकाण्ड में कहा : उर मनिमाल पदिक की सोभा। बिप्र चरन देखत मन लोभा। बालरूप होने से : उर श्रीवत्स रुचिर बनमाला। पदिकहार भूषन मनि जाला। नहीं कहा।

अरुन पानि नख करज मनोहर। बाहु बिसाल बिभूषन सुन्दर ॥
कन्ध बाल केहरि दर ग्रीवा। चारु चिबुक आनन छबि सीवा ॥१॥

अर्थ : लाल हथेली नख और उँगलियाँ सुन्दर थीं। विशाल बाहु में सुन्दर आभूषण थे। सिंह के बच्चे सा कन्धा और शंख सी ग्रीवा थी। ठुड्ढी सुन्दर और मुख तो छबि की सीमा था।

व्याख्या : लघु लघु लोहित ललित है। पद्पानि अधर इक रंग। सरकार की हथेली तलवा और ओठ ये तीनों एक रंग लाल है। छोटी छोटी गोड़ियाँ अँगुरियाँ छबीली छोटी नख जोति मोती मानो कमल दलनि पर। छोटे छोटे पैरों में छोटी छोटी उँगलियाँ हैं। जिनमें नख की ऐसी ज्योति है जैसे कमल के दलों पर मोती बिठाये गये हो। बाहु विशाल में ही सुन्दर विभूषण की शोभा होती है।

वीरों के कन्धे सिंह से होते हैं। सो सरकार के कन्धे बचपन में ही सिंह के बच्चे के कन्धों से हैं। ग्रीवा की उपमा शंख से दी जाती है। ठुड्ढी की कोई उपमा ही नहीं है। मुख का सौन्दर्य ऐसा है मानो यह सुन्दरता की सीमा है। ऐसी या इससे अधिक शोभा हो ही नहीं सकती।

कलबल बचन अधर अरुनारे। दुइ दुइ दसन बिसद बरबारे ॥
ललित कपोल मनोहर नासा। सकल सुखद ससि कर सम हासा ॥२॥

अर्थ : अस्पष्ट वचन और लाल ओठ थे। छोटे छोटे उज्ज्वल दो दो दाँत भी आगये थे। सुन्दर कपोल और मनहरण करनेवाली नासिका और सबको सुख देनेवाली चन्द्र के किरण सी हँसी थी।

व्याख्या : बाल बोल बिनु अर्थ के सुनि देत पदारथ चारि। जनु इन बचननि ते भये सुरतरु तापस त्रिपुरारि। जब बचपन में दो छोटे छोटे दाँत निकल आते हैं तो उस समय मुखकी अद्भुत शोभा हो जाती है। ऐसा दर्पण सा कपोल है कि उसमें कुण्डल की झलक प्रकट हो पड़ती है। यथा : तन मृदु मंजुल मेचकताई। झलकति बाल बिभूषन झाईं। हृदय अनुग्रह इंदु प्रकासा। सूचत किरन मनोहर हासा।

नील कंज लोचन भवमोचन। भ्राजत भाल तिलक गोरोचन ॥
बिकट भ्रुकुटि सम स्रवन सुहाये। कुंचित कच मेचक छबि छाये ॥३॥

अर्थ : नील कमल से नेत्र संसार के हरण करनेवाले थे। माथे में गोरोचन का तिलक था। टेढ़ी भृकुटि थी। समान कान सुन्दर थे और काले घुँघुराले बाल को छवि छायी हुई थी।

व्याख्या : सरकार के दृष्टिपात से संसार का शोक जाता रहता है। यथा : मामवलोकय पंकजलोचन। कृपा बिलोकनि सोच बिमोचन। इसलिए यहाँ लोचन को भवमोचन कह रहे हैं। गोरोचन का तिलक भाल में बड़ा शोभायमान हो रहा है। टेढ़ी भ्रुकुटी की हो शोभा है। उसी की उपमा काम के धनुष से दी जाती है और सीप के समान कान तुल्य आकार के थे और सरकार के घुंघराले बाल छटे हुए ऐसी शोभा दे रहे हैं मानो छवि छायी हुई है।

पीत झीनि झिंगुली तन सोही। किलकनि चितवनि भावति मोही ॥
रूपरासि नृप अजिर बिहारि। नाचहिं निज प्रतिबिंब निहारि ॥४॥

अर्थ : शरीर पर पीली और बारीक झँगुली शोभा दे रही थी। उनका किलकना और देखना मुझे सोहाता था। राजा के आँगन में विहार करनेवाले रूपराशि अपना प्रतिबिम्ब देखकर नाचते थे।

व्याख्या : सरकार की श्यामता नीलमणि की सी है। उस पर पीला कुरता जो बच्चे पहनते हैं जिसे झँगुली कहते हैं उसे पहने हुए हैं। वह झँगुली महीन कपड़े की है। अतः उसमें से नीलिमा झलक रही है। बच्चों की आनन्द भरी वाणी और आनन्दमय चितवन मुझे बहुत ही प्यारी लगती थी।

स्वयं रूप की राशि हैं। राजा के आँगन में खेल रहे हैं। राजा का आँगन कहने का भाव यह कि मणियों से जड़ा हुआ है। जिधर देखते हैं उनका प्रतिबिम्ब दिखायी पड़ता है। सो प्रतिबिम्ब इतना सुन्दर है कि उसे देखकर नाचते हैं अथवा दूसरा साथी आया जानकर हर्ष से नाच रहे हैं।

मोहि सन करहिं बिबिध बिधि क्रीड़ा। बरनत मोहि होति अति ब्रीड़ा ॥
किलकत मोहि धरन जब धावहिं। चलौं भागि तब पूप देखावहिं ॥५॥

अर्थ : मुझसे अनेक प्रकार का खेल करते थे। उसके वर्णन में मुझे अत्यन्त लज्जा मालूम होती है। किलकते हुए मुझे पकड़ने को वे जब दौड़ते थे तब मैं भाग चलता था तो मुझे पूआ दिखाते थे।

व्याख्या : बच्चे जैसा खेल चिड़ियों को देखकर करते हैं ठीक उसी भाँति मुझे देखकर करते थे। कभी पकड़ने दौड़ते हैं। कभी डर जाते हैं। कभी प्रसन्न होते हैं इत्यादि। उसके वर्णन में मुझे अत्यन्त लज्जा होती है कि सरकार में ऐसे ऐसे भावों को कैसे वर्णन करूँ। पर उन्हें अभिनय में सङ्कोच नहीं होता था।

बच्चों की भाँति किलकारी मारते हुए मुझे पकड़ने दौड़ते थे। तो मैं भी रसपोषण के लिए भाग चलता था। अथवा यदि मुझे पकड़ लेते तो शान्ति करनी पड़ती और फिर मेरे साथ रहने में बड़ी बाधा उपस्थित होती। इसलिए मैं भाग

चलता था तो मुझे निकट बुलाने के लिए पूआ दिखलाते थे कि इसको लालच से यह चला आवेगा।

दो. आवत निकट हँसहिं प्रभु, भाजत रुदन कराहिं।
जाउँ समीप गहन पद, फिरि फिरि चितै पराहिं ॥७७ क.

अर्थ : सन्निकट आने पर हँसते थे। मेरे भागने पर रोते थे। जब मै चरण ग्रहण के लिए निकट आ जाता था तो लौट लौटकर देखते हुए भागे जाते थे।

व्याख्या : सरकारी इच्छा समझकर मैं निकट चला आता था। तो बड़े प्रसन्न होते थे। हँसने लगते थे। फिर पकड़ न लें इसलिए भागने से रोने लगते थे। सरकार के रोने पर मैं चरण स्पर्श के लिए जब अधिक निकट आ जाता था तब उठकर भागते थे और फिर फिर कर देखते भी जाते थे कि मैं पीछा तो नहीं कर रहा हूँ।

दो. प्राकृत सिसु इव लीला, देखि भयउ मोहि मोह।
कौन चरित्र करत प्रभु, चिदानंद संदोह ॥७७॥

अर्थ : साधारण बच्चों की सो लीला देखकर मुझे मोह हो गया कि सच्चिदानन्दघन भगवान् यह कौन सा चरित्र कर रहे हैं।

व्याख्या : जिस भाँति सामान्य बच्चे लीला करते हैं ठीक वैसी ही लीला सरकार कर रहे थे। आठ महीना साथ रहते बीता। एक लीला भी ऐश्वर्य सूचक नहीं किया। और बार तो एकाध लीला ऐश्वर्य सूचक भी हो जाती थी। इस बार कुछ नहीं। सरकार के बाल भाव के माधुर्य से मोह हो गया। सरकार के वास्तव रूप को भुसुण्डिजी जानते थे कि चिदानन्द सन्दोह हैं। अतः एकदम मनुष्य के बच्चों का सा अभिनय में मोह हुआ कि क्या मनुष्य ही तो नहीं है। स्वयं चिदानन्द सन्दोह के योग्य क्या ऐसी लीला है? भुसुण्डिजी का भाव यह कि रणाङ्गन में लीला देखकर तुम्हें मोह हुआ और नृपाङ्गन मे लीला देखकर मुझे मोह हुआ।

एतना मन आनत खगराया। रघुपति प्रेरित ब्यापी माया॥
सो माया न दुखद मोहि कांही। आन जीव इव संसृति नांही ॥१॥

अर्थ : हे पक्षिराट्! इतनी बात मन में आते ही रघुपति की प्रेरणा से माया व्याप गयी। वह माया मुझे किसी भाँति दुःखदायी नहीं हुई। क्योंकि अन्य जीवों की भाँति संसार सम्बन्धी नहीं थी।

व्याख्या : सरकार यह कैसा चरित्र कर रहे हैं। चिदानन्द सन्दोह लड़कपन कर रहे हैं। ऐसा ही मोह गरुड़ को हुआ कि : चिदानन्द सन्दोह राम विकल कारण कवन : भुसुण्डिजी और गरुड़जी दोनों सरकार के यथार्थ रूप के जाननेवाले हैं कि सरकार चिदानन्द सन्दोह हैं। यहाँ विकार की सम्भावना ही नहीं है। यह तो इनका चरित्र हैं। पर क्या यह चरित्र इनके योग्य है? यदि अभिनय भी मान लें तो

इस दर्जे तक अभिनय नहीं होता। बस इतनी बात के मन में आने की देर थी सरकार की प्रेरणा हुई और भुसुण्डिजी को माया व्याप गयी।

भुसुण्डिजी कहते हैं कि वह माया दुःख देनेवाली अविद्या माया नहीं थी। क्योंकि : रामचरित सेवक सुखदायक। रामजी की लीला तो सेवक के सुख के लिए होती है। अतः वह माया भी सुख देनेवाली अपरा विद्या थी। जीवों को जैसी सांसारिक माया व्यापती है वैसो नहीं थी। यथा : हरि माया बस जगत भ्रमाहि। तिनहि कहत कछु अघटित नाही।

नाथ इहाँ कछु कारन आना। सुनहु सो सावधान हरिजाना ॥
ग्यान अखंड एक सीताबर। माया बस्य जीव सचराचर ॥२॥

अर्थ : हे नाथ ! यहाँ कुछ और ही कारण है। उसे हे गरुड़जी सावधान होकर सुनिये। अखण्ड ज्ञान रूप तो अकेले सीतापति हैं और चराचर जीव सब माया के वश में हैं।

व्याख्या : भुसुण्डिजी कहते हैं कि जिस अशुद्धसत्त्वा माया के वश पड़े जीव दुःख पाते हैं उस माया की प्रेरणा सरकार ने नहीं की। शुद्धसत्त्वा माया की प्रेरणा की। वह दुःखद नहीं हुई। फिर माया की प्रेरणा हुई ही क्यों ? जिसने आप को मोह में डाल दिया। इस प्रश्न को मन में रखकर उत्तर देते हैं और उसे सावधान होकर सुनने के लिए गरुड़जी से कहते हैं।

एक अखण्ड ज्ञान तो सीतापति रामचन्द्रजी को है। वही मायापति हैं। वही सर्वज्ञ ईश्वर हैं। और बाकी जितने चराचर जीव हैं। ये अशुद्धसत्त्वा माया के वश में है। इनके ऊपर माया का आधिपत्य है : जो ग्यानिन्ह कर चित अपहरई। बरिआई बिमोह बस करई।

जौं सब के रह ग्यान एकरस। ईस्वर जीवहि भेद कहहु कस ॥
माया बस्य जीव अभिमानी। ईस बस्य माया गुनखानी ॥३॥

अर्थ : यदि सबको एकरस ज्ञान बना रह जाय तो फिर ईश्वर और जीव में भेद ही क्या रह जायगा। जीव में अभिमान होता है वह माया के वश में रहता है। और गुणखानि माया ईश्वर के वश में रहती है।

व्याख्या : ईश्वर और जीव दोनों चेतन हैं। दोनों में भेद इतना ही है कि ईश्वर में सदा ज्ञान एक रस बना रहता है। जीव का ज्ञान सदा एक रस नहीं रहता। माया द्वारा विक्षेप हुआ करता है।

क्योंकि जीव में अभिमान मौजूद है और वह संसार का मूल है। अतः उसके साथ संसार बंधा हुआ है वह माया के वश में रहता है। ईश्वर में अभिमान नहीं है अतः वह संसारी नहीं है। वह माया का प्रभु है। माया उनके वश में है। अतः उनका ज्ञान एक रस है। माया गुणखानी : कहने का भाव यह है कि माया

त्रिगुणात्मिका है। अतः जो माया के वश्य में है उनके ऊपर सत्त्व रजस् और तमस् सदा काम किया करते हैं। अतः उनके ज्ञान में उत्कर्ष और अपकर्ष हुआ करता है।

परबस जीव स्वबस भगवंता। जीव अनेक एक श्रीकंता ॥
मुधाभेद जद्यपि कृत माया। बिनु हरि जाइ न कोटि उपाया ॥४॥

अर्थ : जीव परवश है भगवान् स्वतन्त्र हैं। जीव अनेक हैं श्रीकान्त एक हैं। यद्यपि माया ने झूठा ही भेद कर रक्खा है। पर बिना भगवान् के वह करोड़ उपायों से भी नहीं जा सकता।

व्याख्या : अतः जीव परतन्त्र है। जीव माया के वश है और माया ईश्वर के वश है। अतः जीव महा परतन्त्र है। एक तो यही भेद ईश्वर और जीव में है। दूसरा यह भी भेद है कि जीव असंख्य हैं पर ईश्वर एक ही है। श्रीकन्त शब्द से यहाँ ईश्वर का मायापति होना दिखलाया।

यदि प्रश्न हो कि चेतन चेतन में भेद कैसा ? तो कहते हैं कि वह भेद यद्यपि झूठा है। यथा : जड़ चेतनहिं ग्रंथि परिगई। जदपि मृषा छूटत कठिनई। पर छूटना कठिन है उनके एकमात्र उपाय भगवान् हैं। उन्हीं के कृपा से वह छूट सकती है।

दो. रामचन्द्र के भजन बिनु, जो चह पद निरबान।
ग्यानवंत अपि सो नर, पसु बिनु पूँछ बिषान ॥७८ क.
राकापति षोडश उअहिं, तारागन समुदाइ।
सकल गिरिन्ह दव लाइये, बिनु रबि रात न जाइ ॥७८॥

अर्थ : रामचन्द्र के भजन बिना जो निर्वाण पद चाहता है वह ज्ञानवान् होने पर भी बिना सींग पूँछ का पशु है। सोलह कलापूर्ण चन्द्र उदय हो और सम्पूर्ण तारागण भी उदय हों और सब पर्वतों में भी आग लगा दी जाय परन्तु बिना सूर्य के रात नहीं जा सकती।

व्याख्या : वाण शरीर को कहते हैं। निर्वाण पद अर्थात् वह पद जिसमें शरीर से सम्बन्ध न रहे अर्थात् कैवल्य पद। यथा : अति दुर्लभ कैवल्य परम पद। संत पुरान निगम आगम वद। उस पद को जो चाहे और रामचन्द्र का भजन करे। अर्थात् जो उसका यथार्थ साधन है उसकी उपेक्षा करे और साध्य की इच्छा करे ऐसी इच्छा करनेवाले पशु हैं उसे बुद्धि नहीं है। इतनी बात की कसर है कि पशु को सींग पूँछ होती है उसे नहीं है। भावार्थ यह कि उसका शरीरमात्र मनुष्य का है। पर वह पशु के समान ही अविवेकी है।

क्योंकि मोहरात्रि के जाने पर ही निर्वाणपद की प्राप्ति सम्भव है। पर वह बिना सूर्य की सहायता के ही रात्रि का नाश चाहता है। भले हो वह ज्ञानी हो और ज्ञान दीप जलाने में समर्थ भी हो फिर भी दीप के प्रकाश से रात्रि नहीं जाती। राम सच्चिदानन्द दिनेश की आवश्यकता पड़ती है। इसलिए कि कहते हैं दीप की

क्या गिनती है। सोलहों चन्द्रमा उदय हों और तारे भी सब रहें। उनकी सहायता के लिए सम्पूर्ण पर्वतों में भी आग जलायी जाय तो क्या रात्रि नष्ट होगी? क्योंकि रात्रि को नष्ट करनेवाले एकमात्र सूर्य हैं और दूसरा कोई नहीं है। अतः मोहनिशा राम सच्चिदानन्द दिनेश के उदय से ही नष्ट हो सकती है।

ऐसहि हरि बिनु भजन खगेसा। मिटइ न जीवन केर कलेसा ॥
हरि सेवकहि न ब्याप अबिद्या। प्रभु प्रेरित ब्यापै तेहि बिद्या ॥१॥

अर्थ : ऐसे ही हरि हैं। हे खगेश! बिना उनके भजन के जीवों का क्लेश नहीं मिटता। हरि सेवक को अविद्या नहीं व्यापती। हरि की प्रेरणा से उसे विद्या व्यापती है।

व्याख्या : जैसे निशा के लिए सूर्य हैं। वैसे ही मोहनिशा के लिए हरि हैं। बिना हरि के मोहनिशा जा नहीं सकती। जब रामप्रतापरूपी सूर्य हृदय में प्रकाश करता है तब अविद्यानिशा नष्ट होती है। यथा : यह प्रताप रबि जाके उर जब करै प्रकास। पिछले बाढ़हि प्रथम जे कहे ते पावहि नास।

भजन करने से ही रामप्रतापरूपी सूर्य भक्त के हृदय में प्रकाश करता है। इसलिए हरिसेवक को अविद्या नहीं व्यापती। पर उसका भी ज्ञान एकरस नहीं रहता। कभी कभी हरि की प्रेरणा से उसे विद्या व्यापती है। यथा : जो मन प्रीति सों रामनामहि रातो। तुलसी राम प्रसाद सों तिहुँ ताप न तातो।

तातें नास न होइ दासकर। भेद भगति बाढ़ै बिहंग बर ॥
भ्रम ते चकित राम मोहि देखा। बिहँसे सो सुन चरित बिसेखा ॥२॥

अर्थ : इसलिए दास का नाश नहीं होता। हे पक्षिराट्! उसकी भेद भक्ति बढ़ जाती है। जब रामजी ने मुझे भ्रम से चकित देखा तो हँसे। अब उस विशेष चरित को सुनो।

व्याख्या : जिसे अविद्या व्यापती है उसका नाश हो जाता है। यथा : सङ्गात् सञ्जायते कामः कामात् क्रोधोऽभिजायते। क्रोधाद् भवति सम्मोहः सम्मोहात् स्मृतिविभ्रमः। स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात् प्रणश्यति। भक्त का नाश नहीं होता। विद्या के व्यापने से उसकी भेद भक्ति बढ़ती है। विद्या के प्रभाव से उसे दिव्य दृष्टि हो जाती है। वह सरकार के ऐश्वर्य का दर्शन करता है। सरकार के उत्कर्ष ज्ञान से भेद भक्ति बढ़ती है। यही भक्तों को इष्ट है। यथा : सगुनोपासक मोक्ष न लेहीं। तिन कहुँ राम भगति निज देहीं।

भुसुण्डिजी कहते हैं कि सरकार का चरित्र देखकर मुझे मोह हुआ। मन में सोचने लगा : कौन चरित्र करत प्रभु चिदानन्द सन्दोह। रामजी ने भ्रम से चकित मुझे देखा। मेरी अविद्या के हटाने के लिए विद्या माया की प्रेरणा की। अतः हँसे। माया हास बाहु दिगपाला। लोग समझते हैं कि काग को देखकर प्रसन्न हो रहे हैं। उनका हँसना ही चरित्र विशेष है।

तेहि कौतुक कर मरम न काहू। जाना अनुज न मातु पिताहू ॥
जानु पानि धाए मोहि धरना। स्यामल गात अरुन कर चरना ॥३॥

अर्थ : उस कौतुक का मर्म किसी ने न जाना। भाई तथा माता पिता किसी को भी पता न चला। घुटने और हाथ के बल से मुझे पकड़ने दौड़े। साँवला शरीर और हाथ पाँव लाल थे।

व्याख्या : अब वह चरित्र कहते हैं। सरकार का वह कौतुक था एक खेल था। उसका मर्म किसी ने न पाया। भाई लोग साथ खेलते थे। माता पिता सुरक्षा के लिए सदा उन पर दृष्टि रखते थे। यथा : जीवन तरु जिमि जोगवइ राऊ। पलक नयन फनि मनि जेहि भाँती। जोगवहिं जननि सकल दिन राती। उन सब लोगों ने कौतुक तो देखा कि काक को पकड़ने के लिए दौड़े हैं। परन्तु उसका मर्म क्या था यह किसी ने न पाया। सब ने ही उसे बाललीला समझा।

अभी सरकार आठ महीने के हैं। खड़े नहीं हो सकते हाथ और घुटनों के बल से चलते हैं। उसी भाँति भुसुण्डिजी को पकड़ने दौड़े। भुसुण्डिजी उस समय की छवि कहते हैं। सरकार दौड़े चले आते हैं। इन्हें भी भागना है ऐसे अवसर में जैसा रूप दृष्टिगोचर हुआ उसे कहते हैं : स्याम सरीर सुभायँ सुहावन। सोभा कोटि मनोज लजावन। सम्पूर्ण शरीर श्याम है। केवल करतल पादतल लाल है। जिनसे इस समय काम ले रहे हैं।

तब मैं भागि चलेउँ उरगारी। राम गहन कहुँ भुजा पसारी ॥
जिमि जिमि दूरि उड़ाउँ अकासा। तहँ भुज हरि देखौं निज पासा ॥४॥

अर्थ : हे गरुड़जी ! तब मैं भाग चला और रामजी ने पकड़ने के लिए हाथ फैलाया। जितना मैं आकाश में उड़ता चला गया वहाँ वहाँ मैंने भुजा को और रामजी को अपने पास पाया।

व्याख्या : तब मैं भाग चला। पक्षी का भागना आकाश में उड़ना ही है। भाव यह कि जिस समय भुसुण्डिजी भ्रम से चकित थे उस समय आँगन में ही बैठे थे। इसलिए सरकार पकड़ने दौड़े। जिस भाँति बच्चे चिड़िया को देखकर उसे पकड़ने के लिए दौड़ पड़ते हैं। जिस भाँति लड़कों को दौड़ते देखकर पक्षी भाग जाते हैं उसी भाँति काग भुसुण्डिजी भी भाग चले और ऊपर जाते हुए पक्षी को पकड़ने के लिए जिस भाँति बच्चे हाथ फैलाते हैं वैसा ही सरकार ने भी फैलाया। यहाँ तक तो स्वाभाविक लीला हुई इसे सभी ने देखा।

अब जो अलौकिकता हुई उसे कहते हैं कि उड़ने पर भी मैं दूर नहीं हो पाता था। रामजी और उनकी भुजा पास ही दिखाई पड़ती थी। मैं आकाश में उड़ता ही चला गया। पर भुजा को और रामजी को अपने पास ही पाता था।

दो. ब्रह्मलोक लगि गयउँ मैं, चितएउँ पाछ उड़ात।
जुग अंगुल कर बीच सब, राम भुजहि मोहि तात ॥७९ क.

सप्तावरन भेद करि, जहाँ लगें गति मोरि।
गजउँ तहाँ प्रभु भुज निरखि, ब्याकुल भयउँ बहोरि ॥७९॥

अर्थ : मैं ब्रह्मलोक तक गया और उड़ते हुए लौटकर पीछे देखा तो सब मेरे और रामजी के भुजा के बीच के दो अँगुल के फासला में ही था। मैंने तब सातो आवरण पार करके जहाँ तक मेरी गति थी गया। वहाँ भी सरकार की भुजा देखकर व्याकुल हो उठा।

व्याख्या : भुसुण्डिजी कहते हैं कि मैं ऊपर उड़ता ही चला गया। जब ब्रह्मलोक तक पहुँचा तब पलटकर देखा तो रामजी की भुजा में और मुझ में दो अँगुल का बीच फासला है और अयोध्या से लेकर ब्रह्मलोक तक का दृश्य उसी दो अंगुल के बीच में हैं। तब तो मैं ब्रह्मलोक से भी ऊपर चला : अव्याहत गति संभु प्रसादा। सात आवरण जो पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, अहन्तत्त्व, महत्तत्त्व के हैं उन्हें भी भेद करके और ऊपर लोकालोक तक गया। उसके आगे गति नहीं है। वहाँ भी सरकारी भुजा को पास पाकर तत्पश्चात् व्याकुल हो गया। अब कहाँ जायँ ? सर्वतः पाणिपाद से भागकर कोई जायगा कहाँ ? वे जब जिसे पकड़ना चाहते हैं तब उनसे भागकर कोई बच भी नहीं सकता।

मूँदेउ नयन त्रसित जब भयेऊँ। पुनि चितवत कोसलपुर गयेऊँ ॥
मोहि बिलोकि राम मुसुकाहीं। बिहँसत तुरत गयेउँ मुख माहीं ॥१॥

अर्थ : जब मैं डर गया तो मैंने आँखें मींच ली। फिर जो देखा तो कोसलपुर में पहुँच गया। मुझे देखकर रामजी मुसकुरा रहे हैं। उनके हँसते ही मैं उनके मुख में चला गया।

व्याख्या : सरकार की माया देखकर सभी भयभीत हो जाते हैं। अर्जुन भयभीत हुए : भयेन च प्रव्यथितं मनो मे। सती भयभीत हो गयीं। हृदय कंप तन सुधि कछु नाही। नयन मूँद बैठी मँन माहीं। कौसल्या जी भयभीत हो गयीं। यथा : तन पुलकित मुख बचन न आवा। नयन मूँदि चरनन्हि सिरु नावा। इसी भाँति भुसुण्डिजी भी जब डर गये तो आँखें मूँद लीं। माया के वेग के देखने में अपने को असमर्थ पाया। अब और आश्चर्य देखिये। आँख मूँदा सप्तावरण के बाहर और आँख खुली तब अपने को अयोध्या में पाया। इसका छोटा सा दृष्टान्त किष्किन्धाकाण्ड में है : नयन मूँदि पुनि देखहिं बीरा। ठाढ़े सकल सिंधु के तीरा।

पहिली हँसी में भागने का उत्तर दिया कि बाहर भी सब मैं ही हूँ। कहाँ भागकर जाओगे। अब दूसरी हँसी में यह दिखला रहे हैं कि मेरे भीतर बाहर में कोई भेद नहीं है : यदन्तरं तद्बाह्यं यद्बाह्यं तदनंतरम्। शरीर धारण करने पर भी मेरे व्यापकपने में कुछ भी भेद नहीं आया है। मैं इस समय अल्प शरीर धारण किये हूँ फिर भी सब कुछ मेरे भीतर है। आकर स्वयं देख लो। अतः मुँह के भीतर प्रवेश करा दिया।

उदर माँझ सुनु अंडजराया। देखेउँ बहु ब्रह्मांड निकाया॥
अति बिचित्र तहँ लोक अनेका। रचना अधिक एक ते एका॥२॥

अर्थ : हे गरुड़जी ! पेट के भीतर मैंने बहुत से ब्रह्माण्डों का समूह देखा। वहाँ अत्यन्त विचित्र अनेक लोक थे और एक की रचना दूसरे से अधिक थी।

व्याख्या : कौसल्याजी को बाहर दिखलाया। भुसुण्डिजी को भीतर बहुत ब्रह्माण्ड दिखलाया। सतीजी को जहाँ का तहाँ सब कुछ दिखलाया। अब भीतर का हाल कहते हैं कि ब्रह्माण्डों के गुच्छे असंख्य हैं। यथा : ऊमरि तरु बिसाल तव माया। फल ब्रह्माण्ड अनेक निकाया। जीव चराचर जंतु समाना। भीतर बसहिं न जानहि आना। जिस भाँति इस ब्रह्माण्ड में अनेक लोक हैं और उन लोकों की रचना एक दूसरे से भिन्न है। उसी भाँति उन सब ब्रह्माण्डों में अनेक लोक हैं। पर एक ब्रह्माण्ड की रचना दूसरे से मेल नहीं खाती। नियम सर्वत्र एक से पर रचना कहीं भी एक सी नहीं।

कोटिन्ह चतुरानन गौरीसा। अगनित उड़गन रबि रजनीसा॥
अगनित लोकपाल जम काला। अगनित भूधर भूमि बिसाला॥३॥

अर्थ : करोड़ों ब्रह्मा और शिव थे। असंख्य तारे सूर्य और चन्द्र थे। असंख्य लोकपाल यम और काल थे। असंख्य बड़े बड़े विशाल पहाड़ और पृथिवी रही।

व्याख्या : उन ब्रह्माण्डों में भी सृष्टि ब्रह्मा द्वारा और संहार शिवजी द्वारा होता है। अतः प्रति ब्रह्माण्ड ब्रह्मा और शिवजी भी थे। इसलिए उनकी भी संख्या नहीं कही जा सकती। इसी भाँति सूर्य और चन्द्रमा तथा तारागण की भी कोई संख्या नहीं थी। उन उन ब्रह्माण्डों में अनेक लोक थे और उनके लोकपाल यम काल आदि की भी संख्या नहीं कही जा सकती। जैसे यहाँ पृथिवी है वैसे ही उन ब्रह्माण्डों में भी बड़ी बड़ी पृथिवी और बड़े बड़े पर्वत थे। इस प्रकरण के अनुकूल वर्णन नारायणोपनिषद् में है।

ये सब बातें अब विज्ञान से सिद्ध हो रही हैं। पृथिवी के अति सन्निकट चन्द्रग्रह है। दूरवीक्षण यन्त्र से उनमें पहाड़ तथा नदियाँ दृष्टिगोचर होती। मङ्गल ग्रह के विषय में वैज्ञानिकों की राय है कि आकर्षण के भेद से वहाँ के निवासी पृथिवी के निवासियों की अपेक्षा बड़े दीर्घकाय होंगे। इतनी बातें तो दूरवीक्षण यन्त्र से मालूम हुई है। पर यह कथा तो भुसुण्डिजी कह रहे हैं। जो उन ब्रह्माण्डों की यथेष्ट सैर कर चुके हैं।

सागर सरिसर बिपिन अपारा। नाना भाँति सृष्टि बिस्तारा॥
सुर मुनि सिद्ध नाग नर किन्नर। चारि प्रकार जीव सचराचर॥४॥

अर्थ : समुद्र नदी तालाब और अपार जंगल थे। नाना भाँति सृष्टि का

विस्तार था। देवता मुनि सिद्ध नाना मनुष्य और किन्नरादि चार प्रकार के चराचर जीव।

व्याख्या : उन ब्रह्माण्डों में भी समुद्र नदी तालाब और वन थे और बहुत बड़े बड़े थे। परन्तु सब अनेक भाँति के थे। इस भाँति सृष्टि के विस्तार का कोई ठिकाना न दिखाई पड़ा। वहाँ भी देवता मुनि सिद्ध नर किन्नर तथा स्वेदज उद्भिज जरायुज अण्डज भेद से चार प्रकार के चराचर जीव थे। परन्तु सर्वत्र वैचित्र्य का राज्य था : यही वैचित्र्य ईश्वर की सिद्धि का भारी प्रमाण है। मान भी लिया जाय कि सब कुछ प्रकृति ने बनाया पर इस वैचित्र्य को किसने बनाया ? जड़ प्रकृति इस विचित्रता का निर्माण कैसे कर सकती है ?

दो. जो नहि देखा नहि सुना, जो मनहु न समाइ।
सो सब अद्भुत देखेउँ, बरनि कवनि बिधि जाइ ॥८० क.
एक एक ब्रह्मांड महुँ, रहौं बरष सत एक।
एहि बिधि देखत फिरौं मैं, अंड कटाह अनेक ॥८०॥

अर्थ : जो न कभी देखा और जो न कभी सुना और जो बातें मन में भी नहीं समातीं उन सब अद्भुतों को देखा। वर्णन कैसे किया जा सकता है। एक एक ब्रह्माण्ड में एक एक सौ वर्षों तक रहा। इस भाँति अनेक ब्रह्माण्ड कटाहों को देखता फिरा।

व्याख्या : अपनी जानकारी तो इतनी ही है जितना कि देखा सुना गया है और जो नहीं देखा सुना गया है उनमें भी ऐसी बातें हैं जो मन के दौड़ के भीतर हैं। पर इन सबसे विलक्षण वस्तुएँ मैंने देखीं। अब उसका वर्णन कैसे हो ? वर्णन तो देखी सुनी वस्तुओं को ही लेकर होता है।

ऐसी अद्भुत अद्भुत वस्तुओं को देखकर कौतूहल बढ़ा तो वहाँ ठहर ठहरकर पूरे ब्रह्माण्ड की सैर करने लगे। एक ब्रह्माण्ड के सैर में उन्हें एक सौ वर्ष लगते थे। इसी भाँति धैर्य के साथ भुसुण्डिजी ब्रह्माण्डों का निरीक्षण करने लगे। इस भाँति अनेक ब्रह्माण्ड देख डाले पर विचित्रता बढ़ती ही गयी। माया के दर्शन का थाह न लगा।

लोक लोक प्रतिभिन्न बिधाता। भिन्न बिस्नु सिव मनु दिसि त्राता ॥
नर गंधर्ब भूत बेताला। किंनर निसिचर पसु खग ब्याला ॥१॥

अर्थ : प्रत्येक लोक में भिन्न भिन्न ब्रह्मदेव थे। विष्णु भी भिन्न थे एवं शिव मनु और दिक्पाल भी भिन्न थे। इसी भाँति, मनुष्य, गन्धर्व, भूत, वेताल, किन्नर, निशिचर, पशु, पक्षी और सर्प थे।

व्याख्या : यहाँ लोक शब्द से ब्रह्माण्ड का ग्रहण है अथवा ब्रह्मलोक का ग्रहण है। वेद में वर्णित है कि किसी ब्रह्माण्ड के पाँच मुख के ब्रह्मा हैं। किसी के

छः मुख के हैं। इसी भाँति किसी ब्रह्माण्ड के सहस्र मुख के ब्रह्मदेव हैं। सभी ब्रह्माण्डों में ब्रह्मलोक विष्णुलोक शिवलोकादि हैं। व्यवस्था सर्वत्र की एक सी है। केवल सृष्टि में वैचित्र्य है। विष्णु शिवादि दूसरे प्रकार के हैं। सभी ब्रह्माण्डों में मन्वन्तर वर्तते हैं। वहाँ मनु हैं सभी में दिक्पाल हैं। भेद उनके रूपों में है फिर भी वे जान पड़ते हैं कि ये विष्णु हैं, ये शिव हैं, ये दिक्पाल हैं, ये मनुष्य हैं, ये भूत हैं, ये पशु हैं, ये पक्षी हैं इत्यादि। जैसे एक ब्रह्माण्ड में रूपों में भेद रहते हुए भी देवदत्त यज्ञदत्त आदि सभी मनुष्य हैं वैसे ही अनेक ब्रह्माण्डों की सृष्टि में भेद होते हुए भी सभी जातियाँ पहिचानी जाती हैं।

देव दनुज गन नाना जाती। सकल जीव तहँ आनहि भाँती ॥
महि सरि सागर सर गिरि नाना। सब प्रपंच तहँ आनै आना ॥२॥

अर्थ : देवता दानव की नाना जातियाँ थीं। सब प्रपञ्च ही वहाँ का दूसरे प्रकार का था। पृथिवी नदी समुद्र पर्वत सब नाना प्रकार के थे।

व्याख्या : जैसे यहाँ सब मनुष्य एक से होने पर भी उनमें भिन्नता है वैसे ही एक ब्रह्माण्ड की मनुष्य जाति दूसरे ब्रह्माण्ड के मनुष्य जाति से भिन्न प्रकार हैं। फिर भी वे मनुष्य ही होते हैं और पहचाने जाते हैं। यह बात केवल मनुष्य जाति में ही हो ऐसी बात नहीं है। देव दनुजादि सम्पूर्ण जीवों की ही यही दशा है। इतना ही नहीं पृथिवी नदी समुद्र पर्वत आदि स्थावर सृष्टियों में भी भेद है। एक ब्रह्माण्ड के पहाड़ और नदियाँ दूसरे ब्रह्माण्ड के पहाड़ और नदियों से भिन्न हैं। फिर भी वे वहाँ पहाड़ और नदी आदि का ही काम देते हैं। विष्णुपुराण कहता है कि संसार में चार अंगुल स्थान भी ऐसा नहीं है जहाँ सृष्टि न हो।

अण्डकोस प्रति प्रति निज रूपा। देखेउ जिनस अनेक अनूपा ॥
अवधपुरी प्रति भुवन निनारी। सरजू भिन्न भिन्न नर नारी ॥३॥

अर्थ : प्रति ब्रह्माण्ड में मैंने अपने रूप को अनेक प्रकार का और अनुपम देखा। प्रत्येक भुवन में अयोध्या भी न्यारी ही प्रकार की सरयू नदी भी भिन्न प्रकार की और नर नारी भी भिन्न प्रकार के थे।

व्याख्या : भुसुण्डिजी कहते हैं कि जिस ब्रह्माण्ड में मैं जाता था उस ब्रह्माण्ड के काग के जैसा रूप मेरा हो जाता था। इस भाँति मैं भी न जाने कितने प्रकार का बना और वे रूप ऐसे थे जिनसे दूसरे ब्रह्माण्ड के रूप से उपमा नहीं दी जा सकती। प्रति ब्रह्माण्ड में अयोध्यापुरी भी अन्य प्रकार की। सरयू नदी भी भिन्न प्रकार की और नर नारी भी अनेक प्रकार के थे। जैसा काल का नियम है कि एक दिन दूसरे दिन जैसा होता हुआ भी ठीक वैसा नहीं होता। उसी भाँति देश का भी नियम है कि एक ब्रह्माण्ड दूसरे जैसा होता हुआ भी ठीक वैसा नहीं होता। स्पष्ट बात है कि उन ब्रह्माण्डों का ऐसा प्रभाव है कि जो जीव वहाँ जाते हैं वे भी उसी प्रकार के हो जाते हैं जिस प्रकार के जीव वहाँ बसते हैं।

दसरथ कौसिल्या सुनु ताता। बिबिध रूप भरतादिक भ्राता ॥
प्रति ब्रह्माण्ड राम अवतारा। देखेउँ बाल बिनोद अपारा ॥४॥

अर्थ : हे तात ! सुनो अनेक रूप के दशरथ कौसल्या तथा भरतादिक भाई थे। प्रत्येक ब्रह्माण्ड में रामजी का अवतार हुआ था और वहाँ वहाँ अपार बाल-विनोद देखा।

व्याख्या : भाव यह कि जिस अवस्था में इस ब्रह्माण्ड को देखा वही दशा सब ब्रह्माण्डों की थी। सभी ब्रह्माण्डों में रावण का उपद्रव था। यथा : ब्रह्म सृष्टि जहँ लगि तनु धारी। दसमुख वसवर्ती नर नारी। अतः सभी ब्रह्माण्ड में दशरथ कौसल्या के घर में रामावतार हो गया था। भेद यही था कि दशरथ कौसल्या तथा भरतादिक भ्राताओं का रूप प्रत्येक ब्रह्माण्ड में भिन्न प्रकार का था। प्रत्येक ब्रह्माण्ड में उस समय सरकार की बाल्यावस्था थी और बाल विनोद करते थे। सो भुसुण्डिजी कहते हैं कि मैंने अपार बाल विनोद देखे।

दो. भिन्नु भिन्नु मैं दीख सबु, अति बिचित्र हरि जान।
अगनित भुवन फिरेउँ प्रभु, राम न देखेउ आन ॥८१ क.
सोइ सिसुपन सोइ सोभा, सोइ कृपाल रघुबीर।
भुवन भुवन देखत फिरौं, प्रेरित मोह समीर ॥८१॥

अर्थ : हे गरुड़जी ! यह सब अति विचित्र मैंने प्रति भुवन में देखा। इस भाँति असंख्य भुवनों में मैं घूमता फिरा पर राम दूसरे प्रकार के नहीं दिखाई पड़े। वही बचपन वही शोभा और वही कृपालु रामजी थे। मोहरूपी वायु से प्रेरित होकर प्रत्येक भुवन में यही देखता फिरा।

व्याख्या : अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड में सर्वत्र विचित्रता है। कहीं कोई वस्तु एक सी नहीं। अयोध्या सरयू और अवधवासियों में तो विचित्रता थी ही दशरथ कौसल्या तथा भरतादि भ्राता भी सब ब्रह्माण्ड के विचित्र थे। एकरसता केवल सरकार में है। असंख्य ब्रह्माण्ड में भुसुण्डिजी घूमे परन्तु राम दूसरे नहीं दिखाई पड़े। इस एकरसता में महा विलक्षणता है कि सरकार का स्वरूप सब ब्रह्माण्ड की सृष्टि से मेल खाता है। उसी स्वरूप से वे अगणित स्वरूपवाले दशरथ कौसल्या के पुत्र तथा भरतादि के भाई मालूम होते थे। शिशुपन से वय कहा। शोभा से रूप कहा। कृपाल से स्वभाव कहा। अर्थात् वय रूप और स्वभाव में कुछ भी भेद नहीं। भुसुण्डिजी कहते हैं कि मैं अपने काबू में नहीं था। मोह मुझे जहाँ ले जाता था वहाँ मैं जाता था। अतः प्रत्येक ब्रह्माण्ड में मैं यह दृश्य देखता फिरा।

भ्रमत मोहि ब्रह्मांड अनेका। बीते मनहुँ कल्प सत एका ॥
फिरत फिरत निज आस्रम आयउँ। तहँ पुनि रहि कछु काल गवायउँ ॥१॥

अर्थ : मुझे अनेक ब्रह्माण्डों में घूमते घूमते मानों एक सौ कल्प बीत गये। घूमते घूमते अपने आश्रम में आगया और कुछ दिन वहीं बिताया।

व्याख्या : ४३,२७,००० मानव वर्षों का एक महायुग होता है और कल्प तो ८,६४,००००००० वर्षों का होता है। इस भाँति सौ कल्पों तक भुसुण्डीजी ब्रह्माण्डों की सैर करते रहे। अतः उन्होंने ८,६४,००००००० ब्रह्माण्डों को सैर की। अन्त में घूमते घामते अपने आश्रम में चले आये तो वहीं ठहर गये और वहीं रहने लगे। कुछ दिन यों ही बीता। यहाँ कवि : बीते मनहु कल्प सत एका कहते हैं। भाव यह कि भुसुण्डिजी को इतना काल मालूम हुआ। वस्तुतः उतना बीता नहीं। सिद्धान्त यह दिखलाया कि देशकाल की कल्पना भी सब मायामय है कहीं थोड़ा देश और थोड़े काल में अधिक की प्रतीति होती है। कहीं अधिक में थोड़े की। ये सब करामात माया के हैं।

निज प्रभु जन्म अवध सुनि पायेहुँ। निर्भर प्रेम हरषि उठि धायेउँ ॥
देखेउँ जन्म महोत्सव जाई। जेहि बिधि प्रथम कहा मैं गाई ॥२॥

अर्थ : अपने प्रभु का अवध में जन्म होना सुन पाया तो प्रेम में भरा हुआ हर्षित हो उठकर दौड़ा। वहाँ जाकर जन्म महोत्सव देखा जैसा कि पहिले मैं वर्णन कर चुका हूं।

व्याख्या : भुसुण्डिजी कहते हैं वहाँ रहते रहते प्रभु के अवतार होने का पता लगा : कल्प कल्प प्रति प्रभु अवतरहीं। चारु चरित नाना बिधि करहीं। सो एक सौ कल्प तो अनेक ब्रह्माण्डों के देखने में बीत चुके थे। एक सौ एकवें में अपने आश्रम में पहुँच गये। अतः इसमें भी रामावतार हुआ। देवता लोग गर्भस्तुति के लिए सुमेरु पर्वत से चले। उन्हीं से सुना। अतः जन्म महोत्सव के देखने की लालच से दौड़ पड़े। जाकर देखा भी और उसी विधि से देखा जैसा पहिले कह चुके हैं। अथवा जन्म महोत्सव वैसा ही हुआ जैसा वर्णन कर आये हैं।

राम उदर देखेउँ जग नाना। देखत बनै न जाइ बखाना ॥
तहँ पुनि देखेउँ राम सुजाना। मायापति कृपाल भगवाना ॥३॥

अर्थ : रामजी के उदर में अनेक जगत् देखा जो देखते ही बनते हैं कहते नहीं बनते। वहाँ फिर राम सुजान को देखा। जो माया के पति कृपालु और षडैश्वर्य सम्पन्न थे।

व्याख्या : उदर माँझ सुनु अण्डजराया। देखेउँ बहु ब्रह्मांड निकाया। कहकर जिस प्रसङ्ग का आरम्भ किया था उसी का : राम उदर देखेउँ जग नाना कहकर उपसंहार कर रहे हैं। वे ब्रह्माण्ड ऐसे सुन्दर थे कि देखते ही बन पड़ता था और ऐसे अद्भुत थे कि उनका बखान नहीं हो सकता। जिस ब्रह्माण्ड में वे रामजी के उदर में गये थे उनके उदर में भी वही ब्रह्माण्ड देख रहे है। उसमें उनका आश्रम है अयोध्या है जहाँ जन्म महोत्सव हो रहा था। जन्मोत्सव के बाद कुछ बड़े होने पर

भुसुण्डिजी कहते हैं कि मैंने उसी मायापति कृपाल भगवान् सुजान रामचन्द्र को देखा। बात समझ में न आयी कि क्या बात है मैं रामजी के पेट के भीतर हूँ कि बाहर हूँ।

करौं बिचार बहोरि बहोरी। मोह कलिल ब्यापित मति मोरी ॥
उभय घरी मँह मैं सब देखा। भयउँ भ्रमित मन मोह बिसेखा ॥४॥

अर्थ : मैं बार बार विचार करता हूँ। मेरी बुद्धि मोहरूपी कीचड़ से व्याप्त हो रही थी। मैंने यह सब दो घड़ी में देखा। मेरे मन में विशेष मोह बढ़ गया थकावट आ गयी।

व्याख्या : भुसुण्डिजी बार बार विचार करते हैं कि मैं कहाँ हूँ। क्या देखता हूँ। मैं तो रामजी के पेट में चला गया था। पेट में इतने ब्रह्माण्ड कहाँ से आये। जिसमें रामजी थे वह ब्रह्माण्ड कहाँ से आगया। स्वयं रामजी अपने पेट में कैसे चले आये। कोई निर्णय नहीं कर पाते। उनकी बुद्धि मोह के दलदल में फँस गयी। भुसुण्डिजी कहते हैं कि यह सब मैंने दो घड़ी में देखा। बात समझ में नहीं आयी। मोह और बढ़ गया। इस प्रपञ्च को देखते देखते मैं थक गया।

दो. देखि कृपाल बिकल मोहि, बिहँसे तब रघुबीर।
बिहँसत ही मुख बाहेर, आयेउँ सुनु मति धीर ॥८२ क.
सोइ लरिकाई मोसन, करन लगे पुनि राम।
कोटि भाँति समुझावौं, मन न लहै बिश्राम ॥८२॥

अर्थ : कृपालु राम मुझे विकल देखकर हँस पड़े। हे मतिधीर! उनके हँसते ही मैं मुख से बाहर निकल आया वही लड़कपन रामजी फिर मुझसे करने लगे। अब मैं अपने मनको कोटि भाँति से समझाता हूँ परन्तु उसे विश्राम नहीं होता।

व्याख्या : सरकार कृपालु हैं दास की विकलता सह्य नहीं है अतः फिर हँस पड़े। भुसुंडिजी कहते हैं कि पहिले हँसने में मैं पेट के भीतर चला गया था और इस बार के हँसने में बाहर निकल आया। माया ही मन है और मनोविकास ही हास है। अतः दूसरे हास में माया पलटा खा गयी। मैं बाहर आगया। आवत निकट हँसहिं प्रभु भाजत रुदन कराहिं। जाउँ समीप गहन पद पुनि पुनि चितै पराहिं। यह लीला फिर आरम्भ हुई। समझना तो यह चाहा था कि कौन चरित्र करन प्रभु चिदानंद संदोह। वह बात तो समझ में आयी नहीं और अगनित आश्चर्य की बातें सामने आगयीं। जो कुछ भी समझ नहीं पड़तीं। मनको भुसुंडिजी समझाते हैं कि हरिकी माया अघटितघटनापटीयसी है। वह सब कुछ कर सकती है। इत्यादि : परन्तु मनको शान्ति नहीं होती। प्रत्यक्ष देखी हुई बात को माया कैसे कह दें। सौ कल्प के अनुभव को दो घड़ी का अनुभव कैसे स्वीकार लें।

चरित माधुरी को यथा पार न परे लखाय।
तथा महा ऐश्वर्य की महिमा कही न जाय ॥

कल्प होइ छन में जहाँ बिन्दुहि सिंधु समाय।
तहाँ बुद्धि को कौन गति नाहक मन भरमाय॥
अणु ते छोटो श्रुति कहैं नभ ते अधिक महान्।
अतिहि दूर अतिही निकट अति अद्भुत भगवान॥
सो कछु निज आँखिन लख्यो पै मन नाहिं समाय।
ज्यों ज्यों सुरझावन चह्यों त्यों त्यों मति अरुझाय॥
कहाँ महामहिमा अगम कहँ शैशव खेलवार।
एहि असमंजस ते भक्त केहि विधि ते निस्तार॥

देखि चरित येह सो प्रभुताई। समुझत देह दसा बिसराई॥
धरनि परेउँ मुख आवन बाता। त्राहि त्राहि आरत जन त्राता॥१॥

अर्थ : यह चरित्र देखकर और वह प्रभुता समझकर मुझे देहकी दशा भूल गयी। मैं पृथिवीपर लोट गया। मुँह से बात नहीं निकलती थी। हे आर्तों के रक्षा करनेवाले ! रक्षा करो रक्षा करो : यही कहने लगा।

व्याख्या : चरित्र तो ऐसा कर रहे हैं जैसा कोई प्राकृत बालक करता हो : आवत निकट हँसहिं प्रभु भाजन रुदन कराहिं। जाउँ समीप गहन पद फिरि फिरि चितैं पराहिं। और प्रभुता ऐसी है कि कोटिन्ह चतुरानन गौरीसा। अगनित उड़गन रवि रजनीसा। इत्यादि : पेट में हैं। इन दोनों बातों का सामञ्जस्य बिठाने में देहका ऐसा विस्मरण हो गया कि मैं खड़ा न रह सका पृथिवी पर जा पड़ा। ऐसा प्रेम मन में उमगा कि मुझसे कोई वाणी न निकल सकी त्राहि त्राहि करने लगा। भुसुंडिजी मुख से बाहर होने पर भी माया से विनिर्मुक्त नहीं हैं। आचर्य और भी बढ़ गया। सर्वाश्चर्यमय हरि के ऐश्वर्य और माधुर्य दोनों रूप के दर्शन से महा आनन्द भी है और महा आश्चर्य भी है। लीला एकबारगी समझ में नहीं आ रही है। माया के वेग के सहने में एकदम असमर्थ होकर आर्त हो गये और त्राहि त्राहि करके शरणागत हुए।

प्रेमाकुल प्रभु मोहि बिलोकी। निज माया प्रभुता तब रोकी॥
करसरोज प्रभु मम सिर धरेऊ। दीन दयाल सकल दुख हरेऊ॥२॥

अर्थ : सरकार ने मुझे प्रेम में व्याकुल देखकर अपनी माया की प्रभुता को रोका। दीनदयाल ने मेरे सिर पर कमल सा हाथ रक्खा और सब दुःख हरण कर लिया।

व्याख्या : प्रेमाधिक्य में बड़ी व्याकुलता होती है। संयोग में भी वियोग सा कष्ट होने लगता है। इतने बड़े प्रभु की इतनी बड़ी कृपा कि मुझ ऐसे तुच्छ के साथ खेल रहे हैं और मेरी इतनी ढिठाई कि वे पकड़ने चलते हैं तो मैं भागकर उनसे बचना चाहता हूँ। मुझे इतना भी ज्ञान नहीं कि वे सर्वत्र हैं। उनके भीतर बाहर का भेद नहीं है। मेरे सन्देह मिटाने के लिए अपनी अनन्त प्रभुता में से थोड़ी सी

दिखा देने का कष्ट भी किया। फिर भी अप्रसन्नता नहीं वही लड़कपन मुझसे फिर करना आरम्भ कर दिया। यह बचपन का अज्ञान और इतनी बड़ो महा प्रभुता दोनों का एकत्र अवस्थान कैसे है? इस प्रकार सरकार के गुणग्रामों के स्मरण से अनुराग का समुद्र उमड़ पड़ा। भुसुंडिजी को उसमें निमग्न होते देखकर अपनी माया की प्रभुता को रोक दिया। उन्हीं की प्रेरणा से माया प्रभुता दिखला रही थी। विकल देखकर विहँसे थे। प्रेमाकुल देखकर माया को रोकते हैं।

अब रोकने की प्रक्रिया कहते हैं कि सरकार ने मेरे सिरपर हाथ रख दिया। जिसके लिए महाभक्त लोग लालायित रहते हैं। यथा : प्रभु करपंकज कपि के सीसा। सुमिरि सो दसा मगन गौरीसा। तथा : कबहुँ सो करसरोज रघुनायक रखिहौ नाथ सीस मेरे। जेहि कर अभय किये जन आरत बारक बिबस नाम टेरे। सीतल सुखद छाँह जेहि कर की मेटत्ति पाप ताप माया। निसिबासर तेहि कर सरोज की चाहत तुलसिदास छाया।

कीन्ह राम मोहि बिगत बिमोहा। सेवक सुखद कृपा संदोहा॥
प्रभुता प्रथम बिचारि बिचारी। मन महँ होइ हरख अति भारी॥३॥

अर्थ : रामजी ने मुझे मोह से विनिर्मुक्त कर दिया। क्योंकि सेवक को सुख देनेवाले और कृपानिधान हैं। पहिली प्रभुता को विचार विचारकर मेरे मन में बड़ा हर्ष हो रहा था।

व्याख्या : मोह के जाने का अन्य उपाय नहीं। उनकी कृपा से ही मोह छूटता है। यथा : क्रोध मनोज लोभ मद माया। छूटहिं सकल राम की दाया। और रामजी सेवक सुखद तथा कृपासन्दोह है। हम अपने को उनकी कृपा का पात्र नहीं बनाते। अपने ही अभिमान में भूले रहते हैं। आर्त नहीं होते।

अब मोहमुक्त होने से पहिली प्रभुता के बारम्बार विचार से मन में बड़ा भारी हर्ष होने लगा। आश्चर्य हर्ष में परिणत हो गया। मूढ़ को माधुर्य देखकर ऐश्वर्य पर अविश्वास होता है और भक्त को माधुर्य देखकर बड़ा आनन्द होता है।

भगत बछलता प्रभु कै देखी। उपजी मम उर प्रीति बिसेखी॥
सजल नयन पुलकित कर जोरी। कीन्हिउ बहुबिधि बिनय बहोरी॥४॥

अर्थ : प्रभु की भक्तवत्सलता देखकर मेरे हृदय में विशेष प्रीति उपजी। आँखों में आँसू भर आया। रोंगटे खड़े हो गये। हाथ जोड़कर बहुत विधि से मैंने विनय किया।

व्याख्या : सरकार ऐसे भक्तवत्सल हैं कि भक्त के लिए ही बहुत सी लीला कर रहे हैं और उसमें यदि भक्त को भ्रम हो तो उसे दूर करने के लिए उसे अपने पेट में ले जाकर ऐश्वर्य का प्रदर्शन कर देते हैं। भक्त से कोई छिपाव नहीं। वह देखने में असमर्थ होता है। त्राहि त्राहि करता है तो जैसे वह सुखी हो वैसा कर देते हैं। काग के सिर पर भी वह अभय देनेवाला हाथ घूमता है। यह देखकर भुसुण्डिजीके हृदय

में विशेष प्रीति का उदय हुआ। यथा : भेद भक्ति बाढ़े बिहंग बर। विद्या की प्रेरणा से यही तात्पर्य था। तब भुसुण्डिजो को सात्त्विक भाव हुआ। आनन्द में विभोर होकर अनेक भाँति से स्तुति करने लगे।

दो. सुनि सप्रेम मम बानी, देखि दीन निज दास।
बचन सुखद गंभीर मृदु, बोले रमा निवास ॥८३ क.

कागभुसुंडी माँगु बर, अति प्रसन्न मोहि जानि।
अनिमादिक सिधि अपर रिधि, मोक्ष सकल सुखखानि ॥८३॥

अर्थ : मेरी प्रेम भरी वाणो सुनकर और मुझे दीन तथा निज दास जानकर सुख देनेवाली गम्भीर और मृदु वाणी रमानिवास भगवान् बोले।

व्याख्या : रामहि केवल प्रेम पियारा। जानि लेहु जो जाननिहारा। अतः भुसुण्डिजो की प्रेम भरी वाणी सुनकर भगवान् प्रसन्न हो गये। रमानिवास हैं। सम्पूर्ण ऐश्वर्य के स्वामी हैं। अतः सुखद मृदु और गम्भीर वाणी बोले : काग भुसुंडी माँगु बर। यह वाणी का सुखदातृत्व है : अति प्रसन्न मोहि जानि। यह मृदुता है और : अनिमादिक सिधि अपर रिधि मोक्ष सकल सुख खानि। यह गम्भीरता है। चारो फल देने की बात वाणो में है। फिर भी भक्त की परीक्षा हो रही है।

ग्यान बिबेक बिरति बिग्याना। मुनि दुरलभ गुन जे जग नाना ॥
आजु देउँ सब संसय नांही। माँगु जो तोहि भाव मन मांही ॥१॥

अर्थ : ज्ञान विवेक वैराग्य विज्ञानादि जो संसार में प्रख्यात मुनिदुर्लभ गुण हैं वे सब आज तुझे देता हूँ। इसमें संशय नहीं। जो तुझे अच्छा लगे सो माँग।

व्याख्या : दो सुख हैं। एक प्रेय और दूसरा श्रेय। सांसारिक सुख प्रेय कहलाता है और मोक्ष श्रेय कहलाता है। सो जो प्रेय चाहता है उसके हाथ से श्रेय निकल जाता है और श्रेय चाहनेवाले को प्रेय छोड़ना पड़ता है। दिव्यातिदिव्य वैषयिक सुख सभी प्रेय के अन्तर्गत हैं। सरकार अणिमादिक आठों सिद्धियाँ तथा सम्पूर्ण ऋद्धियाँ अर्थात् ऐश्वर्य देने को : अर्थात् प्रेय देने को प्रस्तुत हैं। तथा सकल सुखखानि मुक्ति देने को तैयार हैं अर्थात् श्रेय के लिए भी तैयार हैं।

परन्तु कैसा ही सुखी प्राणी हो यदि उसमें गुण नहीं है तो उसकी शोभा नहीं। सुरदुर्लभ सुख देना कहकर अब मुनिदुर्लभ गुण ज्ञान विवेक वैराग्य विज्ञान देने को कहते हैं। सबकी अनायास प्राप्ति तुझे आज होगी। ये सब तो मैं अपने मन से देने को तैयार हूँ। यदि इनसे अतिरिक्त कुछ दूसरी वस्तु तू चाहता हो तो उसे माँग मैं वह भी दूँगा।

सुनि प्रभु बचन अधिक अनुरागेउँ। मन अनुमान करन तब लागेउँ ॥
प्रभु कह देन सकल सुख सही। भगति आपनी देन न कही ॥२॥

अर्थ : प्रभु का वचन सुनकर मैं अधिक प्रेम में आगया और मन में अनुमान करने लगा कि प्रभु ने सब सुख देना तो कहा पर अपनी भक्ति देना नहीं कहा।

व्याख्या : पहिले ही प्रभु की भक्तवत्सलता देखकर हृदय में विशेष प्रीति उत्पन्न हुई थी। अब प्रभु के उपर्युक्त वचन सुनकर अधिक अनुराग बढ़ा। तब मन में तर्क करने लगा कि प्रभु ने अन्त में कहा कि जो तुझे अच्छा लगे सो माँग। तो क्या प्रभु के कहने में कोई सुख छूट गया? यदि छूटा तो क्या छूटा? यह तर्क मन में उठा। देखा कि बड़ा भारी सुख छूट गया है। भक्ति की तो चर्चा भी इसमें सरकार ने नहीं की। अपनी भक्ति माँगने की चर्चा स्वयं न करेंगे। इसलिए अन्त में कहा कि : मांगु जो तोहि भाव मन माँहीं।

भगति हीन गुन सब सुख ऐसे। लवन बिना बहु बिंजन जैसे ॥
भजन हीन सुख कवने काजा। अस बिचारि बोलेउँ खगराजा ॥३॥

अर्थ : भक्ति के बिना गुण और सम्पूर्ण सुख कैसा है? जैसा बिना लवण का बहुत सा व्यञ्जन। भजन हीन सुख किस काम का? ऐसा विचारकर हे खगराज! मैं बोला।

व्याख्या : यदि सरकार की भक्ति ही नहीं तो इन गुणों और सुखों को लेकर क्या करना है? : तव पदपंकज प्रीति निरंतर। सब साधन कर यह फल सुंदर। भक्ति बिना तो सभी निष्फल हैं। अलोना व्यञ्जन किस काम का? स्वाद तो भक्ति है। इसी के योग से सभी साधन स्वादु हो उठते हैं और इसके बिना सब फीके रहते हैं।

जब सुख स्वरूप रघुवंश मणि का भजन हो न हुआ तो अन्य सुख किस काम का? जब क्लेश ही नहीं मिटा तो सुख लेकर क्या होगा? यथा : ऐसेहिं हरि बिनु-भजन खगेसा। मिटइ न जोवन केर कलेसा। यह सब विचारकर हे खगराज! मैं बोला।

जौं प्रभु होइ प्रसन्न वर देहू। मोपर करहु कृपा अरु नेहू ॥
मन भावत वर मागौं स्वामी। तुम्ह उदार उर अंतरजामी ॥४॥

अर्थ : यदि प्रभु प्रसन्न होकर वर दे रहे हैं और यदि मुझपर कृपा और प्रेम है तो मैं मनचाहा वर माँगता हूँ। सरकार उदार हैं और हृदय के प्रेरक हैं।

व्याख्या : सरकार ने कहा कि : कागभुसुंडो माँगु वर अति प्रसन्न होहि जानि। सरकार स्वयं प्रसन्न होकर वर माँगने को कह रहे हैं। मैंने वर के लिए कोई तपस्या नहीं की है। सरकार की मुझपर कृपा है और स्नेह है। इसलिए वर दे रहे हैं। तब तो मैं जो चाहता हूँ सो लूँगा। उदार से ही ईप्सित की प्राप्ति होती है। फिर सरकार-सा उदार कौन होगा? और यह बात भी है कि सरकार सबके हृदय के प्रेरक हैं। सरकार को प्रेरणा भी है तभी मैं यह माँग रहा हूँ।

दो. अबिरल भक्ति बिसुद्ध तब, स्त्रुति पुरान जो गाव ।
जेहि खोजत जोगीस मुनि, प्रभु प्रसाद कोउ पाव ॥८४ क.
भगत कल्पतरु प्रनत हित, कृपा सिंधु सुखधाम ।
सोइ निज भक्ति मोहि प्रभु, देहु दया करि राम ॥८४॥

अर्थ : जो आपकी अविच्छन्न विशुद्ध भक्ति है जिसे वेद पुराण गाता है । योगेश्वर और मुनि जिसे खोजते हैं । पर सरकार की कृपा से किसी को ही मिलती है । हे भक्तकल्पतरु ! हे प्रणतहित ! हे कृपासिन्धु ! हे सुखधाम राम ! वही अपनी भक्ति मुझे कृपा कर दीजिये ।

व्याख्या : जो भक्ति सदा बनी रहे कभी उसमें भङ्ग न हो उसे अविरल कहते हैं और जो भक्ति फलाभिषङ्ग रहित हो उसे विशुद्ध कहते हैं । जो विरति और विवेक के साथ हो उसे श्रुतिसम्मत कहते हैं । यहाँ भुसुण्डिजी विशेषणत्रयविशिष्ट भक्ति चाहते हैं । और उसी के विषय में कहते हैं कि योगीन्द्र मुनीन्द्र उसी भक्ति की खोज में रहते हैं पर मिलती नहीं । प्रभु के प्रसाद से किसी को मिल जाती है । उसी दुर्लभ भक्ति के लिए कहते हैं कि कृपा करके मुझे दीजिये । सरकार भगत कल्पतरु हैं इसलिए अविरल भक्ति दीजिये । प्रणतहित हैं : इसलिए विशुद्ध भक्ति दीजिये । कृपासिन्धु हैं : इसलिए श्रुतिसम्मत भक्ति दीजिये और सुखधाम हैं : इसलिए दुर्लभा भक्ति दीजिये । यद्यपि भक्ति एक ही है पर सरकार के विशेषणों के साथ भक्ति के विशेषणों को मेल खाते देखकर पृथक् पृथक् करके दिखायी गयी हैं ।

एवमस्तु कहि रघुकुल नायक । बोले बचन परम सुखदायक ॥
सुनु बायस तइ सहज सयाना । काहे न माँगसि अस बरदाना ॥१॥

अर्थ : रघुकुलनायक एवमस्तु कहकर परम सुखदायक वचन बोले । हे वायस ! सुन तैं स्वभाव से ही सयाना है तू ऐसा वरदान क्यों न माँगे ।

व्याख्या : प्रिय के वचन तो प्रिय होते ही हैं । उनके व्यंग्य वचन और भी प्रिय होते हैं । यथा : मन ही मन महेस मुसुकाहीं । हरि के व्यंग वचन नहि जाहीं । अति प्रिय बचन सुनत प्रिय केरे । भृंगिहि प्रेरि सकल गन टेरे । सो यहाँ पर सरकार व्यंग्य से भुसुण्डिजी को सम्बोधन करते हैं । अतः वह वचन परम सुखदायक है । अथवा एवमस्तु ऐसा ही हो यह वचन परम सुखदायक है और व्यंग्य के साथ जो आगे कहेंगे वह परम सुखदायक है ।

यहाँ वायस सम्बोधन में व्यंग्य है । पक्षिणां वायसा धूर्ताः । पक्षियों में वायस धूर्त होते हैं इसलिए कहते हैं कि स्वभाव से ही सयाना है । मेरे बतलाये हुए सुरदुर्लभ गुणों पर नहीं गया । अपने मन का ऐसा वरदान माँगा जिसमें सब कुछ मिल जाय ।

सब सुख खानि भगति तैं माँगी । नहि जग कोउ तोहिसम बड़भागी ॥
जो मुनि कोटि जतन नहि लहहीं । जे जप जोग अनल तन दहहीं ॥२॥

अर्थ : संसार में कोई तुझ सा बड़ाभागी नहीं है। क्योंकि सब सुखों की खानि उस भक्ति की तैने माँगी। जिस भक्ति को मुनि जो कि जप योग की अग्नि में देह को जलाया करते हैं। करोड़ों यत्न करने पर भी नहीं प्राप्त करते।

व्याख्या : पहिले कहा है कि मोक्ष सकल सुख खानि अब कहते हैं सब सुख खानि भगति। भाव यह कि ज्ञानहि भगतिहिं नहि कछु भेदा। उभय हरहिं भव संभव खेदा। इसलिए दोनों सुख की खानि कही गयी। फिर भी भक्ति माँगनेवाला बड़भागी है क्योंकि भक्ति से भगवान् वश्य हो जाते हैं। यथा : निर्वान दायक क्रोध जाकर भगति अबसहि बस करी।

भगवान् कहते हैं कि जो भक्ति तैने माँगा है वह परं दुर्लभ है। भक्तियों में भी अविरल भक्ति और वह भी विशुद्ध तिसपर श्रुतिसम्मत भक्ति मुनियों को भी करोंड़ों यत्न से नहीं मिलती। कैसे मुनि ? जिन्होंने कि जप और योगाग्नि से शरीर को तपा रक्खा है : ऐसी दुर्लभा भक्ति तैने माँगी।

रीझेउँ देखि तोरि चतुराई। माँगेहु भगति मोहिं अति भाई ॥
सुनु बिहंग प्रसाद अब मोरे। सब सुभगुन बसिहहिं उर तोरे ॥३॥

अर्थ : तेरी चतुराई देखकर मैं रीझ गया। तूने भक्ति माँगा जो मुझे अत्यन्त प्यारी है। हे पक्षि! सुन अब मेरी कृपा से सब शुभगुण तेरे हृदय में बसेंगे।

व्याख्या : भजन में चतुराई बड़ी बाधक है। यथा : मन क्रम बचन छाड़ि चतुराई। भजत कृपा करिहहिं रघुराई। पर भगवान् कहते हैं कि तेरी चतुराई ऐसी है कि मैं उस पर रीझ गया। क्योंकि तूने ऐसी वस्तु माँगी जो मुझे अत्यन्त अच्छी लगती है। यथा : भक्तिवन्त अति नीचउ प्रानी। मोहि प्रान प्रिय असि मम बानी।

भक्ति पर सरकार का बड़ा अनुग्रह होता है। अतः कहते हैं कि तू पक्षी है। फिर भी मेरी कृपा से अब सब शुभगुण तेरे हृदय में निवास करेंगे। जिस पर सरकार की कृपा होती है उसी को शुभगुण वरण करते हैं।

भगति ग्यान बिग्यान बिरागा। जोग चरित्र रहस्य बिभागा ॥
जानब तैं सबही कर भेदा। मम प्रसाद नहिं साधन खेदा ॥४॥

अर्थ : भक्ति, ज्ञान, विज्ञान, विराग, योग, चरित्र और रहस्य विभाग तैं इन सब का भेद मेरे प्रसाद से जानेगा साधन का कष्ट तुझे उठाना न पड़ेगा।

व्याख्या : जिससे ऐसा बोध होता है कि मैं बुद्धि प्राण मन देह और महदहङ्कारादि से विलक्षण हूँ : नित्य शुद्ध बुद्ध चेतन आत्मा हूँ वही ज्ञान है। जिस जिस समय इसका साक्षात् अनुभव होता है उस समय इसी को विज्ञान कहते हैं। इस लोक और परलोक के फल भोग से मन के हटने को विराग कहते हैं। समाधि को योग कहते हैं। अवतार की लीला को चरित्र कहते हैं। चरित्र का वह विभाग जो कि गोप्य है उसे रहस्य कहते हैं। परम प्रेम को भक्ति कहते हैं। भक्ति की प्राप्ति से शेष सबों की प्राप्ति हो जाती है। इसलिए भक्ति को पहिले कहा। भगवान् कहते

हैं कि तू इन सब के भेद को जानेगा। और उस जानकारी के लिए जिन साधनों की आवश्यकता होती है और उसमें जो आयास होता है वह आयास मेरी कृपा से तुझे न होगा और तू सब जान जायगा।

दो. माया संभव भ्रम सब, अब न ब्यापिहहि तोहि।
जानेसु ब्रह्म अनादि अज, अगुन गुनाकर मोहि ॥८५ क.
मोहि भगत प्रिय संतत, अस बिचारि सुनु काग।
काय बचन मन मम पद, करेसु अचल अनुराग ॥८५॥

अर्थ : माया से उत्पन्न जो भ्रम हैं वे सब तुम्हें अब न व्यापेंगे। मुझे ब्रह्म अनादि अज अगुण और गुणाकर जानना। मुझे सदा भक्त प्रिय हैं ऐसा विचार करके हे काग सुन! मनसा वाचा कर्मणा मेरे चरण में अचल अनुराग करना।

व्याख्या : भगवान् कहते हैं कि माया से उत्पन्न जो भ्रम है वे अब तुझे न व्यापेंगे। मैंने तेरे लिए माया की प्रभुता अब रोक दी है। मुझ बालक रूप राम को अनादिब्रह्म जानना मेरा जन्म नहीं होता। मैं नित्य निर्गुण होने पर भी गुणों का आकर हूँ ऐसा मुझे समझना। यही दिव्य जन्म कर्म है।

इस भाँति ज्ञान कथन करके अब भक्ति कहते हैं कि मुझे सदा भक्त प्यारे हैं। भक्त के लिए मैं शरीर धारण करता हूँ और सब कुछ करता हूँ। ऐसी मेरी प्रीति समझकर मेरे चरणों में अचल प्रेम रखना। मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु। वर देने पर भी उपदेश देने का तात्पर्य यह है कि ईश्वर कृपा तो हो चुकी। अब आत्मकृपा में प्रमाद न करना। अपनी ओर से त्रुटि न आने देना जो अलभ्य वस्तु मिली है उसकी रक्षा करना।

अब सुनु परम बिमल मम बानी। सत्य सुगम निगमादि बखानी ॥
निज सिद्धान्त सुनावौं तोही। सुनि मन धरु सब तजि भजु मोही ॥१॥

अर्थ : अब परम निर्मल मेरी वाणी सुनो। जो कि सत्य है सुगम है : और जिसे वेदादि शास्त्रों ने वर्णन किया है। अपना सिद्धान्त तुम्हें सुनाता हूँ। सुनकर मन में धारण करो कि सब छोड़कर मुझे भजो।

व्याख्या : सत्य वाणी ही निर्मल वाणी है। वह यदि क्लिष्ट न हो तो परम निर्मल है और वह यदि वेदादि शास्त्रोक्त भी हो तब तो वह ईश्वरीय वाणी ही है। यहाँ पर अपना सिद्धान्त कह रहे हैं अतः पर विमलादि विशेषण दिया। अब कहते हैं कि इस वाणी को सुनकर मन में धारण करो मन से निकल न जाने न पावे। वह यह है कि : सर्वं त्यक्त्वा हरिं भजेत्। सब काम छोड़कर भगवान् का भजन करे। यह बात नहीं कि सब काम से छुट्टी पालेंगे तब भजन करेंगे। बात यह होनी चाहिए कि भजन से छुट्टी पालेंगे तब दूसरा काम करेंगे। पूरा श्लोक ऐसा है : शतं विहाय भोक्तव्यं सहस्रं स्नानमाचरेत्। लक्षं विहाय दातव्यं सर्वं त्यक्त्वा हरिं भजेत्।

अथवा : सुख संपति परिवार बड़ाई। सब परिहरि करिहौं सेवकाई। ये सब राम भगति के बाधक। कहहिं सन्त तव पद अवराधक। सत्रु मित्र सुख दुःख जग माहीं। माया कृत परमारथ नाहीं। अब प्रभु कृपा करहु एहि भाँति। सब तजि भजन करौं दिन राती।

मम मायासंभव संसारा। जीव चराचर बिबिध प्रकारा ॥
सब मम प्रिय सब मम उपजाये। सब ते अधिक मनुज मोहि भाये ॥२॥

अर्थ : यह संसार मेरी माया से उत्पन्न है। अनेक प्रकार के जो जीव हैं सो सब मुझे प्रिय हैं। क्योंकि मैंने इन्हें उत्पन्न किया है। सबसे अधिक मुझे मनुष्य अच्छे लगते हैं।

व्याख्या : भगवान् कहते हैं : आदि सक्ति जेहि जग उपजाया। सो अवतरिय मोरि यह माया। लव निमेष महँ भुवन निकाया। रचै जासु अनुसासन माया। भगवद्गीता में भी कहा है, मम योनिर्महद्ब्रह्म तस्मिन् गर्भं दधाम्यहम्। सम्भवः सर्वभूतानां ततो भवति भारत। अहं बीजप्रदः पिता। जितने चराचर जीव हैं वे मेरी माया से उत्पन्न हैं, मैंने उन्हें उत्पन्न किया है। इसलिए सब मुझे प्रिय हैं। जीवमात्र में कोई मुझे अप्रिय नहीं है। अतः प्राणिमात्र पर सद्भावना करनी चाहिए। इनमें भी मनुष्य मुझे बहुत अच्छे लगते हैं। क्योंकि इसी देहमें मेरी भक्ति उदय होती है। यथा : मनुज देह सुर साधु सराहत सो सनेह सिय पीके।

तिन्ह महँ द्विज द्विज महँ स्रुति धारी। तिन महँ निगम धर्म अनुसारी ॥
तिनमहुँ प्रिय बिरक्त पुनि ग्यानी। ग्यानिहु तें अतिप्रिय बिग्यानी ॥३॥

अर्थ : इनमें ब्राह्मण और उनमें भी श्रोत्रिय उनमें भी वैदिक धर्म पालन करनेवाला उनमें भी विरक्त और उनमें भी ज्ञानी। ज्ञानियों में भी विज्ञानी अत्यन्त प्रिय है।

व्याख्या : सरकार कहते हैं कि मनुष्यों में भी मुझे ब्राह्मण प्रिय है क्योंकि जाति आयु और भोग पूर्व जन्म के कर्मानुसार मिलता है। जो पूर्व जन्म में रमणीयाचरण हैं वे ब्राह्मण क्षत्रियादि होते हैं। इस जन्म में शील गुण हीन होने पर भी पूर्व जन्म के पुण्य से वे पूजे जाते हैं। जैसे धनी के लड़के बिना पुरुषार्थ धन के भागी होते हैं। यथा : पूजिअ बिप्र सील गुन हीना। सूद्र न गुन गन ग्यान प्रबीना। सुनु गंधर्ब कहौं मै तोही। मोहि न सोहाय ब्रह्मकुलद्रोही। अथवा यथा तुलसी अश्वत्थ वट आदि के अपने कल्याण में असमर्थ होने पर भी पूजनेवाले का कल्याण तो हो ही जाता है। इसी भाँति ब्राह्मण जाति के भी पूजन से कल्याण है।

उनमें भी श्रुतिधारी अधिक प्रिय हैं क्योंकि उनमें वेद प्रतिष्ठित हैं। उनके लिए तो भक्ति के साधन में कहा गया है : प्रथमहि बिप्र चरन अति प्रीती। ऐसे ब्राह्मणों

---

१. यहाँ सारालङ्कार है।

में भी जो नियम धर्मानुसारी हैं वे अधिक प्रिय हैं। क्योंकि वे पूरे ब्राह्मण हैं। उनमें तप श्रुति और जन्म तीनों हैं। यथा : तपः श्रुतञ्च योनिश्च ह्येतद्ब्राह्मणकारकम्। तपः श्रुताभ्यां यो हीनः जातिब्राह्मण एव सः।

उनमें भी जो विरक्त हैं वे और भी अधिक प्रिय हैं। यथा : नर सहस्र महँ सुनहु पुरारी। कोउ एक होइ धर्मब्रतधारी। धर्म सील कोटिक महँ कोई। बिषय बिमुख बिराग रत होई। कोटि बिरक्त मध्य स्रुति कहई। सम्यक ज्ञान सकृत कोउ लहई। तिन सहस्र महँ सब सुखखानी। दुर्लभ ब्रह्मलीन बिज्ञानी। इसलिए सरकार कहते हैं कि विरक्तों में भी मुझे ज्ञानी प्रिय हैं और उनसे भी अधिक विज्ञानी प्रिय है।

तिन्ह ते पुनि मोहि प्रिय निज दासा। जेहि गति मोरि न दूसरि आसा॥
पुनि पुनि सत्य कहौं तोहि पाहीं। मोहि सेवक सम प्रिय कोउ नाहीं॥४॥

अर्थ : उनसे भी मुझे अपना दास प्रिय है जिसे मेरी ही गति है। दूसरी आशा नहीं है। बार बार तुझसे सत्य कहता हूँ कि मुझे सेवक सा प्रिय कोई नहीं।

व्याख्या : सरकार का वचन है कि : मोरे प्रौढ़ तनय सम ज्ञानी। बालक सुतसम दास अमानी। प्रौढ़ भये तेहि सुत पर माता। प्रीति करै नहिं पाछिल बाता। एहि बिचारि पंडित मोहि भजहीं। पायेहुँ ज्ञान भगति नहिं तजहीं। अतः दास विज्ञानी से भी प्रिय है। अब दास की परिभाषा कहते हैं कि जिस भाँति शिशु को माता ही गति रहती है उसे दूसरी आशा नहीं। इसी भाँति दास की गति प्रभु हैं। उसे दूसरे की आशा नहीं। दूसरे की हुई तो वह दास कैसा ? मोर दास कहाइ नर आसा। करै तो कहहु कहाँ बिस्वासा।

भुसुण्डिजी को आश्वासन देते हुए सरकार कहते हैं कि बार बार तुझसे सत्य कहता हूँ कि सेवक के समान मुझे कोई प्रिय नहीं है। यहाँ सेवक और दास एकही अर्थ में आया है। विज्ञान की भाँति सेवक ने सब अभिमान का त्याग किया है फिर भी सेवक सेव्य भाव बनाये रखता है। यथा : अस अभिमान जाइ जनि भोरे। मैं सेवक रघुपति पति मोरे।

भगति हीन बिरंचि किन होई। सब जीवहु सम प्रिय मोहि सोई॥
भगतिवंत अति नीचउ प्रानी। मोहि प्रान प्रिय असि मम बानी॥५॥

अर्थ : यदि ब्रह्मदेव भी भक्तिहीन हों तो वे भी मुझे सब जीवों की भाँति ही प्रिय हैं और यदि अति नीच प्राणी भी भक्त हो तो वह मुझे प्राणप्रिय है यह मेरा वचन है।

व्याख्या : यथा रामहि केवल प्रेम पियारा। जानि लेहु जो जाननिहारा। जो रामजी से प्रेम करता है उससे वे विशेष प्रेम करते हैं। नहीं तो प्राणिमात्र सरकार के प्रिय हैं। ब्रह्मदेव का बड़ा ऊँचा दर्जा है। पर वे भी सरकार को प्रिय तभी हो सकते हैं यदि उनमें भक्ति हो। नहीं तो इतना ऊँचा पद पाने पर भी सरकार के प्रेम में उच्चपद नहीं प्राप्त कर सकते और यदि कोई अति नीच है : जासु

छाँह छुई लेइअ सींचा। उसे भी यदि भक्ति है तो भले ही संसार उसे कुछ न समझे पर है वह सरकार का प्यारा। यथा : तुलसी भगत स्वपच भलो भजै रैनदिन राम। ऊँचो कुल केहि काम को जहाँ न हरि को नाम। अति ऊँचे भूधरन्ह पै भुजग के अस्थान। तुलसी अति नीचे सुखद ऊख अन्न अरु पान।

दो. सुचि सुसील सेवक सुमति, प्रियकहु काहि न लाग।
स्रुति पुरान कह नीति असि, सावधान सुनु काग ॥८६॥

अर्थ : पवित्र, सुशील, सुमति सेवक कहो किसे प्रिय नहीं लगेगा। हे काग सावधान होकर सुन। वेद पुराण ने ऐसी ही नीति बतलायी है।

व्याख्या : भाव यह कि प्रभु जो इस प्रकार से भुसुण्डिजी पर कृपा कर रहे हैं उसका कारण बतालाते हैं कि एवं गुणगण विशिष्ट सेवक सबको प्रिय होते हैं। वेद पुराण की भी यही नीति है। सो तू शुचि, सुशील, सुमति सेवक है अतः मुझे प्रिय है। भुसुण्डिजी की सुशीलता यथा : जौं प्रभु होइ प्रसन्न बर देहू। मो पर करहु कृपा अरु नेहू। मन भावत बर माँगौं स्वामी। तुम्ह उदार उर अन्तरजामी। भुसुण्डिजी की शुचिता यथा : भजन हीन सुख कौने काजा। भुसुण्डिजी की सुमति यथा : प्रभु कह देन सकल सुख सही। भगति आपनी देन न कही। भगति हीन गुन सब सुख कैसे। लवन बिना बहु बिंजन जैसे।

एक पिता के बिपुल कुमारा। होहिं पृथक गुन सील अचारा॥
कोउ पंडित कोउ तापस ज्ञाता। कोउ धनवंत सूर कोउ दाता ॥१॥

अर्थ : एक पिता के बहुत से लड़के होते हैं। पर उनका गुण शील और आचार पृथक् पृथक् होता है। कोई पण्डित होता है कोई तपस्वी होता है कोई जानकार होता है। कोई धनी होता है कोई शूर होता है कोई दाता होता है।

व्याख्या : उपर्युक्त सिद्धान्त को अब उदाहरण देकर समझाते हैं। जिसमें कोई यह न कहे कि सरकार भी पक्षपात करते हैं। भक्त के ऊपर अनुग्रह विशेष होना नीति है और वह श्रुति पुराण से अनुमोदित है। यहाँ पिता पुत्र का उदाहरण देकर उस नीति को समझाया। इस जगत् के सरकार पिता हैं। यथा : पिताहमस्य जगतः माता धाता पितामहः। अतः पिता पुत्रका उदाहरण बिल्कुल ठीक बैठता है। एक पिता के अनेक पुत्र होते हैं पर वे एक से नहीं होते। इसी भाँति सब प्राणी संसार के अमृतस्य पुत्राः भगवान् के पुत्र होने पर भी एकसे नहीं हैं। रूपमें तो भेद है ही सबके गुण कर्म स्वभाव में भी भेद है। उसीको दिखाते हुए कहते हैं कि सबके गुण शील और आचार अलग अलग होते हैं।

पिता एक है इसलिए सबका रक्त मांस एक है। एक प्रकार से सबका पालन पोषण हुआ है। एक प्रकार की शिक्षा दीक्षा मिली है फिर भी सबको विद्या नहीं होती। किसी एक को होती है। सब तपस्वी नहीं होते कोई एक होता है। इसी भाँति

उनमें से कोई एक ज्ञानी होता है। कोई धनी हो जाता है। कोई वीर निकलता है कोई दाता होता है।

कोउ सबंग्य धर्मरत कोई। सब पर पितहि प्रीति सम होई ॥
कोउ पितु भगत बचन मन कर्मा। सपनेहु जान न दूसर धर्मा ॥२॥

अर्थ : कोई सर्वज्ञ होता है कोई धर्मरत होता है। पिता की उन सब पर समान प्रीति होती है। कोई मनसा वाचा कर्मणा पिता का भक्त होता है सपने में भी दूसरा धर्म नहीं जानता।

व्याख्या : कोई उनमें से सर्वज्ञ होता है। ऐसी शङ्का न करनी चाहिए कि नहि सर्वः सर्वं वेत्ति : सर्वज्ञ कोई होही नहीं सकता। क्योंकि शास्त्रों में सर्वज्ञ का लक्षण दिया हुआ है। परचित्तस्थितं देशकालाद्यन्तरितं तथा। यो जानाति समस्तार्थं स सर्वज्ञो निगद्यते। देशकालादि से अन्तर पड़े हुए को तथा दूसरों के चित्त की बातों को जो जान लेता है। जो समस्त अर्थों को जानता है उसे सर्वज्ञ कहते हैं। अर्थात् यहाँ सर्वज्ञ से योगी का ग्रहण है और कोई धर्मात्मा होता है। एवं गुण शील और आचार में भेद रहते हुए भी सब पर पिता की प्रीति समान होती है। गुण शील तथा आचार के उत्कर्षापकर्ष से पिता की प्रीति में उत्कर्षापकर्ष नहीं होता। पिता की प्रीति सब पर समान होती है। अर्थात् पाण्डित्य, तपस्या, ज्ञान, धन, शौर्य, उदारता, सर्वज्ञता और धर्म में इतनी सामर्थ्य नहीं है कि पिता की प्रीति के साम्य में अन्तर डाल सके।

अब एक पुत्र ऐसा है जो उपर्युक्त सभी गुणों से रहित है। परन्तु मनसा वाचा कर्मणा पिता का भक्त है। दूसरे धर्म का वह सपना भी नहीं देखता। अर्थात् उसकी बड़ी दृढ़ भक्ति पिता पर है।

सो सुत प्रिय पितु प्रान समाना। जद्यपि सो सब भाँति अयाना ॥
एहि बिधि जीव चराचर जेते। त्रिजगदेव नर असुर समेते ॥३॥

अर्थ : वह पुत्र पिता को प्रान के समान प्यारा है। यद्यपि वह सब भाँति से अज्ञ है। इसी प्रकार से जितने चराचर जीव हैं क्या तिर्यग् योनि क्या देवयोनि क्या नर योनि क्या असुर योनि।

व्याख्या : सब पुत्रों पर तो पिता की समान ममता है। सब पिता को प्यारे हैं पर वह भक्त पुत्र प्राण सा प्यारा है। भले ही उसमें विद्या तपस्या शूरतादि गुण नहीं है। भक्त के ऊपर अधिक प्यार न होना ही विषमता है। उसका प्राण के समान प्यारा होना ही पिता की समता है। रामजी जो पिता को प्राण से अधिक प्यारे थे इसका कारण भी यही था कि श्रीरामचन्द्रजी पिता के भक्त भी सबसे अधिक थे। लक्ष्मणजी ने कठोर वचन कहे भरतजी भी इतना कह बैठे कि भूप प्रतीति तोर किमि कीन्ही। मरन काल बिधि मति हरि लीन्ही। परन्तु रामजी ने

यही कहा कि पिता दीन्ह मोहि कानन राजू। जहँ सब भाँति मोर बड़ काजू। अतः ऐसे पुत्र का प्राण समान प्रिय होना नीति सम्मत है।

यही न्याय परमेश्वर का सब जीवों के साथ है। तिर्यग् योनि अज्ञानी है। देवता बड़े पुण्यात्मा हैं। मनुष्य मध्यम कोटि के हैं। असुर निकृष्ट कोटि के हैं पर भगवान् को सब प्रिय हैं। उनमें वैषम्य नहीं।

अखिल बिस्व यह मोर उपाया। सब पर मोहि बराबरि दाया ॥
तिन्ह मँह जो परिहरि मद माया। भजहि मोहि मन बच अरु काया ॥४॥

अर्थ : यह सम्पूर्ण संसार मेरा उपजाया हुआ है। अतः सब पर मेरी दया समान है। उनमें से मद माया छोड़कर मुझे मन वचन और कर्म से जो भजन करते हैं।

व्याख्या : अब उस उदाहरण को समझाकर कहते हैं कि जैसे पिता की अपने सब बच्चों पर चाहे गुणी हो चाहे निर्गुणी हों समान प्रीति होती है। वैसे ही सम्पूर्ण प्राणी मेरे बाल बच्चे हैं मुझे सब पर प्रीति है देवता पर भी और राक्षस पर भी परन्तु जिस भाँति पिता को भक्त बच्चा प्राण सा प्यारा होता है उसी भाँति प्राणियों में से जो मद माया छोड़कर मुझे मन वचन कर्म से भजते हैं वे प्यारे हैं। मद माया विना छोड़े ईश्वर का भजन सम्भव नहीं। जिसको किसी प्रकार का मद है जिसके हृदय में कपट है वह विनयी नहीं हो सकता और न सरल हो सकता और जिसमें बिनय और सरलता नहीं है उससे भजन ठीक तरह से हो नहीं सकता।

दो. पुरुष नपुंसक नारि वा, जीव चराचर कोइ।
सर्व भाव भज कपट तजि, मोहि परम प्रिय सोइ ॥८७ क.

सो. सत्य कहौं खग तोहि, सुचि सेवक मम प्रान प्रिय।
अस बिचारि भजु मोहि, परिहरि आस भरोस सब ॥८७॥

अर्थ : चाहे पुरुष हो नपुंसक हो नारी हो अथवा कोई भी चराचर जीव हो। जो सर्व भाव से मुझे कपट छोड़कर भजता है वही मुझे परम प्रिय हैं। हे पक्षी ! मैं तुझसे सत्य कहता हूँ कि शुचि सेवक मुझे प्राण सा प्यारा है। ऐसा विचार करके सब आशा भरोसा छोड़कर मुझे भजो।

व्याख्या : अपने पिता की भक्ति करने का सबको अधिकार है। इसी भाँति मेरी भक्ति करने का सबको अधिकार है। पर उस भक्ति में दिखावा न हो। प्रीति सच्ची चाहिए। कपट प्रीति से काम नहीं चलता। अतः भगवान् कहते हैं कि यहाँ जाति पाँति का टण्टा नहीं। पुण्य योनि हीन योनि का विचार नहीं। बड़े छोटे का विचार नहीं। जो कोई भगवान् को कपट छोड़कर भजे वही उन्हें प्राणप्रिय हो जाता है। जीव सभी प्रिय हैं पर प्राणप्रिय होने का रास्ता तो भजन है। अन्य गुणों से

पदवी बढ़ेगी पर प्रिय न बन सकेगा। ऊँचे पद पर प्रतिष्ठित होना और भगवान् को प्रिय होना दो बात है। यह नियम नहीं कि जो ऊँचे पद पर हैं वह भगवान् को प्रिय हैं।

शुचि सेवक से प्रसङ्ग उठा था। यथा : सुचि सुसील सेवक सुमति प्रिय कहु कहि न लाग और सुचि सेवक कहकर समाप्त करते हैं। भाव यह कि वह मुझे प्राण प्रिय है। अतः मुझे प्रिय होना हो तो सब आशा भरोसा छोड़कर मुझे भजो।

कबहूँ काल न ब्यापिहि तोहीं। सुमिरेसि भजेसि निरंतर मोहीं॥
प्रभु बचनामृत सुनि न अघाऊँ। तन पुलकित मन अति हरखाऊँ॥१॥

अर्थ : कभी तुझे काल नहीं व्यापेगा। निरन्तर मेरा स्मरण भजन करते रहना। प्रभु के अमृत से वचन सुनने से तृप्ति नहीं होती थी। मेरे शरीर में पुलक था और मन हर्षित हो रहा था।

व्याख्या : परिवर्तन का कारण काल है। सो उसकी गति तेरे लिए बन्द कर दी जाती है। परन्तु आत्मकृपा में न चूकना मेरे स्मरण भजन में अन्तर न पड़ने पावे। अन्तर पड़ने से ही काल का घात बैठता है। यथा : नाम पाहरू दिवस निसि ध्यान तुम्हार कपाट। लोचन निज पद जंत्रित प्रान जाहि केहि बाट। मृत्यु तो प्रमाद ही है। प्रमादो वै मृत्युः। भुसुण्डिजी पहिले कांक्षामृत्यु थे। यथा : कामरूप इच्छा मरन ग्यान बिराग निधान। अब अमर हो गये। सरकार की ओर से मरण की नियति हटा ली गयी।

बोले बचन परम सुख दायक से उपक्रम करके प्रभु बचनामृत सुनि न अघाऊँ से उपसंहार कर रहे हैं। वरदान से तो तृप्ति हुई पर सरकार के वचनामृत से तृप्ति नहीं हुई। उसके सुनने से ऐसा सुख उपजता था कि शरीर पुलकित हो रहा था और मन में हर्ष बढ़ता जाता था।

सो सुख जानै मन अरु काना। नहि रसना पहि जाइ बखाना॥
प्रभु सोभा सुख जानहि नयना। कहि किमि सकहि तिनहि नहि बयना॥२॥

अर्थ : वह सुख मन और कान जानता है। जिह्वा द्वारा कहा नहीं जा सकता। प्रभु की शोभा का सुख आँखें जानती हैं पर वे कहें कैसे उन्हें वाणी नहीं है।

व्याख्या : भुसुण्डिजी को ब्रह्म संस्पर्श का अत्यन्त सुख मिल रहा है। श्रवणेन्द्रिय द्वारा सरकार की वाणी हृदयङ्गम हो रही है और सरकार का रूप चक्षु इन्द्रिय द्वारा प्रत्यक्ष हो रहा है। अतः मन दो प्रकार से ब्रह्म साक्षात्कार कर रहा है। चक्षु और श्रोत्र दोनों ज्ञानेन्द्रियाँ हैं। मन के योग से ये दिव्याति दिव्य विषय का भोग कर रही हैं। रसना तो कर्मेन्द्रिय है : उस सुख के उपभोग में इसका प्रवेश ही नहीं तो यह कहे कैसे ? दूसरी बात यह है कि इसका नाम ही रसना है। इसमें रस नहीं इसीलिए इसे वैखरी कहते हैं : यह इस महारस का वर्णन कैसे करे।

बहु बिधि मोहि प्रबोधि सुख देई। लगे करन सिसु कौतुक तेई॥
सजल नयन कछु मुख करि रूखा। चितइ मातु लागी अति भूखा॥३॥

अर्थ : बहुत प्रकार से मुझे समझा बुझाकर सुख दिया। फिर वही लड़कपन का कौतुक फिर करने लगे। आँखों में आँसू भरकर और कुछ रूखा चेहरा करके माँ को देखा। क्योंकि बड़ी भूख लग गयी थी।

व्याख्या : शाश्वत जगद्गुरु ने बहुत प्रकार से ज्ञानोपदेश किया और इस भाँति भी सुख दिया। सरकार बिदाई के समय विरहजन्य पीड़ा के कम करने के लिए ज्ञानोपदेश करते हैं। यथा :

नहि अन्तर नहि बाह्य जहँ, नहीं देश नहि काल।
चित्सुख रूप सरूप मम, बाकी माया जाल॥१॥
माया में सब सम्भवत, कछू असम्भव नाहिं।
याते मायिक रूप में, अगनित भुवन लखाहिं॥२॥
विना नियम जस सपन में देश काल को भान।
ते सोइ माया रूप में, देश काल पहिचान॥३॥
प्रकटत कतहूँ माधुरी ऐश्वर भाव छिपाय।
होत प्रकट ऐश्वर्य कहुँ, सो माधुरी दुराय॥४॥
मैं समान दुहुरूप में, एसो जिय ठहराय।
लीला निरखत माधुरी बुध जन मन हरखाय॥५॥

अब उस प्रसङ्ग को समाप्त करके फिर वही शिशुपन की लीला आरम्भ कर दी। बचपन में जब बहुत भूख लगती है तभी बच्चे खेल से विरत होते हैं। सो खेलते खेलते बहुत देर लग गयी अतः बड़ी भूख लगी। आँखों में आँसू आ गये माँ की ओर कुछ रूखा चेहरा करके देखा। माँ बराबर मुँह देखा करती है। समझ गयी कि इन्हें भूख लग गयी अब रोया चाहते हैं।

देखि मातु आतुर उठि धाई। कहि मृदु बचन लिए उर लाई॥
गोद राखि कराव पय पाना। रघुपति चरित ललित कर गाना॥४॥

अर्थ : देखकर माँ आतुर होकर दौड़ पड़ी और मृदु वचन कहकर हृदय से लगा लिया। गोद में लेकर दूध पिलाने लगी और रघुपति के सुन्दर चरित का गान करने लगी।

व्याख्या : बच्चे को भूखा देखकर माँ उठकर दौड़ पड़ी। दासी को लाने की आज्ञा नहीं देती स्वयं दौड़ पड़ती हैं। प्यार के शब्दों से सम्बोधन करती हुई गोद में रखकर दूध पिलाती है। दूध पिलाने के समय बच्चों को सुलाने के लिए माँ मधुगान भी करती है। यथा :

ललन लोने लेरुआ बलि मैया।
सुख सोइये नीद बेरिया भई चारु चरित चारयो भइया॥

कहत मल्हाइ लाइ उर छिन छिन छगन छबीले छोटे छैया।
मोदकन्द कुल कुमुदचन्द मेरे रामचन्द्र रघुरैया॥
रघुपति बालकेलि संतन की सुभग सुखद सुरगैया।
तुलसी दुहि पीवत सुख जीवत पय सप्रेम घने घैया॥
इत्यादि : गीतावली

सो. जेहि सुख लागि पुरारि, असुभ बेष कृत सिव सुखद।
अवधपुरी नर नारि, तेहि सुखमँहु संतत मगन ॥८८ क.
सोई सुख लवलेस, जिन बारक सपनेहु लहेउ।
ते नहि गनहिं खगेस, ब्रह्म सुखहि सज्जन सुमति ॥८८ ख.

अर्थ : जिस सुख के लिए त्रिपुरारि शिवजी ने सुख देनेवाले होकर अशुभ वेष बना लिया है। अवधपुर के नर नारी तो उस सुख में सदा मग्न रहते हैं। उस सुख का लवलेश जिसने एक बार भी सपने में पाया है हे खगेश! वह सज्जन सुमति ब्रह्मानन्द को भी नहीं गिनता।

व्याख्या : पुरारि कहकर शिवजी का अचिन्त्य सामर्थ्य और ऐश्वर्य कहा। उन्हें कोई सुख दुर्लभ नहीं है। फिर भी ध्यान में शृंगाररस को बाधक समझकर सदा उसके प्रतिकूल अशुभ वेष धारण किये रहते हैं। यथा : नहि स्वात्मारामं विषयमृगतृष्णा भ्रमयति। उन्हें रामजी की क्रीड़ा बड़ी प्रिय है। उसी के ध्यानजन्य सुख में आनन्दित रहना चाहते हैं। यहाँ सभी अवधवासी नर नारी उस सुख में सदा मग्न रहते हैं।

श्री गोस्वामीजी कहते हैं कि वह सुख ब्रह्मानन्द से भी बहुत अधिक है। यथा : त्वत्साक्षात्करणाह्लादविशुद्धाब्धिस्थितस्य मे। सुखानि गोष्पदायन्ते ब्राह्मण्यपि जगद्गुरो। ब्रह्म चक्षु का विषय नहीं है। यथा : यच्चक्षुषा न पश्यन्ति। मनोवृत्तिका ब्रह्माकार होना ही ब्रह्मानन्द है। उसी वृत्ति में जो आनन्द प्रतिफलित होता है उसी को ब्रह्मानन्द कहते हैं परन्तु योग माया द्वारा वह महाप्रभु अपने को भक्तोंका नयनगोचर भी बना देता है। अतः लीलामूर्ति के साक्षात्कार में केवल मानसिक साक्षात्कार : सो भी अमूर्त के साक्षात्कार से कहीं अधिक आनन्द होगा इसमें सन्देह नहीं।

मैं पुनि अवध रहेउँ कछु काला। देखेउँ बालबिनोद रसाला॥
राम प्रसाद भगति बर पायेउँ। प्रभुपद बंदि निजास्रम आयेउँ॥१॥

अर्थ : मैं फिर अवध में कुछ काल रहा और रसीला बालबिनोद देखता रहा। रामजी के प्रसाद से भक्तिवर पाया और सरकार के चरणों की बन्दना करके अपने आश्रम में चला आया।

व्याख्या : भुसुण्डिजी का नियम था कि पाँच वर्षतक अवध में रहकर

बालविनोद देखते थे। और तत्पश्चात् अपने आश्रम पर चले आते थे। तदनुसार इस बार भी किया। यहाँ कछु काल से वही पाँच वर्ष का अवशिष्ट काल अभिप्रेत है। अब बालविनोद के देखने में मोह नहीं है बड़ा आनन्द आया इसलिए रसाल कहते हैं। यहाँ भक्ति से भी वही भक्ति अभिप्रेत है जो मुनियों को दुर्लभ है। नहीं तो लोमशऋषि तो आशोर्वाद देही चुके थे कि : रामभक्ति अविरल उर तोरे। बसिहि सदा प्रसाद अब मोरे। अतः इस बार मुनिदुर्लभ भक्ति वर पाकर अपने आश्रम को लौटे। चलने के समय चरण वन्दना किया।

तब ते मोहि न ब्यापी माया। जब ते रघुनायक अपनाया॥
यह सब गुप्त चरित मैं गावा। हरिमाया जिमि मोहि नचावा॥२॥

अर्थ : तब मुझे माया नहीं व्यापी जब से रामजी ने मुझे अपना बना लिया। यह सब गुप्त चरित्र मैंने कहा जिस भाँति हरिमाया ने मुझे नचाया।

व्याख्या : रामकृपा आपन जड़ताई। कहहुँ खगेस सुनहु मनलाई : से जिस प्रसङ्ग को उठाया था उसे यहाँ समाप्त करते हैं। कहते हैं कि राम कृपा से मेरी जड़ता चली गयी। रामजी ने अपना कर लिया मेरा मन सरकार में ऐसा लगा कि फिर मुझे माया नहीं व्यापी। भाव यह कि मेरे सिर पर जब से हाथ भगवान् ने रक्खा तब से मुझे अपना लिया। तेहि कौतुक कर मर्म न काहू। जाना अनुज न मातु पिताहू। इसलिए कहते हैं कि यह सरकार का गुप्त चरित्र है। इसे सब नहीं जानते और जो जानते हैं वे प्रकाश नहीं करते। क्योंकि इस गुप्त चरित्र के समझने के अधिकारी नहीं मिलते। आप अधिकारो हैं इसलिए आप से कहा। हरिमाया के वश में मैं भी नाच चुका हूँ कोई इससे बचा नहीं है। इसलिए आप अपने लिए आश्चर्य न कीजिये।

निज अनुभव अब कहौं खगेसा। बिनु हरिभजन न जाहि कलेसा॥
रामकृपा बिनु सुनु खगराई। जानि न जाइ राम प्रभुताई॥३॥

अर्थ : हे पक्षिराट्! अब मैं अपना अनुभव कहता हूँ कि बिना हरि भजन के क्लेश जाते नहीं। हे पक्षिराट्! सुनो बिना राम कृपा के रामजी की प्रभुता जानी नहीं जाती।

व्याख्या : सरकार ने कहा : जानब तैं सबही कर भेदा। मम प्रसाद नहि साधन खेदा। सो उनके प्रसाद से जो अनुभव मुझे हुआ उसे भी सुनाता हूँ। क्लेश पाँच प्रकार के होते हैं : अविद्याऽस्मितारागद्वेषाभिनिवेशाः क्लेशाः। यो० सू० १. अविद्या २. अस्मिता ३. राग ४. द्वेष और ५. अभिनिवेश। अनित्य अशुचि दुःख और अनात्म को नित्य शुचि और आत्मा समझना अविद्या है। पुरुष और बुद्धि की एकात्मता को अस्मिता कहते हैं। सुख के अनुसारी होनेवाले ज्ञान को राग और दुःख के अनुसरण करनेवाले ज्ञान विशेष को द्वेष कहते हैं और मरण भय को अभिनिवेश कहते हैं। इन्हीं के कारण प्राणिमात्र दुःखी हैं। उन दुःखों के हटाने के

उपायों से शास्त्र भरे पड़े हैं। पर मेरा अनुभव यह है कि बिना हरि भजन के ये दूर होते नहीं। यथा :

नाहि न आवत आन भरोसो।
एहिकाल सकल साधन तरु है स्रम फलनि फरोसो॥
तप तीरथ उपवास दान मख जेहि जो रुचै करोसो।
पाएहि पै जानिबो करम फल भरि भरि वेद परोसो॥
आगम विधि जप जाग करत नर सरत न काज खरोसो।
सुख सपनेहु न जोग सिधि साधन रोग वियोग धरोसो॥
काम क्रोध मद लोभ मोह मिलि ज्ञान विराग हरोसो।
विगरत मन सन्यास लेत जल नावत आम घरोसो॥
वहुमत सुनि बहुपंथ पुराननि जहाँ तहाँ झगरोसो।
गुरु कह्यो राम भजन नीको मोहि लगत राज डगरोसो॥

विनय पद १७३

जिसकी दासी माया के वशवर्ती ब्रह्मादिक देवता और असुर हैं अन्यजीवों की क्या गिनती है। उस महाप्रभु की प्रभुता को दिनरात देखता हुआ भी संसार नहीं जानता। जिस पर उनकी कृपा होती है वही जान सकता है।

जाने बिनु न होइ परतीती। बिनु परतीति होइ नहि प्रीती॥
प्रीति बिना नहि भगति दिढाई। जिमि खगपति जलकै चिकनाई॥४॥

अर्थ : बिना जाने प्रतीति नहीं होती और बिना प्रतीति प्रीति नहीं होती। प्रीति बिना भक्ति दृढ़ नहीं होती। हे खगेश! जैसे जल की चिकनाई दृढ़ नहीं होती।

व्याख्या : जब उनके भजन से क्लेश मिटता है तो संसार उनका भजन क्यों नहीं करता ? इस पर भुसुण्डिजी कहते हैं कि संसार उनकी प्रभुता को नहीं जानता। इसलिए उसे विश्वास नहीं होता कि उनके भजन से सब क्लेश मिट सकते हैं। यदि विश्वास हो कि उनके भजन से क्लेश मिट जाते हैं तो उन पर प्रीति क्यों न हो : जेहिते कछु निज स्वारथ होई। तेहिपर ममता कर सब कोई। फिर भी भजन करते तो लोग देखे जाते हैं और क्लेश में भी पड़े हुए हैं। इस पर कहते हैं कि वह भजन दृढ़ नहीं है। क्योंकि उन्हें भजनीय भगवान् में प्रीति नहीं है। यथा : रामहि सुमिरत रन भिरत देत परत गुरु पाय। तुलसी जिन्हहिं न पुलकतन ते जन जीवन जाय। उनका भजन वैसा ही है जैसा जल का चिकनापन। चिकनापन तो स्नेह : तेल घी आदि में है। पानी का चिकनापन तो नाममात्र के लिए है। इसी भाँति उनका भजन भी नाममात्र के लिए है।

सो. बिनु गुरु होइ कि ज्ञान, ज्ञान कि होइ बिराग बिनु।
गावहिं बेद पुरान सुख कि लहिअ हरि भगति बिनु॥

कोउ बिस्राम कि पाव, तात सहज संतोष बिनु।
चलै कि जल बिनु नाव कोटि जतन पचि पचि मरिअ ॥८९॥

अर्थ : क्या ज्ञान बिना गुरु के हो सकता है और क्या बिना विराग के ही ज्ञान हो जायगा। वेद पुराण कहते हैं कि क्या बिना भक्ति के सुख मिल सकता है। हे तात ! क्या बिना सहज सन्तोष के किसी को विश्राम मिल सकता है। क्या बिना जल के नाव चल सकती है। चाहे कोई करोड़ यत्न करके प्राण दे दे।

व्याख्या : गुरु साक्षात् परमेश्वर के अनुग्रह शक्ति के स्वरूप होते हैं। बिना गुरु के ज्ञान हो नहीं सकता। सभी वस्तु के ज्ञान के लिए गुरु की आवश्यकता होती है कि पुनः अदृश्य वस्तु का ज्ञान तो बिना गुरु हो ही नहीं सकता। यथा : स गुरुमेवाभिगच्छेत् श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्। एकलव्य ने द्रोणाचार्य की मिट्टी की प्रतिमा बनाकर उससे शस्त्रविद्या सीखी थी। यह कथा महाभारत में प्रसिद्ध है। परन्तु बिना विराग के केवल गुरु से भी काम नहीं चलता। बिना बिराग के परिश्रम करनेवाले की वही गति होती है जो कि उस नाविक की हुई जिसने नाव को घाट से छोड़ा नहीं और रात भर खेता रहा। प्रातःकाल उँजेला होने पर उसने देखा कि वह जहाँ की तहाँ ही है। उसका सारा परिश्रम व्यर्थ गया। अतः वेद पुराण ज्ञान के लिए गुरु और वैराग्य दोनों की उपयोगिता अपरिहार्य बतलाते हैं।

गुरु और वैराग्य की सहायता से ज्ञान तो हो जाता है पर उससे सुख नहीं मिलता। सुख तो हरिभक्ति से ही मिलता है। राजप्रासाद : महल या नाना प्रकार के व्यञ्जन के दर्शन : ज्ञान से न तो राजा की कृपा की प्राप्ति होती है न क्षुधा की शान्ति होती है। इसी भाँति शुष्क ज्ञान काम नहीं देता। राजमहल में जाकर राजा की प्रसन्नता प्राप्त करने से आनन्द मिलता है। वही हाल भोजन का है। क्षुधा शान्ति तो भोजन के ज्ञान से नहीं होती खाने से होती है। भगवान् नारद ने यही बात कही है : राजगृह भोजनादिषु तथैव दृष्टत्वात्। ना० सू० ३१। न तेन राजपरितोषः। ३२। तस्मात् सैव ग्राह्या मुमुक्षुभिः। ३३। अतः मुमुक्षुओं को भक्ति ही ग्रहण करनी चाहिए।

न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति। हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते। कामों के उपभोग से काम की शान्ति नहीं होती। अग्नि में घी डालने की भाँति वह तो बढ़ता ही जावेगा। स्वाभाविक सन्तोष से अर्थात् सर्वथा सन्तोष धारण कर लेने से ही विश्राम मिलता है। विश्राम तभीतक बना है जबतक सन्तोष है। नाव तभीतक चलती रहेगी जबतक जल है।

बिनु संतोष न काम नसाहीं। काम अछत सुख सपनेहु नाहीं ॥
राम भजन बिनु मिटहि न कामा। थल बिहीन तरु कबहुँकि जामा ॥१॥

अर्थ : बिना सन्तोष के कामनाश नहीं होता और काम के रहते सुख स्वप्न में भी नहीं मिलता। राम के भजन बिना काम मिटता नहीं। क्या बिना थल के कहीं पेड़ जमता है ?

व्याख्या : सन्तोष करने से ही काम का नाश होता है। वह महाशन : बड़ा खानेवाला है। उसकी तृप्ति नहीं होती और काम का नाश हो तब विश्राम सुख मिले। सन्तोष से काम का नाश तो हो जाता है अर्थात् विरोधी भावना से उपमर्दित होकर तनुभाव को प्राप्त हो जाता है। उसका आत्यन्तिक नाश तो तभी सम्भव है जब राम भजन से उनका संस्कार भी मिट जाय। यथा : ऊसर बरसै तृन नहि जामा। जिमि हरिजन हिय उपज न कामा। तब काम वृक्ष के उगने के लिए स्थल ही न रह जायगा।

बिनु बिज्ञान कि समता आवै। कोउ अवकास कि नभ बिनु पावै ॥
श्रद्धा बिना धरमु नहि होई। बिनु महि गंध कि पावै कोई ॥२॥

अर्थ : बिना विज्ञान के क्या कभी समता आती है। क्या कोई बिना आकाश के ही अवकाश पा सकता है। श्रद्धा के बिना धर्म हो नहीं सकता। जिस भाँति बिना पृथिवी के गन्ध की प्राप्ति नहीं हो सकती।

व्याख्या : भोजन करिअ तृपिति हित लागी। जिमि सो असन पचव जठरागी। अस हरि भगति सुगम सुखदाई। को अस मूढ़ न जाहि सुहाई। सो भजन की उपमा भोजन से दी गयी है। भोजन व्यञ्जन है। उसमें अनेक पदार्थ होते हैं। पार्थिव जलीय तैजस वायवीय और आकाशीय। उन्हीं से यह पाञ्चभौतिक शरीर चलता है। इसमें सन्देह नहीं कि लवण बिना व्यञ्जन फीका होता है पर केवल लवण भी तो खाया नहीं जाता। एवम् भजन भी समता, श्रद्धा, तप, शील, आत्मसुख संयुक्त ही होता है। अतः यहाँ पर इन्हीं पाँचों का उदाहरण देते हुए ग्रन्थकार कहते हैं कि बिना विज्ञान के : ब्रह्म साक्षात्कार के समता नहीं आती। क्योंकि सृष्टि में तो सर्वत्र विषमता ही विषमता है। सम बुद्धि तो बिना राममय जगत् देखे हो नहीं सकती और समबुद्धि ही विज्ञान है। जैसे बिना आकाश के कहीं अवकाश नहीं मिल सकता उसी भाँति बिना विज्ञान के समता नहीं आसकती। आकाश का उदाहरण देकर अब पृथिवी का उदाहरण देते हैं कि जैसे : गन्धवती पृथिवी। बिना पृथिवी के गन्ध की प्राप्ति नहीं हो सकती। उसी भाँति बिना श्रद्धा के धर्म की प्राप्ति नहीं हो सकती : अश्रद्धया हुतं दत्तं तपस्तप्तं कृतञ्च यत्। असदित्युच्यते पार्थ न च तत्प्रेत्य नो इह।

बिनु तप तेज कि कर बिस्तारा। जल बिनु रस कि होइ संसारा ॥
सील कि मिल बिनु बुध सेवकाई। जिमि बिनु तेज न रूप गुसाईं ॥३॥

अर्थ : बिना तप के कहीं तेज विस्तार कर सकता है। बिना जल के कहीं संसार में रस हो सकता है। बिना पण्डित की सेवा के कहीं शील की प्राप्ति हो सकती है जैसे हे गोसाईं! बिना तेज के रूप नहीं हो सकता।

व्याख्या : अब जल का उदाहरण देते हैं कि जैसे बिना जल के संसार में रस नहीं होता उसी भाँति बिना तप के तेज : अशुद्धि क्षय नहीं होता। सो तप भी भजन का अङ्ग है। जो तपस्वी नहीं वह भजन क्या करेगा? अब तेज का उदाहरण देते

हैं कि जैसे बिना तेज के रूप नहीं होता वैसे ही बिना पण्डित की सेवा किये शील नहीं होता। शील में सब ऐश्वर्य का वास है। दुःशील भक्त कैसे हो सकता है। अतः ये सब उदाहरण उपयुक्त हैं।

निज सुख बिनु मन होइ कि थीरा। परस कि होइ बिहीन समीरा॥
कवनिउ सिद्धि कि बिनु बिस्वासा। बिनु हरि भजन न भवभय नासा॥४॥

अर्थ : आत्मसुख बिना क्या मन स्थिर हो सकता है क्या बिना वायु के स्पर्श हो सकता है। बिना विश्वास के क्या कोई सिद्धि हो सकती है। बिना हरि भजन के भवभय नाश नहीं हो सकता।

व्याख्या : अब वायु का उदाहरण देते हैं कि बिना वायु के स्पर्श नहीं हो सकता। इसी भाँति बिना आत्मसुख के मन स्थिर नहीं हो सकता। आत्म सुख ही इतना बड़ा सुख है कि उनके प्राप्त होने पर उससे अधिक सुख का होना सम्भव नहीं होता। अतः मन स्थिर हो जाता है। दूसरी ओर नहीं जाता। भक्ति में उसी जगदात्मा राम में ही मन लगाकर भक्त परम आनन्द को प्राप्त होता है। यथा : सा न कामयमाना निरोधरूपत्वात्। ना० सू० ७।

इसी भाँति विश्वास भी भक्ति में अपरिहार्य है। विश्वास विना तो कोई भी सिद्धि नहीं हो सकती। जब अनुष्ठानो को ही विश्वास नहीं तो सिद्धि कैसे होगी। इतने उदाहरण देकर कवि निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि हरि भजन बिना भवभय का नाश नहीं होता। भवभय भंजन अन्य उपाय से असम्भव है। यथा : भंजेउ राम आपु भवचापू। भव भय भंजन नाम प्रतापू। भवानीशङ्करौ वन्दे श्रद्धाविश्वासरूपिणौ। याभ्यां बिना न पश्यन्ति सिद्धाः स्वान्तस्थमीश्वरम्।

दो. बिनु बिस्वास भगति नहि, तेहि बिनु द्रवहि न राम।
राम कृपा बिनु सपनेहु, जीव न लह बिस्राम॥९० क.

सो. अस बिचारि मति धीर, तजि कुतर्क संसय सकल।
भजहु राम रघुबीर, करुनाकर सुन्दर सुखद॥९० ख.

अर्थ : बिना विश्वास के भक्ति नहीं और भक्ति विना रामजी द्रवीभूत नहीं होते और रामकृपा विना जीव को स्वप्न में भी विश्राम नहीं मिलता। हे मतिधीर! ऐसा विचारकर और सब कुतर्क और संशय को छोड़कर करुणाकर सुखद सुन्दर रघुवीर को भजो।

व्याख्या : जब विश्वास ही नहीं तब भक्ति कैसे होगी। पहिले तो भजनीय पर विश्वास होना चाहिए कि वे अवश्य रक्षा करेंगे। यथा : रक्षिष्यतीति विश्वासः। जब विश्वास होता है तब चरणों में मन ठहरता है अर्थात् भक्ति होती है और जब भक्ति होती है तब सरकार कृपा करते हैं। यथा : भजत कृपा करिहैं रघुराई। और सरकार की कृपा होने से मन को विश्राम मिलता है। यथा : जाकी कृपा लवलेस

ते मतिमंद तुलसीदासहू । पायेउ परम विस्राम राम समान प्रभु नाही कहूँ । अतः यह सिद्ध हुआ कि बिना हरिभक्ति के सुख की प्राप्ति नहीं हो सकती । संशय छोड़ने से छूटता है । शुष्क तर्क कुतर्क है । इससे कभी कल्याण नहीं होता । मतिधोर इनका त्याग करते हैं । अतः गरुड़जी ! करुणाकर सुन्दर सुखद रघुबीर को भजो । उनके भजन में सुख ही सुख है । यथा : तुलसिदास सब भाँति सकल सुख जौं चाहीस मन मेरो । तौ भजु राम काम सब पूरन करहिं कृपानिधि तेरो ।

निजमति सरिस नाथ मै गाई । प्रभु प्रताप महिमा खगराई ॥
कहेउ न कछु करि जुगुति बिसेखी । यह सब मै निज नयनन्हि देखी ॥१॥

अर्थ : हे पक्षिराट् ! मैंने अपनी बुद्धि के अनुसार प्रभु के प्रताप की महिमा का गान किया । मैंने कोई विशेष युक्ति से नहीं कहा । यह सब मेरे आँखों देखी हुई बात है ।

व्याख्या : पहिले कह आये हैं कि सुनु खगेस रघुपति प्रभुताई । कहउँ जथामति कथा सुहाई : उसी का उपसंहार करते हुए कहते हैं : निज मति सरिस नाथ मैं गाई । प्रभुताई और प्रभु का प्रताप या महिमा एक बात है । यह अपने अपने मति अनुसार ही गान किया जा सकता है । इसका पार तो निगम सेष शिव भी नहीं पा सकते । यथा : निज निज मति मुनि हरि गुन गावहिं । निगम सेष सिव पार न पावहिं । राम गहन कहँ भुजा पसारी : से लेकर : देखि चरित यह सो प्रभुताई । समुझत देह दसा बिसराई : तक प्रभुता का वर्णन किया । अब कहते हैं कि जो कुछ मैंने बातें कही हैं वे मेरी आँखों देखी हैं । इसके वर्णन में युक्ति को स्थान नहीं दिया । युक्ति से वर्णन ज्योतिषी लोग करते हैं । वे भी सूर्य चन्द्र ग्रह नक्षत्र मण्डल ब्रह्माण्ड के विषय में बहुत कुछ अपनी युक्ति के बल से कहते हैं । उनकी वे सब बातें अनुमानसिद्ध हैं पर मैंने तो अपनी आँखों से देखा है ।

महिमा नाम रूप गुन गाथा । सकल अमित अनंत रघुनाथा ॥
निज निज मति मुनि हरिगुन गावहि । निगम सेष सिव पार न पावहि ॥२॥

अर्थ : रामजी की महिमा, नाम, रूप सभी अनन्त और असीम है । अपनी अपनी बुद्धि के अनुसार मुनि लोग हरिगुण का गान करते हैं । वेद शेष और महेश पार नहीं पाते ।

व्याख्या : सरकार की महिमा, नाम, रूप और गुण गाथा की अनन्तता अपेक्षाकृत नहीं है । वह वेद शेष और महेश के लिए भी अनन्त और असीम है । नाम रूप लीला और धाम का आश्रयण करके प्रभु के विषय में कुछ कहा जा सकता है । यहाँ गुण गाथ से लीला और महिमा से धाम अभिप्रेत है । भगवती श्रुति कहती है कि वह अपनी महिमा में प्रतिष्ठित है । ये ही चारो सरकार के विग्रह हैं । यथा : 'रामस्य नाम रूपञ्च लीला धाम परात्परम् । एतच्चतुर्विधं प्राहुः साक्षाद् रामस्य

विग्रहः। सो ये चारो अनन्त और अमित हैं। अतः गान करनेवाला अपने यावद्बुद्धि-बलोदय ही गान कर सकता है।

तुम्हहि आदि खग मसक प्रजंता। नभ उड़ाहिं नहि पावहिं अंता॥
तिमि रघुपति महिमा अवगाहा। तात कबहुँ कोउ पाव कि थाहा॥३॥

अर्थ : पक्षियों में तुमसे लेकर मच्छड़ तक आकाश में उड़ते हैं लेकिन उसका थाह नहीं मिलता। उसी भाँति रघुपति की महिमा, अथाह है। हे तात! उसका थाह कोई पा नहीं सकता।

व्याख्या : महिमा की अनन्तता तथा अमितत्व दिखलाकर अब उसका अथाह होना भी कहते हैं। उदाहरण देते हुए कहते हैं कि आकाश में उड़नेवालों में आप सबसे श्रेष्ठ हैं महापराक्रमी हैं और मच्छड़ अत्यन्त अल्पपराक्रम है। आकाश का थाह न आपको ही मिला न मच्छड़ को ही मिला क्योंकि उसका थाह है ही नहीं। इसी भाँति सरकार की महिमा का वारपार (थाह) है नहीं। कोई पावेगा कैसे? फिर भी न आपने उड़ना बन्द किया न मच्छड़ ने। इसी भाँति प्रभु की महिमा का वर्णन शेष महेश भी करते हैं और तुलसीदास भी करते हैं : बुध बरनहि हरि जस अस जानी। करहिं पुनीत सुफल निज बानी।

राम[1] काम सत कोटि सुभग तन। दुर्गा कोटि अमित अरि मर्दन॥
सक्र कोटि सत सरिस बिलासा। नभ सत कोटि अमित अवकासा॥४॥

अर्थ : रामजी सौ कोटि काम की भाँति सुन्दर शरीरवाले हैं। अमित कोटि दुर्गा के समान शत्रु संहारक हैं। सौ कोटि इन्द्र के समान उनका विभव विलास है और सौ कोटि आकाश की भाँति अनन्त अवकाश है।

व्याख्या : उसी महिमा का अब कुछ दिग्दर्शन कराते हैं। कहते हैं कि राम में सौ कोटि काम सी सुन्दरता है। संसार में सुन्दरता की सीमा काम ही माना गया है। परन्तु राम की सुन्दरता के आगे काम की सुन्दरता कुछ भी नहीं क्योंकि वे काम के भी काम हैं। साक्षान्मन्मथमन्मथः है। उनकी सुन्दरता के लेश को पाकर काम सुन्दर है। सभी शक्तियों के मूलस्रोत होने से प्रभु को दुर्गा कोटि अमित अरि-मर्दन कहा। यथा : पाइ जासु बल बिरचति माया। जाके बल बिरंचि हरि ईसा। पालत सृजत हरत दससीसा।

विलास की परा सीमा इन्द्र तक है क्योंकि वही देवराज है। रावण के विलास के वर्णन में भी कवि ने विलास के जाँचने के लिए इन्द्र के विलास को ही मानदण्ड बनाया। यथा : सुनासीर सत सरिस सो संतत करै बिलास। अतः रावण के विलास की भी नाप हो गयी। यहाँ तो सक्र कोटि सत सरिस विलासा कहते हैं। भाव यह कि इनके विलास के सामने इन्द्र के विलास की कुछ गिनती नहीं। महात्माओं से

---

१. यहाँ उल्लेख : द्वितीय : अलङ्कार है।

सुना है कि ९९ रास तो रामावतार में ही हुआ है और ये रास चौदह वनों में हुआ करते थे। उमा राम की भृकुटि बिलासा। होइ बिस्व पुनि पावइ नासा। उनके विलास के सामने इन्द्र का विलास क्या है। यथा : सूख हाड़ ले भाग सठ स्वान निरखि मृगराज। छीन लेइ जनि जानि जड़ तिमि सुरपतिहि न लाज। सौ इन्द्र के आनन्द इतना बृहस्पति को आनन्द है। उनका सौगुना प्रजापति को और राम तो आनन्दरूप ही हैं।

पर इन सब बातों के सुनने से कोई सरकार को परिच्छिन्न न मान ले इसलिए कहते हैं कि उनमें सौ कोटि आकाश सा अवकाश है। सन्देह उठ सकता है कि आकाश तो अनन्त है। अब अनन्त का शत कोटि कैसे सम्भव है? बात यह कि सरकार तो साक्षात् चिदाकाश हैं और चिदाकाश के एक एक अणु में भूताकाश हैं। अतः एक एक चिदणु के पृथक् पृथक् भूताकाश है। अतः नभ शतकोटि अमित अवकाश बन जाता है।

सरकार के गुणों का पारावार नहीं पर उतना ही प्रकट करते हैं जितने की जहाँ आवश्यकता है।

दो. मरुत कोटि सत बिपुल बल, रबि सत कोटि प्रकास।
ससि सत कोटि सो सीतल, समन सकल भव त्रास ॥९१ क.
काल कोटि सत सरिस अति, दुस्तर दुर्ग दुरंत।
धूमकेतु सत कोटि सम, दुराधर्ष भगवंत ॥९१ ख.

अर्थ : सौ कोटि वायुदेव की भाँति उनको बड़ा बल है। सौ कोटि सूर्य सा प्रकाश है। सौ कोटि चन्द्रमा की भाँति वे शीतल सब भवत्रास के हरण करनेवाले हैं। सौ कोटि काल के समान अत्यन्त दुस्तर दुर्गम और अन्त रहित हैं और सौ करोड़ धूमकेतुओं की भाँति भगवान् दुराधर्ष हैं।

व्याख्या : बल तो वायु में ही है। वायु को रोककर ही संसार बल प्रदर्शन करता है। परन्तु उस वायु में भी बल प्रदाता सरकार हैं। बिना उनकी कृपा वायुदेव एक तिनका नहीं हिला सकते। केनोपनिषत् में इसका विस्तार है। अतः वायु का बल उनके सामने कुछ भी नहीं। संसार सूर्य के प्रकाश से प्रकाशित होता है पर जिस प्रकाश से सूर्य प्रकाशित होते हैं वह तो रामचन्द्र का ही प्रकाश है। इसलिए सूर्य का प्रकाश उनके प्रकाश के सामने नगण्य है। चन्द्रमा शीतलता देते हैं। परन्तु दुःख से सन्तप्त हृदय पुरुष को तो उनकी शीतलता से शीतलता नहीं आती। परन्तु सरकार ऐसे शीतल हैं कि उनकी शीतलता से भवताप से सन्तप्त हृदय शीतल हो जाता है। अतः उस शीतलता के सामने चन्द्र की शीतलता क्या है?

अंड कटाह अमित लयकारी। काल सदा दुरतिक्रम भारी। इसलिए उसे दुस्तर दुर्ग दुरन्त कहा पर वह काल तो उनके हाथ में रहता है। यथा : लव निमेष परमान जुग बर्ष कल्पसर चंड। भजसि न मन तेहि राम कहँ काल जासु को दंड।

अतः काल की दुस्तरता दुर्गमता और दुरन्तरता उनके सामने कुछ नहीं है। इसी भाँति धूमकेतु संसार को आर्ति देनेवाले हैं। परन्तु जिसके भृकुटि विलास ः असंख्य धूम्रकेतु की सृष्टि और लय हुआ करता है। यथा : उमा राम की भृकुटि विलासा। होइ बिस्व पुनि पावइ नासा। उस प्रभु की दुराधर्षता के सामने धूम्रकेतु की दुराधर्षता क्या है। अथवा धूम्रकेतु का अर्थ अग्नि किया जाय तो भी वही बात है। अग्नि की दुराधर्षता सरकार की दुराधर्षता के सामने कुछ भी नहीं है।

प्रभु अगाध सत कोटि पताला। समन कोटि सत सरिस कराला॥
तीरथ अमित कोटि सत पावन। नाम अखिल अघपुंज नसावन॥१॥

अर्थ : सौ कोटि पाताल की भाँति प्रभु अथाह हैं। सौ कोटि यमराज की भाँति कराल हैं। अमित शत कोटि तीर्थ के समान पवित्र हैं। उनका नाम सम्पूर्ण पापपुञ्ज का नाश करता है।

व्याख्या : सरकार की अवतीर्ण मूर्ति अद्भुत है। उस छोटी सी मूर्ति में ही सब कुछ है जो कुछ कि हम लोग जानते या सुनते हैं वह सब उसमें उत्कर्ष के साथ वर्तमान है। उसको प्राप्ति होने पर कुछ प्राप्त होना बच नहीं जाता। उसका वर्णन अशक्य है तथापि ग्रन्थकार जिस भाँति मुनिगण ने प्रथम वर्णन किया है तदनुसार भुसुण्डि स्तुति के मिससे स्वयं स्तुति कर रहे हैं।

गहराई में पाताल लोक प्रसिद्ध है। फिर भी पाताल की गहराई की सीमा है पर रामजी की गहराई की सीमा नहीं है। जैसा कि स्वयं भुसुण्डिजी अनुभव कर चुके हैं। अतः पाताल की गहराई सरकार की गहराई के सामने तुच्छ है। करालता में यमराज की ख्याति है। परन्तु सरकार तो यम के भी यम हैं। यथा : मृत्युर्यस्योपसेचनम्। यमराज तो चटनी हैं इसलिए उन्हें सौ कोटि यम से भी कराल कहा।

संसार में तीर्थ पवित्र करनेवाले हैं पर उन तीर्थ को तीर्थ बनानेवाले तो सरकार के भक्त हैं। यथा : तीर्थीकुर्वन्ति तीर्थानि। इसीलिए कहते हैं कि सरकार अमित कोटि तीर्थ के समान पवित्र हैं। उनके नाम में इतना सामर्थ्य है कि वह सम्पूर्ण पापपुञ्ज का नाश कर देता है।

हिम गिरि कोटि अचल रघुबीरा। सिंधु कोटि सत सम गंभीरा॥
कामधेनु सत कोटि समाना। सकल काम दायक भगवाना॥२॥

अर्थ : रघुवीर करोड़ों हिमालय की भाँति अचल और सौ करोड़ समुद्र की भाँति गम्भीर हैं और भगवान् सौ करोड़ कामधेनु के समान सब कामनाओं के देनेवाले हैं।

व्याख्या : पर्वत स्थान परिवर्तन नहीं करते। इसी से उनका नाम ही अचल है। तिस पर हिमवान् सब पर्वतों के राजा हैं। वे कभी नहीं डिगते परन्तु भूकम्पादि में वे भी हिल उठते हैं पर सरकार तो सर्वव्यापी हैं अनन्त हैं। उनसे व्यतिरिक्त कोई

स्थान ही नहीं है। अर्थात् उनके हिलने की जगह नहीं है। इसलिए उनको सौ करोड़ हिमवान् की भाँति अचल बतलाते हैं।

कामधेनु कामना पूरी करती है। धर्म अर्थ काम सब कुछ देती है पर मोक्ष या भक्ति नहीं देती और ये ही दोनों सब सुखखानि हैं। यथा : मोक्ष सकल सुखखानि तथा सब सुखखानि भगति तै माँगी और सरकार मुक्ति और भक्ति दोनों देते हैं। इसलिए उन्हें शत कोटि कामधेनु के समान सकल कामना का पूर्ण करनेवाला कहा।

सारद कोटि अमित चतुराई। बिधिसत कोटि सृष्टि निपुनाई ॥
बिष्णु कोटि सत पालन करता। रुद्र कोटि सत सम संघरता ॥३॥

अर्थ : अमित कोटि शारदा के समान चतुराई है। सौ करोड़ ब्रह्मदेव के समान सृष्टि की निपुणाई है। सरकार सौ करोड़ विष्णु के समान पालन करनेवाले तथा सौ करोड़ रुद्र के समान संहार करनेवाले हैं।

व्याख्या : संसार में कवि बड़े चतुर समझे जाते हैं। जो चतुर नहीं है वह कवि हो नहीं सकता। सो कवियों में चतुरता वाणी के प्रताप से है और वाणी के भी प्रेरक प्रभु हैं। यथा : सारद दारुनारि सम स्वामी। राम सूत्रधर अंतरजामी। जेहिपर कृपा करहिं जन जानी। कवि उर अजिर नचावहि बानी। अतः सारद कोटि अमित चतुराई कहा। सम्भु विरञ्चि विष्णु भगवाना। उपजहिं जासु अंस ते नाना। ये त्रिदेव जिसके अंश से अनेक प्रकार के उत्पन्न होते हैं उसे शतकोटि विरञ्चि शतकोटि विष्णु शतकोटि रुद्र के तुल्य कहना प्राप्त ही है। अथवा हरिहि हरिता सिवहि सिवता विधिहि विधिता जो दई। सो जानकी पति मधुर मूरति मोदमय मंगल मई।

धनद कोटि सत सम धनवाना। माया कोटि प्रपंच निधाना ॥
भार धरन सत कोटि अहीसा। निरवधि निरुपम प्रभु जगदीसा ॥४॥

अर्थ : सौ करोड़ कुबेर की भाँति धनवान हैं और करोड़ माया की भाँति प्रपञ्च निधान हैं : सौ करोड़ शेषनाग की भाँति भार धारण करनेवाले हैं। जगत्के प्रभु ईश्वर की न अवधि है और न उपमा है।

व्याख्या : कुबेरादि दिक्पाल जिसकी कृपाकटाक्ष से अपने पदों पर प्रतिष्ठित हैं। उस लक्ष्मीजी के जो पति है उन्हें सौ कोटि कुबेर के समान कहना कौन सी बड़ी बात है। यथा : लोकप होहिं विलोकत तोरे। तोहि सेवहिं सब सिधि कर जोरे। यथा : जासु कृपा कटाक्ष सुर चाहत चितवन सोइ। राम पदारविंदरति करति सुभावहि खोइ। देखी माया सब विधि गाढ़ो। अति सभीत जोरे कर ठाढ़ो। जिसके सामने सब विधि गाढ़ी माया हाथ जोड़े खड़ी रहती है। उसका वर्णन कवि लोग माया कोटि प्रपंच निधाना करके कहते हैं। जिसकी सत्ता से माया का अस्तित्व है उसे शतकोटि माया सा कहना भी अल्प ही है।

शेषनाग पृथिवी का भार सदा धारण किये रहते हैं। परन्तु जिसके बल से उनमें भार धरण की क्षमता है उस प्रभु को : भार धारन सत कोटि अहीसा : कहना कुछ बहुत नहीं है। यथा : जा बल सीस धरत सहसानन। अंड कोस समेत गिरि कानन। २५ : यह भुसुण्डिकृत स्तुति शततारक नक्षत्र है। इसकी फलश्रुति जग हित निरुपधि साधु लोग से है। इस स्तुति में बार बार शतकोटि शब्द चमकता है। यही तारों की चमक है। राम से ही उपक्रम और राम से ही उपसंहार है। अतः वर्तुलाकार आकृति है। दुर्गादि देवताओं की उपमा दी गयी है। वे सोपाधिक हित हैं रामजी निरुपाधि हित हैं।

छं. निरुपम न उपमा आन राम समान राम निगम कहै।
जिमि कोटि सत खद्योत सम रबि कहत अति लघुता लहै॥
एहि भाँति निज निज मति बिलास मुनीस हरहि बखानहीं।
प्रभु भावगाहक अति कृपाल सप्रेम सुनि सुख मानहीं॥

अर्थ : रामजी निरुपम हैं उनकी दूसरी कोई उपमा नहीं है। रामजी के समान राम ही है। ऐसा वेद कहता है। जैसे सौ करोड़ जुगनू के समान सूर्य को कहने से उनकी बड़ी हेठी : लघुता होती है। इसी भाँति अपने अपने बुद्धि की दौड़ के अनुसार मुनीश लोग उनका वर्णन करते हैं। प्रभु भाव ग्राहक अत्यन्त कृपाल हैं। प्रेम सहित कहना : सुनकर सुख पाते हैं।

व्याख्या : न तस्य प्रतिमा अस्ति यस्य नाम महद्यशः। सरकार की दूसरी कोई उपमा नहीं है। उनकी उपमा वे ही हैं ऐसा वेद कहता है। रामजी के समान रामजी को ही कहना अनन्योपमालङ्कार है। अर्थात् वेद को भी जब दूसरी उपमा नहीं मिली तो लाचार होकर उन्हीं को उनकी उपमा बनाया। क्योंकि सब उपमाएँ अत्यन्त ही छोटी जंची। जैसे कोई सूर्य की उपमा सौ कोटि जुगनू से दे। सो सौ कोटि जुगनू सूर्य के सामने क्या है? कुछ भी नहीं। इसी भाँति यहाँ जो कुछ शतकोटि करके कहा गया है उसे वैसा ही समझना चाहिए। उससे रामजी की बड़ाई नहीं हुई बल्कि ऐसी उपमा देने से उनकी लघुता हुई। ऐसी अवस्था में वर्णन करनेवाले को कुछ न कुछ कहना पड़ता है। मुनि लोगों ने अपनी बुद्धि के अनुसार सरकार की प्रशंसा की है और अतिकृपाल भावग्राहक भगवान् लघुता पर ध्यान नहीं देते। सप्रेम वचन सुनकर सुख मानते हैं।

दो. राम अमित गुन सागर, थाह कि पावै कोइ।
संतन्ह सन जस कछु सुनेउँ, तुम्हहि सुनाएउँ सोइ॥९२ क.

अर्थ : रामजी असंख्य गुणों के समुद्र हैं। क्या उनका कोई पार पा सकता है। सन्तों से जो कुछ सुना वही तुम्हें सुनाया।

व्याख्या : रामजी में असंख्य गुण हैं और एक एक गुण एक एक समुद्र है।

इस समुद्र का तो थाह भी मिल जाता है। उन समुद्रों का थाह नहीं। भाव यह कि कोई यह न समझ ले कि उपर्युक्त बाईस गुण ही सरकार में हैं। अथवा यदि हैं भी तो थोड़े हैं। इसलिए कहते हैं कि क्या उनके असंख्य गुणरूपी समुद्रों की थाह कोई पा सकता है। अतः सन्तों के मुख से जो सुना है वही तुम्हें सुना दिया। उनके गुण के जोहरी सन्त ही हैं।

सो. भाववस्य भगवान सुख निधान करुना भवन।
तजि ममता मद मान भजिय सदा सीतारवन ॥९२ ख.

अर्थ : भगवान् सुखनिधान करुणाभवन भाव के वश्य हैं। इसलिए ममता मद और मान को छोड़कर सदा सीतारमण को भजिये।

व्याख्या : भगवान् सर्वतन्त्र स्वतन्त्र हैं। उनके समान ही कोई नहीं। उनसे बढ़कर कोई क्या होगा। अतः सब कुछ उनके वश में है। परन्तु वे सुखनिधान हैं। करुणाभवन हैं। इसलिए करुणा करके भक्तिभाव के वश में रहते हैं। भक्त के वश रहने में उनका आनन्द प्रतिहत नहीं होता। अतः ममता मद और मान का परित्याग करके सदा सीतारमण को ही भजना चाहिए। ममता मद और मान के होने से भजन दम्भमात्र रह जाता है। इनका बिना परित्याग किये भजन हो नहीं सकता। यथा : सबके ममता ताग बटोरी। मम पद मनहिं बाँध बरडोरी। समदरसी इच्छा कछु नाहीं। हरख सोक भय नहिं मनमाँही।

सुनि भुसुण्डि के बचन सुहाए। हरषित खगपति पंख फुलाए ॥
नयन नीर मन अति हरखाना। श्रीरघुबर प्रताप उर आना ॥१॥

अर्थ : भुसुण्डिजी के सुहाये वचन सुनकर हर्षित हो गरुड़जी ने पंख फुलाये। उनकी आँखों में आँसू आ गये। मन में बड़े हर्षित हुए और रामजी के प्रताप को हृदय में धारण किया।

व्याख्या : सुहाये के साथ भाये का जोड़ है। यहाँ भाये नहीं कहा तो उसका फल कहा। आनन्द से जिस भाँति रोमाञ्च होता है उसी भाँति आनन्द से पक्षी पंख फुलाते है। गरुड़जी पक्षिराट् हैं। इन्हें आनन्द हुआ तो इन्होंने भी पंख फुलाया। आँखों में आँसू आ गया। हृदय में हर्ष हुआ। कारण यह कि भुसुण्डिजी के वचन से रामजी का प्रताप हृदय में आया। रामजी के प्रताप में बड़ा सामर्थ्य है। जब यह हृदय में आता है तो अचिन्त्य कार्य करा देता है। यथा : प्रभुप्रताप उर सहज असंका। रन बाँकुरा बालिसुत बंका। समुझि रामप्रताप कपि कोपा। पन करि सभा माँझ पद रोपा। रामप्रताप सुमिरि मनमाँहीं। करहु सेतु प्रयास कछु नाहीं। जानत परम दुर्ग अति लंका। प्रभुप्रताप कपि चले असंका। इत्यादि।

पाछिल मोह समुझि पछिताना। ब्रह्म अनादि मनुज करि जाना ॥
पुनि पुनि काग चरन सिरनावा। जानि राम सम प्रेम बढ़ावा ॥२॥

अर्थ : पिछला मोह समझकर पछताया कि अनादि ब्रह्म को मैंने मनुष्य जाना। बार बार काग के चरणों में सिर झुकाया और राम के समान जानकर प्रेम बढ़ाया।

व्याख्या : जब प्रभु का प्रताप हृदय में आया तब सम्यक् ज्ञान हुआ। लगे पछताने कि मुझसे सरकार का अपमान हो गया। जो मैंने अनादि ब्रह्म को मनुष्य जान लिया। श्री गीताजी में भगवान् ने कहा है कि मैंने मनुष्य का शरीर धारण किया है। इसलिए मूढ़ लोग मेरा अपमान करते हैं। मेरे परम भाव को नहीं जानते कि मैं लोक का महेश्वर हूँ।

अब शिष्य की कृतकृत्यता कहते हैं कि बार बार काग के चरण में सिर नवाया। इस बात पर ध्यान भी नहीं है कि यह काग है मैं गरुड़ हूँ। जिससे अपना उपकार हो वह चाहे कोई हो अपना मान्य है और पूज्य है। भुसुण्डिजी द्वारा तो महामोह दूर हुआ भक्ति की प्राप्ति हुई अतः इन्हें रामजी के समान जाना। भक्त और भगवान् में भेद नहीं है। अतः भुसुण्डिजी के चरणों में प्रेम बढ़ाया।

गुर बिनु भवनिधि तरै न कोई। जौ बिरंचि संकर सम होई॥
संसय सर्प ग्रसेउ मोहि ताता। दुखद लहर कुतर्क बहु ब्राता॥३॥

अर्थ : गुरु के बिना भवसमुद्र के पार कोई नहीं जा सकता। चाहे वह ब्रह्मा और शङ्कर के तुल्य ही क्यों न हो संशय रूपी सर्प ने हे तात ! मुझे ग्रस लिया था। जिससे कुतर्करूपी बहुत सी दुःखद लहरें आ रही थी।

व्याख्या : जिस भाँति कर्णधार के बिना नाव समुद्र पार नहीं जा सकती उसी भाँति गुरु के बिना कोई अपने पुरुषार्थ से भवसागर के पार नहीं जा सकता। यथा : नृदेहमाद्यं सुलभं सुदुर्लभं प्लवं सुकल्पं गुरुकर्णधारणम्। मयानुकूलेन नभस्वतेरितम् पुमान् भवाब्धि न तरेत् स आत्महा।

गरुड़जी कहते हैं कि मेरी क्या गिनती ? ब्रह्मा और शङ्कर सा भी पुरुषार्थी बिना गुरु के भवसागर पार नहीं जा सकता। अतः भवसागर सन्तरण के लिए गुरु की अपरिहार्य आवश्यकता है। आप गुरु मिल गये। अतः भवसन्तरण मुझे सुलभ हो गया। यहीं इस बात का भी पता लगता है कि उस समयतक गरुड़जी ने गुरु नहीं किया था। समझते थे कि मुझे गुरु की क्या आवश्यकता है। यथा : होइहि कीन्ह कबहुँ अभिमाना। सो खोवै चह कृपा निधाना। गरुड़जी कहते हैं कि मैं सर्पों को ग्रसा करता हूँ। मेरा मन्त्र पढ़कर गारुड़ी लोग सर्प से काटे हुए लोगों को जिला लेते हैं। पर यह संशय सर्प ऐसा प्रबल है कि इसने मुझे ग्रस लिया था और जिस भाँति साँप के काटे हुए को लहर आती है उसी भाँति मेरे मन में कुतर्क की दुःखद लहर उठने लगी थी।

तव सरूप गारुड़ि रघुनायक। मोहि जियाउ जन सुखदायक॥
तव प्रसाद मम मोह नसाना। राम रहस्य अनूपम जाना॥४॥

इस समुद्र का तो थाह भी मिल जाता है। उन समुद्रों का थाह नहीं। भाव यह कि कोई यह न समझ ले कि उपर्युक्त बाईस गुण ही सरकार में हैं। अथवा यदि हैं भी तो थोड़े हैं। इसलिए कहते हैं कि क्या उनके असंख्य गुणरूपी समुद्रों की थाह कोई पा सकता है। अतः सन्तों के मुख से जो सुना है वही तुम्हें सुना दिया। उनके गुण के जोहरी सन्त ही हैं।

सो. भाववस्य भगवान सुख निधान करुना भवन।
तजि ममता मद मान भजिय सदा सीतारवन ॥९२ ख.

अर्थ : भगवान् सुखनिधान करुणाभवन भाव के वश्य हैं। इसलिए ममता मद और मान को छोड़कर सदा सीतारमण को भजिये।

व्याख्या : भगवान् सर्वतन्त्र स्वतन्त्र हैं। उनके समान ही कोई नहीं। उनसे बढ़कर कोई क्या होगा। अतः सब कुछ उनके वश में है। परन्तु वे सुखनिधान हैं। करुणाभवन हैं। इसलिए करुणा करके भक्तिभाव के वश में रहते हैं। भक्त के वश रहने में उनका आनन्द प्रतिहत नहीं होता। अतः ममता मद और मान का परित्याग करके सदा सीतारमण को ही भजना चाहिए। ममता मद और मान के होने से भजन दम्भमात्र रह जाता है। इनका बिना परित्याग किये भजन हो नहीं सकता। यथा : सबकै ममता ताग बटोरी। मम पद मनहि बाँध बरडोरी। समदरसी इच्छा कछु नाहीं। हरख सोक भय नहि मनमाँही।

सुनि भुसुण्डि के बचन सुहाए। हरषित खगपति पंख फुलाए ॥
नयन नीर मन अति हरखाना। श्रीरघुबर प्रताप उर आना ॥१॥

अर्थ : भुसुण्डिजी के सुहाये वचन सुनकर हर्षित हो गरुड़जी ने पंख फुलाये। उनकी आँखों में आँसू आ गये। मन में बड़े हर्षित हुए और रामजी के प्रताप को हृदय में धारण किया।

व्याख्या : सुहाये के साथ भाये का जोड़ है। यहाँ भाये नहीं कहा तो उसका फल कहा। आनन्द से जिस भाँति रोमाञ्च होता है उसी भाँति आनन्द से पक्षी पंख फुलाते है। गरुड़जी पक्षिराट् हैं। इन्हें आनन्द हुआ तो इन्होंने भी पंख फुलाया। आँखों में आँसू आ गया। हृदय में हर्ष हुआ। कारण यह कि भुसुण्डिजी के वचन से रामजी का प्रताप हृदय में आया। रामजी के प्रताप में बड़ा सामर्थ्य है। जब यह हृदय में आता है तो अचिन्त्य कार्य करा देता है। यथा : प्रभुप्रताप उर सहज असंका। रन बाँकुरा बालिसुत बंका। समुझि रामप्रताप कपि कोपा। पन करि सभा माँझ पद रोपा। रामप्रताप सुमिरि मनमाँहीं। करहु सेतु प्रयास कछु नाहीं। जानत परम दुर्ग अति लंका। प्रभुप्रताप कपि चले असंका। इत्यादि।

पाछिल मोह समुझि पछिताना। ब्रह्म अनादि मनुज करि जाना ॥
पुनि पुनि काग चरन सिरनावा। जानि राम सम प्रेम बढ़ावा ॥२॥

अर्थ : पिछला मोह समझकर पछताया कि अनादि ब्रह्म को मैंने मनुष्य जाना। बार बार काग के चरणों में सिर झुकाया और राम के समान जानकर प्रेम बढ़ाया।

व्याख्या : जब प्रभु का प्रताप हृदय में आया तब सम्यक् ज्ञान हुआ। लगे पछताने कि मुझसे सरकार का अपमान हो गया। जो मैंने अनादि ब्रह्म को मनुष्य जान लिया। श्री गीताजी में भगवान् ने कहा है कि मैंने मनुष्य का शरीर धारण किया है। इसलिए मूढ़ लोग मेरा अपमान करते हैं। मेरे परम भाव को नहीं जानते कि मैं लोक का महेश्वर हूँ।

अब शिष्य की कृतकृत्यता कहते हैं कि बार बार काग के चरण में सिर नवाया। इस बात पर ध्यान भी नहीं है कि यह काग है मैं गरुड़ हूँ। जिससे अपना उपकार हो वह चाहे कोई हो अपना मान्य है और पूज्य है। भुसुण्डिजी द्वारा तो महामोह दूर हुआ भक्ति की प्राप्ति हुई अतः इन्हें रामजी के समान जाना। भक्त और भगवान् में भेद नहीं है। अतः भुसुण्डिजी के चरणों में प्रेम बढ़ाया।

गुर बिनु भवनिधि तरै न कोई। जौ बिरंचि संकर सम होई॥
संसय सर्प ग्रसेउ मोहि ताता। दुखद लहर कुतर्क बहु ब्राता॥३॥

अर्थ : गुरु के बिना भवसमुद्र के पार कोई नहीं जा सकता। चाहे वह ब्रह्मा और शङ्कर के तुल्य ही क्यों न हो संशय रूपी सर्प ने हे तात! मुझे ग्रस लिया था। जिससे कुतर्करूपी बहुत सी दुःखद लहरें आ रही थी।

व्याख्या : जिस भाँति कर्णधार के बिना नाव समुद्र पार नहीं जा सकती उसी भाँति गुरु के बिना कोई अपने पुरुषार्थ से भवसागर के पार नहीं जा सकता। यथा : नृदेहमाद्यं सुलभं सुदुर्लभं प्लवं सुकल्पं गुरुकर्णधारणम्। मयानुकूलेन नभस्वतेरितम् पुमान् भवाब्धि न तरेत् स आत्महा।

गरुड़जी कहते हैं कि मेरी क्या गिनती? ब्रह्मा और शङ्कर सा भी पुरुषार्थी बिना गुरु के भवसागर पार नहीं जा सकता। अतः भवसागर सन्तरण के लिए गुरु की अपरिहार्य आवश्यकता है। आप गुरु मिल गये। अतः भवसन्तरण मुझे सुलभ हो गया। यहीं इस बात का भी पता लगता है कि उस समयतक गरुड़जी ने गुरु नहीं किया था। समझते थे कि मुझे गुरु की क्या आवश्यकता है। यथा : होइहि कीन्ह कबहुँ अभिमाना। सो खोवै चह कृपा निधाना। गरुड़जी कहते हैं कि मैं सर्पों को ग्रसा करता हूँ। मेरा मन्त्र पढ़कर गारुड़ी लोग सर्प से काटे हुए लोगों को जिला लेते हैं। पर यह संशय सर्प ऐसा प्रबल है कि इसने मुझे ग्रस लिया था और जिस भाँति साँप के काटे हुए को लहर आती है उसी भाँति मेरे मन में कुतर्क की दुःखद लहर उठने लगी थी।

तव सरूप गारुड़ि रघुनायक। मोहि जियाउ जन सुखदायक॥
तव प्रसाद मम मोह नसाना। राम रहस्य अनूपम जाना॥४॥

अर्थ : तुम्हारा स्वरूप रामजी का गारुड़ी : हे जनसुखदायक ! उसने मुझे जिला लिया। तुम्हारे प्रसाद से मेरा मोह नष्ट हुआ। मैंने रामजी का अनुपम रहस्य जाना।

व्याख्या : रघुनायक गरुड़ हैं। तुम उनके भक्त गारुड़ी हो। यथा : संसय सर्प ग्रसन उरगादः। समन सुकर्कंस तर्कविषादः। जन के सुखदायक हो। मैं मर रहा था। मुझे दुःखद लहर आ रही थी। आपने मुझे जिलाया।

विनिमय में कुछ न चाहकर जो उपकार किया वही कृपा है। कृपा तो मुझपर बड़े बड़े लोगों ने की। पर मेरा मोह नहीं गया। आपके प्रसाद से गया। जिसे सर्प काटता है उस पर बड़े बड़े लोग कृपा करते हैं। पर किसी का किया कुछ नहीं होता। गारुड़ी कृपा करें तो कल्याण हो। सरकार का यह अनुपम रहस्य है कि अवतीर्ण रूप में पूर्णता ज्यों की त्यों बनी रहती है। रहस्य भी अनेक हैं पर इसके जोड़ के नहीं।

भुसुण्डि चरित : पहिले दूसरे और तीसरे प्रश्न का उत्तर

दो. ताहि प्रसंसि बिबिध बिधि, सीस नाइ कर जोरि।
बचन बिनीत सप्रेम मृदु, बोलेउ गरुड़ बहोरि ॥९३ क.
प्रभु अपने अबिबेक ते, बूझौं स्वामी तोहि।
कृपा सिंधु सादर कहहु, जानि दास निज मोहि ॥९३ क:

अर्थ : उसकी अनेक विधि से प्रशंसा करके सिर नवाकर हाथ जोड़कर प्रेम युक्त विनीत मृदु बचन फिर गरुड़जी बोले। हे प्रभो ! मैं अपने अविवेक से हे स्वामी ! आप से पूछता हूं। हे कृपासिन्धु ! मुझे अपना दास जानकर आदर के साथ कहिये।

व्याख्या : कृतकृत्य होने से गरुड़जी ने अनेक प्रकार से भुसुण्डिजी की स्तुति की। सीस नाइ कर जोरि से कर्मणा : सप्रेम से मनसा और मृदु विनीत वचन बोलेउ से वाचा प्रह्वीभाव : नम्रता कहा। स्तुति के बाद फिर बोलने से यह मालूम होता है कि गरुड़जी कोई प्रश्न करना चाहते हैं।

गरुड़जी जो कहते हैं कि मैं अपने अविवेक से पूछना चाहता हूँ। यह वस्तुतः भक्त का कार्पण्य है। यह रामजी विषयक अविवेक नहीं है। देह पर उत्कर्षापकर्ष लेकर ही यह प्रश्न है। अतः अविवेक कहा। गरुड़जी कहते हैं कि मैं आपका दास हूं आप स्वामी हैं। इस नाते मैं कुछ बातें आपके सम्बन्ध में पूछना चाहता हूँ। सो दास यदि स्वामी के विषय में जानकारी के लिए पूछे तो उसे धृष्टता न समझकर आदर के साथ कहना चाहिए।

तुम सर्बज्ञ तज्ञ तमपारा। सुमति सुसील सरल आचारा॥
ज्ञान बिरति बिज्ञान निवासा। रघुनायक के तुम प्रिय दासा॥१॥

अर्थ : आप सर्वज्ञ हैं तत्पद के जाननेवाले हैं। तम के पार हैं सुमति सुशील और सरल आचार हैं। ज्ञान वैराग्य और विज्ञान के निवास हैं और रामजी के प्रिय दास हैं।

व्याख्या : गरुड़जी भुसुण्डिजी से कहते हैं कि आप सर्वज्ञ हैं। अपने ज्ञान से आपको तीनों काल करतलगत आमलक के समान है। अर्थात् भूत भविष्य भी आपके लिए वर्तमान के ही तुल्य है। अतः आप बतला सकते हैं कि वर्तमान शरीर पूर्व जन्म के किस कर्म का फल है। जो तत्पद का जाननेवाला हो उसे शरीर की प्राप्ति नहीं होनी चाहिए। जो तम से पार हो वह देव शरीर का अधिकारी है। सुमति सुशील सरल आचार को भी रमणीय योनि मिलनी चाहिए। ज्ञान वैराग्य और विज्ञान धाम मुक्ति के अधिकारी हैं और रघुनायक के प्रिय दास नित्य मुक्ति सुख में लीन रहते हैं। आप में ये सब गुण हैं।

कारन कवन देह यह पाई। तात सकल मोहि कहहु बुझाई ॥
राम चरित सर सुन्दर स्वामी। पाएउ कहाँ सुनहु नभगामी ॥२॥

अर्थ : क्या कारण है कि आप ने यह देह पायी ? हे तात यह सब बात मुझे समझाकर कहिये। हे स्वामो ! यह सुन्दर रामचरित सर नभगामी होते हुए आप ने कहाँ पाया।

व्याख्या : ऐसे गुणवाले को यदि देह भी मिले तो उत्तम देह मिलनी चाहिए। यह शकुनाधम सब भाँति अपावन देह आप को मिलने का क्या कारण है ? यह बात मेरे मन में नहीं बैठती इसलिए इसे समझाकर कहिये। यह पहिला प्रश्न हुआ। अब दूसरा प्रश्न करते हैं कि यदि यह शरीर मिल ही गयी तो इसके अनुकूल आचरण भी होना चाहिए। बक काग तो रामचरित सर के निकट नहीं जाते उन्हें इसकी प्राप्ति कहाँ ? वे नभगामी हैं जहाँ उन्हें सम्बुक भेक सेवार मिलता है वहाँ वे चले जाते हैं। यह रामचरितसर देवलोक में भी दुर्लभ है सो आप को यह कहाँ से मिल गया ?

नाथ सुना मैं अस सिव पाहीं। महा प्रलयहुँ नास तव नाहीं ॥
मृषा बचन नहि ईस्वर कहई। सोउ मोरे मन संसय अहई ॥३॥

अर्थ : हे नाथ ! मैंने शिवजी से यह सुना है कि महा प्रलय में भी आपका नाश नहीं होता। ईश्वर मिथ्या वचन कहते नहीं सो यह संशय भी मेरे मन में है।

व्याख्या : इस संसार में अमरत्व भी आपेक्षिक है। देवता लोक अमर हैं क्योंकि वे एक मन्वन्तर तक जीते हैं। यहाँ काल से अभय करने का अर्थ भी कल्पान्त जीवन है। विभीषणजी को कियो कृपाल अभय कालहु ते। काल से अभय कर दिया। इसका अर्थ यह हुआ कि वे कल्पान्तजीवी हो गये। महाप्रलय में उनका भी देहावसान होगा। पर शिवजी ने कहा है कि तेहि गिरि रुचिर बसे खग सोई। जासु नास कल्पान्त न होई। आपका देहावसान महा प्रलय में भी नहीं होता। ईस्वर मिथ्या

कह नहीं सकते और महा प्रलय में कोई बच नहीं सकता। यह संशय भी गरुड़जी कहते हैं कि मेरे मन में हैं।

अग जग जीव नाग नर देवा। नाथ सकल जग काल कलेवा ॥
अंड कटाह अमित लयकारी। काल सदा दुरित क्रम भारी ॥४॥

अर्थ : चराचर जीव नाग नर और देवता हे नाथ ! सम्पूर्ण संसार काल का कलेवा है। असंख्य अण्ड कटाह का लय करनेवाला काल है। काल कभी भी उल्लंघन करने योग्य नहीं है।

व्याख्या : चराचर जितने जीव हैं। चाहे वे पातालवासी नाग हों चाहे मर्त्यलोक निवासी मनुष्य हों। चाहे स्वर्गलोक निवासी देवता हों सभी काल के कलेवा हैं। काल का पेट कभी नहीं भरता। पहिले जीवों का कलेवा करता है पीछे असंख्य ब्रह्माण्डों को खा जाता है। काल का कोई उल्लंघन करने में समर्थ नहीं है। यथा :

ऊमरि तरु बिसाल तव माया। फल ब्रह्माण्ड अनेक निकाया ॥
जीव चराचर जन्तु समाना। भीतर बसहिं न जानहि आना ॥
ते फल भक्षक कठिन कराला। तव भय डरत सदा सोउ काला ॥

दो. तुम्हहिन ब्यापत काल अति, कराल कारन कवन।
मोहि सो कहहु कृपाल, ज्ञान प्रभाउ कि योग बल ॥९४ क.
प्रभु तब आस्रम आएउ, मोर मोह भ्रम भाग।
कारन कवन सो नाथ सब, कहहु सहित अनुराग ॥९४॥

अर्थ : आप को अति कराल काल नहीं व्यापता : इसका कारण क्या है हे कृपाल ! सो मुझसे कहिये कि यह ज्ञान का प्रभाव है कि योग का बल है।

हे प्रभो ! तुम्हारे आश्रम में आने से मेरा मोह भ्रम भाग गया। इसका कारण क्या है सो सब हे नाथ ! अनुराग के साथ कहिये।

व्याख्या : जो काल सबको व्यापता है वह आप को क्यों नहीं व्यापता। बिना कारण के कार्य नहीं होता। अतः इस विशेषता के लिए भी कोई विशेष कारण होना चाहिए। आप सर्वज्ञ हैं : उस कारण को मुझे बतलाइये क्योंकि मैं आपका दास हूं। यह आपके ज्ञान का प्रभाव है कि आपके योग का बल है ? ज्ञान और योग का ही महा प्रभाव सुनने में आता है। ये मोक्ष तक देने में समर्थ हैं। अतः अनुमान तो यही होता है कि इन्हीं दोनों में से किसी का यह प्रभाव होगा।

चौथा प्रश्न यह है कि मेरा मोह भ्रम ऐसा निकट था कि ब्रह्मलोक तथा कैलास जाने पर भी नहीं गया और आप के आश्रम में आने से भाग गया। सो आप के आश्रम की इतनी बड़ी महिमा कैसे हो गयी ? इसका कारण अनुराग के साथ कहिये क्योंकि इससे मेरा बड़ा कल्याण हुआ है।

गरुड़गिरा सुनि हरषेउ कागा । बोलेउ उमा परम अनुरागा ॥
धन्य धन्य तव मति उरगारी । प्रस्न तुम्हारि मोहि अति प्यारी ॥१॥

अर्थ : हे उमा ! गरुड़जी वाणी सुनकर भुसुण्डिजी हर्षित हुए और अत्यन्त अनुराग के साथ बोले । हे गरुड़ ! तुम्हारी मति धन्य है धन्य है ! तुम्हारा प्रश्न मुझे अत्यन्त प्यारा मालूम हुआ ।

व्याख्या : गरुड़जी प्रश्न करने में भयभीत थे कि मेरे प्रश्न से काग भुसुण्डिजी अप्रसन्न न हो जाँय । अतः पहिले ही अपने अविवेक की चर्चा करते हैं । यथा : प्रभु अपने अबिबेक ते बूझौं स्वामी तोहि । कृपासिन्धु सादर कहहु जानि दास निज मोहि । इस भाँति आदर के साथ उत्तर पाने की प्रार्थना भी करते हैं । परन्तु गरुड़जी के प्रश्न से भुसुण्डिजो को हर्ष हुआ । क्योंकि उसके उत्तर में उन महात्माओं के यशोगान का इन्हें अवसर मिलेगा जिन्होंने कि इनपर करुणा की थी । शिवजी उमा से कहते हैं कि उमा ! भुसुण्डिजी अनुराग के साथ बोले । कोरे कोरे आदर से अनुराग की महत्ता अविक है ।

भुसुण्डिजी इतने प्रसन्न हुए कि ऐसा प्रश्न करने से गरुड़जी की मति को धन्य धन्य कहने लगे । क्योंकि इस प्रश्न के उत्तर में बड़ा भारी लोकहित साधन की सामग्री है । कहने लगे कि प्रश्न तुम्हारा मुझे बड़ा प्यारा मालूम हुआ । इसके उत्तर में मुझे अपने प्रिय विषय का निरूपण करना होगा ।

सुनि तब प्रस्न सप्रेम सुहाई । बहुत जनम की सुधि मोहि आई ॥
सब निज कथा कहौं मैं गाई । तात सुनहु सादर मन लाई ॥२॥

अर्थ : प्रेम युक्त सुन्दर तुम्हारा वचन सुनकर मुझे बहुत जन्मों की स्मृति हो आयी । अब मैं अपनी कथा गाकर कहता हूँ । हे तात ! आदर के साथ मन लगाकर सुनो ।

व्याख्या : गरुड़जी वचन सप्रेम विनीत मृदु बोले थे । इसलिए भुसुण्डिजी कहते हैं कि सप्रेम सोहाई वाणी सुनकर मुझे बहुत जन्म की सुधि आगयी । सोहाई में ही मृदु और विनीत का अन्तर्भाव है । भुसुण्डिजी कहते हैं कि इस प्रश्न के उत्तर से मेरे बहुत से जन्मों का सम्बन्ध है । सो सबके सब मुझे याद पड़ गये । नहीं तो उन सबों को भूला हुआ बैठा था ।

अभी तक तो रघुनाथजी की कथा कहता था । अब अपनी कथा कहूँगा और विस्तार के साथ कहूँगा । अब सुनने में तुम्हारी ओर से उपेक्षा न हो । अतः मन लगाकर सुनने को कहते हैं । इसमें बहुत सी उपदेशप्रद बातें हैं । उपेक्षा होने से उनसे लाभ न होगा और मेरा परिश्रम व्यर्थ जायगा ।

जप तप मख सम दम ब्रत दाना । बिरति बिबेक जोग बिज्ञाना ॥
सबकर फल रघुपति पद प्रेमा । तेहि बिनु कोउ न पावै छेमा ॥३॥

अर्थ : जप, तप, यज्ञ, शम, दम, व्रत, दान, विरति, विवेक, योग और विज्ञान, सबका फल रामजी के चरणों में प्रेम है। उसके बिना किसी का कल्याण नहीं होता।

व्याख्या : जप, तप, व्रत, यज्ञ, शम, दम, दान, ये सब वेदविहित कर्म हैं। इनके करने से शुभ फल होता है। परन्तु वे भी यदि भगवत् प्रीत्यर्थं न किये जायँ तो वन्ध के कारण होते हैं : यज्ञार्थात् कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धनः। और विरति विवेक योग विज्ञान से भी निरुपास्ति होने से पतन होता है। जोग कुजोग ग्यान अग्यानू। जहँ नहि राम प्रेम परधानू। यदि यह सब कुछ करने पर भी रामचन्द्र पदपङ्कज में प्रेम न हुआ तो सब व्यर्थ हैं। अतः तव पद पंकज प्रीति निरंतर। सब साधन कर यह फल सुन्दर। इसके बिना किसी का क्षेम नहीं होता। अर्थात् अन्य साधनों में फल लगते हैं। योग तो हो जाता है पर क्षेम नहीं होता। यथा : राम बिमुख संपति प्रभुताई। जाइ रही पाई बिनु पाई। सजल मूल जिन्ह सरितन्ह नाहीं। बरषि गये पुनि तबहिं सुखाहीं।

एहि तन राम भगति मै पाई। तातें मोहि ममता अधिकाई॥
जेहि ते कछु निज स्वारथ होई। तेहि पर ममता कर सब कोई॥४॥

अर्थ : इस शरीर से मैंने रामभक्ति पायी है। इससे मुझे बड़ी ममता है। जिससे कुछ अपना स्वार्थ होता है उस पर सब लोग ममता करते हैं।

व्याख्या : भुसुण्डिजी कहते हैं कि शरीर तो मैंने बहुत पायी। पर किसी में रामभक्ति न हुई। मुझे तो काक शरीर में ही भक्ति मिली। इसलिए इस पर ममता विशेष है। भाव यह कि जो शरीर मिलता थी उस पर कुछ ममता हो ही जाती थी। पर उनसे किसी से वास्तविक कल्याण नहीं हुआ। पर इस शरीर में रामभक्ति की प्राप्ति हुई इससे इस पर मेरी ममता है। मैं इसी शरीर में प्रसन्न हूँ। क्योंकि शरीर मिलने का साफल्य तो इसी से हुआ।

संसार की भी यही रीति है कि जिससे अपना कुछ काम निकलता है उस पर सब लोग ममता करते हैं। सुर नर मुनि सबके यह रीती। स्वारथ लागि करहिं सब प्रीती। मेरा काम तो इस शरीर से निकला। अतः इस पर मेरी ममता होना प्राप्त है। दूसरों को भले ही यह अधम शरीर जान पड़े। पर मुझे तो यह प्रिय है।

सो. पन्नगारि असि नीति स्रुतिसम्मत सजजन कहहिं।
अति नीचहु सन प्रीति, करिअ जानि निज परम हित॥९५ क.
पाट कीटते होइ, तेहि तें पाटंबर रुचिर।
कृमि पाले सब कोइ, परम अपावन प्रानसम॥९५॥

अर्थ : हे गरुड़जी ! ऐसी नीति है। वह श्रुति सम्मत है और शिष्टानुमोदित है।

अति नीच से भी अपना परम हित जानकर प्रीति करनी चाहिए। रेशम कीड़े से होता है। उससे सुन्दर रेशमी वस्त्र बनता है। परन्तु उस परम अपावन कीड़े को सब लोग प्राण के समान पालते हैं।

व्याख्या : नीति भी अनेक प्रकार की होती है। कूटनीति की भी नीति में ही गिनती है। परन्तु वह धर्मविरुद्ध है। यह नीति श्रुतिसम्मत है धर्मानुकूल है और शिष्ट लोग इसके अनुसार आचरण करते हैं तथा उपदेश देते हैं कि यद्यपि नीच का साथ निन्दित है पर यदि वह अपना परम हित हो तो उससे प्रीति करनी चाहिए। भाव यह कि यह काक शरीर पक्षियों में चाण्डाल शरीर है। अति नीच है। पर यह मेरा परम हित है। इसलिए इससे प्रीति करता हूँ।

रेशम का उदाहरण देते हैं कि रेशम तो कीड़े से प्राप्त होता है। वही कोष बनाता है जिससे रेशम बनता है और उस रेशम से अपना परम हित सधता है। उससे पाटाम्बर बनता है। इसलिए उस कीड़े को लोग पालते हैं। वह कीड़ा परम अपावन है। अपने मुख के राल से अपने चारों ओर कोष बनाता है। पर उसकी अपावनता पर कोई दृष्टिपात नहीं करता और बड़े यत्न से उसे पालता है।

स्वारथ साँच जीव कह एहा। मन क्रम बचन रामपद नेहा ॥
सोइ पावन सोइ सुभग सरीरा। जो तनु पाइ भजै रघुबीरा ॥१॥

अर्थ : जीव के लिए यही सच्चा स्वार्थ है कि मनसा वाचा कर्मणा रामजी के चरणों में स्नेह हो। वही शरीर पवित्र है और सुन्दर है जिसे पाकर रामजी का भजन हो।

व्याख्या : संसार स्वार्थ भी नहीं जानता। झूठे स्वार्थ में पड़ा है। इसी से देह गेह कुटुम्बादि में रत है। विनाशी पदार्थों में प्रेम करना कच्चा स्वार्थ है। अविनाशी तो राम हैं। अतः उन्हीं में प्रेम लगाना सच्चा स्वार्थ है। अतः यदि स्वार्थ ही साधन करना है तो सच्चा स्वार्थ साधन करिये।

शरीर तो सभी रक्त मांस अस्थि चर्मादि का बना हुआ घृणास्पद है। मनुज देह सुर साधु सराहत सो सनेह सिय पीके। मनुष्य देह में यही विशेषता है कि इसके द्वारा रामजी के चरणों में प्रेम हो सकता है। यदि मनुष्य शरीर से भी प्रभु चरणों में प्रेम न हुआ तो : काज कहा नरतन धरि सारयो। फिर मनुष्य देह से लाभ क्या हुआ ? अतः सिद्धान्त यही हुआ कि जिसी देह से राम भजन हो वही पवित्र है। वही सुन्दर है। यथा : बिनु हरिभजन इंदारुन को फल तजत नहीं करुआई।

राम बिमुख लहि बिधिसम देही। कबि कोविद न प्रसंसहि तेही ॥
रामभगति एहि तन उर जामी। तातें मोहि परम प्रिय स्वामी ॥२॥

अर्थ : राम विमुख को यदि विधि के समान देह मिले तो भी पण्डित कवि उसकी प्रशंसा नहीं करते। इस शरीर में ही मेरे हृदय में रामभक्ति उगी। इसलिए हे स्वामी ! यह मुझे परम प्रिय है।

व्याख्या : देहधारियों में सर्वोत्तम ब्रह्मदेव हैं। उन्हीं के शरीर से सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति है। उसमें सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के रचने की शक्ति है। परन्तु ऐसी देह को भी पाकर जो कोई रामविमुख हो तो विवेकी पण्डित उसकी प्रशंसा नहीं करते। क्योंकि उससे परम कल्याण नहीं हुआ। इदं शरीरं कौन्तेय क्षेत्रमित्यभिधीयते। इसी शरीर को खेत कहा गया है। सो रामभक्ति के लिए मेरी काकदेह गुरुदत्त होने से उपजाऊ हो गयी और शरीर मेरे लिए ऊसर ही रह गये। इसलिए यह शरीर मुझे परम प्रिय है।

तजौं न तनु निज इच्छा मरना। तनु बिनु वेद भजन नहि बरना ॥
प्रथम मोह मोहि बहुत बिगोवा। रामबिमुख सुख कबहुँ न सोवा ॥३॥

अर्थ : मैं कांक्षामृत्यु हूँ। इसलिए शरीर नहीं छोड़ता। क्योंकि वेद कहता है कि बिना शरीर का भजन नहीं होता। पहिले मोह ने मुझे बहुत कष्ट दिया। राम के विमुख रहकर मैं कभी सुख से नहीं सोया।

व्याख्या : तीसरे प्रश्न : तुम्हहि न व्यापत काल अति कराल कारन कवन का उत्तर : गुरुजी द्वारा मुझे इच्छा मरण का आशीर्वाद मिला। जब शरीर छोड़ने की इच्छा हो तभी छोड़ सकते हैं। परन्तु मैं इसे छोड़ता नहीं। क्योंकि वेद कहते हैं कि शरीर के न रहने से भजन नहीं हो सकता। सगुण उपासक मोच्छ न लेही। तिनकहँ राम भगति निज देही। मुझे भजन में जो सुख है वह मोक्ष में भी नहीं है।

मोह दरिद्र है। वह जीव को लक्ष्मीपति से विरुद्ध किये रहता है। उसी मोह ने मुझे पहिले बहुत कष्ट दिया। मोह के कारण शोक बना ही रहता था। वह सदा मुझे राम विमुख बनाये रहा। अतः मैं सदा कष्ट पाता रहा। राम विमुख होने से सुख कभी न मिला। सदा चिन्ताग्रस्त रहा सुख से कभी न सोया।

नाना जनम करम पुनि नाना। किए जोग जप तप मख दाना ॥
कवन जोनि जन्म्येउँ जहँ नाहीं। मैं खगेस भ्रमि भ्रमि जग माहीं ॥४॥

अर्थ : अनेकों जन्मों में मैंने अनेकों कर्म योग जप यज्ञ और दान किये। हे पक्षिराट्! वह कौन सी योनि है जिसमें मैंने इस संसार में घूम घूमकर नहीं जन्म लिया।

व्याख्या : आकर चारि लाख चौरासी। जोनि भ्रमत यह जिव अविनासी। फिरत सदा माया कर प्रेरा। काल कर्म सुभाव गुन घेरा। इस भाँति कितने जन्म में मनुष्य भी हुए और योग, जप, तप, यज्ञ और दान भी किया। परन्तु संसृति का अन्त नहीं हुआ। कर्म से कर्म शृंखला बढ़ती ही गयी और जन्म मरण के चक्कर में पड़ा रहा।

देखेउँ करि सब करम गोसाईं। सुखी न भएउ अबहिंकी नाईं ॥
सुधि मोहि नाथ जनम बहु केरी। सिव प्रसाद मति मोह न घेरी ॥५॥

अर्थ : हे गोसाईं ! सब कर्म करके मैंने देख लिया। जैसा इस समय सुखी हूँ वैसा सुखी कभी न हुआ। हे नाथ ! मुझे बहुत से जन्मों की याद है। शिवजी की कृपा से मेरी बुद्धि को मोह घेर न सका।

व्याख्या : मैंने सब कर्म किये, सबका फल देखा। सुख के लिए कर्म किया सुख मिला भी। पर जैसा मैं इस काकशरीर में राम भजन के प्रभाव से सुखी हूँ वैसा सुख तो कभी नहीं मिला। मुझे सब जन्मों की याद बनी है। शिवजी के प्रसाद से मोह मेरी मति घेर न सका। पूर्व जन्म के स्मरण न रहने का यही कारण है कि बुद्धि को मोह घेर लेता है। परन्तु मुझे शिवजी ने आशीर्वाद दिया था : कौनेहु जन्म मिटिहि नहि ग्याना। सुनहि सूद्र मम बचन प्रमाना। इसलिए मैं पूर्व जन्मानुभूत सुखों से वर्तमान शरीर के सुख का मिलान कर सकता हूँ।

दो. प्रथम जन्म के चरित अब, कहौं सुनहु बिहगेस।
सुनि प्रभुपद रति उपजै, जाते मिटहि कलेस ॥९६ क.
पूरब कल्प एक प्रभु, जुग कलिजुग मल मूल।
नर अरु नारि अधर्म रत, सकल निगम प्रतिकूल ॥९६॥

अर्थ : हे पक्षिराट् ! मैं पहिले जन्म का चरित अब कहता हूँ उसे सुनो। उसके सुनने से प्रभु के चरणों में प्रेम उपजता है। जिस प्रेम के द्वारा क्लेश मिट जाते हैं। पूर्व कल्प में एक मल का मूल कलियुग नाम का युग था। जिसमें हे प्रभो। नर और नारी अधर्म में रत थे और सब वेद के विरुद्ध थे।

व्याख्या : चौरासी लाख योनि भोगते भोगते पूर्व कल्प के किसी एक कलियुग में पहिले पहल मनुष्य योनि मिली। यही क्रम है धीरे धीरे उन्नति होती है। उस जन्म का अपना चरित कहते हैं। उसकी फलश्रुति है कि उसके सुनने से रामजी के चरणों में प्रीति होती है और उससे क्लेश मिटता है। उपदेश करने में सङ्कोच न होना चाहिए। अतः अपने चरित्र की फलश्रुति स्वयं कहते हैं।

पूर्व कल्प से यहाँ कम से कम अट्ठाईसवें पूर्व कल्प को कथा अभिप्रेत है। क्योंकि सत्ताईस कल्प तो भुसुण्डिजी को नीलगरि पर्वत पर रहते बीता। यथा : इहाँ बसत मोहि सुनु खगईसा। बीते कल्प सात अरु बीसा। जिस भाँति सब ऋतुओं के धर्म पृथक् पृथक् हैं इसी भाँति सब युगों के धर्म भी पृथक् पृथक् हैं। इनमें कलियुग बड़ा मलिन है मल का मूल है। इसमें नर नारी सब पापी होते हैं और वेदविरुद्धाचरण करते हैं।

तेहि कलिजुग कोसलपुर जाई। जनमत भयेउ सूद्र तन पाई ॥
सिव सेवक मन क्रम अरु बानी। आन देव निंदक अभिमानी ॥१॥

अर्थ : उस कलियुग में मैं अयोध्या जाकर शूद्र शरीर पाकर जन्मा। मनसा वाचा कर्मणा मैं शिवजी का सेवक था। पर था अभिमानी। अन्य देवताओं को निन्दा करता था।

व्याख्या : भुसुण्डिजी कहते हैं कि वह पहिला जन्म मेरा यद्यपि शूद्रयोनि में और कलियुग में हुआ फिर भी अयोध्या में हुआ। काल विपरीत होने पर भी देश अनुकूल था। शूद्र शरीर से प्रशादिक में अविकार नहीं होता और कलियुग में स्वभाव से ही लोगों को नीच प्रवृत्ति होती है। कर्म की विचित्रता दिखलाते हुए कहते हैं कि अच्छी बात मुझमें यह थी कि मैं नास्तिक नहीं था। मनसा वाचा कर्मणा शिवभक्त था और बुराई यह थी कि मैं अभिमानी था। दूसरे देवताओं की निन्दा करता था। दूसरे देवता की निन्दा करने में अनन्यता समझता था। शिवादन्यं न जानामि : शिव से अन्य किसी को मैं नहीं जानता। इस प्रकार की अनन्यता नहीं थी।

धनमद मत्त परम बाचाला। उग्र बुद्धि उर दंभ बिसाला॥
जदपि रहेउँ रघुपति रजधानी। तदपि न कछु महिमा तब जानी॥२॥

अर्थ : मैं धन के मद में मतवाला हो गया था। बड़ा बकवादी था। बुद्धि बड़ी उग्र थी और हृदय में बड़ा दम्भ था। यद्यपि रामजी की राजधानी में रहता था। फिर भी उस समय उसकी कुछ भी महिमा नहीं जानता था।

व्याख्या : कनक कनक से सौ गुनो मादकता अधिकात। वह पाये बौरात है यह खाये बौरात। धतूरे से अधिक सोने में मादकता : नशा है। क्योंकि धतूरा खाने से आदमी पागल हो जाता और सोना के पाने से पागल हो जाता है। भुसुण्डिजी कहते हैं कि मैं धनी था इसलिए मुझे धन का मद था। तिस पर भी बड़ा दोष यह था कि मुखर : बकवाको था। सोचिय सूद्र बिप्र अवमानी। मुखर मान प्रिय ग्यान गुमानी। सो उग्र बुद्धि और वादप्रिय होने से मैं ज्ञानगुमानी भी था। बाहर से सब को दिखलाता था कि मैं बड़ा धार्मिक हूँ। अतः बड़ा भारी दाम्भिक भी था।

अयोध्या रामजी की राजधानी है यह बात संसार जानता है। श्रीअयोध्याजी में रहकर उसकी महिमा जानना एक विचित्र बात है। भारत वर्ष में तो सर्वत्र प्रख्यात है कि अयोध्या सात मोक्षपुरियों में से प्रथम है। अतः महात्मागण सदा श्रीअयोध्याजी में बसते हैं। भुसुण्डिजी कहते हैं कि उस समय मुझे श्रीअयोध्याजी के निवास की महिमा का परिज्ञान नहीं था।

अब जाना मै अवध प्रभावा। निगमागम पुरान अस गावा॥
कवनेहु जनम अवध बस जोई। राम परायन सो परि होई॥३॥

अर्थ : अब मैंने अवध का प्रभाव जाना। वेद शास्त्र और पुराण ने ऐसा गान किया है जो कोई किसी जन्म में यदि अवधवास करता है तो वह भली भाँति रामपरायण होता है।

व्याख्या : भुसुण्डिजी कहते हैं कि अवध के प्रभाव का पता तो मुझे इस जन्म में लगा जब कि अवध वास का फल मुझे मिला और वेद पुराण शास्त्र भी कहते हैं कि किसी जन्म में जब अवध में वास हुआ रहता है तब वह राम परायण होता

है। अर्थात् धाम भी सरकार का विग्रह है। उससे एक बार भी सम्बन्ध हो जाने से फिर वह सम्बन्ध टूटता नहीं फल देकर ही रहता है। वेद पुराण शास्त्र ने कहा है कि किसी जन्म में भी जिसे अवधवास का सौभाग्य प्राप्त हुआ है उसे राम भक्ति होकर रहेगी।

अवध प्रभाव जान तब प्रानी। जब उर बसहिं राम धनुपानी॥
सो कलिकाल कठिन उरगारी। पाप परायन सब नर नारी॥४॥

अर्थ : अवध की प्रभुता प्राणी तब जान पाता है जब हृदय में धनुंधर रामजी निवास करते हैं। हे गरुड़जी! यह कलिकाल बड़ा कठिन था उसमें सब नरनारी पापी हो गये थे।

व्याख्या : अवध का प्रभाव प्राणी के हृदय में तब ठीक ठीक आता है जब उसका हृदय स्वयं अवध हो जाय। तहँई अवध जहँ राम निवासू। तहँई दिवस जहँ भानु प्रकासू। जहाँ सूर्य का प्रकाश हो वही दिन है और जहाँ राम का निवास हो वही अवध है। सो जब धनुंधर रामजी हृदय में बसें लोभ मोह मत्सर मद मान से हृदय शुद्ध हो। यथा : तब लगि हृदय बसत खल नाना। लोभ मोह मत्सर मद माना। जब लगि उर न बसत रघुनाथा। धरे चाप सायक कटिं भाथा। अर्थात् जब सरकार के बसने से हृदय प्रकाशमान हो तब अयोध्या का माहात्म्य मन में आवे। उस महिमा का पता लगे जिसके बल से रामजी का अवतार अयोध्या छोड़कर अन्यत्र हो नहीं सकता।

अब कलिकाल की कथा कहते हैं कि वह कलिकाल बड़ा कठिन था। पाप के समुद्र में नर नारियों का मन मछली हो गया था। पाप में ही उनको सुख मिलता था। समय वैसा बर्त्त रहा था उसके उल्लङ्घन में सभी असमर्थ थे।

दो. कलिमल ग्रसे धरम सब, लुप्त भए सद ग्रंथ।
दंभिन्ह निज मति कलपि करि, प्रगट कीन्ह बहु पंथ॥९७ क.
भये लोग सब मोह बस, लोभ ग्रसे सुभ कर्म।
सुनु हरि जान ज्ञाननिधि, कहौं कछुक कलिधर्म॥९७॥

अर्थ : सब धर्मों को कलियुग के मल ने ग्रस लिया था। सद्ग्रन्थ सब लुप्त हो गये थे। दम्भियों ने अपने अपने मतों की कल्पना करके बहुत से पंथ प्रकट कर दिये थे। सब लोग मोह के वशीभूत थे और शुभ कर्मों को लोभ ने ग्रस लिया था। हे ज्ञाननिधि गरुड़जी अब थोड़ा सा कलियुग का धर्म सुनो।

व्याख्या : तामस बहुत रजोगुन थोरा। कलि प्रभाव बिरोध चहुं ओरा। यह कलियुग का मल है। इसका अनुवेध सभी धर्मों में हो गया था। सात्त्विक कर्म कोई नहीं करता था। जो लोग धर्म करते भी थे वे तामस धर्म करते थे। सद्ग्रन्थ प्रचार विहीन होने से लुप्त हो गये। मार्ग कहीं पता नहीं कि कैसे चलें। महाजनो येन गतः

स पन्थाः। सो सद्ग्रन्थों के लोप से यह भी पता नहीं चलता था कि बड़े लोग किस रास्ते से गये हैं। ऐसा सुअवसर पाकर दम्भियों ने अपना अपना नया पन्थ कल्पना करके चलाया। जिससे चलनेवाले और भी पथभ्रष्ट हो जाते थे।

सब लोग अज्ञानवश आहार निद्रा भय मैथुन को ही लक्ष्य माने हुए चलते थे। जितने शुभ कर्म थे। उनपर लोभ का अधिकार हो गया था। शुभकर्म होना दुष्कर व्यापार था। भुसुण्डिजी कहते हैं कि अब थोड़ा सा कलि धर्म भी सुनो।

बरन धरम नहि आस्रम चारी। स्रुति बिरोधरत सब नरनारी ॥
द्विज स्रुति बेचक भूप प्रजासन। कोउ नहि मान निगम अनुसासन ॥१॥

अर्थ : न वर्ण धर्म हैं न चार आश्रम हैं। सब नर नारी वेद के विरोध में लगे हुए हैं। ब्राह्मण वेद बेंचते हैं राजा प्रजा को खाकर जीते हैं। कोई भी वेद की आज्ञा नहीं मानता।

व्याख्या : संसार का कल्याण वेद की आज्ञा मानने में है दूसरी भाँति से सम्भव नहीं। वेद की आज्ञा अव्याहत रखने के लिए ही चार वर्ण और चार आश्रम हैं। ये यदि अपने अपने धर्म पर चलें तो कोई कष्ट आ नहीं सकता। यथा : वरणास्रम निज निज धरम निरत वेद पथ लोग। चलहिं सदा पावहिं सुखहिं नहि भय सोक न रोग। सो कलियुग में वर्ण धर्म ही नहीं रह जाता। आश्रम विभाग मिट जाता है। नर नारी आसुर भाव को प्राप्त हो जाते हैं। जेहि बिधि होइ धरम निर्मूला। सो सब करहिं बेद प्रतिकूला।

ब्राह्मण का धर्म विद्यादान् है सो ब्राह्मण विद्यादान बन्द कर देंगे। विनियम में धन लेकर तब वेद पढ़ावेंगे। विष्णुशर्मा ने कहा : नाहं विद्याविक्रयं शासनशतेनापि करोमि। यद्यपि अध्यापन ब्राह्मणों की जीविका है सो विद्या पढ़ा चुकने के बाद गुरुदक्षिणा रूप से शिष्य के सामर्थ्यानुसार ग्रहण करने का विधान है। सो सब बातें जाती रहीं। ब्राह्मण वेतन भोगी होकर वेद पढ़ाने लगते हैं।

राजा का धर्म है कि प्रजा को और सपुत्र की भाँति पालन करें। सो राजा प्रजा को अपनी जीविका बना करके धन शोषण करते हैं। उनके न देने पर उन्हें दण्ड देते हैं। प्रजा पालन का उन्हें ध्यान भी नहीं। प्रजा को कष्ट देकर अपना पालन करना ही उनको खाकर जीना है।

ब्राह्मण और क्षत्रिय के विहिताचरण से ही लोक व्यवहार ठीक चलता है। जब ये दोनों अपने मर्यादा से च्युत हो जाते हैं तब और लोग भी स्वच्छन्दाचार में रत हो जाते हैं। वेद को आज्ञा की परवाह नहीं करते।

मारग सोइ जाकहुँ जोइ भावा। पंडित सोइ जो गाल बजावा ॥
मिथ्यारंभ दंभ रत जोई। ताकहुँ संत कहें सब कोई ॥२॥

अर्थ : जो जिसे अच्छा लगे उसी को वह रास्ता मानता है। जो लम्बी लम्बी

बातें करे वही पण्डित है। जिसका आरम्भ ही मिथ्या हो। जो दम्भ में दत्तचित्त हो उसी को सब सन्त कहते है।

व्याख्या : जिस रास्ते से पिता चले हों जिस रास्ते से पितामह चले हों और वह भलों का रास्ता हो उसी को पकड़ने से कल्याण होता है। महाजनो येन गतः स पन्थाः। परन्तु कलियुग में जिसे जैसा अच्छा लगे वही रास्ता वह पकड़ता है। इसका परिणाम बड़ा भयङ्कर है। स्वच्छन्दाचार से मनुष्य नष्ट हो जाता है। मार्ग की परिभाषा ही बदल गयी। इसी भाँति शब्दों के दुष्प्रयोग से बड़ा अनिष्ट होता है। परमार्थ ज्ञाता को पण्डित कहा जाता है। सो लम्बी लम्बी बातें करनेवाले को सब लोग एकमत होकर पण्डित मान लेते हैं। वह नेता हो जाता है और लोग उसी का अनुसरण करते हैं।

जो दम्भरत हैं दिखाने के लिए धर्म की ध्वजा उठाये हुए हैं। जिन्होंने आरम्भ से ही झूठ को लक्ष्य बना रक्खा है। दूसरे को ठगना ही ध्येय बना रक्खा है। ऐसे बिड़ाल व्रती बकव्रती को चाहे वह कोई हो सब लोग सन्त कहते हैं। सन्त की परीक्षा इसी में है कि मन्द करत जो करै भलाई। परन्तु इतनी परख किसी को नहीं।

सोइ सयान जो परधन हारी। जो कर दंभ सो बड़ आचारी ॥
जो कह झूठ मसखरी नाना। कलियुग सोइ गुनवंत बखाना ॥३॥

अर्थ : जो दूसरे का धन हरण करे वही सयाना है। जो दम्भ करे वह बड़ा भारी आचारवान् है। जिसे झूठ कहना मसखरी करना आता है। कलियुग में वही गुणी माना जाता है।

व्याख्या : वस्तुतः दूसरे का धन हरण करनेवाला बड़ा मूर्ख है। जिसने अन्यायोपार्जित द्रव्य से अपना कल्याण माना क्योंकि अन्यायोपार्जित द्रव्य दश वर्ष तक ही ठहरता है। उसके लिए उसने अपना परलोक बिगाड़ा। परन्तु कलियुग में उस महा मूर्ख को ही लोग सयाना कहेंगे। क्योंकि लोग भी परलोक पर विश्वास न करनेवाले तथा ऐहिक सुखको ही सर्वस्व माननेवाले होंगे। परवित्त हरण करनेवाली बुद्धि ही उनके लिए प्रशंसा के योग्य होगी।

जो दिखाने के लिए धर्म का ढोंग बनाये हो उसे लोग आचारवान् मानेंगे। लोगों में सच्चे झूठे की परख जाती रहेगी। जिसे झूठ बोलने की विद्या मालूम है और जिसे लोगों को हँसाना आता हो। कलियुग में उसकी गिनती गुणी जनों में होगी। वस्तुतः वह महा निर्गुणी है। मिथ्या भाषण महा निन्दित दोष है। मिथ्याभाषी के लिए अवीची नाम का नरक बना हुआ है। जो सब नरकों के नीचे है। मसखरे महा-निर्लज्ज होते हैं। सो इन बड़े बड़े दोषों की कलियुग में गुणों में गणना होगी।

निराचार जो स्रुतिपथ त्यागी। कलिजुग सोइ ग्यानी सो बिरागी ॥
जाके नख अरु जटा बिसाला। सो तापस प्रसिद्ध कलिकाला ॥४॥

अर्थ : जो आचारभ्रष्ट वेदमार्ग को छोड़े हुए हैं कलियुग में वे ही ज्ञानी और वे ही विरागी है। जिसे नख और जटा लम्बी लम्बी है वही कलिकाल में प्रसिद्ध तपस्वी कहलाता है।

व्याख्या : आचारः प्रथमो धर्मः। आचार ही प्रथम धर्म है। स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धि विन्दति मानवः। अपने कर्म धर्मसे ईश्वर की अर्चना करके लोग सिद्धि को प्राप्त करते हैं। सो जिसने आचार का त्याग किया उसे वैराग्य का उदय कैसे होगा ? और बिना वैराग्य के ज्ञान भी कैसे होगा ? पहिले स्वधर्माचरण करके जब वैराग्य तथा ज्ञान अर्जन करता है तब वह विधि-निषेध से परे होता है। फिर भी वह लोकसंग्रह के लिए निषिद्धाचरण नहीं करता। नहीं तो : शुनां तत्त्वदृशाश्चैव को भेदोऽशुचिभक्षणे। कुत्ते में और तत्त्वदर्शी में अशुचि भक्षण समान होने से भेद क्या रह जायगा ?

बहुत दिनों तक क्षौर न कराने से हाथ पैर के नख बहुत बढ़ जाते हैं। जिससे वे सर्वथा कर्ममार्ग से परिभ्रष्ट हो जाते हैं। सिर के केश भी सिमिटकर जटारूप में परिणत हो जाते हैं। कलिकाल में ऐसे पुरुषों की प्रसिद्धि तपस्वी रूप से हो जाती है।

दो. असुभ बेष भूषन धरे, भक्षाभक्ष जे खांहि।
तेइ जोगी तेइ सिद्ध नर, पूजित कलि जुग माँहि ॥९८ क.

सो. जे अपकारी चार तिन्ह कर गौरव मान्य तेइ।
मन क्रम बचन लबार, ते वक्ता कलिकाल महँ ॥९८॥

अर्थ : अशुभ वेष और भूषण धारण करके जो भक्ष्याभक्ष्य खाते हैं वे योगी हैं। वे सिद्ध हैं। वे ही कलियुग में पूज्य हैं। जो अपकारी चुगुल है उन्हीं की बड़ाई और उन्हीं का मान है। जो मनसा वाचा कर्मणा झूठे हैं वे ही कलियुग में वक्ता हैं।

व्याख्या : नख आदि के बढ़ा लेने से तथा मलिन रहने से उनका वेष अशुभ है। अस्थि की माला आदि धारण से जिसका भूषण भी अशुभ है। भक्ष्य और अभक्ष्य सब कुछ खाने से जो महा अपवित्र हैं ऐसे पुरुष को लोग योगी मानते हैं। सिद्ध मानते हैं और उन्हीं की पूजा होती है। अन्य युगों में ऐसे पतितों का कोई मुख भी नहीं देखता। सब बिधि सोचिय पर अपकारी। निज तन पोषक निर्दय भारी। पिसुन पराय पाप कहि देही। ये दोनों महा दुर्गुण जिसमें हो उसी की बड़ी प्रतिष्ठा और उसी की बड़ी मान्यता होती है। दुनिया भर के झूठे वक्ता माने जाते हैं। यह कलियुग की अद्भुत लीला है। युग का प्रभाव ऐसा बलवान् है कि स्वभावतः सबकी प्रवृत्ति विपरीतार्थ में होती है।

नारि बिबस नर सकल गोसाईं। नाचहि नट मरकट की नाईं॥
सूद्र द्विजन्ह उपदेसहिं ज्ञाना। मेलि जनेऊ लेहिं कुदाना ॥१॥

अर्थ : हे गोसाईं ! जितने नर हैं वे सब नारी के वशीभूत रहते हैं और नटके बन्दर की भाँति नाचते हैं। शूद्र ब्राह्मणों को ज्ञान उपदेश करते हैं और यज्ञोपवीत पहनकर कुदान लेते हैं।

व्याख्या : नियम यह है कि स्त्री पुरुष के वश में रहे। बचपन में पिता के वश में, यौवन में पति के वश में, वार्धक्य में पुत्र के वश में रहे। क्योंकि स्त्री में स्वतन्त्रता की योग्यता नहीं है। यथा : पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति यौवने। पुत्रास्तु स्थाविरे भावे न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति। सो इसका ठीक उलटा कलियुग में होता है। पुरुष ही स्त्री के वशीभूत होकर रहते हैं। वह जो नाच नचाती है वही नाच नाचते हैं। मानो स्त्री नट है और पुरुष उसका पाला हुआ बन्दर है। वह उस स्त्री से प्रेरित होकर लज्जा छोड़कर जहाँ तहाँ नाचा करता है। यथा : धन्य कीस जो निज प्रभु काजा। जहँ तहँ नाचहिं परिहरि लाजा। नाचि कूद कर लोग रिझाई। पति हित करहिं धरम निपुनाई।

शूद्र को ज्ञान होने पर भी ज्ञानोपदेश का अधिकार नहीं है। विदुरजी ऐसे ज्ञानी ने धृतराष्ट्र के तद्विषयक प्रश्न के उत्तर में कहा कि मैं शूद्रयोनि में उत्पन्न हूँ। इसलिए इससे अधिक नहीं कह सकता। मैं सनतसुजात ऋषि का आवाहन करता हूँ। वे आकर तुम्हें उत्तर देंगे। तदनुसार ऋषिजी ने आकर राजा धृतराष्ट्र को ज्ञानोपदेश किया। सो शूद्र ब्राह्मणों को ज्ञानोपदेश करेंगे। इतना ही नहीं वे अपने गले में यज्ञोपवीत डाल लेंगे। जिसमें लोग उन्हें ब्राह्मण समझें और गङ्गादितीर्थ के तट पर निषिद्ध दान ग्रहण करेंगे। ब्राह्मणों को भी जिनकी जीविका प्रतिग्रह है दान लेने से रोका गया है। उन्हें शिलोञ्छ वृत्ति की सम्मति धर्मशास्त्र ने दिया है। कुदान ग्रहण करने से आज भी ब्राह्मण दूर भागते हैं। उस कुदान के ग्रहण के लिए शूद्र लोगों को ठगने के लिए जनेव पहन लेते हैं जिसमें लोग उन्हें ब्राह्मण समझें और कुदान ग्रहण करते हैं।

सब नर काम लोभरत क्रोधी। बेद बिप्र स्रुति संत बिरोधी ॥
गुन मंदिर सुन्दर पति त्यागी। भजहिं नारि पर पुरुष अभागी ॥२॥

अर्थ : सभी लोग कामी लोभी और क्रोधी होंगे। वे वेद विप्र गुरु और सन्तों का विरोध करते हैं। स्त्रियाँ परम गुणी और सुन्दर पति का परित्याग करके अभागी पर पुरुष को भजती हैं।

व्याख्या : काम क्रोध और लोभ नरक के द्वार हैं और आत्मा का नाश करनेवाले हैं। यथा : त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः। कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत् त्रयं त्यजेत्। इसलिए इनके त्याग का विधान है। कलियुग में सभी कामी क्रोधी और लोभी होते हैं। नरक के लिए पूरी तैयारी रहती है। वेद विप्र गुरु और सन्त की कृपा से ही मनुष्य का कल्याण होता है। सो इन्हीं से लोग वैर करते हैं उनका कल्याण कैसे हो ? जिसका पूजन होना चाहिए उनसे ही वैर करते हैं। इस भाँति अपना दोनों लोक अपने हाथ से बिगाड़ते हैं।

स्त्रीधर्म है कि गुणहीन पति का भी भजन करें। यथा : वृद्ध रोग बस जड़ धनहीना। अंध बधिर क्रोधी अतिदीना। ऐसेउ पति कर किय अपमाना। नारि पाव जमपुर दुख नाना। पति बंचक पर पति रति करई। रौरव नरक कल्पसत परई। सो कलियुग की स्त्रियाँ गुणमन्दिर सुन्दर पति का त्याग करके निर्गुण कुरूप पर पुरुष को अभागिनी भजेगी। भावार्थ यह कि वे भी अपने नरक का रास्ता ठीक करने में दत्तचित्त रहती हैं। एकइ धर्म एक व्रत नेमा। काय बचन मन पतिपद प्रेमा। उस धर्म का हठ पूर्वक परित्याग करती है।

सौभागिनी बिभूषन हीना। बिधवन्ह के सृंगार नवीना ॥
गुरु सिख अंध बधिर कर लेखा। एक न सुनहि एक नहि देखा ॥३॥

अर्थ : सोहागिनी स्त्री को तो गहना नहीं और विधवा के नये नये शृंगार होते हैं। गुरु और शिष्य में अन्धे और बहरे का हिसाब है। एक देखता नहीं दूसरा सुनता नहीं।

व्याख्या : अलङ्कार का धारण करना सौभाग्य का चिह्न है। कुछ अलङ्कार तो ऐसे हैं जिन्हें सौभाग्यवती स्त्री सदा धारण किये रहती हैं। सो कलियुग में सौभाग्यवतियों को तो आभूषण से विरक्ति रहती है। उनका आभूषण धारण करना पति का आदर है। उसे वे नहीं करतीं और विधवा जिनको आभूषण निषिद्ध है वे नित्य नया शृंगार किये रहती हैं। उनका शृंगार पर पुरुष के आकर्षण के लिए ही है।

गुरु ही मार्गप्रदर्शक है। कर्णधार है। यथा : कर्णधार सद्गुरु दृढ़ नावा। सो यदि वही अन्धा हो तो बेड़ा पार कैसे हो सकता है। शिष्य भी यदि एकलव्य की भाँति हो तो अपने पुरुषार्थ और गुरुभक्ति से काम निकाल सकता है। यहाँ शिष्य बहरा है। वह गुरु की सुनता ही नहीं। यदि गुरु आँखवाले भी हों तो उसका कल्याण नहीं कर सकते। सो कलियुग में यह बड़ा भारी साधन ही मारा पड़ा।

हरै सिष्य धन सोक न हरई। सो गुर घोर नरक महु परई ॥
मातु पिता बालकन्हि बोलावहिं। उदर भरै सोइ धर्म सिखावहिं ॥४॥

अर्थः जो गुरु शिष्य का धन हरण करता है और शोकहरण नहीं करता वह घोर नरक में पड़ता है। माता पिता बालकों को बुलाते हैं और जिसमें पेट भरे वही धर्म सिखाते हैं।

व्याख्या : बिना शिष्य का कल्याण किये उससे धन स्वीकार करना गुरु के लिए उचित नहीं है। पर यहाँ तो गुरु अन्धे हैं शिष्य बहरा है। तब शिष्य का सम्बन्ध यही रह गया कि गुरुजी शिष्य का धन हरण करने के लिए ही गुरु बनते हैं। इस भाँति गुरु बनकर धन ग्रहण करने का फल घोर नरक है। ऐसे गुरु शिष्य का उद्धार क्या करेंगे। अपने नरक का रास्ता सीधा कर रहे हैं।

माता पिता तो आदि गुरु हैं। उन्हीं की शिक्षा का संस्कार बच्चों पर अमिट पड़ता है। यन्नवे भाजने लग्नः संस्कारो नान्यथा भवेत्। उनकी यह गति है कि लड़के को शिक्षा देने के लिए बुलाते हैं और शिक्षा यह देते हैं कि जिससे पेट भरे वही धर्म है। अर्थात् जो कुछ धर्म की भावना उसमें पहिले से हो वह भी नष्ट हो जाय। यह धर्म की कलियुगी परिभाषा सर्वनाश का कारण होता है। ऐसे माता पिता के पुत्र धर्म के लिए कैसे कष्ट सह सकते हैं। वे वैषयिक सुख के लिए क्या नहीं कर सकते।

दो. ब्रह्मज्ञान बिनु नारि नर, करहि न दूसरि बात।
कौड़ी लागि मोह बस, करहिं बिप्र गुरघात ॥९९ क.
बादहि सूद्र द्विजन्ह सन, हम तुम्ह ते कछु घाटि।
जानै ब्रह्म सो बिप्रवर, आँखि देखावहि डांटि ॥९९॥

अर्थ : स्त्री पुरुष बिना ब्रह्म[1] ज्ञान के दूसरी बात नहीं करते और कौड़ी के के लिए मोह वश होकर ब्राह्मण और गुरु का वध करते हैं।

शूद्र ब्राह्मणों से विवाद करते हैं कि क्या हम तुमसे कुछ कम हैं। जो ब्रह्म को जाने वही ब्राह्मण है : ऐसा कह कर डांटते हैं और आँख दिखाते हैं।

व्याख्या : कलियुग में स्त्री पुरुष सब विचित्र ब्रह्मज्ञानी होते हैं। दिन रात ब्रह्मज्ञान की बातें करते हैं। अद्वितीय हैं। यहाँ नानात्व कुछ भी नहीं है। व्यवहार की बातों में भी उनका अद्वैतवाद चलता है। पर वह सब स्वार्थ के लिए। शास्त्र की आज्ञा है : भावाद्वैतं सदा कुर्यात् क्रियाद्वैतं न कर्हिचित्। सर्वत्राद्वैतं कुर्यात् नाद्वैतं गुरुणा सह। सदा भावाद्वैत करना चाहिए। क्रिया में अद्वैत कहीं न होने पावे। सर्वत्र अद्वैत को स्थान दे। गुरु के साथ अद्वैत न करे। सो यहाँ क्रियाद्वैत ही करते हैं। भावाद्वैत कभी नहीं। कौड़ी के लिए ब्रह्मवध गुरुवध तक कर डालते हैं।

शूद्र को वाचाल नहीं होना चाहिए। ब्राह्मण की निन्दा कभी नहीं करनी चाहिए। ज्ञानगुमानी नहीं होना चाहिए। इन बातों से उसका परलोक बिगड़ता है। यथा : सोचिय सूद्र बिप्र अवमानी। मुखर मान प्रिय ग्यानगुमानी। सो कलियुग में शूद्र वादप्रिय होते हैं। ब्राह्मणों से विवाद करते हैं कि क्या मैं तुमसे कुछ कम हूँ। बराबरी की धुन में अनधिकार चेष्टा करते हैं, शास्त्रमर्यादा भङ्ग करते हैं, वैर बांधते हैं, कहते हैं : ब्रह्म जानाति इति ब्राह्मणः। जो ब्रह्म को जाने वह ब्राह्मण है। यदि उनसे कोई कहता है : ब्रह्म जानाति ब्रह्मज्ञः होता है ब्राह्मण नहीं होता :

---

१. प्रत्यस्तमितभेदं यत् सत्तामात्रमगोचरम्। वचसामात्मसंवेद्यं तद् ज्ञानं ब्रह्मसंज्ञितम्। वि. पु.। जिसमें सम्पूर्ण भेदज्ञान शान्त हो जाते हैं। जो सत्ता मात्र और वाणी का अविषय है तथा स्वयं ही अनुभव का विषय है। यही ब्रह्मज्ञान कहलाता है।

ब्रह्मणोऽपत्यं पुमान् ब्राह्मणः होता है तो डाँटकर आँख दिखाते हैं कि चुप रहो बहुत मत बोलो।

परत्रिय लंपट कपट सयाने। मोह द्रोह ममता लपटाने॥
तेइ अभेद बादी ज्ञानी नर। देखा मैं चरित्र कलिजुग कर॥१॥

अर्थ : परस्त्री का लोभी कपट में चतुर मोह-द्रोह और ममता में लिप्त : ऐसे लोग अभेदवादी ज्ञानी बनते हैं। मैंने कलियुग का चरित्र देखा।

व्याख्या : पाणिगृहीता में सन्तोष नहीं। परस्त्री की बड़ी चाह। परन्तु कपट चतुर हैं लखाई नहीं पड़ते। यथा : कपट चतुर नहिं परैं लखाई। उन्हें काम भी है क्रोध भी है मोह ममता में लिपटे हुए भी हैं। पर अपने इन दोषों को अभेदवाद करके छिपाते हैं। ज्ञानी बनते हैं और लोग भी उन्हें अभेदवादी ज्ञानी मानते हैं। वस्तुतः उनमें अविद्या के पाँचों पर्व मौजूद हैं। मोह से अविद्या कहा। ममता से : अस्मिता कहा। परत्रिय लम्पट से : राग कहा। द्रोह से द्वेष कहा और कपट सयाने से : अभिनिवेश कहा और मुख से अभेदवादी बनते हैं। कहते हैं : निस्त्रैगुण्ये पथि विचरतां को विधिः को निषेधः। भुसुण्डिजी कहते हैं कि यह चरित्र मैंने कलियुग का देखा कि सबकी बुद्धि तामसी हो गयी है।

आपु गए अरु तिन्हहूँ घालहिं। जे कहुँ सत मारग प्रति पालहिं॥
कल्प कल्प भर एक एक नरका। परहिं जे दूषहिं स्रुति करि तरका॥२॥

अर्थ : स्वयं तो नष्ट हो गये ही हैं। पर जो लोग सन्मार्ग का प्रतिपालन करते हैं उन्हें भी नष्ट करते हैं। जो लोग तर्क से वेद को दूषित ठहराते हैं वे लोग एक कल्प तक प्रत्येक नरक भोगते हैं।

व्याख्या : स्वयं नष्टः परान् नाशयति। आप तो सन्मार्ग से पतित हो गये हैं। यवनोच्छिष्ट भोजन, यवन सहवास, यवनानी गमन, स्वधर्म त्याग, परधर्माभिरुचि, मर्यादा भङ्ग आदि दोष से पतित हो गये हैं। परन्तु जो लोग सन्मार्ग पर आरूढ़ हैं। उनके पतन के लिए अनेक यत्न करते हैं। अपने को आगे बढ़ा हुआ और सन्मार्ग-गामी को पिछड़ा हुआ उद्घोषित करते हैं। जाति पाँति तोड़क मण्डल स्थापित करते हैं। शिक्षा क्रम पलटते हैं, नाटक, उपन्यास, कहानी, सिनेमा, सङ्गीत द्वारा ऐसा प्रचार करते हैं जिससे आप से आप लोगों का पतन हो। इनसे काम नहीं चलता तो धर्मध्वंसकारी कानून बनाते हैं और उससे समाजहित का दम्भ रखते हैं। वेदों को मनुष्य का बनाया हुआ बतलाते हैं और भगीरथप्रयत्न करके देश के इतिहास को पलट देते हैं। निदान : जेहि बिधि होइ धर्म निर्मूला। सो सब करहिं बेद प्रतिकूला।

अब ऐसा करनेवाले की गति कहते हैं कि तर्क से वेद को कलङ्कित करनेवाले के लिए प्रत्येक नरक में एक कल्प के लिए निवास मिलता है। तर्क की कोई प्रतिष्ठा नहीं है। एक तार्किक को उससे बड़ा तार्किक हरा देता है और वह अपने से बड़े

तार्किक से हार जाता है। अतः अमर्यादित तर्क नहीं होना चाहिए। तर्कशास्त्र वेद की रक्षा के लिए बना है। शास्त्र के सिद्धान्तों के समझने के लिए बना है। तीखी तलवार से गोवध भी हो सकता है और गोरक्षा भी हो सकती है। परन्तु उससे गोरक्षा ही उपादेय है गोवध नहीं। इसी भाँति तर्क से वेदमर्यादा का स्थापन ही उचित है। उसके द्वारा वेद का खण्डन अथवा उसमें दोषारोपण करना बड़ा भारी पाप है। क्योंकि ऐसा करने से सन्मार्ग बिगड़ता है। लोग पथभ्रष्ट किये जाते हैं। अपना ही पाप कौन कम है। सो संसार को पथभ्रष्ट करने का पाप जिसने अपने ऊपर लिया शास्त्र वध का पाप जिसे लगा उसका ऐसा घोर दण्ड ही न्याय है। इस बात को उद्घोषित कर देना भी उचित है। जिसमें लोग सावधान हो जायँ।

जे बरनाधम तेलि कुम्हारा। स्वपच किरात कोल कलवारा॥
नारि मुई घर संपति नासी। मूड़ मुड़ाइ होंहि संन्यासी॥३॥

अर्थ : जो अधम वर्ण है। अर्थात् तेली, कुम्हार, डोम, कोल, कलवार, इनकी जब स्त्री मर जाती है घर की सम्पत्ति नष्ट हो जाती है तो सिर मुण्डन कराके संन्यासी हो जाते हैं।

व्याख्या : संन्यासी अर्थात् भिक्षु होने का अधिकार केवल ब्राह्मण शरीर को है क्षत्रिय को भी नहीं। उसे यदि ज्ञान हो भी जाय तो लिङ्ग धारण करे। भिक्षु न हो। यथा : आरत काहु न करइ कुकरमू। माँगहि भीख त्यागी निज धर्मू। सो जब क्षत्रिय के लिए यह विधान है तो वैश्यादिक के लिए कुछ कहना नहीं है। सो कलियुग में यह होता है कि अधम वर्ण के लोग जिनका जल भी नहीं चलता जैसे तेली, कुम्भकार, चाण्डाल, किरात, कोल तथा मद्य विक्रेता कलवार भी संन्यासी होते हैं। उनके संन्यास ग्रहण का कारण वैराग्य नहीं है गृह सुख का नाश कारण है। दरिद्र हो गये। स्त्री भी मर गयी। कोई ठिकाना नहीं। तो संन्यासी होकर माँग खायेंगे। संन्यासी होने का विधान है। शिखा यज्ञोपवीत का त्याग भी शास्त्रविधि से होना चाहिए। सो उन्हें किसी बात की परवाह नहीं। सिर मुँड़ाकर और काषाय वस्त्र धारण करके अपने आप संन्यासी हो जाते हैं।

ते बिप्रन्ह सन आपु पुजावहिं। उभय लोक निज हाथ नसावहिं॥
बिप्र निरच्छर लोलुप कामी। निराचार सठ बृषलीस्वामी॥४॥

अर्थ : वे ब्राह्मणों से अपने को पुजवाते हैं। दोनों लोक का नाश अपने हाथों करते हैं। ब्राह्मण को अक्षर से भेंट नहीं रहती। वे लालची कामी आचार रहित और शूद्री के स्वामी होते हैं।

व्याख्या : ये अधम वर्ण ब्राह्मणों से अपने को पुजवाते हैं। कहते हैं : दण्ड-ग्रहणमात्रेण नरो नारायणो भवेत्। मैं स्वयं नारायण हूँ। पत्थर के देवताओं में क्या रक्खा है मेरी पूजा करो। जाति आयु और भोग पूर्व कर्मानुसार होता है। जिनका रमणीय आचरण होता है वे रमणीय योनि ब्राह्मण या क्षत्रिय जाति में जन्म ग्रहण

करते हैं। जिनका पूर्व जन्म में कपूय आचरण होता है वे चाण्डाल योनि शूकर कूकर योनि में उत्पन्न होते हैं। अतः ब्राह्मण की पूजा पूर्व जन्म के कर्मानुसार होती है। उनको इस जन्म के कर्म का फल दूसरे जन्मों में मिलेगा। अतः शीलगुण हीन ब्राह्मण की पूजा अश्वत्थ वृक्ष या तुलसी की भाँति होती है। गुणगण ज्ञान में प्रवीण होने पर भी शूद्र की पूजा नहीं होती। दूसरे जन्म में जब उसके रमणीय आचरण का फल मिलेगा तब उसकी भी पूजा होगी। पुनर्जन्म न माननेवाले के समक्ष में वर्णाश्रम धर्म नहीं आ सकता। सो अधमवर्ण शास्त्र का अवहेलन करके संन्यासी बना। उसकी पूजा संन्यासी समझकर ब्राह्मण करेंगे ही उस पूजा को स्वीकार करके उस अधम वर्ण ने अपने दोनों लोकों को नष्ट किया। उसे अपने भेद खुलने का सदा भय बना रहता है और खुल जाने पर बड़ी अपकीर्त्ति होती है। इस भाँति उसका यह लोक भी बिगड़ा। परलोक को तो उसने खूब ही बिगाड़ा। उसके लिए लिखना व्यर्थ है।

यह भी नहीं कि ब्राह्मण कलियुग के प्रभाव से बचे हों। उनका भी भारी पतन होता है। ब्राह्मण का महत्त्व बड़ा है तो उसके साथ साथ उनकी जिम्मेदारी भी बड़ी है। उन्हें निष्काम होकर षडङ्ग वेद पढ़ना चाहिए। उन्हें तपस्वी होना चाहिए। सो कलि में वे सब बातें तो गयीं। षडङ्गवेद का जानना तो दूर गया। उन्हें अक्षर का भी ज्ञान नहीं। तप की चर्चा क्या? वे कामी, लोभी, आचार विहीन, यहाँ तक कि शूद्री को घर में डाल लेते हैं। जिनके संसर्ग से उनका सद्यः पतन होता है।

सूद्र करहिं जप तप ब्रत दाना। बैठि बरासन कहहिं पुराना॥
सब नर कल्पित करहिं अचारा। जाइ न बरनि अनीति अपारा॥५॥

अर्थ: शूद्र लोग जप तप व्रत दान करते हैं। व्यासासन पर बैठकर पुराण कहते हैं। सब लोग मनमाना आचरण करते हैं। अपार अनीति का वर्णन नहीं हो सकता।

व्याख्या: सबकी प्रवृत्ति ही युग के प्रताप से उलटी हो जाती है। जिसका जप व्रत दान करना कथा कहना स्वधर्म है वे उसके निकट नहीं जाते और जिनका स्वधर्म तीनों वर्ण की सेवा है उन्हें ब्राह्मण धर्म में रुचि उत्पन्न होती है। शोक मोहाभिभूत प्राणी स्वधर्म पर चल नहीं सकता। शूद्र की ब्रह्म कर्म में प्रवृत्ति उसके पतन का कारण है। सेवा में ही प्रवृत्ति होना उसका तप है। उसी से उसकी सिद्धि होती है। राजा युधिष्ठिर के यज्ञ में महा ज्ञानी होने पर भी चाण्डाल ने पूजा स्वीकार नहीं की अपने सेवा धर्म पर ही डँटा रह गया। सो कलियुग में शूद्र ब्राह्मणोचित कर्म करेंगे और ब्राह्मणों के अधिकार का भी भोग करेंगे।

यह प्रादेशमात्र दिखला दिया गया। फल यह कि सब लोग मनमाना आचार करेंगे। शास्त्र विहित मार्ग पर कोई न चलेगा। परलोक माननेवालों की यह गति कही जा रही है। अज्ञातार्थ ज्ञापकत्व शास्त्र का लक्षण है। परलोक का कोई संवाद

किसी को नहीं मालूम उसमें अपनी मनमानी कल्पना करना मूर्खता है। यः शास्त्र-विधिमुत्सृज्य वर्त्तते कामकारतः। न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परां गतिम्। तस्माच्छास्त्रं प्रमाणन्ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ। ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं कर्म कर्त्तुमिहार्हसि। अतः कलियुग में ऐसी अनीति होती है जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता।

दो. भए बरनसंकर कलि, भिन्न सेतु सब लोग।
करहिं पाप पावहिं दुख, भय रुज सोक बियोग ॥१०० क.
स्रुति संमत हरि भगति पथ, संजुत बिरति बिबेक।
तेहिं न चलहिं नर मोह बस, कल्पहि पंथ अनेक ॥१००॥

अर्थ : कलियुग में लोग वर्णसंकर हो गये और धर्मसेतु से सब पृथक् हो गये। पाप करते हैं। दुःख पाते हैं। भय रोग शोक और वियोग होता रहता है। श्रुतिसम्मत हरिभक्त पथ वैराग्य और विवेक के साथ बना है। उस पर लोग मोहवश नहीं चलते और अनेक पन्थ की कल्पना करते हैं।

व्याख्या : अन्य युगों में कहीं कहीं कर्मसंकरता दिखाई पड़ती है। कलियुग में पहिले कर्मसंकरता दिखलाकर पीछे वर्णसंकरता दिखलाया। लोग वर्णसंकर हो गये : सामान्योऽयं धर्मसेतुर्नराणाम्। धर्म का सेतु मनुष्य मात्र के लिए सामान्य है। धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः। धीर्विद्यासत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्। इसी सामान्य धर्म के आधार पर विशेष धर्म भी खड़े हैं। सो इस धर्मसेतु पर कोई नहीं चलता। सब पाप करते हैं और उसका फल भय रोग शोक वियोगादि दुःख पाते हैं।

कर्मपथ कहकर अब भक्ति पथ कहते हैं कि भक्तिपथ श्रुतिसम्मत है। उसके साथ वैराग्य और विवेक का होना आवश्यक है। भक्ति माता है। विरति विवेक उसके बच्चे हैं। बच्चे के साथ माता प्रसन्न रहती है। इस सर्वश्रेष्ठ मार्ग के रहते हुए लोग अज्ञानवश उस पर नहीं चलते और नये नये पंथों की कल्पना करते हैं। अनादि ईश्वर का अनादि वेद आज्ञा है। उसके अनुसार अनादि भक्तिपथ है। उसे छोड़कर मनुष्य का कल्पित नये नये पन्थों पर चलना कलियुग के ही प्रभाव का द्योतक है।

छं. बहु दाम सँवारहिं धाम जती। बिषया हरि लीन्हि रही बिरती ॥
तपसी धनवंत दरिद्र गृही। कलि कौतुक तात न जात कही ॥

अर्थ : संन्यासी बहुत साधन और धाम सँवारते हैं। वैराग्य रहा उसे विषय ने हर लिया। तपस्वी तो धनी हैं और गृहस्थ दरिद्र हैं। हे तात ! कलियुग का कौतुक कहा नहीं जा सकता।

व्याख्या : जिन्होंने विधि पूर्वक संन्यास लिया है अब उनका हाल कहते हैं कि वे धन धाम सँवारने में लग गये। धन धाम का परित्याग करके ही संन्यास

लिया जाता है। सो संन्यास लेकर फिर धन धाम के सँवारने में लग गये। फिर भी थोड़े में सन्तोष नहीं है। बहुत धन और बहुत से धाम का संग्रह करने लगे। जिसे त्याग किया उसी का ग्रहण करने से वान्ताशी : कुत्ते हो गये अथवा बहुत से फन्दे सँवारने लगे लोगों के फँसाने के लिए : दाम फन्दे को भी कहते हैं और धाम सँवारने लगे यह दिखाने के लिए कि इसमें महात्मा लोग रहकर साधन भजन करेंगे। प्रश्न यह उठता है कि तब उन्होंने संन्यास क्यों लिया ? इसके उत्तर में कहते हैं कि संन्यास लेने के समय वैराग्य रहा। उसे विषय ने हरण कर लिया। यथा : बिगरत मन संन्यास लेत जल नावत आम घरो सो।

अब वानप्रस्थ और गृहस्थ का हाल कहते हैं। वानप्रस्थ आश्रम ही तपस्या के लिए है। इसका धर्म इतना कठोर है कि कलियुग में इसका निषेध कर दिया गया है। वे वन में रहें। कठोर से कठोर तप करें। मृत्यु का आसरा देखते रहें। उनसे धन से कोई सम्बन्ध नहीं। बिना जोता बोया अन्न खावें। उसे कूटे नहीं पीसे नहीं इत्यादि। सो वे धनी बने बैठे हैं। उनको लोग धन ले जाकर देते हैं। स्वयं भी पतित होते हैं। उन्हें भी पतित करते हैं और जिन्हें धन की आवश्यकता है उन गृहस्थों को कोई नहीं देता। वे दरिद्र हैं। तपस्वी के पास धन जाकर अचल हो जाता है। क्योंकि उन्हें कोई खर्च नहीं। गृहस्थ के पास धन टिकता नहीं। क्योंकि उन्हें सहस्रों प्रकार के खर्च हैं। अतः वे दरिद्र बने रहते हैं। भुसुण्डिजी कहते हैं कि यह कलियुग का खेल है। उनके खेल का ही वर्णन होना कठिन है। धर्म के इस प्रकार विपरीत होने में कलियुग का कोई लाभ नहीं है। पर मन बहलाव के लिए वे ऐसा किया करते हैं।

कुलवंति निकारहिं नारि सती। गृह आनहिं चेरि निबेरि गती ॥
सुत मानहि मातु पिता तब लौं। अबलानन दीख नहीं जब लौं ॥

अर्थ : सत्कुल प्रसूता और सती स्त्री को घर से बाहर निकाल देते हैं और दासी को अचल रूप से लाकर घर में स्थापन करते हैं। बेटे माँ बाप को तभी तक मानते हैं जब तक उनकी आँख स्त्री पर नहीं पड़ती।

व्याख्या : गृहस्थों का यह हाल है कि जाति में उत्तम करनी में उत्तम सती साध्वी को तो लोग घर से बाहर निकाल देते हैं। उनका कुल शील उन्हें पसन्द नहीं और दासी : रखेली को घर में ला बिठाते हैं। जिसमें न कुल है न शील है और उसे नहीं निकालते। व्यभिचारिणी के हाव भाव कटाक्ष में मुग्ध रहते हैं। कुल शीलवाली स्त्रियों में यह विद्या कहाँ ? वह ऐसी हो नहीं सकतीं। यह पुरुषों की स्वाद पराङ्मुखता है।

स्त्री पर दृष्टि पड़ने से पुत्र पिता माता का मानना छोड़ देते हैं। सस्त्रीक होकर माता पिता की सेवा का अधिक सुभीता है। स्त्रियों के लिए तो यह स्वाभाविक है और शास्त्र सम्मत भी है कि पति के प्रेम के सामने माता पिता का प्रेम दब जाना चाहिए। परन्तु ऐसा भाव पुरुष में नहीं होना चाहिए। सो कलियुग

में ऐसा ही होता है। स्त्रियाँ भले ही माता पिता का प्रेम न छोड़ें पर पुरुष तो छोड़ ही देते हैं। मातृदेवो भव पितृदेवो भव। यह वेद की आज्ञा है। पिता धर्मः पिता कर्म पिता हि परमा गतिः। पितरि प्रीतिमापन्ने प्रीयन्ते सर्वदेवताः। पिता ही धर्म है पिता ही कर्म है पिता ही परमगति है। पिता के प्रसन्न होने पर सब देवता प्रसन्न हो जाते हैं। ऐसा धर्मशास्त्र कहता है। गृहस्थ होने पर माता पिता की सेवा ही प्रधान है। वह मूल धर्म ही छूट जाता है।

ससुरारि पियारि लगी जब तें। रिपु रूप कुटुंब भये तब तें॥
नृप पाप परायन धर्म नहीं। कर दंड बिडंब प्रजा तिनहीं॥

अर्थ : जब से ससुराल प्यारी लगी तब से तो कुटुम्ब के लोग शत्रु लगने लगे। राजा पापपरायण हैं धर्मपरायण नहीं। नित्य ही प्रजाओं में दण्ड की विडम्बना किया करते हैं।

व्याख्या : ब्याह होते ही माँ बाप का मानना बन्द हो जाता है। जहाँ ससुराल में आना जाना प्रारम्भ हुआ : लोकोक्ति है कि श्वशुरगृहनिवासः स्वर्गतुल्यो नराणाम्। श्वशुरालय में दामाद की बड़ी खातिरी होती है। अतः ससुराल का प्यारा लगना कुछ बुरी बात नहीं है। परन्तु उस आवभगत में अपने स्वरूप को भूल जाना बुरा है। तहाँ लोग ससुराल के प्यार में ऐसे भूलते हैं कि उन्हें अपने कुटुम्ब के लोग शत्रु दिखाई पड़ने लगते हैं। ब्याह होने से अपना पक्ष बलवान् होता है। सो ये मूर्ख अपने पक्ष से हो शत्रुता कर लेते हैं।

कलियुग में राजाओं का यह हाल है कि पाप ही उनका शरण हैं। उन्हें पाप का ही भरोसा है। सदा पाप में लिप्त रहते हैं। राजा का प्रधान कार्य धर्म रक्षा है। वे आठों लोकपालों के अंश रूप माने जाते हैं। वे यदि पाप परायण हुए तब धर्म के लिए स्थान कहाँ है ? राजा दण्डधरो गुरुः कहलाता है। राजा दण्ड के बल से प्रजा को सन्मार्ग में चलाता है। उसके तथा लोक के कल्याण के लिए अपराधी को दण्ड देता है। परन्तु पाप परायण राजा ऐसा नहीं करता। वह दण्ड देता है अपने लाभ के लिए। दण्ड को धर्म रूप माना गया है। सो पापी राजा के राज्य में दण्ड की विडम्बना मात्र होती है। अदण्डय को दण्ड होता है और दण्डनीय आनन्द करते हैं।

छं. धनवंत कुलीन मलीन अपी। द्विज चिन्ह जनेउ उघार तपी॥
नहि मान पुरानन्ह बेदहि जो। हरि सेवक संत सही कलि सो॥

अर्थ : मलिन भी धनी कुलीन हैं। ब्राह्मण का चिह्न जनेउ और तपस्वी का चिह्न नङ्गा रहना है। जो पुराण और वेद को नहीं मानता वही कलियुग में हरिदास सच्चा सन्त है।

व्याख्या : चाहे उसके कुल में रजवीर्य की शुद्धि न हो। पर यदि वह धनी है तो कुलीन माना जाता है। अर्थात् धनी होना ही कुलीन होने का यथेष्ट प्रमाण माना

जाता है और गले में जनेउ का पड़ा रहना ही ब्राह्मणत्व का प्रमाण रह जाता है और जिसने कपड़े उतार दिये वही तपस्वी गिना जाता है। भावार्थ यह कि कलियुग में जनता की बुद्धि विकृत हो जाती है। उसमें सार ग्रहण का सर्वथा अभाव हो जाता है।

पिता माता के सत्कर्म का पुत्र दायी नहीं माना जाता। कुलीन होना मानो कोई गुण ही नहीं है। धनी होना ही मानो सब कुछ है। जनेउ के साथ कुछ कर्म भी है जिसे जनेउधारी को करना होता है। बिना उनके जनेउ का मूल्य क्या है। इसी भाँति परमहंस परिव्राजक महा विरक्त ही दिगम्बर हो सकता है। कपड़े फेंक देना तो नङ्गा हो जाना है। वह दण्डनीय है तपस्वी नहीं है। ऐसों के आदर करने से मर्यादा भङ्ग होती है। परन्तु कलियुग में यही सब होता है : आज्ञा सम न सुसाहिब सेवा। आज्ञा मानना ही बड़ी भारी सेवा है। वेद पुराण भगवान् की आज्ञा है जो उसे नहीं मानता वह हरि का द्रोही है हरि का दास नहीं है। वह सन्त नहीं है वह दुष्ट है। कलियुग में सच्चा सन्त और सच्चा हरिदास उसे ही कहेंगे जो वेद पुराण न मानता हो। पुराण वेद माननेवाला यथेच्छाचारी न हो सकता है और न यथेच्छाचार का उपदेश दे सकता है। ये सब बातें तो न माननेवाला ही कर सकता है। अतः यथेच्छाचारियों को वही अनुकूल पड़ता है। इसलिए उसे ही हरिदास और सन्त मानते हैं।

कवि बृंद उदार दुनी न सुनी। गुन दूषक ब्रात न कोपि गुनी॥
कलि बारहि बार दुकाल परै। बिनु अन्न दुखी सब लोग मरै॥

अर्थ : कवि समाज उदार संसार में सुनायी नहीं पड़ता। सब गुणों में दोष देखनेवाले हैं। गुणी कोई नहीं। कलि में बारम्बार अकाल पड़ता है। लोग अन्न के बिना दुःखी होकर मरते हैं।

व्याख्या : कवि ही मर्त्य को अमर बनाता है। कवि की वाणी में इतनी सामर्थ्य है कि लोग उसे चाह से याद करते हैं भूलना नहीं चाहते। अतः कवि को उदार तो कम से कम होना ही चाहिए। परन्तु कलियुग में कवि की उदारता सुनी नहीं जाती। समालोचना दुनिया भर की कर डालेंगे पर उनका बनाया शुद्ध दो पंक्ति पद्य भी न बनेगा। जिन्हें देखिये वह गुण में दोष देने को तैयार है। पर गुणी खोजिये तो एक न मिलें। कलि में दोनों फसलें रबी खरीफ की मारी जाती है। अतः बार बार दुकाल पड़ना कहा।

दो. सुनु खगेस कलि कपट हठ, दंभ द्वेष पाखंड।
मान मोह मारादि मद, ब्यापि रहे ब्रह्मंड॥
तामस धरमु करहिं नर, जप तप मख ब्रत दान।
देव न बरषहिं धरनि पर, बए न जामहि धान॥१०१॥

अर्थ : हे गरुड़ ! कलियुग में कपट हठ दम्भ द्वेष पाखण्ड मान मोह मारादि ब्रह्माण्ड व्यापे रहते हैं। लोग जप तप मख व्रत दान तो करते हैं। पर सबको तामसिक बनाकर करते हैं। देव पृथिवी पर बरसते नहीं और बोने पर धान्य नहीं उगते।

व्याख्या : कपट हठ दम्भ पाखण्डादि का उल्लेख कहीं कहीं अन्य युगों में भी पाया जाता है। अन्य युगों में जब ऐसी घटनाएँ होती थीं तो वे भविष्य में शिक्षा ग्रहण के लिए लिख ली जाती थीं। पर कलियुग में तो ये सब दोष सारे ब्रह्माण्ड में व्याप जाते हैं। इनका लेखा कहाँ तक किया जाय। श्रीरामजी कहते हैं : ऐसे अधम मनुज खल कृत जुग त्रेता नाहि। द्वापर कछुक बृंद बहु होइहैं कलिजुग मांहि।

लोग धर्म करने चलते हैं तो तामस धर्म कर डालते हैं : अनुबन्धं क्षयं हिंसामनपेक्ष्य च पौरुषम्। मोहादारभ्यते कर्म यत्तत्तामसमुच्यते। अयुक्तः प्राकृतः स्तब्धः शठो नैष्कृतिकोऽलसः। विषादी दीर्घसूत्री च कर्ता तामस उच्यते। बुरे भले परिणाम शरीर और धन का व्यय पर पीड़ा और अपने सामर्थ्य की परवाह न करके अविवेक से जो कर्म आरम्भ करते हैं उसे तामस कहा जाता है। असावधान, विवेकशून्य, अनम्र, हठी, निर्दय, आलसी, विषादी, दीर्घसूत्री कर्ता को तामस कहते हैं। इन दोषों के कारण जप, तप, व्रत, यज्ञ और दान भी तामस धर्म हो जाते हैं। फल यह होता है कि उचित समय पर देव वर्षा नहीं करते और पृथिवी की उर्वरा शक्ति ही जाती रहती है।

अबला कचभूषन भूरि छुधा। धन हीन दुखी ममता बहुधा ॥
सुख चाहहिं मूढ न धर्मरता। मति थोरि कठोरि न कोमलता ॥१॥

अर्थ : स्त्रियों के बाल ही भूषण है और भूख बड़ी है। धन से हीन दुःखी हैं फिर भी ममता बहुत है। धर्म में रत नहीं हैं फिर भी बेवकूफ सुख चाहते हैं। बुद्धि थोड़ी है फिर भी कठोर है उसमें कोमलता नहीं।

व्याख्या : स्त्रियाँ अपने बाल अनेक प्रकार से गूँथेंगी। उसी को आभूषण समझेंगी अथवा दरिद्रता के कारण भूषण न पहन सकेंगी। बाल को ही साज बाज कर शृङ्गार करेंगी। उन्हें भूख बहुत लगेगी। अर्थात् ये कलियुगी स्त्री के लक्षण हैं। लोग बिना धन के दुःखी हैं। धर्म में रुचि होनी चाहिए। सो न होकर उनकी ममता और बढ़ती है। यथा : अबुध कुटुम्बी जनु धन हीना।

सुख तो सभी चाहते हैं। इसीलिए सबको धर्माचरण का विधान है। क्योंकि धर्म से ही सुख होता है। यदि सुख के लिए धर्म छोड़कर कोई और उपाय हो तो धर्म की आवश्यकता नहीं। यथा : सुखी मीन सब एक रस अति अगाध जलमाहिं। जथा धर्मसीलन्ह के दिन सुख संजुत जाहिं। अतः धर्म ही सुख का कारण है। कारण से ही कार्य की सिद्धि होती है। अतः सुख चाहनेवाले को धर्माचरण करना चाहिए। यहाँ सुख तो चाहते हैं पर धर्म में मन नहीं लगाते। इसीलिए इन्हें मूढ़ कहा गया। बुद्धि भी थोड़ी है। यह नहीं समझते बिना कारण के कार्य कैसे होगा ? और वह भी

बड़ी कठोर है क्रूर है। उसमें कोमलता अर्थात् दयालुता का स्पर्श भी नहीं। अतः उसमें सात्त्विक धर्मानुष्ठान की योग्यता ही नहीं है : पुण्यस्य फलमिच्छन्ति पुण्यं नेच्छन्ति मानवाः। न पापफलमिच्छन्ति पापं कुर्वन्ति यत्नतः।

नर पीड़ित रोग न भोग कहीं। अभिमान बिरोध अकारन हीं ॥
लघु जीवन संवत पंचदसा। कलपात न नास गुमान असा ॥२॥

अर्थ : लोग रोग से पीड़ित हैं कहीं भोग नहीं है। बिना कारण ही अभिमान और विरोध करते हैं। पन्द्रह वर्ष का छोटा सा जीवन है और अभिमान ऐसा है कि कल्पान्त में भी न मरेंगे।

व्याख्या : निर्धन का दुःख कहकर अब धनवानों का दुःख कहते हैं। जो धनवान् हैं वे रोगी हैं। उन्हें सुख की सामग्री तो है पर उसके उपभोग की उन्हें सामर्थ्य नहीं। वे रोग ग्रस्त होकर पीड़ित हैं। अतः कहीं भोग नहीं है। दरिद्र को साधन हीनता से और धनी को सामर्थ्य हीनता से भोग की प्राप्ति ही नहीं है। ऐसे लोग दीन होंगे किसी से विरोध न करेंगे पर ऐसी बात नहीं है। दुखी हैं उन्हें अभिमान होने का कारण नहीं है फिर भी निष्कारण अभिमान करते हैं। विरोध के तीन कारण होते हैं : मित्र भूमि और हिरण्य। यहाँ एक भी नहीं फिर भी विरोध करते हैं। ऐसों का कुशल कैसे सम्भव है। यथा : जिमि चह कुसल अकारन कोही।

मनुष्यों की आयु घट गयी। पन्द्रह वर्ष ही पूर्णायु समझी जाने लगी। फिर भी धर्म की अभिरुचि नहीं समझते हैं कि कल्पान्त में भी मेरा नाश न होगा : गृहीत इव केशेषु मृत्युना धर्ममाचरेत्। इसका ठीक उलटा आचरण करते हैं।

कलिकाल बिहाल किए मनुजा। नहि मानत कोउ अनुजा तनुजा ॥
नहि तोष बिचार न सीतलता। सब जाति कुजाति भये मँगता ॥३॥

अर्थ : कलियुग ने मनुष्यों को बेहाल कर दिया। कोई बहन बेटी नहीं पहचानता। तोष विचार और शीलता तो है नहीं। सब जाति कुजाति मङ्गन हो गये।

व्याख्या : पशुओं में तो अनुजा तनुजा की पहिचान स्वभाव से ही नहीं। मनुष्यों में शास्त्र के अनुशासन से इसका बड़ा विचार है : अनुज बधू भगिनी सुत नारी। सुनु सठ ये कन्या सम चारी। इन्है कुदृष्टि बिलोकै जोई। ताहि बधे कछु पाप न होई। सो लोग ऐसे अचेत हो गये कि उन्हें कुछ भी बिचार न रह गया। अपने समझ में आगे बढ़ते पशुश्रेणी में आगये !

सन्तोष विचार और शान्ति ये ऐसे गुण हैं कि इनके प्रभाव से व्यवहार भी सुखकारी होता है। परलोक के लिए तो सुखकारी रूप से ये प्रसिद्ध हैं ही। यथा : सम सन्तोष दया विवेकते ब्योहारी सुख कारी। एषणा त्रय त्याग पर ही भिक्षा का अधिकार है। सो भी ब्राह्मण को 'गौर्वोढारं धावितारं तुरंगी दीनं सूते ब्राह्मणी याचितारम्। वेश्या दक्षं कर्मकारन्तु शूद्री दातुं मत्तुं मद्विधा राजपुत्री। गौ ढोनेवाले

को घोड़ी दौड़नेवाले को ब्राह्मणी मांगनेवाले को वैश्या चतुरको और शूद्रो कारीगरको पैदा करती है। पर मेरी ऐसी राजपुत्री तो पुत्र दान करने और मरने के लिए ही पैदा करती है। ऐसा भगवती गान्धारी ने कहा है। अतः याचना ब्राह्मणों की जीविका है। उसे सभी जाति के लोग कलियुग में करने लगते हैं। भरतजी कहते हैं: मागउँ भीख त्यागि निज धरमू। आरत काह न करइ कुकरमू।

इरषा परुषाच्छर लोलुपता। भरि पूरि रही समता बिगता॥
सब लोग बियोग बिसोक हए। बरनाश्रम धर्म अचार गए॥

अर्थ: ईर्षा कठोर वचन और लालच से पृथिवी भर उठी और समता जाती रही। सब लोग वियोग और विशोक से मारे हुए हैं। वर्णाश्रम धर्म तथा आचार जाता रहा।

व्याख्या: क्यों अमुक सुखी है? क्यों अमुक बड़ा है? सब लोग समान पैदा हुए हैं। किसी को धनी होने का क्या अधिकार? इस प्रकार ईर्षा का ऐसा प्रचार होता है कि इसे उचित समझकर अनेक प्रकार के वाद राजनैतिक क्षेत्र में प्रचलित होते हैं। उसी ईर्षा के वश होकर अपने से सुखी लोगों के प्रति जिनसे उनका पालन हुआ है बड़े कठोर शब्दों का प्रयोग करते हैं और बल से प्रचार से कानून बनाकर उसकी सम्पत्ति का हरण करते हैं। लालच इतनी बढ़ जाती है कि पराये द्रव्य सम्पत्ति का हरण उचित मालूम होने लगता है। समता समता कहकर कोलाहल मात्र करते हैं। वस्तुतः समता तो मानो समाप्त ही हो गयी।

सब लोग धन वियोग इष्ट वियोग तथा विशेष शोक से मारे पड़े हुए हैं। क्योंकि सर्वत्र अव्यवस्था हो गयी है। व्यवस्था तो वर्णाश्रम धर्म और आचार से होती है। यथा: वरणाश्रम निज निज धरम निरत वेद पथ लोग। चलहि सदा पावहि सुखहि नहि भय सोक न रोग। वर्ण धर्म नहि आस्रम चारी। से उपक्रम करके यहाँ उपसंहार करते हैं।

छं. दम दान दया नहि जानपनी। जड़ता परबंचनताऽति घनी॥
तनु पोषक नारि नरा सगरे। परनिंदक ते जग मो बगरे॥

अर्थ: न दम दान और दया है न जानकारी है जड़ता और ठगहारी बढ़ी हुई है। सब स्त्री पुरुष तन पोषक हो गये दूसरों की निन्दा करनेवाले संसार में फैल गये।

व्याख्या: ब्रह्मदेव ने देवता मनुष्य और असुरों को इन्हीं दकारत्रय दम दान दया का उपदेश दिया। वह तो कलियुग को पाकर लुप्त हो गया। सुजान कोई खोजे नहीं मिलते। लोग महामूर्ख होते हैं दूसरे के ठगने में ही अपनी जानकारी मानते हैं। वस्तुतः ठगनेवाले ने पहिले अपने को ठगा। कुछ पैसों के लिए अपना परलोक नष्ट किया। सो ठगहारी बड़ा बल पकड़ेगी। धूर्तता पूजिता लोके। संसार के आँख में धूल झोंकनेवाले ठग पैदा होंगे। संसार उनको बड़ा कहेगा उनपर फूलों की वर्षा होगी। इतनी ठगहारी कलियुग में बढ़ेगी।

मुर्दों की भाँति जीनेवालों में तनुपोषक की गिनती है सो कलियुग में सब तनुपोषक हो जायेंगे। दूसरे के हित के लिए दुःख उठानेवाले कहीं न मिलेंगे और लोग घूम घूम कर दूसरों की निन्दा करेंगे। निन्दा करना उनका पेशा हो जायगा। संसार उनकी कदर करेगा।

दो. सुनु व्यालारि कराल कलि मल, मल अवगुन आगार।
गुनौ बहुत कलिकाल कर, बिनु प्रयास निस्तार ॥१०२ क.
कृत जुग त्रेता द्वापर, पूजा मख अरु जोग।
जो गति होइ सो कलि हरि नाम ते पावहिं लोग ॥१०२॥

अर्थ : हे गरुड़जी ! सुनो यह कराल कलि मल और अवगुण का तो घर है। परन्तु इसके गुण भी बहुत हैं। क्योंकि इसमें बिना परिश्रम निस्तार हो जाता है।

सत्ययुग त्रेता और द्वापर में पूजा यज्ञ और योग से जो गति होती है सो कलियुग में केवल भगवन्नाम से लोग प्राप्त करते हैं।

व्याख्या : जुग कलियुग मल मूल से उपक्रम करके मल अवगुन आगार से उपसंहार करते हैं। यद्यपि कलियुग दोषों की खानि है पर विधि प्रपंच गुन अवगुन साना। कलियुग के गुण भी बहुत हैं। अन्य युगों में बहुत बड़ा पुरुषार्थ करने से निस्तार होता है। पर कलियुग में निस्तार पाने में कोई प्रयास नहीं है।

जब सत्ययुग था तब लोग योग करके भव सन्तरण करते थे। त्रेता में योग साधन कठिन हो गया। क्योंकि उसमें रजका प्रवेश हो गया। अतः यज्ञ सम्पादन करके लोग भवसन्तरण करते थे। द्वापर में तमोगुण के प्रवेश से यज्ञ सम्पादन भी कठिन हो गया। तव भगवत् पूजन करके लोग संसार सागर पार हो जाते थे। परन्तु कलियुग में तमोबाहुल्य से पूजन भी कठिन हो गया। अतः हरिनाम स्मरण से ही संसार सागर पार पाने का विधान इस युग में है। इसलिए कहा जा सकता है कि कलियुग में बड़ा भारी गुण भी है। कलि में नामसेवा ही प्रधान है।

कृत जुग सब जोगी बिज्ञानी। करि हरिध्यान तरहिं भव प्रानी॥
त्रेता बिबिध यज्ञ नर करहीं। प्रभुहिं समर्पि करम भव तरहीं॥१॥

अर्थ : सत्य युग में सभी योगी विज्ञानी होते हैं। हरिका ध्यान करके प्राणी संसार सागर के पार हो जाते हैं। त्रेता में अनेक प्रकार के यज्ञ करते हैं और उसके फल को प्रभुको अर्पण करके भवसागर पार होते हैं।

व्याख्या : शुद्ध सत्व समता विग्याना। कृत प्रभाव प्रसन्न मन जाना। सत्ययुग में शुद्ध सत्त्व गुण बर्तता है। अतः समता और विज्ञान सुलभ है। सब प्रसन्न रहते हैं। प्रसन्नचेता की बुद्धि सुव्यवस्थित रहती है। यथा : प्रसन्नचेतसो ह्याशु बुद्धिः पर्यवतिष्ठते। अतः सत्ययुग का समय योग विज्ञान के अनुकूल होता है। अतः हरि का ध्यान करके प्राणी भवसागर के पार पहुँच जाता है।

त्रेता में सत्त्वगुण बहुत होता है परन्तु कुछ रजका भी योग हो जाता है। रति कर्म का प्रचार हो जाता है। अथवा कर्म में रति होती है और याग निर्विकार-चित्तैकसाध्य है। स्त्री या कर्म उसमें महा विघ्न हैं। अतः वह समय यज्ञ के अनुकूल पड़ता है। क्योंकि सस्त्रीक होकर ही यज्ञ का सम्पादन किया जाता है। अतः लोग अनेक प्रकार के यज्ञ करते हैं और कर्म फल भगवान् को अर्पण करके कर्मयोग द्वारा संसार सागर के पार हो जाते हैं।

द्वापर करि रघुपति पद पूजा। नर भव तरहिं उपाय न दूजा॥
कलिजुग केवल हरिगुन गाहा। गावत नर पावहिं भव थाहा॥२॥

अर्थ : द्वापर में रघुपति के चरणों की पूजा करके लोग संसारतरण करते हैं। दूसरा उपाय नहीं है। कलियुग में केवल हरिगुण की गाथा का गान करके लोग संसार का थाह पा जाते हैं।

व्याख्या : बहु रज सत्व स्वल्प कछु तामस। द्वापर हर्ष शोक भय मानस। द्वापर में रजोगुण बहुत बढ़ जाता है। कुछ तामस का भी प्रवेश रहता है। सत्त्व भी बहुत थोड़ा रहता है। अतः द्वापर में लोगों के मन में हर्ष शोक और भय का अधिकार हो जाता है। यज्ञ में तनिकसी अविधि होने से फल में बड़ा उलट पलट हो जाता है। यज्ञ के बराबर दूसरा शत्रु भी नहीं है। अविधि हो जाने से वह यजमान का उलटा अकल्याण करता है। बड़े बड़े यज्ञ प्रभूत धन धान्य तथा आयाससाध्य हैं। द्वापर में उनसे लाभ की आशा बहुत कम हो जाती है। अतः उस समय के अनुकूल पूजा है। जिसमें वर्षों का समय न लगकर घण्टों का हिसाब है।

कलियुग में पूजन भी दुष्कर हो जाता है। हर्ष शोक और भय का प्रभाव मन पर पड़ा करता है। अतः पूजा के भी अभिचाररूप में परिणत हो जाने का भय रहता है। अतः इस युग में हरिगुण गाथा के गान से संसार समुद्र ही नहीं रह जाता। उसका थाह मिल जाता है। डूबने का भय जाता रहता है। पार जाना सरल हो जाता है। सन्तरण की आवश्यकता नहीं रह जाती। गान करने में आयास बहुत कम है। इसलिए यहाँ सन्तरण नहीं कहा। यथा : कृते यद् ध्यायतो विष्णुं त्रेतायां यजतो मखैः। द्वापरे परिचर्यायां कलौ तद्धरिकीर्तनात्।

कलिजुग जोग न जग्य न ग्याना। एक अधार राम गुन गाना॥
सब भरोस तजि जो भज रामहि। प्रेम समेत गाव गुन ग्रामहि॥३॥

अर्थ : कलियुग में न योग है न यज्ञ है न ज्ञान है। केवल राम गुणगान ही एक मात्र आधार है। सब भरोसा छोड़कर जो राम को भजता है प्रेम के सहित गुण समूह का गान करता है।

व्याख्या : एहि कलिकाल सकल साधन फल भये स्रम फलनि फरोसो। इसलिए कहते हैं कि कलिजुग जोग न जज्ञ न ग्याना। भाव यह कि इनका भरोसा नहीं। समय इनके प्रतिकूल है जैसे धान की खेती चैत में नहीं होती। करने लगिये तो

बड़ी कठिनता पड़ती है और ईप्सित फलप्रसू नहीं होती। इसी भाँति अन्य साधनों के लिए कलियुग अनुकूल समय नहीं है। इस में तो केवल रामगुणगान ही आधार है।

अतः जिसने काल का विचार करके सब साधनों का भरोसा त्याग दिया। राम के भजन में लग गया प्रेम के सहित रामजी के गुण ग्राम का गान आरम्भ कर दिया। गुणों के गान करने से उनका संस्कार मन पर पड़ता है। रामजी के गुणों का संस्कार मन पर पड़ने से ही सम्पूर्ण अशुभ संस्कार नष्ट हो जाते हैं।

सो भवतर कछु संसय नाहीं। नाम प्रताप प्रगट कलि माहीं ॥
कलिकर एक पुनीत प्रतापा। मानस पुन्य होइ नहिं पापा ॥४॥

अर्थ : वह संसार तर जाता है। इसमें सन्देह नहीं है। नाम का प्रताप कलियुग में प्रकट है। कलियुग का एक पवित्र प्रताप है कि मानस पुण्य होता है पाप नहीं होता।

व्याख्या : चहुँ जुग चहुँ स्रुति नाम प्रभाऊ। कलि बिसेष नहि आन उपाऊ। योग में तो नाम का बड़ा प्रताप योगशास्त्र ने स्वीकार किया है। ईश्वरप्रणिधानाद्वा· तज्जपस्तदर्थभावनम्। ईश्वर पर प्रेम करने से समाधि की सिद्धि माना है और नाम के जप तथा अर्थ की भावना का उपदेश किया है। यज्ञ तो नाम ग्रहण पूर्वक हवि दान से ही किया जाता है। पूजा में तो पदे पदे नाम ग्रहण पूर्वक नमस्कार करके ही वस्तु अर्पण की जाती है। यदि इन तीनों में से नाम हटा दें तो ये कुछ रह नहीं जाते। इसलिए कहते हैं कि : चहुँ जुग चहुँ स्रुति नाम प्रभाऊ। कलि बिसेष नहि आन उपाऊ। और कलियुग में तो कोई दूसरा उपाय नहीं है। यथा : तेन तप्तं हुतं दत्त-मेवाखिलं तेन सर्वं कृतं कर्मजालम्। येन श्रीरामनामामृतं पानकृतमनिशमनवद्यं अवलोक्य कालम्। अतः उसके भाव सन्तरण में संशय नहीं है। उसे थाह मिल जाता है। ऐसा नाम का प्रताप कलियुग में प्रकट है। जो चाहे वह जप करके इसका प्रभाव देखले।

यह तो नाम का प्रताप हुआ। अब स्वयं कलियुग का एक पवित्र प्रताप सुनिये। यद्यपि कलियुग तो दोष का समुद्र ही है। परन्तु इस में एक महान् गुण है कि इस में मानस पुण्य होता है पाप नहीं। यथा : ब्रह्मवैवर्ते ३.९०.१२९। कलेर्दोषनिधेः तात गुण एको महानपि। मानसञ्च भवेत् पुण्यं सुकृतं नहि दुष्कृतम्। मनसे शुभ संकल्प करने का भी पुण्य है और अशुभ संकल्प उठने का भी पाप है। सो वह पाप कलियुग में नहीं होता। यदि वह पाप भी होता तो कलियुग में शायद ही किसी का निस्तार होता।

दो. कलिजुग सम जुग आन नहि, जो नर कर बिस्वास।
गाइ राम गुन गन बिमल, भवतर बिनहि प्रयास ॥१०३ क.
प्रगट चारिपद धरम के, कलिमहुँ एक प्रधान।
जेन केन बिधि दीन्हें, दान करै कल्यान ॥१०३॥

अर्थ : कलियुग के समान दूसरा युग नहीं है यदि मनुष्य विश्वास करे । इसमें रामजी के निर्मल गुणगण गान करके मनुष्य विना परिश्रम संसार तर जाता है । चार पाद धर्म के प्रकट हैं । उनमें से एक कलियुग में प्रधान है । जिस किसी विधि से भी करने से दान कल्याण करता है ।

व्याख्या : कोई भी सिद्धि बिना विश्वास नहीं होती । लोगों को विश्वास नहीं होता कि रामजी के गुणगान मात्र से विना प्रयास भव सन्तरण कैसे हो सकता है । इसलिए गुणगान नहीं करते । यदि विश्वास होता तो बिना गुणगान किये रहा न जाता । भुसुण्डिजी कहते हैं : विश्वास की कमी से ही कलियुगी प्राणियों की दुर्गति होती है । नहीं तो जहां राम गुणगान से ही भव सन्तरण है वहां लोगों के दुर्गति होने का प्रश्न ही क्या है । यदि इस दृष्टि से देखा जाय तो कलियुग ही धन्य है ।

सत्य दया तप और दान ये ही चार पाद धर्म के हैं । कलियुग में तीन पादों से धर्म का ह्रास हो जाता हैं । इस युग में दान ही प्रधान है । दान धर्म महा कठिन है । दान में पात्रापात्र का बड़ा बखेड़ा है । दान का बड़ा विधान है पर भुसुण्डिजी कहते हैं कि कलियुग में जिस किसी विधि से दान करे । दान की नाव पहाड़ चढ़ती है ।

नित जुग धर्म होंहि सब केरे । हृदय राम माया के प्रेरे ॥
सुद्ध सत्व समता विज्ञाना । कृत प्रभाव प्रसन्न मन जाना ॥१॥

अर्थ : रामजी की माया की प्रेरणा से सबके हृदय में नित्य युग धर्म हुआ करते हैं । सत्ययुग के प्रभाव से शुद्ध सत्त्वगुण समता और विज्ञान द्वारा प्रसन्न मन रहता है ।

व्याख्या : जिस भाँति संसार में चार हजार दिव्य वर्ष तक सत्ययुग तीन हजार दिव्य वर्ष तक त्रेता दो हजार दिव्य वर्ष तक द्वापर और एक हजार दिव्य वर्ष तक कलियुग क्रम से बीतता है उसी भाँति रामजी की माया की प्रेरणा से मनुष्यों के हृदय में भी नित्य सत्ययुग त्रेता द्वापर और कलियुग वर्त्तता है । ग्रह की महादशा में जिस भाँति अवान्तर दशाएँ आती हैं उसी भाँति मनुष्य के हृदय में भी नित्य चारों युग का चक्र चला करता है । जब सत्ययुग बर्तने लगता है तब शुद्ध सत्त्वगुण का उदय होता है । मन में ममता और विज्ञान तथा प्रसन्नता रहती है । ऐसे अवसर पर योग ज्ञान विज्ञान के साधन के लिए अनुकूलता रहती है ।

सत्य बहुत रज कछु रति करमा । सब बिधि सुख त्रेता कर धरमा ॥
बहु रज स्वल्प सत्व कछु तामस । द्वापर धरम हरष भय मानस ॥२॥

अर्थ : सत्त्व बहुत हो थोड़ा रज हो और कर्म में रति हो : ऐसा त्रेता का धर्म सब भाँति सुखद है । बहुत रज और थोड़ा थोड़ा सत्त्व और तम हो : ऐसे द्वापरके धर्म में हर्ष शोक और भय मन में होते हैं ।

व्याख्या : जब हृदय में त्रेता वर्तता है उस समय सत्त्व अधिक और रज थोड़ा होता है और कर्म अर्थात् वेदिक कर्म यज्ञ यागादि में प्रीति होती है । यह

अवसर यज्ञ यागादि के लिए अनुकूल पड़ता है। इसमें सब प्रकार से सुख ही सुख है। यथा : देवान् भावयतानेन ते देवा भावयन्तु वः। परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ। यज्ञ से देवताओं की भावना करने से देवता याज्ञिक की वृद्धि करते हैं। इस भाँति परस्पर भावना करने से परमश्रेय को प्राप्त होते हैं।

जब हृदय पर बहुत रजोगुण और थोड़े थोड़े सत्व और तम का अधिकार होता है तब द्वापर बर्तता है इसलिए मन में हर्ष शोक और भय का भी उदय होता है। इस में पूजा भी अनूकूल होती है। क्योंकि पूजा में घण्टों का हिसाब है महीनों सालों का नहीं।

तामस बहुत रजो गुन थोरा। कलि प्रभाव बिरोध चहुँ ओरा ॥
बुध जुग धरमु जानि मन माहीं। तजि अधरम रति धरम कराहीं ॥३॥

अर्थ : तमोगुण बहुत और थोड़ा सा रज कलियुग में बर्तता है। इसका स्वभाव है कि चारों ओर विरोध होता है। पण्डित मन में युग धर्म को समझकर अधर्म का त्याग करके धर्म में मन लगाते हैं।

व्याख्या : जब हृदय में तमोगुण के बाहुल्य और रज की स्वल्पताका उदय होता है तब कलियुग के स्वभावानुसार चारों विरोध रहता है। ऐसे अवसर पर सिवा नाम जप के और कोई साधन सम्भव नहीं। भुसुण्डिजी कहते हैं कि पण्डित लोग लक्षण से समझ लेते हैं कि मेरे मन में कौन सा युग वर्त रहा है और अधर्म का परित्याग करके धर्म में मन लगाते हैं। ईश्वर की प्रेरणा से नित्य युगधर्म हृदय में बर्तता है उससे लाभ उठाना साधक का काम है। साधक युगों के लक्षण ज्ञान से समझ सकता है कि कौन सा युग किस समय उसके हृदय में वर्त रहा है तदनुकूल साधन से उस समय काम लेता है। स्वयं भुसुण्डिजी इसी भाँति साधन करते थे। यथा : पीपर तरु तर ध्यान सो धरई। जाप जग्य पाकर तर करई। आम छाँहकर मानस पूजा। तजि हरि भजन काज नहि दूजा। बट तर कह हरि कथा प्रसंगा।

युग के अनुसार रामजी की माया के अनुसार लोगों के हृदय में युग धर्म बर्तता है। सबकी प्रवृत्ति ही युग धर्मानुकूल हो जाती है। उस समय पण्डित का काम है कि युगधर्म से सावधान होकर अधर्म का त्याग करके धर्म में मन लगावे।

काल धरम नहि ब्यापहि ताही। रघुपति चरन प्रीति अति जाही ॥
नट कृत बिकट कपट खगराया। नट सेवकहि न ब्यापै माया ॥४॥

अर्थ : कालधर्म उसे नहीं व्यापता जिसे रामजी के चरण में अति प्रीति हो। हे पक्षिराट्! नट विकट माया फैलाता है पर नटसेवक को माया नहीं व्यापती।

व्याख्या : कालधर्म की प्रेरक रामजी की माया है। माया का बल उस पर नहीं चलता जिसे रामजी के चरणों में अत्यन्त प्रीति होती है। क्योंकि उसके हृदय में भक्ति का साम्राज्य रहता है और भक्ति से माया अत्यन्त भयभीत रहती है।

यथा : भगतिहि सानुकूल रघुराया। ताते तेहि डरपति अतिमाया। अतः रामोपासक को कालधर्म नहीं व्यापता।

ऐसी ही स्थिति लोक में भी देखी जाती है। नट ऐसी माया फैलाता है कि सबकी दृष्टि उसी के संकल्पानुसार काम करने लगती है। सब लोग देखते हैं कि नट ने कोल्हू सिर पर उठा लिया और लिये खड़ा है। सब लोग बड़ा आश्चर्य करते हैं। पर नटका सेवक जानता है कि नट स्वयं कोल्हू पर खड़ा है। लोग ही उलटा देखते हैं पर उसे नट की माया नहीं व्यापती। क्योंकि उसके लिए नट का संकल्प नहीं है।

दो. हरि माया कृत दोष गुन, बिनु हरि भजन न जाहिं।
भजिय राम तजि काम सब, अस बिचारि मन माहिं ॥१०४ क.

अर्थ : हरिमाया के निर्मित दोष और गुण बिना हरिभजन के जाते नहीं। ऐसा मन में विचार करके सब काम को छोड़कर रामजी का भजन करना चाहिए।

व्याख्या : माया अनेक प्रकार की होती है। दैवी माया आसुरी माया मानुषी माया इत्यादि। और इनके निर्मित दोष और गुण भी विभिन्न प्रभाववाले होते हैं और उपाय से जाते भी रहते हैं पर रामजी की माया बड़ी प्रबल है। यथा : सुनु खग प्रबल राम की माया। इसका निर्मित : काल धर्म : दोष गुण किसी के हटाये नहीं हटता। यह हरि भजन से ही जाता है। भगवान् ने भी स्वयं कहा है : दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया। मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते। इसलिए सब कामनाओं का परित्याग करके रामजी का भजन करना चाहिए। जिसमें कालधर्म बाधा न कर सके।

तेहि कलिकाल बरष बहु, बसेउँ अवध बिहगेस।
परेउ दुकाल बिपति बस, तब मैं गयउँ बिदेस ॥१०४॥

अर्थ : उस कलिकाल में हे गरुड़जी ! मैं बहुत वर्षों तक अवध में रहा। दुकाल पड़ा तो विपत्ति के वश में विदेश चला गया।

व्याख्या : कवनेउँ जनम अवध बस जोई। राम परायन सो हरि होई। सो भुसुण्डिजी कहते हैं कि मैंने अनेक वर्षों तक अवध वास किया। अवध की महिमा न जानने से उर में उग्रबुद्धि और विशाल दम्भ होने से तथा पापपरायण समय : कलियुग होने से तीर्थवास की कोई विधि भी नहीं पालन कर सके। कलियुग में बारम्बार दुकाल पड़ता है। बिना अन्न के दुःखी होकर लोग मरने लगते हैं। सो दुकाल पड़ ही गया। मुझे भी ऐसी विपत्ति आयी कि देश छोड़कर भाग गया।

गयेउँ उजेनी सुनु उरगारी। दीन मलीन दरिद्र दुखारी ॥
गए काल कछु संपति पाई। तहँ पुनि करौं संभु सेवकाई ॥१॥

अर्थ : हे पक्षिराट् ! सुनो मैं दीन मलिन दरिद्र और दुःखी होकर उज्जैन

गया। कुछ काल बीतने पर मुझे कुछ सम्पत्ति मिल गयी और फिर मैं शिवजी की सेवा में लग गया।

व्याख्या : मालव देश में सदा सुकाल रहता है। इसलिए मैं उज्जैन चला गया। प्रारब्ध ने फिर साथ दिया। सात मोक्षपुरियों में से उज्जैन भी एक पुरी है। अयोध्या छूटा तो अवन्तिका : उज्जैन पुरी की प्राप्ति हुई। वहाँ मैं बड़ी दीन दशा में पहुँचा। पास कुछ नहीं था। शरीर से मलिन और मन से दुःखी था।

कुछ दिन वहाँ रहते रहते कुछ धन हो गया। इस विपत्ति में पड़ने से शिवजी की सेवा छूट गयी थी। विपत्ति दूर हो जाने पर फिर भुसुण्डिजी ने शिवजी की सेवा प्रारम्भ कर दी। उज्जैन में प्रधान देव महाकालेश्वर हैं। उनकी सेवा पूजा में लग गया।

बिप्र एक बैदिक सिव पूजा। करै सदा तेहि काजु न दूजा ॥
परम साधु परमारथ बिंदक। संभु उपासक नहि हरिनिन्दक ॥२॥

अर्थ : एक ब्राह्मण शिवजी की वैदिक पूजा करता था। उसे कोई दूसरा काम न था। वह परम साधु परमार्थ का ज्ञाता था। शम्भु की उपासना करता था। परन्तु हरिनिन्दक नहीं था।

व्याख्या : जब भुसुण्डिजी मन्दिर में जाते थे तो देखते थे ब्राह्मण देवता की वैदिक विधान से शिवजी की पूजा चल रही है। उन्हें शिवजी की पूजा छोड़कर दूसरा कोई काम ही नहीं था। वे महात्मा परम साधु थे। समान चित्त थे। उनका कोई हित अनहित नही था। परमार्थ पथ में बड़े चतुर थे। उसी के सुधारने में दिन रात लगे रहते थे। मनसा वाचा कर्मणा शिवजी के उपासक थे। परन्तु भुसुण्डिजी की भाँति हरिनिन्दक नहीं थे।

तेहि सेवौं मैं कपटसमेता। द्विज दयाल अति नीति निकेता ॥
बाहिज नम्र देखि मोहि साईं। बिप्र पढ़ाव पुत्र की नाईं ॥३॥

अर्थ : उनकी मैं कपट के साथ सेवा करने लगा। ब्राह्मणदेवता बड़े दयालु और नीति के मानो घर थे। मुझे बाहर से नम्र देखकर ब्राह्मण देवता ने पुत्र की भाँति पढ़ना प्रारम्भ कर दिया।

व्याख्या : भुसुण्डिजी कहते हैं कि उस ब्राह्मण की मैं सेवा करने लगा। पर अपने आन्तरिक भावों को उनसे छिपाये रहता था। उन्होंने नहीं जान पाया कि यह : धन मदमत्त परम वाचाला। उग्र बुद्धि उर दंभ बिसाला। सिव सेवक मन क्रम अरु बानी। आन देव निन्दक अभिमानी है। ब्राह्मण देवता बड़े दयालु थे। उन्होंने विनिमय में बिना कुछ दिये सेवा लेना नहीं चाहा और नीतिमान् थे। बाहरी बरताव मेरा बड़ा नम्र था। अतः मुझे वे परमार्थज्ञान देने के लिए पुत्र की भाँति पढ़ाने लगे। हृदय में उनके यह भाव था कि यह जल्दी पढ़ लिख ले। उनके मन में कपट नहीं था।

संभु मंत्र मोहि द्विजबर दीन्हा । सुभ उपदेस बिबिध बिधि कीन्हा ॥
जपौं मंत्र सिव मंदिर जाई । हृदय दंभ अहमिति अधिकाई ॥४॥

अर्थ : उस श्रेष्ठ ब्राह्मण ने मुझे शिवजी का मन्त्र दिया और अनेक प्रकार का शुभ उपदेश दिया । मैं शिवमन्दिर में जाकर शिव मन्त्र का जप करता था । हृदय में दम्भ और अहङ्कार अधिक हो गया ।

व्याख्या : ब्राह्मण देवता विद्यागुरु तो थे ही दीक्षा गुरु भी वे ही हुए । मुझे विद्वान् बनाकर तब शिव मन्त्र से दीक्षित किया । दीक्षोपरान्त किस किस भाँति से उपासना की जाती है उसकी पद्धति मन्त्र जप का विधान तथा आचरण सम्बन्धी बहुत से उपदेश दिये जिसमें मेरा अन्धकार दूर हो ।

अब तो मैं शिवमन्दिर में जाकर जप करने लगा । उधर गुरुजी की पूजा होती थी इधर मेरा जप होता था । दम्भ और अभिमान तो मुझमें पहिले ही से था । अब इतनी बड़ी बड़ाई पाकर ऐसे शिवभक्त का शिष्यत्व प्राप्त करके दम्भ और अभिमान ऐसा बढ़ा कि मैं उसे छिपा न सका ।

दो. मै खल मल संकुल मति, नीच जाति बस मोह ।
हरिजन द्विज देखे जरौं, करौं बिष्णु कर द्रोह ॥१०५ क.

सो. गुर नित मोहि प्रबोध, दुखित देखि आचरण मम ।
मोहि उपजइ अति क्रोध, दंभिहि नीति कि भावई ॥१०५॥

अर्थ : मैं खल था । मेरी बुद्धि पाप से भरी थी । जाति में नीच था । हरिजन और ब्राह्मणों को देखकर जलता था और विष्णु का द्रोह करता था । गुरुजी मुझे नित्य समझाते थे । मेरा आचरण देखकर दुःखी होते थे । पर मुझे बड़ा क्रोध होता था । क्या दम्भी को नीति अच्छी लगती है ।

व्याख्या : मैं स्वभाव से खल था । गुरुजी स्वभाव से परम साधु थे । मैं मलसङ्कुलमति था । वे नीतिनिकेत थे । मैं नीच जाति था । वे वैदिक ब्राह्मण थे । मैं मोहवश था । वे परमार्थ विन्दक थे । मैं विष्णुद्रोही था । वे ऐसे नहीं थे । मैं हरिजन और द्विज को देखकर जलता था और वे दयालु थे । अतः गुरुजी के और मेरे स्वभाव में आकाश पाताल का अन्तर था । दीक्षा न मिलने तक मैं बाहर से नम्र रहा । मिल जाने पर मेरे सभी गुण धीरे धीरे खुलने लगे ।

मेरे अज्ञान के दूर करने के लिए गुरुजी नित्य ही मुझे समझाते बुझाते थे । मेरा आचरण देखकर दुःखी होते थे । क्योंकि शिष्यापराधे गुरोर्दण्डः । शिष्य गुरु का ऐसा सम्बन्ध है जो परलोक के लिए होता ही है । गुरुजी एक बार कहकर चुप नहीं रह गये । नित्य नियम से मुझे उपदेश करने लगे । क्योंकि बार बार कहने से विषय भी समझ में आ जाता है पर मैं था दम्भी । मुझे गुरुजी की नीति अच्छी

नहीं लगती थी। उनके नित्य के समझाने से ऐसा क्रोध होने लगा जो सहन की सीमा के बाहर था।

बड़े कष्ट ते सुकृतधन संग्रह करत सुजान।
हरत छनक यह दम्भ सम घातक शत्रु न आन॥
गिरे स्वर्ग ते सुकृत निज मुख ते कहे ययाति।
कहाँ पुण्य को गंध जहँ दंभ चलै दिनराति॥
या ते जप तप नेम व्रत करिये सहित छिपाव।
सुकृत कोष संचय करत होय कतहुँ लखाव॥
हरिगन द्विजगन ते सदा अपने को लघु मान।
जंगम मूरति शंभु की जानि करिय सनमान॥
सपनेहुँ इनको द्रोह सुत सकल अमङ्गल मूल।
एहि अपराध अगाध ते होत शंभु प्रतिकूल॥
जो चाहे कल्याण निज रहे दंभ ते दूर।
हरिजन तिन चरनन सदा करै प्रेम भरिपूर॥

एक बार गुर लीन्ह बोलाई। मोहि नीति बहु भाँति सिखाई॥
सिव सेवा कै फल सुत सोई। अबिरल भगति राम पद होई॥१॥

अर्थ : एकबार गुरुजी ने बुला लिया और मुझे बहुत भाँति से नीति सिखाई कहा बेटा! शिवजी की सेवा का फल ही यह है कि रामजी के चरणों में अविरल भक्ति हो।

व्याख्या : भुसुण्डिजी कहते हैं कि अब मैंने गुरुजी के यहाँ जाना छोड़ दिया। पर गुरुजी ने मुझे नहीं छोड़ा। मुझे एकबार बुला लिया क्योंकि मेरे आचरण से वे दुःखी थे। समझाने के लिए बुलाया था अनेक प्रकार से नीति का उपदेश दिया। जिसमें मेरा आचरण सुधरे। मैं हरिजन तथा ब्राह्मणों को देखकर न जलूँ और विष्णु का द्रोह छोड़ दूँ। नीति यही है : प्रिय का स्नेह भाजन भी प्रिय के समान हो है। तुमको शिवजी प्रिय हैं तो तुम्हें उनके स्नेह भाजन रामजी से भी वैसे ही प्रीति करनी चाहिए जैसी शिवजी से करते हो। शिवजी को ब्राह्मण साधु प्रिय हैं। अतः उनसे भी प्रीति करनी चाहिए। शिवभक्त होकर उनके प्रेमभाजन रामजी से द्रोह करना ठीक रास्ता नहीं है। यथा : प्रिय सम प्रिय सनेह भाजन सखि प्रीति रीति जग जानी। भूषन भूति गरल परिहरि कै हर मूरति उर आनी। मज्जन पान कियो के सुरसरि कर्मनास जल छानी। पूँछ सो प्रेम विरोध सींग सो यहि विचार हित हानी।

यदि शिवजी के भक्त की प्रीति रामचरणों में न हुई तो उसकी शिवभक्ति ही निष्फल गयी। क्योंकि रामभक्ति शिवभक्ति का फल है। स्वयं रामजी ने कहा है कि : औरो एक गुप्त मत, सबहि कहौ कर जोरि। संकर भजन बिना नर भगति न पावै मोरि।

रामहि भजहिं तात सिव धाता । नर पाँवर कै केतिक बाता ॥
जासु चरन अज सिव अनुरागी । तासु द्रोह सुख चहसि अभागी ॥२॥

अर्थ : हे तात ! शिवजी और ब्रह्माजी स्वयं राम को भजते हैं। भला नीच मनुष्य की क्या गिनती है। जिसके चरणों के शिव और ब्रह्मा अनुरागी हैं तू उनसे द्रोह करके सुख चाहता है।

व्याख्या : शिव और ब्रह्मा ईश्वरकोटि में हैं। वे भी जिस रामजी को भजते हैं। यथा : कौसलेन्द्रपदकञ्जमञ्जुली कोमलावजमहेशवन्दितौ। तू मनुष्यों में भी नीच तेरी किस गिनती में गिनती है जो तू राम को नहीं भजता। जिन चरणों जी कृपा से शिव को शिवपद और ब्रह्मदेव को ब्रह्मपद मिला है। हरिहिं हरिता सिवहिं सिवता बिधिहि बिधिता जो दई। सो जानकी पति मधुर मूरति मोदमय मंगलमई। जिनके विरोधी को कहीं विश्राम नहीं मिलता। यथा : राम बिमुख थल नरक न लहहीं। उससे तू विरोध करता है। तू अभागी है तुझे सुख कैसे मिलेगा ? सुखसरूप रघुवंशमणि से तो तूने वैर ठान रक्खा है।

हर कहुँ करि सेवक गुर कहेऊ । सुनि खगनाथ हृदय मम दहेऊ ॥
अधम जाति मैं बिद्या पाए । भएउ जथा अहि दूध पिआए ॥३॥

अर्थ : गुरुजी ने शिवजी को रामजी का सेवक बतला दिया। यह सुनकर तो मेरा कलेजा जल उठा। मैं अधम जाति था। हे पक्षिराट् ! मैं विद्या पाने से ऐसा हो गया कि जैसा साँप दूध पिलाने से हो जाता है।

व्याख्या : भुसुण्डिजी कहते हैं कि मैंने यावज्जीवन शिवजी के उत्कर्ष और विष्णु के अपकर्ष के स्थापन में बिताया। शिवभक्तों में श्रेष्ठ जानकर इन्हें गुरु बनाया। सो यही शिवजी को हरिसेवक कहने लगे। इन्होंने मेरे साथ बड़ा विश्वासघात किया। सो मेरा कलेजा जल उठा। भाव यह कि गुरुजी के उपदेश से मुझे क्रोध बढ़ा शान्ति न हुई। कारण देते हैं कि अधम जाति विद्या का अधिकारी नहीं है। विद्या पाने से उनका दोष बढ़ता है। माता से भी शतगुणित हितैषिणी श्रुति ने जो अधम जाति को विद्या का अधिकार नहीं दिया सो किसी द्वेष के वश होकर नहीं। विद्या प्राप्ति से अधम जाति की बड़ी हानि होती है। वही हुआ मैं गुरुद्रोही हो गया। पयःपानं भुजङ्गानां केवलं विषवर्धनम्। साँप को दूध पिलाने से विष ही बढ़ा।

मानी कुटिल कुभाग्य कुजाती । गुरकर द्रोह करौं दिन राती ॥
अति दयाल गुरु स्वल्प न क्रोधा । पुनि पुनि मोहि सिखाव सुबोधा ॥४॥

अर्थ : मैं अभिमानी, कुटिल, कुभाग्य, कुजाति था। सो गुरु का द्रोह मैं रात दिन करने लगा। गुरुजी बड़े दयानिधान थे उन्हें कुछ भी क्रोध न हुआ। वे सुबोध बार,बार मुझे सिखाते ही रहे।

व्याख्या : मैं उपदेश का पात्र नहीं था। मैं अभिमानी था अतः उनकी शिक्षा पर ध्यान नहीं देता था। प्रत्युत मुझे बुरा लगता था कि ये बार बार मुझे सिखाने लगते हैं। इस भाँति अपना गुरु होना द्योतित करते हैं। मैं कुटिल था गुरुजी के सरल उपदेश में मुझे वक्रता की कल्पना होती थी। चलइ जोंक जल बक्र गति जद्यपि सलिल समान। मैं समझता था कि ये मुझे शिवजी की आराधना से गिराना चाहते हैं। अकेले स्वयं सर्वश्रेष्ठ शिवयोगी बने रहना चाहते हैं। मेरी उन्नति सहन नहीं कर सकते। अब मैं गुरुजी का द्रोह दिनरात करने लगा। निन्दा से बढ़कर दूसरा द्रोह नहीं है। जिससे यशोमयी देह मारी पड़ती है।

परन्तु गुरुजी की दया का भी पारावार नहीं था। उन्हें क्रोध का नाम नहीं। वे इसकी अविद्या के नाश के यत्न में सदा तत्पर रहते थे। बारम्बार समय पाकर उपदेश दिया करते थे। बारम्बार उपदेश देने से बात मन में जम जाती है।

जेहि ते नीच बड़ाई पावा। सो प्रथमहि हठि ताहि नसावा॥
धूम अनल संभव सुनु भाई। तेहि बुझाव घन पदवी पाई॥५॥

अर्थ : जिससे नीच बड़ाई पाता है उसे वह हठ पूर्वक पहिले ही नष्ट करता है। हे भाई! धूआँ अग्नि से उत्पन्न है पर बादल की पदवी पाकर उसे बुझा देता है।

व्याख्या : यह नियम है कि नीच जिससे बड़ाई पाता है पहिला काम वह यह करता है कि अपने उपकारी का नाश करता है। यही नीच का लक्षण है। कृतेषु प्रतिकर्तव्यमेष धर्मः सनातन। जिसने अपने साथ भलाई की उसके साथ भलाई करना सनातन धर्म है। परन्तु नीच अपने उपकारी के साथ अपघात करता है। भुसुण्डिजी कहते हैं कि मुझे गुरुजी से विद्या मिली : दीक्षा मिली। स्वदेशे पूज्यते राजा विद्वान् सर्वत्र पूज्यते। अतः बड़ाई प्राप्त की : परन्तु गुरुजी के रहते बड़ाई पूरी नहीं होती। अतः मैं गुरुजी का द्रोह दिन रात करने लगा। अथवा नीच का स्वभाव ही ऐसा होता है। अतः स्वभावानुसार द्रोह करने लगा।

उदाहरण देते हैं कि : धूमो ज्योतिः सलिलमरुतां सन्निपातः क्व मेघः। धूम, ज्योति, जल और हवा मिलकर मेघ बनते हैं। अग्नि के कारण ही धूम की ऐसी उच्चगति होती है कि मेघ हो जाता है। मेघ के चार उपादान कारण हैं। उनमें से धूम का सूक्ष्म अंश भी कारण का ही वध करता है।

रज मग परी निरादर रहई। सब कर पग प्रहार नित सहई॥
मरुत उड़ाइ प्रथम तेहि भरई। पुनि नृप नयन किरीटन्हि परई॥६॥

अर्थ : धूलि रास्ते में पड़ी हुई अनादृत रहती है। सबके पैरों की ठोकर सहा करती है। हवा उसे उड़ाती है तो पहिले वह उसीको भर देती है। फिर राजा की आँख और मुकुट में पड़ती है।

व्याख्या : सब से बड़ा अनादर धूलिका है। वह रास्ते में पड़ी रहती है। दिन रात लात खाया करती है। उसे हवा ही एक ऐसी वस्तु है जो ऊपर उठाती है।

परन्तु धूलि नीच है। वह पहिले हवा को ही मलिन करती है। फिर राजा के आंखों और मुकुटों पर पड़ती है। राजा ने उसे कभी लात नहीं मारा था। भाव यह कि नीच जब बड़ाई पाते हैं तो पहिला चोट उनका उसपर होता है जिसके कारण बड़ाई पाया। दूसरा चोट उस पर होता है जिसने कभी अपकार नहीं किया। अपने अपकारी पर तो वह अन्त में चोट करता है। इस भाँति नीचे गिरकर उस बड़ाई को भी नष्ट करता है जो उसे प्राप्त हुई थी।

सुनु खगपति अस समुझि प्रसंगा। बुध नहि करहिं अधम कर संगा॥
कबि कोबिद गावहिं असि नीती। खलसन कलह न भल नहि प्रीती॥७॥

अर्थ : हे पक्षिराट्! सुनो ऐसा प्रसङ्ग समझकर पण्डित लोग अधम का साथ नहीं करते। कवि पण्डित ऐसी नीति बतलाते हैं कि खल के साथ न झगड़ा अच्छा न प्रीति अच्छी।

व्याख्या : पण्डित जानते हैं कि : मिलत एक दारुन दुख देहीं। बिछुरत एक प्रान हरि लेहीं। अतः वे इस प्रसङ्ग को खूब समझते हैं कि अधम पहिले अपने उपकारी पर ही टूटते हैं। अतः वे लोग अधम का सङ्ग नहीं करते। गुरुजी भी यदि ऐसा जानते तो मेरा संग्रह कभी न करते। उन्होंने मेरी बाहरी नम्रता से धोखा खाया।

पण्डित कवि ही संसार के सच्चे नेता है। उन्हीं के वचन लोगों के हृदय पर अधिकार कर लेते हैं और लोग समय समय पर उन वचनों का प्रमाण दिया करते हैं। उन कवि कोविदों ने इस नीति की प्रशंसा की है कि खल के साथ न कलह अच्छा न प्रेम अच्छा। खल कलह विद्या के पण्डित है। उसमें उन्हें कौन जीत सकता है और यदि उनके साथ कोई प्रीति करे तो मिलत एक दारुन दुख देही : इस नीति के अनुसार उनसे दुःख ही पावेगा। अतः उनसे न प्रीति अच्छी न कलह अच्छा।

उदासीन नित रहिअ गोसाईं। खल परिहरिअ स्वान की नाईं॥
मैं खल हृदय कपट कुटिलाई। गुरुहित कहै न मोहि सुहाई॥८॥

अर्थ : हे गोसाइँ! नित्य उदासीन रहिये और खल का परित्याग कुत्ते की भाँति करिये। मैं खल था मेरे हृदय में कुटिलाई थी। गुरुजी भले की बात कहते थे पर मुझे अच्छी नहीं लगती थी।

व्याख्या : सत्सङ्ग को परम उपादेय माननेवाले भुसुण्डिजी असत् सङ्ग को वैसा ही हेय मानते हैं। कहते हैं कि खल के प्रति सदा उदासीन भाव बनाये रहना चाहिए। उसको कुत्ते के समान त्यागना चाहिए। कुत्ते को दूर से कौर दे दीजिये। पर उसे पास न फटकने दीजिये। नीचमल्पप्रदानेन। कुत्ता के सम्पर्क से धर्म कर्म को हानि होगी। उससे वैर करने से वह काटेगा भूँकेगा।

में सामान्य खल नहीं था। कपट कुटिलाई मेरे हृदय में रहती थी। लखाई नहीं पड़ती थी। गुरुजी मेरे हित की बात मुझे समझाते थे। पर उनकी बातें मुझे अच्छी नहीं लगती थीं। उनकी बातों को हृदय में स्थान देना तो दूर की बात है। उपदेशो हि मूर्खाणां प्रकोपाय न शान्तये।

दो. एक बार हर मंदिर, जपत रहेउँ सिव नाम।
गुर आएउ अभिमान तें, उठि नहि कीन्ह प्रनाम ॥१०६ क.
सो दयाल नहि कहेउ कछु, उर न रोष लवलेस।
अति अघ गुर अपमानता, सहि नहि सके महेस ॥१०६॥

अर्थ : एक बार शिव मन्दिर में शिवजी का नाम मैं जप कर रहा था कि गुरुजी आ गये। मैंने उठकर प्रणाम तक नहीं किया। वे दयालु थे उन्होंने कुछ भी नहीं कहा। उनके हृदय में रोष का लेश नहीं हुआ। पर गुरु के अपमान रूपी महापाप को महादेवजी नहीं सह सके।

व्याख्या : पूजन करने के समय यदि गुरुजी आ जांय तो इष्टदेवता का पूजन बन्द हो जाता है। शेष सामग्री से गुरुजी के पूजन का विधान है। यहाँ भुसुण्डिजी मन्दिर में बैठकर मन्त्रजप भी नहीं करते थे। नाम जप करते थे। नामजप सभी अवस्था में हो सकता है। अतः आसन छोड़ने में कोई बाधा किसी प्रकार की नहीं थी। अतः कहते हैं कि फिर भी मैंने न अभ्युत्थान दिया न प्रणाम ही किया। यह भी नहीं कि नाम जप में ऐसे लीन हो गये हों कि उनको गुरुजी के आने को सुधि ही न हो। उन्होंने गुरुजी को आते देखा उठकर प्रणाम करने के औचित्य को बात मन में आयी पर अभिमान वश नहीं उठे। अब तो हम गुरुजी से अधिक हो गये। अब उन्हें हमें देखकर उठना चाहिए। जिस भाँति शुकदेवजी के आगमन पर वसिष्ठादि ने अभ्युत्थान दिया था। द्वैतवादी के लिए तो कहना ही क्या। अद्वैतवादी के लिए भी गुरु से अद्वैत भाव रखना मना है। यथा : नाद्वैतं गुरुणा सह :

गुरुजी को दया की सीमा नहीं थी। उन्होंने इस अपमान पर ध्यान भी नहीं दिया। न कुछ बोले और न हृदय में कुछ अप्रसन्न हुए। पर परहित के लिए विषम गरल पान करनेवाले महादेव इस पापरूपी महा विष को नहीं सह सके। उनके मन्दिर में शिष्य ने गुरु का अपमान उनका भक्त बन के किया।

मंदिर माझ भई नभबानी। रे हतभाग्य अग्य अभिमानी ॥
जद्यपि तव गुर के नहि क्रोधा। अति कृपाल चित सम्यक बोधा ॥१॥

अर्थ : मन्दिर में आकाश वाणी हुई कि रे अभागे मूर्ख अभिमानी ! यद्यपि तेरे गुरु को क्रोध नहीं है। वे अत्यन्त कृपालु हैं और उनके हृदय में पूर्ण ज्ञान है।

व्याख्या : मन्दिर के आकाश में आकाश वाणी हुई। क्योंकि मन्दिर में ही शिवजी के होने का उसके हृदय में भाव था। अर्थात् महाकाश में नहीं हुई मठाकाश

में हुई। भुसुण्डि को हतभाग्य अज्ञ और अभिमानी शब्दों से सम्बोधन किया। गुरुजी ने कहा था : तासु विमुख सुख चहेसि अभागी। सरकार के चरण के विमुख होने से अभागी कहा। गुरुजी की महिमा को न जाना इसलिए अज्ञ कहा। गुरुजी के आने पर उठकर प्रणाम नहीं किया इसलिए अभिमानी कहा।

यद्यपि जिसका अपराध तूने किया उसे क्रोध नहीं है। कारण यह कि वे महापुरुष अति कृपाल हैं। क्षमासारा हि साधवः। साधु पुरुष बड़े क्षमाशील होते हैं और दूसरी बात यह कि उन्हें भेददृष्टि नहीं है पूर्ण ज्ञानी हैं। ऐसे गुरु के अपमान करने से अपराध और भी बढ़ गया।

तदपि साप सठ देइ हौं तोही। नीति बिरोध सुहाइ न मोही ॥
जौ नहि दंड करौं खल तोरा। भ्रष्ट होइ स्रुतिमारग मोरा ॥२॥

अर्थ : रे शठ! फिर भी तुझे मैं शाप दूँगा। क्योंकि नीति का विरोध मुझे अच्छा नहीं लगता। रे खल! यदि मैं तेरा दण्ड नहीं करता हूँ। तो मेरा वेद का मार्ग नष्ट हो जायगा।

व्याख्या : तेरे हृदय में बड़ा भारी पक्ष है : हठ है। अतः तू शठ है। निष्कारण गुरु का अपकार करता है इसलिए खल है। अपराध तूने ऐसा किया कि गुरुजी को शाप देना प्राप्त था। पर उन्होंने नहीं दिया। पर मैं तुझे शाप दूँगा क्योंकि नीति का विरोध मुझे अच्छा नहीं लगता। गुरुजी ने क्षमा कर दिया। पर मैं क्षमा न करूँगा। यदि मैं क्षमा कर दूँ और तुझे दण्ड न दूँ तो मेरा वेद का मार्ग बिगड़ जायगा। तेरे गुरुजी अधिकारी नहीं हैं मैं अधिकारी हूँ। अपने वेदमार्ग की रक्षा के लिए दण्ड दूँगा। दण्डः शास्ति प्रजाः सर्वा दण्ड एवाभिरक्षति। दण्डः सुप्तेषु जागर्ति दण्डं धर्मं विदुर्बुधाः।

जे सठ गुरसन इरषा करहीं। रौरव नरक कोटि जुग परहीं ॥
त्रिजग जोनि पुनि धरहिं सरीरा। अयुत जनम भरि पावहिं पीरा ॥३॥

अर्थ : जो शठ गुरु से ईर्षा करते हैं वे कोटि युग तक रौरव नरक में पड़ते हैं। वे तिर्यक् योनि में शरीर धारण करते हैं और दस हजार जन्म तक पीड़ा पाते हैं।

व्याख्या : ईर्षा किसी से न करनी चाहिए। पर जो ऐसे पापी हैं कि गुरु से ईर्षा करते हैं उन्हें कोटि युग तक अर्थात् दस हजार कल्प तक नरक भोगना पड़ता है। नरक से निकलने पर भी उस संस्कार के दूर करने में दस सहस्र पशुयोनि में जन्म लेना पड़ता है तब उसकी शुद्धि होती है। तैने वही पाप कर डाला।

बैठि रहेसि अजगर इव पापी। सर्प होहि खल मल मति ब्यापी ॥
महा बिटप कोटर महुँ जाई। रहु अधमाधम अधगति पाई ॥४॥

अर्थ : रे पापी तू अजगर की भाँति बैठा रह गया। रे खल रे मलिनबुद्धि!

तू सर्प हो और महा विटप के खोखले में जाकर रे नीचातिनीच ! तू अघोगति प्राप्त करके रह ।

व्याख्या : अजगर हिल डोल नहीं सकता । तू तो मनुष्य था तू तो हिल डोल सकता था । फिर भी गुरुजी के आने पर तू अजगर की भाँति अपने आसन से हिला नहीं । तू खल है । गुरु से खलता करता है तुझे गुरु ने विद्या दी पर तेरी बुद्धि सर्प की भाँति मलिन है । तुझे विद्या देना साँप को दूध पिलाना था । तूने सर्प सा आचरण किया । इसलिए तू सर्प हो । तूने मन्दिर में गुरुजी का अपमान किया । इसलिए तू किसी बड़े भारी पेड़ के खोखले में जाकर अघोगति को प्राप्त हो । क्योंकि तू नीचों में भी महानीच है । बैठा रहा इसलिए तू अधम है । प्रणाम भी नहीं किया इसलिए अधमाधम है ।

दो. हाहाकार कीन्ह गुर, दारुन सुनि सिव स्राप ।
कंपित मोहि बिलोकि अति, उर उपजा परिताप ॥१०७ क.
करि दंडवत सप्रेम द्विज, सिव सनमुख करि जोरि ।
बिनय करत गदगद स्वर, समुझि घोर गति मोरि ॥१०७॥

अर्थ : शिवजी का दारुण शाप सुनकर गुरुजी ने हाहाकार किया । मुझे काँपता हुआ देखकर उनके हृदय में अत्यन्त परिताप उत्पन्न हुआ ।

प्रेम के साथ दण्डवत् करके ब्राह्मण देवता शिवजी के सामने हाथ जोड़कर गद्गद वाणी से मेरी घोर गति समझकर विनय करने लगे ।

व्याख्या : राखे गुरु जौ कोप विधाता । गुरुजी का काम आपड़ा : शिवजी ने क्रोध किया । अब इसकी रक्षा कैसे हो । अतः दारुण शाप सुनकर गुरुजी ने हाहाकार किया । भुसुण्डिजी हाहाकार भी नहीं कर सके काँपने लगे । गुरुजी ऐसे दयाल थे कि मुझे काँपते देखकर उन्हें बड़ा दुःख हुआ । जिसके कारण क्रोध होता है उसी के शान्त किये क्रोध शान्त होता है । शिवजी के क्रोध से रक्षा दूसरा नहीं कर सकता । वे ही प्रसन्न हों तो काम चले ।

अतः गुरुजी ने तुरन्त दण्डवत् किया और शिवजी के सामने हाथ जोड़कर विनय करने लगे । शिवजी ने ही क्रोध किया है । अतः उन्हीं के सामने विनय करते हैं । प्रेम के सहित विनय करने से ही यथार्थ फल की प्राप्ति होती है । गद्गद वाणी गुरुजी की हो रही है । क्योंकि भुसुण्डिजी को घोरगति स्मरण करके दया का उद्रेक हो उठा ।

श्लो. नमामीशमीशान निर्वाण रूपं । विभुं व्यापकं ब्रह्म वेदस्वरूपं ॥
निजं निर्गुणं निर्विकल्पं निरीहं । चिदाकाशमाकाशवासं भजेहं ॥

अर्थ : ईश, ईशान, निर्वाण रूप, विभु, व्यापक, ब्रह्म, वेद स्वरूप को मैं

नमस्कार करता हूँ और निज, निर्गुण, निर्विकल्प, निरीह, चिदाकाश, आकाशवास को मैं भजता हूँ।

व्याख्या : स हि सर्वं ईष्टे : वही सबका मालिक है। सबका नियन्ता है। इसलिए उसे ईशान कहते हैं। अहमात्मा गुडाकेशः सर्वभूताशयस्थितः। उसी की प्रेरणा से ही सब कुछ होता है। वही मोक्ष रूप भी है। देशतः कालतः वस्तुतः अपरिच्छिन्न होने से उसे विभु व्यापक और ब्रह्म कहा। अथवा निर्वाण रूप होने से आनन्द रूप कहा। विभु व्यापक और ब्रह्म कहने से सद्रूप कहा। अब वेद स्वरूप कहने से उन्हें ज्ञानरूप कहते हैं। ऐसे प्रभु को प्रणाम करते हैं।

निज से सर्वमय कहा। क्योंकि प्रथम पुरुष, मध्यम पुरुष, उत्तम पुरुष, तीनों में अनुगत है। निर्गुण से निर्विशेष कहा। शब्दज्ञानानुपाती वस्तुशून्यो विकल्पः। सभी सांसारिक ज्ञान वैकल्पिक हैं। निर्विकल्प तो निज निर्गुण रूप है वही स्वतः सिद्ध है। निरीह से निर्विकार कहा। चिदाकाश कहकर जड़ता और परिच्छेद दोनों का व्यावर्तन किया। एक एक चिदणु में भूताकाश पड़े हैं। अतः भूताकाशों का निवास स्थान कहा। ऐसे महाप्रभु का भजन करना कहते हैं।

निराकारमोंकारमूलं तुरीयं। गिराज्ञान गोतीतमीशं गिरीशं ॥
करालं महाकाल कालं कृपालं। गुणागार संसार पारं नतोऽहं ॥

अर्थ : निराकार, ओङ्कार के मूल, तुरीय, गिरा, ज्ञान और इन्द्रियों से परे गिरीश ईश हैं। वे ही कराल महाकाल के भी काल हैं। वे ही कृपाल हैं। वे ही गुणागार हैं और वे ही संसार के पार हैं उन्हीं को मैं नमस्कार करता हूँ।

व्याख्या : निराकार से निरवयव कहा। फलतः अविनाशी भी कहा। सर्वसंहर्ता होने से कराल कहा। परिच्छिन्न काल को कहते हैं। अखण्ड दण्डायमान काल महाकाल है। उसके भी काल रूप है अर्थात् कालातीत है। ओङ्कार मूल कहने से अर्धमात्रा ही तुरीय है। तुरीय कहकर श्रीरामचन्द्र से अभेद कहा। क्योंकि वे भी तुरीय ही हैं। यथा : तुरीयमेव केवलम्। गिरा ज्ञान गोतीत से ब्रह्मरूप कहा। यथा : न तत्र चक्षुर्गच्छति नवाग्गच्छति नो मनो न विद्मो न विजानीमो यथैतदनुशिष्यात् अन्यदेव तद्विदितादथोऽविदितादधि। ईश शब्द शिवजी के लिए रूढ़ है। दूसरों के लिए गौण है। यहाँ तो स्पष्ट : गिरीशं ईशम् कहा है। अर्थात् कैलास वासी ईश। ऐसे प्रभु का भजन करना कहते हैं। यहाँ तक कैलासनाथ का निर्गुण रूप कहा। अब सगुण रूप कहते हैं।

तुषाराद्रि संकाश गौरं गभीरं। मनोभूत कोटिप्रभा श्री शरीरं ॥
स्फुरन्मौलिकल्लोलिनी चारु गंगा। लसद् भाल बालेन्दु कंठे भुजंगा ॥

अर्थ : हिमालय की भाँति गौर वर्ण है गम्भीर है। करोड़ों कामदेव की सी प्रभा और शोभा शरीर में है। लहरें मारती हुई सुन्दर गङ्गा सिर पर चमक रही है। बालचन्द्र सिर पर और कण्ठ में सर्प शोभित है।

व्याख्या : गौर शरीर है उस स्वरूप में गम्भीरता है। हिमालय का बर्फ निर्मल और आभायुक्त है। इसी से हिमालय से वर्ण उपमित है। फिर भी प्रभा और शोभा करोड़ों काम सी है। जटाजूट में गङ्गाजी चक्कर काट रही हैं। सूक्ष्मरूप से नहीं लहरें मारती हुई बह रही हैं। त्रिभुवनतारिणी को शीष पर रख छोड़ा है। द्वितीया के चन्द्रमा को मस्तक पर धारण किया है। इससे दीनवत्सलता प्रकट है और गले में साँप लपेट रक्खा है। इससे सर्वाभिभावकता द्योतित होना है। काल को गले का हार बनाया है।

चलत्कुंडलं भ्रूसुनेत्रं विशालं। प्रसन्नाननं नीलकंठं दयालं ॥
मृगाधीश चर्मांबरं मुंडमालं। प्रियं शंकरं सर्वनाथं भजामि ॥

अर्थ : कानों में कुण्डल हिल रहे हैं। भौहें सुन्दर हैं। विशाल नेत्र हैं। मुख पर प्रसन्नता है। नीलकण्ठ है, बड़ी दया है। व्याघ्राम्बर धारण किये हुए हैं। मुण्डमाल पहने हुए हैं। प्रिय शङ्कर सबके स्वामी हैं उन्हीं को मैं भजता हूँ।

व्याख्या : कुण्डल की झलक की अत्यन्त चमक से उसका हिलना कहा अथवा आनन्द के उद्रेक में सिर हिलाते हैं। अतः कुण्डल हिल रहा है। काम के धनुष सी भौंह बड़ी सुन्दर है। विशाल कमल से नेत्र हैं। हृदय में अनुग्रह है। अतः मुख प्रसन्न है : जरत सकल सुरवृंद विषम गरल जेहि पान किय। तेहि न भजसि मन मंद को कृपाल संकर सरिस। नीलकण्ठ होना ही उनके महादेव होने का प्रमाण है। इसीलिए साथ ही दयाल कहा। क्रोध को जय किया है इसलिए व्याघ्राम्बर हैं। विश्वरूप हैं इसलिए मुण्डमाल है। सब मुण्ड उन्हीं के हैं। व्याघ्राम्बर धारण करने तथा मुण्डमाली होने पर भी प्रिय हैं क्योंकि शङ्कर हैं। कल्याण करनेवाले हैं। सब के नाथ हैं। उन्हीं का मैं भजन करता हूँ।

प्रचंडं प्रकृष्टं प्रगल्भं परेशं। अखंडं अजं भानु कोटि प्रकासं ॥
त्रयः शूल निर्मूलनं शूलपाणिं। भजेहं भवानीपतिं भावगम्यं ॥

अर्थ : प्रचण्ड, श्रेष्ठ, प्रगल्भ, परेश, अखण्ड, अज, कोटि सूर्य के समान प्रकाशवाले तीनों शूल के निर्मूल करनेवाले शूलपाणि भावगम्य भवानीपति को मैं भजता हूँ।

व्याख्या : प्रचण्ड से बलातिशय कहा। प्रकृष्ट से गुणातिशय कहा। प्रगल्भ से दुर्दमनीयता कहा। परेश से परमेश्वर कहा। अखण्ड से पूर्ण कहा : पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते। वह भी पूर्ण है यह भी पूर्ण है। पूर्ण से पूर्ण ही निकलता है और पूर्ण में से पूर्ण जब निकल जाता है फिर भी पूर्ण बच जाता है। अतः वह निरवयव है। इसीलिए अज हैं। सावयव पदार्थ का ही जन्म है निरवयव का जन्म नहीं होता। फिर भी कार्यकारिता ऐसी है कि कोटि सूर्य का सा प्रकाश है। क्योंकि वह ज्योतियों का भी ज्योति है। यथा : ज्योतिषामपि तज्ज्योतिस्तमसः परमुच्यते। वह ज्योतियों की भी ज्योति है उसे तम से परे कहा

गया है। वह शूलपाणि है शूल उसके वशवर्ती हैं। अतः त्रिविध शूल का वही निर्मूल करनेवाला है। क्योंकि तमोरूपी अविद्या ही सब क्लेशों का मूल है और अविद्या का नाश उसी के प्रकाश से होता है। जो ज्योतियों का भी ज्योति है अर्थात् चित्प्रकाश है वही भवानीपति अर्थात् महामायापति भाव से ही जाना जाता है। अतः द्विजदेव कहते हैं कि उन्हीं का मैं भजन करता हूँ।

कला तीत कल्याण कल्पांतकारी। सदा सज्जनानंद दाता पुरारी ॥
चिदानन्द संदोह मोहापहारी। प्रसीद प्रसीद प्रभो मन्मथारी ॥

अर्थ : आप कलाओं से परे कल्याण तथा कल्पान्त करनेवाले हैं। आप त्रिपुर के नाश करनेवाले सदा सज्जनों को आनन्द देनेवाले हैं। आप चिदानन्द की राशि हैं। मोह के हरण करनेवाले हैं। कामदेव के शत्रु हैं। आप कृपा करें कृपा करें।

व्याख्या : निष्कल ब्रह्म होने से कलातीत कहा। एष सर्वज्ञ एष सर्वेश्वर एष सवान्तर्यामी एष योनिः सर्वस्य प्रलयाप्ययौ हि भूतानाम्। यह सर्वज्ञ हैं। सर्वेश्वर हैं। सर्वान्तर्यामी हैं। सबके उत्पत्तिस्थान हैं। प्राणियों के सृष्टि प्रलय रूप हैं। ऐसा श्रुति कहती है इसलिए कल्याणकल्पान्तकारी कहा। सज्जनों की रक्षा के लिए ही त्रिपुर का नाश किया। जिसमें एक सहस्र वर्ष तक लक्ष्य बाँधे रह जाना पड़ा। इसलिए सज्जनानन्ददाता पुरारी कहा।

शिवजी की मूर्ति प्राकृत नहीं है सच्चिदानन्दमयी है। उसकी उपासना से मोह का नाश होता है। काम के तो शत्रु ही हैं। अतः द्विजदेव प्रार्थना कर रहे हैं कि आप प्रसन्न हों प्रसन्न हों। मेरे मोह और काम का नाश करें।

न यावद् उमानाथ पादारविंदं। भजन्तीह लोके परे वा नराणां ॥
न तावत्सुखं शांति संताप नाशं। प्रसीद प्रभो सर्व भूताधिवासं ॥

अर्थ : जब तक उमा नाथ के चरणकमल का भजन मनुष्य नहीं करते तब तक इस लोक या परलोक में वह सुख नहीं पाते और शोक सन्ताप का नाश नहीं होता। हे समस्त जीवों के निवासस्थान प्रभो! आप प्रसन्न हों।

व्याख्या : उमा माया है शिव भगवान् उनके पति हैं। यथा : तुम माया भगवान सिव सकल जगत पितु मात। अतः जब तक मनुष्य मायानाथ शिव को नहीं भजता तब तक माया के फन्दे में पड़ा हुआ दुःख पाता है। उसे न इस लोक में सुख मिलता है : न परलोक में सुख मिलता है न शान्ति मिलती है न सन्ताप का नाश होता है। द्विजदेव कहते हैं कि हे सर्वभूताधिवास! हे सर्वाधिष्ठान! आप प्रसन्न हों आपकी प्रसन्नता से ही मायाबन्धन से विनिर्मुक्त होकर सुखी होना सम्भव है।

न जानामि योगं जपं नैव पूजां। नतोऽहं सदा सर्वदा शंभु तुभ्यं ॥
जराजन्म दुःखौघ तातप्यमानं। प्रभो पाहि आपन्नमामीश शंभो ॥

अर्थ : न मैं योग जप जानता हूँ न पूजा जानता हूँ। हे शम्भो! मैं तो सदा

और सब समय आप ही को नमस्कार करता हूँ। हे प्रभो ! बुढ़ापा और दुःखों के समूह से जलते हुए मुझ दुःखी का दुःखों से रक्षा कीजिये। हे ईश्वर ! हे शम्भु ! मै आपको नमस्कार करता हूँ।

व्याख्या : सतयुग त्रेता द्वापर पूजा मख अरु जोग। सो मैं तीनों युग के धर्मों में से कोई भी नहीं जानता। मैं तो सदा सर्वदा आपको नमस्कार करता हूँ। द्विजदेव यद्यपि दिन रात वैदिक पूजा हो शिवजी को किया करते थे। परन्तु यथार्थ शिवपूजा क्या है उसे समझते हुए उन्हें अपनी उपासना अकिञ्चित्कर मालूम होती थी। अतः अपने साधनों का भरोसा न करके शिवजी की कृपा का भरोसा किये हुए : सदा नमो नमः का आश्रय ग्रहण किये हुए हैं। अब शिवजी से जरामरण से छुटकारा पाने के लिए प्रार्थना करते हैं।

रुद्राष्टकमिदं प्रोक्तं विप्रेण हरतुष्टये।
ये पठन्ति नरा भक्त्या तेषां शंभुः प्रसीदति ॥

अर्थ : यह रुद्राष्टक शिवजी को सन्तुष्ट करने के लिए ब्राह्मण द्वारा कहा गया है। इसका पाठ जो भक्तिपूर्वक करते हैं उन पर शिवजी प्रसन्न होते हैं।

व्याख्या : इस स्तोत्र का नाम रुद्राष्टक है। इसके ऋषि द्विजदेव हैं। हर की तुष्टि में इसका विनियोग है। यह स्तुति पूर्वाभाद्रपद नक्षत्र हैं। इसमें दो तारे सगुण निर्गुण चमकते हैं। इसकी मञ्चाकृति है। मञ्च विश्राम के लिए होता है। यह स्तुति भी विश्राम के लिए है।

दो. सुनि बिनती सर्बग्य सिव, देखि बिप्र अनुरागु।
पुनि मंदिर नभ बानी, भइ द्विजवर बर माँगु ॥१०८ क.
जौं प्रसन्न प्रभु मोपर, नाथ दीन पर नेहु।
निज पद भगति देह प्रभु, पुनि दूसर बर देहु ॥१०८ ख.
तव माया बस जीव जड़, संतत फिरहि भुलान।
तेहि पर क्रोध न करिअ प्रभु, कृपासिंधु भगवान ॥१०८ ग.
संकर दीन दयाल अब, इहि पर होहु कृपाल।
साप अनुग्रह होइ जेहि, नाथ थोरही काल ॥१०८॥

अर्थ : सर्वज्ञ शिवजी ने यह विनती सुनी। ब्राह्मण का प्रेम देखकर फिर मन्दिर में आकाश वाणी हुई कि हे द्विजश्रेष्ठ वर माँगो।

हे प्रभो ! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं और हे नाथ ! यदि दीन पर आपका स्नेह है तो अपने चरणकमलों की दृढ़ भक्ति दीजिये। फिर दूसरा यह वर दीजिये कि : आपकी माया के वश सदा जीव भूले फिरते रहते हैं। हे कृपा के समुद्र भगवान् ! उन पर क्रोध न कीजिये।

हे दीनों पर दया करनेवाले शङ्कर ! अब इस पर कृपालु होइये। जिससे हे नाथ ! थोड़े ही समय में इसका शाप से छुटकारा हो जाय।

व्याख्या : शिवजी सर्वज्ञ हैं। भूत भविष्य सब जानते हैं। जब ब्राह्मण की विनती सुनी और उनका प्रेम देखा तो उनकी प्रेरणा से फिर मन्दिर में आकाशवाणी हुई : वरं ब्रूहि वरं ब्रूहि। परन्तु द्विजवर सम्बोधन करके हुई। जिसमें भुसुण्डि अपने प्रति न समझ लें। शिवजी आशुतोष हैं थोड़े में ही प्रसन्न होते है। यथा : दीन दयाल द्रवत सुठि थोरे। सकत न देखि दीन कर जोरे। ब्राह्मण जन्म से ही दीन होते हैं। इसी से भगवान् को प्रिय हैं। यथा : दीनं सूते ब्राह्मणी याचितारम्।

शिवजी का कोप या अनुग्रह अमोघ है। अतः ब्राह्मण बोले कि यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं और दीन पर स्नेह है तो दुर्लभ वर माँगता हूँ वही दीजिये। वह दुर्लभ वर यह है कि अपने चरणकमलों की दृढ़ भक्ति दीजिये। सरकार ने दो बार वर वर कहा। इसलिए दूसरा वर भी दीजिये।

परबस जीव स्वबस भगवन्ता। जीव तो परवश है। आपकी माया के वश हैं वह जैसा नचाती है वह वैसा ही जीव नाचता है। वह जड़ है। यथा : संघातश्चेतना धृतिः। वह सदा अपने स्वरूप को भूला हुआ फिरता है। वस्तुतः उसका कोई अपराध नहीं है। सरकार कृपासिन्धु हैं। भगवान् हैं। उसके अपराध पर दृष्टि न दीजिये। वह दया का पात्र है क्रोध का नहीं। देखिये सरकार के क्रोध करने पर किस भाँति काँप रहा है।

हे कल्याण करनेवाले ! आप से कल्याण ही होता है। क्रोध करके भी आप कल्याण ही करते हैं। आपने उसे क्रोध करके शाप दिया। इससे भी उसका कल्याण ही हुआ। गुरुद्रोह करने से जो नरक होता है वह तो इसे होगा नहीं क्योंकि आप ने दण्ड दे दिया। अब यह दीन है : इसपर कृपा करके शापानुग्रह करिये। सर्प तो इसे होना ही पड़ेगा पर थोड़े ही दिन के लिए हो। आपक वचन की अमोघता भी बनी रहे और शापानुग्रह भी हो जावे।

एहि कर होइ परम कल्याना। सोइ करहु अब कृपानिधाना ॥
बिप्र गिरा सुनि परहित सानी। एवमस्तु तब भइ नभ बानी ॥१॥

अर्थ : हे कृपानिधान ! अब वही कीजिये जिसमें इसका परम कल्याण हो। परोपकार से सनी हुई ब्राह्मण की वाणी सुनकर तब फिर आकाश में शब्द हुआ : एवमस्तु ऐसा ही हो।

व्याख्या : राखै गुरु जो कोप बिधाता। इस समय शिवजी के कोप से गुरु रक्षा कर रहे हैं। शापानुग्रह ही नहीं माँगा यह भी माँग रहे हैं कि इसका अब परम कल्याण हो ऐसा ही कीजिये। आप कृपानिधान हैं इस पर भी कृपा कीजिये। आप ईश्वर हैं जीव की दुर्गति सुगति आपके हाथ में है। आप के चाहने से ही इसका परम कल्याण सम्भव है। अतः दूसरा वर यही है कि इसका अब परम कल्याण हो।

ब्राह्मण की वाणी परहित से सनी थी। अपने लिए जो दृढ़ भक्ति माँग। उसमें भी परहित सना हुआ था। जब दृढ़ भक्ति हो जायगी तो भक्त के मनोरथ की अवश्य पूर्ति करेंगे। सो शिवजी ने देखा कि यह ब्राह्मण तो परहित के लिए वर माँगता है। अतः आकाशवाणी द्वारा एवमस्तु कहा। एवमस्तु शब्द दोनों वरदानों के प्रति कहा गया।

जदपि कीन्ह एहि दारुन पापा। मैं पुनि दीन्ह क्रोध करि स्रापा॥
तदपि तुम्हारि साधुता देखी। करिहौं येहि पर कृपा बिसेखी ॥२॥

अर्थ : यद्यपि इसने घोर पाप किया है और मैंने इसे क्रोध करके शाप भी दे दिया। फिर भी तुम्हारी साधुता देखकर इस पर विशेष कृपा करूँगा।

व्याख्या : आकाशवाणी कह रही है कि इसका ऐसा घोर पाप है कि क्षमा योग्य नहीं है। सद्यः फल इसका होना चाहिए। अत्युग्रपुण्यपापानामिहैव फलमश्नुते। त्रिभिर्वर्षैस्त्रिभिर्मासैः त्रिभिः पक्षैस्त्रिभिर्दिनैः। सो मैंने क्रोध करके दण्डपात भी कर दिया इसे शाप भी दे दिया। अब इसमें किसी प्रकार के परिवर्तन के लिए स्थान नहीं है। पर मैं तुम्हारी साधुता से बड़ा प्रसन्न हूँ। यथा : पर उपकार वचन मन काया। संत सहज सुभाव खगराया। तुम सन्त हो तुम्हारे ख्याल से इस पर विशेष कृपा करूँगा। क्योंकि मेरी कृपा ही कल्याण रूपी है।

छमासील जे पर उपकारी। ते द्विज मोहि प्रिय जथा खरारी॥
मोर साप द्विज ब्यर्थ न जाइहि। जनम सहस अवस्य यह पाइहि ॥३॥

अर्थ : हे ब्राह्मण! जो क्षमाशील और परोपकारी हैं वे मुझे विष्णु भगवान् की भाँति प्यारे हैं। मेरा शाप तो व्यर्थ जा नहीं सकता। यह हजार शरीर अवश्य पावेगा।

व्याख्या : शिवजी कहते हैं कि मुझे सबसे प्यारे विष्णु भगवान् है। पर वे भी मुझे विष्णु से ही प्यारे हैं जो क्षमाशील और परोपकारी हैं। भाव यह है कि तुम में ये सब गुण हैं। अतः तुम भी मुझे विष्णु के सदृश ही प्यारे हो। तुम्हारे सङ्कोच से मैं इसका परम कल्याण करूँगा। इतना तो होकर ही रहेगा कि हजारों बार इसे शरीर धारण करना होगा। यहाँ हजार से अयुत : दस हजार ही अभिप्रेत है। क्योंकि अन्य कोई संख्या दी नहीं है।

जनमत मरत दुसह दुख होई। येहि स्वल्पौ नहि ब्यापिहि सोई॥
कवनेउ जनम मिटिहि नहि ग्याना। सुनहि सूद्र मम बचन प्रवाना ॥४॥

अर्थ : जन्म लेने और मरने में असह्य दुःख होता है। सो इसे कुछ भी न होगा। किसी जन्म में भी इसका ज्ञान नहीं मिटेगा। हे शूद्र! मेरे प्रमाण वचन सुन।

व्याख्या : जन्म के लिए शाप हो गया। वह अन्यथा नहीं हो सकता। पर ब्राह्मण के सङ्कोच से शापानुग्रह कर रहे हैं। कहते हैं कि जन्म तो होगा पर जन्मते

और मरते समय जो बड़ा भारी दुःख होता है सो न होगा। मर्तव्यमिति यद्दुःखं पुरुषस्योपजायते। शक्यते नानुमानेन परेण परिवर्णितुम्। इसी भाँति जन्म में भी योनियन्त्र से बाहर होने में असह्य दुःख होता है। जब ये दुःख ही न होंगे तो जन्म मरण होता रहे हानि ही क्या है।

एक बात और है कि एक जन्म की स्मृति दूसरे जन्म में मोह के कारण नहीं रहती। शिवजी ने भुसुण्डि को उससे भी विनिर्मुक्त किया। कह दिया कि : कवनेउ जन्म मिटिहि नहि ज्ञाना। तभी भुसुण्डिजी कहते हैं : सुधि मोहि नाथ जन्म बहु केरी। सिव प्रसाद मति मोह न घेरी। ज्ञान देकर शिवजी अब भक्ति देते हैं। अतः भुसुण्डिजी को सम्बोधन करके कहते हैं कि मेरे वचन प्रमाण हैं उसे सुन।

रघुपति पुरी जनम तव भयऊ। पुनि तैं मम सेवा मन दएऊ ॥
पुरी प्रभाव अनुग्रह मोरे। राम भगति उपजिहि उर तोरे ॥५॥

अर्थ : रामजी की पुरी में तुम्हारा जन्म हुआ। तिस पर तुमने सेवा में मन लगाया। अतः पुरी के प्रभाव और मेरे अनुग्रह से रामजी की भक्ति तेरे हृदय में उपजेगी।

व्याख्या : पहिली बात यह है कि जो किसी जन्म में भी अवध वास करता है वह घूमघामकर राम परायण हो ही जाता है। यथा : कवनेहु जन्म अवध बस जोई। राम परायण सो परि होई। और तेरा तो जन्म ही अवध में हुआ है। अतः राम परायण होने की योग्यता का बीज तुझ में पड़ चुका है। दूसरी बात यह है कि मेरी सेवा करने का फल भी यही है कि उसे रामजी के चरणों में भक्ति हो। यथा : सिव सेवाकर फल सुत सोई। अविरल भक्ति रामपद होई। मैं सेवा से प्रसन्न होकर अपने सेवक को रामभक्ति देता हूँ। तूने मेरी सेवा में मन लगाया। सो रामभक्ति देनेवाले दोनों कारण तुझ में एकत्रित हो गये। अतः पुरी के प्रभाव तथा मेरी कृपा से रामभक्ति तेरे हृदय में उपजेगी।

ब्राह्मण देवता ने जो दूसरा वरदान शिवजी से माँगा था कि इसका परम कल्याण हो सो शिवजी ने रामभक्ति दी। यथा : सबकर फल रघुपति पद प्रेमा। तेहि बिनु कोउ न पावै छेमा।

सुनु मम बचन सत्य अब भाई। हरि तोषन ब्रत द्विज सेवकाई ॥
अब जनि करहि बिप्र अपमाना। जानेसु संत अनंत समाना ॥६॥

अर्थ : हे भाई ! अब मेरी सच्ची बात सुनो। ब्राह्मण की सेवा करना हरितोषण व्रत है। अब ब्राह्मण का अपमान न करना। सन्त को अनन्त के समान जानना।

व्याख्या : पहिले शिवजी ने शूद्र कहकर सम्बोधन किया था। अब भक्ति दे दिया इसलिए भाई कहकर सम्बोधन करते हैं। सत्य इसलिए कहते हैं कि जिसमें अर्थवाद का भ्रम न हो और वह सत्य बात है कि यह एक व्रत है जिसे हरितोषण

व्रत कहते हैं। इस व्रत से भगवान् तुष्ट हो जाते हैं। वह व्रत ब्राह्मण की सेवा है। सो अब ब्राह्मण का अपमान न करना। ब्राह्मण की सेवा करना। अपमान करने से मेरे वरदान देने पर भी पतन होने की आशङ्का है। सदा यह भावना रखना कि सन्त और भगवन्त में कोई अन्तर नहीं है। भुसुण्डिजी हरिजन और द्विज को देखने से जलते थे। अतः ऐसा उपदेश दिया।

इंद्र कुलिस मम सूल बिसाला। कालदंड हरिचक्र कराला ॥
जो इन्हकर मारा नहि मरई। बिप्र द्रोह पावक सो जरई ॥७॥

अर्थ : इद्र का वज्र और मेरा त्रिशूल विशाल है। काल का दण्ड तथा विष्णु का चक्र कराल है। जो इनका मारा नहीं मरता वह ब्राह्मणों के द्रोह रूपी आग में पड़कर भस्म हो जाता है।

व्याख्या : अब प्रश्न यह उठता है कि क्या शिवजी के वरदान के बाद भी पतन का भय है। क्या कोई ऐसी भी वस्तु है जो शिव के वरदान से भी प्रबल हो। इस पर कहते हैं कि चार अस्त्र अमोघ हैं। इन्द्र का वज्र मेरा त्रिशूल काल का दण्ड और विष्णु भगवान् का चक्र : यदि कोई इनसे भी अवध्य हो तो वह भी ब्राह्मण के द्रोहाग्नि से नहीं बच सकता। अतः ब्राह्मण के अपमान को छोड़कर और प्रकार तेरे पतन का नहीं है। अतः उससे सावधान रहना।

अस बिबेक राखेहु मन माहीं। तुम्ह कह जग दुर्लभ कछु नाहीं ॥
अवरउ एक अवसिषा मोरी। अप्रतिहत गति होइहि तोरी ॥८॥

अर्थ : ऐसा विवेक मन में रखना : तुमको संसार में कुछ भी दुर्लभ न होगा। और भी मेरा एक आशीर्वाद है कि तुम्हारी गत्ति कहीं रुकेगी नहीं।

व्याख्या : पावक और विप्ररोष पावक में बड़ा अन्तर है। अग्नि तो दाह्य वस्तु का दाह करता है और ब्राह्मण की द्रोहाग्नि तो सम्पूर्ण कल्याण का दाह कर देती है। इस विवेक को मन में रखना हरितोषण व्रत करना। तुम्हारे लिए कुछ भी दुर्लभ न होगा। जो चाहोगे मिल जायगा। अवढर दानी जब द्रवीभूत होते हैं तो क्या नहीं देते। कहते हैं कि उपर्युक्त बातें तो सब द्विजदेव के वरदान के अन्तर्गत हैं। अब मैं एक आशीर्वाद भी अपनी ओर से देता हूँ कि तेरी गत्ति कहीं रुकेगी नहीं। चाहे कैलास में जाओ चाहे बैकुण्ठ जाओ चाहे मेरु पर्वत पर जाओ।

दो. सुनि सिव बचन हरषि गुर, एवमस्तु इति भाखि।
मोहि प्रबोधि गए गृह, संभु चरन उर राखि ॥१०९ क.

प्रेरित काल बिधि गिरि, जाइ भएउँ मैं ब्याल।
पुनि प्रयास बिनु सो तनु, तजेउँ गए कछु काल ॥१०९

जोइ तन धरौं तजौं पुनि, अनायास हरिजान ।
जिमि नूतन पट पहिरै, नर परिहरै पुरान ॥१०९ ग.
सिव राखी स्रुति नीति अरु, मैं नहि पावा क्लेस ।
एहि बिधि धरेउँ बिबिध तनु, ज्ञान न गएउ खगेस ॥१०९॥

अर्थ : शिवजी का वचन सुनकर गुरुजी हर्षित होकर एवमस्तु ऐसा बोलकर हृदय में शम्भु चरण को रखकर घर चले गये।

काल की प्रेरणा से मैं विन्ध्याचल जाकर साँप हुआ। फिर कुछ काल बीतने पर उस शरीर को अनायास छोड़ दिया।

जो ही शरीर धारण करता उसी को हे गरुड़जी अनायास ही छोड़ देता। जैसे नया कपड़ा पहनकर मनुष्य पुराना छोड़ देता है।

शिवजी ने वेद की नीति की रक्षा की और मुझे क्लेश भी नहीं हुआ। इस भाँति अनेक शरीर धारण किया पर हे पक्षिराट्, मेरा ज्ञान बराबर बना रहा।

व्याख्या : सुनु मम बचन सत्य अब भाई। हरि तोषन व्रत द्विज सेवकाई। से लेकर अवरउ एक आसिखा मोरी। अप्रतिहत गति होइहि तोरी। तक शिवजी का बचन है। इसके पहिले जो कहा था सो वरदान विषयक था। शाप सुनकर गुरुजी ने हाहाकार किया था। आशीर्वाद सुनकर हर्षित हो गये। एवमस्तु कहकर उस आशीर्वाद का अनुमोदन करते हैं कि यही मेरी भी इच्छा थी। अब इसका परम कल्याण हो गया।

दो. अल्प कष्ट ही में मिटयो सङ्कट बिकट तुम्हार।
करुणानिधि शंकर कियो तोपै कृपा अपार॥
शापानुग्रह कीन्ह पुनि दीन्ह सुभग वरदान।
अनायास जेहि ते सधे मुदमङ्गल कल्यान॥
जन्म भरन को नष्ट नहिं बाध ज्ञान को होय।
रामभक्ति उर अंकुरित जीवन मुक्ती सोय॥
जाको गति प्रतिहत नहीं ताको वड़ अधिकार।
सुरपुर हरिपुर नागपुर सो करि सकत बिहार॥
सावधान ह्वै हिय धरौ जो दीन्ह्यो उपदेश।
कीन्हे द्विज अपमान विनु संभव तोहि न क्लेश॥

शिवजी का वर सुना कि : कौनेउ जनम मिटिहि नहि ग्यान। अतः उसे ज्ञानोपदेश करने लगे कि इस समय का दिया हुआ ज्ञान सदा के लिए स्थायी हो जायगा। अतः शिष्य का कल्याण करके अपने को कृतकृत्य माना और घर चले गये।

शरीर छूटने का भी देश काल निश्चित है। उसी देश और उसी काल में शरीर छूटेगा। शिवजी काल के काल हैं। उनकी इच्छानुसार काल की प्रेरणा से मैं विन्ध्यगिरि चला गया और वहाँ शूद्र का शरीर छूटकर मुझे सर्पका शरीर मिला।

शिवजी ने कहा ही था कि : सर्प होहु खल मल मति व्यापी। मुझे मरने का दुख नहीं हुआ। जन्म लेने का कष्ट नहीं हुआ। कुछ काल के बाद सर्पवाला शरीर भी छूटा उसमें भी कोई आयास नहीं हुआ। बल्कि दूसरा शरीर मिलने में प्रसन्नता ही रही। अतः उपमा देते हैं कि जैसे कोई नया कपड़ा पहनकर पुराना उतार देता है।

शिवजी ने वेद की नीति की रक्षा भी की। यथा : जौ नहि दंड करौं खल तोरा। भ्रष्ट होइ स्रुति मारग मोरा। सो श्रुति मार्ग की रक्षा शिवजी ने की। मुझे दण्ड दिया और मुझे क्लेश भी नहीं हुआ। मेरे ऊपर उनकी ऐसी कृपा हो गयी कि जन्म मरण के क्लेश से तो मैं उसी समय विनिर्मुक्त हो गया। इस प्रकार शाप में कहे हुए जन्म समूह की संख्या की पूर्ति हुई। और मेरा ज्ञान ज्यों का त्यों बना रहा।

त्रिजग देव नर जो तनु धरऊँ। तहँ तहँ राम भजन अनुसरऊँ ॥
एक सूल मोहि बिसर न काऊ। गुरु कर कोमल सील सुभाऊ ॥१॥

अर्थ : तिर्यक्, देवता या नर जो ही शरीर मैं धारण करता था वहाँ वहाँ रामजी का भजन करता था। एक शूल मुझे कभी नहीं भूलता था और वह था गुरुजी का कोमल शील और स्वभाव।

व्याख्या : तिर्यक् योनि तामस है। देवयोनि सात्त्विक है। नर योनि राजस है। सो शरीर तो कर्मवश सब प्रकार के मिलते गये। पर ज्ञान ज्यों का त्यों बना रहा। शिवजी की कृपा से भक्ति भी रामजी की हो गयी। अतः भजन मेरा चलता रहा। यथा : जेहि जोनि जन्मौं कर्म बस तहँ राम पद अनुरागऊँ।

वियोग में प्रेमी के गुण शूल की भाँति चुभते हैं। बिछुरत एक प्रान हरि लेहीं। सो अति कृपाल गुरु स्वल्प न क्रोधा। पुनि पुनि मोहि सिखाव सुबोधा। यह कोमल शील स्वभाव आज भी हृदय में चुभता है कि ऐसे महापुरुष से मैं द्रोह करता रहा। अपने में दोष रहने से गुण का दर्शन नहीं होता। अतः उस समय गुरुजी के गुणों की कदर नहीं कर सका। आज उन्हें स्मरण करके पश्चात्ताप होता है।

चरम देह द्विज कै मैं पाई। सुर दुर्लभ पुरान स्रुति गाई ॥
खेलौं तहूँ बालकन्ह मीला। करौं सकल रघुनायक लीला ॥२॥

अर्थ : मैंने अन्तिम शरीर ब्राह्मण का पाया। जिसे पुराण और वेद देवदुर्लभ बतलाते हैं। मैं वहाँ बालकों से मिलकर खेलता था और रामजी की सब लीलाएँ करता था।

व्याख्या : ब्राह्मण शरीर से मुक्ति की अधिक सम्भावना रहती है। शाप से जो शरीर मिलता गया उनमें यह ब्राह्मण शरीर अन्तिम था। अथवा जिस शरीर से मुक्ति होती है पुरुष आवागमन से मुक्त होता है उसे चरम शरीर कहते हैं। मनुष्य का शरीर सुरदुर्लभ है। यथा : बड़े भाग मानुष तनु पावा। सुर दुर्लभ सब

ग्रन्थन्ह गावा। उस पर भी ब्राह्मण शरीर प्राप्त करना बड़े पुण्य का फल है। इसमें वेद पुराणादि सभी प्रमाण हैं।

शापमुक्त होते ही परम कल्याण का मार्ग हाथ लगा। श्रीरामजी की लीला में बचपन से ही अनुराग हुआ। लड़कों में खेलने के समय रामलीला का अभिनय ही खेलता था। मम लीला रति अति मन माहीं : का साफल्य।

प्रौढ़ भए मोहिं पिता पढ़ावा। समुझौं सुनौं गुनौं नहि भावा॥
मन तें सकल बासना भागी। केवल रामचरन लय लागी॥३॥

अर्थ : बड़े होने पर मुझे पिता ने पढ़ाया। मैं समझता था सुनता था मनन करता था। फिर भी मुझे अच्छा नहीं लगता था। मन से सब वासना जाती रही। केवल रामचरण में लव लग गयी।

व्याख्या : लालयेत् पञ्चवर्षाणि दशवर्षाणि ताडयेत्। प्राप्ते तु षोडशे वर्षे पुत्रं मित्रवदाचरेत्। पाँच वर्ष तक बच्चों का लाड़प्यार करना चाहिए। दस वर्ष तक ताड़ना करना चाहिए। सोलहवाँ वर्ष लगने पर पुत्र के साथ मित्र की भाँति बरताव करनी चाहिए। सो पाँच वर्ष तक बच्चों के साथ खेलते रहे। जब पढ़ने योग्य हुए तो स्वयं उनके पिताजी पढ़ाने लगे। पिताजी की आज्ञा से भुसुण्डिजी पढ़ने लगे। पाठ ग्रहण के समय समझने का प्रयत्न करने लगे। तत्पश्चात् उसका मनन भी करते थे। परन्तु अच्छा नहीं लगता था। क्योंकि मन से सब वासनाएँ भाग गयीं। विद्या की भी वासना नहीं रह गयी। केवल रामजी के चरणों में लव लग गया।

कहु खगेस अस कवन अभागी। खरी सेव सुरधेनुहि त्यागी॥
प्रेम मगन मोहि कछु न सोहाई। हारेउ पिता पढ़ाइ पढ़ाई॥४॥

अर्थ : हे पक्षिराट् बतलाइये ऐसा कौन अभागी है जो कामधेनु का परित्याग करके गधी की सेवा करे। मैं प्रेम में मग्न था। मुझे कुछ भी अच्छा नहीं लगता था। पिताजी पढ़ा पढ़ाकर हार गये।

व्याख्या : कुछ लोग ऐसे हैं जो गधी की सेवा करते हैं। पर भाग्यवान् कोई गधी की सेवा नहीं करता। प्रायेण अभागे लोग ही गधी की सेवा करते हैं। उन्हें गाय प्राप्त नहीं है। अतः गधी की सेवा की ही जीविका करते हैं। यदि गाय की प्राप्ति उन्हें हो तो वे भी गधी की सेवा न करें। ऐसा अभागी तो कोई भी न मिलेगा जो कामधेनु के मिलने पर उसका त्याग करके खरी : गधी का सेवन करे। सो भुसुंडिजी कहते हैं कि मुझे शिवजी की कृपा से रामचरण में आसक्ति की प्राप्ति हो गयी थी। उसे त्याग करके कुहक विद्या वैषयिक वासना की ओर प्रवृत्ति मुझे किसी प्रकार से नहीं होती थी।

मैं प्रेम में मग्न था मुझे कुछ भी अच्छा नहीं लगता था और बिना अच्छा लगे विद्या आती नहीं। पिताजी परिश्रम करके पढ़ाते थे। मैं उनकी आज्ञा मानकर

पढ़ने में परिश्रम भी करता था। परन्तु मन के न लगने से मुझे विद्या आती नहीं थी। अतः पिताजी भी हार गये। समझ लिया कि यह न पढ़ेगा।

भए काल बस जब पितु माता। मइ बन गएउँ भजन जन त्राता॥
जहँ जहँ बिपिन मुनीस्वर पावौं। आस्रम जाइ जाइ सिर नावौं॥५॥

अर्थ: जब पिता माता मर गये। तब मैं भक्तों के रक्षक भगवान् के भजन के लिए वन में गया। जहाँ जहाँ वन में मुनीश्वरों को पाता था उनके आश्रमों में जाकर उनकी वन्दना करता था।

व्याख्या: पहिले पिता मरे पीछे माता मरीं। मैं वैराग्य होने पर भी उनके जीवन काल तक उनकी सेवा में ही रहा। क्योंकि माता पिता की सेवा छोड़कर वनस्थ होने का विधान नहीं है। जब माता पिता दोनों मर गये तब मैं वन में भगवान् के भजन के लिए गया। भगवान् जनत्राता हैं। वन में भी रक्षा करते हैं। अरक्षितस्तिष्ठति दैवरक्षितः। जिसे सांसारिक विषय नहीं सोहाता है उनके लिए वन ही शरण है। जन संबाध से दूर रहकर ही ठीक रीति से भजन हो सकता है। अतः मैं वन में चला गया।

वन में मुनीश्वरों के आश्रम मिले। अब मेरी भक्ति हरिजन और ब्राह्मणों पर हो गयी थी। अतः उनके आश्रमों में जा जाकर उन्हें प्रणाम करता था।

बूझौं तिन्हहि राम गुन गाहा। कहहिं सुनौं हरषित खगनाहा॥
सुनत फिरौं हरिगुन अनुवादा। अव्याहत गति संभु प्रसादा॥६॥

अर्थ: उन लोगों से मैं रामगुण गाथा पूछता था। वे कहते थे और हे पक्षिराट्! मैं हर्षित होकर सुनता था। भगवान् का गुणानुवाद सुनता था। शिवजी की कृपा से मेरी गति कहीं रुकती नहीं थीं।

व्याख्या: मुनीश्वरों को प्रणाम करके मैं रामजी की गुणगाथा विषयक प्रश्न करता था। वे कृपा करके कहते थे और मैं आनन्द से सुनता था। कथा सुनने से मेरी तृप्ति नहीं होती थी। अतः मैं एक आश्रम से दूसरे आश्रम में कथा सुनता फिरता था। इस भाँति उत्तर की ओर बढ़ता ही चला गया। जाते जाते ऐसे द्वीपों में पहुँचा जहाँ मनुष्य की गति नहीं थी। पर मेरी गति रुकती नहीं थी। शिवजी का आशीर्वाद था कि: अव्याहत गति होइहि तोरी।

छूटी त्रिबिधि ईषना गाढ़ी। एक लालसा उर अति बाढ़ी॥
राम चरन बारिज जब देखौं। तब निज जनम सफल करि लेखौं॥७॥

अर्थ: तीनों प्रकार की गाढ़ी एषणा छूट गयी। एक लालसा मन में अत्यन्त बढ़ गयी कि जब रामजी के चरण कमलों का दर्शन करूँ तब अपने जन्म को सुफल मानूँ।

व्याख्या : सरकार के चरणों के दर्शन की लालसा तो पहिले से थी। परन्तु जब तक पुत्रैषणा वित्तैषणा लोकैषणा बनी रहती है तबतक वह लालसा विरल रहती है। एषणात्रय ऐसी गाढ़ी होती है कि जल्दी छूटती नहीं पर मेरी तीनों प्रकार की एषणा छूट गयी। अतः एक लालसा मन में अत्यन्त बढ़ गयी। वह वासना यह थी कि रामजी के चरणों का दर्शन हो तब मैं अपना जन्म सुफल समझूँ। यथा : उर अभिलाष निरन्तर होई। देखि अनयन परम प्रभु सोई। क्योंकि जन्म का फल तो सरकार का साक्षात्कार ही है। दर्शन होने पर फिर जन्म नहीं होता। यथा : नयन वंत रघुबरहिं बिलोकी। पाइ नयन फल होंहि बिसोकी।

जेहि पूछौं सोइ मुनि अस कहई। ईस्वर सर्बभूतमय अहई ॥
निर्गुन मत नहि मोहि सुहाई। सगुन ब्रह्मरति उर अधिकाई ॥८॥

अर्थ : जिस मुनि से मैं पूछता था वही कहते थे कि ईश्वर तो सर्वभूतमय हैं। निर्गुण मत मुझे अच्छा नहीं लगता था। सगुण ब्रह्म की भक्ति हृदय में बढ़ी हुई थी।

व्याख्या : भुसुण्डिजी कहते हैं कि तब मैं मुनियों से दर्शन का उपाय पूछने लगा। पर जिस मुनि से पूछता था वही कह देता था कि ईश्वर तो परिच्छिन्न नहीं है जो दृष्टिगोचर हो सके। वह अपरिच्छिन्न है सर्वभूतमय है। समष्टि रूप है। उसका नित्य ही दर्शन है। श्रुति भी कहती है कि : नक्षत्राणि रूपम्। बाहर क्या है? पृथिवी अप तेज वायु हैं। ईश्वर का दर्शन करना हो तो हृदय में दर्शन करो। मन की आँखों से दर्शन होगा : ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति। वह मांसचक्षु से नहीं देखा जाता।

परन्तु यह निर्गुण मत मुझे अच्छा नहीं लगता था। उन महात्माओं को निर्गुण मत ही पसन्द था। वे परम अधिकारी थे। मुझे सगुण ब्रह्म की भक्ति बढ़ी हुई थी। अतः मेरी प्रवृत्ति उस ओर नहीं हुई।

दो. गुरु के बचन सुरति करि, राम चरन मनु लाग।
रघुपति जस गावत फिरौं, छन छन नव अनुराग ॥११०॥

प्रसङ्गात् उमा के नवें प्रश्न का उत्तर

मेरु सिखर बट छाया, मुनि लोमस आसीन।
देखि चरन सिर नाएउँ, बचन कहेउँ अति दीन ॥११० क.
सुनि मम बचन बिनीत मृदु, मुनि कृपाल खगराज।
मोहि सादर पूछत भए, द्विज आइहु केहि काज ॥११० ख.
तब मैं कहा कृपानिधि, तुम सरबग्य सुजान।
सगुन ब्रह्म अवराधना, मोहि कहहु भगवान ॥११० ग.

अर्थ : गुरु के वचनों को स्मरण करके रामजी के चरणों में मन लगा रामजी का यश गाता फिरता था। क्षण क्षण में नया अनुराग उत्पन्न होता था।

सुमेरु पर्वत पर वट वृक्ष की छाया में लोमश मुनि बैठे थे। देखकर मैंने सिर नवाया और अत्यन्त दीन वचन कहे।

हे पक्षिराट्! मुनिजी बड़े कृपालु थे। मेरे विनीत और मृदु वचन सुनकर मुझसे आदर के साथ पूछने लगे कि ब्राह्मण! किस काम से आये हो।

तब मैंने कहा कि हे कृपानिधे! तुम सर्वज्ञ और सुजान हो। सगुण ब्रह्म की आराधना हे भगवन्! मुझे बतलाइये।

व्याख्या : निर्गुण मत के अच्छा न लगने का कारण कहते हैं कि गुरुजी के वचनों को याद करके रामजी के चरणों में मन लग गया था। गुरुजी ने कहा था कि : सिव सेवाकर फल सुत सोई। अबिरल भक्ति रामपद होई। रामहि भजहि तात सिव धाता। नर पांवर कर केतिक बाता। इत्यादि। अतः उन्हीं के चरणों में मन लगा उन्हीं का कीर्तन करते घूमता था। पहिले श्रवण हुआ अब कीर्तन होने लगा।

कीर्तन करते करते आगे बढ़ते चले जाते थे यहाँ तक कि मेरु पर्वत पर पहुँच गये। जहाँ मनुष्य की गति ही नहीं है। वहाँ देखा कि वट वृक्ष की छाया में लोमश ऋषि बैठे हैं। पर्वतों में उत्तम मेरु : मुनियों में उत्तम लोमश : वृक्षों में उत्तम वट वृक्ष। सो यहाँ सब संयोग जुट गया था! बड़े बड़े लोम देखकर पहिचाना कि यही लोमश ऋषि हैं। जाकर प्रणाम किया और अति दीन वचन बोले अर्थात् मुनिजी के शरण गये।

भुसुण्डिजी कहते हैं कि हे गरुड़जी! लोमश मुनि स्वभाव से ही बड़े कृपालु थे। मेरे कोमल और विनीत वचन सुनकर उन्हें दया हुई। उन्होंने मुझसे आदर के साथ पूछा। मुनिजी महा सिद्ध थे। शापानुग्रह में समर्थ थे। अतः मेरे मनोभिलाष के पूर्ण करने के लिए पूछा कि ब्राह्मण! तुम्हें क्या चाहिए।

तब मैंने कहा कि हे कृपा के समुद्र! आप तो सर्वज्ञ हैं और सुजान हैं। मन की बात जानते हैं। मेरी दशा आप से छिपी नहीं है। यथा : राम सुजान जान जनजीव। मुझे सगुण ब्रह्म की आराधना की इच्छा है। उसे मुझे कोई नहीं बतलाता। आप कृपा करके बतलाइये।

तब मुनीस रघुपति गुन गाथा। कहे कछुक सादर खगनाथा ॥
ब्रह्मज्ञान रत मुनि बिज्ञानी। मोहि परम अधिकारी जानी ॥१॥

अर्थ : हे पक्षिराट्! तब मुनीश्वर ने आदर के साथ रघुपति की कुछ गुणगाथा कही। परम विज्ञानी मुनि ब्रह्मज्ञान में निरत थे। उन्होंने मुझे परम अधिकारी जानकर :

व्याख्या : महर्षि लोमश मुनियों में श्रेष्ठ थे। बड़े मनन करनेवाले थे। शिष्य के प्ररोचनार्थ उसके पूछे हुए विषय का थोड़ा सा आदर के साथ वर्णन किया।

आदर के साथ मुझसे पूछा था और पूछने पर आदर के साथ रघुनाथ के गुण गाथ कुछ कहे। अर्थात् संक्षेप से कहा विस्तार नहीं किया। क्योंकि मुनिजी विज्ञानी थे ब्रह्मलीन थे। ब्रह्मज्ञान में निरत थे और मुझे उन्होंने परम अधिकारी जाना। सामान्य अधिकारी के लिए कर्मकाण्ड है। मध्यम के लिए उपासनाकाण्ड है और परम अधिकारी के लिए ज्ञानकाण्ड है। अतः मुनिजी ने देखा कि यह साधनसम्पन्न है। इसे ब्रह्मज्ञान ही देना चाहिए। साधन चार बतलाये गये हैं। १. नित्यानित्य वस्तु विवेक। २. इहामुत्रार्थफल भोगविराग। ३. शमादि षट् साधना सम्पत्ति और ४. मुमुक्षुत्व। सो पहिला साधन भुसुण्डिजी में था ही। यथा : समुझौं सुनौं गुनौं नहि भावा। २. दूसरा साधन भी था। यथा : मन ते सकल कामना भागी। ३. तीसरा साधन भी था। यथा : मैं बन गयउँ भजन जन त्राता। केवल मुझमें चौथे की अर्थात् मुमुक्षुत्व की कमी थी। अतः मुनिजी ने मुझे परम अधिकारी जाना।

अतः मेरी जिज्ञासानुसार उत्तम नहीं दिया। मैंने उनसे सगुण उपासना पूछा तो उन्होंने रघुनाथजी के गुणों का थोड़ा सा वर्णन करके निर्गुणोपासना ही कथन करना चाहा।

लागे करन ब्रह्म उपदेसा। अज अद्वैत अगुन हृदयेसा॥
अकल अनीह अनाम अरूपा। अनुभव गम्य अखंड अनूपा॥२॥

अर्थ : ब्रह्म का उपदेश करने लगे। जो अजन्मा है अद्वैत है निर्गुण है और हृदय का स्वामी है। कला से रहित इच्छा से रहित नाम से रहित और रूप से रहित अनुभव से जानने योग्य खण्ड रहित और उपमा रहित है।

व्याख्या : गोस्वामीजी ने ब्रह्म से निर्गुण और राम पद से प्रधानतः सगुण का ग्रहण किया है। यहाँ ब्रह्म उपदेश से निर्गुणोपासना अभिप्रेत है। पहले ब्रह्म का स्वरूप कहते हैं कि १. वह अज है : उसका जन्म नहीं होता। अनादि अपरिच्छिन्न का जन्म कैसे सम्भव है। त्रिकालाबाध्य सत्यत्व होने से २. अद्वैत कहा। गुणातीत होने से ३. अगुण कहा। सर्वान्तर्यामी होने से ४. हृदयेश कहा। निरवयव होने से ५. अकल कहा। अकाम होने से ६. अनीह कहा। नाम रूप माया का कार्य है और ब्रह्म गुणातीत माया से परे है। अतः ७. अनाम ८. अरूप कहा। इतना होने पर भी वह ९. अनुभवगम्य है। उसका अनुभव होता है। वही उसके अस्तित्व का प्रमाण है। अच्छेद्य होने से १०. अखण्ड है अथवा निरंश होने से अखण्ड है। जगत् से विलक्षण होने से ११. अनुपम हैं।

मन गोतीत अमल अबिनासी। निर्बिकार निरवधि सुखरासी॥
सो तैं ताहि तोहि नहि भेदा। बारि बीचि इव गावहि बेदा॥३॥

अर्थ : मन और इन्द्रियों से परे निर्मल, नाश रहित, विकार रहित, निःसीम और सुख की राशि हैं। वही तुम हो। तुम में और उसमें भेद नहीं। जैसे जल और तरङ्ग में भेद नहीं है। ऐसा वेद कहते है।

व्याख्या : १२. वह मन और इन्द्रिय से परे हैं। अर्थात् वह प्रत्यक्ष का विषय नहीं है। यथा : मन समेत जेहि जान न बानी। तरकि न सकहिं सकल अनुमानी। १३. वह निर्मल है। किसी विजातीय द्रव्य का उसमें स्पर्श भी नहीं। १४. उसका नाश भी कभी नहीं होता। अर्थात् वह सद्रूप है। वह १५. निर्विकार है अर्थात् एकरस है १६. वह निरवधि है अर्थात् उसकी सीमा नहीं है। वह १७. सुख राशि है अर्थात् आनन्दघन है। इस भाँति निर्गुण ब्रह्म का प्रतिपादन करके बतलाया कि वह तू है : तुझमें उसमें भेद नहीं है। ऐसा वेद कहता है कि जिस भाँति जल और तरङ्ग में भेद नहीं है उसी भाँति निर्गुण ब्रह्म में और जीव में भेद नहीं है। इस रीति से महर्षि लोमश ने भुसुण्डिजी को तत्त्वमसि महावाक्य का उपदेश किया।

बिबिध भाँति मोहि मुनि समुझावा। निर्गुन मत मम हृदय न आवा ॥
पुनि मैं कहेउँ नाइ पद सीसा। सगुन उपासन कहहु मुनीसा ॥४॥

अर्थ : मुनिजी ने मुझे अनेक भाँति से समझाया। परन्तु निर्गुण मत मेरे मन में नहीं बैठा। फिर मैंने चरणों में सिर झुकाकर कहा कि हे मुनीश ! सगुण उपासना कहिये।

व्याख्या : भुसुण्डिजी कहते हैं कि मेरे मन में यह बात नहीं बैठी। जीव ईश्वर कैसे हो सकता है ? तब मुनिजी ने भाग त्याग आदि अनेक युक्तियों से मुझे समझाया। मेरे नहीं समझने पर मुनिजी अप्रसन्न नहीं हुए। यह महा उपदेश शीघ्र मन में जमता नहीं। अतः मुनिजी ने अनेक युक्तियों से उस बात को मेरे मन में बिठाना चाहा।

तब मैंने चरणों में सिर नवाया कि बात सब ठीक है। मुझे शिरोधार्य है। पर मैंने यह पूछा नहीं था। मैंने तो सगुणोपासना पूछा था। उसे मुझे बताइये। निर्गुणोपासना तो सभी मुनि कहते थे। आप तो मुनीश हैं। आप सगुणोपासना जानते हैं। आप वही मुझे बतलाइये। अर्थात् मोहि अनुहरत सिखावन देहू।

राम भगति जल मम मन मीना। किमि बिलगाइ मुनीस प्रबीना ॥
सोइ उपदेस कहहु करि दाया। निज नयनन्हि देखौं रघुराया ॥५॥

अर्थ : राम की भक्ति जल है। मेरा मन मछली है। हे प्रवीण मुनीश्वर ! वह कैसे अलग हो सकता है। आप दया करके वही उपदेश कीजिये। जिसमें मैं अपनी आँखों से रामजी को देखूँ।

व्याख्या : मछली से कहना कि तू बन्धन में पड़ी है। जल से बाहर नहीं निकल सकती। मैं तेरा बन्धन दूर करूँगा। जल से बाहर निकालूँगा। यह संकल्प ही मछली के लिए महा अशुभ है। मछली जल को बन्धन नहीं मानती। जल उसका प्राण है। भुसुण्डिजी कहते हैं कि भक्ति भी मेरे लिए वही है जो मछली के लिए जल है। मैं भक्ति को नहीं छोड़ सकता। सोतैं ताहि तोहि नहि भेदा : कहना भक्ति से पृथक् करने के समान है। अस अभिमान जाइ जनि भोरे। मैं सेवक रघुपति पति मोरे।

भले ही आपका उपदेश सर्वोत्तम हो। पर यह मुझसे साध्य नहीं है। अतः आप मुझपर दया करिये। मेरी रुचि समझकर उसके अनुसार उपदेश दीजिये। मुझे वह उपाय बतलाइये जिसमें रघुराई को अपने आँखों से देखूँ। अनुभव गम्य से मेरा काम नहीं चलेगा :

भरि लोचन बिलोकि अवधेसा। तब सुनिहौं निर्गुन उपदेसा॥
मुनि पुनि कहि हरि कथा अनूपा। खण्डि सगुन मत अगुन निरूपा॥

अर्थ : अवधेश को आँख भरकर देखकर तब निर्गुण उपदेश सुनूँगा। तब मुनिजी ने हरि की अनूप कथा कहकर सगुन मत का खण्डन करके निर्गुण का निरूपण किया।

व्याख्या : कोई लालसा न रहे तब निर्गुण उपदेश की पात्रता आती है। इस समय मुझमें पात्रता नहीं है। अवधेश के दर्शन की लालसा है। आपके बतलाये हुए साधन से अवधेश का दर्शन कर लूँ। मेरी लालसा पूरी हो जाय तब मैं निर्गुण उपदेश सुनूँ। आपका उपदेश शिरोधार्य है पर इस समय नहीं।

मुनिजी ने भुसुण्डिजी की बात सुनकर भगवान् की अनूप कथा सुनायी। भगवान् को माया का अघटितघटनापटुत्व का वर्णन किया। पहिले गुण गाथा कहा था। इस बार चरित कहा। उपसंहार में सगुण मत का खण्डन किया कि इतना होते हुए भी सब माया ही है। भगवान् ने स्वयं कहा है : सम्भवाम्यात्ममायया। वास्तविक रूप निर्गुण ही है।

तब मैं निर्गुन मत करि दूरी। सगुन निरूपेउँ करि हठ भूरी॥
उत्तर प्रति उत्तर मैं कीन्हा। मुनि तन भए क्रोध के चीन्हा॥७॥

अर्थ : तब मैंने निर्गुण मत को दूर करके बड़े हठ से सगुण का निरूपण किया। मैंने जब उत्तर प्रत्युत्तर किया तो मुनि के शरीर पर क्रोध के चिह्न प्रकट हुए।

व्याख्या : मुनिजी की बात सुनकर भुसुण्डिजी ने देखा कि मुनिजी तो खण्डन मण्डन पर आगये। ये तो मेरे पक्ष का ही लोप किया चाहते हैं। अतः भुसुण्डिजी अब तक तो श्रोता रहे पर अब प्रतिवादी बन बैठे। पहिले उनके निर्गुण मत को ही दूर किया। निर्गुण निष्क्रिय को कोई ज्ञान का विषयीभूत कैसे कर सकता है? निर्गुण का अर्थ ही सर्वगुणमय है। निराकार का अर्थ ही सर्वाकार है। अनाम का अर्थ ही सर्वनाम है और अरूप का अर्थ ही सर्वरूप है। इस बात पर मैंने बड़ा हठ किया। क्योंकि मुनिजी की युक्ति से मेरा पक्ष ही गिर रहा था।

मुनिजी ने उत्तर दिया। मैंने उसका भी उत्तर दिया। तब तो मुनिजी के शरीर पर क्रोध के चिह्न प्रकट हुए। उन्होंने देखा कि मैंने तो इसे जिज्ञासु समझा था। जिज्ञासु का कोई पक्ष नहीं होता। मेरी बात के समझने का प्रयत्न न करके यह तो मेरे पक्ष के खण्डन पर तुल गया। अतः उन्हें क्रोध हुआ।

सुनु प्रभु बहुत अवग्या किये। उपज क्रोध ग्यानिन के हिये ॥
अति संघर्षन जो कर कोई। अनल प्रगट चन्दन ते होई ॥८॥

अर्थ : हे प्रभो ! सुनो बहुत अवहेलना करने पर ज्ञानियों के हृदय में भी क्रोध उत्पन्न हो जाता है। यदि कोई अधिक रगड़ा करे तो चन्दन से भी आग प्रकट हो जाती है।

व्याख्या : यह बात नहीं है कि ज्ञानी को क्रोध होता ही न हो। बहुत अवज्ञा करने से क्रोध होता है। भेद इतना ही है कि सामान्य लोगों को थोड़ी सी अवज्ञा में ही क्रोध हो जाता है। ज्ञानियों को ऐसा नहीं होता। यदि कोई अवज्ञा करने पर तुल ही जाय तो उन्हें भी क्रोध हो जाता है। उदाहरण देते हैं कि शमी आदि काष्ठों को थोड़ा सा रगड़ने से अग्नि प्रगट हो जाती है। पर चन्दन बड़ा शीतल है। उसमें नहीं प्रकट होती। परन्तु यदि कोई अत्यन्त रगड़ा करे तो उससे भी आग प्रकट होती है। भाव यह कि मुनिजी बड़े दयालु थे। फिर भी मेरे अधिक अवहेलना करने से उन्हें क्रोध आगया। इसमें दोष मेरा था।

दो. बारंबार सकोप मुनि, करैं निरूपन ग्यान।
मैं अपने मन बैठि तब, करौं बिबिध अनुमान ॥
क्रोध कि द्वैतबुद्धि बिनु, द्वैत कि बिनु अज्ञान।
मायाबस परिछिन्न जड़, जीव कि ईस समान ॥१११॥

अर्थ : बारम्बार मुनि जी क्रोध पूर्वक ज्ञान निरूपण करने लगे। तब मैं अपने मन में बैठकर अनेक प्रकार के तर्क करने लगा : क्या बिना द्वैतबुद्धि के क्रोध होता है और क्या बिना अज्ञान के द्वैतबुद्धि होती है ? जीव जड़ है। मायावश और परिच्छिन्न है। वह ईश के समान कैसे होगा ?

व्याख्या : पहिले तो मुनिजी के शरीर में क्रोध के चिह्न प्रकट हुए। भुसुण्डिजी कहते हैं कि फिर भी मैं उत्तर प्रत्युत्तर करता ही चला गया। अब क्रोध और बढ़ा। मुनिजी कुपित होकर ज्ञान का निरूपण करने लगे। मैंने उनकी उक्तियों और युक्तियों पर ध्यान नहीं दिया। जब वे मुझे समझाने के लिए विषय का परिष्कार करते थे तब मैं बैठकर अनेक प्रकार का अनुमान करता था। उन अनेक प्रकार के अनुमानों को दिखलाते हैं।

अद्वैत बुद्धि में क्रोध बनता नहीं। जब दो है ही नहीं तो कैसा क्रोध ? कौन करे ? और किस पर किया जाय ? अज्ञान से ही द्वैतबुद्धि होती है। मुनिजी क्रोध कर रहे हैं, अतः उनमें द्वैतबुद्धि है। फलतः अज्ञान भी नहीं है। जब स्वयं इनमें अज्ञान है तो ज्ञान की आशा किससे की जाय। ईश्वर मायापति है। जीव मायावश है। ईश्वर अपरिच्छिन्न है। जीव परिच्छिन्न है। ईश्वर चिद्रूप है। जीव जड़ रूप है। उसकी ईश्वर से क्या समानता है। अतः आक्षेपात्मक प्रश्न अपने मन में करते हैं : जीव कि ईस समान।

कबहुँक दुख सब कर हित ताके । तेहि कि दरिद्र परस मनि जाके ।।
पर द्रोही कि होंहि निःसंका । कामी पुनि कि रहहि अकलंका ।।१।।

अर्थ : सबका कल्याण चाहनेवाले को क्या कभी दुःख होता है । जिसके पास पारस मणि हो क्या उसको दारिद्रय हो सकता है ? परद्रोही क्या निर्भय रह सकता है ? और क्या कामी निष्कलङ्क रह सकता है ?

व्याख्या : जिस भाँति महर्षि लोमश ने अज अद्वैतादि सत्रह बातें ब्रह्म में दिखलाकर उसका जीव में अभेद दिखलाया । उसी भाँति भुसुण्डिजी १७ बातें जीव सम्बन्धी दिखलाते हैं । जिनसे भेद सिद्ध होता है । ब्रह्म सम्बन्धी जितनी बातें दिखलायी गयी हैं उनमें से कोई पुरुषव्यापारतन्त्र नहीं है और भुसुण्डि जिन सत्रह बातों—१. दुःख २. शङ्का ३. कलङ्क ४. वंशनाश ५. कर्म ६. सुमति ७. शुभगति ८. भव ९. सुख १०. राज ११. अर्घ १२. यश १३. अयश १४. लाभ १५. हानि १६. घोर अघ १७. धर्म को जीव में दिखलाते हैं । वे सबकी सब पुरुष व्यापार तन्त्र हैं । अतः इन युक्तियों से तथा अन्य बहुत सी युक्तियों से भी जीव का ब्रह्म के समान न होना सिद्ध करते हैं । यहाँ पर सत्रहों बातें आक्षेपात्मक प्रश्न के रूप में कही गयी हैं । जिनका उत्तर नहीं है ।

क्या सबका कल्याण चाहनेवाले को भो दुःख होता है । अर्थात् दूसरे के अहित चिन्तन विना दुःख होता नहीं । जो दूसरे को दुःख पहुँचावेगा उसे विना दुःख मिले रह नहीं सकता । यदि अपने को दुःख हो तो समझ लेना चाहिए कि मुझसे किसी प्राणो को किसी समय अवश्य दुःख पहुँचा था । जिसके पास पारस मणि है उसे दरिद्रता कहाँ ? पारस गुन अवगुन नहि जानत कंचन करत खरो । जिसके पास पारस है वह लोहे को सोना बना सकता है । उसे दारिद्रय कहाँ से आवेगा । मोह को दरिद्र कहा गया है । यथा : मोह दरिद्र निकट नहि आवा । जिसके पास परहित रूपी पारस है उसके पास मोह दरिद्र नहीं जा सकता । यथा : परहित बस जिनके मन माहीं । तिन कहँ जग दुर्लभ कछु नाहीं । परद्रोही का निःशङ्क होना असम्भव है । परद्रोही सदा सावधान रहते हैं । अस्त्र शस्त्र से सुसज्जित रहते हैं । शरीर रक्षक अथवा सेना साथ रखते हैं । इसी भाँति कामी का निष्कलङ्क रहना असम्भव है । सेवत विषय विवर्ध जिमि नित नित नूतन मार । परस्त्रीगामी न होने पर भो कामी होने से राजा ययाति को कलङ्क लगा । उन्होंने पुत्र से यौवन लेकर विषयोपभोग किया ।

बंस कि रह द्विज अनहित कीन्हे । कर्म कि होंहि स्वरूपहि चीन्हे ।।
काहू सुमति कि खल संग जामी । सुभगति पाव कि परत्रियगामी ।।२।।

अर्थ : ब्राह्मण का अपकार करने से कहीं वंश रहता है ? स्वरूप ज्ञान होने पर क्या कर्म होता है ? क्या खल के संग से किसी को सुमति हुई है ? परस्त्रीगामो को क्या कभो सुगति मिल सकती है ?

व्याख्या : ब्राह्मणद्रोही का वंश नहीं चलता। उसका वंश चलना असम्भव है। बच्चा बच्ची होने को ही वंश चलना नहीं कहते। मनुष्य का वंश पशुसंतान से नहीं चल सकता। यथा : पुत्रवती जुवती जग सोई। रघुपति भगत जासु सुत होई। न तरु बाझ भलि बादि बिआनी। राम बिमुख सुत ते हित जानी।

स्वरूप ज्ञान जिसे हो जाता है उससे कर्म हो नहीं सकता। वह कोई किया नहीं करता। लोगों के देखने में भले ही वह भिक्षाटनादि कर्म करता हो। पर अपनी दृष्टि में वह कुछ नहीं करता। लोगों का देखना उसके नैष्कर्म्य सिद्धि में बाधक हो नहीं सकता। यथा : प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः। अहङ्कारविमूढात्मा कर्ताहमिति मन्यते।

खल के सङ्ग से कुमति उत्पन्न होती है। यथा : तिनकर संग सदा दुखदाई। जिमि कपिलहिं घालइ हरहाई। सुनहु असंतन्ह केर सुभाऊ। भूलेहु संगति करिअ न काऊ। इत्यादि। उनके संग में सुमति के उत्पन्न होने की बात तो सर्वथा असम्भव है। तथा : करि कुसंग चाहत कुसल तुलसी मन अफसोस। महिमा घटी समुद्र की रावन बसा परोस। को न कुसंगति पाइ नसाई। रहै न नीच मते चतुराई।

इसी भाँति परस्त्रीगामी की शुभ गति नहीं हो सकती। यथा : जो आपन चाहइ कल्याना। सुजसु सुमति सुभगति सुख नाना। सो परनारि लिलार गोसाईं। तजौ चौथि के चंद की नाईं। तथा : सेवक सुख चह मान भिखारी। व्यसनी धन सुभगति व्यभिचारी। लोभी जस चह चार गुमानी। नभ दुहि दूध चहत ए प्रानी। अतः व्यभिचारी की शुभ गति होनी सर्वथा असम्भव है।

भव कि परहिं परमात्मा बिन्दक। सुखी कि होहिं कबहु हरि निंदक॥
राज कि रहै नीति बिनु जाने। अघ कि रहहि हरि चरित बखाने॥३॥

अर्थ : परमार्थ का जाननेवाला क्या कभी संसार सागर में पड़ सकता है? हरि निन्दक क्या कभी सुखी रह सकता है? बिना नीति जाने क्या राज्य रह सकता है? भगवान् के चरित का गान करने से क्या पाप रह सकता है?

व्याख्या : अपि चेदसि पापेभ्यः सर्वेभ्यः पापकृत्तमः। सर्वं ज्ञानप्लवेनैव वृजिनं सन्तरिष्यसि। बड़ा भारी पापी भी ज्ञान नौका का आश्रय करके सब पापों को तर जाता है। ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात् कुरुतेऽर्जुन। ज्ञान की अग्नि सब कर्मों को जला देती है। ज्ञानी के सञ्चित कर्म सब भस्म हो जाते हैं। क्रियमाण से उसका लेप नहीं होता। प्रारब्ध कर्म का भोग समाप्त होते ही वह मुक्त हो जाता है। वह आवागमन से परे हो जाता है। वह लौटता नहीं : न स पुनरावर्त्तते। इसलिए परमार्थ के जाननेवाले का भवसागर में पड़ना महा असम्भव है।

पर निंदा सम अघ न गिरीसा। परनिन्दा के समान कोई बड़ा पाप नहीं है। तिसपर हरिहर निन्दक के तो जिह्वा छेदन का विधान है। उसने वाणी का बड़ा भारी दुरुपयोग किया। उसने सर्वात्मा हरि का अपमान किया। इस भाँति स्वयं

अपनी आत्मा के प्रतिकूलाचरण किया। उसे सुख कहाँ? उसको कहीं सुख नहीं मिल सकता।

सोचिय नृपति जो नीति न जाना। नीति न जानने वाला राजा शोचनीय हो जाता है। क्योंकि नीति न जानने से वह ठीक प्रजा पालन न कर सकेगा। इससे उसका परलोक बिगड़ेगा: उसे नरक होगा। वह राज्य की रक्षा भी नहीं कर सकेगा। उसका राज्य चला जायगा। अतः नीति नहीं जाननेवाले का राज्य टिक नहीं सकता।

भगवान् सबके हृदय में निवास करते हैं। वे जब अपनी कथा सुनते हैं तो कथन करनेवाले के सम्पूर्ण अकल्याण का नाश कर देते हैं। यथा : कलियुग केवल हरि गुन गाहा। गावत नर पावहि भव थाहा। कहहि सुनहि अनुमोदन करहीं। ते गोपद इव भवनिधि तरहीं।

पावन जस कि पुन्य बिनु होई। बिनु अघ अजस कि पावै कोई॥
लाभु कि कछु हरि भगति समाना। जेहि गावहिं स्रुति संत पुराना॥४॥

अर्थ : पवित्र करनेवाला यश क्या बिना पुण्य के होता है? और बिना पाप के क्या किसी का दुर्यश होता है? जिस भक्ति का गान श्रुति सन्त पुराण करते हैं उसके समान क्या कोई लाभ है?

व्याख्या : पुण्य करने से ही मनुष्य पुण्यश्लोक होता है। उसका नाम लोग प्रातःकाल उठकर लेते हैं। यथा : पुण्यश्लोको नलो राजा पुण्यश्लोको युधिष्ठिरः। पुण्यश्लोका च वैदेही पुण्यश्लोको जनार्दनः। और पाप करने से दुर्यश होता है पापी का नाम कोई सबेरे नहीं लेता। ख्याति दोनों की होती है पुण्यात्मा की भी और पापात्मा की भी। परन्तु पुण्यात्मा की ख्याति का सुयश और पापात्मा की ख्याति का नाम दुर्यश है। अतः बिना पुण्य के सुयश और बिना पाप के दुर्यश नहीं होता।

वस्तु के अच्छे बुरे का परिचय उसके फल से होता है। भक्ति के लिए श्रुति सन्त पुराण सभी कहते हैं कि सब साधनों का फल हरिभक्ति है। यथा : तीर्थाटन साधन समुदाई। जोग बिराग ग्यान निपुनाई। नाना कर्म धर्म व्रत दाना। संजम दम तप मख नाना। भूत दया द्विज गुरु सेवकाई। विद्या विनय विवेक बड़ाई। जहँ लगि साधन वेद बखानी। सबकर फल हरि भगति भवानी। अर्थात् हरिभक्ति से बढ़कर कोई लाभ नहीं है।

हानि कि जग एहि सम कछु भाई। भजिय न रामहि नर तन पाई॥
अघ कि बिना तामस कछु आना। धर्म कि दया सरिस हरिजाना॥५॥

अर्थ : हे भाई! संसार में क्या इसके समान कोई हानि है कि मनुष्यशरीर पाकर राम को न भजे। हे गरुड़जी तामस को छोड़कर क्या पाप कोई अन्य वस्तु है या दया के समान कोई अन्य धर्म है?

व्याख्या : बड़े भाग मानुष तनु पावा। सुर दुर्लभ सब ग्रन्थन्हि गावा। साधन

धाम मोक्ष कर द्वारा। पाइ न जेहि परलोक सँवारा। सो परत्र दुःख पावै सिर धुनि धुनि पछिताइ। कालहि कर्महि ईश्वरहि मिथ्या दोष लगाइ। अतः मनुष्यशरीर पाकर भी हरिभजन न करने से बढ़कर कोई हानि हो नहीं सकती।

सत्त्वगुण में जो स्थित हैं उनकी ऊर्ध्व गति होती है। राजस वृत्तिवाले मध्य में स्थित होते हैं परन्तु तमोगुण वृत्तिवालों की अधोगति होती है। अतः तामस कर्म ही पाप है। तामस धर्म का भी अनिष्ट फल है। अतः तामस कर्म से अन्य कोई पाप नहीं है। जहाँ : अघ कि पिसुनता सम कछु आना पाठ है वहाँ यह अर्थ करना होगा कि चुगुलखोरी से बढ़कर कोई पाप नहीं है। भगवान् मनु कहते हैं : परीवादात् खरो भवति श्वावै भवति निन्दकः। सच्चा दोष कहने से गधा का जन्म होता है और झूठा दोष कहने से कुत्ते का जन्म होता है। अतः पिशुनता से बढ़कर कोई पाप नहीं है।

अहिंसा परम धर्म है। हिंसा पीड़ा पहुँचाने को कहते हैं। किसी को पीड़ा नहीं पहुँचाना ही अहिंसा है। दूसरे शब्द में इसे दया कह सकते हैं। अतः दया परम धर्म हुआ। अतः इसके समान दूसरा धर्म नहीं है। माया वस परिछिन्न जड़ जीव कि ईस समान। कहकर ग्रन्थकार १७ उदाहरण देते हैं। यहाँ ईश शब्द ब्रह्म के लिए ही आया है। यथा : लागे करन ब्रह्म उपदेसा। १. अज २. अद्वैत ३. अगुन ४. हृदयेसा। इत्यादि और उसके बाद ही कहते हैं : सो तैं तोहि ताहि नहि भेदा। इसी पर त्वंपद जीव के तीन विशेषण देते हुए भुसुण्डिजी तर्क उठाते हैं कि १. मायावस २. परिछिन्न ३. जड़ ४. जीव कि ईस समान और इसी की पुष्टि में सत्रह उदाहरण देते हैं। इससे स्पष्ट ज्ञात होता है कि तत्पद के एक एक लक्षण को त्वंपद के लक्षण से मिलान करके उसका समान होना असम्भव सिद्ध करते हैं। यथा :

१. ब्रह्म अज है। सर्वहित रूपी पारसवाले को दरिद्रतारूपी दुःख आ नहीं सकता। उसी भाँति अजन्मा मायावश जीव हो नहीं सकता। माया वश जीव होना असम्भव है।
२. अद्वैत है। जिस भाँति परद्रोही का निःशङ्क होना असम्भव है उसी भाँति परिच्छिन्न जीव का अद्वैत होना असम्भव है।
३. अगुण है। जिस भाँति कामी का निष्कलंक होना असम्भव है उसी भाँति मायावश जीव का अगुण होना असम्भव है।
४. हृदयेश है। द्विज का अनहित करने से जैसे वंश चलना असम्भव है उसी भाँति जड़ का हृदयेश होना असम्भव है।
५. अकल है। जिस भाँति स्वरूप ज्ञान होने पर कर्म होना असम्भव है उसी भाँति परिच्छिन्न का अकल होना असम्भव है।
६. अनीह है। जिस भाँति खल के संग में सुमति का आविर्भाव असम्भव है उसी भाँति मायावश का अनीह होना असम्भव है।
७. अमान है। जिस भाँति परतियगामी की शुभगति असम्भव है उसी भाँति मायावश का अमान होना असम्भव है।

८. अरूप है। जिस भाँति परमार्थ ज्ञाता का संसार में पड़ना असम्भव है उसी भाँति परिच्छिन्न का अरूप होना असम्भव है।

९. अनुभवगम्य है। जिस भाँति हरिनिन्दक का सुखी होना असम्भव है उसी भाँति जड़ का स्वयंप्रकाश होना असम्भव है।

१०. अखण्ड है। जिस भाँति बिना नीति जाने राज्य का रहना असम्भव है उसी भाँति परिच्छिन्न का अखण्ड होना असम्भव है।

११. अनूप है। जिस भाँति हरि चरित बखानने से पाप का रहना असम्भव है उसी भाँति जीव का अनूप होना असम्भव है : जीवत्वं प्राणधारणात्।

१२. मन गोतीत है। जिस भाँति बिना पुण्य के पावन यश का होना असम्भव है। उसी भाँति मायावश का मनगोतीत होना असम्भव है।

१३. अमल है। जिस भाँति बिना पाप के दुर्यश होना असम्भव है उसी भाँति मायावश का अमल होना असम्भव है।

१४. अविनाशी है। जिस भाँति हरिभक्ति के समान किसी लाभ का होना असम्भव है उसी भाँति परिच्छिन्न का अविनाशी होना असम्भव है।

१५. निर्विकार। जिस भाँति नरतन पाकर भजन न करने के समान दूसरी हानि नहीं हो सकती उसी भाँति मायावश निर्विकार नहीं हो सकता।

१६. निरवधि। जिस भाँति पिशुनता के समान दूसरा पाप नहीं हो सकता उसी भाँति परिच्छिन्न निरवधि भी नहीं हो सकता।

१७. सुखरासी। जिस भाँति कोई धर्म दया के समान नहीं हो सकता उसी भाँति जड़ सुखराशि नहीं हो सकता।

यहि बिधि अमित जुगुति मन गुनेऊँ। मुनि उपदेस न सादर सुनेउँ॥
पुनि पुनि सगुन पच्छ मैं रोपा। तब मुनि बोलेउ बचन सकोपा॥६॥

अर्थ : इस प्रकार से अनगिनत युक्तियाँ मैं मन में गुनता था। मुनिजी के उपदेश को आदर के साथ नहीं सुना। बार बार मैंने सगुण पक्ष उठाया तब मुनिजी क्रोध युक्त वाणी बोले।

व्याख्या : इस भाँति ईश्वर और जीव की भेदप्रतिपादक असंख्य युक्तियाँ मैं मन ही मन गढ़ता गया। मुनिजी का उपदेश सर्वथा उपादेय था। वे वेद प्रमाण से अपने पक्ष की पुष्टि करते थे। छान्दोग्य श्रुति है। सदेव सोम्येदमग्र आसीत् एकमेवाद्वितीयम्। इस वाक्य से सृष्टि के पहिले स्वगतादि भेद शून्य तत्त्वमसि नामरूप रहित वस्तु का प्रतिपादन है। वह सद्वस्तु सृष्टि के बाद इस समय भी विचार दृष्टि से वैसा ही है। स्थूलादि तीन शरीरों से विलक्षण उनका साक्षी सद्वस्तु त्वंपद से लक्षित है। अतः इस महावाक्य में स्थित असि पद से तत् त्वं पदों का समानाधिकरण होता है। इन सब बातों का उपदेश मुनिजी ने दिया। परन्तु भुसुण्डिजी कहते हैं कि मैंने आदर के साथ मुनिजी का उपदेश नहीं सुना। जब वह उपदेश देते थे तब मैं दूसरी दूसरी बातें मन में सोचता था। यही मुनिजी के उपदेश का अनादर है।

इतना ही नहीं मैंने बार बार सगुण पक्ष का आरोप किया। सगुण पक्ष को ही ठीक ठहराया। निर्गुण पक्ष में ही ब्रह्म जीव की एकता बनती है सगुण पक्ष में ब्रह्म जीव की एकता बन नहीं सकती। इसलिए मैंने सगुण पक्ष का आरोप किया। मेरी ऐसी मनोवृत्ति को देखकर मुनिजो क्रोध से बोले।

मूढ़ परम सिख देउँ न मानसि। उत्तर प्रति उत्तर बहु आनसि ॥
सत्य बचन बिस्वास न करही। बायस इव सबही ते डरही ॥७॥

अर्थ : रे मूढ़! मैं परम शिक्षा देता हूँ। तू नहीं मानता उत्तर प्रत्युत्तर बहुत करता है। सच्चो बात पर विश्वास नहीं करता कौए की भाँति सबसे डरता है।

व्याख्या : क्रोध से मुनिजी बोलते हैं। अतः मूढ़ सम्बोधन करते हैं। मूढ़ कहने का कारण देते हैं कि मैं अत्यन्त उत्तम शिक्षा दे रहा हूँ। भक्ति का उपदेश मध्यम अधिकारी के लिए है। तुझे परम अधिकारी जानकर परम उपदेश ब्रह्मोपदेश दे रहा हूँ। यथा : मोहि परम अधिकारी जानी। लागे करन ब्रह्म उपदेसा। सो तू नहीं मान रहा है। उलटा शास्त्रार्थ करने को तैयार है। उत्तर प्रत्युत्तर करता है। उपदेश को मन में बिठाने का यत्न ही नहीं करता है। मैं वेद का महावाक्य कह रहा हूँ। उस सत्योक्ति पर विश्वास नहीं करता। जैसे काग अति सज्जन अपने पालनेवाले से भी डरता है। इसी भाँति सहस्र माता की भाँति हितैषणी श्रुति को भी तू सन्देह की दृष्टि से देखता है।

सठ स्वपक्ष तव हृदय बिसाला। सपदि होहि पक्षी चंडाला ॥
लीन्हि साप मैं सीस चढ़ाई। नहि कछु भय न दीनता आई ॥८॥

अर्थ : रे शठ! तेरे हृदय में अपना बड़ा भारी पक्ष है। इसलिए तू सद्यः चाण्डाल पक्षी हो जा। मैंने शाप को शिरोधार्य किया। न मुझे कोई भय हुआ और न दीनता ही आयी।

व्याख्या : मैं वेद वाक्य कहता हूँ। जिसमें भ्रम प्रमाद वञ्चनादि दोष को कोई स्थान ही नहीं। फिर भी तू अपना ही पक्ष स्थापन करता जाता है। इसलिए तू पक्षी हो जा। अनधिकारी की भाँति तू वेद के उपदेश से दूर भागता है। इसलिए पक्षियों में भी चाण्डाल अर्थात् कौआ हो जा। वेद की अवज्ञा अत्युग्र पाप है। अतः तुझे तुरन्त फल मिले।

महा प्रसाद कहकर भुसुण्डिजी ने शाप को शिरोधार्य किया। मन से भी विरोध नहीं किया। शाप से उन्हें कोई भय नहीं हुआ। शिवजी के शाप के समय तो ऐसे भयभीत हो गये थे कि काँपने लगे थे। पर इस बार न भय हुआ और न मन में दीनता आया कि कौआ होकर किस दुर्दशा को प्राप्त होंगे।

दो. तुरत भयउ मैं काग तब, पुनि मुनि पद सिरु नाइ।
सुमिरि राम रघुबंस मनि, हरखित चलेउँ उड़ाइ ॥

उमा जे राम चरन रत, बिगत काम मद क्रोध ।
निज प्रभु मय देखहिं जगत, केहि सन करहिं बिरोध ॥११२॥

अर्थ : मैं तुरन्त कौआ हो गया । फिर मुनिजी के चरणों में सिर नवाकर रघुवंशमणि रामजी का स्मरण करके प्रसन्न होकर उड़ चला । हे उमा ! जो राम चरण में रत हैं और काम मद क्रोध से रहित हैं वे संसार को निज प्रभुमय देखते हैं । वे विरोध किससे करें ।

व्याख्या : मुनिजी का शाप इतना दारुण था कि प्रकृति के आपूर से भुसुण्डिजी तुरन्त ब्राह्मण से काग हो गये । आने के समय : देखि चरन सिर नायेउँ वचन कहेउँ अति दीन । काग हो जाने पर भी चलने के समय मुनि के चरणों में सिर झुकाया । व्यवहार में कोई अन्तर नहीं पड़ा । सिवा इसके दीन वचन नहीं कहा । क्योंकि मन में दीनता आयी ही नहीं ।

शिवजी बोले उमा ! जो रामचरण रत होता है उसे काम मद क्रोध होता नहीं । काम मद क्रोध यदि हो तो समझना चाहिए कि उसे प्रभु के चरणों में रति है ही नहीं । स्पृहा होने से ही काम मद क्रोध होता है । राम भक्त को अन्य स्पृहा रहती नहीं । इसलिए काम मद क्रोध नहीं होता और वे अनन्य भक्त सम्पूर्ण जगत् को राममय देखते हैं । यथा : सो अनन्य जाके असि मति न टरइ हनुमंत । मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवंत । अतः वे विरोध किसी से कर नहीं सकते ।

सुनु खगेस नहि कछु रिषि दूषन । उर प्रेरक रघुबंस बिभूषन ॥
कृपा सिंधु मुनि मति करि भोरी । लीन्ही प्रेम परीक्षा मोरी ॥१॥

अर्थ : हे खगेश ! सुनो इसमें ऋषिजी का कोई दोष नहीं था । रघुवंश विभूषण हृदय में प्रेरणा करनेवाले हैं । कृपासिन्धु ने मुनि की मति भोरी करके मेरी प्रेम परीक्षा ले ली ।

व्याख्या : दोष की प्राप्ति हुई । तभी निषेध करते हैं । देखने से मालूम होता है कि इसमें अपराध मुनिजी का है । जो वस्तु जो पुरुष नहीं चाहता उसे बल पूर्वक उसके गले उतारना उचित नहीं है । भुसुण्डिजी सगुणोपासना जानना चाहते थे । उन्हें निर्गुणोपासना बतलाना और न ग्रहण करने पर शाप देना महा अनुचित है । परन्तु भुसुण्डिजी कहते हैं कि उनका कोई दोष नहीं । उमा दारु जोषित की नाईं । सबहि नचावत राम गोसाईं । रघुवंश विभूषण हैं : विना परीक्षा लिए कुछ करना नहीं चाहते । उन्होंने मुनि की मति को भोरी कर दी : ज्ञानी मूढ़ न कोइ जेहि जस रघुपति करहिं : और मेरे प्रेम की परीक्षा ली । ज्ञान से ही प्रेम दबता है । यथा : परम प्रेमु तिनकर प्रभु देखा । कहा विविध विधि ज्ञान विसेखा । अतः मुनिजी से ज्ञानोपदेश करवाया । प्रेम के पथ में ज्ञानोपदेश विघ्नाचरण है । इसीलिए कहा कि नव रस जप तप जोग बिरागा । ते सब जलचर चारु तड़ागा । सो परीक्षा में भुसुण्डिजी खरे उतरे । शाप को सिर चढ़ाया पर अपने लक्ष्य से न डिगे ।

मन बच क्रम मोहि निजजन जाना । मुनि मति पुनि फेरी भगवाना ॥
रिषि मम महत सीलता देखी । राम चरन बिस्वास बिसेखी ॥२॥

अर्थ : मनसा वाचा कर्मणा अपना भक्त जान लिया । तब मुनिजी की बुद्धि को भगवान् ने फेर दिया । ऋषि ने मेरी बड़ी भारी सहनशीलता देखी और रामजी के चरणों में विशेष विश्वास देखा ।

व्याख्या : परीक्षा करके देख लिया कि यह मनसा वाचा कर्मणा मेरा दास है । मनसा यथा : राम भगति जल मम मन मीना । किमि बिलगाइ मुनीस प्रवीना । वाचा यथा : सोइ उपदेस करहु करि दाया । निज नयनन्हि देखौं रघुराया । कर्मणा यथा : जहँ जहँ बिपिन मुनीवर पावौं । आस्रम जाइ जाइ सिर नावौं । दास वही होता है जिसे रामजी को छोड़कर दूसरे का भरोसा न हो । अतः जब पूरी तरह से दास जान लिया : भुसुण्डिजी परीक्षा में खरे उतर गये : तब भगवान् ने मुनिजी की मति को घुमाया । भोरी मति थी उस समय शाप दिया । बुद्धि ठिकाने आते ही भुसुण्डिजी के गुण दृष्टिगोचर हुए । इतनी सहनशीलता कि काग हो जाने पर भी न भय हुआ और न दीनता हुई और यह भी देख लिया कि इसे रामजी के चरणों में विशेष रूप से विश्वास है । इसी से न तो भयभीत हुआ न दीनता आयी । इसे निर्गुण ब्रह्म में विश्वास न हो यह बात नहीं है । पर सगुण ब्रह्म रामजी पर विशेष विश्वास है ।

अति बिसमय पुनि पुनि पछिताई । सादर मुनि मोहि लीन्ह बोलाई ॥
मम परितोष बिबिध बिधि कीन्हा । हरषित राम मंत्र तब दीन्हा ॥३॥

अर्थ : अत्यन्त विस्मय के साथ बार बार पछताकर आदर के साथ मुनिजी ने मुझे बुला लिया । मेरी अनेक प्रकार से दिलजोई की और प्रसन्न होकर मुझे राम मन्त्र दिया ।

व्याख्या : मुनिजी को मेरी सहनशीलता और बरताव पर बड़ा विस्मय हुआ । बार बार पछताने लगे यह मैंने क्या कर डाला । इसका अपराध कुछ भी नहीं । वह कहता था कि मुझ से सगुण उपासना कहिये । उसकी रुचि के प्रतिकूल मैंने निर्गुण उपासना पर क्यों हठ किया । यदि उसने नहीं माना तो मेरी क्या हानि हुई जो मैंने उसे शाप दे डाला । मुनिजी ने अप्रसन्न होकर भुसुण्डिजी का अनादर किया । मूढ़ कहा अब आदर के साथ बुलाया । अपनी कठोरता के सम्मार्जन के लिए कोमल शब्दों से मेरी दिलजोई की समझाया कि सविधि उपासना करने से रामजी का दर्शन होता है । वेगि विलंब न कीजिये लीजिय उपदेस । महा मंत्र जपिये सोइ जो जपत महेस । अतः पहिली बात इष्टदेवता के मन्त्र से दीक्षित होना है । सो मुनिजी स्वयं प्रसन्न होकर भुसुण्डिजी को राम मन्त्र की दीक्षा दी । मुनिजी की इतनी कृपा हुई कि मेरा काग शरीर होने पर भी मुझे दीक्षा दी । राम मन्त्र का अधिकार जीव मात्र को है ।

बालक रूप राम कर ध्याना । कहेउ मोहि मुनि कृपा निधाना ॥
सुंदर सुखद मोहि अति भावा । सो प्रथमहि मैं तुम्हहि सुनावा ॥४॥

अर्थ : कृपा निधान गुरुजी ने मुझे बालक रूप रामजी का ध्यान बतलाया। वह सुन्दर और सुखद था। तुझे जो कि पहिले ही मैं सुना चुका हूँ।

व्याख्या : मुनिजी स्वभाव से ही कृपानिधान थे। प्रसन्न होकर मन्त्र भी दिया और ध्यान भी बतलाया। रामजी के बालरूप का ध्यान बतलाया। यही ध्यान शिवजी भी करते हैं। यथा : बन्दौं बाल रूप सोइ रामू। वह ध्यान बड़ा सुन्दर सुख देनेवाला था। मुझे बड़ा प्यारा लगा। मैं पहले ही उसका वर्णन तुम से कर चुका हूँ। यथा :

मरकत मृदुल कलेवर स्यामा। अंग अंग प्रति छबि बहु कामा ॥
नव राजीव अरुन मृदु चरना। पदज रुचिर नख ससि दुति हरना ॥
ललित अंक कुलिसादिक चारी। नूपुर चारु मधुर रवकारी ॥
चारु पुरट मनि रचित बनाई। कटि किंकिनि कल मुखर सुहाई ॥
रेखा त्रय सुंदर उदर नाभी रुचिर गंभीर।
उर आयत भ्राजत बिबिध बाल बिभूषन चीर ॥
अरुन पानि नख करज मनोहर। बाहु बिसाल बिभूषन सुंदर ॥
कंध बाल केहरि दर ग्रीवा। चारु चिबुक आनन छबि सींवा ॥
कलबल बचन अधर अरुनारे। दुइ दुइ दसन बिसद बरबारे ॥
ललित कपोल मनोहर नासा। सकल सुखद ससि कर सम हासा ॥
नील कंज लोचन भव मोचन। भ्राजत भाल तिलक गोरोचन ॥
बिकट भ्रुकुटि सम स्रवण सुहाए। कुंचित कच मेचक छबि छाए ॥
पीत झीनि झिंगुली तन सोही। किल कनि चितवनि भावति मोही ॥

मुनि मोहि कछुक काल तहँ राखा। राम चरित मानस तब भाखा ॥
सादर मोहि यह कथा सुनाई। पुनि बोले मुनि गिरा सुहाई ॥५॥

अर्थ : मुनिजी ने मुझे कुछ समय तक वहाँ ठहराया तब मुझसे रामचरित मानस कहा। आदर के साथ मुनिजी ने यह कथा सुनायी और तब सुन्दर वाणी बोले।

व्याख्या : भुसुण्डिजी कहते हैं कि मुनिजी ने पहिले राममन्त्र की दीक्षा दी। इष्टदेव के ध्यानपूर्वक ही जप होना चाहिए। अतः बालकरूप राम का ध्यान बतलाया। नाम और रूप के बाद लीला क्रम प्राप्त है। इसलिए मुनिजी ने वहाँ ठहरा लिया। भाव यह कि दीक्षा पा लेने के बाद साधन के लिए मैं दूसरे स्थान पर जाने के लिए तैयार हुआ। पर गुरुजी ने रोक लिया कि अभी शिक्षा पूरी नहीं हुई है। अतः श्रीशिवजी कृत रामचरित मानस श्रीशिवजी की प्रेरणा से मुझे सुनाया। यथा : सोइ सिव काग भुसुण्डिहि दीन्हा। रामभगति अधिकारी चीन्हा। लोमश ऋषि द्वारा कागभुसुण्डि को सुनवाया। इस लिए दीन्हा लिखते हैं।

आदर के साथ मुनिजी ने यह कथा भुसुण्डिजी को सुनाया और तब ग्रन्थ की परम्परा तथा अधिकारी आदि भेद बतलाया। इसीसे कहते हैं कि सुहाई वाणीवाले जो भुसुण्डिजी को बड़ी प्रिय लगी।

राम चरित सरगुप्त सुहावा। संभु प्रसाद तात मैं पावा ॥
तोहि निज भगत रामकर जानी। ताते मैं सब कहेउँ बखानी ॥६॥

अर्थ : यह सुन्दर रामचरित सर गुप्त था। महादेवजी के प्रसाद से हे तात ! मुझे मिला। तुझे रामजी का निज भक्त जान लिया। इसलिए मैंने सब वर्णन करके कहा।

व्याख्या : रचि महेस निज मानस राखा। पाइ सुसमउ सिवा सन भाखा। इसलिए कहते हैं कि यह रामचरित सर गुप्त था। शिवजी के मन में रहने से दुर्गम था। यथा : यत्पूर्वं प्रभुणा कृतं सुकविना श्रीशम्भुना दुर्गमम्। बिना शिवजी की कृपा इसका मिलना असाध्य था। श्रीलोमशजी कहते हैं कि मुझे शिवजी के प्रसाद से मिला। मैंने भी गुप्त ही रक्खा। जब देख लिया कि तुम रामजी के निज दास हो तब तुमसे सब वर्णन किया अर्थात् रहस्य के साथ कह सुनाया। पहिले विद्याएँ बड़ी गुप्त रक्खी जाती थीं अधिकारी को ही दी जाती थीं। इस काल में सुलभता अधिक कर दी गयी है। क्योंकि अधिकारी के अभाव से विद्या ही लुप्त हो जाती।

राम भगति जिनके उर नाहीं। कबहुँ न तात कहिअ तिन पाहीं ॥
मुनि मोहि बिबिध भाँति समुझावा। मैं सप्रेम मुनि पद सिरु नावा ॥७॥

अर्थ : हे तात ! जिनके हृदय में रामभक्ति न हो उससे कभी नहीं कहना चाहिए। मुनिजी ने मुझे अनेक प्रकार से समझाया। मैंने प्रेम के साथ मुनिजी के चरणों में प्रणाम किया।

व्याख्या : अधिकारी कहकर अब अनधिकारी बतलाते हैं कि इस कथा के अधिकारी वे हैं जिनके हृदय में रामभक्ति है उन्हीं से इसे कहना चाहिए। जिसे भक्ति नहीं है उसे कभी नहीं सुनाना चाहिए क्योंकि इससे उनका अकल्याण होगा। यथा :

उमा राम गुन गूढ़ पंडित मुनि पावहिं बिरति।
पावहिं मोह बिमूढ़ जे हरि बिमुख न धर्मरति ॥

मुनिजी ने भुसुण्डिजी को अनेक प्रकार से समझाया कि :

मुकतामणि माणिक माल गले कपि को नहि भूलि पिन्हाइये जू।
नहि होश त्रिदोष भयो जेहि को तेहि को नहि खीर खवाइये जू ॥
मद पान किये जो बके दुर्वाद तिन्है नहि भूलि सिखाइये जू।
जिनको नहि रामते नेह तिन्है रघुबीर कथा न सुनाइये जू ॥
मान घटै प्रभुको अपमान कथा की महा महिमा दबि जावै।
दाह बढ़ै अपने उरमें अरु औरनहू को उछाह नसावै ॥

पाप बढ़े परिताप बढ़े सुनि दाप बढ़े शठता बढ़ि जावे।
भक्ति नहीं जिनको तिनको कोउ जो रघुबीर चरित्र सुनावे॥

लाभ अपरिमित होय जिमि हरि चरित्र से तात।
अन अधिकारी को दिये तथा हानि होइ आत॥
याते राम चरित्र सर उरमें राखिय गोय।
सज्जन पाइ प्रकासिये जेहि सुख दुहु दिसि होय॥

अथवा मानस पूजा अनेक प्रकार से समझाया। यथा : आम छाँह कर मानस पूजा। भाव यह कि नाम जप ध्यान मानस पूजा और राम गुणगान से रामजी का दर्शन होता है। शिक्षा समाप्त होने पर सप्रेम वन्दना है। अपिच :

निगम अगम साहब सुगम राम सांदिलो चाह।
अंबु असन अवलोकियत सुलभ सबै जग माह॥

निजकर कमल परसि मम सीसा। हरखित आसिष दीन्ह मुनीसा॥
राम भगति अबिरल उर तोरे। बसिहि सदा प्रसाद अब मोरे॥८॥

अर्थ : अपने कर कमल से मेरे सिर को छूकर मुनिजी ने हर्षित होकर आशीर्वाद दिया। रामजी की अविरल भक्ति तेरे हृदय में अब मेरे प्रसाद से बसे।

व्याख्या : गुरुजी ने अत्यन्त कृपा से सिर पर हाथ फेरा। अर्थात् अभय हस्त सिर पर रक्खा और मुनीश्वर हैं : उनका आशीर्वाद अमोघ है सो उन्होंने हर्षित होकर आशीर्वाद दिया : राम भगति अनुपम सुखमूला। मिलइ जो संत होहिं अनुकूला। शिवजी की कृपा से भक्ति जमी। सन्त की कृपा से अविरल भक्ति मिली। मुनिजी कहते हैं कि तुम्हारे मन में मेरे प्रसाद से बसे अर्थात् तैल धारावत् अविच्छिन्न प्रवाह चलता रहे।

दो. सदा राम प्रिय होव तुम्ह, सुभ गुन भवन अमान।
कामरूप इच्छा मरन, ग्यान बिराग निधान॥११३॥

अर्थ : तुम सदा रामजी को प्रिय हो शुभ गुणों के भवन हो फिर भी तुम्हें मान न हो। तुम कामरूप कांक्षामृत्यु और ज्ञान वैराग्य के निधान हो।

व्याख्या : मुनिजी ने काक होने का शाप दिया था। उसका परिमार्जन आशीर्वाद से कर रहे हैं। काक किसी को प्रिय नहीं होता सो तुम रामजी को प्रिय हो। काक अवगुण भवन होता है सो तुम शुभ गुण भवन हो और फिर भी तुम्हें मान न हो अर्थात् तुम्हारा ज्ञान अचल रहे। यथा : ज्ञान मान जहँ एकौ नाहीं। देख ब्रह्म समान सब माहीं। तुम्हें ऐसी शक्ति हो कि जो शरीर चाहो अपनी बनालो। यह आवश्यक नहीं है कि तुम यावज्जीवन काग ही बने रहो। तुम मृत्यु से भी अभय हो जाओ। जब तुम चाहो तभी तुम्हारी मृत्यु हो और ज्ञान वैराग्य के निधान हो जाओ।

दो. जेहि आस्रम तुम बसव मुनि, सुमिरत श्री भगवंत।
व्यापिहि तहँ न अबिद्या, जोजन एक प्रजंत ॥११३ क.

अर्थ : जिस आश्रम में तुम श्री भगवान् का स्मरण करते हुए बसोगे। वहाँ एक योजन पर्यन्त विद्या न व्यापेगी।

व्याख्या : काक राम चरित मानस के सन्निकट नहीं जाते। यथा : तेहि कारण आवत हिय हारे। कामी काक बलाक बिचारे। पर तुम्हारा ऐसा महत्त्व होगा कि यहाँ से जाकर जहाँ तुम अपना निवास साधन भजन के लिए करोगे। वहाँ एक योजन पर्यन्त अविद्या न व्यापेगी। यथा : रह्यो व्यापि समस्त जग माही। तेहि गिरि निकट कबहुँ नहि जाही। अतः विघ्नरहित होकर तुम रामजी का ध्यान जप मानस पूजा और राम गुणगान करो। इसी से भगवद् अनुग्रह की प्राप्ति होगी। तुम्हें अविद्या न व्यापने का वर शिवजी दे चुके है। यथा : कवनेउँ जन्म मिटिहि नहि ग्याना। अतः मैं यह वर देता हूँ कि : जेहि आस्रम तुम बसब पुनि इत्यादि।

काल करम गुन दोष सुभाऊ। कछु दुख तुमहि न ब्यापिहि काऊ॥
राम रहस्य ललित बिधि नाना। गुप्त प्रकट इतिहास पुराना॥१॥

अर्थ : काल कर्म गुण दोष और स्वभाव का कुछ भी दुःख तुम्हें कभी नहीं व्यापेगा। रामजी के सुन्दर नाना विधि रहस्य और गुप्त तथा प्रकट इतिहास पुराण।

व्याख्या : काक का मलिन स्वभाव नहीं मिटता। वायस पालिअहि अति अनुरागा। होहिं निरामिष कबहु कि कागा। परन्तु तुम अविद्या की परिधि के बाहर निकल जाओगे। संसार काल कर्म गुण स्वभाव के घेरा में पड़ा हुआ भवाटवो में भटकता फिरता है। यथा : फिरत सदा माया कर प्रेरा। काल कर्म स्वभाव गुन घेरा। सो ये तुम्हें कभी कुछ भी बाधा न करेंगे।

रामजी की कथा में सुन्दर रहस्य विभाग है। जिनकी कथा की जानकारी जनसाधारण को नहीं है। इतिहास पुराणों में भी कुछ अंश प्रकट हैं और कुछ गुप्त हैं। जिसे लोग नहीं जानते। अनधिकारियों के हाथ में पड़ जाने से उनका उससे अकल्याण होगा। इसलिए वे गुप्त रक्खे गये हैं। जो अंश प्रकट हैं उनका भी सम्यक् ज्ञान बहुत कठिन है।

बिनु स्रम तुम्ह जानब सब सोऊ। नित नव नेह राम पद होऊ॥
जो इच्छा करिहहु मन मांही। हरि प्रसाद कछु दुर्लभ नांही॥२॥

अर्थ : अनायास ही तुम्हें सबका ज्ञान हो जायगा। तुम्हें रामजी के चरण में नित्य नया स्नेह हो। जो इच्छा तुम मन में करोगे श्रीहरि के प्रसाद से कुछ भी तुम्हें दुर्लभ नहीं होगा।

व्याख्या : काक मन्दमति होते हैं। उन्हें विद्या कहाँ? मेधावी पुरुषों को भी विद्योपार्जन में बड़ा आयास होता है। सो तुम राम रहस्य और गुरु प्रगट

पुराणेतिहास के जानकार हो जाओगे। काक अभागे होते हैं पर तुम ऐसे भाग्यवान् होगे कि तुम्हें श्रीरामजी के चरणों में नित्य नयी प्रीति होगी और जो इच्छा तुम्हारे मन में उठेगी श्रीहरि की कृपा से तुम्हें सबकी प्राप्ति होगी।

सुनि मुनि आसिष सुनु मति धीरा। ब्रह्म गिरा भइ गगन गँभीरा ॥
एवमस्तु तव बच मुनि ज्ञानी। यह मम भगत करम मन बानी ॥३॥

अर्थ : हे मतिधीर! सुनो मुनि का आशीर्वाद सुनकर आकाश में ब्रह्म की वाणी का आविर्भाव हुआ। हे मुनि ज्ञानी! जो तुमने वचन कहे वैसा ही हो। यह मनसा वाचा कर्मणा मेरा भक्त है।

व्याख्या : राम ब्रह्म मुनिजी का आशीर्वाद सुनते रहे कि कोई त्रुटि हो तो पूरी की जाय। पर ज्ञानी मुनि ने मुझे जो देना प्राप्त था सब दे डाला। निर्गुण ब्रह्म की वाणी है। पता नहीं चलता कि कहाँ से हो रही है। इसलिए गँभीरा कहा। सगुण ब्रह्म की वाणी होती तो कुछ पता भी चलता। यथा : मंदिर माझ भई नभवानी। उस आकाशवाणी ने मुनिजी के आशीर्वचन का अनुमोदन किया। वह आकाशवाणी मुनिजी के प्रति हुई। पर भुसुण्डिजी को भी सुनाई पड़ती थी। आकाशवाणी ने अपने अनुमोदन का कारण भी बतलाया कि यह मेरा मनसा वाचा कर्मणा भक्त है। भाव यह कि रामजी का सच्चा भक्त सब विद्याओं का ज्ञान अनायास प्राप्त करता है और उसकी अभिलाषा को भगवान् स्वयं पूरा कर देते हैं।

सुनि नभ गिरा हरष मोहि भयऊ। प्रेम मगन सब संसय गयऊ ॥
करि बिनती मुनि आयसु पाई। पद सरोज पुनि पुनि सिरु नाई ॥४॥

अर्थ : आकाशवाणी सुनकर मुझे हर्ष हुआ। मैं प्रेम में मग्न हो गया और मेरा संशय सब दूर हो गया। विनती करके और मुनिजी की अनुमति पाकर उनके चरण कमल में बार बार प्रणाम करके।

व्याख्या : आकाशवाणी सुनने पर तो रामजी के साक्षात्कार की दृढ़ आशा हो गयी। इसलिए भुसुण्डिजी हर्षित हो उठे। जिसे दर्शन देना है वह स्वयं एवमस्तु कह रहा है। अतः भुसुण्डिजी प्रेम में मग्न हो गये। मन में संशय था कि जो इच्छा करिहहु मन माहीं मुनिजी ने कहा है उसमें रामजी के दर्शन की इच्छा का अन्तर्भाव है या नहीं है। वह संशय भी मिट गया। क्योंकि आकाशवाणी ने मान लिया कि भुसुण्डिजी मनसा वाचा कर्मणा भक्त हैं। मुनिजी के प्रत्येक आशीर्वाद पर संशय होता था। मुझे भक्ति नहीं है इसलिए मुनिजी इतना आशीर्वाद दे रहे हैं। क्या मेरे मन में कहीं छिपी हुई अमर होने की अच्छा है : इत्यादि सब संशय चले गये।

मनोरथ पूर्ण होने पर मुनिजी की स्तुति की : विनय किया विदा माँगा और अत्यन्त प्रेम होने से अथवा कृतकृत्य होने से बार बार चरणों में गिरे। आज्ञा पाया। इससे द्योतित होता है कि बिदा माँगा।

हरख सहित एहि आस्रम आयेउ। प्रभु प्रसाद दुर्लभ बर पायेउ॥
इहाँ बसत मोहि सुनु खगईसा। बीते कलप सात अरु बीसा॥५॥

अर्थ : हर्षित होकर मैं इस आश्रम में आया। प्रभु के प्रसाद से दुर्लभ वर मिला। इहाँ बसते हुए मुझे हे गरुड़जी ! सुनो सत्ताईस कल्प बीत गये।

व्याख्या : मुनिजी से भेंट होने के पहिले दिन शाप मिला। अन्तिम दिन आशीर्वाद मिला। आकाशवाणी हुई। श्रावण प्रत्यक्ष हुआ। अब चाक्षुष प्रत्यक्ष की भी आशा दृढ़ हुई। अथवा स्वयं प्रभु ने स्वीकार कर लिया कि : यह मम भगत करम मन बानी। अतः हर्षित होकर इस आश्रम में आया : दुर्लभ वर जेहि आस्रम तुम बसव पुनि सुमिरत श्रीभगवंत। व्यापिहि तहँ न अविद्या जोजन एक प्रजंत। ऐसा वर कभी किसी को मिलते नहीं सुना गया। यह सब प्रभु के प्रसाद से हुआ। मुनिजी शाप या वर में निमित्त मात्र थे।

अब भुसुण्डिजी कहते हैं कि यह सब कथा आज से २७ कल्प पहिले की है। क्योंकि इस आश्रम में आये मुझे २७ कल्प बीत चुके। आप तो इस कल्प के गरुड़ हैं।

करौं सदा रघुपति गुन गाना। सादर सुनहि बिहंग सुजाना॥
जब जब अवध पुरी रघुबीरा। धरहि भगत हित मनुज सरीरा॥६॥

अर्थ : सदा रघुपति का गुणगान किया करता हूँ। सुजान पक्षी उसे आदर के साथ सुनते हैं। जब रामजी अयोध्या में भक्त के लिए मनुष्य शरीर धारण करते हैं।

व्याख्या : जब से आया हूँ तभी से कथा कहता हूँ कथा कहते कहते २७ कल्प बीते। सुजान पक्षी मेरी कथा को सुना करते हैं। न कहते कहते मैं थकता हूँ न सुनते सुनते वे थकें। क्योंकि : रामचरित जे सुनत अघाहीं। रस बिसेष जाना तिन नाहीं। इससे यह भी सिद्ध हुआ कि पक्षी भाषा में कथा होती रही।

प्रत्येक कल्प में एक बार रामावतार होता है। यद्यपि प्रभु के अनन्त अवतार हैं और देवयोनि तिर्यक् योनि में भी होते हैं। परन्तु अयोध्या में मनुष्य योनि में रामावतार होता है। उसका कारण होता है भक्त हित। यथा : तुम सारिखे संत प्रिय मोरे। धरौं देह नहि आन निहोरे।

तब तब जाइ राम पुर रहऊँ। सिसु लीला बिलोकि सुख लहऊँ॥
पुनि उर राखि राम सिसुरूपा। निज आस्रम आवौं खग भूपा॥७॥

अर्थ : तब तब जाकर मैं रामपुर में रहता हूँ। शिशु लीला देखकर सुख प्राप्त करता हूँ। फिर रामजी के शिशु रूप को हृदय में रखकर हे खगनाथ ! मैं अपने आश्रम में लौट आता हूँ।

व्याख्या : भुसुण्डिजी कहते हैं कि मेरे इष्टदेव बालक राम हैं। सो प्रत्येक कल्प के वैवस्वत मन्वन्तर के किसी त्रेता में अवतीर्ण होते हैं। इस प्रकार २७ बार तब से सरकार का अवतार श्रीअवध में हो चुका। मैं यहाँ से कहीं जाता नहीं

और न कथा बन्द होती है। परन्तु श्रीरामावतार होने पर मैं श्रीअयोध्याजी जाता हूँ और वहाँ सरकार की शिशुलीला के दर्शन का आनन्द लेता हूँ। बस उतने ही दिन कथा बन्द रहती है। बाललीला देखकर सरकार के बाल रूप को हृदय में रखकर अपने आश्रम में लौट आता हूँ। मुझे सदा सरकार के शिशु रूप का प्रत्यक्ष होता रहता है। प्रत्येक कल्प में पाँच वर्ष तक चाक्षुष प्रत्यक्ष होता रहता है। अन्य समय में मानस प्रत्यक्ष होता रहता है।

कथा सकल मैं तुमहि सुनाई। काग देह जेहि कारन पाई ॥
कहेउँ तात सब प्रस्न तुम्हारी। राम भगति महिमा अति भारी ॥८॥

अर्थ : सब कथा मैंने तुम्हें सुनाया। जिस कारण से मैंने काग शरीर पाया। हे तात ! मैंने तुम्हारे सब प्रश्नों का उत्तर दे दिया। रामजी की भक्ति की महिमा बड़ी भारी है।

व्याख्या : कारन कौन देह यह पाई। का उत्तर समाप्त करते हुए कहते हैं कि कथा सकल मैं तुमहि सुनाई। काग देह जेहि कारन पाई। तीन प्रश्न और भी तुमने किया था। यथा : १. राम चरित सर सुंदर स्वामी। पायेउ कहाँ कहहु नभगामी। २. तुमहि न व्यापत काल अति कराल कारन कवन। ३. प्रभु तव आश्रम आयेउ मोर मोह भ्रम भाग। सो इन तीनों का उत्तर पहिले ही वरदान प्रसङ्ग में हो गया है। अतः कहते हैं कि : कहेउ तात सब प्रस्न तुम्हारी। अब सबका उपसंहार करते हुए कहते हैं कि रामभक्ति की महिमा बड़ी भारी है। वह असाध्य साधन में समर्थ है।

दो. ताते यह तनु मोहि प्रिय, भयउ राम पद नेह।
निज प्रभु दर्शन पायेउँ, गये सकल संदेह ॥
भगति पच्छ हठ करि रहेउँ, दीन्ह महा रिषि स्राप।
मुनि दुर्लभ बर पायेउँ, देखहु भजन प्रताप ॥११४॥

अर्थ : इसलिए यह शरीर मुझे प्रिय है कि इससे श्रीरामजी के चरणों में स्नेह हुआ। अपने प्रभु का दर्शन पाया। सब सन्देह चला गया।

भक्तिपक्ष पर हठ करके डँट गया। महर्षि ने शाप दे दिया। मुझे मुनिदुर्लभ वर मिल गया। भजन का प्रताप देखो।

व्याख्या : गरुड़जी की ओर से प्रश्न उठा ही चाहता है कि आप तो कागरूप हैं। अतः छोड़िये कागरूप को। अतः स्वयं कहते हैं कि मुझे यही शरीर प्रिय है इसे नहीं छोड़ूँगा। मेरा कल्याण तो इसी शरीर से हुआ है। इसी शरीर में रामभक्ति दृढ़ हुई। रामजी का दर्शन इसी शरीर से हुआ। सब संशय नष्ट हुए। यथा : सुनि नभ गिरा हरख मोहि भयऊ। प्रेम मगन सब संसय गयऊ।

अब भक्ति की अति भारी महिमा कहते हैं कि मैंने भक्तिपक्ष के स्थानपर मैं

हठ से काम लिया। यथा : तब मैं निर्गुन मति करि दूरी। सगुन निरूपहुँ करि हठ भूरी। निर्गुण मत को दूर कर देने से सगुण का निरूपण नहीं हो सकता। यथा : जो गुन रहित सगुन सोइ कैसे। जल हिम उपल बिलग नहिं जैसे। जल के दूर करने से हिम उपल की स्थिति कैसे रह जायगी। इसी भाँति निर्गुण के दूर करने से सगुण की स्थिति नहीं रह सकती। फिर भी मैं निर्गुण का खण्डन करके सगुण के स्थापन में हठ करता रहा। मेरे हठ से नाराज होकर महर्षि लोमश ने शाप दे दिया। पर भक्ति की ऐसी महिमा है कि भगवान् ने महर्षिजी के मति को पलट दिया। महर्षिजी अपने किये पर पछताये और मुझे बुलाकर मुनि दुर्लभ वर दिये। अब आप स्वयं भजन का प्रताप देख सकते हैं।

सत पञ्च चोपाई प्रारम्भ : उमा के ग्यारहवें प्रश्न का प्रसङ्गात् उत्तर

जे असि भगति जानि परिहरहीं। केवल ग्यान हेतु स्रम करहीं ॥
ते जड़ कामधेनु गृह त्यागी। खोजत आकु फिरहिं पय लागी ॥१॥

अर्थ : जो लोग ऐसी भक्ति को जानबूझकर छोड़ देते हैं। केवल ज्ञान के लिए श्रम करते हैं। वे जड़ घर में कामधेनु को छोड़कर दूध के लिए मदार खोजते फिरते हैं।

व्याख्या : जो कोई भक्ति के इस महा प्रभाव को जानकर भी उसका परित्याग करते हैं और केवल ज्ञान अर्थात् निरुपास्तिज्ञान के लिए परिश्रम करते हैं वे मूर्ख हैं। पण्डितलोग उसी साधन को स्वीकार करते हैं जो सर्वथा साध्य हो। जानबूझकर ऐसे साधन को त्याग करके अतिदुरूह साधन में हाथ लगाना मूर्खता है। अति सुलभ और अति सुखकारी भक्ति को छोड़कर महा असाध्य विघ्नबहुल निरुपास्ति ज्ञानपंथ का स्वीकार करना वैसा ही है जैसे दूध को चाहनेवाला घर में रहती हुई कामधेनु को छोड़कर दूध के लिए मंदार को खोजता फिरे। मंदार में भी दूध होता है। पर वह दुःखद है। सुखद नहीं। भक्ति स्वभाव से ही मनुष्य में होतो है। पर ज्ञान के लिए तो प्रयत्न करना होता है।

सुनु खगेस हरि भगति बिहाई। जो सुख चहहिं आन उपाई ॥
ते सठ महा सिंधु बिनु तरनी। पैरि पार चाहहिं जड़ करनी ॥२॥

अर्थ : हे खगेश ! सुनो जो लोग हरिभक्ति छोड़कर दूसरे उपाय से सुख चाहते हैं वे शठ हैं। बिना नाव के अपनी जड़ करणी से तैरकर बड़े भारी समुद्र को पार किया चाहते हैं।

व्याख्या : सुख ही सबका ध्येय है। कोई भी दुःख नहीं चाहता। उस सुख की प्राप्ति का उपाय केवल भक्ति है। दूसरा कोई उपाय नहीं है। स्वर्ग सुख भी टिकाऊ नहीं है। जो टिकाऊ है वही सुख है। स्वल्प सुख भी दुःख रूप ही है उससे सुख न होना ही अच्छा। जिस भाँति महा सिन्धु के पार जाने का साधन जहाज है। वैसे ही सुख का साधन हरि भक्ति है और उपायों से सुख चाहना वैसा ही है जैसे जड़ करणी

कोई महा समुद्र को तैर कर पार करना चाहे। जड़ करणो जहाज द्वारा भी पार नहीं जा सकता। तैरकर क्या पार जायगा। जड़ करणी अर्थात् विचारहीन करणी।

सुनि भुसुंडि के बचन भवानी। बोलेउ गरुड़ हरषि मृदु बानी ॥
तव प्रसाद प्रभु मम उर माही। संसय सोक मोह भ्रम नाही ॥३॥

अर्थ : हे भवानी ! भुसुण्डि के वचन सुनकर गरुड़ हर्षित होकर मृदुवानी बोले। हे प्रभो ! तुम्हारी कृपा से मेरे हृदय में शोक मोह और भ्रम नहीं है।

व्याख्या : गरुड़जी ने जो प्रश्न किये थे उसका उत्तर समाप्त हो गया। अब गरुड़जी फिर कुछ पूछेंगे। दूसरा प्रसङ्ग आरम्भ होगा। उसका उपक्रम करते हुए शिवजी भवानी को सम्बोधन करके गरुड़ का हर्षित होकर मृदुवाणी बोलना कहते हैं।

उभयकोटि : अवलम्बी ज्ञान को संशय इष्टनाश के दुःख को शोक विपरीत ज्ञान को भ्रम और अज्ञान को मोह कहते हैं। इन सबका मूल मोह है। उसका नाश गरुड़जी पहले ही कह चुके हैं। यथा : प्रभु प्रसाद मम मोह नसाना। उसी बात की पुष्टि करते हुए कहते हैं कि आप के प्रसाद से मुझे संशय शोक मोह और भ्रम अब कुछ नहीं है।

सुनेउ पुनीत राम गुन ग्रामा। तुम्हरी कृपा लहेउँ बिस्रामा ॥
एक बात प्रभु पूछौं तोही। कहउ बुझाइ कृपानिधि मोही ॥४॥

अर्थ : रामजी के पुनीत गुण ग्रामों को तुम्हारी कृपा से सुना और विश्राम पाया। हे प्रभो ! एक बात तुमसे पूछता हूँ सो हे कृपानिधे ! मुझे समझाकर कहिये।

व्याख्या : सरकार को संग्राम में बँधे हुए देखकर गरुड़जी संशय शोक मोह भ्रम में जा पड़े थे और विषण्ण हो गये थे। सो प्रभु के पुनीत गुणग्राम के सुनने से वह सब दूर हुआ और विश्राम को प्राप्त हुए। फिर भी एक शंका उठ खड़ी हुई। अतः कहते हैं कि यद्यपि आप उसका उत्तर संक्षेप में कह चुके हैं। यथा : जे अस भगति जानि परिहरहीं। केवल ज्ञान हेतु स्रम करहीं। ते सठ कामधेनु गृह त्यागी। खोजत आक फिरहि पय लागी। पर उतने से सन्तोष नहीं है। अतः कृपया समझा कर कहिये।

कहहिं संत मुनि बेद पुराना। नहि कछु दुर्लभ ग्यान समाना ॥
सोइ मुनि तुम्ह सन कहेउ गोसाईं। नहि आदरेहु भगति की नाईं ॥५॥

अर्थ : सन्त मुनि वेद और पुराण कहते हैं कि ज्ञान के समान कोई वस्तु दुर्लभ नहीं है। हे गोसाईं ! वही मुनिने तुमसे कहा। सो तुमने उसका भक्तिसा आदर नहीं किया।

व्याख्या : गीता में स्वयं भगवान् ने कहा है कि : नहि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते। संसार में ज्ञान के सदृश पवित्र दूसरा कुछ नहीं है। वेद पुराण तथा आप्त पुरुषों का भी यही मत है।

उसी ज्ञान का निरूपण मुनिजी कर रहे थे। पर आपने उसका आदर वैसा नहीं किया जैसा भक्तिका किया। इसका कोई विशेष कारण होना चाहिए।

ग्यानहि भगतिहि अंतर केता। सकल कहहु प्रभु कृपानिकेता ॥
सुनि उरगारि बचन सुख माना। सादर बोलेउ काग सुजाना ॥६॥

अर्थ : हे प्रभु कृपानिकेत ! ज्ञान और भक्ति में कितना अन्तर है। सो सब कहिये। उरगारि गरुड़ का वचन सुनकर भुसुण्डिजी ने सुख माना तब आदर के सहित सुजान काग जी बोले।

व्याख्या : ईश्वर के जानने को ज्ञान और उनमें परम प्रेम को भक्ति कहते हैं। यहाँ जो ज्ञेय हैं वही परम प्रेमास्पद है। अतः ज्ञान और भक्ति में पूरा पूरा सामानाधिकरण्य है। अन्तर के तारतम्य से ही आदर का तारतम्य होता है। अन्तर कुछ मालूम नहीं पड़ता : सो साधन या सिद्धि में जहाँ जहाँ जितना अन्तर हो उसे कृपा करके बतलाने की प्रार्थना गरुड़जी ने की।

उत्तम वक्ता पाकर श्रोतागण ही कृतार्थ नहीं होते। गुणी श्रोता पाकर वक्ता भी कृतार्थ होते हैं। गरुड़जी के मनको राम प्रेम से सरस देखा। अतः सुजान भुसुण्डिजी आदर के साथ बोले।

भगतिहि ग्यानहि नहिं कछु भेदा। उभय हरहिं भवसंभव खेदा ॥
नाथ मुनीस कहहिं कछु अंतर। सावधान सोउ सुनु विहंगबर ॥७॥

अर्थ : भक्ति और ज्ञान में कुछ भी भेद नहीं है। दोनों संसार में पैदा हुए दुःख को हरण करते हैं। हे नाथ ! मुनीश लोग तथापि कुछ भेद बतलाते हैं उसे भी हे पक्षिश्रेष्ठ ! सावधानी से सुनो।

व्याख्या : जब भगवद् गीता में ज्ञानी को गणना भक्तों में है और भक्ति की गणना ज्ञानी में हैं तो दोनों में भेद कैसे कहा जाय। तत्त्वज्ञान और संवादी भ्रम में कोई भेद नहीं है। मणिप्रभा में मणिबुद्धि होना यद्यपि भ्रम है तथापि उसकी प्राप्ति के लिए दौड़ते हुए पुरुष को मणि की प्राप्ति होती है। अतः मणिप्राप्ति रूपी फल के समान होने से अभेद कहा। ज्ञान और भक्ति दोनों का एक फल है कि जीव संसार के दुःखों से छूट जाता है। अब शङ्का यह होती है कि फिर भक्ति का विशेष आदर क्यों किया ?

इस पर कहते हैं कि मुनीशों को वह सूक्ष्म अन्तर दिखलाई पड़ा है। उसी को प्रमाण मानकर भुसुण्डिजीने भक्ति के प्रति अधिक आदर दिखलाया। अब भुसुण्डिजी कहते हैं कि वह अन्तर सूक्ष्म है। इसलिए सावधान होकर सुनो।

ग्यान बिराग जोग बिग्याना। ए सब पुरुष सुनहु हरिजाना ॥
पुरुष प्रताप प्रबल सब भाँती। अबला अबल सहज जड़ जाती ॥८॥

अर्थ : हे हरिवाहन ! सुनो ज्ञान विराग योग और विज्ञान ये सब पुरुष हैं।

पुरुष का प्रताप सब भाँति से प्रबल होता है और अबला स्त्रियाँ स्वभाव से ही निर्बल और जड़ जाति हैं।

व्याख्या : ज्ञान विराग योग और विज्ञान कोई रूपवान् पदार्थ नहीं हैं कि इनके लिङ्ग का निर्णय हो सके। इनका प्रताप सब भाँति प्रबल है। ये स्वावलम्बी हैं इनमें पुरुषार्थ हैं। ममता ताग के तोड़ने में समर्थ है। इसलिए इन्हें पुरुष कहा : इसी भाँति अरूप पदार्थ यदि स्वावलम्बी न हो। किसी के आश्रित हो ममता ताग के तोड़ने में समर्थ न हो तो उसे स्त्री कहेंगे। अतः माया स्त्री है जड़ जाति है।

दो. पुरुष त्याग सक नारिहि, जो बिरक्त मतिधीर।
नतु कामी बिषयाबस, बिमुख जो पद रघुबीर ॥११५॥

अर्थ : जो विरक्त मतिधीर पुरुष हैं वे स्त्री का त्याग कर सकते हैं। पर कामी विषय के वश हुए और राम विमुख ऐसा नहीं कर सकते।

व्याख्या : पुरुष और स्त्री में भोक्तृ-भोग्य सम्बन्ध है। इसलिए वह उसे नहीं छोड़ सकता पर जिस पुरुष के हृदय में ज्ञान विराग है वह स्त्री को छोड़ सकता है उसे काम पीड़ा नहीं पहुँचा सकता। यथा : ब्रह्मचर्य ब्रत रत मति धीरा। तुमहि कि करइ मनोभव पीरा।

जो कामी विषयवश है जो रामविमुख है वह स्त्री नहीं छोड़ सकता। वह समझता है कि अमुक स्त्री मुझे चाहती है। मुझे चाव से देखती है। छाती से दबाकर गले लगाती है। वह ज्ञानियों की भाँति यह नहीं समझ सकता कि मांस और हड्डी की बनी हुई स्त्री क्या देखेगी और क्या इच्छा करेगी। देखनेवाला तो अमूर्त पुरुष है।

सो. सो मुनि ग्यान निधान, मृगनयनी बिधु मुख निरखि।
बिबस होहिं हरिजान, नारि बिस्व माया प्रकट ॥११५ क.

अर्थ : हे गरुड़जी वे ज्ञाननिधान मुनि भी मृगनयनी चन्द्रमुखी को देखकर विवश हो जाते हैं। विश्व में स्त्री मूर्तिमती माया है।

व्याख्या : ऐसे ज्ञाननिधान जिन्होंने मुनिपदवी प्राप्त कर ली है। वे भी मृगनयनी चन्द्रमुखी पर दृष्टि पड़ जाने से उसके सौन्दर्यातिशय पर लट्टू हो जाते हैं। क्योंकि इस संसार में प्रत्यक्ष माया तो स्त्री ही है। अति सुन्दरी स्त्री भी क्या है एक घिनावनी दुर्गन्धमयी पुतली है। अस्थिपञ्जर पर मांस का लेप है और उस पर चमड़ा मढ़ा है। सौन्दर्य कोई वस्तु नहीं है। वह तो केवल अविचार से सिद्ध है। उसमें ज्ञान ध्यान का डूब जाना यही माया की प्रबलता है। भाव यह कि पुरुष का स्त्री के आकर्षण से बचना महा कठिन है।

इहाँ न पक्षपात कछु राखौं। बेद पुरान संत मत भाखौं ॥
मोह न नारि नारि के रूपा। पन्नगारि यह रीति अनूपा ॥१॥

अर्थ : यहाँ पर मैं कुछ पक्षपात नहीं करता। वेद पुराण और सन्त का मत कह रहा हूँ। स्त्री के रूप पर स्त्री मोहित नहीं होती। गरुड़जी यह रीति अनुपम है।

व्याख्या : भुसुण्डिजी के कहने का भाव यह है कि पहिले मैंने भक्ति का पक्षपात किया था और उससे मुझे लाभ भी हुआ। यथा : भगति पच्छ हठ करि रहेउँ, दीन्ह महा रिषि साप। मुनि दुर्लभ बर पायेउ देखहु भजन प्रताप। इससे न समझना कि यहाँ भी पक्षपात कर रहा हूँ। यहाँ पर मैं शिष्टानुमोदित वेद और पुराण का मत कह रहा हूँ।

पुं-शक्ति और स्त्री शक्ति में भोक्तृ भोग्य भाव होने से आकर्षण है। स्त्री स्त्री में साम्य होने के कारण आकर्षण नहीं है। अतः स्त्री के रूप पर स्त्री मोहित नहीं होती। आकर्षण न होने की रीति ऐसी व्यापक है कि निर्जीव पदार्थ में भी इस नियम का बाघ नहीं दिखाई पड़ता। इसलिए इसे अनूप कहा।

माया भगति सुनहु तुम्ह दोऊ। नारि बर्ग जानै सब कोऊ॥
पुनि रघुबीरहि भगति पियारी। माया खलु नर्तकी बिचारी॥२॥

अर्थ : तुम सुनो माया और भक्ति दोनों स्त्री वर्ग हैं। यह बात कोई जानता है। तिसपर रामजी को भक्ति प्यारी है। माया बिचारी तो निश्चय करके नर्तकी : नाचनेवाली है।

व्याख्या : जिस भाँति स्वावलम्बी और पुरुषार्थी होने से ज्ञान विरागादि पुरुष माने गये हैं उसी भाँति पराश्रित होने से ममता ताग के तोड़ने में असमर्थ होने से माया और भक्ति को स्त्री माना गया हैं। इसमें किसी को विप्रतिपत्ति नहीं है। सभी ऐसा ही मानते हैं। स्त्री होने से इन दोनों में परस्पर आकर्षण नहीं है। अतः भक्ति माया पर मोहित नहीं होती।

दूसरी बात यह है कि अनन्या होने से उसकी ममता रामजी पर होने से भक्ति रामजी को प्यारी है और माया तो मिथ्याभाव दिखलाकर लोगों को ठगा करती है। उसकी ममता विषयों में है। इसलिए उसे नर्तकी कहा। कहाँ पट्टाभिषिक्ता महिषी और कहाँ नर्तकी ? इसलिए माया को बिचारी कहा।

भगतिहि सानुकूल रघुराया। ताते तेहि डरपति अति माया॥
राम भगति निरुपम निरुपाधी। बसै जासु उर सदा अबाधी॥३॥

अर्थ : रघुराज भक्ति के सानुकूल रहते हैं इसलिए माया उससे बहुत डरती है। निरुपाधि निरुपम रामभक्ति जिसके हृदय में अबाधितरूप से बसती है।

व्याख्या : भक्ति रामजी को बहुत प्यारी है। वे सदा उसके अनुकूल रहते हैं। यथा : रघुपति भगत भगति बस अहहीं। सुधि करि अम्बरीष दुर्वासा। भये सुर सुरपति निपट निरासा। अतः भक्ति से माया बहुत डरती है। उसे जितना डर रामजी से नहीं उतना डर भक्ति से है। क्योंकि रामजी सभी के अधिष्ठान हैं किसी के विरोधी नहीं हैं। पर भक्ति का स्वभाव माया से सर्वथा विरुद्ध है। यथा : देखी माया सब

विधि गाढ़ी। अति सभीत जोरे कर ठाढ़ी। देखा जीव नचावै जाही। देखी भगति जो छोरै ताही।

साधन चार हैं : १. कर्म योग २. अष्टाङ्ग योग ३. ज्ञान योग और ४. भक्ति योग। इनमें से भक्ति योग को कोई उपमा नहीं है। क्योंकि सबको भक्ति की सहायता की अपेक्षा रहती है। पर भक्ति को किसी की अपेक्षा नहीं। यथा : सो सुतंत्र अवलम्ब न आना। तेहि आधीन ग्यान विज्ञाना। तथा : सो सब करम धरम जरि जाऊँ। जहँ न राम पद पंकज भाऊ। जोग कुजोग ज्ञान अज्ञानू। जहँ नहि राम प्रेम परधानू। अतः रामभक्ति अनुपम है। यह भक्ति कामना-पुरःसर नहीं होनी चाहिए : नहीं तो गौणी हो जायगी। निष्काम भजन ही निरुपाधि भक्ति है। ज्ञान होने पर जगत् का बाध हो जाता है। सो भक्ति का बाध न होने पावे। यथा : सो अनन्य जाके असि मति न टरइ हनुमन्त। मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवंत। तथा : भक्त्यर्थं कल्पितं द्वैतमद्वैतादपि सुन्दरम्।

तेहि बिलोकि माया सकुचाई। करि न सकै कछु निज प्रभुताई॥
अस बिचारि जे मुनि बिग्यानी। जाचहिं भगति सकल सुखखानी॥४॥

अर्थ : उसे देखकर मायाको संकोच होता है। अपनी प्रभुता कुछ कर नहीं सकती। ऐसा विचार करके जो विज्ञानी मुनि हैं वे सब सुखखानि भक्ति माँगते हैं।

व्याख्या : जिसके हृदय में उपर्युक्त गुण युक्त भक्ति बसती है। उनके स्वरूप में अन्तर पड़ जाता है। विषय रस से रूखापन और रामरस से सरसता उसके चेहरे से टपकती है। यथा : सोह सैल गिरिजा गृह आये। जिमि जन रामभगति के पाये। अतः उसे देखकर माया संकुचित हो जाती है कि यहाँ मेरा बल नहीं चलेगा। यथा : मैं तोहि अब जान्यौं संसार। बाँधि न सकहि मोहि हरि के बल प्रकट कपट आगार। देखत ही कमनीय कछू, नाहिन पुनि किये विचार। ज्यों कदली तरु मध्य निहारत, कबहुँ न निकसत सार। सुनु खल छल बल कोटि किये, बस होहिं न भगत उदार। सहित सहाय तहाँ बसि अब, जेहि हृदय न नंदकुमार।

ऐसा विचारकर विज्ञानी मुनि भी अनपायिनी भक्ति माँगते हैं। क्योंकि वह कृपासाध्य है। क्रियासाध्य नहीं है। साधन भक्ति से अन्तःकरण शुद्ध होने पर केवल सिद्धा भक्ति की चाह रह जाती है। वही सुख को जननी है। यथा : सुख कि लहिय हरि भगति बिनु।

दो. यह रहस्य रघुनाथ कर, बेगि न जानै कोइ।
जो जानै रघुपति कृपा, सपनेहु मोह न होइ॥११६॥

अर्थ : श्रीरघुनाथ के इस रहस्य को जल्दी कोई जान नहीं पाता। यदि रघुपति की कृपा से जान ले तो उसे सपने में भी मोह नहीं होता।

व्याख्या : चरित्र विषयक रहस्य कहकर अब साधनविषयक रहस्य कहते हैं। माया का बल ज्ञान पर चल जाता है। भक्ति पर नहीं चलता। यह रहस्य है। जल्दी

समझ में नहीं आता। यदि आजाय तो उसे रामजी की कृपा समझनी चाहिए। फिर उसे जाग्रत की कौन कहे सपने में भी मोह नहीं होगा। यदि इसके जान लेने पर भी मोह बना है तो समझ लेना चाहिए कि बात ठीक मनमें नहीं बैठी।

दो. औरौ ग्यान भगति कर, भेद सुनहु सुप्रबीन।
जो सुनि होइ राम पद, प्रीति सदा अबिछीन ॥११६ क.

अर्थ : हे सुप्रवीण ! भक्ति और ज्ञान का और भी भेद सुनो। जिसके सुनने से रामजी के चरणों में सदा अविच्छिन्न प्रीति होती है।

व्याख्या : उपर्युक्त भेद के अतिरिक्त और भी ज्ञान भक्ति में भेद हैं। उसे यहाँ पर वर्णन करेंगे। दोनों भेदों के श्रवण मनन से बड़ा भारी कल्याण होता है। पहिला भेद जो कह आये हैं। उसके जान लेने से मोह नहीं होता और अब जो कहेंगे उसके सुनने से रामजी के चरणोंमें अविच्छिन्न तैल धारावत् प्रीति भक्ति होगी जो सब सुखों की खानि है।

ज्ञान दीपकप्रसङ्ग

सुनहु तात यह अकथ कहानी। समुझत बनै न जाय बखानी ॥
ईस्वर अंस जीव अबिनासी। चेतन अमल सहज सुखरासी ॥१॥

अर्थ : हे तात ! यह अथक कहानी जो कहते और समझते नहीं बनती उसे सुनो ! चेतन अमल सहज सुखराशि जीव ईश्वर का अंश है।

व्याख्या : निर्गुण ब्रह्म और गुणमयी माया के संयोग वियोग का इसमें वर्णन हैं। निर्गुण ब्रह्म ज्ञेय नहीं है। अघटनघटनापटीयसी माया भी जानी नहीं जा सकती और संयोग वियोग ब्रह्म में बनता नहीं अतएव यदि समझते बने तभी आश्चर्य है और कहने के लिए उपयुक्त शब्द भी नहीं मिलते। अतः बखानते भी नहीं बनता। इसलिए जिस कहानी को सुना रहे हैं उसे अकथ बतलाया।

वेदान्त वाक्यों को गुरुमुख द्वारा सुनते सुनते अनुभव हो जाता है। अतः कहना सुनना निष्फल भी नहीं है।

ब्रह्म जब जगत् के प्रकाशक रूप अर्थात् मायापति के रूप से देखे जाते हैं। तब ईश्वर कहलाते हैं। मलिनसत्वा माया में जब ब्रह्म का प्रतिबिम्ब पड़ता है तो सत्त्व के मालिन्य से अनन्त प्रतिबिम्ब हो जाते हैं और उन प्रतिबिम्ब को वह मलिन-सत्त्वा माया देह हो जाती है। वही देह कारण शरीर कहलाता है और उसका अभिमानी जीव प्राज्ञ कहलाता है। यथा : भूमि परत भा ढाबरपानी। जिमि जीवहिं माया लपटानी। परबस जीव स्वबस भगवंता। जीव अनेक एक श्रीकंता।

ईश्वर का अंश होने से जीव भी अविनाशी है। जड़ से सम्बन्ध होने पर भी प्रज्ञानघन है। अभीतक ममता मलका योग नहीं हुआ है। अतः निर्मल भी है कारण शरीरभिमानी होने पर भी आनन्दभोक्ता है। इसी से कारण शरीर को आनन्दमय कोष कहते हैं। उनकी अवस्था सुषुप्ति है।

सो मायाबस भयउ गोसाईं। बंध्यौ कीर मर्कट की नाईं॥
जड़ चेतनहि ग्रंथि पर गई। जदपि मृषा छूटत कठिनई॥२॥

अर्थ : वह माया के वश पड़ गया और शुक तथा बन्दर की भाँति बँध गया। जड़ चेतन में गाँठ पड़ गयी। वह यद्यपि झूठी है पर उसका छूटना कठिन है।

व्याख्या : अंश की कल्पना होने से मायावश हुआ यहाँ अंश का अर्थ अंश इव अंश है। नहीं तो : पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते। पूर्ण में से पूर्णत्व के निकाल लेने पर पूर्ण ही शेष रहता है। सच्चिदानन्द का अंश भी सच्चिदानन्द ही है। बिम्ब मायी है और उसका अंश प्रतिबिम्ब मायावश हुआ। वह शुक और बन्दर की भाँति बँध गया। अज्ञान ही बन्धन हुआ। वास्तव में बन्धन कुछ भी नहीं।

व्याध दो तिल्लियों को गाड़कर उनके सिर पर एक तीसरी तिल्ली बाँध देता है। तीसरी तिल्ली में बाँस की नली पहिना देता है और नीचे दाना रख देता है। शुक का स्वभाव ऊँचे पर बैठने का है। अतः जब वह नली पर बैठकर दाना चुगने के लिए झुकता है तो नली घूम जाती है। शुक : सुग्गा उलटा लटकने लगता है। अज्ञान से भयवश उसे छोड़ता नहीं और व्याध आकर उसे पकड़ लेता है। विचार करने पर मालूम होगा कि यहाँ सुग्गे को अज्ञान के सिवा दूसरा बन्धन नहीं है।

बन्दर भी इसी भाँति बँध जाता है। उसके हाथ जाने लायक छेदवाली कुल्हिया दाने से भरकर जमीन में गाड़ दी जाती है। बन्दर उसमें हाथ डालकर मुट्ठी में दाने पकड़ लेता है। तब मुट्ठी उसमें से निकलती नहीं। अज्ञान से दाने को छोड़ता नहीं और बँध जाता है। अर्थात् अज्ञान से दोनों बँधे हैं। भेद इतना ही है कि पण्डित शास्त्रपाठ करते हुए सुग्गों की भाँति बँधा हुआ है और मूर्ख बन्दर की भाँति बँधा हुआ है।

प्रतिबिम्ब का पड़ना ही बिम्ब और मुकुर की ग्रन्थि है। नहीं तो बिम्ब और मुकुर की ग्रन्थि कैसी? अहङ्कार ही चिज्जड़ की ग्रन्थि है। यह गाँठ झूठी है। पर छूटने में कठिनता है। आज तक छूटी नहीं।

तब ते जीव भयेउ संसारी। छूट न ग्रन्थि न होइ सुखारी॥
स्रुति पुरान बहु कहेउ उपाई। छूट न अधिक अधिक अरुझाई॥३॥

अर्थ : तब से वह जीव संसारी हो गया। न गाँठ छूटती है और न वह सुखी होता है। वेद पुराण ने बहुत से उपाय कहे पर छूटती नहीं और भी अधिक उलझती जाती है।

व्याख्या : ग्रन्थि पड़ने पर जीव संसारी हुआ। आनन्दमय कोष तक संसारी नहीं है। विज्ञान मय कोष में जब अहङ्कार स्फुरित होता है तब से संसारी होता है। यथा : निष्काज राज बिहाय नृप इव स्वप्न कारागृह परयो। तथा : ते निजकर्म डोरि दृढ़ कीन्ही। अपने करन्ह गाँठि कसि दीन्ही।

श्रुतिपुराण छूटने के बहुत से उपाय बतलाते हैं पर छूटती नहीं। गाँठ पर गाँठ पड़ती ही चली जाती है। कितनी बार अगाध पण्डित्य के अभिमान की एक गाँठ और पड़ गयी। छूटना तो दूर की बात है। श्रुति पुराण सत्यवादी हैं ठीक बतलाते हैं। पर हम चाहने पर भी वैसा नहीं कर सकते। कारण कहते हैं।

जीव हृदय तम मोह बिसेखी। ग्रन्थि छूटि किमि परै न देखी॥
अस संजोग ईस जब करई। तबहु कदाचित सो निरुअरई॥४॥

अर्थ : जीव के हृदय में मोहरूपी अन्धकार बहुत है। गाँठ छूटे कैसे ? दिखाई तो पड़ती ही नहीं। ऐसा संयोग यदि ईश्वर कर दे तब भी कदाचित् ही वह छूटे।

उन ईश का किया हुआ संयोग इस प्रकार हो कि सात्त्विकी श्रद्धा हरि की कृपा से हृदय में बसे और उस श्रद्धा द्वारा खूब धर्माचरण हो। जिसमें श्रद्धा पुष्ट होती जाय और धर्म के साथ से रज और तम के अभिभूत होने से सात्त्विक भाव उत्पन्न हो। तब श्रद्धा द्रवीभूत होती है।

तब भलीभाँति वश किये हुए काम संकल्प रहित मन की वृत्ति लगाकर अपनी श्रद्धा को अचल कर ले : नहीं तो सात्त्विकभाव के हटाते समय श्रद्धा छटक जा सकती है। और दृढ़ विश्वास करके अहिंसा में प्रतिष्ठित हो जाय। प्राणिमात्र को अभय दान दे।

जबतक हृदय में दया का प्रादुर्भाव नहीं होता तबतक समझना चाहिए कि परमधर्म का उदय नहीं हुआ। इस प्रकार अहिंसा में प्रतिष्ठित होने पर निष्कामता से अहिंसागत कामना के अंश को दूर करे।

कामना के अंश को दूर करने से जो ताप होता है उसे क्षमा द्वारा तोष से दूर करे और जब शीतल निष्काम दयाभाव हो जाय तो उसे वृत्ति से ठोस करे।

तब उस शीतल ठोस निष्काम दयाभाव को दमपूर्वक गुरु शास्त्रोपदेश : हितकर सत्यवाणी के अनुसार विचार से मुदिता मन्थन करे : अर्थात् विचार शास्त्र मर्यादा के भीतर ही शास्त्र विरुद्ध विषय का समावेश न हो। : विचार करे कि संसार दुःखमय है। हम जीव इसमें पड़े हुए क्लेश उठा रहे हैं। इस दुःख की अत्यन्त निवृत्ति कैसे होगी : इत्यादि।

इन विचारों से साधक जिस निश्चय पर पहुँचेगा वही वैराग्य है। विचारों से इस निश्चय पर पहुँचेगा कि सब विषय अनित्य है और दुःख को योनि है। चाहे इस लोक के हों या परलोक के। तब उनसे अपने आप ही हटेगा। जब चित्त में विराग आजायगा तब वह विषयों को छोड़ सकेगा और तब उसे योग का अधिकार होगा।

योग चित्तवृत्ति का निरोध है। वैराग्य से चित्तवृत्ति के निरोध की योग्यता प्राप्त होती है। परन्तु शुभाशुभ कर्म का संस्कार उसमें बाधक होता है। इसलिए बुद्धि द्वारा शुभाशुभ कर्म संस्कार के दूर करते ही चित्त योग में प्रतिष्ठित हो जाता है। ममता नष्ट हो जाती है और सत् वस्तु में एकाग्रता होती है। तब तत् पद का ज्ञान अर्थात् परोक्षज्ञान होता है।

तब विज्ञान निरूपिणी : उपनिषद्जन्य बुद्धि उस परोक्षज्ञान को चित्त में जमाकर समता में स्थापन करती है।

अब त्वं पदार्थ का शोधन शेष है। अतः इस प्रकार परोक्षज्ञानी ध्यान में स्थित होकर अपने को स्थूल सूक्ष्म और कारण तीनों शरीरों से पृथक् भावना करके अर्थात् त्वं पदार्थ का शोधन करके तुरीयावस्था को प्राप्त होता है। फिर तुरीयावस्था के संस्कारों को एकीभूत करके परोक्षज्ञान में मिला देता है। यह असि पद है।

तब शब्दानुविद्ध समाधि में स्थित होने से आत्मानुभव प्रकाश उत्पन्न होता है और वह : सोऽहमस्मि वृत्तिवाला अपरोक्ष होता है। यह मोहान्धकार को मिटा देता है।

परन्तु अभी चित् जड़ ग्रन्थि बनी हुई है। विज्ञानरूपिणी बुद्धि इस प्रकाश में ग्रन्थिभेदन कर सकती है। यदि ग्रन्थिभेदन हो गया तो मिथ्याध्यास सदा के लिए मिट गया और सहज रूप कैवल्य की प्राप्ति हो गयी। यही परमपद है।

इसी ज्ञान सिद्धान्त को सुगमता से समझाने के लिए दीपक के सुन्दर रूपक में नीचे विशदरूप से वर्णन करेंगे।

व्याख्या : गांठ हृदय में पड़ी हुई है और वहाँ तमोगुण का आधिक्य है। बोध का प्रसार नहीं होता। गांठ ही नहीं दिखाई पड़ती। फिर छूटे कैसे ?

महादेव की यदि कृपा हो संयोग पर संयोग बैठता चला जाय : क्योंकि सबुइ सुलभ जग जीव कहँ भये ईस अनुकूल। फिर भी कदाचित् वह छूटे। भाव यह कि उन संयोगों से ठीक ठीक लाभ उठाना और सावधानी से क्रम का निर्वाह करना महा कठिन है। तनक सो चूक से बना बनाया काम बिगड़ता है। अतः बहुत सम्भव तो यही है कि संयोग जुट जाने पर भी न खुले। संयोगों का क्रमबद्ध वर्णन करते हैं।

सात्विक श्रद्धा धेनु सुहाई। जौ हरिकृपा हृदय बस आई ॥
जप तप ब्रत जम नियम अपारा। जे स्रुति कह सुभ धर्म अचारा ॥५॥

अर्थ : सात्त्विकी श्रद्धारूपी नयी ब्याई हुई गौ यदि हरिकृपा से हृदय में आकर बसेरा ले। अपार जप, तप, व्रत, यम, नियम जिन्हें वेद ने शुभ धर्म आचरण कहा है।

व्याख्या : राजसी तामसी श्रद्धा भी धेनु हैं पर वे सोहाई नहीं है। राजसी तामसी श्रद्धा तो यक्ष राक्षस तथा भूत प्रेत के प्रति होती है : बछड़ेवाली गाय को ही धेनु कहते हैं। बिना सत्त्वगुण के अधिष्ठाता हरि को कृपा सात्त्विकी श्रद्धा की प्राप्ति नहीं होती। अँधेरे में धेनु भड़कती है ठहरती नहीं। हरि की कृपा हो तो ठहरे।

विधिवत् गुरु द्वारा उपदिष्ट वेदाविरुद्ध मन्त्र के अभ्यास को जप कहते हैं। विध्युक्त कृच्छ्र चान्द्रायणदि द्वारा शरीर के शोषण को तप कहते हैं। वेदोक्त विधि निषेध के निर्वाह को व्रत कहते हैं। अहिंसा सत्य अस्तेय ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह ये पाँच यम हैं। शौच सन्तोष तप स्वाध्याय ईश्वरप्रणिधान ये पाँच नियम हैं।

१. सदा सर्वदा किसी भी प्राणी में द्रोह न रखने को अहिंसा कहते हैं २. मनसा वाचा कर्मणा भूतहित यथार्थ भाषण को सत्य कहते हैं। ३. मनसा वाचा कर्मणा दूसरे के द्रव्य में स्पृहा न रखने को अस्तेय कहते हैं। ४. स्मरणादि अष्टविध मैथुन के अभाव को ब्रह्मचर्य कहते हैं। ५. विषयों के अर्जन रक्षण क्षय और सङ्ग से हिंसादि-दोष होते हैं। अतः उनके अस्वीकार को अपरिग्रह कहते हैं।

१. देह और मन के मल को दूर करना शौच है। २. प्राप्त साधन से अधिक पैदा करने की अनिच्छा को सन्तोष कहते हैं। ३. जाड़ा गरमी भूख प्यास आदि द्वन्द्व के सहने को तप कहते हैं। ४. मोक्ष शास्त्र के पढ़ने या प्रणव के जप को स्वाध्याय कहते हैं। ५. सब कर्मों को ईश्वरार्पण कर देना ईश्वरप्रणिधान हैं। ये सब एक एक असाध्य हैं : इसलिए अपार कहा। इनके अतिरिक्त और शुभ धर्माचार यज्ञदानादि जिनके करने के लिए वेद की आज्ञा है।

तेइ तृन हरित चरै जब गाई। भाव बच्छ सिसु पाय पेन्हाई ॥
मोइनि बृत्ति पात्र बिस्वासा। निर्मल मन अहीर निज दासा ॥६॥

अर्थ : उस हरे तृण को जब गाय चरे और भावरूपी बछड़ा पाकर उनके थन में दूध आजाय। वृत्ति को नोइनि विश्वास को दोहनी और दासीभूत निर्मल मन को अहीर बनावे।

व्याख्या : ये जप तप आदि छओं प्रकार के सरस तृण को श्रद्धा रूपी गाय पेट भरकर जब चरे तब सात्त्विक भावरूपी बछड़े को पाकर उसके थन में दूध उतर आवेगा। अर्थात् सानन्द आचरित धर्म भावोपहत न होने से सात्त्विक परिणाम रूप से फलोन्मुख होगा। दूहने के समय जिस रस्सी से गाय के पिछले दोनों पैर बाँध देते हैं उसे नोइनि कहते हैं। अर्थात् वृत्ति को उस समय श्रद्धा के चरणों में लगा दे। विश्वास को दोहनी बनावे तब वृत्ति द्वारा श्रद्धारूपी गाय को निश्चल करके विश्वासरूपी दोहनी में निर्मल वशीकृत मनरूपी अहीर द्वारा उसका दोहन करे।

परम धरम मय पय दुहि भाई। अघटइ अनल अकाम बनाई ॥
तोष मरुत तब छमा जुड़ावै। धृति सम जावन देइ जमावै ॥७॥

अर्थ : हे भाई ! परम धर्ममय दूध दुहकर उसे अकाम की आग बनाकर औटे तब क्षमा उसे तोषरूपी हवा से ठण्डा करे और धृति का जावन समान : उचित मात्रा में देकर जमावे।

व्याख्या : उनका सात्त्विक परिणाम परम धर्म है। परम धर्म सार्वभौम अहिंसा है। यथा : परम धर्म स्रुति बिदित अहिंसा। यह सर्वभौम अहिंसा उपर्युक्त छओं साधनों का सार है। उसे अकामरूपी अग्नि से औटे। अर्थात् उसमें से कामवासना दूर करे। विश्वासरूपी पात्र में ही यह सब प्रक्रिया हो रही है।

कामांश दूर करने में वह परम धर्म सन्तप्त हो उठता है। उसे तोषरूपी हवा से ठण्ढा करने का काम क्षमा द्वारा होगा। प्रियाप्रिय में ताड़न पूजन में सहन शक्ति

का नाम क्षमा है। वही क्षमा धैर्यरूपी जावन उचित मात्रा में देकर दूध को जमावे अर्थात् घनीभूत करे।

मुदिता मथै बिचार मथानी। दम अधार रजु सत्य सुबानी ॥
तब मथि काढ़ि लेइ नवनीता। बिमल बिराग सुभग सुपुनीता ॥८॥

अर्थ : मुदिता विचार की मथानी से जिसका दम आधार और सत्य सुवाणी डोरी हो उस दही को मथे। तब दही मथकर सुन्दर पवित्र विरागरूपी मक्खन निकाल ले।

व्याख्या : दही जमाने तक क्षमा का काम था। अब मथने के लिए मुदिता आयी। दूसरे के सुख से आनन्दित होनेवाले गुण को मुदिता कहते हैं। मुदिता विचार के मथानी से मथने लगी। यथा :

काहु न कोउ सुख दुख कर दाता। निज कृत कर्म भोग सब भ्राता ॥
जोग बियोग भोग भल मंदा। हित अनहित मध्यम भ्रम फंदा ॥
जनमु मरनु जहँ लगि जग जालू। संपति बिपति करम अरु कालू ॥
धरनि धाम धन पुर परिवारू। सरगु नरकु जहँ लगि व्यवहारू ॥
देखिय सुनिय गुनिअ मन माही। मोह मूल परमारथ नाही ॥

सपने होइ भिखारि नृप, रंक नाकपति होइ।
जागे लाभु न हानि कछु, तिमि प्रपंच जिअ जोइ ॥

मोह निसा सब सोवनिहारा। देखिअ सपन अनेक प्रकारा ॥
एहि जग जामिनि जागहि जोगी। परमारथी प्रपंच बियोगी ॥
जानिअ तबहि जीव जग जागा। जब सब बिषय बिलास बिरागा ॥ इत्यादि

उस विचार का आधार इन्द्रियदमन था। उसके बिना सब विचार निराधार हो जाते हैं और सत्योक्ति रस्सी है। जिसके खिंचाव से विचार मथानी घूमती है। सत्य सुवाणी का भाव यह कि सत्य होती हुई भी वह वाणी वञ्चिता भ्रान्ता और प्रतिपत्तिशून्या न हो।

तब विराग का उदय होता है। उसी को मक्खन कहा है। वह दूध सा सुभग है। दूध पुनीत था यह सुपुनीत है। अब तक तो विश्वास के आधार पर काम चला। यदि विश्वास में त्रुटि हो तो सब परिश्रम निष्फल है। पर वैराग्य के उदय होने पर तो अनुभव होने लगेगा। इसलिए कहते हैं : काढ़ि लेइ नवनीता। मक्खन को अलग कर ले।

दो. जोग अगिनि करि प्रकट तब, कर्म सुभासुभ लाइ।
बुद्धि सिरावै ग्यान घृत, ममता मल जरि जाइ ॥११७॥

अर्थ : शुभाशुभ कर्म को लगाकर शरीर में योगाग्नि को प्रकट करके बुद्धि ज्ञान घृत को तैयार करे। जिसमें ममतारूपी मल जल जाय।

व्याख्या : जब से हरिकृपा से श्रद्धा हृदय में आयी है। तभी से स्वाभाविकी प्रवृत्ति का शास्त्रीया होना प्रारम्भ हो गया। अर्थात् जाने या बिना जाने चित्तवृत्ति के निरोध का प्रयत्न चल पड़ा। अब वैराग्य के योग से चित्तवृत्ति का निरोध हो गया। यही योग है।

शुभ कर्म को शुक्ल अशुभ को कृष्ण और मिश्र को शुक्लकृष्ण कहते हैं। पर योगियों का कर्म तीनों से अलग अशुक्लाकृष्ण होता है। इसी से योग को अग्नि कहते हैं। यह शुभाशुभ कर्मों को जलाता हुआ प्रकट होता है।

विराग में भी यह भाव रहा कि सब विषय विलास मेरे वश में है। मैं इनके वश में नहीं हूँ। अतः उसमें भी ममता का संस्कार था जिसे मल कहते हैं। सो बुद्धि उस मक्खन को इस भाँति से योगाग्नि पर पकावे कि ममता मल जल जाय। इस भाँति तत् पदार्थ का शोधन हुआ।

दोः तब बिग्यान निरूपिनी, बुद्धि बिसद घृत पाइ।
चित्त दिया भरि धरै दृढ़, समता दियटि बनाइ ॥११७ क.

अर्थ : तब विज्ञान निरूपण करनेवाली बुद्धि स्वच्छ घी पाकर चित्तरूपी दीया में भरे और समता को दीवट : दीपकाधार बनाकर उस पर दृढ़ करके स्थापन करे।

व्याख्या : गुरु वेदान्त वाक्य से जो ब्रह्मात्मैक्य का अनुभव होता है। उसे विज्ञाननिरूपिणी बुद्धि कहते हैं ! तत् पद के शोधन करने से ही बुद्धि विज्ञाननिरूपिणी हो गयी। यह समता के आधार पर चित्त में उस ज्ञान को भरकर स्थापन करे। यथा : ग्यान मान जहँ एको नाहीं। देख ब्रह्म समान सब माहीं।

तब साधक की साधु पदवी होती है। साधु का चरित्र कपास के चरित्र के समान है। यथा : साधु चरित सुभ सरिस कपासू। निरस बिसद गुन मय फल जासू।

दो. तीनि अवस्था तीनि गुन, तेहि कपास ते काढ़ि।
तूल तुरीय सँवारि पुनि, बाती करै सुगाढ़ि ॥११७ ख.

अर्थ : तीन अवस्था रूपी तीन गुणों को उस कपास से दूर करके तुरीयरूपी रूई को सँवारकर अच्छी मोटी बत्ती बनावे।

व्याख्या : इस कमल की पुरइन बालकाण्ड के प्रारम्भ से आयी है। यथा : साधु चरित सुभ सरिस कपासू। सत्वप्रधान जाग्रत्, रजःप्रधान स्वप्न और तमःप्रधान सुषुप्ति ये ही तीन अवस्था हैं। उन्हें साधक क्रमशः अपने तीनों शरीरों : स्थूल सूक्ष्म और कारण से दूर करे। तब रूईरूप तुरीय अवस्था को सँवारकर उसकी अच्छी मोटी बत्ती बनाये। घनावस्था को प्राप्त हो। पाञ्चभौतिक देह को स्थूल शरीर कहते हैं। पाँच ज्ञानेन्द्रिय, पाँच कर्मेन्द्रिय, पञ्चप्राण, मन और बुद्धि के समूह को सूक्ष्म शरीर कहते हैं। इन दोनों का कारण आत्मा का अज्ञान आत्मा के आभास से युक्त

होकर कारण शरीर कहलाता है। तीनों शरीर और तीनों अवस्था से आत्मा का पृथक् अनुभव ही त्वं पद का शोधन है।

सो. एहि बिधि लेसै दीप, तेज रासि बिग्यान मय।
जातहिं जासु समीप, जरहिं मदादिक सलभ सब ॥११७॥

अर्थ : इस विधान से तेजराशि विज्ञान मय दोपक जलावे। जिसके समीप जाने से मदादि सब पतङ्ग जल जायँ।

व्याख्या : दीप प्रज्वलित करने के बहुत विधान हैं। पर वे मोक्षोपयोगी नहीं हैं। अतः उपर्युक्त विधान से ही दीपक जले। कहीं कोई त्रुटि न होने पावे। दीपक जलाने में बत्ती को घी में डालकर अग्नि से प्रज्वलित करना होता है। यहाँ पर तत्पदार्थ और त्वं-पदार्थ के शोधन पूर्वक दोनों के ऐक्य का निदिध्यासन ही दीप का प्रज्वलित करना है।

यह दीया तेजराशि होता है। इसके निकट मदादिक शलभ नहीं जा सकते। जायँ तो जल जायँ और यह दीपक विज्ञानमय है। इससे अपरोक्षज्ञान होता है। इसलिए इसे विज्ञानमय कहा।

सोहमस्मि इति बृत्ति अखंडा। दीप सिखा सोइ परम प्रचंडा॥
आतम अनुभव सुख सुप्रकासा। तब भवमूल भेदभ्रम नासा॥१॥

अर्थ : वह मैं हूँ : ऐसी अखण्ड वृत्ति ही उस दीये की प्रचण्ड शिखा हैं। आत्मानुभव सुख उसका सुन्दर प्रकाश है। तब संसार के मूल भेदभ्रम का नाश होता है।

व्याख्या : सो तैं तोहि ताहि नहि भेदा : तत्त्वमसि। इस महावाक्य से जो प्रत्यभिज्ञा होती है। वही सोऽहमस्मि है अर्थात् वह मैं हूँ। यही अपरोक्ष ज्ञानवृत्ति दीप की प्रचण्ड लौ है। यह वृत्ति बराबर बनी रहे। यह माया के कटक के नाश में समर्थ है।

इस अखण्ड वृत्ति से आत्मानुभवक सुख होता है। यही इस दीप का सुन्दर प्रकाश है।

भेददृष्टि ही संसार का मूल है। स्वरूपाज्ञान से ही भेदभ्रम होता है। श्री गोस्वामीजो कहते हैं : मायावस सरूप विसरायो। तेहि भ्रम ते नाना दुख पायो। इस आत्मानुभव सुख के प्रकाश से भेद भ्रम मिट जाता है।

प्रबल अबिद्या कर परिवारा। मोह आदि तम मिटै अपारा॥
तब सोइ बुद्धि पाइ उँजियारा। उर गृह बैठि ग्रन्थि निरुआरा॥२॥

अर्थ : प्रबल अविद्या के परिवार मोह आदि अपार तम मिट जाते हैं। तब वही विज्ञानरूपिणी बुद्धि हृदयरूपी घर में बैठकर गाँठ छोड़ती है।

व्याख्या : काम, तृष्णा, क्रोध, लोभ, श्रीमद, मान, मद, मत्सर इत्यादि प्रबल

अविद्या के बाल बच्चे हैं। ये सब तमोरूप हैं। इनका पारावार नहीं। पर ये इस दीपक की ज्योति के आगे नहीं ठहरते मिट जाते हैं।

विज्ञानरूपिणी बुद्धि ही ग्रन्थि के खोलने में समर्थ है। पर अँधेरे में उससे कुछ करते धरते नहीं बनता था। अब जो आत्मानुभव सुख का उजेला मिला तो ग्रन्थि स्पष्ट भासने लगी। तब वह बुद्धि हृदयरूपी घर में बैठकर अर्थात् संप्रज्ञात समाधि में बैठकर गाँठ खोलने लगी।

छोरन ग्रन्थि पाव जौं सोई। तौ यह जीव कृतारथ होई॥
छोरत ग्रन्थि जानि खगराया। बिघन अनेक करै तब माया॥३॥

अर्थ : यदि वह बुद्धि चिद् जड़ ग्रन्थि खोल सके तो जीव कृतार्थ हो जाय। हे पक्षियों के राजा ! गाँठ को छूटती हुई जानकर माया अनेक विघ्न करती है।

व्याख्या : अहंकार के साथ तादात्म्य किये हुए अपने स्वरूप को भूला हुआ अनादि काल से जीव निद्रित पड़ा हुआ संसार का स्वप्न जनन मरण सुख दुःखादि का अनुभव कर रहा है। निर्विघ्न संप्रज्ञात समाधि सिद्ध होने से वह भ्रान्तिजन्य ग्रन्थि नष्ट हो जाती है। वह निद्रा से जागकर कृतकृत्य हो जाता है। फिर तो स्वराज्य सुख तो उसका कहीं गया था नहीं। केवल निद्रादोष से अभिभूत हो रहा था सो प्राप्त हो जाता है। चिद् जड़ ग्रन्थि का छूटना और निद्रा भङ्ग होना एक बात है। यदि बाधा उपस्थित न हो तो बुद्धि ग्रन्थि को खोल ले। परन्तु ऐसे अवसर पर माया विघ्न करने पर तुल जाती है। क्योंकि वह देखती है कि एक जीव उसके अधिकार से बाहर जाया चाहता है।

रिद्धि सिद्धि प्रेरै बहु भाई। बुद्धिहि लोभ दिखावहिं आई॥
कल बल छल करि जाहिं समीपा। अंचल बात बुझावहिं दीपा॥४॥

अर्थ : हे भाई ! बहुत सी ऋद्धि सिद्धियों को प्रेरणा करती है और आकर बुद्धि को ललचाती हैं। कल बल छल से समीप जाकर अञ्चल की हवा से दीपक बुझा देती है।

व्याख्या : ऋद्धि ऐश्वर्य को कहते हैं। अणिमा, महिमा, गरिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व और वशित्व, ये आठ सिद्धियाँ हैं। विज्ञानरूपिणी बुद्धि ही सब कुछ करनेवाली है। अतः माया उसी को फुसलाती है ऐश्वर्य और सिद्धियों का लोभ दिखलाती है। स्वयं उसके पास उपस्थित होकर उपाय से काम लेती है। उससे काम न चला तो बल का भी प्रयोग करती है। नहीं तो छल से उसके पास जाकर अञ्चल की हवा से दीपक बुझाकर ही मानती है।

स्त्रियाँ अञ्चल से ही दीपक बुझाती हैं। यहाँ अञ्चल बात से तात्पर्य विषय समीर है।

भाव यह कि बड़े बड़े धनी मानो धन देने के लिए उपस्थित होते हैं। बहुत

सी सिद्धियाँ उसमें दिखलाई पड़ने लग जाती हैं। यदि जीव उस आनन्द में आ गया तो ज्ञानदीप का निर्वाण हो जाता है।

होइ बुद्धि जौं परम सयानी। तिन्ह तनु चितव न अनहित जानी ॥
जौं तेहि बिघ्न बुद्धि नहि बाधी। तौ बहोरि सुर करहिं उपाधी ॥५॥

अर्थ : यदि बुद्धि परम सयानी हो तो माया को अनहित समझकर उसकी ओर दृष्टिपात न करे। यदि उस बुद्धि को विघ्नबाधा न पहुँचा सके तो फिर देवता लोग उपद्रव करते हैं।

व्याख्या : माया का व्यवहार हित के ऐसा होता है। सामान्य बुद्धि तो उसके जाल में फँस ही जाती है। यदि बुद्धि परम सयानी हो तो वह माया की ओर आँख उठाकर न देखे। ग्रन्थि छोड़ने में दत्तचित्त रहे। यदि बुद्धि ने माया की ओर आँख न उठाया तो उसके पास जाने की माया को सामर्थ्य नहीं है।

यदि माया की कोई कला नहीं चली तो देवता लोग उपाधि करने लगते हैं : जिसमें ग्रन्थि छूटने न पावे और जीव द्वारा जो भोग उनको मिला करता है उसमें बाधा न हो। क्योंकि जीव देवताओं का पशु है। इस लोक और परलोक दोनों में देवताओं द्वारा उपभुक्त होता है।

इन्द्रिय द्वार झरोखा नाना। तँह तँह सुर बैठे करि थाना ॥
आवत देखहिं बिषय बयारी। ते हठि देंहि कपाट उघारी ॥६॥

अर्थ : देह गृह में इन्द्रिय द्वार ही नाना प्रकार के झरोखे हैं। जिनमें देवता गद्दी लगाये बैठे हैं। जब विषय रूपी हवा के झोंके को आते देखते हैं तो बलपूर्वक किवाड़ खोल देते हैं।

व्याख्या : इन्द्रियाँ सूक्ष्म हैं दिखाई नहीं पड़तीं। उनका गोलक ही झरोखा है। इन इन्द्रियों के देवता हैं : श्रोत्र के दिक् त्वक् के वायु चक्षु के सूर्य रसना के वरुण घ्राण के अश्विनीकुमार वाक् के वह्नि हाथ के इन्द्र पाद के विष्णु, वायु के मृत्यु और उपस्थ के प्रजापति देवता हैं। ये अपने अपने गोलकों पर आसन जमाये रहते हैं।

बुद्धि आसन और मुद्रा द्वारा इन्द्रिय द्वार झरोखे को बन्द करके उर गृह में बैठी जड़ग्रन्थि के खोलने में संलग्न है। माया की प्रेरणा से विषय के झोंके आने लगते हैं। उस समय बुद्धि मना करती ही रह जाती है। पर देवता झरोखा के पल्ले खोल ही देते हैं।

जब सो प्रभंजन उर गृह जाई। तबहि दीप बिज्ञान बुझाई ॥
ग्रन्थि न छूटि मिटा सो प्रकासा। बुद्धि बिकल भइ बिषय बतासा ॥७॥

अर्थ : जब वह हवा का झोंका हृदयरूपी घर के भीतर जाता है तो

विज्ञान दीप बुझ जाता है। गाँठ भी न छूटी वह उजेला भी मिट गया और विषय वायु से बुद्धि विकल हो गयी।

व्याख्या : झरोखे का कपाट खुलते ही हवा का झोंका भीतर पहुँचा। दिव्य विषय आप से आप उपस्थित हो गये। फिर तो एक पल में 'दीवट' कहीं गयी। दीया कहीं गिरा। बत्ती कहीं बुझकर उड़ गयी। सब किया कराया नष्ट हो गया। साधक दिव्य विषयों में लिप्त हो गया।

प्रचण्ड विषय के हवा के वेग को वृत्तिजन्य ज्ञानदीप नहीं सह सकता। इतने परिश्रम से किये हुए साधन के नष्ट हो जाने से एवं विषय के झोंकों के चपेट से बुद्धि विकल हो जाती है।

इन्द्रिय सुरन्ह न ज्ञान सुहाई। बिषय भोग पर प्रीति सदाई॥
बिषय समीर बुद्धि कृत भोरी। तेहि बिधि दीप को बार बहोरी॥८॥

अर्थ : इन्द्रिय के देवताओं की प्रीति सदा विषय भोगों पर रहती है। उन्हें ज्ञान नहीं अच्छा लगता। विषय वायु ने बुद्धि को बावली बना दिया। अब उस विधि से फिर दीप कौन जलाता है।

व्याख्या : इन्द्रिय के देवताओं को ज्ञान के अच्छा न लगने का कारण यह है कि ज्ञान होने से प्राणी विषय विमुख हो जाता है। अतएव देवताओं के भोग में कमी आने लगती है। सृष्टि के आरम्भ में जब ब्रह्मदेव ने मनुष्य की रचना की तो देवता लोग बड़े प्रसन्न हुए कि इससे हमारा काम चलेगा। अतः देवता लोग इन्द्रियों के रूप से यथास्थान अङ्गों में प्रवेश कर गये। अतः ऐसे भोग साधन का विषय विमुख होना उन्हें प्रिय कैसे होगा।

अतः उनकी प्रेरणा से विषय का अन्धड़ बन्द नहीं होता। उसमें पड़कर सयानी बुद्धि भी बावली हो गयी। वही दीप जलानेवाली ठहरी। अब फिर उस विधि से दीप कौन जलाता है। फिर तो उस जन्म में दुबारा दीप का जलना असम्भव हो जाता है।

दो. तब फिरि जीव बिबिध बिधि, पावइ संसृति क्लेस।
हरि माया अति दुस्तर, तरि न जाइ बिहगेस॥११८ क.

अर्थ : तब फिर जीव अनेक प्रकार के संसारी क्लेश पाता है। हरिमाया अति दुस्तर है। हे पक्षिराट्! वह पार नहीं की जा सकती।

व्याख्या : फिर तो जीव की वही अवस्था हो गयी जो कि सात्त्विकी श्रद्धा के हृदय में आने के पहिले थी। भाव यह कि अनन्त काल से जीव ज्ञानदीप के उद्योग में है। अनेक जन्म में दीप जला और बुझा पर ग्रन्थि न छूट पाई : संसार ज्यों का त्यों बना रह गया। जन्म मरण सुख दुःखादि न छूटे। यह हरि की माया है। इसका सन्तरण महा कठिन है। यथा : दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया। जो ज्ञानिहु कर चित अपहरई। बरिआईं बिमोह बस करई।

दो. कहत कठिन समुझत कठिन, साधत कठिन बिबेक ।
होइ घुनाच्छर न्याय ज्यों, पुनि प्रत्यूह अनेक ॥११८॥

अर्थ : कहना कठिन समझना कठिन साधन कठिन और विवेक कठिन है । यदि घुणाक्षर न्याय से हो भी जाय फिर भी अनेक विघ्न हैं ।

व्याख्या : यह विषय ऐसा है कि इसके कहने के लिए उपयुक्त शब्द नहीं मिलते । यदि कहा भी जाय तो बुद्धिदोष से उसका समझना कठिन हो जाता है । यदि किसी भाँति कहते सुनते भी बने तो साधन कठिन है । यमादि एक एक साधन असाध्य हैं । सब होने पर भी विवेक होना महा कठिन है । यथा : सुनिय गुनिय समुझिय समुझाइय दसा हृदय नहि आवै । जेहि अनुभव बिनु मोह जनित दारुन भव बिपति नसावै । काठ में घुन लग जाता है तो देवयोग से कभी कोई अक्षर भी बन जाता है । इस भाँति देवयोग से यदि साधन ठीक उतर जाय फिर भी बहुत से विघ्न ऐसे उपस्थित हो जाते हैं जो चित् जड़ ग्रन्थि नहीं खोलने देते ।

ज्ञानपंथ कृपान कै धारा । परत खगेस होइ नहि बारा ॥
जौं निर्बिघ्न पंथ निरबहई । सो कैवल्य परमपद लहई ॥१॥

अर्थ : ज्ञानमार्ग तलवार की धार है । इस पर से गिरते हे गरुड़ ! देर नहीं लगती । यदि विघ्न को अतिक्रमण करता हुआ रास्ता पार करे तो कैवल्य पद पावे ।

व्याख्या : ज्ञानमार्ग को : क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया । कहा गया है । जैसे तलवार की धार पर चलना कठिन है । तनकसा समता में वैषम्य आया कि पतन हुआ । वैसा ही ज्ञानमार्ग पर चलना है । इस मार्ग से पतन होते देर नहीं लगती । यदि किसी भाँति पार पा जाय तो परम पद की जिसे कैवल्य कहते हैं प्राप्ति हो ।

अति दुर्लभ कैवल्य परमपद । संत पुरान निगम आगम बद ॥
राम भजत सोइ मुकुति गोसाईं । अन इच्छित आवै बरिआईं ॥२॥

अर्थ : कैवल्य परमपद अतिदुर्लभ है । सन्त पुराण वेद शास्त्र ऐसा ही कहते हैं । हे गोसाईं ! राम को भजते भजते वही मुक्ति बलपूर्वक आती है ।

व्याख्या : चित् जड़ ग्रन्थि विमोक ही कैवल्यपद है । ऊपर दिखाया जा चुका है कि यह कितना दुर्लभ है । शिष्ट लोग तथा पुराण वेद शास्त्र सभी ने कैवल्य मुक्ति को ही परमश्रेय कहा है । इसमें किसी को विप्रतिपत्ति नहीं है । सबका एक मत है ।

उस कैवल्यमुक्ति की प्राप्ति का सरल उपाय कहते हैं कि राम के भजने से मुमुक्षा न होने पर भी वह मुक्ति बलपूर्वक आती है । ज्ञानमार्ग में मुमुक्षा को अपरिहार्य आवश्यकता है । भक्त को मुमुक्षा रहती ही नहीं । क्योंकि वह ममता का त्याग नहीं करता । बल्कि उसी ममता को संसार से हटाकर राम में लगा देता है और ज्ञानी को ममता का त्याग करना पड़ता है । यथा : ममता त्याग करहि जिमि ज्ञानी ।

राम के भजन से प्रत्यक् चेतन[1] का अधिगम और अन्तराय का अभाव होता है। ममता की डोरी राम में लगने से तत्पदवाच्य का दर्शन तो उसे होता ही है साथ ही साथ उसे त्वं पद वाच्य का भी दर्शन होता है। यथा : मम दर्सन फल परम अनूपा। जीव पाव निज सहज सरूपा। तत्पश्चात् भेदासहिष्णु भक्ति दोनों का ऐक्य कर देती है। इस प्रकार मुक्ति बलपूर्वक आती है। ऐसी अवस्था में यदि सेवक सेव्य भाव अटल रह जाय तभी मुक्ति रुक सकती है नहीं तो बिना चाहे भी मुक्ति हो जाती है। यथा : सो अनन्य जाकें असि मति न टरै हनुमंत। मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवंत। यही मुक्ति का बलपूर्वक आना है। इसका कारण कहते हैं।

जिमि थल बिनु जल रहि न सकाई। कोटि भाँति कोउ करै उपाई॥
तथा मोक्ष सुख सुनु खगराई। रहि न सकै हरि भगति बिहाई॥३॥

अर्थ : जैसे थल के बिना जल नहीं रह सकता चाहे कोई कोटि भाँति उपाय करे। वैसे ही हे गरुड़! मोक्षसुख हरिभक्त को छोड़कर ठहर नहीं सकता।

व्याख्या : जिस भाँति जल और थल में आधाराधेय सम्बन्ध है उसी भाँति मोक्षसुख ओर हरिभक्त में आधाराधेय सम्बन्ध है। मोक्ष होने के पहिले साधन द्वारा मुक्ति के सान्निध्य से मोक्षसुख का अनुभव होने लगता है। चाहे अहन्ता को भगवच्चरणों में बाँधने से अर्थात् अहंग्रहोपासना से मोक्ष सुख मिले। चाहे ममता को उन चरणों में बाँधने से मोक्षसुख मिले उसके मूल में तो हरिभक्त ही है। पर अन्य उपायों से जप तप मखादि कर्मों से भी जहाँ मोक्षसुख प्राप्त हो वहाँ भी हरिभक्ति अनुमित है। क्योंकि जहाँ जल ही जल हो वहाँ भी अनुमान करना पड़ेगा कि आधार रूप में थल विद्यमान है।

अस बिचारि हरिभगत सयाने। मुकुति निरादर भगति लुभाने॥
भगति करत बिनु जतन प्रयासा। संसृति मूल अबिद्या नासा॥४॥

अर्थ : ऐसा विचारकर ही तो सयाने हरिभक्त भक्ति के लोभ में पड़कर मुक्ति का निरादर करते हैं। भजन करते हुए बिना यत्न और प्रयास के संसार के मूल अविद्या का नाश हो जाता है।

व्याख्या : सयाने लोगों की यह रीति है कि उपेय से अधिक उपाय का आदर करते हैं। काम से अधिक अर्थ का आदर करते हैं। इसी भाँति सयाने हरिभक्त यह विचार करके कि भक्ति को छोड़कर मोक्षसुख के लिए कोई अन्य आधार नहीं है भक्ति पर ही रीझे रहते हैं। स्वयं भी मोक्ष की इच्छा नहीं रखते और दूसरों को भी मुक्ति छोड़कर भजन का ही उपदेश देते हैं।

यत्न और प्रयास तो ज्ञानमार्ग में हैं। भक्ति में सबसे ममता हटाकर राम में जोड़ना है और किसी यत्न तथा प्रयास की आवश्यकता नहीं है। यथा : कहहु भगति

---

१. ईश्वरप्रणिधानाद्वा। ततः प्रत्यक् चेतनाधिगमोऽन्तरायाभावश्च। यो.।

पथ कौन प्रयासा। जोग न मख जप तप उपवासा। भजन करते करते आप से आप अविद्या का नाश हो जाता है। अनित्य, अशुचि, दुःख और अनात्म में नित्य शुचि सुख और आत्मा के अभान को अविद्या कहते हैं। यही संसार का मूल है।

ममता की डोरी भगवच्चरणों में लग जाने से मन खींचातानी से छूटकर स्थिति को प्राप्त होता है। केवल अस्मिता मात्र रह जाती है जिसे ज्योतिष्मती प्रवृत्ति कहते हैं। इससे प्रकाश होता है और सब में समान रूप से ब्रह्म दिखाई पड़ने लगता है और साधक हर्ष शोक से छूट जाता है। यही ममता संसार में होने से अन्धकारमयी अविद्या थी और वही ईश्वरप्रणिधान से ज्योतिष्मती विद्या हो गयी। यथा : हरि सेवकहि न व्याप अविद्या। प्रभुप्रेरित व्यापै तेहि विद्या।

भोजन करिअ तृपिति हित लागी। जिमि सो असन पचव जठरागी॥
असि हरिभगति सुगम सुखदाई। को अस मूढ़ न जाहि सुहाई॥५॥

अर्थ : भोजन तृप्ति और हित के लिए किया जाता है और जैसे उस भोजन को जठराग्नि पचाती है ऐसा ही हरिभजन सुगम और सुखदाई है। ऐसा कौन मूढ़ है जिसे यह अच्छा नहीं लगता ?

व्याख्या : अब भजन की सुकरता और स्वाभाविकता कहते हैं। मुक्तिसम्पादन करने के लिए ज्ञानमार्ग में अनेक प्रक्रिया विधिविधान के साथ यथाक्रम बड़ी सावधानी के साथ करनी पड़ती है। ज्ञान दीप प्रज्वलित करना असाधारण धैर्य और श्रम का काम है। भगवद्भजन में ये बातें नहीं होतीं।

शरीर में रात दिन श्रवण, स्पर्शन, रसन, घ्राण तथा गमनादिक क्रियाओं से क्षय हुआ करता है उसकी पूर्ति के लिए शरीर भोजन चाहता है। उसी चाह का नाम क्षुधा है। उसी की तृप्ति के लिए और शरीर के हित के लिए भोजन किया जाता है। भोजन करने में किसी को श्रमबोध नहीं होता है बल्कि स्वाद भी मिलता है और शरीर की अस्वस्थता जाती रहती है। उस भोजन को जठराग्नि पचाती है रस बनता है। रक्त बनता है। शरीर की पुष्टि होती है। भोजन करनेवाले को कुछ करना नहीं पड़ता है। आप से आप सब होता रहता है। ऐसा तो कोई मूढ़ नहीं है जिसे भोजन अच्छा नहीं लगता हो।

ठीक ऐसी ही गति भजन की है। जिसकी मानसिक देह स्वस्थ है उसे भजन की भूख : जलन होती है। यथा : सुनु नृप जासु बिमुख पछिताही। जासु भजन बिनु जरनि न जाही। भजन करने में स्वाद मिलता है। मानसिक पुष्टि होती है। अविद्या जाती रहती है। मोक्षसुख सुलभ हो जाता है। कैसे क्या होता है। इस बात के जानने की कोई आवश्यकता भजन करनेवाले को नहीं होती। जिसे भजन अच्छा न लगे वह बड़ा भारी मूढ़ है। उसे कोई बड़ा भारी मानसिक बीमारी मन्दाग्नि की भाँति हो गयी है।

दो. सेवक सेब्य भाव बिनु, भव न तरिअ उरगारि।
भजहु राम पद पंकज, अस सिद्धान्त बिचारि॥११९॥

अर्थ : सेवक सेव्य भाव के बिना हे गरुड़ जी ! संसार सागर पार नहीं किया जा सकता । ऐसा सिद्धान्त विचार करके रामपद कञ्ज का भजन करना चाहिए ।

व्याख्या : व्यवहार में स्वभाव से ही स्वस्वामिभाव सम्बन्ध ईश्वर और जीव में सिद्ध है । स्वस्वामिभाव सम्बन्ध ही सब सम्बन्धों का मूल है । अवयवावयवी आधाराधेय प्रतियोग्यनुयोगी विशेषणविशेष्य भावादि अन्यान्य सम्बन्ध इसी के अवान्तर भेद हैं । स्व स्वामिभाव तथा सेवक सेव्यभाव एक ही बात है । मैं उसका हूँ । वह मेरा है । मैं वही हूँ । तस्यैवाहं ममैवासो स एवाहमिति त्रिधा : इन भावों से जो भजन माना गया है उसका भी मूल सेवकसेव्य भाव ही है । सामान्य पुरुष भी सेवा से प्रसन्न होकर सेवक को क्या नहीं दे देता । फिर उस दयासागर भक्तवत्सल परमकृतज्ञ के लिए कहना ही क्या वह प्रसन्न होकर सेवक का उद्धार मृत्युसंसार सागर से कर देता है । जीव अपने प्रयत्न से संसार सागर नहीं पार कर सकता । यही सिद्धान्त है ।

दो. जो चेतन कहँ जड़ करै, जड़हि करै चैतन्य ।
अस समरथ रघुनायकहि, भजहिं जीव तें धन्य ॥११९ क.

अर्थ : जो चेतन को जड़ और जड़ को चेतन बनाता है । ऐसे समर्थ रघुनायक को जो जीव भजते हैं वे धन्य हैं ।

व्याख्या : चेतन को जड़ और जड़ को चेतन बनाने का सामर्थ्य ही सब सामर्थ्यों से बड़ा है । चित् शक्ति तो सर्वत्र ही समान रूप से अवस्थित है । पर चेतन के अधिक विकास से ही ब्रह्मदेव सब से बड़े हैं और सङ्कोच से ही मशक छोटा है । अतः समर्थ वही है जो चेतन के सङ्कोच विकास का नियमन करता हो । यह शक्ति सरकार में है । यथा : मसकहि करइ विरंचि प्रभु अजहि मसक ते हीन । अतः सरकार के भजन करनेवाले धन्य हैं । भाग्यहीन अल्प पुरुषार्थ का भजन करते हैं ।

श्रीभक्ति चिन्तामणि प्रसंग

कहेउँ ज्ञान सिद्धान्त बुझाई । सुनहु भगति मनिकै प्रभुताई ॥
राम भगति चिंतामनि सुन्दर । बसै गरुड़ जाके उर अंतर ॥१॥

अर्थ : ज्ञान के सिद्धान्त को मैंने समझाकर कहा अब भक्तिमणि की प्रभुता सुनो । रामभक्ति सुन्दर चिन्तामणि है । हे गरुड़ ! यह जिसके हृदय में बसती है ।

व्याख्या : ज्ञान के सिद्धान्त को शुक बन्दर तथा दीप के उदाहरण से समझा कर कहा । ज्ञान का सिद्धान्त ही सिद्धान्त है । ज्ञान से पृथक् तो अज्ञान है । वह किसी विचारशील को मान्य नहीं हो सकता । भक्ति का भी वही सिद्धान्त है । यदि दूसरा सिद्धान्त होता तो : ज्ञानहि भगतिहि नहि कछु भेदा । यह बात नहीं कही जा सकती थी । ज्ञान और भक्ति दोनों अविद्या तम को दूर करते हैं । भेद इतना ही है कि एक दीप है तो दूसरा मणि है ।

ममता के तागों के संसार से छूटकर भगवच्चरण में लग जाने से मन खींचातानी से बचकर स्थिर हो जाता है। उसकी दशा स्वच्छ मणि सी हो जाती है। जैसे स्फटिकमणि अपने उपाश्रय के रँग से रंग जाती है। उसी भाँति मन भी ग्रहीता पुरुष के आलम्बन से उसी रंग में रँग जाता है। इसी को तत्स्थतदञ्जनता-समापत्ति कहते हैं। इसी भाँति भक्त का मन भी अविद्यान्धकार के नाश में समर्थ है। ज्ञानदीप की प्रभुता कह चुके हैं अब रामभक्ति चिन्तामणि की प्रभुता कहते हैं।

भक्ति मणि है पर रामभक्ति तो सुन्दर चिन्तामणि है। जिस भाँति रामजी सब से उत्कृष्ट हैं उसी भाँति उनकी भक्ति भी सबसे उत्कृष्ट है। अन्य देवताओं की भक्ति मणि है। रामभक्ति चिन्तामणि है। : असन वसन सब वस्तु विविध विधि सब मनि मह रह जैसे। यह सम्पूर्ण कामनाओं को भी पूर्ण करती है और अविद्यान्धकार भी दूर करती है। यह मणि सुन्दर भी है इसके हृदय में धारण करने से पुरुष की शोभा होती है। यथा : सोह सैल गिरिजा गृह आये। जिमि जन रामभगति के पाये। इस हृदय के भीतर धारण करना चाहिए बाहरी दिखावा से हानि है।

परम प्रकास रूप दिन राती। नहि कछु चहिय दिया घृत बाती ॥
मोह दरिद्र निकट नहिं आवा। लोभ बात नहि ताहि बुझावा ॥२॥

अर्थ : यह चिन्तामणि परम प्रकाश रूप दिन रात बनी रहती है। दीया बत्ती घी की कोई आवश्यकता नहीं। न तो इसके निकट मोह दरिद्र आता है और न लोभ वायु इसे बुझा पाता है।

व्याख्या : दीप के प्रकाशरूप बनाये रखने के लिए दीयट घी और बत्ती की आवश्यकता होती है। फिर भी दिन को उसका प्रकश फीका पड़ जाता है। अभेद ज्ञान होने पर सोऽहमस्मि वृत्ति फीकी पड़ जाती है। पर मणिदीप का प्रकाश सदा बना रहता है। उसे दीया घी और बत्ती की आवश्यकता नहीं। इसी भाँति रामभक्ति चिन्तामणि के लिए चित्त दीया में ज्ञान घृत और तुरीय रूपी बत्ती की आवश्यकता नहीं है। और विज्ञान विहान होने पर उसकी चमक और बढ़ जाती जाती है : भक्त्यर्थं[1] कल्पितं द्वैतमद्वैतादपि सुन्दरम्। मोह दरिद्र के भाग्य में मुनिधनरूपी राम नहीं है। जब ममता वृत्ति राम में लग गयी तब मोह को निकट आने के लिए मार्ग ही नहीं रह गया। राम से अधिक सुन्दर कोई विषय है ही नहीं। अतः लोभ वायु उसका कोई अपकार नहीं कर सकता।

प्रबल अबिद्या तम मिटि जाई। हारहिं सकल सलभ समुदाई ॥
खल कामादि निकट नहि जाहीं। बसै भगति जाके उर माहीं ॥३॥

अर्थ : अविद्या का प्रबल अन्धकार मिट जाता है और शलभों का समुदाय

---

१. भक्ति लिए कल्पित द्वैत अद्वैत से भी सुन्दर है।

भी हार जाता है। कामादिक खल भी निकट नहीं जाते जिसके हृदय में भक्ति बसती है।

व्याख्या : मूलाविद्या का अन्धकार मिट जाता है। फिर नहीं होता क्योंकि भक्तिमणिदीप बुझता नहीं। चित् जड़ ग्रन्थि स्पष्ट भासने लगती है चाहे उसे छोड़कर कैवल्यमुक्ति लो चाहे उसे न छोड़कर मोक्ष के समीपवर्ती होकर भगवदनुभवरूप मोक्षसुख लेते रहो। इस अवस्था में मूलाविद्या तो मिट जाती है। पर लेशाविद्या रहती है और वह भक्तों को इष्ट है। यथा : अस अभिमान जाइ जनि भोरे। मैं सेवक रघुपति पति मोरे।

लेशविद्या के होने से मद मान रूपी शलभ जलते तो नहीं। पर उसका अपकार भी कुछ नहीं कर सकता। वे अपना बल लगाकर हार जाते हैं।

भक्ति के हृदय में बस जाने से भक्त विषयों का ध्यान भी नहीं करता। अतः सङ्ग न होने से कामादि की उत्पत्ति ही नहीं होती। इसलिए लिखते हैं कि कामादि खल : निष्कारण अपकार करनेवाले पास नहीं फटक सकते। यथा : प्रोक्तेन भक्तियोगेन भजतो माऽसकृन्मुनेः। कामा हृदय्या नश्यन्ति सर्वे मयि हृदि स्थिते। भागवत ११.२०.२९

गरल सुधासम अरि हित होई। तेहि मनि बिनु सुख पाव न कोई ॥
ब्यापहिं मानसरोग न भारी। जिनके बस सब जीव दुखारी ॥४॥

अर्थ : विष अमृत के समान हो जाता है और शत्रु हित हो जाता है। उस मणि के बिना कोई सुख नहीं पाता। उसे भारी मानस रोग नहीं व्यापते जिसके वश में पड़कर सब जीव दुःखी हैं।

व्याख्या : ब्रह्मा के प्रपञ्च में गुण अवगुण मिला हुआ है। विष में भी अमृतत्व है और अमृत में भी विषत्व है। शुद्ध विष या शुद्ध अमृत कोई पदार्थ नहीं है। परन्तु जिसके हृदय में भक्ति बसी हुई है उसकी भावना दृढ़ होने के कारण वस्तु विशेष अपने हानिकारक गुण के प्रकट करने में असमर्थ हो जाती है। यथा : भूरि दई विष भूरि भई प्रहलाद सुधाई सुधा की मलाई। कवितावली। शत्रु से भी भक्त का उपकार ही होता है। अरिहित कहकर चेतन के गुणों में भी परिवर्तन कहा।

जिसकी उस आनन्दसिन्धु सुखराशि की ओर प्रवृत्ति ही नहीं उसे सुख कैसे मिलेगा? लौकिक सुख समृद्धि सुख देने में असमर्थ है क्योंकि वहाँ सुख है ही नहीं। यथा : ऐसी मूढ़ता या मन की। परिहरि राम भगति सुरसरिता आस करत ओसकन की। धूम समूह निरखि चातक ज्यों तृषित जात मतिघन की। नहिं तहँ सीतलता न वारि पुनि हानि होत लोचन की। इत्यादि।

जिस भाँति स्थूल शरीर में शारीरिक रोग होते हैं उसी भाँति सूक्ष्म शरीर में मानसिक रोग होते हैं। वे बड़े भयानक हैं। उसके वश में पड़ा हुआ संसार दुःखी है। भक्त को वे रोग नहीं होते।

राम भगति मनि उर बस जाके । दुख लवलेस न सपनेहु ताके ।।
चतुर सिरोमनि तेइ जग माहीं । जे मनि लागि सुजतन कराहीं ।।५।।

अर्थ : रामभक्तिमणि जिसके हृदय में बसती है उसे सपने में भी दुःख का लवलेश नहीं रहता। संसार में वही चतुरशिरोमणि हैं जो मणि के लिए सुन्दर यत्न करते हैं।

व्याख्या : कर्तृत्वाभिमान रहने से ही कर्मफल भोगना पड़ता है। सो लेशाविद्या रहते हुए भी भक्तिचिन्तामणि के प्रभाव से कर्तृत्वाभिमान निःशेष हो जाता है। भक्त सर्वात्मना भगवान् पर निर्भर रहता है। उसे भगवान् के प्रेरक होने की दृढ़ भावना है। यथा : नट मर्कट इव सबहिं नचावत। राम खगेस बेद अस गावत। अतः भक्ति से हृदय में अवस्थान करने से दुःख के लवलेश का न होना सर्वथा सिद्ध है। भावना की दृढ़ता से स्वप्न में भी दुःख का लवलेश नहीं होता।

पहिले कह आये हैं कि : सुनहु भगति मनि की प्रभुताई। १. करने में २. अन्यथा करने में तथा ३. न करने में सामर्थ्य ही प्रभुता है। सो भक्तिमणि से अविद्या का नाश तथा विघ्नों का अभाव कहकर उसका कर्तृत्व दिखलाया। विष का अमृत होना तथा शत्रु का हित होना कहकर अन्यथाकर्तृत्व दिखलाया। अब केवल उसके हृदय में वास करने से दुःख मिटना कहकर उसका अकर्तृत्व दिखाते हैं।

इस भाँति भक्तिचिन्तामणि की प्रभुता कहकर उसके लिए शास्त्रीय पद्धति से यत्न करनेवाले को ही चतुरशिरोमणि होना सिद्ध करते हैं। भाव यह कि मोहान्धकार में पड़े रहनेवाले मूढ़ हैं। निरुपास्ति ज्ञानी भी हठी हैं। साधनभक्ति के सहित सिद्धिलाभ करनेवाले चतुर हैं। फलस्वरूपा भक्तिचिन्तामणि के लिए सुन्दर यत्न करनेवाले चतुरशिरोमणि हैं।

सो मनि जदपि प्रगट जग अहई । रामकृपा बिनु नहि कोउ लहई ।।
सुगम उपाय पाइबे केरे । नर हतभाग्य देहिं भटभेरे ।।६।।

अर्थ : वह मणि यद्यपि जगत् में प्रकट है। तथापि राम की कृपा के बिना किसी को मिलती नहीं। मिलने का उपाय भी सुगम है। पर अभागे मनुष्य उसमें रुकावट पैदा करते हैं।

व्याख्या : सृष्टि के समय से ही परमेश्वर के आदेश रूप वेदशास्त्र सबको सुलभ हैं। सज्जनों की भी कोई कमी नहीं है। इन्हीं के पास भक्तिचिन्तामणि है। परन्तु रामकृपा न होने से अभागे मनुष्य रामकृपा से ही दूर रहना चाहते हैं। वे अपनी कपोलकल्पना को ही प्रमाण मानते हैं। वेद शास्त्र तथा सज्जन को क्यों मानने लगे। वे रामविमुख होने से अभागे हैं। अतः उन्हें उस मणि की प्राप्ति नहीं होती। मिलने का जो सुगम उपाय है उसके निकट नहीं जाना चाहते। अपने मनगढन्त पन्थों की कल्पना करते हैं। एवं स्वयं भी पतित होते हैं और दूसरों को भी

पथभ्रष्ट किया करते हैं। यथा : साखी शब्दी दोहरा कहि कहनी उपखान। भगति निरूपहिं भगत कलि निन्दहि बेद पुरान। दोहावली.

पावन पर्बत बेद पुराना। रामकथा रुचिराकर नाना ॥
मर्मी सज्जन सुमति कुदारी। ज्ञान बिराग नयन उरगारी ॥७॥

अर्थ : वेद पुराण पवित्र पर्वत हैं : जिनमें रामकथा रूपी नाना प्रकार की सुन्दर खाने हैं। भेद जाननेवाले सज्जन हैं। सुमति कुदारी है और हे उरगारि ! ज्ञानविराग आँखें हैं।

व्याख्या : वेद पुराण पावन पर्वत माने गये हैं। विचार करने से ही इनकी उपयोगिता का पता चलता है। इन्हीं के कारण संसार धृत है। प्रजाओं के धारण करनेवाले धर्मों के ये ही आद्य उपदेष्टा हैं। इन्हीं में त्रिवर्ग की कथाएँ भरी पड़ी हैं। इन्हीं के बीच रामकथा भी है। परन्तु रामकथावाली सुन्दर खान कहाँ पर है। इसका पता बिना मर्मी सज्जन के लग नहीं सकता। गुरुचरणोपासक सज्जन लोग ही इस खानि के मर्मी हैं।

सुमति कुदारी कहने का भाव यह है कि मर्मी ऐसा ठीक पता दे देते हैं कि अकेला आदमी भी कृतकार्य हो सकता है। पर उसके पास सुमति रूपी कुदाल होना चाहिए। कुमति होने से वह त्रिवर्ग में ही फँसकर रह जायगा। फिर भी उसे ज्ञान और विराग रूपी आँखें चाहिए। नहीं तो उसे रामकथा किसी साधारण राजकुमार का इतिवृत्त मालूम पड़ेगा।

भाव सहित खोजे जो प्रानी। पाव भगति मनि सब सुखखानी ॥
मोरे मन प्रभु अस बिस्वासा। राम तें अधिक राम कर दासा ॥८॥

अर्थ : भाव सहित जो प्राणी खोजेगा वह सब सुखखानि भक्तिमणि पावेगा। हे प्रभो ! मेरे मन में तो ऐसा विश्वास है कि रामजी के दास रामजी से भी अधिक हैं।

व्याख्या : भाव सहित खोजने का तात्पर्य यह है कि साधन भक्ति द्वारा उसका भगवच्चरणनुराग से परिचय होना चाहिए। तब रामकथा की प्राप्ति के बाद उसे सिद्धा भक्ति अर्थात् भक्ति चिन्तामणि की प्राप्ति हो सकेगी।

वैधी और रागानुगा इन दोनों प्रकार की भक्ति की गिनती साधन भक्ति में है। शास्त्रों के उपदेश सुनकर जब प्राणी का अनुराग भगवच्चरणों में होता है तो उसे वैधी कहते हैं और स्वाभाविक अनुराग से भजन में प्रवृत्त होने को रागानुगा कहते हैं। इनका फलस्वरूप सिद्ध भक्ति है। यह स्वयं सब सुखों की खानि है। अविरला, अनपायिनी, सिद्धिरूपा आदि इसके अनेक नाम हैं।

भुसुण्डिजी अपना विश्वास कहते हैं कि मैं रामजी के दास को रामजी से भी अधिक मानता हूँ। रामजी के सेवक की बड़ी महिमा है। पर दास तो अपने को स्वामी के हाथ बेंच देता है। स्वामी का उस पर कृपा, कोप, वध और बन्ध का

अधिकार होता है। उसे स्वामी की ही गति है। दूसरी आशा नहीं। यथा : जेहि गति मोरि न दूसरी आसा। अतः वह सरकार को अतिप्रिय हैं और वे ही रामप्राप्ति के द्वारभूत हो जाते हैं। अतः कृतज्ञ हृदय के लिए वे रामजी से भी अधिक हैं।

राम सिंधु घन सज्जन धीरा। चन्दन तरु हरि संत समीरा॥
सब कर फल हरि भगति सुहाई। सो बिनु संत न काहू पाई॥९॥

अर्थ : रामजी समुद्र और पण्डित सज्जन बादल हैं। हरि चन्दनतरु है और सन्त समीर है। सबका फल सुन्दर हरिभक्ति है। उसे सिवा सन्त के किसी ने नहीं पाया।

व्याख्या : समुद्र ही जल का अक्षय भण्डार है। नदी कूप आदि में जहाँ कहीं जल दिखाई पड़ता है वह किसी न किसी भाँति समुद्र से ही आया है। पर समुद्र तक सबकी गति नहीं है। जिनकी गति भी है वे भी समुद्र से साक्षात् लाभ नहीं उठा सकते। बादल में ही ऐसा सामर्थ्य है कि देश के देश को जल से प्लावित करते हैं। इसी भाँति रामजी समुद्र हैं। उनसे साक्षात् उपकार जगत् का वैसा नहीं होता जैसा कि धीर सज्जनों द्वारा होता है। वे बादल की भाँति रामयश की वर्षा करके प्रान्त के प्रान्त को राममय कर देते हैं।

हरि तो चन्दनवृक्ष है। उन तक सब लोग नहीं पहुँच सकते। पर यह सामर्थ्य गन्धवाह में ही है कि चन्दन के गन्ध को लेकर अन्य वृक्षों के सार में बसा दे। इसी भाँति यह शक्ति सन्तों में ही है कि मनुष्य के अन्तःकरण को सदा के लिए भगवद्भाव से भावित कर दे। साधन भक्ति सिद्धा भक्ति में परिणत हो जाय। तीर्थाटन साधन समुदाई। जोग विराग ग्यान निपुनाई। नाना कर्म धर्म व्रत दाना। सम जम दम तप व्रत मख नाना। भूत दया गुरु द्विज सेवकाई। विद्या विनय विवेक बड़ाई। जहँ लगि साधन वेद बखानी। सब कर फल हरिभगति भवानी। सो सुहाई भक्ति अर्थात् निष्काम भक्ति सन्त के हिस्से की वस्तु है। क्योंकि सन्त को सुमति का स्वामी कहा गया है। यथा : संत सुमति तिय सुभग सिंगारू। और सुमति ही भक्ति की भूमिका है। अतः सिद्धाभक्ति का अधिकारी सिवा सन्तों के दूसरे नहीं हैं।

अस बिचार जोइ कर सत संगा। राम भगति तेहि सुलभ बिहंगा॥१०॥

अर्थ : ऐसा बिचार करके जो सत्सङ्ग करता है। हे विहङ्ग लोग! उसे राम भक्ति सुलभ है।

व्याख्या : अपने वक्तव्य का निष्कर्ष कहते हुए भुसुण्डिजी अपने समस्त श्रोताओं को सम्बोधन करते हैं। विहङ्ग योनि में कोई साधन नहीं हो सकता। पर सत्सङ्ग वे भी कर सकते हैं। अतः राम से अधिक राम के दास को मानकर जो सत्सङ्ग करते हैं उन्हें अनायासेन रामभक्ति की प्राप्ति होती है। सन्त लोग स्वभाव से ही रामभक्ति के प्रचार में दत्तचित्त रहते हैं। अपने संग करनेवाले को भक्ति

देने में कृपणता क्यों करेंगे। सत्सङ्ग से सुमति की प्राप्ति भी हो जाती है। यथा : सठ सुधरहिं सत संगति पाई। पारस परस कुधातु सुहाई।

दो. ब्रह्म पयोनिधि मंदर, ज्ञान संत सुर आहि।
कथा सुधा मथि काढ़हिं, भगति मधुरता जाहि ॥१२० क.
बिरति चर्म असि ज्ञान मद, लोभ मोह रिपु मारि।
जय पाइय सो हरि भगति, देखु खगेस बिचारि ॥१२०॥

अर्थ : वेद क्षीरसागर है ज्ञान मन्दर है सन्त देवता हैं : वे मथकर कथामृत निकालते हैं। जिसकी मिठास भक्ति है। वैराग्य की ढाल और ज्ञान की तलवार से मद लोभ मोहादि शत्रुओं को मारकर जो विजय मिलती है वह हरिभक्ति है। हे खगेश ! विचारकर देख लो।

व्याख्या : जिस भाँति क्षीरसागर को मन्दर द्वारा मन्थन करके देवासुरों ने अमृत निकाला था। जिसकी मधुरता की थाप सम्पूर्ण संसार में है। उसी प्रकार वेद रूपी समुद्र के मन्थन करनेवाले देवस्थानीय सन्त लोग हैं। वे ही ज्ञान रूपी मन्दराचल से वेदसिन्धु का मन्थन करते हैं। तभी राम कथा रूपी अमृत का प्रादुर्भाव होता है। यथा : तब तब कथा मुनीसन्ह गाई। परम प्रबन्ध विचित्र बनाई। जिन्होंने असंस्कृत बुद्धि से ही मन्थन किया है उन्हें तो वेद गँवारों का गीत ही मालूम हुआ : उस अमृत की मधुरता भक्ति है। भक्ति की मधुरता सर्वजन प्रत्यक्ष है। इसके लिए अन्य प्रमाणकी आवश्यकता नहीं है।

श्री रामावतार जब होता है। तब रामयश वेद का भी रामायण रूप से अवतार होता है। यथा : वेदः प्राचेतसादासीत् साक्षाद् रामायणात्मना।

यह शरीर दो राजाओं का देश है। अपने अपने अधिकार के लिए दोनों में नित्य लड़ाई रहती है। एक ओर मोह राजा है और कामादि उसके सहायक हैं। दूसरी ओर विवेक राजा है और वैराग्यादि उसके सहायक हैं। यह लड़ाई अनादि काल से चली आती है। कभी एक बीस पड़ जाता है कभी दूसरा बीस पड़ता है। इसी द्वन्द्व में पड़कर ज्ञानेन्द्रिय कर्मेन्द्रिय प्राणादि प्रजा अतिपीड़ित हो रहे हैं। जब कथामृत पान से विवेकादि का बल बढ़ जाता है तब वे वैराग्यरूपी ढाल से शत्रु के प्रहार को निष्फल करके ज्ञान रूपी खड्ग से मद मोह लोभादि शत्रु को मारकर विजय प्राप्त करते हैं। यथा : जीति मोह महिपाल दल सहित विवेक भुआल। करत अकंटक राजपुर सुख सम्पदा सुकाल।

इतनी बड़ी लड़ाई के बाद फल यह हुआ कि संसार की ओर से मन हटकर राम में लगा और यही भक्ति है। अब चाहे कोई अभेद भक्ति करे या भेद भक्ति करे पर है सब भक्ति ही।

सप्तप्रश्नप्रसङ्ग : उमा के बारहवें प्रश्न का प्रसङ्गात् उत्तर

पुनि सप्रेम बोलेउ खगराऊ। जौं कृपाल मोहि ऊपर भाऊ॥
नाथ मोहि निज सेवक जानी। सप्त प्रस्न मम कहहु बखानी॥१॥

अर्थ : फिर प्रेम के सहित पक्षिराज बोले कि हे कृपालु ! यदि आपका मेरे ऊपर : कृपा : भाव है तो मुझे अपना सेवक जानकर मेरे सात प्रश्नों को बखान : कर कहिये।

व्याख्या : गरुड़जी जिज्ञासा से आर्त होकर गुरु के प्रेम पर विश्वास दिखलाते हुए प्रश्न करते हैं। निज सेवक पर स्वामी की अत्यन्त कृपा रहती है। यथा : निज दास ज्यों रघुवंस भूषन कबहु मम सुमिरन कर्यो। अतः कहते हैं कि निज सेवक जानकर सात प्रश्नों का उत्तर दीजिये। इन्हीं सात प्रश्नों में साध्य साधन और साधक विषयक सब बातें आजायेंगी। १. भोगायतन २. अनुकूलवेदनीय भोग ३. प्रतिकूलवेदनीय भोग ४. भोक्ता ५. अनुकूल भोग का कारण ६. प्रतिकूल भोग का कारण और ७. भोक्ता की अवस्था के कारण विषयक प्रश्न हैं। ये प्रश्न : जो प्रभु मैं पूछा नहि होई। सोउ दयाल जनि राखहु गोई। के उत्तर में निरूपण किये गये हैं।

प्रथमहि कहहु नाथ मति धीरा। सबते दुर्लभ कवन सरीरा॥
बड़ दुख कवन कवन सुख भारी। सोउ संछेपहि कहहु बिचारी॥२॥
संत असंत मरम तुम जानहु। तिन्ह कर सहज सुभाव बखानहु॥
कवन पुन्य स्रुति बिदित बिसाला। कहहु कवन अघ परम कराला॥३॥
मानस रोग कहहु समुझाई। तुम्ह सर्बज्ञ कृपा अधिकाई॥
तात सुनहु सादर अति प्रीती। मैं संछेप कहौं यह नीती॥४॥

अर्थ : हे मतिधीर नाथ ! पहले यह बतलाइये कि सबसे दुर्लभ कौन शरीर है। कौन दुःख बड़ा है कौन सुख भारी है इसे भी संक्षेप से विचारकर कहिये। तुम सन्त असन्त के मर्म को जानते हो। सो उनके सहज स्वभाव का वर्णन करो। वेद विदित विशाल पुण्य कौन सा है और कौन परम कराल पाप है ? तुम सर्वज्ञ हो और तुम्हें कृपा भी अधिक है। सो मानसरोग समझाकर कहो। हे तात ! आदर और प्रीति के साथ सुनो। मैं संक्षेप से यह नीति कहता हूँ।

व्याख्या : गरुड़जी कहते हैं कि आपने असंख्य ब्रह्माण्ड के जीवों के शरीर देखे हैं। आप बतलाइये कि सबसे दुर्लभ कौन शरीर है। सुख दुःख सबका अनुभूत विषय है। इसमें केवल इतना ही जानना है कि सबसे बड़ा सुख और सब दुःखों से बड़ा दुःख कौन है। तुम्ह सन्त भी रह चुके हो और असन्त भी रह चुके हो। अतः तुम मर्मज्ञ हो उनका सहज स्वभाव वर्णन करो। सब कल्याणों का मूल पुण्य है और सब आपत्तियों का मूल पाप है। अतः वेद विदित विशाल पुण्य और परम कराल पाप क्या है ? इसे बतलाइये। मानस रोग को तो समझाकर कहिये। आप से कुछ

छिपा भी नहीं है और आप में अधिक कृपा भी है। अतः आप से मनोरथ पूर्ति की प्रबल आशा है।

भुसुण्डिजी ने कहा कि मैं संक्षेप से इस नीति का वर्णन करूँगा। अतः आदर के साथ अति प्रीति से सुनो। आदर के साथ अति प्रीति से सुना हुआ ही हृदय में अङ्कित होता है।

नर तन सम नहि कवनिउ देही। जीव चराचर जाचत जेही ॥
नरक स्वर्ग अपवर्ग निसेनी। ज्ञान बिराग भगति सुभ देनी ॥५॥

अर्थ : नरदेह के समान कोई देह नहीं है। जिसे चराचर प्राणी माँगा करते हैं। ज्ञान वैराग्य और शुभ भक्ति की देनेवाली स्वर्ग और मोक्ष की सीढ़ी है।

व्याख्या : प्रश्न है : सब ते दुर्लभ कवन सरीरा। उत्तर हो रहा है कि नर शरीर के समान कोई देह नहीं है। कारण देते हैं कि चराचर प्राणी मात्र को उसकी चाह रहती है। शास्त्र कहता है कि स्थावर जीव भी अन्तःसंज्ञ होते हैं। अतः उनका भी चाहना बन सकता है। अन्य शरीर से कोई पुरुषार्थ नहीं बनता और मनुष्य शरीर की प्राप्ति केवल परमेश्वर की कृपा से ही होती है। यथा : कबहुकि करि करुना नर देही। देई ईस बिनु हेतु सनेही। इसी शरीर से पाप करके लोक नरकगामी होते हैं। पुण्य करके स्वर्ग भोगते हैं और ज्ञान विराग द्वारा मुक्ति प्राप्त करते हैं अथवा कल्याणमयी भक्ति की प्राप्ति होती है। जो सब सुखखानि है। सीढ़ी से ऊपर चढ़ना नीचे उत्तरना दोनों होता है।

सो तनु धरि हरि भजहि न जे नर। होहिं बिषयरत मंद मंदतर ॥
काँचु किरिच बदले ते लेहीं। करते डारि परसमनि देहीं ॥६॥

अर्थ : उस शरीर को धारण करके जो मनुष्य विषयरत होकर मन्द होते जाते हैं हरि को नहीं भजते वे हाथ से पारस को फेंककर उसके बदले में काँच का टुकड़ा लेते हैं।

व्याख्या : मन तो एक क्षण स्थिर रहता नहीं। वह चाहे काम को भजे चाहे राम को भजे। जो ऐसा दुर्लभ शरीर पाकर काम को भजता है। जो कि पशु शरीर में भी सुलभ है और इस भाँति अपना अधःपतन करता रहता है। यथा : सेवत विषय विवर्ध जिमि नित नित नूतन मार। वह ऐसा अभागा है कि हाथ में आये हुए पारस को फेंक रहा है और शीशे के टुकड़ों को उसके बदले में ले रहा है। नर शरीर पारस है। इसके सदुपयोग से नित्यानन्द की प्राप्ति हो सकती है और विषय काँच का टुकड़ा है। किसी काम का नहीं। केवल उसमें सुखाभास की चमक है। उसी को सच्चा सुख मानकर जीव जन्म मरण के जाल में पड़ा हुआ दुःख झेलता है।

नहि दरिद्र सम दुख जग माहीं। संत मिलन सम सुख जग नाहीं ॥
पर उपकार बचन मन काया। संत सहज सुभाउ खगराया ॥७॥

अर्थ : संसार में न तो दरिद्रता के समान दुःख है। न सन्त के मिलने सा कोई सुख है। हे खगराज ! मनसा वाचा कर्मणा परोपकार करना। सन्तों का सहज : पैदाइशी स्वभाव है।

व्याख्या : इस संसार में स्वल्प से स्वल्प सुख के लिए कीमत चुकानी पड़ती है। दरिद्र के पास कीमत चुकाने के लिए कुछ नहीं है पर चाह बहुत है। अतः उसे कभी कोई सुख मिलता ही नहीं और चाह सुख भी बनी रहती है। अतः वह महा दुःखी है। परमहंस परिव्राजक के पास कुछ नहीं रहता। पर उन्हें चाह भी नहीं है। इसलिए वह राजाओं का भी महाराज है। उन्हें दरिद्र कोई नहीं कहता। क्योंकि सच्ची दरिद्रता तो मोह है। यथा : मोह दरिद्र निकट नहि आवा। तात स्वर्ग अपवर्ग सुख धरिअ तुला एक अंग। तूल न ताहि सकल मिलि जो सुखलव सतसंग। अतः सतसंग से बड़ा सुख कोई नहीं है। क्योंकि सत्संग स्वयं सुखरूप होने पर भी परम कल्याण का कारण है।

सन्त पैदा होते हैं। बनाये नहीं जाते। सन्त वही है जिसका मनसा वाचा कर्मणा परोपकार करने का पैदाइशी स्वभाव हो। जो सिखाने पढ़ने से परोपकारी होते हैं वे सन्त के समान हैं। समान शब्द किञ्चित् न्यून के अर्थ में आता है। यथा : जौ नर होइ चराचर द्रोही। आवै सभय सरन तकि मोही। तजि मद मोह कपट छल नाना। करै सद्य तेहि साधु समाना।

संत सहहि दुख परहित लागी। परदुख हेतु असंत अभागी ॥
भूर्ज तरू सम संत कृपाला। परहित नित सह बिपति बिसाला ॥८॥

अर्थ : सन्त पराये हित के लिए दुःख सहते हैं और असन्त अभागे पराये दुःख के लिए दुःख सहते हैं। कृपालु सन्त भोजपत्र के समान है। पराये हित के लिए नित्य विशाल विपत्तियाँ भोगा करते हैं।

व्याख्या : जो संसार में आया है उसे दुःख भोगना ही पड़ता है। परन्तु सन्त का हृदय अत्यन्त कोमल होता है। उसे दूसरे का दुःख देखते बनता नहीं। वे उसके प्रतिकार में लग जाते हैं। इस भाँति उनके दुःख का भोग भी हो जाता है और परोपकाररूपी परम धर्म की प्राप्ति भी होती रहती है। असन्त का हृदय बड़ा कठोर होता है। उनको दूसरे के दुःख को देखकर सुख होता है। अतः वे दूसरे को दुःख देने में यत्नशील होते हैं। उस यत्न में उन्हें दुःख होता है। अतः सच्चा सुख उनके भाग्य में नहीं है। जब तक जीते हैं दूसरे का सुख देखकर जलते हैं। मरने पर अपकारी को नरक होता ही है। अतः उन्हें अभागी कहा।

कृपालु सन्तकी उपमा भोजपत्र के पेड़ से दी गयी है। पेड़ तो सभी परोपकारी हैं। पर इस पेड़ के ऐसा दूसरे के हित के लिए भारी विपत्ति सहनेवाला कोई भी नहीं है। जैसे शरीर में चमड़ा है वैसे ही पेड़ के लिए छाल है। यह पेड़ नित्य ही अपना छाल देता है। भूर्जतरु के छाल को ही भोजपत्र कहते हैं। उसे छीलकर ही उस पर पुस्तक लिखी जाती है। यन्त्र लिखे जाते हैं। पहाड़ पर पर उसकी

पुड़िया भी बाँधते हैं। चमड़ी दे देना क्लेश की पराकाष्ठा है। उसे भी सन्त भूर्जतरु के समान परोपकार के लिए स्वीकार करते हैं।

सन इव खल पर बंधन करई। खाल कढ़ाइ बिपति सहि मरई ॥
खल बिनु स्वारथ पर अपकारी। अहि मूषक इव सुनु उरगारी ॥९॥

अर्थ : सन की भाँति खल दूसरे का बन्धन करता है और स्वयं खाल निकलवाकर विपत्ति सहकर मर जाता है। हे उरगारि : गरुड़जी ! सुनो सर्प और चूहे की भाँति खल निःस्वार्थ भाव से दूसरे का अपकार करता है।

व्याख्या : जिस भाँति सन्त परोपकार के लिए दुःख को दुःख नहीं मानते। उसी भाँति खल भी परोपकार के लिए दुःख को दुःख नहीं मानते। सनई की छाल उखाड़कर ही रस्सी बनायी जाती है जिससे दूसरे बाँधे जाते हैं। सनई पानी में डूबोकर सड़ाई जाती है। तब उसकी छाल को अलग करके रस्सी बनायी जाती है। इसी भाँति खल भी दुर्दशापूर्वक अपनी मृत्यु स्वीकार करते हैं : यदि उससे किसी का अपकार होता हो।

पर संपदा बिनासि नसाहीं। जिमि ससि हति हिमि उपल बिलाहीं ॥
दुष्ट उदंय जग अनरथ हेतू। जथा प्रसिद्ध अधम ग्रह केतू ॥१०॥

अर्थ : खल दूसरों की सम्पत्ति का नाश करके स्वयं भी नष्ट हो जाते हैं। जैसे ओला खेती का नाश करके स्वयं गल जाता है। दुष्ट का उदय संसार में अनर्थ का कारण है। जैसे ग्रहों में अधम केतु का उदय होता है।

व्याख्या : जिस भाँति ओले खेती का नाश करने के लिए स्वर्ग से पृथिवी पर गिर पड़ते हैं और खेती का संहार करके स्वयं भी गल जाते हैं। ठीक इसी रीति से परसम्पदा नाश चाहनेवालों का अधः पतन नाश करने के समय ही होता है। नाश को क्रिया की समाप्ति के बाद वे भी नहीं बचते। गल कर पानी हो जाते हैं।

जब जब संसार पर मुसीबत आयी है तब तब उसका कारण दुष्ट का उदय ही होता है। दुष्ट की जब उन्नति होगी तब वह अपनी प्रभुता का उपयोग संसार के दुःख देने में ही करेगा। अतः उसकी उन्नति की उपमा धूमकेतु के उदय से दिया है। धूमकेतु को अधम ग्रह कहा। क्योंकि जब यह उदय होते हैं तब पीड़ा ही पहुँचाते हैं। कभी शुभ फल देते ही नहीं। देश के देश पर आफत ढहाते हैं।

संत उदय संतत सुखकारी। बिस्व सुखद जिमि इंदु तमारी ॥
परम धरम स्रुति बिदित अहिंसा। पर निंदा सम अघ न गिरीसा ॥११॥

अर्थ : सन्त का उदय सदा हितकारी होता है। जैसे चन्द्रमा और सूर्य संसार को सुख देनेवाले होते हैं। वेद विदित परम धर्म अहिंसा है और परनिन्दारूपी हिमालय के समान दूसरा पाप नहीं है।

व्याख्या : जिस भाँति सूर्य और चन्द्रमा के उदय से विश्व का घना सम्बन्ध है। सूर्य चन्द्र से ही संसार को प्रकाश मिलता है। ताप तथा ठण्ढक मिलती है। सब व्यवहार चलता है। यथा : जगहित हेतु बिमल बिधु पूषन। सन्त लोगों से भी उसी भाँति संसार को दिव्य प्रकाश मिलता है। सन्तों से ही विधि निषेध की प्रवृत्ति मिलती है। संसार में जो कुछ थोड़ा बहुत सुख है सो सन्तों की कृपा का ही फल है। सन्तों से दिन रात जगत् का हित हुआ करता है। अतः उनका उदय भी नित्य है। दुष्ट के उदय के समय भी इनका उदय तो रहता ही है। क्योंकि इनके बिना संसार चल नहीं सकता।

प्रश्न हुआ था : कौन धर्म श्रुति विदित बिसाला। उत्तर दिया जाता है : परम धर्म श्रुति विदित अहिंसा। यथा : अहिंसा परमो धर्मः। सर्वथा सर्वदा प्राणी मात्र से द्रोह न करने को अहिंसा कहते हैं। अहिंसा ही सब यम नियमों का मूल है। जाति देश काल और समय में भी यदि इसमें व्यभिचार न हो तो यह महाव्रत हो जाता है।

जिस भाँति हिमालय पर्वतों का राजा है उसी भाँति निन्दा सब पापों से बड़ा पाप है। झूठे दोष कथन को निन्दा कहते हैं। सच्चा दोष कथन भी बड़ा पाप है। जो जिसका दोष कहता है वह उसकी कीर्तिमयी शरीर का हनन करता है। असत्य पर्वत के समान बड़ा पाप है। नहि असत्य सम पातकपुंजा। गिरि सम होहि कि कोटिक गुंजा। वही असत्य जब पर दोष कथन से प्रगुणीकृत हुआ तब वह पर्वतराज हिमालय के तुल्य हो गया।

हरिगुर निंदक दादुर होई। जन्म सहस्र पाव तनु सोई॥
द्विज निंदक बहु नरक भोग करि। जग जनमै बायस सरीर धरि॥१२॥

अर्थ : हरि और गुरु की निन्दा करनेवाला मेढक होता है और सहस्र जन्म तक वही शरीर पाता चला जाता है। ब्राह्मण की निन्दा करनेवाला बहुत नरक भोग करके कौवे का शरीर धारण करके जन्म लेता है।

व्याख्या : मनुष्य योनि से ही भगवद् गुणानुवाद किया जा सकता है। यही इस योनि की विशेषता है। इस विशेषता का इतना बड़ा दुरुपयोग जिसने किया कि हरि और उनकी कृपा के साधन के उपदेष्टा गुरु की निन्दा की। उस निन्दा से यद्यपि हरि और गुरु की कोई क्षति नहीं हुई। पर उसने व्यर्थ का टर टर करने में अपना जन्म गँवाया। इसलिए दूसरे जन्म में मनुष्य की योनि छीन ली गयी और व्यर्थ की टर टर करनेवाली मेढक की योनि मिली। उसने अनन्त की निन्दा की। इसलिए सहस्रों जन्म तक उसे मेढक की ही योनि मिलती रहेगी।

पूर्वजन्म के कर्मों के विपाक से ही जाति आयु और भोग की प्राप्ति होती है। अपने उत्कर्ष के लिए प्रयत्न न करके स्वयं द्विज शरीरप्राप्ति की चेष्टा न करके जो ईर्ष्यावश द्विज की निन्दा करते हैं वे द्विजनिन्दक हैं। गो ब्राह्मण ही वैदिक धर्मके मूल हैं। एक में गव्य निहित है और दूसरे में मन्त्र प्रतिष्ठित है। अतः ब्राह्मण की

निन्दा प्रकारान्तर से वेदमार्ग की ही निन्दा हुई। अतः ऐसे निन्दकको अनेक प्रकार के नरक भोगने पड़ते हैं। नरक भोग के बाद भी उस महान् पातक का इतना प्रबल संस्कार होता है कि उसे कौए की योनि मिलती है।

द्विज निन्दक को अपना बड़ा भारी पक्ष रहता है। उसके आगे वह वेदशास्त्र का अनादर करता है और स्वयं समयोपयोगी धर्मशास्त्र निर्माण का दावा करता है। जाति पाँति तोड़ने की अनेक चेष्टा करता है। सत्य बचन पर विश्वास नहीं करता। कौए की भाँति डरा करता है कि कहीं ऋषियों ने वेद शास्त्र ब्राह्मणों के लाभ के लिए तो नहीं बनाया : इत्यादि। यथा : सत्य बचन बिस्वास न करही। बायस इव सबही ते डरही। सठ स्वपक्ष तब हृदय बिसाला। सपदि होहि पक्षी चंडाला। यही कारण है कि जिससे उसे कौए की योनि मिलती है।

सुर स्रुति निंदक जे अभिमानी। रौरव नरक परहिं ते प्रानी ॥
होहिं उलूक संत निंदारत। मोह निसा प्रिय ज्ञान भानु गत ॥१३॥

अर्थ : जो अभिमानी प्राणी देवता और वेद की निन्दा करते हैं वे रौरव नरक में पड़ते हैं। सन्त की निन्दा में लगे हुए उल्लू होते हैं। ज्ञानरूपी सूर्य के अस्त हो जाने पर जो मोहनिशा होती है वही उन्हें प्यारी है।

व्याख्या : वेद ही आदि शास्त्र है। वेद के ज्ञान से ही संसार में प्रकाश है। जितने प्रचलित मत हैं उनमें से वेदोदित धर्म निकाल लिया जाय तो उनमें कुछ नहीं रह जाता। अतः सबके सब वेदोपजीवी हैं। परमेश्वर के उस आदि उपदेश की जो निन्दा करता है वह श्रुतिनिन्दक है। वेद प्रतिपाद्य देवता लोग ही संसार के अधिकारी हैं। चारों ओर से विश्व की रक्षा किया करते हैं। उनकी निन्दा करनेवाला सुरनिन्दक है। वह निन्दक रौरव नरक में पड़ता है। यहाँ रौरव शब्द उपलक्षण है। रौरव महारौरव कालसूत्र अन्धतामिस्र तथा अवीचो सबका बोधक है। श्रुति तथा देवताओं ने उसका कुछ नहीं बिगाड़ा। पर अनुशासन उसे सह्य नहीं है : केवल अभिमान वश निन्दा करता है। इसलिए उसे अभिमानी कहा।

सन्त लोग राम सुयश की वर्षा करके संसार को मङ्गलमय बनाया करते हैं। वे ही ज्ञानभानु हैं उन्हीं के वचन के प्रकाश से हृदय की कली विकसित होती है। उनकी जो निन्दा करता है वह निःसन्देह प्रकाश का वैरी है। वह अविद्यान्धकार में हीं रहना चाहता है। इसी जन्म में उसमें उल्लू के लक्षण घटते हैं। मरने पर उसको उलूक की योनि मिलनी स्वभावसिद्ध है।

सबकै निन्दा जे जड़ करहीं। ते चमगादुर होइ अवतरहीं ॥
सुनहु तात अब मानस रोगा। जिन्ह तें दुख पावहिं सब लोगा ॥१४॥

अर्थ : जो अज्ञानी सबकी निन्दा करते हैं वे चमगादड़ होकर जन्म ग्रहण करते हैं। हे तात ! अब मानस रोगों को सुनो जिनसे सब लोग दुःख पाते हैं।

व्याख्या : १. हरि गुरु २. द्विज ३. सुर श्रुति और ४. सन्त। इनमें से एक

एक की निन्दा करनेवालों की गति पृथक् पृथक् कहकर अब सबकी निन्दा करनेवाले की गति कहते हैं कि ऐसे जड़ों को चमगीदड़ की योनि मिलती है।

चमगादुर देह में ही उपर्युक्त चारों निन्दकों की प्रवृत्ति चरितार्थ होती है। चमगादुर मेढक की भाँति सदा शब्द किया करता है। कौए की भाँति छली मलिन और अविश्वासी होता है। मुख से मल त्याग करता है। उलटा लटका रहता है। इस भाँति जीतेजी नरक भोगता है। उल्लू की भाँति उसे अन्धकार प्रिय है। पापियों के मुकुटमणि होने से उनके जन्म को अवतार कहा।

प्रश्न हुआ था : मानस रोग कहहु समुझाई। उत्तर देते हुए श्रोता को सावधान करने के लिए : सुनहु तात कहते हैं। यह प्रश्न बड़ा मार्मिक है। इसका सम्बन्ध भवसागर सन्तरण से है। जिस भाँति स्थूल शरीर में रोग होते हैं उसी भाँति सूक्ष्म शरीर में भी रोग होते हैं। थोड़ा सा परिचय के लिए शारीरक रोगों से उनकी तुलना की जायगी : पूर्व संवाद ज्ञान भक्ति भेद प्रकरण में इन सातों प्रश्नों के बीज हैं। वे मानसिक रोग ऐसे भयानक हैं कि इनसे सब लोग दुःख पा रहे हैं और उन्हें यह पता भी नहीं है कि उन्हें रोग हुआ है।

मोह सकल ब्याधिन कर मूला। तेहिते पुनि उपजहि बहु सूला ॥
काम बात कफ लोभ अपारा। क्रोध पित्त नित छाती जारा ॥१५॥

अर्थ : सब व्याधियों का मूल मोह है। उसीसे अनेक प्रकार के शूल उठते हैं। काम वात है और अपार लोभ कफ है और क्रोध नित्य छाती जलानेवाला पित्त है।

व्याख्या : शारीरिक और मानसिक सभी रोगों का मूल मोह अज्ञान है। शारीरिक रोगों का मूलभूत प्रज्ञापराध भी अज्ञान के ही अन्तर्गत है। उसीसे मिथ्याहार विहार होता है। जो आठ प्रकार के शूलों का कारण है। इसी भाँति अज्ञान से संस्पर्शन भोगों में प्रवृत्ति होती है और उससे अनेक प्रकार के मानसिक शूल होते हैं।

जिस भाँति यह स्थूल शरीर बात कफ और पित्त से धृत हैं उसी भाँति मानसिक शरीर काम राग क्रोध द्वेष और लोभ तृष्णा से धृत है। परन्तु ये ही जब साम्यावस्था छोड़कर कुपित हो जाते हैं तो शरीरों में रोग के कारण होते हैं।

काम की उपमा वात से दी गयी है क्योंकि यही गतिशील है। कफ और पित्त को जहाँ ले जाता है वहीं जाकर मेघ की भाँति वर्षा करते हैं। इसी भाँति मानसिक शरीर में काम नेता है। स्थूल शरीर में न कफ का पार मिलता है और न मानसिक शरीर में लोभ का पार है। पित्त भी अग्नि है। वह कुपित होकर कलेजे में दाह उत्पन्न करता है। इसी भाँति क्रोध भी अग्नि है। इससे दाह होना सर्वजन प्रत्यक्ष है। अतः लोभ की कफ से और पित्त की क्रोध से उपमा दी गयी है।

प्रीति करहिं जौ तीनिउ भाई। उपजै सन्यपात दुखदाई ॥
विषय मनोरथ दुर्गम नाना। ते सब सूल नाम को जाना ॥१६॥

अर्थ : यदि तीनों भाई प्रीति करें तो दुःखदायी सन्निपात उत्पन्न होता है। विषय के अनेक दुर्गम मनोरथ शूल हैं। उनके नाम कौन जान सकता है।

व्याख्या : वात कफ और पित्त ये तीनों भाई हैं। पर तीनों प्रीति नहीं करते। अकेले भी रोग उत्पन्न करने में समर्थ है। यदि आपस में प्रीति करके तीनों प्रधान हो जायँ तो सन्निपात होकर मनुष्य काल के वशीभूत हो जाता है। इसी भाँति यदि काम क्रोध लोभ तीनों बढ़ें तो मानसिक शरीर का पतन अनिवार्य है। इसमें बड़ा दुःख होता है। प्रलाप भी होता है। यथा : संन्यपात जल्पसि दुर्बादा। भयेसि काल बस खल मनुजादा।

शब्द स्पर्श रूप रस गन्ध : ये पाँच विषय हैं। इनमें से एक एक के अनेक भेद हैं। अतः इनसे असंख्य मनोरथ उत्पन्न होते हैं। मनोरथ सब के सब दुःखदायी हैं। ये ही दुःख रूप में परिणत हो जाते हैं इसीलिए इन्हें शूल कहा। यद्यपि कफकृत पित्तकृत भी शूल होते हैं पर सबों का प्रभु बात ही है। इसी भाँति क्रोधकृत लोभकृत भी शूल होते हैं। पर प्रभु सबका काम ही है।

ममता दादु कंडु इरषाई। हरष बिषाद गरह बहुताई॥
पर सुख देखि जरनि सोइ छई। कुष्ट दुष्टता मन कुटिलाई॥१७॥

अर्थ : ममता दाद और ईर्षा खुजली है। हर्ष और विषाद बहुत से ग्रह हैं। पराया सुख को देखकर जलना : क्षयी रोग है और दुष्टता मनकी कुटिलता कुष्ठ रोग है।

व्याख्या : शरीर के मल से उत्पन्न जूँ लीख आदि से दद्रु मण्डलवाली फुनसियाँ होती हैं। इसके खुजाने में बड़ा सुख मिलता है परन्तु पीछे से बड़ा कष्ट होता है। इसकी गिनती क्षुद्र कुष्ठ में है।

ममता की भी यही दशा है। यह मन की क्षुद्र दुष्टता है। ममता के संघर्ष में बड़ा सुख मिलता है पर अन्त में कड़ा कष्ट होता है। शरीर से उत्पन्न बाल बच्चे तथा सम्बन्धियों में ममता होती है। इसीलिए इसे दद्रु रोग से उपमित किया।

कण्डु का नाम ही खुजली है यह भी क्षुद्र कुष्ठ है। जूँ और लीख इसके भी कारण हैं। खुजली में छोटी फुनसियाँ बहुत होती हैं पर उनका कोई मण्डल नहीं होता। खुजली में दाह होता है।

इसकी उपमा ईर्षा से दी गयी है। ईर्षा के विषयों की कमी नहीं है। इसीसे छोटी छोटी फुनसियों की भाँति मानसिक शरीर में विकार होता है। उन विकृतस्थलों से मलस्राव होता है। उसमें दाह होता है। इसलिए ईर्षा को कण्डु कहा।

यहाँ ग्रह से वैद्यक में माने हुए ग्रह अभिप्रेत हैं। उसमें देव, असुर, गन्धर्व, यक्ष, पिशाच, राक्षसादि अनेक ग्रह कहे गये हैं जो उन्माद उत्पन्न करते हैं। किसी ग्रह में मनुष्य हर्षित होता है और किसी में विषादयुक्त होता है पर है उन्माद ही। इसी भाँति मनुष्य से हर्ष विषाद की अनेक चेष्टाएँ होती हैं। पर वे सब उन्मत्त चेष्टा की

भाँति परिणाम में दुःख देनेवाली होती हैं। इसीलिए हर्ष विषाद को ग्रह की बहुतायत कहा।

पराया सुख देखकर जिसे जलन पैदा हो। समझ लीजिए कि उसे क्षयी की बीमारी हो गयी। संसार में किसी न किसी को तो सुख रहेगा ही। अतः उसकी जलन जा नहीं सकती। यह जलन उसके सद्‌गुणों का क्षय करती ही रहेगी। मत्सर और अविवेक रूपी ज्वर उसे सदा बना रहेगा। मानसिक शरीर का नाश करके ही छोड़ेगा। क्षयी छः प्रकार का होता है। काम क्रोधादि शत्रु भी छः माने गये हैं। अतः मानसिक क्षयी का भी छः प्रकार का होना युक्तियुक्त है।

कुष्ठ रोग सब रोगों से विशेष घृणित है। इससे शरीर ही बिगड़ जाता है। उसके शरीर से दुर्गन्ध आतो है। कोई उसे पास नहीं बैठने देता है।

कुटिलता ही कुष्ठ है। कुटिल का दुर्नाम होता है। कोई उसके साथ व्यवहार नहीं चाहता। उसके संसर्ग से दूसरों में भी कुटिलता आ जाती है। इसलिए कुटिलता को कुष्ठ रोग कहा।

अहंकार अति दुखद डमरुआ। दंभ कपट मद मान नहरुआ॥
तृस्ना उदर बृद्धि अति भारी। त्रिबिध ईषना तरुन तिजारी॥१८॥

अर्थ : अहंकार अति दुःख देनेवाला डमरुआ रोग है और दम्भ, कपट, मद और मान नहरुआ है। तृष्णा-विषय प्राप्ति की इच्छा अत्यन्त भारी उदर वृद्धि है और तीनों ऐषणाएँ बलवान तिजारी रोग हैं।

व्याख्या : संसृत मूल सूल प्रद नाना। सकल सोकदायक अभिमाना। अहङ्कार से रूप बेढङ्गा हो जाता है। उसकी शकल देखने से चिढ़ होती है। डमरुआ सम्भवतः गलगण्ड रोग को कहते हैं। बँधा हुआ शोथ जो गले में मुष्क की भाँति लटकता है उसे गलगण्ड कहते हैं। गलगण्ड के रोगी को सूई के चुभने की सी पीड़ा होती है। उसको देखने से लोगों को चिढ़ सी मालूम होती है। रोग बढ़ जाने से श्वास लेने में पीड़ा होती है। इसलिए अहङ्कार को डमरुआ कहा।

नहरुआ स्नायुज रोग है। दोष कुपित होकर शोथ पूर्वक पैर में घाव कर देते हैं। उसमें अनेक कीट एकत्रित होकर सूत्राकार में बाहर निकलते हैं और बढ़ते जाते है। बड़े यत्न से उस सूत्र की रक्षा को जाती है। यदि किसी प्रकार से टूट जाय तो बड़ा अनर्थ करता है।

इसी भाँति ढकोसला, छल, मद और मान ये सब सम्बद्ध होकर एक सूत्र में परिणत हो जाते हैं। ये बढ़ते ही जाते हैं। बड़े प्रयत्न से इनकी रक्षा करनी पड़ती है। यदि भङ्ग हो जाय तो बड़ा कष्ट होता है। इसलिए दम्भ कपट मद मान को नहरुआ रोग कहा।

विषय प्राप्ति की प्यास को तृष्णा कहते हैं। यह प्यास मिटती नहीं। दिन पर दिन बढ़ती जाती है। शरीर घटता जाता है। बल क्षीण हुआ जाता है पर तृष्णा की वृद्धि नहीं रुकती। इसी भाँति जिसे उदर रोग हो जाता है उसका

शरीर और बल घटने लगता है पर उदर बढ़ता ही जाता है। इसीलिए तृष्णा को उदरवृद्धि से उपमित किया।

सुत बित लोक ईषना तीनी। केहिकै मति इन्ह कृत न मलीनी। इन्हीं तीनों एषणाओं को तरुण तिजारी से उपमित किया है। क्योंकि तरुण तिजारी बड़े वेग से जाड़ा देकर आती है। त्रिविध एषणा में भी रह रहकर भारी जड़ता उत्पन्न हो जाती है और छूटती भी बड़ी कठिनता से है।

जुग बिधि ज्वर मत्सर अबिबेका। कहँ लगि कहौं कुरोग अनेका ॥१९॥

अर्थ : मत्सर और अविवेक दोनों प्रकार के ज्वर हैं। कहाँ तक कहूँ अनेक कुरोग हैं।

व्याख्या : देह, इन्द्रिय और मन को ताप पहुँचानेवाला सब रोगों से ज्येष्ठ और बलवान् रोग ज्वर है। पहिले जो महेश्वर के कोप से उत्पन्न हुआ। उसे माहेश्वर कहते हैं। उसके आठ भेद हैं। पीछे से श्रीकृष्ण के कोप से वैष्णव ज्वर उत्पन्न हुआ। उसके पाँच भेद हैं। पहिले को आम और दूसरे को विषम कहते हैं।

जिस भाँति स्थूल शरीर में आम ज्वर और विषम ज्वर होता है उसी भाँति सूक्ष्म शरीर में अविवेक और मात्सर्य है। अविवेक भी देहेन्द्रिय मनस्तापी है और मत्सर स्वभावगत होकर सन्ताप पहुँचाया करता है। इसलिए आमज्वर से अविवेक उपमित है और मात्सर्य से विषमज्वर उपमित है।

इस भाँति अनेक कुरोग हैं। कहाँ तक गिनाया जाय। दिग्दर्शन के लिए ग्यारह रोगों का परिचय दिया गया है। जिसकी दवा नहीं है उसी को कुरोग कहते हैं।

दो. एक ब्याधि बस नर मरहिं, ए असाधि बहु ब्याधि।
पीडहि संतत जीव कहुँ, सो किमि लहै समाधि ॥१२१ क.

अर्थ : एक व्याधि के वश में पड़ जाने से मनुष्य मर जाता है। ये तो असाध्य व्याधियाँ हैं और बहुत हैं। ये सदा जीवों को पीड़ा दिया करती हैं। फिर जीव समाधि को कैसे प्राप्त हो।

व्याख्या : एक व्याधि के वश में पड़ जाने पर फिर रक्षा नहीं है और यहाँ तो एक एक व्याधियाँ असाध्य हैं और सभी सबको हैं। अतः प्रमाद से रक्षा नहीं और प्रमाद ही मृत्यु है। जितने रोग हैं सबकी पीड़ाएँ पृथक् प्रकार की हैं। उन पीड़ाओं का अनुभव करता हुआ पुरुष दिनरात विकल रहा है :

जिस भाँति विकार रहित शरीर का होना शारीरिक स्वास्थ्य है। उसी भाँति मन का निर्विकार होना अर्थात् समाधि मानसिक स्वास्थ्य है। अतः ऐसी अवस्था में समाधि सर्वथा असम्भव है।

दो. नेम धर्म आचार तप, ग्यान जग्य जप दान।
भेषज पुनि कोटिन्ह नहि, रोग जाहिं हरिजान ॥१२१॥

अर्थ : नियम धर्म आचार तप ज्ञान, यज्ञ, जप, दान, इत्यादि करोड़ों दवाएँ हैं। पर हे गरुड़जी ! रोग जाता नहीं।

व्याख्या : शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वरप्रणिधान नियम हैं। श्रुति स्मृति सदाचारानुकूल आचरण ही आचार है। स्वधर्मानुष्ठान तप है। समदर्शित्व ज्ञान है देव प्रीत्यर्थ द्रव्य दान यज्ञ है। मन्त्र का बार बार पाठ जप है। अपना स्वत्व हटाकर दूसरे का स्वत्व स्थापन करना दान है। ये ही सब रोगों की औषध है और सम्पूर्ण वेद पुराण ओषधि से भरे पड़े हैं। पर इनसे रोग भले ही कुछ देर के लिए दब जाय पर निर्मूल नहीं होते। अतः ये प्रकृत औषध नहीं हैं।

एहि बिधि सकल जीव जग रोगी। सोक हर्ष भय प्रीति बियोगी ॥
मानस रोग कछुक मैं गाए। हहिं सबके लखि बिरलेन्हि पाए ॥१॥

अर्थ : इस विधि से संसार के सब जीव रोगी हैं। सबको शोक, हर्ष, भय, प्रीति और वियोग है। कुछ तो मानस रोग मैंने गाकर कहे। ये हैं तो सबको पर विरलों ही ने जान पाया है।

व्याख्या : इन रोगों से संसार के जीव जन्तु तक रोगी हैं। केवल मनुष्य चिकित्सा के लिए यत्न कर सकता है और प्राणी तो कुछ कर भी नहीं सकते। रोगों के कारण सब दुर्दशाग्रस्त हैं। कभी हर्ष से उछल पड़ते हैं। कभी शोक सागर में डूब जाते हैं। कभी भयभीत हो उठते हैं। कभी प्रेम में मग्न हो जाते हैं और कभी वियोग में पड़े हाय हाय करते हैं।

मानस रोगों की यह विशेषता है कि रोगी को यह पता भी नहीं चलता कि हम रोग से दुःखी हो रहे हैं। वह दुःख के कारण को बाहर खोजता है। ऐसा ही कोई विरला पुरुष जान पाता है कि मैं रुग्ण हूँ और मुझे अमुक रोग पीड़ा दे रहा है।

जानेतें छीजहिं कछु पापी। नास न पावहिं जन परतापी ॥
बिषय कुपथ्य पाइ अंकुरे। मुनिहु हृदय का नर बापुरे ॥२॥

अर्थ : जान लेने से ये पापी कुछ छीजते हैं। पर ये जनपरितापी नाश को नहीं प्राप्त होते। मुनि के हृदय में भी विषय कुपथ्य पाकर अङ्कुरित हो उठते हैं। मनुष्य बेचारे क्या हैं।

व्याख्या : काम क्रोधादि को पापी जनपरितापी कहा। क्योंकि ये सबको पीड़ित किया करते हैं और न चाहने पर भी बलात् पाप करा ही देते हैं। ये मित्र रूप से आकर सद्गुणों का हरण करते हैं। इन्हें लोग शत्रु रूप से नहीं जानते। यदि जान जायँ तो बलात् आ जाने पर भी उन पर अहित भावना होने से उनका वेग क्षीण हो जाता है। औषध के प्रयोग से प्रसुप्त ये तनु या विच्छिन्नावस्था को प्राप्त हो जाते हैं। पर निर्मूल नहीं होते।

मानस रोग के लिए विषय कुपथ्य है। सो जहाँ विषय की प्राप्ति हुई तहाँ ये

मुनियों के हृदय में भी अङ्कुरित हो उठते हैं। मनुष्य बेचारों की क्या गिनती है। यथा : देखि रूप मुनि बिरति बिसारी। बड़ी बार लगि रहे निहारी।

रामकृपा नासहिं सब रोगा। जौ इहि भाँति बनै संजोगा ॥
सद्गुरु बैद बचन बिस्वासा। संजम यह न बिषय कै आसा ॥३॥

अर्थ : यदि इस भाँति संयोग जुट जाय तो रामकृपा से सब रोग नष्ट हो जाते हैं। सद्गुरु-वैद्य के वचन पर विश्वास हो। संयम यह है कि विषय की आशा न हो।

व्याख्या : सूर्य नारायण की कृपा तो बराबर होती ही आती है। पर रूई का गट्ठा नहीं जलता। सूर्यकान्तमणि और जलानेवाला दोनों इकट्ठे हो जाय तो गट्ठा जला जलाया ही है। इसी भाँति रामकृपा तो बराबर होती चली आ रही है। पर कोई आत्मकृपावाला सूर्यकान्तमणि लेकर जलाने आवे तो ये क्लेश जले जलाये ही हैं।

सब रोगों का जड़ मोह है। उसके नाश होने पर सब रोग अपने आप नष्ट हो जाते हैं। वैद्य, अधिकारी रोगी, संयम, औषध और अनुपान इकट्ठे हो जाँय तो सिद्धि निश्चित है।

जिसके वचन से मोह का नाश हो वह सद्गुरु हैं। जिस भाँति वैद्य रोगी के रोग को पहिचानकर उसकी अवस्था के अनुसार औषध का विधान करता है। उसी भाँति सद्गुरु शिष्य के मानसिक रोगों का तारतम्य समझकर तदनुसार मन्त्र ध्यानादि की व्यवस्था करता है। वैद्य के यदि निदान में चूक हुई तो उपयुक्त औषध नहीं दे सकेगा। अतः सद्वैद्य की ही चिकित्सा करनी चाहिए। यहाँ सद्गुरु ही सद्वैद्य है। उसके वचन पर विश्वास होना चाहिए और उसे जिस भाँति रोगी को कुपथ्य से बचना आवश्यक है। उसी भाँति साधक को भी विषय की आशा का परित्याग आवश्यक है।

रघुपति भगति सजीवनि मूरी। अनूपान श्रद्धा अति रूरी ॥
एहि बिधि भलेहि रोग नसाहीं। नाहित जतन कोटि नहि जाहीं ॥४॥

अर्थ : रघुपति भक्ति ही संजीवनी बूटी है और अतिसुन्दर श्रद्धा ही अनुपान है। इस विधि से सुभीते के साथ रोग नष्ट होते हैं। नहीं तो कोटि यत्न से भी नहीं जाते।

व्याख्या : जिस भाँति असाध्य रोगों के प्रशमन में सञ्जीवनी बूटी ही समर्थ है। उसी भाँति इन मानसिक रोगों के निर्मूलन में सगुण ब्रह्म रामकी भक्ति ही समर्थ है। वेद पुराण रूपी पावन पर्वत में ही यह बूटी प्राप्त है। इस बूटी के भी सजातीय और स्वगत भेद है। इसी भाँति उपासना की प्रक्रियाओं में भी भेद है। वैद्यरूपी सद्गुरु ही जानते हैं कि कौन सा मन्त्र किस प्रकृति के पुरुष के अनुकूल होगा : इत्यादि।

तथा अतिशुद्ध सात्त्विकी श्रद्धा के साथ दीक्षा ग्रहण तथा अनुष्ठान ही अनुपान है। औषध के प्रभाव को यथेप्सित कार्य करने में प्रवृत्त करता है।

असाध्य रोगों से ग्रस्त मन भक्ति करने में सर्वथा असमर्थ है। अतः रोगों को दूर करने के लिए उसे सद्गुरु द्वारा राममन्त्र की दीक्षा लेनी चाहिए। यथा : वेगि विलम्ब न कीजिये लीजे उपदेस। महामन्त्र जपिये सोई जो जपत महेस। विनय गुरु के उपदेश पर विश्वास करके चलना चाहिए। सात्त्विकी श्रद्धा के साथ अनुष्ठान करना चाहिए। यही विधि है। श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ की दी हुई दीक्षा अमोघ है। उसका प्रभाव विना पड़े नहीं रह सकता। भक्ति के जाग उठने पर काम क्रोधादि से भय नहीं रह जाता। भक्त के सामने सदा सगुण ब्रह्म की दिव्यातिदिव्य कल्याणमयी मूर्ति रहती है। स्थूल विषय उसे नहीं जँचते। इस विधि से अल्पायास से ही रोगों का नाश होता है। अन्य साधनों से निर्मूल हो नहीं सकते।

जानिअ तब मन बिरुज गोसाँई। जब उर बल बिराग अधिकाई ॥
सुमति छुधा बाढै नित नई। बिषय आस दुर्बलता गई ॥५॥

अर्थ : तब मनको नीरोग समझना जब हृदय में विरागरूपी बल बढ़े। हे गोसाईं ! जब सुमतिरूपी भूख नित्य नयी बढ़ने लगी और विषयाशारूपी दुर्बलता चली गयी।

व्याख्या : जिस भाँति स्थूल शरीर में भूख है। उसी भाँति मानसिक शरीर में सुमति है। यही भजन के लिए जलन पैदा करती है। यही भजन का परिपाक करके विरागरूपी बल बढ़ाती है। सञ्जीवनी भक्ति कुमति का नाश करके सुमति बढ़ाती है। रोग विनिर्मुक्त होने पर नित्य नयी भूख बढ़ती है। इसी भाँति मानसिक रोग नष्ट होने पर भजन की ओर प्रवृत्ति बढ़ती ही जाती है। विषय की आशा को तो संयम के समय से ही छोड़ रक्खी थी। पर वह गयी नहीं थी। विराग बल के बढ़ जाने से वह आप से आप चली जाती है। रोग विनिर्मुक्त मन का यही लक्षण है कि विराग बढ़े और सरकार के चरणों में अनुराग बढ़ता जाय।

बिमल ज्ञान जल जब सो नहाई। तब रह राम भगति उर छाई ॥
सिव अज सुकसनकादिक नारद। जे मुनि ब्रह्म बिचार बिसारद ॥६॥

अर्थ : निर्मल ज्ञान जल से जब वह नहाता है। तब रामभक्ति उसके हृदय में छा जाती है। शिव, ब्रह्मा, शुक, सनकादि, नारद और जितने मुनि ब्रह्म विचार में विशारद हैं।

व्याख्या : संशय रहित ज्ञान ही गुरु उपदेश का फल है। जबतक भजन करते करते मन में प्रबल वैराग्य न हो जाय तबतक वह निर्मल ज्ञान का अधिकारी नहीं है। उसे ज्ञान जल से स्नान न कराना चाहिए। भली भाँति रोग विनिर्मुक्त तथा पुष्ट देखकर तभी वैद्य रोगविनिर्मुक्त स्नान कराते हैं। गुरुजी ज्ञानोपदेश करते हैं तब मनोमल, शोक, हर्ष, भय प्रीति और वियोग मिट जाता है।

तब सिद्धा भक्ति हृदय में छा जाती है और जब भक्ति बस गयी तब माया की प्रभुता नहीं चलती। यथा :

सेवत साधु द्वैत भय भागै। श्री रघुवीर चरन लय लागै॥
अनुराग सों निज रूप जो जग ते बिलच्छन देखिये।
संतोष सम सीतल सदा दम देहवंत न लेखिये।
निरमल निरामय एकरस तेहि हरष सोक न व्यापई।
त्रैलोक पावन सो सदा जाकी दसा ऐसी भई। विनय.

शिवजी ब्रह्मदेव, शुकदेव, सनकादिक और नारद ये महात्मा ब्रह्मविद्या सम्प्रदाय प्रवर्तक हैं और भी जितने मुनि ब्रह्म विचार में विशारद हैं। जो ये लोग कहें वही प्रमाण है। सो :

सब कर मत खगनायक एहा। करिअ राम पद पंकज नेहा॥
स्रुति पुरान सब ग्रन्थ कहाहीं। रघुपति भगति बिना सुख नाहीं॥७॥

अर्थ : हे खगनायक ! सबका यही मत है कि रामजी के चरण कमलों में प्रेम करना चाहिए। वेद पुराण और सब ग्रन्थ कहते हैं कि रघुपति की भक्ति के बिना सुख नहीं है।

व्याख्या : इन सभी महामहिम महात्माओं का यह मत है कि राम आनन्द सिन्धु हैं। सुख की राशि हैं। उनके चरणकमलों में प्रेम करने से सब सुख तुरन्त सुलभ होते हैं। यथा : बिनु बिराग जप जाग जोग व्रत बिनु तप बिनु तनु त्यागे। सब सुख सुलभ सद्य तुलसी प्रभुपद प्रयाग अनुरागे। सभी आप्तों का ऐकमत्य कहकर अब सभी आप्तवाक्यों का ऐकमत्य कहते हैं कि वेद पुराण तथा सब सद्ग्रन्थों का यही मत है कि विना रघुपतिभक्ति के सुख नहीं है और सुख की चाह सभी को रहती है। अतः रघुपति भक्ति का समर्थन सब महात्मा एक स्वर से करते हैं। यथा : इहै कह्यो सुनु बेद चहूँ। श्री रघुबीर चरन चिंतन तजि नाहिन ठौर कहूँ।

कमठ पीठि जामहि बरु बारा। बन्ध्यासुत बरु काहुहि मारा॥
फूलहि नभ बरु बहु बिधि फूला। जीव न लह सुख हरि प्रतिकूला॥८॥

अर्थ : चाहे कछुए के पीठ में बाल जमे। चाहे वन्ध्या स्त्री का बेटा किसी को मारे चाहे अकाश में अनेक प्रकार के फूल फूलें पर जीव हरि के प्रतिकूल होने से सुख नहीं पाता।

व्याख्या : कछुए को बाल होता हो नहीं फिर उसकी पीठ में तो हड्डी है। उसमें बाल जम ही नहीं सकता। सो ऐसी अनहोनी बात चाहे हो जाय। इसी भाँति वन्ध्या को बेटा होना और उसका किसी को मारना किसी प्रकार से सम्भव ही नहीं। आकाश में फूल फूलना भी महा असम्भव है। सो ऐसी न घटनेवाली घटनाएँ चाहे घट जायँ। पर हरि के प्रतिकूल होने पर जीवको सुख मिले यह बात हो नहीं सकती। यथा : मातु मृत्यु पितु समन समाना। सुधा होइ बिष सुनु हरिजाना। मित्र करै सत

रिपु कै करनी। ता कहँ बिबुध नदी बैतरनी। सब जग ताहि अनलहु ते ताता। जो रघुवीर विमुख सुनु भ्राता।

तृषा जाइ बरु मृगजल पाना। बरु जामहिससीस बिषाना ॥
अंधकार बरु रबिहि नसावै। राम बिमुख न जीव सुख पावै ॥९॥

अर्थ : चाहे मृग जलपान से प्यास चली जाय और चाहे खरगोश के सिर में सींग जम जाय। चाहे अन्धकार सूर्य का नाश कर दे पर राम के विमुख होकर जीव सुख नहीं पाता।

व्याख्या : मरुभूमि में सूर्य की प्रखर किरणों के चमक में जल ही जल दिखायी देता है। उसको पीने के लिए दौड़ते मृग मर जाते हैं। उसीको मृगजल कहते हैं। वहाँ जल का एक बूँद भी नहीं। वहाँ प्यास और बढ़ती है। प्यास बुझाने की तो वहाँ कोई बात ही नहीं है। केवल जल का मिथ्या भान होता है।

खरगोश के सींग का होना मिथ्या नहीं। तीन काल में असत् है। उसका मिथ्या भान भी नहीं होता। अन्धकार सूर्य के उदय होते ही नष्ट हो जाता है। वह सूर्य का नाश क्या करेगा ? सो चाहे मृगजल से प्यास बुझे : खरगोश को सींघ हो और अन्धकार सूर्य का नाश कर दे पर रामविमुख होने से जीव को सुख नहीं मिल सकता। जो आनन्द सिन्धु सुखराशि हैं। सीकर से लेकर त्रैलोक्य का प्रकाश करता है। उसीके जो विमुख हो गया वह सुख कैसे पावेगा। उसकी सम्पत्ति प्रभुताई चली जायगी। यथा : राम विमुख सम्पति प्रभुताई। जाइ रही पाई बिनु पाई।

हिम ते अनल प्रगट बरु होई। बिमुख राम सुख पाव न कोई ॥१०॥

अर्थ : चाहे पाला से अग्नि प्रकट हो जाय पर राम के विमुख होने से कोई सुख नहीं पाता।

व्याख्या : पाला अग्नि के सन्निकट नहीं जाता। उससे अग्नि क्या पैदा होगी ? इसी भाँति जिसके प्राणाराम राम विमुख हुए उसके सन्निकट सुख नहीं जा सकता। उसे सुख की प्राप्ति कहाँ से होगी ? यथा : सुनु दसकंठ कहौं प्रन रोपी। विमुख राम त्राता नहिं कोपी।

दो. बारि मथे घृत होइ बरु, सिकतातें बरु तेल।
बिनु हरिभजन न भव तरिअ, यह सिद्धान्त अपेल ॥१२२ क.

अर्थ : जल का मन्थन करनेसे चाहे घी निकले। बालू से चाहे तेल निकले पर बिना हरिभजन संसार सन्तरण नहीं हो सकता। यह सिद्धान्त अटल है।

व्याख्या : जो वस्तु जिसमें सूक्ष्म रूप से अवस्थान करती है। वही प्रयत्न करने पर उसमें से निकलती भी है। दूध में घृत सूक्ष्म रूप से अवस्थान करता है। तिल में तेल सूक्ष्म रूप से अवस्थान करता है। अतः प्रयत्न करने पर प्रगट भी होता

है। जल में घी सूक्ष्म रूप से भी अवस्थान नहीं करता। बालू में तेल सूक्ष्म रूप से भी अवस्थान नहीं करता। अतः हजार प्रयत्न करने से भी नहीं निकल सकता। इसी भाँति भव सन्तरण का सामर्थ्य हरि भजन में निहित है। अतः जिस साधन में हरि भजन निहित नहीं है उससे संसार सन्तरण नहीं हो सकता। यह तत्त्वदर्शियों का निश्चय है। अतः इसे अटल सिद्धान्त कहते हैं। यथा : नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः। उभयोरपि दृष्टोन्तस्त्वनयोस्तत्त्वदर्शिभिः।

यहाँ पाँच बार सुख का निषेध किया। यथा : १. भगति बिना सुख नाहीं २. जीवन लह सुख ३. न जीव सुख पावै ४. सुख पाव न कोई और ५. न भव तरिअ। इसका भावार्थ यह कि बिना हरि भजन के पाँचों प्रकार के सुख : १. योगानन्द २. आत्मानन्द ३. अद्वैतानन्द ४. विद्यानन्द और ५. विषयानन्द में से किसी का भी होना सम्भव नहीं। यह क्रम से दिखलाया।

दो. मसकहि करै बिरंचि प्रभु, अजहि मसक ते हीन।
अस बिचारि तजि संसय, रामहि भजहि प्रबीन ॥१२२॥

अर्थ : प्रभु मच्छर को ब्रह्मा बनाते हैं और ब्रह्मा को मच्छर से भी छोटा कर देते हैं। ऐसा विचारकर संशय रहित हो जानकार लोग राम को भजते हैं।

व्याख्या : सरकार का सामर्थ्य कहते हैं। वे मच्छर को ब्रह्मदेव बनाते हैं। ब्रह्मदेव को मच्छर से भी तुच्छ बना देते हैं। ऐसी उनकी प्रभुता है। जो आज ब्रह्मदेव हैं निश्चय किसी समय वे मसक योनि में थे और जो आज मच्छर हैं सम्भव है कि वह किसी समय ब्रह्मा रहा हो। क्योंकि ब्रह्मलोक से भी पतन सुना जाता है। आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन। ते पाइ सुर दुर्लभ पदादपि परत हम देखत हरी।

अनन्तकाल से हमलोग कल्याण के लिए प्रयत्न करते चले आये हैं। पर जिसे कल्याण कहते हैं वह तो नहीं हुआ। अतः समर्थ का आश्रय ग्रहण ही एक मात्र उपाय है। प्रवीण लोग इसलिए संशय छोड़कर राम को भजते हैं। संशय छोड़ने से छूटता है। इसीलिए शंकरजी कहते हैं : तजि संसय भजु राम पद।

श्लो. विनिश्चितं वदामि ते, न अन्यथा वचांसि मे।
हरिं नरा भजंति येऽतिदुस्तरं तरंति ते ॥

अर्थ : मैं तुमसे निश्चय बात कहता हूँ। मेरी बातें अन्यथा नहीं होतीं। जो नरहरि को भजते हैं वे अति दुस्तर को तर जाते हैं।

व्याख्या : भुसुण्डिजी तर्क वितर्क से अच्छी तरह से संशयापनोदन करके अब सबका निर्गलितार्थ अपना सिद्धान्त कहते हैं और श्रोता की आस्था को दृढ़ करने के लिए यह भी कहते हैं कि मेरी बातें अन्यथा नहीं होतीं। अतः सन्देह न करो। जो

नर हरि का भजन करते हैं वे अतिदुस्तर भवसागर को तर जाते हैं। उनका बेड़ा पार है। इसमें सन्देह नहीं है।

परिशिष्ट

कहेउ नाथ हरिचरित अनूपा। ब्यास समास स्वमति अनुरूपा ॥
स्रुति सिद्धान्त इहै उरगारी। राम भजिय सब काम बिसारी ॥१॥

अर्थ : हे नाथ ! मैंने अनूप हरि चरित अपनी मति के अनुसार विस्तार और संक्षेप से कहा। हे उरगारि ! वेदों का यही सिद्धान्त है कि सब काम भुलाकर राम को भजे।

व्याख्या : हरिचरित वेदमार्ग संस्थापन के लिए होता है। एवं वेदोदित सम्पूर्ण आदेश स्वयं पालन करके जीते जागते रूप में भगवान् सबके सामने आदर्श खड़ा कर देते हैं। हरि ने रामावतार में जो चरित किया सो वस्तुतः अनूप है। कहीं किसी अवतार में ये बातें नहीं पायी जातीं। यथा : ऐसो अनूप कहै तुलसी रघुनायक की अगुनी गुन गाहै। आरत दीन अनाथ की रघुनाथ करैं निज हाथ की छाहैं : कवितावली। जगत् से विलक्षण रामजी के नाम, रूप, लीला और धाम सभी अनूप हैं। उन्हें अपनी बुद्धि के अनुसार कहीं विस्तार से कहा है और कहीं संक्षेप से कहा है।

काम का अर्थ सुख भी है। जबतक दूसरे सुख याद हैं तबतक भजन नहीं हो सकता। अतः विषय से मन फेरकर ऐसा भगवान् में लगावे कि सचमुच विषय और कार्य सब विस्मृत हो जायँ। यही वेद का सिद्धान्त है। ऐसे भूलनेवाले का कामकाज भगवान् को याद रहता है। यथा : अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्य्युपासते। तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्। करउँ सदा तिन्ह कै रखवारो। जिमि बालकहि राख महतारो।

प्रभु रघुपति तजि सेइय काही। मोहिसे सठ पर ममता जाही ॥
तुम्ह बिग्यान रूप नहि मोहा। नाथ कीन्हि मोपर अति छोहा ॥२॥

अर्थ : रघुपति : ऐसे प्रभु को छोड़कर किसकी सेवा करें जिसको मुझ जैसे सठ पर ममता है। तुम विज्ञान रूप हो। तुम्हें मोह नहीं है। हे नाथ ! तुमने मुझपर बड़ा छोह किया।

व्याख्या : सठ सेवक महा दुःखदायो होता है। उसपर ममता नहीं हो सकती। वह तो मालिक के लिए शूल के समान है। सेवक सठ नृप कृपिन कुनारी। कपटी मित्र सूल समचारी। फिर भी सेवक होने के नाते रामजी की उनपर ममता रहती है। अतः कहते हैं कि राम में ही स्वामी के सब गुणों का उत्कर्ष है। अतः वे ही सेवन करने योग्य हैं। उनके ऐसा भी कोई दूसरा प्रभु होता तो उन्हें छोड़कर उसीको भजते। यहाँ तो उनके समान ही कोई नहीं। बढ़कर कहाँ से मिलेगा ?

भुसुण्डिजी गरुड़जी से कहते हैं कि तुम वेदमय हो : महा ज्ञानी हो। यथा : सामध्वनिशरीरस्त्वं वाहनः परमेष्ठिनः। मात्स्ये। गरुड़ महा ज्ञानी गुन रासी। हरि सेवक अति निकट निवासी। ज्ञानी के ही सम्मुख मोह नहीं ठहरता तो विज्ञान रूप महा ज्ञानी के सम्मुख कैसे ठहरेगा।

भुसुण्डिजी ने इतना उपदेश भी दिया। फिर भी यह भाव बना है कि गरुड़जी को मोह नहीं। वे केवल मुझे बड़ाई देने के लिए यहाँ आये हैं। यही सन्त का लक्षण है : कोमल बानी संत की स्रवै अमृत मय आइ। तुलसी ताहि कठोर मन सुनत मे न होइ जाइ।

पूँछिहु रामकथा अति पावनि। सुक सनकादि संभु मन भावनि॥
सत संगति दुर्लभ संसारा। निमिष दंड भरि एकौ बारा॥३॥

अर्थ : तुमने अति पावनी रामकथा पूछी जो शुक सनकादि और शम्भु की मन भावनी है। संसार में निमिष दण्ड भर एक बार भी सत्सङ्ग दुर्लभ है।

व्याख्या : तुम समझते थे कि तुम्हें मोह था। पर मेरी समझ में वह मोह नहीं था विद्या थी। यथा : प्रभु सेवकहि न व्याप अविद्या। प्रभु प्रेरित व्यापै तेहि बिद्या। क्योंकि जिसे रामकथा की जिज्ञासा है उसे मोह कहाँ ? इसलिए मैं कहता हूँ कि तुम विज्ञान रूप नहिं मोहा। जो बात शुक सनकादि शम्भु को अच्छी लगती है वही तुम्हें भी अच्छी लगी। जिसे मोह होता है उसकी रुचि बिगड़ जाती है। यथा : काम भुजंग डसत जब जाही। विषय निंब कटु लगत न ताही।

देखु गरुड़ निज हृदय बिचारी। मैं रघुबीर भजन अधिकारी॥
सकुनाधम सब भाँति अपावन। प्रभु मोहि कीन्ह बिदित जग पावन॥४॥

अर्थ : हे गरुड़जी ! अपने हृदय में विचारकर देखो : क्या मैं रघुवीर के भजन का अधिकारी हूँ। मैं पक्षियों में अधम सब भाँति से अपवित्र हूँ : प्रभु ने मुझे प्रख्यात जगपावन बना दिया।

व्याख्या : मुख से भजन करने की बात करना बहुत सुगम है। पर वस्तुतः भजन करना बड़ा कठिन है। योगी ही यथार्थ भजन कर सकता है : सा कस्मै परमप्रेमरूपा च। भक्ति परमेश्वर में परमप्रेमरूपा है और निरोधरूपा है। यथा :

रघुपति भगति करत कठिनाई।
कहत सुगम करनी अपार जानै सोइ जेहि बनि आई॥
जो जेहि कला कुसल ताकहँ सोइ सुलभ सदा सुखकारी।
सफरी सनमुख जल प्रवाह सुरसरी बहै गज भारी॥
सकल दृश्य निज उदर मेलि सोवै निद्रा तजि जोगी।
सोइ हरिपद अनुभवै परम सुख अतिशय द्वैत वियोगी॥
सोक मोह भय हरख दिवस निसि देस काल तहँ नाहीं।
तुलसीदास यहि दसा हीन संसय निर्मूल न जाहीं॥

जब एकाग्र और निरुद्ध चित्त में भक्ति की योग्यता है तब सब से भयभीत रहनेवाले मन्दमति काग को वह अधिकार कैसे प्राप्त हो सकता है जो मनुष्य को भी दुर्लभ है।

भुसुण्डिजी कहते हैं कि मैं पक्षियों में चाण्डाल कौआ सभी भाँति से अपावन हूँ। कौए की जाति अपावन, आहार अपावन, बुद्धि अपावन, स्वभाव अपावन, रुचि अपावन, करणी अपावन, सो प्रभु ने मुझे प्रसिद्ध जग पावन कर दिया। आप कैलास से यहाँ मुझसे मिलने आये।

दो. आजु धन्य मैं धन्य अति, जद्यपि सब बिधि हीन।
निज जन जानि राम मोहि, संत समागम दीन ॥१२३ क.

अर्थ : सब विधि हीन होने पर भी आज मैं धन्य हूँ अति धन्य हूँ जो अपना जन जानकर रामजी ने सन्त समागम दिया।

व्याख्या : पीपर के नीचे ध्यान पाकर के नीचे जप यज्ञ आम के नीचे मानस पूजा करने के बाद बट तले कथा कहने के लिए भुसुण्डिजी आये। उसी समय गरुड़जी का आगमन हुआ। गरुड़जी को त्रेता में मोह हुआ। द्वापर ब्रह्मलोक के आने जाने में बीता। ब्रह्मलोक के क्षण बीतने में यहाँ युग बीत जाता है। काल का मान सर्वत्र बराबर नहीं। पितरों का एक दिनरात मनुष्य मान से एक महीने का होता है। देवताओं का एक दिनरात मनुष्यों का १२ महीने का होता है। ब्रह्मदेव का दिनरात १४ मन्वन्तर का होता है। २७ कल्प तक कथा कहनेवाले भुसुण्डिजी का एक दिन सम्भवतः चार युगों का होता है। प्रत्येक युगों के धर्मों का निर्वाह करते हुए भुसुण्डिजी कलियुग में रामकथा कहते हैं। अतः दिन के अन्त में राम कथा प्रारम्भ भी हुई और समाप्त भी हो गयी। इसीलिए भुसुण्डिजी आजु धन्य मैं धन्य अति कहते हैं। उस समय भुसुण्डिजी की आयु उनके मान से : $\frac{१०००}{३६०}$ ×२७=७५ : ७५ वर्ष के ऊपर थी। क्योंकि इतने दिन तो उन्हें नीलशैल पर रहते हो गया था।

सो भुसुण्डिजी कहते हैं कि इतने दिन मुझे यहाँ रहते हुआ। पर आज मैं अति धन्य हुआ क्योंकि आज मुझे रामजी की कृपा से आप से सन्त का समागम हुआ। यथा : धन्य घरी सोइ जेहि सत संगा। संत विसुद्ध मिलहि परि तेही। चितवहि रामकृपा करि जेही।

दो. नाथ जथामति भाखेउँ, राखेउँ नहि कछु गोइ।
चरित सिंधु रघुनायक, थाह कि पावे कोइ ॥१२३॥

अर्थ : हे नाथ ! मैंने अपने मति के अनुसार कहा कुछ छिपाया नहीं। रघुनाथ के चरित सिन्धु का कौन थाह पा सकता है।

व्याख्या : यह न समझना कि इतना ही रामचरित है। राम की कथा के

विस्तार का अन्त नहीं है। अतः यह रीति है कि अपनी बुद्धि के अनुसार भगवान् के गुणों का गान किया जाय।

महात्मा लोग गूढ़ तत्त्व का वर्णन नहीं करते। परन्तु आर्त अधिकारी से छिपाते भी नहीं। सो कहीं आपको यह सन्देह न हो कि कुछ गूढ़ तत्त्व भुसुण्डि ने छिपा रक्खा। इसलिए कहे देता हूँ कि मैंने छिपाया कुछ नहीं। मेरी जानकारी ही इतनी थी। बात यह है कि समुद्र का थाह और पार चाहे कोई पा जाय पर रघुनायक के चरित्र सिन्धु का पार कोई पा नहीं सकता।

सुमिरि राम के गुनगन नाना। पुनि पुनि हरख भुसुंडि सुजाना॥
महिमा निगम नेति करि गाई। अतुलित बल प्रताप प्रभुताई॥१॥

अर्थ : रामजी के नाना गुणों का स्मरण करके बार बार सुजान भुसुण्डिजी हर्षित हुए : और बोले कि : वेदने नेति नेति कहकर महिमा का गान किया : रघुराई का : बल प्रताप प्रभुताई अतुलित है।

व्याख्या : आत्मारामाश्च मुनयो निर्ग्रन्था अप्युरुक्रमे। कुर्वन्त्यहैतुकीं भक्तिमित्थंभूतगुणो हरिः। आत्माराम मुनि लोग जिनकी चित् जड़ ग्रन्थि खुल गयो है वे भी परमेश्वर में अहैतुकी भक्ति करते हैं क्योंकि हरि के गुणगण ही ऐसे हैं। अतः उनके गुण गणों का स्मरण करके भुसुण्डिजी बार बार हर्षित होते हैं। पुनः पुनः उनको पुलक हो रहा है। भुसुण्डिजी बोले :

सरकार की ऐसी महिमा है कि उसका गान वेद भी नेति नेति कह के करता है। न वह स्थूल है न सूक्ष्म है। उसे इदमित्थं करके शृङ्गिग्राह न्याय से कुछ नहीं कह सकते। जिस भाँति उनकी महिमा का अन्त नहीं उसी भाँति उनके बल का भी नाप जोख नहीं। क्योंकि जिसे जो कुछ बल है वह उन्हीं के बल का लवलेश है। यथा : सुनु रावण ब्रह्मांड निकाया। पाइ जासु बल बिरचति माया। जाके बल बिरंचि हरि ईसा। पालत सृजत हरत दससीसा। इत्यादि।

सामर्थ्य होने से ही प्रताप होता है। पर प्रताप बल से अलग काम करता है। यथा : काहू बैठन कहा न ओही। राखि को सकै राम कर द्रोही।

सिव अज पूज्य चरन रघुराई। मोपर कृपा परम मृदुलाई॥
अस सुभाउ कहुँ सुनौं न देखौं। केहि खगेस रघुपति सम लेखौं॥२॥

अर्थ : रघुराई के चरण शिव ब्रह्मा से पूज्य हैं फिर भी मुझ पर परम कृपा और परम मृदुता है। ऐसा स्वभाव न कहीं सुना जाता है न देखा जाता है। हे खगेश ! किसे रघुपति के समान माना जाय।

व्याख्या : ऐसी महिमा है कि एक देव को दोनों चरणों के पूजन का अवसर नहीं मिलता। एक की पूजा शिवजी करते हैं तो दूसरे की ब्रह्मदेव करते हैं। महिमा ऐसी, बल ऐसा, प्रताप ऐसा, पूजा ऐसी, फिर भी कोमलता ऐसी कि मुझ काग पर ऐसी कृपा की कि अपने पार्षद साक्षात् गरुड़जी को मेरे पास भेजकर मुझे बड़ाई दी।

मुझे सत्सङ्ग दिया यह प्रभु की बड़ी कृपा है और मोह मिससे सन्त को मेरे यहाँ कथा सुनने को भेजा यह मृदुता है। जिसमें मुझे मालूम भी न हो कि मेरे ऊपर कृपा हो रही है।

ऐसा स्वभाव न तो कहीं इतिहास पुराण में सुना गया और न तो देखने में आया। स्वामी सेवक का ऋणी किसी देश में नहीं होता। पर ये प्रभु अपने को सेवक का ऋणी भी मान लेते हैं। ऐसा दीन दयाल कोई है नहीं अतः उनके समान के लिए जिज्ञासा ही रह गयी।

साधक सिद्ध बिमुक्त उदासी। कबि कोबिद कृतग्य संन्यासी ॥
जोगी सूर सुतापस ग्नानी। धर्म निरत पंडित बिज्ञानी ॥३॥

अर्थ : १. साधक २. सिद्ध ३. विरक्त. ४. उदासी ५. कवि ६. कोविद ७. कृतज्ञ और ८. संन्यासी ९. योगी १०. शूर ११. अच्छे तपस्वी १२. ज्ञानी १३. धर्म निरत और १४. विज्ञानी पण्डित।

व्याख्या : जो सिद्धि के लिए प्रयत्नशील है : उन्हें साधक कहते हैं। जिन्हें सिद्धि प्राप्त हो गई है : वे सिद्ध कहलाते हैं। इस लोक और परलोक के सुख की इच्छा न रखनेवाले को विरक्त कहते हैं। वैराग्यवान् गृहस्थ को उदासी कहते हैं। क्रान्तिदर्शी को कवि कहते हैं। दूरदर्शी को कोविद कहते हैं। उपकार माननेवाले को कृतज्ञ कहते हैं और त्यागी को संन्यासी कहते हैं।

अविद्या रात्रि में जागनेवाले को योगी कहते हैं। मृत्यु को तृण समझनेवाले को शूर कहते है। उपवासादि व्रत करनेवाले को तापस कहते हैं। अभेददर्शी को ज्ञानी कहते हैं। वर्णाश्रम धर्म में निरत वेद पथ पर चलनेवाले को धर्म निरत कहते हैं। परमार्थज्ञाता पण्डित को विज्ञानी पण्डित कहते है।

तरहिं न बिनु सेए मम स्वामी। राम नमामि नमामि नमामी ॥
सरन गयें मोसे अघरासी। होहिं सुद्ध नमामि अबिनासी ॥४॥

अर्थ : मेरे स्वामी की बिना सेवा किये नहीं तर सकते। अतः रामजी को बारम्बबार नमस्कार है। जिसके शरण जाने पर मुझसे पापपुञ्ज भी शुद्ध होते हैं। ऐसे अविनाशी को नमस्कार है।

व्याख्या : साधक से लेकर विज्ञानी तक चौदहों की परम सिद्धि रामभक्ति पर निर्भर है। बिना रामभक्ति के भवसागर नहीं तर सकते। माया के वश में आही जाते हैं। अतः ईस्वरकृपा के लिए भजन परमावश्यक है। उनके कर्मों का पुण्य फल तो भगवान् देगा ही। पर उस फल से भवसन्तरण नहीं हो सकता। सन्तरण तो भक्ति से ही होता है। अतः मनसा वाचा कर्मणा प्रणाम करते हैं। अतः तीन बार नमामि कहा।

कैसा भी पापी हो कभी यह न समझे कि मेरा पाप क्षमा नहीं किया जा सकता। पापी का पाप करुणाकर की करुणा से बड़ा नहीं हो सकता। ब्रह्महत्या से

बड़ा पाप नहीं है। प्राणिमात्र के द्रोह से बढ़कर और बड़ा अघ कौन सा होगा ? ऐसों का पाप भी शरण जाने से कट जाता है। जीव जभी से भजन करना प्रारम्भ करेगा भगवान् उसके अनन्त जन्मों का पाप नष्ट करके अपना लेंगे। वे गई बहोरि हैं पूर्व के सभी श्वांस को भजन में जोड़ देते हैं। जीव का उद्धार कर ही देते हैं। अतः शीघ्र ही श्रीहरिशरण हो के भजन नामरटन परमावश्यक है। द्रष्टव्य : गोतावली विभीषणशरणागति : सुन्दरकाण्ड।

जो स्वयं विनाशी है वह दूसरे की क्या रक्षा कर सकता है ? उस अविनाशी के प्रणाम की महा महिमा है। अतः उसी को प्रणाम करते हैं। : शरणागति में यह आवश्यक है कि वह अपने को अपराधों का आलय : अकिञ्चन और अगतिक माने और सरकार से प्रार्थना करे कि आप ही मेरे लिए उपायभूत हो जायँ। यथा : अहमेवापराधानामालयोऽकिञ्चनोऽगतिः। त्वमेवोपायभूतो मे भवेति प्रार्थना मतिः। अतः भुसुण्डिजी अपने को बड़ा भारी अघराशि कहकर अपना शुद्ध होना : शरणागत के शुद्ध होने के उदाहरण रूप में उपस्थित करते हैं।

दो. जासु नाम भव भेषज, हरन घोर त्रय सूल।
सो कृपाल मोहि तोपर, सदा रहहु अनुकूल ॥१२४ क.

अर्थ : जिनका नाम संसार रोग के लिए औषध है। जो आधिदैविक आधिभौतिक आध्यात्मिक तीनों शूलों को हरण करनेवाला है वह कृपालु मेरे ऊपर तथा तुम पर अनुकूल रहें।

व्याख्या : नाम की अचित्य शक्ति है। यथा : नाम प्रभाव सही जो कहै सोई सिला सरोरुह जाम्यो। जिसके नाम से ज्ञानोत्पत्ति होती है काशी में उसी नाम के बल से शिवजी मुक्ति वितरण करते हैं। वही तीनों शूल का हरण करनेवाला है। तापों की करणभूता तामसिक और राजसिक वृत्तियाँ हैं। वे ही क्रमशः मूढ़ा और घोरा कहलाती हैं। नामको भवभेषज कहकर उससे मूढ़ा वृत्तिका नाश दिखलाया और घोर शब्द से राजसिक वृत्ति का भी नाश व्यञ्जित किया।

दो. सुनि भुसुंडि के बचन सुभ, देखि रामपद नेह।
बोलेउ प्रेम सहित गिरा, गरुड़ बिगत संदेह ॥१२४॥

अर्थ : भुसुण्डिजी के शुभ वचन सुनकर और राम पद में स्नेह देखकर गरुड़जी सन्देह रहित होकर प्रेमयुक्त वाणी बोले।

व्याख्या : भुसुण्डिजी के वचन से भवभ्रम छूटा। आनन्द का अनुभव हुआ। इससे वचन को शुभ कहा। प्रमाणों में देखना सुनना ही बड़ा प्रमाण गिना जाता है। सो दोनों से ही भुसुण्डिजी की भक्ति का ही पता चला। यहाँ से भुसुण्डिजी का कथन समाप्त हो गया। संवाद की समाप्ति पर श्रोता द्वारा कृतज्ञता प्रकट करना उचित है। सो सच्ची कृतज्ञता बिना प्रेम के नहीं होती। अतः गरुड़जी का प्रेमपूर्वक बोलना कहते हैं।

मैं कृतकृत्य भयेउँ तव बानी । सुनि रघुबीर भगति रस सानी ॥
राम चरन नूतन रति भई । माया जनित बिपति सब गई ॥१॥

अर्थ : मैं रघुबीर के भक्तिरस से सनी हुई तुम्हारी वाणी : सुनने से कृतकृत्य हुआ । रामजी के चरणों में नयी रति हुई और माया से उत्पन्न सब विपत्तियाँ जाती रहीं ।

व्याख्या : संशय निर्मूल होने पर दृढ़ विश्वास हुआ । वक्ता कहते हैं कि : आजु धन्य मैं धन्य अति और श्रोता कहते हैं कि मैं : कृतकृत्य भयउँ । रामकथा ही ऐसी है कि इससे वक्ता धन्य और श्रोता कृतकृत्य होता है । दूसरी बात यह है कि नारद की वाणी सुनो । ब्रह्मा की सुनी । शङ्कर की सुनी । पर कृतकृत्य तो तुम्हारी वाणी से हुआ ।

पहिले जो भक्ति थी वह दूसरे प्रकार की थी । यह अनुपम सुखमूला भक्ति आपके आशीर्वाद देते ही मेरे हृदय में प्रकट हुई और माया से उत्पन्न अस्मिता तथा रागादि दोष चले गये ।

मोह जलधि बोहित तुम भये । मो कहुँ नाथ बिबिध सुख दये ॥
मो पहिं होइ न प्रति उपकारा । बंदौं तव पद बारहिं बारा ॥२॥

अर्थ : मोह समुद्र के लिए आप जहाज हो गये और मुझे अनेक प्रकार के सुख दिये । मुझसे प्रत्युपकार नहीं हो सकता । अतः तुम्हारे चरण की वन्दना बार बार करता हूँ ।

व्याख्या : साधारण नियम तो यही है कि गुरु कर्णधार मात्र होता है । मोह समुद्र पार करने के लिए अपने शरीर को जहाज बनाना पड़ता है । पर आप तो स्वयं मेरे लिए जहाज हो गये । मुझे कुछ करना ही नहीं पड़ा । आपके उपदेशामृत के श्रवण से मोह दूर हो गया और ज्ञान, विज्ञान, विवेक, विरति तथा मुनि दुर्लभ गुण सब आप की कृपा से प्राप्त हुए और ये ही सच्चे सुख हैं ।

उपकारी का प्रत्युपकार करना सनातन धर्म है । बदले में समान मूल्य का द्रव्य देना चाहिए । भक्ति चिन्तामणि का कोई मूल्य नहीं है । अतः मैं आपका ऋण चुका नहीं सकता । सिवा बारम्बार प्रणाम करने के और मैं कर क्या सकता हूँ ।

पूरन काम राम अनुरागी । तुम सम तात न कोउ बड़भागी ॥
संत बिटप सरिता गिरि धरनी । परहित हेतु सबन्ह कै करनी ॥३॥

अर्थ : तुम पूर्णकाम हो । रामानुरागी हो । तुम्हारे समान कोई भाग्यवान् नहीं है । सन्त, वृक्ष, नदी, पर्वत और पृथिवी । इन सबकी करणी पराये हित के लिए होती है ।

व्याख्या : दूसरी बात यह भी है कि तुम पूर्णकाम हो । तुम्हें कोई देना भी चाहे तो क्या दे ? तिस पर रामानुरागी हो : धन धान्य ऐश्वर्य को स्वीकार करते ही

नहीं। यथा : रमा बिलास राम अनुरागी। तजत बमन जिमि जन बड़भागी। भगवान् में स्वार्थ के लिए भी प्रीति करनेवाले बड़भागी हैं। पर तुम तो निःस्वार्थ प्रीति करनेवाले हो। इसलिए सबसे बढ़कर हो।

सन्त विटप सरिता गिरि धरणी : अपने लिए कुछ नहीं करते। इनकी सम्पत्ति दूसरों के लिए है। इनके काम कभी नहीं आती। भाव यह कि आपको न प्रत्युपकार की इच्छा है और न कोई आपका प्रत्युपकार कर सकता है। सन्त विटप सरिता गिरि धरणी से सब उपकृत हैं। पर कोई यदि उनका प्रत्युपकार करना चाहे तो सिवा प्रणाम करने के और क्या कर सकता है? अब इन पाँचों में भी सन्त के प्रथम उल्लेख का कारण कहते हैं।

संत हृदय नवनीत समाना। कहा कबिन्ह परि कहै न जाना॥
निज परिताप द्रवै नवनीता। पर दुख द्रवहिं संत सुपुनीता॥४॥

अर्थ : सन्त के हृदय को कवियों ने मक्खन सा कहा है। पर उनसे कहते न बना अपने परिताप से मक्खन द्रवीभूत होता है। पर पुनीत संत दूसरे के दुःख से द्रवीभूत होते हैं।

व्याख्या : विटप सरिता गिरिधरनी जड़ है। सुख दुःख का अनुभव भी इन्हें तारतम्यानुसार बहुत न्यून ही होता है। परन्तु सन्त जो कुछ करते हैं वे हृदय की कोमलता के कारण करते हैं। कवियों ने इनके हृदय की उपमा मक्खन से दिया। पर कहना होगा कि उनसे कहते न बना मक्खन तो अपने दुःख से द्रवीभूत होता है। पर सन्त तो दूसरे के दुःख से द्रवीभूत होते हैं। इनकी कोई उपमा नहीं है। यथा : कहि सक न सारद सेष नारद सुनत पदपंकज कहे।

जीव जन्म सफल मम भयऊ। तव प्रसाद सब संसय गयऊ॥
जानेहु सदा मोहि निज किंकर। पुनि पुनि उमा कहै बिहंगबर॥५॥

अर्थ : मेरा तो जीवन जन्म सफल हो गया। तुम्हारे प्रसाद से सब संशय चला गया। मुझे सदा अपना आज्ञाकारी समझियेगा। हे उमा! ऐसा बार बार गरुड़जी ने कहा।

व्याख्या : बिना हरिभक्ति हृदय में आये प्राणी का जीवन : जन्म निष्फल है। यथा :

तिन्ह ते खर सूकर स्वान भले जड़ता बस ते न कहैं कछुवै।
तुलसी जेहि राम तें नेहु नहीं सो सही पसु पूँछ बिषान न द्वै।
जननी कत भार मुई दस मास भई किन बाँझ गयी किन च्वै।
जरि जाउ सो जीवन जानकीनाथ जिये जग में तुम्हरो बिनु ह्वै।

गरुड़जी गुरुदक्षिणा का ऋण न चुका पाने के कारण सदा के लिए दासत्व स्वीकार करते हैं। वाक्य को यथार्थ रूप में ग्रहण के लिए बार बार कहते हैं। जिसमें उनका वाक्य विनय प्रदर्शन रूप में गृहीत न हो।

दो. तासु चरन सिर नाइ करि, प्रेम सहित मतिधीर।
गयउ गरुड़ बैकुण्ठ तब, हृदय राखि रघुबीर ॥१२५ क.

अर्थ : उनके चरणों में प्रेम सहित सिर नवाकर मतिधीर गरुड़जी रघुवीर को हृदय में रखकर वैकुण्ठ गये।

व्याख्या : जब गरुड़जी आये तब प्रणाम नहीं लिखा। पक्षिराट् के भाव से आये थे : इसलिए कागभुसुण्डि ने पूजा की। अब सत्सङ्ग से वह भाव जाता रहा। अतः मनसा वाचा कर्मणा प्रणाम करते हैं और भुसुण्डिजी भी उसे स्वीकार करते हैं।

काग का उपदेश सद्यः फलीभूत हुआ। हृदय में प्रचण्ड विषाद लेकर आये थे सो अब हृदय में रघुवीर को रखकर जा रहे हैं। कथा महाप्रभावा है। सद्यो हृद्यवरुध्यतेऽत्र कृतिभिः सुश्रूषुभिस्तत्क्षणात्। श्रीहरि सद्यः हृदय में अवश्य आ ही जाते हैं।

उमा शम्भु सम्बाद का उपसंहार

दो. गिरिजा संत समागम, सम न लाभ कछु आन।
बिनु हरिकृपा न होइ सो, गावहि बेद पुरान ॥१२५॥

अर्थ : हे गिरिजे ! सन्त समागम के समान कोई लाभ नहीं है। परन्तु विना हरि की कृपा वह होता नहीं : ऐसा वेद पुराण कहते हैं।

व्याख्या : मति कीरति गति भूति भलाई। जब जेहि जतन जहाँ जेहि पाई। सो जानब सत संग प्रभाऊ। लोकहुँ वेद न आन उपाऊ। अतः सत्सङ्ग से बड़ा लाभ कोई है नहीं। परन्तु जब भगवान् की कृपा हो तभी सतसङ्गति मिलती है। यथा : जब द्रवै दीन दयाल राघव साधु संगति पाइये। जेहि दरस परस समागमादिक पाप रासि नसाइये। यद्यपि सबहि सुलभ सब दिन सब देसा। पर जिसपर भगवत्कृपा नहीं है उसे नहीं मिलता। उन्हें कुभावना घेरे रहती है। सब बुरे ही दिखायी पड़ते हैं।

कहेउँ परम पुनीत इतिहासा। सुनत स्रवन छूटहि भव पासा॥
प्रनत कलप तरु करुना पुंजा। उपजै प्रीति राम पद कंजा ॥१॥

अर्थ : मैंने परम पुनीत इतिहास कहा। जिसके सुनने से भवपाश छूटता है और जो करुणापुञ्ज कल्पतरु रामजी हैं उनके चरणों में प्रीति उपजती है।

व्याख्या : शङ्कर भगवान् भी सब प्रश्नों का उत्तर देकर कथा का उपसंहार करते हैं। कहते हैं कि यह इतिहास ऐसा पुनीत हैं कि केवल इसके सुनने से न केवल भावपाश जगजाल छूट जाता है। अपितु भगवान् के चरण कमल में प्रीति उपजती है। जन्म मरण ही संक्षेप में जग जाल है।

श्रीरामजी प्रणतकल्पतरु हैं। यथा : देव देवतरु सरिस सुभाऊ। सनमुख विमुख न काहुहि काऊ। जाइ निकट पहिचानि तरु, छाँह समनि सब सोच। माँगत

अभिमत पाव जग, राउ रंक भल पोच। रामजी न किसी के सम्मुख हैं न विमुख हैं। जो उनकी उपासना करता है : प्रणाम करता है उसे अभीष्ट की प्राप्ति होती है। इतना ही नहीं श्रीरामजी के चरण कमलों में प्रीति उपजती है।

भाव यह कि हरिभजन से हरिकृपा उससे सत्सङ्ग की प्राप्ति सत्सङ्ग से हरिकथा श्रवण उससे मोह का नाश और श्रीचरणों में अनुराग यही क्रम है।

मन क्रम बचन जनित अघ जाई। सुनहिं जे कथा स्रवन मनु लाई ॥
तीर्थाटन साधन समुदाई। जोग बिराग ज्ञान निपुनाई ॥२॥

अर्थ : मन तन वचन से किये हुए पाप नष्ट होते हैं यदि कथा मन लगाकर सुनी जाय। तीर्थयात्रा और साधन समूह योग विराग ज्ञान की निपुणता :

व्याख्या : हरिकथा सुनने में इतना ही कर्तव्य है कि उसमें तन्मय हो जाय। बस इतने से ही मनुष्य निष्पाप हो जाता है। सुनत स्रवन छूटै भावपासा से ज्ञानकाण्ड का फल कहा। उपजे प्रीति रामपद कंजा से उपासना काण्ड का फल कहा। अब मन क्रम वचन जनित अघ जाई से कर्मकाण्ड का फल कहते हैं। तीर्थ यात्रा. सिद्धि की प्राप्ति का यत्न. योग वैराग्य और ज्ञान की निपुणता।

नाना कर्म धर्म ब्रत दाना। संयम दम जप तप मख नाना ॥
भूतदया द्विज गुरु सेवकाई। बिद्या बिनय बिबेक बड़ाई ॥३॥

अर्थ : नाना कर्म. धर्म. व्रत. दान. संयम. दम. जप. तप. नाना प्रकार के यज्ञ. प्राणी मात्र पर दया. ब्राह्मण और गुरु की सेवा. विद्या. विनय. विवेक की बड़ाई।

व्याख्या : जीव को तारता है इसलिए तीर्थ कहलाता है। राग वैषम्य और बहिर्मुखता का प्रिय न होना ही योग विराग ज्ञान निपुणाई है। नित्य नैमित्तक और काम्य भेद से कर्म तीन प्रकार के होते हैं। धर्म के भी वर्णाश्रमानुसार अनेक भेद हैं। व्रत के भी चान्द्रायणादि अनेक भेद हैं। दाता प्रतिग्रहीता और देय के भेद से दान के भी अनेक भेद हैं। मन को वश करना संयम और इन्द्रियों को वश करना दम है। उपवासादि तप है। अश्वमेध राजसूयादि यज्ञ है। प्राणिमात्र पर दया करना परम धर्म है। गुरु द्विज की सेवा करना परम कल्याण का मार्ग है। विद्या भी चौदह कही गयी है। विनय विद्या का फल है। विवेक की इतनी बड़ाई है कि उसके विना विद्या भी निष्फल है।

जहँ लगि साधन बेद बखानी। सब कर फल हरिभगति भवानी ॥
सो रघुनाथ भगति स्रुति गाई। रामकृपा काहू एक पाई ॥४॥

अर्थ : जितने साधनों का वेद ने बखान किया है हे भवानी ! उन सबों का फल हरिभक्ति है। उस रघुनाथ भक्ति को वेद ने कहा कि वह रामजी की कृपा से किसी एक को मिलती है।

व्याख्या : उपर्युक्त १६ साधनों के अतिरिक्त जितने साधनों की वेद ने प्रशंसा की है उनका फल हरिभक्ति है। अर्थात् जिस साधन का फल हरिभक्ति नहीं है वह साधन प्रशंसा के योग्य नहीं है। वह भक्ति वेद प्रतिपादित है। यथा : स्रुति सम्मत हरि भगति पथ संयुत बिरति बिबेक। तेहिं न चलहिं नर मोह बस कल्पहिं पंथ अनेक। अतः वह भक्ति रामजी की कृपा से किसी किसी को मिलती है। यथा : कहुँ कहुँ बृष्टि सारदी थोरी। कोउ एक पाव भगति जिमि मोरी।

दो. मुनि दुर्लभ हरि भगति नर, पावहि बिनहि प्रयास।
जे येह कथा निरन्तर, सुनहि मानि बिस्वास ॥१२६॥

अर्थ : मुनिदुर्लभ हरिभक्ति को वे मनुष्य बिना प्रयास पा जाते हैं। जो इस कथा को विश्वास मानकर निरन्तर सुना करते हैं।

व्याख्या : सनकादि, वसिष्ठ, नारद, अत्रि, शरभङ्ग, सुतीक्ष्णादि को इस भक्ति के लिए वरदान माँगना पड़ा। वही भक्ति अनायास भी मिल सकती है। परन्तु दो बात उसमें हैं। एक तो यह कि इस कथा पर विश्वास करके सुने और दूसरे यह कि सुनने में व्यवधान न पड़ने पाये। निरन्तर विश्वास मानकर सुनने से ही उसके अन्तःकरण में इसका दृढ़भूमिक संस्कार पड़ेगा। अन्तःकरण द्रुत होकर रामरंग से रँग उठेगा यही भक्ति है।

सो सरबज्ञ गुनी सोइ ज्ञाता। सोइ महि मंडित पंडित दाता ॥
धर्म परायन सोइ कुल त्राता। राम चरण जाकर मन राता ॥१॥

अर्थ : वही सर्वज्ञ है, वही गुणी है, वही ज्ञाता है, वही पृथिवी में सुन्दर पण्डित है, वही दाता है, वही धर्म परायण है, वही कुल का रक्षक है जिसका मन श्रीराम के चरणों में लग गया।

व्याख्या : जो पृथक् पृथक् सब बातों को जाने : भूत भविष्य वर्तमान का जिसे ज्ञान हो उसे सर्वज्ञ कहते हैं। जो देव या मानुष शिल्प का जानकार हो उसे गुणी कहते हैं। जिसे परमार्थ का ज्ञान हो उसे ज्ञाता कहते हैं। सार्वभौम विद्वान् महि मण्डित पण्डित है। उदार पुरुष को दाता कहते हैं। वेद की आज्ञा पालन करनेवाले को धर्मपरायण कहते हैं। कुल की रक्षा करनेवाले को कुलत्राता कहते हैं।

जिसका मन रामरंग में रँग गया वही सर्वज्ञ, गुणी, ज्ञाता, पण्डित, धर्मात्मा और कुलरक्षक है। जिस बात की कमी उसमें है वह पूरी हो जायगी। पर यदि रामरंग में नहीं रँगा है तो उसके सब गुण व्यर्थ हैं। तेन तप्तं हुतं दत्तमेवाखिलं तेन सर्वं कृतं कर्मजालं। येन श्रीरामनामामृतं पानकृतमनिशमनवद्यमवलोक्य कालं। विनय : सो सब करम धरम जरि जाऊ। जहँ न राम पद पंकज भाऊ।

नीति निपुन सोइ परम सयाना। स्रुति सिद्धांत नीक तेहि जाना ॥
सोइ कबि कोबिद सोइ रनधीरा। जो छल छाँड़ि भजै रघुबीरा ॥२॥

अर्थ : वही नीतिनिपुण है। वही परम सयाना है। उसी ने श्रुति सिद्धान्त को भली भाँति जान पाया है। वही कवि है, वही दूरदर्शी है, वही योद्धा है, जो छल छोड़कर राम को भजता है।

व्याख्या : दम्भ, कपट, स्वार्थादि छल है। भजन में इनका प्रवेश नहीं होना चाहिए। जो निष्काम भाव से भगवद् भजन करता है वही नीतिनिपुण है। वही परम सयाना है। वेद के सिद्धान्त को उसी ने समझ पाया है। वही क्रान्तिदर्शी है। वही दूरदर्शी है। काम क्रोधादि अनेक शत्रुओं को वही जीत सकता है। यथा : सूर सुजान सपूत सुलच्छन गनिपत गुन गरुआई। बिनु हरि भजन इनारुन के फल तजत नहीं करुआई।

धन्य देस सो जहँ सुरसरी। धन्य नारि पतिब्रत अनुसरी ॥
धन्य सो भूप नीति जो करई। धन्य सो द्विज निज धरम न टरइ ॥३॥

अर्थ : वह देश धन्य है जहाँ गङ्गाजी हैं। वह स्त्री धन्य है जिसने पतिव्रत का अनुसरण किया। वह राजा धन्य है जिसने नीति का पालन किया। वह द्विज धन्य है जो अपने धर्म से नहीं हटा।

व्याख्या : धन्य पुण्यवान् को कहते हैं। जिस देश में गङ्गा हैं वहाँ के लोगों का पाप रहने नहीं पाता। यथा : प्रायश्चित्तं तु तत्रैव यत्र गङ्गा न विद्यते। इसलिए वह पुण्य देश है। स्त्रियाँ स्वभाव से ही अपावन हैं। पति की सेवा से उन्हें शुभगति होती हैं। अतः वे धन्य हैं। यथा : सहज अपावनि नारि पति सेवत सुभगति लहइ। जस गावत स्रुति चारि अजहुँ तुलसिका हरिहिं प्रिय। जिस राजा के राज्य में अनीति नहीं है वह दूसरा कोई धर्म करे या न करे वह धन्य है। ब्राह्मण में तप और श्रुत दोनों होना चाहिए। स्वधर्माचरण ही तप है। अतः स्वधर्माचरण करनेवाला ब्राह्मण धन्य है। नहीं तो सोचिय बिप्र जो बेद बिहीना। तजि निज धर्म बिषय लयलीना।

सो धन धन्य प्रथम गति जाकी। धन्य पुन्य रत मति सोइ पाकी ॥
धन्य घरी सोइ जब सत संगा। धन्य जन्म द्विज भगति अभंगा ॥४॥

अर्थ : वह धन्य है जिसकी पहिली गति हुई। वह पक्की मति धन्य है जो पुण्य में लगी हुई है। वह घड़ी धन्य है जो सत् सङ्ग में बीते। वह जन्म धन्य है। जिसमें ब्राह्मण में अचल भक्ति हो।

व्याख्या : धन की तीन गति होती है : १. दान २. भोग और ३. नाश। चौथी कोई गति नहीं है। जिस धन का दान या भोग नहीं होता वह नष्ट हो जाता है। धन्य वही धन है जो दान में दिया जाय।

पक्की पुण्यरत मति वही है जिसमें फलाकांक्षा की कच्चाई न हो। यथा : करै जे धरम करम मन बानी। बासुदेव अर्पित नृप ज्ञानी। सत संगति दुर्लभ संसारा। निमिष दण्ड भरि एको बारा। यह अमोघ है। बिना कल्याण किए रहती नहीं। अतः जो समय सत संगति में बीतता है वह धन्य है। ब्राह्मणों में अटल

भक्ति होने से जन्म धन्य होता है। क्योंकि द्विजभक्ति से भगवान् सन्तुष्ट होते हैं। यथा : हरितोषन व्रत द्विज सेवकाई। यथा : प्रभु ब्रह्मण्य देव मैं जाना। मोहि जिति पिता तजेउ भगवाना।

दो. सो कुल धन्य उमा सुनु, जगत पूज्य सुपुनीत।
श्री रघुबीर परायन, जेहि नर उपज बिनीत ॥१२७॥

अर्थ : जिस कुल में श्रीरघुवीर परायण विनीत पुरुष पैदा होता है हे उमा ! सुनो वही कुल धन्य है। जगत् पूज्य है और सुपुनीत है।

व्याख्या : जिस कुल में पापरहित कुलपावन साधु उत्पन्न होता है उसके पिता इक्कीस पीढ़ी पितरों के साथ पवित्र हो जाते हैं। यथा : त्रिसप्तभिः पिता पूतः पितृभिः सह तेऽनघ। यत् साधोऽस्य गृहे जातो भवान् वै कुलपावनः। श्रीमद्भा० ७.१०.१८

मति अनुरूप कथा मैं भाखी। जद्यपि प्रथम गुप्त करि राखी ॥
तव मन प्रीति देखि अधिकाई। तौ मैं रघुपति कथा सुनाई ॥१॥

अर्थ : अपनी बुद्धि के अनुसार मैंने कथा कही। यद्यपि पहिले मैंने गुप्त करके रक्खी थी। तुम्हारे मन में अधिक प्रीति देखकर तभी मैंने रघुपति की कथा सुनाई।

व्याख्या : कथा की इयत्ता न होने से यह कथा मति अनुरूप ही कही जा सकती है। इसकी रचना किये हुए बहुत दिन हुए। परन्तु तुम्हें सुनाया नहीं। जब देखा कि तुम्हारे मन में सुनने की उत्कट इच्छा है तब रामजी की कथा तुम्हें मैंने सुनायी। यदि अधिक प्रीति न देखता तो न सुनाता। अधिक प्रीति न होने से श्रोता द्वारा कथा का अनादर होता है। इससे उसका अकल्याण होता है। वक्ता का मनोभङ्ग होता है। लाभ किसी को नहीं होता।

यह न कहिअ सठही हठ सीलहि। जो मन लाइ न सुन हरि लीलहि ॥
कहिअ न लोभिहि क्रोधिहि कामिहि। जो न भजै सचराचर स्वामिहि ॥२॥

अर्थ : इसे कभी कपटी दुराग्रही से न कहना जो कि मन लगाकर हरि की लीला को न सुने। लोभी क्रोधी और कामी से भी नहीं कहना चाहिए जो चराचर के स्वामी को नहीं भजता।

व्याख्या : कपटी को शठ और दुराग्रही को हठी कहते हैं : मीठी बातें सठ करे करिके महा बिगार। अतः इस कथा को शठ और हठशील को नहीं सुनाना चाहिए। क्योंकि वह मन लगाकर कथा नहीं सुनेगा। ऐसे लोगों को सुनाने से दुःख उपजता है। श्रोता वक्ता किसी का कल्याण नहीं होता।

लोभी क्रोधी और कामी परधन परद्रोही और परदारा का भजन करते हैं। नरक पन्थ के पथिक हैं। ये चराचर के स्वामी को नहीं भजेंगे। इनका इष्टदेव मोह है। ये कथा मन से नहीं सुनेंगे और उपद्रव खड़ा करेंगे।

द्विज द्रोहिहिं न सुनाइय कबहूँ। सुरपति सरिस होइ नृप जबहूँ ॥
रामकथा के तेइ अधिकारी। जिन्हके सत संगति अति प्यारी ॥३॥

अर्थ : ब्राह्मण द्रोही को तो कभी न सुनाना। चाहे वह इन्द्र के समान राजा क्यों न हो। रामकथा के वे ही अधिकारी हैं जिन्हें सत्संगति अत्यन्त प्यारी है।

व्याख्या : द्विजद्रोही भागवत धर्म के प्रतिकूल चलानेवाला है। वह प्रभु को पसन्द नहीं है। अतः उसे सुनाने के लिए अतिनिषेध है। यथा : सुनु गंधर्व कहौ मैं तोही। मोहि न सोहाइ ब्रह्मकुल द्रोही। अतः उसके अधिकार का भय अथवा कृपा का लोभ न करे। इन्द्र ने सौ यज्ञ किये। इसीलिए शतक्रतु कहलाते हैं। सो उनके याज्ञिक होने की भी परवाह न करे।

अनधिकारियों का परिचय देकर अब अधिकारियों का परिचय देते हैं : जिन्हें सत्संगति अति प्यारी है। वह यदि अनधिकारी भी हो तो अधिकारी हो जायगा। यथा : सठ सुधरहिं सत संगति पाई। पारस परस कुधातु सोहाई। अतः वह रामकथा का अधिकारी है।

गुरुपद प्रीति नीतिरत जेई। द्विज सेवक अधिकारी तेई ॥
ता कहुँ यह बिसेषि सुखदाई। जाहि प्रानप्रिय श्रीरघुराई ॥४॥

अर्थ : जिन्हें गुरुचरणों प्रीति हैं। जो नीतिरत हैं। द्विज सेवक हैं। वे ही अधिकारी हैं। जिसे श्रीरघुराई प्राणप्रिय हैं। उसे यह विशेष सुखदाई है।

व्याख्या : गुरुचरणों का प्रेमी परमार्थ पथ का पथिक है और जो नीतिरत है वह प्रभु का प्यारा है। परमार्थपथपथिक को छोड़कर द्विजसेवक दूसरा कोई हो नहीं सकता। अभिमानी कभी दीन दरिद्र ब्राह्मण को बड़ा नहीं मान सकता। जो अभिमान रहित नहीं है। वह सापत, ताड़त, परुषवक्ता ब्राह्मण को पूज्य कैसे मानेगा ? जो ईश्वर को कर्मफल का दाता नहीं मानता वह शील गुण हीन ब्राह्मण पर पूज्य दृष्टि कैसे रख सकेगा। अतः द्विज सेवक इस कथा का अधिकारी है। जिसको प्रभु के स्वरूप का ज्ञान है उसीको वे प्राणप्रिय हैं। अतः उसे उनकी कथा अधिक सुखदायिनी मालूम होगी।

दो. राम चरन रति जो चह, अथवा पद निर्बान।
भाव सहित सो येहि कथा, करौ स्त्रवन पुट पान ॥१२८॥

अर्थ : जो रामचरण में रति चाहता हो या निर्वाण पद चाहता हो। वह मन लगाकर इस कथा को कान के प्याले से पीवे।

व्याख्या : विषय और अधिकारी का निरूपण करके अब प्रयोजन कहते हैं कि रामकथा के दो मुख्य प्रयोजन हैं। या तो पराभक्ति या कैवल्यमुक्ति। विषय और प्रयोजन में साधक साध्यभाव सम्बन्ध है।

मन लगाकर कथा को सुने जिसमें इसकी छाप मन पर पड़े। छाप न पड़ने से प्रयोजन की सिद्धि न होगी। यह कथा अमृत है। कानों को प्याला बनाकर इसे स्वाद ले लेकर पीये।

रामकथा गिरिजा मैं बरनी। कलिमल समनि मनोमल हरनी ॥
संसृत रोग सजीवन मूरी। राम कथा गावहिं स्रुति सूरी ॥१॥

अर्थ : हे गिरिजे! मैंने कलिमल का नाश करनेवाली मनोमल को दूर करने वाली रामकथा का वर्णन किया। संसार रोग के लिए सञ्जीवनी बूटी रामकथा है। इसे वेद और पण्डित गाते हैं।

व्याख्या : गिरिजा ने प्रश्न किया था : बरनहु रघुबर बिमल जस, स्रुति सिद्धान्त निचोरि। उत्तर हो रहा है : रामकथा गिरिजा मैं बरनी। समयकृत दोष जिसका प्रभाव सब पर पड़ता है उसे कलिमय शब्द से उपलक्षित किया और व्यक्तिगत अन्तःकरण के मल को मनोमल कहा। दोनों को रामकथा दूर करती है।

यहाँ संसाररूपी रोग के शमन के लिए तीन प्रकार की दवा कही गयी है : १. चूर्ण : अमिअ मूरिमय चूरनु चारू। समन सकल भव रुज परिवारू। २. गोली : रघुपति भगति सजीवन मूरी। अनूपान स्रद्धा अति रूरी। और ३. अर्क भाव सहित : जो यह कथा करै स्रवन पुट पान। वेद में जो कुछ कहा गया है उसका साक्षात् या परम्परया राम से सम्बन्ध है। अतः वेद में रामकथा ही है और परमार्थ ज्ञाता पण्डित लोग भी रामकथा ही कहा करते हैं।

एहि महँ रुचिर सप्त सोपाना। रघुपति भगति केर पंथाना ॥
अति हरिकृपा जाहि पर होई। पाँव देइ एहि मारग सोई ॥२॥

अर्थ : इसमें सुन्दर सात सोपान हैं। ये सब राम चरित्र के रास्ते हैं। अत्यन्त हरिकृपा जिस पर होती है वह इस रास्ते पर पैर देता है।

व्याख्या : सातो प्रबन्ध काण्ड ही सात सीढ़ियाँ हैं। सब सोपान पृथक् पृथक् भक्ति के मार्ग है। यह अद्भुत सरोवर है जिसमें प्रत्येक सोपान से जल की प्राप्ति होती है और प्रत्येक सोपान के जल के पृथक् पृथक् गुण हैं। जो प्रत्येक काण्ड के अन्त में फलश्रुति रूप से कहे गये हैं।

हरिकृपा से नरशरीर मिला विशेष कृपा से सत्सङ्ग मिला। रामकथा सुनने में आयी। परन्तु सुन लेना एक बात है पर उसे कार्यरूप में परिणत करना दुष्कर कार्य है। इस ओर प्रवृत्ति ही किसी को नहीं होती। जिसपर भगवान् की अतिकृपा होती है वही इस ओर पैर उठाता है।

मनकामना सिद्धि नर पावा। जे यह कथा कपट तजि गावा ॥
कहहिं सुनहिं अनुमोदन करहीं। ते गोपद इव भवनिधि तरहीं ॥३॥

अर्थ : जिसने इस कथाको कपट छोड़कर गाया। उसका मनोरथ सिद्ध हो

गया। जो कहते सुनते या अनुमोदन करते हैं वे भवसागर को गोपद की भाँति तर जाते हैं।

व्याख्या : कामना सिद्धि के लिए संकल्पपूर्वक अनुष्ठान करते हैं। यहाँ की बात ही निराली है। किसी फल की अभिलाषा न रखकर कथा का गान करे। मनोरथ आप से आप सिद्ध हुआ करते हैं। रामायण प्रतिपादित राम को ब्रह्म जानकर उसकी कथा कहना, सुनना या कहने सुनने में प्रोत्साहन देने का यह फल है कि अनायास वे भवसागर के पार हो जाते हैं।

सुनि सब कथा हृदय अति भाई। गिरिजा बोली गिरा सोहाई॥
नाथ कृपा मम गत संदेहा। रामचरन उपजेउ नव नेहा॥४॥

अर्थ : यह कथा सुनकर मन में जब बहुत अच्छी लगी तब गिरिजाजी सुन्दर वाणी बोलीं : नाथ की कृपा से मेरा सन्देह दूर हो गया और राम चरण में अपूर्व प्रेम उत्पन्न हुआ।

व्याख्या : गिरिजा के प्रश्न शिवजी को अच्छे लगे थे। इसी भाँति शङ्करजी का उत्तर गिरजा को पसन्द आया। अब श्रोता की ओर से कृतज्ञता प्रकट करना शेष रहा। सो प्रकट कर रही हैं। कहती हैं कि जो सन्देह मुझे था : जौ नृपतनय तो ब्रह्म किमि नारि बिरह मति भोरि। सो आपकी कृपा से मिट गया। पहिले भी रामचरण में नेह था। पर अब जो नेह हुआ है वह अपूर्व है। इसलिए नवनेहा कहा।

दो. मैं कृतकृत्य भइउँ अब, तव प्रसाद बिस्वेस।
उपजी रामभगति दृढ, बीते सकल कलेस॥१२९॥

अर्थ : हे विश्वनाथ ! मैं अब तुम्हारी कृपा से कृतकृत्य हो गयी। दृढ़ रामभक्ति उपजी और सब क्लेश दूर हो गये।

व्याख्या : जबतक कोई कर्तव्य शेष रहता है तबतक कृतकृत्यता नहीं होती और जबतक क्लेश बना है तबतक कर्तव्य से पिण्ड नहीं छूटता सो विश्वनाथ की कृपा से सब संशय समाप्त हो गये और संशय के नाश होने पर भक्ति में दृढ़ता आगयी। गिरिजा कृतकृत्य हुई और ज्ञानघाट की कथा समाप्त हो गयी। उपासनाघाट की कथा समाप्त होने पर गरुड़ का वैकुण्ठ जाना कहा। यहाँ श्रोता वक्ता को वहीं कैलास में रहना है। इसलिए आना जाना नहीं कहा।

भरद्वाज याज्ञवल्क्य संवाद का उपसंहार : दक्षिण घाट की समाप्ति

यह सुभ संभु उमा संबादा। सुख संपादन समन बिषादा॥
भव भंजन गंजन संदेहा। जन रंजन सज्जन प्रिय एहा॥१॥

अर्थ : यह शुभ शम्भु उमा सम्वाद सुख का सम्पादन और विषादों का शमन करनेवाला है। भव का भञ्जन : सन्देहों का नाश : भक्तों का रञ्जन करनेवाला और

सज्जनों को प्रिय है। याज्ञवल्क्यजी भरद्वाज से कहते हैं कि उपर्युक्त सम्वाद की महा महिमा है।

व्याख्या : विषाद योग होने पर ही हमारे यहाँ उपदेश की विधि है। यहाँ पहिले उमाको विषाद हुआ था। यथा : अस संसय मन भयउ अपारा। होइ न हृदय प्रबोध प्रचार। इस सम्वाद में वह विषाद मिटा। रामचरण में नव नेह हुआ। इसलिए याज्ञवल्क्य भरद्वाज से कहते हैं कि इस सम्वाद से केवल विषाद मिटता है। इतना ही नहीं भावात्मक सुख भी होता है। दुःख का नाश और सुख की प्राप्ति : इतना ही पुरुषार्थ है। सो इस सम्वाद के सुनने से दोनों होता है। संसार का बन्धन छूट जाता है। भक्तों का हृदय रामरङ्ग में रँग जाता है। अतः सज्जनों को प्रिय है।

राम उपासक जे जगमाहीं। एहि सम प्रिय तिनके कछु नाहीं ॥
रघुपति कृपा जथामति गावा। मैं यह पावन चरित सुहावा ॥२॥

अर्थ : संसार में जितने राम उपासक हैं उन्हें इसके समान कुछ भी प्रिय नहीं है। मैंने इस सुन्दर चरित्र को रघुपति की कृपा से यथामति गा दिया।

व्याख्या : अब सम्प्रदाय विशेष को लक्ष्य करके कहते हैं कि जिसके इष्टदेव रामचन्द्र हैं। जिन्होंने राममन्त्र ग्रहण किया है जो सुतीक्ष्ण की भाँति भूपरूप में आसक्त हैं। चतुर्भुज रूप भी हृदय में आने पर जिनका ध्यानभङ्ग होता है। ये उन रामोपासकों के लिए तो यह देह और प्राण से भी बढ़कर प्यारा है।

भगवान् याज्ञवल्क्यजी कहते हैं कि मुझे जो कुछ कहना था कह दिया। छिपाया कुछ नहीं : इस भाँति कर्मघाट को समाप्ति कहो। यहाँ पर भरद्वाजजी का कृतज्ञता प्रकाश करना भी न लिखा। क्योंकि कथा सुनने में वे ऐसे मग्न हो गये कि बीच में एक प्रश्न भी नहीं किया। याज्ञवल्क्यजी के बारबार सम्बोधन करने पर भी सावधान नहीं होते थे। अतः काल पाइ मुनि सुनु सोइ राजा : कहने के बाद याज्ञवल्क्यजी ने सम्बोधन करना भी बन्द कर दिया। भरद्वाजजी की समाहितावस्था बढ़ती गयी। अतः कृतज्ञता प्रकाशन न कर सके। अब केवल गोस्वामीजी बोल रहे हैं।

एहि कलि काल न साधन दूजा। जोग जग्य जप तप ब्रत पूजा ॥
रामहि सुमिरिअ गाइअ रामहि। संतत सुनिअ राम गुन ग्रामहि ॥३॥

अर्थ : इस कलिकाल में दूसरा साधन, योग, यज्ञ, जप, तप, व्रत, पूजा कुछ भी नहीं है। राम का सुमिरन करना चाहिए। राम को गाना चाहिए। राम के गुण ग्राम को सुनना चाहिए।

व्याख्या : श्रीगोस्वामीजी अपने मन से कह रहे हैं कि इस समय घोर कलिकाल तप रहा है। खलमण्डली में ही धर्म निबहने नहीं पाता। पर वहीं धर्म

के निर्मूलन के लिए ही योग कटिबद्ध हों। धर्म ही लोगों के आँख का काँटा हो गया हो वहाँ योग, यज्ञ, तप, व्रत, पूजा का निर्वाह कैसे होगा ?

अतः रामनाम का स्मरण करना चाहिए। मुख से बोलना चाहिए। केवल मानसिकजप इस काल के लिए पर्याप्त नहीं है। वक्ता यदि मिलते जायँ तो सदा गुणग्राम सुना करे। श्रोता मिल जायँ तो उन्हें सुनावे। कोई न मिले तो बैठकर सुमिरन करे।

जासु पतित पावन बड़बाना। गावहिं कवि श्रुति संत पुराना॥
ताहि भजिअ मन तजि कुटिलाई। राम भजे गति केहि नहि पाई॥४॥

अर्थ : जिसका बड़ा विरद पतितपावन है। कवि वेद पुराण सन्त सब यही गाते हैं। हे मन ! उसे तू कुटिलता छोड़कर भज। क्योंकि राम को भजने से किसे गति नहीं मिली।

व्याख्या : श्रीरामचन्द्र के बहुत से विरद हैं। इनमें से पतितपावन विरद बड़ा है। इस दरबार से कितने पतित तरे। इसका लेखाजोखा नहीं हो सकता। इस युग में पाप समुद्र के हम लोग मछली हो रहे हैं और उनका पतितपावन बाना हैं। सो ऐसे ही विरदवाले को भजना चाहिए।

कवि और सन्त आप्त हैं। वेद और पुराण आप्तवाक्य हैं। अतः शब्द प्रमाण से सिद्ध हुआ कि रामचन्द्र का बड़ा विरद पतितपावन है। वेद पुराण प्रभु का यशोगान करनेवाले बन्दी हैं। अतः उन्होंने विरद कहा।

श्रीगोस्वामीजी अपने प्रधान श्रोता मन से कहते हैं कि इस दरबार से किसी के निराश होने का कोई कारण नहीं है। कुटिलाई छोड़कर चला आवे अर्थात् भजन करे। इतना ही उसका काम है। बाकी प्रभु स्वयं कर लेते हैं। कैसा भी पापी हो, अधम हो, चराचर द्रोही हो, ब्रह्मघाती हो यहाँ सबका गुजारा हो जाता है। एक कपटी के लिए स्थान नहीं है। कपट छोड़कर वह भी चला आवे तो उसका भी कल्याण हो जाता है।

छं. पाई न केहि गति पतितपावन राम भजि सुनु सठ मना।
गनिका अजामिल व्याध गीध गजादि खल तारे घना॥

अर्थ : हे शठ मना ! सुन : पतितपावन राम को भजनकर किसने गति नहीं पायी ? गणिका, अजामिल, व्याध, गीध, गज आदि बहुतेरे पापी तर गये।

व्याख्या : राम पतितपावन हैं। जैसे ही जीव भजन के लिए उनके सम्मुख होता है। तैसे हीं वे उसके करोड़ों जन्म के पापों का नाश कर देते हैं और जहाँ मद मोह कपटादि को छोड़कर शरण में आया तहाँ उसे तुरन्त साधु के समान बना लेते हैं। भजन करने के कारण कृपा बनाये रखते हैं। पाँच खलों की नजीर दी जाती है जो भजन करने से तर गये। १. गणिका के अज्ञान की कौन सीमा है जिसने क्षणिक सुख के लिए शतकोटि कल्प के दुःख पर ध्यान न दिया। २. अजामिल

की अस्मिता का क्या अन्त जिसने जन्मभर पाप ही कमाया। घोर संकट के समय भी परमेश्वर को न पुकारकर लड़के को पुकारा। व्याध के राग का क्या ठिकाना। जो कुटुम्ब के राग में पड़ा हुआ हिंसा ही करता रहा और गीध को द्वेषयुक्त जीविका ही थी। यथा : गीध अधम खल आमिष भोगी। गज ने प्राण की रक्षा के लिए भगवान को ही पुकारा। अतः इन पाँचों में प्रधानतः अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश का आधिक्य था। इसलिए पाँच उदाहरण दिये गये। भजन से सब तर गये।

आभीर जवन किरात खस स्वपचादि अति अघरूप जे।
कहि नाम बारक तेपि पावन होहिं राम नमामि ते ॥

अर्थ : आभीर, यवन, किरात, खश, चाण्डाल आदि जो पापरूप हैं वे भी एक बार जिसके नाम लेने से पवित्र होते हैं ऐसे राम को मैं नमस्कार करता हूँ।

व्याख्या : उपर्युक्त जातियाँ अघरूप हैं। लोक और वेद सब भाँति से नीच हैं। इन योनियों में जन्म होना पूर्व पाप का परिणाम है। इन योनियों में जन्म लेकर जो एक बार भी भगवान् का नाम लेता है सो पवित्र हो जाता है। नाम में ऐसी पापदाहिका शक्ति है कि उनके पापों को भी भस्म कर देती है। यथा : बिबसहु जासु नाम नर कहहीं। जनम अनेक रचित अघ दहहीं। सादर सुमिरन जे नर करहीं। भव बारिधि गोपद इव तरहीं।

रघुवंस भूषन चरित यह नर कहहि सुनहि जे गावहीं।
कलिमल मनोमल धोइ बिनु स्रम रामधाम सिधावहीं ॥

अर्थ : रघुवंश भूषन के चरित्र को जो स्त्री पुरुष गाते हैं या सुनते हैं वे कलि के और मन के मल को धोकर अनायास रामधाम को चले जाते हैं।

व्याख्या : एक तो यह युग मलिन तिस पर मन मलिन। फिर सुगति की कौन आशा है। पर भगवान् के चरित गान से दोनों छूट जाते हैं। जीव रामधाम की प्राप्ति का अधिकारी होता है जहाँ से पुनरावृत्ति नहीं होती। अन्य साधनों में बड़ा आयास है। पर यह साधन ऐसा है कि गाते बजाते रामधाम चले जाइये।

सतपंच चौपाई मनोहर जानि जो नर उर धरैं।
दारुन अविद्या पंच जनित विकार श्रीरघुवर हरैं ॥

अर्थ : एक सौ पाँच चौपाइयों को जो कोई जानकर हृदय में धारण करता है उसके दारुण अविद्या से उत्पन्न पाँचों विकारों को श्री रामजी हरण करते हैं।

व्याख्या : अन्तिम १०५ चौपाइयों के धारण करने की पृथक् फलश्रुति है। सम्पूर्ण ग्रन्थ के धारण करने में जो असमर्थ हैं उनके लिए इसका विधान है। चौपाइयाँ मनोहर हैं। धारण करते असुविधा भी नहीं है। बात इतनी ही है कि तोते की तरह धारण न करे। जानकर धारण करने से ही कथित फल होगा।

साधक का काम इतना ही है कि १०५ चौपाइयों[1] को धारण कर ले। उसके पश्चात् अविद्या का नाश तो स्वयं रामजी करेंगे। अविद्या का नाश तथा रामप्रताप सूर्य का उदय दो वस्तु नहीं है।

छं. सुंदर सुजान कृपानिधान अनाथ पर कर प्रीति जो।
सो एक राम अकाम हित निर्बान प्रद सम आन को॥
जाकी कृपा लवलेस ते मतिमंद तुलसीदासहू।
पायउ परम बिस्रामु रामसमान प्रभु नाहीं कहूँ॥३॥

अर्थ : जो सुन्दर हैं सुजान हैं कृपा निधान है। जो अनाथ पर प्रीति करते हैं। वह केवल अकाम हित रामजी हैं। निर्वाण देनेवाला उनसा कौन है। जिसकी कृपा के लवलेश से मतिमन्द तुलसीदास ने भी परम विश्राम पाया। रामजी सा प्रभु कहीं है नहीं।

व्याख्या : भजनीय यदि सुन्दर हो तो चित्त का आकर्षण होता है। बड़ा सुख मिलता है और यदि वह सुजान भी हो हृदय की बात समझ लेता हो तो सुख का उत्कर्ष अधिक बढ़ जाता है। तिस पर यदि उसमें घनी कृपा हो तब कहना ही क्या है? सो रघुनाथजी में सभी गुण हैं। अतः उनके भजन करने में भी बड़ा आनन्द है। उनका स्वभाव ऐसा है कि वे अनाथ पर प्रीति करते हैं। इसीलिए उनका एक नाम अनाथनाथ है। अनाथ पर प्रीति करनेवाला तो संसार में कोई है नहीं एक राम ही ऐसे हैं। क्योंकि जिसकी कामना शेष है वह अनाथ का क्या कल्याण कर सकता है। रामजी अकाम हैं। अतः वे ही अनाथ के हित में समर्थ हैं। कृपा उनकी इतनी है कि शत्रुओं को भी निर्वाण पद देनेवाले हैं। यथा : राम राम कहि तनु तजहिं पावहिं पद निर्बान। अतः कहते हैं कि इस भाँति निर्वाण देनेवाला कोई दूसरा स्वामी नहीं है। उदाहरण में कवि अपने को देते हैं कि जिसकी कृपा के लव का भी लेश मात्र पाकर मेरे ऐसा मतिमन्द भी परम विश्राम के पाने में समर्थ हुआ। श्री गोस्वामीजी ने ग्रन्थारम्भ स्वान्तःसुखाय किया था। सो ग्रन्थ समाप्ति के पहिले ही उन्हें परम विश्राम मिल गया। अतः कहते हैं कि : परम विश्राम ऐसा पद मुझ से मतिमन्द को देनेवाला कौन है। निर्गलितार्थ यही हुआ कि रामजी सा प्रभु कहीं है नहीं।

दो. मोसम दीन न दीनहित, तुम समान रघुबीर।
अस बिचारि रघुबंस मनि, हरहु बिषम भव भीर॥१३०॥

अर्थ : हे रघुवीर! न मुझसा कोई दीन है और न तुम्हारे समान कोई

---

१. इस सतपञ्च चौपाई की विस्तृत टीका भी मैंने लिखी थी जो मानससंघ पो. रामवन : सतना से छपी है और प्राप्त हो सकती है।

दीनहित है। ऐसा विचार करके हे रघुवंशमणि ! विषम सांसारिक दुःख का हरण कीजिये।

व्याख्या : सभी पुरुषार्थ से हीन गोस्वामीजी अपने को मानते हैं। यथा : करमठ कठमलिया कहैं ज्ञानी ज्ञान विहीन। तुलसी त्रिपथ विहाइ गो राम दुआरे दीन। जे जनमें कलिकाल कराला। करतब वायस वेष मराला। चलत कुपंथ वेद मग छाड़े। कपट कलेवर कलिमल भाँड़े। तिन महँ प्रथम रेख जग मोरी। धींग धरम ध्वज धंधरच धोरी। अतः कहते हैं कि मुझसा कोई दीन नहीं है और सरकार का तो विरद ही दीनहित है। आपका तो नाम पतित पावन है। आपको दीन अत्यन्त प्यारे हैं। यथा : काको नाम पतित पावन जग केहि अति दीन पियारे। खग मृग व्याध पखान विटप जड़ जवन कवन सुर तारे। अतः न मेरा कोई जोड़ संसार में है और न आपका कोई जोड़ है। मेरा उद्धार आप ही कर सकते हैं। ऐसा विचार करके हे रघुवंशमणि ! आप के वंश में याचक को नकरात्मक उत्तर नहीं मिलता। यथा : मंगन लहहिं न जिनके नाहीं। आप तो उस वंश में मणि हैं। मेरा यही माँगना है कि विषम भवभीर का हरण कीजिये। आप इसे पूरा कीजिये। विचार लीजिये : है कोई मेरे विषम भवभीर के हरण में समर्थ ?

दो. कामिहि नारि पियारि जिमि, लोभिहि प्रिय जिमि दाम।
तिमि रघुनाथ निरंतर, प्रिय लागहु मोहि राम ॥१३१॥

अर्थ : कामी को जिस भाँति स्त्री प्रिय होती है और लोभी को जैसे धन प्रिय होता है। उसी भाँति हे रघुनाथजी ! आप सदा मुझे प्रिय लगिये।

व्याख्या : हरहु विषम भव भीर कहने से तो यह तात्पर्य निकलता है कि तुम संसार से छुटकारा चाहते हो। अतः क्या तुम्हारी इच्छा मोक्ष की है। इस पर श्री गोस्वामीजी कहते हैं कि नहीं मुझे तो श्री चरणों का प्रेम चाहिए। प्रेम ऐसा चाहिए जैसा कि कामी का प्रेम स्त्री पर होता है। प्रिया के विरह की दशा में कामी की ऐसी अवस्था हो जाती है कि उसे संसार ही स्त्रीमय हो जाती है। यथा : देखहिं परसपर नारिमय जे ब्रह्ममय देखत रहे। इसी भाँति मुझे संसार राममय दिखलाई पड़े। यह तो वियोगावस्था की बात हुई। अब संयोगावस्था की बात कहते हैं कि जैसे लोभी को दाम प्रिय होता है वैसे ही सरकार मुझे प्रिय हों। लोभी दिन रात धन को सँभालता रहता है कि कहीं धन गिर न जाय। उसी भाँति मेरा चित्त सदा आप के सँभालने में लगा रहे। यथा : मन माधव को नेकु निहारहिं। सुनु सठ सदा रंक के धन ज्यौं पुनि पुनि सँभारहि। बार बार रघुवीर संभारी।

श्लो. यत्पूर्वं प्रभुणा कृतं सुकविना श्रीशम्भुना दुर्गमम्
श्रीमद्रामपदाब्जभक्तिमनिशं प्राप्त्यै तु रामायणम्।
मत्वा तद्रघुनाथनामनिरतं स्वान्तस्तमःशान्तये
भाषाबद्धमिदञ्चकार तुलसीदासस्तथा मानसम् ॥१॥

अर्थ : सुन्दर सूक्ष्मदर्शी प्रभु शम्भु ने पहिले जिस रामायण की रचना श्रीरामजी के चरणों की निरन्तर भक्ति प्राप्त के लिए की थी और उसी को तुलसीदास ने रामनाम में तत्पर पाकर अपने अन्तःकरण के अन्धकार की शान्ति के लिए भाषा में यह मानस रचा।

व्याख्या : प्रभु शम्भु सुकवि हैं। यथा : कविं पुराणमनुशासितारमणोरणीयां-समनुस्मरेद्यः। बड़े सूक्ष्मदर्शी हैं : उन्होंने पहिले रामायण की रचना की। उसमें ऐसी सूक्ष्मदर्शिता से काम लिया गया था कि वह दुर्गम हो गयी थी और उसे रचकर उन्होंने अपने मानस में ही रख छोड़ा था। यथा : रचि महेस निज मानस राखा। पाइ सुसमउ सिवा सन भाखा। ताते रामचरित मानस बर। धरेउ नाम हिय हेरि हरषि हर। सोइ सिव काग भुसुण्डिहि दीन्हा। राम भगति अधिकारी चीन्हा। श्रीशम्भु के रचने का प्रयोजन यह था कि इसके द्वारा श्रीरामजी के चरण कमलों की अनपायिनी भक्ति प्राप्त हो। उसी परम्परा से गुरु द्वारा श्रीगोस्वामीजी को उस रामकृपा की प्राप्ति हुई। उस रामायण को रामनाम परक पाकर श्रीगोस्वामीजी को बड़ी अभिरुचि हुई कि इसे भाषाबद्ध करें तो मेरे अन्तःकरण का अन्धकार दूर हो। यथा : भाषाबद्ध करबि मैं सोई। मोरे मन प्रबोध जेहि होई। अतः गोस्वामीजी ने उसे भाषाबद्ध किया। यहाँ लिट् का प्रयोग किया। जो कि परोक्ष अर्थ में किया जाता है। यथा : भाषाबद्धमिदञ्चकार इससे यह पता लगता है कि इस ग्रन्थ की रचना समाधि अवस्था में हुई है। यथा : उमगेउ प्रेम प्रमोद प्रवाहू। चली सुभग कविता सरिता सों। राम विमल जस जल भरिता सों। रामपरक होने से अभिरुचि का कारण यह है कि रामनाम गोस्वामीजी को राम से भी प्यारा है। यथा : प्रिय रामनाम ते जाहि न रामो।

श्लो. पुण्यं पापहरं सदा शिवकरं विज्ञानभक्तिप्रद
मायामोहमलापहं सुविमलं प्रेमाम्बुपूरं शुभं।
श्रीमद्रामचरित्रमानसमिदं भक्त्यावगाहन्ति ये
ते संसारपतङ्गघोरकिरणैर्दह्यन्ति नो मानवाः ॥२॥

अर्थ : यह श्रीरामचरितमानस पुण्य है। पाप हरण करनेवाला है। सदा मंगल करनेवाला है। विज्ञान भक्ति का देनेवाला है। माया मोह और मल का दूर करने-वाला है। सुन्दर निर्मल है। प्रेमरूपी जल का सर है और शुभ है। इसमें जो भक्ति से स्नान करते हैं वे मनुष्य संसाररूपी घोर रविकर से संतप्त नहीं होते।

व्याख्या : यह श्रीयुक्त रामचरितमानस पुण्यरूप है। इसलिए पाप का हरण करता है और पाप ही दुःख का कारण है। उसे यह हरण कर लेता है। अतः यह सदा मङ्गल करनेवाला है। परम मंगल तो दो ही है : ज्ञान या भक्ति। यह दोनों देता है जो जिसे पसन्द हो उसे वह ग्रहण करे। यथा : रामचरन रति जो चह अथवा पद निर्वान। भाव सहित सों येहि कथा करौ स्रवनपुट पान। माया मोह और

मल का हरण करनेवाला है। यहाँ माया से : आवरण शक्ति मोह से : विक्षेप शक्ति और मल का इसमें अभाव कहा। अतः कहते हैं कि यह अत्यन्त निर्मल है और शुभ प्रेम वारि से परिपूर्ण है।

पुण्यं से बालकाण्ड की महिमा कही। पापहरं से अयोध्याकाण्ड की। सदा शिवकरं से अरण्यकाण्ड की। विज्ञान भक्तिप्रदं से किष्किन्धाकाण्ड की। मायामोह-मलापहं से सुन्दरकाण्ड की और विमलं से लंकाकाण्ड की तथा प्रेमाम्बुपूरं से उत्तरकाण्ड की महिमा कही। यह शुभ शंभु उमा सम्बादरूप से सुखसम्पादन और विषाद शमन है। यथा : यह सुभ सम्भु उमा संबादा। सुख संपादन समन विषादा। इसलिए सम्वादरूप से यह शुभ है।

इस मानस सरोवररूपी श्रीरामचरित में जो स्नान करते हैं अर्थात् कहते सुनते और अनुमोदन करते हैं उन्हें मध्याह्नार्कमरीचिका सन्ताप नहीं देती। नहीं तो : तृषित निरखि रबिकर भव बारी। फिरिहहिं मृग जिमि जीव दुखारी। इसमें अवगाहन करनेवाला तीनों ताप से छूट जाते हैं।

यह अट्ठाइसवीं स्तुति श्री गोस्वामीजीकृत है। इसे रेवती नक्षत्र माना गया है। इसको मर्दलाकार आकृति है। डङ्का दिया जा रहा है कि : ये अवगाहन्ति ते न दह्यन्ति। इसमें ३२ तारे चमकते हैं। यथा : १. रामहि सुमिरिअ २. गाइअ रामहि ३. सुनिअ रामगुन ग्रामहि ४. भजिअ तजि कुटिलाई : ये चार भक्त के कर्तव्य और दश उदाहरण यथा : १. गनिका २. अजामिल ३. व्याध ४. गीध ५. गजादि खल तारे घना। ६. आभीर ७. जवन ८. किरात ९. खस १०. स्वपचादि अति अघ रूपजे। ग्यारह गुण भगवान् के यथा : १. सुन्दर २. सुजान ३. कृपानिधान ४. अनाथ पर कर प्रीति जो ५. सो एक ६. अकामहित ७. निर्वान प्रद ८. प्रभु ९. दीन हित १०. रघुवीर ११. रघुवंश मणि। सात गुण चरित्र के यथा ; १. पुण्य २. पापहर ३. शिवकर ४. विज्ञान भक्तिप्रद ५. माया मोह मलापह ६. सुविमल ७. प्रेमाम्बुपूर शुभ। ४+१०+११+७=३२ इस स्तुति में ये बत्तीस तारे चमकते हैं। रघुवंश भूषण कहके भी बत्तीस ही कहा। आभूषण ३२ प्रकार के माने जाते हैं।

श्रीरामचरित को मानस सर माना है। वकार जल बीज है। इसलिए इस ग्रन्थ को गोस्वामीजी ने वकार से आरम्भ किया। यथा : वर्णानामर्थसंघानाम् और अब वकार से ही समाप्त करते हैं। यथा : दह्यन्ति नो मानवाः।

इति श्रीरामचरितमानसे सकलकलिकलुषविध्वंसने
अविरलहरिभक्तिसंपादनो नाम
सप्तमः सोपानः समाप्तः
शुभमस्तु मंगलमस्तु हरिः ॐ तत्सत्।

हे राम चरित, आकण्ठ भरित
तुलसी कृत मानस राजहंस
तव विमल वंश है धन्य धन्य
तुमसा न अन्य ।

शुचि सरल शान्त, सेवी एकान्त
ज्ञानी वैराग्य विचारवान
तव गुन रुझान है धन्य धन्य
तुमसा न अन्य ।

संशय वर्जित, बहुजन चर्चित
युत युक्ति युक्त समुचित प्रमान
तव व्याख्यान है धन्य धन्य
तुमसा न अन्य ।

भ्रम भंजन छम, सुन्दर मनरम
अति रुचिर विरचिता विधि नोका
तव विजया टीका है धन्य धन्य
तुमसा न अन्य ।

हे यश: काय, हम निर उपाय
कर 'बंचक' मन क्रम बचन वरण
तव चरण शरण हैं धन्य धन्य
तुमसा न अन्य ।

—लक्ष्मीकान्त मिश्र

चौखम्बा विद्याभवन

वाराणसी